संक्षिप्त

स्कन्दपुराण

गीताप्रेस गोरखपुर
GITA PRESS, GORAKHPUR [SINCE 1923]

गीताप्रेस, गोरखपुर

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

0279

॥ श्रीहरिः ॥

कल्याण

संक्षिप्त स्कन्दपुराणाङ्क

[पचीसवें वर्षका विशेषाङ्क]

गीताप्रेस, गोरखपुर

In Public Domain. Digitized by Sarvagya Sharada Peeth

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

॥ श्रीहरिः ॥

संक्षिप्त स्कन्दपुराण

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

गीताप्रेस, गोरखपुर

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

सं० २०७६ उनतीसवाँ पुनर्मुद्रण ३,०००
कुल मुद्रण १,२०,५००

❖ मूल्य—₹ ३८०
(तीन सौ अस्सी रुपये)

प्रकाशक एवं मुद्रक—
गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५
(गोबिन्दभवन-कार्यालय, कोलकाता का संस्थान)
फोन : (०५५१) २३३४७२१, २३३१२५०, २३३१२५१
web : gitapress.org e-mail : booksales@gitapress.org
गीताप्रेस प्रकाशन gitapressbookshop.in से online खरीदें।

279 Skandpuran_Section_1_1_Back

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

॥ श्रीहरि: ॥

नम्र निवेदन

भारतीय संस्कृतिके मूलाधारके रूपमें वेदोंके बाद पुराणोंका ही स्थान है। वेदोंमें वर्णित अगम रहस्योंतक जन-सामान्यकी पहुँच नहीं हो पाती, परन्तु पुराणोंकी मंगलमयी, ज्ञानप्रदायिनी दिव्य कथाओंका श्रवण-मनन और पठन-पाठन करके जन-साधारण भी भक्तितत्त्वके अनुपम रहस्यसे सहज ही परिचित हो सकते हैं। महाभारतमें कहा गया है—'पुराणसंहिता: पुण्या: कथा धर्मार्थसंश्रिता:।' (महाभारत, आदि० १।१६) 'अर्थात् पुराणोंकी पवित्र कथाएँ धर्म और अर्थको प्रदान करनेवाली हैं।' अध्यात्मकी दिशामें अग्रसर होनेवाले साधकोंको पौराणिक कथाओंके अनुशीलनसे तत्त्वज्ञानकी प्राप्ति होती है। इसलिये भगवान्‌के दर्शनके लिये अथवा शारीरिक और मानसिक रोगकी निवृत्तिके लिये पुराणोंका पारायण करना चाहिये।

पंचम वेदके रूपमें पौराणिक ज्ञान सर्वप्रथम सृष्टिकर्ता ब्रह्माजीके द्वारा अभिव्यक्त हुआ—

इतिहासपुराणानि पञ्चमं वेदमीश्वर:।
सर्वेभ्य एव वक्त्रेभ्य: ससृजे सर्वदर्शन:॥ (श्रीमद्भा० ३।१२।३९)

'इतिहास और पुराणरूप पाँचवें वेदको समर्थ, सर्वज्ञ ब्रह्माजीने अपने सभी मुखोंसे प्रकट किया।' इसी दृष्टिसे कहा गया है—'पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणां स्मृतम्।' इनका विस्तार सौ करोड़ श्लोकोंका माना गया है। समयके परिवर्तनसे जब मनुष्यकी आयु कम हो जाती है और इतने बड़े पुराणका श्रवण-मनन मनुष्योंके लिये असम्भव हो जाता है, तब उनका संक्षेप करनेके लिये भगवान् स्वयं व्यासरूपमें अवतीर्ण होकर उन्हें अठारह भागोंमें बाँटकर चार लाख श्लोकोंमें सीमित कर देते हैं। पुराणोंका यह संक्षिप्त संस्करण ही यहाँ उपलब्ध है। कहते हैं स्वर्गादि लोकोंमें आज भी एक अरब श्लोकोंका विस्तृत पुराण विद्यमान हैं। इस प्रकार भगवान् व्यास भी पुराणोंके रचयिता नहीं, अपितु संक्षेपक या संग्राहक ही सिद्ध होते हैं। इसीलिये वेदोंकी भाँति पुराण भी अनादि माने जाते हैं।

विभिन्न विषयोंके विस्तृत विवेचनकी दृष्टिसे पुराणोंमें स्कन्दपुराण सबसे बड़ा है। भगवान् स्कन्दके द्वारा कथित होनेके कारण इसका नाम स्कन्दपुराण है। यह खण्डात्मक और संहितात्मक दो स्वरूपोंमें उपलब्ध है। दोनों खण्डोंमें ८१-८१ हजार श्लोक हैं। खण्डात्मक स्कन्दपुराणमें क्रमश: माहेश्वर, वैष्णव, ब्राह्म, काशी, अवन्ती (ताप्ती और रेवाखण्ड) नागर तथा प्रभास—ये सात खण्ड हैं। संहितात्मक स्कन्दपुराणमें सनत्कुमार, शंकर, ब्राह्म, सौर, वैष्णव और सूत—छः संहिताएँ हैं। इसमें बदरिकाश्रम, अयोध्या, जगन्नाथपुरी, रामेश्वर, कन्याकुमारी, प्रभास, द्वारका, काशी, कांची आदि तीर्थोंकी महिमा; गंगा, नर्मदा, यमुना, सरस्वती आदि नदियोंके उद्गमकी मनोरम कथाएँ; रामायण, भागवतादि ग्रन्थोंका माहात्म्य, विभिन्न महीनोंके व्रत-पर्वका माहात्म्य तथा शिवरात्रि, सत्यनारायण आदि व्रत-कथाएँ अत्यन्त ही रोचक शैलीमें प्रस्तुत की गयी हैं। विचित्र कथाओंके माध्यमसे भौगोलिक ज्ञान तथा प्राचीन इतिहासकी ललित प्रस्तुति इस पुराणकी अपनी अलग विशेषता है। आज भी इसमें वर्णित विभिन्न व्रत-त्योहारोंके दर्शन भारतके घर-घरमें किये जा सकते हैं।

इस पुराणकी विशेषताओंको देखकर 'कल्याण-वर्ष २५, सन् १९५१' के विशेषाङ्कके रूपमें संक्षिप्त स्कन्दपुराणाङ्कका प्रकाशन किया गया था जिसके स्वाध्यायसे जिज्ञासु साधक अपने आत्मकल्याणका पथ प्रशस्त करते रहे हैं। अब इस संक्षिप्त स्कन्दपुराणको गीताप्रेसद्वारा पुस्तकरूपमें पाठकोंकी सेवामें प्रस्तुत किया जा रहा है। आशा है, धर्मप्रेमी सज्जन इसके स्वाध्याय एवं मननके माध्यमसे पारमार्थिक लाभ उठाते रहेंगे।

—प्रकाशक

279 Skandpuran_Section_1_2_Front
In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

॥ श्रीहरि: ॥

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या
(१) माहेश्वरखण्ड	
(केदारखण्ड)	
१. भगवान् शिवकी महिमा, दक्षका शिवजीसे द्वेष तथा दक्ष-यज्ञमें सतीका गमन	१
२. सतीका अग्नि-प्रवेश, दक्ष-यज्ञ-विध्वंस तथा दक्षपर पुन: भगवान् शिवकी कृपा	५
३. शिवपूजनकी महिमा	१२
४. शिवलिंग-पूजनकी महिमा तथा रावणके उत्कर्ष और पतनका वृत्तान्त	१३
५. गुरुकी अवहेलनासे इन्द्रकी दैत्योंद्वारा पराजय, समुद्र-मन्थन, शंकरजीकी कृपासे कालकूट विषसे सबकी रक्षा, विविध रत्नोंका प्राकट्य तथा लक्ष्मीजीका प्रादुर्भाव	१६
६. अमृतकी उत्पत्ति, भगवान्‌का मोहिनीरूपद्वारा देवताओंको अमृत पिलाना, शिवके द्वारा राहुसे चन्द्रमाकी रक्षा तथा शिवके लिये दीपदान, रुद्राक्षधारण और विभूतिधारणका माहात्म्य	२४
७. इन्द्रकी विजय, इन्द्रद्वारा विश्वरूपका वध, नहुषका स्वर्गसे पतन, ब्रह्महत्यासे इन्द्रकी मुक्ति तथा पुन: राज्यकी प्राप्ति	२७
८. विश्वकर्माके तपसे वृत्रासुरकी उत्पत्ति तथा दधीचिद्वारा देवताओंको अस्थिदान	३३
९. पिप्पलादका जन्म, सुवर्चाका पतिलोकगमन, देवासुर-संग्राममें नमुचिका वध, प्रदोष-व्रतकी विधि और उद्यापन, इन्द्र और वृत्रासुरका युद्ध तथा इन्द्रकी विजय	३५
१०. बलिके द्वारा देवताओंकी पराजय, अदितिके व्रत-तपस्यासे सन्तुष्ट हो भगवान्‌का वामनरूपमें अवतार, बलिके पूर्वजन्मका प्रसंग तथा बलिपर वामनजीकी कृपा	४२
११. तारकासुरको ब्रह्माजीका वरदान, हिमालयके घर सतीका पार्वतीरूपमें अवतार, शंकरजीके रोषसे कामदेवका भस्म होना तथा पार्वतीकी उग्र तपस्या	५१
१२. देवताओंकी प्रार्थनासे भगवान् शिवका पार्वतीजीके पास जाना और उनके प्रेमकी परीक्षा ले उनकी तपस्याको सफल बनाना	५७
१३. सप्तर्षियोंका आगमन, शिवके साथ पार्वतीके विवाहका निश्चय, समस्त देवताओंका शिवकी बारातमें आगमन, हिमवान्‌द्वारा स्वागत तथा मण्डपमें कन्यादानकी तैयारी	६१
१४. हिमवान्‌द्वारा कन्यादान, बारातका भोजन और बिदाई, शिवमहिमा तथा कुमारका जन्म	६६
१५. देवताओंका तारकासुर और उनकी सेनाके साथ संग्राम तथा कुमार कार्तिकेयद्वारा तारकासुरका वध	७०
१६. यमराजके द्वारा भगवान् शिवकी स्तुति तथा शिवके द्वारा यमराजको आत्मज्ञानका उपदेश	७४
१७. कार्तिकेयजीकी स्तुति और उनके द्वारा पर्वतोंको वरदान तथा महाराज श्वेतका चरित्र	७७
१८. शिवरात्रि-व्रतकी महिमा	८०
(कुमारिकाखण्ड)	
१९. पंचाप्सरसतीर्थमें अर्जुनद्वारा अप्सराओंका उद्धार	८३
२०. सारस्वत-कात्यायन-संवाद—दान और त्यागकी महिमा	८६
२१. नारदजीके द्वारा धर्मवर्माके दानसम्बन्धी जटिल प्रश्नोंका समाधान	९१
२२. कलाप-ग्रामनिवासी सुतनुद्वारा नारदजीके जटिल प्रश्नोंका समाधान	९९
२३. नारदजीके द्वारा कलाप-ग्रामके ब्राह्मणोंको महीसागरसंगममें ले आना और वहाँ उन्हें भूमि आदि देकर पुण्यस्थानकी स्थापना करना	१०७
२४. लोमशजीका राजा इन्द्रद्युम्नको अपने पूर्वजन्मका चरित्र सुनाकर शिवकी आराधनाका महत्त्व बतलाना	११२
२५. संवर्तके मुखसे महीसागरसंगमकी महिमा तथा भर्तृयज्ञद्वारा शतरुद्रिय सुनकर शिवकी आराधनासे इन्द्रद्युम्न आदि सब भक्तोंको शिवसारूप्यकी प्राप्ति	११५
२६. कुमारका अनुताप, भगवान् विष्णुका उन्हें समझाना तथा उनकी सम्मतिसे स्कन्दद्वारा तीन शिवलिंगोंकी स्थापना और भगवान् शिवका वरदान	१२२
२७. कुमारका विजयस्तम्भ, प्रलम्ब दानवका वध तथा भूगोलका वर्णन	१३०
२८. नवग्रहोंकी स्थिति, ऊपरके सात लोकोंका वर्णन, वायुके सात स्कन्ध, सात पाताल, इक्कीस नरक, ब्रह्माण्डकटाह एवं काल-मान आदिका निरूपण	१३५
२९. राजा शतशृंगकी पुत्री कुमारीका चरित्र तथा कुमारीखण्डकी श्रेष्ठता	१४१
३०. कालभीतिकी तपस्या तथा धर्मनिष्ठा, महाकालका प्रादुर्भाव और कालभीतिपर भगवान् शङ्करकी कृपा	१४५
३१. महाकालद्वारा करन्धमके प्रश्नानुसार श्राद्ध तथा युगव्यवस्थाका वर्णन	१५०
३२. त्रिदेवोंकी श्रेष्ठता और पापोंके भेद	१५६
३३. शिवपूजाकी विधि तथा सदाचारका निरूपण	१६१

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

विषय	पृष्ठ-संख्या
३४. नारदजीके द्वारा भगवान् वासुदेवकी स्थापना, ऐतरेयका अपनी मातासे संसारदु:खका वर्णन, भगवान्का प्रत्यक्ष प्रकट होकर ऐतरेयको वरदान देना तथा वासुदेवके ध्यानसे ऐतरेयकी मुक्ति	१६६
३५. भट्टादित्यकी स्थापना तथा नारदजीके द्वारा एक सौ आठ नामोंसे उनकी स्तुति	१७९
३६. महात्मा नन्दभद्रके सारभूत विचार तथा उनके द्वारा सत्यव्रतके नास्तिकतापूर्ण विचारोंका खण्डन	१८१
३७. नन्दभद्र और बालकका संवाद, बालादित्यकी स्थापना और नन्दभद्रकी मुक्ति	१८७
३८. महीसागरसंगमतीर्थकी रक्षा करनेवाली देवियोंका परिचय	१९२
३९. उभय सोमनाथके प्रादुर्भावकी कथा और कमठके द्वारा गर्भवास तथा मानव-शरीरकी उत्पत्तिका वर्णन	१९४
४०. कमठद्वारा शरीरकी उत्पत्ति, विनाश तथा जीवके परलोकवासका वर्णन	१९८
४१. पापकर्मोंके फल, जयादित्यकी स्तुति और महिमा	२०२
४२. नारदजीके गुणोंका वर्णन तथा गौतमेश्वरकी महिमाके प्रसंगमें योगका निरूपण	२०७
४३. महीसागरसंगमकी श्रेष्ठता तथा उसके गुप्तक्षेत्र होनेका कारण	२१७
४४. घटोत्कचका विवाह और बर्बरीकका जन्म	२१९
४५. बर्बरीक और विजयकी गुप्तक्षेत्रमें साधना तथा पाण्डवोंसे बर्बरीककी भेंट	२२४
४६. बर्बरीकका वध तथा उसके पूर्वजन्मके वृत्तान्तका वर्णन और ग्रन्थका उपसंहार	२३३
(अरुणाचल-माहात्म्यखण्ड)	
४७. भगवान् शंकरका 'अरुणाचल' रूपसे प्रकट होना तथा ब्रह्मा और विष्णुका उनकी स्तुति करना	२३८
४८. शिवके विभिन्न तीर्थोंकी महिमा	२४०
४९. अरुणाचलक्षेत्रकी महिमा, विभिन्न पापोंके फल और उन पापकर्मोंका प्रायश्चित्त	२४४
५०. अरुणाचलेश्वरकी पूजा, शिवजीके द्वारा सृष्टिका प्रादुर्भाव तथा विष्णुके द्वारा भगवान् शंकरकी स्तुति	२४७
५१. शिव-पार्वतीके दाम्पत्यजीवनकी एक झाँकी, पार्वतीकी अरुणाचलक्षेत्रमें तपस्या और दुर्गादेवीके द्वारा शुम्भ, निशुम्भ और महिषासुरका वध	२४८
५२. खड्गतीर्थकी उत्पत्ति, ज्योतिदर्शन, पार्वतीपर अरुणाचलेश्वरकी कृपा तथा भगवान् शिवका वरदान	२५३
५३. कान्तिशाली तथा कलाधरका उद्धार, राजा वज्रांगदद्वारा अरुणाचलेश्वरकी आराधना तथा भगवान् शिवकी उनके ऊपर कृपा	२५५

विषय	पृष्ठ-संख्या
(२) वैष्णवखण्ड	
(भूमिवाराहखण्ड या वेंकटाचल-माहात्म्य)	
५४. मेरुगिरिपर भगवान् वाराहकी सेवामें पृथ्वीदेवीका उपस्थित होना और श्रेष्ठ पर्वतों तथा वेंकटाचलवर्ती तीर्थोंका माहात्म्य सुनना	२६१
५५. भगवान् वाराहका मन्त्र, उसके जपकी विधि, ध्यान तथा उसके अनुष्ठानका फल	२६५
५६. महर्षि अगस्त्यकी प्रार्थनासे भगवान् विष्णुका वेंकटाचलपर श्री-भू देवियोंके साथ निवास तथा आकाशराजके यहाँ पद्मावती और वसुदानका जन्म	२६६
५७. वेंकटाचलनिवासी श्रीहरि और पद्मावतीका विवाह	२६८
५८. तोण्डमानको निषादके साथ भगवान् श्रीनिवासका दर्शन होना	२७६
५९. वाराहभगवान् तथा अस्थिसरोवरतीर्थकी महिमा, भक्त कुम्हार तथा राजा तोण्डमानका परमधाम-गमन	२८०
६०. राजा परीक्षित्‌को ब्राह्मणका शाप, तक्षकके काटनेसे उनकी मृत्यु तथा उनकी रक्षा न करनेके पापसे कलंकित काश्यप ब्राह्मणका स्वामिपुष्करिणीमें स्नान करके शुद्ध होना	२८४
६१. स्वामितीर्थकी महिमा और उसमें स्नान करनेसे राजा धर्मगुप्तके शापजनित उन्मादका निवारण	२८७
६२. कृष्णतीर्थ और भगवान् वेंकटेश्वरका माहात्म्य	२९०
६३. पापनाशनतीर्थकी महिमा—भद्रमति ब्राह्मणका चरित्र	२९२
६४. आकाशगंगातीर्थकी महिमा—रामानुजपर भगवान्‌की कृपा तथा भगवद्भक्तोंका लक्षण	२९५
६५. दान-पात्र-विचार, चक्रतीर्थकी महिमा, पद्मनाभकी तपस्या, भगवान्‌का वरदान तथा राक्षसके आक्रमणसे चक्रद्वारा पद्मनाभकी रक्षा	२९७
६६. सुन्दर गन्धर्वका वसिष्ठजीके शापसे राक्षसभावको प्राप्त होकर पुनः उससे मुक्त होना	३००
६७. घोणतीर्थका माहात्म्य—गन्धर्वपत्नीका उद्धार	३०१
६८. वेंकटाचलके मुख्य तीर्थोंका वर्णन, पुराणश्रवणकी महिमा और नियम तथा अर्जुनकी तीर्थयात्रा	३०३
६९. अर्जुनका कालहस्तीश्वरके समीप भरद्वाजके आश्रमपर जाना और भरद्वाजजीके द्वारा अगस्त्यजीके प्रभावका वर्णन	३०६
७०. महर्षि अगस्त्यकी तपस्यासे सुवर्णमुखरी नदीका प्रादुर्भाव और उसका माहात्म्य	३०८
७१. सुवर्णमुखरी नदीके तीर्थोंका वर्णन, भगवान् विष्णुकी महिमा, प्रलयकालकी स्थिति तथा श्वेतवाराहरूपमें भगवान्‌का प्राकट्य	३११

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

विषय	पृष्ठ-संख्या
७२. वेंकटाचलपर राजा शंख और महर्षि अगस्त्य आदिको भगवान्‌का प्रत्यक्ष दर्शन तथा वरप्राप्ति	३१५
७३. आकाशगंगातीर्थमें अंजनाकी तपस्या और उसे वायुदेवद्वारा वरदानकी प्राप्ति	३१८
(उत्कलखण्ड या पुरुषोत्तमक्षेत्र-माहात्म्य)	
७४. भगवान् विष्णुका ब्रह्माजीको पुरुषोत्तमक्षेत्रमें जानेका आदेश	३२०
७५. यमराज तथा मार्कण्डेयजीके द्वारा भगवान्‌की स्तुति और पुरुषोत्तमक्षेत्रकी महिमा	३२२
७६. पुरुषोत्तमक्षेत्रके विभिन्न तीर्थों और देवताओंका परिचय, तीर्थ और भगवान्‌की महिमा तथा पापपरायण पुण्डरीक और अम्बरीषका उस क्षेत्रमें आना	३२६
७७. पुण्डरीक और अम्बरीषद्वारा भगवान्‌की स्तुति तथा पुरुषोत्तमक्षेत्रमें रहकर भजन करनेसे उनकी मुक्तिका वर्णन	३२८
७८. उत्कलदेशके भव्य रूपका परिचय, राजा इन्द्रद्युम्नका एक तीर्थयात्रीसे पुरुषोत्तमक्षेत्रकी महिमा सुनकर पुरोहितके भाईको वहाँ भेजना और उनका नीलाचलके समीप शबरसे वार्तालाप	३३१
७९. विद्यापतिका शबरके साथ नीलमाधवका दर्शन करके तीर्थकी परिक्रमा करना और अवन्तीमें जाकर राजा इन्द्रद्युम्नको सब समाचार सुनाना	३३५
८०. भगवान् जगन्नाथके नीलमणिमय विग्रहका वर्णन, इन्द्रद्युम्नके पास नारदजीका आगमन और भक्ति एवं भक्तके स्वरूपका विवेचन	३३९
८१. राजा इन्द्रद्युम्नका पुरुषोत्तमक्षेत्रको प्रस्थान और महानदीके तटपर विश्राम	३४४
८२. राजाका एकाम्रक्षेत्र (भुवनेश्वर)-में जाकर भगवान् शिवका पूजन करना और भगवान् शिवका नारदजीसे उनके कर्तव्यकार्योंका संकेत करना	३४७
८३. राजा इन्द्रद्युम्नका नारदजीके साथ नृसिंहजी, कल्पवट तथा नीलमाधवके स्थानका दर्शन करना और आकाशवाणी सुनना	३४९
८४. देवर्षि नारदजीके द्वारा भगवान् नृसिंहकी स्थापना और राजा इन्द्रद्युम्नके द्वारा उनका स्तवन	३५१
८५. इन्द्रद्युम्नके द्वारा सहस्र अश्वमेध यज्ञोंका अनुष्ठान और ध्यानमें भगवान्‌का दर्शन	३५३
८६. अश्वमेधकी पूर्ति, आकाशवाणी, भगवान्‌की काष्ठमयी प्रतिमाका निर्माण, संस्कार तथा स्तवन	३५६
८७. देवताओं तथा ब्रह्माजीके द्वारा भगवद्विग्रहोंका स्तवन और उनकी स्थापना	३५९
८८. ब्रह्माजीके द्वारा भगवत्स्वरूपकी एकताका प्रतिपादन तथा भगवान्‌का राजा इन्द्रद्युम्नको अपनी सेवाका आदेश देना	३६६
८९. समुद्रमें स्नानकी विधि और भगवद्विग्रहोंका वर्णन	३६८
९०. इन्द्रद्युम्न-सरोवरमें स्नान, नृसिंहजीका दर्शन-पूजन तथा भगवद्विग्रहोंके ज्येष्ठ-स्नानका वर्णन	३७१
९१. श्रीजगन्नाथजीकी रथयात्रा, गुण्डिचा-महोत्सव तथा पुनः मन्दिरप्रवेश सम्बन्धी यात्रा एवं उत्सवकी महिमा	३७३
९२. पुरुषोत्तमक्षेत्रमें चातुर्मास्यकी महिमा, राजा श्वेतपर भगवत्कृपा तथा भगवत्प्रसादका माहात्म्य	३७६
९३. भगवान् पुरुषोत्तमके पार्श्व-परिवर्तन, उत्थापन और प्रावरण आदि उत्सवोंका महत्त्व	३८१
९४. पुष्यस्नानोत्सव, उत्तरायणोत्सव तथा दोलारोहण-उत्सवका वर्णन	३८३
९५. भगवान्‌की द्वादशादित्य मूर्तियोंकी उपासना, दक्षके द्वारा भगवान्‌की आराधना और वर-प्राप्ति तथा विभिन्न विभूतियोंके रूपमें भगवान्‌की उपासनाका फल	३८७
९६. राजा इन्द्रद्युम्नका ब्रह्मलोकगमन, पुराण-श्रवणकी विधि और ग्रन्थका उपसंहार	३८९
(बदरिकाश्रम-माहात्म्य)	
९७. सब तीर्थोंका संक्षिप्त माहात्म्य तथा बदरीक्षेत्रकी विस्तृत महिमाका उपक्रम	३९२
९८. बदरीक्षेत्रकी महिमा—अग्निदेवके सर्वभक्षणरूप दोषका निवारण	३९३
९९. बदरीक्षेत्रकी पाँच शिलाओंमेंसे नारदशिला और मार्कण्डेयशिलाका माहात्म्य	३९५
१००. गरुड़शिला, वाराहीशिला और नारसिंही-शिलाकी उत्पत्ति और महिमा	३९७
१०१. बदरीक्षेत्र और वहाँ भगवान्‌के प्रसाद-ग्रहणकी विशेष महिमा	४००
१०२. कपालतीर्थ, ब्रह्मतीर्थ और वसुधारातीर्थकी महिमा	४०१
१०३. पंचतीर्थ, सोमतीर्थ, द्वादशादित्यतीर्थ, चतुःस्त्रोततीर्थ, सत्यपदतीर्थ तथा नर-नारायणाश्रमकी महिमा	४०४
१०४. मेरुतीर्थ, लोकपालतीर्थ, दण्डपुष्करिणी, गंगासंगम तथा धर्मक्षेत्र आदिका माहात्म्य और ग्रन्थका उपसंहार	४०५
(कार्तिकमास-माहात्म्य)	
१०५. कार्तिकमासकी श्रेष्ठता तथा उसमें करनेयोग्य स्नान, दान, भगवत्पूजन आदि धर्मोंका महत्त्व	४०८
१०६. विभिन्न देवताओंके सन्तोषके लिये कार्तिकस्नानकी विधि तथा स्नानके लिये श्रेष्ठ तीर्थोंका वर्णन	४१०
१०७. कार्तिकव्रत करनेवाले मनुष्यके लिये पालनीय नियम	४१३
१०८. कार्तिकव्रतसे एक पतित ब्राह्मणीका उद्धार तथा दीपदान एवं आकाशदीपकी महिमा	४१६

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

विषय	पृष्ठ-संख्या
१०९. कार्तिकमें तुलसीवृक्षके आरोपण और पूजन आदिकी महिमा	४१८
११०. त्रयोदशीसे लेकर दीपावलीतकके उत्सव-कृत्यका वर्णन	४२१
१११. कार्तिकशुक्ला प्रतिपदा और यमद्वितीयाके कृत्य तथा बहिनके घरमें भोजनका महत्त्व	४२३
११२. आँवलेके वृक्षकी उत्पत्ति और उसका माहात्म्य	४२५
११३. गुणवतीका कार्तिकव्रतके पुण्यसे सत्यभामाके रूपमें अवतार तथा भगवान्‌के द्वारा शंखासुरका वध और वेदोंका उद्धार	४२७
११४. कार्तिकव्रतके पुण्यदानसे एक राक्षसीका उद्धार	४२९
११५. भक्तिके प्रभावसे विष्णुदास और राजा चोलका भगवान्‌के पार्षद होना	४३१
११६. जय-विजयका चरित्र	४३५
११७. सांसर्गिक पुण्यसे धनेश्वरका उद्धार, दूसरोंके पुण्य और पापकी आंशिक प्राप्तिके कारण तथा मासोपवासव्रतकी संक्षिप्त विधि	४३६
११८. तुलसी-विवाह और भीष्मपंचक-व्रतकी विधि एवं महिमा	४३८
११९. एकादशीको भगवान्‌के जगानेकी विधि, कार्तिकव्रतका उद्यापन और अन्तिम तीन तिथियोंकी महिमाके साथ ग्रन्थका उपसंहार	४४१
(मार्गशीर्षमास-माहात्म्य)	
१२०. मार्गशीर्षमासमें प्रात:स्नानकी महिमा, स्नानविधि, तिलक-धारण, गोपीचन्दनका माहात्म्य, तुलसीमालाका महत्त्व, भगवत्पूजनका विधान और शंखकी महिमा	४४४
१२१. भगवान्‌के पूजनमें घण्टानाद, चन्दन, पुष्प, तुलसीदल, धूप और दीपका माहात्म्य	४४७
१२२. स्तुतिपाठ, मन्त्रजप, साष्टांग प्रणाम तथा दामोदरमन्त्रके जपका माहात्म्य	४४९
१२३. राजा वीरबाहुके पूर्वजन्मका वृत्तान्त एवं एकादशी-व्रत और उसका उद्यापन	४५०
१२४. एकादशीके जागरण और मत्स्योत्सवकी विधि एवं माहात्म्य	४५४
१२५. ब्राह्मण-भोजन, प्रसाद-भक्षण और श्रीकृष्ण-कीर्तनकी महिमा	४५६
१२६. श्रीकृष्णके बालस्वरूपका ध्यान, दामोदरमन्त्रके अधिकारी शिष्य और गुरुका लक्षण और श्रीमद्भागवतकी महिमा	४५८
१२७. मार्गशीर्षमासमें मथुरासेवनका माहात्म्य और ग्रन्थका उपसंहार	४६०
(श्रीमद्भागवत-माहात्म्य)	
१२८. परीक्षित् और वज्रनाभका समागम, शाण्डिल्य मुनिके मुखसे भगवान्‌की लीलाके रहस्य और व्रजभूमिके महत्त्वका वर्णन	४६२
१२९. यमुना और श्रीकृष्णपत्नियोंका संवाद, कीर्तनोत्सवमें उद्धवजीका प्रकट होना	४६४
१३०. श्रीमद्भागवतका माहात्म्य, भागवतश्रवणसे श्रोताओंको भगवद्धामकी प्राप्ति	४६७
१३१. श्रीमद्भागवतका स्वरूप, प्रमाण, श्रोता-वक्ताके लक्षण, श्रवणविधि और माहात्म्य	४७०
(वैशाखमास-माहात्म्य)	
१३२. वैशाखमासकी श्रेष्ठता; उसमें जल, व्यजन, छत्र, पादुका और अन्न आदि दानोंकी महिमा	४७४
१३३. वैशाखमासमें विविध वस्तुओंके दानका महत्त्व तथा वैशाखस्नानके नियम	४७५
१३४. वैशाखमासमें छत्रदानसे हेमकान्तका उद्धार	४७७
१३५. महर्षि वसिष्ठके उपदेशसे राजा कीर्तिमान्‌का अपने राज्यमें वैशाखमासके धर्मका पालन कराना और यमराजका ब्रह्माजीसे राजाके लिये शिकायत करना	४८०
१३६. ब्रह्माजीका यमराजको समझाना और भगवान् विष्णुका उन्हें वैशाखमासमें भाग दिलाना	४८४
१३७. भगवत्कथाके श्रवण और कीर्तनका महत्त्व तथा वैशाखमासके धर्मोंके अनुष्ठानसे राजा पुरुयशाका संकटसे उद्धार	४८६
१३८. राजा पुरुयशाको भगवान्‌का दर्शन, उनके द्वारा भगवत्स्तुति और भगवान्‌के वरदानसे राजाकी सायुज्य मुक्ति	४८९
१३९. शंख-व्याध-संवाद, व्याधके पूर्वजन्मका वृत्तान्त	४९१
१४०. भगवान् विष्णुके स्वरूपका विवेचन, प्राणकी श्रेष्ठता, जीवोंके विभिन्न स्वभावों और कर्मोंका कारण तथा भागवतधर्म	४९३
१४१. वैशाखमासके माहात्म्य-श्रवणसे एक सर्पका उद्धार और वैशाखधर्मके पालन तथा राम-नामजपसे व्याधका वाल्मीकि होना	४९७
१४२. धर्मवर्णकी कथा, कलिकी अवस्थाका वर्णन, धर्मवर्ण और पितरोंका संवाद एवं वैशाखकी अमावास्याकी श्रेष्ठता	५००
१४३. वैशाखकी अक्षय तृतीया और द्वादशीकी महत्ता, द्वादशीके पुण्यदानसे एक कुतियाका उद्धार	५०३
१४४. वैशाखमासकी अन्तिम तीन तिथियोंकी महत्ता तथा ग्रन्थका उपसंहार	५०६
(श्रीअयोध्या-माहात्म्य)	
१४५. अयोध्यापुरीकी महिमा और सीमाका वर्णन, चक्रतीर्थ एवं श्रीविष्णुहरिका माहात्म्य	५०८
१४६. ब्रह्मकुण्ड, ऋणमोचन तथा पापमोचन आदि तीर्थोंकी महिमा	५१०
१४७. स्वर्गद्वार तथा चन्द्रहरितीर्थकी महिमा, चन्द्रसहस्रव्रतकी उद्यापनविधि	५१२

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

विषय	पृष्ठ-संख्या
१४८. धर्महरिकी स्थापना और स्वर्णखनि तीर्थ, रघुका सर्वस्व दान तथा कौत्सकी याचनाको सफल करना	५१४
१४९. सम्भेदतीर्थ, सीताकुण्ड, गुप्तहरि और चक्रहरि तीर्थकी महिमा	५१७
१५०. गोप्रतारतीर्थकी महिमा और श्रीरामके परमधाम-गमनकी कथा	५२०
१५१. क्षीरोदकतीर्थ, बृहस्पतिकुण्ड, रुक्मिणी आदि कुण्डोंका माहात्म्य	५२३
१५२. अयोध्याक्षेत्रके अन्य विविध तीर्थोंका वर्णन तथा वसिष्ठके मुखसे विभीषण आदिका अयोध्या-माहात्म्य-श्रवण	५२५
१५३. गयाकूप आदि अनेक तीर्थोंका माहात्म्य तथा ग्रन्थका उपसंहार	५२७
(३) ब्राह्मखण्ड	
(सेतु-माहात्म्य)	
१५४. सेतुतीर्थ (रामेश्वरक्षेत्र)-की महिमा	५३०
१५५. सेतुबन्धकी कथा तथा सेतुमें स्थित मुख्य-मुख्य तीर्थोंके नाम	५३२
१५६. चक्रतीर्थका माहात्म्य—गालवमुनि तथा धर्मकी तपस्याका वर्णन	५३५
१५७. सेतुबन्धन आरम्भ करनेकी बात तथा सेतुयात्राका क्रम एवं विधान	५३९
१५८. सीतासरोवर और मंगलतीर्थका माहात्म्य, राजा मनोजवकी कथा	५४०
१५९. एकान्तरामनाथ, ब्रह्मकुण्ड, हनुमत्कुण्ड और अगस्त्यतीर्थका माहात्म्य	५४४
१६०. रामतीर्थ, लक्ष्मणतीर्थ और जटातीर्थकी महिमा	५४६
१६१. लक्ष्मीतीर्थ और अग्नितीर्थका माहात्म्य—पिशाच-योनिको प्राप्त हुए दुष्पण्यका उद्धार	५४८
१६२. चक्रतीर्थ, शिवतीर्थ, शंखतीर्थ और यमुना, गंगा एवं गयातीर्थकी महिमा—राजा जानश्रुतिको रैक्वके उपदेशसे ब्रह्मभावकी प्राप्ति	५५१
१६३. कोटितीर्थकी महिमा—भगवान् श्रीकृष्णका अवतार, कंसवध तथा श्रीकृष्णका कोटितीर्थमें स्नान	५५४
१६४. सर्वतीर्थ तथा धनुष्कोटि तीर्थोंकी महिमा	५५८
१६५. अश्वत्थामाके द्वारा सोते हुए पाण्डव-योद्धाओंका वध तथा धनुष्कोटिमें स्नान करनेसे उसका उद्धार	५६१
१६६. धनुष्कोटिमें स्नान करनेसे परावसुका पापसे उद्धार	५६४
१६७. धनुष्कोटिकी महिमा; सियार, वानर तथा दुराचार ब्राह्मणकी कथा और महालय श्राद्धकी आवश्यकता	५६६
१६८. क्षीरकुण्डकी उत्पत्ति और महिमा—महर्षि मुद्गलको भगवान् विष्णुका दर्शन	५७०
१६९. कपितीर्थकी महिमा—उसमें स्नान करनेसे रम्भा और घृताचीका शापसे उद्धार	५७२
१७०. रामेश्वर नामक महालिंगकी महिमा	५७३
१७१. भगवान् श्रीरामके द्वारा राक्षसोंसहित रावणका वध और सेतुके क्षेत्रमें रामेश्वरलिंगकी स्थापना	५७६
१७२. श्रीरामचन्द्रजीके द्वारा हनुमान्‌जीको ज्ञानोपदेश	५७९
१७३. हनुमान्‌जीद्वारा भगवान् श्रीराम और सीताका स्तवन तथा अपने लाये हुए शिवलिंगका स्थापन	५८२
१७४. भगवान् रामेश्वरके प्रभावसे राजा शंकरका ब्रह्महत्या और स्त्रीहत्याके पापसे उद्धार	५८४
१७५. राजा पुण्यनिधिके यहाँ महालक्ष्मीका पुत्रीके रूपमें निवास एवं सेतुमाधवकी महिमा	५८८
१७६. सेतुतीर्थकी यात्राका क्रम	५९४
१७७. सेतुतीर्थका माहात्म्य तथा इस खण्डका उपसंहार	५९६
(धर्मारण्य-माहात्म्य)	
१७८. धर्मकी तपस्यासे धर्मारण्यक्षेत्रकी प्रसिद्धि और उसका माहात्म्य	६०२
१७९. सदाचार—शौच, स्नान, सन्ध्या, तर्पण, बलिवैश्वदेव आदिका महत्त्व	६०६
१८०. वेदोंके स्वाध्याय, बलिवैश्वदेव, अतिथिसेवा, आठ प्रकारके विवाह, पंचयज्ञ तथा व्यावहारिक शिष्टाचारोंका कथन	६१२
१८१. पतिव्रता स्त्रियोंके बर्ताव, धर्म और नियम तथा श्राद्ध और धर्मारण्यका महत्त्व	६१७
१८२. धर्मारण्यवासी ब्राह्मणोंके गोत्र तथा उनकी रक्षाके लिये कामधेनुद्वारा वैश्योंकी उत्पत्ति	६२१
१८३. लोलजिह्वाक्षका वध, गणेशजीकी उत्पत्ति और देवताओंद्वारा उनका स्तवन	६२३
१८४. संज्ञाकी तपस्या, अश्विनीकुमारोंका जन्म तथा वकुलादित्यकी स्थापना	६२६
१८५. इन्द्रेश्वरकी स्थापना और उनकी महिमा, देवमज्जनक तड़ागका माहात्म्य तथा लोहासुरके अत्याचारसे धर्मारण्यकी जनताका पलायन	६२७
१८६. सरस्वती नदी, द्वारकातीर्थ एवं गोवत्स आदि तीर्थोंकी महिमा	६२९
१८७. संक्षेपसे श्रीरामचन्द्रजीके सम्पूर्ण चरित्रका वर्णन	६३१
१८८. वसिष्ठजीके द्वारा भिन्न-भिन्न तीर्थोंकी महिमाका वर्णन, श्रीरामकी धर्मारण्य-यात्रा, वहाँके भगे हुए ब्राह्मणोंको पुनः लाकर बसाना और सत्यमन्दिरकी स्थापना करना	६३६
१८९. रामनामकी महिमा, कलियुगका प्रभाव तथा धर्मारण्यक्षेत्रके माहात्म्यश्रवणका फल	६४४
(चातुर्मास्य-माहात्म्य)	
१९०. चातुर्मास्य-व्रतका माहात्म्य, संयम-नियम, दया-धर्म तथा चौमासेमें अन्न आदि दानोंकी महिमा	६४६

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

विषय	पृष्ठ-संख्या
१९१. चातुर्मास्यमें इष्ट वस्तुके परित्याग तथा नियम-पालनका महत्त्व	६४९
१९२. चातुर्मास्यमें विशेष-विशेष तप और भगवान्की षोडशोपचार पूजाका क्रम	६५१
१९३. ब्रह्माजीके द्वारा मानसी और शारीरिक सृष्टिका प्रादुर्भाव, चारों वर्णोंके धर्म तथा शूद्र जातियोंके भेदोंका वर्णन	६५४
१९४. पैजवन शूद्र और महर्षि गालवका संवाद तथा शालग्राम-शिलाके पूजनका महत्त्व	६५६
१९५. सतीका देहत्याग, पार्वतीविवाह, भगवान् शिवका हरिहररूपमें प्राकट्य और शालग्राम-शिलाका महत्त्व	६५८
१९६. शालग्राम-पूजन, द्वादशाक्षर मन्त्र एवं राम-नामकी महिमा	६६१
१९७. भगवान् शिवका नर्मदेश्वर शिवलिंगरूप होना तथा गालव-शूद्र-संवादका उपसंहार	६६३
१९८. महादेवजीके द्वारा पार्वतीके प्रति ध्यानयोग एवं ज्ञानयोगका निरूपण	६६५
१९९. ज्ञानयोग और उसके साधन, स्कन्दस्वामीका सेनापतित्व और कौमारव्रत	६६६
(ब्रह्मोत्तरखण्ड)	
२००. शिवके षडक्षर एवं पंचाक्षर मन्त्रका माहात्म्य, राजा दाशार्ह तथा रानी कलावतीकी कथा	६६९
२०१. शिवरात्रिको शिवपूजनका महत्त्व, राजा मित्रसहका वसिष्ठके शापसे राक्षस होकर ब्राह्मणकी हत्या करना और गौतमजीका उन्हें गोकर्णक्षेत्रकी महिमा सुनाना	६७१
२०२. गोकर्णक्षेत्रमें शिवरात्रिके शिव-पूजनके माहात्म्यसे एक चाण्डालीका परमधामगमन	६७४
२०३. शिव-पूजाकी महिमाके विषयमें परम शिवभक्त राजा चन्द्रसेन और भक्त श्रीकर गोपकी अद्भुत कथा	६७७
२०४. प्रदोषमें शिवपूजनकी अवहेलनासे दोषकी प्राप्तिके प्रसंगमें विदर्भराज और उसके पुत्रकी कथा	६८०
२०५. प्रदोषव्रतकी विधि, इसके पालनसे द्विजकुमार और राजकुमारकी दरिद्रताका निवारण तथा राज्यकी प्राप्ति	६८३
२०६. सोमवार-व्रतके प्रभावसे सीमन्तिनीको पुन: परम सौभाग्यकी प्राप्ति	६८८
२०७. त्यागी हुई रानी और राजकुमारकी वैश्य एवं शिवयोगीद्वारा रक्षा तथा शिवयोगीका राजपुत्रको धर्मका उपदेश करना	६९३
२०८. शिवयोगीसे शिव-कवचका उपदेश और दिव्य खड्ग एवं शंख पाकर भद्रायुका शत्रुओंको जीतना तथा निषधराजकी पुत्रीसे उसका विवाह	६९८

विषय	पृष्ठ-संख्या
२०९. भद्रायु तथा कीर्तिमालिनीके भक्तिभावकी परीक्षा लेकर भगवान् शिवका उन्हें वरदान देना	७०३
२१०. भस्मकी महिमासे ब्रह्मराक्षसका उद्धार	७०६
२११. भस्मकी महिमा, शबरकी चिताभस्मद्वारा की हुई पूजासे शिवजीकी प्रसन्नता और उसकी जली हुई पत्नीका पुन: जीवित होना	७०७
२१२. उमामहेश्वरव्रतकी महिमा, इसके पालनसे शारदाको शिवलोककी प्राप्ति तथा सत्कथाश्रवणका माहात्म्य और ब्राह्मखण्डकी समाप्ति	७१०
(४) काशीखण्ड (पूर्वार्ध)	
२१३. मेरुगिरिसे स्पर्धा करके विन्ध्याचलका सूर्यके मार्गको रोकना और ब्रह्माजीके आदेशसे देवताओंका काशीमें अगस्त्य मुनिके समीप जाना	७१७
२१४. बृहस्पतिजीके मुखसे लोपामुद्राके पातिव्रत-धर्मका वर्णन	७२१
२१५. अगस्त्यजीका काशीपुरीसे प्रस्थान, विन्ध्यपर्वतको लघुरूपमें रहनेका आदेश और महालक्ष्मीकी स्तुति	७२२
२१६. मुक्तिदायक तीर्थोंका वर्णन तथा मानसतीर्थ एवं काशीकी श्रेष्ठता	७२५
२१७. शिवशर्माका सात पुरियोंकी यात्रा करना और हरद्वारमें उसका परमधाम-गमन	७२८
२१८. शिवशर्मा और विष्णुपार्षदोंका संवाद तथा विभिन्न लोकोंका वर्णन	७३१
२१९. शिवशर्माका सूर्यलोकमें पहुँचकर सूर्यदेवकी महिमा श्रवण करना	७३३
२२०. इन्द्रलोक तथा अग्निलोकका वर्णन, विश्वानर मुनिके द्वारा की हुई आराधनासे प्रसन्न होकर शिवजीका उन्हें वरदान देना	७३६
२२१. विश्वानरके पुत्र गृहपतिका भगवान् शिवकी आराधनासे अग्नि एवं दिक्पालका पद प्राप्त करना	७३९
२२२. नैर्ऋत्यलोक तथा वरुणलोकका वर्णन	७४२
२२३. वायु, कुबेर, ईशान और चन्द्रमाके लोकोंकी स्थितिका वर्णन	७४४
२२४. बुधलोक और शुक्रलोककी स्थिति, बुध और शुक्रके द्वारा भगवान् शिवकी स्तुति और वरदान-प्राप्ति	७४६
२२५. मंगल, बृहस्पति और शनिके लोकोंकी स्थिति	७४९
२२६. सप्तर्षिलोक और ध्रुवलोककी स्थिति, ध्रुवकी तपस्या और वरदान-प्राप्ति	७५१
२२७. महर्लोक, जनलोक और तपोलोककी स्थिति, ब्रह्माजीके द्वारा सत्यलोकका महत्त्व-कथन और भारतवर्ष एवं वहाँके तीर्थोंकी महत्ता बताते हुए प्रयाग और काशीकी महिमाका प्रतिपादन	७६०

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

विषय	पृष्ठ-संख्या
२२८. वैकुण्ठ और कैलासकी स्थिति तथा शिव और विष्णुकी अभिन्नता एवं महत्ताका निरूपण ...	७६३
२२९. अगस्त्यजीका श्रीशैलपर कार्तिकेयजीकी सेवामें जाना और उनके मुखसे काशीकी महिमा श्रवण करना ...	७६४
२३०. काशीकी उत्पत्ति-कथा, काशी और मणिकर्णिकाका माहात्म्य ...	७६६
२३१. श्रीगंगाजीकी महिमा ...	७६८
२३२. श्रीगंगाजीकी महिमा ...	७७२
२३३. गंगासहस्रनामस्तोत्र ...	७७३
२३४. शिवकी कृपाके बिना काशीवासकी दुर्लभता तथा काशीकी महिमा ...	७९४
२३५. काशीपुरीकी श्रेष्ठता, हरिकेश यक्षको शिवाराधनाके द्वारा दण्डपाणिपदकी प्राप्ति और दण्ड-पाण्यष्टक-स्तोत्र ...	७९७
२३६. ईशानके द्वारा ज्ञानोद (ज्ञानवापी) तीर्थका प्राकट्य, ज्ञानवापीकी महिमाके प्रसंगमें सुशीला (कलावती)-की कथा, काशीके विविध तीर्थोंका वर्णन ...	८०१
२३७. ज्ञानवापीकी महिमा और उसके सेवनसे माल्यकेतु और कलावतीको तारक ब्रह्मकी प्राप्ति ...	८०४
२३८. संक्षेपसे सदाचार और उसके महत्त्वका वर्णन ...	८०६
२३९. संस्कारोंका संक्षिप्त परिचय, ब्रह्मचारी एवं ब्रह्मचर्य-आश्रमके धर्म ...	८०८
२४०. गृहस्थ-आश्रमके धर्म, पंचयज्ञकी महिमा, काशीवासकी महत्ता तथा राजा दिवोदासको पृथ्वीके राज्यकी प्राप्ति ...	८११
२४१. गृहस्थोचित शिष्टाचार और धर्म ...	८१३
२४२. वानप्रस्थ और संन्यास-आश्रमके धर्मका वर्णन, योगमार्गका निरूपण ...	८१८
२४३. मृत्युसूचक चिह्नोंका वर्णन ...	८२५
२४४. महाराज दिवोदासके धर्मपूर्ण राज्यका वर्णन ..	८२६
२४५. भगवान् शिवके आदेशसे सूर्यका काशीमें गमन और निवास तथा लोलार्कतीर्थका माहात्म्य ...	८२८
२४६. उत्तरार्क सूर्यकी महिमा, सुलक्षणाकी तपस्या और उसपर शिव-पार्वतीकी कृपा ...	८३०
२४७. साम्बादित्य, द्रौपदादित्य और मयूखादित्यकी माहात्म्य-कथा ...	८३२
२४८. गरुडेश्वरलिंग तथा खखोल्कादित्यकी प्रादुर्भाव-कथा, काशीमें गरुड़ और विनताकी तपस्या और वरदान-प्राप्ति ...	८३६
काशीखण्ड (उत्तरार्ध)	
२४९. अरुणादित्य, वृद्धादित्य, केशवादित्य, विमलादित्य, गंगादित्य तथा यमादित्यकी महिमाका वर्णन	८३८
२५०. ब्रह्माजीका दिवोदासकी सहायतासे काशीमें यज्ञ करना और दशाश्वमेधतीर्थकी महिमा ...	८४१
२५१. पिशाचमोचनतीर्थकी महिमा ...	८४३
२५२. गणेशजीका काशीमें जाना और लोकप्रिय होना, गणेशजीका स्तवन ...	८४५
२५३. भगवान् विष्णुका काशी-गमन, केशव एवं पादोदकतीर्थकी महिमा, धर्मक्षेत्रमें पुण्यकीर्तिका उपदेश तथा राजा दिवोदासकी निर्वाण-प्राप्ति	८४६
२५४. धर्मनदतीर्थके पंचनद नाम पड़नेका कारण, अग्निविन्दुके द्वारा भगवान् विष्णुकी स्तुति, भगवान्के मुखसे पंचनद एवं विन्दुमाधवतीर्थकी महिमाका निरूपण ...	८५०
२५५. भगवान् विष्णुद्वारा अपने आदिकेशव प्रभृति स्वरूपोंका वर्णन तथा अग्निविन्दुकी मुक्ति ...	८५३
२५६. भगवान् शिवका स्वागत या वृषभध्वजतीर्थकी महिमा तथा शिवका काशीपुरीमें प्रवेश ...	८५४
२५७. जैगीषव्यपर भगवान् शिवकी कृपा और उनके द्वारा शिवकी स्तुति ...	८५७
२५८. काशीके ब्राह्मणोंको भगवान् शिवका वरदान तथा काशीक्षेत्रकी महिमा ...	८५९
२५९. परापरेश्वर और व्याघ्रेश्वर लिङ्गकी महिमा, भगवान् शिवद्वारा व्याघ्ररूपधारी दैत्यका वध	८६२
२६०. हिमवान्के द्वारा काशीमें शैलेश्वर लिंगकी प्रतिष्ठा ...	८६३
२६१. रत्नेश्वर लिंगकी महिमा ...	८६५
२६२. कृत्तिवासेश्वर लिंगका प्राकट्य और उसकी महिमा ...	८६६
२६३. विभिन्न तीर्थोंके देवविग्रहोंका काशीमें आगमन और उनका स्थान ...	८६७
२६४. दैत्योंसहित दुर्गमासुरका देवी और उनकी शक्तियोंके साथ युद्ध ...	८७०
२६५. दुर्गदैत्यका वध, देवताओंद्वारा देवीकी स्तुति और दुर्गानामकी प्रसिद्धि ...	८७२
२६६. काशीके अट्ठाईस प्रमुख लिंगोंका संक्षिप्त वर्णन तथा ॐकारेश्वरके प्राकट्यकी कथा, ब्रह्माजीके द्वारा ॐकारेश्वरका स्तवन और उनकी महिमा ...	८७४
२६७. त्रिलोचन लिंगकी महिमा ...	८७८
२६८. केदारेश्वर लिंगकी माहात्म्य-कथा ...	८८२
२६९. श्रीधर्मेश्वर लिंगका माहात्म्य, धर्मपीठका गौरव तथा मनोरथतृतीयाव्रतकी विधि और महिमा	८८३
२७०. वीरेश्वर लिंगकी महिमाके प्रसंगमें राजा अमित्रजित और मलयगन्धिनीका चरित्र ...	८८८
२७१. वीरेश्वरका जन्म, तपस्या, वीरेश्वर लिंगका प्राकट्य और उसकी महिमा ...	८९१
२७२. दुर्वासेश्वर (कामेश्वर) लिङ्गकी महिमा ...	८९३
२७३. श्रीविश्वकर्मेश्वर लिंगकी महिमा ...	८९४
२७४. दक्षेश्वर तथा पार्वतीश्वर लिंगका माहात्म्य ...	८९७
२७५. नर्मदेश्वर तथा सतीश्वर लिंगका माहात्म्य ...	८९८

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

विषय	पृष्ठ-संख्या
२७६. अमृतेश्वर लिंगकी महिमा तथा व्यासोक्त व्रत एवं धर्मोंका निरूपण	९००
२७७. काशीके तीर्थोंका संक्षिप्त वर्णन	९०२
२७८. भगवान् शिवके मुखसे विश्वेश्वर लिंगकी महिमाका वर्णन	९०३
२७९. पंचतीर्थी, चतुर्दश आयतन, अष्ट आयतन, शैलेशादि और एकादश आयतनोंकी यात्रा, गौरीयात्रा, गणेश-यात्रा, अन्तर्गृहयात्रा तथा विश्वनाथयात्राका वर्णन	९०६

(५) आवन्त्यखण्ड

(अवन्तीक्षेत्र-माहात्म्य)

२८०. सनत्कुमारजीके द्वारा महाकालतीर्थकी श्रेष्ठताका निरूपण	९०९
२८१. महाकालवनमें भगवान् शिवका प्रवेश, कपालमोचन, देवताओंद्वारा स्तवन तथा महापाशुपतव्रतकी महिमा	९१०
२८२. रुद्रभक्तिका निरूपण तथा महाकालक्षेत्रमें निवास करनेवाले मनुष्योंके नियम	९१३
२८३. हालाहल दैत्यका वध, रुद्रसरोवरकी महिमा तथा कुशस्थलीमें चार समुद्रोंका आगमन और उसका माहात्म्य	९१५
२८४. शंकरवापी, शंकरादित्य, गन्धवती नदी, हर-सिद्धिदेवी, वटयक्षिणी, पिशाचतीर्थ, शिप्रागुप्तेश्वर आदि तथा हनुमत्केश्वरकी महिमा	९१६
२८५. महाकालकी परिक्रमा, यात्रा और विभिन्न देवताओंके दर्शनका माहात्म्य	९१९
२८६. वाल्मीकिकी तपस्या और वाल्मीकेश्वरकी महिमा	९२०
२८७. शुक्रेश्वर आदिके पूजनकी महिमा, पंचेशानी यात्राका माहात्म्य तथा पद्मावती आदिके दर्शनका फल	९२२
२८८. अंकपादतीर्थकी महिमा, श्रीकृष्णके द्वारा मरे हुए गुरुपुत्रके लाये जानेकी कथा	९२३
२८९. लड्डुकप्रिय गणेश, कुसुमेश्वर, मार्कण्डेयेश्वर, ब्रह्माणीदेवी, ब्रह्मेश्वर, यज्ञवापी, रूपकुण्ड, अनङ्गेश्वर तथा सोमेश्वरका माहात्म्य	९२६
२९०. नरकोंका संक्षिप्त वर्णन; केदारेश्वर, जटेश्वर, इन्द्रेश्वर, कुण्डेश्वर, गोपेश्वर, आनन्देश्वर तथा रामेश्वरके दर्शन-पूजनका माहात्म्य	९२८
२९१. सौभाग्य आदि तीर्थोंकी महिमा, अर्जुनको इन्द्रसे सूर्यप्रतिमाकी प्राप्ति तथा अवन्तीमें उसकी स्थापना और उनके दर्शनका माहात्म्य	९२९
२९२. भगवान् सूर्यकी अष्टोत्तरशत नामोंद्वारा स्तुति तथा अन्यान्य तीर्थोंकी महिमा	९३३
२९३. स्वर्णक्षुर आदिकी महिमा, अन्धकासुरका युद्ध, नरदीप एवं शंखोद्धार आदिका माहात्म्य	९३४
२९४. ॐकारेश्वर आदिका महत्त्व तथा अन्धकासुरको शिवगणोंमें श्रेष्ठ स्थानकी प्राप्ति	९३६
२९५. उज्जयिनीपुरीके कनकशृंगा आदि नाम पड़नेका कारण	९३८
२९६. काष्ठा, कला आदि कालमान, युग और कल्पभेद तथा प्रतिकल्प पुरीका माहात्म्य	९४३
२९७. शिप्राका माहात्म्य, उसके 'ज्वरघ्नी' और 'अमृतोद्भवा' आदि नाम पड़नेका कारण	९४४
२९८. जय-विजयको सनकादिका शाप, भगवान्का वाराहावतार, वाराहके हृदयसे शिप्राकी उत्पत्ति तथा उसका माहात्म्य	९४६
२९९. क्षातासंगम तथा उसके निकटवर्ती तीर्थोंकी महिमा, राजा युगादिदेवके धर्ममय राज्यकी प्रशंसा	९४८
३००. गयातीर्थकी महिमा, पुरुषोत्तममास और पुरुषोत्तम-तीर्थकी महत्ता तथा गोमतीकुण्डका माहात्म्य	९४९
३०१. गंगेश्वर और विश्वेश्वरतीर्थका माहात्म्य, बलिके द्वारा देवताओंकी पराजय, ब्रह्माजीका देवताओंको विष्णुसहस्रनामस्तोत्रका उपदेश देना	९५१
३०२. भगवान्का वामनरूपसे प्रकट हो बलिसे तीन पग भूमि माँगना और वामन-कुण्डकी महिमा	९६१
३०३. भैरवतीर्थ और नागतीर्थकी महिमा	९६२
३०४. नृसिंहतीर्थकी महिमा	९६३
३०५. कुटुम्बेश्वर, देवप्रयाग तथा कर्कराजतीर्थकी महिमा	९६४
३०६. अवन्तीक्षेत्रके महत्त्वपूर्ण तीर्थ, देवता, वहाँकी यात्राके क्रम एवं माहात्म्यका वर्णन	९६६

(रेवाखण्ड)

३०७. राजा युधिष्ठिरके पूछनेपर मार्कण्डेयजीके द्वारा पुरूरवाकी तपस्यासे नर्मदाजीके मर्त्यलोकमें आगमनका वर्णन	९७०
३०८. राजा हिरण्यतेजाके तपसे नर्मदाका अवतरण	९७२
३०९. नर्मदाका मर्त्यलोकमें आकर पुरुकुत्सुको अपना पति बनाना तथा नर्मदास्नानकी महिमा	९७३
३१०. नर्मदा तटवर्ती अनन्तपुर एवं व्यासतीर्थकी महिमा	९७५
३११. वरांगना-नर्मदासंगम तथा कपिलातीर्थका माहात्म्य, महाराज मनुकी त्रिपुरीयात्रा और नर्मदासे वरदान पाना	९७६
३१२. भृगुतीर्थ और भास्करतीर्थका माहात्म्य	९७९
३१३. सोमतीर्थ, ब्रह्मकुण्ड, ब्रह्मेश्वर लिंग, सिद्धेश्वर लिंग तथा संगमतीर्थकी महिमा	९८१
३१४. ध्रुवेश्वर, वाराह, चान्द्रायण, द्वादशादित्य तथा गांजालतीर्थकी महिमा, राजा हरिकेशकी शुद्धि	९८२
३१५. नर्मदा और मत्स्याके संगमका माहात्म्य, महर्षि आपस्तम्बके द्वारा गौओंकी महत्ताका प्रतिपादन तथा तीर्थके प्रभावसे निषादोंका मछलियों-सहित उद्धार	९८४

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

विषय	पृष्ठ-संख्या
३१६. कलहंसेश्वरतीर्थका प्रादुर्भाव और उसका माहात्म्य	९८७
३१७. नर्मदापुरका माहात्म्य, जमदग्निको कामधेनुकी प्राप्ति, कार्तवीर्यद्वारा मुनिका वध और धेनुका अपहरण तथा परशुरामद्वारा कार्तवीर्यका वध	९८९
३१८. शिवनेत्रकुण्ड तथा जनकतीर्थका माहात्म्य ..	९९०
३१९. सप्तसारस्वततीर्थकी उत्पत्ति, शाण्डिल्या और नर्मदाके संगमकी महिमा तथा नर्मदा-कुब्जाके संगमपर रन्तिदेवका यज्ञ	९९२
३२०. कुब्जा और नर्मदाके संगमकी महिमा, हरिकेश ब्राह्मणका परिवारसहित ब्रह्म-राक्षसयोनिसे उद्धार	९९४
३२१. माहेश्वरतीर्थकी महिमा, राजा सालंकायनका यज्ञ ...	९९५
३२२. श्वेतकिंशुक आदि तीर्थोंकी महिमा	९९७
३२३. मान्धाताका चरित्र	९९९
३२४. बाणासुरके तीन पुरोंका भगवान् शङ्करके द्वारा संहार, जालेश्वरनामक बाणलिंगकी उत्पत्ति और बाणासुरको शिवलोक प्राप्ति	१००१
३२५. अमरकण्टक और यज्ञपर्वतके श्रेष्ठ तीर्थ एवं लिंग, राजा इन्द्रद्युम्नका यज्ञ और उन्हें देवोंका वरदान	१००२
३२६. पुराणलक्षण, कलिकालका प्रभाव तथा राजर्षि वसुदानके यज्ञमें प्रकट हुई कपिला और नर्मदाके संगमका माहात्म्य	१००७
३२७. अमरावतीमें भगवान्‌का दैत्यसूदनरूपसे निवास तथा वहाँके अन्यान्य तीर्थों और शिव-लिंगोंका माहात्म्य	१००८
३२८. अमरकण्टकपर सूत्रयागका माहात्म्य, कावेरी-संगम और पयोष्णी-संगमकी महिमा तथा वहाँके अन्य तीर्थोंके सेवनकी महत्ता	१०१०
३२९. भद्ररुद्रेश्वरकी महिमा, दुर्वासाजीके द्वारा अमरकण्टकका गयातीर्थके तुल्य होना तथा राजा भरतका यज्ञ	१०१२
३३०. ब्रह्माजीके द्वारा सौम्या दृष्टिसे दानवोंका निवारण तथा रुद्रके एक सौ एक नामोंद्वारा शिवजीका स्तवन .	१०१३
३३१. कपिला-नर्मदा-संगम और ईशान आदि तीर्थोंकी महिमा, यमलोकके मार्गके कष्टों तथा अट्ठाईस नरककोटियोंका वर्णन	१०१५
३३२. पापियोंकी नरक-यातनाका वर्णन	१०१९
३३३. दान, पुण्य, शिवध्यान और नर्मदासेवनसे नरकसे उद्धार होनेका तथा संसारसे वैराग्यका उपदेश	१०२०
३३४. मातंग, मृगवन और वाराहतीर्थकी महिमा	१०२२
३३५. संसारसे मुक्त होनेके लिये पाप और पाखण्डी जनोंके त्याग तथा शिव एवं नर्मदाके आश्रय लेनेका उपदेश	१०२३
३३६. शिवलोककी उत्कृष्टता, गोसेवाका महत्त्व, दानकी महिमा तथा नर्मदातटपर दान एवं शिव-ध्यानका माहात्म्य	१०२४
३३७. अमरावतीके दक्षिण विष्णुमन्दिरकी महिमा, मेघ-वनका महत्त्व तथा विभिन्न तीर्थोंकी महाशक्तियोंके नाम	१०२५
३३८. अशोकवनिकातीर्थमें महाराज रविश्चन्द्रके द्वारा यज्ञ, दान तथा मुनियोंका उद्धार	१०२७
३३९. वागीश्वरतीर्थमें राजा ब्रह्मदत्तके यज्ञमें प्रेतोंका उद्धार तथा सहस्रावर्त आदि तीर्थोंकी महिमा	१०२९
३४०. देवपथतीर्थ, शुक्लतीर्थ, दीप्तिकेश्वरकी महिमा, देवासुरोंके द्वारा महादेवजीकी स्तुति तथा वैष्णव-तीर्थकी महिमा	१०३०
३४१. नर्मदाजीकी तथा भगवान् विष्णुकी स्तुति ..	१०३३
३४२. मेघनादतीर्थका प्राकट्य और उसकी महिमा	१०३७
३४३. करंजेश्वर तथा कुण्डलेश्वरतीर्थका प्रादुर्भाव और माहात्म्य	१०३८
३४४. पिप्पलेश्वर, विमलेश्वर, विश्वरूपा-नर्मदासंगम तथा एक दिनमें मेघनादेश्वर आदि पाँच लिंगोंकी यात्राका माहात्म्य, राजा धर्मसेनकी कथा ...	१०३९
३४५. मृकण्ड-आश्रममें दो गन्धर्वोंका उद्धार तथा चन्द्रमती-नर्मदा-संगम आदि अन्य तीर्थोंकी महिमा	१०४०
३४६. भानुमतीका तीर्थसेवन, शूलभेदतीर्थमें शबर-दम्पतिका उद्धार और सती भानुमतीको कैलास-धामकी प्राप्ति	१०४१
३४७. आदित्येश्वरतीर्थकी महिमा, मुनियोंद्वारा नर्मदाका स्तवन और उस तीर्थमें गोदानकी महिमा	१०४५
३४८. धनदतीर्थका माहात्म्य, पूज्य और अपूज्य ब्राह्मण, वृषोत्सर्गकी महत्ता तथा गौतमेश्वर-तीर्थकी महिमा	१०४७
३४९. पराशराश्रमकी महिमा, पराशरमुनिकी तपस्या, वरदान-प्राप्ति, भीमेश्वरमें गायत्री-जपका महत्त्व और नारदेश्वरतीर्थका माहात्म्य	१०४८
३५०. नर्मदा-नागेशके संगममें कण्ठकी ब्रह्महत्यासे मुक्ति और सद्गति	१०४९
३५१. पूतकेश्वर तथा जलशायी (चक्र) तीर्थका माहात्म्य, श्रीविष्णुके द्वारा नलमेघ दानवके वधकी कथा	१०५०
३५२. प्रभासेश्वर, मार्कण्डेयेश्वर, संकर्षण, मन्मथेश्वर तथा एरण्डीसंगममें पुत्रप्राप्तिपदतीर्थकी महिमा, अनसूयाजीके पुत्ररूपसे ब्रह्मा, शिव और विष्णुका अवतार	१०५१
३५३. सौवर्णतीर्थ, करण्डेश्वरतीर्थ, भाण्डारतीर्थ, रोहिणीतीर्थ, चक्रतीर्थ तथा धूमपाततीर्थका माहात्म्य और माहात्म्य-श्रवणका फल	१०५४
३५४. श्रीसत्यनारायण-व्रतकी विधि, ब्राह्मण और लकड़हारेकी कथा	१०५६
३५५. सत्यनारायण-व्रतकी महिमा, राजा उल्कामुख, साधु वणिक् और राजा वंशध्वजकी कथा	१०५८

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

विषय	पृष्ठ-संख्या
(६) नागरखण्ड (पूर्वार्ध)	
३५६. राजा त्रिशंकुका वसिष्ठ-पुत्रोंके शापसे चाण्डाल होना	१०६३
३५७. विश्वामित्रजीके द्वारा त्रिशंकुका यज्ञ पूरा करके नूतन सृष्टि-रचनाका उद्योग आदि	१०६५
३५८. नागबिलका महत्त्व, इन्द्रकी ब्रह्महत्यासे मुक्ति	१०६७
३५९. शंखतीर्थकी उत्पत्ति, उसमें स्नानसे राजा चमत्कारके कुष्ठरोगकी निवृत्ति	१०६९
३६०. राजा चमत्कारकी तपस्यासे सन्तुष्ट हुए शिवका अचलेश्वररूपसे निवास	१०७१
३६१. चमत्कारपुरमें गयाशीर्षतीर्थकी महिमा	१०७२
३६२. मार्कण्डेयमुनिको अमरत्वकी प्राप्ति, ब्रह्माजीकी स्थापना, बालसख्यतीर्थकी महिमा	१०७७
३६३. मृगपदतीर्थ और विष्णुपदतीर्थका प्रादुर्भाव तथा माहात्म्य, विष्णुपदीमें स्नान आदिका महत्त्व	१०७९
३६४. विष्णुपदीकी अद्‌भुत महिमा, चण्डशर्माकी शुद्धि	१०८०
३६५. हाटकेश्वरक्षेत्रकी दक्षिणोत्तर सीमाके गोकर्णोंका परिचय, गोकर्ण और यमका संवाद	१०८२
३६६. सिद्धेश्वर लिङ्गकी महिमा तथा षडक्षर-मन्त्रका माहात्म्य एवं अहिंसाकी महत्ताका वर्णन	१०८४
३६७. सप्तर्षि आश्रमकी महिमा तथा सप्तर्षियोंका हाटकेश्वरक्षेत्रमें आगमन	१०८९
३६८. अगस्त्य-आश्रममें शिव-पूजा आदिका माहात्म्य	१०९१
३६९. दुर्वासा-लोमहर्षण-संवाद, मन्त्र-सिद्धिकी विधि	१०९२
३७०. धुन्धुमारेश्वरकी स्थापना और महिमा	१०९३
३७१. विश्वामित्रका मेनकासे वार्तालाप, सती स्त्रियोंके पालन करनेयोग्य धर्मका वर्णन	१०९५
३७२. सरस्वतीर्थकी महिमा, राजा अम्बुवीचिकी मूकताका निवारण	१०९७
३७३. महाकालके समीप जागरणकी महिमा, राजा रुद्रसेनका पूर्ववृत्तान्त	१०९९
३७४. कलशेश्वरका माहात्म्य, नन्दिनीके द्वारा व्याघ्रयोनिको प्राप्त राजा कलशका शापसे उद्धार	११०१
३७५. अगस्त्यकुण्ड, कपिलानदी, वैष्णवीशिला और सिद्धक्षेत्र आदिकी महिमा	११०५
३७६. गालवको सूर्यदेवकी आराधनासे पुत्रकी प्राप्ति	११०७
३७७. चमत्कारीदेवीकी महिमा, कार्तिकेयजीके द्वारा शक्तिकी स्थापना	१११०
३७८. स्कन्दस्वामी और देवयजनकी महिमा तथा तीनों सूर्य-विग्रहोंके दर्शनका माहात्म्य	१११३
३७९. चन्द्रदेवके मंदिरके निर्माणका महत्त्व, अम्बावृद्धाके दर्शनकी महत्ता	१११४
३८०. ब्रह्मकुण्ड, गोमुखतीर्थकी उत्पत्तिकथा एवं महिमा	१११७
३८१. परशुरामद्वारा लोहयष्टिकी स्थापना और उसकी महिमा तथा देवीकुण्डका माहात्म्य	१११८
३८२. राजवापीके प्रसंगमें राजा दशरथका प्रभाव, शनैश्चरग्रहकी पराजय	११२२
३८३. श्रीरामके द्वारा लक्ष्मणका त्याग और लक्ष्मणका परमधाम-गमन	११२३
३८४. चित्रशर्मा तथा अन्यान्य ब्राह्मणोंके द्वारा भगवान् शंकरको सन्तुष्ट करना	११२७
३८५. अड़सठ क्षेत्रों और उनमें भी प्रधान आठ क्षेत्रोंके नाम तथा उनके कीर्तनका महत्त्व	११२८
३८६. भगवान् शिवके दिये हुए मन्त्रद्वारा ब्राह्मणोंपर आये हुए सर्पोंके उपद्रवका निवारण	११२९
३८७. चमत्कारपुरमें पुनर्वासी ब्राह्मणोंकी संख्या	११३१
३८८. रैवत और क्षेमंकरी द्वारा रैवतेश्वर तथा कात्यायनी-की स्थापना	११३२
३८९. दुर्वासाके शापसे चित्रसम दैत्यका महिष होना तथा कात्यायनीके द्वारा महिषका वध	११३३
३९०. केदारक्षेत्रका प्रादुर्भाव तथा वहाँ भगवान् शिवकी आराधनाका माहात्म्य	११३७
३९१. शुक्लतीर्थकी महिमा	११३९
३९२. कर्णोत्पलातीर्थकी उत्पत्ति, राजा सत्यसन्ध और कर्णोत्पलाकी अद्‌भुत कथा	११४१
३९३. शाण्डिलीके उपदेशसे कात्यायनीके द्वारा पञ्चपिण्डा गौरीकी उपासना	११४३
३९४. वास्तुपदतीर्थ तथा अजागृहा देवीकी महिमा	११४४
३९५. पतिव्रताकी शक्तिसे उसके मरे हुए पतिको पुनः नवजीवनकी प्राप्ति	११४६
३९६. शूलीतीर्थ और दीर्घिकातीर्थका प्राकट्य, माण्डव्य मुनिका धर्मराजको शाप	११४८
३९७. अन्न और जलके दानकी महत्ता	११५०
३९८. अदितिदेवीद्वारा आराधित अमरेश्वर लिंगकी महिमा	११५१
३९९. शुकदेवजीका जन्म, वैराग्य, व्यासजीके साथ उनका संवाद और वनगमन	११५३
४००. राजा सुरथके द्वारा भैरवजीकी स्थापना और आराधना	११५५
४०१. गौरी, जया और विजयाकुण्डका माहात्म्य	११५६
नागरखण्ड (उत्तरार्ध)	
४०२. सब पापोंकी शुद्धिके लिये पुरश्चरणसप्तमी व्रतकी विधि एवं महिमा	११५७
४०३. चण्डशर्माके द्वारा सत्ताईस शिवलिंगोंका पूजन	११५९
४०४. विश्वामित्रकी उत्पत्ति, राज्यप्राप्ति तथा राज्य त्यागकर तप करनेका निश्चय	११६२
४०५. विश्वामित्रकी तपस्या, ब्राह्मण पदकी प्राप्ति	११६४

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

विषय	पृष्ठ-संख्या
४०६. पंचपिण्डिका गौरी-पूजासे अमाकी सौभाग्यवृद्धि ..	११६५
४०७. पूर्वजन्ममें अमारूपा लक्ष्मीदेवीके द्वारा पंचपिण्डिका गौरीकी उत्पत्ति	११६७
४०८. हाटकेश्वरक्षेत्रमें तीनों पुष्कर तीर्थोंके आगमनका वृत्तान्त	११७०
४०९. अतिथि-सत्कारका माहात्म्य	११७१
४१०. हाटकेश्वरक्षेत्रमें पुष्करके प्राकट्यका वार्षिक समय	११७२
४११. ब्राह्मणकन्या और राजकन्याका अनुपम प्रेम	११७३
४१२. परावसुके द्वारा मद्यपानका प्रायश्चित्त	११७४
४१३. ब्राह्मणकन्या और शूद्रराजकन्याकी तपस्या, भगवान् शिवका वरदान	११७७
४१४. त्रिविध क्षेत्र, अरण्य और पुरी आदिका वर्णन	११७९
४१५. अहल्याका शापोद्धार तथा हाटकेश्वरक्षेत्रमें अहल्या, शतानन्द और गौतमजीकी तपस्या	११८१
४१६. शंखतीर्थकी महिमा, राजा दम्भका चरित्र तथा ताम्बूलके दोष	११८२
४१७. विश्वामित्रतीर्थ एवं रत्नादित्यकी महिमा	११८५
४१८. श्राद्धकल्प	११८७
४१९. श्राद्धकी आवश्यकता तथा समय	११८८
४२०. श्राद्धकी विधि, विहित और निषिद्ध ब्राह्मण तथा मन्वादिका वर्णन	११९०
४२१. श्राद्धकर्ता और श्राद्धभोक्ताके लिये नियम	११९२
४२२. सपिण्डनकी आवश्यकता, तीन गति	११९४
४२३. नरकों और पापोंसे मुक्त होनेका उपाय तथा भगवान् जलशायीकी महिमा	११९७
४२४. चातुर्मास्य व्रतके पालनीय नियम और उनकी महिमा	११९८
४२५. शिवरात्रिकी महिमा	१२००
४२६. सिद्धेश्वरकी महिमा और तुलादानका महत्त्व.	१२०२
४२७. पृथ्वीदानकी महिमा	१२०३
४२८. चार प्रकारके कालमानका वर्णन	१२०४
४२९. निम्बेश्वरकी स्थापना तथा ग्यारह रुद्रोंका प्राकट्य	१२०८
४३०. नागरखण्डका उपसंहार	१२१०
(७) प्रभासखण्ड	
४३१. सूतजीके द्वारा प्रभास-खण्डका उपक्रम	१२११
४३२. शिव-पार्वती-संवाद, तीर्थोंका संक्षिप्त वर्णन	१२१५
४३३. प्रभासतीर्थकी सीमा, क्षेत्र-विभाग, महिमा तथा रक्षकगणोंका वर्णन	१२१७
४३४. सोमनाथके दिव्य स्वरूपका दिग्दर्शन	१२१९
४३५. सोमनाथके आठ नाम और पार्वतीके अठारह नामोंका वर्णन	१२२०
४३६. सोमनाथकी महिमा	१२२२
४३७. प्रभासमें भगवान् शिवका स्वरूप, पार्वतीद्वारा उनकी स्तुति	१२२३
४३८. प्रभासमें सूर्यदेव, सिद्धेश्वरलिंग तथा सिद्धलिंगकी महिमा	१२२५
४३९. अर्कस्थलका माहात्म्य, आदित्यकी महिमा, दन्तधावनकी विधि	१२२६
४४०. चन्द्रमाकी उत्पत्ति तथा उनके द्वारा ओषधि आदिका पोषण	१२२९
४४१. सृष्टि-कथा—दक्षकन्याओं तथा धर्म एवं कश्यपजीकी संततिका संक्षिप्त वर्णन	१२३०
४४२. चन्द्रमाके द्वारा प्रभासक्षेत्रमें शिवकी आराधना	१२३१
४४३. सोमवारव्रतकी विधि और महिमा, गन्धर्व-सेनाकी रोगनिवृत्ति	१२३५
४४४. सोमनाथकी यात्रा-विधि	१२३७
४४५. समुद्रमें स्नानकी विधि और महिमा	१२४१
४४६. सोमनाथके दर्शन-पूजनकी महिमा	१२४२
४४७. सरस्वती नदीकी महिमा तथा वहाँ स्नान, दान और श्राद्धका माहात्म्य	१२४४
४४८. 'कपर्दी'की अग्रपूजाका हेतु और महिमा ..	१२४५
४४९. केदारलिंगकी महिमा, राजा शशिविन्दुके पूर्व-जन्मका वृत्तान्त	१२४६
४५०. श्वेतकेत्वीश्वर आदि विभिन्न शिवलिंगोंका माहात्म्य	१२४८
४५१. प्रभासक्षेत्रकी त्रिविध शक्तियों तथा दूती शक्तियोंके दर्शन-पूजनका माहात्म्य	१२५०
४५२. भैरवेश्वर आदि विविध लिंगोंका माहात्म्य	१२५२
४५३. कलकलेश्वर, उत्तंकेश्वर, वैश्वानरेश्वर तथा गौतमेश्वरकी महिमा	१२५४
४५४. वैष्णवक्षेत्रमें भगवान् दैत्यसूदनकी महिमा	१२५५
४५५. योगेश्वरीदेवीकी महिमा	१२५७
४५६. आदिनारायणका माहात्म्य	१२५८
४५७. पाण्डवेश्वरलिंग तथा ग्यारह रुद्रोंका माहात्म्य	१२५९
४५८. चन्द्रेश्वर, चक्रपाणि, दण्डपाणि तथा साम्बादित्यकी महिमा	१२६२
४५९. बालरूपधारी ब्रह्माकी महिमा, ब्रह्माजीकी आयुका मान	१२६३
४६०. ब्राह्मणोंकी महिमा, क्षेत्रवासी ब्राह्मणोंके भेद	१२६५
४६१. ब्रह्माजीके प्रति भक्तिके भेद तथा उनके एक सौ आठ नाम	१२६७
४६२. प्रत्यूषेश्वर, अनिलेश्वर, प्रभासेश्वर, रामेश्वर, लक्ष्मणेश्वर आदिका माहात्म्य	१२६९
४६३. गोप्यादित्यकी स्थापना और महिमा तथा नीलसे हानि	१२७२

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

विषय	पृष्ठ-संख्या
४६४. रामेश्वर, चित्रांगदेश्वर तथा रावणेश्वरकी महिमा ...	१२७३
४६५. पौलोमीश्वर, शाण्डिल्येश्वर, क्षेमेश्वर तथा सागरादित्यका माहात्म्य	१२७३
४६६. अक्षमालेश्वर, पाशुपतेश्वर, ध्रुवेश्वर तथा सिद्धि-लक्ष्मीकी महिमा	१२७५
४६७. महाकाली देवी, पुष्करावर्तका नदी एवं कंकाल-भैरवकी महिमा	१२७६
४६८. लोमशेश्वर, चित्रपथा नदी, रूपकुण्ड, रत्नेश्वर तथा वैनतेयेश्वरका माहात्म्य..................	१२७८
४६९. रैवन्त और अनन्तेश्वरकी महिमा, सावित्रीकी कथा, सावित्रीव्रतकी महिमा	१२७९
४७०. शालकटंकटा देवी, दशरथेश्वर, भरतेश्वर आदिका महत्त्व	१२८३
४७१. देवमाता, शेषस्थान, प्रभासपंचक तथा संगममें स्नानका महत्त्व	१२८४
४७२. श्राद्धके विषयमें कुछ ज्ञातव्य बातें..........	१२८५
४७३. श्राद्ध-विधि, सप्तशुद्धिका विचार, श्राद्धमें ग्राह्य एवं त्याज्यका निर्णय	१२८८
४७४. परायी वस्तुके अपहरण और प्रतिग्रहके दोष	१२९२
४७५. उत्तम-अधम जन्म, व्यर्थ और सफल दान, सुपात्रके लक्षण	१२९४
४७६. मार्कण्डेयेश्वर आदि विविध लिंगोंकी महिमा	१२९५
४७७. गौतम और प्रेतका संवाद, प्रेतोंका उद्धार तथा प्रेततीर्थकी उत्पत्ति	१२९६
४७८. नरकेश्वरका माहात्म्य	१२९९
४७९. संवर्तेश्वर, बलभद्रेश्वर, दशाश्वमेधिक तीर्थ तथा दुर्वासादित्यका माहात्म्य	१३००
४८०. नागरादित्य, पिंगा नदी, संगमेश्वर तथा गंगेश्वरकी महिमा	१३०१
४८१. नन्दादित्य, पर्णादित्य, गंगेश्वर तथा मूल स्थानगत सूर्यकी महिमा	१३०२
४८२. भगवान् सूर्यके अष्टोत्तरशतनामोंकी महिमा	१३०६
४८३. महर्षि च्यवनकी कथा और च्यवनेश्वरकी महिमा	१३०७
४८४. सुकन्या-सरोवर, गोष्पदतीर्थ तथा कुबेरेश्वरकी महिमा	१३०९
४८५. भद्रकाली, कुबेर तथा गुप्तप्रयागका माहात्म्य	१३११
४८६. माधव, शृगालेश्वर और देवविग्रहोंके सेवनकी महिमा	१३१३
४८७. तलस्वामी, शंखावर्ततीर्थ और गोष्पद-तीर्थकी महिमा	१३१५
४८८. पृथुके गोष्पदतीर्थमें श्राद्ध-यज्ञ करनेसे वेनको स्वर्गप्राप्ति	१३१९
४८९. नारायणगृह तथा जालेश्वर-लिंगकी महिमा	१३२०
४९०. चन्द्रेश्वर, कपिलेश्वर तथा नलेश्वरकी महिमा	१३२३
४९१. राजा गज और भद्रमुनिका संवाद	१३२४
४९२. तीर्थमें पूजन, श्राद्ध और दानकी महिमा ...	१३२७
४९३. राजा बलिके राज्यकी प्रशंसा	१३२९
४९४. देवर्षि नारदका वामनजीको मत्स्य आदि अवतारोंका वृत्तान्त सुनाना......................	१३३१
४९५. वामनजीका बलिसे तीन पग भूमि ग्रहण करना	१३३५
(श्रीद्वारका-माहात्म्य)	
४९६. भगवान्‌के परमधाम पधारनेपर महर्षियोंका ब्रह्माजीकी आज्ञासे प्रह्लादजीके समीप जाना	१३३९
४९७. द्वारकाकी महिमा, वहाँकी यात्रा और उसमें योग देनेका माहात्म्य	१३४१
४९८. गोमतीमें स्नान और भगवत्पूजनकी महिमा	१३४४
४९९. चक्रतीर्थ तथा रुक्मिणीह्रदका माहात्म्य.....	१३४५
५००. विष्णुपदोद्भवतीर्थकी महिमा, उद्धवजीका व्रजमें आगमन....................................	१३४६
५०१. गोपी-सरोवरका निर्माण और उसकी महिमाका वर्णन	१३५०
५०२. ब्रह्मकुण्ड, चन्द्रसरोवर तथा पंचनदतीर्थका माहात्म्य..	१३५१
५०३. सिद्धेश्वर लिंग, ऋषितीर्थ और देवी-देवताओंके सेवनकी महिमा	१३५२
५०४. श्रीकृष्ण तथा रुक्मिणीदेवीके दर्शन और पूजनकी महिमा..	१३५४
५०५. द्वारकापुरी तथा वहाँ श्रीकृष्णके दर्शन-पूजनका माहात्म्य..	१३५५
५०६. शंखोद्धारतीर्थकी महिमा	१३५७
५०७. द्वारकापुरी, गोपीचन्दन तथा गोमतीका माहात्म्य	१३५८
५०८. एकादशीकी रात्रिमें श्रीहरिके समीप जागरणका माहात्म्य..	१३६०
५०९. द्वारका-यात्राकी विधि एवं महिमा	१३६२
५१०. ऋषियों और देवताओंकी द्वारका-यात्रा तथा भगवद्दर्शन एवं पूजन	१३६४
५११. दिलीप-वसिष्ठ-संवाद	१३६५
५१२. द्वारकापुरी तथा श्रीकृष्ण-दर्शनका माहात्म्य	१३६६
५१३. द्वारकामें श्रीकृष्णदर्शनकी महिमा.............	१३६८
५१४. द्वारका-माहात्म्यके पाठकी महिमा...........	१३७१

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

विषय	पृष्ठ-संख्या	विषय	पृष्ठ-संख्या

चित्र-सूची

इकरंगे

१. दक्षके द्वारा सतीका तिरस्कार ६
२. वीरभद्रद्वारा दक्षयज्ञ-विध्वंस ९
३. गरुड़पर मन्दराचल २१
४. समुद्र-मन्थन २१
५. समुद्र-मन्थनसे श्रीमहालक्ष्मीका प्रादुर्भाव २३
६. श्रीलक्ष्मीका भगवान्‌को माला-अर्पण २३
७. ब्राह्मणोंसे घिरे हुए देवर्षि नारदजीके साथ अर्जुनका संवाद ८७
८. त्रिदेवोंकी श्रेष्ठता १५७
९. अर्चाविग्रहसे प्रकट होकर भगवान् विष्णु ऐतेरयको दर्शन दे रहे हैं १७६
१०. मुर-कन्याको न मारनेके लिये श्रीकृष्णसे कामाख्याका अनुरोध २२१
११. बर्बरीकका बल-प्रदर्शन २३५
१२. राजा वज्रांगदपर भगवान् अरुणाचलेश्वरकी कृपा २६०
१३. पद्मालया और भगवान्‌का परस्पर माला पहनाना २७५
१४. भूदेवी तथा श्रीदेवीसहित सपरिकर भगवान् विष्णु २७९
१५. भक्त भीम कुम्हारका पत्नीसहित विमानारोहण २८३
१६. ब्रह्मा और यमराजके द्वारा भगवान् विष्णुका स्तवन ३२१
१७. राजा इन्द्रद्युम्नको ध्यानमें भगवान्‌के दर्शन ३५५
१८. भगवान् विष्णुको लक्ष्मीदेवी भोजन परोस रही हैं ३७८
१९. राजा श्वेतको भगवान् लक्ष्मीनृसिंहके दिव्य दर्शन ३७९
२०. रत्नहिंडोलेपर भगवान् लक्ष्मीनारायण ३८५
२१. कदम्बमूलमें भगवान् गोविन्द झूला झूल रहे हैं ३८६
२२. वटवृक्षसे देवताओंका निकलना ४२०
२३. भक्त विष्णुदासके द्वारा चाण्डालकी सेवा ४३४
२४. चाण्डालके स्थानपर विष्णुदासको भगवान्‌का दर्शन ४३४
२५. हेमकान्तके द्वारा त्रितमुनिको छत्र-जल-दान .. ४७९
२६. छत्र और जलदानसे हेमकान्तपर भगवत्कृपा .. ४७९
२७. सर्वस्व दानी रघु और ब्राह्मण कौत्स ५१६
२८. सुदर्शनचक्रके द्वारा गालवमुनिकी रक्षा ५३८
२९. रानी सुमित्राके द्वारा अपने पति और पुत्रकी दशाका वर्णन ५४२
३०. हनुमान्‌जीके द्वारा भगवान् श्रीराम और सीताका स्तवन ५८३
३१. ब्राह्मणके द्वारा राजकन्याका हाथ पकड़ा जाना ५९०
३२. राजाके द्वारा ब्राह्मणको बन्दी बनाया जाना ... ५९०
३३. राजाको स्वप्नमें भगवान्‌के दर्शन ५९२
३४. राजाके द्वारा लक्ष्मीनारायणका स्तवन ५९२
३५. गणेशजीका मस्तक-छेदन ६२४
३६. गणेशजीको गजमस्तक-दान ६२४
३७. भगवान् रामचन्द्रका दान ६४२
३८. ब्रह्माजीका प्राकट्य ६५५
३९. ध्रुवकी सफल साधना ७५७

इकरंगे (लाइन)

१. लोमशजीद्वारा नैमिषारण्यमें मुनियोंको शिवजीका माहात्म्य-कथन १
२. दक्षद्वारा भगवान् शंकरका स्तवन ११
३. भगवान् विष्णुके द्वारा देवताओंको आश्वासन १५
४. मोहिनीद्वारा देवताओंको अमृतरसपान २६
५. त्वष्टाका ब्रह्माजीसे पुत्र-प्राप्तिके लिये वर माँगना ३३
६. इन्द्रका बृहस्पतिजीसे प्रदोषव्रतकी उद्यापन-विधि पूछना ३९
७. जुआरीका स्वर्गमें ऋषि-मुनियोंको अंधाधुंध दान देना ४६
८. विरोचनद्वारा ब्राह्मणरूपधारी इन्द्रको अपना मस्तक उतारकर देना ४७
९. भगवान् विष्णुका बलि और उसकी पत्नीको वरदान देना ५०
१०. पार्वतीजीके तपसे जगत् सन्तप्त होनेपर देवताओंद्वारा ब्रह्माजीकी शरण लेना ५६
११. तपस्यामें लगी हुई पार्वतीजीको भगवान् शंकरका दर्शन तथा परस्पर वार्तालाप ६०
१२. पार्वतीजीका कुमार षडाननको गोदमें लेनेके लिये उनकी ओर बढ़ना ७०
१३. कार्तिकेयजीके शक्ति-प्रहारसे तारककी मृत्यु.. ७४
१४. कैलाशमें शिवजीका राज्य ८२
१५. अर्जुनके द्वारा पंचाप्सरसतीर्थमें ग्राह बनी अप्सराओंका उद्धार ८६
१६. धर्मवर्माका छद्मरूपमें पधारे हुए नारदजीसे परिचय पूछना ९८

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

विषय	पृष्ठ-संख्या
१७. नारदजीका ब्राह्मणोंके सामने अपना स्वरूप प्रकट करना	१०७
१८. मेघातिथिका चिरकारीको छातीसे लगाना	११०
१९. ब्रह्माजीका इन्द्रद्युम्नको पृथ्वीपर लौटनेका आदेश	११२
२०. लोमशजीका इन्द्रद्युम्नको अपनी चिरायु बताना	११४
२१. इन्द्रद्युम्न आदिके सामने भगवान् शंकरका प्राकट्य	१२२
२२. महीसागरसंगमतीर्थमें कुमारद्वारा पार्वतीजी एवं गणेशजीकी स्थापना	१२८
२३. कुमारीका दर्पणमें अपना मुँह देखना	१४२
२४. कुमारीका पार्वतीजीकी सखी चित्रलेखाके स्वरूपको प्राप्त होना	१४४
२५. कालभीतिका प्रकट हुए शिवलिंगकी स्तुति करना	१४९
२६. भगवान् वासुदेवका नारदजीके समक्ष प्रकट होना	१६७
२७. ऐतरेयका माताको उपदेश देना	१७०
२८. भगवान् सूर्यदेवका नारदजीके सामने प्राकट्य	१७९
२९. सत्यव्रतका नन्दभद्रके सामने अपने नास्तिकतापूर्ण विचार रखना	१८५
३०. बालकका नन्दभद्रको उपदेश देना	१८८
३१. व्यासजीका कीटको उद्बोधन करना	१९१
३२. हारीतका अपने पुत्र कमठसे परम भोजनका स्वरूप पूछना	१९६
३३. ब्राह्मणोंद्वारा सूर्य भगवान्‌का स्तवन	२०५
३४. भगवान् श्रीकृष्णद्वारा उग्रसेनजीको नारदजीके गुणोंका कथन	२०८
३५. धर्मका महीसागरसंगमतीर्थका सावधान करना	२१८
३६. बर्बरीकका भगवान् श्रीकृष्णसे श्रेयको पूछना	२२५
३७. बर्बरीकका नागगणसे वरदान माँगना	२२८
३८. बर्बरीकका नागकन्याओंके विवाह-प्रस्तावको ठुकराना	२२९
३९. भगवान् शंकरका बर्बरीकको भीमसेनको छोड़ देनेके लिये आदेश	२३१
४०. भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा बर्बरीकका मस्तकछेदन	२३४
४१. भगवान् शंकरका भगवान् विष्णु एवं ब्रह्माजीके सामने प्रकट होना	२३९
४२. मार्कण्डेयजीका नन्दिकेश्वरसे अरुणाचलक्षेत्रकी महिमा पूछना	२४४
४३. गौतमाश्रममें हिंसक प्राणियोंका परस्पर प्रेम	२५०
४४. दुर्गादेवीका महिषासुरके साथ युद्ध करनेके लिये प्रस्थान	२५१
४५. पार्वतीजीको अरुणाचलपर अपूर्व ज्योतिका दर्शन	२५३
४६. दुर्वासाजीका कान्तिशाली और कलाधरको शाप देना	२५६
४७. पृथ्वीदेवीद्वारा भगवान् वाराहका पूजन	२६२
४८. भगवान् वाराहके स्वरूपका ध्यान	२६६
४९. भगवान् श्रीकृष्णका पद्मावतीका स्मरण करना	२६९
५०. भगवान् विष्णुका वसुको अपने पुत्रका वध करनेसे रोकना	२७७
५१. अस्थिसरोवरके प्रभावसे जीवित हुई ब्राह्मणीकी अपने पतिदेवसे भेंट	२८२
५२. तक्षकके काटनेसे वृक्षका भस्म होना	२८५
५३. धर्मज्ञ रीछका सिंहको उपदेश	२८९
५४. श्रीरामकृष्णके समक्ष भगवान् विष्णुका प्राकट्य	२९०
५५. रामानुजद्वारा भगवान् श्रीविष्णुका स्तवन	२९६
५६. चक्रद्वारा राक्षसका शिरश्छेदन	२९९
५७. अगस्त्यजीका गंगाजीको अपना अभीष्ट मार्ग दिखाना	३०९
५८. राजा शंखका अगस्त्यजीके साथ भगवान् विष्णुका कीर्तन करना	३१६
५९. अंजनाको वायुदेवके द्वारा वरदान	३१९
६०. विश्वावसु शबरद्वारा ब्राह्मणका आतिथ्य-सत्कार	३३५
६१. विद्यापतिका इन्द्रद्युम्नको नीलाचलवासी भगवान् विष्णुका वृत्तान्त सुनाना	३३९
६२. इन्द्रद्युम्नका नारदजीके साथ भगवान्‌का प्रसाद ग्रहण करना	३४५
६३. इन्द्रद्युम्नद्वारा भगवान्‌का स्तवन	३५४
६४. श्रीजगन्नाथजीकी रथयात्रा	३७५
६५. दक्ष प्रजापतिको श्रीजगन्नाथजीका वरदान देना	३८८
६६. भगवान् शिवके द्वारा बदरीक्षेत्रकी महिमाका कथन	३९४
६७. देवताओंद्वारा भगवान् विष्णुसे वरयाचना	४०६
६८. तुलसीवृक्षके नीचे भगवान् श्रीकृष्णकी मूर्तिका पूजन	४११
६९. सत्यभामाका भगवान् श्रीकृष्णसे अपने पूर्वजन्मोंका वृत्तान्त पूछना	४२७
७०. रोटी चुराकर दौड़ते हुए चाण्डालके पीछे विष्णुदासका घी लेकर जाना	४३३
७१. ब्रह्माजीका भगवान्‌से मार्गशीर्षमासका माहात्म्य पूछना	४४४
७२. राजा वीरबाहुका भरद्वाजजीसे अपने सौभाग्यका कारण पूछना	४५१
७३. कुसुमसरोवरपर संकीर्तनमें उद्धवजीका प्राकट्य	४६७

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

विषय	पृष्ठ-संख्या
७४. कुतियाका दिव्य देहको प्राप्त होना	५०६
७५. शेषनागजीका लक्ष्मणजीके सामने प्रकट होना	५११
७६. भगवान् रामद्वारा सीताकुण्डका माहात्म्य-कथन	५१७
७७. भगवान् सूर्यका राजा घोषके सामने प्रकट होना	५२५
७८. वानरोंका समुद्रपर पुल बाँधना	५३५
७९. व्यासजीका शुकदेवजीको जटातीर्थमें स्नान करनेके लिये भेजना	५४८
८०. सुचरित मुनिके सामने भगवान् शंकरका अर्ध-नारीश्वररूपमें प्रकट होना	५५८
८१. वेताल-बाधासे मुक्त ब्राह्मणका दत्तात्रेयजीसे संवाद	५६८
८२. राजा पुण्यनिधिके सामने लक्ष्मीनारायणका प्राकट्य	५९३
८३. धर्मकी तपस्यामें विघ्न डालनेके लिये वर्द्धिनी अप्सराका उपस्थित होना	६०४
८४. अतिथि-सत्कार	६१३
८५. वैश्योंकी उत्पत्ति	६२२
८६. वसिष्ठजीके द्वारा भगवान् रामके प्रति भिन्न-भिन्न तीर्थोंकी महिमाका वर्णन	६३६
८७. भगवान् रामका अबलाको दुःखी देखकर द्रवित होना	६३९
८८. नारदजीका ब्रह्माजीसे चातुर्मास्य-व्रतका माहात्म्य पूछना	६४६
८९. गालवमुनिद्वारा शालग्रामपूजनका माहात्म्य-कथन	६५७
९०. भगवान् विष्णुकी पार्वतीजीसे क्षमा-याचना	६६०
९१. कार्तिकेयजीकी क्रौंचपर्वतपर भीषण तपस्या	६६८
९२. शिवदूतोंका चाण्डालिनीको दिव्यतेजसे सम्पन्न करना	६७६
९३. विदर्भराजकी पत्नीका ग्राहद्वारा पकड़ा जाना	६८१
९४. अपनी कन्या सीमन्तिनीका भविष्य सुनकर चित्रवर्माका चिन्तामें डूब जाना	६८८
९५. भद्रायु और रानीका शिवयोगीकी पूजा करना	६९६
९६. भद्रायुका व्याघ्रपर तीखे बाणोंकी वर्षा करना	७०३
९७. नैध्रुवका शारदाके प्रति उमा-महेश्वरव्रतकी महिमा-कथन	७१२
९८. लोपामुद्राके चरण-चिह्नोंको देखकर देवताओंका नमस्कार करना	७२०
९९. लक्ष्मीजीका लोपामुद्राको हृदयसे लगाना	७२५
१००. शिवशर्माका सूर्यलोकमें पहुँचना	७३३
१०१. शिवजीका बालक गृहपतिकी इन्द्रके वज्रसे रक्षा करना	७४२
१०२. शुक्राचार्यद्वारा भगवान् शंकरका स्तवन	७४७
१०३. ध्रुवका माता सुनीतिके सामने फूट-फूटकर रोना	७५२
१०४. भगवान् नारायणका ध्रुवको वरदान देना	७६०
१०५. भगवान् विष्णुका अपने चक्रसे पुष्करिणी खोदना	७६७
१०६. पार्वतीजीकी महादेवजीसे हरिकेशको वर देनेके लिये प्रार्थना	७९९
१०७. काशी-गमनके लिये कलावतीका अपने पतिसे प्रार्थना करना	८०५
१०८. रिपुंजयको ब्रह्माजीका दर्शन देना	८१३
१०९. सुलक्षणाकी बकरीपर अनुग्रह करनेके लिये शिवजीसे प्रार्थना	८३१
११०. सूर्यदेवके सामने भगवान् शंकरका प्राकट्य	८३३
१११. विमलादित्यको भगवान् सूर्यके दर्शन	८४०
११२. कपर्दीका शिव-नाम-संकीर्तन करना	८४३
११३. धर्मक्षेत्रतीर्थमें पुण्यकीर्तिरूपधारी भगवान्का उपदेश देना	८४७
११४. रिपुंजयके सामने शिव-पार्षदोंसे घिरे हुए दिव्य विमानका अवतरण	८४९
११५. अग्निविन्दुके सामने लक्ष्मीसहित भगवान् विष्णुका प्राकट्य	८५२
११६. लीलाकमलका स्पर्श पाते ही जैगीषव्यका उल्लसित हो उठना	८५७
११७. भगवान् शिवका व्याघ्ररूपधारी दैत्यका वध करना	८६२
११८. पार्वतीजीका भगवान् शंकरसे रत्नेश्वर लिंगका स्वरूप एवं प्रभाव पूछना	८६५
११९. नन्दीकी भगवान् शंकरसे सेवाके लिये प्रार्थना	८६९

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

ॐ

श्रीपरमात्मने नमः

श्रीगणेशाय नमः

श्रीउमामहेश्वराभ्यां नमः

संक्षिप्त श्रीस्कन्द-महापुराण

माहेश्वर-खण्ड

[केदार-खण्ड]

भगवान् शिवकी महिमा, दक्षका शिवजीसे द्वेष तथा दक्ष-यज्ञमें सतीका गमन

यस्याज्ञया जगत्स्त्रष्टा विरञ्चिः पालको हरिः।
संहर्ता कालरुद्राख्यो नमस्तस्मै पिनाकिने॥

जिनकी आज्ञासे ब्रह्माजी इस जगत्‌की सृष्टि तथा विष्णुभगवान् पालन करते हैं और जो स्वयं ही कालरुद्र नाम धारण करके इस विश्वका संहार करते हैं, उन पिनाकधारी भगवान् शंकरको नमस्कार है।

नैमिषारण्य तीर्थ सब तीर्थोंसे उत्तम और समस्त क्षेत्रोंमें श्रेष्ठ है। प्राचीन कालमें वहाँ शौनक आदि तपस्वी मुनि एक ऐसे यज्ञका अनुष्ठान कर रहे थे, जो दीर्घकालतक चालू रहनेवाला था। उस यज्ञमें दीक्षित सभी महर्षियोंका सबके प्रति समान भाव था। एक दिन उन सभी महात्माओंके दर्शनकी उत्कण्ठासे प्रेरित होकर महातपस्वी व्यासशिष्य लोमश मुनि वहाँ पधारे। उस दीर्घकालिक यज्ञका अनुष्ठान करनेवाले मुनियोंने लोमशजीको आया देख एक साथ ही उठकर उनका स्वागत किया। सबके मनमें उल्लास छा गया। सभी उनके दर्शनके लिये उत्सुक थे। वे पापरहित महाभाग महर्षिगण लोमशजीको अर्घ्य और पाद्य निवेदन करके उनके सत्कारमें लग गये। आतिथ्यके पश्चात् उन्होंने विस्तारपूर्वक शिवधर्म सुनानेके लिये लोमशजीसे प्रार्थना की। इसपर उन्होंने शिवजीके उत्तम माहात्म्यका इस प्रकार वर्णन आरम्भ किया।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

लोमशजी बोले—अठारह पुराणोंमें परम पुरुष भगवान् शिवकी महिमाका गान किया गया है; अतः शिवजीके माहात्म्यका पूर्णतया वर्णन कोई भी नहीं कर सकता। जो लोग 'शिव' इस दो अक्षरके नामका उच्चारण करेंगे, उन्हें स्वर्ग और मोक्ष दोनों प्राप्त होंगे—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।* महादेवजी देवताओंके पालक और सबका शासन करनेवाले हैं, वे बड़े उदार (औढरदानी) हैं, उन्होंने अपना सब कुछ दूसरोंको दे डाला है, इसीलिये वे 'सर्व' (या शर्व) कहे गये हैं। जो सदा कल्याण करनेवाले भगवान् शिवका भजन करते हैं, वे धन्य हैं! जिन्होंने (दूसरोंकी रक्षाके लिये) विष-भक्षण किया, दक्ष-यज्ञका विनाश किया, कालको दग्ध कर डाला और राजा श्वेतको संकटसे छुड़ाया, उन महादेवजीकी महिमाका वर्णन कौन कर सकता है।

मुनियोंने पूछा—मुने! भगवान् शिवने कैसे विष-भक्षण किया तथा कैसे दक्ष-यज्ञका विनाश किया, वे सब बातें हमें बताइये। हमारे मनमें वह सब सुननेके लिये बड़ी उत्कण्ठा है।

लोमशजी बोले—विप्रगण! पूर्वकालकी बात है, प्रजापति दक्षने परमेष्ठी ब्रह्माजीके कहनेसे अपनी पुत्री सतीका विवाह महात्मा शंकरजीके साथ कर दिया था। एक दिन वे ही दक्ष स्वेच्छानुसार घूमते हुए नैमिषारण्यमें आये। वहाँके ऋषि-मुनियोंने उनका बड़ा आदर-सत्कार किया। सम्पूर्ण देवताओं और असुरोंने भी स्तुति और नमस्कारके द्वारा दक्षका सम्मान किया; किंतु भगवान् शंकरने उनको प्रणाम नहीं किया। दक्षने जब इस बातकी ओर लक्ष्य किया, तब उनके मनमें बड़ा क्रोध हुआ। वे प्रजापति ठहरे, यह अपमान कैसे सहते; उन्होंने तुरंत भगवान् शिवके प्रति कटु वचनोंकी बौछार आरम्भ कर दी—'अहो! ये सम्पूर्ण देवता और असुर भी मेरे चरणोंमें मस्तक झुकाते हैं, श्रेष्ठ ब्राह्मण भी अत्यन्त उत्सुक होकर मुझे प्रणाम करते हैं; परन्तु वह शंकर दुष्ट पुरुषोंकी भाँति मेरे सामने शीश क्यों नहीं झुकाता? वह भूत-प्रेतोंका स्वामी है और सदा प्रेत-पिशाचोंसे घिरा रहता है; फिर भी अपनेको महान् समझता है! इसलिये आज मैं उसे शाप देनेको उद्यत हुआ हूँ। श्रेष्ठ ब्राह्मणो! मेरी बात सुनो और इसका पालन करो, आजसे इस रुद्रको मैंने यज्ञोंसे बहिष्कृत कर दिया।'

दक्षका यह कठोर वचन सुनकर नन्दीको बड़ा क्रोध हुआ। वे बोले—'अहो! मेरे स्वामी महेश्वर यज्ञभागसे वंचित किये गये। यज्ञ, दान, तप तथा नाना प्रकारके तीर्थ जिनके नामसे ही पवित्र हुए हैं, उन्हीं भगवान् शिवको शाप क्यों दिया गया? खोटी बुद्धिवाले दक्ष! वह यज्ञ, जिसमें शंकरजीका भाग न हो, व्यर्थ ही होगा; दुर्बुद्धे! तू उस यज्ञकी रक्षा कर। अरे! जिन महात्मा शिवने इस सम्पूर्ण विश्वका पालन किया है, उन्हींको तूने शाप दे डाला!'

तब महादेवजीने नन्दीसे कहा—महामते! तुम्हें ब्राह्मणोंके प्रति कभी क्रोध नहीं करना चाहिये। मैं ही यज्ञ हूँ, मैं ही यज्ञ करनेवाला यजमान और आचार्य हूँ, सम्पूर्ण यज्ञांग भी मैं ही हूँ; इसलिये मैं सदा यज्ञमें रत हूँ। (मुझे कोई शाप देकर यज्ञ-बहिष्कृत नहीं कर सकता।) इसी प्रकार सर्वव्यापी होनेके कारण मैं किसीके भीतर नहीं हूँ—किसी भी सीमासे आबद्ध नहीं हूँ; इस दृष्टिसे देखनेपर मैं सदा ही सब यज्ञोंसे बाह्य हूँ।

भगवान् शंकरके इस प्रकार समझानेपर महातपस्वी नन्दीने विवेकका आश्रय लिया। शिवजीका सत्संग पाकर वे परमानन्दमें निमग्न हो गये। उधर मुनियोंसे घिरे हुए दक्ष भी अत्यन्त रोषमें भरकर अपने स्थानको चले गये। वे प्रणाम

* शिवेति द्व्यक्षरं नाम व्याहरिष्यन्ति ये जनाः। तेषां स्वर्गश्च मोक्षश्च भविष्यति न चान्यथा॥

(स्क० पु०, मा० के० १। १६)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

न करनेवाले रुद्रको भूल न सके। बारंबार उनका स्मरण करके क्रोधसे जलने लगे। भगवान् शिवकी ओरसे उन्होंने श्रद्धा हटा ली और वे शिवके उपासकोंकी निन्दामें संलग्न रहने लगे।

एक समय दक्षने स्वयं ही एक महान् यज्ञका आयोजन किया। उसमें उन्होंने बड़े-बड़े तपस्वी ऋषि-मुनियोंको बुलाया। वसिष्ठ आदि अनेक महर्षि उस महायज्ञमें पधारे। अगस्त्य, कश्यप, अत्रि, वामदेव, भृगु, दधीचि, भगवान् व्यास, भरद्वाज और गौतम—ये तथा और भी बहुत-से महर्षि वहाँ आये। सभी देवगण, समस्त लोकपाल, विद्याधर, गन्धर्व तथा किन्नरोंका भी आगमन हुआ। उस यज्ञमें सत्यलोकसे लोकपितामह ब्रह्माजी तथा वैकुण्ठ-धामसे भगवान् विष्णु भी बुलाये गये थे। इन्द्राणीके साथ देवराज इन्द्र, रोहिणीके साथ चन्द्रमा तथा अपनी प्रियाके साथ वरुणदेव भी आये थे। कुबेर पुष्पक विमानपर, वायुदेव मृगपर तथा अग्निदेव बकरेकी सवारीपर चढ़कर पधारे थे। नैर्ऋत्य कोणके अधिपति निर्ऋति प्रेतके कंधेपर बैठकर आये थे। इस प्रकार सब लोग दक्षकी यज्ञशालामें उपस्थित हुए। दक्षने सबका सत्कार किया। उनके यहाँ विश्वकर्माके बनाये हुए अनेक दिव्य भवन थे। वे सभी बहुमूल्य उपकरणोंसे सजे हुए तथा अत्यन्त प्रकाशमान थे। उन्हीं भवनोंमें दक्षने अपने समागत अतिथियोंको यथायोग्य स्थान देकर ठहराया।

दक्षका वह महायज्ञ कनखल तीर्थमें आरम्भ हुआ। उसमें उन्होंने भृगु आदि तपोधनोंको ऋत्विज् बनाया। अनेक प्रकारके कौतुक और मंगलाचार सम्पन्न करके दक्षने उस यज्ञकी दीक्षा ली। साथमें उनकी धर्मपत्नी भी बैठीं। ब्राह्मणोंने स्वस्तिवाचन किया। उस समय अपने सुहृदोंसे घिरे हुए दक्ष अपना महत्त्व बढ़ जानेके कारण अधिक सुशोभित हो रहे थे। इसी समय महर्षि दधीचिने वहाँ दक्षसे इस प्रकार कहना आरम्भ किया—'प्रजापते! ये देवेश्वरगण, ये बड़े-बड़े महर्षि तथा लोकपाल भी तुम्हारे यज्ञ-मण्डपमें पधारे हैं, तो भी पिनाकपाणि महात्मा शंकरके बिना यह यज्ञ अधिक शोभा नहीं पा रहा है। जिनके बिना मंगल भी अमंगल रूपमें ही परिणत हो जाते हैं तथा जिन त्रिनेत्रधारी भगवान्‌के अधिकारमें आनेपर अमङ्गल भी तत्काल मंगलके रूपमें बदल जाते हैं, वे अबतक यहाँ क्यों नहीं दर्शन दे रहे हैं? दक्ष! अब तुम्हें ही भगवान् विष्णु और इन्द्रके साथ जाकर परमेष्ठी भगवान् महेश्वरको बुला ले आना चाहिये। उन योगी शंकरकी उपस्थितिसे यहाँ सब कुछ पवित्र हो जायगा, जिनके स्मरण तथा नामोच्चारणसे सब पुण्यमय हो जाता है।'

दधीचिका यह वचन सुनकर दक्ष क्रोधमें भर गये और बड़ी उतावलीके साथ उत्तर देने लगे। उनका भीतरी भाव तो दूषित था, किंतु ऊपरसे वे हँसते हुए-से बोल रहे थे। उन्होंने कहा—'सम्पूर्ण देवताओंके मूल हैं—भगवान् विष्णु। जिनमें सनातन-धर्मकी स्थिति है, जिनमें सम्पूर्ण वेद, यज्ञ और नाना प्रकारके सत्कर्म भी प्रतिष्ठित हैं, वे भगवान् विष्णु तो यहाँ पधारे हुए हैं ही। सत्यलोकसे लोकपितामह ब्रह्माजी भी आ गये हैं। उनके साथ समस्त वेद, उपनिषद् और नाना प्रकारके आगम भी हैं। इसी प्रकार आप-जैसे निष्पाप महर्षिगण भी आ ही गये हैं। जो-जो यज्ञ-कर्मके योग्य हैं, शान्तचित्त और सुपात्र हैं, वे सब महात्मा यहाँ पदार्पण कर चुके हैं। आप सब महर्षिगण वेदके वाक्य तथा उसके अर्थके भी तत्त्वज्ञ हैं। दृढ़तापूर्वक व्रतका पालन करनेवाले हैं। आपके होते हुए अब हमें रुद्रसे क्या प्रयोजन है? ब्रह्मन्! आप सब लोग मिलकर मेरे इस महान् यज्ञको सफल बनावें।'

दक्षकी बात सुनकर दधीचिने कहा—पवित्र अन्तःकरणवाले समस्त श्रेष्ठ महर्षियों और देवताओंके समुदायमें यह बड़ा भारी अन्याय हुआ है कि भगवान् शिवको आमन्त्रित नहीं किया गया। महात्मा शंकरके बिना इस यज्ञमें शीघ्र ही महान् विघ्न होनेवाला है।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

यों कहकर महर्षि दधीचि अकेले ही दक्षकी यज्ञशालासे निकल पड़े और तुरंत अपने आश्रमको चले गये। उनके चले जानेपर दक्षने हँसते हुए कहा—'ब्राह्मणो! दधीचि शंकरके प्रेमी हैं। वे चले गये। आप सब लोग वैदिक सिद्धान्तमें रत रहनेवाले हैं; भगवान् विष्णु आप सबके अग्रणी हैं। अब शीघ्र ही आपलोग मेरे यज्ञको सफल बनावें।' तब उन सभी महर्षियोंने वहाँ देवयज्ञ प्रारम्भ किया।

इसी समय महादेवी दक्षकुमारी सतीने, जो गन्धमादनपर्वतपर अपनी सखियोंके साथ विराजमान थीं, रोहिणीके साथ चन्द्रमाको कहीं जाते हुए देखा। वे यज्ञमें ही जा रहे थे। सतीने अपनी सखी विजयासे कहा—'विजये! तू शीघ्र जाकर पूछ तो सही, ये चन्द्रमा कहाँ जायँगे?' उनके आदेशसे विजया चन्द्रमाके समीप गयी और यथोचित विनयके साथ उनकी यात्राका उद्देश्य पूछा। चन्द्रमाने दक्षके यज्ञमें जानेका सब वृत्तान्त बता दिया। यह सुनकर विजयाको बड़ा हर्ष और विस्मय हुआ। उसने तुरंत लौटकर सतीसे चन्द्रमाकी कही हुई सब बातें कह सुनायीं। सुनकर सती देवीने विचार किया, 'क्या कारण है, जो पिताजी मुझे नहीं बुला रहे हैं? क्या मेरी यशस्विनी माता भी मुझे भूल गयीं? आज मैं भगवान् शंकरसे इसका कारण पूछती हूँ।' यह निश्चय करके सती देवीने सखियोंको वहीं ठहरा दिया और स्वयं भगवान् शंकरके पास गयीं। उन्होंने देखा, त्रिनेत्रधारी महेश्वर सभा-मण्डपमें विराजमान हैं। चण्ड-मुण्ड आदि सभी पार्षद उन्हें सब ओरसे घेरकर बैठे हैं। बाण, भृंगी, नन्दी, महाकाल, महारौद्र, महामुण्ड, महाशिरा, धूम्राक्ष, धूम्रकेतु, धूम्रपाद तथा अन्य बहुत-से गण भगवान् रुद्रका अनुवर्तन करनेवाले हैं। वे सभी जितेन्द्रिय तथा वीतराग हैं। लोक-कल्याणकारी भगवान् शंकर इन सबसे घिरे हुए हैं और परम अद्भुत आसनपर विराजमान हैं। सतीका मन भगवान् शिवका दर्शन करते ही उनकी ओर आकृष्ट हो गया। वे सहसा उनके समीप चली गयीं। भगवान् शिवने बड़े आदरके साथ प्रीतियुक्त वचनोंसे सतीको आनन्दित किया और कहा—'प्रिये! इस समय यहाँ तुम्हारे आगमनका क्या कारण है?'

सती बोलीं—देवदेवेश्वर! मेरे पिताके घर महान् यज्ञ हो रहा है। उसमें चलनेके लिये आपकी रुचि क्यों नहीं होती? सदाशिव! यद्यपि आप उस यज्ञमें बुलाये नहीं गये हैं, तथापि आज मेरे कहनेसे मेरे पिताकी यज्ञशालामें आप स्वयं सब प्रकारसे प्रयत्न करके पधारें।

सतीका यह वचन सुनकर महादेवजीने मधुर वाणीमें कहा—कल्याणी! तुम्हारे पिताकी दृष्टिमें जो देवता, असुर तथा किन्नर आदि सम्माननीय हैं, वे सब निःसन्देह उनके यज्ञमें पहुँच गये हैं। सुन्दरी! जो लोग दूसरोंके घर बिना बुलाये जाते हैं, वे वहाँ मृत्युसे भी अधिक कष्टदायक अपमानको प्राप्त होते हैं।* शुभे! दूसरोंके घर जानेपर इन्द्र भी लघुताको प्राप्त होते हैं; इसलिये तुम्हें भी दक्षके यज्ञमें नहीं जाना चाहिये।

महात्मा भगवान् शंकरके इस प्रकार कहनेपर सतीने अपने पिताके प्रति रोष प्रकट करनेवाले वचनोंमें कहा—'नाथ! जिनसे सम्पूर्ण यज्ञ सफल होते हैं, वे देवदेवेश्वर तो आप ही हैं; फिर आपको भी मेरे दुराचारी पिताने आमन्त्रित नहीं किया! उस दुरात्माके मनमें आपके प्रति सद्भाव है या दुर्भाव, यह सब मैं जानना चाहती हूँ। इसलिये अभी पिताके यज्ञमण्डपमें जाती हूँ। देवदेव! जगत्पते! मुझे वहाँ जानेकी आज्ञा दीजिये।'

सती देवीके यों कहनेपर भगवान् महेश्वर

---

* अनाहूताश्च ये सुभ्रु गच्छन्ति परमन्दिरम्। तेऽपमानं प्राप्नुवन्ति मरणादधिकं ततः॥

(स्क० पु०, मा० के० २।५९)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

बोले—उत्तम व्रतका पालन करनेवाली देवी! यदि ऐसी बात है तो इस नन्दीपर सवार हो नाना प्रकारके प्रमथगणोंको साथ लेकर तुम शीघ्र वहाँकी यात्रा करो; मैं आज्ञा देता हूँ।

भगवान् शिवके आदेशसे साठ हजार रुद्रगण सती देवीके साथ चले। उन गणोंसे घिरी हुई देवीने अपने पिताके घरकी ओर प्रस्थान किया। सती देवी जब पिताके घर चली गयीं, उस समय सब बातोंपर विचार करके भगवान् महेश्वरने अपने मुखसे यह वचन निकाला—'अपने पिताद्वारा अपमानित होकर दक्षकुमारी सती अब फिर यहाँ लौटकर नहीं आयेंगी।'

सतीका अग्नि-प्रवेश, दक्ष-यज्ञ-विध्वंस तथा दक्षपर पुनः भगवान् शिवकी कृपा

दाक्षायणी सती उस स्थानपर गयीं, जहाँ वह महान् प्रकाशशाली यज्ञ हो रहा था। नाना प्रकारके आश्चर्यमय कौतूहलसे परिपूर्ण पिताके उस भवनको देखकर सती देवी द्वारपर ही ठहर गयीं और परम सौभाग्यवान् नन्दीकी पीठसे उतरकर इधर-उधर दृष्टि डालने लगीं। उन्होंने माता, पिता, सुहृद्, सम्बन्धी तथा बन्धु-बान्धवोंको देखा। माता-पिताको मस्तक झुकाकर वे बड़ी प्रसन्न हुईं। फिर अपने अभिमत प्रस्तावके अनुरूप वचन बोलीं—'पिताजी! जिनसे यह सम्पूर्ण चराचर जगत् पवित्र होता है, उन परम कल्याणमय भगवान् शंकरको आपने क्यों नहीं बुलाया?' (फिर ऋषियोंको सम्बोधित करके कहा—) 'भृगुजी! क्या आप भगवान् शिवको नहीं जानते? महामते कश्यप! क्या आप भी महादेवजीसे अपरिचित हैं? अत्रि, वसिष्ठ तथा कण्वजी! क्या आप भी महेश्वरकी महिमा नहीं जानते? इन्द्र! इस समय तुम्हारा क्या कर्तव्य है? भगवान् विष्णु! आप तो परमेश्वर महादेवजीको अच्छी तरह जानते हैं। ब्रह्माजी! क्या आपको महादेवजीके पराक्रमका ज्ञान नहीं है?'

सतीकी बात सुनकर दक्षने कुपित होकर कहा—भद्रे! तुम्हारे बहुत बातें बनानेसे क्या होगा? इस समय यहाँ तुम्हारी कोई आवश्यकता नहीं है। ठहरो या चली जाओ। तुम यहाँ आयी ही क्यों? तुम्हारा पति, जो शिव कहलाता है, अमंगलका मूर्तिमान् स्वरूप है। कुलीन भी नहीं है। वेदसे बहिष्कृत है। वह भूत, प्रेत और पिशाचोंका राजा है। इसीलिये इस यज्ञके निमित्त उसको आमन्त्रित नहीं किया गया है।

विश्ववन्दिता सती अपने पिताको शिवकी निन्दामें संलग्न देख अत्यन्त क्रोधमें भर गयीं और सोचने लगीं—'जो महादेवजीकी निन्दा करता है तथा जो उनकी निन्दा होती देख चुपचाप सुनता है, वे दोनों नरकमें जाते हैं, और जबतक सूर्य-चन्द्रमाकी स्थिति है तबतक उस नरकमें ही पड़े रहते हैं।* अतः अब मैं इस देहको त्याग दूँगी, अग्निमें प्रवेश कर जाऊँगी।' इस प्रकार विचार करती हुई सती शिव, रुद्र आदि नामोंका उच्चारण करने लगीं और अग्निमें प्रवेश कर गयीं। यह देख उनके साथ आये हुए समस्त शिवगण हाहाकार करने लगे। ऋषि, इन्द्र आदि देवता, मरुद्गण, विश्वेदेव, अश्विनीकुमार तथा सम्पूर्ण लोकपाल अवाक् हो गये। दक्ष-यज्ञमें सम्मिलित हुए सभी ऋषि-मुनि इस घटनासे भयभीत हो उठे।

इसी बीचमें महात्मा नारदजीने महादेवजीके पास जाकर दक्षकी सारी करतूतें कह सुनायीं। सुनकर भयंकर पराक्रम प्रकट करनेवाले परम क्रोधवान् जगदीश्वर भगवान् रुद्र बहुत ही कुपित

* यो निन्दति महादेवं निन्द्यमानं शृणोति च। तावुभौ नरकं यातो यावच्चन्द्रदिवाकरौ॥

(स्क० पु०, मा० के० ३। २२)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

दक्षके द्वारा सतीका तिरस्कार

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

हुए। लोकसंहारकारी रुद्रने अपनी जटा उखाड़कर उसे पर्वतके शिखरपर क्रोधपूर्वक दे मारा। जटा उखाड़नेसे महायशस्वी वीरभद्र प्रकट हुए। साथ ही करोड़ों भूतोंसे घिरी हुई कालीका भी प्राकट्य हुआ। महात्मा रुद्रके क्रोध और निःश्वाससे सैकड़ों प्रकारके ज्वर तथा तेरह प्रकारके सन्निपात रोग उत्पन्न हुए। वीरभद्रने भयंकर पराक्रमी रुद्रसे निवेदन किया—'प्रभो! शीघ्र आज्ञा कीजिये, इस सेवकसे क्या काम लेना है?' भगवान् रुद्रने आज्ञा दी—'महाबाहु वीर! शीघ्र जाओ और दक्ष-यज्ञका विनाश करो।'

देवाधिदेव शूलपाणि महादेवजीकी यह आज्ञा शिरोधार्य करके महातेजस्वी वीरभद्र समस्त भूतोंसे घिरे हुए दक्ष-यज्ञकी ओर चल दिये। उनके साथ कालिका देवी भी थीं। उसी समय दक्षके यहाँ सहसा अपशकुन प्रकट होने लगे। धूल और कंकड़ोंसे भरी हुई रूक्ष वायु चलने लगी। मेघ रक्तकी वर्षा करने लगे। सम्पूर्ण दिशाओंमें अन्धकार छा गया। पृथ्वीपर सहस्रशः उल्कापात होने लगे। इस प्रकारके अनिष्टसूचक उत्पात वहाँ देवता आदिको दिखायी दिये। दक्षको भी बड़ा भय हुआ। वे भगवान् विष्णुकी शरणमें गये और विनय-पूर्वक कहने लगे—'महाविष्णो! आप हमारे परम गुरु हैं; रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये। सुरश्रेष्ठ! आप ही यज्ञ हैं, इस महान् भयसे मुझे मुक्त कीजिये।'

दक्षके इस प्रकार प्रार्थना करनेपर भगवान् मधुसूदनने कहा—ब्रह्मन्! इसमें सन्देह नहीं कि मुझे तुम्हारी रक्षा करनी चाहिये; किंतु तुमने धर्मको जानते हुए भी महेश्वरकी अवहेलना की है। महेश्वरकी अवज्ञासे तुम्हारा सब कुछ निष्फल हो जायगा। जहाँ अपूज्य व्यक्तियोंका पूजन होता तथा पूजनीय महात्माका पूजन नहीं किया जाता, वहाँ तीन संकट अवश्य प्राप्त होंगे—दुर्भिक्ष, मृत्यु तथा भय।* इसलिये सब प्रकारसे यत्न करके भगवान् शंकरको मनाना चाहिये। तुम्हारे यज्ञमें महेश्वरका सम्मान नहीं किया गया है, इसी कारण यह महान् भय उपस्थित हुआ है। इस समय तो हम सब लोग मिलकर भी इस भयका निवारण करनेमें समर्थ नहीं हैं। यह सब कुछ तुम्हारी दुर्नीतिके कारण हो रहा है।

भगवान् विष्णुका यह वचन सुनकर दक्ष चिन्तित हो उठे। उनका मुँह सूख गया। इतनेमें ही अपनी सेनासे घिरे हुए महातेजस्वी वीरभद्र भी आ पहुँचे। उनके साथ काली, कात्यायनी, ईशानी, चामुण्डा, मर्दिनी, भद्रकाली, भद्रा, त्वरिता तथा वैष्णवी—ये नव दुर्गाएँ तथा भूतोंका महान् समुदाय भी था। शाकिनी, डाकिनी, भूत, प्रमथ, गुह्यक, कूष्माण्ड, कर्पट, वटुक, ब्रह्मराक्षस, भैरव, क्षेत्रपाल, राक्षस, यक्ष, विनायक तथा चौसठ योगिनियोंका मण्डल—ये सब उस महान् प्रकाशमय यज्ञ-मण्डपमें सहसा प्रकट हो गये। भगवान् शंकरके उन पार्षदोंने देवताओंके साथ युद्ध आरम्भ किया। लोकपालोंसहित देवताओंने भी शिवगणोंपर अस्त्र-शस्त्रोंसे प्रहार किया। यद्यपि वे लाखोंकी संख्यामें थे, तथापि इन्द्र आदि लोकपालोंने उन्हें रणसे विमुख कर दिया। उस समय देवताओंकी विजय और यजमानके सन्तोषके लिये महर्षि भृगुने शिवगणोंके प्रति उच्चाटनका प्रयोग किया था। इसीसे उस समय देवता विजयी हुए।

अपने सैनिकोंकी पराजय देखकर वीरभद्रको बड़ा क्रोध हुआ। उन्होंने भूतों, प्रेतों और पिशाचोंको पीछे करके वृषभास्यको आगे किया और स्वयं भी आगे आ गये। महाबली वीरभद्रने एक तीक्ष्ण त्रिशूल हाथमें लेकर देवताओं, यक्षों, (दक्षपक्षीय) पिशाचों, गुह्यकों तथा राक्षसोंको भी उस युद्धमें मार गिराया। समस्त शिवगणोंने शूलके आघातसे

* अपूज्या यत्र पूज्यन्ते पूजनीयो न पूज्यते। त्रीणि तत्र भविष्यन्ति दुर्भिक्षो मरणं भयम्॥
(स्क० पु०, मा० के० ३। ४८-४९)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

देवताओंको गहरी चोट पहुँचायी। फिर तो सम्पूर्ण देवता पराजित होकर भागने लगे। सबने एक-दूसरेको छोड़कर स्वर्गकी राह ली। केवल इन्द्र आदि लोकपाल ही विजयके लिये उत्सुक होकर वहाँ खड़े रहे। वे बारंबार बृहस्पतिजीसे पूछते थे—'गुरुदेव! हमारी विजय कैसे होगी?' तब बृहस्पतिजीने कहा—'भगवान् विष्णुने जो बात बहुत पहले कह दी थी, वह आज सत्य हुई। यदि फलरूपमें परिणत हुए कर्मका नियामक कोई ईश्वर है तो वह भी कर्ताका ही आश्रय लेता है। जो कर्ता नहीं है, उसपर वह अपना प्रभुत्व नहीं प्रकट करता—कर्म करनेवालेको ही ईश्वर उसका फल देता है, न करनेवालेको नहीं। वह ईश्वर केवल अनन्य भक्तिसे जानने योग्य है। परम शान्ति और सन्तोषसे ही भगवान् सदाशिवके स्वरूपको जाना जा सकता है। उन्हींसे यह सम्पूर्ण सुख-दुःखात्मक जगत् जन्म और जीवन धारण करता है। (इस समय तुम्हारी विजयका कोई उपाय नहीं दिखायी देता।) इन्द्र! तुम मूर्खता और लोलुपताके वश इन लोकपालोंके साथ यहाँ आ गये हो। बताओ तो इस समय क्या करोगे? ये परम शोभायमान गण भगवान् शिवके किंकर हैं; वे ही इनके सहायक हैं। ये महाभाग कुपित होनेपर जब संहार आरम्भ करते हैं तब किसीको शेष नहीं छोड़ते।'

बृहस्पतिजीका यह कथन सुनकर वे सम्पूर्ण देवता, लोकपाल तथा इन्द्र भी चिन्तामें डूब गये। तदनन्तर शिवगणोंसे घिरे हुए वीरभद्रने कहा—'तुम सब देवता मूर्खताके कारण यहाँ भेंट लेनेके लिये आ गये हो। मेरे निकट तो आओ। मैं तुम्हें भेंट देता हूँ। सखे इन्द्र! मित्रवर सूर्य! चन्द्रमा! धनाध्यक्ष कुबेर! पाशधारी वरुण! मृत्यो! यमुनाके बड़े भैया यमराज! मैं आपलोगोंकी तृप्तिके लिये शीघ्र ही भेंट अर्पित करूँगा।' यों कहकर क्रोधमें भरे वीरभद्रने सब देवताओंपर बाणोंकी बौछार आरम्भ की। उन बाणोंके आघातसे पीड़ित होकर वे सब-के-सब दसों दिशाओंमें भाग गये। लोकपालोंके और देवताओंके पलायन कर जानेपर भगवान् विष्णु भी चले गये। फिर वीरभद्र अपने गणोंके साथ यज्ञशालामें आये। उस समय देवता, ऋषि तथा अन्य जो यज्ञोपजीवी लोग थे, उन सबको भगवान् शिवके गणोंने परास्त कर दिया। महर्षि भृगुको धरतीपर पटककर उनकी दाढ़ी और मूँछ नोंच ली। पूषाने दाँत दिखाकर हँसी उड़ायी थी, अतः शिवगणोंने उनके सारे दाँत उखाड़ लिये। अग्निपत्नी स्वधा और स्वाहाको भी अपमानित किया तथा क्रोधमें भरकर उन्होंने और भी ऐसे-ऐसे बर्ताव किये, जो वाणीद्वारा कहने योग्य नहीं हैं। दक्ष महान् भयके मारे अन्तर्वेदीमें छिपे हुए थे। इस बातका पता लगनेपर रोषमें भरे हुए वीरभद्र उन्हें पकड़ लाये और उनका जबड़ा पकड़कर सिरके ऊपर तलवारसे चोट की। फिर दक्षके कटे हुए सिरको उन्होंने तुरंत ही यज्ञकुण्डमें डालकर जला दिया। उस यज्ञशालामें दूसरे-दूसरे जो देवता, पितर, ऋषि, यक्ष और राक्षस रह गये थे, वे सब शिवगणोंके उपद्रवसे भयभीत होकर भाग चले। चन्द्रमा, आदित्यगण, ग्रहमण्डल, नक्षत्र और तारे—इन सबको शिवगणोंने भगा दिया। ब्रह्माजी अपने पुत्र दक्षके शोकसे पीड़ित होकर सत्यलोकको चले गये और वहाँ स्वस्थचित्तसे विचार करने लगे कि अब मुझे क्या करना चाहिये? इस अपमानके कारण ब्रह्माजीको शान्ति नहीं मिलती थी। 'यह सब कुछ उस दक्षके ही पापका फल है' यह जानकर पितामहने कैलास पर्वतपर जानेका निश्चय किया। महातेजस्वी ब्रह्माजी हंसपर आरूढ़ हो सब देवताओंके साथ पर्वतश्रेष्ठ कैलासपर गये। वहाँ उन्होंने नन्दीके साथ एकान्तमें बैठे हुए भगवान् सदाशिवका दर्शन किया। उनके मस्तकपर जटा-जूट शोभा पा रहा था। भगवान् शिवको देखकर ब्रह्माजी दण्डकी भाँति पृथ्वीपर पड़ गये और अपना अपराध क्षमा करानेके

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

वीरभद्रद्वारा दक्षयज्ञ-विध्वंस

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

लिये उद्यत हो अपने चारों मुकुटोंसे भगवान् शिवके चरणारविन्दोंका स्पर्श करते हुए उनकी स्तुति करने लगे।

ब्रह्माजी बोले—शान्तस्वरूप, सर्वत्र व्यापक, परब्रह्मरूप परमात्मा भगवान् रुद्रको नमस्कार है; मस्तकपर जटा-जूट धारण करनेवाले महान् ज्योतिर्मय महेश्वरको नमस्कार है। भगवन्! आप जगत्‌की सृष्टि करनेवाले प्रजापतियोंके भी स्रष्टा हैं। आप ही सबका धारण-पोषण करते हैं। आप सबके प्रपितामह हैं। आप ही रुद्र, महान्, नीलकण्ठ और वेधा हैं; आपको नमस्कार है। यह सम्पूर्ण विश्व आपका स्वरूप है। आप ही इसके बीज (आदिकारण) हैं। इस जगत्‌को आनन्दकी प्राप्ति करानेवाले भी आप ही हैं, आपको नमस्कार है। आप ही ओंकार, वषट्कार तथा सम्पूर्ण आयोजनोंके प्रवर्तक हैं। यज्ञ, यजमान और यज्ञ-प्रवर्तक भी आप ही हैं। प्रभो! देवेश्वर! यज्ञ-प्रवर्तक होकर भी आपने इस यज्ञका विनाश कैसे किया? महादेव! आप ब्राह्मणोंके हितैषी हैं, तो भी आपके द्वारा दक्षका वध कैसे हुआ? रुद्र! आप तो गौओं और ब्राह्मणोंके प्रतिपालक हैं। समस्त प्राणियोंको शरण देनेवाले हैं। रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये।

श्रीमहादेवजीने कहा—पितामह! सावधान होकर मेरी बात सुनिये, दक्ष अपने ही कर्मसे मारा गया। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। इसलिये किसीको भी कदापि ऐसा कर्म नहीं करना चाहिये जो दूसरोंको क्लेश पहुँचानेवाला हो। ब्रह्मन्! जो दूसरोंको कष्ट देनेवाला कर्म किया जाता है, वह एक दिन अपने ही ऊपर आ पड़ता है।

यों कहकर भगवान् शंकर उस समय ब्रह्मा आदि देवताओंके साथ कनखल तीर्थमें, जहाँ प्रजापति दक्षका यज्ञमण्डप था, गये। वहाँ जाकर उन्होंने वीरभद्रके द्वारा जो कुछ किया गया था, सब देखा। स्वाहा, स्वधा, पूषा, बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ भृगु, अन्यान्य ऋषि, समस्त पितर, यक्ष, गन्धर्व और किन्नर—जो भी वहाँ जिस अवस्थामें पड़े थे, सबको भगवान् शिवने देखा। किसीके अंग-भंग हो गये थे, किसीकी दाढ़ी और मूँछें नोंच ली गयी थीं तथा कुछ लोग रणभूमिमें मरे पड़े थे। भगवान् शंकरको आया देख वीरभद्रने समस्त गणोंके साथ उनके चरणोंमें दण्डवत्-प्रणाम किया और वे सामने हाथ जोड़कर खड़े हो गये। महाबली वीरभद्रको अपने आगे खड़ा देख महादेवजीने हँसते हुए कहा—'वीरवर! यह तुमने क्या किया? दक्षको शीघ्र यहाँ ले आओ, जिसने ऐसा यज्ञ किया और उसका वैसा ही विलक्षण फल भी प्राप्त किया।'

शंकरजीके यों कहनेपर वीरभद्रने बड़ी उतावलीके साथ दक्षका धड़ लाकर उनके सामने डाल दिया। तब शंकरजीने कहा—'वीर! इस दुरात्मा दक्षका मस्तक कौन ले गया? यदि मिल जाय तो कुटिल होनेपर भी इसे मैं जीवित कर दूँगा।' यह सुनकर वीरभद्र फिर बोले—'भगवन्! मैंने उसी समय इसके मस्तकको अग्निमें होम दिया था, अब तो केवल पशुका सिर बचा है। किंतु उसका मुख बहुत विकृत हो गया है।' ये सब बातें जानकर भगवान् शिवने पशुके भयंकर मुखको, जिसमें दाढ़ी भी लगी थी, दक्षके धड़से जोड़ दिया। इस प्रकार भगवान् शंकरकी कृपासे दक्षको नया जीवन प्राप्त हुआ। दक्ष अपने सामने भगवान् रुद्रको उपस्थित देख लज्जासे गड़ गये, उन्होंने लोक-कल्याणकारी भगवान् शंकरके चरणोंमें मस्तक झुकाकर उनका स्तवन किया।

दक्ष बोले—सबको वर देनेवाले सर्वश्रेष्ठ देव भगवान् शंकरको मैं प्रणाम करता हूँ। सनातन देवता शिवको मैं सदा नमस्कार करता हूँ। देवताओंके पालक और ईश्वर, पापहारी हरको मैं प्रणाम करता हूँ। जगत्‌के एकमात्र बन्धु शम्भुको मैं नमस्कार करता हूँ। जो सम्पूर्ण विश्वके स्वामी, विश्वरूप, सनातन ब्रह्म और स्वात्मरूप हैं, उन

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

भगवान् शिवको मैं शीश झुकाता हूँ। अपनी भक्तिसे प्राप्त होने योग्य सर्वरूप भगवान् शिवको मैं प्रणाम करता हूँ। जो वरदायक हैं, वरस्वरूप हैं और वरण करनेयोग्य हैं, उन भगवान् शिवको मैं मस्तक नवाता हूँ।[१]

दक्षके इस प्रकार स्तुति करनेपर भगवान् शंकरने कहा—सुरश्रेष्ठ! चार प्रकारके पुण्यात्मा जन मेरा सदा भजन करते हैं—आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी और ज्ञानी। (इन सबमें ज्ञानी श्रेष्ठ है।) इसलिये समस्त ज्ञानी पुरुष मुझे विशेष प्रिय हैं। इसमें तनिक भी संशय नहीं है। जो ज्ञानके बिना ही मुझे पानेका यत्न करते हैं, वे अज्ञानी हैं। तुम केवल यज्ञादि कर्मके द्वारा संसार-सागरके पार जाना चाहते हो; परंतु कर्ममें आसक्त हुए मूढ़ पुरुष वेद, यज्ञ, दान और तपस्यासे भी मुझे कभी नहीं प्राप्त कर सकते। अतएव तुम अन्तःकरणको एकाग्र करके ज्ञाननिष्ठ होकर कर्म करो। सुख और दुःखमें समान भाव रखकर सदा प्रसन्न रहो।[२]

तदनन्तर दक्षको वहीं कनखल तीर्थमें रहनेका आदेश देकर भगवान् शिव अपने निवास-स्थान कैलास पर्वतपर चले गये। फिर ब्रह्माजीने भृगु आदि सम्पूर्ण महर्षियोंको आश्वासन तथा बोध प्रदान किया। वे सब ऋषि-मुनि तत्क्षण ज्ञानी हो गये। इसके बाद पितामह ब्रह्माजी अपने धामको गये। इधर प्रजापति दक्षको भगवान् शंकरके उपदेशसे उत्तम ज्ञानकी प्राप्ति हो गयी। वे शिवजीके ध्यानमें तत्पर होकर तपस्या करने लगे। इसलिये सर्वथा प्रयत्न करके सबको भगवान् शंकरकी आराधना करनी चाहिये।

~~~o~~~

१. नमामि देवं वरदं वरेण्यं नमामि देवं च सदा सनातनम्।
नमामि देवाधिपमीश्वरं हरं नमामि शम्भुं जगदेकबन्धुम्॥
नमामि विश्वेश्वरविश्वरूपं सनातनं ब्रह्म निजात्मरूपम्।
नमामि सर्वं निजभावगम्यं वरं वरेण्यं वरदं नतोऽस्मि॥
(स्क० पु०, मा० के० ५। ३९-४०)

२. दक्षेण संस्तुतो रुद्रो बभाषे प्रहसन् हरः॥
चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनः सदा। आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च सुरसत्तम॥
तस्मान्मे ज्ञानिनः सर्वे प्रियाः स्युर्नात्र संशयः। विना ज्ञानेन मां प्राप्तुं यतन्ते ते हि बालिशाः॥
केवलं कर्मणा त्वं हि संसारं तर्तुमिच्छसि। न वेदैश्च न यज्ञैश्च न दानैस्तपसा क्वचित्॥
न शक्नुवन्ति मां प्राप्तुं मूढाः कर्मवशा नराः। तस्माज्ज्ञानपरो भूत्वा कुरु कर्म समाहितः॥
सुखदुःखसमो भूत्वा सुखी भव निरन्तरम्॥
(स्क० पु०, मा० के० ५। ४१—४६)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth
~~~

शिवपूजनकी महिमा

लोमशजी कहते हैं—जो मनुष्य शिवमन्दिरके आँगनमें झाड़ू लगाते हैं, वे निश्चय ही भगवान् शिवके लोकमें पहुँचकर सम्पूर्ण विश्वके लिये वन्दनीय हो जाते हैं। जो भगवान् शिवके लिये यहाँ अत्यन्त प्रकाशमान दर्पण अर्पण करते हैं, वे आगे चलकर शिवजीके सम्मुख उपस्थित रहनेवाले पार्षद होंगे। जो लोग देवाधिदेव, शूलपाणि शंकरको चँवर भेंट करते हैं, वे त्रिलोकीमें जहाँ कहीं जन्म लेंगे, उनपर चँवर डुलता रहेगा। जो परमात्मा शिवकी प्रसन्नताके लिये धूप निवेदन करते हैं, वे पिता और नाना दोनोंके कुलोंका उद्धार करते हैं तथा भविष्यमें यशस्वी होते हैं। जो लोग भगवान् हरि-हरके सम्मुख दीपदान करते हैं, वे भविष्यमें तेजस्वी होते और दोनों कुलोंका उद्धार करते हैं। जो मनुष्य हरि-हरके आगे नैवेद्य निवेदन करते हैं, वे एक-एक (ग्रास)-में सम्पूर्ण यज्ञका फल पाते हैं। जो लोग टूटे हुए शिव-मन्दिरको पुनः बनवा देते हैं, वे निस्सन्देह द्विगुण फलके भागी होते हैं। जो ईंट अथवा पत्थरसे भगवान् शिव तथा विष्णुके लिये नूतन मन्दिर निर्माण कराते हैं, वे तबतक स्वर्गलोकमें आनन्द भोगते हैं, जबतक इस पृथ्वीपर उनकी वह कीर्ति स्थित रहती है। जो महान् बुद्धिमान् मानव भगवान् शिवके लिये अनेक मंजिलोंका महल (मन्दिर) बनवाते हैं, वे उत्तम गतिको प्राप्त होते हैं। जो अपने और दूसरोंके बनवाये हुए शिव-मन्दिरकी सफाई करते या उसमें सफेदी कराते हैं, वे भी उत्तम गतिको प्राप्त होते हैं। जो पुरुष अथवा स्त्रियाँ शिवजीके आँगनमें विविध रंगोंके चौक पूरती हैं, वे सर्वश्रेष्ठ शिवधाममें पहुँचकर दिव्य रूप प्राप्त करेंगी। जो पुण्यात्मा मनुष्य भगवान् शिवको चँदोवा भेंट करते हैं, वे स्वयं तो शिवलोकमें जाते ही हैं, अपने समस्त कुलको भी तार देते हैं। जो अधिक आवाज करनेवाला घण्टा लेकर उसे शिव-मन्दिरमें बाँधते हैं, वे भी त्रिलोकीमें तेजस्वी और कीर्तिमान् होंगे। धनवान् हो या दरिद्र, जो एक-दो या तीनों समय भगवान् शिवका दर्शन करता है, वह सुखी होता और समस्त दुःखोंसे छूट जाता है।

हे हरे! और हे हर! इस प्रकार भगवान् शिव और विष्णुके नाम लेनेसे परमात्मा शिवने बहुतेरे मनुष्योंकी रक्षा की है।* तीनों लोकोंमें महादेवजीसे बढ़कर दूसरा कोई देवता नहीं दिखायी देता। इसलिये सब प्रकारके प्रयत्नोंसे भगवान् सदाशिवकी पूजा करनी चाहिये। पत्र, पुष्प, फल अथवा स्वच्छ जल तथा कनेरसे भी भगवान् शिवकी पूजा करके मनुष्य उन्हींके समान हो जाता है। आक (मदार) का फूल कनेरसे दसगुना श्रेष्ठ माना गया है। आकके फूलसे भी दसगुना श्रेष्ठ है धतूरे आदिका फल। नील-कमल एक हजार कह्लार (कचनार)-से भी श्रेष्ठ माना गया है। यह चराचर जगत् विभूतिसे प्रकट हुआ है। वह विभूति भगवान् शिवके श्रीअंगोंमें भलीभाँति लगती है, इसलिये सदा उसे धारण करना चाहिये।

जिनके मुखसे **'नमः शिवाय'** यह पंचाक्षर मन्त्र सदा उच्चारित होता रहता है, वे मनुष्य भगवान् शंकरके स्वरूप हैं। प्रातःकाल, मध्याह्नकाल तथा सन्ध्याके समय शंकरजीका दर्शन करना चाहिये। प्रातःकाल भगवान् शिवके दर्शनसे सम्पूर्ण पातकोंका नाश हो जाता है। दोपहरके समय शिवजीके दर्शनसे मनुष्योंके सात जन्मोंके पाप नष्ट हो जाते हैं तथा रात्रि-कालमें शंकरजीके दर्शनसे जो पुण्य होता है, उसकी तो कोई गणना ही नहीं है। **'शिव'** यह दो अक्षरोंका नाम महापातकोंका भी नाश करनेवाला है। जिन मनुष्योंके मुखसे **'शिव'** नामका

* हरे हरेति वै नाम्ना शम्भोश्चक्रधरस्य च। रक्षिता बहवो मर्त्याः शिवेन परमात्मना॥

(स्क० पु०, मा० के० ५। ९२)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

जप होता रहता है, उन्होंने ही इस सम्पूर्ण जगत्को धारण किया है। पुण्यात्मा पुरुषोंने शिवजीके आँगनमें आरतीके समय बजानेके लिये जो बड़ा-सा नगारा रख छोड़ा हो, उसकी आवाजसे पापी मनुष्य भी पवित्र हो जाते हैं। इसलिये चिरकालसे संचित प्रचुर धन, बहुमूल्य चँवर, मंच, शय्या, दर्पण, चँदोवा, आभूषण तथा विचित्र वस्त्र भगवान् शिवकी सेवामें अर्पित करने चाहिये। पुराण-पाठ, कथा, इतिहास और संगीत आदि नाना प्रकारके आयोजन भगवान् शिवको प्रिय हैं; इनकी व्यवस्था करनी चाहिये। ऐसी व्यवस्था करके पापी मनुष्य भी अपने पापसे मुक्त होकर शिवलोकमें चले जाते हैं। जो स्वधर्मका पालन करनेवाले, महात्मा और शिव-पूजाके विशेषज्ञ हैं, जिन्होंने गुरुके मुखसे शिवकी दीक्षा ली है, जो निरन्तर शिवजीकी पूजामें संलग्न रहते हैं, मनमें दृढ़ विश्वास रखकर सम्पूर्ण विश्वको शिवके रूपमें देखते हैं, उत्तम बुद्धिका आश्रय ले सदाचारका पालन करते तथा अपने वर्ण-धर्म और आश्रम-धर्ममें स्थित रहते हैं, वे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा कोई भी क्यों न हों, भगवान् शिवके परम प्रिय होते हैं। चाण्डाल हो या सर्वश्रेष्ठ ब्राह्मण, भजन करनेपर सभी भगवान् शंकरको अत्यन्त प्रिय लगते हैं। भगवान् शंकर ही इस सम्पूर्ण चराचर जगत्के आधार हैं, अतः सब कुछ शिवस्वरूप है—यह बात विशेष रूपसे जाननी चाहिये। वेद, पुराण, शास्त्र, उपनिषद्, आगम और देवता—सबके द्वारा भगवान् सदाशिव ही जानने योग्य हैं। मनुष्य निष्काम हो या सकाम, सबको भगवान् सदाशिवकी आराधना करनी चाहिये।

शिवलिंग-पूजनकी महिमा तथा रावणके उत्कर्ष और पतनका वृत्तान्त

लोमशजी कहते हैं—जो विष्णु हैं, उन्हें शिव जानना चाहिये और जो शिव हैं, वे विष्णु ही हैं। पीठिका (आधार अथवा अर्घा) भगवान् विष्णुका रूप है और उसपर स्थापित लिंग महेश्वरका स्वरूप है। अतः शिवलिंगका पूजन सबके लिये श्रेष्ठ है। ब्रह्माजी निरन्तर मणिमय शिवलिंगका पूजन करते हैं। इन्द्र रत्नमय, चन्द्रमा मुक्तामय तथा सूर्य ताम्रमय लिंगकी सर्वदा पूजा करते हैं। कुबेर चाँदीके शिवलिंगकी, वरुण कुछ लाल रंगके शिवलिंगकी, यमराज नीले रंग, नैर्ऋत्य कोणके अधिपति रजतवर्ण तथा वायुदेव केसरिया रंगके शिवलिंगकी निरन्तर आराधना करते हैं। इस प्रकार इन्द्र आदि समस्त लोकपाल शिवलिंगोपासक हैं। पातालमें भी सब लोग शिवपूजक हैं। गन्धर्व और किन्नर भी शिवोपासना करते हैं। दैत्योंमें प्रह्लाद आदि कोई-कोई ही वैष्णव हैं। यही बात राक्षसोंके लिये भी है, उनमें भी विभीषण आदि ही वैष्णव हैं। बलि, नमुचि, हिरण्यकशिपु, वृषपर्वा, संह्लाद—ये तथा बुद्धिमान् शुक्राचार्यके और भी बहुत-से शिष्य शिवजीकी उपासना करनेवाले हैं। इस तरह प्रायः सभी दैत्य-दानव और राक्षस शिवाराधनमें ही रत रहते हैं। हेति, प्रहेति, संयाति, प्रयाची, प्रघस, विद्युज्जिह्व, तीक्ष्णदंष्ट्र, धूम्राक्ष, भीमविक्रम, माली, सुमाली, माल्यवान्, अतिभीषण, विद्युत्केश, खड्गजिह्व, महाबली रावण, दुर्धर्ष वीर कुम्भकर्ण तथा प्रतापी वेगदंशी आदि समस्त श्रेष्ठ राक्षस सदा शिव-पूजनमें संलग्न रहे हैं। ये सर्वदा शिवलिंगका अर्चन करके उच्चकोटिकी सिद्धिको प्राप्त हुए हैं। रावणने ऐसी तपस्याकी थी, जो सभीके लिये दुःसह थी। महादेवजीको तपस्या बहुत प्रिय है। वे उसकी तपस्यासे जब बहुत अधिक प्रसन्न हो गये, तब उन्होंने रावणको ऐसे-ऐसे वरदान दिये, जो अन्य सबके लिये अत्यन्त दुर्लभ हैं। रावणने भगवान् सदाशिवसे

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

ज्ञान, विज्ञान, संग्राममें अजेयता तथा शिवजीकी अपेक्षा दुगुने सिर प्राप्त किये। महादेवजीके पाँच मुख हैं। इसलिये उनसे द्विगुण मुख पाकर रावण दशमुख हुआ। उसने देवताओं, ऋषियों और पितरोंको भी सर्वथा परास्त करके उन सबपर अपनी प्रभुता स्थापित की। भगवान् महेश्वरके प्रसादसे वह सबसे अधिक प्रतापी हुआ। महादेवजीने उसे त्रिकूट पर्वतका महाराजा बना दिया।

इस प्रकार शिवलिंगकी पूजाके प्रसादसे रावणने तीनों लोकोंको वशमें कर लिया। देवताओंको बड़ी चिन्ता हुई। वे सब मिलकर शिवलोकमें गये और दरवाजेपर किंकरोंकी भाँति खड़े हो गये। उस समय नन्दी, जिनका मुख वानरके समान है, देवताओंसे वार्तालाप करने लगे। देवताओंने नन्दीको प्रणाम करके पूछा—'आपका मुख वानरके समान क्यों है?' नन्दीने कहा—"एक समय रावण यहाँ आया और अपने पराक्रमकी बातें बहुत बढ़-चढ़कर कहने लगा; उस समय मैंने उससे कहा—'भैया! तुम भी शिवलिंगके पूजक हो और मैं भी, अतः हम दोनों समान हैं; फिर मेरे सामने यह व्यर्थ डींग क्यों मारते हो?' मेरी बात सुनकर रावणने तुम्हीं लोगोंकी भाँति मेरे वानर-मुख होनेका कारण पूछा। उत्तरमें मैंने निवेदन किया कि 'यह मेरी शिवोपासनाका मुँहमाँगा फल है। भगवान् शिव मुझे अपना सारूप्य दे रहे थे, किंतु उस समय मैंने वह नहीं स्वीकार किया। अपने लिये वानरके समान ही मुख माँगा। भगवान् बड़े दयालु हैं। उन्होंने कृपापूर्वक मुझे मेरी माँगी हुई वस्तु दे दी। जो अभिमानशून्य हैं, जिनमें दम्भका अभाव है तथा जो परिग्रहसे दूर रहनेवाले हैं, उन्हें भगवान् शंकरका प्रिय समझना चाहिये। इसके विपरीत जो अभिमानी, दम्भी और परिग्रही हैं, वे शिवकी कल्याणमयी कृपासे वंचित रहते हैं।' रावण मेरे साथ पूर्वोक्त बातचीतमें अपने तपोबलका बखान करने लगा। उसने कहा—'मैं बुद्धिमान् हूँ, मैंने भगवान् शिवसे दस मुख माँगे हैं। अधिक मुखोंसे शिवजीकी अद्भुत स्तुति की जा सकती है। तुम्हारे इस वानरतुल्य मुखसे क्या होगा? तुम्हें किसीने खोटी सलाह दी होगी; तुमने शंकरजीसे यह वानरका मुख व्यर्थ माँगा है।' देवताओ! रावणका यह उपहासपूर्ण वचन सुनकर मैंने उसे शाप देते हुए कहा—'जब कोई महातपस्वी श्रेष्ठ मानव उन वानरोंके साथ मुझे आगे करके तुमपर आक्रमण करेगा, उस समय वह तुम्हें अवश्य मार डालेगा।' इस प्रकार सारे संसारको रुलानेवाले रावणको मैंने शाप दे डाला। देवाधिदेव महादेवजी साक्षात् विष्णुरूप हैं, अतः आपलोग भगवान् विष्णुसे प्रार्थना करें।'

नन्दीकी यह बात सुनकर सब देवता मन-ही-मन बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने वैकुण्ठमें आकर अपनी वाणीद्वारा भगवान् विष्णुकी स्तुति आरम्भ की।

देवता बोले—देवदेव जगदीश्वर! आप छहों ऐश्वर्योंसे युक्त होनेके कारण भगवान् कहलाते हैं। आपको नमस्कार है। यह सम्पूर्ण चराचर जगत् आपके आधारपर टिका हुआ है। यह जगत् एक लिंग है, जिसे आपने आधारपीठरूप होकर धारण किया है। प्रभो! हमलोगोंके लिये पहले भी आपने अनेक बार अवतार धारण किया है। आपने ही मत्स्यरूप धारण करके ब्रह्माजीके मुखमें वेदोंकी स्थापना की है। आपने ही हयग्रीवरूपसे मधु और कैटभ नामक दैत्योंको मारा है। कच्छप अवतार धारण करके आपने ही अपनी पीठपर मन्दराचल पर्वत उठाया था। वाराहरूप धारण कर आपने हिरण्याक्ष दैत्यका वध किया तथा नरसिंहरूपसे हिरण्यकशिपुको मौतके घाट उतारा है। वामन अवतार धारण कर आपने ही दैत्यराज बलिको बाँधा और भृगुकुलमें परशुरामरूपसे प्रकट होकर आपने ही कार्तवीर्य अर्जुनका वध किया है। विष्णो! आपने बहुत-से दैत्योंका संहार किया है। आप

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

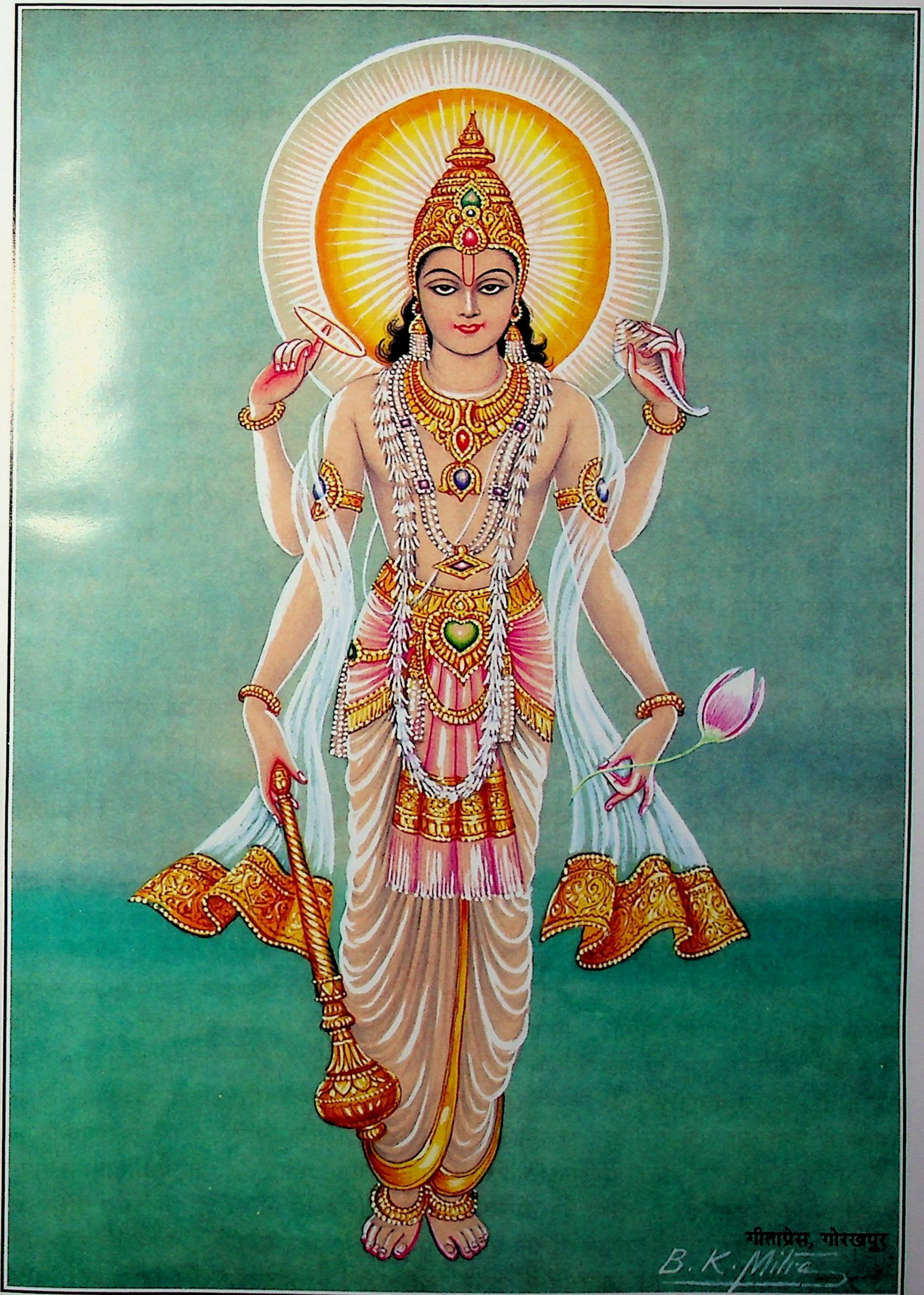

शुक्लाम्बर शशिवर्ण भगवान् विष्णु

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

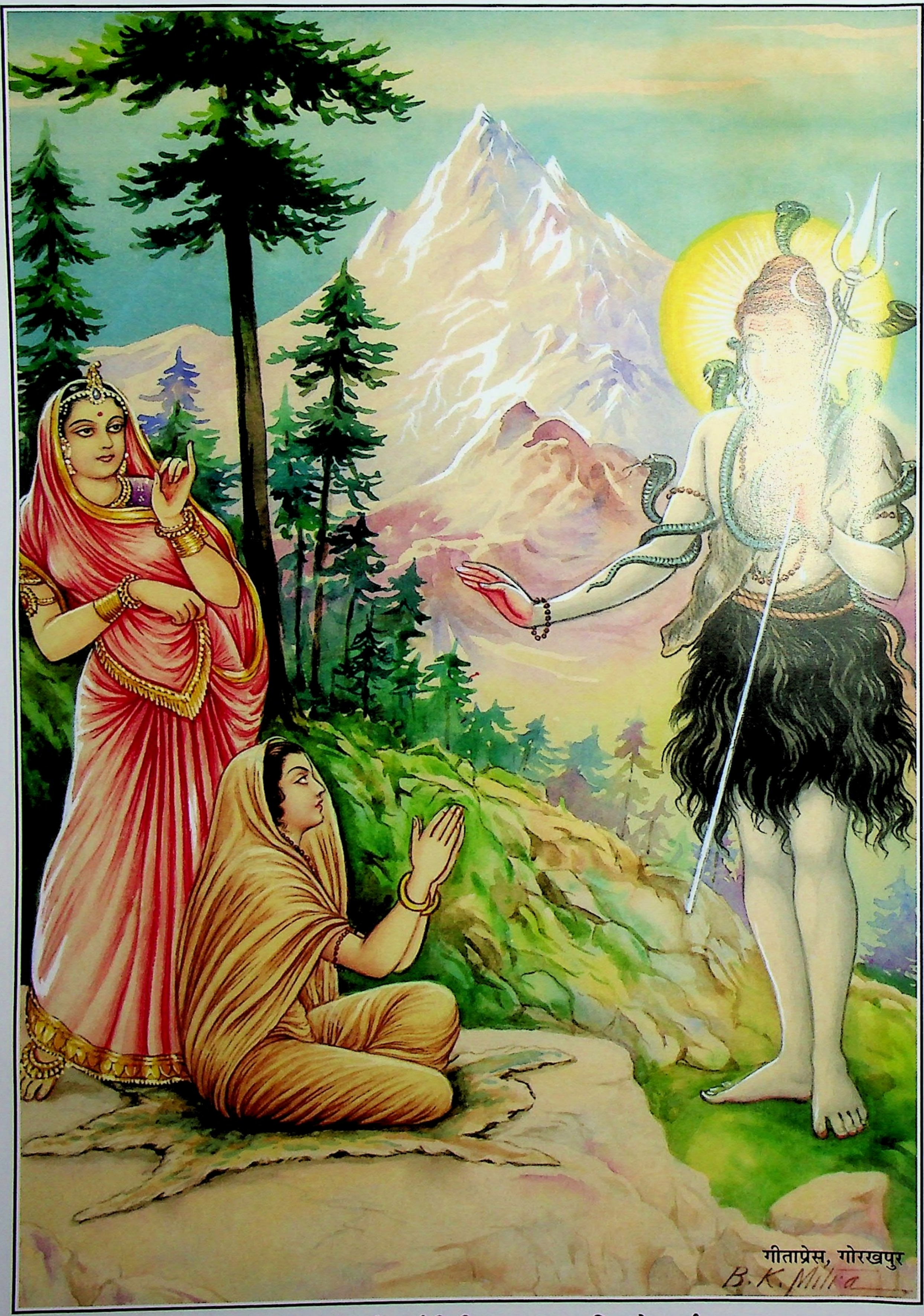

तपस्यामें लगी हुई पार्वतीजीका भगवान् शिवके दर्शन

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

गौतमाश्रममें पार्वती

आश्रममें हिंसक प्राणियोंका परस्पर प्रेम

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

भगवान् बालकृष्ण

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

संकीर्तनमें उद्धवजीका प्राकट्य

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

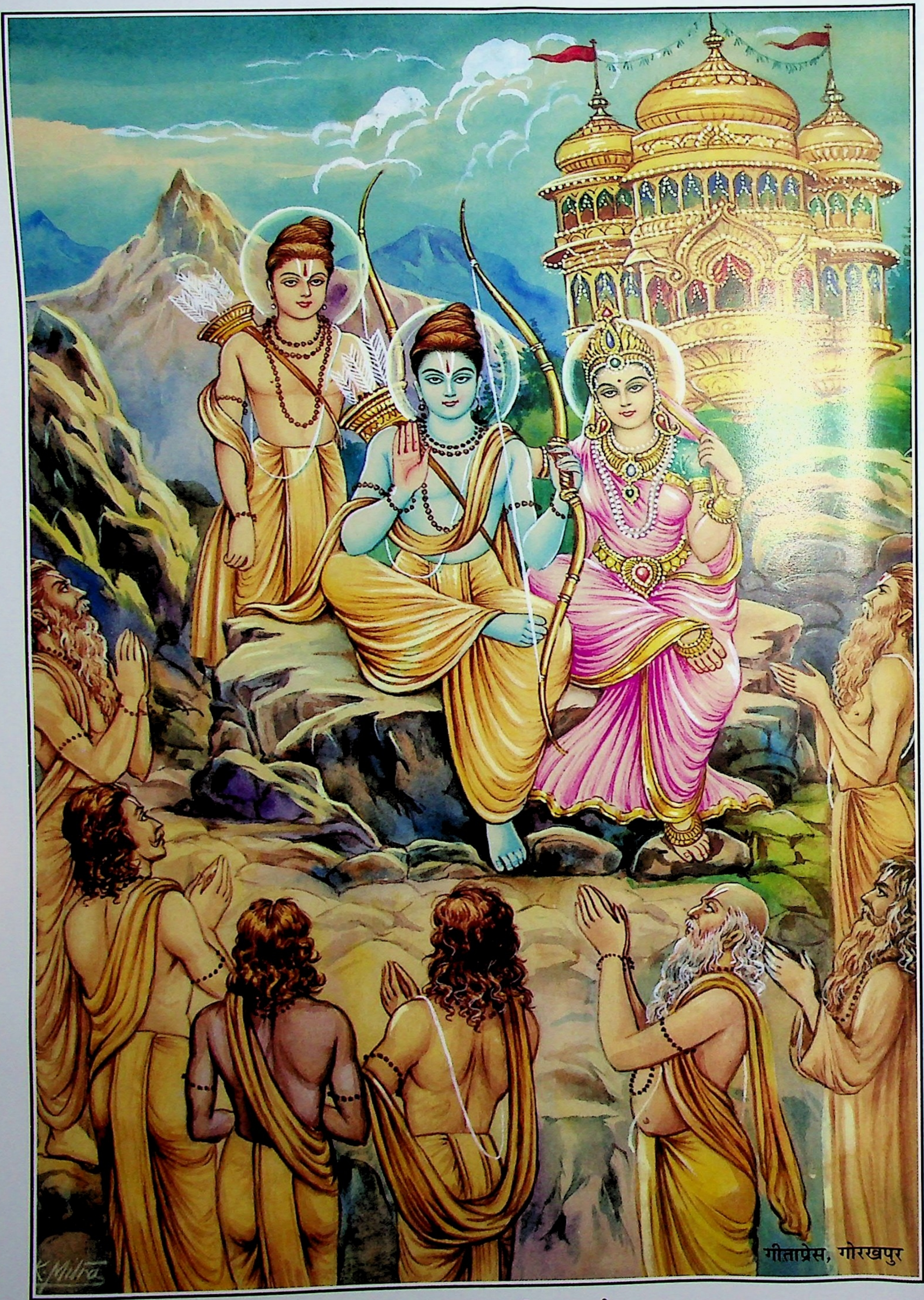

भगवान् श्रीरामचन्द्रकी अभ्यर्थना

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

विष-पान

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

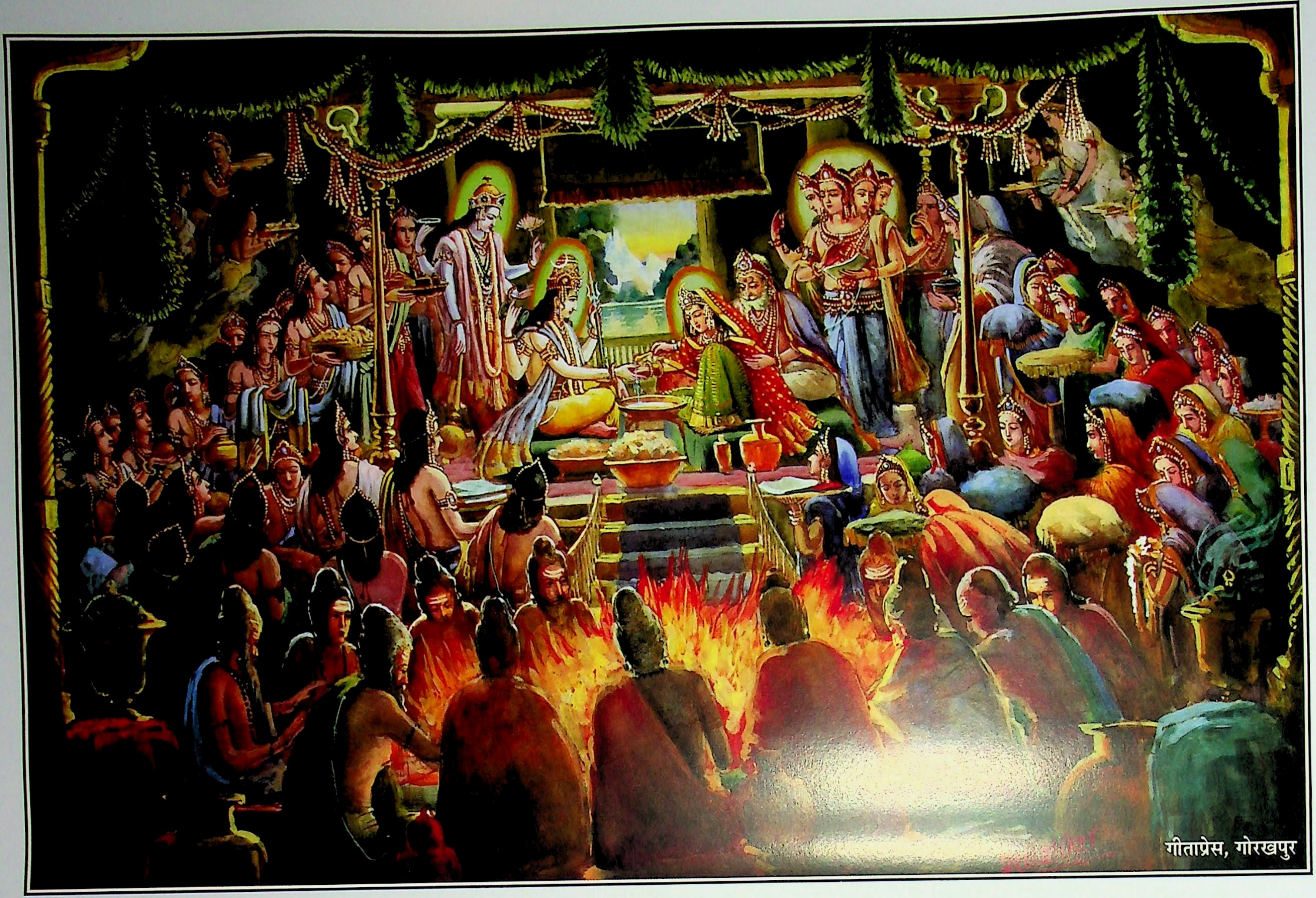

शिव-विवाह

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

ही सम्पूर्ण विश्वके पालक हैं। अतः रावणके भयसे अवश्य हमारा उद्धार करें।*

देवताओंके इस प्रकार प्रार्थना करनेपर भूतभावन भगवान् वासुदेवने सम्पूर्ण देवताओंसे कहा—'देवगण! तुमलोग अपने प्रस्तावके अनुसार मेरी बात सुनो, नन्दीको आगे करके तुम सभी शीघ्रतापूर्वक वानर-शरीरमें अवतार लो। मैं मायासे अपने स्वरूपको छिपाये हुए मनुष्यरूप होकर अयोध्यामें राजा दशरथके घर प्रकट होऊँगा। तुम्हारे कार्यकी सिद्धिके लिये मेरे साथ ब्रह्मविद्या भी अवतार लेंगी। राजा जनकके घर साक्षात् ब्रह्मविद्या ही सीतारूपमें प्रकट होंगी। रावण भगवान् शिवका भक्त है। वह सदा साक्षात् शिवके ध्यानमें तत्पर रहता है। उसमें बड़ी भारी तपस्याका भी बल है। जब ब्रह्मविद्यारूप सीताको बलपूर्वक प्राप्त करना चाहेगा, उस समय वह दोनों स्थितियोंसे तत्काल भ्रष्ट हो जायगा। सीताके अन्वेषणमें तत्पर होकर वह न तो तपस्वी रह जायगा और न भक्त ही। जो अपनेको न दी हुई ब्रह्मविद्याका बलपूर्वक सेवन करना चाहता है, वह पुरुष धर्मसे परास्त होकर सदा सुगमतापूर्वक जीत लेनेयोग्य हो जाता है।'

परम मंगलमय भगवान् विष्णु इस प्रकारके वचनोंद्वारा सम्पूर्ण देवताओंको आश्वासन देकर अन्तर्धान हो गये। तदनन्तर सब देवता अवतार धारण करने लगे। इन्द्रके अंशसे वाली उत्पन्न हुए, सुग्रीव सूर्यके पुत्र थे। जाम्बवान् ब्रह्माजीके अंशसे प्रकट हुए थे। शिलादके पुत्र नन्दी जो भगवान् शिवके अनुचर तथा ग्यारहवें रुद्र थे, महाकपि हनुमान् हुए। वे अमित तेजस्वी भगवान् विष्णुकी सहायता करनेके लिये ही अवतीर्ण हुए थे। अन्यान्य श्रेष्ठ देवता मैन्द आदि कपियोंके रूपमें उत्पन्न हुए थे। इसी तरह सभी देवता किसी-न-किसी कपिके रूपमें प्रकट हुए। साक्षात् भगवान् विष्णु ही माता कौसल्याका आनन्द बढ़ानेवाले श्रीराम हुए। सम्पूर्ण विश्व उनके स्वरूपमें रमण करता है, इसलिये विद्वान् पुरुष उनको 'राम' कहते हैं। भगवान् विष्णुके प्रति भक्ति और तपस्यासे युक्त शेषनाग भी इस पृथ्वीपर लक्ष्मणके रूपमें अवतीर्ण हुए। श्रीविष्णुके भुजदण्डोंसे भी दो प्रतापी वीर प्रकट हुए, जो तीनों लोकोंमें भरत-शत्रुघ्नके नामसे विख्यात हुए। ब्रह्मवादी पुरुषोंद्वारा जो मिथिलापति जनककी

* नमो भगवते तुभ्यं देवदेव जगत्पते। त्वदाधारमिदं सर्वं जगदेतच्चराचरम्॥
एतल्लिङ्गं त्वया विष्णो धृतं वै पीठरूपिणा। अवतारा: कृता: पूर्वमस्मदर्थे त्वया प्रभो॥
मत्स्यो भूत्वा त्वया वेदा: स्थापिता ब्रह्मणो मुखे। हयग्रीवस्वरूपेण घातितौ मधुकैटभौ॥
तथा कमठरूपेण धृतो वै मन्दराचल:। वराहरूपमास्थाय हिरण्याक्षो हतस्त्वया॥
हिरण्यकशिपुर्दैत्यो नृसिंहरूपिणा हत:। तथा चैव बलिर्बद्धो दैत्यो वामनरूपिणा॥
भृगूणामन्वये भूत्वा कार्तवीर्यात्मजो हत:। हता दैत्यास्त्वया विष्णो त्वमेव परिपालक:॥
रावणस्य भयात्तस्मात्त्रातुमर्हसि च ध्रुवम्।

(स्क० पु०, मा० के० ८। १००—१०६)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

कन्या बतायी गयी हैं, वे सीता साक्षात् ब्रह्मविद्या थीं; वे भी देवताओंके कार्यकी सिद्धिके लिये ही अवतीर्ण हुई थीं। हलसे भूमि जोती जा रही थी; उसी समय सीता (हलकी नोक)-के द्वारा पृथ्वीके खोदे जानेपर पृथ्वीसे ये प्रकट हुई थीं, इसीलिये 'सीता' के नामसे प्रसिद्ध हुईं। मिथिलामें अवतार लेनेके कारण इन्हें 'मैथिली' भी कहते हैं। जनकके कुलमें जन्म लेनेके कारण ये 'जानकी' नामसे विख्यात हुईं। पूर्वजन्ममें इनका नाम वेदवती था। राजा जनकने ब्रह्मविद्यास्वरूप सीताको परमात्मा ब्रह्मरूप श्रीरामकी सेवामें अर्पित कर दिया। कमलनयन श्रीरामने रावणको जीतनेकी इच्छा तथा देवकार्यकी सिद्धिके उद्देश्यसे वनमें निवास किया। शेषावतार लक्ष्मणने भी उसीके लिये अत्यन्त दुष्कर एवं महान् तप किया। भरत और शत्रुघ्नने भी बड़ी भारी तपस्या की। तदनन्तर तपोबलसम्पन्न हो कपिरूपधारी देवताओंको साथ लेकर श्रीरामने छः महीनेतक युद्ध करके रावणका वध किया। भगवान् विष्णुके द्वारा शस्त्रोंसे मारा गया रावण अपने गणों, पुत्रों तथा बन्धुओंसहित तत्काल भगवान् शिवके सारूप्यको प्राप्त हो गया। शंकरजीकी कृपासे उसने सम्पूर्ण द्वैताद्वैत ज्ञान प्राप्त कर लिया।

जो नित्य (द्वादश ज्योतिर्लिंगोंमेंसे किसी भी) लिंगस्वरूप भगवान् शिवकी पूजा करते हैं वे स्त्री, शूद्र, अन्त्यज अथवा चाण्डाल ही क्यों न हों, सम्पूर्ण दुःखोंका नाश करनेवाले शिवको अवश्य प्राप्त कर लेते हैं। जो मनको अपने वशमें करके भगवान् शिवके ध्यानमें तत्पर रहते हैं, उनका मायामय अज्ञान शीघ्र दूर हो जाता है, तथा मायाका निवारण हो जानेसे तीनों गुणोंका लय हो जाता है। इस प्रकार मनुष्य जब गुणातीत हो जाता है, तब वह मोक्षका भागी होता है। अतः सम्पूर्ण देहधारियोंके लिये शिव-लिंगका पूजन कल्याणकारी है। भगवान् शिव लिंगरूपमें प्रकट होकर चराचर जगत्का उद्धार करते हैं। विप्रगण! पहले तुम सब लोगोंने मुझसे जो पूछा था, वह सब मैंने बतला दिया। तुम्हारा दूसरा प्रश्न यह था कि भगवान् शिवने विष-भक्षण कैसे किया था; वह सब प्रसंग मैं यथावत् रूपसे कह रहा हूँ। तुम सब लोग सावधान होकर सुनो।

गुरुकी अवहेलनासे इन्द्रकी दैत्योंद्वारा पराजय, समुद्र-मन्थन, शंकरजीकी कृपासे कालकूट विषसे सबकी रक्षा, विविध रत्नोंका प्राकट्य तथा लक्ष्मीजीका प्रादुर्भाव

लोमशजी कहते हैं—एक समय देवराज इन्द्र सम्पूर्ण लोकपालों तथा ऋषियोंसे घिरे हुए अपनी सुधर्मा सभामें बैठे थे। वहाँ सिद्ध और विद्याधरगण उनकी विजयके गीत गा रहे थे। इसी समय परम बुद्धिमान् देवेन्द्रगुरु महाभाग बृहस्पतिजी अपने शिष्योंके साथ देवसभामें पधारे। उन्हें उपस्थित देख देवताओंने सहसा उनके चरणोंमें मस्तक झुकाया। इन्द्रने भी देखा, गुरुदेव वाचस्पति आगे खड़े हैं। किंतु इन्द्रकी बुद्धि राजमदसे दूषित हो रही थी; इसलिये उन्होंने गुरुके प्रति न तो आदरयुक्त वचन कहा, न उन्हें बुलाया, न बैठनेको आसन दिया और न चले जानेको ही कहा। खोटी बुद्धिवाले इन्द्रको राज्यके मदसे उन्मत्त जानकर देवताओंके आचार्य बृहस्पति कुपित हो वहाँसे अन्तर्धान हो गये। उनके चले जानेपर देवताओंके मनमें बड़ा खेद हुआ। यक्ष, नाग, गन्धर्व तथा ऋषिगण भी उदास हो गये। नृत्य और गीत समाप्त होनेपर जब इन्द्र सचेत हुए, तब उन्होंने तुरंत देवताओंसे पूछा—'महातपस्वी गुरुदेव कहाँ चले गये?'

तब नारदजीने देवराज इन्द्रसे कहा—'बलसूदन! निस्सन्देह आपके द्वारा गुरुकी अवहेलना हुई

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth279 Skandpuran_Section_3_1_Back

है। गुरुके अनादरसे राज्य अपने हाथसे चला जाता है। अतः आप सब प्रकारसे प्रयत्न करके गुरुसे अपने अपराधके लिये क्षमा-प्रार्थना कीजिये।' महात्मा नारदकी यह बात सुनकर इन्द्र सहसा सिंहासनसे उठकर खड़े हो गये और उन सभी सभासदोंको साथ ले बड़ी उतावलीके साथ गुरुके निवासस्थानपर गये। इस समय इन्द्र अपने कर्तव्यके प्रति सजग हो चुके थे। वहाँ गुरुपत्नी ताराको देखकर उन्होंने प्रणाम किया और पूछा—'देवि! महातपस्वी गुरुजी कहाँ गये हैं?' ताराने इन्द्रकी ओर देखकर उत्तर दिया—'मैं नहीं जानती।' तब वे चिन्तामग्न होकर अपने घर लौट आये। इसी समय स्वर्गमें अनेक अद्भुत अनिष्टसूचक अपशकुन होने लगे, जो सम्पूर्ण स्वर्गवासियोंको तथा दुरात्मा इन्द्रको भी दुःख-प्राप्तिकी सूचना देनेवाले थे। इन्द्रकी वह करतूत पातालनिवासी राजा बलिने भी सुनी। फिर तो वे दैत्योंकी बहुत बड़ी सेना साथ ले पातालसे अमरावतीपुरीपर चढ़ आये। उस समय देवताओंका दानवोंके साथ बड़ा भयंकर युद्ध हुआ। उसमें दैत्योंने देवताओंको परास्त कर दिया। एक ही क्षणमें दूषित हृदयवाले अविवेकी इन्द्रका सातों[१] अंगोंसहित सम्पूर्ण राज्य दैत्योंने अपने अधिकारमें कर लिया। विजयी दैत्य शीघ्र पातालको चले गये। शुक्राचार्यकी कृपासे ही दैत्यगण विजयी हुए थे। इन्द्रकी राज्य-लक्ष्मी नष्ट हो चुकी थी, इसलिये देवताओंने भी सर्वथा उनका त्याग कर दिया। श्रीहीन इन्द्र स्वर्गलोकसे अन्यत्र चले गये। कमलके समान कमनीय नेत्रोंवाली इन्द्रपत्नी शची भी दूसरोंकी दृष्टिसे छिपकर रहने लगीं। ऐरावतनामक महान् गजराज तथा उच्चैःश्रवा अश्व आदि जो बहुत-से रत्न थे, उन्हें दुष्ट दैत्योंने लोभवश स्वर्गलोकसे पातालमें पहुँचा दिया। परंतु वे रत्न पुण्यात्मा पुरुषोंके ही उपभोगमें आनेवाले थे। अतः दैत्योंके अधिकारमें न रहकर समुद्रमें कूद पड़े। उस समय राजा बलिने आश्चर्यचकित होकर अपने गुरु शुक्राचार्यसे कहा—'भगवन्! हम देवताओंको जीतकर बहुत-से रत्न यहाँ लाये थे; किंतु वे सभी समुद्रमें जा पड़े। यह तो बड़ी अद्भुत बात है!' राजा बलिकी यह बात सुनकर शुक्राचार्यने उत्तर दिया—'राजन्! सौ अश्वमेध यज्ञोंकी दीक्षा लेकर उन्हें पूर्ण करनेपर ही तुम्हारा देवताओंके राज्यपर अधिकार होगा, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। जो सौ अश्वमेध यज्ञोंका अनुष्ठान कर लेता है वही स्वर्गलोकके राज्यको भोगनेका अधिकारी होता है। अश्वमेध यज्ञ किये बिना स्वर्गकी कोई भी वस्तु उपभोगमें नहीं लायी जा सकती।' गुरुका यह वचन सुनकर राजा बलि उस समय चुप हो रहे और दानवोंके साथ उचित कार्योंमें लग गये।

इन्द्र बड़ी शोचनीय दशाको प्राप्त हो गये थे। वे ब्रह्माजीके पास गये और स्वर्गके राज्यपर जो भय आदि प्राप्त हुआ था, वह सब समाचार उन्हें कह सुनाया। इन्द्रकी बात सुनकर ब्रह्माजीने उनसे कहा—'सब देवताओंको एकत्र करके हम सब लोग तुम्हारे साथ सर्वेश्वरेश्वर भगवान् विष्णुकी आराधना करनेके लिये चलते हैं।' 'ऐसा ही हो।' यह सलाह करके इन्द्र आदि सम्पूर्ण लोकपाल ब्रह्माजीको आगे रखकर क्षीर-समुद्रके तटपर गये। वहाँ उन सबने परस्पर विचार करके भगवान् विष्णुकी स्तुति आरम्भ की।

ब्रह्माजी बोले—देवदेव! जगन्नाथ! देवता और दैत्य दोनों आपके चरणोंमें मस्तक झुकाते हैं। आपकी कीर्ति परम पवित्र है, आप अविनाशी और अनन्त हैं। परमात्मन्! आपको नमस्कार है। रमापते! आप यज्ञ हैं, यज्ञरूप हैं तथा यज्ञांग हैं। अतः आज कृपा करके देवताओंको वरदान दीजिये। भगवन्! गुरुकी अवहेलना करनेके कारण इन्द्र इस समय ऋषियोंसहित

१. राजा, मन्त्री, राष्ट्र, किला, खजाना, सेना और मित्रवर्ग—ये परस्पर उपकार करनेवाले राज्यके सात अंग हैं।

279 Skandpuran_Section_3_2_Front
In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

स्वर्गके राज्यसे भ्रष्ट हो चुके हैं; इसलिये इनका उद्धार कीजिये।[१]

श्रीभगवान् बोले—देवगण! गुरुकी अवहेलना करनेसे सारा अभ्युदय नष्ट हो जाता है। जो पापी हैं, अधर्ममें तत्पर हैं तथा केवल विषयोंमें ही रचे-पचे रहते हैं और जिनके द्वारा अपने माता-पिताकी निन्दा होती रहती है, वे निस्सन्देह बड़े भाग्यहीन हैं।[२] ब्रह्मन्! इस इन्द्रने जो अन्याय किया है, उसका फल इसे तत्काल प्राप्त हो गया। केवल इन्द्रके ही कर्मसे सम्पूर्ण देवताओंपर संकट आया है। जब किसी भी पुरुषके लिये विपरीत काल उपस्थित हो जाय, तब उसे दूसरोंका सहयोग प्राप्त करनेकी चेष्टा करनी चाहिये। बुद्धिमान् पुरुष अपने सम्पूर्ण मनोरथोंकी सिद्धिके लिये अन्य प्राणियोंके साथ मैत्री करते हैं। अतः इन्द्र! तुम मेरी बात मानो। इस समय अपना काम बनानेके लिये तुम्हें दैत्योंके साथ मेल-जोल कर लेना चाहिये।

भगवान् विष्णुके इस प्रकार आज्ञा देनेपर परम बुद्धिमान् इन्द्र अमरावती छोड़कर देवताओंके साथ सुतल-लोकमें गये। इन्द्र आये हैं—यह सुनकर राजा इन्द्रसेन (बलि) रोषमें भर गये। उन्होंने अपनी सेनाके साथ जाकर इन्द्रको मार डालनेका विचार किया। उस समय देवर्षि नारदने बलवानोंमें श्रेष्ठ राजा बलि और दैत्योंको ऊँच-नीच समझाकर उन्हें इन्द्रके वधसे रोका। देवर्षिके ही कहनेसे राजा बलिने इन्द्रके प्रति अपना रोष त्याग दिया। इतनेमें ही इन्द्र भी अपनी सेनाके साथ आ पहुँचे। राजा बलिने देखा लोकपालोंसे घिरे हुए इन्द्र श्रीहीन हो गये हैं। अब उनमें प्रभुताका मद नहीं रह गया है। उनका तेज चला गया और अब वे ईर्ष्या तथा अहंकारसे रहित हो गये हैं। उन्हें इस अवस्थामें देखकर राजा बलिके मनमें बड़ी दया आयी। वे बड़ी उतावलीके साथ हँसते हुए-से बोले—'देवराज इन्द्र! आप इस सुतल-लोकमें कैसे पधारे? यहाँ आनेका कारण बतलाइये।' बलिकी यह बात सुनकर इन्द्र मुसकराते हुए बोले—'भैया! हम सब देवता क्रोधके अधीन हो रहे हैं, आप सब लोगोंकी भी यही दशा है। जैसे हम हैं वैसे ही आपलोग भी हैं। अतः हमारा यह कलह निरर्थक है। भाग्यवश आपने मेरा सम्पूर्ण राज्य एक क्षणमें ही ले लिया तथा बहुत-से रत्न भी स्वर्गसे यहाँ उठा लाये। परंतु वे सभी रत्न तत्काल ही जहाँके थे वहीं चले गये। अतः विद्वान् पुरुषको एक-दूसरेसे मिलकर कर्तव्यके विषयमें विचार करना चाहिये। विचार करनेसे ज्ञान होता है और ज्ञान होनेपर संकटसे छुटकारा अवश्य मिल जायगा; इस समय तो मैं सम्पूर्ण देवताओंके साथ आपके समीप त्राण पानेके लिये आया हूँ।'

इन्द्रकी बात समाप्त होनेपर देवर्षि नारदने राजा बलिको समझाते हुए कहा—'दैत्यराज! शरणमें आये हुए प्राणीकी रक्षा करना महापुरुषोंका धर्म है। जो लोग ब्राह्मण, रोगी, वृद्ध तथा शरणागतकी रक्षा नहीं करते वे ब्रह्महत्यारे हैं। इन्द्र इस समय 'शरणागत' शब्दसे अपना परिचय देते हुए तुम्हारे

---

१. देवदेव जगन्नाथ सुरासुरनमस्कृत। पुण्यश्लोकाव्ययानन्त परमात्मन्नमोऽस्तु ते॥
यज्ञोऽसि यज्ञरूपोऽसि यज्ञाङ्गोऽसि रमापते। ततोऽद्य कृपयाविष्टो देवानां वरदो भव॥
गुरोरवज्ञया चाद्य भ्रष्टराज्यः शतक्रतुः। जातः स ऋषिभिः साकं तस्मादेनं समुद्धर॥
(स्क० पु०, मा० के० ९। ३०—३२)

२. गुरोरवज्ञया सर्वं नश्यते च समुद्भवम्। ये पापिनो ह्यधर्मिष्ठाः केवलं विषयात्मकाः॥
पितरौ निन्दितौ यैश्च निर्दैवास्ते न संशयः।
(स्क० पु०, मा० के० ९। ३३-३४)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

समीप आये हैं, अतः इनका भलीभाँति रक्षण और पोषण करना तुम्हारा परम कर्तव्य है। इसमें तनिक भी संदेहकी बात नहीं है।'*

देवर्षि नारदके यों कहनेपर कर्तव्य और अकर्तव्यके ज्ञानमें कुशल दैत्यराज बलिने स्वयं भी अपनी बुद्धिसे विचार किया। तदनन्तर लोकपालों और देवताओंसहित इन्द्रका बड़े सम्मानके साथ स्वागत-सत्कार किया तथा उनके मनमें विश्वास उत्पन्न करनेके लिये अनेक प्रकारकी सच्ची शपथें भी खायीं। इन्द्रने भी राजा बलिको विश्वास दिलानेवाली शपथें खायीं। देवराज इन्द्र स्वार्थ-साधनमें तत्पर रहते हैं और अर्थशास्त्रमें ही उनकी विशेष प्रवृत्ति है। उन्होंने शपथ खाकर राजा बलिके साथ सुतल-लोकमें ही निवास किया। वहाँ रहते हुए उन्हें अनेक वर्ष व्यतीत हो गये। एक दिन बलिकी सभामें बैठे हुए नीति-निपुण देवराज इन्द्रने बलिको सम्बोधित करके हँसते हुए कहा—'वीरवर! हमारे हाथी-घोड़े आदि नाना प्रकारके बहुत-से रत्न जो इस समय तुम्हें प्राप्त होनेयोग्य हैं, तत्काल ही समुद्रमें गिर पड़े हैं। अतः हमलोगोंको समुद्रसे उन रत्नोंका उद्धार करनेके लिये बहुत शीघ्र प्रयत्न करना चाहिये। तुम्हारे कार्यकी सिद्धिके लिये समुद्रका मन्थन करना उचित है।' इन्द्रके इस प्रकार प्रेरणा देनेपर बलिने शीघ्रतापूर्वक पूछा—'यह समुद्र-मन्थन किस उपायसे सम्भव होगा?' इसी समय मेघके समान गम्भीर स्वरमें आकाशवाणी हुई—'देवताओ और दैत्यो! तुम क्षीर समुद्रका मन्थन करो। इस कार्यमें तुम्हारे बलकी वृद्धि होगी, इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। मन्दराचलको मथानी और वासुकि नागको रस्सी बनाओ, फिर देवता और दैत्य मिलकर मन्थन आरम्भ करो।' यह आकाशवाणी सुनकर सहस्रों दैत्य और देवता समुद्र-मन्थनके लिये उद्यत हो सुवर्णके सदृश कान्तिमान् मन्दराचलके समीप गये। वह पर्वत सीधा, गोलाकार, बहुत मोटा और अत्यन्त प्रकाशमान था। अनेक प्रकारके रत्न उसकी शोभा बढ़ा रहे थे। चन्दन, पारिजात, नागकेशर, जायफल और चम्पा आदि भाँति-भाँतिके वृक्षोंसे वह हरा-भरा दिखायी देता था। उस महान् पर्वतको देखकर सम्पूर्ण देवताओंने हाथ जोड़कर कहा—'दूसरोंका उपकार करनेवाले महाशैल मन्दराचल! हम सब देवता तुमसे कुछ निवेदन करनेके लिये यहाँ आये हैं, उसे तुम सुनो।' उनके यों कहनेपर मन्दराचलने देहधारी पुरुषके रूपमें प्रकट होकर कहा—'देवगण! आप सब लोग मेरे पास किस कार्यसे आये हैं, उसे बताइये।' तब इन्द्रने मधुर वाणीमें कहा—'मन्दराचल! तुम हमारे साथ रहकर एक कार्यमें सहायक बनो; हम समुद्रको मथकर उससे अमृत निकालना चाहते हैं, इस कार्यके लिये तुम मथानी बन जाओ।' मन्दराचलने 'बहुत अच्छा' कहकर उनकी आज्ञा स्वीकार की और देवकार्यकी सिद्धिके लिये देवताओं, दैत्यों तथा विशेषतः इन्द्रसे कहा—'पुण्यात्मा देवराज! आपने अपने वज्रसे मेरे दोनों पंख काट डाले हैं, फिर आपलोगोंके कार्यकी सिद्धिके लिये वहाँतक मैं चल कैसे सकता हूँ?' तब सम्पूर्ण देवताओं और दैत्योंने उस अनुपम पर्वतको क्षीर-समुद्रतक ले जानेकी इच्छासे उखाड़ लिया; परंतु वे उसे धारण करनेमें समर्थ न हो सके। वह महान् पर्वत उसी समय देवताओं और दैत्योंके ऊपर गिर पड़ा। कोई कुचले गये, कोई मर गये, कोई मूर्च्छित हो गये, कोई एक-दूसरेको कोसने और चिल्लाने लगे तथा कुछ लोगोंने बड़े क्लेशका अनुभव किया। इस प्रकार उनका उद्यम और उत्साह भंग हो गया। वे देवता और दानव

* धर्मो हि महतामेष शरणागतपालनम्॥
शरणागतं च विप्रं च रोगिणं वृद्धमेव च। य एतान्न च रक्षन्ति ते वै ब्रह्महणो नराः॥
शरणागतशब्देन आगतस्तव सन्निधौ। संरक्षणीयः पोष्यश्च त्वया नास्त्यत्र संशयः॥
(स्क० पु०, मा० के० ९।५२—५४)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

सचेत होनेपर जगदीश्वर भगवान् विष्णुकी स्तुति करने लगे—'शरणागतवत्सल महाविष्णो! हमारी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये। आपने ही इस सम्पूर्ण चराचर जगत्को व्याप्त कर रखा है।'

उस समय देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके लिये गरुड़की पीठपर बैठे हुए भगवान् विष्णु सहसा वहाँ प्रकट हो गये। वे सबको अभय देनेवाले हैं। उन्होंने देवताओं और दैत्योंकी ओर दृष्टिपात करके खेल-खेलमें ही उस महान् पर्वतको उठाकर गरुड़की पीठपर रख लिया। फिर वे देवताओं और दैत्योंको क्षीर-समुद्रके उत्तर-तटपर ले गये और पर्वतश्रेष्ठ मन्दराचलको समुद्रमें डालकर तुरंत वहाँसे चल दिये। तदनन्तर सब देवता दैत्योंको साथ लेकर वासुकि नागके समीप गये और उनसे भी अपनी प्रार्थना स्वीकार करायी। इस प्रकार मन्दराचलको मथानी और वासुकिनागको रस्सी बनाकर देवताओं और दैत्योंने क्षीर-समुद्रका मन्थन आरम्भ किया। इतनेमें ही वह पर्वत समुद्रमें डूबकर रसातलको जा पहुँचा। तब लक्ष्मीपति भगवान् विष्णुने कच्छपरूप धारण करके तत्काल ही मन्दराचलको ऊपर उठा दिया। उस समय यह एक अद्भुत घटना हुई। फिर जब देवता और दैत्योंने मथानीको घुमाना आरम्भ किया तब वह पर्वत बिना गुरुके ज्ञानकी भाँति कोई सुदृढ़ आधार न होनेके कारण इधर-उधर डोलने लगा। यह देख परमात्मा भगवान् विष्णु स्वयं ही मन्दराचलके आधार बन गये और उन्होंने अपनी चारों भुजाओंसे मथानी बने हुए उस पर्वतको भली-भाँति पकड़कर उसे सुखपूर्वक घुमाने योग्य बना दिया। तब अत्यन्त बलवान् देवता और दैत्य एकीभूत हो अधिक जोर लगाकर क्षीर-समुद्रका मन्थन करने लगे। कच्छपरूपधारी भगवान्की पीठ जन्मसे ही कठोर थी और उसपर घूमनेवाला पर्वतश्रेष्ठ मन्दराचल भी वज्रसारकी भाँति दृढ़ था। उन दोनोंकी रगड़से समुद्रमें बड़वानल प्रकट हो गया। साथ ही हालाहल विष उत्पन्न हुआ। उस विषको सबसे पहले नारदजीने देखा। तब अमित-तेजस्वी देवर्षिने देवताओंको पुकारकर कहा—'अदिति-कुमारो! अब तुम समुद्रका मन्थन न करो। इस समय सम्पूर्ण उपद्रवोंका नाश करनेवाले भगवान् शिवकी प्रार्थना करो। वे परात्पर हैं, परमानन्दस्वरूप हैं तथा योगी पुरुष भी उन्हींका ध्यान करते हैं।' देवता अपने स्वार्थसाधनमें संलग्न हो समुद्र मथ रहे थे। वे अपनी ही अभिलाषामें तन्मय होनेके कारण नारदजीकी बात नहीं सुन सके। केवल उद्यमका भरोसा करके वे क्षीर-सागरके मन्थनमें संलग्न थे। अधिक मन्थनसे जो हालाहल विष प्रकट हुआ, वह तीनों लोकोंको भस्म कर देनेवाला था। वह प्रौढ़ विष देवताओंका प्राण लेनेके लिये उनके समीप आ पहुँचा और ऊपर-नीचे तथा सम्पूर्ण दिशाओंमें फैल गया। समस्त प्राणियोंको अपना ग्रास बनानेके लिये प्रकट हुए उस कालकूट विषको देखकर वे सब देवता और दैत्य हाथमें पकड़े हुए नागराज वासुकिको मन्दराचल पर्वतसहित वहीं छोड़ भाग खड़े हुए। उस समय उस लोकसंहारकारी कालकूट विषको भगवान् शिवने स्वयं अपना ग्रास बना लिया। उन्होंने उस विषको निर्मल (निर्दोष) कर दिया। इस प्रकार भगवान् शंकरकी बड़ी भारी कृपा होनेसे देवता, असुर, मनुष्य तथा सम्पूर्ण त्रिलोकीकी उस समय कालकूट विषसे रक्षा हुई।

तदनन्तर भगवान् विष्णुके समीप मन्दराचलको मथानी और वासुकि नागको रस्सी बनाकर देवताओंने पुनः समुद्र-मन्थन आरम्भ किया। तब समुद्रसे देवकार्यकी सिद्धिके लिये अमृतमयी कलाओंसे परिपूर्ण चन्द्रदेव प्रकट हुए। सम्पूर्ण देवता, असुर और दानवोंने भगवान् चन्द्रमाको प्रणाम किया और गर्गाचार्यजीसे अपने-अपने चन्द्रबलकी यथार्थ-रूपसे

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

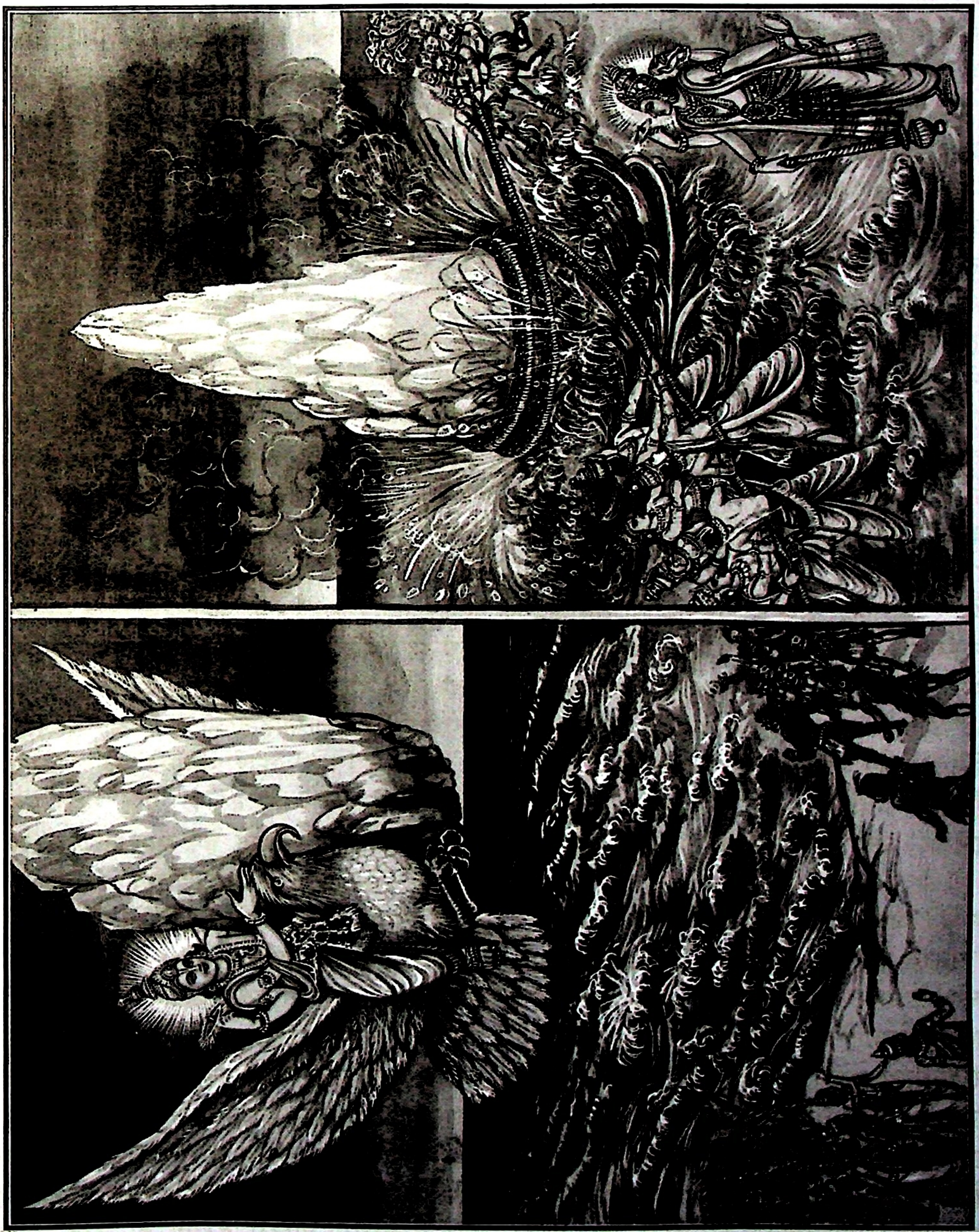
गरुड़पर मन्दराचल

समुद्र-मन्थन

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

जिज्ञासा की। उस समय गर्गाचार्यजीने देवताओंसे कहा—'इस समय तुम सब लोगोंका बल ठीक है। तुम्हारे सभी उत्तम ग्रह केन्द्र स्थानमें (लग्नमें, चतुर्थ स्थानमें, सप्तम स्थानमें और दशम स्थानमें) हैं। चन्द्रमासे गुरुका योग हुआ है। बुध, सूर्य, शुक्र, शनि और मंगल भी चन्द्रमासे संयुक्त हुए हैं। इसलिये तुम्हारे कार्यकी सिद्धिके निमित्त इस समय चन्द्रबल बहुत उत्तम है। यह गोमन्त नामक मुहूर्त है, जो विजय प्रदान करनेवाला है।' महात्मा गर्गजीके इस प्रकार आश्वासन देनेपर महाबली देवता गर्जना करते हुए बड़े वेगसे समुद्र-मन्थन करने लगे। मथे जाते हुए समुद्रके चारों ओर बड़े जोरकी आवाज उठ रही थी। इस बारके मन्थनसे देवकार्योंकी सिद्धिके लिये साक्षात् सुरभि (कामधेनु) प्रकट हुईं। उन्हें काले, श्वेत, पीले, हरे तथा लाल रंगकी सैकड़ों गौएँ घेरे हुए थीं। उस समय ऋषियोंने बड़े हर्षमें भरकर देवताओं और दैत्योंसे कामधेनुके लिये याचना की और कहा—'आप सब लोग मिलकर भिन्न-भिन्न गोत्रवाले ब्राह्मणोंको कामधेनुसहित इन सम्पूर्ण गौओंका दान अवश्य करें।' ऋषियोंके याचना करनेपर देवताओं और दैत्योंने भगवान् शंकरकी प्रसन्नताके लिये वे सब गौएँ दान कर दीं तथा यज्ञकर्मोंमें भलीभाँति मनको लगानेवाले उन परम मंगलमय महात्मा ऋषियोंने उन गौओंका दान स्वीकार किया। तत्पश्चात् सब लोग बड़े जोशमें आकर क्षीरसागरको मथने लगे। तब समुद्रसे कल्पवृक्ष, पारिजात, चूत और सन्तान—ये चार दिव्य वृक्ष प्रकट हुए। उन सबको एकत्र रखकर देवताओंने पुनः बड़े वेगसे समुद्र-मन्थन आरम्भ किया। इस बारके मन्थनसे रत्नोंमें सबसे उत्तम रत्न कौस्तुभ प्रकट हुआ, जो सूर्यमण्डलके समान परम कान्तिमान् था। वह अपने प्रकाशसे तीनों लोकोंको प्रकाशित कर रहा था। देवताओंने चिन्तामणिको आगे रखकर कौस्तुभका दर्शन किया और उसे भगवान् विष्णुकी सेवामें भेंट कर दिया। तदनन्तर, चिन्तामणिको मध्यमें रखकर देवताओं और दैत्योंने पुनः समुद्रको मथना आरम्भ किया। वे सभी बलमें बढ़े-चढ़े थे और बार-बार गर्जना कर रहे थे। अबकी बार उस मथे जाते हुए समुद्रसे उच्चैःश्रवा नामक अश्व प्रकट हुआ। वह समस्त अश्वजातिमें एक अद्भुत रत्न था। उसके बाद गजजातिमें रत्नभूत ऐरावत प्रकट हुआ। उसके साथ श्वेतवर्णके चौसठ हाथी और थे। ऐरावतके चार दाँत बाहर निकले हुए थे और मस्तकसे मदकी धारा बह रही थी। इन सबको भी मध्यमें स्थापित करके वे सब पुनः समुद्र मथने लगे। उस समय उस समुद्रसे मदिरा, भाँग, काकड़ासिंगी, लहसुन, गाजर, अत्यधिक उन्मादकारक धतूर तथा पुष्कर आदि बहुत-सी वस्तुएँ प्रकट हुईं। इन सबको भी समुद्रके किनारे एक स्थानपर रख दिया गया। तत्पश्चात् वे श्रेष्ठ देवता और दानव पुनः पहलेकी ही भाँति समुद्र-मन्थन करने लगे। अबकी बार समुद्रसे सम्पूर्ण भुवनोंकी एकमात्र अधीश्वरी दिव्यरूपा देवी महालक्ष्मी प्रकट हुईं, जिन्हें ब्रह्मवेत्ता पुरुष आन्वीक्षिकी (वेदान्त-विद्या) कहते हैं। इन्हींको दूसरे लोग 'मूल-विद्या' कहकर पुकारते हैं। कुछ सामर्थ्यशाली महात्मा इन्हींको वाणी और ब्रह्मविद्या भी कहते हैं। कोई-कोई इन्हींको ऋद्धि, सिद्धि, आज्ञा और आशा नाम देते हैं। कोई योगी पुरुष इन्हींको 'वैष्णवी' कहते हैं। सदा उद्यममें लगे रहनेवाले मायाके अनुयायी इन्हींको 'माया' के रूपमें जानते हैं। जो अनेक प्रकारके सिद्धान्तोंको जाननेवाले तथा ज्ञानशक्तिसे सम्पन्न हैं, वे इन्हींको भगवान्की 'योगमाया' कहते हैं। देवताओंने देखा, देवी महालक्ष्मीका रूप परम सुन्दर है। उनके मनोहर मुखपर स्वाभाविक प्रसन्नता विराजमान है। हार और नूपुरोंसे उनके श्रीअंगोंकी बड़ी शोभा हो रही है। मस्तकपर छत्र तना हुआ है, दोनों ओरसे चँवर डुल रहे हैं; जैसे माता अपने पुत्रोंकी ओर स्नेह और दुलारभरी दृष्टिसे देखती है, उसी प्रकार सती महालक्ष्मीने देवता, दानव, सिद्ध, चारण और नाग आदि सम्पूर्ण प्राणियोंकी ओर दृष्टिपात किया।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

समुद्रमन्थनसे श्रीमहालक्ष्मीका प्रादुर्भाव

श्रीलक्ष्मीका भगवान्को माला-अर्पण

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

माता महालक्ष्मीकी कृपा-दृष्टि पाकर सम्पूर्ण देवता उसी समय श्रीसम्पन्न हो गये। वे तत्काल राज्याधिकारीके शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न दिखायी देने लगे।

तदनन्तर देवी लक्ष्मीने भगवान् मुकुन्दकी ओर देखा। उनके श्रीअंग तमालके समान श्यामवर्ण थे। कपोल और नासिका बड़ी सुन्दर थी। वे परम मनोहर दिव्य शरीरसे प्रकाशित हो रहे थे। उनके वक्षःस्थलमें श्रीवत्सका चिह्न सुशोभित था। भगवान्‌के एक हाथमें कौमोदकी गदा शोभा पा रही थी। भगवान् नारायणकी उस दिव्य शोभाको देखते ही लक्ष्मीजी आश्चर्यचकित हो उठीं और हाथमें वनमाला ले सहसा हाथीसे उतर पड़ीं। वह माला श्रीजीने अपने ही हाथों बनायी थीं, उसके ऊपर भ्रमर मँडरा रहे थे। देवीने वह सुन्दर वनमाला परमपुरुष भगवान् विष्णुके कण्ठमें पहना दी और स्वयं उनके वाम भागमें जाकर खड़ी हो गयीं। उन शोभाशाली दम्पतिका वहाँ दर्शन करके सम्पूर्ण देवता, दैत्य, सिद्ध, अप्सराएँ, किन्नर तथा चारणगण परम आनन्दको प्राप्त हुए।

अमृतकी उत्पत्ति, भगवान्‌का मोहिनीरूपद्वारा देवताओंको अमृत पिलाना, शिवके द्वारा राहुसे चन्द्रमाकी रक्षा तथा शिवके लिये दीपदान, रुद्राक्षधारण और विभूति-धारणका माहात्म्य

लोमशजी कहते हैं—तदनन्तर लक्ष्मीजीके साथ परमानन्दमय भगवान् विष्णुको प्रणाम करके देवता और दैत्य पुनः अमृतके लिये समुद्र मथने लगे। उस समय समुद्रसे महायशस्वी धन्वन्तरिजी प्रकट हुए। उनकी तरुण अवस्था थी तथा वे द्वितीय शंकरकी भाँति मृत्युपर विजय पा चुके थे। उन्होंने अपने दोनों हाथोंमें अमृतसे भरा हुआ कलश ले रखा था। देवता जबतक उनके मनोहर स्वरूपका दर्शन करनेमें लगे थे, तबतक वृषपर्वा दैत्यने बलपूर्वक उनके हाथका कलश छीन लिया। इस प्रकार उस सुधापूर्ण कलशको लेकर अमृतपानके लिये उत्सुक हुए दैत्य पाताललोकमें चले आये। जब पीछे-पीछे देवता भी वहाँ आये, तब राजा बलिने उनसे कहा—'देवताओ! तुम सब लोग तो रत्नमय सामग्रियाँ पाकर कृतार्थ हो चुके हो। हमने तो केवल इस अमृतको ही पाकर सन्तोष किया है। अब तुमलोग प्रसन्नतापूर्वक शीघ्र यहाँसे स्वर्गलोकको चले जाओ।' राजा बलिके द्वारा इस प्रकार फटकारे जानेपर सम्पूर्ण देवता भगवान् नारायणके समीप गये। भगवान्‌ने देखा, देवताओंका मनोरथ भंग हो चुका है। तब उन्होंने अपनी वाणीसे आश्वासन देते हुए कहा—'देवताओ! डरो मत, मैं योगमायाके प्रभावसे दानवोंको मोहित करके तुम्हारे लिये अमृत ले आऊँगा।' यों कहकर अनाथोंको शरण देनेवाले भगवान् विष्णुने सब देवताओंको वहीं ठहराकर मोहिनीरूप धारण किया। इधर दैत्य आपसमें ही रोषपूर्ण बातें कर रहे थे। उनमें अमृतके लिये परस्पर विवाद छिड़ गया था। इसी समय मोहिनी देवी वहाँ आयीं। सम्पूर्ण प्राणियोंके मनको मोह लेनेवाली उस युवतीको देखकर दैत्यलोग आश्चर्यचकित हो उठे और प्यासी आँखोंसे उसकी ओर देखने लगे।

राजा बलिने कहा—महाभागे! मेरी एक बात मानो; हम सब लोगोंके विवादकी शीघ्र शान्ति हो जाय, इसके लिये तुम्हीं इस अमृतका विभाजन कर दो।

श्रीमोहिनी बोलीं—विद्वान् पुरुषको स्त्रियोंका विश्वास नहीं करना चाहिये। झूठ, साहस, माया, मूर्खता, अत्यन्त लोभ, अपवित्रता और निर्दयता—ये स्त्रियोंके स्वाभाविक दोष हैं। उनमें स्नेहहीनता

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

और धूर्तता भी होती है। इस बातको यथार्थ जानना चाहिये। जैसे पक्षियोंमें कौआ और शिकारी जीवोंमें सियार धूर्त हैं, वैसे ही मनुष्योंमें स्त्री सदा धूर्त होती है। यह बात बुद्धिमान् पुरुषोंको भलीभाँति समझ लेनी चाहिये। मेरे साथ आपलोग मित्रभाव कैसे प्रकट कर रहे हैं? यहाँ यह बात सर्वथा अज्ञात है कि आप कौन हैं और मैं कौन हूँ। आप सब लोग कर्तव्य और अकर्तव्यके ज्ञानमें निपुण हैं। अतः आपको भलीभाँति सोच-विचारकर ही परायी बुद्धिसे अपने हित-साधनका प्रयास करना चाहिये।

राजा बलिने कहा—देवि! तुम यथोचित विभाग करके आज हम सबको अमृत बाँट दो। तुम जिसे जितना दोगी, उतना ही हम ग्रहण कर लेंगे। यह बात तुमसे सत्य-सत्य कह रहे हैं।

राजा बलिके यों कहनेपर सर्वमंगला महादेवी मोहिनी दैत्योंको लौकिकी गतिका दर्शन कराती हुई-सी बोलीं—'श्रेष्ठ असुरगण! आपलोग किसी अनिर्वचनीय दैवकी सहायतासे अपने कार्यमें सफल हुए हैं। अतः अमृतका अधिवासन करें—इसे घरके भीतर सुरक्षित रूपसे रख दें। आज व्रती रहकर कल सबेरे अमृतका पारण करें। बुद्धिमान् पुरुषको उचित है कि वह अपने न्यायपूर्वक उपार्जित धनका दसवाँ भाग ईश्वरकी प्रसन्नताके लिये किसी सत्कर्ममें लगावें।'[1]

दैत्यगण योगमायासे मोहित हो चुके थे। वे अधिक समझदार भी नहीं थे। अतः मोहिनी देवीने जो कुछ कहा, उसे ठीक मानकर उन्होंने सब वैसा ही किया। रातको सबने बड़ी प्रसन्नताके साथ जागरण किया और उषाकाल आते ही प्रातःस्नान किया। समस्त आवश्यक कृत्य पूरा करके बलि आदि असुर अमृतपान करनेके लिये आये और क्रमशः पंगत लगाकर बैठ गये। बलि, वृषपर्वा, नमुचि, शंख, बुद्बुद, सुदंष्ट्र, संह्लाद, कालनेमि, विभीषण, वातापि, इल्वल, कुम्भ, निकुम्भ, प्रघस, सुन्द, उपसुन्द, निशुम्भ, शुम्भ तथा अन्यान्य दैत्य-दानव एवं राक्षस क्रमशः पंक्ति लगाकर बैठे। उस समय मोहिनी देवी हाथमें सुधा-कलश लिये अपनी उत्तम कान्तिसे बड़ी शोभा पा रही थीं। इसी समय सम्पूर्ण देवता भी हाथोंमें भोजन-पात्र लिये असुरोंके समीप आये। उन्हें देखकर मोहिनी देवीने असुरोंसे कहा—'इन्हें आपलोग अपने अतिथि समझें। ये धर्मको ही सर्वस्व मानकर उसका साधन करनेवाले हैं। इनके लिये यथाशक्ति दान देना चाहिये। जो लोग अपनी शक्तिके अनुसार दूसरोंका उपकार करते हैं, उन्हें ही धन्य मानना चाहिये। वे ही सम्पूर्ण जगत्के रक्षक तथा परम पवित्र हैं।[2] जो केवल अपना ही पेट भरनेके लिये उद्योग करते हैं, वे क्लेशके भागी होते हैं।'

मोहिनी देवीके यों कहनेपर असुरोंने इन्द्रादि देवताओंको भी अमृत पीनेके लिये बुलाया। तब सभी देवता सुधापानके लिये वहाँ बैठे। उनके बैठ जानेपर सम्पूर्ण धर्मोंको जाननेवाली तथा देवताओंका स्वार्थ सिद्ध करनेवाली मोहिनी देवीने यह उत्तम बात कही—'वैदिकी श्रुति कहती है कि सबसे पहले अतिथियोंका सत्कार होना चाहिये।[3] अब आप ही लोग बतावें—महाभाग राजा बलि आदि स्वयं कहें, मैं पहले किनको अमृत परोसूँ?' बलिने उत्तर दिया—'देवि! तुम्हारी जैसी रुचि हो, वैसे ही करो।' पवित्रात्मा राजा बलिके द्वारा

---

१. न्यायोपार्जितवित्तस्य दशमांशेन धीमता। कर्तव्यो विनियोगश्च ईशप्रीत्यर्थमेव च॥
(स्क० पु०, मा० के० १२। ३५)

२. परेषामुपकारं च ये कुर्वन्ति स्वशक्तितः। धन्यास्त एव विज्ञेयाः पवित्रा लोकपालकाः॥
(स्क० पु०, मा० के० १२। ५२-५३)

३. आदौ ह्यभ्यागताः पूज्या इति वै वैदिकी श्रुतिः॥
(स्क० पु०, मा० के० १२। ५८)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

इस प्रकार सम्मान दिये जानेपर मोहिनी देवीने परोसनेके लिये अमृतका कलश हाथमें उठा लिया और पहले देवताओंके समुदायको ही शीघ्रतापूर्वक

अमृत देना आरम्भ किया। मोहिनी देवी अपने सुधा-सदृश हासरसामृतकी ही भाँति उस अमृत-रसको भी देवताओंके आगे बारंबार उँड़ेलने लगीं। उनके दिये हुए सुधारसको सम्पूर्ण देवताओं, देवेश्वरों, लोकपालों, गन्धर्वों, यक्षों और अप्सराओंने खूब छककर पीया। उस समय राहुनामक दैत्य अमृत पीनेके लिये देवताओंकी पंक्तिमें जा बैठा। उसने ज्यों ही अमृत पीनेकी इच्छा की, सूर्य और चन्द्रमाने अमिततेजस्वी भगवान् विष्णुको इसकी सूचना दे दी। तब भगवान्‌ने विकृत एवं विकराल शरीरवाले राहुका मस्तक काट डाला। उसका कटा हुआ मस्तक आकाशमें उड़ गया और धड़ पृथ्वीपर गिर पड़ा।

उस समय सौ करोड़ मुख्य-मुख्य दैत्य गर्जते तथा महान् बल-पराक्रमवाले देवताओंको युद्धके लिये ललकारते हुए आगे बढ़े। महाकाय राहु चन्द्रमाको अपना ग्रास बनाकर इन्द्रके पीछे दौड़ा। वह सम्पूर्ण देवताओंपर ग्रास लगाता जा रहा था। राहु यद्यपि एक ही था, तथापि वह सर्वत्र पहुँचा हुआ दिखायी देता था। यह देख देवता भयसे विह्वल हो चन्द्रमाको आगे करके बड़ी उतावलीके साथ भागे और पृथ्वी छोड़कर स्वर्गलोकमें चले गये। वे स्वर्गमें ज्यों ही पहुँचे, त्यों ही राहु भी महान् वेगसे उनके आगे आकर खड़ा हो गया। वह चन्द्रमाको निगल जाना चाहता था। यह देख चन्द्रमाने भयसे व्याकुल होकर भगवान् शंकरकी शरणमें जानेका विचार किया। वे मन-ही-मन शिवजीका स्मरण करके स्तुति करने लगे—'देवेश! आप हमारे रक्षक हों, वृषभध्वज! मुझे संकटसे उबारें। शरणागतकी रक्षा करनेवाले श्रीपार्वतीपते! अपनी शरणमें आये हुए मेरी रक्षा करें।'

उनके इस प्रकार स्तुति करनेपर सबका कल्याण करनेवाले भगवान् सदाशिव वहीं प्रकट हो गये और चन्द्रमासे बोले—'डरो मत।' यों कहकर उन्होंने चन्द्रमाको अपने जटा-जूटके ऊपर रख लिया। तबसे चन्द्रमा उनके मस्तकपर श्वेत कमलपुष्पकी भाँति शोभा पा रहे हैं। चन्द्रमाकी रक्षा होनेके पश्चात् राहु भी वहाँ आ पहुँचा और भगवान् शिवकी स्तुति करने लगा—'शान्तस्वरूप भगवान् शिवको नमस्कार है। आप ही ब्रह्म और परमात्मा हैं। आपको नमस्कार है। लिंगरूपधारी महादेव! जगत्पते! मैं आपको नमस्कार करता हूँ। आप सम्पूर्ण भूतोंके निवासस्थान, दिव्य प्रकाशस्वरूप तथा सब भूतोंके पालक हैं। आपको नमस्कार है। महादेव! आप समस्त जगत्‌की आनन्दप्राप्तिके कारण हैं। आपको प्रणाम है। मेरा भक्ष्य चन्द्रमा इस समय आपके समीप आया है। उसे आप मुझे दे दीजिये।'

राहुकी इस प्रार्थनासे भगवान् सोमनाथ बहुत सन्तुष्ट हुए और उन्होंने राहुसे इस प्रकार कहा—'मैं सम्पूर्ण भूतोंका आश्रय हूँ, देवता और असुर सबको मैं प्रिय हूँ।' भगवान् शिवके यों कहनेपर राहु भी उन्हें प्रणाम करके उनके मस्तकमें स्थित हो गया। तब चन्द्रमाने भयके मारे अमृतका स्राव किया। उस अमृतके सम्पर्कसे राहुके अनेक सिर

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

हो गये। भगवान् शंकरने उन सबको देखा। देवकार्यकी सिद्धिके लिये उन्होंने राहुके मुण्डोंकी माला बना ली।

जो भगवान् शिवके ऊपर सुशोभित दूसरोंद्वारा चढ़ायी हुई पूजा-सामग्री देखकर सन्तोष प्राप्त करता है, वह श्रेष्ठ लोकोंमें जाता है। जो कार्तिकमासकी रात्रिमें श्रद्धापूर्वक शिवजीके समीप दीपमाला समर्पित करता है, उसके चढ़ाये हुए वे दीप शिवलिंगके सामने जितने समयतक जलते हैं, उतने हजार युगोंतक दाता स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है। जिन्होंने भगवान् शिवके मन्दिरमें कुसुम्भके तेलसे युक्त दीपक अर्पित किये हैं, वे अपने ऊपर और नीचेकी दस-दस पीढ़ियोंके साथ शिवलोकमें निवास करते हैं। दीपदानके फलसे वे ज्ञानी होते हैं। जो कपूर, अगर और धूपसे भगवान् सदाशिवकी पूजा करते हैं और प्रतिदिन कपूरकी आरती उतारते हैं वे सायुज्य-मुक्तिको प्राप्त होते हैं। जो दानके समय, तपस्यामें, तीर्थमें और पर्वकालमें आलस्य छोड़कर रुद्राक्ष-धारणपूर्वक शिवकी पूजा करते हैं, उनका पुण्य अक्षय होता है।

द्विजवरो! भगवान् शिवने जिन रुद्राक्षोंका वर्णन किया है, उसे आपलोग सुनें। रुद्राक्ष एक मुखसे लेकर सोलह मुखतकके होते हैं। उनमेंसे पंचमुख तथा एकमुख—ये दो प्रकारके रुद्राक्ष मनुष्योंद्वारा धारण करने योग्य एवं श्रेष्ठ समझने चाहिये। जो प्रतिदिन एकमुख रुद्राक्ष धारण करते हैं, उन मनुष्योंको जीवन्मुक्त जानना चाहिये। जो प्रतिदिन पंचमुख रुद्राक्ष धारण करता है, वह रुद्रलोकमें जाता और उन्हींके साथ आनन्दका भागी होता है। जप, तप, क्रिया-योग, स्नान और देवपूजा आदि जो भी शुभ कर्म किया जाता है, वह रुद्राक्षधारणसे अनन्त फल देनेवाला हो जाता है। जो मन्त्र-पूत विभूतिसे अपने ललाटमें त्रिपुण्ड्र धारण करते हैं, वे रुद्रलोकमें रुद्र होंगे। कपिला गायके गोबरको भूमिपर गिरनेसे पहले ही हाथपर ले ले और उसे सुखाकर विभूतिके लिये संग्रह करे। विभूति सब पापोंका नाश करनेवाली बतायी गयी है। पहले ललाटमें प्रयत्नपूर्वक अँगूठेसे एक रेखा बनानी चाहिये। फिर मध्यमा अँगुलीको छोड़कर अनामिका और तर्जनी—इन दो अँगुलियोंसे दो रेखाएँ खींचे। इस प्रकार जिसके ललाटमें तीन सफल रेखाएँ देखी जाती हैं, उस शिवभक्तको साक्षात् शिवके ही समान जानना चाहिये। वह दर्शनमात्रसे समस्त पापोंका नाश करनेवाला है।

इन्द्रकी विजय, इन्द्रद्वारा विश्वरूपका वध, नहुषका स्वर्गसे पतन, ब्रह्महत्यासे इन्द्रकी मुक्ति तथा पुनः राज्यकी प्राप्ति

लोमशजी कहते हैं—तदनन्तर उस देवासुर-संग्राममें इन्द्रने भी दैत्योंका बड़ा भयंकर संहार किया। उनका वह कृत्य अद्भुत था। उस समय अर्थशास्त्रका आश्रय लेकर शचीपति इन्द्र दुर्जय दैत्योंके लिये कालरूप हो रहे थे। जब इस प्रकार असुर मारे जा रहे थे, उस समय इन्द्रको रोकनेके लिये भगवान् नारदजी वहाँ पधारे और यों बोले—'असुरोंके मण्डलमें जो वीर योद्धा मारे गये हैं, उनके बाद अब तुम भयभीत सैनिकोंकी हत्या क्यों कर रहे हो? जो भयभीत होकर शरणमें आ जाते हैं, ऐसे सैनिकोंकी जो लोग विजय-मदसे उन्मत्त होकर हत्या करते हैं, उन्हें महापातकी और ब्रह्महत्यारा समझना चाहिये।* इसलिये तुम्हें मनसे भी किसी भयभीत प्राणीकी हिंसा नहीं करनी चाहिये।'

महात्मा नारदके यों कहनेपर इन्द्र देवसेनाके

* ये भीताश्च प्रपन्नाश्च घ्नन्ति तान् ये मदोद्धताः। ब्रह्मघ्नास्तेऽपि विज्ञेया महापातकसंयुताः॥
(स्क० पु०, मा० के० १४।१९)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

साथ तत्काल स्वर्गमें चले आये। उस समय सब देवता परस्पर अधिक हर्ष प्रकट करने लगे। यक्ष, गन्धर्व और किन्नरगण भी बड़े आनन्दित हुए। श्रेष्ठ देवर्षियों और ब्रह्मर्षियोंने अमरावतीके सिंहासनपर शचीसहित इन्द्रका अभिषेक किया। इन्द्र भगवान् शंकरके प्रसादसे विजयी हुए। उस समय देवलोकमें बड़ा भारी उत्सव मनाया गया। शंख, पटह, मृदंग, ढोल, आनक, भेरी और दुन्दुभि आदि बाजे बजने लगे। देवताओंद्वारा मारे गये दैत्य पृथ्वीपर पड़े थे। महात्मा राजा बलि आदि भी प्राण त्याग चुके थे। उस समय भृगुवंशी शुक्राचार्यजी तपस्या करनेके लिये अपने शिष्योंके साथ मानसोत्तर पर्वतपर गये थे। इसीलिये वे युद्धमें उपस्थित न हो सके थे। उस युद्धमें जो दैत्य जीवित बच गये थे, वे शुक्राचार्यजीके पास गये। उन्होंने वह सारा वृत्तान्त, जो असुरोंके संहारका कारण हुआ था, विस्तारपूर्वक कह सुनाया। सुनकर भृगुनन्दन शुक्रको खेद और क्रोध भी हुआ। वे शिष्योंके साथ युद्धस्थलमें आये और अपनी मृतसंजीवनी विद्याके प्रभावसे उन्होंने मरे हुए असुरोंको भी जीवित कर दिया। शुक्राचार्यकी प्रेरणासे बलि आदि सब दैत्य पातालमें लौट आये और सुखपूर्वक रहने लगे।

ऋषियोंने पूछा—देवराज इन्द्रने गुरुके बिना ही कैसे राज्य प्राप्त किया? क्योंकि गुरुकी अवहेलनासे ही उन्हें अपना राज्य छोड़कर जाना पड़ा था। किसकी प्रेरणासे इन्द्र चिरकालतक राजसिंहासनपर बैठे रहे। ये सब बातें आप शीघ्र बतावें। हमें यह सुननेके लिये बड़ी उत्कण्ठा है।

लोमशजी बोले—गुरु बृहस्पतिके बिना भी शचीपति इन्द्रने कुछ कालतक राज्य-शासन किया। उस समय विश्वरूपजी इन्द्रके पुरोहित हुए थे। विश्वरूपके तीन मस्तक थे; वे यज्ञ और पूजनमें उचित भाग देकर देवताओं, असुरों और मनुष्योंको भी तृप्त करते थे। यह बात शचीपति इन्द्रसे छिपी न रह सकी। पुरोहित विश्वरूपजी देवताओंका भाग उच्चस्वरसे बोलकर देते थे। दैत्योंको चुपचाप बिना बोले ही देते थे और मनुष्योंको मध्यम स्वरसे मन्त्र पढ़कर भाग समर्पित करते थे। यह उनका प्रतिदिनका कार्य था। एक दिन इन्द्रको गुरुजीकी फुर्ती देखकर इस बातका पता लग गया। तब उन्होंने छिपे-छिपे यह जान लिया कि विश्वरूपजी क्या करना चाहते हैं। 'ये दैत्योंका कार्य सिद्ध करनेके लिये उन्हें भाग अर्पण करते हैं, हमारे पुरोहित होकर दूसरोंको फल देते हैं।' यों समझकर इन्द्रने सौ पर्ववाले वज्रसे विश्वरूपके मस्तक काट डाले। वज्रके आघातसे तत्काल उनकी मृत्यु हो गयी। इन्द्र ब्रह्महत्याके अपराधी हुए। पर ब्रह्महत्या, मद्यपान, चोरी तथा गुरुपत्नी-गमन आदि महापाप करनेवाले पापियोंके भी उद्धारका यही एक उपाय है कि वे भगवान् विष्णुके नामोंका कीर्तन करें, जिससे बुद्धि भगवन्मयी हो जाती है।*

तदनन्तर धुएँके समान रंगवाली तथा तीन मस्तकोंवाली ब्रह्महत्या इन्द्रको निगल जानेके लिये उनके पास आयी। उसे देखकर इन्द्रको बड़ा भय हुआ, अतः वे वहाँसे भाग चले। उन्हें भागते देख भयदायिनी ब्रह्महत्या उनका पीछा करने लगी। जब वे भागते तब वह भी पीछे-पीछे दौड़ती, और उनके खड़े होनेपर खड़ी हो जाती। अपने शरीरकी परछाईंके समान वह इन्द्रके पीछे लगी रहती। जाते-जाते सहसा वह इन्द्रको लपेट लेनेके लिये झपटी, इतनेमें ही इन्द्र बड़ी फुर्तीके साथ पानीमें कूद पड़े और वहीं गोता लगा गये, मानो वे चिरकालसे जलमें ही निवास करनेवाले कोई जलचर जीव हों। इस प्रकार उस जलमें बड़े

* ब्रह्महत्या सुरापानं स्तेयं गुर्वङ्गनागमः। इत्येषामप्यघवतामिदमेव च निष्कृतिः॥
नामव्याहरणं विष्णोर्यतस्तद्विषया मतिः॥

(स्क० पु०, मा० के० १५। ११-१२)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

दुःखसे निवास करते हुए इन्द्रके तीन सौ दिव्य वर्ष पूरे हो गये। उस समय स्वर्गलोकमें भयंकर अराजकता छा गयी। देवता और तपस्वी ऋषि भी चिन्तित हो उठे। तीनों लोक विपत्तिग्रस्त हो गये। जिस राज्यमें एक भी ब्रह्महत्यारा निर्भय होकर निवास करता है, वहाँ साधु पुरुषोंकी अकालमृत्यु होती है। विप्रगण! जिस राज्यमें पापात्मा राजा निवास करता है, वहाँ प्रजाके विनाशके लिये दुर्भिक्ष, मृत्यु, उपद्रव तथा और भी बहुत-से अनर्थ उत्पन्न होते हैं। अतः राजाको श्रद्धापूर्वक धर्मका पालन करना चाहिये। राजाके पवित्र होनेसे ही उसकी प्रजा पवित्र रहकर स्थिरता प्राप्त करती है।* इन्द्रने जो पाप किया था, उसके कारण सम्पूर्ण जगत् नाना प्रकारके सन्तापोंसे पीड़ित और उपद्रवग्रस्त हो गया।

शौनकने पूछा—सूतजी! इन्द्रने तो सौ अश्वमेध यज्ञोंका अनुष्ठान करके देवताओंका विशाल राज्य प्राप्त किया है, फिर उसमें विघ्न क्यों उत्पन्न होता है?

सूतजी बोले—देवताओं, दानवों और विशेषतः मनुष्योंके सुख और दुःखका कारण कर्म ही है— इसमें संशय नहीं है। इन्द्रने बड़ा ही अद्भुत एवं घृणित कर्म किया। उन्होंने गुरुकी अवहेलनाके साथ ही विश्वरूपका वध भी कर डाला। इतना ही नहीं, गुरु-तुल्य महर्षि गौतमकी पत्नीका भी सेवन (उपभोग) किया। इन्हीं सब बुरे कर्मोंका फल देवराज इन्द्रको प्राप्त हुआ, जिसे टालनेका कोई उपाय नहीं था। जो पाप-कर्म करनेवाले मनुष्य उस पापके लिये कोई प्रायश्चित्त नहीं करते—उनका वह पाप थोड़ा हो या अधिक, उससे एक दिन वे पीड़ित होते ही हैं। विप्रगण! यदि पाप बन जाय तो उसकी पूर्णतः शान्तिके लिये तत्काल प्रायश्चित्त करना चाहिये। पापोंका प्रायश्चित्त अनेक प्रकारका बतलाया गया है। उपपातक अधिक कालतक रह जाने या बार-बार उसकी आवृत्ति होनेपर महापातकके रूपमें परिणत हो जाता है। जो मनुष्य सबेरे, दोपहर और शामको सदा स्वधर्मपालनरूप तपस्या करते हैं, उनका पाप नष्ट हो जाता है तथा वे उत्तम लोक प्राप्त करते हैं। इसलिये दुराचारपरायण इन्द्रको इस पाप-कर्मका ही फल मिला है।

विप्रगण! उस समयकी परिस्थितिपर भलीभाँति विचार करके सम्पूर्ण लोकपाल एकत्र हो बृहस्पतिके पास गये और अपना सब मनोगत विचार उनपर प्रकट किया। उन्होंने स्थिरचित्त होकर इन्द्रकी सब बातें गुरु बृहस्पतिसे कह सुनायीं। देवताओंकी बात सुनकर परम बुद्धिमान् बृहस्पतिजीने सर्वत्र फैली हुई अराजकताको लक्ष्य करके सोचा, 'अब क्या करना चाहिये? इस समय हमारा कर्तव्य क्या है? देवताओं, पवित्रात्मा ऋषियों तथा सम्पूर्ण लोकोंका कल्याण कैसे होगा?' मन-ही-मन इन सब बातोंको सोचकर और कर्तव्य-अकर्तव्यका विचार करके महायशस्वी बृहस्पतिजी देवताओंके साथ इन्द्रके पास चले; वे तुरंत ही उस जलाशयपर जा पहुँचे, जिसमें इन्द्र छिपे हुए थे और जिसके तटपर भयानक चाण्डालीके रूपमें ब्रह्महत्या खड़ी थी। वे सम्पूर्ण देवता और महर्षि जलाशयके किनारे बैठ गये। गुरु बृहस्पतिजीने स्वयं ही इन्द्रको पुकारा। उनकी आवाज सुनकर इन्द्र उठकर खड़े हो गये। उस समय उन्हें अपने

* एकोऽपि ब्रह्महा यत्र राष्ट्रे वसति निर्भयः। अकालमरणं तत्र साधूनामुपजायते॥
राजा पापयुतो यस्मिन् राष्ट्रे वसति तत्र वै। दुर्भिक्षं चैव मरणं तथैवोपद्रवा द्विजाः॥
भवन्ति बहवोऽनर्थाः प्रजानां नाशहेतवे। तस्माद्राज्ञा प्रकर्तव्यो धर्मः श्रद्धापरेण हि॥
तथा प्रकृतयो राज्ञः शुचित्वेन प्रतिष्ठिताः।
(स्क० पु०, मा० के० १५। १८—२१)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

गुरु बृहस्पतिजीका दर्शन हुआ। इन्द्रके मुखपर आँसुओंकी धारा बह चली। उन्होंने सामने खड़े हुए बृहस्पतिजीको तथा वहाँ आये हुए सम्पूर्ण तपस्वी मुनियोंको शीघ्रतापूर्वक प्रणाम किया। फिर दीनवदन हो अपने ही किये हुए अज्ञानसूचक महान् कुकर्मोंपर मन-ही-मन भलीभाँति विचार करके वे बोले—'प्रभो! इस समय मेरेद्वारा पालन करनेयोग्य कौन-सा कर्तव्य है? बताइये!' उदार बुद्धिवाले भगवान् बृहस्पतिने हँसकर उत्तर दिया—'इन्द्र! पहले तुमने जो कुछ किया था, उसी कर्मका यह फल आज तुम्हें मिल रहा है। केवल भोगसे ही इसका क्षय होगा। धर्मशास्त्रकारोंने ब्रह्महत्याके लिये कोई प्रायश्चित्त नहीं देखा है। उनकी दृष्टिमें ब्रह्महत्या दूर करनेके लिये कोई प्रायश्चित्त है ही नहीं। अनजानमें जो पाप हो जाता है, उसीके निवारणका उपाय धर्मशास्त्रज्ञ विद्वानोंने बताया है। जो पाप स्वेच्छापूर्वक जान-बूझकर किया जाता है, उसके प्रतिकारका कोई उपाय नहीं। इच्छापूर्वक जान-बूझकर किया हुआ पाप अनिच्छा या अज्ञानपूर्वक किये हुए पापकी श्रेणीमें नहीं आ सकता। विषय-भेदसे इन दोनों प्रकारके पापोंका प्रायश्चित्त नियत किया गया है। जान-बूझकर किये हुए पापके लिये मरणान्त प्रायश्चित्तका विधान है। अज्ञानजनित पापके लिये विशेष-विशेष प्रायश्चित्त बताया गया है। तुमने जो पाप किया है, वह अनजानमें नहीं हुआ है; तुम्हारे द्वारा स्वयं जान-बूझकर विद्वान् पुरोहित ब्राह्मणका वध किया गया है। अतः उसके निवारणका कोई उपाय नहीं है। जबतक मृत्यु नहीं हो जाती, तबतक तुम इस जलमें ही स्थिरभावसे पड़े रहो। दुर्मते! तुम्हारे सौ अश्वमेध यज्ञोंका फल तो उसी समय नष्ट हो गया, जब तुमने ब्राह्मणकी हत्या की थी। जैसे छेदवाले घड़ेमें थोड़ा भी जल नहीं ठहरता, उसी प्रकार पापी मनुष्यका पुण्य प्रतिक्षण नष्ट होता रहता है।'

बृहस्पतिजीका यह वचन सुनकर इन्द्रने कहा—'गुरुदेव! इसमें सन्देह नहीं कि मेरे कुकर्मसे ही मुझे ऐसी दुर्दशा प्राप्त हुई है। अब आप इन देवर्षियोंके साथ शीघ्र ही अमरावतीपुरीको पधारें और देवताओं तथा सम्पूर्ण लोकोंका कार्य सिद्ध करनेके लिये आपके मनमें जो अच्छे प्रतीत हों, उन्हें इन्द्र बना लें। मैं तो इस ब्रह्महत्यासे आवृत होनेके कारण अब मरे हुएके ही समान हूँ।' इन्द्रके यों कहनेपर बृहस्पतिको आगे करके सम्पूर्ण देवता तुरंत अमरावतीपुरीमें लौट आये और इन्द्रका जो विचार था, वह सब शचीके सामने उन्होंने यथार्थरूपसे कह सुनाया। सब देवता बार-बार विचार करने लगे कि अब इस राज्यका संचालन करनेके लिये हमें क्या करना चाहिये। इसी समय अमित तेजस्वी देवर्षि नारद इच्छानुसार घूमते हुए वहाँ आ पहुँचे और देवताओंद्वारा पूजित होकर बोले—'देवगण! आपलोग अनमने कैसे हो रहे हैं?' उनके पूछनेपर देवताओंने इन्द्रकी सारी करतूतें कह सुनायीं। तब नारदजी बोले—'देवताओ! इन्द्रके ये सारे चरित्र मैंने पहलेसे ही सुन रखे हैं, अब तो इस महान् पापके कारण इन्द्रकी सारी श्रेष्ठता चली गयी। आप सब देवता सर्वज्ञ हैं, तपस्या और पराक्रमसे सम्पन्न हैं; अतः आपलोग चन्द्रवंशी राजा नहुषको इन्द्र बना लें। इस राज्यपर उन्हें शीघ्र ही बिठा लेना चाहिये। महात्मा नहुषने यज्ञकी दीक्षा लेकर निन्यानबे अश्वमेध यज्ञ पूर्ण कर लिये हैं।'

सब देवताओं और महर्षियोंने इन्द्रका राज्य नहुषको सौंप दिया। तबसे अगस्त्य आदि सभी महर्षि नहुषकी सेवामें उपस्थित रहने लगे। गन्धर्व, अप्सरा, यक्ष, विद्याधर, महानाग, सुपर्ण और पक्षी आदि जो भी स्वर्गवासी प्राणी थे, वे सब नहुषकी सेवा करने लगे।

इस प्रकार उत्तम कलाओंसे सुशोभित तथा सम्पूर्ण देवताओंसे सुपूजित राजा नहुष जब स्वर्गलोकके अधिपति हो गये, तब उन्हें महान् कामानल सन्तप्त करने लगा। राजा नहुषने पूछा—

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

'देवताओ! क्या कारण है कि अभीतक इन्द्राणी मेरे समीप नहीं आ रही हैं? उन्हें शीघ्र बुलाओ।'

नहुषकी यह बात सुनकर उदार बुद्धिवाले बृहस्पतिजी शचीके भवनमें गये और बोले—'कल्याणी! इन्द्रके दुष्कर्मसे विवश होकर यहाँका राज्य सँभालनेके लिये हमलोग नहुषको ले आये हैं। परंतु तुम इस कार्यके विरुद्ध जान पड़ती हो। तभी तो अबतक वहाँ उपस्थित नहीं हुई।' शचीने पापहीन गुरु बृहस्पतिजीसे हँसकर कहा—'नहुष मुझे प्राप्त करनेयोग्य नहीं है; आप स्वयं ही तत्त्वत: विचार करके देखें, क्या वह मुझे प्राप्त करनेका अधिकारी है? मैं परायी स्त्री हूँ; यदि वह मुझे पानेकी अभिलाषा करता है तो उस अज्ञानीसे कहिये—जो वाहन बनाने योग्य न हो, ऐसे वाहनपर बैठकर वह यहाँ आवे; तब मुझे प्राप्त कर सकता है।' 'तथास्तु' कहकर बृहस्पतिजी शीघ्रतापूर्वक लौट गये और कामसन्तप्त नहुषसे शचीदेवीकी कही हुई सब बातें ज्यों-की-त्यों कह सुनायीं। नहुष कामसे मोहित हो रहे थे। उन्होंने 'ठीक है' यों कहकर शचीदेवीकी शर्त स्वीकार कर ली। फिर वे अपनी बुद्धिद्वारा विचार करने लगे कि 'वाहन न बनानेयोग्य ऐसी कौन-सी वस्तु है, जो प्रशंसनीय मानी जाती है। तदनन्तर उन्होंने यह निश्चय किया कि तपस्वी ब्राह्मण ही ऐसे हैं, जो वाहन बनानेके योग्य नहीं हैं। अत: उन्हींको आज अपना वाहन बनाता हूँ। आज इन्द्राणीको प्राप्त करनेके लिये दो तपस्वी ब्राह्मणोंसे वाहनका काम लूँ, ऐसी अभिलाषा मेरे मनमें उत्पन्न हुई है।' इस निश्चयके अनुसार काममोहित नहुषने दो ब्राह्मणोंको पालकी दे दी और स्वयं उस पालकीमें बैठकर बोले—'सर्प-सर्प'—शीघ्र चलो, शीघ्र चलो। नहुषके 'सर्प-सर्प' कहनेसे कुपित हुए एक तपस्वी ब्राह्मणने उन्हें शाप देकर नीचे गिरा दिया। नहुष अजगर होकर स्वर्गसे नीचे गिर पड़े। वे ऊँचे पदको पाकर भी ब्राह्मणके दुर्लंघ्य शापसे तिर्यग्योनिमें पड़ गये। जैसी दशा राजा नहुषकी हुई, वैसी ही उनके-जैसे आचरण करनेवाले सबकी होती है। जो राजमद पाकर उन्मत्त हो उठते हैं, उनपर भारी विपत्ति आती है। जो राजमदसे अन्धे, दुराचारी, कामी तथा विषयोंमें रचे-पचे रहनेवाले हैं, वे ब्राह्मणोंका अपमान करके अपवित्र नरकमें पड़ते हैं। इसलिये बुद्धिमान् पुरुषको उचित है कि इहलोक और परलोकमें सुख पानेकी इच्छा होनेपर वह सर्वथा प्रयत्न करके उत्तम पदको पाकर कभी प्रमादमें न पड़े*—सदा अपने कर्तव्यके प्रति सावधान रहे। वैसा अनुचित कर्म करनेके कारण ही राजा नहुष महाभयानक जंगलमें सर्प हुए।

ऐसी परिस्थिति उत्पन्न होनेपर देवलोकमें फिर अराजकता छा गयी। सब देवता उस समय विस्मितचित्त होकर कहने लगे—अहो, इस राजाने बड़ा भारी कष्ट पाया। इस दुरात्माके लिये न तो मर्त्यलोकमें स्थान रहा, न स्वर्गलोकमें। महापुरुषोंकी अवहेलना करनेसे इसका सारा पुण्य एक ही क्षणमें भस्म हो गया। अब पृथ्वीपर दूसरा कोई यज्ञकर्ता राजा नहीं दिखायी देता था, जिसका इन्द्रके सिंहासनपर अभिषेक किया जा सके। इसलिये सब देवता, ऋषि, नाग, गन्धर्व, यक्ष, पक्षी, किन्नर, चारण, विद्याधर, असुरगण, अप्सराएँ तथा मनुष्य चिन्तित हो गये।

तदनन्तर शचीदेवीने धर्म और अर्थयुक्त वाणीमें कहा—'गुरुदेव बृहस्पति तथा अन्य देवताओ! चिन्ता न करो; तुम सब लोगोंको अब वहीं जाना चाहिये, जहाँ हमारे स्वामी रहते हैं।' इन्द्राणीकी बात सुनकर बृहस्पतिजी देवताओंके साथ ब्रह्महत्या-पीड़ित इन्द्रके समीप गये। जलाशयके

* ये मदान्धा दुराचारा: कामुका विषयात्मका:। विप्राणामवमानेन पतन्ति नरकेऽशुचौ॥
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन पदं प्राप्य विचक्षणै:। अप्रमत्तैर्भाव्यमिहामुत्र च लब्धये॥
(स्क० पु०, मा० के० १५। ८७-८८)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

किनारे पहुँचकर देवताओंने इन्द्रको पुकारा। इन्द्रने जलमें खड़े होकर देवताओंपर दृष्टिपात किया और कहा—'अब तुमलोग यहाँ क्यों आये हो? मैं तो पापसे पीड़ित हूँ, ब्रह्महत्यामें डूबा हुआ हूँ और यहाँ अकेले ही तपस्या करते हुए इस जलमें निवास करता हूँ।' उनकी बात सुनकर देवता विह्वल हो गये और बोले—'देवराज! विश्वकर्माके पुत्र विश्वरूपने ऐसा यज्ञ कराना आरम्भ किया था, जिससे देवता और तपस्वी ऋषि विनाशको प्राप्त हो जाते। इस कारण परोपकारकी दृष्टिसे ही आपने उसका वध किया था। इसलिये हम सब लोग आपको अमरावती ले चलनेके लिये आये हैं।'

देवताओंमें जब इस प्रकार बातचीत हो रही थी, ब्रह्महत्या भी तुरंत बोल उठी—'मैं देवराज इन्द्रको अमरावती जानेसे रोकती हूँ।' यह सुनकर बृहस्पतिने सहसा उसको उत्तर दिया—'ब्रह्महत्ये! हम तुम्हारे निवासके लिये दूसरे स्थान नियत करेंगे।' कार्यकी गुरुताको दृष्टिमें रखकर देवताओंने उस समय ब्रह्महत्याको शान्त कर दिया। फिर सबने विचार करके ब्रह्महत्याको चार भागोंमें बाँटा। तत्पश्चात् देवताओंने सबसे पहले पृथ्वीसे कहा—'देवि! देवताओंकी कार्य-सिद्धिके लिये इन्द्रकी ब्रह्महत्याका एक अंश तुम्हें ग्रहण करना चाहिये।' देवताओंकी यह बात सुनकर पृथ्वी काँप उठी और बोली—'आप लोग ही विचार करें, मैं ब्रह्महत्याका अंश कैसे ग्रहण कर सकती हूँ? मैं सम्पूर्ण भूतोंको धारण करनेवाली तथा विश्वका भरण-पोषण करनेवाली हूँ। मैं इस पापपंकमें डूबकर अधिक अपवित्र हो जाऊँगी।' पृथ्वीका यह वचन सुनकर बृहस्पतिजीने कहा—'सुन्दरि! तुम भय मत करो। तुम तो सर्वथा निष्पाप हो। जिस समय यदुकुलमें भगवान् वासुदेव अवतार लेंगे, उस समय उनके चरणोंके स्पर्शसे यह ब्रह्महत्याका आंशिक पाप भी निवृत्त हो जायगा और तुम पूर्णतः निष्पाप होकर रहोगी।' उनके यों कहनेपर पृथ्वीने उनकी आज्ञाका पालन किया।

इसके बाद सब देवताओंने वृक्षोंको बुलाकर कहा—'आपलोग देवकार्यकी सिद्धिके लिये ब्रह्महत्याका एक अंश ग्रहण करें।' तब वृक्षोंने वहाँ पधारे हुए सम्पूर्ण देवताओंसे कहा—'यदि हम सब लोग ब्रह्महत्याके पापसे लिप्त हो जायँगे तो सम्पूर्ण महात्मा भी ब्रह्महत्यायुक्त होकर पापी हो जायँगे।' यह सुनकर बृहस्पतिजीने कहा—'तुमलोग चिन्ता न करो, इन्द्रके प्रसादसे तुमलोग काटे जानेपर भी अनेक अंशोंमें विभक्त हो शाखा और डालियोंसे सम्पन्न हो जाओगे और इस प्रकार सदा शुद्ध बने रहोगे।' बृहस्पतिके इस प्रकार आश्वासन देनेपर सब वृक्षोंने उस आंशिक ब्रह्महत्याको आपसमें बाँट लिया।

तदनन्तर देवताओंने जलोंको बुलाकर कहा—'तुमलोग भी देवकार्यकी सिद्धिके लिये इस समय ब्रह्महत्याका एक अंश स्वीकार करो।' तब सब जल एकत्र हो बृहस्पतिजीसे बोले—'जो कोई भी पाप या दुष्कर्म हैं, वे हमारे सम्पर्क और सम्बन्धसे दूर होते हैं। हमारे द्वारा स्नान, शौच एवं हमारा पान आदि करनेसे सम्पूर्ण पापाक्रान्त प्राणी पवित्र हो जाते हैं। (ब्रह्महत्यासे अभिभूत होनेपर हमारी यह शक्ति नष्ट हो जायगी!)' उनकी बात सुनकर बृहस्पतिने उत्तर दिया—'तुम दुस्तर पापसे भय न करो; मैं वरदान देता हूँ—'चराचर जगत्‌में निवास करनेवाले सम्पूर्ण प्राणियोंको जल पवित्र करे।' उनके यों कहनेपर जलने ब्रह्महत्याका तीसरा अंश ग्रहण किया। इसके बाद बृहस्पतिजीने स्त्रियोंको बुलाकर कहा—'तुमलोग भी इस समय सब कार्योंकी सिद्धिके लिये ब्रह्महत्याका शेष अंश ग्रहण करो।' देवगुरुका यह वचन सुनकर सब स्त्रियाँ बोलीं—'भगवन्! सम्पूर्ण स्त्रियाँ धर्म, अर्थ और कामकी सिद्धिके लिये उत्पन्न हुई हैं। यदि नारी पापाचार करे तो उस पापसे अनेक पक्ष (पिता, नाना तथा पतिके कुल) लिप्त होते हैं—ऐसी वेदोंकी आज्ञा है; क्या आपने ऐसी कोई बात

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

नहीं सुनी है? फिर स्वयं विचार कर लें, हमारा क्या कर्तव्य है।' स्त्रियोंके यों कहनेपर बृहस्पतिजीने वरदान दिया—'देवियो! तुम सब इस पापसे भय न करो, तुम्हारे द्वारा स्वीकृत ब्रह्महत्याका यह अंश भावी पीढ़ियोंके लिये तथा दूसरोंके लिये भी शुभ फल देनेवाला होगा। तुम सबको इच्छानुसार काम-सुख प्राप्त होगा।'

इस प्रकार देवताओंने ब्रह्महत्याके चार भाग किये और वे अंश तत्काल ही पूर्वोक्त समुदायोंमें स्थित हो गये। उस समय इन्द्रका पाप सर्वथा नष्ट हो गया। अतः देवताओं और ऋषियोंने देवपुरीमें शचीसहित इन्द्रका पुनः अभिषेक किया। महात्मा इन्द्र सम्पूर्ण देवताओं, महानुभावों, मुनीश्वरों तथा सिद्धगणोंके साथ पुनः लोकपाल-पदपर प्रतिष्ठित हो गये। उस समय इन्द्रलोकके सम्पूर्ण निवासियोंके मनमें महान् उत्साह और अपार आनन्द छा गया।

विश्वकर्माके तपसे वृत्रासुरकी उत्पत्ति तथा दधीचिद्वारा देवताओंको अस्थिदान

लोमशजी कहते हैं—इसी बीचमें इन्द्रका महान् उत्सव देखकर पुत्र-शोकसे पीड़ित विश्वकर्माके मनमें बड़ा क्रोध हुआ। वे बहुत खिन्न होकर अत्यन्त उग्र तपस्या करनेके लिये गये। उस तपस्यासे सन्तुष्ट होकर लोकपितामह ब्रह्माजीने प्रजापति त्वष्टासे कहा—'सुव्रत! तुम कोई वर माँगो।' तब त्वष्टाने अत्यन्त हर्षमें भरकर वर माँगा—'भगवन्!

हमें ऐसा पुत्र दीजिये, जो देवताओंके लिये भयंकर हो तथा सम्पूर्ण देवताओं और इन्द्रको भी शीघ्र मार डालनेकी इच्छा रखता हो।' '**तथाऽस्तु**' कहकर परमेष्ठी ब्रह्माने वरदान दे दिया। उस वरदानसे तत्काल ही वहाँ एक बड़ा अद्भुत दैत्य प्रकट हुआ, जो वृत्र नामसे प्रसिद्ध था। वह असुर प्रतिदिन सौ धनुष (चार सौ हाथ) बढ़ता था। पूर्वकालमें अमृत-मन्थनके समय देवताओंने जिन दैत्योंको मार डाला था और शुक्राचार्यने पुनः जिन्हें जीवित कर दिया था, उनमेंसे राजा बलिको छोड़कर शेष सभी दैत्य पातालसे निकलकर वृत्रासुरके पास चले आये। पातालसे आये हुए असुरोंके साथ वृत्रासुरने अकेले ही अपने विशाल शरीरद्वारा सम्पूर्ण भूमण्डलको ढक लिया। उस समय उससे पीड़ित हुए तपस्वी ऋषि तुरंत ब्रह्माजीके पास गये और उन्होंने अपनी सारी कष्ट-कथा कह सुनायी। तब ब्रह्माजीने गन्धर्वों, मरुद्गणों तथा इन्द्रादि देवताओंसे, विश्वकर्मा क्या करना चाहते हैं, यह बताया और कहा—'विश्वकर्माने बड़ी भारी तपस्या करके तुम सब लोगोंका वध करनेके लिये अत्यन्त तेजस्वी वृत्रासुरको उत्पन्न किया है। वह सब दैत्योंका महान् अधीश्वर बना हुआ है। अब तुमलोग ऐसा प्रयत्न करो, जिससे वह तुम्हारे द्वारा मारा जा सके।' ब्रह्माजीका यह वचन सुनकर इन्द्र आदि देवताओंने कहा—'भगवन्! जब हमारे ये इन्द्र ब्रह्महत्यासे मुक्त होकर स्वर्गके सिंहासनपर बिठाये गये, उस समय हमलोगोंके

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

द्वारा एक न करनेयोग्य कार्य हो गया है। अब उस भूलके दुष्परिणामसे पार पाना हमारे लिये कठिन है। भूल यह हुई कि हम अज्ञानियोंने अपने अनेक प्रकारके अस्त्र-शस्त्र महर्षि दधीचिके आश्रममें रख दिये थे। उन शस्त्रोंके बिना इस समय हम क्या कर सकते हैं?'

तदनन्तर ब्रह्माजीकी आज्ञासे सब देवता दधीचिके आश्रमपर गये और उनसे बोले—'देव! हमने पूर्वकालमें जो अस्त्र-शस्त्र यहाँ रख दिये थे, वे सब हमें दे दिये जायँ।' यह सुनकर दधीचिने हँसते हुए कहा—'बड़भागी देवताओ! आपके उन अस्त्रोंको बहुत कालसे यहाँ व्यर्थ रखा हुआ जानकर मैंने सबको पी लिया।' उनकी यह बात सुनकर देवता बहुत चिन्तित हुए और पुनः ब्रह्माजीके पास लौटकर मुनिकी सब बातें कह सुनायीं। तब ब्रह्माजीने सबके अभीष्ट कार्यकी सिद्धिके लिये देवताओंसे कहा—'तुम लोग दधीचिसे उनकी हड्डियाँ ही माँगो। माँगनेपर वे देंगे, इसमें तनिक भी संशय नहीं है।' ब्रह्माजीकी बात सुनकर इन्द्र बोले—'वृत्रासुर नामक जो दैत्यराज है, उसे विश्वकर्माने उत्पन्न किया है (अतः वह ब्राह्मण ही है); यद्यपि वह निरन्तर अत्यन्त क्रूरतापूर्ण कर्म करनेवाला है, तथापि ब्राह्मण होनेके कारण मैं उसका वध कैसे कर सकता हूँ।' इन्द्रकी बात सुनकर ब्रह्माजीने अर्थशास्त्रको प्रधानता देनेवाली युक्तिसे उन्हें समझाया और इस प्रकार कहा—'देवराज! यदि कोई आततायी मारनेकी इच्छासे आ रहा हो तो वह तपस्वी ब्राह्मण ही क्यों न हो, उसे अवश्य मार डालनेकी इच्छा करे। ऐसा करनेसे वह ब्रह्महत्यारा नहीं हो सकता।'* ब्रह्माजीका यह वचन सुनकर इन्द्रने कहा—'भगवन्! दधीचिके वधसे निश्चय ही मेरा पतन हो जायगा। उस ब्राह्मणकी हत्यासे सभी तरहके महान् पाप अपनेको लगेंगे। अतः हमें ब्राह्मणोंका अनादर नहीं करना चाहिये। परम धर्म अदृष्टरूप है। विज्ञ पुरुषको उचित है कि वह श्रेष्ठ विधिके अनुसार मनोयोगपूर्वक उस धर्मका पालन करे।'

इन्द्रके निःस्पृह वचन सुनकर ब्रह्माजी बोले—'देवेन्द्र! तुम अपनी बुद्धिके अनुसार बर्ताव करो और शीघ्र ही दधीचिके पास जाओ। कार्यकी गुरुताको दृष्टिमें रखकर दधीचिकी हड्डियाँ माँगो।' 'बहुत अच्छा' कहकर इन्द्रने ब्रह्माजीकी आज्ञा स्वीकार की और गुरु बृहस्पति तथा सम्पूर्ण देवताओंके साथ दधीचिके मंगलमय आश्रमपर गये। वह आश्रम नाना प्रकारके जीव-जन्तुओंसे संयुक्त होनेपर भी पारस्परिक वैर-भावसे रहित था। वहाँ बिल्ली और चूहे एक-दूसरेको देखकर प्रसन्न होते थे। एक ही स्थानपर सिंह, हथिनियाँ, हाथीके बच्चे और हाथी परस्पर मिलकर नाना प्रकारकी क्रीडाएँ करते थे। नेवलोंके साथ मिले हुए सर्प एक-दूसरेसे आनन्दका अनुभव करते थे। ऐसी-ऐसी अनेक आश्चर्यभरी बातें उस आश्रमपर दिखायी देती थीं। दधीचि मुनि अपने उत्तम तेजसे सूर्य अथवा दूसरे अग्निदेवकी भाँति प्रकाशित हो रहे थे। उनके साथ उनकी धर्मपत्नी सुवर्चा भी थीं। जैसे सावित्रीके साथ ब्रह्माजी शोभा पाते हैं, उसी प्रकार वे मुनिश्रेष्ठ दधीचि भी अपनी धर्मपत्नीके साथ सुशोभित थे। सम्पूर्ण देवताओंने मुनिका दर्शन करके उन्हें प्रणाम किया और इस प्रकार कहा—'मुने! हमें पहलेसे ही विदित है कि आप तीनों लोकोंमें सबसे बड़े दाता हैं।' देवताओंकी यह बात सुनकर मुनिश्रेष्ठ दधीचि बोले—'श्रेष्ठ देवगण! आपलोग जिस कामके लिये आये हैं, उसे बतावें। आपकी माँगी हुई वस्तु मैं अवश्य दूँगा, इसमें सन्देह नहीं है। मेरी बात कभी मिथ्या नहीं होती।' तब अपना स्वार्थ सिद्ध करनेकी इच्छावाले सब देवता एक साथ बोले—'ब्रह्मन्! हमलोग भयभीत होकर आपके दर्शनकी अभिलाषासे यहाँ

* आततायिनमायान्तं ब्राह्मणं वा तपस्विनम्। हन्तुकामं जिघांसीयान्न तेन ब्रह्महा भवेत्॥
(स्क० पु०, मा० के० १६।७३)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

आये हैं।' उनकी ये बातें सुनकर दधीचिने कहा—'बताइये, आपलोगोंके लिये क्या देना है?' यों कहकर महर्षिने अपनी पत्नीको आश्रमके भीतर भेज दिया। तदनन्तर देवता बोले—'विप्रवर! आप अपने शरीरकी हड्डियाँ हमें अर्पित करें, जिनसे दैत्योंका संहार हो।' महर्षिने कहा—'मैंने हड्डियाँ आपको दे दीं।' तब देवता बोले—'भगवन्! आपके जीते-जी इन हड्डियोंको हम कैसे प्राप्त कर सकते हैं?' ब्रह्मर्षिने हँसकर उत्तर दिया—'बस, क्षणभर खड़े रहिये, मैं अभी अपना शरीर त्याग देता हूँ।' ऐसा कहकर दधीचिने समाधि लगा ली। उस परम समाधिके द्वारा अपना शरीर त्यागकर वे तत्काल उस ब्रह्मधाममें चले गये, जहाँसे फिर इस संसारमें लौटना नहीं पड़ता। इस प्रकार भगवान् शंकरके प्रिय भक्त मुनिवर दधीचि परोपकारके लिये शरीर त्यागकर ब्रह्म-पदको प्राप्त हुए।

पिप्पलादका जन्म, सुवर्चाका पतिलोकगमन, देवासुर-संग्राममें नमुचिका वध, प्रदोषव्रतकी विधि और उद्यापन, इन्द्र और वृत्रासुरका युद्ध तथा इन्द्रकी विजय

लोमशजी कहते हैं—तदनन्तर महर्षि दधीचिको ब्रह्मलीन हुआ देख इन्द्रने सुरभिको बुलाकर कहा—'तुम दधीचिके शरीरको चाटो।' 'बहुत अच्छा' कहकर सुरभिने तत्काल दधीचिके शरीरको चाटना आरम्भ किया। उसने सब ओरसे चाटकर उस शरीरको मांसरहित कर दिया। तब देवताओंने वे हड्डियाँ ले लीं और उनके शस्त्र बनाये। उनकी पीठकी हड्डीसे 'वज्र' बना और शिरसे 'ब्रह्मशिर' नामक अस्त्र तैयार किया गया। ऋषिके शरीरकी जो और भी बहुत-सी हड्डियाँ थीं, उन्हें भी उस समय देवताओंने ग्रहण कर लिया। इस प्रकार अस्त्र-शस्त्रोंका निर्माण करके महान् बल-पराक्रमसे सम्पन्न हुए देवता वृत्रासुरको मारनेके लिये उद्यत हो बड़ी उतावलीके साथ स्वर्गलोकमें गये।

तत्पश्चात् महर्षि दधीचिकी पत्नी सुवर्चा देवी, जिन्हें देवताओंकी कार्यसिद्धिके लिये महर्षिने आश्रमके भीतर भेज दिया था, वहाँ पुनः लौटकर आयीं और वहाँ जो कुछ हुआ था वह सब उन्होंने अपनी आँखोंसे देखा—'यह सब देवताओंकी ही करतूत है' ऐसा जानकर उस सती-साध्वी सुवर्चाके मनमें बड़ा क्रोध हुआ। उन्होंने अत्यन्त रुष्ट होकर शाप देते हुए कहा—'देवता आजसे सन्तानहीन रहें। तपस्विनी सुवर्चाने इस प्रकार देवताओंको शाप दे दिया और स्वयं एक पीपल-वृक्षके मूल भागमें बैठकर रोदन करने लगीं। इसी समय उनके उदरसे महात्मा दधीचिके पुत्र महातेजस्वी पिप्पलाद प्रकट हुए। माता सुवर्चा प्यासी आँखोंसे पुत्र पिप्पलादकी ओर देखती हुई हँसकर बोलीं—'महाभाग! तुम दीर्घकालतक इस वृक्षके ही समीप रहना। तुम मेरे आशीर्वादसे शीघ्र ही ऋषियोंमें श्रेष्ठ स्थान प्राप्त करोगे।' अपने पुत्रके प्रति ऐसा कहकर साध्वी सुवर्चा श्रेष्ठ समाधि लगाकर पतिके समीप चली गयीं। इस प्रकार उन्होंने पतिके साथ सत्यलोक प्राप्त किया।

इधर वे देवतालोग अस्त्र-शस्त्रोंका निर्माण करके युद्धके लिये उत्सुक हो दैत्योंके सामने गये। इन्द्र आदि देवता महान् बल और पराक्रमसे युक्त थे। वे गुरु बृहस्पतिको आगे करके भूमिपर आकर मध्य देशमें ठहरे। उन सबके पास बड़े उत्तम शस्त्र थे। इन्द्र आदि देवताओंको आया हुआ सुनकर महातेजस्वी वृत्रासुर दैत्यवृन्दके साथ उनके समीप गया। महेन्द्रने उस समरांगणमें महादैत्य वृत्रासुरको देखा। देवताओं और दानवोंका एक-दूसरेकी ओर दृष्टिपात बड़ा अद्भुत था। उनमें वैर-भाव बहुत बढ़ा हुआ था। वे एक-दूसरेको मार डालनेकी इच्छासे अत्यन्त क्रोधमें भरकर

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

अद्भुत स्वरमें गर्जना करने लगे। देवताओं और दानवोंके उस युद्धमें बजाये जानेवाले भयानक बाजे बड़ी गम्भीर ध्वनिमें सुनायी देते थे। उस युद्धमें समस्त चराचर जगत् महान् भयके कारण अचेत हो गया। उस समय नमुचि नामक दैत्य इन्द्रके साथ युद्ध करने लगा। देवराज इन्द्रने बड़े वेगसे उस दैत्यपर वज्रका प्रहार किया, परंतु वज्रके आघातसे भी नमुचिका एक रोम भी न टूट सका। तब इन्द्रने नमुचिपर गदा मारी, किंतु वह गदा भी चूर-चूर हो गयी। यह देख इन्द्रने एक बहुत बड़े शूलसे उस दैत्यपर प्रहार किया। नमुचिके अंगका स्पर्श होते ही उस शूलके सैकड़ों टुकड़े हो गये। इसी प्रकार नमुचिने भी हँसते हुए अनेक प्रकारके शस्त्रोंसे देवताओंको मारा, परंतु इन्द्रपर प्रहार नहीं किया। उस समय इन्द्र मौन होकर बड़ी भारी चिन्तामें डूब गये। इसी बीचमें उस महाभयानक संग्रामके भीतर इन्द्रको सम्बोधित करके आकाशवाणी हुई—'महेन्द्र! यह दैत्य देवताओंके लिये बड़ा भयंकर और घोरतर है। इसके लिये जलसे निकला हुआ फेन ही दुर्लंघ्य शस्त्र है। अतः उसीके द्वारा इस महान् असुरका शीघ्र संहार करो। दूसरे किसी शस्त्रसे आघात करनेपर यह असुर कभी मारा नहीं जा सकता।' इस मंगलमयी दैवी वाणीको सुनकर अनन्त पराक्रमवाले इन्द्र समुद्रके तटपर गये और फेन प्राप्त करनेके लिये प्रयास करने लगे। इन्द्रको समुद्रतटपर आया हुआ देख नमुचि क्रोधसे मूर्च्छित हो उठा और शूलसे आघात करके उन्हें कटुवचन सुनाने लगा। तब इन्द्रने भी क्रोधमें भरकर अद्भुत फेन ग्रहण किया और उस फेनका प्रहार करके महादैत्य नमुचिको मार गिराया। इस प्रकार नमुचिके मारे जानेपर सब देवता और ऋषि साधुवाद देते हुए इन्द्रके प्रति सम्मान प्रकट करने लगे।

इसी समय महातेजस्वी वृत्रासुर इन्द्रके समीप आया। वृत्रासुरको देखकर सब देवता और मनुष्य महान् भयसे युक्त हो पृथ्वीपर गिर पड़े। तब प्रतापी इन्द्र हाथमें वज्र लिये ऐरावत हाथीपर आरूढ़ हुए। सब देवता प्रतापी लोकपालोंके साथ युद्धके लिये एकत्र हो गये; परंतु वृत्रासुरको देखते ही सब लोकपाल अपने स्वामी इन्द्रसहित भयभीत हो गये। अतः वे भगवान् शिवकी शरणमें गये। महेन्द्र विजयके इच्छुक थे। अतः उन्होंने गुरु बृहस्पतिके बताये अनुसार बड़े विश्वासके साथ तत्काल ही विधिपूर्वक शिवलिंगका पूजन किया। फिर उदार बुद्धिवाले बृहस्पतिजी इन्द्रसे इस प्रकार बोले—"देवराज! कार्तिकमासके शुक्ल पक्षमें शनिवारके दिन यदि पूरी त्रयोदशी मिले तो यह समझना चाहिये कि मुझे सब कुछ प्राप्त हो गया। उस दिन प्रदोषकालमें सब कामनाओंकी सिद्धिके लिये लिंगरूपधारी भगवान् सदाशिवका पूजन करना चाहिये। दोपहरके समय स्नान करके तिल और आँवलेके साथ गन्ध, पुष्प और फल आदिके द्वारा शिवजीकी पूजा करे। फिर प्रदोषकालमें स्थावर लिंगका पूजन करे। गाँवसे बाहर जो शिवलिंग स्थित है, उसके पूजनका फल ग्रामकी अपेक्षा सौगुना अधिक है। उससे भी सौगुना अधिक माहात्म्य उस शिवलिंगके पूजनका है, जो वनमें स्थित हो। वनकी अपेक्षा भी सौगुना पुण्य पर्वतपर स्थित शिवलिंगके पूजनका है। पर्वतीय शिवलिंगकी अपेक्षा तपोवनमें स्थित शिवलिंगके पूजनका फल दस हजार गुना अधिक है। वह महान् फलदायक है। अतः विद्वानोंको इस विभागके अनुसार शिवलिंगका पूजन करना चाहिये और तडाग आदि तीर्थोंमें विधिवत् स्नान आदि करना चाहिये। मिट्टीके पाँच पिण्ड निकाले बिना किसी बावड़ीमें स्नान करना शुभकारक नहीं है। कुएँमेंसे अपने हाथसे जल निकालकर स्नान नहीं करना चाहिये (रस्सी आदिकी सहायतासे किसी पात्रमें जल निकालकर ही स्नान करना चाहिये)। पोखरेमेंसे मिट्टीके दस पिण्ड निकालकर ही स्नान करना चाहिये। नदीमें स्नान करना सबसे उत्तम है, यदि कोई बड़ी नदी मिल जाय

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

तो उसमें नहाना और भी उत्तम है। सब तीर्थोंमें गंगाका स्नान सर्वोत्तम है।

'प्रदोषकालमें स्नान करके मौन रहना चाहिये। भगवान् सदाशिवके समीप एक हजार दीपक जलाकर प्रकाश करना चाहिये। इतना सम्भव न हो तो सौ अथवा बत्तीस दीपोंसे भी भगवान्के समीप प्रकाश किया जा सकता है। शिवकी प्रसन्नताके लिये घीसे दीपक जलाना चाहिये। इसी प्रकार फल, धूप, नैवेद्य, गन्ध और पुष्प आदि षोडश उपचारोंसे लिंगरूपी भगवान् सदाशिवकी प्रदोषकालमें पूजा करनी चाहिये। वे भगवान् सम्पूर्ण मनोरथोंको सिद्ध करनेवाले हैं। यदि जलहरीका जल न उलाँघना पड़े तो पूजनके पश्चात् भगवान् शिवकी एक सौ आठ परिक्रमा करनी चाहिये। फिर यत्नपूर्वक एक सौ आठ बार ही नमस्कार भी करने चाहिये। इस प्रकार परिक्रमा और नमस्कारसे भगवान् सदाशिवको प्रसन्न करना उचित है। तत्पश्चात् सौ नामोंसे विधिपूर्वक भगवान् रुद्रकी स्तुति करनी चाहिये। रुद्र, नील, भीम और परमात्माको नमस्कार है! कपर्दी (जटाजूटधारी), सुरेश्वर (देवताओंके स्वामी) तथा आकाशरूप केशवाले श्रीव्योमकेशको नमस्कार है! जो अपनी ध्वजामें वृषभका चिह्न धारण करनेके कारण वृषभध्वज हैं, उमाके साथ विराजमान होनेसे सोम हैं, चन्द्रमाके भी रक्षक होनेसे सोमनाथ हैं, उन भगवान् शम्भुको नमस्कार है! सम्पूर्ण दिशाओंको वस्त्ररूपमें धारण करनेके कारण जो दिगम्बर कहलाते हैं, भजनीय तेजस्वरूप होनेसे जिनका नाम भर्ग है, उन उमाकान्तको नमस्कार है! जो तपोमय, भव्य (कल्याणरूप), शिवश्रेष्ठ, विष्णुरूप, व्यालप्रिय (सर्पोंको प्रिय माननेवाले), व्याल (सर्पस्वरूप) तथा सर्पोंके पालक हैं, उन भगवान्को नमस्कार है! जो महीधर (पृथ्वीको धारण करनेवाले), व्याघ्र (विशेषरूपसे सूँघनेवाले), पशुपति (जीवोंके पालक), त्रिपुरनाशक, सिंहस्वरूप, शार्दूलरूप और यज्ञमय हैं, उन भगवान् शिवको नमस्कार है। जो मत्स्यरूप, मत्स्योंके स्वामी, सिद्ध तथा परमेष्ठी हैं, जिन्होंने कामदेवका नाश किया है, जो ज्ञानस्वरूप तथा बुद्धि-वृत्तियोंके स्वामी हैं, उनको नमस्कार है! जो कपोत (ब्रह्माजी जिनके पुत्र हैं), विशिष्ट (सर्वश्रेष्ठ), शिष्ट (साधुपुरुष) तथा सर्वात्मा हैं, उन्हें नमस्कार है! जो वेदस्वरूप वेदको जीवन देनेवाले तथा वेदोंमें छिपे हुए गूढ़ तत्त्व हैं, उनको नमस्कार है! जो दीर्घ, दीर्घरूप, दीर्घार्थस्वरूप तथा अविनाशी हैं, जिनमें ही सम्पूर्ण जगत्की स्थिति है तथा जो सर्वव्यापी व्योमरूप हैं, उन्हें नमस्कार है! जो गजासुरके महान् काल हैं, जिन्होंने अन्धकासुरका विनाश किया है, जो नील, लोहित और शुक्लरूप हैं तथा चण्ड-मुण्ड नामक पार्षद जिन्हें विशेष प्रिय हैं, उन भगवान् शिवको नमस्कार है! जिनको भक्ति प्रिय है, जो द्युतिमान् देवता हैं, ज्ञाता और ज्ञान हैं, जिनके स्वरूपमें कभी कोई विकार नहीं होता, जो महेश, महादेव तथा हर नामसे प्रसिद्ध हैं, उनको नमस्कार है! जिनके तीन नेत्र हैं, तीनों वेद और वेदांग जिनके स्वरूप हैं, उन भगवान् शंकरको नमस्कार है! नमस्कार है! जो अर्थ (धन), अर्थरूप (काम) तथा परमार्थ (मोक्षरूप) हैं, उन भगवान्को नमस्कार है! जो सम्पूर्ण विश्वकी भूमिके पालक, विश्वरूप, विश्वनाथ, शंकर, काल तथा कालावयवरूप हैं, उन्हें नमस्कार है! जो रूपहीन, विकृत रूपवाले तथा सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म हैं, उनको नमस्कार है! जो श्मशान-भूमिमें निवास करनेवाले तथा व्याघ्रचर्ममय वस्त्र धारण करनेवाले हैं, उनको नमस्कार है! जो ईश्वर होकर भी भयानक भूमिमें शयन करते हैं, उन भगवान् चन्द्रशेखरको नमस्कार है! जो दुर्गम हैं, जिनका पार पाना अत्यन्त कठिन है तथा जो दुर्गम अवयवोंके साक्षी अथवा दुर्गारूपा पार्वतीके सब अंगोंका

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

दर्शनं करनेवाले हैं, उन भगवान् शिवको नमस्कार है! जो लिंगरूप, लिंग (कारण) तथा कारणोंके भी अधिपति हैं, उन्हें नमस्कार है! महाप्रलयरूप रुद्रको नमस्कार है! प्रणवके अर्थभूत ब्रह्मरूप शिवको नमस्कार है! जो कारणोंके भी कारण, मृत्युंजय तथा स्वयम्भू-रूप हैं, उन्हें नमस्कार है! हे श्रीत्र्यम्बक ! हे नीलकण्ठ! हे शर्व! हे गौरीपते! आप सम्पूर्ण मंगलोंके हेतु हैं; आपको नमस्कार है!'[१]

'प्रदोष-व्रत करनेवालेको महादेवजीके इन सौ नामोंका पाठ अवश्य करना चाहिये। महामते इन्द्र! इस प्रकार तुमसे मैंने शिव-प्रदोष-व्रतकी विधि बतलायी है। महाभाग! शीघ्रतापूर्वक इस व्रतका पालन करो। तत्पश्चात् युद्ध करना। भगवान् शिवकी कृपासे तुम्हें विजय आदि सब कुछ प्राप्त होगा।'

'एक समयकी बात है, राजा चित्ररथ विमानपर बैठकर नाना प्रकारके द्वीपोंका दर्शन करते हुए भगवान् शंकरके निवास-स्थान कैलास पर्वतपर गया। वहाँ उसने परम अद्भुत एवं अनुपम छबिवाले भगवान् शंकरके दर्शन किये। वे अपने आधे अंगमें पार्वती देवीको बिठाकर शोभा पा रहे थे। कर्पूरके समान गौरवर्ण, कमलनयन भगवान् शिवको पार्वती देवीके साथ देखकर राजा चित्ररथने उपहासपूर्वक कहा—'शम्भो! संसारमें जो विषयी मनुष्य आदि हैं तथा स्त्रियोंके वशीभूत रहनेवाले जो दूसरे-दूसरे लोग हैं, वे तथा हम-जैसे अज्ञानी जीव भी जनसमुदायमें संकोचवश स्त्री-सेवन नहीं करते।' यह सुनकर गिरिराजनन्दिनी उमाने कहा—'अरे दुरात्मन्! रे मूढ़! तूने मेरे साथ बैठे हुए भगवान् शिवका उपहास किया है। अतः इस कर्मका फल तू शीघ्र ही देखेगा। जो समतायुक्त चित्तवाले साधु पुरुषोंका उपहास करता है, वह देवता हो या मनुष्य, उसे अधमसे भी अधम जानना चाहिये।[२] तू देवता और द्विज दोनोंकी श्रेणीसे बहिष्कृत है। अपनेको बड़ा ज्ञानी माननेवाले तुझ अधमको आज मैं दैत्य बनाये देती हूँ।'

---

१. नमो रुद्राय नीलाय भीमाय परमात्मने। कपर्द्दिने सुरेशाय व्योमकेशाय वै नमः॥
वृषभध्वजाय सोमाय सोमनाथाय शम्भवे। दिगम्बराय भर्गाय उमाकान्ताय वै नमः॥
तपोमयाय भव्याय शिवश्रेष्ठाय विष्णवे। व्यालप्रियाय व्यालाय व्यालानां पतये नमः॥
महीधराय व्याघ्राय पशूनां पतये नमः। पुरान्तकाय सिंहाय शार्दूलाय मखाय च॥
मीनाय मीननाथाय सिद्धाय परमेष्ठिने। कामान्तकाय बुद्धाय बुद्धीनां पतये नमः॥
कपोताय विशिष्टाय शिष्टाय सकलात्मने। वेदाय वेदजीवाय वेदगुह्याय वै नमः॥
दीर्घाय दीर्घरूपाय दीर्घार्थायाविनाशिने। नमो जगत्प्रतिष्ठाय व्योमरूपाय वै नमः॥
गजासुरमहाकालायान्धकासुरभेदिने। नीललोहितशुक्लाय चण्डमुण्डप्रियाय च॥
भक्तिप्रियाय देवाय ज्ञात्रे ज्ञानाव्ययाय च। महेशाय नमस्तुभ्यं महादेव हराय च॥
त्रिनेत्राय त्रिवेदाय वेदाङ्गाय नमो नमः। अर्थाय चार्थरूपाय परमार्थाय वै नमः॥
विश्वभूपाय विश्वाय विश्वनाथाय वै नमः। शंकराय च कालाय कालावयवरूपिणे॥
अरूपाय विरूपाय सूक्ष्मसूक्ष्माय वै नमः। श्मशानवासिने भूयो नमस्ते कृत्तिवाससे॥
शशाङ्कशेखरायेशायोग्रभूमिशयाय च। दुर्गाय दुर्गपाराय दुर्गावयवसाक्षिणे॥
लिंगरूपाय लिंगाय लिंगानां पतये नमः। नमः प्रलयरूपाय प्रणवार्थाय वै नमः॥
नमो नमः कारणकारणाय मृत्युञ्जयायात्मभवस्वरूपिणे।
श्रीत्र्यम्बकायासितकण्ठशर्व गौरीपते सकलमङ्गलहेतवे नमः॥
(स्क० पु०, मा० के० १७। ७६—९०)

२. साधूनां समचित्तानामुपहासं करोति यः। देवो वाप्यथवा मर्त्यः स विज्ञेयोऽधमाधमः॥
(स्क० पु०, मा० के० १७। १०८)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

'पार्वती-देवीके इस प्रकार शाप देनेपर राजाओंमें श्रेष्ठ चित्ररथ सहसा स्वर्गसे नीचे गिर पड़ा। वही इस समय आसुरी योनिमें आकर वृत्रासुरके नामसे प्रसिद्ध हुआ है। विश्वकर्माकी भारी तपस्यासे युक्त होनेके कारण इस समय वृत्रासुर अजेय बतलाया जाता है। इसलिये तुम प्रदोषकालमें विधिपूर्वक भगवान् शंकरकी पूजा करके देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके लिये महादैत्य वृत्रासुरका वध करो।'

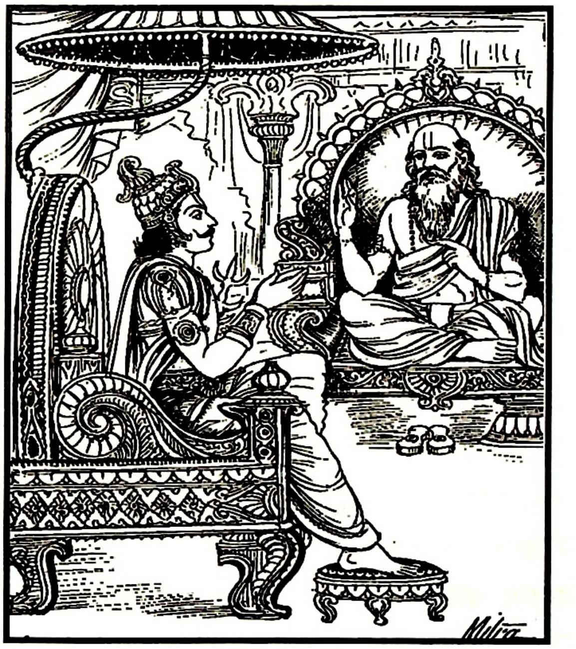

गुरु बृहस्पतिकी यह बात सुनकर इन्द्रने कहा—'भगवन्! इस समय मुझे इस प्रदोषव्रतके उद्यापनकी विधि बतलाइये।' बृहस्पतिजीने कहा—'कार्तिकमास आनेपर शनिवारके दिन यदि पूरी त्रयोदशी हो तो वह व्रतकी सिद्धिके लिये ग्राह्य है। आज वह तिथि स्वतःप्राप्त है। इसमें चाँदीका वृषभ बनवाना चाहिये। उस वृषभकी पीठपर सुन्दर सिंहासन रखना चाहिये। उस सिंहासनपर उमाकान्त भगवान् शिवकी स्थापना करनी चाहिये। भगवान्के तीन नेत्र, पाँच मुख और दस भुजाएँ हों। उनके आधे अंगमें सती-साध्वी पार्वतीका निवास हो। इस प्रकार उमा और महेश्वरकी सुवर्णमयी प्रतिमा बनवानी चाहिये। उस प्रतिमाको वृषभकी पीठपर वस्त्रसे ढके हुए ताँबेके पात्रमें स्थापित करके रात्रिमें श्रद्धा और विधिके साथ जागरण करना चाहिये। पहले यत्नपूर्वक प्रतिमाको पंचामृतसे स्नान कराना चाहिये। देवराज! मैं पूजाके मन्त्र बतलाता हूँ, सुनो—

(दुग्धसे स्नान करानेका मन्त्र)

गोक्षीरधाम देवेश गोक्षीरेण मया कृतम्।
स्नपनं देवदेवेश गृहाण परमेश्वर॥

'गायके दूधमें निवास करनेवाले देवेश! देवदेवेश्वर! परमेश्वर! मैंने गायके दूधसे आपको स्नान कराया है, कृपया इसे स्वीकार करें।'

(दधि-स्नान-मन्त्र)

दध्ना चैव महादेव स्नपनं कार्यते मया।
गृहाण च मया दत्तं सुप्रसन्नो भवाद्य वै॥

'महादेवजी! मैं दहीसे आपको स्नान करवा रहा हूँ। मेरे द्वारा समर्पित यह दधि-स्नान आप स्वीकार करें तथा आज मुझपर निश्चय ही अत्यन्त प्रसन्न हों।'

(घृत-स्नान-मन्त्र)

सर्पिषा च मया देव स्नपनं क्रियतेऽधुना।
गृहाण श्रद्धया दत्तं तव प्रीत्यर्थमेव च॥

'देव! अब मैं घीसे आपको स्नान करा रहा हूँ। मेरे द्वारा आपकी प्रसन्नताके लिये श्रद्धापूर्वक समर्पित यह घृत-स्नान आप अंगीकार करें।'

(मधु-स्नान-मन्त्र)

इदं मधु मया दत्तं तव तुष्ट्यर्थमेव च।
गृहाण त्वं हि देवेश मम शान्तिप्रदो भव॥

'देवेश्वर! आपके सन्तोषके लिये मेरा दिया हुआ यह मधु आप ग्रहण करें तथा मेरे लिये शान्तिदायक बनें।'

(शर्करा-स्नान-मन्त्र)

सितया देवदेवेश स्नपनं क्रियते मया।
गृहाण श्रद्धया दत्तां सुप्रसन्नो भव प्रभो॥

'देवदेवेश्वर! मैं मिश्री (या शर्करा)-से आपको स्नान करा रहा हूँ। प्रभो! श्रद्धापूर्वक दी हुई इस मिश्री (या शर्करा)-को आप स्वीकार करें तथा मुझपर भलीभाँति प्रसन्न हों।'

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

इस प्रकार पंचामृतद्वारा भगवान् वृषभध्वजको स्नान कराना चाहिये। तत्पश्चात् बुद्धिमान् पुरुष ताँबेके अर्घ्यपात्रद्वारा अर्घ्य प्रदान करे—

(अर्घ्य-मन्त्र)

अर्घ्योऽसि त्वमुमाकान्त त्वर्घ्येणानेन वै प्रभो।
गृहाण त्वं मया दत्तं प्रसन्नो भव शंकर॥

'उमावल्लभ! प्रभो! आप इस अर्घ्यद्वारा पूजन करनेयोग्य हैं। भगवान् शंकर! मेरे दिये हुए अर्घ्यको आप ग्रहण करें और मुझपर प्रसन्न हों।'

(पाद्य-मन्त्र)

मया दत्तं तु ते पाद्यं पुष्पगन्धसमन्वितम्।
गृहाण देवदेवेश प्रसन्नो वरदो भव॥

'देवदेवेश! मेरे द्वारा आपको समर्पित गन्ध-पुष्पयुक्त यह पाद्य (पाँव पखारनेके लिये जल) आप ग्रहण करें तथा प्रसन्न होकर मेरे लिये वर-दायक बनें।'

(आसनसमर्पण-मन्त्र)

विष्टरं विष्टरेणैव मया दत्तं च वै प्रभो।
शान्त्यर्थं तव देवेश वरदो भव मे सदा॥

'प्रभो! मैंने आपके सन्तोषके लिये कुशनिर्मित आसन समर्पित किया है। देवेश्वर! आप मेरे लिये सदा वरदायक बने रहें।'

(आचमन-मन्त्र)

आचमनं मया दत्तं तव विश्वेश्वर प्रभो।
गृहाण परमेशान तुष्टो भव ममाद्य वै॥

'प्रभो! विश्वेश्वर! मैंने आपको यह आचमनार्थ जल समर्पित किया है। परमेश्वर! आप इसे ग्रहण करें और आज मुझपर प्रसन्न हों।'

(यज्ञोपवीत-मन्त्र)

ब्रह्मग्रन्थिसमायुक्तं ब्रह्मकर्मप्रवर्तकम्।
यज्ञोपवीतं सौवर्णं मया दत्तं तव प्रभो॥ [१]

'प्रभो! यह सुवर्णरंगका (पीत) यज्ञोपवीत मैंने आपकी सेवामें प्रस्तुत किया है; यह ब्रह्मग्रन्थिसे युक्त है तथा ब्रह्मकर्म (वैदिक यज्ञ-यागादि तथा भगवत्प्रीत्यर्थ कर्म)-में लगानेवाला है।'

(वस्त्र-मन्त्र)

एतद् वासो मया दत्तं सोत्तरीयं सुशोभनम्।
गृहाण त्वं महादेव ममायुष्यप्रदो भव॥

'महादेवजी! मैंने यह चादरसहित परम सुन्दर वस्त्र आपको भेंट किया है; आप इसे ग्रहण करें और मुझे आयु प्रदान करें।'

(चन्दन-मन्त्र)

सुगन्धं चन्दनं देव मया दत्तं तु ते प्रभो।
भक्त्या परमया शम्भो सुगन्धं कुरु मां भव॥

'देव! शम्भो! मैंने आपको बड़ी भक्तिसे सुगन्धित चन्दन समर्पित किया है; सबके जन्मदाता भगवान् शिव! आप मुझे उत्तम गन्धसे युक्त करें।'

(धूप-मन्त्र)

धूपं विशिष्टं परमं सर्वौषधिविजृम्भितम्।
गृहाण परमेशान मम शान्त्यर्थमेव च॥

'परमेश्वर! सब प्रकारकी ओषधियोंसे सम्पन्न तथा बहुत ही विशिष्ट बनी हुई यह धूप आपकी सेवामें समर्पित है। मेरी शान्तिके लिये आप इसे ग्रहण करें।'

(दीप-मन्त्र)

दीपं हि परमं शम्भो घृतप्रज्वलितं मया।
दत्तं गृहाण देवेश मम ज्ञानप्रदो भव॥

'शम्भो! मैंने घीसे जलाया हुआ यह उत्तम दीप आपकी सेवामें प्रस्तुत किया है। देवेश्वर! आप इसे ग्रहण करें और मेरे लिये ज्ञानदाता बनें।'

(आरती-मन्त्र)

दीपावलिं मया दत्तां गृहाण परमेश्वर।
आरार्तिकप्रदानेन मम तेजःप्रदो भव॥ [२]

'परमेश्वर! मेरी दी हुई यह दीप-माला आप ग्रहण करें, तथा इस आरती उतारनेसे सन्तुष्ट होकर आप मुझे तेज प्रदान करें।'

---

१. पाठान्तर इस प्रकार है—
यज्ञोपवीतं सौवर्णं मया दत्तं च शंकर। गृहाण परया तुष्ट्या तुष्टो भव तु सर्वदा॥

२. ये पूजासम्बन्धी मन्त्र स्क० पु०, मा० के० अध्याय १७ के श्लोक १२१ से १३६ तक आये हैं।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

'इसी प्रकार फल, दीप आदि तथा नैवेद्य और ताम्बूल आदि सामग्रियाँ क्रमशः चढ़ाकर विधिज्ञ पुरुष भगवान् शिवकी पूजा करे तथा रात्रिमें यत्नपूर्वक जागरण करे। अपने घरमें या देवालयमें चँदोवा तनाकर अद्भुत सामग्रियोंसे सजा हुआ एक मण्डप बनावे। उसमें गीत, वाद्य और नृत्यके द्वारा भगवान् सदाशिवकी पूजा करे। इन्द्र! प्रदोष-व्रतके उद्यापनकी यही विधि है। विधिज्ञ पुरुषको चाहिये कि वह अपने सम्पूर्ण कार्योंकी सिद्धिके लिये इसी प्रकारसे सब कुछ करे।'

गुरु बृहस्पतिजीने जो कुछ बताया, उसके अनुसार इन्द्रने सब विधिका पालन किया।

नमुचिके मारे जानेपर सब देवता हर्ष और उत्साहमें भरे हुए थे। उनका दैत्योंके साथ घोर युद्ध हुआ। देवताओं और दैत्योंका संहार करनेवाले उस घोर संग्राममें अत्यन्त भयंकर तथा मर्यादाका उल्लंघन करनेवाला द्वन्द्वयुद्ध होने लगा। इसी समय पूर्वोक्त प्रकारसे भगवान् शंकरकी आराधना करके इन्द्र भी युद्धमें लग गये। उन्होंने देवताओंको साथ लेकर वृत्रासुरका पीछा किया। व्योमासुरने यमराजके साथ तथा तीक्ष्णकोपनने अग्निके साथ युद्ध आरम्भ किया। वायुके साथ धूम और नैर्ऋतके साथ अतिकोपन लड़ने लगा। कुबेरके साथ कूष्माण्ड तथा ईशके साथ दुःसह भिड़ गया। इनके सिवा और भी बहुतसे महाबली दैत्य देवताओंके साथ द्वन्द्वयुद्ध करने लगे। उन्होंने गदा, पट्टिश, खड्ग, शक्ति, तोमर, मुद्गर, ऋष्टि, भिन्दिपाल, पास, प्रास तथा मुष्टिक आदिसे प्रहार किया। उसी प्रकार देवता भी दधीचिकी हड्डियोंसे बने हुए उत्तम अस्त्र-शस्त्रोंद्वारा असुरोंको विदीर्ण करने लगे। देवताओंकी मार खाकर दैत्य पुनः पराजयको प्राप्त हुए। उन्हें भयभीत देख वृत्रासुरने समझाया— 'वीरो! युद्ध स्वर्गका द्वार है, इसका त्याग कदापि नहीं करना चाहिये। जिनकी संग्राममें मृत्यु होती है, वे परम पदको प्राप्त होते हैं। विद्वान् पुरुष जहाँ कहीं भी सम्भव हो संग्राममें मृत्युकी अभिलाषा करते हैं। जो लोग युद्ध छोड़कर भागते हैं, वे निश्चय ही नरकमें पड़ते हैं। महापातकी मनुष्य भी यदि गौ, ब्राह्मण, भृत्य, कुटुम्ब तथा स्त्रीकी रक्षाके लिये हाथमें शस्त्र लेकर युद्ध करें तथा वे शस्त्रोंके आघातसे घायल हो जायँ अथवा युद्धस्थलमें ही प्राण त्याग दें तो उन्हें निश्चय ही उत्तम लोककी प्राप्ति होती है। वे ज्ञानियोंके लिये भी दुर्लभ उत्कृष्ट पदको प्राप्त कर लेते हैं। अतः तुमलोगोंको अपने स्वामीके कार्य-साधनमें पूर्णतः तत्पर रहकर युद्ध करना चाहिये।' वृत्रके इस प्रकार समझानेपर असुरोंने उसकी आज्ञा शिरोधार्य की और देवताओंके साथ ऐसा घमासान युद्ध आरम्भ किया, जो सम्पूर्ण लोकोंके लिये भयंकर था। इधर मारनेकी इच्छासे इन्द्रको आते देख वृत्रासुर ठठाकर हँस पड़ा; उसका वह अट्टहास इन्द्रको भी भयभीत कर देनेवाला था। वीर वृत्रासुर बड़ा तेजस्वी था। उस समय वह दैत्योंका अधिपति बना हुआ था। उसके मनमें सुरश्रेष्ठ इन्द्रको निगल जानेकी इच्छा हुई और वह बहुत बड़ा मुँह फैलाकर इन्द्रकी ओर बढ़ा। समीप आनेपर उसने ऐरावत हाथी, वज्र और किरीटसहित इन्द्रको सहसा निगल लिया और वह नाचने तथा गर्जना करने लगा। पलक मारते-मारते इन्द्र वृत्रासुरके ग्रास बन गये। वहाँ उपस्थित रहकर यह दुर्घटना देखनेवाले देवताओंमें बड़ा हाहाकार मचा। धरती काँप उठी। हजारों उल्कापात होने लगे तथा सम्पूर्ण चराचर जगत्में अन्धकार छा गया। उस समय सब देवता चिन्तामग्न हो ब्रह्माजीके पास गये और वृत्रासुरकी सारी करतूत उन्होंने ब्रह्माजीसे कह सुनायी। सुनकर लोकपितामह ब्रह्माने चित्तको भलीभाँति एकाग्र करके भगवान् शंकरका स्तवन किया। उसी समय आकाशवाणी हुई—'इन्द्रने प्रदोषव्रतका अनुष्ठान करते समय कुछ विपरीत कार्य कर डाला है। जो मूर्ख शिवनिर्माल्य, अर्घा, शिवलिंगकी छाया तथा देव-मन्दिरका लंघन करते हैं, वे शिव-गणोंमें प्रधान चण्डेशके द्वारा दण्डनीय हैं; इसमें

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

तनिक भी सन्देह नहीं है। इसलिये लिंगपूजनपूर्वक प्रदक्षिणा और नमस्कार करनेसे अवश्य कल्याण होता है। ऐसी उत्तम बुद्धि रखकर प्रयत्नपूर्वक लिंगपूजन करना चाहिये। कनेर, मदार, भटकटइया, धतूर, शतपत्र, अमलतास, पुन्नाग (सँदेसरा), मौलसिरी, नागकेसर, नीलकमल, कदम्ब, आक तथा नाना प्रकारके कमल आदि पुष्प तीनों कालमें सदा पवित्र जानने चाहिये। चमेली, बेला, सेवती, श्यामपुष्प, कुटज, कर्णिकार, कुसुम्भ, लाल कमल— ये पुष्प विशेषतः सायंकालमें शिवलिंगपूजनके लिये श्रेष्ठ बताये गये हैं। कमलके फूल तीनों कालमें पवित्र माने गये हैं। रात्रिमें केवल कुमुदके फूल विशेष पवित्र बताये गये हैं। इस प्रकार पूजा-भेदको जानकर शिवलिंगका पूजन करना चाहिये। विधिज्ञ पुरुषोंको शिवालयमें सदा शास्त्रीय विधिका पालन करना चाहिये। शिवलिंग और नन्दिकेश्वरके बीचमें होकर अथवा अर्घान्तरकी परिक्रमा नहीं करनी चाहिये। यदि कोई करता है तो पापका भागी होता है। इस इन्द्रने राजस्वभावका आश्रय लेकर वैसी ही प्रदक्षिणा (जिसका कि निषेध किया गया है) की है। इसीलिये इसका किया हुआ सब कुछ निष्फल हो गया और यही कारण है कि आज वृत्रासुरने इन्द्रको अपना ग्रास बना लिया। देवताओ! अब तुम्हीं लोग महारुद्र-विधानके अनुसार शिवलिंगपूजन करो, जिससे इन्द्र शीघ्र ही छुटकारा पा सकें।'

आकाशवाणीके कथनानुसार देवताओंने प्रतिदिन भगवान् शंकरका पूजन और दशांश हवन आरम्भ किया। तब देवराज इन्द्र भगवान् शिवके प्रसादसे सहसा वृत्रासुरका पेट फाड़कर बाहर निकल आये। हाथी, वज्र, किरीट और कुण्डलसहित परम शोभासम्पन्न महातेजस्वी इन्द्रको देखकर सब देवता, गन्धर्व, अप्सरा, यक्ष तथा ऋषि-मुनि बड़े प्रसन्न हुए। देवताओंकी दुन्दुभियाँ बज उठीं। अनेक शंखोंकी ध्वनि होने लगी। इन्द्रके संकटमुक्त होते ही समस्त देवलोक-निवासियोंमें एक ही साथ महान् हर्षोल्लास छा गया। इन्द्र जहाँ संकटमुक्त हुए थे, वहाँ शची देवी भी आ पहुँचीं। महर्षियोंने शचीके साथ इन्द्रका अभिषेक किया तथा सबने यत्नपूर्वक उनके लिये पुण्याहवाचन किया। विप्रवरो! इस प्रकार जब महर्षियोंने इन्द्रका अभिषेक किया, तब इस पृथ्वीपर अधिकाधिक मंगल-उत्सव होने लगे। इन्द्रके वज्रसे विदीर्ण किया हुआ वृत्रासुरका अत्यन्त अद्भुत शरीर वहीं गिरकर मेरुगिरिके शिखरकी भाँति सुशोभित होने लगा। उसी भूमिमें ब्रह्महत्या है, जहाँ वृत्रासुरका भयानक शरीर गिरा था। गंगा और यमुनाके बीचमें जो भूमि है, जिसे अन्तर्वेदी कहते हैं, वह पुण्य-भूमि बतायी गयी है। वह लोकपावन भूमि सर्वत्र प्रसिद्ध है। वृत्रासुरके वधसे उत्पन्न होनेवाली ब्रह्महत्या जिस देशमें प्रविष्ट हुई, वह पापी बताया गया है। उस मल-भूमिमें ही वृत्रासुरका महान् मस्तक पड़ा था जिसे इन्द्र आदि देवताओंने छः महीनोंमें काटा है। इस प्रकार वृत्रासुरका वध करके इन्द्रने विजय प्राप्त की और वे शचीनाथ निर्भय होकर इन्द्रासनपर विराजमान हुए।

~~~०~~~

बलिके द्वारा देवताओंकी पराजय, अदितिके व्रत-तपस्यासे सन्तुष्ट हो भगवान्‌का वामनरूपमें अवतार, बलिके पूर्वजन्मका प्रसंग तथा बलिपर वामनजीकी कृपा

लोमशजी कहते हैं—इसी बीचमें दैत्योंने पाताल-निवासी राजा बलिके पास आकर इन्द्रकी सारी चेष्टाएँ कह सुनायीं। उनकी यह बात सुनकर उदार बुद्धिवाले विरोचनपुत्र बलिने शुक्राचार्यसे पूछा—'भगवन्! इन्द्र किस प्रकार हमारे अधीन हो सकते हैं।' शुक्राचार्यने उत्तर दिया—'दैत्यराज! तुम विश्वजित्

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth
~~~

नामक यज्ञ करो। यज्ञके बिना कार्य सिद्ध नहीं होगा।' 'ऐसा ही करूँगा' यों कहकर उनकी आज्ञा शिरोधार्य करनेके पश्चात् दैत्यराज बलिने यज्ञ करनेका विचार किया। बलिका हृदय बड़ा उदार था। उन्होंने यज्ञके लिये जो-जो पदार्थ आवश्यक थे, उन सबका प्रयत्नपूर्वक संग्रह किया। महामना शुक्रने वह महायज्ञ आरम्भ कराया। यज्ञकी दीक्षा लेकर राजा बलिने अग्निदेवको हविष्यसे तृप्त किया। विधिपूर्वक यज्ञ-कर्मद्वारा जब अग्निदेवको आहुति दी जा रही थी उसी समय अग्निमेंसे बड़ा ही अद्भुत रथ प्रकट हुआ। उसमें चार घोड़े जुते हुए थे। अनेक ध्वज फहरा रहे थे। वह महान् कान्तिमान् रथ भाँति-भाँतिके शस्त्रोंसे संयुक्त और अनेकानेक अस्त्रोंसे अलङ्कृत था। रथ प्रकट होनेके पश्चात् शुक्राचार्यकी आज्ञा लेकर बलिने 'अवभृथ-स्नान' किया। फिर उस रथकी पूजा करके राजा बलि उसपर आरूढ़ हुए और दैत्योंकी सेना साथ लेकर इन्द्रसे युद्ध करनेके लिये तत्काल ही स्वर्गलोकमें जा पहुँचे। देवपुरीको दैत्योंद्वारा घिरी हुई देख वे श्रेष्ठ देवता बहुत देरतक परस्पर विचार करके बृहस्पतिजीसे बोले—'महाभाग! अब हम क्या करें। दैत्योंके प्रधान-प्रधान वीर युद्धकी इच्छासे यहाँ आ पहुँचे हैं।'

उनकी बात सुनकर बृहस्पतिजीने कहा—'देवताओ! ये दैत्यलोग अभी-अभी यज्ञ समाप्त करके शुक्राचार्यकी आज्ञा लेकर यहाँ आये हैं। ये सभी इस समय तपस्या और पराक्रमके द्वारा अजेय हैं।' गुरुका यह वचन सुनकर सम्पूर्ण देवता लज्जित हो गये। इन्द्रकी भी बुद्धि काम नहीं दे रही थी। वे गुरुकी फटकार पाकर लज्जायुक्त और चिन्तामग्न हो गये। सब देवता भयसे व्याकुल हो कश्यपजीके पवित्र आश्रमपर गये। वहाँ उन सबने माता अदितिसे दैत्योंकी सारी चेष्टाएँ कह सुनायीं। वह अप्रिय समाचार सुनकर पुत्रवत्सला अदितिने कश्यपजीसे कहा—'महर्षे! देवताओंपर बड़ी भारी विपत्ति आयी है; मेरी बात सुनें और सुनकर उसके लिये कोई उपाय करें। प्रजापते! देवता अमरावती छोड़कर आपके आश्रममें आये हैं। आप उनकी रक्षा करें।' अदितिकी बात सुनकर कश्यपने कहा—'भामिनि! इस समय असुरोंका क्षय बड़ी भारी तपस्याके द्वारा ही हो सकता है। देवताओंकी कार्य-सिद्धि बहुत शीघ्र नहीं हो सकती। महाभागे! मैं तुम्हारे मनोरथकी सिद्धिके लिये यह व्रत बतला रहा हूँ। शुभे! इसे प्रयत्नपूर्वक शास्त्रोक्त विधिके अनुसार करो। देवि! भाद्रपदमासमें दशमी तिथिको मनुष्य संयम-नियमके साथ पवित्रतापूर्वक रहकर भगवान् विष्णुकी प्रसन्नताके लिये एकभुक्तव्रत करे (एक ही बार भोजन करे)। सुन्दरि! भगवद्भक्तोंको चाहिये कि वे सम्पूर्ण मनोवांछित वरोंके ईश्वर साक्षात् श्रीहरिकी प्रार्थना करें। प्रार्थनाका मन्त्र इस प्रकार है—

तव भक्तोऽस्म्यहं नाथ दशम्यादि दिनत्रयम्।
व्रतं चराम्यहं विष्णो अनुज्ञां दातुमर्हसि॥

'हे नाथ! मैं आपका भक्त हूँ और दशमीसे लेकर तीन दिनतक व्रत करना चाहता हूँ। विष्णो! इसके लिये आप आज्ञा दें।'

'इसी मन्त्रसे जगदीश्वर श्रीहरिकी प्रार्थना करनी चाहिये। एक ही बार भोजन करे। वह एक बारका भोजन भी केलेके पत्तेमें ही ग्रहण करना चाहिये। उस भोजनमें नमक वर्जित है। व्रती पुरुष एकादशी तिथिको यत्नपूर्वक उपवास करे और रात्रिकालमें विशेष चेष्टा करके जागता रहे। फिर द्वादशी तिथिमें विधिपूर्वक भलीभाँति उत्तम ब्राह्मणोंको भोजन कराकर कुटुम्बी-जनोंके साथ पारण करे। इस प्रकार बारह महीनोंतक प्रतिमास आलस्य छोड़कर इस व्रतका अनुष्ठान करे। वर्षके अन्तमें पुनः भाद्रपदमास आनेपर एकादशीको अपनी शक्तिके अनुसार सोने या चाँदीकी विष्णु प्रतिमा बनाकर उसे कलशपर स्थापित करे। उसीमें यत्नपूर्वक भगवान् विष्णुकी पूजा करके व्रती पुरुष सब दोषोंकी शान्तिके लिये श्रवण-नक्षत्रयुक्त पापनाशिनी द्वादशी तिथिको उपवास करे। महाभागे! इस प्रकार तुम इस कल्याणमय व्रतका अनुष्ठान करो।'

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

पतिव्रता अदितिने देवताओंकी कार्यसिद्धिके लिये पूर्ण एकाग्रताके साथ कश्यपजीके बताये हुए उस व्रतका पालन किया। एक वर्षतक इस प्रकार व्रत करनेसे भगवान् श्रीहरि सन्तुष्ट हो गये। ब्राह्मणो! उस समय श्रवण-नक्षत्रयुक्त द्वादशी तिथिको भगवान्का 'वामन' रूपमें प्रादुर्भाव हुआ। वे ब्रह्मचारी बालकका रूप धारण करके परम शोभायमान दिखायी देते थे। उनके दो भुजाएँ थीं, कमलके समान खिले हुए सुन्दर नेत्र थे। उनके श्रीअंगोंकी कान्ति अलसीके फूलकी भाँति श्याम थी। वे वनमालासे अलंकृत थे। अदिति देवी पूजाके मध्यमें ही भगवान्का इस रूपमें दर्शन पाकर आश्चर्यचकित हो उठीं। उस समय उन्होंने कश्यपजीके साथ भगवान्का इस प्रकार स्तवन किया—'जो कारणके भी परम कारण हैं उन विश्वात्मा, विश्वस्रष्टा तथा अजन्मा श्रीहरिको नमस्कार है, नमस्कार है। अनन्तरूप श्रीहरिको नमस्कार है, नमस्कार है। जिनका परम धाम अनन्त है तथा जो साक्षात् परमात्मरूप हैं, उन भगवान्को नमस्कार है। हे सच्चिदानन्दमय परमात्मदेव! आप पर, अपर तथा ज्ञानवान् सबके आत्मा हैं। आपको नमस्कार है। परावरात्मन्! (कार्य-कारणरूप) आपका स्वरूप सबसे श्रेष्ठ है, आपका बोध कभी कुण्ठित नहीं होता। आपको बारंबार नमस्कार है।'*

इस प्रकार अदितिद्वारा स्तुति की जानेपर देवताओंके पालक भगवान् विष्णु देवमाता अदितिसे बोले—'देवि! मैं तुम्हारी उत्कृष्ट तपस्यासे सन्तुष्ट होकर इसी शरीरसे देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके लिये प्रकट हुआ हूँ।' भगवान्का वचन सुनकर अदितिने कहा—'भगवन्! महाबली असुरोंने देवताओंको परास्त कर दिया है। जनार्दन! अब सभी देवता आपकी शरणमें आये हैं, आप उन शरणागतोंकी रक्षा करें।' संतोंके आश्रय तथा वैकुण्ठधामके स्वामी एकमात्र श्रीहरिने अदितिकी बात सुनकर तथा देवताओं और राजा बलिकी सारी चेष्टाएँ जानकर मन-ही-मन विचार किया कि आज मुझे कौन-सा कार्य करना चाहिये, जिससे देवताओंको विजय प्राप्त हो और प्रधान-प्रधान दैत्योंको भी हार खानी पड़े।

उधर बलि आदि असुरोंको यह मालूम नहीं था कि देवता नाना प्रकारके रूप धारण करके स्वर्गसे निकलकर कश्यपजीके आश्रमपर चले गये हैं। उस समय दैत्योंने अमरावतीपुरीकी चहारदीवारीपर चढ़कर देवराज इन्द्रको शीघ्र मार डालनेकी इच्छासे ज्यों ही उसके भीतर प्रवेश किया, त्यों ही उन्हें वह सारी नगरी सूनी दिखायी दी। तब शुक्राचार्यने महाभिषेककी विधिसे असुरोंद्वारा घिरे हुए राजा बलिको इन्द्रके सिंहासनपर अभिषिक्त कर दिया। इस प्रकार स्वर्गलोकके राज्यपर प्रतिष्ठित हुए विरोचनकुमार बलि वहाँकी उत्तम विभूतिके द्वारा महेन्द्रसे भी अधिक शोभायमान हुए। ऋषि, अप्सरा, गन्धर्व, किन्नर, नाग तथा असुरसमुदाय इन्द्रकी ही भाँति उनकी सेवा करने लगे। सम्पूर्ण

* प्रादुर्बभूव द्वादश्यां श्रवणेन तदा द्विजः। वटुरूपधरः श्रीमान् द्विभुजः कमलेक्षणः॥
अतसीपुष्पसङ्काशो वनमालाविभूषितः। तं दृष्ट्वा विस्मयाविष्टा पूजामध्येऽदितिस्तदा॥
कश्यपेन समायुक्ता सास्तौषीत् कमलेक्षणा।

अदितिरुवाच

नमो नमः कारणकारणाय विश्वात्मने विश्वसृजेऽभवाय।
अनन्तरूपाय नमो नमस्ते त्वनन्तधाम्ने परमात्मरूपिणे॥
परापराणां परमात्मदैवतं चिन्मात्रकं ज्ञानवतां स्वरूपिणे।
वरेण्यरूपाय परावरात्मन्नकुण्ठबोधाय नमो नमस्ते॥
(स्क० पु०, मा० के० १८। २४—२८)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

प्राणियोंमें दानकी दृष्टिसे राजा बलि ही सबसे बढ़कर दाता हैं। याचक जिन-जिन कामनाओंको प्राप्त करनेकी इच्छा करते, दानवराज बलि सम्पूर्ण याचकोंको वही-वही वस्तु प्रदान करते थे।

शौनकजीने पूछा—महाभाग सूतजी! देवराज इन्द्र तो स्वर्गमें रहकर कभी दान नहीं देते हैं। राजा बलि कैसे दाता हुए? यह सब यथार्थरूपसे बतलाइये।

लोमशजी बोले—ब्राह्मणो! इन्द्र पहले जन्ममें याज्ञिक रहे हैं। उन्होंने सौ अश्वमेध यज्ञोंका अनुष्ठान करके अमरावतीपुरीका राज्य प्राप्त किया है। अब वे केवल भोग-लोलुप रह गये हैं। अभीष्ट फल पानेके पश्चात् इन्द्रमें कृपणता आ गयी है। आज जो इन्द्र है वह कभी कीड़ा हो सकता है तथा पहलेका कीट इन्द्रके रूपमें उत्पन्न हो जाता है। इस विषयमें दानसे बढ़कर दूसरा कोई ऐसा साधन नहीं है। (निष्काम) दानसे ज्ञान प्राप्त होता है और ज्ञानसे मोक्ष। इसमें संशय नहीं है।

अब विरोचनपुत्र बलिने पूर्वजन्ममें जो कुछ किया था उसे सुनो—प्राचीन कालमें देवताओं और ब्राह्मणोंकी निन्दा करनेवाला एक महापापी जुआरी था। वह सदा परायी स्त्रियोंमें आसक्त रहता था। एक दिन उसने कपटपूर्ण जूएके द्वारा बहुत धन जीता। फिर अपने हाथोंसे स्वस्तिक (पानका तिकोना बीड़ा) बनाकर तथा गन्ध और माला आदि सामग्री जुटाकर एक वेश्याको भेंट देनेके लिये वह उसके घरकी ओर दौड़ा। रास्तेमें उसके पैर लड़खड़ा गये और उसी समय वह पृथ्वीपर गिर पड़ा। गिरनेपर क्षणभरके लिये उसे मूर्च्छा आ गयी; जब मूर्च्छा दूर हुई तब पूर्वजन्मके किसी पुण्यके प्रभावसे उसके मनमें सद्बुद्धि उत्पन्न हुई। जुआरी दुःखी होकर खेद एवं वैराग्यको प्राप्त हुआ। मूर्ख और जुआरी होनेपर भी उसने पृथ्वीपर पड़ी हुई गन्ध, पुष्प आदि श्रेष्ठ सामग्रीको भगवान् शिवकी सेवामें समर्पित कर दिया। जीवनमें केवल यही एक पुण्य उसके द्वारा सम्पन्न हुआ था। मृत्युके बाद जब यमराजके दूत उसे यमलोक ले गये, तब उस पापीसे सबको भय देनेवाले यमराजने कहा—'ओ मूर्ख! तू अपने पापके कारण बड़े-बड़े नरकोंमें यातना भोगनेके योग्य है।' उसने कहा—'यमराज! यदि मेरा कोई पुण्य भी हो तो उसका भलीभाँति विचार कर लीजिये।' तब चित्रगुप्तने कहा—'तुमने देहान्त होनेके समय पृथ्वीपर पड़े हुए कुछ गन्ध और पुष्प आदिको भगवान् शिवके उद्देश्यसे दान किया है, परमात्मा शिवको वह सामग्री समर्पित की है; उस सत्कर्मके फलसे तुम्हें तीन घड़ीके लिये इन्द्रका प्रसिद्ध पद प्राप्त होगा। चित्रगुप्तकी बात सुनकर जुआरीने कहा—'मैं सबसे पहले अपना शुभ कर्म भोगूँगा।' उसके ऐसा कहनेपर उदारबुद्धिवाले बृहस्पतिजी सम्पूर्ण देवताओंके साथ तत्काल वहाँ आ पहुँचे और उस जुआरीको ऐरावत हाथीपर चढ़ाकर इन्द्रभवनमें ले गये। वहाँ पवित्रात्मा बृहस्पतिने इन्द्रको समझाया—'पुरन्दर! तुम मेरी आज्ञासे इस जुआरीको तीन घड़ीके लिये अपने सिंहासनपर बिठाओ।' गुरुकी बात मानकर इन्द्र उदासीनभावसे राज्य छोड़कर अन्यत्र चले गये। तदनन्तर जुआरीको देवराजके भवनमें पहुँचाया गया।

तब जुआरीने वहाँ दान करना आरम्भ किया। महादेवजीके उस प्रिय भक्तने 'ऐरावत' हाथी अगस्त्यको दे दिया। उसकी बुद्धि बड़ी उदार थी। उसने 'उच्चैःश्रवा' नामक घोड़ा विश्वामित्रको दे दिया। उसका महान् यश फैला हुआ था। उसने 'कामधेनु' गाय महर्षि वसिष्ठको दे दी और 'चिन्तामणि' नामक रत्न गालव मुनिको समर्पित कर दिया। उस महातेजस्वी दाताने 'कल्पवृक्ष' उठाकर कौण्डिन्य मुनिको दे दिया। जुआरी होकर भी वह बड़ा भाग्यशाली था, उसने भगवान् शंकरकी प्रसन्नताके लिये वैसे-वैसे अनेक प्रकारके रत्न ऋषि-मुनियोंको सहर्ष दान कर दिये। जबतक तीन घड़ी पूरी नहीं हुई तबतक वह दान देता ही रहा। तीन घड़ीके बाद फिर

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

वह स्वर्गसे चला गया। इन्द्र अमरावतीके सिंहासनपर

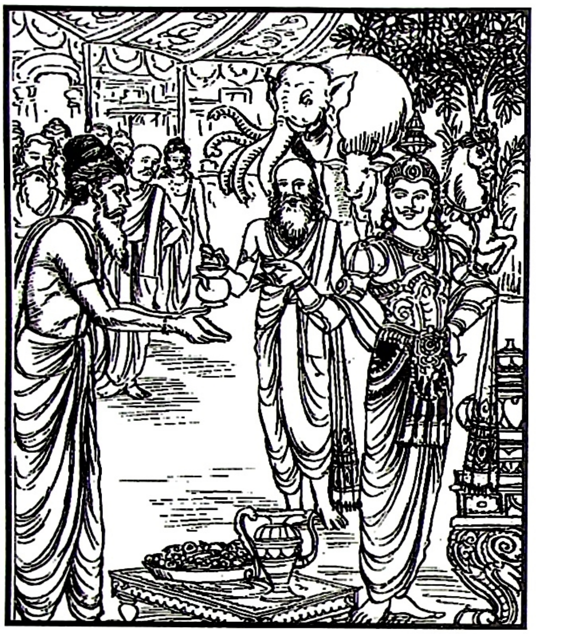

बैठकर बृहस्पतिजीसे इस प्रकार बोले—'गुरुदेव! ऐरावत हाथी नहीं दिखायी देता, यही दशा उच्चैःश्रवा नामक घोड़ेकी भी है। पारिजात आदि सभी पदार्थ किसीने चुरा लिये हैं।' तब बृहस्पतिजी बोले—'जुआरीने यहाँ आकर महान् कर्म किया है, जबतक उसकी सत्ता रही है उसके भीतर ही उसने आज ऐरावत आदि सभी वस्तुएँ ऋषियोंको दान कर दी है। बड़ी भारी सत्ता हस्तगत होनेपर जो स्वाधीन होते हैं और प्रमादमें न पड़कर सदा भगवान् शिवके ध्यानमें तत्पर रहते हैं, वे ही भगवान् शंकरके प्रिय भक्त हैं। वे कर्मफलोंका परित्याग कर केवल ज्ञानका आश्रय ले परमपदको प्राप्त होते हैं।'

बृहस्पतिजीका यह वचन सुनकर इन्द्रने पूछा—'आचार्य! अब हमारा क्या कर्तव्य है, यह शीघ्र बतलानेकी कृपा करें।' बृहस्पतिजीने कहा—'इन्द्र! अपनी समृद्धिके लिये ये सारी बातें प्रायः यमराजसे कहनी चाहिये।' 'ठीक है' ऐसा कहकर देवराज इन्द्र गुरु बृहस्पतिके साथ सहसा वहाँसे चल पड़े। अपना कार्य सिद्ध करनेकी इच्छासे जब इन्द्र संयमनीपुरीमें पहुँचे तब यमराजने उनका बड़ा सत्कार किया। उस समय इन्द्रने कहा—'धर्मराज! तुमने मेरा पद एक दुरात्मा जुआरीको दे दिया, किंतु उसने वहाँ पहुँचकर बहुत बुरा काम किया। तुम सच मानो उसने मेरे सभी रत्न इन ऋषियोंको दान कर दिये हैं। तुम सब कुछ जानते हो, फिर भी एक जुआरीको मेरा स्थान कैसे दे दिया?'

तब धर्मराजने इन्द्रसे इस प्रकार कहा—'तुम बड़े-बड़े देवेश्वरोंके राजा हो। बूढ़े हो गये, किंतु अभीतक तुम्हारी राज्यविषयक आसक्ति दूर नहीं हुई। केवल सौ यज्ञोंका अनुष्ठान करके एक ही जन्मके उपार्जित पुण्यका फल यहाँ तुमने प्राप्त किया। परंतु जुआरीने तुम्हारी अपेक्षा महान् पुण्यका उपार्जन किया है। अब धन देकर या चरणोंमें मस्तक झुकाकर विशेषतः अगस्त्य आदि सभी मुनियोंकी प्रार्थना करके तुम्हें अपने ऐरावत आदि रत्न प्राप्त करने चाहिये।' 'बहुत अच्छा' कहकर इन्द्र अपनी अमरावतीपुरीको चले गये। वहाँ जाकर सम्पत्तिशालियोंमें सबसे श्रेष्ठ इन्द्रने बहुत धन देकर ऋषियोंसे अपनी वस्तुएँ लौटायीं। इस प्रकार अपने रत्न पाकर महातेजस्वी इन्द्र शचीदेवीके साथ अपनी पुरीमें गये। यमराजने जुआरीको पुनः जन्म दिया। वह अपने किसी कर्मविपाकसे विरोचनका पुत्र हुआ। उस समय उसकी माताका नाम सुरुचि था। सुरुचि विरोचनकी रानी थी। उसके पिताका नाम वृषपर्वा था। वह उदार मनवाला जुआरी जब सुरुचिके गर्भमें आकर स्थित हुआ, तबसे प्रह्लादकुमार विरोचन तथा सुरुचिका मन धर्म और दानमें अधिक लगने लगा। उसीने गर्भमें आकर माता-पिताकी मति बहुत ही उत्तम कर दी थी। वैसी बुद्धि बड़े-बड़े मनीषियोंके लिये भी दुर्लभ है। विरोचनका पुत्र जब गर्भमें था, उसी समय इन्द्र दैत्यराज विरोचनको मारनेकी इच्छासे भिक्षुक ब्राह्मणका रूप धारणकर उसके घर गये और इस प्रकार बोले—'राजन्! मुझे अपनी रुचिके अनुसार कुछ दान मिलना चाहिये।' याचककी बात सुनकर विरोचनने हँसते हुए कहा—'विप्रवर! यदि आपकी इच्छा हो तो मैं इस समय अपना

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

मस्तक भी दे सकता हूँ। इसके सिवा यह अपना अकण्टक राज्य भी आपको समर्पित कर दूँगा।'

विरोचनके ऐसा कहनेपर इन्द्रने सोच-विचारकर कहा—'महाभाग! मुझे अपना मुकुटमण्डित मस्तक उतारकर दे दीजिये।' ब्राह्मणरूपधारी इन्द्रके ऐसा कहनेपर प्रह्लादपुत्र विरोचनने बड़ी प्रसन्नताके साथ अपने ही हाथसे अपना मस्तक काटकर शीघ्रतापूर्वक इन्द्रको दे दिया। आर्त प्राणियोंको अपनी शक्तिके अनुसार जो कुछ दिया जाता है,

वह दान महान् पुण्यका हेतु होता है; उसका फल अक्षय बताया जाता है। तीनों लोकोंमें दानसे बढ़कर दूसरी कोई वस्तु नहीं है।* विरोचनका वह दान दैत्य, नरेन्द्र तथा नाग—इन तीनोंके लोकोंमें प्रसिद्ध हो गया। पूर्वजन्मका वह जुआरी ही विरोचनका महातेजस्वी पुत्र हुआ। पिताके मरनेपर जब उसका जन्म हो गया तब उसकी पतिव्रता माताने अपना शरीर त्याग दिया और वह तत्काल पतिलोकको चली गयी। शुक्राचार्यने उसी पुत्रको पिताके सिंहासनपर अभिषिक्त किया। वही महायशस्वी कुमार लोकमें बलिके नामसे विख्यात हुआ।

हम यह बात पहले ही बता आये हैं कि राजा बलिसे त्रस्त होकर सम्पूर्ण महाबली देवता कश्यपजीके शुभाश्रमपर चले गये थे। देवपुरीमें महायशस्वी बलि जब इन्द्रके पदपर प्रतिष्ठित हुए तब वे अपनी तपस्यासे स्वयं ही सूर्य बनकर तपने लगे, स्वयं ही इन्द्र, अग्नि और वायुका काम करने लगे। महात्मा बलिने धर्मराजके न रहनेपर भी धर्मलोकका संचालन किया। वे स्वयं ही ईशान होकर ईशानकोणमें विराजमान हुए। वे ही नैर्ऋत्यकोण और पश्चिममें क्रमशः निर्ऋति तथा वरुण हुए। राजा बलि ही उत्तर दिशामें धनाध्यक्ष कुबेर बनकर रहने लगे। इस प्रकार वे अकेले ही तीनों लोकोंका पालन करते थे। पूर्वजन्ममें जुआरीके रूपमें रहकर उन्होंने भगवान् शंकरका पूजन किया था। उस पूर्वाभ्यासके ही कारण बलि इस जन्ममें भी शिव-पूजापरायण थे और बड़े-बड़े दान किया करते थे। एक दिन श्रीमान् राजा बलि अपने गुरु शुक्राचार्यके साथ दैत्येन्द्रोंसे घिरे हुए अपनी सभामें बैठे थे। उस समय उन्होंने दैत्योंको सम्बोधित करके कहा—'सम्पूर्ण असुर पाताल छोड़कर यहीं मेरे समीप निवास करें। इस कार्यमें विलम्ब नहीं होना चाहिये।' यह सुनकर शुक्राचार्य हँस पड़े और बलिको समझाते हुए इस प्रकार बोले—'सुव्रत! यदि तुम यहीं आकर निवास करना चाहते हो तो सौ अश्वमेध यज्ञोंद्वारा अग्निदेवकी आराधना करो। वह भी यहाँ नहीं, कर्मभूमि भारतवर्षमें उपस्थित होकर करो। इस कार्यमें तुम्हें विलम्ब नहीं करना चाहिये।' 'अच्छा, ऐसा ही करूँगा' यों कहकर मनस्वी महात्मा बलि तत्काल स्वर्गलोकको छोड़कर दैत्यों तथा शुक्राचार्यजीके साथ भूलोकमें चले आये।

---

* तद्दानं च महापुण्यमार्तेभ्यो यत्प्रदीयते।
स्वशक्त्या यच्च किञ्चिच्च तदानन्त्याय कथ्यते। दानात् परतरं नान्यत् त्रिषु लोकेषु विद्यते॥
(स्क० पु०, मा० के० १८। ४१-४२)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

उन्होंने सेवकोंको भी साथ ही ले लिया था। नर्मदा नदीके तटपर भृगुकच्छ नामसे प्रसिद्ध जो महान् तीर्थ है, वहाँ पहुँचकर दैत्यराजने सम्पूर्ण पृथ्वीको जीतकर अपने अधिकारमें किया। तत्पश्चात् गुरुकी आज्ञा ले अनेक अश्वमेध यज्ञोंद्वारा उन्होंने बड़ी भक्तिके साथ भगवान्का आराधन किया। विरोचनपुत्र बलि सत्यवादियोंमें सबसे श्रेष्ठ थे। उन्होंने ब्रह्मा और आचार्यका वरण करके सोलह ऋत्विजोंका भी वरण किया। फिर महात्मा शुक्रने भलीभाँति परीक्षा लेकर बलिको यज्ञकी दीक्षा दी और उनके द्वारा निन्यानबे यज्ञोंका अनुष्ठान करवाया। तत्पश्चात् बलिने अन्तिम अश्वमेध यज्ञ पूर्ण करनेका विचार किया। जबतक उनके सौ यज्ञ पूरे हों, उसके पहले मैं पूर्वोक्त प्रसंग बतला देना चाहता हूँ। पहले कहा जा चुका है कि अदिति देवीने उत्तम व्रतका अनुष्ठान किया और उस व्रतसे सन्तुष्ट होकर भगवान् श्रीहरि वामन ब्रह्मचारीके रूपमें उनके पुत्र होकर प्रकट हुए। परमेष्ठी ब्रह्माने आकर उन्हें यज्ञोपवीत दिया। महात्मा चन्द्रमाने दण्डकाष्ठ प्रदान किया। परम अद्भुत मृगचर्म और मेखला मँगायी गयी। पृथ्वी देवीने उन्हें चरणपादुका भेंट की। इसी तरह और लोगोंने भी वटुरूपधारी भगवान् विष्णुको अन्य आवश्यक वस्तुएँ अर्पित कीं।

तदनन्तर कश्यप और अदितिको प्रणाम करके महातेजस्वी वामनजी यजमान बलिकी यज्ञशालामें गये। उस समय सुरेश्वरगण उन वेदान्तवेद्य श्रीविष्णुकी महिमाका गान कर रहे थे। अनेक प्रकारके रूप और वेष धारण करनेवाले भगवान्ने उस यज्ञमें पहुँचकर सामवेदकी ऋचाओंका विधिपूर्वक गान किया। सामगानके अनन्तर वे इस प्रकार बोले—'राजन्! दैत्यराज हिरण्यकशिपुके पुत्र प्रह्लादजी हुए जो बड़े तेजस्वी, जितेन्द्रिय तथा विष्णुभक्त हैं; जिन्होंने दैत्यराजकी सभामें अतिशय तेजस्वी भगवान् नृसिंहको प्रकट किया था। महाभाग! उन्हीं प्रह्लादजीके पुत्र तुम्हारे पिताजी थे, जो संसारमें विरोचनके नामसे विख्यात हुए थे। उन महात्माने स्वयं ही अपना मस्तक दान करके इन्द्रको सन्तुष्ट किया था। राजन्! तुम उन्हीं महात्मा विरोचनके पुत्र हो। तुमने बड़े उत्तम यशका विस्तार किया है। तुम्हारे यशरूपी महान् दीपककी ज्योतिमें सम्पूर्ण देवता पतंगोंके समान दग्ध हो गये हैं। तुमने इन्द्रको भी जीत लिया है, इसमें संशय नहीं है। सुव्रत! मैं तुम्हारे सब चरित सुन चुका हूँ। तुम बड़े मनस्वी हो तथा तीनों लोकोंमें अधिक-से-अधिक दान करनेवाले दाताके रूपमें तुम्हारी ख्याति है। तथापि मेरे लिये तुम्हें तीन पग पृथ्वी देनी चाहिये।' तब विरोचनकुमार बलिने हँसकर कहा—'महाभाग! मैं पर्वत, बड़े-बड़े जंगल तथा सम्पूर्ण द्वीपोंसहित समूची पृथ्वी तुम्हें दूँगा, तुम मेरी दी हुई इस भूमिको ग्रहण करो।' वामनजीने कहा—'दैत्यराज! स्वयं चलते समय मेरे तीन पगोंसे जितनी पृथ्वी मापी जाय, उतनी ही मुझे दीजिये।' ब्रह्मचारीकी बात सुनकर बलिने हँसते हुए कहा—'बहुत अच्छा, लीजिये।' यों कहकर बलिने कश्यपकुमार वामनजीका भलीभाँति पूजन किया। उस समय बड़े-बड़े ऋषि तथा मुनीश्वर महातेजस्वी बलिके सौभाग्यकी सराहना कर रहे थे। वामनजीका पूजन करके राजा बलि ज्यों ही उन्हें दान देनेको उद्यत हुए त्यों ही शुक्राचार्यने उन्हें रोक दिया और कहा—'दैत्यराज! ब्रह्मचारीके रूपमें ये साक्षात् विष्णु हैं। इन्हें तुम दान न देना। ये तो इन्द्रका कार्य सिद्ध करनेके लिये आये हैं और तुरंत तुम्हारे यज्ञमें विघ्न डाल रहे हैं। अतः अध्यात्मतत्त्वका प्रकाश करनेवाले ये विष्णु तुम्हारे द्वारा इस समय पूजा पानेके योग्य नहीं हैं। इन्होंने ही पहले मोहिनीरूप धारण किया था। उस समय देवताओंको तो अमृत पिलाया और राहुको मार डाला। इन्होंने ही दैत्योंका संहार किया है और महाबली कालनेमि भी इन्हींके हाथों मारा गया है। ये ही ईश्वर हैं और ये ही सम्पूर्ण विश्वके पालक हैं। महामते!

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

अब तुम अपने मनसे हित और अहित सबका विचार करके कोई काम करो।'

गुरु शुक्राचार्यके इस प्रकार समझानेपर राजा बलिने हँसकर मेघगर्जनाके समान गम्भीर वाणीमें कहा—'गुरुदेव! जिन वाक्योंद्वारा आपने मुझे विचलित किया है, वे सब मेरे हितकी दृष्टिसे ही कहे गये हैं। तथापि विचारदृष्टिसे देखनेपर आपके हितकारक वचन भी मेरे लिये अहितकारक ही होंगे। ब्रह्मचारीका रूप धारण करके आये हुए इन भगवान् विष्णुको मैं इनकी माँगी हुई वस्तु अवश्य दूँगा। ये विष्णु सम्पूर्ण कर्मों और उनके फलोंके भी स्वामी हैं। इसलिये दानके सबसे उत्तम पात्र हैं। जिनके हृदयमें ये सदा विराजमान रहते हैं वे मनुष्य भी सर्वोत्तम पात्र माने जाते हैं, यह बात ध्रुव सत्य है। जिनके नामसे यहाँ सब कुछ पवित्र कहा जाता है; जिनके चिन्तनसे ये वेद, यज्ञ, मन्त्र तथा तन्त्र आदि सभी पूर्णताको प्राप्त होते हैं, वे ही ये समस्त विश्वके स्वामी सर्वात्मा श्रीहरि आज कृपा करके मेरा उद्धार करनेके लिये ही यहाँ पधारे हैं। इस बातको आप यथार्थ मानें। इसमें संशय नहीं है।'[१]

राजा बलिकी यह बात सुनकर शुक्राचार्य कुपित हो उठे। उन्होंने धर्मवत्सल दैत्यराजको रोषपूर्वक शाप देना आरम्भ किया। वे बोले—'ओ मूर्ख! तू मेरी आज्ञाका उल्लंघन करके दान करना चाहता है, इसलिये राज्यलक्ष्मीसे वंचित हो जा।' अथाह बोधवाले अपने महात्मा शिष्यको इस प्रकार शाप देकर शुक्राचार्यने अपने आश्रमको चले जानेका निश्चय किया। जब वे चले गये तब विरोचनकुमार बलि वामनजीकी पूजा करके उन्हें भूमिदान करनेको उद्यत हुए। दैत्यराजकी पतिव्रता पत्नी महारानी विन्ध्यावलि वहाँ आकर पतिदेवके अर्धांगरूपमें सुशोभित हुई। राजा बलि विधि-विधानके ज्ञाता थे। उन्होंने विधिपूर्वक ब्रह्मचारीके चरण पखारकर संकल्पके साथ भगवान् विष्णुको पृथ्वी दान की। उस महान् संकल्पको स्वीकार करते ही अजन्मा भगवान् विष्णु बढ़ने लगे। वे ही सम्पूर्ण जगत्के प्रभु तथा उत्पत्तिस्थान हैं। उन्होंने एक ही पैरसे सारी पृथ्वी माप ली। दूसरे पगसे ऊपरके सभी लोक व्याप्त कर लिये। उनका वह द्वितीय पग सत्यलोकमें जाकर ठहरा था। परमेष्ठी ब्रह्माने अपने कमण्डलुके जलसे भगवान्के उस चरणको पखारा। भगवान्के चरण पखारनेसे जो चरणोदक तैयार हुआ, उसीसे सम्पूर्ण पापोंका नाश करनेवाली तथा सबके लिये परम मंगलमयी श्रीगंगाजी प्रकट हुईं, जिन्होंने अपने पावन जलसे तीनों लोकोंको पवित्र किया, सगरके सभी पुत्रोंका उद्धार किया तथा जिनके जलसे महाराज भगीरथने उस समय भगवान् शंकरका जटाजूट भर दिया था।[२] भगवान् विष्णुकी चरणधूलिसे युक्त 'गंगा' नामक तीर्थ सब तीर्थोंमें प्रधान है। इसे ब्रह्माजीने प्रकट किया और राजा भगीरथने भूतलपर उतारा है। सम्पूर्ण चराचर जगत्को भगवान्ने दो ही पगोंसे

---

१. दास्यामि भिक्षितं त्वस्मै विष्णवे बटुरूपिणे। पात्रीभूतो ह्ययं विष्णुः सर्वकर्मफलेश्वरः॥
येषां हृदि स्थितो नित्यं ते वै पात्रतमा ध्रुवम्। यस्य नाम्ना सर्वमिह पवित्रमिदमुच्यते॥
येन वेदाश्च यज्ञाश्च मन्त्रतन्त्रादयो ह्यमी। सर्वे सम्पूर्णतां यान्ति सोऽयं विश्वेश्वरो हरिः॥
आगतः कृपया मेऽद्य सर्वात्मा हरिरीश्वरः। उद्धर्तुं मां न सन्देह एतज्जानीहि तत्त्वतः॥
(स्क० पु०, मा० के० १८। २—६)

२. सत्यलोकस्थितेनैव ब्रह्मणा परमेष्ठिना। कमण्डलुगतेनैवाम्भसा चावनिनेज ह॥
तत्पादसम्पर्कजलाच्च जाता भागीरथी सर्वसुमङ्गला च।
यया त्रिलोकी च कृता पवित्रा यया च सर्वे सगराः समुद्धृताः॥
यया कपर्दः परिपूरितो वै शम्भोस्तदानीं च भगीरथेन।
(स्क० पु०, मा० के० १९। १४—१६)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

माप लिया। फिर उस विराट् स्वरूपको छोड़कर देवाधिदेव भगवान् जनार्दन पुनः वामन ब्रह्मचारीके रूपमें अपने आसनपर विराजमान हुए। उस समय देवता, गन्धर्व, मुनि, सिद्ध और चारण यज्ञपति भगवान् विष्णुका दर्शन करनेके लिये बलिके यज्ञमें आये। ब्रह्माजीने वहाँ आकर परमात्मा श्रीहरिका स्तवन किया। गन्धर्वपतियोंने गीत गाये तथा अप्सराओं, विद्याधरियों और किन्नरोंने विशेष समारोहके साथ नृत्य किया। महात्मा बलिके यज्ञ-मण्डपमें प्रह्लादजी भी पधारे। अन्यान्य दैत्यपति भी बड़ी उतावलीके साथ वहाँ आ पहुँचे। उस समय भगवान् वामनने बलिकी पत्नी विन्ध्यावलिसे हँसकर पूछा—'देवि! तुम्हारे पतिके द्वारा आज मुझे तीन पग पृथ्वी मिलनी चाहिये। उसकी पूर्ति इस समय कहाँसे होगी, इसका उत्तर शीघ्र दो।' विन्ध्यावलि बड़ी साध्वी थी। उसे इस घटनासे तनिक भी विस्मय नहीं हुआ। वह भगवान् त्रिविक्रमसे इस प्रकार बोली—'देव! आप समस्त लोकोंके एकमात्र स्वामी हैं। आपने अपना भारी डग बढ़ाकर यह त्रिलोकी माप ली है। इसी प्रकार सम्पूर्ण जगत् आपसे व्याप्त है। संसारके एकमात्र बन्धु आप ही हैं। आपके स्वरूपकी तुलना कहीं नहीं है। भला हम-जैसे लोग आपको क्या दे सकते हैं? इसलिये इस समय मैं जो निवेदन करती हूँ, उसीके अनुसार कार्य कीजिये। मेरे स्वामीने इस समय आपको तीन पग भूमि देनेकी प्रतिज्ञा की थी। उसके अनुसार मेरे पूज्य पतिदेव तीनों पगोंके लिये स्थान इस प्रकार दे रहे हैं—प्रभो! देवेश्वर! आप अपना पहला पग मेरे मस्तकपर रखिये। जगत्पते! दूसरा पग मेरे इस बालकके मस्तकपर स्थापित कीजिये तथा जगन्नाथ! अपना तीसरा पग मेरे पतिके मस्तकपर रख दीजिये। केशव! इस प्रकार ये तीन पग मैं आपको दूँगी।'

विन्ध्यावलिकी यह बात सुनकर भगवान् विष्णु बड़े प्रसन्न हुए और राजा बलिसे मधुर वाणीमें बोले—'तात! मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ। बोलो—मैं तुम्हारा कौन-सा कार्य करूँ। महामते! सम्पूर्ण दाताओंमें तुम सबसे श्रेष्ठ हो, तुम्हारा कल्याण हो, तुम इच्छानुसार वर माँगो। मैं तुम्हारी सम्पूर्ण कामनाएँ पूर्ण किये देता हूँ।' भगवान् वामनने ऐसा कहकर विरोचनकुमार बलिको बन्धनसे मुक्त कर दिया और उन्हें छातीसे लगा लिया। तब बातचीत करनेमें चतुर राजा बलि इस प्रकार बोले—'प्रभो! आपने ही इस सम्पूर्ण चराचर जगत्को उत्पन्न किया है। अतः आपके चरणारविन्दोंके सिवा दूसरी कोई वस्तु मैं नहीं चाहता। देव! जनार्दन! आपके चरण-कमलोंमें मेरी भक्ति सदा बनी रहे। देवेश्वर! वह सनातन भक्ति बार-बार निरन्तर बढ़ती रहे।'

बलिके इस प्रकार प्रार्थना करनेपर भूतभावन भगवान् वामनने अत्यन्त प्रसन्न होकर कहा—'राजन्! तुम अपने भाई-बन्धु और सम्बन्धियोंके साथ सुतललोकमें चले जाओ।' यह सुनकर दैत्यराज बलि बोले—'देवदेव! आप ही बताइये, सुतललोकमें मेरा क्या काम है? मैं तो आपके पास ही रहूँगा, इसके विपरीत कुछ भी कहना उचित नहीं है।' तब भगवान् हृषीकेश राजा बलिके प्रति अत्यन्त कृपालु होकर बोले—'राजन्! मैं सदा तुम्हारे समीप रहूँगा। असुरश्रेष्ठ! तुम खेद न करो, मेरी बात

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

सुनो। मैं सुतललोकमें तुम्हारा द्वारपाल होकर रहूँगा, मेरे इस वचनको तुम वरदान समझो। आज मैं तुम्हारे लिये वरदायक होकर उपस्थित हूँ। अपने वैकुण्ठवासी पार्षदोंके साथ तुम्हारे घरमें निवास करूँगा।' अतुल तेजस्वी भगवान् विष्णुका यह वचन सुनकर दैत्यराज बलि असुरोंके साथ सुतललोकमें चले गये। वहाँ बाणासुर आदि सौ पुत्रोंके साथ वे सुखपूर्वक निवास करने लगे। महाबाहु बलि दाताओंके भी परम आश्रय हैं। तीनों लोकोंके याचक राजा बलिके पास जाते हैं और उनके द्वारपर विराजमान भगवान् विष्णु स्वयं उन्हें मुँहमाँगी वस्तुएँ देते हैं। कोई भोगकी कामना लेकर जाय या मोक्षकी, जिनकी जैसी रुचि होती है, उसीके अनुसार, उनको वह वस्तु वे समर्पित करते हैं।

भगवान् शंकरकी कृपासे ही राजा बलि ऐसे महत्त्वशाली हुए हैं। पूर्वकालमें जुआरीके रूपमें उन्होंने परमात्मा शिवके उद्देश्यसे जो दान किया था उसीका यह फल है। अपवित्र भूमिमें पहुँचकर गिरी हुई गन्ध, पुष्प आदि सामग्रीको भी परमात्मा शिवकी सेवामें समर्पित करके जब बलिने इतनी उन्नति की, तब जो लोग श्रद्धा और भक्तिसे महादेवजीकी सेवामें गन्ध, पुष्प और जल अर्पण करते हैं उनके लिये तो कहना ही क्या है? वे साक्षात् भगवान् शिवके समीप जाते हैं। ब्राह्मणो! भगवान् शिवसे बढ़कर दूसरा कोई पूजनीय देवता नहीं है। जो गूँगे हैं, अन्धे हैं, पंगु और जड़ हैं तथा जाति-बहिष्कृत, चाण्डाल, श्वपच और अन्त्यज हैं; वे भी यदि सदा भगवान् शिवके भजनमें तत्पर रहें तो परम गतिको प्राप्त होते हैं। अतः सम्पूर्ण मनीषी पुरुषोंके लिये भी भगवान् शिव ही सदा पूजनीय हैं। पूजनीय ही नहीं, विद्वानोंके द्वारा वे सदा चिन्तनीय और वन्दनीय भी हैं। परमार्थ-तत्त्वके ज्ञाता पुरुष अपने हृदयमें विराजमान भगवान् महेश्वरका निरन्तर चिन्तन करते रहते हैं।

तारकासुरको ब्रह्माजीका वरदान, हिमालयके घर सतीका पार्वतीरूपमें अवतार, शंकरजीके रोषसे कामदेवका भस्म होना तथा पार्वतीकी उग्र तपस्या

ऋषियोंने पूछा—महाभाग सूतजी! दक्षकुमारी सती जब अपने पिता दक्षके यज्ञमें अग्निप्रवेश करके अन्तर्धान हो गयीं तब पुनः कब और कहाँ प्रकट हुईं? वे पुनः किस प्रकार उन्हें मिलीं?

सूतजी बोले—ब्राह्मणो! दक्षकुमारी सतीदेवी जब अपने पिताके यज्ञमें अन्तर्धान हो गयीं, तब अपनी शक्तिसे बिछुड़े हुए भगवान् महेश्वर उत्तम तपस्यामें संलग्न हो गये। वे लीला-देह धारणकर भृंगी और नन्दीके साथ हिमालयपर्वतपर रहने लगे। इसी समय नमुचिके पुत्र तारकासुरने बड़ी भारी तपस्या करके ब्रह्माजीको सन्तुष्ट किया। ब्रह्माजी उसपर प्रसन्न हुए और उस दुरात्माको इच्छानुसार वर देनेके लिये उद्यत हो बोले—'तुम कोई वर माँगो।' ब्रह्माजीकी यह बात सुनकर तारकासुर बोला—'प्रभो! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो मुझे अजर, अमर और अजेय बना दीजिये।'

ब्रह्माजीने कहा—तू अमर कैसे हो सकता है? जो इस संसारमें जन्म ले चुका है, उसकी मृत्यु अटल है।

तारकासुर बोला—तब मुझे 'अजेय' बना दीजिये।

ब्रह्माजीने कहा—दैत्यराज! तू 'अजेय' होगा, इसमें संशय नहीं है। परंतु एक बालकको छोड़कर अन्य सबसे ही तेरी अजेयता रहेगी।

इस प्रकार वरदान पाकर तारकासुर बड़ा बलवान् हो गया। उस समय देवतालोग राजा मुचुकुन्दका

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

सहारा लेकर तारकासुरके साथ युद्ध करते और विजयी होते थे। मुचुकुन्दके ही बलसे देवताओंने विजय प्राप्त की। तब उन्होंने सोचा—'इन दिनों हमें निरन्तर युद्धमें रहना पड़ता है, ऐसे समयमें हमारा क्या कर्तव्य है? अथवा भवितव्यता ही ऐसी है।' ऐसा विचार कर वे ब्रह्माजीके लोकमें गये और उनके सामने खड़े होकर स्तुति करने लगे। स्तुतिके पश्चात् वे बोले—'महाभाग ! प्रभो! आप दैत्यपतियोंसे हमारी रक्षा करें।' उसी समय आकाशवाणी हुई—'देवताओ! तुम जितनी जल्दी हो सके मेरी आज्ञाका यथावत् पालन करो। भगवान् शिवके जब कोई महाबली पुत्र उत्पन्न होगा तब वही पुनः युद्धमें तारकासुरका वध करेगा, इसमें संशय नहीं है। सबकी हृदयगुफामें निवास करने-वाले भगवान् शंकर जिस किसी उपायसे पत्नीका पाणिग्रहण करें, वह तुम्हें करना चाहिये। इसके लिये महान् प्रयत्न करो। मेरा यह वचन अन्यथा न होने पावे।'

यह आकाशवाणी सुनकर देवताओंको बड़ा आश्चर्य हुआ। वे सब बृहस्पतिजीको आगे करके हिमालयपर्वतपर आये और इस प्रकार कहने लगे—'महाभाग हिमालय! तुम समस्त पर्वतोंके स्वामी हो, यक्ष और गन्धर्व तुम्हारा सेवन करते हैं, हम तुमसे कुछ निवेदन करेंगे, हम सब देवताओंकी बात तुम्हें माननी चाहिये।'

लोमशजी कहते हैं—देवताओंके इस प्रकार प्रार्थना करनेपर पर्वतश्रेष्ठ हिमवान् हँसकर बोले—'एक तो मैं अचल हूँ, चल-फिर नहीं सकता, दूसरे मेरी पाँखें कट गयी हैं, अतः उड़ नहीं सकता। ऐसी दशामें मैं आपलोगोंके किस काम आ सकता हूँ। देवताओ! यदि तारकासुरके संहारमें मेरी सहायता आवश्यक है तो मैं पूछता हूँ, किस उपायसे आपलोग तारकासुरका वध करना चाहते हैं, वह शीघ्र बतलावें; क्योंकि वह कार्य तो मेरा ही है।' तब देवताओंने आकाशवाणीद्वारा कही हुई सब बातें कह सुनायीं। सुनकर हिमवान्ने कहा—'जब शिवजीके बुद्धिमान् पुत्रद्वारा ही तारकासुरका वध होनेवाला है, तब देवताओंके सब कार्य शुभ हों और आकाशवाणीकी कही हुई यह बात सच निकले। इसके लिये आपलोगोंको विशेष यत्न करना चाहिये।'

देवता बोले—गिरिराज! आप देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके उद्देश्यसे भगवान् शंकरके विवाहके लिये स्वयं ही एक कन्या उत्पन्न करें।

तब हिमवान्ने अपनी पत्नीसे कहा—सुमुखि! तुम्हें एक श्रेष्ठ कन्या उत्पन्न करनी चाहिये। यह सुनकर मेनाने हँसते हुए कहा—'महामते! मैंने आपकी बात सुन ली; परंतु कन्या स्त्रियोंको शोकमें डालनेवाली होती है, अतः इस विषयमें दीर्घकालतक विचार करके आपको अपनी बुद्धिसे जो हितकर प्रतीत हो, वह बतावें।' अपनी प्रियतमा मेनाकी यह बात सुनकर परम बुद्धिमान् हिमवान्ने परोपकारयुक्त वचन कहा—'देवि! जिस प्रकारसे दूसरोंके जीवनकी रक्षा हो, परोपकारी पुरुषोंको वही करना चाहिये।' इस प्रकार पतिकी प्रेरणा पाकर सौभाग्यवती रानी मेनाने बड़ी प्रसन्नताके साथ अपने गर्भमें कन्याको धारण किया। कुछ कालके अनन्तर मेनाके गर्भसे एक कन्या उत्पन्न हुई, जो 'गिरिजा' नामसे प्रसिद्ध हुई। सबको सुख देनेवाली उस देवीके प्रकट होनेपर देवताओंके नगाड़े बज उठे। अप्सराएँ नृत्य करने लगीं। गन्धर्वराज गाने तथा सिद्ध-चारण स्तुति करने लगे। उस समय देवताओंने फूलोंकी बड़ी भारी वर्षा की। सम्पूर्ण त्रिलोकीमें प्रसन्नता छा गयी। महासती गिरिजाका जब जन्म हुआ, उस समय दैत्योंके मनमें भय समा गया और देवता, महर्षि, चारण तथा सिद्धगण बड़े आनन्दको प्राप्त हुए।

सती-साध्वी गिरिजा हिमालयके घरमें दिनोंदिन बढ़ने लगी। वह कल्याणी कन्या जब आठ वर्षकी हो गयी, उस समय महादेवजी हिमालयकी कन्दरामें बड़ी भारी तपस्या कर रहे थे। भगवान्के वीरभद्र आदि सभी पार्षद उन्हें सब ओरसे घेरे रहते थे।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

एक दिन परम बुद्धिमान् हिमवान् अपनी कन्या पार्वतीको साथ लेकर तपस्यामें लगे हुए महादेवजीके पास उनके चरणोंका दर्शन करनेके लिये गये। हिमवान्ने देखा—सबके स्वामी भगवान् शिव तपस्यामें लगे हुए हैं। उनके नेत्र बंद हैं, मस्तकपर जटा-जूट शोभा पा रहा है, जिसे चन्द्रमाकी कला विभूषित किये हुए है। वे वेदान्तवेद्य परमात्मा शिव एक श्रेष्ठ आसनपर विराजमान हैं। दर्शन करके हिमवान्ने भगवान्के चरणोंमें मस्तक झुकाया और मन-ही-मन बड़ी प्रसन्नताका अनुभव किया। हिमाचल बड़े धैर्यवान् एवं उत्कृष्ट प्राणियोंके आश्रय हैं। वाणीका रहस्य समझनेवाले विद्वानोंमें उनका स्थान बहुत ऊँचा है। उन्होंने सम्पूर्ण विश्वका एकमात्र मंगल करनेवाले भगवान् शिवसे इस प्रकार वार्तालाप किया—'महादेव! मैं आपके प्रसादसे बड़ा सौभाग्यशाली हूँ। देवेश्वर! आप मुझे इस कन्याके साथ प्रतिदिन अपने दर्शनके लिये आनेकी आज्ञा दें।' यह सुनकर देवाधिदेव महेश्वरने कहा—'पर्वतराज! इस कुमारी कन्याको घरमें छोड़कर ही आप प्रतिदिन मेरे दर्शनके लिये आ सकते हैं, अन्यथा मेरा दर्शन नहीं होगा।' तब हिमाचलने मस्तक झुकाकर पुनः महादेवजीसे कहा—'भगवन्! क्या कारण है कि मुझे इस कन्याके साथ यहाँ नहीं आना चाहिये?' भगवान् शंकरने हँसते हुए उत्तर दिया—'यह कुमारी सुन्दर कटि-भागसे सुशोभित पतले अंगोंवाली तथा मृदु वचन बोलनेवाली है। अतः मैं तुम्हें बार-बार मना करता हूँ कि इस कन्याको मेरे समीप न ले आना।' भगवान् शंकरका यह निष्ठुर वचन सुनकर गौरांगी पार्वती, तपस्वी शिवसे इस प्रकार बोलीं—'शम्भो! आप तपःशक्तिसे सम्पन्न हैं और बड़ी भारी तपस्यामें लगे हुए हैं। आप-जैसे महात्माके मनमें जो यह विचार उत्पन्न हुआ है, वह केवल इसलिये कि यह तपस्या निर्विघ्न चलती रहे। परंतु मैं आपसे पूछती हूँ—आप कौन हैं और यह सूक्ष्म प्रकृति क्या है? भगवन्! आप इस विषयपर भलीभाँति विचार करें।'

महादेवजी बोले—सुन्दरी! मैं उत्तम तपस्याके द्वारा ही प्रकृति (माया)-का नाश करता हूँ। प्रकृतिसे विलग रहकर अपने यथार्थ स्वरूपमें स्थित होता हूँ। इसलिये सिद्धपुरुषोंको प्रकृतिका संग्रह कदापि नहीं करना चाहिये।

श्रीपार्वतीजीने कहा—शंकर! आपने जिस उत्तम वाणीके द्वारा जो कुछ भी कहा है, क्या वह प्रकृति नहीं है? फिर आप प्रकृतिसे अतीत कैसे हैं? मेरी यह बात सुनकर आपको तत्त्वका यथार्थ निर्णय करना चाहिये। यह सम्पूर्ण जगत् सदा प्रकृतिसे बँधा हुआ है। प्रभो! हमें वाणीद्वारा विवाद करनेसे क्या प्रयोजन? शंकर! आप जो सुनते हैं, खाते हैं और देखते हैं, वह सब प्रकृतिका ही कार्य है। प्रकृतिसे परे होकर आप इस हिमालय पर्वतपर इस समय तपस्या किसलिये करते हैं? प्रकृतिसे आप मिले हुए हैं, क्या इस बातको नहीं जानते? यदि आप प्रकृतिसे परे हैं और आपकी यह बात सत्य है, तो आपको अब मुझसे भय नहीं मानना चाहिये।

महादेवजी बोले—साधुभाषिणी पार्वती! तुम प्रतिदिन मेरी सेवा करो।

अब वे प्रतिदिन पार्वतीके साथ उनका दर्शन करने लगे। इस प्रकार भगवान् शिवकी उपासना करते हुए पुत्री और पिताका कुछ समय व्यतीत हो गया। तब पार्वतीजीके लिये देवताओंके मनमें बड़ी चिन्ता हुई। वे सोचने लगे—'भगवान् महेश्वर गिरिजाका पाणिग्रहण कैसे करेंगे?' तब उन्होंने कामदेवका आवाहन किया। आवाहन करते ही इन्द्रका कार्य सिद्ध करनेवाला कामदेव अपनी पत्नी रति और सखा वसंतके साथ आया और देवसभामें देवराजके सम्मुख उपस्थित हो गर्वयुक्त वचन बोलने लगा—'शचीपते! शीघ्र आज्ञा दीजिये, आज मैं आपका कौन-सा कार्य सिद्ध करूँ। मेरा स्मरणमात्र करनेसे कितने ही तपस्वी अपनी मर्यादासे भ्रष्ट हो

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

चुके हैं। इन्द्र! मेरे बल और पराक्रमको आप अच्छी तरह जानते हैं। शक्तिनन्दन पराशरको भी मेरे पराक्रमका ज्ञान है; इसी प्रकार ये भृगु आदि बहुत-से अन्य ऋषि-मुनि भी मेरी शक्ति जानते हैं। महान् बल और पराक्रमसे सम्पन्न क्रोध ही मेरा भाई है। हम दोनोंने सम्पूर्ण चराचर जगत्‌को परास्त किया है। सबको हमने मोहमहासागरमें डुबो दिया है।'

कामदेवके गर्वीले वचन सुनकर इन्द्रने उसकी पीठ ठोंकते हुए कहा—'वीरवर! पूर्वकालमें तुमने जो-जो कार्य किये हैं, उनका किसी प्रकार वर्णन नहीं हो सकता। हम सब देवता तुमसे परास्त हो चुके हैं। मदन! तुम सदैव हमको जीतनेमें समर्थ हो। इस समय देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके लिये तुम भगवान् शंकरपर चढ़ाई करो। महामते! ऐसी चेष्टा करो जिससे भगवान् शिव पार्वतीके साथ विवाह कर लें।'

देवताओंके इस प्रकार प्रार्थना करनेपर सम्पूर्ण विश्वका मन मोह लेनेवाला मदन अप्सराओंको साथ लेकर बड़ी उतावलीके साथ चला। हिमालयपर पहुँचकर योद्धाओंमें श्रेष्ठ कामदेव रति और वसन्तके साथ सब ओर सुशोभित दिखायी देने लगा। उसके मनमें पिनाकपाणि भगवान् शंकरपर विजय पानेकी अभिलाषा जाग उठी थी। रम्भा, उर्वशी, पुंजिकस्थला, सुकेशी, मिश्रकेशी, सुन्दरी तिलोत्तमा तथा इसी श्रेणीकी अन्यान्य अप्सराएँ वहाँ कामदेवके कार्यमें सहायता देनेके लिये आयीं। वहाँका आकाश असमयमें ही कोकिलाओंसे आच्छादित हो गया। अशोक, चम्पा, आम, जूही, कदम्ब, नीप, चिरौंजी, कटहल, अमलतास, चमेली, अंगूरकी लताएँ तथा अनेक प्रकारके नागकेसर वृक्ष हरे-भरे एवं फले-फूले दिखायी देने लगे। इसी समय धनुर्धर कामदेवने देवदारु वृक्षकी छायामें बैठकर अपने धनुषपर पाँच बाण चढ़ाये और भगवान् शंकरकी ओर दृष्टिपात किया। वे उत्तम आसनपर विराजमान हो तपस्यामें संलग्न थे। उनके जटा-जूटमें गंगाजी विराजमान थीं। चन्द्रमाकी कला उनके मस्तककी शोभा बढ़ा रही थी। उनके श्रीअंगोंकी कान्ति कर्पूरके समान गौर थी। तपस्यामें तत्पर हो रुद्राक्षमाला और विभूतिसे भूषित होकर वे बड़ी शोभा पा रहे थे। वसन्तसहित कामदेवने जब महादेवजीको अपने बाणसे बींधनेकी इच्छा की, उसी समय परम मंगलमयी जगज्जननी गिरिजा अपनी सखियोंके साथ पूजन करनेके लिये भगवान् सदाशिवके समीप आयीं। वे चन्द्रमाकी किरणोंके समान मनोहर थीं। उन्होंने भगवान् नीलकण्ठके कण्ठमें धतूरके फूलोंकी माला पहना दी और सुन्दर वदनारविन्दसे सुशोभित त्रिनेत्रधारी भगवान् शिवकी शोभा निहारने लगीं। इसी बीचमें वसन्तकी सहायता पानेवाले कामदेवने संमोहन नामक बाणसे भगवान् महेश्वरको बींध डाला। बाणका आघात लगनेपर शंकरजीने धीरेसे नेत्र खोलकर श्रीपार्वतीजीकी ओर देखा, जो सम्पूर्ण मंगलोंको भी मंगलमय बनानेवाली एकमात्र देवी हैं। लोकपावनी गिरिराजनन्दिनीकी ओर दृष्टि डालते ही कामदेवने उन्हें व्याकुल कर दिया। वे पार्वतीके दर्शनमात्रसे मोहित हो गये। फिर सहसा अपनी स्थितिका ध्यान आते ही भगवान् शिवके नेत्र आश्चर्यसे खिल उठे। उन्होंने मन-ही-मन खेद प्रकट करते हुए कहा—'मैं स्वतन्त्र हूँ, निर्विकार हूँ, तो भी आज इस पार्वतीके दर्शनसे मोहित क्यों हो गया? कहाँसे, किससे और किसने मेरा यह अप्रिय कार्य किया है।' तदनन्तर शंकरजीने सब दिशाओंकी ओर दृष्टि दौड़ायी। उसी समय दक्षिण दिशामें कामदेव दिखलायी दिया, जो हाथमें धनुष लेकर भगवान् सदाशिवपर प्रहार करनेके लिये उद्यत था। उसने चढ़े हुए धनुषको खींचकर मण्डलाकार कर रखा था और पुनः बाण सन्धान करके मदनान्तक शिवको बींधना ही चाहता था। तबतक भगवान् महेश्वरकी रोषपूर्ण दृष्टि उसके ऊपर पड़ी। भगवान्‌ने तीसरा नेत्र खोलकर उसकी ओर देखा। देखते ही मदन आगकी उठती हुई लपटोंमें घिर गया। उसे भस्म होते देख देवताओंमें बड़ा हाहाकार मचा।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

देवता बोले—देवदेव! महादेव! आप देवताओंको वर दीजिये। हमने ही गिरिराजनन्दिनी पार्वतीकी सहायताके लिये कामदेवको यहाँ भेजा था, उसका कोई अपराध नहीं था। आपने महातेजस्वी कामको व्यर्थ ही दग्ध किया है। विश्वके एकमात्र बन्धु भगवान् शिव! आपको अपने उत्कृष्ट तेजसे इस समय देवताओंका कार्य सिद्ध करना चाहिये। शम्भो! आपके द्वारा इस पार्वतीके गर्भसे जो पुत्र उत्पन्न होगा उसीसे हमारा सब कार्य सिद्ध होगा। महादेव! तारकासुरने हम सब देवताओंको बहुत सताया है। उसके भयसे हमारी रक्षा करनेके लिये इस कामदेवको जीवन-दान दें। आप पार्वतीजीका पाणिग्रहण करें। महाभाग! देवताओंका कार्य सिद्ध करनेमें आप अपनी शक्ति लगावें। गजासुरसे आपहीने हम सब देवताओंका उद्धार किया है। कालकूट विषसे भी आपहीने हमारी रक्षा की है। भगवन्! यह कामदेव देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके लिये आया था। यह हमारे उपकारमें संलग्न रहा है। अतः आपको इसकी रक्षा करनी चाहिये।

तब भगवान् महेश्वरने देवताओंसे रुष्ट होकर कहा—'देवगण! तुम सबको कामनारहित होना चाहिये। इन्द्रादि देवता जब-जब कामदेवको आगे रखकर चले हैं तब-तब अपनी मर्यादासे भ्रष्ट हुए हैं, दुःखमें पड़े हैं और दीनताके भागी हुए हैं। अतः मैंने सबकी शान्तिके लिये कामदेवको जलाया है। तुम सब देवता, असुर, महर्षि तथा दूसरे प्राणी भी अब निर्भय होकर तपस्यामें मन लगाओ। आज सम्पूर्ण जगत्को मैंने काम और क्रोधसे शून्य कर दिया है। देवताओ! यह पापी काम दुःखकी जड़ है। अतः आज मैं इसे जीवन-दान नहीं दूँगा। तुम अवसरकी प्रतीक्षा करो।' भगवान् शिवके ऐसा कहनेपर सब महर्षियोंने उनसे कहा—'शम्भो! आपने जो कुछ कहा है, सब हमारे लिये परम कल्याणकारी है। किंतु देवेश्वर! हम भी कुछ निवेदन करना चाहते हैं, उसे ध्यानपूर्वक सुनें। जिस प्रकार इस संसारकी सृष्टि हुई है, उसके अनुसार (संकल्परूप) काम ही इसका अधिष्ठान है। कामके बिना यह सृष्टि कैसे होगी। यह विश्व काममय है; इससे ऊपर उठे हुए आप परमेश्वर ही निष्काम हैं।' इतना कहकर मुनि, सिद्ध और चारणोंने भगवान् सदाशिवकी स्तुति और वन्दना की। तदनन्तर वे वहाँसे शीघ्र ही अन्तर्धान हो गये। कामदेवको जलाकर महादेवजी अदृश्य हो गये। उस समय पार्वतीजी वहाँ रतिको रोती हुई देखकर बोलीं—'सखी! तुम शोक न करो, मैं कामदेवको जीवन दिलाऊँगी।' पार्वतीके इस प्रकार आश्वासन देनेपर पतिव्रता रतिने पतिको पुनः प्राप्त करनेके लिये बड़ी भारी तपस्या आरम्भ की।

तदनन्तर पार्वती भी वहीं रहकर तपस्यामें लग गयीं। उस समय माता-पिताने उन्हें रोकते हुए कहा—'बेटी! अभी तू बालिका है, शीघ्र घर चल। तू तपस्याका श्रम उठाने योग्य नहीं है।'

पार्वती बोलीं—माता और पिताजी! मैं घर नहीं चलूँगी। आप मेरी प्रतिज्ञा सुनें। मैं उत्तम तपस्याके द्वारा भगवान् शंकरको पुनः यहीं बुलाकर उनका वरण करूँगी।

यों कहकर मनस्विनी पार्वती एकाग्रचित्त हो, बड़ी उग्र तपस्याके द्वारा भगवान् शिवका आराधन करने लगीं। उस समय जया, विजया, माधवी, सुलोचना, सुश्रुता, श्रुता, शुकी, प्रम्लोचा, सुभगा, श्यामा, चित्रांगी, वारुणी और सुधा—ये तथा और भी बहुत-सी सखियाँ गिरिराजनन्दिनीकी सेवामें रहने लगीं। परमात्मा रुद्रने कामदेवको जहाँ दग्ध किया था, वहीं एक वेदी बनाकर पार्वतीजी उसपर विराजमान हुईं। वे अन्न और फल त्यागकर केवल हरे पत्ते खाकर रहने लगीं। तत्पश्चात् हरे पत्ते भी छोड़ दिये और सूखे पत्तोंपर निर्वाह करने लगीं। आगे चलकर जब उन्होंने सूखे पत्ते भी त्याग दिये तब वे 'अपर्णा' नामसे विख्यात हुईं। सूखे पत्ते छोड़नेपर वे कुछ कालतक केवल जलपर रहीं। फिर उसे भी

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

छोड़कर वायु पीकर रहने लगीं। इस प्रकार सती-साध्वी गिरिजा दीर्घकालतक तपस्यामें लगी रहीं। भगवान् शंकरकी प्रसन्नताके लिये मनमें उत्तम निष्ठा रखकर पार्वती उग्र तपस्याद्वारा आराधन करती रहीं। पार्वतीके उस महान् तपसे सम्पूर्ण चराचर जगत् सन्तप्त होने लगा, तब देवता और असुर सब मिलकर ब्रह्माजीकी शरणमें गये।

देवता बोले—भगवन्! आपने ही इस सम्पूर्ण चराचर जगत्‌की सृष्टि की है। हम देवताओंकी रक्षा करनेयोग्य आप ही हैं।

देवताओंकी यह बात सुनकर ब्रह्माजीने मन-ही-मन चिन्तन किया। चिन्तनसे उन्हें ज्ञात हुआ कि पार्वतीकी तपस्यासे बड़ी अद्भुत दावाग्नि प्रकट हुई है। यह जानकर ब्रह्माजी बड़ी शीघ्रतासे परम अद्भुत क्षीरसागरके तटपर गये। वहाँ जाकर उन्होंने अतिशोभायमान शेषशय्यापर सोये हुए भगवान् विष्णुका दर्शन किया। लक्ष्मी देवी उनके दोनों चरणारविन्दोंकी निरन्तर सेवा कर रही थीं। गरुड़जी कुछ दूरपर मस्तक झुकाये हाथ जोड़े प्रभुकी सेवामें खड़े थे। श्री, कान्ति, तुष्टि, वृत्ति और दया आदि देवियाँ भी भगवान्‌की सेवामें संलग्न थीं। नौ शक्तियोंसे सम्पन्न भगवान् विष्णु अपने पार्षदोंसे घिरे हुए थे। कुमुद, कुमुद्वान्, सनक, सनन्दन, महाभाग सनातन, प्रसुप्त, विजय, अरिजित्, जयन्त, जयत्सेन, परम कान्तिमान् जय, सनत्कुमार, उत्तम तपस्वी नारद, तुम्बुरु, महाशंख पांचजन्य, कौमोदकी गदा, सुदर्शन चक्र तथा परम अद्भुत शार्ङ्गनामक धनुष—ये सब वहाँ ब्रह्माजीको मूर्तिमान् दिखायी दिये।* सब देवताओंने परमात्मा भगवान् विष्णुके समीप जाकर उनसे प्रार्थनापूर्वक कहा—'महाविष्णो! हम पार्वतीजीकी अत्यन्त उग्र तपस्यासे जले जा रहे हैं और सन्तप्त होकर आपकी शरणमें आये हैं; आप हमारी रक्षा करें, रक्षा करें।'

तब शेषनागकी शय्यापर बैठे हुए परमेश्वर श्रीहरि इस प्रकार बोले—'देवताओ! आज तुम लोगोंको साथ लेकर परमेश्वर महादेवजीके पास चलता हूँ। हम सब लोग मिलकर उनसे प्रार्थना करें कि वे पार्वतीजीके साथ विवाह करनेको उद्यत हों। भगवान् शिव पुराणपुरुष हैं, सबके अधीश्वर हैं, वे सबके लिये वरेण्य (वरणीय अथवा सेव्य) हैं, उत्तम स्वरूपकी पराकाष्ठा हैं तथा वे ही परात्पर परमात्मा हैं। इस समय वे तपस्यामें लगे हैं, हम सब लोग उन्हींकी शरणमें चलें।'

---

* ज्ञात्वा ब्रह्मा जगामाशु क्षीराब्धिं परमाद्भुतम्। तत्र सुप्तं सुपर्यङ्के शेषाख्ये चातिशोभने॥
लक्ष्म्या पादोपयुगलं सेव्यमानं निरन्तरम्। दूरस्थेनापि तार्क्ष्येण नतकन्धरधारिणा॥
सेव्यमानं श्रिया कान्त्या तुष्ट्या वृत्त्या दयादिभिः। नवशक्तियुतं विष्णुं पार्षदैः परिवारितम्॥
कुमुदोऽथ कुमुद्वांश्च सनकश्च सनन्दनः। सनातनो महाभागः प्रसुप्तो विजयोऽरिजित्॥
जयन्तश्च जयत्सेनो जयश्चैव महाप्रभः। सनत्कुमारः सुतपा नारदश्चैव तुम्बुरुः॥
पाञ्चजन्यो महाशङ्खो गदा कौमोदकी तथा। सुदर्शनं तथा चक्रं शार्ङ्गं च परमाद्भुतम्॥
एतानि वै रूपवन्ति दृष्टानि परमेष्ठिना।
(स्क० पु०, मा० के० २१। ७९—८५)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

देवताओंकी प्रार्थनासे भगवान् शिवका पार्वतीजीके पास जाना और उनके प्रेमकी परीक्षा ले उनकी तपस्याको सफल बनाना

सूतजी कहते हैं—भगवान् विष्णुके इस प्रकार कहनेपर सब देवता पिनाकधारी महादेवजीका दर्शन करनेके लिये गये। भगवान् शिव समुद्रके उस पार उत्तम समाधि लगाये योगासनपर विराजमान थे। उनके पार्षद उन्हें सब ओरसे घेरे हुए थे। वे सर्पराज वासुकिको छातीसे चिपकाये हुए यज्ञोपवीतकी भाँति धारण करते थे। कम्बल और अश्वतर—इन दोनों नागोंको उन्होंने दोनों कानोंका कुण्डल बना रखा था। कर्कोटक और कुलिकसे उत्तम कंकणका काम लेते हुए उन्हें अपने दोनों हाथोंमें धारण किया था। शंख और पद्म नामक नागका भुजबंद धारण करके वे बड़ी शोभा पा रहे थे। पहनने योग्य वस्त्रके स्थानपर उन्होंने बाघका चमड़ा लपेट रखा था। वे मस्तकपर भागीरथी गंगा तथा अर्धचन्द्रयुक्त जटाजूट धारण किये बड़े-बड़े ज्ञानी महात्माओंके साथ विराजमान थे। उनके श्रीअंगोंकी कान्ति कर्पूरके समान गौर थी और कण्ठमें नील चिह्न सुशोभित था। भगवान्के पास ही उनके वाहन नन्दिकेश्वर भी थे। ऐसी अद्भुत शोभासे युक्त सुरश्रेष्ठ शिवका समस्त देवताओंने दर्शन किया। उस समय ब्रह्मा, विष्णु, ऋषि, देवता और दानवोंने वेदों और उपनिषदोंके अनेक सूक्तोंद्वारा भगवान् शिवका स्तवन किया।

श्रीब्रह्माजी बोले—कामदेवका अन्त करनेवाले श्रीरुद्रदेवको नमस्कार है। जो प्रकाशस्वरूप होनेके कारण 'भर्ग' नाम धारण करते हैं, तीनों लोकोंमें जिनका सौभाग्य सबसे बढ़कर है, उन त्रिनेत्रधारी भगवान् महेश्वरको नमस्कार है। जो सम्पूर्ण जगत्के भरण-पोषण करनेवाले बन्धु हैं तथा यह सम्पूर्ण विश्व जिनका स्वरूप है, उन भगवान् त्र्यम्बकको नमस्कार है। भगवन्! आप समस्त लोकोंके धारण-पोषण करनेवाले पिता, माता और ईश्वर हैं; आप ही जगत्के स्वामी तथा रक्षक हैं, प्रभो! आप हमारा उद्धार करें।

तब उत्तम योगसे युक्त दयालु परमात्मा महेश्वर शम्भुने धीरे-धीरे समाधिसे विश्राम लिया और देवताओंसे इस प्रकार कहा—'परम भाग्यवान् ब्रह्मा आदि देवताओ! तुम लोग मेरे समीप क्यों आये हो? इस समय यहाँ आनेका कारण बतलाओ।'

उनके इस प्रकार पूछनेपर ब्रह्माजीने देवताओंके महत्त्वपूर्ण कार्यका परिचय देते हुए कहा—'भगवन्! तारकासुरने देवताओंको महान् कष्ट पहुँचाया है। वह देवताओंका घोर शत्रु है। अतः हमारी प्रार्थना है कि आप पार्वतीजीका पाणिग्रहण करें। गिरिराज हिमवान्‌द्वारा दी हुई गिरिजाको आप पाणिग्रहणकी विधिसे अंगीकार करें।' ब्रह्माजीकी बात सुनकर महादेवजीने हँसते हुए कहा—'जब मैं सर्वसुन्दरी गिरिजादेवीका वरण कर लूँगा, तब समस्त सुरेश्वर तथा ऋषि-मुनि भी सकामभावसे युक्त हो जायँगे और निष्कामभावसे पूर्ण परमार्थके पथपर चलनेमें असमर्थ होंगे। अतः मैंने सबके पारमार्थिक कार्यकी सिद्धिके लिये कामदेवको भस्म किया था। मेरे विचारसे तो कामदेवके दग्ध होनेसे ही देवताओंका महान् कार्य सिद्ध हुआ है। इस कामदहनरूपी कार्यसे तुम सब लोग निष्काम हो गये हो। अब जैसा मैं हूँ, वैसे ही तुम लोग भी हो गये। अतः हमलोग अब प्रयत्नपूर्वक अत्यन्त दुष्कर तथा परम उत्तम तपका अनुष्ठान करें और करावें। कामदेवके न रहनेसे तुम सब देवता समाधि लगाकर परमानन्दमें निमग्न हो सदा सुखी रहोगे। काम तो नरकमें ही ले जानेवाला है। उसीसे

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

क्रोधका जन्म होता है। क्रोधसे सम्मोह होता है और सम्मोहसे मनुष्य जल्दी ही भ्रममें पड़ जाता है। अतः सभी श्रेष्ठ देवता काम, क्रोधका परित्याग करके शास्त्रों और संतोंके सदुपदेशोंको मानें—उनके अनुसार जीवन बनावें।'

वृषभके चिह्नसे युक्त ध्वजा धारण करनेवाले भगवान् महादेवने इस प्रकार उत्तम बातें सुनाकर देवताओं तथा ऋषि-मुनियोंको भलीभाँति समझाया। तत्पश्चात् वे पुनः ध्यान लगाकर मौन हो गये। तब वे सब देवता अपने-अपने स्थानको चले गये। फिर शिवजीने बुद्धिके द्वारा मनको आत्मामें एकाग्र करके अपने स्वरूपका इस प्रकार चिन्तन किया—'जो परसे भी अत्यन्त परे, अपने-आपमें स्थित, मल आदि दोषोंसे रहित, विघ्न-बाधाओंसे शून्य, निरंजन (निर्लिप्त) तथा निराभास (मिथ्या ज्ञानसे रहित) है, जिसके विषयमें विवेकी विद्वान् भी मोहित हो जाते हैं, जहाँ सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि अथवा नक्षत्र आदि दूसरी किसी ज्योतिका प्रकाश नहीं, जहाँ वायुकी भी गति कुण्ठित हो जाती है, जो विचारदृष्टिसे भी केवल (अद्वितीय) सद्वस्तु है, सूक्ष्म तथा सूक्ष्मतर वस्तुओंसे भी परे है, जिसका कोई नाम या संकेत नहीं है, जो चिन्तनका विषय नहीं है, जिसमें विकारका सर्वथा अभाव है, जो रोग और शोकसे सर्वथा दूर है, विशुद्ध ज्ञान ही जिसका स्वरूप है, सर्वत्यागी संन्यासी जिसे प्राप्त होते हैं, जो शब्द या वाणीकी पहुँचसे परे है, निर्गुण और निर्विकार है, सत्तामात्र ही जिसका स्वरूप है, जो ज्ञानगम्य होकर भी वास्तवमें अगम्य है, वेदान्त और आगम भी मूक होकर ही ('नेति-नेति'की भाषामें) जिसका सर्वदा प्रतिपादन करते हैं, वही सबके ईश्वर पिनाकधारी भगवान् वृषध्वज परमार्थ वस्तु (परब्रह्म परमात्मा) हैं।* उन्होंने ही कामदेवका नाश किया है। वे साक्षात् परमेश्वर होकर भी 'तप' का सेवन करते हैं।'

लोमशजी कहते हैं—उधर पार्वती देवी बड़ी कठोर तपस्यामें लगी हुई थीं। उस तपस्यासे उन्होंने भगवान् शंकरको जीत लिया। देवीकी तपस्यासे हार मानकर भगवान् शिव समाधिसे विरत हो, तुरंत उस स्थानपर गये जहाँ पार्वतीजी विराजमान थीं। वहाँ पहुँचकर उन्होंने देखा—देवी गिरिजा सखियोंसे घिरी हुई 'वेदी' पर बैठी हैं और चन्द्रमाकी कलाके समान प्रकाशित हो रही हैं। महादेवजीने उन्हें देखकर तत्काल ब्रह्मचारीका वेष धारण कर लिया और उसी स्वरूपसे सखियोंकी मण्डलीमें उपस्थित होकर पूछा—'सखियो! यह सर्वांगसुन्दरी कन्या अपनी सहेलियोंके बीचमें क्यों बैठी है? यह कौन है? किसकी पुत्री है? कहाँसे आयी है और किस लिये तपस्या कर रही है?'

तब जयाने उत्तर दिया—ब्रह्मचारीजी! ये गिरिराज हिमवान्‌की कन्या हैं और तपस्याद्वारा परमेश्वर रुद्रको पतिरूपमें प्राप्त करना चाहती हैं।'

जयाकी यह बात सुनकर वटुरूपधारी शिव ठठाकर हँस पड़े और इस प्रकार बोले—'सखियो! यह पार्वती भोली-भाली है। इसे अपने हित

---

* आत्मानमात्मना कृत्वा आत्मन्येवमचिन्तयत्॥
परात्परतरं स्वस्थं निर्मलं निरवग्रहम्। निरञ्जनं निराभासं यन्मुह्यन्ति च सूरयः॥
भानुर्न भात्यग्निरथो शशी वा न ज्योतिरेवं न च मारुतो हि।
यत्केवलं वस्तु विचारतोऽपि सूक्ष्मात् परं सूक्ष्मतरात्परं च॥
अनिर्देश्यमचिन्त्यं च निर्विकारं निरामयम्। ज्ञप्तिमात्रस्वरूपं च न्यासिनो यान्ति यत्र वै॥
शब्दातीतं निर्गुणं निर्विकारं सत्तामात्रं ज्ञानगम्यं त्वगम्यम्।
यत्तद् वस्तु सर्वदा कथ्यते वै वेदातीतैश्चागमैर्मूकभूतैः॥
तद्वस्तुभूतो भगवान् स ईश्वरः पिनाकपाणिर्भगवान् वृषध्वजः॥
(स्क० पु०, मा० के० २२। ३२—३७)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

और अहितका कुछ भी ज्ञान नहीं है। भला, रुद्रकी प्राप्तिके लिये तपस्या करनेकी क्या आवश्यकता है? अरी! रुद्र तो अमंगलरूप हैं। हाथमें कपाल धारण करते हैं। मरघटका निवास ही उन्हें अधिक प्रिय है। जिस दिन इसके वरण कर लेनेपर रुद्रका इसके साथ सम्बन्ध होगा उसी दिनसे यह शुभांगी पार्वती भी अशुभरूप हो जायगी। रुद्र वही हैं न, जिन्हें दक्षके शापसे ब्राह्मणोंने यज्ञबहिष्कृत कर दिया है। अत्यन्त भयानक विषवाले जो-जो सर्प थे वे ही उनके अंगोंके आभूषण बने हुए हैं। रुद्र अपने अंगोंमें चिताकी राख लगाते हैं, चमड़ेका वस्त्र पहनते हैं, अमांगलिक वस्तुएँ धारण करते हैं तथा निरन्तर भूत, प्रमथ और पिशाचोंसे घिरे रहते हैं। इस सुकुमारी कन्याको उस रुद्रसे क्या लेना है। सखियोंको चाहिये कि इसे ऐसा करनेसे रोकें। मनोहर रूपवाले देवराज इन्द्र, परम तेजस्वी धर्मराज, वरुण, कुबेर, वायु तथा अग्निको छोड़कर रुद्रके प्रति इसका अनुराग कैसे हुआ?'

परमेश्वर शिवने इस प्रकारकी बहुत-सी बातें वहाँ कहीं। पार्वती सखियोंके मध्यमें बैठकर तपस्यामें संलग्न थीं। उन्होंने वटुरूपधारी रुद्रकी बातें सुनकर उनके प्रति रोष प्रकट करते हुए कहा—'जया! साध्वी विजया! विश्वसुन्दरी प्रम्लोचा! और महाभागा सुलोचना! मैं तुमलोगोंसे कहती हूँ—मैंने जो कुछ किया है, ठीक किया है। परंतु तुम्हें इस ब्रह्मचारीसे क्या काम है जो इसकी कठोर बातें सुनती हो। ब्रह्मचारीका रूप धारण करके यह कोई महादेवजीका निन्दक आ गया है, ऐसा समझो। सखियो! ऐसे व्यक्तिसे अपना क्या प्रयोजन है? जो महात्माओंकी निन्दा करनेवाले, पापी, कृतघ्न, वेददूषक, वेदभ्रष्ट और मर्यादाहीन हैं, उन लोगोंके साथ बुद्धिमान् पुरुषोंको वार्तालाप नहीं करना चाहिये। श्रेष्ठ पुरुषोंकी निन्दा सुनकर जो तुरंत वहाँसे उठकर दूसरे स्थानपर नहीं चले जाते, वे प्रतिष्ठाहीन मानव पापके भागी होते हैं।'*

गिरिजाका वचन सुनकर विजया वटुरूपधारी रुद्रसे सहसा कुपित होकर बोली—'ब्रह्मचारी! जाओ, जाओ यहाँसे; अब तुम्हें यहाँ एक क्षण भी नहीं ठहरना चाहिये।' विजया बातचीत करनेमें बड़ी कुशल थी। उसने इस प्रकार फटकारकर विवाद करनेवाले वटुरूपधारी शिवको विदा कर दिया। वे तत्काल अन्तर्धान हो गये। सम्पूर्ण सखियोंमेंसे किसीने नहीं देखा कि वे कहाँ चले गये? तदनन्तर भगवान् महेश्वर पार्वतीजीके सामने अपना वास्तविक स्वरूप धारण करके फिर सहसा वहीं प्रकट हो गये। ध्यानमें लगी हुई पार्वतीदेवी जब अपने ध्यानगत स्वरूपको ढूँढ़ रही थीं, उसी समय उनके हृदयस्थित देवता बाहर दिखायी देने लगे। विशाल नेत्रोंवाली सुशीला गिरिजाने आँख खोलकर देखा तो सर्वलोकमहेश्वर देवदेवेश्वर शिव सामने दृष्टिगोचर हुए। उन कैलाशनिवासी शंकरके दो भुजाएँ, एक मुख और अद्भुत स्वरूप था। मस्तकपर जटाओंका जूड़ा बँधा हुआ था। उसमें चन्द्रमाकी कला शोभा पा रही थी। भगवान्ने हाथीका चमड़ा पहन रखा था। उनके कानोंमें कुण्डलके स्थानपर महाभाग कम्बल और अश्वतर—ये दो नाग विराज रहे थे। परम कान्तिमान् सर्पराज वासुकिको हार बना लिया गया था। उनके हाथोंमें बड़े-बड़े सर्पोंके ही कंगन पड़े थे जो बड़ी शोभा दे रहे थे। इस प्रकार रुद्रने सर्पोंके आभूषण बनाये थे। ऐसा स्वरूप धारणकर भगवान् शिव पार्वतीके सामने खड़े हुए और शीघ्रतापूर्वक बोले—'कल्याणी!

---

* ये निन्दकाश्च पापाश्च कृतघ्ना वेददूषकाः। वेदभ्रष्टा ह्यप्रतिष्ठा अवाच्यास्ते मनीषिभिः॥
आर्याणां निन्दनं श्रुत्वा ये न यान्ति त्वरान्विताः। स्थानान्तरं ह्यप्रतिष्ठास्तेऽपि स्युः पापिनो जनाः॥
(स्क० पु०, मा० के० २२। ६३-६४)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

तुम वर माँगो।' उस समय सतीसाध्वी पार्वतीजीको बड़ी लज्जा आयी। उन्होंने शंकरजीसे कहा—'देवेश! आप मेरे सनातन स्वामी हैं, क्या आपको पहलेकी घटनाका कुछ स्मरण है? प्रभो! मैं वही सती हूँ जिसके लिये आपने दक्ष-यज्ञका विनाश किया था। वही आप हैं और वही मैं हूँ। तारकासुरके वधरूप देवकार्यकी सिद्धिके लिये मैं मेनाके गर्भसे प्रकट हुई हूँ। आपसे मेरे द्वारा एक पुत्र होगा। इसलिये महेश्वर! आप मेरी एक प्रार्थना स्वीकार करें। आपको ऋषियोंके साथ हिमवान्के पास जाना चाहिये और उनसे मेरे लिये याचना करनी चाहिये। मेरे पिता हिमवान् आपकी आज्ञाका पालन करेंगे इसमें सन्देह नहीं है। पूर्वकालमें जब मैं दक्षकी कन्या थी, उस समय भी मेरे पिताने ही मुझे आपकी सेवामें समर्पित किया था। महाभाग! हमारा और आपका विवाह देवताओंकी कार्य-सिद्धिके लिये हो रहा है।'

तब महादेवजीने पार्वतीसे हँसते हुए कहा— देवि अहंकाररूपा प्रकृतिसे महत्तत्त्व उत्पन्न हुआ। महत्तत्त्वसे तामस अहंकारकी उत्पत्ति हुई। तामस अहंकारसे सर्वव्यापी आकाश प्रकट हुआ।

आकाशसे वायु और वायुसे अग्निकी उत्पत्ति हुई। अग्निसे जल और जलसे पृथ्वी हुई। सुमुखि! पृथ्वी आदि भूत तथा भौतिक वस्तुएँ जो भी दृष्टिमें आती हैं उन सबको नश्वर समझो। अविनाशी तो आत्मा ही है जो एक होकर भी अनेकताको प्राप्त हुआ है, निर्गुण होकर भी गुणोंसे आवृत हो रहा है, जो सदा अपने ही प्रकाशसे प्रकाशित होनेवाला है किंतु इस समय दूसरेसे प्रकाश ग्रहण करनेवाला बन गया है, स्वतन्त्र होकर भी परतन्त्र-सा हो गया है। देवि! प्रकृतिरूपसे तुमने ही महत्तत्त्वको प्रकट किया है। यह सम्पूर्ण मायामय जगत् तुम्हारे द्वारा ही रचा गया है। तीनों गुणोंका कार्य तुमने ही प्रकट किया है। तुम्हीं त्रिगुणमयी सूक्ष्म प्रकृति हो और मैं सदा तुम्हारे सब व्यापारोंका साक्षीमात्र हूँ। मैं हिमालयके पास नहीं जाऊँगा। उनसे किसी प्रकार याचना नहीं करूँगा। क्योंकि किसीके सामने 'दीजिये' ऐसा वचन मुँहसे निकालनेपर पुरुष उसी क्षण लघुताको प्राप्त हो जाता है।

ऐसा कहकर भगवान् शिव अपने स्थानको चले गये। तदनन्तर हिमवान् अपनी धर्मपत्नी मेना तथा दूसरे पर्वतोंके साथ वहाँ आये। पार्वतीजीने जब उन्हें देखा तो वे उठकर खड़ी हो गयीं और अपने माता-पिता तथा भाई-बन्धुओंको मस्तक झुकाकर प्रणाम किया। तब हिमालयने मधुर वाणीमें पूछा—'साध्वी! तुमने जैसे-तैसे यहाँ रहकर क्या किया है?'

पार्वती बोलीं—पिताजी! मैंने यहाँ उत्तम तपस्याके द्वारा कामनाशक महादेवजीकी आराधना की है। मेरा वह महान् कार्य, जो अन्य सब लोगोंके लिये अत्यन्त दुर्लभ है, आज सिद्ध हो गया। महादेवजी सन्तुष्ट होकर यहीं मेरा वरण करनेके लिये पधारे थे; किंतु जब मैंने यह कहा कि मेरे पिताकी अनुपस्थितिमें इस समय आप मेरा पाणिग्रहण कैसे कर सकते हैं; तब वे जिस मार्गसे आये थे उसीसे लौट गये।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

पार्वतीकी यह बात सुनकर बन्धु-बान्धवोंसहित धर्मात्मा हिमवान्को बड़ी प्रसन्नता हुई। वे अपनी पुत्रीसे बोले—'अब हम सब लोग घरको चलें।' उस समय सब लोग एकत्र हो पार्वतीको सब ओरसे घेरकर खड़े हो गये और उनकी प्रशंसा करने लगे। तदनन्तर हिमवान् पार्वतीको अपने घर ले आये। देवतालोग दुन्दुभि बजाने लगे। उनके शंख और तूर्य भी बज उठे। इस प्रकार अपने पिताके घरमें आयी हुई पार्वती उत्कृष्ट तेजसे सुशोभित होने लगीं। वे मन-ही-मन सदा भगवान् शिवका चिन्तन करती रहती थीं। श्रेष्ठ देवता भी उनके प्रति पूज्यभाव रखते थे।

सप्तर्षियोंका आगमन, शिवके साथ पार्वतीके विवाहका निश्चय, समस्त देवताओंका शिवकी बारातमें आगमन, हिमवान्द्वारा स्वागत तथा मण्डपमें कन्यादानकी तैयारी

लोमशजी कहते हैं—तदनन्तर भगवान् महेश्वरके भेजे हुए सप्तर्षिगण सहसा हिमवान्के पास आये। उन्हें आया देख हिमवान्के मनमें बड़ी प्रसन्नता हुई और उन्होंने शीघ्र उठकर उन सबका स्वागत-सत्कार किया। फिर मस्तक झुकाकर विनयपूर्वक पूछा—'महर्षियो! आपलोग कैसे पधारे हैं? अपने आगमनका कारण बतलाइये।' तब सप्तर्षियोंने कहा—'पर्वतराज! हम लोग भगवान् शिवके भेजे हुए हैं, यहाँ आपहीके पास आये हैं। आपकी कन्याको देखना ही हमारे आनेका उद्देश्य है। अतः शीघ्र अपनी कन्या हमें दिखाइये।' 'बहुत अच्छा' कहकर हिमवान्ने पार्वतीको वहाँ बुलाया और सप्तर्षियोंसे हँसते हुए कहा—'यही मेरी कन्या है, किंतु इस समय मुझे आपसे एक विशेष बात कहनी है। जो तपस्वियोंमें सर्वश्रेष्ठ हैं, परम विरक्त हैं और कामदेवका नाश करनेवाले हैं, जिन्होंने कामके शरीरको जलाकर उन्हें अनंग बना डाला है; ऐसे भगवान् शंकर अब विवाहके इच्छुक कैसे हो गये? जो अधिक समीप या अधिक दूर रहनेवाला हो, (अपनेसे) अत्यन्त धनी अथवा सर्वथा निर्धन हो, जिसकी कोई आजीविका न हो तथा जो मूर्ख हो, ऐसे पुरुषको कन्या देना अच्छा नहीं माना गया है। जो मूर्ख, विरक्त, स्वयं ही अपनेको बड़ा माननेवाला, रोगी तथा प्रमादी हो, ऐसे पुरुषको कन्या नहीं देनी चाहिये।* अतः मुनिवरो! आपके साथ भलीभाँति विचार करके ही मुझे महादेवजीको अपनी कन्या देनी है, यही मेरा उत्तम निश्चय है।'

तब महर्षियोंने कहा—जिन्होंने तीव्र तपस्या की है और उस तपके द्वारा भगवान् शिवकी आराधना की है, उन पार्वती देवीके ऊपर आज भगवान् शिव बहुत प्रसन्न हैं। पर्वतराज! तुम्हें पार्वती और भगवान् शिवकी महिमाका थोड़ा भी ज्ञान नहीं है। अतः तुम हमारी बात मानो। अपनी पुत्री पार्वतीको परमात्मा भगवान् शिवकी सेवामें दे दो।

पवित्रात्मा ऋषियोंका यह वचन सुनकर गिरिराज हिमवान् बड़ी उतावलीके साथ समस्त पर्वतोंसे बोले—'हे मेरु! हे निषध! हे गन्धमादन! हे

* अत्यासन्ने चातिदूरे अत्याढ्ये धनवर्जिते। वृत्तिहीने च मूर्खे च कन्यादानं न शस्यते॥
मूढाय च विरक्ताय आत्मसम्भाविताय च। आतुराय प्रमत्ताय कन्यादानं न कारयेत्॥
(स्क० पु०, मा० के० २३। ८-९)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

मन्दराचल! और हे मैनाक! तुम सब लोग अपनी यथोचित सम्मति दो, जिससे वैसा ही किया जाय।' तब बातचीत करनेमें कुशल मेनाने कहा—'नाथ! इस समय आपसमें विचार करनेसे क्या लाभ? यह कार्य तो तभी सम्पन्न हो गया था जब इस बड़भागिनी कन्याने जन्म लिया था। यह देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके लिये उत्पन्न हुई है। भगवान् शिवके लिये ही इसका अवतार हुआ है। अतः यह शिवको ही दी जानी चाहिये। इसने भगवान् रुद्रकी आराधना की है और रुद्रने भी वरदान देकर इसका आदर किया है। महाभागा पार्वती साक्षात् सती ही है। अतः यह शिवको ही ब्याही जाय। वह वैवाहिक कृत्य हमारे द्वारा भगवान् शिवकी पूजामें निमित्त बनेगा।'

मेनाकी यह बात सुनकर हिमवान् बहुत सन्तुष्ट हुए। तदनन्तर सप्तर्षियोंने वहाँसे पुनः लौटकर भगवान् शिवसे उनकी प्रेयसी पार्वतीका सब वृत्तान्त इस प्रकार कहा—'देवेश्वर! गिरिराज हिमवान्‌ने अपनी कन्या आपको दे दी, इसमें संशय नहीं है। अब देवताओंको साथ ले शीघ्र ही पार्वतीसे विवाह करनेके लिये जाइये।' ऋषियोंका यह वचन सुनकर परमेश्वर शिवने कहा—'विवाह कैसे होगा और कौन-कौन उसमें चलेंगे, यह सब बात विस्तारपूर्वक बताओ।' तब उन ऋषियोंने भगवान् सदाशिवसे हँसकर कहा—'देव! भगवान् विष्णुको बुलाना चाहिये। साथ ही ब्रह्मा, इन्द्र, ऋषिगण, यक्ष, गन्धर्व, नाग, सिद्ध, विद्याधर, किन्नर, अप्सरागण तथा अन्य लोगोंको भी शीघ्र बुलाइये।' ऋषियोंकी यह बात सुनकर महादेवजीने देवर्षि नारदसे कहा—'तुम शीघ्र जाकर भगवान् विष्णुको बुला लाओ। उसके बाद ब्रह्मा, इन्द्र तथा अन्य देवगणोंको भी ले आना।' लोकपावन नारदने भगवान् शिवकी आज्ञा शिरोधार्य की और तुरंत वहाँसे भगवान् विष्णुके प्रिय धाम वैकुण्ठलोकमें गये। वहाँ उन्होंने देखा—भगवान् विष्णु एक श्रेष्ठ सिंहासनपर विराजमान हैं। देवी लक्ष्मी उनकी सेवा कर रही हैं। भगवान्‌के चार भुजाएँ हैं। वे सब देवताओंमें श्रेष्ठ और अत्यन्त तेजस्वी हैं। उनके श्रीअंगोंकी कान्ति नील कमलके समान श्याम है। कानोंमें बहुमूल्य रत्नजटित मनोहर कुण्डल झलमला रहे हैं। मस्तकपर परम सुन्दर विशाल मुकुट शोभा पा रहा है, जिसमें जड़े हुए उत्तम रत्नोंकी प्रभासे वे और भी प्रकाशित हो रहे हैं। गलेमें सुन्दर वैजयन्तीकी बनी हुई वनमाला शोभा दे रही है। इस प्रकार त्रिभुवनमें एकमात्र सुन्दर वे सनातन देव विष्णु वैकुण्ठमें विराज रहे हैं।*

ऋषियोंमें श्रेष्ठ सर्वज्ञ नारदजी ब्रह्मवीणा बजाते हुए भगवान् विष्णुके समीप गये और शंकरजीका सन्देश सुनाते हुए बड़े आदरसे बोले—'महाविष्णो! शीघ्र चलिये, महादेवजी विवाहके लिये उतावले हो रहे हैं। उनकी ओरसे सब कार्योंकी व्यवस्था करनेवाले केवल आप ही हैं।' नारदजीकी बात सुनकर देवाधिदेव भगवान् जनार्दन नारदजी तथा पार्षदोंको साथ ले वहाँसे चल दिये। भगवान् विष्णु योगेश्वरोंके भी प्रभु हैं, महान् हैं तथा परमात्मा हैं। वे उस समय गरुड़पर आरूढ़ हो श्रेष्ठ देवताओंके साथ आकाशमार्गसे भगवान् शिवके समीप गये।

---

* ददर्श देवं परमासने स्थितं श्रिया च देव्या परिसेव्यमानम्।
चतुर्भुजं देववरं महाप्रभुं नीलोत्पलश्यामतनुं वरेण्यम्॥
महार्हरत्नावृतचारुकुण्डलं महाकिरीटोत्तमरत्नभास्वरम्।
सुवैजयन्त्या वनमालयान्वितं सनातनं तं भुवनैकसुन्दरम्॥
(स्क० पु०, मा० के० २३। ३४-३५)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

योगीजन जिनके चरणारविन्दोंका सदा चिन्तन करते हैं, वे महादेवजी भगवान् विष्णुको आया देख उठकर खड़े हो गये और आनन्दमग्न हो उन्हें छातीसे लगा लिया। फिर भगवान् हरि और हर दोनों एक ही आसनपर विराजमान हुए। दोनोंने एक-दूसरेकी कुशल पूछी। तत्पश्चात् श्रीमहादेवजी बोले—'विष्णो! पार्वतीकी तपस्यासे मैं उसके वशमें हो गया हूँ और आज उसका पाणिग्रहण करनेके लिये हिमवान्के घर चलना चाहता हूँ।' यह बातचीत हो ही रही थी कि ब्रह्माजी भी इन्द्र तथा सम्पूर्ण लोकपालोंके साथ वहाँ आ पहुँचे। इसी प्रकार सब असुर, यक्ष, दानव, नाग, पक्षी, अप्सरा और महर्षि भी आये। सबने एकत्र होकर भगवान् शिवसे एक स्वरमें कहा—'महादेवजी! अब आप हमलोगोंके साथ हिमवान्के घर पधारिये, पधारिये।' तब भगवान् विष्णुने भी इस प्रस्तावके अनुरूप बात कही—'शम्भो! आपको गृह्यसूत्रोक्त विधिके अनुसार ही यहाँ वैवाहिक कर्म करना चाहिये। जैसे नान्दीमुख श्राद्ध और मण्डपकी स्थापना आदि आवश्यक कार्य हैं।' भगवान् विष्णुके कथनानुसार महादेवजीने अपने हितके लिये सब कुछ वैसा ही किया। आभ्युदयिक श्राद्धकर्ममें जिनका पूजन उचित और आवश्यक है, ऐसे ब्रह्मादि देवताओंकी उन्होंने पूजा की। ब्रह्माजीके साथ कश्यप मुनिने नवग्रहोंका पूजन किया। अत्रि, वशिष्ठ, गौतम, भागुरि, भृगु, बृहस्पति, शक्ति, जमदग्नि, पराशर, मार्कण्डेय, शिलावाक्, शूल्यपाल, अक्षतस्त्रम्, अगस्त्य, च्यवन तथा गोभिल—ये और दूसरे भी बहुत-से महर्षि शिवजीके समीप आये। ब्रह्माजीकी आज्ञासे उन सबने वहाँ विधिपूर्वक शास्त्रोक्त रीतिसे शुभकर्म सम्पन्न किये। चण्डी देवी सब भूतोंसे घिरी हुई सबके आगे-आगे चलीं। उन्होंने अपने मस्तकपर सोनेका कलश ले रखा था। चण्डीके पीछे भगवान् शिवके गण थे और गणोंके पीछे इन्द्र आदि देवता, लोकपाल और ऋषि चल रहे थे। ऋषियोंके पीछे भगवान् विष्णुके महातेजस्वी कुमुद आदि पार्षद थे जो भगवान्के असंख्य भावोंको शीघ्र ही समझ लेनेवाले तथा बड़े मनोहर थे। परम पुरुषार्थ प्रदान करनेवाले तथा विश्वके एकमात्र बन्धु परमात्मा भगवान् श्रीहरि शिवजीके साथ-साथ चल रहे थे। तीनों लोकोंके एकमात्र पालक भगवान् विष्णु लक्ष्मीजीके साथ अपने वाहन गरुड़जीकी पीठपर बैठे थे। बड़े-बड़े मुनीश्वर अपने हाथोंमें सुन्दर चँवर लिये हवा कर रहे थे। सर्वेश्वर श्रीहरि उन सबके साथ बड़ी शोभा पा रहे थे। इसी प्रकार ब्रह्माजी भी चारों वेदों, छहों वेदांगों, आगमों, इतिहासों और पुराणोंके साथ अपने वाहन हंसपर विराजमान थे। ब्रह्मा, विष्णु, देवेश्वरगण तथा ऋषिवृन्दसे घिरे हुए भगवान् शिव अपने वाहन वृषभपर आरूढ़ होकर चल रहे थे। वे सम्पूर्ण योगेश्वरोंके लिये भी दुर्लभ तथा अगम्य हैं। वेद, देवता, सिद्ध और महर्षिगण जिसे धर्म कहते हैं, उसी धर्मस्वरूप, धर्मवत्सल वृषभपर महादेवजी आरूढ़ थे। मातृकाएँ उन्हें सब ओरसे घेरकर अपनी मधुर वाणीद्वारा भगवान् शिवके लिये मंगलाचार करती थीं। इस प्रकार भगवान् महेश्वर सम्पूर्ण देव-दानवोंके साथ सब प्रकारसे अलंकृत हो नारियोंमें श्रेष्ठ पार्वतीजीका पाणिग्रहण करनेके लिये गिरिराज हिमवान्के घर गये।

उधर गिरिराज हिमालय भी बड़ी प्रसन्नताके साथ अपनी पुत्रीके लिये उसी प्रकार सब मंगलाचार करा रहे थे। उन्होंने गर्गजीको पुरोहित बनाकर महान् वैभवके द्वारा मांगलिक भूमि निर्माण करायी। विश्वकर्माको बुलाकर उनके द्वारा बड़े आदरके साथ अत्यन्त विस्तृत मण्डप तैयार कराया, जो बहुत-सी वेदियोंके कारण अतिशय मनोहर जान पड़ता था। वह मण्डप अनेक प्रकारके गुणोंसे तथा भाँति-भाँतिके

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

आश्चर्यभरे दृश्योंसे सुशोभित था। उसका विस्तार हजारों योजनका था। वह अपनी दिव्य निर्माण-कलासे देवताओंका भी मन मोहे लेता था।

तदनन्तर इन्द्र आदि सब देवता नारदजीको आगे करके हिमवान्‌के परम अद्भुत भवनमें एक साथ गये। उसे विश्वकर्माने विचित्र ढंगसे बनाया था। वहाँ अनेक प्रकारकी आश्चर्यभरी बातें देखनेमें आती थीं। वह यज्ञ-मण्डप अत्यन्त पवित्र और उत्तम था। बहुत लोगोंने सर्वश्रेष्ठ बताकर उसकी प्रशंसा की थी। उसकी कारीगरी अद्भुत थी। वह मन और बुद्धिके लिये अतर्क्य था। बुद्धिमान् विश्वकर्माने इस प्रकार विचित्र यज्ञ-मण्डपकी रचना की थी। वे सम्पूर्ण देवेश्वर ऋषियोंके साथ उस मण्डपमें प्रवेश करना ही चाहते थे तबतक हिमवान्‌की दृष्टि उनके ऊपर पड़ी। हिमवान्‌ने आगे बढ़कर उनका स्वागत किया और उन सबके ठहरनेके लिये बड़े मनोहर गृह प्रदान किये। गन्धर्व, सिद्ध, प्रमथ, यक्ष, देव, नाग तथा अप्सराएँ—इनमें जो जहाँ सुखपूर्वक रह सके, उन्हें वहीं विश्रामस्थान हिमालयने दिया।

हिमवान्‌से सम्मानित होकर सब देवताओंने अपने परिवार और वाहनोंसहित उस मण्डपमें आनन्दपूर्वक निवास किया। विश्वकर्माने उसमें बहुत विस्तृत अवकाश बना रखा था। ब्रह्माजीके निवासके लिये अत्यन्त प्रकाशमान स्थान बनाया गया था। उसी प्रकार भगवान् विष्णुके लिये दूसरा भवन बना था जो अत्यन्त विचित्र और बहुत ही प्रकाशमान था। विश्वकर्माने उसे अपने हाथों सँवारकर अत्यन्त मनोहर बना रखा था। इसी प्रकार चण्डीगृह भी उन्होंने बड़ा सुन्दर बनाया था। उसके अतिरिक्त विश्वकर्माने जो एक अत्यन्त विचित्र, परम मनोहर, महान् मंगलमय, श्रेष्ठ देवताओंद्वारा प्रशंसित, कैलासके समान अतिशय प्रभापूर्ण तथा अत्यन्त शोभायमान भवन बना रखा था, उसीमें हिमवान्‌ने महान् वैभवके साथ भगवान् शिवको ठहराया। इसी समय मेनादेवी अपनी सखियों तथा ऋषिमुनियोंके साथ भगवान् शिवकी आरती उतारनेके लिये आयीं। उस समय जो बाजे बज रहे थे, उनके शब्दसे तीनों लोक गूँज उठे। मेनाने तपस्वी शिवकी अपने हाथों आरती उतारी। वे बड़ी सती-साध्वी थीं। जामाताको देखकर उन्हें पार्वतीकी कही हुई सब बातें स्मरण हो आयीं और वे विस्मय-विमुग्ध हो उठीं। मेना मन-ही-मन कहने लगीं—'अहो! पार्वतीने पहले मेरे समीप जो कुछ कहा था, उससे कहीं अधिक सौन्दर्य इस समय मैं महादेवजीके अंगोंमें देख रही हूँ। यह सौन्दर्य तो अनिर्वचनीय है।' इस प्रकार विस्मयमें डूबी हुई मेनादेवी अपने घरमें लौट आयीं।

उस समय पार्वती स्नान करके मंगलपीठपर बैठी थीं। ब्राह्मणोंकी स्त्रियोंने सब ओरसे उन्हें घेरकर आरती उतारी। तदनन्तर गर्गाचार्यने कहा—'विद्वानो! आपलोग इसी समय पाणिग्रहणके लिये भगवान् शंकरको इस मण्डपमें ले आवें। इस कार्यमें शीघ्रता होनी चाहिये।' गर्गाचार्यका वचन सुनकर गिरिराज हिमवान्‌के सब मन्त्री भगवान् शंकरके पास गये और उन्होंने तीन कलशोंके जलसे मांगलिक विधिके अनुसार भगवान् सदाशिवको स्नान कराया तथा उनकी आरती भी उतारी। स्नान करके सुन्दर वस्त्र धारण कर लेनेके पश्चात् शंकरजीका उन सबने पुनः पूजन किया। उसके बाद उन्हें सब प्रकारके आभूषणोंसे विभूषित करके हाथीकी पीठपर चढ़ाया। उस समय भगवान् शिवके मस्तकपर बहुत बड़ा छत्र तना हुआ था, उस छत्रसे उनकी बड़ी शोभा हो रही थी। ऊपरसे चँदोवा तना था और सब ओरसे उनके लिये चँवर डुलाये जा रहे थे। ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र तथा सब लोकपाल 'वर' के आगे-आगे चलते हुए उत्कृष्ट शोभासे सम्पन्न दिखायी देते थे। उस यात्राके समय शंख, भेरी, पटह आनक और गोमुख आदि बाजे बज रहे थे। सम्पूर्ण गायक उत्तम मांगलिक गीत गा

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

रहे थे। अरुन्धती, अनसूया, सावित्री तथा मातृकाओंसे घिरी हुई लक्ष्मीजी भी उस शोभायात्रामें सम्मिलित थीं। इन सबके साथ जगत्के एकमात्र बन्धु भगवान् शिव अपने उत्तम तेजसे सुशोभित हो रहे थे। चन्द्रमा, सूर्य, अग्नि, वायु, श्रेष्ठ लोकपाल तथा महर्षिगण भी उनके साथ थे। साक्षात् वायुदेव पंखा कर रहे थे। चन्द्रमाने उनके सिरपर छत्र लगा रखा था। सूर्य आगे रहकर अपने तेजसे तप रहे थे। देवराज इन्द्र हाथमें बेंतकी छड़ी लेकर छड़ीदारका काम कर रहे थे। इस प्रकार देवता और पर्वत भगवान् शिवके आगे चलते हुए बड़ी शोभा पा रहे थे। उस समय देवता और मुनि भगवान् शिवके ऊपर फूल बरसा रहे थे, जिससे उनकी शोभा और भी बढ़ गयी थी। सामने हिमवान्का सुन्दर भवन था जो महान् वैभवके कारण सब ओरसे शोभासम्पन्न दिखायी देता था। उस घरका आँगन सोनेका बना हुआ था। वहाँ द्वारपर भगवान् शिवकी विशेषरूपसे पूजा हुई। फिर मनुष्य, देवता और दानवोंके द्वारा पूजित होकर उन्होंने उस भवनमें प्रवेश किया। इस प्रकार अन्तःपुरमें पहुँचकर भगवान् शिव यज्ञ-मण्डपमें पधारे। उस समय नाना प्रकारकी स्तुतियोंसे परमेश्वर शिवके गुण गाये जा रहे थे। वहाँ पहुँचनेपर गिरिराज हिमवान्ने महेश्वरको हाथीसे उतारा और मंगलपीठपर बिठाकर सखियोंसहित मेना तथा पुरोहितने उनकी विशेषरूपसे आरती की। वहाँ मधुपर्क आदिकी जो आवश्यक विधि है, वह सब ब्रह्माजीकी आज्ञासे पुरोहितने तत्काल सम्पन्न की। तत्पश्चात् अन्तर्वेदीमें प्रवेश करके, जहाँ 'तन्वंगी' पार्वती समस्त आभूषणोंसे विभूषित हो वेदीके ऊपर विराजमान थीं, वहीं महादेवजी भी लाये गये। उनके साथ भगवान् विष्णु और ब्रह्मा भी थे। बृहस्पति आदि विद्वान् लग्नकी प्रतीक्षा कर रहे थे। गर्ग और वशिष्ठ मुनि जहाँ घड़ीका स्थान था, वहीं बैठे थे। ज्यों ही घड़ी पूरी हुई, गर्गाचार्यने ॐकारका उच्चारण करके हाथ जोड़कर निवेदन किया। अब मंगलमय पुण्य मुहूर्त आ गया। पार्वतीने अपने हाथकी अंजलिमें अक्षत लेकर उसे शिवके ऊपर छोड़ा। फिर दही, अक्षत और कुशके जलसे उनका भलीभाँति पूजन किया।

इसी समय गर्गाचार्यके आदेशसे हिमवान् अपनी पत्नी मेनाके साथ वहाँ कन्यादान करनेको उद्यत हुए। मेना सोनेका कलश लेकर उनकी अर्द्धांगिनी बनी हुई थीं। परम सौभाग्यवती मेना समस्त आभरणोंसे विभूषित होकर हिमवान्के साथ बैठी थीं। उस समय हिमवान्ने सबको वर देनेवाले भगवान् विश्वनाथसे कहा—'आज मैं ब्रह्माजी तथा भगवान् विष्णुका संग पाकर और अपने पुरोहित परम महात्मा गर्गजीके साथ बैठकर देवाधिदेव भगवान् शंकरको कन्यादान करता हूँ। विप्रवर! इस समय कन्यादानके लिये उत्तम बेला आयी है। इसमें आप संकल्प पढ़ें।' 'बहुत अच्छा' कहकर वहाँ आये हुए सब श्रेष्ठ ब्राह्मणोंने हिमवान्की बात स्वीकार की। वे सभी शुभ समयके ज्ञाता थे। उन्होंने तिथि, मास, नक्षत्र आदिका यथावत् उच्चारण किया। फिर हिमवान् भगवान् शंकरसे इस प्रकार बोले।

हिमवान्ने कहा—तात! महाभाग! आप अपने गोत्रका नाम बतावें और अपने कुलका विशेषरूपसे परिचय दें।

भगवान् शंकरके मुखारविन्दसे इस प्रश्नका कोई उत्तर नहीं मिला। उस समय नारदजी बहुत हँसे और अपनी वीणा बजाने लगे। यह देख बुद्धिमान् हिमवान्ने उन्हें मना करते हुए कहा—'प्रभो! आप वीणा न बजाइये।' पर्वतके ऐसा कहनेपर नारदजी बोले—'गिरिराज! तुमने साक्षात् शिवजीसे उनका गोत्र बतानेके लिये कहा है; परंतु इनका गोत्र और कुल तो 'नाद' ही है। भगवान् शंकर न तो किसी कुलमें उत्पन्न हुए हैं और न इनका किसी

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

विशेष कुलसे ही सम्बन्ध है। ये गोत्रोंके भी परम गति हैं। महादेवजी नादमें प्रतिष्ठित हैं और नाद उनमें प्रतिष्ठित है। अतः भगवान् शिव नादमय हैं और नादसे ही उपलब्ध होते हैं। परंतप! यही भाव व्यक्त करनेके लिये मैंने इस समय वीणा बजायी है। इनके गोत्र और कुलका नाम ब्रह्मा आदि देवता भी नहीं जानते; फिर दूसरोंकी तो बात ही क्या है। भगवान् शिवका कोई रूप नहीं है, इसीलिये किसी कुलमें उत्पन्न न होनेके कारण ये अकुलीन कहलाते हैं। गिरिश्रेष्ठ! इसीलिये तुम्हारे ये 'जामाता' गोत्ररहित हैं। राजन्! मेरे बहुत कहनेसे क्या लाभ। इनके अंशमात्रसे मोहित होकर ये ऋषिलोग भी इनके स्वरूपको यथावत्‌रूपसे नहीं जानते। यह कन्या कौन है, इस बातको अभी तुम भी ठीक-ठीक नहीं जानते। शिव और पार्वती—इन दोनोंसे ही सम्पूर्ण विश्वकी उत्पत्ति होती है तथा इन्हीं दोनोंके आधारपर यह टिका हुआ है।'

महात्मा नारदका यह वचन सुनकर हिमवान् आदि समस्त पर्वत और इन्द्र आदि सब देवता विस्मित होकर उन्हें 'साधुवाद' देने लगे। भगवान् महेश्वरकी गम्भीरताको जानकर वहाँ आये हुए सब विद्वान् आश्चर्यचकित हो परस्पर कहने लगे—जिनकी आज्ञासे ब्रह्माजीके द्वारा इस सम्पूर्ण विशाल विश्वकी सृष्टि हुई है, जिनसे अभिन्न होनेके कारण यह समस्त जगत् परात्पररूप तथा आत्मबोधस्वरूप है, स्वतन्त्र परमेश्वररूपसे जाननेयोग्य है, वे भगवान् शिव ही अपने त्रिभुवनमय स्वरूपसे युक्त होकर सर्वत्र विराज रहे हैं।

हिमवान्‌द्वारा कन्यादान, बारातका भोजन और बिदाई, शिवमहिमा तथा कुमारका जन्म

लोमशजी कहते हैं—तदनन्तर ब्रह्माजीकी आज्ञासे हिमवान्ने कन्यादान किया—'**इमां कन्यां तुभ्यमहं ददामि परमेश्वर! भार्यार्थं प्रतिगृह्णीष्व**' (हे परमेश्वर! मैं अपनी यह कन्या आपको धर्मपत्नी बनानेके लिये अर्पित करता हूँ, कृपया स्वीकार करें) यह वाक्य बोलकर उन्होंने अपनी कन्या दे दी। फिर कमलके समान नेत्रोंवाले वे दोनों दम्पति (वर-वधू) वेदीके बाहर लाये गये तथा उन पार्वती और परमेश्वरको बाहरकी ही वेदीपर बिठाया गया। जब होमका कार्य आरम्भ हुआ तब ब्रह्माजी भगवान् शिवके समीप ही ब्रह्मासनपर विराजमान हो गये। हवन पूरा होनेपर ब्राह्मणलोग शान्तिपाठ करने लगे। उस समय उनकी बड़ी शोभा हो रही थी। उच्चस्वरसे बोले जानेवाले वेदमन्त्रोंकी ध्वनिसे वहाँकी सम्पूर्ण दिशाएँ गूँज उठीं। तत्पश्चात् देवांगनाओंने महादेवजीकी आरती उतारी तथा ऋषिपत्नियोंने उनका पूजन किया। गिरिराज हिमालयके घरकी स्त्रियोंने भी वरकी आरती उतारी। संगीतज्ञोंमें कुशल गन्धर्व आदिने अपने गीतोंसे तथा महर्षियोंने स्तुतियोंद्वारा भगवान् शिवको प्रसन्न किया। उदार चित्तवाले गिरिराज हिमालयने अत्यन्त सन्तुष्ट होकर ऋषि, गन्धर्व, यक्ष और वहाँ पधारे हुए अन्य लोगोंको भी बहुमूल्य रत्न भेंट किये। इसके पश्चात् ब्रह्मा, विष्णु आदि देवेश्वर भगवान् शिवको आगे करके भोजनमें तत्पर हुए। हिमालयने उन सबका सत्कार किया। उन सबने एक साथ मिलकर और एक ही स्थानपर पंक्ति लगाकर लिंगी और भृंगीके साथ भोजन किया। कोई-कोई गण पंक्तिसे अलग होकर भोजन कर रहे थे। उन्होंने अपने लिये पृथक् पात्र बना रखा था। नन्दी तथा वीरभद्र आदि महात्मा भगवान् शिवके पीछे बैठकर भोजन कर रहे थे। इन्द्र आदि देवता तथा ऋषि-मुनियोंने भी भगवान् महेश्वरके पास ही भोजन किया।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

चण्डीके गणोंने भी वहाँ भोजन किया। वेताल, क्षेत्रपाल, कूष्माण्ड, भैरव, शाकिनी, डाकिनी, यक्षिणी, मातृका आदि चौंसठ योगिनी तथा अन्यान्य योगीजन भी वहाँ भोजनमें सम्मिलित थे। भगवान् शिवके उन महात्मा गणोंकी संख्या ग्यारह करोड़ थी। ऋषि और देवता आदिके विषयमें तो मैंने पहले ही कह दिया है।

इस प्रकार वे सब बराती खा-पीकर संतुष्ट हुए। उन सबके चित्तमें बड़ा हर्ष था। ब्रह्मा आदि सभी देवता विश्राम करनेके लिये अपने-अपने डेरोंपर गये। इस तरह हिमवान्‌ने बड़े विस्तारके साथ परम मंगलमय और अतिशय शोभायमान वह वैवाहिक उत्सव सम्पन्न किया। अन्तिम दिन हिमवान्‌ने उत्साहपूर्ण हृदयसे वस्त्र, आभूषण और भाँति-भाँतिके रत्न भेंट करके देवाधिदेव भगवान् शिवका पूजन किया। तत्पश्चात् वे विष्णुभगवान्‌के पूजनमें संलग्न हुए। सुन्दर-सुन्दर वस्त्रों और आभूषणोंद्वारा उन्होंने लक्ष्मीसहित विष्णुका पूजन किया। इसी प्रकार ब्रह्माजीकी, बृहस्पतिजी और इन्द्राणीसहित इन्द्रकी तथा अन्य लोकपालोंकी भी पृथक्-पृथक् पूजा की। तदनन्तर वस्त्राभूषणों तथा नाना प्रकारके रत्नोंसे भूत, प्रमथ और गुह्यक-गणोंसहित चण्डीदेवीका भी पूजन किया। इनके अतिरिक्त भी जो लोग वहाँ पधारे थे, उन सबका हिमवान्‌ने यथावत् सत्कार किया। इस प्रकार उस समय हिमवान्‌के द्वारा सब देवता, ऋषि, यक्ष, गन्धर्व, किन्नर, सिद्ध, चारण, मनुष्य तथा अप्सरा—इन सबका भलीभाँति सत्कार किया गया।

इसके बाद भगवान् विष्णुने भी उसी तरह सब पर्वतोंका सत्कार किया। सह्याचल, विन्ध्याचल, मैनाक, गन्धमादन, माल्यवान्, मलय, महेन्द्र, मन्दराचल तथा मेरु—इन सबका श्रीहरिने प्रयत्नपूर्वक पूजन किया। श्वेतकूट, श्वेतगिरि, नीलगिरि, उदयगिरि, शृंगाचल, अस्ताचल, मानसाचल, कैलास तथा लोकालोक पर्वतका पूजन ब्रह्माजीने किया। इस प्रकार सभी श्रेष्ठ पर्वतोंकी वहाँ पूजा की गयी। साथ ही सम्पूर्ण पर्वतवासियोंका भी पूजन किया गया। भगवान् विष्णुने ब्रह्माजीके साथ सबके स्वागत-सत्कारका कार्य समुचित रूपसे सम्पन्न किया। दूसरे दिन बारात लौटी। हिमालयने अपने बन्धुओंके साथ गन्धमादन पर्वततक वरका अनुगमन किया। शिव और पार्वती दोनों महातेजस्वी दम्पति हाथीपर आरूढ़ हो शोभा पा रहे थे। ब्रह्माजी विमानपर और भगवान् विष्णु गरुड़पर बैठे थे। इन्द्र ऐरावतपर और कुबेर पुष्पक विमानपर विराज रहे थे। पाशधारी वरुण मगरपर तथा यमराज भैंसेपर सवार थे। नैर्ऋत प्रेतपर और अग्निदेव बकरेपर चढ़े थे। वायुदेव मृगपर तथा ईशान वृषभपर आरूढ़ थे। इस प्रकार ये सब लोकपाल और ग्रह अपनी-अपनी सेनाओंके साथ वरको घेरे हुए चल रहे थे। प्रमथ आदि गण भी वरयात्रामें सम्मिलित थे। जिनके कन्यादानरूपी महान् दानसे भगवान् शंकर सन्तुष्ट हुए, वे गिरिराज हिमवान् तीनों लोकोंमें विख्यात हो गये।

जिनकी जिह्वाके अग्रभागपर सदा भगवान् शंकरका दो अक्षरोंवाला नाम (शिव) विराजमान रहता है वे धन्य हैं, वे महात्मा पुरुष हैं तथा वे ही कृतकृत्य हैं। आज भी जिन्होंने 'शिव' इस अविनाशी नामका उच्चारण किया है, वे निश्चय ही मनुष्यरूपमें रुद्र हैं; इसमें संशय नहीं है। महादेवजी थोड़ा-सा बिल्वपत्र पाकर भी सदा सन्तुष्ट रहते हैं। फूल और जल अर्पण करनेसे भी प्रसन्न हो जाते हैं। भगवान् शिव सदा सबके लिये कल्याणस्वरूप हैं। ये पत्र, पुष्प और जलसे ही सन्तुष्ट हो जाते हैं। इसलिये सबको इनकी पूजा करनी चाहिये। शिवजी इस जगत्‌में मनुष्योंको महान् सौभाग्य प्रदान करनेवाले हैं। ये एक हैं, महान् हैं, ज्योतिःस्वरूप हैं तथा अजन्मा परमेश्वर हैं। महात्मा शिव कार्य और कारण सबसे

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

परे हैं। ये व्यवधानशून्य, निर्गुण, निर्विकार, निर्बाध, निर्विकल्प, निरीह, निरंजन, नित्ययुक्त, निष्काम, निराधार तथा सदैव नित्यमुक्त हैं।*

ऐसी महिमावाले देवाधिदेव विश्वबन्धु भगवान् शिवका सब देवताओंने पूजन किया। शिवजी सर्वज्ञ हैं, वे स्तुति, ध्यान, पूजन और चिन्तन करनेपर सबको सदा सब कुछ देनेवाले हैं। महादेवजीकी आराधनासे ही हिमवान् उस समय सबसे श्रेष्ठ, सबसे महान्, सम्पूर्ण सद्गुणोंसे प्रसिद्ध, सर्वगुण-सम्पन्न, महात्मा विश्वेश्वरोंके लिये भी वन्दनीय तथा समस्त पर्वतोंमें श्रेष्ठ हो गये। धर्मात्मा हिमालय जब मेनाके साथ अपने स्थानको लौटे तब उन्होंने सब पर्वतोंको विदा किया।

उधर भगवान् शिवने गन्धमादन पर्वतके एकान्त प्रदेशमें अत्यन्त सुन्दर रूप धारणकर पार्वती देवीके साथ रमण करनेका विचार किया। फिर वे महाप्रभु पार्वतीके साथ महती रतिक्रीड़ामें तत्पर हुए। उन दोनोंका वह महान् सुरतारम्भ उस समय सब लोगोंके लिये अनिष्टकारक, अत्यन्त अद्भुत तथा प्रलयकारी हुआ। वह महती सम्भोग-लीला आरम्भ होनेपर भगवान् शंकरके दुःसह वीर्यसे समस्त चराचर जगत् नष्ट होने लगा। यह देख ब्रह्माजी तथा अध्यात्मज्ञानको प्रकाशित करनेवाले भगवान् विष्णुने अग्निदेवका स्मरण किया। मनसे स्मरण करते ही अग्निदेव बड़ी उतावलीके साथ तत्काल वहाँ आ पहुँचे। फिर उन दोनोंकी आज्ञा पाकर अग्निने केसरके समान कान्तिवाले हंस (संन्यासी)-का रूप धारण करके शिवजीके भवनमें प्रवेश किया। वहाँ आँगनमें पहुँचकर वे बैठ गये और बोले—'माँ! हाथ ही मेरा पात्र है; इसमें मुझे भिक्षा दो।' तब माता पार्वतीने 'जातवेदा' अग्निको भिक्षा (के रूपमें वीर्य) दे दिया। अग्निने हाथपर भिक्षा लेकर उनकी आँखोंके सामने ही उसे खा लिया। यह देख पार्वतीजी कुपित हो उठीं और अग्निको शाप देती हुई बोलीं—'अरे ओ भिक्षुक! मेरे शापसे तू शीघ्र ही सर्वभक्षी हो जायगा तथा शंकरजीके इस वीर्यसे तुझे सब ओर बड़ी भारी पीड़ा प्राप्त होगी।'

तदनन्तर अग्निदेवने लोककल्याणकारी भगवान् शंकरसे कहा—'प्रभो! महादेव! अब मुझे क्या करना चाहिये; सुरश्रेष्ठ! अब मुझे ऐसा कोई उपाय बताइये जिससे मैं सर्वदा सुखी रहूँ और देवताओंका हविष्य वहन करता रहूँ।' तब भगवान् शिवने सब देवताओंके सुनते-सुनते कहा—'अग्ने! तुम अपने शरीरमें पड़े हुए मेरे वीर्यको स्त्रीके गर्भमें स्थापित कर दो।' यह सुनकर अग्निने कहा—'भगवन्! आपका तेज दुःसह है, इसे प्राकृत जन कैसे धारण कर सकते हैं।' उस समय नारदजीने अग्निदेवसे कहा—'तुम मेरी बात मानो; माघ मासमें प्रातःस्नान करके शीतके कारण जो अत्यन्त कष्ट पा रहे हों, वे जब अग्निसेवनके

* ते धन्यास्ते महात्मानः कृतकृत्यास्त एव हि। द्व्यक्षरं नाम येषां वै जिह्वाग्रे संस्थितं सदा॥
शिव इत्यक्षरं नाम यैरुदीरितमद्य वै। ते वै मनुष्यरूपेण रुद्राः स्युर्नात्र संशयः॥
किञ्चिद्दलेन सन्तुष्टः पुष्पेणापि तथैव च। तोयेनापि च सन्तुष्टो महादेवो निरन्तरम्॥
पत्रेण पुष्पेण तथा जलेन प्रीतो भवत्येष सदाशिवो हि।
तस्माच्च सर्वैः परिपूजनीयः शिवो महाभाग्यकरो नृणामिह॥
एको महान् ज्योतिरजः परेशः परावराणां परमो महात्मा।
निरन्तरो निर्गुणो निर्विकारो निराबाधो निर्विकल्पो निरीहः॥
निरञ्जनो नित्ययुक्तो निराशो निराधारो नित्यमुक्तः सदैव हि॥
(स्क० पु०, मा० के० २७। २२—२८)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

लिये आयें तब उनके शरीरमें तुम भगवान् शिवका यह तेज स्थापित कर देना।'

नारदजीकी यह बात मानकर परम कान्तिमान् एवं महान् प्रभावशाली अग्निदेव ब्राह्ममुहूर्तमें बैठकर अपने प्रचण्ड तेजसे प्रज्वलित हो उठे। अग्निको प्रज्वलित देख शीतसे कष्ट पानेवाली कृत्तिकाओंने अग्निसेवनकी इच्छासे वहाँ आनेका विचार किया। उस समय अरुन्धती देवीने उन सबको रोका, तो भी उनकी बात न मानकर वे सब कृत्तिकाएँ आग तापने लगीं। जबतक वे आग तापती रहीं तबतक ही शंकरजीके वीर्यके सभी परमाणु उनके रोमकूपोंमें होकर शरीरमें घुस गये। अब अग्निदेव उस वीर्यसे मुक्त हो गये। फिर तो स्वयं ही उनका वह प्रज्वलित तेज शान्त हो गया। तत्पश्चात् वे कृत्तिकाएँ गर्भवती होकर वहाँसे अपने घरको लौटीं। वहाँ उनके पति महर्षियोंने जब उन्हें शाप दिया तो वे नक्षत्रोंके रूपमें आकाशमें विचरने लगीं। उसी समय उन सबने भगवान् शिवके उस वीर्यको हिमालयके शिखरपर छोड़ दिया। छोड़नेपर वह सहसा तपाये हुए सुवर्णके समान चमक उठा। फिर वह गंगाजीमें डाल दिया गया। गंगाजीमें बहता हुआ वह तेजोमय वीर्य सरकंडोंके समूहसे घिर गया। वहाँ वह तेज छः मुखोंवाले बालकके रूपमें परिणत हो गया। इसका पता लगनेपर सम्पूर्ण देवताओंको बड़ी प्रसन्नता हुई। तदनन्तर नारदजीने आकर शिव और पार्वतीसे उस बालकके जन्मका समाचार कहा—'शिवजीके अत्यन्त सुन्दर पुत्र उत्पन्न हुआ है'। यह समाचार सुनकर गन्धमादन पर्वतपर निवास करनेवाले समस्त प्रमथगणोंका हृदय आनन्दोल्लाससे भर गया। वहाँ अनेकों पताकाएँ फहराने लगीं। बिल्वपत्रकी बन्दनवारें शोभा पाने लगीं तथा भाँति-भाँतिके वितानोंसे उस पर्वतकी शोभा बढ़ गयी। महात्मा शंकरके पुत्रके जन्मसे वह श्रेष्ठ पर्वत अत्यन्त प्रकाशित हो रहा था। उस समय सब देवता, ऋषि, सिद्ध, चारण, यक्ष, गन्धर्व, सर्प तथा अप्सराएँ सब-के-सब गंगाके तटपर विराजमान उस गंगापुत्रको देखनेके लिये वहाँ गये। पार्वतीके साथ भगवान् शंकर भी वृषभपर आरूढ़ हो इन्द्रादि देवताओंको साथ ले उस स्थानको चल दिये। देवता, सिद्ध, यक्ष, गन्धर्व, विद्याधर और नाग सभी आनन्दमें मग्न थे। वे शिवजीके साथ ही उनके वरदायक पुत्रका दर्शन करनेके लिये गये। शंकरजीके समान प्रतापी उस गंगापुत्रकी ओर देवताओंने जब दृष्टिपात किया, तब उन्हें महान् तेज दिखायी दिया, जो तीनों लोकोंमें व्याप्त था। उस तेजसे घिरा हुआ वह बालक तपाये हुए सुवर्णके समान कान्तिमान् था। उसका मुख बड़ा ही सुन्दर था। अंग-अंग मनोहारिणी शोभासे सम्पन्न था। नासिकाकी बनावट बड़ी सुन्दर थी। वह मन्द-मन्द मुसकराते हुए सबकी ओर देखता था। उसके दाँत बड़े ही स्वच्छ और चमकीले थे। सम्पूर्ण अंगोंमें सुन्दरता खेल रही थी। उसके सिरके बाल सब ओर बिखरे हुए थे। अत्यन्त अद्भुत रूपवाले तथा सूर्यके समान तेजस्वी उस गंगाकुमारको देखकर सम्पूर्ण देवताओंने उसका वन्दन किया। भगवान् शंकरके समस्त पार्षद, प्रमथगण और वीरभद्र आदि उस बालकको दायें-बायें दोनों ओरसे घेरकर खड़े हो गये। ब्रह्मा, विष्णु तथा देवताओंसहित इन्द्र भी उस समय बालकके समीप आये थे। ऋषि, यक्ष और गन्धर्व भी बालकको सब ओरसे घेरकर पृथ्वीपर दण्डकी भाँति पड़ गये। कुछ लोग गर्दन झुकाये खड़े रहे। कुछ लोगोंने मस्तक नवाकर प्रणाम किया तथा दूसरोंने उन्हें अपना अविनाशी स्वामी मानकर नमस्कार किया। इस प्रकार वहाँ एक महान् उत्सव छा गया। उसमें विचित्र-विचित्र बाजे बजने लगे। उस अभ्युदय-कालमें ऋषिलोग शान्तिपाठ करने लगे। इतनेहीमें गिरिजापति भगवान् शंकर भी वहाँ आ पहुँचे

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

और पार्वतीके साथ शीघ्र ही वृषभकी पीठसे उतरकर अपने पुत्रको देखा। देखते ही पार्वती वात्सल्यप्रेममें मग्न हो गयीं। उनके स्तनोंसे दूध बहने लगा। वे बड़े वेगसे आगे बढ़ीं और कुमारको छातीसे लगाकर अपने बहते हुए स्तनका दूध पिलाने लगीं। उस समय सम्पूर्ण देवों और देवांगनाओंने आनन्दमग्न होकर पार्वतीजीकी आरती उतारी। जय-जयकारके महान् शब्दसे आकाशमण्डल गूँज उठा। ऋषि-मुनि वेदमन्त्रोंका उच्चारण करके, गायकोंने गीत गाकर तथा बजानेवालोंने बाजे बजाकर कुमारका अभिनन्दन किया। पुत्रवानोंमें श्रेष्ठ भगवान् शंकर भी उस महातेजस्वी कुमारको अपनी गोदमें बिठाकर अत्यन्त सुशोभित हुए।

देवताओंका तारकासुर और उनकी सेनाके साथ संग्राम तथा कुमार कार्तिकेयद्वारा तारकासुरका वध

लोमशजी कहते हैं—कुमारको अंकमें लेकर जगदीश्वर रुद्रने इन्द्रादि देवताओंसे कहा—'देवगण! यह बालक बड़ा प्रतापी है। इस समय मेरे इस पुत्रसे तुम्हें कौन-सा काम लेना है, बतलाओ।' तब सम्पूर्ण देवताओंने भगवान् पशुपतिसे इस प्रकार कहा—'प्रभो! इस समय सम्पूर्ण जगत्को तारकासुरसे महान् भय प्राप्त हुआ है, इसलिये हम आज ही उसे मारनेके लिये उद्यत हो यहाँसे प्रस्थान करेंगे।' यों कहकर तथा इस कार्यमें भगवान् शंकरकी अनुमति जानकर वे सम्पूर्ण देवगण सहसा वहाँसे चल पड़े और शंकरजीके पुत्र 'कार्तिकेय'को आगे करके महान् असुर तारकपर चढ़ आये। इस युद्धमें ब्रह्मा, विष्णु आदि सब देवता सम्मिलित थे। देवतालोग युद्धके लिये प्रयत्नशील हैं, यह सुनकर महाबली तारकासुर भी बड़ी भारी सेनाके साथ देवताओंसे लोहा लेनेके लिये चल दिया। देवताओंने वहाँ आती हुई तारकासुरकी बड़ी भारी सेनाको देखा। उसी समय आकाशवाणी हुई—'देवगण! तुम शंकरजीके पुत्रको आगे करके युद्धके लिये उद्यत हो जाओ। संग्राममें दैत्योंको जीतकर निश्चय ही विजयी होओगे।' यह आकाशवाणी सुनकर सब देवता युद्धके लिये उत्सुक हो गये। उसी समय कुमार कार्तिकेयका वरण करनेके लिये मृत्युकन्या 'देवसेना' वहाँ आयी। कुमारने ब्रह्माजीके कहनेसे उसे अंगीकार किया। तबसे शंकरजीके पुत्र कार्तिकेयजी देवसेनापति हो गये। उस समय शंख, नगारे, डंका, ढोल, गोमुख तथा दुन्दुभि आदि बाजे बजने लगे।

देवराज इन्द्र कुमार कार्तिकेयको हाथीपर बिठाकर आगे-आगे चलने लगे। उनके साथ देवताओंकी बड़ी भारी सेना थी और लोकपालोंने भी उन्हें सब ओरसे घेर रखा था। उस समय दुन्दुभि, भेरी और तुर्य आदि अनेक बाजे बज उठे। कुमार इन्द्रको हाथी देकर स्वयं विमानपर जा बैठे। तब इन्द्रने कुमारके मस्तकपर वरुण-

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

देवताका छत्र धारण कराया जो बहुमूल्य मणियोंकी प्रभासे प्रकाशित हो रहा था। उसमें भाँति-भाँतिके रत्न लगे हुए थे, जिससे उसकी शोभा बहुत बढ़ गयी थी। वह छत्र चन्द्रमाकी किरणोंके पड़नेसे अत्यन्त शोभायमान जान पड़ता था। उस समय युद्धकी इच्छा रखनेवाले इन्द्र आदि सम्पूर्ण महाबली देवता अपनी-अपनी सेनाके साथ युद्धमें सम्मिलित हो गये। अपने गणोंके साथ धर्मराज भी वहाँ उपस्थित थे। मरुद्गणोंके साथ वायु, जल-जन्तुओंके साथ वरुण, गुह्यकोंसे घिरे हुए कुबेर, प्रमथगणोंके साथ ईशान और व्याधियोंके साथ नैर्ऋत युद्धके लिये आये थे। इस प्रकार आठों लोकपाल युद्धकी इच्छासे मिलकर तारकासुरको मारनेका विचार करते थे। विश्ववन्द्य शिवपुत्र सेनापति कार्तिकेय आत्मज्ञोंमें श्रेष्ठ थे। उन्हें आगे करके सब देवता पृथ्वीपर उतरे और गंगा-यमुनाके बीच अन्तर्वेदीमें आकर खड़े हुए। तारकासुरके अनुचर भी पातालसे वहीं आ गये और देवताओंका वध करनेके लिये अपनी सेनाके साथ युद्धस्थलमें विचरने लगे। तारकासुर भी विमानपर बैठकर वहाँ आया। उस विमानसे उसकी बड़ी शोभा हो रही थी। वह असुर बड़ा तेजस्वी था। उसके मस्तकपर छत्र तना हुआ था और सब ओरसे चँवर डुलाये जा रहे थे। इससे दैत्यराज तारक बड़ी शोभा पा रहा था। इस प्रकार देवता और दैत्य अन्तर्वेदीमें आकर बड़ी भारी सेनाके साथ खड़े थे। उन्होंने अपने सैनिकोंके पृथक्-पृथक् व्यूह बना रखे थे। हाथी, ऊँट, भेंड़े, भाँति-भाँतिके घोड़े तथा बहुमूल्य मणियोंसे युक्त विचित्र-विचित्र रथ भी व्यूहके आकारमें खड़े थे। बहुत-से पैदल योद्धा शक्ति, शूल, फरसा, तलवार, तोमर, तीर, पाश, मुद्गर और पट्टिश आदि शस्त्रोंसे सुसज्जित थे। देवता और दैत्योंकी वे दोनों सेनाएँ एक-दूसरेकी अपेक्षासे सजकर बड़ी शोभा पा रही थीं। उस समय देवताओंने दैत्योंको मार डालनेका विचार किया।

तदनन्तर दोनों सेनाएँ मेघके समान गम्भीर स्वरमें गर्जना करने लगीं। महाबली देवता और असुर एक-दूसरेसे भिड़ गये। उनमें घमासान युद्ध होने लगा। बाणोंकी बौछारोंसे वहाँका सारा मैदान रुण्ड-मुण्डोंसे भर गया। कितने ही धड़ बिना मस्तकके नाच रहे थे। रक्तकी नदियाँ बह चलीं। वह युद्ध बड़ा भयंकर हो रहा था। थोड़ी ही देरमें देवताओं और दानवोंका संहार करनेवाला वह युद्ध द्वन्द्व-युद्धके रूपमें परिणत हो गया। वायुदेवके साथ दनुकुमार युद्ध करने लगा। जम्भके साथ स्वयं यमराज भिड़ गये। बलके साथ वरुण और पद्मके साथ कुबेर युद्ध करने लगे। अग्निसे संह्लादका सामना हुआ। महाहनु नैर्ऋतिके साथ लोहा लेने लगा। मेघाभ ईशानके साथ और तारकासुर इन्द्रके साथ भिड़ गया। यक्ष, पिशाच, नाग, पक्षी, पितर, व्याधि, ज्वर, सन्निपात तथा भूत, प्रमथ और गुह्यक-गण भी अनेक प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंसे युद्धमें संलग्न हो गये। वे सब-के-सब दृढ़ निश्चय करके द्वन्द्वयुद्धमें तत्पर थे। कभी एक-दूसरेपर विजय पा जाते और कभी परस्पर विजय पाना उनके लिये अत्यन्त कठिन हो जाता था। विजयकी इच्छा रखनेवाले देवता और दानवोंमें जब इस प्रकार घमासान युद्ध चल रहा था उस समय देवतालोग दावानलसे दग्ध हुए बड़े-बड़े वृक्षोंकी भाँति उस युद्धस्थलमें गिरने लगे। गिरकर नष्ट हुए देवताओंकी लाशोंसे उस समय सारी पृथ्वी अत्यन्त भयानक प्रतीत होती थी। तारकासुरने अपनी बड़ी भारी शक्ति चलाकर देवराज इन्द्रको घायल कर दिया। वे तुरंत ही ऐरावत हाथीसे पृथ्वीपर गिर पड़े और मूर्छित हो गये। इसी प्रकार अन्य लोकपाल भी महाबली असुरोंसे पराजित हुए। उस रणभूमिमें युद्धविद्याविशारद कितने ही देवताओंको हार खानी पड़ी।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

कितनोंको प्राणोंसे हाथ धोना पड़ा और कितने ही युद्ध छोड़कर भाग खड़े हुए। इस प्रकार देवसेनाको तहस-नहस होती देख महातेजस्वी राजा मुचुकुन्द तारकासुरसे युद्ध करने लगे। इन्द्र बहुतेरे असुरोंसे घिरे हुए पृथ्वीपर पड़े थे। उन्हें छोड़कर तारकासुर मुचुकुन्दके साथ भिड़ गया। इस प्रकार मुचुकुन्द और तारकासुरमें बड़ा भारी युद्ध हुआ। मुचुकुन्द बड़े बलवान् थे। उन्होंने तलवारसे तारकासुरपर ज्यों ही प्रहार किया त्यों ही तारकासुरकी शक्तिसे आहत होकर वे रणभूमिमें गिर पड़े। गिरनेपर भी वे तत्काल उठकर खड़े हो गये और तारकासुरको मारनेके लिये ब्रह्मास्त्र उठाया। तब नारदजीने कहा—'राजन्! तारकासुर मनुष्यके हाथसे नहीं मारा जायगा। अतः उसके ऊपर इस महान् अस्त्रका प्रयोग न करो। भगवान् शिवके पुत्र कुमार कार्तिकेय ही तारकासुरको मारनेमें समर्थ हैं। अतः तुम सब लोगोंको शान्त रहना चाहिये।'

नारदजीकी बात सुनकर सब देवता मुचुकुन्दके साथ ही शान्त हो गये। तब वीरभद्रने त्रिशूलसे मारकर तारकासुरको भारी आघात पहुँचाया। तारकासुर सहसा पृथ्वीपर गिरा और क्षणभर मूर्छामें डूबा रहा। फिर चेत होनेपर एक ही मुहूर्तमें वह उठकर खड़ा हो गया और शक्तिसे उसने वीरभद्रपर प्रहार किया। भगवान् शिवके सेवक महाबली वीरभद्रने भी भयानक त्रिशूलसे तारकासुरको पुनः चोट पहुँचायी। इस तरह ये दोनों एक-दूसरेको मारने लगे। भगवान् शिवके गणोंमें जो अत्यन्त युद्धकुशल और वीरभद्रके समान ही पराक्रमी थे, वे बैलपर सवार हो मस्तकपर जटा-जूट धारण किये हाथोंमें त्रिशूल लिये तथा सर्पोंका आभूषण पहने वहाँ आये और वीरभद्रको आगे करके दैत्योंके साथ लोहा लेने लगे। उन्होंने दैत्योंके साथ बड़ा भयानक संग्राम किया। उस युद्धमें प्रमथगण विजयी हुए। उनसे परास्त होकर असुरलोग युद्धसे विमुख हो गये। अत्यन्त पीड़ित होकर उन्हें पराभव स्वीकार करना पड़ा।

अपनी सेनाको तितर-बितर होती देख तारकासुरने दस हजार भुजाएँ प्रकट कीं और सिंहपर सवार हो रणभूमिमें देवताओंका संहार आरम्भ किया। उसने शिवके बहुत-से गणोंको भी मार गिराया। जान पड़ता था वह तीनों लोकोंका संहार कर डालेगा। उसके सैनिकोंने समस्त शिवगणोंको क्षत-विक्षत कर दिया तथा दैत्यसेनाके सिंहोंने शिवगणोंकी सवारीके काम आनेवाले सब बैलोंको मार डाला। इस प्रकार उस रणक्षेत्रमें जब भगवान् शिवके पार्षद मारे जाने लगे तब भगवान् विष्णुने शंकरजीके प्रिय पुत्र कुमार कार्तिकेयसे हँसकर कहा—'कृत्तिकानन्दन! तुम्हारे सिवा दूसरा कोई ऐसा वीर नहीं है जो इस पापी तारकासुरका वध कर सके; अतः तुम्हें ही इसका संहार करना चाहिये।' कार्तिकेय बोले—'भगवन्! यहाँ कौन अपने हैं और कौन पराये, इसका मुझे कुछ भी ज्ञान नहीं है।' यह सुनकर देवर्षि नारदने कहा—'महाबाहो! तुम भगवान् शंकरके अंशसे उत्पन्न कुमार हो, इस जगत्के रक्षक और स्वामी हो। देवताओंको सबसे बढ़कर सहारा देनेवाले भी इस समय तुम्हीं हो। वीरवर! तारकासुरने पहले बड़ी उग्र तपस्या की थी। उसीके प्रभावसे उसने देवताओंपर विजय पायी है, स्वर्गलोकको जीत लिया तथा अजेयता प्राप्त कर ली है। उस दुरात्माने इन्द्र और लोकपालोंको भी परास्त किया है तथा तीनों लोक अपने अधिकारमें कर लिये हैं। वह धर्मात्माओंको सतानेवाला है, अतः तुम्हें उसका वध अवश्य करना चाहिये। आज तुम्हीं रक्षक होकर सबका कल्याण करो।'

नारदजीकी बात सुनकर कुमार कार्तिकेय बड़े जोरसे हँसे और विमानसे उतरकर पैदल चलने लगे। अपने हाथमें बड़ी भारी उल्काके समान देदीप्यमान और अत्यन्त प्रभावशालिनी शक्ति लेकर जब वे रणभूमिमें पैदल ही दौड़ने

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

लगे, उस समय बलवानोंमें श्रेष्ठ तथा अत्यन्त प्रचण्ड उस बालकको आते देख तारकासुर कहने लगा—'अहो! यह कुमार अपने शत्रुभूत बड़े-बड़े दैत्योंका संहार करनेवाला है। अतः इसके साथ मैं ही युद्ध करूँगा। अन्य सब वीरों, सम्पूर्ण गणों, गणाधीशों और लोकपालोंको भी मैं अभी मौतके घाट उतारता हूँ।'

यों कहकर महाबली तारकासुर कुमारसे युद्ध करनेके लिये आगे बढ़ा। उसने एक अद्भुत शक्ति हाथमें ले ली। वह इन्द्रका अपमान कर चुका था। उसे फिर वेगपूर्वक आते देख बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ इन्द्रने (सावधान होकर) वज्रसे आघात किया। वज्रकी मार खाकर तारकासुर व्याकुल हो पृथ्वीपर गिर पड़ा। गिरते ही वह पुनः उठकर खड़ा हो गया और बड़े रोषमें भरकर उसने इन्द्रपर शक्तिसे प्रहार किया। इन्द्र ऐरावत हाथीपर बैठे थे किंतु तारकासुरने उन्हें पृथ्वीपर गिरा दिया। उनके गिरनेपर देवताओंकी सेनामें बड़ा हाहाकार मचा। इन्द्रको पृथ्वीपर गिरा देख प्रतापी वीरभद्र अत्यन्त कुपित हो उठे। वे बड़े बलवान् वीर थे। उन्होंने हाथमें त्रिशूल लेकर इन्द्रकी रक्षा करते हुए महादैत्य तारकपर प्रहार किया। शूलके आघातसे आहत होकर तारकासुर पृथ्वीपर गिर पड़ा। परंतु वह बड़ा तेजस्वी था। गिरनेपर भी पुनः उठकर खड़ा हो गया। उसने बहुत बड़ी शक्ति लेकर वीरभद्रके वक्षस्थलपर प्रहार किया। उसकी शक्तिके आघातसे वीरभद्र भी धराशायी हो गये। उस समय समस्त शिवगण, सम्पूर्ण देवता, गन्धर्व, नाग तथा राक्षस बारंबार हाहाकार करने लगे। इतनेहीमें शत्रुओंका नाश करनेवाले महाबली वीरभद्र उठकर खड़े हो गये। उन्होंने एक चमकते हुए त्रिशूलसे जब तारकासुरको मार डालनेका विचार किया, उसी समय कुमार कार्तिकेयने उन्हें मना करते हुए कहा—'महामते! तुम इसका वध न करो।' उन्होंने उस रणभूमिमें जब सिंहनाद किया तब आकाशमें खड़े हुए देवता जय-जयकार करने लगे।

वीरवर कार्तिकेय एक बहुत बड़ी शक्ति लेकर उसके द्वारा तारकासुरको मार डालनेके लिये उद्यत हुए। तारकासुर और कुमार कार्तिकेयमें बड़ा विकट, सब प्राणियोंके लिये भयंकर तथा अत्यन्त दुस्सह संग्राम हुआ। दोनों वीर हाथोंमें शक्ति लिये एक-दूसरेसे जूझ रहे थे। वे शक्तिसे विपक्षीकी शक्तिपर चोट करते थे। दोनोंको उत्साहपूर्वक युद्ध करते देख देवता, गन्धर्व आदि आपसमें कहने लगे—'पता नहीं इस युद्धमें किसकी विजय होगी।' इसी समय आकाशवाणी हुई—'देवताओ! आज कुमार कार्तिकेय तारकासुरको अवश्य मार डालेंगे। तुम सब लोग चिन्ता न करो। सुखपूर्वक स्वर्गलोकमें स्थित रहो।'

आकाशमें प्रकट हुई इस दैवी वाणीको प्रमथगणोंसे घिरे हुए कुमार कार्तिकेयने भी सुना। सुनकर उस भयानक दैत्यको मार डालनेका निश्चय किया। अतिशय बलवान् महाबाहु कुमारने तारकासुरकी छातीमें शक्तिसे प्रहार किया। परंतु दैत्यराज तारकने उस प्रहारकी कोई परवा न करके स्वयं ही क्रोधमें भरकर अपनी शक्तिसे कुमारपर आघात किया। उस प्रहारसे शंकरनन्दन कार्तिकेय मूर्च्छित हो गये। जब पुनः वे सचेत हुए तो महर्षिगण उनकी स्तुति करने लगे। तब मतवाला सिंह जैसे हाथीपर झपटता है, उसी प्रकार प्रतापी कुमारने तारकासुरपर गहरा प्रहार किया। उस समय वायुकी गति कुण्ठित हो गयी थी, सूर्यका प्रकाश मन्द पड़ गया था, पर्वतों और वनोंसहित समूची पृथ्वी डगमगाने लगी। हिमालय, मेरु, श्वेतकूट, दर्दुर, मलयगिरि, महाशैल, मैनाक, विन्ध्याचल, महागिरि लोकालोक, मानसोत्तर पर्वत, कैलास, मन्दराचल, माल्यवान्, गन्धमादन, उदयाचल, महेन्द्रगिरि तथा अस्ताचल—ये तथा और भी बहुत-से महातेजस्वी पर्वत कुमारकी सर्वथा कुशल चाहते हुए स्नेहसे व्याकुल हो उठे। पार्वतीनन्दन कुमारने सब पर्वतोंको भयभीत देख उन्हें धीरज बँधाते हुए कहा—

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

'महाभाग पर्वतगण! आपलोग खेद और चिन्ता न करें। आज मैं यहाँ सबके सामने ही इस महापापी दैत्यका वध करता हूँ।'

इस प्रकार पर्वतोंको और देवताओंको भी आश्वासन देकर शंकरजीके प्रिय पुत्र कुमार कार्तिकेयने मन-ही-मन अपने पिता और माताको प्रणाम किया। फिर हाथमें शक्ति ले उन्होंने दैत्यराज तारकपर बड़े वेगसे प्रहार किया। शक्तिका आघात होते ही असुरोंका स्वामी तारक सहसा धराशायी हो गया। वज्रके मारे हुए पर्वतकी

भाँति उसका अंग-अंग चूर हो गया। कुमार कार्तिकेयके द्वारा तारकासुर बलपूर्वक मार दिया गया—यह देवताओं, ऋषियों, गुह्यकों, पक्षियों, किन्नरों, चारणों, सिद्धों तथा अप्सराओंने अपनी आँखोंसे देखा। देखकर उन्हें बड़ा हर्ष हुआ और वे सब मिलकर कुमार कार्तिकेयकी स्तुति करने लगे। यह घटना देख-सुनकर तीनों लोकोंके निवासी सहसा आश्चर्यचकित हो उठे। सब-के-सब आनन्दमग्न हो गये। भगवान् शंकर और सती पार्वती भी बड़ी प्रसन्नताके साथ वहाँ आये और अपने पुत्रको गोदमें बिठाकर पूर्ण सन्तोष प्राप्त किया। उस समय देवताओंने भगवान् शिव और पार्वतीकी आरती उतारी। तत्पश्चात् अपने पुत्रों तथा मेरु आदि पर्वतोंसे घिरे हुए गिरिराज हिमालय भी वहाँ आये और कुमारका स्तवन करने लगे। इसके बाद इन्द्र आदि सब देवताओंने ऋषियोंके साथ गीत और वाद्यकी ध्वनि करते हुए वेद-मन्त्रोच्चारणपूर्वक भाँति-भाँतिके सूक्तोंद्वारा कुमारका स्तवन किया। यह कुमार-विजय नामक चरित्र अत्यन्त अद्भुत है। इसमें कुमारके पराक्रम और माहात्म्यका वर्णन है। उनका यह उदार चरित्र अत्यन्त प्राचीन, परमानन्ददायक तथा मनुष्योंको मनोवांछित वस्तु प्रदान करनेवाला है। जो महात्मा कुमारके इस तारक-वध नामक चरित्रका पाठ या श्रवण करता है, उसके सब पातकोंका नाश हो जाता है।

यमराजके द्वारा भगवान् शिवकी स्तुति तथा शिवके द्वारा यमराजको आत्मज्ञानका उपदेश

लोमशजी कहते हैं—ब्राह्मणो! एक समय पितरोंके स्वामी यमराज यह सुनकर कि सनातन देव भगवान् शंकर इस जगत्के रक्षक हैं उनके पास गये, और एकाग्रचित्तसे उन्होंने उनका स्तवन किया।

यमराज बोले—पापोंको जलानेवाले भगवान् भर्गको नमस्कार है। देवताओंके पालक प्रकाशस्वरूप महादेवको नमस्कार है। मृत्युपर विजय पानेवाले जटाजूटधारी रुद्रदेवको नमस्कार है। जिनके कण्ठमें नील चिह्न सुशोभित होता है, जो पाप-तापोंका नाश करनेवाले हैं, सर्वव्यापी आकाश जिनका एक अवयवमात्र है, जो सबको अपना ग्रास बनानेवाले काल हैं, कालके भी स्वामी हैं तथा काल ही जिनका स्वरूप है, उन भगवान् शिवको नमस्कार है।

देवदेवेश्वर! आप सबका कल्याण करनेवाले

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

हैं। कोई बड़ी भारी तपस्या करे तभी आप उसपर प्रसन्न होते हैं। लोकपितामह ब्रह्माजी भी पुण्यात्मा मनुष्योंपर उनके उत्तम कर्मोंसे ही सन्तुष्ट होते हैं। इसी प्रकार वेदोंद्वारा जानने योग्य सनातन देव भगवान् विष्णु भी अनेक प्रकारके यज्ञों तथा उपवास-व्रतोंसे प्रसन्न होकर मनुष्योंको केवल भक्तिभाव प्रदान करते हैं, जिससे वे मोक्षको प्राप्त हो सकें। दुर्गाजी भी आराधनासे संतुष्ट होनेपर लौकिक भोग और स्वर्गादि सम्पत्तियाँ देती हैं। भगवान् सूर्य अपने उपासकको आयु और आरोग्य प्रदान करते हैं। इसी प्रकार गणेशजी भी अर्घ्य, पाद्य और चन्दन आदिके द्वारा पूजन करने तथा उनके मन्त्रोंका जप करनेपर विघ्नोंका निवारण करते हैं। परंतु आपके पुत्र कार्तिकेयजीने तो इस जगत्के सभी प्राणियोंके लिये स्वर्गका द्वार खोल दिया है। इनके दर्शनमात्रसे सब लोग, वे पापी ही क्यों न हों, एकमात्र स्वर्गके अधिकारी हो जाते हैं। यह महान् आश्चर्यकी बात है। जिन्होंने अपनी इन्द्रियोंको जीत लिया है, लोभ जिन्हें छू भी नहीं सका है, जो काम और रागसे रहित हैं, यज्ञ करनेवाले और धर्मनिष्ठ हैं तथा वेद-वेदांगोंके पारंगत विद्वान् हैं, वे सब पुण्यात्मा पुरुष जिस उत्तम गतिको प्राप्त करते हैं, उसीको अधम-से-अधम, पापपरायण चाण्डाल आदि भी कुमार कार्तिकेयके दर्शनमात्रसे पा लेते हैं। उनका यह कर्म महान् आश्चर्यजनक है। कृत्तिका नक्षत्रसे युक्त कार्तिककी पूर्णिमामें स्नान करनेसे जो फल होता है, वही फल आपके पुत्रका दर्शनमात्र करनेसे लोग अपनी कई पीढ़ियोंसहित प्राप्त कर लेते हैं।

यमराजका यह वचन सुनकर भगवान् शंकरने कहा—धर्मराज! जिन पुण्यात्मा मनुष्योंका आन्तरिक पाप नष्ट हो गया है, उनके मनमें श्रद्धाका उदय होता है।* फिर पूर्वपुण्यके प्रभावसे उनके हृदयमें उत्तम तीर्थोंमें जाने और संत-महात्माओंका दर्शन करनेकी प्रबल इच्छा जाग्रत् होती है। धर्मराज! कुमारके दर्शनसे जो पुण्यफल प्रकट होता है उसके लिये तुम्हें रंचमात्र भी आश्चर्य नहीं करना चाहिये। कर्मसंयुक्त वचन—कर्तव्यका आदेश देनेवाला वेदवाक्य सबके लिये फलद होता है। सब तीर्थोंका सेवन, यज्ञोंका अनुष्ठान और नाना प्रकारके दान आदि कार्य अन्तःकरणकी शुद्धिके लिये करने योग्य हैं। फिर शुद्ध अन्तःकरणके द्वारा मनुष्य स्वयं ही अपने आत्माका चिन्तन करे। मैं ही आत्मारूपसे सब प्राणियोंके भीतर स्थित हूँ। मैं नित्य, सत्तायुक्त, अपने-आपमें स्थित रहनेवाला और व्यवधानशून्य हूँ। शीत-उष्ण आदि द्वन्द्वोंसे परे हूँ। मुझमें किसी प्रकारका विकल्प नहीं है। मैं आत्मनिष्ठ, नित्य, नित्ययुक्त और निरीह हूँ। कूटस्थ (निश्चल), कल्पित भेदों और विवादोंसे दूर रहनेवाला, ज्ञानगम्य, अनन्त, स्वतन्त्र तथा स्वयंप्रकाश प्रभु हूँ। वेदवेत्ता विद्वान् इसे ही ज्ञान कहते हैं। वे सर्वत्र आत्मदृष्टि रखते हैं। सर्वातीत भावगम्य तत्त्वको जानकर ज्ञानी पुरुष समतायुक्त बुद्धिसे व्यवहार करते हैं और केवल बोधस्वरूप अपने आत्माको भूल जानेके कारण सब जीवसमूह संसार बन्धनमें बँधे हुए देखे जाते हैं। तत्त्वज्ञानसे रहित बहिर्मुख जीव काम, क्रोध, भय, द्वेष, मोह और मात्सर्यसे युक्त हो एक-दूसरेको दूषित करते रहते हैं। इसलिये गुणभेदसे निर्मित इस प्रपंचको इस प्रकार असत्य जानकर अपने-आपमें स्थित गुणातीत परमात्माका साक्षात्कार ही यथार्थ दर्शन है। जहाँ भेद भी अभेदको, राग भी वैराग्यको और क्रोध भी क्रोधाभावको प्राप्त होता है, वही मेरा परमधाम

* येषां त्वन्तगतं पापं जनानां पुण्यकर्मणाम्। निरस्तमस्ति भो धर्म श्रद्धा मनसि वर्तते॥
(स्क० पु०, मा० के० ३१। २९)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

है। उसका वर्णन करता हूँ, सुनो। शब्द वाक्-इन्द्रियका कार्य होनेके कारण अनित्य है—जैसे घट। अतः वह उस परमार्थ वस्तुको प्रकाशित नहीं कर सकता। शब्द वह है, जिससे प्रवृत्तिप्रधान धर्मके लिये प्रेरणा मिलती है। प्रवृत्ति और निवृत्ति तथा सम्पूर्ण द्वन्द्व जिसमें विलीन हो जाते हैं, वही शाश्वत पद माना गया है। वह व्यवधानशून्य, निर्गुण, बोधस्वरूप, निरंजन (निर्लेप), निर्विकल्प, निरीह, सत्तामात्र, ज्ञानगम्य, स्वतःसिद्ध, स्वयंप्रकाश, वेदवेद्य तथा अगम्य है। प्रेतराज! जिसकी जड़ अनादि कालसे चली आ रही है, मायाके कारण जिसको विचारमें लाना भी कठिन है, उस मायामय संसारसे ऊपर उठकर तथा मायाका सर्वथा परित्याग करके जो ममता और आसक्तिसे रहित हो गये हैं, वे विकल्पशून्य नित्य पदको प्राप्त होते हैं। संसार कल्पनामूलक है। यह कल्पना ही नित्यकी भाँति प्रतीत होती है। जिन्होंने इस कल्पनाको त्याग दिया है वे परमपदको प्राप्त होते हैं। जैसे सीपीमें चाँदीकी प्रतीति, सर्पमें रस्सीकी प्रतीति तथा सूर्यकी किरणोंमें जलकी प्रतीति मिथ्या है, उसी प्रकार नित्य परमात्मामें अनित्य संसारकी प्रतीति भी मिथ्या ही है। आत्मा एक है। उसे जान लेनेपर मनुष्य ममता और अहंकारसे रहित हो जाता है। ऐसे आत्मज्ञानी पुरुषोंको बन्धन कहाँसे प्राप्त हो सकता है? क्या कभी आकाशमें फूल होना सम्भव है? ज्ञानीका संसार-बन्धन वैसा ही असत्य है जैसे खरगोशके सींगका होना। इसलिये अब इस विषयमें बहुत-सी व्यर्थ बातें कहनेसे कोई लाभ नहीं है। विद्वान्, जितेन्द्रिय तथा वीतराग ज्ञानी पुरुष ममताका परित्याग करके परमपदको प्राप्त करनेकी अभिलाषा रखते हैं। जिन्होंने ममत्वको त्याग दिया है और लोभ तथा मोहको दूर कर दिया है, वे काम-क्रोधसे हीन मानव परमपदको प्राप्त होते हैं। जबतक मनमें काम, लोभ, राग और द्वेष डेरा डाले रहते हैं, तबतक केवल शब्दमात्रका बोध रखनेवाले विद्वान् परमसिद्धि (मुक्ति)-को नहीं प्राप्त होते हैं।* यमराज! जिनके सब पाप दूर हो गये हैं वे समस्त ऋषि-मुनि ज्ञानका प्रवचन करनेवाले तथा ज्ञानाभ्यासके अनुकूल बर्ताव करनेवाले हैं, तथापि ज्ञानवेत्ता नहीं हैं। ज्ञान, ज्ञेय तथा ज्ञानगम्य वस्तुको जानकर ही मनुष्य ज्ञानी कहलाता है। कैसे जानना चाहिये, किसके द्वारा जानने योग्य है और किसको जानना अभीष्ट है, वह वस्तु क्या है—ये सब बातें मैं तुम्हारी जानकारीके लिये संक्षेपसे बतलाता हूँ। आत्मा एक ही है तथापि भेदबुद्धि होनेसे वह अनेक-सा दिखायी देता है। जैसे भँवरी देनेवालेकी दृष्टिमें यह पृथ्वी घूमती हुई-सी प्रतीत होती है, उसी प्रकार भेदबुद्धिसे एक आत्मा भी अनेक-सा प्रतीत होता है। अतः विचारके द्वारा ही आत्माका ज्ञान प्राप्त करना चाहिये। गुरुके मुखसे श्रवणके द्वारा तथा भलीभाँति प्रयोगमें लाये हुए विशेष मननके द्वारा भी आत्मतत्त्वका साक्षात्कार करना उचित है। इस प्रकार आत्माको जानकर मनुष्य अनायास ही बन्धनसे मुक्त हो जाता है। यह सम्पूर्ण चराचर जगत् मायाका जाल है। ममतासे उपलक्षित होनेवाला यह महान् संसार मायामय है। ममताको दूर कर देनेपर बन्धनसे अनायास छुटकारा मिल जाता है। मैं कौन हूँ, तुम कौन हो तथा महामायाके आश्रित रहनेवाले अन्य लोग भी कहाँसे आये हैं? यह सारा प्रपंच बकरीके गलेमें लटकते हुए स्तनकी भाँति निरर्थक है, निष्फल है, प्रकाशहीन है तथा धूमसमूहकी भाँति निस्सार है। इसलिये यमराज! तुम सर्वथा

---

* यैस्त्यक्तो ममताभावो लोभमोहौ निराकृतौ। ते यान्ति परमं स्थानं कामक्रोधविवर्जिताः॥
यावत् कामश्च लोभश्च रागद्वेषव्यवस्थितिः। नाप्नुवन्ति परां सिद्धिं शब्दमात्रैकबोधकाः॥
(स्क० पु०, मा० के० ३१। ६३-६४)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

प्रयत्न करके आत्म-तत्त्वका चिन्तन करो।

लोमशजी कहते हैं—भगवान् शंकरके इस प्रकार उपदेश देनेपर यमराज ज्ञानवान् होकर उस समय साक्षात् आत्मस्वरूपसे स्थित हुए। वे कर्मसे सबके शासक हैं। सब प्राणियोंको उनके कर्मानुसार दण्ड या पुरस्कार देते हैं। वे अपने चित्तको एकाग्र रखकर सदा सब भूतों तथा मनुष्योंका कल्याण करते हैं।

कार्तिकेयजीकी स्तुति और उनके द्वारा पर्वतोंको वरदान तथा महाराज श्वेतका चरित्र

ऋषियोंने पूछा—सूतजी! महात्मा कुमारने युद्धमें तारकासुरको मारकर फिर कौन-सा महान् अद्भुत कर्म किया? यह बतलाइये।

सूतजी बोले—तारकासुरको मारा गया देख इन्द्रादि सब देवता बहुत प्रसन्न हुए और सम्पूर्ण लोकोंको पवित्र करनेवाले कुमार कार्तिकेयकी स्तुति करने लगे।

देवता बोले—कल्याणस्वरूप भगवान् कार्तिकेयको नमस्कार है। शिवनन्दन! आपको नमस्कार है। विश्वबन्धो! आपको नमस्कार है। विश्वभावन! आपको नमस्कार है। जिन्होंने आपका दर्शन कर लिया, वे चाण्डाल भी सर्वश्रेष्ठ हैं। जगद्बन्धो! हम आपको नमस्कार करते हैं। देव! इस समय हम आपकी शरणमें आये हैं।१

देवताओंद्वारा की हुई यह स्तुति सुनकर प्रसन्नतासे भरे हुए पर्वतोंने भी सर्वतोभावेन उन गिरिजाकुमारका स्तवन किया।

पर्वत बोले—भगवन्! आप अनाथोंके नाथ हो। शंकरनन्दन! तुम्हें नमस्कार है। श्रेष्ठ देवताओंद्वारा पूजनीय! तुम्हें नमस्कार है। ज्ञानवेत्ताओंमें श्रेष्ठ! तुम्हें नमस्कार है। महादानव तारकासुरका विनाश करनेवाले कुमार! तुम्हें नमस्कार है। देववर! तुम्हें नमस्कार है। तुम हमपर प्रसन्न होओ।२

पर्वतोंद्वारा इस प्रकार स्तुति की जानेपर शंकर और पार्वतीके पुत्र एवं वरदाताओंमें श्रेष्ठ स्वामी कार्तिकेय बहुत सन्तुष्ट हुए और उन्हें वर देते हुए बोले—'मेरु आदि समस्त पर्वतगण! आप सब लोग मेरे वन्दनीय और प्रयत्नपूर्वक पूजनीय हैं। तपस्वी, ज्ञानी और कर्मयोगी भी निरन्तर आप लोगोंका सेवन करेंगे। आपलोग मेरे वचनसे सम्पूर्ण जगत्‌को पवित्र कर सकते हैं। पर्वतसम्बन्धी सभी स्थान तीर्थस्वरूप होंगे। आपके ऊपर दिव्य शिवालय, दिव्य मन्दिर, बड़े-बड़े विचित्र गृह तथा दिव्य तपोवन सुशोभित होंगे। इतना ही नहीं, भगवान् शंकरके विशिष्ट स्वरूप तथा विशिष्ट लिंग भी आपके शिखरोंपर विराजमान होंगे। ये जो मेरे नाना पर्वतश्रेष्ठ हिमवान् हैं, आजसे ये महाभाग तपस्वियोंके फलदाता होंगे। ये गिरिराज मेरु पुण्यात्माओंके आश्रय होंगे। गिरिश्रेष्ठ लोकालोक तथा महायशस्वी उदयगिरि—ये दोनों शिवलिंगस्वरूप समझे जायँगे। श्रीशैल, महेन्द्रगिरि, सह्याचल, माल्यवान्, मलयगिरि,

---

१- नमः कल्याणरूपाय नमस्ते शिवनन्दन। विश्वबन्धो नमस्तेऽस्तु नमस्ते विश्वभावन॥
वरिष्ठाः श्वपचा यैस्तु कृतं वै दर्शनं तव। त्वां नमामो जगद्बन्धो त्वां वयं शरणं गताः॥
(स्क० पु०, मा० के० ३१।८१-८२)

२-त्वं नाथोऽसि ह्यनाथानां शङ्करात्मज ते नमः। नमो देववरैः पूज्य नमो ज्ञानविदां वर॥
नमोऽस्तु ते दानववर्यहन्तर्नमोऽस्तु ते देववर प्रसीद॥
(स्क० पु०, मा० के० ३१।८४-८५)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

विन्ध्याचल, गन्धमादन, श्वेतकूट, त्रिकूट तथा दर्दुर पर्वत—ये और दूसरे भी बहुत-से पर्वत लिंगस्वरूप माने जायँगे और मेरे वचनसे ये सभी पापोंका विनाश करनेवाले होंगे।'

शंकरपुत्र भगवान् कार्तिकेयने इस प्रकार उन सब पर्वतोंको वरदान दिया। जिसके मुखमें सदा (**'नमः शिवाय'** इस) पंचाक्षर मन्त्रका जप होता रहता है, जिसका चित्त सदा भगवान् शिवके चिन्तनमें संलग्न रहता है, जो सब प्राणियोंके प्रति समभाव रखता है, दूसरोंकी निन्दामें जिसकी वाणी मूक रहती है तथा जो परायी स्त्रियोंके प्रति अपनेमें नपुंसक भाव ही रखता है—ऐसे उपासकपर भगवान् शिवकी विशेष कृपा होती है।

शौनकजी बोले—महाभाव! हमने कुमार कार्तिकेयके विशिष्ट चरित्रका श्रवण किया, जो परम मंगलमय है। अब हम राजाधिराज श्वेतके परम अद्भुत चरित्रके विषयमें जानना चाहते हैं जिन्होंने अपनी भारी शिवभक्तिके प्रभावसे भगवान् शिवको भलीभाँति सन्तुष्ट किया था। जो लोग भक्तिपूर्वक महादेवजीकी आराधना करते हैं, वे ही भक्त हैं, वे ही महात्मा हैं तथा वे ही कर्मयोगी और ज्ञानी हैं।

लोमशजीने कहा—महाभाग महर्षियो! राजा श्वेतका परम अद्भुत चरित्र सुनो। महात्मा श्वेत अपने राज्यमें सब प्रकारके भोग भोगते रहे तो भी उनकी बुद्धि सदा धर्ममें ही संलग्न रहती थी। उन्होंने धर्मके अनुसार प्रजाको प्रसन्न रखते हुए समस्त पृथ्वीका पालन किया। वे ब्राह्मणभक्त, सत्यवादी, शूरवीर तथा निरन्तर शिवजीके भजनमें तत्पर रहनेवाले थे। राजा श्वेत अपनी बढ़ी-चढ़ी शक्तिसे राज्यका शासन और भक्तिभावसे भगवान् शिवकी आराधना करते थे। इस प्रकार परमेश्वरकी आराधना करते-करते महाराज श्वेतकी सारी आयु बीत चली। उनके मनमें न कभी व्यथा हुई और न शरीरमें ही कोई रोग हुआ। ये संसारी उपद्रव महाराज श्वेतको कभी कष्ट नहीं पहुँचाते थे। इनके राज्यमें सब लोग निर्भय रहते थे। किसीको कोई उपद्रव नहीं था। महाराजके राज्यमें बिना जोते-बोये ही अनाज पैदा होता था। ब्राह्मण तपस्यामें संलग्न रहते और दूसरे लोग भी अपने-अपने वर्ण तथा आश्रम-सम्बन्धी धर्मका पालन करते थे। सारी पृथ्वीमें प्रायः सर्वत्र मंगलमय उत्सव ही होता रहता था। भगवान् शिवकी कृपासे महात्मा राजा श्वेतके राज्यमें सब प्रजा सदा मानसिक कष्टसे रहित, आनन्दमग्न तथा सुखी रहती थी। कभी किसीको भी पुत्रकी मृत्यु नहीं देखनी पड़ी, दुःख नहीं उठाना पड़ा, अपमान, महामारी तथा दरिद्रताका कष्ट भी नहीं सहन करना पड़ा। इस प्रकार भगवान् शिवकी पूजामें लगे हुए महात्मा राजा श्वेतके जीवनका बहुत बड़ा समय सफलतापूर्वक बीत गया।

एक दिनकी बात है, राजा श्वेत परमार्थदाता शंकरजीकी आराधनामें लगे थे। उसी समय यमराजने उनके पास अपने दूत भेजे। उन दूतोंको आज्ञा दी कि चित्रगुप्तके कथनानुसार राजा श्वेतकी आयु पूरी हो गयी है, अतः उन्हें शीघ्र ले आओ। 'जो आज्ञा' कहकर दूतोंने उनकी आज्ञा स्वीकार की और राजाको ले जानेकी इच्छासे वे भगवान् शिवके मन्दिरमें आये। उनके हाथोंमें काल-पाश था तथा वे आकृतिसे भी बड़े भयानक थे। यमदूतोंने शीघ्रतापूर्वक वहाँ आकर देखा, महाराज गहरी समाधि लगाये भगवान् शिवके समीप बैठे थे। उन्हें देखकर उनके मनमें ज्यों ही हलचल हुई त्यों ही वे सब दूत चित्रलिखितकी भाँति निश्चेष्ट हो गये। अतः यमदूत धर्मराजकी आज्ञाका पालन न कर सके। यह सब जानकर यमराज स्वयं ही वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने राजाको सहसा ले जानेके लिये अपना दण्ड ऊपरको उठा रखा था। धर्मराजने देखा, महाबाहु श्वेत शिव-भक्तिसे युक्त होकर भगवान् शिवके ही चिन्तनमें तत्पर हैं। केवल ज्ञानका आश्रय ले, शान्तभावसे विराजमान

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

हैं। राजाको इस रूपमें देखकर यमराजके मनमें भी बड़ी हलचल हुई। वे अत्यन्त व्याकुल होकर सहसा चित्रलिखितकी भाँति हो गये। तदनन्तर प्रजाका विनाश करनेवाले काल भी तत्काल वहाँ आ गये। उन्होंने भी शिवपूजा-परायण राजाको तथा मन्दिरके द्वारपर खड़े हुए दूतोंसहित यमराजको देखा। देखकर यमराजसे पूछा—'धर्मराज! क्या कारण है जो अभीतक तुम इस राजाको नहीं ले गये। तुम्हारे साथ यमदूत भी हैं, तो भी कुछ डरे हुए-से प्रतीत होते हो।'

तब धर्मराजने नम्रतापूर्वक उत्तर दिया—यह राजा भगवान् शिवका भक्त है, अतः इसका उल्लंघन करना हमारे लिये अत्यन्त कठिन है। त्रिशूलधारी महादेवजीके भयसे हम यहाँ चित्रलिखित पुतलोंकी भाँति खड़े हैं।

यमराजकी यह बात सुनकर कालदेवता कुपित हो उठे तथा राजाको मारनेके लिये उन्होंने बड़े वेगसे ढाल और तलवार उठायी। उनकी ढाल सूर्यके समान आकृतिवाले आठ फूलियोंसे सुशोभित थी। वे क्रोधमें भरकर शिवालयमें घुसे। वहाँ उन्होंने देखा, राजा श्वेत एकाग्रचित्तसे विशुद्ध ज्ञानस्वरूप, चिन्मय, स्वयंप्रकाश परमात्माका चिन्तन कर रहे हैं। ऐसी अवस्थामें उन्हें देखकर काल अहंकारवश ज्यों ही उनके पास जानेको उत्सुक हुए, त्यों ही भक्तवत्सल भगवान् शंकरने अपने भक्तकी रक्षा करते हुए तीसरा नेत्र खोलकर कालकी ओर देखा। उनके देखते ही कालदेव तत्काल जलकर भस्म हो गये। राजा श्वेत जब समाधिसे विरत हुए तब बाह्यज्ञान होनेपर उन्होंने धीरेसे आँखें खोलकर देखा। उस समय वहाँ उनके सामने ही कालदेव अद्भुत रूपसे जल रहे थे। राजाने बार-बार उनकी ओर देखा और भगवान् शंकरसे इस प्रकार प्रार्थना की—'सबके दुःखोंको दूर करनेवाले, शान्तस्वरूप, स्वयंप्रकाश एवं स्वयम्भूरूप आप भगवान् शंकरको नमस्कार है। व्यवधानशून्य, सूक्ष्मस्वरूप तथा ज्योतियोंके अधिपति महादेवजीको नमस्कार है। जगदीश्वर! आप ही सबके रक्षक हैं, आप ही इस जगत्के पिता, माता, सुहृद्, सखा, बन्धु, स्वजन, स्वामी तथा ईश्वर हैं। शम्भो! आपने यह क्या किया? किसको मेरे आगे जला दिया? मैं नहीं जानता यह क्या हुआ है और किसने यह बड़ा भारी अद्भुत कार्य कर डाला है?'

इस प्रकार प्रार्थना करते हुए राजा श्वेतका विलाप सुनकर लोक-कल्याणकारी भगवान् शंकरने कहा—'राजन्! यह काल है; तुम्हारी रक्षाके लिये मैंने इसे जला दिया है।' राजा श्वेतने पूछा—'भगवन्! इसने ऐसा कौन-सा कुकृत्य किया था, जिससे आपने इसे इस दशाको पहुँचा दिया?' भगवान् शिव बोले—'महाराज! यह संसारके समस्त प्राणियोंका भक्षक है। इस समय यह क्रूर काल तुम्हें अपना ग्रास बनानेके लिये आया था। अतः बहुत-से जीवोंका कल्याण करनेकी इच्छासे मैंने इसे जला दिया है। क्योंकि जो पापी, अतिशय अधर्मपरायण, लोकविनाशकारी तथा पाखण्डी हैं, वे मेरे वध्य हैं।' भगवान् शिवकी यह बात सुनकर राजा श्वेतने कहा—'भगवन्! काल आपकी आज्ञा शिरोधार्य करके ही लोकमें सबको नियन्त्रणमें रखता है। आपहीके आदेशसे यह तीनों लोकोंमें विचरता है। इसके डरसे ही यह संसार सदा पुण्य-कर्मका अनुष्ठान करता है। इसलिये आप कृपा करके फिर शीघ्र ही इसे जीवित कर दें।' तब शिवजीने कालको पुनः जीवित कर दिया। तदनन्तर श्रेष्ठ राजा श्वेतने कालको अपने हृदयसे लगा लिया। इस प्रकार चेतना लौटनेपर कालने भगवान् शंकरकी स्तुति की—'कालका विनाश करनेवाले देवेश्वर! आप त्रिपुरासुरका संहार करनेवाले हैं। प्रभो! जगत्पते! आपने कामदेवको जलाकर उसे अनंग (अंगहीन) बना दिया है; तथा आपहीने अत्यन्त अद्भुत ढंगसे दक्ष-यज्ञका विनाश कर डाला था। महान् लिंगरूपसे आपने तीनों लोकोंको व्याप्त

Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

कर रखा है। सम्पूर्ण देवताओं और असुरोंने सबको अपनेमें लीन करनेके कारण आपके स्वरूपको लिंग कहा है। देवदेवेश्वर! आपको नमस्कार है। विश्वमंगल! आपको नमस्कार है। नीलकण्ठरूपमें आपको नमस्कार है। मस्तकपर जटा-जूट धारण करनेवाले! आपको नमस्कार है। आप कारणोंके भी कारण हैं; आपको नमस्कार है। आप मंगलोंके भी मंगलरूप हैं; आपको नमस्कार है। बुद्धिहीनोंके पालक! आप ज्ञानियोंके लिये ज्ञानात्मा हैं और मनीषी पुरुषोंके लिये परम मनीषी हैं। विश्वके एकमात्र बन्धु महेश्वर! आप आदिदेव हैं, पुराण-पुरुष हैं तथा आप ही सब कुछ हैं। वेदान्तद्वारा आप ही जानने योग्य हैं। आपकी महिमा और प्रभाव महान् है। महानुभाव संत आपके ही नामों और गुणोंका सब ओर कीर्तन करते हैं। महेश! आप ही तीनों लोकोंकी सृष्टि करनेवाले हैं। आप ही इनका पालन और संहार भी करते हैं। आप ही सम्पूर्ण भूतोंके स्वामी हैं।'

इस प्रकार कालने उस समय जगदीश्वर शिवका स्तवन किया। तदनन्तर राजा श्वेतसे कहा—'राजन्! सम्पूर्ण मनुष्यलोकमें तुमसे बढ़कर दूसरा कोई पुरुष नहीं हैं; क्योंकि तुमने तीनों लोकोंके लिये अजेय मुझ कालको भी जीत लिया। आजसे मैं तुम्हारा अनुगामी हुआ। महादेवजीकी ओरसे मुझे अभयदान करो।'

राजाने कहा—भगवन्! तुम तो साक्षात् शिवके ही एक श्रेष्ठ स्वरूप हो। सम्पूर्ण प्राणियोंका पालन तथा संहार तुम्हारा ही स्वरूप है। तुम्हीं सबके नियन्ता हो। इसलिये तुम मेरे परम पूजनीय हो। आत्मसाक्षात्कारके साधनमें लगे हुए समस्त पुण्यात्मा पुरुष तुमसे ही भय माननेके कारण विविध भावोंसे परमेश्वरकी शरण लेते हैं।

इस प्रकार परम धर्मात्मा राजा श्वेतसे रक्षित होकर कालने भगवान् शिवकी कृपा प्राप्त की और उसे पुनः नवीन चेतना प्राप्त हुई। तब वे कालदेव यमराज, मृत्यु तथा यमदूतोंके साथ भगवान् शिव और महाराज श्वेतको प्रणाम करके अपने निवासस्थानको गये। वहाँ उन्होंने सब दूतोंको बुलाकर कहा—'दूतगण! संसारमें जो लोग विभूतिके द्वारा त्रिपुण्ड्र धारण करते हैं, मस्तकपर जटा और गलेमें रुद्राक्ष माला रखते हैं, ऐसे लोगोंको तुम कभी मेरे लोकमें न लाना। जो उत्तम भक्तिभावसे भगवान् सदाशिवका पूजन करते हैं, वे साक्षात् रुद्रके ही स्वरूप हैं। जो मस्तकपर एक रुद्राक्ष धारण करते, ललाटमें त्रिपुण्ड्र लगाते तथा जो साधु पुरुष पंचाक्षर मन्त्रका सदा जप करते हैं, वे सब तुम्हारे द्वारा पूजनीय हैं। जिस राष्ट्र, देश अथवा ग्राममें शिव-भक्त नहीं देखा जाता, वह श्मशानसे भी बढ़कर अशुभ है।'

यमराजने भी अपने सेवकोंको ऐसा ही आदेश दिया। भगवान् महेश्वरकी पराभक्तिसे युक्त महाराज श्वेत जब कालसे निर्भय हो गये तब उन्होंने भगवान् शिवका सायुज्य प्राप्त कर लिया। पवित्र बुद्धिवाले ज्ञानीपुरुषोंको भी अनेक जन्मोंके पश्चात् भगवान् शिवकी भक्ति प्राप्त होती है। मनुष्योंको चाहिये कि वे सदैव भगवान् सदाशिवका सेवन, वन्दन और पूजन करें।

शिवरात्रिव्रतकी महिमा

लोमशजी कहते हैं—ब्रह्माजीने जब सम्पूर्ण जगत्की सृष्टि की, तब राशियोंसे कालचक्र उत्पन्न हुआ। उस कालचक्रमें सब कार्योंकी सिद्धिके लिये बारह राशियाँ और सत्ताईस नक्षत्र मुख्य हैं। इन बारह राशियों और सत्ताईस नक्षत्रोंके साथ क्रीड़ा करता हुआ कालचक्रसहित काल जगत्को उत्पन्न करता है। ब्रह्मासे लेकर कीटपर्यन्त सबको काल ही उत्पन्न करता, वही पालन करता और वही संहार करता है। एकमात्र कालसे ही यह सारा जगत् बँधा हुआ है। अकेला काल ही इस लोकमें

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth 279 Skandpuran_Section_5_1_Back

बलवान् है, दूसरा नहीं। अतः यह सब प्रपंच कालात्मक है। सबसे पहले काल हुआ। कालसे ही स्वर्गलोकके अधिनायक उत्पन्न हुए। तदनन्तर लोकोंकी उत्पत्ति हुई। उसके बाद त्रुटि हुई। त्रुटिसे लव हुआ। लवसे क्षण हुआ। क्षणसे निमिष हुआ जो प्राणियोंमें निरन्तर देखा जाता है। साठ निमिषका एक पल कहा जाता है। साठ पलोंकी एक घड़ी होती है। साठ घड़ीका एक दिन-रात होता है। पंद्रह दिन-रातका एक पक्ष माना जाता है। दो पक्षका एक मास और बारह महीनोंका एक वर्ष होता है। कालको जाननेकी इच्छा रखनेवाले बुद्धिमान् पुरुषोंको इन सब बातोंका ज्ञान रखना चाहिये। प्रतिपदासे लेकर पूर्णमासीतक पक्ष पूरा होता है। उस दिन पक्ष पूर्ण होनेके कारण ही उसे पूर्णिमा कहते हैं। जिस तिथिको पूर्ण चन्द्रमाका उदय होता है, वह पूर्णमासी देवताओंको प्रिय है तथा जिस तिथिको चन्द्रमा लुप्त हो जाते हैं, उसे विद्वानोंने अमावस्या कहा है। अग्निष्वात्त आदि पितरोंको वह अधिक प्रिय है। ये तीस दिन पुण्यकालसे संयुक्त होते हैं। इनमें जो विशेषता है उसे आपलोग सुनें। योगोंमें व्यतीपात, नक्षत्रोंमें श्रवण, तिथियोंमें अमावस्या और पूर्णिमा तथा संक्रान्ति-काल—ये सब दान-कर्ममें पवित्र माने गये हैं। भगवान् शंकरको अष्टमी प्रिय है। गणेशजीको चतुर्थी, नागराजको पंचमी, कुमार कार्तिकेयको षष्ठी, सूर्यदेवको सप्तमी, दुर्गाजीको नवमी, ब्रह्माजीको दशमी, रुद्रदेवको एकादशी, भगवान् विष्णुको द्वादशी, कामदेवको त्रयोदशी तथा भगवान् शंकरको चतुर्दशी विशेष प्रिय है। कृष्णपक्षमें जो चतुर्दशी अर्धरात्रिव्यापिनी हो, उसमें सबको उपवास करना चाहिये। वह भगवान् शिवका सायुज्य प्रदान करनेवाली है[१]। वही शिवरात्रिके नामसे विख्यात है। वह सब पापोंका नाश करनेवाली है। इस विषयमें एक प्राचीन इतिहासका उदाहरण दिया करते हैं। पूर्वकालमें कोई विधवा ब्राह्मणी थी, जिसकी प्रकृति बड़ी चंचल थी। वह कामभोगमें आसक्त रहती थी। अतः किसी कामी चाण्डालके साथ उसका सम्बन्ध हो गया। उसके गर्भसे दुरात्मा चाण्डालके एक पुत्र हुआ, जिसका नाम दुस्सह था। दुस्सह बड़ा ही दुष्टात्मा था। वह सब धर्मोंके विपरीत ही आचरण करता था। महान् पापपूर्ण प्रयोगोंके द्वारा वह सदा नये-नये पाप प्रारम्भ करता था। वह जुआरी, शराबी, चोर, गुरुस्त्रीगामी, वधिक, दुष्यत्मा तथा चाण्डालोचित कर्म करनेवाला था।

एक दिन वह अधर्मी मनमें कोई बुरी वृत्ति लेकर ही किसी शिवालयमें गया। उस दिन शिवरात्रि थी। वह रातमें भगवान् शिवके पास उपवासपूर्वक रहा और वहाँ पास ही दैवात् होती हुई शैवशास्त्रकी कथा सुनता रहा। वहाँ उसे लिंगस्वरूप भगवान् शिवका दर्शन हुआ। दुष्ट होते हुए भी उसने एक रात व्रत किया और शिवरात्रिमें जागता रहा। उसी शुभ कर्मके परिणामसे उसने पुण्ययोनि प्राप्त करके बहुत वर्षोंतक पुण्यात्माओंके लोकमें सुख-भोग किया। तदनन्तर वह राजा चित्रांगदका पुत्र हुआ। उसमें राजराजेश्वरोंके लक्षण थे। वहाँ वह विचित्रवीर्य[२] के नामसे प्रसिद्ध हुआ। उसका रूप सुन्दर था। उसे सुन्दरी स्त्रियाँ प्यार करती थीं। उसने बहुत बड़ा राज्य प्राप्त करके भी अपने मनमें अहंकार नहीं आने दिया। भगवान् शिवकी भक्ति करते हुए वह सदा शिवधर्मके पालनमें ही तत्पर रहा। शिवसम्बन्धी शास्त्रोंको मान्यता देकर वह उन्हींके अनुसार शिवकी पूजा किया करता था। भगवान् शिवके समीप यत्नपूर्वक रात्रिमें जागरण

१- निशीथसंयुता या तु कृष्णपक्षे चतुर्दशी। उपोष्या सा तिथिः सर्वैः शिवसायुज्यकारिका॥

(स्क० पु०, मा० के० ३३। ९२)

२- यह विचित्रवीर्य शान्तनुपुत्र नहीं है; क्योंकि यह तो शिवसायुज्य होकर वीरभद्र नामसे भगवान् शिवका गण हुआ और इसने दक्ष-यज्ञका विध्वंस किया जो कि शान्तनुसे बहुत पहलेकी बात है।

279 Skandpuran_Section_5_2_Front In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

करके भगवान् शिवकी गाथाका गान करता और रोमांचित होकर नेत्रोंसे आनन्दके अश्रुकण बहाया करता था। भगवान् शिवकी कथा सुननेसे उसमें प्रेमके सभी लक्षण प्रकट हो जाते थे। उसे देवाधिदेव शिवकी प्रेमलक्षणा-भक्ति प्राप्त हुई। भगवान् शिवके ध्यानमें निरन्तर संलग्न रहनेके कारण उसकी सारी आयु व्रतमें ही बीती।

भगवान् शिव इस संसारमें पशुओं (अज्ञानियों) तथा ज्ञानीजनोंको समान रूपसे सुलभ हैं। अतः सुखकी प्राप्तिके लिये एकमात्र सदाशिवका ही सेवन करना चाहिये। शिवरात्रिके उपवाससे राजाको उत्तम ज्ञान प्राप्त हुआ। उस ज्ञानसे सब प्राणियोंमें निरन्तर समभावका अनुभव हुआ। फिर, एकमात्र भगवान् सदाशिव ही सब भूतोंके आत्मारूप हैं, इस ज्ञानका साक्षात्कार हुआ। तत्पश्चात् यह अनुभव हुआ कि इस संसारमें कहीं कोई भी ऐसी वस्तु नहीं है जो भगवान् शिवसे रहित हो। इस प्रकार उन्होंने अत्यन्त दुर्लभ एवं पूर्ण प्रपंचातीत ज्ञान प्राप्त कर लिया। वह ज्ञान विज्ञ पुरुषोंके लिये भी अत्यन्त दुर्लभ है, फिर औरोंकी तो बात ही क्या है। राजा विचित्रवीर्य वह ज्ञान प्राप्त करके भगवान् शिवके अत्यन्त प्रिय भक्त हो गये। शिवरात्रिके उपवाससे उन्होंने सायुज्य मुक्ति प्राप्त कर ली। उसी पुण्यके प्रभावसे उन्होंने शिवजीकी लीलामें योग देनेके लिये शिवजीसे ही दिव्य जन्म प्राप्त किया। दक्ष-कन्या सतीसे जब शिवजीका वियोग हुआ तब उनके जटा फटकारनेके शब्दसे उन्हींके मस्तकसे जो वीरभद्र नामक वीर उत्पन्न हुआ, वह राजा विचित्रवीर्य ही है। वही दक्ष-यज्ञका विनाश करनेवाला हुआ।

इसी प्रकार अन्य बहुत-से मनुष्य भी शिवरात्रि-व्रतके प्रभावसे पूर्वकालमें सिद्धि प्राप्त कर चुके हैं। राजा भरत आदि तथा मान्धाता, धुन्धुमार और हरिश्चन्द्र आदि नरेश भी इस (विचित्रवीर्यद्वारा किये हुए) उत्तम शिवरात्रि-व्रतका अनुष्ठान करके ही सिद्धिको प्राप्त हुए हैं। इन सबके अतिरिक्त भी बहुत-से कुल इस श्रेष्ठ व्रतके द्वारा तारे गये हैं, जिनकी गणना या वर्णन करना असम्भव है।

देवाधिदेव जगदीश्वर शिवने अपने वीरभद्र आदि असंख्य गणोंके साथ कैलासमें राज्य किया है। वहाँ भगवान् रुद्रके साथ ऋषि और इन्द्रादि देवता भी सेवामें उपस्थित रहते हैं। ब्रह्माजी उनकी स्तुति करते रहते हैं। भगवान् विष्णु आज्ञापालक सेवककी भाँति खड़े होते हैं। इन्द्र सब देवताओंके साथ सेवा-धर्मका पालन करते हैं। चन्द्रमा भगवान्के मस्तकपर छत्र धारण करते हैं और वायुदेव चँवर डुलाते हैं। साक्षात् अग्निदेव ही सदा उनके रसोइया बने रहते हैं। स्वर्गवासी गन्धर्व उनके दरबारमें गीत गाते और स्तुति-पाठ करते हैं। इस प्रकार भगवान् महेश्वर कैलास पर्वतपर अपने प्रतापी पुत्र गणेश और कार्तिकेय आदिके साथ तथा महारानी गिरिराजनन्दिनी उमाके साथ महान् पराक्रमका परिचय देते हुए राज्य करते हैं।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

कुमारिकाखण्ड

पंचाप्सरस तीर्थमें अर्जुनद्वारा अप्सराओंका उद्धार

मुनियोंने पूछा—विशाल नेत्रोंवाले सूतजी! दक्षिण समुद्रके तटोंपर जो पाँच तीर्थ हैं, उनका वर्णन कीजिये; क्योंकि मुनिलोग उन तीर्थोंकी अधिक चर्चा करते हैं।

उग्रश्रवा बोले—मुनिवरो! इस विषयमें पहले नारदजीने जो अर्जुनकी आश्चर्यमयी कथा कही है, उसे मैं आपलोगोंसे विस्तारपूर्वक कहूँगा। पूर्वकालकी बात है, कुछ कारणवश अर्जुन (बारह वर्षोंतक तीर्थयात्राके लिये निकले थे, वे) मणिपुर होते हुए दक्षिण समुद्रके तटपर वहाँके पाँच तीर्थोंमें स्नान करनेके लिये आये। ये तीर्थ वे ही हैं जिन्हें उस समय भयके मारे तपस्वीलोग स्वयं भी छोड़ चुके थे और दूसरोंको भी वहाँ जानेसे मना करते थे। उनमें पहला 'कुमारेश' तीर्थ है, जो मुनियोंको प्रिय है। दूसरा 'स्तम्भेश' तीर्थ है, जो सौभद्र मुनिको प्रिय है। तीसरा 'वर्करेश्वर' तीर्थ है, जो इन्द्रपत्नी शचीको प्रिय लगता है और बहुत उत्तम है। चौथा 'महाकालेश्वर' तीर्थ है, जो राजा करन्धमको अधिक प्रिय है। इसी प्रकार पाँचवाँ 'सिद्धेश' नामक तीर्थ है, जो महर्षि भारद्वाजको विशेष प्रिय है। कुरुश्रेष्ठ अर्जुनने इन पाँचों तीर्थोंका दर्शन किया, जिन्हें तपस्वियोंने त्याग दिया था। वास्तवमें वे पाँचों तीर्थ महान् पुण्यके जनक थे। अर्जुनने नारद आदि महामुनियोंका दर्शन करके उनसे पूछा—'महात्माओ! ये तीर्थ तो बड़े ही सुन्दर और अद्भुत प्रभावसे युक्त हैं, तो भी ब्रह्मवादी मुनियोंने सदाके लिये इनका परित्याग क्यों कर दिया है?'

तपस्वी बोले—कुरुनन्दन! इन तीर्थोंमें पाँच ग्राह निवास करते हैं, जो तपस्वी मुनियोंको जलमें खींच ले जाते हैं। इसीलिये ये तीर्थ त्याग दिये गये हैं।

यह सुनकर महाबाहु अर्जुनने समुद्रके तटपर उन तीर्थोंमें जानेका विचार किया। तब उनसे तपस्वी महात्माओंने कहा—'अर्जुन! वहाँ तुम्हें नहीं जाना चाहिये। ग्राहोंने बहुतेरे राजाओं और मुनियोंको मार डाला है। तुम तो बारह वर्षतक अनेक तीर्थोंमें स्नान कर चुके होगे। फिर इन पाँच तीर्थोंसे तुम्हें क्या लेना है? दीपशिखापर जल मरनेवाले पतंगोंकी भाँति इन तीर्थोंमें प्राण देनेके लिये न जाओ।'

अर्जुनने कहा—मुनिवरो! आपलोगोंका दयालु स्वभाव है, आपने जो सार बात बतायी है, वह ठीक है; तथापि अपनी ओरसे मैं सेवामें कुछ निवेदन करता हूँ। जो मनुष्य धर्माचरणकी इच्छासे कहीं जाता हो, उसे मना करना महात्माओंके लिये भी उचित नहीं है। जीवन बिजलीकी चमकके समान क्षणभंगुर है। वह यदि धर्म-पालनके लिये चला जाता (नष्ट हो जाता) है, तो जाय, इसमें क्या दोष है? जिनके जीवन, धन, स्त्री, पुत्र, खेत और घर धर्मके काममें चले जाते हैं, वे ही इस पृथ्वीपर मनुष्य कहलानेके अधिकारी हैं।*

* यज्जीवितं चाचिरांशुसमानं क्षणभङ्गुरम्। तच्चेद्धर्मकृते याति यातु दोषोऽस्ति को ननु॥
जीवितं च धनं दारा पुत्राः क्षेत्रं गृहाणि च। याति येषां धर्मकृते त एव भुवि मानवाः॥
(स्क० पु०, मा० कुमा० १। २१-२२)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

तपस्वी बोले—पार्थ! इस प्रकार धर्माचरण करते हुए तुम्हारी आयु बड़ी हो और धर्ममें तुम्हारा अनुराग निरन्तर बना रहे। जाओ, अपना मनोरथ सिद्ध करो।

मुनियोंके ऐसा कहनेपर अर्जुनने उन सबको प्रणाम किया और आशीर्वाद ले सौभद्र महर्षिके उत्तम तीर्थमें जाकर स्नान किया। इसी समय जलके भीतर रहनेवाले महान् ग्राहने नरश्रेष्ठ अर्जुनको पकड़ लिया। महाबाहु अर्जुन बलवानोंमें श्रेष्ठ थे। वे जोर-जोरसे फड़कते हुए उस जलचर जीवको बलपूर्वक लिये-दिये जलसे बाहर निकल आये। ज्यों ही उसे खींचकर वे बाहर लाये, वह ग्राह समस्त आभूषणोंसे विभूषित कल्याणमयी नारीके रूपमें परिणत हो गया। उसका रूप दिव्य था। वह मनको मोह लेनेवाली थी। उस समय अर्जुनने उससे पूछा—'कल्याणी! तुम कौन हो? जलमें विचरनेवाली मकरीका रूप तुम्हें कैसे मिला? ऐसा महान् पाप तुमने क्यों किया?'

नारी बोली—कुन्तीनन्दन! मैं देवताओंके नन्दनवनमें निवास करनेवाली अप्सरा हूँ। मेरा नाम वर्चा है। यहाँ मेरी चार सखियाँ और हैं। वे सभी सुन्दरी तथा इच्छानुसार गमन करनेवाली हैं। एक दिन उन सबको साथ लेकर मैं देवराज इन्द्रके भवनसे चली और एक वनमें पहुँचकर मैंने देखा, कोई ब्राह्मण देवता अकेले एकान्तमें बैठकर स्वाध्याय कर रहे हैं। उनका रूप बड़ा सुन्दर है। वीरवर! उनकी तपस्याके तेजसे वह सारा वन प्रकाशित हो रहा था। वे सूर्यकी भाँति उस समस्त प्रदेशको आलोकित कर रहे थे। उन्हें देखकर उनकी तपस्यामें विघ्न डालनेकी इच्छासे मैं वहाँ उतर गयी। मैं, सौरभेयी, सामेयी, बुद्बुदा और लता सब एक ही साथ उन ब्राह्मण देवताके समीप पहुँचीं तथा गाती और खेलती हुई उन्हें लुभानेकी चेष्टा करने लगीं। वीर! यह सब करनेपर भी उन्होंने अपना मन हमारी ओर नहीं आने दिया। वे महातेजस्वी ब्राह्मण निर्मल तपस्यामें स्थित थे। हमारी अनुचित चेष्टाओंसे कुपित होकर उन्होंने हम सबको शाप दे दिया—'अरी! तुम सब लोग सौ वर्षोंतक जलके भीतर ग्राह बनकर रहो।'

यह शाप सुनकर हमलोग अत्यन्त व्यथित हो उठीं और उन्हीं तपस्वी ब्राह्मणकी शरणमें गयीं। हमने प्रार्थनापूर्वक कहा—'विप्रवर! हम सबने बड़ा अनुचित किया है; फिर भी आप हमारे अपराधको क्षमा कर देने योग्य हैं। मुने! आप धर्मज्ञ हैं, ब्राह्मण सब प्राणियोंके प्रति मित्र-भाव रखनेवाला बताया गया है। मनीषी महात्माओंका यह वचन सत्य हो। साधुपुरुष शरणागतोंकी रक्षा करते हैं। हम सब आपकी शरणमें आयी हैं; अतः कृपापूर्वक हमें क्षमा कर दें।'

सूर्य और चन्द्रमाके समान तेजस्वी वे धर्मात्मा ब्राह्मण सदा कल्याणमय कर्म करनेवाले थे। अप्सराओंके प्रार्थना करनेपर उन्होंने उनपर कृपा की और इस प्रकार कहा—'देवियो! यदि लोग अपने सिरपर खड़ी हुई मृत्युको देख लें तो उन्हें भोजन भी न रुचे, फिर पापमें प्रवृत्ति तो हो ही कैसे सकती है? अहो! सब रत्नोंसे बढ़कर अत्यन्त दुर्लभ इस मनुष्य-जन्मको पाकर स्त्रियोंके मोहमें फँसे हुए कुछ नीच मनुष्य इसे तिनकेके समान गँवा देते हैं। यह कितने आश्चर्यकी बात है।* हम पूछते हैं, तुमलोगोंका जन्म किसलिये हुआ

* मस्तकस्थापिनं मृत्युं यदि पश्येदयं जनः। आहारोऽपि न रोचेत किमुताकार्यकारिता॥
अहो मानुष्यकं जन्म सर्वरत्नसुदुर्लभम्। तृणवत् क्रियते कैश्चिद् योषिन्मूढैर्नराधमैः॥
(स्क० पु०, मा० कुमा० १।४९-५०)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

है अथवा उससे क्या लाभ है। अपने मनमें विचार करके इसका उत्तर दो। हम स्त्रियोंकी निन्दा नहीं करते, जिनसे सबका जन्म होता है। केवल उन पुरुषोंकी निन्दा करते हैं, जो स्त्रियोंके प्रति उच्छृंखल हैं, मर्यादाका उल्लंघन करके उनके प्रति आसक्त हैं। ब्रह्माजीने संसारकी सृष्टि बढ़ानेके लिये स्त्री-पुरुषके जोड़ेका निर्माण किया है। अतः इसी भावसे स्त्री-पुरुषोंको मिथुन-धर्मका पालन करना चाहिये। इसमें कोई दोष नहीं है। परंतु इतना ध्यान रखना चाहिये कि जो नारी अपने बन्धु-बान्धवोंद्वारा ब्राह्मण और अग्निके समीप शास्त्रीय विधिसे अपनेको दी गयी हो, उसीके साथ सदा गृहस्थ-धर्मका पालन करना श्रेष्ठ माना गया है। इस प्रकार प्रयत्नपूर्वक शास्त्र-मर्यादाके अनुकूल चलाया जानेवाला अपना गार्हस्थ्य उत्तम तथा महान् गुणकारक हो सकता है। जो गृहस्थी शास्त्र-मर्यादाके अनुसार नहीं चलायी जाती, वह दोषका कारण भी हो सकती है। पाँच मुखोंवाले नगरमें, जिसके द्वारोंपर ग्यारह योद्धा पहरा देते हैं, जो पुरुष अपनी स्त्री और अनेक सन्तानोंके साथ मौजूद है, वह अचेतन कैसे हो जाता है। स्त्रीके साथ संयोग इसलिये किया जाता है कि उससे पुत्र उत्पन्न होकर पंचयज्ञ आदि कर्मोंद्वारा सम्पूर्ण विश्वका उपकार कर सके, किंतु हाय! मूढ़ मनुष्य उस पवित्र संयोगको किसी और ही भावसे ग्रहण करते हैं। छः धातुओंका सारभूत जो वीर्य है उसे अपने समान वर्णवाली स्त्रीको छोड़कर अन्य किसी निन्दित योनिमें यदि कोई छोड़ता है, तो उसके लिये यमराजने ऐसा कहा है—पहले तो वह अन्नका द्रोही है, फिर आत्माका द्रोही है, फिर पितरोंका द्रोही है तथा अन्ततोगत्वा सम्पूर्ण विश्वका द्रोही है। ऐसा पुरुष अनन्तकालतक अन्धकारपूर्ण नरकमें पड़ा रहता है। देवता, पितर, ऋषि, मनुष्य (अतिथि) तथा सम्पूर्ण भूत (प्राणी) मनुष्यके सहारे जीविका चलाते हैं। अतः प्रत्येक मनुष्यको उचित है कि वह इन पाँचोंका उपकार करनेके लिये सदा उद्यत रहे। जो मन, वाणी, जिह्वा, हाथ और कानको अपने वशमें करके जितेन्द्रिय हो गया है, उसे हंसतीर्थ कहते हैं। उससे भिन्न जो अजितेन्द्रिय पुरुष हैं, वे सब काकतीर्थ हैं। जो तमोगुणी मनुष्य काकवत् आचरण करनेवाले मनुष्यमें (काकतीर्थमें) हंसबुद्धिसे रमण करते हैं, उनसे देवताओंका क्या प्रयोजन है? यह ध्यान देकर सोचनेकी बात है। इस प्रकार संसारका जो निर्माण हुआ है, उसे हृदयके भीतर स्मरण रखनेवाले पुरुषका मन त्रिलोकीका राज्य पानेके लिये भी कैसे पापमें प्रवृत्त हो सकता है। अप्सराओ! अन्यान्य मनुष्योंके कर्मोंका जो यह शास्त्रद्वारा ज्ञात होनेवाला परिणाम है, उसे मैंने यमलोकमें प्रत्यक्ष देखा है। फिर मुझे कैसे मोह हो? तुमलोग वनमें जलके भीतर ग्राह होकर रहोगी और उसमें स्नानके लिये आनेवाले पुरुषोंको पकड़ोगी। कुछ वर्षोंतक इस जीवनमें रह लेनेके पश्चात् जब कोई श्रेष्ठ पुरुष तुम्हें जलसे बाहर स्थलपर खींच ले जायगा, तब तुम पुनः अपना यह स्वरूप प्राप्त कर लोगी। मैंने पहले कभी हँसीमें भी झूठ बात नहीं कही है। जैसे निन्दित पेय पदार्थको पीने अथवा अशुद्ध वस्तुके छूनेकी शुद्धि प्रायश्चित्तसे होती है, उसी प्रकार इस शापको भोग लेनेसे ही तुम्हारी उत्तम शुद्धि हो सकती है।'

स्त्री बोली—तदनन्तर उन ब्राह्मण देवताको प्रणाम करके हमने उनकी परिक्रमा की और उस स्थानसे दूर हटकर अत्यन्त दुःखित हो, हम बड़ी चिन्तामें पड़ गयीं। सोचने लगीं, 'किस उपायसे थोड़े ही समयमें हम सब उस मनुष्यके समीप जा सकती हैं, जो पुनः हमें अपने स्वरूपकी प्राप्ति करा देगा।' दो घड़ीतक इस प्रकार चिन्ता करनेके पश्चात् हम बड़भागिनी स्त्रियोंने वहाँ स्वतः आये हुए देवर्षि नारदजीको देखा। तब उन्हें प्रणाम करके उदास

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

मुखसे हमलोग खड़ी हो गयीं। नारदजीने हमारे दुःखका कारण पूछा। उनके पूछनेपर हमने सब वृत्तान्त ज्यों-का-त्यों कह सुनाया। सुनकर वे इस प्रकार बोले—'दक्षिणमें समुद्रके किनारे जो परम पवित्र और सुन्दर पाँच तीर्थ हैं, वहीं तुम सब लोग शीघ्र चली जाओ। वहाँ शुद्ध चित्तवाले नरश्रेष्ठ पाण्डुनन्दन अर्जुन तुम सबको इस दुःखसे छुटकारा दिलायेंगे।' वीरवर! देवर्षि नारदजीकी वह बात सुनकर हम सब सखियाँ यहीं आ गयी थीं। अब तुम उनकी बात सत्य करनेयोग्य हो। तुम्हारे-जैसे साधुपुरुषोंका जन्म दीन-दुःखियोंकी भलाई करनेके लिये ही होता है।

वर्चाकी यह बात सुनकर पाण्डुकुमार अर्जुनने बारी-बारीसे सब तीर्थोंमें स्नान किया और ग्राह बनी हुई सब अप्सराओंका कृपापूर्वक उद्धार कर दिया। तदनन्तर वे सब अप्सराएँ वीर अर्जुनको प्रणाम कर तथा उन्हें अनेकानेक आशीर्वाद देकर

आकाशमें उड़ गयीं।

सारस्वत-कात्यायन-संवाद—दान और त्यागकी महिमा

उग्रश्रवा मुनि बोले—तदनन्तर अर्जुनने ब्राह्मणों-से घिरे हुए देवपूजित नारदजीके समीप जाकर सबको पृथक्-पृथक् प्रणाम किया। तब नारदजीने उनसे कहा—'धनंजय! तुम्हें शत्रुओंपर विजय प्राप्त हो। तुम्हारी बुद्धि धर्म, देवता और ब्राह्मणोंकी सेवामें लगे। वीर! बारह वर्षकी यह लंबी यात्रा करते समय तुम्हें कोई कष्ट तो नहीं हुआ? जिसके हाथ, पैर और मन भलीभाँति संयममें हों तथा जिसकी सभी क्रियाएँ निर्विकार भावसे सम्पन्न होती हों, वही तीर्थका पूरा फल प्राप्त करता है।* यह बात तुम्हें अपने हृदयमें धारण करनी चाहिये। तात! हम तुमसे क्या कहें? धर्मराज युधिष्ठिर जिसके भाई और भगवान् श्रीकृष्ण जिसके मित्र हैं, उसे कोई क्या शिक्षा दे सकता है? तथापि यह उचित है कि ब्राह्मणोंद्वारा मनुष्योंको शिक्षा मिले। भगवान् विष्णुने हमें धर्मगुरुके पदपर स्थापित किया है। ब्राह्मणोंके प्रति श्रीहरिने जो उद्गार प्रकट किया है, उसे सुनो—'जिसके सुधाके समान निर्मल यशको सुनना—उसमें गोते लगाना, चाण्डालपर्यन्त सम्पूर्ण जगत्को तत्काल पवित्र कर देता है, वह मैं विष्णु जो विकुण्ठ नामसे प्रसिद्ध हूँ; मुझे यह परम पवित्र कीर्ति आप-जैसे उत्तम ब्राह्मणोंसे ही प्राप्त हुई है। अतः यदि मेरी यह बाँह भी आपलोगोंके प्रतिकूल चले तो मैं इसे काट डालूँगा; फिर औरोंकी तो बात ही क्या है?' कुन्तीनन्दन! मैं तुम्हें कुछ प्रिय समाचार सुनाता हूँ। तुम जिनकी कुशल चाहते हो, वे यदुवंशी और पाण्डव सब कुशलसे हैं। इस समय राजा धृतराष्ट्रकी आज्ञासे भीमसेनने राजा वीरवर्माको मार डाला है, जो कौरवोंको सदा सन्ताप पहुँचाता

* यस्य हस्तौ च पादौ च मनश्चैव सुसंयतम्। निर्विकाराः क्रियाः सर्वाः स तीर्थफलमश्नुते॥
(स्क० पु०, मा० कुमा० २।६)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

ब्राह्मणोंसे घिरे हुए देवर्षि नारदजीके साथ अर्जुनका संवाद

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

था। जैसे पहले राजा बलि अत्यन्त बलवान् और अजेय थे, उसी प्रकार राजा वीरवर्मा भी समस्त राजाओंके लिये अजेय हो गया था।'

नारदजीकी कही हुई ये सब बातें सुनकर अर्जुनको बड़ी प्रसन्नता हुई। वे बोले—'मुने! जो ब्राह्मणोंकी इच्छाके अनुसार चलते और ब्राह्मणोंका सदा समादर करते हैं, वे अकुशली कैसे हो सकते हैं? मैं सदा संयम-नियमसे रहकर तीर्थोंमें विचरता हुआ इस तीर्थमें आया हूँ। इससे मेरे हृदयमें बड़ा आनन्द है। तीर्थोंका दर्शन धन्य है! उनमें स्नान करनेका महत्त्व दर्शनसे भी अधिक है, तथा उनके माहात्म्यको सुनना दर्शन और स्नानसे भी बढ़कर है। ऐसा और्व मुनिका कथन है।[१] अतः मैं इस तीर्थके गुणोंका वर्णन सुनना चाहता हूँ।'

नारदजीने कहा—कुन्तीनन्दन! तुम स्वयं गुणी हो, इसलिये गुणोंको पूछते हो। यह तुम्हारे लिये सर्वथा उचित ही है। गुणी पुरुषोंमें ही धर्मसे उत्पन्न होनेवाले गुणोंको सुननेकी इच्छा होनी सम्भव है। साधुपुरुषोंकी आयु प्रतिदिन धर्मकी बातें सुनने तथा धर्म और ईश्वरके कीर्तन करनेमें ही बीतती है। परंतु पापात्मा पुरुषोंकी आयु सदा बुरी चर्चाएँ करनेमें ही व्यर्थ नष्ट होती है[२]। इसलिये मैं इस तीर्थके जो बहुत-से गुण हैं, उनका वर्णन करूँगा। अर्जुन! पहलेकी बात है, मैं कपिलजीके पीछे-पीछे तीनों लोकोंमें विचरता हुआ एक दिन ब्रह्मलोकमें गया। वहाँ मैंने लोकपितामह ब्रह्माजीका दर्शन किया और उन्हें प्रणाम करके कपिलदेवजीके साथ प्रसन्नतापूर्वक बैठा। ब्रह्माजीने स्नेहपूर्ण दृष्टिसे मेरी ओर देखकर ही मानो मेरा स्वागत किया था। इसी समय वहाँ कुछ ब्राह्मण पधारे, जो सदा जगत् स्थिति देखनेके लिये लोकहितके उद्देश्यसे भ्रमण करते रहते हैं। वे भी जब प्रणाम करके बैठ गये, तब पितामहने अपनी अमृतमयी दृष्टिसे देखकर उन्हें आनन्दमग्न करते हुए पूछा—'ब्राह्मणो! तुमने कहाँ-कहाँ भ्रमण किया है? क्या-क्या देखा अथवा सुना है? यदि कहीं कोई अद्भुत बात हो तो बताओ।' उनके इस प्रकार पूछनेपर वे सुश्रवा नामवाले ब्राह्मण ब्रह्माजीको मस्तक झुकाकर इस प्रकार बोले—'भगवन्! सर्वज्ञ प्रभुके सामने किसी बातका विज्ञापन करना वैसा ही है, जैसा सूर्यके आगे दीपक दिखाना। फिर भी पुण्यके लिये आपने हमें कुछ कहनेकी आज्ञा दी है, इसलिये अवश्य कुछ निवेदन करना उचित है। कात्यायन नामके एक मुनि थे, जिन्होंने बहुत-से धर्मोंका श्रवण करके उनका सारतत्त्व जाननेकी इच्छासे एक अँगूठेके बलपर खड़े हो सौ वर्षोंतक तपस्या की। तदनन्तर दिव्य आकाशवाणी हुई—'कात्यायन! तुम परम पवित्र सरस्वती नदीके तटपर जाकर सारस्वत मुनिसे पूछो। सारस्वत मुनि धर्मके तत्त्वको जाननेवाले हैं। वे तुम्हें सारभूत धर्मका उपदेश करेंगे।'

'यह सुनकर मुनिवर कात्यायन मुनिश्रेष्ठ सारस्वतके पास गये और भूमिपर मस्तक रखकर उन्हें प्रणाम करके अपने मनकी शंका इस प्रकार पूछने लगे—'महर्षे! कोई सत्यकी प्रशंसा करते हैं, कुछ लोग तप और शौचाचारकी महिमा गाते हैं, कोई सांख्य (ज्ञान)-की सराहना करते हैं, कुछ अन्य लोग योगको महत्त्व देते हैं, कोई क्षमाको श्रेष्ठ बतलाते हैं, कोई इन्द्रिय-संयम और सरलताको तो कोई मौनको सर्वश्रेष्ठ कहते हैं, कोई शास्त्रोंके स्वाध्यायकी तो कोई सम्यक्

१-तीर्थानां दर्शनं धन्यमवगाहस्ततोऽधिकः। माहात्म्यश्रवणं तस्मादित्यौर्वो मुनिरब्रवीत्॥

(स्क० पु०, मा० कुमा० २। १७)

२-साधूनां धर्मश्रवणैः कीर्तनैर्याति चान्वहम्। पापानामसदालापैरायुर्याति वृथात्ययम्॥

(स्क० पु०, मा० कुमा० २। २१)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

ज्ञानकी प्रशंसा करते हैं, कोई वैराग्यको उत्तम बताते हैं तो कुछ लोग अग्निष्टोम आदि यज्ञ-कर्मको श्रेष्ठ मानते हैं और दूसरे लोग मिट्टीके ढेले, पत्थर और सुवर्णमें समभाव रखते हुए आत्मज्ञानको ही सबसे उत्तम समझते हैं। कर्तव्य और अकर्तव्यके विषयमें प्रायः लोकको यही स्थिति है। अतः सबसे श्रेष्ठ क्या है? यह विचार करनेवाले मनुष्य बहुधा मोहको ही प्राप्त होते हैं। मुने! आप सर्वज्ञ हैं, ऊपर बताये हुए कार्योंमें जो सर्वोत्तम, महात्मा पुरुषोंके द्वारा भी अनुष्ठान करने योग्य तथा सब पुरुषार्थोंका साधक हो, वह मुझे बतानेकी कृपा करें।'

सारस्वत बोले—ब्रह्मन्! माता सरस्वतीने मुझे जो कुछ बतलाया है, उसके अनुसार मैं सारतत्त्वका वर्णन करूँगा, सुनो। यह सम्पूर्ण जगत् छायाकी भाँति उत्पत्ति और विनाशरूप धर्मसे युक्त है। धन, यौवन और भोग जलमें प्रतिबिम्बित चन्द्रमाकी भाँति चंचल हैं। यह जानकर और इसपर भलीभाँति विचार करके भगवान् शंकरकी शरणमें जाना चाहिये और दान भी करना चाहिये। किसी भी मनुष्यको कदापि पाप नहीं करना चाहिये, यह वेदकी आज्ञा है। श्रुति यह भी कहती है कि महादेवजीका भक्त जन्म और मृत्युके बन्धनमें नहीं पड़ता। पूर्वकालमें सावर्णि मुनिने जो दो गाथाएँ गान की हैं, उन्हें सुनो—'भगवान् धर्मका नाम वृष है। वे ही जिनके वाहन हैं, उन महादेवजीकी यदि पूजा की जाती है, तो वही सबसे महान् धर्म कहा गया है। जिसमें दुःखरूपी भँवर उठता है, अज्ञानमय प्रवाह बहता रहता है, धर्म और अधर्म ही जिसके जल हैं, जो क्रोधरूपी कीचड़से युक्त है, जिसमें मदरूपी ग्राह निवास करता है, जहाँ लोभरूपी बुलबुले उठते रहते हैं, अभिमान ही जिसकी पातालतक पहुँचनेवाली गहराई है, सत्त्वगुणरूपी जहाज जिसकी शोभा बढ़ाता है, ऐसे संसारसमुद्रमें डूबनेवाले जीवोंको केवल भगवान् शंकर ही पार लगाते हैं। दान, सदाचार, व्रत, सत्य और प्रिय वचन, उत्तम कीर्ति, धर्मपालन तथा आयुपर्यन्त दूसरोंका उपकार—इन सार वस्तुओंका इस असार शरीरसे उपार्जन करना चाहिये। राग हो तो धर्ममें, चिन्ता हो तो शास्त्रकी, व्यसन हो तो दानका—ये सभी बातें उत्तम हैं। इन सबके साथ यदि विषयोंके प्रति वैराग्य हो जाय तो समझना चाहिये, मैंने जन्मका फल पा लिया।* इस भारतवर्षमें मनुष्यका शरीर, जो सदा टिकनेवाला नहीं है, पाकर जो अपना कल्याण नहीं कर लेता, उसने दीर्घकालतकके लिये अपने आत्माको धोखेमें डाल दिया। देवता और असुर सबके लिये मनुष्य-योनिमें जन्म लेनेका सौभाग्य अत्यन्त दुर्लभ है। उसे पाकर ऐसा प्रयत्न करना चाहिये, जिससे नरकमें न जाना पड़े। यह मानव-शरीर सर्वस्वसाधनका मूल है तथा सब पुरुषार्थोंको सिद्ध करनेवाला है। यदि तुम सदा लाभ उठानेके ही प्रयासमें रहते हो, तो इस मूलकी यत्नपूर्वक रक्षा करो। महान् पुण्यरूपी मूल्य देकर तुम्हारे द्वारा यह मानव-शरीररूपी नौका इसलिये खरीदी जाती है कि इसके द्वारा दुःखरूपी समुद्रके पार पहुँचा जा सके। जबतक यह नौका छिन्न-भिन्न नहीं हो जाती, तबतक ही तुम इसके द्वारा संसार-समुद्रको पार कर लो। जो नीरोग मानवशरीररूपी दुर्लभ वस्तुको पाकर भी उसके द्वारा संसारसागरके पार नहीं हो जाता, वह नीच मनुष्य आत्महत्यारा है। इसी शरीरमें रहकर यतिजन परलोकके लिये तप करते हैं, यज्ञकर्ता होम करते हैं और दाता पुरुष आदरपूर्वक दान देते हैं।'

कात्यायनने पूछा—सारस्वतजी! दान और

* दानं वृत्तं व्रतं वाचः कीर्तिर्धर्मस्तथायुषः। परोपकरणं कायादसारात् सारमुद्धरेत्॥
धर्मे रागः श्रुतौ चिन्ता दाने व्यसनमुत्तमम्। इन्द्रियार्थेषु वैराग्यं सम्प्राप्तं जन्मनः फलम्॥
(स्क० पु०, मा० कुमा० २। ४७-४८)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

तपस्यामें कौन दुष्कर है तथा कौन परलोकमें महान् फल देनेवाला है; यह बतलाइये।

सारस्वतने कहा—मुने! इस पृथ्वीपर दानसे बढ़कर अत्यन्त दुष्कर कोई कार्य नहीं है। यह प्रत्यक्ष देखा जाता है। सभी लोग इसके साक्षी हैं। मनुष्य धनके लिये महान् लोभ होनेके कारण अपने प्यारे प्राणोंका भी मोह छोड़कर महाभयंकर समुद्र, जंगल और पहाड़ोंमें प्रवेश कर जाते हैं। दूसरे लोग धनके ही लोभसे सेवा-जैसी निन्दित वृत्तिका आश्रय लेते हैं, जिसे कुत्तेकी वृत्तिके समान त्याज्य माना गया है। कुछ लोग खेतीकी वृत्ति अपनाते हैं, जिसमें प्रायः जीवोंकी हिंसा होती है और स्वयं भी बहुत क्लेश उठाने पड़ते हैं। इस प्रकार जो बड़े दुःखसे उपार्जन किया गया, सैकड़ों आयास-प्रयाससे प्राप्त किया गया, प्राणोंसे भी अधिक प्रिय है, उस धनका त्याग अत्यन्त दुष्कर है। मनुष्य अपने हाथसे उठाकर जो धन दूसरेको देता है, अथवा जिसे वह खा-पीकर भोग लेता है, वही धन वास्तवमें उस धनीका है। मरे हुए मनुष्यके धनसे तो दूसरे लोग मौज करते हैं। जो प्रतिदिन अपने पास आकर याचना करता है, मैं उसे गुरु मानता हूँ; क्योंकि वह नित्यप्रति दर्पणकी भाँति मेरे चित्तका मार्जन करके इसे स्वच्छ बनाता है। दिया जानेवाला धन घटता नहीं, अपितु सदा बढ़ता ही रहता है। ठीक उसी प्रकार, जैसे कुएँसे पानी उलीचनेपर वह शुद्ध और अधिक जलवाला होता है। एक जन्मके सुखके लिये सहस्रों जन्मोंके सुखोंपर पानी नहीं फेरना चाहिये। बुद्धिमान् पुरुष एक ही जन्ममें इतना पुण्य संचय कर लेता है, जो सहस्रों जन्मोंके लिये पर्याप्त होता है। मूर्ख मनुष्य इस लोकमें दरिद्र हो जानेकी आशंकासे अपने धनका दान नहीं करता, परंतु विद्वान् पुरुष परलोकमें दरिद्र न होना पड़े, इस शंकासे यहाँ खुले हाथों धन बाँटता है। जिनका आश्रय ही नाशवान् है, वे मनुष्य धन रखकर क्या करेंगे? जिसके लिये वे धन चाहते हैं, वह शरीर सदा रहनेवाला नहीं है। लोगोंने पहलेसे जो 'नास्ति-नास्ति' (नहीं है, नहीं है) इन दो अक्षरोंका अभ्यास कर रखा है, उसकी जगह यह 'देहि-देहि' (दो-दो) इन दो अक्षरोंका प्रस्ताव विपरीत जान पड़ता है। याचक जन 'देहि' (दीजिये) कहकर याचना नहीं करते, अपितु कृपण मनुष्यको यह समझाते हैं कि 'दान न करनेवालेकी यही (मेरी-जैसी) अवस्था होती है। अतः आप भी ऐसे ही न बनें।' याचक दाताका उपकार करनेके लिये ही उसके सामने 'देहि' (दीजिये) कहकर याचना करता है; क्योंकि दाता तो ऊपरके लोकोंमें जाता है और दान लेनेवाला नीचे ही रह जाता है। जो दान नहीं करते, वे दरिद्र, रोगी, मूर्ख तथा सदा दूसरोंके सेवक होकर दुःखके ही भागी होते हैं। जो धनवान् होकर दान नहीं करता और दरिद्र होकर कष्ट-सहनरूप तपसे दूर भागता है, इन दोनोंको गलेमें बड़ा भारी पत्थर बाँधकर जलमें छोड़ देना चाहिये। सैकड़ों मनुष्योंमें कोई शूरवीर हो सकता है, सहस्रोंमें कोई पण्डित भी मिल सकता है तथा लाखोंमें कोई वक्ता भी निकल सकता है, परंतु इनमें एक भी दाता हो सकता है या नहीं, इसमें सन्देह है। गौ, ब्राह्मण, वेद, सती स्त्री, सत्यवादी पुरुष, लोभहीन तथा दानशील मनुष्य—इन सातोंके द्वारा ही यह पृथ्वी धारण की जाती है।* उशीनर देशके राजा शिवि ब्राह्मणके लिये

---

* अहन्यहनि याचन्तमहं मन्ये गुरुं तथा। मार्जनं दर्पणस्येव यः करोति दिने दिने॥
दीयमानं हि नापैति भूय एवाभिवर्धते। कूप उत्सिच्यमानो हि भवेच्छुद्धो बहूदकः॥
एकजन्मसुखस्यार्थे सहस्राणि न लोपयेत्। प्राज्ञो जन्मसहस्रेषु संचिनोत्येकजन्मनि॥
मूर्खो हि न ददात्यर्थानिह दारिद्र्यशङ्कया। प्राज्ञस्तु विसृजत्यर्थानमुत्र तस्य शङ्कया॥

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

अपने शरीरको देकर स्वर्गलोकमें चले गये। विदेहनरेश निमिने अपना सम्पूर्ण राज्य, परशुरामजीने सारी पृथ्वी तथा राजा गयने नगरोंसहित समूची पृथ्वी ब्राह्मणोंको दान कर दी। एक समय जब बहुत दिनोंतक मेघोंने वर्षा नहीं की, तब वसिष्ठजीने सब प्राणियोंको उसी प्रकार जीवित रखा, जैसे प्रजापति समस्त प्रजाके जीवनकी रक्षा करते हैं। बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ पांचाल-नरेश ब्रह्मदत्तने श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको शंख निधि प्रदान करके स्वर्गलोक प्राप्त किया। ये तथा और भी बहुत-से राजर्षि, जो शान्तचित्त और जितेन्द्रिय थे, दान तथा शिवभक्तिके प्रभावसे रुद्रलोकमें गये। जबतक यह पृथ्वी टिकी रहेगी तबतक इन सबकी कीर्ति स्थिर है। ऐसा विचार करके तुम सारभूत धर्मके अभिलाषी होकर भगवान् शंकरकी प्रसन्नताके लिये सदा दान करते रहो।

यह उपदेश सुनकर कात्यायन भी मोह त्यागकर वैसे ही हो गये।

नारदजीके द्वारा धर्मवर्माके दानसम्बन्धी जटिल प्रश्नोंका समाधान

नारदजी बोले—वीरश्रेष्ठ अर्जुन! इस प्रकार पृथ्वीपर जो-जो पवित्र तीर्थस्थान हैं, उन सबका दर्शन करते हुए मैं समूची पृथ्वीपर घूमता-घामता भृगुके आश्रमपर पहुँचा, जहाँ श्रेष्ठ एवं पवित्र नर्मदा नदी बहती है, जिसका स्मरण सात कल्पोंतक पुण्य फल देनेवाला होता है। नर्मदा महान् पुण्य प्रदान करनेवाली, पवित्र, सर्वतीर्थमयी तथा कल्याणकारिणी है। वह अपने नामोंका कीर्तनमात्र करनेसे पवित्र कर देती है। दर्शन करनेपर तो वह विशेष पुण्यदायिनी होती है। कुन्तीनन्दन! नर्मदामें स्नान करनेपर जीव सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। जैसे पिंगला नामवाली नाड़ी शरीरके मध्य भागमें स्थित है। इसी प्रकार यह नर्मदा ब्रह्माण्डरूपी शरीरके उसी स्थान (मध्यभाग)-में स्थित बतायी गयी है। वहाँ नर्मदामें सब पापोंका नाश करनेवाला शुक्लतीर्थ है जहाँ स्नान करनेमात्रसे ब्रह्महत्या नष्ट हो जाती है। अर्जुन! उस शुक्ल तीर्थके समीप नर्मदाके उत्तर तटपर भृगु मुनिका आश्रममण्डल है, जिसमें तीनों वेदोंके विद्वान् ब्राह्मण रहकर सब ओरसे उसकी शोभा बढ़ाते हैं। ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेदके मन्त्रोंके उच्चघोषसे वहाँकी सम्पूर्ण दिशाएँ गूँजती रहती हैं। मुनिश्रेष्ठ भृगु जहाँ विराजमान थे, उस स्थानपर मैं भी गया; मुझे आते देख भृगु आदि सब ब्राह्मणोंने उठकर मेरा स्वागत किया। भलीभाँति स्वागत करके मुझे अर्घ्य, पाद्य आदि निवेदन कर वे सब मुनीश्वर मेरे और भृगुजीके साथ आसनोंपर बैठे। फिर यह जानकर कि मैंने पूर्ण विश्राम कर लिया, मुझसे भृगुजीने इस प्रकार पूछा—'मुनिश्रेष्ठ!

किं धनेन करिष्यन्ति देहिनो भङ्गुराश्रयाः। यदर्थं धनमिच्छन्ति तच्छरीरमशाश्वतम्॥
अक्षरद्वयमभ्यस्तं नास्ति नास्तीति यत्पुरा। तदिदं देहि देहीति विपरीतमुपस्थितम्॥
बोधयन्ति न याचन्ते देहीति कृपणं जनाः। अवस्थेयमदानस्य माभूदेवं भवानपि॥
दातुरेवोपकाराय वदत्यर्थीति देहि मे। यस्माद्दाता प्रयात्यूर्ध्वमधस्तिष्ठेत् प्रतिग्रही॥
दरिद्रा व्याधिता मूर्खाः परप्रेष्यकराः सदा। अदत्तदाना जायन्ते दुःखस्यैष हि भाजनाः॥
धनवन्तमदातारं दरिद्रं चातपस्विनम्। उभावम्भसि मोक्तव्यौ गले बद्ध्वा महाशिलाम्॥
शतेषु जायते शूरः सहस्रेषु च पण्डितः। वक्ता शतसहस्रेषु दाता जायेत वा न वा॥
गोभिर्विप्रैश्च वेदैश्च सतीभिः सत्यवादिभिः। अलुब्धैर्दानशीलैश्च सप्तभिर्धार्य्यते मही॥
(स्क० पु०, मा० कुमा० २। ६०—७१)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

आपको कहाँ जाना है और कहाँसे आप यहाँ पधारे हैं?'

तब मैंने भृगुजीसे कहा—महर्षे! मैंने समुद्र-पर्यन्त सम्पूर्ण पृथ्वीपर भ्रमण किया है। मेरी यात्राका उद्देश्य था ब्राह्मणोंको भूमिदान करनेके लिये उत्तम भूमिकी खोज करना। मैं पग-पगपर ऐसी भूमिका अनुसन्धान करता था, जो सर्वथा निर्दोष, पवित्र तीर्थोंसे युक्त, रमणीय और मनोरम हो। किंतु किसी प्रकार ऐसी भूमि मुझे नहीं दिखायी देती।

भृगुजी बोले—देवर्षे! मैंने भी ब्राह्मणोंको बसानेके लिये पूर्वकालमें समुद्रपर्यन्त सारी पृथ्वीपर भ्रमण किया था। उस समय मैंने शुभ पुण्यभूमिका दर्शन किया है। 'मही' नामसे प्रसिद्ध एक परम पवित्र नदी है, जो सर्वतीर्थमयी होनेके साथ ही परम कल्याणकारिणी है। वह देखनेमें मनोरम, सौम्य तथा महापापोंका विनाश करनेवाली है। नारद! पृथ्वीपर जो देखे हुए और बिना देखे हुए तीर्थ हैं, वे सब मही नदीके जलमें निवास करते हैं। पुण्यसलिला मही नदी समुद्रमें मिली हुई है। जहाँ मही और समुद्रका संगम हुआ है, वहाँ स्तम्भ नामक तीर्थ है, जो तीनों लोकोंमें विख्यात है। वहाँ जो मनुष्य स्नान करते हैं, वे सब पापोंसे मुक्त हो जानेके कारण यमराजके समीप नहीं जाते।

मैंने कहा—भृगुजी! आप और हम दोनों मही नदीके शोभायमान तटपर चलेंगे और साथ ही उस परम उत्तम स्थानका पूर्णरूपसे दर्शन करेंगे।

मेरी बात सुनकर भृगुजी मेरे साथ परम पुण्यमय महीतटका दर्शन करनेके लिये आये। उसे देखकर मैं बहुत प्रसन्न हुआ। मेरे सम्पूर्ण शरीरमें रोमांच हो आया और मैंने हर्ष-गद्गद वाणीमें मुनिश्रेष्ठ भृगुजीसे कहा—'ब्रह्मन्! आपके प्रसादसे मैं इस स्थानको बहुत उत्तम बनाऊँगा। अब आप अपने आश्रमपर पधारें। मैं आगेके कार्यपर विचार करूँगा।' इस प्रकार भृगुजीको विदा करके मैं महीके तटपर विचार करने लगा कि यह स्थान मेरे अधीन कैसे होगा क्योंकि यह भूमि सदा राजाओंके अधीन रही है। यदि मैं राजा धर्मवर्माके पास जाकर इस भूमिके लिये याचना करता हूँ तो वे मेरे माँगनेपर मुझे अवश्य दे देंगे; परंतु मुनियोंने तीन प्रकारके द्रव्य बतलाये हैं—शुक्ल, शबल और कृष्ण। इनमें शुक्ल सबसे उत्तम है। शबल मध्यम श्रेणीका है और कृष्ण अधम कहलाता है। वेदोंको पढ़ाकर शिष्यसे दक्षिणारूपमें जो धन प्राप्त होता है वह शुक्ल कहा गया है। कन्यासे तथा सूद, व्यापार, खेती और याचनासे मिला हुआ धन शबल कहलाता है। जुआ, चोरी, दुःसाहसपूर्ण कार्य तथा छलसे कमाया हुआ धन कृष्ण कहा गया है। (ये शुक्ल, शबल और कृष्ण द्रव्य क्रमशः सात्त्विक, राजस और तामस माने गये हैं।) जो मनुष्य किसी उत्तम तीर्थ और पात्रको पाकर शुक्ल धनके द्वारा श्रद्धापूर्वक धर्मका अनुष्ठान करता है, वह देवयोनिमें उसके फलका उपभोग करता है। जो राजस भावसे शबल धनके द्वारा याचकोंको दान देता है, वह उसका उपभोग मनुष्य-योनिमें करता है। जो तमोगुणसे आवृत हो कृष्ण धनके द्वारा दान करता है, वह नराधम मृत्युके पश्चात् तिर्यग् योनिमें जाकर उसके फलका उपभोग करता है। इस दृष्टिसे मेरे याचना करनेपर मिला हुआ धन राजस होगा, यह बात स्वतः स्पष्ट है। यदि ब्राह्मणभावसे उपस्थिति हो राजासे प्रतिग्रहकी याचना करता हूँ तो वह भी प्रतिग्रह होनेके ही कारण मुझे अत्यन्त कष्टदायक प्रतीत होता है। यह राजप्रतिग्रह बड़ा भयंकर है। स्वादमें तो मधुके समान है, किंतु परिणाममें विषके तुल्य है। प्रतिग्रहयुक्त ब्राह्मण नरकमें जाता है, इसीलिये मैं इस प्रतिग्रहरूपी पापसे अलग हूँ। तब दान और याचना इन दोमेंसे किसी एक उपायके द्वारा यह स्थान अपने अधिकारमें करूँ। इसी बातपर मैं बार-बार विचार करने लगा।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

अर्जुन! इसी समय मही और समुद्रके पवित्र संगममें स्नान करनेके लिये वहाँ बहुत-से ऋषि-मुनि आ पहुँचे।

मैंने उन सबसे पूछा—'महात्माओ! आपलोग कहाँसे आये हैं?' तब वे मुझे प्रणाम करके बोले—'मुने! हमलोग सौराष्ट्र देशमें रहते हैं, जहाँके राजा धर्मवर्मा हैं। राजा धर्मवर्माने दानका तत्त्व जाननेकी इच्छासे बहुत वर्षोंतक तपस्या की, तब आकाशवाणीने उनसे एक श्लोक कहा—वह इस प्रकार है, सुनो—

द्विहेतु षडधिष्ठानं षडङ्गं च द्विपाकयुक्।
चतुष्प्रकारं त्रिविधं त्रिनाशं दानमुच्यते॥

'दानके दो हेतु, छः अधिष्ठान, छः अंग, दो प्रकारके परिणाम (फल), चार प्रकार, तीन भेद और तीन विनाशसाधन हैं; ऐसा कहा जाता है।'

''यह एक श्लोकमात्र कहकर आकाशवाणी मौन हो गयी। नारदजी! राजाके पूछनेपर भी आकाशवाणीने इस श्लोकका अर्थ नहीं बतलाया। तब महाराज धर्मवर्माने ढिंढोरा पिटवाकर यह घोषणा करायी कि 'जो मेरी तपस्याद्वारा प्राप्त हुए इस श्लोककी ठीक-ठीक व्याख्या कर देगा उसे मैं सात लाख गौएँ, इतनी ही स्वर्णमुद्राएँ तथा सात गाँव दूँगा।' डंकेकी चोटपर राजाकी यह महती घोषणा सुनकर अनेक देशोंके बहुत ब्राह्मण वहाँ गये। नारदजी! हम भी धनके लोभसे वहाँ गये थे, किंतु श्लोक दुर्बोध होनेके कारण उसकी व्याख्या न करके यहाँ लौट आये हैं और अब तीर्थयात्राके लिये जाते हैं।''

अर्जुन! उन महात्माओंकी यह बात सुनकर मैं बहुत प्रसन्न हुआ और उन्हें विदा करके सोचने लगा—'अहो! इस स्थानकी प्राप्तिके लिये मुझे अच्छा उपाय मिल गया, इसमें संशय नहीं है। श्लोककी व्याख्या करके विद्याके मूल्यपर मैं राजासे स्थान और धन दोनों प्राप्त करूँगा। ऐसा करनेपर मुझे प्रतिग्रह नहीं माँगना पड़ेगा। अब मेरा दुर्लभ मनोरथ सिद्ध हो गया। यद्यपि यह श्लोक अत्यन्त दुर्बोध है, तथापि मैं इसे अच्छी तरह जानता हूँ।' कुन्तीनन्दन! इस प्रकार विचार करके मुझे बड़ा हर्ष हुआ। फिर उस महीसागर-संगम तीर्थको बार-बार प्रणाम करके मैं वहाँसे चला और वृद्ध ब्राह्मणका रूप धारण करके राजा धर्मवर्माके पास जा पहुँचा। वहाँ जाकर मैंने राजासे इस प्रकार कहा—'नरेन्द्र! मुझसे श्लोककी व्याख्या सुनिये और इसके बदलेमें जो कुछ देनेके लिये आपने ढिंढोरा पिटवाया है, उसकी यथार्थता प्रकट कीजिये।'

मेरे ऐसा कहनेपर राजा बोले—'ब्रह्मन्! ऐसी बात तो बहुत अधिक श्रेष्ठ ब्राह्मण कह चुके हैं; परंतु कोई भी इसका वास्तविक अर्थ नहीं बता सका। दानके वे दोनों हेतु कौन हैं? छः अधिष्ठान कौन-से बताये गये हैं? छः अंग कौन हैं? दो फल कौन माने गये हैं? वे चार प्रकार और तीन भेद कौन-कौन-से हैं? तथा दानके तीन विनाश-साधन कौन-कौन-से बताये गये हैं? यह सब स्पष्टरूपसे वर्णन कीजिये। विप्रवर! यदि इन सात प्रश्नोंको आप भलीभाँति स्पष्ट करके बतला सकेंगे तो मैं आपको सात लाख गौ, इतनी ही स्वर्णमुद्रा तथा सात गाँव दे दूँगा। यदि नहीं बता सकें तो खाली हाथ अपने घर लौट जाइयेगा।'

अर्जुन! उनके ऐसा कहनेपर सौराष्ट्रपति राजा धर्मवर्मासे मैंने कहा—'राजन्! दानके जो दो हेतु हैं, उन्हें सुनिये,—दानका थोड़ा होना या बहुत होना अभ्युदयका कारण नहीं होता, अपितु श्रद्धा और शक्ति ही दानोंकी वृद्धि और क्षयमें कारण होती है। इनमेंसे श्रद्धाके विषयमें ये श्लोक हैं—शरीरको बहुत क्लेश देनेसे तथा धनकी राशियोंसे सूक्ष्म धर्मकी प्राप्ति नहीं होती। श्रद्धा ही धर्म और अद्भुत तप है, श्रद्धा ही स्वर्ग और मोक्ष है तथा श्रद्धा ही यह सम्पूर्ण जगत् है। यदि कोई बिना श्रद्धाके अपना सर्वस्व दे दे अथवा अपना जीवन ही निछावर कर दे तो भी वह उसका कोई फल नहीं पाता; इसलिये सबको

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

श्रद्धालु होना चाहिये। श्रद्धासे ही धर्मका साधन किया जाता है; धनकी बहुत बड़ी राशिसे नहीं। क्योंकि अकिंचन ऋषि-मुनि श्रद्धालु होनेके कारण ही स्वर्गलोकमें गये हैं। देहधारियोंमें उनके स्वभावके अनुसार होनेवाली श्रद्धा तीन प्रकारकी होती है—सात्त्विकी, राजसी और तामसी। उसे सुनिये। सात्त्विकी श्रद्धावाले पुरुष देवताओंकी पूजा करते हैं, राजसी श्रद्धावाले लोग यक्षों और राक्षसोंको पूजते हैं तथा तामसी श्रद्धावाले मनुष्य प्रेतों, भूतों और पिशाचोंकी पूजा किया करते हैं। इसलिये श्रद्धावान् पुरुष अपने न्यायोपार्जित धनका सत्पात्रके लिये जो दान करते हैं, वह थोड़ा भी हो तो उसीसे भगवान् शिव प्रसन्न हो जाते हैं।[१]

'शक्तिके विषयमें श्लोक इस प्रकार हैं— कुटुम्बके भरण-पोषणसे जो अधिक हो, वही धन दान करने योग्य है, वही मधुके समान मीठा है—उसीसे वास्तविक धर्मका लाभ होता है। इसके विपरीत करनेपर वह आगे चलकर विषके समान हानिकारक होता है, दाताका धर्म अधर्मरूपमें परिणत हो जाता है। यदि आत्मीयजन दुःखसे जीवननिर्वाह कर रहे हों, तो उस अवस्थामें किसी सुखी और समर्थ पुरुषको दान देनेवाला मनुष्य मधुपानके धोखेमें मानो विष-भक्षण करनेवाला है। वह धर्मके अनुकूल नहीं, प्रतिकूल चलता है। जो भरण-पोषण करनेयोग्य व्यक्तियोंको कष्ट देकर किसी मृत व्यक्तिके लिये (बहु-व्ययसाध्य) श्राद्ध करता है, उसका किया हुआ वह श्राद्ध उसके जीते-जी अथवा मरनेपर भी भविष्यमें दुःखका ही कारण होता है। जो अत्यन्त तुच्छ हो अथवा जिसपर सर्वसाधारणका अधिकार हो, वह वस्तु 'सामान्य' कहलाती है, कहींसे माँगकर लायी हुई वस्तुको 'याचित' कहते हैं, धरोहरका ही दूसरा नाम 'न्यास' है, बन्धक रखी हुई वस्तुको 'आधि' कहते हैं, दी हुई वस्तु 'दान'के नामसे पुकारी जाती है, दानमें मिली हुई वस्तुको 'दान-धन' कहते हैं, जो धन एकके यहाँ धरोहर रखा गया हो और रखनेवालेने उसे पुनः दूसरेके यहाँ रख दिया हो उसे 'अन्वाहित' कहते हैं, जिसे किसीके विश्वासपर उसके यहाँ छोड़ दिया जाय, वह धन 'निक्षिप्त' कहलाता है, वंशजोंके होते हुए भी सब कुछ दूसरोंको दे देना 'सान्वय सर्वस्व दान' कहा गया है। विद्वान् पुरुषोंको चाहिये कि वे आपत्तिकालमें भी उपर्युक्त नव प्रकारकी वस्तुओंका दान न करें। जो पूर्वोक्त नव वस्तुओंका दान करता है, वह मूढ़चित्त मानव प्रायश्चित्तका भागी होता है।[२]

१- कायक्लेशैश्च बहुभिर्न चैवार्थस्य राशिभिः। धर्मः सम्प्राप्यते सूक्ष्मः श्रद्धा धर्मोऽद्भुतं तपः॥
श्रद्धा स्वर्गश्च मोक्षश्च श्रद्धा सर्वमिदं जगत्। सर्वस्वं जीवितं चापि दद्यादश्रद्धया यदि॥
नाप्नुयात्स फलं किञ्चिच्छ्रद्दधानस्ततो भवेत्। श्रद्धया साध्यते धर्मो महद्भिर्नार्थराशिभिः॥
निष्किञ्चना हि मुनयः श्रद्धावन्तो दिवंगताः। त्रिविधा भवति श्रद्धा देहिनां सा स्वभावजा॥
सात्त्विकी राजसी चैव तामसी चैव तां शृणु। यजन्ते सात्त्विका देवान् यक्षरक्षांसि राजसाः॥
प्रेतान् भूतान् पिशाचांश्च यजन्ते तामसा जनाः। तस्माच्छ्रद्धावता पात्रे दत्तं न्यायार्जितं हि यत्॥
तेनैव भगवान् रुद्रः स्वल्पकेनापि तुष्यति।
(स्क० पु०, मा० कुमा० ३। २९—३५)

२- कुटुम्बभुक्तभरणाद्देयं यदतिरिच्यते। मध्वास्वादो विषं पश्चाद्दातुर्धर्मोऽन्यथा भवेत्॥
शक्ते परजने दाता स्वजने दुःखजीविनि। मध्वापानविषादः स धर्माणां प्रतिरूपकः॥
भृत्यानामुपराधेन यः करोत्यौर्ध्वदैहिकम्। तद्भवत्यसुखोदर्कं जीवितोऽस्य मृतस्य च॥
सामान्यं याचितं न्यासमाधिर्दानं च तद्धनम्। अन्वाहितं च निक्षिप्तं सर्वस्वं चान्वये सति॥
आपत्स्वपि न देयानि नववस्तूनि पण्डितैः। यो ददाति स मूढात्मा प्रायश्चित्ती भवेन्नरः॥
(स्क० पु०, मा० कुमा० ३। ३६—४०)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

'राजन्! ये दानके दो हेतु बताये गये हैं। अब अधिष्ठानोंका वर्णन सुनो। दानके अधिष्ठान छः हैं। उन्हें बताता हूँ— धर्म, अर्थ, काम, लज्जा, हर्ष और भय—ये दानके छः अधिष्ठान कहे जाते हैं। सदा ही किसी प्रयोजनकी इच्छा न रखकर केवल धर्मबुद्धिसे सुपात्र व्यक्तियोंको जो दान दिया जाता है, उसे 'धर्म-दान' कहते हैं। मनमें कोई प्रयोजन रखकर ही प्रसंगवश जो कुछ दिया जाता है, उसे 'अर्थ-दान' कहते हैं। वह इस लोकमें ही फल देनेवाला होता है। स्त्रीसमागम, सुरापान, शिकार और जुएके प्रसंगमें अनधिकारी मनुष्योंको प्रयत्नपूर्वक जो कुछ दिया जाता है, वह 'काम-दान' कहलाता है। भरी सभामें याचकोंके माँगनेपर लज्जावश देनेकी प्रतिज्ञा करके उन्हें जो कुछ दिया जाता है, वह 'लज्जा-दान' माना गया है। कोई प्रिय कार्य देखकर अथवा प्रिय समाचार सुनकर हर्षोल्लाससे जो कुछ दिया जाता है, उसे धर्मविचारक महात्मा पुरुष 'हर्ष-दान' कहते हैं। निन्दा, अनर्थ और हिंसाका निवारण करनेके लिये अनुपकारी व्यक्तियोंको विवश होकर जो कुछ दिया जाता है, उसे 'भय-दान' कहते हैं।*

'इस प्रकार दानके छः अधिष्ठान बताये गये। अब उसके छः अंगोंका वर्णन सुनिये—दाता, प्रतिग्रहीता, शुद्धि, धर्मयुक्त देय वस्तु, देश और काल—ये दानके छः अंग माने गये हैं। दाता नीरोग, धर्मात्मा, देनेकी इच्छा रखनेवाला, व्यसनरहित, पवित्र तथा सदा अनिन्दनीय कर्मसे आजीविका चलानेवाला होना चाहिये। इन छः गुणोंसे दाताकी प्रशंसा होती है। सरलतासे रहित, श्रद्धाहीन, दुष्टात्मा, दुर्व्यसनी, झूठी प्रतिज्ञा करनेवाला तथा बहुत सोनेवाला दाता तमोगुणी और अधम माना गया है। जिसके कुल, विद्या और आचार तीनों उज्ज्वल हों, जीवननिर्वाहकी वृत्ति भी शुद्ध और सात्त्विक हो, जो दयालु, जितेन्द्रिय तथा योनि-दोषसे मुक्त हो, वह ब्राह्मण दानका उत्तम पात्र (प्रतिग्रहका सर्वोत्तम अधिकारी) कहा जाता है। याचकोंको देखनेपर सदा प्रसन्नमुख हो उनके प्रति हार्दिक प्रेम होना, उनका सत्कार करना तथा उनमें दोषदृष्टि न रखना ये सब सद्‌गुण दानमें शुद्धिकारक माने गये हैं। जो धन किसी दूसरेको सताकर न लाया गया हो, अति क्लेश उठाये बिना अपने प्रयत्नसे उपार्जित किया गया हो, वह थोड़ा हो या अधिक, वही देने योग्य बताया गया है। किसीके साथ कोई धार्मिक उद्देश्य लेकर जो वस्तु दी जाती है, उसे धर्मयुक्त देय कहते हैं। यदि देय वस्तु उक्त विशेषताओंसे शून्य हो तो उसके दानसे कोई फल नहीं होता। जिस देश अथवा कालमें जो-जो पदार्थ दुर्लभ हो, उस-उस पदार्थका दान करनेयोग्य वही-वही देश और काल श्रेष्ठ है;

---

* अधिष्ठानानि वक्ष्यामि षडेव शृणु तानि च। धर्ममर्थं च कामं च व्रीडाहर्षभयानि च॥
अधिष्ठानानि दानानां षडेतानि प्रचक्षते। पात्रेभ्यो दीयते नित्यमनपेक्ष्य प्रयोजनम्॥
केवलं धर्मबुद्ध्या यद्धर्मदानं तदुच्यते। प्रयोजनमपेक्ष्यैव प्रसंगाद्यत्प्रदीयते॥
तदर्थदानमित्याहुरैहिकं फलहेतुकम्। स्त्रीपानमृगयाक्षाणां प्रसंगाद्यत्प्रदीयते॥
अनर्हेषु सुयत्नेन कामदानं तदुच्यते। संसदि व्रीडयाऽऽश्रुत्य अर्थोऽर्थिभ्यः प्रयाचितः॥
प्रदीयते तु तद्दानं व्रीडादानमिति श्रुतम्। दृष्ट्वा प्रियाणि श्रुत्वा वा हर्षेण यत्प्रदीयते॥
हर्षदानमिति प्राहुर्दानं तद्धर्मचिन्तकाः। आक्रोशानर्थहिंसानां प्रतीकाराय यद्भवेत्॥
दीयतेऽनुपकर्तृभ्यो भयदानं तदुच्यते।

(स्क० पु०, मा० कुमा० ३। ४२—४९)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

दूसरा नहीं। इस प्रकार ये दानके छः अंग बताये गये हैं।[१]

'अब दानके द्विविध फलोंका वर्णन सुनो। महात्माओंने दानके दो परिणाम (फल) बतलाये हैं। उनमेंसे एक तो परलोकके लिये होता है और एक इहलोकके लिये। श्रेष्ठ पुरुषोंको जो कुछ दिया जाता है, उसका परलोकमें उपभोग होता है और असत् पुरुषोंको जो कुछ दिया जाता है, वह दान यहीं भोगा जाता है। ये दो परिणाम बताये गये हैं। अब दानके चार प्रकारोंको श्रवण करो। ध्रुव, त्रिक, काम्य और नैमित्तिक—इस क्रमसे द्विजोंने वैदिक दान-मार्गको चार प्रकारका बतलाया है। कुँआ बनवाना, बगीचे लगवाना तथा पोखरे खुदवाना आदि कार्योंमें, जो सबके उपयोगमें आते हैं, धन लगाना 'ध्रुव' कहा गया है। प्रतिदिन जो कुछ दिया जाता है, उस नित्य दानको ही 'त्रिक' कहते हैं। सन्तान, विजय, ऐश्वर्य, स्त्री और बल आदिके निमित्त तथा इच्छाकी पूर्तिके लिये जो दान किया जाता है, वह 'काम्य' कहलाता है। 'नैमित्तिक' दान तीन प्रकारका बतलाया गया है। वह होमसे रहित होता है। जो ग्रहण और संक्रान्ति आदि कालकी अपेक्षासे दान किया जाता है, वह 'कालापेक्ष' नैमित्तिक दान है। श्राद्ध आदि क्रियाओंकी अपेक्षासे जो दान किया जाता है। वह 'क्रियापेक्ष' नैमित्तिक दान है तथा संस्कार और विद्या-अध्ययन आदि गुणोंकी अपेक्षा रखकर जो दान दिया जाता है, वह 'गुणापेक्ष' नैमित्तिक दान है।[२]

इस तरह दानके चार प्रकार बतलाये गये हैं। अब उसके तीन भेदोंका प्रतिपादन किया जाता है। आठ वस्तुओंके दान उत्तम माने गये हैं। विधिके अनुसार किये हुए चार दान मध्यम हैं और शेष कनिष्ठ माने गये हैं। यही दानकी

१- दाता प्रतिग्रहीता च शुद्धिर्देयं च धर्मयुक्। देशकालौ च दानानामङ्गान्येतानि षड् विदुः॥
अपरोगी च धर्मात्मा दित्सुरव्यसनः शुचिः। अनिन्द्याजीवकर्मा च षड्भिर्दाता प्रशस्यते॥
अनृजुश्चाश्रद्दधानो दुष्टात्मा व्यसनी च यः। असत्यसन्धो निद्रालुर्दातायं तामसोऽधमः॥
त्रिशुक्लः शुक्लवृत्तिश्च घृणालुः संयतेन्द्रियः। विमुक्तो योनिदोषेभ्यो ब्राह्मणः पात्रमुच्यते॥
सौमुख्यादभिसम्प्रीतिरर्थिनां दर्शने सदा। सत्कृतिश्चानसूया च दाने शुद्धिरिति स्मृता॥
अपराबाधमक्लेशं स्वयत्नेनार्जितं धनम्। स्वल्पं वा विपुलं वापि देयमित्यभिधीयते॥
केनापि सह धर्मेण उद्दिश्य किल किंचन। देयं तद्धर्मयुगिति शून्ये शून्यं फलं मतम्॥
यद्यच्च दुर्लभं द्रव्यं देशे कालेऽपि वा पुनः। दानार्हौ देशकालौ तौ स्यातां श्रेष्ठौ न चान्यथा॥
षडङ्गानीति चोक्तानि ... ...॥

(स्क० पु०, मा० कुमा० ३। ५०—५७)

२- ... ... द्वौ च पाकावतः शृणु॥
द्वौ पाकौ दानजौ प्राहुः परत्रार्थमिहोच्यते। सद्भ्यो यद्दीयते किंचित्तत्परत्रोपभुज्यते॥
असत्सु दीयते यत्तु तद्दानमिह भुज्यते। द्वौ पाकाविति निर्दिष्टौ प्रकारांश्चतुरः शृणु॥
ध्रुवमाहुस्त्रिकं काम्यं नैमित्तिकमिति क्रमात्। वैदिको दानमार्गोऽयं चतुर्धा वर्ण्यते द्विजैः॥
कूपारामतडागादि सर्वकामफलं ध्रुवम्। तदाहुस्त्रिकमित्येव दीयते यद्दिने दिने॥
अपत्यविजयैश्वर्यस्त्रीबलार्थे च दीयते। इच्छासंस्थं च यद्दानं काम्यमित्यभिधीयते॥
कालापेक्षं क्रियापेक्षं गुणापेक्षमिति स्मृतौ। त्रिधा नैमित्तिकं प्रोक्तं सदा होमविवर्जितम्॥

(स्क० पु०, मा० कुमा० ३। ५८—६४)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

त्रिविधता है, जिसे विद्वान् पुरुष जानते हैं। गृह, मन्दिर या महल, विद्या, भूमि, गौ, कूप, प्राण और सुवर्ण—इन वस्तुओंका दान अन्य दानोंकी अपेक्षा उत्तम है। अन्न, बगीचा, वस्त्र तथा अश्व आदि वाहन—इन मध्यम श्रेणीके द्रव्योंको देनेसे यह मध्यम दान माना गया है। जूता, छाता, बर्तन, दही, मधु, आसन, दीपक, काष्ठ और पत्थर आदि—इन वस्तुओंके दानको श्रेष्ठ पुरुषोंने कनिष्ठ दान बताया है। ये दानके तीन भेद बतलाये गये। अब दाननाशके तीन हेतुओंको सुनो। जिसे देकर पीछे पश्चात्ताप किया जाय, जो अपात्रको दिया जाय तथा जो बिना श्रद्धाके अर्पण किया जाय, वह दान नष्ट हो जाता है। पश्चात्ताप, अपात्रता और अश्रद्धा—ये तीनों दानके नाशक हैं। यदि दान देकर पश्चात्ताप हो तो वह आसुर-दान है, जो निष्फल माना गया है। अश्रद्धासे जो कुछ दिया जाता है, वह राक्षस-दान है। वह भी व्यर्थ ही होता है। ब्राह्मणको डाँट-फटकारकर या उसे कटुवचन सुनाकर जो दान किया जाता है अथवा दान देकर जो ब्राह्मणको कोसा जाता है, वह पैशाच-दान माना गया है। उसे भी व्यर्थ ही समझना चाहिये। ये तीनों भाव दानके नाशक हैं।[१] राजन्! इस प्रकार सात पदोंमें बँधा हुआ जो दानका यह उत्तम माहात्म्य है, उसे मैंने तुमको बताया।

धर्मवर्मा बोले—आज मेरा जन्म सफल हुआ। आज मुझे अपनी तपस्याका फल मिल गया। यशस्वी पुरुषोंमें श्रेष्ठ महर्षि! आज आपने मुझे कृतार्थ कर दिया। विद्या पढ़कर यदि मनुष्य दुराचारी हो गया तो उसका सम्पूर्ण जीवन व्यर्थ है। बहुत क्लेश उठाकर जो पत्नी प्राप्त की गयी, वह यदि कटुवादिनी निकली तो वह भी व्यर्थ है। कष्ट उठाकर जो कूआँ बनवाया गया, उसका पानी यदि खारा निकला तो वह भी निरर्थक है तथा अनेक प्रकारके क्लेश सहन करनेके पश्चात् जो मनुष्यजन्म मिला, वह यदि धर्माचरणके बिना बिताया गया तो उसे भी व्यर्थ ही समझना चाहिये। इसी प्रकार मेरी तपस्या भी व्यर्थ हो गयी थी। उसे आज आपने सफल कर दिया। आपको नमस्कार है। समस्त ब्राह्मणोंको बारंबार नमस्कार है।[२] पूर्वकालमें भगवान् विष्णुने वैकुण्ठधाममें आये हुए सनकादि कुमारोंसे यह ठीक ही कहा

१- अष्टोत्तमानि चत्वारि मध्यमानि विधानतः। कानीयसानि शेषाणि त्रिविधत्वमिदं विदुः॥
गृहप्रासादविद्याभूगोकूपप्राणहाटकम्। एतान्युत्तमदानानि उत्तमान्यन्यदानतः॥
अन्नारामौ च वासांसि हयप्रभृतिवाहनम्। दानानि मध्यमानीति मध्यमद्रव्यदानतः॥
उपानच्छत्रपात्रादिदधिमध्वासनानि च। दीपकाष्ठोपलादीनि चरमान्याहुरुत्तमाः॥
इति ते त्रिविधं प्रोक्तं दाननाशत्रयं शृणु।
यद्दत्त्वा तप्यते पश्चादपात्रेभ्यस्तथा च यत्।
अश्रद्धया च यद्दानं दाननाशास्त्रयस्त्वमी॥
(स्क० पु०, मा० कुमा० २। ६५—६९)
यद्दत्त्वा तप्यते पश्चादासुरं तद्वृथा मतम्। अश्रद्धया यद्ददाति राक्षसं स्याद्वृथैव तत्॥
यच्चाक्रुश्य ददात्यङ्ग दत्त्वा वाक्रोशति द्विजम्। पैशाचं तद्वृथा दानं दाननाशास्त्रयस्त्वमी॥
(स्क० वेंकटेश्वरकी प्रतिसे)

२- अद्य मे सफलं जन्म अद्य मे तपसः फलम्। अद्य वै कृतकृत्योऽस्मि कृतः कीर्तिमतां वर॥
पठित्वा सकलं जन्म दुराचारस्य नुर्वृथा। बहुक्लेशाच्च लब्धा स्त्री सा वृथाप्रियवादिनी॥
क्लेशेन कृत्वा कूपं वा स च क्षारोदको वृथा। बहुक्लेशैर्जन्म नीत्वा विना धर्मे वृथा यथा॥
एवं मे यद् वृथा जातं तपस्तत्सफलं त्वया। कृतं तस्मान्नमस्तुभ्यं द्विजेभ्यश्च नमो नमः॥
(स्क० पु०, मा० कुमा० ३। १७१—१७४)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

था कि 'मैं यजमानके यज्ञमण्डपमें अपने अग्निरूपी मुखके द्वारा घीमें डुबोयी हुई आहुति पाकर भी उसे उतनी तृप्तिपूर्वक नहीं खाता, जितनी कि मुझमें अपने कर्मफल समर्पित करके प्रसन्न होनेवाले ब्राह्मणके मुखसे भोजन करते समय मुझे एक-एक ग्रासमें तृप्ति होती है।' अतः मैंने अपने व्यवहारोंसे यदि कभी ब्राह्मणोंका अप्रिय किया हो तो सबके स्वामी ब्राह्मणलोग कृपापूर्वक मुझे क्षमा करें। मुने! आप कौन हैं? आप कोई साधारण व्यक्ति नहीं है। मैं चरणोंमें मस्तक रखकर आपको प्रसन्न करना चाहता हूँ। कृपया अपना परिचय दीजिये।

राजा धर्मवर्माके ऐसा कहनेपर उस समय मैंने अपना परिचय इस प्रकार दिया—नृपश्रेष्ठ! मैं देवर्षि नारद हूँ। स्थानकी प्राप्तिके लिये आया हूँ। तुम अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार मुझे धन दो और स्थान बनानेके लिये भूमि अर्पण करो। महाराज! यद्यपि यह भूमि और धन देवताओंके ही हैं; तथापि जिस समय जो राजा हो, उसीसे उनको माँगना चाहिये। क्योंकि वह पृथ्वीका प्रतिपालक और दाता होता है। इसलिये द्रव्यशुद्धिकी इच्छासे मैं तुमसे कुछ भूमि माँगता हूँ।

राजाने कहा—विप्रवर! यदि आप देवर्षि नारद हैं तो यह सारा राज्य आपका ही रहे। मैं तो आपकी और समस्त ब्राह्मणोंकी चाकरी करूँगा।

नारदजी कहते हैं—अर्जुन! तब मैंने राजा धर्मवर्मासे कहा—'यह धन तुम्हारे ही पास रहे। आवश्यकताके समय मैं ले लूँगा।' ऐसा कहकर मैं रैवतक पर्वतपर चला गया। उस श्रेष्ठ पर्वतका दर्शन करके मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। वहाँ तपस्या करके मनुष्य अपनी अभीष्ट वस्तुको प्राप्त कर लेता है। ठीक उसी तरह जैसे भक्तपुरुष भगवान् महादेवको पाकर अपना मनोरथ सिद्ध कर लेता है। कुन्तीनन्दन! मैं रैवतक पर्वतकी एक बहुत बड़ी शिलापर बैठ गया और शीतल, मन्द, सुगन्ध पवनके स्पर्शसे अत्यन्त प्रसन्न हो मन-ही-मन विचार करने लगा—स्थान तो मैंने प्राप्त कर लिया, जो अत्यन्त दुर्लभ था। अब मैं उत्तम ब्राह्मणकी प्राप्तिके लिये प्रयत्न आरम्भ करूँ। मुझे ऐसे ब्राह्मण देखने चाहिये, जो सर्वश्रेष्ठ पात्र माने गये हैं। इस विषयमें वेदवादी विद्वानोंके वचन इस प्रकार सुने जाते हैं—जैसे खेनेवालेके बिना कोई नाव किसी प्राणीको पार उतारनेमें समर्थ नहीं है, उसी प्रकार जातिसे श्रेष्ठ ब्राह्मण भी यदि दुराचारी हो तो वह किसीका उद्धार नहीं कर सकता। जिसने शास्त्रोंका अध्ययन नहीं किया है, वह ब्राह्मण तिनकेकी आगके समान शीघ्र बुझ जाता है—तेजोहीन हो जाता है। अतः उसे हव्य प्रदान नहीं करना चाहिये, क्योंकि राखमें आहुति नहीं दी जाती। दानके सुयोग्य पात्रको छोड़कर अपात्रको जो दान दिया जाता है, वह दान वैसा ही है, जैसा कि ऊसरमें बोये हुए बीज शीघ्र नष्ट हो जाते हैं। दानमें ली हुई भूमि विद्याहीन ब्राह्मणके अन्तःकरणको नष्ट करती है। इसी प्रकार गाय उसके भोगोंका, सुवर्ण उसके शरीरका, घोड़ा उसके नेत्रका, वस्त्र उसकी स्त्रीका, घृत उसके तेजका और तिल उसकी सन्तानका नाश करते हैं। अतः अविद्वान् ब्राह्मणको सदा

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

प्रतिग्रहसे डरना चाहिये। मूर्ख ब्राह्मण थोड़ा प्रतिग्रह लेकर भी कीचड़में फँसी हुई गायकी भाँति कष्ट पाता है। इसलिये जो मूढ़ तपस्यासे युक्त और गुप्तरूपसे स्वाध्यायका साधन करनेवाले हैं तथा जो शान्त चित्तवाले हैं, उन्हींको दिया हुआ दान सदा अक्षय होता है। उत्तम देशमें (काशी आदि तीर्थोंमें), उत्तम काल (ग्रहण आदि)-में श्रेष्ठ उपायसे सत्पात्रको श्रद्धापूर्वक जो द्रव्य दिया जाता है, वही परिपूर्ण दान-धर्मका लक्षण है। केवल विद्या अथवा तपस्यासे सुपात्रता नहीं आती। जहाँ सदाचार है और उसके साथ ये दोनों (विद्या और तपस्या) भी हैं, उसीको उत्तम पात्र कहा जाता है।

कलाप-ग्रामनिवासी सुतनुद्वारा नारदजीके जटिल प्रश्नोंका समाधान

नारदजी कहते हैं—अर्जुन! मैं देश-देश घूमकर विद्यारूपी नेत्रवाले ब्राह्मणोंकी परीक्षा करता हूँ। यदि वे मेरे प्रश्नोंका उत्तर दे देंगे, तब मैं उन्हें दान करूँगा। ऐसा विचार करके मैं उस स्थानसे उठा और महर्षियोंके आश्रमोंपर इन प्रश्नरूपी श्लोकोंका गान करता हुआ विचरण करने लगा। वे श्लोक इस प्रकार हैं, सुनो—

मातृकां को विजानाति कतिधा कीदृशाक्षराम्।
पञ्चपञ्चाद्भुतं गेहं को विजानाति वा द्विजः॥
बहुरूपां स्त्रियं कर्तुमेकरूपां च वेत्ति कः।
को वा चित्रकथं बन्धं वेत्ति संसारगोचरः॥
को वार्णवमहाग्राहं वेत्ति विद्यापरायणः।
को वाष्टविधं ब्राह्मण्यं वेत्ति ब्राह्मणसत्तमः॥
युगानां च चतुर्णां वा को मूलदिवसान् वदेत्।
चतुर्दशमनूनां वा मूलवारं च वेत्ति कः॥
कस्मिंश्चैव दिने प्राप पूर्वं वा भास्करो रथम्।
उद्वेजयति भूतानि कृष्णाहिरिव वेत्ति कः॥
को वास्मिन् घोरसंसारे दक्षदक्षतमो भवेत्।
पन्थानावपि द्वौ कश्चिद्वेत्ति वक्ति च ब्राह्मणः॥
इति मे द्वादश प्रश्नान् ये विदुर्ब्राह्मणोत्तमाः।
ते मे पूज्यतमास्तेषामहमाराधकश्चिरम्॥

(स्क० पु० मा० कुमा० ३। २०५—२१२)

(१) मातृकाको कौन विशेषरूपसे जानता है? वह मातृका कितने प्रकारकी और कैसे अक्षरोंवाली है? (२) कौन द्विज पचीस वस्तुओंके बने हुए गृहको अच्छी तरह जानता है? (३) अनेक रूपवाली स्त्रीको एक रूपवाली बनानेकी कला किसको ज्ञात है? (४) संसारमें रहनेवाला कौन पुरुष विचित्र कथावाली वाक्य-रचनाको जानता है? (५) कौन स्वाध्यायशील ब्राह्मण समुद्रमें रहनेवाले महान् ग्राहकी जानकारी रखता है? (६) किस श्रेष्ठ ब्राह्मणको आठ प्रकारके ब्राह्मणत्वका ज्ञान है? (७) चारों युगोंके मूल दिनोंको कौन बता सकता है? (८) चौदह मनुओंके मूल दिवसका किसको ज्ञान है? (९) भगवान् सूर्य किस दिन पहले-पहल रथपर सवार हुए? (१०) जो काले सर्पकी भाँति सब प्राणियोंको उद्वेगमें डाले रहता है, उसे कौन जानता है? (११) इस भयंकर संसारमें कौन दक्ष मनुष्योंसे भी अत्यधिक दक्ष माना गया है? (१२) कौन ब्राह्मण दोनों मार्गोंको जानता और बतलाता है? जो श्रेष्ठ ब्राह्मण मेरे इन बारह प्रश्नोंको जानते हैं, वे मेरे लिये परमपूज्य हैं और मैं उनका चिरकालतक सेवक बना रहूँगा।

अर्जुन! इन प्रश्नोंका गान करता हुआ मैं सारी पृथ्वीपर घूमता रहा। मुझे जो-जो ब्राह्मण मिले, उन सबने यही कहा—'आपके इन प्रश्नोंकी व्याख्या बहुत कठिन है। हम तो केवल नमस्कार करते हैं।' इस प्रकार सारी पृथ्वीपर घूमकर मैं लौट आया और हिमालयके शिखरपर बैठकर पुनः इस प्रकार विचार करने लगा। 'अहो! मैंने सब ब्राह्मणोंको देख लिया, अब क्या करूँ?'

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

इसी समय मेरे मनमें यह विचार उत्पन्न हुआ कि 'मैं अभीतक कलाप-ग्राममें तो गया ही नहीं। वह एक उत्तम स्थान है। जहाँ ऐसे ब्राह्मण निवास करते हैं, जो तपस्याके मूर्तिमान् स्वरूप हैं। उनकी संख्या चौरासी हजार है। वे सब-के-सब वेदाध्ययनसे सुशोभित होते रहते हैं। अतः उसी स्थानपर चलूँ।'

मन-ही-मन ऐसा निश्चय करके मैं वहाँसे चल दिया और आकाशमार्गसे वहाँ जा पहुँचा। पुण्यभूमिपर बसा हुआ वह श्रेष्ठ ग्राम सौ योजनतक फैला हुआ था। नाना प्रकारके वृक्ष वहाँ सब ओरसे छाया किये हुए थे। अग्निहोत्रसे उठा हुआ धूएँका प्रवाह वहाँ कभी शान्त नहीं होता था। कलापग्राम वह स्थान है, जहाँ सत्ययुगके लिये सूर्यवंश, चन्द्रवंश तथा ब्राह्मणवंशका बीज शेष और सुरक्षित है। उस स्थानपर पहुँचकर मैंने द्विजोंके आश्रमोंमें प्रवेश किया। वहाँ श्रेष्ठ ब्राह्मण मधुर वाणीमें अनेक प्रकारके वादोंपर वार्तालाप कर रहे थे। उस समय उस विद्वत्-सभाके बीच मैंने अपनी भुजा उठाकर घोषणा की—'ब्राह्मणो! अब आपलोग मेरे प्रश्नोंका समाधान कीजिये।'

ब्राह्मण बोले—विप्रवर! आप अपना प्रश्न उपस्थित कीजिये। यह हमारे लिये बहुत बड़ा लाभ है कि आप कोई प्रश्न पूछ रहे हैं।

वहाँके विद्वान् ब्राह्मण 'पहले मैं उत्तर दूँगा—पहले मैं उत्तर दूँगा।' ऐसा कहकर एक-दूसरेको मना करने लगे। तब मैंने उनके सामने अपने बारह प्रश्न उपस्थित किये। सुनकर वे मुनीश्वर उन प्रश्नोंको खिलवाड़ समझते हुए मुझसे कहने लगे—'विप्रवर! आपके प्रश्न तो बालकोंके-से हैं। इन छोटे-छोटे प्रश्नोंसे यहाँ क्या होनेवाला है? आप हमलोगोंमें जिसे सबसे छोटा और ज्ञानहीन समझते हों, वही इन प्रश्नोंका उत्तर दे।' यह सुनकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। मैंने अपनेको कृतार्थ माना और उनमेंसे एक बालकको सबसे हीन समझकर कहा—'यह मेरे प्रश्नोंका उत्तर दे।'

उस बालक ब्राह्मणका नाम सुतनु था। उसने मेरे प्रश्नोंका उत्तर देते हुए कहा—(१) मातृकामें बावन अक्षर बताये गये हैं। उनमें सबसे प्रथम अक्षर ॐकार है। उसके सिवा चौदह स्वर, तैंतीस व्यंजन, अनुस्वार, विसर्ग, जिह्वामूलीय तथा उपध्मानीय—ये सब मिलकर बावन मातृका वर्ण माने गये हैं।* द्विजवर! यह तो मैंने आपसे अक्षरोंकी संख्या बतायी है। अब इनका अर्थ सुनिये। इस अर्थके विषयमें पहले आपसे एक इतिहास कहूँगा। पूर्वकालकी बात है, मिथिला नगरीमें कौथुम नामसे प्रसिद्ध एक ब्राह्मण रहते थे। उन्होंने इस पृथ्वीपर प्रचलित हुई सम्पूर्ण विद्याओंको पढ़ लिया था। वे इकतीस हजार वर्षोंतक आदरपूर्वक अध्ययनमें लगे रहे। उनका एक क्षण भी कभी व्यर्थ नष्ट नहीं हुआ। अध्ययन पूरा करके जब वे गृहस्थ हुए, तब कुछ कालके बाद उनके एक पुत्र हुआ। उनके सारे बर्ताव जडकी भाँति होते थे। उसने केवल मातृका पढ़ी। मातृका पढ़नेके बाद वह किसी प्रकार दूसरी कोई बात नहीं याद करता था। इससे उसके पिता बहुत खिन्न हुए और उस जड बालकसे कहने लगे—'बेटा! पढ़ो, पढ़ो, मैं तुम्हें मिठाई दूँगा। नहीं पढ़ोगे तो यह मिठाई दूसरेको दे दूँगा और तुम्हारे दोनों कान उखाड़ लूँगा।'

यह सुनकर पुत्रने कहा—पिताजी! क्या मिठाई लेनेके लिये ही पढ़ा जाता है? क्या लोभकी पूर्ति ही अध्ययनका उद्देश्य है? अध्ययन तो उसका नाम है, जो मनुष्योंको परलोकमें लाभ पहुँचानेवाला हो।

कौथुम बोले—वत्स! ऐसी बातें कहनेवाले, तेरी आयु बढ़े। तेरी यह बुद्धि बहुत अच्छी है। पर तू पढ़ता क्यों नहीं है?

---

* ॐकारः प्रथमस्तस्य चतुर्दश स्वरास्तथा। वर्णाश्चैव त्रयस्त्रिंशदनुस्वारस्तथैव च॥
विसर्जनीयश्च परो जिह्वामूलीय एव च। उपध्मानीय एवापि द्विपञ्चाशदमी स्मृताः॥
(स्क० पु०, मा० कुमा० ३। २३५—२३७)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

पुत्रने कहा—पिताजी! जाननेयोग्य जितनी भी बातें हैं, वे सब तो मैंने मातृकामें ही जान ली। बताइये, इसके बाद अब कण्ठ किसलिये सुखाया जाय?

पिता बोले—वत्स! तू तो आज बड़ी विचित्र बात कहता है। मातृकामें तूने किस ज्ञातव्य अर्थका ज्ञान प्राप्त किया है? बता, बता। मैं तेरी बात फिर सुनना चाहता हूँ।

पुत्रने कहा—पिताजी! आपने इकतीस हजार वर्षोंतक नाना प्रकारके तर्कोंका अध्ययन करते हुए भी अपने मनमें केवल भ्रमका ही साधन किया है। 'यह धर्म है, यह धर्म है' ऐसा कहकर शास्त्रोंमें जो धर्म बताया गया है, उसमें चित्त भ्रान्त-सा हो जाता है। आप उपदेशको केवल पढ़ते हैं। उसके वास्तविक अर्थकी जानकारी नहीं रखते। जो ब्राह्मण केवल पाठमात्र करते हैं, अर्थ नहीं समझते, वे दो पैरवाले पशु हैं। अतः मैं आपसे मोहनाशक वचन सुनाता हूँ। अकार ब्रह्मा कहे गये हैं, भगवान् विष्णु उकार बतलाये गये हैं, मकारको भगवान् महेश्वरका प्रतीक माना गया है। ये तीन गुणमय स्वरूप बताये गये हैं, ॐकारके मस्तकपर जो अनुस्वाररूप अर्द्धमात्रा है, वह सर्वोत्कृष्ट भगवान् सदाशिवका प्रतीक है।[१] यह है ॐकारकी महिमा, जिसका वर्णन कोटि-कोटि ग्रन्थोंद्वारा दस हजार वर्षोंमें भी नहीं किया जा सकता।

पुनः जो मातृकाका सारसर्वस्व बताया गया है, उसे सुनिये। अकारसे लेकर औकारतक जो चौदह[२] स्वर हैं, वे चौदह मनुस्वरूप हैं। स्वायम्भुव, स्वारोचिष, औत्तम, रैवत, तामस, छठे चाक्षुष, सातवें वैवस्वत—जो इस समय वर्तमान हैं, सावर्णि, ब्रह्मसावर्णि, रुद्रसावर्णि, दक्षसावर्णि, धर्मसावर्णि, रौच्य तथा भौत्य—ये चौदह मनु हैं। श्वेत, पाण्डु, लोहित, ताम्र, पीत, कपिल, कृष्ण, श्याम, धूम्र, अधिक पिंगल, थोड़ा पिंगल, तिरंगा, बहुरंगा तथा कबरा—ये क्रमशः चौदह मनुओंके रंग हैं। पिताजी! वैवस्वत मनु ऋकारस्वरूप हैं। उनका रंग काला बतलाया जाता है। 'क'से लेकर 'ह' तक तैंतीस देवता हैं। 'क' से लेकर 'ठ' तक तो बारह आदित्य[३] माने गये हैं। 'ड' से लेकर 'ब' तक जो अक्षर हैं, वे ग्यारह[४] रुद्र हैं। 'भ' से लेकर 'ष' तक आठ[५] वसु माने गये हैं। 'स' और 'ह'—ये दोनों अश्विनीकुमार बताये गये हैं। इस प्रकार ये तैंतीस देवता कहे जाते हैं। पिताजी!

१- अकारः कथितो ब्रह्मा उकारो विष्णुरुच्यते। मकारश्च स्मृतो रुद्रस्त्रयश्चैते गुणाः स्मृताः॥
अर्द्धमात्रा च या मूर्ध्नि परमः स सदाशिवः।
(स्क० पु०, मा० कुमा० ३। २५१-२५२)

२- अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ—ये चौदह स्वर हैं।

३- वेंकटेश्वरकी प्रतिमें आदित्य, रुद्र और वसुओंके नाम भी आये हैं। आदित्यसम्बन्धी श्लोक इस प्रकार हैं—

धाता मित्रोऽर्यमा शक्रो वरुणश्चांशुरेव च।
भगो विवस्वान् पूषा च सविता दशमस्तथा।
एकादशस्तथा त्वष्टा विष्णुर्द्वादश उच्यते॥
जघन्यजः स सर्वेषामादित्यानां गुणाधिकः॥

अर्थात् धाता, मित्र, अर्यमा, शक्र, वरुण, अंशु, भग, विवस्वान्, पूषा, सविता, त्वष्टा और विष्णु—ये बारह आदित्य हैं। इनमें विष्णु सबसे छोटे होनेपर भी गुणोंमें सबसे श्रेष्ठ हैं।

४- ग्यारह रुद्र ये हैं—

कपाली पिंगलो भीमो विरूपाक्षो विलोहितः। अजकः शासनः शास्ता शम्भुश्चण्डो भवस्तथा॥

५- आठ वसु ये हैं—

ध्रुवो घोरश्च सोमश्च आपश्चैव नलोऽनिलः। प्रत्यूषश्च प्रभासश्च अष्टौ ते वसवः स्मृताः॥

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

अनुस्वार, विसर्ग, जिह्वामूलीय और उपध्मानीय— ये चार अक्षर जरायुज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिज्ज नामक चार प्रकारके जीव बताये गये हैं।[१]

पिताजी! यह भावार्थ बताया गया है। अब तत्त्वार्थ सुनिये। जो पुरुष इन देवताओंका आश्रय लेकर कर्मानुष्ठानमें तत्पर होते हैं, वे ही अर्द्धमात्रास्वरूप नित्यपद (सदाशिव)-में लीन होते हैं। चार प्रकारके जीवोंमेंसे कोई भी जब मन, वाणी और क्रियाद्वारा इन देवताओंका भजन करता है, तभी उसे मुक्ति प्राप्त होती है। जिस शास्त्रमें पापी मनुष्योंके द्वारा ये देवता नहीं माने गये हैं, उस शास्त्रको यदि साक्षात् ब्रह्माजी भी कहें तो नहीं मानना चाहिये। ये सब देवता वैदिक मार्गमें सर्वत्र प्रतिष्ठित हैं। अतः जो दुरात्मा इन देवताओंका उल्लंघन करके तप, दान अथवा जप करते हैं, वे वायुप्रधान मार्गमें जाकर सर्दीसे काँपते रहते हैं। अहो! अजितेन्द्रिय मनुष्योंके मोहकी महिमा तो देखो। वे पापी मातृका पढ़ते हैं, परंतु इन देवताओंको नहीं मानते।

सुतनु कहते हैं—पुत्रकी यह बात सुनकर पिताको बड़ा विस्मय हुआ। उन्होंने और भी बहुत-से प्रश्न पूछे। पुत्रने भी उनके प्रश्नोंके अनुसार ठीक-ठीक उत्तर दिया। मुने! मैंने भी उसी प्रकार तुम्हारे मातृकासम्बन्धी उत्तम प्रश्नका समाधान किया है। (२) अब पचीस वस्तुओंसे बने हुए गृहसम्बन्धी द्वितीय प्रश्नका उत्तर सुनिये। पाँच महा[२]भूत, पाँच[३] कर्मेन्द्रियाँ, पाँच ज्ञा[४]नेन्द्रियाँ, पाँच[५] विषय—मन, बुद्धि, अहंकार, प्रकृति और पुरुष—ये पचीस तत्त्व हैं। पचीसवाँ तत्त्व पुरुष है जो सदाशिवस्वरूप है। इन पचीस तत्त्वोंसे सम्पन्न हुआ यह शरीर ही घर कहलाता है। जो इस शरीरको इस प्रकार तत्त्वतः जानता है, वह कल्याणमय परमात्माको प्राप्त होता है।[६]

(३) वेदान्तवादी विद्वान् बुद्धिको ही अनेक रूपोंवाली स्त्री कहते हैं; क्योंकि वही नाना प्रकारके विषयों अथवा पदार्थोंका सेवन करनेसे अनेक रूप ग्रहण करती है। किंतु अनेकरूपा होनेपर भी वह एकमात्र धर्मके संयोगसे एकरूपा ही रहती

१- औकारान्ता अकाराद्या मनवस्ते चतुर्दश। स्वायम्भुवश्च स्वारोचिरौत्तमो रैवतस्तथा॥
तामसश्चाक्षुषः षष्ठस्तथा वैवस्वतोऽधुना। सावर्णिर्ब्रह्मसावर्णी रुद्रसावर्णिरेव वा॥
दक्षसावर्णिरेवापि धर्मसावर्णिरेव च। रौच्यो भौत्यस्तथैवापि मनवोऽमी चतुर्दश॥
श्वेतः पाण्डुस्तथा रक्तस्ताम्रः पीतश्च कापिलः। कृष्णः श्यामस्तथा धूम्रः सुपिशङ्गः पिशङ्गकः॥
त्रिवर्णः शवलो वर्णैः कर्बुरश्च इति क्रमात्। वैवस्वत ऋकारश्च तात कृष्णः प्रपठ्यते॥
ककाराद्या हकारान्तास्त्रयस्त्रिंशच्च देवताः। ककाराद्याष्ठकारान्ता आदित्या द्वादश स्मृताः॥
डकाराध्या वकारान्ता रूद्राश्चैकादशैव ते।
भकाराद्याः षकारान्ता अष्टौ हि वसवो मताः। सहौ चेत्यश्विनौ ख्यातौ त्रयस्त्रिंशदिति स्मृताः॥
अनुस्वारो विसर्गश्च जिह्वामूलीय एव च। उपध्मानीय इत्येते जरायुजास्तथाऽण्डजाः॥
स्वेदजाश्चोद्भिज्जाश्चापि पितर्जीवाः प्रकीर्तिताः।
(स्क० पु०, मा० कुमा० ३। २५४—२६२)

२- पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश। ३- वाक्, हाथ, पैर, गुदा और लिंग। ४- कान, नेत्र, रसना, नासिका और त्वचा। ५- शब्द, रूप, रस, गन्ध और स्पर्श।

६- पञ्चभूतानि पञ्चैव कर्मज्ञानेन्द्रियाणि च। पञ्च पञ्चापि विषया मनोबुद्ध्यहमेव च॥
प्रकृतिः पुरुषश्चैव पञ्चविंशः सदाशिवः। पञ्चपञ्चभिरेतैस्तु निष्पन्नं गृहमुच्यते॥
देहमेतदिदं वेद तत्त्वतो यात्यसौ शिवम्।
(स्क० पु०, मा० कुमा० ३। २७२—२७४)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

है। जो इस तत्त्वार्थको जानता है, वह (धर्मका आश्रय लेनेके कारण) कभी नरकमें नहीं पड़ता। (४) मुनियोंने जिसे नहीं कहा है तथा जो वचन देवताओंकी मान्यता नहीं स्वीकार करता, उसे विद्वानोंने विचित्र कथासे मुक्त बन्ध (वाक्यविन्यास) कहा है, तथा जो कामयुक्त वचन है वह भी इसी श्रेणीमें है।[१] (ऐसा वचन सुनने और मानने योग्य नहीं है। वास्तवमें वह बन्धन ही है।)

(५) अब पाँचवें प्रश्नका समाधान सुनिये। एकमात्र लोभ ही इस संसार-समुद्रके भीतर महान् ग्राह है। लोभसे पापमें प्रवृत्ति होती है, लोभसे क्रोध प्रकट होता है, लोभसे कामना होती है, लोभसे ही मोह, माया (शठता), अभिमान, स्तम्भ (जडता), दूसरेके धनकी स्पृहा, अविद्या और मूर्खता होती है। यह सब कुछ लोभसे ही उत्पन्न होता है। दूसरेके धनका अपहरण, परायी स्त्रीके साथ बलात्कार, सब प्रकारके दुस्साहसमें प्रवृत्ति तथा न करने योग्य कार्योंका अनुष्ठान भी लोभकी ही प्रेरणासे होता है। अपने मनको जीतनेवाले संयमी पुरुषको उचित है कि वह उस लोभको मोहसहित जीते। जो लोभी और अजितात्मा हैं, उन्हींमें दम्भ, द्रोह, निन्दा, चुगली और दूसरोंसे डाह—ये सब दुर्गुण प्रकट होते हैं। जो बड़े-बड़े शास्त्रोंको याद रखते हैं और दूसरोंकी शंकाओंका निवारण करते हैं, ऐसे बहुज्ञ विद्वान् भी लोभके वशीभूत होकर नीचे गिर जाते हैं। लोभ और क्रोधमें आसक्त मनुष्य सदाचारसे दूर हो जाते हैं। उनका अन्तःकरण छुरेके समान तीखा होता है। परंतु ऊपरसे वे मीठी बातें करते हैं। ऐसे लोग तिनकोंसे ढके हुए कुएँके समान भयंकर होते हैं। वे ही लोग केवल युक्तिवादका सहारा लेकर अनेकों पन्थ चलाते हैं। लोभवश मनुष्य समस्त धर्ममार्गोंका लोप कर देते हैं। लोभसे ही कुटुम्बीजनोंके प्रति निष्ठुरतापूर्ण बर्ताव करते हैं। कितने ही नीच मनुष्य लोभवश धर्मको अपना बाह्य आभूषण बना धर्मध्वजी होकर जगत्को लूटते हैं। वे सदा लोभमें डूबे रहनेवाले महान् पापी हैं। राजा जनक, युवनाश्व, वृषादर्भि, प्रसेनजित् तथा और भी बहुत-से राजा लोभका नाश करके स्वर्गलोकमें गये हैं। इसलिये जो लोग लोभका परित्याग करते हैं, वे ही इस संसार-समुद्रके पार जाते हैं। इनसे भिन्न लोभी मनुष्य ग्राहके चंगुलमें ही फँसे हुए हैं। इसमें संशय नहीं है।[२]

१- बहुरूपां स्त्रियं प्राहुर्बुद्धिं वेदान्तवादिनः। सा हि नानार्थभजनान्नानारूपं प्रपद्यते॥
धर्मस्यैकस्य संयोगाद्बहुधाप्येकिकैव सा। इति यो वेद तत्त्वार्थं नासौ नरकमाप्नुयात्॥
मुनिभिर्यच्च न प्रोक्तं यन्न मन्येत देवताम्। वचनं तद् बुधाः प्राहुर्बन्धं चित्रकथं त्विति॥
यच्च कामान्वितं वाक्यं·······················।
(स्क० पु० मा० कुमा० ३। २७४—२७७)

२- ·············पञ्चमं चाप्यतः शृणु। एको लोभो महान् ग्राहो लोभात्पापं प्रवर्तते॥
लोभात् क्रोधः प्रभवति लोभात् कामः प्रवर्तते। लोभान्मोहश्च माया च मानः स्तंभः परेप्सुता॥
अविद्याऽप्रज्ञता चैव सर्वं लोभात् प्रवर्तते। हरणं परवित्तानां परदाराभिमर्शनम्॥
साहसानां च सर्वेषामकार्याणां क्रियास्तथा। स लोभः सह मोहेन विजेतव्यो जितात्मना॥
दम्भो द्रोहश्च निन्दा च पैशुन्यं मत्सरस्तथा। भवन्त्येतानि सर्वाणि लुब्धानामकृतात्मनाम्॥
सुमहान्त्यपि शास्त्राणि धारयन्ति बहुश्रुताः। छेत्तारः संशयानां च लोभग्रस्ता व्रजन्त्यधः॥
लोभक्रोधप्रसक्ताश्च शिष्टाचारबहिष्कृताः। अन्तःक्षुरा वाङ्मधुराः कूपाश्छन्नास्तृणैरिव॥
कुर्वते ये बहून् मार्गांस्तांस्तान् हेतुबलान्विताः। सर्वं मार्गं विलुम्पन्ति लोभाज्ज्ञातिषु निष्ठुराः॥
धर्मावतंसकाः क्षुद्रा मुष्णन्ति ध्वजिनो जगत्। एतेऽतिपापिनः सन्ति नित्यं लोभसमन्विताः॥

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

विप्रवर! अब आप ब्राह्मणके आठ भेदोंका वर्णन सुनें—मात्र, ब्राह्मण, श्रोत्रिय, अनूचान, भ्रूण, ऋषिकल्प, ऋषि और मुनि—ये आठ प्रकारके ब्राह्मण श्रुतिमें पहले बताये गये हैं। इनमें विद्या और सदाचारकी विशेषतासे पूर्व-पूर्वकी अपेक्षा उत्तरोत्तर श्रेष्ठ हैं। जिसका जन्म-मात्र ब्राह्मण-कुलमें हुआ है, वह जब जातिमात्रसे ब्राह्मण होकर ब्राह्मणोचित उपनयन-संस्कार तथा वैदिक कर्मोंसे हीन रह जाता है, तब उसको 'मात्र' ऐसा कहते हैं। जो एक उद्देश्यको त्यागकर—व्यक्तिगत स्वार्थकी उपेक्षा करके वैदिक आचारका पालन करता है, सरल, एकान्तप्रिय, सत्यवादी तथा दयालु है, उसे 'ब्राह्मण' कहा गया है। जो वेदकी किसी एक शाखाको कल्प और छहों अंगोंसहित पढ़कर ब्राह्मणोचित छः कर्मोंमें संलग्न रहता है, वह धर्मज्ञ विप्र 'श्रोत्रिय' कहलाता है। जो वेदों और वेदांगोंका तत्त्वज्ञ, पापरहित, शुद्धचित्त, श्रेष्ठ, श्रोत्रिय विद्यार्थियोंको पढ़ानेवाला और विद्वान् है, वह 'अनूचान' माना गया है। जो अनूचानके समस्त गुणोंसे युक्त होकर केवल यज्ञ और स्वाध्यायमें ही संलग्न रहता है, यज्ञशिष्ट अन्न भोजन करता है और इन्द्रियोंको अपने वशमें रखता है, ऐसे ब्राह्मणको श्रेष्ठ पुरुष 'भ्रूण' कहते हैं। जो सम्पूर्ण वैदिक और लौकिक विषयोंका ज्ञान प्राप्त करके मन और इन्द्रियोंको वशमें रखते हुए सदा आश्रममें निवास करता है, वह 'ऋषिकल्प' माना गया है। जो पहले ऊर्ध्वरेता (नैष्ठिक ब्रह्मचारी) होकर नियमित भोजन करता है, जिसको किसी भी विषयमें कोई सन्देह नहीं है तथा जो शाप और अनुग्रहमें समर्थ और सत्यप्रतिज्ञ है; ऐसा ब्राह्मण 'ऋषि' माना गया है। जो निवृत्तिमार्गमें स्थित, सम्पूर्ण तत्त्वोंका ज्ञाता, काम-क्रोधसे रहित, ध्याननिष्ठ, निष्क्रिय, जितेन्द्रिय तथा मिट्टी और सुवर्णको समान समझनेवाला है, ऐसे ब्राह्मणको 'मुनि' कहते हैं। इस प्रकार वंश, विद्या और वृत्त (सदाचार)-से ऊँचे उठे हुए ब्राह्मण 'त्रिशुक्ल' कहलाते हैं। वे ही यज्ञ आदिमें पूजे जाते हैं।*

इस प्रकार आठ भेदोंवाले ब्राह्मणत्वका वर्णन

जनको युवनाश्वश्च वृषादर्भिः प्रसेनजित्। लोभक्षयाद्दिवं प्राप्तास्तथैवान्ये जनाधिपाः॥
तस्मात्त्यजन्ति ये लोभं तेऽतिक्रामन्ति सागरम्। संसाराख्यमतोऽन्ये ये ग्राहग्रस्ता न संशयः॥
(स्क० पु०, मा० कुमा० ३। २७७-२८७)

* अथ ब्राह्मणभेदांस्त्वमष्टौ विप्रावधारय॥
मात्रश्च ब्राह्मणश्चैव श्रोत्रियश्च ततः परम्। अनूचानस्तथा भ्रूणो ऋषिकल्प ऋषिर्मुनिः॥
इत्येतेऽष्टौ समुद्दिष्टा ब्राह्मणाः प्रथमं श्रुतौ। तेषां परः परः श्रेष्ठो विद्यावृत्तविशेषतः॥
ब्राह्मणानां कुले जातो जातिमात्रो यदा भवेत्। अनुपेतक्रियाहीनो मात्र इत्यभिधीयते॥
एकोद्देश्यमतिक्रम्य वेदस्याचारवानृजुः। स ब्राह्मण इति प्रोक्तो निभृतः सत्यवाग्घृणी॥
एकां शाखां सकल्पां च षड्भिरङ्गैरधीत्य च। षट्कर्मनिरतो विप्रः श्रोत्रियो नाम धर्मवित्॥
वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञः शुद्धात्मा पापवर्जितः। श्रेष्ठः श्रोत्रियवान् प्राज्ञः सोऽनूचान इति स्मृतः॥
अनूचानगुणोपेतो यज्ञस्वाध्याय यन्त्रितः। भ्रूण इत्युच्यते शिष्टैः शेषभोजी जितेन्द्रियः॥
वैदिकं लौकिकं चैव सर्वज्ञानमवाप्य यः। आश्रमस्थो वशी नित्यमृषिकल्प इति स्मृतः॥
ऊर्ध्वरेता भवत्यग्रे नियताशी न संशयी। शापानुग्रहयोः शक्तः सत्यसन्धो भवेदृषिः॥
निवृत्तः सर्वतत्त्वज्ञः कामक्रोधविवर्जितः। ध्यानस्थो निष्क्रियो दान्तस्तुल्यमृत्काञ्चनो मुनिः॥
एवमन्वयविद्याभ्यां वृत्तेन च समुच्छ्रिताः। त्रिशुक्ला नाम विप्रेन्द्राः पूज्यन्ते सवनादिषु॥
(स्क० पु०, मा० कुमा० ३। २८७—२९८)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

किया गया। अब युगादि तिथियाँ बतलायी जाती हैं। कार्तिकमासके शुक्ल पक्षकी नवमी तिथि सत्ययुगकी आदि बतायी गयी है। वैशाख शुक्ल पक्षकी जो तृतीया है, वह त्रेतायुगकी आदि कही जाती है। माघ कृष्ण पक्षकी अमावस्याको विद्वानोंने द्वापरकी आदि-तिथि माना है और भाद्र कृष्ण त्रयोदशी कलियुगकी प्रारम्भ-तिथि कही गयी है। ये चार युगादि तिथियाँ हैं, इनमें किया हुआ दान और होम अक्षय जानना चाहिये। प्रत्येक युगमें सौ वर्षोंतक दान करनेसे जो फल होता है, वह युगादि-कालमें एक दिनके दानसे प्राप्त हो जाता है।[१]

ये युगादि तिथियाँ बतायी गयी हैं, अब मन्वन्तरकी प्रारम्भिक तिथियोंको श्रवण कीजिये। आश्विन शुक्ला नवमी, कार्तिककी द्वादशी, चैत्र और भाद्रकी तृतीया, फाल्गुनकी अमावास्या, पौषकी एकादशी, आषाढ़की दशमी, माघकी सप्तमी, श्रावणकी कृष्णा अष्टमी, आषाढ़की पूर्णिमा, कार्तिककी पूर्णिमा, फाल्गुन, चैत्र और ज्येष्ठकी पूर्णिमा—ये मन्वन्तरकी आदि तिथियाँ हैं, जो दानके पुण्यको अक्षय करनेवाली हैं।[२]

भगवान् सूर्य जिस तिथिको पहले-पहल रथपर आरूढ़ हुए, वह ब्राह्मणोंद्वारा माघमासकी सप्तमी

१- नवमी कार्तिके शुक्ला कृतादिः परिकीर्तिता। वैशाखस्य तृतीया या शुक्ला त्रेतादिरुच्यते॥
माघे पञ्चदशी कृष्णा द्वापरादिः स्मृता बुधैः। त्रयोदशी नभस्ये च कृष्णा सादिः कलेः स्मृता॥
एताश्चतस्रस्तिथयो युगाद्या दत्तं हुतं चाक्षयमासु विद्यात्।
युगे युगे वर्षशतेन दानं युगादिकाले दिवसेन तत्फलम्॥
(स्क० पु०, मा० कुमा० ३। २९९—३०२)

विशेष वक्तव्य—यहाँ जो युगादि तिथियाँ दी गयी हैं, इनमें मतभेद भी उपलब्ध होता है। कहीं-कहीं 'वैशाखस्य तृतीया या कृतस्यादिः प्रकीर्तिता। कार्तिकस्यापि नवमी शुक्ला त्रेतादिरुच्यते।' ऐसा पाठान्तर मिलता है। इसके अनुसार वैशाख शुक्ला तृतीया सत्ययुगकी और कार्तिक शुक्ला नवमी त्रेताकी प्रारम्भिक तिथि है। हिंदीशब्दसागर कोषके संपादकोंने भी कृतादि और त्रेतादि तिथिका इसी रूपमें उल्लेख किया है। परंतु मुहूर्तचिन्तामणिकारका मत इस सम्बन्धमें मूलसे मिलता है। 'सिते गोऽग्नी बाहुलराधयोः' कहकर उन्होंने यही मत स्वीकार किया है। मूलमें जो द्वापरादि और कलियुगादि तिथि दी गयी है, इससे मुहूर्तचिन्तामणिकारका मत नहीं मिलता। वे 'मदनदर्शौ भाद्रमाघासिते' कहकर भाद्र कृष्ण त्रयोदशीको द्वापरकी और माघ-अमावास्याको कलिकी आदितिथि घोषित करते हैं। हिंदीशब्दसागरने भी यही माना है। केवल माघ अमावास्याकी जगह पौष अमावास्याका उसमें उल्लेख हुआ है। मुहूर्तचिन्तामणिकारके मतका प्राचीन आधार क्या है, इसे विद्वान् लोग ढूँढ़ें। स्कन्दपुराण, कुमारिकाखण्डका उपर्युक्त मत अति प्राचीन होनेके कारण स्वतःप्रमाण तो है ही, नारद-स्मृतिके निम्नांकित वचनसे भी इसका समर्थन होता है—

कार्तिके शुक्ल नवमी चादिः कृतयुगस्य सा।
त्रेतादिर्माधवे शुक्ला तृतीया पुण्यसंमिता॥
कृष्णा पञ्चदशी माघे द्वापरादिरुदीरिता।
कल्पादिः स्यात् कृष्णपक्षे नभस्ये च त्रयोदशी॥
(इन श्लोकोंका उल्लेख मु० चि० की पीयूषधारा टीकामें हुआ है।)

२- अश्वयुक् शुक्ल नवमी द्वादशी कार्तिके तथा। तृतीया चैत्रमासस्य तथा भाद्रपदस्य च॥
फाल्गुनस्य त्वमावास्या पौषस्यैकादशी तथा। आषाढस्यापि दशमी माघमासस्य सप्तमी॥
श्रावणस्याष्टमी कृष्णा तथाषाढी च पूर्णिमा। कार्तिकी फाल्गुनी चैत्री ज्येष्ठपञ्चदशी सिता॥
मन्वन्तरादयश्चैता दत्तस्याक्षयकारिकाः॥
(स्क० पु०, मा० कुमा० ३। ३०३—३०६)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

बतायी गयी है, जिसे रथसप्तमी कहते हैं। उस तिथिको दिया हुआ दान और किया हुआ यज्ञ सब अक्षय माना गया है। वह सब प्रकारकी दरिद्रताको दूर करनेवाला और भगवान् सूर्यकी प्रसन्नताका साधक बताया गया है।[१]

विद्वान् पुरुष जिसे सदा उद्वेगमें डालनेवाला बताते हैं, उसका यथार्थ परिचय सुनिये—जो प्रतिदिन याचना करता है, वह स्वर्गमें जानेका अधिकारी नहीं है। जैसे चोर सब जीवोंको उद्वेगमें डाल देता है, उसी प्रकार वह भी है। वह पापात्मा सबके लिये सदा उद्वेगकारक होनेके कारण नरकमें पड़ता है।[२]

ब्रह्मन्! 'इस लोकमें किस कर्मसे मुझे सिद्धि प्राप्त हो सकती है और (मृत्युके पश्चात्) यहाँसे मुझे कहाँ किस लोकमें जाना है?' इस बातका भलीभाँति विचार करके जो पुरुष भावी क्लेशके निराकरणका समुचित उपाय करता है, विद्वानोंने उसीको दक्ष पुरुषोंसे भी अधिक दक्ष (चतुरशिरोमणि) कहा है। पुरुष अपनी आयुमेंसे आठ मास, एक दिन, अथवा सम्पूर्ण पूर्वावस्थामें अथवा पूरी आयुभर ऐसा कर्म अवश्य करे, जिससे अन्तमें वह परम सुखी हो और निरन्तर उन्नतिके पथपर बढ़ता रहे।[३]

वेदान्तवादी विद्वान् अर्चि और धूम—ये दो मार्ग बतलाते हैं। अर्चिमार्गसे जानेवाला पुरुष मोक्षको प्राप्त होता है और धूममार्गसे जानेवाला जीव स्वर्गमें पुण्यफल भोगकर पुनः इस संसारमें लौट आता है। सकामभावसे किये हुए यज्ञ आदिके द्वारा धूममार्गकी प्राप्ति होती है और नैष्कर्म्य (कर्मफलत्याग एवं ज्ञान)-से अर्चिमार्ग प्राप्त होता है। इन दोनोंसे भिन्न जो अशास्त्रीय मार्ग है, वह पाखण्ड कहलाता है। जो देवताओं तथा मनुप्रोक्त धर्मोंको नहीं मानता, वह उक्त दोनों मार्गोंको नहीं प्राप्त होता। इस प्रकार यह तत्त्वार्थका निरूपण किया गया।[४] विप्रवर! आपके इन प्रश्नोंका यथाशक्ति समाधान किया गया है। यह ठीक है या नहीं, इसको आप बताइये। साथ ही अपना परिचय भी दीजिये।

१- यस्यां तिथौ रथं पूर्वं प्राप देवो दिवाकरः। सा तिथिः कथिता विप्रैर्माघे या रथसप्तमी॥
तस्यां दत्तं तु चेष्टं यत् सर्वमेवाक्षयं मतम्। सर्वदारिद्र्यशमनं भास्करप्रीतये मतम्॥
(स्क० पु०, मा० कुमा० ३। ३०७-३०८)

२- नित्योद्वेजकमाहुर्यं बुधास्तं शृणु तत्त्वतः। यश्च याचनको नित्यं न स स्वर्गस्य भाजनम्॥
उद्वेजयति भूतानि यथा चौरस्तथैव सः। नरकं याति पापात्मा नित्योद्वेगकरस्त्वसौ॥
(स्क० पु०, मा० कुमा० ३। ३०९-३१०)

३- इहोपपत्तिर्मम केन कर्मणा क्व च प्रयातव्यमितो भवेन्मया।
विचार्य चैवं प्रतिकारकारी बुधैः स चोक्तो द्विज दक्षदक्षः॥
मासैरष्टभिरह्ना च पूर्वेण वयसायुषा।
तत्कर्म पुरुषः कुर्याद् येनान्ते सुखमेधते॥
(स्क० पु०, मा० कुमा० ३। ३११—३१२)

४-अर्चिषा याति मोक्षं च धूमेनावर्तते पुनः। यज्ञैरासाद्यते धूमो नैष्कर्म्येणार्चिराप्यते॥
एतयोरपरो मार्गः पाखण्ड इति कीर्त्यते। यो देवान् मन्यते नैव धर्मांश्च मनुसूचितान्॥
न तौ स याति पन्थानौ तत्त्वार्थोऽयं निरूपितः॥
(स्क० पु०, मा० कुमा० ३। ३१३—३१५)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

नारदजीके द्वारा कलाप-ग्रामके ब्राह्मणोंको महीसागरसंगममें ले आना और वहाँ उन्हें भूमि आदि देकर पुण्यस्थानकी स्थापना करना

नारदजी कहते हैं—अर्जुन! इस प्रकार अपने प्रश्नोंका समाधान सुनकर मेरे सम्पूर्ण शरीरमें रोमांच हो आया। तब मैंने अपने स्वरूपको प्रकट करके उन ब्राह्मणोंसे इस प्रकार कहा—'अहो!

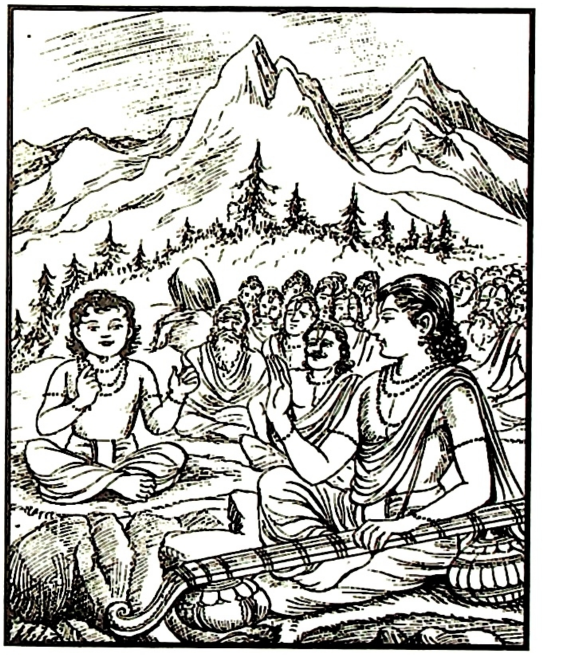

मेरे पिता ब्रह्माजी धन्य हैं, जिनकी सृष्टिके बालक भी आप-जैसे ब्राह्मणशिरोमणिके रूपमें विद्यमान हैं। मुझे अपने जन्मका फल प्राप्त हो गया, क्योंकि आप-जैसे निष्पाप और उपद्रवशून्य महात्माओंका मैंने दर्शन किया।'

इतना सुनते ही वे शातातप आदि ब्राह्मण सहसा उठकर खड़े हो गये और अर्घ्य, पाद्य आदि पूजा-सामग्रियोंसे मेरे स्वागत-सत्कारमें लग गये। तत्पश्चात् साधुजनोचित वाणीमें वे इस प्रकार बोले—'हम धन्य हैं, क्योंकि आप साक्षात् देवर्षि नारद यहाँ हमलोगोंके समीप पधारे हैं। देवर्षे! कहाँसे आपका शुभागमन हुआ है और अब कहाँ जानेका विचार है? मुनिश्रेष्ठ! इस आश्रमपर पधारनेकी क्या आवश्यकता थी, वह कार्य आप हमें बतावें।'

नारदजी बोले—मैं ब्रह्माजीके आदेशसे महीसागरसंगम नामक महातीर्थमें ब्राह्मणोंको उत्तम स्थान दान करना चाहता हूँ। इसके लिये आपलोग मुझे आज्ञा दें।

मेरे ऐसा कहनेपर शातातपने सब ब्राह्मणोंकी ओर दृष्टि डालकर यों कहना आरम्भ किया—'नारदजी! यह सत्य है कि भारतवर्ष देवताओंके लिये भी दुर्लभ है। उसमें भी महीसागरसंगमके विषयमें तो क्या कहना है, जहाँ स्नान करनेवाला पुरुष सम्पूर्ण महातीर्थोंमें स्नान करनेका फल प्राप्त कर लेता है। आपके प्रस्तावमें एक ही महान् दोष है, जिससे हमलोग निरन्तर डरते रहते हैं। वहाँ बहुतसे निर्दयी और दुस्साहसपूर्ण कर्म करनेवाले चोर हैं, जो हमारे-जैसे तपस्वियोंका धन हर लेते हैं। स्पर्श वर्णोंमें जो सोलहवाँ और इक्कीसवाँ अक्षर है वही हमारा धन है। उस धनसे हीन हो जानेपर हमारा जन्म कैसा निरर्थक हो जायगा। हम चोरोंके हाथमें न पड़ें, यही हमारी अभिलाषा है।'

अर्जुनने पूछा—ब्रह्मन्! वे चोर कौन हैं और कौन-सा धन हर लेते हैं।

नारदजीने कहा—कुन्तीनन्दन! 'काम' और 'क्रोध' आदि दोष ही चोर हैं और 'तप' ही उन ब्राह्मणोंका धन है, जिसके अपहरणके भयसे उन्होंने मुझसे वैसी बात कही थी।

तब हारीत मुनि बोले—कौन अपनी मूढ़ बुद्धिके कारण महीसागरसंगम नामक तीर्थका त्याग करेगा, जहाँ स्वर्ग और मोक्ष हाथमें ही रहते हैं। हमारे हृदयमें भगवान् उमानाथका निवास है। वे दृढ़तापूर्वक हमारा पालन करते हैं। उनके रहते हुए वहाँ चोरोंका भय हमारा क्या कर लेगा। नारदजी! आपके कहनेसे मैं वहाँ चलूँगा।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

मेरे परिवारमें छब्बीस हजार ब्राह्मण हैं, वे सब-के-सब अध्ययन, अध्यापन आदि छः कर्मोंमें तत्पर, बाहर-भीतरसे शुद्ध तथा लोभ और दम्भसे रहित हैं। उन सबके साथ मैं वहाँ चल सकता हूँ। यह मेरा उत्तम निश्चय है।

उनके ऐसा कहनेपर मैंने उन सब ब्राह्मणोंको अपने दण्डके ऊपर चढ़ा लिया और बड़ी प्रसन्नताके साथ सहसा आकाशमार्गसे लौट पड़ा। बीचमें सौ योजनतक हिमका मार्ग है। उसे लाँघकर उन ब्राह्मणोंके साथ मैं केदारक्षेत्रमें आ पहुँचा। वह हिम-प्रदेश आकाशमार्गसे या बिलके मार्गसे तथा भगवान् कार्तिकेयके प्रसादसे लाँघा जा सकता है। इसके लिये दूसरा कोई उपाय नहीं है।

अर्जुनने पूछा—नारदजी! कलाप-ग्राम कहाँ है? उसका मार्ग बिलके द्वारा किस प्रकार लाँघा जा सकता है तथा स्वामिकार्तिकेयका कृपा-प्रसाद कैसे प्राप्त होगा? ये सब बातें मुझे बताइये।

नारदजी बोले—केदारक्षेत्रसे आगे सौ योजनतक हिमसंयुक्त प्रदेश माना गया है। उसके अन्तमें सौ योजन विस्तारवाला कलाप-ग्राम है, उसके अन्तमें सौ योजनतक बालूका समुद्र बताया जाता है। उसके बाद सौ योजन विस्तारवाला वह प्रदेश है, जिसे भूमिस्वर्ग कहते हैं। बिलके मार्गसे वहाँ जिस प्रकार जाना हो सकता है, उसे सुनो। अन्न और जलका त्याग करके उपवासपूर्वक दक्षिण दिशावर्ती भगवान् कार्तिकेयकी आराधना करे। कार्तिकेयजी जब साधकको पापरहित हुआ मानते हैं तब स्वप्नमें प्रकट होकर आदेश देते हैं कि तुम अभीष्ट स्थानकी यात्रा करो। कार्तिकेयजीके स्थानसे पश्चिम एक बहुत बड़ी गुफा है, वह सात सौ योजन दूरतक गयी हुई है। कार्तिकेयजीकी आज्ञा मिलनेके पश्चात् उसीमें प्रवेश करके आगे बढ़ना चाहिये। उसके भीतर मरकतमणिका एक शिवलिंग है, जो सूर्यके समान प्रकाश करनेवाला है। उस शिवलिंगके आगे अत्यन्त स्वच्छ सुवर्णके रंगकी मिट्टी मिलती है। वहाँ शिवलिंगको नमस्कार करके तथा उस पीली मिट्टीको हाथमें लेकर स्तम्भ तीर्थमें आना चाहिये। वहाँ भगवान् कुमार तथा वाराहदेवकी आराधना करके आधी रात होनेपर कुएँसे जल निकालना चाहिये। उस जल और मिट्टीसे दोनों आँखोंमें अंजन करना चाहिये। साथ ही सम्पूर्ण शरीरमें उस जल और मिट्टीका उबटन लगाना चाहिये। उस अंजनके प्रभावसे कदाचित् साठ कदम चलनेपर उसे एक सुन्दर बिल दिखायी देता है। तदनन्तर उस बिलके भीतरसे होकर वह यात्रा करे। वहाँ कारीष नामक बड़े भयंकर कीड़े होते हैं, परंतु वे उस उबटनके प्रभावसे साधकको डँसते नहीं हैं। उस बिलके भीतर भगवान् सूर्यके समान तेजस्वी सिद्ध पुरुषोंका दर्शन करते हुए साधक आगे बढ़ता है और परम उत्तम कलाप-ग्राममें पहुँच जाता है। वहाँके मनुष्योंकी आयु चार हजार वर्षकी बतलायी गयी है। वहाँ सब लोग फलोंका ही भोजन करते हैं।

इस प्रकार बिलके मार्गसे कलाप-ग्रामतक पहुँचनेकी विधि बतायी गयी है। अब आगे जो कुछ हुआ उसको श्रवण करो। अपनी तपस्याकी शक्तिसे अत्यन्त सूक्ष्म रूप धारण करनेवाले उन ब्राह्मणोंको दण्डके अग्र भागपर रखकर मैं महीसागरसंगम तीर्थमें आया और वहाँ पवित्र जलाशयके तटपर उतारकर उन्हें स्वतन्त्र कर दिया। फिर उन श्रेष्ठ ब्राह्मणोंके साथ मैंने सम्पूर्ण दोषोंको दग्ध करनेके लये दावानलसदृश महीसागरसंगम तीर्थमें स्नान किया और देवताओं तथा पितरोंका तर्पण करके परम उत्तम गायत्रीमन्त्रका जप करते हुए हम सब लोग संगमके समीप बैठ गये। हृदयमें भगवान् विष्णुका ध्यान करते हुए भगवान् सूर्यकी ओर देखते रहे। इसी समय इन्द्र आदि देवता, सूर्य आदि सम्पूर्ण ग्रह, लोकपाल, आठ देव-जातियाँ, गन्धर्व तथा अप्सराओंके समूह—ये सब वहाँ आ पहुँचे। तदनन्तर महामुनि कपिलजी भी वहाँ आये और नारदजीसे इस प्रकार बोले—'देवर्षे! मुझे आठ

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

हजार ब्राह्मण दीजिये। कलापग्रामके निवासी इन ब्राह्मणोंको मैं भूमिदान करूँगा। आप इसकी व्यवस्था करें।' तब मैंने उनसे प्रतिज्ञापूर्वक कहा—'महामुने! ऐसा ही हो। आप भी यहाँ उत्तम कपिलस्थानका निर्माण करें। श्राद्धमें अथवा श्राद्धोपयोगी समय प्राप्त होनेपर जिसके आश्रममें आया हुआ अतिथि विमुख लौट जाता है, उसका सब सत्कर्म निष्फल होता है। जो अतिथिका पूजन—स्वागत-सत्कार नहीं करता, वह रौरव नरकमें जाता है। जिसके द्वारा अतिथिका पूजन होता है, वह सम्पूर्ण देवताओंके द्वारा स्वयं भी पूजित होता है।[१] इसलिये उस तीर्थमें दान और यज्ञके द्वारा मैंने कपिल मुनिको भोजन कराया।'

तत्पश्चात् मैंने श्रीमान् हारीत मुनिको उनका चरण पखारनेके लिये बुलाया। तब मैंने ब्राह्मणोंसे कहा—

पूर्वकालकी बात है, महर्षि अंगिराके कुलमें एक प्रसिद्ध ब्राह्मण हुए थे। वे महान् विद्वान् थे, परंतु प्रत्येक कार्यमें अधिक विलम्ब किया करते थे। उनके पिताका नाम महर्षि गौतम था। वे सब कार्य भलीभाँति सोच-विचारकर बहुत देरके बाद प्रारम्भ करते थे। उनके द्वारा चिरकालमें कार्य-सिद्धि होनेके कारण वे जनसाधारणमें चिरकारी कहे जाने लगे। एक बार चिरकारीकी मातासे कोई अपराध हो गया। उससे कुपित होकर उनके अदीर्घदर्शी पिताने अन्य सब पुत्रोंको छोड़कर केवल चिरकारीको आदेश दिया कि 'तुम अपनी इस माताको मार डालो।' उन्होंने बड़ी देरके बाद उत्तर दिया—'अच्छा, ऐसा ही करूँगा।' परंतु वे तो स्वभावसे ही चिरकारी थे। अपनी चिरकारिताका विचार करके चिरकालतक इस विषयमें सोच-विचार करते रहे। 'मैं पिताकी इस आज्ञाका पालन कैसे करूँ? अपनी माताको कैसे मारूँ? पिताके आज्ञापालनरूप धर्मका बहाना लेकर इस मातृहत्यारूप अधर्ममें कैसे डूब जाऊँ? माना कि पिताकी आज्ञाका पालन सबसे बड़ा धर्म है; परंतु उसी प्रकार माताकी रक्षा भी तो मेरा अपना धर्म है। पुत्रत्व सर्वथा परतन्त्र है—पुत्र माता और पिता दोनोंके अधीन है। स्त्रीकी, उसमें भी माताकी हत्या करके कभी भी कौन सुखी रह सकता है? ऐसे ही, पिताकी भी अवहेलना करके कौन प्रतिष्ठा प्राप्त कर सकता है? पुत्रके लिये यही उचित है कि पिताकी अवहेलना न करे। साथ ही उसके लिये माताकी रक्षा करना भी उचित है। शरीर आदि जो देनेयोग्य वस्तुएँ हैं, उन सबको एकमात्र पिता देते हैं, इसलिये पिताकी प्रत्येक आज्ञाका पालन करना चाहिये। पिताकी आज्ञाका पालन करनेवाले पुत्रके पूर्वकृत पातक भी धुल जाते हैं। पिता स्वर्ग है, पिता धर्म है और पिता सर्वश्रेष्ठ तपस्या है। पिताके प्रसन्न होनेपर सब देवता प्रसन्न हो जाते हैं।[२] यदि पिता प्रसन्न है, तो पुत्रके सब पापोंका प्रायश्चित्त हो जाता है। वह सब प्रकारके बन्धनोंसे मुक्त हो जाता है। पुत्रके स्नेहसे कष्ट पाते हुए भी पिता उसके प्रति स्नेह नहीं छोड़ते। यह पिताका गौरव है, जिसपर पुत्रकी दृष्टिसे मैंने विचार किया है। पिताका छोटा-मोटा स्थान नहीं है। उनका पद बहुत ऊँचा है। अब मैं माताके विषयमें विचार करूँगा। मेरे इस मानव-जन्ममें जो यह पंचभूतोंका समुदायरूप शरीर प्राप्त हुआ है इसका कारण तो मेरी माता ही है। जिसकी माता जीवित है, वह सनाथ है। जो मातृहीन है, वह अनाथ है। पुत्र और पौत्रसे युक्त मनुष्य यदि सौ वर्षकी आयुके बाद भी अपनी माताके आश्रयमें जाता है, तो वह दो वर्षके बालककी भाँति आचरण

१- श्राद्धे वा प्राप्तकाले वा ह्यतिथिर्विमुखी भवेत्। यस्याश्रममुपायातस्तस्य सर्वं हि निष्फलम्॥
स गच्छेद्रौरवाँल्लोकान् योऽतिथिं नाभिपूजयेत्। अतिथिः पूजितो येन स देवैरपि पूज्यते॥
(स्क० पु०, मा० कुमा० ४। ५७-५८)

२- पिता स्वर्गः पिता धर्मः पिता हि परमं तपः। पितरि प्रीतिमापन्ने सर्वाः प्रीणन्ति देवताः॥
(स्क० पु०, मा० कुमा० ४। ८९-९०)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

करता है। पुत्र समर्थ हो या असमर्थ, दुर्बल हो या पुष्ट—माता उसका विधिवत् पालन करती है। माताके समान कोई तीर्थ नहीं है, माताके समान कोई गति नहीं है, माताके समान कोई रक्षक नहीं है तथा माताके समान कोई प्याऊ नहीं है। माता अपने गर्भमें धारण करनेके कारण 'धात्री' है, जन्म देनेवाली होनेसे 'जननी' है, अंगोंकी वृद्धि करनेके कारण 'अम्बा' है, वीर पुत्रका प्रसव करनेके कारण 'वीरप्रसू' कहलाती है, शिशुकी शुश्रूषा करनेसे वह 'शक्ति' कही गयी है तथा सदा सम्मान देनेके कारण उसे 'माता' कहते हैं।* मुनिलोग पिताको देवताके समान समझते हैं परंतु मनुष्यों और देवताओंका समूह माताके समीप नहीं पहुँच पाता—माताकी बराबरी नहीं कर सकता। पतित होनेपर गुरुजन भी त्याग देनेयोग्य माने गये हैं; परंतु माता किसी प्रकार भी त्याज्य नहीं है। कौशिकी नदीके तटपर स्त्रियोंसे घिरे हुए राजा बलिकी ओर वह देरतक देखती रही; केवल इसी अपराधवश पिताने मुझे अपनी माताको मार डालनेका आदेश दिया है।' चिरकारी होनेके कारण वे इन्हीं सब बातोंपर अधिक समयतक विचार करते रहे, परंतु उनकी चिन्ताका अन्त नहीं हुआ।

इसी समय उदारबुद्धिवाले मेधातिथि (गौतम) दुःखी हो आँसू बहाते हुए इस प्रकार चिन्ता करने लगे—'अहो! पतिव्रता नारीका वध करके मैं पापके समुद्रमें डूब गया हूँ। अब कौन मेरा उद्धार करेगा? मैंने उदार विचारवाले चिरकारीको बड़ी शीघ्रतासे वह कठोर आज्ञा दे दी थी। यदि यह सचमुच चिरकारी हो तो मुझे पापसे बचा सकता है। चिरकारिक! तुम्हारा कल्याण हो। यदि आज भी अपने नामके अनुसार तुम चिरकार्य बने रहे, तभी वास्तवमें चिरकार्य हो। बेटा! तुम आज मुझे अपनी माताको तथा मेरे द्वारा उपार्जित तपस्याको बचाओ। चिरकारक! तुम पातक और भयसे अपनी भी रक्षा करो।' इस प्रकार अत्यन्त दुःखित हो चिन्ता करते हुए गौतम मुनि चिरकारीके पास आये। वहाँ आकर उन्होंने अपने पुत्र चिरकारीको माताके पास बैठे देखा। चिरकारी पिताको अपने समीप आया देख बहुत दुःखी हुए और हथियार फेंककर पिताके चरणोंमें मस्तक रखकर वे उन्हें प्रसन्न करनेकी चेष्टा करने लगे। मेधातिथि पुत्रको पृथ्वीपर मस्तक रखकर पड़े देख और पत्नीको जीवित पाकर बड़े प्रसन्न हुए। जब पुत्र हाथमें हथियार लेकर खड़ा था, तब भी माताने ऐसा नहीं समझा कि यह मुझे मार डालेगा। अब उसे पिताके चरणोंमें पड़ा देख माता यह विचार करने लगी कि 'इसने हथियार उठानेकी जो चपलता की है, उसीको पिताके भयसे छिपा रहा है।' तदनन्तर पिताने बड़ी देरतक पुत्रकी ओर देखा। देरतक उसका मस्तक सूँघा। चिरकालतक उसे दोनों भुजाओंमें कसकर छातीसे लगाये रखा और अन्तमें कहा—'बेटा! तुम चिरजीवी

* नास्ति मात्रा समं तीर्थं नास्ति मात्रा समा गतिः। नास्ति मात्रा समं त्राणं नास्ति मात्रा समा प्रपा॥
कुक्षौ सन्धारणाद्धात्री जननाज्जननी तथा। अङ्गानां वर्द्धनादम्बा वीरसूत्वेन वीरसूः॥
शिशोः शुश्रूषणाच्छक्तिर्माता स्यान्माननाच्च सा। ··· ··· ··· ··· ··· ···॥
(स्क० पु०, मा० कुमा० ४। ९९-१०१)

रहो।' मेधातिथि बड़ी देरतक प्रसन्नतामें डूबे रहे। फिर पुत्रसे इस प्रकार बोले—'चिरकारिक! तुम्हारा कल्याण हो। तुम्हारी आयु चिरस्थायिनी हो। सौम्य! तुमने चिरकालतक विलम्ब करके जो कार्य किया है, उसके कारण मुझे इस समय अधिक समयतक दुखी नहीं होना पड़ा है।'

तदनन्तर प्रसिद्ध विद्वान् मुनिश्रेष्ठ गौतमने गाथा गान किया, जो इस प्रकार है—'चिरकालतक विचार करके कोई मन्त्रणा स्थिर करे। स्थिर किये हुए मन्त्र (परामर्श)-को चिरकालके बाद छोड़े। चिरकालमें किसीको मित्र बनाकर उसे चिरकालतक धारण किये रहना उचित है। राग, दर्प, अभिमान, द्रोह, पापकर्म तथा अप्रिय कर्तव्यमें चिरकारी (विलम्ब करनेवाला) प्रशंसाका पात्र है। बन्धु, सुहृद्, भृत्य और स्त्रीवर्गके अव्यक्त अपराधोंमें जल्दी कोई दण्ड न देकर देरतक विचार करनेवाला पुरुष प्रशंसनीय माना गया है। चिरकालतक धर्मोंका सेवन करे। किसी बातकी खोजका कार्य चिरकालतक करता रहे। विद्वान् पुरुषोंका संग अधिक कालतक करे। इष्टमित्रोंका सेवन अथवा इष्टदेवताकी उपासना दीर्घकालतक करे। अपनेको चिरकालतक विनयशील बनाये रखनेवाला पुरुष दीर्घकालतक आदरका पात्र बना रहता है। दूसरा कोई भी यदि धर्मयुक्त वचन कहे तो उसे देरतक सुने और देरतक उसके विषयमें प्रश्न करता रहे। ऐसा करनेसे मनुष्य चिरकालतक तिरस्कारका पात्र नहीं बनता।

पर यदि कोई धर्मका कार्य आ गया हो तो उसके पालनमें विलम्ब नहीं करना चाहिये। शत्रु हाथमें हथियार लेकर आता हो तो उससे आत्मरक्षा करनेमें देर नहीं लगानी चाहिये। यदि कोई सुपात्र व्यक्ति अपने समीप आ गया हो तो उसका सम्मान करने या उसे कुछ देनेमें विलम्ब नहीं करना चाहिये। भयसे बचने और साधु पुरुषोंका स्वागत-सत्कार करनेमें भी देर नहीं करनी चाहिये। उपर्युक्त कार्योंमें जो विलम्ब करता है, वह प्रशंसाका पात्र नहीं है।'*

ऐसा कहकर स्त्री और पुत्रके साथ गौतम मुनि शान्तिको प्राप्त हुए। तदनन्तर चिरकालतक तपस्या करके उन्होंने दिव्यलोक प्राप्त किया।

यह बात मैंने उन सर्वगुणसम्पन्न ब्राह्मणोंके समक्ष वहाँ कही। तत्पश्चात् धर्मवर्माके समीप हारीत आदि मुनियोंके चरण पखारकर सम्पूर्ण देवताओंको साक्षी बनाकर मैंने संकल्पपूर्वक सुवर्ण, गौ, गृह, धन, स्त्री, वस्त्र और आभूषण आदि दे उन ब्राह्मणोंको कृतार्थ किया। इसके बाद उस देवसमाजमें इन्द्रने हाथ उठाकर कहा—'देवताओ! भगवान् शंकरके अर्द्धांगमें अपना वामार्द्ध भाग स्थापित करनेवाली देवी गिरिराजनन्दिनी जबतक विद्यमान हैं, गणेशजी, हम सब देवता और ये तीनों लोक जबतक मौजूद हैं, तबतक नारदजीके द्वारा स्थापित किया हुआ यह स्थान सदा समृद्धिशाली बना रहे। इस स्थानको नष्ट करनेवाले मनुष्यपर ब्रह्मशाप, विष्णुशाप, रुद्रशाप तथा ब्राह्मणशाप भी पड़े; क्योंकि तीर्थभूमिमें देवताओं और ब्राह्मणोंके

* चिरेण मन्त्रं संधीयाच्चिरेण च कृतं त्यजेत्। चिरेण विहितं मित्रं चिरं धारणमर्हति॥
रागे दर्पे च माने च द्रोहे पापे च कर्मणि। अप्रिये चैव कर्तव्ये चिरकारी प्रशस्यते॥
बन्धूनां सुहृदां चैव भृत्यानां स्त्रीजनस्य च। अव्यक्तेष्वपराधेषु चिरकारी प्रशस्यते॥
चिरं धर्मान्निषेवेत कुर्याच्चान्वेषणं चिरम्। चिरमन्वास्य विदुषश्चिरमिष्टानुपास्य च॥
चिरं विनीय चात्मानं चिरं यात्यनवज्ञताम्। ब्रुवतश्च परस्यापि वाक्यं धर्मोपसंहितम्॥
चिरं पृच्छेच्च शृणुयाच्चिरं न परिभूयते। धर्मे शत्रौ शस्त्रहस्ते पात्रे च निकटस्थिते॥
भये च साधुपूजायां चिरकारी न शस्यते।

(स्क० पु०, मा० कुमा० ४। १२०—१२६)

Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

द्रव्यका अपहरण करनेवाले और उनका अनुमोदन करनेवाले पापात्मा मनुष्य नरकमें सैकड़ों वर्षोंतक रुद्रतालकी मार खाते रहते हैं।'

तब सबने प्रसन्न होकर 'ऐसा ही हो, ऐसा ही हो' इस प्रकार कहा। इस प्रकार मेरे द्वारा स्थापित किये हुए स्थानमें महर्षि कपिलने कापिल नामक स्थानकी संस्थापना की। तदनन्तर सब देवता देवलोकको चले गये।

लोमशजीका राजा इन्द्रद्युम्नको अपने पूर्वजन्मका चरित्र सुनाकर शिवकी आराधनाका महत्त्व बतलाना

अर्जुन बोले—नारदजी! आपने महीसागरसंगमके अद्भुत माहात्म्यका वर्णन किया। उसे सुनकर मुझे बड़ा विस्मय और हर्ष हो रहा है। बताइये, किसके यज्ञमें मही नदी प्रकट हुई है?

नारदजीने कहा—पाण्डुनन्दन! प्राचीन कालमें इस पृथ्वीपर इन्द्रद्युम्न नामसे प्रसिद्ध एक राजा हो गये हैं। वे बड़े दानी, सम्पूर्ण धर्मोंके ज्ञाता, माननीय पुरुषोंका सम्मान करनेवाले तथा सामर्थ्यशाली थे। वे उचित कार्योंके ज्ञाता, विवेकके निवासस्थान तथा गुणोंके समुद्र थे। भूमण्डलमें कोई भी ऐसा नगर, ग्राम या शहर नहीं था, जो राजाके द्वारा किये गये धर्मानुष्ठानके चिह्नोंसे अंकित न हो। उन्होंने ब्राह्मविवाहकी विधिसे अनेक बार कन्यादान किया था। वे धनार्थियोंको एक हजार स्वर्णमुद्रासे कम दान नहीं देते थे। दशमी तिथिके दिन रात्रिकालमें हाथीकी पीठपर नगाड़ा रखकर उनके सम्पूर्ण नगरमें बजाया जाता और यह घोषणा की जाती कि 'कल प्रातःकाल एकादशीका व्रत है, वह सबको करना चाहिये।' गंगाकी बालू, वर्षाकी धारा तथा आकाशके तारे कदाचित् विद्वान् पुरुषोंद्वारा गिने जा सकते हैं; परंतु महाराज इन्द्रद्युम्नके पुण्योंकी गणना नहीं की जा सकती। ऐसे पुण्योंके प्रभावसे राजा इन्द्रद्युम्न अपने मानव-शरीरसे ही विमानपर बैठकर ब्रह्माजीके लोकमें जा पहुँचे और वहाँ देवदुर्लभ भोगोंका उपभोग किया। इस प्रकार अनेक कल्प बीत जानेके बाद ब्रह्माजीने अपने लोकमें निवास करनेवाले राजा इन्द्रद्युम्नसे कहा—'राजन्! अब तुम पृथ्वीपर जाओ।'

राजाने ब्रह्माजीकी यह बात सुनी और सुननेके साथ ही अपनेको पृथ्वीपर आया हुआ देखा।

(उसके बाद राजा इन्द्रद्युम्न मार्कण्डेय मुनि, नाडीजंघ बक, प्राकारकर्ण उलूक, चिरायु गीधराज एवं मन्थर कछुएसे मिले और) वे बोले—स्वयं चार मुखवाले ब्रह्माने ही मुझे स्वर्गसे निकाल दिया है। इसके कारण मैं लज्जित हूँ, अतः बार-बार पतन होनेके दोषसे दूषित स्वर्गलोकमें अब मैं नहीं जाऊँगा। अब तो मैं अविद्या और पापका नाश करनेवाले विवेक-वैराग्यका आश्रय ले ज्ञान-प्राप्तिपूर्वक मोक्षके लिये यत्न करूँगा। इसलिये यदि आप अपने घरपर आये हुए मुझ अतिथिका आज सत्कार करना चाहते हैं तो मुझे ऐसे किसी

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth 279 Skandpuran_Section_6_1_Back

गुरुका पता बता दीजिये जो मुझे इस संसारसागरसे पार कर देनेवाला हो।

कछुएने कहा—राजन्! लोमश नामवाले एक महामुनि हैं, जिनकी आयु मुझसे भी बड़ी है। पहले मैंने उन्हें कलाप-ग्राममें कहीं देखा था।

इन्द्रद्युम्न बोले—तब तो चलिये, हम सब लोग साथ ही उनके पास चलें, विद्वान् पुरुष सत्संगको तीर्थसे भी अधिक पवित्र बतलाते हैं।[१]

नारदजी कहते हैं—अर्जुन! तदनन्तर उन सबने कलाप-ग्राममें पहुँचकर महामुनि लोमशके दर्शन किये। वे मन और इन्द्रियोंके संयममें तत्पर तथा क्रियायोगमें संलग्न थे। तीनों काल स्नान करनेसे उनकी जटाएँ कुछ पीली पड़ गयी थीं, उन्हींको अपने मस्तकपर धारण किये हुए, घीकी आहुतिसे प्रज्वलित हुई अग्निकी भाँति अपने तेजसे प्रकाशित हो रहे थे। उन्होंने छाया करनेके लिये अपने बायें हाथमें एक मुट्ठी तृण ले रखा था और दाहिने हाथमें रुद्राक्षकी माला धारण कर रखी थी। वे महामुनि मैत्र मार्गमें स्थित थे। जो कटुवचन आदिके द्वारा पृथ्वीपर रहनेवाले प्राणियोंको पीड़ा न देते हुए केवल जपसे सिद्धि प्राप्त कर लेता है वह मुनि 'मैत्र' कहलाता है।[२] राजा, मुनि, बक, उलूक, गृध्र और कछुएने कलाप-ग्राममें उन पुरातन तपोनिधि महात्माका दर्शन करके उनके चरणोंमें प्रणाम किया। मुनिने भी आसन आदि देकर स्वागत-सत्कारके द्वारा उन सबको प्रसन्न किया। तत्पश्चात् उन्होंने अपना मनोगत कार्य निवेदन किया।

कछुआ बोला—भगवन्! ये यज्ञ करनेवाले पुरुषोंमें अग्रगण्य महाराज इन्द्रद्युम्न हैं। वसुधामें इनकी कीर्तिका लोप हो जानेसे ब्रह्माजीने इन्हें स्वर्गसे निकाल दिया है। अब ये स्वर्गकी इच्छा नहीं रखते। वहाँसे पुनः गिरनेका भय बना रहता है। इसलिये स्वर्ग इन्हें भयानक प्रतीत होता है। अब आपके अनुग्रहसे ये मोक्ष प्राप्त करना चाहते हैं। अतएव मैं इन्हें आपके पास ले आया हूँ, इन्हें आप अपना शिष्य समझें और इनके मनोवाञ्छित प्रश्नोंका उत्तर दें, क्योंकि परोपकार साधुपुरुषोंका व्रत है।

लोमशजीने कहा—कूर्म! तुम्हारा कथन उचित ही है। राजन्! तुम्हारे मनमें क्या सन्देह है सो बताओ।

इन्द्रद्युम्न बोले—भगवन्! मेरा पहला प्रश्न यह है कि गरमीका समय है, सूर्यदेव आकाशके मध्यमें आकर तप रहे हैं, तो भी आपने अपने लिये कोई कुटी क्यों नहीं बनायी, जो हाथमें तिनके लेकर आप मस्तकपर छाया किये हुए हैं।

लोमशजीने कहा—राजन्! एक दिन मरना अवश्य है। यह शरीर गिर जायगा, फिर इस अनित्य संसारमें रहनेवाले मनुष्योंद्वारा किसके लिये घर बनाया जाता है। दाँत चले जाते हैं, लक्ष्मी चली जाती है तथा यौवन और जीवन भी चला जानेवाला है। यह जो कुछ दिखायी देता है, सब अत्यन्त चंचल (क्षणभंगुर) है। ऐसी दशामें दान करना ही मनुष्योंके लिये सर्वोत्तम गृह है। इस प्रकार संसारको असार और चलायमान जान लेनेपर किसके लिये कुटी आदिका संग्रह किया जाय।

इन्द्रद्युम्नने पूछा—भगवन्! तीनों लोकोंमें केवल आप ही चिरायु सुने जाते हैं, इसीलिये मैं आपके पास आया हूँ। फिर आपके मुँहसे ऐसी बात क्यों निकलती है?

लोमशजीने कहा—राजन्! प्रत्येक कल्पमें मेरे शरीरसे एक रोम टूटकर गिर जाता है। जिस

१- प्राहुः पूततमां तीर्थादपि सत्संगतिं बुधाः। (स्क० पु०, मा० कुमा० ९।४९)

२- अहिंसयन्दुरुक्ताद्यैः प्राणिनो भूमिचारिणः। यः सिद्धिमेति जप्येन स मैत्रो मुनिरुच्यते॥ (स्क० पु०, मा० कुमा० १०।४)

 In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

दिन सब रोएँ नष्ट हो जायँगे, उस दिन मेरी मृत्यु हो जायगी। देखो, मेरे घुटनेमें दो अंगुलतक

रोएँसे खाली हो गया है। इसीसे मैं डरता हूँ, जब मरना ही है तब घर बनाकर क्या होगा?

इन्द्रद्युम्न बोले—ब्रह्मन्! मैं पूछता हूँ कि आपको जो ऐसी बड़ी आयु प्राप्त हुई है वह दानका प्रभाव है अथवा तपस्याका?

लोमशजीने कहा—राजन्! सुनो, मैं अपने पूर्वजन्मका प्रसंग सुना रहा हूँ। यह कथा शिवधर्मकी महिमासे युक्त, पुण्यदायिनी तथा सब पापोंका नाश करनेवाली है। पूर्वकालमें मैं इस पृथ्वीपर अत्यन्त दरिद्र शूद्र होकर उत्पन्न हुआ था। उस समय भूखसे बहुत पीड़ित होकर पृथ्वीपर भ्रमण किया करता था। एक दिन दोपहरके समय जलके भीतर मैंने एक बहुत बड़ा शिवलिंग देखा। फिर उस जलाशयमें प्रवेश करके जल पीया और स्नान किया। तत्पश्चात् कमलके सुन्दर फूलोंसे उस नहलाये हुए शिवलिंगका पूजन किया। भूखसे मेरा गला सूखा जा रहा था। भगवान् नीलकण्ठको नमस्कार करके मैं पुनः आगे चल दिया। उस मार्गमें ही मेरी मृत्यु हो गयी। तदनन्तर दूसरे जन्ममें मैं ब्राह्मणके घरमें उत्पन्न हुआ। एक ही बार शिवलिंगको नहलाने और पूजा करनेसे मुझे अपने पूर्वजन्मकी बातोंका स्मरण रहने लगा। 'यह सम्पूर्ण जगत् जो सत्य-सा प्रतीत हो रहा है, मिथ्याका विलास है, अविद्या ही इसका मूलकारण है।' ऐसा जानकर मैंने मूकता धारण कर ली। उस ब्राह्मणने भगवान् शंकरकी भलीभाँति आराधना करके वृद्धावस्थामें मुझे प्राप्त किया था। इसलिये मेरा नाम ईशान रखा। मेरे माता-पिताके मनको महामायाने ममतामें बाँध रखा था। वे मेरा गूँगापन दूर करनेके लिये नाना प्रकारके मन्त्र-यन्त्र तथा दूसरे उपाय भी किया करते थे। उनकी वह मूढ़ता देखकर मुझे मन-ही-मन हँसी आती थी। कुछ कालके पश्चात् जब मैं जवान हुआ, तो रातमें अपना घर छोड़कर निकल जाता और कमलके फूलोंसे भगवान् शिवकी पूजा करके पुनः शयनस्थानपर लौट आता था। तदनन्तर पिताकी मृत्यु हो जानेपर मेरे सम्बन्धियोंने मुझे निरा गूँगा समझकर त्याग दिया। इससे मुझे प्रसन्नता ही हुई। अब मैं फलाहार करके रहने लगा और भाँति-भाँतिके कमलोंसे भगवान् भूतनाथकी पूजा करने लगा। इस प्रकार सौ वर्ष बीतनेपर वरदायक भगवान् चन्द्रशेखरने मुझे प्रत्यक्ष दर्शन दिया। उस समय मैंने याचना की—'भगवन्! मेरी जरा और मृत्युका नाश हो।'

तब भगवान् शिव बोले—जो नाम और रूप धारण करता है वह सर्वथा अजर-अमर नहीं हो सकता। अतः तुम अपने जीवनकी कोई सीमा निश्चित करो।

भगवान् शिवका यह वचन सुनकर मैंने इस प्रकार वरदान माँगा—'प्रत्येक कल्पके अन्तमें मेरे शरीरका एक रोम गिरे और इस प्रकार सब रोम गिर जानेपर मेरी मृत्यु हो, उसके बाद मैं आपका गण होऊँ, यही मेरा अभीष्ट वर है।' 'अच्छा, ऐसा ही होगा' यों कहकर भगवान् शिव अदृश्य हो गये और मैं तभीसे तपस्यामें संलग्न हो गया। ब्रह्म-कमल अथवा अन्य कमलोंसे भगवान्

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth279 Skandpuran_Section_6_2_Back

शिवकी पूजा करनेपर मनुष्य ब्रह्महत्या आदि पापोंसे मुक्त हो जाता है, इसमें संशय नहीं है। महाराज! तुम भी ऐसा ही करो। इससे तुम अपनी मनोवांछित वस्तु प्राप्त कर लोगे। भगवान् शिवके भक्तके लिये त्रिलोकीमें कुछ भी दुर्लभ नहीं। ज्ञानेन्द्रियोंकी बाह्य विषयोंमें होनेवाली प्रवृत्तिको रोककर उन सबका भगवान् सदाशिवमें नित्य लय करना 'अन्तर्योग' कहलाता है। अन्तर्योगका साधन कठिन होनेके कारण भगवान् शिवने स्वयं ही बहिर्योगका इस प्रकार वर्णन किया है, पाँच भूतोंके द्वारा भगवान् शिवका पूजन 'बहिर्योग' है, अर्थात् पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश— ये सब भगवान् शिवकी पूजाके उपकरण हैं, ऐसा समझकर भावनाद्वारा इन्हें भगवान् शिवके चरणोंमें समर्पित करना, यह बहिर्योग-पूजाकी पद्धति है। बहिर्योग विशिष्ट फल देनेवाला और अक्षय माना गया है। जो अविद्या आदि पाँच[१] क्लेशों, कर्मोंके सुख-दुःखादि परिणामों तथा वासनाओंसे सर्वथा पृथक् हैं, उन भगवान् शंकरकी आराधनापूर्वक प्रणव-जप करनेवाला पुरुष मोक्षको प्राप्त होता है, सब पापोंका नाश हो जानेपर भगवान् शिवमें भावना होती है—उनके चिन्तनमें मन लगता है। जिनकी बुद्धि पापसे दूषित है उनके लिये शिवकी चर्चा भी दुर्लभ है, भारतवर्षमें जन्म होना दुर्लभ है, भगवान् शिवका पूजन दुर्लभ है, गंगा-स्नान दुर्लभ है, शिवकी भक्ति अत्यन्त दुर्लभ है, ब्राह्मणको दान देना दुर्लभ है, अग्निकी आराधना भी दुर्लभ है, थोड़े-से पुण्यवाले पुरुषोंके लिये भगवान् पुरुषोत्तमकी पूजाका अवसर तो और भी दुर्लभ है।[२] पूर्वकालमें महादेवजीकी आराधना करके जिस प्रकार मेरी आयु बड़ी हुई, वह प्रसंग मैंने तुम्हें सुनाया ही है। भगवान् शिवकी भक्ति करनेवाले महात्मा पुरुषोंको त्रिलोकीमें कुछ भी दुर्लभ, दुष्प्राप्य अथवा असाध्य नहीं है। जिनकी इच्छासे यह सम्पूर्ण विश्व उत्पन्न होता, स्थिर रहता और अन्तमें संहारको प्राप्त होता है, उन भगवान् शंकरकी शरणमें कौन नहीं जायगा। राजन्! यह रहस्यकी बात है। भगवान् शंकरकी आराधना ही संसारके मनुष्योंका प्रधान कर्तव्य है। जो भगवान् शिवको मस्तक झुकाता है, वह निश्चय उन्हें प्राप्त करता है।

संवर्तके मुखसे महीसागरसंगमकी महिमा तथा भर्तृयज्ञद्वारा शतरुद्रिय सुनकर शिवकी आराधनासे इन्द्रद्युम्न आदि सब भक्तोंको शिवसारूप्यकी प्राप्ति

नारदजी कहते हैं—मुनिवर लोमशके ये वचन सुनकर राजा इन्द्रद्युम्नने कहा, अब मैं आपको छोड़कर दूसरे किसीके पास नहीं जाऊँगा। यहीं आपसे अनुगृहीत होकर अब मैं शिवलिंगका आराधन करूँगा, जो कि मनुष्योंको सब प्रकारकी सिद्धि प्रदान करनेवाला है। वक, गृध्र, कच्छप और उलूकने भी वैसा ही विचार प्रकट किया। मुनिवर लोमश बड़े शरणागतवत्सल थे। उन सब लोगोंपर दया करके उन्होंने शिवदीक्षाकी विधिसे उन्हें लिंगपूजनका उपदेश किया। सच है, साधुपुरुषोंका समागम तीर्थसे भी बढ़कर है। उसका परिपक्व फल तत्काल प्राप्त होता है तथा वह

१- अविद्या, अस्मिता (चिज्जडग्रन्थि), राग, द्वेष और अभिनिवेश (मरणभय)।

२- पापोपहतबुद्धीनां शिववार्तापि दुर्लभा। दुर्लभं भारते जन्म दुर्लभं शिवपूजनम्॥
दुर्लभं जाह्नवीस्नानं शिवे भक्तिः सुदुर्लभा। दुर्लभं ब्राह्मणे दानं दुर्लभं वह्निपूजनम्॥
अल्पपुण्यैश्च दुष्प्राप्यं पुरुषोत्तमपूजनम्।
(स्क० पु०, मा० कुमा० १०। ५३—५५)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

दुरन्त पापोंका भी नाश करनेवाला है। साधु-सभा (सत्संग) रूपी सूर्यका उदय कोई अद्भुत और अनिर्वचनीय प्रभाव रखता है; क्योंकि वह अन्तःकरणमें व्याप्त हुए अज्ञानान्धकारका अत्यन्त विनाश करने-वाला है। साधु-समागमसे प्रकट हुए आनन्दमय अमृतरसकी सभी लहरें श्रेष्ठ हैं तथा वे सुधा, माध्वी, शर्करा और मधुके समान मीठी एवं छः[१] रसोंसे युक्त हैं।[२]

तदनन्तर मार्कण्डेय मुनि और राजा इन्द्रद्युम्न आदि छहों मित्रोंने साधुसंग पाकर शिवशास्त्रके अनुसार क्रियायोग (तप, स्वाध्याय और ईश्वरका ध्यान) आरम्भ किया। एक समय उनके तपस्याकालमें ही लोमश मुनिका दर्शन करनेके लिये उत्सुक हो तीर्थयात्राके प्रसंगसे मैं वहाँ गया, क्योंकि तीर्थयात्राके प्रसंगसे महापुरुषोंके दर्शनके लिये जाना ही यात्राका प्रधान उद्देश्य है। जिस भूभागमें संत-महात्मा निवास करते हैं, वही 'तीर्थ' कहलाता है।[३] अर्जुन! पूजन और आतिथ्य-सत्कार होनेके पश्चात् जब मैं भलीभाँति विश्राम कर चुका, तब उन नाड़ीजंघ आदि भक्तोंने प्रणाम करके मुझसे पूछा—'ब्रह्मन्! मोक्ष-साधनके लिये कौन-सा स्थान है, बतलानेकी कृपा करें?'

उनके ऐसा पूछनेपर मैंने कहा—तुमलोग महासंवर्तसे यह बात पूछो। वे तुम्हें सब तीर्थोंके फलकी प्राप्ति करानेवाले तीर्थस्थानका पता बतायेंगे।

वे बोले—योगी संवर्तजी कहाँ तपस्या करते हैं, यदि जानते हों तो बताइये?

तब मैंने कहा—संवर्त मुनि काशीमें रहते हैं। उन्होंने गुप्त वेष धारण कर रखा है। वे नंगे रहते और भिक्षान्न भोजन करते हैं। दिनके दूसरे पहरकी पिछली घड़ी और तीसरे पहरकी पहली घड़ीको 'कुतप' काल कहते हैं। उसके बाद ही वे निकलते हैं और हाथमें ही भिक्षा लेकर उसे भोजन करते हैं। उनके पास किसी प्रकारकी वस्तुका भी संग्रह नहीं है। वे प्रणववाच्य परब्रह्म परमेश्वरका ध्यान करते रहते हैं। सायंकाल वनमें रहते हैं, किन्तु कोई भी मनुष्य उन योगीश्वर संवर्तजीको पहचान नहीं पाता। न पहचाननेका एक कारण भी है, उन्हींके-जैसे वेष और चिह्न धारण करनेवाले दूसरे लोग भी वहाँ रहते हैं। मैं एक ऐसा लक्षण बतलाता हूँ, जिससे तुमलोग संवर्तजीको पहचान लोगे। रातको उस चौड़ी सड़कपर, जो नगरके मध्यसे होकर निकलती है, तुमलोग एक मुर्दा लाकर जमीनपर इस ढंगसे रखना, जिससे दूसरोंको उसका पता न चले और स्वयं उससे थोड़ी ही दूरपर खड़े रहना। जो कोई भी उस भूमिके निकटतक आकर सहसा लौट पड़े, वही संवर्त हैं। ये मुर्देको शल्य समझकर उसे लाँघकर नहीं जाते; यह एक संशयरहित पहचान है। इस प्रकार जब संवर्तजी मिल जायँ तब विनीत भावसे उनकी शरणमें जाकर उनसे अपनी इच्छाके अनुसार प्रश्न करना। यदि वे पूछें, 'मेरा पता किसने बताया है?' तो मेरा नाम प्रकट कर देना।

मेरी बात सुनकर उन सबने वैसा ही किया।

१- दास्यरति, सख्यरति, वात्सल्यरति, शान्तरति, कान्तरति तथा अद्भुतरति— भक्तिरसके पोषक ये षड्विध भाव ही यहाँ छः रस बताये गये हैं।

२- तीर्थादप्यधिकः स्थाने सतां साधुसमागमः। पचेलिमफलः सद्यो दुरन्तकलुषापहः॥
अपूर्वः कोऽपि सद्गोष्ठी सहस्रकिरणोदयः। य एकान्ततयात्यन्तमन्तर्गततमोपहः॥
साधुगोष्ठीसमुद्भूतसुखामृतरसोर्मयः। सर्वे वराः सुधाशीधुशर्करामधुषड्रसाः॥
(स्क० पु०, मा० कुमा० ११।६—८)

३- मुख्या पुरुषयात्रा हि तीर्थयात्रानुषङ्गतः। सद्भिः समाश्रितो भूमिभागस्तीर्थतयोच्यते॥
(स्क० पु०, मा० कुमा० ११।११)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

काशीपुरीमें पहुँचकर मेरे बताये अनुसार संवर्तको देखा। उनके रखे हुए शवको देखकर संवर्तजी भूखसे व्याकुल होनेपर भी सहसा लौट पड़े। तब वे उन्हें पहचानकर शीघ्रतापूर्वक उनके पीछे गये। सड़कपर चलते हुए संवर्तको पुकारकर कहते जाते थे—'ब्रह्मन्! क्षणभरके लिये खड़े तो हो जाइये।' परन्तु वे उन्हें फटकारते हुए चले जाते थे। साथ ही यह भी कहते जाते थे—'अरे! तुम सब लोग लौट जाओ।' भागते-भागते जब वे बहुत दूर चले गये, तब एक स्थानपर रुककर पूछा—'किसने तुम्हें मेरा पता बताया है, शीघ्र बताओ?' तब उन्होंने काँपते हुए उत्तर दिया—'नारदजीने बताया है।' तब संवर्तने पुनः मार्कण्डेय आदिसे कहा, 'मेरे रास्तेका शल्य हटा दो, मैं भूखा हूँ, पुनः पुरीमें भिक्षाके लिये जाऊँगा। तुम्हारा प्रश्न क्या है, उसे भी कहो।'

वे बोले—महामुने! हम आपकी शरणमें आये हैं। कृपया हमें ऐसा कोई उपाय बतावें, जिससे हमलोग आपके अनुग्रहसे मोक्ष प्राप्त कर लें। जिस तीर्थमें जाकर मनुष्य सब तीर्थोंका फल प्राप्त कर लेता है, उसका नाम बताइये, जिससे हम सब लोग जाकर वहीं रहें।

संवर्तने कहा—स्वामिकार्तिकेय तथा नव दुर्गाओंको नमस्कार करके मैं तुमलोगोंको सर्वोत्तम तीर्थका परिचय देता हूँ। उस तीर्थका नाम है—महीसागरसंगम। ये परम बुद्धिमान् नृपश्रेष्ठ इन्द्रद्युम्न जब यहाँ यज्ञ करते थे, तब इनके द्वारा यह पृथ्वी दो अंगुल ऊँची कर दी गयी थी। उस समय जैसे गीले काठके तपनेपर उससे पानी चूता है, उसी प्रकार यज्ञाग्निद्वारा तपती हुई पृथ्वीसे जलका स्रोत टपकने लगा। उस जलराशिको समस्त देवताओंने नमस्कार किया। वही मही नामक नदी है। पृथ्वीपर जो कोई भी तीर्थ हैं, उन सबके जलसे उत्पन्न साररूप मही नदीका जल माना गया है। मालवा नामक देशसे मही नदी उत्पन्न हुई है और दक्षिण समुद्रमें जाकर मिली है। उसके दोनों तट परम पुण्यमय तीर्थ हैं। वह सबके लिये कल्याणमयी है। पहले तो महानदी मही स्वयं ही सर्वतीर्थमयी है। फिर जहाँ सरिताओंके स्वामी समुद्रसे उसका संगम हुआ है, उस तीर्थके विषयमें कहना ही क्या है। काशी, कुरुक्षेत्र, गंगा, नर्मदा, सरस्वती, तापी, पयोष्णी, निर्विन्ध्या, चन्द्रभागा, इरावती, कावेरी, सरयू, गण्डकी, नैमिषारण्य, गया, गोदावरी, अरुणा, वरुणा तथा अन्य जो बीस हजार छः सौ नदियाँ इस पृथ्वीपर विद्यमान हैं, उन सबके सारतत्त्वसे मही नदीका जल प्रकट हुआ बताया गया है। पृथ्वीके सब तीर्थोंमें स्नान करनेसे जो फल मिलता है, वही महीसागरसंगममें भी प्राप्त होता है, ऐसा कहा गया है। स्वामिकार्तिकेयका भी इस विषयमें ऐसा ही वचन है। यदि तुमलोग किसी एक स्थानमें सब तीर्थोंका संयोग चाहते हो तो परम पुण्यमय महीसागरसंगम तीर्थमें जाओ। मैंने भी पहले बहुत वर्षोंतक वहाँ निवास किया है। यहाँ नारदजीके भयसे आकर रहता हूँ। महीसागरसंगममें नारदजी मेरे पास ही रहते थे। इधरकी बातें उधर लगा देनेका गुण उनमें विशेषरूपसे है। इन दिनों राजा मरुत्त मुझे ढूँढ़नेका प्रयास करते हैं। नारदजी उन्हें मेरा पता अवश्य बता देंगे, यही भय था। यहाँ तो बहुत-से दिगम्बर साधुओंके बीच उन्हींके समान बनकर मैं भी रहता हूँ। मरुत्तसे अधिक भयभीत होनेके कारण मैं यहाँ गुप्तरूपसे निवास करता हूँ। मुझे सन्देह है, नारद पुनः मेरा यहाँ रहना मरुत्तको बता देंगे, क्योंकि उनकी प्रायः ऐसी चेष्टा देखी जाती है। तुमलोग कभी किसीसे यह सब न कहना। राजा मरुत्त यज्ञकी सिद्धिके लिये चेष्टा कर रहे हैं। कुछ कारणवश देवताओंके आचार्य मेरे पिताने उनको त्याग दिया है। अतः उस यज्ञका ऋत्विग् बनानेके लिये उन्होंने मुझ गुरुपुत्रको ही मनोनीत किया है; परंतु अविद्याके अन्तर्गत होनेवाले हिंसात्मक यज्ञोंसे मेरा कोई प्रयोजन नहीं है। इसलिये राजा इन्द्रद्युम्नके साथ

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

तुमलोग शीघ्रतापूर्वक महीसागरसंगम तीर्थमें जाओ। वहाँके पाँच तीर्थोंका सेवन करते हुए तुमलोग निश्चय ही मोक्ष प्राप्त कर लोगे।

ऐसा कहकर संवर्तजी अपने अभीष्ट स्थानको चले गये और इन्द्रद्युम्न आदि वे सब लोग भर्तृयज्ञ मुनिके पास पहुँचकर वहाँ महीसागरसंगम तीर्थमें रहने लगे। मुनिने अपने विशेष ज्ञानसे जान लिया कि ये सब लोग भगवान् शंकरके गण हैं। यह जानकर वे उन सब लोगोंसे बोले—'अहो! तुमलोगोंका पुण्य अत्यन्त निर्मल और महान् है। जिससे इस महीसागरसंगम नामक गुप्तक्षेत्रमें तुम्हारा आगमन हुआ है। महीसागरसंगममें किया हुआ स्नान, दान, जप, होम और विशेषतः पिण्डदान सब अक्षय होता है। पूर्णिमा और अमावास्याको यहाँ किया हुआ स्नान, दान और जप आदि सब कर्म अक्षय फल देनेवाला होता है। देवर्षि नारदने पूर्वकालमें जब यहाँ स्थान निर्माण किया था, उस समय ग्रहोंने आकर वरदान दिया था। शनिदेवने जो वरदान दिया, वह इस प्रकार है—'जिस समय शनिवारके साथ अमावास्या हो, उस दिन यहाँ स्नान, दानपूर्वक श्राद्ध करे। यदि श्रावण मासके शनिवारको अमावास्या तिथि हो और उसी दिन सूर्यकी संक्रान्ति तथा व्यतीपात योग भी हो तो यह 'पुष्कर' नामक पर्व होता है। इसका महत्त्व सौ सूर्यग्रहणोंसे भी अधिक है। उक्त सब योगोंका सम्बन्ध यदि किसी प्रकार उपलब्ध हो जाय, तो उस दिन लोहेकी शनिमूर्तिका और सोनेकी सूर्यप्रतिमाका महीसागरसंगममें विधिपूर्वक पूजन करना चाहिये। शनिके मन्त्रोंसे शनिका और सूर्यसम्बन्धी मन्त्रोंसे सूर्यका ध्यान करके सब पापोंकी शान्तिके लिये भगवान् सूर्यको अर्घ्य देना चाहिये। उस समय वहाँका स्नान प्रयागसे भी अधिक है, दान कुरुक्षेत्रसे भी बढ़कर है। महान् पुण्यराशि सहायक हो, तभी यह सब योग प्राप्त होता है। वहाँ किये हुए श्राद्धसे पितरोंको स्वर्गमें अक्षय तृप्ति प्राप्त होती है। जैसे परम पवित्र गयाशिर पितरोंके लिये परम तृप्तिदायक है। इसी प्रकार उससे भी अधिक पुण्य देनेवाला महीसागरसंगम है।—'**अग्निश्च ते योनिरिडा च देहो रेतोऽथ विष्णोरमृतस्य नाभिः।**' अर्थात् 'हे महीनदी! अग्नि तुम्हारी योनि (उत्पत्तिस्थान) और पृथ्वी तुम्हारी देह है। तुम यज्ञस्वरूप विष्णुके वीर्यसे उत्पन्न हुई हो और अमृतका केन्द्रस्थान हो।' इस सत्य वाक्यका श्रद्धापूर्वक उच्चारण करते हुए महीसागरसंगम तीर्थमें स्नान करना चाहिये। जो सब नदियोंमें प्रधान और पवित्र सागर है, तथा प्रचुर जलवाली समस्त तीर्थस्वरूपा जो मही नदी है, इन दोनोंको मैं अर्घ्य देता हूँ, प्रणाम करता हूँ और इनकी स्तुति भी करता हूँ। ताम्रा, रस्या, पयोवाहा, पितृप्रीतिप्रदा, शुभा, शस्यमाला, महासिन्धु, दातृदात्री, पृथुस्तुता, इन्द्रद्युम्नकन्या, क्षितिजन्मा, इरावती, महीपर्णा, महीशृंगा, गंगा, पश्चिमवाहिनी, नदी तथा राजनदी—इन अठारह नामोंकी मालाका स्नानकाल और श्राद्धकालमें मनुष्य सर्वत्र पाठ करे। ये सब नाम महाराज पृथुके कहे हुए हैं, इनका पाठ करनेवाला मनुष्य यज्ञमूर्ति भगवान् विष्णुके पदको प्राप्त होता है।* तदनन्तर निम्नांकित मन्त्र पढ़कर मही नदीको अर्घ्य देना चाहिये—

महीदोहे महानन्दसन्दोहे विश्वमोहिनि।
जाता हि सरितां राज्ञि पापं हर महिद्रवे॥

'हे देवी! तू इस पृथ्वीकी दुग्ध है, परमानन्दकी राशि है, सम्पूर्ण विश्वको मोहनेवाली है तथा

---

* मुखं च यः सर्वनदीषु पुण्यः पाथोधिरम्बुप्रचुरा मही च।
समस्ततीर्थाकृतिरेतयोश्च ददामि चार्घ्यं प्रणमामि नौमि॥
ताम्रा रस्या पयोवाहा पितृप्रीतिप्रदा शुभा। शस्यमाला महासिन्धुर्दातुर्दात्री पृथुस्तुता॥
इन्द्रद्युम्नस्य कन्या च क्षितिजन्मा इरावती। महीपर्णा महीशृङ्गा गङ्गा पश्चिमवाहिनी॥
नदी राजनदी चेति नामाष्टादशमालिकाम्।
स्नानकाले च सर्वत्र श्राद्धकाले पठेन्नरः। पृथुनोक्तानि नामानि यज्ञमूर्तिपदं व्रजेत्॥
(वेङ्कटेश्वर प्रेसकी प्रतिसे)
(स्क० पु०, मा० कुमा० १३। १२४—१२७)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

समस्त सरिताओंकी महारानीके रूपमें प्रकट हुई है। महिद्रवे! तू मेरे पाप हर ले।'

इस महीसागरसंगम तीर्थमें स्नान, जप और तपस्या करके पुण्यकर्मके प्रभावसे बहुत लोग रुद्रलोकमें चले गये हैं। विशेषत: सोमवारको, उत्तम भक्तिपूर्वक यहाँ स्नान करके जो पाँच तीर्थोंकी यात्रा करता है, वह पाँच महापातकोंसे मुक्त हो जाता है। इस प्रकार इस तीर्थका बहुविध उत्तम माहात्म्य बताकर भर्तृयज्ञने उन सबको शिवागममें बताये अनुसार शिवाराधनकी विधि बतलायी तथा पूजायोगका उपदेश देकर शिवभक्तिके उद्रेकसे पूर्ण हो उन इन्द्रद्युम्न आदि भक्तोंसे पुन: इस प्रकार कहा—'शिवजीके व्रतका वर्णन करनेवाले उपासको! शिवजीसे बढ़कर दूसरा कोई देवता नहीं है। यह सर्वथा सत्य है, जो भगवान् शंकरको छोड़कर अन्य किसी भी वस्तुकी उपासना करता है वह हाथमें रखे हुए अमृतको त्यागकर मृगतृष्णाकी ओर दौड़ रहा है। यह सम्पूर्ण जगत् शिवशक्तिस्वरूप है; यह बात प्रत्यक्ष देखी जाती है; क्योंकि कुछ प्राणी पुँल्लिंगके चिह्नोंसे युक्त हैं और कुछ स्त्रीलिंगके चिह्नोंसे युक्त हैं। जो पुरुषचिह्नसे युक्त हैं वे शिवस्वरूप हैं तथा जिनमें स्त्रीलिंगसूचक चिह्न हैं वे सब शक्तिस्वरूप हैं। भगवान् रुद्रका उत्तम माहात्म्य 'शतरुद्रिय'के नामसे प्रसिद्ध है। तुमलोग यदि अपने पाप धोना चाहते हो तो उसका नियमपूर्वक श्रवण करो।

वह इस प्रकार है—ब्रह्माजी भगवान् शिवके सुवर्णमय लिंगकी आराधना करके उसके जगत्प्रधान (१) नामका जप करते हुए, अपने पदपर विराजमान हैं। श्रीकृष्णने स्थलभागमें काले पत्थरका शिवलिंग स्थापित करके ऊर्जित (२) नामसे उसकी आराधना की है। सनकादि महर्षियोंने अपने हृदयरूपी लिंगका जगद्गति (३) नामसे पूजन करके अपना अभीष्ट साधन किया है। सप्तर्षियोंने दर्भांकुरमय लिंगका विश्वयोनि (४) के नामसे पूजन किया है। देवर्षि नारद आकाशमें ही शिवलिंगकी भावना करके उसे जगद्बीज (५) नाम देकर उसकी आराधना करते हैं। देवराज इन्द्र वज्रमय लिंगकी विश्वात्मा (६) नामसे पूजा करते हैं। सूर्यदेव ताम्रमय लिंगकी पूजा और उसके विश्वसृग् (७) नामका जप करते हैं। चन्द्रमा मुक्तामय लिंगकी उपासना और उसके जगत्पति (८) नामका जप करते रहते हैं। अग्निदेव इन्द्रनीलमणिके शिवलिंगकी पूजा करते हुए उसके विश्वेश्वर (९) नामका जप करते हैं। बृहस्पतिजी पुखराज मणिके शिवलिंगकी आराधना और उसके विश्वयोनि (१०) नामका जप किया करते हैं। शुक्राचार्य विश्वकर्मा (११) नामसे प्रसिद्ध पद्मराग मणिमय शिवलिंगकी उपासना करते हैं। धनाध्यक्ष कुबेर सुवर्णमय लिंगकी पूजा और उसके ईश्वर (१२) नामका जप करते हैं। विश्वेदेवगण जगद्गति (१३) नामसे प्रसिद्ध रजतमय शिवलिंगकी पूजा करते हैं। यमराज पित्तलके शिवलिंगकी पूजा और उसकी शम्भु (१४) नामसे उपासना करते हैं। वसुगण काँसेके शिवलिंगकी आराधना और उसके स्वयम्भू (१५) नामका जप करते हैं। मरुद्गण त्रिविध लोहमय लिंगकी पूजा और उमेश या भूतेश (१६) नामका जप करते हैं। राक्षस लोहमय लिंगकी उपासना और भूतभव्यभवोद्भव (१७) नामका जप करते हैं। गुह्यकगण शीशेके शिवलिंगकी पूजा और योग (१८) नामका जप करते हैं। जैगीषव्य मुनि ब्रह्मरन्ध्रमय शिवलिंगकी उपासना और योगेश्वर (१९) नामका जप करते हैं। राजा निमि सबके युगल नेत्रोंमें ही शिवलिंगकी भावना करके उसकी आराधना करते और शर्व (२०) नाम जपते रहते हैं। धन्वन्तरि सर्वलोकेश्वरेश्वर (२१) नामसे प्रसिद्ध गोमयलिंगकी उपासना करते हैं। गन्धर्वगण लकड़ीके शिवलिंगकी पूजा और उसके सर्वश्रेष्ठ (२२) नामका जप करते हैं श्रीरामचन्द्रजी ज्येष्ठ (२३) नामका जप करते हुए वैदूर्यमय शिवलिंगकी पूजा करते हैं। बाणासुर मरकतमणिमय शिवलिंगकी पूजा और वासिष्ठ

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

(२४) नामकी पूजा करता है। वरुणजी परमेश्वर (२५) नामसे प्रसिद्ध स्फटिकमणिमय शिवलिंगकी पूजा करते हैं। नागगण मूँगेके शिवलिंगकी उपासना और लोकत्रयंकर (२६) नामका जप करते हैं। सरस्वती देवी शुद्धमुक्तामय शिवलिंगको पूजती और लोकत्रयाश्रित (२७) नामका जप करती हैं। शनिदेव शनिवारकी अमावास्याको आधी रातके समय महीसागरसंगममें आवर्त (भँवर)-मय शिवलिंगकी पूजा और जगन्नाथ (२८) नामका जप करते हैं। रावण चमेलीके फूलका शिवलिंग बनाकर पूजा करता और सुदुर्जय (२९) नामका जप करता है। सिद्धगण मानसलिंगकी उपासना और काममृत्युजरातिग (३०) नामका जप करते हैं। राजा बलि यज्ञमय लिंगकी आराधना और उसके ज्ञानात्मा (३१) नामका जप करते हैं। मरीचि आदि महर्षि पुष्पमय शिवलिंगकी उपासना और ज्ञानगम्य (३२) नामका जप करते हैं। सत्कर्म करनेवाले देवता शुभ कर्ममय लिंगको पूजते और ज्ञानज्ञेय (३३) नामका जप करते हैं। फेन पीकर रहनेवाले महर्षि फेनिज लिंगकी उपासना और सुदुर्विद (३४) नामका जप करते हैं। कपिलजी वरद (३५) नामका जप करते हुए बालुकामय शिवलिंगकी पूजा करते हैं। सरस्वतीपुत्र सारस्वत मुनि वाणीमें शिवलिंगकी उपासना करते हुए वागीश्वर (३६) नामका जप करते हैं। शिवगण भगवान् शिवके मूर्तिमय लिंगकी उपासना करते हुए रुद्र (३७) नामका जप करते हैं। देवतालोग जाम्बूनद सुवर्णमय लिंगकी आराधना और शितिकण्ठ (३८) नामका जप करते हैं। बुध कनिष्ठ (३९) नामका जप करते हुए शंखमय शिवलिंगकी पूजा करते हैं। दोनों अश्विनीकुमार सुवेधा (४०) नामसे प्रसिद्ध मृत्तिकामय (पार्थिव) शिवलिंगकी पूजा करते हैं। गणेशजी आटेका शिवलिंग बनाकर कपर्दी (४१) नामसे उसकी उपासना करते हैं। मंगल मक्खनके शिवलिंगकी कराल (४२) नामसे उपासना करते हैं। गरुड़जी ओदनमय शिवलिंगकी हर्यक्ष (४३) नामसे उपासना करते हैं। कामदेव गुड़के शिवलिंगकी रतिद (४४) नामसे उपासना करते हैं। शचीदेवी लवणमय (सैन्धव अथवा सुन्दर रूपमय) शिवलिंगकी आराधना तथा बभ्रुकेश (४५) नामका जप करती हैं। विश्वकर्मा प्रासादमय (महलके आकारका) शिवलिंग बनाकर याम्य (४६) नामसे उसकी उपासना करते हैं। विभीषण धूलिमय शिवलिंगकी पूजा और सुहृत्तम (४७) नामका जप करते हैं। राजा सगर वंशांकुरमय शिवलिंगकी पूजा और संगत (४८) नामका जप करते हैं। राहु हींगमय लिंगकी उपासना और गम्य (४९) नामका कीर्तन करते हैं। लक्ष्मीदेवी लेप्य लिंगका पूजन तथा हरिनेत्र (५०) नामका जप करती हैं।

योगी पुरुष सर्वभूतस्थ लिंगकी उपासना और स्थाणु (५१) नामका जप करते हैं। मनुष्य नानाविध लिंगका पूजन और पुरुष (५२) नामका जप करते हैं। नक्षत्र तेजोमय लिंगका पूजन तथा भग और भास्वर (५३) नामका जप करते हैं। किन्नरगण धातुमय लिंगका पूजन तथा सुदीप्त (५४) नामका जप करते हैं। ब्रह्मराक्षसगण अस्थिमय लिंगका पूजन और देवदेव (५५) नामका जप करते हैं। चारणलोग दन्तमय लिंगका पूजन तथा रंहस (५६) नामका जप करते हैं। साध्यगण सप्तलोकमय लिंगका पूजन और बहुरूप (५७) नामका जप करते हैं। ऋतुएँ दूर्वांकुरमय लिंगका पूजन और सर्व (५८) नामका जप करती हैं। अप्सराएँ कुंकुम लिंगका पूजन और आभूषण (५९) नामका जप करती हैं। उर्वशी सिन्दूरमय लिंगका पूजन और प्रियवासन (६०) नामका जप करती हैं। गुरु ब्रह्मचारी लिंगका पूजन और उष्णीवी (६१) नामका जप करते हैं। योगिनियाँ अलक्तक् लिंगका पूजन और सुवभ्रुक् (६२) नामका जप करती हैं। सिद्ध योगिनियाँ श्रीखण्ड लिंगका पूजन और सहस्राक्ष (६३) नामका जप करती हैं। डाकिनियाँ मांसमय लिंगका पूजन तथा उसके सुमीढुष् (६४) नामका जप करती हैं। मनुगण गिरिश (६५) नामसे प्रसिद्ध अन्नमय लिंगका पूजन करते हैं। अगस्त्य मुनि व्रीहिमय लिंगका पूजन और सुशान्त (६६) नामका जप करते

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

हैं। देवल मुनि यवमय लिंगका पूजन और पति (६७) नामका जप करते हैं। वाल्मीकि मुनि वाल्मीक लिंगका पूजन और चीरवासा (६८) नामका जप करते हैं। प्रतर्दनजी वाणलिंगका पूजन और हिरण्यभुज (६९) नामका जप करते हैं। दैत्यगण राईके शिवलिंगका पूजन और उग्र (७०) नामका जप करते हैं। दानवलोग निष्पावज लिंगका पूजन और दिक्पति (७१) नामका जप करते हैं। बादल नीरमय लिंगका पूजन तथा पर्जन्य (७२) नामका जप करते हैं। यक्षराज माषमय लिंगका पूजन और भूतपति (७३) नामका जप करते हैं। पितृगण तिलमय लिंगका पूजन और वृषपति (७४) नामका जप करते हैं। गौतम मुनि गोधूलिमय लिंगका पूजन और गोपति (७५) नामका जप करते हैं। वानप्रस्थगण फलमय लिंगका पूजन और वृक्षावृत (७६) नामका जप करते हैं। स्वामिकार्तिकेय पाषाणलिंगका पूजन और सेनान्य (७७) नामका जप करते हैं। अश्वतर नाग धान्यमय लिंगका पूजन और उसके मध्यम (७८) नामका जप करते हैं। यज्ञकर्ता पुरुष पुरोडाशमय लिंगका पूजन और स्रुवहस्त (७९) नामका जप करते हैं। यम कालायसमय लिंगका पूजन और धन्वी (८०) नामका जप करते हैं। परशुरामजी यवांकुर-लिंगका पूजन तथा भार्गव (८१) नामका जप करते हैं। पुरूरवा घृतमय लिंगका पूजन और बहुरूप (८२) नामका जप करते हैं। श्रीमान्धाता शर्करामय लिंगकी बाहुयुग (८३) नामसे आराधना करते हैं। गायें पयोमय 'दुग्धमय' लिंगका पूजन और नेत्रसहस्रक् (८४) नामका जप करती हैं। पतिव्रता स्त्रियाँ भर्तृमय लिंगका पूजन तथा विश्वपति (८५) नामका जप करती हैं। नर-नारायण मौञ्जीमय शिवलिंगका सहस्रशीर्ष (८६) नामसे आराधन करते हैं। पृथु सहस्रचरण (८७) नामवाले तार्क्ष्यलिंगका पूजन करते हैं। पक्षी सर्वात्मक (८८) नामसे व्योमलिंगका पूजन करते हैं। पृथ्वी गन्धमय लिंगका पूजन और उसके द्वितनु (८९) नामका जप करती हैं। पाशुपतगण भस्ममय लिंगका पूजन और उसके महेश्वर (९०) नामका जप करते हैं। ऋषि ज्ञानमय लिंगकी चिरस्थान (९१) नामसे उपासना करते हैं। ब्राह्मण ब्रह्म-लिंगकी ज्येष्ठ (९२) नामसे उपासना करते हैं। शेषनाग गोरोचनमय लिंगका पूजन और पशुपति (९३) नामका जप करते हैं। वासुकिनाग विषलिंगका पूजन और शंकर (९४) नामका जप करते हैं। तक्षकनाग कालकूटमय लिंगका पूजन तथा बहुरूप (९५) नामका जप करते हैं। कर्कोटकनाग हाला-हलमय लिंगका पूजन और पिंगाक्ष (९६) नामका जप करते हैं। शृंगी विषमय लिंगका पूजन तथा धूर्जटि (९७) नामका जप करते हैं। पुत्र पितृमय लिंगका पूजन और विश्वरूप (९८) नामका जप करता है। शिवादेवी पारदमय लिंगका पूजन और त्र्यम्बक (९९) नामका जप करती हैं। मत्स्य आदि जीव शस्त्रमय लिंगका पूजन तथा वृषाकपि (१००) नामका जप करते हैं।

इस प्रकार बहुत कहनेसे क्या लाभ, संसारमें जो-जो जीव किसी विलक्षण विभूतिसे युक्त हैं, उनकी यह विशेषता भगवान् शिवके आराधनाके प्रभावसे ही हुई है। यदि धर्म, अर्थ, काम, मोक्षकी प्राप्तिका विचार बुद्धिमें आता हो तो भगवान् शिवकी भलीभाँति आराधना करनी चाहिये; क्योंकि त्रिलोकीमें वे ही मनोवांछित वस्तु देनेवाले माने गये हैं। जो प्रतिदिन प्रातःकाल उठकर इस शतरुद्रियका पाठ करेगा, उसपर प्रसन्न हो भगवान् शिव उसे सभी मनोवांछित वर प्रदान करेंगे। पृथ्वीपर इससे बढ़कर परम पवित्र दूसरी कोई वस्तु नहीं है। यह सम्पूर्ण वेदोंका रहस्य है। भगवान् सूर्यने मुझे इसका उपदेश दिया था। शतरुद्रियका पाठ करनेपर मन, वाणी और क्रियाद्वारा आचरित समस्त पापोंका नाश हो जाता है। जो शतरुद्रियका जप करता है, वह रोगातुर हो तो रोगसे छूट जाता है, कारागारमें बँधा हुआ हो तो बन्धनसे छुटकारा पा जाता है, और भयभीत हो तो भयसे मुक्त हो जाता है। इन सौ नामोंका उच्चारण करके जो विद्वान् उतने ही फूलोंद्वारा भगवान् शिवकी पूजा करता है और सौ बार उन्हें प्रणाम करता है, वह सब पातकोंसे मुक्त हो जाता है। ये सौ लिंग, सौ इनके उपासक

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

और सौ इन लिंगोंके नाम ये सभी सम्पूर्ण दोषोंका नाश करनेवाले माने गये हैं। विशेषतः इस महीतीर्थके इन पाँच लिंगोंके समक्ष जो इस शतरुद्रियका पाठ करेगा, वह पंचविषयजनित दोषोंसे मुक्त हो जायगा।

नारदजी कहते हैं—अर्जुन! उस गुप्त क्षेत्रमें शंकरजीके आराधनका यह माहात्म्य सुनकर वे इन्द्रद्युम्न आदि भक्त बहुत प्रसन्न हुए और पंचलिंगोंकी आराधना करते हुए भगवान् शिवके ध्यानमें तत्पर रहने लगे। तदनन्तर बहुत समय बीत जानेपर उनकी विशेष भक्तिसे प्रसन्न हो भगवान् शंकरने उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन दिया और इस प्रकार कहा—

'हे वक, उलूक, गृध्र, कच्छप और राजा इन्द्रद्युम्न! तुमलोग मेरी सारूप्य मुक्तिको प्राप्त होकर मेरे ही लोकमें निवास करोगे। लोमश और मार्कण्डेय मुनि जीवन्मुक्त होंगे।'

भगवान् शिवके ऐसा कहनेपर राजा इन्द्रद्युम्नने महाकालसे पूर्वकी ओर इन्द्रद्युम्नेश्वर नामक शिवलिंगकी स्थापना की। उस तीर्थके गुणोंको जानकर राजाने वहाँ चिरस्थायिनी कीर्ति करनेकी इच्छासे परम सुन्दर अविचल शिवलिंगकी स्थापना की। फिर शिवजीने कहा—'जो इस इन्द्रद्युम्नेश्वर लिंगकी पूजा करेगा, वह मेरा गण होगा और मेरे ही लोकमें निवास करेगा।' ऐसा कहकर भगवान् चन्द्रशेखर उन पाँचोंके साथ रुद्रलोकको चले गये और वे सब-के-सब पुनः शिवजीके गण हो गये। राजा इन्द्रद्युम्न ऐसे प्रभावशाली थे; जिन्होंने यज्ञ करते हुए इस महीनदीको प्रकट किया था। इस प्रकार यह महीसागरसंगम अत्यन्त पुण्यदायक तीर्थ हुआ। कुन्तीनन्दन! इस तीर्थका माहात्म्य तुम्हें संक्षेपसे बतलाया है। जो मनुष्य यहाँ संगममें स्नान करके इन्द्रद्युम्नेश्वरका पूजन करता है, उसका निवास उस धाममें होता है, जहाँ पार्वतीवल्लभ भगवान् महेश्वर विराजमान हैं। यह लिंग सब प्रकारके बन्धनोंका नाशक तथा गणाधीशका पद प्रदान करनेवाला है; क्योंकि राजाने सब प्रकारके बन्धनोंका त्याग करके ही इस लिंगको स्थापित किया था। अर्जुन! इस प्रकार इस उत्तम संगमका पुण्यदायक माहात्म्य तुमसे कहा है, तथा इन्द्रद्युम्नेश्वरकी भी पुण्योत्पादक महिमाका वर्णन किया है। जो इसका पाठ करेगा, उसको महान् पुण्य प्राप्त होगा।

कुमारका अनुताप, भगवान् विष्णुका उन्हें समझाना तथा उनकी सम्मतिसे स्कन्दद्वारा तीन शिवलिंगोंकी स्थापना और भगवान् शिवका वरदान

अर्जुनने कहा—महामुने! आपने कथाके बीचमें जो कुमार नाथके माहात्म्यकी चर्चा की थी, उसे मैं विस्तारपूर्वक सुनना चाहता हूँ।

नारदजी बोले—अर्जुन! भगवान् कार्तिकेयजीने तारकासुरका वध करके स्वयं ही इस कुमारेश्वर नामक शिवलिंगको स्थापित किया था। मैं

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

देवताओंके सेनानायक और सबका शासन करनेमें समर्थ कुमार कार्तिकेयको प्रणाम करके उनके महान् चरित्रका वर्णन करता हूँ। तुम एकाग्रचित्त होकर सुनो।

नारदजी कहते हैं—अर्जुन! तारकासुरके मरनेके कारण परम बुद्धिमान् कार्तिकेयजी मन-ही-मन अत्यन्त उदास हो शोक करने लगे। उन्होंने स्तुति करनेवाले देवताओंको रोककर कहा—'देवगण! मुझ पातकीका, जो सर्वथा शोचनीय है, गुण-गान कैसे करते हो? यद्यपि पापाचारीका वध करनेमें कोई दोष नहीं है, तथापि यह तारकासुर तो भगवान् शंकरका भक्त था, यह स्मरण करके मुझे बड़ा शोक हो रहा है। इसलिये मैं कोई प्रायश्चित्त सुनना चाहता हूँ; क्योंकि प्रायश्चित्त करनेसे बहुत बड़ा पाप भी नष्ट हो जाता है।'

भगवान् शंकरके बुद्धिमान् पुत्र कार्तिकेयजी जब इस प्रकार शोक कर रहे थे, उस समय भगवान् विष्णु देवताओंके बीच यों बोले—'महेशनन्दन! यदि श्रुति, स्मृति, इतिहास और पुराणको प्रमाण माना जाय तो दुष्टोंके वधमें कोई दोष नहीं है।* जो निर्दय मनुष्य दूसरोंके प्राणोंसे अपने प्राणोंका पोषण करता है, उसका वध कर डालना ही उसके लिये कल्याणकारी है; क्योंकि अपने दोषपूर्ण आचरणसे वह मनुष्य नरकको ही जाता है। रक्षाके कार्यमें लगे हुए समर्थ पुरुषोंद्वारा यदि पापाचारियोंका वध न किया जाय तो ये असमर्थ मनुष्य किसकी शरणमें जायँगे, तथा सम्पूर्ण विश्वको धारण करनेवाले धर्मस्वरूप वेद और यज्ञ कैसे होंगे। इसलिये तुमने तारकासुरका वध करके पुण्य ही प्राप्त किया है। तुम्हें पाप तो किसी प्रकार भी नहीं लगेगा। इतनेपर भी भगवान् शंकरके भक्तोंके प्रति यदि तुम्हारा बहुत अधिक आदर है, तो उसके लिये मैं बहुत उत्तम उपाय बतलाऊँगा, जिससे जन्मभरके पापोंसे छुटकारा मिल जाता है तथा एक कल्पतक रुद्रलोकमें दिव्य शरीर धारण करके वह मनुष्य परमानन्दका उपभोग करता है। स्कन्द! पाप करनेपर जिसे बहुत अधिक पश्चात्ताप होता है, उसके लिये भगवान् शंकरके आराधनसे बढ़कर दूसरा कोई उपाय नहीं है। जिनकी महिमाका वर्णन करनेमें ब्रह्माजी भी समर्थ नहीं हैं तथा जिनके विषयमें कुछ कहनेमें श्रुति भी भयभीत होती है, उन भगवान् महेश्वरसे बढ़कर दूसरी कौन वस्तु हो सकती है।'

'त्रिलोकीमें भगवान् शंकरके सिवा दूसरा कौन ऐसा देवता है, जिसका पृथ्वी ही रथ है, ब्रह्माजी सारथी हैं, मैं बाण हूँ, मन्दराचल धनुष है तथा चन्द्रमा और सूर्य रथके पहिये हैं। कोई-कोई योगमार्गसे भगवान् शंकरकी आराधना बताते हैं, परंतु सदा शून्यकी उपासना करनेवाले उन योगियोंका मार्ग सर्वसाधारणके लिये दुःसाध्य है। इसलिये जो भोग और मुक्ति दोनों चाहता है, उसे उनके लिंगमय स्वरूपकी ही आराधना करनी चाहिये। सृष्टिके आदिमें मेरे और ब्रह्माजीके विवादमें भगवान् शिव लिंगरूपमें प्रकट हुए थे। उस लिंगमय स्वरूपमें सम्पूर्ण चराचर जगत् लीन होता है, इसीलिये वेदमें उसे लिंग कहा गया है। जो परम बुद्धिमान् भगवान् शंकरके स्वरूपभूत लिंगको श्रद्धा और पवित्र भावसे जलके द्वारा स्नान कराता है, उसने मानो ब्रह्माजीसे लेकर तृणपर्यन्त इस सम्पूर्ण जगत्को तृप्त कर दिया। मिट्टीका, काठका, ईंटका अथवा पत्थरका मन्दिर बनाकर जो भगवान् शिवको अर्पित करता है, उसे क्रमशः सौगुना पुण्यफल प्राप्त होता है। इसलिये महासेन! तुम्हें यहाँ शिवलिंगकी स्थापना करनी चाहिये।'

भगवान् विष्णुके ऐसा कहनेपर सब देवता

* श्रुतिः स्मृतिश्चेतिहासाः पुराणं च शिवात्मज। प्रमाणं चेत्ततो दुष्टवधे दोषो न विद्यते॥ (स्क० पु०, मा० कुमा० २६। ११)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

'बहुत अच्छा, बहुत अच्छा' कहने लगे। तत्पश्चात् महादेवजीने कार्तिकेयको छातीसे लगाकर कहा— 'वत्स! तुम मेरे भक्तोंपर जो इतनी कृपा रखते हो, इससे तुम्हारे ऊपर मेरा प्रेम बहुत बढ़ गया है। जगद्गुरु भगवान् वासुदेवने जो कुछ कहा है, वह सब यथार्थ है। जो मैं हूँ, वही भगवान् विष्णुको जानना चाहिये तथा जो भगवान् विष्णु हैं, वही मैं हूँ। जैसे दो दीपकोंमें प्रकाशकी दृष्टिसे कोई अन्तर नहीं होता, उसी प्रकार हम दोनोंमें भी किंचिन्मात्र अन्तर नहीं है। स्कन्द! जो भगवान् विष्णुसे द्वेष करता है वह मुझसे भी द्वेष करता है, जो उनका अनुगमन करता है, वह मेरा भी अनुगामी है*। जो ऐसा जानता है, वही मेरा वास्तविक भक्त है।'

कुमार बोले—पिताजी! आपका कहना सत्य है, मैं आपको और भगवान् विष्णुको एक ही समझता हूँ। भक्तवत्सल भगवान् विष्णुने जो मुझे शिवलिंग स्थापित करनेकी सलाह दी है, वही बात तारकासुरके वधके समय पहले आकाशवाणीने भी मुझसे कही थी। अतः मैं सब पापोंका नाश करनेवाले शिवलिंगकी स्थापना करूँगा। वह शिवलिंग मेरे पापोंको शान्त करनेवाला हो।

यों कहकर अग्निनन्दन स्कन्दने विश्वकर्माको बुलाया और उन्हें आदेश दिया कि 'तुम शीघ्र ही तीन विशुद्ध शिवलिंग तैयार करो।' कार्तिकेयकी आज्ञाके अनुसार विश्वकर्माने तीन विशुद्ध शिवलिंग तैयार किये और उन्हें उनको समर्पित कर दिया। तदनन्तर भगवान् विष्णु, शिव तथा ब्रह्मा आदि देवताओंके साथ स्कन्दने पहले पश्चिमदिशामें थोड़ी ही दूरपर 'प्रतिज्ञेश्वर' नामक परम सुन्दर शिवलिंगकी स्थापना की। तब भगवान् महेश्वरने कुमारकी प्रसन्नताके लिये वहाँ स्वयं ही यह वरदान दिया। 'जो इस स्थानपर कार्तिक और चैत्रमासमें अष्टमीको स्नान, उपवास, पूजा और जागरण करके निवास करेगा, वह मृत्युको भी लाँघ जायगा।'

इसके बाद वहाँसे अग्निकोणमें जहाँ दैत्यके कपालसे शक्ति निकली थी, वहाँ कार्तिकेयने द्वितीय शिवलिंगको स्थापित किया। सब पापोंका नाश करनेवाला वह कल्याणकारी शिवलिंग 'कपालेश्वर'के नामसे प्रसिद्ध हुआ। कपालेश्वरके समीप ही उस शक्तिका भी स्तवन करके कुमारने उसकी स्थापना की। जो कापालिकेश्वरी देवीके नामसे प्रसिद्ध हुई। वहाँसे उत्तर दिशामें एक तीर्थ है, जिसे 'शक्तिछिद्र' कहते हैं। वहाँ सब पापोंका नाश करनेवाली कल्याणमयी पातालगंगा प्रकट हुई हैं। उसमें स्नान करके स्कन्दने सब देवताओंके साथ कृपापूर्वक तारकासुरको जलांजलि दी। जिसका संकल्प-वाक्य इस प्रकार है— 'महर्षि कश्यपके कुलमें उत्पन्न शिवभक्त तारकको अर्पित किया जानेवाला यह तिलसहित जल अक्षय भावसे प्राप्त हो।'

तब भगवान् महेश्वरने प्रसन्न होकर स्कन्दको सुनाते हुए कहा—'जो मनुष्य चैत्रमासके कृष्ण पक्षकी चतुर्दशी तिथिको यहाँ स्नान और उपवास करके भगवान् कपालेश्वरका पूजन करेगा, वह तेजस्वी महात्माओंके वधजनित पातकसे मुक्त हो जायगा। इसी तिथिको यदि सोमवार हो, शिवयोग हो और तैतिलकरण हो तो इन छहों योगोंके एकत्र होनेपर जो पुरुष 'शक्तिछिद्रा' नामक तीर्थमें स्नान करके रातमें रुद्रियका जप करेगा, वह शरीरसहित रुद्रलोकमें चला जायगा।'

* यो ह्यहं स हरिर्ज्ञेयो यो हरिः सोऽहमित्युत॥
नावयोरन्तरं किञ्चिद्दीपयोरिव सुव्रत। एनं द्वेष्टि स मां द्वेष्टि योऽन्वेत्येनं स मानुगः॥
(स्क० पु०, मा० कुमा० २६। ४१-४२)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

भगवान् शंकरका यह वचन सुनकर स्कन्द बहुत प्रसन्न हुए तथा सब देवता आनन्दमग्न हो 'साधु-साधु' कहने लगे।

तदनन्तर तीसरे लिंगकी स्थापना करनेकी इच्छावाले कार्तिकेयसे ब्रह्माजीने उनकी प्रसन्नताके लिये कहा—'कुमार! मैं स्वयं एक दूसरे लिंगका निर्माण करता हूँ।' यों कहकर ब्रह्माजीने स्वयं सब दोषोंसे रहित मनोहर शिवलिंगका निर्माण किया। इसी प्रकार सब देवताओंने भी स्कन्दको प्रसन्न करनेके लिये वहाँ एक सुन्दर सरोवर तैयार किया और उसमें गंगा आदि समस्त तीर्थोंकी स्थापना करके उनसे कहा—'जबतक यह सरोवर यहाँ रहे तबतक तुम सब तीर्थ इसमें निवास करो।' तब स्कन्दकी प्रसन्नताके लिये इन सब तीर्थोंने 'एवमस्तु' कहकर देवताओंकी आज्ञा स्वीकार की। तत्पश्चात् स्कन्दने प्रसन्नतापूर्वक उस सुन्दर सरोवरमें स्नान किया और सब तीर्थोंके जलसे भक्तिपूर्वक उस शिवलिंगको स्नान कराकर भाँति-भाँतिके पुष्पोंसे 'सद्योजातादि' पाँच मन्त्रोंद्वारा पूजन किया। पूजाके समय साक्षात् भगवान् महेश्वर स्थावर-जंगम प्राणियोंके साथ उस शिवलिंगमें स्थित हो स्वयं पूजनसामग्री ग्रहण करते थे। भक्तिभावमें डूबे हुए स्कन्दने पूजन करते समय भगवान् शंकरसे पूछा—'भगवन्! आपको कौन-सा उपहार भेंट करनेसे क्या-क्या फल प्राप्त होता है?'

भगवान् महेश्वर बोले—जो मेरे लिंगकी स्थापना करता और उसके लिये सुन्दर मन्दिर बनवाता है, वह कल्पभर मेरे लोकमें निवास करता है। जो मेरे मन्दिरमें झाड़ू देता और धूल आदि हटाकर शुद्ध करता है, वह सब रोगोंसे छूट जाता है। देवमन्दिरको चूने आदिसे पुतवानेपर मनुष्यका शरीर दृढ़ होता है। पुष्प, दूध आदि, कुशा, तिल, जल, अक्षत और सरसोंसे भगवान् शंकरके मस्तकपर अर्घ्य देकर मनुष्य दस हजार वर्षोंतक स्वर्गमें निवास करता है। दही और दूधसे शिवलिंगको स्नान करानेपर मनुष्यका शरीर नीरोग हो जाता है। जल, दही, दूध और घीसे स्नान करानेपर क्रमशः दसगुना फल प्राप्त होता है। उपर्युक्त वस्तुओंसे मुझे स्नान कराकर भक्तिपूर्वक गोधूम-चूर्ण आदिके द्वारा उबटन लगावे, फिर कपिला गायके पंचगव्यसे और गंगाके जलसे मुझे स्नान करावे और विधिपूर्वक मेरा पूजन करे। ऐसा करनेवाला पुरुष मेरे परम धामको प्राप्त होता है। कुशमिश्रित जलकी अपेक्षा गन्धमिश्रित जल उत्तम है, उससे भी तीर्थका जल श्रेष्ठ है तथा अन्य सब तीर्थोंके जलकी अपेक्षा महीसागर तीर्थका जल श्रेष्ठ है। ताँबे, चाँदी और सोनेके कलशोंसे स्नान करानेपर क्रमशः सौगुना फल होता है। इसी प्रकार चन्दन, अगर, केशर तथा कपूर अर्पण करनेसे उत्तरोत्तर अधिक फलकी प्राप्ति होती है। इन सब वस्तुओंको मेरे अंगमें लगानेसे मनुष्य धनवान्, सौभाग्यवान् तथा सुखी होता है। गुग्गुलका धूप उत्तम माना गया है, उससे भी श्रेष्ठ अगुरु है, इन सब धूपोंको मुझे अर्पण करनेसे सुख और स्वर्गकी प्राप्ति होती है। दीप-दान करनेवाला पुरुष कीर्ति तथा उत्तम नेत्र प्राप्त करता है। नैवेद्य अर्पण करनेसे मनुष्य मिष्ठान्नभोजी होता है। अखण्ड बिल्वपत्रों और भाँति-भाँतिके पुष्पोंसे शिवलिंगकी पूजा करनेपर मनुष्य एक लाख वर्षोंतक स्वर्गमें निवास करता है। भगवान् शिवको चँवर भेंट करनेसे मनुष्य राजा होता है। मेरे मन्दिरमें गीत, वाद्य और नृत्य करके शुद्ध चित्त हुआ मनुष्य मुझको प्राप्त होता है। मेरी पूजाके लिये शंख और घण्टा दान करके दाता अवश्य विद्वान् होता है। मेरी रथयात्राका उत्सव करके मनुष्य चिरकालके लिये शोकोंसे मुक्त हो जाता है। मुझे नमस्कार और प्रणाम करके मानव महान् कुलमें जन्म लेता है। जो मेरे आगे शास्त्रका पाठ कराता है, वह

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

ज्ञानी होता है। भक्तिपूर्वक मेरी स्तुति करनेपर मनुष्य मनके मोहसे मुक्ति पा जाता है। मेरे आगे आरती घुमानेसे उपासक पीड़ारहित होता है। मुझे शीतल चन्दन अर्पण करनेपर दुःखजनित सन्तापोंसे छुटकारा मिल जाता है। शिवलिंगके समीप अपनी शक्तिके अनुसार दान करनेपर दाताको उस दानका सौगुना फल मिलता है तथा वह इस लोक और परलोकमें आनन्दका भागी होता है। मैं शिवलिंगको प्रणाम करनेपर पंद्रह, उसे स्नान करानेपर बीस तथा उसकी विधिपूर्वक पूजा करनेपर सौ अपराधोंको क्षमा कर देता हूँ। कुमार! इस तीर्थमें पूर्वोक्त सम्पूर्ण फलोंकी प्राप्ति होगी। जो लोग कुमारेश्वर नामसे यहाँ मेरी पूजा करेंगे, वे पूर्वोक्त सम्पूर्ण फलोंके भागी होंगे। बेटा! जैसे काशीपुरीमें मैं विश्वनाथके रूपमें निवास करता हूँ, उसी प्रकार इस गुप्त क्षेत्रमें मैं कुमारेश्वर नाम धारण करके रहूँगा।

देवताओंके सामने ही भगवान् शंकरका यह वचन सुनकर कुमार कार्तिकेयको बड़ा विस्मय हुआ। वे भगवान् गिरिजापतिको नमस्कार करके उनकी स्तुति करने लगे—'जो सब प्रकारके रोग-शोकसे रहित हैं, उन कल्याणस्वरूप भगवान् शिवको नमस्कार है। जो सबके भीतर मनरूपसे निवास करते हैं, उन भगवान् शिवको नमस्कार है। सम्पूर्ण देवताओंसे पूजित भगवान् शंकरको नमस्कार है। भक्तजनोंपर निरन्तर कृपा करनेवाले आप भगवान् महेश्वरको नमस्कार है। सबकी उत्पत्तिके कारण भगवान् भवको नमस्कार है। भगवन्! आप भवके उद्भव (संसारके स्रष्टा) हैं, आपको नमस्कार है। कामदेवका विध्वंस करनेवाले आपको नमस्कार है। आप गूढ़ भावसे महान् व्रतका पालन करनेवाले हैं, आपको नमस्कार है। आप मायारूपी गहन वनके आश्रय हैं, अथवा सबको आश्रय देनेवाला आपका स्वरूप योगमायासमावृत होनेके कारण दुर्बोध है, आपको नमस्कार है। प्रलयकालमें जगत्का संहार करनेवाले 'शर्व' नामधारी आपको नमस्कार है। शिवरूप आपको नमस्कार है। आप पुरातन सिद्धरूप हैं, आपको नमस्कार है। कालरूप आपको नमस्कार है। आप सबकी कलना (गणना) करनेवाले होनेके कारण 'कल' नामसे प्रसिद्ध हैं। आपको नमस्कार है। आप कालकी कलाका अतिक्रमण करके उससे बहुत दूर रहते हैं, आपको नमस्कार है। आप स्वाभाविक ऐश्वर्यसे सम्पन्न हैं, आपको नमस्कार है। आप अप्रमेय महिमावाले वृषभ तथा महासमृद्धिसे सम्पन्न हैं, आपको नमस्कार है। आप सबको शरण देनेवाले हैं, आपको नमस्कार है। आप ही निर्गुण ब्रह्म हैं, आपको नमस्कार है। आपके अनुगामी सेवक भयानक गुणसम्पन्न हैं, आपको नमस्कार है। नाना भुवनोंपर अधिकार रखनेवाले आपको नमस्कार है। भक्तोंको मनोवांछित फल प्रदान करनेवाले आपको नमस्कार है। भगवन्! आप ही कर्मोंका फल देनेवाले हैं, आपको नमस्कार है। आप ही सबका धारण-पोषण करनेवाले धाता तथा उत्तम कर्ता हैं। आपको सर्वदा नमस्कार है। आपके अनन्त रूप हैं, आपका कोप सबके लिये असह्य है। आपको सदैव नमस्कार है। आपके स्वरूपका कोई माप नहीं हो सकता, आपको नमस्कार है। वृषभेन्द्रको अपना वाहन बनानेवाले आप भगवान् महेश्वरको नमस्कार है। आप सुप्रसिद्ध महौषधरूप हैं, आपको नमस्कार है। समस्त व्याधियोंका विनाश करनेवाले आपको नमस्कार है। आप चराचरस्वरूप, सबको विचार देनेवाले, कुमारनाथके नामसे प्रसिद्ध तथा परम कल्याणस्वरूप हैं, आपको नमस्कार है। प्रभो! आप मेरे स्वामी हैं, सम्पूर्ण भूतोंके ईश्वर एवं महेश्वर हैं। आप ही समस्त भोगोंके अधिपति हैं। वाणी, बल और बुद्धिके अधिपति भी आप ही हैं। आप ही क्रोध और मोहपर शासन करनेवाले हैं। पर और अपर (कारण और कार्य)-के स्वामी भी आप ही हैं। सबकी हृदयगुहामें निवास करनेवाले परमेश्वर

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

तथा मुक्तिके अधीश्वर भी आप ही हैं, आपको नमस्कार है।'

पार्वतीनन्दन स्कन्दने सबको वर देनेवाले शूलपाणि भगवान् उमापतिकी इस प्रकार स्तुति करके उनके चरणोंमें मस्तक झुकाया और **'नमो नमः'**का उच्चारण किया।*

इस प्रकार भक्तिभावसे भरे हुए अपनेयोग्य स्तवन सुनकर शिवजी बहुत सन्तुष्ट हुए और पुत्र कार्तिकेयका उन्होंने चिरकालतक अभिनन्दन करके कहा—'बेटा! मेरे भक्तके वध करनेका जो दुःख तुम्हारे मनमें हुआ है, उसका विचार तुमको नहीं करना चाहिये। अपने इस कर्मसे तुम मुनियोंके लिये भी स्पृहणीय बन गये हो। जो लोग सायंकाल और सबेरे पूर्ण भक्तिपूर्वक तुम्हारे द्वारा की हुई इस स्तुतिसे मेरा स्तवन करेंगे, उनको जो फल प्राप्त होगा, उसका वर्णन करता हूँ, सुनो—उन्हें कोई रोग नहीं होगा, दरिद्रता भी नहीं होगी तथा प्रियजनोंसे कभी वियोग भी न होगा। वे इस संसारमें दुर्लभ भोगोंका उपभोग करके मेरे परम धामको प्राप्त होंगे। इतना ही नहीं, मैं उन्हें और भी परम दुर्लभ वर प्रदान करूँगा। बेटा! मैं तुम्हारी भक्तिसे बहुत प्रसन्न हूँ और तुम्हारी प्रसन्नताके लिये सब कुछ करूँगा। जो मनुष्य वैशाखमासकी पूर्णिमाको महीसागरके तटपर मेरी स्तुति करेंगे, उनका वह सब दान, पूजन अक्षय होगा। जो मानव वैशाखकी पूर्णिमाको यहाँके सरोवरमें स्नान करेंगे, उन्हें सब तीर्थोंके स्नानजनित फलकी प्राप्ति होगी। कार्तिकेय! जब कभी अनावृष्टि हो, नाना प्रकारके उत्तम कलशोंद्वारा विधिपूर्वक गन्धयुक्त जलसे मुझे एक, तीन, पाँच अथवा सात राततक स्नान करावे और मेरे सर्वांगमें कुंकुमका लेप करे, फिर दो वस्त्र धारण कराकर लाल कनेरके पुष्पोंसे तथा जवाके पुष्पोंसे और फूलकी मालाओंसे मेरा पूजन करे। पूजनके पश्चात् उत्तम व्रतका पालन करनेवाले तपस्वी ब्राह्मणोंको भोजन करावे। मेरी प्रसन्नताके लिये एक लाख आहुति हवन करे, ग्रहादिकी शान्तिके लिये भी हवन करे। तदनन्तर भूमिदान करके गौके लिये दैनिक ग्रास (अथवा एक दिनके खानेके लिये पर्याप्त चारा, दाना आदि) दे। तत्पश्चात् मंगलमय शान्तिपाठ एवं रुद्रका जप करावे। इसी विधानसे उत्तम ब्राह्मणोंद्वारा अनुष्ठान करानेपर जल-शून्य बादल भी उस समय अवश्य वर्षा करते हैं। भाँति-भाँतिके धान्यों तथा हरी-हरी घासोंसे वसुधा परिपूर्ण हो जाती है। मनुष्यों और पशुओंमें कोई रोग नहीं रह जाता। इस अनुष्ठानके प्रभावसे राजा धर्मपरायण होता है। शत्रुमण्डलीसे वह कभी पीड़ित नहीं होता। जो मनुष्य यहाँ भक्तियुक्त होकर मुझे घृतसे स्नान कराता है, उसे कन्यादानका फल होता है। जो दूध अथवा पंचामृतसे मुझे स्नान कराता है, उसे अग्निष्टोम यज्ञका फल प्राप्त होता है। जो कुमारेश्वर तीर्थमें मृत्युको प्राप्त होता है,

---

* नमः शिवायास्तु निरामयाय नमः शिवायास्तु मनोमयाय । नमः शिवायास्तु सुरार्चिताय तुभ्यं सदा भक्तकृपापराय॥
नमो भवायास्तु भवोद्भवाय नमोऽस्तु ते ध्वस्तमनोभवाय । नमोऽस्तु ते गूढमहाव्रताय नमोऽस्तु मायागहनाश्रयाय॥
नमोऽस्तु शर्वाय नमः शिवाय नमोऽस्तु सिद्धाय पुरातनाय । नमोऽस्तु कालाय नमः कलाय नमोऽस्तु ते कालकलातिगाय॥
नमो निसर्गात्मकभूतिकाय नमोऽस्त्वमेयोक्षमहर्द्धिकाय । नमः शरण्याय नमोऽगुणाय नमोऽस्तु ते भीमगुणानुगाय॥
नमोऽस्तु नाना भुवनाधिकर्त्रे नमोऽस्तु भक्ताभिमतप्रदात्रे । नमोऽस्तु कर्मप्रसवाय धात्रे नमः सदा ते भगवन्सुकर्त्रे॥
अनन्तरूपाय सदैव तुभ्यमसह्यकोपाय सदैव तुभ्यम् । अमेयमानाय नमोऽस्तु तुभ्यं वृषेन्द्रयानाय नमोऽस्तु तुभ्यम्॥
नमः प्रसिद्धाय महौषधाय नमोऽस्तु ते व्याधिगणापहाय । चराचरायाथ विचारदाय कुमारनाथाय नमः शिवाय॥
ममेश भूतेश महेश्वरोऽसि कामेश वागीश बलेश धीश । क्रोधेश मोहेश परापरेश नमोऽस्तु मोक्षेश गुहाशयेश॥
(स्क० पु०, मा० कुमा० २७। ४०—४७)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

वह महाप्रलयकालतक मेरे लोकमें निवास करता है। अयनारम्भके दिन, विषुव योगमें (जब कि दिन और रात बराबर होते हैं), चन्द्रमा और सूर्यके ग्रहणकालमें, पूर्णिमा तथा अमावास्या तिथिको, संक्रान्तिके समय तथा वैधृति योगमें जो मनुष्य महीसागरसंगममें स्नान करके भक्तिपूर्वक कुमारेश्वरका पूजन करता है, उसके पुण्यफलका वर्णन सुनो—पृथ्वीके सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नान करनेका जो महान् फल है तथा सम्पूर्ण शिवलिंगोंके पूजनका जो सर्वश्रेष्ठ फल है, वह सब उसे प्राप्त होता है। कुमारेश्वरकी सेवासे मनुष्यको निश्चितरूपसे आरोग्य, पुत्र, धन तथा उत्तम सुखकी प्राप्ति होती है। जो तपस्वी इस तीर्थमें ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए, पवित्रतापूर्वक निवास करता है, वह सर्वश्रेष्ठ पाशुपत योगको प्राप्त करके मुझमें लीन हो जाता है। बेटा! यहाँ तुम्हारे द्वारा स्थापित किये हुए शिवलिंगको तुम्हारी प्रसन्नताकी वृद्धिके लिये मैंने ये वरदान दिये हैं।

स्कन्दने कहा—महेश्वर! आपके दिये हुए ये वरदान पाकर मैं कृतकृत्य हो गया। आपको नमस्कार है, नमस्कार है, नमस्कार है। प्रभो! आप कभी इस स्थानका त्याग न करें।

देवेश्वर भगवान् शिवसे प्रणामपूर्वक यह प्रार्थना करनेके पश्चात् स्कन्दने माता पार्वतीके चरणोंमें मस्तक झुकाकर कहा—'माँ! मेरा प्रिय करनेकी अभिलाषासे तुम्हें भी इस स्थानका कभी त्याग न करना चाहिये।'

पार्वती बोलीं—बेटा! जहाँ भगवान् शंकर विराजमान होते हैं, वहाँ तो मैं स्वभावसे ही निवास करती हूँ। षडानन! यहाँ स्त्रियोंद्वारा मेरी आराधना होनेपर मैं उन्हें सौभाग्य, उत्तम पति तथा अनेक पुत्र प्रदान करूँगी। चैत्रमासकी तृतीयाको शीतल जलसे स्नान करके जो नारी फूल, चन्दन, धूप आदिसे मेरी पूजा करेगी और भक्तिपूर्वक मुझे आठ सौभाग्यसूचक वस्तुएँ अर्पण करेगी, उसे मैं पिता, माता, सास, श्वशुर, पति, पुत्र, सौभाग्य तथा सम्पत्ति—ये आठ वस्तुएँ प्रदान करूँगी। कुंकुम, पुष्प, चन्दन, ताम्बूल, काजल, ईख, लवण और जीरा—ये आठ सौभाग्यसूचक वस्तुएँ हैं। इन सब वस्तुओंको तराजूके पलड़ेपर रखकर उनसे अपनेको तोले तथा वह स्त्री अपने पैरसहित सम्पूर्ण अंगोंके साथ तुल जाय और उन वस्तुओंका मेरी प्रीतिके लिये दान कर दे। तत्पश्चात् वह बिना नमकका भोजन करे। ऐसा करनेवाली स्त्री संसारमें कभी विधवा नहीं होती—सदा सौभाग्यवती बनी रहती है। जो स्त्री माघ, कार्तिक अथवा चैत्रमें यहाँ स्नान करके मेरी पूजा करेगी, उसे दुःख, दरिद्रता और दुर्भाग्यका संयोग कभी नहीं होगा।

गिरिराजनन्दिनी पार्वतीकी यह बात सुनकर उनके पुत्र स्कन्दको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने माता पार्वतीकी स्थापना करके अपने भाई गणेशजीसे कहा—'विनायक! जो लोग पुष्प, धूप और मोदकसे पहले तुम्हारी पूजा करके फिर कुमारेश्वरका पूजन करते हैं, उनके सभी विघ्नोंका तुम निवारण करो।'

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

गणेशजी बोले—भैया! तुम्हारे द्वारा स्थापित इस शिवलिंगके प्रति जो लोग भक्ति रखते हैं, उन्हें मेरी तथा मेरे अनुगामियोंकी ओरसे कोई भी विघ्न नहीं होगा।

विघ्नराज गणेशके प्रसन्नतापूर्वक ऐसा कहनेपर कुमारने उनकी भी स्थापना की। इसलिये वहाँ सर्वदा ही विशेषतः चतुर्थी तिथिको गणेशजीका पूजन अवश्य करना चाहिये। इस प्रकार भगवान् कुमारेश्वरकी स्थापना करके भगवान् शिवसे ये वरदान पाकर प्रसन्न हुए कार्तिकेयने अपनेको कृतकृत्य माना तथा वे भगवान् कुमारेश्वरके समीप स्वयं भी अंशतः निवास करने लगे। स्वामिकार्तिकेयकी यात्रा करनेवाले जो लोग इस तीर्थमें निवास करनेवाले भगवान् शंकरका दर्शन करते हैं, उनकी वह यात्रा सफल होती है। विशेषतः कार्तिककी पूर्णिमाको कार्तिकेयजीका पूजन करे। ऐसा करनेसे स्कन्द स्वामीकी यात्राका जो फल है, वह पूर्णरूपेण प्राप्त होता है। कार्तिकेयके एक सौ आठ नामोंका ब्रह्मचर्यपालनपूर्वक पवित्र भावसे एक मासतक जप करनेपर मनुष्य सब संकटोंसे छुटकारा पा जाता है।* अर्जुन! यह महीसागरसंगम तीर्थ ऐसी ही महिमावाला है।

---

* श्रीविश्वामित्रजीने कुमार कार्तिकेयजीकी स्तुति करते हुए उनके १०८ नाम इस प्रकार बतलाये हैं—

'भगवन्! आप (१) ब्रह्मवादी (वेदोंके वक्ता एवं परब्रह्म परमात्माके तत्त्वका प्रतिपादन करनेवाले) हैं, आप ही (२) ब्रह्मा हैं, आप ही (३) ब्रह्म, (४) ब्राह्मणवत्सल, (५) ब्रह्मण्य (ब्राह्मणभक्त), (६) ब्रह्मदेव, (७) ब्रह्मद (ब्रह्मज्ञानको देनेवाले) तथा (८) ब्रह्मसंग्रह (वेदार्थोंके संग्रही और केवल परब्रह्म परमात्माको ही सम्यक्‌रूपसे ग्रहण करनेवाले) हैं। आप (९) सर्वोत्कृष्ट, परमतेज, (१०) मंगलमंगल (मंगलोंके भी मंगल), (११) अप्रमेयगुण (असंख्य गुणवाले) और (१२) मन्त्रमन्त्रग (मन्त्रोंके सारभूत मन्त्रमें भी गति रखनेवाले) हैं। आप ही (१३) देव! आप ही सावित्रीमय हैं। आप (१४) सर्वत्र अपराजित (अजेय), (१५) मन्त्र, शर्वात्मक मन्त्र, (१६) देव (दिव्यप्रकाशमय) तथा (१७) षडक्षरवतां वरः (छः अक्षरवाले मन्त्र 'ॐ नमः शिवाय' का जप करनेवालोंमें सर्वश्रेष्ठ) हैं। आप (१८) गवाम्पुत्र (गौ अर्थात् जलस्वरूपा गंगाके पुत्र), (१९) सुरारिघ्न (देवशत्रुओंका नाश करनेवाले), (२०) सम्भव (असम्भवको भी सम्भव कर दिखानेवाले), (२१) भवभावन (ब्रह्मारूपसे संसारकी सृष्टि करनेवाले), (२२) पिनाकी (शंकररूपसे पिनाक नामक धनुष धारण करनेवाले), (२३) शत्रुहा (शत्रुनाशक), (२४) श्वेत (श्वेत पर्वतरूप), (२५) गूढ (एकान्तस्थानमें जन्म ग्रहण करनेवाले अथवा छिपी हुई शक्ति और महिमावाले), (२६) स्कन्द (उछलकर चलनेवाले), (२७) सुराग्रणी (देवताओंके अगुआ), (२८) द्वादश (बारह नेत्र और कान आदि धारण करनेवाले), (२९) भू (मण्डलस्वरूप), (३०) भुवः (अन्तरिक्ष लोकस्वरूप), (३१) भावी (सबको उत्पन्न करनेवाले अथवा भवितव्यतारूप), (३२) भुवःपुत्र (पृथ्वीपर रखे हुए भगवान् शंकरके वीर्यसे उत्पन्न होनेके कारण पृथ्वीके पुत्ररूपसे प्रसिद्ध) (३३) नमस्कृत (सबके द्वारा अभिवन्दित), (३४) नागराज (नागोंके स्वामी), (३५) सुधर्मात्मा, (३६) नाकपृष्ठ (स्वर्गके संरक्षक होनेके कारण उसकी आधारभूमि), (३७) सनातन (सदा रहनेवाले), (३८) हेमगर्भ (स्वर्णके समान कान्तिवाले तेजोमय वीर्यसे उत्पन्न), (३९) महागर्भ (अनेक माताओंके गर्भमें वास करनेवाले), (४०) जय (युद्धमें जय पानेवाले) तथा (४१) विजयेश्वर (विजयके स्वामी) हैं। आप ही (४२) कर्ता, (४३) विधाता (धारण-पोषण करनेवाले), (४४) नित्य (अविनाशी), (४५) नित्यारिमर्दन (सदा शत्रुओंका संहार करनेवाले), (४६) महासेन (विशाल सेनाके अधिपति), (४७) महातेजा (परम तेजस्वी), (४८) वीरसेन (पराक्रमी सैनिकोंके अधिनायक), (४९) चमूपति (सेनापति), (५०) शूरसेन (शौर्यशालिनी सेनाके संचालक), (५१) सुराध्यक्ष (देवताओंके सेनानायक), (५२) भीमसेन (भयंकर सेनावाले), (५३) निरामय (रोगरहित), (५४) शौरि (शौर्यसम्पन्न भगवान् शंकरके पुत्र), (५५) पटु (कुशल एवं समर्थ), (५६) महातेजा (महाप्रतापी), (५७) वीर्यवान् (बल और पराक्रमसे सम्पन्न), (५८) सत्यविक्रम (सत्यपराक्रमी), (५९) तेजोगर्भ (अग्निपुत्र अथवा तेजोमय वीर्यसे प्रादुर्भूत), (६०) असुररिपु (असुरोंके शत्रु), (६१) सुरमूर्ति (देवस्वरूप), (६२) सुरोर्जित (देवताओंसे अधिक बलवान्), (६३) कृतज्ञ (उपकारको माननेवाले) (६४) वरद (वर देनेवाले), (६५) सत्य (सत्यवादी), (६६) शरण्य (शरणागतपालक), (६७) साधुवत्सल (साधु पुरुषोंपर स्नेह रखनेवाले), (६८) सुव्रत (उत्तम व्रतका पालन करनेवाले), (६९) सूर्यसङ्काश (सूर्यके समान तेजस्वी), (७०) वह्निगर्भ (अग्निके गर्भसे उत्पन्न), (७१) रणोत्सुक (युद्धके लिये उत्कण्ठित रहनेवाले), (७२) पिप्पली (पीपलका सेवन करनेवाले), (७३) शीघ्रग (तीव्र गतिसे चलनेवाले), (७४) रौद्रि (रुद्रपुत्र), (७५) गाङ्गेय (गंगापुत्र), (७६) रिपुदारण (शत्रुओंको विदीर्ण करनेवाले), (७७) कार्तिकेय (कृत्तिकापुत्र), (७८) प्रभु (समर्थ), (७९) क्षान्त (क्षमाशील),

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

इस प्रकार कुमारेश्वरका संक्षेपसे वर्णन किया गया, जो कुमारेश्वरके इस माहात्म्यका उनके आगे पाठ करता है तथा जो लोग इस माहात्म्यको सुनते और प्रसन्न होते हैं, वे सभी रुद्रलोकमें निवास करते हैं। जो श्राद्धकालमें इस लिंगके माहात्म्यका पाठ करता है, उसका किया हुआ श्राद्ध पितरोंको अक्षय तृप्ति प्रदान करनेवाला होता है। यदि कोई गर्भवती स्त्रीको इस शिवलिंगका माहात्म्य सुनावे, तो उसके गर्भसे गुणवान् पुत्र उत्पन्न होता है। और यदि कन्या हुई तो वह पतिव्रता होती है। यह प्रसंग परम पवित्र, पापहारक, धर्मानुकूल तथा अतिशय आनन्द प्रदान करनेवाला है। इसे पढ़ने और सुननेवाले मनुष्योंको यह समस्त मनोवांछित फल प्रदान करनेवाला है।

कुमारका विजयस्तम्भ, प्रलम्ब दानवका वध तथा भूगोलका वर्णन

नारदजी कहते हैं—कुमारके द्वारा कुमारेश्वरकी स्थापना हो जानेपर देवताओंने दोनों हाथ जोड़कर उन्हें प्रणाम किया और इस प्रकार कहा—'प्रभो! हम आपकी विजयकीर्ति प्रकाशित करनेके लिये जलमें एक उत्तम स्तम्भ डालेंगे और उसके आगे आप विश्वकर्माके द्वारा बनाये हुए तीसरे शिवलिंगकी स्थापना करें।' देवताओंके ऐसा कहनेपर महामना स्कन्दने 'तथास्तु' कहकर अनुमति दे दी। तब इन्द्र आदि देवताओंने प्रसन्न होकर सुवर्ण एवं उत्तम रत्नोंके बने हुए एक उत्तम स्तम्भको जलमें डालकर खड़ा किया। उस खम्भेके चारों ओर रत्नोंका चबूतरा बनवाया। उस समय आकाशसे फूलोंकी वर्षा हुई और देवताओंके बाजे बज उठे। उस स्तम्भका नाम रखा गया 'विश्वनन्दक'। उसका आरोपण हो जानेके पश्चात् उसीके पश्चिम भागमें भगवान् स्तम्भेश्वरकी स्थापना की गयी। स्तम्भेश्वरसे पश्चिमकी ओर महात्मा स्कन्दने अपनी शक्तिके अग्र भागसे एक कूपका निर्माण किया, जिसमें पातालगंगा प्रकट हुई हैं। अर्जुन! माघके कृष्णपक्षकी चतुर्दशी तिथिको जो मनुष्य उस कूपमें स्नान करके पितरोंका तर्पण करेगा, उसे निश्चय ही गया-श्राद्धसे होनेवाले पुण्यफलकी प्राप्ति होगी। तर्पणके पश्चात् गन्ध और पुष्पसे भगवान् स्तम्भेश्वरकी पूजा करनी चाहिये। ऐसा करनेवाला पुरुष वाजपेय यज्ञका फल प्राप्त करके भगवान् शिवके परमधाममें आनन्दका

(८०) नीलदंष्ट्र (नीले दाँतवाले), (८१) महामना (अत्यन्त उदार हृदयवाले), (८२) निग्रह (निरपराध लोगोंका दमन करनेकी दानवीय प्रथाको बलपूर्वक रोकनेवाले), (८३) नेता (सेनानायक) तथा आप ही, (८४) सुरनन्दन (देवताओंको आनन्दित करनेवाले), (८५) प्रग्रह (शत्रुओंको बलपूर्वक पकड़ लेनेवाले), (८६) परमानन्द, (८७) क्रोधघ्न (अपने भक्तोंके क्रोधका नाश करनेवाले), (८८) तार (उच्च स्वरसे गर्जना करनेवाले), (८९) उच्छ्रित (ऊँचे पदपर स्थित अथवा ऊँची कदवाले), (९०) कुक्कुटी (बालके लिये मोर अथवा पहाड़ी मुर्गी पालनेवाले), (९१) बहुली (बहुत साधनसामग्रीसे सम्पन्न), (९२) दिव्य (स्वर्गीय शोभा धारण करनेवाले), (९३) कामद (मनोरथ पूर्ण करनेवाले), (९४) भूरिवर्द्धन (अधिक वृद्धि प्रदान करनेवाले), (९५) अमोघ (कभी असफल न होनेवाले), (९६) अमृतद (अमृत प्रदान करनेवाले), (९७) अग्नि (अग्निस्वरूप), (९८) शत्रुघ्न (शत्रुनाशक), (९९) सर्वबोधन (सबको ज्ञान देनेवाले), (१००) अनघ (पापरहित), (१०१) अमर (अविनाशी), (१०२) श्रीमान् (शोभासम्पन्न), (१०३) उन्नत (उन्नतिशील), (१०४) अग्निसम्भव (अग्निसे उत्पन्न), (१०५) पिशाचराज (शिवके पिशाच आदि गणोंका आधिपत्य ग्रहण करनेवाले), (१०६) सूर्याभ (सूर्यके समान कान्तिमान्), (१०७) शिवात्मा (शिवस्वरूप) तथा आप ही (१०८) सनातन (नित्य) हैं। (स्क० पु०, मा० कुमा० २३। २२ से ३५)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

भागी होता है। जो पूर्णिमा और अमावास्याको महीसागरसंगममें श्राद्ध करके स्तम्भेश्वरका पूजन करता है, उसके पितर तृप्त होते हैं। तृप्त होकर उत्तम आशीर्वाद देते हैं तथा वह पुरुष सब पापोंका नाश करके भगवान् रुद्रके लोकमें प्रतिष्ठित होता है। यह बात स्वयं भगवान् शंकरने कार्तिकेयकी प्रशंसाके लिये पहले कही थी। इस प्रकार स्कन्दद्वारा स्थापित किये हुए चौथे उत्तम लिंगको सब देवताओंने प्रणाम किया और 'साधु साधु' कहकर उनके इस कार्यकी प्रशंसा की।

इस प्रकार भगवान् शंकरके पुत्र स्कन्दद्वारा पृथ्वीपर स्थापित किये हुए उन शिवलिंगोंका दर्शन करके विष्णु, ब्रह्मा और इन्द्र आदि देवता आपसमें इस प्रकार कहने लगे—'अहो! ये कुमार धन्य हैं, जिन्होंने परम दुर्लभ महीसागरसंगममें चार शिवलिंग स्थापित किये। हम लोग भी यहाँ आत्मशुद्धिके लिये, भगवान् शंकर और कुमार कार्तिकेयकी प्रसन्नताके लिये, सत्कर्मका अनुष्ठान करनेके लिये तथा अपने परम लाभके लिये शिवलिंगोंकी परम्परा स्थापित करें। ऐसी सलाह करके सबने भगवान् महेश्वरसे आज्ञा प्राप्त की। आज्ञा मिल जानेपर उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई और उन्होंने साक्षात् ब्रह्माजीके द्वारा बनाये हुए एक उत्तम शिवलिंगको एकान्त स्थानमें स्थापित किया। जिनका प्रयोजन सिद्ध हो चुका था, ऐसे ब्रह्मा आदि देवताओंने उस लिंगकी स्थापना की थी, इसलिये उसका नाम 'सिद्धेश्वर' रखा गया। फिर सब देवताओंने मिलकर वहाँ एक उत्तम सरोवर खोदा और उन महात्माओंने समस्त तीर्थोंके उत्तम जलसे उस जलाशयको भर दिया। इसी समय पातालसे शेषनागके पुत्र कुमुदने आकर शेष आदि सर्पगणोंसे कहा—'तारकासुरके साथ जब युद्ध हो रहा था, उस समय प्रलम्ब नामक दानव कुमारके भयसे भागकर पातालमें जा घुसा था। वह इस समय आपलोगोंके धन, पुत्र, पत्नी, कन्या और गृहोंका विध्वंस कर रहा है।'

यह सुनकर कुमार कार्तिकेयने शक्ति हाथमें ली और 'प्रलम्ब नामक दैत्य मारा जाय' ऐसा संकल्प करके उसे पातालकी ओर छोड़ दिया। स्कन्दके हाथसे छूटी हुई वह शक्ति पृथ्वीको चीरकर बड़े वेगसे पातालमें जा पहुँची और दस करोड़ दैत्योंसे युक्त प्रलम्बको भस्म करके जलकी लहरोंके साथ पुनः लौट आयी। शक्तिने पातालको जाते समय जो बिल बना दिया, उस मार्गसे पातालगंगाका पापहारी जल आकर वहाँ पूर्ण हो गया। स्कन्दने उसका नाम 'सिद्धकूप' रखा। जो मनुष्य उपवासपूर्वक कृष्णपक्षकी अष्टमी और चतुर्दशीको सिद्धकूपमें स्नान करता और अनन्य भावसे भगवान् सिद्धेश्वरका पूजन करता है, उसका अनेक जन्मोंका पाप भाग जाता है। जो सिद्धकुण्डमें श्रद्धापूर्वक स्नान करता है, वह सब पापोंसे मुक्त होकर भगवान् शंकरकी भक्तिके योग्य हो जाता है।

उस तीर्थमें अक्षयवट भी है, उसके ऊपर सन्तुष्ट हो भगवान् शंकरने यों वरदान दिया—'यह वटवृक्ष प्रयागके अक्षय वटके समान है। जो यहाँ श्राद्ध करता है, उसके पिण्ड देनेसे सब पितरोंको अक्षय दान प्राप्त होता है।'

तदनन्तर ब्रह्मा आदि देवताओंने स्कन्दके साथ जाकर महाशक्ति भगवती सिद्धाम्बिकासे प्रार्थना की—'देवि! तुम यहीं रहकर इस क्षेत्रकी दुष्ट जीवोंसे रक्षा करो। शुभे! अष्टमी और चतुर्दशीको जो लोग तुम्हारी पूजा करते हैं, उनकी सब प्रकारकी आपत्तियोंसे तुम्हें रक्षा करनी चाहिये।' उनके इस प्रकार कहनेपर सिद्धाम्बिकाने 'तथास्तु' कहकर उनकी प्रार्थना स्वीकार की। तत्पश्चात् सिद्धेश्वर लिंगसे उत्तर भागमें देवताओंने भगवती सिद्धाम्बाको स्थापित किया। उस तीर्थमें भी देवसमूहने सिद्धेश्वर क्षेत्रकी रक्षाके लिये क्षेत्रपतिके रूपमें चतुःषष्ठि महेश्वरकी स्थापना की। उसके बाद उन्होंने सिद्धिके लिये वहाँ शिवजीके पुत्र गणेशकी

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

सिद्धिविनायकके नामसे स्थापना की। जो लोग प्रत्येक कार्यके आरम्भमें सदा उनकी पूजा करते हैं, उन सबको ये प्रबल विघ्नराज सिद्धि प्रदान करते हैं। इस प्रकार उस तीर्थके सिद्धसप्तककी जो लोग सदा पूजा, दर्शन और स्मरण करते हैं, वे सब दोषोंसे मुक्त हो जाते हैं। सिद्धेश्वर, सिद्ध-वट, सिद्धाम्बिका, सिद्धविनायक, सिद्धेश क्षेत्राधिपति, सिद्धसर तथा सिद्धकूप—ये सात सिद्धसप्तक कहलाते हैं।

सिद्धेशके सम्बन्धमें देवताओंने भी ये गाथा गायी है—'जो मनुष्य सिद्धलिंगका पूजन करेगा, उसके द्वारा हम सब देवता यज्ञ, जप, स्तोत्र और तपस्याद्वारा सन्तुष्ट किये हुएके समान हो जायँगे।'

यों कहकर वे सब देवता बड़े हर्षको प्राप्त हो स्कन्दके साथ उस क्षेत्रसे चले गये। स्कन्दने मारुतस्कन्ध नामसे प्रसिद्ध सप्तमस्कन्धको प्रस्थान किया। अर्जुन! इस प्रकार मैंने तुमसे महीसागरसंगम तीर्थके पाँच लिंगोंका वृत्तान्त कह सुनाया।

कुन्तीनन्दन! सृष्टिके पहले यहाँ सब कुछ अव्यक्त एवं प्रकाशशून्य था। उस अव्याकृत अवस्थामें प्रकृति और पुरुष—ये दो अजन्मा (जन्मरहित) एक-दूसरेसे मिलकर एक हुए, यह हम सुना करते हैं। तत्पश्चात् अपने स्वरूपभूत स्वभाव और कालकी प्रेरणा होनेपर पुरुषके ईक्षण (सृष्टिविषयक संकल्प) से क्षोभको प्राप्त हुई, प्रकृतिसे महत्तत्त्वकी उत्पत्ति हुई। फिर महत्तत्त्वमें विकार आनेपर अहङ्कार प्रकट हुआ। मुनियोंने उस अहंकारको सात्त्विक, राजस और तामसभेदसे तीन प्रकारका बतलाया है। तामस अहंकारसे पाँच तन्मात्राएँ उत्पन्न हुईं तथा उन तन्मात्राओंसे पाँच महाभूतोंकी उत्पत्ति हुई और रूप-रसादि पाँच विषय पाँच महाभूतोंके कार्य हैं। तैजस अर्थात् राजस अहंकारसे पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और पाँच कर्मेन्द्रियाँ उत्पन्न हुईं। पूर्वोक्त दस इन्द्रियोंके देवता तथा ग्यारहवीं इन्द्रिय मन सात्त्विक अहंकारसे उत्पन्न हुए हैं, ऐसा विद्वान् पुरुषोंका मत है। ये ही चौबीस तत्त्व पूर्वकालमें उत्पन्न हुए, फिर परम पुरुष भगवान् सदाशिवकी दृष्टि पड़नेपर ये सभी तत्त्व बुलबुलेके आकारमें परिणत हो गये; उस बुलबुलेसे सुन्दर अण्ड उत्पन्न हुआ, जिसका परिमाण सौ कोटि योजन है। इसीको ब्रह्माण्ड कहते हैं।

ब्रह्माण्डके आत्मा ब्रह्माजी बताये गये हैं, उन्होंने इसके तीन विभाग किये—ऊर्ध्वभाग, मध्यभाग और अधोभाग। ऊर्ध्वभाग स्वर्ग है, उसमें देवता निवास करते हैं। मध्यभाग भूलोक है, इसमें मनुष्य रहते हैं। अधोभागको पाताल कहते हैं, उसमें नाग और दैत्य निवास करते हैं। ये ही ब्रह्माण्डके तीन विभाग किये गये हैं। इनमेंसे एक-एक विभागके पुनः सात-सात भाग ब्रह्माजीने किये हैं। जो सात पाताल, सात द्वीप और सात स्वर्गलोकके रूपमें प्रसिद्ध हैं।

पहले मैं सात द्वीपोंका वर्णन करूँगा। उनकी कल्पना सुनो—पृथ्वीके मध्यमें जम्बूद्वीप है; इसका विस्तार एक लाख योजनका बतलाया जाता है। जम्बूद्वीपकी आकृति सूर्यमण्डलके समान है। वह उतने ही बड़े खारे पानीके समुद्रसे घिरा हुआ है।* जम्बूद्वीप और क्षारसमुद्रके बाद शाकद्वीप है, जिसका विस्तार जम्बूद्वीपसे दुगुना है। वह अपने ही बराबर प्रमाणवाले क्षीरसमुद्रसे, उसके बाद उससे दुगुना बड़ा पुष्करद्वीप है, जो दैत्योंको मदोन्मत्त कर देनेवाले उतने ही बड़े सुरासमुद्रसे घिरा हुआ है। उससे परे कुशद्वीपकी स्थिति मानी

* भागवत आदि अन्य पुराणोंके अनुसार द्वीपोंका क्रम इस प्रकार है—जम्बू, प्लक्ष, शाल्मलि, कुश, क्रौंच, शाक और पुष्कर। परंतु स्कन्दपुराणके कुमारिकाखण्डमें क्रमभेद प्राप्त होता है। इसमें यहाँ तो जम्बू शाक, पुष्कर, कुश, क्रौंच, शाल्मलि तथा गोमेद (प्लक्ष) इस क्रमसे उल्लेख हुआ है, परंतु जहाँ इन द्वीपोंका विशेष वर्णन है, वहाँ पुष्करको सबके अन्तमें तथा प्लक्षद्वीपके बाद रखा है। मूलमें जैसा पाठ है, वैसा ही अर्थमें भी रखा गया है।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

गयी है, जो अपनेसे पहले द्वीपकी अपेक्षा दुगुने विस्तारवाला है। कुशद्वीपको उतने ही बड़े विस्तारवाले दहीके समुद्रने घेर रखा है। उसके बाद क्रौंच नामक द्वीप है; जिसका विस्तार कुशद्वीपसे दूना है। वह अपने ही समान विस्तारवाले घीके समुद्रसे घिरा है। इसके बाद इसके दूने विस्तारवाला शाल्मलि द्वीप है; जो उतने ही बड़े ईखके रसके समुद्रसे घिरा है। उसके बाद उससे दुगुने विस्तारवाला गोमेद (प्लक्ष) नामक द्वीप है; जिसे उतने ही बड़े अत्यन्त रमणीय स्वादिष्ट जलके समुद्रने घेर रखा है। अर्जुन! इस प्रकार सात द्वीप और समुद्रोंसहित पृथ्वीका विस्तार दो करोड़, पचास लाख, तिरपन हजार योजन है। शुक्ल और कृष्णपक्षमें समुद्रके जलकी पाँच सौ दस अंगुलकी वृद्धि और क्षय देखे गये हैं। उसके बाद दस करोड़ योजनतक सुवर्णमयी भूमि है; वह देवताओंकी क्रीडास्थली है। उसके बाद कंकणके समान गोल आकारवाला लोकालोकपर्वत है, जिसका विस्तार दस हजार योजन है। उस पर्वतके बाह्य भागमें भयंकर अन्धकार है, जिसकी ओर देखना भी कठिन है। वहाँ कोई जीव-जन्तु नहीं रहते। वह अन्धकारपूर्ण प्रदेश पैंतीस करोड़, उन्नीस लाख, चालीस हजार योजनतक फैला हुआ है। उसके बाद गर्भोदक सागर है, जिसका विस्तार सात समुद्रोंके बराबर है। उसके बाद एक करोड़ योजन विस्तृत कड़ाह है, जो ब्रह्माजीके अण्डकटाहसे ढका हुआ है। ब्रह्माण्डके मध्यमें मेरुपर्वत है, उसकी दसों दिशाओंमें पचास-पचास करोड़ योजनतक ब्रह्माण्डका विस्तार जानना चाहिये। जम्बूद्वीपके मध्यभागमें मेरुपर्वत है, वह नीचेसे ऊपरतक एक लाख योजन ऊँचा है। सोलह हजार योजन तो वह पृथ्वीके नीचेतक गया हुआ है और चौरासी हजार योजन पृथ्वीसे ऊपर उसकी ऊँचाई है। मेरुके शिखरका विस्तार बत्तीस हजार योजन है। उसकी आकृति प्यालेके समान है। वह पर्वत तीन शिखरोंसे युक्त है, उसके मध्यम शिखरपर ब्रह्माजीका निवास है, ईशान कोणमें जो शिखर है, उसपर शंकरजीका स्थान है तथा नैर्ऋत्य कोणवाले शिखरपर भगवान् विष्णुकी स्थिति है। मेरुके सुवर्णमय शिखरपर ब्रह्माजीका, रत्नमय शिखरपर शंकरजीका तथा रजतमय शिखरपर भगवान् विष्णुका अधिकार है।

मेरुपर्वतके चारों ओर चार विष्कम्भ पर्वत माने गये हैं। पूर्वमें मन्दराचल, दक्षिणमें गन्धमादन, पश्चिममें सुपार्श्व तथा उत्तरमें कुमुद नामक पर्वत है। मन्दराचल पर्वतपर कदम्बका विशाल वृक्ष है, जो विशेषरूपसे जाननेयोग्य है। इसी प्रकार गन्धमादन पर्वतपर जम्बू वृक्ष, सुपार्श्व पर्वतपर अश्वत्थ वृक्ष तथा कुमुद पर्वतपर वट वृक्षकी स्थिति मानी गयी है। ये चारों वृक्ष उन-उन पर्वतोंकी ध्वजाके समान हैं। इनका दीर्घ विस्तार ग्यारह-ग्यारह सौ योजन है। इनके चार वन हैं, जो पर्वतके शिखरपर ही स्थित हैं। पूर्वमें नन्दन वन, दक्षिणमें चैत्ररथ वन, पश्चिममें वैभ्राज वन तथा उत्तरमें सर्वतोभद्र नामक वन है। इन्हीं चार वनोंमें चार सरोवर भी हैं। पूर्वमें अरुणोद सरोवर, दक्षिणमें मान सरोवर, पश्चिममें शीतोद सरोवर तथा उत्तरमें महाह्रद नामक सरोवर है। ये विष्कम्भ पर्वत पचीस-पचीस हजार योजन ऊँचे हैं। इनकी चौड़ाई भी हजार-हजार योजन मानी गयी है। इनके सिवा वहाँ और भी बहुत-से केसरपर्वत * हैं। मेरुगिरिके दक्षिण दिशामें निषध, हेमकूट और हिमवान्—ये तीन मर्यादा पर्वत हैं। इनकी लंबाई एक लाख योजन और चौड़ाई दो हजार योजन है। मेरुके उत्तरमें भी तीन मर्यादा पर्वत हैं—नील, श्वेत और शृंगवान्। मेरुसे पूर्व माल्यवान् पर्वत है और मेरुके पश्चिम गन्धमादन पर्वत है। ये सभी पर्वत जम्बूद्वीपमें चारों ओर फैले हुए हैं। गन्धमादन पर्वतपर जो जम्बूका वृक्ष है, उसके

* जैसे कमलकी कर्णिकाके चारों ओर केसर होते हैं, वैसे मेरुके सब ओर दो पर्वत हैं। वे केसरके ही सदृश जान पड़ते हैं। अतः उन्हें केसरपर्वत कहा है।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

फल बड़े-बड़े हाथियोंके समान होते हैं। उस जम्बूके ही नामपर इस द्वीपको जम्बूद्वीप कहा गया है।

पूर्वकालमें स्वायम्भुव नामसे प्रसिद्ध एक मनु हो गये हैं; वे ही आदि मनु और प्रजापति कहे गये हैं। उनके दो पुत्र हुए, प्रियव्रत और उत्तानपाद। राजा उत्तानपादके पुत्र परम धर्मात्मा ध्रुवजी हुए, जिन्होंने भक्ति-भावसे भगवान् विष्णुकी आराधना करके अविनाशी पदको प्राप्त कर लिया। राजर्षि प्रियव्रतके दस पुत्र हुए, जिनमेंसे तीन तो संन्यास ग्रहण करके घरसे निकल गये और परब्रह्म परमात्माको प्राप्त हो गये। शेष सात द्वीपोंमें उन्होंने अपने सात पुत्रोंको प्रतिष्ठित किया। राजा प्रियव्रतके ज्येष्ठ पुत्र आग्नीध्र जम्बूद्वीपके अधिपति हुए। उनके नौ पुत्र जम्बूद्वीपके नौ खण्डोंके स्वामी माने गये हैं। वे नवों खण्ड आज भी उन्हींके नामसे विख्यात हैं। प्रत्येक खण्डका विस्तार एक हजार योजन है। मेरुके चारों ओर और गन्धमादन तथा माल्यवान्के बीचमें सुवर्णमयी भूमिसे सुशोभित भू-भाग है, उसे इलावृत वर्ष कहते हैं। माल्यवान् पर्वतसे लेकर समुद्रपर्यन्त भद्राश्व वर्ष कहलाता है। गन्धमादनसे समुद्रतककी भूमिको केतुमाल वर्ष कहा गया है। शृंगवान् पर्वतसे आरम्भ करके सागरतकके भूखण्डको कुरु वर्ष कहते हैं। शृंगवान् और श्वेत पर्वतके बीचका भाग हिरण्यमय वर्ष कहलाता है। नील और श्वेत पर्वतके बीचमें रम्यक् वर्ष है। निषध और हेमकूटके बीच हरिवर्षकी स्थिति है। हिमवान् और हेमकूटके मध्यका भूभाग किंपुरुष वर्ष माना गया है। हिमालयसे लेकर समुद्रतकके भूभागको नाभिखण्ड कहते हैं। नाभि और कुरु ये दोनों वर्ष धनुषकी-सी आकृतिवाले हैं। इनमें क्रमशः हिमवान् और शृंगवान् पर्वत प्रत्यंचाके स्थानपर स्थित बताये गये हैं। नाभिके पुत्र ऋषभ हुए और ऋषभसे 'भरत' का जन्म हुआ; जिनके नामपर इस देशको भारतवर्ष भी कहते हैं। अर्जुन! यहाँ धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—चारों पुरुषार्थोंका उपार्जन होता है। भारतवर्षके सिवा अन्य सब द्वीपों और वर्षोंमें केवल भोग-भूमि है।

शाकद्वीपमें एक हजार योजन विस्तृत शाक वृक्ष है। उसीके नामसे उस वर्षको शाकद्वीप कहा गया है। राजा प्रियव्रतके पुत्र मेधातिथि उस द्वीपके अधिपति हैं। उनके सात पुत्र हुए—पुरोजव, मनोजव, पवमान, धूम्रानीक, चित्ररेफ, बहुरूप तथा विश्वधार—ये उनके पुत्रोंके नाम हैं। इन्हीं नामोंसे प्रसिद्ध वहाँ सात खण्ड हैं। शाकद्वीपमें ऋतव्रत, सत्यव्रत, दानव्रत और अनुव्रत नामवाले चार वर्णोंके लोग हैं, जो वायुस्वरूप भगवान्के नामोंका जप करते हैं। जो अपनी प्राण आदि वृत्तियोंके द्वारा सम्पूर्ण भूतोंके भीतर प्रवेश करके उनका पालन-पोषण करते हैं तथा यह जगत् जिनके अधीन है, वे अन्तर्यामी ईश्वर साक्षात् वायुदेव हम सबकी रक्षा करें। कुशद्वीपमें एक हजार योजनतक कुशोंकी झाड़ी है। उसीके चिह्नसे चिह्नित होनेके कारण उसको कुशद्वीप कहते हैं। राजा प्रियव्रतके पुत्र हिरण्यरोमा उस द्वीपके स्वामी हैं; उनके वसु, वसुदान, दृढ़रुचि, नाभिगुप्त, स्तुत्यव्रत, विविक्त और वामदेव—इन सात पुत्रोंके नामसे प्रसिद्ध सात वर्ष कुशद्वीपमें हैं। वहाँके चार वर्णोंका नाम कुशल, कोविद, अभियुक्त और कुलक है। वे भगवान् अग्निदेवकी इस प्रकार स्तुति करते हैं—'हे अग्निदेव! आप जन्म ग्रहण करनेवाले सम्पूर्ण भूतोंको जानते हैं; इसलिये 'जातवेदा' हैं। साक्षात् परब्रह्म परमात्माके लिये आप हविष्य पहुँचाया करते हैं। सब देवता परम पुरुष भगवान्के ही अंग हैं। अतः उनके यजनद्वारा आप उन परम पुरुषका ही यजन करें।'

क्रौंचद्वीपमें क्रौंच नामक पर्वत है, जिसका विस्तार दस हजार योजन है। उसी पर्वतको स्वामिकार्तिकेयने विदीर्ण कर डाला था। उसके चिह्नसे चिह्नित होनेके कारण उस द्वीपका नाम क्रौंचद्वीप है। वहाँ प्रियव्रतके पुत्र महाराज धृतपृष्ठका अधिकार है। उनके सात पुत्र हुए—आम, मधुरुह,

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

मेघपृष्ठ, सुधामा, भ्राजिष्ठ, लोहितार्णव तथा वनस्पति। इन्हींके नामपर उस द्वीपके सात वर्ष हैं। वहाँ पुरुष, ऋषभ, द्रविण और देवक नामवाले चार वर्णोंके लोग रहते हैं और जलस्वरूप भगवान्‌की स्तुति करते हैं—'हे जल! तुम परम पुरुष परमात्माके रेतस् हो अथवा परमेश्वर ही तुम्हारी शक्ति हैं; तुम भूः, भुवः, स्वः तीनों लोकोंको पवित्र करते हो। अतः स्वभावसे ही पापनाशक हो। हम अपने शरीरसे तुम्हारा स्पर्श करते हैं, तुम हमें पवित्र कर दो।'

शाल्मलिद्वीपमें सेमलका एक बहुत बड़ा वृक्ष है, जिसपर गरुड़जी निवास करते हैं। उसका विस्तार एक हजार योजन है। वही वहाँका चिह्न है; इसलिये उसे शाल्मलिद्वीप कहते हैं। राजा प्रियव्रतके पुत्र यज्ञबाहु उसके अधिपति हैं। उनके सुरोचन, सौमनस्य, रमणक, देववर्हि, पारिभद्र, आप्यायन और अविज्ञात नामवाले सात पुत्र हैं, जिनके नामपर वहाँके सात वर्ष प्रसिद्ध हैं। उस द्वीपमें श्रुतधर, वीर्यधर, वसुन्धर और ईषन्धर नामवाले चार वर्णोंके लोग भगवान् सोमका यजन एवं स्तवन करते हैं। 'जो अपनी किरणोंसे कृष्ण और शुक्ल पक्षमें पितरों और देवताओंको अन्न वितरण करते हैं, वे भगवान् चन्द्रमा हम सब प्रजाओंके राजा हों।'

गोमेद या प्लक्षद्वीपमें गोमेद नामसे प्रसिद्ध एक पाकरिका वृक्ष है, जिसकी सुगन्धित छायासे विशेष सुख मिलनेके कारण लोगोंका मेदा बढ़ जाता है। अतः उससे उपलक्षित द्वीपको गोमेद द्वीप कहते हैं। वहाँ राजा प्रियव्रतके पुत्र इध्मजिह्व राजा हैं। उनके शिव, यवस, सुभद्र, शान्त, क्षेम, अमृत तथा अभय नामवाले सात पुत्र हैं, जिनके नामसे उस द्वीपके सात वर्ष प्रसिद्ध हुए हैं। वहाँ हंस, पतंग, ऊर्ध्वंचन और सत्यांग नामवाले चार वर्णोंके लोग रहते हैं जो भगवान् सूर्यकी आराधना करते हैं। जो पुराण-पुरुष भगवान् विष्णुके स्वरूप हैं, सत्य, ऋत, वेद, अमृत तथा मृत्युके भी आत्मा हैं, उन भगवान् सूर्यकी हम शरण लेते हैं।'

पुष्करद्वीपमें एक हजार योजनतक विस्तृत स्वर्णमय कमल देदीप्यमान होता है, जिसके लाखों स्वर्णमय दल शोभा पाते हैं। वही वहाँका चिह्न है। इसलिये उसे पुष्करद्वीप कहते हैं। राजा प्रियव्रतके पुत्र वीतिहोत्र वहाँके अधिपति हैं। उनके दो ही पुत्र हैं—रमणक और धातकि। इन्हींके नामसे उस द्वीपके दो खण्ड प्रसिद्ध हैं। इन दोनों खण्डोंके मध्य भागमें मानसोत्तर नामक पर्वत है; जिसकी आकृति कंगनके समान है। उसीके ऊपर भगवान् भास्कर भ्रमण करते हैं। वहाँ वर्ण-विभाग नहीं है। सब समान हैं और केवल ब्रह्माजीका चिन्तन करते रहते हैं। वे इस प्रकार प्रार्थना करते हैं—'जो सुप्रसिद्ध कर्मफलस्वरूप हैं, साक्षात् ब्रह्ममें ही जिनकी स्थिति है, सब लोग जिनका पूजन करते हैं तथा जो एकान्तनिष्ठ, अद्वितीय एवं परम शान्त हैं, उन भगवान् ब्रह्माको नमस्कार है।' पुष्करद्वीपके निवासियोंमें क्रोध और मात्सर्य नहीं होता। पुण्य और पापकी भी प्रवृत्ति नहीं होती। उनकी आयु दस हजार वर्षसे लेकर बीस हजार वर्षतककी होती है। वे लोग जप करते रहते हैं और देवताओंकी भाँति अपनी पत्नियोंके साथ विहार किया करते हैं। अर्जुन! अब मैं तुम्हें ऊपरके लोकोंकी स्थिति बतलाऊँगा।

नवग्रहोंकी स्थिति, ऊपरके सात लोकोंका वर्णन, वायुके सात स्कन्ध, सात पाताल, इक्कीस नरक, ब्रह्माण्डकटाह एवं काल-मान आदिका निरूपण

नारदजी कहते हैं—कुरुश्रेष्ठ! भूमिसे लाख योजन ऊपर सूर्यमण्डल है। भगवान् सूर्यके रथका विस्तार नौ सहस्र योजन है। उसका ईषादण्ड (हरसा) अट्ठारह हजार योजन बड़ा है। इसकी

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

धुरी डेढ़ करोड़, साढ़े सात लाख योजनकी है। उसीमें सूर्यके रथका पहिया लगा है। उस पहियेमें तीन नाभि, पाँच अरे और छः नेमि बताये गये हैं। सूर्यके रथका जो दूसरा धुरा है, उसका माप साढ़े पैंतालीस हजार योजन है। धुरेका जो प्रमाण है, वही दोनों युगार्द्धोंका भी है। उस रथका जो छोटा धुरा और युगार्द्ध है, वह ध्रुवके आधारपर स्थित है और दूसरे बायें धुरेमें जो पहिया लगा है, वह मानसोत्तर पर्वतपर स्थित है। वेदके जो सात छन्द हैं, वे ही सूर्यरथके सात अश्व हैं। उनके नाम सुनो— गायत्री, बृहती, उष्णिक्, जगती, त्रिष्टुप्, अनुष्टुप् और पङ्क्ति— ये छन्द ही सूर्यके घोड़े बताये गये हैं। सदा विद्यमान रहनेवाले सूर्यका न तो कभी अस्त होता और न उदय ही होता है। सूर्यका दिखायी देना ही उदय है और उनका दृष्टिसे ओझल हो जाना ही अस्त है।

इन्द्र, यम, वरुण और कुबेर— इनमेंसे किसी एककी पुरीमें प्रकाशित होते हुए सूर्यदेव शेष तीन पुरियों और दो विकोणों (कोनों)-को प्रकाशित करते हैं और जब किसी कोनकी दिशामें स्थित होते हैं तब वे शेष तीन कोनों और दो पुरियोंको प्रकाशित करते हैं। उत्तरायणके प्रारम्भमें सूर्य मकर राशिमें जाते हैं, उसके पश्चात् वे कुम्भ और मीन राशियोंमें एक राशिसे दूसरी राशिपर होते हुए जाते हैं। इन तीनों राशियोंको भोग लेनेपर सूर्यदेव दिन और रात दोनोंको बराबर करते हुए विषुवत् रेखापर पहुँचते हैं। उसके बादसे प्रतिदिन रात्रि घटने लगती है और दिन बढ़ने लगता है। फिर मेष तथा वृष राशिका अतिक्रमण करके मिथुनके अन्तमें उत्तरायणके अन्तिम सीमापर उपस्थित होते हैं और कर्क राशिपर पहुँचकर दक्षिणायनका आरम्भ करते हैं। जैसे कुम्हारके चाकके सिरे बैठा हुआ जीव बड़ी शीघ्रतासे घूमता है उसी प्रकार सूर्य भी दक्षिणायनको पार करनेमें शीघ्रतासे चलते हैं। वे वायुवेगसे चलते हुए अत्यन्त वेगवान् होनेके कारण बहुत दूरकी भूमि भी थोड़ेमें पार कर लेते हैं। कुलालचक्रके मध्यमें स्थित जीव जिस प्रकार मन्द गतिसे चलता है, उसी प्रकार उत्तरायणमें सूर्य मन्द गतिसे चलते हैं, अतः वे थोड़ी-सी भूमिको भी चिरकालमें पार करते हैं।

सन्ध्याकाल आनेपर मन्देह नामक राक्षस भगवान् सूर्यको खा जानेकी इच्छा करते हैं। उन राक्षसोंको प्रजापतिका यह शाप है कि उनका शरीर तो अक्षय रहेगा, परंतु मृत्यु प्रतिदिन होगी। अतः सन्ध्याकालमें उन राक्षसोंके साथ सूर्यका बड़ा भयानक युद्ध होता है। उस समय द्विजलोग गायत्री मन्त्रसे पवित्र किये जलका जो अर्घ्य देते हैं, उससे वे पापी राक्षस जल जाते हैं। इसलिये सदा सन्ध्योपासना करनी चाहिये। जो सन्ध्योपासना नहीं करते, वे कृतघ्न होनेके कारण रौरव नरकमें पड़ते हैं।

प्रत्येक मासमें भिन्न-भिन्न सूर्य, ऋषि, गन्धर्व, राक्षस, अप्सरा, यक्ष तथा सर्प— इन सातोंसे संयुक्त भगवान् सूर्यका रथ गमन करता है। धाता, अर्यमा, मित्र, वरुण, विवस्वान्, इन्द्र, पूषा, सविता, भग, त्वष्टा तथा विष्णु ये बारह आदित्य, चैत्र आदि मासोंमें सूर्यमण्डलमें अधिकारी माने गये हैं।

सूर्यके स्थानसे लाख योजन दूर चन्द्रमाका मण्डल स्थित है, चन्द्रमाका भी रथ तीन पहियोंवाला बताया जाता है, उसमें बायीं और दाहिनी ओर कुन्दके समान श्वेत दस घोड़े जुते होते हैं। चन्द्रमासे पूरे एक लाख योजन ऊपर सम्पूर्ण नक्षत्रमण्डल प्रकाशित होता है। नक्षत्रोंकी संख्या अस्सी समुद्र चौदह अरब और बीस करोड़ बतायी गयी है। नक्षत्रमण्डलसे दो लाख योजन ऊपर बुधका स्थान है। चन्द्रनन्दन बुधका रथ वायु तथा अग्निद्रव्यसे बना हुआ है, उसमें वायुके समान वेगवाले आठ पीले रंगके घोड़े जुते रहते हैं। बुधसे भी दो लाख योजन ऊपर शुक्राचार्यका स्थान माना गया है, उनके रथमें भी आठ घोड़े जोते जाते हैं। शुक्रसे लाख योजन ऊपर मंगल हैं, इनका रथ सुवर्णके समान कान्तिवाले आठ घोड़ोंसे युक्त होता है। मंगलसे दो लाख योजन ऊपर

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

देवपुरोहित बृहस्पतिका स्थान माना जाता है, उनका रथ सुवर्णका बना हुआ है, उसमें श्वेत वर्णके आठ घोड़े जोते जाते हैं। बृहस्पतिसे दो लाख योजन ऊपर शनैश्चरका स्थान है। उनका रथ आकाशसे उत्पन्न हुए आठ चितकबरे घोड़ोंद्वारा जोता जाता है। राहुके रथमें भ्रमरके समान रंगवाले आठ घोड़े हैं, वे एक ही बार जोत दिये गये हैं और सदा उनके धूसर रथको खींचते रहते हैं। उनकी स्थिति सूर्यलोकके नीचे मानी गयी है। शनैश्चरसे एक लाख योजन ऊपर सप्तर्षियोंका मण्डल है और उनसे भी लाख योजन ऊपर ध्रुवकी स्थिति है। ध्रुव समस्त ज्योतिर्मण्डलके मेंह (केन्द्र) हैं। वे भी शिशुमारचक्रके पुच्छके अग्रभागमें स्थित हैं, जिन्हें भगवान् वासुदेवका सर्वोत्तम एवं अविनाशी भक्त कहते हैं। अर्जुन! यह सारा ज्योतिर्मण्डल वायुरूपी डोरसे ध्रुवमें बँधा है। सूर्यमण्डलका विस्तार नौ हजार योजन है, उससे दूना चन्द्रमाका मण्डल बताया गया है। मण्डलाकार राहु इन दोनोंके बराबर होकर पृथ्वीकी निर्मल छाया ग्रहण करके उनके नीचे चलता है। शुक्राचार्यका मण्डल चन्द्रमाके सोलहवें भागके बराबर है। बृहस्पतिमण्डलका विस्तार शुक्राचार्यसे एक चौथाई कम है। इसी प्रकार मंगल, शनैश्चर और बुध—ये बृहस्पतिकी अपेक्षा भी एक चौथाई कम हैं। नक्षत्रमण्डलका परिमाण पाँच सौ, चार सौ, तीन सौ, दो सौ तथा एक सौसे लेकर कम-से-कम एक योजन, आध योजनतकका है, इससे छोटा कोई नक्षत्र नहीं है।

पृथ्वीपर स्थित सभी लोक, जहाँ पैदल जाया जा सकता है, भूलोक कहलाता है। भूमि और सूर्यके मध्यवर्ती लोकको भुवर्लोक कहते हैं। ध्रुव तथा सूर्यलोकके बीच जो चौदह लाख योजनका अवकाश है, उसे लोकस्थितिका विचार करनेवाले विज्ञ पुरुषोंने स्वर्गलोक कहा है। ध्रुवसे ऊपर एक करोड़ योजनतक महर्लोक बताया गया है। उससे ऊपर दो करोड़ योजनतक जनलोक है, जहाँ सनकादि निवास करते हैं। उससे ऊपर चार करोड़ योजनतक तपोलोक माना गया है, जहाँ वैराज नामवाले देवता सन्तापरहित होकर निवास करते हैं। तपोलोकसे ऊपर उसकी अपेक्षा छः गुने विस्तारवाला सत्यलोक विराजमान है, जहाँ ऐसे लोग निवास करते हैं, जिनकी पुनर्मृत्यु नहीं होती (अर्थात् जो वहीं ज्ञान प्राप्त करके ब्रह्माजीके साथ मुक्त हो जाते हैं। इस संसारमें उनकी पुनरावृत्ति नहीं होती)। सत्यलोक ही ब्रह्मलोक माना गया है। उसके ऊपर अठारह करोड़ पचीस लाख योजन परम कल्याणमय धाम प्रकाशित होता है; उसकी कहीं उपमा नहीं है, वह सर्वोपरि विराजमान है।

भूलोक, भुवर्लोक और स्वर्लोक—इन तीनोंको त्रैलोक्य कहते हैं। यह त्रैलोक्य कृतक (अनित्य) लोक है। जनलोक, तपोलोक तथा सत्यलोक—ये तीनों अकृतक (नित्य) लोक हैं। कृतक और अकृतक लोकोंके मध्यमें महर्लोककी स्थिति मानी गयी है। कल्पके अन्तमें जब महाप्रलय होता है, उस समय त्रिलोकी सर्वथा नष्ट हो जाती है; महर्लोक जनशून्य तो हो जाता है, परंतु उसका अत्यन्त विनाश नहीं होता। ये पुण्यकर्मोंद्वारा प्राप्त होनेवाले सात लोक बताये गये हैं; वेदादि शास्त्रोंमें कहे हुए यज्ञ, दान, जप, होम, तीर्थ और व्रतसमुदाय तथा अन्यान्य साधनोंसे पूर्वोक्त सातों लोक साध्य माने गये हैं। इन सबसे ऊपर ब्रह्माण्डके शीर्षभागसे शीतल कल्याणमयी जलधाराके रूपमें श्रीगंगाजी उतरती हैं और समस्त लोकोंको आप्लावित करके मेरुपर्वतपर आती हैं। वहाँसे क्रमशः सम्पूर्ण भूतल और पाताललोकमें प्रवेश करती हैं। ब्रह्माण्डके शिखरपर स्थित हुई गंगादेवी सदैव उसके द्वारपर निवास करती हैं। कोटि-कोटि देवियों तथा पिंगल नामक रुद्रसे घिरी हुई महान् बल और पराक्रमसे सम्पन्न श्रीगंगादेवी सदा ब्रह्माण्डकी रक्षा तथा दुष्टगणोंका संहार करती हैं।

अर्जुन! वायुकी सात शाखाएँ हैं, उनकी

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

स्थिति जिस प्रकार है, वह बतलाता हूँ सुनो,—पृथ्वीको लाँघकर मेघमण्डलपर्यन्त जो वायु स्थित है, उसका नाम 'प्रवह' है। वह अत्यन्त शक्तिमान् है और वही बादलोंको इधर-उधर उड़ाकर ले जाता है। धूम तथा गर्मीसे उत्पन्न होनेवाले मेघोंको वह प्रवह वायु ही समुद्रजलसे परिपूर्ण करती है, जिससे वे मेघ काली घटाके रूपमें परिणत हो अतिशय वर्षा करनेवाले होते हैं। वायुकी दूसरी शाखाका नाम 'आवह' है, जो सूर्यमण्डलमें बँधा हुआ है। उसीके द्वारा ध्रुवसे आबद्ध होकर सूर्यमण्डल घुमाया जाता है। तीसरी शाखाका नाम 'उद्वह' है, जो चन्द्रलोकमें प्रतिष्ठित है। इसीके द्वारा ध्रुवसे सम्बद्ध होकर यह चन्द्रमण्डल घुमाया जाता है। चौथी शाखाका नाम 'संवह' है, जो नक्षत्रमण्डलमें स्थित है। उसीके द्वारा वायुमयी डोरियोंसे ध्रुवमें आबद्ध होकर सम्पूर्ण नक्षत्रमण्डल घूमता रहता है। पाँचवीं शाखाका नाम 'विवह' है, वह ग्रहमण्डलमें स्थित है। उसीके द्वारा यह ग्रहचक्र ध्रुवसे सम्बद्ध होकर घूमा करता है। वायुकी छठी शाखाका नाम 'परिवह' है, जो सप्तर्षिमण्डलमें स्थित है। इसीके द्वारा ध्रुवसे सम्बद्ध हो सप्तर्षि आकाशमें भ्रमण करते हैं। वायुके सातवें स्कन्धका नाम 'परावह' है, जो ध्रुवमें आबद्ध है। उसीके द्वारा ध्रुवचक्र तथा अन्यान्य मण्डल दृढ़तापूर्वक एक स्थानपर स्थापित हैं। ध्रुवसे ऊपर जो स्थान है, वहाँ न तो सूर्य प्रकाशित होते हैं और न नक्षत्र एवं तारे ही उदित होते हैं। वहाँके लोग अपने ही तेज और अपनी ही शक्तिसे सदा स्थिर रहते हैं। इस प्रकार ऊर्ध्वलोकोंका वर्णन किया गया है। अब पातालका वर्णन सुनो।

अर्जुन! भूमिकी ऊँचाई सत्तर हजार योजन है। इसके भीतर सात पाताल हैं, जो एक-दूसरेसे दस-दस हजार योजनकी दूरीपर हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं—अतल, वितल, नितल, रसातल, तलातल, सुतल तथा पाताल। कुरुनन्दन! वहाँकी भूमियाँ सुन्दर महलोंसे सुशोभित हैं। वे क्रमशः कृष्ण, शुक्ल, अरुण, पीत, कंकरीली, पथरीली तथा सुवर्णमयी हैं। उन पातालोंमें दानव, दैत्य और नाग सैकड़ों संघ बनाकर रहते हैं। वहाँपर न गर्मी है, न सर्दी है, न वर्षा है, न कोई कष्ट। सातवें पातालमें 'हाटकेश्वर' शिवलिंग है, जिसकी स्थापना ब्रह्माजीके द्वारा हुई है। वहाँ अनेकानेक नागराज उस शिवलिंगकी आराधना करते हैं। पातालके नीचे बहुत अधिक जल है और उसके नीचे नरकोंकी स्थिति बतायी गयी है, जिनमें पापी जीव गिराये जाते हैं। महामते! उनका वर्णन सुनो—यों तो नरकोंकी संख्या पचपन करोड़ है; किंतु उनमें रौरवसे लेकर श्वभोजनतक इक्कीस प्रधान हैं।* उनके नाम इस प्रकार हैं—रौरव, शूकर, रोध, ताल, विशसन, महाज्वाल, तप्तकुम्भ, लवण, विमोहक, रुधिरान्ध, वैतरणी, कृमिश, कृमिभोजन, असिपत्रवन, कृष्ण, भयंकर लालाभक्ष, पापमय पूयवह, वह्निज्वाल, अधःशिरा, संदंश, कालसूत्र, तमोमय-अवीचि, श्वभोजन और प्रतिभाशून्य अपर अवीचि तथा ऐसे ही और भी नरक बड़े भयंकर हैं। झूठी गवाही देनेवाला मनुष्य रौरव नरकमें पड़ता है। गौओं तथा ब्राह्मणोंको कहीं बंद करके रोक रखनेवाला पापी रोध नरकमें जाता है। मदिरा पीनेवाला शूकर नरकमें और नरहत्या करनेवाला ताल नरकमें पड़ता है। गुरु-पत्नीके साथ व्यभिचार करनेवाला पुरुष तप्तकुम्भ नामक नरकमें गिराया जाता है तथा जो अपने भक्तकी हत्या करता है, उसे तप्तलोह नरकमें तपाया जाता है। गुरुजनोंका अपमान करनेवाला पापी महाज्वाल नरकमें डाला जाता है। वेद-

* यहाँ चौबीस नरकोंके नाम आये हैं। इनमें कालसूत्र, तमोमय-अवीचि और प्रतिभाशून्य अवीचि—ये तीन अप्रधान हैं। शेष इक्कीसको प्रधान समझना चाहिये।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

शास्त्रोंको नष्ट करनेवाला लवण नामक नरकमें गलाया जाता है। धर्म-मर्यादाका उल्लंघन करनेवाला विमोहक नरकमें जाता है। देवताओंसे द्वेष रखनेवाला मनुष्य कृमिभक्ष नामक नरकमें पड़ता है। दूषित भावनासे तथा शास्त्रविधिके विपरीत यज्ञ करनेवाला पुरुष कृमिश नरकमें जाता है। जो देवताओं और पितरोंका भाग उन्हें अर्पण किये बिना ही अथवा उन्हें अर्पण करनेसे पहले ही भोजन कर लेता है, वह लालाभक्ष नामक नरकमें यमदूतोंद्वारा गिराया जाता है।

सब जीवोंसे व्यर्थ वैर रखनेवाला तथा छलपूर्वक अस्त्र-शस्त्रोंका निर्माण करनेवाला विशसन नरकमें गिराया जाता है। असत्प्रतिग्रह ग्रहण करनेवाला अधोमुख नरकमें और अकेले ही मिष्टान्न भोजन करनेवाला पूयवह नरकमें पड़ता है। मुर्गा, कुत्ता, बिल्ली तथा पक्षियोंको जीविकाके लिये पालनेवाला मनुष्य भी पूयवह नरकमें ही पड़ता है। जो दूसरोंके घर, खेत, घास और अनाज आदिमें आग लगाता है, वह रुधिरान्ध नरकमें डाला जाता है। नक्षत्रविद्या तथा नट एवं मल्लोंकी वृत्तिसे जीविका चलानेवाला मनुष्य वैतरणी नामक नरकमें जाता है। जो धन और जवानीके मदसे उन्मत्त होकर दूसरोंके धनका अपहरण करता है, वह कृष्ण नामक नरकमें पड़ता है। व्यर्थ ही वृक्षोंको काटनेवाला मनुष्य असिपत्रवनमें जाता है। जो कपटवृत्तिसे जीविका चलाते हैं, वे सब लोग वह्निज्वाल नामक नरकमें गिराये जाते हैं। परायी स्त्री और पराये अन्नका सेवन करनेवाला पुरुष संदंश नरकमें डाला जाता है। जो दिनमें सोते हैं तथा व्रतका लोप किया करते हैं और जो शरीरके मदसे उन्मत्त रहते हैं, वे सब लोग श्वभोजन नामक नरकमें पड़ते हैं। जो भगवान् शिव और विष्णुको नहीं मानते, उन्हें अवीचि नरकमें जाना पड़ता है।

इस प्रकारके शास्त्रनिषिद्ध कर्मोंके आचरणरूप पापोंसे पापी जीव सहस्रों अत्यन्त घोर नरकोंमें अवश्य ही गिरते हैं। अतः जो मनुष्य इन नरकोंसे छुटकारा पाना चाहता हो, उसे वैदिक मार्गका अवलम्बन करके भगवान् विष्णु और शिव दोनोंकी आराधना करनी चाहिये। नरकोंके निम्नभागमें कालाग्निकी स्थिति है, कालाग्निके नीचे मण्डूक और मण्डूकके नीचे अनन्त हैं, जिनके मस्तकके अग्रभागमें यह सम्पूर्ण जगत् सरसोंकी भाँति प्रतीत होता है। इस प्रकार अनन्त प्रभावके कारण वे इस मानव-जगत्‌में अनन्त कहलाते हैं। पद्म, कुमुद, अंजन और वामन—ये दिग्गज भी वहीं स्थित हैं। इनके निम्नभागमें अण्डकटाह है, जहाँ एकवीरा नामवाली देवी विराजमान हैं। अण्डकटाहका परिमाण चौवालीस करोड़, नवासी लाख, अस्सी हजार है। उसमें कपालीशा देवी रहती हैं, जो कोटि-कोटि देवियोंसे घिरकर हाथमें दण्ड लिये वहाँ पहरा देती हैं। अनन्त नामवाले भगवान् संकर्षणके निःश्वासवायुसे प्रेरित होकर दाहक अग्नि प्रज्वलित हो उठती है। इस प्रकार ये भगवान् अनन्त ही कालाग्निको प्रेरित करते हैं, जिससे वह कल्पान्तके समय सम्पूर्ण जगत्‌को दग्ध कर डालती है। अर्जुन! इस प्रकार पातालके अधोभागमें स्थानका निर्माण हुआ है। जिन्होंने इस परम आश्चर्यमय ब्रह्माण्डकी स्थापना की है, उन ब्रह्मा, विष्णु तथा महादेवजीको मैं नित्य नमस्कार करता हूँ। विष्णुलोक और रुद्रलोक इस ब्रह्माण्डके बाहर बताया जाता है। सदा भगवान् विष्णु और शिवकी उपासना करनेवाले मुक्त पुरुष ही वहाँ जाते हैं। उस दिव्य धामका वर्णन केवल ब्रह्माजी ही कर सकते हैं। हमलोगोंकी वहाँ गति नहीं है। यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड सब ओरसे कड़ाहद्वारा ढका हुआ है, ठीक उसी प्रकार जैसे कपित्थका बीज कड़ाहसे (उसके गोलाकार छिलकेसे) आच्छादित रहता है। यह समूचा अण्डकटाह अपनेसे दस गुने प्रमाणवाले जलसे घिरा है। वह जल भी दसगुने विस्तारवाले तेजसे, तेज वायुसे, वायु आकाशसे, आकाश

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

अहंकारसे तथा अहंकार महत्तत्त्वसे घिरा हुआ है। तथा उस महत्तत्त्वको भी सर्वप्रधान प्रकृति घेरकर स्थित है। पहले जो छः आवरण कहे गये हैं, उन सबको विद्वान् पुरुष उत्तरोत्तर दसगुना बतलाते हैं और सातवाँ आवरण प्रकृतिका है। उसे अनन्त कहा गया है। उसके भीतर ऐसे-ऐसे करोड़ों और अरबों ब्रह्माण्ड स्थित हैं तथा वे सभी ऐसे ही हैं, जैसा कि यह ब्रह्माण्ड बताया गया है। कुन्तीनन्दन! जिनका वैभव (ऐश्वर्य) ऐसा है, उन भगवान् सदाशिवको मैं प्रणाम करता हूँ। अहो! जो ऐसे मोहमें फँस जाय कि तारनेवाले भगवान् शिवका भजनतक न कर सके, उससे बढ़कर मूर्ख कौन होगा? वह मूढ़ तो बड़ा पापात्मा है।

अब मैं तुमसे कालका मान बताऊँगा, उसे सुनो—विद्वान् लोग पंद्रह निमेषकी एक 'काष्ठा' बताते हैं। तीस काष्ठाकी एक 'कला' गिननी चाहिये। तीस कलाका एक 'मुहूर्त' होता है। तीस मुहूर्तके एक 'दिन-रात' होते हैं। एक दिनमें तीन-तीन मुहूर्तवाले पाँच काल होते हैं, उनका वर्णन सुनो—'प्रातःकाल', 'संगवकाल', 'मध्याह्न-काल', 'अपराह्णकाल' तथा पाँचवाँ 'सायाह्नकाल'। इनमें पंद्रह मुहूर्त व्यतीत होते हैं। पंद्रह दिन-रातका एक 'पक्ष' कहलाता है। दो पक्षका एक 'मास' कहा गया है। दो सौरमासकी एक 'ऋतु' होती है। तीन ऋतुओंका एक 'अयन' होता है तथा दो अयनोंका एक वर्ष माना गया है। विज्ञ पुरुष मासके चार[1] और वर्षके पाँच भेद बतलाते हैं। पहला संवत्सर, दूसरा परिवत्सर, तीसरा इद्वत्सर, चौथा अनुवत्सर तथा पाँचवाँ युगवत्सर है।[2] यही वर्षगणनाकी निश्चित संख्या है। मनुष्योंके एक मासका पितरोंका एक दिन-रात होता है; कृष्णपक्ष उनका दिन बताया गया है और शुक्लपक्ष उनकी रात्रि। मनुष्योंके एक वर्षका देवताओंका एक दिन माना गया है। उत्तरायण तो उनका दिन है और दक्षिणायन रात्रि। देवताओंका एक वर्ष पूरा होनेपर सप्तर्षियोंका एक दिन माना गया है। सप्तर्षियोंके एक वर्षमें ध्रुवका एक दिन होता है। मानववर्षके अनुसार सत्रह लाख अट्ठाईस हजार वर्षोंका सत्ययुग माना गया है। मानवमानसे ही बारह लाख छानबे हजार वर्षोंका त्रेतायुग कहा गया है। आठ लाख चौसठ हजार वर्षोंका द्वापर

१. सौरमास, चान्द्रमास, नाक्षत्रमास और सावनमास—ये ही मासके चार भेद हैं। सौरमासका आरम्भ सूर्यकी संक्रान्तिसे होता है। सूर्यकी एक संक्रान्तिसे दूसरी संक्रान्तितकका समय सौरमास है। यह मास प्रायः तीस-इकतीस दिनका होता है। कभी-कभी उनतीस और बत्तीस दिनका भी होता है। चन्द्रमाकी कलाकी ह्रास-वृद्धिवाले दो पक्षोंका जो एक मास होता है, वही चान्द्रमास है। यह दो प्रकारका है—शुक्ल प्रतिपदासे आरम्भ होकर अमावास्याको पूर्ण होनेवाला 'अमान्त' मास मुख्य चान्द्रमास है। कृष्णप्रतिपदासे पूर्णिमातक पूरा होनेवाला गौण चान्द्रमास है। यह तिथिकी ह्रास-वृद्धिके अनुसार २९, ३०, २८ एवं २७ दिनोंका भी हो जाता है। जितने समयमें चन्द्रमा अश्विनीसे लेकर रेवतीतकके नक्षत्रोंमें विचरण करता है, वह काल नाक्षत्रमास कहलाता है। यह लगभग २७ दिनोंका ही होता है। सावनमास तीस दिनोंका होता है। यह किसी भी तिथिसे प्रारम्भ होकर तीसवें दिन समाप्त होता है। प्रायः व्यापार और व्यवहार आदिमें इसका उपयोग होता है। इसके भी सौर और चान्द्र ये दो भेद हैं। सौर सावनमास सौरमासकी किसी भी तिथिसे प्रारम्भ होकर उसके तीसवें दिन पूर्ण होता है। चान्द्र सावनमास चान्द्रमासकी किसी भी तिथिसे प्रारम्भ होकर उसके तीसवें दिन समाप्त माना जाता है। प्रत्येक संवत्सरमें बारह सौर और बारह चान्द्रमास होते हैं। परंतु सौरवर्ष ३६५ दिनका और चान्द्रवर्ष ३५५ दिनका होता है; जिससे दोनोंमें प्रतिवर्ष दस दिनका अन्तर पड़ता है। इस वैषम्यको दूर करनेके लिये प्रति तीसरे वर्ष बारहकी जगह तेरह चान्द्रमास होते हैं। ऐसे बढ़े हुए मासको अधिमास या मलमास कहते हैं।

२. बृहस्पतिकी गतिके अनुसार प्रभव आदि साठ वर्षोंमें बारह युग होते हैं तथा प्रत्येक युगमें पाँच-पाँच वत्सर होते हैं। बारह युगोंके नाम ये हैं—प्रजापति, धाता, वृष, व्यय, खर, दुर्मुख, प्लव, पराभव, रोधकृत, अनल, दुर्मति और क्षय। प्रत्येक युगके जो पाँच वत्सर हैं, उनमेंसे प्रथमका नाम संवत्सर है। दूसरा परिवत्सर, तीसरा इद्वत्सर, चौथा अनुवत्सर और पाँचवाँ युगवत्सर है। इनके पृथक्-पृथक् देवता होते हैं; जैसे संवत्सरके देवता अग्नि माने गये हैं।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

होता है और चार लाख बत्तीस हजार वर्षोंका कलियुग माना गया है। इन चारोंके योगसे देवताओंका एक युग होता है। ऐसे इकहत्तर युगोंसे कुछ अधिक कालतक मनुकी आयु मानी गयी है। चौदह मनुओंका काल व्यतीत हो जानेपर ब्रह्माका एक दिन पूरा होता है। जो एक हजार चतुर्युगोंका माना गया है; वही कल्प है। अब कल्पोंके नाम श्रवण करो—भवोद्भव, तपोभव्य, ऋतु, वह्नि, वराह, सावित्र, औसिक, गान्धार, कुशिक, ऋषभ, खड्ग, गान्धारीय, मध्यम, वैराज, निषाद, मेघवाहन, पंचम, चित्रक, ज्ञान, आकूति, मीन, दंश, बृंहक, श्वेत, लोहित, रक्त, पीतवासा, शिव, प्रभु तथा सर्वरूप—इन तीस कल्पोंका ब्रह्माजीका एक मास होता है। ऐसे बारह मासोंका एक वर्ष होता है तथा ऐसे ही सौ वर्षोंतक ब्रह्माजीकी आयुका पूर्वार्ध मानना चाहिये। पूर्वार्धके समान ही अपरार्ध भी है। इस प्रकार ब्रह्माजीकी आयुका मान बताया गया। अर्जुन! भगवान् विष्णु तथा भगवान् शंकरजीकी आयुका वर्णन करनेमें मैं सर्वथा असमर्थ हूँ। कहाँ तो मेरी छोटी बुद्धि और कहाँ अनन्त अपार भगवान् विष्णु और शिव (वे तो कालातीत एवं महाकालस्वरूप हैं)। पाताललोकमें भी देवताओंके मानसे ही गणना की जाती है। ये सब बातें अपनी बुद्धिके अनुसार मैंने तुम्हें बतायी हैं।

राजा शतश्रृंगकी पुत्री कुमारीका चरित्र तथा कुमारीखण्डकी श्रेष्ठता

नारदजी कहते हैं—अर्जुन! नाभिके पुत्र जो ऋषभ नामसे प्रसिद्ध हुए हैं, उनके नामपर कलियुगमें नाना प्रकारके पाखण्डपूर्ण मतवादोंकी कल्पना हो जायगी, जो लोगोंको मोहमें डालनेवाली होगी। उन्हीं ऋषभजीके पुत्र भरत हुए और भरतके शतश्रृंग हुए। शतश्रृंगके आठ पुत्र और एक कुमारी कन्या हुई। पुत्रोंके नाम इस प्रकार हैं—इन्द्रद्वीप, कसेरु, ताम्रद्वीप, गभस्तिमान्, नाग, सौम्य, गन्धर्व तथा वरुण। इनके अतिरिक्त जो कन्या थी, उसके मुखकी आकृति बकरीके मुखके समान थी। ऐसा होनेका एक महान् आश्चर्ययुक्त कारण था, जिसे बताता हूँ, सुनो—महीसागरके तटपर जो स्तम्भतीर्थ है, उसके समीपवर्ती दुर्गम प्रदेशमें एक दिन एक बकरी अपने झुंडसे भटककर चली आयी। वहाँ लतापताओंसे एक जाल-सा बन गया था। बकरी प्याससे पीड़ित थी। वह ज्यों ही उधरसे निकली कि लताजालमें फँसकर मृत्युको प्राप्त हो गयी। कुछ समयके पश्चात् उसके शरीरका सिरसे नीचेका भाग टूटकर सब पापोंका निवारण करनेवाले सर्वतीर्थमय महीसागरसंगममें गिर पड़ा। उस दिन शनैश्चर तथा अमावास्याका भी योग था। सिर तो लतागुल्मके उस जालमें फँसकर ज्यों-का-त्यों रह गया था, अतः जलमें गिरने नहीं पाया। शेष शरीर महीसागरके जलमें गिरा था, अतः उस तीर्थके प्रभावसे वह बकरी सिंहलदेशमें राजा शतश्रृंगकी पुत्री हुई। परंतु उसका मुँह बकरीका ही रह गया था। शेष सभी अंग बड़े सुन्दर थे। राजा शतश्रृंग पहले सन्तानहीन थे; अतः उनके यहाँ जो पुत्री हुई, वह उन्हें सौ पुत्रोंके समान प्रिय थी, किंतु बकरीके तुल्य उसका मुख देखकर सब राज-परिवारके लोगोंको बड़ा विस्मय हुआ। राजा अपनी रानियोंसहित बहुत दुःखी हुए। धीरे-धीरे वह कन्या युवावस्थाको

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

प्राप्त हुई। एक दिन उसने दर्पणमें अपना मुँह

देखा; देखते ही उसे अपने पूर्वजन्मका स्मरण हो आया। तब उसने माता-पिताको अपने पूर्वजन्मका वृत्तान्त बताकर उनसे वहाँ जानेके लिये आज्ञा ली और नावके द्वारा वह स्तम्भतीर्थमें जा पहुँची। वहाँ राजकुमारीने सर्वस्व दक्षिणावाला दान किया। तदनन्तर लता-गुल्मोंकी जालमें ढूँढ़कर उसने अपने पूर्वजन्मके मस्तकका पता लगाया और संगमके समीप उसका दाह करके हड्डियोंको महीसागरमें फेंक दिया। तब उस तीर्थके प्रभावसे उसका मुँह चन्द्रमाके समान कान्तिमान् हो गया। देवता, दानव और मनुष्य सब उसके रूपसे मोहित होकर बार-बार उसे पानेके लिये राजासे याचना करते थे, किंतु वह उनमेंसे किसीको अपना पति बनाना नहीं चाहती थी। तत्पश्चात् कुमारीने प्रसन्नतापूर्वक अत्यन्त दुष्कर एवं कठोर तपस्या प्रारम्भ की।

तपस्या करते-करते जब एक वर्ष पूरा हो गया; तब देवाधिदेव महेश्वरने उसे प्रत्यक्ष दर्शन दिया और कहा—'मैं तुझे वर देनेके लिये आया हूँ।' तब राजकुमारी भगवान्‌का पूजन करके इस प्रकार बोली—'देवेश्वर! यदि आप प्रसन्न हैं और मुझे वर देना चाहते हैं तो इस तीर्थमें सर्वदा निवास करें।' भगवान् शिवने 'एवमस्तु' कहकर उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। इससे कुमारीको बड़ा हर्ष हुआ। जहाँ उसने बकरीके सिरका दाह किया था; वहीं 'वर्करेश' नामक शिवकी स्थापना की। यह आश्चर्यजनक समाचार सुनकर स्वस्तिक नामवाला नागराज कुमारीको देखनेके लिये तलातल लोकसे आया। सिरके बलसे आते समय वह पृथ्वीको जहाँ विदीर्ण करके बाहर निकला वहाँ स्वस्तिक नामक कूप हो गया। वह कूप वर्करेश्वरके ईशानकोणमें है; उसे गंगाजीने अपने जलसे भर दिया; इससे वह सब तीर्थोंका फल देनेवाला हो गया। वहाँ शिवलिंगको स्थापित देख भगवान् शिवने प्रसन्न होकर यह वरदान दिया। 'जिनके शवका यहाँ दाह होगा और दाह करके महीसागर-संगममें जिनकी हड्डियाँ डाली जायँगी, वे दीर्घ कालतक स्वर्गमें निवास करनेके पश्चात् इस लोकमें लौटनेपर सब प्रकारके वैभवसे परिपूर्ण प्रतापी राजा होंगे। जो मनुष्य महीसागरसंगमके जलमें स्नानकर भक्तिभावसे भगवान् वर्करेश्वरका पूजन करता है, उसका मनोरथ सफल होता है। कार्तिक कृष्णा चतुर्दशीको जो मनुष्य श्रद्धापूर्वक इस कूपमें स्नान और अपने पितरोंका तर्पण करके वर्करेश्वरका पूजन करेगा, वह सब पापोंसे मुक्त हो जायगा।'

ऐसा वरदान पाकर वह पुनः सिंहल देशमें लौट आयी और अपने पितासे वहाँका सब वृत्तान्त निवेदन किया। वह सुनकर राजा शतशृंग तथा अन्य सब लोग भी बड़े विस्मयको प्राप्त हुए। सबने उस महातीर्थका गुण-गान किया और उसके प्रति आदरका भाव रखकर वहाँकी यात्रा की। उस तीर्थमें स्नान और नाना प्रकारके दान करके वे सब लोग पुनः सिंहलको लौट आये। तीर्थकी अद्भुत महिमा जानकर उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई थी। तदनन्तर राजा शतशृंगने इस भारतवर्षके नौ विभाग किये; उनमेंसे आठ तो उन्होंने अपने आठ पुत्रोंको दे दिये और नवाँ भाग कुमारीको

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

अर्पित किया। नाना प्रकारके पर्वतोंसे सुशोभित उन भागोंका मैं वर्णन करता हूँ। पुत्रों और कुमारीके नामपर ही वे नवों खण्ड प्रसिद्ध हुए। यथा—इन्द्रद्वीपखण्ड, कसेरुखण्ड, ताम्रद्वीपखण्ड, गभस्तिमत् खण्ड, नागखण्ड, सौम्यखण्ड, गन्धर्वखण्ड, वरुणखण्ड और कुमारिकाखण्ड। अब पर्वतोंके नाम सुनो—महेन्द्र, मलय, सह्य, शुक्तिमान्, ऋच्छ, विन्ध्य और पारियात्र। यही सात यहाँ कुलपर्वत हैं। महेन्द्र पर्वतसे परे जो भूभाग है, उसे इन्द्रद्वीप कहते हैं। पारियात्र पर्वतके पीछेका क्षेत्र कौमारिकखण्ड माना गया है। ये सभी खण्ड एक-एक सहस्र योजनका विस्तार रखते हैं। अब नदियोंके उद्गम स्थानोंका संक्षिप्त परिचय सुनो—वेद, स्मृति आदि नदियाँ पारियात्र पर्वतसे प्रकट हुई मानी गयी हैं। नर्मदा और सुरसा आदि सरिताएँ विन्ध्य पर्वतसे निकली हैं। शतद्रु और चन्द्रभागा (शतलज और चनाव), आदि ऋच्छ पर्वतकी सन्तान हैं। ऋषिकूला और कुमारी आदि नदियाँ शुक्तिमान्‌की शाखासे प्रकट हुई हैं। तापी, पयोष्णी, निर्विन्ध्या, महानदी कावेरी, कृष्णवेणी तथा भीमरथी—ये सह्यके समीपवर्ती पर्वतोंसे निकली हुई मानी गयी हैं। कृतमाला और ताम्रपर्णी आदि सरिताएँ मलय पर्वतसे निकली हैं। त्रिसामा और ऋष्यकुल्या आदि महेन्द्र पर्वतसे प्रकट हुई हैं।

इस प्रकार राजा अपने पुत्रों तथा कुमारीको भारतवर्षके विभिन्न भाग देकर स्वयं उत्तर दिशामें शतशृंग पर्वतपर चले गये और वहाँ घोर तपस्या करके ब्रह्मलोकको प्राप्त हुए। इधर महाभाग्यशालिनी कुमारी स्तम्भतीर्थमें रहकर कुमारिकाखण्डकी आयसे दान देती हुई तपस्या करने लगी। तदनन्तर कुछ कालके बाद कुमारीके आठों भाइयोंसे नौ-नौ पुत्र उत्पन्न हुए, जो महान् पराक्रम, बल और उत्साहसे सम्पन्न थे। एक दिन वे सब-के-सब वहाँ आकर कुमारीसे बोले—'शुभे! तुम हमारे कुलकी देवी हो; हमपर कृपा करो। हमलोग बहत्तर भाई हैं और हमारे पास आठ खण्ड हैं; तुम स्वयं ही बटवारा करके हम सब लोगोंको दे दो; जिससे हमलोगोंमें फूट न होने पावे।'

उनके ऐसा कहनेपर सब धर्मोंको जाननेवाली कुमारीने भारतवर्षके नौ खण्डोंके बहत्तर भाग किये। मण्डलप्रदेशमें चार करोड़ ग्रामोंको सम्मिलित किया। ढाई करोड़ ग्रामोंसे युक्त प्रदेश बालाक कहलाता है। खुरासाहणक (खुरासान) देशमें सवा करोड़ ग्राम हैं; अन्धलमें चार लाख और नेपालमें एक लाख ग्राम हैं। कान्यकुब्ज देश छत्तीस लाख ग्रामोंसे युक्त बताया गया है; जनक प्रदेश बहत्तर लाख और गौड़ देशमें अठारह लाख गाँव हैं। कामरूपमें नव लाख; लाहर्व और मालदेशमें नौ-नौ लाख, कान्तिपुरमें नौ लाख, माचिपुरमें नौ लाख तथा जालन्धर और लोहपुर देशमें भी नौ लाख ही ग्राम बताये गये हैं। पाम्बीपुरमें सात लाख, रटराजमें सात लाख, हरिआलमें पाँच लाख, इड् देशमें साढ़े तीन लाख, षाम्भण वाहकमें साढ़े तीन लाख, नीलपुरमें इक्कीस हजार, अम्ल देशमें एक लाख, नरेन्दु देशमें सवा लाख, तिलंग देशमें भी सवा लाख, मालवमें अठारह लाख बानबे हजार, सयंभर देशमें सवा लाख, मेवाड़ देशमें सवा लाख, बागुरि देशमें अस्सी हजार, गुर्जर देशमें सत्तर हजार, पाण्डु देशमें सत्तर हजार, तेजाकुतिमें बयालीस हजार, काश्मीर मण्डलमें अड़सठ हजार, कौंकण देशमें छत्तीस हजार, लघु कौंकण देशमें चौदह सौ चालीस गाँव, सौराष्ट्रमें पचपन हजार गाँव तथा ताड देशमें इक्कीस हजार गाँव बताये गये हैं। अतिसिन्धुमें दस हजार, अश्वमुखमें भी दस हजार, सजानुहूति देशमें दस हजार, वेणु देशमें दस हजार, कलहज देशमें दस हजार, द्रविड़ देशमें दस हजार, भद्राश्व तथा देवभद्राश्वमें भी दस-दस हजार गाँव माने गये हैं। चिरायुष और यमकोटि देशमें छत्तीस-छत्तीस हजार गाँव हैं। रोमक देशमें अठारह करोड़ गाँव बताये जाते हैं। कामरु, कर्णाटक तथा जांगल इन तीन देशोंमें सवा-सवा लाख गाँव हैं। स्त्री राज्यमें पाँच लाख

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

तथा पुलस्ति देशमें दस लाख गाँव हैं। काम्बोज और कौशलमें दस-दस लाख, बाह्लीकमें चार लाख, लंकामें छत्तीस हजार, वर्धमानमें चौंसठ हजार, सिंहलद्वीपमें दस हजार, पाण्ड्य देशमें छत्तीस हजार, भयानक देशमें एक लाख, मगध देशमें छाछठ हजार, पंगु देशमें साठ हजार, वरेन्दक देशमें तीस हजार, मूलस्थानमें पचीस हजार, यवन देशमें चालीस हजार तथा पक्षबाहु देशमें चार हजार गाँव बताये गये हैं। इस प्रकार बहत्तर देशों और उनके ग्रामोंकी संख्याका वर्णन किया गया। भारतवर्षके कुल ग्रामोंकी संख्या छानबे करोड़, बहत्तर लाख, छत्तीस हजार है। इस प्रकार कुमारीने समुद्रतकके नौ खण्डोंका विभाग करके वे सब अपने भतीजोंको दे दिये। यद्यपि भतीजे अपनी बुआका अंश नहीं लेना चाहते थे, तथापि उस देवीने अपना भाग भी उन्हें दे ही दिया। इसलिये इन सब देशोंमें कुमारीखण्ड ही चतुर्वर्गका साधक होनेके कारण सबसे श्रेष्ठ बताया गया है। उसमें भी महीसागरसंगम ही गुप्त क्षेत्र है, जिसे कुमारी जानती थी। अतः उस गुप्त क्षेत्रमें भगवान् कुमारेशका पूजन करती हुई वह महान् व्रतका पालन करने लगी। कुमारी वहाँके छहों कुण्डों तथा संगममें स्नान करती हुई उस तीर्थमें वास करने लगी। तदनन्तर बहुत समय बीत जानेपर जब स्वामि-कार्तिकेयजीका बनवाया हुआ मन्दिर पुराना हो गया तो उसके स्थानमें उसने नूतन सुवर्णमय प्रासाद निर्माण कराया। उसकी भक्तिसे महादेवजी बहुत सन्तुष्ट हुए और उन्होंने कुमारेश्वर लिंगसे प्रकट होकर उसे प्रत्यक्ष दर्शन देते हुए कहा—'भद्रे! मैं तुम्हारी भक्ति और ज्ञानसे बहुत प्रसन्न हूँ। तुमने इस जीर्ण मन्दिरका पुनः उद्धार किया है; इसलिये अब मैं तुम्हारे नामसे विख्यात होऊँगा। मन्दिर बनानेवाला तथा उसका जीर्णोद्धार करनेवाला दोनों समान फलके भागी माने गये हैं। इसलिये आजसे लोग मुझे कुमारेश्वर और कुमारीश्वर दोनों नामोंसे पुकारेंगे। वर्करेश्वरमें जो वरदान तुम्हें दिये गये हैं, वे सदैव संघटित होनेवाले हैं। अब तुम्हारा अन्तकाल समीप आ गया है। जिस स्त्रीने अपने जीवनमें पतिका वरण नहीं किया है अर्थात् जो अविवाहिता रह गयी है उसे स्वर्ग अथवा मोक्षकी प्राप्ति नहीं होती। इसलिये इस तीर्थमें सिद्धिको प्राप्त हुए महाकालको तुम पतिरूपमें अंगीकार करो।'

भगवान् शंकरके ऐसा कहनेपर कुमारीने महाकालको पतिके रूपमें स्वीकार किया और महाकालके साथ ही वह भी रुद्रलोकमें चली गयी। वहाँ पार्वतीजीने उसे हृदयसे लगा लिया और हर्षमें भरकर कहा—'शुभे! तुमने पृथ्वीको चित्रलिखित-सा कर दिया; इसलिये चित्रलेखा नामसे प्रसिद्ध मेरी सखी होकर रहो।' तबसे वह चित्रलेखा नामवाली सखी होकर पार्वतीजीके साथ रहने लगी। उसीने ऊषाको चित्रद्वारा अनिरुद्धका

परिचय दिया था। वह योगिनियोंमें सर्वश्रेष्ठ तथा महाकालकी प्राणवल्लभा हुई। इस प्रकार राजकुमारीने कुमारीश्वरलिंग तथा वर्करेश्वरलिंगको स्थापित किया। अर्जुन! यहाँ मरे हुए मनुष्योंका दाह करना और उनके हड्डियोंको संगमके जलमें डालना प्रयागसे भी अधिक उत्तम बताया गया है।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth 279 Skandpuran_Section_7_1_Back

कालभीतिकी तपस्या तथा धर्मनिष्ठा, महाकालका प्रादुर्भाव और कालभीतिपर भगवान् शंकरकी कृपा

नारदजी कहते हैं—पूर्वकालकी बात है, काशीपुरीमें माण्टि नामसे प्रसिद्ध एक महायशस्वी ब्राह्मण हो गये हैं। वे जप करनेवालोंमें सर्वश्रेष्ठ थे। महाभाग माण्टि रुद्रके मन्त्रोंका जप किया करते थे। उनके कोई पुत्र नहीं था। अतः पुत्रके लिये रुद्रमन्त्रोंका जप करते-करते उनके सौ वर्ष पूरे हो गये, इससे भगवान् शंकर बहुत प्रसन्न हुए और बोले—'माण्टे! तुम्हें एक बुद्धिमान् पुत्र उत्पन्न होगा, जिसका प्रभाव और पराक्रम मेरे ही समान होगा। वह तुम्हारे सम्पूर्ण कुलका उद्धार करेगा।' भगवान् शंकरका यह वरदान सुनकर माण्टिको बड़ा हर्ष हुआ। कुछ कालके अनन्तर महात्मा माण्टिकी पत्नीने गर्भ धारण किया, उन्हें गर्भ धारण किये चार वर्ष बीत गये; परंतु गर्भका बालक माताका उदर छोड़कर बाहर नहीं निकलता था। तब माण्टिने उससे कहा—'बेटा! विभिन्न योनियोंमें पड़े हुए जीव यह सोचा करते हैं कि हम कब मनुष्ययोनिमें जन्म लेंगे। जहाँ धर्म, अर्थ, काम और मोक्षकी भी प्राप्ति होती है, जिसमें किये हुए पूजनका महान् फल होता है तथा जहाँ पितरों और देवताओंके सन्तोषार्थ नाना प्रकारके धर्मानुष्ठानका अवसर प्राप्त होता है। ऐसे मनुष्यजन्मका, जिसे पानेकी अभिलाषा देवता भी करते हैं, तुम अनादर करके माताके उदरमें ही क्यों स्थित हो रहे हो?'

गर्भने कहा—पिताजी! मैं भी यह सब कुछ जानता हूँ। वास्तवमें यह मनुष्यजन्म परम दुर्लभ है; किंतु मैं कालके मार्गसे सदा ही बहुत डरता हूँ। विद्वान् पुरुषको उसी वस्तुके लिये यत्न करना चाहिये, जो दुःखयुक्त न हो। यदि मेरा यह मन भयानक एवं गम्भीर कालसे ताड़ित होकर भाँति-भाँतिके दोषोंको न प्राप्त हो, तो मैं परम दुर्लभ मनुष्यजन्मको शीघ्र प्राप्त कर सकता हूँ।

यह सुनकर उसके पिता माण्टि भगवान् सदाशिवकी शरणमें गये और बोले—'देव महेश्वर! मेरी रक्षा कीजिये, भगवन्! आपने ही मुझे पुत्र दिया है और आप ही जन्म कराइये।' तब माण्टिकी अतिशय भक्तिसे सन्तुष्ट हो भगवान् महेश्वर अपनी विभूतियोंसे बोले—'ज्ञान! धर्म! वैराग्य तथा ऐश्वर्य! और अज्ञान! अधर्म! अवैराग्य तथा अनैश्वर्य! तुम सब लोग शीघ्र जाओ और माण्टिके पुत्रको समझाओ।' तब वे विभूतियाँ उस गर्भको समझाती हुई बोलीं—'महामते माण्टिकुमार! तुम्हें अपने मनमें भय नहीं करना चाहिये। हम चारों धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य तुम्हारे मनसे कभी अलग न होंगे।' तत्पश्चात् अधर्म आदि बोले—'हम तुम्हारे पास नहीं आयँगे, तुम्हें नमस्कार है। तुमको हमसे कोई भय नहीं है।' इन विभूतियोंके द्वारा ऐसा आश्वासन मिलनेपर वह गर्भका बालक शीघ्र बाहर निकल आया। बाहर जन्म लेते ही वह काँपने और रोने लगा। तब विभूतियोंने कहा—'माण्टे! तुम्हारा पुत्र अब भी कालमार्गसे भयभीत होकर काँपता और रोता है; इसलिये यह कालभीति नामसे प्रसिद्ध होगा।' इस प्रकार वरदान देकर वे विभूतियाँ महादेवजीके समीप चली गयीं और वह बालक शुक्लपक्षके चन्द्रमाके समान प्रतिदिन बढ़ने लगा। संस्कारोंसे सुसंस्कृत होनेपर उस बुद्धिमान् बालकने पाशुपत मन्त्रकी दीक्षा ली और सद्योजातादि पाँच मन्त्रोंका जप करते हुए वह तीर्थयात्रामें तत्पर हो गया। अर्जुन! महीसागर-संगमरूप गुप्त क्षेत्रके गुणोंका वर्णन सुनकर कालभीति भी वहाँ गया और महीके जलमें स्नान करके एक करोड़ मन्त्रका जप किया। जप समाप्त करके जब वह लौटा तो थोड़ी ही दूरपर उसने बिल्वका वृक्ष देखा, वहाँ जप करते समय उस ब्राह्मणकी इन्द्रियाँ लयको प्राप्त हो गयीं। वह क्षणभरमें केवल परमानन्दस्वरूप

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

हो गया। उसके उस ब्रह्मानन्दकी तुलना स्वर्ग आदिके सुखोंसे कदापि नहीं हो सकती। दो घड़ीतक समाधिमें स्थित होनेके पश्चात् वह पुनः पूर्वावस्थामें आ गया।

यह देखकर कालभीतिको बड़ा विस्मय हुआ। वह मन-ही-मन कहने लगा कि—'यह महान् आनन्द तो मुझे न काशीमें मिला, न नैमिषारण्यमें, न प्रभास और केदारक्षेत्रमें प्राप्त हुआ, न अमरकण्टकमें ही। इस समय मेरी सम्पूर्ण इन्द्रियाँ गंगाजीकी भाँति निर्विकार और स्वस्थ हैं तथा मेरा चित्त एक परम गोपनीय धर्मका आश्रय लेता है। अहो! इस तीर्थका प्रभाव तो यहाँ स्पष्ट रूपसे प्रकट है। कहते हैं, जो स्थान सब प्रकारके दोषोंसे रहित, पवित्र और सम्पूर्ण उपद्रवोंसे शून्य हो, वहाँ निवास करनेवाले पुरुषकी बुद्धि धर्मके कार्यमें सहस्रगुनी हो जाती है। इसलिये इस तीर्थके प्रभावसे मैं मन-ही-मन अनुभव करता हूँ कि यह स्थान काशी आदि प्रधान तीर्थोंसे भी श्रेष्ठ है। अतः मैं यहीं रहकर बड़ी भारी तपस्या करूँगा।' ऐसा विचार करके कालभीति उस बिल्ववृक्षके नीचे एक पैरके अँगूठेके अग्रभागसे खड़े हो मन्त्रोंका जप करने लगे। जपका नियम ग्रहण करनेके पश्चात् वे सौ वर्षतक जलकी एक-एक बूँद पीकर रहे। सौ वर्ष पूर्ण होनेपर उनके सामने एक मनुष्य जलसे भरा हुआ घड़ा लेकर आया, उसने कालभीतिको प्रणाम करके बड़े हर्षसे कहा—'महामते! आज आपका नियम पूरा हो गया, यह जल ग्रहण कीजिये।'

कालभीति बोले—आप किस वर्णके हैं तथा आपका आचार-व्यवहार कैसा है? यह सब यथार्थरूपसे बताइये। आपके जन्म और आचार जान लेनेपर मैं यह जल ग्रहण करूँगा, अन्यथा नहीं।

आगन्तुक मनुष्य बोला—मैं अपने माता-पिताको नहीं जानता, अपने-आपको सदा इसी रूपमें देखता हूँ, आचारों और धर्मोंसे मेरा कोई प्रयोजन नहीं।

कालभीतिने कहा—यदि ऐसी बात है, तो मैं आपका जल कभी ग्रहण नहीं करूँगा। इस विषयमें मेरे गुरुने वैदिक सिद्धान्तके अनुसार जो उपदेश दिया है, वह सुनो—जिसके कुलका ज्ञान न हो, जिसके जन्ममें वीर्यशुद्धिका अभाव हो, उसका अन्न खाने और जल पीनेवाला साधुपुरुष तत्काल कष्टमें पड़ जाता है।* जो हीन वर्णका है तथा जो भगवान् शिवका भक्त नहीं है, इन दो प्रकारके मनुष्योंको दान देते समय उसे लेनेका अनधिकारी समझना चाहिये।

आगन्तुक मनुष्य बोला—तुम्हारी इस बातपर मुझे हँसी आती है। अहो! तुम बड़े अविवेकी हो, जब सब भूतोंमें सदा भगवान् शंकर ही निवास करते हैं, तो किसीके प्रति भी भली-बुरी बात नहीं कहनी चाहिये, क्योंकि इससे भगवान् शिवकी ही निन्दा होती है। जो अपने और दूसरेके बीच अन्तर मानता है, उस भेददर्शी पुरुषके लिये मृत्यु अत्यन्त घोर भय उपस्थित करती है, अथवा यदि शुद्धिका भी विचार किया जाय, तो बताओ इस जलमें क्या अपवित्रता है? यह घड़ा मिट्टीका बना हुआ है और अग्निसे पकाया गया है, फिर जलसे भर दिया गया है। इन सब वस्तुओंमें तो कोई अशुद्धि है नहीं। यदि कहें कि मेरे संसर्गसे अशुद्धि आ गयी है, तो यह भी स्पष्ट नहीं है, क्योंकि वैसी दशामें जब मैं इस पृथ्वीपर हूँ तो आप यहाँ क्यों रहते हैं? बताइये आप क्यों इस पृथ्वीपर चलते हैं? आकाशमें क्यों नहीं चलते? अतः इस प्रकार विचार करनेपर आपकी बात मूर्खोंकी-सी जान पड़ती है।

कालभीतिने कहा—यदि ऐसा कहा जाता है कि सम्पूर्ण भूतोंमें एक शिव ही हैं, तो

* न ज्ञायते कुलं यस्य बीजशुद्धिं विना ततः। तस्य खादन् पिबन् वापि साधुः सीदति तत्क्षणात्॥
(स्क० पु०, मा० कुमा० ३४। ५०)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth279 Skandpuran_Section_7_2_Back

कथनमात्रके लिये सबको शिव माननेवाले नास्तिक लोग भक्ष्य-भोज्य आदि पदार्थोंको छोड़कर मिट्टी क्यों नहीं खाते? राख और धूल क्यों नहीं फाँकते? इसलिये संसारकी व्यवहार-सिद्धिके लिये एक मर्यादा स्थापित की गयी है, जो समयसे ही सफल होती है, अन्यथा नहीं। आप उस मर्यादाको श्रवण करें। पूर्वकालमें ब्रह्माजीने इस पांचभौतिक जगत्की सृष्टि की और उसे नाममय प्रपंचसे बाँध दिया। उस नाम-प्रपंचके चार भेद हैं—ध्वनि, वर्ण, पद और वाक्य। ये ही नामात्मक प्रपंचके चार आधारस्थान हैं। इनमें ध्वनि 'नाद' स्वरूप है। ॐकारपूर्वक सम्पूर्ण अक्षर ही 'वर्ण' कहलाते हैं। **'शिवम्'** यह सुबन्त शब्द 'पद' है और **'शिवम् भजेत्'** (शिवका भजन करे) यह विधि ही एक तिङन्तक्रियासे अन्वित होनेके कारण वाक्य कही गयी है। वह वाक्य भी तीन प्रकारका होता है; ऐसा श्रुतिका सिद्धान्त है। पहला प्रभुसम्मत, दूसरा सुहृत्सम्मत तथा तीसरा कान्तासम्मत। यही त्रिविध वाक्य माने गये हैं। जैसे स्वामी सेवकको यह आदेश देता है कि 'अमुक काम करो'—यह प्रभुसम्मत वाक्य है। उसी प्रकार श्रुति और स्मृति दोनों प्रभुसम्मत वाक्यका प्रयोग करती हैं—स्वामीकी भाँति आज्ञा देती हैं। इतिहास और पुराण आदि सुहृत्सम्मत कहे जाते हैं। ये सुहृदोंकी भाँति समझाकर मनुष्यको यथार्थ मार्गमें लगाते हैं तथा काव्यके जो सरस एवं व्यंग्यपूर्ण आलाप आदि हैं; उन्हें कान्तासम्मत कहते हैं*। प्रभुवाक्य बाहर और भीतरसे पवित्र करनेवाला माना गया है तथा सुहृद्वाक्य भी परम पवित्र है। स्वर्ग आदि उत्तम लोकोंकी प्राप्तिकी इच्छासे उसका पालन करना चाहिये। श्रुति कहती है कि भूलोकके सम्पूर्ण मनुष्योंको प्रभुसम्मत तथा सुहृत्सम्मत वाक्यका पालन करना चाहिये। आप यदि नास्तिकवादका सहारा लेकर सर्वत्र व्यावहारिक समानताकी बात करते हैं तो इसके अनुसार क्या वेद, शास्त्र और पुराण व्यर्थ ही हैं? क्या पूर्वकालमें सप्तर्षि आदि जो ब्राह्मण और क्षत्रिय हो गये हैं, वे सब मूर्ख ही थे? केवल आप ही चतुर हैं? जो वेद, वेदांग और वेदान्तका अनुसरण करनेवाले एवं सत्त्वगुणमें स्थित हैं, वे ऊपरके लोकोंमें गमन करते हैं। रजोगुणी मनुष्य मध्यवर्ती भूलोकमें निवास करते हैं और तमोगुणी जीव नीचेके लोकों अथवा नरकोंमें रहते हैं। सात्त्विक आहार तथा सात्त्विक आचार-विचारसे मनुष्य स्वर्गगामी होता है (अतः सदाचारका ध्यान रखना आवश्यक है)। हम आपकी बातोंमें दोष ढूँढ़ते हों, ऐसी बात भी नहीं। हम यह नहीं कहना चाहते कि सम्पूर्ण भूतोंमें भगवान् शिव नहीं हैं। भगवान् तो सम्पूर्ण भूतोंमें हैं ही; किंतु इस विषयमें मैं जो उपमा दे रहा हूँ; उसे ध्यान देकर सुनिये—जैसे सुवर्णके बने हुए बहुतसे आभूषण होते हैं; उनमेंसे कोई तो विशुद्ध सुवर्णके होते हैं; और कुछ खोटे भी होते हैं। खरे, खोटे सभी आभूषणोंमें सुवर्ण तो है ही। इसी प्रकार ऊँच-नीच, शुद्ध-अशुद्ध सबमें भगवान् सदाशिव विराजमान हैं। जैसे खोटा सुवर्ण शोधित होनेपर शुद्ध सुवर्णके साथ एकताको प्राप्त होता है, उसी प्रकार इस शरीरको भी व्रत, तपस्या और सदाचार आदिके द्वारा शोधित करके शुद्ध बना लेनेपर मनुष्य निश्चय ही स्वर्गलोकमें जाता है। अतः बुद्धिमान् पुरुषको उचित है कि वह हीन या अपवित्र वस्तुको किसी प्रकार भी ग्रहण न करे। यदि वह अपने इस शरीरका शोधन

* जैसे प्रियतमा अपने प्रियतमको कोई आदेश नहीं देती, अपने हाव-भाव भ्रूभंग अथवा सरस आलापसे अपनी इच्छामात्र सूचित कर देती है और प्रियतम उसकी पूर्तिके लिये स्वयं यत्नशील हो जाता है, इसी प्रकार रामायण आदि काव्य अपने सरस वर्णनोंद्वारा सहृदयोंका मनोरंजन करते हुए स्वतः हृदयमें यह भाव भर देते हैं कि हमें श्रीराम आदिके आदर्शपर चलना चाहिये, रावण आदिके आदर्शपर नहीं।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

कर ले तो शुद्ध होनेपर निश्चय ही स्वर्गलोकको प्राप्त हो सकता है। जो पुरुष व्रत, उपवास करके शुद्ध हो गया है, वह भी यदि सबसे प्रतिग्रह लेने लगे तो थोड़े ही दिनोंमें अवश्य पतित हो जाता है।[१] इसलिये मैं स्पष्ट कह देना चाहता हूँ कि आपका यह जल मैं किसी तरह भी ग्रहण नहीं करूँगा। यह कार्य भला हो या बुरा, मेरे लिये वेद ही परम प्रमाण है।

कालभीतिके ऐसा कहनेपर आगन्तुक मनुष्य हँसने लगा। उसने दाहिने अंगूठेसे भूमिको खुरेदते हुए एक बहुत बड़ा एवं उत्तम गड्ढा तैयार कर दिया। फिर उसीमें वह सारा जल ढुलका दिया। उससे वह गड्ढा भर गया। फिर भी जल शेष रह गया; तब उसने पैरसे ही खुरेदकर एक तालाब बना दिया और शेष बचे हुए जलसे उसको भर दिया। यह परम अद्भुत कार्य देखकर भी ब्राह्मण देवताको कोई आश्चर्य नहीं हुआ; क्योंकि भूत, प्रेत आदिकी उपासना करनेवाले लोगोंमें अनेक प्रकारकी विचित्र बातें होती हैं। उस विचित्रताके चक्करमें आकर अपने सनातन वैदिक मार्गका परित्याग कभी नहीं करना चाहिये[२]।

आगन्तुक मनुष्य बोला—ब्राह्मणदेव! आप हैं तो बड़े भारी मूर्ख; परंतु बातें पण्डितों-जैसी करते हैं। क्या आपने पुराणवेत्ता विद्वानोंके मुखसे कहा हुआ यह श्लोक नहीं सुना है?

कूपोऽन्यस्य घटोऽन्यस्य रज्जुरन्यस्य भारत।
पाययत्येकः पिबत्येकः सर्वे ते समभागिनः॥

भारत! कुआँ दूसरेका, घड़ा दूसरेका और रस्सी दूसरेकी है; एक पानी पिलाता है और एक पीता है; वे सब समान फलके भागी होते हैं।

ऐसा ही मेरा भी जल है और तुम धर्मके ज्ञाता हो; फिर क्यों इसे नहीं पीयोगे?

नारदजी कहते हैं—अर्जुन! तदनन्तर कालभीतिने उक्त श्लोकके विषयमें अनेक प्रकारसे विचार किया, किंतु किस प्रकार सब लोग समान फलके भागी होते हैं; इसका निश्चय न कर सके। फिर घट आदि साधनोंद्वारा जो समान फलभागी होनेकी बात कही गयी थी, उसपर विशेष विचार किया और इस निश्चयपर पहुँचे कि यदि एक कार्यमें अनेक सहायक हों तो सब समान फलके भागी होते हैं। जैसे एक नौका निर्माण करानेमें यदि अनेक पुरुषोंने धन लगाया हो तो उन सबका उसमें समान भाग होता है। इस प्रकार कर्ताको प्राप्त होनेवाला सब फल सहकारियोंमें बँटकर समान हो जाता है। इस प्रकार पुनः-पुनः विचार करके कालभीतिने उस मनुष्यसे कहा—'भद्रपुरुष! आपका यह कहना ठीक है। कूप और तालाबके जल ग्रहण करनेमें दोष नहीं है तथापि आपने तो अपने घड़ेके जलसे ही इस गड्ढेको भरा है, यह बात प्रत्यक्ष देख करके भी मेरे-जैसा मनुष्य कैसे इस जलको पी सकता है। अतः यह अच्छा हो या बुरा; मैं किसी प्रकार भी इसे नहीं पीऊँगा।' कालभीतिके इस प्रकार दृढ़ निश्चय कर लेनेपर वह पुरुष हँसकर क्षणभरमें वहाँसे अन्तर्धान हो गया। इससे कालभीतिको बड़ा विस्मय हुआ। ये बार-बार सोचने लगे कि यह क्या वृत्तान्त है। इतनेहीमें उस बिल्ववृक्षके नीचे पृथ्वीसे सहसा एक परम सुन्दर शिवलिंग प्रकट हो गया, जो सम्पूर्ण दिशाओंको प्रकाशित कर रहा था। इन्द्रने उसके ऊपर पारिजातके फूलोंकी वर्षा की और देवता तथा मुनि नाना प्रकारके स्तोत्रोंद्वारा स्तुति

१- सर्वतो यः प्रतिग्राहा निराहारी च यः पुमान्। शुचिः स्यादल्पदिवसात् पतितोऽसौ भवेत् स्फुटम्॥
(स्क० पु०, मा० कुमा० ३४। ८१)

२- यतो बहुविधं चित्रं भवेद्भूताद्युपासिषु। तच्चित्रेण न जह्याच्च श्रुतिमार्गं सनातनम्॥
(स्क० पु०, मा० कुमा० ३४। ८६)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

करने लगे। तब कालभीतिने प्रणाम करके

प्रसन्नतापूर्वक यह स्तुति प्रारम्भ की—

'जो पापके काल, संसाररूपी पंकके काल, कालके काल तथा कालमार्गके भी काल हैं; जिनके कण्ठमें काला चिह्न सुशोभित होता है तथा जो संसारके कालरूप हैं, उन भगवान् महाकालकी मैं शरण लेता हूँ। श्रुति आपको सम्पूर्ण विद्याओंका ईश्वर बताकर स्तुति करती है। आप समस्त भूतोंके ईश्वर तथा प्रपितामह हैं; ऐसी महिमावाले आप महेश्वरको नमस्कार है। वेद जिसकी स्तुति करता है, उस 'तत्पुरुष' नामवाले आपको हम जानते हैं और आपका ही चिन्तन करते हैं। देवेश्वर! आप हमें शरण दीजिये; आपको बारंबार नमस्कार है।'

अर्जुन! कालभीतिके इस प्रकार स्तुति करनेपर महादेवजीने उस लिंगसे निकलकर प्रत्यक्ष दर्शन दिया और अपने तेजसे त्रिलोकीको प्रकाशित करते हुए कहा—'ब्रह्मन्! तुमने इस महातीर्थमें रहकर मेरी जो अतिशय आराधना की है, उससे मैं बहुत सन्तुष्ट हूँ। वत्स! काल तुम्हारे ऊपर किसी प्रकार भी शासन नहीं कर सकता। मैं ही तुम्हारी धर्मनिष्ठा देखनेके लिये मनुष्यरूपमें यहाँ प्रकट हुआ था। यह धर्ममार्ग धन्य है, जिसका तुम्हारे-जैसे धर्मज्ञोंद्वारा पालन होता है। मैंने यह गड्ढा और तालाब सब तीर्थोंके जलसे ही भरा है। यह परम पवित्र जल है और तुम्हारे लिये मैंने इसका संग्रह किया है। तुमने जो मेरी स्तुति की है, उसमें वैदिक मन्त्रोंका रहस्य भरा हुआ है। तुम मुझसे कोई मनोवांछित वर माँगो। तुम्हारे लिये कुछ भी अदेय नहीं है।'

कालभीतिने कहा—भगवान् शंकर! यदि आप मुझपर सन्तुष्ट हैं, तो मैं धन्य हूँ। मुझपर आपका महान् अनुग्रह है। आपके सन्तोषसे ही सब धर्म सफल होते हैं। अन्यथा वे केवल श्रम देनेवाले ही माने गये हैं। प्रभो! यदि आप सन्तुष्ट हैं तो सदा यहाँ निवास करें। आपके इस शुभ लिंगपर जो भी दान, पूजन आदि किया जाय, वह सब अक्षय हो। देव! पाँच हजार मन्त्र जपनेसे जो फल होता है, वही फल मनुष्योंको इस शिवलिंगका दर्शन करनेसे प्राप्त हो जाय। महेश्वर! आपने काल-मार्गसे मुझे छुटकारा दिलाया है, इसलिये यह शिवलिंग महाकालके नामसे प्रसिद्ध हो। जो मनुष्य इस कूपमें स्नान करके पितरोंका तर्पण करे, उसे सब तीर्थोंका फल प्राप्त हो और उसके पितरोंको अक्षय गतिकी प्राप्ति हो।

कालभीतिकी यह बात सुनकर भगवान् शंकर प्रसन्न हो बोले—जहाँ स्वयम्भू-लिंग हो, वहाँ मैं नित्य निवास करता हूँ। स्वयम्भू-लिंग, रत्नमय-लिंग, धातुज-लिंग, प्रस्तरनिर्मित लिंग तथा चन्दन आदि लेपजनित-लिंग हैं। इनमें क्रमशः अन्तिम लिंगकी अपेक्षा पूर्व-पूर्ववाले लिंग दस-गुना अधिक फल देनेवाले होते हैं। आकाशमें तारकामय-लिंग, पातालमें हाटकेश्वर-लिंग तथा भूमण्डलपर स्वयम्भू-लिंग—ये तीनों शुभ होते हैं। तुमने विशेषरूपसे जिसके लिये प्रार्थना की है, वह सब पूर्ण होगा। यहाँ फूल, फल, पूजा, नैवेद्य और स्तुति निवेदन करना तथा दान या दूसरा कोई भी शुभ कर्म करना, सब

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

अक्षय होगा। बेटा! माघके कृष्ण-पक्षकी चतुर्दशीको शिव-योगमें जो लिंगार्चनके पहले कूपमें स्नान करके पितरोंका तर्पण करेगा, उसे सब तीर्थोंके फलकी प्राप्ति होगी तथा उसके पितरोंकी अक्षय गति होगी। उसी दिनकी रात्रिमें जो प्रत्येक प्रहरमें महाकालका पूजन करेगा, उसे सब लिंगोंके समीप जागरण करनेका फल प्राप्त होगा। द्विजोत्तम! जो पुरुष सदा जितेन्द्रिय रहकर शिवलिंगमें मेरी पूजा करेगा, भोग और मोक्ष उससे कभी दूर नहीं रहेंगे। जो चतुर्दशी, अष्टमी, सोमवार तथा पर्वके दिन इस सरोवरमें स्नान करके इस शिवलिंगकी पूजा करेगा, वह शिवको ही प्राप्त होगा। यहाँ किया हुआ जप, तप और रुद्र-जप सब अक्षय होगा। तुम नन्दीके साथ मेरे दूसरे द्वारपाल बनोगे। वत्स! काल-मार्गपर विजय पानेसे तुम चिरकालतक महाकालके नामसे प्रसिद्ध होओगे। यहाँ शीघ्र ही राजर्षि करन्धम आनेवाले हैं, उन्हें धर्मका उपदेश करके तुम मेरे लोकमें चले आओ।'

यों कहकर भगवान् रुद्र उस लिंगमें ही लीन हो गये और महाकाल भी प्रसन्न होकर वहाँ बड़ी भारी तपस्या करने लगे।

महाकालद्वारा करन्धमके प्रश्नानुसार श्राद्ध तथा युगव्यवस्थाका वर्णन

नारदजी कहते हैं—अर्जुन! तदनन्तर महाकालका चरित्र सुनकर राजा करन्धम वहाँ आये। उन्होंने महीसागरसंगमके जलमें स्नान तथा महाकालका दर्शन करके अपने जीवनको सफल माना। पचास हजार मन्त्रोंका जप करनेसे जो फल प्राप्त होता है, वही जिनके दर्शनमात्रसे मिल जाता है, उन्हीं भगवान् महाकालकी विशेष पूजा, अर्चा करके राजाने उनको प्रणाम किया और उनकी स्तुति करके उन्हींके समीप बैठे। तत्पश्चात् भगवान् शिवके वचनका स्मरण करके मुसकराते हुए महाकालजीने राजाकी अगवानी की और स्वागत-सत्कारपूर्वक उन्हें अर्घ्य प्रदान किया। फिर कुशलप्रश्नके पश्चात् जब राजा सुखपूर्वक बैठे, तो उन्होंने महाकालजीसे पूछा—'भगवन्! मेरे मनमें सदा यह संशय बना रहता है कि मनुष्योंद्वारा पितरोंका जो तर्पण किया जाता है, उसमें जल तो जलमें ही चला जाता है; फिर हमारे पूर्वज उससे तृप्त कैसे होते हैं? इसी प्रकार पिण्ड आदिका सब दान भी यहीं देखा जाता है। अतः हम यह कैसे मान लें कि यह पितर आदिके उपभोगमें आता है?'

महाकालने कहा—राजन्! पितरों और देवताओंकी योनि ही ऐसी होती है कि ये दूरकी कही हुई बातें सुन लेते, दूरकी पूजा भी ग्रहण कर लेते और दूरकी स्तुतिसे भी सन्तुष्ट होते हैं। इसके सिवा वे भूत, भविष्य और वर्तमान सब कुछ जानते और सर्वत्र पहुँचते हैं। पाँचों तन्मात्राएँ, मन, बुद्धि, अहंकार और प्रकृति—इन नौ तत्त्वोंका बना हुआ उनका शरीर होता है। इसके भीतर दसवें तत्त्वके रूपमें साक्षात् भगवान् पुरुषोत्तम निवास करते हैं। इसलिये देवता और पितर गन्ध तथा रस-तत्त्वसे तृप्त होते हैं। शब्दतत्त्वसे रहते हैं तथा स्पर्शतत्त्वको ग्रहण करते हैं और किसीको पवित्र देखकर उनके मनमें बड़ा सन्तोष होता है। जैसे पशुओंका भोजन तृण और मनुष्योंका भोजन अन्न कहलाता है, वैसे ही देवयोनियोंका भोजन अन्नका सार-तत्त्व है। सम्पूर्ण देवताओंकी शक्तियाँ अचिन्त्य एवं ज्ञानगम्य हैं। अतः वे अन्न और जलका सार-तत्त्व ही ग्रहण करते हैं, शेष जो स्थूल वस्तु है, वह यहीं स्थित देखी जाती है।

करन्धमने पूछा—श्राद्धका अन्न तो पितरोंको दिया जाता है, परंतु वे अपने कर्मके अधीन होते हैं। यदि वे स्वर्ग अथवा नरकमें हों, तो श्राद्धका उपभोग कैसे कर सकते हैं? और वैसी दशामें वे वरदान देनेमें भी कैसे समर्थ हो सकते हैं?

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

महाकालने कहा—नृपश्रेष्ठ! यह सत्य है कि पितर अपने-अपने कर्मोंके अधीन होते हैं, परंतु देवता, असुर और यक्ष आदिके तीन अमूर्त तथा चारों वर्णोंके चार मूर्त—ये सात प्रकारके पितर माने गये हैं। ये नित्य पितर हैं, ये कर्मोंके अधीन नहीं, वे सबको सब कुछ देनेमें समर्थ हैं। वे सातों पितर भी सब वरदान आदि देते हैं। उनके अधीन अत्यन्त प्रबल इकतीस गण होते हैं। राजन्! इस लोकमें किया हुआ श्राद्ध उन्हीं मानव पितरोंको तृप्त करता है। वे तृप्त होकर श्राद्धकर्ताके पूर्वजोंको जहाँ कहीं भी उनकी स्थिति हो, जाकर तृप्त करते हैं। इस प्रकार अपने पितरोंके पास श्राद्धमें दी हुई वस्तु पहुँचती है और वे श्राद्ध ग्रहण करनेवाले नित्य पितर ही श्राद्धकर्ताओंको श्रेष्ठ वरदान देते हैं।

राजाने पूछा—विप्रवर! जैसे भूत आदिको उन्हींके नामसे '**इदं भूतादिभ्यः**' कहकर कोई वस्तु दी जाती है, उसी प्रकार देवता आदिको संक्षेपसे क्यों नहीं दिया जाता? मन्त्र आदिके प्रयोगद्वारा विस्तार क्यों किया जाता है?

महाकालने कहा—राजन्! सदा सबके लिये उचित प्रतिष्ठा करनी चाहिये। उचित प्रतिष्ठाके बिना दी हुई कोई वस्तु वे देवता आदि ग्रहण नहीं करते। घरके दरवाजेपर बैठा हुआ कुत्ता जिस प्रकार ग्रास (फेंका हुआ टुकड़ा) ग्रहण करता है, क्या कोई श्रेष्ठ पुरुष भी उसी प्रकार ग्रहण करता है? इसी प्रकार भूत आदिकी भाँति देवता कभी अपना भाग ग्रहण नहीं करते। वे पवित्र भोगोंका सेवन करनेवाले तथा निर्मल हैं। अतः अश्रद्धालु पुरुषके द्वारा बिना मन्त्रके दिया हुआ जो कोई हव्य भाग होता है, उसे वे स्वीकार नहीं करते। यहाँ मन्त्रोंके विषयमें श्रुति भी इस प्रकार कहती है—

मन्त्रा दैवता यद्यद्विद्वान्मन्त्रवत्करोति देवताभिरेव तत्करोति यद्ददाति देवताभिरेव तद्ददाति यत्प्रतिगृह्णाति देवताभिरेव तत्प्रतिगृह्णाति तस्मान्नामन्त्रवत्प्रतिगृह्णीयात् नामन्त्रवत्प्रतिपद्यते।

'सब मन्त्र ही देवता हैं, विद्वान् पुरुष जो-जो कार्य मन्त्रके साथ करता है, उसे वह देवताओंके द्वारा ही सम्पन्न करता है। मन्त्रोच्चारणपूर्वक जो कुछ देता है, वह देवताओंद्वारा ही देता है। मन्त्रपूर्वक जो कुछ ग्रहण करता है, वह देवताओंद्वारा ही ग्रहण करता है। इसलिये मन्त्रोच्चारण किये बिना मिला हुआ प्रतिग्रह न स्वीकार करे। बिना मन्त्रके जो कुछ किया जाता है, वह प्रतिष्ठित नहीं होता।'

इस कारण पौराणिक और वैदिक मन्त्रोंद्वारा ही सदा दान करना चाहिये।

राजाने पूछा—कुश, तिल, अक्षत और जल-इन सबको हाथमें लेकर क्यों दान दिया जाता है? मैं इसका कारण जानना चाहता हूँ।

महाकालने कहा—राजन्! प्राचीन कालमें मनुष्योंने बहुतसे दान किये, और उन सबको असुरोंने बलपूर्वक भीतर प्रवेश करके ग्रहण कर लिया। तब देवताओं और पितरोंने ब्रह्माजीसे कहा—'स्वामिन्! हमारे देखते-देखते दैत्यलोग सब दान ग्रहण कर लेते हैं। अतः आप उनसे हमारी रक्षा करें, नहीं तो हम नष्ट हो जायँगे।' तब ब्रह्माजीने सोच-विचारकर दानकी रक्षाके लिये एक उपाय निकाला। पितरोंको तिलके साथ दान दिया जाय, देवताओंको अक्षतके साथ दिया जाय तथा जल और कुशका सम्बन्ध सर्वत्र रहे। ऐसा करनेपर दैत्य उस दानको नहीं ग्रहण कर सकते। इन सबके बिना जो दान किया जाता है, उसपर दैत्यलोग बलपूर्वक अधिकार कर लेते हैं, और देवता तथा पितर दुःखपूर्वक उच्छ्वास लेते हुए लौट जाते हैं। वैसे दानसे दाताको कोई फल नहीं मिलता। इसलिये सभी युगोंमें इसी प्रकार (तिल, अक्षत, कुश और जलके साथ) दान दिया जाता है।

राजा करन्धम बोले—ब्रह्मन्! मैं चारों युगोंकी व्यवस्थाको यथार्थरूपसे सुनना चाहता हूँ।

महाकालने कहा—राजन्! कृतयुगको तुम

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

आदियुग समझो। उसके बाद त्रेतायुगकी स्थिति मानी गयी है। फिर द्वापर और कलियुग हैं। यही संक्षेपसे चारों युगोंका परिचय है। कृतयुग सत्त्वगुण-प्रधान है, त्रेता रजोगुणमय है, द्वापरमें रजोगुण और तमोगुण दोनोंकी प्रधानता है तथा कलियुगको साक्षात् तमोगुणका स्वरूप जानना चाहिये। अब चारों युगोंमें जो युगका प्रधान आचार है, उसका वर्णन करता हूँ—कृतयुगमें ध्यान प्रधान है, त्रेतामें यज्ञको ही प्रधान कहा जाता है, द्वापरमें सत्य बर्ताव ही प्रधान धर्म है तथा कलियुगमें दान ही सर्वोत्तम धर्म बताया गया है।* कृतयुगमें मानसी सृष्टि होती है। उस समय सबके जीवन-निर्वाहकी वृत्ति रस और उल्लाससे परिपूर्ण होती है। समस्त प्रजा तेजस्विनी होती है। सब प्राणी सदा तृप्त रहते हैं। सभी आनन्दमग्न तथा सुखभोगकी सुविधासे सम्पन्न होते हैं। उनमें कोई ऊँच और नीच नहीं होता। सम्पूर्ण प्रजा समानरूपसे शुभ कार्यमें तत्पर रहती है। कृतयुगमें सब लोगोंकी आयु समान होती है, सबको सुख उपलब्ध होता है; रूप और सौन्दर्य भी सबमें समान देखे जाते हैं। किसीमें अप्रसन्नता नहीं, उद्वेग नहीं, द्वेष नहीं और ग्लानि नहीं होती। उस समय वर्णाश्रम व्यवस्था होती है। वर्णसंकरका नाम नहीं होता। कुछ लोग पर्वतोंपर और उसके आसपास तथा कुछ लोग समुद्रके तटपर निवास करते हैं। सबपर दया करना उस समयकी प्रजाको विशेष प्रिय जान पड़ता है। सब मनुष्य एकमत होकर सदा भगवान् सदाशिवका ध्यान करते हैं। कृतयुगका चतुर्थ चरण आनेपर उनकी वह रसोल्लासवृत्ति नष्ट हो गयी। तब उनके लिये गृहका काम देनेवाले कल्पवृक्ष उत्पन्न हो गये। वे वृक्ष ही उनके लिये वस्त्र, आभूषण तथा फल उत्पन्न करने लगे। उन वृक्षोंपर ही उनके लिये पत्ते-पत्तेमें उत्तम गन्ध, उत्तम रंग और उत्तम रससे युक्त अत्यन्त बलवर्धक मधु तैयार होने लगा। उसे मधुमक्खियोंने नहीं बनाया था। कृतयुगके अन्तिम भागमें उसीसे प्रजा अपने जीवनका निर्वाह करती थी। उस मधुके सेवनसे सब लोग हृष्ट, पुष्ट, अधिक बलशाली तथा नीरोग रहते थे। तदनन्तर कुछ कालके बाद जब मनुष्योंकी रसनेन्द्रिय प्रबल हो गयी, तो युगका प्रभाव पड़नेसे सब लोगोंमें भगवान्‌के ध्यानकी प्रवृत्ति कम होने लगी और वे उन वृक्षों तथा बिना मक्खीके उत्पन्न हुए मधुपर भी बलपूर्वक अधिकार करने लगे। उनके इस लोभदोषजनित अनाचारसे वे कल्पवृक्ष कहीं-कहीं मधुके साथ ही अदृश्य हो गये। उस समय उन वृक्षोंकी सम्पत्ति जब बहुत थोड़ी रह गयी, तो प्रजाजनोंमें द्वन्द्व प्रकट हो गये। वे सर्दी, गर्मी तथा मानसिक क्लेशसे बहुत दुःखी हुए। तब उन्होंने अपनेको आच्छादित करनेके लिये घर बनाये। उस समय त्रेतायुगके प्रारम्भमें उनके लिये पुनः दूसरी सिद्धि प्रकट हुई। वर्षा होनेसे जल और पृथ्वीका संयोग हुआ, और उससे बिना जोते-बोये ग्राममें (गाँवमें होनेवाले) तथा अरण्यमें (जंगलोंमें होनेवाले) चौदह प्रकारके अन्न उत्पन्न हुए। तदनन्तर ऋतुओंके अनुकूल फूल और फलसे भरे हुए वृक्षों और लताओंका प्रादुर्भाव हुआ। इस तरह अनेक प्रकारके धान्य, पुष्प और फलोंसे प्रजाका जीवन-निर्वाह होने लगा। तत्पश्चात् कालके प्रभावसे पुनः उनमें राग और लोभका संचार हुआ। फिर तो सब लोग अपनी-अपनी शक्तिके अनुसार हठपूर्वक बड़ी शीघ्रताके साथ नदियों, पर्वतों, क्षेत्रों, वृक्षों, लताओं और धान्योंको भी अपने अधिकारमें करने लगे। इस धर्मविपरीत आचरणसे चौदहों प्रकारके धान्य नष्ट हो गये; सभी ओषधियाँ धरतीमें प्रवेश कर गयीं। इससे प्रजाको बड़ी पीड़ा होने लगी। यह देख वेनकुमार राजा पृथुने सब प्राणियोंके हितके लिये पृथ्वीका दोहन किया। तबसे सब प्रजा वार्तानामक वृत्तिके द्वारा हल और फालसे जोत-बोकर उत्पन्न किये हुए अन्नसे जीवन-निर्वाह करने लगी। उस समय क्षत्रियलोग समस्त प्रजाका

* ध्यानं परं कृतयुगे त्रेतायां यज्ञ उच्यते। वृत्तं च द्वापरे सत्यं दानमेव कलौ युगे॥ (स्क० पु०, मा० कुमा० ३५। ४५)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

पालन करते थे। वर्णाश्रम-धर्मकी प्रतिष्ठा थी। त्रेतामें सब ओर यज्ञकी ही चर्चा होने लगी। अज्ञानी मनुष्य भगवान् सदाशिवके ध्यानमय मोक्षमार्गको छोड़कर रागवश वेदोंकी यज्ञसम्बन्धिनी पुष्पित (प्रशंसापूर्ण) वाणीका आश्रय ले यज्ञद्वारा स्वर्गप्राप्तिके साधनमें संलग्न हो गये। तदनन्तर द्वापर आनेपर मनुष्योंमें बुद्धि-भेद उत्पन्न होता है। मन, वाणी और क्रियाद्वारा बड़ी कठिनाईसे जीविका चलने लगती है। सबमें लोभ और अधैर्य बढ़ जाता है। भगवान् शंकरका आश्रय छोड़ देनेसे सबमें धर्मसंकरता आ जाती है तथा वर्ण और आश्रम-धर्मकी मर्यादा टूटने लगती है। द्वापरमें ऐसी अवस्था आनेपर भगवान् वेदव्यास प्रकट होते हैं और वे द्वापरके अन्तिम भागमें एक ही वेदके चार विभाग करते हैं। द्विजोंके हितके लिये व्यासजीके द्वारा एक ही वेद चार चरणोंमें प्रकट किया जाता है। इन्हीं वेदोंके अर्थका विस्तार होनेसे इतिहास और पुराणोंके अनेक भेद होते हैं—ब्रह्मपुराण, पद्मपुराण, विष्णुपुराण, शिवपुराण, भागवतपुराण, नारदीय पुराण, सातवाँ मार्कण्डेयपुराण, आठवाँ अग्निपुराण नवाँ भविष्यपुराण, दसवाँ ब्रह्मवैवर्तपुराण, ग्यारहवाँ लिंगपुराण, बारहवाँ वाराहपुराण, तेरहवाँ स्कन्दपुराण, चौदहवाँ वामनपुराण, पंद्रहवाँ कूर्मपुराण, सोलहवाँ मत्स्यपुराण, तत्पश्चात् गरुड़पुराण और ब्रह्माण्डपुराण। ये अट्ठारह पुराण हैं।

अब इस वाराहकल्पमें होनेवाले व्यासोंके नाम सुनो—ऋतु, सत्य, भार्गव, अंगिरा, सविता, मृत्यु, शतक्रतु, बुद्धिमान् वसिष्ठ, सारस्वत, त्रिधामा, वेदज्ञ मुनिवर त्रिवृत, शततेजा, स्वयं भगवान् नारायण, करक, आरुणि, कृतंजय, भरद्वाज, कविश्रेष्ठ गौतम, मुनिवर वाजश्रवा, शुष्मायण मुनि, तृणविन्दु, ऋक्ष, शक्ति, पराशर, जातुकर्ण्य, विष्णुरूप साक्षात् द्वैपायन मुनि तथा अश्वत्थामा—ये भूत और भविष्य व्यास सूचित किये गये। द्वापरमें लोककल्याणके लिये धर्मशास्त्रके भी अनेक भेद होते हैं। मनु, अत्रि, विष्णु, हारीत, याज्ञवल्क्य, उशना, अंगिरा, यम, आपस्तम्ब, संवर्त, कात्यायन, बृहस्पति, पराशर, व्यास, शंख, लिखित, दक्ष, गौतम, शातातप तथा वसिष्ठ—ये धर्मशास्त्रके प्रवर्तक ऋषि हैं।

तत्पश्चात् द्वापरकी सन्ध्यामें और कलियुगके प्रारम्भकालमें जब शैव योग नष्ट होने लगता है, तब योगसे आनन्दित होनेवाले मुनि प्रकट होते हैं। श्वेतवाराहकल्पके कलियुगमें सर्वप्रथम भगवान् रुद्र ही योगेश्वररूपमें प्रकट होते हैं। तदनन्तर सुतार, तारण, सुहोत्र, कंकण, लौगाक्षि, महामुनि जैगीषव्य, भाव्य, दधिवाहन, ऋषभ, मुनिवर धर्म, उग्र, अत्रि, बालक गौतम, वेदशीर्ष, गोकर्ण, शिखण्डी, गुहावासी, जटामाली, अट्टहास, दारुक, लांगली, संयमी, शूली, डिण्डी, मुण्डीश्वर, सहिष्णु, सोमशर्मा, लकुलीश तथा कायावरोहण इत्यादि योगेश्वर क्रमशः होनेवाले हैं। ये कलियुगमें संक्षेपसे शैव-धर्मका उपदेश करेंगे। राजन्! इस प्रकार कलियुगमें शास्त्रोंका संक्षेप बताया जाता है।

अब कलियुगकी प्रवृत्ति सुनो, जो हर्ष और उद्वेगमें डालनेवाली है। कलियुगमें तमोगुणसे व्याकुल इन्द्रियोंवाले मनुष्य माया (छल-कपट आदि), असूया (दोषदृष्टि) तथा तपस्वी महात्माओंकी हत्या भी करते हैं। कलिमें मन और इन्द्रियोंको मथ डालनेवाला राग प्रकट होता है। सदा भूखमरीका भय सताता रहता है, भयंकर अनावृष्टिका भय भी प्राप्त होता है। सब देशोंमें नाना प्रकारके उलट-फेर होते रहते हैं। सदा अधर्म-सेवन करनेके कारण मनुष्योंके लिये वेदका प्रमाण मान्य नहीं रह जाता। प्रायः लोग अधार्मिक, अनाचारी, अत्यन्त क्रोधी और तेजहीन होते हैं। लोभके वशीभूत होकर झूठ बोलते हैं, उनमें अधिकांश नारियोंका-सा स्वभाव आ जाता है, उनकी सन्तान दुष्ट होती हैं। ब्राह्मणोंके दूषित यज्ञ-याग, दोषयुक्त स्वाध्याय, दूषित आचरण तथा असत् शास्त्रोंके सेवनरूप कर्मदोषसे समस्त प्रजाका विनाश होता है। क्षत्रिय और ब्राह्मण नाशको प्राप्त होते हैं और

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

वैश्य तथा शूद्रोंकी वृद्धि होती है। शूद्र लोग ब्राह्मणोंके साथ एक आसनपर सोते, बैठते और भोजन भी करते हैं। शूद्र ब्राह्मणोंके आचारको अपनाते हैं और ब्राह्मण शूद्रोंके समान आचरण करते हैं। चोर राजाओंकी वृत्तिमें स्थित होते हैं और राजालोग चोरोंके समान बर्ताव करते हैं। पतिव्रता स्त्रियाँ कम होने लगती हैं और कुलटाओंकी संख्या बढ़ती है। कलियुगमें भूमि प्रायः थोड़ा फल देनेवाली होती है, कहीं-कहीं वह अधिक उपजाऊ होती है। राजालोग निडर होकर पाप करते हैं, वे रक्षक नहीं वरं प्रजाकी सम्पत्ति हड़प लेनेवाले होते हैं। कलियुगमें प्रायः क्षत्रियेतर जातिके लोग राजा होते हैं। ब्राह्मण शूद्रकी वृत्तिसे जीविका चलानेवाले होंगे। शूद्र ब्राह्मणोंसे अभिवन्दित होकर स्वयं वाद-विवाद करनेवाले होंगे। वे द्विजोंको देखकर भी अपने आसनसे उठकर खड़े न होंगे। द्विज लोग मुँहपर हाथ रखकर नीच-से-नीच शूद्रके भी कानमें अत्यन्त विनयपूर्वक कोई बात कहेंगे; द्विजोंके सामने भी शूद्र ऊँचे आसनपर बैठे रहेंगे; यह बात जानकर भी राजा उन्हें दण्ड नहीं देगा। देखो, कालका कैसा प्रभाव है। अल्प विद्या और अल्प भाग्यवाले ब्राह्मण सुन्दर-सुन्दर फूलों तथा अन्य प्रकारके अलंकारोंसे शूद्रोंकी अर्चना करेंगे। कलियुगके ब्राह्मण पाखण्डियोंके न लेनेयोग्य दूषित दानको भी ग्रहण करते हैं और उसके कारण दुस्तर रौरव नरकमें पड़ते हैं। करोड़ों द्विज कलिकालमें तप और यज्ञका फल बेचनेवाले तथा अन्यायी होते हैं। मनुष्योंके सन्तानोंमें पुत्र थोड़े और कन्याएँ अधिक होती हैं। कलियुगमें मनुष्य वेदवाक्यों तथा वेदार्थोंकी निन्दा करते हैं। शूद्रोंने जिसे स्वयं रच लिया हो, वही शास्त्र एवं प्रमाण माना जायगा। हिंसक जीव प्रबल होंगे और गोवंशका क्षय होगा। दान आदि कोई भी धर्म अपने शुद्धरूपमें नहीं पालित होगा। साधु पुरुषोंका अनेक प्रकारसे विनाश होगा। राजालोग प्रजाके रक्षक न होंगे। कलियुगका अन्तिम भाग उपस्थित होनेपर प्रत्येक जनपदके लोग अन्नका व्यापार करेंगे, ब्राह्मण वेद बेचनेवाले होंगे, स्त्रियाँ व्यभिचारसे अर्थोपार्जन करेंगी। घरोंमें स्त्रियोंकी प्रधानता होगी। वे अपवित्र कपड़े पहिननेवाली तथा कर्कशा होंगी। बहुत अधिक भोजनमें लिप्त होकर कृत्या (चुड़इलों)-की भाँति प्रतीत होंगी। कलियुगमें प्रायः सब लोग वाणिज्य-वृत्ति करनेवाले होंगे। इन्द्र छिटपुट वर्षा करनेवाले होंगे। मनुष्य दुराचार-सेवन आदि व्यर्थके पाखण्डोंसे घिरे होंगे और सब लोग एक-दूसरेसे याचना करेंगे। उस समय लोगोंको पाप करनेमें तनिक भी शंका नहीं होगी। जब कलियुगके संहारका समय आयगा उस समय मनुष्य पराया धन हड़पनेवाले, परस्त्रियोंका सतीत्व नष्ट करनेवाले तथा पंद्रह वर्षकी आयुवाले होंगे। चोरके घरमें भी चोरी करनेवाले तथा लुटेरेके घरमें भी लूट-मार करनेवाले होंगे। ज्ञान और कर्म दोनोंका अभाव हो जानेसे सब लोग उद्यम करना छोड़ देंगे। उस समय कीड़े, चूहे और सर्प मनुष्यको डसेंगे। वर्ण और आश्रम-धर्मके विरोधी जो अन्य पाखण्ड सुने जाते हैं, वे सब उस समय प्रकट होंगे और उनकी वृद्धि होगी। कलियुगमें स्त्री और पुत्रसे दुःख, शरीरका संहार, सदा रोगी रहना तथा पाप करनेमें आग्रह रखना आदि दोष क्रमशः बढ़ते ही जायँगे। राजन्! यद्यपि कलियुग समस्त दोषोंका भण्डार है, तथापि उसमें एक महान् गुण भी है, उसे सुनो—कलिकालमें थोड़े ही समय साधन करनेसे मनुष्य सिद्धिको प्राप्त हो जाते हैं।* सत्ययुग, त्रेता और द्वापर—इन तीन युगोंके लोग ऐसा कहते हैं कि जो मनुष्य कलियुगमें श्रद्धापरायण होकर वेदों, स्मृतियों और पुराणोंमें बताये हुए धर्मका अनुष्ठान करते हैं, वे धन्य हैं। त्रेतामें एक वर्षतक तथा

* कलेर्दोषनिधेश्चैव शृणु चैकं महागुणम्। यदल्पेन तु कालेन सिद्धिं गच्छन्ति मानवाः॥ (स्क० पु०, मा० कुमा० ३५।११५)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

द्वापरमें एक मासतक क्लेशसहनपूर्वक धर्मानुष्ठान करनेवाले बुद्धिमान् पुरुषको जो फल प्राप्त होता है वह कलियुगमें एक दिनके अनुष्ठानसे मिल जाता है। राजन्! कलियुगमें भगवान् विष्णु और शिवकी नियमपूर्वक उपासना करनेवाले जितने मनुष्य सिद्धिको प्राप्त होते हैं, उतने अन्य युगोंमें तीन युगोंतक उपासना करनेसे प्राप्त होते हैं।*

राजन्! अट्ठाईसवें कलियुगमें जो कुछ होनेवाला है, उसे सुनो। कलियुगके तीन हजार दो सौ नब्बे वर्ष व्यतीत होनेपर इस भूमण्डलमें वीरोंका अधिपति शूद्रक नामवाला राजा होगा, जो चर्चिता नगरीमें आराधना करके सिद्धि प्राप्त करेगा। शूद्रक पृथ्वीका भार उतारनेवाला राजा होगा। तदनन्तर कलियुगके तीन हजार तीन सौ दसवें वर्षमें नन्दवंशका राज्य होगा। चाणक्य नामवाला ब्राह्मण उन नन्दवंशियोंका संहार करेगा और शुक्लतीर्थमें वह अपने समस्त पापोंसे छुटकारा पानेके लिये प्रायश्चित्तकी अभिलाषा करेगा। इसके सिवा कलियुगके तीन हजार बीस वर्ष निकल जानेपर इस पृथ्वीपर राजा विक्रमादित्य होंगे। वे नवदुर्गाओंकी सिद्धि एवं कृपासे राज्य पायँगे और दीनोंका उद्धार करेंगे। तदनन्तर तीन हजारसे सौ वर्ष और अधिक बीतनेपर शक नामक राजा होगा। उसके बाद कलियुगके तीन हजार छः सौ वर्ष बीतनेपर मगधदेशमें हेमसदनसे अंजनीके गर्भसे भगवान् विष्णुके अंशावतार स्वयं भगवान् बुद्ध प्रकट होंगे, जो धर्मका पालन करेंगे। महात्मा बुद्धके अनेक उत्तम चरित्र स्मरणीय होंगे। अपने भक्तोंके लिये अपनी यशोगाथा छोड़कर वे स्वर्ग-लोकको चले जायँगे, भक्तजन उन्हें सर्वपापाहारी बुद्ध कहेंगे। तत्पश्चात् कलियुगके चार हजार चार सौ वर्ष बीतनेपर चन्द्रवंशमें महाराज प्रमितिका प्रादुर्भाव होगा। वे बहुत बड़ी सेनाके अधिपति तथा अत्यन्त बलवान् होंगे। करोड़ों म्लेच्छोंका वध करके सब ओरसे पाखण्डका निवारण करते हुए केवल विशुद्ध वैदिक धर्मकी स्थापना करेंगे। महाराज प्रमितिका देहावसान गंगा-यमुनाके मध्यवर्ती क्षेत्र प्रयागमें होगा।

तत्पश्चात् किसी समय कालके प्रभावसे जब प्रजा अत्यन्त पीड़ित होने लगेगी, तब भयंकर अधर्मका आश्रय लेकर शठतापूर्ण बर्ताव करेगी। कोई बन्धन न रहनेके कारण सब लोग लोभसे व्याप्त हो झुंड-के-झुंड निकलकर एक-दूसरेको लूटेंगे और मारेंगे। सभी श्रमसे पीड़ित हो अत्यन्त व्याकुल रहेंगे। उस समय वैदिक और स्मार्त धर्म नष्ट हो जानेपर सब एक-दूसरेके आघातसे नष्ट होंगे। धार्मिक और सामाजिक मर्यादाका उल्लंघन करेंगे। सबमें करुणा, स्नेह और लज्जाका अत्यन्त अभाव हो जायगा। सभी लोग नाटे कदके होंगे, उनकी पूरी आयु पचीस वर्षकी होगी। उनके मन और इन्द्रियाँ विषादसे व्याकुल होंगी और वे घर तथा स्त्रीका परित्याग करके हाहाकार करते हुए बाहर भटकेंगे। वर्षा न होनेसे सबकी जीविका मारी जायगी और सब लोग दुःखी हो कृषि और पशुपालनका काम छोड़कर पर्वतोंपर रहने लगेंगे। अपना देश छोड़कर नदी और समुद्रके तटपर निवास करेंगे, पर्वतोंकी गुफाओंमें रहेंगे, अत्यन्त दुःखी हो मांस और मूल-फलसे जीवन-निर्वाह करेंगे। पुराने चीथड़े, वल्कल और पत्ते तथा मृगचर्म धारण करेंगे। सभी अकर्मण्य तथा आवश्यक साधनोंसे भी रहित होंगे। उस समय शाल्य नामक म्लेच्छ धर्मका विनाश करनेके लिये उन सबका संहार करेगा। उत्तम, मध्यम और अधम सब प्रकारकी श्रेणियोंका विनाश करके वह अत्यन्त भयंकर कर्म करनेवाला होगा। तब उसका वध करनेके लिये सम्पूर्ण जगत्के स्वामी साक्षात् भगवान् विष्णु सम्भलग्राममें श्रीविष्णुयशाके पुत्र होकर अवतीर्ण होंगे और श्रेष्ठ ब्राह्मणोंके साथ जाकर उस 'शाल्य' नामवाले म्लेच्छका संहार

* त्रेतायां वार्षिको धर्मो द्वापरे मासिकः स्मृतः। यथा क्लेशं चरन् प्राज्ञस्तदह्ना प्राप्यते कलौ॥
युगत्रयेण तावन्तः सिद्धिं गच्छन्ति पार्थिव। यावन्तः सिद्धिमायान्ति कलौ हरिहरव्रताः॥
(स्क० पु०, मा० कुमा० ३५। ११७-११८)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

करेंगे। वे सब ओर घूम-घूमकर करोड़ों और अरबों पापियोंका वध करके उस धर्मका पालन करेंगे, जो वेदमूलक है। साधु पुरुषोंके लिये धर्मरूपी नौकाका निर्माण करके अनेक प्रकारकी लीलाएँ करनेके पश्चात् वे भगवान् 'कल्कि' परम धाममें पधारेंगे। राजन्! उसके बाद फिर सत्ययुगका आरम्भ होगा। प्रथम सत्ययुग, अन्तिम सत्ययुग तथा अट्ठाईसवाँ कलियुग ये अन्य युगोंसे कुछ विशिष्टता रखते हैं। शेष युगोंकी प्रवृत्ति औरोंके समान ही होती है। कलियुग बीतनेपर सत्ययुगके प्रारम्भमें राजा मरु (अथवा पुरु)-से सूर्यवंश, देवापिसे चन्द्रवंश तथा श्रुतदेवसे ब्राह्मणवंशकी परम्परा चालू होगी। राजन्! इस प्रकार चारों युगोंकी व्यवस्था बदलती रहती है। चारों युगोंमें वही लोग धन्य हैं, जो भगवान् शंकर और विष्णुका भजन करते हैं।

त्रिदेवोंकी श्रेष्ठता और पापोंके भेद

करन्धमने पूछा—ब्रह्मन्! कोई भगवान् शिवकी, कोई विष्णुकी तथा कोई ब्रह्माजीकी शरण लेनेसे सर्वोत्कृष्ट मोक्षकी प्राप्ति बतलाते हैं; किंतु आप किससे मुक्ति मानते हैं?

महाकालने कहा—नरश्रेष्ठ! इन तीनों देवताओंकी महिमा अपार है। इस विषयमें बड़े-बड़े योगीश्वरोंका भी मन मोहित हो जाता है, फिर मेरी तो बात ही क्या है? कहते हैं, प्राचीन कालमें कभी नैमिषारण्यनिवासी मुनियोंको भी यह सन्देह हुआ था कि इन तीनों देवताओंमें कौन सबसे श्रेष्ठ है। तब वे ब्रह्मलोकमें गये। उसी समय भगवान् ब्रह्माने इस श्लोकका पाठ किया—

अनन्ताय नमस्तस्मै यस्यान्तो नोपलभ्यते।
महेशाय च द्वावेतौ मयि स्तां सुमुखौ सदा॥

'उन भगवान् अनन्तको नमस्कार है, जिनका कहीं अन्त नहीं मिलता तथा जो सबके महान् ईश्वर हैं, उन भगवान् शंकरको भी नमस्कार है। ये दोनों देवता सदा मुझपर प्रसन्न रहें।'

इस श्लोकके अनुसार भगवान् विष्णु और शंकरकी श्रेष्ठताका निश्चय करके वे सब मुनि क्षीरसागरको गये। वहाँ योगेश्वर भगवान् विष्णुने इस श्लोकका पाठ किया—

ब्रह्माणं सर्वभूतेषु परमं ब्रह्मरूपिणम्।
सदाशिवं च वन्दे तौ भवेतां मंगलाय मे॥

'मैं सम्पूर्ण भूतोंमें व्यापक परब्रह्मस्वरूप भगवान् ब्रह्मा और सदाशिवको प्रणाम करता हूँ। वे दोनों मेरे लिये मंगलकारी हों।'

यह श्लोक सुनकर उन ब्रह्मर्षियोंको बड़ा विस्मय हुआ। वे वहाँसे हटकर पुनः कैलासपर्वतपर गये। वहाँ उन्होंने देखा कि भगवान् शंकर गिरिराजनन्दिनी उमासे इस प्रकार कह रहे हैं—

एकादश्यां प्रनृत्यामि जागरे विष्णुसद्मनि।
सदा तपस्याञ्चरामि प्रीत्यर्थं हरिवेधसोः॥

'देवि! मैं भगवान् विष्णु और ब्रह्माजीकी प्रसन्नताके लिये भगवान् विष्णुके मन्दिरमें एकादशीको जागरणपूर्वक नृत्य करता हूँ तथा उन्हीं दोनोंकी प्रसन्नताके लिये सदा तपस्या किया करता हूँ।'

यह सुनकर वे मुनिलोग वहाँसे भी खिसक आये और आपसमें कहने लगे—जब ये तीनों देवता ही एक-दूसरेका पार नहीं पाते, तब उनके द्वारा उत्पन्न किये हुए महर्षियोंकी सन्तान-परम्परामें जन्म लेनेवाले हमलोगोंकी क्या गणना है? जो इन तीनोंमेंसे किसी एकको उत्तम, मध्यम या अधम बतलाते हैं, वे झूठ बोलनेवाले और पापात्मा हैं। उन्हें निश्चय ही नरकमें जाना पड़ता है। राजेन्द्र! नैमिषारण्यवासी तपस्वी मुनियोंने ऐसा ही निश्चय किया। यह सत्य ही है और मेरा भी यही स्पष्ट मत है। सहस्रों जप करनेवाले, सहस्रों वैष्णव तथा सहस्रों शैव ब्रह्मा, विष्णु और शिवका अनुगमन (आराधन) करके

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

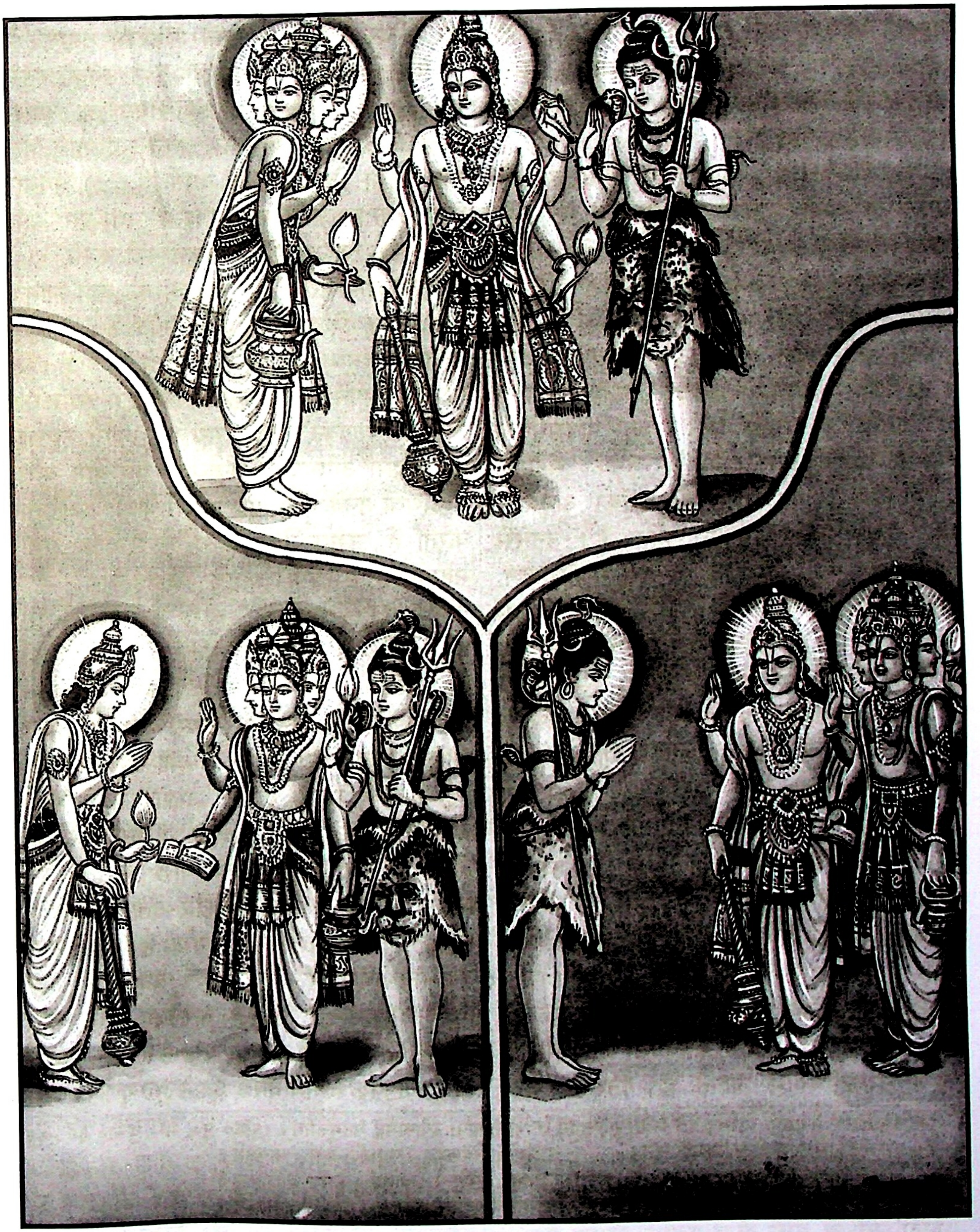

त्रिदेवोंकी श्रेष्ठता

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

अपनेको संसार-बन्धनसे मुक्त कर चुके हैं। इसलिये जिसका हार्दिक अनुराग जिस देवताके प्रति स्पष्टरूपसे प्रकट हो, वह उसीका भजन करे। इससे वह पापरहित हो सकता है, यही मेरा सर्वोत्तम मत है।[१]

करन्धमने पूछा—विप्रवर! वे कौनसे पाप हैं, जिनके द्वारा मोहित चित्तवाले मनुष्यका मन न तो देवतामें लगता है और न धर्मोंमें ही?

महाकालने कहा—राजन्! अपनी चित्तवृत्तियोंके भेदसे अधर्मके भेद जानने चाहिये। अधर्म तीन प्रकारके हैं—स्थूल, सूक्ष्म और अत्यन्त सूक्ष्म। ये ही अपने करोड़ों भेदोंके द्वारा अनेक प्रकारके हो जाते हैं। इनमेंसे जो स्थूल पापसमुदाय नरककी प्राप्ति करानेवाले हैं, उनका संक्षेपसे वर्णन किया जाता है। उन पापोंका अनुष्ठान मन, वाणी और कर्मोंद्वारा होता है। उनमेंसे मानसिक पापके चार भेद हैं,—पर-स्त्रीचिन्तन, दूसरोंके धन हड़प लेनेका संकल्प, अपने मनसे किसीका भी अनिष्टचिन्तन तथा न करनेयोग्य कार्योंके लिये मनमें आग्रह रखना। इसी प्रकार वाचिक पापकर्मके भी चार भेद हैं—असंगत वचन बोलना, झूठ बोलना, अप्रिय भाषण करना तथा दूसरोंकी निन्दा और चुगली करना। शारीरिक पापकर्म भी चार प्रकारके हैं—अभक्ष्य-भक्षण, हिंसा, मिथ्या भोगोंका सेवन तथा पराये धनका अपहरण।[२] इस प्रकार मन, वाणी और शरीरसे होनेवाले ये बारह प्रकारके पाप-कर्म बताये गये। इनके भेदोंका पुनः वर्णन करूँगा, जिनका फल अनन्त है। जो संसार-समुद्रसे तारनेवाले महादेवजीसे द्वेष रखते हैं, वे महान् पातकोंसे युक्त होनेके कारण नरकाग्नियोंमें जलते हैं। निरन्तर फल देनेवाले छः महापातक बताये जाते हैं—(१) जो मन्दिर आदिमें भगवान् शंकरको देखकर न तो नमस्कार करते हैं और (२) न उनकी स्तुति ही करते हैं, (३) अपितु भगवान्‌के सामने निःशंक हो मनमानी चेष्टा करते हुए खड़े होते और क्रीडा-विलास आदि करते हैं, (४) भगवान् शिव तथा गुरुजनके समीप पूजा, नमस्कार आदि आवश्यक शिष्टाचारोंका पालन नहीं करते, (५) शिवशास्त्रोंमें बताये हुए सदाचारको नहीं मानते, (६) और शिवभक्तोंसे द्वेष रखते हैं। ये छहों प्रकारके मनुष्य महापातकी समझे जाते हैं। जो पापात्मा अपने गुरुका, कष्टमें पड़े हुए व्यक्तिका, असमर्थ पुरुषका, विदेश गये हुए व्यक्तिका तथा शत्रुओंद्वारा अपमानित मनुष्यका परित्याग करता है अथवा उनके स्त्री-पुत्र एवं मित्रोंकी अवहेलना करता है, उसका यह कृत्य गुरुनिन्दाके समान महापातक समझना चाहिये। ब्रह्महत्यारा, मदिरा पीनेवाला, (सुवर्णकी) चोरी करनेवाला, गुरु-पत्नीगामी—ये चार महापातकी हैं। जो इनके पास संसर्ग रखता है, वह पाँचवाँ महापातकी है।[३] जो लोग क्रोधसे, द्वेषसे, भयसे अथवा लोभसे ब्राह्मणपर उसके मर्मको अत्यन्त पीड़ा पहुँचानेवाले महान् दोषका आरोप करते हैं, वे ब्रह्महत्यारे कहे गये हैं। जो याचना करनेवाले अकिंचन ब्राह्मणको बुलाकर पीछे 'नहीं है' ऐसा कहते हुए देना अस्वीकार कर देता है, वह भी ब्रह्महत्या करनेवाला माना गया है। जो सभामें उदासीनभावसे बैठे हुए श्रेष्ठ ब्राह्मणको अपने विद्या-अभिमानसे निस्तेज करनेकी चेष्टा करता है, वह ब्राह्मणघाती बताया गया है। जो गुरुजनोंके साथ बलपूर्वक विरोध करके अपने झूठे गुणोंका बखान

१- तस्माद्यस्य मनोरागो यस्मिन् देवे भवेत्स्फुटम्। स तं भजेद्विपापः स्यान्ममेदं मतमुत्तमम्॥ (स्क० पु०, मा० कुमा० ३६। १४)

२- परस्त्रीद्रव्यसंकल्पश्चेतसानिष्टचिन्तनम्। अकार्याभिनिवेशश्च चतुर्धा कर्म मानसम्॥
असम्बद्धप्रलापित्वमसत्यं चाप्रियं च यत्। परापवादं पैशुन्यं चतुर्धा कर्म वाचिकम्॥
अभक्ष्यभक्षणं हिंसा मिथ्याकामस्य सेवनम्। परस्वानामुपादानं चतुर्धा कर्म कायिकम्॥
(स्क० पु०, मा० कुमा० ३६। १८—२०)

३- ब्रह्मघ्नश्च सुरापश्च स्तेयी च गुरुतल्पगः। महापातकिनस्त्वेते तत्संसर्गी च पञ्चमः॥
(स्क० पु०, मा० कुमा० ३६। २८)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

करते हुए अपने-आपको उत्कृष्ट सिद्ध करना चाहता है, उसे भी ब्रह्महत्यारा कहा गया है। भूख-प्याससे जिनके शरीरको संताप हो रहा है, अतएव जो भोजन करनेके इच्छुक हैं, ऐसे ब्राह्मणोंके भोजनमें जो विघ्न डालता है, उसे ब्राह्मणघाती कहते हैं। जो सबकी चुगली करता है, सब लोगोंके छिद्र ढूँढ़नेमें ही लगा रहता है, सबके मनमें उद्वेग पैदा करता है तथा जिसमें क्रूरता भरी हुई है, ऐसा मनुष्य ब्रह्महत्यारा माना गया है। जो प्याससे पीड़ित हो जल पीनेके लिये जलाशयपर जाती हुई गौओंके मार्गमें विघ्न उपस्थित करता है, उसे गोघाती कहते हैं। ब्राह्मणोंने न्यायपूर्वक जिस धनका उपार्जन किया है, उसे छल-बलसे हर लेना ब्रह्महत्याके समान माना गया है।

माता-पिताका त्याग करना, झूठी गवाही देना, अपने मित्रका वध करना, अभक्ष्य-भक्षण करना, किसी स्वार्थवश वनजन्तुओंका वध करना, क्रोधमें आकर गाँव, वन और गोशालाओंमें आग लगा देना इत्यादि बड़े भयानक पाप मदिरापानके समान माने गये हैं। दरिद्र मनुष्योंका सर्वस्व हर लेना; मनुष्य, स्त्री, हाथी और घोड़ोंको चुरा लेना; गौ, भूमि, रत्न, सुवर्ण, ओषधियोंके रस, चन्दन, अगुरु, कपूर, कस्तूरी तथा रेशमी वस्त्रोंका अपहरण करना तथा हाथमें दी हुई धरोहरको हड़प लेना आदि पाप सुवर्णकी चोरीके समान माने गये हैं। पुत्र और मित्रकी स्त्रियों तथा बहिनोंके साथ सम्भोग करना, कन्याके साथ व्यभिचारका दुःसाहस करना, चाण्डालकी स्त्रियोंको अपने उपभोगमें लाना तथा अपने समान वर्णवाली स्त्रीके साथ भी व्यभिचार करना गुरुपत्नीगमनके समान माना गया है।

अहंकार, अधिक क्रोध, पाखण्ड, कृतघ्नता, अत्यन्त विषयासक्ति, कृपणता, शठता, ईर्ष्या तथा बिना किसी अपराधके ही पुत्र, मित्र, पत्नी, स्वामी और सेवकोंका परित्याग करना; साधु, बन्धु, तपस्वी, गाय, क्षत्रिय, वैश्य, स्त्री और शूद्रोंको मारना-पीटना, भगवान् शिवके आवास-स्थानपर लगे हुए वृक्षों और पुष्पवाटिका आदिको नष्ट करना, जो यज्ञके अधिकारी नहीं हैं, उनका यज्ञ कराना, जिनसे याचना करनी उचित नहीं, उनसे याचना करना; यज्ञ, बगीचा, पोखरा, पत्नी और सन्तानको बेचना; तीर्थयात्रा, उपवास, व्रत तथा मन्दिरनिर्माण आदिके पुण्योंका विक्रय करना; स्त्रीके धनसे जीविका चलाना, स्त्रियोंके अत्यन्त वशीभूत रहना, स्त्रियोंकी रक्षा न करना, ऋण न चुकाना, झूठ बोलकर जीविका चलाना, साध्वी कन्याकी बातोंमें दोष निकालना, विष तथा मारणयन्त्रोंका प्रयोग करना, किसीका मूलोच्छेद कर डालना, उच्चाटन एवं अभिचार कर्म करना, राग और द्वेषके कार्य करना, समयपर संस्कार न कराना, स्वीकार किये हुए व्रतका परित्याग करना, सब प्रकारके आहारोंका सेवन करना, असत्-शास्त्रोंके अनुसार चलना, सूखे तर्कका सहारा लेना; देवता, अग्नि, गुरु, साधु, गौ, ब्राह्मण, राजाओं तथा चक्रवर्ती नरेशोंकी उनके सामने या परोक्षमें निन्दा करना—ये सब उपपातक हैं। जिन्होंने श्राद्ध और देवयज्ञका परित्याग कर दिया है, अपने वर्णाश्रमोचित कर्मोंको सर्वथा छोड़ दिया है; जो दुराचारी, नास्तिक, पापी और सदा झूठ बोलनेवाले हैं; जो पर्वके समय अथवा दिनमें, जलमें, विपरीत योनिमें, पशु-योनिमें, रजस्वलाओंमें अथवा अयोनिमें मैथुन करता है; जो सबसे अप्रिय बोलते हैं, क्रूर हैं, प्रतिज्ञाको तोड़नेवाले हैं, तालाब और कुँओंको नष्ट करनेवाले हैं; जो रसका विक्रय करते हैं तथा एक ही पंक्तिमें बैठे हुए लोगोंको भोजन कराते समय पंक्ति-भेद करते हैं, वे लोग इन सभी पापोंके कारण उपपातकी माने गये हैं।

जो इनकी अपेक्षा कुछ न्यून श्रेणीके पापोंसे युक्त हैं, वे पापी कहलाते हैं। अब उनका वर्णन

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

सुनो। जो गौ, ब्राह्मण, कन्या, स्वामी, मित्र तथा तपस्वीजनोंके कार्योंमें अन्तर डालते हैं, वे पापी माने गये हैं। जो दूसरोंकी सम्पत्तिसे जलते हैं, नीच जातिकी स्त्रीका सेवन करते हैं, गोशाला, अग्नि, जल, सड़क तथा वृक्षोंकी छायामें, वृक्षोंपर, बगीचों और मन्दिरोंमें जो लोग मल-मूत्र आदिका त्याग करते हैं, वे पापी हैं। मतवाले होकर किलकारियाँ भरते हैं; वंचकवेष, वंचनापूर्ण कार्य तथा वंचकोंके-से आचरण करते हैं; झूठ और कपटके ही व्यवहारमें लगे रहते हैं, कपटपूर्ण शासन करते हैं और कूटनीतिका आश्रय लेकर युद्ध करते हैं, वे सब पापी हैं। जो अपने सेवकोंके प्रति अत्यन्त निष्ठुर और पशुओंका दमन करनेवाला (उनके अण्डकोष छेदन करनेवाला) है; जो झूठी बातें बोलता और स्त्री, पुत्र, मित्र, बाल, वृद्ध, दुर्बल, रोगी, भृत्यवर्ग, अतिथिवर्ग तथा भाई-बन्धुओंको भूखे छोड़कर अकेला ही भोजन करता है; स्वयं तो मिठाई खाता और ब्राह्मणोंको दूसरी वस्तुएँ देता है, उसका पाक व्यर्थ जानना चाहिये, अर्थात् उसके किये हुए दान और यज्ञ आदिका कोई फल नहीं मिलता, वह ब्रह्मवादी विद्वानोंद्वारा निन्दित होता है। जो अजितेन्द्रिय मनुष्य स्वयं ही कोई नियम लेकर फिर उन्हें त्याग देते हैं, प्रतिदिन गौओंको मारते और उन्हें बार-बार त्रास देते हैं, जो दुर्बलोंका पोषण नहीं करते, पशुओंके ऊपर अधिक भार लादकर उन्हें पीड़ा देते हैं, उनकी पीठमें घाव हो जानेपर भी उन्हें सवारीमें जोतते हैं, उनको भोजन न देकर स्वयं खाते हैं और रोगी होनेपर भी उनकी दवा नहीं करते, वे सब पापी हैं। जो सामुद्रिक शास्त्रको जीविकाका साधन बनाता है, शूद्रकुलमें उत्पन्न स्त्रीको अपनी भार्या बनाकर रखता है और जो धर्मात्मा होनेका ढोंग रचता है, वे सब-के-सब पापी माने गये हैं। जो राजा शास्त्रीय आज्ञाका उल्लंघन करके प्रजासे मनमाना कर लेता है, सदा दण्ड देनेकी ही रुचि रखता है अथवा जो अपराधीको भी दण्ड देनेकी रुचि नहीं रखता तथा जिसके राज्यमें प्रजा घूस लेनेवाले अधिकारियों और चोरोंसे पीड़ित होती है, वह नरककी आगमें पकाया जाता है। जो चोरीसे दूर रहनेवालेको चोर समझता है और वास्तविक चोरको चोर नहीं मानता, वह आलस्यदोषसे दूषित तथा दुर्व्यसनोंमें आसक्त राजा नरकमें जाता है।[१] पुराणवेत्ता विद्वान् इस प्रकारके और भी बहुत-से पाप बताते हैं। दूसरोंकी कोई भी वस्तु, वह सरसोंके बराबर भी छोटी क्यों न हो, अपहरण करनेपर मनुष्य पापी एवं नरकमें गिरनेका अधिकारी होता है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। इस प्रकारके पाप बन जानेपर मनुष्य प्राणत्यागके पश्चात् नरकका कष्ट भोगनेके लिये पूर्वशरीरकी ही भाँति एक यातनादेह प्राप्त करता है। अतः नरकमें डालनेवाले इन तीनों ही प्रकारके पापकर्मों[२]को त्याग देना चाहिये और श्रद्धापूर्वक भगवान् सदाशिवकी शरण लेनी चाहिये। संसर्गवश, कौतूहलवश अथवा लोभसे भी भगवान् शंकरके प्रति किये हुए नमस्कार, स्तुति, पूजा तथा नाम-संकीर्तन कभी विफल नहीं होते।

~~~०~~~

१. यश्च शास्त्रमतिक्रम्य स्वेच्छया चाहरेत्करम्। सदा दण्डरुचिर्यश्च यो वा दण्डरुचिर्न हि॥
उत्कोचकैरधिकृतैस्तस्करैश्च प्रपीड्यते। यस्य राज्ञः प्रजा राष्ट्रे पच्यते नरकेषु सः॥
अचौरं चौरवत्पश्येच्चौरं वाचौररूपिणम्। आलस्योपहतो राजा व्यसनी नरकं व्रजेत्॥
(स्क० पु०, मा० कुमा० ३६। ७२—७५)

२. स्थूल, सूक्ष्म और अत्यन्त सूक्ष्म अथवा महापातक, उपपातक तथा सामान्य पाप—ये ही त्रिविध पाप हैं।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth
~~~

शिवपूजाकी विधि तथा सदाचारका निरूपण

करन्धम बोले—ब्रह्मन्! आप भगवान् शंकरकी पूजाका विधान संक्षेपसे बतानेकी कृपा करें, जिसका पालन करनेसे मनुष्य शिवके पूजनका पूरा फल प्राप्त कर सके।

महाकालने कहा—राजन्! सदा प्रातःकाल, मध्याह्नकाल और सायंकालमें भगवान् शंकरका भजन करे। उनके दर्शन और स्पर्शसे मनुष्य निश्चय ही कृतार्थ हो जाता है। पहले स्नान करे अथवा यदि रोग आदि संकटसे ग्रस्त हो, तो केवल भस्मस्नान करे अथवा कण्ठतक जलसे स्नान करे। यह भी सम्भव न हो, तो केवल मन्त्रस्नान ही कर ले। स्नानके पश्चात् ऊनी वस्त्र पहने अथवा श्वेत वस्त्र धारण करे या किसी रंगमें रँगा हुआ नवीन वस्त्र पहने। मैला अथवा सिला हुआ वस्त्र न धारण करे। धौत वस्त्रके अतिरिक्त उत्तरीय वस्त्र भी धारण करना चाहिये, अन्यथा उसके बिना पूजन निष्फल होता है। जो पुरुष ललाटमें, हृदयमें और दोनों कंधोंपर भस्मका त्रिपुण्ड्र धारण करके प्रसन्नतापूर्वक महादेवजीकी पूजा करता है, वह अल्पकालमें भगवान् शिवका दर्शन पाता है। उपासक अपने सब दोषोंको मनसे निकालकर भगवान् शिवके मन्दिरमें प्रवेश करे। प्रवेश करके पहले महादेवजीको प्रणाम करे। तदनन्तर मन्दिरके गर्भगृहमें प्रवेश करे, फिर हाथ-पैर धोकर मन-ही-मन भगवान्‌का चिन्तन करते हुए उनके श्रीविग्रहपर चढ़े हुए निर्माल्यको हटावे। जो भगवान् शिवके मन्दिरमें भक्तिपूर्वक मार्जन करने (झाड़ू देने)-का कार्य करता है, भगवान् शंकर भी उसके अन्तःकरणका मार्जन (शोधन) कर देते हैं। तत्पश्चात् स्वच्छ जलसे गड्डुवोंको भर ले। सभी गड्डुवे बराबर और सुन्दर होने चाहिये। उनमें कोई छेद न रहे, वे फूटे न हों, सबकी बनावट अच्छी हो, सभी वस्त्रसे छाने हुए जलसे परिपूर्ण हों, उन्हें चन्दन और धूपसे सुवासित किया गया हो; '**ॐ नमः शिवाय**' इस षडक्षर मन्त्रका जप करते हुए उन गड्डुवोंको धोया गया, भरा गया और लाया गया हो, ऐसे एक सौ आठ गड्डुवोंका जुगाड़ कर ले। इतना न हो तो अट्ठाईस अथवा अठारह गड्डुवोंका प्रबन्ध करे। कम-से-कम चार गड्डुवे अवश्य रखे, इतनेसे कम न करे। दूध, दही, घी, शहद तथा ईखका रस—इन सब सामग्रियोंको एकत्र करके भगवान् शिवके वामभागमें रख दे। तदनन्तर बाहर निकलकर पहले प्रतिहारों (द्वारपालों)-की पूजा करे, उन सबके वाचक मन्त्र क्रमशः बतलाये जाते हैं— '**ॐ गं गणपतये नमः, ॐ क्षें क्षेत्रपालाय नमः, ॐ गुं गुरुभ्यो नमः**' इन तीन मन्त्रोंसे आकाशमें पूजन-सामग्री समर्पित करे। तत्पश्चात् चारों दिशाओंमें क्रमशः कुलदेवता, नन्दी, महाकाल और धाता-विधाताकी पूजा करे, इनकी पूजाके मन्त्र इस प्रकार हैं— '**ॐ कुं कुलदेवतायै नमः, ॐ नं नन्दिने नमः, ॐ मं महाकालाय नमः, ॐ धां धात्रे विधात्रे नमः।**'

इस प्रकार बाहर पूजा करनेके पश्चात् भीतर प्रवेश करके शिवलिंगसे कुछ दक्षिण भागमें पवित्रतापूर्वक उत्तराभिमुख होकर बैठे। शरीरको समभावसे रखते हुए आसनपर आसीन हो क्षणभर भगवान्‌का ध्यान करे। कमलके आकारका सूर्यमण्डल है, उसके मध्यभागमें चन्द्रमण्डलकी स्थिति है, उसके भी मध्यभागमें अग्निमण्डल है जो धर्म* आदिसे घिरा हुआ है। इस प्रकार अग्निमण्डलका चिन्तन करके उसके मध्यभागमें विश्वरूप भगवान्

* धर्म, ज्ञान, वैराग्य तथा ऐश्वर्य।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

शंकरका भावनाद्वारा साक्षात्कार करे। भगवान् शिव अपनी वामा और ज्येष्ठा आदि शक्तियोंसे संयुक्त हैं। उनके पाँच मुख और दस भुजाएँ हैं, प्रत्येक मुखमें तीन-तीन नेत्र शोभा पा रहे हैं, उनके मस्तक चन्द्रमासे विभूषित हैं, भगवान्के वामांगमें गिरिराजनन्दिनी भगवती उमा विराजमान हैं तथा सिद्धगण बारंबार उनकी स्तुति कर रहे हैं। इस प्रकार भगवान् शिवका ध्यान करे।

राजन्! ध्यानके पश्चात् शंकरजीकी सेवामें पाद्य और अर्घ्य निवेदन करे। जल, अक्षत, कुशा, चन्दन, पुष्प, सरसों, दूध, दही और मधु—ये अर्घ्यके नौ अंग बताये गये हैं; इन सबको एकत्र करके अर्घ्य देना चाहिये। तत्पश्चात् श्रद्धासे आर्द्रचित्त हो शिवलिंगको स्नान कराना आरम्भ करे। पहले गड़ुवा हाथमें लेकर स्नान करावे, आधे गड़ुवेसे शिवलिङ्गको पहले नहलावे, फिर हाथसे रगड़कर मैल साफ करे, पुनः गड़ुवेके समूचे जलसे स्नान करावे, स्नानके पश्चात् पूजन करे और धूप दे। इसके बाद भक्तिपूर्वक भगवान् शिवको प्रणाम करके मूलमन्त्रसे उन्हें स्नान करावे। '**ॐ हूं विश्वमूर्तये शिवाय नमः**' यह द्वादशाक्षर मूलमन्त्र है। इसी मूलमन्त्रसे जल और धूपसे किये हुए पूजनके अतिरिक्त जल, दूध, दही, मधु, घृत और ईखके रसद्वारा पृथक्-पृथक् स्नान करावे। फिर सब गड़ुवोंके जलसे स्नान करावे। तदनन्तर गन्ध-द्रव्योंका लेपन करके श्रीविग्रहका रूखापन दूर करे। रूखापन दूर करके पुनः नहलावे और चन्दनका लेप करे। तत्पश्चात् भाँति-भाँतिके पुष्पोंसे पूजन करे। उसकी विधि सुनो। आधार-पीठके अग्निकोणवाले पायेमें '**ॐ धर्माय नमः**' इस मन्त्रसे धर्मकी पूजा करे, नैर्ऋत्य कोणवाले पायेमें '**ॐ ज्ञानाय नमः**' इस मन्त्रके द्वारा ज्ञानका पूजन करे; इसी प्रकार वायव्य कोणमें '**ॐ वैराग्याय नमः**', ईशान कोणवाले पायेमें '**ॐ ऐश्वर्याय नमः**', पूर्व दिशावाले पायेमें '**ॐ अधर्माय नमः**', दक्षिणमें '**ॐ अज्ञानाय नमः**', पश्चिममें '**ॐ अवैराग्याय नमः**', उत्तरमें '**ॐ अनैश्वर्याय नमः**'— इन मन्त्रोंद्वारा क्रमशः वैराग्य आदिकी पूजा करे। फिर कमलकी कर्णिकामें ही अनन्त आदिकी इन मन्त्रोंसे पूजा करे— **ॐ अनन्ताय नमः, ॐ पद्माय नमः, ॐ अर्कमण्डलाय नमः, ॐ सोममण्डलाय नमः, ॐ वह्निमण्डलाय नमः, ॐ वामाज्येष्ठादिपञ्चमन्त्रशक्तिभ्यो नमः, ॐ परमप्रकृत्यै देव्यै नमः।** इसके बाद ईशान, तत्पुरुष, अघोर, वामदेव तथा सद्योजात नामक पाँच मुखोंवाले, रुद्र-साध्य-वसु-आदित्य तथा विश्वेदेवादि देवस्वरूप, अण्डज, स्वेदज, उद्भिज्ज और जरायुजरूप स्थावर-जंगम मूर्ति परमेश्वर एवं विश्वमूर्ति शिवका नमस्कारपूर्वक पूजन करे। मन्त्र इस प्रकार है—

ॐ ईशान तत्पुरुषाघोरवामदेव-सद्योजातपञ्चवक्त्राय रुद्रसाध्यवस्वादित्य-विश्वेदेवादिदेवरूपायाण्डजस्वेदजोद्भिज्जजरायुज-रूपस्थावरजङ्गममूर्तये परमेश्वराय ॐ हूं विश्वमूर्तये शिवाय नमः।

तत्पश्चात् '**ॐ त्रिशूलधनुःखड्गकपालकुठारेभ्यो नमः**'—इस मन्त्रसे त्रिशूल आदिकी पूजा करे। तदनन्तर जलाधारके मुखभागमें '**ॐ चण्डीश्वराय नमः**' इस मन्त्रके द्वारा चण्डीश्वरकी पूजा करे।

इस प्रकार विधिपूर्वक पूजन करके भगवान् शिवको अर्घ्य निवेदन करे। 'हे महादेवजी! जल, अक्षत, फूल और इन उत्तम फलोंसे युक्त यह अर्घ्य ग्रहण कीजिये, पूजाकी पूर्तिके लिये मैं इसे समर्पित करता हूँ।' इस प्रकार अर्घ्य देनेके पश्चात् यदि अपनेमें शक्ति हो तो धनके द्वारा भी भगवान्का पूजन करे। इसके बाद क्रमशः धूप, दीप और नैवेद्य निवेदन करे, घण्टा बजावे और आरती करे। देवाधिदेव महादेवजीके ऊपर शंख आदि वाद्योंकी ध्वनिके साथ आरती घुमानी चाहिये। जो देवाधिदेव

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

त्रिशूलधारी भगवान् शिवकी आरतीका दर्शन करता है, वह समस्त पातकोंसे मुक्त हो जाता है। फिर जो स्वयं ही भगवान्की आरती उतारेगा, उसके लिये तो कहना ही क्या है। जो भगवान् शिवके समीप नृत्य, संगीत तथा वाद्य— इन तीनोंका आयोजन करता है, उसपर भगवान् शिव बहुत सन्तुष्ट होते हैं; क्योंकि गीत और वाद्यका फल अनन्त होता है। तदनन्तर अनेक प्रकारके स्तोत्रोंद्वारा महादेवजीकी स्तुति करके दण्डकी भाँति पृथ्वीपर गिरकर प्रणाम करे और देवेश्वर शिवसे अपने अपराधोंके लिये क्षमा-प्रार्थना करते हुए कहे—'भगवन्! मुझसे जो सुकृत अथवा दुष्कृत हुआ है उसके लिये आप क्षमा करें।'

जो इस प्रकार भगवान् शंकरका विशेषतः इस महाकाललिंगका पूजन करता है, वह अपने पिता, पितामह और प्रपितामहका सब पापोंसे उद्धार करके चिरकालतक रुद्रलोकमें निवास करता है। इस विधिसे भगवान् महेश्वरका उपासक होकर और सदाचारमें स्थित रहनेका व्रत लेकर जो मनुष्य बन्धनसे छूटनेके लिये तन्मय होकर भगवान् शिवका पूजन करता है, वह सब पापोंसे छूटकर शिवलोकमें जाता है। जो इस प्रकार भगवान् शंकरकी पूजा करता है, उसने मानो समस्त संसारको तृप्त कर दिया। किंतु राजन्! यह सब पूजन उसीका सफल होता है, जो कभी सदाचारका उल्लंघन नहीं करता है। आचारसे धर्म सफल होता है, आचारसे ही मनुष्य स्वर्गका सुख भोगता है, आचारसे आयु प्राप्त होती है तथा आचार अशुभ लक्षणोंको नष्ट कर देता है। जो इस जगत्में सदाचारका उल्लंघन करके स्वेच्छाचारपूर्ण बर्ताव करता है, उस मनुष्यके यज्ञ, दान और तप इस लोकमें कल्याणकारक नहीं होते।[1] अतः सदाचारका भी कुछ संक्षिप्त परिचय दूँगा, उसे सुनो। गृहस्थको धर्म, अर्थ और काम— इन तीनोंके साधनके लिये यत्न करना चाहिये। इनकी सिद्धि होनेपर गृहस्थ पुरुषके लिये इहलोक और परलोकमें भी सिद्धि प्राप्त होती है।

ब्राह्ममुहूर्तमें उठे। उठकर धर्म और अर्थका चिन्तन करे। तत्पश्चात् शय्यासे उठकर मलत्यागके बाद कुल्ला-दाँतून कर ले। फिर स्नान करके द्विज सन्ध्योपासना करे। विद्वान् द्विजको उचित है कि वह शान्तचित्त, संयमी तथा पवित्र होकर पूर्व-सन्ध्याकी उपासना उस समय प्रारम्भ करे जब कि प्रातःकाल आकाशके तारे अभी कुछ दिखायी देते हों तथा पश्चिम-सन्ध्या सूर्यास्त होनेसे पहले ही प्रारम्भ करे। इस प्रकार न्यायपूर्वक सन्ध्योपासना करता रहे। आपत्ति कालके सिवा कभी भी सन्ध्या-कर्मका परित्याग नहीं करना चाहिये। राजन्! झूठ, असत्-प्रलाप तथा कठोरभाषण सदाके लिये त्याग दे। दुष्ट पुरुषोंकी सेवा, नास्तिकवाद तथा असत्-शास्त्रोंको भी सदाके लिये छोड़ दे।[2] दर्पणमें मुँह देखना, दाँतून करना, बाल सँवारना और देवताओंकी पूजा करना—इन सब कार्योंको महर्षियोंने पूर्वाह्णमें

१- आचारात् फलते धर्मो ह्याचारात् स्वर्गमश्नुते। आचाराल्लभते चायुराचारो हन्त्यलक्षणम्॥
यज्ञदानतपांसीह पुरुषस्य न भूतये। भवन्ति यः सदाचारं समुल्लङ्घ्य प्रवर्तते॥
(स्क० पु०, मा० कुमा० ३६। १२३—१२५)

२- ब्राह्मे मुहूर्ते बुध्येत धर्मार्थौ चापि चिन्तयेत्। समुत्थाय त्वथाचम्य दन्तधावनपूर्वकम्॥
सन्ध्यामुपासीत बुधः शान्तान्तः प्रयतः शुचिः। पूर्वां सन्ध्यां सनक्षत्रां पश्चिमां सदिवाकराम्॥
उपासीत यथान्यायं नैनां जह्यादनापदि। वर्जयेदनृतं चासत् प्रलापं परुषं तथा॥
असत्सेवामसद्वादस्त्वसच्छास्त्रं च पार्थिव।
(स्क० पु०, मा० कुमा० ३६। १२७—१३०)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

करनेयोग्य बताया है। पलाशकी लकड़ीका आसन, खड़ाऊँ और दाँतून भी वर्जित हैं। विद्वान् पुरुष आसनको पैरसे न खींचे। एक ही साथ जल और अग्निको न ले जाय। गुरु, देवता तथा अग्निके सम्मुख पाँव न फैलावे। चौराहा, चैत्यवृक्ष, देवालय, संन्यासी, विद्यामें बढ़े हुए पुरुष, गुरु तथा वृद्धजन—इन सबको अपने दाहिने करके चलना चाहिये। धर्मज्ञ पुरुषको आहार, विहार और मैथुन ओटमें रहकर ही करने चाहिये। इसी प्रकार अपनी वाणी और बुद्धिकी शक्ति, तपस्या, जीविका तथा आयुको अत्यन्त गुप्त रखना चाहिये।[१] दिनमें उत्तर दिशाकी ओर मुँह करके मल और मूत्रका त्याग करना चाहिये तथा रातमें दक्षिण दिशाकी ओर मुँह करके करना चाहिये। ऐसा करनेसे आयु नहीं घटती। अग्नि, सूर्य, गौ, व्रतधारी पुरुष, चन्द्रमा और जलके सम्मुख तथा सन्ध्याके समय मल-मूत्र त्याग करनेवाले मनुष्यकी बुद्धि नष्ट होती है।[२] भोजन, शयन, स्नान, मल-मूत्रका त्याग तथा सड़कोंपर भ्रमण करनेपर दोनों हाथ, दोनों पैर और मुँह इन पाँचोंको भलीभाँति धोकर आचमन करे। नदीमें, श्मशान-भूमिमें, राखपर, गोबरपर, जोते-बोये हुए खेतमें तथा हरी-भरी घासवाली भूमिमें मल-मूत्रका त्याग न करे। बुद्धिमान् पुरुष कुएँ आदिसे निकाले हुए जलके द्वारा ही शौचक्रिया करे। जलके भीतरसे, देवस्थानसे, बाँबीसे और चूहोंके स्थानसे निकाली हुई तथा शौचावशिष्ट फेंकी हुई—इन पाँच प्रकारकी मिट्टियोंको त्याग दे। विद्वान् पुरुष हाथको उतना ही धोये जितनेसे मलकी गन्ध और लेप दूर हो जाय। अपने-आपको ताड़ना न दे, दुःखमें न डाले, दोनों हाथोंसे अपना सिर न खुजलावे, स्त्रीकी रक्षा करे, उसके प्रति अकारण ईर्ष्या छोड़ दे, भगवान् सूर्यको अर्घ्य दिये बिना कोई कर्म न करे, प्राणियोंसे द्रोह न करके मनमें भगवान् शंकरका चिन्तन करते हुए धनका उपार्जन करे। अत्यन्त कृपण न होवे, किसीके प्रति ईर्ष्या न रखे, कृतघ्न न होवे, दूसरोंसे द्रोह पैदा करनेवाले कार्यमें मन न लगावे, हाथ-पैरसे चंचल न हो, नेत्रोंसे भी चपलता न सूचित करे, सरल भावसे रहे, वाणीसे अथवा अंगोंकी चेष्टाओंसे भी अपनी चपलताका परिचय न दे, अशिष्ट पुरुषका संग न करे, व्यर्थ विवाद और अकारण वैर न करे, साम, दान और भेद—इन तीन उपायोंसे अपना मनोरथ सिद्ध करे। दण्डका आश्रय तो तभी लेना चाहिये जब उसके सिवा दूसरा कोई उपाय न रह जाय। फटा-टूटा आसन, टूटी खाट और फूटे बर्तनको त्याग दे। नृपश्रेष्ठ! अग्नि और शिवलिंग—इन दोनोंके बीचसे न निकले। दो अग्नि, दो ब्राह्मण, पति और पत्नी, सूर्य और चन्द्रमाकी प्रतिमा तथा भगवान् शंकर और नन्दिकेश्वर-वृषभ इनके बीचमें होकर न जाय; क्योंकि इनके बीचसे जानेवाला मनुष्य पापका भागी होता है। विद्वान् पुरुष एक वस्त्र धारण करके न तो भोजन करे, न अग्निमें आहुति दे, न ब्राह्मणोंकी पूजा करे और न देवताओंकी अर्चना ही करे। कूटना, पीसना,

---

१- पादौ प्रसारयेन्नैव गुरुदेवाग्निसम्मुखे। चतुष्पथं चैत्यतरुं देवागारं तथा यतिम्॥
विद्याधिकं गुरुं वृद्धं कुर्यादेतान् प्रदक्षिणान्।
आहारनीहारविहारयोगास्सुसंवृता धर्मविदानुकार्याः।
वाग्बुद्धिवीर्याणि तपस्तथैव दानायुषी गुप्ततमे च कार्ये॥
(स्क० पु०, मा० कुमा० ३६। १३३—१३५)

२- उभे मूत्रपुरीषे तु दिवा कुर्यादुदङ्मुखः। दक्षिणाभिमुखो रात्रौ ह्येवमायुर्न रिष्यते॥
प्रत्यग्निं प्रतिसूर्यञ्च प्रतिगां व्रतिनं प्रति। प्रतिसोमोदकं सन्ध्यां प्रज्ञा नश्यति मेहतः॥
(स्क० पु०, मा० कुमा० ३६। १३६-१३७)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

झाड़ू देना, पानी छानना, राँधना, भोजन करना, सोना, उठना, जाना, छींकना, कार्यारम्भ करना, कार्यको समाप्त करना, मुँहसे अप्रिय वचन निकल जाना, पीना, सूँघना, स्पर्श करना, सुनना, बोलनेकी इच्छा करना, मैथुन करना तथा शौच कर्म—इन बीस कार्योंके होते या करते समय जो सदा भगवान् शंकरका नाम स्मरण करता है, उसीको शिवभक्त जानना चाहिये; शेष दूसरे लोग नाममात्रके शिवभक्त कहे गये हैं। शिवजीको प्रत्येक कार्यमें स्मरण करनेवाला वह शिवभक्त निश्चय ही शिव-स्वरूप होकर अन्तमें शिवको ही प्राप्त होता है।

विद्वान् पुरुष परायी स्त्रीसे बातचीत न करे; यदि कभी आवश्यकतावश उनसे वार्तालाप करे तो माताजी! बहिनजी! बेटी! अथवा आर्ये! इस प्रकार सम्बोधन करके बोले। हाथ और मुँह जूठे हों तो कोई बात न करे और न किसी वस्तुका स्पर्श ही करे। उच्छिष्ट दशामें सूर्य, चन्द्रमा, तारे, देवता और अपने मस्तककी ओर देखना भी मना है। बहन, बेटी अथवा माताके साथ भी एकान्तमें न बैठे; क्योंकि इन्द्रिय-समुदाय दुर्जय होता है; उनसे विद्वान् पुरुष भी मोहमें पड़ जाते हैं।* यदि गुरुदेव घरपर आ जायँ तो उनके लिये स्वयं उठकर यत्नपूर्वक आसनकी व्यवस्था करे और चरणोंमें मस्तक रखकर प्रणाम करे। विद्वान् मनुष्य उत्तर और पश्चिमकी ओर सिर करके कभी न सोवे। सिरहानेकी ओर दक्षिण दिशा अथवा पूर्वदिशाको रखकर शयन करना चाहिये। रजस्वला स्त्रीका दर्शन-स्पर्श न करे, उसके साथ बातचीत भी नहीं करनी चाहिये। जलके भीतर मल-मूत्र और मैथुन न करे। भगवान् शिवके भक्तको चाहिये कि वह अपने वैभवके अनुसार देवता, मनुष्य, ऋषि तथा पितरोंको उनका भाग समर्पित करके शेष अन्नका स्वयं भोजन करे। पवित्र हो आचमन करके पूर्व या उत्तरकी ओर मुँह करके दोनों हाथोंको घुटनोंके भीतर रखकर मौन भावसे भोजन करे। उस समय भोजनमें ही मन लगाये रहे और अन्नके दोषकी चर्चा न करे। यदि वह अन्न किसी उच्छिष्ट आदि दोषसे दूषित हो गया हो तो उस दोषके प्रकट करनेमें कोई हानि नहीं है, ऐसे दोषके अतिरिक्त किसी अन्य दोषकी चर्चा नहीं करनी चाहिये। नग्न होकर न तो स्नान करे, न सोवे और न चले ही। यदि गुरुके द्वारा कोई अनुचित कार्य भी हो जाय, तो उसे अन्यत्र न कहे, वे क्रोधमें हों तो उन्हें मनावे। दूसरे लोगोंके मुखसे भी गुरुकी निन्दा न सुने। सैकड़ों कार्य छोड़कर भी धर्मकी कथा-वार्ता सुने। प्रतिदिन धर्म-चर्चा श्रवण करनेवाला मनुष्य अपने अन्तःकरणको उसी प्रकार शुद्ध कर लेता है, जैसे नित्यप्रति झाड़ू देने अथवा सफाई करनेसे घर और दर्पण स्वच्छ होते हैं। सायंकाल और प्रातःकाल अतिथिकी पूजा करके भोजन करना चाहिये। दोनों सन्ध्याओंके समय सोना, पढ़ना और भोजन करना निषिद्ध है। सन्ध्याकालमें मोहवश भोजन करनेवाला मनुष्य शराबीके तुल्य माना जाता है। स्नान करके मनुष्य अपने बालोंको न फटकारे। मार्गमें छींकने और थूकनेपर अपने दाहिने कानका स्पर्श करे तथा मन-ही-मन समस्त प्राणियोंसे इस अपराधके लिये क्षमा माँगे। नीलका रँगा हुआ वस्त्र न पहने, कपड़ेको उलटा करके न पहने, मलिन वस्त्र त्याज्य है तथा जिसके कोर या किनारा न हो, ऐसा वस्त्र भी धारण करनेयोग्य नहीं है।

हाथ, मुँह और दोनों पैर धोकर आसनपर बैठे। दोनों हाथ घुटनोंके भीतर रखकर तीन

* स्वस्रा दुहित्रा मात्रा वा नैकान्तासनमाचरेत्। दुर्जयो हीन्द्रियग्रामो मुह्यते पण्डितोऽपि सन्॥

(स्क० पु०, मा० कुमा० ३६। १५७)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

बार आचमन करे, दो बार मुँह पोंछे। फिर जलसे मुँह, आँख, कान, नाक तथा अपने मस्तकका स्पर्श करे। पुनः दो बार आचमन करके सब कर्म करे। छींक और थूक आनेपर, दाँतमें अन्न आदि लगे रहनेपर तथा पतितोंके साथ बातचीत करनेपर अवश्य आचमन करना चाहिये। विद्वान् पुरुषको सदा तीनों वेदोंका स्वाध्याय करना चाहिये तथा धर्मपूर्वक धनका उपार्जन करके आत्मकल्याणके लिये यत्नपूर्वक भगवान्‌का यजन करना चाहिये। बुद्धिमान् पुरुषको उचित है कि वह नीच श्रेणीके मनुष्योंके लिये भी कभी अनादरसूचक 'तू' का प्रयोग न करे। गुरुजनोंके लिये तू कह देना या उनका वध कर डालना दोनों बराबर है। सत्य बोले, मित्र-भावसे रहे, सदा ऐसी बात बोले जो दूसरोंको सान्त्वना देनेवाली हो। परलोकमें जो हितकर हो, उसी कार्यमें गम्भीर बुद्धिवाले पुरुषोंको अपना शरीर और मन लगाना चाहिये। स्वच्छ इन्द्रियोंवाले पुरुषोंको तीर्थस्नान, उपवास, व्रत, सत्पात्रको दिये गये दान, होम, जप, यज्ञ, शिव-पूजा तथा देवताओंकी विशेष पूजा आदिके द्वारा सदा अपने अन्तःकरणका शोधन करना चाहिये। राजन्! जिस कार्यको करते समय अपने आत्माको घृणा न हो तथा जो महात्मा पुरुषके लिये गोपनीय (छिपानेयोग्य) न हो, वह कार्य अनासक्तभावसे अवश्य करना चाहिये। यह मैंने तुमसे संक्षिप्तरूपमें सदाचारका किंचिन्मात्र वर्णन किया है। शेष बातें तुम्हें स्मृतियों और पुराणोंसे सुननी चाहिये। इस प्रकार भगवान् शिवकी प्रीतिके लिये धर्माचरण करनेवाले सद्‌गृहस्थको इहलोकमें धर्म, अर्थ और कामकी प्राप्ति होकर परलोकमें उसका परम कल्याण होता है।

नारदजी कहते हैं—अर्जुन! जब महाकालजी इस प्रकार भाँति-भाँतिके धर्मोंका उपदेश कर रहे थे, उस समय आकाशमें बड़ा भारी शब्द हुआ। तदनन्तर महाकाल भगवान् शिवके परमधामको चले गये। कुरुनन्दन! इस प्रकार इस महालिंगका आविर्भाव हुआ है। महाकालका यह कूप और सरोवर भी परम पवित्र एवं सिद्धिदायक है। कुन्तीनन्दन! जो मनुष्य यहाँ इस लिंगकी आराधनामें संलग्न होते हैं, महाकाल उन्हें अपने हृदयसे लगाकर भगवान् शिवकी सेवामें प्रस्तुत करते हैं। अर्जुन! इस प्रकार महीसागरसंगम तीर्थमें ये सात लिंग प्रकट हुए। जो श्रेष्ठ मानव इस प्रसंगको पढ़ते और सुनते हैं, वे भी धन्य हैं।

नारदजीके द्वारा भगवान् वासुदेवकी स्थापना, ऐतरेयका अपनी मातासे संसारदुःखका वर्णन, भगवान्‌का प्रत्यक्ष प्रकट होकर ऐतरेयको वरदान देना तथा वासुदेवके ध्यानसे ऐतरेयकी मुक्ति

नारदजी कहते हैं—अर्जुन! तदनन्तर महीसागर-संगममें जब मैंने स्थानकी स्थापना कर ली, तब कालान्तरमें मन-ही-मन विचार किया कि यह तीर्थ भगवान् वासुदेवके बिना शोभा नहीं पा रहा है। ठीक उसी तरह, जैसे बिना सूर्यके संसार सुशोभित नहीं होता। भगवान् विष्णु भूषणके भी भूषण हैं। जिस तीर्थमें, जिस घरमें, जिस हृदयमें तथा जिस शास्त्रमें मेरे स्वामी भगवान् विष्णु नहीं हैं, वह सब असत् है। इसलिये वरदायक भगवान् पुरुषोत्तमको प्रसन्न करके सम्पूर्ण विश्वपर अनुग्रह करनेकी कामनासे इस तीर्थमें उन्हें साक्षात् कलासहित ले आऊँगा। ऐसा विचारकर मैं वहीं ठहर गया

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

और ज्ञानयोगके द्वारा योगीश्वर श्रीहरिको सन्तुष्ट करनेके लिये सौ वर्षोंतक आराधना करता रहा। सम्पूर्ण इन्द्रियोंको अपने वशमें करके वासुदेवमय होकर सब प्राणियोंपर कृपा रखते हुए अष्टाक्षरमन्त्रके जपमें लगा रहा। इस प्रकार मेरे आराधना करनेपर गरुड़पर बैठे हुए भगवान् श्रीहरिने कोटि-कोटि गणोंके साथ आकर मुझे प्रत्यक्ष दर्शन दिया। तब मैंने श्रीहरिको विधिपूर्वक अर्घ्य दे, प्रणाम करके दोनों हाथ जोड़े हुए कहा—'प्रभो! पूर्वकालमें

श्वेतद्वीप नामक धाममें मैंने आपके अजन्मा, सनातन, नर-नारायणात्मक स्वरूपका दर्शन किया है। जनार्दन! उसी रूपकी एक कला यहाँ स्थापित कीजिये। भगवन्! यदि आप प्रसन्न हैं तो मेरी यह प्रार्थना स्वीकार करें।' मेरे इस प्रकार प्रार्थना करनेपर भगवान् गरुडध्वजने कहा—'ब्रह्मपुत्र नारद! तुम्हारे हृदयमें जिस आकांक्षाका उदय हुआ है, वह उसी रूपमें पूर्ण हो। मुझे इस तीर्थमें सदैव निवास करना है।' यों कहकर श्रीविष्णु-प्रतिमामें अपनी कला स्थापित करके भगवान् विष्णु जब चले गये, तब मैंने सम्पूर्ण विश्वपर अनुग्रह करनेकी इच्छासे उनके श्रीअर्चाविग्रहकी स्थापना की। यत: साक्षात् श्वेतद्वीपनिवासी श्रीहरि यहाँ विराजमान हैं, जो कि सबसे वृद्ध हैं, अत: वे इस तीर्थमें वृद्ध वासुदेवके नामसे विख्यात हुए हैं।

कार्तिकमासके शुक्लपक्षमें जो कल्याणमयी एकादशी आती है, उस दिन झरने अथवा नदी आदिके जलमें विधिपूर्वक स्नान करके जो पुरुष पंचोपचारद्वारा भक्तिभावसे श्रीहरिका पूजन करता है तथा उपवास और जागरण करते हुए श्रीहरिके आगे संगीत एवं वाद्यका आयोजन करता है, अथवा दम्भ और क्रोध त्याग कर श्रीविष्णुकी महिमा एवं लीलाकी कथा कहता है तथा मन और इन्द्रियोंको वशमें रखते हुए प्रसन्नचित्त हो यथाशक्ति दान देता है, वह ब्रह्महत्यारा क्यों न हो, अनेक जन्मोंकी समस्त पापराशिसे मुक्त हो जाता है। इसके सिवा वह अन्तमें गरुड़-सम्बन्धी विमानके द्वारा साक्षात् वैकुण्ठधामको प्राप्त होता है।

श्रद्धापूर्वक, प्रसन्नतापूर्वक, उत्साहके साथ, आन्तरिक अभिलाषासे, अहंकार छोड़कर, भगवान्‌को स्नान करा उन्हें धूप और चन्दन चढ़ाकर, पुष्प और नैवेद्य समर्पण करके, अर्घ्यदान देकर, प्रत्येक प्रहरमें अत्यन्त भक्तिभावसे भगवान्‌की आरती उतारकर, चँवर डुलानेका आनन्द लेते हुए, भेरी बजाते हुए, पुराण-कथा-श्रवणपूर्वक, भक्तियुक्त नृत्य करके, नींदसे दूर रहकर, क्षुधा-पिपासा तथा रसास्वादनकी इच्छासे रहित होकर, भगवच्चरणा-रविन्दोंकी सुगन्धको सूँघते हुए, भगवत्प्रिय रात्रि-संगीतका आयोजन करके, भगवत्तीर्थमें जाकर, प्राणायामपूर्वक, ब्रह्मचर्यके पालनपूर्वक, स्तोत्रपाठके साथ, भगवान्‌के चरणोदकको ग्रहण करते हुए, सत्यभाषणपूर्वक, सत्संगका लाभ उठाते हुए तथा पुण्यवार्ता (कथा-उपदेश आदि)-के सहित—इन पचीस विशेषताओंके साथ जो मनुष्य एकादशीकी

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

रातमें भगवान्‌के समीप जागरण करता है, वह फिर इस भूमिमें जन्म नहीं लेता। पूर्वकालकी बात है। इस श्रेष्ठ तीर्थमें एक ऐतरेय नामक ब्राह्मण रहते थे। उन परम भाग्यशाली ब्राह्मण-देवताने यहीं भगवान् वासुदेवकी कृपासिद्धि प्राप्त की थी।

अर्जुनने पूछा—मुने! ऐतरेय किसके पुत्र थे? उनका निवास-स्थान कहाँ था? परम बुद्धिमान् ऐतरेयने किस प्रकार भगवान् वासुदेवके प्रसादसे सिद्धि प्राप्त की?

नारदजीने कहा—कुन्तीनन्दन! यहीं मेरे द्वारा स्थापित स्थानमें जो हारीत मुनि रहते थे, उन्हींके वंशमें एक श्रेष्ठ ब्राह्मण उत्पन्न हुए, जो माण्डूकि नामसे विख्यात थे। वे वेद-वेदांगोंके पारंगत पण्डित थे। उनके 'इतरा' नामवाली पत्नी थी, जो नारीके समस्त सद्‌गुणोंसे सुशोभित थी। उसके गर्भसे जो पुत्र हुआ, उसीका नाम 'ऐतरेय' था। ऐतरेय बाल्यावस्थासे ही निरन्तर द्वादशाक्षर मन्त्र (**ॐ नमो भगवते वासुदेवाय**)-का जप करता था, उसे पूर्वजन्ममें ही इस मन्त्रकी शिक्षा मिली थी। वह न तो किसीकी बात सुनता था न स्वयं कुछ बोलता था और न अध्ययन ही करता था। इससे सबको निश्चय हो गया कि यह बालक गूँगा है। पिताने अनेक उपायोंसे उसको समझाया—बोध कराया, परंतु उसने लौकिक व्यवहारमें कभी मन नहीं लगाया। यह देख पिताने भी यही निश्चय कर लिया कि यह सर्वथा जड़ है। तब उन्होंने पिंगा नामवाली दूसरी स्त्रीसे विवाह किया और उससे चार पुत्र उत्पन्न किये जो वेद-वेदांगोंके विद्वान् हुए।

ऐतरेय भी प्रतिदिन तीनों समय भगवान् वासुदेवके मन्दिरमें जाकर उस उत्तम मन्त्रका जप करने लगे। वे दूसरे किसी कार्यमें परिश्रम नहीं करते थे। एक दिन उनकी माता इतरा अपनी सौतके पुत्रोंकी योग्यता देखकर सन्तप्तचित्त हो अपने पुत्रसे बोली—'अरे! तू तो मुझे क्लेश देनेके लिये ही पैदा हुआ! मेरे जन्म और जीवनको धिक्कार है! संसारमें उस नारीका जन्म निश्चय ही व्यर्थ है, जो पतिके द्वारा तिरस्कृत हो और जिसका पुत्र गुणवान् न हो। वत्स! मैं बड़ी खोटे भाग्यवाली हूँ, अतः महीसागरसंगममें डूब मरूँगी। मेरा मर जाना ही अच्छा है। जीवित रहनेमें मुझे क्या लाभ है? मेरे मर जानेपर तू भी भगवान्‌का महामौनी भक्त होकर दीर्घकालतक आनन्द भोगना।'

नारदजी कहते हैं—माताकी यह बात सुनकर ऐतरेय ठठाकर हँस पड़े। वे बड़े धर्मज्ञ थे। उन्होंने दो घड़ी भगवान्‌का ध्यान करके माताके चरणोंमें प्रणाम किया और कहा—'माँ! तुम झूठे मोहमें पड़ी हुई हो। अज्ञानको ही ज्ञान मान बैठी हो। शुभे! जो शोचनीय नहीं है, उसीके लिये तुम शोक करती हो और जो वास्तवमें शोचनीय है उसके लिये तुम्हारे मनमें तनिक भी शोक नहीं होता। यह संसार मिथ्या है। इसमें तुम इस शरीरके लिये क्यों चिन्तित एवं मोहित हो रही हो? यह तो मूर्खोंका काम है! तुम-जैसी विदुषी स्त्रियोंको यह शोभा नहीं देता! संसारमें सारतत्त्व तो कुछ और ही है, किंतु अज्ञानसे मोहित मनुष्य किसी और ही असार वस्तुको सार समझते हैं। तुम इस मानव-शरीरको यदि सार मानती हो तो लो, इसकी भी असारता सुनो। यह जो मानव-शरीर है, यह गर्भसे लेकर मृत्युपर्यन्त सदा अत्यन्त कष्टप्रद है। यह शरीर एक प्रकारका घर है। हड्डियोंका समूह ही इसके भारको सँभालनेवाला खम्भा है। नाडीजालरूपी रस्सियोंसे ही इसे बाँधा गया है। रक्त और मांसरूपी मिट्टीसे इसको लीपा गया है। विष्ठा और मूत्ररूपी द्रव्योंके संग्रहका यह पात्र है। केश और रोमरूपी तृणसे इसको छाया गया है। सुन्दर रंगकी त्वचासे इसके ऊपर रंग किया गया है। मुख ही इसका प्रधान द्वार है। दो आँख, दो कान और दो नाकके छिद्र—ये ही छः इसकी खिड़कियाँ हैं। दोनों ओष्ठ ही इसके द्वारको ढकनेवाले किंवाड़ हैं। दाँत ही अर्गला (किंवाड़

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

बंद करनेवाली किल्ली) हैं। नाड़ी और पसीने ही नाली और जलप्रवाह हैं। यह सदा कालकी मुखाग्निमें स्थित है। ऐसे इस देहरूपी गेहमें जीव नामवाला गृहस्थ निवास करता है। इस घरमें त्रिगुणमयी प्रकृति ही उसकी पत्नी है तथा क्रोध, अहंकार, काम, ईर्ष्या और लोभ आदि ही उक्त गृहस्थकी सन्तान हैं। हाय! कितने कष्टकी बात है कि जीव इस देह-गेहकी मोहमायासे मूढ होकर तदनुकूल बर्ताव करता है। उसका जिस-जिस विषयमें जैसे मोह होता है, वह सब बताता हूँ, सुनो। जैसे पर्वतसे झरने गिरते रहते हैं, उसी प्रकार शरीरसे भी कफ और मूत्र आदि बहते रहते हैं, उसी देहके लिये जीव मोहित होता है। विष्ठा और मूत्रसे भरे हुए चर्मपात्रकी भाँति यह शरीर समस्त अपवित्र वस्तुओंका भण्डार है और इसका एक प्रदेश (एक अंश) भी पवित्र नहीं है। अपने शरीरसे निकले हुए मल-मूत्र आदिके जो प्रवाह हैं, उनका स्पर्श हो जानेपर मिट्टी और जलसे हाथ शुद्ध किया जाता है; तथापि उन्हीं अपवित्र वस्तुओंके भण्डाररूप इस देहसे न जाने क्यों मनुष्यको वैराग्य नहीं होता? सुगन्धित तेल और जल आदिके द्वारा यत्नपूर्वक भलीभाँति संस्कार (सफाई) करनेपर भी यह शरीर अपनी स्वाभाविक अपवित्रताको नहीं छोड़ता है; ठीक उसी तरह, जैसे कुत्तेकी टेढ़ी पूँछको कितना ही सीधा किया जाय, वह अपना टेढ़ापन नहीं छोड़ पाती। अपनी देहकी अपवित्र गन्धसे जो मनुष्य विरक्त नहीं होता, उसे वैराग्यके लिये अन्य किस साधनका उपदेश दिया जाय? दुर्गन्ध तथा मल-मूत्रके लेपको दूर करनेके लिये ही शारीरिक शुद्धिका विधान किया गया है। इन दोनों (गन्ध और लेप)-का निवारण हो जानेके पश्चात् आन्तरिक भावकी शुद्धि होनेसे मनुष्य शुद्ध होता है। भाव-शुद्धि ही सबसे बढ़कर पवित्रता है। वही सब कर्मोंमें प्रमाणभूत है। आलिंगन पत्नीका भी किया जाता है और पुत्रीका भी, परंतु दोनोंमें भावका महान् अन्तर है। प्यारी पत्नीका आलिंगन किसी और भावसे किया जाता है एवं पुत्रीका दूसरे भावसे। एक ही स्त्रीके स्तनोंको पुत्र दूसरे भावसे स्मरण करता है और पति दूसरे भावसे। अतः अपने चित्तको ही शुद्ध करना चाहिये। बाह्यशुद्धिके दूसरे-दूसरे साधनोंसे क्या लेना है? भावदृष्टिसे जिसका अन्तःकरण अत्यन्त शुद्ध है, वह स्वर्ग और मोक्षको भी प्राप्त कर लेता है।

ज्ञानरूपी निर्मल जल तथा वैराग्यरूपी मृत्तिकासे ही पुरुषके अविद्या एवं रागमय मल-मूत्रके लेप और दुर्गन्धका शोधन होता है। इस प्रकार इस शरीरको स्वभावतः अशुद्ध माना गया है। जैसे केलेके वृक्षमें केवल वल्कल ही सार है, उसी प्रकार इस देहमें केवल त्वचामात्र सार है, वास्तवमें तो यह सर्वथा निःसार है। जो बुद्धिमान् अपने शरीरको इस प्रकार दोषयुक्त जानकर उदासीन हो जाता है—उसकी ओरसे अनुराग शिथिल कर लेता है—वही इस संसार-बन्धनसे छूटकर निकल पाता है। किंतु जो दृढ़तापूर्वक इस शरीरको पकड़े हुए रहता है—इसका मोह नहीं छोड़ता, वह संसारमें ही पड़ा रह जाता है। इस प्रकार यह मानव-जन्म लोगोंके अज्ञानदोषसे तथा नाना कर्मवशात् दुःखस्वरूप और महान् कष्टप्रद बताया गया है। जैसे बड़े भारी पर्वतसे दबा हुआ कोई प्राणी बड़े कष्टसे पीड़ित रहता है, उसी प्रकार गर्भकी झिल्लीमें बँधा हुआ मनुष्य महान् कष्टसे वहाँ ठहर पाता है। जैसे समुद्रमें गिरा हुआ कोई मनुष्य अत्यन्त व्याकुल होकर बड़े भारी दुःखसे घिर जाता है, उसी प्रकार गर्भगत जलसे भीगे हुए अंगोंवाला गर्भस्थ शिशु अत्यन्त व्याकुल रहता है। जैसे किसीको लोहेके घड़ेमें रखकर आगसे पकाया जाता है, वैसे ही गर्भरूपी घटमें डाला हुआ जीव जठरानलकी आँचसे पकता रहता है। यदि आगके समान दहकती हुई सुइयोंसे

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

किसीको निरन्तर छेदा जाय तो उसे जितनी पीड़ा हो सकती है, उससे आठ गुनी पीड़ा गर्भमें भोगनी पड़ती है। इस प्रकार स्थावर-जंगम सभी प्राणियोंको अपने-अपने गर्भके अनुरूप यह महान् गर्भ-दुःख प्राप्त होता है; ऐसा कहा गया है।

गर्भमें स्थित होनेपर सभीको अपने पूर्वजन्मोंका स्मरण हो आता है। उस समय जीव इस प्रकार सोचता है—'अहो! मैं मरकर पुनः उत्पन्न हुआ और उत्पन्न होकर पुनः मृत्युको प्राप्त हुआ। जन्म ले-लेकर मैंने सहस्रों योनियोंका दर्शन किया है। इस समय जन्म धारण करते ही मेरे पूर्वसंस्कार जाग उठे हैं; अतः अब मैं ऐसे कल्याणकारी साधनका अनुष्ठान करूँगा, जिससे पुनः मेरा गर्भवास न हो। संसार-बन्धनको दूर करनेवाले भगवदीय तत्त्वज्ञानका मैं चिन्तन करूँगा।' इस प्रकार उस दुःखसे छूटनेके उपायपर विचार करता हुआ गर्भस्थ जीव चिन्तामग्न रहता है। जब उसका जन्म होने लगता है, उस समय तो उसे गर्भकी अपेक्षा भी कोटिगुना अधिक दुःख होता है। गर्भवासके समय जो सद्‌बुद्धि जाग्रत् हुई रहती है, वह जन्म हो जानेपर नष्ट हो जाती है। बाहरकी हवा लगते ही मूढता आ जाती है। मोहग्रस्त होनेपर शीघ्र ही उसकी स्मरणशक्तिका नाश हो जाता है। स्मरणशक्ति नष्ट होनेपर पूर्वकर्मवशात् जीवका पुनः उसी जन्म (-के शरीर आदि)-में अनुराग हो जाता है। इस प्रकार राग और मोहके वशीभूत हुआ वह संसारमें न करनेयोग्य पापादि कर्मोंमें लग जाता है। उनमें फँसकर न तो वह अपनेको जानता है, न दूसरोको जानता है और न किसी देवताको ही कुछ समझता है। अपने परम कल्याणकी बाततक नहीं सुनता। आँख रहते हुए भी नहीं देखता। समतल मार्गपर धीरे-धीरे चलते हुए भी वह पग-पगपर लड़खड़ाता है। विद्वानोंके समझानेपर भी, बुद्धि रहते हुए भी वह नहीं समझ पाता, इसीलिये राग और मोहके वशीभूत होकर संसारमें क्लेश उठाता रहता है। जन्म लेनेपर गर्भकालमें जाग्रत् हुई पूर्वजन्मकी स्मृति अथवा गर्भके दुःखोंकी स्मृति नहीं रहती, इसलिये महर्षियोंने गर्भदुःखका निरूपण करनेके लिये शास्त्रोंका प्रतिपादन किया है। वे शास्त्र स्वर्ग और मोक्षके उत्तम साधन हैं। सब कार्यों और प्रयोजनोंको सिद्ध करनेवाले इस शास्त्रज्ञानके रहते हुए भी लोग उससे अपने कल्याणका साधन नहीं करते। यह अत्यन्त अद्भुत बात है।

बाल्यावस्थामें इन्द्रियोंकी वृत्तियाँ अव्यक्त रहती हैं, इसलिये जीव उस समयके महान् दुःखको बतानेकी इच्छा होनेपर भी बता नहीं सकता और न उस दुःखके निवारणके लिये कुछ कर ही सकता है। फिर जब दाँत उठने लगता है तब उसे महान् कष्ट भोगना पड़ता है। मौल रोग (सिरदर्द), नाना प्रकारके बालरोग तथा पूतना आदि बालग्रह आदिसे भी बालकको बड़ी पीड़ा होती है। भूख-प्यासकी पीड़ासे उसके सब अंग व्याकुल रहते हैं तथा वह कहीं खाट आदिपर पड़ा हुआ रोता

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

रहता है। इसके बाद जब वह कुछ बड़ा होता है, तब अक्षरोंके अध्ययन आदिसे और गुरुके शासनसे उसको महान् दुःख होता है।

युवावस्थामें रागोन्मत्त पुरुषकी सम्पूर्ण इन्द्रिय-वृत्तियाँ काम तथा रागकी पीड़ासे सदा मतवाली रहती हैं। अतः उसे भी कहाँसे सुख प्राप्त हो सकता है। मोहवश पुरुषको यदि कहीं अनुराग हो जाता है तो ईर्ष्याके कारण उसे बड़ा भारी दुःख होता है। जो उन्मत्त और क्रोधी है उसका कहीं भी राग होना केवल दुःखका ही कारण है। रातमें कामाग्निजनित खेदसे पुरुषको निद्रा नहीं आती। दिनमें भी द्रव्योपार्जनकी चिन्ता लगी रहनेके कारण उसे सुख नहीं मिल सकता। स्त्रियाँ सब दोषोंका आश्रय हैं; यह बात भलीभाँति जान लेनेपर भी जो लोग उनमें मैथुनसे सुख मानते हैं, उनका वह सुख मल-मूत्र-त्यागके सदृश ही माना गया है। सम्मान अपमानसे, प्रियजनोंका संयोग वियोगसे तथा जवानी वृद्धावस्थासे ग्रस्त है। निर्विघ्न सुख कहाँ है?

युवावस्थाका शरीर एक दिन जरा अवस्थासे जर्जर कर दिया जानेपर सम्पूर्ण कार्योंके लिये असमर्थ हो जाता है। उसके बदनमें झुर्रियाँ पड़ जाती हैं, सिरके बाल सफेद हो जाते हैं और शरीर बहुत ढीला-ढाला हो जाता है। स्त्री और पुरुषका वही रूप, जो जवानीके दिनोंमें एक-दूसरेका आधार था, जराग्रस्त हो जानेपर दोनोंमेंसे किसीको भी प्रिय नहीं लगता। बुढ़ापेसे दबा हुआ पुरुष असमर्थ होनेके कारण पत्नी-पुत्र आदि बन्धु-बान्धवों तथा दुराचारी सेवकोंद्वारा भी अपमानित होता है। वृद्धावस्थामें रोगातुर पुरुष धर्म, अर्थ, काम और मोक्षका साधन करनेमें असमर्थ हो जाता है; इसलिये युवावस्थामें ही धर्मका आचरण करना चाहिये।

वात, पित्त और कफकी विषमता ही व्याधि कहलाती है। इस शरीरको वात आदिका समूह बताया गया है। इसलिये अपना यह शरीर व्याधिमय है; ऐसा जानना चाहिये। इस शरीरमें अनेक प्रकारके रोगोंद्वारा बहुतेरे दुःख प्रवेश कर जाते हैं। उनका पता अपने-आपको भी नहीं लगता, फिर दूसरोंको तो लग ही कैसे सकता है। इस देहमें एक सौ एक व्याधियाँ स्थित हैं। इनमेंसे एक व्याधि तो कालके साथ रहती है और शेष आगन्तुक मानी गयी हैं। जो आगन्तुक बतायी गयी हैं, वे तो दवा करनेसे तथा जप, होम और दानसे शान्त हो जाती हैं; परन्तु मृत्युरूप व्याधि कभी शान्त नहीं होती। नाना प्रकारकी व्याधियाँ, सर्प आदि प्राणी, विष और अभिचार (पुरश्चरण)— ये सब देहधारियोंकी मृत्युके द्वार बताये गये हैं। यदि जीवका काल आ पहुँचा है, तो सर्प और रोग आदिसे पीड़ित होनेपर उसे धन्वन्तरि भी जीवित नहीं रख सकते। कालसे पीड़ित मनुष्यको औषध, तपस्या, दान, मित्र तथा बन्धु-बान्धव— कोई भी बचा नहीं सकते। रसायन, तपस्या, जप, योग, सिद्ध-महात्मा तथा पण्डित— ये सब मिलकर भी कालजनित मृत्युको नहीं टाल सकते। समस्त प्राणियोंके लिये मृत्युके समान कोई दुःख नहीं है, मृत्युके समान कोई भय नहीं है तथा मृत्युके समान कोई त्रास नहीं है। सती भार्या, उत्तम पुत्र, श्रेष्ठ मित्र, राज्य, ऐश्वर्य और सुख— ये सभी स्नेहपाशमें बँधे हुए हैं। मृत्यु इन सबका उच्छेद कर डालती है। माँ! क्या तुम नहीं देखती कि हजारों मनुष्योंमेंसे पाँच भी शायद ही ऐसे होंगे, जो पूरे सौ वर्षोंतक जीनेवाले हों। कोई-ही-कोई अस्सी वर्ष और सत्तर वर्षकी अवस्थामें मरते हैं। प्रायः साठ वर्षतककी ही लोगोंकी परमायु हो गयी है; किंतु वह भी सबके लिये निश्चित नहीं है। जिस देहधारीको अपने पूर्वकर्मानुसार जितनी आयु प्राप्त होती है, उसका आधा भाग तो मृत्युरूपिणी रात्रि हर लेती है। बाल्यावस्था, अबोधावस्था तथा वृद्धावस्थाके

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

द्वारा बीस वर्ष और व्यतीत हो जाते हैं—जो धर्म, अर्थ और काम—किसीके भी उपयोगमें नहीं आते। शेष आयुका आधा भाग मनुष्यपर आनेवाले बहुत-से भय तथा अनेक प्रकारके रोग और शोक आदि हर लेते हैं। इन सबसे जो शेष रह जाता है, वही मनुष्यका जीवन है।

इस जीवनकी समाप्ति होनेपर मनुष्य अत्यन्त भयंकर मृत्युको प्राप्त होता है। मृत्युके बाद वह पुनः करोड़ों योनियोंमें जन्म ग्रहण करता है। कर्मोंकी गणनाके अनुसार देह-भेदसे जो जीवका एक शरीरसे वियोग होता है, उसे 'मृत्यु' नाम दिया गया है, वास्तवमें उससे जीवका विनाश नहीं होता। मृत्युके समय महान् मोहको प्राप्त हुए जीवके मर्मस्थान जब विदीर्ण होने लगते हैं, उस दशामें उसे जो बड़ा भारी कष्ट भोगना पड़ता है, उसकी इस संसारमें कहीं उपमा नहीं है। जैसे साँप मेंढकको निगल जाता है, उसी प्रकार मृत्यु जब मनुष्यको निगलने लगती है, उस समय वह हा तात! हा मातः! हा कान्ते! इत्यादि रूपसे पुकारता हुआ अत्यन्त दुःखी हो-होकर रोता है। भाई-बन्धुओंसे साथ छूट रहा है, प्रेमीजन उसे चारों ओरसे घेरकर खड़े हैं। वह सूखते हुए मुखसे गरम-गरम लंबी साँस खींचता है। चारपाईपर चारों ओर बार-बार करवट बदलता है। पीड़ासे मोहित होकर बड़े वेगसे इधर-उधर हाथ फेंकता है। खाटसे भूमिपर और भूमिसे खाटपर तथा फिर भूमिपर आना चाहता है। उसके वस्त्र खुल गये हैं, लज्जा छूट चुकी है, विष्ठा और मूत्रमें सना हुआ है। कण्ठ, ओष्ठ और तालू सूख जानेके कारण बार-बार पानी माँगता है। अपने धन-वैभवके लिये इस बातकी चिन्ता करता है कि मेरे मर जानेपर ये किसके हाथमें पड़ेंगे। पुनः कालपाशसे खींचे जानेपर उसका गला घुरघुराने लगता है और पार्श्ववर्ती लोगोंके देखते-देखते मृत्युको प्राप्त हो जाता है। जैसे तृणजलौका जलमें बहते हुए तिनकेके अन्ततक पहुँचकर जब दूसरा तिनका थाम लेती है, तब पहलेको छोड़ देती है। उसी प्रकार जीव एक देहसे दूसरी देहमें क्रमशः प्रवेश करता है। भावी शरीरमें अंशतः प्रवेश करके पूर्वशरीरका त्याग करता है।

विवेकी पुरुषके लिये किसीसे कुछ माँगना मृत्युसे भी अधिक दुःखदायी होता है। मृत्युका दुःख तो क्षणभरमें समाप्त हो जाता है, परंतु याचनाजनित दुःखका कभी अन्त नहीं होता। मैंने तो इस समय यह अनुभव किया है कि मृत मनुष्य जीवित रहकर याचना करनेवालेकी अपेक्षा श्रेष्ठ है; क्योंकि अब वह फिर दूसरे किसीके सामने हाथ नहीं फैला सकता। तृष्णा ही लघुताका कारण है। आदिमें दुःख है, मध्यमें दुःख है तथा अन्तमें भी दारुण दुःख प्राप्त होता है। दुःखोंकी यह परंपरा समस्त प्राणियोंको स्वभावतः प्राप्त होती है। क्षुधाको सब रोगोंसे महान् रोग माना गया है। वह अन्नरूपी ओषधिका लेप करनेसे कुछ क्षणोंके लिये शान्त हो जाती है। क्षुधारूपी व्याधिकी तीव्र वेदना सम्पूर्ण बलका उच्छेद करनेवाली है। जैसे अन्य रोगोंसे लोग मरते हैं, उसी प्रकार क्षुधासे पीड़ित होनेपर भी मनुष्यकी मृत्यु हो जाती है। (यदि कहें धन-धान्यसम्पन्न राजा सुखी होंगे तो यह भी ठीक नहीं।) राजाको केवल यह अभिमान ही होता है कि मेरे घरमें इतना वैभव शोभा पा रहा है। वास्तवमें तो उनका सारा आभरण भाररूप है, समस्त आलेपन-द्रव्य मलमात्र है, सम्पूर्ण संगीत-राग प्रलापमात्र है तथा नृत्य आदि भी पागलोंकी-सी चेष्टा है। विचार-दृष्टिसे देखनेपर इन राज्यभोगोंके द्वारा राजाओंको सुख कहाँ मिलता है? क्योंकि वे लोग तो एक-दूसरेको जीतनेके लिये सदा ही चिन्तित रहते हैं। प्रायः राज्यलक्ष्मीके मदसे उन्मत्त होनेके कारण नहुष आदि महाराज स्वर्गका साम्राज्य पाकर भी वहाँसे नीचे गिर गये हैं। राजलक्ष्मी अथवा धन-

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

ऐश्वर्यसे भला कौन सुख पाता है? मनुष्य स्वर्गलोकमें जो पुण्यफल भोगते हैं, वह अपने मूलधनको गँवाकर ही भोगते हैं; क्योंकि वहाँ वे दूसरा नवीन कर्म नहीं कर सकते। यही स्वर्गमें अत्यन्त भयंकर दोष है। जैसे वृक्षकी जड़ काट देनेपर वह विवश होकर पृथ्वीपर गिर पड़ता है, उसी प्रकार पुण्यरूपी मूलका क्षय हो जानेपर स्वर्गवासी जीव पुनः पृथ्वीपर गिर पड़ते हैं। इस तरह विचारपूर्वक देखा जाय तो स्वर्गमें भी देवताओंको कोई सुख नहीं है। नरकमें गये हुए पापी जीवोंका दुःख तो प्रसिद्ध ही है—उनका क्या वर्णन किया जाय। स्थावर-योनिमें पड़े हुए जीवोंको भी बहुत दुःख भोगने पड़ते हैं। दावानलसे जलना, पाला पड़नेसे गलना, धूप और हवासे सूखना, कुल्हाड़ीसे काटा जाना, उनके वल्कलों (छिलकों)-का उतारा जाना, प्रचण्ड आँधीके वेगसे पत्तों, डालियों और फलोंका गिराया जाना तथा हाथियों और अन्य जंगली जन्तुओंद्वारा कुचला जाना आदि उनके लिये महान् दुःख हैं।

सर्पों और बिच्छुओंको प्यास और भूखका कष्ट रहता है, उन्हें क्रोधका भी दारुण दुःख सहन करना पड़ता है। संसारमें प्रायः दुष्ट साँप-बिच्छुओंको मारा जाता है, उन्हें जालमें फँसाकर बंद रखा जाता है। माताजी! इस प्रकार उस योनिके जीवोंको बारंबार कष्ट उठाना पड़ता है। कीड़े आदिका अकस्मात् जन्म होता है और अचानक ही उनकी मौत भी हो जाती है; अतः उनका दुःख भी कम नहीं है। मृगों और पक्षियोंको वर्षा, सर्दी और धूपका महान् कष्ट तो है ही, भूख-प्यासके भारी दुःखसे भी मृग सदा संत्रस्त रहते हैं। पशु-समूहके जो दुःख हैं, उन्हें भी सुन लो। भूख-प्यास तथा सर्दी-गरमी आदिका कष्ट सहना, मारा जाना, बन्धनमें डाला जाना और डंडे आदिसे पीटा जाना, नाकका छेदा जाना, चाबुक और अंकुशकी मार पड़ना आदि उनके महान् क्लेश हैं। इनके अतिरिक्त बोझ ढोनेका भी उन्हें बड़ा भारी कष्ट है। कार्यकी शिक्षा देते समय भी उन्हें मारा-पीटा जाता है, फिर युद्ध आदिकी पीड़ा भी सहनी पड़ती है। अपने झुंडसे जो उनका वियोग होता है और वे वनसे जो अन्यत्र लाये जाते हैं—यह सब कष्ट अलग हैं।

दुर्भिक्ष, दुर्भाग्यका प्रकोप, मूर्खता, दरिद्रता, नीच-ऊँचका भाव, मृत्यु, राष्ट्रविप्लव (एक राज्यका नाश करके दूसरे राज्यकी स्थापना), पारस्परिक अपमानका दुःख, आपसमें एक-दूसरेसे धन-वैभव या मान-प्रतिष्ठामें बढ़ जानेका कष्ट, अपनी प्रभुताका सदा स्थिर न रहना, ऊँचे चढ़े हुए लोगोंका नीचे गिराया जाना इत्यादि महान् दुःखोंसे यह सम्पूर्ण चराचर जगत् व्याप्त है। जैसे इस कंधेका भार उस कंधेपर कर देनेको मनुष्य विश्राम समझता है, उसी प्रकार इस लोकमें एक दुःख दूसरे दुःखसे ही शान्त होता है। अतः एक-दूसरेसे ऊँची स्थितिमें स्थित हुए इस सम्पूर्ण जगत्को दुःखोंसे भरा हुआ जानकर उसकी ओरसे अत्यन्त उद्विग्न हो जाना चाहिये। उद्वेगसे वैराग्य होता है, वैराग्यसे ज्ञान प्रकट होता है तथा ज्ञानसे परमात्मा विष्णुको जानकर मनुष्य मोक्ष प्राप्त कर लेता है।

माँ! जैसे कौओंके अपवित्र स्थानमें विशुद्ध राजहंस नहीं रह सकता, उसी प्रकार ऐसे दुःखमय संसारमें मैं तो कभी रम नहीं सकता। मैया! जहाँ रहकर मैं बिना किसी विघ्न-बाधाके आनन्दपूर्वक रह सकता हूँ, वह स्थान भी बताता हूँ, सुनो। अविद्यारूपी वन तो बड़ा भयंकर है। उसमें नाना प्रकारके कर्ममय बड़े-बड़े वृक्ष खड़े हैं। वहाँ संकल्पोंके डाँस और मच्छर बहुत हैं। शोक और हर्ष ही वहाँकी सर्दी और धूप हैं। उस वनमें मोहका घना अन्धकार छाया रहता है। वहाँ

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

लोभरूपी साँप और बिच्छू रहते हैं। विषयोंके अनेक मार्गोंसे वह प्रदेश व्याप्त है। काम और क्रोधरूपी बधिक तथा लुटेरे उसमें सदा डेरा डाले रहते हैं। उस महादुःखमय विशाल वनको लाँघकर अब मैं एक ऐसे महान् विपिनमें प्रवेश कर चुका हूँ, जहाँ पहुँचकर उसके तत्त्वको जाननेवाले ज्ञानी पुरुष न शोक करते हैं, न हर्ष। वहाँ किसीसे भय नहीं है, किसीको भी भय नहीं है। उस विद्यारूपी वनमें सात बड़े भारी वृक्ष हैं। वहाँ सात ही पर्वत हैं, जिन्होंने तीनों लोकोंको धारण कर रखा है। सात ही ह्रद (कुण्ड) हैं और सात ही नदियाँ हैं, जो सदा ब्रह्मरूप जल बहाया करती हैं। तेज, अभयदान, अद्रोह, कौशल (दक्षता), अचपलता, अक्रोध और प्रिय वचन बोलना—ये ही सात पर्वत उस विद्यावनमें स्थित हैं। दृढ-निश्चय, सबके साथ समता, मन और इन्द्रियोंका संयम, गुणसंचय, ममताका अभाव, तपस्या तथा सन्तोष—ये सात ह्रद हैं। भगवान्‌के गुणोंका विशेष ज्ञान होनेसे जो उनके प्रति भक्ति होती है, वह विद्या-वनकी पहली नदी है। वैराग्य दूसरी, ममताका त्याग तीसरी, भगवदाराधन चौथी, भगवदर्पण पाँचवीं, ब्रह्मैकत्वबोध छठी तथा सिद्धि सातवीं नदी है। ये ही सात नदियाँ वहाँ स्थित बतायी गयी हैं। वैकुण्ठ धामके निकट इन सातों नदियोंका संगम होता है। जो आत्मतृप्त, शान्त तथा जितेन्द्रिय होते हैं, वे ही महात्मा उस मार्गसे परात्पर ब्रह्मको प्राप्त होते हैं। कोई श्रेष्ठ ज्ञानीजन उन वृक्षोंको प्राप्त करते हैं, कोई पर्वतोंको, कोई ह्रदोंको तथा कोई उन सात सरिताओंको ही प्राप्त होते हैं।

माँ! मैं ग्रहण किये हुए व्रतको धारण करनेकी इच्छा रखकर यहाँ ब्रह्मचर्यका आचरण करता हूँ। इस ब्रह्मचर्यमें ब्रह्म ही समिधा, ब्रह्म ही अग्नि तथा ब्रह्म ही कुशास्तरण हैं। जल भी ब्रह्म हैं और गुरु भी ब्रह्म ही हैं—यही मेरा ब्रह्मचर्य है। विद्वान् पुरुष इसीको सूक्ष्म ब्रह्मचर्य मानते हैं। माता! अब मेरे गुरुका परिचय सुनो, जिन्होंने मुझे विद्या प्रदान की है। एक ही शिक्षक है, दूसरा कोई शिक्षक नहीं है। हृदयमें विराजमान अन्तर्यामी पुरुष ही शिक्षक होकर शिक्षा देता है। उसीसे प्रेरित होकर मैं झरनेसे बहकर जानेवाले जलकी भाँति जहाँ जिस कार्यमें नियुक्त होता हूँ, वहाँ वैसा ही करता हूँ। एक ही गुरु हैं, उनके सिवा दूसरा कोई गुरु नहीं है। जो हृदयमें विराजमान हैं, वे ही गुरु हैं, उनको मैं प्रणाम करता हूँ। उन्हीं गुरुस्वरूप भगवान् मुकुन्दकी अवहेलना करके सम्पूर्ण दानव पराभवको प्राप्त हुए हैं।* एक ही बन्धु है, उसके सिवा दूसरा बन्धु नहीं है। जो हृदयमें विराजमान है, वह परमात्मा ही बन्धु है, मैं उसे नमस्कार करता हूँ। उसीसे शिक्षा प्राप्त करके सात बन्धुमान् भाई सप्तर्षि आकाशमें प्रकाशित हो रहे हैं। ऐसे ही ब्रह्मचर्यका भलीभाँति सेवन करना चाहिये। अब मेरा गार्हस्थ्य कैसा है, यह भी सुन लो। माताजी! प्रकृति ही मेरी पत्नी है, किन्तु मैं कभी उसका चिन्तन नहीं करता; वही सदा मेरा चिन्तन किया करती है। वह मेरे सब प्रयोजनोंको सिद्ध करनेवाली है। नासिका, जिह्वा, नेत्र, त्वचा, कान, मन तथा बुद्धि—यह सात प्रकारकी अग्नि सदा मेरी अग्निशालामें प्रज्वलित होती रहती हैं। गन्ध, रस, रूप, शब्द, स्पर्श, मन्तव्य और बोधव्य—ये ही सात मेरी समिधाएँ हैं। होता भी नारायण हैं और ध्यानसे साक्षात् नारायण ही उपस्थित हो उस हविष्यका उपयोग भी करते हैं। ऐसे यज्ञद्वारा मैं अपनी इस गृहस्थीमें उन परमेश्वर विष्णुका यजन (आराधन) करता हूँ। किसी भी वस्तुकी कामना नहीं रखता, तथापि मेरे सम्पूर्ण काम स्वतः सिद्ध हैं। मैं

* एको गुरुर्नास्ति ततो द्वितीयो यो हृद्गतस्तमहं वै नमामि।
पञ्चावमन्यैव गुरुं मुकुन्दं पराभूता दानवास्सर्व एव॥
(स्क० पु०, मा० कुमा० ३७। ६२)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

सांसारिक सम्पूर्ण दोषोंसे द्वेष नहीं करता, तथापि कोई भी दोष मुझमें प्रकट नहीं होता! जैसे कमलके पत्तेपर जलकी बूँदका लेप नहीं होता, उसी प्रकार मेरा स्वभाव राग-द्वेष आदिसे लिप्त नहीं होता। मैं नित्य हूँ, बहुतोंके स्वभावोंका साक्षी हूँ, अनित्य भोग मुझपर अपना प्रभाव नहीं डाल सकते। जैसे सूर्यकी किरणें आकाशमें लिप्त नहीं होतीं, वैसे ही मेरे भगवदर्थ किये गये निष्काम कर्मोंमें भोगसमूह नहीं लिप्त होते (मेरे कर्मोंका फल भोग-सामग्रीके रूपमें नहीं उपस्थित होता, वे कर्म तो भगवत्प्राप्ति करानेवाले होते हैं), माता! ऐसे मुझ पुत्रसे तुम दुःखी न होओ। मैं तुम्हें उस पदपर पहुँचाऊँगा, जहाँ सैकड़ों यज्ञ करके भी पहुँचना असम्भव है।'

अपने पुत्रकी यह बात सुनकर इतराको बड़ा विस्मय हुआ। वह सोचने लगी, 'अहो! यदि मेरा पुत्र ऐसा दृढ़निष्ठावाला विद्वान् है, तब तो संसारमें जब इसकी ख्याति होगी, उस समय मेरा भी महान् यश फैलेगा।' माता इस प्रकारकी बातें सोच ही रही थी कि शंख-चक्र-गदाधारी भगवान् विष्णु उस अर्चा-विग्रहसे साक्षात् प्रकट हो गये। वे उस द्विजपुत्रकी बातोंसे अत्यन्त प्रसन्न थे। भगवान्की दिव्य कान्ति करोड़ों सूर्योंके समान प्रकाशमान थी। वे अपनी प्रभासे सम्पूर्ण जगत्को उद्भासित कर रहे थे। भगवान्को देखते ही ऐतरेय धरतीपर दण्डकी भाँति पड़ गये। उनके शरीरमें रोमांच हो आया। नेत्रोंसे प्रेमके आँसू बहने लगे। वाणी गद्गद हो गयी। बुद्धिमान् ऐतरेयने मस्तकपर अंजलि बाँधकर भगवान्का इस प्रकार स्तवन प्रारम्भ किया—

"आप भगवान् वासुदेवका हम ध्यान और नमस्कार करते हैं। आप ही प्रद्युम्न, अनिरुद्ध तथा संकर्षण हैं, आपको नमस्कार है। आप केवल विज्ञानस्वरूप तथा परमानन्दमूर्ति हैं, आपको नमस्कार है। आप आत्माराम, शान्त तथा आप समस्त इन्द्रियोंके स्वामी (हृषीकेश) हैं, सबसे महान् तथा अनन्त शक्तियोंसे सम्पन्न हैं; आपको नमस्कार है। मनसहित वाणीके थककर निवृत्त हो जानेपर जो एकमात्र अपनी कृपासे ही सुलभ होनेवाले हैं, नाम और रूपसे रहित चैतन्यघन ही जिनका स्वरूप है, वे सत् और असत्से परे विराजमान परमात्मा हम सबकी रक्षा करें। आप परम सत्य तथा निर्मल हैं, हम आपकी उपासना करते हैं। जो षड्विध ऐश्वर्यसे युक्त परम पुरुष महानुभाव एवं समस्त महाविभूतियोंके अधिपति हैं, उन भगवान्को नमस्कार है। परमेष्ठिन्! आप सबसे उत्कृष्ट हैं, सम्पूर्ण भक्तसमुदाय आपके युगल चरणारविन्दोंकी बड़े लाड़-प्यारसे सेवा करते हैं। आपको नमस्कार है। अग्नि आपका मुख है, पृथ्वी आपके दोनों चरण हैं, आकाश मस्तक है, चन्द्रमा और सूर्य दोनों नेत्र हैं, सम्पूर्ण लोक आपका शरीर है तथा चारों दिशाएँ आपकी चार भुजाएँ हैं। भगवन्! आपको नमस्कार है। हे स्तुति करनेयोग्य परमात्मन्! हे नाथ! इस पृथ्वीपर कोई भी ऐसे प्रदेश नहीं हैं, जिनमें मेरा जन्म न हुआ हो, जहाँ मेरी मृत्यु न हुई हो। मैं समझता हूँ, यदि मेरे माता-पिताओंकी गणना की जाय, तो यह विशाल पृथ्वी परमाणुओंकी स्थितिमें पहुँच जायगी—असंख्य जन्मोंके मेरे माता-पिताओंकी गणना करनेके लिये पृथ्वीके परमाणु बराबर टुकड़े करने पड़ेंगे। देवदेव! मेरे जो मित्र, शत्रु, अनुजीवी तथा भाई-बन्धु इस संसारमें हो गये हैं, उन सबकी गणना करनेमें मैं सर्वथा असमर्थ हूँ। नाथ! मैंने अपना मन बार-बार आपके चरणोंमें समर्पित किया, परंतु मेरा दुर्जय शत्रु काम अपने क्रोध आदि सहायकोंके द्वारा उसे हठात् अपने वशमें कर लेता है। भगवन्! अब आप ही बताइये, ऐसी दशामें मैं क्या करूँ? सर्वव्यापी परमेश्वर! मैं बहुत ही पीड़ित हूँ। संसाररूपी गड्ढेमें गिरे हुए इस दीनपर आप दया कीजिये। दुर्गतिमें पड़ा

279 Skandpuran_Section_8_1_Front In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

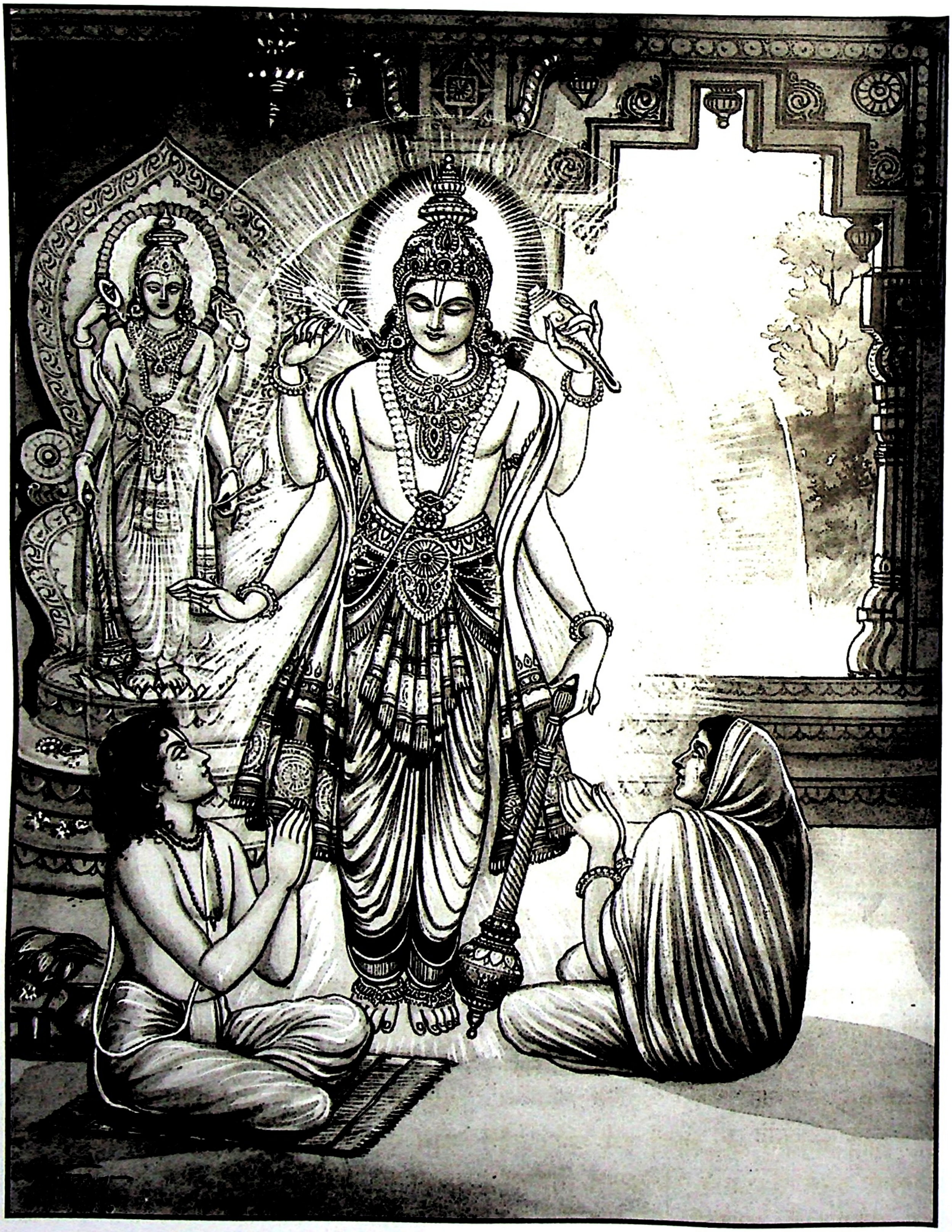

अर्चाविग्रहसे प्रकट होकर भगवान् विष्णु ऐतरेयको दर्शन दे रहे हैं

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

हुआ प्राणी भी महात्माओंकी शरणमें आ जानेपर कष्ट नहीं भोगता। रोगी मनुष्योंको शरण देनेवाला वैद्य है, महासागरमें डूबे हुए मनुष्यका सहारा नौका है, बालकको आश्रय देनेवाले माता और पिता हैं, परंतु भगवन्! अत्यन्त घोर संसार-बन्धनसे दु:खी हुए मनुष्यको शरण देनेवाले केवल आप ही हैं।* सर्वस्वरूप सर्वेश्वर! प्रसन्न होइये, आप ही सबके कारण हैं। पारमार्थिक सारतत्त्व भी आप ही हैं। महान् दु:ख-समूहसे भरे हुए, संसाररूपी गड्ढेसे स्वयं ही हाथ पकड़कर मुझे निकालिये। हे अच्युत! हे उरुक्रम! यह संसार भूख और प्याससे; वात, पित्त और कफ—इन तीन धातुओंसे; सर्दी, गरमी, आँधी और वर्षासे, आपसमें ही एक-दूसरेसे तथा कभी तृप्त न होनेवाली कामाग्नि तथा क्रोधाग्निसे बारंबार पीड़ित होता है। इसे इस दशामें देखकर मेरा मन बहुत दु:खी हो रहा है। मैंने अपनी शक्तिके अनुसार सम्पूर्ण जगत्को धारण करनेवाले परमेश्वर भगवान् आप वासुदेवका स्तवन किया है। इससे सबका कल्याण हो, सम्पूर्ण जगत्के समस्त दोष नष्ट हो जायँ। आज मेरे द्वारा जगद्धाता वासुदेवकी स्तुति हुई है; इससे इस पृथ्वीपर, अन्तरिक्षमें, स्वर्गलोकमें तथा रसातलमें भी जो कोई प्राणी रहते हों, वे सिद्धिको प्राप्त हों। मेरे द्वारा स्तुति-पाठ करते समय जो लोग इसको सुनते हैं, इस स्तोत्रका उच्चारण करते समय जो मुझे देखते हैं, वे देवता, असुर, मनुष्य तथा पशु-पक्षी कोई भी क्यों न हों, सभी भगवान् विष्णुके तत्त्वका ज्ञान प्राप्त करें। इनके सिवा जो गूँगे तथा अन्यान्य इन्द्रियोंसे रहित हैं, जो देख-सुन नहीं सकते वे, तथा पशु-पक्षी, कीड़े-मकोड़े आदि भी आज भगवत्तत्त्वज्ञानके भागी हो जायँ। संसारमें दु:खोंका नाश हो जाय, समस्त प्रजाके हृदयसे लोभ आदि दोषसमुदाय निकल जायँ। अपनेमें, अपने भाई और पुत्रमें जैसा प्रेम और आत्मीयताका भाव होता है, सब लोगोंका सबके प्रति वैसा ही भाव हो जाय। जो संसाररूपी रोगके चिकित्सक, सम्पूर्ण दोषोंके निवारणमें चतुर तथा परमानन्दकी प्राप्तिके हेतुभूत हैं, वे भगवान् विष्णु सबके हृदयमें विराजमान हों और ऐसा होनेसे सब लोगोंके संसार-बन्धन शिथिल हो जायँ। सम्पूर्ण विश्वको धारण करनेवाले भगवान् वासुदेवका स्मरण करनेपर मन, वाणी और शरीरद्वारा आचरित मेरे समस्त पाप नष्ट हो जायँ। हे वासुदेव! ऐसा उच्चारण करनेपर अथवा भगवान् विष्णुके भक्तकी महिमाका कीर्तन करनेपर, अथवा श्रीहरिका स्मरण करनेपर समस्त पापोंका नाश हो जाता है। यदि यह सत्य है, तो इस सत्यके प्रभावसे मेरा पाप नष्ट हो जाय। अखिलेश्वर! आपके चरणोंमें पड़े हुए मुझ सेवकपर आप यह सोचकर कृपा कीजिये कि 'यह बेचारा मूढ है—कुछ जानता नहीं, इसकी बुद्धि बहुत थोड़ी है, इसके द्वारा उद्यम भी बहुत कम हो पाता है। विषयोंसे इसका मन सदा क्लेशमें पड़ा रहता है, इसीलिये वह मुझमें नहीं लग पाता।' देव! आपकी स्तुति करनेमें ब्रह्माजी भी समर्थ नहीं हैं। भगवन्! आप प्रसन्न होइये। हे विष्णो! आप बड़े दयालु हैं, मुझ अनाथपर कृपा कीजिये। हे अनन्त! हे पापहारी हरि! आप पुरुषोत्तम हैं, संसार-सागरमें डूबे हुए मुझ दीनका उद्धार कीजिये।''

अर्जुन! ऐतरेयके इस प्रकार स्तुति करनेपर विशालकाय भगवान् वासुदेवने आनन्दमग्न होकर कहा—'वत्स ऐतरेय! मैं तुम्हारी भक्तिसे और

---

* सोऽहं भृशार्तः करुणां कुरु त्वं संसारगर्ते पतितस्य विष्णो।
महात्मनां संश्रयमभ्युपेतो नैवावसीदत्यपि दुर्गतोऽपि॥
परायणं रोगवतां हि वैद्यो महाब्धिमग्नस्य च नौर्नरस्य।
बालस्य मातापितरौ सुघोरसंसारखिन्नस्य हरे त्वमेकः॥

(स्क० पु०, मा० कुमा० ३७। ९१-९२)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

इस स्तुतिसे बहुत प्रसन्न हूँ। तुम मुझसे कोई मनोवांछित एवं दुर्लभ वर माँगो।'

ऐतरेयने कहा—नाथ! हरे! मेरा अभीष्ट वर तो यही है कि घोर संसारसागरमें डूबते हुए मुझ असहायके लिये आप कर्णधार हो जायँ।

भगवान् वासुदेव बोले—वत्स! तुम तो संसारसागरसे मुक्त ही हो। जो सदा इस स्तोत्रसे गुप्तक्षेत्रमें स्थित हुए मुझ वासुदेवका स्तवन करेगा, उसके सम्पूर्ण पापोंका नाश हो जायगा। अतः यह 'अघनाशन' नामसे विख्यात होगा। जो एकादशीको उपवास करके मेरे आगे इस स्तोत्रका पाठ करेगा, वह शुद्धचित्त होकर मेरे परम धामको प्राप्त होगा। जैसे सब क्षेत्रोंमें यह गुप्तक्षेत्र मुझे अधिक प्रिय है, उसी प्रकार सब स्तोत्रोंमें यह स्तोत्र मुझे विशेष प्रिय है। जिन प्राणियोंके उद्देश्यसे महात्मा पुरुष इस स्तोत्रका जप करते हैं, वे सब प्राणी मेरी कृपासे शान्ति, ऐश्वर्य तथा उत्तम बुद्धि प्राप्त करेंगे। बेटा! तुम श्रद्धापूर्वक वैदिक धर्मोंका आचरण करो, उन्हें निष्कामभावसे मुझे समर्पित कर देनेपर उनके द्वारा तुम्हें बन्धन नहीं प्राप्त होगा। पत्नीका पाणिग्रहण करके तुम यज्ञोंद्वारा भगवान्की आराधना करो और अपनी माताकी प्रसन्नता बढ़ाओ। मुझमें तीव्र ध्यान करनेसे निःसन्देह तुम मुझे ही प्राप्त होओगे। बुद्धि, मन, अहंकार, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और पाँच कर्मेन्द्रियाँ—ये तेरह ग्रह हैं। बोद्धव्य, मन्तव्य, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, वचन, आदान, कर्म, गमन, मलोत्सर्ग और रतिजनित आनन्द—ये तेरह महाग्रह हैं। बेटा! अपने बुद्धि आदि शुद्ध (आसक्तिशून्य) ग्रहोंके द्वारा मेरा ध्यान करते हुए पूर्वोक्त महाग्रहोंको शुद्ध रूपमें ग्रहण करो, भगवत्प्रसाद मानकर स्वीकार करो। ऐसा करनेसे तुम मोक्ष प्राप्त कर लोगे। वीर! इस प्रकार भगवदर्पण बुद्धिसे कर्म करनेपर तुम नैष्कर्म्यभावको प्राप्त होओगे। ठीक उसी तरह, जैसे चतुर स्वर्णकार रससंबिद्ध ताँबेको सुवर्णके रूपमें उपलब्ध करता है। वर्णाश्रमोचित आचारवाला पुरुष भी यदि अपने सब कर्म मुझे समर्पित करके स्वयं मेरे ध्यानमें संलग्न हो जाता है, तो उसे भी यहाँ मोक्ष दुर्लभ नहीं है। इसलिये मेरे बताये अनुसार बर्ताव करते हुए नियमपरायण होकर तुम आनन्दपूर्वक रहो। अपनी सात पीढ़ियोंका उद्धार करके फिर मुझमें लीन हो जाओगे। यद्यपि वेदोंका अध्ययन तुमने नहीं किया है, तो भी सम्पूर्ण वेद तुम्हारी बुद्धिमें स्वयं प्रतिभासित होंगे। अब यहाँसे कोटितीर्थमें, जहाँ हरिमेधाका यज्ञ हो रहा है, जाओ। वहाँ तुम्हारी माताका सम्पूर्ण मनोरथ सफल होगा।

यों कहकर भगवान् विष्णु पुनः वासुदेव-विग्रहमें ही प्रवेश कर गये। उस समय ऐतरेयकी माता और ऐतरेय दोनों एकटक दृष्टिसे भगवान्की ओर देख रहे थे। तत्पश्चात् वासुदेव-विग्रहको नमस्कार करके विस्मय और आनन्दमें निमग्न हुए ऐतरेयने अपनी मातासे कहा—"माँ! मैं पूर्वजन्ममें शूद्र था, एक दिन सांसारिक दोषोंसे भयभीत हो एक धर्मनिष्ठ ब्राह्मणकी शरणमें गया। वे बड़े दयालु थे। उन्होंने मुझे द्वादशाक्षर मन्त्रका उपदेश दिया और कहा, 'सदा इस मन्त्रका जप किया कर।' उनकी इस आज्ञाके अनुसार मैं निरन्तर उस मन्त्रका जप करने लगा। उस जपके प्रभावसे तुम्हारे गर्भसे मेरा जन्म हुआ। मुझे पूर्वजन्मकी स्मृति हुई, भगवान् विष्णुके प्रति मेरे मनमें भक्तिका उदय हुआ और इस तीर्थमें सर्वदा निवास करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ।" मातासे ऐसा कहकर ऐतरेय यज्ञमें गये और वहाँ यह श्लोक बोले—

नमस्तस्मै भगवते विष्णवेऽकुण्ठमेधसे।
यन्मायामोहितधियो भ्रमामः कर्मसागरे॥

'जिनकी बुद्धि कहीं कुण्ठित नहीं होती तथा जिनकी मायासे मोहितचित्त होकर हमलोग

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

कर्मोंके समुद्रमें भटक रहे हैं, उन भगवान् विष्णुको नमस्कार है।'

इस श्लोकका आशय बहुत गम्भीर है। हरिमेधा आदि ब्राह्मणोंने जब इसे सुना, तब आसन और पूजा आदिके द्वारा ऐतरेयका बहुत सत्कार किया। तत्पश्चात् ऐतरेयने अपनी विद्यासे उन वेदार्थनिपुण ब्राह्मणोंको संतुष्ट किया। फिर सबने उन्हें दक्षिणा दी। हरिमेधाने ऐतरेयको अपनी पुत्री भी दे दी। धन और पत्नीको ग्रहण करके ऐतरेय अपने घर आये। उन्होंने माताको आनन्दित किया और अनेकों निर्मल पुत्रोंको जन्म दिया। ऐतरेय सदा द्वादशी व्रतका पालन करते रहे। वे अनेक यज्ञोंद्वारा भगवान्‌का यजन करके निरन्तर वासुदेवका ध्यान किया करते थे। इससे देहत्यागके पश्चात् उन्होंने मोक्ष प्राप्त कर लिया। अर्जुन! ऐसी महिमावाले भगवान् वासुदेव यहाँ स्वयं विराजमान हैं। जो इनकी पूजा, अर्चा और स्तुति करता है, उसका सब पुण्य अक्षय माना गया है।

भट्टादित्यकी स्थापना तथा नारदजीके द्वारा एक सौ आठ नामोंसे उनकी स्तुति

नारदजी कहते हैं—कुन्तीनन्दन! भगवान् वासुदेवकी स्थापनाके पश्चात् मैंने पुनः मनुष्योंपर कृपा करनेकी इच्छासे प्रत्यक्ष देवता भगवान् सूर्यको इस तीर्थमें लानेका विचार किया। भगवान् सूर्य समस्त प्राणियोंके उद्गमस्थान हैं। वे इस लोक और परलोकमें भी सबका अभ्युदय करते हैं। श्रीसूर्यदेव सम्पूर्ण विश्वके आधार माने गये हैं। जो भक्तिपूर्वक भगवान् सूर्यका प्रतिदिन स्मरण, कीर्तन और पूजन करते हैं, वे निस्सन्देह कृतार्थ हो जाते हैं। जिसने इस संसारमें जन्म लेकर सहस्रों किरणोंवाले देवेश्वर भगवान् सूर्यका पूजन नहीं किया, उसने अपने आत्मासे ही द्रोह किया है। जो सदा भगवान् सूर्यकी भक्तिमें तत्पर और सर्वदा उन्हींमें मन लगाये रहनेवाले हैं, जो सदा सूर्यका ही स्मरण किया करते हैं, वे कभी दुःखके भागी नहीं होते हैं। भगवान् भास्करकी भक्ति दुर्लभ है, उनका पूजन दुर्लभ है, उनके लिये दान देनेका सौभाग्य दुर्लभ है तथा उनकी प्रसन्नताके लिये होम करना तो और भी दुर्लभ है। जिसकी जिह्वाके अग्रभागमें नमस्कार आदिसे युक्त 'रवि' ये दो अक्षर विराजते हैं, उसका जीवन सफल है। इस प्रकार भगवान् सूर्यके बड़े भारी माहात्म्यका चिन्तन करके मैंने पूरे सौ वर्षतक भक्तिपूर्वक सूर्यदेवकी आराधना की। मैं वायु पीकर रहता और सूर्यसम्बन्धी वैदिक मन्त्रोंके विशुद्ध जपसे भगवान् सूर्यकी स्तुति किया करता था। तब, अत्यन्त तेजके कारण जिनकी ओर देखना बहुत कठिन है, उन भगवान् सूर्यने योगबलसे दूसरी मूर्ति धारण करके आकाशमें

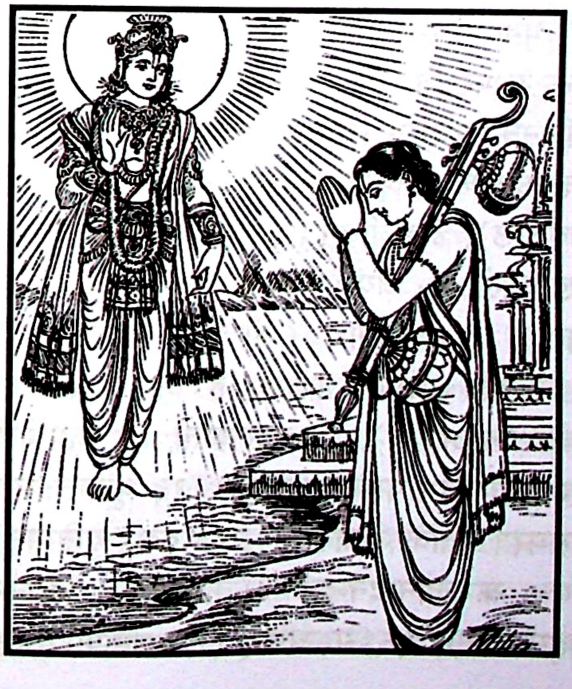

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

आकर मुझे प्रत्यक्ष दर्शन दिया। तब मैंने हाथ जोड़कर भगवान्‌को नमस्कार किया और सामवेदके विविध मन्त्रोंद्वारा उनका स्तवन भी किया। इससे प्रसन्न होकर वर देनेवाले भगवान् सूर्यने कहा— 'देवर्षे! तुमने दीर्घकालतक तपस्याके द्वारा मेरी आराधना की है। अब कोई अभीष्ट वर माँगो।'

उनके ऐसा कहनेपर मैं हाथ जोड़कर बोला— भगवन्! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं और मुझे वर देना उचित समझते हैं, तो आपकी जो कामरूपिणी कला है, पूर्वकालमें राजा राजवर्धनने जिसकी आराधना की थी, उसी कलाके द्वारा आप सदा हमारी रक्षा करते रहें। तदनन्तर भगवान् सूर्यने सन्तुष्ट होकर जब 'तथास्तु' कह दिया, तब मैंने इस तीर्थमें भट्टादित्यके नामसे उनकी स्थापना की। मुझ भट्टके द्वारा स्थापित होनेके कारण भगवान् सूर्यका उक्त नाम प्रसिद्ध हुआ। तत्पश्चात् फूलोंसे भलीभाँति पूजा करनेपर मूर्तिमें भगवान् सूर्यका आवेश हुआ। यह देख मेरा सम्पूर्ण अंग भक्तिरसके उद्रेकमें डूब गया और मैंने सम्पूर्ण वेदोंके रहस्यभूत एक सौ आठ नामोंद्वारा सूर्यदेवका इस प्रकार स्तवन किया—

भगवान् सूर्य आप १ सप्तसप्ति (सात घोड़ोंसे युक्त रथपर विचरण करनेवाले), २ अचिन्त्यात्मा (जिनका स्वरूप चिन्तनमें नहीं आ सकता), ३ महाकारुणिकोत्तम (अत्यन्त करुणा करनेवालोंमें सर्वश्रेष्ठ), ४ संजीवन (सबको भलीभाँति जीवित रखनेवाले), ५ जय (विजयी), ६ जीव (जीवन-दाता), ७ जीवनाथ (जीवोंके स्वामी) और ८ जगत्पति (संसारके स्वामी) हैं। आप ९ कालाश्रय (कालके आधार), १० कालकर्ता, ११ महायोगी, १२ महामति (परम बुद्धिमान्), १३ भूतान्तःकरण (समस्त भूतोंके अन्तरात्मा), १४ देव (द्युतिमान्), १५ कमलानन्दनन्दन (कमलोंका आनन्द बढ़ानेवाले), १६ सहस्रपाद् (किरणरूपी सहस्रों चरणोंसे सुशोभित), १७ वरद (वर देनेवाले), १८ दिव्यमण्डलमण्डित, १९ धर्मप्रिय, २० अर्चितात्मा (पूजित स्वरूपवाले), २१ सविता (सम्पूर्ण जगत्‌के उत्पादक), २२ वायुवाहन (प्रवह वायुके सहारे आकाशमें विचरण करनेवाले अथवा वायुके ऊपर स्थित), २३ आदित्य (अदिति-पुत्र), २४ अक्रोधन (क्रोधरहित), २५ सूर्य, २६ रश्मिमाली (किरण-समूहसे सुशोभित), २७ विभावसु (विशेषरूपसे प्रकाशित होनेवाले), २८ दिनकृत (अपने उदयसे दिन प्रकट करनेवाले), २९ दिनहृत् (स्वयं अस्त होकर दिनको हर लेनेवाले), ३० मौनी (मौन रहनेवाले), ३१ सुरथ (सुन्दर रथवाले), ३२ रथिनां वर (रथियोंमें श्रेष्ठ), ३३ राज्ञां पति (राजाओंके अधिपति), ३४ स्वर्णरेता (सुवर्णरूप बीजवाले), ३५ पूषा (पोषण करनेवाले), ३६ त्वष्टा, ३७ दिवाकर, ३८ आकाशतिलक, ३९ धाता (धारण-पोषण करनेवाले), ४० संविभागी (दिन-रातका विभाग करनेवाले), ४१ मनोहर, ४२ प्राज्ञ (विद्वान्), ४३ प्रज्ञापति (बुद्धिके स्वामी अथवा प्रेरक), ४४ धन्य, ४५ विष्णु (व्यापक), ४६ श्रीश (शोभा और संपत्तिके स्वामी), ४७ भिषग्वर (अपनी किरणोंद्वारा नाना प्रकारके रोगोंके निवारण करनेवाले श्रेष्ठ वैद्य), ४८ आलोककृत (प्रकाशक), ४९ लोक-नाथ, ५० लोकपालनमस्कृत, ५१ विदिताशय (सबके अभिप्रायको जाननेवाले), ५२ सुनय (उत्तम नीतिवाले), ५३ महात्मा, ५४ भक्तवत्सल, ५५ कीर्ति, ५६ कीर्तिकर, ५७ नित्य, ५८ रोचिष्णु (कान्तिमान्), ५९ कल्मषापह (पापोंका नाश करनेवाले), ६० जितानन्द (आनन्दको अपने अधीन रखनेवाले), ६१ महावीर्य (परम पराक्रमी), ६२ हंस (आकाशरूपी सरोवरमें हंसके समान विचरण करनेवाले अथवा परमात्मा), ६३ संहारकारक (प्रलयकालमें संवर्तकानलरूपसे प्रकट होकर सम्पूर्ण ब्रह्माण्डको दग्ध करनेवाले), ६४ कृतकृत्य,

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

६५ असंग (अनासक्त), ६६ बहुज्ञ, ६७ वचसां पति (वाणीके अधिपति), ६८ विश्वपूज्य, ६९ मृत्युहारी, ७० घृणी (दयालु), ७१ धर्मकारण, ७२ प्रणतार्तिहर (शरणागतोंका कष्ट हर लेनेवाले), ७३ अरोग (रोगरहित), ७४ आयुष्मान्, ७५ सुखद, ७६ सुखी, ७७ मंगल, ७८ पुण्डरीकाक्ष (कमलके समान नेत्रोंवाले), ७९ व्रती (व्रतोंका पालन करनेवाले), ८० व्रतफलप्रद (व्रतोंका फल देने-वाले), ८१ शुचि (पवित्र), ८२ पूर्ण, ८३ मोक्ष-मार्ग, ८४ दाता, ८५ भोक्ता, ८६ धन्वन्तरि, ८७ प्रियाभास (जिनका प्रकाश लोकप्रिय है), ८८ धनुर्वेदवित् (धनुर्वेदके ज्ञाता), ८९ एकराट् (आकाशमें एकमात्र प्रकाशित होनेवाले), ९० जगत्पिता, ९१ धूमकेतु (अग्निरूप), ९२ विद्युत् (विशेष दीप्तिमान्), ९३ ध्वान्तहा (अन्धकारनाशक), ९४ गुरु, ९५ गोपति (किरणोंके स्वामी), ९६ कृतातिथ्य (सब लोग अर्घ्य देकर जिनका आतिथ्यसत्कार करते हैं), ९७ शुभाचार (पुण्यकर्मोंके प्रवर्तक), ९८ शुचिप्रिय (पवित्र आचार-विचारवाले जिन्हें अधिक प्रिय हैं), ९९ सामप्रिय (साम-गानके प्रेमी), १०० लोकबन्धु, १०१ नैकरूप (अनेक रूपवाले), १०२ युगादिकृत (युगादिके उत्पादक), १०३ धर्मसेतु (धर्म-मर्यादाके रक्षक), १०४ लोक-साक्षी (सब लोगोंके शुभाशुभ कर्मोंको देखनेवाले), १०५ खेट (आकाशमें विचरनेवाले), १०६ अर्क (अर्चनीय), १०७ सर्वद (सब कुछ देनेवाले) तथा १०८ प्रभु (सर्वशक्तिमान्) हैं। मेरे द्वारा इस प्रकार एक सौ आठ नामोंसे जिनकी भलीभाँति स्तुति की गयी है, वे सर्वलोकप्रिय भगवान् सूर्य समस्त लोकोंपर प्रसन्न हों।

इस स्तुतिसे प्रसन्न होकर भगवान् सूर्यने मुझसे कहा—देवर्षे! तुम्हारा प्रिय करनेकी इच्छासे मैं अपनी एक कलाद्वारा सदा इस स्थानमें निवास करूँगा। जो मनुष्य भक्तिपूर्वक यहाँ मुझ भट्टादित्यकी पूजा करेगा, वह कामरूपधारी साक्षात् मुझ सहस्रांशुके पूजनसे प्राप्त होनेवाले फलको पा लेगा। जो मनुष्य मेरे उद्देश्यसे यहाँ थोड़ा या अधिक दान करेगा, उसे मैं सहर्ष स्वीकार करूँगा और उसका पुण्य अक्षय होगा। जो मानव रविवारको अथवा षष्ठी या सप्तमी तिथिको लाल कमल, कह्लार, केशर, कनेर तथा सौ पत्तोंवाले महाकमलके पुष्पोंसे यहाँ मेरी पूजा करेंगे, वे जिन-जिन कामनाओंके लिये प्रार्थना करेंगे, उन सबको निश्चय ही प्राप्त कर लेंगे। भक्तिपूर्वक मेरा दर्शन करनेसे रोग और दरिद्रताका नाश होगा। प्रतिदिन मुझे प्रणाम करनेसे स्वर्गकी तथा नित्य प्रति मेरी स्तुति करनेसे मोक्षकी प्राप्ति होगी।

~~~o~~~

महात्मा नन्दभद्रके सारभूत विचार तथा उनके द्वारा सत्यव्रतके नास्तिकतापूर्ण विचारोंका खण्डन

नारदजी कहते हैं—अर्जुन! अब बहूदक स्थानकी एक अद्भुत कथा सुनो। कामरूपमें जो बहूदक नामक कुण्ड है, वह इस तीर्थमें आकर भलीभाँति प्रकट हुआ है। इसीलिये इसे बहूदक कहा गया है। महात्मा कपिलने बहुत वर्षोंतक तपस्या करके यहाँ एक बहुत सुन्दर शिवलिंगकी स्थापना की है, जो कपिलेश्वरके नामसे प्रसिद्ध है। अर्जुन! नन्दभद्र नामके एक वणिक् थे, जो तीनों समय बड़े आदरके साथ कपिलेश्वर लिंगकी पूजा किया करते थे। वे साक्षात् दूसरे धर्मराजकी भाँति समस्त धर्मोंके विशेषज्ञ थे। धर्मोंके विषयमें जो कुछ कहा गया है, उसमें कोई भी ऐसी बात नहीं थी, जो नन्दभद्रको ज्ञात न हो। वे सबके सुहृद् थे और सदा सभीके हितसाधनमें संलग्न

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth
~~~

रहते थे। उन्होंने मन, वाणी और क्रियाद्वारा इस परोपकार-धर्मका ही आश्रय ले रखा था। संसारमें ऐसा कोई धर्म न तो प्रकट हुआ है और न होनेवाला है, जो सब अवस्थाओंमें सर्वथा निर्दोष हो। इस निश्चयपर पहुँचे हुए नन्दभद्रने इस विशाल धर्म-समुद्रका सब ओरसे मन्थन करके जो सारतत्त्व ग्रहण किया था, उसे बतलाता हूँ, सुनो। नन्दभद्र जीविकाके लिये वाणिज्यको ही श्रेष्ठ मानते थे और उसीको अपनाये हुए थे। उन्होंने थोड़े-से काठ और घास-फूससे अपने रहनेके लिये घर बना रखा था और सब लोगोंकी भलाईके लिये वे थोड़ा-सा ही लाभ लेकर व्यापार करते थे। उनके क्रय-विक्रयकी वस्तुओंमें मदिरा सर्वथा वर्जित थी। उनके यहाँ ग्राहकोंके साथ भेद-भाव नहीं किया जाता था। झूठ और कपटका तो वहाँ नाम भी न था। वस्तुओंके आदान-प्रदानमें वे सबके साथ समतापूर्ण बर्ताव करते थे। बिना छल-कपटके दूसरोंसे खरीदकी वस्तु लेकर उसे बिना किसी धोखाधड़ीके वे सब लोगोंके हाथ बेचते थे; यही उनका श्रेष्ठ व्रत था। कुछ लोग यज्ञकी प्रशंसा करते हैं, परंतु नन्दभद्र ऐसा नहीं मानते थे। उन्होंने यज्ञमें आये हुए कुछ दोषोंको लक्ष्य करके ही ऐसी धारणा बनायी थी, तथापि वे श्रद्धापूर्वक देवपूजन, नमस्कार, स्तुति, नैवेद्य-निवेदन आदि यज्ञकी सारभूत बातोंका सदा ही पालन करते थे। कोई-कोई संन्यासकी प्रशंसा करते हैं, परंतु नन्दभद्र उनसे भी सहमत नहीं थे। उनका कहना था कि जो विषयोंका बाहरसे त्याग करके मनके द्वारा पुनः उनको ग्रहण करता है वह गृहस्थ और संन्यास अथवा इहलोक और परलोक दोनों ओरसे भ्रष्ट होकर फटे हुए बादलकी भाँति नष्ट हो जाता है। संन्यासका जो सारभूत उत्तम तत्त्व है, उसका आदर तो नन्दभद्र भी करते थे। वे किसीके कर्मोंकी निन्दा या प्रशंसा नहीं करते थे। अनेक भिन्न-भिन्न मार्गोंमें स्थित हुए लोगोंको चन्द्रमाकी भाँति तटस्थ रहकर लीलापूर्वक देखते थे। किसीके साथ न उनका द्वेष था, न राग; न अनुरोध था, न विरोध। पत्थर और सुवर्णको वे समान समझते तथा अपनी निन्दा और स्तुतिमें भी समान भाव रखते थे। वे स्वभावसे ही धीर थे। सम्पूर्ण भूतोंसे निर्भय रहते थे। अपनी आकृति ऐसी बनाये रखते थे, मानो अन्धे और बहरे हों। कर्मोंके फलकी उन्हें कोई आकांक्षा नहीं थी। अतः वह कर्म उनके लिये भगवान् सदाशिवकी आराधना बन जाता था। इसी कारण वे धर्मका अनुष्ठान तो चाहते और करते थे, परंतु उसमें कोई लोभ नहीं रखते थे। नन्दभद्रने भलीभाँति विचार करके इसीको मोक्षके साररूपसे ग्रहण किया था। कुछ लोग खेतीकी प्रशंसा करते हैं; परंतु नन्दभद्रने उसके भी सारभागको ही अपनाया था। आठ बैलोंसे जुड़ा हुआ एक हल होना चाहिये और खेतीकी आयमेंसे तीसवें भागका त्याग करना चाहिये— उसे धर्मके कार्यमें लगा देना चाहिये। बूढ़े पशुओंका भी स्वयं ही पालन-पोषण करना चाहिये। जो ऐसा करे, वही श्रेष्ठ किसान है। नन्दभद्रने इसीको खेतीका सार मानकर इसका आदर किया था। उनके मतसे प्रतिदिन अपनी शक्तिके अनुसार देवताओं, पितरों, मनुष्यों (अतिथियों), ब्राह्मणों तथा पशु-पक्षी, कीट-पतंगादि भूतोंके लिये अन्न देना चाहिये। सदा इन सबको देकर ही स्वयं भोजन करना उचित है। कुछ लोग ऐश्वर्यकी प्रशंसा करते हैं; परंतु नन्दभद्र उसे भी प्रशंसाके योग्य नहीं मानते थे। क्योंकि ऐश्वर्यके मदसे उन्मत्त हो मनुष्य दूसरे मनुष्योंको दास बनाकर उनका उपभोग करते हैं। वे मनुष्योंका वध करते हैं, उन्हें बाँधते हैं और बंदी बनाकर दिन-रात पीड़ा देते हैं। ऐश्वर्यशाली पुरुष अपनेको अजर-अमर समझकर दूसरोंके साथ दुर्व्यवहार करते

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

हैं। उनपर ऐश्वर्यका मद तो रहता ही है, मदिरापानके मदसे भी वे अत्यन्त मतवाले हो उठते हैं। वास्तवमें जो धनके मदसे उन्मत्त होता है, वह पतित होकर विवेक खो बैठता है। अतः सम्पूर्ण भूतों (प्राणियों)-को अपना स्वरूप मानकर उनके प्रति अपने ही जैसा बर्ताव करना चाहिये। जिसकी सर्वत्र आत्मदृष्टि है, वह ऐश्वर्यसे मतवाला नहीं होता। जो सबके शरीरमें अपने ही जैसे सुख-दुःखका अनुभव करता हो, ऐसा ऐश्वर्यशाली पुरुष आज कहाँ है? इसलिये नन्दभद्रने ऐश्वर्यका जो सार ग्रहण किया था, वह भी सुनो। वे अपनी शक्तिके अनुसार सभी प्राणियोंकी सेवा करते थे, किसीकी भी सेवासे विमुख नहीं होते थे।

इस प्रकार इधर-उधर प्रकट हुए सारभूत सदाचारका संग्रह करके बुद्धिमान् नन्दभद्र उसीका पालन करते थे। इस आचरणसे रहनेवाले साधु-शिरोमणि नन्दभद्रके सद्व्यवहारकी देवतालोग भी स्पृहा रखते थे। इन्द्र आदि सब देवताओंको उनकी स्थिति देखकर बड़ा विस्मय होता था। इसी स्थानमें एक शूद्र भी रहता था, जो नन्दभद्रका पड़ोसी था। उसका नाम तो था सत्यव्रत, किंतु वह बड़ा भारी नास्तिक और दुराचारी था। धर्मपरायण नन्दभद्रपर बारंबार दोषारोपण किया करता था और सदा उनके दोष ही ढूँढ़ता रहता था। उसकी इच्छा थी, यदि इनका कोई छिद्र देख पाऊँ तो इन्हें धर्मसे गिरा दूँ। खोटे हृदयवाले क्रूर नास्तिकोंका यह स्वभाव ही होता है कि वे अपनेको तो नीचे गिराते ही हैं, दूसरोंको भी गिरानेकी चेष्टा करते हैं।

धार्मिक वृत्तिसे रहनेवाले बुद्धिमान् नन्दभद्रके वृद्धावस्थामें बड़े कष्टसे एक पुत्र हुआ, किंतु वह चल बसा। इसे प्रारब्धका फल मानकर उन महामति वैश्यने शोक नहीं किया। देवता हो या मनुष्य, प्रारब्धके विधानसे कौन छूट पाता है। तदनन्तर नन्दभद्रकी प्यारी पत्नी कनका, जो अरुन्धतीकी भाँति साध्वी स्त्रियोंके समस्त सद्गुणोंसे विभूषित तथा गृहस्थधर्मकी साक्षात् मूर्ति थी, सहसा मृत्युको प्राप्त हो गयी। नन्दभद्र जितेन्द्रिय थे; फिर भी पत्नीके न रहनेसे गृहस्थ-धर्मका नाश होगा, यह सोचकर उन्हें शोक हुआ।

नन्दभद्रका यह अन्तर देखकर सत्यव्रतको बहुत दिनोंके बाद बड़ी प्रसन्नता हुई। वह 'हाय-हाय! बड़े कष्टकी बात हुई' ऐसा कहता हुआ शीघ्र ही नन्दभद्रके पास आया और मित्रकी भाँति मिलकर उनसे बोला—'हा नन्दभद्र! यदि तुम-जैसे धर्मात्माको भी ऐसा फल मिला तो इससे मेरे मनमें यही आता है कि यह धर्म-कर्म व्यर्थ ही है। भाई नन्दभद्र! मैं सदा तुमसे कुछ कहना चाहता था, किंतु तुम्हारी ओरसे कोई प्रस्ताव न होनेके कारण मैंने कभी कुछ नहीं कहा, क्योंकि बिना किसी प्रस्तावके बृहस्पतिजी भी कोई बात कहें, तो उनकी बुद्धिकी अवहेलना होती है और उन्हें नीच पुरुषकी भाँति अपमान प्राप्त होता है। मैं वाणीके अठारह और बुद्धिके नौ दोषोंसे रहित सर्वथा निर्दोष वाक्य बोलूँगा। सूक्ष्मता, संख्या, क्रम, निर्णय और प्रयोजन—ये पाँच अर्थ जिसमें उपलब्ध होते हैं, उसे 'वाक्य' कहते हैं। धर्म, अर्थ, काम और मोक्षके उद्देश्यसे जो कुछ कहा जाता है, वह 'प्रयोजन' नामक वाक्य कहा गया है। यह वाक्यका प्रथम लक्षण है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्षके विषयमें प्रतिज्ञा करके वाक्यके उपसंहारमें 'यही वह है' ऐसा कहकर जो विशेषरूपसे सिद्धान्त बताया जाता है, वह 'निर्णय' नामक वाक्य है। 'यह पहले और यह पीछे कहना चाहिये'—इस प्रकार क्रमविभागपूर्वक जो प्रस्तुत विषयका प्रतिपादन किया जाता है, उसे वाक्यतत्त्वके ज्ञाता विद्वान् 'क्रमयोग' कहते हैं। जहाँ दोषों और गुणोंका

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

यथावत् विभाग करके दोनोंके लिये प्रमाण उपस्थित किया जाय उसे 'संख्या' वाक्य समझना चाहिये। और जहाँ वाक्यके विभिन्न अर्थोंमें अभेद देखा जाता है, उस अतिशय अभेदकी प्रतीतिमें जो हेतु है; उसे ही 'सूक्ष्मता' कहते हैं। यह वाक्यके गुणोंकी गणना हुई। अब वाणीके अठारह दोषोंका वर्णन सुनो। अपेतार्थ, अभिन्नार्थ, अप्रवृत्त, अधिक, अश्लक्ष्ण, सन्दिग्ध, पदान्त अक्षरका गुरु होना, पराङ्मुखमुख, अनृत एवं असंस्कृत, त्रिवर्गविरुद्ध, न्यून, कष्टशब्द, अतिशब्द, व्युत्क्रमाभिहत, सशेष, अहेतुक तथा निष्कारण*—ये वाणीके दोष हैं। अब बुद्धिके दोषोंको सुनो। काम, क्रोध, भय, लोभ, दैन्य, अनार्जव (कुटिलता)—इन छः दोषोंसे युक्त होकर तथा दया, सम्मान और धर्म—इन तीन गुणोंसे हीन होकर मैं कोई बात न कहूँगा। (उक्त छः दोषोंके साथ दयाहीनता, सम्मानहीनता और धर्महीनता—ये तीन दोष और मिल जानेसे नौ दोष होते हैं।) जब वक्ता, श्रोता और वाक्य तीनों अविकल रहकर बोलनेकी इच्छामें समान अवस्थाको प्राप्त हों, तभी वक्ताका अभिप्राय यथावत् रूपसे प्रकट होता है। बातचीत करते समय जब वक्ता श्रोताकी अवहेलना करता है अथवा श्रोता ही वक्ताकी उपेक्षा करने लगता है, तब बोला हुआ वाक्य बुद्धिपथपर नहीं चढ़ता। इसके सिवा, जो सत्यका परित्याग करके अपनेको अथवा श्रोताको प्रिय लगनेवाला वचन बोलता है, उसके उस वाक्यमें सन्देह उत्पन्न होने लगता है; अतः वह वाक्य भी सदोष ही है। इसलिये जो अपनेको या श्रोताको प्रिय लगनेवाली बात छोड़कर केवल सत्य ही बोलता है, वही इस पृथ्वीपर यथार्थ वक्ता है, दूसरा नहीं।

शास्त्रोंके जालसे पृथक् हो मिथ्यावादोंको छोड़कर केवल सत्य कहना ही मेरा व्रत है। इसलिये मैं 'सत्यव्रत' कहलाता हूँ। मैं तुमसे सच्ची बात कहूँगा और तुम्हें भी उसे सत्य मानकर ही स्वीकार करना चाहिये। भलेमानुस! जबसे तुम पत्थर पूजनेमें लग गये, तबसे तुम्हें कोई अच्छा फल मिला हो, ऐसा मैं नहीं देखता। तुम्हारे एक ही तो पुत्र था, वह भी नष्ट हो गया। पतिव्रता पत्नी थी, सो भी संसारसे चल बसी। साधो! झूठे तथा कपटपूर्ण कर्मोंका ही ऐसा फल हुआ करता है। भैया! देवता कहाँ हैं? सब मिथ्या है। यदि होते तो दिखायी न देते? यह सब कुछ कपटी ब्राह्मणोंकी झूठी कल्पना है। लोग पितरोंके उद्देश्यसे दान देते हैं, यह देखकर मुझे तो हँसी आती है। मेरी दृष्टिमें यह अन्नकी बरबादी है। भला, मरा हुआ मनुष्य क्या खायेगा? मूर्ख एवं नीच ब्राह्मण, जो समस्त संसारकी सृष्टिका अनेक प्रकारसे वर्णन किया करते हैं, उसमें भी जो यथार्थ बात है उसे सुनो। संसारकी सृष्टि और संहार—ये दोनों बातें झूठी हैं। वास्तवमें यह जगत् सत्य है और इसी रूपमें सदा बना रहता है। यह विश्व स्वभावसे ही सदा वर्तमान

* जिस वाणीके उच्चारण करनेपर भी अर्थका भान न हो, वह 'अपेतार्थ' है। जिससे अर्थभेदकी स्पष्ट प्रतीति न हो, वह अभिन्नार्थ है। जो सदा व्यवहारमें न आता हो ऐसा शब्द 'अप्रवृत्त' कहा गया है। जिसके न रहनेपर भी वाक्यार्थ-बोध हो जाता है, वह वाक् या शब्द अधिक है। अस्पष्ट अथवा अपरिमार्जित वाणीको अश्लक्ष्ण कहते हैं। जिससे अर्थमें सन्देह हो वह सन्दिग्ध है। पदान्त अक्षरका गुरु उच्चारण भी एक दोष ही है। वक्ता जिस अर्थको व्यक्त करना चाहता है, उसके विपरीत अर्थकी ओर जानेवाली वाणीको पराङ्मुखमुख कहा गया है। अनृतका अर्थ है असत्य। व्याकरणसे सिद्ध न होनेवाली वाणीको असंस्कृत कहते हैं। धर्म, अर्थ और कामके विपरीत विचार प्रकट करनेवाली वाणी त्रिवर्ग-विरुद्ध कही गयी है। अर्थ-बोधके लिये पर्याप्त शब्दका न होना न्यून दोष है। जिसके उच्चारणमें क्लेश हो, वह कष्टशब्द है। अतिशयोक्तिपूर्ण शब्दको यहाँ अतिशब्द कहा है। जहाँ क्रमका उल्लंघन करके शब्दप्रयोग हुआ हो, वह व्युत्क्रमाभिहत कहलाता है। वाक्य पूरा होनेपर भी यदि बात पूरी नहीं हुई तो वहाँ सशेष नामक दोष है। कथित अर्थकी सिद्धिके लिये जहाँ उचित तर्क या युक्तिका अभाव हो; वहाँ अहेतुक दोष है। जब किसी बातके कहे जानेका कोई कारण नहीं बताया गया हो अथवा किसी शब्दके प्रयोगका उचित कारण न हो, तब वहाँ निष्कारण दोष है।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

रहता है, ये सूर्य आदि ग्रह स्वभावसे ही आकाशमें विचरण करते हैं, स्वभावसे ही निरन्तर वायु चलती है, स्वभावसे ही मेघ पानी बरसाता है और स्वभावसे ही बोया हुआ धान्य जमता है। स्वभावसे ही पृथ्वी स्थिर है, स्वभावसे ही नदियाँ बहती हैं, स्वभावसे ही पर्वत अविचलभावसे सुशोभित हैं और स्वभावसे ही समुद्र अपनी मर्यादामें स्थित है। स्वभावसे ही गर्भवती स्त्री पुत्र पैदा करती है, स्वभावसे ही ये बहुतेरे जीव उत्पन्न होते हैं। जैसे स्वभावसे ही लोग टेढ़े होते हैं, ऋतुके स्वभावसे ही बेरोंमें काँटे पैदा होते हैं—उसी प्रकार स्वभावसे ही यह सम्पूर्ण जगत् प्रकाशित होता है। इसका कोई प्रत्यक्ष दिखायी देनेवाला कर्ता नहीं है। इस प्रकार स्वभावसे ही सम्पूर्ण लोक स्थित हैं। ऐसी अवस्थामें भी मूर्ख मनुष्य इस विषयको लेकर मतवालेकी भाँति व्यर्थ मोहमें पड़ा रहता है। धूर्तलोग इस मनुष्ययोनिको भी जो सबसे श्रेष्ठ बतलाते हैं, इसकी भी पोल खोलता हूँ, सुनो। मनुष्ययोनिसे बढ़कर दूसरी किसी योनिमें कष्ट नहीं है। मनुष्योंको जो कष्ट है, वह हमारे शत्रुओंको भी न हो। मनुष्योंके समक्ष क्षण-क्षणमें शोकके सहस्रों स्थान आते हैं। यह मानवयोनि क्या है, बन्दीगृह है! कोई बड़भागी पुरुष ही इससे छुटकारा पाता है। ये पशु-पक्षी, कीड़े-मकोड़े बिना किसी बन्धनके सुखपूर्वक विहार करते हैं; इनकी योनि अत्यन्त दुर्लभ है। ये स्थावर (वृक्ष-पर्वत आदि) कितने निश्चिन्त हैं। पृथ्वीपर इन्हींका सुख महान् है। अधिक क्या कहें, मनुष्योंकी अपेक्षा अन्य योनियोंमें उत्पन्न होनेवाले सभी जीव धन्य हैं। कोई स्थावर हैं, कोई कीड़े हैं, कोई पतंग हैं और कोई मनुष्य आदि जीवोंके रूपमें उत्पन्न हुए हैं। इसमें स्वभावको ही प्रधान कारण समझो। पुण्य और पाप आदि तो कल्पनामात्र हैं। इसलिये नन्दभद्र! तुम मिथ्या-धर्मका परित्याग करके मौजसे खाओ, पीओ, खेलो और भोग भोगो। पृथ्वीपर, बस यही सत्य है।'

नारदजी कहते हैं—सत्यव्रतके इन वाक्योंसे, जो अशुभकर, अयुक्तिसंगत तथा असमंजस (दोषपूर्ण) थे, महाबुद्धिमान् नन्दभद्र तनिक भी विचलित नहीं हुए। वे क्षोभरहित समुद्रकी भाँति गम्भीर थे। उन्होंने हँसते हुए उत्तर दिया—'सत्यव्रतजी! आपने जो यह कहा कि धर्मनिष्ठ मनुष्य सदा दुःखके भागी होते हैं, वह झूठ है। हम तो पापियोंपर भी बहुतेरे दुःख आते देखते हैं। संसारबन्धनजनित क्लेश तथा पुत्र और स्त्री आदिकी मृत्युके दुःख, पापी मनुष्योंके यहाँ भी देखे जाते हैं। इसलिये मेरे मतमें धर्म ही श्रेष्ठ है। किसी पुण्यात्मा साधुपुरुषपर संकट आया देखकर बड़े-बड़े लोग सहानुभूति प्रदर्शित करते हुए यह कहते हैं कि 'अहो! ये तो साधु पुरुष हैं, इनपर कष्ट आया, यह तो हमारे लिये बड़े दुःखकी बात है' इत्यादि। पापियोंको तो यह सहानुभूति भी दुर्लभ है। स्त्री तथा धन आदिके लोभसे जब कोई पापी लुटेरा घरमें घुसता है, तो आप भी उससे डर जाते हैं; उसके प्रति द्वेषका परिचय देते हैं और उसके

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

ऊपर क्रोध भी करते हैं। यह सब व्यर्थ ही तो है। दूसरी बात जो आप यह कहते हैं कि इस संसारका कारण कोई महान् ईश्वर नहीं है, यह भी बच्चोंकी-सी बात है। क्या प्रजा बिना राजाके रह सकती है? इसके सिवा जो आप यह कहते हैं कि तुम झूठे ही पत्थरके लिंगकी पूजा करते हो, इसके उत्तरमें मुझे इतना ही निवेदन करना है कि आप शिवलिंगकी महिमाको नहीं जानते हैं। ठीक उसी तरह, जैसे अन्धा सूर्यके स्वरूपको नहीं जानता। ब्रह्मा आदि समस्त देवता, बड़े-बड़े समृद्धिशाली राजा, साधारण मनुष्य तथा मुनि भी शिवलिंगकी पूजा करते हैं। उनके द्वारा स्थापित किये हुए शिवलिंग उन्हींके नामसे अंकित एवं प्रसिद्ध हैं, क्या ये सब-के-सब मूर्ख ही थे और अकेले आप सत्यव्रतजी ही बुद्धिमानीका ठेका लिये बैठे हैं? भगवान् विष्णु (राम)-ने युद्धमें रावणको मारकर समुद्रके किनारे रामेश्वरलिंगकी स्थापना की है, क्या वह झूठा ही है? प्राचीन कालमें इन्द्रने वृत्रासुरका वध करके महेन्द्रपर्वतपर शिवलिंगको स्थापित किया, जिससे वृत्रवधके पापसे मुक्त होकर इन्द्र आज भी स्वर्गलोकमें आनन्द भोगते हैं! चन्द्रमाने पश्चिम समुद्रके तटपर प्रभासक्षेत्रमें भगवान् सोमनाथकी स्थापना करके आरोग्यलाभ किया था। यमराज और कुबेरने काशीमें, गरुड़ और कश्यपने सह्यपर्वतपर तथा वायु और वरुणने नैमिषारण्यक्षेत्रमें शिवलिंगको स्थापित किया है, जिससे वे सदा आनन्दमग्न रहते हैं। इसी स्तम्भतीर्थमें भगवान् स्कन्दने कुमारेश्वर-लिंगकी स्थापना की है, क्या वह समस्त पापोंका नाशक नहीं है? इसी प्रकार अन्य देवताओं, राजाओं और मुनियोंने जो-जो शिवलिंग स्थापित किये हैं, उनकी गणना करनेमें मैं असमर्थ हूँ। भूलोकवासी, स्वर्गलोकवासी तथा पातालनिवासी भी शिवलिंगके पूजनसे तृप्त होते हैं। आप जो यह कहते हैं कि देवता नहीं हैं और यदि हैं तो कहीं भी दिखायी क्यों नहीं देते? आपके इस प्रश्नसे मुझे बड़ा आश्चर्य हो रहा है। जैसे दरिद्रलोग द्वार-द्वार जाकर कुलथी माँगते हैं, उसी प्रकार क्या देवता भी आपके पास आकर याचना करें? भैया! आप बड़े बुद्धिमान् हैं, आप जो चाहते हैं उसकी सिद्धि तो आपके गुरु ही कर सकते हैं। यदि आपके मतमें सब पदार्थ स्वभावसे ही सिद्ध होते हैं, तो बताइये, कर्ताके बिना भोजन क्यों नहीं तैयार हो जाता? इसलिये जो भी निर्माण-कार्य है, वह अवश्य किसी-न-किसी कर्ताका ही है। जिस पदार्थमें जितनी निर्माणशक्ति विधाताने भर दी है, वह वैसा ही है। और आपने जो यह कहा है कि ये पशु आदि प्राणी ही सुखी तथा धन्य हैं, यह बात आपके सिवा और किसीने न तो कही है और न सुनी ही है। तमोगुणी और अनेक इन्द्रियोंसे रहित जो पशु-पक्षी आदि प्राणी हैं तथा उनके जो कष्ट हैं, वे भी यदि स्पृहणीय और धन्य हैं तो सम्पूर्ण इन्द्रियोंसे युक्त मनुष्य श्रेष्ठ और धन्य क्यों नहीं? मैं तो समझता हूँ कि आपका जो यह अद्भुत सत्यव्रत है, इसे आपने नरक जानेके लिये ही संग्रह किया है। आपने पहले ही जो आडम्बरपूर्ण भूमिका बाँधकर अपने ज्ञानका परिचय देना आरम्भ किया है, उसीमें आपके इन वचनोंकी सारहीनता व्यक्त हो गयी है। क्योंकि मायावी लोग जब बोलने लगते हैं, तब उनकी बातें आडम्बरसे आच्छादित होती हैं। आपने प्रतिज्ञा तो की थी कुछ और कहनेके लिये, परंतु कह डाला कुछ और ही। इसमें आपका कोई दोष नहीं है, सब दोष मेरा ही है, जो मैं आपकी बात सुनता हूँ। नास्तिक, सर्प और विष इनका तो यह गुण ही है कि ये दूसरेको मोहित करते हैं। प्रतिदिन साधुपुरुषोंका संग करना धर्मका कारण है। इसलिये विद्वान्,

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

वृद्ध, शुद्ध भाववाले तपस्वी तथा शान्तिपरायण संत-महात्माओंके साथ सम्पर्क स्थापित करना चाहिये। नीच, अज्ञानी तथा आत्मज्ञानसे रहित पुरुषोंका संग नहीं करना चाहिये। जिनके कुल, विद्या और कर्म तीनों शुद्ध हों और जिन्हें शास्त्रका ज्ञान हो, ऐसे पुरुषोंका विशेषरूपसे सेवन करना चाहिये। दुष्ट पुरुषोंके दर्शन, स्पर्श, वार्तालाप, एक आसनपर बैठने तथा एक साथ भोजन करनेसे धार्मिक आचार नष्ट होते हैं और मनुष्योंको सिद्धि नहीं प्राप्त होती। नीचोंके संगसे पुरुषोंकी बुद्धि नष्ट होती है, मध्यमश्रेणीके लोगोंके साथ उठने-बैठनेसे बुद्धि मध्यम स्थितिको प्राप्त होती है और श्रेष्ठ पुरुषोंके साथ समागम होनेसे बुद्धि श्रेष्ठ हो जाती है।* इस धर्मका स्मरण करके मैं पुनः आपसे मिलनेकी इच्छा नहीं रखता, क्योंकि आप सदा ब्राह्मणोंकी ही निन्दा करते हैं। वेद प्रमाण हैं, स्मृतियाँ प्रमाण हैं तथा धर्म और अर्थसे युक्त वचन प्रमाण हैं, परंतु जिसकी दृष्टिमें ये तीनों ही प्रमाण नहीं हैं, उसकी बातको कौन प्रमाण मानेगा?

महात्मा नन्दभद्र सत्यव्रतसे ऐसा कहकर उसी समय सहसा घरसे निकल पड़े और भगवान् भट्टादित्यके परम पावन बहूदक तीर्थमें जा पहुँचे।

नन्दभद्र और बालकका संवाद, बालादित्यकी स्थापना और नन्दभद्रकी मुक्ति

नारदजी कहते हैं—तदनन्तर परम बुद्धिमान् नन्दभद्र बहूदक कुण्डके तटपर वर्तमान कपिलेश्वर-लिंगकी पूजा करके प्रणामपूर्वक हाथ जोड़कर भगवान्‌के आगे खड़े हुए। संसारके चरित्रोंसे उनके मनमें कुछ दुःख हो गया था। इसलिये उन्होंने दुःखी होकर यह गाथा गायी— यदि इस संसारकी सृष्टि करनेवाले भगवान् सदाशिवको मैं देख पाऊँ, तो अनेक प्रश्नोंके साथ उनसे तुरंत यह प्रश्न करूँगा कि भगवन्! क्या आपके उत्पन्न किये बिना ही यह अनेक रूपोंमें उपलब्ध होनेवाला निरीह संसार भरता चला जा रहा है? आप चेतन हैं, शुद्ध हैं और राग आदि दोषोंसे रहित हैं, तो भी आपने जो अखिल विश्वकी सृष्टि की है, उसे अपने समान ही चेतन, विशुद्ध एवं राग आदि दोषोंसे रहित क्यों नहीं बनाया? क्यों जड़ बना दिया? आप तो निर्वैर और समदर्शी हैं; फिर आपका बनाया हुआ यह जगत् सुख-दुःख और जन्म-मरण आदिसे क्लेश क्यों पा रहा है? संसारके ऐसे चरित्रसे मैं मोहित हो गया हूँ। अतः अब किसी दूसरे स्थानपर नहीं जाऊँगा, भोजन नहीं करूँगा और पानी भी नहीं पीऊँगा। उपर्युक्त बातोंका चिन्तन करता हुआ मृत्युपर्यन्त यहीं खड़ा रहूँगा। इस प्रकार विचार करते हुए नन्दभद्र वहीं खड़े रहे। तत्पश्चात् उसके चौथे दिन कोई सात वर्षका बालक पीड़ासे पीड़ित होकर बहूदकके सुन्दर तटपर आया। वह बहुत ही दुर्बल तथा गलित कुष्ठका रोगी था। उसे पग-पगपर पीड़ाके मारे मूर्च्छा आ जाती थी। उस बालकने बड़े क्लेशसे अपनेको सँभालकर नन्दभद्रसे कहा—'अहो! आपके तो सभी अंग सुन्दर और स्वस्थ हैं, फिर भी आप दुःखी क्यों हैं?' उसके पूछनेपर नन्दभद्रने अपने दुःखका सब कारण कह सुनाया। वह सब सुनकर बालकने दुःखी होकर कहा—

* बुद्धिश्च हायते पुंसां नीचैस्सह समागमात्। मध्यस्थैमध्यतां याति श्रेष्ठतां याति चोत्तमैः॥
(स्क० पु०, मा० कुमा० ४०। २८)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

'अहो! इस बातसे मुझे बड़ा भयंकर कष्ट हो

रहा है कि विद्वान् पुरुष भी अपने कर्तव्यको नहीं समझ पाते हैं। जिसका शरीर सम्पूर्ण इन्द्रियोंसे युक्त और स्वस्थ है, वह भी व्यर्थ मरनेकी इच्छा रखता है। जहाँ राजा खट्वांगने दो ही घड़ीमें मोक्षका मार्ग प्राप्त कर लिया, उसी भारतवर्षको आयु रहते कौन त्याग सकता है। मैं तो अपनेको ही दृढ़ मानता हूँ; क्योंकि मेरे माता-पिता कोई नहीं हैं, मुझमें चलनेकी भी शक्ति नहीं है, तथापि मैं मरना नहीं चाहता हूँ। धैर्यवान्‌को सभी लाभ प्राप्त होते हैं, यह श्रुतिका वचन सत्य है। आपको तो श्रुतिके इस कथनसे सन्तोष धारण करना ही उचित है; क्योंकि आपका यह शरीर अभी दृढ़ है। यदि मेरा भी शरीर किसी प्रकार नीरोग हो जाय, तो मैं एक-एक क्षणमें वह सत्कर्म करूँ, जिसको एक-एक युगमें भोगा जा सकता है। इन्द्रियाँ जिसके वशमें हों और शरीर जिसका दृढ़ हो, वह भी यदि साधनके सिवा और किसी वस्तुकी इच्छा करे, तो उससे बढ़कर मूर्ख कौन हो सकता है? मूर्ख मनुष्यको ही प्रतिदिन शोकके सहस्रों और हर्षके सैकड़ों स्थान प्राप्त होते हैं, विद्वान् पुरुषको नहीं।* जो ज्ञानके विरुद्ध हों, जिनमें नाना प्रकारके विनाशकारी विघ्न प्राप्त हों तथा जो मूलका ही उच्छेद कर डालनेवाले हों, ऐसे कर्मोंमें आप-जैसे बुद्धिमान् पुरुषोंकी आसक्ति नहीं होती। आठ अंगोंवाली जिस बुद्धिको सम्पूर्ण श्रेयकी सिद्धि करनेवाली बताया गया है, वह वेदों और स्मृतियोंके अनुकूल चलनेवाली निर्मल बुद्धि आपके भीतर मौजूद है। इसलिये आप-जैसे लोग दुर्गम संकटोंमें तथा स्वजनोंकी विपत्तियोंमें भी शारीरिक और मानसिक दुःखोंसे पीड़ित नहीं होते। पण्डितोंकी-सी बुद्धिवाले विवेकी मनुष्य प्राप्त होने योग्य वस्तुकी भी अभिलाषा नहीं करते, नष्ट हुई वस्तुके लिये शोक करना नहीं चाहते तथा आपत्तियोंमें मोहित नहीं होते हैं। सम्पूर्ण जगत् मानसिक और शारीरिक दुःखोंसे पीड़ित है। उन दोनों प्रकारके दुःखोंकी शान्तिका उपाय विस्तारपूर्वक और संक्षेपसे भी सुनिये। रोग, अनिष्ट वस्तुकी प्राप्ति, परिश्रम तथा अभीष्ट वस्तुके वियोग—इन चार कारणोंसे शारीरिक और मानसिक दुःख उत्पन्न होते हैं। अप्रियका संयोग और प्रियका वियोग—यह दो प्रकारका मानसिक महाकष्ट बताया गया है। इस प्रकार यहाँ शारीरिक और मानसिक दोनों प्रकारका दुःख बताया गया। जैसे लोहपिण्डके तप जानेसे उसपर रखा हुआ घड़ेका जल भी गरम हो जाता है, उसी प्रकार मानसिक दुःखसे

* शोकस्थानसहस्राणि हर्षस्थानशतानि च। दिवसे दिवसे मूढमाविशन्ति न पण्डितम्॥

(स्क० पु०, मा० कुमा० ४१। २३)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

शरीरको भी सन्ताप होता है। अतः शीघ्र ही औषध आदिके द्वारा उचित प्रतीकार करनेसे व्याधि अर्थात् शारीरिक दुःखका और सर्वदा परित्याग करनेसे आधि अर्थात् मानसिक दुःखका शमन होता है। इन दो क्रियायोगोंसे व्याधि और आधिकी शान्ति बतायी गयी है। इसलिये जैसे जलसे आगको बुझाया जाता है, उसी प्रकार ज्ञानसे मानसिक दुःखको शान्त करे। मानसिक दुःखके शान्त होनेपर मनुष्यका शारीरिक दुःख भी शान्त हो जाता है। मनके दुःखकी जड़ है स्नेह। स्नेहसे ही प्राणी आसक्त होता है और दुःख पाता है। स्नेहसे दुःख और स्नेहसे ही भय उत्पन्न होते हैं। शोक, हर्ष तथा आयास—सब कुछ स्नेहसे ही होता है। स्नेहसे इन्द्रियराग तथा विषयरागका जन्म हुआ है, ये दोनों ही श्रेयके विरोधी हैं। इनमें पहला अर्थात् इन्द्रियराग भारी माना गया है। इसलिये जो स्नेह या आसक्तिका त्यागी, निर्वैर तथा निष्परिग्रह होता है, वह कभी दुःखी नहीं होता। जो त्यागी नहीं है, वह इस संसारमें बार-बार जन्म-मृत्युको प्राप्त होता है। इस कारण मित्रोंसे तथा धनसंग्रहसे होनेवाले स्नेहमें कभी लिप्त न हो और अपने शरीरके प्रति होनेवाले स्नेहका ज्ञानद्वारा निवारण करे। ज्ञानी, सिद्ध, शास्त्रज्ञ और जितात्मा—इनमें स्नेहजनित आसक्ति नहीं होती। ठीक वैसे ही, जैसे कमलके पत्तोंमें पानी नहीं सटता। रागके वशीभूत हुए पुरुषको काम अपनी ओर खींचता है, फिर उसके मनमें भोगकी इच्छा उत्पन्न होती है, उस इच्छासे ही तृष्णा या लोभकी उत्पत्ति होती है। तृष्णा सबसे बढ़कर पापिष्ठ और सदा उद्वेगमें डालनेवाली मानी गयी है। इसके द्वारा बहुत-से अधर्म होते हैं। तृष्णाका रूप भी बड़ा भयंकर है। वह सबके मनको बाँधनेवाली है। खोटी बुद्धिवाले पुरुषोंके द्वारा बड़ी कठिनाईसे जिसका त्याग हो पाता है, जो इस शरीरके वृद्ध होनेपर भी स्वयं बूढ़ी नहीं होती तथा जो प्राणान्तकारी रोगके समान है, उस तृष्णाका त्याग करनेवालेको ही सुख मिलता है।* तृष्णाका आदि और अन्त नहीं है। जैसे लोहेकी मैल लोहेका नाश करती है, उसी प्रकार तृष्णा मनुष्योंके शरीरके भीतर रहकर उनका विनाश करती है।

नन्दभद्र बोले—शुद्ध बुद्धिवाले बालक! यह क्या बात है कि पापी मनुष्य भी निरापद होकर स्त्री और धनके साथ आनन्दमग्न देखे जाते हैं?

बालकने कहा—यह तो बहुत स्पष्ट है। जिन्होंने पूर्वजन्मोंमें तामसिक भावसे दान दिया है, उन्होंने इस जन्ममें उसी दानका फल प्राप्त किया है। परंतु तामसभावसे जो कर्म किया गया है, उसके प्रभावसे उन लोगोंका धर्ममें कभी अनुराग नहीं होता। ऐसे मनुष्य पुण्य-फलको भोगकर अपने तामसिक भावके कारण नरकमें ही जाते हैं, इसमें सन्देह नहीं है। इस संशयके विषयमें मार्कण्डेयजीने पूर्वकालमें जो बात कही है, वह इस प्रकार सुनी जाती है—एक मनुष्य ऐसा है, जिसके लिये इस लोकमें तो सुखका भोग सुलभ है, परंतु परलोकमें नहीं। दूसरा ऐसा है, जिसके लिये परलोकमें सुखका भोग सुलभ है, किंतु इस लोकमें नहीं। तीसरा ऐसा है, जिसके लिये इस लोकमें और परलोकमें भी सुखभोग प्राप्त होता है और एक चौथे प्रकारका मनुष्य ऐसा है, जिसके लिये न तो इस लोकमें सुख है और न परलोकमें ही। जिसका पूर्वजन्ममें किया हुआ पुण्य शेष है, उसीको वह भोगता है

---

*तृष्णा हि सर्वपापिष्ठा नित्योद्वेगकरी मता। अधर्मबहुला चैव घोररूपानुबन्धिनी॥
या दुस्त्यजा दुर्मतिभिर्या न जीर्यति जीर्यतः। यासौ प्राणान्तको रोगस्तां तृष्णां त्यजतस्सुखम्॥
(स्क० पु०, मा० कुमा० ४१। ४०-४१)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

और नूतन पुण्यका उपार्जन नहीं करता, उस मन्दबुद्धि एवं भाग्यहीन मानवको प्राप्त हुआ वह सुखभोग केवल इसी लोकके लिये बताया गया है। जिसका पूर्वजन्मोपार्जित पुण्य नहीं है, किंतु वह तपस्या करके नूतन पुण्यका उपार्जन करता है, उस बुद्धिमान्‌को परलोकमें सदा ही सुखका भोग प्राप्त होता है। जिसका पहलेका किया हुआ पुण्य भी वर्तमान है और तपस्यासे नूतन पुण्यका भी उपार्जन हो रहा है, ऐसा बुद्धिमान् कोई-ही-कोई होता है, जिसे इहलोकमें और परलोकमें भी सुख-भोग प्राप्त होता है। जिसका पहलेका भी पुण्य नहीं है और इस लोकमें भी जो पुण्यका उपार्जन नहीं करता, ऐसे मनुष्यको न इहलोकमें सुख मिलता है न परलोकमें ही। उस नराधमको धिक्कार है। हे महाभाग! ऐसा जानकर सब कार्योंका त्याग करके भगवान् सदाशिवका भजन और वर्णधर्मका पालन कीजिये। इससे बढ़कर दूसरा कोई कर्म नहीं है। जो अपने मनोरथोंके नष्ट होने तथा प्राप्त होनेपर भी शोक करता है, अथवा जो भोगोंसे तृप्त नहीं होता, वह निश्चय ही दूसरे जन्ममें बन्धनमें पड़ता है।

नन्दभद्र बोले—हे बालक! आप बालरूपमें उपस्थित होनेपर भी वास्तवमें बालक नहीं हैं, बड़े बुद्धिमान् हैं, मैं आपको नमस्कार करता हूँ। मैं बड़े विस्मयमें पड़ा हूँ और आप कौन हैं, यह यथार्थरूपसे जानना चाहता हूँ। मैंने बहुत-से वृद्ध पुरुषोंका दर्शन और सत्संग लाभ किया है, किंतु उन सबकी ऐसी बुद्धि न तो मैंने देखी है और न सुनी ही है। आपने तो मेरे जन्मभरके सन्देह खेल-खेलमें ही नष्ट कर दिये। अतः आप कोई साधारण बालक नहीं हैं, यह मेरा निश्चित मत है।

बालकने कहा—यह बड़ी लम्बी कथा है। एकाग्रचित्त होकर सुनिये। इससे पहले आठवें जन्ममें मैं विदिशा नगरके भीतर ब्राह्मणकुलमें उत्पन्न हुआ था। मेरा नाम धर्मजालिक था। मैं वेद-वेदान्तोंका तत्त्वज्ञ, धर्मशास्त्रोंके अर्थ जाननेवाले विद्वानोंमें श्रेष्ठ तथा साक्षात् बृहस्पतिके समान धर्मशास्त्रोंका व्याख्याता था। लोगोंके लिये तो मैं नाना प्रकारके धर्मोंका विस्तारपूर्वक वर्णन करता था, परंतु स्वयं अत्यन्त दुराचारी तथा पापियोंमें भी सबसे बड़ा पापिराज था। मांस खाता, मदिरा पीता और परायी स्त्रियोंके साथ सदा रमण किया करता था। झूठा, दम्भी, पाखण्डी, दुष्ट, लोभी, दुरात्मा और शठ—इन सभी विशेषणोंसे मैं विभूषित था। कभी और कहीं भी कोई सत्कर्म नहीं करता था। जाली पुरुषोंकी भाँति लोगोंको केवल जाल सिखाता था। इसलिये मेरे यथार्थ स्वरूपको जाननेवाले लोग मुझे धर्मजालिक कहते थे। इस प्रकार मैंने बहुत-से पातक बटोरे। फिर अन्तकाल आनेपर मृत्युके पश्चात् मैं यमलोकमें गया और वहाँ मुझे कूटशाल्मलि नामक नरकमें गिराया गया। पुनः यमदूत मुझे अपने कुकृत्योंका स्मरण दिलाते हुए इधर-उधर घसीटने लगे। मैं कभी तलवारोंसे काटा जाता और कभी कुत्तोंसे नुचवाया जाता था। इस दशामें वहाँ प्रतिक्षण जीता और मरता रहा अर्थात् बार-बार मूर्च्छित होता था। उस समय अनेक प्रकारसे अपनी निन्दा करता हुआ मैं बहुत वर्षोंतक पड़ा रहा। धर्मराजके दूतोंद्वारा पीड़ित होनेपर नरकमें जैसी बुद्धि होती है, वही यदि यहाँ दो घड़ी भी रह जाय, तो मनुष्य धन्य-धन्य हो जाय। तदनन्तर अत्यन्त यातना भोगनेके पश्चात् यमदूतोंने मुझे किसी प्रकार छोड़ा। फिर स्थावर-योनिमें जाकर अनेक प्रकारके क्लेशोंका उपभोग करके मैं सरस्वती नदीके सुन्दर तटपर एक कीड़ा हुआ। कीड़ेकी योनिमें रहते समय एक दिन मैं मार्गमें सुखपूर्वक सो रहा था। इतनेहीमें वहाँ अकस्मात् आते हुए रथकी घरघराहट मुझे बड़े जोरसे सुनायी पड़ी। उस आवाजको सुनकर मैं डर गया और सहसा मार्ग छोड़कर बड़े वेगसे दूर भागने लगा। उसी बीचमें इच्छानुसार घूमते

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

हुए भगवान् वेदव्यास उधर आ निकले। मुनिवर व्यासने वहाँ उस अवस्थामें पड़े हुए मुझे कृपापूर्वक देखा। ब्राह्मणजन्ममें मैंने सब लोगोंको जो नाना प्रकारके धर्मोंका उपदेश किया था, उसीके प्रभावसे उस कीट जन्ममें मुझे व्यासजीका संग प्राप्त हुआ। वे सब जीवोंकी भाषा जानते हैं, उन्होंने कीड़ेकी भाषामें मुझसे कहा—'ओ कीट! क्यों इस प्रकार भागा जा रहा है? किसलिये मृत्युसे इतना डरता है? अहो!

मनुष्यको यदि मृत्युसे भय हो तो उचित हो सकता है, तू तो कीट है। तुझे इस शरीरके छूटनेका इतना भय क्यों है?'

व्यासजीके ऐसा कहनेपर पूर्वपुण्यके प्रभावसे मेरी भी बुद्धि जाग्रत् हुई। तब मैंने उन्हें इस प्रकार उत्तर दिया—'विश्ववन्द्य मुनीश्वर! मुझे इस मृत्युसे किसी प्रकारका भय नहीं, मेरे मनमें यही भय है कि मैं इससे भी नीच योनिमें न चला जाऊँ। इस कुत्सित कीटयोनिसे भी अधम दूसरी करोड़ों योनियाँ हैं। उनमें गर्भ आदि धारणके क्लेशसे मुझे डर लगता है और किसी कारणसे मैं भयभीत नहीं हूँ।'

व्यासजी बोले—कीट! तू भय न कर, जबतक तुझे ब्राह्मणशरीरमें न पहुँचा दूँगा, तबतक सभी योनियोंसे शीघ्र ही छुटकारा दिलाता रहूँगा।

व्यासजीके ऐसा कहनेपर उन जगद्गुरुको प्रणाम करके मैं पुनः मार्गमें लौट आया और रथके पहियेसे दबकर मृत्युको प्राप्त हुआ। तत्पश्चात् कौवे और सियार आदि योनियोंमें मैं जब-जब उत्पन्न हुआ, तब-तब व्यासजीने आकर मुझे पूर्वजन्मका स्मरण करा दिया। तदनन्तर बहुत-सी योनियोंमें भ्रमण करके अत्यन्त क्लेश भोगता हुआ मैं अब अन्तमें ब्राह्मणके घरमें आकर इस मानव-योनिमें उत्पन्न हुआ हूँ। इसमें जन्म लेकर भी अत्यन्त दुःखी हूँ। जन्मसे ही पिता-माताने मुझे अकेला छोड़ दिया। मेरे शरीरमें गलित कोढ़का रोग हो गया है। इसके कारण मैं बड़ी भारी पीड़ाका अनुभव करता हूँ। जब मैं पाँच वर्षका हुआ, तभी व्यासजीने आकर मेरे कानमें सारस्वत-मन्त्रका उपदेश कर दिया। उसके प्रभावसे मुझे बिना पढ़े ही वेदों, शास्त्रों तथा सम्पूर्ण धर्मोंका स्मरण हो आया। फिर व्यासजीने ही मुझे यह आज्ञा दी कि तुम भगवान् कार्तिकेयके क्षेत्रमें जाओ और वहाँ महामति नन्दभद्रको आश्वासन दो। इसके बाद बहूदक तीर्थमें प्राणत्याग करके महीसागरसंगमके जलमें अपनी हड्डियाँ डलवा दो। उसके बाद तुम भावी जन्ममें 'मैत्रेय' नामक श्रेष्ठ मुनि होओगे। मुनि होनेके पश्चात् तुम्हें मोक्ष प्राप्त होगा।

स्वयं व्यासजीने इस प्रकार मुझसे कहा है, इसलिये मैं भारवाहकोंकी सहायतासे अत्यन्त क्लेश उठाकर इस तीर्थमें आया हूँ। इस प्रकार आपसे मैंने अपना सब चरित्र कह सुनाया। नन्दभद्रजी! पाप इस प्रकार कष्टदायक होता है, अतः आप सदा ही उसका त्याग करें।

नन्दभद्र बोले—अहो! आपका यह चरित्र

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

बड़ा अद्भुत है। इससे मेरे हृदयमें पुनः धर्मके लिये सौगुनी दृढ़ता आ गयी है। परंतु आपने जो मुझे धर्मका उपदेश किया है, उसके बदलेमें मैं आपकी कोई सेवा करना चाहता हूँ। अतः आप धर्मका स्मरण कीजिये और मुझे कोई निश्चित आदेश दीजिये।

बालकने कहा—नन्दभद्रजी! मैं इस तीर्थमें एक सप्ताहतक निराहार रहकर भगवान् सूर्यके मन्त्रोंका जप करूँगा। तत्पश्चात् शरीर त्याग दूँगा। उसके बाद आप बर्करिका तीर्थमें ले जाकर मेरे शरीरका दाह कर दीजियेगा और मेरी सब हड्डियाँ इसी तीर्थमें डाल दीजियेगा। इस बहूदक तीर्थमें जहाँ मैं प्राणत्याग करूँगा, वहाँ मेरे नामसे भगवान् सूर्यकी स्थापना भी कर दीजियेगा। भगवान् सविता सर्वश्रेष्ठ देवता हैं, द्विजोंके तो वे सर्वस्व ही हैं। सम्पूर्ण वेदों और वेदांगोंने भगवान् सूर्यकी महिमाका गान किया है। आप भी सदा इन सूर्यभगवान्का भजन और इस बहूदक कुण्डका सेवन करते रहें। व्यासजीके बताये अनुसार इस तीर्थका संक्षिप्त माहात्म्य भी मैं आपको बता रहा हूँ। जो मनुष्य माघमासकी सप्तमी तिथिको बहूदक तीर्थमें स्नान करके पितरोंको पिण्डदान देता है, उनके वे पितर अक्षय तृप्तिको प्राप्त होते हैं। बहूदक तीर्थके किनारे पितरोंके उद्देश्यसे जो कुछ भी दिया जाता है, वह अक्षय होकर उनके समीप पहुँच जाता है। बहूदक कुण्डमें किया हुआ स्नान, दान, जप, होम, स्वाध्याय और पितृ-तर्पण सब महान् फल देनेवाले होते हैं।

नारदजी कहते हैं—यों कहकर वह बालक मौन हो गया और बहूदक कुण्डमें स्नान करके पवित्र हो तटवर्ती वृक्षके नीचे बैठकर स्वयं सूर्य-मन्त्रोंका जप करने लगा। सातवीं रात्रि व्यतीत होनेपर बालकने प्राण त्याग दिये। फिर नन्दभद्रने बालकके कथनानुसार ब्राह्मणोंद्वारा उसके शवका विधिपूर्वक दाहसंस्कार करवाया। सूर्यमन्त्रके जपमें लगे हुए उस बालकने जहाँ प्राणत्याग किये थे, वहाँ नन्दभद्रने बालादित्यके नामसे विख्यात भगवान् सूर्यकी प्रतिमा स्थापित की। जो बहूदकमें स्नान करके बालादित्यका पूजन करता है, उसपर भगवान् सूर्य प्रसन्न होते हैं और वह मोक्षका उपाय प्राप्त कर लेता है।

तदनन्तर नन्दभद्रने भी दूसरी स्त्रीसे विवाह करके उसके गर्भसे अपने ही समान अनेक पुत्र उत्पन्न किये। वे सदा भगवान् शिव तथा सूर्यकी उपासनामें लगे रहे। अन्तमें उन्होंने भगवान् शिवका सारूप्य प्राप्त किया, जिससे फिर इस संसारमें लौटना नहीं होता। इस प्रकार यह महाकुण्ड बहूदकके नामसे विख्यात हुआ है। जो श्रद्धापूर्वक इस तीर्थके माहात्म्यको सुनता है, उसपर भगवान् सूर्य प्रसन्न होते हैं तथा वह अपने हृदयमें मोक्षका चिन्तन करते हुए भवसागरसे मुक्त हो जाता है।

महीसागरसंगमतीर्थकी रक्षा करनेवाली देवियोंका परिचय

नारदजी कहते हैं—अर्जुन! तदनन्तर मैंने इस तीर्थकी रक्षाके लिये देवियोंकी आराधना करके जिस प्रकार उन्हें यहाँ स्थापित किया वह प्रसंग सुनो। जैसे सबके आत्मा परमेश्वर सब भूतोंमें व्यापक हैं, उसी प्रकार उनकी शक्ति परमेश्वरी प्रकृति भी नित्य एवं व्यापक है। शक्तिके प्रसादसे मनुष्य सुख और समस्त सम्पदाओंको प्राप्त करता है। अर्जुन! भगवती ईश्वरी सम्पूर्ण भूतोंमें इस प्रकार स्थित है—बुद्धि, ह्री, पुष्टि, लज्जा, तुष्टि, शान्ति, क्षमा, स्पृहा, श्रद्धा, चेतना, मन्त्रशक्ति, उत्साहशक्ति तथा प्रभुशक्ति—इन सब रूपोंमें परमेश्वरी शक्ति ही सर्वव्यापक है। यही अविद्यारूपसे बन्धनका और विद्यारूपसे मोक्षका कारण होती है। सदा इसीकी

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

आराधना करके इन्द्र आदि देवताओंने ऐश्वर्य प्राप्त किया है। भगवती शक्ति ही परा प्रकृति है। वही अनेक भेदों (भिन्न-भिन्न अनेक रूपों)-में स्थित है। इसलिये मैंने जिन महादेवियोंको जहाँ स्थापित किया है, वह सुनो। चारों दिशाओंमें चार महाशक्तियोंकी स्थापना की गयी है। पूर्व दिशामें स्कन्दस्वामीके द्वारा सिद्धाम्बिकाकी स्थापना हुई है, उन्हींको सृष्टिकी आदिमें प्रकट हुई मूलप्रकृति कहते हैं। सिद्धोंने उनकी आराधना की है, इसलिये उनका नाम सिद्धाम्बिका है। दक्षिण दिशामें तारादेवी विराजमान हैं, उनकी स्थापना मैंने ही की है। ये वही तारा हैं जिन्होंने देवताओंको तारनेके लिये भगवान् कच्छपका आश्रय लिया है। उन्हींके आवेशसे युक्त होनेके कारण जगद्गुरु भगवान् कूर्मने देवताओंका उद्धार किया। ये गिरिराजनन्दिनी तारा बड़ी आराधनाके बाद मेरे द्वारा यहाँ लायी गयी हैं। ये करोड़ों देवियोंसे घिरी हुई बड़ी उग्र देवी हैं। मेरे प्रति आदरका भाव होनेके कारण मेरी प्रार्थनासे दक्षिण दिशामें आकर रहती हैं। इसी प्रकार पश्चिम दिशामें शुभस्वरूपा भास्वरादेवी स्थित हैं, जिनसे व्याप्त होकर सूर्य आदि मण्डल प्रकाशित होते हैं। जिनकी शक्तिसे सम्पूर्ण नक्षत्रमण्डल सब ओर आते-जाते हैं, वे भास्वरादेवी ही हैं। वे बड़ी प्रबल शक्ति हैं। मैं आराधना करके ब्रह्माण्डकटाहसे उन्हें यहाँ लाया हूँ। वे कोटि देवियोंसे आवृत होकर यहाँ रहती हैं और सदा पश्चिम दिशाकी रक्षा करती हैं। उत्तर दिशामें योगनन्दिनीदेवीका निवास है, जो पूर्वकालमें भगवती पराप्रकृतिके शरीरसे प्रकट हुईं तथा जिनकी निर्मल दृष्टिसे देखे जानेपर चारों सनकादिकोंने योग प्राप्त कर लिया। इसीलिये सनकादि महात्माओंने उन्हें 'योगेश्वरी' कहा है। उन्हें भी मैं आराधना करके अण्डकटाहसे ही लाया हूँ। वे योगिनियोंसे घिरी हुई यहाँ उत्तर दिशामें निवास करती हैं। इस प्रकार ये चार महाशक्तियाँ इस तीर्थमें सदा स्थित रहती हैं।

तदनन्तर मैं नौ दुर्गाओंको भी यहाँ ले आया, उनका परिचय सुनो। त्रिपुरा नामसे प्रसिद्ध एक उच्चकोटिकी देवी हैं, जिनसे आविष्ट होकर जगदीश्वर भगवान् शिवने त्रिपुरासुरको भस्म किया था। इसीलिये भगवान् हरने त्रिपुरा कहकर स्वयं देवी दुर्गाका स्तवन किया। अतः वे सम्पूर्ण जगत्के लिये पूजनीय हैं, मैं उनकी आराधना करके उन्हें अमरेश पर्वतसे यहाँ लाया हूँ। भक्तोंकी मनोवांछित कामनाएँ पूर्ण करनेवाली वे त्रिपुरादेवी भट्टादित्यके समीप विराजमान हैं। इनके सिवा दूसरी कोलम्बा नामकी देवी हैं, जो सनातन महाशक्ति हैं। उन्हींके आवेशसे युक्त होकर वाराहरूपधारी भगवान् विष्णुने इस पृथ्वीको जलसे ऊपर उठाया था। इसीलिये भगवान् विष्णुने कोलम्बा नामसे उनकी स्तुति और पूजा की है। अर्जुन! मैंने शक्तियोगसे कोलम्बादेवीको प्रसन्न किया है। वे वाराह गिरिपर निवास करती हैं, वहींसे मैं उनको यहाँ लाया हूँ। तीसरी दुर्गा भी इस पूर्व दिशामें ही स्थित हैं, उनका नाम कपालेशा है। मैंने और कार्तिकेयजीने उनकी स्थापना की है। उनके प्रभावका वर्णन पहले किया जा चुका है। वे नरश्रेष्ठ धन्य हैं जो कपालेश्वरकी पूजा करके उन कपालेशा देवीका नित्य दर्शन करते हैं। वे सम्पूर्ण विश्वकी शक्ति हैं, इस प्रकार तीन दुर्गाएँ पूर्व दिशामें विराज रही हैं। अब पश्चिम दिशामें जो परम उत्तम तीन दुर्गाएँ सुशोभित हैं, उनका वर्णन करूँगा। पश्चिममें जो सुवर्णाक्षीदेवी हैं, वे समस्त ब्रह्माण्डका भलीभाँति पालन करनेवाली हैं। मैंने बड़ी आराधना करके इस तीर्थमें उन्हें विराजमान किया है। जो उन्हें प्रणाम तथा भक्तिपूर्वक उनका पूजन करते हैं, वे तैंतीस करोड़ देवियोंके समादरके पात्र होते हैं। पश्चिममें दूसरी महादुर्गा चर्चिता भी निवास करती

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

हैं। उन्हें मैंने बड़ी भक्तिके साथ प्रार्थना करके रसातलसे यहाँ बुलाया है। उसी दिशामें त्रैलोक्य-विजया नामसे प्रसिद्ध तीसरी महादुर्गाका भी निवास है, जिनकी आराधना करके रोहिणीवल्लभ चन्द्रमाने त्रिभुवनमें विजय प्राप्त की थी। उनको मैं सोमलोकसे लाया हूँ। वे पूजित होनेपर सदा विजय देनेवाली हैं।

अब उत्तर दिशामें निवास करनेवाली देवियोंका परिचय सुनो। उत्तरमें भी एकवीरा आदि तीन देवियाँ स्थित हैं। एकवीरा देवी पूजन तथा आराधन करनेपर मनुष्योंको उनकी समस्त अभीष्ट वस्तुएँ प्रदान करती हैं। अर्जुन! उन्हें मैं बड़ी आराधनाके बाद ब्रह्मलोकसे लाया हूँ। उनका नामकीर्तन भी दुष्टोंका विनाश करनेवाला है। दूसरी हरसिद्धि नामवाली दुर्गादेवी हैं, जो बड़ी बलवती हैं। उन्हें मैं शाकोत्तर नामक स्थानसे आराधना करके लाया हूँ। जो लोग हरसिद्धिकी उपासनामें तत्पर रहनेवाले हैं, उनके पास डाकिनी आदि नहीं जातीं। तीसरी दुर्गा चण्डिका देवी ईशान कोणमें स्थित हैं। वे ही नवीं दुर्गा हैं। उन्होंने पार्वतीके शरीरसे निकलकर रोषपूर्वक चण्ड-मुण्ड नामक महान् असुरोंका संहार किया था। जो थोड़ी या बहुत सामग्रीके द्वारा कात्यायनी देवीका पूजन करते हैं, उन्हें करोड़ों देवियोंसे घिरी हुई वे दुर्गादेवी ऐश्वर्य प्रदान करती हैं। जो मनुष्य देवीको प्रणाम करता है, वह सब प्रकारके अरिष्टोंसे छुटकारा पा जाता है।

उभय सोमनाथके प्रादुर्भावकी कथा और कमठके द्वारा गर्भवास तथा मानव-शरीरकी उत्पत्तिका वर्णन

नारदजी कहते हैं—अब मैं सोमनाथकी महिमाका स्पष्ट रूपसे वर्णन करूँगा। जो इसका श्रवण और कीर्तन करता है, वह सब पापोंसे छुटकारा पा जाता है। अर्जुन! पहलेकी बात है। त्रेतायुगमें गौड़ देशके भीतर दो महातेजस्वी ब्राह्मण थे। एकका नाम था 'ऊर्जयन्त' और दूसरेका 'प्रालेय'। उन दोनोंने एक दिन पुराणमें एक श्लोक देखा। वे शास्त्रोंके ज्ञाता थे। वह श्लोक देखकर उनके शरीरमें रोमांच हो आया। श्लोक इस प्रकार था—

प्रभासाद्यानि तीर्थानि पुलस्त्यायाह पद्मभूः।
न यैस्तत्राप्लुतञ्चैव न तैस्तीर्थमुपासितम्॥

'ब्रह्माजीने पुलस्त्य मुनिसे प्रभास आदि तीर्थोंका वर्णन किया है। जिन्होंने इनमें डुबकी नहीं लगायी, उन्होंने तीर्थोंका सेवन नहीं किया।'

यह श्लोक पढ़कर वे बार-बार इसे दुहराने लगे। तदनन्तर वे दोनों ब्राह्मण प्रभासस्नानके लिये घरसे निकले और वनों एवं नदियोंको धीरे-धीरे पार करते हुए महर्षियोंसे सेवित कल्याणमयी नर्मदा नदीके पारतक चले गये। मार्गमें गुप्तक्षेत्र महीसागरसंगमकी महिमा सुनकर वहाँ स्नान करके पुनः वे प्रभासके ही पथपर चल दिये। वह मार्ग सर्वथा जनशून्य था। वे दोनों यात्री भूख और प्याससे बहुत पीड़ित हुए और सिद्धलिंगके समीप पहुँचकर मूर्छित हो गये। फिर दो ही घड़ीके बाद कुछ चेतमें आनेपर प्रालेयने ऊर्जयन्तसे धैर्यपूर्वक कहा—'सखे! मुझे यहाँ कुछ सुनायी पड़ा है। वह बतलाता हूँ, सुनो। 'तीर्थयात्रासे थककर मनुष्य ज्यों-ज्यों शिथिल एवं कान्तिहीन होता जाता है, त्यों-त्यों उसके किये हुए दानसे भगवान् सोमनाथ प्रसन्न होते हैं।' यह बात एक-दूसरेसे कह-सुनकर मूर्छा दूर होनेके बाद ऊर्जयन्त और प्रालेय लोटते हुए प्रभासक्षेत्रकी ओर चले। उनकी यह निष्ठा देखकर भगवान् शंकरने दोनोंको प्रत्यक्ष दर्शन दिया और उन दोनोंके शरीरको अपनी कृपादृष्टिसे देखकर सुदृढ़ एवं सबल बना दिया।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

तब ये दोनों प्रभासतीर्थमें शिवजीके स्थानको चले गये। वे ही ये दो सोमनाथ सिद्धेश्वरके समीप विद्यमान हैं। पश्चिममें ऊर्जयन्त और पूर्वमें प्रालेयेश्वर हैं। जो सोमकुण्डके जलमें तथा महीसागरसंगममें धीरेसे स्नान करके युगल सोमनाथका दर्शन करता है, वह जन्मभरके पापोंसे छूट जाता है। ब्रह्माजीने यहाँ हाटकेश्वर नामक शिवलिंगकी स्थापना करके एकाग्रचित्त हो उसकी स्तुति की थी। अर्जुन! उस स्तुतिको सुनो। 'भगवान् रुद्र! सूर्यके समान अमित तेजस्वी आपको नमस्कार है। आप सबकी उत्पत्ति करनेवाले भव, दुःखोंको दूर भगानेवाले रुद्र तथा जलमय रस हैं; आपको नमस्कार है। आप संहारकारी शर्व हैं। पृथ्वी आपका रूप है। आप नित्य सुन्दर गन्ध धारण करनेवाले हैं। आपको नमस्कार है। आप सबके ईश्वर तथा वायुरूप हैं। आपने ही कामदेवका नाश किया है। आपको नमस्कार है। आप पशुओं (जीवों) के अधिपति, पालक तथा अत्यन्त तेजस्वी हैं। आपका स्वरूप भयंकर है। यह आकाश आपका ही एक रूप है। आप शब्दमात्र परमेश्वरको नमस्कार है। आप महादेव हैं। सोम (चन्द्रमारूप अथवा उमासहित) हैं तथा अमृतस्वरूप हैं। आपको नमस्कार है। आप उग्ररूप, यजमानमूर्ति तथा कर्मयोगी हैं। आपको नमस्कार है।' इस प्रकार दिव्य नामोंके साथ उच्चारित इस हाटकेश्वर स्तोत्रको जिसका निर्माण साक्षात् ब्रह्माजीने किया है, जो पढ़ता और सुनता है, वह भगवान् शिवके सायुज्यको प्राप्त होता है। इसमें सन्देह नहीं है। महीसागरसंगममें इस प्रकारके बहुत-से पवित्र तीर्थ हैं, जिनका मैंने संक्षेपसे वर्णन किया है।

अर्जुन बोले—मुने! आपके द्वारा स्थापित महीसागर स्थानमें जो-जो प्रधान तीर्थ हैं, उनका मुझसे वर्णन कीजिये।

नारदजीने कहा—अर्जुन! महीसागरमें जो-जो मुख्य तीर्थ हैं, उन्हें बतलाता हूँ। उस तीर्थमें जयादित्य नामसे प्रसिद्ध भगवान् सूर्य विराजमान हैं। उनके प्रादुर्भावकी कथा सुनो। मैं इस महीसागर-संगमस्थानकी स्थापना करके कुछ कालके अनन्तर भगवान् सूर्यका दर्शन करनेके लिये उनके लोकमें गया। वहाँ प्रणाम करके आसनपर बैठ जानेके बाद सूर्यदेवने अर्घ्यसे मेरा पूजन किया और हँसकर मधुर वाणीमें कहा—'विप्रवर! आप कहाँसे आये हैं और कहाँ जायँगे।' मैंने उत्तर दिया—'प्रभो! मैं भारतवर्षके महीनगरसे आपका दर्शन करनेके लिये आया हूँ।'

सूर्यदेव बोले—आपने जो वहाँ स्थान स्थापित किया है, उसमें जो ब्राह्मण निवास करते हैं, उनके गुण मुझसे बतलाइये। वे ब्राह्मण कैसे गुणोंसे युक्त हैं?

भगवान् सूर्यके ऐसा पूछनेपर मैंने फिर उत्तर दिया—भगवन्! यदि मैं उनकी प्रशंसा करता हूँ, तो मुझपर यह दोष लगाया जा सकता है कि यह अपने आत्मीय जनोंकी स्तुति करता है, और निन्दाके तो वे पात्र ही नहीं हैं; फिर निन्दा कैसे कर सकता हूँ? दोनों ही ओर संकट है। अथवा उन महात्मा ब्राह्मणोंकी महिमा तो अपार है। यदि मैंने उसे बहुत घटा करके कहा तब तो मुझे महान् दोष ही लगेगा। अतः मेरी यह सम्मति है कि यदि आप मेरे द्वारा पूजित द्विजेन्द्रोंकी महिमा श्रवण करना चाहते हों तो स्वयं वहाँ चलकर उन्हें देखें।

मेरी यह बात सुनकर भगवान् सूर्यको बड़ा विस्मय हुआ। वे बार-बार कहने लगे, मैं स्वयं ही चलकर उनका दर्शन करूँगा। यों कहकर भगवान् भास्करने मुझे तो विदा कर दिया और अपनी योगशक्तिके प्रभावसे आकाशमें तपते हुए भी दूसरे स्वरूपसे समुद्रके तटको चल दिये। उन्होंने महातेजस्वी वृद्ध ब्राह्मणका रूप धारण कर लिया था। त्रिकाल-स्नानसे जैसी पिंगल वर्णकी जटा हो जाती है वैसी पिंगल वर्णकी जटा धारण किये हुए उन महात्माको मेरे ब्राह्मणोंने देखा। फिर तो वे हारीत आदि द्विज अपनी ब्रह्मशालासे उठकर उन

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

ब्राह्मण देवताकी ओर दौड़ पड़े। उस समय उनके नेत्र हर्षसे खिल उठे थे। नये आये हुए उन श्रेष्ठ द्विजको नमस्कार करके वे सब-के-सब प्रसन्नतापूर्वक बोले—'विप्रवर! आज हमारा दिन बड़ा ही पुण्यजनक है, आज यह स्थान परम उत्तम है; क्योंकि आपने स्वयं कृपा करके यहाँ पदार्पण किया है। इसमें सन्देह नहीं कि उत्तम ब्राह्मण कृपा करके ही किसी धन्य गृहस्थको पवित्र करनेके लिये उसके घर अतिथिके रूपमें पधारते हैं। अतः आप इन पैरोंसे चल-फिरकर आज हमारे गृहोंको पवित्र कीजिये। साथ ही दर्शन, भोजन और विश्राम आदिके द्वारा हमारेसहित इस स्थानको भी पावन बनाइये।'

अतिथि बोले—ब्राह्मणो! भोजन दो प्रकारका होता है—एक प्राकृत और दूसरा परम। अतः मैं आपलोगोंका दिया हुआ उत्तम परम भोजन प्राप्त करना चाहता हूँ।

अतिथिकी यह बात सुनकर हारीतने अपने आठ वर्षके बालकसे कहा—'बेटा कमठ! क्या तुम ब्राह्मणके बताये हुए भोजनको जानते हो?'

कमठने कहा—पिताजी! मैं आपको प्रणाम करके वैसे परम भोजनका परिचय दूँगा तथा ब्राह्मणदेवताको वह भोजन देकर तृप्त करूँगा। प्रकृति आदि चौबीस तत्त्वोंके समुदायको जो तृप्त करता है, वही प्राकृत भोजन कहलाता है। वह छः[१] रसों और पाँच[२] भेदोंवाला बताया गया है। उसके भोजन करनेसे शरीररूपी क्षेत्रकी तृप्ति होती है। दूसरा जो परम भोजन कहा गया है, उसकी व्याख्या इस प्रकार है—परम कहते हैं आत्माको, उसका जो भोजन है वही परम भोजन है। अतः नाना प्रकारके धर्मका जो श्रवण है, उसे अन्न कहा गया है। क्षेत्रज्ञ आत्मा उस अन्नका भोक्ता है और दोनों कान उस अन्नको ग्रहण करनेके लिये मुख हैं। पिताजी! वही परम भोजन आज मैं इन ब्राह्मणदेवताको दूँगा। 'विप्रवर! आपकी जो इच्छा हो पूछिये, विद्वान् ब्राह्मणोंकी इस सभामें अपनी शक्तिके अनुसार मैं आपको सन्तुष्ट करूँगा।'

कमठकी यह महत्त्वपूर्ण बात सुनकर अतिथि ब्राह्मणने मन-ही-मन उसकी सराहना की और यह प्रश्न उपस्थित किया—'जीव कैसे उत्पन्न होता है?'

कमठने कहा—ब्रह्मन्! पहले गुरुको, उसके बाद धर्मको नमस्कार करके मैं इस वेदवर्णित प्रश्नका यथाशक्ति समाधान करूँगा! जीवके जन्म लेनेमें तीन प्रकारका कर्म कारण होता है—पुण्य, पाप और उभय मिश्रित। अर्थात् कर्म तीन प्रकारके हैं—सात्त्विक, राजस और तामस। इन कर्मोंके अनुसार जो सात्त्विक पुरुष है, वह स्वर्गमें जाता है। फिर समयानुसार जब स्वर्गसे नीचे गिरता है, तब संसारमें धनी, धर्मी और सुखी होता है। जो तमोगुणी पुरुष है, वह नरकमें पड़ता है और वहाँ नाना प्रकारकी यातनाएँ भोगनेके पश्चात् यहाँ आकर स्थावरयोनिमें जन्म लेता है। तदनन्तर

१- मधुर, अम्ल, लवण, कटु, कषाय तथा तिक्त—ये छः रस हैं।
२- भक्ष्य, भोज्य, पेय, लेह्य तथा चोष्य—ये भोजनके पाँच भेद हैं।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

दीर्घकालतक उस योनिमें रहते हुए महात्मा पुरुषोंके दर्शन, स्पर्श, उपभोग और समीप बैठने आदिसे स्थावर शरीरसे मुक्त होकर वह मनुष्य होता है। मनुष्य होनेपर भी वह दुःखी, दरिद्रता आदिसे घिरा हुआ तथा विकलेन्द्रिय (अन्धा, बहरा, काना, कुबड़ा, लँगड़ा, लूला आदि) होता है। यह सब लोगोंके प्रत्यक्ष है। यह सब पापका ही लक्षण है। जो पाप और पुण्य दोनोंसे मिश्रित कर्मवाला पुरुष है, वह पशु-पक्षी आदिकी योनिको प्राप्त होता है। तत्पश्चात् वह इस संसारमें मनुष्य होता है। जिसका पुण्य अधिक और पाप थोड़ा होता है, वह पहले दुःखी होकर पीछे सुखी होता है। जिसका पाप बहुत अधिक और पुण्य बहुत कम हो, वह पहले सुखी और पीछे दुःखी होता है; यह मिश्रित कर्मका लक्षण है। इनमेंसे पहले मनुष्यकी उत्पत्तिका प्रसंग सुनिये।

पुरुष और स्त्रीके वीर्य तथा रजका संगम होनेपर सूक्ष्म ज्ञानेन्द्रिय, मन, बुद्धि तथा शुभाशुभ कर्मसंस्कारके साथ जीव गर्भमें प्रवेश करके रजोवीर्यमय कललमें स्थित होता है। उस समय वह मूर्छित अवस्थामें रहकर एक मासतक कललमें ही पड़ा रहता है। दूसरा महीना आनेपर वह कललाकार जीव घनीभावको प्राप्त हो जाता है। तीसरे महीनेमें उसके अवयवोंका निर्माण होने लगता है। (इस प्रकार होते हुए) सातवें महीनेमें वह माताके खाये-पीये हुए अन्न और जलका सार अंश ग्रहण करने लगता है। आठवें और नवें महीनेमें उस बालकको गर्भमें बड़ा उद्वेग प्राप्त होता है। उसके सब अंग झिल्लीमें लपेटे हुए होते हैं और हाथोंकी अंगुलियाँ मुखसे बँधी होती हैं। यदि गर्भका बालक अधिकतर उदरके मध्यभागमें रहता है तब वह नपुंसक है, यदि वाम भागमें ठहरता है तो कन्या है, और यदि दक्षिण भागमें रहा करता है तो पुरुष है। इस प्रकार वह उदरके किसी एक भागमें स्थित होता है। जिन योनियोंमें वह जन्म लेता है उनका ज्ञान उस समय उसे होता है। इतना ही नहीं, उसे पहलेके अनेक जन्मोंकी बातोंका भी स्मरण हो आता है। वह गाढ़ अन्धकारमें अदृश्य होकर पड़ा रहता है। वहाँकी दुर्गन्धिसे वह अत्यन्त मोहको प्राप्त होता है। यदि माता ठंढा जल पीती है तो उसे सर्दी मालूम होती है। यदि गरम जल पीती है तो उसे गरमीका अनुभव होता है। माताके मैथुन या परिश्रम करनेपर उसको क्लेश होता है। यदि माताको कोई रोग है तो उससे गर्भके बालकको भी पीड़ा होती है। इसके सिवा इस बालकको स्वयं भी ऐसे रोग होते हैं, जिन्हें पिता-माता नहीं देख पाते। अधिक सुकुमारता होनेसे वे रोग गर्भस्थ शिशुके अंगोंमें तीव्र वेदना उत्पन्न करते हैं। उस अवस्थामें थोड़े-से समयको भी वह सौ वर्षोंके समान दुःसह मानता है। अपने प्राचीन कर्मोंसे भी गर्भमें बालकको बड़ा सन्ताप होता है। वहाँ वह बार-बार पुण्य करनेके मनसूबे बाँधता है। 'यदि मैं मनुष्य-शरीरमें जन्म और जीवन पा जाऊँ तो ऐसा कार्य करूँगा, जिससे निश्चय ही मेरा मोक्ष हो जाय।' सीमन्तोन्नयन-संस्कारके बाद उपर्युक्त चिन्तामें पड़े हुए बालकके शेष दो मास अधिक पीड़ाके कारण तीन युगोंके समान बीतते हैं। तत्पश्चात् जन्मका समय आनेपर प्रसूति वायुसे प्रेरित होकर नीचे मुखवाला वह बालक बड़ी पीड़ाका अनुभव करता है तथा योनिके संकीर्ण द्वारसे कष्टपूर्वक निकलने लगता है। उस समय उसे ऐसी पीड़ा होती है, मानो कोई उसकी चमड़ी नोंच रहा हो। किसीके हाथका स्पर्श आदि भी उसे आरेकी धारके स्पर्श-सा जान पड़ता है। जन्म लेनेके पश्चात् वह अचेत बालक केवल माताके स्तनमात्रको जानता है। पूर्वकर्मोंके अधीन होनेके कारण उसका गर्भगत ज्ञान नष्ट हो जाता है। फिर तो वह पूर्ववत् काले, लाल और सफेद

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

(तामस, राजस और सात्त्विक) कर्म करने लगता है। मनुष्यका शरीर एक घरके समान है। इसमें हड्डियाँ ही प्रधान स्तम्भ हैं, नस-नाड़ियोंके बन्धनसे ही यह बँधा हुआ है, रक्त और मांसरूपी मिट्टीसे यह लिपा हुआ है, विष्ठा और मूत्ररूपी द्रव्यका पात्र है। सात धातुरूपी सात दीवारोंसे यह अत्यन्त दृढ़ बना हुआ है, केश और रोमरूपी घास-फूससे इसे छाया गया है, मुख ही इस घरका प्रधान दरवाजा है। शेष दो आँख, दो कान, दो नाक, लिंग और गुदा—ये आठ खिड़कियाँ इस घरकी शोभा बढ़ा रही हैं। दोनों ओठ मुखरूपी द्वारके किवाड़ हैं, दाँतोंकी अर्गलासे इस द्वारको बंद किया गया है। नाड़ी ही इसकी नाली और पसीने आदि ही इसके गंदे जलके प्रवाह हैं। यह देह-गेह कफ और पित्तमें डूबा हुआ है। जरावस्था और शोकसे व्याप्त है, कालकी मुखाग्निमें इसकी स्थिति है, राग और द्वेष आदिसे यह सदा ग्रस्त रहता है तथा यह नाना प्रकारके शोककी उत्पत्तिका स्थान है। इस प्रकार मनुष्योंका यह देहरूपी गेह उत्पन्न होता है, जिसमें क्षेत्रज्ञ आत्मा गृहस्थके रूपमें निवास करता है और बुद्धि उसकी गृहिणी है। इस शरीरमें रहकर जीव नाना प्रकारके साधनोंमें संलग्न हो नरक, स्वर्ग और मोक्षको प्राप्त करता है।

कमठद्वारा शरीरकी उत्पत्ति, विनाश तथा जीवके परलोकवासका वर्णन

अतिथि बोले—वत्स कमठ! तुम्हारी बुद्धि तो वृद्धोंकी-सी है। तुम बहुत अच्छा प्रतिपादन कर रहे हो। अब मैं तुमसे शरीरका लक्षण सुनना चाहता हूँ; उसे बताओ।

कमठने कहा—विप्रवर! जैसा यह ब्रह्माण्ड है, वैसा ही यह शरीर भी बताया जाता है। पैरोंका मूल (तलवा) पाताल है, पैरोंका ऊपरी भाग रसातल है, दोनों गुल्फ तलातल हैं, दोनों पिण्डलियोंको महातल कहा गया है, दोनों घुटने सुतल, दोनों ऊरु (जाँघ) तथा कटिभाग अतललोक हैं। नाभिको भूलोक, उदरको भुवर्लोक, वक्षःस्थलको स्वर्गलोक, ग्रीवाको महर्लोक और मुखको जनलोक कहते हैं। दोनों नेत्र तपोलोक हैं तथा मस्तकको सत्यलोक कहा गया है। जैसे पृथ्वीपर सात द्वीप स्थित हैं, उसी प्रकार इस शरीरमें सात धातुएँ हैं, उनके नाम सुनिये। त्वचा, रक्त, मांस, मेदा, हड्डी, मज्जा और वीर्य—ये सात धातुएँ हैं। शरीरमें तीन सौ साठ हड्डियाँ हैं तथा तीस लाख छप्पन हज़ार नौ नाड़ियाँ बतायी गयी हैं। जैसे नदियाँ इस पृथ्वीपर जल बहाती हैं, उसी प्रकार वे नाड़ियाँ शरीरमें रसका संचार करती हैं। यह शरीर साढ़े तीन करोड़ स्थूल एवं सूक्ष्म रोएँसे आच्छादित है। स्थूल रोएँ तो दिखायी देते हैं और सूक्ष्म नहीं दिखायी देते। शरीरमें छः अंग प्रधान बताये जाते हैं—दो बाँह, दो जाँघें, मस्तक और उदर। देहके भीतर साढ़े तीन-तीन व्याम * पुरुषकी तीन आँतें हैं। स्त्रियोंकी आँतें तीन-तीन व्यामकी ही होती हैं; वेदवेत्ता द्विज ऐसा ही कहते हैं। हृदयमें एक कमल बताया जाता है, जिसकी नाल तो है ऊपरकी ओर और मुख है नीचेकी ओर। उस हृदय-कमलके वामभागमें प्लीहा है और दक्षिण-भागमें यकृत्। शरीरमें मज्जा, मेदा, वसा, मूत्र, पित्त, कफ, विष्ठा, रक्त तथा रसके गड्ढे हैं; इनका माप दो-दो अंजलि माना गया है। उन्हीं

* यह लम्बाईकी एक माप है। दोनों हाथोंको जहाँतक हो सके, दोनों बगलमें फैलानेपर एक हाथकी अँगुलियोंके सिरेसे दूसरे हाथकी अँगुलियोंके सिरेपर जितनी दूरी होती है, वह व्याम कहलाती है।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

गड्ढोंसे प्रवृत्त होकर वे मज्जा, मेदा आदि धातु इस शरीरको धारण करते हैं। इन गड्ढोंके सिवा शरीरमें सात सीवनी (विशेष नाड़ी) हैं। इनमेंसे पाँच तो मस्तककी ओर गयी हैं, एक नाड़ी लिंगतक तथा एक जिह्वातक गयी है। सब नाड़ियाँ नाभि-कमलसे ही सब ओर गयी हैं। इन सबमें मस्तककी ओर गयी हुई तीन नाड़ियाँ प्रधान हैं—सुषुम्ना, इडा और पिंगला। इडा और पिंगला नाड़ी नासिकाके द्वारतक पहुँची हुई है। ये ही दोनों शरीरकी वृद्धि एवं पुष्टि करनेवाली हैं। शरीरमें वायु, अग्नि तथा चन्द्रमा—ये पाँच-पाँच भागोंमें विभक्त होकर स्थित हैं। प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान—ये वायुके पाँच भेद माने गये हैं। उच्छ्वास (ऊपरकी ओर श्वास खींचना), निःश्वास (श्वासको बाहर निकालना) तथा अन्न और जलको शरीरके भीतर पहुँचाना—ये तीन प्राणवायुके कर्म हैं। कण्ठसे लेकर मस्तकतक इसका निवासस्थान है। मल, मूत्र तथा वीर्यका त्याग और गर्भको योनिसे बाहर निकालना यह अपान वायुका कर्म बताया गया है। इसका स्थान गुदाके ऊपर है। समान वायु खाये हुए अन्नको धारण करती, उसके विभिन्न अंशोंको बिलगाती तथा सम्पूर्ण शरीरमें रस-संचार करती हुई बेरोक-टोक विचरती है। वाक्य बोलना, उद्गार (कण्ठके भीतरसे कुछ निकालना) तथा कर्मोंके लिये सब प्रकारके प्रयत्न करना—ये उदान वायुके कार्य हैं। इसका स्थान कण्ठसे लेकर मुखतक है। व्यान वायु सदा हृदयमें स्थित रहती है और सम्पूर्ण देहका भरण-पोषण करती है। धातुको बढ़ाना, पसीना, लार आदिको निकालना तथा आँखके खोलने-मीचनेकी क्रिया करना—ये सब व्यान वायुके कार्य हैं।

पाचक, रंजक, साधक, आलोचक तथा भ्राजक—इन पाँच रूपोंमें अग्नि इस शरीरके भीतर स्थित है। पाचक अग्नि सदा पक्वाशयमें स्थित होकर खाये हुए अन्नको पचाती है। रंजक अग्नि आमाशयमें स्थित होकर अन्नके रसको रँगकर रक्तके रूपमें परिणत कर देती है। साधक अग्नि हृदयमें रहकर बुद्धि और उत्साह आदिको बढ़ाती है। आलोचक अग्नि नेत्रोंमें निवास करके रूप देखनेकी शक्ति बढ़ाती है तथा भ्राजक अग्नि त्वचामें स्थित हो शरीरको निर्मल एवं कान्तिमान् बनाती है। क्लेदक, बोधक, तर्पण, श्लेषण तथा आलम्बक—इन पाँच रूपोंमें चन्द्रमाका शरीरके भीतर निवास है। क्लेदक चन्द्रमा पक्वाशयमें स्थित होकर प्रतिदिन खाये हुए अन्नको गलाता है। बोधक रसनेन्द्रियमें रहकर मधुर आदि रसोंका अनुभव कराता है। तर्पण चन्द्रमा मस्तकमें स्थित होकर नेत्र आदि इन्द्रियोंकी तृप्ति एवं पुष्टि करता है। इसीलिये उसका नाम तर्पण है। श्लेषण सब सन्धियोंमें व्याप्त होकर उन्हें परस्पर मिलाये रखता है तथा आलम्बक चन्द्रमा हृदयमें स्थित हो शरीरके सब अंगोंको परस्पर अवलम्बित रखता है। इस प्रकार वायु, अग्नि तथा चन्द्रमाने इस शरीरको धारण कर रखा है। इन्द्रियोंके छिद्र, रोमकूप तथा उदरका अवकाश-भाग—ये सब आकाशजनित हैं। नासिका, केश, नख, हड्डी, धीरता, भारीपन, त्वचा, मांस, हृदय, गुदा, नाभि, मेदा, यकृत्, मज्जा, आँत, आमाशय, शिरा, स्नायु तथा पक्वाशय—इन सबको वेदवेत्ता विद्वानोंने पृथ्वीका अंश बताया है। नेत्रोंमें जो श्वेत भाग है, वह कफसे उत्पन्न होता है और काला भाग वायुसे पैदा होता है। श्वेत भाग पिताका तथा काला भाग माताका अंश है। नेत्रमें पाँच मण्डल होते हैं। पहला पक्ष्म-मण्डल, दूसरा चर्म-मण्डल, तीसरा शुक्ल-मण्डल, चौथा कृष्ण-मण्डल तथा पाँचवाँ दृङ्-मण्डल है। नेत्रके दो भाग और हैं—उपांग और अपांग। नेत्रोंका जो अन्तिम किनारा है, उसे उपांग कहते हैं और नासिकाके मूल भागसे मिला हुआ जो नेत्रका अंश है, उसका नाम अपांग है। दोनों अण्डकोष मेदा, रक्त, कफ

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

और मांस—इन चार धातुओंसे युक्त बताये गये हैं। समस्त प्राणियोंकी जिह्वा रक्त-मांसमयी ही होती है। दोनों हाथ, दोनों ओठ, लिंग और गला—इन छः स्थानोंमें चर्मप्रधान मांस और रक्त होते हैं। इस प्रकार इन सात धातुओंके बने हुए पचीस तत्त्वयुक्त शरीरमें जीव निवास करता है। त्वचा, रक्त और मांस—ये तीनों माताके अंशसे तथा मेदा, मज्जा और अस्थि—ये पिताके अंशसे उत्पन्न बताये गये हैं। इन्हीं छः कोषोंसे इस शरीरका संगठन हुआ है।

यह पांचभौतिक शरीर पाँच भूतोंसे उत्पन्न होनेवाले अन्नद्वारा जिस प्रकार पुष्टिको प्राप्त होता है, उसका वर्णन करता हूँ। देहधारी जीव पिण्ड, कौर तथा ग्रासके रूपमें जो अन्न खाते हैं, उसे प्राणवायु पहले स्थूलाशयमें एकत्र करती है; फिर उस अन्नमें प्रवेश करके अन्न और जलको पृथक्-पृथक् कर देती है। जलको अग्निके ऊपर रखकर अन्नको उसके ऊपर रखती है और स्वयं जलके नीचे स्थित हो धीरे-धीरे अग्निको उद्दीप्त करती है। वायुसे उद्दीप्त हुई अग्नि जलको अत्यन्त गरम कर देती है; फिर उस उष्ण जलसे वह अन्न सब ओरसे पकने लगता है। पकनेपर उसके दो भाग हो जाते हैं; मैल अलग छँट जाती है और रस पृथक् हो जाता है। मल निकलनेके बारह मार्गोंसे वह छँटी हुई मैल शरीरसे बाहर हो जाती है। दो कान, दो आँख, दो नाक, जिह्वा, दाँत, लिंग, गुदा, नख और रोमकूप—ये बारह मलके आश्रय हैं। शरीरकी सब नाड़ियाँ सब ओरसे हृदय-कमलमें बँधी हुई हैं। व्यान वायु पूर्वोक्त अन्न-रसको उन नाड़ियोंके मुखमें रख देती है; तब समान वायु सभी नाड़ियोंको उस रससे परिपूर्ण करती है। तत्पश्चात् वे रसपूर्ण नाड़ियाँ देहमें सब ओर उस रसको पहुँचा देती हैं। नाड़ियोंमें स्थित हुआ वह रस रंजक अग्निकी उष्णतासे पकने लगता है और पकते-पकते रुधिररूपमें परिणत हो जाता है। तदनन्तर त्वचा, रोम, केश, मांस, स्नायु, शिरा, अस्थि, नख, मज्जा, इन्द्रियोंकी शुद्धि तथा वीर्यकी वृद्धि—ये कार्य क्रमशः होते हैं। इस प्रकार अन्नका बारह रूपोंमें परिणाम बताया जाता है। इन सबसे बना हुआ यह शरीर पुण्यके लिये प्राप्त हुआ है, जैसे सुन्दर रथ भार ढोनेके लिये ही होता है। यदि वह भार न ढो सके तो, केवल तेल लगाने आदि नाना प्रकारके यत्नोंद्वारा रथकी रक्षा करनेसे क्या कार्य सिद्ध हो सकता है? इसी प्रकार उत्तम-उत्तम भोजनोंसे पुष्ट किये हुए इस शरीरके द्वारा पुण्य-सम्पादनके सिवा और क्या लाभ है? यदि यह पुण्य नहीं करता, तो पशुके तुल्य है। इस विषयमें ये श्लोक स्मरण रखने योग्य हैं—

यस्मिन्काले च देशे च वयसा यादृशेन च।
कृतं शुभाशुभं कर्म तत्तथा तेन भुज्यते॥
तस्मात् सदा शुभं कार्यमविच्छिन्नसुखार्थिभिः।
विच्छिद्यन्तेऽन्यथा भोगा ग्रीष्मे कुसरितो यथा॥
यस्मात्पापेन दुःखानि तीव्राणि सुबहून्यपि।
तस्मात्पापं न कर्तव्यमात्मपीडाकरं हि तत्॥

'जिस समय जिस देशमें और जिस आयुसे शुभ तथा अशुभ कर्म किये जाते हैं उसी देश, काल और आयुमें कर्ताको उनका फल भोगना पड़ता है। इसलिये अक्षय सुखकी इच्छा रखनेवाले पुरुषोंको सदा शुभ कर्म ही करना चाहिये। अन्यथा गरमीमें सूख जानेवाली छोटी-छोटी नदियोंकी भाँति समस्त सुख-भोग छिन्न-भिन्न हो जाते हैं। क्योंकि पापसे बहुत तीव्र दुःख प्राप्त होते हैं, अतः पाप-कर्मका आचरण कदापि नहीं करना चाहिये; क्योंकि वह अपनेको पीड़ा देनेवाला है।'

महात्मन्! इस प्रकार मैंने आपके प्रश्नका यथाशक्ति उत्तर दिया है। प्राणी किस प्रकार

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

उत्पन्न होता है, यह बात बता दी गयी। अब किस प्रकार उसकी मृत्यु होती है, यह सुनिये। कर्मके अनुसार आयु क्षीण होनेपर जब मनुष्योंका मृत्युकाल उपस्थित होता है, उस समय अपने कर्मोंके अधीन रहनेवाले जीवको यमराजके दूत शरीरसे बाहर खींचते हैं। तब पुण्य और पापके बन्धनमें बँधा हुआ जीव पंचतन्मात्राओंको तथा मन, बुद्धि और अहंकारको साथ लेकर शरीरको त्याग देता है। पुण्यात्मा पुरुषोंके प्राण मुखमण्डलमें स्थित सात छिद्रोंके द्वारा बाहर निकलते हैं। पापियोंके प्राण गुदा-मार्गसे बाहर होते हैं और योगी पुरुषोंके प्राण ब्रह्मरन्ध्र फोड़कर ऊर्ध्वलोकमें गमन करते हैं।

मृत्यु होनेपर जीव उसी क्षणमें आतिवाहिक शरीर धारण करता है; वह अँगूठेकी पोरके बराबर होता है। उस शरीरका निर्माण अपने ही प्राणोंसे किया जाता है। उस आतिवाहिक शरीरमें जब जीव स्थित हो जाता है, तब यमराजके दूत उस देहको बाँधकर बलपूर्वक यमलोकके मार्गसे ले जाते हैं। वह मार्ग तपे हुए भाड़के समान, गरम किये हुए लोहेके गोलेके सदृश, तपी हुई बालूवाले स्थानकी भाँति तथा जलते हुए ताम्रपत्रके समान होता है। पृथ्वीसे छियासी हजार योजन दूर यमराजकी पुरी है, जहाँ यमदूत पापी जीवको घसीटकर ले जाते हैं। मार्गमें कहीं अत्यन्त सर्दी पड़ती है, कहीं अत्यन्त दुर्गम स्थान लाँघना पड़ता है, कहीं भारी अन्धकार छाया रहता है तथा कहीं अग्निके समान मुखवाले काक, कंक, जम्बुक, मक्खी, डाँस, मच्छर तथा साँप और बिच्छू आदि जीव काट खाते हैं। उनके काटनेपर जीव चीखता और चिल्लाता है, परंतु मरता नहीं है। कहीं-कहीं भयंकर राक्षस उसे खाते, घसीटते और इधर-उधर फेंकते हैं। कहीं तपी हुई बालूवाले अत्यन्त भयंकर मार्गसे जलता हुआ पापी जीव ले जाया जाता है। यमपुरीके उस अत्यन्त दुस्तर मार्गको वह केवल दस मुहूर्त (चार घंटे)-में पार करता है; परंतु उतना ही समय वह एक वर्षके बराबर बड़ा भारी समझता है। उस मार्गमें पापी जीवको पीब और रक्तकी धारा बहानेवाली भयंकर वैतरणी नदी पार करनी पड़ती है, जिसमें बाल ही शैवालका काम देते हैं।

यमलोकमें पहुँचनेपर यमदूत पापी मनुष्यको ले जाकर यमराजके सामने खड़ा कर देते हैं। पापात्मा जीव काल और अन्तक आदिसे घिरे हुए यमराजको बड़े भयंकर रूपमें देखता है तथा पुण्यात्मा पुरुष यमराजका परम शान्त सौम्य रूपमें दर्शन पाता है। मनुष्य ही यमलोकमें जाते हैं, दूसरे प्राणी नहीं। अन्य प्राणियोंकी मृत्यु होनेपर शीघ्र ही किसी-न-किसी योनिमें उनका जन्म हो जाता है। इस प्रकार उनकी योनिपूर्ति मात्र की जाती है। केवल मनुष्य ही प्रेत होते सुने जाते हैं, अन्य प्राणी नहीं। धर्मात्मा पुरुष यमलोकमें जानेपर वहाँ पूजित होता है और पापी जीव बन्धनमें डाला जाता है।

विप्रवर! धर्मात्मा पुरुष जिस प्रकार परलोकमें जाते हैं, उस मार्गका वर्णन करता हूँ। जो इस लोकमें बगीचा और वृक्षका दान करते हैं, वे फल और फूलवाले वृक्षोंकी छायासे होकर सुखपूर्वक यात्रा करते हैं। इसी प्रकार जो छत्र दान करनेवाले मनुष्य हैं, वे भी छायामें ही सुखसे जाते हैं। उपानह (जूता आदि) दान करनेवाले सवारीसे यात्रा करते हैं। कुआँ और पोखरा खुदानेवाले प्यासकी पीड़ासे रहित होकर जाते हैं। सवारी, शय्या और आसन देनेवाले लोग विमानोंपर बैठकर जाते हैं। जो लोग भोजन-दान करनेवाले हैं, वे लोग भक्ष्य-भोज्यसे भलीभाँति तृप्त होकर यात्रा करते हैं। दीप-दान करनेवाले उजालेमें जाते हैं, गोदान करनेवाले वैतरणी नदीको सुखसे पार करते हैं। जो जन्मसे ही लेकर जीवनभर भगवान् सूर्य, भगवान् शिव अथवा भगवान् विष्णुकी पूजा करते हैं, वे यमदूतोंसे पूजित होकर भगवान्के धाममें जाते हैं। भूमि, गौ, सोना, लोहा, तेल,

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

रूई, नमक और सप्तधान्य दान करके मनुष्य सुखपूर्वक परलोककी यात्रा करते हैं।

चित्रगुप्त यमलोकमें गये हुए पापी और पुण्यात्मा पुरुषोंकी सूचना यमराजको देते हैं। फिर वह एक वर्षतक प्रेतलोकमें निवास करता है। उसी वर्षमें उसे भोगदेहकी प्राप्ति होती है। भाई-बन्धु जो जलयुक्त कुम्भदान और अन्न आदि दान करते हैं, उसे ही वह प्रतिदिन खाकर पुष्ट होता है। उसने पहले भी जो अन्न आदिका दान कर रखा है, वह भी यमलोकमें उसके पास स्वयं उपस्थित हो जाता है। जिसने स्वयं कुछ दान नहीं किया तथा जिसके लिये दूसरा कोई अन्नदाता और जलदाता नहीं है, वह यमलोकमें भूख और प्याससे पीड़ित होता है। भाई-बन्धुओंद्वारा किया हुआ जलदान उसके पास नदी होकर पहुँचता है। जिसके लिये यहाँ षोडश श्राद्धपूर्वक प्रतिमास मासिक श्राद्ध नहीं किया जाता, वह प्रेतयोनिसे मुक्त नहीं होता है। प्रेतलोकमें मनुष्यके दिनके बराबर ही दिन होता है। इसलिये प्रेतको प्रतिदिन एक वर्षतक अन्न देना चाहिये। यमलोकमें सर्दी, आँधी और धूपके कष्टसे युक्त पापात्मा पुरुषकी रक्षा श्माशानिक नामवाले भयंकर यमदूत करते हैं। जैसे इस लोकमें भी कठोर पुरुष बन्धनमें पड़े हुए किसी कैदीकी रक्षा करते हैं। जिसके लिये षोडश श्राद्धपूर्वक प्रेतपिण्ड नहीं दिये जाते, उसका कई युगोंके बाद भी प्रेतयोनिसे उद्धार नहीं होता। प्रेतपिण्ड देनेके पश्चात् जब भाई-बन्धु एक वर्ष पूरा होनेपर सपिण्डीकरण श्राद्धका अनुष्ठान भलीभाँति कर देते हैं, तब जीवका भोगशरीर पूर्णताको प्राप्त हो जाता है। पापात्मा जीव भयंकर शरीर प्राप्त करता है और धार्मिक पुरुषको परम उत्तम दिव्य रूपकी प्राप्ति होती है। तदनन्तर जीव अपने कर्मके अनुसार स्वर्ग या नरकमें जाता है। रौरव आदि नरक पातालतलमें स्थित हैं, देवता आदि पुण्यात्मा स्वर्गलोकके ऊपर सत्यलोकतक निवास करते हैं। इतिहास, पुराण, वेद तथा स्मृतियोंमें जो पुण्यकर्म विहित है, उससे स्वर्गकी प्राप्ति होती है। उसके विपरीत पाप करनेसे नरक होता है। स्वर्ग हो या नरक, वहाँ भी मनुष्य अपने कर्मोंके अनुरूप नियत समयतक ही निवास करता है। वर्षके पहले ही जिसका सपिण्डीकरण श्राद्ध कर दिया जाता है, उसका भी प्रेतत्व एक वर्षतक अवश्य रहता है। जिन्होंने अश्वमेध आदि तीन यज्ञोंद्वारा यजन किया हो अथवा ब्रह्मा, विष्णु और शिव—इन तीन देवताओंकी पूजा की हो, या जो सम्मुख युद्धमें मारे गये हों, वे कभी प्रेतलोकमें नहीं जाते। केवल पुण्यसे एकमात्र स्वर्गकी प्राप्ति होती है और केवल पापसे एकमात्र अन्धकारपूर्ण नरकमें जाना पड़ता है। पाप और पुण्य दोनोंके अनुष्ठानसे मानव स्वर्ग और नरक दोनोंमें जाता है और उसीके अनुसार उसको शरीर भी प्राप्त हो जाता है। विप्रवर! जन्म, मृत्यु और परलोकवास आपके इन तीन प्रश्नोंको लेकर, जैसी कि मेरे पिताने मुझे शिक्षा दी है, आपसे निवेदन किया। अब और आप क्या सुनना चाहते हैं? उसे भी कहूँगा।

~~~०~~~

पापकर्मोंके फल, जयादित्यकी स्तुति और महिमा

अतिथि बोले—कमठ! तुमने शास्त्रीय मतका आश्रय लेकर परलोकका जो यह स्वरूप बतलाया है, वह वैसा ही है। इसमें तनिक भी संशय नहीं है; तथापि इस विषयमें नास्तिक, पापाचारी तथा मन्दबुद्धि मनुष्य सन्देह करते हैं। उनका सन्देह दूर करनेके लिये तुम कर्मोंके फलका निरूपण करो। किस-किस पापकर्मका कौन-सा फल यहीं प्राप्त हो जाता है तथा किस पापके प्रभावसे

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth
~~~

मनुष्य किस रूपमें जन्म लेता है? इन सब बातोंको यदि तुम जानते हो तो बताओ।

कमठने कहा—विप्रवर! इस विषयमें मेरे पिताने जो उपदेश दिया है और मेरे चित्तमें जो विचार स्थित है, वह सब आपको बताऊँगा। आप स्थिर होकर सुनिये। ब्राह्मणकी हत्या करनेवाले मनुष्यको क्षयका रोग होता है, शराबीके दाँत काले होते हैं, सोनेकी चोरी करनेवालेका नख खराब होता है, गुरुपत्नीगामीके शरीरका चमड़ा खराब हो जाता है, इन सबके साथ संसर्ग रखनेवाले पुरुषको वे सभी रोग होते हैं। ये पाँच प्रकारके लोग महापातकी कहलाते हैं। जो साधु पुरुषोंकी निन्दा सुनता है, वह बहरा होता है; आप ही अपनी कीर्तिका बखान करनेवाला पापी गूँगा होता है; गुरुजनोंकी आज्ञाका उल्लंघन करनेवाला मनुष्य मिरगीके रोगसे पीड़ित होता है। जो गुरुजनोंका अपमान करता है, वह कीड़ा होता है। पूजनीय पुरुषोंके कार्यकी उपेक्षा करनेवाले पुरुषकी बुद्धि दूषित होती है। साधुजनोंके द्रव्यकी चोरी करनेको जो जितने पग आगे बढ़ाता है, वह नराधम उतने ही वर्षोंतक पंगु होता है। जो दान देकर फिर छीन लेता है, वह गिरगिटकी योनिमें उत्पन्न होता है। जो क्रोधमें भरे हुए पूजनीय पुरुषोंको प्रसन्न नहीं करता उसे सिरदर्दका रोग होता है। रजस्वला स्त्रीसे समागम करनेवाला मनुष्य चाण्डाल होता है। कपड़ा चुरानेवाला सफेद कोढ़से लांछित होता है। आग लगानेवाला काली कोढ़के रोगसे पीड़ित होता है। चाँदी चुरानेवाला मेढक तथा झूठी गवाही देनेवाला मुखका रोगी होता है। परायी स्त्रियोंको काम-भावसे देखनेवाला नेत्ररोगसे कष्ट पाता है। कुछ देनेकी प्रतिज्ञा करके जो नहीं देता है वह अल्पायु होता है। ब्राह्मणकी वृत्तिका अपहरण करनेवाला सदा अजीर्णरोगका रोगी और अधम होता है। नैष्ठिक ब्रह्मचारीको भोजन करानेसे मुँह मोड़नेवाला गृहस्थ सदा रोगी होता है। बहुत-सी पत्नियोंके होनेपर किसी एकहीमें अनुराग रखनेवाला पुरुष मेदाके क्षयरोगसे युक्त होता है। स्वामीने जिसे किसी धर्मके कार्यमें लगा दिया हो, वह यदि अन्यायपूर्वक आचरण करता है, अथवा मालिकके धनको स्वयं ही खा जाता है, तो उसे जलोदर रोग होता है। जो बलवान् होकर भी किसीके द्वारा सताये जाते हुए दुर्बलकी उपेक्षा करता है—उसे बचानेकी चेष्टा नहीं करता, वह अंगहीन होता है। अन्न चुरानेवाला भूखसे पीड़ित रहता है। व्यवहारमें पक्षपात करनेवाला मनुष्य जिह्वाके रोगसे युक्त होता है। जो धर्मके कार्यमें लगे हुए मनुष्यको उससे मना कर देता है, वह पत्नीवियोगी होता है। जो अपनी ही बनायी हुई रसोईमें सबसे पहले स्वयं भोजन करता है, उसके गलेमें रोग होता है। पंचयज्ञोंका अनुष्ठान किये बिना ही भोजन करनेवाला मनुष्य गाँवका सूअर होता है। पर्वोंके दिन मैथुन करनेवालेको प्रमेहका रोग होता है। अर्थसंकटमें पड़े हुए मित्र, बन्धु, स्वामी तथा प्रिय सेवकोंका परित्याग करके उनकी ओरसे मनको हटा लेनेवाला निर्दय मनुष्य सदा जीविकाके लिये कष्ट पाता रहता है। जो माता-पिता, गुरु और स्वामीकी छलसे सेवा करता है, वह बड़े कष्टसे धन पाकर भी उससे वंचित हो जाता है। जो विश्वास करनेवाले पुरुषके धनको हड़प लेता है, वह सदा दुःखोंका भागी होता है। जो धार्मिक पुरुषके प्रति क्षुद्रतापूर्ण बर्ताव करता है, वह बौना होता है। जो दुबले बैलको हल या गाड़ीमें जोतता है, उसकी कमरमें लूता (मकरी)- का रोग होता है। गायकी हत्या करनेवाला जन्मसे ही अन्धा होता है। गौओंको दुःख देनेवाला मनुष्य पशुसे रहित होता है। जो मारने आदिके द्वारा गौओंके प्रति निर्दयताका परिचय देता है, वह

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

मार्गमें कष्ट भोगता है। सभामें पक्षपात करनेवालेको गलगण्डका रोग होता है। सदा क्रोध करनेवाला चाण्डाल होता है। चुगली खानेवाले मनुष्यके मुँहसे सदा दुर्गन्ध आती है। बकरी बेचनेवाला मनुष्य बहेलिया होता है। कुण्ड (पतिके जीते-जी जार पुरुषसे उत्पन्न पुत्र)-का अन्न भोजन करनेवाला मनुष्य सेवक होता है। नास्तिक पुरुष तेली होता है और श्रद्धाहीन मनुष्य मुर्दाके समान बना रहता है। अभक्ष्य भक्षण करनेवाले मनुष्यको गण्डमालाका रोग होता है। सबको दुःख देनेवाला मनुष्य सदा शोकमें डूबा रहता है। अन्यायसे ज्ञान ग्रहण करनेवाला मनुष्य मूर्ख होता है। शास्त्र चुरानेवाला राक्षस होता है। जो पवित्र कथासे द्वेष करता है, वह कीटमुख होता है। नरकसे लौटे हुए पुरुषकी बुद्धि अत्यन्त खोटी होती है। तालाब और बगीचेको नष्ट करनेवाला पुरुष बिना हाथका होता है। व्यवहारमें छलका सहारा लेनेवाला मनुष्य अपने सेवकोंसे मारा जाता है। परायी स्त्रीसे रति करनेवाला पुरुष सदा प्रमेहरोगसे पीड़ित रहता है। खोटा वैद्य वातका रोगी होता है। गुरुपत्नीगामी मनुष्य कोढ़ी होता है। पशुओंसे मैथुन करनेवाला भी प्रमेही होता है। अपने गोत्रकी स्त्रीसे मैथुन करनेवाला सन्तानहीन होता है। माता, बहिन और पतोहूसे सम्भोग करनेवाला मनुष्य नपुंसक होता है। कृतघ्न मनुष्यको समस्त कार्योंमें असफलता प्राप्त होती है।

ब्रह्मन्! इस प्रकार मैंने आपसे पापियोंका लक्षण संक्षेपसे बताया है। सम्पूर्ण लक्षणोंका वर्णन करनेमें तो चित्रगुप्त भी मोहित हो सकते हैं। ये नरकोंसे भ्रष्ट हुए पापात्मा सहस्रों योनियोंकी यातनाएँ भोगकर अन्तमें उपर्युक्त चिह्नोंसे युक्त मनुष्यके रूपमें उत्पन्न होते हैं। जो धर्मको नहीं मानते हैं तथा जो दुर्व्यसनोंसे पराजित हैं, उन शेष पापियोंको अनुमानसे ही जानना चाहिये। जिनका पाप नष्ट हो गया है अथवा जो स्वर्गसे लौटे हैं, वे समस्त दुर्व्यसनोंसे मुक्त होकर एकमात्र धर्मका आश्रय लेते हैं। इस विषयमें ये श्लोक स्मरणीय हैं—

धर्मदानकृतं सौख्यमधर्माद् दुःखसम्भवम्।
तस्माद्धर्मं सुखार्थाय कुर्यात् पापं विवर्जयेत्॥
लोकद्वयेऽपि यत्सौख्यं तद्धर्मात्प्रोच्यते यतः।
धर्म एव मतिं कुर्यात् सर्वकार्यार्थसिद्धये॥
मुहूर्तमपि जीवेद्धि नरः शुक्लेन कर्मणा।
न कल्पमपि जीवेच्च लोकद्वयविरोधिना॥

'धर्म और दानसे सुख प्राप्त होता है और अधर्मसे दुःखकी उत्पत्ति होती है, अतः सुखके लिये धर्मका आचरण करे और पापको सर्वथा त्याग दे। इस लोक और परलोक दोनों लोकोंमें जो सुख है, उसकी प्राप्ति धर्मसे ही बतायी जाती है; अतः समस्त कार्यों और मनोरथोंकी सिद्धिके लिये धर्ममें ही मन लगावे। मनुष्य दो घड़ी भी पुण्यकर्म करते हुए ही जीवे। उभयलोकविरोधी कर्मके साथ कल्पभर भी जीनेकी इच्छा न रखे।'

विप्रवर! आपने जो कुछ पूछा है उसका मैंने अपनी शक्तिके अनुसार वर्णन किया है। यह अच्छा कहा गया हो या नहीं, उसके लिये आप क्षमा करें। अब और क्या कहूँ।

नारदजी कहते हैं—आठ वर्षके बालक कमठका यह भाषण सुनकर भगवान् सूर्य अत्यन्त विस्मित एवं बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने उस समय हारीत आदि ब्राह्मणोंकी इस प्रकार प्रशंसा की—'अहो! ऐसे उत्तम ब्राह्मणोंसे यह पृथ्वी धन्य है। भगवान् प्रजापति भी धन्य हैं, जिनकी मर्यादाका इन श्रेष्ठ ब्राह्मणोंद्वारा पालन हो रहा है। इस समय इन श्रेष्ठ ब्राह्मणोंसे चारों वेद भी धन्य हो गये हैं। जिन ब्राह्मणोंमेंसे एक बालककी बुद्धि इतनी तीव्र और स्पष्ट है, उन हारीत आदि ब्राह्मणोंकी बुद्धि कैसी होगी? निश्चय ही त्रिलोकीमें ऐसी कोई बात नहीं है, जो इन ब्राह्मणोंको विदित न हो। नारदने इनके

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

विषयमें जितना कहा है, उससे भी ये बहुत बढ़कर हैं।' इस प्रकार उन विप्रोंकी प्रशंसा करके हर्षमें भरे हुए सूर्यदेवने कहा—'श्रेष्ठ ब्राह्मणो! मैं सूर्य हूँ, आपका दर्शन करनेके लिये सूर्यलोकसे यहाँ आया हूँ। आज मेरे नेत्र सफल हो गये। आप-जैसे उत्तम ब्राह्मणोंके साथ वार्तालाप करने और बैठनेसे चाण्डाल भी पवित्र होते हैं। देवर्षि नारद भी सर्वथा धन्य हैं, जो त्रिलोकीके तत्त्वको जानते हैं। जिनका श्रेय आपके द्वारा उसी प्रकार बढ़ रहा है, जैसे वैधृति योगमें किये हुए दानका पुण्य बढ़ता है। मैं अपने मन और बुद्धिको एकाग्र करके आप सब लोगोंको प्रणाम करता हूँ; क्योंकि तप, विद्या और सदाचार ही बड़प्पनका प्रधान कारण है। देवताओंका संसर्ग निष्फल नहीं होता, इसलिये मुझसे कोई वर माँगिये; मैं उसे आपलोगोंको दूँगा।'

भगवान् सूर्यकी यह बात सुनकर वे श्रेष्ठ ब्राह्मण बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने पाद्य, अर्घ्य, स्तुति और चन्दनसे अत्यन्त भक्तिपूर्वक सूर्यदेवका पूजन किया और मण्डलब्राह्मण आदि जपनीय मन्त्रोंका उच्चारण करते हुए उनकी इस प्रकार

स्तुति की—'आदित्य! आपकी जय हो। स्वामिन्! आपकी जय हो। भानो! आपकी जय हो। निर्मल प्रकाशस्वरूप! आपकी जय हो। वेदोंके पालक! दिवानाथ! सूर्यदेव! आपकी जय हो। आप हमारा उद्धार करें। ब्राह्मणोंके सबसे प्रधान देवता आप ही हैं। ब्राह्मण-सृष्टि सूर्यमयी ही है। आपकी कृपादृष्टि पड़नेसे हमारा यह स्थान अत्यन्त पवित्र हो गया। आज हमारे वेदाध्ययन सफल हो गये। आज हमें अपने समस्त पुण्यकर्मोंका फल मिल गया। गोपते! आपका संग पाकर आज हमारा यह गृह सफल हो गया। यदि आप हमें वर देना चाहते हैं, तो हम यही माँगते हैं कि आप हमारे इस स्थानका कभी परित्याग न करें।'

भगवान् सूर्य बोले—क्योंकि आपलोगोंने पहले 'जयादित्य' कहकर मेरा स्तवन किया है, इसलिये मैं 'जयादित्य' नामसे विख्यात होकर सदा इस स्थानमें निवास करूँगा। हे विप्रगण! जबतक पृथ्वी, समुद्र, पर्वत और नगर विद्यमान हैं, तबतक मैं इस स्थानमें अवश्य रहूँगा; कभी इसका त्याग नहीं करूँगा। यहाँ रहकर मैं अपने भक्तोंके दारिद्र्य, रोगसमूह, दाद-खुजली, कोढ़, चकता तथा अन्य प्रकारकी कोढ़ आदिका नाश करता रहूँगा। जो मानव यहाँ प्रतिष्ठित हुए मेरे श्रीविग्रहका पूजन करेगा, उसकी उस पूजाको मैं ग्रहण करूँगा।

भगवान् सूर्यके ऐसा कहनेपर हारीत आदि श्रेष्ठ ब्राह्मणोंने वेदोक्त विधिसे उनकी मूर्ति स्थापित की। तत्पश्चात् सब द्विजोंने कहा—'कमठ! तुम्हारे कारण ही भगवान् सूर्य यहाँ विराजमान हुए हैं, अतः पहले तुम्हीं इनका गुणगान करो।' ब्राह्मणोंके ऐसा कहनेपर वक्ताओंमें श्रेष्ठ कमठने जयादित्यको प्रणाम करके इस महास्तोत्रका गान किया—'आदिदेव! आपके यथार्थरूपका साक्षात्कार नहीं, केवल यजुर्वेदके

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

मन्त्रमें श्रवण हुआ है। ज्ञानीजन ऐसा ही कहते हैं। परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी—यह चार प्रकारकी वाणी सदा आपसे दूर-ही-दूर रहती है—आपतक पहुँच नहीं पाती। तथापि मैं इतना धृष्ट हूँ कि स्वार्थकी कामना लेकर आपका स्तवन करता हूँ। प्रभो! मेरे इस अपराधको क्षमा करें। देव! मार्तण्ड, सूर्य, अंशु, रवि, इन्द्र, भानु, भग, अर्यमा, स्वर्णरेता, दिवाकर, मित्र तथा विष्णु—इन बारह नामोंसे आप विख्यात हैं। द्वादशात्मन्! आपको नमस्कार है। त्रिलोकी आपका गर्भ-गृह है, सम्पूर्ण आकाश जलाधार (अर्घा) है, नक्षत्रसमूह पुष्पमाला हैं तथा आप आकाशमें स्थापित ज्योतिर्मय लिंग हैं; आपको नमस्कार है। आप देवताओंके देवता, अनाथोंके नाथ, पालनीय जनोंके पालक तथा दीनोंपर दया करनेवाले हैं। नेत्रोंके भी नेत्र (दृष्टिशक्ति-प्रदाता), मनुष्योंकी बुद्धिकी भी बुद्धि, बुद्धिसे परे तथा जीवके भी जीवन हैं। आपकी जय हो। आप दरिद्रताकी दरिद्रता, निधिकी निधि, रोगके रोग पृथ्वीमें प्रसिद्ध हैं। अप्रमेय जयादित्य! आपकी दीर्घकालतक जय हो। जो नाना प्रकारकी व्याधियोंसे ग्रस्त है, कोढ़के रोगसे पीड़ित है, जिसकी नाक गल गयी है, शरीर भी जीर्ण-शीर्ण हो गया है तथा जो अपनी चेतना भी खो बैठा है, ऐसे मनुष्यको उसके बन्धु-बान्धव, माता-पिता भी छोड़ देते हैं, परंतु सबके ठुकराये हुए उस अनाथ जीवका भी आप पालन करते हैं। हे देव! हे विवस्वान्! आपके सिवा दूसरा कौन इतना दयालु श्रेष्ठ देवता है? आप मेरे पिता हैं, आप ही मेरी माता हैं, आप ही गुरु तथा आप ही बन्धु-बान्धव हैं। आप ही मेरे धर्म तथा आप ही मोक्षके मार्ग हैं। देव! मैं आपका दास हूँ। त्यागिये या उबारिये। मैं पापी हूँ, मूढ हूँ, अत्यन्त भयंकर कर्म करनेवाला एवं भयानक हूँ। इतना ही नहीं, मैं पापोंकी निधि हूँ। तथापि प्रतिदिन आपके चरणोंमें साष्टांग प्रणाम करके आपका भजन करता हूँ। हे श्रीजयादित्य! आप अपने भक्तोंका पालन कीजिये।'*

नारदजी कहते हैं—महात्मा कमठके इस प्रकार स्तुति करनेपर भगवान् जयादित्यने हँसते हुए स्निग्ध एवं गम्भीर वाणीमें उनसे कहा—'कमठ! तुमने जो यह जयादित्याष्टक सुनाया है, इससे जो

* त्वं नैव दृष्टः केवलसंश्रुतश्च यजुष्येवं व्याहरन्त्यादिदेव।
चतुर्विधा भारती दूरदूरं धृष्टः स्तौमि स्वार्थकामः क्षमैतत्॥
मार्त्तण्डसूर्यांशुरविस्तथेन्द्रो भानुर्भगश्चार्यमा स्वर्णरेताः।
दिवाकरो मित्रविष्णुश्च देव ख्यातस्त्वं वै द्वादशात्मा नमस्ते॥
लोकत्रयं वै तव गर्भगेहं जलाधारः प्रोच्यते खं समग्रम्।
नक्षत्रमाला कुसुमाभिमाला तस्मै नमो व्योमलिंगाय तुभ्यम्॥
त्वं देवदेवस्त्वमनाथनाथस्त्वं पाल्यपालः कृपणे कृपालुः।
त्वं नेत्रनेत्रं जनबुद्धिबुद्धिर्बुद्धेः परस्त्वं जय जीवजीव॥
दारिद्र्यदारिद्र्य निधे निधीनां रोगप्ररोगः प्रथितः पृथिव्याम्।
चिरञ्जयादित्य जयाप्रमेय व्याधिग्रस्तं कुष्ठरोगाभिभूतम्॥
भग्नघ्राणं शीर्णदेहं विसंज्ञं माता पिता बान्धवाः सन्त्यजन्ति।
सर्वैस्त्यक्तं पासि देव विवस्वंस्त्वत्तो देवः कोऽस्ति श्रेष्ठस्त्वदन्यः॥
त्वं मे पिता त्वं जननी त्वमेव त्वं मे गुरुर्बान्धवाश्च त्वमेव।
त्वं मे धर्मस्त्वं च मे मोक्षमार्गो दासस्तुभ्यं त्यज वा रक्ष देव॥
पापोऽस्मि मूढोऽस्मि महोग्रकर्मा रौद्रोऽस्मि पापस्य निधानमस्मि।
तथापि नित्यं प्रणिपत्य पादयोर्भजामि भक्तान् पालय श्रीजयार्क॥

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

मेरी स्तुति करेगा, उसके लिये इस पृथ्वीपर कुछ भी दुर्लभ न होगा। विशेषतः रविवारको मेरी पूजा करके जो इसका पाठ करेगा, उसके रोग और दरिद्रताका नाश होगा। वत्स! तुमने मुझे बहुत सन्तुष्ट किया है, अतः तुम्हें यह वर देता हूँ कि इस पृथ्वीपर सर्वज्ञ होकर तुम मोक्ष प्राप्त कर लोगे। तुम्हारे पिता कभी स्मृतिकार होंगे। वत्स! मैं इस स्थानका कभी त्याग नहीं करूँगा।'

भगवान् सूर्यने जब ऐसा कहा, तब ब्राह्मणोंने पुनः उनका पूजन और स्तवन किया। तत्पश्चात् उन द्विजेन्द्रसे आज्ञा लेकर वे वहाँसे अन्तर्धान हो गये। कुन्तीनन्दन! इस प्रकार इस भूतलपर आश्विनमासमें जयादित्यका प्रादुर्भाव हुआ, इसलिये वह मास वहाँ अति विशेष पर्व माना जाता है। आश्विनमासमें रविवारको कोटितीर्थमें नहाकर जो जयादित्यका पूजन करता है, वह बड़े भारी पुण्यफलको प्राप्त होता है। जयादित्यको लाल फूलमाला चढ़ाने, लाल चन्दन और रोलीका लेप करने, गन्ध-धूप आदि देने तथा घृतपक्व नैवेद्य समर्पण करनेसे ब्रह्मघाती, शराबी, सुवर्णचोर तथा गुरुपत्नीगामी भी अपने समस्त पातकोंसे मुक्त हो सूर्यलोकको जाता है। इस लोकमें पुत्र, स्त्री, धन और आयु आदि संसारी सुखको पाकर अभीष्ट भोगोंसे सम्पन्न हो सूर्यलोकमें चिरकालतक निवास करता है। प्रत्येक रविवारको जयादित्यका दर्शन, कीर्तन और स्मरण भी सब रोगोंकी शान्ति करनेवाला है। जो अनादि, अनन्त, तेजोनिधि एवं अव्यक्तदेव भगवान् सूर्यकी भक्तिपूर्वक पूजा करते हैं, वे रोग-शोकसे रहित सूर्यधाममें लीन होते हैं। अर्जुन! जो लोग सूर्यग्रहण प्राप्त होनेपर एकाग्रचित्त हो सूर्यकूपमें स्नान करते, प्रयत्नपूर्वक आहुति देते तथा जयादित्यके आगे यथाशक्ति दान देते हैं, उनके पुण्यकी कैसी महिमा है, यह एकाग्रचित्त होकर सुनो। कुरुक्षेत्र, प्रभास, पुष्कर, काशी, प्रयाग अथवा नैमिषारण्यमें जो पुण्य प्राप्त होता है, वही पुण्य जयादित्यके प्रसादसे वे लोग वहाँ भी पा लेते हैं।

नारदजीके गुणोंका वर्णन तथा गौतमेश्वरकी महिमाके प्रसंगमें योगका निरूपण

अर्जुन बोले—देवर्षे! आप सम्पूर्ण प्राणियोंके प्रति समान भाव रखनेवाले, जितेन्द्रिय तथा राग-द्वेषरहित हैं। तथापि आपमें जो कलह करानेकी प्रवृत्ति है, उसके कारण कई हजार देवता, गन्धर्व, राक्षस, दैत्य तथा मुनि नष्ट हो गये। विप्रवर! आपकी ऐसी चेष्टा क्यों होती है? मेरे इस सन्देहका निवारण कीजिये।

सूतजी कहते हैं—शौनक! अर्जुनके मुखसे यह बात सुनकर नारदमुनि हँसते हुए-से बाभ्रव्य मुनिके मुखकी ओर देखने लगे। बाभ्रव्यका जन्म हारीतके कुलमें हुआ था। वे उस समय नारदजीके पास ही उपस्थित थे। बाभ्रव्य बड़े बुद्धिमान् थे। उन्होंने नारदजीका मनोभाव समझ लिया और हँसते हुए स्नेहयुक्त मधुर वाणीमें अर्जुनसे इस प्रकार कहा।

बाभ्रव्य बोले—पाण्डुनन्दन! आपने नारदजीसे जो कुछ कहा है, वह सब सत्य है। प्रत्येक मनुष्यके मनमें ऐसा सन्देह हो जाता है। इस विषयमें भगवान् श्रीकृष्णके मुखसे जो बात सुनी है, वही मैं आपको बताऊँगा। आजसे कुछ काल पहलेकी बात है, सम्पूर्ण यादवोंको आनन्दित करनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण महीसागरसंगमकी यात्रामें इधर आये थे। उनके साथ उग्रसेन, वसुदेव तथा बभ्रु, प्रद्युम्न आदि भी थे। भगवान्ने कुटुम्बीजनोंके साथ महीसागरसंगममें स्नान करके बहुत दान किये। पिण्डदान आदि करके देवपूजनके

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

पश्चात् नारदजीकी भी पूजा की। तदनन्तर यादवोंकी सभामें महाराज उग्रसेन इस प्रकार बोले—'जगदीश्वर श्रीकृष्ण! मैं एक सन्देह पूछता हूँ, आप उसका समाधान करें। ये जो महाबुद्धिमान् नारदजी हैं, समस्त संसारमें इनकी ख्याति है। मैं जानना चाहता हूँ, ये अत्यन्त चपल क्यों हैं? क्यों वायुकी भाँति समस्त जगत्में चक्कर लगाया करते हैं? इन्हें कलह कराना इतना प्रिय क्यों है? तथा आपमें इनका अत्यन्त प्रेम कैसे है?'

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—राजन्! आपने जो पूछा है, वह सत्य है। मैं इसका कारण बतलाता हूँ। पूर्वकालमें प्रजापति दक्षने मुनिश्रेष्ठ नारदको शाप दिया था। ऐसा इसलिये हुआ कि सृष्टि-मार्गमें लगे हुए दक्षके कुछ पुत्रोंको नारदजीने अपने वैराग्यपूर्ण उपदेशोंसे विरक्त बनाकर वहाँसे अन्यत्र भेज दिया। यह घटना एक ही बार नहीं, दो बार हुई। यह सब देखकर दूसरे पुत्रोंके भी विचलित होनेसे रुष्ट होकर दक्षने शाप दिया—'नारद! तुम सदा संसारमें भ्रमण करते रहोगे, कहीं भी तुम्हारे ठहरनेके लिये स्थान न मिलेगा तथा तुम इधर-उधरकी चुगली खानेवाले होओगे।'

ये दो शाप प्राप्त करके उन्हें दूर करनेमें समर्थ होकर भी नारद मुनिने ज्यों-के-त्यों स्वीकार कर लिये। यही साधुता है कि स्वयं समर्थ होकर भी दूसरोंके अपराध क्षमा कर दे। नारदजी पहले यह देख लेते हैं कि अमुक दैत्य या राक्षस आदिका विनाशकाल आ पहुँचा है, तब वे उसकी कलह-भावना बढ़ाते हैं और चुगलीके लिये झूठ न बोलकर सच्ची बात बताया करते हैं, इसलिये वे पापसे लिप्त नहीं होते। सर्वत्र भ्रमण करते रहनेपर भी इनका मन ध्येयसे विचलित नहीं होता, अतः भ्रमदोषसे ये भ्रान्त नहीं होते तथा मुझमें जो इनका अधिक प्रेम है, उसका भी कारण सुनिये। मैं देवराज इन्द्रद्वारा किये गये स्तोत्रसे दिव्यदृष्टिसम्पन्न श्रीनारदजीकी सदा स्तुति करता हूँ। वह स्तोत्र श्रवण कीजिये—

'जो ब्रह्माजीकी गोदसे प्रकट हुए हैं, जिनके मनमें अहंकार नहीं है, जिनका विश्वविख्यात चरित्र किसीसे छिपा नहीं है, उन देवर्षि नारदको मैं नमस्कार करता हूँ। जिनमें अरति (उद्वेग), क्रोध, चपलता और भयका सर्वथा अभाव है, जो धीर होते हुए भी दीर्घसूत्री (किसी कार्यमें अधिक विलम्ब करनेवाले) नहीं हैं, उन नारदजीको मैं प्रणाम करता हूँ। जो कामना अथवा लोभवश झूठी बात मुँहसे नहीं निकालते और समस्त प्राणी जिनकी उपासना करते हैं, उन नारदजीको मैं नमस्कार करता हूँ। जो अध्यात्मगतिके तत्त्वको जाननेवाले, ज्ञानशक्तिसम्पन्न तथा जितेन्द्रिय हैं, जिनमें सरलता भरी है तथा जो यथार्थ बात कहनेवाले हैं, उन नारदजीको मैं प्रणाम करता हूँ। जो तेज, यश, बुद्धि, नय, विनय, जन्म तथा तपस्या सभी दृष्टियोंसे बढ़े हुए हैं, उन नारदजीको मैं नमस्कार करता हूँ। जिनका स्वभाव सुखमय, वेष सुन्दर तथा भोजन उत्तम है; जो प्रकाशमान, पवित्र, शुभदृष्टिसम्पन्न तथा सुन्दर वचन बोलनेवाले

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth 279 Skandpuran_Section_9_1_Back

हैं; उन नारदजीको मैं प्रणाम करता हूँ। जो उत्साहपूर्वक सबका कल्याण करते हैं, जिनमें पापका लेश भी नहीं है तथा जो परोपकार करनेसे कभी अघाते नहीं हैं, उन नारदजीको नमस्कार करता हूँ। जो सदा वेद, स्मृति और पुराणोंमें बताये हुए धर्मका आश्रय लेते हैं तथा प्रिय और अप्रियसे रहित हैं, उन नारदजीको प्रणाम करता हूँ। जो समस्त संगोंसे अनासक्त हैं, तथापि सबमें आसक्त हुए-से दिखायी देते हैं, जिनके मनमें किसी संशयके लिये स्थान नहीं है, जो बड़े अच्छे वक्ता हैं, उन नारदजीको मैं नमस्कार करता हूँ। जो किसी भी शास्त्रमें दोषदृष्टि नहीं करते, तपस्याका अनुष्ठान ही जिनका जीवन है, जिनका समय कभी भगवच्चिन्तनके बिना व्यर्थ नहीं जाता और जो अपने मनको सदा वशमें रखते हैं, उन श्रीनारदजीको मैं प्रणाम करता हूँ। जिन्होंने तपके लिये श्रम किया है, जिनकी बुद्धि पवित्र एवं वशमें है, जो समाधिसे कभी तृप्त नहीं होते, अपने प्रयत्नमें सदा सावधान रहनेवाले उन नारदजीको मैं नमस्कार करता हूँ। जो अर्थलाभ होनेसे हर्ष नहीं मानते और लाभ न होनेपर मनमें क्लेशका अनुभव नहीं करते, जिनकी बुद्धि स्थिर तथा आत्मा अनासक्त है, उन नारदजीको नमस्कार करता हूँ। जो सर्वगुणसम्पन्न, दक्ष, पवित्र, कातरतारहित, कालज्ञ और नीतिज्ञ हैं, उन देवर्षि नारदको मैं भजता हूँ।'

नारदजीके इस स्तोत्रका मैं नित्य जप करता हूँ। इससे वे मुनिश्रेष्ठ मुझपर अधिक प्रेम रखते हैं। दूसरा कोई भी यदि पवित्र होकर प्रतिदिन इस स्तुतिका पाठ करे तो देवर्षि नारद बहुत शीघ्र उसपर अपना अतिशय कृपाप्रसाद प्रकट करते हैं। राजन्! आप भी नारदजीके इन गुणोंको सुनकर प्रतिदिन इस पवित्र स्तोत्रका जप करें, इससे वे मुनि आपपर बहुत प्रसन्न होंगे।

बाभ्रव्य कहते हैं—श्रीकृष्णके मुखसे नारदजीके इन गुणोंको सुनकर राजा उग्रसेन बहुत प्रसन्न हुए और उनके बताये अनुसार उनका स्तोत्रपाठ भी किया। तदनन्तर नारदजीकी पूजा करके तथा पर्याप्त दान देकर अपने बन्धु-बान्धव एवं कुटुम्बी जनोंके साथ भगवान् श्रीकृष्ण द्वारकापुरीको लौट गये। अर्जुन! तुम भी नारदजीके इन गुणोंका श्रवण करके श्रद्धामय होकर उनका पूजन करो।

बाभ्रव्यका यह वचन सुनकर अर्जुनको बड़ा विस्मय हुआ। उनके अंगोंमें रोमांच हो आया और उन्होंने भक्तिपूर्वक नारदजीके चरणोंमें प्रणाम किया। तत्पश्चात् इस प्रकार कहा—'मुने! आपके मुखसे इस गुप्तक्षेत्रका माहात्म्य सुनकर मुझे तृप्ति नहीं होती, अतः पुनः उसका वर्णन कीजिये।'

नारदजीने कहा—अर्जुन! पूर्वकालमें महायोगी अक्षपाद गौतम मुनि हो गये हैं, जो गोदावरी गंगाको यहाँ लाये थे और अहल्याके पति थे। वे बड़े शक्तिशाली थे। उन्होंने गुप्तक्षेत्रका माहात्म्य सुनकर और उसे सर्वोत्तम जानकर वहाँ योगसाधना करते हुए भारी तपस्या प्रारम्भ की। तदनन्तर महात्मा गौतमने योगसिद्धि प्राप्त करके इस तीर्थमें गौतमेश्वर नामसे प्रसिद्ध शिवलिंगकी स्थापना की। इस गौतमेश्वर लिंगको भलीभाँति नहलाकर उसपर चन्दनका आलेप करके उसे भाँति-भाँतिके पुष्पोंसे पूजे और गुग्गुलकी धूप जलावे। ऐसा करनेवाला मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो रुद्रलोकमें प्रतिष्ठित होता है।

अर्जुन बोले—देवर्षे! मैं योगके स्वरूपका तात्त्विक विवेचन सुनना चाहता हूँ, क्योंकि योगको समस्त उत्तम साधनोंसे भी उत्तम बताकर सब लोग उसकी बड़ी प्रशंसा करते हैं।

नारदजीने कहा—कुरुश्रेष्ठ! मैं संक्षेपसे ही तुम्हें योगका तत्त्व बतलाता हूँ। इसके सुननेसे भी चित्त निर्मल होता है, फिर सेवन करनेसे तो कहना ही क्या है? चित्तकी वृत्तियोंको जो रोकना है, वही योगका तत्त्व कहलाता है। योगी

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

पुरुष अष्टांगकी विधिसे उसकी साधना करते हैं। यम, नियम, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्येय, ध्यान और समाधि—ये योगके आठ[१] अंग हैं। इस प्रकार योग आठ अंगोंसे युक्त बताया गया है। उन आठोंमेंसे प्रत्येकका लक्षण क्रमशः सुनो, जिसके साधनसे साधकको योगकी प्राप्ति होती है। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह—ये पाँच 'यम' कहे गये हैं, इन सबका भी लक्षण सुनो। जो सम्पूर्ण प्राणियोंमें आत्मभाव रखकर सबके हितके लिये चेष्टा करता है, उसकी यह प्रवृत्ति 'अहिंसा' कही गयी है। जिसका वेदोंमें भी विधान किया गया है, जो स्वयं देखा गया हो, सुना गया हो, अनुमान किया गया हो, अथवा अपने अनुभवमें लाया गया हो, उसे दूसरोंको पीड़ा न देते हुए यथार्थरूपसे वाणीद्वारा प्रकट करना 'सत्य' कहलाता है। अपने ऊपर आपत्ति पड़नेपर भी मन, वाणी और क्रियाद्वारा किसी प्रकार भी दूसरोंका धन न लेना 'अस्तेय' कहा गया है। मन, वाणी, शरीर और क्रियाद्वारा मैथुनसे सर्वथा दूर रहना यह संन्यासियोंका 'ब्रह्मचर्य' है तथा ऋतुकालमें अपनी ही पत्नीके साथ केवल एक बार समागम करना तथा अन्य समयमें पूर्ण संयम रखना यह गृहस्थोंका 'ब्रह्मचर्य' है। मन, वाणी, शरीर और क्रियाद्वारा सब वस्तुओंका त्याग कर देना यह संन्यासियोंका 'अपरिग्रह' है तथा सब वस्तुओंका संग्रह रखते हुए भी केवल मनसे उनका त्याग करना—उनके प्रति ममता और आसक्तिका न होना—यह गृहस्थोंका 'अपरिग्रह' माना गया है। ये पाँच यम बताये गये हैं। अब पाँच नियमोंका श्रवण करो। शौच, सन्तोष, तप, जप और गुरुभक्ति—ये पाँच[२] नियम हैं। अब इनका भी पृथक्-पृथक् लक्षण श्रवण करो। शौच दो प्रकारका बतलाया जाता है—बाह्य और आभ्यन्तर। मिट्टी और जलसे जो शरीरकी शुद्धि की जाती है, वह 'बाह्य शौच' कहलाता है और मनकी शुद्धिको 'आन्तरिक शौच' कहते हैं। न्यायसे प्राप्त हुई जीविका या भिक्षा अथवा वार्ता (कृषि-वाणिज्य आदि)-के द्वारा जो कुछ प्राप्त हो, उसीसे सदा सन्तुष्ट रहना 'सन्तोष' कहलाता है। अपने आहारको घटाते हुए साधक पुरुष जो चान्द्रायण आदि विहित तपका अनुष्ठान करता है, उसका नाम 'तप' है। वेदोंके स्वाध्याय तथा प्रणवके अभ्यास आदिको 'जप' कहा गया है। भगवान् शिव ही ज्ञानस्वरूप गुरु हैं, उनमें जो भक्ति की जाती है, वही 'गुरुभक्ति' मानी गयी है। इस प्रकार नियमों और यमोंका भलीभाँति साधन करके विद्वान् पुरुष प्राणायामके लिये सन्नद्ध होवे, अन्यथा वह योगकी सिद्धि नहीं कर सकता; क्योंकि जिसका शरीर बाहर और भीतरसे शुद्ध नहीं हुआ है, उसमें वायुका महान् प्रकोप हो जाता है और वायुके प्रकोपसे शरीरमें कोढ़ हो जाती है। इतना ही नहीं, वह जडता आदिका भी उपभोग करता है (लकवा आदि मार जानेसे उसका शरीर जड हो जाता है), इसलिये बुद्धिमान् पुरुष शरीरको शुद्ध करके ही दूसरे साधनके लिये प्रयोग करे। पाण्डुनन्दन! अब मैं प्राणायामका लक्षण बतलाता हूँ, सुनो।

१- पातंजलयोगदर्शनके अनुसार योगके आठ अंगोंमें आसनकी भी गणना की गयी है, ध्येय तो साध्य है। अतः साधनका अंग नहीं हो सकता; इसलिये वहाँ साध्यको अष्टांगोंमें नहीं लिया गया है। यम-नियम आदि अन्य सात साधन उसमें भी वे ही हैं, जो यहाँ स्कन्दपुराणमें दिये गये हैं।

२- योगदर्शनमें शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान—ये पाँच नियम कहे गये हैं। यहाँ भी तीन तो वैसे ही हैं। स्वाध्यायके स्थानमें यहाँ जप लिया गया है। परन्तु जपके लक्षणमें स्वाध्यायको ग्रहण करके दोनोंकी एकता मान ली गयी है। शिवकी भक्ति ही यहाँ गुरुभक्ति है, अतः यह भी ईश्वर-प्रणिधानसे भिन्न नहीं है।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth 279 Skandpuran_Section_9_2_Back

प्राण और अपान वायुका निरोध 'प्राणायाम' कहलाता है। विद्वान् पुरुषोंने उसे तीन प्रकारका बतलाया है—लघु, मध्यम और उत्तरीय (उत्तम)। लघु प्राणायाम बारह मात्राका होता है। आँखको बंद करने और खोलनेमें जितना समय लगता है, वह एक मात्रा है। लघुसे दूना अर्थात् चौबीस मात्रावाला मध्यम प्राणायाम बताया गया है। त्रिगुण अर्थात् छत्तीस मात्राका उत्तम प्राणायाम माना गया है। प्रथम अर्थात् लघु प्राणायामसे स्वेद (पसीने)-को जीते, मध्यमसे कम्पको तथा तृतीय (उत्तम) प्राणायामसे विषादको जीते। इस प्रकार क्रमशः इन तीनों दोषोंपर विजय प्राप्त करे। किसी सुन्दर आसनपर सुखपूर्वक विराजमान हो पद्मासन* लगाकर रेचक, पूरक और कुम्भक भेदसे त्रिविध प्राणायामका अभ्यास करे। प्राणोंका उपरोध (संयम) करनेसे उस साधनका नाम 'प्राणायाम' है। जैसे आगमें धौंके जानेपर पर्वतीय धातुओंकी मैल जल जाती है, उसी प्रकार प्राणायामसे इन्द्रियजनित सम्पूर्ण दोष दग्ध हो जाते हैं। सौ कपिला गायोंका दान करनेसे जो फल प्राप्त होता है, वही प्राणायामसे भी मिल जाता है। इसलिये योगज्ञ पुरुष सदैव प्राणायाम करे। प्राणायामसे शान्ति आदि दिव्य गुण सिद्ध होते हैं। शान्ति, प्रशान्ति, दीप्ति और प्रसाद—ये क्रमशः प्रकट होनेवाले दिव्य गुण हैं। स्वाभाविक और आगन्तुक पापोंकी निवृत्ति तथा उनकी वासनाओंका शमन यह 'शान्ति' नामक प्रथम गुण है। मन और बुद्धिके द्वारा लोभ और मोहरूपी दोषोंका पूर्णतया निराकरण करके जो शान्तिकी प्राप्ति होती है, उसीको इस लोकमें 'प्रशान्ति' कहते हैं। भूत, भविष्य, दूरस्थ तथा अदृश्य पदार्थोंका यहाँ भलीभाँति ज्ञान होना ही 'दीप्ति' है। सम्पूर्ण इन्द्रियोंकी प्रसन्नता तथा बुद्धि और प्राणोंकी भी निर्मलताको 'प्रसाद' कहा गया है। इस प्रकार ये चार फल प्राणायामके द्वारा प्राप्त करने योग्य हैं। ऐसे फलवाले प्राणायामका योगी पुरुष सदैव अभ्यास करे। जैसे सदा सेवन करनेपर सिंह, व्याघ्र और हाथी भी मृदुता (कोमलता एवं नम्रता)-को प्राप्त होते हैं, उसी प्रकार प्राणायामद्वारा साधित (संयममें लाया हुआ) प्राण भी वशमें हो जाता है। यह प्राणायाम बताया गया। अब प्रत्याहारका वर्णन सुनो। विषय-सेवनमें लगे हुए चित्तको विषयोंकी ओरसे लौटानेका जो प्रयत्न है, उसे 'प्रत्याहार' बताया गया है। चित्तको संयममें रखना ही प्रत्याहारका मुख्य लक्षण है। इस प्रकार प्रत्याहार बताया गया। अब धारणाका लक्षण सुनो। जैसे जल पीनेकी अभिलाषा रखनेवाले लोग पत्र और नाल आदिके द्वारा धीरे-धीरे जल पीते हैं, उसी प्रकार योगी पुरुष धारणाद्वारा साधित वायुका धीरे-धीरे पान करता है। गुदा, लिंग, नाभि, हृदय, तालु तथा भ्रूमध्यभाग (ललाट)-में क्रमशः चतुर्दल, षड्दल, दशदल, द्वादशदल, षोडशदल तथा द्विदल कमलका चिन्तन करके उन सबमें प्राणवायुकी धारणा करे और धीरे-धीरे एक स्थानसे समेटकर दूसरे स्थानमें ऊपर उठाते हुए उस प्राणको मस्तकके भीतर ब्रह्मरन्ध्रमें स्थापित कर दे। गुदा आदि छः अंग और चतुर्दल आदि छः चक्र—इन बारह स्थानोंमें प्राणवायुकी धारणा तथा संकोच करनेसे सब मिलकर बारह प्राणायाम

* पद्मासन लगानेकी विधि यह है—दायीं जाँघपर बायाँ चरण रखे और बायीं जाँघपर दायाँ चरण रखे। फिर बायें हाथको पीठकी ओरसे ले जाकर दायें चरणका अँगूठा दृढ़ताके साथ पकड़ ले। इसी प्रकार दायें हाथको पीछेकी ओरसे ले जाकर बायें चरणका अँगूठा पकड़ ले। फिर गर्दन झुकाकर अपनी ठोढ़ीको छातीमें सटा ले और नेत्रोंसे केवल नासिकाके अग्रभागको ही देखे। यह योगाभ्यासी पुरुषोंके उपयोगमें आनेवाला पद्मासन कहलाता है, यह रोगोंका नाश करनेवाला है।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

होते हैं। इसीको 'धारणा' कहा गया है। इन धारणाओंको सिद्ध कर लेनेपर योगी पुरुष अक्षर ब्रह्मकी समताको प्राप्त हो जाता है। धारणामें स्थित हुए पुरुषके ये जो ध्येयतत्त्व हैं, उसका लक्षण सुनो। अर्जुन! ध्येयतत्त्व बहुत प्रकारका है, उनका कहीं अन्त नहीं मिलता। कोई शिवका, कोई विष्णुका, कोई सूर्य और ब्रह्माका तथा कोई महादेवीका ध्यान करते हैं। जो जिसका ध्यान करता है, वह उसीमें लीन होता है, इसलिये सदा कल्याण करनेवाले पंचमुख भगवान् शंकरका ध्यान करना चाहिये। भगवान् शिव वृषभकी पीठपर पद्मासनसे विराजमान हैं, उनकी अंगकान्ति गौर है, उनके दस हाथ हैं और मुखपर अत्यन्त प्रसन्नता छा रही है तथा वे ध्यानमग्न हो रहे हैं। इस प्रकार तुम्हारे लिये 'ध्येय' का स्वरूप बताया गया। इसका सदा ध्यान करना चाहिये। 'ध्यान' का लक्षण इस प्रकार है। धारणामें स्थित हुआ साधक आधे पलके लिये भी अपने ध्येय (इष्टदेव)-से भिन्न वस्तुका चिन्तन न करे। इस प्रकार इस दुर्गम भूमिकामें स्थित होकर योगवेत्ता पुरुष कुछ भी चिन्तन न करे—यही 'समाधि' कहलाती है। समाधिका ठीक-ठीक लक्षण बता रहा हूँ, सुनो। जो शब्द, स्पर्श, रस, गन्ध तथा रूपसे सर्वथा रहित है, उस परम पुरुष परमात्माको प्राप्त हुआ योगी 'समाधिस्थ' कहा गया है। समाधिमें स्थित हुआ मनुष्य कभी विघ्नोंसे अभिभूत नहीं होता। भारी-से-भारी दुःख क्यों न आ जाय, वह उससे भी विचलित नहीं होता। उसके कानोंके पास यदि सैकड़ों शंख फूँके जायँ और बहुत-से नगाड़े पीटे जायँ तो भी वह बाहरके शब्दको नहीं सुनता। कोड़ोंके प्रहारसे उसे घायल कर दिया जाय, आगसे उसका शरीर जल जाय तथा सर्दीसे भरे हुए भयंकर स्थानमें उसे बैठा दिया जाय, तो भी वह बाहरके स्पर्शका अनुभव नहीं करता। फिर वैसे पुरुषके लिये बाहरी रूप, गन्ध और रसके विषयमें तो कहना ही क्या है? जो इस प्रकार आत्माका साक्षात्कार करके पुनः समाधिको प्राप्त करता है, उसे भूख और प्यास कभी बाधा नहीं पहुँचा सकती। निश्चल समाधिको पाकर मनुष्य जिस सुखका अनुभव करता है, वह न तो स्वर्गलोकमें है और न पातालमें ही है; फिर मनुष्यलोकमें तो वह हो ही कहाँ सकता है।

कुरुनन्दन! इस प्रकार योगमार्गमें आरूढ़ हुए पुरुषके लिये भी पाँच उपसर्ग प्राप्त होते हैं, जो बड़े ही कटु हैं—उनका परिचय सुनो। प्रातिभ, श्रावण, दैव, भ्रम और आवर्त—ये ही पाँच उपसर्ग हैं। सम्पूर्ण शास्त्रोंकी प्रतिभा (ज्ञान)-का हो जाना ही 'प्रातिभ' उपसर्ग है। यह है तो सात्त्विक परंतु इसके कारण जिसके हृदयमें अहंकार आ जाता है, इससे वह योगी अपनी स्थितिसे नीचे गिर जाता है। हजारों योजन दूरसे भी शब्दको सुन लेना 'श्रावण' नामक उपसर्ग है। यह दूसरा विघ्न है। यह भी सात्त्विक ही है परंतु इसके कारण भी जो गर्व करता है, वह नष्ट हो जाता है (साधनासे गिर जाता है)। जिससे देवताओंकी आठ योनियोंको देखता है, उस शक्तिका प्राप्त होना 'दैव' उपसर्ग है। यह भी सात्त्विक दोष है, इससे भी घमण्ड होनेपर साधकका विनाश होता है। जैसे जलके भँवरमें डूबा हुआ मनुष्य व्याकुल होता है, उसी प्रकार सहसा प्रकट हुए विविध विज्ञानके आवर्तमें जो चित्तकी व्याकुलता होती है, उसका नाम 'आवर्त' है। यह राजस दोष है, जो बड़ा भयंकर है। जब योगीका मन अनेक प्रकारके दोषोंसे आक्रान्त हो समस्त आधारोंसे भ्रष्ट होनेके कारण अवलम्बशून्य होकर भटकने लगता है तब उसे 'भ्रम' नामक दोष बताया जाता है। यह तामस दोष है। इन

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

अत्यन्त घोर उपद्रवोंसे योगका नाश हो जानेके कारण सम्पूर्ण देवयोनियाँ बार-बार आवर्तन करती (आवागमनमें पड़ी रहती) हैं।

इसलिये योगी मनोमय* श्वेत कंबलका आवरण डालकर परब्रह्म परमात्मामें चित्तको स्थिर करके निरन्तर उन्हींका चिन्तन करे। सिद्धिकी इच्छा रखनेवाले योगीको सदा सात्त्विक आहारका सेवन करना चाहिये। राजस और तामस आहारोंसे योगीको कभी सिद्धि नहीं प्राप्त हो सकती। स्वधर्मपालनमें लगे हुए श्रद्धालु, जितेन्द्रिय, श्रोत्रिय महात्माओंके यहाँ योगीको भिक्षा माँगनी चाहिये। भिक्षामें मिले हुए यवान्न, मट्ठा, दूध, जौकी लपसी, पका हुआ फल-मूल अथवा कन, तिलकी खली या सत्तू—ये सब पवित्र आहार हैं, जो योगियोंको सिद्धि प्रदान करनेवाले हैं।

योगका साधक विभिन्न लक्षणोंसे अपनी मृत्युका समय जानकर कालको वंचित करनेके लिये एकाग्रचित्त हो योगतत्पर हो जाय। अब मैं उन निमित्तों (लक्षणों)-को बतलाता हूँ, जिनसे योगवेत्ता पुरुष अपनी मृत्युको जान लेता है। लाल चमड़ा अथवा लाल वस्त्र धारण किये हुए हँसती-गाती हुई कोई स्त्री स्वप्नमें जिस पुरुषको दक्षिण दिशाकी ओर ले जाय, वह जीवित नहीं रहता। स्वप्नमें किसी नंगे संन्यासीको हँसते और उछलते-कूदते देखकर यह समझ लेना चाहिये कि उसके रूपमें अपनी मृत्यु आ गयी है। जो स्वप्नमें रीछ और वानरसे जुते हुए रथपर बैठकर गाता हुआ दक्षिण दिशाकी ओर जाता है अथवा कीचड़ या गोबरमें डूबता है, वह जीवित नहीं रहता। स्वप्नमें बिना जलकी नदीको केश, अंगार, भस्म अथवा सर्पमेंसे किसी एकके द्वारा भरी हुई देखकर मनुष्य जीवित नहीं रहता। यदि विकराल, भयंकर तथा क्रूर स्वभाववाले मनुष्य हाथमें हथियार लिये स्वप्नमें पत्थरोंसे मारें तो मनुष्य तत्काल मृत्युको प्राप्त हो जाता है। सूर्योदयकालमें रोती हुई गीदड़ी जिसके सामने होकर दाहिने अथवा बायें चली जाती है, वह भी शीघ्र मृत्युको प्राप्त हो जाता है। जो दीपके बुझनेकी गन्धको नहीं जानता, रातमें रक्तवमन करता है तथा दूसरेके नेत्रमें अपना प्रतिबिम्ब नहीं देख पाता, वह जीवित नहीं रहता। आधी रातमें इन्द्रधनुष और दिनमें तारागणोंको देखकर शास्त्रविश्वासी पुरुष यह मान ले कि उसकी आयु क्षीण हो गयी है। जिसकी नाक टेढ़ी हो जाय, कानोंमें नीचाई-ऊँचाई आ जाय तथा बायीं आँख सदा बहती रहे; उसकी आयु समाप्त हो गयी है। जब मुँह कुछ-कुछ लाल हो जाय और जीभ काली पड़ जाय, तब विद्वान् पुरुषको यह समझ लेना चाहिये कि अपनी मृत्यु समीप आ गयी है। जो स्वप्नमें ऊँट और गदहेकी सवारीसे दक्षिण दिशाकी ओर जाता है तथा जो अपने दोनों कान बंद करके आवाज नहीं सुन पाता; वह जीवित नहीं रहता है। स्वप्नमें जो गड्ढेमें गिर जाय और उसके निकलनेका दरवाजा बंद कर दिया जाय, जिससे वह फिर उठ न सके; जिसकी स्वच्छ दृष्टि भी लाल हो जाय, जो स्वप्नमें अग्निप्रवेश करके फिर वहाँसे न निकले, इसी तरह जलमें प्रवेश करके वहाँसे न निकले, तो वही उसके जीवनका अन्तिम काल है। जो रात या दिनमें दुष्ट भूतोंद्वारा मारा जाता है तथा जिसकी प्रकृतिमें कोई विकार आ गया है, उसके निकट ही यमराज और काल मौजूद हैं। जो भक्त होकर भी देवता, गुरु, पिता-माता तथा ज्ञानी पुरुषोंकी निन्दा और अवहेलना करता है, वह जीवित नहीं रहता है।

* मनसे यह भावना करे कि मेरे सब ओर श्वेत कंबलका आवरण पड़ा है, मैं अकेला हूँ, जगत्‌की कोई विघ्न-बाधा मेरे पासतक नहीं पहुँच सकती।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

योगवेत्ता पुरुष इस प्रकार मृत्युसूचक विपरीत लक्षणोंको देखकर उत्तम धारणाका आश्रय ले समाधिमें स्थिर हो जाय। यदि वह उस मृत्युको नहीं चाहता तो उसे वह नहीं प्राप्त होती अथवा यदि मुक्तिकी इच्छा हो तो उस मृत्युको ब्रह्मरन्ध्रमें छोड़ दे। इस प्रकार विमुक्त हुए शरीरमें भी जो उपसर्ग योगीको प्राप्त होते हैं, उनके नाम सुनो। ईशान, राक्षस, यक्ष, गन्धर्व, इन्द्र, चन्द्र, प्रजापति तथा ब्रह्मा—इनसे सम्बन्ध रखनेवाली आठ लोकोंमें क्रमशः आठ सिद्धियाँ होती हैं, जो इस प्रकार हैं—पार्थिवी, जलमयी, तैजसी, वायुसम्बन्धिनी, आकाशसम्बन्धिनी, मानसी, अहंकारोद्भवा तथा बुद्धिजा। इनमें प्रत्येकके आठ-आठ भेद हैं और ये उत्तरोत्तर लोकोंमें क्रमशः द्विगुण-त्रिगुण आदिके क्रमसे स्थित हैं। पूर्व अर्थात् ईशानलोकमें आठ सिद्धियाँ हैं और अन्तिम अर्थात् ब्रह्मलोकमें इनकी संख्या चौसठ हो जाती है। ऐसा किस प्रकार होता है, सो सुनो। मोटा होना, पतला होना, बालक बन जाना, बूढ़ा होना, जवान हो जाना, भिन्न-भिन्न जातिके जीवोंके रूपमें अपनेको प्रकट करना, एक ही जातिमें भी अनेक रूप ग्रहण करना तथा पार्थिव अंशके बिना ही केवल चार तत्त्वोंसे शरीरको धारण करना—ये आठ पार्थिवी सिद्धियाँ हैं, जो ईशानलोकमें पृथ्वीतत्त्वपर विजय प्राप्त होनेके बाद प्रकट होती हैं।

जलतत्त्वपर विजय होनेके पश्चात् मनुष्य पृथ्वीकी ही भाँति जलमें निवास करता है। बिना किसी घबराहटके समुद्रको पी सकता है, उसे सर्वत्र जलकी प्राप्ति होती है, वह सूखे फलको भी हरा और रसीला कर सकता है। पृथ्वी और जलको छोड़कर केवल तीन भूतोंसे शरीर धारण करता है। नदियोंको हाथमें रख सकता है, उसके शरीरमें कोई घाव नहीं होता तथा उसकी बड़ी सुन्दर कान्ति होती है। इस प्रकार ये आठ नूतन और आठ पहलेकी, कुल सोलह सिद्धियाँ राक्षसलोकमें मानी गयी हैं।

अग्नितत्त्वपर अधिकार हो जानेपर देहसे अग्नि प्रकट करना, अग्निके तापका भय दूर हो जाना, समस्त लोकोंको भस्म कर डालनेकी शक्तिका होना, पानीमें आग लगा देना, हाथसे आगको उठा लेना, स्मरणमात्रसे किसीको पवित्र कर देना, आगसे जलकर भस्म हुए पदार्थका पुनः निर्माण कर देना तथा केवल दो महाभूत वायु और आकाशके आधारपर शरीरको धारण करना—ये आठ तैजस सिद्धियाँ और पहलेकी सोलह सब मिलकर चौबीस सिद्धियाँ यक्षलोकमें प्रकट होती हैं।

मनके समान गमनशक्तिका होना, प्राणियोंके भीतर प्रवेश करना, पर्वत आदि बड़ी भारी वस्तुओंका भार लीलापूर्वक ढोना, हलका होना, भारी हो जाना, दोनों हाथोंसे वायुको पकड़ लेना, अंगुलिके अग्रभागके धक्केसे समूची पृथ्वीको हिला देना तथा एकमात्र आकाशतत्त्वसे ही शरीरको धारण करना—ये वायुसम्बन्धिनी शक्तियाँ गन्धर्वलोकमें हैं। पहलेकी चौबीस और आठ नूतन कुल मिलाकर बत्तीस सिद्धियाँ गन्धर्वलोकमें हैं।

अपनी छायाको मिटा देना, इन्द्रियोंका दर्शन न होना, सदा आकाशमें चलना, इन्द्रिय और मन आदिका स्वयं शान्त रहना, दूरके शब्दको सुन लेना, सब प्राणियोंके शब्दको समझ लेना, तन्मात्राओंके चिह्नको ग्रहण कर लेना तथा समस्त प्राणियोंको देखना—ये आठ आकाशतत्त्वको जीतनेसे प्राप्त होनेवाली तथा पहलेकी बत्तीस कुल चालीस सिद्धियाँ इन्द्रलोकमें हैं।

इच्छाके अनुरूप वस्तुओंका प्राप्त होना, जहाँ इच्छा हो वहीं निकल जाना, सब प्रकारकी शक्तियोंका होना, समस्त गोपनीय वस्तुओंको देखना तथा समस्त संसारकी घटनाओंको देखना आदि आठ सिद्धियाँ मानसी हैं—ये तथा पहलेकी चालीस कुल अड़तालीस सिद्धियाँ चन्द्रलोकमें मानी गयी हैं।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

काटना, तपाना, छेदना, संसारको बदल डालना, समस्त प्राणियोंको प्रसन्न कर देना तथा मृत्युकालपर विजय पाना आदि आठ अहंकारोद्भवा तथा पहलेकी अड़तालीस, कुल छप्पन सिद्धियाँ प्राजापत्यलोकमें हैं।

संकेतमात्रसे ही संसारकी सृष्टि कर देना, सबपर अनुग्रह करना, प्रलयका अधिकार प्राप्त कर लेना, अन्य लोगोंके चित्तमें प्रवेश करके उसे प्रेरित करना, जिसकी कहीं समता नहीं ऐसी वस्तु प्रकट कर देना, चित्रलिखित वस्तुको प्रत्यक्ष प्रकट कर देना, अशुभको शान्त कर देना तथा कर्तृत्वशक्तिसे सम्पन्न होना—ये आठ बुद्धिजनित सिद्धियाँ तथा पहलेकी छप्पन मिलाकर कुल चौसठ सिद्धियाँ ब्रह्मलोकमें विद्यमान हैं।

यह गोपनीय रहस्य मैंने तुमसे प्रकट किया है। ये सब सिद्धियाँ जीते-जी अथवा देह-भेद होनेपर योगीको प्राप्त होती हैं। परंतु इनके द्वारा सदैव पतनका भय बना रहता है। इसलिये योगीको इन सिद्धियोंके प्रति आसक्ति नहीं रखनी चाहिये। इन सब सिद्धिजनक गुणोंका निवारण करके सदा योगसाधनामें लगे रहनेवाले योगीको ऐसी आठ सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं, जो योगमें भलीभाँति सिद्धि प्रदान करनेवाली हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं—अणिमा, लघिमा, महिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व, वशित्व तथा कामावसायिता। ये आठ सिद्धियाँ माहेश्वरपदमें स्थिति सूचित करती हैं। सूक्ष्म-से-सूक्ष्म हो जाना 'अणिमा' शक्ति है। अत्यन्त शीघ्रतासे कोई काम करना 'लघिमा' है। समस्त लोकसे पूजनीय पदकी प्राप्ति होनेसे 'महिमा' मानी गयी है। 'प्राप्ति' नामक सिद्धि वह है, जब कि योगीके लिये कुछ भी अप्राप्य नहीं रह जाता है। सर्वत्र व्यापक होनेके कारण उसमें 'प्राकाम्य' नामक सिद्धिका उदय माना जाता है। सिद्ध योगी जिससे ईश्वरतुल्य हो जाता है, वह 'ईशित्व' नामक सिद्धि है। सबको वशमें करनेके कारण उसमें 'वशिता' नामक उत्तम सिद्धि मानी गयी है। जहाँ इच्छा हो वहीं पहुँच जाना 'कामावसायिता' नामक सिद्धि है। ये समस्त सिद्धियाँ ईश्वरपदको प्राप्त हुए योगीमें प्रकट होती हैं। इसलिये वह न तो जन्म लेता है, न बढ़ता है और न मृत्युको ही प्राप्त होता है। ऐसा योगी मुक्त कहा गया है। जो इस प्रकार मुक्ति पाता है, उसका आत्मा परमात्माके साथ उसी प्रकार एक हो जाता है, जैसे जलमें डाला हुआ जल परस्पर एकताको प्राप्त हो जाता है। योगका ऐसा फल जानकर योगी पुरुष सदा योगका अभ्यास करे। निर्मल योगीजन यहाँ योगसिद्धिके लिये कुछ उपमाएँ दिया करते हैं। जैसे सूर्यकान्तमणि चन्द्रमाकी किरणोंके संयोगसे अथवा चन्द्रकान्तमणिके सम्पर्कसे अग्नि प्रकट नहीं करता अपितु अकेला होनेपर ही सजातीय सूर्यकिरणके संयोगसे वह आग प्रज्वलित करता है, उसी प्रकार योगीकी भी उपमा है। योगी भी तभी सिद्धि लाभ करता है, जब वह प्रतिबन्धकोंसे दूर रहकर अनुकूल साधन-सामग्रीके साथ अकेला रहकर साधनमें संलग्न होता है। जैसे चिड़िया, चूहा और नेवला घरमें स्वामीकी भाँति निवास करते हैं और घर गिर जानेपर अन्यत्र चले जाते हैं, किंतु उनके मनको इसके लिये दुःख नहीं होता। यही उपमा योगीके लिये भी है। उसको भी देह-गेहमें ममता नहीं रखनी चाहिये। जैसे चींटी या दीमक अपने बहुत छोटे मुखाग्रसे थोड़ी-थोड़ी मिट्टी जमा करके मिट्टीका ढेर लगा देते हैं, यही उपदेश योगीके लिये भी है। योगी निरन्तर थोड़ी-थोड़ी साधनशक्तिका संचय करते हुए एक दिन महती योगशक्तिसे सम्पन्न हो जाता है। पत्र, पुष्प और फलसे भरे हुए वृक्षको पशु, पक्षी और मनुष्य आदि नष्ट

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

कर देते हैं। इस रहस्यको समझकर योगी पुरुष सिद्धि प्राप्त कर लेते हैं। सारांश यह कि यदि योगी भी सिद्धिका चमत्कार प्रकट करने लगे तो संसारके लोग उसे अपनी साधनासे भ्रष्ट कर देंगे। अतः उसे गुप्त रहकर ही साधना करनी चाहिये। हिरनके बच्चेके सिरपर जब पहले सींग उगते हैं तो वे तिलकके समान दिखायी देते हैं और धीरे-धीरे बढ़कर बहुत बड़े हो जाते हैं। इस बातको लक्ष्य करके योगी उस हिरनके सींगके साथ-साथ यदि बढ़ने लगे (धीरे-धीरे अपनी साधना बढ़ाता रहे) तो वह सिद्धिको प्राप्त कर लेता है। मनुष्य जल या तेल आदि द्रव पदार्थोंसे भरे हुए पात्रको लेकर पृथ्वीसे बहुत ऊँचे मार्गपर चढ़ जाता है, यह देखकर भी क्या योगी पुरुषोंको अपने कर्तव्यका ज्ञान नहीं होता? उसको भी चाहिये कि वह अत्यन्त सावधान होकर योगके उच्च शिखरपर आरोहण करे।

वही घर है, जहाँ निवास हो; वही भोजन है, जिससे जीवनकी रक्षा हो। जिससे प्रयोजन सिद्ध हो और जो स्वयं ही योगसिद्धिमें सहायक हो, वैसे ही ज्ञानकी योगी उपासना करे। वही उसके लिये कार्यसाधक हो सकता है। नाना प्रकारके ज्ञानका जो अधिक संग्रह है, वह योगकी साधनामें विघ्नकारक ही होता है। जो 'यह जानने योग्य है, यह जानने योग्य है' ऐसा सोचते हुए बहुविध ज्ञानके लिये प्यासा फिरता है, वह एक हजार कल्पोंमें भी ज्ञेय वस्तुको नहीं प्राप्त कर सकता। आसक्ति छोड़कर, क्रोधको जीतकर परिमित आहारका सेवन करते हुए जितेन्द्रिय होवे और बुद्धिके द्वारा इन्द्रियद्वारोंको बंद करके मनको ध्यानमें लगावे। सात्त्विक आहारका सेवन करे; ऐसे आहारका नहीं, जिससे उसका चित्त काबूके बाहर हो जाय। चित्तको बिगाड़नेवाले आहारका सेवन करनेवाला मनुष्य रौरव नरकका प्रिय अतिथि होता है। वाणी दण्ड है, कर्म दण्ड है और मन दण्ड है। ये तीनों दण्ड जिसके अधीन हैं; वह 'त्रिदण्डी' यति माना गया है। जब सामने आया हुआ मनुष्य अनुरक्त हो जाय, परोक्षमें गुणोंका कीर्तन होने लगे और कोई भी जीव उससे भयभीत न हो; तब यह सब योगीके लिये सिद्धिसूचक लक्षण बताया जाता है। लोलुपताका न होना, निरोग रहना, निष्ठुरताका अभाव होना, सुन्दर गन्ध प्रकट होना, मल और मूत्रका कम हो जाना, शरीरमें कान्ति, मनमें प्रसन्नता तथा वाणीमें कोमलता— ये योगसिद्धिके प्रारम्भिक चिह्न हैं। जो एकाग्रचित्त, ब्रह्मचिन्तन-परायण, प्रमादशून्य, पवित्र, एकान्तप्रेमी और जितेन्द्रिय है; वह महामना योगी इस योगमें सिद्धि प्राप्त करता है और उस योगके प्रभावसे मोक्षको प्राप्त हो जाता है। जिसका चित्त मोक्षमार्गमें आकर परब्रह्म परमात्मामें संलग्न हो सुखके अपार सिन्धुमें निमग्न हो गया है, उसका कुल पवित्र हो गया, उसकी माता कृतार्थ हो गयी, तथा उसे पाकर यह सारी पृथ्वी भी सौभाग्यवती हो गयी।* जिसकी बुद्धि अत्यन्त शुद्ध है, जो मिट्टीके ढेले और सुवर्णमें समान भाव रखता है, समस्त प्राणियोंमें सम भावसे निवास करता है; वह यत्नशील साधक अपनी साधना पूर्ण करके उस सर्वोत्कृष्ट सनातन एवं अविनाशी पदको प्राप्त होता है, जहाँ पहुँच जानेपर कोई भी मनुष्य पुनः इस संसारमें जन्म नहीं लेता।

अर्जुन! यह योगका रहस्य मैंने तुमसे बतलाया है। गौतमने ऐसे ही योगको प्राप्त किया और उन्होंने ही इस गौतमेश्वरलिंगको स्थापित

* कुलं पवित्रं जननी कृतार्था वसुन्धरा भाग्यवती च तेन। विमुक्तिमार्गे सुखसिन्धुमग्नं लग्नं परे ब्रह्मणि यस्य चेतः॥
(स्क० पु०, मा० कुमा० ५२। ३८)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

किया है, जो कि दर्शन करनेवाले मनुष्यके समस्त कलिकलुषका विनाश करनेवाला है। जो पुरुष आश्विनमासके कृष्णपक्षकी चतुर्दशीको रात्रिमें महान् उपहार समर्पित करके इस लिंगका पूजन करता है, वह पापरहित हो उसी लोकमें जाता है, जहाँ इस समय महामुनि गौतम विराजमान हैं। कुन्तीनन्दन! इस गुप्तक्षेत्रका माहात्म्य मैंने तुम्हें संक्षेपसे बताया है। जो यह सब सुनता है वह शुद्धचित्त हो जाता है। अब और क्या कहूँ?

महीसागरसंगमकी श्रेष्ठता तथा उसके गुप्त-क्षेत्र होनेका कारण

अर्जुनने पूछा—नारदजी! इस तीर्थको गुप्तक्षेत्र क्यों कहते हैं? जिसका इतना महान् प्रभाव सुना गया है, वह गुप्त कैसे हुआ?

नारदजी बोले—अर्जुन! इस क्षेत्रके गुप्त होनेका जो कारण है उसके विषयमें एक बहुत प्राचीन कथा है, उसको श्रवण करो। यह क्षेत्र पूर्वकालमें शापवश गुप्त हो गया था। एक समय किसी निमित्तसे सब तीर्थोंके अधिदेवता एकत्र हो ब्रह्माजीको प्रणाम करनेके लिये उनकी सभामें गये। सब तीर्थोंको आया हुआ देखकर ब्रह्माजी अपने समस्त सभासदोंके साथ उठकर खड़े हो गये। उनके नेत्र आश्चर्यसे खिले हुए थे। भगवान् ब्रह्माने हाथ जोड़कर सब तीर्थोंको प्रणाम किया और इस प्रकार कहा—'तीर्थवरो! आज आप सब लोगोंके पदार्पणसे पवित्र होकर हमारा स्थान सफल हो गया। हम सब देवता भी आपके दर्शनसे बहुत पवित्र हो गये। तीर्थोंका दर्शन, स्पर्श तथा स्नान सब परम कल्याणकारक है। बड़े-बड़े पापोंसे भरे हुए जो भयंकर एवं अत्यन्त निर्दय मनुष्य हैं, वे भी तीर्थमें पवित्र हो जाते हैं; फिर जो धर्मपरायण हैं, उनके लिये तो कहना ही क्या है?' यों कहकर ब्रह्माजीने अपने पुत्र पुलस्त्यको आज्ञा दी—'बेटा! तुम तीर्थोंके लिये शीघ्र ही अर्घ्य ले आओ, जिससे मैं पूजन करूँ। जब अर्घ्य देने योग्य असंख्य पुरुष एकत्र हो जायँ, तब पूजनकालमें उन सबमेंसे श्रेष्ठ एक पुरुषको एक अर्घ्य प्रदान करना चाहिये।'

पिताकी यह आज्ञा पाकर पुलस्त्यजी बड़े वेगसे एक उत्तम अर्घ्यपात्र सजाकर ले आये। ब्रह्माजीने उसे हाथमें लेकर सब तीर्थोंसे कहा—'आप सब लोग मिलकर किसी एक मुख्य तीर्थका नाम बतलावें, मैं उसीको अर्घ्य देना चाहता हूँ। ऐसा करनेसे मुझे अन्यायरूपी दोष नहीं लगेगा।'

तीर्थ बोले—प्रभो! हम किसी प्रकार भी आपसमें श्रेष्ठताका निर्णय नहीं कर पाते। इसीलिये आपके पास आये हैं। आप ही हममेंसे जो श्रेष्ठ हो उसको समझकर अर्घ्य दे दीजिये।

ब्रह्माजी बोले—मैं आपलोगोंमेंसे किसी एककी श्रेष्ठताको नहीं समझ पाता। आपलोगोंको नमस्कार है। आप सभी अपार महिमासे सम्पन्न हैं। अतः स्वयं ही अपनेमेंसे श्रेष्ठ पुरुषको बतलावें।

ब्रह्माजीके ऐसा कहनेपर जब उनमेंसे कोई भी बहुत देरतक कुछ न बोला, तब महीसागरसंगम तीर्थने कहा—'चतुरानन! आप शीघ्र मुझे यह अर्घ्य प्रदान करें; क्योंकि दूसरा कोई भी तीर्थ मेरी करोड़वीं कलाके सामने भी पूरा नहीं पड़ता। पूर्वकालमें महाराज इन्द्रद्युम्नकी तपस्यासे तपकर यह सर्वतीर्थमयी समूची पृथ्वी ही मही नामवाली नदी हो गयी। वह सब तीर्थोंसहित मुझसे आकर मिली है, इसलिये मैं तीनों लोकोंमें सर्वतीर्थमय होकर प्रसिद्ध हूँ।'

तीर्थराज महीसागरसंगमके ऐसा कहनेपर अन्य सब तीर्थ मौन रहे। देखें ब्रह्माजी हमारे विषयमें क्या कहते हैं, यह सोचकर कोई कुछ न बोले।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

तब ब्रह्माजीके ज्येष्ठ पुत्र धर्मने अपनी दाहिनी भुजा उठाकर इस प्रकार कहा—'अहो! बड़े कष्टकी

बात है, इस तीर्थराज महीसागरसंगमने मोहवश बड़ी कुत्सित बात कह डाली है। साधु पुरुषोंको उचित है कि वे अपनेमें अच्छे गुण होते हुए भी उनका अपने ही मुखसे बखान न करें। जो भरी सभामें दूसरोंपर आक्षेप करते हुए अपने गुणोंका वर्णन करता है, वह रजोगुणी, अहंकारी तथा निन्दित है। इसलिये यह तीर्थ इन सब गुणोंके रहते हुए भी अपने अहंकारके कारण विख्यात न होगा। इसका स्वरूप विध्वस्त-सा हो जायगा।'

धर्मदेवके ऐसा कहनेपर सब ओर हाहाकारका शब्द गूँज उठा। तब योगीश्वर स्कन्दजी तथा मैं दोनों शीघ्रतापूर्वक वहाँ जा पहुँचे। कार्तिकेयने उस देवसमाजमें धर्मसे इस प्रकार कहा—'धर्म! तुमने धृष्टताके कारण जो यह शाप दे डाला है, वह अनुचित ही हुआ है। कोई भी बतावे तो सही कि तीनों लोकोंमें विद्यमान समस्त तीर्थोंमेंसे कौन-सा ऐसा तीर्थ है, जिससे यह महीसागरसंगम अर्घ्य पानेका अधिकारी नहीं है? इस तीर्थराजने अपने जिस गुणका वर्णन किया है, वह सब इसमें मौजूद है। ऐसी दशामें कौन-सी बुराई हो गयी? क्योंकि अवगुण तो झूठ बोलनेमें है, सत्य कहनेमें नहीं! अहो! जो सबका पालन करनेवाले हैं, उनके द्वारा ऐसा बर्ताव होना कदापि उचित नहीं है। यदि वे भी विचार न करके ऐसे कार्य करेंगे तब प्रजा किसकी शरणमें जायगी।'

स्कन्द स्वामीके ऐसा कहनेपर धर्मने इस प्रकार उत्तर दिया—'आपका यह कहना ठीक है कि यह महीसागरसंगम सब तीर्थोंमें प्रधान होने और ब्रह्माजीसे अर्घ्य पानेके सर्वथा योग्य है, किंतु साधु पुरुषोंका यह सनातन नियम है कि अपने ही मुँहसे अपने गुणोंका बखान नहीं करना चाहिये। दूसरोंका किया हुआ आक्षेप और अपनी प्रशंसा—ये दो दोष ब्रह्माजीको भी अपने पदसे विचलित कर सकते हैं। दूसरोंपर आक्षेप करते हुए अपनी प्रशंसा करनेवाले राजा ययाति क्या स्वर्गसे नीचे नहीं गिर गये थे? बुद्धिमान् ईश्वरने पूर्वकालमें जो-जो बातें प्रमाणित कर दी हैं, उन सबका भलीभाँति पालन करना चाहिये। कौन विद्वान् उनका उल्लंघन कर सकता है? कार्तिकेयजी! आपके पिताने आदेश देकर जिस कार्यके लिये हमें नियुक्त किया है, हम सदा उसीका पालन करते हैं। आपको भी उसका पालन करना चाहिये।'

यों कहकर धर्म जब अपनी मुद्रा त्याग देनेको तैयार हो गये, तब मैंने उस प्रस्तावपर विचार करके यह बात कही—'विश्वको धारण करनेवाले परम महान् महात्मा धर्मको नमस्कार है। ब्रह्मा, विष्णु और शिव भी जिनकी प्रतिदिन पूजा करते हैं, उन पापनाशी धर्मको नमस्कार है। धर्म! यदि कदाचित् आप मुद्रा त्याग देंगे तो हमलोगोंकी सत्ता कैसे रह सकती है? प्रभो! आप इस विश्वका नाश न कीजिये। योगीश्वर कार्तिकेयको आप सम्मान देने योग्य हैं। ये साक्षात् भगवान् शंकरके पुत्र हैं; अतः उन्हींकी भाँति हम सबके लिये

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

माननीय हैं। मानद! आपने इस तीर्थराजको विख्यात न होनेका जो शाप दे दिया है, उसका निवारण करनेके लिये अनुग्रह कीजिये।'

मेरे ऐसा कहनेपर ब्रह्माजीने मेरी प्रशंसा करते हुए कहा—धर्म! नारदने अच्छी बात कही है, तुम इनकी बात मानो। तब धर्मने कार्तिकेयजीसे कहा—'हमलोग जिसके किंकर हैं, उन परम सिद्ध कार्तिकेयजीको नमस्कार है। स्कन्द! मेरे नाथ! मेरी यह विनय ध्यान देकर सुनिये। स्तम्भ अर्थात् गर्वके कारण यह महातीर्थ अप्रसिद्ध होगा तथापि शनिवारकी अमावास्याको महीसागरकी यात्रा करनेसे जो फल मिलेगा, उसपर ध्यान दीजिये—प्रभासकी दस बार, पुष्करकी सात बार और प्रयागकी आठ बार यात्रा करनेसे जो फल होता है वही फल इसकी एक बारकी यात्रासे प्राप्त होगा।'

इस प्रकार वरदान देनेपर कार्तिकेयजी मन-ही-मन बहुत प्रसन्न हुए। ब्रह्माजीने भी एकाग्रचित्त होकर स्तम्भ तीर्थको अर्घ्य दिया और उसे सब तीर्थोंमें श्रेष्ठता प्रदान की। फिर सब तीर्थों और स्कन्द स्वामीको सम्मान देकर विदा किया। इस तीर्थके गुप्त होनेका यही प्राचीन वृत्तान्त है। इस प्रकार मैंने तुमसे सम्पूर्ण तीर्थके महान् फलका वर्णन किया। यह सब आदिसे ही सुनकर पुरुष सब पापोंसे मुक्त हो जाता है।

सूतजी कहते हैं—यह सब सुनकर विस्मयमें पड़े हुए अर्जुनने उस तीर्थकी बड़ी प्रशंसा की और नारद आदिसे विदा लेकर द्वारकाको प्रस्थान किया।

घटोत्कचका विवाह और बर्बरीकका जन्म

शौनकजी बोले—सूतजी! आपने गुप्तक्षेत्रके इस अत्यन्त अद्भुत, परम पावन, अनुपम तथा हर्षवर्धक माहात्म्यका वर्णन किया। यहाँ अब हम यह जानना चाहते हैं कि चण्डिल और विजय कौन थे तथा सिद्धमाताकी कृपासे उन्होंने कैसे सिद्धि प्राप्त की? यह सब यथार्थरूपसे कहिये।

उग्रश्रवा (सूतजी)-ने कहा—ब्रह्मन्! इस विषयमें मैं श्रीव्यासजीके मुखसे सुनी हुई कथा कहूँगा। पहलेकी बात है, पाण्डवोंने राजा द्रुपदकी पुत्री द्रौपदीको पाकर धृतराष्ट्रकी आज्ञासे इन्द्रप्रस्थ नामक नगर बसाया। वे वहाँ भगवान् वासुदेवसे सुरक्षित होकर रहते थे। एक समय पाण्डव अपनी राजसभामें बैठकर नाना प्रकारकी बातें कर रहे थे, इतनेहीमें भीमका पुत्र घटोत्कच वहाँ आया। उसे आया देख पाँचों भाई पाण्डव तथा परम पराक्रमी श्रीकृष्ण सहसा सिंहासनसे उठे और बड़ी प्रसन्नताके साथ सबने घटोत्कचको हृदयसे लगाया। भीमनन्दन घटोत्कचने भी अत्यन्त विनीतभावसे उन सबको प्रणाम किया। तत्पश्चात् राजा युधिष्ठिरने उसे अपनी गोदमें बिठाकर आशीर्वाद दिया और स्नेहपूर्वक उसका मस्तक सूँघते हुए सभामें इस प्रकार पूछा—'बेटा! कहाँसे आते हो? इतने दिनोंतक कहाँ विचरते रहे? हिडिम्बाकुमार! तुम देवता, ब्राह्मण, गौ तथा साधु-महात्माओंका कोई अपराध तो नहीं करते हो? भगवान् श्रीकृष्णमें और हमलोगोंमें तुम्हारा प्रेम तो है न? तुम्हारा अत्यन्त प्रिय करनेवाली तुम्हारी माता हिडिम्बा तो खूब प्रसन्न है न?'

धर्मराजके इस प्रकार पूछनेपर हिडिम्बाकुमारने कहा—महाराज! मेरे मामाके मारे जानेपर मैं उसीके राज्यसिंहासनपर बिठाया गया हूँ और दुष्टोंका दमन करता हुआ सर्वत्र विचरता हूँ। मेरी माता हिडिम्बा देवी भी कुशलसे हैं, वे इस समय दिव्य तपस्यामें लगी हुई हैं। उन्होंने मुझे आज्ञा दी है—'बेटा! तुम सदा अपने पिता पाण्डवोंमें भक्ति रखनेवाले बनो।' माताकी यह बात सुनकर

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

मैं भक्तियुक्त चित्तसे आपको प्रणाम करनेके लिये ही मेरुगिरिके शिखरसे यहाँ आया हूँ। मेरी इच्छा है कि आपलोग मुझे किसी महान् कार्यमें नियुक्त करें। क्योंकि यही इस जीवनका महान् फल है कि पुत्र सदा अपने पितृवर्गकी आज्ञाका पालन करे। इससे वह पुण्यलोकोंपर विजय पाता है और इस संसारमें भी यशस्वी होता है।

घटोत्कचके ऐसा कहनेपर धर्मराज युधिष्ठिर उससे इस प्रकार बोले—'बेटा! तुम्हीं हमारे भक्त और सहायक हो। हिडिम्बाकुमार! निश्चय ही जैसी माता होती है, वैसा ही उसका पुत्र भी होता है। तुम्हारी माता हमलोगोंके प्रति अविचल भक्ति रखनेवाली है, तुम भी ऐसे ही हो। अहो! मेरी प्यारी पतोहू हिडिम्बादेवी बड़ा कठिन कार्य कर रही है, जो कि अपने प्यारे पतिकी सेवाका सुख छोड़कर तपस्यामें ही संलग्न है।

इस प्रकार बहुत-सी बातें कहकर धर्मराजने भगवान् श्रीकृष्णसे कहा—पुण्डरीकाक्ष! आप तो जानते ही हैं कि घटोत्कचका जन्म भीमसेनसे हुआ है। यह उत्पन्न होते ही तरुण हो गया था। श्रीकृष्ण! मैं चाहता हूँ, मेरे इस पुत्रको योग्य पत्नी प्राप्त हो, आप सर्वज्ञ हैं, बताइये, इसके योग्य पत्नी कौन हो सकती है? धर्मराजके ऐसा कहनेपर भगवान् श्रीकृष्णने क्षणभर ध्यान करके उनसे कहा—'राजन्! मैं बतलाता हूँ, घटोत्कचके योग्य एक बड़ी सुन्दरी स्त्री है, जो इस समय प्राग्ज्योतिषपुरमें निवास करती है। अद्भुत पराक्रम करनेवाला जो मुर नामक दैत्य था, उसीकी वह पुत्री है। मुर दैत्य बड़ा भयंकर था और पाशमय दुर्गमें रहता था। वह मेरे हाथसे मारा गया। उसके मारे जानेपर उसकी पुत्री कामकटंकटा मुझसे युद्ध करनेके लिये आयी। वह अत्यन्त पराक्रमी होनेके कारण बड़ी भयानक जान पड़ती थी। तब खड्ग और खेटक धारण करनेवाली उस दैत्य-कन्याके साथ महासमरमें मैंने भी युद्ध आरम्भ किया। मेरे शार्ङ्ग नामक धनुषसे बड़े-बड़े बाण छूटने लगे, परंतु मुरकी पुत्रीने मेरे उन सभी बाणोंको खड्गसे ही काट डाला। तब मैंने उसका वध करनेके लिये अपना सुदर्शन चक्र उठाया। यह देख कामाख्या देवी मेरे आगे आकर खड़ी हो गयी और इस प्रकार बोली—'पुरुषोत्तम! आपको इसका वध नहीं करना चाहिये। मैंने स्वयं इसको खड्ग और खेटक प्रदान किये हैं, जो अजेय हैं।'

कामाख्या देवीकी यह बात सुनकर मैंने कहा—शुभे! मैं ही इस युद्धसे निवृत्त होता हूँ, तुम इस कन्याको मना करो। तब कामाख्या देवीने उसे हृदयसे लगाकर कहा—'भद्रे! तुम युद्धसे लौट चलो। ये माधव श्रीकृष्ण युद्धमें दुर्जय हैं। कोई किसी प्रकार भी संग्राममें इन्हें मार नहीं सकता। संसारमें ऐसा कोई वीर न तो हुआ है, न है और न होगा ही, जो इन्हें युद्धमें जीत सके। औरोंकी तो बात ही क्या है, साक्षात् भगवान् शंकर भी इन्हें परास्त नहीं कर सकते। बेटी! ये तुम्हारे भावी श्वशुर हैं; अतः तुम इन्हें प्रणाम करके युद्धसे हट जाओ। यही तुम्हारे लिये उचित होगा। तुम इनके भाई भीमसेनकी पुत्रवधू होओगी। इसलिये अपने श्वशुरके समान पूजनीय जनार्दनका तुम आदर करो। अब पिताके लिये तुम्हें शोक नहीं करना चाहिये। इन श्रीकृष्णके हाथसे जो तुम्हारे पिताकी मृत्यु हुई है, वह सर्वथा स्पृहणीय है; क्योंकि इनके हाथसे मरनेपर अब तुम्हारे पिता सब पातकोंसे मुक्त होकर विष्णुधाममें चले गये।' कामाख्याके ऐसा कहनेपर कामकटंकटाने क्रोध त्याग दिया और विनीत अंगोंसे मुझे प्रणाम किया। तब मैंने उसे आशीर्वाद देकर कहा—'बेटी! तुम भगदत्तसे सम्मानित होकर इसी नगरमें निवास करो। यहाँ रहती हुई ही तुम वीर हिडिम्बाकुमारको पतिरूपमें प्राप्त करोगी।' इस प्रकार आश्वासन देकर मैंने कामाख्या देवी तथा मौर्वी (मुरपुत्री)-को विदा किया। फिर वहाँसे

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

मुर-कन्याको न मारनेके लिये श्रीकृष्णसे कामाख्याका अनुरोध

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

द्वारका होता हुआ मैं यहाँ आकर आपसे मिला हूँ। अतः वह मुरदैत्यकी सुन्दरी कन्या ही घटोत्कचके लिये योग्य स्त्री है। मैं श्वशुर हूँ, इसलिये मेरे द्वारा उसके रूपका वर्णन करना उचित न होगा। साधु पुरुषके लिये यह कदापि उचित नहीं है कि वह स्त्रियोंके रूप-सौन्दर्यका वर्णन करे। एक बात और सुन लीजिये। उसने प्रतिज्ञा कर रखी है कि जो मुझे किसी प्रश्नपर निरुत्तर करके जीत ले तथा जो मेरे समान ही बलवान् हो, वही मेरा पति होगा। उसकी यह प्रतिज्ञा सुनकर बहुत-से दैत्य तथा राक्षस उसे जीतनेके लिये गये किंतु मौर्वीने उन सबको परास्त करके मार डाला। यदि महापराक्रमी घटोत्कच ऐसी मौर्वीको जीतनेका उत्साह रखता हो तो वह अवश्य ही इसकी पत्नी होगी।'

युधिष्ठिर बोले—प्रभो! उसके सब गुणोंसे क्या लाभ है, जब उसमें यह एक ही महान् अवगुण भरा हुआ है। उस दूधको लेकर क्या किया जायगा जिसमें विष मिला दिया गया हो। अपने प्राणोंसे भी अधिक प्यारे भीमसेनकुमारको केवल साहसके भरोसे कैसे इस संकटमें डाल दें? यह बेचारा तो शुद्ध वाक्य भी बोलना नहीं जानता। जनार्दन! देश-देशमें और भी तो बहुत-सी स्त्रियाँ हैं, उन्हींमेंसे किसी उत्तम स्त्रीको बतलाइये।

भीमसेन बोले—भगवान् श्रीकृष्णने जो बात कही है, वह अनेक प्रयोजनोंको सिद्ध करनेवाली, सत्य और उत्तम है। मेरा विश्वास है, घटोत्कच शीघ्र ही मौर्वीको प्राप्त करेगा।

अर्जुन बोले—कामाख्या देवीने मौर्वीसे कहा है, 'भद्रे! भीमसेनका पुत्र तुम्हारा पाणिग्रहण करेगा।' इस कारण मेरी राय यही है कि घटोत्कच शीघ्र वहाँ जाय।

श्रीभगवान् बोले—अर्जुन! मुझको तुम्हारी और भीमकी बात पसंद है। हिडिम्बाकुमार! बोलो तुम्हारी क्या राय है?

घटोत्कचने कहा—पूजनीय पुरुषोंके आगे अपने गुणोंका वर्णन करना उचित नहीं है। सूर्यकी किरणें और उत्तम गुण व्यवहारमें आकर ही प्रकाशित होते हैं। मैं सर्वथा ऐसी चेष्टा करूँगा, जिससे मेरे निर्मल पिता पाण्डव मुझ पुत्रके कारण सत्पुरुषोंकी सभामें लज्जित न हों।

यों कहकर महाबाहु घटोत्कचने उन सबको प्रणाम किया। फिर पितरोंसे विजयका आशीर्वाद पाकर उत्साहसम्पन्न हो वहाँसे जानेका विचार किया। उस समय भगवान् जनार्दनने उसकी प्रशंसा करके कहा—'बेटा! कथा कहते समय विजयकी प्राप्ति करानेवाले मुझ श्रीकृष्णका स्मरण अवश्य कर लेना, जिससे मैं तुम्हारी दुर्भेद्य बुद्धिको अविलम्ब बढ़ा दूँगा।' ऐसा कहकर श्रीकृष्णने उसे हृदयसे लगाया और आशीर्वाद देकर विदा किया। तदनन्तर हिडिम्बाकुमार महापराक्रमी घटोत्कच सूर्याक्ष, बालाख्य और महोदर—इन तीन सेवकोंके साथ आकाशमार्गसे चला और दिन बीतते-बीतते प्राग्ज्योतिषपुरमें जा पहुँचा।

वहाँ जानेपर घटोत्कचने प्राग्ज्योतिषपुरसे बाहर एक सोनेका सुन्दर भवन देखा, जो एक विशाल वाटिकामें शोभा पा रहा था। उसकी ऊँचाई एक हजार मंजिलकी थी। मेरुपर्वतके शिखरकी भाँति सुशोभित होनेवाले उस भवनके पास पहुँचकर घटोत्कचने देखा—दरवाजेपर एक सखी खड़ी है। उसका नाम 'कर्णप्रावरणा' था। वीर हिडिम्बाकुमारने सरस भाषामें उससे पूछा—'कल्याणी! मुरकी पुत्री कहाँ हैं? मैं दूर देशसे आया हुआ उनकी कामना करनेवाला अतिथि हूँ और उन्हें देखना चाहता हूँ।'

भीमसेनकुमारकी यह बात सुनकर वह निशाचरी लड़खड़ाती हुई दौड़ी और महलकी छतपर बैठी हुई मौर्वीके पास जाकर इस प्रकार बोली—'देवि! कोई सुन्दर तरुण कामका अतिथि होकर तुम्हारे द्वारपर खड़ा है। उसके समान सुन्दर

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

कान्तिवाला पुरुष कोई त्रिलोकीमें भी नहीं होगा। अतः अब उसके लिये क्या कर्तव्य है, यह आज्ञा दीजिये।'

कामकटंकटा बोली—अरी! उन्हें शीघ्र ले आ, क्यों विलम्ब करती है? कदाचित् दैवकी सहायतासे उन्हींके द्वारा मेरी प्रतिज्ञाकी पूर्ति हो जाय।

मौर्वीके ऐसा कहनेपर दासीने घटोत्कचके पास जाकर कहा—कामी पुरुष! उस मृत्युरूपा नारीके समीप शीघ्र जाओ। उसके ऐसा कहनेपर हँसते हुए घटोत्कचने वहींपर अपना धनुष छोड़कर घरके भीतर प्रवेश किया और विद्युत्‌की भाँति प्रकाशित होनेवाली उस दैत्य-कन्याको देखकर इस प्रकार सोचा—'अहो! मेरे पितृस्वरूप श्रीकृष्णने मेरे लिये योग्य स्त्रीको ही बतलाया है।' इस प्रकार विचार करते हुए उसने मौर्वीसे कहा—'ओ वज्रके समान कठोर हृदयवाली निष्ठुर नारी! मैं अतिथि होकर तुम्हारे घर आया हूँ। अतः सत्पुरुषोंके लिये जो उचित स्वागत-सत्कार है, वह अपने हार्दिक भावके अनुसार करो।' हिडिम्बाकुमारका यह वचन सुनकर कामकटंकटा उसके रूपसे विस्मित हो अपनी निन्दा करके इस प्रकार बोली—'भद्रपुरुष! तुम व्यर्थ ही यहाँ चले आये। जीते-जी पुनः सुखपूर्वक लौट जाओ, अथवा यदि मुझे चाहते हो तो शीघ्र कोई कथा कहो। कथा कहकर यदि मुझे सन्देहमें डाल दोगे तो मैं तुम्हारे वशमें हो जाऊँगी। उसके बाद मेरे द्वारा तुम्हारी सेवा होगी।'

उसके ऐसा कहनेपर घटोत्कचने यह सम्पूर्ण चराचर जगत् जिनकी कथा है, उन भगवान् श्रीकृष्णका स्मरण करके कथा प्रारम्भ की। 'मान लो किसी पत्नीके गर्भसे कोई बालक उत्पन्न हुआ जो युवा होनेपर बड़ा अजितेन्द्रिय निकला। उस युवकके एक पुत्री हुई तथा उसकी पत्नी मर गयी। तब पिताने ही उस नन्ही-सी पुत्रीकी रक्षा एवं पालन-पोषण किया। वह कन्या जब जवान हुई और उसके सब अंग विकसित हो गये, तब उसके पिताका मन उसके प्रति कामलोलुप हो उठा। तदनन्तर उस पापीने अपनी ही पुत्रीसे कहा—'प्रिये! तुम मेरे पड़ोसीकी लड़की हो। मैंने तुम्हें अपनी पत्नी बनानेके लिये यहाँ लाकर दीर्घकालतक पालन-पोषण किया है। अतः अब मेरा वह अभीष्ट कार्य सिद्ध करो।' उसके ऐसा कहनेपर उस लड़कीने ऐसा ही माना। उसने इसे पतिरूपमें स्वीकार किया और इसने उसे पत्नीरूपमें। तत्पश्चात् उस कामी गदहेसे एक कन्या उत्पन्न हुई। अब बताओ, वह कन्या उसकी क्या लगेगी—पुत्री अथवा दौहित्री?' यदि तुममें शक्ति है, तो मेरे इस प्रश्नका शीघ्र उत्तर दो।'

यह प्रश्न सुनकर मौर्वीने अपने हृदयमें अनेक प्रकारसे विचार किया, किंतु किसी प्रकार उसे इस प्रश्नका निर्णय नहीं सूझता था। तब उस प्रश्नसे परास्त होकर मौर्वीने अपनी शक्तिका उपयोग किया। वह ज्यों ही झूलेसे सहसा उठकर हाथमें तलवार लेना चाहती थी त्यों ही घटोत्कचने बड़े वेगसे पहुँचकर बायें हाथसे उसके केश पकड़ लिये और धरतीपर गिरा दिया। फिर उसके गलेपर बायाँ पैर रखकर दाहिने हाथमें कतरनी ले, उसकी नाक काट लेनेका विचार किया। मौर्वीने बहुत हाथ-पैर मारे, किंतु अन्तमें शिथिल होकर उसने मन्द स्वरमें कहा—'नाथ! मैं तुम्हारे प्रश्नसे और शक्ति तथा बलसे परास्त हो गयी हूँ। तुम्हें नमस्कार है। अब मुझे छोड़ दो, मैं तुम्हारी दासी हूँ। जो आज्ञा दो वही करूँगी।'

घटोत्कचने कहा—यदि ऐसी बात है तो लो, मैंने तुम्हें छोड़ दिया।

घटोत्कचके यों कहकर छोड़ देनेपर कामकटंकटाने पुनः उसे प्रणाम किया और कहा—'महाबाहो! मैं जानती हूँ, तुम बड़े वीर हो। त्रिलोकीमें कहीं भी तुम्हारे पराक्रमकी तुलना नहीं है। तुम इस पृथ्वीपर साठ करोड़ राक्षसोंके स्वामी हो।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

ये बातें मुझे कामाख्या देवीने बतलायी थीं, वे सब आज याद आ रही हैं। मैंने अपने सेवकों तथा इस शरीरके साथ यह सारा घर तुम्हारे चरणोंमें समर्पित कर दिया। प्राणनाथ! आज्ञा दो, मैं तुम्हारे किस आदेशका पालन करूँ?'

घटोत्कचने कहा—मौर्वी! जिसके पिता और भाई-बन्धु मौजूद हैं, उसका विवाह छिपकर हो, यह किसी प्रकार उचित नहीं है। इसलिये अब तुम शीघ्र मुझे इन्द्रप्रस्थ ले चलो। यही हमारे कुलकी परिपाटी है। इन्द्रप्रस्थमें गुरुजनोंकी आज्ञा लेकर मैं तुमसे विवाह करूँगा। तदनन्तर मौर्वी अनेक प्रकारकी सामग्री साथ ले घटोत्कचको अपनी पीठपर बैठाकर इन्द्रप्रस्थमें आयी। भगवान् श्रीकृष्ण और पाण्डवोंने घटोत्कचका अभिनन्दन किया, उसके बाद शुभलग्नमें भीमकुमारने मौर्वीका पाणिग्रहण किया। कुन्ती और द्रौपदी दोनों ही वधूको देखकर बहुत प्रसन्न हुईं। विवाह-सम्बन्ध हो जानेपर राजा युधिष्ठिरने घटोत्कचका आदर-सत्कार करके उसे पत्नीसहित अपने राज्यको जानेका आदेश दिया। महाराजकी आज्ञा शिरोधार्य करके हिडिम्बाकुमार अपनी राजधानी हिडम्ब-वनको चला गया। वहाँ उसने मौर्वीके साथ बहुत दिनोंतक क्रीड़ा की। तदनन्तर समयानुसार उसके गर्भसे एक महातेजस्वी एवं बालसूर्यके समान कान्तिमान् बालक उत्पन्न हुआ, जो जन्म लेते ही युवावस्थाको प्राप्त हो गया। उसने माता-पितासे कहा—'मैं आप दोनोंको प्रणाम करता हूँ, बालकके आदिगुरु माता-पिता ही हैं। अतः आप दोनोंके दिये हुए नामको मैं ग्रहण करना चाहता हूँ।' तब घटोत्कचने अपने पुत्रको छातीसे लगाकर कहा—'बेटा! तुम्हारे केश बर्बराकार (घुँघराले) हैं, इसलिये तुम्हारा नाम 'बर्बरीक' होगा। महाबाहो! तुम अपने कुलका आनन्द बढ़ानेवाले होओगे। तुम्हारे लिये जो परम कल्याणमय वस्तु है, उसको हमलोग द्वारकापुरी चलकर यदुकुलनाथ भगवान् वासुदेवसे पूछेंगे।'

बर्बरीक और विजयकी गुप्तक्षेत्रमें साधना तथा पाण्डवोंसे बर्बरीककी भेंट

तदनन्तर कामकटंकटाको घरपर ही छोड़कर बुद्धिमान् घटोत्कच अपने पुत्रको साथ ले आकाशमार्गसे द्वारकाको गया। वहाँ यादवोंकी सभामें पहुँचकर उसने उग्रसेन, वसुदेव, सात्यकि, अक्रूर, बलराम तथा श्रीकृष्ण आदि प्रधान-प्रधान यदुवीरोंको प्रणाम किया। पुत्रसहित घटोत्कचको अपने चरणोंमें पड़ा देख भगवान् श्रीकृष्णने उसको और उसके पुत्रको भी उठाकर छातीसे लगा लिया और आशीर्वाद दे अपने समीप बिठाकर इस प्रकार पूछा—'बेटा! कुरुवंशको बढ़ानेवाले राक्षसश्रेष्ठ! बतलाओ, तुम्हें सब ओरसे कुशल तो है न? यहाँ किसलिये तुम्हारा आगमन हुआ है?'

घटोत्कच बोला—देव! आपके प्रसादसे मुझे सब ओरसे कुशल ही है। आपकी बतायी हुई स्त्री मौर्वीके गर्भसे मेरे इस पुत्रका जन्म हुआ है, यह आपसे कुछ प्रश्न पूछेगा; उसे सुनिये। इसीलिये मैं यहाँ आया हूँ।

श्रीभगवान्ने कहा—बेटा मौर्वेय! तुम्हें जो-जो पूछनेकी इच्छा हो, सब पूछ लो।

बर्बरीक बोला—आर्यदेव माधव! मैं मन, बुद्धि और समाधिके द्वारा आपको प्रणाम करके

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

यह पूछता हूँ कि संसारमें उत्पन्न हुए जीवका

कल्याण किस साधनसे होता है? कोई धर्मको कल्याणकारक कहते हैं तो कोई ऐश्वर्यदानको। कुछ लोग दम (इन्द्रिय-संयम)-को, कोई तपस्याको, कोई द्रव्यको, कोई भोगोंको तथा कोई मोक्षको ही श्रेय कहते हैं। पुरुषोत्तम! इस प्रकार सैकड़ों श्रेयोंमेंसे किसी एक श्रेयको निश्चित करके बतलाइये जो मेरे इस कुलके लिये कल्याणकारी हो।

श्रीभगवान् बोले—बेटा! प्रत्येक वर्णके लिये पृथक्-पृथक् उत्तम श्रेय बताया गया है। ब्राह्मणोंके कल्याणका मूल है—तप, इन्द्रिय-संयम तथा स्वाध्याय। मनीषी पुरुषोंने धर्मके स्वरूपका निरूपण भी ब्राह्मणोंके लिये कल्याणकी बात बतायी है। क्षत्रियोंके लिये सर्वप्रथम बल ही साध्य है, यह बात पहले ही बतायी गयी है। दुष्टोंका दमन और साधुओंका संरक्षण भी क्षत्रियोंके लिये श्रेयस्कर है। वैश्योंके श्रेयका साधन है—पशुपालन और कृषिविज्ञान। शूद्रके लिये द्विजोंकी सेवा ही श्रेयस्कर है, उसके द्वारा जीवन-निर्वाह करनेवाला शूद्र सुखी होता है। अथवा शूद्र भाँति-भाँतिके शिल्पकर्मोंद्वारा जीविका चलावे और द्विजातियोंके हितमें लगा रहे। तुम क्षत्रियकुलमें उत्पन्न हुए हो, अतः अपना कर्तव्य सुनो। पहले तुम ऐसे बलकी प्राप्तिके लिये साधन करो, जिसकी कहीं तुलना न हो। फिर उस बलसे दुष्टोंका दमन और साधु पुरुषोंका पालन करो। ऐसा करनेसे तुम्हें स्वर्गलोककी प्राप्ति होगी। बेटा! देवियोंकी अत्यन्त कृपा होनेसे ही बल प्राप्त होता है, इसलिये तुम बल प्राप्त करनेके उद्देश्यसे देवीकी आराधना करो।

बर्बरीकने पूछा—प्रभो! मैं किस क्षेत्रमें, किस देवीकी, कैसे आराधना करूँ?

उसके इस प्रकार पूछनेपर भगवान् दामोदरने क्षणभर ध्यान करके कहा—महीसागरसंगम तीर्थमें, जो गुप्तक्षेत्रके नामसे विख्यात है, वहीं नारदजीद्वारा बुलायी हुई नौ दुर्गाएँ निवास करती हैं। वहाँ जाकर उनकी आराधना करो। बर्बरीकसे ऐसा कहकर भगवान् श्रीकृष्णने घटोत्कचसे कहा—'भीमनन्दन! तुम्हारा यह पुत्र अत्यन्त सुन्दर हृदयवाला है, इसलिये मैंने इसे 'सुहृदय' यह दूसरा नाम प्रदान किया है।' यों कहकर भगवान्ने उसे छातीसे लगा लिया और नाना प्रकारके धनसे उसको सन्तुष्ट करके गुप्तक्षेत्रमें जानेका आदेश दिया। तब भगवान् श्रीकृष्णको, अपने पिता घटोत्कचको और वहाँ बैठे हुए सब यादवोंको प्रणाम करके उन सबकी आज्ञा ले बर्बरीक गुप्तक्षेत्रको चला गया। घटोत्कच भी भगवान् श्रीकृष्णसे विदा ले अपने वनको गया और पुत्रके गुणोंका स्मरण करता हुआ अपने राज्यका पालन करने लगा।

तदनन्तर बुद्धिमान् सुहृदय गुप्तक्षेत्रमें रहकर प्रतिदिन कर्मके द्वारा पुष्प, धूप और नाना प्रकारके उपहारोंसे तीनों समय देवियोंकी पूजा करने लगा। तीन वर्षोंतक आराधना करनेपर देवियाँ उसपर बहुत सन्तुष्ट हुईं और प्रत्यक्ष दर्शन देकर उन्होंने उसको ऐसा दुर्लभ बल प्रदान किया, जो तीनों

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

लोकोंमें किसीके पास नहीं है। तत्पश्चात् वे बोलीं—'महाद्युते! कुछ कालतक तुम यहीं निवास करो। फिर विजयकी संगति पाकर तुम अधिक कल्याणके भागी होओगे।' देवियोंके ऐसा कहनेपर सुहृदय वहीं ठहर गया। तदनन्तर मगधदेशके ब्राह्मण विजय वहाँ आये। उन्होंने कुमारेश्वर आदि सात लिंगोंका पूजन किया और अपनी विद्याको सफल बनानेके लिये चिरकालतक देवियोंकी आराधना की। इससे सन्तुष्ट होकर देवियोंने स्वप्नमें यह आदेश दिया—'ब्रह्मन्! तुम आँगनमें सिद्धमाताके आगे सम्पूर्ण विद्याओंका साधन करो। सुहृदय हमारा भक्त है, यह तुम्हारी सहायता करेगा।' यह बात सुनकर विजय उठा और सब देवियोंको प्रणाम करके उसने भीमपौत्र सुहृदयसे कहा—'तुम निद्रारहित एवं पवित्र हो देवीके स्तोत्रका पाठ करते हुए यहीं रहो, जिससे जबतक मैं यह विद्या-साधनरूप कर्म करूँ तबतक किसी प्रकारका विघ्न न आने पावे।'

विजयके ऐसा कहनेपर महाबली बर्बरीक जब विघ्ननिवारणके लिये वहाँ खड़ा हुआ, तब विजयने सुखपूर्वक आसनपर बैठकर **'गुं गुरुभ्यो नमः'** इस मन्त्रसे गुरुओंको नमस्कार किया। उसके बाद उक्त गुरु-मन्त्रका अष्टोत्तरशत जप करके पुनः गुरुजनोंको प्रणाम करनेके पश्चात् गणेश्वर-विधान आरम्भ किया। अब मैं गणपतिके उस उत्तम मन्त्रका वर्णन करता हूँ जो बहुत छोटा होनेपर भी समस्त कार्योंका साधक, महान् प्रयोजनोंकी प्राप्ति करानेवाला तथा सब प्रकारकी सिद्धि देनेवाला है। **'ॐ गां गीं गूं गैं गौं गः'** यह सात अक्षरोंका मन्त्र है। मन्त्रका विनियोग-वाक्य इस प्रकार है—**'ॐ अस्य गणपतिमन्त्रस्य गणो नाम ऋषिर्विघ्नेश्वरो देवता गं बीजम् ॐ शक्तिः पूजार्थे जपार्थे तिलकार्थे वा मनईप्सितार्थे होमार्थे वा विनियोगः।'** अर्थात् इस गणपति-मन्त्रके गण नामक ऋषि, विघ्नेश्वर देवता, गं बीज और ॐ शक्ति है। पूजा, जप, तिलक, मनोरथसिद्धि अथवा होमके लिये इसका विनियोग है। पूर्वोक्त मूल-मन्त्रसे चन्दन, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य और ताम्बूल निवेदन करे। इसके बाद मूल-मन्त्रका जप करे। अष्टोत्तरशत, सहस्र, लक्ष अथवा कोटि बार यथाशक्ति जप करके दशांश हवनके लिये अग्निदेवका आवाहन करे। आवाहनके पश्चात् **'गं गणपतये स्वाहा'** इस मन्त्रसे गुग्गुलकी गोलियोंद्वारा होम करे। जो इस प्रकार सब विघ्नोंमें इस उत्तम मन्त्रका साधन करता है, उसके समस्त विघ्न नष्ट होते हैं और उसे मनोऽभीष्ट वस्तुकी प्राप्ति हो जाती है। विजय भी इस गणेश्वरकल्पको जानते थे। अतः उन्होंने अष्टोत्तरशत जप करके गुग्गुलकी गुटिकाओंद्वारा दशांश आहुति दी और सिद्धि-विनायकका पूजन किया। इसके बाद सिद्धाम्बिकाको नमस्कार करके अपराजिता नामक वैष्णवी महाविद्याका साधनसहित जप किया, जिसके स्मरणमात्रसे सब दुःखोंका नाश हो जाता है। विप्रवर! मैं उस विद्याका वर्णन करता हूँ, सुनो—

ॐ भगवान् वासुदेवको नमस्कार है; सहस्र मस्तकोंवाले भगवान् अनन्तको नमस्कार है; जो क्षीरसमुद्रमें शयन करते हैं, शेषनागका विशाल शरीर जिनकी शय्या है, गरुड़ जिनका वाहन है, जो पीताम्बर धारण करते हैं, वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध—ये चारों व्यूह जिनके स्वरूप हैं; जिन्होंने हयग्रीवरूप धारण किया है; उन्हीं भगवान् विष्णुको नमस्कार है। नृसिंह! वामन! त्रिविक्रम! तथा वरदायक राम! आपको नमस्कार है। विश्वरूप! बहुरूप! मधुसूदन! महावराह! महापुरुष! वैकुण्ठ! नारायण! पद्मनाभ! गोविन्द! दामोदर! हृषीकेश! समस्त असुरोंका संहार करनेवाले! सम्पूर्ण प्राणियोंको अपने वशमें रखनेवाले! सब दुःखोंका नाश करनेवाले! सम्पूर्ण विपत्तियोंका भंजन करनेवाले! सब नागोंका मान मर्दन करनेवाले! सर्वदेव महेश्वर! सबका बन्धन छुड़ानेवाले! सब

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

शत्रुओंका संहार करनेवाले! समस्त ज्वरोंका नाश करनेवाले! सम्पूर्ण ग्रहोंका निवारण तथा सब पापोंका शमन करनेवाले! भक्तजन-आनन्ददायक! जनार्दन! आपको नमस्कार है। आपके लिये सुन्दर हविष्यका भाग समर्पित है।

जो साधक इस अपराजिता वैष्णवी महाविद्याका जप, पाठ, श्रवण, स्मरण, धारण और कीर्तन करता है उसे वायु, अग्नि, वज्र, पत्थर, बिजली और वर्षाका भय नहीं प्राप्त होता। उसके लिये समुद्रसे, ग्रहोंसे तथा चोरोंसे भी भय नहीं रहता है। इस प्रकार विजयने संयमशील होकर मन, बुद्धि और समाधिके द्वारा इस अपराजिता वैष्णवी महाविद्याका साधन आरम्भ किया। जो बिना साधनके भी प्रतिदिन इस विद्याका पाठ करता है, उसके भी समस्त विघ्न नष्ट हो जाते हैं।

विजय साधनमें लगे थे। उस समय रात्रिके पहले पहरमें एक राक्षसीने विघ्न उपस्थित किया, किन्तु बर्बरीकने उस राक्षसीको भगा दिया। तत्पश्चात् आधी रातमें दूसरा विघ्न उपस्थित हुआ; बर्बरीकने उसका भी निवारण कर दिया। तदनन्तर रेपलेन्द्र नामका एक दानव विजयकी ओर दौड़ा। उसका शरीर एक योजन लम्बा था। उसके मस्तक और उदर सौ-सौ थे। वह अपने मुखोंसे अग्निकी बड़ी भारी ज्वाला उगलता हुआ आ रहा था। उसे दौड़कर आते देख महाबली बर्बरीक भी उसकी ओर वेगसे आगे बढ़ा। दोनों बहुत देरतक स्थिरतापूर्वक युद्ध करते रहे। फिर बर्बरीकने उसे भूमिपर गिराकर खूब रगड़ा और तबतक नहीं छोड़ा, जबतक उसके प्राण नहीं निकल गये। मरनेपर उसे अग्निकोणमें महीसागरसंगमके तटपर फेंक दिया। इस प्रकार उसका वध करके वीर बर्बरीक पुनः विजयकी रक्षाके लिये खड़ा हो गया। तत्पश्चात् तीसरे पहरमें पश्चिम दिशाकी ओरसे एक राक्षसी आयी, जो पर्वताकार दिखायी देती थी। वह बड़े जोर-जोरसे गर्जना करती और अपने पैरोंकी धमकसे पृथ्वीको कँपाती हुई चलती थी; उसका नाम 'द्रुहद्रुहा' था। उसे आती देख सूर्य और अग्निके समान तेजस्वी बर्बरीक बड़े वेगसे उसके समीप पहुँचा। उसने हँसते हुए मार्ग रोक लिया और मुक्केसे मारकर राक्षसीको धरतीपर गिरा दिया। उसके बाद गला दबाकर मार डाला। उसे मारकर बर्बरीक पुनः रक्षाके लिये खड़ा हो गया। तदनन्तर चौथे पहरमें एक अद्भुत नकली संन्यासी मूड़ मुड़ाये दिगम्बरवेशमें वहाँ आया। उसने बड़ा भारी व्रती होनेका ढोंग रच रखा था। उसने आते ही कहा—'हाय हाय! अरे भाई! यह तो बड़े कष्टकी बात है। अहिंसा ही परम धर्म है! तूने यह आग क्यों जला रखी है? आगमें हवन करते समय सूक्ष्म जीवोंका बड़ा भारी वध हो रहा है।' उसकी यह बात सुनकर बर्बरीकने हँसते हुए कहा—'अग्निमें आहुति देनेपर सब देवताओंकी तृप्ति होती है। दुर्बुद्धि पापी! तू झूठ बोलता है, इसलिये दण्डका पात्र है।' यों कहकर बर्बरीक सहसा उसके पास जाकर खड़ा हो गया और मुक्केसे मार-मारकर उसके सारे दाँत गिरा दिये। वास्तवमें वह एक दैत्य था। क्षणभरमें सचेत होनेपर वह बर्बरीकके भयसे भागा और एक गुफाके बिलमें समा गया। बर्बरीकने क्रोधमें भरकर बड़े वेगसे उसका पीछा किया, किन्तु वह दैत्य वायुके समान वेगसे दौड़ता पातालमें समा गया। साठ योजन विस्तृत 'बहुप्रभा' नामकी नगरीमें वह निवास करता था। बर्बरीक वहाँ भी उसके पीछे-पीछे जा पहुँचा। उसे देखकर 'पलाशी' नामवाले दैत्योंमें 'दौड़ो, मारो, काटो और फाड़ डालो' आदिके रूपमें महान् कोलाहल मच गया। हल्ला सुनकर अनेक प्रकारके अस्त्र-शस्त्र धारण किये नौ करोड़ भयानक दैत्य योद्धा वीर बर्बरीकपर टूट पड़े। इस प्रकार करोड़ों

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

दैत्योंको देखकर घटोत्कचका पुत्र क्रोधसे जल उठा। उसने किन्हींको पैरोंसे, किन्हींको भुजदण्डोंसे और किन्हींको छातीके धक्केसे मार-मारकर क्षणभरमें यमलोक पहुँचा दिया।

दैत्योंके मारे जानेपर वासुकि आदि नाग वहाँ आये और नाना प्रकारके प्रिय वचनोंद्वारा सुहृदयकी स्तुति करते हुए बोले—'भैमिनन्दन! आपने नागोंका बड़ा भारी उपकार किया, क्योंकि आपके द्वारा यह पलाशी नामक दैत्य अपने सेवकोंसहित मारा गया। वीर! इस दुरात्माने अपने सेवकोंकी सहायतासे भाँति-भाँतिके उपाय करके हमलोगोंको पीड़ा दी और पातालसे भी नीचे कर दिया था। आज आप हम नागोंसे कोई मनोवांछित वर माँगिये। हम सब आपपर प्रसन्न होकर वर देनेको उत्सुक हैं।'

बर्बरीक बोला—नागगण! यदि मुझे वर देना है, तो मैं यही माँगता हूँ कि विजय सब प्रकारके विघ्नोंसे मुक्त होकर सिद्धि प्राप्त कर लें।

तब नागोंने प्रसन्न होकर कहा—बहुत अच्छा, ऐसा ही होगा। बर्बरीक नागोंको वह दैत्यपुरी देकर उनके द्वारा सम्मानित हो वहाँसे लौटा। बिलके मनोहर मार्गसे लौटते समय उसने देखा, कल्पवृक्षके नीचे एक सर्वरत्नमय लिंग विराजमान है; उसका महान् प्रकाश सब ओर फैल रहा है तथा बहुत-सी नागकन्याएँ उसका पूजन कर रही हैं। यह सब देखकर बर्बरीकको बड़ा विस्मय हुआ! उसने नागकन्याओंसे पूछा—'सूर्य और अग्निके समान तेजस्वी इस शिवलिंगकी किसने स्थापना की है? तथा इस शिवलिंगसे चारों दिशाओंकी ओर जो ये मार्ग गये हैं, इनका भी परिचय दो।'

वीर बर्बरीकका यह वचन सुनकर नागकन्याओंने सकुचाते हुए कहा—सम्पूर्ण नागोंके राजा महात्मा शेषने तपस्या करके यहाँ इस महालिंगकी स्थापना की है। इसके दर्शन, स्पर्श, ध्यान और पूजनसे यह सब सिद्धियोंको देनेवाला है। इस लिंगसे पूर्वदिशाकी ओर जानेवाला यह मार्ग भूलोकमें 'श्री' पर्वततक चला गया है। नागलोक सुविधापूर्वक वहाँतक पहुँच सकें, इसके लिये 'इलापत्र' नागने इस मार्गका निर्माण किया है। दक्षिणसे जानेवाला यह मार्ग पृथ्वीपर 'शूर्पारक' क्षेत्रमें पहुँचता है, इसे 'कर्कोटक' नागने वहाँ जानेके लिये बनवाया है। पश्चिमका यह मार्ग अतिशय प्रकाशमान 'प्रभास' तीर्थको जाता है, इसे ऐरावतने नागोंकी यात्राके लिये बनवाया है। इसी प्रकार उत्तरसे होकर निकला हुआ यह मार्ग पृथ्वीपर 'कुरुक्षेत्र' में जाता है, महात्मा तक्षकने वहाँ जानेके लिये यह मार्ग तैयार किया है। लिंगसे ऊपरकी ओर जो मार्ग जाता है, जिससे जानेके लिये आप खड़े हैं; यह गुप्तक्षेत्रमें सिद्धलिंगके पास गया है। यह मार्ग स्वामी स्कन्दने अपनी शक्तिके प्रहारसे बनाया है। वीर! ये सब बातें हमने बता दीं, अब आप हमारा निवेदन सुनिये। पहले तो यह बताइये कि आप कौन हैं? अभी-अभी आप दैत्यके पीछे लगे गये थे और अब अकेले ही लौट रहे हैं; इसका क्या कारण है,

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

हम सब आपकी दासियाँ हैं और पतिरूपमें आपका वरण करती हैं। आप हमारे साथ यहाँके विविध स्थानोंमें क्रीडा कीजिये।

बर्बरीकने कहा—देवियो! मेरा जन्म कुरुवंशमें हुआ है। मैं पाण्डुनन्दन भीमसेनका पौत्र हूँ। बर्बरीक मेरा नाम है। मैं उस दैत्यको मारनेके लिये आया था। वह पापी दैत्य मारा गया; अतः अब पृथ्वीपर लौटा जा रहा हूँ। आप लोगोंसे किसी प्रकार मेरा कोई प्रयोजन नहीं है, क्योंकि मैंने सदा ब्रह्मचारी रहनेका व्रत लिया है।

यों कहकर बर्बरीकने उस शिवलिंगका पूजन और साष्टांग प्रणाम किया। फिर उन सब कन्याओंके देखते-देखते ऊपरके मार्गसे चल दिया। बिलसे बाहर आकर उसने पूर्वदिशाके मुखको प्रकाशयुक्त देखा, फिर बड़े हर्षके साथ वह विजयसे मिला। उस समयतक विजय अपना सब कार्य पूरा कर चुके थे। उन्होंने बर्बरीकसे कहा—'वीरेन्द्र! तुम्हारे प्रसादसे मैंने अनुपम सिद्धि प्राप्त की है। तुम दीर्घकालतक जीओ, आनन्द करो, दान दो और विजयी बनो। इसीलिये साधु पुरुष साधुओंका ही संग करना चाहते हैं, क्योंकि सत्पुरुषोंका संग सब दोषोंको दूर करनेकी दवा है। मेरे होमकुण्डमें सिन्दूरके समान लाल रंगका सात्त्विक एवं अत्यन्त पवित्र भस्म है, उसे हाथमें भरकर ले लो। युद्धभूमिमें इसे पहले छोड़ देनेपर शत्रुके स्थानपर मृत्यु भी हो, (साक्षात् मृत्यु ही शत्रु बन कर आ जाय) तो उसके शरीरको भी यह नष्ट कर देगा। इस प्रकार शत्रुओंपर तुम्हें सुखपूर्वक विजय प्राप्त होगी।'

बर्बरीक बोला—जो निष्काम भावसे किसीका उपकार करता है, वही साधु कहलाता है। जो किसी वस्तुकी इच्छा रखकर उपकार करता है, उसकी साधुतामें कौन गुण है।* अतः यह भस्म किसी दूसरेको दे दीजिये। मेरा इससे कोई प्रयोजन नहीं है। मैं तो केवल आपको प्रसन्नमुख देखना चाहता हूँ, इसके सिवा और कुछ नहीं।

तदनन्तर देवियोंसहित देवताओंने विजयका सम्मान करके उन्हें सिद्धैश्वर्य प्रदान किया और उनका नाम 'सिद्धसेन' रखा। इस प्रकार विजयने अत्यन्त दुर्लभ सिद्धि प्राप्त की।

तत्पश्चात् कुछ काल बीतनेपर पाण्डवलोग जूएमें हार गये और विभिन्न तीर्थोंमें घूमते हुए उस शुभ तीर्थमें भी स्नानके लिये आये। वहाँ चण्डिका देवीका दर्शन करके मार्गके थके-माँदे होनेके कारण कहीं बैठ गये। पाँचों पाण्डवोंके साथ द्रौपदी भी थी। उस समय चण्डिकाका गण भी वहीं विराजमान था। बर्बरीकने वहाँ पधारे हुए पाण्डव वीरोंको देखा, परंतु वह उन्हें पहचानता नहीं था। पाण्डव भी उसे नहीं पहचानते थे; क्योंकि जन्मसे लेकर अबतक पाण्डवोंके साथ उसकी भेंट ही नहीं हुई थी।

* उपकुर्यान्निराकाङ्क्षो यः स साधुरितार्यते। साकाङ्क्षमुपकुर्याद्यः साधुत्वे तस्य को गुणः॥ (स्क० पु०, मा० कुमा० ५९। ८०)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

पाण्डवोंने अपनी गठरी आदि वहीं खोल दी और प्याससे पीड़ित होकर जलकी ओर देखा। तब भीमसेन कुण्डमें पानी पीनेके लिये घुसे। उस समय युधिष्ठिरने उनसे कहा—'भीमसेन! तुम कुण्डसे पानी निकालकर बाहर ही हाथ-पैर धो लो, उसके बाद जल पीना; अन्यथा तुम्हें बड़ा दोष लगेगा।' भीमसेनके नेत्र प्याससे व्याकुल हो रहे थे। उन्होंने युधिष्ठिरकी बातें बिना सुने ही जल पीनेकी इच्छासे कुण्डमें प्रवेश किया। जल देखकर उन्होंने वहीं पीनेका निश्चय किया और शुद्धिके लिये मुख, दोनों हाथ और दोनों पैर धोये। भीमसेन जब इस प्रकार पैर धो रहे थे, उस समय सुहृदयने ऊपरसे यह सत्य वचन कहा—'ओ दुर्मते! तुम यह क्या कर रहे हो? तुम्हारा विचार तो बड़ा पापपूर्ण है। अहो! तुम देवीके कुण्डमें हाथ, पैर और मुँह धो रहे हो। मैं देवीको सदा इसी जलसे स्नान कराता हूँ। मलसे दूषित जलको तो मनुष्य भी नहीं छूते, फिर देवता उसका स्पर्श कैसे कर सकते हैं? जब तुम इतने बड़े मूढ़ हो, तब तीर्थोंमें क्यों घूम रहे हो?'

भीमसेनने कहा—क्रूर राक्षसाधम! तू क्यों ऐसी कठोर बातें कहता है? जलका दूसरा उपयोग ही क्या है? वह प्राणियोंके भोगके लिये ही तो होता है? बड़े-बड़े मुनीश्वरोंने भी तीर्थोंमें स्नानका विधान किया है। अंगोंको धोना ही तो स्नान कहा गया है। फिर तू मेरी निन्दा क्यों करता है? यदि स्नान और अंग-प्रक्षालन न किया जाय तो धर्मात्मा पुरुष किसलिये पूर्त धर्मका अनुष्ठान करते हैं? क्यों बावड़ी, कूप और तड़ाग आदि बनवाते हैं?

सुहृदय बोला—निःसन्देह तुम्हारा यह कथन सत्य है कि मुख्य-मुख्य तीर्थोंमें स्नान करना चाहिये। ऐसी विधि है भी, परंतु जो नदी आदि चर तीर्थ हैं—जिनके जल बहते रहते हैं, उन्हींमें भीतर प्रवेश करके स्नान आदि करना चाहिये। कूप-सरोवर आदि स्थावर तीर्थोंमें तो बाहर खड़े होकर ही स्नानादि करना उचित है। स्थावर तीर्थोंमें भी वहीं भीतर प्रवेश करके स्नान करनेका विधान है, जहाँ भक्त पुरुष देवताको स्नान करानेके लिये जल न लेते हों तथा जो सरोवर देवस्थानसे सौ हाथसे भी अधिक दूर बनाया गया हो। उसके भीतर प्रवेश करनेका भी यह एक क्रम है कि पहले बाहर ही दोनों पैर धोकर फिर कुण्डमें स्नान किया जाय, अन्यथा दोष बताया गया है।[१] क्या तुमने ब्रह्माजीका कहा हुआ यह श्लोक नहीं सुना है?—

मलं मूत्रं पुरीषं च श्लेष्मनिष्ठीवितं तथा।
गण्डूषमप्सु मुञ्चन्ति ये ते ब्रह्महभिः समाः॥

'जो जलमें मल, मूत्र, विष्ठा, कफ, थूक और कुल्ला छोड़ते हैं, वे ब्रह्महत्यारोंके समान हैं।'

इसलिये ओ दुराचारी! तुम शीघ्र जलसे बाहर निकल आओ। यदि तुम्हारी इन्द्रियाँ तुम्हारे काबूमें नहीं हैं, तो तुम तीर्थोंमें किसलिये घूमते हो? नादान! जिसके हाथ, पैर और मन भलीभाँति संयममें हों और जिसके द्वारा समस्त क्रियाएँ निर्विकार भावसे की जाती हों, वही तीर्थका फल पाता है।[२] मनुष्य पुण्यकर्मके द्वारा यदि दो

१- स्नातव्यं तीर्थमुख्येषु सत्यमेतन्न संशयः। चरेषु किंतु संविश्य स्थावरेषु बहिः स्थितैः॥
स्थावरेष्वपि संविश्य तत्र स्नानं विधीयते। न यत्र देवस्नानार्थं भक्तैः संगृह्यते जलम्॥
यच्च हस्तशतादूर्ध्वं सरस्तत्र विधीयते। संवेशेऽपि क्रमश्चायं पादौ प्रक्षाल्य यद्बहिः॥
ततः स्नानं प्रकर्तव्यमन्यथा दोष उच्यते।
(स्क० पु०, मा० कुमा० ६०। २०—२३)

२- यस्य हस्तौ च पादौ च मनश्चैव सुसंयतम्। निर्विकाराः क्रियाः सर्वाः स हि तीर्थफलं लभेत्॥
(स्क० पु०, मा० कुमा० ६०। २६)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

घड़ी भी जीवित रहे, तो वह उत्तम है। परंतु उभय लोकविरोधी पापकर्मके साथ एक कल्पकी भी आयु मिले, तो उसे न स्वीकार करे।

भीमसेन बोले—कौवोंकी तरह तेरी कायँ-कायँकी कर्कश ध्वनिसे मेरे तो कान बहरे हो गये। अब तू अपनी इच्छाके अनुसार यहाँ विलाप कर या चिन्ताके मारे सूख जा; मैं तो जल पीकर ही रहूँगा।

सुहृदयने कहा—मैं धर्मकी रक्षा करनेवाले क्षत्रियोंके कुलमें उत्पन्न हुआ हूँ, अतः किसी प्रकार भी तुम्हें पाप न करने दूँगा। हमारे इस कुण्डसे तो तुम शीघ्र ही बाहर निकल आओ नहीं तो इन ईंटोंके टुकड़ोंसे तुम्हारा मस्तक चूर-चूर कर दूँगा।

यों कहकर बर्बरीकने ईंटे उठा लिये और भीमके मस्तकको लक्ष्य करके फेंकना आरम्भ किया। भीमसेन उसके प्रहारको बचाकर उछले और सरोवरसे बाहर आ गये। फिर तो दोनों भयंकर पराक्रमी वीर एक-दूसरेको घुड़कते हुए आपसमें गुथ गये। दोनों ही युद्धविद्यामें पारंगत थे। अतः अपनी विशाल भुजाओंसे युद्ध करने लगे। दो ही घड़ीमें उस राक्षसके सामने पाण्डव भीमसेन दुर्बल पड़ने लगे। अन्तमें बर्बरीकने भीमसेनको उठा लिया और जलमें फेंकनेके लिये समुद्रकी ओर चल दिया। समुद्रके किनारे पहुँचनेपर भगवान् शंकरने आकाशमें स्थित हो बर्बरीकसे कहा—'राक्षसोंमें श्रेष्ठ महाबली बर्बरीक! ये भरतकुलके रत्न और तुम्हारे पितामह भीमसेन हैं, इन्हें छोड़ दो। ये तीर्थयात्राके प्रसंगसे अपने भाइयों तथा द्रौपदीके साथ विचरते हुए इस तीर्थमें भी स्नान करनेके लिये ही आये हैं। अतः तुम्हारे द्वारा सर्वथा सम्मान पानेके ही योग्य हैं।'

भगवान् शंकरका यह वचन सुनकर सुहृदय सहसा भीमसेनको छोड़कर उनके चरणोंमें गिर पड़ा और बोल उठा—'हाय! मुझे धिक्कार है। यह बड़े कष्टकी बात है, बड़े कष्टकी बात है, पितामह! मुझे क्षमा कीजिये, क्षमा कीजिये।' उसे इस प्रकार शोक करते और बार-बार मोहित होते देख भीमसेनने छातीसे लगा लिया और स्नेहसे मस्तक सूँघकर कहा—'वत्स! जन्मकालसे ही न तो हम तुम्हें पहचानते हैं न तुम हमको। केवल घटोत्कच तथा भगवान् श्रीकृष्णसे यह सुन रखा है कि तुम इसी तीर्थमें निवास करते हो। किंतु यह सब बात भी हमें भूल गयी थी, क्योंकि जो लोग अनेक प्रकारके दुःखोंसे दुःखी और मोहित होते हैं, उनकी सारी स्मरणशक्ति नष्ट हो जाती है। अतः हमपर जो यह दुःख आया है, वह सब कालकी प्रेरणासे प्राप्त हुआ है। बेटा! तुम शोक न करो। तुम्हारा इसमें तनिक भी दोष नहीं है, क्योंकि कुमार्गपर चलनेवाला कोई भी क्यों न हो, क्षत्रियके

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

लिये दण्डनीय ही है। साधु क्षत्रियको उचित है कि यदि कुमार्गपर चले तो अपनी आत्माको भी दण्ड दे। फिर पिता, माता, सुहृद्, भ्राता और पुत्र आदिके लिये तो कहना ही क्या है? मुझे आज बड़ा हर्ष प्राप्त हुआ है। मैं और मेरे पूर्वज धन्य हैं, जिनका पुत्र ऐसा धर्मज्ञ और धर्मपालक है। तुम वर पानेके योग्य हो, मेरे तथा दूसरे सत्पुरुषोंके द्वारा प्रशंसा पानेके अधिकारी हो। अतः यह शोक छोड़कर तुम्हें स्वस्थ हो जाना चाहिये।'

बर्बरीक बोला—पितामह! मैं पापी हूँ, ब्रह्महत्यारेसे भी अधिक घृणाका पात्र हूँ। प्रशंसाके योग्य कदापि नहीं हूँ। प्रभो! न तो आप मेरी ओर देखें और न मेरा स्पर्श ही करें। ब्राह्मणलोग सभी पापोंका प्रायश्चित्त बतलाते हैं; परंतु जो पिता-माताका भक्त नहीं है, उसके उद्धारका कोई उपाय नहीं।[१] अतः जिस शरीरसे मैंने पितामहको पीड़ा पहुँचायी है, उस अपने शरीरको आज मैं महीसागरसंगममें त्याग दूँगा; जिससे अन्य जन्मोंमें भी ऐसा ही पातकी न होऊँ।

यों कहकर बलवान् बर्बरीक उछलकर समुद्रके भीतर चला गया। समुद्र भी यह सोचकर काँप उठा कि 'मैं कैसे इसका वध करूँ'। तदनन्तर सिद्धाम्बिका तथा चारों दिशाओंकी देवियाँ रुद्रके साथ वहाँ आयीं और उसे हृदयसे लगाकर बोलीं—'वीरेन्द्र! अनजानमें किये हुए पापसे दोष नहीं लगता, यह बात शास्त्रोंमें बतायी गयी है। अतः तुम्हें इसके विपरीत कोई बर्ताव नहीं करना चाहिये।[२] देखो, तुम्हारे पितामह भीम पुत्र-पुत्र पुकारते हुए तुम्हारे पीछे लगे हुए चले आ रहे हैं। तुम्हारी मृत्यु हो जानेपर वे स्वयं भी प्राण त्याग देनेको उत्सुक हैं। वीर! यदि इस समय तुम शरीर छोड़ोगे तो भीमसेन भी शरीरको त्याग देंगे। उस दशामें तुम्हें बड़ा भारी पातक लगेगा। अतः महामते! तुम ऐसा जानकर अपने शरीरको धारण करो। थोड़े ही समयमें देवकीनन्दन श्रीकृष्णके हाथसे तुम्हारे शरीरका नाश होगा, ऐसा बताया गया है। वत्स! वे साक्षात् भगवान् विष्णु हैं और उनके हाथसे शरीरका नाश होना बहुत उत्तम (मुक्तिदायक) है। इसलिये तुम उस समयकी प्रतीक्षा करो और हमारी बात मानो।' देवियोंके ऐसा कहनेपर बर्बरीक उदास मनसे लौट आया। 'बर्बरीक चण्डिकाके कार्यकी सिद्धिके लिये बड़ा भारी युद्ध करेगा, इसलिये संसारमें चण्डिल नामसे प्रसिद्ध और समस्त विश्वके लिये पूजनीय होगा।' यों कहकर वहाँ आयी हुई सब देवियाँ अन्तर्धान हो गयीं। भीमसेन भी बर्बरीकको साथ लेकर आये और अन्य पाण्डवोंसे भी यह सारा समाचार कह सुनाया। सुनकर सब पाण्डवोंको बड़ा आश्चर्य हुआ। सबने बार-बार उसकी प्रशंसा की और आलस्य त्यागकर विधिके अनुसार तीर्थ-स्नान किया।

~~०~~

१- सर्वेषामेव पापानां निष्कृतिः प्रोच्यते द्विजैः। पित्रोरभक्तस्य पुनर्निष्कृतिर्नैव विद्यते॥

(स्क० पु०, मा० कुमा० ६०। ५५-५६)

२- अज्ञातविहिते पापे नास्ति वीरेन्द्र कल्मषम्। शास्त्रेषूक्तमिदं वाक्यं नान्यथा कर्तुमर्हसि॥

(स्क० पु०, मा० कुमा० ६०। ६१)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

बर्बरीकका वध तथा उसके पूर्वजन्मके वृत्तान्तका वर्णन और ग्रन्थका उपसंहार

सूतजी कहते हैं—तदनन्तर पाण्डवोंके वनवासका तेरहवाँ वर्ष व्यतीत हो जानेपर जब 'उपप्लव्य' नामक स्थानमें सब राजा युद्धके लिये एकत्र हो गये, तब महारथी पाण्डव भी युद्ध करनेके लिये कुरुक्षेत्रमें आकर स्थित हुए। दुर्योधन आदि कौरव भी वहाँ पहलेसे ही टिके हुए थे। उस समय भीष्मजीने रथियों और अतिरथियोंकी गणना की थी। उसका सब समाचार गुप्तचरोंद्वारा सुनकर राजा युधिष्ठिरने अपने पक्षके राजाओंके बीच भगवान् श्रीकृष्णसे कहा—'देवकीनन्दन! पितामह भीष्मने रथियों और अतिरथियोंका वर्णन किया है, उसे सुनकर दुर्योधनने अपने पक्षके महारथियोंसे पूछा है कि 'कौन वीर कितने समयमें सेनासहित पाण्डवोंका वध कर सकता है?' इसके उत्तरमें पितामह भीष्म तथा कृपाचार्यने एक मासमें हम सबको मारनेकी प्रतिज्ञा की है। द्रोणाचार्यने पन्द्रह दिनोंमें, अश्वत्थामाने दस दिनमें तथा सदा मुझे भयभीत करनेवाले कर्णने छः दिनमें सेनासहित पाण्डवोंको मारनेकी घोषणा की है। अतः यही प्रश्न मैं अपने पक्षके महारथियोंके सामने रखता हूँ—'कौन कितने समयमें सेनासहित कौरवोंको मार सकता है?'

राजा युधिष्ठिरका यह वचन सुनकर अर्जुन बोले—महाराज! भीष्म आदि महारथियोंने जो प्रतिज्ञा या घोषणा की है वह सर्वथा असंगत है; क्योंकि विजय और पराजयमें पहलेसे किया हुआ निश्चय झूठा होता है। आपके पक्षमें भी जो वीर राजा हैं, वे युद्धके लिये कमर कसकर रणभूमिमें डटे हुए हैं। देखिये—ये नरश्रेष्ठ कालके समान दुर्धर्ष हैं—द्रुपद, विराट, कैकेय, सहदेव, सात्यकि, दुर्जय वीर चेकितान, धृष्टद्युम्न, पुत्रसहित महापराक्रमी घटोत्कच, महाधनुर्धर भीमसेन आदि तथा कभी किसीसे परास्त न होनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण—ये सब आपके पक्षमें हैं। मैं तो समझता हूँ, इनमेंसे एक-एक वीर सारी कौरवसेनाका संहार कर सकता है। इनके डरसे कौरव इस प्रकार भागेंगे जैसे सिंहसे डरे हुए मृग। बूढ़े भीष्मसे, बूढ़े बाबा द्रोण और कृपसे तथा अश्वत्थामासे अपनेको क्या भय है? अथवा यदि चित्तकी शान्तिके लिये आप जानना ही चाहते हैं, तो मेरी बात सुनिये—मैं अकेला ही युद्धमें सेनासहित समस्त कौरवोंको एक दिनमें नष्ट कर सकता हूँ।

अर्जुनकी यह बात सुनकर घटोत्कचके पुत्रने हँसते हुए कहा—महात्मा अर्जुनने जो प्रतिज्ञा की है, वह मुझे नहीं सही जाती, क्योंकि इनके द्वारा दूसरे वीरोंपर महान् आक्षेप हो रहा है। अतः अर्जुन और श्रीकृष्णसहित आप सब लोग चुपचाप खड़े रहें, मैं एक ही मुहूर्तमें भीष्म आदि सबको यमलोकमें पहुँचा दूँगा। मेरे भयंकर धनुषको, इन दोनों अक्षय तूणीरोंको तथा भगवती सिद्धाम्बिकाके दिये हुए इस खड्गको भी आपलोग देखें। ऐसी दिव्य वस्तुएँ मेरे पास हैं। तभी मैं इस प्रकार सबको जीतनेकी बात कहता हूँ। बर्बरीकका यह वचन सुनकर सब क्षत्रिय बड़े विस्मयको प्राप्त हुए। अर्जुनने भी आक्षेप करनेके कारण लज्जित हो श्रीकृष्णकी ओर देखा। तब श्रीकृष्णने कहा—'पार्थ! घटोत्कचके इस पुत्रने अपनी शक्तिके अनुरूप ही बात कही है। इसके विषयमें बड़ी अद्भुत बातें सुनी जाती हैं। पूर्वकालमें इसने पातालमें जाकर नौ करोड़

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

पलाशी नामक दैत्योंको क्षणभरमें मौतके घाट उतार दिया था।'

तत्पश्चात् यादवेन्द्र श्रीकृष्णने घटोत्कचके पुत्रसे कहा—वत्स! भीष्म, द्रोण, कृप, अश्वत्थामा, कर्ण और दुर्योधन आदि महारथियोंके द्वारा सुरक्षित कौरवसेनाको, जिसपर विजय पाना महादेवजीके लिये भी कठिन है, तुम इतना शीघ्र कैसे मार सकते हो? तुम्हारे पास ऐसा कौन-सा उपाय है? समस्त प्राणियोंके अधीश्वर भगवान् वासुदेवके इस प्रकार पूछनेपर सिंहके समान वक्षःस्थल, पर्वताकार शरीर तथा अतुलित बलसे सम्पन्न एवं नाना प्रकारके आभूषणोंसे विभूषित बर्बरीकने तुरंत ही धनुष चढ़ाया और उसपर बाण सन्धान किया। फिर उस बाणको उसने लाल रंगके भस्मसे भर दिया और कानतक खींचकर छोड़ दिया। उस बाणके मुखसे जो भस्म उड़ा, वह दोनों सेनाओंमें सैनिकोंके मर्मस्थलोंपर गिरा। केवल पाँच पाण्डव, कृपाचार्य और अश्वत्थामाके शरीरसे उसका स्पर्श नहीं हुआ। यह कर्म करके बर्बरीकने पुनः सब लोगोंसे कहा—'आपलोगोंने देखा, इस क्रियाके द्वारा मैंने मरनेवाले वीरोंके मर्मस्थानका निरीक्षण किया है। अब उन्हीं मर्मस्थानोंमें देवीके दिये हुए तीक्ष्ण और अमोघ बाण मारूँगा, जिनसे ये सभी योद्धा क्षणभरमें मृत्युको प्राप्त हो जायँगे। आप सब लोगोंको अपने-अपने धर्मकी सौगन्ध है, कदापि शस्त्र ग्रहण न करें। मैं दो ही घड़ीमें इन सब शत्रुओंको तीखे बाणोंसे मार गिराऊँगा।'

यह सुनकर युधिष्ठिर आदिके चित्तमें बड़ा विस्मय हुआ। वे सब लोग बर्बरीकको साधुवाद देने लगे, जिससे महान् कोलाहल छा गया। बर्बरीकने ज्यों ही उपर्युक्त बात कही त्यों ही श्रीकृष्णने कुपित होकर अपने तीखे चक्रसे बर्बरीकका मस्तक काट गिराया। यह देख सबको बड़ा आश्चर्य हुआ। सब एक-दूसरेसे कहने लगे—'अहो! यह क्या हुआ? घटोत्कचका पुत्र कैसे मारा गया?' पाण्डव भी अन्य सब

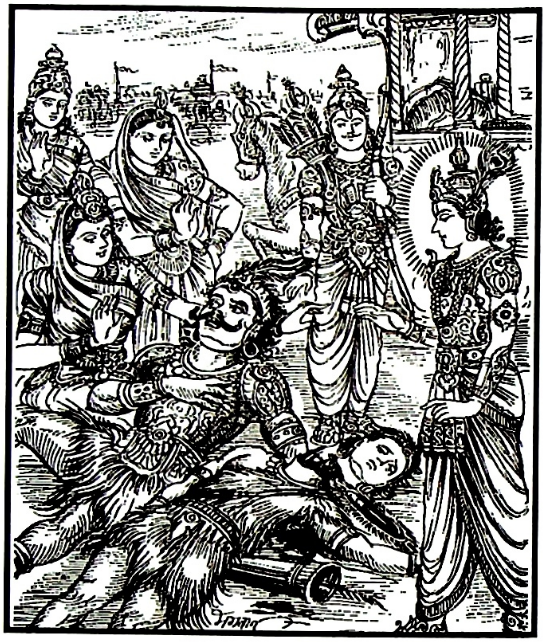

राजाओंके साथ आँसू बहाने लगे! घटोत्कच तो 'हा पुत्र! हा पुत्र!' कहता हुआ शोकसे मूर्छित होकर गिर पड़ा। इसी समय सिद्धाम्बिका आदि चौदह देवियाँ वहाँ आ पहुँचीं। श्रीचण्डिकाने घटोत्कचको सान्त्वना देकर उच्चस्वरसे कहा—'सब राजा सुनें। विदितात्मा भगवान् श्रीकृष्णने महाबली बर्बरीकका वध किस कारणसे किया है, वह मैं बतलाती हूँ। पूर्वकालकी बात है, मेरुपर्वतके शिखरपर सब देवता एकत्र हुए थे। उस समय भारसे पीड़ित हुई यह पृथ्वी वहाँ गयी और सब देवताओंसे बोली—'आपलोग मेरा भार उतारें।' तब ब्रह्माजीने भगवान् विष्णुसे कहा—'भगवन्! आप मेरी प्रार्थना सुनें। आप ही पृथ्वीका भार उतारें, इस कार्यमें देवता आपका अनुसरण करेंगे।' तब भगवान् विष्णुने 'तथास्तु' कहकर ब्रह्माजीकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। इसी समय 'सूर्यवर्चा' नामक यक्षराजने

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

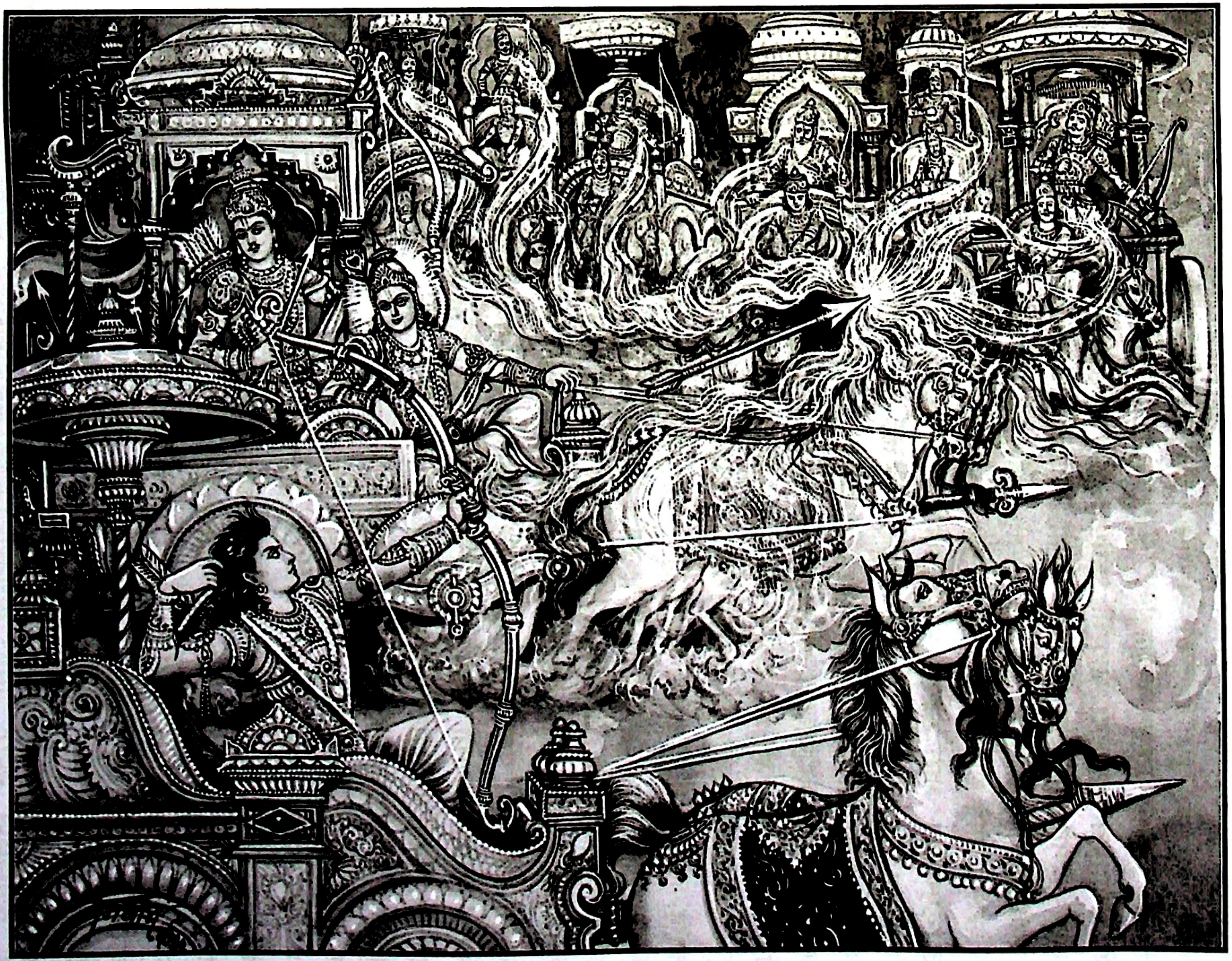

बर्बरीकका बलप्रदर्शन

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

अपनी भुजा ऊपर उठाकर कहा—'आपलोग मेरे रहते हुए मनुष्यलोकमें क्यों जन्म धारण करते हैं? मैं अकेला ही अवतार लेकर पृथ्वीके भारभूत सब दैत्योंका संहार करूँगा।'

सूर्यवर्चाके ऐसा कहनेपर ब्रह्माजी कुपित होकर बोले—दुर्मते! पृथ्वीका यह महान् भार समस्त देवताओंके लिये भी दुःसह है, उसे तू मोहवश केवल अपने ही द्वारा साध्य बतलाता है। मूर्ख! पृथ्वीका भार उतारते समय जब युद्धका आरम्भ होगा, उस समय श्रीकृष्णके हाथसे तेरे शरीरका नाश होगा। इसमें संशय नहीं है। ब्रह्माजीके द्वारा ऐसा शाप प्राप्त होनेपर सूर्यवर्चाने भगवान् विष्णुसे यह याचना की—'भगवन्! यदि इस प्रकार मेरे शरीरका नाश होनेवाला है, तो मैं एक प्रार्थना करता हूँ—'जन्मसे ही मुझे ऐसी बुद्धि दीजिये, जो सब अर्थोंको सिद्ध करनेवाली हो।' यह सुनकर भगवान् विष्णुने देवसभामें कहा—'ऐसा ही होगा। देवियाँ तुम्हारे मस्तककी पूजा करेंगी। तुम पूज्य हो जाओगे।' भगवान्के ऐसा कहनेपर सूर्यवर्चा तथा आप सब देवता भी इस पृथ्वीपर अवतीर्ण हुए। सूर्यवर्चा ही, यह घटोत्कचका पुत्र था, जो मारा गया है। अतः समस्त राजाओंको श्रीकृष्णमें दोष नहीं देखना चाहिये।'

श्रीभगवान् बोले—राजाओ! देवीने जो कुछ कहा है, वह निःसन्देह वैसा ही है। मैंने देवसमाजमें सूर्यवर्चाको जो वर दिया था, उसका स्मरण करके ही गुप्तक्षेत्रमें देवीकी आराधनाके लिये मैंने इसे नियुक्त कर दिया था।

राजाओंसे ऐसा कहकर भगवान् श्रीकृष्ण फिर चण्डिकासे बोले—देवि! यह भक्तका मस्तक है। इसे अमृतसे सींचो और राहुके सिरकी भाँति अजर-अमर बना दो। देवीने वैसा ही किया। जीवित होनेपर उस मस्तकने भगवान् श्रीकृष्णको प्रणाम किया और कहा—'मैं युद्ध देखना चाहता हूँ। इसके लिये मुझे अनुमति मिले।' तब भगवान् श्रीकृष्णने मेघके समान गम्भीर वाणीमें कहा—'वत्स! जबतक यह पृथ्वी, नक्षत्र, चन्द्रमा तथा सूर्य रहेंगे, तबतक तुम सब लोगोंके द्वारा पूजनीय होओगे। अब तुम इस पर्वतशिखरपर चढ़कर वहाँ रहो। वहींसे होनेवाले युद्धको देखना।' भगवान् वासुदेवके ऐसा कहनेपर समस्त देवियाँ आकाशमें जाकर अन्तर्धान हो गयीं। बर्बरीकका मस्तक पर्वतके शिखरपर स्थित हो गया। उसका शरीर जमीनपर था, उसका यथाविधि संस्कार कर दिया गया। मस्तकका कोई संस्कार नहीं हुआ। तत्पश्चात् कौरव और पाण्डवोंकी सेनामें भयानक संग्राम छिड़ गया जो लगातार अठारह दिनोंतक चला। युद्धमें द्रोण और कर्ण आदि सब वीर मारे गये। अठारह दिनों बाद निर्दयी दुर्योधन भी मारा गया। तब अपने बन्धु-बान्धवोंके बीचमें धर्मराज युधिष्ठिरने भगवान् श्रीगोविन्दसे कहा—'पुरुषोत्तम! इस महान् संग्राम-सागरसे आपने ही हमलोगोंको पार उतारा है। हे नाथ! हे हरे! हे पुरुषोत्तम! आपको नमस्कार है।' भीमसेन बहुत भोले थे। उन्हें धर्मराजकी यह बात कुछ भारी लगी और उन्होंने तनिक असहिष्णुताके साथ युधिष्ठिरसे कहा—'राजन्! धृतराष्ट्रके पुत्रोंको मारनेवाला तो यह मैं भीम हूँ। आप मेरा तिरस्कार करके 'पुरुषोत्तम', 'पुरुषोत्तम' कहकर कृष्णकी इतनी बड़ाई क्यों कर रहे हैं? धृष्टद्युम्न, अर्जुन, सात्यकि और मैं, जिन लोगोंने युद्धमें पराक्रम दिखाकर विजय पायी, उन्हें छोड़कर आप ऐसा क्यों कह रहे हैं?' भीमसेनकी यह अनुचित बात सुनकर अर्जुनसे नहीं रहा गया। अर्जुन बोले—'भाई भीमसेनजी! राम! राम! आप ऐसा बिलकुल न कहिये, आप जनार्दन श्रीकृष्णको यथार्थतः

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

जानते नहीं हैं। मेरे, आपके या किसी भी अन्य वीरके द्वारा शत्रुका वध नहीं किया गया है। युद्धके समय मैं सदा देखता था कि मेरे आगे-आगे कोई एक पुरुष शत्रुओंको मारता हुआ चला करता था। मुझे पता नहीं, वह कौन था।'

अर्जुनकी बात सुनकर भीमसेन बोले— अर्जुन! तुम निश्चय ही बड़े भ्रममें पड़े हो। भला, युद्धमें दूसरा कौन शत्रुओंको मारता। तथापि यदि तुम्हें विश्वास न हो तो चलो, पर्वतशिखरपर स्थित पौत्र बर्बरीकके मस्तकसे पूछ लें, उसने तो सारा युद्ध देखा ही है। इतना कहकर भीमने वहाँ जाकर बर्बरीकसे पूछा—'बेटा! बताओ, इस युद्धमें कौरवोंको किसने मारा है?' बर्बरीकने कहा—'मैंने तो शत्रुओंके साथ केवल एक पुरुषको युद्ध करते देखा है। उस पुरुषके बायीं ओर पाँच मुख थे और दस हाथ थे, जिनमें वह शूल आदि आयुध धारण किये हुए था। उसके दाहिनी ओर एक मुख और चार भुजाएँ थीं, जो चक्र आदि अस्त्र-शस्त्रोंसे सुसज्जित थीं। उसके बायीं ओरके मस्तक जटाओंसे सुशोभित थे और दाहिनी ओर मस्तकपर मुकुट झलमला रहा था। उसने बायीं ओर भस्म धारण कर रखी थी तथा दायीं ओर चन्दन लगा रखा था। बायीं ओर चन्द्रकला शोभा पा रही थी और दायीं ओर कौस्तुभमणिकी छटा छा रही थी। उस पुरुषके अतिरिक्त कौरववाहिनीका विनाश करनेवाले किसी अन्य पुरुषको मैंने नहीं देखा।' बर्बरीकके ऐसा कहते ही आकाश-मण्डल उद्भासित हो उठा। उससे पुष्पवृष्टि होने लगी। देवताओंकी दुन्दुभियाँ बज उठीं और 'साधु-साधु'की ध्वनिसे आकाश भर गया। इससे भीमसेन लज्जित होकर लंबी साँस लेने लगे। तदनन्तर भीमसेनने तन, मन, वचनसे भगवान् श्रीकृष्णको प्रणाम करके कहा—'केशव! मैंने जन्मसे लेकर अबतक जितने भी अपराध किये हैं, उन सबके लिये तुम मुझे क्षमा करो। हे पुरुषोत्तम! हे नाथ! मैं मूर्ख हूँ, तुम मेरे प्रति प्रसन्न होओ।' भगवान्ने हँसकर कहा—'अच्छी बात है, सब क्षमा किये।' तदनन्तर भीमको साथ लेकर भगवान् श्रीकृष्णने बर्बरीकके समीप जाकर कहा—'तुमको इस क्षेत्रका त्याग नहीं करना चाहिये। हमलोगोंसे जो अपराध हो गये हों, उन्हें क्षमा करना।' भगवान्के ऐसा कहनेपर बर्बरीकने उन्हें प्रणाम किया और प्रसन्नतापूर्वक वह अपने अभीष्ट स्थानको चला गया। भगवान् वासुदेव भी अवतारसम्बन्धी सब कार्य पूर्ण करके परमधामको पधारे। ब्राह्मणो! इस प्रकार मैंने तुम्हें बर्बरीकके जन्मका वृत्तान्त बतलाया है और गुप्तक्षेत्रका भी संक्षेपसे वर्णन किया है। इस क्षेत्रका प्रमाण ब्रह्माजीने सात कोसका बताया है। यह सम्पूर्ण मनोरथोंको सिद्ध करनेवाला है। इस प्रकार परम पवित्र महीसागर-संगमका वर्णन किया गया। जो इसका श्रवण अथवा पाठ करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। यह प्रसंग बहुत ही पवित्र, पुण्यदायक, यशकी वृद्धि करनेवाला तथा पापको हर लेनेवाला है। जो पुरुष भक्तिपूर्वक इसका श्रवण करता है, वह पुण्यका भागी होता है और प्राणनाशके पश्चात् भगवान् शिवके परम-धाममें जाता है। जो मनुष्य मन और इन्द्रियोंको संयममें रखकर पवित्र हो इस परम धन्य, यशोदायक, निश्चय पुण्यप्रद, मनुष्यमात्रके पापहारक तथा उत्तम मोक्षदायक पुराणका प्रतिदिन श्रवण करता है, वह सूर्यमण्डलको वेधकर भगवान् विष्णुके परमधामको प्राप्त होता है।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

अरुणाचल-माहात्म्यखण्ड

भगवान् शंकरका 'अरुणाचल' रूपसे प्रकट होना तथा ब्रह्मा और विष्णुका उनकी स्तुति करना

नैमिषारण्यनिवासी मुनियोंने कहा—सूतजी! अब हमलोग आपसे अरुणाचल-माहात्म्य सुनना चाहते हैं।

श्रीसूतजी बोले—महर्षियो! प्राचीन कालकी बात है, ब्रह्माजी सत्यलोकमें कमलके आसनपर विराजमान थे। उस समय महात्मा सनकने उन्हें प्रणाम करके हाथ जोड़कर पूछा—'भगवन्! आप सम्पूर्ण भुवनके आधार तथा वेदवेद्य पुरुष हैं। चतुर्मुख! आपकी कृपासे मुझे सम्पूर्ण विज्ञान प्राप्त है। दयानिधे! भूमण्डलके समस्त शिवलिंगोंमें जो परम निर्मल, दिव्य तथा अपरिच्छिन्न महिमासे युक्त है, जिसके नाम-स्मरणमात्रसे समस्त पातकोंका विनाश हो जाता है, जो मनुष्योंको सदा भगवान् शिवका सारूप्य प्रदान करनेवाला है, जिसका आदि नहीं है, जो समस्त जगत्का आधार तथा भगवान् शंकरका अविनाशी तेज है और जिसका दर्शन करके जीव कृतार्थ हो जाता है, उसकी महिमाका मुझे उपदेश कीजिये।'

ब्रह्माजीने कहा—बेटा! तुमने मेरे अन्तःकरणमें पुरातन शिवयोगकी स्मृति दिलायी है। तुम्हारे प्रति आदरका भाव होनेसे मैंने चिन्तन करके उस योगको स्मरण कर लिया है। तुम्हारी अधिक तपस्याके प्रभावसे मेरे चित्तमें परम उत्तम शिवभक्तिका उदय हुआ है, जिसने मेरे हृदयको क्षणभरमें अपनी ओर आकृष्ट-सा कर लिया है। जिन पुरुषोंकी सदा आकुलतारहित (परम शान्त) भगवान् सदाशिवके प्रति भक्ति बढ़ती है, वे अपने चरित्रोंसे सम्पूर्ण जगत्को पवित्र कर देते हैं। शिवभक्तोंके साथ वार्तालाप, निवास, मेल-जोल, उनका दर्शन तथा स्मरण—ये सब पापोंका नाश करनेवाले हैं। पूर्वकालमें सबकी पापराशिको दूर करनेवाला, अविनाशी, करुणासे भरा हुआ और अद्भुत शैव तेज जिस प्रकार प्रकट हुआ था, वह वृत्तान्त सुनो। एक समय मेरे और भगवान् विष्णुके समक्ष एक अग्निमय स्तम्भ प्रकट हुआ, जो सम्पूर्ण लोकोंको लाँघकर ऊपरसे नीचेतक फैला था और सब ओरसे अग्निके समान प्रज्वलित हो रहा था। उसका कहीं भी आदि-अन्त न होनेके कारण वह सम्पूर्ण दिगन्तोंमें व्याप्त जान पड़ता था। भगवान् शिवके उस तेजोमय स्वरूपको देखकर मैंने भक्तिपूर्ण चित्तसे उसका मानसिक पूजन किया और अपने चारों मुखोंसे वेदमन्त्रोंका उच्चारण करते हुए शिवकी इस प्रकार स्तुति की—

'जो सम्पूर्ण लोकोंकी उत्पत्तिके एकमात्र हेतु हैं, उन परम महान् भगवान् शिवको नमस्कार है। प्रभो! जिनसे सब कुछ प्रकाशित होता है, उन्हीं आपको सादर नमस्कार है। शम्भो! आपका यह विश्वव्यापी तेज सब ओर प्रकाश फैला रहा है; किंतु जो लोग आपकी कृपासे वंचित हैं, वे इसका दर्शन नहीं कर पाते। ठीक वैसे ही, जैसे जन्मके अन्धे सूर्यको नहीं देख पाते। अपने-आप प्रकट हुआ यह निर्मल लिंग अध्यात्म-दृष्टिसे देखनेयोग्य है। यह भीतर और बाहर सर्वत्र विराजमान है, ऐसा आपके भक्त अनुभव करते हैं। देवेश्वर! जैसे दर्पण अपनेमें प्रतिबिम्ब धारण करता है, उसी प्रकार योगीजन अपने अन्तरात्मामें आपके इस प्रज्वलित तेज—अपरिच्छेद्य विग्रहका दर्शन करते हैं। अथवा भगवान् शंकरकी नित्यशक्ति सूक्ष्मसे भी अतिशय सूक्ष्म है, वह शक्ति मुझमें भी विलीन होती है; अतः मुझसे बढ़कर दूसरा

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

नहीं है। अणु (छोटे-से-छोटा जीव या पदार्थ) भी आपकी कृपाका पात्र बन जानेपर निश्चय ही महत्त्वको प्राप्त होता है। आपसे बढ़कर तो कोई है ही नहीं, किन्तु आपका ही आश्रय लेनेके कारण मुझसे बढ़कर भी दूसरा कोई नहीं है। भगवन्! आपमें लगाया हुआ मन आपसे एक क्षणके लिये भी वियोग नहीं चाहता, फिर किसकी प्रेरणासे मेरी वाणी आपकी महिमाके वर्णनमें प्रवृत्त हो। ईश! महादेव! आप समस्त भुवनोंमें सबसे उत्कृष्ट हैं; अत: स्वयं ही कृपा करके मुझपर प्रसन्न होइये। नाथ! आपके चरणोंमें पड़े हुए इस भक्तको अपेक्षित कार्योंमें नियुक्त होनेके लिये आज्ञा दीजिये।'

विनयपूर्वक यह निवेदन करके मैंने हाथ जोड़कर देव-देवेश्वर भगवान्‌को बारंबार प्रणाम किया और उन्हींके समीप बैठ गया। तत्पश्चात् नूतन जलधरके समान गम्भीर ध्वनिवाले श्रीविष्णुने शंकरजीकी महिमाके कीर्तनद्वारा अपनी विशुद्ध वाणीको और भी कृतार्थ करते हुए कहा—'तीनों लोकोंके अधीश्वर! प्रभो! गंगाधर! जगन्नाथ! विरूपाक्ष चन्द्रार्धशेखर! आपकी जय हो। शम्भो! आपकी दया असीम है और वह भक्तजनोंपर सदा अकारण बढ़ती रहती है, जिससे उन भक्तोंमें स्वच्छ एवं पूर्ण ज्ञानका आधान होता है। प्राय: सम्पूर्ण विद्याओंका पालन और समस्त ऐश्वर्योंका संग्रह भी आपकी कृपासे ही सम्भव है। आपको जाननेमें आप ही समर्थ हैं, अथवा जिसको आपका कृपाप्रसाद प्राप्त है, वह समर्थ हो सकता है। क्या भ्रमर किसी कीटको आकृष्ट करके उसे अपने स्वरूपकी प्राप्ति नहीं करा देता? उसी प्रकार आप भी अपने तुच्छ भक्तको अपनाकर अपने समान बना लेते हैं। देवता आपके अंशसे उत्पन्न हुए हैं, इसीलिये क्या वे प्रभावशाली नहीं हैं? क्या तपाये लोहेमें जो अग्निदेवता स्थित हैं, उनमें जलानेकी शक्ति नहीं होती? देव! शंकर! सर्वाधार! आप कृपा करके हमारे नेत्रोंको आनन्द प्रदान करनेवाली अपनी दिव्य मूर्तिका दर्शन कराइये।'

श्रीसूतजी कहते हैं—इस प्रकार श्रद्धा और भक्तिके साथ प्रणाम और स्तुति करनेवाले ब्रह्मा और भगवान् विष्णुके ऊपर भगवान् शंकर बहुत प्रसन्न हुए तथा उस तेजोमय स्तम्भसे गौर वर्ण, नीलकण्ठ पुरुषरूपसे प्रकट हुए। उनके मस्तकपर अर्धचन्द्रका मुकुट शोभा पा रहा था। हाथोंमें परशु, बालमृग तथा अभय और विश्रामकी मुद्राएँ थीं। वे ब्रह्मा और विष्णुसे बोले—'मुझमें चित्त लगानेवाले तुम दोनोंकी भक्तिसे मैं बहुत सन्तुष्ट हूँ। तुम मुझसे कोई वर माँगो।'

भगवान् शंकरके इस वचनसे उन दोनोंको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने हाथ जोड़कर अपना-अपना पृथक् प्रयोजन निवेदन किया और कभी परास्त न होनेवाले त्रिभुवनविधाता भगवान् शिवका वैदिक मन्त्रोंसे स्तवन करते हुए इस प्रकार कहा—'भगवन्! आपके इस दिव्यरूपको हम नमस्कार करते हैं। आप सतत वर देनेवाले ईश्वर हैं, तेजोमय हैं, देवताओंमें सबसे श्रेष्ठ महादेव हैं तथा योगियोंके ध्यान करनेयोग्य निरंजन

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

ब्रह्मरूप हैं। देव! आपने अपने तेजसे सम्पूर्ण आकाशका अन्तराल परिपूर्ण कर रखा है, इससे क्षणभरमें ऐसी स्थिति हो जानेकी सम्भावना है जिससे यह पूछना पड़ेगा कि देवताओंका निवासस्थान कहाँ था—समस्त देवलोक भस्म हो जाना चाहता है। सिद्ध, चारण, गन्धर्व, देवता और महर्षि आपके तेजसे संतप्त हो आकाशमें न तो ठहर पाते हैं और न कहीं आने-जानेके लिये मार्ग ही पाते हैं। आपके उग्र तेजसे तपती हुई यह समूची पृथ्वी अब चराचर जगत्को उत्पन्न करनेमें समर्थ न होगी। अतः समस्त संसारपर अनुग्रह करनेके लिये आप इस तेजको समेटकर 'अरुणाचल' नामसे स्थावरलिंग हो जाइये। जो मनुष्य आपके अरुणाचल नामक इस ज्योतिर्मय स्वरूपको भक्तिपूर्वक नमस्कार करेंगे, वे देवताओंसे भी अधिक सम्मानित होंगे। अरुणाचल! आपकी शरण लेकर सब लोग ऐश्वर्य, सौभाग्य, महत्त्व तथा कालपर भी विजय प्राप्त करें।'

यह स्तुति सुनकर भगवान् शंकरने 'तथास्तु' कहकर वैसा ही वर दिया। उस समय कमलाकान्त भगवान् विष्णुने अरुणाचलपति शिवजीसे प्रार्थना करते हुए पुनः कहा—'करुणानिधान! अरुणाचलेश्वर! प्रसन्न होइये। प्रभो! महेश्वर! आपका प्राकट्य समस्त लोकोंके हितके लिये हुआ है। आपके इस परम अद्भुत स्वरूपकी उपासना थोड़े पुण्यवाले लोगोंको सुलभ नहीं है। मैंने और ब्रह्माजीने वेदोक्त स्तोत्रद्वारा आपका स्तवन किया है। जो मनुष्य आपका पूजन करेंगे, वे निष्पाप एवं कृतार्थ होंगे। जो लोग नाना प्रकारके उपहारों और पूजन-सामग्रियोंद्वारा आपकी पूजा करें, वे अवश्य चक्रवर्ती राजा हों तथा सब पापोंसे तत्काल मुक्त होकर शुद्धचित्त हो जायँ। आपके समीप आये हुए सब मनुष्योंको अहंता और ममताका परित्याग करके निरन्तर आपके चरणकमलोंका ध्यान करना चाहिये।'

तब भगवान् चन्द्रशेखरने 'ऐसा ही होगा' यह कहकर भगवान् विष्णुको वरदान दिया और अरुणाचलरूपसे भी स्थावरलिंग हो गये। समस्त लोकोंका एकमात्र कारण यह तैजसलिंग अरुणाचल नामसे विख्यात हो इस भूतलपर दृष्टिगोचर हो रहा है। प्रलयकालमें सम्पूर्ण लोकोंको अपने भीतर डुबो देनेवाले चारों समुद्र भी इस अरुणाचलके निकटकी भूमिका स्पर्शतक नहीं कर पाते।

शिवके विभिन्न तीर्थोंकी महिमा

ब्रह्माजी बोले—हे सनक! अरुणाचलरूपसे स्थित हुए भगवान् शंकरके स्वरूपका जो लोग दर्शन और नमस्कार करते हैं, वे निश्चय ही कृतार्थ हो जाते हैं। अरुणाचलका दर्शन समस्त तीर्थोंमें स्नान और सम्पूर्ण यज्ञोंके अनुष्ठानका फल देनेवाला है; उससे भगवान् सदाशिवकी प्रसन्नता प्राप्त होती है। जो लोग प्रदक्षिणा, नमस्कार, तपस्या और नियमोंद्वारा अरुणाचलेश्वरका पूजन करते हैं, भगवान् शिव उनके अधीन हो जाते हैं। तपस्या, योग और दानसे भी भगवान् शंकर वैसे प्रसन्न नहीं होते, जैसे कि एक बार भी अरुणाचलके दर्शनसे होते हैं। जिसके द्वारा अरुणाचल-लिंगकी पूजा होती है, उसे कलियुगका दोष नहीं प्राप्त होता तथा उसकी आधि-व्याधि भी नहीं बढ़ने पाती।

नैमिषारण्यतीर्थमें निवास करनेवाले मुनियोंने सूतजीसे कहा—सब स्थानोंमें जो शिवजीका परम उत्तम स्थान हो उसका हमसे वर्णन कीजिये।

सूतजी बोले—मुनियो! पूर्वकालमें नन्दीश्वरके मुखसे मार्कण्डेयजीने जो कुछ सुना था, उसका वर्णन करता हूँ, आदरपूर्वक सुनो।

मार्कण्डेयजी बोले—नन्दीश्वर! इस त्रिलोकीमें

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth 279 Skandpuran_Section_10_1_Back

तथा समस्त आगमों, पुराणों और वेदोंमें भी कोई ऐसी बात नहीं है जो आपको विदित न हो। आपने पहले यह बताया है कि भूमिपर मनुष्योंको लौकिक सुख, स्वर्गभोग तथा कैवल्य तीनोंकी प्राप्ति हो सकती है; इनमेंसे प्रथम दो वस्तुएँ (लौकिक सुख और स्वर्गभोग) पुण्य क्षीण होनेपर प्राय: नष्ट हो जाती हैं, परंतु तृतीय वस्तु (मोक्ष)-का नाश नहीं होता। उसकी सिद्धि आपने बुद्धि एवं विज्ञानके द्वारा बतलायी है। किंतु समस्त देहधारियोंको विशुद्ध ज्ञान दुर्लभ है; वही ज्ञान किसी-किसी क्षेत्रमें शास्त्र आदि पढ़े बिना ही केवल शिवके पूजनमात्रसे सिद्ध हो जाता है। अत: जिस स्थानके माहात्म्यसे समस्त शरीरधारियोंको नियमपूर्वक शुद्ध ज्ञानकी प्राप्ति हो जाय, उसका मुझसे वर्णन कीजिये।

यों कहकर मार्कण्डेयजीने अन्यान्य मुनीन्द्रों और महात्माओंके साथ शिलादपुत्र नन्दीश्वरके चरणारविन्दोंमें सब शास्त्रोंकी प्राप्तिके लिये नमस्कार किया।

तब नन्दिकेश्वरने कहा—मुने! तुमने जिनके विषयमें पूछा है, वे शिवप्रधान तीर्थस्थान इस भूतलपर अवश्य हैं। भगवान् शंकरने समस्त चराचर जीवोंका कल्याण करनेके लिये वैसे दिव्य स्थानोंको प्रकट किया है। देहधारियोंका अपने-अपने कर्मोंके अनुसार भिन्न-भिन्न योनियोंमें जन्म होता है। आपने उन्हींके महान् हितके लिये शिवप्रधान तीर्थोंको सुननेकी इच्छा प्रकट की है; अन्यथा करोड़ों कल्पोंमें भी उन देहधारियोंके जन्म-मरणरूप संसारकी निवृत्ति नहीं हो सकती है। थोड़े कर्म तथा अधूरे ज्ञानसे जन्म-मरणकी परम्परा नहीं शान्त होती। जैसे रहटमें लगे हुए घड़े बार-बार डूबते और ऊपर आते हैं, उसी प्रकार देहधारियोंका आवागमन होता रहता है। विशुद्ध ज्ञानके सिवा अन्य किस उपायसे देहधारी जीव गर्भवासके कष्टों और सांसारिक शोकोंसे विरक्त होकर शान्ति लाभ कर सकते हैं? (शिवप्रधान तीर्थोंके सेवनसे उस ज्ञानकी प्राप्ति होती है, जिससे मनुष्य संसार-बन्धनसे छुटकारा पा जाता है; अत: शैव तीर्थोंका वर्णन किया जाता है।)

'वाराणसी क्षेत्र' पाँच कोसतक परम पावन बताया गया है, जहाँ 'अविमुक्त' नामक महादेवजी 'विशालाक्षी' देवीके द्वारा पूजित होते हैं। वहीं 'कपालमोचन' तीर्थ है और वहीं कालभैरवका भी निवास है। मुने! उस काशीपुरीमें मरे हुए मनुष्योंको शिवस्वरूपकी प्राप्ति होती है। गया और प्रयाग भी सब सिद्धियोंको देनेवाले तीर्थ कहे गये हैं; वहाँ पिण्डदान करनेसे पितर बहुत सन्तुष्ट होते हैं। मुने! तुमने 'केदार' तीर्थका नाम सुना होगा; जहाँ भगवान् शंकर इस समय भी महिषरूप धारण करके रहते और मनुष्योंका सर्वथा कल्याण करते हैं। 'बदरिकाश्रम' तीर्थ मनुष्योंको सब प्रकारकी सिद्धि प्रदान करनेवाला है। वहाँ देवी पार्वतीके साथ महादेवजी नर-नारायणद्वारा पूजित होकर रहते हैं। तुमने 'नैमिषारण्य' क्षेत्रका नाम भी सुना होगा, जहाँ त्रिपुरासुरका विनाश करनेवाले देवाधिदेव महादेवजी निवास करते हैं। 'अमरेश' तीर्थ भी सब पुरुषार्थोंका साधक बताया गया है, वहाँ 'ओंकार' नामवाले महादेवजी और 'चण्डिका' नामसे प्रसिद्ध पार्वतीजी निवास करती हैं। 'पुष्कर' नामक महातीर्थमें 'रुजोगन्धि' शिव और 'पुरुहूता' देवी निवास करती हैं। 'आषाढ़ी' नामका पवित्र तीर्थस्थान है। वहाँ 'आषाढ़ेश' महादेव तथा 'रति' नामवाली देवी निवास करती हैं। 'दण्डिमुण्डी' नामसे प्रसिद्ध जो तीर्थस्थान है, वहाँ 'मुण्डी' महादेव और 'दण्डिका' देवीका निवास है। 'लाकुलि' नामक विशुद्ध तीर्थ है, जहाँ 'लाकुलीश' महादेव और 'सर्वमंगला' देवी निवास करती हैं। 'भारभूति' नामक स्थानमें 'भार' नामक शिव और 'भूति' नामवाली पार्वती रहती हैं। 'अरालकेश्वर' नामक

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

स्थान है, जहाँ 'सूक्ष्म' नामवाले शिव तथा 'सूक्ष्मा' नामवाली गिरिराजकुमारी निवास करती हैं। 'कुरुक्षेत्र' नामक स्थान है, जहाँ 'स्थाणु' नामवाले महादेव और 'स्थाणुप्रिया' नामवाली महादेवीका निवास है। 'कनखल' नामक उत्तम तीर्थस्थान है, जहाँ भगवान् शिव 'उग्र' नामसे और गिरिराजनन्दिनी 'उमा' नामसे निवास करती हैं। मार्कण्डेय! 'तालक' नामवाले तीर्थमें 'स्वयम्भू' महादेव और 'स्वायम्भुवी' महादेवी रहती हैं। 'अट्टहास' नामक महातीर्थ है, जहाँ सूर्यदेवने भगवान् शंकरकी पूजा करके अपना मनोरथ पूर्ण किया था। वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ मार्कण्डेय! 'कृत्तिवास' क्षेत्र है, जहाँका निवास महादेवजीके लिये कैलाशकी अपेक्षा भी अधिक प्रिय है। 'श्रीशैल' पर भगवान् महेश्वर 'भ्रमराम्बिका' देवीके साथ 'मल्लिकार्जुन' नामसे निवास करते हैं। ब्रह्माजीने सृष्टिकार्यकी सिद्धिके लिये इनका पूजन किया था। 'सुवर्णमुखरी' नदीके तटपर भगवान् शंकर 'कालहस्ती' नामसे प्रसिद्ध हैं; उनके साथ 'भृंगमुखरालका' नामवाली अम्बिका देवी रहती हैं। भगवान् व्यासने वहाँ अम्बासहित भगवान् शिवकी आराधना की थी। 'कांचीपुरी' में एक आमके वृक्षके नीचे 'कामाक्षी' देवीके साथ भगवान् शिव 'कामशासन' नामसे निवास करते हैं। 'व्याघ्रपुर' नामसे प्रसिद्ध एक तीर्थ है, जहाँ तिल्लीवनके भीतर नृत्य करते हुए भगवान् 'नटराज' की महर्षि पतंजलि उपासना करते हैं। 'सेतुबन्ध' नामक तीर्थ है, जहाँ भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने समस्त पापोंका नाश करनेवाले महादेवजीकी 'रामेश्वर' नामसे स्थापना की है। 'गजप्रपा' नामक एक तीर्थस्थान है, जहाँ भगवान् 'वृषभध्वज' सम्पूर्ण जगत्की रक्षा करनेके लिये अश्वत्थवृक्षके नीचे विराजमान हैं। 'वृद्धाचल' क्षेत्रमें 'मणिमुक्ता' नदीके तटपर महादेवजी सदा निवास करते हैं, यह बात तो तुमने सुनी ही होगी। 'मध्यार्चन' नामक उत्तम स्थानका नाम भी तुमने सुना ही होगा, जहाँ मनोवांछित वर देनेवाले भगवान् शंकर गौरीदेवीके साथ नित्य निवास करते हैं। भगवान् 'सोमनाथ' जहाँ निवास करते हैं, उस 'सोमतीर्थ' का नाम भी तुमने सुना होगा, जहाँ शरीर त्याग करनेवाले पुरुषोंको पुन: संसार-बन्धनकी प्राप्ति नहीं होती। 'सिद्धवट' नामक क्षेत्रकी चर्चा भी तुम्हारे सुननेमें आयी होगी, जहाँ सिद्धपुरुष उत्तम 'ज्योतिर्लिंग' की पूजा करते हैं। 'कमलालय' नामक क्षेत्रका नाम तुम्हारे कानोंमें अवश्य पड़ा होगा, जहाँ 'वाल्मीकेश्वर' की पूजा करनेसे लक्ष्मीदेवीने अद्भुत ज्ञान प्राप्त किया था।

'द्रोणपुर' नामक तीर्थको तो तुम जानते ही हो, जहाँ कलियुगकी समाप्तिमें समुद्रके क्षुब्ध होनेपर भगवान् पार्वतीपति नौकापर आरूढ होते हैं। 'ब्रह्मपुर' क्षेत्रका नाम भी तुम्हारे सुननेमें आया होगा, जहाँ ब्रह्माजीने पुष्करिणीके तटपर महादेवजीकी स्थापना की थी। तुम 'कोटिक' नामक क्षेत्रको भी जानते हो, जहाँ भगवान् चन्द्रशेखर भलीभाँति ध्यान करनेवाले पुरुषोंके करोड़ों पापोंका संहार करते हैं। 'गोकर्ण' क्षेत्रका नाम तुम्हारे कानोंमें पड़ा होगा, जिसके समीप भगवान् शिवकी आराधनाकी अभिलाषा रखनेवाले परशुरामजी स्वर्गलोकका सुख भी नहीं चाहते। 'त्रिपुरान्तक' क्षेत्रका नाम भी तुम्हें बताया है, जहाँ तीन नेत्रोंवाले भगवान् शिव अपना दर्शन करनेवाले पुरुषोंके नरकभयका निवारण करते हैं। 'कालंजर' क्षेत्र है, जहाँ निवास करनेवाले भगवान् 'नीलकण्ठ' भक्तोंके भयंकर संसाररोगका निवारण करते हैं। 'प्रियाल' वन प्रसिद्ध क्षेत्र है, जहाँ भगवान् अम्बिकापतिने दूधकी इच्छा रखनेवाले उपमन्युको दूधका समुद्र ही दे डाला

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

था। 'प्रभास' क्षेत्रका परिचय भी तुम्हें दिया गया है, जहाँ भगवान् 'चन्द्रार्धशेखर' ने श्रीकृष्ण और बलभद्रसे पूजित होकर अक्षय फल प्रदान किया है। 'वेदारण्य' तीर्थको जानते हो, जहाँ प्रजापति दक्षने मोक्षके लिये भगवान् शंकरकी प्रार्थना की थी। 'हेमकूट' का नाम तुमने सुना होगा, जो भगवान् 'त्रिलोचन' का स्थान है, जहाँ तपस्या करनेवाले पुरुषोंका पुनर्जन्म नहीं होता। 'वेणुवन' नामक क्षेत्र सब पापोंका नाश करनेवाला है, जहाँ वंशलताके गर्भसे मुक्तामणिमय भगवान् शिव प्रकट हुए। अन्धकासुरके शत्रु भगवान् शिवका 'जालन्धर' नामक स्थान तुमने सुना होगा, जहाँ तपस्या करके जलन्धरने शिवगणोंका आधिपत्य प्राप्त किया है। 'ज्वालामुख' नामक स्थानको तो तुम जानते ही हो, जहाँ ज्वालामुखी देवीने भगवान् 'कालरुद्र' का पूजन किया है। 'भद्रपट' नामसे प्रसिद्ध एक क्षेत्र है, जिसे तुमने भी सुना होगा, जहाँ भक्तोंने सम्पत्तिके लिये भगवान् त्रिलोचनका पूजन किया है। 'गन्धमादन' क्षेत्र तुम्हारे सुननेमें आया होगा, जहाँ भगवान् मृत्युंजयकी पूजा करके मनुष्य निश्चय ही सुख प्राप्त करता है। मैंने शिवजीके 'गो-पर्वत' नामक स्थानका भी परिचय दिया है, जहाँ उपासना करके पाणिनि वैयाकरणोंमें अग्रगण्य हो गये। 'वीरकोष्ठ' नामक क्षेत्रको तो तुम्हें स्मरण है न, जहाँ तपस्या करके महर्षि वाल्मीकिने कवियोंमें प्रधानता प्राप्त कर ली। 'महातीर्थ' को तो तुम जानते ही होगे, जहाँ भगवान् शंकरने ब्रह्मा आदि देवताओंको पढ़ाया है। 'मयूरपुर' (मायावरम्) नामक माहेश्वर तीर्थ है, जहाँ तपस्या करके इन्द्रने वज्र प्राप्त किया। वेगवती नदीके तटपर 'श्रीसुन्दर' नामक क्षेत्र है, जहाँ कलियुगमें भी देवाधिदेव महादेवजी शोभा पाते हैं। भगवान् शंकरके 'कुम्भकोण' नामक स्थानको तुम जानते हो, जहाँ माघमासमें साक्षात् गंगा भी अपने पापकी शान्तिके लिये निवास करती हैं। गोदावरी नदीके तटपर 'त्र्यम्बक' नामक स्थान है, जहाँ कार्तिकेयजीने तारकासुरको मारनेवाली शक्ति प्राप्त की है। श्रीपाटलमें 'व्याघ्रपुर' नामक स्थान है, जहाँ त्रिशंकु मुनिने जाति-शुद्धिके लिये 'गंगाधर' शिवका पूजन किया था। 'कदम्बपुरी' नामक क्षेत्र तो तुम्हें याद ही होगा, जहाँ महादेवजीने तुम्हारे ही लिये त्रिशूलसे कालपर भी आघात किया था। 'अविनाश' क्षेत्रमें भगवान् शिव पार्वतीदेवीके साथ सदा निवास करते हैं। 'रक्तकानन' नामसे प्रसिद्ध जो क्षेत्र है, उसमें भगवान् शिवने मित्र और वरुण देवताको वरदान दिया था। पातालमें 'हाटकेश्वर' क्षेत्र है, जहाँ विरोचनकुमार बलि अपने अभिलषित पदकी प्राप्तिके लिये महादेवजीकी पूजा करते हैं। भगवान्के प्रिय निवास 'कैलास' को तो तुम जानते ही हो, जहाँ यक्षराज कुबेर भक्तिभावसे भगवान् त्रिलोचनकी पूजा करते हैं। भगवान् शिवके ये सभी स्थान तुम्हें बतलाये हैं, तुमने भी इनको ध्यानसे सुना ही होगा। अब और क्या सुनना चाहते हो?

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

अरुणाचल क्षेत्रकी महिमा, विभिन्न पापोंके फल और उन पापकर्मोंका प्रायश्चित्त

मार्कण्डेयजी बोले—प्रभो! आपने पहले जिन स्थानोंका वर्णन किया है, उनमें भिन्न-भिन्न फल प्राप्त होते हैं। जहाँ सब फलोंकी प्राप्ति एक ही जगह हो जाय, वह स्थान मुझे बतलाइये। मुझे उस देशका परिचय दीजिये, जिसके स्मरण करनेमात्रसे ज्ञानी और अज्ञानी समस्त चराचर जीवोंकी मुक्ति हो जाती है।

नन्दिकेश्वरने कहा—मुने! तुम्हारे सिवा अन्य किस व्यक्तिने इस प्रकार दीर्घकालतक मेरी सेवा की है? मेरा भी तुम्हारे ऊपर जैसा प्रेम है, ऐसा और किसीपर नहीं है। इसलिये मैं तुम्हें महादेवजीके गुप्तक्षेत्रका उपदेश करूँगा, जो भक्ति और मुक्ति चाहनेवाले पुरुषोंके द्वारा श्रद्धापूर्वक सुननेयोग्य है। मेरे द्वारा परमेश्वर शिवके रहस्यका उपदेश किया जाता है, तुम एकाग्रचित्त होकर सुनो और इसपर दृढ़ विश्वास करो। कामदेवका नाश करनेवाले भगवान् शिवका स्मरण करो, भगवती पार्वतीजीके चरणोंमें मस्तक झुकाओ। तत्पश्चात् ॐकारका उच्चारण करो, यह तुम्हारे लिये महान् कल्याणका अवसर प्राप्त हुआ है। तपोधन! दक्षिण दिशामें द्राविड़देशके भीतर भगवान् चन्द्रशेखरका अरुणाचल नामक महान् क्षेत्र है, जिसका विस्तार तीन योजन है। शिवभक्तोंको उस क्षेत्रका अवश्य सेवन करना चाहिये। उस प्रदेशको पृथ्वीका हृदय समझो। भगवान् शिव उसे सदा अपने हृदयमें रखते हैं। लोकहितकारी महादेवजी उस क्षेत्रमें स्वयं ही पर्वतरूपमें प्रकट हो 'अरुणाचल' नामसे विख्यात हैं। अरुणाचल क्षेत्र समस्त सिद्धों, महर्षियों, देवताओं, विद्याधरों, यक्षों, गन्धर्वों तथा अप्सराओंका निवासस्थान है। अरुणाचल साक्षात् परमेश्वर शिवका स्वरूप है तथा वह महर्षियोंके लिये मेरु, कैलास और मन्दराचलसे भी अधिक माननीय है। वहाँ सिंह, व्याघ्र आदि पशु भी जब काल आनेपर अपने शरीरका परित्याग करते हैं, तब उन्हें अरुणाचलवासी भगवान् शिव निश्चय ही अपने सेवकोंके रूपमें स्वीकार करते हैं। लाख-लाख वृक्षों और पल्लवोंके रूपमें लक्षित होनेवाली जटा धारण किये यह अरुणाचल जंगम शिवकी भाँति स्थावर शिव है। जिसके सुन्दर शिखरमें लगा हुआ नीला और लाल रंग भगवान् शिवके नीललोहित रूपकी झाँकी कराता है तथा जहाँ स्थावररूपमें प्रकट हुए महादेवजी स्थाणुभावको प्रत्यक्ष धारण करते हैं। यहीं उनका स्थाणु नाम सार्थक होता है। इस अरुणाचल क्षेत्रमें योगिराज गौतमने सहस्रों वर्षोंतक तीव्र तपस्या करके भगवान् सदाशिवका साक्षात्कार किया है। पूर्वकालमें गिरिराजनन्दिनी उमाने भी वहीं तपस्या करके प्रसन्न किये हुए शिवके शरीरमें वामार्द्ध भागपर

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

अधिकार प्राप्त किया था। गौरीदेवीने वहाँ अरुणाचलेश्वर लिंगकी स्थापना की है, जो मनुष्योंको भोग और मोक्ष प्रदान करता है। पार्वतीकी आज्ञासे वहाँ साक्षात् महिषासुरमर्दिनी दुर्गादेवी निवास करती हैं, जो अपने भक्तोंको निर्विघ्न मन्त्रसिद्धि प्रदान करती हैं। वहाँ श्रीदुर्गाजीके द्वारा पूजित 'पापनाशन' नामक लिंग भी सुशोभित है, जो एक बार प्रणाम करनेमात्रसे मनुष्योंके समस्त पाप हर लेता है। इस क्षेत्रमें वज्रांगद नामक राजाने, जो कुबेरके अपराधसे हीन दशाको पहुँच गये थे, पुनः भगवान् शिवकी भक्तिके माहात्म्यसे शिवसायुज्य प्राप्त कर लिया। अरुणाचलकी प्रदक्षिणा करनेमात्रसे कान्तिशाली और कलाधर नामक विद्याधरराज दुर्वासाके शापबन्धनसे मुक्त हो गये थे। भगवान् शिवके ज्ञानसे बढ़कर दूसरा कोई ज्ञान नहीं है, रुद्रियसे बढ़कर दूसरी कोई श्रुति नहीं है, भगवान् विष्णुसे बढ़कर दूसरा कोई श्रेष्ठ शिवभक्त नहीं है, विभूतिसे बढ़कर रक्षाका कोई साधन नहीं है, भक्तिसे उत्तम कोई सदाचार नहीं है, दीक्षा देनेवालेसे बढ़कर दूसरा कोई गुरु नहीं है, रुद्राक्षसे बढ़कर कोई आभूषण नहीं है, शिवशास्त्रसे उत्तम कोई शास्त्र नहीं है, बिल्व-पत्रसे उत्तम पत्र, धतूरेसे उत्तम फूल, वैराग्यसे बढ़कर सुख और मुक्तिसे बढ़कर कोई श्रेष्ठ पद नहीं है।

शिलादपुत्र नन्दिकेश्वरके ऐसा कहनेपर मार्कण्डेयका चित्त बहुत प्रसन्न हुआ। वे आश्चर्यचकित हो उठे। उन्होंने पुनः बार-बार प्रणाम करके नन्दीश्वरजीसे निवेदन किया— 'प्रभो! मनुष्योंका कौन-कौन-सा कर्म कैसे-कैसे होता है और किस प्रकार वह नरककी प्राप्ति करानेवाला सुना जाता है? उन-उन कर्मोंका प्रतीकार (प्रायश्चित्त) कैसे होता है? यह सब आप मुझे बताइये।'

नन्दिकेश्वर बोले—मुने! इस संसारमें सात्त्विक पुरुष पुण्यशील होनेके कारण कल्याणको प्राप्त होता है। कर्म तीन प्रकारके हैं—सात्त्विक, राजस और तामस। अतः विधाताने इन तमःप्रधान कर्मोंके उपभोगके लिये विचित्र-विचित्र नरकोंका भी निर्माण किया है। ब्रह्महत्याके पापसे मनुष्य मृत्युके पश्चात् गदहा, कुत्ता अथवा सूअर होकर फिर चाण्डाल होता है। शराब पीनेसे द्विज चिरकालतक नरकमें पड़े रहनेके पश्चात् कृमि, कीट एवं पतंगयोनिको प्राप्त होता है, अथवा कर्मकार (दास) होता है। ब्राह्मणके धनका अपहरण करनेसे मनुष्य ब्रह्मराक्षस होता है तथा जिस-जिस वस्तुकी वह चोरी करता है, दूसरे जन्ममें वह-वह वस्तु उसे नहीं प्राप्त होती। गुरुपत्नीगमन करनेवाला पुरुष चिरकालतक असिपत्र वनमें यातना भोगकर अन्तमें नपुंसक होता है। पर-स्त्रीगामी मनुष्य यमदूतोंद्वारा लोहेके तपाये हुए डंडोंसे पीटा जाता और कालसूत्र नामक नरकमें निवास करता है। आग लगानेवाला घोर नरकमें वास करता है, जहर देनेवाला सुघोर नरकमें, चुगलखोर महाघोर नरकमें और धर्मकी निन्दा करनेवाला अवीचि नरकमें पड़ता है। मित्रद्रोही कराल नामक नरकमें, हिंसक भीम नरकमें, छिपकर पाप करनेवाला संहार नरकमें, असत्यवादी भयानक नरकमें तथा पराये खेत और धन आदिका अपहरण करनेवाला मनुष्य असिघोर नरकमें निवास करता है। परद्रोहपरायण पुरुष वज्रमें, मांस-भक्षण करनेवाला द्विज तरलमें, माता-पितासे द्रोह करनेवाला तीक्ष्ण और जपकी निन्दा करनेवाला तापन नामक नरकमें पड़ता है। घोड़ेकी हत्या करनेवाला निरुच्छ्वासमें, गोहत्यारा दारुणमें, भ्रूण-हत्यारा चण्डमें और स्त्रीकी हत्या करनेवाला कूलक नरकमें वास करता है। देवसम्पत्तिका अपहरण करनेवाला दहनमें और पराया धन हरण करनेवाला घोर-घोर नरकमें पड़ता है। यमराजके दूत सभी पापियोंको नरकमें गिराते हैं, उन्हें रस्सियोंसे बाँधते हैं, डंडोंसे पीटते हैं और कीलोंसे छेदते हैं। तीखी चोंचवाले बगुले, गीध, भयंकर नेत्रोंवाले बड़े-बड़े सर्प, काले नाग, व्याघ्र तथा अन्य हिंसक जीव उन पापियोंको

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

डँसते हैं। शस्त्रोंसे काटकर टुकड़े-टुकड़े कर देते हैं, देहको आगमें डालकर जलाते हैं, गहरे गड्ढेमें गाड़ते हैं, ऊपरसे कोड़ोंसे पीटते हैं, खौलते हुए तेलके कड़ाहेमें पकाते हैं तथा महीन सूइयोंसे छेद-छेदकर पीड़ा पहुँचाते हैं। यमदूत पापियोंसे ऐसे बड़े-बड़े भार ढुलवाते हैं, जिनको ढोना बहुत ही कठिन है। भगवान् विष्णुसे वैर करनेवाला मनुष्य गिरगिट और शिवद्रोही पुरुष मर्कट (वानर) होता है। इस प्रकार पापोंका फल जानकर उसकी शान्तिके लिये प्रायश्चित्त करना चाहिये। आस्तिक पुरुषोंको इस 'अरुण' क्षेत्रमें ही पापोंका भलीभाँति प्रायश्चित्त करना उचित है।

अब मैं पापपूर्ण चित्तवाले समस्त प्राणियोंकी शुद्धिके लिये विस्तारपूर्वक प्रायश्चित्तका वर्णन करता हूँ—ब्रह्मघाती मनुष्य अरुणाचलक्षेत्रमें जाकर कद्रूतीर्थमें गोता लगावे और भस्म एवं रुद्राक्ष धारण करके पंचाक्षरमन्त्रका जप करते हुए उपवास करे, मन और इन्द्रियोंको संयममें रखकर परमेश्वर भगवान् शिवकी पूजा करे और ब्राह्मणोंको भोजन करावे। तत्पश्चात् एक वर्षतक भिक्षाके अन्नपर निर्वाह करते हुए जितेन्द्रियभावसे वहाँ रहे और भगवान् अरुणाचलका भक्तिपूर्वक विशेष पूजन करे। ऐसा करनेवाला पुरुष ब्रह्महत्यासे मुक्त हो ब्रह्मलोकमें सम्मानित होता है। मदिरा पीनेवाला मनुष्य भी अरुणक्षेत्रमें एक वर्षतक विशुद्ध आचार-विचारसे रहे और महादेवजीकी पूजा करके शतरुद्रियका पाठ करते हुए उन्हें दूधसे नहलावे। ऐसा करनेपर वह मदिरापानजनित पापसे शीघ्र मुक्त हो जाता है। सुवर्णकी चोरी करनेवाला पातकी अरुणक्षेत्रमें महादेवजीकी बिल्वपत्रोंसे पूजा करके यदि ब्राह्मणोंको भोजन करावे तो उस दुस्तर पापसे छुटकारा पा जाता है। गुरुपत्नीगामी पुरुष अरुणाचलमें जाकर भक्तिपूर्वक व्रतका पालन करते हुए प्रतिदिन षडक्षर मन्त्रका जप करे तो उस पापसे मुक्त हो जाता है। परायी स्त्रीका अपहरण करनेवाला मनुष्य अरुणाचल-क्षेत्रमें जितेन्द्रियभावसे निवास करे और एक मासतक प्रतिदिन नये-नये फूलोंसे अरुण शिवकी पूजा करे तथा शक्तिके अनुसार धनका दान करे, तो वह तत्काल पापमुक्त हो जायगा। जहर देनेवाला मनुष्य भी अरुण-क्षेत्रमें पूर्वोक्त रीतिसे व्रतका पालन करते हुए निवास करे और महादेवजीको सब प्रकारके उपहार भेंट करे तो वह उस दोषसे छूट जाता है। चुगलीका पाप करनेवाला भी अरुण-क्षेत्रमें व्रती होकर वेदोक्त कर्ममें तत्पर रहते हुए यदि श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको पढ़ावे या पढ़नेमें सहायता करे तो वह पापरहित हो जाता है। स्त्री, बालक और गायकी हत्या करनेवाला पुरुष भी अरुण-क्षेत्रमें जाकर अपने पापका नाश करनेके लिये व्यतीपात-योगमें ब्राह्मणोंको तिल दान करे। छिपे पाप करनेवाला भी यदि अरुण-क्षेत्रमें इन्द्रियसंयमपूर्वक गुप्तदान करे तो निष्पाप हो जाता है। असत्यवादी मनुष्य अरुणक्षेत्रमें छः महीनेतक निवास करके प्रतिदिन अरुणाचलेश्वर-स्तोत्रका पाठ करनेसे पापरहित हो जाता है। घरका अपहरण करनेवाला मनुष्य नूतन शिवमन्दिर बनवा दे, तो शीघ्र ही पापसे मुक्त हो भगवान् शिवके सायुज्यको प्राप्त होता है। यदि किसी अभीष्ट वस्तुके लिये प्रार्थना करनी हो, तो पैदल चलकर ही भगवान् अरुणाचलकी प्रदक्षिणा करे; इससे वह शुभ अभीष्ट अनायास ही प्राप्त हो सकता है। छींक आनेपर, पाँव लड़खड़ानेपर, परवश होनेपर, बुरे सपने देखनेपर और प्रीतिकी अधिकता होनेपर भी विद्वान् पुरुषोंको भगवान् अरुण—शंकरका नामोच्चारण करना चाहिये। गया, प्रयाग, काशी, पुष्कर तथा सेतुबन्ध तीर्थमें मनुष्योंको जो पुण्य प्राप्त होता है, उससे भी अधिक पुण्य इस अरुण-क्षेत्रमें मिलता है। अरुण-क्षेत्रके समीप किये हुए शास्त्रोक्त सोलह दान द्विगुण फल देनेवाले होते हैं।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

अरुणाचलेश्वरकी पूजा, शिवजीके द्वारा सृष्टिका प्रादुर्भाव तथा विष्णुके द्वारा भगवान् शंकरकी स्तुति

नन्दिकेश्वरजी कहते हैं—षडक्षर मन्त्रके द्वारा दहीसे और प्रणवद्वारा दूधसे भगवान् शिवको स्नान कराना चाहिये। विषुव-योगमें तथा अयनारम्भके दिन अरुणाचलनाथको प्रातःकाल भक्तिपूर्वक तुलसी निवेदन करना चाहिये। दोपहरको अमलतास और तीसरे पहरमें वेलाका पुष्प चढ़ाना अरुणाचलेश्वरके लिये उत्तम माना गया है। अघोर मन्त्रद्वारा एक हजार कलशोंके जलसे उन्हें स्नान कराना चाहिये। शिवरात्रिमें शतरुद्रियका पाठ करके बिल्वपत्रोंके द्वारा अरुणाचलेश्वरकी विशेष पूजा करनी चाहिये। रात्रिको जागरण करते हुए जितेन्द्रिय होकर कमल और कनेरके फूलोंसे तथा गीत, वाद्य और नृत्यके द्वारा दिव्य आगमोक्त विधिसे मोक्षके लिये अरुणाचलवासी महेश्वरकी पूजा करनी चाहिये। भक्तिमान् पुरुष अपने जन्म-नक्षत्रके दिन तथा सम्पत्ति, विपत्ति और भयका अवसर आनेपर भगवान् अरुणाचलनाथकी विशेष पूजा करे। प्रवेश और यात्राके समय भी अरुणेश्वरकी पूजा करनी चाहिये। यदि इस क्षेत्रमें स्थित होकर तीनों समय शिवजीकी पूजा करे, तो भुजा उठाकर डंकेकी चोट यह कहा जा सकता है कि स्वर्ग और मोक्षके लिये अरुणाचल-क्षेत्रसे बढ़कर दूसरा कोई स्थान नहीं है। 'अरुणक्षेत्र' अपना स्मरण करनेसे मनको, श्रवण करनेसे दोनों कानोंको, दर्शन करनेसे दोनों नेत्रोंको तथा नामोच्चारण करनेसे जिह्वाको तत्काल पवित्र कर देता है। इस महाक्षेत्रमें जन्म प्राप्त होनेपर देहधारी जीव जीते-जी भोग और मरनेपर मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं।

मुने! पूर्वकालमें देव-कल्पके आदिमें विकल्प-शून्य भगवान् शिवने स्वेच्छासे ही सम्पूर्ण विश्वको उत्पन्न किया। उत्पन्न हुए विश्वकी सृष्टि-परम्परा चालू रखने तथा सर्वदा इसकी रक्षा करनेके लिये भगवान् त्रिलोचनने अपने दाहिने अंगसे ब्रह्मा और बायें अंगसे विष्णुको प्रकट किया। तत्पश्चात् ब्रह्माको रजोगुणसे और विष्णुको सत्त्वगुणसे युक्त किया। फिर देवाधिदेव महादेवसे प्रेरित होकर वे दोनों देवता सृष्टि एवं रक्षाके कार्यमें संलग्न हो सम्पूर्ण जगत्का शासन करने लगे। तदनन्तर ब्रह्माजीने मरीचि आदि दस पुत्रोंको अपने मनःसंकल्पसे तथा दक्षको दाहिने अँगूठेसे उत्पन्न किया। फिर मुखसे ब्राह्मणों, दोनों बाहोंसे क्षत्रियों, दोनों ऊरुओंसे वैश्यों और दोनों चरणोंसे शूद्रोंको प्रकट किया। मरीचिनन्दन कश्यपसे देवता और असुर उत्पन्न हुए। मरुत्, नाग, यक्ष, गन्धर्व तथा अप्सराओंका जन्म भी उन्हींसे हुआ। इसी प्रकार मनु भी ब्रह्माजीसे उत्पन्न हुए, जिनकी यह मानव-सन्तान आजतक चल रही है। महर्षि अत्रिसे ऋषिवंश तथा क्षत्रियोंका विविध कुल उत्पन्न हुआ। पुलस्त्य और पुलहसे यक्ष एवं राक्षस हुए। अंगिरा-मुनिसे उतथ्य और बृहस्पति आदिका जन्म हुआ। भृगुसे अग्निकी उत्पत्ति हुई तथा च्यवन आदि महर्षि भी उन्हींसे उत्पन्न हुए। वसिष्ठ आदि अन्य ब्रह्मर्षियोंसे भी बहुत-से महर्षियोंका जन्म हुआ। जिनके पुत्र-पौत्रोंसे यह सम्पूर्ण जगत् भरा हुआ है। इस प्रकार ब्रह्माजीने अपनी सन्तानोंसे इस जगत्को पूर्ण किया है।

एक समय भगवान् विष्णुने भगवान् शंकरका इस प्रकार स्तवन किया—'पृथ्वीरूप शरीरवाले महादेव! आपकी जय हो। जलरूपधारी शंकर! आपकी जय हो। सूर्यका रूप धारण करनेवाले शिव! चन्द्रमाकी आकृति धारण करनेवाले रुद्रदेव! आपकी जय हो। अग्निरूप महेश्वर! पवनरूपधारी परमेश्वर! यजमान-मूर्तिधारी शिव! आपकी जय हो। आकाशस्वरूप महेश्वर! त्रिगुणातीत परमेश्वर!

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

कालस्वरूप मृत्युंजय! मेरी रक्षा कीजिये। अक्षय ऐश्वर्यसे सम्पन्न महादेव! करुणानिधान! मेरी रक्षा कीजिये। आप सम्पूर्ण जगत्‌के स्रष्टा और समस्त देहधारियोंके रक्षक हैं, सब भूतोंका संहार करनेवाला भी आपके सिवा दूसरा कौन है? आप सूक्ष्म वस्तुओंमें सबसे अधिक सूक्ष्म (परमाणु) हैं और महान् पदार्थोंमें सबसे महान् भी आप ही हैं। आप ही इस जगत्‌के बाहर और भीतर व्याप्त होकर विराज रहे हैं। सम्पूर्ण वेद आपके निःश्वास हैं। यह सारा विश्व आपके शिल्पकर्मकी विभूति है। प्रभो! सब कुछ आपका ही है; मुझे ज्ञान दीजिये। देवता, दानव, दैत्य, सिद्ध, विद्याधर, मनुष्य, पशु-पक्षी, पर्वत और वृक्ष भी आप ही हैं। स्वर्ग, अपवर्ग, ॐकार और यज्ञ भी आप ही हैं; आप ही योग तथा पराशक्ति हैं। महेश्वर! ऐसी कौन-सी वस्तु है, जो आप नहीं हैं? स्थावर, जंगम सभी प्राणियोंके आदि, मध्य और अन्त भी आप ही हैं। आप ही कालरूप होकर सम्पूर्ण जगत्‌को अपना ग्रास बनाते हैं। आप ही परात्पर परमेश्वर, सबपर शासन करनेवाले तथा सबपर दया दिखानेवाले शिव हैं। वे भगवान् शंकर किस प्रकार मुझे प्रत्यक्ष दर्शन देंगे, जिनका दर्शन पाकर शरणागत भक्त परम कल्याणको प्राप्त होता है। अथवा अपनी बुद्धिके अनुसार मैं उन विश्व-विधाताकी स्तुति करता हूँ।'

देव! महादेव! वामदेव! वृषध्वज! आपकी जय हो! आप कालके भी काल हैं; आपने दक्षके यज्ञका विध्वंस किया है। नीलकण्ठ! चन्द्रशेखर! आपकी जय हो। शम्भो! शिव! ईशान! शर्व! त्र्यम्बक! धूर्जटे! आपकी जय हो। आप कामके शत्रु हैं। आपने त्रिपुरासुरका विनाश किया है। आप स्थिर होनेसे स्थाणु, उद्भव-हेतु होनेसे भव तथा महान् ईश्वर होनेसे महेश्वर कहलाते हैं। ईश! आपकी जय हो। खण्डपरशो! शूलिन्! पशुपते! हर! सर्वज्ञ! भर्ग! भूतनाथ! कपालिन्! नीललोहित! आपकी जय हो। रुद्र! यज्ञविनाशन! पिनाकपाणे! प्रमथाधिप! गंगाधर! व्योमकेश! गिरीश! परमेश्वर! आपकी जय हो। भीम! मृगव्याध! कृत्तिवासा! कृपानिधे! आपकी जय हो। प्रभो! अग्नि आपका बीज है, आप कैलासपर सदा ही निवास करते हैं, आपहीकी आज्ञासे वायु चलती है और शेषनाग पृथ्वीका भार ढोते हैं। शर्व! आपहीके शासनसे सूर्य और चन्द्रमा प्रकाशित होते हैं, समूचा ब्रह्माण्ड समुद्रमें तैरता रहता है और ग्रह-नक्षत्र आकाशमें विचरण करते हैं। आपके ही आदेशसे मैं और ब्रह्मा पालन तथा सृष्टिके कार्यमें समर्थ होते हैं और कल्पके अन्तमें मैं निद्रा त्यागकर पृथ्वीका पालन करता हूँ। आपका आदि और अन्त नहीं मिला; यह आपकी महिमा ही है। अणिमा, महिमा आदि महासिद्धियोंके कारण आपका वैभव असाधारण है। आप अन्य सब देवताओंसे श्रेष्ठ हैं। शंकर! मैं किस प्रकार आपकी स्तुति करूँ? सम्पत्तिमें तो हम आपको भूल जाते हैं और विपत्तिमें स्मरण करते हैं। भक्तोंपर आपको कभी क्रोध नहीं आता; सदा ही उनपर कृपा और प्रसन्नता बनी रहती है। जब आप अपनी भक्ति प्रदान करते हैं, तब बोध प्राप्त होता है और उससे मोक्ष मिलता है।'

शिव-पार्वतीके दाम्पत्य-जीवनकी एक झाँकी, पार्वतीकी अरुणाचल क्षेत्रमें तपस्या और दुर्गादेवीके द्वारा शुम्भ, निशुम्भ और महिषासुरका वध

मार्कण्डेयजीने पूछा—भगवन्! महादेवी गौरीने अरुणाचल-तीर्थमें किस प्रकार तपस्या की है, यह बताइये।

नन्दिकेश्वरने कहा—महामते मार्कण्डेय! मुझे

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

जैसा मालूम है, वैसा बता रहा हूँ, तुम सावधान होकर सुनो। यह तो तुम जानते ही हो कि पूर्वकालमें भगवान् शिवने दक्ष-कन्या सतीके साथ विवाह किया था और सती उन्हें बहुत प्यारी थीं। फिर जब उनके पिता दक्षप्रजापतिने उन्हींके पति भगवान् शंकरसे द्रोह किया, तब उन्होंने किस प्रकार क्रोधमें आकर योग-शक्तिसे अपने शरीरका त्याग कर दिया; यह बात भी तुमने सुनी ही होगी। उस समय भगवान् शिवकी आज्ञासे वीरभद्रने जो दक्ष-यज्ञका विध्वंस किया था, वह महान् इतिहास भी तुम्हें ज्ञात ही होगा। तदनन्तर देवी सतीने पुनः गिरिराज हिमवान्के घरमें जन्म लिया, उस समय उनका नाम उमा और पार्वती पड़ा। कुछ समय बाद देवी पार्वती स्थाणुवनमें भगवान् शिवकी एकान्त सेवा करने लगीं, परंतु महादेवजीने उनकी ओर रुचि नहीं की और कामदेवको कालाग्निसे भस्म कर दिया। तब अपने प्रियगणोंके साथ कहीं एकान्तवास करनेवाले जितेन्द्रिय महादेवजीको गौरीदेवीने वनवासिनी हो तपस्याके द्वारा सन्तुष्ट किया। तत्पश्चात् उनके साथ विवाह करके महादेवजीने उमाके साथ एकान्तमें प्रसन्नतापूर्वक रमण किया।

उन्हीं दिनों शुम्भ और निशुम्भ नामक दो दैत्योंने ब्रह्माजीसे यह वरदान प्राप्त किया कि देवता, दानव और मनुष्योंमें किसी भी पुरुषसे मेरी मृत्यु न हो। उसके इस वचनको सुनकर सब देवता थर्रा उठे, तब विष्णु आदिने महादेवजीसे प्रार्थना की। उनकी प्रार्थना सुनकर महादेवजी बोले—'भय न करो, समयानुसार ऐसा प्रयत्न किया जायगा, जिससे वे दोनों दानव मारे जायँ।' यों कहकर भगवान् शिवने देवताओंको विदा कर दिया और स्वयं पार्वतीदेवीके साथ प्रसन्नतापूर्वक रहने लगे। पार्वतीजीका रंग साँवला था। उन्होंने शंकरजीकी प्रसन्नताके लिये अपनी उस काली चमड़ीको उतार फेंका। जहाँ वह चमड़ी फेंकी गयी, वहाँ 'महाकाली-प्रपात' नामक उत्तम क्षेत्र बन गया और काली कौशिकी-नामसे प्रसिद्ध हो, विन्ध्याचल पर्वतपर रहकर तपस्या करने लगीं। वहीं उन्होंने अपने प्रति आसक्त होनेवाले शुम्भ-निशुम्भ नामक दोनों महादैत्योंको मार डाला। फिर वहीं परम मनोहर गौरीशिखरपर तपस्यासे गौर वर्ण प्राप्त करके देवीने अपने (आदिस्वरूपमें स्थित होकर) पतिको सन्तुष्ट किया। पुनः क्रमशः गर्भवती होकर पार्वतीने गणेश तथा छः मुखोंवाले सेनानी—इन दो पुत्रोंको जन्म दिया। बालकोंको बढ़ते हुए देखकर माता-पिता हर्षके समुद्रमें मग्न हुए-से रहते थे और पुत्रोंके प्रति उनका प्रेम अत्यन्त पुष्ट हो रहा था। भगवान् शिव और पार्वती कभी वीणा बजाते और कभी दिव्य शास्त्रोंकी चर्चा करते। कभी मैनाक, कभी मेना और कभी हिमवान् इन दोनों दम्पतिकी पूजा किया करते थे। इस प्रकार चराचर जगत्के माता-पिता शिव-पार्वतीने मेरु आदि पर्वतोंपर निवास करके दीर्घकालतक एक-दूसरेके साथ अत्यन्त सुखका अनुभव किया।

एक समयकी बात है, गिरिराजकुमारी पार्वतीने अरुणाचल पर्वतके समीप जाकर किसी आश्रमको देखा। वहाँ कौवे और उल्लू, शुक और श्येन (बाज), मृग और व्याघ्र, हाथी और सिंह, मोर तथा सर्प और चूहे तथा बिल्लियोंने परस्पर मित्रता स्थापित कर ली थी* तथा वृक्षोंके बीचसे निकलती हुई अत्यन्त पवित्र धूमराशि जहाँ होम किये हुए पुरोडाशकी सुगन्ध फैला रही थी। उस आश्रमपर एक ऋषिश्रेष्ठ दिखायी दिये, जो हाथके अग्रभागसे

* काकोलूकैः शुकश्येनैर्मृगव्याघ्रैर्हरिद्विपैः। कलापिसर्पैर्यत्राखुमार्जारैः सौहृदं श्रितम्॥
(स्क० पु०, मा० अ० ख० उ० वें० प्र० १८। २९)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

रुद्राक्षकी माला जप रहे थे। वहाँ पहुँचकर पार्वतीने

तपोधनसे पूछा—'तुम कौन हो? तथा यह श्रेष्ठ पर्वत कौन है? जहाँ तुम तपस्या करते हो?' वे बोले—'देवि! यह अरुणाचल पर्वत है, जो समस्त पुण्य-क्षेत्रोंमें सम्मानित है। मैं गौतम नामक मुनि हूँ और तपस्याद्वारा भगवान् शिवकी आराधना करता हूँ।' यों कहकर तथा विजया आदि सखियोंके मुँहसे पार्वतीजीका परिचय पाकर उन्होंने बड़ी भक्तिसे देवीको प्रणाम किया और अपनी पर्णशालामें ले जाकर कन्द-मूल और फल आदिके द्वारा उनका आतिथ्य-सत्कार किया। मुनिने सम्पूर्ण जगत्के मंगलकी मूलभूता तपस्याके लिये अनुमति दी और ज्योतिस्तम्भके प्रादुर्भावसे लेकर अरुणाचलकी समस्त महिमाका यथाशक्ति वर्णन किया। साथ ही यह भी बताया कि मैं यहीं भगवान् त्रिलोचनकी स्थापना करके पवित्र चित्तसे तपस्याके द्वारा यथाशक्ति उनकी आराधना करता हूँ। देवि! मेरे आश्रमके समीप यह बड़ा भारी पुण्यक्षेत्र है, यहाँ आश्रम बनाइये और चिरकालतक तपस्या कीजिये।

मुनिके इस प्रकार आदेश देनेपर पार्वतीने आश्रम बनाना स्वीकार किया और बड़ी भारी तपस्या करनेके लिये उद्योग किया। अन्यान्य जीवोंसे आश्रमकी रक्षा करनेके लिये वनवासिनी उमाने सुभगा और धुन्धुमारीको पूर्व आदि दिशाओंमें स्थापित किया। फिर सम्पूर्ण तपोवनकी रक्षा करनेके लिये उन्होंने उन दुर्गाजीको आदेश दिया जिनका प्रयत्न कभी प्रतिहत नहीं होता तथा जो पार्वतीजीकी आज्ञा निबाहनेमें समर्थ हैं। तत्पश्चात् उमाने मन्दारके फूल गूँथनेयोग्य अपनी वेणीको खोलकर उसे तपस्याके लिये जटाभारके रूपमें परिणत कर दिया। हंसछाप किनारेकी हलकी साड़ीको उतारकर कठोर वल्कल पहन लिया। उन्होंने कुश और बिल्वपत्र तोड़े तथा सबेरे पवित्र नदीमें स्नान करके रक्त चन्दनमिश्रित जल और फूलसे सूर्यनारायणको विधिपूर्वक अर्घ्य दिया। उसके बाद प्रदक्षिणा करके सहस्रों बार प्रणाम किया। फिर स्वयं ही शास्त्रोक्त विधिसे शिवलिंगकी स्थापना करके उसकी विधिपूर्वक पूजा की। पाद्य और अर्घ्य निवेदन करके भगवान्का अभिषेक किया। चन्दन और पुष्प चढ़ाये तथा धूप और दीप अर्पण किये। तत्पश्चात् पंचोपचारोंसे पुनः भगवान् शिवके हृदयादि छः अंगोंका पूजन किया। इस प्रकार एक दिनका पूजन पूर्ण करके प्रतिदिन वे इसी प्रकार प्रदक्षिणा और प्रणाम आदिके सहित शिवजीकी पूजा करने लगीं। शिवशास्त्रोंमें बतायी हुई विधिके अनुसार सौभाग्यदायक द्रव्योंसे पूजाके अन्तमें प्रज्वलित अग्निके भीतर वे आहुति देती थीं। कन्द, मूल, फल आदि समस्त उपचारोंका संग्रह करके वे उनके द्वारा अतिथियोंका सत्कार करती थीं। ग्रीष्म ऋतुमें पाँच प्रदीप्त अग्नियोंके मध्य अँगूठेके बलपर खड़ी रहती थीं। सर्दीमें सरोवरके भीतर खड़ी हो, चन्द्रमाकी सुधामयी किरणोंसे पुष्ट होती थीं। वर्षाकी रात्रियोंमें अन्धकारके भीतर स्थिरभावसे खड़ी हुई पार्वती ऐसी दिखायी देती थीं मानो वर्षाकी धाराओं और बादलोंके साथ बिजली ही प्रकाशित हो रही हो। अपने

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

मनोरथकी सिद्धिके लिये वे सखियोंके साथ अरुणाचलकी प्रदक्षिणा करती थीं। पंचाक्षरका जप, शिवजीके स्तोत्रोंका पाठ तथा मनके द्वारा अरुणाचल पर्वतरूपी महादेवजीका ध्यान तथा साष्टांग प्रणाम करना उनका नित्यका नियम था। इस प्रकार उन्होंने दीर्घकालतक तपस्या की।

इसी बीचमें देवताओंकी अवहेलना तथा इन्द्रके वैभवका विध्वंस करनेवाले महिषासुरने कहींसे यह सुनकर कि अरुणाचलमें पार्वती रहती हैं, उन्हें देखनेके लिये किसी दूतीको भेजा। वह वरदानके प्रभावसे सम्पूर्ण शस्त्रोंद्वारा अवध्य हो गया था। वह पापी धर्ममार्गका नाशक तथा मुनिपत्नियोंको भी कलंकित करनेवाला था। बल, पुलोमा, नमुचि तथा वृत्रासुरसे भी उसमें अधिक बल था। उसकी भेजी हुई दूती तपस्विनीका रूप धारण करके पार्वतीके पास आयी और सखियोंके सामने ही अनुनय-विनयके साथ इस प्रकार बोली—'सुन्दरी! तुम इस भयंकर स्थानमें क्यों निवास करती हो? तुम्हें यहाँ देखकर मुझे खेद होता है। तुम तो मनोहर अन्तःपुरके महलोंमें विहार करनेयोग्य हो। तुमने अपने चित्तको भोगोंकी ओरसे हटाकर किसलिये ऐसी तपस्यामें लगा रखा है, जो देवताओंके लिये भी दुष्कर है? भाग्यवश तपस्वी शिवकी पूजा तो तुमने पहले ही कर ली है, तुम्हारे योग्य देवताओंमें दूसरा कोई नहीं है। किंतु इस त्रिभुवनके स्वामी दानवराज महिष अवश्य तुम्हारे योग्य हैं। सुभ्रु! यदि तुम उन्हें देख लोगी तो क्षणभरमें इस तपस्याका त्याग कर दोगी। वे सबके स्वामी महाराज महिषासुर तुम्हें यहाँ आयी हुई सुनकर कामवेदनासे व्याकुल हो उठे हैं, उन्होंने तुम्हें बुला लानेके लिये मुझ दूतीको यहाँ भेजा है।'

इस प्रकार वह दूती जब अत्यन्त विरुद्ध और अनाप-शनाप वाक्य बोलने लगी, तब देवी पार्वतीकी मानसिक अवस्थाको जानकर उनकी सखी विजयाने उसे आश्रमके बाहर निकाल दिया। तब उसने अपना दैत्यरूप प्रकट करके अत्यन्त रोषके साथ पार्वतीको ले जानेकी प्रतिज्ञा की और घर जाकर महिषासुरको सब समाचारोंसे अवगत कराया। वह भी वहाँकी सब बातें सुनकर क्रोधसे जल उठा और अत्यन्त लाल आँखें करके करोड़ों दैत्योंके साथ पार्वती देवीको पकड़ ले जानेके लिये आया। रथ, हाथी, घोड़े और पैदल—इस चतुरंगिणी सेनाके द्वारा उसने पृथ्वीको और रथके ध्वजोंसे आकाशको आच्छादित कर दिया। दैत्योंके पदाघातसे पृथ्वी फटने लगी। कराल, दुर्धर, विचष्णु, विकराल, वाष्कल, दुर्मुख, चण्ड, प्रचण्ड, अमरासुर, महाहनु, महामौलि, उग्रास्वि, विकटेक्षण, ज्वालास्य और दहन—ये सेनापति भी युद्धके लिये प्रस्थित हुए। यह कोलाहल सुनकर पार्वती देवीने अपनी तपस्यामें विघ्न पड़नेकी आशंकासे दुर्गादेवीको दैत्योंके संहारके लिये आदेश दिया। दुर्गादेवी अरुणाचलकी एकान्त गुफामें सिंहपर आरूढ़ हुईं और अपने हाथोंमें प्रदीप्त अस्त्र धारण करके कालिकाकी भाँति पृथ्वीपर आयीं। उन्होंने मेघकी गम्भीर गर्जनाके समान बड़ा भयंकर सिंहनाद किया। पार्वतीका प्रिय तथा दैत्योंका संहार करनेके लिये

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

दुर्गादेवीके अंगोंसे योगिनियोंकी मण्डली तथा सहस्त्रों रोषमें भरी हुई मातृकाएँ प्रकट हुईं। उन सबकी कान्ति कमलके समान थी, उन्होंने व्याघ्रपर सवार हो रणके लिये प्रस्थान किया। उनके साथ घर्घर शब्द करनेवाले बहुत-से गण तथा अस्त्र-शस्त्र धारण करनेवाली करोड़ों मातृकाएँ भी चलीं। चन्द्रमाके समान गौर वर्णवाली उन मातृकाओंने आश्रमके बाहर पहुँचकर हठपूर्वक चौसठ करोड़ दैत्योंको घेर लिया। तदनन्तर योगिनीमण्डल तथा दानवसेनामें परस्पर घोर युद्ध होने लगा, जो समस्त प्राणियोंके लिये भयंकर था। योगिनियोंके छोड़े हुए बाणोंसे दैत्योंके मस्तक कट-कटकर पृथ्वीको इस प्रकार आच्छादित करने लगे, मानो वे स्थलसे ही उत्पन्न हुए हैं। थोड़ी ही देरमें रक्तकी नदियाँ बह चलीं। कुछ दैत्य डंडोंसे, कुछ शूलोंसे, कुछ शक्तियोंसे, कुछ वज्रोंसे और कुछ योगिनियोंकी तलवारोंसे मौतके घाट उतारे गये। इस प्रकार मारे हुए दानवेश्वर बिना सेनापतिके सैनिकोंकी भाँति सर्वथा नष्ट हो गये। चामुण्डाने चक्रके अग्रभागसे चण्ड-मुण्डके मस्तक काट डाले, इन्हीं दोनों दैत्योंका संहार करनेसे इनका यह (चामुण्डा) नाम प्रसिद्ध हुआ। तब महिषासुरने क्रोधमें भरकर युद्ध करनेके लिये देवीपर आक्रमण किया। उस समय प्रचण्ड, चामर, महामौलि, महाहनु, उग्रास्य, विकटाक्ष, ज्वालास्य तथा दहन भी उसके पीछे-पीछे चले। ठीक वैसे ही, जैसे कालनेमि आदि असुर विप्रचित्तिके पीछे चलते हैं। वे सभी शिरस्त्राण (टोप) धारण किये, रथपर बैठे, तरकस बाँधे और धनुष लिये युद्ध-भूमिमें पहुँचे। दैत्य बाणोंकी वर्षा करते हुए मातृमण्डलकी ओर दौड़े। उस समय वे मातृकाएँ देवीकी इस प्रकार स्तुति करने लगीं— 'देवि! आप ही ब्रह्माकी सृष्टिशक्ति, विष्णुकी पालनशक्ति तथा रुद्रकी संहारशक्ति कही जाती हैं। आप ही यशोदा और नन्दसे उत्पन्न हुई देवी हैं, जो एका और अनंशाके नामसे प्रसिद्ध हैं। आप ही कंस आदि असुरोंका संहार करनेके कार्यमें भगवान् विष्णुकी सहायता करेंगी। देवि! दुर्गे! आप ही महामाया, लक्ष्मी, सरस्वती तथा पार्वती हैं।'

इस स्तोत्रसे सन्तुष्ट होकर दुर्गादेवीने मातृकाओंको अभयदान दिया और स्वयं महिषासुरसे युद्ध करनेके लिये निकलीं। उन्होंने हलके अग्रभागसे प्रचण्डको, भिन्दिपालसे चामरको, छुरीसे महामौलिको, कृपाणसे महाहनुको, कुठारसे उग्रवक्त्रको, शक्तिसे विकटाक्षको, मुद्गरसे ज्वालामुखको और मुसलसे दहनको मार गिराया। फिर महिषासुरके सामने स्वयं ही रोषपूर्वक युद्ध करती हुई देवीने बड़ा भयंकर सिंहनाद किया। उस समय वे मन-ही-मन प्रसन्न थीं। देवीका सिंहनाद सुनकर महिषासुरको बड़ा क्रोध हुआ। उसने बाणोंसे दुर्गाजीके तालू और नेत्रोंपर प्रहार किया। तब दुर्गाने भी कुपित होकर उस असुरेश्वरकी दोनों बाहों, छाती और मुखमें जलती हुई धारवाले बाणोंसे प्रहार किया। यह देख दैत्यने तीन बाणोंसे दुर्गाके मुखको बींध डाला, पाँच-पाँच बाणोंसे उनकी दोनों भुजाओंमें और दो-दो बाणोंसे दोनों नेत्रोंमें आघात किया। फिर दुर्गाने भी एक बाणसे दैत्यके सारथिको और आठ बाणोंसे घोड़ोंको मार डाला। तीन बाणोंसे उसके धनुषको और चार सायकोंसे रथकी ध्वजाको भी काट गिराया। तब दैत्यराज महिषने पैदल होकर दुर्गाजीके ऊपर सब ओरसे प्रज्वलित एक शतघ्नी चलायी, जो कालदण्डके समान भयंकर थी। देवता हाहाकार कर उठे, मातृकाएँ भाग खड़ी हुईं; परंतु दुर्गाने अपनी ओर आती हुई उस शतघ्नीको लीलापूर्वक पकड़ लिया। तब प्रलयकालीन मेघके समान महिषासुरने एकके बाद एक करके धनुष, पाश, भुशुण्डी, तलवार, कील, शक्ति, गदा, चक्र, तोमर, फलक, अंकुश, फरसा, भिन्दिपाल, पट्टिश और दण्ड आदि अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा की, परंतु शत्रुके चलाये

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

हुए उन सभी आयुधोंको अपने पास आते ही दुर्गादेवी हाथसे पकड़ लेतीं और जैसे हथिनी कमलकी नालको अनायास ही तोड़ डालती है, उसी प्रकार वे उनके टुकड़े-टुकड़े कर डालती थीं। महिषासुर क्षणमें सिंह, क्षणमें वाराह, क्षणमें व्याघ्र, क्षणमें हाथी तथा क्षणमें भैंसा होकर दुर्गाजीसे युद्ध कर रहा था। उसने अत्यन्त रोषमें भरकर अपने तीखे सींगोंसे दुर्गादेवी और उनके सिंहको भी बार-बार घायल किया। वह क्षणमें आकाशमें चला जाता, क्षणमें पृथ्वीपर उतर आता, क्षणमें चारों दिशाओंमें घूम आता और क्षणमें गर्जना करने लगता था।

इसी समय दानवराज महिष अपने असली रूपमें देवीके सामने आया। तब दुर्गाने तलवारसे ही उसके मस्तकको काट डाला और उस कटे हुए मस्तकको हाथमें लेकर वे रणभूमिमें नृत्य करने लगीं। इस प्रकार दुर्गादेवीके द्वारा समस्त भुवनोंके कण्टकरूप महिषासुरके मारे जानेपर देवता हर्षसे नाचने लगे, महर्षि अत्यन्त प्रसन्न हो गये और मेघोंने दिव्य पुष्पोंकी वर्षा की।

खड्गतीर्थकी उत्पत्ति, ज्योतिदर्शन, पार्वतीपर अरुणाचलेश्वरकी कृपा तथा भगवान् शिवका वरदान

मार्कण्डेयजी बोले—प्रभो! इस प्रकार भद्रकालीद्वारा महिषासुरके मारे जानेपर तपस्यामें लगी हुई गिरिराजनन्दिनी पार्वतीने क्या किया?

नन्दिकेश्वरने कहा—मुने! तदनन्तर दुर्गादेवीने एक हाथमें दैत्यका मस्तक लिये दूसरे खड्गयुक्त हाथसे गौरीदेवीको प्रणाम किया। हर्षसे नृत्य करती हुई दुर्गाको दयार्द्रदृष्टिसे देखकर पार्वतीने अपने दाँतोंकी किरणोंसे आकाशमें प्रकाश बिखेरते हुए उनसे इस प्रकार कहा—'विन्ध्यवासिनि! तुमने अत्यन्त दुष्कर पराक्रम किया है। तुम्हारे प्रभावसे मेरी तपस्याका विघ्न दूर हो गया। देवि! तुम्हारा चरित्र सम्पूर्ण जगत्‌में पवित्र है। तुमने अपने हाथमें जो यह महिषासुरका अपवित्र एवं भयंकर मस्तक ले रखा है, उसे त्याग दो और एक नूतन पापनाशक तीर्थ उत्पन्न करो, जिसमें स्नान करनेसे पापका प्रायश्चित्त होगा।' गौरीदेवीके यों कहनेपर पापकी आशंकावाली सामर्थ्यशालिनी दुर्गाने अपनी तलवारसे एक शिलाखण्डको विदीर्ण किया। वह पत्थर पातालतक छिद्रयुक्त हो गया। फिर वहाँसे अत्यन्त निर्मल, परम पवित्र, तरंगयुक्त जल ऊपरकी ओर उठा। उस पावन एवं गम्भीर जलमें दुर्गादेवीने '**नमः शोणाद्रिनाथाय**' इस उत्तम मन्त्रका उच्चारण करके गोता लगाया। इतनेहीमें महिषासुरके कण्ठमें स्थित शिवलिंग उसमेंसे खिसककर जलके किनारे स्वयं प्रतिष्ठित हो गया और 'पापनाशन' नामसे प्रसिद्ध हुआ। तत्पश्चात् तीर्थके जलसे समस्त पाप धुल जानेपर दुर्गादेवी बाहर निकलीं। फिर उनके हाथसे महिषासुरका मस्तक नीचे गिर पड़ा।

तदनन्तर कार्तिककी पूर्णिमाको रात्रिमें अरुणाचलके शिखरपर कोई अपूर्व ज्योति दिखायी दी।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

ईंधन, तेल और रूईकी बत्तीके बिना ही जलते हुए उस महाप्रदीपको देखकर पार्वतीको बड़ा विस्मय हुआ। वे प्रदक्षिणा करके पग-पगपर अरुणाचलनाथको प्रणाम करती हुई इस प्रकार स्तुति करने लगीं—'मेरुगिरिपर निवास करनेवाले आप कैलासवासी भगवान् शिवको नमस्कार है। हिमाचलके जामाता, अरुणाचलरूपधारी आपको प्रणाम है। वरुण आदि देवताओंके पूजनीय, मध्याह्नकालीन सूर्यके समान तेजस्वी, करुणामूर्ति अरुणाचलनाथको नमस्कार है। भगवन्! आपका मस्तक जाह्नवी गंगा तथा चन्द्रमाकी कलासे सुशोभित है; आप भगवान् शिवकी जय हो। मायासे नारायणस्वरूप धारण करके भाँति-भाँतिकी लीलाएँ करनेमें परम प्रवीण महादेव! अपने आनन्दसे ताण्डव नृत्य करनेवाले शम्भो! शिव! ईशान! देवता, गन्धर्व, सिद्ध और विद्याधरोंसे पूजित होनेवाले प्रभो! गणेशके जन्मदाता आपकी जय हो। छः मुखोंवाले कार्तिकेयपर अत्यन्त स्नेह रखनेवाले शिव! आपकी जय हो। हिमवान्‌कुमारी पार्वतीके प्रार्थनीय पतिदेव! प्रभो! राजाओंको भी आपका दर्शन दुर्लभ है; आपकी जय हो।'

इस प्रकार प्रसन्नतापूर्वक स्तुति करके उस ज्योतिमें नेत्र लगाये रखनेवाली देवी पार्वतीको देखकर उनपर दया करनेके व्याजसे भगवान् वृषभध्वज अन्तर्धान हो गये और पुनः अपने अत्यन्त सुन्दर रूपको प्रकट करके दिव्य वृषभपर आरूढ़ हो कल्याणमयी पार्वतीको सान्त्वना देनेके लिये उद्यत हुए। महादेवजीको अपने समीप आया देख उमादेवी आनन्दमें निमग्न हो गयीं। उन्होंने चिरकालसे प्राप्त प्रियतमके वियोगजनित दुःखको भुला दिया। उनके शरीरमें रोमांच हो आया, मुखपर पसीना छा गया। उन्होंने काँपते-काँपते पतिदेवके चरणोंकी अंगुलियोंपर दृष्टिपात किया। तब भगवान् शिव वृषभसे उतरकर उनका हाथ अपने हाथमें ले मुसकराते हुए मुखारविन्दसे प्रेमपूर्वक बोले—'देवि! क्यों अकारण अपने चित्तको व्याकुल कर रही हो? क्या तुम नहीं जानती—चन्द्रमा और चाँदनीकी भाँति हम दोनों सदा एक-दूसरेसे अभिन्न हैं? मैं नारायण हूँ, तुम लक्ष्मी हो; मैं ब्रह्मा हूँ, तुम सरस्वती हो; मैं शेषनाग हूँ, तुम वारुणी हो; मैं चन्द्रमा हूँ और तुम रोहिणी हो; तुम स्वाहा, मैं अग्नि; तुम सुवर्चला, मैं सूर्य; तुम शची, मैं इन्द्र; तुम रति, मैं काम; तुम बुद्धि, मैं राजराज; तुम शिवा, मैं समीर; तुम लहर, मैं समुद्र तथा तुम प्रकृति और मैं पुरुष हूँ। तुम विद्या हो और मैं तुम्हारे द्वारा जाननेयोग्य तत्त्व हूँ। तुम वाणी हो, मैं अर्थ हूँ। पार्वती! मैं ईश्वर हूँ और तुम्हीं मेरी शक्ति हो। सृष्टि, पालन और संहारके कार्यमें सदा अनुग्रह रखनेवाली ईश्वरी! तुम्हें अन्य साधारण जनोंकी भाँति मुझमें और अपनेमें भेद-भाव नहीं करना चाहिये। देवि! हम दोनों चेतना और प्रकाशरूप हैं। हमने स्वेच्छासे पृथक् शरीर धारण किये हैं।'

ऐसा कहकर महादेवजीने स्वयं बैठकर पार्वतीको भी अपने वामपार्श्वमें बिठा लिया। वे लज्जासे भगवान् शिवके वामांगमें मानो छिपी जा रही थीं। प्रेमसे परस्पर लीन हुए शिव और पार्वतीके दो शरीर एकताको प्राप्त हो गये; मानो अत्यन्त सन्निकट पहुँचे हुए दो अर्थ स्पष्ट प्रतीत हो रहे हों। शिव और शिवाका एकताको प्राप्त हुआ वह शरीर विचित्र शोभा धारण कर रहा था। आधा अंग कपूरके समान श्वेत था, तो आधा अंग ईंगुरके समान लाल। आधे सिरमें घुँघराले बाल, आधी छातीमें हार और चोली, एक पैरमें नूपुर, एक कानमें झूमक और एक हाथमें कंकणसे वह रूप बड़ा ही मनोहर प्रतीत होता था। इस प्रकार अपना वामार्द्ध भाग पार्वतीदेवीको समर्पित करके महादेवजीने उनसे कहा—'देवि! अब तुम्हें ऐसे रोषका अवसर न मिले, जिससे कि तुम दूध पीनेकी इच्छा रखनेवाले कार्तिकेयको छोड़कर तपस्याके लिये चल दी थीं; इसलिये अब मेरे समीप इस तीर्थमें तुम 'अपीतस्तनी'

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

नामसे निवास करो। देवि! अपीतस्तनी नामसे तुम्हारा और अरुणाचलेश्वर नामसे मेरा आराधन करके सब लोग भोग और मोक्षका सुख प्राप्त करें। तुम्हारे अंशसे उत्पन्न हुई यह महिषासुरमर्दिनी दुर्गा यहाँ साधन करनेवाले मनुष्योंको मन्त्रसिद्धि प्रदान करेंगी। यह पवित्र खड्गतीर्थ एक ही बार गोता लगानेसे मनुष्योंके सब रोगोंको हर लेनेवाला और सब पापोंका नाश करनेवाला हो। ये पापनाशक भगवान् अरुणाचलनाथ अपनेमें भक्ति और श्रद्धा रखनेवाले मनुष्योंको सदा ऐश्वर्य प्रदान करनेवाले हों। देवि! ये गौतम मुनि तुम्हारे कृपापात्र हैं; अतः जबतक चन्द्रमा और ताराओंकी स्थिति रहे, तबतक ये सब लोकोंमें अपनी तपस्याके अनुरूप फल प्राप्त करें। ये सात लोकोंकी एकमात्र जननी सातों मातृकाएँ संसारको वैभव प्रदान करनेके लिये आजसे इस तीर्थमें निवास करें। शासक भैरव, क्षेत्रपाल और बटुक भी इस अरुणाचलक्षेत्रमें ही नित्य निवास करें। मैं भी तुम करुणामयी अरुणादेवीके साथ अरुण नाम धारण करके इस अरुणाचलक्षेत्रमें निवास करूँगा। अतः इस अरुणक्षेत्रमें सब प्रकारकी सिद्धियाँ सुलभ होंगी।' जो गिरिराजनन्दिनी पार्वतीद्वारा अरुणाचलेश्वरको प्रसन्न करनेके इस पावन प्रसंगको सुनता है, वह काम-क्रोध आदि शत्रुओंका नाश करके अनायास सुलभ स्वर्ग और मोक्षको प्राप्त कर लेता है।

कान्तिशाली तथा कलाधरका उद्धार, राजा वज्रांगदद्वारा अरुणाचलेश्वरकी आराधना तथा भगवान् शिवकी उनके ऊपर कृपा

मार्कण्डेयजीने पूछा—भगवन्! पाण्ड्यदेशके राजा वज्रांगदने किस प्रकार भगवान् अरुणाचलका व्यतिक्रम किया और फिर उन्हींकी भक्तिसे वे किस प्रकार वैभवको प्राप्त हुए? कान्तिशाली और कलाधर—ये दोनों विद्याधरराज भगवान् अरुणाचलेश्वरकी कृपासे किस प्रकार दुर्वासाके शाप-बन्धनसे मुक्त हुए?

नन्दिकेश्वर बोले—मुने! पाण्ड्यदेशमें वज्रांगद नामसे प्रसिद्ध एक राजा हो गये हैं। वे बड़े धर्मात्मा, न्यायवेत्ता, शिवपूजापरायण, जितेन्द्रिय, गम्भीर, उदार, क्षमाशील, शान्त, बुद्धिमान्, एकपत्नीव्रती और पुण्यात्मा थे। राजा वज्रांगद शीलवानोंमें सबसे श्रेष्ठ थे और शत्रुओंको जीतकर समूची पृथ्वीका शासन करते थे। एक दिन घोड़ेपर सवार हो वे शिकार खेलनेके लिये निकले और अरुणाचलतकके दुर्गम वनमें गये। उन्होंने वहाँ किसी कस्तूरी-मृगको देखा। उसके शरीरसे सब ओर बहुत सुगन्ध फैल रही थी। उसे देखते ही राजाने कौतूहलवश उसके पीछे घोड़ा दौड़ाया। मृग वायु और मनके समान वेगसे भागा और अरुणाचल पर्वतके चारों ओर चक्कर लगाने लगा। तब अधिक परिश्रम होनेके कारण राजा कान्तिहीन होकर घोड़ेसे गिर पड़े। उस समय मध्याह्नकालीन सूर्यके प्रखर तापसे उन्हें अत्यन्त पीड़ा हुई। वे ग्रहसे गृहीत हुएकी भाँति क्षणभरके लिये अपने-आपकी भी सुध-बुध खो बैठे थे। तत्पश्चात् उन्होंने सोचा—'मेरी शक्ति और धैर्यका यह अकारण ह्रास कहाँसे हो गया? वह हृष्ट-पुष्ट मृग मुझे इस पर्वतपर छोड़कर कहाँ चला गया?' राजा जब इस प्रकारकी चिन्तासे व्याकुल और अज्ञानसे दुःखी हो रहे थे, इसी समय आकाश सहसा विद्युत्पुंजसे व्याप्त-सा दिखायी दिया। उनके देखते-देखते घोड़े और मृगने तिर्यग् (पशु) योनिका शरीर त्यागकर क्षणभरमें आकाशचारी विद्याधरका रूप धारण कर लिया। उनके मस्तकपर किरीट, कानोंमें

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

कुण्डल, कण्ठमें हार और बाहोंमें भुजबन्ध शोभा पा रहे थे। दोनों रेशमी धोती और दिव्य पुष्पोंकी मालाएँ धारण करके शोभा पा रहे थे।

यह सब देखकर राजाका चित्त आश्चर्यचकित हो रहा था; तब वे दोनों विद्याधर बोले—'राजन्! विषाद करनेकी आवश्यकता नहीं। आपको मालूम होना चाहिये, हम दोनों भगवान् अरुणाचलेश्वरके प्रभावसे इस उत्तम दशाको प्राप्त हुए हैं।' उनकी इस बातसे राजाको कुछ आश्वासन-सा मिला। तब वे हाथ जोड़कर उन दोनोंसे विनयपूर्वक बोले—'आप दोनों कौन हैं? मेरा यह पराभव किस कारणसे हुआ है? आप दोनों कल्याणकारी पुरुष हैं, अतः मुझे मेरी पूछी हुई बातें बताइये? क्योंकि संकटमें पड़े हुए पुरुषोंकी रक्षा करना महापुरुषोंका महान् गुण है।'

राजाके ऐसा प्रश्न करनेपर कलाधरने कान्तिशालीकी आज्ञासे इस प्रकार कहा—'राजन्! हम दोनों पहले विद्याधरोंके राजा थे। हममें बसन्त और कामदेवकी भाँति परस्पर बड़ी मित्रता थी। एक दिन मेरुगिरिके पार्श्वभागमें दुर्वासाके तपोवनमें, जहाँ मनसे भी पहुँचना अत्यन्त कठिन है, हम दोनों जा पहुँचे। वहाँ मुनिकी परम पवित्र पुष्पवाटिका थी, जो एक कोसतक फैली हुई थी। वह वाटिका शिवाराधनके काममें आती थी। हमने देखा—खिले हुए फूलोंसे वह बड़ी मनोहर जान पड़ती थी। हम लोग तत्त्व-चिन्तनमें तत्पर हो फूल तोड़नेकी उत्कण्ठासे उस फुलवाड़ीमें घुस गये। उस रमणीय स्थानके प्रति प्रेम हो जानेसे हमारा मित्र यह कान्तिशाली गर्वसे फूल उठा और बारंबार वहाँकी भूमिपर पैर पटकता हुआ इधर-उधर विचरने लगा। मैं वहाँ पुष्पोंकी अतिशय सुगन्धसे मोहित हो दुर्वासनावश विकसित पुष्पोंपर हाथ रख दिया करता था।

'मेरे इस अपराधके कारण बिल्ववृक्षके नीचे व्याघ्र-चर्मके आसनपर बैठे हुए तपोराशि दुर्वासा मुनि आगकी भाँति जल उठे और अपनी दृष्टिसे मानो हमें जला डालेंगे—इस प्रकार देखते हुए हमारे

समीप आ गये। आकर हमें फटकारते हुए बोले—'ओ पापियो! तुमलोगोंने सज्जनोचित सदाचारका उल्लंघन किया है और अत्यन्त अहंकारमें भरकर मेरे इस पवित्र तपोवनमें विचर रहे हो। मेरा यह उद्यान सब प्राणियोंका पोषण करनेवाला है। इसे अपने चरणोंके प्रहारसे दूषित करनेवाला यह पापी संसारमें घोड़ा हो जाय तथा दूसरेकी सवारी ढोनेके कारण कष्ट उठाता रहे तथा दूसरा जो यह अत्यन्त उग्र स्वभाववाला है, फूलोंकी सुगन्धके प्रति लोभ रखकर आया है इसलिये कस्तूरीमृग होकर पर्वतकी कन्दरामें गिरे।'

'इस प्रकार भयानक रोषसे वज्रके समान दुर्वासा मुनिका शाप प्राप्त होनेपर उसी क्षण हम दोनोंका गर्व गल गया और हम मुनिकी शरणमें गये। उनके चरणारविन्दोंको अपने हाथोंसे पकड़कर हमने प्रार्थना की—'भगवन्! आपका यह शाप अमोघ है, अतः यह बतानेकी कृपा करें कि इसका अन्त कब होगा।' राजन्! तब हम दोनोंको अत्यन्त दीन एवं दुःखी देखकर मुनिके हृदयमें दयाका संचार हो आया। वे करुणाकी वर्षासे शीतलस्वभाव होकर बोले—'अरे! तुम दोनों अब कभी खोटी बुद्धिका आश्रय लेकर ऐसे बर्ताव

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

न करना। अरुणाचलकी परिक्रमा करनेसे तुम्हारे इस शापका निवारण होगा। अरुणाचल साक्षात् भगवान् शिवके स्वरूप हैं। प्राचीन कालमें इन्द्र, उपेन्द्र और यम आदि दिक्पालोंने सैकड़ों वर्षोंतक इनकी उपासना की थी। उसी समय नन्दनवनके देवता इन्द्रने देवाधिदेव महादेवजीको एक लाल रंगका अद्भुत फल भेंट किया। वह मनको लुभा लेनेवाला था। उसे देखकर गणेश और कार्तिकेय दोनों भाई अपने बालक-स्वभावके कारण कौतूहलवश उसकी ओर आकृष्ट हो गये और अपने पिता भगवान् शंकरसे वह फल माँगने लगे। तब भगवान् शिवने वह फल अपनी मुट्ठीमें छिपा लिया और उसकी अभिलाषा रखनेवाले दोनों कुमारोंसे इस प्रकार कहा, 'पुत्रो! तुम दोनोंमेंसे जो भी लोकालोक पर्वतसे घिरी हुई इस समूची पृथ्वीकी परिक्रमा करनेमें समर्थ हो उसे ही यह फल दूँगा।' पार्वतीवल्लभ शिवने जब मुसकराते हुए मुखचन्द्रसे ऐसी बात कही, तब कार्तिकेयजीने समस्त पृथ्वीकी परिक्रमा आरम्भ कर दी। परंतु गणेशजी अरुणाचलरूपी पिता महादेवजीकी ही परिक्रमा करके तत्काल उनके सामने खड़े हो गये। उनकी यह चतुराई देखकर भगवान् शिवने स्नेहसे उनका मस्तक सूँघकर उन्हींको वह फल दे दिया और यह वरदान दिया कि 'आजसे तुम सभी फलोंके अधिपति हो जाओ।' एक दाँतवाले गणेशजीको ऐसा वर देकर भगवान् शंकरने वहाँ आये हुए समस्त देवताओं और असुरोंसे कहा—'यह अरुणाचल मेरा स्थावर विग्रह है। जो इसकी परिक्रमा करता है, वह समस्त ऐश्वर्योंका भागी होता है। जो पुरुष इस पर्वतको अपने दाहिने रखकर इसके चारों ओर चक्कर लगाता है वह चक्रवर्ती राजा होकर अन्तमें सर्वोत्कृष्ट सनातन पदको प्राप्त कर लेता है।' महादेवजीकी इस आज्ञासे सब देवताओंने अरुणाचलकी परिक्रमा करके अपना-अपना अभीष्ट मनोरथ प्राप्त किया। अतः तुम दोनों भी जब अरुणाचलकी प्रदक्षिणा कर लोगे, तब उससे तुम्हारे शापका अन्त हो जायगा। पशुयोनिमें रहनेपर भी पाण्ड्यनरेश वज्रांगदके सम्बन्धसे तुम दोनोंके द्वारा अरुणाचलकी परिक्रमा सम्पन्न होगी और वह सफल भी हो जायगी।'

कलाधरने कहा—नृपश्रेष्ठ! तदनन्तर मेरा मित्र कान्तिशाली काम्बोजदेशमें घोड़ा हुआ और आपकी सवारीमें आया। मैं भी कस्तूरी-मृग होकर अपने ही शरीरसे उत्पन्न सुगन्धके मदसे उन्मत्त हो इस अरुणाचलपर विचरने लगा। धर्मात्मन्! आपने मृगयाके बहाने इस समय यहाँ आकर हम दोनोंसे अरुणाचलनाथकी परिक्रमा करवा दी। आपने सवारीपर चढ़कर यह परिक्रमा की है। इस दोषसे आपकी ऐसी शोचनीय दशा हो गयी है। हम दोनोंने पैदल चलनेके पुण्यसे अपने पूर्वपदको प्राप्त किया। महाराज! आपके ही सम्बन्धसे हम इस पशुयोनिके बन्धनसे छूटकर अपने धामको प्राप्त हुए हैं; इसलिये आपका सदा ही कल्याण हो।

यों कहकर कलाधर अपने मित्र कान्तिशालीके साथ जब अपने धामको जाने लगा, तब राजाने हाथ जोड़कर कहा—'आप दोनों तो अरुणाचलरूपी भगवान् शंकरके प्रभावसे शापरूपी समुद्रके पार हो पुनः अपने पदको प्राप्त हो गये, परंतु मेरा चित्त भ्रान्त-सा हो रहा है। मेरे नेत्र अन्धे-से हो गये हैं और ऐसा जान पड़ता है मानो मेरे प्राण निकले जा रहे हैं। अतः ऐसा होनेमें दैवबलका ही उत्कर्ष सूचित होता है।'

कलाधरने कहा—राजन्! मैं तुमसे तुम्हारे हितके लिये भी जो कहता हूँ उसे निश्चिन्त तथा एकाग्रचित्त होकर सुनो। संसारकी सृष्टि, पालन और संहार करनेवाले भगवान् महेश्वरके स्वरूपभूत अरुणाचलनाथ करुणाके सागर हैं। तुम इन्हींमें अपना मन लगाओ (इनकी महिमा तो तुमने इस समय अपनी आँखों देखी जो कि पशुयोनिमें पड़े हुए हम दोनोंको इन्होंने ऐसे दिव्य पदकी प्राप्ति करा दी)। तुम भी पैदल होकर भगवान् अरुणाचलकी परिक्रमा करो। इन्हें कस्तूरीकी

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

गन्ध बहुत प्रिय है इसलिये कस्तूरीके चन्दन और कचनारके फूलोंसे तुम इनकी पूजा करो। प्रभो! तुम्हारे पास जितनी सम्पत्ति है वह सब भगवान् अरुणाचलके मन्दिर, गोपुर, चहारदिवारी तथा आँगनका चौक आदि बनवानेके लिये दे डालो। ऐसा करनेसे शीघ्र ही तुम्हें बहुत बड़ी सिद्धि प्राप्त होगी। मनु, मान्धाता, नाभाग तथा भगीरथसे भी उत्कृष्ट पद तुम्हें प्राप्त हो जायगा।

तत्काल अपने धामको प्राप्त करनेवाले उन दोनों विद्याधरोंका यह वचन सुनकर राजा वज्रांगदने सन्देहरहित चित्तसे भगवान् अरुणाचलनाथके प्रति भक्ति बढ़ायी और उसी समयसे विशेष संयम-नियमका पालन आरम्भ किया।

मार्कण्डेयजीने पूछा—भगवन्! पाण्ड्य-नरेश वज्रांगदने किस प्रकार महादेवजीका पूजन किया और देव अरुणाचलनाथने कैसे उनपर अनुग्रह किया?

नन्दिकेश्वर बोले—मुने! राजा वज्रांगदने अपने नगरको लौटनेकी इच्छा त्यागकर उन्हीं भगवान् अरुणाचलनाथके चरणोंके समीप रहना पसंद किया। तदनन्तर रथ, हाथी, घोड़े और पैदलसे भरी हुई उनकी विशाल चतुरंगिणी सेना घोड़ेके मार्गका अनुसरण करती हुई वहाँ आ पहुँची। पुरोहित, मन्त्री, सामन्त, सेनापति तथा सुहृदोंने धैर्यसिन्धु महाराज वज्रांगदका उस अवस्थामें दर्शन किया। तब वहाँ आयी हुई सेनाको राजाने आदरपूर्वक अरुणाचल क्षेत्रके बाहर ही ठहराया और भक्तियुक्त होकर अपने सम्पूर्ण कोश तथा समृद्धिशाली देशोंको भगवान् अरुणाचलनाथकी पूजाके लिये संकल्प कर दिया। उन्होंने गौतमजीके आश्रमके निकट अपने लिये एक तपोवन बनाया और पुरोहितके कथनानुसार मन्त्रीसहित वे भगवान् शिवकी पूजामें तत्पर हो गये। अपने पदपर उन्होंने राजकुमार रत्नांगदको बैठा दिया और उसके भेजे हुए धनसे भी भगवान् अरुणाचलनाथको ही तृप्त किया। राजाने अरुणाचलके चारों ओर जलसे भरे हुए जलाशय खुदवाये और ब्राह्मणोंको बहुत-से दान दिये। अग्निस्तम्भरूपी अरुणाचलनाथके तेजसे यद्यपि वह देश मरुभूमिकी भाँति निर्जल-सा हो गया था तथापि वहाँ राजा वज्रांगदने सैकड़ों बावलियोंका निर्माण कराया। उस समय लोपामुद्राके साथ आये हुए महर्षि अगस्त्यने अरुणाचलेश्वरकी पूजामें लगे हुए राजाका अभिनन्दन किया। प्रतिदिन नयतीर्थ नामक सरोवरमें स्नान करके वे पापनाशक श्रीप्रवालेश्वरका पूजन करते थे। समस्त दुर्गम पीड़ाओंका निवारण करनेवाली महिषासुरमर्दिनी भगवती दुर्गाकी आराधना भी उनके द्वारा प्रतिदिन होती रहती थी। ब्रह्मा और भगवान् विष्णुकी प्रार्थनासे लिंगरूपमें प्रकट हुए आदिदेव भगवान् शिवकी वे प्रतिक्षण नाना प्रकारकी सेवा-पूजा किया करते थे। प्रतिदिन सबेरे उठते और स्नान करके पंचाक्षरमन्त्रका जप करते हुए अरुणाचलनाथकी तीन बार परिक्रमा करते थे। कार्तिककी पूर्णिमा आनेपर राजाने पार्वतीवल्लभ शिवके महादीपोत्सवका आयोजन किया, जो तीनों लोकोंमें पूजित एवं प्रशंसित है। कस्तूरी, कह्लार-पुष्प, कर्पूर और जलसे भरे हुए एक हजार स्वर्णकलशोंसे उन्होंने भगवान् त्रिलोचनका अभिषेक किया। प्रत्येक मासमें राजा ध्वजारोपणपूर्वक तीर्थोत्सव आदिका प्रबन्ध करते तथा रथपर भगवान्की सवारी निकालते थे। उस समय रथारोहणका बड़ा भारी उत्सव मनाया जाता था। यह उत्सव तीनों लोकोंमें विशेष सम्मानित है। महामना राजा वज्रांगदने तीन योजनतक फैले हुए अरुणाचलकी प्रदक्षिणा भी की। उस समय वे 'हे अरुणाचलनाथ! हे करुणामृतसागर! हे अरुणाम्बाके प्राणनाथ!' इस प्रकार पुकारते हुए बार-बार भगवान्की स्तुति करते थे। भाँति-भाँतिके द्रव्योंसे भगवान्के अंगोंमें आलेपन करके पंचामृत आदिके द्वारा उनका अभिषेक करते तथा कपूरका चूर्ण मिलानेसे उज्ज्वल प्रतीत होनेवाले कस्तूरीके चन्दनसे भगवान्की पूजा करते थे। एक लिंगस्वरूप अरुणाचलनाथकी पीठसे लेकर सम्पूर्ण अंगोंतक वे कस्तूरी और कह्लार-पुष्पोंसे भलीभाँति अर्चना करते थे। इस प्रकार तीन वर्षोंतक निरन्तर

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

सेवा करनेसे सन्तुष्ट होकर अरुणाचलनाथने राजाको प्रत्यक्ष दर्शन दिया। वे हिमालयके समान श्वेत वृषभराजकी पीठपर चढ़कर अपने पीछे बैठी हुई पार्वतीदेवीसे सटे हुए थे। वसिष्ठ आदि ब्रह्मर्षि, नारद आदि महर्षि तथा निकुम्भ, कुम्भ आदि गण उनकी जय-जयकार एवं स्तुति कर रहे थे। कमलके समान विकसित एवं विशाल नेत्रोंके कटाक्षपात मानो करुणासिन्धुकी उठती हुई तरंग थे और उनके द्वारा भगवान् शिव सम्पूर्ण जगत्‌की मलिनताका निवारण-सा कर रहे थे। इस प्रकार देवाधिदेव महादेवको उपस्थित देखकर महाराज वज्रांगदको बड़ा हर्ष हुआ। उन्होंने भगवान्‌को साष्टांग प्रणाम किया और मस्तकपर अंजलि बाँधकर कहा—'देवेश! मैंने जो मोहवश आपके समीप सवारीपर बैठकर विचरण किया है, उस मेरे एकमात्र अपराधको आप क्षमा करें।'

इस प्रकार अत्यन्त दीन भावसे बोलनेवाले राजासे करुणानिधान जगदीश्वर भगवान् अरुणाचलेश्वरने कहा—वत्स! भय न करो, तुम्हारा कल्याण हो। मेरी आठ मूर्तियाँ हैं। वे सब सम्पूर्ण जीवोंके कल्याणके लिये कल्पित हुई हैं। पूर्वकालमें तुम इन्द्र थे और अहंकारवश तुमने कैलाशशिखरपर बैठे हुए मेरा अपमान किया। तब मैंने उसी समय तुम्हें स्तम्भित करके जडवत् बना दिया। तुम्हारा सारा अभिमान और पापभार क्षणभरमें गल गया और तुम लज्जित होकर मेरे समीप बैठ गये। उस समय मैंने तुम्हें समस्त ऐश्वर्योंके कारणभूत शिव-ज्ञानका उपदेश किया और यह आज्ञा दी कि तुम पृथ्वीपर जन्म ले राजा वज्रांगद होकर मेरी कृपा प्राप्त करोगे। इस समय तुम्हारी की हुई दिन-रातकी सेवाओंसे मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ। अतः तुम्हें यह ज्ञान देता हूँ, सुनो। आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, सूर्य, चन्द्रमा और पुरुष—इन मेरी आठ मूर्तियोंसे व्याप्त होकर सम्पूर्ण चराचर जगत् प्रकाशित होता है। मैं इन सब तत्त्वोंसे परे शिव हूँ, मुझसे भिन्न दूसरी कोई वस्तु नहीं है। मेरे स्वरूपभूत चिदानन्द-समुद्रसे उठी हुई कुछ लहरें ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र और इन्द्र आदि सम्पूर्ण देवताओंको आनन्दसे परिपूर्ण करती हैं। मैं समस्त संसारका स्वामी हूँ। यह गौरीदेवी मेरी महाशक्ति माया हैं। इन्हींके द्वारा सम्पूर्ण विश्व सदा आच्छादित होता और विस्तारको प्राप्त होता है। इन महाशक्तिके द्वारा सदा सृष्टि-रक्षा और संहाररूप लीलाविलासोंसे अत्यन्त विचित्ररूपमें प्रस्तुत किये हुए इस जगत्‌को मैं स्वेच्छासे देखता रहता हूँ। तुम अपने-आपको मेरी महिमासे उसी प्रकार अभिन्न देखो जैसे समुद्रकी तरंग उससे भिन्न नहीं होती। ऐसी दृष्टि हो जानेपर यह सारी पृथ्वी तुम्हें मेरे ही रूपसे सुशोभित दिखायी देगी और उसपर मेरी कृपासे प्रभुत्व प्राप्त करके तुम उत्तम भोगोंका सुखसे उपभोग करोगे। इसके बाद तुम्हें पुनः इन्द्ररूपसे दिव्य सुखदायी भोग दीर्घकालके लिये प्राप्त होंगे। तदनन्तर तुम मुझसे एकरूपता एवं विशुद्ध चिन्मयता प्राप्त कर लोगे।

यों कहकर भगवान् शंकर अन्तर्धान हो गये और पुण्यात्मा राजा वज्रांगदने भगवान् अरुणाचलनाथकी आराधना करते हुए ही समस्त भोगोंको प्राप्त किया। 'मुने! इस प्रकार तुमसे शिवभक्तकी उन्नतिका वृत्तान्त, अरुणाचलकी प्रदक्षिणाका फल तथा सदाचारका अक्षय परिणाम बताया गया। अरुणाचलसे बढ़कर दूसरा क्षेत्र नहीं है। अरुणाचलेश्वरसे बढ़कर और कोई देवता नहीं है तथा उनकी परिक्रमासे अधिक तीनों लोकोंमें दूसरा कोई तप नहीं है।' नन्दिकेश्वरके ऐसा कहनेपर मार्कण्डेयजीके सम्पूर्ण अंगोंमें रोमांच हो आया। वे बार-बार नेत्रोंसे आनन्दाश्रुकी वर्षा करते हुए अमृतके महासागरमें निमग्न हो गये।

अरुणाचल-माहात्म्यखण्ड सम्पूर्ण

माहेश्वरखण्ड समाप्त

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

राजा वज्रांगदपर भगवान् अरुणाचलेश्वरकी कृपा

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

ॐ

श्रीपरमात्मने नमः

श्रीउमामहेश्वराभ्यां नमः

संक्षिप्त श्रीस्कन्द-महापुराण

वैष्णव-खण्ड

भूमिवाराहखण्ड या वेंकटाचल-माहात्म्य

मेरुगिरिपर भगवान् वाराहकी सेवामें पृथ्वीदेवीका उपस्थित होना और श्रेष्ठ पर्वतों तथा वेंकटाचलवर्ती तीर्थोंका माहात्म्य सुनना

एक समय कथा कहनेके लिये रोमहर्षण-पुत्र उग्रश्रवा मुनि आये, जो व्यासजीके परम बुद्धिमान् शिष्य थे। वहाँ आनेपर मुनियोंने उनका भलीभाँति स्वागत-सत्कार किया। तत्पश्चात् पौराणिकोंमें श्रेष्ठ सूतजीने उनसे स्कन्द नामक दिव्य पुराणकी कथा कही। सृष्टि-संहार, वंश-परिचय, विभिन्न वंशोंमें उत्पन्न महापुरुषोंके चरित्र तथा मन्वन्तरोंकी कथाका उन्होंने विस्तारपूर्वक वर्णन किया। तीर्थोंके माहात्म्यकी बहुत-सी कथाएँ सुनकर उन मुनिवरोंने अपनी इन्द्रियोंको वशमें रखनेवाले सूतजीसे कथाश्रवणकी अभिलाषा मनमें रखकर इस प्रकार कहा।

ऋषि बोले—रोमहर्षणकुमार सूतजी! आप सर्वज्ञ हैं, पौराणिक विषयोंका वर्णन करनेमें कुशल हैं, अतः हमलोग आपके मुखसे भूतलके मुख्य-मुख्य पर्वतोंका माहात्म्य सुनना चाहते हैं।

सूतजीने कहा—महर्षियो! पूर्वकालमें मैंने यही प्रश्न गंगाजीके तटपर बैठे हुए मुनिश्रेष्ठ व्यासजीसे पूछा था। उसके उत्तरमें मेरे सर्वोत्तम गुरु व्यासजीने इस प्रकार कहा।

व्यासजी बोले—सूत! प्राचीन युगकी बात है। एक दिन मुनिश्रेष्ठ नारद नाना प्रकारके रत्नोंसे सुशोभित सुमेरु-पर्वतके शिखरपर गये और उसके मध्यभागमें ब्रह्माजीका अत्यन्त प्रकाशमान दिव्य एवं विस्तृत भवन देखा। उसके उत्तरप्रदेशमें पीपलका एक उत्तम वृक्ष था, जिसकी ऊँचाई एक हजार योजनकी और विस्तार दुगुना था। उस पीपलके मूलभागके समीप अनेक प्रकारके रत्नोंसे युक्त दिव्य मण्डप बना हुआ था, जिसमें वैदूर्य, मोती और मणियोंके द्वारा स्वस्तिक गृह बनाये गये थे। वह दिव्यमण्डप नूतन रत्नोंसे चिह्नित तथा दिव्य तोरणों (बाहरी फाटकों)-से सुशोभित था। उसका मुख्यद्वार पुष्पराग मणिका बना हुआ था, जिसका गोपुर सात मंजिलका था। चमकते हुए हीरोंसे बनाये गये दो किवाड़ उस द्वारकी शोभा बढ़ा रहे थे। उस मण्डपके भीतर प्रवेश करके नारदजीने देखा, दिव्य मोतियोंका एक मण्डप है, उसमें वैदूर्यमणिकी वेदी बनी हुई है। महामुनि नारद उस ऊँचे मण्डपके ऊपर चढ़ गये। वहाँ उक्त मण्डपके मध्यभागमें एक बहुत ऊँचा सिंहासन था, जिसकी कहीं तुलना नहीं है। उस मध्यभागमें सहस्र दलोंसे सुशोभित दिव्य कमल था, जिसका रंग श्वेत था। उसकी प्रभा सहस्रों चन्द्रमाओंके समान

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

थी। उस कमलके मध्यमें दस हजार पूर्ण चन्द्रमाओंसे भी अधिक कान्तिमान् कैलाशपर्वतके समान आकारवाले एक सुन्दर पुरुष बैठे हुए थे। उनके चार भुजाएँ थीं, अंग-अंगसे उदारता टपक रही थी, वाराहके समान मुख था। वे परम सुन्दर भगवान् पुरुषोत्तम अपने चारों हाथोंमें शंख, चक्र, अभय एवं वर धारण किये हुए थे। उनके कटिभागमें पीताम्बर शोभा पाता था। दोनों नेत्र कमलदलके समान विशाल थे। सौम्यमुख पूर्ण चन्द्रमाकी शोभाको तिरस्कृत कर रहा था। मुखारविन्दसे धूपकी-सी सुगन्ध निकलती थी। सामवेद उनकी ध्वनि, यज्ञ उनका स्वरूप, स्रुक् उनका मुख था और स्रुवा उनकी नासिका थी। मस्तकपर धारण किये हुए मुकुटके प्रकाशसे उनका मुख अत्यन्त उद्भासित हो रहा था। उनके वक्षःस्थलमें श्रीवत्सका चिह्न सुशोभित था। श्वेत यज्ञोपवीत धारण करनेसे उनके श्रीअंगोंकी शोभा और भी बढ़ गयी थी। उनकी छाती चौड़ी और विशाल थी। वे कौस्तुभमणिकी दिव्य प्रभासे देदीप्यमान हो रहे थे। ब्रह्मा, वसिष्ठ, अत्रि, मार्कण्डेय तथा भृगु आदि अनेक मुनीश्वर दिन-रात उनकी सेवामें संलग्न रहते थे। इन्द्र आदि लोकपालों और गन्धर्वोंसे सेवित देवदेवेश्वर भगवान्‌के पास जाकर नारदजीने प्रणाम किया और पृथ्वीको धारण करनेवाले उन वाराहभगवान्‌का दिव्य उपनिषद्-मन्त्रोंसे स्तवन करके अत्यन्त प्रसन्न हो वे उनके पास ही खड़े हो गये।

इतनेहीमें दिव्य दुन्दुभी बज उठी। तत्पश्चात् वहाँ पृथ्वीदेवीका शुभागमन हुआ। रत्नोंसहित समुद्रके सदृश दिव्य वस्त्र धारण करके वे बड़ी शोभा पा रही थीं। इला और पिंगला नामवाली दो सखियाँ उनके साथ थीं। उन दोनोंके लाये हुए फूलोंको लेकर पृथ्वीदेवीने भगवान् वाराहके चरणोंमें बिखेर दिया और उन देवदेवेश्वरको प्रणाम करके वे दोनों हाथ जोड़कर उनके आगे खड़ी हो गयीं।

तब भगवान् वाराहने कहा—'पृथ्वीदेवि! मैं तुम्हें शेषनागके सुखदायक मस्तकपर बिठाकर और सम्पूर्ण विश्वको तुम्हारे ऊपर स्थापित करके पर्वतोंको तुम्हारा सहायक बनाकर यहाँ आया हूँ। फिर किसलिये तुम यहाँ आयी हो?'

पृथ्वी बोली—भगवन्! आपने पातालसे मेरा उद्धार करके ऊँचे रत्नसिंहासनकी भाँति शेषनागके रत्नयुक्त मस्तकपर, जो सहस्रों फणोंसे सुशोभित है, मुझे बिठाया है। इस प्रकार मुझे भलीभाँति स्थिर करके मुझ धारण करनेमें समर्थ पुण्यमय पर्वतोंको भी मेरे ऊपर स्थापित किया है, जो आपके ही स्वरूप हैं। महाबाहु पुरुषोत्तम! उन पर्वतोंमेंसे जो मेरे आधारभूत मुख्य-मुख्य पर्वत हैं, उनका मुझे परिचय दीजिये।

श्रीभगवान् वाराहने कहा—सुमेरु, हिमवान्, विन्ध्याचल, मन्दराचल, गन्धमादन, शालग्राम, चित्रकूट, माल्यवान्, पारियात्रक, महेन्द्र, मलय, सह्य, सिंहाचल, रैवत तथा मेरुपुत्र अंजन, जो बड़ा भारी स्वर्णमय पर्वत है; वसुन्धरे! ये सभी

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

श्रेष्ठ पर्वत तुम्हारे आधार हैं। मैंने देवसमूह और ऋषिसमूहके साथ इन पर्वतोंका सेवन किया है। माधवि! इनमें जो श्रेष्ठ पर्वत हैं, उनका यथार्थ वर्णन करता हूँ, सुनो। देवि! शालग्राम, सिंहाचल तथा गिरिराज गन्धमादन—ये उत्तम शैल हिमालयकी ओर उत्तर दिशामें स्थित हैं। वसुधे! अब मैं दक्षिणके प्रधान पर्वतोंका नाम बतलाता हूँ—अरुणाचल, हस्तिपर्वत, गृध्राचल तथा घटिकाचल—ये सभी श्रेष्ठ पर्वत क्षीर नदीके समीपवर्ती हैं। हस्तिपर्वतसे पाँच योजन उत्तर सुवर्णमुखरी नामक उत्तम नदी बहती है। उसीके उत्तर तटपर कमला सरोवर है, जिसके किनारे शुकदेवजीको वर देनेवाले तथा भक्तोंकी पीड़ाओंका नाश करनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण बलभद्रजीके साथ निवास करते हैं। शुद्धचित्तवाले वानप्रस्थ मुनि सदा उनकी आराधना करते हैं। कमला सरोवरसे उत्तर दो कोसकी दूरीपर कल्पवृक्षोंसे सुशोभित श्रेष्ठ वनमें श्रीवेंकटाचल नामक प्रसिद्ध पर्वत है, जो भगवान् विष्णुका महान् आश्रय है। वह शैलराज एक योजन ऊँचा और सात योजन चौड़ा है। वह समूचा पर्वत सुवर्णमय है। उसके शिखर रत्न धारण करनेवाले हैं। इन्द्र आदि देवता, वसिष्ठ आदि मुनीश्वर, सिद्ध, साध्य, मरुद्गण, दानव, दैत्य, राक्षस तथा रम्भा आदि अप्सराएँ वहाँ नियमपूर्वक निवास करती हैं। नाग, गरुड़ और किन्नर वहाँ तपस्या करते हैं। इन सबसे सेवित अनेक नदियाँ हैं, जिनका दर्शन भी पुण्यप्रद है। पृथ्वी! उस पर्वतपर अनेक प्रकारके दिव्य सरोवर शोभा पा रहे हैं।

अब सब तीर्थोंमें प्रधान चक्र आदि तीर्थोंका वर्णन सुनो। चक्रतीर्थ, दैवतीर्थ, आकाशगंगा, कुमारधारिकातीर्थ, पापनाशनतीर्थ, पाण्डवतीर्थ तथा स्वामिपुष्करिणीतीर्थ—ये सात तीर्थ उस उत्तम नारायणगिरि (वेंकटाचल)-पर सर्वश्रेष्ठ माने गये हैं। इन सातोंमें भी सबसे श्रेष्ठ कल्याणमयी स्वामिपुष्करिणी है। भूदेवि! उस स्वामिपुष्करिणीके पश्चिम तटपर तुम्हारे साथ मैं निवास करता हूँ और दक्षिण तटपर सम्पूर्ण जगत्के स्वामी भगवान् लक्ष्मीनिवास (विष्णु) विराजमान हैं। समुद्रवसना पृथ्वी! वह स्वामिपुष्करिणी गंगा आदि सम्पूर्ण तीर्थोंके समान है। तीनों लोकोंमें जो तीर्थ, सरोवर और नदियाँ हैं, उन सबका आधिपत्य स्वामिपुष्करिणी तीर्थको प्राप्त है। उस परम पवित्र स्वामिपुष्करिणी तीर्थका सेवन करनेके लिये दिव्य गिरि वेंकटाचलपर सम्पूर्ण तीर्थ निवास करते हैं। उनमें भी छः सबसे प्रधान हैं।

माधवि! अब मैं तुम्हें नारायणगिरिका माहात्म्य बतलाता हूँ, ध्यान देकर सुनो। देवता, ऋषि तथा सनकादि योगी सत्ययुगमें अंजनगिरिको, त्रेतामें नारायणगिरिको, द्वापरमें सिंहाचलको और कलियुगमें श्रीवेंकटाचलको परमात्मा भगवान् विष्णुका निवासस्थान कहते हैं। अन्य विद्वानोंका भी यही मत है। जो सहस्रों योजन दूरसे अथवा द्वीपान्तरमें पहुँचकर भी गिरिराज वेंकटाचलको प्रणाम करता है, उसे प्रणाम करनेके उद्देश्यसे उसकी दिशाकी ओर भक्तिभावसे मस्तक झुकाता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो विष्णुलोकमें जाता है। उस पर्वतपर जो छः प्रधान तीर्थ हैं, उनका समयानुसार माहात्म्य बतलाता हूँ। माघमासमें जब भगवान् सूर्य कुम्भ राशिपर स्थित हों, तब मघा-नक्षत्रयुक्त महातिथि पूर्णिमाको गिरिराज वेंकटाचलपर जो कुमारधारिका नामवाली पुष्करिणी है, वह समस्त लोकोंको पवित्र करनेवाली हो जाती है। जिसके तटपर कृत्तिका और अग्निसे उत्पन्न पार्वतीनन्दन स्कन्द देव-सेनाके साथ भगवान् विष्णुका पूजन करते हुए निवास करते हैं, उस तीर्थमें जो मध्याह्नकालमें स्नान करता है, उसके पुण्यफलको श्रवण करो। वसुधे! गंगा आदि सब तीर्थोंमें जो बारह वर्षोंतक नियमपूर्वक स्नान करता है, उसे जिस फलकी प्राप्ति होती है, वही फल कुमारधारा तीर्थमें स्नान करनेवालेको भी मिल जाता है। जो उस

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

तीर्थमें यथाशक्ति दक्षिणाके साथ अन्नदान करता है, उसे भी उतना ही फल मिलता है, जितना स्नानके लिये बताया गया है।

वसुन्धरे! जब मीन राशिके सूर्य हों, तब उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रसे युक्त पूर्णिमा तिथिको चौथे पहरमें पर्वतकी गुफाके भीतर तुम्बतीर्थमें जो मनुष्य स्नान करता है, वह पुनः गर्भमें नहीं आता। जब सूर्यदेव मेष राशिपर स्थित हों, तब चित्रा नक्षत्रसे युक्त पूर्णिमा तिथिको पुण्यमय प्रभातके समय आकाशगंगाके जलमें स्नान करनेवाला पुरुष मोक्ष प्राप्त कर लेता है। सूर्यदेव जब वृष राशिपर विराजमान हों, तब वैशाखमासमें शुक्ल या कृष्ण पक्षकी द्वादशी तिथिको रविवार या मंगलवारका योग होनेपर अथवा शुक्ल या कृष्ण पक्षमें रविवारके दिन पुष्य या हस्त नक्षत्रके योग होनेपर जो मनुष्य संगवकालमें पाण्डव तीर्थके भीतर स्नान करता है, वह इस लोकमें कभी दुःख नहीं पाता तथा परलोकमें सुख भोगता है। महाभागे! शुक्ल अथवा कृष्ण पक्षमें रविवारके साथ जो सप्तमी तिथि आवे, उसमें यदि पुष्य नक्षत्र अथवा हस्त नक्षत्रका योग हो, तब गिरिराज वेंकटाचलके शिखरपर वर्तमान पापनाशन नामक तीर्थमें जो स्नान करता है, वह श्रेष्ठ मनुष्य कोटिजन्मोपार्जित पापोंसे मुक्त हो जाता है। भूदेवि! अब तुम एक रहस्यकी बात सुनो। 'अनन्त' नामक महापर्वतपर मेरे दिव्य मन्दिरके वायव्य कोणमें शिखरपर स्थित गुफामें देवतीर्थ नामसे प्रसिद्ध एक परम सुन्दर सरोवर है। उसमें पुष्य नक्षत्रयुक्त बृहस्पतिवारको अथवा व्यतीपात योगमें अथवा श्रवण नक्षत्रयुक्त सोमवारको जो स्नान करता है, उसके पुण्यफलका वर्णन सुनो। इस लोकमें जान-बूझकर या अनजानमें किये हुए जो कोई भी पाप हैं, वे सब अत्यन्त पावन देवतीर्थमें गोता लगाते ही नष्ट हो जाते हैं, पुण्यकी वृद्धि होती है तथा अन्तमें वह चन्द्रलोकमें सम्मानित होता है।

यह सब सुनकर पृथ्वीदेवीने भगवान् वाराहकी इस प्रकार स्तुति की—देवदेवेश्वर! वाराहमुख! अच्युत! आपको नमस्कार है। महाबाहो! आपकी श्वेतकान्ति क्षीरसागरके समान है। वज्रशृंग! आपको नमस्कार है। देव! आपकी सहस्रों भुजाएँ हैं। आपने कल्पके आदिमें एकार्णवके जलसे मेरा उद्धार किया है; तभी मैं सम्पूर्ण जगत्को धारण करती हूँ। प्रभो! आप अनेक दिव्य आभूषणोंसे विभूषित तथा यज्ञसूत्रसे सुशोभित हैं, लाल-लाल वस्त्र धारण करते हैं और दिव्य रत्नोंसे अलंकृत होते हैं। आपके चरणारविन्द प्रातःकाल उदय होनेवाले सूर्यनारायणके समान अरुण कान्तिवाले हैं। आपको बारंबार नमस्कार है। आपके दाढ़ोंका अग्रभाग बाल-चन्द्रमाके समान शोभा पाता है। आपका बल और पराक्रम महान् है। आपके श्रीअंगोंमें दिव्य चन्दनका आलेप लगा हुआ है और कानोंमें तपाये हुए सुवर्णके कुण्डल झिलमिला रहे हैं। आप इन्द्रनीलमणिसे प्रकाशमान, सुवर्णमय अंगद (बाजूबन्द)-से विभूषित हैं। महाबल! आपने अपनी दाढ़ोंके अग्रभागसे हिरण्याक्ष नामक दैत्यका वक्षःस्थल चीर डाला है। आपके नेत्र खिले हुए कमलपुष्पके समान परम सुन्दर हैं। आप अपने मुखसे सामवेदके मन्त्रोंका गान करते समय मेरे मनको मोहे लेते हैं। विशाललोचन! ब्रह्माजी और भगवान् शिव आपके चरणोंकी वन्दना करते हैं। आपका श्रीविग्रह सर्वविद्यामय है। आप शब्दोंकी पहुँचसे परे हैं। आपको बारंबार नमस्कार है। आनन्दविग्रह! अनन्त! कालकाल! आपको नमस्कार है।

इस प्रकार स्तुति करके पृथ्वीदेवीने भगवान्के चरणोंमें प्रणाम किया। यह देखकर भगवान् वाराहदेवके नेत्र हर्षसे खिल उठे। उन्होंने

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

पृथ्वीदेवीको साथ लेकर, गरुड़पर आरूढ़ हो, वहाँसे वृषभाचल (वेंकटगिरि)-को प्रस्थान किया। नारद आदि मुनीश्वरोंसे प्रशंसित होकर पृथ्वीपति भगवान् वाराह स्वामिपुष्करिणीके लोकपूजित पश्चिम तटपर निवास करते हैं। वहाँ अनेकानेक मुनीश्वर, महाभाग वैखानस तथा ब्रह्माजीके तुल्य महात्मा पुरुष वाराहमुख भगवान् विष्णुकी आराधनामें संलग्न रहते हैं। सूत! जो मनुष्य हम दोनोंके इस धर्ममय पावन संवादको सुनता अथवा देवता और ब्राह्मणोंके आगे पढ़ता है, वह प्रतिष्ठाको प्राप्त होता है। तथा जितने लोग सुनते हैं, उन सभीको अभीष्ट वस्तुकी प्राप्ति होती है।

सूतजी कहते हैं—मुनीश्वरो! भगवान् व्यासने यह माहात्म्य मुझसे कहा है और मैंने जैसा सुना है, वैसा ही आपलोगोंके सामने वर्णन किया है।

भगवान् वाराहका मन्त्र, उसके जपकी विधि, ध्यान तथा उसके अनुष्ठानका फल

ऋषियोंने कहा—सूतजी! पृथ्वीके साथ भगवान् वाराह जब वृषभाचलपर चले गये, तब वहाँ उन्होंने पृथ्वीसे क्या कहा? महामते! वह सब प्रसंग हमें सुनाइये।

सूतजी बोले—मुनियो! आप सब लोग पूर्व-कालकी पुण्यमयी कथा श्रवण करें। पहले वैवस्वत मन्वन्तरके परम पवित्र सत्ययुगमें वाराहरूपधारी पृथ्वीपति देवेश्वर भगवान् विष्णु नारायणगिरिपर निवास करते थे। उस समय पृथ्वीदेवी अपनी सखियोंके साथ उनकी सेवामें उपस्थित हुईं और उनके चरणोंमें प्रणाम करके उन्होंने भगवान्‌के सामने यह प्रश्न उपस्थित किया—'देवेश! आप किस मन्त्रसे आराधना करनेपर प्रसन्न होंगे? जो मन्त्र आपको सदा ही प्रिय है और नियमपूर्वक रहनेवाले मनुष्योंको आपके परमधामकी प्राप्ति करा देता है, उसका मुझे उपदेश कीजिये।'

भूदेवीके इस प्रकार प्रश्न करनेपर भगवान् वाराहने प्रेमसे मुसकराते हुए कहा—देवि! सुनो। यह परम गोपनीय मन्त्र है, इसे कभी अनधिकारीके सामने प्रकाशमें नहीं लाना चाहिये। जो सेवा करनेवाला भक्त तथा मन और इन्द्रियोंको वशमें रखनेवाला है, उसीको इस मन्त्रका उपदेश करना चाहिये। मन्त्र इस प्रकार है—**'ॐ नमः श्रीवराहाय धरण्युद्धारणाय स्वाहा'**। मुमुक्षु पुरुषोंको इस मन्त्रका सदैव जप करना चाहिये। भूदेवि! यह मन्त्र सब सिद्धियोंको देनेवाला है। इस मन्त्रके संकर्षण ऋषि हैं और मैं ही देवता कहा गया हूँ। इसका छन्द पंक्ति है, श्री बीज है। सद्गुरुसे इस मन्त्रकी दीक्षा लेकर इसका चार लाख जप करना चाहिये और घी तथा मधु मिलाये हुए खीरका हवन करना चाहिये।

अब मैं अपने स्वरूपका ध्यान बतला रहा हूँ, जो अन्तःकरणको शुद्ध करनेवाला है। समुद्रवसने! मेरे अंगोंकी कान्ति शुद्ध स्फटिक गिरिके समान श्वेत है। खिले हुए लाल कमलदलोंके समान सुन्दर नेत्र हैं, वाराहके समान मुख है, स्वरूप सौम्य है, चार भुजाएँ हैं, मस्तकपर किरीट शोभा पाता है, वक्षःस्थलमें श्रीवत्सका चिह्न है। हाथोंमें चक्र, शंख, अभयदायिनी मुद्रा और कमल सुशोभित हैं। मेरी बायीं जाँघपर तुम बैठी हो। मैंने लाल, पीले वस्त्र पहनकर लाल रंगके ही आभूषणोंसे अपनेको विभूषित किया है। श्रीकच्छपके पृष्ठके मध्यभागमें शेषनागकी मूर्ति है। उसके ऊपर सहस्रदल कमलका आसन है

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

और उसपर मैं विराजमान हूँ। इस प्रकार ध्यान करके जो सदा अष्टोत्तरशत मन्त्रका जप करता

है, वह सम्पूर्ण कामनाओंको पाता और अन्तमें निश्चय ही मोक्ष प्राप्त कर लेता है।

यह सुनकर पृथ्वीदेवीने पुनः प्रश्न किया—देव! पूर्वकालमें किसने इस मन्त्रका अनुष्ठान किया है और उसे किस फलकी प्राप्ति हुई है?

भगवान् वाराहने कहा—देवि! पहले कृतयुगमें धर्म नामक महात्मा मनुने ब्रह्माजीसे इस मन्त्रको प्राप्त किया और इसी पर्वतपर उसका जप करके मेरा प्रत्यक्ष दर्शन पाया। फिर मुझसे अभीष्ट वरदान प्राप्त करके वे मेरे पदको प्राप्त हो गये। पूर्वकालमें इन्द्र दुर्वासाके शापसे स्वर्गभ्रष्ट हो गये थे; उस समय इसी मन्त्रसे यहीं मेरी आराधना करके उन्होंने पुनः स्वर्गका राज्य प्राप्त कर लिया। भूदेवि! अन्यान्य मुनियोंने भी इस मन्त्रका जप करके परम गति प्राप्त की है। सर्पोंके स्वामी अनन्तने कश्यपजीसे इस मन्त्रको पाकर श्वेत-द्वीपमें इसका जप किया और उसीसे अद्भुत शक्ति पाकर वे पृथ्वीको धारण करनेमें समर्थ हुए हैं। अतः पृथ्वीकी अभिलाषा रखनेवाले मनुष्योंको इहलोकमें सदा ही इस मन्त्रका जप करना चाहिये।

महर्षि अगस्त्यकी प्रार्थनासे भगवान् विष्णुका वेंकटाचलपर श्री-भू देवियोंके साथ निवास तथा आकाशराजके यहाँ पद्मावती और वसुदानका जन्म

भगवान् वाराह कहते हैं—महादेवी पृथ्वी! मैं तुम्हें एक पवित्र इतिहास सुनाता हूँ, सुनो। वैवस्वत मन्वन्तरके आदि सत्ययुगमें वायु देवताका बड़ा भारी तप देखकर लक्ष्मीनिवास भगवान् विष्णु श्रीदेवी और भूदेवीके साथ स्वामिपुष्करिणीके तटपर आये। इसके दक्षिण तटपर परम पवित्र आनन्द नामक विमानमें वे श्रीलक्ष्मीकान्त विष्णु सदा वायु देवताका प्रिय करते हुए निवास करते हैं। तभीसे कुमार कार्तिकेयद्वारा निरन्तर पूजित हो, भगवान् हृषीकेश इस विमानपर अदृश्य भावसे रहते हैं और आगे भी रहेंगे।

पृथ्वीने पूछा—मनुष्योंकी दृष्टिमें न आनेवाले भगवान् विष्णु किस प्रकार यहाँ उन्हें प्रत्यक्ष दिखायी देंगे?

भगवान् वाराहने कहा—देवि! महर्षि अगस्त्यने इस पर्वतपर आकर सनातनदेव भगवान् विष्णुका दर्शन किया और बारह वर्षोंतक आराधना करके उन्हें बारंबार प्रसन्न किया। तत्पश्चात् भगवान्‌से यह याचना की कि 'प्रभो! आप सदा यहाँ निवास करें और सब लोगोंको आपका प्रत्यक्ष दर्शन होता रहे।'

उनके ऐसा कहनेपर श्री-भू देवियोंके साथ

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

भगवान् विष्णु इस प्रकार बोले—देवर्षे! मैं तुम्हारे सन्तोषके लिये यहाँ समस्त देहधारियोंको प्रत्यक्ष दर्शन देता हुआ निवास करूँगा, परंतु यह विमान कभी किसीकी दृष्टिमें नहीं आवेगा। भगवान्‌का यह वचन सुनकर अगस्त्य मुनि प्रसन्न हो अपने आश्रमको चले गये। तबसे भगवान् विष्णु मुनियोंके ही ध्यानमें आनेवाले इस विमानपर मनुष्य आदि प्राणियोंकी दृष्टिके विषय होकर चतुर्भुज रूपसे निवास करते हैं और आगे भी निवास करते रहेंगे। स्कन्द-स्वामी सदा उनकी आराधना करते हैं और वायु देवता सेवामें संलग्न रहते हैं। एक समयकी बात है कि मित्रवर्माकी मनोरमा धर्मपत्नीके गर्भसे 'आकाश' नामक पुत्र हुआ, जो अपने कुलका आभूषण था। शकवंशमें उत्पन्न धरणी नामवाली कन्या राजकुमार आकाशकी धर्मपत्नी हुई। नृपश्रेष्ठ मित्रवर्माने अपने उस पुत्रको राज्यका सारा भार सौंपकर स्वयं वेंकटाचलके समीप पवित्र तपोवनको प्रस्थान किया। राजकुमार आकाश महान् चक्रवर्ती राजा हुए। वे एकपत्नीव्रती थे। केवल अपनी धर्मपत्नी धरणीके प्रति ही उनका मन अनुरक्त था। एक दिन उन्होंने यज्ञके लिये आरणी नदीके किनारे भूमिका शोधन कराया। जब सोनेके हलसे पृथ्वी जोती जाने लगी तब बीजकी मुट्ठी बिखेरते समय राजाने देखा, पृथ्वीसे एक कन्या प्रकट हुई है, जो कमलकी शय्यापर सोयी हुई है। वह बड़ी सुन्दरी और समस्त शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न थी, सोनेकी पुतली-सी शोभा पा रही थी। उसे देखकर राजाके नेत्र आश्चर्यसे खिल उठे। उन्होंने उसे गोदमें उठा लिया और 'यह मेरी ही पुत्री है' ऐसा बार-बार कहते हुए मन्त्रियोंके साथ बड़े प्रसन्न हुए। इसी समय आकाशवाणी हुई—'राजन्! वास्तवमें यह तुम्हारी ही पुत्री है। इस सुन्दर नेत्रवाली कन्याका तुम पालन-पोषण करो।' यह सुनकर राजाके मनमें बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने अपने नगरमें प्रवेश किया और महारानी धरणीदेवीको बुलाकर कहा—'प्रिये! यह भगवान्‌की दी हुई अपनी कन्या है, इसे देखो। यह पृथ्वीसे प्रकट हुई है। हम दोनों सन्तानहीन हैं। हमारे लिये यही पुत्री होगी।' यों कहकर आकाशराजने रानीके हाथमें प्रेमपूर्वक वह कन्या दे दी। उस कन्याके घरमें प्रवेश करनेपर धरणीदेवीने भी गर्भ धारण किया और समय आनेपर उन्होंने उत्तम मुहूर्तमें पुत्रको जन्म दिया। उस समय पाँच ग्रह उच्च स्थानोंमें स्थित थे और सूर्यदेव मेष राशिपर विराजमान थे। उस पुत्रके जन्म-कालमें देवताओंकी दुन्दुभियाँ बज उठीं तथा राजाके घरमें फूलोंकी वर्षा हुई। उस समय सुखदायिनी हवा चल रही थी। जिन लोगोंने महाराजको पुत्र-जन्मका समाचार सुनाया, उन्हें अत्यन्त प्रसन्न होकर उन्होंने जो कुछ उनके पास था, सब दे डाला। केवल छत्र और चामर रख लिया। एक करोड़ कपिला गौएँ और एक करोड़ एक सौ बैल दान किये। बारहवें दिनका पुण्य-मुहूर्त आनेपर उन्होंने जातकर्म आदि क्रियाएँ सम्पन्न कीं और स्वयं ही पुत्रका नाम वसुदान रखा।

पृथ्वीदेवी! आकाशराजका पुत्र वसुदान बड़ा ही सुन्दर था। वह बालक प्रतिदिन शुक्ल पक्षके चन्द्रमाकी भाँति बढ़ने लगा। वेदोंके पारंगत विद्वान् गुरुजनोंने उस विनयशील कुमारका उपनयन-संस्कार किया। पितासे ही उसने मन्त्रपूर्वक अस्त्र-शस्त्रोंकी शिक्षा पायी। अंग और उपांगोंसहित धनुर्वेदके चारों पादोंका अध्ययन किया।

पृथ्वीदेवीने पूछा—भगवन्! आपने आकाशराजके पुत्रका नाम बताया। अब यह बतानेकी कृपा करें कि उनकी अयोनिजा कन्याका नाम उस समय क्या रखा गया था?

भगवान् वाराहने कहा—देवि! बुद्धिमान्

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

आकाशराजने उस कन्याका नाम पद्मिनी (पद्मावती, पद्मालया आदि) रखा था। धीरे-धीरे वह युवा अवस्थाको प्राप्त हुई। एक दिन पद्मिनी शुक और कोकिलोंके कलरवसे व्याप्त उपवनमें अपनी सखियोंके साथ विहार कर रही थी। उसी समय मुनिश्रेष्ठ नारद अकस्मात् घूमते हुए वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने वनकी मूर्तिमती लक्ष्मीकी भाँति उस कन्याको देखकर विस्मयसे पूछा—'भीरु! तुम कौन हो, किसकी कन्या हो? मुझे अपना हाथ तो दिखाओ।' यह सुनकर पद्मिनीने नारदजीसे कहा—'ब्रह्मन्! मैं आकाशराजकी कन्या हूँ। मेरे लक्षण बताइये।'

नारदजी बोले—सुन्दरि! सुनो, तुम्हारा मस्तक गोलाकार और सम है। इसके ऊपर चिकने और लंबे बाल शोभा पा रहे हैं। तुम्हारा मुख मन्द मुसकानसे सुशोभित है और तुम्हारे अधर बिम्बाफलके समान अरुण हैं। इस प्रकार तुम्हारा यह मुख भगवान् विष्णुके ही योग्य है। ऐसा मेरी बुद्धिका निश्चय है। तुम क्षीरसागरसे प्रकट हुई साक्षात् लक्ष्मीके समान दिखायी देती हो।

वेंकटाचलनिवासी श्रीहरि और पद्मावतीका विवाह

भगवान् वाराह कहते हैं—यों कहकर नारदजी पद्मिनी और उसकी सखियोंद्वारा सम्मानित हो वहाँसे अन्तर्धान हो गये। तदनन्तर सखियोंने पद्मिनीसे कहा—'सखि! चलो वनमें फूल लानेके लिये चलें।' यों कहकर आकाशराजकी कन्याके साथ वे सखियाँ वनमें गयीं और फूलोंको तोड़ती हुई इधर-उधर विचरने लगीं। फिर वे सब सखियाँ एक वनस्पतिके नीचे जा बैठीं। इसी समय उन्होंने चन्द्रमाके समान श्वेतवर्णवाले एक ऊँचे घोड़ेको देखा। उसके ऊपर श्यामवर्णका पुरुष सवार था, जिसकी आकृति और कान्ति कामदेवको भी लज्जित कर रही थी। उसके विशाल नेत्र पद्मपत्राकार कानोंके समीप पहुँचे हुए थे। उसने एक हाथमें दिव्य शार्ङ्ग धनुष और दूसरेमें सुवर्णमय बाण धारण कर रखा था। उसका कटिप्रदेश पीले रंगके रेशमी वस्त्रसे आच्छादित था। शरीरका मध्यभाग बहुत ही सुन्दर था। वह रत्ननिर्मित कंकण, बाजूबंद और करधनीसे सुशोभित था। उसकी छाती चौड़ी थी, जिससे उस पुरुषकी दक्षिणावर्तनाभि अधिक शोभा पा रही थी। उसका बायाँ कंधा स्वर्णमय यज्ञोपवीतसे चमक रहा था। इस प्रकार उस तरुणका सुन्दर रूप मनको मोह लेनेवाला था। उसे देखकर वे सब स्त्रियाँ चकित हो उठीं। वह घुड़सवार एक भेड़ियेको ढूँढ़ता हुआ वहाँ फूल तोड़नेवाली स्त्रियोंके समीप आया और उनसे पूछने लगा—'इधर कोई भेड़िया आया है क्या?' स्त्रियोंने उत्तर दिया—'तुम धनुष धारण किये हमारे वनमें क्यों आये हो? यहाँके सभी मृग अवध्य हैं। आकाशराजके द्वारा सुरक्षित इस वनसे शीघ्र बाहर निकल जाओ।' उनकी यह बात सुनकर सवार घोड़ेसे उतर पड़ा। उसने पूछा—'तुम सब लोग कौन हो? यह कमलके समान रंगवाली परम सुन्दरी कन्या कौन है?' उसका यह प्रश्न सुनकर एक सखीने उत्तर दिया—'शूरवीर! ये हमारी स्वामिनी हैं। इनका नाम पद्मिनी है। ये आकाशराजकी पुत्री हैं, इनका प्रादुर्भाव पृथ्वीसे हुआ है। सुन्दर शरीरवाले पुरुष! तुम अपना परिचय दो। तुम्हारा नाम क्या है और निवासस्थान कहाँ है? तुम किसलिये यहाँ आये हो?'

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

सखियोंके इस प्रकार पूछनेपर उस पुरुषने मन्द मुसकानयुक्त मुखारविन्दसे इस प्रकार कहा—'मेरे नाम अनन्त हैं। तपस्वी लोग रंग, रूप और नाम दोनों ही दृष्टियोंसे मुझे कृष्ण कहते हैं। मैं वह हूँ, जिसके धनुषकी समता करनेवाला कोई धनुष देवताओंके पास भी नहीं है। लोग मुझे वेंकटाचलनिवासी वीरपति कहते हैं। शिकारके लिये वनमें आया हूँ। इस वनकी शोभा देखते हुए मेरी दृष्टि सुन्दरीपर भी पड़ गयी। क्या यह मुझे प्राप्त हो सकती है?'

श्रीकृष्णकी यह बात सुनकर सब सखियाँ कुपित हो गयीं। तब कृष्ण घोड़ेपर चढ़कर शीघ्र ही वेंकटाचलपर चले गये। वहाँ अपने दिव्य निवासस्थानपर पहुँचकर वे घोड़ेसे उतर गये। कृष्णके रूपमें साक्षात् श्रीहरि ही थे। घोड़ेसे उतरकर उन्होंने रत्नमय मण्डपमें प्रवेश किया और मुक्तामय मन्दिरमें जाकर नूतन रत्नमय

सिंहासनपर वे विराजमान हुए और उसी विशाल नेत्रोंवाली तथा मन्द मुसकानसे सुशोभित मुखारविन्दवाली पद्मावतीका स्मरण करने लगे।

तदनन्तर मध्याह्न कालमें भगवान्‌के भोग लगानेयोग्य दिव्य उत्तम एवं सुगन्धित अन्न तैयार करके वकुलमालिका नामकी सखी भगवान्‌को देखनेके लिये शीघ्रतापूर्वक गयी और उनके चरणोंमें भक्ति-भावसे प्रणाम करके पास ही बैठ गयी। उसने देखा, श्रीहरि नेत्र बंद किये किसीकी याद कर रहे हैं। तब उस सखीने कहा—'देवदेवेश्वर! उठिये, पुरुषोत्तम! आपके लिये बहुत उत्तम रसोई तैयार की गयी है। माधव! अब भोजनके लिये पधारिये।'

श्रीभगवान् बोले—सखी! प्राचीन कालकी बात है। पवित्र त्रेतायुगमें जब मैंने रावणका वध किया था, उस समय वेदवती नामवाली एक कन्याने लक्ष्मीजीकी सहायता की थी। लक्ष्मी राजा जनकके यहाँ पृथ्वीसे उत्पन्न हो सीताके रूपमें निवास करती थीं। फिर मुझसे विवाह होनेपर जब वे मेरे साथ वनमें गयीं, तब एक दिन पंचवटीमें मारीच नामक राक्षसका वध करनेके लिये मैं आश्रमसे बाहर गया। मेरा छोटा भाई लक्ष्मण भी सीताके कहनेसे मेरे ही पीछे चला आया। तत्पश्चात् राक्षसराज रावण सीताको हर ले जानेके लिये मेरे आश्रमके समीप आया। उस समय मेरे अग्निहोत्र-गृहमें विद्यमान अग्निदेव रावणकी वैसी चेष्टा जानकर सीताको साथ ले पातालमें चले गये और अपनी पत्नी स्वाहाकी देख-रेखमें सीताको सौंपकर लौट आये। पूर्वकालमें कल्याणमयी वेदवतीको एक बार उसी राक्षसने स्पर्श कर लिया था, जिससे दुःखी होकर उसने प्रज्वलित अग्निमें अपने शरीरको त्याग दिया। उस समय उसी वेदवतीको रावणका संहार करनेके उद्देश्यसे अग्निदेवने सीताके समान रूपवाली बना दिया और मेरी पर्णशालामें सीताके स्थानपर उसे लाकर छोड़ दिया। रावणने उसीका अपहरण करके लंकामें ला बिठाया। तदनन्तर रावणके मारे जानेपर अग्नि-परीक्षाके समय उसी वेदवतीने अग्निमें प्रवेश किया। उस समय अग्निदेवने

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

स्वाहाके समीप सुरक्षित जनकनन्दिनी सीतारूपा लक्ष्मीको लाकर पुनः मेरे हाथमें दिया और इस प्रकार कहा—'देव! यह वेदवती सीताका परम प्रिय करनेवाली है; अतः आप इसे वरदान देकर प्रसन्न करें।' अग्निकी यह बात सुनकर कल्याणमयी सीताने भी मुझसे कहा—'प्रभो! यह वेदवती सदा मेरा प्रिय कार्य करनेवाली है। यह उच्चकोटिकी भगवद्भक्त है। अतः आप स्वयं ही इसे अंगीकार करें।'

तब मैंने कहा—देवि! मैं कलियुगमें तुम्हारे कथनानुसार कार्य करूँगा। तबतक यह देवताओंसे पूजित होकर ब्रह्मलोकमें निवास करे। पश्चात् पृथ्वीसे उत्पन्न होकर आकाशराजकी पुत्री होगी। सखी! इस प्रकार मैंने और लक्ष्मीने पूर्वकालमें जिसे वरदान दिया था, वह सुन्दरी इस समय नारायणपुरमें पृथ्वीसे प्रकट हुई है। वह लक्ष्मीके समान ही सद्गुणवती है। उसके नेत्र कमलके समान परम सुन्दर हैं। आज जब मैं शिकार खेलने गया था, तब वह मेरे देखनेमें आयी थी। वह अपने ही समान सुन्दरी सखियोंके साथ वनमें फूल तोड़ रही थी। वकुलमालिके! तुम वहाँ जाकर उस कन्याको देखो और यह जान लो कि वह अपने अनुपम रूप और लावण्यसे इस प्रशंसाके योग्य है या नहीं।

तब वकुलमालिका सखी देवाधिदेव भगवान्‌को प्रणाम करके गुंजाके दानेके समान लाल रंगवाले घोड़ेपर सवार हुई और उनके बताये हुए मार्गसे चल दी। रास्तेमें अनेक प्रकारके मृगों, पक्षियों तथा वृक्ष-लताओंका अवलोकन करती और बार-बार प्रसन्न होती हुई वह आरणी नदीके पश्चिम तटपर जा पहुँची। वह स्थान बहुतेरे वृक्षोंसे हरा-भरा था। वहाँ अगस्त्येश्वरके समीप अपने लाल घोड़ेसे उतरकर वकुलमाला स्नान तथा जलपान करके नदीके तटपर विश्राम करने लगी। इतनेमें ही राजभवनसे बहुत-सी स्त्रियाँ देवताके समीप वहाँ आयीं। वे सब-की-सब पद्मावतीकी सखियाँ थीं। उन्हें देखकर वकुलमालिका उनके समीप गयी और इस प्रकार बोली—'सुन्दरियो! तुम कौन हो? तुम्हारे आभूषण और हार तो बड़े विचित्र हैं। तुम कहाँसे आयी हो और इस स्थानपर तुम्हारा क्या कार्य है?'

उसकी बात सुनकर सखियोंने मन्द-मन्द मुसकराते हुए कहा—हम आकाशराजकी रनिवासमें रहनेवाली स्त्रियाँ और महाराजकी पुत्री पद्मावतीकी सहेलियाँ हैं। एक दिन राजकुमारीको आगे करके हम वनमें गयी थीं। वहाँ उनके लिये फूल तोड़ती हुई सब सखियाँ एक वृक्षके नीचे जा बैठीं। वहीं हमें एक सुन्दर पुरुषका दर्शन प्राप्त हुआ। उनके श्रीअंगोंकी कान्ति इन्द्रनीलमणिके समान श्याम थी। उनका वक्षःस्थल लक्ष्मीका निवास जान पड़ता था। मुखपर मन्द-मन्द मुसकानकी छटा छा रही थी। दोनों भुजाएँ बहुत ही सुन्दर, विशाल और हृष्ट-पुष्ट थीं। कटिप्रदेशमें शुद्ध पीताम्बर शोभायमान था। उन्होंने एक हाथमें सुवर्णमय धनुष और दूसरेमें बाण धारण कर रखा था। मस्तकपर सोनेका मुकुट चमक रहा था। वे हार और भुजबंद आदि आभूषणोंसे विभूषित थे। उन्हें देखकर सुवर्णसदृश गौर वर्णवाली हमारी कमलनयनी सखी पद्मावती सहसा बोल उठी—'देखो, देखो!' तब हम सब सखियाँ उन्हींकी ओर देखने लगीं। इतनेहीमें वे शीघ्र चले गये। उनके चले जानेपर सखी पद्मावती मूर्च्छित हो गयीं। उसे उसी अवस्थामें हमलोग राजभवनमें ले गयी। पुत्रीकी ऐसी अवस्था देखकर महाराजने ज्यौतिषीसे पूछा—'विप्रवर! मेरी पुत्रीकी ग्रहदशाका फल बताइये।' तब बृहस्पतिके समान विद्वान् ब्राह्मणने मन-ही-मन ग्रहोंको विचारकर कहा—'नृपश्रेष्ठ! कोई उत्तम पुरुष आपकी कन्याके समीप आया था, उसे ही देखकर राजकुमारी मूर्च्छित हो गयी हैं। उसीके साथ पद्मावतीका विवाहसम्बन्ध होगा।'

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

राजासे ऐसा कहकर ज्यौतिषीजी अपने घर चले गये। तब आकाशराजने वैदिक ब्राह्मणोंको बुलाकर आदरपूर्वक कहा—'ब्राह्मणो! आपलोग देवमन्दिरमें जाकर वेदमन्त्रोंके साथ शंकरजीका महा-अभिषेक कीजिये।' उनको ऐसा आदेश देकर महाराजने हमें बुलाया और इस प्रकार कहा—'कन्याओ! तुम भगवान्‌के महा-अभिषेककी सामग्री जुटाओ।' राजाकी यह आज्ञा पाकर हम सब सखियाँ देवमन्दिरमें आयी हैं। सुभगे! अब तुम हमें अपना परिचय दो। कहाँसे या किसके कामसे यहाँ आगमन हुआ है अथवा यहाँसे कहाँ जानेका तुम्हारा विचार है? जान पड़ता है, इस दिव्य अश्वपर आरूढ़ होकर तुम देवलोकसे आयी हो।

सखियोंके इस प्रकार पूछनेपर वकुलमालिकाको बड़ा हर्ष हुआ। उसने मधुर वाणीमें कहा—'मैं वेंकटाचलसे इस घोड़ेपर सवार होकर आयी हूँ और महारानी धरणीदेवीसे मिलना चाहती हूँ। क्या राजभवनमें महारानीके दर्शन हो सकते हैं?' उसकी यह बात सुनकर उन कन्याओंने कहा—'शुभे! तुम हमारे साथ धरणीदेवीका दर्शन कर सकती हो।' तब वकुलमालिका उन कन्याओंके साथ राजभवनमें आयी। उधर धरणीदेवीने अन्तःपुरमें जाकर अपनी पुत्रीसे कहा—'बेटी! तुम्हारा कौन कार्य करूँ? तुम्हें कौन वस्तु प्रिय लगती है?' माताके इस प्रकार पूछनेपर मनस्वी कन्या पद्मावतीने मन्द स्वरमें कहा—'अम्बे! संसारमें जो सबसे अधिक नयनाभिराम है, साधु-संतोंके मनको भी जो परम प्रिय लगता है, ब्रह्मा आदि देवता भी जिसके दर्शनकी इच्छा रखते हैं, जो सबसे महान् और सर्वत्र व्यापक है, तेजस्वी पदार्थोंमें भी सर्वाधिक तेजस्वी है, देवताओंका भी देवता है, श्रेष्ठ भक्तोंको ही जो इस लोकमें सुलभ है तथा अभक्तोंको जिसकी प्राप्ति कभी नहीं होती, उसी वस्तुमें मेरा मन लग रहा है। माताजी! वह भक्तोंको सम्पूर्ण कामनाएँ देनेवाला है, तुम मेरे लिये उसी वस्तुकी खोज कराओ।'

धरणी बोली—सुलोचने! उसके भक्तोंका लक्षण बतलाओ, जिनके लिये वह संसारमें सुलभ है।

पद्मावतीने कहा—उनके मनोरम लक्षणोंका वर्णन करती हूँ, सुनो। वे वेदोंके स्वाध्यायमें तत्पर होकर सदा वैदिक कर्मका अनुष्ठान करते हैं, सत्य बोलते हैं, दूसरोंके दोषोंको कभी नहीं देखते हैं, परायी निन्दासे दूर रहते हैं, दूसरोंके धनका अपहरण नहीं करते। परायी स्त्रियाँ कितनी ही सुन्दरी क्यों न हों, वे न तो उनकी याद करते हैं, न उनकी ओर देखते हैं और न कभी उनका स्पर्श ही करते हैं। ऐसे सदाचारी महात्माओंको ही तुम वैष्णव जानो। जो सब प्राणियोंके प्रति दयाभावसे युक्त होकर सबके हितमें संलग्न रहते हैं तथा देवेश्वर विष्णुके गुणोंका गान करते हैं, उनको निश्चय ही भगवान्‌का भक्त समझो। जिस किसी वस्तुसे भी जो सन्तुष्ट रहते, अपनी ही स्त्रीके प्रति अनुराग रखते तथा राग, भय और क्रोधसे दूर रहते हैं, उन पुरुषोंको तुम भगवान् विष्णुका भक्त जानो। जो ऐसे लक्षणोंसे युक्त हैं, वे ही वैष्णव माने गये हैं। ऐसे सदाचारी भक्तोंको ही उन परमात्माकी प्राप्ति होती है। उन्हीं परमेश्वरमें मेरा प्रेम हो गया है, मेरा मन उन्हींसे मिलना चाहता है। मा! भगवान् विष्णुके सिवा और किसी वस्तुकी मुझे कोई इच्छा नहीं है। मैं श्यामसुन्दर भगवान् विष्णुका स्मरण करती हूँ। उन्हींके हरि, अच्युत आदि नाम लेती हूँ और उन्हींके सहारे जीवन धारण करती हूँ। अतः जिस प्रकार उनसे सम्बन्ध हो सके वैसा उपाय सोचो।

मातासे ऐसा कहकर दयनीय दशाको पहुँची हुई कमलसदृश मुखवाली पद्मावती चुप हो गयी। पुत्रीकी बातें सुनकर धरणीदेवी यह सोचने लगी

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

कि—'भगवान् विष्णु कैसे प्रसन्न होंगे?' इसी समय अगस्त्येश्वरकी पूजा करके पूर्वोक्त कन्याएँ वकुलमालिकाके साथ धरणीदेवीका दर्शन करनेके लिये आयीं। महारानी धरणीने घरपर पधारे हुए ब्राह्मणोंको उत्तम भोजन दे उनका स्वागत-सत्कार करके वस्त्र और आभूषणोंसहित पर्याप्त दक्षिणा दी तथा अपने मनोरथकी सिद्धिके लिये आशीर्वाद लेकर उन सबको विदा किया। तत्पश्चात् वहाँ आयी हुई मनस्विनी कन्याओंसे पूछा—'बताओ, यह श्रेष्ठ कन्या कौन है? तुमलोगोंसे इसका साथ कहाँ हुआ है? इस राजभवनमें यह किसलिये आयी है? मुझे तो यह कोई पूजनीया देवी प्रतीत होती है।'

कन्याएँ बोलीं—महारानी! यह देवी वास्तवमें दिव्यांगना है और किसी कार्यसे आपके ही पास आयी है। देवालयमें भगवान् शंकरके समीप हमलोगोंसे यह मिली है। हमारे पूछनेपर इसने बताया कि 'मैं पूजनीया महारानीसे मिलने आयी हूँ।' तब हमने कहा—'तुम हमारे ही साथ चलो। हम महारानीकी दासियाँ हैं और अभी राजमहलमें चलेंगी।' इस प्रकार यह आपके समीप आयी है। अब आप ही पूछें, इसके आगमनका क्या उद्देश्य है।

तब धरणीदेवीने पूछा—तुम कहाँसे आयी हो? मुझसे तुम्हें क्या काम है? सच-सच बताओ।

वकुलमालिका बोली—महारानी! मैं वेंकटाचलसे आयी हूँ। मेरा नाम वकुलमालिका है। हमारे स्वामी भगवान् नारायण सदा श्रीवेंकटाचलमें निवास करते हैं। एक दिन वे हंसके समान श्वेत और मनके समान वेगशाली अश्वपर सवार हो वेंकटगिरिके पास ही वनमें शिकार खेलनेके लिये गये और एक वनसे दूसरे वनमें विचरते हुए आरणी नदीके तटपर जा पहुँचे। वहाँ घोड़ेसे उतरकर वे नदीके सुन्दर तटपर भ्रमण करने लगे। उसी समय उन्होंने फूल तोड़ती हुई कुछ सुन्दरी कन्याओंको देखा। उनके बीचमें एक तन्वंगी कन्या थी, जो लक्ष्मीजीके समान सुवर्ण गौरी एवं अत्यन्त मनोहर थी। उस कन्याके प्रति भगवान्‌का मन अनुरक्त हो गया। उसे प्राप्त करनेकी इच्छासे श्रीहरिने उन कन्याओंसे पूछा—'यह सुन्दरी कुमारी कौन है?' कन्याओंने उत्तर दिया—'महाबल! यह आकाशराजकी कन्या है।' इतना सुनकर वे घोड़ेपर सवार हो गये और बड़े वेगसे अपने निवासस्थान वेंकटाचलपर जा पहुँचे। वहाँ स्वामिपुष्करिणीके किनारे अपने धाममें प्रवेश करके भगवान्‌ने मुझे बुलाया और इस प्रकार कहा—'सखी वकुलमालिके! तुम आकाशराजके नगरमें जाकर महाराजके अन्तःपुरमें प्रवेश करो और महारानी धरणीसे मिलकर कुशल-प्रश्न पूछनेके पश्चात् उनकी सुन्दरी पुत्री पद्मालयाको मेरे लिये माँगो तथा राजाका मनोभाव जानकर शीघ्र लौट आओ।' महारानी! भगवान्‌की ऐसी आज्ञा होनेपर मैं तुम्हारे महलमें आयी हूँ। अब तुम मन्त्रीसहित महाराजसे सलाह करके जो उचित जान पड़े वैसा करो।

वकुलमालिकाकी बात सुनकर महारानी धरणी बहुत प्रसन्न हुईं। उन्होंने आकाशराजको बुलाया और पद्मालयाके पास जाकर मन्त्रियोंके बीचमें उसकी कही हुई सारी बातें कह सुनायीं। सुनकर राजा भी अत्यन्त प्रसन्न हुए और मन्त्रियों तथा पुरोहितोंसे बोले—'मेरी पुत्री पद्मालया दिव्यरूपवाली अयोनिजा कन्या है। उसके लिये वेंकटाचल-निवासी देवाधिदेव भगवान् नारायणने याचना की है। आज मेरा मनोरथ पूर्ण हो गया। बताइये, आपलोगोंकी क्या राय है?' महाराजका उत्तम वचन सुनकर सब मन्त्री प्रसन्नचित्त होकर बोले—'राजेन्द्र! यदि ऐसी बात है, तो हम सब लोग कृतार्थ हो गये। इस सम्बन्धसे आपका यह कुल सबसे उन्नत होगा। आपकी अनुपम कन्या साक्षात् भगवती लक्ष्मीके साथ आनन्दपूर्वक रहेगी। आप

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth 279 Skandpuran_Section_11_1_Back

इसे देवाधिदेव शार्ङ्गधनुषधारी परमात्मा विष्णुको समर्पित करें। यह शोभामय वसन्त-ऋतु है। इसमें इस शुभ कार्यका अनुष्ठान शीघ्र कर डालना चाहिये। बृहस्पतिजीको बुलाकर आप विवाहके लिये लग्न निश्चित करें।'

तदनन्तर 'बहुत अच्छा' कहकर आकाशराजने देवलोकसे बृहस्पतिजीको बुलाया और वर-कन्याके विवाहके लिये लग्न पूछा—'ब्रह्मन्! कन्याका जन्मनक्षत्र मृगशिरा है और वरका श्रवण। अतः इन दोनोंके विवाह-सम्बन्धका विचार कीजिये।' तब बृहस्पतिजीने कहा—'वर और कन्या दोनोंके सुखकी वृद्धिके लिये ज्यौतिषियोंने उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रको सर्वश्रेष्ठ माना है। अतः वैशाखमासके उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रमें दोनोंका विधिपूर्वक विवाहकार्य सम्पन्न किया जाय।' यह सुनकर राजाने बृहस्पतिजीकी पूजा करके उन्हें विदा किया और भगवान्‌की दूतीसे कहा—'शुभे! तुम भगवान्‌के निवासस्थानको जाओ और देवाधिदेव नारायणसे कहो—वैशाखमासमें यह मंगलकार्य सम्पन्न होगा। आप वैवाहिक मंगलाचार सम्पन्न करके यहाँ पधारें।'

इसके बाद देवीका प्रिय करनेवाले शुकरूपी दूतको वकुलमालिकाके साथ भेजकर आकाशराजने अपने पुत्रको वायु, इन्द्र आदि देवताओंके बुलानेके कार्यमें नियुक्त किया। साथ ही विश्वकर्माको बुलाकर अपने नगरकी सजावटके काममें लगाया। विश्वकर्माने पलभरमें अपना कार्य पूर्ण कर दिया। उधर वकुलमालिका अश्वपर सवार हो शुकके साथ प्रस्थित हुई और वेंकटाचलपर पहुँचकर देवालयके समीप घोड़ेसे नीचे उतरी। फिर शुकको अपने साथ ले मन्दिरके भीतर गयी। वहाँ सुन्दर नेत्रोंवाले भगवान् नारायणको लक्ष्मीजीके साथ रत्नसिंहासनपर विराजमान देख प्रणाम करके प्रसन्नतापूर्वक बोली—'प्रभो! वहाँका कार्य तो मैंने पूरा कर लिया, उधरसे मांगलिक वार्ता करनेके लिये यह शुक आया हुआ है।'

तब भगवान्‌की आज्ञा पाकर शुकने उन्हें प्रणाम किया और इस प्रकार कहा—'माधव! भूमिकन्या पद्मावतीने आपके पास यह सन्देश भेजा है कि मुझे अंगीकार कीजिये। रमापते! मैं आपके ही नाम लेती हूँ, आपके ही स्वरूपका सदा स्मरण करती हूँ। मधुसूदन! आपकी प्रसन्नताके लिये ही मैं सब कार्य करती हूँ। मेरे इस काममें पिता और माताकी भी सम्मति है। देवेश! मुझपर कृपा करके मुझे अंगीकार कीजिये।'

शुकका यह प्रिय वचन सुनकर श्रीहरिने कहा—'शुक! जाओ और पद्मालयासे इस प्रकार कहो'—'देवि! श्रीनारायणदेवने कहा है कि मैं देवताओंको साथ लेकर मंगलमय विवाहकार्य सम्पन्न करनेके लिये अवश्य आऊँगा।' भगवान्‌का यह वचन सुनकर और प्रसादरूपसे उनकी दी हुई वनमाला लेकर शुक शीघ्र ही आकाशराजकी कन्याके पास लौट गया। उसने कस्तूरीकी सुगन्धसे युक्त वह तुलसीमाला राजकुमारीको देकर प्रणाम किया और भगवान्‌का शुभ सन्देश कह सुनाया। सुनकर उस प्रसादमालाको हाथमें ले पद्मालयाने उसे मस्तकपर चढ़ा लिया और भगवान्‌के आगमनकी प्रतीक्षा करती हुई योग्य आभूषण धारण किये। आकाशराजने भी आनन्दमग्न हो चन्द्रदेवको बुलाकर आदरपूर्वक कहा—'राजन्! आप नाना प्रकारका सरस भोजन तैयार कीजिये जो भगवान् विष्णुके भोगमें आने योग्य हो। उत्तम-से-उत्तम अन्नकी व्यवस्था होनी चाहिये।' इस प्रकार प्रबन्ध करके भगवान्‌के आगमनकी प्रतीक्षा करते हुए आकाशराज प्रसन्न मनसे राजसभामें बैठे थे।

तदनन्तर देवाधिदेव भगवान् नारायणने भी लक्ष्मीजीको बुलाकर कहा—'कल्याणी! अपनी सखियोंको आज्ञा दो और वैवाहिक कार्य सम्पन्न करो।' भगवान्‌का यह आदेश सुनकर लक्ष्मीदेवीने सखियोंको बुलाया और सबको आवश्यक कार्य करनेकी आज्ञा दी। लक्ष्मीकी आज्ञासे प्रीतिदेवीने

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

सुगन्धित तेल लिया, श्रुतिदेवी रेशमी वस्त्र लेकर भगवान्‌के समीप खड़ी हुईं, स्मृति भी भाँति-भाँतिके आभूषण लेकर प्रसन्नतापूर्वक उपस्थित हुईं। धृतिने दर्पण हाथमें लिया, शान्तिने कस्तूरीको प्रस्तुत किया, लज्जादेवी यक्षकर्दम[१] लेकर भगवान्‌के सामने खड़ी हुईं, कीर्तिने सोनेका पट्ट तथा रत्नयुक्त मुकुट हाथमें लिया, शचीने छत्र लगाया, सरस्वतीदेवी चँवर डुलाने लगीं, गौरीदेवीने दूसरा चँवर हाथमें लिया, विजया और जया पंखा झलने लगीं। उपर्युक्त सब देवियोंको वहाँ उपस्थित देख लक्ष्मीदेवीने शीघ्रतापूर्वक उठकर सुगन्धित तेल हाथमें लिया और भगवान्‌के मस्तकसे लेकर सब अंगोंमें उसे लगाकर सुगन्धित चूर्णसे उबटन किया। इस प्रकार श्रीनारायणदेवके सब अंगोंको भलीभाँति मलकर आकाशगंगा आदि तीर्थोंसे भरकर लाये हुए सौ सुवर्णमय कलश मँगवाये और उनमेंसे एक-एकको लेकर उसके जलसे भगवान्‌का अभिषेक किया। तत्पश्चात् सुनहरे रंगके सुगन्धयुक्त चन्दनसे भगवान्‌के अंगमें लेप लगाया। फिर उनकी कमरमें रेशमी पीताम्बर बाँधकर उसमें करधनी पहना दी। मस्तकपर मुकुट रखा और अन्यान्य आभूषणोंसे भी विभिन्न अंगोंको विभूषित किया। उनकी सभी अंगुलियोंमें लक्ष्मीजीने दिव्य सोनेकी अंगूठियाँ पहना दीं। इसके बाद धृतिदेवीने भगवान्‌के समीप जाकर दर्पण दिखाया। दर्पण देखकर देवाधिदेव विष्णुने स्वयं ही ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण किया। तदनन्तर वे लक्ष्मीजीके साथ गरुड़पर आरूढ़ हुए। इसी समय ब्रह्मा, महादेवजी, इन्द्र, वरुण, यम और कुबेर उनकी सेवामें उपस्थित हुए। इन सब देवताओं, वसिष्ठ आदि मुनीश्वरों, सनकादि योगियों तथा अन्य भगवद्भक्तोंके साथ भगवान् विष्णु नारायणपुरको गये। उस समय भगवान् विष्णुके समीप देवताओंके नगाड़े बज रहे थे। मुनिलोग स्वस्त्ययनसम्बन्धी सूक्तोंका जप करते हुए भगवान्‌के पीछे-पीछे चल रहे थे। भगवान्‌के साथ सम्पूर्ण देवता और विष्वक्सेन आदि पार्षद चल रहे थे। वकुलमाला आदि सखियाँ रथोंमें बैठकर गयीं। इस प्रकार भगवान्‌ने बारात लेकर आकाशराजके सजे-सजाये नगरमें प्रवेश किया।

आकाशराजने देखा, भगवान् आ गये और पुत्री पद्मावती भी ऐरावतपर बैठकर समस्त पुरीकी परिक्रमा करके गोपुरद्वारपर आ पहुँची है। तब वे वर-वधूको साथ ले आकर भाई-बन्धुओंके साथ भगवान्‌का दर्शन करते हुए खड़े हो गये। भगवान्‌ने अपने कण्ठमें पड़ी हुई माला हाथमें लेकर पद्मालयाके गलेमें डाल दी और पद्मालयाने बेलाके फूलोंका गजरा लेकर भगवान्‌के कण्ठमें पहना दिया। ऐसा करके वे दोनों सवारीसे उतर गये और थोड़ी देर पीढ़ेपर खड़े होनेके पश्चात् सुन्दर गृहमें प्रवेश किया। उनके साथ ब्रह्मा आदि देवताओंका समुदाय भी था। ब्रह्माजीने अंकुरारोपणपूर्वक मांगल्य-सूत्र-बन्धन (कंकण-बन्धन)-से लेकर लाजाहोमतककी सम्पूर्ण वैवाहिक विधि सम्पन्न करायी। फिर व्रत-पालनकी आज्ञा लेकर पद्मालया और श्रीहरिने पृथक्-पृथक् शयन किया। पुनः चौथे दिन चतुर्थी कर्म आदि सब कार्य पूर्ण करके चतुर्मुख ब्रह्माने आकाशराजकी अनुमति ले दोनों देवियोंके साथ भगवान्‌को गरुड़पर बिठाया और देवताओंके साथ वहाँसे चलनेकी तैयारी की। तब आकाशराजने इन्द्र आदि देवताओंके साथ अपनी पुत्री और दामादका प्रिय करनेके लिये सोनेके कड़ाहोंमें अगहनीके चावल, मूँगसे भरे हुए अनेक पात्र और सैकड़ों घीके घड़े दहेजमें दिये। हजारों

१- कपूर, अगर, कस्तूरी और कंकोलसे बनी हुई अंगराग-सामग्रीका नाम 'यक्षकर्दम' है।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth 279 Skandpuran_Section_11_2_Back

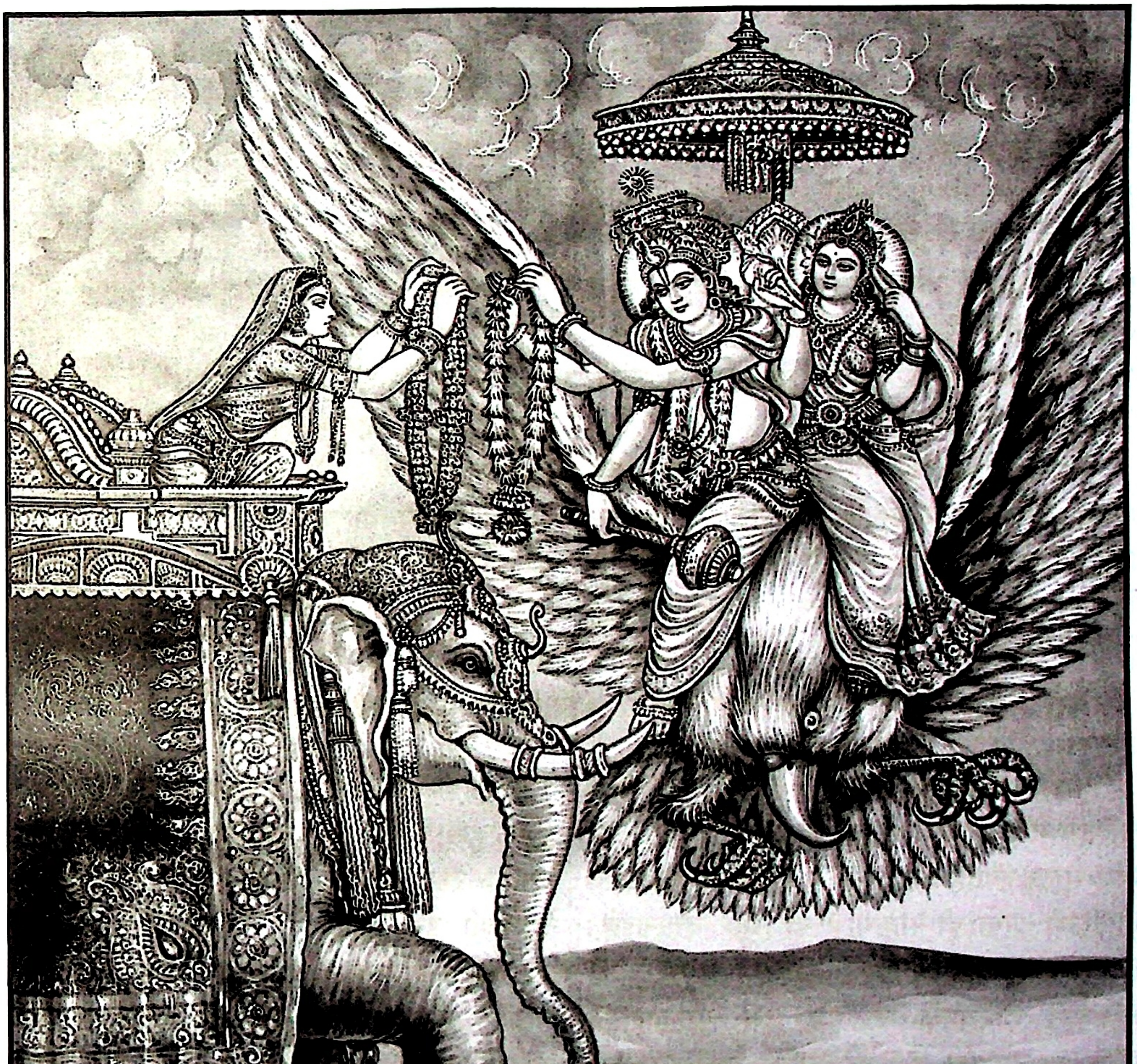

पद्मालया और भगवान्‌का परस्पर माला पहनाना

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

घड़े दूध और दहीसे भरे हुए अनेकों भाण्ड, आम, केला और नारियलके दिव्य फल, आँवले, कूष्माण्ड, राजकदलीके फल, कटहल, बिजौरा नीबू, शक्करसे भरे हुए घड़े, सोना, मणि, मोती, करोड़ों रेशमी वस्त्र, हजारों दास-दासी, करोड़ों गाय, हंस और चन्द्रमाके समान श्वेत रंगके दस हजार घोड़े और सदा उन्मत्त रहनेवाले सौसे अधिक ऊँचे-ऊँचे हाथी—ये सारी वस्तुएँ भगवान् विष्णुको भेंट करके आकाशराज उनके आगे खड़े हुए।

पद्मावती और लक्ष्मीदेवीके साथ वेंकटनाथ भगवान् विष्णु दहेजकी वह सब सामग्री देखकर बड़े प्रसन्न हुए और अपने श्वसुरसे बोले—'राजन्! इस समय आप मेरे गुरु हैं। आपकी जो इच्छा हो मुझसे वर माँगिये।' भगवान्की यह बात सुनकर आकाशराजने कहा—'देव! इस संसारमें आपकी अनन्य सेवा ही मेरे द्वारा होती रहे, मेरा मन आपके चरणारविन्दोंमें रमता रहे और आपमें मेरी निरन्तर भक्ति बनी रहे।'

श्रीभगवान् बोले—राजेन्द्र! आपने जो कहा है, वह सब पूर्ण होगा। तत्पश्चात् ब्रह्मा आदि देवताओंने और शुक आदि मुनिगणोंने भगवान् पुरुषोत्तमका स्तवन किया। फिर ब्रह्मा आदि सब देवताओंका यथायोग्य सत्कार करके श्रीहरिने उन्हें स्वर्गलोकमें जानेके लिये प्रसन्नतापूर्वक आज्ञा दे दी। उन सबके चले जानेपर भगवान् नारायण स्वामिपुष्करिणीके तटपर लक्ष्मीदेवी और पद्मावतीके साथ अपने दिव्य धाममें रहने लगे।

तोण्डमानको निषादके साथ भगवान् श्रीनिवासका दर्शन होना

पृथ्वीने पूछा—मुझे धारण करनेवाले प्रियतम! कलियुगमें आपका दर्शन किसको होगा तथा परम सुन्दर विग्रहवाले भगवान् श्रीनिवासका दर्शन भी किसे प्राप्त हो सकेगा? यह मुझे बतलाइये।

भगवान् वाराह बोले—देवि! सुनो। जो भविष्यमें होनेवाली बात है उसे भूतकालकी भाँति बतला रहा हूँ। इस पवित्र पर्वतपर एक वसु नामक निषाद था, जो श्यामाक वन (सावाँके जंगल)-की रक्षा किया करता था। भगवान् पुरुषोत्तमके प्रति उसके मनमें बड़ी भक्ति थी। वह सावाँके चावलोंका भात बनाकर उसमें मधु मिला देता और श्रीदेवी तथा भूदेवीसहित देवाधिदेव भगवान् विष्णुको निवेदन करके स्वयं प्रसाद पाता था। इस प्रकार भक्ति करनेवाले उस निषादकी कल्याणमयी भार्या चित्रवतीने एक उत्तम पुत्रको जन्म दिया, जिसका नाम वीर था। वसु अपने पुत्र तथा पतिव्रता पत्नीके साथ आनन्दपूर्वक रहता था। एक दिन वह अपने पुत्रको सावाँकी रक्षा करनेका आदेश दे स्वयं पत्नीके साथ मधुकी खोजमें चला। मधुका छाता देखनेकी इच्छासे वह एक वनसे दूसरे वनमें शीघ्रतापूर्वक चला जा रहा था। इधर उसके पुत्रने सावाँके तैयार किये हुए भातको लेकर कुछ अग्निमें डाल दिया और कुछ पीसकर वृक्षकी जड़में भगवान् श्रीपतिको भोग लगाया। फिर भगवान्का प्रसाद खाकर वीर वहाँ सुखसे बैठा रहा। तदनन्तर वसु मधु लेकर आया और सावाँके चावलोंको खाया हुआ देख अपने पुत्रको फटकारने लगा। उसने बड़ी उतावलीके साथ वीरको मार डालनेके लिये तलवार लेकर हाथको ऊपर उठाया। उस समय भगवान् विष्णु उस वृक्षपर ही विराजमान थे। उन्होंने वसुकी तलवार हाथसे पकड़ ली। तब उसने वृक्षकी ओर देखा। भगवान् विष्णु हाथमें शंख, चक्र

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

और गदा लिये तथा आधा शरीर वृक्षपर टिकाये

खड़े थे। उन्हें देखते ही वसुने तलवार छोड़ दी और भगवान्‌के चरणोंमें प्रणाम करके कहा— 'देवदेवेश्वर! आप यह क्या कर रहे हैं?'

श्रीभगवान् बोले—वसो! तुम मेरी बात सुनो। तुम्हारा पुत्र मुझमें भक्ति रखता है। यह तुमसे भी बढ़कर मुझे प्यारा है। इसलिये मैंने इसे प्रत्यक्ष दर्शन दिया। इसकी दृष्टिमें मैं सर्वत्र हूँ, किंतु तुम्हारी दृष्टिमें केवल स्वामिपुष्करिणीके तटपर रहता हूँ।

भगवान्‌का यह वचन सुनकर वसु बड़ा प्रसन्न हुआ। एक समय चन्द्रवंशमें तोण्डमान नामसे प्रसिद्ध एक राजा हुए। वे बड़े वीर थे। उनके पिताका नाम सुवीर और माताका नाम नन्दिनी था। पाँच ही वर्षकी अवस्थामें उनके हृदयमें भगवान् विष्णुकी भक्ति प्रकट हो गयी थी। वे बड़े बुद्धिमान् और सुशीलता, शूरता तथा पराक्रम आदि गुणोंकी निधि थे। युवा होनेपर उन्होंने पाण्ड्यनरेशकी सुन्दरी पुत्री पद्माके साथ विवाह किया। तत्पश्चात् भिन्न-भिन्न देशोंकी सैकड़ों स्वयंवरा कन्याओंको भी वे ब्याह लाये और नारायणपुरमें रहकर इस पृथ्वीपर देवराज इन्द्रकी भाँति सुख भोगने लगे। एक दिन सिंहके समान पराक्रमी तोण्डमान अपने पिताकी आज्ञा लेकर वेंकटाचलके समीप शिकार खेलनेके लिये गये। वहाँ अपने सेवकोंके साथ पैदल घूमते हुए उन्होंने एक यूथपति गजराजको देखा और उसे पकड़नेके लिये उसका पीछा किया। सुवर्णमुखरी नदीको पार करके वे परम उत्तम ब्रह्मर्षि शुकके पास गये और उन्हें प्रणाम करके, उनकी आज्ञा ले एक वनसे दूसरे वनमें चलते गये। एक जगह उन्होंने रेणुकादेवीको देखा, जो वल्मीक—बाँबी (बिमौट)-के आकारमें खड़ी थीं। उनको प्रणाम करके वीर तोण्डमान पश्चिमकी ओर चले गये। आगे जाकर उन्हें एक पँचरंगा तोता दिखायी दिया। फिर उसे पकड़नेके लिये वे भी उसके पीछे-पीछे दौड़ने लगे। तोता श्रीनिवासका नाम रटता हुआ शीघ्र ही पर्वतके शिखरपर जा पहुँचा। पीछा करते हुए राजा भी गिरिराजपर चढ़ गये और उस तोतेको ढूँढते-ढूँढ़ते श्यामाक वनमें जा पहुँचे। वहाँ तोतेको न देखकर उन्होंने उस वनकी रक्षा करनेवाले निषादको देखा। उसने भी राजाको आते देख शीघ्रतापूर्वक आगे आकर उनकी अगवानी की और उन्हें प्रणाम करके विनीतभावसे वह दोनों हाथ जोड़कर खड़ा हो गया। तोण्डमानने भी उसका आदर करके उससे पूछा—'वनेचर! इधर कोई पँचरंगा तोता आया है? क्या तुमने उसे देखा है? वह 'श्रीनिवास-श्रीनिवास' की रट लगा रहा था। बताओ वह किधर गया है?'

वनेचर बोला—महाराज! वह पाँच रंगोंवाला शुक भगवान् श्रीनिवासको बहुत प्रिय है। उसे श्रीदेवी और भूदेवीने पाल-पोसकर बड़ा किया है। वह सदा भगवान् श्रीहरिके ही पास रहता

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

है और स्वामिपुष्करिणीके तटपर भगवान्‌के समीप विचरता रहता है। उस सुन्दर शुकको कोई भी पकड़ नहीं सकता। राजकुमार! अब मैं भगवान्‌की आराधनाके लिये जाऊँगा, जबतक मैं लौटकर न आऊँ तबतक आप यहीं वृक्षके नीचे विश्राम कीजिये।

राजा बोले—वनेचर! मैं भी तुम्हारे साथ भगवान् जनार्दनका दर्शन करनेके लिये चलूँगा। तुम मुझे वेंकटाचलनिवासी देवेश्वरका दर्शन कराओ।

राजाकी यह बात सुनकर निषादने मधुमिश्रित सावाँका भात आमके पत्तेके दोनेमें रख लिया और राजाको भी साथ लेकर वह भगवान्‌के समीप गया। वहाँ राजासहित विधिपूर्वक स्नान करके निषादराजने स्वामिपुष्करिणीके तटपर बिल्ववृक्षके नीचे विराजमान भगवान् विष्णुका राजाको दर्शन कराया। उनके श्रीअंगोंकी कान्ति अलसीके फूलकी भाँति श्याम थी। कमलदलके समान सुन्दर एवं विशाल नेत्र थे। वे चार भुजाओंसे सुशोभित थे। उनके अंग-अंगसे उदारता प्रकट हो रही थी। मुखारविन्दपर मन्द-मन्द मुसकानकी छटा छा रही थी। उनके अंगोंपर दिव्य पीताम्बर शोभा पा रहा था। मस्तकपर किरीट और हाथोंमें कंकण आदि आभूषणोंसे उनकी शोभा और भी बढ़ गयी थी। भगवान्‌के दोनों पार्श्वमें परमसुन्दरी श्रीदेवी और भूदेवी विराज रही थीं। शंख, चक्र, खड्ग, गदा, शार्ङ्गधनुष और बाण आदि आयुध मूर्तिमान् होकर सब ओरसे भगवान्‌की सेवामें उपस्थित थे। इस प्रकार उन पुरुषोत्तमका दर्शन करके उन दोनोंने आनन्दमग्न होकर उन्हें प्रणाम किया। निषादने भी मधुमिश्रित सावाँका भात भगवान्‌को निवेदन किया। फिर राजाके साथ श्यामाक वनमें अपनी पवित्र पर्णकुटीपर वह लौट आया। राजा एक रात उसकी कुटीमें रहे और सबेरे उठकर अपनी सेनाके साथ पुनः नगरकी ओर लौटे। फिर देवीके वनमें जाकर वे घोड़ेसे उतरे और चैत्र शुक्ला नवमीको उन्होंने रेणुकादेवीका पूजन किया। उनसे पूजित होकर देवीने प्रसन्न हो उन्हें वर दिया—'राजन्! तुम्हारा राज्य निष्कण्टक होगा। राजधानी तुम्हारे ही नामसे प्रसिद्ध होगी। मेरे समीप तुम दीर्घकालतक राज्य करोगे और तुम्हारे ऊपर देवाधिदेव भगवान् विष्णुका कृपाप्रसाद सदा बना रहेगा।'

इस प्रकार वरदान पाकर राजा पुनः शुकमुनिके आश्रमपर गये और उन्हें प्रणाम करके उनके द्वारा सम्मानित हो हर्षको प्राप्त हुए। फिर उन्होंने मुनिसे कहा—'महर्षे! आप कमलसरोवरका माहात्म्य बतलाइये।'

श्रीशुक मुनिने कहा—राजन्! यह कमल-सरोवर नामक तड़ाग सब पापोंका नाश करनेवाला है। कीर्तन, स्मरण और स्नान करनेसे यह मनुष्योंको इस पृथ्वीपर लक्ष्मी प्रदान करनेवाला होता है। तुम भी इसमें स्नान करके अपने पिताके समीप जाओ।

शुक मुनिका यह वचन सुनकर राजकुमारने कमलसरोवरमें स्नान किया और मुनिको प्रणाम करके घोड़ेपर सवार हो अपने नगरको प्रस्थान किया। पिताने तोण्डमानको तीन वर्षके लिये युवराज बनाकर देख लिया कि मेरे पुत्रमें प्रजाको प्रसन्न रखनेकी योग्यता, सामर्थ्य, पराक्रम, शौर्य, सुशीलता और ब्राह्मणभक्ति है। तब उन्होंने मन्त्रियोंसे सलाह करके विधिपूर्वक पुत्रका राज्याभिषेक किया और उन्हें अपने पदपर स्थापित करके उनकी अनुमति ले राजा सुवीर वनमें चले गये। तोण्डमानने वह विशाल साम्राज्य पाकर धर्मपूर्वक राज्य किया।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

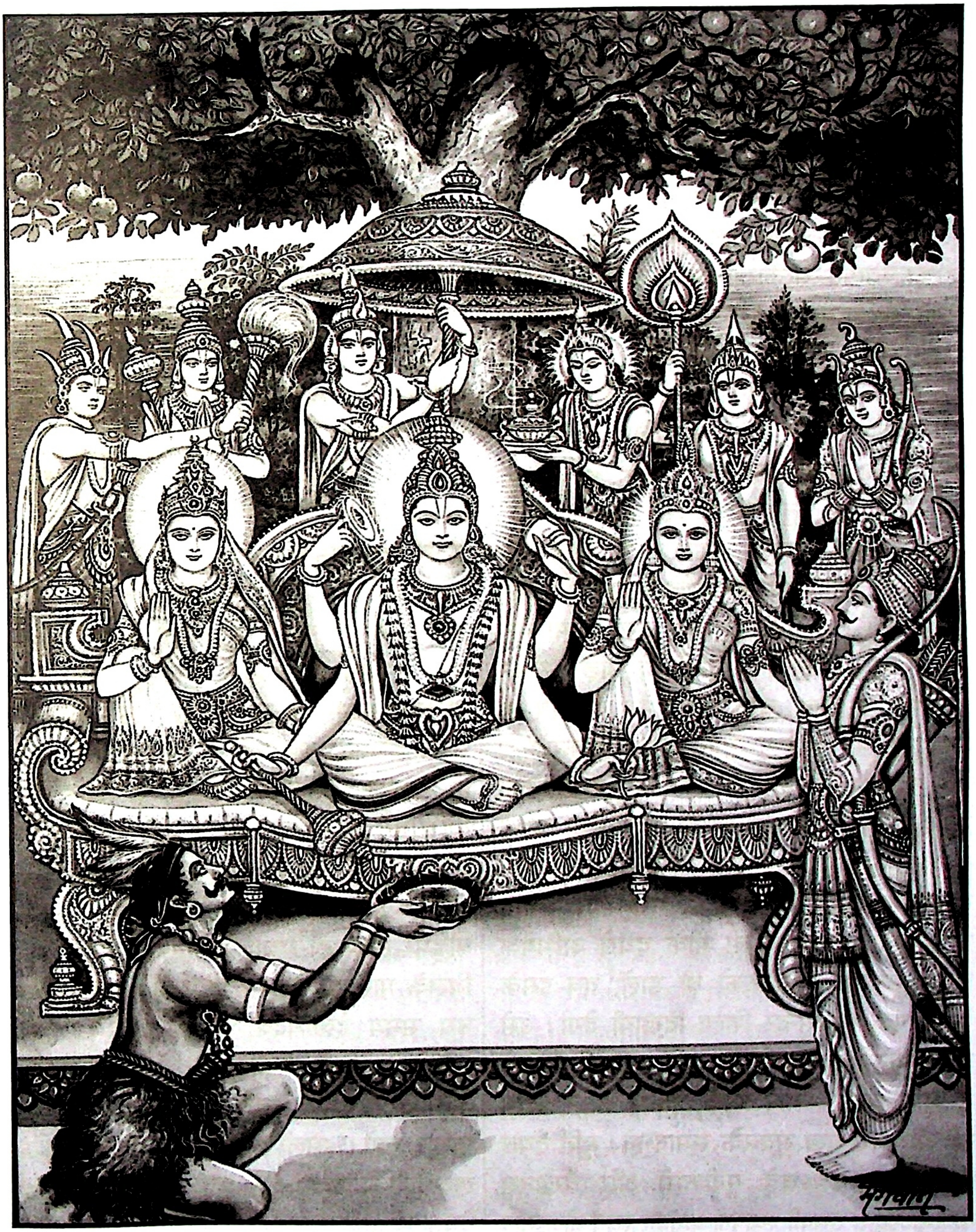

भूदेवी तथा श्रीदेवीसहित सपरिकर भगवान् विष्णु

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

वाराहभगवान् तथा अस्थिसरोवर तीर्थकी महिमा, भक्त कुम्हार तथा राजा तोण्डमानका परमधामगमन

भगवान् वाराह कहते हैं—एक दिन निषादराज वसु तोण्डमानके द्वारपर आया। द्वारपालोंसे उसके आगमनकी सूचना पाकर महाराजने उसे दरबारमें बुलाया और मन्त्रियोंके साथ पुत्र और परिवारसहित उसका स्वागत-सत्कार किया। तत्पश्चात् प्रसन्न होकर उन्होंने वसुसे पूछा—'वनेचर! किस कार्यसे तुम्हारा यहाँ आगमन हुआ है?'

वसुने कहा—राजन्! मैंने वनमें एक बड़े आश्चर्यकी बात देखी है, उसे सुनिये। रातमें कोई श्वेत रंगका वाराह आकर मेरा सावाँ चरने लगा। तब मैंने हाथमें धनुष लेकर उसका पीछा किया। खदेड़नेपर वह वायुके समान वेगसे भागा और मेरे देखते-देखते स्वामिपुष्करिणीके तटपर वल्मीकमें घुस गया। तब मैंने क्रोधवश उस वल्मीकको खोदना आरम्भ किया। इतनेमें ही मूर्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा। उसी समय मेरा यह पुत्र भी आ गया और मुझे पृथ्वीपर मूर्छित होकर पड़ा देख, पवित्र होकर देवाधिदेव भगवान् मधुसूदनकी स्तुति करने लगा। तब भगवान् वाराहका मुझमें आवेश हुआ, उन्होंने मेरे पुत्रसे कहा—'निषादराज! तुम शीघ्र राजाके पास जाकर मेरा सारा वृत्तान्त उनसे कहो। राजा काली गौके दूधसे अभिषेक करते हुए इस वल्मीकको धो डालें, तब इसके भीतर एक परमसुन्दर शिला दिखायी देगी। उसे लेकर किसी कारीगरसे मेरी मूर्ति बनवावें, जिसमें मैं भूमिदेवीको अपने बायें अंकमें लेकर खड़ा रहूँ और मेरा मुख सूकरके समान हो। मूर्ति तैयार हो जानेपर बड़े-बड़े मुनीश्वरों और वैखानस महात्माओंद्वारा उसकी स्थापना कराकर स्वयं तोण्डमान भी उसकी पूजा करें।' यों कहकर भगवान् वाराहने मुझे छोड़ दिया, तब मैं स्वस्थ हो गया। देवाधिदेव भगवान् वाराह आपसे क्या कराना चाहते हैं, यह बतलानेके लिये ही मैं यहाँ आया हूँ।

राजा तोण्डमान भी यह सुनकर बहुत प्रसन्न और विस्मित हुए। तदनन्तर पुष्कर आदि मन्त्रियोंके साथ कार्यका निश्चय करके वेंकटाचल जानेका विचार किया और सब ग्वालोंको बुलाकर कहा—'गोपगण! जितनी भी मेरी काली और कपिला गौएँ हैं, उन सबको बछड़ोंसहित वेंकटाचलके समीप लाओ।' गोपोंको ऐसी आज्ञा देकर राजाने मन्त्रियोंको सूचित किया—'कल ही यात्रा करनी है।' इसके बाद सब प्रजाको विदा करके जितेन्द्रिय राजाने अन्तःपुरमें प्रवेश किया और अपनी पत्नियोंसे वाराहजीकी वह कथा सुनाकर वे रातमें वहीं सोये। सपनेमें भगवान् श्रीनिवासने राजाको बिलका मार्ग दिखाया और उनके नगरसे लेकर बिलके अन्ततक मार्गमें पल्लव बिछा दिये। राजा यह स्वप्न देखकर जब सबेरे उठे, तब उन्होंने शीघ्र ही मन्त्रियों, प्रजाओं और ब्राह्मणोंको भी बुलाया। उन सबसे अपना देखा हुआ स्वप्न सुनाकर जब उन्होंने दरवाजेपर दृष्टि डाली, तब वहाँ पल्लव बिछे हुए दिखायी दिये। तब उपयुक्त मुहूर्तमें घोड़ेपर सवार हो राजा तोण्डमान घरसे चले और बिलके पास पहुँचकर वहीं उन्होंने नगर बनाया। उस समय देवाधिदेव भगवान्ने स्वयं राजाको यह आदेश दिया अर्थात् संकेत किया कि 'इमली और चम्पा—ये दो वृक्ष बहुत उत्तम हैं, इनका पालन करो। इमली मेरा आश्रय है और चम्पा लक्ष्मीजीका स्थान है। अतः राजाओं, ऋषिओं, देवताओं तथा मनुष्योंको इन दो वृक्षोंकी वन्दना करनी चाहिये।'

तोण्डमानसे ऐसा कहकर भगवान् विष्णु चुप

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

हो गये। उनका वचन सुनकर राजाने चाहारदिवारी बनवायी और वैखानस कुलके मुनियोंसे पूजन कराया। वे प्रतिदिन बिलके मार्गसे आकर भगवान्‌को प्रणाम करते और लौट जाते थे। उन्होंने उत्तम भोग भोगते हुए धर्मपूर्वक राज्य किया। इसी समय दक्षिण देशके एक श्रेष्ठ ब्राह्मण गंगास्नानके लिये स्त्रीसहित घरसे चले। मार्गमें ब्राह्मणी गर्भवती हो गयी। उसे इस दशामें देखकर और अपने साथ चलनेमें असमर्थ जानकर ब्राह्मण देवता राजाके द्वारपर आये। द्वारपालसे उनके आगमनकी सूचना पाकर राजाने उन्हें दरबारमें बुलाया और उनकी विधिपूर्वक पूजा करके उनसे कुशल-समाचार पूछा—'ब्रह्मन्! आपके आगमनका क्या हेतु है? बताइये, मैं आपकी किस आज्ञाका पालन करूँ?'

ब्राह्मणने कहा—नृपश्रेष्ठ! मैं वसिष्ठकुलमें उत्पन्न वीरशर्मा नामक सामवेदी ब्राह्मण हूँ। घरसे गंगास्नान करनेके लिये पत्नीको साथ लेकर निकला था। मार्गमें यह गर्भवती हो गयी। यह कुशिकवंशकी कन्या तथा बड़ी पुण्यशालिनी है। इसका नाम लक्ष्मी है। यह बड़ी सुशील और पतिव्रता है। इसे मैं आपके घरमें रखकर अपना व्रत पूर्ण करना चाहता हूँ। अत: जबतक मैं लौटकर न आ जाऊँ, तबतक आप इसकी रक्षा करें।

ब्राह्मणकी बात सुनकर राजाने छ: महीनेके लिये चावल और धन देकर ब्राह्मणीके लिये अन्त:पुरमें एक घर दे दिया। अपनी पत्नीको वहाँ रखकर ब्राह्मण प्रसन्नतापूर्वक गंगास्नानके लिये चले गये। उत्तम क्षेत्र प्रयागमें भागीरथी गंगाके तटपर पहुँचकर उन्होंने स्नान किया। वहाँसे काशीकी यात्रा की और वहाँ भी तीन दिनोंतक रहकर वे गया चले गये। वहाँ उन श्रेष्ठ ब्राह्मणने अपने पितरोंका श्राद्ध किया। तत्पश्चात् अयोध्यापुरीकी यात्रा करके वे बद्रिकाश्रमको गये। फिर शालिग्राम-तीर्थका सेवन करके अपने देशकी ओर लौटे। इसीमें दो वर्ष बीत गये। वैशाखमासकी शुक्लपक्षीया एकादशी तिथिको वे पुन: राजाके पास गये। राजा ब्राह्मणीको भूल गये थे। उन्होंने उसका कभी स्मरण नहीं किया। ब्राह्मणी स्वाभिमानिनी थी, (छ: महीने बाद अन्न समाप्त हो जानेपर भी वह माँगने नहीं गयी) घरमें ही मरकर सूख गयी थी। तदनन्तर वीरशर्मा ब्राह्मणने गंगाजलकी पिटारी खोलकर एक शीशी गंगाजल राजाको भेंट किया और पूछा—'मेरी धर्मपत्नी कुशलसे तो है न?' तब राजाने ब्राह्मणको स्मरण करके कहा, 'आप ठहरिये, मैं अभी आता हूँ।' यों कहकर उन्होंने अन्त:पुरमें जाकर देखा तो ब्राह्मणी घरमें मर गयी थी। ब्राह्मणको यह बात न बताकर राजाने उसी उत्तम बिलमें प्रवेश किया और श्री तथा भूदेवीके सहित भगवान् श्रीनिवासका दर्शन करनेके लिये वे वेंकटाचलपर गये। राजाको सहसा आते देख श्रीदेवी और भूदेवी—दोनों छिप गयीं। उन्हें प्रणाम करते देख भगवान्‌ने पूछा, 'राजन्! यह असमयमें तुम्हारा आगमन कैसे हुआ?' राजाने भयभीत होकर ब्राह्मणीकी मृत्युका वृत्तान्त बतलाया। उसे सुनकर देवदेव भगवान् विष्णुने कहा—'राजन्! उस श्रेष्ठ ब्राह्मणसे भय न करो। तुम ब्राह्मणीके शवको डोलीमें बैठाकर अपनी रानियोंके साथ यहाँ ले आओ और मेरे निवासस्थानसे पूर्व भागमें जो अस्थिसरोवर है, उसीमें द्वादशीको नहलाओ। वह सरोवर अपमृत्युका निवारण करनेवाला है। उसमें स्नान करके ब्राह्मणी जीवित हो जायगी और अन्य स्त्रियोंके साथ ही सरोवरसे बाहर निकलेगी। फिर उसका ब्राह्मणके साथ संयोग होगा।'

भगवान् श्रीनिवासका यह वचन सुनकर राजा अपने नगरमें गये और सुन्दर-सुन्दर डोलियोंमें अपनी रानियोंको तथा एक डोलीमें मरी हुई ब्राह्मणीको भी बैठाकर ब्राह्मणको आगे करके वहाँसे भगवान्‌का दर्शन करनेके लिये चले। अस्थिकूटसरोवरपर पहुँचकर राजाने उन सब

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

स्त्रियोंको स्नान करनेकी आज्ञा दी। उनकी रानियोंने अस्थिचर्मविशिष्ट ब्राह्मणीको भी सरोवरमें डाल दिया। फिर तो वह जी उठी। उसके शरीरके सभी चिह्न पूर्ववत् प्रकट हो गये। तत्पश्चात् वह मंगलमयी ब्राह्मणी रानियोंके साथ नहाकर सरोवरसे बाहर आयी और तीर्थयात्रासे पुनः लौटे हुए अपने स्वामी ब्राह्मणदेवतासे

प्रसन्नतापूर्वक मिली। राजाने भगवान्‌की पूजा करके ब्राह्मणको धन दिया। एक हजार स्वर्णमुद्रा और भाँति-भाँतिके वस्त्र देकर स्वदेश जानेके लिये उन ब्राह्मणदम्पतिको सादर विदा किया। ब्राह्मणने जब अपनी स्त्रीका समाचार और भगवान् वेंकटेश्वरका प्रभाव सुना, तब राजाको आशीर्वाद देकर अपने देशको प्रस्थान किया।

राजा तोण्डमान भगवान् श्रीनिवासजीकी आज्ञाके अनुसार प्रतिदिन सुवर्णमय कमलोंसे उनकी पूजा किया करते थे। एक दिन उन्होंने देखा भगवान्‌के ऊपर मिट्टीका बना हुआ तुलसी-पुष्प चढ़ा हुआ है। इससे विस्मित होकर राजाने पूछा—'भगवन्! ये मिट्टीके कमल और तुलसीपुष्प चढ़ाकर कौन आपकी पूजा करता है?' उनके इस प्रकार पूछनेपर देवाधिदेव भगवान्‌ने स्मरण करके कहा—'मेरा एक भक्त कुम्हार है जो कूर्मग्राममें निवास करता है। वह अपने घरमें मेरी पूजा करता है और मैं उसे स्वीकार करता हूँ।'

भगवान्‌की यह बात सुनकर राजा उस कुम्हारको देखनेके लिये गये और कूर्मपुरमें जाकर उसके घर पहुँचे। राजाको आया देख कुम्हार उन्हें प्रणाम करके आगे खड़ा हो गया; उसका नाम भीम था। राजाने उससे पूछा—'भीम! तुम अपने कुलमें सबसे श्रेष्ठ हो, बताओ भगवान्‌की पूजा किस प्रकार करते हो?' उनके पूछनेपर कुलालने कहा—'महाराज! मैं कभी कोई पूजा नहीं जानता। भला, आपसे किसने कह दिया कि कुम्हार पूजा करता है?'

तोण्डमान बोले—स्वयं भगवान् श्रीनिवासने तुम्हारे पूजनकी बात कही है।

राजाकी बात सुनकर कुम्हारको पूर्वकालमें दिये हुए भगवान्‌के वरदानका स्मरण हो आया। उसने कहा—'महाराज! पहले भगवान् वेंकटेश्वरने मुझे यह वरदान दिया है कि 'जब तुम्हारी की हुई पूजा प्रकाशित हो जायगी, जब राजा तोण्डमान तुम्हारे द्वारपर आ जायँगे और उनके साथ तुम्हारा संवाद होगा, तब तुम्हें मोक्ष प्राप्त हो जायगा।' यों कहकर पत्नीसहित कुम्हारने वहाँ आये हुए विमानको और उसपर बैठे हुए भगवान् जनार्दनको देखकर उन्हें प्रणाम करते हुए प्राण त्याग दिया तथा राजाधिराज तोण्डमानके देखते-देखते विमानपर बैठकर दिव्यरूप धारण करके दिव्य रूपधारिणी पत्नीके साथ वह भगवान् विष्णुके परमधामको चला गया।'

यह अद्भुत घटना देखकर राजा हर्षमें भरे हुए अपने नगरको आये और अपने श्रीनिवास नामक पुत्रका विधिपूर्वक राज्याभिषेक करके बोले—'वत्स! तुम धर्मपूर्वक सब मनुष्योंका

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

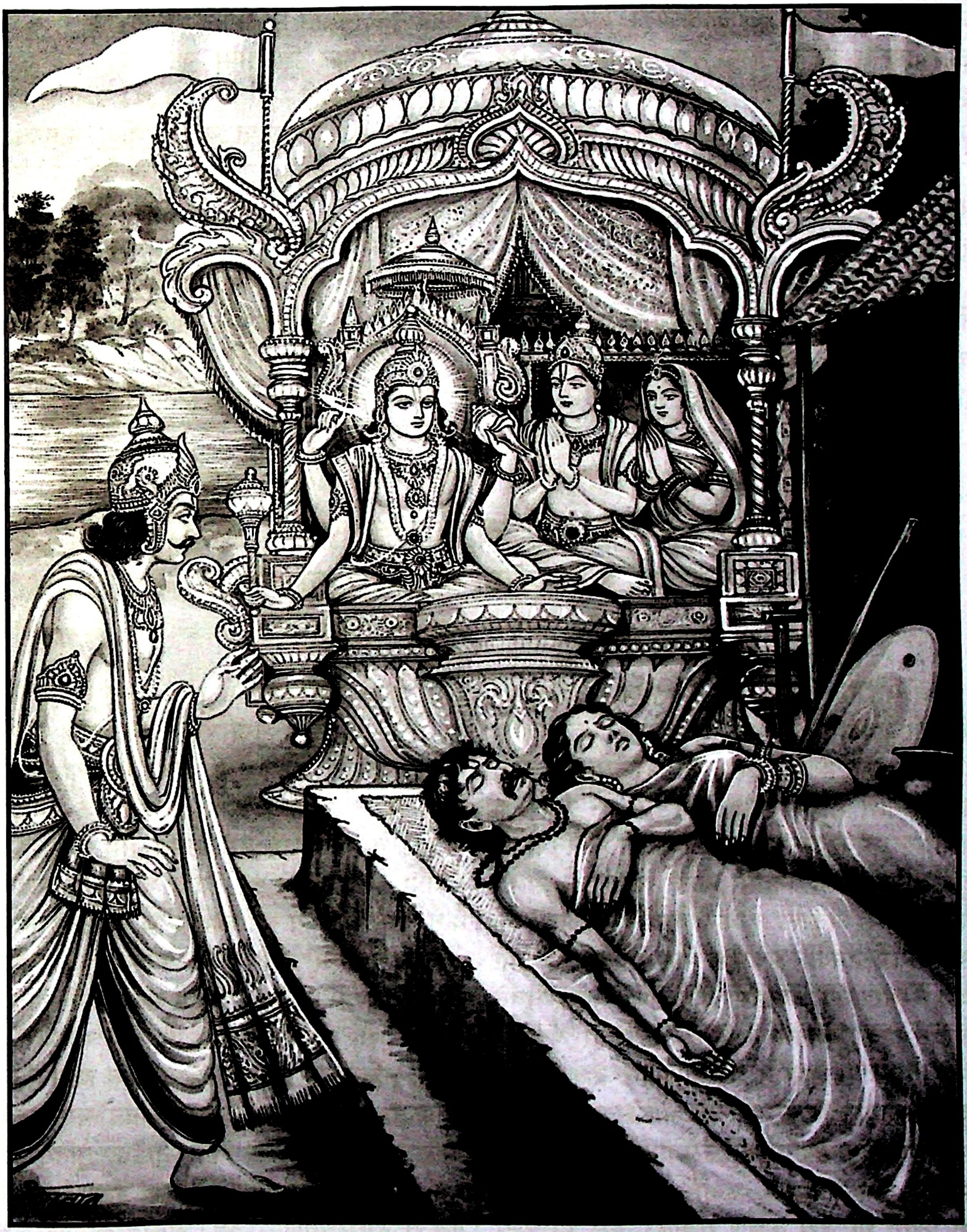

भक्त भीम कुम्हारका पत्नीसहित विमानारोहण

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

पालन और पृथ्वीकी रक्षा करो।' पुत्रको यह आज्ञा देकर बुद्धिमान् राजाने बड़ी भारी तपस्या की। तपस्या करते समय भगवान्‌ने उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन दिया। वे श्री तथा भूदेवियोंके साथ गरुड़पर आरूढ़ होकर वहाँ आये थे।

श्रीभगवान् बोले—नृपश्रेष्ठ! मैं तुम्हारी तपस्यासे बहुत सन्तुष्ट हूँ, बोलो—तुम्हारी किस इच्छाको पूर्ण करूँ?

देवाधिदेव भगवान्‌के ऐसा कहनेपर सम्राट् तोण्डमान अत्यन्त प्रसन्न हो हाथ जोड़कर गद्गद वाणीमें बोले—'माधव! मैं आपके जरा-मृत्यु-रहित धाममें निवास करना चाहता हूँ, मुझे यही मनोवांछित वरदान दीजिये।' ऐसा कहकर राजा भगवान्‌के समीप पृथ्वीपर साष्टांग पड़ गये और शरीर त्यागकर विमानपर जा बैठे। उस समय गन्धर्वगण उनकी स्तुति कर रहे थे। राजा भगवान् विष्णुका सारूप्य प्राप्त करके शोक-मोहरहित, जरा-मरणवर्जित तथा पुनरावृत्तिशून्य वैकुण्ठधामको चले गये।

सूतजी कहते हैं—देवाधिदेव भगवान् वाराहके द्वारा कहे हुए इस भविष्य-प्रसंगको जो सुनता है तथा पुण्यमयी पुराणकथाका भक्तिपूर्वक पाठ करता है, वह सब कामनाओंको भोगकर अन्तमें भगवान् विष्णुके परमपदको प्राप्त होता है।

राजा परीक्षित्‌को ब्राह्मणका शाप, तक्षकके काटनेसे उनकी मृत्यु तथा उनकी रक्षा न करनेके पापसे कलंकित काश्यप ब्राह्मणका स्वामिपुष्करिणीमें स्नान करके शुद्ध होना

श्रीसूतजी कहते हैं—महर्षियो! अब मैं श्रीस्वामिपुष्करिणीके माहात्म्यका प्रतिपादन करनेवाला इतिहास कहता हूँ, जो इसे पढ़नेवालोंके भी पापका नाश करनेवाला है। अभिमन्युके पुत्र राजा परीक्षित् धर्मके अनुसार इस पृथ्वीका पालन करते हुए हस्तिनापुरमें निवास करते थे। एक समय वे मृगयामें अनुरक्त होकर वनमें घूम रहे थे। उस समय उनकी अवस्था साठ वर्षकी हो गयी थी। वे भूख और प्याससे पीड़ित थे। घूमते-घूमते उन्होंने एक ध्यानमग्न मुनिको देखकर पूछा—'मुने! मैंने इस समय वनमें अपने बाणसे एक मृगको घायल किया है। वह भयसे कातर होकर भाग गया है। क्या आपने उसे देखा है?' मुनिकी समाधि लग गयी थी, उन्होंने मौन रहनेका व्रत भी लिया था, इस कारण राजाको कुछ भी उत्तर नहीं दिया। तब राजाने कुपित हो एक मरे हुए साँपको धनुषसे उठाकर मुनिके कंधेपर रख दिया और अपने नगरकी राह ली। मुनिके एक पुत्र था, जिसका नाम शृंगी रखा गया था। शृंगीके कृष नामवाला कोई श्रेष्ठ द्विज मित्र था। उसने विवादमें अपने मित्र शृंगीसे व्यंगपूर्वक कहा—'सखे! तुम्हारे पिता इस समय मरा हुआ साँप कंधेपर ढो रहे हैं। तुम बहुत घमंड न दिखाया करो और मेरे आगे यह व्यर्थ क्रोध न किया करो।'

यह सुनकर शृंगी कुपित हो उठा और शाप देते हुए बोला—'जिस मूढ़बुद्धि मानवने मेरे पिताके कंधेपर मरा हुआ साँप रखा है, वह सातवें दिन तक्षक नागके काटनेपर मृत्युको प्राप्त होगा।' इस प्रकार उस मुनिकुमारने उत्तरानन्दन परीक्षित्‌को शाप दे दिया। उसके पिता शमीक मुनिने जब यह सुना कि मेरे पुत्रने राजाको शाप दिया है, तब वे उससे बोले—'अरे! समस्त लोगोंकी रक्षा करनेवाले राजाको तूने क्यों शाप दिया? राजाके न रहनेपर हमलोग संसारमें सुखपूर्वक कैसे रह

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

सकेंगे? क्रोधसे पाप होता है और दयासे सुख मिलता है। जो मनुष्य मनमें आये हुए क्रोधको क्षमासे शान्त कर देता है, वह इहलोक और परलोकमें भी अतिशय सुखका भागी होता है। क्षमायुक्त मनुष्य ही उत्तम श्रेय प्राप्त करते हैं।' बेटेको इस प्रकार समझाकर शमीकने दौर्मुख नामवाले अपने शिष्यसे कहा—'वत्स दौर्मुख! तुम जाकर राजा परीक्षित्‌से मेरे पुत्रके दिये हुए शापका वृत्तान्त, जिसमें तक्षक नागके डँसनेकी बात है, बता दो। महामते! फिर शीघ्र मेरे पास लौट आना।'

शमीकके ऐसा कहनेपर दौर्मुखने उत्तराकुमार राजा परीक्षित्‌के पास जाकर कहा— राजन्! आपके द्वारा पिताके कंधेपर रखे हुए मृतक सर्पको देखकर, शमीकके पुत्र शृंगी ऋषिने रोषमें आकर आपको यों शाप दिया है—'आजसे सातवें दिन अभिमन्युपुत्र परीक्षित् महानाग तक्षकके काटनेपर उसकी विषाग्निसे जलकर भस्म हो जायँ।' राजासे ऐसा कहकर दौर्मुख शीघ्र लौट गया। उसके जानेपर राजाने गंगाकी बीच धारामें एक ही खंभेका एक बहुत ऊँचा और विस्तृत मण्डप बनवाया और भगवान् विष्णुके प्रति भक्तिभाव बढ़ाते हुए अनेक देवर्षि, ब्रह्मर्षि तथा राजर्षियोंके साथ वे उस ऊँचे मण्डपमें रहने लगे। उसी अवसरपर मन्त्र जाननेवालोंमें श्रेष्ठ काश्यप नामवाला ब्राह्मण तक्षकके महान् विषसे राजाकी प्राणरक्षा करनेके लिये सातवें दिन वहाँ जा रहा था। दरिद्र होनेके कारण वह राजासे धन पानेकी इच्छा रखता था। इसी बीचमें तक्षक नाग भी ब्राह्मणका रूप धारण करके आ गया। मार्गमें काश्यपको देखकर उसने पूछा—'ब्रह्मन्! महामुने! तुम कहाँ जाते हो? मुझे बताओ।' काश्यपने उत्तर दिया—आज महाराज परीक्षित्‌को तक्षक नाग अपनी विषाग्निसे जलायेगा। उसकी विषाग्निको शान्त करनेके लिये मैं महाराजके समीप जाता हूँ।'

तक्षक बोला—विप्रवर! मैं ही तक्षक हूँ। मैं जिसे काट लूँ, उसकी चिकित्सा सौ वर्षोंमें भी, दस हजार महामन्त्रोंसे भी नहीं हो सकती। यदि तुममें मेरे काटे हुए को भी अपनी चिकित्साद्वारा जिला देनेकी शक्ति है, तो बहुत ऊँचे इस वृक्षको मैं डँसता हूँ, तुम जिला दो।

यों कहकर तक्षकने उस वृक्षको काट लिया। उसके डँसते ही वह अत्यन्त ऊँचा वृक्ष जलकर भस्म हो गया। उस वृक्षपर पहलेसे ही कोई

मनुष्य चढ़ा हुआ था, वह भी तक्षकके विषकी ज्वालाओंसे दग्ध हो गया। तब मन्त्रज्ञोंमें श्रेष्ठ काश्यपने अपनी मन्त्रशक्तिसे उस जले हुए वृक्षको भी जिला दिया। उसके साथ ही वह मनुष्य भी जी उठा। यह देख तक्षकने मन्त्रकुशल काश्यपसे कहा—'ब्रह्मन्! राजा तुम्हें जितना धन दे सकते हैं, उससे दूना मैं देता हूँ। इसे लेकर शीघ्र लौट जाओ।' यों कहकर तक्षकने उसे बहुमूल्य रत्न देकर लौटा दिया।

तत्पश्चात् तक्षकने सब सर्पोंको बुलाकर कहा—'तुम सब लोग मुनियोंके वेष धारण करके राजाके पास जाओ और उन्हें भेंटमें फल समर्पित

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

करो।' 'बहुत अच्छा' कहकर सभी राजाको फल देने लगे। उस समय तक्षक भी किसी बेरके फलमें कृमिका रूप धारण करके राजाको डँसनेके लिये बैठ गया। ब्राह्मणरूपी सर्पोंके दिये हुए सभी फल राजा परीक्षित्ने बूढ़े मन्त्रियोंको देकर कौतूहलवश एक मोटे फलको हाथमें ले लिया। इसी समय सूर्य भी अस्ताचलपर पहुँच गये। उस फलमें सब लोगोंने तथा राजाने भी एक लाल रंगका कीट देखा, वही तक्षक था। उसने शीघ्र ही फलसे निकलकर राजाके शरीरको लपेट लिया। यह देख आसपास बैठे हुए सब लोग भयसे भाग गये। ब्राह्मणो! तक्षककी अत्यन्त प्रबल विषाग्निसे राजा परीक्षित् मण्डपसहित तत्काल जलकर भस्म हो गये। पुरोहित और मन्त्रियोंने उनका और्ध्वदेहिक संस्कार करके प्रजाकी रक्षाके लिये उनके पुत्र जनमेजयको राजाके पदपर अभिषिक्त कर दिया।

तक्षकसे राजाकी रक्षा करनेके लिये जो काश्यप नामक ब्राह्मण आया था, उसकी सब लोग निन्दा करने लगे। अन्तमें वह शाकल्य मुनिकी शरणमें गया और उन्हें प्रणाम करके बोला—'भगवन्! आप सब धर्मोंके ज्ञाता और भगवान् विष्णुके प्रिय भक्त हैं। ये मुनि, ब्राह्मण, सुहृद् तथा अन्य लोग जो मेरी निन्दा करते हैं, इसका क्या कारण है, यह मैं नहीं जानता। यदि आप जानते हों तो बतायें।' तब महामुनि शाकल्यने क्षणभर ध्यान करके काश्यपसे कहा—'तुम तक्षकसे महाराज परीक्षित्को बचानेके लिये जा रहे थे, किंतु आधे मार्गमें तक्षकने तुम्हें मना कर दिया। जो मनुष्य विष, रोग आदिकी चिकित्सा करनेमें समर्थ होकर भी काम, क्रोध, भय, लोभ, मात्सर्य अथवा मोहसे विष एवं रोगसे पीड़ित मनुष्यकी रक्षा नहीं करता, वह ब्रह्महत्यारा, शराबी, चोर, गुरुपत्नीगामी तथा इन सबके संसर्गदोषसे दूषित है। उसके उद्धारका कोई उपाय नहीं है। महाराज परीक्षित् पवित्र यशवाले, धर्मात्मा, विष्णुभक्त, महायोगी तथा चारों वर्णोंकी रक्षा करनेवाले थे। उन्होंने व्यासपुत्र शुकदेवजीसे भक्तिपूर्वक श्रीमद्भागवतकी कथा सुनी थी। ऐसे पुण्यात्मा राजाकी रक्षा न करके जो तुम तक्षकके कहनेसे (धन लेकर) लौट गये उसी कारणसे श्रेष्ठ ब्राह्मण और बन्धु-बान्धव तुम्हारी निन्दा करते हैं। मरनेवाले मनुष्यके प्राण जबतक कण्ठमें रहते हैं, तबतक उसकी चिकित्सा करनी चाहिये। तुम चिकित्सा करनेमें समर्थ होकर भी उनकी दवा किये बिना ही आधे मार्गसे लौट आये। इसलिये तुम वास्तवमें निन्दाके पात्र हो।'

काश्यप बोले—उत्तम व्रतका पालन करनेवाले शाकल्यजी! मेरे दोषकी शान्तिके लिये कोई उपाय बताइये। जिससे मेरे बन्धु-बान्धव और सुहृद् मुझे ग्रहण करें। आप भगवान्के प्रिय भक्त हैं, मुझपर अवश्य कृपा करें।

तब मुनिवर शाकल्यने क्षणभर ध्यान करके कृपापूर्वक काश्यपसे कहा—ब्रह्मन्! इस पापकी शान्तिके लिये मैं तुम्हें एक उपाय बताता हूँ। सुवर्णमुखरी नदीके तटपर भगवान् लक्ष्मीपतिकी निवासभूमि है, उसका नाम वेंकटाचल है, जो सब लोगोंमें पूजित है। उसका दूसरा नाम शेषाचल भी है। वह परमपवित्र तथा देवता और दानवोंसे भी वन्दित है। ब्रह्महत्या, सुरापान तथा सुवर्णकी चोरी आदि बड़े-बड़े पापोंका वह नाश करनेवाला है। उसी पर्वतपर स्वामिपुष्करिणी है, जो सब पापोंका निवारण करनेवाली है। वह मंगलदायिनी पुष्करिणी भगवान् श्रीनिवासके स्थानसे उत्तर दिशामें है। तुम वेंकटाचलपर जाकर कल्याणमयी स्वामिपुष्करिणीमें संकल्पपूर्वक स्नान करो। फिर पश्चिम तटपर बसे हुए वाराह-स्वामीकी सेवा करके भगवान्के मुख्य मन्दिरमें

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

जाओ। वहाँ भक्तोंको अभय प्रदान करनेवाले शंख-चक्रधारी वनमालाविभूषित स्वर्णाचलनिवासी भगवान् श्रीनिवासका विधिपूर्वक दर्शन करके तुम सब पापोंसे मुक्त हो जाओगे।

यह सुनकर मुनिवर काश्यपने देव-दानववन्दित स्वामिपुष्करिणीमें नियमपूर्वक स्नान किया। इससे वे शुद्ध और स्वस्थ हो गये। फिर सब बन्धु-बान्धवोंने उनका विधिपूर्वक पूजन करके कहा—'आप निःसन्देह हमारे पूज्य हैं।' ब्राह्मणो! इस प्रकार मैंने आपलोगोंसे वेंकटाचलकी महिमाका वर्णन किया है। जो मनुष्य भक्तिपूर्वक इसे सुनता है, वह विष्णुलोकमें प्रतिष्ठित होता है।

स्वामितीर्थकी महिमा और उसमें स्नान करनेसे राजा धर्मगुप्तके शापजनित उन्मादका निवारण

ऋषि बोले—सूतजी! आप स्वामिपुष्करिणी तीर्थकी महिमाका पुनः वर्णन कीजिये।

सूतजीने कहा—जो लोग स्वामितीर्थमें स्नान करते हैं, वे तामिस्र, अन्धतामिस्र, महारौरव, रौरव, कुम्भीपाक, कालसूत्र, असिपत्रवन, कृमिभक्ष, अन्धकूप, सन्दंश, शाल्मलि, लालाभक्ष, अवीचि, सारमेयादन, वज्रकर्णक, क्षारकर्दमपातन, रक्षोगणाशन, शूलप्रोतनिरोधन, तिरोधान, सूचीमुख, पूयभक्ष, शोणितभक्ष और विषाग्निपरिपीडन आदि अट्ठाईस नरकोंमें नहीं जाते। जो दूसरोंके धन, सन्तान और स्त्रियोंका अपहरण करनेवाला है, वह बहुत वर्षोंतक तामिस्र नामक भयंकर नरकमें डाला जाता है। जो अधम मनुष्य माता-पिता और ब्राह्मणोंसे द्वेष रखता है, वह दस हजार योजन विस्तृत कालसूत्र नरकमें डाला जाता है। जो वेदमार्गका उल्लंघन करके कुपथपर चलता है, वह यमदूतोंद्वारा भयंकर असिपत्रवनमें गिराया जाता है। जो पकवान और दाल-शाक आदि अन्न पंक्तिभेद करके खाता है और मोहवश पंचयज्ञोंका अनुष्ठान किये बिना ही भोजन करता है, वह कृमिभोजन नरकमें डाला जाता है, जहाँ सैकड़ों कीड़े उसको खाते हैं और वह भी कीड़ोंको ही खाकर रहता है। जो स्नेह अथवा बलसे ब्राह्मणका धन हड़प लेता है तथा जो राजा या राजपुरुष दूसरोंके धनका अपहरण कर लेता है, वह सन्दंश नामक भयंकर नरकमें गिराया जाता है। जो नीच मानव अगम्या स्त्रीके साथ गमन करता है, अथवा जो नारी अगम्य पुरुषके साथ संगम करती है, वे दोनों क्रमशः लोहेकी तपायी हुई नारी-मूर्ति और पुरुष-मूर्तिका आलिंगन करके तबतक खड़े रहते हैं, जबतक चन्द्रमा और सूर्यकी सत्ता रहती है। तत्पश्चात् वे सूचीनामक घोर नरकमें डाले जाते हैं। जो मनुष्य अनेक प्रयत्नों और उपद्रवोंसे सब प्राणियोंको सताता है, वह बहुत काँटोंवाले भयंकर शाल्मलि नरकमें गिराया जाता है। जो राजा अथवा राजाका नौकर पाखण्डमतका अनुयायी होकर धार्मिक मर्यादाओंको तोड़ता है, वह वैतरणी नरकमें डाला जाता है। वृषलीसंगसे दूषित, शौचाचारहीन, अशास्त्रीय कर्मोंके करनेमें लज्जित न होनेवाले, वेदमार्गके त्यागी, सदा पशुका-सा आचरण करनेवाले व्यक्तियोंको यमकिंकर पूय, विष्ठा, मूत्र, कफ और पित्तादिसे पूर्ण अत्यन्त वीभत्स नरकमें गिराते हैं। जो कुत्तोंको अथवा जंगलमें वन्य मृगादि पशुओंको बाणोंके द्वारा पीड़ा पहुँचाता है, यमकिंकर उसको बाणोंके द्वारा बींधते हैं और पुनः प्राणरोध नामक नरकमें गिराते हैं। जो पाखण्डी यज्ञमें पशुओंकी हत्या

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

करता है, वह परलोकमें वैशस नामक नरकमें गिराया जाता है। जो लुटेरोंके मार्गका आश्रय लेकर दूसरोंको जहर देता, गाँवोंको जला डालता और बनियोंके धनका अपहरण करता है, वह परलोकमें वज्रदंष्ट्र नामक भयानक नरकमें दीर्घकालतकके लिये डाल दिया जाता है। ये तथा और भी जितने नरक हैं, उन सबमें वह मनुष्य कभी नहीं पड़ता, जो स्वामिपुष्करिणी तीर्थमें गोता लगाता है। स्वामिपुष्करिणीमें एक बार स्नान करनेसे मनुष्य अश्वमेध यज्ञका फल पाता है। उसे आत्मज्ञान तथा चार प्रकारकी साक्षात् मुक्तिकी भी प्राप्ति होती है। जो महापातकों अथवा सम्पूर्ण पातकोंसे युक्त है, वह भी स्वामितीर्थमें गोता लगानेसे तत्काल पवित्र हो जाता है। स्वामितीर्थके सेवनसे मनुष्योंकी बुद्धि, लक्ष्मी, कीर्ति, सम्पत्ति, ज्ञान, धर्म और वैराग्यकी वृद्धि तथा मनकी शुद्धि होती है।

इस प्रकार अद्वैतज्ञान, भोग और मोक्ष तथा मनोवांछित कामना प्रदान करनेवाले अज्ञाननाशक स्वामितीर्थके प्रभावका वर्णन किया गया, जो मनुष्योंके समस्त पापोंका नाश करनेवाला है।

नैमिषारण्यनिवासी महर्षियो! मैं तुमलोगोंसे स्वामितीर्थकी महिमाका अभी और वर्णन करूँगा। चन्द्रवंशमें नन्द नामसे प्रसिद्ध एक महाराजा थे, जो समुद्रपर्यन्त पृथ्वीका धर्मपूर्वक पालन करते थे। उनके एक पुत्र हुआ, जिसका नाम धर्मगुप्त था। नन्दने राज्यकी रक्षाका भार अपने पुत्रपर रख दिया और स्वयं इन्द्रियोंको वशमें करके आहारपर विजय पाकर तपस्याके लिये तपोवनमें चले गये। पिताके तपोवन चले जानेपर राजा धर्मगुप्तने सारी पृथ्वीका पालन किया। वे धर्मोंके ज्ञाता और नीतिपरायण थे। उन्होंने अनेक प्रकारके यज्ञोंद्वारा इन्द्र आदि देवताओंका पूजन किया और ब्राह्मणोंको धन एवं बहुत-से क्षेत्र प्रदान किये। उनके शासनकालमें समस्त प्रजा अपने-अपने धर्मका पालन करती थी। उनके राज्यमें कभी चोर आदिसे किसीको कष्ट नहीं प्राप्त हुआ। एक दिन धर्मगुप्त उत्तम घोड़ेपर सवार हो वनमें गये। वहीं रात हो गयी। विनयशील राजाने वहीं सायं-सन्ध्याकी उपासना करके वेदमाता गायत्रीका जप किया। तत्पश्चात् सिंह, व्याघ्र आदिके भयसे वे एक वृक्षपर जा बैठे। उस वृक्षके पास एक रीछ आया, जो सिंहके भयसे पीड़ित था। वनमें विचरनेवाला एक सिंह उस रीछका पीछा कर रहा था। रीछ वृक्षपर चढ़ गया। वहाँ उसने महान् बल-पराक्रमसे सम्पन्न राजा धर्मगुप्तको बैठे देखा। उन्हें देखकर रीछ बोला—'महाराज! भय न करो। हम दोनों रातभर यहीं रहेंगे, क्योंकि वृक्षके नीचे बड़ा भयंकर सिंह आया हुआ है। महामते! तुम आधी राततक निर्भय होकर नींद लो, मैं सजग होकर तुम्हारी रक्षा करता रहूँगा। उसके बाद जब मैं सो जाऊँ, तब शेष आधी राततक तुम मेरी रक्षा करना।'

रीछकी यह बात सुनकर धर्मगुप्त सो गये। उस समय सिंहने रीछसे कहा—'यह राजा तो सो गया है, अब तुम इसे मेरे लिये नीचे गिरा दो।' तब धर्मज्ञ रीछने सिंहको उत्तर दिया—'वनचारी मृगराज! तुम धर्मको नहीं जानते। अहो! विश्वासघात करनेवाले प्राणियोंको संसारमें बड़ा कष्ट भोगना पड़ता है। मित्रद्रोहियोंका पाप दस हजार यज्ञोंके अनुष्ठानसे भी नष्ट नहीं होता। ब्रह्महत्या आदि पापोंका तो किसी प्रकार निवारण हो सकता है, परंतु विश्वासघातियोंका पाप कोटिजन्मोंमें भी नष्ट नहीं हो सकता है।*

* ब्रह्महत्यादिपापानां कथञ्चिन्निष्कृतिर्भवेत्। विश्वासघातिनां पापं न नश्येज्जन्मकोटिभिः॥ (स्क० पु०, वै० वे० १३।२२)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

सिंह! मैं मेरुपर्वतको इस पृथ्वीका बड़ा भारी भार नहीं मानता, संसारमें जो विश्वासघाती है, उसीको मैं भूतलका महान् भार समझता हूँ।'

रीछके ऐसा कहनेपर सिंह चुप हो गया। तत्पश्चात् धर्मगुप्त जागे और रीछ वृक्षपर सो गया। तब सिंहने राजासे कहा—'इस रीछको नीचे छोड़ दो।' तब राजाने अपने अंकमें सिर रखकर सोये हुए रीछको पृथ्वीपर ढकेल दिया। राजाके गिरानेपर रीछ वृक्षकी डाली पकड़ता लटक गया। वह पुण्यवश वृक्षसे नीचे नहीं गिरा। अब वह राजाके पास आकर क्रोधपूर्वक बोला—'राजन्! मैं इच्छानुसार रूप धारण करनेवाला ध्यानकाष्ठ नामक मुनि हूँ। मेरा जन्म भृगुवंशमें हुआ है। मैंने स्वेच्छासे रीछका रूप धारण किया है। मैंने तुम्हारा कोई अपराध नहीं किया था। फिर सोते समय तुमने मुझे क्यों ढकेला? जाओ, मेरे शापसे बहुत शीघ्र पागल होकर पृथ्वीपर विचरो।' राजाको इस प्रकार शाप देकर मुनिने सिंहसे कहा—'तुम सिंह नहीं, महायक्ष हो। पहले कुबेरके मन्त्री थे। एक दिन अपनी स्त्रीके साथ हिमालयके शिखरपर आकर अनजानमें गौतम मुनिके समीप ही तुम विहार करने लगे थे। दैवकी प्रेरणासे महर्षि गौतम समिधा लानेके लिये कुटीसे बाहर निकले। उन्होंने तुम्हें नंगा देख इस प्रकार शाप दिया—'अरे! तू मेरे आश्रममें आकर नंगा खड़ा है। अतः अभी तू सिंह हो जायगा।' इस प्रकार तुम्हें सिंहयोनि प्राप्त हुई है। मृगराज! ये सारी बातें मैं ध्यानसे जानता हूँ।' ध्यानकाष्ठ मुनिके ऐसा कहनेपर उसने सिंहका रूप त्याग दिया और कुबेर-सचिवके रूपमें दिव्य यक्षका शरीर धारण कर लिया। उसके बाद उसने हाथ जोड़कर कहा—'महामुने! आज मुझे अपने समस्त पूर्ववृत्तान्तका ज्ञान हो गया। गौतमजीने शाप देते समय उसके उद्धारका समय भी इस प्रकार बताया था—'जब रीछरूपधारी ध्यानकाष्ठके साथ तुम्हारा वार्तालाप होगा, तब तुम सिंह-देह त्याग करके यक्षरूप धारण कर लोगे।'

यों कहकर वह यक्षराज मुनिवर ध्यानकाष्ठको प्रणाम करके उत्तम विमानपर बैठा और अलकापुरीको चला गया। नृपश्रेष्ठ धर्मगुप्तको पागलके रूपमें देखकर मन्त्रीलोग उन्हें नर्मदाके तटपर उनके पिता नन्दके पास ले गये और यह बताया कि आपके पुत्रकी बुद्धि विकृत हो गयी है। पुत्रका वृत्तान्त जानकर राजा नन्द उसे साथ ले सहसा जैमिनि मुनिके समीप गये और उनसे इस प्रकार बोले—'भगवन्! मेरा पुत्र इस समय उन्मादग्रस्त हो गया है। महामुने! इस रोगके निवारणका कोई उपाय बतलाइये।' उनके ऐसा पूछनेपर मुनिवर जैमिनिने दीर्घकालतक ध्यान करके कहा, 'राजन्! तुम्हारा पुत्र ध्यानकाष्ठ मुनिके शापसे उन्मत्त हुआ है। इस शापसे छुटकारा पानेके लिये मैं तुम्हें उपाय बतलाता हूँ। सुवर्णमुखरी नदीके तटपर एक वेंकट नामसे प्रसिद्ध पर्वत है, जो सब पापोंको हरनेवाला तथा परमपवित्र है। उसके शिखरपर स्वामिपुष्करिणी नामक एक बड़ा भारी तीर्थ है। महामते! वहीं

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

ले जाकर अपने पुत्रको उसमें नहलाओ। ऐसा करनेसे इसका उन्माद तत्काल नष्ट हो जायगा।' यह सुनकर राजा नन्दने मुनिश्रेष्ठ जैमिनिको प्रणाम किया और पुत्रको लेकर वे स्वामिपुष्करिणी तीर्थको गये। वहाँ नियमपूर्वक पुत्रको नहलाया। स्नान करते ही उसी क्षण उसका उन्माद नष्ट हो गया। राजा नन्दने स्वयं भी स्वामिपुष्करिणीके जलमें स्नान किया। फिर पुत्रके साथ एक दिन उस तीर्थमें निवास किया और वेंकटगिरिके स्वामी दयानिधान भगवान् श्रीनिवासकी सेवा करके पुनः तपस्याके लिये वनको प्रस्थान किया। पिताके चले जानेपर राजा धर्मगुप्तने भगवान् वेंकटेश्वरमें भक्ति रखते हुए ब्राह्मणोंको बहुत धन-धान्य और क्षेत्र प्रदान किये। तत्पश्चात् मन्त्रियोंके साथ वे अपनी नगरीको चले गये। ब्राह्मणो! इस प्रकार तुमसे मैंने राजा धर्मगुप्तकी कल्याणमयी कथा सुनायी। इसके श्रवणमात्रसे ब्रह्महत्याका नाश हो जाता है।

कृष्णतीर्थ और भगवान् वेंकटेश्वरका माहात्म्य

सूतजी कहते हैं—मुनिवरो! सब पापोंका नाश करनेवाले महान् पुण्यप्रद वेंकटाचलपर जो कृष्णतीर्थ है, उसका माहात्म्य श्रवण करो। पूर्वकालमें विप्रवर रामकृष्ण नामक एक बहुत बड़े मुनि थे। वे सत्यवादी, शीलवान्, उत्तम भक्त, सब प्राणियोंपर दया करनेवाले, शत्रु और मित्रके प्रति समभाव रखनेवाले, जितात्मा, तपस्वी और जितेन्द्रिय थे। परब्रह्ममें निष्णात तथा एकमात्र ब्रह्मतत्त्वके आश्रित थे। ऐसे प्रभाववाले मुनिवर रामकृष्णने उस तीर्थमें बड़ी कठोर तपस्या की। वे अपने सब अंगोंको स्थिर करके खड़े रहते। वहाँ खड़े होकर तपस्या करते हुए उनको कई सौ वर्ष बीत गये। उनके सब अंगोंपर वल्मीककी मिट्टी जम गयी और उसने उन्हें आच्छादित कर लिया। तो भी महामुनि रामकृष्ण तपस्यामें संलग्न रहे। उन्होंने वल्मीककी कोई परवा नहीं की। इन्द्रने तपस्या करते हुए उस मुनिश्रेष्ठपर मेघोंको भेजकर बड़े वेगसे वृष्टि करवायी। सात दिनोंतक लगातार वर्षा होती रही। मूसलाधार पानी पड़नेपर भी मुनिने अपने नेत्र बंद करके वर्षाको सहन किया। तब बड़ी भारी गड़गड़ाहटके साथ कानोंको बधिर बनाती हुई बिजली वल्मीकके ऊपर गिरी। वल्मीक ढह गया। उसी समय शंख, चक्र, गदाधारी भगवान् विष्णु प्रकट हो गये। वे विनतानन्दन गरुड़पर आरूढ़ थे। गलेमें पड़ी हुई वनमाला उनकी शोभा बढ़ा रही थी। श्रीरामकृष्णकी तपस्यासे सन्तुष्ट हो भगवान् इस प्रकार बोले—'रामकृष्ण! तुम

वेद-शास्त्रके पारंगत विद्वान् हो और तपस्याकी निधि हो। मेरे प्रादुर्भावके दिन जो मनुष्य यहाँ स्नान करता है, उसके पुण्यफलका वर्णन शेषनाग भी नहीं कर सकते। सूर्य मकर-राशिपर स्थित हों और महातिथि पूर्णिमा पुष्य-नक्षत्रसे युक्त हो तो वह इस तीर्थमें स्नान करनेका सर्वोत्तम समय बताया गया

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

है। जो मनुष्य उस दिन कृष्णतीर्थमें स्नान करता है, वह सब पापोंसे मुक्त होकर समस्त कामनाओंको प्राप्त कर लेता है। आजसे यह महातीर्थ तुम्हारे ही नामसे संसारमें प्रसिद्ध हो।' ऐसा कहकर भगवान् श्रीनिवास वहीं अन्तर्धान हो गये। उस तीर्थका ऐसा प्रभाव है कि वह बड़े-बड़े पापोंको शुद्ध करनेवाला है। मनुष्योंकी बुद्धिको शुद्ध करता और उन्हें सम्पूर्ण ऐश्वर्योंको देता है। ब्राह्मणो! इस प्रकार तुमलोगोंसे यह कृष्णतीर्थका माहात्म्य बतलाया गया, जो इसके श्रोता और वक्ता दोनोंको विष्णुलोक प्रदान करनेवाला है।

अब मैं भगवान् वेंकटेश्वरके वैभवका वर्णन करूँगा, जिसे सुनकर मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। जो मानव एक बार भगवान् वेंकटेश्वरका दर्शन कर लेता है, वह मोक्षको प्राप्त होता है। सत्ययुगमें जो पुण्य दस वर्षोंमें प्राप्त किया जाता है, वही त्रेतामें एक ही वर्षमें, द्वापरमें पाँच महीनोंमें और कलियुगमें एक ही दिनमें सिद्ध हो जाता है। परंतु जो भगवान् श्रीनिवासका दर्शन करते हैं, उन्हें एक-एक पलमें वही पुण्यफल कोटि-कोटि गुना होकर मिलता है। श्रीभगवान् वेंकटेश्वरमें सम्पूर्ण तीर्थ, सब देवता, मुनि और पितर विद्यमान हैं। भगवान् वेंकटेशका सच्चिदानन्दमय विग्रह श्रेष्ठ शंखसे पूजित है। उसके स्मरण करनेमात्रसे यमराजकी पीड़ा नहीं होती। जो इस पृथ्वीपर परम दुर्लभ मनुष्य-शरीर पाकर सर्वश्रेष्ठ देवता भगवान् वेंकटेशका दर्शन एवं पूजन करते हैं, उनका जन्म सफल है और वे ही कृतार्थ हैं। भगवान् नारायणका दर्शन होनेपर सहस्रों ब्रह्महत्या और दस हजार मद्यपानके पाप भी पूर्णतः नष्ट हो जाते हैं। जो मनुष्य सदा भोग और स्वर्गलोकका राज्य चाहते हैं, वे एक बार प्रसन्नतापूर्वक वेंकटाचलनिवासी भगवान् श्रीनिवासको प्रणाम करें। करोड़ों जन्मोंमें किये हुए जो कोई भी पाप हैं, वे सब भगवान् वेंकटेश्वरके दर्शनसे नष्ट हो जाते हैं। जो सम्पर्कसे, कौतूहलसे, लोभसे अथवा भयसे भी महादेव वेंकटाचलेश्वरका स्मरण करता है, वह इहलोक और परलोकमें कभी दुःखका भागी नहीं होता। वेंकटाचलवासी देवेश्वर भगवान् श्रीविष्णुका कीर्तन और पूजन करनेवाला अवश्य ही श्रीविष्णुका सारूप्य प्राप्त कर लेता है। जैसे प्रज्वलित अग्नि क्षणभरमें ढेर-के-ढेर ईंधन जलाकर भस्म कर देती है, वैसे ही भगवान् वेंकटेश्वरका दर्शन सब पापोंको दग्ध कर देता है।

भगवान् वेंकटेश्वरकी भक्ति आठ प्रकारकी मानी गयी है— १-भगवान्‌के भक्तोंके प्रति स्नेह-भाव, २-भगवद्भक्तोंकी पूजा करके उन्हें सन्तुष्ट करना, ३-स्वयं भक्तिपूर्वक भगवान्‌की पूजा करना, ४-अपने शरीरकी समस्त चेष्टाएँ भगवान्‌के लिये ही करना, ५-भगवान्‌के माहात्म्यकी कथामें रुचि रखना और उसे सुननेमें आदरका भाव होना, ६-अपने नेत्र और शरीरमें भगवद्भक्ति एवं भगवत्प्रेमजनित विकारका स्फुरण होना, ७-भगवान् श्रीनिवासका निरन्तर स्मरण करना तथा ८-वेंकटाचलनिवासी भगवान् श्रीनिवासकी शरण लेकर ही जीवन धारण करना। ऐसी आठ प्रकारकी भक्ति यदि किसी म्लेच्छमें भी हो तो वह निश्चय ही मोक्षको प्राप्त कर लेता है। भगवान्‌की अनन्य भक्ति तथा ब्रह्मज्ञानसे मोक्षकी प्राप्ति निश्चित है। संन्यासियों और नैष्ठिक ब्रह्मचारियोंको वेदान्तशास्त्र-श्रवणजनित ज्ञानसे जो मुक्ति प्राप्त होती है, वही सब लोगोंको केवल भगवान् वेंकटेश्वरके दर्शनसे अविलम्ब मिल जाती है। वेंकटगिरिके स्वामी भगवान् श्रीनिवासका दर्शन कर लेनेपर सब लोग महापुरुषकी श्रेणीमें चले आते हैं, उनमेंसे कोई एक-दूसरेसे कम या अधिक नहीं रह जाता। सब पातकोंका नाश करनेवाले परम पवित्र वेंकटाचलपर जाकर जो सर्वश्रेष्ठ देव भगवान्

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

श्रीनिवासका भक्तिपूर्वक दर्शन करता है, उसकी समानता इस भूतलपर चारों वेदोंका विद्वान् भी नहीं कर सकता। सम्पूर्ण वेद भगवान् श्रीनिवासका ही प्रतिपादन करते हैं। सब यज्ञ श्रीनिवासकी ही आराधनाके साधन हैं तथा सब लोग भगवान् श्रीनिवासके ही आश्रित हैं। अन्य सबका आश्रय छोड़कर भगवान् श्रीनिवासकी ही शरण लेनी चाहिये। वेंकटाचलनिवासी भगवान् श्रीहरिका दो घड़ी चिन्तन करनेवाला मनुष्य भी अपनी इक्कीस पीढ़ियोंका उद्धार करके विष्णुलोकमें सम्मानित होता है। इस प्रकार यह वेंकटेश्वरका माहात्म्य बताया गया। जो मनुष्य प्रतिदिन भक्तिपूर्वक इसको सुनता अथवा पढ़ता है, वह भगवान् वेंकटनाथकी सेवाका फल पाता है।

पापनाशन तीर्थकी महिमा—भद्रमति ब्राह्मणका चरित्र

वेंकटाचलपर चढ़नेके पूर्व उस पुण्यवर्द्धक पर्वतकी इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये—हे स्वर्णाचल! हे महापुण्यमय! सर्वदेवसेवित गिरिश्रेष्ठ! ब्रह्मा आदि देवता भी जिनकी श्रद्धापूर्वक सेवा करते हैं, उन्हीं आपके ऊपर मैं अपने दोनों पैरोंसे चलूँगा। मुझ पापचेता पुरुषके इस पापको आज आप कृपापूर्वक क्षमा करें। आपके शिखरपर निवास करनेवाले भगवान् लक्ष्मीपतिका आप मुझे दर्शन कराइये। इस प्रकार पर्वतश्रेष्ठ वेंकटाचलकी प्रार्थना करके मनुष्य उसपर धीरे-धीरे चले। ऊपर पहुँचकर सब पापोंका नाश करनेवाले परम पुण्यमय स्वामिपुष्करिणी तीर्थमें नियमपूर्वक स्नान करे। तत्पश्चात् पितरोंको पिण्डदान करे। ऐसा करनेसे स्वर्गवासी पितर मोक्षको प्राप्त होते हैं और नरकवासी पितर स्वर्गमें चले जाते हैं।

तदनन्तर उस पर्वतके ऊपर जो सब तीर्थोंमें श्रेष्ठ और पवित्र पापविनाशन नामक तीर्थ है, जिसके स्मरणमात्रसे मनुष्य फिर गर्भमें नहीं आता, उसके पास जाकर उसमें स्नान करना चाहिये। वह स्वामितीर्थसे उत्तर दिशामें है। वहाँ स्नान करनेसे मनुष्य वैकुण्ठधाममें जाते हैं।

पूर्वकालमें भद्रमति नामक एक श्रेष्ठ ब्राह्मण थे, जो वेद-वेदांगोंके पारंगत पण्डित थे, परंतु वे बड़े दरिद्र थे। उनके पास जीविकाका कोई साधन नहीं था। उन बुद्धिमान् ब्राह्मणने सम्पूर्ण शास्त्र, पुराण और धर्मशास्त्रोंका श्रवण किया था। उनके छः स्त्रियाँ थीं। कृता, सिन्धु, यशोवती, कामिनी, मालिनी और शोभा—ये उनके नाम थे। उनके गर्भसे ब्राह्मणने दो सौ पुत्र उत्पन्न किये थे। वे सभी पुत्र आदि भूखसे पीड़ित हो रहे थे। अपने प्यारे पुत्रों और प्रियतमा पत्नियोंको क्षुधासे व्याकुल देखकर दरिद्र भद्रमति विलाप करने लगा—'हाय! भाग्यहीन जन्मको धिक्कार है, धन और कीर्तिसे रहित जीवनको धिक्कार है। उस जन्मको भी धिक्कार है, जिसमें धनाभावके कारण अतिथियोंका सत्कार न हो पाता हो। ज्ञान और सदाचारसे शून्य जीवनको भी धिक्कार है और बहुत सन्तानोंवाले मनुष्यके धनहीन जन्मको भी धिक्कार है। ब्राह्मण, पुत्र, पौत्र, भाई, बन्धु और शिष्य आदि सभी मनुष्य धनहीन पुरुषको त्याग देते हैं। जो धनवान् है, वह निर्दयी हो या दयावान्, गुणहीन हो या गुणवान्, मूर्ख हो या पण्डित तथा सब धर्मोंसे युक्त हो या धर्महीन, यदि वह ऐश्वर्यके गुणसे युक्त है, तो पूजने ही योग्य होता है। अहो! दरिद्रता बड़ा भारी दुःख है, उसमें भी आशा तो अत्यन्त दुःखदायिनी होती है। आशाके वशीभूत हुए मनुष्य क्षण-क्षणमें दुःख भोगते हैं। जो आशाके दास हैं, वे समस्त संसारके दास हैं और जिन्होंने आशाको अपनी दासी बना लिया है उनके लिये

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

यह सम्पूर्ण जगत् दासके तुल्य है।* अहो! दरिद्रता महान् दुःख है, महान् दुःख है, महान् दुःख है। उसमें भी पुत्र और स्त्रियोंका अधिक होना तो और भी दुःखदायी है।'

ऐसा उद्‌गार प्रकट करके सब शास्त्रोंके अर्थज्ञानमें पारंगत विद्वान् भद्रमति मन-ही-मन ऐसे धर्मका विचार करने लगे, जो अत्यन्त ऐश्वर्य प्रदान करनेवाला हो। उस समय उनकी स्त्रियोंमें जो कामिनी नामवाली पतिव्रता पत्नी थी, उसने अपने पतिदेवसे कहा—'भगवन्! मेरे प्राणनाथ! मेरी एक बात सुनिये। ऋषि-मुनियोंसे सेवित सुवर्णमुखरी नदीके तटपर देवताओंके निवास करनेयोग्य परम पवित्र वेंकट पर्वत है। उसके शिखरपर सब पापोंका नाश करनेवाला पावन तीर्थ है। महामते! आप पत्नी और पुत्रोंके साथ वहाँ चलकर पापनाशन तीर्थमें स्नान कीजिये। मैंने बचपनमें अपने पिताके समीप नारदजीके मुखसे उस तीर्थका माहात्म्य इस प्रकार सुना था कि 'सब पापोंका नाश करनेवाले परम पवित्र वेंकटाचलपर पापनाशन नामक एक महान् तीर्थ है, जो समस्त दुःखोंका निवारण तथा सब प्रकारकी सम्पदाओंका दान करनेवाला है। उसमें संकल्पपूर्वक स्नान करके अधिक ऐश्वर्य प्रदान करनेवाले धर्मका मन-ही-मन चिन्तन करना चाहिये। सब दानोंमें उत्तम भूमिदान है। वह परलोकमें उत्तम फलकी प्राप्ति करानेवाला तथा समस्त मनोवांछित कामनाओंको देनेवाला है। भूमिदान देकर मनुष्य अपनी सभी अभीष्ट वस्तुओंको प्राप्त कर लेता है।' नारदजीकी यह बात सुनकर मेरे पिता बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने शेषाचलपर जाकर पापनाशन तीर्थमें स्नान करनेके पश्चात् एक श्रोत्रिय ब्राह्मणको भूमिदान दिया, जो समस्त ऐश्वर्योंको देनेवाला है। उससे मेरे पिता इस संसारमें सब प्रकारसे सौभाग्यशाली हुए और अन्तमें भगवान् विष्णुके परमधाममें गये। महाभाग! आप भी गिरिश्रेष्ठ वेंकटाचलपर चलकर सम्पूर्ण कामनाओंको देनेवाला भूमिदान कीजिये। अग्निहोत्री श्रोत्रिय ब्राह्मणको थोड़ी-सी भी भूमिका दान करके मनुष्य पुनरावृत्तिरहित ब्रह्मलोकको प्राप्त होता है। वेंकटाचल पर्वतपर किया हुआ भूमिदान सब पापोंका नाश करनेवाला है। जो ईख, गेहूँ, धान और सुपारी आदि वृक्षोंसे युक्त पृथ्वीका दान करता है, वह साक्षात् विष्णुके समान है। जीविकाहीन कुटुम्बी एवं दरिद्र ब्राह्मणको थोड़ी भी भूमि देकर मनुष्य भगवान् विष्णुके सायुज्यको प्राप्त होता है।'

अपनी पत्नीकी बात सुनकर और शेषाचलनिवासी भगवान् विष्णुका ध्यान करके भद्रमति ब्राह्मण बहुत सन्तुष्ट हुए। उन्होंने अपनी बुद्धिसे परम उत्तम क्रीडाचल पर्वतपर जानेका निश्चय किया। वे पूर्णतः धर्मपरायण थे, अपनी स्त्रीके साथ सुशाली नामवाली नगरीमें गये और सब ऐश्वर्योंसे सम्पन्न विप्रवर सुघोषसे उन्होंने पाँच हाथ भूमि माँगी। सुघोष भी बड़े धर्मात्मा थे। उन्होंने प्रसन्नचित्तवाले इन कुटुम्बी ब्राह्मणको देखकर इनका विधिपूर्वक पूजन किया और इस प्रकार कहा—'भद्रमते! मैं कृतार्थ हो गया, आज मेरा जन्म सफल हुआ।' यों कहकर सुघोषने—

पृथिवी वैष्णवी पुण्या पृथिवी विष्णुपालिता।
पृथिव्यास्तु प्रदानेन प्रीयतां मे जनार्दनः॥

'पृथिवी भगवान् विष्णुकी प्रिया है, पवित्र पृथिवी भगवान् विष्णुद्वारा सुरक्षित है, पृथिवीके दानसे भगवान् जनार्दन मुझपर प्रसन्न हों।'

—इस मन्त्रके उच्चारणपूर्वक विष्णुबुद्धिसे

---

* आशाया ये दासा दासास्ते सर्वलोकस्य। आशा दासी येषां तेषां दासायते लोकः॥
(स्क० पु०, वै० वे० २०। १८)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

भद्रमतिकी पूजा करके पाँच हाथ पृथिवी उन्हें दे दी। उस भूमिदानके पुण्यसे सुघोष भगवान् विष्णुके धामको प्राप्त हुआ, जहाँ जाकर कोई भी शोक नहीं करता। तदनन्तर भद्रमति अपने पुत्रों और स्त्रियोंके साथ देव-दानववन्दित वेंकटाचलपर गये। वहाँ स्वामिपुष्करिणीके परम पवित्र निर्मल जलमें उन्होंने स्त्रियों और पुत्रोंके साथ संकल्पपूर्वक स्नान किया। तत्पश्चात् उसके पश्चिम तटपर पृथ्वीको धारण करनेवाले भगवान् श्वेतवाराहको नमस्कार करके वे भगवान् श्रीनिवासके मन्दिरमें गये। वहाँ ब्रह्मा आदि देवताओंसे सेवित कृपानिधान श्रीनिवासका अपने पुत्र आदिके साथ दर्शन किया और भगवान्को प्रणाम करके पत्नी और पुत्रसहित पापनाशन तीर्थमें आये। फिर वहाँ विधिपूर्वक स्नान करके धर्म आदि शुभ कर्मोंका अनुष्ठान किया और किसी श्रोत्रिय विष्णुभक्त पुरुषको विष्णुबुद्धिसे मोक्षदायक भूमिदान (जो सुघोषसे ली थी वह) दिया। उस दानके प्रभावसे शंख, चक्र और गदा धारण करनेवाले वनमाला-विभूषित भगवान् विष्णु गरुड़पर चढ़े हुए पापनाशन तीर्थके तटपर प्रकट हुए। उस समय शान्त स्वभाववाले भद्रमतिने भगवान्की इस प्रकार स्तुति आरम्भ की—

नमो नमस्तेऽखिलकारणाय
नमो नमस्तेऽखिलपालकाय।
नमो नमस्तेऽमरनायकाय
नमो नमो दैत्यविमर्दनाय॥
नमो नमो भक्तजनप्रियाय
नमो नमः पापविदारणाय।
नमो नमो दुर्जननाशकाय
नमोऽस्तु तस्मै जगदीश्वराय॥
नमो नमः कारणवामनाय
नारायणायामितविक्रमाय।
श्रीशार्ङ्गचक्रासिगदाधराय
नमोऽस्तु तस्मै पुरुषोत्तमाय॥
नमः पयोराशिनिवासकाय
नमोऽस्तु लक्ष्मीपतयेऽव्ययाय।
नमोऽस्तु सूर्याद्यमितप्रभाय
नमो नमः पुण्यगतागताय।
नमो नमोऽर्केन्दुविलोचनाय
नमोऽस्तु ते यज्ञफलप्रदाय।
नमोऽस्तु यज्ञाङ्गविराजिताय
नमोऽस्तु ते सज्जनवल्लभाय॥
नमो नमः कारणकारणाय
नमोऽस्तु शब्दादिविवर्जिताय।
नमोऽस्तु तेऽभीष्टसुखप्रदाय
नमो नमो भक्तमनोरमाय॥
नमो नमस्तेऽद्भुतकारणाय
नमोऽस्तु ते मन्दरधारकाय।
नमोऽस्तु ते यज्ञवराहनाम्ने
नमो हिरण्याक्षविदारकाय॥
नमोऽस्तु ते वामनरूपभाजे
नमोऽस्तु ते क्षत्रकुलान्तकाय।
नमोऽस्तु ते रावणमर्दनाय
नमोऽस्तु ते नन्दसुताग्रजाय॥
नमस्ते कमलाकान्त नमस्ते सुखदायिने।
श्रितार्तिनाशिने तुभ्यं भूयो भूयो नमो नमः॥

'सबके कारणरूप आप भगवान्को नमस्कार है, नमस्कार है। सबको पालन करनेवाले आपको नमस्कार है, नमस्कार है। समस्त देवताओंके स्वामी आपको नमस्कार है, नमस्कार है। दैत्योंका संहार करनेवाले आपको नमस्कार है, नमस्कार है। जो भक्तजनोंके प्रियतम, पापोंके नाशक तथा दुष्टोंके संहारक हैं, उन जगदीश्वरको बार-बार नमस्कार है। जिन्होंने किसी विशेष हेतुसे वामनरूप धारण किया, जो नारस्वरूप जलमें निवास करनेके कारण नारायण कहलाते हैं, जिनके विक्रमकी कोई सीमा नहीं है तथा जो शंख, चक्र, खड्ग और गदा धारण करते हैं, उन भगवान् पुरुषोत्तमको बार-बार नमस्कार है। क्षीरसिन्धुमें निवास करनेवाले

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

भगवान्‌को नमस्कार है। अविनाशी लक्ष्मीपतिको नमस्कार है। जिनके अनन्त तेजकी सूर्य आदिसे भी तुलना नहीं हो सकती, उन भगवान्‌को नमस्कार है तथा जो पुण्य-कर्मपरायण पुरुषोंको स्वत: प्राप्त होते हैं, उन कृपालु श्रीहरिको बार-बार नमस्कार है। सूर्य और चन्द्रमा जिनके नेत्र हैं, जो सम्पूर्ण यज्ञोंका फल देनेवाले हैं, यज्ञांगोंसे जिनकी शोभा होती है तथा जो साधु पुरुषोंके परम प्रिय हैं, उन भगवान् श्रीनिवासको बार-बार नमस्कार है। जो कारणके भी कारण, शब्दादि विषयोंसे रहित, अभीष्ट सुख देनेवाले तथा भक्तोंके हृदयमें रमण करनेवाले हैं, उन भक्तवत्सल भगवान्‌को नमस्कार है। अद्‌भुत कारणरूप आपको नमस्कार है, नमस्कार है। मन्दराचल पर्वत धारण करनेवाले कच्छपरूपधारी आपको नमस्कार है। यज्ञवाराहरूपमें प्रकट होनेवाले आपको नमस्कार है। हिरण्याक्षको विदीर्ण करनेवाले आपको नमस्कार है। वामनरूपधारी आपको नमस्कार है। क्षत्रियकुलका अन्त करनेवाले परशुरामरूपमें आपको नमस्कार है। रावणका मर्दन करनेवाले श्रीरामरूपधारी आपको नमस्कार है तथा नन्दनन्दन श्रीकृष्णके बड़े भाई बलरामरूपमें आपको नमस्कार है। कमलाकान्त! आपको नमस्कार है। सबको सुख देनेवाले आपको नमस्कार है। भगवन्! आप शरणागतोंकी पीड़ाका नाश करनेवाले हैं। आपको बारंबार नमस्कार है।'

ब्राह्मण भद्रमतिके इस प्रकार स्तुति करनेपर भक्तवत्सल दयानिधान भगवान् श्रीनिवासने वात्सल्यपूर्वक कहा—'तात! तुम्हारा कल्याण हो। तुम्हारे इस महास्तोत्रसे मैं सन्तुष्ट हूँ। ब्रह्मन्! तुम इस संसारमें पुत्र-पौत्र आदिके साथ सब भोगोंसे सम्पन्न होकर सुख भोगनेके पश्चात् अन्तमें मोक्ष प्राप्त करोगे।' ऐसा कहकर भगवान् विष्णु वहीं अन्तर्धान हो गये। ब्राह्मणो! इस प्रकार मैंने पापनाशन तीर्थकी महिमा और उसके तटपर भूमिदानकी महत्ताका भी वर्णन किया।

आकाशगंगातीर्थकी महिमा—रामानुजपर भगवान्‌की कृपा तथा भगवद्भक्तोंका लक्षण

श्रीसूतजी कहते हैं—तपोधनो! रामानुज नामसे प्रसिद्ध एक जितेन्द्रिय विष्णुभक्त ब्राह्मण थे। धर्मात्मा रामानुजने वानप्रस्थ-आश्रममें स्थित होकर आकाशगंगातीर्थके समीप तपस्या की। गरमीमें भगवान् विष्णुका ध्यान करते हुए वे पंचाग्निके मध्यमें स्थित रहते थे, वर्षामें खुले आकाशके नीचे बैठकर मुखसे अष्टाक्षर (**ॐ नमो नारायणाय**) मन्त्रका जप और हृदयमें भगवान् जनार्दनका ध्यान करते थे तथा जाड़ेमें जलके भीतर निवास करते थे। वे समस्त प्राणियोंके हितैषी, जितेन्द्रिय तथा सब प्रकारके द्वन्द्वोंसे दूर रहनेवाले थे। उन्होंने कितने ही वर्षोंतक सूखे पत्ते खाकर निर्वाह किया, कुछ कालतक जलका ही आहार किया और कुछ वर्षोंतक वे केवल वायु पीकर रहे। तदनन्तर उनकी तपस्यासे सन्तुष्ट होकर भक्तवत्सल भगवान् विष्णुने उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन दिया। भगवान्‌के हाथोंमें शंख, चक्र और गदा आदि शोभा पा रहे थे। उनके नेत्र विकसित कमलके दलोंकी भाँति सुन्दर थे, श्रीअंगोंकी दिव्य प्रभा कोटि-कोटि सूर्यके समान थी। वे विनतानन्दन गरुड़पर आरूढ़ हो छत्र और चमरसे सुशोभित थे। हार, भुजबन्द, मुकुट और कड़े आदि आभूषण उनके अंगोंकी शोभा बढ़ाते थे। विष्वक्सेन और सुनन्द आदि पार्षद भगवान्‌को

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

सब ओरसे घेरकर खड़े थे। वीणा, वेणु और मृदंग आदि बाजे बजानेवाले नारद आदिके द्वारा उनकी महिमाका गान हो रहा था। भगवान्‌का ऐश्वर्य परम उत्तम रूपसे प्रकट हो रहा था। वे पीताम्बरसे शोभायमान थे। उनके वक्षःस्थलमें लक्ष्मीका निवास था। श्याम मेघके समान उनकी कान्ति थी। दोनों पार्श्वभागमें खड़े हुए सनक आदि महायोगी भगवान्‌की सेवामें लगे थे। अपनी मन्द-मन्द मुसकानसे तीनों लोकोंको मोहते और अंगोंकी दिव्य प्रभासे दसों दिशाओंको सम्मानित एवं प्रकाशित करते हुए भक्तसुलभ दयानिधान भगवान् वेंकटेश्वर महामुनि रामानुजके समीप उपस्थित हुए। उन्होंने अपनी चारों बाहोंसे मुनिको पकड़कर हृदयसे लगा लिया और प्रेमपूर्वक कहा—'महामुने! कोई वर माँगो, मैं तुम्हारी तपस्यासे बहुत प्रसन्न हूँ। तुमने जो नमस्कार किया है, उससे मेरा प्रेम और बढ़ गया है। मैं तुम्हें वर देनेके लिये आया हूँ।'

रामानुज बोले—नारायण! रमानाथ! श्रीनिवास! जगन्मय! जनार्दन! जगद्धाम! गोविन्द! नरकान्तक! वेंकटाचलशिरोमणे! मैं आपके दर्शनसे ही कृतार्थ हो गया। धर्मनिष्ठ पुरुष आपको नमस्कार करते हैं; क्योंकि आप धर्मके रक्षक हैं। जिन्हें महादेवजी और ब्रह्माजी भी नहीं जानते, तीनों वेदोंको भी जिनका ज्ञान नहीं हो पाता, उन्हीं आप परमात्माको आज मैं जान पाया हूँ। इससे अधिक और कौन-सा वरदान हो सकता है? जिन्हें योगी नहीं देख पाते, केवल कर्मकाण्डीलोग जिनकी झाँकी नहीं कर पाते, उन्हीं आप परमात्माका आज मुझे प्रत्यक्ष दर्शन हो रहा है। इससे बढ़कर और क्या हो सकता है? सम्पूर्ण जगत्‌के स्वामी वेंकटेश्वर! मैं इतनेसे ही कृतार्थ हूँ। जिनके नामका स्मरण करनेमात्रसे बड़े-बड़े पातकी मनुष्य भी मुक्तिको प्राप्त हो जाते हैं, उन्हीं भगवान् जनार्दनका आज मैं प्रत्यक्ष दर्शन करता हूँ। प्रभो! आपके युगल चरणारविन्दोंमें मेरी अविचल भक्ति बनी रहे।

श्रीभगवान्‌ने कहा—महामते रामानुज! मुझमें तुम्हारी दृढ़ भक्ति हो। ब्रह्मन्! मेरी कही हुई दूसरी बात भी सुनो। जब सूर्य मेषराशिपर जाते हैं, उस समय चित्रा नक्षत्रसे युक्त पूर्णिमा होनेपर जो लोग आकाशगंगामें स्नान करते हैं, वे पुनरावृत्ति-रहित परमधामको प्राप्त होते हैं। रामानुज! तुम आकाशगंगाके समीप ही निवास करो। प्रारब्धकर्मके अनुसार प्राप्त हुए इस शरीरका अन्त होनेपर तुम्हें मेरे स्वरूपकी प्राप्ति होगी। इस विषयमें बहुत कहनेकी क्या आवश्यकता है। आकाशगंगाके शुभ जलमें जो कोई भी स्नान करते हैं, वे सभी उत्तम भगवद्भक्त हो जाते हैं।

रामानुजने पूछा—भगवन्! भगवद्भक्तोंके लक्षण क्या हैं? किस कर्मसे उनकी पहचान होती है? मैं इस विषयको सुनना चाहता हूँ।

भगवान् वेंकटेश बोले—मुनिश्रेष्ठ! तुम भगवद्भक्तोंके लक्षण सुनो। जो समस्त प्राणियोंके हितैषी हैं, जिनमें दूसरोंके दोष देखनेका स्वभाव नहीं है, जो किसीसे भी डाह नहीं रखते और ज्ञानी, निःस्पृह तथा शान्तचित्त हैं, वे श्रेष्ठ भगवद्भक्त

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

हैं। जो मन, वाणी और क्रियाद्वारा दूसरेको पीड़ा नहीं देते और जिनमें संग्रह करनेका स्वभाव नहीं है तथा उत्तम कथा श्रवण करनेमें जिनकी सात्त्विक बुद्धि संलग्न रहती है तथा जो मेरे चरणारविन्दोंके भक्त हैं, जो उत्तम मानव माता-पिताकी सेवा करते हैं, देवपूजामें तत्पर रहते हैं, जो भगवत्पूजनके कार्यमें सहायक होते हैं और पूजा होती देखकर मनमें आनन्द मानते हैं, वे भगवद्भक्तोंमें सर्वश्रेष्ठ हैं। जो ब्रह्मचारियों और संन्यासियोंकी सेवा करते हैं तथा दूसरोंकी निन्दा कभी नहीं करते हैं, जो श्रेष्ठ मनुष्य सबके लिये हितकारक वचन बोलते हैं और जो लोकमें सद्‌गुणोंके ग्राहक हैं, वे उत्तम भगवद्भक्त हैं। जो सब प्राणियोंको अपने समान देखते हैं तथा शत्रु और मित्रमें समभाव रखते हैं, जो धर्मशास्त्रके वक्ता तथा सत्यवादी हैं और जो ऐसे पुरुषोंकी सेवामें रहते हैं, वे सभी उत्तम भगवद्भक्त हैं। दूसरोंका अभ्युदय देखकर जो प्रसन्न होते हैं तथा भगवन्नामोंका कीर्तन करते रहते हैं, जो भगवान्‌के नामोंका अभिनन्दन करते, उन्हें सुनकर अत्यन्त हर्षमें भर जाते और सम्पूर्ण अंगोंमें रोमांचित हो उठते हैं, जो अपने आश्रमोचित आचारके पालनमें तत्पर, अतिथियोंके पूजक तथा वेदार्थके वक्ता हैं, वे उत्तम वैष्णव हैं। जो अपने पढ़े हुए शास्त्रोंको दूसरोंके लिये बतलाते हैं और सर्वत्र गुणोंको ग्रहण करनेवाले हैं, जो एकादशीका व्रत करते, मेरे लिये सत्कर्मोंका अनुष्ठान करते रहते, मुझमें मन लगाते, मेरा भजन करते, मेरे भजनके लिये लालायित रहते तथा सदा मेरे नामोंके स्मरणमें तत्पर होते हैं, वे उत्तम भगवद्भक्त हैं। सद्‌गुणोंकी ओर जिनकी स्वाभाविक प्रवृत्ति है, वे सभी श्रेष्ठ भक्त हैं।

दान-पात्र-विचार, चक्रतीर्थकी महिमा, पद्मनाभकी तपस्या, भगवान्‌का वरदान तथा राक्षसके आक्रमणसे चक्रद्वारा पद्मनाभकी रक्षा

ऋषियोंने पूछा—भगवन्! दान किसको देना चाहिये? दानका समय कौन-सा है?

सूतजी बोले—द्विजवरो! नपुंसक, पुत्रहीन, पाखण्डी, वेदवेत्ताओं तथा ब्राह्मणोंसे द्वेष रखनेवाले और अपने वर्णाश्रमोचित कर्मका त्याग करनेवाले पुरुषको दिया हुआ दान निष्फल होता है। जो परायी स्त्रियोंमें आसक्त है, दूसरोंके धनका जिसके मनमें बड़ा लोभ है तथा जो गीत गानेवाला है, ऐसे ब्राह्मणको दिया हुआ दान निष्फल होता है। जिसके मनमें असूया (दोषदर्शन)-का भाव भरा है, जो कृतघ्न और मायावी है, जिसमें ज्ञानका अभाव है, जो सदा भीख माँगनेवाला है, हिंसक है, जो नाम-विक्रय, वेद-विक्रय, स्मृति-विक्रय तथा धर्म-विक्रय करनेवाला है और दूसरोंको सताना ही जिसका स्वभाव बन गया है; ऐसे ब्राह्मणको दिया हुआ दान भी निष्फल होता है। जो कोई भी पापमें संलग्न रहनेवाले हैं, उनसे न तो कुछ लेना चाहिये और न उन्हें कुछ देना ही चाहिये। उत्तम कर्ममें तत्पर श्रोत्रिय, अग्निहोत्री, जीविकाहीन, दरिद्र तथा कुटुम्बी ब्राह्मणको दान देना चाहिये। जो देवताओंकी पूजामें लगा रहनेवाला और पुराणोंकी कथा बाँचनेवाला है, ऐसे ब्राह्मणको, उनमें भी प्रायः जो दरिद्र हो उसे, दान देना उचित है। पाखण्डी, पतित, संस्कारभ्रष्ट, वेद बेचनेवाले, कृतघ्न तथा पापपरायण ब्राह्मणको कभी प्रणाम न करे। जो स्नान कर

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

रहा हो, जिसके हाथोंमें समिधा और फूल हो, जिसने जलपात्र ले रखा हो तथा जो भोजन करता हो, ऐसे व्यक्तिको प्रणाम न करे। जो कलहप्रिय, अत्यन्त क्रोधी, दमन करनेवाला, जनसमुदायके मध्यमें स्थित, भिक्षान्नधारी तथा सोया हुआ हो, उसको भी प्रणाम न करे। रजस्वला, व्यभिचारिणी, सूतिका, गर्भपात करनेवाली, व्रत नाश करनेवाली तथा अत्यन्त क्रोधमें भरी हुई स्त्रीको कभी प्रणाम न करे। जो श्राद्धके नियममें नियुक्त हो, देवताओंकी पूजा कर रहा हो अथवा यज्ञ एवं तर्पण कर रहा हो—ऐसे पुरुषको भी प्रणाम न करे। यदि श्राद्धके लिये कोई सुपात्र ब्राह्मण न मिले तो केवल सूत कातकर (जनेऊ आदि बनाकर) जीविका चलानेवाले सदाचारी एवं पुत्रवान् ब्राह्मणको श्राद्धके लिये निमन्त्रित करे। यदि वह भी न मिले, तो पुत्रको या छोटे भाईको अथवा अपनेको ही श्राद्धमें नियुक्त करे। पुत्रहीन ब्राह्मणको किसी प्रकार भी श्राद्धके लिये नियुक्त न करे।

पूर्वकालमें श्रीवत्स गोत्रमें उत्पन्न पद्मनाभ नामक एक जितेन्द्रिय ब्राह्मण था। वह दयालु, उपवासशील, सत्यवादी, सब प्राणियोंको अपने ही समान देखनेवाला तथा विषयकामनासे रहित था। सब भूतोंका हितैषी, मन और इन्द्रियोंको वशमें रखनेवाला तथा सब प्रकारसे द्वन्द्वोंसे रहित था। कितने ही वर्षतक वह सूखे पत्ते चबाकर रहा, कुछ कालतक केवल जल पीता रहा, फिर कई वर्षतक उसने केवल वायुका आहार किया। इस प्रकार महामुनि पद्मनाभने बारह वर्षोंतक कठोर तपस्या की।

तदनन्तर भगवान् लक्ष्मीपतिने पद्मनाभकी तपस्यासे सन्तुष्ट हो उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन दिया। श्रीहरिने अपने हाथोंमें शंख, चक्र और गदा आदिको धारण किया था। उनके नेत्र खिले हुए कमलदलकी भाँति शोभा पा रहे थे और श्रीअंगोंकी कान्ति कोटि-कोटि सूर्यको भी लज्जित कर रही थी। पद्मनाभने आँख खोलकर शंख-चक्रधारी, शान्तस्वरूप, करुणासागर वेंकटनाथ भगवान् श्रीनिवासका दर्शन किया। उन्हें देखकर मुनिने इस प्रकार स्तुति प्रारम्भ की—

'शार्ङ्गधनुष धारण करनेवाले देवाधिदेव भगवान् वेंकटेश्वरको नमस्कार है। नारायणगिरिपर निवास करनेवाले आप श्रीनिवासजीको नमस्कार है। पापोंका नाश करनेवाले सर्वव्यापी भगवान् विष्णुको नमस्कार है। शेषाचलनिवासी आप भगवान् श्रीनिवासको नमस्कार है। जो तीनों लोकोंके स्वामी, विश्वरूप, सबके साक्षी तथा शिव और ब्रह्मा आदिके लिये भी वन्दनीय हैं, जिनके नेत्र कमलके समान हैं, जो क्षीरसागरमें शयन करते हैं तथा जो दुष्ट राक्षसोंका संहार करते हैं, उन भगवान् श्रीनिवासको नमस्कार है। जो भक्तोंके प्रियतम, दिव्य स्वरूप, देवताओंके स्वामी तथा शरणागतोंकी पीड़ाका नाश करनेवाले हैं, जो योगियोंके पालक, वेदवेद्य तथा भक्तोंके पापोंका संहार करनेवाले हैं, उन श्रीनिवास भगवान् विष्णुको नमस्कार है।'

चक्रतीर्थनिवासी पद्मनाभ मुनिके द्वारा इस प्रकार स्तुति की जानेपर परम ऐश्वर्यशाली, विश्वरूप, दयानिधान वेंकटनाथ भगवान् श्रीनिवासजी बहुत सन्तुष्ट हुए और बोले—'महाभाग! तुम मेरे चरणारविन्दोंके पूजक हो। द्विजश्रेष्ठ! इस चक्रतीर्थतटपर मेरी पूजा करते हुए तुम एक कल्प निवास करो।' ऐसा कहकर भगवान् वहीं अन्तर्धान हो गये। तबसे परम बुद्धिमान् पद्मनाभ मुनि चक्रतीर्थके किनारे निवास करने लगे। कुछ कालके पश्चात् वहाँ एक भयंकर राक्षस आया। वह क्रूर क्षुधासे पीड़ित होकर नारायणपरायण पद्मनाभ मुनिको अपना ग्रास बनाना चाहता था। उसने बड़े वेगसे ब्राह्मणको पकड़ लिया। तब उन्होंने शरणागतोंके रक्षक दयासागर चक्रपाणि श्रीनारायणको पुकारा और बार-बार ऐसा कहा—'प्रभो! रक्षा कीजिये,

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

रक्षा कीजिये, हे वेंकटेश! हे दयासिन्धो! हे शरणागतपालक! हे पुरुषसिंह! मैं राक्षसके वशमें आ गया हूँ। मेरी रक्षा कीजिये। हे लक्ष्मीकान्त! हे दु:खहारी हरि! हे विष्णुदेव! हे वैकुण्ठनाथ! हे गरुड़ध्वज! आपने ग्राहके चंगुलमें फँसे हुए गजराजकी जिस प्रकार रक्षा की थी उसी प्रकार राक्षसके आक्रमणसे दबे हुए मुझ भक्तकी रक्षा कीजिये। हे दामोदर! हे जगन्नाथ! हे हिरण्यकशिपु दैत्यका मर्दन करनेवाले नृसिंह! प्रह्लादजीकी भाँति मैं भी राक्षसके द्वारा अत्यन्त पीड़ित हूँ; अत: उन्हींके समान आप मेरी भी रक्षा कीजिये।'

पद्मनाभके इस प्रकार स्तुति करनेपर अपने भक्तके ऊपर भय आया हुआ जानकर दयानिधान चक्रपाणिने भक्तकी रक्षाके लिये अपने चक्रको भेजा। भगवान‌्का वह चक्र बड़े वेगसे चक्रतीर्थके तटपर आया। वह अनन्त सूर्यके समान तेजस्वी तथा अनन्त अग्निके समान ज्वालामालाओंसे प्रज्वलित था। उससे बड़े जोरकी गड़गड़ाहट हो रही थी। बड़े-बड़े असुरोंका संहार करनेवाले उस सुदर्शन चक्रको देखकर राक्षस भागा, परंतु सुदर्शनने सहसा पास पहुँचकर उसका मस्तक

काट डाला। राक्षसको पृथ्वीपर पड़ा हुआ देख विप्रवर पद्मनाभ मुनि अत्यन्त प्रसन्न हो सुदर्शन चक्रकी स्तुति करने लगे।

पद्मनाभ बोले—सम्पूर्ण विश्वके संरक्षणकी दीक्षा लेनेवाले विष्णुचक्र! आपको नमस्कार है। आप भगवान् नारायणके करकमलको विभूषित करनेवाले हैं। आप युद्धमें असुरोंका संहार करनेमें कुशल हैं। अतिशय गर्जना करनेवाले सुदर्शन! आप भक्तोंकी पीड़ाका विनाश करते हैं। आपको नमस्कार है। मैं भयसे उद्विग्न हूँ। आप सब प्रकारके पाप-तापसे मेरी रक्षा कीजिये। स्वामिन्! सुदर्शन! प्रभो! संकटसे छुटकारा चाहनेवाले सम्पूर्ण जगत‌्का हित करनेके लिये आप सदा इस चक्रतीर्थमें निवास करें।

पद्मनाभ ब्राह्मणके ऐसा कहनेपर भगवान् विष्णुके चक्रने अपने स्नेहसे उन्हें तृप्त-से करते हुए कहा—'पद्मनाभ! यह चक्रतीर्थ अत्यन्त उत्तम और परम पवित्र है। मैं सम्पूर्ण लोकोंका हित करनेके लिये सदा इस तीर्थमें निवास करूँगा। आपके ऊपर दुरात्मा राक्षसके द्वारा आये हुए संकटका विचार करके भगवान् विष्णुसे प्रेरित होकर मैं शीघ्र यहाँ आ पहुँचा। आपको पीड़ा देनेवाले उस अधम राक्षसको मैंने मार डाला और आपकी उसके भयसे रक्षा की; क्योंकि आप भगवान‌्के भक्त हैं। विप्रवर! सब पापोंका हरण करनेवाले इस परम पवित्र चक्रतीर्थमें सब लोगोंकी रक्षाके लिये मैं सदा निवास करूँगा। मेरे निवास करनेसे यह तीर्थ चक्रतीर्थके नामसे प्रसिद्ध होगा और जो मनुष्य इस मोक्षदायक चक्रतीर्थमें स्नान करेंगे, उन सबके पुत्र, पौत्र आदि वंशज, निष्पाप होकर भगवान् विष्णुके परमधामको प्राप्त होंगे।' यों कहकर भगवान् विष्णुके चक्रने पद्मनाभ मुनि तथा अन्य ब्राह्मणोंके देखते-देखते सहसा उस चक्र-सरोवरमें प्रवेश किया। शौनकादि महर्षियो!

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

इस प्रकार मैंने तुमलोगोंसे चक्रतीर्थके माहात्म्यका वर्णन किया। जो मनुष्य एकाग्रचित्त होकर इस अध्यायको पढ़ता या सुनता है उसे चक्रतीर्थमें स्नान करनेका उत्तम फल प्राप्त होता है।

सुन्दर गन्धर्वका वसिष्ठजीके शापसे राक्षसभावको प्राप्त होकर पुनः उससे मुक्त होना

ऋषियोंने पूछा—सूतजी! वह राक्षस कौन था जिसने भगवान् विष्णुके भक्त महात्मा ब्राह्मणको कष्ट पहुँचाया?

सूतजी बोले—ब्राह्मणो! पूर्वकालकी बात है। श्रीरंगक्षेत्रमें जो वैकुण्ठके सदृश भगवान् विष्णुका विशाल मन्दिर है, उसमें वसिष्ठ और अत्रि आदि महातेजस्वी मोक्षके लिये वैष्णव भक्तोंको अभय प्रदान करनेवाले देवेश्वर श्रीविष्णुभगवान्‌की उपासना करते थे। एक दिन वीरबाहुका बलवान् पुत्र सुन्दर नामवाला गन्धर्व सैकड़ों स्त्रियोंके साथ उस क्षेत्रमें आया और एक जलाशयमें नग्न होकर नग्न हुई युवतियोंके साथ आनन्दपूर्वक जल-विहार करने लगा। उसी समय मध्याह्न-सन्ध्या करनेके लिये मुनिवर वसिष्ठ अन्य महर्षियोंके साथ श्रीरंग-मन्दिरसे बाहर निकले और उस जलाशयपर गये। उन ऋषियोंको देखकर वे सभी रमणियाँ भयसे कातर हो अपने-अपने कपड़े ओढ़कर बैठ गयीं; परंतु साहसी सुन्दर ज्यों-का-त्यों खड़ा रहा। यह देख वसिष्ठ मुनिने कुपित होकर उस निर्लज्जको शाप दिया—'सुन्दर गन्धर्व! तूने हमलोगोंको देखकर भी लज्जावश वस्त्र धारण नहीं किया, इसलिये तू शीघ्र राक्षस हो जा।'

महर्षि वसिष्ठके ऐसा कहनेपर उसकी स्त्रियाँ हाथ जोड़कर उनके चरणोंमें गिर पड़ीं और भक्तिभावसे विनीतचित्त होकर बोलीं—'भगवन्! आप सब धर्मोंके ज्ञाता हैं, साक्षात् ब्रह्माजीके पुत्र हैं। दयासिन्धो! पति ही नारियोंका उत्तम भूषण कहलाता है। पतिहीन नारी सौ पुत्रोंवाली होकर भी संसारमें विधवा ही कहलाती है। ऐसी नारियोंका जन्म व्यर्थ समझा जाता है। अतः मुने! हमारे पतिके ऊपर आप प्रसन्न हों। तत्त्वदर्शी मुनियोंको एक अपराध क्षमा कर देना चाहिये। दयासिन्धो! सुन्दर आपका शिष्य है, इसे क्षमा करें।'

सुन्दरकी स्त्रियोंके इस प्रकार प्रार्थना करनेपर वसिष्ठजीने कहा—'सुन्दरियो! मेरा वचन कभी व्यर्थ नहीं होगा, इससे छूटनेका उपाय बतलाता हूँ, उसे श्रद्धापूर्वक सुनो। यह राक्षसके समान आकारवाला सुन्दर आजसे सोलह वर्षोंके बाद इच्छानुसार घूमता-घामता सर्वपापहारी वेंकटाचलपर पहुँच जायगा और वहाँ चक्रतीर्थपर जायगा। देवांगनाओ! चक्रतीर्थपर महायोगी मुनिवर पद्मनाभजी रहते हैं। उन्हें खा जानेके लिये जब यह आक्रमण करेगा, तब ब्राह्मणकी रक्षाके लिये भगवान् विष्णुका भेजा हुआ उत्तम चक्र इसका मस्तक काट डालेगा। तदनन्तर शापसे मुक्त होकर यह तुम्हारा पति सुन्दर अपने स्वरूपको प्राप्त होकर पुनः स्वर्गलोकमें चला जायगा।'

श्रीरंगनाथमें भक्ति करनेवाले वसिष्ठजी ऐसा कहकर शीघ्र ही अपने आश्रमको चले गये। तदनन्तर राक्षसरूपमें परिणत हुआ भयानक आकारवाला सुन्दर इधर-उधर घूमता हुआ गिरिश्रेष्ठ वेंकटाचलपर गया और चक्रतीर्थपर भी जा पहुँचा। इस भ्रमणमें ही उसके सोलह वर्ष पूरे हो गये थे। तदनन्तर चक्रतीर्थनिवासी पद्मनाभको खा जानेके लिये उसने बड़े वेगसे आक्रमण किया। मुनिने भगवान् विष्णुकी स्तुति की और भगवान्‌ने राक्षसद्वारा

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

पीड़ित पद्मनाभकी रक्षाके लिये चक्रको भेजा। इस प्रकार चक्रने आकर उस राक्षसका मस्तक काट डाला। तब वह राक्षस शरीर छोड़कर दिव्य देह धारण करके विमानपर जा बैठा। उस समय उसके ऊपर फूलोंकी वर्षा हो रही थी। उसने हाथ जोड़कर सुदर्शनको प्रणाम किया। फिर उन द्विजश्रेष्ठ पद्मनाभको भी प्रणाम करके उनकी आज्ञा लेकर सुन्दर गन्धर्व स्वर्गको चला गया।

ब्राह्मणो! इस प्रकार मैंने उस राक्षसकी उत्पत्तिका वृत्तान्त और चक्रतीर्थका पापनाशक माहात्म्य आपलोगोंसे बतलाया। इसे सुनकर मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है।

घोणतीर्थका माहात्म्य—गन्धर्वपत्नीका उद्धार

ब्राह्मणो! अब घोणतीर्थका माहात्म्य सुनो! महापापोंमें तत्पर, चाण्डालकुलमें सबसे नीच, क्रूर, कुलका नाश करनेवाला, कष्टकारक, दानशून्य, सत्कर्मरहित, पशुघाती, परद्रोही, चुगलखोर, असत्यवादी, पाखण्डी, मित्रद्रोही, कृतघ्न, भ्रूणहत्या करनेवाला, परस्त्रीगामी, स्वामीसे द्रोह करनेवाला, ठग, लोभी, पितृघाती, देवताओंसे विमुख, आत्मप्रशंसा करनेवाला, शठ, अयोग्य पात्रके लिये व्यय करनेवाला, धर्ममें बाधा डालनेवाला, अनुकूलतामें अन्तर डालनेवाला, फल-फूल और पल्लवोंसे युक्त वृक्षको काटनेवाला, विश्वासघाती, वीर-हत्यापरायण, अग्निहोत्रका त्याग करनेवाला, विषका प्रयोग करनेवाला, गुरुद्वेषी, पति-पत्नीमें वैमनस्य उत्पन्न करनेवाला, गाँवका अगुआ, देवमन्दिरका अध्यक्ष, वेतन लेकर पढ़ानेवाला, कठोर कर्म करनेवाला, पापोंमें स्वभावतः रत रहनेवाला, गुप्त पाप करनेवाला, अनजानमें या जान-बूझकर दुष्कर्म करनेवाला—इन सभी प्रकारके पापियोंको परम मनोहर घोणतीर्थ अपनेमें स्नान और जलपान आदि करनेपर पवित्र कर देता है।

इस विषयमें मैं एक प्राचीन इतिहास सुनाऊँगा, जो सब पापोंका नाश करनेवाला है। पूर्वकालमें महातेजस्वी गार्ग्य मुनिने महात्मा देवलको नमस्कार करके कहा—'महाभाग! आप घोणतीर्थके सर्वपापहारी शुभ माहात्म्यका वर्णन कीजिये।'

देवलने कहा—मुने! तुम्बुरु नामक गन्धर्व अपनी पतिव्रता पत्नीको शाप देकर इस तीर्थमें स्नान करके दयानिधान वेंकटेश्वरकी पूजा करनेसे पुनरावृत्तिरहित विष्णुधामको प्राप्त हो गया था। वह वृत्तान्त इस प्रकार है। एक दिन तुम्बुरु नामक गन्धर्वने अपनी प्यारी पत्नीसे इस प्रकार कहा—'देवि! सब पातकोंका नाश करनेवाले माघमासमें सूर्योदयके समय इस तटपर भगवान् विष्णुकी पूजा करनी है, इसलिये गोबरसे इस भूमिको लीप दो और इस माघमें प्रतिदिन माधवके लिये दीप-बत्ती बनाओ। भगवान्के आगे भक्तिपूर्वक धूप समर्पित करो, पवित्र होकर भगवान्के लिये रसोई तैयार करो और मेरे साथ-साथ रहकर परिक्रमा तथा नमस्कार आदिके द्वारा भक्तिपूर्वक भगवान्की पूजा करो। नित्यप्रति आलस्य छोड़कर भगवान् विष्णुकी पुराण-कथा सुनो। नित्य सबेरे स्नान करके यत्नपूर्वक श्रीहरिका चरणोदक पान करो। कृष्ण, विष्णु, मुकुन्द, नारायण, जनार्दन, अच्युत, अनन्त और विश्वात्मन् इत्यादि भगवन्नामोंका सदा कीर्तन किया करो और क्रोध, मात्सर्य तथा लोभ आदिका परित्याग करके व्रत-नियमका पालन करो। इससे तुम्हें भवबन्धनसे छुटकारा मिलेगा और सनातन विष्णुधामकी प्राप्ति होगी।'

स्वामीका ऐसा कथन सुनकर गन्धर्वकी उस

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

प्यारी पत्नीने क्रोधपूर्वक उत्तर दिया—'आर्यपुत्र! माघके महीनेमें बहुत सर्दी पड़ती है, उस समय प्रातःकाल, जब कि सूर्यका तेज बहुत मन्द रहता है, सूर्योदय-कालमें कोई कैसे स्नान करेगा? माघमें उस समय शीतका अधिक कष्ट रहता है। इसलिये आपके बताये हुए ये सब कार्य मुझसे बार-बार न हो सकेंगे। अतः प्रातःकालमें मैं आपके साथ स्नान नहीं करूँगी। क्योंकि अधिक सर्दी पड़नेसे यदि मेरी मृत्यु हो गयी, तो उस समय आप मेरी रक्षा नहीं करेंगे।'

पत्नीकी यह बात सुनकर तुम्बुरुने सोचा कि 'धर्मविरुद्ध चलनेवाले पुत्रको, अप्रिय वचन बोलनेवाली पत्नीको तथा ब्राह्मण एवं ईश्वरको न माननेवाले राजाको तत्काल शापके द्वारा दण्ड देना चाहिये।' इस नीतिके वचनका विचार करके गन्धर्वने अपनी सती पत्नीको इस प्रकार शाप दिया—'ओ मूढ़े! सौ पातकोंका नाश करनेवाले परम पुण्यमय वेंकटाचलपर घोणतीर्थके समीप जो पीपलका वृक्ष है, उसके खोखलेमें तू मेढकी हो जा।' पतिदेवकी यह बात सुनकर वह गन्धर्ववल्लभा उनके चरणोंमें गिर पड़ी और प्रार्थना करने लगी। तब तुम्बुरुने उसे शापसे मुक्त होनेकी यह अवधि बतलायी कि अपनी इन्द्रियोंपर विजय पानेवाले परम तपस्वी महाभाग अगस्त्य मुनि जब महातिथि पूर्णिमाको परम उत्तम घोणतीर्थमें जाकर स्नान करेंगे और उसी पीपल वृक्षके समीप बैठकर शिष्योंको घोणतीर्थका माहात्म्य बतलावेंगे, उस समय पीपलके खोखलेमें ही एकाग्रचित्त होकर जब तुम मोक्षदायक घोणतीर्थका माहात्म्य सुनोगी, तब समस्त पापोंका नाश करके मेरे साथ आ मिलोगी।

गन्धर्वके ऐसा कहनेपर उसकी धर्मपत्नी चुप हो गयी। स्वामीके शापसे उसने मेढकके शरीरमें प्रवेश किया और धीरे-धीरे शेषाचलके शिखरपर घोणतीर्थके दक्षिण उस पीपल-वृक्षके खोखलेमें जाकर रहने लगी। तदनन्तर किसी समय अगस्त्यजी मनोहर वेंकटाचलपर गये। वहाँ उन्होंने नियमपूर्वक स्वामितीर्थमें स्नान करके वाराहस्वामीको नमस्कार किया। तत्पश्चात् उस तीर्थके दक्षिण वेंकटेशजीके मन्दिरमें जाकर वेदोंके द्वारा जाननेयोग्य विशाल नेत्रवाले सनातन देवदेव दयानिधान श्रीनिवासजीको मस्तक झुकाया। उसके बाद वे घोणतीर्थमें गये और वहाँ शिष्योंके साथ उस श्रेष्ठ तीर्थमें स्नान करके उसी पीपल वृक्षकी छायामें जा बैठे। उस समय उन्होंने शिष्योंसे भक्तिपूर्वक घोणतीर्थका पवित्र माहात्म्य वर्णन किया, जो ब्रह्महत्याका नाश करनेवाला तथा सम्पूर्ण मंगलों और समस्त सम्पदाओंको देनेवाला है। उस माहात्म्यको सुनकर वह मेढकी पूर्ववत् गन्धर्वपत्नीके मनोहर स्वरूपको प्राप्त होकर योगी अगस्त्यके चरणोंमें गिर पड़ी और बोली—'योगियोंमें श्रेष्ठ दयानिधान अगस्त्यजी! मेरी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये। ब्रह्मन्! मैं पतिके वचनोंका विरोध करनेवाली स्त्री हूँ, दया करके मेरी रक्षा कीजिये।'

अगस्त्यजी बोले—देवि! तुम्हारे पतिकी बुद्धि बड़ी तीक्ष्ण है। उन्होंने जो रोषमें आकर तुम्हें शाप दिया है, वह पतिके वचनोंका विरोध करनेवाली तुम-जैसी स्त्रीके लिये उचित ही है। जो स्त्री पतिके वचनोंकी अवहेलना करके अपनी इच्छाके अनुसार बर्ताव करती है, वह जबतक चन्द्रमा और तारे रहते हैं तबतक घोर नरकमें निवास करती है। स्त्रियोंके लिये स्वतन्त्रता उचित नहीं है, उन्हें पतिकी आज्ञाका उल्लंघन नहीं करना चाहिये। स्त्रियाँ पतिकी सेवा तथा पातिव्रत्यरूपी पुण्यसे ही भगवान् विष्णुके परमधाममें जाती हैं। स्त्रियोंके लिये पति ही माता है, पति ही विष्णु है, पति ही ब्रह्मा है, पति ही शिव है, पति ही गुरु है तथा पति ही तीर्थ है, ऐसा विद्वान्

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

पुरुष मानते हैं।* पतिकी बात टालकर जो स्त्री दूसरे-दूसरे पुण्योंमें सदा लगी रहती है, वह भी शुद्ध नहीं होती। वही स्त्री जब पतिकी प्रेरणाके अनुसार चलती, पतिकी बुद्धिके अधीन रहती और पतिके चरणारविन्दोंके पवित्र जलसे अपना अभिषेक करती है, तब भगवान्‌को प्रिय होती है। इसलिये तुम्हारा किया हुआ दोष ही तुम्हें इस शापके रूपमें प्राप्त हुआ था। उसे यहाँ भोगकर घोणतीर्थका माहात्म्य सुनते-सुनते तुम्हारी उस शापसे मुक्ति हो गयी और पहलेके समान तुम्हें सुन्दर अंगोंवाला नारीरूप पुनः प्राप्त हो गया। इसीलिये विद्वान् पुरुष घोणतीर्थको परम पवित्र मानते हैं। जो मनुष्य सब पापोंका नाश करनेवाले इस इतिहासका श्रवण करता है, वह वाजपेय-यज्ञका फल पाता है और उसे सनातन विष्णुलोककी प्राप्ति होती है।

वेंकटाचलके मुख्य तीर्थोंका वर्णन, पुराण-श्रवणकी महिमा और नियम तथा अर्जुनकी तीर्थयात्रा

ऋषियोंने पूछा—पौराणिकोंमें श्रेष्ठ सूतजी! इस वेंकटाचलपर उत्तम धर्मविषयक अनुराग प्रदान करनेवाले मुख्य-मुख्य तीर्थ कितने हैं? कौन ज्ञानदायक हैं? कौन भक्ति और वैराग्य देनेवाले हैं? तथा कौन मोक्ष प्रदान करनेवाले हैं? उन सबका वर्णन कीजिये।

श्रीसूतजी बोले—उत्तम व्रतका पालन करनेवाले शौनक! इस श्रेष्ठ पर्वतपर मुख्य-मुख्य एक सौ आठ तीर्थ ऐसे हैं, जो उत्तम धर्ममें अनुराग प्रदान करनेवाले है। इन एक सौ आठ तीर्थोंमें साठ तीर्थ भक्ति और वैराग्य देनेवाले हैं और इस वेंकटाचलके शिखरपर छः तीर्थ मुक्तिदायक माने गये हैं, जिनके नाम इस प्रकार हैं—स्वामिपुष्करिणी, आकाशगंगा, पापविनाशन, पाण्डुतीर्थ, कुमारधारिका-तीर्थ और तुम्बुतीर्थ। जो मनुष्य इन तीर्थोंके माहात्म्यके साथ भगवान् विष्णुकी भुवनपावनी कथाको सर्वदा श्रवण करते हैं, वे इस लोकमें निश्चय ही भगवान् विष्णुके भक्त होते हैं। सम्पूर्ण भुवनोंको पवित्र करनेवाली श्रीविष्णुकथाको सर्वदा श्रवण करनेमें यदि कोई समर्थ न हो, तो दो घड़ी, एक घड़ी अथवा एक क्षण भी जो भक्तिपूर्वक इसे श्रवण कर लेता है, उसकी कभी दुर्गति नहीं होती। सम्पूर्ण यज्ञों और सब प्रकारके दानोंसे जो फल प्राप्त होता है, वही फल मनुष्य एक बार पुराणकथाका श्रवण करनेसे प्राप्त कर लेता है। पुराणका श्रवण और भगवान् विष्णुके नामोंका कीर्तन—ये दो ही मनुष्यके पुण्यरूपी वृक्षके महान् फल हैं। यदि कोई बड़ा प्रयत्न करके अमृत ही पी ले, तो भी वह अकेला ही अजर-अमर होता है; परंतु भगवान् विष्णुका कथारूप अमृत तो समस्त कुलको ही अजर-अमर बना देता है। पुराणका जाननेवाला विद्वान् बालक, युवा, वृद्ध, दरिद्र अथवा दुर्भाग्ययुक्त ही क्यों न हो, वह पुण्यात्मा पुरुषोंद्वारा सदैव वन्दनीय और पूजनीय होता है। पुराणवेत्ता ब्राह्मण जब कथा कहनेके लिये व्यासासनपर बैठ जाय तब प्रसंगकी समाप्ति होनेतक वह किसीको प्रणाम न करे। जहाँ खोटे मनुष्य रहते हों, जो

* पतिर्माता पतिर्विष्णुः पतिर्ब्रह्मा पतिः शिवः। पतिर्गुरुः पतिस्तीर्थमिति स्त्रीणां विदुर्बुधाः॥
(स्क० पु०, वै० वे० २६। ८३-८४)

Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

स्थान हिंसक जन्तुओंसे घिरा हो तथा जिस घरमें जुआ खेला जाता हो, वहाँ विद्वान् पुरुष पवित्र कथा न कहे। जो उत्तम ग्राम हो, जहाँ अच्छे लोग बसते हों, जो उत्तम क्षेत्र, पवित्र देवालय अथवा नदीका पवित्र तट हो, वहीं विद्वान् पुरुष पवित्र कथा बाँचे। जो श्रद्धा और भक्तिसे युक्त हों, अन्य कार्योंमें जिनका मन न लगा हो तथा जो मौन, पवित्र और शान्त भावसे सुनते हों ऐसे श्रोता पुण्यके भागी होते हैं। जो अधम मनुष्य बिना भक्ति-भावके पवित्र कथा सुनते हैं, उनको पुण्य फलकी प्राप्ति नहीं होती। जो पान चबाते हुए भगवान्की पवित्र कथा सुनते हैं, वे नरकमें पड़ते हैं। जो पाखण्डी ऊँचे आसनपर बैठकर कथा सुनते हैं, वे नरकोंको भोगकर अन्तमें कौवे होते हैं। जो वीरासन लगाकर अथवा सिंहासनपर बैठकर भगवान्की कथा सुनते हैं, वे टेढ़े-मेढ़े वृक्ष होते हैं। जो प्रणाम न करके कथा सुनते हैं, वे विषवृक्ष होते हैं और जो स्वस्थ होकर भी सोकर कथा सुनते हैं, वे अजगर होते हैं। जो वक्ताके समान आसनपर बैठकर कथा सुनता है, वह पापका भागी होकर नरकमें पड़ता है। जो पुराणके ज्ञाता विद्वान्की तथा सब पापोंका नाश करनेवाली उत्तम कथाकी निन्दा करते हैं, वे कुत्ते होते हैं। जब कथा बाँची जाती हो, उस समय जो दुष्टतापूर्ण उत्तर-प्रत्युत्तर करते हैं, वे गधे होते हैं तथा उसके बाद गिरगिटकी योनिमें जन्म लेते हैं। जो कथा होते समय उसमें विघ्न डालते हैं, वे करोड़ों वर्षोंतक नरक भोगकर अन्तमें ग्राम-सूकर होते हैं। जो नरश्रेष्ठ पुराणवेत्ता विद्वान्के बैठनेके लिये कम्बल, मृगचर्म, वस्त्र तथा चौकी देते हैं, वे स्वर्गलोकमें जाकर मनोवांछित भोगोंको भोगकर ब्रह्मादि देवताओंके लोकोंमें स्थित होते और निरामय पदको प्राप्त हो जाते हैं। जो पुराणके बेठनके लिये सूत और नया कपड़ा देते हैं, वे प्रत्येक जन्ममें भोगवान् और ज्ञानसम्पन्न होते हैं।

इस प्रकार वेंकटाचलके माहात्म्यको सुनकर सब ऋषियोंने पौराणिकोंमें श्रेष्ठ सूतजीका यथायोग्य सम्मान करके अनुपम हर्ष प्राप्त किया।

ऋषि बोले—सूतजी! अब हमलोग कटाह-तीर्थका माहात्म्य सुनना चाहते हैं।

सूतजी बोले—विप्रवरो! कटाहतीर्थ सब लोकोंमें प्रसिद्ध है। वह सब प्रकारकी सम्पत्तियोंको देनेवाला, शुद्ध तथा सब पापोंका नाश करनेवाला है। उससे दुःस्वप्नोंका नाश हो जाता है। वह महापातकोंका नाश करनेवाला, बड़े-बड़े विघ्नोंका निवारण करनेवाला तथा मनुष्योंको परम शान्ति देनेवाला है। कटाहतीर्थ स्मरण करनेमात्रसे सब पापोंका संहार कर देता है। अतः **'केशवाय नमः, नारायणाय नमः, माधवाय नमः'**—इन नामोंसे पृथक्-पृथक् उस तीर्थके जलका आचमन करे। अथवा तीनों नामोंसे एक ही बार उस तीर्थके कल्याणप्रद जलका पान करे अथवा भगवान् वेंकटेश्वरके अष्टाक्षर मन्त्रसे भोग, मोक्ष प्रदान करनेवाले उक्त तीर्थका जल पीये। पहले यह प्रार्थना करे कि हे तीर्थवर! जन्मान्तरमें किये हुए मेरे महापापका शीघ्र नाश करो। उसके बाद मोक्षमार्गके एकमात्र साधन कटाहतीर्थके जलका नित्य पान करे। स्वामिपुष्करिणी-तीर्थका स्नान, वाराह स्वामीका दर्शन और कटाहतीर्थके जलका पान—ये तीन बातें त्रिलोकीमें दुर्लभ हैं। कटाहतीर्थका यत्नपूर्वक सेवन करना चाहिये; क्योंकि उस तीर्थका परम उत्तम जल पीकर पापी भी कृतार्थ हो जाते हैं। ब्राह्मणो! कटाहतीर्थका माहात्म्य मैंने जैसा सुना था, उसी प्रकार तुम्हें बताया है।

अब मैं एक दिव्य पापनाशक कथा सुनाता हूँ, तुम सब लोग सावधान होकर सुनो। द्वापरकी बात है। कुन्तीके पुत्र पाँचों पाण्डव परम

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

बुद्धिमान् राजा द्रुपदसे उनकी पुत्री याज्ञसेनीको पाकर धृतराष्ट्रकी आज्ञासे हस्तिनापुरमें गये। वहाँ पितामह भीष्म तथा अम्बिकानन्दन धृतराष्ट्रके द्वारा सम्मानित होकर उन्होंने दुर्योधन आदिके साथ पाँच वर्षोंतक निवास किया। तदनन्तर भीष्म आदिके समझानेसे महायशस्वी धृतराष्ट्रने अपने कुलके सभी बड़े-बूढ़ोंके सामने और भगवान् श्रीकृष्णके आगे पाण्डवोंकी सेवासे प्रसन्न हो, उन्हें आधे राज्यके साथ खाण्डवप्रस्थ (वर्तमान दिल्ली) नामक नगर प्रदान किया। तब धृतराष्ट्र आदि कौरवोंकी अनुमति ले सब पाण्डव श्रीकृष्णके साथ खाण्डवप्रस्थमें चले गये। वहाँ विश्वकर्मासे सुरक्षित इन्द्रप्रस्थ नामक पुरमें रहते हुए भाइयोंसहित युधिष्ठिरने पृथ्वीका पालन किया। भगवान् श्रीकृष्णके द्वारका चले जानेपर धर्मके जाननेवाले कुन्तीपुत्रोंने नारदजीके उपदेशसे द्रौपदीके विषयमें यह प्रतिज्ञा की कि द्रौपदी क्रमशः एक-एक वर्ष एक-एक पाण्डवके घरमें निवास करेगी। इस निर्णयके बाद जो दूसरे भाईके घरमें रहती हुई पांचाल-राजकुमारी द्रौपदीको देख लेगा, उसे एक वर्षतक तीर्थ-सेवन करना पड़ेगा। इस प्रकार प्रतिज्ञा करके वे पाण्डव आलस्य छोड़कर सामान्य लौकिक व्यापारोंमें संलग्न हो समय व्यतीत करने लगे।

तदनन्तर एक दिन उसी जनपदके निवासी ब्राह्मणने राजाके आँगनमें खड़े होकर कई बार पुकार लगायी—'महाराज! चोरोंने मेरी गाय चुरा ली।' उसकी आवाज सुनकर अर्जुन वहाँ आये और ब्राह्मणको सान्त्वना देकर अपने अस्त्र-शस्त्र लानेके लिये शीघ्रतापूर्वक शस्त्रागारको गये। वहाँ उन्होंने द्रौपदी और राजा युधिष्ठिरको एक जगह बैठे देखा। इस विषयमें की हुई प्रतिज्ञाको जानते हुए भी उन्होंने वहाँसे धनुष और बाण ले लिये और युद्धमें लुटेरोंको मारकर ब्राह्मणकी गाय लौटा ली। फिर उसे ले जाकर ब्राह्मणको आदरपूर्वक समर्पित कर दिया। तत्पश्चात् अर्जुनने धर्मनन्दन युधिष्ठिरको सूचित किया कि मेरे द्वारा प्रतिज्ञाका उल्लंघन हुआ है, इसलिये मुझे तीर्थयात्रा करनी चाहिये।

अपने छोटे भाईकी बात सुनकर सब धर्मज्ञोंमें श्रेष्ठ धर्मनन्दन युधिष्ठिरने आदरपूर्वक कहा, 'सुव्रत! तुमने ब्राह्मण और गायके लिये ऐसा किया है। प्रजाकी रक्षा करना राजाका कर्तव्य है; यदि उसके द्वारा चोरोंकी उपेक्षा हो जाय तो उसे ब्रह्महत्याका पाप लगता है और चोरोंको दण्ड देनेपर वह पुण्यका भागी होता है। तुमने राजा और प्रजा दोनोंके लिये जो हितकर कार्य है, वही किया है; इसलिये तुम्हारा दोष नहीं है।' धर्मराजका यह वचन सुनकर सदा धर्ममें तत्पर रहनेवाले अर्जुनने हाथ जोड़कर कहा, 'भूपाल! आप ऐसी बात न कहें, आप धर्मके सर्वस्वको जानते हैं, धर्मके साक्षात् स्वरूप हैं तथा कर्तव्य और अकर्तव्यके ज्ञाता हैं। समर्थ पुरुषको अपनी की हुई प्रतिज्ञाका कभी उल्लंघन नहीं करना चाहिये। आर्य! यदि मुझपर दया करके मुझे तीर्थोंमें जानेसे रोक देंगे, तो संसारके मनुष्य यदि मुझे हतप्रतिज्ञ कहने लगें, तो उन्हें कौन रोक सकता है। मेरा मन भी तीर्थयात्राकी उत्कण्ठासे उतावला हो रहा है। राजन्! नारदजीने जो अनुशासन किया है, वह हमारे लिये सर्वथा कर्तव्य है। अतः महाराज! तीर्थयात्राके लिये मैंने जो यह उद्योग किया है, इससे आपको प्रसन्न होना चाहिये। स्वामीको सेवकोंकी प्रतिज्ञाका उनके द्वारा निर्वाह करवाना चाहिये।'

तब भाइयोंकी सलाह ले 'बहुत अच्छा' कहकर युधिष्ठिरने अर्जुनका अनुरोध स्वीकार कर लिया। अर्जुनने प्रणाम और विनय आदिके द्वारा अपने बड़े भाईको सन्तुष्ट किया। फिर यथायोग्य भीमसेन आदि बन्धुओंसे भी विदा ले, ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन कराकर अर्जुनने वहाँसे

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

यात्रा की। राजकुमार अर्जुनने पहले गंगा नदीके तटपर पहुँचकर उसीके किनारे-किनारे निकटवर्ती मार्गसे जाते हुए हरिद्वार, प्रयाग और काशी आदि तीर्थोंका सेवन किया और अन्य तीर्थोंका दर्शन करते हुए वे ऊँची-ऊँची तरंगोंसे लहराते हुए दक्षिण समुद्रतक जा पहुँचे। फिर परम पवित्र महानदी, प्रसिद्ध पुरुषोत्तम तीर्थ और सिंहाचलका दर्शन करके उन्होंने अपनेको कृतकृत्य माना। तत्पश्चात् अर्जुनने समस्त पातकसमूहका विनाश करनेके कारण अतिशय गौरवको प्राप्त हुई पुण्यमयी गोदावरी नदीका दर्शन किया। उसके जलसे विधिपूर्वक स्नान करके वे मलापहा नदीके तटपर गये। उसके दर्शनसे उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। उसके बाद वे सरिताओंमें श्रेष्ठ कृष्णवेणी नदीके समीप जा पहुँचे और भगवान् शंकरके निवास-स्थान श्रीपर्वतका दर्शन किया। फिर पिनाकिनी नदीको पार करके देवताओं और ऋषियोंद्वारा सेवित वेंकटाचल पर्वतका दर्शन किया, जो भगवान् नारायणका प्रिय निवास है। उस पर्वतके शिखरपर स्थित सम्पूर्ण लोकोंके एकमात्र स्वामी सुप्रसिद्ध भगवान् श्रीहरिका अर्जुनने कल्याणकी सिद्धिके लिये भक्तिपूर्वक पूजन किया। तदनन्तर महापर्वत वेंकटाचलके शिखरसे उतरकर उन्होंने सिद्धों और मुनियोंके समुदायसे सेवित सुवर्णमुखरी नामवाली नदीका दर्शन किया, जिसे मुनिवर अगस्त्यजी यहाँ ले आये थे।

अर्जुनका कालहस्तीश्वरके समीप भरद्वाजके आश्रमपर जाना और भरद्वाजजीके द्वारा अगस्त्यजीके प्रभावका वर्णन

सूतजी कहते हैं—इस प्रकार सब तीर्थोंका दर्शन करके आये हुए अर्जुनके मनमें महानदी सुवर्णमुखरीने कई गुना आनन्द बढ़ा दिया। उस नदीके पूर्व तटपर अर्जुनने एक ऊँचा पर्वत देखा, जो कालहस्तीके नामसे प्रसिद्ध है। उस महानदीमें स्नान करके वे पर्वतके शिखरपर गये और वहाँ देवपूजित कालहस्तीश्वर नामक महादेवजीका दर्शन किया। पार्वतीके साथ महादेवजीका भक्तियुक्त चित्तसे पूजन करके वे कृतार्थ हो गये। तदनन्तर अर्जुन वहाँके अभूतपूर्व पदार्थोंका दर्शन करनेके लिये उस पर्वतपर विचरने लगे। वहाँ पर्वतीय शिखरोंपर एकान्त प्रदेशमें उन्होंने शिवजीके ध्यानमें तत्पर हुए अनेकानेक दिव्य योगियोंका दर्शन किया। साथ ही इन्द्रियोंको संयममें रखनेवाले अनेकों शान्त मुनियोंको भी देखा। उनमें कोई तो निराहार रहते थे, कोई वायु पीते थे, कोई पत्ते चबाते थे और कोई सूर्यकी धूपके ही आहारपर निर्वाह करते थे। उसके बाद उस पर्वतके दक्षिण भागमें घूमते हुए उन्होंने महर्षि भरद्वाजका पवित्र आश्रम देखा, जो सब प्रकारकी लक्ष्मीसे सुशोभित था। कौतुकका तो वह एकमात्र स्थान था। सिंह, हाथी, व्याघ्र, चीता, रुरू, रंकु तथा अन्य मृगोंसे भरा हुआ था और वे सभी जीव आपसका सहज वैर भुलाकर एक-दूसरेका हितसाधन करते थे। उस आश्रमको देखकर पाण्डुनन्दन अर्जुनने तपस्वियोंके प्रभावकी प्रशंसा की। अनेक श्रेष्ठ ब्राह्मण उस यात्रामें अर्जुनके साथ थे। उन सभी मित्रोंके साथ उन्होंने आश्रममें प्रवेश किया और अपने सामने ही अनेक मुनियोंसे घिरे हुए प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्वी भरद्वाजजीको बैठे देखा। उनके सब अंगोंमें भस्म लगा हुआ था और कंधेपर मृगचर्मका उत्तरीय शोभा पा रहा था। इससे वे नूतन श्याम मेघसे आच्छादित कैलासकी भाँति सुशोभित हो रहे थे। सुवर्णके समान पीले रंगकी लम्बी जटाओंसे प्रकाशमान थे। उन्हें देखकर ऐसा जान पड़ता था, मानो श्रुति-स्मृति और

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth 279 Skandpuran_Section_12_2_Back

पुराणोंके अर्थोंने एकीभूत होकर मुनिका शरीर धारण कर लिया हो। वे दिव्य ज्ञानके शुभ आश्रय थे। धृति, क्षान्ति, दया, तुष्टि और शान्ति आदि सद्गुण नित्य उनकी सेवामें रहते थे। वे अखण्ड ब्रह्मतेजसे देदीप्यमान हो रहे थे। अर्जुनने धीरे-धीरे निकट जाकर मुनिके चरणारविन्दोंके आगे पृथ्वीपर गिरकर साष्टांग प्रणाम किया।

अपने आश्रमपर आये हुए कुन्तीनन्दन अर्जुनको मुनिने स्वयं उठाकर अभ्युदयका आशीर्वाद दिया। उस समय उनका चित्त हर्षोल्लाससे परिपूर्ण था। यथायोग्य अर्घ्य आदि प्रस्तुत करके मुनिने अपने प्रिय अतिथिका सत्कार किया और एक आसनकी ओर संकेत करके उन्हें उसपर बिठाया। जब वे बैठ गये तब उनसे स्वास्थ्यसम्बन्धी कुशल-प्रश्न किया। तदनन्तर अर्जुन भोजन करके तपोनिधि भरद्वाज मुनिके समीप ही बैठे और कथा सुननेके कौतूहलसे दिनका शेष भाग वहीं व्यतीत किया। तत्पश्चात् सायं-सन्ध्या करके अग्निमें आहुति दे अपने साथ आये हुए ब्राह्मणोंसहित वे मुनिके कुटीगृहमें गये और वहाँ उनके आशीर्वादसे आनन्दित होकर बैठे। उस समय सुवर्णमुखरी नदीके शीतल जलको छूकर चलनेवाली ठंडी वायुसे अर्जुनको बड़ा हर्ष प्राप्त हो रहा था।

सूतजी कहते हैं—अर्जुनने सुखपूर्वक बैठे हुए भरद्वाज मुनिको प्रणाम करके विनयपूर्वक यह गम्भीर वचन कहा—'मुनिश्रेष्ठ! इस संसारमें एकमात्र मैं ही धन्य हूँ, जिसका आपने अपने पुत्रके समान भलीभाँति आदर किया है। भगवन्! यह महानदी किस पर्वतसे प्रकट हुई है और कौन इसे ले आया है? तथा इसमें स्नान, दान आदि करनेसे कौन सा पुण्य प्राप्त होता है?'

भरद्वाजजीने कहा—महाबाहु अर्जुन! तुम कौरवकुलको पवित्र करनेवाले हो और धर्मपुत्र युधिष्ठिरके छोटे भाई हो। मैंने अनेक राजा देखे हैं। परंतु वे तुम्हारे समान लीलायुक्त, सरलता, दया, उदारता, धीरता और गम्भीरता आदि गुणोंसे सुशोभित नहीं थे। कुल, विद्या और धन—ये बलवान् पुरुषोंके अभिमानमें कारण होते हैं। परंतु तुम्हारे-जैसे कल्याणमय पुरुषोंके लिये वे भी नम्रता लानेमें कारण हुए हैं। राजन्! मैंने मुनियोंके मुखसे जो दिव्य कथा सुनी है, वह तुमसे कहता हूँ, उसे सुनो। पूर्वकालकी बात है, दक्षकुमारी सती अपने पितासे अपमानित हो शरीर त्यागकर हिमालयकी पुत्रीके रूपमें उत्पन्न हुई। फिर सप्तर्षियोंने आकर जब प्रार्थना की, तब गिरिराज हिमालय विवाहके समय अपनी पुत्री भगवान् शंकरको देनेको उद्यत हुए। उसके बाद जगदीश्वर शिव पार्वतीको ब्याह लानेके लिये हिमालयके निवासस्थानपर गये। उस समय स्थावर-जंगम सभी प्राणी भगवान् शिवके मंगलमय विवाहका अभिनन्दन करनेके लिये वहाँ उपस्थित हुए। उन सबके भारी भारसे उत्तरकी भूमि नीची हो गयी और दक्षिणकी भूमि भार न होनेसे अत्यन्त हलकेपनके कारण ऊँची हो गयी। इससे सबको बड़ा भय हुआ। तब महादेवजीने अगस्त्यजीके समीप जाकर कहा, 'मुने! यह पृथ्वी अधिक भारसे दबकर विकृतावस्थाको प्राप्त हो गयी है, तुम्हीं इसको बराबर करनेमें समर्थ हो। अतः मेरे कहनेसे इस पृथ्वीको बराबर करो।' तब 'बहुत अच्छा' कहकर भगवान् शिवको प्रणाम करके अगस्त्यजी दक्षिण दिशामें चले गये। विन्ध्यगिरिको लाँघकर अगस्त्यके दक्षिण दिशामें जाते ही पृथ्वी समभावको प्राप्त हो गयी।

तदनन्तर अगस्त्यजीने आगे जाकर किसी ऊँचे पर्वतको देखा, जो अपनी फैली हुई घाटियोंसे पृथ्वीको धारण करके स्थित था। वे धीरे-धीरे उस पर्वतपर चढ़ गये और उसके मनोहर शिखरकी सुरम्य स्थलीमें उन्होंने रहनेका विचार किया। वहाँ अमृतके समान जलसे भरा हुआ एक सरोवर था, जिसमें पद्म और उत्पल आदि फूलोंकी शोभा फैली हुई थी। उसके चारों ओर बहुत-से वृक्ष

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

लगे थे। अगस्त्यजीने उसी सरोवरके उत्तर तटपर एक मनोहर भूभागमें उत्तम आश्रम बनाकर तथा पितरों, देवताओं, ऋषियों और वास्तुदेवका विधिपूर्वक पूजन करके मुनिसमुदायके साथ उसमें दीर्घकाल-तक निवास किया। तपस्यामें मनकी वृत्तियोंको लगाकर वहाँके तपोवनमें जब अगस्त्य मुनि रहने लगे, तब वह उत्तम सौभाग्यसे सुशोभित पर्वत अगस्ति-शैलके नामसे प्रसिद्ध हुआ।

महर्षि अगस्त्यकी तपस्यासे सुवर्णमुखरी नदीका प्रादुर्भाव और उसका माहात्म्य

भरद्वाजजी कहते हैं—एक दिन मुनिवर अगस्त्यजी पूर्वाह्नकालका नित्य-नियम पूरा करके भगवान् शिवकी आराधना करनेके लिये देवमन्दिरमें गये। उसी समय आकाशवाणी हुई—'मुने! यह प्रदेश नदीसे हीन है, अतः ज्ञान-विज्ञानसे रहित केवल शरीरधारी ब्राह्मणकी भाँति, दक्षिणाहीन दीक्षा और चाँदनीशून्य रात्रिके समान शोभा नहीं पाता। इसलिये तुम सम्पूर्ण लोकोंका हित करनेके लिये इस भूभागमें कोई ऐसी नदी बहाओ, जो अगाध पापराशिजनित भयका निवारण करके सदैव सुशोभित रहे। मुनिवर! देवसमुदायकी यही प्रार्थना है, जो सबके लिये हितकर है।'

इस आकाशवाणीको सुनकर ब्रह्मर्षि अगस्त्यजी क्षणभर कुछ विचार करते रहे। तत्पश्चात् देव-पूजन समाप्त करके वे बाहर वेदीपर बैठे। उनके आश्रमपर जितने मुनि रहते थे, उन सबको उन्होंने बुलवाया और आकाशवाणीकी कही हुई बात कह सुनायी। तब मुनियोंने अगस्त्यजीको प्रणाम करके कहा, 'महर्षे! आपके हुंकारमात्रसे राजा नहुष देवताओंके साम्राज्यसे नीचे गिर गये और सर्पयोनिको प्राप्त हुए। जिसने सम्पूर्ण भूमण्डलको घेर रखा है तथा जो अपनी उत्ताल तरंगोंसे आकाशको भी ताड़ित करता है, ऐसे महासागरको भी आपने अपने चुल्लूमें रख लिया। विन्ध्यपर्वत भगवान् सूर्यका मार्ग रोकनेके लिये उद्यत हुआ था, परंतु आपने उसे भी शान्त कर दिया। इन सबसे बढ़कर आश्चर्यकी बात और क्या हो सकती है। महामुने! तीनों लोकोंमें हम सब लोग कृतार्थ हैं जो कि आपसे सनाथ होकर आपके इस आश्रममें निवास करते हैं। यह प्रदेश दक्षिण दिशामें वर्णनीय है और समस्त वस्तुओंसे परिपूर्ण है तो भी बहुत दूरतक यहाँ कोई नदी नहीं है, इसलिये यह शोभा नहीं पाता। अनघ! कब ऐसा शुभ अवसर प्राप्त होगा जब हम इस देशमें आपके द्वारा बहायी हुई किसी महानदीमें स्नान करके कृतार्थताका अनुभव करेंगे। हमारी भी प्रार्थना है कि आप यहाँ सबको शरण देनेवाली किसी सर्वश्रेष्ठ विश्ववन्द्य नदीको निश्चय ही ले आनेके लिये प्रयत्न कीजिये।'

तब मुनीश्वरोंकी आज्ञा ले देवताओं तथा भगवान् शिवकी विशेष पूजा करके मुनिने महान् क्लेशमय दुःसह व्रतको अंगीकार किया और बड़े यत्नसे भारी तपस्या प्रारम्भ की। गरमीमें पंचाग्निका ताप सहन किया। वर्षामें आँधी-पानी और विद्युत्का सामना किया तथा सर्दीमें गलेतक पानीमें खड़े हो जप-ध्यान करते रहे। तत्पश्चात् मनकी वृत्तियोंको रोककर, निराहार रह, इन्द्रियोंको काबूमें करके वे पत्थरकी भाँति स्थिर हो गये। उस समय उन्हें बाहरकी बातोंका कुछ भी भान नहीं होता था। तदनन्तर तपस्यामें लगे हुए अगस्त्यजीके आगे ब्रह्माजी प्रकट हुए। उन्हें देखकर मुनिने प्रणाम किया और अनेक प्रकारके

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

स्तोत्रोंद्वारा स्तुति की। तब विनयावनत अगस्त्यजीकी ओर देखकर प्रसन्नवदन हो ब्रह्माजीने पवित्र वाणीमें कहा, 'उत्तम व्रतका पालन करनेवाले महर्षे! तुम्हारे इस दुष्कर तपसे मैं बहुत सन्तुष्ट हूँ। तुम्हें जो-जो अभीष्ट हो, माँगो, मैं उसे दूँगा।'

अगस्त्यजी बोले—प्रभो! आपकी कृपासे मुझे सब कुछ प्राप्त है, किंतु इस प्रदेशको नदीसे हीन देखकर मेरे मनमें खेद होता है। देवेश्वर! यहाँकी भूमिको पवित्र और सुरक्षित करनेमें समर्थ किसी महानदीको प्रकट करनेकी कृपा करें। यही मेरे लिये अभीष्ट वर है।

अगस्त्यजीका वचन सुनकर ब्रह्माजीने कहा, 'ऐसा ही होगा।' फिर उन्होंने अपने मनसे आकाशगंगाका स्मरण किया और जब वह उनके आगे आकर खड़ी हो गयी तब उससे कहा, 'गंगे! संसारका उपकार करनेवाले कार्यमें संलग्न होनेके लिये मैं तुम्हें आज्ञा देता हूँ। इस नदीहीन देशमें सब लोगोंके हितके लिये कोई नदी प्रवाहित करनेके लिये ये अगस्त्यजी तपस्या एवं चेष्टा कर रहे हैं। इसलिये तुम अपने एक अंशसे पृथ्वीपर उतरकर अगस्त्यजीके दिखाये हुए मार्गसे जाओ और यहाँके रहनेवाले मनुष्योंको पवित्र करो। समस्त नदियों में तुम्हारा श्रेष्ठ स्थान हो और तुम अपनी शरणमें आये हुए लोगोंकी रक्षा करो।' यों कहकर ब्रह्माजी उस आकाशगंगा और अगस्त्य मुनिके द्वारा किये गये प्रणाम, पूजा तथा विशेष स्तुतियोंसे अभिनन्दित होकर वहाँसे अन्तर्धान हो गये। तत्पश्चात् मुनीश्वर अगस्त्यके आगे अपने अंशसे उत्पन्न दिव्य तेजोमयी मूर्तिका दर्शन कराकर आकाशगंगाने कहा, 'मुनीश्वर! यह मेरा अंश है, यह पृथ्वीपर पहुँचकर नदीरूपमें परिणत हो तुम्हारा मनोरथ पूर्ण करेगा।'

ऐसा कहकर आकाशगंगा तो चली गयीं और उनके अंशसे उत्पन्न हुई दिव्य मूर्तिने पूछा—'मुने! मुझे किस मार्गसे चलना होगा?' तब मुनिने कहा—'कल्याणि! मैं आगे-आगे चलकर तुम्हारे जानेयोग्य मार्ग दिखाऊँगा। तुम मेरे पीछे-पीछे आओ।' तदनन्तर मुनिवर अगस्त्यजी अत्यन्त प्रसन्नचित्त होकर गंगाजीको अभीष्ट मार्ग दिखलाते

हुए आगे-आगे चले। उस नदीको देखकर उस भूमिके निवासी मनुष्य बड़े प्रसन्न हुए। 'अहो! हमारे सौभाग्यसे यह सुधाके समान मधुर एवं निर्मल जल प्राप्त हुआ'—ऐसा कहते हुए वे अत्यन्त उत्कण्ठित हो गये। उस समय ब्रह्माजीकी आज्ञासे सब देवताओंके सुनते हुए वायुदेवने कहा—'यह नदी लोकोंके सौभाग्यसे सुवर्णकी भाँति प्राप्त हुई है तथा महर्षि अगस्त्यके द्वारा इस पृथ्वीपर लायी जानेपर अपनी कल-कलध्वनिसे सम्पूर्ण दिशाओंको मुखरित कर रही है। इसलिये यह सुवर्णमुखरीके नामसे प्रसिद्ध होगी तथा मोक्ष-सम्पत्ति प्रदान करनेवाले अपने तेजसे सम्पूर्ण लोकोंद्वारा प्रशंसित होगी।' इस प्रकार यह दिव्य नदी स्नान-पान आदिकी व्यवस्थासे सब मनुष्योंको सुख पहुँचाती हुई इस पृथ्वीपर प्रतिष्ठित हुई। जो रोगोंसे पीड़ित और अधिक व्याकुल मनुष्य हैं,

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

उन सबके रोगोंका निवारण करके उन्हें स्वस्थ बना देनेवाला एकमात्र सुवर्णमुखरीका जल है। अर्जुन! वह नदी कीचड़से रहित, अत्यन्त निर्मल, पापनाशक, मंगलयुक्त और अत्यन्त स्वादिष्ट अमृतके समान जल धारण करती है। अगस्त्य पर्वतसे इसकी उत्पत्ति हुई है तथा उत्तम तीर्थसमूहोंसे सुशोभित होकर यह दक्षिण समुद्रमें जाकर मिली है। महर्षि अगस्त्य इस नदीका दक्षिण समुद्रसे संगम कराकर इसकी स्तुति करके कृतार्थताका अनुभव करते हुए पुनः इच्छानुसार अपने आश्रमपर लौट आये।

अर्जुनने कहा—भगवन्! आपने इस महानदीकी उत्पत्तिका वृत्तान्त कहा—अब मैं इसके प्रभावको सुनना चाहता हूँ।

भरद्वाजजी बोले—पाण्डुनन्दन! सौ योजन दूरसे भी इस सुवर्णमुखरीका स्मरण करके मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। यदि सुवर्णमुखरीके जलमें देहधारियोंकी अस्थि डाल दी जाय, तो वह उनके ब्रह्मलोकपर चढ़नेके लिये सीढ़ी बन जाती है। सुवर्णमुखरीका स्मरण करते हुए मनुष्य जहाँ कहीं भी अन्य जलोंमें स्नान कर लें, तो उन्हें उत्तम पदकी प्राप्ति होती है। इन्द्र आदि देवता सुवर्णमुखरी नदीमें स्नान करनेके लिये ललचाये हुए चित्तसे मनुष्य-शरीरको ही प्राप्त करना चाहते हैं। यदि तोला भर भी सुवर्णमुखरी नदीका जल पी लिया जाय तो वह देहधारियोंके पर्वतसमान पापोंका भी शीघ्र नाश कर देता है। देवताओंमें विष्णु, नक्षत्रोंमें चन्द्रमा, मनुष्योंमें राजा, वृक्षोंमें कल्पवृक्ष, महाभूतोंमें आकाश, समस्त शक्तियोंमें मायाशक्ति, मन्त्रोंमें गायत्री मन्त्र, देवताओंके अस्त्र-शस्त्रोंमें वज्र, तत्त्वोंमें आत्मतत्त्व, यजुर्वेदके मन्त्रोंमें रुद्राष्टाध्यायी, नागोंमें शेषनाग, पर्वतोंमें हिमालय, क्षेत्रोंमें वराहक्षेत्र तथा इन्द्रियोंमें मनके समान सम्पूर्ण नदियोंमें सुवर्णमुखरी नदी श्रेष्ठ है। 'अगस्त्य पर्वतसे प्रकट हो दक्षिण समुद्रमें मिलनेवाली और सब पापोंका नाश करनेवाली तुम स्वर्णमुखरी नदीकी मैं शरण लेता हूँ। जगदम्बे! बड़े-बड़े पातकोंसे दग्ध हुए अपने इस शरीरको मैं तुम्हारे जलसे धोता हूँ। मुझे कल्याणसे युक्त करो।'* इन दो सूक्तोंका भलीभाँति उच्चारण करके जो मनुष्य नियमपूर्वक सुवर्णमुखरीके जलमें स्नान करता है, वह शुद्ध होकर आनन्दका भागी होता है। कुन्तीनन्दन! चन्द्रग्रहण और सूर्यग्रहणके समय सुवर्णमुखरीके तटपर किया हुआ स्नान, दान आदि अनन्त फलकी प्राप्ति करानेवाला होता है। संक्रान्ति, अयन तथा व्यतीपातके दिन सुवर्णमुखरी नदीमें किया हुआ स्नान मनुष्यका उद्धार कर देता है। सुवर्णमुखरीके जलमें स्नान करके मनुष्य दुःस्वप्नके विघ्नसे तथा ग्रहोंके दुष्ट स्थानमें रहनेसे प्राप्त होनेवाले पाप-तापसे तर जाता है। सुवर्णमुखरीके तटपर किया हुआ जप, होम, तप, दान, श्राद्ध और देवपूजन सौगुना फल देनेवाला होता है।

अर्जुन! इस प्रकार तुमसे महानदी सुवर्णमुखरीकी उत्पत्ति और प्रभावका भलीभाँति वर्णन किया गया।

---

* अगस्त्याचलसम्भूतां दक्षिणोदधिगामिनीम्। समस्तपापहन्त्रीं त्वां सुवर्णमुखरीं श्रये॥
महापातकविप्लुष्टं गात्रं मम तवोदकैः। क्षालयामि जगद्धात्रि श्रेयसा योजयस्व माम्॥
(स्क० पु०, वै० वे० ३३। ४२-४३)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

सुवर्णमुखरी नदीके तीर्थोंका वर्णन, भगवान् विष्णुकी महिमा, प्रलयकालकी स्थिति तथा श्वेतवाराहरूपमें भगवान्का प्राकट्य

अर्जुनने पूछा—मुने! सुवर्णमुखरी नदीमें किन-किन पवित्र नदियोंका संगम हुआ है तथा इसमें कहाँ स्नान करनेसे समस्त पाप कट जानेके कारण मनुष्य यमराजके भयको नहीं प्राप्त होते हैं?

भरद्वाजजी बोले—कुन्तीनन्दन! अगस्त्य पर्वतसे जहाँ पहले-पहल महानदी सुवर्णमुखरी पृथ्वीपर उतरी है, उस तीर्थमें स्नान करके मनुष्य कृतार्थ हो जाता है। वह पावन तीर्थ त्रिभुवनमें अगस्त्यतीर्थके नामसे प्रसिद्ध है। उस तीर्थमें जो प्रयत्नशील साधक अपनी इन्द्रियोंको संयममें रखते हुए स्नान करते हैं, वे सम्पूर्ण फल प्राप्त करते हैं। वहाँ सब लोगोंको आनन्द देनेवाले अगस्त्य मुनिके द्वारा स्थापित किये हुए भगवान् शिव अगस्त्येश्वरके नामसे प्रसिद्ध हैं। उस महानदीमें स्नान करके जो लोग अगस्त्येश्वरकी पूजा करते हैं, उन्हें दस अश्वमेध यज्ञोंका फल प्राप्त होता है। अगस्त्यतीर्थसे ईशानकोणकी ओर एक कोसकी दूरीपर तीन तीर्थ हैं, जो देवतीर्थ, ऋषितीर्थ तथा पितृतीर्थके नामसे प्रसिद्ध हैं। वहींपर अगस्त्यमुनिने देवताओं, ऋषियों तथा पितरोंका पूजन किया था। जो लोग स्नान करके उन तीर्थोंमें तर्पण करते हैं, वे तीनों ऋणोंसे मुक्त होकर अक्षय स्वर्गको प्राप्त होते हैं। वहाँसे पूर्व-उत्तरकी ओर दो योजनकी सीमामें वेणा नामवाली महानदी सुवर्णमुखरीमें मिली है। इन दोनों नदियोंके संगममें विधिपूर्वक स्नान करनेवाले मनुष्य दस अश्वमेध यज्ञोंका फल प्राप्त करते हैं। वेणासे मिलकर परम पवित्र सुवर्णमुखरी नदी पर्वतोंके दुर्गम मार्गसे उत्तरवाहिनी होकर गयी है। फिर पर्वतोंके बीचसे होकर विषम मार्गसे आगे बढ़ती हुई चार योजन दूर जाकर प्रकाशमें आयी है। वहाँसे पूर्व डेढ़ योजनकी दूरीपर उदक्कल नामक मनोहर स्थानमें यह महानदी पूर्ववाहिनी हो गयी है। वहीं भगवान् शंकरका अगस्त्येश्वर नामसे प्रसिद्ध एक और शिवलिंग है, जो स्मरणमात्रसे मनुष्योंके समस्त पापोंका निवारण करता है। जो मनुष्य उस महानदीमें स्नान करके इन्द्रियोंको संयममें रखते हुए अगस्त्य-मुनिके द्वारा स्थापित भगवान् पार्वतीनाथका दर्शन करते हैं, वे अनेक जन्मोंकी उपार्जित पापराशिको दूर करके अनन्त कालतक स्वर्गलोकमें सुख भोगते हैं। वहाँसे तीर्थसमुदायसे सुशोभित सुवर्णमुखरी नदी पुनः आधे योजनतक उत्तरकी ओर गयी है। वह प्रदेश हिन्ताल, ताल और शाल आदि वृक्षोंसे बड़ा मनोहर प्रतीत होता है। वहीं व्याघ्रपदा नामवाली नदी सुवर्णमुखरी नदीमें मिली है। उन दोनों नदियोंके संगममें स्नान करनेवाले श्रेष्ठ मनुष्य दस अश्वमेध यज्ञोंका पूर्ण फल प्राप्त करते हैं। व्याघ्रपदा नदीके तटपर शंखतीर्थ सुशोभित है, जो सब पापोंका नाश करनेवाला है। अर्जुन! वहाँ शंखेश्वर नामसे प्रसिद्ध भगवान् शिव विराजमान हैं। जो उस तीर्थमें भलीभाँति स्नान करके भगवान् शंकरका दर्शन करते हैं, वे दस अश्वमेध यज्ञोंका फल प्राप्त करके देवलोकमें जाते हैं। व्याघ्रपदासंगमसे एक योजन भूमि आगे जाकर शुभ एवं निर्मल जल बहानेवाली मुनीन्द्रसेवित सुवर्णमुखरी नदी वृषभाचलके समीप पहुँची है।

वहाँ मंगलदायिनी कल्या नामवाली पवित्र नदी सुवर्णमुखरीमें आकर मिली है। वह वृषभाचलसे प्रकट हुई है। तीर्थराजसे उसकी शोभा और बढ़ गयी है। नदियोंमें उत्तम कल्या नदी पापसमूहका नाश करनेवाली है। उन दोनों नदियोंके संगमकी महिमा बतलानेमें कौन समर्थ है? जहाँ नदीके

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

बीचमें ब्रह्मशिला विराजमान है और अगस्त्यजीकी तपस्याके प्रभावसे जहाँ गयातीर्थका वास है। उन दोनों नदियोंके पवित्र संगममें स्नान करनेवाले मनुष्य सौ पुण्डरीक यज्ञोंका फल प्राप्त करते हैं और उनके ब्रह्महत्या आदि समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं। तदनन्तर महानदी सुवर्णमुखरीके उत्तर भागमें आधे योजन दूर सुप्रसिद्ध वेंकटाचल पर्वत विराजमान है, जिसकी ऊँचाई एक योजनकी है। भगवान् मधुसूदनने पहले वाराह शरीरसे इस पर्वतको अपने रहनेके लिये स्वीकार किया था, इसलिये श्रेष्ठ पुरुषोंने इसे वाराहक्षेत्र कहा है। वेंकटाचलपर भगवान् विष्णु श्रीलक्ष्मीजीके साथ सदैव निवास करते हैं। जो लोग वेंकटाचलनिवासी जगदीश्वर विष्णुका स्मरण करते हैं, वे सब दोषोंसे रहित हो सनातन अविनाशी पदको प्राप्त होते हैं।

अर्जुनने पूछा—महामुने! लक्ष्मीपति भगवान् विष्णु परम पवित्र वेंकटाचलपर कैसे प्रकट हुए? किस पुण्यात्मापर प्रसन्न होकर उन्होंने भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले अपने अद्भुत रूपको प्रकाशित किया है?

भरद्वाजजी बोले—कुन्तीनन्दन! पूर्वकालमें भागीरथीके तटपर यज्ञदीक्षापरायण तथा विशुद्ध ज्ञानसे विभूषित महात्मा राजा जनकसे वामदेवजीने जो पापनाशक कथा कही थी, वह भगवान् विष्णुके कीर्तनसे युक्त होनेके कारण सबको पवित्र करनेवाली है। वही कथा अब मैं तुम्हें सुनाऊँगा। भगवान् नारायण ही समस्त प्राणियोंके आदिकारण हैं। सम्पूर्ण विश्व उन्हींका रूप है, वे जगत्के स्रष्टा हैं, उनका स्वरूप चिन्मय तथा निरंजन है। उनके सहस्रों मस्तक, सहस्रों नेत्र और सहस्रों चरण हैं। उन्हींके तेजसे यह सम्पूर्ण जगत् प्रकाशित होता है। उनसे बढ़कर तेज, उनसे बड़ा तप, उनसे बड़ा ज्ञान, उनसे बड़ा योग तथा उनसे बड़ी विद्या भी नहीं है। वे भगवान् श्रीहरि सदा समस्त प्राणियोंमें विद्यमान हैं। समस्त जीव उन्हींमें सुखपूर्वक निवास करते हैं। वे ही यज्ञ, यजमान और यज्ञके स्रुक्-स्रुवा आदि साधन हैं। वे ही फल हैं, वे ही फलदाता हैं और वे ही सबके प्राप्त करनेयोग्य परमगति हैं। हरि, सदाशिव, ब्रह्मा, महेन्द्र, परम तथा स्वराट् आदि सभी नाम उन सर्वेश्वर विष्णुके ही पर्याय कहे गये हैं। जो एकाग्रचित्त होकर परमात्मा नारायणके इस माहात्म्यका अनुसन्धान करता है, वह पुनः संसारमें जन्म नहीं लेता। भगवान् विष्णु चिदानन्दस्वरूप, सबके साक्षी, निर्गुण, उपाधिशून्य तथा नित्य होते हुए भी स्वेच्छासे भिन्न-भिन्न अवस्थाओंको अंगीकार करते हैं। वे पवित्रोंमें परम पवित्र हैं, निराश्रितोंकी परम गति हैं, देवताओंके भी देवता हैं तथा कल्याणमय वस्तुओंमें भी परम कल्याणस्वरूप हैं।* बोध्य पदार्थोंमें एकमात्र वे ही बोध्य हैं। ध्येय तत्त्वोंमें वे ही सर्वोत्तम ध्येय हैं। विनयोंमें सबसे अधिक विनय और नय भी वे ही हैं। वे सम्पूर्ण तेजोंको उत्पन्न करनेवाले तेज हैं, तपस्याओंमें उच्चकोटिकी तपस्या हैं तथा सब प्राणियोंके परम आधार हैं। जनार्दन भगवान् विष्णुका आदि और अन्त नहीं है। उनके स्वरूपको इदमित्थम् रूपसे जान लेनेमें ब्रह्मा आदि भी मूढ हैं। वे अजन्मा होकर भी जन्म लेते हैं, सर्वात्मा होकर भी शत्रुओंका वध करते हैं तथा स्वतन्त्र होकर भी अपने भक्तोंके परतन्त्र रहते हैं। सर्वज्ञ भगवान् गरुडध्वज ही कर्मोंके साक्षी हैं। मुनिलोग एकाग्रचित्त होकर उनके स्वरूपकी खोज करते हैं। भगवान्‌की चतुर्व्यूह नामसे प्रसिद्ध चार मूर्तियाँ हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं—संकर्षण, वासुदेव, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध। पहले प्रणवका उच्चारण हो, तत्पश्चात्

* पवित्राणां पवित्रं यो ह्यगतीनां परा गतिः। दैवतं देवतानां च श्रेयसां श्रेय उत्तमम्॥ (स्क० पु०, वै० वे० ३५।३८)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

भगवान्‌के प्रकाशमान हृदयस्वरूप **नमः** पदका उच्चारण हो, उसके बाद भगवान् और वासुदेव—ये दो पद हों, इनसे जो मन्त्र बनता है, वह (**ॐ नमो भगवते वासुदेवाय**) मन्त्र भगवान्‌के स्वरूपका प्रकाशक है। जो प्रतिदिन एकाग्रचित्त होकर इस मन्त्रराजका जप करता है, वह भगवान् विष्णुकी कृपासे समस्त सिद्धियोंका भाजन होता है। आपत्तियोंका निवारण और सम्पत्तियोंकी प्राप्ति करानेवाले भोग-मोक्षप्रदाता श्रीहरिने कल्पके आदिमें जिस प्रकार प्राणियोंकी सृष्टि की है, वह सुनो। सृष्टिका चिन्तन करते समय भगवान् विष्णुका जो रजोगुणयुक्त तेजोमय स्वरूप प्रकट हुआ, वह ब्रह्माके नामसे विख्यात हुआ। उन्हीं भगवान्‌के मुखसे त्रिभुवनके स्वामी इन्द्र और अग्नि उत्पन्न हुए। उनके नित्य करुणापूर्ण शीतल हृदयसे चन्द्रमा प्रकट हुए, जो जल, समस्त ओषधिवर्ग तथा ब्राह्मणोंके रक्षक हैं। भगवान्‌के नेत्रोंसे सम्पूर्ण विश्वको प्रकाशित करनेवाले तेजोनिधि सूर्य उत्पन्न हुए, जो जाड़ा, गरमी और वर्षाकालके कारण हैं। श्रीहरिके प्राणोंसे समस्त जगत्‌के प्राणस्वरूप महाबली वायुका प्रादुर्भाव हुआ, जो ग्रह, नक्षत्र आदिको धारण करनेवाले हैं। महात्मा भगवान्‌की नाभिसे अन्तरिक्ष और मस्तकसे आकाशकी उत्पत्ति हुई, जो समस्त भूतोंके आविर्भावका कारण है। भगवान् विष्णुके चरणारविन्दोंसे सब भूतोंको आश्रय देनेवाली पृथ्वी उत्पन्न हुई। उन परमात्माके कानोंसे सम्पूर्ण दिशाएँ प्रकट हुईं। उनके चिन्तनमात्रसे भूर्भुवः आदि लोक, रसातल आदि पाताल और यक्ष-राक्षसगण आदि उत्पन्न हुए। भगवान्‌ने अपने मुख, बाहु, ऊरु और चरणोंसे क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र आदिको जन्म दिया। वेद, यज्ञ, घोड़े, गौ और भेड़ आदि जीव, जिनकी उत्पत्तिका कारण अचिन्त्य है, जिन परमेश्वरसे उत्पन्न हुए हैं, उन्हीं देवाधिदेव भगवान् विष्णुके संकल्पसे स्थावर-जंगम प्राणियोंका समुदाय तथा भूत, भविष्य, वर्तमान काल भी प्रकट हुआ है। वे ही बडवानलका रूप धारण करके समुद्रोंका जल पीते हैं और प्रलयकालमें अपने भीतर विलीन हुए समस्त जगत्‌की पुनः कल्पके आरम्भमें सृष्टि करते हैं। सूर्य और चन्द्रमाका रूप धारण करके वे ही अन्धकारका नाश करते और सबको कालके अनुसार धर्ममें लगाते हैं। इस प्रकार वे सब जीवोंकी जीवनवृत्ति चलाते हैं। फिर कल्पान्तके समय समस्त संसारको अपने उदरमें रखकर लीलासे शिशुकी आकृति धारण किये एकार्णवके जलमें वटके पत्रपर शयन करते हैं। इसके बाद प्रचण्ड नागराजके शरीरकी सुखशय्यापर सोकर केवल भगवती लक्ष्मीजीके साथ योगनिद्राका आश्रय लेते हैं। यह सब अपनी इच्छाके अनुसार योगशक्तिको प्रवृत्त करनेवाले भगवान् मुकुन्दकी लीला है। उन परमेश्वरको यथार्थ रूपसे कोई भी नहीं जानता। जब-जब धर्मकी हानि होती और अधर्म बढ़ने लगता है। अथवा जब-जब देवताओंको बड़ी भारी पीड़ा भोगनी पड़ती है और जब-जब अपने भक्त साधु पुरुषोंपर भय उत्पन्न करनेवाली भारी विपत्ति अनिवार्यरूपसे आ जाती है, तब-तब कौतुकवश उस अवसरके अनुकूल रूप धारण करके भगवान् शीघ्र ही अधर्मका निवारण और जगत्‌का कल्याण करते हैं। स्वयं ही रजोगुणका आश्रय लेकर वे ब्रह्माके नामसे प्रसिद्ध हो सृष्टि करते हैं, सत्त्वगुणमें स्थित हो हरि-नाम धारण करके सारे संसारके पालन-पोषणका भार ढोते हैं और तमोगुणी वृत्तिको अपनाकर हर-नामसे प्रसिद्ध हो सबका संहार करते हैं। भगवान् मधुसूदनकी महिमाको यथार्थ रूपसे जाननेवाला कोई नहीं है।

साठ विनाडिकाकी एक नाड़ी (घटिका) और साठ नाड़ियोंका एक दिन होता है। तीस दिनका एक मास कहा गया है, जिसमें दो पक्ष होते हैं। दो मासकी एक ऋतु और छः ऋतुओंका एक वर्ष होता है। वर्षमें दो अयन होते हैं। यह वर्ष ही जाड़ा, गरमी और वर्षाका आधार है। देवताओं

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

और दैत्योंका दिन-रात एक-दूसरेके विपरीत है। सूर्यका उत्तरायण देवताओंका दिन और दैत्योंकी रात्रि, इसी प्रकार दक्षिणायन दैत्योंका दिन और देवताओंकी रात्रि है। यह सब क्रमके अनुसार समझना चाहिये। अर्जुन! तैंतालीस लाख बीस हजार वर्षोंका एक महायुग होता है, जिसमें सत्ययुगसे लेकर कलियुगतक सभी युग सम्मिलित हैं। इकहत्तर महायुगोंका एक मन्वन्तर होता है। स्वायम्भुव, स्वारोचिष, उत्तम, तामस, रैवत तथा चाक्षुष—ये छः मनु अपने इन्द्र, देवता और ऋषियोंसहित व्यतीत हो चुके हैं। इस समय सातवें मनु वर्तमान हैं। इनके समयमें आदित्य, वसु तथा रुद्र आदि देवतागण हैं। सौ अश्वमेध यज्ञोंका अनुष्ठान करके तेजस्वीने इन्द्रपद प्राप्त किया है। विश्वामित्र, मैं (भरद्वाज), अत्रि, जमदग्नि, कश्यप, वसिष्ठ तथा गौतम ये ही सप्तर्षि हैं। वैवस्वत मनुके महाबली शूरवीर पुत्र धर्मपरायण राजा इक्ष्वाकु आदिने इस पृथ्वीका पालन किया है। सूर्य, दक्ष, ब्रह्म, धर्म तथा रुद्र इन पाँचोंके पाँच सावर्णिसंज्ञक पुत्र और रौच्य तथा भौम आदि ये सात भविष्यमें होनेवाले मनु हैं। ये चौदहों मनु ब्रह्माके एक दिनमें पूरे हो जाते हैं। इसीका नाम कल्प है। उसके अन्तमें उसीके समान रात्रि होती है। ब्रह्माके दिनकी समाप्ति होते समय पृथ्वीपर सौ वर्षोंतक बड़ा भयंकर उत्पात होता है। उस उपद्रवके समय पृथ्वी सूखकर रसहीन हो जाती है, जिससे उसपर रहनेवाले चार प्रकारके प्राणी नष्ट हो जाते हैं। तब सूर्यदेव अग्निके समान आगकी ज्वाला उगलती हुई प्रज्वलित लपटोंकी आकारवाली किरणोंसे संयुक्त होते हैं। उनके दुःसह तापसे गाँव, नगर, शैल, वन और वृक्ष आदिके भस्म हो जानेपर कछुएकी पीठकी-सी आकृति धारण करनेवाली यह पृथ्वी तपाये हुए लोहेके पिण्डकी भाँति जान पड़ती है। तब ब्रह्माजीके अंगोंसे महामेघ उत्पन्न होते हैं और घोर गर्जना करते हुए समस्त आकाशको आच्छादित कर लेते हैं। वे सौ वर्षोंतक बड़ी भारी वर्षा करते हैं। उस जलसे सूर्यद्वारा उत्पन्न की हुई प्रचण्ड आग बुझ जाती है। वे महामेघ पुनः सौ वर्षोंतक भयंकर वृष्टि करते हैं। उस वृष्टिके जलसे समुद्र अपनी मर्यादा लाँघकर क्षोभको प्राप्त होते हैं। उस समय पृथ्वी जलमें डूबकर पातालके मूलमें चली जाती है। वह ब्रह्माजीकी शक्तिसे अवलम्बित होनेके कारण किसी प्रकार नष्ट नहीं होती। तदनन्तर ब्रह्माजीके निःश्वाससे वायु प्रकट होती है, जो कल्पान्तमें उत्पन्न हुए समस्त महामेघोंको छिन्न-भिन्न कर देती है। फिर वह वायु भी सौ वर्षोंतक दुर्निवार वेगसे बहती रहती है। तत्पश्चात् उस वायुको भगवान्‌के नाभिकमलमें छोड़कर भगवान् ब्रह्मा उस जलमें योगनिद्राका आश्रय लेकर सोते हैं। योगनिद्रामें पड़े-पड़े ब्रह्माजीकी उतनी ही बड़ी रात व्यतीत होती है, जितना बड़ा उनका दिन है। रात बीतनेपर ब्रह्माजी उठते हैं और भगवान् विष्णुकी आज्ञासे पूर्ववत् सब जीवोंकी वेगपूर्वक सृष्टि करने लगते हैं। प्रत्येक कल्पमें समुचित रूप धारण करके भगवान् विष्णु जगत्‌का पालन करते हैं। इस कल्पमें उन्होंने श्वेत वर्णके यज्ञ वाराहका रूप धारण किया और उसी वाराह-शरीरसे भूतलपर विहार करते हुए उन्होंने अपने पूर्व कल्पोंके निश्चित निवासस्थान वेंकटाचल पर्वतपर पदार्पण किया। स्वामिपुष्करिणीके तटपर चिरकालतक विचरण करते हुए वाराहजीने कमलके आसनपर विराजमान भक्तियुक्त ब्रह्माजीको देखा। ब्रह्माजीने भक्तिभावन भगवान्‌की पूजा करके प्रार्थना की—'प्रभो! अपने पुरातन दिव्य स्वरूपको धारण कीजिये।' ब्रह्माजीकी यह विनय सुनकर भगवान्‌ने वाराहकी आकृति त्याग दी और अनन्य भावसे भंजन करनेयोग्य विश्वमय रूपको ग्रहण कर लिया।

~~~o~~~

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth
~~~

वेंकटाचलपर राजा शंख और महर्षि अगस्त्य आदिको भगवान्‌का प्रत्यक्ष दर्शन तथा वरप्राप्ति

अर्जुनने पूछा—मुने! भगवान् श्रीहरि नेत्रोंद्वारा दर्शन और मनद्वारा चिन्तन आदिके विषय नहीं हैं, तो भी वे यहाँ मनुष्योंको प्रत्यक्ष कैसे हुए?

भरद्वाजजीने कहा—अर्जुन! हैहयवंशमें श्रुत नामसे प्रसिद्ध एक राजा हो गये हैं, जिन्होंने पृथ्वी और यहाँकी प्रजाका दीर्घकालतक अपनी सन्तानकी भाँति पालन किया था। उनके पुत्र शंख हुए, जो समस्त गुणोंके निधि और सब शास्त्रोंमें कुशल थे। उन्होंने भी पृथ्वीका न्यायपूर्वक शासन किया। कमलके समान नेत्रोंवाले जगदीश्वर भगवान् विष्णुमें राजा शंखकी निश्चल एवं अनन्य भक्ति थी। उन्होंने दृढ़ निश्चयपूर्वक अद्भुत महिमावाले देवाधिदेव जगत्पति अनन्य पुरुषोत्तमका सदैव ध्यान करते हुए नाना प्रकारके व्रत, दान और पुण्य किये तथा वेदोंके द्वारा जाननेयोग्य भगवान् मधुसूदनकी प्रीतिके लिये ही अश्वमेध आदि यज्ञोंका अनुष्ठान किया। भक्तवत्सल केशवमें मन लगाकर वे प्रतिदिन गोविन्दका स्मरण, अविनाशी अच्युतका जप, कमलनयन विष्णुका पूजन तथा शार्ङ्ग धनुषधारी श्रीहरिका कीर्तन करते थे। पुराणके विद्वानोंद्वारा कही जानेवाली पवित्र भगवत्कथाओंको, जो संसार-समुद्रसे पार उतारनेवाली हैं, वे सदैव सुना करते थे। भगवत्प्रीतिके लिये ही ब्राह्मणोंकी पूजा-अर्चा करते थे। इस प्रकार सर्वथा अविराम गतिसे श्रीहरिकी आराधनामें संलग्न होनेपर भी राजा शंखने परम स्वतन्त्र भगवान् पुरुषोत्तमका कभी प्रत्यक्ष दर्शन नहीं पाया। भगवान्‌का दर्शन न पानेसे उनका हृदय शोकसे व्याकुल हो गया, वे बड़ी चिन्ताको प्राप्त हुए।

शंख बोले—मैंने बीते हुए सहस्राधिक जन्मोंमें बहुत बड़ा पाप किया है, जिसके कारण आजतक मुझे भगवान् विष्णुका दर्शन नहीं प्राप्त हुआ। अनेक जन्मोंमें उपार्जित सम्पूर्ण तपस्याओंका यह एक ही अखण्ड फल है कि मधुसूदन भगवान् विष्णुका दर्शन प्राप्त हो। अहो! भगवान् मेरे नेत्रोंके समक्ष कैसे प्रकट होंगे? कानोंसे उनके वचन सुननेका सौभाग्य कैसे प्राप्त होगा?

इस प्रकार चिन्तासे व्याकुल होकर जब राजाके मनमें जीवित रहनेकी अभिलाषा नहीं रह गयी, तब अव्यक्तमूर्ति भगवान् विष्णुने सबके सुनते हुए कहा—'राजन्! तुम शोकके अधीन न होओ। तुम तो एकमात्र मेरी शरणमें आये हुए साधु भक्त हो। मैं तुम्हारा त्याग कैसे कर सकता हूँ। यह वेंकट नामक पर्वत तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध है। राजन्! यहाँका निवास मुझे वैकुण्ठसे भी अधिक प्रिय है। उस श्रेष्ठ पर्वतपर जाकर भक्तिपूर्वक तपस्या करते रहनेपर मैं तुम्हें प्रत्यक्ष दर्शन दूँगा। तुम्हारी ही तरह महर्षि अगस्त्य भी ब्रह्माजीकी आज्ञासे अंजनाचलके महानिवासमें तपस्या करनेके लिये आवेंगे। उसी पवित्र पर्वतपर निवास करते हुए तुम भी मेरी आराधना करो। इससे मेरा दर्शन प्राप्त कर लोगे।'

भगवान्‌के इस प्रकार आज्ञा देनेपर राजा शंखको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने मन-ही-मन अपनेको धन्य माना और अपने पुत्र वज्रको प्रजापालनके कार्यमें नियुक्त करके भगवान् विष्णुके दर्शनकी आकाङ्क्षासे नारायणगिरिको प्रस्थान किया। उस पर्वतके ऊँचे शिखरपर पहुँचकर उन्होंने अमृतके समान दिव्य जलसे परिपूर्ण कल्याणमयी स्वामिपुष्करिणी देखी और उसके किनारे कुटी बनाकर स्नान, पान आदिके द्वारा सन्तोष लाभ किया। जगदीश जनार्दनको अपने समस्त कर्म समर्पित करके राजा शंख प्रतिदिन जप और

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

ध्यानमें संलग्न रहने लगे। वहाँ उन्होंने तपस्या भी की। इसी समय सैकड़ों मुनियोंसे घिरे हुए अगस्त्यजी भी उस आदिपर्वतपर आये और वहाँकी आश्चर्यमयी वस्तुओंको देखते हुए सब ओर विचरते रहे। स्कन्दधारा आदि तीर्थोंमें स्नान करके वहाँ उन्होंने जगदीश्वर भगवान् विष्णुकी बहुत समयतक आराधना की। परंतु कमलनयन भगवान् श्रीहरिको कहीं भी प्रत्यक्ष नहीं देखा। इससे वे चिन्ता और शोकमें डूब गये। उस समय बृहस्पति, शुक्र तथा राजा उपरिचर और वसु—ये सब महानुभाव अगस्त्यजीके पास आये और इस प्रकार बोले—''मुनिश्रेष्ठ! लोकनाथ ब्रह्माजीने हमें जो आज्ञा दी है, उसे हम आपको बता रहे हैं—'दक्षिण दिशामें वेंकटाचल नामक पर्वत है। वहाँका निवासस्थान भगवान् विष्णुको श्वेतद्वीपसे भी अधिक प्रिय है। जगद्गुरु गोविन्द उस पर्वतपर महर्षि अगस्त्य तथा राजा शंखको अपने स्वरूपका प्रत्यक्ष दर्शन करायेंगे। उस समय सब देवताओं, ऋषियों तथा अन्य सब लोगोंको भी देवाधिदेव श्रीहरिका दर्शन होगा। यह बात शीघ्र ही होनेवाली है।' ब्रह्माजीके ऐसा कहनेपर हमलोग यहाँ आये हैं और भाग्यवश यहाँ आपका दर्शन भी हमें मिल गया। अब हम आपके साथ स्वामिपुष्करिणीके तटपर भगवद्भक्तोंमें श्रेष्ठ राजा शंखका भी दर्शन करेंगे।'' यह सुनकर अगस्त्य मुनि शोकसमूहका त्याग करके शीघ्र ही उन सबके साथ चल दिये। उस समय वहाँ यत्र-तत्र चौड़ी शिलाओंपर बैठे हुए तथा भगवान् विष्णुके गुण-वैभवका गान करते हुए अनेकानेक सिद्ध पुरुष उन्हें दिखायी दिये। फिर उन्होंने निर्मल जलवाली दिव्य स्वामिपुष्करिणीका भी दर्शन किया और उसके किनारे आश्रम बनाकर रहनेवाले राजा शंखको भी देखा, जो मन, वाणी और शरीरद्वारा होनेवाले समस्त कर्म भगवान् विष्णुको समर्पित करके विराजमान थे। उन्हें आया देख राजाने सबका यथावत् सत्कार किया। फिर सब लोग एक-दूसरेका समादर करते हुए वहाँ बैठे और उत्कण्ठित होकर गोविन्दके नामोंका कीर्तन करते हुए कृतार्थ हो गये।

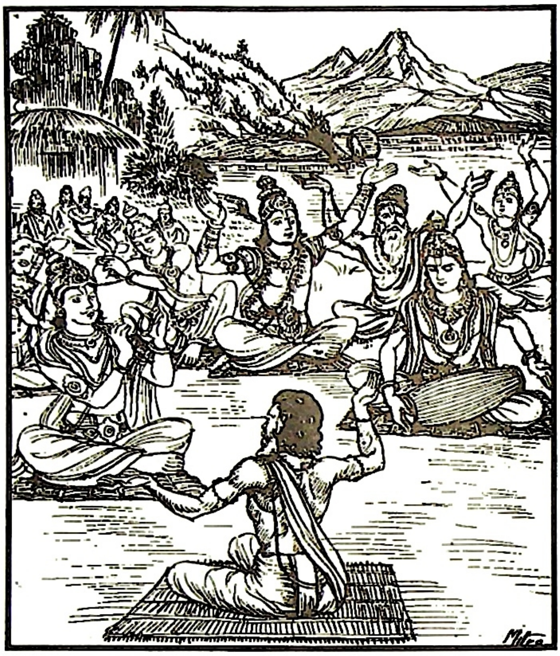

सम्पूर्ण जगत्के स्वामी भगवान् विष्णुमें मन लगाकर उन्हींकी पूजा और स्तुतिमें लगे हुए उन सब लोगोंके तीन दिन व्यतीत हो गये। तीसरे दिन रातमें उन सबको नींद आ गयी। फिर चौथे पहरमें उत्तम सपना देखा—भगवान् पुरुषोत्तम हाथोंमें शंख, चक्र और गदा धारण किये प्रसन्नमुखसे वर देनेके लिये खड़े हैं। उनके नेत्र खिले हुए हैं। भगवान्की यह झाँकी देखकर सभी प्रसन्नचित्त होकर उठे और कुटीसे निकलकर सबने स्वामिपुष्करिणीके पावन जलमें विधिपूर्वक स्नान किया। तत्पश्चात् प्रातःकालोचित समस्त कर्मोंका अनुष्ठान करके भगवान् विष्णुकी आराधना करनेके लिये वे राजाके आश्रमपर लौटे। मार्गमें पक्षियोंद्वारा ऐसे शुभ शकुनकी सूचना मिली जो तत्काल कल्याणकी प्राप्ति करानेवाला था। उस शकुनको देखकर सबको यह विश्वास हो गया कि भगवान्का कृपाप्रसाद अवश्य प्राप्त होगा।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

तदनन्तर त्रिभुवन-विधाता भगवान् जनार्दनका पूजन करके उन्होंने वेदवर्णित पवित्र स्तोत्रोंद्वारा उनका स्तवन किया। स्तुतिके अन्तमें महर्षि अगस्त्य और राजा शंख भगवान्‌के अष्टाक्षर (**ॐ नमो नारायणाय**) मन्त्रका जप करने लगे।

इस प्रकार जगत्स्वामी श्रीहरिमें चित्त लगाये हुए उन महात्माओंके आगे एक महान् अद्भुत तेज प्रकट हुआ, जो कोटि-कोटि सूर्य-चन्द्रमा और अग्नियोंके तेजपुंज-सा प्रतीत होता था। उस तेजका दर्शन करके सबको बड़ा आश्चर्य हुआ और उन्होंने उसके भीतर परमानन्दविग्रह दिव्यरूपधारी भगवान् श्रीनारायणका चिन्तन किया, जो मन और वाणीके मार्गसे सर्वथा दूर हैं, अपने विख्यात ऐश्वर्यसे सदा प्रकाशित होते हैं, सहस्र नेत्र, सहस्र भुजा और सहस्र चरणोंसे संयुक्त हैं, तपाये हुए सुवर्णके समान देदीप्यमान कान्तिसे जिनका रूप बड़ा मनोहर लगता है। जो अपने वक्षःस्थलपर लक्ष्मीको धारण करते और कौस्तुभमणिसे सुशोभित होते हैं। जिनका स्वरूप अचिन्त्य है। जो अनादि और अनन्त हैं, समस्त ब्रह्माण्डको अपने-आपमें ही प्रकाशित करते हैं और सर्वत्र व्यापक हैं। उन्हीं भगवान् जगन्नाथको अपने सामने देखकर अगस्त्य और शंख आदि सब मुनियोंके मनमें बड़ा हर्ष हुआ। सबने बार-बार भगवान्‌के चरणोंमें मस्तक झुकाया। उस समय लोकरक्षाके लिये सब ओर भ्रमण करनेवाले भगवान्‌के तेज-बलसम्पन्न आयुध उनकी सेवामें उपस्थित हो गये। सूर्यके समान तेजस्वी चक्र, दिव्य गदा, नन्दक नामक खड्ग, कमल तथा भयानक गर्जना करनेवाला चन्द्रमाके समान कान्तिमान् पांचजन्य शंख—ये सभी उपस्थित हो गये। शंखने अपनी ध्वनिसे समस्त ब्रह्माण्डको परिपूर्ण कर दिया। उस शंखनादको सुनकर वसिष्ठ आदि मुनि, गन्धर्व, नाग, किन्नर, विष्वक्सेन, गरुड़ तथा जय-विजय आदि श्वेतद्वीपनिवासी पार्षद भी आये। देववृक्षोंसे उत्पन्न पारिजात आदि फूलोंकी वहाँ अद्भुत वर्षा होने लगी, जिसकी घनीभूत सुगन्धसे सबका अन्तःकरण आमोदित हो उठा। भक्तवत्सल कमलनयन भगवान् विष्णुको प्रसन्न देखकर सब देवताओं और ऋषियोंने नाना प्रकारके स्तोत्रोंसे साष्टांग प्रणामपूर्वक स्तवन किया।

ब्रह्मा आदि देवता बोले—दयासागर भगवान् विष्णु! आपकी जय हो। कमलनयन! आपकी जय हो। समस्त लोकोंको एकमात्र वर देनेवाले भक्तार्तिभंजन! आपकी जय हो, जय हो। आप अनन्त हैं, अविनाशी हैं, परम शान्त हैं। मन और वाणीकी आपतक पहुँच नहीं है। आपका स्वरूप विशुद्ध सच्चिदानन्दमय है। आपको सम्यक् रूपसे कौन जानता है? विद्वान् पुरुष आपको सूक्ष्मसे भी अत्यन्त सूक्ष्म, स्थूलसे भी स्थूल, सबके भीतर विराजमान, प्रकृतिसे परे अच्युत पुरुष कहते हैं। वेदान्तका सारभूत ब्रह्म आपका स्वरूप है। आप सबके भीतर और बाहर भी विद्यमान हैं। मायाके अधीन रहनेवाले देहाभिमानी पुरुषोंमेंसे कौन आपका वर्णन करनेमें समर्थ है? आपका यह स्वरूप अत्यन्त भयदायक है, इसे देखकर हम भयसे उद्विग्न हुए जाते हैं; अतः आप शान्तरूप धारण करें।

ब्रह्मा आदि देवताओंके द्वारा इस प्रकार स्तुति करनेपर भगवान् गरुडध्वजने उसी क्षण सौम्यरूप धारण कर लिया। उनका मुख चन्द्रमण्डलके समान शोभा पाने लगा। प्रचण्ड तेज शान्त हो गया। श्रीअंगोंकी श्यामकान्ति नील कमलदलके समान सुशोभित हुई। दिव्य शरीरपर सुनहरे रंगका पीताम्बर छबि पा रहा था। भगवान् रत्नमय आभूषणोंसे विभूषित दिखायी देने लगे। उनके चारों हाथ शंख, चक्र, गदा और पद्मसे शोभायमान थे। भगवान् लक्ष्मीपतिके इस मनोहर रूपको देखकर सबने बार-बार प्रणाम किया। भगवान्‌ने अभीष्ट वरदानसे ब्रह्मा आदि देवताओंको सन्तुष्ट करके मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यसे कहा—'मुनीन्द्र! तुमने

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

मेरे लिये कठोर व्रतोंका अनुष्ठान करके बहुत क्लेश उठाया है। अतः मैं तुम्हें अभीष्ट वरदान दूँगा। बोलो क्या चाहते हो?' भगवान् लक्ष्मीपतिका यह वचन सुनकर अगस्त्यजीके सम्पूर्ण अंगोंमें रोमांच हो आया। वे भगवान्‌को बार-बार प्रणाम करके बोले—'प्रभो! आपने जो मेरा इतना आदर किया, इसीसे मैंने जो भी हवन किया है, जो भी तप, स्वाध्याय और श्रवण किया है वह सब सफल हो गया। भगवन्! मैं तो आपको ढूँढ़ रहा था और आप मुझे ढूँढ़ते हुए आ गये। आपकी कृपासे मैं सब कुछ पहले ही पा गया हूँ। माधव! इस समय बहुत सोचने-विचारनेपर भी मुझे ऐसी कोई वस्तु नहीं दिखायी देती, जो प्राप्त करने योग्य हो। अतः आपके चरणारविन्दोंमें निरन्तर ऐसी ही भक्ति बनी रहे, यही कृपा कीजिये। सुवर्णमुखरी नदीके जलमें स्नान करके जो लोग वेंकटाचलपर विराजमान आपका दर्शन करें, वे भोग और मोक्षके भी भागी हों। भगवन्! थोड़ी आयुवाले अज्ञानी मनुष्य व्रत, स्वाध्याय और कर्मोंद्वारा आपका दर्शन नहीं कर सकते। अतः आप सबपर कृपा करनेके लिये सदैव उस पर्वतपर निवास कीजिये और सबको मनोवांछित वस्तु देनेवाले होइये।'

श्रीभगवान्‌ने कहा—ब्रह्मन्! तुमने जो प्रार्थना की है वह सब पूर्ण होगी। आजसे वैकुण्ठ नामवाले इस पर्वतपर मैं सदा निवास करूँगा। सुवर्णमुखरी नदीके जलमें स्नान करके अपने पाप-पंकको धोकर जो लोग एकाग्रचित्तसे इस वैकुण्ठ शैलपर मेरा दर्शन करेंगे, वे पुनरावृत्तिसे रहित तथा केवल परमानन्दसे प्रकाशमान मेरे परम धामको प्राप्त होंगे। जो मनुष्य जिन कामनाओंकी अपेक्षासे यहाँ आकर मेरा दर्शन करेंगे, वे उन-उन कामनाओंको निःसन्देह प्राप्त कर लेंगे।

अगस्त्य मुनिसे ऐसा कहकर भगवान् विष्णुने राजा शंखकी ओर देखा और ब्रह्मा आदिके सुनते हुए कहा—राजन्! मैं तुम्हारी भक्तिसे बहुत सन्तुष्ट हूँ, तुम कोई मनोवांछित वर माँगो।

शंख बोले—भगवन्! आपके चरण-कमलोंकी सेवाके अतिरिक्त दूसरा मैं कुछ नहीं माँगता। आपके भक्त जिस गतिको पाते हैं, उसी उत्तम गतिके लिये मैं भी याचना करता हूँ।

श्रीभगवान्‌ने कहा—शंख! तुमने जो कुछ माँगा है, वह सब उसी रूपमें प्राप्त होगा। मेरी सेवामें लगे रहनेवाले कल्याणमय पुरुषोंके लिये कौन-सी वस्तु दुर्लभ है?

तदनन्तर ब्रह्मा आदि सब देवताओंको विदा करके भगवान् कमलनयन विष्णु वहीं अन्तर्धान हो गये। अर्जुन! यह वेंकटाचलका प्रभाव तुम्हें बताया गया है। इस पावन कथाको श्रवण करके सब मनुष्य पापोंसे मुक्त हो जाते हैं। ब्रह्माण्डमें भगवान् वेंकटेश्वरके समान दूसरा कोई देवता न हुआ है न होगा और वेंकटाचलके समान कोई तीर्थस्थान न हुआ है न होगा। स्वामितीर्थके समान सरोवर अन्यत्र कहीं नहीं है। जो मनुष्य प्रतिदिन प्रातःकाल उठकर भगवान् वेंकटेश्वरका स्मरण करते हैं, मोक्ष उनके हाथमें है। जो श्रेष्ठ मानव वेंकटाचलका माहात्म्य सुनते हैं, उन्हें इहलोक और परलोकमें भोग और मोक्ष प्राप्त होते हैं।

आकाशगंगातीर्थमें अंजनाकी तपस्या और उसे वायुदेवद्वारा वरदानकी प्राप्ति

सूतजी कहते हैं—पूर्वकालमें पुत्ररहित अंजना दुःखी होकर तपस्यामें संलग्न हुई। उसे देखकर मुनियोंमें श्रेष्ठ विष्णुभक्त मतंगजीने कहा—'अंजना देवि! उठो, तुम किस लिये तपस्यामें लगी हो?' अंजनाने कहा—'मुनिश्रेष्ठ! केशरी नामक श्रेष्ठ वानरने मेरे पितासे मेरे लिये याचना की। तब

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

पिताजीने मुझे उनकी सेवामें समर्पित कर दिया। पतिदेवके साथ सुखपूर्वक विहार करते हुए मुझे बहुत समय व्यतीत हो गया, परंतु अबतक मुझे कोई पुत्र नहीं प्राप्त हुआ। मैंने किष्किन्धा महापुरीमें अनेक प्रकारके व्रत भी किये तथापि पुत्र न पाकर मुझे दु:ख हुआ। अत: अब मैं तपस्यामें तत्पर हुई हूँ। विप्रवर! किस प्रकार मुझे त्रिभुवनमें प्रसिद्ध पुत्र प्राप्त होगा, यह बताइये। मैं आपके आगे मस्तक झुकाकर यही माँगती हूँ।' तब मुनिवर मतंगने अंजनासे कहा—'देवि! सुनो। यहाँसे दक्षिण दिशामें दस योजनकी दूरीपर घनाचल नामसे प्रसिद्ध पर्वत है, जो भगवान् नृसिंहका निवासस्थान है। उसके ऊपर परम मनोहर ब्रह्मतीर्थ है। उसके पूर्वभागमें दस योजन दूर सुवर्णमुखरी नामवाली श्रेष्ठ नदी बहती है। उस नदीके उत्तरभागमें वृषभाचल (वेंकटाचल) नामक पर्वत है और उस पर्वतके शिखरपर स्वामिपुष्करिणी तीर्थ है। वहाँ जाकर उसके शुभ जलका दर्शन करते ही तुम्हारा मन पवित्र हो जायगा। उसमें विधिपूर्वक स्नान करके वाराहस्वामीको प्रणाम करो और भगवान् वेंकटेश्वरको नमस्कार करके स्वामितीर्थके उत्तर जाओ। वहाँ आकाशगंगा नामसे प्रसिद्ध एक तीर्थ शोभा पाता है। उसमें संकल्पपूर्वक विधिवत् स्नान करके उसके शुभ जलको पी लेना। फिर उस तीर्थके सामने खड़ी हो वायुदेवकी प्रसन्नताके उद्देश्यसे तपस्या करना। ऐसा करनेसे तुम्हें देवता, राक्षस, ब्राह्मण, मनुष्य तथा अस्त्र-शस्त्रोंसे भी अवध्य पुत्र प्राप्त होगा।'

मुनिके ऐसा कहनेपर अंजना देवीने उन्हें बार-बार प्रणाम किया और पतिको साथ लेकर वह शीघ्र ही वेंकटाचल पर्वतपर गयी। वहाँ स्वामिपुष्करिणीमें नहाकर उसने वाराह स्वामीको प्रणाम किया और भगवान् वेंकटेश्वरके चरणोंमें भी मस्तक नवाया। तत्पश्चात् वह शीघ्र ही आकाशगंगाके तटपर गयी और उसमें नहाकर उसके उत्तम जलको पीकर उसीके तटपर तीर्थकी ओर मुख करके खड़ी हो प्राणस्वरूप वायुदेवताकी प्रसन्नताके लिये संयम एवं व्रतका पालन करती हुई तपस्या करने लगी। तब सूर्यदेवके मेषराशिपर रहते समय चित्रानक्षत्रयुक्त पूर्णिमा तिथिको परम बुद्धिमान् वायुदेव प्रकट हुए और इस प्रकार बोले—'उत्तम व्रतका पालन करनेवाली देवि! तुम कोई वर माँगो। मैं तुम्हारा मनोरथ पूर्ण करूँगा।' उनकी बात सुनकर सती अंजनाने कहा—'महाभाग! मुझे पुत्र प्रदान कीजिये।' वायुदेवताने कहा—'सुमुखि! मैं ही

तुम्हारा पुत्र होऊँगा और तुम्हारे नामको विश्वमें विख्यात कर दूँगा।' अंजनाको ऐसा वरदान देकर महाबली वायु वहीं रहने लगे और अंजना देवी भी वह वरदान पाकर अपने पतिके साथ बहुत प्रसन्न हुई।

वेंकटाचल-माहात्म्य (अथवा भूमिवाराहखण्ड) सम्पूर्ण।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

उत्कलखण्ड या पुरुषोत्तमक्षेत्र-माहात्म्य

भगवान् विष्णुका ब्रह्माजीको पुरुषोत्तमक्षेत्रमें जानेका आदेश

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्॥

'भगवान् नारायण, नरश्रेष्ठ नर, देवी सरस्वती तथा महर्षि वेदव्यासको नमस्कार करके तत्पश्चात् भगवान्‌की विजय-कथासे परिपूर्ण इतिहास-पुराणादिका कीर्तन करे।'

मुनि बोले—भगवन्! आप सब शास्त्रोंके तत्त्वज्ञ तथा सब तीर्थोंके महत्त्वको जाननेवाले हैं। भगवन्! पुरुषोत्तमक्षेत्र परम पावन है, जहाँ भगवान् लक्ष्मीपति विष्णु मानवलीलाके अनुसार काष्ठमय विग्रह धारण करके विराजमान हैं, जो दर्शनमात्रसे ही सबको मोक्ष देनेवाले और सब तीर्थोंका फल प्रदान करनेवाले हैं, उनकी महिमाका हमसे विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये।

जैमिनिजीने कहा—मुनियो! यह अत्यन्त गूढ़ रहस्य है, सुनो। यद्यपि ये भगवान् जगन्नाथ सर्वत्र व्यापक और सबको उत्पन्न करनेवाले हैं तथापि यह परम उत्तम पुरुषोत्तमक्षेत्र इन महात्मा जगदीश्वरका साक्षात् स्वरूप है। वहाँ वे स्वयं ही शरीर धारण करके निवास करते हैं। इसीलिये उस क्षेत्रको भगवान्‌ने अपने नामसे प्रसिद्ध किया। वह क्षेत्र दस योजनके विस्तारमें है। उसका प्रादुर्भाव तीर्थराज समुद्रके जलसे हुआ है तथा वह सब ओर बालुकाराशिसे व्याप्त है। उसके मध्यभागमें महान् नीलगिरि उस तीर्थकी शोभा बढ़ाता है। पूर्वकालमें वराहरूपधारी भगवान्‌ने इस पृथ्वीको समुद्रके जलसे निकालकर जब सब ओरसे बराबर करके स्थापित किया और पर्वतोंद्वारा सुस्थिर कर दिया, तब ब्रह्माजीने पहलेकी भाँति समस्त चराचर जगत्‌की सृष्टि करके तीर्थों, सरिताओं, नदियों और क्षेत्रोंको यथास्थान स्थापित किया। तत्पश्चात् सृष्टिके भारसे पीड़ित होकर वे सोचने लगे। आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक— इन तीन प्रकारके तापोंसे पीड़ित होनेवाले संसारके जीव इनसे किस प्रकार मुक्त होंगे। इस प्रकार विचार करते हुए ब्रह्माजीके मनमें यह भाव आया कि मैं मुक्तिके एकमात्र कारण परमेश्वर श्रीविष्णुका स्तवन करूँ।

तब ब्रह्माजी बोले—शंख, चक्र और गदा धारण करनेवाले जगदाधार! आपको नमस्कार है। सम्पूर्ण विश्वकी सृष्टि करनेवाला मैं ब्रह्मा आपके नाभिकमलसे उत्पन्न हुआ हूँ। अतः जगन्मय! अपने यथार्थ स्वरूपको आप ही जानते हैं। जिनकी मायासे महत्तत्त्व आदि सम्पूर्ण जगत् रचा गया है और जिनके निःश्वाससे प्रकट हुआ शब्दब्रह्म (वेद) ऋक्, साम और यजु— इन तीन भेदोंमें अभिव्यक्त हुआ है, जिसका सहारा लेकर मैंने सम्पूर्ण भुवनोंकी सृष्टि की है, उन्हीं आप परमात्मासे भिन्न स्थूल-सूक्ष्म, ह्रस्व-दीर्घ आदि कोई भी वस्तु नहीं है। भगवन्! तीनों गुणोंके विभागपूर्वक भिन्न-भिन्न कार्योंके रूपमें आप ही यह चराचर जगत् हैं; ठीक उसी तरह जैसे सुवर्ण ही कंकण, कुण्डल आदिके रूपमें विभासित होता है। प्रभो! आप ही सृष्टिकर्ता और सृज्य पदार्थ हैं तथा आप ही पोषक और पोष्य जगत् हैं। परमेश्वर! आप ही आधार, आधेय और उन दोनोंको धारण करनेवाले हैं। मनुष्य आपकी ही प्रेरणासे कर्म करता है और आप ही द्वारा की हुई व्यवस्थासे वह कर्मानुसार गति प्राप्त करता है। परमेश्वर! आप ही इस जगत्‌की गति, भर्ता और साक्षी हैं। चराचरगुरो! आप अखिल जीवस्वरूप हैं। दयामय जगन्नाथ! मैं सदा आपकी शरणमें हूँ, आप मुझपर प्रसन्न होइये।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

ब्रह्मा और यमराजके द्वारा भगवान् विष्णुका स्तवन

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

ब्रह्माजीके इस प्रकार स्तुति करनेपर मेघके समान श्याम, शंख, चक्र आदि चिह्नोंसे उपलक्षित भगवान् विष्णु गरुड़पर आरूढ़ हो वहाँ प्रकट हुए। उनका मुखकमल पूर्णतः प्रकाशमान था। उन्होंने ब्रह्माजीसे कहा—'ब्रह्मन्! तुम जिस कार्यके लिये मेरी स्तुति करते हो, वह सम्भव नहीं जान पड़ता। तथापि यदि इसके लिये तुम्हारा उद्योग है, तो जिस क्रमसे यह सिद्ध होता है, वह तुम्हें बतला रहा हूँ। ब्रह्मन्! मैं तुम हो और तुम मैं हूँ। सम्पूर्ण जगत् मुझसे व्याप्त (विष्णुमय) है। जहाँ तुम्हारी रुचि है, वहाँ मेरी है। अतः तुम्हारी मनोवांछाकी सिद्धिका उपाय बतलाता हूँ—समुद्रके उत्तर तटपर महानदीके दक्षिण भागमें जो प्रदेश है, वह इस भूतलपर सब तीर्थोंका फल देनेवाला है। वहाँ जो उत्तम बुद्धिवाले मनुष्य निवास करते हैं, वे अन्य जन्मोंमें किये हुए पुण्यका फल भोगते हैं। ब्रह्मन्! समुद्रके किनारे जो नीलपर्वत सुशोभित हो रहा है, वह पग-पगपर अत्यन्त श्रेष्ठ और परम पावन है। वह स्थान इस पृथ्वीपर गुप्त है। वहाँ सब प्रकारके संगोंसे दूर रहनेवाला मैं देह धारण करके निवास करता हूँ और क्षर तथा अक्षर दोनोंसे ऊपर उठकर पुरुषोत्तमस्वरूपमें विद्यमान हूँ। मेरा वह पुरुषोत्तमक्षेत्र सृष्टि और प्रलयसे आक्रान्त नहीं होता। ब्रह्मन्! चक्र आदि चिह्नोंसे युक्त मेरा जैसा स्वरूप यहाँ देखते हो, वैसा ही वहाँ जाकर भी देखोगे। नीलाचलके भीतरकी भूमिमें कल्पोंतक रहनेवाले अक्षयवटकी जड़के समीप पश्चिम दिशामें जो रौहिण नामसे विख्यात कुण्ड है, उसके किनारे निवास करते हुए मुझ पुरुषोत्तमको जो चर्म-चक्षुओंसे देखते हैं, वे उसके जलसे क्षीणपाप होकर मेरे सायुज्यको प्राप्त कर लेते हैं। महाभाग! वहाँ जाओ। उस तीर्थमें मेरा दर्शन करके ध्यान करते समय तुम्हारे समक्ष पुरुषोत्तमक्षेत्रकी श्रेष्ठ महिमा स्वतः प्रकाशमें आ जायगी। वह क्षेत्र श्रुतियों, स्मृतियों, इतिहासों और पुराणोंमें गुप्त है। मेरी मायासे वह किसीको ज्ञात नहीं होता। मेरी ही कृपासे अब वह प्रकाशमें आयगा और सबको प्रत्यक्ष उपलब्ध होगा। व्रत, तीर्थ, यज्ञ और दानका जो पुण्य बताया गया है, वह सब यहाँ एक दिनके निवाससे ही प्राप्त हो जाता है और एक निःश्वासभर निवास करनेसे अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है।' ब्राह्मणो! इस प्रकार ब्रह्माजीको आदेश देकर भगवान् पुरुषोत्तम सबके देखते-देखते वहीं अन्तर्धान हो गये।

यमराज तथा मार्कण्डेयजीके द्वारा भगवान्‌की स्तुति और पुरुषोत्तमक्षेत्रकी महिमा

जैमिनिजी कहते हैं—मनुष्य जिनका नाम लेकर सब पापोंसे मुक्त हो जाता है, उन्हींके दर्शन करनेपर क्या मोक्ष दुर्लभ होगा? मनसे भगवान् विष्णुका चिन्तन करते हुए यदि मनुष्य प्राणत्याग करता है, तो वह भी मुक्त हो जाता है। फिर जिसने साक्षात् भगवान्‌का दर्शन कर लिया, वह मुक्ति प्राप्त कर लेता है तो क्या आश्चर्य है?* पुरुषोत्तमक्षेत्रकी महिमा अद्भुत है। वह क्षेत्र अज्ञानियोंको भी मुक्ति देनेवाला है। फिर जो सदैव शान्त, वैराग्य और ज्ञानसे संयुक्त हैं, ऐसे मनुष्योंके लिये तो कहना ही क्या है?

ऋषियोंने पूछा—मुने! नीलाचलपर भगवान् विष्णुका दर्शन करके ब्रह्माजीने क्या किया?

जैमिनिजी बोले—पुरुषोत्तमक्षेत्रका अत्यन्त

* मनसा ध्याययन् विष्णुं त्यजन् प्राणान् विमुच्यते। साक्षात्कृतो भगवतः किं चित्रं मुक्तिमेति यत्॥
(स्क० पु०, वै० उ० २। ९-१०)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

अद्भुत माहात्म्य देखकर ब्रह्मा जबतक भगवान् विष्णुका ध्यान करते रहे, तबतक पितरोंके स्वामी यमराज अपने अधिकारके संकुचित होनेसे व्याकुल होकर दीनमुखसे नीलाचलपर्वतपर आये और वहाँ भगवान् लक्ष्मीपतिका दर्शन तथा उन्हें साष्टांग प्रणाम करके अपने अधिकारकी दृढ़ताके लिये भगवान् जगन्नाथकी स्तुति करने लगे।

यमराज बोले—सृष्टि, पालन और संहारके एकमात्र कारण देवदेवेश्वर! आपको नमस्कार है। सूतमें मणियोंकी भाँति आपमें यह सब जगत् गुँथा हुआ है। आपने ही इस विश्वको धारण किया है, आपने ही इसकी सृष्टि की है तथा आपहीने इसका पालन-पोषण भी किया है। चन्द्रमा और सूर्य आदिका रूप धारण करके आप सदा समस्त संसारको प्रकाशित करते हैं। आप इस विश्वके स्वामी, जगत्की उत्पत्तिके कारण, संसारके आवासस्थान, जगद्गुरु, लोकसाक्षी तथा आदि-अन्तसे रहित हैं। आपको मैं प्रणाम करता हूँ। प्रभो! आप उत्तम करुणारूपी जलसे भरे हुए समुद्र हैं, आपको नमस्कार है। आपका वैभव पर, अपर एवं परात्परसे भी अतीत है। आप ही इस विश्वके उत्पादक हैं। संसारके सन्तापरूपी हिमको सुखा डालनेवाले सूर्य! आपको नमस्कार है। दीनबन्धो! आपको नमस्कार है। आपने अपनी मायासे समस्त वैभवोंकी रचना की है, तीनों गुण आपकी रज्जु (रस्सी) हैं, आपको मेरा नमस्कार है। कमल-केसरकी भाँति निर्मल पीत वस्त्र धारण करनेवाले आपको नमस्कार है। आपके कटाक्षपातमात्रसे ही संसारकी सृष्टि, पालन और संहार होते हैं तथा यह ऊँच-नीच जगत् बार-बार जन्म लेता है। नीलाचलकी गुफामें निवास करनेवाले आप कृपानिधान प्रभुको मैं प्रणाम करता हूँ। आप शंख, चक्र, गदा और पद्म धारण करनेवाले तथा सबको शुभ प्रदान करनेवाले हैं। शरणागत प्राणियोंके समस्त पापोंका नाश करनेवाले मुरारिको मैं नमस्कार करता हूँ। आपका मनोहर एवं विशाल वक्ष श्रीवत्सचिह्न तथा कौस्तुभमणिसे उद्भासित है,आपको नमस्कार है। आपके युगल चरणारविन्दोंका आश्रय लेनेसे ऐश्वर्यभागिनी लक्ष्मीकी सब लोग शरण लेते हैं और वे सबको पृथक्-पृथक् ऐश्वर्य देनेमें समर्थ होती हैं। वे लक्ष्मी आपकी परा और अपरा प्रकृति हैं। वे समस्त शुभ लक्षणोंसे लक्षित होती हैं तथा आप लक्ष्मीपतिके वक्षःस्थलपर नित्य निवास करती हैं। भगवन्! आपकी प्रिया उन लक्ष्मीको मैं प्रणाम करता हूँ।

उस समय धर्मराजके इस प्रकार स्तुति करनेपर परम सन्तोषको प्राप्त हुए भगवान् लक्ष्मीपतिने अपने वामपार्श्वमें बैठी हुई लक्ष्मीजीकी ओर कटाक्षपूर्वक देखकर उनसे कुछ कहनेके लिये संकेत किया। उनकी प्रेरणा पाकर संसारदुःखका विनाश करनेवाली लक्ष्मीने सब लोगोंके कल्याणके लिये यमराजसे कहा—'सूर्यनन्दन! तुम जिस उद्देश्यसे यहाँ हम दोनोंकी स्तुति करते हो, उसकी सिद्धि इस क्षेत्रमें तो दुर्लभ है; क्योंकि हमारे लिये इस पुरुषोत्तमक्षेत्रका त्याग करना असम्भव है। इस क्षेत्रमें कभी कर्मोंके फल नहीं प्राप्त होते। यहाँ बसनेवाले मनुष्यों और पशु-पक्षियोंके पाप भी जलकर भस्म हो जाते हैं। इस क्षेत्रमें नीलेन्द्रमणिके समान मनोहर श्यामविग्रहधारी साक्षात् भगवान् नारायणका दर्शन करके मनुष्य कर्मबन्धनसे मुक्त हो जाता है। अतः इसको छोड़कर अन्यत्र कर्मभूमिमें ही तुम्हारा अधिकार है। जो तुम्हारे भी प्रतितामह हैं, वे ब्रह्माजी इस क्षेत्रका माहात्म्य जानकर भगवान् गदाधरकी स्तुति करते हैं। इसलिये जो प्राणी यहाँ निवास करते हैं, वे तुम्हारे वशमें जानेयोग्य नहीं हैं। वैवस्वत! यहाँ जीवन्मुक्त एवं मुमुक्षुपुरुष निवास करते हैं।'

लक्ष्मीजीके इस प्रकार समझानेपर लज्जासे विनीत हो यमराजने कहा—सुरेश्वरि! आपने जो

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

यह कहा है कि यह क्षेत्र भगवान् विष्णुके सान्निध्यसे मोक्ष देनेवाला है, सो ठीक है। ईश्वरकी इच्छा निरंकुश (प्रतिबन्धरहित) होती है। जो विष्णु अन्यत्र किसीको बन्धन देते हैं, वही यहाँ मोक्ष प्रदान करते हैं। मातः! मेरे तथा स्वर्ग-नरकके भी वे ही स्रष्टा हैं। अतः यदि उनकी इच्छासे यहाँ मरे हुए लोगोंको मोक्ष प्राप्त होता है, तो इस क्षेत्रका प्रमाण और यहाँ निवास करनेका फल आदि सब बातें मुझे विस्तारपूर्वक बतलाइये।

लक्ष्मीदेवीने कहा—रविनन्दन! जब समस्त चराचर जगत् नष्ट होकर प्रलयकालके समुद्रमें डूब चुका था, उस समय सात कल्पोंतक जीवित रहनेवाले मार्कण्डेय मुनि कहीं भी ठहरनेके लिये स्थान न पाकर बहुत चिन्तित हुए। उन्हें कहीं भी शान्ति नहीं मिलती थी। जलके समुद्रमें इधर-उधर बहते हुए वे पुरुषोत्तमक्षेत्रमें आये। यहाँ उन्होंने अक्षयवटको देखा और एक बालकका वचन अपने कानोंसे सुना—'मार्कण्डेय! शोक न करो, मेरे पास आकर अपने अनुपम दुःखको छोड़ दो।' यह विचित्र वचन, जिसके सुनायी देनकी कोई आशा नहीं थी, सुनकर मार्कण्डेय मुनिको बड़ा आश्चर्य हुआ। वे सोचने लगे—'इस महाभयानक एकार्णवके जलमें यह क्षेत्र नौकाकी भाँति दिखायी देता है और इसमें यह महान् बरगदका वृक्ष खम्भके समान खड़ा है। इस प्रलयकालीन एकार्णवमें जब समस्त स्थावर-जंगमका नाश हो गया है, तब भूतलका यह प्रदेश बहुत सुस्थिर कैसे प्रतीत होता है तथा 'मार्कण्डेय! आओ' यह स्नेह एवं आग्रहयुक्त वचन कहाँसे सुन पड़ता है।'

यही सब सोचते और जलमें तैरते हुए मार्कण्डेयजीने शंख, चक्र, गदा हाथमें लिये भगवान् विष्णुको तथा उनके हृदय-कमलके आसनपर बैठी हुई मुझ लक्ष्मीको भी देखा। तब उनका चित्त प्रसन्न हो गया और उन्होंने हम दोनोंको साष्टांग प्रणाम किया। तदनन्तर भगवान् विष्णुको प्रसन्न करनेके लिये वे इस प्रकार स्तुति करने लगे—'दयासागर! आज आपके चरणारविन्दोंकी सेवाका प्रसंग पाकर मैं रुद्र, इन्द्र और ब्रह्माजीके समान वैभवसम्पन्न हो गया हूँ। आजतक सब ओर सन्ताप उठाता रहा। प्रभो! अब अपनी शरणमें आये हुए मुझ दीनकी रक्षा कीजिये। आपके युगल चरणारविन्द अचिन्त्य शक्तिसे सम्पन्न और कल्याणकी प्राप्तिके प्रधान कारण हैं। इसीलिये ब्रह्मा आदि देवता सदा उनकी परिचर्यामें लगे रहते हैं। मैं तो भक्तिभावसे हीन और दीन हूँ। दयासिन्धो! मेरी रक्षा कीजिये। यह समस्त ब्रह्माण्ड जिनके अंगसे उत्पन्न हुआ है और ऐसे कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड जिनमें स्थित प्रतीत होते हैं तथा जिनके लीला-विलाससे ही सबकी सृष्टि, पालन और संहार-कार्य होते हैं; वे ही आप विष्णु हैं। भगवन्! मुझ अत्यन्त दीनकी रक्षा कीजिये। जैसे एक ही सुवर्ण कड़े और कुण्डल आदिके भेदसे अनेक-सा प्रतीत होता है, अथवा जिस प्रकार आकाशमें उदित एक ही सूर्य आधारकी विषमतासे विषम प्रतीत होनेवाली अनेक जलराशियोंमें प्रतिबिम्बित होकर अनेक रूपोंमें प्रतीत होता है, उसी प्रकार आप एकमात्र निर्गुण परमात्मा ही भिन्न-भिन्न शरीरोंमें प्रवेश करके अनेकवत् प्रतीत होते हैं। हे अपार शक्तिशाली परमेश्वर! आप सब प्रकारकी समस्त इच्छाओंसे रहित तथा ग्रहण और संकल्पसे शून्य हैं तथापि प्रत्येक युगमें दीनोंके ऊपर दया करनेके योग्य शरीर धारण करते रहते हैं। जगदीश्वर! पूर्वकालमें अनात्म पदार्थोंमें चित्त आसक्त होनेके कारण जो मैंने आपके चरणारविन्दोंका सेवन नहीं किया, इसीलिये भगवद्विमुख कर्मसे मुझे भयंकर परिणाम भोगना पड़ा है। दयासागर! मुझ दीनकी रक्षा

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

कीजिये। महात्मन्! सम्पूर्ण लोकोंकी सृष्टि, पालन और संहारकी लीलासे सुशोभित होनेवाला जो आपका त्रिगुणमय (ब्रह्मविष्णु-शिवात्मक) स्वरूप है, वही महत्तत्त्व आदिका भी कारण है। आप प्रकृतिसे परे तथा सबके आदिकारण हैं, आपको नमस्कार है। सर्वव्यापी जगन्नाथ! मेरी रक्षा कीजिये। मैं संसार-समुद्रमें डूबा हुआ हूँ। गोविन्द! अपनी कृपाकटाक्षपूर्ण दृष्टिसे मेरी ओर देखकर इस भवसागरसे मेरा उद्धार कीजिये।'

इस प्रकार स्तुति करते हुए ब्रह्मर्षि मार्कण्डेयको कृपादृष्टिसे देखकर भगवान् नारायण इस प्रकार बोले—'विप्रवर! मेरे तत्त्वको न जाननेके कारण ही तुम अत्यन्त दीन हो रहे हो। तुमने अत्यन्त दुष्कर तपका अनुष्ठान किया है, किंतु उससे केवल दीर्घजीवी हुए हो। महामुने! इस कल्पवटके ऊपर पत्तेके दोनेमें सोये हुए उस बालस्वरूपको देखो। वह सबका कालरूप है। उसके फैले हुए मुखमें प्रवेश करके वहाँ सुखपूर्वक रह सकते हो।' भगवान्के ऐसा कहनेपर मार्कण्डेयजीका मुख आश्चर्यसे चकित हो गया। उन्होंने वृक्षपर चढ़कर भगवान्के बालरूपको देखा और उसमें प्रवेश किया। भीतर जानेपर उन्होंने चौदह भुवन देखे। ब्रह्मा आदि देवता, दिक्पाल, सिद्ध, गन्धर्व, राक्षस, ऋषि, मुनि, देवर्षि, समुद्रोंसे चिह्नित भूतल, अनेक तीर्थ, नदी, पर्वत तथा वनोंसे उपलक्षित श्रेष्ठ नगर देखा। सातों पाताल और सहस्रों नागकन्याएँ देखीं। हजारों फणोंसे सुशोभित सम्पूर्ण जगत्का भार धारण करनेवाले शेषनागका दर्शन किया तथा ब्रह्माण्डके मध्यमें ब्रह्माजीने जो कुछ भी सृष्टि की है, वह सब अवलोकन किया। इधर-उधर घूमनेपर भी कहीं उस बालकके उदरका अन्त नहीं मिला, तब पुनः कण्ठमार्गसे बाहर निकलकर उन्होंने मेरे साथ पुरुषोत्तम भगवान् विष्णुका दर्शन किया।

श्रीभगवान् बोले—मुने! यह विचित्र क्षेत्र मेरा सनातन धाम है, ऐसा समझो। यहाँ न सृष्टि है, न प्रलय है और न संसारका बन्धन ही है। सदा एक रूपसे रहनेवाले मुझ मोक्षदायक पुरुषोत्तमको यहाँ विद्यमान जानकर इस क्षेत्रमें प्रवेश करनेवाला पुरुष घनानन्दस्वरूप हो पुनः गर्भमें नहीं आता।

महामुनि मार्कण्डेयने कहा—प्रभो! मैं यहाँ निवास करूँगा। पुरुषोत्तम! मुझपर कृपा कीजिये।

श्रीभगवान्ने कहा—ब्रह्मर्षे! इस मोक्षसाधक क्षेत्रमें मैं प्रलयकी समाप्तिपर्यन्त रहूँगा। प्रलयके अन्तमें तुम्हारे लिये यहाँ सनातन तीर्थका निर्माण करूँगा, जिसके तटपर तपस्या करके मेरे द्वितीय शरीर शिवकी आराधना करते हुए तुम मेरी कृपासे मृत्युको निश्चितरूपसे जीत लोगे।

इस प्रकार पहलेसे वरदान पाये हुए मार्कण्डेय महामुनिने वटके वायव्य कोणमें भगवान्के चक्रसे एक कुण्ड खोदा। उस पवित्र कुण्डमें रहकर भारी तपस्यासे भगवान् महेश्वरकी आराधना करके उन्होंने मृत्युको अनायास ही जीत लिया। उन्हीं मार्कण्डेयजीके नामसे यह कुण्ड प्रसिद्ध है, जिसमें स्नान करके मार्कण्डेयेश्वर शिवका दर्शन करनेसे अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है। यह पुरुषोत्तमक्षेत्र पाँच कोसतक तो समुद्रके भीतर स्थित है और दो कोसतक उसके तटकी भूमिपर विद्यमान है। यह अत्यन्त निर्मल, सुनहरी बालुकाओंसे व्याप्त तथा नीलगिरिसे सुशोभित है। वे जो विश्वनाथ भगवान् शिव हैं, साक्षात् नारायणस्वरूप ही हैं। वे भगवान् जगन्नाथकी उपासना करनेके लिये समुद्रके तटपर निवास करते हैं। यमराजके दण्डका भय नष्ट करनेके कारण उनका नाम यमेश्वर है। उनका दर्शन और पूजन करनेसे कोटि शिवलिंगोंके दर्शन और पूजनका फल प्राप्त होता है।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

पुरुषोत्तमक्षेत्रके विभिन्न तीर्थों और देवताओंका परिचय, तीर्थ और भगवान्‌की महिमा तथा पापपरायण पुण्डरीक और अम्बरीषका उस क्षेत्रमें आना

श्रीलक्ष्मीजी कहती हैं—इस क्षेत्रका आकार शंखके समान है। उसके मस्तकपर पश्चिमकी सीमामें सब कामनाओंको पूर्ण करनेवाले भगवान् शंकर विराजते हैं। शंखके आगे अर्थात् पूर्व सीमापर भगवान् नीलकण्ठ हैं। इन दोनोंके मध्यका प्रदेश एक कोसका है। भगवान् नारायणका यह परम पावन क्षेत्र अत्यन्त दुर्लभ है। यहाँ मृत्यु होनेसे प्राणियोंकी मुक्ति हो जाती है तथा यहाँका समुद्र स्नानमात्रसे मोक्ष प्रदान करनेवाला है। शंखाकार तीर्थके दूसरे आवर्तमें कपालमोचन नामक लिंग स्थित है। जो मनुष्य कपालमोचनका दर्शन, पूजन और उन्हें प्रणाम करता है, वह ब्रह्महत्या आदि पापोंको त्याग देता है। धर्मराज! शंखके तृतीय आवर्तके स्थानमें मेरी आद्याशक्ति विमला देवीको स्थित जानो। वे भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाली हैं। जो भक्तिपूर्वक इनका दर्शन, पूजन और इन्हें प्रणाम करता है, वह सम्पूर्ण कामनाओंको प्राप्त कर लेता है और अन्तमें मोक्षको भी पाता है। शंखके नाभिस्थानमें कुण्ड, वट और भगवान् पुरुषोत्तम—इन तीनोंकी स्थिति है। कपालमोचनसे लेकर अर्द्धांशिनीतक शंखका मध्य भाग जानना चाहिये। जो अर्द्धांशिनीका दर्शन करके उन्हें प्रणाम करता है, वह अक्षय भोगोंका उपभोग करता है। तीनों लोकोंमें जो स्वर्ग और मोक्ष प्रदान करनेवाले तीर्थ हैं, उन सबमें यह पुरुषोत्तमक्षेत्र तीर्थराज कहा गया है। मुक्तिदायक जितने क्षेत्र हैं, उन सबमें यह सायुज्य प्रदान करनेवाला माना गया है। यहाँ निवास करनेवाले प्राणी जन्म, मृत्यु और जराका शोक नहीं करते। रौहिण नामक कुण्ड भगवान्‌के करुणारूप जलसे भरा हुआ है। वह स्पर्श करनेमात्रसे भवबन्धनसे मुक्ति देता है। प्रलयकालमें जो जल बढ़ता है, वह पीछे इसी कुण्डमें विलीन हो जाता है। धर्मराज! यहाँके निवासी मोक्षके अधिकारी हैं। उनपर तुम्हारा शासन नहीं चल सकता। यह क्षेत्र पृथ्वीपर रहनेवाले सब प्राणियोंको मोक्ष प्रदान करता है। कामाख्य और क्षेत्रपालके मध्यमें विमलाकी स्थिति है। भगवान् पुरुषोत्तमके दक्षिण भागमें साक्षात् ब्रह्मस्वरूप नृसिंहजी विराजमान हैं। ये प्रभासे उज्ज्वल हैं और हिरण्यकशिपुका वक्षःस्थल विदीर्ण करके यहाँ स्थित हुए हैं। इनके दर्शनसे सब पापोंका नाश हो जाता है। इनके आगे प्राणोंका त्याग करनेवाला मनुष्य ब्रह्मसायुज्यको प्राप्त होता है। अविमुक्तक्षेत्र (काशी) में मरनेवाले प्राणीके कानोंमें भगवान् महेश्वर बोधके उपायभूत ब्रह्मज्ञानका उपदेश करते हैं। बुद्धिसे उसका अभ्यास करके जीव क्रमशः मोक्षको प्राप्त होता है। उपदेशक भगवान् शिवकी महिमासे वह ज्ञान विस्मृत नहीं होता, क्रमशः अभ्यासमें आकर मोक्षकी प्राप्ति करा देता है। परंतु जो लोग इस पुरुषोत्तमक्षेत्रमें प्राणत्याग करते हैं, उनकी तत्काल मुक्ति हो जाती है। यहाँ समुद्र स्नान करनेसे, भगवान् पुरुषोत्तम अपने दर्शनसे, कल्पवृक्ष अपनी छायामें जानेसे तथा यह सम्पूर्ण क्षेत्र अपने भीतर कहीं भी मृत्यु होनेसे मोक्ष प्रदान करता है। जो मनुष्य भक्तिपूर्वक जिसमें विश्वास करता है, वह उसीसे यहाँ मुक्त हो जाता है। ऐसा तीर्थ दूसरा नहीं है। इस क्षेत्रमें अन्तर्वेदीकी रक्षाके लिये आठ शक्तियाँ बतायी गयी हैं—वटवृक्षकी जड़में मंगला, पश्चिममें विमला, शंखके पृष्ठभागमें सर्वमंगला, उत्तर दिशामें

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

अर्द्धांशिनी तथा लम्बा, दक्षिणमें कालरात्रि, पूर्वमें मरीचिका तथा कालरात्रिके पीछे चण्डरूपा शक्ति स्थित है। इस प्रकार इन उग्र रूपवाली आठ शक्तियोंसे यह क्षेत्र सब ओरसे सुरक्षित है। इन आठों शक्तियोंके दर्शन तथा कीर्तनसे सब पापोंका नाश होता है। रुद्राणीके आठ भेद देखकर भगवान् शंकर भी अपनेको आठ स्वरूपोंमें व्यक्त करके परमेश्वर श्रीहरिकी उपासना करते हैं। कपालमोचन, क्षेत्रपाल, यमेश्वर, मार्कण्डेयेश्वर, ईशान, बिल्वेश्वर, नीलकण्ठ और वटवृक्षकी जड़में वटेश्वर—ये आठ भगवान् शिवके लिंग हैं, जिनका दर्शन, स्पर्श और पूजन करके मनुष्य मुक्त हो जाता है। इस क्षेत्रमें जिनकी मृत्यु होती है, उनके स्वामी यमराज नहीं हैं। तथापि भक्तको आत्मसमर्पण करनेवाले शरणागत-दुःखभंजन भगवान् जगन्नाथको यमराजने अपनी भक्तिसे सन्तुष्ट कर लिया है। इसलिये मेरे और सुदर्शनचक्रके साथ भगवान् विष्णु स्वर्णबालुकासे आवृत होकर न त्यागने योग्य इस उत्तम तीर्थमें अदृश्य भावसे रहेंगे।

यमराजसे ऐसा कहकर लक्ष्मीजीने आगे खड़े हुए ब्रह्माजीसे कहा—सत्ययुगमें राजा इन्द्रद्युम्न होनेवाले हैं, जो भगवान् विष्णुके परम भक्त तथा शास्त्रोंके विद्वान् होंगे। प्रजानाथ! उस राजापर अनुग्रह करनेके लिये भगवान् एक काष्ठसे उत्पन्न चार प्रतिमाओंके रूपमें अभिव्यक्त होंगे। काष्ठकी उन प्रतिमाओंका निर्माण स्वयं विश्वकर्मा करेंगे और तुम इन्द्रद्युम्नपर प्रसन्न होकर उन प्रतिमाओंकी स्थापना कराओगे। लक्ष्मीजीकी यह बात सुनकर ब्रह्मा और यमराज दोनों परम प्रसन्न होकर अपने-अपने स्थानको चले गये। पुरुषोत्तम-क्षेत्रकी महिमाका बार-बार स्मरण करके विस्मय और हर्षसे उनके शरीरमें रोमांच हो आता था।

मुनियो! इस समय उस क्षेत्रमें इन्द्रद्युम्नकी भक्तिसे सन्तुष्ट हो नीलमेघके समान श्यामसुन्दर शंखचक्रधारी भगवान् काष्ठमय शरीर धारण करके सम्पूर्ण लोकोंका उपकार करनेके लिये नीलाचलकी गुफामें विराजमान हैं। करुणासागर भगवान् काष्ठनिर्मित बलभद्र, सुभद्रा तथा सुदर्शनचक्रकी प्रतिमाओंके साथ स्वयं भी दारुमय विग्रह धारण करके शरणागतोंकी पीड़ाका नाश करते हैं। उनका दर्शन करके मनुष्य पापोंके सुदृढ़ बन्धनसे भी मुक्त हो जाता है। भगवान् विष्णुका यह परम उत्तम स्थान अत्यन्त गुप्त है तथा वह अलौकिक प्रतिमा लौकिक रूपसे प्रकाशित है। राजा इन्द्रद्युम्नको दारुमय शरीर धारण करनेवाले भगवान्ने वर दिया है। भगवान् दीनों और अनाथोंके एकमात्र शरण हैं। भवसागरसे पार उतारनेके लिये नौका हैं। उनके चरण समस्त चराचर जगत्के लिये वन्दनीय हैं। वे ही सबके परम आश्रय हैं। भगवान् नारायण सम्पूर्ण जगत्की उत्पत्तिके स्थान तथा सृष्टि और संहारके कारण हैं। वे समस्त पापोंको छुड़ानेवाले तथा सब आपत्तियोंका नाश करनेवाले हैं। विभूतियोंका प्रसार करनेवाले तथा सब योगियोंको वरण करनेवाले हैं। सम्पूर्ण जीवोंका भरण तथा अखिल विश्वको धारण करनेवाले भी वे ही हैं। वे सब भाषाओंको बोलते और समस्त दुष्कर्मोंका विनाश करते हैं। मुनीश्वरो! तुम अनन्यभावसे उन्हीं भगवान् श्रीहरिकी शरण लो। वे चेष्टारहित काष्ठशरीर धारण करके भी दिव्य लीलाविलास करनेवाले हैं। थोड़ी-सी भक्ति करनेपर भी मनुष्योंके सौ-सौ अपराध क्षमा करते हैं।

कुरुक्षेत्रमें उत्पन्न हुए एक ब्राह्मण और एक क्षत्रिय दोनों मित्र थे। दोनोंने प्रेमपूर्वक परदेशकी यात्रा की। उनका आहार-विहार एक ही था। दोनों सदाचारके मार्गसे भ्रष्ट हो चुके थे और मोहवश शास्त्रनिषिद्ध आचरण करते थे। स्वाध्याय, वषट्कार, स्वधा (श्राद्ध-तर्पण) और स्वाहा (यज्ञ) इनसे वे कोसों दूर थे। महापातकोंसे कलंकित

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

होकर वे मदिरा पीते और वेश्याके सहवासमें रहकर आनन्दका अनुभव करते थे। परलोककी चिन्ता तो उन्हें कभी स्वप्नमें भी नहीं होती थी। इसी प्रकार मनमाना बर्ताव करते हुए उनकी आधी आयु बीत गयी। एक दिन घूमते हुए वे दोनों यज्ञशालामें जा पहुँचे और दूरसे ही स्तोत्र तथा शास्त्रचर्चा सुनने लगे। वहाँ होनेवाली वैदिक क्रियाओंको देखकर उस समय उन अधार्मिकोंके मनमें भी धर्मके प्रति श्रद्धा हो गयी। उनका नाम पुण्डरीक और अम्बरीष था। वे अपनी उच्च जातिका स्मरण करके अपने दुराचारोंकी निन्दा करते हुए एक-दूसरेसे कहने लगे—'हम दोनों पापके भयंकर समुद्रको कैसे पार करेंगे?' हमने जो-जो पाप संचित किये हैं, उनको शास्त्र भी नहीं जानता। उन घोर पापोंका प्रायश्चित्त अत्यन्त दुर्लभ है तथापि इस यज्ञसभामें जो ये ब्रह्मनिष्ठ पधारे हुए हैं, उन्हें प्रणामसे प्रसन्न करके हम अपने उद्धारका उपाय पूछें।'

ऐसा निश्चय करके उन दोनोंने ब्राह्मणोंको प्रणाम किया और अपने-अपने पापोंको ठीक-ठीक बताकर उनसे प्रायश्चित्त पूछा। उन दोनोंकी बातें सुनकर उन श्रेष्ठ ब्राह्मणोंने आँखें बंद कर लीं। किसीने कुछ भी नहीं कहा। उनके बीच एक श्रेष्ठ वैष्णव थे, जो उस यज्ञसभामें प्रधान थे। भगवान्की भक्तिके माहात्म्यसे उन्होंने समस्त पापोंका नाश कर दिया था। वक्ताओंमें श्रेष्ठ उन वैष्णव ब्राह्मणने हँसकर वहाँ बैठे हुए उन दोनोंसे कहा—'हे ब्राह्मण! और हे क्षत्रियकुमार! यदि तुम दोनों अत्यन्त भयंकर पापराशिसे छुटकारा पाना चाहते हो तो शीघ्र पुरुषोत्तमक्षेत्रमें चले जाओ। वह सब क्षेत्रोंसे उत्तम है, जहाँ राजर्षि इन्द्रद्युम्नकी भक्तिसे उनपर अनुग्रह करनेवाले भगवान् पुरुषोत्तम काष्ठमय शरीर धारण करके रहते हैं। शंख, चक्र और गदा धारण करनेवाले उन भगवान् जगन्नाथकी आराधना करके तुम इच्छानुसार पापक्षय और मोक्ष भी पा सकोगे, यह ध्रुव सत्य है। उनका दर्शन करनेसे सब पाप एक साथ ही नष्ट हो जाते हैं। इसलिये परम पवित्र उत्कलदेशमें दक्षिण समुद्रके तटपर नीलाचलके शिखरपर निवास करनेवाले सर्वव्यापी भगवान् जगदीशकी शरणमें जाओ। वे करुणानिधान भगवान् तुम दोनोंका मनोरथ अवश्य सिद्ध करेंगे।'

वैष्णव महात्माके इस प्रकार आदेश देनेपर वे ब्राह्मण और क्षत्रिय अत्यन्त हर्षयुक्त हो उसी मार्गसे पुरुषोत्तमक्षेत्रको चल दिये।

पुण्डरीक और अम्बरीषद्वारा भगवान्की स्तुति तथा पुरुषोत्तमक्षेत्रमें रहकर भजन करनेसे उनकी मुक्तिका वर्णन

जैमिनिजी कहते हैं—उन दोनोंके मनमें निर्वेद (खेद एवं वैराग्य)-का उदय हुआ था। वे कुसंग छोड़कर मन-ही-मन भगवान् विष्णुका ध्यान करते हुए तथा शुद्ध आहार और व्रतका पालन करते हुए कुछ समयमें भगवान् पुरुषोत्तमके नीलाचल-निवासपर पहुँचे। वहाँ तीर्थराजके जलमें विधिपूर्वक स्नान करके वे मन्दिरके दरवाजेपर खड़े हो गये और साष्टांग प्रणाम करके भगवान्का निरीक्षण करने लगे। परंतु उस समय उन्हें भगवद्विग्रहका दर्शन नहीं हुआ। तब चिन्तासे व्याकुल होकर उन्होंने भगवान्का दर्शन जबतक न हो जाय तबतकके लिये अनशन आरम्भ किया और भगवान्के पापनाशक नामोंका कीर्तन करने लगे। तीसरी रात्रिमें उन्हें एक ज्योतिका दर्शन हुआ। तत्पश्चात् वे पुनः तीन दिनोंतक धैर्यपूर्वक उपवास करते रहे। इस प्रकार

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

जब सातवीं रात्रि आयी, तब उन्हें भगवत्स्वरूपका दर्शन हुआ। उनके भीतर दिव्य ज्ञान प्रकट हुआ और वे पापसे छूटकर साक्षात् भगवान् जगन्नाथका दर्शन करने लगे। भगवान्‌के हाथोंमें शंख, चक्र और गदा विराजमान थे। वे दिव्य वस्त्राभूषणोंसे विभूषित थे। उन्होंने अपने चरणकमलोंको रत्नमयी पादुकाके ऊपर रखा था। खिले हुए कमलके समान विशाल नेत्र शोभा पा रहे थे। मुखपर प्रसन्नता छायी हुई थी। बायीं ओर श्रीलक्ष्मीजी विराजमान थीं। आगे खड़े होकर भगवत्स्वरूपका ध्यान करनेवाले प्रह्लाद आदि वैष्णवोंको, जो कि भगवान्‌का चित्त अपनी ओर आकृष्ट कर रहे थे, भगवान् श्रीहरि मानो अपने श्रीविग्रहमें धारण कर रहे थे। वक्षःस्थलपर शोभा पानेवाली कौस्तुभमणिमें प्रतिबिम्बित हुए देवता आदिके द्वारा मानो भगवान् अपनी विश्वमय मूर्तिका प्रकाश कर रहे थे। इस प्रकार भगवान्‌की झाँकी करके वे ब्राह्मण और क्षत्रिय क्षणभरमें सब विद्याओंके पारंगत विद्वान् हो गये। उन्होंने तीन बार देवेश्वर विष्णुकी परिक्रमा करके दोनों हाथ जोड़कर उन्हें साष्टांग प्रणाम किया और अत्यन्त प्रसन्न होकर स्तुति प्रारम्भ की।

पुण्डरीक बोले—जगदाधार! आपको नमस्कार है। आप सृष्टि, पालन और संहारके कारण हैं। परमात्मन्! नारायण! आप सबको शरण देनेवाले हैं। आपको नमस्कार है। एकमात्र आप ही परमार्थ हैं। उत्पत्ति और नाश आदि विकार आपसे सर्वथा दूर हैं। ध्यानरूपी नेत्रोंसे देखनेवाले महात्मा आपको नित्यानन्दस्वरूप मानते हैं। आप चैतन्यमात्र सम्पूर्ण जगत्‌के स्वामी, सबके अधिष्ठान तथा परसे भी परे हैं। आपका स्वरूप अत्यन्त निर्मल है। मूढ हृदयवाले मनुष्य आपको कैसे जान सकते हैं? नाथ! मैं अत्यन्त दीन होकर आपकी शरणमें आया हूँ, मुझपर दया कीजिये। मैं अज्ञानी, पापाचारी तथा संसार-समुद्रमें डूबा हुआ हूँ, मेरा उद्धार कीजिये। ब्रह्माण्डमें आपके समान दूसरा कौन बन्धु है, जो अपने स्वार्थकी अपेक्षा न रखकर दीनों और अनाथोंपर दया करता हो? जो मूढ़ योग और क्षेमकी इच्छा रखकर अनायास ही मोक्ष प्रदान करनेवाले आपकी उपासना करते हैं, वे आपकी मायासे मोहित हैं। जगन्नाथ! अकस्मात् लिया हुआ आपका 'नारायण' नाम धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—चारों पुरुषार्थोंकी सिद्धि अकेले ही कर देता है। नाथ! संसार-सागरमें डूबे हुए लोगोंके लिये एकमात्र आप ही शरण हैं। आप अनन्य भक्तिसे चिन्तन करनेपर ज्ञानरूपी नौकापर आरूढ़ हो करुणाकी पतवार हाथमें लेकर अचेतन प्राणीको संसार-समुद्रके दूसरे पार पहुँचानेमें अकेले ही समर्थ हैं। भगवन्! मुझे अपने चरणकमलोंके प्रति दृढ़ भक्ति प्रदान कीजिये, जिससे मैं इस अत्यन्त दुस्तर भयंकर संसार-समुद्रके पार हो जाऊँ। धर्म, अर्थ और काम इस त्रिवर्गका सेवन केवल मन्दबुद्धि पुरुष ही करते हैं। ये तीनों बहुत क्षुद्र हैं और अहितकर एवं अल्प सुख प्रदान करनेवाले हैं। अतः इनसे मेरा कोई प्रयोजन नहीं है। मुझे तो आप अब अपने युगल चरणारविन्दोंके चिन्तनसे बढ़े हुए घनीभूत आनन्दके समुद्रमें अवगाहन करनेकी आज्ञा दीजिये।

इस प्रकार स्तुति करके ब्राह्मण पुण्डरीक अश्रुगद्गद वाणीसे 'त्राहि कृष्ण' की पुकार लगाते हुए भगवान् जगन्नाथके चरणकमलोंमें गिर पड़े। तत्पश्चात् क्षत्रियकुमार अम्बरीषने उठकर हाथ जोड़े हुए इस प्रकार स्तवन किया।

अम्बरीष बोला—देव! सर्वात्मन्! मुझपर प्रसन्न होइये। आपके मस्तक और भुजाएँ असंख्य हैं। नासिका, नेत्र और हाथ-पैरोंकी भी कोई संख्या नहीं है। आपको नमस्कार है। विश्वमूर्ते! आप छत्तीस तत्त्वोंसे परे हैं। प्रपंचसे रहित होते

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

हुए भी इसके विस्तारमें सहायक हैं। जरायुज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिज्ज—इन चार प्रकारके प्राणियोंसे भरे हुए जगत्के आप ही आश्रय हैं। आपको नमस्कार है। जिनके चरणोंसे प्रकट हुई गंगा तीनों लोकोंको पवित्र करती है, जिनका नाम ब्रह्महत्या आदि पापोंकी निश्चित शुद्धि करनेवाला है तथा कीर्तन करनेपर सबको कल्याण प्रदान करता है, उन कल्याणस्वरूप आप परमात्माको नमस्कार है। देव! केवल आपके नामकीर्तनसे भी सब प्रकारकी सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं। बुद्धिशाली विद्वान् पुरुष कौतूहलपूर्वक आपकी खोज करते हैं। नाथ! आपके चरणकमलोंके जल (चरणोदक)-का आश्रय लेनेपर वह सन्तापको हर लेता है। मैं तीनों तापोंसे पीड़ित हूँ। अपने इन युगल चरणोंमें मेरी भक्ति दृढ़ कर दीजिये। मेरा दूसरा कोई स्वामी नहीं है तथा मेरे माँगने योग्य दूसरी कोई वस्तु ही नहीं है। जगन्नाथ! मैं आपके चरणोंमें सहस्रों बार प्रणाम करके यह याचना करता हूँ कि जबतक मैं प्राण धारण करूँ तबतक आपके इन युगल चरणकमलोंमें ही मेरी दृढ़ भक्ति बनी रहे। आपके ये चरण ही समस्त पुरुषार्थोंके बीज हैं। इन चरणोंकी भक्ति करके ब्रह्माजीने यह सृष्टि की है, रुद्रदेव सबका संहार करते हैं तथा लक्ष्मीजी सबको ऐश्वर्य प्रदान करती हैं। दीनोंपर दया करनेवाले प्रभो! मैं अनन्यचित्त होकर आपके उन्हीं चरणोंकी भक्ति माँगता हूँ। अनादि अविद्याके इस दुस्तर एवं सुदृढ़ पंकमें डूबकर मैं कोई आश्रय न मिलनेके कारण नष्ट हो रहा हूँ। जगन्नाथ! इससे मेरा उद्धार करनेके लिये आपकी महामहिमामयी भक्तिके सिवा दूसरा कोई आश्रय नहीं है। आपकी भक्तिको छोड़कर कोई भी साधन प्राणियोंका उद्धार करनेमें समर्थ नहीं है। स्वामिन्! आपके अतिरिक्त दूसरा कोई मुझे शरण देनेवाला नहीं है। प्रभो! मुझ शरणागतपर कृपा कीजिये।

इस प्रकार स्तुति करते हुए अम्बरीष भगवान् जगन्नाथके चरण-कमलोंके समीप 'प्रभो! प्रसन्न होइये, प्रसन्न होइये' ऐसा बार-बार कहकर दण्डकी भाँति गिर पड़ा। तदनन्तर पुण्डरीक और अम्बरीषने जब पुनः नेत्र खोले तब चर्मचक्षुसे दिव्य सिंहासनपर विराजमान नीलमेघके समान श्यामसुन्दर भगवान् पुरुषोत्तमको देखा। उनके नेत्र खिले हुए कमलके समान विशाल थे। अधर लाल और नासिका मनोहर थी। उनके कानोंमें दिव्य कुण्डल झिलमिला रहे थे। भगवान्ने अपने चारों हाथोंमें शंख, चक्र, गदा और पद्म धारण कर रखे थे। वे वनमालासे विभूषित थे। उनका वक्षःस्थल ऊँचा दिखायी देता था। कण्ठमें परम सुन्दर हार शोभा पा रहे थे। मस्तकपर बहुमूल्य मुकुट प्रकाशमान था। वक्षमें श्रीवत्सका चिह्न और कौस्तुभमणि शोभा दे रहे थे। भुजाओंमें उन्होंने दिव्य अंगद (भुजबंद) धारण कर रखे थे। उनकी विशाल भुजाएँ घुटनोंतक लंबी थीं। वे दीनों और दुखियोंकी रक्षाके लिये सदैव उद्यत प्रतीत होते थे। उनकी कटिमें दिव्य पीताम्बर शोभा पाता था। उसके ऊपर सोनेकी करधनी बँधी हुई थी, जिसकी बिचली गाँठमें मणि पिरोयी गयी थी। भगवान् दिव्य हार और दिव्य चन्दनसे विभूषित थे। वे सुवर्णमय कमलके आसनपर विराजमान थे। उनके सब अंगोंमें अनुपम शोभाका निवास था। वे शरणागतोंका सन्ताप हरनेके लिये महान् सुधासागरके समान प्रतीत होते थे। भलीभाँति खिले हुए कल्पवृक्षके समान वे सम्पूर्ण मनोवांछित फलोंको देनेवाले थे। उनके दक्षिण भागमें हलमय शस्त्र धारण करनेवाले भगवान् बलभद्र बैठे थे। जिन्होंने अपने महान् बलसे समस्त ब्रह्माण्डका भार धारण किया है, वे बलभद्रजी नागराज शेषके रूपमें शोभा पाते थे। मस्तकपर सात फन उन्हें सुशोभित करते थे। वे कैलासशिखरके समान ऊँचे और श्वेतवर्ण थे। उनके कानोंमें कुण्डल प्रकाशित हो रहा था।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

गलेमें विचित्र वनमाला थी। उन्होंने दिव्य नीलवस्त्र पहन रखा था। उनकी पीठ नीची और छाती ऊँची थी। वे सम्पूर्ण शरीरको कुण्डलित करके बैठे थे। उनके चारों हाथोंमें भी शंख, चक्र, गदा और पद्म शोभायमान थे। अनेक प्रकारके अलंकार धारण करनेसे वे और भी सुन्दर प्रतीत होते थे। भगवान् बलभद्र प्रणाम करनेवालोंके समस्त पापोंका नाश करनेवाले हैं। इन दोनोंके मध्यभागमें कुंकुमके समान लाल वर्णवाली कल्याणमयी सुभद्रादेवी विराजमान थीं, जो सम्पूर्ण लावण्यका निवासस्थान जान पड़ती थीं। समस्त देवता उनके चरणोंमें मस्तक झुकाते थे। उन्होंने अपने हाथोंमें कमल धारण कर रखा था। वे दिव्य आभूषणोंसे विभूषित थीं। सुभद्रा भी शरणागतोंके लिये कल्पवृक्ष हैं। समस्त पापोंका नाश करनेवाली हैं तथा संसार-समुद्रमें डुबे हुए मनुष्योंको पार उतारनेवाली और देवताओंको भी तारनेवाली हैं। भगवान् पुरुषोत्तमके वामभागमें उत्तम चक्र प्रकाशित होता था। श्रेष्ठ काष्ठसे निर्मित तथा स्वर्णके संयोगसे परम उज्ज्वल चार स्वरूपोंमें स्थित भगवान् पुरुषोत्तमका प्रात:कालका दर्शन करके उन ब्राह्मण और क्षत्रियकुमारोंने अपने परिश्रमको सार्थक माना और पूर्वोक्त स्वप्नलीलाका स्मरण करके वे बड़े विस्मयको प्राप्त हुए और सोचने लगे 'यह काष्ठकी प्रतिमा नहीं, यहाँ तो साक्षात् ब्रह्म प्रकाशमान हैं।' उस समय उन्होंने यज्ञसभामें आये हुए ब्राह्मणोंकी बातपर पूर्ण विश्वास किया और आपसमें कहा—'कहाँ हम दोनों महापातकी क्रमशः यमयातना भोगनेके अधिकारी और कहाँ देवताओंसे सेवित भगवान् विष्णुका दर्शन! हम तो निरे मूर्ख थे। इस समय अठारह विद्याओंमें प्रवीण हो गये हैं। इसलिये यह भ्रम नहीं, वास्तविक ज्ञान है। यथार्थवादी ब्राह्मणोंने जो कहा था कि तीर्थराज समुद्रके तटपर साक्षात् ब्रह्म विराजमान हैं और वटवृक्षकी जड़में ये सदा प्रकाशमान होते हैं। उनके दर्शनसे सब प्राणी मुक्त हो जाते हैं, उन सब बातोंका आज प्रत्यक्ष अनुभव हुआ। ये वही भगवान् जगन्नाथ हैं, जो चार स्वरूपोंमें स्थित हुए हैं। पृथ्वीपर जब ये अवतार लेते हैं, तब चार रूपोंमें प्रकाशित होते हैं। अब हम दोनों जबतक प्राण धारण करेंगे, इन्हींके समीप रहेंगे। क्षुद्र कामनाओंसे मुँह मोड़कर अन्यत्र जानेका नाम भी न लेंगे।'

ऐसा निश्चय करके वे दोनों भगवान् विष्णुके भजनमें तत्पर हो गये। सदा नारायणका नाम जपते हुए उन्होंने मोक्ष प्राप्त कर लिया। यह पापनाशक चरित्र अत्यन्त गोपनीय है। इस तीर्थके प्रसंगसे मैंने इसका वर्णन किया है। जो मनुष्य पुण्डरीक और अम्बरीषके इस चरित्रको सुनते और कहते हैं, वे परम आनन्दके साथ भगवान् विष्णुके परमधामको प्राप्त होते हैं।

उत्कल देशके भव्य रूपका परिचय, राजा इन्द्रद्युम्नका एक तीर्थयात्रीसे पुरुषोत्तमक्षेत्रकी महिमा सुनकर पुरोहितके भाईको वहाँ भेजना और उनका नीलाचलके समीप शबरसे वार्तालाप

मुनियोंने पूछा—द्विजश्रेष्ठ! जहाँ काष्ठप्रतिमाके रूपमें साक्षात् भगवान् नारायण विराजमान हैं, वह पुरुषोत्तमक्षेत्र किस देशमें है?

जैमिनिजीने उत्तर दिया—उत्कल (उड़ीसा) नामसे प्रसिद्ध एक परम पावन देश है, जहाँ अनेक तीर्थ और बहुत-से पवित्र देवमन्दिर हैं।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

वह प्रदेश दक्षिण समुद्रके तटपर बसा हुआ है। उसमें रहनेवाले पुरुष सदाचारके आदर्श हैं। वहाँके ब्राह्मण उत्तम आचार और स्वाध्यायसे सम्पन्न हो सदा यज्ञकर्ममें संलग्न रहते हैं। सृष्टिके आदिमें यज्ञ और वेदाध्ययनकी प्रवृत्ति वहींसे होती है, अतः वहाँके निवासी ब्राह्मण वेद-शास्त्रोंके प्रवर्तक हैं। उस देशको अठारह विद्याओंकी निधि बताया गया है। वहाँ भगवान् नारायणकी आज्ञासे घर-घरमें लक्ष्मीका वास है। उस देशके निवासी मनुष्य लज्जाशील, विनयी, चिन्ता तथा रोगसे रहित, पिता-माताके सेवक, सत्यवादी तथा विष्णुभक्त होते हैं। वहाँ कोई भी ऐसा पुरुष नहीं होगा, जो विष्णुका भक्त एवं आस्तिक न हो। उस देशके सब लोग परोपकारी होते हैं। लोभी, दुष्ट और शठ मनुष्योंका वहाँ सर्वथा अभाव है। उस प्रदेशके लोग दीर्घजीवी होते हैं। स्त्रियाँ पतिव्रता, सुशीला, धर्मपरायणा, लज्जा और सदाचारसे विभूषित, रूपवती, सब प्रकारके आभूषणोंसे अलंकृत तथा कुल, शील और वयके अनुसार आचार-विचारका पालन करनेवाली होती हैं।

वहाँके क्षत्रिय भी अपने कर्तव्यका पालन करते हैं। वे सब-के-सब प्रजाकी रक्षाके व्रतमें दीक्षित होते हैं। दान देनेमें उदार और सब शास्त्रोंके ज्ञानमें निपुण होते हैं। सदा अधिक दक्षिणावाले यज्ञोंका अनुष्ठान करते हैं। उनकी यज्ञवेदियाँ सदा प्रज्वलित रहती हैं तथा सुवर्णभूषित यूप शोभा पाते रहते हैं। उनके घरपर पधारे हुए अतिथियोंको उनकी कामनासे अधिक वस्तुएँ देकर सन्तुष्ट किया जाता है। उत्कलके वैश्य भी कृषि, वाणिज्य और गोरक्षाकी वृत्तिमें स्थित होते हैं। वे अपनी भक्ति और धनसे देवता, गुरु और ब्राह्मणोंको तृप्त करते हैं। वहाँ एकके घरपर पधारे हुए याचकको दूसरेके घरपर जानेकी आवश्यकता नहीं रह जाती। उस देशके शूद्र संगीत, काव्य, कला और शिल्पमें कुशल तथा प्रिय वचन बोलनेवाले होते हैं। धार्मिक एवं स्नान-दानादि कर्मोंमें तत्पर होते हैं। वे अपने मन, वाणी, क्रिया तथा धनके द्वारा द्विजोंकी सेवामें लगे रहते हैं। वहाँ वर्णसंकरजातिके लोग भी अपने-अपने धर्ममें स्थित होते हैं। ऋतुएँ विपरीतभाव नहीं धारण करतीं। मेघ असमयमें वर्षा नहीं करते। खेतीको हानि नहीं पहुँचती। हवाका भी कष्ट नहीं होता तथा प्रजाको भूखकी पीड़ा नहीं सहन करनी पड़ती। अकाल और महामारीका प्रकोप नहीं होता। राज्यका नाश नहीं होता। पृथिवीपर होनेवाली कोई भी वस्तु वहाँ अलभ्य नहीं है। यही वह सब देशोंमें श्रेष्ठ उत्कल है। दक्षिण समुद्रमें मिलनेवाली ऋषिकुल्या नदीतक पहुँचकर स्वर्णरेखा और महानदीके बीचमें जो देश प्रतिष्ठित है, वही उत्कल है। इस पवित्र प्रान्तमें बहुत-से उत्तम क्षेत्र हैं।

सत्ययुगमें इन्द्रद्युम्न नामसे प्रसिद्ध एक श्रेष्ठ राजा हो गये हैं। उनका जन्म सूर्यवंशमें हुआ था। वे ब्रह्माजीसे पाँचवीं पीढ़ी नीचे थे। राजा इन्द्रद्युम्न सत्यवादी, सदाचारी, शुद्ध तथा सात्त्विक पुरुषोंमें अग्रगण्य थे। प्रजाको अपनी सन्तान समझकर सदा न्यायपूर्वक उसका पालन करते थे। वे आध्यात्मिक ज्ञानमें कुशल, शूर, समरविजयी, सदा उद्यमशील, ब्राह्मणपूजक तथा पितृभक्त थे। अठारह विद्याओंमें दूसरे बृहस्पतिके समान प्रवीण थे। ऐश्वर्यमें देवराज इन्द्र तथा कोष-संग्रहमें कुबेरकी समानता करते थे। रूपवान्, सौभाग्यशाली, शीलवान्, दानी, भोगी, प्रिय वक्ता, समस्त यज्ञोंका यजन करनेवाले तथा सत्यप्रतिज्ञ भी थे। उनमें भगवान् विष्णुकी भक्ति थी, सत्यभाषणका गुण था। उन्होंने क्रोध और इन्द्रियोंपर विजय प्राप्त कर ली थी। वे श्रेष्ठ राजसूय यज्ञ तथा सहस्रों अश्वमेध यज्ञका अनुष्ठान कर चुके थे। संसारबन्धनसे मुक्त होनेकी इच्छा रखकर सदा धर्माचरणमें ही लगे रहते थे। इस प्रकार वे सर्वगुणसम्पन्न राजा इन्द्रद्युम्न समूची पृथ्वीका पालन करते हुए मालव देशमें विख्यात

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

और समस्त रत्नोंसे सम्पन्न द्वितीय अमरावतीके समान सुशोभित अवन्ती नामवाली नगरीमें निवास करते थे। वहाँ रहते हुए राजाने भगवान् विष्णुमें मन, वाणी और क्रियाद्वारा परम अद्भुत एवं उत्तम भक्ति बढ़ायी।

एक दिन भगवान् लक्ष्मीपतिकी पूजाके समय देवपूजागृहमें बैठे हुए राजाने अपने पुरोहितसे आदरपूर्वक कहा—'आप उस उत्तम क्षेत्रका पता लगाइये जहाँ हम इसी नेत्रसे साक्षात् भगवान् जगन्नाथका दर्शन करें।' वैष्णव राजाके ऐसा कहनेपर पुरोहितजीने तीर्थयात्रियोंके एक झुंडको देखकर उनसे प्रेमपूर्वक कहा—'तीर्थोंमें विचरनेवाले तथा तीर्थोंका ज्ञान रखनेवाले धर्मात्मा पुरुषो! हमारे महाराज जो आज्ञा देते हैं उसे तुमलोगोंने सुना है क्या? तुममेंसे किसीको उत्तम तीर्थका पता है क्या?' उनका अभिप्राय समझकर उन यात्रियोंमेंसे एक व्यक्ति, जो बहुत तीर्थोंमें घूम चुका था और अच्छा वक्ता था, राजाके पास आ हाथ जोड़कर बोला—'राजन्! मैंने बचपनसे ही अनेक तीर्थोंमें भ्रमण किया है। भारतवर्षमें ओढ्र नामसे प्रसिद्ध एक देश है। उस देशमें दक्षिण समुद्रके तटपर श्रीपुरुषोत्तमक्षेत्र है, जहाँ नीलाचल नामक एक पर्वत है। वह सब ओरसे वनोंद्वारा घिरा हुआ है। उसके बीचमें कल्पवृक्ष है, जिसके पश्चिम भागमें रौहिण कुण्ड है। वह भगवान्की करुणारूप जलसे भरा हुआ है, जो स्पर्श करनेमात्रसे ही मोक्ष देनेवाला है। उसके पूर्वीय तटपर इन्द्रनीलमणिकी बनी हुई भगवान् वासुदेवकी प्रतिमा है, जो साक्षात् मोक्ष प्रदान करनेवाली है। उस कुण्डमें स्नान करके जो भगवान् पुरुषोत्तमका दर्शन करता है, वह मुक्त हो जाता है। वहाँ शबरदीपक नामक एक श्रेष्ठ आश्रम है, जो भगवद्विग्रहसे पश्चिम दिशामें स्थित है। उस आश्रमसे एक पगडंडीका रास्ता है, जिससे भगवान् विष्णुके स्थानतक जा सकते हैं। वहाँ शंख-चक्र-गदाधारी साक्षात् भगवान् जगन्नाथ विराजमान हैं। वे करुणाके समुद्र हैं, दर्शनमात्रसे ही सब जीवोंको मुक्ति प्रदान करते हैं। राजन्! देवाधिदेव जगन्नाथजीकी प्रसन्नताके लिये मैंने एक वर्षतक पुरुषोत्तमक्षेत्रमें निवास किया। मैं महामूर्ख था परंतु उनकी कृपासे इस समय अठारहों विद्याओंमें प्रवीण हो गया हूँ। मेरी बुद्धि भी निर्मल हो गयी है, जिससे भगवान् विष्णुके सिवा और कुछ मैं नहीं देखता। तुम सदैव दृढ़तापूर्वक उत्तम व्रतका पालन करनेवाले विष्णुभक्त हो, इसलिये तुम्हारे पास आया हूँ। मैं तुमसे इस समय धन अथवा भूमि नहीं माँगता। केवल इतना ही कहता हूँ कि मेरी इस बातको झूठ न मानकर वहाँ पुरुषोत्तमक्षेत्रमें निवास करनेवाले भगवान् लक्ष्मीपतिका भजन करो।'

यों कहकर वह जटाधारी यात्री सबके देखते-देखते शीघ्र अन्तर्धान हो गया। इससे राजाको बड़ा विस्मय हुआ। वे व्याकुल होकर पुरोहितसे बोले—'यह अलौकिक वृत्तान्त अलौकिक पुरुषसे ही सुना गया है। अब मेरी बुद्धि जहाँ भगवान् गदाधर विराजमान हैं, वहाँ जानेके लिये उतावली हो रही है। द्विजश्रेष्ठ! मेरे धर्म, अर्थ और काम एक-दूसरेके अनुकूल रहकर सदा आपके अधीन रहे हैं। आपके प्रसादसे मैंने त्रिवर्गका साधन तो कर लिया। यदि आप इस भगवद्दर्शनके कार्यमें भी मेरे साथ चलेंगे तो मैं आपके सहयोगसे चारों पुरुषार्थोंको प्राप्त कर लूँगा।'

पुरोहित बोले—राजन्! मैं ऐसा प्रयत्न करूँगा कि हमलोग सहायकोंसहित पुरुषोत्तमक्षेत्रमें चलकर बस जायँ। जन्मकी सफलता इससे बढ़कर और क्या हो सकती है कि साक्षात् भगवान् लक्ष्मीपतिका दर्शन किया जाय। इस समय मेरा छोटा भाई विद्यापति सब देशोंमें घूमनेवाले दूतोंके साथ वहाँ जायगा और जगन्नाथजीका दर्शन करके उस पर्वतपर सैनिकोंके ठहरनेयोग्य स्थानका पता

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

लगाकर शीघ्र सब समाचार ले आयेगा। इससे हमलोगोंका कल्याण होगा।

पुरोहितकी यह बात सुनकर राजा इन्द्रद्युम्नने कहा—ब्रह्मन्! बहुत अच्छा। अब मैं भगवान् विष्णुके समीप उसी क्षेत्रमें चलकर बसूँगा।

ऐसा कहकर राजाने प्रसन्नतापूर्वक अन्तःपुरमें प्रवेश किया और पुरोहितने उन सब यात्रियोंको यथायोग्य सम्मान देकर अपने-अपने आश्रमको भेजा। फिर अपने भाईको ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन कराकर शुभ मुहूर्तमें भेजा। विद्यापति समस्त विश्वसनीय पुरुषोंके साथ पुष्पशोभित रथपर आरूढ़ हो वहाँसे प्रस्थित हुआ। उसने रथमें बैठे-बैठे यह विचार किया कि 'अहो! मेरा जन्म सफल हो गया। मेरी रात्रि मंगलमय प्रभातका दर्शन करानेवाली होगी; क्योंकि मैं भगवान्के उस मुखारविन्दका दर्शन करूँगा, जो समस्त पापोंको दूर करनेवाला है। श्रवण, मनन आदि साधनोंसे निरन्तर प्रयत्न करनेवाले साधक जिन्हें अपने हृदय-कमलके मध्य विराजमान देखते हैं, उन्हीं भगवान् चक्रपाणिको आज मैं नीलाचलके शिखरपर साक्षात् शरीर धारण किये देखूँगा, जो शरीरबन्धनका नाश करनेवाले हैं। श्रुति, स्मृति, इतिहास और पुराणके वचनोंद्वारा जिनके स्वरूपका भलीभाँति निरूपण करना असम्भव है, उन्हीं भगवान् लक्ष्मीनिधिके अदृष्टपूर्व स्वरूपका दर्शन करके आज मैं भवसागरसे पार हो जाऊँगा। जिनके नामसंकीर्तनमात्रसे उनका स्मरण करनेवाले मनुष्योंके विविध पापोंका संहार हो जाता है, उन्हीं अप्रमेय भगवान् जगन्नाथके नीलगिरिनिवासी स्वरूपका आज मैं प्रत्यक्ष दर्शन करूँगा जिनके रोम-रोममें असंख्य ब्रह्माण्डोंकी मालाएँ हैं, जिनके सहस्रों मस्तक, चरण और नेत्र हैं, जिनकी निःश्वास-वायुसे सम्पूर्ण वेदोंकी राशि प्रकट हुई है तथा जो सब प्रपंचोंके स्वामी हैं, उन पुराणपुरुष भगवान् विष्णुकी मैं शरण लेता हूँ। अहा! मेरा कैसा भाग्य है कि इन्हीं चर्मचक्षुओंसे मैं जगत्के आदिकारण भगवान् नारायणका दर्शन करूँगा।'

इसी विचारमें पड़े हुए प्रसन्नचित्त ब्राह्मणको रथके वेगसे लाँघे हुए विशाल मार्गका कुछ भी पता न चला। मार्गमें मिले हुए अनेकों वन, पर्वत तथा दुर्गम स्थानोंको देखते हुए वे सूर्यास्तके समय महानदीके तटपर जा पहुँचे। उन्होंने रथसे उतरकर विधिपूर्वक नित्यकर्म किया और सायंसन्ध्या करके भगवान् मधुसूदनका ध्यान किया। तत्पश्चात् रथपर ही बैठे-बैठे रात बितायी। सबेरा होनेपर शीघ्र ही महानदीको पार किया। फिर प्रातःकालिक कृत्य समाप्त करके रथपर आरूढ़ हो गोविन्दका चिन्तन करते हुए ही आगेको प्रस्थान किया। भगवान्के निकट जानेवाले मार्गको देखते हुए वे एकाम्रवनमें पहुँचे। उसके बाद कल्पवटसे विभूषित गगनचुम्बी नीलाचलका शिखर देखा, जो दर्शकोंके पापोंका नाश करनेवाला है। साक्षात् शरीरधारी भगवान् विष्णुके उस अद्भुत निवासस्थानको खोजते हुए विद्यापति नीलाचलकी उपत्यका (तराई)-में जा पहुँचे। अब वे भगवान्के दर्शनके लिये अत्यन्त उत्कण्ठित हो गये; किंतु आगे बढ़नेका मार्ग नहीं मिला। तब भूमिपर कुशा बिछाकर मौनभावसे लेट गये और भगवद्दर्शनकी सिद्धिके लिये भगवान्के ही शरणागत हो गये। तब पर्वतसे पश्चिम भगवद्भक्तके विषयमें बातचीत करनेवाले लोगोंकी अलौकिक वाणी सुनायी देने लगी। तब वे प्रसन्न होकर उसी शब्दका अनुसरण करते हुए आगे बढ़े। कुछ ही दूरपर विख्यात शबरदीपक नामक आश्रम मिला। वहाँ उन्होंने वैष्णव भक्तोंका दर्शन किया और उन्हें प्रणाम करके हाथ जोड़कर खड़े हो गये। तब विश्वावसु नामक शबर भगवान् विष्णुका पूजन समाप्त करके पूजाके प्रसादसे सुशोभित हो पर्वतके बीचसे वहाँ आया। उसे देखकर ब्राह्मणको बड़ा हर्ष हुआ और वे सोचने लगे—ये श्रेष्ठ वैष्णव हैं, इनसे मुझे भगवान् विष्णुके सम्बन्धमें

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

दुर्लभ समाचार प्राप्त होगा। इसी विचारमें पड़े हुए ब्राह्मणसे शबरने कहा—'ब्रह्मन्! आप कहाँसे

इस वनमें पधारे हैं? यह वनका मार्ग तो बड़ा दुस्तर है, आप भूख-प्याससे बहुत थक गये होंगे। यहाँ सुखपूर्वक बैठिये और दीर्घकालतक विश्राम कीजिये।' ऐसा कहते हुए विश्वावसुने ब्राह्मणके लिये पाद्य, आसन और अर्घ्य प्रदान किया तथा विनययुक्त वाणीमें पूछा—'विप्रवर! आप फलाहार करेंगे या तैयार की हुई रसोई? जैसी आपकी रुचि हो, वैसा ही भोजन मैं प्रस्तुत करूँगा। भगवन्! आज मेरा अहोभाग्य है, यह जीवन सफल हो गया; क्योंकि आप साक्षात् दूसरे विष्णुकी भाँति मेरे घरपर पधारे हैं।'

इस प्रकार पूछनेपर श्रेष्ठ ब्राह्मण विद्यापतिने कहा—वैष्णवश्रेष्ठ! फल अथवा तैयार की हुई रसोईसे मेरा कोई प्रयोजन नहीं है। मैं बहुत दूरसे जिस उद्देश्यको लेकर यहाँ आया हूँ, उसे सफल करें। मैं अवन्तीपुरीके निवासी महाराज इन्द्रद्युम्नका पुरोहित हूँ और भगवान् विष्णुके दर्शनकी इच्छासे यहाँ आया हूँ। राजाने मुझे यहाँ निवास करनेवाले नीलमाधव श्रीहरिका दर्शन करनेके लिये भेजा है। दर्शन करके मैं जबतक राजाके पास इसका समाचार न पहुँचा दूँगा, तबतक राजा निराहार रहेंगे। इसलिये आप मुझे भगवान् विष्णुका दर्शन कराइये।

विद्यापतिका शबरके साथ नीलमाधवका दर्शन करके तीर्थकी परिक्रमा करना और अवन्तीमें जाकर राजा इन्द्रद्युम्नको सब समाचार सुनाना

जैमिनिजी कहते हैं—ब्राह्मणकी बात सुनकर शबरने अविनाशी भगवान् विष्णुका ध्यान करते हुए कहा—'विप्रवर! हमने पहलेसे भी यह समाचार सुन रखा है कि इस तीर्थमें राजा इन्द्रद्युम्न निवास करेंगे। चलिये, पर्वतके ऊपरकी भूमिपर चलें।' ऐसा कहकर शबर ब्राह्मणको उसी मार्गसे गहन वनमें ले गया। ऊपर-ऊपर चढ़कर शिलाखण्डोंके कारण ऊँची-नीची भूमिपर एक-एक मनुष्यके चलनेयोग्य रास्ता था, वह भी काँटोंसे भरा होनेके कारण अति दुर्गम हो रहा था और वहाँ प्रायः अन्धकार छाया रहता था। शबर वाणीद्वारा बोल-बोलकर ब्राह्मणको रास्तेका परिचय कराता चलता था। इस प्रकार चार घड़ीतक चलकर वे दोनों रौहिण कुण्डके तटपर पहुँचे। उसे देखकर शबरने कहा—'द्विजश्रेष्ठ! यह रौहिण नामक कुण्ड है, जो समस्त जलोंकी उत्पत्तिका कारणभूत महातीर्थ है। यहाँ स्नान करके मनुष्य वैकुण्ठ धाममें जाता है। इसके पूर्वभागमें यह महान् कल्पवट है, जिसकी छायामें जाकर मनुष्य ब्रह्महत्याका भी नाश कर देता है। इन दोनोंके मध्यभागमें जो

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

कुंज है, उसमें वेदान्तप्रतिपादित साक्षात् भगवान् जगन्नाथजी विराजमान हैं; इनका दर्शन कीजिये। दर्शन करके समस्त पापराशिका विनाश कर डालिये और इसके बाद 'मैं भवसागरमें पड़ा हूँ'—इस शोक और चिन्ताको सदाके लिये त्याग दीजिये।'

तब विद्वान् ब्राह्मण विद्यापतिने प्रसन्नचित्त होकर उस कुण्डमें स्नान किया और दूरसे ही मन, वाणी एवं मस्तकद्वारा भगवान्‌को प्रणाम करके हर्षगद्‌गद वचन बोलकर उनकी स्तुति की—'प्रभो! आप प्रकृति और पुरुषसे सर्वथा अतीत पुरुषोत्तम हैं। सर्वव्यापी एवं परात्पर हैं। इस चराचर जगत्‌को भिन्न-भिन्न अवस्थाओंमें परिणत करनेवाले आप ही हैं। परमार्थस्वरूप परमेश्वर! आपको नमस्कार है। जगत्पते! श्रुति-स्मृति-पुराण और इतिहासद्वारा प्रतिपादित समस्त कर्मोंसे एकमात्र आपकी ही आराधना होती है। जिनके चरणकमलोंके संयोगसे सर्वतीर्थमयी गंगा सब लोगोंको पवित्र करती हैं, उन परमपावन भगवान् श्रीहरिको नमस्कार है। जिनके अंशभूत आनन्दको पाकर सम्पूर्ण विश्वके प्राणी आनन्दमय होकर जीवन धारण करते हैं, समस्त पापोंसे रहित उन ब्रह्मस्वरूप विष्णुको नमस्कार है। प्रभो! आप निर्मलस्वरूप, कल्याणरूप, सब प्रकारकी आसक्तियोंसे रहित तथा विश्वसाक्षी हैं, आपको नमस्कार है। आपके असंख्य चरण, नेत्र, मस्तक, मुख और भुजाएँ हैं। आप सबको जीतनेवाले हैं। सभी जीव आपके स्वरूप हैं; आप सर्वरूपी परमात्माको नमस्कार है। भगवन्! इस असार संसारमें चक्कर लगानेके कारण मैं रोग और शोकोंसे बहुत पीड़ित हो गया हूँ और आपके युगल चरणारविन्दोंकी शरणमें आया हूँ। आप इस सांसारिक दुःखसमुदायसे मेरा उद्धार कीजिये।'

प्रणवरूपी देवेश्वर भगवान् विष्णुका इस प्रकार स्तवन करके उनके चरणोंमें मस्तक झुकाकर विद्यापति ब्राह्मण भगवान् विष्णुके आगे प्रणवमन्त्रका जप करने लगे। जपके अन्तमें शबरने कहा—'द्विजश्रेष्ठ! इस समय आप भगवान्‌का दर्शन पाकर कृतार्थ हो गये। दिन बीत गया, आप थके-मादे और भूखे-प्यासे हैं, अतः चलिये घर चलें। इस घोर वनमें हिंसक जन्तुओंका निवास है; इसलिये हमारा यहाँ ठहरना उचित नहीं है। जबतक सूर्यकी किरणोंका प्रकाश है, तबतक ही हमलोग अपने घर पहुँच जायँ।' ऐसा कहकर ब्राह्मणके साथ शबर शीघ्रतापूर्वक आश्रमको लौटा। ब्राह्मण भी आनन्दसागर भगवान् जगन्नाथके ध्यानमें डूबे हुए थे, अतः उन्हें भूख-प्यास और थकावटसे प्राप्त होनेवाले दुःखोंका भान नहीं हुआ। भगवच्चिन्तनमें संलग्न होनेसे शरीरमें उनकी आस्था नहीं रह गयी थी। वे शरीरस्थितिसे ऊपर उठ चुके थे, इसलिये कण्टकराशिसे व्याप्त शिलाखण्डोंके ऊँचे-नीचे दुर्गम मार्गमें चलते हुए भी कष्टका अनुभव नहीं करते थे। घर आनेपर शबरने ब्राह्मण अतिथिको नाना प्रकारके पवित्र दिव्य पदार्थ देकर भलीभाँति उनका पूजन किया। तदनन्तर शबरके दिये हुए राजोचित उपचारोंसे पूर्णतः तृप्त होकर ब्राह्मणको बड़ा विस्मय हुआ। उन्होंने चकित होकर कहा—'साधो! तुमने मेरे सत्कारके लिये जो ये अलौकिक वस्तुएँ समर्पित की हैं, उनका दर्शन राजाओंने भी नहीं किया है। तुम्हारे घरमें ऐसी दिव्य वस्तुओंका संग्रह आश्चर्यकी बात है!'

शबरने कहा—द्विजश्रेष्ठ! इन्द्र आदि देवता प्रतिदिन दिव्य उपचार लेकर जगन्नाथजीकी पूजा करनेके लिये आते हैं, पूजा करके भक्तिपूर्वक स्तुति और नमस्कार करते हैं। फिर गीत, वाद्य और नृत्यके द्वारा भगवान्‌को सन्तुष्ट करके अपने स्थानको लौट जाते हैं। ये सब दिव्य पदार्थ जगन्नाथजीके प्रसाद हैं, जो मैंने आपको अर्पित किये हैं। भगवान्‌के इस प्रसादको खाकर हमलोगोंके रोग और बुढ़ापेका नाश हो गया है। जिसके

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

सेवनसे मनुष्य मोक्षका भागी होता है, उस प्रसादका यदि ऐसा प्रभाव हो तो यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं है।

भगवत्प्रसादका यह दुर्लभ प्रभाव सुनकर ब्राह्मणके शरीरमें रोमांच हो आया, आनन्दके आँसुओंसे उनकी आँखें बंद हो गयीं और उन्होंने अपनेको कृतार्थ मानते हुए कहा—'अहो! यह शबरकुलमें उत्पन्न मनुष्य प्रतिदिन अविनाशी परमात्माका दर्शन करता है और उनके प्रसादस्वरूप दिव्य भोगका उपभोग करता है। इस पृथ्वीपर चराचर जगत्में इसके समान भाग्यवान् दूसरा कोई नहीं है। इसके साथ मैत्री करके मैं भी इस वनमें निवास करूँगा।' इस प्रकार दीर्घकालतक विचार करके भगवान् श्रीविष्णुमें मन लगाये रहनेवाले उस ब्राह्मणने शबरसे कहा—'यदि मुझपर तुम्हारा अनुग्रह हो, तो मैं तुम्हारे साथ मित्रता करूँगा। यह मेरे मनका महान् निश्चय है। बड़े भाग्यसे तुम्हारे साथ समागम हुआ है। अब तुम्हारे प्रसादसे मैं दुस्तर भवसागरको पार कर जाऊँगा। वैष्णवके साथ मित्रता होना दुःखमय संसारसे पार करनेवाला है। इसीको इस असार संसारसागरमें सार वस्तु बताकर साधु पुरुष इसकी सराहना करते हैं। तुम-जैसे मित्रके सहवाससे कमलके समान नेत्रोंवाले, शंख-चक्र-गदाधारी भगवान् विष्णुका पुनः प्रत्यक्ष दर्शन होगा। सखे! मेरे लौट जानेपर राजा इन्द्रद्युम्न भगवान्की आराधना करनेके लिये यहीं आकर निवास करेंगे। उनकी इच्छा है, यहाँ एक विशाल मन्दिर बनवावें, जो भगवान्को प्रिय है। जगन्नाथजीकी पूजाके लिये सहस्रों उपचारोंका प्रबन्ध करूँगा—यह उनकी महाप्रतिज्ञा है।'

शबरने कहा—सखे! यह भी पुरातनकालसे वैसी ही बात प्रसिद्ध है, जैसी कि आपने इन्द्रद्युम्नके आगमनके सम्बन्धमें कही है। केवल इतनी ही बात होगी कि राजा यहाँ नीलमाधवका दर्शन नहीं कर सकेंगे। भगवान्ने यमराजसे एक प्रतिज्ञा की है, उसके अनुसार वे शीघ्र ही स्वर्णमयी बालुकामें छिपकर अदृश्य हो जायँगे। आपने महान् सौभाग्यके फलसे भगवान्का प्रत्यक्ष दर्शन कर लिया है। इन्द्रद्युम्नके आनेपर निश्चय ही आँखोंसे ओझल हो जायँगे, परन्तु यह बात आपको राजाके आगे नहीं कहनी चाहिये। राजा जब यहाँ आकर भगवान्को नहीं देखेंगे और अन्न-जल त्यागकर मरनेको तैयार हो जायँगे, तब स्वप्नमें उन्हें भगवान् गदाधरका दर्शन होगा और उन्हींके आदेशसे वे भगवान्की काष्ठमयी चार मूर्तियोंको ब्रह्माजीके द्वारा स्थापित कराकर भक्तिपूर्वक उनकी पूजा करेंगे।

इस प्रकार परस्पर पुण्यमयी चर्चा करके दोनों सुन्दर स्थानमें पल्लव बिछी हुई शय्यापर सो गये। सबेरा होनेपर दोनोंने तीर्थराज समुद्रके जलमें विधिपूर्वक स्नान किया और भगवान् माधवको प्रणाम करके राजाके रहने योग्य उत्तम स्थानका निश्चय करनेके पश्चात् वे दोनों लौट आये। तत्पश्चात् मित्रसे विदा लेकर ब्राह्मण रथपर आरूढ़ हो अवन्तीपुरीको चले।

रथपर बैठे हुए विद्यापति ब्राह्मणने यह विचार किया कि मैंने जो भगवान् नीलमाधवका दर्शन कर लिया, उससे मेरा कर्तव्य पूरा हो गया। अब श्रीपुरुषोत्तमक्षेत्रकी परिक्रमा करके शीघ्र यहाँसे लौटूँ। ऐसा निश्चय करके वे नाना प्रकारके वृक्षोंसे भरे हुए क्षेत्र और वनको देखते हुए उस समय उस पुरुषोत्तमतीर्थकी परिक्रमा करने लगे। परिक्रमा पूरी करके भगवान्का ध्यान करते हुए बिना खाये-पीये चले और सन्ध्या होते-होते अवन्तीपुरीमें पहुँच गये। दूतोंने महाराजको उनके लौटनेका समाचार सुनाया; सुनकर महाराज इन्द्रद्युम्न बहुत प्रसन्न हुए। वे भगवान् जनार्दनकी पूजा करके विद्वान् ब्राह्मणोंके साथ प्रसन्नतापूर्वक बैठे और विद्यापतिके आगमनकी प्रतीक्षा करने लगे। इसी समय प्रवेशमार्ग बतानेवाले छड़ीदार सिपाहियों और द्वारपालोंद्वारा सूचित किये हुए रास्तेसे उत्कण्ठित

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

पुरवासियोंके साथ विद्यापति ब्राह्मणने भगवान् नीलमाधवकी प्रसादस्वरूप सुन्दर माला हाथमें लेकर राजाके आगे दरबारमें प्रवेश किया। उन्हें देखकर राजा सिंहासनसे उठकर खड़े हो गये और 'हे जगदीश! प्रसन्न होइये' ऐसा कहते हुए उनके समीप गये। तत्पश्चात् यों बोले—'आज मेरा जीवन, जन्म और कर्म—दोनों ही दृष्टियोंसे सफल हो गया; क्योंकि इस समय मैं यहाँ प्रसादमालाके रूपमें साक्षात् माधवका दर्शन कर रहा हूँ। संसारके समस्त पापोंका विनाश करनेवाली भगवान् विष्णुके मस्तकपर चढ़ी हुई इस दिव्य मालाको मैं प्रणाम करता हूँ। जिनके चरणकमलोंकी धूलिको अपने मस्तकमें लगाकर ब्रह्मा आदि देवताओंने महान् ऐश्वर्य प्राप्त किया है, उन भगवान् विष्णुके श्रीअंगोंमें लगे हुए उज्ज्वल अंगरागसे संयुक्त पुष्पोंकी आधारभूत इस मालाको मैं प्रणाम करता हूँ। हे नीलाचलके शिखरको विभूषित करनेवाले पापहारी हरि! आपकी जय हो। शरणागतोंकी पीड़ा दूर करनेवाले श्रीमान् नारायण! मैं आपकी शरणमें आया हूँ, मेरा उद्धार कीजिये।'

अश्रुगद्गद वाणीसे इस प्रकार कहते हुए राजा इन्द्रद्युम्नने धरतीपर मस्तक रखकर भगवान्‌को प्रणाम किया। उस समय उनके अंग-अंगमें रोमांच हो आया था। वे विद्यापति ब्राह्मण भी समस्त पापोंसे रहित हो भगवान् माधवका ध्यान करते हुए राजाके सम्मुख उपस्थित हुए और इस प्रकार बोले—'अपने तेजसे सम्पूर्ण लोकोंके पापोंका निवारण करनेवाले परम बुद्धिमान् नीलाचलशिखर-निवासी भगवान् श्रीमाधव आपपर अनुग्रह करें।' यों कहकर विद्यापतिने वह माला राजा इन्द्रद्युम्नके गलेमें डाल दी। राजाने भी उठकर अपने हृदयपर लटकती हुई मालाको देखकर ऐसा माना कि इसके रूपमें साक्षात् भगवान् लक्ष्मीपति ही मेरे हृदयमें आ गये हैं। फिर दोनों हाथ मस्तकपर जोड़कर उन्होंने अपने नेत्र कुछ-कुछ बंद कर लिये और आनन्दके आँसुओंसे गद्‌गदकण्ठ होकर श्रीहरिका इस प्रकार स्तवन किया।

इन्द्रद्युम्न बोले—समस्त संसारकी सृष्टि, पालन और संहाररूपी शिल्पके कारीगर! आपकी जय हो। अपने विश्वरूपके रोम-रोममें लीलासे ही असंख्य ब्राह्मणोंका भार धारण करनेवाले नारायण! आपकी जय हो। प्रभो! आप सबके अन्तर्यामी तथा शरणागतोंका दुःख दूर करनेवाले हैं। ब्रह्मा, इन्द्र तथा रुद्र आदि देवताओंके मुकुटसे आपके चरणारविन्दोंकी विचित्र शोभा होती है। आप दीनों, अनाथों और विपत्तिग्रस्त प्राणियोंकी रक्षामें सदैव तत्पर रहते हैं। अकारणकरुणावरुणालय! परात्पर! आपकी जय हो। जगन्नाथ! भक्तवत्सल! मैं अनादि कालसे भ्रममें भटकनेवाला दीन मनुष्य एकमात्र आपकी शरणमें आया हूँ, आप मेरी रक्षा करें।

इस प्रकार स्तुति करके राजा अपने आसनपर बैठे। उस समय गृहस्थ, ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और संन्यासी सब उन्हें घेरे हुए थे। अठारहों विद्याओंमें कुशल यज्ञकर्ता ब्राह्मणोंके साथ राजाने बहुत आदरपूर्वक विद्यापतिका पूजन किया और अपने सामने चौकीपर बिठाकर आदिसे ही कुशल-समाचार पूछा। पुरुषोत्तमक्षेत्रके माहात्म्य, नीलमणिविग्रहधारी भगवान् विष्णुकी महिमा तथा स्वरूपके विषयमें भी प्रश्न किया। तब विद्यापतिने अपने अनुभवमें आये हुए शबरद्वीपमें प्रवेशसे लेकर समुद्रमें स्नान करनेतकके पुरुषोत्तम-क्षेत्रसम्बन्धी समस्त वृत्तान्तको विस्तारपूर्वक कह सुनाया। नीलाचलपर चढ़ना, नीलमाधवका दर्शन करना, रौहिण कुण्डमें स्नान करना, कल्पवटकी महिमा, नृसिंह आदि स्वरूपोंकी प्रतिष्ठा, आठ शिव और आठ शक्तियोंकी स्थिति, रथसे घूमकर देखी हुई पुरुषोत्तमक्षेत्रकी लंबाई और चौड़ाई—सबका क्रमशः यथावत् वर्णन किया। वह अद्भुत वृत्तान्त सुनकर प्रसन्नचित्त हुए राजा इन्द्रद्युम्नने कहा—'भगवन्!

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

नीलेन्द्रमणिमय विग्रहवाले भगवान् विष्णुके स्वरूपका यथार्थ वर्णन कीजिये।'

विद्यापति बोले—राजन्! मैं भगवान् जगन्नाथकी उस दिव्य मूर्तिका वर्णन करता हूँ, जिसे इस चर्मचक्षुसे देखकर मनुष्य मोक्षका भाजन बन जाता है। भगवान्की वह मूर्ति बहुत प्राचीन तथा इन्द्रनीलमणि नामक प्रस्तरकी बनी है। ब्रह्मा, रुद्र और इन्द्र आदि देवता प्रतिदिन जाकर उसकी पूजा करते हैं। यह दिव्य माला देवताओंने ही पूजामें चढ़ायी थी। राजन्! यह न तो कभी मलिन होती है और न कभी इसकी सुगन्ध ही कम होती है। भगवान्के दिव्य उपहारमें आये हुए प्रसादके भक्षण करनेसे मेरे समस्त पाप क्षीण हो गये हैं और मैं देवताओंके सदृश अलौकिक तेजसे सम्पन्न हो गया हूँ। क्या आप इस बातको नहीं देख रहे हैं? महाराज! वहाँ भोग और मोक्ष दोनों एक ही साथ स्थित हैं। बुढ़ापा, रोग और शोक आदि दुःखोंका वहाँ अत्यन्त अभाव है। उस तीर्थमें विकसित नीलकमलके सदृश विशाल नेत्रोंवाले साक्षात् भगवान् जगन्नाथ प्रसन्नवदनसे विराजमान हैं, जो शरणागतोंको अमृतमय मोक्ष प्रदान करते हैं।

भगवान् जगन्नाथके नीलमणिमय विग्रहका वर्णन, इन्द्रद्युम्नके पास नारदजीका आगमन और भक्ति एवं भक्तके स्वरूपका विवेचन

इन्द्रद्युम्नने पूछा—द्विजश्रेष्ठ! जन्मसे लेकर कुछ काल पहलेतक तो आप पुरुषोत्तमक्षेत्रमें कभी गये ही नहीं थे, फिर आपने वहाँके दिव्य वृत्तान्तको कैसे जान लिया?

विद्यापतिने कहा—राजन्! मैं सन्ध्याके समय पुरुषोत्तमतीर्थमें भगवान् नीलाचलवासी विष्णुके समीप पहुँचा था। उस समय वहाँ दिव्य सुगन्धयुक्त वायु चल रही थी। आकाशमार्गमें देवताओंका सम्मिलित शब्द सुनायी पड़ता था। वहाँ विश्वावसु नामक शबर मेरा मित्र है, उसने दिव्य उपहार, भोजन तथा यह माला मुझे प्रदान की थी। कभी मलिन न होनेवाली यह बहुमूल्य माला लक्ष्मी तथा राज्यका सुख प्रदान करनेवाली है और दरिद्रता एवं पापका संहार करनेवाली है। इसलिये इसे आपके योग्य समझकर मैं यहाँ ले आया हूँ। भगवान् विष्णुका वह उत्तम क्षेत्र सब ओरसे घने जंगलोंसे व्याप्त है। नीलाचल उसकी नाभि (केन्द्रस्थान) है, लंबाई और चौड़ाईमें वह (वर्गके हिसाबसे) पाँच कोसका बताया गया है। तीर्थराज समुद्रके तटपर उसकी स्थिति है और वह सब ओरसे सुवर्णमयी बालुकाद्वारा आवृत है। पर्वतके शिखरपर एक बहुत ऊँचा वटवृक्ष है, जो प्रलयकालमें भी स्थिर रहता है। उसकी लंबाई एक कोसकी

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

है। वह फूल और फलसे रहित तथा पल्लवोंसे सुशोभित है। सूर्यके हटनेपर भी उसकी छायामें कोई परिवर्तन नहीं होता। उसके पश्चिम रौहिण नामसे प्रसिद्ध कुण्ड है, वहाँ जलका उद्गम है। उसमें उतरनेके लिये नील पत्थरोंकी सीढ़ी उसकी शोभा बढ़ाती है। कुण्डके बाहर चारों दिशाओंमें स्फटिकमणिकी चार वेदियाँ हैं; पापराशिका संहार करनेवाले पवित्र जलसे भरा हुआ वह कुण्ड बड़ा ही मनोरम है। कुण्डकी पूर्व दिशामें जो वेदी है, उसके मध्यभागमें शंख-चक्र-गदाधारी इन्द्रनीलमणिमय भगवान् विष्णु विराजमान हैं। वह स्थान वटवृक्षकी छाया पड़नेसे सदा शीतल बना रहता है। भगवान्का वह विग्रह इक्यासी अंगुल ऊँचा है और सुवर्णमय कमलके ऊपर स्थित है। उस श्रीविग्रहके मुखचन्द्रसे तीनों प्रकारके तापोंका निवारण होता है। भगवान्के दोनों नासिकापुट तिलके फूलके समान शोभा धारण करते हैं। प्रस्तरमयी मूर्ति होनेपर भी भगवान्के अधरपर मुसकानकी छटा रहती है। हँसीसे खिले हुए युगल कपोलोंद्वारा ठोढ़ी बहुत सुन्दर दिखायी देती है। मुँहके दोनों कोने ऐसे दिखायी देते हैं मानो और किसी मूर्तिके मुखकोण वैसे कभी बने ही न हों। हासयुक्त अधर, कपोल, ठोढ़ी और मुँहके सुन्दर कोने आदिको धारण करनेवाले भगवान् माधव विश्वकर्मा आदि शिल्पियोंके लिये आदर्श बने हुए हैं। मकराकार कुण्डलोंसे सुशोभित दोनों कानोंके द्वारा भगवान्का मुखचन्द्र गुरु और शुक्रके मध्यभागमें स्थित पूर्णचन्द्रका उपहास कर रहा है। गलेके सुन्दर आभूषणसे शोभाजनक कण्ठप्रदेशके द्वारा भगवान् अपना दर्शन करनेवाले पुरुषोंके चित्तमें दक्षिणावर्त शंखसे मुक्तामणिके प्रकट होनेकी आशंका उत्पन्न करते हैं। उनके कन्धे मोटे और चौड़े हैं। घुटनेतककी लंबी चार भुजाएँ हैं। वक्षःस्थलपर स्वच्छ एवं निर्मल हार शोभा पा रहा है। दिव्य कौस्तुभमणिमें पड़े हुए प्रतिबिम्बके रूपमें मानो वे चौदह भुवनोंको धारण करते हैं। गहरे नाभिरूपी सरोवरमें प्रविष्ट हुई सूक्ष्म रोमावलियोंके कारण भगवान्का श्रीविग्रह बड़ा मनोहर प्रतीत होता है। गलेमें लटकता हुआ हार त्रिवलीके मध्यभागतकका स्पर्श करता है। मोतीकी माला कमरके पासतक लटकी हुई है। वे पीताम्बरसे शोभा पाते हैं। दोनों जंघाएँ दो खम्भोंके समान जान पड़ती हैं, मानो वे मोक्षके मंगलमय धाममें जानेके लिये बाहरी द्वारके आश्रय हों। भगवान्के दोनों चरण गोलाकार घुटनों, पैरोंतक लटकती हुई वनमाला तथा रत्नमय कड़ोंसे शोभा पाते हैं। वे हार, कंकण, भुजबन्द और मुकुट आदिसे विभूषित हैं। भगवान् अपने चारों हाथोंमें क्रमशः चक्र, पद्म, गदा और शंखरूपमें परिणत ज्ञान, अहंकार, ऐश्वर्य तथा शब्दब्रह्म (वेदराशि)-को धारण करते हैं।* भगवान् जगन्नाथ सम्पूर्ण दिशाओंको प्रकाशित करते हुए नीलाचलके शिखर-पर विराजमान हैं, जिनका दर्शन करके, भक्तिपूर्वक प्रणाम करनेसे मनुष्य देहबन्धनसे मुक्त हो जाता है। भगवान्के वामपार्श्वमें भगवती लक्ष्मी वीणा बजा रही हैं। उनकी दृष्टि भगवान्के मुखकी ओर है। वे सम्पूर्ण लावण्यका निवास तथा समस्त अलंकारोंसे विभूषित हैं। जगत्के पिता और माता भगवान् विष्णु और भगवती लक्ष्मी दोनों उस पर्वतपर निवास करते हैं। मैंने उन दोनोंका दर्शन किया। वे दोनों मौनभावसे बैठे हैं और अपनी मुसकराती हुई दृष्टिसे दर्शन करनेवाले प्राणीपर कृपाकी वर्षा करते हैं। दीनोंपर दया करनेके कारण मैंने उन्हें चैतन्यरूप ही माना है। उनके पीछे अपने फणोंका छत्र लगाये भगवान् शेषनाग खड़े हैं और आगे सुदर्शन चक्रको दिव्य शरीर

* तेजोमय सुदर्शन चक्र प्रकाशस्वरूप ज्ञानका प्रतीक है। इस प्रकार कमल अहंकारका, गदा ऐश्वर्यका और शंख नादात्मक शब्दब्रह्मका प्रतीक है।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

धारण करके खड़े हुए देखा है। सुदर्शनके पीछे गरुड़जी हाथ जोड़े खड़े हैं। इस प्रकार अद्भुत रूप धारण करनेवाले साक्षात् लक्ष्मीपति भगवान् विष्णुका दर्शन करके मेरा मन बार-बार उन्हींकी ओर दौड़ रहा है मानो कोई इसे रस्सियोंमें बाँधकर अपनी ओर खींच रहा हो। तीर्थस्नान, तप, दान, देवयज्ञ और व्रतोंके द्वारा भी कोई वैसे दिव्यरूपमें भगवान्का दर्शन नहीं कर सकता। जो लोग निर्मल आकाशकी भाँति प्रतीत होनेवाले पुरुषोत्तमतीर्थनिवासी नील-विग्रह भगवान् विष्णुका ध्यान करते हैं वे सब प्रकारके बन्धनोंसे रहित होकर भगवान् विष्णुके धाममें प्रवेश करते हैं। जिसने नीलाचलनाथ भगवान्का दर्शन कर लिया है, वही दानी, वही यज्ञकर्ता, वही सत्यवादी, वही धर्मात्मा तथा वही सम्पूर्ण गुणोंसे श्रेष्ठ और समस्त जगत्में महान् है। राजन्! वहाँ जगदीश्वर माधवके जो सेवक हैं, उन्हींसे मैंने भगवान्के इस माहात्म्यका परिचय प्राप्त किया। वहाँ आदिसृष्टिकी परम्परासे चला आता हुआ पुरातन एवं सुप्रसिद्ध आख्यान सुनकर मैं यहाँ आया हूँ। महाराज! आपकी ही आज्ञासे श्रीपुरुषोत्तमका दर्शन करके वहाँका सब वृत्तान्त आपसे निवेदन किया है। अब आपकी जैसी इच्छा हो वैसा करें।

इन्द्रद्युम्न बोले—भगवन्! आपका वचन मेरे लिये सर्वथा विश्वसनीय है। आपके मुखसे भगवान्के पापहारी स्वरूपका वर्णन सुनकर तथा इस दिव्य प्रसादमालाका संयोग पाकर मैं कृतकृत्य हो गया। अनेक जन्मोंमें उपार्जित मेरी समस्त पापराशि आज नष्ट हो गयी। अब मैं भगवान् लक्ष्मीपतिके दर्शनका अधिकारी हो गया। सर्वतोभावेन वहाँकी यात्रा करूँगा और इस राज्य एवं बढ़ी हुई समृद्धिके द्वारा पुरुषोत्तमतीर्थमें निवासस्थान, नगर और दुर्ग बनवाऊँगा। भगवान् विष्णुकी प्रीतिके लिये सौ अश्वमेध यज्ञोंका अनुष्ठान करूँगा और प्रतिदिन सैकड़ों उपचारोंसे श्रीनाथजीकी पूजा करूँगा, व्रत, उपवास और नियमोंद्वारा जगद्गुरु भगवान्को प्रसन्न करूँगा, जिससे वे मुझ सन्तप्त प्राणीको अपने वचनामृतसे अभिषिक्त करेंगे। भगवान् नारायण दीनोंपर अनुग्रह करनेवाले हैं।

इस प्रकार राजा इन्द्रद्युम्न श्रद्धा और भक्तिसे भगवान् जगदीश्वरकी स्तुति कर रहे थे। इतनेमें ही सम्पूर्ण भुवनोंको देखनेकी उत्सुकता रखनेवाले देवर्षि नारदजी वहाँ आ पहुँचे। विष्णुभक्तोंमें श्रेष्ठ ब्रह्मपुत्र नारदजीको आते देख राजा सहसा उठकर खड़े हो गये और पाद्य, अर्घ्य एवं आचमनीय निवेदन करके उन्हें उत्तम आसनपर बैठाकर प्रणामपूर्वक हाथ जोड़कर बोले—'आज मेरे सम्पूर्ण यज्ञ, दान, स्वाध्याय और तप सफल हो गये; क्योंकि मेरे घरपर ब्रह्माजीके द्वितीय स्वरूप देवर्षि नारद कृपापूर्वक पधारे हैं। मुने! आपने यहाँतक आनेकी कृपा की, इतनेसे ही यद्यपि मैं कृतार्थ हो गया हूँ तथापि आपकी प्रसन्नताके लिये आपकी क्या सेवा करूँ, आपकी किस आज्ञाका पालन करूँ? कौन-सा प्रयोजन लेकर आपने मेरे इस घरको पवित्र किया है?'

भक्ति और विनयसे सनी हुई राजाकी यह कोमल वाणी सुनकर नारदजीने मुसकराते हुए कहा—'नृपश्रेष्ठ! तुम्हारे निर्मल गुणोंसे ब्रह्मा आदि सम्पूर्ण देवता, सिद्ध और मुनि अत्यन्त प्रसन्न हैं। तुमने बहुत अच्छा निश्चय किया। हजारों जन्मोंके अभ्याससे नीलाचलगुहानिवासी भगवान् माधवमें भक्ति होती है। परम बुद्धिमान् ब्रह्माजीने उन्हीं भगवान् जगदीश्वरकी आराधना करके इस सृष्टिका निर्माण किया और पितामहकी पदवी पायी है। तुम भी उन्हींके वंशमें उत्पन्न हुए हो, अतः भगवान्के प्रति तुम्हारी ऐसी भक्ति होनी उचित ही है। पग-पगपर दुःख और संकटोंसे व्याप्त इस संसाररूपी वनमें भटकते हुए मनुष्योंके लिये एकमात्र भगवान् विष्णुकी भक्ति ही सुख देनेवाली है। यह संसार एक

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

समुद्र है जहाँ कोई भी सहारा देनेवाला नहीं है। सुख-दु:ख आदि द्वन्द्वोंकी प्रचण्ड आँधीसे इसमें सदा तूफान आता रहता है, इस कारण यह अत्यन्त दुस्तर है। इस भवसागरमें डूबे हुए मनुष्योंके लिये भगवान् विष्णुकी भक्ति ही नौका मानी गयी है। एकमात्र माता भगवती विष्णुभक्तिका आश्रय लेकर सन्तुष्ट रहनेवाले साधुपुरुष कभी शोक नहीं करते। राजन्! देहधारियोंकी जो बड़ी भारी पापराशि है, वह विष्णुभक्तिरूपी महान् दावानलमें पतंगोंकी भाँति जल जाती है। प्रयाग, गंगा आदि तीर्थ, तपस्या, श्रेष्ठ अश्वमेध यज्ञ, महान् दान, व्रत, उपवास और नियम—इन सबका सहस्रों बार सेवन किया जाय और इनके पुण्यसमूहको कोटि-कोटि गुना करके एकत्र किया जाय तो भी वह विष्णुभक्तिके हजारवें अंशके बराबर भी नहीं बताया गया है१।'

नारदजीके बताये हुए विष्णुभक्ति-माहात्म्यको सुनकर राजा इन्द्रद्युम्नके मनमें विष्णुभक्तिका स्वरूप जाननेकी इच्छा हुई। अत: उन्होंने पूछा—'भगवन्! भक्तिका क्या स्वरूप है? उसके लक्षणका वर्णन कीजिये।'

नारदजीने कहा—राजन्! सावधान होकर सुनो। मैं भगवान् विष्णुकी सनातन भक्तिका सामान्य और विशेषरूपसे वर्णन करता हूँ। गुणोंके भेदसे भक्तिके तीन भेद हैं—सात्त्विकी, राजसी और तामसी। इनके अतिरिक्त एक चौथी भक्ति भी है, जो निर्गुणा मानी गयी है। राजन्! जो लोग काम और क्रोधके वशीभूत हैं और प्रत्यक्ष (इस जगत्)-के सिवा और किसी (परलोक आदि)-की ओर दृष्टि नहीं रखते, वे अपनेको लाभ और दूसरोंको हानि पहुँचानेके लिये जो भजन करते हैं, उनकी वह भक्ति तामसी कही गयी है। अधिक यशकी प्राप्तिके लिये अथवा दूसरेकी स्पर्धा (लाग-डाँट)-से, प्रसंगवश परलोकके लिये भी, जो भक्ति होती है, वह राजसी मानी गयी है। पारलौकिक लाभको स्थायी समझकर और इहलोकके समस्त पदार्थोंको नश्वर देखकर अपने वर्ण तथा आश्रमके धर्मोंका परित्याग न करते हुए आत्मज्ञानके लिये जो भक्ति की जाती है, वह सात्त्विकी है। यह जगत् जगन्नाथका ही स्वरूप है, उनसे भिन्न इसका दूसरा कोई कारण नहीं है, मैं भी भगवान्से भिन्न नहीं हूँ और वे भी मुझसे पृथक् नहीं हैं, ऐसा समझकर भेद उत्पन्न करनेवाली बाह्य उपाधियोंका त्याग करना और अधिक प्रेमसे भगवत्-स्वरूपका चिन्तन करते रहना—यह अद्वैत (निर्गुणा) नामवाली भक्ति है, जो मुक्तिका साक्षात् साधन है। यह अत्यन्त दुर्लभ है।२

अब मैं भगवान् विष्णुके भक्तोंका लक्षण बतलाता हूँ—जिनका चित्त अत्यन्त शान्त है, जो सबके प्रति कोमल भाव रखते हैं, जिन्होंने स्वेच्छानुसार अपनी इन्द्रियोंपर विजय प्राप्त कर ली है तथा जो मन, वाणी और क्रियाद्वारा कभी दूसरोंसे द्रोह करनेकी इच्छा नहीं रखते, जिनका चित्त दयासे द्रवीभूत होता है, जो चोरी और हिंसासे सदा ही मुख मोड़े रहते हैं, सद्गुणोंके संग्रह तथा दूसरोंके कार्यसाधनमें जो प्रसन्नतापूर्वक संलग्न रहते हैं, सदाचारसे जिनका जीवन सदा उज्ज्वल (निष्कलंक) बना रहता है, जो दूसरोंके उत्सवको अपना उत्सव मानते हैं, सब प्राणियोंके

१- अश्वमेधः क्रतुवरो दानानि सुमहान्ति च। व्रतोपवासनियमाः सहस्राण्यर्जिता अपि॥
समूह एषामेकत्र गणितः कोटिकोटिभिः। विष्णुभक्तेः सहस्रांशसमोऽसौ न हि कीर्तितः॥
(स्क० पु०, वै० उ० १०। ७३-७४)

२- जगच्चेदं जगन्नाथो नान्यच्चापि च कारणम्। अहं च न ततो भिन्नो मत्तोऽसौ न पृथक् स्थितः।
हानं बहिरुपाधीनां प्रेमोत्कर्षेण भावनम्। दुर्लभा भक्तिरेषा हि मुक्तयेऽद्वैतसंज्ञिता॥
(स्क० पु०, वै० उ० १०। ८६—८८)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

भीतर भगवान् वासुदेवको विराजमान देखकर कभी किसीसे ईर्ष्या-द्वेष नहीं रखते, दीनोंपर दया करना जिनका स्वभाव बन गया है और जो सदा परहितसाधनकी इच्छा रखते हैं, अविवेकी मनुष्योंका विषयोंमें जैसा प्रेम होता है, उससे सौ कोटि गुनी अधिक प्रीतिका विस्तार वे भगवान् श्रीहरिके प्रति करते हैं।[१] नित्य कर्तव्यबुद्धिसे विष्णुस्वरूप शंकर आदि देवताओंका भक्तिपूर्वक पूजन और ध्यान करते हैं, पितरोंमें भगवान् विष्णुकी ही बुद्धि रखते हैं, भगवान् विष्णुसे भिन्न दूसरी किसी वस्तुको नहीं देखते। समष्टि और व्यष्टि सब भगवान्के ही स्वरूप हैं, भगवान् जगत्से भिन्न होकर भी भिन्न नहीं हैं, 'हे भगवान् जगन्नाथ! मैं आपका दास हूँ, आपके स्वरूपमें भी मैं हूँ, आपसे पृथक् कदापि नहीं हूँ, जब आप भगवान् विष्णु अन्तर्यामीरूपसे सबके हृदयमें विराजमान हैं, तब सेव्य अथवा सेवक कोई भी आपसे भिन्न नहीं है।' इस भावनासे सदा सावधान रहकर जो ब्रह्माजीके द्वारा वन्दनीय युगल चरणारविन्दोंवाले श्रीहरिको सदा प्रणाम करते, उनके नामोंका कीर्तन करते, उन्हींके भजनमें तत्पर रहते और संसारके लोगोंके समीप अपनेको तृणके समान तुच्छ मानकर विनयपूर्ण बर्ताव करते हैं। जगत्में सब लोगोंका उपकार करनेके लिये जो कुशलताका परिचय देते हैं, दूसरोंके कुशल-क्षेमको अपना ही मानते हैं, दूसरोंका तिरस्कार देखकर उनके प्रति दयासे द्रवीभूत हो जाते हैं तथा सबके प्रति मनमें कल्याणकी भावना करते हैं, वे ही विष्णुभक्तके नामसे प्रसिद्ध हैं। जो पत्थर, परधन और मिट्टीके ढेलेमें, परायी स्त्री और कूटशाल्मली नामक नरकमें, मित्र, शत्रु, भाई तथा बन्धुवर्गमें समान बुद्धि रखनेवाले हैं, वे ही निश्चितरूपसे विष्णुभक्तके नामसे प्रसिद्ध हैं। जो दूसरोंकी गुणराशिसे प्रसन्न होते और पराये मर्मको ढकनेका प्रयत्न करते हैं, परिणाममें सबको सुख देते हैं, भगवान्में सदा मन लगाये रहते तथा प्रिय वचन बोलते हैं, वे ही वैष्णवके नामसे प्रसिद्ध हैं।[२] जो भगवान् के पापहारी शुभनाम-सम्बन्धी मधुर पदका जप करते और जय-जयकी घोषणाके साथ भगवन्नामोंका कीर्तन करते हैं, वे अकिंचन महात्मा वैष्णवके रूपमें प्रसिद्ध हैं। जिनका चित्त श्रीहरिके चरणारविन्दोंमें निरन्तर लगा रहता है, जो प्रेमाधिक्यके कारण जडबुद्धि-सदृश बने रहते हैं, सुख और दुःख दोनों ही जिनके लिये समान हैं, जो भगवान्की पूजामें चतुर हैं तथा अपने मन और विनययुक्त वाणीको भगवान्की सेवामें समर्पित कर चुके हैं, वे ही वैष्णवके नामसे प्रसिद्ध हैं। मद और अहंकार गल जानेके कारण जिनका अन्तःकरण अत्यन्त शुद्ध हो गया है, अमरोंके विश्वसनीय बन्धु भगवान् नृसिंहका यजन करके जो शोकरहित हो गये हैं, ऐसे वैष्णव निश्चय ही उच्चपदको प्राप्त होते हैं। भगवान्में सदैव उत्तम भक्ति रखनेवाले भक्तोंके शुभ चरित्र और लक्षणका वर्णन मैंने तुमसे किया है। यह मनुष्योंके कानोंमें पड़ते ही उनके चिरसंचित मलका नाश करता है। भजनके लिये कभी धनकी आवश्यकता तथा शरीरको कष्ट देकर किये जानेवाले किसी विशेष प्रकारके प्रयोगकी भी आवश्यकता नहीं है। मृदुल एवं मन्द स्वरसे वाणीके द्वारा भगवान्के

१- विषयेष्वविवेकानां या प्रीतिरुपजायते।
वितन्वते तु तां प्रीतिं शतकोटिगुणां हरौ॥ (स्क० पु०, वै० उ० १०। १०४-१०५)

२- दृषदि परधने लोष्टखण्डे परवनितासु च कूटशाल्मलीषु।
सखिरिपुसहजेषु बन्धुवर्गे सममतयः खलु वैष्णवाः प्रसिद्धाः॥
गुणगणसुमुखाः परस्य मर्मच्छदनपराः परिणामसौख्यदा हि।
भगवति सततं प्रदत्तचित्ताः प्रियवचसः खलु वैष्णवाः प्रसिद्धाः॥
(स्क० पु०, वै० उ० १०। ११-१२)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

नामोंका कीर्तन होता रहे, तो मैं इसीको भजन मानता हूँ। तुम्हारे मनमें भगवान्‌के दास्यभावका ही चिन्तन होना चाहिये।

किंतु जो मनुष्योंके शुभ आचरणोंसे भी द्वेष करते हैं और स्वयं अपने चित्तको दुराचारमें ही बाँधे रखते हैं, बड़े भारी अमंगलको पा करके भी निश्चिन्त रहते हैं और सदा ऐश्वर्य तथा विषयभोगके रसमें ही सुखका अनुभव करते हैं, वे मनुष्य वैष्णव नहीं हैं; वे तो बहुत ही निम्नश्रेणीके मनुष्य हैं। अपने हृदयरूपी कमलमें विराजमान परमानन्दमय श्रीहरिके स्वरूपका जो क्षणभर भी चिन्तन नहीं करते, उन्मत्तभावसे बैठे रहते हैं और अपने झूठे वचनोंके जालसे भगवान्‌के नामको भी निरन्तर आच्छादित किये रहते हैं, वे भी भगवान्‌के भक्त नहीं हैं। जिनके मनमें परायी स्त्री और पराये धनके लिये सदा लोभ बना रहता है, जो कृपण बुद्धिवाले हैं और सदा अपना ही पेट भरनेमें लगे रहते हैं, वे नरपशु विष्णुभक्तिसे सर्वथा रहित हैं। जो निरन्तर दुष्ट पुरुषोंके साथ अनुराग रखते हैं, दूसरोंका तिरस्कार और हिंसा करते हैं, जिनका स्वभाव अत्यन्त भयंकर है तथा जो भगवान् नृसिंहके चरणोंके चिन्तनसे विरक्त रहते हैं, उन मलिन मनुष्योंको दूरसे ही त्याग देना चाहिये।

राजा इन्द्रद्युम्नका पुरुषोत्तमक्षेत्रको प्रस्थान और महानदीके तटपर विश्राम

जैमिनिजी कहते हैं—ब्रह्मपुत्र देवर्षि नारदसे इस प्रकार उत्तम भगवद्भक्तिका वर्णन सुनकर राजा इन्द्रद्युम्न बहुत प्रसन्न हुए और इस प्रकार बोले—'भगवन्! विद्वान् पुरुषोंने मुझे बताया था कि साधु पुरुषोंका संग संसाररूपी रोगका नाश करनेवाला है, ऐसा साधुसंग मुझे इसी समय प्राप्त हुआ है। आपके संगसे मेरे अज्ञानमय अन्धकारका नाश हो गया, क्योंकि मेरा चित्त इस समय नीलमाधवकी पूजा करनेके लिये अत्यन्त उतावला हो रहा है। अतः हम और आप दोनों ही रथपर बैठकर चलें और भगवान् नीलमाधवका दर्शन करें। यदि आपके मुखसे पुरुषोत्तमक्षेत्रके तीर्थोंका ज्ञान प्राप्त कर सकूँ, तो पहलेके कहे हुए महात्माओंके वचन भी सफल हो जायँ।'

नारदजीने कहा—राजन्! यह तो बड़े हर्षकी बात है। मैं तुम्हें पुरुषोत्तमक्षेत्र और वहाँके तीर्थोंके दर्शन कराऊँगा। उस तीर्थमें जो शक्तियाँ और शिव आदि हैं, उन्हें भी दिखाऊँगा। उस क्षेत्रके माहात्म्यका भी परिचय दूँगा। तुम वहाँ भक्तोंको आत्मसमर्पण करनेवाले देवेश्वर भगवान् जगन्नाथका साक्षात् दर्शन करोगे।

इस प्रकार वार्तालाप करके दोनोंने प्रसन्नतापूर्वक दिनका कृत्य समाप्त किया और ज्येष्ठ शुक्ला पंचमी बुधवारको पुष्य नक्षत्रमें उत्तम लग्न आनेपर यात्रा अनुकूल होगी, ऐसा निर्णय करके दोनोंने रातके समय एक ही स्थानपर शयन किया। फिर सबेरा होनेपर नृपश्रेष्ठ इन्द्रद्युम्नने भाइयोंसहित नीलाचलपर जानेके विषयमें अपने राज्यमें यह घोषणा करायी कि 'हमलोग जीवनपर्यन्त पुरुषोत्तमक्षेत्रमें निवास करेंगे। राजालोग अपनी रानियों, मन्त्रियों तथा परिकरोंसमेत रथ, हाथी, घोड़ा, खजाना और पैदल सेना साथ लेकर वहाँ चलें।' इस प्रकार आज्ञा देकर राजा इन्द्रद्युम्न अपने आगे खड़े हुए नारद मुनिकी परिक्रमा करके छड़ीदार सिपाहियोंसे घिरे हुए मध्यद्वारपर आये। उनके आगे-आगे अग्निहोत्रकी अग्नि ले जायी जा रही थी। वहाँ उन्होंने अपने दाहिनी ओर ब्राह्मणोंको खड़े हुए देखा, जो मांगल्यसूक्तका पाठ कर रहे थे। राजाने भक्तिसे विनीत होकर वस्त्र, आभूषण, माला, सुगन्ध और अनुलेपनके

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

द्वारा उन ब्राह्मणोंका पूजन किया। इसी समय एक ही साथ सैकड़ों शंख बज उठे। उनके साथ और भी बहुत-से बाजोंकी तुमुल ध्वनि महाराजने सुनी। तदनन्तर वे मन्दिरमें भगवान् विष्णुका दर्शन करनेके लिये गये, जिनका स्मरण करनेसे मनुष्य सब प्रकारके कल्याणका भागी होता है। दिव्य सिंहासनपर बैठे हुए उन्हीं भगवान् विष्णुका दूरसे दर्शन करके उन्होंने साष्टांग प्रणाम किया और उपनिषदोंकी दिव्य वाणीसे उनकी स्तुति करके दुर्गाजीके चरणोंमें भी मस्तक झुकाया। तत्पश्चात् उन दोनों देवताओंकी परिक्रमा करके उन्हें पालकीमें बिठाया और उनको आगे करके प्रस्थान किया। बाहरके दरवाजेपर पहुँचकर उन्होंने अपना रथ तैयार देखा और परिक्रमा करके वे नारदजीके साथ उस रथपर बैठे। इन्द्रद्युम्नके रथके दोनों ओर उनके अधीन राजाओंके अनेकों रथ शोभा पा रहे थे, जो नाना प्रकारके अस्त्र-शास्त्रोंसे संयुक्त तथा ध्वजा-पताकाओंसे अलंकृत थे। उसी समय पुरवासी भी अपना-अपना सामान लेकर तैयार हो गये और घोड़े, खच्चर तथा ऊँट आदि वाहनोंपर चढ़कर वहाँसे चल दिये। राजाओंकी सैकड़ों रानियाँ, नपुंसक सिपाहियोंसे घिरी हुई अनेक प्रकारकी सवारियोंपर चढ़कर राजभवनसे बाहर निकलीं। बड़े-बड़े राज्याधिकारी तथा विशाल सैनिक भी उनकी रक्षामें तत्पर थे। राजाके सामन्त, मन्त्री, सेवक, पुरोहित, ऋत्विग् तथा राजाके व्यक्तिगत सेवक भी सब प्रकारके उपयोगी सामान साथ लेकर चले। कोषके संरक्षणमें नियुक्त किये गये राजकर्मचारी सारा खजाना साथ लेकर शीघ्र ही प्रस्थित हुए, जो अवसरके अनुसार राजसेवामें उपस्थित होते थे। सामान बेचकर जीविका चलानेवाले सेठ, व्यापारी, माली आदि भी अपनी-अपनी विक्रयकी वस्तुएँ लेकर राजाज्ञाका पालन करते हुए चले। जिसके लिये जो मार्ग सीधा प्रतीत हुआ, वह उसीसे गया। नीलाचलपर पहुँचानेवाले कठिन-से-कठिन मार्गके द्वारा भी लोगोंने यात्रा की। महाराज इन्द्रद्युम्न समस्त पुरवासियों तथा हर्षमें भरी हुई चतुरंगिणी सेनासे घिरे हुए थे। जंगलका रास्ता जाननेवाले पुरुष जो मार्ग बतलाते, उसीसे राजा यात्रा करते थे। मार्गके दोनों ओर आनेवाले देशों और वनोंको देखते हुए वे बड़ी शीघ्रतासे यात्रा कर रहे थे। महानदीके तटपर जहाँ वृक्ष बहुत कम थे तथा पर्वतीय गुफाओंके कारण जो स्थान बहुत प्रसिद्ध था, वहाँ उन्होंने अपराह्नकालका आवश्यक कृत्य करनेके लिये अपनी सेनाका पड़ाव डाला। फिर अपने पुरोहितके साथ नदीके जलमें उतरे और स्नान करके देवताओं तथा पितरोंका तर्पण किया। तत्पश्चात् विधिपूर्वक भगवान् विष्णुकी पूजा करके नारदजीके

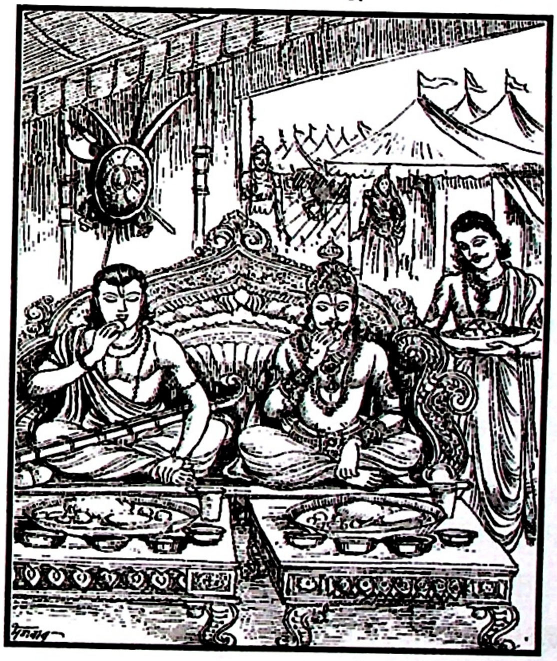

साथ बैठकर भोजन किया। जब सूर्य अस्ताचलके शिखरपर पहुँचे, तब सायंकालकी उपासना पूरी करके राजा सभामें बैठे। उस समय उन्होंने श्रेष्ठ वैष्णवोंका चन्दन, माला और ताम्बूलोंसे पूजन किया। तदनन्तर भगवान्के सर्वपापापहारी चरित्रका श्रवण करनेके लिये सिंहासनपर बैठे हुए मुनिवर नारदजीसे राजा इस प्रकार कहा—'भगवन्! आप वेद और वेदांगोंकी निधि हैं, भगवान्के प्रिय

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

भक्त हैं। यदि मुझपर आपकी कृपा हो तो भगवान् विष्णुकी लीलाकथारूपी सुधासे मेरे मलिन अन्तःकरणको शुद्ध कर दीजिये।'

देवर्षि नारद तथा राजा इन्द्रद्युम्नमें इस प्रकारकी बात चल ही रही थी कि द्वारपालने समीप आकर सूचना दी 'महाराज! उत्कल देशके राजा आपके द्वारपर उपस्थित हैं और श्रीमान्‌के चरणारविन्दोंका दर्शन करना चाहते हैं।' राजा बोले—'श्रीमान् ओढ्रनरेशको शीघ्र ही भीतर ले आओ, उनका दर्शन करके हम सब लोग पापरहित हो जायँगे।' महाराजका यह वचन सुनकर द्वारपालने शीघ्र ही राजसभामें उत्कल-नरेशका प्रवेश कराया। अपने वैष्णव मन्त्रियोंके साथ राजसभामें प्रवेश करके ओढ्रदेशके राजाने इन्द्रद्युम्नके वन्दनीय चरणोंको सादर नमस्कार किया। तब उन वैष्णव नरेशको उठाकर महाराज इन्द्रद्युम्नने उनका सत्कार किया और अपने आसनपर ही बिठाकर विनययुक्त वाणीमें कहा—'राजन्! आप कुशलसे तो हैं न? ओढ्रपते! नीलाचल-शिखरनिवासी भगवान् माधव तो वहाँ विजयपूर्वक विराज रहे हैं न? क्या आपकी निर्मल बुद्धि भगवान्‌के चरणारविन्दोंमें लगती है? समस्त प्राणियोंमें समान चित्त रखनेवाले आपका मन भगवान्‌में अनुरक्त तो है न?'

तब उत्कलनरेशने हाथ जोड़, नम्रतापूर्वक कहा—'स्वामिन्! आपके चरणोंकी कृपासे मेरे लिये सर्वत्र कुशल है। दक्षिण समुद्रके तटपर जंगलोंसे घिरा हुआ नीलाचल विद्यमान है, किंतु वहाँ लोगोंका आना-जाना नहीं है। भगवान् नीलमाधव भी वहीं हैं परंतु इस समय प्रचण्ड आँधीके कारण उठी हुई अधिक बालुकाराशिसे छिप गये हैं, ऐसी बात सुनी जाती है। इसीलिये मेरे राज्यमें भी अकाल और मृत्युका भय बढ़ गया है, परंतु अब आप पधारे हैं, तो सर्वत्र कुशल ही होगा।' उत्कलनरेशके ऐसा कहनेपर राजा इन्द्रद्युम्नने उनका आदर करते उन्हें विदा किया और नारदजीकी ओर देखकर उदासीन भावसे कहा—'मुने! यह क्या हो गया?'

नारदजी बोले—राजन्! इस विषयमें तुम्हें विस्मय नहीं करना चाहिये। श्रेष्ठ वैष्णव भाग्यवान् होता है। वैष्णवोंका मनोरथ कभी निष्फल नहीं होता। जगत्‌के आदिकारण एवं रोग-शोकसे रहित प्रत्यक्ष शरीर धारण किये हुए भगवान् नारायणको तुम अवश्य देखोगे। वे तुमपर ही अनुग्रह करनेके लिये इस पृथ्वीपर उतरेंगे। सम्पूर्ण चराचर जगत् भगवान् विष्णुके वशमें है। सनातन परमात्मा विष्णु किसीके भी वशमें नहीं हैं; वे भगवान् भक्तवत्सल हैं। अतः केवल भक्तिके वशमें रहते हैं। भगवान् विष्णुकी भक्ति ही धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूपी चारों पुरुषार्थोंकी जड़ है। वह भक्ति ही भगवान्‌को वशमें करनेका उपाय है। एक ही भगवान् विष्णु अपनी मायासे अनेक रूपमें प्रकट हुए हैं। इसलिये उन परमात्माके सिवा और कोई भी सुखका कारण नहीं है। राजेन्द्र! तुम ब्रह्माजीकी सन्तान-परम्परामें पाँचवें पुरुष हो, साथ ही श्रेष्ठ वैष्णव हो। तुमने अठारह विद्याओंमें पूर्ण विद्वत्ता प्राप्त की है और तुम सदैव सदाचारमें स्थित रहते हो। तुमने इस पृथ्वीका न्यायपूर्वक पालन किया है, विशेषतः तुम ब्राह्मणोंके पूजक हो। अतः पुरुषोत्तमक्षेत्रमें इन चर्मचक्षुओंसे भगवान् पुरुषोत्तमका दर्शन तुम्हें अवश्य प्राप्त होगा। तुम्हारे इस कार्यमें स्वयं ब्रह्माजीने मुझे नियुक्त किया है। पुरुषोत्तमक्षेत्रमें चलनेपर वह सब बात मैं तुम्हें बताऊँगा। इस समय रातका तीसरा पहर चल रहा है; इन सब राजाओंको अपने-अपने डेरेमें जानेकी आज्ञा दो और तुम भी आराम करो।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

राजाका एकाम्रक्षेत्र (भुवनेश्वर)-में जाकर भगवान् शिवका पूजन करना और भगवान् शिवका नारदजीसे उनके कर्तव्यकार्योंका संकेत करना

जैमिनिजी कहते हैं—नारदजीके इस प्रकार आश्वासन देनेपर राजा इन्द्रद्युम्नने प्रसन्नचित्त होकर जब उत्तम बुद्धिसे विचार किया, तब अपने परिश्रमको सफल माना और सभासदोंको विदा करके मुनिका हाथ अपने हाथमें लेकर अन्तःपुरमें प्रवेश किया। फिर विधिपूर्वक उनकी पूजा करके उन्हें पलंगपर सुलाया और उन्हींके साथ बातचीत करते शेष रात्रि व्यतीत की। तदनन्तर निर्मल प्रभात होनेपर नित्यकर्म पूरा करके उन्होंने जगन्नाथजीका पूजन किया। तदनन्तर सब महानदीके पार उतरे। इसके बाद ओढ्रदेशके राजाके बताये हुए मार्गसे राजा इन्द्रद्युम्न अपनी सेनाके साथ एकाम्रवन नामक क्षेत्रकी ओर चले। वहाँसे कुछ दूर आगे जानेपर मार्गमें 'गन्धवहा' नामवाली नदी मिली, जो बड़े वेगसे बह रही थी। उसको पार करके आगे बढ़नेपर शंख आदि वाद्योंकी ध्वनि सुनायी पड़ी। तब राजाने नारदजीसे पूछा—'महामुने! यह शब्द कहाँ हो रहा है?'

नारदजीने कहा—राजन्! यह अत्यन्त दुर्लभ क्षेत्र है, जिसे भगवान् विष्णुने गुप्त कर रखा है। तुम भाग्यवानोंमें श्रेष्ठ हो, इसीलिये तुम्हारे सौभाग्यसे जितेन्द्रिय पुरोहितने किसी प्रकार जाकर भगवान्का दर्शन किया है। यहाँसे तीसरे योजनपर नीलगिरि विद्यमान है और यह भगवान् गौरीपतिका एकाम्रवन नामक क्षेत्र है, जो अब अधिक दूर नहीं है। एक समय भगवान् शिवने लोकोंके आदिकारण अनादि पुरुषोत्तमका इस प्रकार स्तवन किया—'हे नारायण! हे परम धाम! हे परमात्मन्! हे परात्पर! हे सच्चिदानन्दमय वैभवसे युक्त निरंजन परमेश्वर! आपको मेरा नमस्कार है। आप संसारके कारण हैं और गुणोंके भेदसे सृष्टि, पालन तथा संहाररूप कर्म किया करते हैं। स्वप्रकाश परमात्मन्! आपने अपनी ही योगमायासे अपनेको गुप्त कर रखा है; आपको नमस्कार है। आप न भीतर हैं न बाहर, साथ ही बाहर भी हैं और भीतर भी। दूर होते हुए भी अत्यन्त निकट हैं; भारी, हलके, स्थिर, अत्यन्त सूक्ष्म और अतिशय स्थूल भी आप ही हैं; आपके लिये नमस्कार है। जिनके कटाक्षविलाससे कोटि-कोटि ब्रह्मा और अगणित रुद्र उत्पन्न होते हैं, उन कालात्मा श्रीहरिको नमस्कार है। जिनके एक-एक रोममें अनेकानेक ब्रह्माण्डोंका समुदाय भरा हुआ है तथा जिनका शरीर माँप-जोखके बाहर है, उन विश्वरूप भगवान्को नमस्कार है। जिनके स्वरूपभूत कालके परिमाणसे ब्रह्माकी सृष्टि और प्रलय होते हैं, मन्वन्तर आदिकी संघटना करनेवाले उन भगवान्को नमस्कार है।'

त्रिपुरासुरका दाह करनेवाले भगवान् शंकरने जब इस प्रकार स्तवन किया, तब शंख, चक्र, गदा धारण करनेवाले, वनमालाविभूषित, हार, कुण्डल, केयूर और मुकुट आदिसे सुशोभित कृपानिधान भगवान् गरुड़वाहन विष्णुने शिवजीसे कहा—'दक्षिण समुद्रके किनारे नीलाचलसे विभूषित जो दस योजन विस्तृत क्षेत्र चित्रोत्पला नदीसे लेकर समुद्रतक फैला हुआ है, उसके उत्तर 'एकाम्रवन' नामक सुन्दर वन है। वहीं पार्वतीजीके साथ आप निवास करें। यहाँ सब लोकोंकी सृष्टि करनेवाले ब्रह्माजी मेरे आदेशसे आपको कोटि लिंगोंके अधीश्वर पदपर अभिषिक्त करेंगे।'

भगवान् विष्णुके ऐसा कहनेपर शिवजीने कहा—'देवदेव! जगन्नाथ! शरणागतदुःखभंजन!

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

प्रभो! जगत्पते! आप पुरुषोत्तमक्षेत्रमें जानेके लिये जो आज्ञा दे रहे हैं, उसे शिरोधार्य करके मैं उस मोक्षदायक कल्याणमय तीर्थमें जाऊँगा।' यों कहकर भगवान् शंकर उस क्षेत्रमें पधारे। साक्षात् ब्रह्माजीने वहाँ भगवान् शंकरकी स्थापना की। राजन्! अब हम सब लोग वहाँ चलेंगे और त्रिपुरविनाशक शिवजीका दर्शन करेंगे। यह जो शिवजीका क्षेत्र है, इसे तमोगुणका नाशक बताया गया है। जो रजोगुणको धो डालनेवाला क्षेत्र है, वह 'विरजमण्डल' नामसे प्रसिद्ध है। सत्त्वगुणकी अधिकताके कारण पुरुषोत्तमक्षेत्र मुक्तिदायक बताया गया है। महाराज! जिनका चित्त पापकर्मोंसे मलिन हो गया है, उनका विश्वास इस क्षेत्रपर नहीं जमता।

नारदजीकी बात सुनकर राजाका चित्त प्रसन्न हो गया और वे बोले—'ब्रह्मन्! आपने मुझे परम पावन क्षेत्रका परिचय दिया। जहाँपर साक्षात् भगवान् उमापति विराजमान हैं वहाँपर हम अवश्य चलेंगे।' इस निश्चयके अनुसार देवर्षि नारद और राजा इन्द्रद्युम्न दोपहरके समय सेनाके साथ एकाम्रवन नामक क्षेत्रमें पहुँच गये। वहाँ विन्दुतीर्थमें स्नान करके उसके तटपर विद्यमान भगवान् पुरुषोत्तमका उन्होंने विधिपूर्वक पूजन किया। उसके बाद वे कोटीश्वर महालयको गये। वहाँके जलसे भलीभाँति आचमन करके सात्त्विक धर्ममें स्थित राजाने त्रिभुवनेश्वर (भुवनेश्वर) नामक लिंगका महास्नानकी विधिसे पूजन किया। फिर अनन्यचित्तसे भगवान् शंकरका ध्यान करते हुए वे खड़े रहे। तब परमेश्वर भगवान् शंकरने प्रसन्न होकर स्पष्ट वाणीमें कहा—'महाराज इन्द्रद्युम्न! थोड़े ही समयमें तुम्हारा मनोरथ पूर्ण होगा।' तत्पश्चात् उन्होंने नारदजीसे कहा—'महाभाग! ब्रह्माजीने जो आज्ञा दी है, उसे इस राजाद्वारा अश्वमेध यज्ञ कराते हुए पूर्ण करो। पुरुषोत्तमक्षेत्र साक्षात् भगवान् विष्णुका स्वरूप है। उसमें भी परम पुण्यमयी अन्तर्वेदी भगवान् विष्णुके हृदयके समान मानी गयी है, जिसकी रक्षाके लिये श्रीविष्णुने आठ स्वरूपोंमें मुझे स्थापित किया है। शंखाकार पुरुषोत्तमक्षेत्रके अग्रभागमें दुर्गा देवीके साथ मैं नीलकण्ठ नामसे निवास करता हूँ, वहीं इस राजाको ले चलो। इस समय नीलमणिमय विग्रहवाले भगवान् श्रीहरि अन्तर्धान हो गये हैं। वहाँ मेरी आज्ञासे भगवान् श्रीनृसिंहदेवका क्षेत्र बनाओ। उस क्षेत्रमें हमारे समीप नृपश्रेष्ठ इन्द्रद्युम्न एक सहस्र अश्वमेध यज्ञ करें। यज्ञ समाप्त होनेपर इन्हें वह अद्भुत ब्रह्मस्वरूप वृक्ष दिखलाओ। उसके द्वारा विश्वकर्मा चार प्रतिमाओंका निर्माण करेंगे और उन प्रतिमाओंकी स्थापनाके समय ब्रह्माजी स्वयं पधारेंगे। तदनन्तर ये राजा समस्त पापोंका नाश करनेवाले और सम्पूर्ण जगत्के आधारभूत भगवान् विष्णुका दर्शन करेंगे। काष्ठमय शरीर धारण करके प्रकट हुए भगवान् दर्शनमात्रसे मोक्ष प्रदान करनेवाले होंगे। नारद! भगवान् विष्णु अपनी आज्ञाके पालन एवं भक्तिसे प्रसन्न होते हैं।'

नारदजी भी जगद्गुरु महादेवजीको प्रणाम करके हाथ जोड़कर बोले—प्रभो! आपने जो आदेश दिया है वैसा ही करनेके लिये ब्रह्माजीने भी मुझे आज्ञा दी है। नाथ! आप और ब्रह्माजी परमात्मा श्रीहरिसे भिन्न नहीं हैं। इन राजा इन्द्रद्युम्नकी भाग्य-समृद्धि महान् है, इसीसे इन्हें आप तीनों देवताओंका वह विशाल अनुग्रह प्राप्त हुआ, जिसको मनके द्वारा सोचा भी नहीं जा सकता था। जिनके प्रसंगसे पापी मनुष्य भी भवसागरसे तर जाते हैं, वे भूतभावन भगवान् विष्णु अचिन्त्य महिमावाले हैं। वे भगवान् कितनी भक्तिसे प्रसन्न होते हैं, यह बात बुद्धिमें नहीं आ सकती। वेदोंके स्वाध्याय आदि साधनोंद्वारा चिरकालतक विद्वान् पुरुष यत्न करते रह जाते

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

हैं, किंतु सफलता नहीं पाते। और एक नीच मनुष्य अनायास होनेवाले कर्मसे मोक्ष पा जाता है। वनचर ग्वालोंके घरमें रहकर दही-दूध एवं जंगली फल-मूलोंसे जीविका चलानेवाली गोपियाँ भगवान्‌के स्नेह-सुखका उपभोग करके ही मुक्ति पा गयीं। निरन्तर भगवान्‌से द्रोह रखनेवाला शिशुपाल भी राजसूय यज्ञकी सभामें भगवान्‌को कटु वचन सुनाकर भी मोक्षको प्राप्त हुआ। भगवान्‌का चरित्र ऐसा है, वैसा है, इस प्रकारके निश्चयका विषय नहीं है। बहुत समयतक महान् प्रयत्न करते रहनेपर भी भगवान् विष्णुके दिव्य चरित्रके विषयमें कोई निर्णय नहीं दिया जा सकता। इस संसारमें पुरुषोत्तमक्षेत्रका निवास भगवान्‌की सायुज्यकी प्राप्ति करानेवाला है। भगवान् विष्णु इन्द्रद्युम्नके प्रसंगसे वहाँ सब लोगोंको प्रत्यक्ष दर्शन देंगे।

तदनन्तर महादेवजी 'तथास्तु' कहकर उसी क्षण अन्तर्धान हो गये।

राजा इन्द्रद्युम्नका नारदजीके साथ नृसिंहजी, कल्पवट तथा नीलमाधवके स्थानका दर्शन करना और आकाशवाणी सुनना

जैमिनिजी कहते हैं—तदनन्तर नारदजी और राजा इन्द्रद्युम्न पुरोहितके छोटे भाई विद्यापतिके साथ पुरुषोत्तक्षेत्रमें नीलकण्ठ महादेवजीके समीप गये। वहाँ महादेवजीकी पूजा करके राजाने श्रीदुर्गाजीको भी प्रणाम किया। फिर सब लोग अपना उत्तम रथ छोड़कर अनुगामियोंसहित पैदल हो गये और अपनी इन्द्रियोंको वशमें रखते हुए नीलगिरिपर चढ़नेके लिये आगे बढ़े। वह पर्वत नाना प्रकारके वृक्षों और लताओंसे व्याप्त था। भाँति-भाँतिके पक्षी वहाँ कलरव करते थे। बड़ी-बड़ी चट्टानोंके कारण उस पर्वतका किनारा ऊँचा-नीचा एवं दुर्गम दिखायी देता था। वह नीलगिरि चारों ओरसे गोलाकार था। वे सब लोग उस मार्गसे गये, जहाँ काले अगुरु वृक्षके नीचे सब विपत्तियों और भयोंको हरनेवाले दिव्य सिंहरूपधारी भगवान् नृसिंह निवास करते हैं, जिनका दर्शन करके मनुष्योंकी कोटि-कोटि ब्रह्महत्याएँ विलीन हो जाती हैं। उनका मुख फैला हुआ है, दाँत बड़े भयंकर दिखायी देते हैं। कुछ पीले रंगके अयालों (गर्दनके बालों)-से उनका मुखमण्डल व्याप्त है। वे तीन नेत्रोंसे युक्त एवं भयानक हैं। अपनी जाँघोंपर उत्तान सोये हुए दैत्यके वक्षःस्थलको वज्रतुल्य कठोर नखोंसे विदीर्ण कर रहे हैं। मुखपर अट्टहासकी छटा है, जिसमें लपलपाती हुई लाल रंगकी जिह्वा शोभा पाती है। उनके हाथोंमें शंख और चक्र सुशोभित हैं। मस्तक किरीट-मुकुटसे उद्भासित हो रहा है। नेत्रोंसे आगकी चिनगारियाँ निकलती हैं, जिनसे समस्त दिशाएँ संत्रस्त हो रही हैं। प्रचण्ड आघातके कारण भगवान्‌के चरण-कमल धरतीमें धँस गये हैं। उन आदिमूर्ति भगवान् नृसिंहका दर्शन करके सबने प्रणाम किया। इन्द्रद्युम्नने भी भगवान् नृसिंहका दर्शन करके नारदजीके वचनोंपर विश्वास किया और कहा—'महर्षे! मैं कृतार्थ हो गया। आप तो ज्ञानकी निधि हैं। मैं तो भगवान्‌के दर्शनमात्रसे ही सब पातकोंसे छूट गया। दयासिन्धु भगवान्‌की नीलमणिमयी मूर्ति किस स्थानपर विराजमान है, जो दर्शनमात्रसे ही मुक्ति देनेवाली है। विप्रवर! उसीका मुझे दर्शन कराइये।' तब नारदजीने राजा इन्द्रद्युम्नको उस परम पावन स्थानका दर्शन कराया, जहाँ भगवान् विष्णु स्वर्णमयी बालुकासे आच्छादित हो गये थे। मुनिने वहाँ ले जाकर राजासे कहा—'महाराज!

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

इस दो योजन ऊँचे और एक योजनतक फैले हुए वटवृक्षको देखो। यह प्रलयकालमें भी स्थिर रहता है और मनुष्योंको मोक्ष प्रदान करनेवाला है। इसकी छायामें जानेसे ही मानव पापसे मुक्त हो जाता है। इसकी जड़में प्राण त्याग करनेवाला मनुष्य मोक्षको प्राप्त होता है। फिर जो इसकी पूजा और स्तुति करता है, उसके लिये तो कहना ही क्या है। इसके मूलभागसे पश्चिम और नृसिंहजीसे उत्तर भगवान् नीलमाधव विराजमान थे। वे ही तुमपर अनुग्रह करनेके लिये अब चार स्वरूपोंमें यहाँ प्रकट होंगे। जैसे श्वेतद्वीपके भीतर भगवान्‌का अपना धाम है, उसी प्रकार जम्बूद्वीपके अन्तर्गत यह पुरुषोत्तमक्षेत्र ही भगवान्‌का अपना धाम है। राजन्! जो मोक्षका अधिकारी है, वही इसकी महिमाको समझ पाता है। अन्य मनुष्योंके विशेषतः पापकर्मियोंके लिये यह विश्वासकी भूमि नहीं है। भगवान् जगन्नाथका अन्तर्धान होना या छिप जाना किसी विशेष कारणसे होता है, परंतु वे साधुपुरुषोंपर अनुग्रह करनेके लिये प्रत्येक युगमें प्रकट होते रहते हैं। राजन्! भगवान् मत्स्य, कच्छप आदि अनेक अवतारोंके द्वारा जब अवतारका उद्देश्य पूर्ण कर देते हैं, तब कारणकी निवृत्ति हो जानेसे वे अन्तर्धान हो जाते है। परंतु वे ही दयासागर भगवान् इस पुरुषोत्तमक्षेत्रमें बिना किसी कारणके नित्य निवास करते हैं। जैसे श्वेतद्वीपसे जाकर भगवान् विष्णु अन्यत्र अवतार लेते हैं, उसी प्रकार यहाँ रहते हुए भी वे द्वारिका, कांची और पुष्कर आदिमें कृपापूर्वक प्रकट होते हैं। राजन्! अनेकानेक तीर्थ, देश, क्षेत्र और मन्दिरोंमें भगवान् विराज रहे हैं।'

महात्मा नारदजीके दिखाये हुए उस स्थानको महाराज इन्द्रद्युम्नने साष्टांग प्रणाम किया और भगवान्‌को वहाँ प्रत्यक्ष स्थित मानकर इस प्रकार स्तवन किया—'देवदेव! जगन्नाथ! शरणागतोंकी पीड़ा दूर करनेवाले कमलनयन नारायण! मैं भवसागरमें डूबा हुआ हूँ, मेरा उद्धार कीजिये। परमेश्वर! एकमात्र आप ही दुःखराशिका विध्वंस करनेवाले हैं। क्षुद्र मनुष्य लेशमात्र सुखकी लिप्सासे क्षुद्र देवताओंकी सेवा करते हैं। भगवन्! आप भक्तिभावसे आराधना करनेपर मनुष्योंको साक्षात् मोक्ष प्रदान करनेवाले हैं। अजामिल ब्राह्मणने अपने वर्णाश्रमोचित कर्मोंका परित्याग करके कौन-सा पाप नहीं किया था? किंतु नाथ! वह भी आपके नामका उच्चारण करनेमात्रसे मुक्त हो गया। आपके स्मरणमात्रसे ही पाश हाथमें लेकर आये हुए यमदूतोंने उसे छोड़ दिया। देवेश्वर! समस्त शास्त्रीय उपाय आपके दर्शनके लिये ही बताये गये हैं। आपका साक्षात्कार हो जानेपर हृदयके सभी संशय नष्ट हो जाते हैं, उसी क्षण मनुष्य सन्देहरहित हो जाता है। प्रभो! आप ही सबको आश्रय देनेवाले हैं। मुझ दीनपर अनुग्रह कीजिये। मैं आपसे केवल इतनी ही भीख माँगता हूँ कि आपकी जो मूर्ति यहाँ विराजमान है, उसका मैं इस नेत्रसे दर्शन करूँ। इसके सिवा दूसरा कोई प्रयोजन नहीं है।'

इस प्रकार हाथ जोड़े हुए राजा इन्द्रद्युम्नने भगवान् मधुसूदनकी स्तुति करके पृथ्वीपर लोटकर उन्हें साष्टांग प्रणाम किया। उस समय उनके नेत्रोंमें आँसू भर आये थे। इसी समय आकाशवाणी हुई, जिसे इन्द्रद्युम्नने भी सुनी—'राजन्! चिन्ता न करो, मैं तुम्हें प्रत्यक्ष दर्शन दूँगा। देवर्षि नारदने ब्रह्माजीका जो वचन तुमसे कहा है, उसके अनुसार कार्य करो।' उस दिव्य वाणीको सुनकर राजाने नारदजीसे कहा—'मुने! आपने ब्रह्माजीकी आज्ञासे जो कुछ कहा था, इस आकाशवाणीने भी उसीका अनुमोदन किया है। ब्रह्माजी साक्षात् जगन्नाथ हैं। इन दोनोंमें कुछ भी भेद नहीं है। आप ब्रह्माजीके पुत्र हैं, आपका वचन भगवान्‌का ही वचन है; अतः मुझे उसका प्रयत्नपूर्वक पालन करना चाहिये।'

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

देवर्षि नारदजीके द्वारा भगवान् नृसिंहकी स्थापना और राजा इन्द्रद्युम्नके द्वारा उनका स्तवन

नारदजीने कहा—राजन्! चलो, अब हमलोग भगवान् नीलकण्ठके समीप चलें। वहीं सब राक्षसोंका संहार तथा समस्त विघ्नोंका निवारण करनेवाले भगवान् नृसिंहकी पश्चिमाभिमुख स्थापना करूँगा। इससे अन्तर्धानको प्राप्त हुए भगवान् विष्णु नृसिंहजीके रूपमें प्रकट होंगे और उनके समीप किया हुआ यज्ञ अतिशय फल देनेवाला होगा। तुम आगे चलो और शीघ्र ही वहाँ एक मन्दिर बनवाओ। मेरे स्मरण करनेसे विश्वकर्माका पुत्र आकर शीघ्र पश्चिमाभिमुख मन्दिरका निर्माण करेगा। भगवान् नीलकण्ठके दक्षिण सौ धनुषकी दूरीपर जो बहुत बड़ा चन्दनका वृक्ष है, उसके पश्चिमका स्थान क्षेत्र होगा। वहीं तुम्हें एक हजार यज्ञोंका अनुष्ठान करना है। तुम अभी जाओ। मैं पाँच दिनोंतक अभी यहीं ठहरूँगा और इन ज्योति:स्वरूप अनन्तशक्तिसम्पन्न दिव्य नृसिंहभगवान्‌की आराधना करके एक अर्चाविग्रहमें इनकी प्रतिष्ठा करूँगा। वे उसमें प्राण, इन्द्रिय और मनके साथ विराजेंगे।

नारदजीकी यह बात सुनकर राजा इन्द्रद्युम्न चन्दनवृक्षके समीप गये। वहाँ उन्होंने विश्वकर्माके पुत्र सुघटकको उपस्थित देखा। सुघटक राजाको देखकर हाथ जोड़कर बोले—'देव! मैं शिल्पशास्त्रका ज्ञाता हूँ; इस समय आपके परम सुन्दर नृसिंह-भवनका निर्माण करूँगा।' राजा बोले—'तुम कोई साधारण शिल्पी नहीं, विश्वकर्माके पुत्र हो। यह नारदजीने मुझे बता दिया है। अत: प्राकार और तोरणके साथ नृसिंहजीका सुन्दर मन्दिर तुम शीघ्र तैयार करो। उसका मुख्य द्वार पश्चिमकी ओर होगा।' यों कहकर देवशिल्पीका विधिवत् पूजन-सत्कार करके राजाने उन्हें मन्दिरनिर्माणके कार्यमें नियुक्त किया और शिला-संग्रह करनेवाले सेवकोंको बहुत धन देकर उस कार्यमें लगा दिया। वह सुन्दर मन्दिर यद्यपि बहुत दिन में बननेवाला था, तथापि देव-शिल्पीकी महिमासे चौथे दिन ही बनकर तैयार हो गया। तदनन्तर पाँचवें दिन सबेरे नित्यकर्मके पश्चात् प्रतिष्ठा-विधिकी सारी सामग्री एकत्र करके जब राजा नारदजीके आनेकी प्रतीक्षा कर रहे थे, तभी शंख, मृदंग, ढोल, गीत, मंगलवाद्य तथा हाथियोंके घण्टोके शब्द सहसा सुनायी पड़े। साथ ही उच्च स्वरसे जय-जयकारका शब्द आकाश-मण्डलमें गूँज उठा। इतनेमें ही नारदजी विश्वकर्माकी बनायी हुई सुन्दर नृसिंहमूर्तिको लेकर वहाँ आ गये। उस मूर्तिमें प्राणप्रतिष्ठा हो चुकी थी। उसने दिव्यमाला और वस्त्र धारण किये थे। उसपर दिव्य चन्दनका अनुलेप किया गया था। वह सब ओरसे तेज:पुंजसे व्याप्त थी और सबको हर्ष प्रदान करती थी। उसे देखकर राजा और उनके अनुयायी बहुत प्रसन्न हुए। सबने देवर्षि नारदजीकी प्रशंसा की। फिर निकटसे देखकर उसमें नृसिंहजीकी आकृति पहचानी और यह निश्चय किया कि यह आदिमूर्ति भगवान् नृसिंहजीकी प्रतिमा है। तब प्रसन्नचित्त हुए राजा इन्द्रद्युम्नने भगवान् नृसिंहकी परिक्रमा की और धरतीपर मस्तक रखकर साष्टांग प्रणाम किया। तत्पश्चात् राजाके अनुरोधसे नारदमुनिने भूदेवी और लक्ष्मी देवीके साथ देवाधिदेव भगवान् नृसिंहकी प्रतिमाको रत्नमयी वेदीपर शुभ मुहूर्तमें स्थापित कराया। उसके बाद वैष्णव, ब्राह्मण, अन्यान्य नरेशगण तथा बुद्धिमान् नारदजीके साथ राजा इन्द्रद्युम्नने उपनिषदों और धर्मशास्त्रीय स्तोत्रोंद्वारा प्रसन्नतापूर्वक भगवान्‌का

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

स्तवन किया—'भगवन्! आप एक, अनेक, स्थूल, सूक्ष्म तथा अत्यन्त लघु शरीर धारण करते हैं, आप आकाशसे परे होकर भी आकाशस्वरूप हैं, आपका रूप सदा एकरस रहता है, अथवा आप अद्वितीयस्वरूप हैं। आपका आकार आकाशके समान सर्वव्यापी है, आप आकाशमें स्थित हैं, आकाशपर आरूढ़ हैं। व्योमकेश शिव तथा पद्मयोनि ब्रह्मा आपके ही स्वरूप हैं। दिव्य नृसिंहरूपमें प्रकट हुए परमात्मन्! आपका तेज कई करोड़ सूर्योंके समान है। प्रभो! आप दुःखरूपी समुद्रसे मेरा उद्धार कीजिये। आप नित्य समीप हैं, दूर-से-दूर स्थित हैं, न दूर हैं, न समीप हैं तथा बोध्य और बोध आपके ही स्वरूप हैं। आप ज्ञेयके भी ज्ञेय हैं, ज्ञानगम्य होते हुए भी अगम्य हैं। मायासे अतीत हैं, आपतक किसी भी प्रमाणकी पहुँच नहीं है, तो भी लोग अनुमानसे आपके विषयमें विचार करते हैं। आप सबके आदि, सबके कर्ता, सबको अनुमति प्रदान करनेवाले तथा सबके पालक और संहारक हैं। विश्वसाक्षिन्! आपको नमस्कार है। आप ज्योतिःस्वरूप, ज्ञानरूप, प्रकाशपुंज, व्यूहाकार और सृष्टिके हेतु हैं। दुःखोंके विनाश करनेके एकमात्र कारण होकर भी आप वस्तुतः कारण नहीं हैं। सबके संशयोंको छिन्न-भिन्न करनेके लिये आप सबसे पहले प्रकट हुए हैं। स्वामिन्! आप मुझे अपने चरणारविन्दोंकी श्रेष्ठ भक्ति प्रदान कीजिये; जो चारों पुरुषार्थोंकी मूल कारण मानी गयी है। भक्तोंके अभीष्ट मनोरथकी पूर्ति करनेवाले आप भगवान् नृसिंहकी मैं शरण लेता हूँ। अपने चरणोंका आश्रय लेनेवाले लोगोंकी पापराशिका विनाश करनेवाले दयासागर श्रीनृसिंहजीको मैं प्रणाम करता हूँ। तीनों लोक जिनके उदरमें स्थित हैं, उन नृसिंहदेवको मैं नमस्कार करता हूँ। दीनोंपर दया करनेवाले विष्णो! आपको नमस्कार है, नमस्कार है, नमस्कार है। आप मुझ अनाथकी रक्षा कीजिये। मैं अपने इस चर्मचक्षुसे आपके दिव्य स्वरूपका दर्शन कर सकूँ, ऐसी कृपा कीजिये। आपकी कृपासे मेरे सहस्र अश्वमेधयज्ञ निर्विघ्न पूर्ण हों; मेरी करोड़ों पापराशियाँ नष्ट हो जायँ। भगवन्! जो मनुष्य आपकी शरण लेते हैं, वे मोक्षके भागी होते हैं।'

इस प्रकार दिव्य नृसिंहकी स्तुति करके राजा इन्द्रद्युम्नके मनमें बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने बार-बार धरतीपर लेटकर भगवान्‌को दण्डवत् प्रणाम किया। जो लोग इस स्तोत्रसे दिव्य नृसिंहजीकी स्तुति करते हैं, उन्हें भगवान् नृसिंह मोक्ष प्रदान करते हैं। ज्येष्ठमासके शुक्ल पक्षकी द्वादशी तिथिको स्वातीनक्षत्रके योगमें महर्षि नारदने उस क्षेत्रमें दिव्य नृसिंहदेवकी स्थापना की है। जो लोग वहाँ उनका दर्शन करते हैं, वे सहस्र अश्वमेध यज्ञसे अधिक फल प्राप्त करते हैं। जो पंचामृत, दूध, नारियलके रस अथवा सुगन्धित जलसे भगवान् नृसिंहको नहलाते, खीर आदि उपचार समर्पित करके पूजा करते, जवाकुसुमकी माला, चन्दन, धूप, दीप और ताम्बूल चढ़ाकर, स्तुति-पाठ, जय-जयकार, परिक्रमा, प्रणाम तथा दानसे नृसिंहजीको सन्तुष्ट करते हैं, वे ब्रह्मलोकको प्राप्त होते हैं। वैशाखकी चतुर्दशीको शनिवारके दिन स्वातीनक्षत्रमें प्रदोषके समय भगवान् नृसिंहका आदि-अवतार हुआ है। उस तिथिको विधिपूर्वक नृसिंहजीकी पूजा करके मनुष्य अपने करोड़ों जन्मोंकी संचित पापराशिको तत्काल भस्म कर देता है। जो भगवान् नृसिंहका दर्शन, स्पर्श, नमस्कार, भक्तिपूर्वक दण्डवत् तथा स्तुति करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

इन्द्रद्युम्नके द्वारा सहस्त्र अश्वमेध यज्ञोंका अनुष्ठान और ध्यानमें भगवान्‌का दर्शन

मुनियोंने पूछा—महर्षे! उस क्षेत्रमें भगवान् नृसिंहके स्थापित हो जानेपर राजा इन्द्रद्युम्नने क्या किया?

जैमिनिजी बोले—राजाने सर्वप्रथम इन्द्रादि देवताओंका आवाहन किया। छहों अंग, पद और क्रमसहित चारों वेदोंके विद्वान् सहस्त्रों ऋषियों और ब्राह्मणोंको निमन्त्रित किया, जो यज्ञविद्यामें कुशल और मीमांसाशास्त्रमें परिनिष्ठित थे। सदाचारी, शुद्ध, कुलीन एवं सत्यवादी वैष्णवोंको भी आदरपूर्वक निमन्त्रित किया। राजाका सभाभवन पत्थरका बना हुआ था। उसकी ऊँचाई बहुत थी और वह चूनेसे लेपा गया था। उसका विस्तार दो कोसका था। उसमें नीचेकी भूमि कहीं रत्नोंसे मढ़ी गयी थी, कहीं सोनेसे, कहीं स्फटिकमणिसे तथा कहीं चाँदीसे। उस भवनके चारों ओर सुखपूर्वक उतरनेके लिये सैकड़ों सीढ़ियाँ बनी हुई थीं। शुभ दिन और शुभ नक्षत्रमें सब सभासदोंकी बैठक बुलाकर राजाने सबको यथायोग्य आसन दिया। जब सब लोग यथायोग्य स्थानपर सुखपूर्वक बैठ गये, तब राजाने अपने पुरोहितके साथ उपस्थित हो देवताओं, ऋषियों तथा राजाओंके बीचमें रत्नसिंहासनपर बैठे हुए शचीपति इन्द्रका दिव्य माला, चन्दन, वस्त्र और विष्टर (आसन) आदिके द्वारा सबसे पहले पूजन किया। तत्पश्चात् वैष्णवोंकी पूजा की। फिर नारद और पुरोहितसहित उन्होंने इन्द्रसे कहा—'देवेश्वर! मैं अश्वमेध-यज्ञद्वारा यज्ञपुरुष भगवान् विष्णुका पूजन करूँगा, आप इसके लिये मुझे आज्ञा दें और जबतक सहस्त्र यज्ञ पूर्ण न हो जायँ, तबतक देवताओंसहित आप इस सभाभवनमें निवास करें। आपने पहले यहाँ जिन शरीरधारी नीलमाधवका दर्शन किया है, वे बालुकाराशिमें छिप गये हैं। उनके पुनः प्रकाशमें आनेपर आपलोगोंका भी कल्याण होगा। इसीलिये मेरा सारा प्रयत्न है।' राजाके इस प्रकार सूचित करनेपर इन्द्रादि देवताओंने कहा—'इन्द्रद्युम्न! तुम सचमुच महात्मा हो। तुमने इस पृथ्वीपर सत्यव्रतका पालन किया है। हमने पहलेसे ही तुम्हारे भविष्य कार्यक्रमको जान लिया है। तुम्हारा यह कार्य तीनों लोकोंको पवित्र करनेवाला है। हम इसमें तुम्हारे सहायक होंगे। तुम भक्तवत्सल भगवान् विष्णुका सहस्त्र अश्वमेध यज्ञोंद्वारा सुखपूर्वक पूजन करो।'

तदनन्तर राजाने यज्ञके आरम्भके लिये भगवान्‌का पूजन किया। भगवान् विष्णुको सभाभवनमें इष्टदेवके स्थानपर बिठाकर राजा अपनी पत्नीके साथ निश्चित लग्नकी प्रतीक्षा करने लगे। स्वस्तिवाचन हो जानेपर पुण्याहवाचन और आभ्युदयिक श्राद्ध सम्पन्न किया। उसके बाद सब सामग्री लेकर राजाने ऋत्विजोंका वरण किया। वरण हो जानेपर उन्होंने सपत्नीक राजाको यज्ञकी दीक्षा दी। वेदीका संस्कार करके उसपर प्रज्वलित आहवनीय अग्निकी स्थापना की गयी। वह अग्नि साक्षात् भगवान् विष्णुका तेज है। फिर प्रोक्षण और अभिमन्त्रण करके उत्तम लक्षणोंवाले अश्वको छोड़ा गया। यज्ञकी दीक्षा लिये हुए राजा मौन होकर मृगचर्मपर बैठे। जबतक महायज्ञका कार्य चलता रहा, तबतक सब मनुष्योंके लिये वहाँ छः प्रकारके अन्न-पान आदि चतुर रसोइयोंद्वारा तैयार किये जाते थे। उस यज्ञमें प्रतिदिन लोगोंके सम्मान और आदरमें वृद्धि होती थी। साथ ही नित्य नये-नये भोज्यपदार्थ एक-से-एक बढ़कर प्रस्तुत किये जाते थे। वहाँ सर्वत्र प्रयत्न करके लोगोंका आदर-सम्मान किया जाता और आग्रहपूर्वक भोजन कराया जाता था। वहाँ किसीको याचना नहीं करनी पड़ती थी। कोई विमुख नहीं लौटता

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

था। महाराजके महल सब मनुष्योंके लिये अपने घरके समान हो गये थे। भगवान् विष्णुकी प्रसन्नताके लिये किये जानेवाले उस यज्ञमें यज्ञानुष्ठानमें कुशल तथा सदाचारविभूषित विद्वान् कार्य करते थे। अग्न्याधानसे लेकर अवभृथ-प्रचारतक सब कार्य क्रमशः और विधिके अनुसार सम्पन्न हुए। कोई भी मन्त्र कभी स्वर और वर्णसे हीन नहीं होने पाया। विधिके विधायक महर्षि ही वहाँ यज्ञकर्मके अधिष्ठाता थे; अतः कर्ममें कहीं कोई त्रुटि नहीं होने पाती थी। वहाँ सप्तर्षि याज्ञवल्क्य आदि मुनि, जो गुण-दोषका विभाग करनेवाले हैं, यज्ञके दिव्य सदस्य, यज्ञके साक्षी और यज्ञकर्म करानेवाले थे। उन्हींका ऋत्विजोंके रूपमें वरण कराया गया था। यज्ञमें सम्मिलित हुए मुनिलोग परस्पर कथा-वार्ताके प्रसंगमें वैदिक वाकोवाक्य, सूक्त तथा गुह्य उपनिषद्की चर्चा करते थे। सब पापोंका नाश करनेवाले भगवच्चरित्रोंकी कथा वहाँ सभामें हुआ करती थी। राजा इन्द्रद्युम्नके यज्ञमें सब देवता प्रत्यक्ष होकर हविष्य ग्रहण करते थे। वह यज्ञ तीनों लोकोंको प्रसन्न करनेवाला था।

इस प्रकार क्रमशः विधिपूर्वक चलनेवाला वह अश्वमेध यज्ञ नौ सौ निन्यानबेकी संख्यातक पहुँच गया। जब अन्तिम यज्ञ होने लगा, तब राजा इन्द्रद्युम्न प्रतिदिन दिव्यावस्थाको प्राप्त होने लगे। सुत्या (सोमरस निकालनेके दिन) से सात दिनके बाद जो रात्रि आयी, उसके चौथे पहरमें राजा इन्द्रद्युम्नने अविनाशी भगवान् विष्णुका ध्यान किया। उस ध्यानमें उन्होंने स्फटिकमणिमय श्वेतद्वीपको प्रत्यक्ष हुआ-सा देखा। उसके चारों ओर क्षीरसमुद्र लहरा रहा था। उस श्वेतद्वीपके मध्यभागमें दिव्य मणियोंका बना हुआ एक उत्तम मण्डप दिखायी दिया। उसके भीतर प्रकाशमान रत्नसिंहासन सुशोभित था। उस रत्नसिंहासनपर मध्यभागमें शंख-चक्र-गदाधारी भगवान् विष्णुका दर्शन हुआ। उनके श्रीअंगोंकी कान्ति नीलमेघके समान श्याम थी। वे वनमालासे विभूषित थे। उनके दाहिने भागमें हिमालयके सदृश गौर तथा कोटि चन्द्रमाओंके समान कान्तिमान् धरणीधर अनन्त विराजमान थे, जो फणरूपी मुकुटका विस्तार करके सुन्दर छत्रके आकारमें परिणत हो गये थे। उनका स्वरूप बड़ा ही मनोहर था। उनके कानोंमें दो रत्नमय कुण्डल झिलमिला रहे थे। शरीरपर सुन्दर नील वस्त्र शोभायमान था। भगवान्के वाम भागमें शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न भगवती लक्ष्मी विराजमान थीं। उनके हाथोंमें वर और अभयकी मुद्रा तथा कमल सुशोभित थे। उनके शरीरकी कान्ति कुंकुमके समान थी और नेत्र बड़े सुन्दर थे। वे कमलके आसनपर बैठी हुई थीं। भगवान्के आगे ब्रह्माजी हाथ जोड़े खड़े थे। श्रीहरिके वाम भागमें नाना मणिमय सुदर्शनचक्र स्थित था। सनकादि मुनीश्वर उन जगद्गुरु भगवान् विष्णुकी स्तुति कर रहे थे। ध्यानमें भगवान्का इस प्रकार दर्शन पाकर राजा इन्द्रद्युम्नको बड़ा हर्ष हुआ। वे गद्गद वाणीसे उनकी स्तुति करने लगे।

इन्द्रद्युम्न बोले—जगदाधार! आपको नमस्कार

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

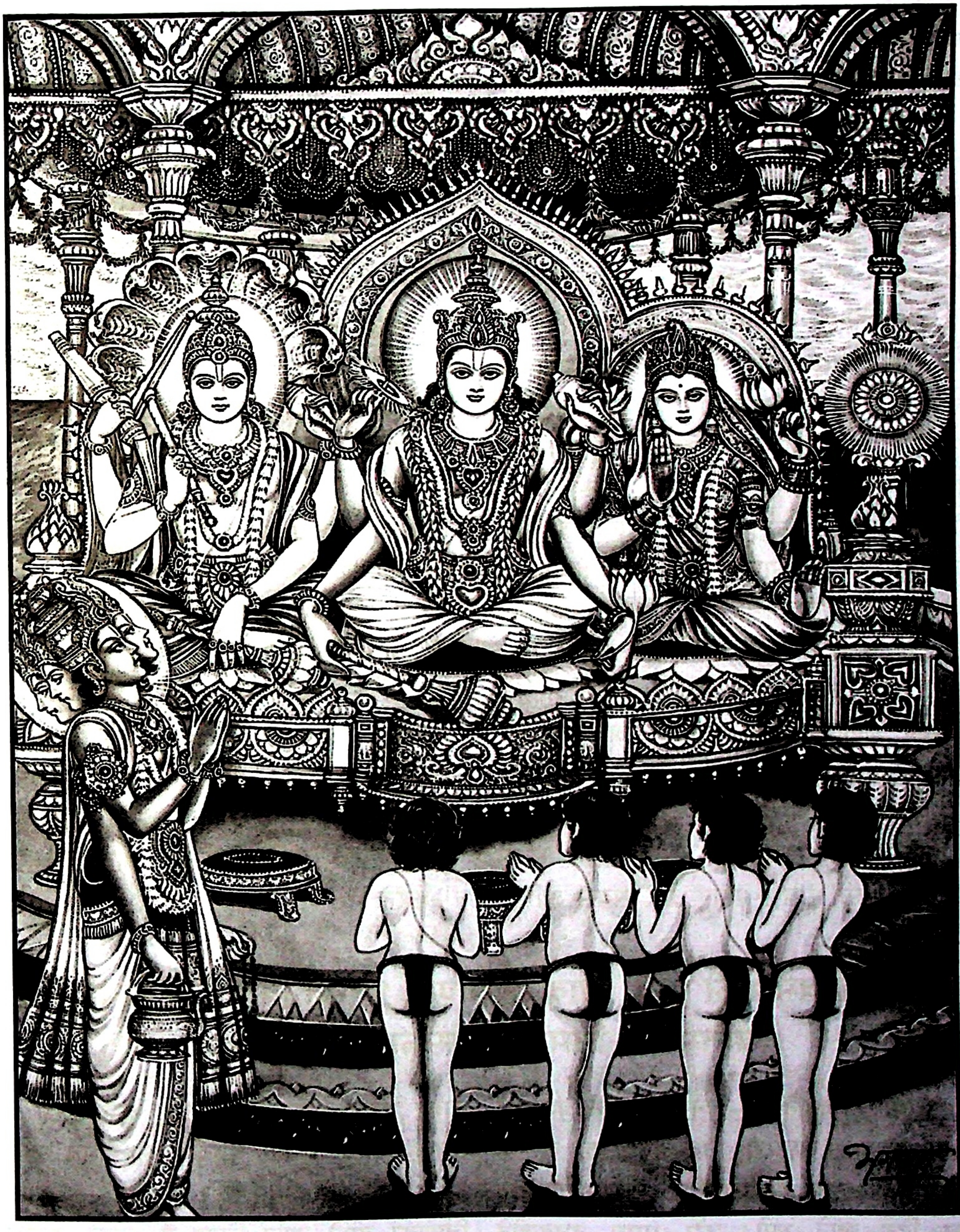

राजा इन्द्रद्युम्नको ध्यानमें भगवान्‌के दर्शन

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

है। जगदात्मन्! आपको नमस्कार है। कैवल्यस्वरूप! त्रिगुणातीत! गुणांजन! आपको नमस्कार है। आप विशुद्ध निर्मल ज्ञानस्वरूप हैं, आपको नमस्कार है। शब्दब्रह्म नामसे प्रसिद्ध आपको नमस्कार है। जगत्स्वरूप! आपको नमस्कार है। संसारसागरमें गिरे हुए दीन-दुःखी मनुष्योंके दुःखका नाश करनेवाले आपको नमस्कार है। हृदयकी दुर्भेद्य ग्रन्थियोंका भेदन करनेवाले आपको नमस्कार है। आप चौदह भुवनरूपी भवनके मूलस्तम्भ हैं। आपको नमस्कार है। कोटि-कोटि ब्रह्माण्डोंकी रचना करनेवाले शिल्पीरूप आप भगवान् चक्रपाणिको नमस्कार है। आप करुणारूपी अमृतसिन्धुको बढ़ानेवाले चन्द्रमा हैं, आपको नमस्कार है। दीनोंका उद्धार करनेके लिये एकमात्र गुप्त दयासिन्धु-स्वरूप आपको नमस्कार है। जगत्को प्रकाशित करनेवाले जो सूर्य आदि ज्योतिर्मय ग्रह और नक्षत्र हैं, उनकी भी ज्योति आप हैं; आपको नमस्कार है। आप अन्तःकरणके पापोंको जलानेके लिये प्रदीप्त अग्निरूप हैं, आपको नमस्कार है। आप सबको पवित्र करनेवाले हैं। पवित्र वस्तुओंमें सबसे अधिक पवित्र हैं आपको बार-बार नमस्कार है। आप सबसे अधिक भारी, सबसे महान् और सबसे अधिक विस्तारयुक्त हैं, आपको बार-बार नमस्कार है। आप अतिशय निकट, बहुत ही दूर और अत्यन्त छोटे हैं, आपको बार-बार नमस्कार है। नारायण! आप सबसे श्रेष्ठ और परम पवित्र हैं, आपको नमस्कार है। जगन्नाथ! मेरी रक्षा कीजिये। दीनबन्धो! आपको नमस्कार है। प्रभो! आपको सुखदायिनी नौकाके रूपमें पाकर मैं भवसागरके पार हो गया। रमानाथ! आपका दर्शन होनेसे मेरे सब क्लेश दूर हो गये। आप सच्चिदानन्दस्वरूप हैं। आपको प्राप्त हुए मनुष्योंके दुःखोंका सर्वथा नाश हो जाता है।

इस प्रकार ध्यानमें स्थित हुए राजा इन्द्रद्युम्नने जगदीश्वर भगवान् विष्णुकी यों स्तुति करके उन्हें प्रणाम किया। फिर ध्यानके अन्तमें राजाको अपने-आपका भान हुआ। वे सोचने लगे—यहाँपर भगवान् विष्णु कैसे स्वयं मेरे प्रत्यक्ष होंगे? इस चिन्तासे उनका मन व्याकुल हो उठा। उन्होंने नारदजीसे सब बातें कहीं। तब नारदजीने आश्वासन देते हुए कहा—'राजन्! अब तुम्हारा शोक समाप्त हो गया। इस यज्ञके अन्तमें भगवान् तुम्हें यहाँ प्रत्यक्ष दर्शन देंगे। ये सब बातें दूसरे किसीके आगे प्रकाशित न करना।'

अश्वमेधकी पूर्ति, आकाशवाणी, भगवान्की काष्ठमयी प्रतिमाका निर्माण, संस्कार तथा स्तवन

जैमिनिजी कहते हैं—तदनन्तर राजाके अश्वमेध यज्ञमें सुत्या (सोमरस निकालने)-का उत्सव प्रारम्भ हुआ। उसमें दीनोंको बेरोक-टोक मनोवांछित दान दिये जाने लगे। उस समय नारदजीने नृपश्रेष्ठ इन्द्रद्युम्नसे कहा—'राजन्! अब पूर्णाहुतिका कार्य समाप्त हो, जिससे यह यज्ञ सफल हो जाय। पहले ध्यानमें तुमने जो कुछ देखा है, उसके अनुसार तुम्हारे भाग्योदयका समय समीप आ गया है। श्वेतद्वीपमें जिन विश्वमूर्ति अविनाशी विष्णुका तुमने दर्शन किया है, उनके शरीरसे गिरा हुआ रोम वृक्षभावको प्राप्त हो जाता है। वह इस पृथ्वीपर स्थावररूपमें भगवान्का अंशावतार

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

होता है। भक्तवत्सल भगवान् अब उसी रूपमें अवतीर्ण हो रहे हैं। तुम्हारे ही सौभाग्यसे सर्वपापापहारी भगवान् यहाँ सब लोगोंके नेत्रोंके अतिथि बनेंगे। अब यज्ञान्तस्नान समाप्त करके वृक्षरूपमें प्रकट हुए यज्ञेश्वर भगवान् विष्णुको तुम इस महावेदीपर स्थापित करो।' इस प्रकार विचार करके नारद और इन्द्रद्युम्न दोनों प्रसन्नतापूर्वक वहाँ गये और उस वृक्षको देखकर 'इसके रूपमें साक्षात् ब्रह्म भगवान् विष्णु प्रकट हो गये'—ऐसा मानते हुए सब लोग बड़े प्रसन्न हुए। चार शाखाओंसे युक्त उस चतुर्भुज वृक्षका दर्शन करके राजाने अपने परिश्रमको सफल माना। फिर नीलमणि माधवके अन्तर्धान होनेका जो शोक था, उसे उन्होंने त्याग दिया और बार-बार उस वृक्षको प्रणाम करके नेत्रोंसे आनन्दके आँसू बहाते हुए राजाने ब्राह्मणोंसे उस वृक्षको मँगवाया। वे लोग माला और चन्दनसे विभूषित विष्णुके उस दिव्य वृक्षको महावेदीपर ले आये। नारदजीके कहनेके अनुसार राजाने उस वृक्षका पूजन किया और पूजा समाप्त करके मुनिश्रेष्ठ नारदजीसे पूछा—'मुने! भगवान् विष्णुकी कैसी प्रतिमाएँ बनेंगी और उन्हें कौन बनायेगा?' नारदजीने उत्तर दिया—'राजन्! भगवान्‌की लीला सब लोकोंसे परे है, उसे कौन जान सकता है।' इस प्रकार बातचीत हो ही रही थी कि ऊपरसे आकाशवाणी सुनायी दी—'भगवान् विष्णु अत्यन्त गुप्त रखी हुई महावेदीपर स्वयं अवतीर्ण होंगे। पंद्रह दिनोंतक इसे ढक दिया जाय। हाथमें हथियार लेकर उपस्थित हुआ जो यह बूढ़ा बढ़ई है, इसे भीतर प्रवेश कराकर सब लोग यत्नपूर्वक दरवाजा बंद कर लें। जबतक मूर्तियोंकी रचना हो, तबतक बाहर बाजे बजते रहें; क्योंकि रचनाका शब्द कानमें पड़नेपर वह बहरा बना देनेवाला है। कोई भी भीतर प्रवेश न करे और न कभी देखनेकी चेष्टा करे; क्योंकि वहाँ काम करनेवालेके अतिरिक्त जो भी देखेगा, उसके दोनों नेत्र अन्धे हो जायँगे।'

तत्पश्चात् राजाने जिस प्रकार आकाशवाणीने कहा था, वैसी ही व्यवस्था कर दी। क्रमशः पंद्रहवाँ दिन आते ही भगवान् स्वयं चार विग्रहोंमें प्रकट हुए। बलभद्र, सुभद्रा और सुदर्शनचक्रके साथ भगवान् जनार्दन दिव्य सिंहासनपर विराजमान हुए। भगवान्‌के चार दिव्य रूप सम्पन्न हो जानेपर सम्पूर्ण विश्वके उपकारके लिये पुनः आकाशवाणी हुई—'राजन्! इन चारों प्रतिमाओंको वस्त्रोंसे भलीभाँति आच्छादित करके इन्हें अपने-अपने स्वाभाविक रंगकी प्राप्ति कराओ। भगवान् जनार्दन नीलमेघके समान श्यामवर्ण धारण करें, भगवान् बलभद्र शंख और चन्द्रमाके समान गौर वर्णसे विराजमान हों, सुदर्शन चक्रका रंग लाल होना चाहिये और सुभद्रादेवी कुंकुमके समान अरुण वर्णकी होनी चाहिये। इन विग्रहोंपर पहलेका किया हुआ रंग आदि संस्कार छूटनेपर प्रतिवर्ष नूतन संस्कार कराना चाहिये। केवल दिव्य वल्कल-लेप रहने देना चाहिये। यदि कोई प्रमादवश इस लेपको दूर करेगा तो राज्यमें दुर्भिक्ष और महामारी फैलेगी। राजन्! तुम्हें भी नग्न रूपमें इन मूर्तियोंका दर्शन नहीं करना चाहिये। अन्य मनुष्य भी यदि नग्न रूपमें देखेंगे तो उनके लिये भी ये भय उपस्थित करनेवाली होंगी। नाना प्रकारके लेपसे लिप्त एवं विचित्र शृंगारोंसे युक्त मूर्तियोंका ही दर्शन करना चाहिये। राजन्! तुम्हारे ऊपर कृपा करके भगवान् प्रकट हुए हैं और तुम्हारे ही प्रसादसे वे सब जीवोंको धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष प्रदान करेंगे। नीलाचलपर कल्पवृक्षके वायव्य कोणमें सौ हाथकी दूरीपर और भगवान् नृसिंहके उत्तर भागमें जो बहुत बड़ा मैदान है, उसमें अत्यन्त सुदृढ़ और हजार हाथ ऊँचा मन्दिर बनवाकर उसीमें भगवान्‌की स्थापना करो। पहले इस पर्वतपर जो प्रतिदिन भगवान् नील-

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

माधवका पूजन करता था, वह विश्वावसु नामवाला शबर (भील) वैष्णवोंमें श्रेष्ठ है। उसके साथ तुम्हारे पुरोहितकी मित्रता हो चुकी है। इन्हीं दोनोंकी सन्ततिको भावी उत्सवोंमें भगवान्‌के विग्रहपर लेप और संस्कार करनेके कार्यमें लगाया जाय।'

इतना कहकर वह दिव्य आकाशवाणी मौन हो गयी। उसका उपदेश सुनकर राजाने प्रसन्नतापूर्वक उसका पालन किया। जब बलराम, श्रीकृष्ण, सुभद्रा तथा सुदर्शन चक्रपर आकाशवाणीके कथनानुसार लेप आदि संस्कार हो गया, तब उनकी आकृति बड़ी ही सुन्दर हो गयी। उसके बाद राजाने महावेदीका पर्दा खुलवा दिया। फिर सबने रत्नसिंहासनपर विराजमान भगवान्‌की झाँकी की। (वस्त्रालंकारोंसहित) उन भगवद्विग्रहोंका दर्शन करके राजा इन्द्रद्युम्न आनन्दके समुद्रमें डूब गये और नेत्रोंको कुछ-कुछ बंद किये, प्रेमके आँसू बहाते हुए हाथ जोड़कर खम्भेके समान खड़े रहे। तब नारदजीने राजासे कहा—'नृपश्रेष्ठ! कमलके समान नेत्रोंवाले इन भगवान् जगन्नाथका दर्शन करो। ये भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये सम्पूर्ण ज्ञानकी निधि हैं। इन्हीं श्रीहरिको देखनेके लिये योगीलोग मनको संयममें रखकर सदा प्रयत्न करते रहते हैं। वे ही भगवान् विष्णु आज काष्ठमय शरीरमें स्थित हो तुमपर अनुग्रह करनेके लिये प्रत्यक्ष हुए हैं। इन करुणासागर भगवान्‌की स्तुति करो।'

नारदजीके द्वारा इस प्रकार सचेत किये जानेपर राजा इन्द्रद्युम्नने करुणामय जगन्नाथका स्तवन किया—'दयासागर मुरारे! कहाँ तो ब्रह्मा, रुद्र तथा इन्द्रके मुकुटोंमें मग्न हुए आपके निर्मल युगलचरणारविन्द और कहाँ मल, मूत्र, रक्त, मांस एवं हड्डियोंसे बना और चमड़ेसे ढका हुआ मुझ दीनका यह अधम शरीर? ईश! इस असार संसारमें भटकते रहनेके कारण मैं श्रमसे व्याकुल हूँ। भला आपको कैसे जानूँ? देव! मैंने अपने कर्मोंद्वारा सुख भोगनेके लिये जिन विषय-भोगोंका संग्रह किया, वे ही परिणाममें मेरे लिये दुःखरूप हो गये। अतः मेरे समान दुःखी दूसरा कोई नहीं है। प्रभो! यदि मैंने पहले कभी मनसे भी आपकी उपासना की होती तो दुःख भोगनेके लिये बार-बार नाना प्रकारके जन्म मुझे क्यों प्राप्त होते? मुरारे! क्या आपके चरणारविन्दोंसे दूर रहनेका ही यह फल नहीं है? सम्पूर्ण पृथ्वीके धनसे भरा हुआ मेरा खजाना, सेना, मनके अनुकूल सैकड़ों स्त्रियाँ और निष्कण्टक राज्य यह सब कुछ आपके तत्त्वज्ञानसे शून्य पशुके तुल्य मुझ अधमके लिये बड़ा भारी भार हो रहा है। इसमें सदा कष्ट ही प्राप्त हुआ करता है। दीनोंपर दया करनेवाले प्रभो! आपके स्मरण करनेमात्रसे ही जीवकी मुक्ति होती है। इस संसारमें आपके सिवा मेरा कोई बन्धु नहीं है। मेरी बुद्धि आपके चरणारविन्दोंसे कभी अलग न हो। आप सच्चिदानन्दमय परिपूर्ण सिन्धु हैं। जो सहस्रों जन्मोंका भाग्योदय होनेपर आपको पा गये हैं, वे क्या कभी लेशमात्र सुख और अनन्त दुःखोंसे भरे हुए विषय-भोगरूपी इन्द्रजालकी ओर आँख उठाकर देखते है? कहाँ तो जिसमें लेशमात्र सुख और अनन्त दुःखोंकी खानरूप सैकड़ों ग्रन्थियाँ हैं, ऐसे कर्मोंका अटूट बन्धन और कहाँ अनन्त, अनादि, एक एवं आनन्दप्रद आपके पवित्र चरणारविन्द? सबपर स्वभावतः कृपा करनेवाले प्रभो! मूलभूत आप परमेश्वरको न पाकर तुच्छ कार्यके लिये बहुत भटकनेवाले क्लेशके ही भाजनरूप मुझ अत्यन्त दीनकी रक्षा कीजिये। सम्पूर्ण विश्वके एकमात्र वन्दनीय विष्णुदेव! वेदान्तवेद्य! अव्यय! विश्वनाथ! आप ही समस्त पापराशियोंका नाश करनेमें समर्थ हैं।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

बलवानोंमें श्रेष्ठ बलभद्र! आपका विग्रह सहस्रों फणोंसे आवृत है। आप ईश्वर हैं, मैं आपकी शरणमें आया हूँ। संसारको आश्रय देनेवाली तथा सम्पूर्ण देवताओंको उत्पन्न करनेवाली मंगलमयी सुभद्राके दोनों चरणोंको प्रणाम करता हूँ। हे नाथ! यह ब्रह्माण्डोंका समूह जिसकी किरणोंके समुदायसे रचा गया है और जो दैत्योंकी सेनाका संहार करनेवाला है, उस सुदर्शन चक्रके रूपमें आपको मैं प्रणाम करता हूँ।'

इस प्रकार स्तुति करके श्रेष्ठ राजा इन्द्रद्युम्नने भगवान्‌को साष्टांग प्रणाम किया और कहा—'अनाथोंके बन्धु जगन्नाथ! संसार-समुद्रमें डूबे हुए मुझ दीन तथा दुःख-शोकसे व्याकुल मनुष्यका आप कृपापूर्वक उद्धार करें।'

तत्पश्चात् नारदजीने कहा—अपार भवसागरसे पार उतारनेमें तत्पर भगवान् नारायण! आपकी जय हो, जय हो। सनक, सनन्दन और सनातन आदि श्रेष्ठ योगी आपके दिव्य तत्त्वका चिन्तन करते रहते हैं। आप सर्वलोकस्वरूप, सब लोगोंको सुख देनेवाले, सम्पूर्ण विश्वके उपकारक तथा समस्त जगत्‌के वन्दनीय हैं। कोटि-कोटि ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र, मरुद्‌गण, अश्विनीकुमार, साध्य तथा सिद्धगण आपके लीला-विलाससे उत्पन्न हैं। सम्पूर्ण देवता और दानव आपके चरणोंमें प्रणाम करते हैं। त्रिभुवनगुरो! आप किसीके भी पूर्णतया जाननेमें नहीं आते। आपको नमस्कार है, नमस्कार है।

तदनन्तर अन्यान्य राजा, वेदोंके पारंगत विद्वान्, श्रोत्रिय मुनि, ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा विद्वान् वैश्य जातिके लोगोंने भी वैदिक सूक्तों, स्तोत्रों, पौराणिक स्तुतियों और स्वरचित कविताओंसे, जैसे बना उसी प्रकार, बलभद्र और सुभद्राके साथ कमलनयन भगवान् श्रीकृष्णका स्तवन किया। इसके बाद राजाने पुरोहितजीसे भगवान् वासुदेवकी पूजाके लिये सामग्री संग्रह करनेको कहा। फिर नारदजीके उपदेशसे स्वयं राजाने ही विधि एवं मन्त्रोच्चारणके साथ क्रमशः उन सब विग्रहोंका पूजन किया। द्वादशाक्षर (**ॐ नमो भगवते वासुदेवाय**) मन्त्रसे बलभद्रजीकी पूजा की। इसी मन्त्रके द्वारा उपासना करके ध्रुवजीने परम उत्तम स्थान प्राप्त किया है। पुरुषसूक्तसे राजाने यथाशक्ति भगवान् नारायणकी पूजा की। देवीसूक्तसे सुभद्राका और सुदर्शन-सम्बन्धिनी ऋचासे सुदर्शन चक्रका पूजन किया। इस प्रकार अपने वैभवके अनुसार भक्तिपूर्वक उन सबकी पूजा करके भगवत्प्रीतिके लिये उन्होंने श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको दान दिया। इसके बाद राजाने शुभ समय एवं शुभ नक्षत्रमें नारद आदि श्रेष्ठ ब्राह्मणोंकी पूजा करके स्वस्तिवाचन कराया और जगन्नाथजीका स्मरण करते हुए वास्तुपूजनपूर्वक शिल्पीका भी पूजन किया। भगवान् विष्णुके उस काष्ठमय अवतारको देखकर कृतार्थ एवं पापरहित हुए राजाओंको इन्द्रद्युम्नने बड़े आदरके साथ विदा किया।

देवताओं तथा ब्रह्माजीके द्वारा भगवद्विग्रहोंका स्तवन और उनकी स्थापना

जैमिनिजी कहते हैं—तदनन्तर राजा इन्द्रद्युम्नने शिल्पशास्त्रमें प्रवीण सब कारीगरोंको मन्दिरके निर्माणकार्यमें नियुक्त किया। थोड़े ही समयमें मन्दिर बनकर इतना ऊँचा हो गया कि वह नीचेसे दिखायी नहीं पड़ता था। उस समय भारतवर्षमें जितने समकालीन राजा थे, वे सभी राजा इन्द्रद्युम्नके उस पुण्य कार्यमें संलग्न थे। वह मन्दिर ऊँचाईमें आकाशको छूता था और चौड़ाईमें सब दिशाओंको पूरा कर रहा था। उसमें स्थान-स्थानपर सुवर्ण जड़ा हुआ था और अनेक प्रकारके रत्नोंसे वह

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

परम उज्ज्वल प्रतीत होता था। कहीं स्फटिकशिलाका योग होनेसे उसकी छबि शरद्-ऋतुके बादलोंकी-सी श्वेत जान पड़ती थी। कहीं काले पत्थरकी बनी हुई दीवार बादलोंकी काली घटा-सी दिखायी पड़ती थी। इस प्रकार परम सुन्दर बने हुए भगवान् विष्णुके मनोहर प्रासादमें विधिपूर्वक गर्भप्रतिष्ठा करके बिजली गिरने आदि उपद्रवोंसे मन्दिरको कोई क्षति न पहुँचे, इसके लिये शिल्पशास्त्रोंमें निश्चित विधानके अनुसार अपने पुरुषार्थसे उपार्जित की हुई मणि आदिको यथायोग्य स्थानोंपर लगाया गया। फिर मन्दिर-निर्माणके लिये आवश्यक सामग्रीके अनुरूप बहुमूल्य वस्तुओंका वहाँ यत्नपूर्वक संग्रह करवाया। तीनों लोकोंके राजा मनसे भी जिसकी सम्भावना नहीं कर सकते थे, ऐसे मनोहर एवं कीर्ति बढ़ानेवाले मन्दिरका निर्माण होने लगा। उसके तैयार हो जानेपर राजा इन्द्रद्युम्नने मुनिवर नारदजीसे कहा—'देवताओं और असुरोंके लिये भी जो असम्भव था, वह सब मेरा कार्य भगवत्कृपासे सम्पन्न हो गया।' यह कहकर उन्होंने नारदजीके चरणोंमें प्रणाम किया। नारदजीने भी राजाको उठाकर उनका सत्कार किया और कहा—'राजन्! इस समय तुम जीवन्मुक्त हो गये हो। भगवान्के चरणारविन्दोंमें अनन्य भक्तिपूर्वक तुम्हारा चित्त जिस प्रकार लगा हुआ है, उससे बढ़कर मनुष्यके लिये और कौन-सा पुरुषार्थ हो सकता है? भूपाल! तीर्थ, मन्त्र, जप, दान, बहुत दक्षिणावाले यज्ञ, व्रत, स्वाध्याय और तपस्यासे भी जिसे प्राप्त करना असम्भव है, वही केवल भक्तिसे तुम्हारे हाथमें आ गया है। राजेन्द्र! तुम दीर्घकालतक पृथ्वीपर स्थित रहकर बड़े-बड़े उत्सवों और उपचारोंसे जगन्नाथजीकी उत्कृष्ट पूजा करो।'

तत्पश्चात् इन्द्रद्युम्नने जगन्नाथजीको दण्डवत्-प्रणाम किया और इस प्रकार स्तुति की—'ब्रह्मण्यदेव भगवान्को नमस्कार है। गौओं और ब्राह्मणोंके हितैषी, शरणागतोंका दुःख दूर करनेवाले तथा चार पुरुषार्थोंके एकमात्र हेतु भगवान् श्रीहरिको नमस्कार है। हिरण्यगर्भरूप पुरुष और प्राकृत व्यक्त जगत् दोनों आपके स्वरूप हैं। आपको नमस्कार है। शुद्ध ज्ञानस्वरूप सच्चिदानन्दमय भगवान् वासुदेवको नमस्कार है।' इस प्रकार स्तुति करते हुए राजाके नेत्रोंमें आँसू भर आया। उन्होंने परिक्रमा करके बार-बार भगवान्को प्रणाम किया। तदनन्तर जो अन्य देवता वहाँ आये थे, वे प्रसन्नतापूर्वक भगवान्को प्रणाम करके हाथ जोड़कर उनकी स्तुति करने लगे।

देवता बोले—परब्रह्म और परमात्माके नामसे जिसकी महिमाका गान किया जाता है, वह पुरुष ही भूत, वर्तमान और भविष्य सब कुछ है। इतनी इसकी महिमा (अपार वैभव) है। यह परम पुरुष श्रीहरि सबसे ज्येष्ठ और सबका स्वामी है। सम्पूर्ण विश्व इसके एक अंशमें स्थित है। इसका शेष तीन अंश विशुद्ध अमृतस्वरूप है, जो परम व्योममें विराजमान है। भगवन्! वह अमृतमय पुरुष आप ही हैं। आपसे ही वेद प्रकट हुए हैं, यज्ञमय पुरुष भी आपसे ही उत्पन्न हैं। आपसे ही घोड़े, गौ और भेड़ आदि पशु उत्पन्न हुए हैं। ब्राह्मण आपके मुखसे प्रकट हुए हैं, क्षत्रिय आपकी भुजाओंसे उत्पन्न हैं, वैश्योंका जन्म आपके ऊरुसे हुआ है तथा शूद्र आपके चरणोंसे प्राप्त हुए हैं। आपके मनसे चन्द्रमा, नेत्रसे सूर्य, कानों और प्राणोंसे वायु तथा जिह्वासे अग्निकी उत्पत्ति हुई है। आपकी नाभिसे आकाश, मस्तकसे स्वर्ग, पैरोंसे पृथ्वी और कानोंसे आठों दिशाएँ प्रकट हुई हैं। आपहीसे यज्ञकुण्डकी सात परिधियाँ (मेखलाएँ) तथा इक्कीस समिधाएँ प्रकट हुई हैं। समस्त चराचर भाव आपसे ही उत्पन्न हुए हैं। आप ही सम्पूर्ण जगत्के स्वामी

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

और संरक्षक हैं। परमेश्वर! भयानक रूप धारण करके सृष्टिका संहार करनेवाले भी आप ही हैं। आप ही यज्ञ, यज्ञांश, यज्ञेश तथा परात्पर परमात्मा हैं। आप शब्दब्रह्मसे परे और शब्दब्रह्मरूप ही हैं। जगन्नाथ! आप ही विश्वराट्, स्वराट् और विराट् हैं। जगत्पते! आप जगत्स्वरूप हैं। आपने ही ऊपर-नीचे तथा दायें-बायें सम्पूर्ण विश्वको व्याप्त कर रखा है। आपका यजन करनेवाले याज्ञिक पुरुष परम धामको प्राप्त होते हैं। आप ही भोज्य, भोक्ता, हविष्य, होता, हवन और उसके फलदाता हैं। प्रभो! आप समस्त कर्मोंके भोक्ता, सर्वकर्मस्वरूप, सब कर्मोंके उपकरण तथा सम्पूर्ण कर्मोंके फल देनेवाले हैं। आप ही सत्कर्मोंके लिये प्रेरणा करते हैं। धर्म, अर्थ और कामकी सिद्धि देनेवाले भी आप ही हैं। हृषीकेश! मुक्ति देनेवाला भी आपके सिवा दूसरा कौन है? आपको नमस्कार है। आपका कहीं अन्त नहीं है। आपके सहस्रों रूप, सहस्रों पैर, नेत्र, मस्तक, ऊरु और भुजाएँ हैं। आपको नमस्कार है। सहस्रों कोटि युगोंको धारण करनेवाले और सहस्रों नामोंवाले आप सनातन पुरुषको नमस्कार है। प्रभो! संसारसमुद्रमें गिरे हुए प्राणीको शरण देनेवाले एकमात्र आप ही हैं। आपकी सृष्टिमें आपके समान दीनोंकी रक्षा करनेवाला दूसरा कोई नहीं है। दीनों और अनाथोंके एकमात्र आश्रय आप हैं। प्रभो! आप ही इस जगत्के पिता, पालक, पोषक और सम्पूर्ण आपत्तियोंका निवारण करनेवाले हैं। जगन्नाथ! विष्णो! हमारी रक्षा कीजिये। परमेश्वर! हमारी रक्षा कीजिये। कमलाकान्त! आपके सिवा कौन हमारी रक्षा करनेमें समर्थ है? अन्तर्यामिन्! आपको नमस्कार है। सर्वतेजोनिधे! आपको नमस्कार है।

इस प्रकार स्तुति करके देवताओंने बार-बार प्रणाम किया और इन्द्रद्युम्नके साथ बाहर निकलकर सब-के-सब भगवान् नृसिंहके क्षेत्रमें गये। वहाँ साष्टांग प्रणाम और नमस्कार करके परम भक्तिपूर्वक उन्होंने श्रीनृसिंहदेवका पूजन किया। उसके बाद वे नीलाचलके शिखरपर, जहाँ उत्तम प्रासादका निर्माण हुआ था, गये। देवताओंने आकाशमण्डलमें व्याप्त उस उच्चतम मन्दिरको देखा। राजा इन्द्रद्युम्नने विचार किया कि यह पूर्ण हुआ भगवान्का उत्तम मन्दिर दीर्घकालके बाद मेरे दृष्टिपथमें आया है। यह सब भगवान्के अनुग्रहसे हुआ है, इसमें मनुष्यका कोई पुरुषार्थ नहीं है। तदनन्तर उन्होंने अपने सहायकोंसे कहा—'जब काष्ठमय शरीर धारण करके स्वयं भगवान् यहाँ प्रकट हुए थे, उस समय आकाशवाणीने मुझसे कहा था कि तुम नीलाचलके शिखरपर जगन्नाथजीकी प्रतिष्ठाके लिये एक हजार हाथका मन्दिर बनाओ, उसकी स्थापनाके समय स्वयं ब्रह्माजी सिद्धों, ब्रह्मर्षियों और देवताओंके साथ पधारेंगे।'

तत्पश्चात् राजाने नारदजीसे पूछा—मुनिश्रेष्ठ! मैं प्रतिष्ठाविधिकी वस्तुओंके विषयमें कोई जानकारी नहीं रखता। जो-जो एकत्र करनेयोग्य वस्तुएँ हों, उन सबको क्रमसे बतलाइये।

राजाके इस प्रकार कहनेपर नारदजीने शास्त्रके अनुसार विचार करके सब सामग्रीकी सूची एक पत्रपर लिखकर उन्हें दे दी। राजाने वह पत्र पद्मनिधिको दिया और कहा—'इसमें लिखी हुई वस्तुएँ एकत्र करो। ब्रह्माजीके लिये दिव्य भवनका निर्माण करो। ब्रह्मर्षियों, इन्द्रादि देवताओं, सिद्धों, मनुष्यों तथा मुनीश्वरोंके लिये यथायोग्य स्थान बनाओ।' इस प्रकार आदेश देते हुए राजा इन्द्रद्युम्नसे नारदजीने कहा—'राजन्! तीन रथ तैयार कराइये। भगवान् वासुदेवके रथपर गरुड़ध्वज फहरा रहा हो और सुभद्राजीके रथके ऊपर कमलके चिह्नसे युक्त ध्वजा लगायी गयी हो। श्रीबलभद्रजीके रथपर तालध्वज या हलके चिह्न-युक्त ध्वज होना चाहिये। श्रीविष्णुके रथमें सोलह, बलभद्रके रथमें चौदह और सुभद्राके रथमें बारह पहिये होने

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

चाहिये। चक्रधारी श्रीकृष्णके रथका विस्तार सोलह हाथ, बलभद्रजीके रथका विस्तार चौदह हाथ और सुभद्राजीके रथका विस्तार बारह हाथका हो।' नारदजीके इस वचनको सुनकर एक दिनमें तीन रथ बनाये गये, जिनके धुरे, चक्के, खंभे और द्वार सभी सुन्दर थे। तीनों रथोंका विस्तार उत्तम था। सबमें सुन्दर ध्वजा-पताका लगी थी। नाना प्रकारकी चित्रकारीसे वे तीनों रथ बड़े मनोहर प्रतीत होते थे। उनमें लगाम और बागडोरसे युक्त वायुके समान वेगवाले सैकड़ों सफेद घोड़े जुते हुए थे। नारदजीने शास्त्रके अनुकूल विधिसे रथोंकी प्रतिष्ठा की।

तत्पश्चात् ब्रह्माजीकी प्रेरणासे उस उत्तम प्रासादके समीप शुभ मुहूर्तमें सब देवता आ पहुँचे। राजा इन्द्रद्युम्नकी आज्ञासे विश्वकर्माने एक बहुत बड़ी रत्नमयी शाला तैयार की। उसमें प्रतिष्ठाकालिक पूजनोपयोगी वस्तु, हविष्य, समिधा, कुशा तथा अनेक प्रकारके भोजन और सम्पत्तिका संचय करके रखा गया।

उस समय पृथ्वीपर 'गाल' नामक राजा राज्य करते थे। उन्होंने भी माधवकी एक प्रस्तरमूर्ति बनवायी और उसके लिये एक छोटा-सा मन्दिर तैयार कराकर उसमें उसकी स्थापना और पूजा की। फिर दूतके मुखसे राजा इन्द्रद्युम्नके उद्योगको सुनकर राजाको क्रोध हुआ और वे सेनासमेत कुपित हो नीलाचलपर आये। वहाँ आनेपर उन्होंने प्रतिष्ठाका ऐसा आयोजन देखा, जो मनुष्योंके लिये स्वप्नमें भी दुर्लभ था। उसे देखकर राजाके मनमें बड़ा विस्मय हुआ। वहाँके सब वृत्तान्तको जानकर राजा गालने अपनेको कृतार्थ माना और यह अनुभव किया कि इससे बढ़कर कल्याणकारक कर्म न हुआ है और न होगा। फिर तो वे हाथ जोड़कर राजा इन्द्रद्युम्नके समीप गये और बोले—'देव! आप राजाओंके राजा तथा जीवन्मुक्त हैं। मैं आपकी क्या स्तुति करूँ। आप मुझपर प्रसन्न होइये।'

इस प्रकार निवेदन करते हुए श्रेष्ठ राजा गालसे इन्द्रद्युम्नने कहा—'राजन्! आप अपनी तुच्छताका अधिक बखान क्यों करते हैं? आप भी सार्वभौम सम्राट् और भगवान् विष्णुके भक्त हैं। प्रजाओंके पालनमें तत्पर रहनेवाला राजा प्रजाके रक्षारूप उत्तम मार्गपर चलकर इस लोकमें कीर्ति और धर्मका उपार्जन करता है। आप तो भगवान्के भक्त हैं। अतः आपको विशेषरूपसे सफलता मिलेगी। राजन्! काष्ठरूपमें अवतीर्ण हुए साक्षात् भगवान् विष्णुका यह प्रासाद है। चार स्वरूपोंमें व्यक्त हुए भगवान् जनार्दनकी इस मन्दिरमें स्थापना करके मैं यह मन्दिर आपको ही सौंपकर चला जाऊँगा। आप ही इसमें पूजा आदिकी व्यवस्था करेंगे।' यह सब सुनकर राजा गाल बहुत प्रसन्न हुए। इन्द्रद्युम्नने जो-जो आदेश दिया, उसका वे बड़ी शीघ्रताके साथ पालन करने लगे। इस प्रकार सब सामग्री जुट जानेपर देवताओंसे घिरे हुए सिंहासनपर विराजमान राजा इन्द्रद्युम्न इन्द्रकी भाँति शोभा पाने लगे। इतनेमें ही देवताओंके जय-जयकारसे स्तुति किये जाते हुए साक्षात् ब्रह्माजी दिखायी पड़े। राजा इन्द्रद्युम्नने दोनों हाथ जोड़कर भक्तिभावसे उन्हें मस्तक झुकाया तथा गालराज और नारदजीके साथ भूमिपर सिर रखकर साष्टांग प्रणाम किया। फिर उठकर प्रसन्नताका अनुभव करते हुए अपनेको कृतार्थ माना। उस समय उनके सब अंगोंमें रोमांच हो आया था।

जैमिनिजी कहते हैं—राजा इन्द्रद्युम्नको अपने चरणोंमें प्रणाम करते देख प्रजापति ब्रह्माजीने मुसकराते हुए कहा—'राजन्! अपना सौभाग्य तो देखो—ये सब देवता, ऋषि, पितर और सिद्ध-विद्याधर आदि मुझे आगे करके तुम्हारे लिये यहाँ एकत्र हुए हैं।' ऐसा कहकर ब्रह्माजी शीघ्र

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

ही भगवान् नारायणके रथके समीप गये और उन जगदीशजीको प्रणाम करके तीन बार परिक्रमा करनेके पश्चात् आनन्दके समुद्रमें निमग्न हो गये। उनके शरीरमें रोमांच हो आया। उन्होंने गद्गद स्वरमें अपने ही स्वरूपभूत भगवान् जगन्नाथकी इस प्रकार स्तुति की—'प्रभो! आपको नमस्कार है। मैं आप हैं और आप मैं हूँ। यह सम्पूर्ण चराचर जगत् आपका ही स्वरूप है। महत्तत्त्वसे लेकर सम्पूर्ण प्राकृत जगत् आपकी ही मायाका विलास है। विश्वात्मन्! यह संसार आपमें ही अध्यस्त (आरोपित) है और आपके ही द्वारा इसमें परिणाम (परिवर्तन अथवा विकार) होता है। यह सम्पूर्ण प्रपंच, जो भासित हो रहा है, आपके तत्त्वको न जाननेके कारण ही है। आपके स्वरूपका यथार्थ बोध हो जानेपर यह आपमें ही विलीन हो जाता है। ठीक उसी तरह जैसे रज्जुके स्वरूपका निश्चय हो जानेपर उसमें भ्रमवश प्रतीत होनेवाला सर्प वहीं लीन हो जाता है। सत्ताके विचारसे यह सब कुछ सत्स्वरूप होनेके कारण अनिर्वचनीय ही है। प्रभो! आप अद्वितीय हैं। जगत्को आपसे ही प्रकाश मिलता है, आप स्वयंप्रकाश हैं। आपको नमस्कार है। संसारका समस्त आनन्द सहजानन्दस्वरूप आप परमात्माका एक तुच्छतम अंश है, जिसके सहारे सब प्राणी जीवन धारण करते हैं। आप प्रपंचशून्य, निराकार, निर्विकार और निराश्रय हैं। आप स्थूल हैं, सूक्ष्म हैं, अणु हैं और महान् हैं; साथ ही आप स्थूल, सूक्ष्म आदि सभी भेदोंसे रहित हैं। गुणोंसे अतीत होकर भी समस्त गुणोंके आधार हैं। त्रिगुणात्मन्! आपको नमस्कार है। मैं आपके नाभिकमलसे उत्पन्न हुआ हूँ। जैसे इस ब्रह्माण्डके मध्य मैं सृष्टिकर्ममें लगाया गया हूँ, वैसे आपके एक-एक रोममें ब्रह्माण्ड हैं और उन ब्रह्माण्डोंमें मुझ-जैसे करोड़ों ब्रह्मा हैं। आपकी महिमा अचिन्त्य है, आपको नमस्कार है। आपका स्वरूप चिन्मय है, आपको बार-बार नमस्कार है। आप देवताओंके अधिदेवता हैं, आपको नमस्कार है। देवदेव! आपको नमस्कार है। दिव्य और अदिव्य स्वरूपवाले आपको नमस्कार है। दिव्य रूपमें प्रकट होनेवाले आपको नमस्कार है। आप जरा और मृत्युसे रहित तथा मृत्युरूप हैं, आपको नमस्कार है। आप मृत्युकी भी मृत्यु हैं, शरणागतोंकी मृत्युका नाश करनेवाले हैं, सहज आनन्द आपका स्वरूप है, भक्ति आपको प्रिय है, आप जगत्के माता और पिता हैं, आपको बार-बार नमस्कार है। शरणागतोंकी पीड़ाका नाश करनेके लिये सदा उद्योग करनेवाले प्रभो! आपको नमस्कार है। आप दीनोंके प्रति करुणाके स्वाभाविक समुद्र हैं, आपको बार-बार नमस्कार है। आप पर हैं, पररूप हैं तथा परपार (भवसागरके दूसरे पार) हैं, आपको नमस्कार है। जिसको कहीं पार नहीं मिलता उसके पारस्वरूप आप ही हैं, आप ही ब्रह्मरूप हैं, आपको नमस्कार हैं, आप परमार्थस्वरूप तथा परहेतु (उत्कृष्ट कारण) हैं। आपको नमस्कार है। परम्परासे व्याप्त परमतत्त्वमें तत्पर रहनेवाले आपको नमस्कार है। प्रणतजनोंके दुःखका संहार करनेवाले आपको नमस्कार है। नाथ! यदि आप प्रसन्न हों, तो मेरे लिये कौन-सी वस्तु दुर्लभ है? अज्ञानरूपी अन्धकारसे आच्छन्न हुए इस विश्वरूपी कारागारके भीतर मुक्तिकी इच्छासे भटकनेवाला मनुष्य, आपके सिवा और कोई द्वार नहीं पाता। आप सम्पूर्ण विश्वके लिये एकमात्र वन्दनीय हैं, आपको नमस्कार है। देवता और दानव सभी आपके चरणारविन्दोंकी अर्चना करते हैं, आपको नमस्कार है। आप सन्ताप हरनेके लिये एकमात्र चन्द्रमा हैं, आपको नमस्कार है, नमस्कार है। आप कल्याणमय ज्ञानघनस्वरूप हैं, आपको बार-बार नमस्कार है। आप कल्पना करनेवालोंसे सदा ही दूर रहते हैं, आपको नमस्कार है। आप दुर्लभ कामनाओंको देनेवाले कल्पवृक्षरूप हैं, आपको

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

नमस्कार है। दीनों, असहायों और शरणागतोंकी दुःखराशिका संहार करनेके लिये एकमात्र आप ही सदा कमर कसे रहते हैं, आपको नमस्कार है। जगन्नाथ! दुःखके समुद्रमें डूबे हुए प्राणियोंपर आप प्रसन्न होइये। करुणाकर! आप लीलापूर्वक कृपाकटाक्ष करके उन सबका उद्धार कीजिये।'

इस प्रकार वेदार्थोंद्वारा श्रीजगन्नाथकी स्तुति करके ब्रह्माजी धरणीधर शेषके अवतारभूत बलभद्रजीका दर्शन करनेके लिये गये और अतिशय भक्तिपूर्वक प्रणाम करके उन्होंने उनका भी स्तवन किया—'देवेश! आकाश आपका मस्तक है और जल आपका शरीर है। पृथ्वी चरण है, अग्नि मुख है और वायुदेवता श्वास हैं। मन चन्द्रमा, नेत्र सूर्य और भुजा सम्पूर्ण दिशाएँ हैं। नाथ! ज्ञानदर्पण! आपको नमस्कार है। चौदहों भुवनोंके मूल स्तम्भरूप आप हलधरको नमस्कार है। जो आपके चरणारविन्दोंकी शरण लेते हैं, उनकी पापराशिको आप विदीर्ण कर डालते हैं; आपको नमस्कार है। आपके मुख, नेत्र, कान, चरण और भुजाएँ अनन्त हैं। अनादि, महामूल, अज्ञानान्धकार-राशिका विनाश करनेके लिये सूर्यस्वरूप आप बलभद्रजीको नमस्कार है। वेदत्रयी आपका स्वरूप है। तीन प्रकारके दोषोंका नाश करनेके लिये त्रिविध अवतार धारण करनेवाले आपको नमस्कार है। भगवन्! ये नारायणदेव जो वेदान्तोंमें गाये जाते हैं, आपसे भिन्न नहीं हैं। आप शय्या हैं और वे शयन करनेवाले हैं। वे आच्छादनीय हैं और आप उनका आच्छादन करनेवाले हैं। जो कृष्ण हैं, वे बलराम हैं; जो बलराम हैं, वे ही कृष्ण हैं। आप दोनोंमें कोई अन्तर नहीं है। जगन्मय! आप प्रसन्न होइये।'

इस प्रकार परमेश्वर बलभद्रजीको प्रणाम करके ब्रह्माजी जगदीश्वरी सुभद्राका दर्शन करनेके लिये उनके रथके समीप गये और इस प्रकार बोले—'जगदम्ब! देवि! तुम्हारी जय हो। परमेश्वरि! तुम्हीं सर्वशक्ति हो, तुम्हें नमस्कार है। कैवल्य मोक्ष प्रदान करनेवाली सुभद्रा देवी! मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ। कल्याणमयी सुभद्रे! तुम्हारी जय हो।'

इस प्रकार ब्रह्माजीने कल्याणमयी सुभद्राकी स्तुति करके उन्हींके समीप रथपर विराजमान भगवान् विष्णुके चौथे स्वरूप चक्र सुदर्शनको भी प्रणाम किया। तत्पश्चात् बड़ी भक्तिसे उसकी इस प्रकार स्तुति की—'हे सुदर्शन! आप महाज्वालामय हैं। आपकी प्रभा करोड़ों सूर्योंके समान है। जो अज्ञानरूपी अन्धकारसे अन्धे हो रहे हैं, उन्हें वैकुण्ठका मार्ग दिखानेवाले आप ही हैं। आप नित्य शोभाशाली तथा वैष्णवोंके अपने धाम हैं। आप भगवान् विष्णुके ही एक स्वरूप हैं। मैं आपको प्रणाम करता हूँ।'

इस प्रकार प्रणाम और स्तुति करके ब्रह्माजी देवताओंके साथ मन्दिरके समीप गये और वहाँ उन्होंने अपने मनको अनुकूल प्रतीत होनेवाली परम सुन्दर शाला देखी। तदनन्तर वे राजाके दिये हुए दिव्य सिंहासनपर आसीन हुए। ब्रह्माजीकी आज्ञासे राजा इन्द्रद्युम्नने शान्तिकर्म करनेके लिये महामुनि भरद्वाजका वरण किया। प्रतिष्ठाकर्ममें भेंट-पूजा चढ़ानेके लिये जो-जो देवता अभीष्ट माने गये हैं तथा होमकर्ममें जिन-जिन देवताओंके लिये आहुति देनेका विधान है, वे सभी ध्यान करनेपर ब्रह्माजीकी आज्ञासे चारों दिशाओंमें आकर स्वयं उपस्थित हो गये। फिर गन्ध, पुष्प, माला, अलंकार और आभूषण आदिके द्वारा उनकी भलीभाँति पूजा की गयी। तत्पश्चात् बुद्धिमान् भरद्वाजजीने देवाधिदेव ब्रह्मा तथा सब देवताओंके समक्ष कर्म आरम्भ किया। राजा इन्द्रद्युम्नने बड़ी प्रसन्नताके साथ सबका पूजन किया। भगवान्‌के विग्रहस्वरूप उस मनोहर मन्दिरकी, जिसमें अत्यन्त महान् ध्वज फहरा रहा था, प्रतिष्ठा करके भरद्वाजजीने भगवद्विग्रहोंमें प्राणप्रतिष्ठाके लिये ब्रह्माजीसे अनुरोध किया। तब ब्रह्माजी

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

उठे। उन्होंने नारद आदि ऋषियों तथा विद्वान् ब्राह्मणोंके साथ स्वयं स्वस्तिवाचन किया। ब्राह्मणलोग वैदिक सूक्तोंका पाठ करने लगे। भाँति-भाँतिके मंगल वाद्य बजने लगे। उस समय सबने रथके समीप जाकर सीढ़ियोंके मार्गसे सावधानीके साथ भगवद्विग्रहोंको उतारा। दोनों बगलमें, भुजाओंमें, मस्तकपर तथा दोनों चरणोंमें हाथ लगाकर लोग धीरे-धीरे भगवान् नारायणको रूईदार गद्देपर विश्राम कराते हुए मन्दिरके समीप ले गये। ऊपर-ऊपरसे पारिजात पुष्पोंकी वर्षा होने लगी। ब्रह्माजी इस प्रकार स्तुति करने लगे—'जगन्नाथ श्रीकृष्ण! आपकी जय हो। सब पापोंका नाश करनेवाले प्रभो! आपकी जय हो। लीलासे काष्ठ-विग्रह धारण करनेवाले नारायण! आपकी जय हो। सबको मनोवांछित फल देनेवाले माधव! आपकी जय हो। संसार-सागरमें डूबे हुए जीवोंका लीलापूर्वक उद्धार करनेवाले अविनाशी परमेश्वर! आपकी जय हो, जय हो। करुणासागर! आपकी जय हो। दीनोद्धार-परायण! आपकी जय हो। अच्युत! अनन्त! ईशान! आपकी जय हो, जय हो, जय हो। प्रभो! आपको नमस्कार है।' यह स्तुति होते समय नारदजी बड़ी प्रसन्नताके साथ वीणा बजाते थे। भगवान्के मस्तकपर पीछेकी ओरसे दो रत्नमय छत्र लगाये गये। दोनों पार्श्वभागमें चामरग्राही देवता पंक्तिबद्ध खड़े थे, जो धीरे-धीरे चँवर डुला रहे थे। इसी प्रकार सब लोग बड़े कौतूहलके साथ बलभद्र, सुभद्रा तथा सुदर्शन चक्रके विग्रहोंको भी ले गये। मन्दिरके मुख्यद्वारपर रत्नमय स्तम्भोंसे सुशोभित मण्डप तैयार किया गया था। उसमें अभिषेकके लिये भगवान्को पधराया गया। उन सब विग्रहोंके सामने दर्पण रख दिये गये। फिर रत्नोंके कलशोंमें रखे हुए तीर्थोंके जलसे क्रमशः पुरुषसूक्त और श्रीसूक्त पाठ करते हुए स्वयं ब्रह्माजीने लोकशिक्षाके लिये अभिषेक किया। तत्पश्चात् अलंकार धारण कराकर भगवद्विग्रहोंको गन्ध और माला आदिसे सुशोभित करके ब्रह्माजीने स्वयं ही आरती उतारी और मन्त्र पढ़ते हुए उन सब विग्रहोंको रत्नमय सिंहासनोंपर स्थापित किया।

ब्रह्माजी बोले—सम्पूर्ण जगत्के आधार तथा समस्त लोकोंमें प्रतिष्ठित सर्वव्यापी जनार्दन! आप इस मन्दिरमें सुस्थिर भावसे विराजमान होइये। यह प्रतिष्ठा सुप्रतिष्ठा हो। नाथ! आपके प्रतिष्ठित होनेपर हम सब यहाँ प्रतिष्ठित होंगे। आपकी आज्ञा और आपके प्रसादसे यह प्रतिष्ठा परिपूर्ण हो।

इस प्रकार जगन्नाथकी स्थापना करके ब्रह्माजीने उनके हृदय-कमलका स्पर्श करते हुए आनुष्टुभ मन्त्रराज*का एक सहस्र जप किया। वैशाखमासके शुक्ल पक्षमें अष्टमी तिथिको पुष्य नक्षत्रके योगमें उत्तम बृहस्पतिके दिन भगवान् जगन्नाथकी प्रतिष्ठा की गयी। इसलिये वह दिन परम पवित्र एवं सब पापोंका नाश करनेवाला है। उसमें किया हुआ स्नान, दान, तप, होम आदि सब पुण्यकार्य अक्षय होता है। जो मनुष्य उस दिन भक्तिभावसे भगवान् श्रीकृष्ण, बलराम और सुभद्राजीका दर्शन करते हैं, वे निःसन्देह मोक्षके भागी होते हैं। वैशाखमासमें जो शुक्ल पक्षकी अष्टमी आती है, उसमें यदि बृहस्पतिवार और पुष्य नक्षत्रका योग हो तो उस दिन किया हुआ जगन्नाथजीका पूजन कोटि जन्मोंके पापोंका नाश करनेवाला होता है।

~~०~~

* मन्त्रराज आनुष्टुभ इस प्रकार है—

उग्रं वीरं महाविष्णुं ज्वलन्तं सर्वतोमुखम्। नृसिंहं भीषणं भद्रं मृत्युमृत्युं नमाम्यहम्॥

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

ब्रह्माजीके द्वारा भगवत्स्वरूपकी एकताका प्रतिपादन तथा भगवान्‌का राजा इन्द्रद्युम्नको अपनी सेवाका आदेश देना

जैमिनिजी कहते हैं—तदनन्तर राजा इन्द्रद्युम्नने मन-ही-मन आश्चर्यसे चकित होकर ब्रह्माजीसे पूछा—'भगवन्! यज्ञके अन्तमें भगवान् विष्णुने वैसे ही काष्ठनिर्मित स्वरूप धारण किये थे, जो रथपर विराजमान थे। आपने मन्दिरके भीतर भी उन्हीं विग्रहोंके रूपमें भगवान्‌की प्रतिष्ठा की है। पहले आकाशवाणीने भी मुझसे यही कहा था कि इस अपौरुषेय वृक्षसे भगवान् चार स्वरूपोंमें अभिव्यक्त होंगे। परंतु इस समय ये एक सच्चिदानन्दघन ब्रह्मरूपमें प्रतिष्ठित दिखायी देते हैं। प्रभो! यदि आप मुझे इस रहस्यको सुननेका अधिकारी समझते हैं तो ठीक-ठीक बताइये।'

ब्रह्माजीने कहा—राजन्! यह काष्ठकी मूर्ति है, ऐसा सोचकर तुम्हारे मनमें इसके प्रति साधारण प्रतिमा-बुद्धि न हो। वास्तवमें यह परब्रह्मका स्वरूप है। जो विदारण करे या दान दे उसको दारु कहते हैं। परब्रह्म परमात्मा स्वभावसे ही सब दुःखोंका विदारण और अखण्ड आनन्दका दान करते हैं। इसलिये उनका नाम दारु है। इस प्रकार चारों वेदोंके अनुसार भगवान् श्रीहरि दारुमय हैं। वे जगत्‌के स्रष्टा हैं। इसलिये उन्होंने अपनेको भी दारुमय स्वरूपमें प्रकट कर लिया। शब्दब्रह्म और परब्रह्ममें कोई भेद नहीं है। प्रलयके समय दोनों एक हैं। केवल सृष्टिकालमें व्यावहारिक भेद रहता है। शब्द और अर्थ दोनों एक-दूसरेकी अपेक्षा रखनेवाले हैं। अर्थके अभावमें शब्द नहीं और शब्दके अभावमें अर्थबोध नहीं होता। इसलिये चारों वेद जैसे शब्द हैं, वैसे ही अर्थ भी हैं। भगवान् हलधर ऋग्वेद-स्वरूप हैं। नृसिंहजी सामवेदरूप हैं। सुभद्रादेवी यजुर्वेदकी मूर्ति हैं और यह सुदर्शन चक्र अथर्ववेदका स्वरूप माना गया है। वेद चार हैं—यह भेद दृष्टि है। अभेद दृष्टिसे सम्पूर्ण वेद एक ही राशि हैं। अतः तुम्हारे मनमें सन्देह नहीं होना चाहिये। एक ही सर्वव्यापी भगवान् अनेक रूपोंमें व्यक्त होते हैं। अन्य अवतारोंमें भी वे इसी न्यायसे बर्ताव करते हैं। राजन्! इस प्रकार मैंने तुमसे भगवान् जगन्नाथके भेद और अभेद—दोनों ही बताये हैं। जिससे तुम्हारे मनको सन्तोष हो, उसी दृष्टिसे भक्तिपूर्वक भगवान्‌की आराधना करो। भगवान् सर्वरूपमय हैं तथा सर्वमन्त्रमय हैं। जो जिस प्रकार उनकी आराधना करता है, उसे वे उसी प्रकार फल देते हैं। इसी महिमासे भगवान् विष्णु यहाँ प्रकट हुए हैं। जिसका जितना विश्वास है, उसे उतनी सिद्धि प्राप्त होती है। तुम शुद्ध चित्तसे मन, वाणी और क्रियाद्वारा यहाँ दारु-विग्रह (काष्ठमय स्वरूप) धारण करनेवाले भगवान् गोविन्दकी आराधना करो और इस मन्त्रराजके द्वारा श्रीहरिकी पूजा किया करो। इस मन्त्रसे बढ़कर दूसरा कोई मन्त्र न हुआ है, न होगा। इससे पूजित होनेपर भगवान् विष्णु तत्काल प्रसन्न होते हैं तथा भक्तवत्सल भगवान् अपना परम धाम देते हैं। राजन्! मैं तुमसे एक तत्त्वकी बात कहता हूँ, ध्यान देकर सुनो। समुद्रके तटपर वटवृक्षके मूलके समीप नीलाचल पर्वतके शिखरपर निवास करनेवाले जो काष्ठमयी मूर्तिके व्याजसे साक्षात् अमृतमय परब्रह्म हैं, उनका दर्शन करके मनुष्य निश्चय ही मोक्षको प्राप्त होता है।

ब्रह्माजीने लोकशिक्षाके लिये राजासे यह सब कहकर पहले प्रकाशमें आये हुए भगवान् विष्णुके

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

चतुर्विध स्वरूपको प्रकट किया। रथसे उतारते समय जो चार मूर्तियाँ देखी गयी थीं, अब वे ही सिंहासनके ऊपर विराजमान हो गयीं, यह सब लोगोंने प्रत्यक्ष देखा। तत्पश्चात् ब्रह्माजीने द्वादशाक्षर मन्त्रसे बलभद्रजीकी, पुरुषसूक्तसे भगवान् नारायणकी, देवीसूक्तसे सुभद्राजीकी तथा द्वादशाक्षर (**ॐ नमो भगवते वासुदेवाय**) मन्त्रसे सुदर्शन चक्रकी पूजा की। उसके बाद राजापर अनुग्रह करनेके लिये उन्होंने भगवान्से इस प्रकार निवेदन किया।

ब्रह्माजी बोले—भगवन्! भक्तोंपर अनुग्रह करनेवाले देवदेवेश्वर! इन्द्रद्युम्न दीर्घकालसे आपकी भक्ति करते आ रहे हैं और अब इन्हें आपका दर्शन हुआ। भगवन्! यद्यपि आपका दर्शन सायुज्य मुक्तिका कारण है तो भी ये भक्तियोगके द्वारा आपकी पूजा करनेकी ही अभिलाषा रखते हैं। इसलिये इन्हें आज्ञा दीजिये, जिससे ये भक्तियोगके द्वारा देशकालोचित व्रत आदि तथा भाँति-भाँतिके उपचारोंसे आपकी पूजा करते रहें।

ब्रह्माजीके द्वारा इस प्रकार निवेदन करनेपर काष्ठमय शरीर धारण किये होनेपर भी भगवान्ने मुसकराते हुए गम्भीर वाणीमें कहा, 'इन्द्रद्युम्न! मैं तुम्हारी भक्ति तथा निष्काम कर्मोंसे बहुत प्रसन्न हूँ। मुझमें तुम्हारी स्थिर भक्ति हो। करोड़ोंका धन लगाकर जो तुमने मेरा मन्दिर बनवाया है, इसके भंग हो जानेपर भी मैं इस स्थानका परित्याग नहीं करूँगा। कालान्तरमें भी जो कोई दूसरा पुरुष यहाँ मन्दिर बनवायेगा, तुम्हारे प्रेमसे उसमें भी मेरी स्थिति रहेगी। मन्दिर भंग होनेपर भी मैं इस स्थानका कभी त्याग नहीं करूँगा। जबतक ब्रह्माजीका दूसरा परार्ध पूरा होगा तबतक इस काष्ठमय विग्रहसे ही मैं यहाँ निवास करूँगा। सत्ययुगके प्रथम ज्येष्ठमें यज्ञका प्रारम्भ हुआ और ज्येष्ठकी अमावस्याको* मैंने अवतार लिया है। वही मेरा पवित्र जन्मदिन है। उस दिन महास्नानकी विधिसे प्रत्यर्चामें अधिवासपूर्वक मुझे स्नान कराना चाहिये। ऐसा करनेसे मैं कोटि जन्मोंमें उपार्जित पापराशिका विनाश कर डालूँगा। उस दिन मेरा दर्शन करनेवालोंको सम्पूर्ण तीर्थों, यज्ञों और दानोंका फल प्राप्त होगा। वटवृक्षके उत्तर एक सर्वतीर्थमय कूप है, उसे खोदकर प्रकाशमें लाओ। ज्येष्ठकी अमावस्याको प्रातःकाल मुझको, बलभद्रजीको और सुभद्राको उस कूपके जलसे स्नान कराकर मनुष्य मेरे लोकको प्राप्त कर लेगा। आषाढ़ मासकी शुक्ला द्वितीया यदि पुष्य नक्षत्रसे युक्त हो तो वह इस तीर्थमें मोक्षदायिनी मानी गयी है। नक्षत्रके अभावमें भी मेरी प्रसन्नताके लिये उस तिथिको यात्रा करनी चाहिये। आषाढ़ शुक्ल पक्षकी पुष्य नक्षत्रयुक्त द्वितीया तिथिको मुझको, बलभद्रजीको, सुभद्राको रथपर बिठाकर महान् उत्सवके लिये बहुत-से ब्राह्मणोंको तृप्त करके 'गुण्डिचामण्डप' नामक स्थानको ले जाना चाहिये, जहाँ पहले मैं प्रकट हुआ था। सहस्र अश्वमेध यज्ञकी महावेदी उस समय वहीं थी। उससे बढ़कर पवित्र स्थान इस पृथ्वीपर दूसरा नहीं है। जैसे ब्रह्माके अनुरोधसे और तुम्हारे बनवाये हुए इस महामन्दिरसे इस समय यह नीलाचलका शिखर मेरी अत्यन्त प्रसन्नताका कारण हो रहा है, उसी प्रकार नृसिंह क्षेत्रमें तुम्हारे यज्ञकी वह महावेदी तथा मेरी उत्पत्तिका वह मण्डप मुझे अत्यन्त प्रसन्नता देनेवाला है। मैं बहुत समयतक वहाँ स्थित रहा हूँ, इसलिये उसपर मेरा बहुत प्रेम है। मैं यहाँ तुम्हारी भक्तिसे सदैव स्थित रहूँगा। मेरे उत्थान (हरिबोधिनी एकादशी), मेरे शयन (हरिशयनी एकादशी), मेरे करवट बदलने

* यह तिथि गुजरातके हिसाबसे है। अन्य कई प्रान्तोंकी गणनासे यह आषाढ़ कृष्णा अमावस्या होती है। शुक्ल पक्षमें सब प्रान्तोंकी गणना समान है।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

(भाद्रपद शुक्ला एकादशी), मेरे मार्ग प्रावरण तथा पुष्य स्नानका महोत्सव करें। फाल्गुनकी पूर्णिमाको मेरे लिये दोलोत्सव करना चाहिये। जो दोलामें दक्षिणाभिमुख पूजित हुए मेरा दर्शन करते हैं, वे ब्रह्महत्या आदि सब पापोंसे मुक्त हो जाते हैं।'

समुद्रमें स्नानकी विधि और भगवद् विग्रहोंका वर्णन

मुनियोंने पूछा—महर्षे! इन्द्रद्युम्नने भगवान् लक्ष्मीपतिके जन्मस्नानका उत्सव किस विधिसे किया? इसके अतिरिक्त भगवान्‌के अन्य सब उत्सवोंका भी विधिपूर्वक वर्णन कीजिये।

जैमिनिजी बोले—मुनिवरो! इस समय मैं ज्येष्ठस्नानका वर्णन करता हूँ। ज्येष्ठ शुक्ला दशमीको व्रतसंकल्प करके मौन रहे। प्रातःकाल उठकर 'मार्कण्डेयावट' नामक तीर्थको जाय और आचमन करके दोनों हाथ जोड़कर मार्कण्डेयेश्वरको प्रणाम करके भगवान् भैरवसे भी आज्ञा ले। फिर तीर्थमें प्रवेश करके वरुणदेवता सम्बन्धी पाँच वैदिक मन्त्रोंसे, तीन आवृत्ति करके अघमर्षण सूक्तसे तथा निम्नांकित मन्त्रसे स्नान करे—

संसारसागरे मग्नं पापग्रस्तमचेतनम्।
त्राहि मां भगनेत्रघ्न त्रिपुरारे नमोऽस्तु ते॥

'भगनेत्रविनाशक भगवान् त्रिपुरारि! आपको नमस्कार है। मैं पापग्रस्त मूढ़ मानव संसार-सागरमें डूबा हुआ हूँ, मेरी रक्षा कीजिये।'

इस प्रकार स्नान करके बाहर निकले और भगवान् शंकरका दर्शन करके मौनभावसे भगवान् नारायणके समीप जाय। मार्कण्डेयेश्वरसे दक्षिण दिशामें जो विष्णुस्वरूप उत्तम वटवृक्ष स्थित है, वह दर्शनमात्रसे पाप-राशिका नाश करनेवाला है। उसका दर्शन करके उसमें भगवान् पुरुषोत्तमकी भावना करते हुए दूरसे ही प्रणाम करे। फिर निम्नांकित मन्त्रका उच्चारण करते हुए उसकी परिक्रमा करे—

अमरस्त्वं सदा कल्प विष्णोरायतनं महत्।
न्यग्रोध हर मे पापं विष्णुरूप नमोऽस्तु ते॥
नमोऽस्त्वव्यक्तरूपाय महाप्रलयस्थायिने।
एकाश्रयाय जगतां कल्पवृक्षाय ते नमः॥

'हे कल्पवट! आप सदाके लिये अमर हैं। भगवान् विष्णुके महान् निवासस्थान हैं। हे विष्णुरूप वट! मेरे पापको हर लीजिये, आपको नमस्कार है। आप अव्यक्तस्वरूप, महाप्रलय कालमें भी स्थिर रहनेवाले, जगत्‌के एकमात्र आश्रय तथा कल्पवृक्ष हैं। आपको नमस्कार है।'

इस प्रकार स्तुति करके मनुष्य उस वृक्षके नीचे भक्तिपूर्वक भगवान् विष्णुके नामोंका जप करे। इससे वह सौ करोड़ जन्मोंके पापोंसे भी मुक्त हो जाता है। उसकी छायामें चलनेमात्रसे भी मनुष्यके पाप दूर हो जाते हैं। तत्पश्चात् भगवान्‌के वाहनरूप गरुड़जीको, जो भगवान् श्रीहरिके आगे भक्तिसे नतमस्तक होकर हाथ जोड़े खड़े हैं, प्रणाम करे। उसके बाद—

छन्दोमय जगद्धामन् यानरूप त्रिवृद्वपुः।
यज्ञरूप जगद्व्यापिन् प्रीयमाणाय ते नमः॥

'हे गरुड़! आप छन्दोमय, जगत्‌के आश्रय, भगवान्‌के वाहनरूप, वेदत्रयीमय शरीरवाले, यज्ञरूप और विश्वव्यापी हैं। सदा प्रसन्न रहनेवाले आपको मेरा नमस्कार है।'

इस प्रकार गरुड़की स्तुति करके भगवान्‌के मन्दिरमें प्रवेश करे और उसकी तीन बार परिक्रमा करके मन्त्रराज आनुष्टुभसे या पुरुषसूक्तसे अथवा द्वादशाक्षर (**ॐ नमो भगवते वासुदेवाय**) मन्त्रसे—जिसमें जिसकी रुचि हो उससे, पूजन करे। पंचोपचारकी विधिसे परमेश्वर जगन्नाथजीकी पूजा करे। पूजाके पश्चात् हाथ जोड़कर इस प्रकार

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth 279 Skandpuran_Section_14_1_Back

स्तुति करे—'देवदेव जगन्नाथ! आप संसार-समुद्रसे तारनेवाले हैं। भक्तोंपर अनुग्रह करनेवाले जगदीश्वर! आपके चरणोंमें प्रणाम करता हूँ, आप सदा मेरी रक्षा करें। श्रीकृष्ण! आपकी जय हो। जगन्नाथ! आपकी जय हो। आप सबके पापोंका नाश करनेवाले हैं। आपके युगल चरणारविन्द विश्वके लिये वन्दनीय हैं। आपको नमस्कार है। कोटि-कोटि ब्रह्माण्डोंके ईश्वर! आपकी जय हो। वेद आपके निःश्वास वायु हैं, समस्त जगत्के आधारभूत परमात्मन्! आपको नमस्कार है। प्रभो! आप शरणमें आये हुए ब्रह्मा, इन्द्र तथा रुद्र आदि देवताओं और प्रणतजनोंकी पीड़ाको दूर करनेवाले हैं, आपको नमस्कार है। समस्त संसारके निवासस्थान आपकी जय हो। अन्तर्यामिन्! आपको नमस्कार है। अकारण करुणासागर! दीनदयालु! आपकी जय हो। दीनों और अनाथोंको एकमात्र शरण देनेवाले विश्वसाक्षी परमेश्वर! आपको नमस्कार है। देवेश्वर! जिसमें मोहरूपी भँवर उठते हैं, जो अत्यन्त दुस्तर है, क्षुधा-पिपासा आदि छहों ऊर्मियोंके कारण जिसके दूसरे किनारेतक पहुँचना अत्यन्त कठिन है, कुकर्मरूपी ग्राहोंके कारण जो अत्यन्त भयानक दिखायी देता है, जहाँ कोई आश्रय अथवा अवलम्ब नहीं दिखायी देता, जो सर्वथा निस्सार और दुःखरूपी फेनसे युक्त है, उस संसारसमुद्रके जलमें मैं आपकी मायाके गुणोंसे आबद्ध होकर विवश अवस्थामें पड़ा हूँ। आप अपनी कृपाकटाक्षपूर्ण दृष्टिसे देखकर वहाँसे मेरा उद्धार कीजिये। सुरश्रेष्ठ! आप अपनी परम प्रसन्नताके प्रकाशक हैं। जगन्नाथ! संसारभयसे डरनेवाले जीवोंके सहायक बन्धु एकमात्र आप ही हैं। भूख और प्यास प्राणके, शोक और मोह मनके तथा जरा और मृत्यु शरीरके कष्ट हैं। ये ही संसार-सागरकी छः ऊर्मियाँ हैं। इनसे रक्षा कीजिये। भगवन्! आपकी सृष्टिमें आपके समान दीनोंका पालन करनेवाला दूसरा कोई नहीं है, अतः सब लोगोंपर कृपा करनेके लिये आप स्वयं अवतीर्ण हुए हैं। अन्यथा आप पूर्णकाम परमेश्वरके इस पृथ्वीपर आनेका और क्या कारण हो सकता है? जगत्पते! आपके चरणकमलोंकी शरणमें आ जानेसे कोई चिन्ता नहीं रह जाती, क्योंकि आपके चरणारविन्द चारों पुरुषार्थोंके एकमात्र साधक हैं—दर्शनमात्रसे सबके समस्त मनोवांछित फल देनेवाले हैं।'

तदनन्तर शेषसम्बन्धी मन्त्रसे भगवान् बलभद्रजीकी पूजा करे। द्वादशाक्षर मन्त्रसे अथवा आदिमें प्रणव लगाकर नाम मन्त्रसे भी पूजा कर सकते हैं। फिर एकाग्रचित्त होकर प्रणाम करके स्तुतिपाठके द्वारा उन्हें प्रसन्न करे—'सदा सत्पुरुषोंको सुख देनेवाले सच्चिदानन्दस्वरूप बलरामजी! आपकी जय हो। आपकी निर्मल आकृति अविद्यामय पंकसे रहित है, आपको नमस्कार है। सम्पूर्ण जगत्का भार धारण करके भी कभी थकित न होनेवाले बलभद्र! आपकी जय हो। आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक—तीनों तापोंका विकर्षण (विनाश) करनेके लिये आप सदा अपने हाथमें हल लिये रहते हैं। शरणागतों और दीनोंकी रक्षाके लिये आपके नेत्र सदा खुले रहते हैं। ईश्वर! आप ही दूसरोंके समस्त पापोंका नाश करनेमें समर्थ हैं। निर्मल करुणासागर! दीनबन्धु! आपको नमस्कार है। आपने अपने फणके अग्रभागसे समस्त चराचरसहित इस पृथ्वीको धारण कर रखा है। प्रभो! जिसके पार जाना कठिन है, उस अपार भवसागरसे मेरा उद्धार कीजिये। आप पर और अपर—सबसे श्रेष्ठ हैं। परमेश्वर! आपको नमस्कार है।'

मुसलधारी नागराज बलभद्रकी इस प्रकार स्तुति करके जगत्की आदिकारणरूपा कल्याणमय नेत्रोंवाली सुभद्रा देवीकी पूजा करे। फिर चरणोंमें प्रणाम करके उन विजयस्वरूपा भगवतीको स्तुतिद्वारा इस प्रकार प्रसन्न करे—'देवि! सुभद्रे! आपकी जय हो। संसारसे पार उतारनेवाली

Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

महादेवी! आप प्रसन्न होइये। शरणागतोंको सुख देनेवाली तथा सबको सन्तुष्ट करनेवाली देवि! आपकी जय हो। परमात्माके सृष्टि, पालन और संहार आदि कर्मोंकी सिद्धि करनेवाली उनकी अनुपम शक्ति एकमात्र आप ही हैं। आप ही सब लोकोंकी जननी, भगवान् विष्णुकी माया, तपस्विनी तथा भद्ररूपा सुभद्रा हैं। आपको नमस्कार करता हूँ। जगत्की मूलभूता सुभद्रा देवीको मैं प्रणाम करता हूँ।'

इसके बाद समुद्रस्नानके लिये भगवान् पुरुषोत्तमकी प्रार्थना करे—'विश्वव्यापी! चराचरस्वरूप भगवान् विष्णु! आपको नमस्कार है। प्रभो! मेरा समुद्रस्नान निर्विघ्न पूर्ण हो। शंख-चक्र-गदाधारी जगदीश्वर! मुझे स्नानके लिये आज्ञा दीजिये।' तदनन्तर भगवान् विष्णुका ध्यान करते हुए एकाग्रचित्त एवं मौन होकर समुद्रके समीप जाय और तीर्थराजके आत्माका चिन्तन करते हुए हाथ जोड़कर इस मन्त्रका उच्चारण करे—

सुदर्शन नमस्तेऽस्तु कोटिसूर्यसमप्रभ।
अज्ञानतिमिरान्धस्य विष्णोर्मार्गं प्रदर्शय॥

'कोटि-कोटि सूर्योंके समान प्रकाशमान सुदर्शन! आपको नमस्कार है। मैं अज्ञानान्धकारसे अन्धा हो रहा हूँ, मुझे भगवान् विष्णुका मार्ग दिखाइये।'

इस प्रकार सुदर्शनकी प्रार्थना करके तीर्थराज समुद्रके जलके समीप पृथ्वीपर घुटने टेककर भक्तिभावसे प्रणाम करे और—

तीर्थराज नमस्तुभ्यं जलरूपाय विष्णवे।
जीवनाय च जन्तूनां परं निर्वाणहेतवे॥

'हे तीर्थराज! आप जलरूपी विष्णु हैं, समस्त जन्तुओंके जीवनदाता हैं और परम शान्तिके हेतु हैं। आपको नमस्कार है।'

यह मन्त्र पढ़ते हुए जलके भीतर प्रवेश करे। समुद्रके जलमें डूबकर मन्त्र-जप करनेका विधान नहीं है। समुद्रमें स्नान करके उठे और विधिपूर्वक आचमन करके प्रार्थना करे—'जगत्पते! तीर्थराज! तुम्हें नमस्कार है। पहलेके कोटिसहस्र जन्मोंमें जिस पाप-राशिका संचय किया गया है, वह सब नष्ट हो जाय।' इस प्रकार स्नान करके तटपर आ जाय और आचमन करके मौन हो दो उज्ज्वल वस्त्र धारण करे। फिर भू-देवी और लक्ष्मी-देवीके साथ शंख-चक्र-गदाधारी चतुर्भुज भगवान् नारायणका ध्यान करके उन्हें मानसिक पूजासे सन्तुष्ट करे। तत्पश्चात् बाहर आवाहन करके भी पूजा करे, जिसकी विधि इस प्रकार है—भगवान्के लिये भावनाद्वारा रत्नसिंहासन देकर यह चिन्तन करे कि भगवान् इसपर विराजमान हैं। फिर उनके दोनों चरणारविन्दोंमें पाद्य निवेदन करे। वह पाद्य श्यामाक, कमल, दूर्वा और अपराजिता लतासे युक्त हो तथा मूलमन्त्रसे उसका संस्कार किया गया हो। पाद्य अर्पण करनेके पश्चात् सोने, चाँदी, ताँबे अथवा शंखके पात्रमें जल, चन्दन, फूल, यव, दूर्वा, कुशाग्र, फल, सरसों और तिलसे विधिपूर्वक अर्घ्यका संस्कार करे। दूर्वा और कुशके अग्रसे अर्घ्य करे। जल लेकर भगवान्के मस्तकपर सींचे। फिर बचे हुए जलको उन्हींके आगे पृथ्वीपर गिरा दे। यह अर्घ्यकी विधि बतायी गयी। उसके बाद जायफल, कंकोल और लवंगसे संस्कार किये हुए जलको भगवान्के आचमनके लिये दे। पुनः अपनी शक्तिके अनुसार पाट, रेशम अथवा कपासके बने हुए दो वस्त्र अर्पण करने चाहिये। फिर यथाशक्ति हार, केयूर, मुकुट और कण्ठा आदि आभूषण भगवान्के अंगोंमें पहनावे। सूतके बने हुए यज्ञोपवीतको गन्ध एवं चन्दनसे चर्चित करके अर्पण करे। तत्पश्चात् कपूर, चन्दन, कस्तूरी और कुंकुमसे अनुलेपन करे। चमेली, कमल, चम्पा, अशोक, पुन्नाग, नागकेसर तथा अन्य सुगन्धित पुष्पोंसे बनी हुई माला अथवा माल्य

279 Skandpuran_Section_14_2_Back
In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

और तुलसीदलकी माला पहनावे तथा कुछ छूटे फूल भी भगवान्‌के मस्तकपर बिखेरे। जो गलेसे लेकर पैरोंतक लंबी हो, उसका नाम माला है और जिसकी लंबाई कण्ठसे लेकर जंघातक हो, उसे माल्य कहते हैं। जो केशोंके मध्यमें पहनाया जाय, वह गर्भक कहा गया है। उसके बाद मस्तकपर पुष्पांजलि बिखेरनी चाहिये। पुष्पांजलिके पश्चात् गुग्गुल, अगुरु, खस, शक्कर, घी, मधु और चन्दनके द्वारा सुगन्धित धूप तैयार करके दे। उसके बाद गायके घीसे सुन्दर दीप जलाकर दे अथवा कर्पूरयुक्त बत्तीके साथ तिलके तेलसे दीपक जलाकर दे। तदनन्तर घीमें तैयार किया हुआ सुगन्धित अन्न, गायका दही, गायके दूधमें पकाकर शक्कर मिलाया हुआ केला, नाना प्रकारके व्यंजनोंसे युक्त पूआ और भाँति-भाँतिके फल— इन सबके सहित मनोरम सुगन्धयुक्त सरस एवं नूतन नैवेद्य तैयार करके भगवान्‌को समर्पित करे। धूप, दीप, नैवेद्य, स्नान, अर्घ्य, मधुपर्क, वस्त्र तथा यज्ञोपवीत—इनमेंसे प्रत्येकके अर्पण करनेपर भगवान्‌को आचमन करावे। अन्य कर्मोंमें आचमनके लिये केवल जल देना चाहिये। परंतु नैवेद्यके अन्तमें संस्कार किया हुआ उपचारयुक्त आचमन देना चाहिये। साथ ही करोद्वर्तनके लिये सुगन्धित चन्दन भी देना चाहिये। उसके बाद कपूर, लवंग, इलायची, जायफल और सुपारीके साथ ताम्बूल अर्पण करे। तत्पश्चात् एक सौ आठ बार मूल मन्त्रका जप करके अनन्य भावसे स्तुतिपाठ करे। फिर प्रदक्षिणा करके भगवान् पुरुषोत्तमकी प्रार्थना करे—'समस्त तीर्थोंके प्रवर्तक देवाधिदेव जगन्नाथ! आप सर्वतीर्थमय तथा सर्वदेवमय हैं। पापकी राशिमें डूबे हुए मुझ सेवककी रक्षा कीजिये। आपको नमस्कार है।'

इस प्रकार देवेश्वर भगवान् नारायणकी पूजा करके तीर्थराज समुद्रमें स्नान करनेवाला मनुष्य सब तीर्थोंका फल पाता है। कोटि गोदानसे, कोटि यज्ञसे, कोटि ब्राह्मणभोजनसे तथा कोटि महादानोंसे कर्म करनेवालोंके लिये जो पुण्य बताया गया है, वह इस समुद्रस्नानपूर्वक भगवत्-पूजनसे प्राप्त हो जाता है। अन्य तीर्थोंमें किया हुआ पाप समुद्रके किनारे नष्ट होता है और समुद्रके किनारे किया हुआ पाप समुद्रमें स्नान करनेसे नष्ट होता है। ब्रह्महत्यारा, शराबी, गोघाती आदि पाँच प्रकारके महापातकी मनुष्य भी समुद्रस्नान करनेसे निःसन्देह उन पापोंका प्रायश्चित्त कर लेते हैं। जो मनुष्य अपने जन्म, जीवन और शास्त्राध्ययनको सफल बनाना चाहे वह समुद्रतटपर आकर देवताओं और पितरोंका तर्पण अवश्य करे। कृच्छ्र और चान्द्रायण आदि तप सुलभ हैं, बहुत दक्षिणावाले अग्निष्टोम आदि यज्ञ भी सुलभ हैं, परंतु सिन्धुके जलसे पितरोंका तर्पण अत्यन्त दुर्लभ है। स्नानके आदि और अन्तमें जगन्नाथजीका पूजन और बीचमें तीर्थराजके जलमें स्नान करके मनुष्य मोक्षका भागी होता है। तदनन्तर शुद्ध चित्तवाला मनुष्य श्रीकृष्ण, बलभद्र और सुभद्राको नमस्कार करके उनके स्वरूपका चिन्तन करे।

इन्द्रद्युम्न-सरोवरमें स्नान, नृसिंहजीका दर्शन-पूजन तथा भगवद्विग्रहोंके ज्येष्ठ-स्नानका वर्णन

जैमिनिजी कहते हैं—इसके बाद अपनेको कृतार्थ मानता हुआ मनुष्य अश्वमेध यज्ञके अंगसे उत्पन्न हुए इन्द्रद्युम्न-सरोवरके समीप जाय। उसीके तटपर नृसिंहका स्वरूप धारण करनेवाले भगवान् श्रीहरि निवास करते हैं। वहाँ नृसिंहजीकी प्रार्थना करके विधिपूर्वक स्नान करे। प्रार्थना इस प्रकार

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

है—'हे भगवान् नृसिंह! आपको नमस्कार है। आपके उत्तम क्षेत्रमें आपके ही प्रसादसे नृपश्रेष्ठ इन्द्रद्युम्नने एक सहस्र अश्वमेध यज्ञोंका अनुष्ठान किया था। प्रभो! उस यज्ञके अंगसे प्रकट हुए इस सरोवरमें स्नान करनेके लिये मुझे आज्ञा दीजिये।'

इस प्रकार भगवान्की प्रार्थना करनेके पश्चात् सरोवरके किनारे जाकर हाथ धो आचमन करके अंजलि बाँधे प्रार्थना करे—'हे तीर्थप्रवर! अश्वमेध यज्ञके अंगभूत दानके लिये लायी हुई करोड़ों गौओंके खुरसे आपकी भूमि खोदी गयी है। उन गौओंके मूत्र, फेन और दानके जलसे परिपूर्ण होनेके कारण आप सबको पवित्र करनेवाले हैं। मैं आपके सर्वतीर्थमय पवित्र जलमें स्नान करनेके लिये आया हूँ। आप स्नानसे मेरे सब पापोंको छुड़ा दीजिये।'

तत्पश्चात् स्नान करे। जलके भीतर डुबकी लगाकर तीन बार अघमर्षण मन्त्रका जप करे। उसके बाद पुनः तीर्थकी प्रार्थना करे—'अश्वमेधके अंगसे प्रकट हुए सर्वपापनाशक तीर्थ! तुममें स्नान करनेसे मेरे पाप नष्ट हो जायँ।' इस प्रकार तीन बार कहकर तीन बार जलमें गोता लगावे। नृसिंहाकारधारी भगवान् विष्णुका स्मरण करे। देवताओं, ऋषियों और पितरोंका विधिपूर्वक तर्पण करे। फिर पश्चिमाभिमुख विराजमान भगवान् नृसिंहके समीप जाय और अथर्ववेदके मन्त्रसे उनकी पूजा करे। वह अथर्ववेदोक्त मन्त्रराज पूर्वकालमें नारदजीके द्वारा प्रतिष्ठित हुआ। तत्पश्चात् राजा इन्द्रद्युम्नने दीर्घकालतक उस मन्त्रकी उपासना की। नृसिंहाकार भगवान्की उपासनाके लिये उसके समान दूसरा मन्त्र नहीं है। उसके उच्चारणमात्रसे भगवान् नृसिंह प्रसन्न हो जाते हैं। ब्रह्माजीने इसी मन्त्रसे काष्ठविग्रहधारी जगदीशजीकी भी स्थापना की है। पूर्वोक्त उपचारोंसे तथा लाल जवापुष्प और अन्यान्य सुगन्धित पुष्पोंसे भगवान् नृसिंहकी पूजा करे। मिश्री और गायका घी मिलाकर गोदुग्धमें तैयार की हुई खीर, घीमें पकाकर बनाये हुए खाँड़ और कपूरसे युक्त मोदक, संयाव (हलवा), घीमें बने हुए पूए, नाना प्रकारके फल, शक्कर और दही मिलाये हुए चावल आदि नैवेद्य निवेदन करे। भगवान् नृसिंहका दर्शन, चरणस्पर्श, नमस्कार और पूजन करके मनुष्य अपने-अपने मनोरथोंको प्राप्त कर लेता है।

फिर पूर्णिमाको प्रातःकाल पूर्वोक्त विधिसे तीर्थराजके जलमें स्नान करके शुद्ध आहारका सेवन तथा इन्द्रियोंका संयम करते हुए मनुष्य भगवत्प्रीतिके लिये पाँच दिनोंतक केवल एक समय भोजन करे। तत्पश्चात् मन्दिरमें प्रवेश करके मंचपर विराजमान पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण, बलभद्र और सुभद्राजीका दर्शन करके मनुष्य पापसे मुक्त हो जाता है। जो ज्येष्ठकी अमावास्याको सर्वतीर्थमय कूपसे लाये हुए सुगन्धित जलके द्वारा स्नान कराये जाते हुए श्रीहरिका दर्शन करता है, उसके तन-मनमें पापका सम्पर्क नहीं रहता।

चतुर्दशीको तृण अथवा काष्ठका सुदृढ़ एवं सुन्दर मंच बनवाकर हरी-हरी घासवाली भूमिपर स्थापित करे। उसके ऊपर सुन्दर चँदोवा लगाकर उसे भलीभाँति सजा दे। नाना प्रकारकी मणियोंकी मालासे बन्दनवार बनावे। इस प्रकार मंचको स्थापित करके उसके दक्षिण भागमें कुएँसे जल निकालकर कलशोंमें भरकर शास्त्रोक्त विधिसे उन्हें शालाके भीतर रखे। फिर उन कलशोंमें पावमानी ऋचाके द्वारा सुवासित जल भरे। यह कर्म चतुर्दशीकी आधी रातमें करनेयोग्य बताया गया है। तदनन्तर धीरे-धीरे भगवान् बलभद्र और श्रीकृष्णको राजासे सम्मानित ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य ले जायँ। चँवर और ताड़के पंखेसे उनपर निरन्तर हवा करते रहें। भगवान्के शरीरपर जो पहले किया हुआ कच्चा लेप हो, उसे न छुड़ावे। जिस प्रकार सुगन्धित लेपसे प्रतिदिन भगवान्का अंग पुष्ट हो, वैसा प्रयत्न करे। भगवान्को ले

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

जानेवाले मनुष्य सावधान और सदाचारी हों। उन्हें ले जाकर मंचपर विराजमान करें। फिर शान्तिपूर्वक अधिवासित कलशोंके जलसे समुद्रज्येष्ठा मन्त्रके द्वारा भगवद्विग्रहोंको स्नान करावे। यह स्नान दर्शन करने तथा अभिषेक करनेवाले मनुष्योंको कृतकृत्य करनेवाला है। जो मनुष्य वहाँ खड़े होकर प्रसन्नतापूर्वक भगवान्‌के ज्येष्ठस्नान और यात्राका उत्कण्ठित चित्तसे दर्शन करते हैं, वे संसारसमुद्रमें नहीं गिरते। श्रीहरिके इस स्नानका दर्शन करनेवाले पुरुषोंकी जान-बूझकर या अनजानमें की हुई अनादिसंचित पापराशि तत्काल नष्ट हो जाती है। स्नान-दर्शन करनेमें जो पुण्य बताया गया है, वही मंचपर विराजमान श्रीहरिका दर्शन करनेसे भी प्राप्त होता है। ब्राह्मणो! वहाँ एक ही जगन्नाथजी तीन विग्रहोंमें स्थित हैं। उनमेंसे एक-एकका भी स्नान-दर्शन; भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाला है। जो भगवान्‌के स्नानके समय 'जय रामभद्र! जय सुभद्रे! जय कृष्ण! जय जगन्नाथ!' इस प्रकार प्रसन्नतापूर्वक उच्चारण करता है, वह मोक्षको प्राप्त होता है।

श्रीजगन्नाथजीकी रथयात्रा, गुण्डिचा-महोत्सव तथा पुनः मन्दिरप्रवेश सम्बन्धी यात्रा एवं उत्सवकी महिमा

जैमिनिजी कहते हैं—तदनन्तर श्रद्धासे युक्त प्रस्तुत किये हुए उपचारोंद्वारा बलभद्र, श्रीकृष्ण और सुभद्राजीका पूजन करे। उसके बाद जैसे पहले मन्दिरसे ले आते समय उत्सव किया गया था, उसी प्रकार महान् उत्सव करके उन सब भगवत्स्वरूपोंको पुनः दक्षिणाभिमुख ले जाय। उस समय जो मनुष्य दक्षिणाभिमुख जाते हुए श्रीकृष्ण, बलभद्र और सुभद्राका दर्शन करता है, वह स्नान-दर्शनजनित समस्त पुण्य-फलको प्राप्त करता है। मन्दिरके समीप पहुँचनेपर बलभद्र और सुभद्राके साथ जगन्नाथजीकी आरती उतारकर मन्दिरके भीतर प्रवेश करावे और फिर किसी प्रकार उन्हें न देखे।

ज्येष्ठ मासके शुक्लपक्षमें जो पूर्णिमा आती है, उसमें ज्येष्ठा नक्षत्रके एक ही अंशमें चन्द्रमा और बृहस्पति हों, बृहस्पतिका ही दिन हो और शुभ योग भी हो तो वह महाज्येष्ठी पूर्णिमा कहलाती है, जो सब पापोंका नाश करनेवाली है। महाज्येष्ठी पूर्णिमा महापुण्यमयी तथा भगवान्‌की प्रीतिको बढ़ानेवाली है। उसमें करुणासिन्धु देवेश्वर जगन्नाथजीका पूजन और उनके स्नानका दर्शन करके मनुष्य पापराशिसे मुक्त हो जाता है।

वैशाखके शुक्लपक्षमें जो पापनाशिनी तीज आती है, उसमें रोहिणी नक्षत्रका योग होनेपर राजा पवित्रभावसे संकल्पपूर्वक एक आचार्यका वरण करे। फिर जिन्होंने काष्ठ कर्म देखा और जाना हो, ऐसे एक या तीन बढ़इयोंसे पूर्वोक्त प्रकारसे श्रीकृष्ण, बलभद्र और सुभद्राजीके लिये तीन रथ तैयार करावे, जिनमें बैठनेके लिये सुन्दर आसन हों और जो सुन्दर कलापूर्ण ढंगसे बनाये गये हों। रथोंका निर्माण हो जानेपर राजा शास्त्रोक्त विधिसे मन्त्रके अनुसार पूर्ववत् उनकी प्रतिष्ठा करे। मार्गका भलीभाँति संस्कार करावे। मार्गके दोनों ओर फूलोंके गुच्छे, माल्य, सुन्दर वस्त्र, चँवर, गुल्मलता आदि और फूलोंके द्वारा मण्डल बनावे। देखनेपर ऐसा मालूम हो कि वहाँ सुन्दर फूलोंसे सुशोभित वन-पंक्ति शोभा पा रही है। रास्तेकी भूमि बराबर कर देनी चाहिये। वहाँ कीचड़ नहीं रहना चाहिये, जिससे भगवान्‌का रथ सुखपूर्वक चल सके। पग-पगपर रास्तेके दोनों पार्श्वोंमें दिशाओंको सुगन्धित करनेवाले धूपपात्र

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

रखे जायँ। सड़कपर चन्दनके जलका छिड़काव हो। नगाड़ा और ढक्का आदि बाजे बजाये जायँ। सोने-चाँदीके ध्वज, जिनके बीचमें चित्रकारी की गयी हो, लगाये जायँ और उनपर पताकाएँ फहराती रहें। भूमिपर बहुत-सी वैजयन्ती मालाएँ बिछी हों। अनेकों कसे-कसाये हाथी-घोड़े प्रस्तुत किये जायँ, जिनका भलीभाँति शृंगार किया गया हो। इस प्रकार सामग्री एकत्र करके उत्तम भक्तिसे युक्त राजा महान् उत्सव करे।

आषाढ़के शुक्लपक्षमें पुष्य नक्षत्रसे युक्त द्वितीया तिथि आनेपर उसमें अरुणोदयके समय भगवान्‌की पूजा करे। ब्राह्मणों, वैष्णवों, तपस्वी और यतियोंके साथ स्वयं भी हाथ जोड़कर राजा देवाधिदेव भगवान्‌से यात्राके लिये निवेदन करे— 'प्रभो! आपने पूर्वकालमें राजा इन्द्रद्युम्नको जैसी आज्ञा दी है उसके अनुसार रथसे गुण्डिचामण्डपके प्रति विजययात्रा कीजिये। आपकी कृपा-कटाक्षपूर्ण दृष्टिसे दसों दिशाएँ पवित्र हों तथा स्थावर-जंगम समस्त प्राणी कल्याणको प्राप्त हों। आपने यह अवतार लोगोंके ऊपर दयाकी इच्छासे ग्रहण किया है। इसलिये भगवन्! आप प्रसन्नतापूर्वक पृथ्वीपर चरण रखकर पधारिये।'

इसके बाद कुछ लोग मंगलगीत गावें। कोई जय-जयकार करें और **'जितं ते पुण्डरीकाक्ष०'** इत्यादि मन्त्रका उच्च स्वरसे जप करें। सूत, मागध आदि हर्षमें भरकर भगवान्‌के पवित्र यशका गान करें। भगवान्‌के दोनों पार्श्वमें सुवर्णमय दण्डसे सुशोभित व्यजनोंकी पंक्ति धीरे-धीरे डुलती रहे। कृष्णागरुकी धूपसे सम्पूर्ण दिशाएँ और वहाँका आकाश सुवासित रहे। झाँझ, करताल, वेणु, वीणा, माधुरिका आदि वाद्य गोविन्दकी इस विजययात्राके समय मधुर स्वरसे बजते रहें। इस प्रकार उत्सव आरम्भ होनेपर बलभद्र, श्रीकृष्ण और सुभद्राको ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य लोग धीरे-धीरे पैर रखते हुए ले जायँ। बीच-बीचमें रूईदार बिछौनोंपर उन्हें विश्राम करावें और इस प्रकार उन सबको रथपर ले जायँ। फिर उस उत्तम रथको घुमाकर बलभद्र, कृष्ण तथा सुभद्राको सुन्दर चँदोवायुक्त मण्डपसे सुशोभित रथमें विराजमान करें। उन सबको रूईदार गद्दोंपर बैठाकर भक्तिपूर्वक भाँति-भाँतिके वस्त्र, आभूषण और मालाओंसे विभूषित करें। नाना प्रकारके उपचारोंसे उनकी पूजा भी करें। उस समय रथपर विराजमान होकर यात्रा करते हुए श्रीजगन्नाथजीका जो लोग भक्तिपूर्वक दर्शन करते हैं, उनका भगवान्‌के धाममें निवास होता है। भगवान् श्रीहरिके उस उत्सवका माहात्म्य क्या बतलाऊँ। जिनके नामका संकीर्तन करनेमात्रसे सौ जन्मोंका पाप नष्ट हो जाता है, रथमें स्थित हो महावेदीकी ओर जाते हुए उन पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण, बलभद्र और सुभद्राजीका दर्शन करके मनुष्य अपने करोड़ों जन्मोंके पापोंका नाश कर लेता है। मेघोंके द्वारा जलकी वर्षाके संयोगसे रथका मार्ग जब कीचड़युक्त हो जाता है, उस समय भी वह श्रीकृष्णकी दिव्यदृष्टि पड़नेसे समस्त पापोंका नाश करनेवाला होता है। उस पंकिल रथमार्गमें जो उत्तम वैष्णव भगवान्‌को साष्टांग प्रणाम करते हैं, वे अनादिकालसे अपने ऊपर चढ़े हुए पापपंकको त्याग कर मुक्त हो जाते हैं। जो भगवान् वासुदेवके आगे जय शब्दका उच्चारण करते हुए स्तुति करते हैं, वे भाँति-भाँतिके पापोंपर निःसन्देह विजय पा जाते हैं। जो श्रेष्ठपुरुष वहाँ नृत्य करते और गाते हैं, वे उत्तम वैष्णवोंके संसर्गसे मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं। जो भगवान्‌के नामोंका कीर्तन करता हुआ उस यात्रामें साथ-साथ जाता है तथा गुण्डिचा नगरको जाते हुए श्रीकृष्णकी ओर देखकर भक्तिपूर्वक 'जय कृष्ण, जय कृष्ण, जय कृष्ण' का उच्चारण करता है, वह माताके गर्भमें निवास करनेका दुःख कभी नहीं भोगता। जो मनुष्य रथके आगे खड़ा होकर चँवर, व्यजन, फूलके गुच्छों अथवा वस्त्रोंसे भगवान् पुरुषोत्तमको हवा करता है, वह

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

ब्रह्मलोकमें जाकर मोक्ष पाता है। जो पवित्र सहस्रनामका पाठ करते हुए रथकी प्रदक्षिणा करते हैं, वे भगवान् विष्णुके समान होकर वैकुण्ठधाममें निवास करते हैं। जो मनुष्य भगवान् श्रीकृष्णके उद्देश्यसे दान देता है, उसका वह थोड़ा भी दान मेरुदानके समान अक्षय फल देनेवाला होता है। जो भगवान्‌के आगे रहकर उनके मुखारविन्दका दर्शन करते हुए पग-पगपर प्रणाम करते हैं और मार्गकी धूलि या कीचड़में लोटते हैं, वे क्षणभरमें मुक्तिरूपी फलको पाकर श्रीविष्णुके उत्तम धाममें जाते हैं।

इस प्रकार बलभद्र और सुभद्राके साथ भगवान् श्रीकृष्ण उत्तम रथपर विराजमान हो चारों दिशाओंको प्रकाशित करते हुए और अपने अंगोंका स्पर्श करके बहनेवाली वायुके द्वारा समस्त देहधारियोंके

पापोंका नाश करते हुए यात्रा करते हैं। वे बड़े दयालु और भक्तोंके पालक हैं। जो अज्ञानी और अविश्वासके पात्र हैं, उनके मनमें भी विश्वास उत्पन्न करनेके लिये भगवान् विष्णु प्रतिवर्ष यात्रा प्रारम्भ करते हैं।

इस प्रकार गुण्डिचा नगरमें जाकर भगवान् विन्दुतीर्थके तटपर सात दिन निवास करते हैं; क्योंकि प्राचीन कालमें उन्होंने राजा इन्द्रद्युम्नको यह वर दिया था कि 'मैं तुम्हारे तीर्थके किनारे प्रतिवर्ष निवास करूँगा। मेरे वहाँ स्थित रहनेपर सभी तीर्थ उसमें निवास करेंगे। उस तीर्थमें विधिपूर्वक स्नान करके जो लोग सात दिनोंतक गुण्डिचामण्डपमें विराजमान मेरा, बलरामका और सुभद्राका दर्शन करेंगे, वे मेरा सायुज्य प्राप्त कर लेंगे।' अतः परम पवित्र, सर्वपापनाशक, अकेले ही सब तीर्थोंका फल देनेवाले तथा श्रीविष्णुकी प्रसन्नता बढ़ानेवाले उस शुभ तीर्थमें स्नान करके पितरों और देवताओंका विधिपूर्वक तर्पण करनेके पश्चात् जो तटवर्ती नृसिंह भगवान्‌का दर्शन, पूजन और उन्हें नमस्कार करता है तथा पुनः महावेदीके समीप जाकर पूर्ववत् भक्तिपूर्वक भगवान्‌का पूजन और वन्दन करता है, वह पुरुष हो या स्त्री, उसे भगवान् विष्णुकी सायुज्यमुक्ति प्राप्त हो जाती है।

मघा नक्षत्र पितरोंका है, अतः वह पितरोंको अधिक प्रीति प्रदान करनेवाला है। उस नक्षत्रमें पुत्रोंद्वारा दिया हुआ श्राद्धका दान पितरोंको विशेष तृप्त करता है। उक्त सर्वतीर्थमय सरोवरके तटपर भगवान् विष्णुके समीप नृसिंह और नीलकण्ठके मध्यवर्ती अतिपवित्र स्थानमें यदि मनुष्य श्रद्धापूर्वक श्राद्ध करे तो अपनी सौ पीढ़ियोंका उद्धार करता है। आषाढ़के शुक्ल पक्षमें पंचमी तिथि, मघा नक्षत्र और जगन्नाथजीका महावेदीपर आगमन—ये तीनों योग यदि इन्द्रद्युम्न-सरोवरपर प्राप्त हों तो वह पितरोंको अक्षय प्रीति देनेवाला चतुष्पादयोग माना गया है। भाद्रपद मासकी अमावास्याको अथवा चारों युगादि तिथियोंमें जो पितरोंके उद्देश्यसे अश्वमेधांग-सम्भूत इन्द्रद्युम्न-सरोवरपर श्राद्ध करता है, उसका किया हुआ वह श्राद्ध सब पापोंका नाश करनेवाला है। सात दिनोंतक मौनभावसे तीनों काल स्नान करे और तीनों संध्याओंमें

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

कलशपर भक्तिपूर्वक भगवान्‌की पूजा करे। गायके घी अथवा तिलके तेलसे दीपक जलावे और उसे भगवान्‌के आगे रखकर रात-दिन उसकी रक्षा करे। दिनमें मौन रहे और रातमें जागरण करके भगवत्सम्बन्धी मन्त्रका जप करे। इस प्रकार सात दिन बिताकर आठवें दिन प्रातःकाल उठकर प्रतिष्ठा करावे। इस व्रतराजका विधिपूर्वक पालन करके मनुष्य धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—चारों पुरुषार्थोंको अपनी रुचिके अनुसार प्राप्त करता है।

सात दिनोंतक वहाँ रथकी भलीभाँति रक्षा करके आठवें दिन उन सब रथोंको पुनः दक्षिणाभिमुख कर दे और वस्त्र, माला, पताका तथा चँवर आदिसे उनकी पुनः सजावट करे। आषाढ़ शुक्ला नवमीको प्रातःकाल उन सब भगवद्विग्रहोंको रथपर विराजमान करे। भगवान् विष्णुकी यह दक्षिणाभिमुख यात्रा अत्यन्त दुर्लभ है। भक्ति और श्रद्धासे युक्त मनुष्योंको इस यात्रामें प्रयत्नपूर्वक भाग लेना चाहिये। जैसे पहली यात्रा है उसी प्रकार यह दूसरी भी है। दोनों ही मोक्षदायिनी हैं। यात्रा और मन्दिरप्रवेश—ये दोनों मिलाकर भगवान्‌का एक ही उत्सव माना गया है। यह पूरी यात्रा नौ दिनकी होती है। जिन लोगोंने तीन अंगोंवाली इस यात्राकी पूर्णतः उपासना की है, उन्हींके लिये यह महावेदी महोत्सव सम्पूर्ण फल देनेवाला होता है। गुण्डिचामण्डपसे रथपर बैठकर दक्षिण दिशाकी ओर आते हुए श्रीकृष्ण, बलभद्र और सुभद्राका जो दर्शन करते हैं, वे मोक्षके भागी होते हैं, अर्थात् भगवान्‌के वैकुण्ठधाममें जाते हैं।

मुनिवरो! इस प्रकार मैंने तुमसे महावेदी महोत्सवका वर्णन किया, जिसके कीर्तनमात्रसे मनुष्य निर्मल हो जाता है। जो प्रतिदिन प्रातःकाल उठकर इस प्रसंगका पाठ करता है अथवा सावधान होकर सुनता है और भगवत्प्रतिमाका चित्र लेकर भी उसे रथपर बैठाकर भक्तिभावसे इस रथयात्राको सम्पन्न करता है, वह भी भगवान् विष्णुकी कृपासे गुण्डिचामहोत्सवके फलस्वरूप वैकुण्ठधाममें जाता है।

पुरुषोत्तमक्षेत्रमें चातुर्मास्यकी महिमा, राजा श्वेतपर भगवत्कृपा तथा भगवत्प्रसादका माहात्म्य

जैमिनिजी कहते हैं—सूर्यके कर्क राशिपर रहते हुए आषाढ़ शुक्ला एकादशीसे लेकर कार्तिक शुक्ला एकादशीतक वर्षाकालिक चार महीनोंमें भगवान् विष्णुका शयन होता है। यह श्रीहरिकी आराधनाका परम पवित्र समय है। वर्षाके चार महीनोंमें जितने दिन मनुष्य जनार्दनके समीप रहकर व्यतीत करता है, उतने समयतक वह प्रतिदिन अश्वमेधयज्ञके फलका भागी होता है। समुद्रके पवित्र जलमें स्नान करके श्रीपुरुषोत्तमका दर्शन करते हुए चातुर्मास्य व्रतका पालन करना मुक्तिका साधन माना गया है। इसलिये मनुष्य बड़े यत्नसे पुण्यमय पुरुषोत्तमक्षेत्रमें निवास करे। चातुर्मास्यमें भगवान् शेषशय्यापर शयन करते हैं। आठ महीने पुरुषोत्तमक्षेत्रमें निवास करके प्रतिदिन भगवान् विष्णुका दर्शन करनेसे मनुष्य जिस फलको पाता है, उसीको चातुर्मास्यमें एक दिनके निवास और दर्शनसे प्राप्त कर लेता है। जो सब प्रकारके पापोंमें आसक्त, सम्पूर्ण सदाचारोंसे भ्रष्ट तथा समस्त धर्मोंसे बहिष्कृत हो, वह भी पुरुषोत्तमक्षेत्रमें निवास करे। जो दूध पीकर अथवा शाकाहार करके यहाँ चातुर्मास्य व्यतीत करता है, वह यहाँ प्रचुर सुख भोगकर अन्तमें परम शान्तिको प्राप्त होता है। देवाधिदेव भगवान्‌की प्रसन्नताके लिये मनुष्य यहाँ भीष्मपंचक नामक उत्तम व्रतका पालन करे और जंगली फल-मूल खाकर रहे। यह व्रत भगवान्‌की प्रसन्नताको

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

बढ़ानेवाला, सब पापोंका नाश करनेवाला और वैकुण्ठधामरूपी सद्‌गति देनेवाला है। मुनीश्वरो! यह सब तुम्हें रहस्यकी बातें बतायी गयी हैं। ये जितने भी व्रत हैं, वे भगवद्भक्तिहीन मनुष्योंके लिये निष्फल होते हैं, यह अच्छी तरह जान लो। तीर्थोंका तथा सात्त्विक दान और तपस्याओंका जो उत्तम फल है, वह सब केवल विष्णुभक्तिसे मनुष्य प्राप्त कर लेता है।

प्राचीन कालकी बात है, त्रेतायुगमें श्वेत नामक एक महान् राजा हो गये हैं। उन्होंने व्रतमें स्थित होकर भगवान् पुरुषोत्तममें बड़ी भक्ति की। राजा इन्द्रद्युम्नके द्वारा निश्चित किये हुए भोगोंकी मात्राके अनुसार वे प्रतिदिन प्रसन्नतापूर्वक भगवान् लक्ष्मीपतिके लिये भोग प्रस्तुत करते थे। अनेक प्रकारके भक्ष्य, भोज्य पदार्थ, भलीभाँति संस्कार किये हुए छहों रस, विचित्र माल्य, सुगन्ध, अनुलेपन तथा बहुत प्रकारके राजोचित उपचार अवसर-अवसरपर भगवान्‌की सेवामें समर्पित करते थे। एक दिन राजा श्वेत प्रातःकाल पूजाके समय भगवान्‌का दर्शन करनेके लिये गये और पूजा होते समय उन्होंने श्रीहरिका दर्शन किया। देवाधिदेव भगवान्‌को प्रणाम करके दोनों हाथ जोड़े प्रसन्नतापूर्वक वे मन्दिरके द्वारके समीप खड़े रहे। अपने ही द्वारा तैयार किये हुए उत्तम उपचारों तथा सहस्रों उपहारकी सामग्रियोंको राजाने भगवान्‌के सामने उपस्थित देखा। तब वे कुछ ध्यानस्थ होकर मन-ही-मन सोचने लगे—'क्या भगवान् श्रीहरि यह मनुष्यनिर्मित भोग ग्रहण करेंगे? यह बाह्यपूजनकी सामग्री भावदूषित होनेके कारण निश्चय ही भगवान्‌को प्रसन्न करनेवाली न होगी।'

इस प्रकार विचार करते हुए राजाने देखा—दिव्य सिंहासनपर साक्षात् भगवान् विष्णु विराजमान हैं और दिव्य सुगन्ध, दिव्य वस्त्र एवं दिव्य हारोंसे विभूषित साक्षात् लक्ष्मीदेवी उनके आगे अन्न-पान आदि भोजनसामग्री परोस रही हैं और भगवान् भोजन कर रहे हैं। यह अद्भुत झाँकी देखकर राजाने अपनेको कृतार्थ माना तथा आँखें खोल दीं। फिर उन्हें पहले देखी हुई सब बातें दिखायी दीं। इससे राजाको बड़ा आनन्द प्राप्त हुआ। भगवान्‌को निवेदित किये हुए प्रसादको ही खानेवाले व्रतशील राजाने बड़ी भारी तपस्या की। उस तपस्याका उद्देश्य यह था कि मेरे राज्यमें किसीकी अकालमृत्यु न हो और मरे हुए प्राणियोंकी मुक्ति हो जाय। शरणागतोंके लिये कल्पवृक्षस्वरूप मन्त्रराज आनुष्टुभका उन्होंने नित्य नियमपूर्वक जप किया। इस प्रकार सौ वर्षतक जप और तपस्याके पश्चात् राजाने समस्त पापोंका अपहरण करनेवाले साक्षात् भगवान् नृसिंहका दर्शन प्राप्त किया। वे योगासनपर कमलके ऊपर विराजमान थे। उनके वामभागमें भगवती लक्ष्मी शोभा पा रही थीं। देवता, सिद्ध और मुक्त पुरुष उनकी स्तुतिमें लगे थे। ऐसे भगवान्‌को उपस्थित देखकर आश्चर्यसे चकित होकर राजा श्वेत हर्ष-गद्‌गद वाणीमें 'हे नाथ! प्रसन्न होइये' ऐसा कहते हुए धरतीपर गिर पड़े। तपस्यासे दुर्बल तथा चरणोंमें पड़े हुए निष्पाप राजा श्वेतसे भक्तवत्सल भगवान् नृसिंहने कहा—'वत्स! उठो, मुझे भक्तिसे प्रसन्न जानो और कोई अभीष्ट वर माँगो।' भगवान्‌का यह वचन सुनकर राजा उठे और दोनों हाथ जोड़कर भक्तिसे विनम्र होकर बोले—'स्वामिन्! यदि मुझपर आपकी अत्यन्त दुर्लभ कृपा है, तो मैं मरनेके बाद आपके समान रूप प्राप्त करके आपके समीप ही सेवामें रहूँ तथा जबतक इस पृथ्वीपर मैं राजाके पदपर रहूँ, तबतक मेरे राज्यमें कोई भी मनुष्य अकालमृत्युको न प्राप्त हो और जिसकी कालमृत्यु हो, उसकी भी सायुज्य मुक्ति हो जाय।'

यह सुनकर भगवान्‌ने परम उत्तम राजा श्वेतसे कहा—'श्वेत! तुम्हारा मनोरथ पूर्ण हो। एक

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

भगवान् विष्णुको लक्ष्मीदेवी भोजन परोस रही हैं।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

राजा श्वेतको भगवान् लक्ष्मी-नृसिंहके दिव्यदर्शन

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

हजार वर्षोंतक तुम अपने समृद्धिशाली राज्यका उपभोग करो। प्रतिदिन मेरे नैवेद्यका भोजन करनेसे तुम्हारी सारी पापराशि नष्ट हो जायगी और अन्तःकरण अत्यन्त शुद्ध हो जायगा। तत्पश्चात् तुम मेरी सायुज्य मुक्ति प्राप्त कर लोगे। तुम्हारे राज्यमें जो लोग मेरे निर्माल्यका भोजन करेंगे, उनकी कभी अकालमृत्यु नहीं होगी।'

इस प्रकार राजा श्वेतको वरदान देकर भगवान् नृसिंह अन्तर्धान हो गये। यहाँ अमृतके समान स्वादिष्ट एवं सुपक्व अन्नको सबके स्वामी भगवान् नारायण भोजन करते हैं। उनके प्रसादका उपभोग सब पापोंका क्षय करनेवाला है। भगवान् जगन्नाथजीके मन्दिरमें पहुँचकर भगवान्‌को भोग लग जानेपर जैसे भगवान् विष्णु नित्य शुद्ध हैं वैसे ही उनका प्रसाद भी शुद्ध है। व्रतपरायण विधवा स्त्रियाँ, वर्णाश्रम-धर्ममें तत्पर रहनेवाले मनुष्य, यज्ञमें दीक्षित पुरुष तथा अग्निहोत्री भी भगवान् पुरुषोत्तमके प्रसादको खाकर पवित्र होते हैं। दरिद्र, कृपण, गृहस्थ, प्रभु, स्वदेशी, परदेशी, जो भी वहाँ आते हैं, उन्हें चाहिये कि वे कोई भी भगवान् विष्णुका प्रसाद ग्रहण करनेमें अहंकार न दिखावें। भक्तिसे, लोभसे, कौतूहलसे अथवा क्षुधा-शान्तिके निमित्त आकण्ठ भोजन किया हुआ भगवत्प्रसाद सब पापोंको पवित्र कर देता है। जो पण्डितमानी मूर्ख अमित तेजस्वी भगवान् विष्णुके उस अमृतमय प्रसादकी निन्दा करते हैं, उनकी निश्चय ही दुर्गति होती है। उस प्रसादको बेचना या मोल लेना भी अच्छा नहीं माना गया है। मैं जगन्नाथजीके प्रसादका भोजन करके और कुछ नहीं खाऊँगा, इस प्रकार सच्ची प्रतिज्ञा करके जो प्रतिदिन प्रसाद ग्रहण करता है, वह मनुष्य सब पापोंसे मुक्त एवं शुद्धचित्त होकर विशुद्ध वैकुण्ठधामको जाता है। भगवान्‌का प्रसाद यदि चिरकालका रखा हो, सूख गया हो अथवा दूर देशसे लाया गया हो, जिस किसी प्रकार भी उसका उपयोग करनेपर वह सब पापोंका नाश करनेवाला है। जगन्नाथजीके प्रसादका अन्न और गंगाजल दोनों बराबर हैं। उनको भोजन करनेसे सब पापोंका नाश हो जाता है। वहाँ काष्ठरूपी परब्रह्म सबके नेत्रोंके समक्ष प्रकाशित हैं। थोड़े पुण्यवाले मनुष्योंका उस प्रसादमें विश्वास नहीं होता, उसकी महिमाको कोई नहीं जानता। भयंकर कलिकालमें धर्मके तीन चरणोंका नाश हो जाता है, उसका एक ही पाद रह जाता है। उस समय प्रायः सब लोग असत्यवादी, दम्भी और शठवृत्तिके होते हैं, धर्मसे विमुख तथा जिह्वा और उपस्थके भोगोंमें तत्पर रहते हैं। ध्यान, तपस्या और व्रत कभी नहीं करते, सभी अत्यन्त अधर्मी, लोभी और हिंसक होते हैं। अपना कोई प्रयोजन न होनेपर भी दूसरोंकी निन्दासे सन्तुष्ट होते हैं, प्रसंग अथवा कौतूहलवश भी दूसरोंके कार्यकी हानि करते हैं और अपने छोटेसे कार्यके लिये भी दूसरोंके महत्त्वपूर्ण कार्योंमें बाधा उपस्थित करते हैं। धर्मतः प्राप्त होकर अपने घरमें आयी हुई सुन्दरी स्त्रीकी भी अवहेलना करके दूसरोंकी निन्दनीय स्त्रीमें आसक्त होते हैं। अग्निहोत्र आदि कर्म अथवा दूसरा कोई व्रत भी कहीं पालित नहीं होता। यदि कहीं है तो वह ब्राह्मणोंकी जीविकाके रूपमें है। जो पारलौकिक कर्म हैं वे भी यथार्थरूपसे सम्पादित न होनेके कारण फलदायक नहीं होते। कलियुगमें राजालोग प्रायः प्रजाकी रक्षासे मुँह मोड़े रहते हैं। वे सदा कर वसूल करते हैं, प्रायः पापिष्ठ और चोरीकी वृत्तिवाले होते हैं। कलियुगमें प्रायः सब लोग वर्णसंकर और शूद्रके तुल्य हो जाते हैं। राजा ही प्रजाका धन अपहरण करते और शूद्र राजसेवक होते हैं। वैदिक और स्मार्त आदि कर्मोंका कलिमें भलीभाँति अनुष्ठान नहीं किया जाता। उस समय दान-धर्म सबसे उत्तम है। कलियुग प्राप्त होनेपर यहाँ भगवान् विष्णु ही सबकी गति हैं। शालग्राम आदि क्षेत्रमें भगवान्‌का स्मरण और कीर्तन किया जाता है, परंतु यह पुण्यक्षेत्र नीलाचल तो उन क्षेत्रज्ञ परमात्माका

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

शरीर है। काष्ठके बहाने सबके जीवनरूप विष्णु साक्षात् शरीर धारण करके यहाँ विराजमान हैं। पापियोंके कलिकालजनित पापका नाश करनेके लिये ही यहाँ भगवान्‌का प्राकट्य हुआ है। वे यहाँ अपने दर्शन, स्तवन और प्रसादभोजनसे मोक्षदायक होते हैं। भगवान्‌के प्रसादसे जिसका शरीर व्याप्त है, वह उस विशुद्ध आहारसे विशुद्धात्मा होनेके कारण पातकोंमें लिप्त नहीं होता। भगवान् जगदीश इसी तीर्थमें अर्पित किये हुए नैवेद्यका साक्षात् भोजन करते हैं।

भगवान् विष्णुके श्रीअंगोंसे उतारी हुई तुलसीकी मालाको जो भक्त अपने मस्तक या गलेमें धारण करता है अथवा जो उसे हृदयसे लगाये रखता है या भगवत्प्रसादरूप तुलसीदल भक्षण करता है, वह भगवान् विष्णुके धाममें जाता है। तुलसीदलसे मिश्रित भगवत्प्रसाद भोजन करके मनुष्य निश्चय ही मोक्ष पाता है। भगवान् विष्णुके आचमन, चरणोदक तथा स्नान-जल सब पापोंका नाश करनेवाले हैं। शव आदि अपवित्र वस्तुओंके स्पर्शजनित दोषका भी उनके द्वारा नाश होता है। इतना ही नहीं, वे समस्त दीक्षाओं और व्रतोंके फल देनेवाले तथा ऐश्वर्यकी वृद्धि करनेवाले हैं। भगवान्‌का चरणामृत अकालमृत्युका निवारण, रोगसमूहका संहार तथा पापराशिका नाश करनेवाला है। इस प्रकार पुरुषोत्तमतीर्थमें लक्ष्मीजीके साथ निवास करनेवाले भगवान् विष्णु सब लोगोंपर अनुग्रह करनेकी इच्छासे निवास करते हुए अनायास ही मोक्ष देते हैं।

भगवान् पुरुषोत्तमके पार्श्व-परिवर्तन, उत्थापन और प्रावरण आदि उत्सवोंका महत्त्व

जैमिनिजी कहते हैं—जगन्मय भगवान् पुरुषोत्तम सब प्रकारसे इस संसारका कल्याण करनेके लिये ही अनेक प्रकारके रूप और लीलाएँ करते हुए नाना शरीर धारण करके प्रकट होते हैं। अहंकारके बिना कर्मका फल नहीं भोगना पड़ता। अहंकारसे मनुष्य इस संसाररूपी कारागारमें बाँधे जाते हैं। बुद्धि और अहंकारसे युक्त होकर मनुष्य जो कर्म करता है, उसके अनुसार शुभाशुभ फलको पाता है। उन कर्म करनेवाले मनुष्योंमें जो सात्त्विक बुद्धिके लोग हैं, वे फलप्राप्तिकी इच्छा न रखकर मुमुक्षुभावसे केवल भगवान्‌की प्रसन्नताके लिये ही कर्म करते हैं। उन सात्त्विक पुरुषोंके द्वारा दर्शन, ध्यान अथवा स्मरण भी करनेपर सर्वभावन भगवान् जगन्नाथ उन्हें मोक्ष प्रदान करते हैं।

भाद्रपदके शुक्ल पक्षकी एकादशीको जगन्नाथजीके शयनगृहके दरवाजेपर धीरे-धीरे जाकर उसमें प्रवेश करे और शय्यापर सोये हुए उन जगदीश्वरको नमस्कार करके उपचारोंद्वारा उनके चरणोंकी पूजा करे। तत्पश्चात् भक्तिपूर्वक प्रणाम करके गुह्य उपनिषदोंसे स्तुति करे। फिर निम्नांकित प्रार्थना करते हुए भगवान्‌की करवट बदलकर उन्हें उत्तरकी ओर मुँह करके सुला दे। उस समय इस प्रकार प्रार्थना करे—'देवाधिदेव जगन्नाथ! आप अनेकानेक कल्पोंका परिवर्तन करनेवाले हैं, आपसे ही यह स्थावर-जंगमरूप सम्पूर्ण जगत् परिवर्तित होता है। भगवन्! आपने स्वेच्छासे स्वीकार की हुई जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्तिरूप चेष्टाओंद्वारा जगत्‌का हित करनेके लिये ही शयन किया है। अब इस समय करवट बदल लीजिये; क्योंकि जगत्‌का पालन करनेके लिये यह आपके करवट बदलनेका समय प्राप्त हुआ है।'

इस प्रकार भगवान्‌की प्रार्थना करके व्यजन और चँवर डुलावे तथा सुगन्धित चन्दनका भगवान्‌के

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

सब अंगोंपर लेपन करे। तत्पश्चात् स्वादयुक्त मिठाई, खीर, हलुवा, भाँति-भाँतिके फल, अन्य स्वादिष्ट व्यंजन, घीके बने हुए पूए तथा ताम्बूलपत्र आदि सब सामग्री शयनगृहके द्वारपर रखकर भक्तिपूर्वक निवेदन करे। उस दिन यदि भगवान्के स्वरूपका दर्शन हो जाय तो बड़ा भारी फल होता है।

कौमुदी नामक महोत्सवके अवसरपर जगन्नाथजीकी पूजा करके उसी पूर्णिमाकी रातको उत्सवपूर्वक नारियल आदि द्रव्यों तथा पिष्टक (पीठी)-से भगवान् विष्णुकी पूजा करे। तत्पश्चात् सबेरे कार्तिकमास आरम्भ होनेपर उत्तम व्रतका संकल्प ले शुक्लपक्षकी एकादशीतक उसी व्रतके नियमसे रहे। एकादशी आनेपर सोये हुए भगवान् जगदीश्वरको उठावे। पहलेकी भाँति आधी रातके समय जगद्गुरु भगवान्की पूजा करके निम्नांकित मन्त्रका उच्चारण करते हुए प्रसन्नतापूर्वक भगवान्को जगावे—

उत्तिष्ठ देवदेवेश तेजोराशे जगत्पते।
वीक्षस्व सकलं देव प्रसुप्तं तव मायया॥
प्रफुल्लपुण्डरीकश्रीहारिणा नयनेन वै।
त्वया दृष्टं जगदिदं पावित्र्यं परमेष्यति॥

'देवदेवेश्वर! उठिये। तेजःपुंज जगदीश्वर! देव! सम्पूर्ण जगत् आपकी मायासे सो रहा है, इसकी ओर दृष्टिपात कीजिये। प्रभो! खिले हुए कमलकी शोभाका अपहरण करनेवाले आपके नेत्रसे देखा जानेपर यह जगत् अत्यन्त पवित्र हो जायगा।'

इस प्रकार जगदीशजीको जगाकर शंख, धौंसा, ढोल आदि वाद्यों, नृत्य और गीतों, जय-जयकारके शब्दों तथा नाना प्रकारके स्तोत्रोंके साथ नृत्यमण्डपमें ले जाय। वहाँ सुगन्धित तेलसे उबटन करके जगन्नाथजीको पंचामृत, फलोंके रस तथा नारियलके जलसे स्नान करावे। उसके बाद सुगन्धयुक्त आँवले और जौके चूर्णसे भगवान्के शरीरपर लेप करे। तुलसीके चूर्णसे उनके शरीरको मले और सुगन्धित चन्दनका लेप करे। उस समय जो लोग हर्षपूर्वक श्रीजगदीशजीका दर्शन करते हैं वे अनेक जन्मोंके सुदृढ़ पापपंकको धो डालते हैं। तत्पश्चात् बड़े-बड़े उपचारोंसे भगवान्की विधिवत् पूजा करके उनकी आरती उतारे और हाथ जोड़कर बड़ी प्रसन्नताके साथ प्रार्थना करे—'प्रभो! यह सम्पूर्ण चराचर जगत् केवल आपकी ही शरणमें है, जगद्गुरो! अपनी कृपासुधासे परिपूर्ण दृष्टिद्वारा इसे पवित्र कीजिये।' तदनन्तर शेष रात्रि भगवत्सम्बन्धी नृत्य-गीतको देखते हुए व्यतीत करे। जो लोग शयनसे उठे हुए भगवान् गदाधरका दर्शन करते हैं वे अपनी मोहमयी निद्राका भेदन करके शान्त ज्योतिःस्वरूप श्रीहरिको प्राप्त होते हैं।

शालग्रामशिलामें स्थित भगवान् श्रीहरिकी चक्रमूर्तिका शुद्धचित्त होकर पूजन करे। पूजाके समय भगवान्का ध्यान इस प्रकार करे—दामोदर-स्वरूपधारी भगवान्के चार भुजाएँ हैं। उन्होंने हाथोंमें शंख और कमल धारण कर रखा है। उनके वामभागमें कमलके आसनपर लक्ष्मीजी बैठी हैं और वे बायें हाथसे उनका स्पर्श करके बैठे हैं। भगवान् अपने दाहिने हाथसे भक्तोंको वर देनेके लिये उद्यत हैं। उनकी नासिका, ललाट, उनके दोनों नेत्र और कान सभी बहुत सुन्दर हैं। उनका वक्षःस्थल विशाल है, वे सम्पूर्ण लावण्यसे सुशोभित हैं, समस्त अलंकारोंको धारण करके वे बड़े ही मनोहर प्रतीत होते हैं। उनके श्रीअंगोंपर दिव्य पीताम्बर शोभा पा रहा है।

मार्गशीर्षके शुक्ल पक्षमें षष्ठी तिथिको मनुष्य भक्तिभावसे प्रावरणोत्सव अथवा उस उत्सवका दर्शन करके भगवान् विष्णुके लोकमें जाता है। पंचमीकी रात्रिमें भगवान्का वस्त्राधिवास करे, भगवान्को वस्त्रोंके मध्यमें स्थापित करके अन्य वस्त्रसे आच्छादित करे और पुरुषोत्तमके स्मरणपूर्वक उनका स्पर्श करके इस प्रकार प्रार्थना करे—'हे वस्त्र! जो अविनाशी भगवान् विष्णु अपने

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

तेजसे सम्पूर्ण जगत्‌को आच्छादित करनेवाले हैं, उनका भी वसन (आच्छादन) करनेसे तुम्हारा नाम वस्त्र है। तुम जगदीश्वरके वासस्थानमें निवास करो।' तत्पश्चात् चन्दन और पुष्पसे भगवान्‌का पूजन करे और नृत्य-गीतके द्वारा जागरणपूर्वक रात्रि व्यतीत करे। फिर अरुणोदयकालमें प्रातः-सन्ध्याके समीप पूर्ववत् एकाग्रचित्त हो पुनः भगवान्‌की पूजा करे। उसके बाद तीन बार मन्दिरकी परिक्रमा करके भगवान्‌को भी तीन बार घुमावे और उस आच्छादित वस्त्रको हटाकर दर्शन आदिके द्वारा संस्कार करे। तदनन्तर दूर्वा और अक्षतसे पूजा करके भगवान्‌की आरती उतारे।

हेमन्त ऋतुके आनेपर जो लोग उत्तम वस्त्रोंद्वारा भगवान् नृसिंहको आच्छादित करते हैं अथवा जो आच्छादन-महोत्सवका दर्शन करते हैं वे कभी मोहसे आच्छादित नहीं होते। देवाधिदेव भगवान्‌के इस प्रावरण-महोत्सवका जो लोग भक्तिपूर्वक दर्शन करते हैं, वे सम्पूर्ण मनोरथोंको प्राप्त कर लेते हैं।

पुष्यस्नानोत्सव, उत्तरायणोत्सव तथा दोलारोहणोत्सवका वर्णन

जैमिनिजी कहते हैं—पौषके महीनेमें पूर्णिमाको जब पुष्य नक्षत्र हो, तब भगवान्‌का पुष्यस्नानोत्सव करे। चतुर्दशीकी रातमें ८१ कलशोंका अधिवासन (स्थापन) करे। भगवान्‌के आगे सर्वतोभद्रमण्डल बनावे और उसके बीचमें एक बड़ा-सा दर्पण स्थापित करे। रात्रिमें गीत और नृत्य आदिके द्वारा जागरण करे। प्रातःकाल दर्पणमें प्रतिबिम्बित भगवान् पुरुषोत्तमका उपचारोंद्वारा पूजन करे। तदनन्तर पुरुषसूक्तसे कलशोंको अभिमन्त्रित करके फिर उन कलशोंके जलसे अटूट धारा गिराते हुए भगवान् पुरुषोत्तमको स्नान करावे। फिर पावमानीय सूक्त और श्रीसूक्तसे भी क्रमशः बलभद्र और सुभद्राको स्नान करावे। फिर विष्णुगायत्रीसे* चन्दनयुक्त जलके द्वारा स्नान कराकर श्रीसूक्तसे पूजा करे। तत्पश्चात् भगवान्‌के श्रीअंगोंमें गन्ध और चन्दनसे लेप करे और उन्हें सुगन्धित पुष्पोंकी मालाओंसे विभूषित करे। फिर रत्नमय छत्र ऊपर उठाकर लक्ष्मीसहित पुरुषोत्तमका पूजन करे। फिर उच्चस्वरसे शंखध्वनि, मंगलगीत और नृत्य आदि हों। भगवान्‌को चँवर डुलाये जायँ, ब्राह्मणलोग जय-जयकार करें और तीन बार अंजलिमें दूर्वा एवं अक्षत लेकर भगवान्‌की पूजा करके कपूरयुक्त बत्तियोंवाले गायके घीमें जलाये हुए दीपकोंसे जगन्नाथजीकी आरती करे। उसके बाद सुन्दर पानका बीड़ा लगाकर धीरे-धीरे भगवान्‌के मुखके समीप निवेदन करे। तत्पश्चात् आचार्यको दक्षिणा दे और ब्राह्मणोंका पूजन करे। जो प्रसन्नतापूर्वक पुष्यस्नानका पवित्र उत्सव देखते हैं, वे भगवान् विष्णुके धाममें जाते हैं।

जब भगवान् सूर्य उत्तरदिशाकी ओर गमन करनेकी इच्छासे मकर राशिपर जाते हैं, उस समय उत्तरायण प्रारम्भ होता है। उनके संक्रमणकालका आधा बीस कलाका समय परम पुण्यमय काल माना गया है। वह पितरों, देवताओं तथा ब्राह्मणोंको अत्यन्त प्रिय है। उस समय तीर्थराज समुद्रके जलमें विधिपूर्वक स्नान करके मनुष्य भगवान् नारायणका पूजन करे। कल्पवृक्षको प्रणाम करके देवमन्दिरमें प्रवेश करे और तीन बार श्रीपुरुषोत्तमकी परिक्रमा करके मन्त्रराजके

* विष्णुगायत्री इस प्रकार है—

ॐ नारायणाय विद्महे वासुदेवाय धीमहि तन्नो विष्णुः प्रचोदयात्।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

द्वारा उनकी पूजा करे। इसी प्रकार बलभद्र और सुभद्राका भी उन-उनके नाममन्त्रोंद्वारा पूजन करे। उत्तरायणके प्रारम्भकालमें भगवान् विष्णुका दर्शन करके मनुष्य देहबन्धनसे मुक्त हो जाता है। पूर्वकालमें महर्षि कश्यपने सृष्टिरचना करके इस महान् उत्सवको भगवान्‌की प्रसन्नताके लिये किया था। कश्यपजीके द्वारा चालू किये हुए इस उत्सवका जो लोग दर्शन करते हैं, वे मोक्षको प्राप्त होते हैं। मुनियो! इस उत्सवमें भी रसोईघरका और अग्निका संस्कार करना चाहिये तथा प्रतिदिन बलिवैश्वदेव करना चाहिये। अग्न्याधानपूर्वक अग्निका संस्कार हो जानेपर प्रतिदिन दिव्यरूपा भगवती लक्ष्मी अदृश्यभावसे वहाँ पहुँचकर भगवान्‌के भोजनके लिये स्वयं रसोई तैयार करती हैं। उत्तरायण या मकरसंक्रान्तिके उत्सवमें किये हुए स्नान, दान, तप, होम, स्वाध्याय और पितृतर्पण सब अक्षय होते हैं।

फाल्गुनमासमें भगवान्‌के लिये दोलारोहणका उत्तम उत्सव करना चाहिये। देवदेव श्रीविष्णुकी गोविन्द नामसे प्रसिद्ध प्रतिमा बनवाये और मन्दिरके आगे सोलह खंभोंका एक ऊँचा मण्डप तैयार करे। वह मण्डप चौकोर हो, उसमें चार दरवाजे हों और बीचमें वेदी बनी हुई हो। वेदीके ऊपर सुन्दर चँदोवा तना हो और माल्य, चँवर तथा ध्वजा आदिसे मण्डपको सुशोभित किया गया हो। वेदीके ऊपर श्रीपर्णी (गम्भारी) काष्ठका बना हुआ भद्रासन स्थापित करे और पाँच या तीन दिनतक वहाँ फाल्गुनोत्सव मनावे। गोविन्दजीकी पूजा करके उन्हें कुछ दूरतक भ्रमण करावे। चतुर्दशीको प्रातःकाल गोविन्दजीकी सुन्दर प्रतिमा जगन्नाथजीके आगे स्थापित करके उन भगवान् पुरुषोत्तमकी पूजा करे। तत्पश्चात् गोविन्दजीकी प्रतिमाका भी पूजन करे। उसके बाद वस्त्र और माला उतारकर मन्त्रज्ञ पुरुष परम ज्योतिकी भावना करते हुए प्रतिमामें उसका न्यास (स्थापन) करे। तदनन्तर वह प्रतिमा पुरुषोत्तमरूप हो जाती है। फिर उसे रत्नमयी डोलीमें बैठाकर स्नानमण्डपमें ले जाय। वहाँ छत्र, ध्वजा, पताका, चँवर, व्यजन तथा दीपमालाओंसे बड़ा भारी उत्सव करे। उसके बाद भद्रासनपर पधराकर विभिन्न उपचारोंद्वारा गोविन्दजीकी पूजा करे। पहले महास्नानकी विधिसे उनको स्नान करावे। फिर सुगन्धित जलसे श्रीसूक्तके द्वारा अभिषेक करे। अभिषेकके पश्चात् वस्त्र, अलंकार और पुष्पहारसे भगवान्‌का श्रृंगार करे और पूजन-आरती करके सात बार मन्दिरकी परिक्रमा करावे। तत्पश्चात् भगवान्‌को डोलामण्डपमें ले आवे। मण्डपके निम्न भागमें सात बार भ्रमण करावे। फिर मण्डपके ऊर्ध्व भागमें सात बार भ्रमण कराकर स्तम्भवेदीपर भी सात बार घुमावे। उसके बाद यात्राके अन्तमें भी पुनः इसी क्रमसे इक्कीस बार भ्रमण करावे। रत्ननिर्मित हिंडोलेमें भगवान्‌को विराजमान करे। भगवान्‌के मस्तकपर सुन्दर रत्नमय मुकुट हो, वक्षःस्थलपर तारहार उनकी शोभा बढ़ा रहा हो, कानोंमें बहुमूल्य रत्नोंद्वारा निर्मित कुण्डल झिलमिला रहे हों। अन्य अंगोंमें भी यथायोग्य शोभा बढ़ानेवाले दिव्य आभूषणोंसे भगवान्‌का मनोहर श्रृंगार किया गया हो। भगवान् विकसित कमलपुष्पके मध्यमें लक्ष्मीजीके साथ बैठे हों। उनके हाथोंमें शंख, चक्र, गदा और पद्म तथा कण्ठमें वनमाला हो। मुखपर प्रसन्नता छा रही हो। सुन्दर नासिका हो। पीन वक्षःस्थलके कारण भगवान्‌का सौन्दर्य और भी बढ़ गया हो। ऐसी मनोहर झाँकीसे सुशोभित गोविन्दजीको डोलापर बैठाकर सब दिशाओंमें सुगन्धित चन्दनकी धूलि बिखेरते हुए उनकी पूजा करे। उस समय गोविन्दजीका ध्यान इस प्रकार करे—'भगवान् कदम्ब वृक्षके नीचे गोपियोंके मध्यमें विराजमान हैं। गोपी और ग्वालबाल लीलापूर्वक हिंडोलेको डुला रहे हैं और भगवान् उसके भीतर बैठकर लीलारसमें निमग्न हैं।' ऐसा ध्यान करके लाल, पीले और सफेद रंगके

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

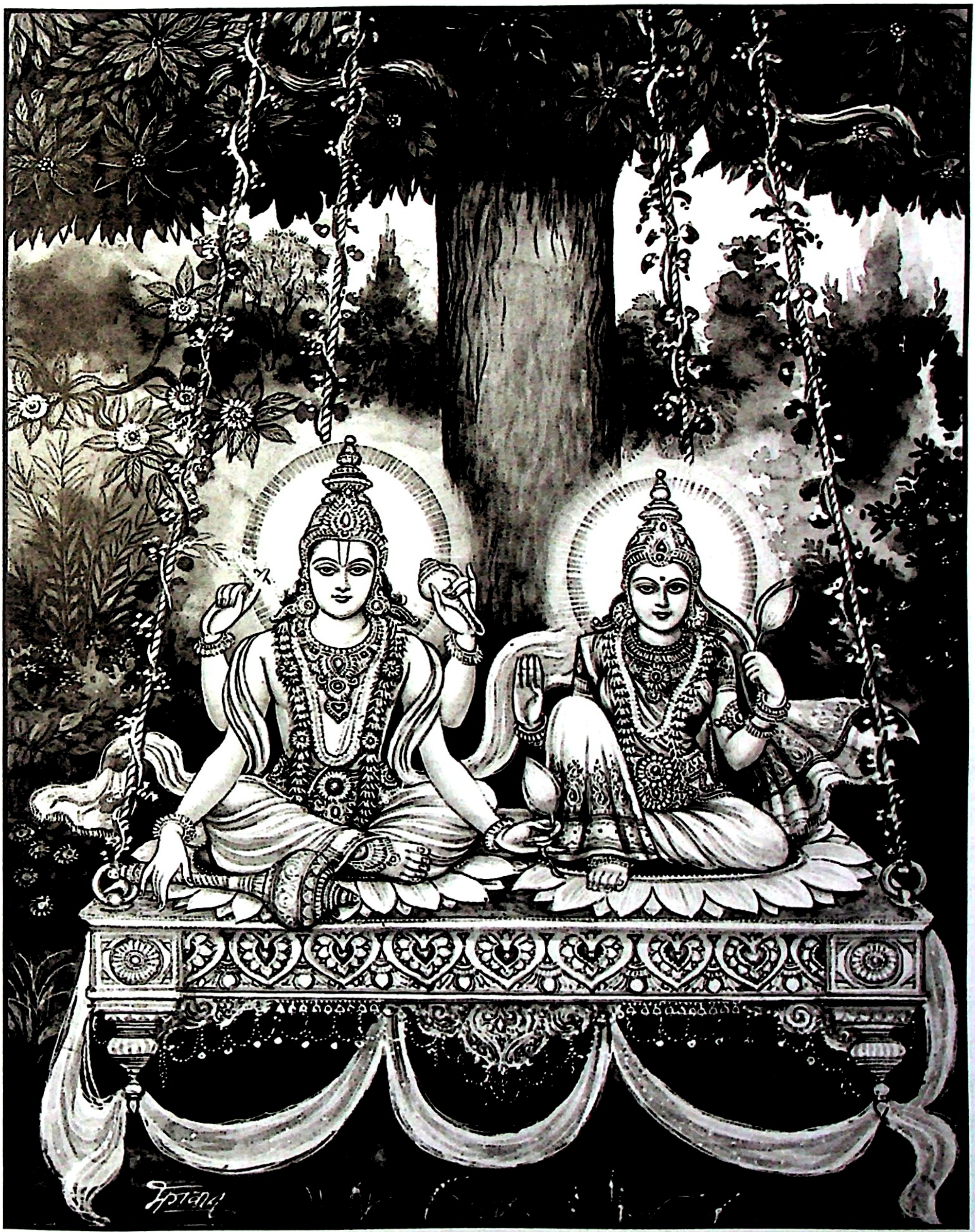

रत्नहिंडोलेपर भगवान् लक्ष्मीनारायण

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

कदम्बमूलमें भगवान् गोविन्द झूला झूल रहे हैं।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

कर्पूरयुक्त सुगन्धित चूर्ण, अबीर, गुलाल आदि सब ओर बिखेरे। फिर दिव्य वस्त्र, दिव्य माल्य, दिव्य गन्ध और उत्तम धूप निवेदन करके चँवर डुलाने, गीत गाने और स्तुति-पाठ करने आदिके द्वारा भगवान्‌की पूजा करके धीरे-धीरे सात बार डोलामें विराजमान भगवान्‌को झुलावे। उस समय जो लोग भगवान् श्रीकृष्णजीके विग्रहका दर्शन करते हैं, उनकी निःसन्देह मुक्ति होती है और उनके ब्रह्महत्या आदि पाँच महापातकोंका भी नाश हो जाता है। हिंडोलेमें झूलते हुए भगवान्‌का दर्शन करके मनुष्य सम्पूर्ण पापों और आध्यात्मिक आदि तीनों तापोंसे भी छूट जाता है।

भगवान्‌की द्वादशादित्य मूर्तियोंकी उपासना, दक्षके द्वारा भगवान्‌की आराधना और वर-प्राप्ति तथा विभिन्न विभूतियोंके रूपमें भगवान्‌की उपासनाका फल

जैमिनिजी कहते हैं—ब्राह्मणो! अनादिदेव भगवान् विष्णुकी जो बारह मूर्तियाँ हैं, उनका प्रतिमास पूजन करे। उनमेंसे एक-एक मूर्तिकी एक-एक मासमें प्रतिदिन पूजा करते हुए बारह महीनोंमें बारह मूर्तियोंकी पूजा सम्पन्न होती है। क्रमशः बारह पुष्पों और बारह फलोंसे पूजन करना चाहिये। अशोक, मल्लिका (बेला), पाटल, कदम्ब, कनेर, चमेली, मालती, शतदलकमल, नीलकमल, वासन्ती, कुन्द और पुन्नाग—इन पुष्पोंको भगवान्‌की प्रसन्नताके लिये क्रमशः एक-एक मासमें अर्पण करना चाहिये। अनार, नारियल, आम, कटहल, खजूर, ताल, प्राचीन आँवला, श्रीफल, नारंगी, सुपारी, करौदा और जायफल—इन बारह फलोंको भी क्रमशः एक-एक मासमें देना चाहिये। भक्ष्य, भोज्य, चोष्य, लेह्य और मधुर भोजन तथा आसन आदि उपचार समर्पित करके जगद्गुरु भगवान्‌की स्तुति करे—'हे सर्वव्यापी जगन्नाथ! आप भूत, वर्तमान और भविष्य तीनों कालोंके स्वामी हैं। कमलनयन विष्णो! आप संसारसागरसे मेरी रक्षा कीजिये। मधुसूदन! आपने पूर्वकालमें अत्यन्त भयंकर तथा अवलम्बनरहित एकार्णवके जलमें सम्पूर्ण विश्वकी रक्षाके लिये मधु नामक दैत्यका वध किया था। इस समय मेरी रक्षा कीजिये। त्रिविक्रम! जिन्होंने तीन पग चलकर तीनों लोकोंको नाप लिया और दैत्योंकी विशाल सेनाका वध करके त्रिभुवनकी रक्षा की, उन आपके लिये नमस्कार है। जिन्होंने ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेदका ज्ञान अपने भीतर लिये हुए वामनरूप धारण करके अद्भुत रूपसे सबको मोहित कर लिया, उन मायावी भगवान् विष्णुको नमस्कार है। जो भक्तोंके लिये ही अपने हृदयमें लक्ष्मीजीको धारण करते हैं और उन्हें सम्पत्ति देते हैं, उन भगवान् श्रीधरको नमस्कार है। हृषीकेश! आप समस्त इन्द्रियोंके अधिष्ठाता, सबके स्वामी और सदा भक्तोंके सुखके एकमात्र हेतु हैं, आपको नमस्कार है। पद्मनाभ! आपके नाभिकमलसे यह चराचर जगत् उत्पन्न हुआ है। वह कमल ही विधाताका आसन है। आपको नमस्कार है। जिनके तीन गुणोंसे यह चराचर जगत् बँधा हुआ है, उन्हींको गोपीने अपने दाम (रस्सी)-से बाँध लिया, इसलिये दामोदर नाम धारण करनेवाले प्रभो! आपको नमस्कार है। जो जगत्‌के आदिकारण हैं और जिन्होंने ब्रह्माजीके रूपसे सम्पूर्ण भूतोंकी सृष्टि की, उन अचिन्त्य महिमावाले आप सर्वव्यापी नारायणको नमस्कार है। गोविन्द! आप ज्ञानियोंके लिये ज्ञानगम्य हैं और अशरणको शरण देनेवाले हैं, आपके प्रसादसे मेरा यह व्रत सम्पूर्ण हो।'

इस प्रकार प्रतिमास पूजाके अन्तमें इन स्तुतियोंद्वारा

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

अतिशय भक्तिके साथ हाथ जोड़कर भगवान् जनार्दनकी प्रार्थना करनी चाहिये।

ब्राह्मणो! प्राचीन कालमें प्रजापति दक्षने मनुष्योंको आध्यात्मिक आदि पापोंसे अत्यन्त क्लेश उठाते देख वैशाख मासके शुक्ल पक्षमें तृतीयाको जगन्नाथजीके अंगमें चन्दनका लेप करके प्रसन्नतापूर्वक इस प्रकार स्तवन किया था—'देवदेव जगन्नाथ! आप सहज आनन्दसे परिपूर्ण एवं निर्मल हैं। परमेश्वर! संसारसागरमें डूबे हुए हम दुःखियोंका उद्धार कीजिये। ये मनुष्य नाना प्रकारके संतापोंसे संतप्त हो रहे हैं। हे कृष्णमेघ! मुझपर कृपा करनेकी बुद्धिसे अपनी शुभ दृष्टिमयी सुधाधारासे इन सबको तृप्त कीजिये। जगदीश्वर! कलियुगके पापसे मोहित हुए मनुष्योंका उद्धार करनेके लिये ही इस नीलाचल-गुफामें आपका यह अवतार हुआ है। जय कृष्ण! जय ईशान! जय अक्षर! जय अविनाशी परमेश्वर! आप प्रसन्न होइये और इन दीन, मूढ एवं अज्ञानी मनुष्योंपर कृपा कीजिये।'

इस प्रकार स्तुति करके 'हे ईश्वर! प्रसन्न होइये, प्रसन्न होइये, प्रसन्न होइये' ऐसा कहते हुए दक्ष प्रजापतिने जगन्नाथजीके चरणारविन्दोंमें दण्डवत्-प्रणाम किया। तब भगवान्ने स्पष्ट वाणीमें

प्रजापतिसे कहा—'वत्स! उठो, मैंने तुम्हें दुर्लभ वर प्रदान किया। तुम्हारी जो अभिलाषा है, वह मेरे प्रसादसे निःसन्देह पूर्ण होगी। यह तो तुम जानते ही हो कि अल्प पुण्यवाले प्राणियोंको मेरा अनुग्रह दुर्लभ है, परंतु मेरे उत्सवसे मुझे सन्तुष्ट करके तुमने मेरी प्रार्थना की है, इसलिये मैं तुम्हें यह वर देता हूँ—'जो मनुष्य भक्तिपूर्वक अक्षय तृतीयाको इस अक्षय यात्राका दर्शन करते हैं, वे उस समय मनमें जो इच्छा करते हैं, उसीको प्राप्त कर लेते हैं।' जैसे चन्दनका लेप तापको हर लेता है, वैसे ही मेरा यह उत्सव तीनों तापोंका विनाश करनेवाला है। मैंने तुम्हारी बुद्धिको प्रेरित किया है, इसीलिये तुमने इस उत्सवको सम्पन्न किया है। मैंने दीनोंका उद्धार करनेके लिये मन-ही-मन यह संकल्प किया था, उसीके अनुसार तुम इस कार्यमें प्रवृत्त हुए हो। प्रजापते! तुमने जो अभिलाषा की है, वह सब मैं पूर्ण करूँगा। ये गुण्डिचा आदि बारह महायात्राएँ पवित्र करनेवाली मानी गयी हैं। इनमेंसे एक-एक यात्रा मुक्ति देनेवाली है और सब यात्राएँ तो धर्म, काम, अर्थ, मोक्ष चारों पुरुषार्थोंको प्राप्त करानेवाली हैं। जो भक्तिपूर्वक इनमेंसे एक यात्राका भी दर्शन करता है, वह उसी एकसे भवसागरको पार करके भगवान् विष्णुके धाममें जाता है।'

प्रजापति दक्षसे ऐसा कहकर भगवान् विष्णु अन्तर्धान हो गये। तब श्रद्धालु दक्ष प्रजापतिने भगवान्की आज्ञासे एक वर्षतक नीलाचलपर निवास करके वहाँके सब बड़े-बड़े उत्सवोंका दर्शन किया। जो अल्पबुद्धिवाले मनुष्य हैं, उनमें भी भगवत् विश्वास बढ़ानेके लिये ये यात्राएँ बतायी गयी हैं। जिस किसी प्रकार भी जगन्नाथजीका दर्शन करनेपर वे निश्चय ही मोक्ष प्रदान करते हैं।

इस संसारमें जो समस्त चराचर विभूतियाँ हैं, वे सब भगवान् विष्णुकी ही हैं। विभूति

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

और उसके दाता वे एक ही परमेश्वर हैं। जो मनुष्य जिस भावसे भगवान्‌की सेवा करता है, वह वैसा ही हो जाता है। भगवान्‌की इतनी ही महिमा है, इस प्रकार उसका माप नहीं किया जा सकता। जो जिस भावसे भगवान्‌की उपासना करता है, उसे वैसा ही फल प्राप्त होता है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चारों पुरुषार्थोंकी प्राप्तिके लिये एक ही मार्ग है—दारुब्रह्म जगन्नाथजीकी उपासना। धर्मके स्वरूपका यथार्थ निश्चय करनेमें कोई भी समर्थ नहीं है। भगवान् विष्णु ही धर्म हैं। ये जनार्दन ही धर्म और जगत् दोनोंके स्वामी हैं। वे ही चतुर्विध पुरुषार्थस्वरूप हैं। उनमें जिसकी भक्ति स्थिर हो गयी है, वह सम्पूर्ण कामनाओंसे तृप्त होकर न कभी शोक करता है और न आकाङ्क्षा। इन्द्ररूपसे उपासना किये जानेपर वे ही भगवान् विष्णु त्रिलोकीका ऐश्वर्य प्रदान करते हैं। ब्रह्माजीके रूपमें ध्यान किये जानेपर वंशकी वृद्धि करते हैं, सनत्कुमारके रूपमें इनका चिन्तन किया जाय तो ये दीर्घ आयु प्रदान करते हैं। राजा पृथुके रूपमें भावना करनेपर जीविका और सम्पत्ति प्रदान करते हैं, बृहस्पतिके रूपमें भगवान्‌की उपासना की जाय तो वे गंगा आदि तीर्थोंका फल देते हैं। सूर्यरूपसे चिन्तन करनेपर वे अन्तःकरणके अज्ञानान्धकारका नाश करते हैं। चन्द्रमाके रूपमें श्रीहरिकी उपासना की जाय तो वे अनुपम सौभाग्य देते हैं। भगवान् वाणीके अधिपति हैं, इस रूपमें भावना करनेपर मनुष्य अष्टादश विद्याओंका तत्त्वज्ञ होता है। यज्ञेश्वर-स्वरूपमें चिन्तन करनेपर जगन्मय सनातन भगवान् अश्वमेध आदि यज्ञोंका फल देते हैं। कुबेररूपमें ध्यान किया जाय तो भगवान् अनुपम समृद्धि प्रदान करते हैं। इस प्रकार दीनों और अनाथोंपर अनुग्रह करनेके लिये दयासागर भगवान् काष्ठमय शरीर धारण करके नीलगिरिपर निवास करते हैं। ब्राह्मणो! तुम सब लोग वहाँ जाओ, एकाग्रचित्त होकर निवास करो और भगवान् लक्ष्मीपतिके युगल चरणारविन्दोंकी शरण लो।

राजा इन्द्रद्युम्नका ब्रह्मलोकगमन, पुराण-श्रवणकी विधि और ग्रन्थका उपसंहार

मुनियोंने पूछा—भगवन्! विष्णुभक्त राजा इन्द्रद्युम्नने मन्दिरकी प्रतिष्ठाके पश्चात् कौन-सा कार्य किया?

जैमिनिजी बोले—साक्षात् ब्रह्मस्वरूप जगन्नाथजीसे वरदान पाकर नरश्रेष्ठ इन्द्रद्युम्नने अपनेको कृतार्थ माना। भगवान्‌की आज्ञाके अनुसार उन्होंने पुण्य एवं मोक्ष प्रदान करनेवाली सम्पूर्ण यात्राएँ करवायीं। अनेक प्रकारके उपचारोंसे जगद्गुरु श्रीहरिकी नाना प्रकारसे पूजा की और राजा गाल श्वेतको भगवान्‌की आज्ञा भलीभाँति समझाकर धर्म और न्यायसे युक्त यह वचन कहा—'राजन्! तुम बहुश्रुत विद्वान् हो, धर्ममें तुम्हारी निष्ठा है, भगवान्‌में भी मन, वाणी और क्रियाद्वारा तुम्हारी बड़ी भक्ति है। भगवान् श्रीहरि किसी एकके उपदेशके लिये अनुशासन नहीं करते हैं, ये समस्त चराचरके गुरु हैं और सम्पूर्ण विश्व इनका शिष्य है। मुझपर अनुग्रह करनेके लक्ष्यसे अवतीर्ण हुए भगवान् जगन्नाथ यहाँ दीन-दुःखियोंके उद्धारके लिये सदैव निवास करेंगे। तुम भक्ति और श्रद्धाके साथ इनकी आज्ञाके पालनमें लगे रहो। ये साधारण काष्ठकी प्रतिमा हैं—ऐसी व्यावहारिक बुद्धिसे इन्हें न देखो, ये साक्षात् जगदीश्वर हैं। इनके मन्दिर-प्रवेश-कालमें तीनों लोकोंके निवासी इस पृथ्वीपर

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

आ गये थे, यह तो तुमने प्रत्यक्ष देखा है। ब्रह्मा आदि सब देवता एक ही साथ यहाँ पधारे थे। काष्ठस्वरूप धारण करनेवाले ये साक्षात् चराचरमय विष्णु हैं। इन्हें पृथ्वीपर प्राप्त कल्पवृक्ष समझो। ये सम्पूर्ण कामनाओंको देनेवाले हैं। इनकी उपासना करके जो जैसी कामना रखता है, वैसा फल प्राप्त कर लेता है। ये अन्धकारसे परे अनिर्वचनीय ज्योतिस्वरूप हैं। यतिजन बहुधा प्रयत्न करके भी इन्हें यथार्थरूपसे नहीं जान पाते। नैष्ठिक ब्रह्मचर्यका पालन करनेवाले, शुद्ध धर्मनिष्ठ यतियों तथा अनन्यभक्तिसे युक्त योगियोंके एक ही मार्ग भगवान् श्रीहरि हैं। जैसे संतप्त मनुष्य ग्रीष्म-ऋतुमें शीतल एवं गहरे जलाशयमें गोता लगाकर बड़े सन्तोषका अनुभव करता है उसी प्रकार इन करुणासागर भगवान् पुरुषोत्तमके प्राप्त होनेपर मनुष्य त्रिविध तापजनित दु:खको त्याग देता है। शरणमें आये हुए दीनजनोंका जैसा उपकार ये भगवान् विष्णु करते हैं, वैसा माता, पिता, मित्र, पत्नी और पुत्र कोई भी नहीं कर सकता। अत: भोग और मोक्ष दोनों फलोंको देनेवाले इन जगदीश्वरका तुम सेवन करो और पुरवासियों तथा प्रजाओंके द्वारा भगवान्‌की विभिन्न यात्राओंको भलीभाँति सम्पन्न करते रहो। नृपश्रेष्ठ! सभी राजाओंके लिये धर्मका मार्ग एक-सा ही है। किसी पूर्वपुरुषने उसे चलाया है और पीछे होनेवाले लोग उसका पालन करते हैं। राजेन्द्र! श्रेष्ठ उपचारों और समृद्धियोंद्वारा तीनों समय भगवान् नृसिंहका भजन-पूजन करो, इससे तुम्हें परम शान्ति प्राप्त होगी। अपनी कृतिकी अपेक्षा दूसरेकी कृतिका संरक्षण करना श्रेष्ठ बताया गया है। जो दूसरेके दिये हुए दानकी रक्षा करता है, उसके लिये वह अपने दिये हुए दानसे उत्तम है।'

यह सुनकर नृपश्रेष्ठ श्वेतने राजा इन्द्रद्युम्नके आदेशको गुणयुक्त मालाकी भाँति शिरोधार्य किया। राजर्षि इन्द्रद्युम्न भी भगवान् पुरुषोत्तमको प्रसन्न करके नारदजीके साथ ब्रह्मलोक चले गये।

ब्राह्मणो! यह मैंने तुमसे पुरुषोत्तमक्षेत्रके उत्तम माहात्म्यका वर्णन किया। वहाँ नित्य निवास करनेवाले दारुब्रह्म जगन्नाथजीके माहात्म्यको जो भक्तिपूर्वक श्रवण करता है, उसे अनेक अश्वमेध यज्ञोंका फल प्राप्त होता है। स्वामिकार्तिकेयजीके बताये हुए अर्द्धोदययोगकी अपेक्षा इस विष्णु-माहात्म्यके कीर्तनका पुण्य अधिक है। जो प्रतिदिन प्रात:काल इसको सुनता है उसके लिये यह धन, यश, आयु, पुण्य तथा सन्तानकी वृद्धि करनेवाला है। स्वर्गमें प्रतिष्ठारूप फल देता और सब पापोंका नाश करता है।

पुराण-श्रवणके आरम्भमें अपने वैभवके अनुसार तैयारी करनी चाहिये। पहले संकल्प करके पुराण-पाठ श्रवण करनेके लिये अति सुन्दर आभूषणों तथा वस्त्र, चन्दन और माला आदिके द्वारा विधिपूर्वक ब्राह्मणका वरण करे। वह ब्राह्मण शुद्ध कुलमें उत्पन्न हो, किसी अंगसे हीन न हो, शान्त स्वभाववाला हो, अपनी ही शाखाको माननेवाला और अपना पुरोहित हो तथा सब शास्त्रोंके अर्थको यथार्थरूपसे जाननेवाला हो। वरण किये हुए ब्राह्मणको उत्तम आसनपर बिठाकर उसके गलेमें माला पहना दे और मस्तकपर भी पुष्पगर्भ माला रखे। चन्दनसे ब्राह्मणके ललाटमें लेप करे। उस समय वह ब्राह्मण व्यासके समान मान्य होता है। उसी ब्राह्मणके द्वारा विष्णुस्वरूप पुस्तकपर श्रीखण्ड, अगुरु आदि पुष्पों और नाना प्रकारके रुचिर उपचारोंसे व्यास-पूजन करावे। कथा सुननेके लिये आने-जानेवाले लोगोंके बैठनेके निमित्त यथायोग्य आसन बनवाकर रखे। स्वयं उत्तम आसनपर बैठकर उत्कण्ठित चित्तसे कथा सुने

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

अथवा झाड़-बुहारकर शुद्ध किये हुए स्थानमें सबके साथ बैठे। व्यासके आगे ऊँचे आसनपर न बैठे। स्नान करके दो शुद्ध वस्त्र धारण करे। आचमन करके शरीरमें यथास्थान तिलक करे और प्रसन्नतापूर्वक मनसे भगवान् विष्णुका ध्यान करते हुए कथामें विश्वास करे। पुराण, ब्राह्मण, देवता, मन्त्र, कर्म, तीर्थ तथा बड़े-बूढ़ोंके वचनमें विश्वास फलदायक होता है। सब पुण्य विश्वासका कारण है। पुराण-श्रवणके समय पाखण्डी आदिसे बातचीत, व्यर्थकी बकवाद और सब प्रकारकी चिन्ताओंका प्रयत्नपूर्वक त्याग करे। इसी विधिसे प्रतिदिन प्रसन्नतापूर्वक कथा सुने। पाठ समाप्त होनेपर बारंबार करताल आदि बजाकर 'जय कृष्ण! जगन्नाथ! हरे!' इत्यादि नामोंका कीर्तन करे। कीर्तन इतने उच्चस्वरसे होना चाहिये कि आकाशमें उसकी ध्वनि गूँज उठे। इस प्रकार भगवान् विष्णुकी प्रीति के लिये प्रतिदिन कीर्तन करना चाहिये। तदनन्तर ग्रन्थ समाप्त होनेपर भगवान् विष्णुकी प्रसन्नताके लिये बड़ी भक्तिके साथ वस्त्र, माला, चन्दन और आभूषण आदिकी विशेष व्यवस्था करके व्याससदृश माननीय आचार्यको विभूषित करे और अपनी शक्तिके अनुसार विधिपूर्वक दक्षिणा दे। दक्षिणा ऐसी देनी चाहिये जिससे आचार्यको सन्तोष हो जाय। शान्तिकर्म, पौष्टिककर्म, व्रतबन्ध, विवाह आदि कर्म, मोक्षसाधक कर्म, पुराण-श्रवण, यज्ञादिका अनुष्ठान, दान और अनेक प्रकारके व्रत—ये यदि दक्षिणाहीन हों तो निष्फल हो जाते हैं। तत्पश्चात् यथाशक्ति तैयार कराये हुए अन्नसे ब्राह्मणोंको भोजन करावे। मुनिवरो! इस प्रकार तुमलोगोंसे पुराण-श्रवणकी यह सांगोपांग विधि बतायी गयी।

मुनि बोले—अहो! हमारा महान् सौभाग्य है कि पापराशिका विनाश करनेवाला यह पुराण-श्रवणका फल हमने आपके मुखारविन्दसे सुना। मुने! इस समय इसके फलकी प्राप्तिके लिये हम आपको यथाशक्ति दक्षिणा देते हैं, इसे आप प्रसन्नतापूर्वक ग्रहण करें। यह कह उन अकिंचन मुनियोंने समिधा, कुशा, फूल, फल और अक्षत आदि जैमिनिजीको देकर बड़े हर्षके साथ पुरुषोत्तमक्षेत्रको प्रस्थान किया।

॥ उत्कलखण्ड या पुरुषोत्तमक्षेत्र-माहात्म्य संपूर्ण ॥

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

बदरिकाश्रम-माहात्म्य

सब तीर्थोंका संक्षिप्त माहात्म्य तथा बदरीक्षेत्रकी विस्तृत महिमाका उपक्रम

शौनकजी बोले—समस्त धर्मज्ञोंमें श्रेष्ठ और सम्पूर्ण शास्त्रोंके तत्त्वज्ञ पुराणपरिनिष्ठित सूतजी! सब धर्मोंसे रहित भयंकर कलियुग प्राप्त होनेपर मनुष्य दुष्कर्ममें प्रवृत्त हो सब धर्मोंका त्याग कर देते हैं, उनकी आयु बहुत थोड़ी होती है, उनकी प्राणशक्ति, बल, पराक्रम, तपस्या और कर्मानुष्ठान सब अत्यन्त क्षीण हो जाते हैं। वे सब अधर्मपरायण और वेदशास्त्रसे दूर होते हैं; तीर्थयात्रा, तपस्या, दान और भगवान् विष्णुकी भक्तिका उनमें अभाव-सा होता है। ऐसे क्षुद्र मनुष्योंका थोड़े प्रयाससे किस प्रकार उद्धार हो सकता है?

सूतजी बोले—महाभाग शौनक! तुम्हें साधुवाद है, तुम सदा दूसरोंके हितमें तत्पर रहते हो, भगवान् विष्णुकी भक्तिमें आसक्त होनेके कारण तुम्हारे मनका मल धुल गया है। संसारमें साधुपुरुषोंका संग दुर्लभ है। वह देहाभिमानी अजितात्मा पुरुषोंकी संचित पापराशिको हर लेता है और अधिक पुण्यके कारण उन्हें उत्तम गति प्रदान करता है। तीनों लोकोंके मनुष्योंके लिये सत्संग दुर्लभ है, वह कर्मपाशसे पीड़ित मनुष्योंकी हृदय-ग्रन्थि (आन्तरिक बन्धन)-को दूर करता है, बहुत कम बोलनेवाले और एकमात्र भगवान्‌का भजन करनेवाले लोगोंको उच्चपद प्रदान करता है और जन्म-मृत्युके चक्रसे थके हुए मानवोंको चिर-विश्रामकी प्राप्ति करानेका कारण होता है*। शौनकजी! यही प्रश्न पूर्वकालमें परम सुन्दर कैलाश-पर्वतके शिखरपर श्रोता ऋषियोंके समक्ष सत्पुरुषोंका कल्याण करनेके लिये स्वामिकार्तिकेयजीने भगवान् शंकरके आगे उपस्थित किया था।

तब श्रीमहादेवजीने कहा—षडानन! परमार्थके पथपर चलनेवाले पुरुषोंको वैकुण्ठधामका निवास प्रदान करनेवाले बहुत-से तीर्थ और क्षेत्र हैं। कोई कामनाके अनुसार फल देनेवाले हैं और कोई मोक्षदायक हैं। गंगा, गोदावरी, नर्मदा, तपती, यमुना, क्षिप्रा, पुण्यमयी गौतमी, कौशिकी, कावेरी, ताम्रपर्णी, चन्द्रभागा, महेन्द्रजा, चित्रोत्पला, वेत्रवती, सरयू, चर्मण्वती, शतद्रु, पयस्विनी, गण्डकी, बाहुदा, सिन्धु और सरस्वती—ये सब पवित्र नदियाँ हैं और बार-बार सेवन करनेपर भोग तथा मोक्ष प्रदान करनेवाली हैं। अयोध्या, द्वारका, काशी, मथुरा, अवन्ती, कुरुक्षेत्र, रामतीर्थ, कांची, पुरुषोत्तमक्षेत्र, पुष्करक्षेत्र, दर्दुरक्षेत्र, वाराहक्षेत्र तथा बदरी नामक महापुण्यमय क्षेत्र, जो सब मनोरथोंका साधक है, ये सभी उत्तम तीर्थ हैं। मुक्तिकी एक साधन अयोध्यापुरीका विधिपूर्वक दर्शन करके मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो भगवान् विष्णुके धाममें जाते हैं। भाँति-भाँतिसे भगवान् विष्णुकी सेवापूर्वक पूजन, नृत्य और कीर्तन

---

* हरति हृदयबन्धं कर्मपाशार्दितानां वितरति पदमुच्चैरल्पजल्पैकभाजाम्।
जननमरणकर्मश्रान्तविश्रान्तिहेतुस्त्रिजगति मनुजानां दुर्लभः सत्प्रसंगः॥

(स्क० पु० वै० बद० १। १२)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

करनेवाले पुरुष घर त्यागकर श्रीहरिका चिन्तन करनेसे गृहकी आसक्ति तथा मृत्युके पराक्रमपर विजय पा जाते हैं। द्वारकामें साक्षात् भगवान् श्रीहरि विराजमान हैं, वे अपने निवास-मन्दिरको कभी नहीं छोड़ते। षडानन! गोमतीमें स्नान करके भगवान् श्रीकृष्णके मुखारविन्दका दर्शन करनेसे बिना ज्ञानके ही मनुष्यकी मुक्ति हो जाती है।

असी और वरुणाके बीचमें पाँच कोसतक वाराणसीक्षेत्र है। वहाँ मणिकर्णिका, ज्ञानवापी, विष्णुपादोदक और पंचनद कुण्ड (पंचगंगा)-में स्नान करके मनुष्य पुनः माताके स्तनोंका दूध नहीं पीता है। किसी प्रसंगसे भी काशीमें विश्वनाथजीका दर्शन करके मनुष्यको जन्म-मृत्युरहित मुक्ति प्राप्त होती है। कार्तिकेय! तपस्या और उपवासमें लगा हुआ मनुष्य मथुरापुरीमें जन्मस्थानपर जाकर सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। विश्रामतीर्थमें विधिपूर्वक स्नान करके तिलसहित जलसे तर्पण करे तो मनुष्य अपने पितरोंका नरकसे उद्धार करके स्वयं विष्णुलोकको जाता है। अवन्तीपुरीमें वैशाखमास आनेपर मनुष्य क्षिप्राके जलमें विधिपूर्वक स्नान करके कोटि तीर्थमें गोता लगावे और श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको भोजन कराकर महाकालेश्वर शिवका दर्शन करे तो सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। कुरुक्षेत्र तथा रामतीर्थमें सूर्यग्रहणके अवसरपर यथाशक्ति सुवर्णदान करनेसे मनुष्य मोक्षका भागी होता है। हरिक्षेत्रमें पादोदक तीर्थके जलमें स्नान करके श्रीहरिका दर्शन करनेसे पुरुष सब पापोंसे मुक्त हो भगवान् विष्णुके साथ आनन्द भोगता है। विष्णुकांचीमें साक्षात् भगवान् विष्णु और शिवकांचीमें साक्षात् भगवान् शिव निवास करते हैं। दोनोंमें कोई भेद न होनेके कारण दोनोंकी ही भक्तिसे मुक्ति हाथमें आ जाती है, भेदबुद्धि पैदा करनेसे मनुष्योंकी निन्दित गति होती है। पुरुषोत्तमक्षेत्रमें मार्कण्डेय-सरोवरके जलमें स्नान करके एक बार जगन्नाथजीका दर्शन कर लेनेसे मनुष्य ज्ञान अथवा योगके बिना भी पुनः माताके स्तनोंका दूध नहीं पीता। रोहिणिक्षेत्रके अन्तर्गत समुद्रमें तथा इन्द्रद्युम्न-सरोवरमें स्नान करके भगवान् विष्णुके प्रसादको खाकर मनुष्य वैकुण्ठधाममें स्थान पाता है। कार्तिकी पूर्णिमाको पुष्करतीर्थमें स्नान करके दक्षिणासहित श्राद्ध एवं भक्तिपूर्वक ब्राह्मण-भोजन कराकर मनुष्य ब्रह्मलोकमें प्रतिष्ठित होता है। माघ मासमें भक्तिभावसे त्रिवेणीसंगममें स्नान करके मनुष्य उस पुण्यको प्राप्त करता है, जो बदरीतीर्थके कीर्तनसे प्राप्त होता है।

भगवान् विष्णुका बदरी नामक क्षेत्र तीनों लोकोंमें दुर्लभ है, उसके स्मरणमात्रसे महापातकी मनुष्य भी तत्काल पापरहित होकर मृत्युके पश्चात् मोक्षके भागी होते हैं। स्वर्ग, पृथ्वी तथा रसातलमें बहुत-से तीर्थ हैं, परंतु बदरी तीर्थके समान दूसरा कोई तीर्थ न हुआ है, न होगा। कार्तिकेय! तप, योग और समाधिसे तथा सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नान करनेसे जो फल प्राप्त होता है, वह बदरीक्षेत्रके भलीभाँति दर्शनमात्रसे मिल जाता है।

~~o~~

बदरीक्षेत्रकी महिमा—अग्निदेवके सर्वभक्षणरूप दोषका निवारण

स्कन्दने पूछा—यह क्षेत्र कैसे उत्पन्न हुआ? किन लोगोंने इसका सेवन किया है तथा इस क्षेत्रके अधिपति कौन हैं? यह सब बातें मुझे विस्तारपूर्वक बताइये।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

भगवान् शिवने कहा—यह बदरीक्षेत्र अनादिसिद्ध है। जैसे वेद भगवान्के शरीर हैं, उसी प्रकार यह भी है। इस क्षेत्रके अधिपति साक्षात् भगवान् नारायण हैं। नारद आदि महर्षियोंने इस तीर्थका सेवन किया है। काशीमें, श्रीपर्वतके शिखरपर तथा कैलाशमें पार्वतीसहित मेरी जैसी प्रीति है उससे अनन्तगुनी अधिक बदरीक्षेत्रमें है। अन्य तीर्थोंमें स्वधर्मका विधिपूर्वक पालन करते हुए मृत्यु होनेसे मुक्ति होती है; परंतु बदरीक्षेत्रके दर्शनमात्रसे ही मुक्ति मनुष्योंके हाथ आ जाती है। जहाँ भगवान् नारायणके चरणोंका सान्निध्य है, जहाँ साक्षात् अग्निदेवका निवास है और केदाररूपसे मेरा लिंग प्रतिष्ठित है, वह सब बदरीक्षेत्रके अन्तर्गत है। केदारके दर्शन, स्पर्श तथा भक्तिभावसे पूजन करनेपर कोटि-कोटि जन्मोंका पाप तत्काल भस्म हो जाता है। उस क्षेत्रमें विशेषतः मैं अपनी सम्पूर्ण कलासे स्थित रहता हूँ। वहाँ मेरे श्रीविग्रहमें पंद्रहों कलाएँ विद्यमान हैं। वहाँ कोमल कमलकी-सी कान्तिसे सुशोभित मुखकमलवाले शिवभक्त दोनों हाथ जोड़े मुझ महादेवकी ओर ही दृष्टि लगाये प्रदोषकालमें मेरी ही उपासना करते हैं। हाथमें जपमाल तथा मनमें शान्ति और सन्तोष धारण किये प्रतिदिन मेरी वन्दना और प्रार्थना करनेवाले मेरे भक्त सदा मेरे चरणोंके चिन्तनसे विज्ञानस्वरूप हो हृदयस्थित कामको नष्ट करके सर्वतोभावसे निरन्तर मेरा भजन करते हैं। काशीमें मरे हुए पुरुषोंको तारकब्रह्म मुक्ति देनेवाला होता है, परंतु केदारक्षेत्रमें मेरे लिंगके पूजनसे मनुष्योंकी मुक्ति हो जाती है। श्रीनारायणके चरणोंके समीप प्रकाशमान अग्नितीर्थका तथा मेरे केदारसंज्ञक महालिंगका दर्शन करके मनुष्य पुनर्जन्मका भागी नहीं होता।

पूर्वकालमें ऊर्ध्वरेता (नैष्ठिक ब्रह्मचर्यका पालन करनेवाले) ऋषियोंका समुदाय प्रयागमें एकत्र हुआ था। जहाँ भगवती गंगा यमुनाके साथ मिली हैं और जहाँ त्रिभुवनविख्यात दशाश्वमेध नामक तीर्थ है, वहाँ भगवान् अग्निदेवने ऋषियोंके आगे उपस्थित हो विनीतभावसे पूछा—'आपलोगोंकी एक दृष्टि और एक ज्ञान है; आप सभी ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ, दीनोंके लिये करुणासे भरे हुए आर्द्रहृदय और दयालु हैं। आप लोगोंको यहाँ उपस्थित देखकर मैं पूछता हूँ—सब प्रकारकी दूषित वस्तुओंके भक्षणजनक पातकसे मेरा अन्तःकरण लिप्त हो गया है। ब्रह्मज्ञानियो! बताइये मेरा उद्धार कैसे होगा?'

इतनेमें ही सब मुनियोंमें श्रेष्ठ व्यासजी गंगामें स्नान करके वहाँ आ पहुँचे और इस प्रकार बोले—'अग्निदेव! आपके सर्वभक्षणरूप पापकी निवृत्तिके लिये एक श्रेष्ठ उपाय है। आप बदरीक्षेत्रकी शरण लीजिये, जहाँ देवताओंके देवता साक्षात् भगवान् जनार्दन विराजमान हैं, जो सबके पापोंका नाश करनेवाले हैं। वहाँ गंगाजीके जलमें स्नान करके भगवान्की परिक्रमा और दण्डवत्-प्रणाम करनेसे सब पापोंका क्षय हो जाता है।'

तब अग्निदेव उत्तराभिमुख होकर गन्धमादन-पर्वतपर आये और बदरीतीर्थमें पहुँचकर गंगाजीके

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

जलमें स्नान करके भगवान् नारायणके आश्रमपर गये। वहाँ भगवान्को प्रणाम करके उन्होंने भक्तिपूर्वक स्तवन किया। 'जो विशुद्ध विज्ञानघन-स्वरूप पुराणपुरुष सनातन प्रजापतियोंके पति, सबके गुरु, एक होते हुए भी अनेक रूपोंको धारण करनेवाले और सम्पूर्ण जगत्के एकमात्र स्वामी हैं, शेषनागकी शय्यापर शयन करनेवाले उन शुद्धबुद्धि नारायणको मैं नमस्कार करता हूँ। जो अपनी मायामयी शक्तिका आश्रय लेकर संसारकी सृष्टि करनेके उद्देश्यसे रजोगुणसे युक्त ब्रह्माका रूप धारण करते हैं, सत्त्वगुणसे युक्त होकर इस जगत्की रक्षामें कारण बनते हैं और तमोगुणसे संयुक्त हो इस विश्वके भयंकर संहारकारी रुद्र बने हुए हैं, उन त्रिविध रूपधारी भगवान्की मैं स्तुति करता हूँ। जो अविद्यासे मोहितचित्त सम्पूर्ण विश्वके रूपमें प्रकट हुआ है और विद्यासे समस्त त्रिलोकीमें एक ही रूपसे व्याप्त हो रहा है, विद्याका आश्रय लेनेसे जिसे सर्वज्ञ और ईश्वर कहते हैं, उस परमेश्वरकी मैं शरण लेता हूँ। जिन्होंने भक्तोंकी इच्छासे अपने दिव्य स्वरूपको प्रकट किया है, योगनिद्राको स्वीकार करके शेषनागकी विशाल शय्यापर अपनेको अर्पित कर रखा है, जो रेशमी पीताम्बर धारण करते हैं और आठ प्रकारकी विचित्र शक्तियोंसे सम्पन्न हैं, उन भगवान् विष्णुकी मैं स्तुति करता हूँ।'

इस प्रकार स्तुति किये जानेपर सर्वान्तर्यामी भगवान् नारायण प्रसन्न होकर पवित्रताकी इच्छा रखनेवाले अग्निदेवसे मधुर वाणीमें बोले—'अनघ! तुम्हारा कल्याण हो, तुम कोई वर माँगो। मैं तुम्हें वर देनेके लिये आया हूँ। मैं तुम्हारी इस स्तुति और विनयसे बहुत प्रसन्न हूँ।'

अग्नि बोले—प्रभो! मैं जिस उद्देश्यसे आया हूँ वह सब आपको ज्ञात है। तथापि कहता हूँ और इस रूपमें आप जगदीश्वरकी आज्ञाका पालन करता हूँ। मुझे सर्वभक्षी तो होना ही पड़ता है, किंतु मेरे इस दोषका निवारण कैसे हो, यही सोचकर मुझे अत्यन्त भय हो रहा है।

भगवान् नारायणने कहा—इस क्षेत्रका दर्शन करनेमात्रसे किसी भी प्राणीका पाप नहीं रह जाता। मेरे प्रसादसे तुममें कभी पातकका सम्पर्क न होगा।

तबसे लेकर सब दोषोंसे रहित भूतात्मा अग्निदेव यहाँ अपनी कलासे विराजमान हैं। जो प्रातःकाल उठकर पवित्र भावसे इस प्रसंगको सुनता और सुनाता है, वह निश्चय ही अग्नितीर्थमें स्नान करनेका फल पाता है।

बदरीक्षेत्रकी पाँच शिलाओंमेंसे नारदशिला और मार्कण्डेयशिलाका माहात्म्य

महादेवजी कहते हैं—स्कन्द! जो महापातकी और अतिपातकी हैं, वे भी अग्नितीर्थमें स्नान करनेमात्रसे पवित्र हो जाते हैं। जैसे अत्यन्त मलिन सोना आगमें तपानेसे शुद्ध हो जाता है, उसी प्रकार देहधारी प्राणी अग्नितीर्थमें आकर पापमुक्त हो जाता है। जो पाँच प्रकारके महापातक करनेवाले हैं, वे भी इस तीर्थमें स्नान करके प्राणायाम और जप करनेसे शुद्ध हो जाते हैं, ऐसा मेरा मत है। यहाँ जो पाँच शिलाएँ हैं, उनमें सदा भगवान् विष्णुकी स्थिति है, वहींपर सब पापोंका नाश करनेवाला अग्नितीर्थ है।

स्कन्दने पूछा—पिताजी! वहाँ कैसी पाँच शिलाएँ हैं और किसने उनका निर्माण किया है? ये सब बातें पूर्णतः बतलानेकी कृपा करें।

भगवान् शिवने कहा—बेटा! वहाँ नारदी, नारसिंही, वाराही, गारुड़ी और मार्कण्डेयी—

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

ये पाँच शिलाएँ विख्यात हैं, जो सम्पूर्ण मनोरथोंकी सिद्धि करनेवाली हैं। एक समय भगवान् नारदने एक शिलापर बैठकर वायु पीकर रहते हुए महाविष्णुका दर्शन करनेके लिये अत्यन्त कठोर तपस्या की। वे साठ हजार वर्षोंतक वृक्षकी भाँति स्थिरभावसे उस शिलापर विराजमान रहे। तदनन्तर भगवान् विष्णु ब्राह्मणका रूप धारण करके कृपापूर्वक उनके सामने गये और उन मुनिश्रेष्ठ नारदसे इस प्रकार बोले—'मुने! बताओ, तुम क्या चाहते हो?'

नारदजीने कहा—आप कौन हैं? इस निर्जन वनमें आपके दर्शनसे मेरे मनमें बड़ी प्रसन्नता हो रही है।

नारदजीके ऐसा कहनेपर भगवान् विष्णुने कृपा करके उन्हें अपने दिव्य स्वरूपका दर्शन कराया। उनके हाथोंमें शंख, चक्र, गदा आदि आयुध शोभा पा रहे थे। वे पीताम्बरसे सुशोभित और कमलोंकी मालासे विभूषित थे। लक्ष्मीका निर्मल निवासभूत भगवान्‌का वक्ष श्रीवत्सचिह्न तथा कौस्तुभमणिकी प्रभासे प्रकाशमान था। सुनन्द आदि पार्षद भगवान् जनार्दनकी स्तुति कर रहे थे। उन्हें देखकर नारदजीके शरीरमें नूतन प्राण-सा आ गया। वे सहसा खड़े हो गये और हाथ जोड़कर बार-बार नमस्कार करते हुए जगदीश्वरोंके भी ईश्वर श्रीविष्णुकी स्तुति करने लगे—'जो सबके साक्षी और सम्पूर्ण जगत्‌के अधीश्वर हैं, जिन्होंने भक्तोंकी इच्छासे दिव्य देह धारण किया है, जो शरणागतोंके लिये दयाके महासागर हैं, वे पावन दिव्यमूर्तिधारी भगवान् श्रीहरि मुझपर प्रसन्न हों। जो सम्पूर्ण जगत्‌के हितके लिये और साधुपुरुषोंके मनको सन्तुष्ट और उनका कल्याण करनेके लिये शीघ्र ही अपनी उत्तम कलाओंद्वारा दिव्य देह धारणकर प्रसन्नतापूर्वक दिव्यलीला और हास्यपूर्ण दृष्टि प्रकट करते हैं, सत्त्वगुणका समुदाय ही जिनका स्वरूप है, वे भगवान् विष्णु मुझपर प्रसन्न हों। जिनके चरणारविन्दोंका अर्चन करनेसे निर्मल चित्त हुए मनुष्य ज्ञानरूपी खड्गसे संसारबन्धनके मूल हेतुओंको काट डालते हैं और खेदरहित हो जिनके स्वरूपभूत ब्रह्मानन्दकी उपलब्धि कर लेते हैं, दीनोंपर दयार्द्रचित्त रहनेवाले वे भगवान् विष्णु मुझपर प्रसन्न हों। जिनका अनुसरण करनेवाले देवता विपत्तियोंके समुद्रको भी बछड़ेके खुरके समान लाँघकर निर्भय हो स्वर्गमें निवास करते हैं, वे सर्वभूतात्मा हैं। प्रभो! आप वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्धस्वरूप विष्णुको बार-बार नमस्कार है। जनार्दन! आज आपके दर्शनसे मेरा जीवन धन्य हो गया, मेरी तपस्या फलवती हुई और मेरा ज्ञान भी सफल हो गया।'

श्रीभगवान् बोले—नारद! तुम्हारी इस तपस्या और स्तुतिसे मैं प्रसन्न हूँ। तीनों लोकोंमें तुमसे बढ़कर दूसरा कोई मेरा भक्त नहीं है। तुम्हारा कल्याण हो, तुम कोई वर माँगो।

नारदजीने कहा—देव! यदि आप मुझे वर देते हैं तो एक तो अपने चरणकमलोंमें अविचल भक्ति दीजिये। मेरी शिलाके समीप रहना आप कभी न छोड़िये, यह दूसरा वर है; और मेरे इस तीर्थके दर्शन, स्पर्श, स्नान और आचमन करनेवाला मनुष्य पुनः संसारमें शरीर न धारण करे, यह मेरा तीसरा वर है।

श्रीभगवान् बोले—'एवमस्तु'। मैं तुम्हारे स्नेहवश समस्त चराचर जीवोंको मुक्ति देनेके लिये तुम्हारे तीर्थमें निवास करूँगा।

ऐसा कहकर भगवान् विष्णु वहीं अन्तर्धान हो गये। तदनन्तर नारदजी भी कुछ दिनोंतक बदरीक्षेत्रमें निवास करके मथुरापुरीको चले गये।

स्कन्दने कहा—भगवन्! अब मुझे मार्कण्डेय-शिलाकी महिमा बताइये।

भगवान् शिव बोले—पहले त्रेतायुगके अन्तमें मार्कण्डेयजी तीर्थयात्राका परिश्रम उठाते हुए मथुरामें आये। वहाँ उन्हें नारदजीका दर्शन हुआ। मार्कण्डेयजीने

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

नारदजीका पूजन और उन्हें प्रणाम किया। तब उन्होंने जहाँ साक्षात् नारायण विद्यमान हैं, उस बदरीक्षेत्रका माहात्म्य इस प्रकार बताया—'साधो! बदरीतीर्थ महाक्षेत्र है, वहाँ भगवान् विष्णुका नित्यनिवास है। तुम वहीं जाओ वहाँ तुम्हें साक्षात् श्रीहरिका दर्शन होगा।' यह सुनकर मार्कण्डेयजीको बड़ा विस्मय हुआ। वे विशालापुरी (बदरिकाश्रम)-में आये और वहाँ स्नान करके शिलापर बैठकर परम उत्तम अष्टाक्षर **(ॐ नमो नारायणाय)** मन्त्रका जप करने लगे। तीन राततक जप करनेके बाद भगवान् जनार्दन उनपर प्रसन्न हुए और उन्हें शंख, चक्र, गदा, पद्म और वनमाला आदिसे विभूषित स्वरूपका दर्शन कराया। उन्हें देखकर मार्कण्डेयजी सहसा उठे और प्रणाम करके प्रेमसे गद्गदवाणीमें उनकी स्तुति करने लगे।

मार्कण्डेयजी बोले—परमेश्वर! इस अशाश्वत (क्षणभंगुर) संसारमें आपके युगल चरणारविन्द ही सार हैं। संसारी मनुष्योंका उद्धार कैसे हो? अच्युत! मैं आध्यात्मिक आदि तीनों तापोंसे अत्यन्त थका हुआ हूँ, अनेक प्रकारके बढ़े हुए अज्ञानसे आच्छादित होकर संसाररूपी कुहरेमें भटक रहा हूँ, कृपया मेरा उद्धार कीजिये। करुणासागर! अनेक प्रकारके योनियन्त्रोंमें दबकर निकलनेसे प्राप्त हुई गर्भवासजनित शारीरिक वेदनाको मैं कितनी ही बार पा चुका हूँ, अब मेरी रक्षा कीजिये। जरा, मृत्यु और बाल्यावस्था आदिके दुःखोंसे भरे हुए संसारसे मैं बहुत पीड़ित हूँ तथापि इस दुःखके समुद्रमें मेरी सुखबुद्धि हो रही है; दयासिन्धो! मेरी रक्षा कीजिये। कभी मैं कीटयोनिमें पड़ा, कभी स्वेदज जीवके रूपमें जन्म लिया, कभी उद्भिज्ज योनिमें आया और कभी सौभाग्यवश मनुष्य-शरीरको भी प्राप्त हुआ। सब योनियोंमें जन्म लेकर विपत्ति भोग चुका हूँ, अब सर्वथा निस्तेज और अनाथ हूँ। अच्युत! कृपा करके अपनी शरणमें आये हुए मुझ सेवकका उद्धार कीजिये।

बुद्धिमान् मार्कण्डेयजीके द्वारा ऐसा कहनेपर भगवान् श्रीविष्णुने प्रसन्न होकर कहा—'ब्रह्मर्षे! मुझसे कोई वर माँगो।' मार्कण्डेयजीने कहा—'भगवन्! दीनवत्सल! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो अपने पूजन और दर्शनमें मुझे अविचल भक्ति दीजिये। साथ ही, मैं चाहता हूँ इस शिलापर आपका निवास बराबर बना रहे। यही मेरे लिये वर है।' 'बहुत अच्छा' कहकर भगवान् विष्णु अन्तर्धान हो गये। तदनन्तर मार्कण्डेयजी अत्यन्त प्रसन्न हो अपने पिताके आश्रमपर चले गये। जो मनुष्य इस प्रसंगको सुनता और सुनाता है, उसे भगवान् गोविन्दकी प्राप्ति होती है।

गरुड़शिला, वाराहीशिला और नारसिंहीशिलाकी उत्पत्ति और महिमा

भगवान् शिव कहते हैं—कश्यपजीसे विनताके गर्भसे दो महाबली और महापराक्रमी पुत्र हुए, जिनका नाम था गरुड़ और अरुण। इनमेंसे अरुण तो सूर्यके सारथि हुए और गरुड़ने भगवान् विष्णुका वाहन होनेकी अभिलाषासे बदरीक्षेत्रके दक्षिण भागमें गन्धमादनके शिखरपर तपस्या प्रारम्भ की। वे फल-मूल और जलका आहार करते, द्वन्द्वोंको धैर्यपूर्वक सहते और जप करनेवालोंमें सर्वश्रेष्ठ होकर एक पैरसे पृथ्वीपर खड़े हो जप करते थे। भगवान्के दर्शनकी लालसासे उन्होंने बहुत वर्षोंतक तपस्या की। तब साक्षात् भगवान् विष्णु पीताम्बर धारण करके अपने शंख, चक्र आदि आयुधोंसे युक्त हो, पूर्व दिशामें उदित होनेवाले पूर्ण चन्द्रमाकी भाँति गरुड़के सामने प्रकट हुए और मेघके समान गम्भीर शब्द करते हुए बोले। तथापि गरुड़की बाह्य वृत्ति नहीं हुई। तब उन्होंने अपना श्रेष्ठ शंख बजाया, पर उससे भी

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

महात्मा गरुड़का ध्यान नहीं टूटा। तब भगवान् श्वासके साथ गरुड़के भीतर प्रवेश करके उनमें बहिर्मुखवृत्ति पैदा करते हुए पुनः बाहर आकर प्रकट हो गये। उस समय भगवान् विष्णुको अपने सामने देखकर गरुड़ निर्भय हो गये। उनके सम्पूर्ण शरीरमें रोमांच हो आया और उन्होंने हाथ जोड़कर भगवान्‌की स्तुति प्रारम्भ की—'भगवन्! तीनों लोकोंमें निवास करनेवाले देहधारियोंका अन्तःकरण आपका निवासस्थान है, आपकी जय हो, जय हो। आप अपने गुणोंसे समग्र पापराशिका विनाश करते हैं, सम्पूर्ण देहवृन्द आपके युगल चरणारविन्दोंकी मनोहर सुगन्धका अभिवन्दन करते हैं, आप असंख्य शत्रुओंके समूहका विनाश करनेवाले हैं। आपके सिंहासनपर जो कमल है, वह प्रणाम करनेवाले समस्त देवताओं और असुरोंके अतिशय प्रकाशमान कोटि-कोटि किरीटोंसे सुशोभित होता है। आप अपने भक्तोंके हृदयमें फैली हुई अज्ञानमय अनन्त अन्धकारराशिका चन्द्रमाकी भाँति निवारण करते हैं। आपके मनोहर चरण आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक तीनों प्रकारके सन्तापसमूहका अपहरण करनेवाले हैं। संसारकी उत्पत्ति, स्थिति और संहाररूपी लीलाविलाससे विलसित जो आपकी ब्रह्मा, विष्णु और शिवरूपी त्रिविध मूर्ति है, उसकी कीर्तिमयी प्रभासे सम्पूर्ण जगत्समुदाय प्रकाशित होता है, ठीक उसी प्रकार, जैसे सूर्य अपनी किरणोंसे समस्त विश्वको प्रकाशित करते हैं। आप अपने भक्तजनोंके हृदयकमलमें भ्रमरकी भाँति शोभा पाते हैं। अपने ज्ञानमें आयी हुई सम्पूर्ण वेदविद्यासे आपका मानस सदैव प्रकाशमान रहता है। जो मुनिजन आपके भक्त हैं, वे आपके चरणोंकी सदा वन्दना किया करते हैं तथा आपके चरणनखोंके प्रक्षालनसे प्रकट हुई गंगाके जलसे अपनेको पवित्र करनेवाले देवता और मुनि आपकी चरणरेणुको हृदयसे प्रणाम करते हैं और उसीको आपकी प्रसन्नताका सार मानते हैं। जगदीश्वर! आपको नमस्कार है, नमस्कार है। जो आठ शक्तियोंके साथ विराजमान हैं, जिनके गलेमें वनमाला शोभा दे रही है, जो पीताम्बर और पुष्पोंकी मालासे शोभायमान हैं, जिनके चरण कमलवनसे सुशोभित होते हैं तथा जिनकी सम्पूर्ण इन्द्रियाँ सतत सावधान रहती हैं वे भगवान् विष्णु मेरी रक्षा करें! चल, अचल, त्रिविध तापकी शान्तिके लिये जो चन्द्रमाके समान हैं, देदीप्यमान सूर्यके सदृश जिनकी कान्ति है, जिन्होंने एक होकर भी अनेक रूप धारण कर रखे हैं, वे परम बुद्धिमान् श्रीहरि मेरी रक्षा करें। जो भक्तोंके चिन्तनके लिये नूतन अवताररूप धारण किया करते हैं, जो वैदिकमार्गमें चलनेवालोंका अनेक प्रकारसे हित किया करते हैं, जिन परमेश्वरकी यही (लोकहित साधन) रीति है तथा जो समस्त गुणोंसे शोभा पाते हैं, प्रेम और भक्तिसे सम्पन्न पुरुषोंको ही जिनकी उपलब्धि होती है और अपने सेवकोंको देखनेमात्रसे ही जिनके हृदयमें करुणा उमड़ आती है, वे भगवान् विष्णु समस्त संसारकी रक्षा करें। ये ही भगवान् अपने हाथमें दण्ड लेकर स्वेच्छाचारी मनुष्योंका यमराजकी भाँति शासन करते हैं और ये ही अपने बताये हुए नियमोंमें संलग्न रहनेवाले महापुरुषोंका पालन करनेके लिये सदा अनुकूल बनकर शोभा पाते हैं। ये भगवान् श्रीहरि हमारे सम्पूर्ण दुःखोंका निवारण करनेवाले हों।'

महात्मा गरुड़के इस प्रकार स्तुति करनेपर भगवान् विष्णुने वहाँ त्रिपथगामिनी गंगाको बुलाया। तब उस पर्वतके ऊपर साक्षात् पंचमुखी गंगा प्रकट हुईं। उन्हींके जलसे गरुड़जीने भगवान्‌को पादार्घ्य दिया। फिर वर माँगनेके लिये भगवान्‌के प्रेरित करनेपर गरुड़जीने कहा—'भगवन्! मैं एकमात्र

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

आपका वाहन होऊँ और आपके प्रसादसे देवता और दैत्योंमेंसे कोई भी बल, वीर्य एवं पराक्रमद्वारा मुझे जीत न सके। यह शिला मेरे नामसे विख्यात होकर समस्त पापोंका अपहरण करनेवाली हो तथा इसके स्मरणसे मनुष्योंको कभी विषजनित व्याधि न हो।' तदनन्तर 'बहुत अच्छा' कहकर भगवान् विष्णु अन्तर्धान हो गये।

स्कन्दने कहा—भगवन्! अब वाराहीशिलाका माहात्म्य बतलाइये।

भगवान् शिव बोले—रसातलसे पृथ्वीका उद्धार करके और युद्धमें हिरण्याक्ष नामक दैत्यको मारकर भगवान् वाराह बदरीक्षेत्रमें आये तथा प्रलयकालकी समाप्तितक वहीं बने रहे। वाराहजीने शिलाके रूपमें ही वहाँ निवास किया।

स्कन्दने कहा—प्रभो! अब नारसिंहीशिलाका माहात्म्य कहिये।

भगवान् शिव बोले—भगवान् नृसिंह अपने नखोंके अग्रभागसे ही लीलापूर्वक हिरण्यकशिपुका वध करके प्रलयकालकी अग्निके समान उद्दीप्त दिखायी देने लगे। तब दयालु देवताओंने आकर और दूर ही खड़े रहकर लीलासे अवतार-विग्रह धारण करनेवाले भगवान् विष्णुका स्तवन किया। तब अपने तेजसे समस्त देवताओं और असुरोंको भी व्याप्त करनेवाले भयानक पराक्रमी नृसिंहजी प्रसन्न होकर बोले—'देवताओ! तुमलोग मुझसे कोई वर माँगो जो तुम्हारी शान्ति और सुखका एकमात्र साधन हो।' उस समय देवताओंके स्वामी ब्रह्माजीने कहा—'भगवान् नृसिंह! आपका यह अत्यन्त उग्ररूप समस्त देहधारियोंको भयभीत करनेवाला है, अतः इसको समेट लीजिये।' उनकी प्रार्थनाके अनुसार दिव्य रूप धारण करके भगवान्ने फिर कहा—'देवताओ! मैं तुमपर प्रसन्न हूँ, बोलो तुम्हारा कौन-सा कार्य करूँ?' देवता बोले—'हमारा अभीष्ट वर यही है कि आप मनको प्रसन्न करनेवाले परम शान्त चतुर्भुजरूपसे ही हमें दर्शन दिया करें।' तब भगवान् उन्हें दिव्यदृष्टिसे देखकर विशालापुरी (बदरिकाश्रम)-को चले गये। तदनन्तर देवताओंका भय शान्त हो गया और उन्होंने जलके मध्यमें विराजमान भगवान् विष्णुका दर्शन, नमस्कार और परिक्रमा करके उन्हींमें अपना मन लगाकर अपने-अपने लोकको प्रस्थान किया। तत्पश्चात् अतिशय भक्तिभारसे नम्र तपस्वी ऋषि आये और अत्यन्त अद्भुत पराक्रमवाले भगवान् नृसिंहका दर्शन करके उनकी इस प्रकार स्तुति करने लगे—'सम्पूर्ण विश्वके स्वामी जगदीश्वर! आपको नमस्कार है, नमस्कार है। विश्वको अभय प्रदान करनेवाले विश्वमूर्ते! आप कृपाके समुद्र हैं, आपके चरणकमल सेवन करनेयोग्य तीर्थरूप हैं। लक्ष्मीपते! हमपर दया कीजिये। भक्तकी इच्छाके अनुसार विचित्र शरीर धारण करनेवाले विश्वमुख! विश्वभावन! आप प्रसन्न होइये।' तब भगवान् नृसिंहने प्रसन्न होकर ऋषियोंसे कहा—'वर माँगो।' ऋषि बोले—'जगदीश्वर! यदि आप प्रसन्न हों तो कृपा करके कभी बदरीक्षेत्रका त्याग न करें, यही हमारा अभीष्ट वर है।' भगवान्ने **'एवमस्तु'** कहकर उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। उसके बाद सब ऋषि अपने-अपने आश्रमको चले गये और भगवान् नृसिंह भी शिलारूप हो गये। जो तीन उपवास करके वहाँ भगवान् नृसिंहके जप और ध्यानमें तत्पर होता है, वह साक्षात् नृसिंहरूपधारी भगवान्‌का दर्शन पाता है। जो मनुष्य श्रद्धापूर्वक इस प्रसंगको सुनता और सुनाता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो वैकुण्ठमें निवास करता है।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

बदरीक्षेत्र और वहाँ भगवान्‌के प्रसाद-ग्रहणकी विशेष महिमा

स्कन्दने पूछा—प्रभो! भगवान् विष्णु वहाँ किसलिये निवास करते हैं? उनके दर्शन और स्पर्श आदिसे किस पुण्य और किस फलकी प्राप्ति होती है?

भगवान् शिव बोले—पहले सत्ययुगके आदिमें भगवान् विष्णु सब प्राणियोंका हित करनेके लिये मूर्तिमान् होकर रहते थे। त्रेतायुगमें ऋषिगणोंको केवल योगाभ्याससे दृष्टिगोचर होते थे। द्वापर आनेपर भगवान् सर्वथा दुर्लभ हो गये, उनका दर्शन कठिन हो गया। तब देवता और मुनि बृहस्पतिजीको आगे करके ब्रह्माजीके लोकमें गये और उन्हें प्रणाम करके बोले—'पितामह! आपको नमस्कार है। आप समस्त जगत्‌के आश्रय और शरणागतोंके दुःख दूर करनेवाले हैं। सुरेश्वर! आपका हृदय करुणासे भरा हुआ है। जबसे द्वापर आया है, विशाल बुद्धिवाले भगवान् विष्णु विशालापुरी (बदरिकाश्रम)-में नहीं दिखायी देते हैं। इसका क्या कारण है, बतलाइये?'

ब्रह्माजी बोले—देवताओ! मैं इस बातको नहीं जानता। आज तुम्हारे ही मुँहसे इसको सुना है। आओ, हमलोग क्षीरसमुद्रके तटपर चलें।

ब्रह्माजीके ऐसा कहनेपर देवता और तपोधन मुनि उन्हें आगे करके गये और क्षीरसागरपर पहुँचकर विचित्र पद एवं अर्थवाली वाणीद्वारा देवाधिदेव जगदीश्वर विष्णुकी स्तुति करने लगे। ब्रह्माजी बोले—'समस्त प्राणियोंकी हृदयगुफामें निवास करनेवाले पुरुषाध्यक्ष! आपको नमस्कार है। वासुदेव! आप सबके आधार हैं, संसारकी उत्पत्तिके कारण हैं और यह समस्त जगत् आपका स्वरूप है। आप ही सम्पूर्ण भूतोंके हेतु, पति और आश्रय हैं। एकमात्र सुन्दर पुरुषोत्तम! आप अपनी मायाशक्तिका आश्रय लेकर विचरते हैं। आप एक होकर भी अनेक रूपोंमें व्यक्त होते हैं, सर्वत्र व्यापक होनेपर भी दयावश भक्तोंके हृदयकमलमें भ्रमरकी भाँति विराजते हैं और उन्हें नाना प्रकारसे आनन्द देते हैं, आप जगदीश्वर विष्णुको मैं प्रणाम करता हूँ। जिनके नामोंकी सुधाका रस एक बार भी पी लेनेपर मनुष्य मोक्षसुखको तिनकेकी भाँति ठुकरा देता है, उन भगवान् विष्णुका मैं भजन करता हूँ।'

इस प्रकार स्तुति करनेपर भगवान् विष्णु क्षीरसागरसे ऊपर उठे। उन्हें केवल ब्रह्माजी देख सके, अन्य लोगोंने न तो उन्हें देखा और न जाना ही। भगवान्‌ने जो कुछ कहा, उसे ब्रह्माजीने सुना और भगवान्‌को प्रणाम करके देवताओंको समझाया—'देवताओ! सब लोगोंकी बुद्धि खोटी हो गयी, यह देखकर भगवान् उनकी दृष्टिसे छिप गये हैं।' यह सुनकर सब देवता स्वर्गलोकको चले गये। तब मैंने संन्यासीका रूप धारण करके नारदतीर्थसे भगवान् विष्णुको उठाया और समस्त लोकोंके हितकी इच्छासे विशालापुरीमें स्थापित कर दिया। उनके दर्शनमात्रसे बड़े-बड़े पातक क्षणभरमें नष्ट हो जाते हैं। षडानन! बदरीतीर्थके स्वामी भगवान् श्रीहरिका दर्शन करके मनुष्य धर्म और अधर्मपर विजय पाकर अनायास ही मोक्ष पा जाते हैं। बदरीतीर्थमें साक्षात् भगवान् नारायण निवास करते हैं। कलिकालको पाकर जिन्हें मोक्ष प्राप्त करनेकी इच्छा हो, उन्हें बदरीक्षेत्रका दर्शन अवश्य करना चाहिये; क्योंकि वहाँ ज्ञान और योगसाधनके बिना ही केवल एक जन्ममें मनुष्य मोक्ष प्राप्त कर लेता है। जैसे दीपकको देखनेसे अन्धकारकी बाधा नहीं रहती, वैसे ही बदरीक्षेत्रका दर्शन कर लेनेपर मनुष्यको जन्म-मृत्युका भय नहीं रह सकता। भगवान् बदरीनाथको मैं प्रणाम करता हूँ। बदरीक्षेत्रमें पग-पगपर भगवान्

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth 279 Skandpuran_Section_15_1_Back

विष्णुकी प्रदक्षिणा होती है। षडानन! बदरीक्षेत्रमें भगवान् विष्णुके प्रसादका एक दाना भी मिल जाय तो वह भोजन करनेपर समस्त पापोंको उसी प्रकार शुद्ध करता है जैसे भूसीकी आग सोनेको तपाकर शुद्ध करती है। भगवान् विष्णु नारद आदि ऋषियोंके साथ जिस अन्नको ग्रहण करते हैं वह प्रसाद अन्तःकरणकी शुद्धिके लिये सबको बिना विचारे भोजन करना चाहिये। भगवान्का प्रसाद ग्रहण करनेके लिये देवता भी बदरीक्षेत्रमें आते हैं और भगवान्के भोजन कर लेनेके बाद प्रसाद लेकर अपने लोकको लौट जाते हैं। इसी प्रकार प्रह्लाद आदि भक्त वह प्रसाद लेकर भगवान्के धाममें जाते हैं। बचपन, जवानी और बुढ़ापेमें जान-बूझकर भी जो पाप किया गया है वह बदरीक्षेत्रमें जाकर भगवान् विष्णुका प्रसाद भक्षण करनेपर नष्ट हो जाता है। जिस पापके लिये प्राणोंका अन्त कर देना ही प्रायश्चित्त बतलाया गया है वह भी बदरीक्षेत्रमें भगवान् विष्णुका प्रसाद खानेसे निवृत्त हो जाता है। बदरीक्षेत्रमें भगवान् विष्णुका प्रसाद भक्षण करनेसे मनुष्य भगवान्की सालोक्य मुक्तिको पाता है। जिसके हृदयमें भगवान् विष्णुका रूप, मुखमें भगवान्का नाम, पेटमें श्रीहरिका प्रसाद और मस्तकपर निर्माल्यसहित भगवान्का चरणामृत है, वह विष्णुस्वरूप ही है। ब्रह्महत्या, मदिरापान, चोरी और गुरुपत्नीगमन— ये महापाप बदरीक्षेत्रमें भगवान् विष्णुका प्रसाद ग्रहण करनेसे नष्ट हो जाते हैं। पृथ्वीमें जो तीर्थ, व्रत और नियम हैं, उनसे भी शीघ्र बदरीक्षेत्रमें भगवान्का चरणामृत पवित्र करनेवाला है। यदि बदरीक्षेत्रमें मनुष्यको एक बूँद भी भगवान्का चरणामृत मिल जाय तो उसको क्या दुर्लभ है? प्रायश्चित्त तभीतक गर्जना करते हैं जबतक बदरीक्षेत्रमें भगवान्का चरणामृत नहीं मिल जाता है। जिन मनुष्योंको अनायास ही मोक्षके मार्गपर जानेकी इच्छा हो, उन्हें प्रयत्नपूर्वक बदरीक्षेत्रमें भगवान् विष्णुके प्रसादका भक्षण करना चाहिये। जो मनुष्य बदरीक्षेत्रमें दिये हुए दानको ग्रहण करते हैं वे पापी जन्म-मरणरूप संसारके भागी होते हैं। उनको कभी यात्राका फल नहीं मिलता। बदरीक्षेत्रमें संन्यासियोंको भोजन देनेसे अपराधी भी भगवान्को प्रिय हो जाता है। विष्णुके समान कोई देवता नहीं, विशालाके समान कोई पुरी नहीं, संन्यासीके समान कोई सेवाका पात्र नहीं और ऋषितीर्थ (बदरीक्षेत्र)-के समान कोई तीर्थ नहीं है*। संन्यासियोंको यहाँ विशेष फलकी प्राप्ति बतायी गयी है। दस बार वेदान्तश्रवणसे जो पुण्य कहा गया है, वह बदरीतीर्थके दर्शनमात्रसे संन्यासियोंको प्राप्त हो जाता है। ज्ञानी, अज्ञानी, संन्यासी अथवा व्रतपरायण सभी पुरुषोंको अभीष्ट फलकी प्राप्तिके लिये बदरीक्षेत्रका अवश्य दर्शन करना चाहिये।

कपालतीर्थ, ब्रह्मतीर्थ और वसुधारातीर्थकी महिमा

स्कन्द बोले—महेश्वर! जहाँ आपके हाथसे कपाल गिरा है, कृपया उस तीर्थका माहात्म्य बतलाइये।

भगवान् शिवने कहा—वत्स! वह अत्यन्त गोपनीय तीर्थ है। देवता और असुर सभी वहाँ मस्तक झुकाते हैं। ब्रह्महत्यारा मनुष्य भी वहाँ स्नान करनेमात्रसे शुद्ध हो जाता है। पापमोचन कपालतीर्थमें पाँच तीर्थ हैं। उनमें किया हुआ स्नान, तप और दान सब अक्षय होता है। वहाँ विधिपूर्वक पिण्डदान देकर पितरोंको नरकसे

* न विष्णुसदृशो देवो न विशालासमा पुरी। न भिक्षुसदृशं पात्रमृषितीर्थसमं न हि॥ (स्क० पु० वै० ब० ५। ५८)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

उद्धार करे। यह पितृतीर्थ कहा गया है। वहाँ तिलसे तर्पण करनेपर पितर उत्तम स्वर्गलोकको जाते हैं। जो मनुष्य एकाग्रचित्त हो स्थिरतापूर्वक वहाँ एक दिन और एक रात जपमें लगा रहता है, उसके महान् मनोरथकी सिद्धि तत्काल हो जाती है।

स्वामिकार्तिकेयने पूछा—पिताजी! ब्रह्मतीर्थ कहाँ है और उसका कैसा फल बताया गया है?

भगवान् शिवने कहा—एक समय भगवान् विष्णुकी नाभिसे निकले हुए कमलपर प्रजापति ब्रह्माजी विराजमान थे। उसी समय मधु और कैटभ नामक दैत्य ब्रह्माजीसे वेदोंको चुराकर चल दिये। तब ब्रह्माजीने भगवान् विष्णुके द्वारा प्रतिपालित बदरीतीर्थमें आकर उन्हें प्रणाम किया और उन सनातन भगवान्‌की स्तुति की। तब भगवान् श्रीहरि हयग्रीव अवतार धारण करके एक कुण्डसे प्रकट हुए। उनके हाथोंमें शंख, चक्र आदि आयुध शोभा पा रहे थे। उनकी कटिमें पीताम्बर सुशोभित था। श्रीअंगोंकी कान्ति श्वेत थी। वे चार भुजाधारी भगवान् हयग्रीव दर्पपूर्ण दृष्टिसे सब ओर देख रहे थे। उनका स्वरूप अद्भुत था, नेत्रोंसे कठोरता प्रकट हो रही थी। उनकी गर्दनके चंचल बालोंसे टकराकर मेघोंकी घटा छिन्न-भिन्न हो जाती थी। वे अपने दिव्य तेजसे समस्त ज्योतिर्मय ग्रहोंकी प्रभाको तिरस्कृत कर रहे थे। भगवान् बड़ी कृपा करके इस अद्भुत रूपमें ब्रह्माजीके आगे खड़े हुए। उन्हें देखकर ब्रह्माजीभी आश्चर्यचकित हो उठे। उनके नेत्रोंमें प्रसन्नता छा गयी और वे प्रणाम करके भगवान्‌की स्तुति करने लगे।

ब्रह्माजी बोले—जिनकी नाभिसे कमल प्रकट हुआ है, उन भगवान् विष्णुको नमस्कार है। लक्ष्मीजीके आश्रयभूत नारायण! आपको नमस्कार है। लक्ष्मीनिवास! विशाल वनमाला धारण करनेवाले आपको नमस्कार है। विज्ञानस्वरूप! आपको नमस्कार है। सबकी हृदयगुफामें निवास करनेवाले आपको नमस्कार है। जो समस्त इन्द्रियोंके स्वामी और परम शान्त हैं उन भगवान् विष्णुको नमस्कार है। अपने भक्तोंकी रक्षाके लिये शरीर धारण करनेवाले भगवान् शार्ङ्गपाणिको नमस्कार है। अनन्त क्लेशोंका नाश करनेवाले गदाधारी ब्रह्मको नमस्कार है। संसारकी विविध असार वस्तुओंसे निवृत्त करनेके लिये कर्म करनेवाले भगवान्‌को नमस्कार है। समस्त जीवोंके रक्षक विजयशील विष्णुको नमस्कार है। विश्वम्भर! समस्त गुणवृत्तियोंसे निवृत्त होनेवाले आपको नमस्कार है। देवताओं और असुरोंके श्रेष्ठतम अवलम्बन! सांसारिक विषयोंसे निवृत्ति और समस्त विश्वकी रक्षा—ये दोनों आपकी कीर्तियाँ हैं। आपको नमस्कार है।

सबके हृदयमें रहनेवाले सर्वज्ञ महेश्वर श्रीविष्णुकी ब्रह्माजीने जब इस प्रकार स्तुति की, तब वे शीघ्र ही वहाँ गये और उन दोनों दैत्योंको बाँधकर उन्होंने लीलापूर्वक उन्हें मार डाला। तत्पश्चात् वेदोंको लेकर वे ब्रह्माजीके समीप आये और ब्रह्माजीको देकर स्वरूपमें स्थित हो गये। तबसे ब्रह्माद्वारा प्रकट किया हुआ वह तीर्थ तीनों लोकोंमें ब्रह्मकुण्डके नामसे विख्यात हुआ। उसके दर्शनमात्रसे महापातकी मनुष्य भी पापरहित हो तत्काल ब्रह्मलोकमें चले जाते हैं। जो लोग यहाँ स्नान और व्रत करते हैं, वे ब्रह्मलोकको भी लाँघकर विष्णुलोकमें जाते हैं।

स्कन्दने पूछा—वेदोंको पाकर ब्रह्माजीने क्या किया?

श्रीमहादेवजी बोले—वत्स! बदरिकाश्रमतीर्थ देखकर चारों वेद ब्रह्माजीके साथ जाना नहीं चाहते थे। तब सिद्धोंके समझानेपर वेदोंने दो स्वरूप धारण किये। द्रवरूपसे तो वे बदरिकाश्रमतीर्थमें रह गये और ज्ञानरूपसे ब्रह्माजीके साथ गये। तब ब्रह्माजीने (वेदोंके अनुसार) विधिपूर्वक तीनों लोकोंको रचा। (इस ओर) ब्रह्मकुण्डमें, जहाँ द्रवरूपी वेद स्थित हैं, किये हुए स्नान, दान

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

और तप प्रलयकालतक नष्ट नहीं होते। फलरूपसे वैदिक ज्ञानकी अभिलाषा रखकर जो मनुष्य वहाँ तीन उपवास करते हैं, वे चारों वेदोंकी व्याख्या करनेवाले होते हैं। वेदतीर्थसे उत्तर जलरूपा सरस्वती हैं जो अपने नामका जप करनेपर मनुष्योंकी जड़ताका नाश करती हैं। सरस्वतीके जलमें स्थित होकर एकाग्रचित्तसे जो जप करता है, उसका मन्त्र कभी खण्डित नहीं होता। जगदीश्वर विष्णुने तीनों लोकोंका हित करनेके लिये वाग्वैभव प्रदान करनेवाली सरस्वती नदीका विधिपूर्वक यहाँ स्थापन किया है। इस तीर्थके दर्शन, स्पर्श, स्नान, पूजन, स्तुति और प्रणाम करनेसे मनुष्यके कुलमें कभी सरस्वतीसे बिछोह नहीं होता। सरस्वतीके दक्षिण भागमें द्रवधारा नामसे प्रसिद्ध इन्द्रपद तीर्थ है, जहाँ इन्द्रने तपस्या की थी। प्रत्येक मासके शुक्लपक्षमें त्रयोदशी तिथिको इन्द्रको सन्तुष्ट करनेवाले उस तीर्थमें स्नान करके दो उपवास और भगवान् विष्णुका पूजन करनेसे मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो इन्द्रलोकमें प्रतिष्ठित होता है। वहीं मानसोद्भेद तीर्थ है जो सब पापोंका नाश करनेवाला है। वह सब जीवोंके लिये दुर्लभ है। वहाँ जो महर्षि हैं, वे हृदयग्रन्थिका भेदन करते हैं, सब संशयोंको काटते हैं और कर्मबन्धनको क्षीण कर डालते हैं। इसीलिये उस तीर्थका नाम मानसोद्भेद है। यदि भाग्यवश मनुष्य वहाँ एक बूँद भी जल पा जाय तो तत्काल उसकी मुक्ति हो जाती है। जो मनके विषयोंको जीत चुके हैं, जिनकी बुद्धि अत्यन्त तीक्ष्ण है और जो फल, मूल एवं जलका आहार करके रहते हैं, ऐसे महर्षिगण यहाँकी पर्वतीय गुफाओंमें निवास करते हैं। ये मुनि फलाहार, शुद्ध वायुसेवन, गुफाका निवास, झरनोंके जलमें स्नान तथा आश्रमधर्मका पालन करते हैं और वल्कल या ऊर्णामय उत्तम वस्त्र धारण करके तीनों समयके स्नानसे दुर्जय इन्द्रियोंके पराक्रमपर भी विजय पा चुके हैं। यहाँपर बिना इच्छाके भी मुक्ति होती है। यदि कोई प्रमादवश किसी वस्तुकी कामना करता है तो उस कामनाके अनुसार फल भोग लेनेपर फिर उसकी मुक्ति होती ही है। मानसोद्भेदतीर्थसे पश्चिम वसुधारा नामसे प्रसिद्ध एक मनोहर तीर्थ है। कहते हैं कि त्रिलोकीमें बदरिकाश्रम सब तीर्थोंसे श्रेष्ठ है, यह बात नारदजीके मुँहसे सुनकर सभी वसु वहाँ गये। उन्होंने पत्ते चबाकर और जल पीकर वहाँ बड़ी कठोर तपस्या की। इससे उन्हें भगवान्‌का दर्शन प्राप्त हुआ और वे आनन्दमें डूब गये। इस प्रकार नारायणदेवका दर्शन करके उनसे मनोरम वरदानके रूपमें हरिभक्ति, सुख और ऐश्वर्य पाकर वे बहुत प्रसन्न हुए। इस वसुतीर्थमें स्नान और आचमन करके भगवान् जनार्दनका पूजन करनेसे मनुष्य इहलोकमें सुख भोगता और अन्तमें परमपदको प्राप्त होता है। यहाँ पुण्यात्मा पुरुषोंको जलके मध्यसे ज्योति निकलती दिखायी देती है, जिसे देखकर मनुष्य फिर गर्भवासमें नहीं आता। यहाँ तीन दिनतक पवित्र हो उपवास और भक्तिपूर्वक भगवान् जनार्दनकी पूजा करनेसे साधुपुरुष सिद्धोंका दर्शन पाते हैं। जो लोभी और चंचल हैं, जो सत्य नहीं बोलते, परिहासके व्याजसे पराये धन और परायी स्त्रीको कपटसे ग्रहण करना चाहते हैं, जिन्होंने सत्कर्मोंका त्याग कर दिया है, जो अशान्त और अपवित्र रहते हैं, ऐसे मलिनचित्त मानवोंको यहाँ कोई फल नहीं मिलता। जो साधनसंलग्न, शान्त, एकाकी और विधिमार्गका पालन करनेवाले हैं, उनके द्वारा यथाशक्ति किये हुए जप, तप, होम, दान और व्रत आदि कर्म यहाँ अक्षय फल देनेवाले होते हैं। जो मनुष्य भक्तिभावसे विभूषित हो इस पुण्यतीर्थके विषयको पढ़ते-पढ़ाते एवं प्रकाशित करते हैं, वे भगवान् विष्णुके कल्याणमय धाममें जाते हैं।

~~~o~~~

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth
~~~

पंचतीर्थ, सोमतीर्थ, द्वादशादित्यतीर्थ, चतुःस्त्रोततीर्थ, सत्यपदतीर्थ तथा नर-नारायणाश्रमकी महिमा

भगवान् शिवजी कहते हैं—वहाँसे नैर्ऋत्य कोणमें पाँच धाराएँ गिरती हैं, उन्हें द्रवरूपमें पाँच तीर्थ जानो, जिनके नाम इस प्रकार हैं—प्रभास, पुष्कर, गया, नैमिष और कुरुक्षेत्र। उनमें विधिपूर्वक स्नान और नित्यकर्म करके पवित्र हुआ मनुष्य उन-उन तीर्थोंका फल पाता और अन्तमें परम पदको प्राप्त होता है। उन तीर्थोंमें भगवान् विष्णुकी पूजा करके मानव इस लोकमें बहुत सुख भोगता और अन्तमें विष्णुका सालोक्य प्राप्त करता है। उसके बाद सोमकुण्ड नामक निर्मल तीर्थ हैं, जहाँ चन्द्रमाने तपस्या की है। पूर्वकालमें अत्रिकुमार चन्द्रमा जब युवावस्थाको प्राप्त हुए, तब उन्होंने गन्धर्वोंसे स्वर्गवासियोंके सुखकी बार-बार प्रशंसा सुनकर अपने पितासे पूछा कि 'स्वर्गीय सुख कैसे मिलता है।' अत्रिने कहा—'बेटा! तपस्या, यम और नियमोंके द्वारा भगवान् विष्णुकी आराधना की जाय तो साधुपुरुषोंके लिये इहलोक और परलोकमें कौन-सी वस्तु दुर्लभ है?' तदनन्तर नारदजीसे यह सुनकर कि 'बदरीक्षेत्र अत्यन्त निर्मल है' वे अपने पिताको प्रणाम करके उत्तर दिशाको गये। बदरीतीर्थमें पहुँचकर उन्होंने पवित्र फलोंसे भगवान् विष्णुका पूजन किया और परम उत्तम अष्टाक्षर '**ॐ नमो नारायणाय**' मन्त्रका जप प्रारम्भ किया। दीर्घकालतक जप-तप करनेके पश्चात् भक्तवत्सल भगवान् प्रसन्न होकर चन्द्रमासे बोले—'सुव्रत! कोई वर माँगो'। तब चन्द्रमाने उठकर बार-बार प्रणाम करके कहा—'भगवन्! मैं आपके प्रसादसे ग्रह, नक्षत्र, तारा, ओषधिवर्ग तथा सम्पूर्ण ब्राह्मणोंका राजा होना चाहता हूँ।'

श्रीभगवान् बोले—वत्स! तुमने दुर्लभ वर माँगा है तथापि तुम्हें देता हूँ—ऐसा ही होगा।

तब सम्पूर्ण देवताओंने आकर राजा सोमका विधिपूर्वक अभिषेक किया। उसके बाद वे उज्ज्वल रथके द्वारा स्वर्गको चले गये। तबसे वह तीर्थ सोमकुण्डके नामसे प्रसिद्ध हुआ, जिसके दर्शनमात्रसे मनुष्य निष्पाप हो जाते हैं। उसमें आचमन करनेसे निन्दित मनुष्य भी चन्द्रलोकमें जाते हैं और वहाँ विधिपूर्वक स्नान करके देवताओं तथा पितरोंका तर्पण करनेवाला पुरुष चन्द्रलोकको भेदकर विष्णुलोकको प्राप्त होता है। वहाँ तीन राततक भगवान् विष्णुकी पूजा करके जप करनेवाले पुरुषको विशेषरूपसे मन्त्रसिद्धि प्राप्त होती है। मनुष्य मन, वाणी और क्रियाद्वारा जो पाप करता है वह सब वहाँ सोमकुण्डके दर्शनसे नष्ट हो जाता है। वहाँसे आगे द्वादशादित्य नामक तीर्थ है जहाँ तपस्या करके कश्यपजीके पुत्रने सूर्यकी पदवी प्राप्त की है। वहाँ प्रत्येक रविवारको सप्तमी तिथिमें अथवा संक्रान्तिके अवसरपर विधिपूर्वक स्नान करनेमात्रसे मनुष्य सात जन्मोंके पापसे मुक्त हो जाता है। महान् रोगसे पीड़ित पुरुष यदि यहाँ स्नान करके जल पीकर पवित्र हो तो शीघ्र ही वह रोगसे छुटकारा पा जाता है। इसके सिवा वहाँ चतुःस्त्रोत नामक तीर्थ है। उस वैष्णवक्षेत्रमें भगवान्‌की आज्ञाके अनुसार धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—ये चारों पुरुषार्थ द्रवरूप होकर स्थित हैं जो सब प्राणियोंकी मुक्तिके हेतु हैं। पूर्व आदि दिशाओंमें क्रमशः उनकी स्थिति है अर्थात् पूर्वमें धर्म, दक्षिणमें अर्थ, पश्चिममें काम और उत्तरमें मोक्ष नामक स्त्रोत है। ये धर्मप्रधान पुरुषोंकी भाँति मूर्तिमान् होकर स्थित हैं। जो क्रमशः विद्यमान उन चारों

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

तीर्थोंका सेवन करते हैं, उन्हें सदैव प्रसन्नता प्राप्त होती है। पूर्वोपार्जित पुण्यपुंजके प्रभावसे श्रेष्ठ जन्म पाकर जो मनुष्य साधनमें प्रवृत्त हैं वे उन चारों पुरुषार्थोंको देखते हैं और जो ग्राम्यवधुओंके क्रीडामृग—विषयभोगोंमें आसक्त हैं वे उन पुरुषार्थोंका दर्शन नहीं कर पाते।

उसके बाद सत्यपद नामक तीर्थ है जो त्रिकोणाकार कुण्डके रूपमें विद्यमान है। वह सब पापोंका नाश करनेवाला है। एकादशी तिथिको उस पावन तीर्थमें साक्षात् भगवान् विष्णु पधारते हैं। तत्पश्चात् ऋषि, मुनि, तपस्वी उस कुण्डमें स्नान करनेके लिये आते हैं। उस तीर्थके दर्शनसे बड़े-बड़े पातक भाग जाते हैं। उसमें स्नान करके बुद्धिमान् पुरुष सत्यलोकको प्राप्त होता है और वहाँसे उसका मोक्ष हो जाता है। जो वहाँ एक दिन और एक रात उपवास करके भगवान् जनार्दनकी यथाशक्ति पूजा करता है वह जीवन्मुक्तिका भागी होता है। त्रिकोण आकृतिसे सुशोभित सत्यपदतीर्थ सब पापोंसे मुक्ति चाहनेवाले पुरुषोंके द्वारा प्रयत्नपूर्वक दर्शन करनेयोग्य है। वहाँ जप, तप, हरिस्तोत्र, पूजा, स्तुति और प्रणाम करनेवाले पुरुषोंकी महिमाका वर्णन ब्रह्माजी भी नहीं कर सकते।

तदनन्तर अत्यन्त निर्मल भगवान् नर-नारायणका आश्रम है। वहाँका स्वच्छ जल दो प्रकारका दिखायी देता है। उन दोनों जलोंके सेवनसे उन दोनों नर और नारायणके प्रति प्रीति होती है, यह निश्चय किया गया है। वहाँ स्नान और यत्नपूर्वक भगवान्का पूजन करनेसे मनुष्य तत्काल सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। धर्मकी पत्नी मूर्तिसे भगवान्का नर और नारायणके रूपमें अवतार हुआ। वे दोनों माता-पिताकी आज्ञा लेकर तपस्याके लिये गये और नर-नारायण नामवाले दोनों पर्वतोंके बीच तपस्याकी साक्षात् मूर्तिके समान स्थित हो गये। उस तीर्थमें स्नान करके भगवान् विष्णुका पूजन करनेसे मनुष्य नरसे नारायण हो जाता है। वहाँ प्राणियोंका कल्याण करनेवाले साक्षात् भगवान् नारायण तपोमूर्ति होकर स्थित हैं। वहाँ वायु श्रीलक्ष्मीपतिके चरणारविन्दोंसे प्राप्त होनेवाली सुगन्ध लेकर बहती है, जिसका स्पर्श होनेसे कलियुगके पापसे आतुर हुए मनुष्योंका पाप नष्ट हो जाता है। उस तीर्थमें जाकर मुनियोंकी बुद्धि बाह्य पदार्थोंको नहीं देखती, केवल भगवच्चरणारविन्दोंके चिन्तनमें संलग्न रहती है और वहाँ विराजमान साक्षात् भगवान् विष्णु क्रमशः वहाँकी यात्रा करनेवाले पुरुषोंको अपना पद प्रदान करते हैं। उस नारायणगिरिपर सब पापोंका नाश करनेवाले बहुत-से तीर्थ हैं जिन्हें मैं जानता हूँ, साधारण मनुष्य नहीं जानते। उसके दक्षिण भागमें जगदीश्वर विष्णुके अस्त्र विद्यमान हैं, जिनके दर्शनसे मनुष्य अस्त्र-शस्त्रोंके भयका भागी नहीं होता। जो एकाग्रचित्त हो भक्तिपूर्वक इस माहात्म्यको सुनता अथवा सुनाता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो भगवान् विष्णुका सालोक्य प्राप्त करता है।

मेरुतीर्थ, लोकपालतीर्थ, दण्डपुष्करिणी, गंगासंगम तथा धर्मक्षेत्र आदिका माहात्म्य और ग्रन्थका उपसंहार

भगवान् शिव कहते हैं—ब्रह्मकुण्डसे दक्षिण नरका निवासभूत महान् पर्वत है। जहाँ भगवान् श्रीहरिने लोकसुन्दर मेरुपर्वतको स्थापित किया है। जब भगवान्का निवास विशालापुरीमें हुआ,

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

तब विद्याधर और चारणोंसहित सम्पूर्ण देवता, महर्षि और सिद्ध भगवद्दर्शनके लिये उत्कण्ठित हो मेरुपर्वतके शिखरोंको छोड़कर वहाँ आ गये। भगवान्‌के दर्शनसे उन्हें ऐसा आह्लाद प्राप्त हुआ कि देवलोक तुच्छ प्रतीत होने लगा। तब भगवान्‌ने उनके सुखके लिये एक ही हाथसे मेरुपर्वतके शिखरोंको उखाड़ लिया और लीलापूर्वक उन्हें यहाँ स्थापित कर दिया; क्योंकि भगवान् विष्णु सबकी प्रीति बढ़ानेवाले हैं। उस समय वहाँ सुवर्णनिर्मित पर्वतको देखकर सब देवता बड़े प्रसन्न हुए और रोग-शोकसे रहित भगवान् नारायणका उन्होंने इस प्रकार स्तवन किया।

देवता बोले—जो हम देवताओंके सुखके लिये तथा संसारबन्धनजनित दुःखको दूर करनेके लिये लीलामय शरीर धारण करके स्वर्णमय पर्वतको यहाँ ले आये हैं तथा जिन्होंने एकमात्र देवताओंका पक्ष लेकर सैकड़ों दैत्योंपर विजय पायी है, उग्र तपस्याकी दिव्य शोभासे सम्पन्न उन भगवान् नारायणको हम नमस्कार करते हैं। जो दीनजनोंकी पीड़ारूपी रूईको भस्म करनेके लिये अग्निमय पर्वत हैं, हमपर दया करके जो हमें दयालु पिताकी भाँति उत्तम शिक्षा देते हैं, त्रिभुवनकी रक्षा करनेमें समर्थ दृष्टिपातसे जो पूर्णसुधाका समुद्र प्रवाहित करते हैं, वे भगवान् विपत्तियोंसे हमारी रक्षा करें। ऋषि बोले—'यह समस्त संसार जिनसे व्याप्त होकर शोभा पा रहा है, उन आप सनातन प्रभुको हम प्रणाम करते हैं।' सिद्ध बोले—'भगवान्‌की दयाके लवलेशमात्रसे महापुरुष सिद्धिको प्राप्त हुए हैं तथा दूसरे संसारी मनुष्य भी उनकी कृपाके कणमात्रसे भयंकर संसारसागरसे शीघ्र ही पार हो गये हैं। ऐसा हमारी बुद्धिका निश्चय है।' विद्याधर बोले—'सर्वव्यापी प्रभो! आप सद्‌गुणोंके समूह, कल्याणकी मूर्ति परमेश्वर और सम्मानके विस्तारमें हेतु हैं, आपके चरणारविन्दोंके रसका आस्वादन करके हम कृतार्थ हो गये।'

तब भगवान् विष्णुने प्रसन्न होकर देवताओंसे कहा—'तुमलोग कोई वर माँगो।' यह आज्ञा पाकर देवताओंने वरदाताओंमें श्रेष्ठ श्रीहरिसे कहा—'आप देवताओंके भी देवता और साक्षात् लक्ष्मीपति हैं। यदि आप सन्तुष्ट हैं तो हम यही चाहते हैं कि आप बदरीतीर्थ और मेरुपर्वतका कभी त्याग न करें। जो पुण्यभागी मनुष्य यहाँ मेरु-शिखरका दर्शन करते हैं, आपके प्रसादसे उनका मेरुगिरिपर निवास हो और वहाँ चिरकालतक उत्तम भोग भोगनेके पश्चात् उनका आपमें लय हो।' तब **'एवमस्तु'** कहकर भगवान् श्रीहरि अन्तर्धान हो गये।

इसके पश्चात् परम उत्तम लोकपालतीर्थ है जहाँ भगवान् विष्णुने स्वयं ही लोकपालोंको स्थापित किया है। एक समय भगवान् विष्णु मेरुनिवासी देवताओंको यहाँ लानेकी इच्छासे वहाँ गये और देवताओं तथा प्रधान-प्रधान ऋषियोंके चरित्रको देखनेके लिये उद्यत हुए। भगवान्‌को वहाँ उपस्थित देख सब देवताओंने सहसा उठकर नमस्कार किया और विनयपूर्वक

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

कहा—'भगवन्! प्रसन्न होइये।' क्षणभर विश्राम करनेके पश्चात् भगवान्ने वहाँकी विरल भूमिको भलीभाँति देखा और देवताओं तथा ऋषियोंका वहाँ एक साथ रहना उचित न समझकर हँसते हुए कहा—'लोकपालो! आपको यहाँ नहीं रहना चाहिये। आपलोगोंके योग्य स्थानकी व्यवस्था मैंने पहलेसे ही कर रखी है।' यों कहकर उन्होंने लोकपालोंको बुलाया और बदरीक्षेत्रमें सुन्दर पर्वतके शिखरपर स्थापित किया। वहीं जलकी इच्छासे उन्होंने शैलदण्डके द्वारा एक पर्वतको तोड़कर मनोहर सरोवर बनाया जहाँ भगवान् विष्णु द्वादशी और पूर्णिमाको स्नान करनेके लिये आते हैं। तत्पश्चात् तपस्वी ऋषि-मुनि वहाँ विधिपूर्वक स्नान करके जलमें असंग परम ज्योतिका दर्शन करते हैं। सब तीर्थोंमें स्नान करनेका जो फल कहा गया है, वह दण्डपुष्करिणीके दर्शनमात्रसे तत्काल प्राप्त हो जाता है। वहाँ मनीषी पुरुषोंके सभी काम्य कर्म सफल होते हैं तथा यज्ञ, दान और तप सब अक्षय हो जाते हैं। वहाँ ज्येष्ठ मासमें शुक्ल पक्षकी द्वादशी तिथिको विधिपूर्वक स्नान करनेसे मनुष्य कृतार्थ हो जाता है। जो सदा भगवान्के निकट स्थान प्राप्त करना चाहता हो उसे प्रयत्नपूर्वक बदरीक्षेत्रका सेवन करना चाहिये। मानसोद्भेदतीर्थके समीप जो गंगाजीमें संगम है वह निर्मल एवं पवित्र तीर्थ प्रयागसे भी अधिक महत्त्वशाली है। तीस हजार वर्षोंतक वायु पीकर तपस्या करनेसे जो फल प्राप्त होता है, वह गंगासंगममें स्नान करनेमात्रसे मिल जाता है।

संगमसे दक्षिण भागमें धर्मक्षेत्र है जहाँ मूर्तिके गर्भसे नर-नारायण ऋषिकी उत्पत्ति हुई सुनी जाती है। मर्त्यलोकमें वह सबसे उत्तम एवं पावन क्षेत्र है। वहाँ भगवान् धर्म चारों चरणोंसे स्थित हैं। वहाँ मनुष्य यज्ञ, दान, तप आदि जो कोई भी सत्कर्म करते हैं, उसके पुण्यका करोड़ों कल्पोंमें भी क्षय नहीं होता। वहाँसे दक्षिण भागमें उर्वशीसंगम नामक तीर्थ है जो स्नानमात्रसे ही मनुष्योंके सब पापोंको हर लेनेवाला है। उसके बाद कूर्मोद्धारतीर्थ है जो भगवान् विष्णुकी भक्तिका एकमात्र साधन है। वहाँ स्नान करनेसे ही प्राणियोंके अन्तःकरणकी शुद्धि हो जाती है। तदनन्तर ब्रह्मावर्ततीर्थ है जो साक्षात् ब्रह्मलोककी प्राप्तिका प्रधान कारण है। उस तीर्थके दर्शनसे ही सब पापोंका क्षय हो जाता है। वत्स! यहाँ बहुत-से तीर्थ हैं जो देहधारियोंके लिये दुर्गम हैं। मैंने तुम्हारे स्नेहवश संक्षेपसे बतलाया है। जो मनुष्य सदा एकाग्रचित्त होकर प्रतिदिन इस माहात्म्यको सुनता या सुनाता है वह सब पापोंसे मुक्त हो भगवान् विष्णुके लोकमें जाता है। जो मनुष्य एक मासतक एकाग्रचित्त हो भक्तिपूर्वक इसको सुनता है उसके दुर्लभ अभीष्टकी भी सिद्धि हो जाती है। जिन घरोंमें इस माहात्म्यका पाठ होता है वहाँ आधि-व्याधिका घोर भय, दरिद्रता और कलह—ये कभी नहीं होते हैं।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

कार्तिकमास-माहात्म्य

कार्तिकमासकी श्रेष्ठता तथा उसमें करनेयोग्य स्नान, दान, भगवत्पूजन आदि धर्मोंका महत्त्व

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत्॥

'भगवान् नारायण, नरश्रेष्ठ नर तथा सरस्वतीदेवीको नमस्कार करके जयस्वरूप इतिहास-पुराणका पाठ करना चाहिये।'

ऋषि बोले—सूतजी! हमलोग कार्तिकमासका माहात्म्य सुनना चाहते हैं।

सूतजी बोले—ऋषियो! तुमने मुझसे जो प्रश्न किया है, उसीको ब्रह्मपुत्र नारदजीने जगद्गुरु ब्रह्मासे इस प्रकार पूछा था—'पितामह! मासोंमें सबसे श्रेष्ठ मास, देवताओंमें सर्वोत्तम देवता और तीर्थोंमें विशिष्ट तीर्थ कौन हैं, यह बताइये।'

ब्रह्माजी बोले—मासोंमें कार्तिक, देवताओंमें भगवान् विष्णु और तीर्थोंमें नारायणतीर्थ (बदरिकाश्रम) श्रेष्ठ है। ये तीनों कलियुगमें अत्यन्त दुर्लभ हैं।

इतना कहकर ब्रह्माजीने भगवान् राधाकृष्णका स्मरण किया और पुनः नारदजीसे कहा—बेटा! तुमने समस्त लोकोंका उद्धार करनेके लिये यह बहुत अच्छा प्रश्न किया। मैं कार्तिकका माहात्म्य कहता हूँ। कार्तिकमास भगवान् विष्णुको सदा ही प्रिय है। कार्तिकमें भगवान् विष्णुके उद्देश्यसे जो कुछ पुण्य किया जाता है, उसका नाश मैं नहीं देखता। नारद! यह मनुष्ययोनि दुर्लभ है। इसे पाकर मनुष्य अपनेको इस प्रकार रखे कि उसे पुनः नीचे न गिरना पड़े। कार्तिक सब मासोंमें उत्तम है। यह पुण्यमय वस्तुओंमें सबसे अधिक पुण्यतम और पावन पदार्थोंमें सबसे अधिक पावन है। इस महीनेमें तैंतीसों देवता मनुष्यके सन्निकट हो जाते हैं और इसमें किये हुए स्नान, दान, भोजन, व्रत, तिल, धेनु, सुवर्ण, रजत, भूमि, वस्त्र आदिके दानोंको विधिपूर्वक ग्रहण करते हैं। कार्तिकमें जो कुछ दिया जाता है, जो भी तप किया जाता है, उसे सर्वशक्तिमान् भगवान् विष्णुने अक्षय फल देनेवाला बतलाया है। भगवान् विष्णुके उद्देश्यसे मनुष्य कार्तिकमें जो कुछ दान देता है, उसे वह अक्षयरूपमें प्राप्त करता है। उस समय अन्नदानका महत्त्व अधिक है। उससे पापोंका सर्वथा नाश हो जाता है। जो कार्तिकमास प्राप्त हुआ देख पराये अन्नको सर्वथा त्याग देता है, वह अतिकृच्छ्र यज्ञका फल प्राप्त करता है। कार्तिकमासके समान कोई मास नहीं, सत्ययुगके समान कोई युग नहीं, वेदोंके समान कोई शास्त्र नहीं और गंगाजीके समान दूसरा कोई तीर्थ नहीं है*। इसी प्रकार अन्नदानके सदृश दूसरा कोई दान नहीं है। दान करनेवाले पुरुषोंके लिये न्यायोपार्जित द्रव्यके दानका सुअवसर दुर्लभ है, उसका भी तीर्थमें दान किया जाना तो और भी दुर्लभ है। मुनिश्रेष्ठ! पापसे डरनेवाले मनुष्यको कार्तिकमासमें शालग्रामशिलाका पूजन और भगवान् वासुदेवका स्मरण अवश्य करना चाहिये। दान आदि करनेमें असमर्थ मनुष्य प्रतिदिन प्रसन्नतापूर्वक नियमसे भगवन्नामोंका स्मरण करे। कार्तिकमें भगवान् विष्णुकी प्रसन्नताके लिये विष्णु-मन्दिर अथवा शिव-मन्दिरमें रातको जागरण करे। शिव और विष्णुके मन्दिर न हों तो किसी भी देवताके

* न कार्तिकसमो मासो न कृतेन समं युगम्। न वेदसदृशं शास्त्रं न तीर्थं गङ्गया समम्॥
(स्क० पु०, वै० का० मा० १। ३६-३७)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

मन्दिरमें जागरण करे। यदि दुर्गम वनमें स्थित हो या विपत्तिमें पड़ा हो तो पीपलके वृक्षकी जड़में अथवा तुलसीके वनोंमें जागरण करे। भगवान् विष्णुके समीप उन्हींके नामों और लीला-कथाओंका गायन करे। यदि आपत्तिमें पड़ा हुआ मनुष्य कहीं अधिक जल न पावे अथवा रोगी होनेके कारण जलसे स्नान न कर सके तो भगवान्के नामसे मार्जनमात्र कर ले। व्रतमें स्थित हुआ पुरुष यदि उद्यापनकी विधि करनेमें असमर्थ हो, तो व्रतकी समाप्तिके बाद उसकी पूर्णताके लिये केवल ब्राह्मणोंको भोजन करावे। जो स्वयं दीपदान करनेमें असमर्थ हो, वह दूसरेके बुझे हुए दीपको जला दे अथवा हवा आदिसे यत्नपूर्वक उसकी रक्षा करे। भगवान् विष्णुकी पूजा न हो सकनेपर तुलसी अथवा आँवलेका भगवद्बुद्धिसे पूजन करे। मन-ही-मन भगवान् विष्णुके नामोंका निरन्तर कीर्तन करता रहे।

गुरुके आदेश देनेपर उनके वचनका कभी उल्लंघन न करे। यदि अपने ऊपर दुःख आदि आ पड़े तो गुरुकी शरणमें जाय। गुरुकी प्रसन्नतासे मनुष्य सब कुछ प्राप्त कर लेता है। परम बुद्धिमान् कपिल और महातपस्वी सुमति भी अपने गुरु गौतमकी सेवासे अमरत्वको प्राप्त हुए हैं। इसलिये विष्णु-भक्त पुरुष कार्तिकमें सब प्रकारसे प्रयत्न करके गुरुकी सेवा करे। ऐसा करनेसे उसे मोक्षकी प्राप्ति होती है। सब दानोंसे बढ़कर कन्यादान है, उससे अधिक विद्यादान है, विद्यादानसे भी गोदानका महत्त्व अधिक है और गोदानसे भी बढ़कर अन्नदान है; क्योंकि यह समस्त संसार अन्नके आधारपर ही जीवित रहता है। इसलिये कार्तिकमें अन्नदान अवश्य करना चाहिये। कार्तिकमें नियमका पालन करनेपर अवश्य ही भगवान् विष्णुका सारूप्य एवं मोक्षदायक पद प्राप्त होता है। कार्तिकमें ब्राह्मण पति-पत्नीको भोजन कराना चाहिये, चन्दनसे उनका पूजन करना चाहिये, अनेक प्रकारके वस्त्र, रत्न और कम्बल देने चाहिये। ओढ़नेके साथ ही रूईदार बिछावन, जूता और छाता भी दान करने चाहिये। कार्तिकमें भूमिपर शयन करनेवाला मनुष्य युग-युगके पापोंका नाश कर डालता है। जो कार्तिकमासमें भगवान् विष्णुके आगे अरुणोदय-कालमें जागरण करता है और नदीमें स्नान, भगवान् विष्णुकी कथाका श्रवण, वैष्णवोंका दर्शन तथा नित्यप्रति भगवान् विष्णुका पूजन करता है, उसके पितरोंका नरकसे उद्धार हो जाता है। अहो! जिन लोगोंने भक्तिपूर्वक भगवान् विष्णुका पूजन नहीं किया, वे इस कलियुगकी कन्दरामें गिरकर नष्ट हो गये, लुट गये। जो मनुष्य कमलके एक फूलसे देवताओंके स्वामी भगवान् कमलापतिकी पूजा करता है, वह करोड़ों जन्मोंके पापोंका नाश कर डालता है। मुनिश्रेष्ठ! जो कार्तिकमें एक लाख तुलसीदल चढ़ाकर भगवान् विष्णुकी पूजा करता है, वह एक-एक दलपर मुक्तादान करनेका फल प्राप्त करता है। जो भगवान्के श्रीअंगोंसे उतारी हुई प्रसादस्वरूपा तुलसीको मुखमें, मस्तकपर और शरीरमें धारण करता है तथा भगवान्के निर्माल्योंसे अपने अंगोंका मार्जन करता है, वह मनुष्य सम्पूर्ण रोगों और पापोंसे मुक्त हो जाता है। भगवत्पूजनसम्बन्धी प्रसादस्वरूप शंखका जल, भगवान्की भक्ति, निर्माल्य-पुष्प आदि, चरणोदक, चन्दन और धूप ब्रह्महत्याका नाश करनेवाले हैं। नारद! कार्तिकमासमें प्रातःकाल स्नान करे और प्रतिदिन अपनी शक्तिके अनुसार ब्राह्मणोंको अन्नदान दे; क्योंकि सब दानोंमें अन्नदान ही सबसे बढ़कर है। अन्नसे ही मनुष्य जन्म लेता और अन्नसे ही बढ़ता है। अन्नको समस्त प्राणियोंका प्राण माना गया है। अन्नदान करनेवाला पुरुष संसारमें सब कुछ देनेवाला और सम्पूर्ण यज्ञोंका अनुष्ठान करनेवाला है। पूर्वकालमें सत्यकेतु ब्राह्मणने केवल अन्नदानसे सब पुण्योंका फल पाकर परमदुर्लभ मोक्षको भी प्राप्त कर लिया था। कार्तिकमासमें अनेक प्रकारके दान देकर भी यदि मनुष्य भगवान्का चिन्तन नहीं करता

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

तो वे दान उसे कभी पवित्र नहीं करते। भगवन्नाम-स्मरणकी महिमाका वर्णन मैं भी नहीं कर सकता। **'गोविन्द गोविन्द हरे मुरारे गोविन्द गोविन्द मुकुन्द कृष्ण। गोविन्द गोविन्द रथाङ्गपाणे गोविन्द दामोदर माधवेति॥'** इस प्रकार प्रतिदिन कीर्तन करे। नित्यप्रति भागवतके आधे श्लोक या चौथाई श्लोकका भी कार्तिकमें श्रद्धा और भक्तिके साथ अवश्य पाठ करे। जिन्होंने भागवतपुराणका श्रवण नहीं किया, पुराणपुरुष भगवान् नारायणकी आराधना नहीं की और ब्राह्मणोंके मुखरूपी अग्निमें अन्नकी आहुति नहीं दी, उन मनुष्योंका जन्म व्यर्थ ही गया। देवर्षे! जो मनुष्य कार्तिकमासमें प्रतिदिन गीताका पाठ करता है, उसके पुण्यफलका वर्णन करनेकी शक्ति मुझमें नहीं है। गीताके समान कोई शास्त्र न तो हुआ है और न होगा। एकमात्र गीता ही सदा सब पापोंको हरनेवाली और मोक्ष देनेवाली है*। गीताके एक अध्यायका पाठ करनेसे मनुष्य घोर नरकसे मुक्त हो जाते हैं, जैसे जड़ ब्राह्मण मुक्त हो गया था। सात समुद्रोंतककी पृथ्वीका दान करनेसे जो फल प्राप्त होता है, शालग्रामशिलाके दान करनेसे मनुष्य उसी फलको पा लेता है। अतः कार्तिकमासमें स्नान तथा दानपूर्वक शालग्रामशिलाका दान अवश्य करना चाहिये।

विभिन्न देवताओंके संतोषके लिये कार्तिकस्नानकी विधि तथा स्नानके लिये श्रेष्ठ तीर्थोंका वर्णन

ब्रह्माजी कहते हैं—कार्तिकका व्रत आश्विन शुक्ल पक्षकी दशमीसे आरम्भ करके कार्तिक शुक्ला दशमीको समाप्त करे, अथवा आश्विनकी पूर्णिमाको आरम्भ करके कार्तिककी पूर्णिमाको पूरा करे। भक्तिमान् पुरुष आश्विन शुक्ल पक्षकी एकादशी आनेपर भगवान् विष्णुको नमस्कार करके उनसे कार्तिकव्रत करनेकी आज्ञा प्राप्त करे और विधिसे कार्तिकव्रतका पालन करे। बारहों महीनोंमें मार्गशीर्ष मास अत्यन्त पुण्यप्रद है, उससे अधिक पुण्यफल देनेवाला नर्मदातटपर वैशाख मास बताया गया है। उससे लाख गुना अधिक प्रयागमें माघ मासका महत्त्व है। उससे भी महान् फल देनेवाला कार्तिक मास है। इसका महत्त्व सर्वत्र जलमें एक-सा ही है। एक ओर सब दान, व्रत और नियम तथा दूसरी ओर कार्तिकका स्नान तराजूपर रखकर ब्रह्माजीने तौला, तो कार्तिकका ही पलड़ा भारी रहा। स्नान, दीपदान, तुलसीके पौधोंको लगाना और सींचना, पृथ्वीपर शयन, ब्रह्मचर्यका पालन, भगवान् विष्णुके नामोंका संकीर्तन तथा पुराणोंका श्रवण—इन सब नियमोंका जो कार्तिक मासमें (निष्कामभावसे) पालन करते हैं, वे ही जीवन्मुक्त हैं। यह व्रत भगवान् श्रीकृष्णको बहुत प्रिय है। सूर्यभक्त, गणेशभक्त, शक्ति-उपासक, शिवोपासक और वैष्णव—सभीको सब पापोंका निवारण करनेके लिये कार्तिकस्नान करना चाहिये। सूर्यकी प्रीतिके लिये जबतक सूर्यनारायण तुला राशिपर स्थित हों, तबतक व्रत करना चाहिये। आश्विनकी पूर्णिमासे लेकर कार्तिककी पूर्णिमातक भगवान् शंकरकी प्रसन्नताके लिये स्नान करना चाहिये। देवीपक्ष अर्थात् आश्विन शुक्ल पक्षकी प्रतिपदासे लेकर कार्तिक कृष्ण चतुर्दशीकी महारात्रिके आनेतक भगवती दुर्गाकी प्रसन्नताके लिये स्नान

* कार्तिके मासि विप्रेन्द्र यस्तु गीतां पठेन्नरः। तस्य पुण्यफलं वक्तुं मम शक्तिर्न विद्यते॥
गीतायास्तु समं शास्त्रं न भूतं न भविष्यति। सर्वपापहरा नित्यं गीतैका मोक्षदायिनी॥
(स्क० पु० वै० का० मा० २। ४९-५०)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

करना चाहिये। गणेशजीकी प्रसन्नताके लिये आश्विन कृष्ण चतुर्थीसे लेकर कार्तिक कृष्ण चतुर्थीतक नियमपूर्वक स्नान करना चाहिये। जो आश्विन शुक्ल पक्षकी एकादशीसे लेकर कार्तिक शुक्ल एकादशीतक कार्तिकव्रतकी समाप्ति करता है, उसके ऊपर भगवान् जनार्दन प्रसन्न होते हैं। जो दूसरोंके संगवश या बलात् जानकर अथवा बिना जाने ही कार्तिकमासमें प्रातःस्नानका नियम पूरा कर लेता है, वह कभी यम-यातनाको नहीं देखता। अथवा जो ब्राह्मण कार्तिकमें प्रातःस्नान करते हैं, उन्हें ओढ़नेके लिये कम्बल या रजाई देकर स्नानजनित पुण्यफलको प्राप्त करे। कार्तिकमासमें विशेषतः श्रीराधा और श्रीकृष्णकी पूजा करनी चाहिये। जो कार्तिकमें तुलसीवृक्षके नीचे श्रीराधा

और श्रीकृष्णकी मूर्तिका (निष्कामभावसे) पूजन करते हैं, उन्हें जीवन्मुक्त समझना चाहिये। हजारों पापोंसे युक्त मनुष्य क्यों न हो, वह कार्तिकस्नानसे अवश्य पापमुक्त हो जाता है। तुलसीके अभावमें आँवलेके नीचे पूजा करनी चाहिये। मुख्य पूजाकी विधि सूर्यमण्डलमें करनी चाहिये अर्थात् सूर्यमण्डलकी ओर देखकर सूर्यरूपी नारायणके लिये पूजनोपचार समर्पित करना चाहिये। सब देवता अप्रत्यक्ष हैं, केवल ये भगवान् सूर्य ही प्रत्यक्ष हैं। अन्य सब देवता कालके अधीन हैं, परंतु भगवान् सूर्य कालके भी काल हैं। जो दरिद्र है, वही दानका पात्र है। उसकी अपेक्षा भी विद्वान् पुरुष दानका विशेष पात्र है। भगवान् विष्णुकी चल मूर्तिसे अचल मूर्ति श्रेष्ठ मानी गयी है। मूर्तिके अभावमें भगवद्बुद्धिसे पीपल अथवा वटकी पूजा करनी चाहिये। पीपल भगवान् विष्णुका और वट भगवान् शंकरका स्वरूप है। शालग्रामशिलाके चक्रमें सदा भगवान् विष्णुका निवास है, इसलिये प्रयत्नपूर्वक शालग्रामकी पूजा करनी चाहिये। पलाश ब्रह्माजीके अंशसे उत्पन्न हुआ है। जो कार्तिकमासमें उसके पत्तलमें भोजन करता है, वह भगवान् विष्णुके लोकमें जाता है। पीपलके रूपमें साक्षात् भगवान् विष्णु विराजमान हैं, इसलिये कार्तिकमें प्रयत्नपूर्वक उसका पूजन करना चाहिये। जो लोग कार्तिकमासमें स्नान, जागरण, दीपदान और तुलसीवनकी रक्षा करते हैं, वे भगवान् विष्णुके स्वरूप हैं। जो भगवान् विष्णुके मन्दिरमें झाड़ू देकर स्वस्तिक आदिका (निष्काम भावसे) मंगल चिह्न बनाते और भगवान् विष्णुकी पूजा करते हैं, वे जीवन्मुक्त हैं।

जब दो घड़ी रात बाकी रहे, तब तुलसीकी मृत्तिका, वस्त्र और कलश लेकर जलाशयके समीप जाय। पैर धोकर गंगा आदि नदियों तथा विष्णु और शिव आदि देवताओंका स्मरण करे। फिर नाभिके बराबर जलमें खड़ा होकर इस मन्त्रको पढ़े।

कार्तिकेऽहं करिष्यामि प्रातःस्नानं जनार्दन।
प्रीत्यर्थं तव देवेश दामोदर मया सह॥

'जनार्दन! देवेश्वर दामोदर! लक्ष्मीसहित आपकी प्रसन्नताके लिये मैं कार्तिकमें प्रातःस्नान करूँगा।'

तत्पश्चात्—

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

गृहाणार्घ्यं मया दत्तं राधया सहितो हरे।
नमः कमलनाभाय नमस्ते जलशायिने॥
नमस्तेऽस्तु हृषीकेश गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते।

'भगवन्! आप श्रीराधाके साथ मेरे दिये हुए इस अर्घ्यको स्वीकार करें। हरे! आप कमलनाभको नमस्कार है। जलमें शयन करनेवाले आप नारायणको नमस्कार है। हृषीकेश! यह अर्घ्य ग्रहण कीजिये, आपको बार-बार नमस्कार है।'

मनुष्य किसी भी तीर्थमें स्नान करे, उसे गंगाका स्मरण अवश्य करना चाहिये। पहले मृत्तिका आदिसे स्नान करके पावमानी ऋचाओंद्वारा अपने मस्तकपर अभिषेक करे। अघमर्षण और स्नानांगतर्पण करके पुरुषसूक्तसे सिरपर जल छिड़के। उसके बाद बाहर आकर पुनः मस्तकपर तीर्थका जल सींचे। फिर हाथमें तुलसी लेकर तीन बार आचमन करके पानीसे बाहर धोती निचोड़े। वस्त्र निचोड़नेके पश्चात् तिलक आदि करे। कार्तिकमें जहाँ कहीं भी प्रत्येक जलाशयके जलमें स्नान करना चाहिये। गरम जलकी अपेक्षा ठण्डे जलमें स्नान करनेसे दसगुना पुण्य होता है। उससे सौगुना पुण्य बाहरी कुएँके जलमें स्नान करनेसे होता है। उससे अधिक पुण्य बावड़ीमें और उससे भी अधिक पुण्य पोखरेमें स्नान करनेसे होता है। उससे दसगुना झरनोंमें और उससे भी अधिक पुण्य कार्तिकमें नदीस्नान करनेसे होता है। उससे भी दसगुना पुण्य वहाँ होता है, जहाँ दो नदियोंका संगम हो और यदि कहीं तीन नदियोंका संगम हो, तब तो पुण्यकी कोई सीमा ही नहीं है। सिन्धु, कृष्णा, वेणी, यमुना, सरस्वती, गोदावरी, विपासा (व्यास), नर्मदा, तमसा, मही, कावेरी, सरयू, क्षिप्रा, चर्मण्वती (चम्बल), बितस्ता (झेलम), वेदिका, शोणभद्र, वेत्रवती (बेतवा), अपराजिता, गण्डकी, गोमती, पूर्णा, ब्रह्मपुत्रा, मानसरोवर, वाग्मती*, शतद्रु (शतलज)—ये तीर्थ कार्तिकमें दुर्लभ हैं। सब स्थलोंसे अधिक आर्यावर्त (विन्ध्याचल और हिमालयके भीतरका प्रदेश—उत्तर भारत) पुण्यदायक है, उससे भी कोल्हापुरी श्रेष्ठ है, कोल्हापुरीसे श्रेष्ठ विष्णुकांची और शिवकांची हैं। उससे श्रेष्ठ है अनन्तसेनका निवासस्थान वराहक्षेत्र, वराहक्षेत्रसे चक्रकक्षेत्र और चक्रकक्षेत्रसे अधिक पुण्यमय मुक्तिकक्षेत्र है। उससे श्रेष्ठ अवन्तीपुरी और अवन्तीपुरीसे श्रेष्ठ बदरिकाश्रम है। बदरिकाश्रमसे अयोध्या, अयोध्यासे गंगाद्वार, गंगाद्वारसे कनखल और कनखलसे भी श्रेष्ठ मथुरा है; क्योंकि कार्तिकमें वहाँ स्वयं भगवान् राधाकृष्ण स्नान करते हैं। मथुरासे भी श्रेष्ठ द्वारका है। जिन्होंने भगवान् गोविन्दमें अपने चित्तको लगा रखा है, उनके लिये द्वारका सूर्यके समान पुण्यका प्रकाश करनेवाली है। द्वारकासे भी श्रेष्ठ भागीरथी हैं। वह भी जहाँ विन्ध्यपर्वतसे मिलती हैं, वहाँ अधिक श्रेष्ठ हैं। उससे दसगुना पुण्य तीर्थराज प्रयागमें होता है। उससे श्रेष्ठ काशी है, जिसके आश्रयसे गंगाजी भी मनुष्योंके सब पापोंका नाश करती हैं। काशीमें पंचनद (पंचगंगा) तीर्थ है, जो तीनों लोकोंमें विख्यात है। कार्तिकमास आनेपर रौरव नरकमें पड़े हुए पितर भी चिल्लाते हैं कि क्या हमारे वंशमें कोई ऐसा भाग्यवान् पैदा होगा, जो पंचगंगामें जाकर हमारे लिये नरकसे उद्धार करनेवाला तर्पण करेगा। लाखों पाप करके भी मनुष्य यदि पंचगंगामें नहाकर विन्दुमाधवजीकी पूजा करे तो उसके सभी पाप तत्काल नष्ट हो जाते हैं।

कुछ रात बाकी रहे तभी स्नान किया जाय तो वह उत्तम और भगवान् विष्णुको सन्तुष्ट करनेवाला है। सूर्योदयकालमें किया हुआ स्नान मध्यम श्रेणीका है, जबतक कृत्तिका अस्त न हो, तभीतक स्नानका उत्तम समय है, अन्यथा बहुत विलम्ब करके किया हुआ स्नान कार्तिकस्नानकी श्रेणीमें नहीं आता। स्त्रियोंको पतिकी आज्ञा

* नेपालकी एक पुण्यमयी नदी जो सरस्वतीका स्वरूप समझी जाती है और जिसका महत्त्व गंगाके समान है।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

लेकर कार्तिकस्नान करना चाहिये; क्योंकि पतिसे बिना पूछे जो धर्मकार्य किया जाता है, वह पतिकी आयुको क्षीण कर देता है। स्त्रियोंके लिये पतिकी सेवा छोड़कर दूसरा कोई धर्म नहीं है१। जो पतिकी आज्ञाका पालन करे, वही इस संसारमें धर्मवती है; केवल व्रत आदिसे धर्मवती नहीं होती। पति यदि दरिद्र, पतित, मूर्ख अथवा दीन भी हो, तो वह वैसा होता हुआ भी स्त्रीका आश्रय है। उसके त्यागसे स्त्री नरकमें गिरती है। जिसके दोनों हाथ, दोनों पैर, वाणी और मन—ये काबूमें रहें तथा जिसमें विद्या, तप एवं कीर्ति हो, वही मनुष्य तीर्थके फलका भागी होता है। जिसकी तीर्थोंमें श्रद्धा न हो, जो तीर्थमें भी पापकी ही बात सोचता हो, नास्तिक हो, जिसका मन दुबिधामें पड़ा हो तथा जो कोरा तर्कवादी हो—ये पाँच प्रकारके मनुष्य तीर्थफलके भागी नहीं होते२। जो ब्राह्मण प्रतिदिन प्रातःकाल उठकर तीर्थमें स्नान करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो परब्रह्म परमात्माको प्राप्त होता है।

स्नानका तत्त्व जाननेवाले मनीषी पुरुषोंने चार प्रकारके स्नान बतलाये हैं—वायव्य, वारुण, ब्राह्म और दिव्य। गोधूलिसे किया हुआ स्नान वायव्य कहलाता है। समुद्र आदिके जलमें जो स्नान किया जाता है, उसे वारुण कहते हैं। वेदमन्त्रोंके उच्चारणपूर्वक जो स्नान होता है, उसका नाम ब्राह्म है तथा मेघों अथवा सूर्यकी किरणोंद्वारा जो जल अपने शरीरपर गिरता है, उसे दिव्य स्नान कहा गया है। इन सभी स्नानोंमें वारुण स्नान सबसे उत्तम है। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यको मन्त्रोच्चारणपूर्वक स्नान करना चाहिये। स्त्री और शूद्रके लिये बिना मन्त्रके ही स्नानका विधान है। प्राचीन समयमें श्रेष्ठ तीर्थ पुष्करमें जहाँ नन्दा-संगम है, वहीं नन्दाके कहनेसे राजा प्रभंजन कार्तिकमासमें पुष्करस्नान करके व्याघ्रयोनिसे मुक्त हुए थे और नन्दा भी कार्तिकमें पुष्करका स्पर्श पाकर परम धामको प्राप्त हुई थी।

कार्तिकव्रत करनेवाले मनुष्यके लिये पालनीय नियम

ब्रह्माजी कहते हैं—व्रत करनेवाले पुरुषको उचित है कि वह सदा एक पहर रात बाकी रहते ही सोकर उठ जाय। फिर नाना प्रकारके स्तोत्रोंद्वारा भगवान् विष्णुकी स्तुति करके दिनके कार्यका विचार करे। गाँवसे नैर्ऋत्यकोणमें जाकर विधिपूर्वक मल-मूत्रका त्याग करे। यज्ञोपवीतको दाहिने कानपर रखकर उत्तराभिमुख होकर बैठे। पृथ्वीपर तिनका बिछा दे और अपने मस्तकको वस्त्रसे भलीभाँति ढक ले, मुखपर भी वस्त्र लपेट ले, अकेला रहे तथा साथ जलसे भरा हुआ पात्र रखे। इस प्रकार दिनमें मल-मूत्रका त्याग करे। यदि रातमें करना हो, तो दक्षिण दिशाकी ओर मुँह करके बैठे। मलत्यागके पश्चात् गुदामें पाँच या सात बार मिट्टी लगाकर धोवे, बायें हाथमें दस बार मिट्टी लगावे, फिर दोनों हाथोंमें सात बार और दोनों पैरोंमें तीन बार मिट्टी लगानी चाहिये। यह गृहस्थके लिये शौचका नियम बताया गया है। ब्रह्मचारीके लिये

१- अपृष्ट्वा यत्कृतं धर्म्यं भर्तारं तत्क्षयं नयेत्। स्त्रीणां नास्त्यपरो धर्मो भर्तारं प्रोज्झ्य कश्चन॥

२- दरिद्रः पतितो मूर्खो दीनोऽपि यदि चेत्पतिः। तादृशः शरणं स्त्रीणां तत्त्यागान्निरयं व्रजेत्॥
यस्य हस्तौ च पादौ च वाङ्मनश्च सुसंयतम्। विद्या तपश्च कीर्तिश्च स तीर्थफलभाङ्नरः॥
अश्रद्दधानः पापात्मा नास्तिकश्छिन्नमानसः। हेतुवादी च पञ्चैते न तीर्थफलभागिनः॥
(स्क० पु०, वै० का० मा० ४। ७२। ७४, ७६, ७७)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

इससे दूना, वानप्रस्थके लिये तीन गुना और संन्यासीके लिये चौगुना शौच कहा गया है। यह दिनमें शौचका नियम है। रातमें इससे आधा ही पालन करे। यात्रामें गये हुए मनुष्यके लिये उससे भी आधे शौचका विधान है तथा स्त्रियों और शूद्रोंके लिये उससे भी आधा शौच बताया गया है। शौचकर्मसे हीन पुरुषकी समस्त क्रियाएँ निष्फल होती हैं।

तदनन्तर दाँत और जिह्वाकी शुद्धिके लिये वृक्षके पास जाकर यह मन्त्र पढ़े—

आयुर्बलं यशो वर्चः प्रजाः पशुवसूनि च।
ब्रह्म प्रज्ञां च मेधां च त्वं नो देहि वनस्पते॥

'हे वनस्पते! आप मुझे आयु, बल, यश, तेज, सन्तति, पशु, धन, वैदिक ज्ञान, प्रज्ञा और धारणाशक्ति प्रदान करें।'

ऐसा कहकर वृक्षसे बारह अंगुलकी दाँतन ले, दूधवाले वृक्षोंसे दाँतन नहीं लेनी चाहिये। इसी प्रकार कपास, काँटेदार वृक्ष तथा जले हुए पेड़से भी दाँतन लेना मना है। जिससे उत्तम गन्ध आती हो और जिसकी टहनी कोमल हो, ऐसे ही वृक्षसे दन्तधावन ग्रहण करना चाहिये। उपवासके दिन, नवमी और षष्ठी तिथिको, श्राद्धके दिन, रविवारको, ग्रहणमें, प्रतिपदाको तथा अमावास्याको भी काष्ठसे दाँतन नहीं करनी चाहिये*। जिस दिन दाँतनका विधान नहीं है, उस दिन बारह कुल्ले कर लेने चाहिये। विधिपूर्वक दाँतोंको शुद्ध करके मुँहको जलसे धो डाले और भगवान् विष्णुके नामोंका उच्चारण करते हुए दो घड़ी रात रहते ही स्नानके लिये जलाशयपर जाय। कार्तिकके व्रतका पालन करनेवाला पुरुष विधिसे स्नान करे। फिर धोती निचोड़कर अपनी रुचिके अनुसार तिलक करे। तत्पश्चात् अपनी शाखाके अनुकूल आह्निकसूत्रकी बतायी हुई पद्धतिसे सन्ध्योपासन करे। जबतक सूर्योदय न हो जाय, तबतक गायत्रीमन्त्रका जप करता रहे। यह रात्रिके अन्तका कृत्य बताया गया है। अब दिनका कार्य बताया जाता है। सन्ध्योपासनाके अन्तमें विष्णुसहस्रनाम आदिका पाठ करे, फिर देवालयमें आकर पूजन प्रारम्भ करे। भगवत्सम्बन्धी पदोंके गान, कीर्तन और नृत्य आदि कार्योंमें दिनका प्रथम प्रहर व्यतीत करे। तत्पश्चात् आधे पहरतक भलीभाँति पुराण-कथाका श्रवण करे। उसके बाद पुराण बाँचनेवाले विद्वान्‌की और तुलसीकी पूजा करके मध्याह्नका कर्म करनेके पश्चात् दालके सिवा शेष अन्नका भोजन करे। बलिवैश्वदेव करके अतिथियोंको भोजन कराकर जो मनुष्य स्वयं भोजन करता है, उसका वह भोजन केवल अमृत है। मुखशुद्धिके लिये तीर्थ-जल (भगवच्चरणामृत)-से तुलसी-भक्षण करे। फिर शेष दिन सांसारिक व्यवहारमें व्यतीत करे। सायंकालमें पुनः भगवान् विष्णुके मन्दिरमें जाय और सन्ध्या करके शक्तिके अनुसार दीपदान करे। भगवान् विष्णुको प्रणाम करके उनकी आरती उतारे और स्तोत्रपाठ आदि करते हुए प्रथम प्रहरमें जागरण करे। प्रथम प्रहर बीत जानेपर शयन करे। ब्रह्मचर्यव्रतका पालन करे। इस प्रकार एक मासतक प्रतिदिन शास्त्रोक्त विधिका पालन करे। जो कार्तिकमासमें उत्तम व्रतका पालन करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो भगवान् विष्णुके सालोक्यको प्राप्त होता है।

कार्तिकमास आनेपर निषिद्ध वस्तुओंका त्याग करना चाहिये। तेल लगाना, परान्न भोजन करना, तेल खाना, जिसमें बहुत-से बीज हों ऐसे फलोंका सेवन तथा चावल और दाल—

* उपवासे नवम्यां च षष्ठ्यां श्राद्धदिने रवौ। ग्रहणे प्रतिपद्दर्शे न कुर्याद्दन्तधावनम्॥
(स्क० पु०, वै० का० मा० ५। १५)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

ये सभी कार्तिकमासमें त्याज्य हैं। लौकी, गाजर, बैगन, वनभंटा (ऊँटकटारा), बासी अन्न, भँसीड़, मसूर, दुबारा भोजन, मदिरा, पराया अन्न, काँसीके पात्रमें भोजन, छत्राक, काँजी, दुर्गन्धित पदार्थ, समुदाय (संस्था आदि)-का अन्न, वेश्याका अन्न, ग्रामपुरोहित और शूद्रका अन्न और सूतकका अन्न—ये सभी त्याग देने योग्य हैं। श्राद्धका अन्न, रजस्वलाका दिया हुआ अन्न, जननाशौचका अन्न और लसोड़ेका फल—इन्हें कार्तिकव्रतका पालन करनेवाला पुरुष अवश्य त्याग दे। निषिद्ध पत्तलोंमें भोजन न करे। महुआ, केला, जामुन और पकड़ी—इनके पत्तोंमें भोजन करना चाहिये। कमलके पत्तेपर कदापि भोजन न करे। कार्तिकमास आनेपर जो वनवासी मुनियोंके अनुसार नियमित भोजन करता है, वह चक्रपाणि भगवान् विष्णुके परम धाममें जाता है। कार्तिकमें प्रातःकाल स्नान और भगवान्‌की पूजा करनी चाहिये। उस समय कथाश्रवण उत्तम माना गया है। कार्तिकमें केला और आँवलेके फलका दान करे और शीतसे कष्ट पानेवाले ब्राह्मणको कपड़ा दे। जो कार्तिकमें भक्तिपूर्वक भगवान् विष्णुको तुलसीदल समर्पित करता है, वह संसारसे मुक्त हो भगवान् विष्णुके परम पदको प्राप्त होता है। श्रीहरिके परम प्रिय कार्तिकमासमें जो नित्य गीतापाठ करता है, उसके पुण्यफलका वर्णन सैकड़ों वर्षोंमें भी नहीं किया जा सकता। जो श्रीमद्भागवतका भी श्रवण करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो परम शान्तिको प्राप्त होता है*। जो कार्तिककी एकादशीको निराहार रहकर व्रत करता है, वह निःसन्देह पूर्वजन्मके पापोंसे मुक्त हो जाता है। जो कार्तिकमें भगवान् विष्णुकी प्रसन्नताके लिये दूसरेके अन्नका त्याग करता है, वह भगवान् विष्णुके प्रेमको भलीभाँति प्राप्त करता है। जो राह चलकर थके-माँदे और भोजनके समयपर घरपर आये हुए अतिथिका भक्तिपूर्वक पूजन करता है, वह सहस्रों जन्मोंके पापका नाश कर डालता है। जो मूढ़ मानव वैष्णव महात्माओंकी निन्दा करते हैं, वे अपने पितरोंके साथ महारौरव नरकमें गिरते हैं। जो भगवान्‌की और भगवद्भक्तोंकी निन्दा सुनते हुए भी वहाँसे दूर नहीं हट जाता, वह भगवान्‌का प्रिय भक्त नहीं है। जो कार्तिकमासमें भगवान् विष्णुकी परिक्रमा करता है, उसे पग-पगपर अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त होता है। जो कार्तिकमासमें परायी स्त्रीके साथ संगम करता है, उसके पापकी शान्ति कैसे होगी यह बताना असम्भव है। जिसके ललाटमें तुलसीकी मृत्तिकाका तिलक दिखायी देता है, उसकी ओर देखनेमें यमराज भी समर्थ नहीं हैं; फिर उनके भयानक दूतोंकी तो बात ही क्या? कार्तिकमें भगवान् विष्णुकी प्रसन्नताके लिये धर्मका अनुष्ठान करना चाहिये। मासव्रतकी समाप्ति होनेपर उस व्रतकी पूर्णताके लिये श्रेष्ठ ब्राह्मणको दान देना चाहिये। जो कार्तिकमें भगवान् विष्णुके मन्दिरमें चूना आदिका लेप कराता है या तसवीर आदि लिखता है, वह भगवान् विष्णुके समीप आनन्दका अनुभव करता है। जो ब्राह्मण कार्तिकमासमें गभस्तीश्वरके समीप शतरुद्रीका जप करता है, उसके मन्त्रकी सिद्धि होती है। जिन्होंने तीन वर्षोंतक काशीमें रहकर भक्तिपूर्वक सांगोपांग कार्तिकव्रतका अनुष्ठान किया है, उन्हें सम्पत्ति, सन्तति, यश तथा धर्मबुद्धिकी प्राप्तिके द्वारा इस लोकमें ही उस व्रतका प्रत्यक्ष फल दिखायी देता है। कार्तिकमें प्याज, शृंग (सिंघाड़ा), सेज, बेर, राई, नशीली वस्तु, चिउड़ा—इन सबका

* गीतापाठं तु यः कुर्यात् कार्तिके विष्णुवल्लभे। तस्य पुण्यफलं वक्तुं नालं वर्षशतैरपि॥
श्रीमद्भागवतस्यापि श्रवणं यः समाचरेत्। सर्वपापविनिर्मुक्तः परं निर्वाणमृच्छति॥
(स्क० पु०, वै० का० मा० ६। १९-२०)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

उपयोग न करे। कार्तिकका व्रत करनेवाला मनुष्य देवता, वेद, ब्राह्मण, गुरु, गौ, व्रती, स्त्री, राजा और महात्माओंकी निन्दा न करे। कार्तिकमें केवल नरकचतुर्दशी (दिवालीके एक रोज पहले)-को शरीरमें तेल लगाना चाहिये। उसके सिवा और किसी दिन व्रती मनुष्य तेल न लगावे। नालिका, मूली, कुम्हड़ा, कैथ इनका भी त्याग करे। रजस्वला, चाण्डाल, म्लेच्छ, पतित, व्रतहीन, ब्राह्मणद्वेषी और वेद-बहिष्कृत लोगोंसे व्रती मनुष्य बातचीत न करे।

कार्तिकव्रतसे एक पतित ब्राह्मणीका उद्धार तथा दीपदान एवं आकाशदीपकी महिमा

ब्रह्माजी कहते हैं—स्त्रियों और पुरुषोंने जन्मसे लेकर जो पाप किया है, वह सब कार्तिकमें दीपदानसे नष्ट हो जाता है। इस विषयमें मैं तुमसे एक प्राचीन इतिहासका वर्णन करता हूँ। पूर्वकालमें द्रविड़देशमें एक बुद्ध नामक ब्राह्मण रहता था। उसकी स्त्री बड़ी दुष्टा और दुराचारपरायणा थी। उसके संसर्गदोषसे पतिकी आयु क्षीण हो गयी और वह मृत्युको प्राप्त हुआ। पतिके मर जानेपर भी वह विशेषरूपसे व्यभिचारमें लग गयी। उसको लोकनिन्दासे तनिक भी लज्जा नहीं होती थी। उसके न तो कोई पुत्र था और न भाई ही। वह सदा भिक्षाके अन्नका भोजन करती थी। अपने हाथसे बनाये हुए शुद्ध और स्वल्प अन्नको कभी न खाकर माँगकर लाये हुए बासी अन्नको ही खाती थी। दूसरेके घर रसोई बनाया करती और तीर्थयात्रा आदिसे दूर रहती थी। उसने कभी कथा भी नहीं सुनी थी। एक दिन तीर्थयात्रामें लगा हुआ कोई विद्वान् ब्राह्मण उसके घरपर आया। उसका नाम कुत्स था। उसको व्यभिचारमें आसक्त देखकर उस ब्रह्मर्षिश्रेष्ठ कुत्सने कहा—'ओ मूढ़ नारी! तू मेरी बातको ध्यान देकर सुन। पृथ्वी आदि पाँच भूतोंसे बने हुए और पीब एवं रक्तसे भरे हुए इस शरीरको, जो केवल दुःखका ही कारण है, तू क्यों पोसती है? अरी! यह देह पानीके बुलबुलेके समान है, एक दिन इसका नाश होना निश्चित है। इस अनित्य शरीरको यदि तू नित्य मानती है तो अपने मनमें बैठे हुए इस मोहको विचारपूर्वक त्याग दे। सबसे श्रेष्ठ देवता भगवान् विष्णुका चिन्तन कर और उन्हींकी लीला-कथाको आदरपूर्वक सुन और जब कार्तिकमास आवे, तब भगवान् दामोदरकी प्रीतिके लिये स्नान, दान आदि कर, दीपदान दे, भगवान् विष्णुकी परिक्रमा करके उन्हें प्रणाम कर। यह व्रत विधवा और सौभाग्यवती सभी स्त्रियोंके करनेयोग्य है, यह सब पापोंकी शान्ति और समस्त उपद्रवोंका नाश करनेवाला है। कार्तिकमासमें निश्चय ही दीपदान भगवान् विष्णुकी प्रसन्नता बढ़ानेवाला है।'

ऐसा कहकर कुत्स ब्राह्मण दूसरेके घर चला गया और वह ब्राह्मणी भी कुत्सकी बात सुनकर पश्चात्ताप करती हुई इस निश्चयपर पहुँची कि मैं कार्तिकमासमें अवश्य व्रत करूँगी। तत्पश्चात् कार्तिकमास आनेपर उसने पूरे महीनेभर प्रातः सूर्योदयकालमें स्नान और दीपदान किया। तदनन्तर कुछ कालके बाद आयु समाप्त होनेपर उसकी मृत्यु हो गयी। स्वर्गलोकमें गयी और समयानुसार उसकी मुक्ति भी हो गयी। कार्तिकके व्रतमें तत्पर हो दीपदान आदि करनेवाला जो इस दीपदानका इतिहास सुनता है, वह मोक्षको प्राप्त होता है।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

नारद! अब आकाशदीपका माहात्म्य सुनो। कार्तिकमास आनेपर जो प्रातःस्नानमें तत्पर हो आकाशदीपका दान करता है, वह सब लोकोंका स्वामी और सब सम्पत्तियोंसे सम्पन्न होकर इस लोकमें सुख भोगता और अन्तमें मोक्षको प्राप्त होता है। इसलिये कार्तिकमें स्नान-दान आदि कर्म करते हुए भगवान् विष्णुके मन्दिरके कँगूरेपर एक मासतक अवश्य दीपदान करना चाहिये। महाराज सुनन्दने चन्द्रशर्मा ब्राह्मणके बताये अनुसार एक मासतक विधिपूर्वक व्रत किया। वे कार्तिकमें प्रतिदिन प्रातःकाल स्नान करके पवित्र होते और कोमल तुलसीदलोंसे भगवान् विष्णुकी पूजा करके रातमें उनके लिये आकाशदीप देते थे। दीप देनेके समय वे इस मन्त्रका उच्चारण करते थे—

दामोदराय विश्वाय विश्वरूपधराय च।
नमस्कृत्वा प्रदास्यामि व्योमदीपं हरिप्रियम्॥

'मैं सर्वस्वरूप एवं विश्वरूपधारी भगवान् दामोदरको नमस्कार करके यह आकाशदीप देता हूँ, जो भगवान्‌को परम प्रिय है।'

'देवेश्वर! इस व्रतसे आपमें मेरी भक्ति बढ़े' इस भावसे प्रार्थना करके राजा सुनन्द दीपदान करते थे। ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर वे पुनः आकाशदीप देते थे। उनका प्रातःकाल स्नान और भगवान् विष्णुकी पूजाका क्रम नियमपूर्वक चलता रहा। मासकी समाप्तिपर उन्होंने व्रतका उद्यापन करके आकाशदीपके नियमको भी समाप्त किया और ब्राह्मणोंको भोजन कराकर इस विष्णुव्रतकी पूर्ति की। इस पुण्यके प्रभावसे राजाने इस लोकमें स्त्री, पुत्र, पौत्र और स्वजनोंके साथ लाख वर्षोंतक पार्थिव भोगोंका उपभोग किया और अन्तमें स्त्रियोंसहित सुन्दर विमानपर आरूढ़ हो चार भुजाधारी, शंख, चक्र, गदा आदि आयुधोंसे सुशोभित, पीताम्बरधारी विष्णुका-सा दिव्य शरीर पाकर मोक्षका आश्रय लिया। वे विष्णुलोकमें भगवान् विष्णुके ही समान सुखपूर्वक रहने लगे। अतः कार्तिकमासमें दुर्लभ मनुष्य-जन्मको पाकर भगवान् विष्णुको प्रिय लगनेवाले आकाशदीपका विधिपूर्वक दान देना चाहिये। जो संसारमें भगवान् विष्णुकी प्रसन्नताके लिये आकाशदीप देते हैं, वे कभी अत्यन्त क्रूर मुखवाले यमराजका दर्शन नहीं करते।

एकादशीसे, तुलाराशिके सूर्यसे अथवा पूर्णिमासे लक्ष्मीसहित भगवान् विष्णुकी प्रसन्नताके लिये आकाशदीप प्रारम्भ करना चाहिये।

नमः पितृभ्यः प्रेतेभ्यो नमो धर्माय विष्णवे।
नमो यमाय रुद्राय कान्तारपतये नमः॥

'पितरोंको नमस्कार है, प्रेतोंको नमस्कार है, धर्मस्वरूप विष्णुको नमस्कार है, यमराजको नमस्कार है तथा दुर्गम पथमें रक्षा करनेवाले भगवान् रुद्रको नमस्कार है।'

—इस मन्त्रसे जो मनुष्य पितरोंके लिये आकाशमें दीपदान करते हैं, उनके वे पितर नरकमें हों तो भी उत्तम गतिको प्राप्त होते हैं। जो देवालयमें, नदीके किनारे, सड़कपर तथा नींद लेनेके स्थानमें दीप देता है, उसे सर्वतोमुखी लक्ष्मी प्राप्त होती हैं। जो ब्राह्मण या अन्य जातिके मन्दिरमें दीपक जलाता है, वह विष्णुलोकमें प्रतिष्ठित होता है। जो कीट और काँटोंसे भरी हुई दुर्गम एवं ऊँची-नीची भूमिपर दीपदान करता है, वह नरकमें नहीं पड़ता है। पूर्वकालमें राजा धर्मनन्दनने आकाशदीप-दानके प्रभावसे श्रेष्ठ विमानपर आरूढ़ हो विष्णुलोकको प्रस्थान किया। जो कार्तिक मासमें हरिबोधिनी एकादशीको भगवान् विष्णुके आगे कपूरका दीपक जलाता है, उसके कुलमें उत्पन्न हुए सभी मनुष्य भगवान् विष्णुके प्रिय भक्त होते और अन्तमें मोक्ष प्राप्त करते हैं। पूर्वकालमें कोई गोप अमावास्या तिथिको भगवान् विष्णुके मन्दिरमें दीपक जलाकर तथा बार-बार जय-जयका उच्चारण करके राजराजेश्वर हो गया था।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

कार्तिकमें तुलसीवृक्षके आरोपण और पूजन आदिकी महिमा

ब्रह्माजी कहते हैं—कार्तिकमासमें जो विष्णुभक्त पुरुष प्रातःकाल स्नान करके पवित्र हो कोमल तुलसीदलसे भगवान् दामोदरकी पूजा करता है, वह निश्चय ही मोक्ष प्राप्त कर लेता है। जो भक्तिसे रहित है, वह यदि सुवर्ण आदिसे भगवान्‌की पूजा करे, तो भी वे उसकी पूजा ग्रहण नहीं करते। सभी वर्णोंके लिये भक्ति ही सबसे उत्कृष्ट मानी गयी है। भक्तिहीन कर्म भगवान् विष्णुको प्रसन्न करनेवाला नहीं होता। यदि तुलसीके आधे पत्तेसे भी प्रतिदिन भक्तिपूर्वक भगवान्‌की पूजा की जाय, तो भी वे स्वयं आकर दर्शन देते हैं। पूर्वकालमें भक्त विष्णुदास भक्तिपूर्वक तुलसी-पूजनसे शीघ्र ही विष्णुधामको चला गया और राजा चोल उसकी तुलनामें गौण हो गये। अब तुलसीका माहात्म्य सुनो— वह पापका नाश और पुण्यकी वृद्धि करनेवाली है। अपनी लगायी हुई तुलसी जितना ही अपने मूलका विस्तार करती है, उतने ही सहस्र युगोंतक मनुष्य ब्रह्मलोकमें प्रतिष्ठित होता है। यदि कोई तुलसीसंयुक्त जलमें स्नान करता है, तो वह सब पापोंसे मुक्त हो भगवान् विष्णुके लोकमें आनन्दका अनुभव करता है। महामुने! जो लगानेके लिये तुलसीका संग्रह करता और लगाकर तुलसीका वन तैयार कर देता है, वह उतनेसे ही पापमुक्त हो ब्रह्मभावको प्राप्त होता है। जिसके घरमें तुलसीका बगीचा विद्यमान है, उसका वह घर तीर्थके समान है, वहाँ यमराजके दूत नहीं जाते। तुलसीवन सब पापोंको नष्ट करनेवाला, पुण्यमय तथा अभीष्ट कामनाओंको देनेवाला है। जो श्रेष्ठ मानव तुलसीका बगीचा लगाते हैं, वे यमराजको नहीं देखते। जो मनुष्य तुलसीकाष्ठसंयुक्त गन्ध धारण करता है, क्रियमाण पाप उसके शरीरका स्पर्श नहीं करता। जहाँ तुलसीवनकी छाया होती है, वहीं पितरोंकी तृप्तिके लिये श्राद्ध करना चाहिये। जिसके मुखमें, कानमें और मस्तकपर तुलसीका पत्ता दिखायी देता है, उसके ऊपर यमराज भी दृष्टि नहीं डाल सकते; फिर दूतोंकी तो बात ही क्या है। जो प्रतिदिन आदरपूर्वक तुलसीकी महिमा सुनता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो ब्रह्मलोकको जाता है।

पूर्वकालकी बात है, काश्मीर देशमें हरिमेधा और सुमेधा नामक दो ब्राह्मण थे, जो भगवान् विष्णुकी भक्तिमें संलग्न रहते थे। उनके हृदयमें सम्पूर्ण प्राणियोंके प्रति दया थी। वे सब तत्त्वोंका यथार्थ मर्म समझनेवाले थे। किसी समय वे दोनों श्रेष्ठ ब्राह्मण तीर्थयात्राके लिये चले। जाते-जाते किसी दुर्गम वनमें वे परिश्रमसे व्याकुल हो गये; वहाँ उन्होंने एक स्थानपर तुलसीका वन देखा। उनमेंसे सुमेधाने वह तुलसीका महान् वन देखकर उसकी परिक्रमा की और भक्तिपूर्वक प्रणाम किया। यह देख हरिमेधाने तुलसीका माहात्म्य और फल जाननेके लिये बड़ी प्रसन्नताके साथ बार-बार पूछा—'ब्रह्मन्! अन्य देवताओं, तीर्थों, व्रतों और मुख्य-मुख्य ब्राह्मणोंके रहते हुए तुमने तुलसीवनको क्यों प्रणाम किया है?'

सुमेधा बोला—महाभाग! सुनो। यहाँ धूप सता रही है, इसलिये हमलोग उस बरगदके समीप चलें। उसकी छायामें बैठकर मैं यथार्थरूपसे सब बात बताऊँगा।

वहाँ विश्राम करके सुमेधाने हरिमेधासे कहा—विप्रवर! पूर्वकालमें दुर्वासाके शापसे जब इन्द्रका ऐश्वर्य छिन गया था, उस समय ब्रह्मा आदि देवताओं और असुरोंने मिलकर क्षीरसागरका मन्थन किया। उससे ऐरावत हाथी, कल्पवृक्ष,

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

चन्द्रमा, लक्ष्मी, उच्चैःश्रवा घोड़ा, कौस्तुभमणि तथा धन्वन्तरिरूप भगवान् श्रीहरि और दिव्य ओषधियाँ प्रकट हुईं। तदनन्तर अजरता और अमरता प्रदान करनेवाले उस अमृतकलशको दोनों हाथोंमें लिये हुए श्रीविष्णु बड़े हर्षको प्राप्त हुए। उनके नेत्रोंसे आनन्दाश्रुकी कुछ बूँदें उस अमृतके ऊपर गिरीं। उनसे तत्काल ही मण्डलाकार तुलसी उत्पन्न हुईं। इस प्रकार वहाँ प्रकट हुई लक्ष्मी तथा तुलसीको ब्रह्मा आदि देवताओंने श्रीहरिकी सेवामें समर्पित किया और भगवान्‌ने उन्हें ग्रहण कर लिया। तबसे तुलसीजी जगदीश्वर श्रीविष्णुकी अत्यन्त प्रिय करनेवाली हो गयीं। सम्पूर्ण देवता भगवत्प्रिया तुलसीकी श्रीविष्णुके समान ही पूजा करते हैं। भगवान् नारायण संसारके रक्षक हैं और तुलसी उनकी प्रियतमा हैं; इसलिये मैंने उन्हें प्रणाम किया है।

सुमेधा इस प्रकार कह ही रहे थे कि सूर्यके समान अत्यन्त तेजस्वी एक विशाल विमान उनके निकट ही दिखायी दिया। उन दोनोंके आगे ही वह बरगदका वृक्ष गिर पड़ा और उससे दो दिव्य पुरुष निकले, जो अपने तेजसे सूर्यके समान सम्पूर्ण दिशाओंको प्रकाशित कर रहे थे। उन दोनोंने हरिमेधा और सुमेधाको प्रणाम किया। उन्हें देखकर वे दोनों ब्राह्मण भयसे विह्वल हो गये और आश्चर्यचकित होकर बोले—'आप दोनों कौन हैं? देवताओंके समान आपका सर्वमंगलमय स्वरूप है। आप नूतन मन्दारकी माला धारण किये कोई देवता प्रतीत हो रहे हैं।' उन दोनोंके इस प्रकार पूछनेपर वृक्षसे निकले हुए पुरुष बोले—'विप्रवरो! आप दोनों ही हमारे माता-पिता और गुरु हैं, बन्धु आदि भी आप ही दोनों हैं।'

इतना कहकर उनमेंसे जो ज्येष्ठ था, वह बोला—'मेरा नाम आस्तीक है, मैं देवलोकका निवासी हूँ। एक दिन मैं नन्दनवनमें एक पर्वतपर क्रीडा करनेके लिये गया। वहाँ देवांगनाओंने मेरे साथ इच्छानुसार विहार किया। उस समय युवतियोंके मोती और बेलाके हार तपस्या करते हुए लोमश मुनिके ऊपर गिर पड़े। वह सब देखकर मुनिको बड़ा क्रोध हुआ। उन्होंने सोचा स्त्रियाँ तो परतन्त्र होती हैं, अतः यह उनका अपराध नहीं है। यह दुराचारी आस्तीक ही शाप पाने योग्य है। ऐसा निश्चय करके उन्होंने मुझे शाप दिया—'अरे, तू ब्रह्मराक्षस होकर बरगदके वृक्षपर निवास कर।' फिर मैंने विनयपूर्वक जब उन्हें प्रसन्न किया, तब उन्होंने इस शापसे मुक्त होनेकी अवधि भी निश्चित कर दी। 'जब तू किसी ब्राह्मणके मुखसे भगवान् विष्णुका नाम और तुलसीदलकी महिमा सुनेगा, तब तत्काल तुझे उत्तम मोक्ष प्राप्त होगा।' इस प्रकार मुनिका शाप पाकर मैं चिरकालसे अत्यन्त दुःखी हो इस वटवृक्षपर निवास करता था। आज दैववश आप दोनोंके दर्शनसे मुझे निश्चय ही ब्राह्मणके शापसे छुटकारा मिल गया। अब मेरे इस दूसरे साथीकी कथा सुनिये—ये पहले एक श्रेष्ठ मुनि थे और सदा गुरुकी सेवामें ही लगे रहते थे। एक समय गुरुकी आज्ञाका उल्लंघन करके ये ब्रह्मराक्षसभावको प्राप्त हो गये, किंतु आपके प्रसादसे इस समय इनकी भी ब्राह्मणके शापसे मुक्ति हो गयी। आप दोनोंने तीर्थयात्राका फल तो यहीं साध लिया।

ऐसा कहकर वे दोनों उन श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको बार-बार प्रणाम करके उनकी आज्ञा ले प्रसन्नतापूर्वक दिव्य धामको गये। तत्पश्चात् वे दोनों श्रेष्ठ मुनि परस्पर पुण्यमयी तुलसीकी प्रशंसा करते हुए तीर्थयात्राके लिये चल दिये। इसलिये भगवान् विष्णुको प्रसन्नता देनेवाले इस कार्तिकमासमें तुलसीकी पूजा अवश्य करनी चाहिये।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

वटवृक्षसे देवताओंका निकलना

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

त्रयोदशीसे लेकर दीपावलीतकके उत्सवकृत्यका वर्णन

ब्रह्माजी कहते हैं—कार्तिक कृष्णा त्रयोदशीको प्रातःकाल दन्तधावन करके स्नान करे और त्रिरात्रि-व्रतका नियम लेकर भगवान् गोविन्दके भजनमें तत्पर रहे तथा इस व्रतके अन्तमें गोवर्द्धनोत्सव मनावे। त्रयोदशी तीन मुहूर्तसे अधिक हो तो वह इस व्रतमें ग्राह्य है; पर तिथिसे वेध होना दोषकी बात नहीं है। कार्तिकके कृष्ण पक्षमें त्रयोदशीके प्रदोषकालमें यमराजके लिये दीप और नैवेद्य समर्पित करे तो अपमृत्यु (अकालमृत्यु या दुर्मरण)-का नाश होता है।

एक दिन यमदूतोंने यमराजसे कहा—प्रभो! ऐसे महोत्सवके अवसरपर जिस प्रकार जीव अपने जीवनसे वियुक्त न हो, वह उपाय हमारे आगे वर्णन कीजिये।

यमराजने कहा—कार्तिक कृष्णा त्रयोदशीको प्रतिवर्ष प्रदोषकालमें जो अपने घरके दरवाजेपर निम्नांकित मन्त्रसे उत्तम दीप देता है, वह अपमृत्युको प्राप्त होनेपर भी यहाँ ले आने योग्य नहीं है। वह मन्त्र इस प्रकार है—

मृत्युना पाशदण्डाभ्यां कालेन च मया सह।
त्रयोदश्यां दीपदानात् सूर्यजः प्रीयतामिति॥

'त्रयोदशीको दीपदान करनेसे मृत्यु, पाश, दण्ड, काल और लक्ष्मीके साथ सूर्यनन्दन यम प्रसन्न हों।'

इस मन्त्रसे जो अपने द्वारपर उत्सवमें दीपदान करता है, उसे अपमृत्युका भय नहीं होता। दीपावलीके पहलेकी चतुर्दशीको तेलमात्रमें लक्ष्मी और जलमात्रमें गंगा निवास करती हैं। जो उस दिन प्रातःकाल स्नान करता है, वह यमलोक नहीं देखता। नरकभयका नाश करनेके लिये स्नानके बीचमें अपामार्ग (चिच्चिड़ा)-को मस्तकपर घुमावे। तीन बार मन्त्र पढ़कर तीन ही बार घुमाना चाहिये। मन्त्र इस प्रकार है—

सीतालोष्ठसमायुक्त सकण्टकदलान्वित।
हर पापमपामार्ग भ्राम्यमाणः पुनः पुनः॥

'जोते हुए खेतके ढेलेसे युक्त और कण्टकविशिष्ट पत्तोंसे सुशोभित अपामार्ग! तुम बार-बार घुमाये जानेपर मेरे पापोंको हर लो।'

ऐसा कहकर अपने सिरपर अपामार्ग घुमावे। स्नान करके भीगे वस्त्रसे मृत्युके पुत्ररूप दो कुत्तोंको दीपदान दे। उस समय यह मन्त्र पढ़े—

शुनकौ श्यामशवलौ भ्रातरौ यमसेवकौ।
तुष्टौ स्यातां चतुर्दश्यां दीपदानेन मृत्युजौ॥

'काले और चितकबरे रंगके दो श्वान जो मृत्युके पुत्र, यमराजके सेवक तथा परस्पर भाई हैं, चतुर्दशीको दीपदान करनेसे मुझपर प्रसन्न हों।'

फिर स्नानांगतर्पण करनेके पश्चात् चौदह यमोंका तर्पण करे, जिनके नाम-मन्त्र इस प्रकार हैं—

यमाय धर्मराजाय मृत्यवे चान्तकाय च।
वैवस्वताय कालाय सर्वभूतक्षयाय च॥
औदुम्बराय दध्नाय नीलाय परमेष्ठिने।
वृकोदराय चित्राय चित्रगुप्ताय ते नमः॥

ये चौदह नाम-मन्त्र हैं। इनमेंसे प्रत्येकके अन्तमें **नमः** पद जोड़कर बोले और एक-एक मन्त्रको तीन-तीन बार कहकर तिलमिश्रित जलकी तीन-तीन अंजलियाँ दे। यमराजका तर्पण यज्ञोपवीती होकर अर्थात् यज्ञोपवीतको बायें कन्धेपर रखकर अथवा प्राचीनावीती होकर (जनेऊको दाहिने कन्धेपर करके) भी किया जा सकता है। क्योंकि यमराज देवता और पितर दोनों ही पदोंपर स्थित हैं। अतः उनमें उभयरूपता है। जिसके पिता जीवित हों, वह भी यम और भीष्मके लिये तर्पण कर सकता है। कार्तिक कृष्णा चतुर्दशीको यदि अमावास्या भी हो और उसमें स्वाती नक्षत्रका योग हो तो उसी दिन दीपावली होती है। उस

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

दिनसे आरम्भ करके तीन दिनोंतक दीपोत्सव करना चाहिये। क्योंकि एक समय राजा बलिने भगवान्से यह वर माँगा था कि 'मैंने छद्मसे वामनरूप धारण करनेवाले आपको भूमिदान दी है और आपने उसे तीन दिनोंमें तीन पगोंद्वारा नाप लिया है, अतः आजसे लेकर तीन दिनोंतक प्रतिवर्ष पृथ्वीपर मेरा राज्य रहे। उस समय जो मनुष्य पृथ्वीपर दीपदान करें, उनके घरमें आपकी पत्नी लक्ष्मी स्थिरभावसे निवास करें।'

दैत्यराज बलिको भगवान् विष्णुने चतुर्दशीसे लेकर तीन दिनोंतकका राज्य दिया है। इसलिये इन तीन दिनोंमें यहाँ सर्वथा महोत्सव करना चाहिये। चतुर्दशीकी रात्रिमें देवी महारात्रिका प्रादुर्भाव हुआ है, अतः शक्तिपूजापरायण पुरुषोंको चतुर्दशीका उत्सव अवश्य करना चाहिये। भगवान् सूर्यके तुलाराशिमें स्थित होनेपर चतुर्दशी और अमावास्याकी सन्ध्याके समय मनुष्य हाथमें उल्का लेकर पितरोंको मार्ग-प्रदर्शन करावें। कार्तिकमासमें चतुर्दशी आदि तीन तिथियाँ दीपदान आदिके कार्योंमें ग्रहण करने योग्य हैं। यदि ये तीन तिथियाँ संगवकालसे पहले ही समाप्त हो जाती हों तो दीपदान आदिके कार्योंमें इन्हें पूर्वतिथिसे युक्त ही ग्रहण करना चाहिये*।

तदनन्तर अमावास्याके प्रातःकाल स्नान करके भक्तिपूर्वक देवताओं और पितरोंकी पूजा और उन्हें प्रणाम करे। फिर दही, दूध तथा घी आदिसे पार्वण श्राद्ध करे। इस दिन बालकों और रोगियोंके सिवा और किसीको दिनमें भोजन नहीं करना चाहिये। प्रदोषके समय कल्याणमयी लक्ष्मीदेवीका पूजन करे। उस दिन लक्ष्मीजीका सुख बढ़ानेके लिये जो उनके लिये कमलके फूलोंकी शय्या बनाता है, उसके घरको छोड़कर भगवती लक्ष्मी कहीं नहीं जातीं। जावित्री, लवंग, इलायची और कपूरके साथ गायके दूधको अच्छी तरह पकाकर उसमें आवश्यकताके अनुसार शक्कर देकर लड्डू बना ले तथा उन्हें महालक्ष्मीजीको अर्पण करे। पूजाके पश्चात् लक्ष्मीजीकी स्तुति इस प्रकार करनी चाहिये—'दीपककी ज्योतिमें विराजमान महालक्ष्मी! तुम ज्योतिर्मयी हो। सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि, सुवर्ण और तारा आदि सभी ज्योतियोंकी ज्योति हो; तुम्हें नमस्कार है। कार्तिककी दीपावलीके पवित्र दिनको इस भूतलपर और गौओंके गोष्ठमें जो लक्ष्मी शोभा पाती हैं, वे सदा मेरे लिये वरदायिनी हों।'

इस प्रकार स्तुति करनेके पश्चात् प्रदोषकालमें दीपदान करे। अपनी शक्तिके अनुसार देवमन्दिर आदिमें दीपकोंका वृक्ष बनावे। चौराहेपर, श्मशान-भूमिमें, नदीके किनारे, पर्वतपर, घरोंमें, वृक्षोंकी जड़ोंमें, गोशालाओंमें, चबूतरोंपर तथा प्रत्येक गृहमें दीपक जलाकर रखना चाहिये। पहले ब्राह्मणों और भूखे मनुष्योंको भोजन कराकर पीछे स्वयं नूतन वस्त्र और आभूषणसे विभूषित होकर भोजन करना चाहिये। जीवहिंसा, मदिरापान, अगम्यागमन, चोरी और विश्वासघात—ये पाँच नरकके द्वार कहे गये हैं। इनका सदैव त्याग करना चाहिये। तदनन्तर आधी रातके समय नगरकी शोभा देखनेके लिये धीरे-धीरे पैदल चले और उस समयका आनन्दोत्सव देखकर अपने घर लौट आवे।

---

* यदि त्रयोदशी तीन मुहूर्तसे कम हो तो द्वादशी ले लेनी चाहिये।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

कार्तिक शुक्ला प्रतिपदा और यमद्वितीयाके कृत्य तथा बहिनके घरमें भोजनका महत्त्व

ब्रह्माजी कहते हैं—तत्पश्चात् प्रतिपद्को आरती करके स्वयं सुन्दर वस्त्राभूषणोंसे सुशोभित हो कथा, गायन, कीर्तन और दान आदिके द्वारा दिनको व्यतीत करे। इस दिन स्त्री और पुरुष सभीको तिलका तेल लगाकर स्नान करना चाहिये। इस प्रतिपदाको जो लोग तैल, स्नान आदि पूर्वक पूजन करेंगे, उनका वह सब कुछ अक्षय होगा। संसारमें प्रतिपद्-तिथि प्रसिद्ध है, उसे पूर्वविद्धा होनेपर नहीं ग्रहण करना चाहिये। अमावास्याविद्ध प्रतिपदामें तैलाभ्यंग नहीं करना चाहिये, अन्यथा मनुष्य मृत्युको प्राप्त होता है। यदि दूसरे दिन एक घड़ी भी अविद्धा (अमावास्याके वेधसे रहित) प्रतिपदा हो तो उत्सव आदि कार्योंमें मनीषी पुरुषोंको उसे ही ग्रहण करना चाहिये। दूसरे दिन यदि थोड़ी भी प्रतिपदा न हो तो पूर्वविद्धा तिथि ही ग्रहण करनी चाहिये, उस दशामें वह दोषकारक नहीं होती है। जो मनुष्य उस तिथिमें या उस शुभ दिनमें जिस रूपसे स्थित होता है, उसी स्थितिमें वह एक वर्षतक रहता है। इसलिये यदि सुन्दर, दिव्य एवं उत्तम भोगोंको भोगनेकी इच्छा हो तो उस दिन मंगलमय उत्सव अवश्य करे। प्रातःकाल गोवर्द्धनकी पूजा करे। उस समय गौओंको विभूषित करना चाहिये और उनसे बोझ ढोने या दूहनेका काम नहीं लेना चाहिये। गोवर्द्धनपूजनके समय इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये—

गोवर्द्धनधराधार गोकुलत्राणकारक।
विष्णुबाहुकृतोच्छ्राय गवां कोटिप्रदो भव॥
या लक्ष्मीर्लोकपालानां धेनुरूपेण संस्थिता।
घृतं वहति यज्ञार्थे मम पापं व्यपोहतु॥
अग्रतः सन्तु मे गावो गावो मे सन्तु पृष्ठतः।
गावो मे हृदये सन्तु गवां मध्ये वसाम्यहम्॥

'पृथ्वीको धारण करनेवाले गोवर्द्धन! आप गोकुलकी रक्षा करनेवाले हैं। भगवान् विष्णुने अपनी भुजाओंसे आपको ऊँचे उठाया था। आप मुझे कोटि गोदान देनेवाले हों। लोकपालोंकी जो लक्ष्मी यहाँ धेनुरूपसे विराज रही है और यज्ञके लिये घृतका भार वहन करती है, वह मेरे पापोंको दूर करे। गायें मेरे आगे हों, गायें मेरे पीछे हों, गायें मेरे हृदयमें हों और मैं सदा गौओंके मध्यमें निवास करूँ।'

इस प्रकार गोवर्द्धन-पूजा करके उत्तमभावसे देवताओं, सत्पुरुषों तथा साधारण मनुष्योंको सन्तुष्ट करे। अन्य लोगोंको अन्न-पान देकर और विद्वानोंको संकल्पपूर्वक वस्त्र, ताम्बूल आदिके द्वारा प्रसन्न करे। कार्तिक शुक्लपक्षकी यह प्रतिपदा तिथि वैष्णवी कही गयी है। जो लोग सब प्रकारसे सब मनुष्योंको आनन्द देनेवाले दीपोत्सव तथा शुभके हेतुभूत बलिराजका पूजन करते हैं, वे दान, उपभोग, सुख और बुद्धिसे सम्पन्न कुलोंका हर्ष प्राप्त करते हैं और उनका सम्पूर्ण वर्ष आनन्दसे व्यतीत होता है। प्रतिपदा और अमावास्याके योगमें गौओंकी क्रीड़ा उत्तम मानी गयी है। उस दिन गौओंको भोजन आदिसे भलीभाँति पूजित करके अलंकारोंसे विभूषित करे और गाने-बजाने आदिके साथ सबको नगरसे बाहर ले जाय। वहाँ ले जाकर सबकी आरती उतारे। ऐसा करनेसे मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है।

अब तुम मृत्युनाशक यमद्वितीया व्रतका वर्णन सुनो। द्वितीया तिथिको ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर मन-ही-मन अपने हितकी बातोंका चिन्तन करे। तदनन्तर शौच आदिसे निवृत्त हो दन्तधावनपूर्वक प्रातःकाल स्नान करे। फिर श्वेत वस्त्र, श्वेत

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

पुष्पोंकी माला और श्वेत चन्दन धारण करे। नित्यकर्म पूरा करके प्रसन्नतापूर्वक औदुम्बर (गूलर)-के वृक्षके नीचे जाय। वहाँ उत्तम मण्डल बनाकर उसमें अष्टदल कमल बनावे। तत्पश्चात् उस औदुम्बर-मण्डलमें ब्रह्मा, विष्णु, शिव तथा वीणापुस्तकधारिणी वरदायिनी सरस्वतीदेवीका स्वस्थचित्तसे आवाहन एवं पूजन करे। चन्दन, अगरु, कस्तूरी, कुंकुम, पुष्प, धूप, नैवेद्य एवं नारियल आदिके द्वारा पूजन करके अपमृत्युनिवारणके लिये वेदवेत्ता ब्राह्मणको अलंकारसहित दूध देनेवाली सवत्सा गाय दान करे। उस समय ब्राह्मणसे इस प्रकार कहे—'हे विप्र! मैं अपमृत्युका निवारण करनेके लिये संसारसमुद्रसे तारनेवाली यह सीधी-सादी गाय आपको दे रहा हूँ।' यदि गाय न मिल सके तो ब्राह्मणको भक्तिपूर्वक एक जोड़ा जूता ही अर्पण करे। तदनन्तर पूजा समाप्त करके भगवान् विष्णुमें भक्ति रखते हुए अपने कुटुम्बके श्रेष्ठ वयोवृद्ध पुरुषोंको श्रद्धाभक्तिके साथ प्रणाम करे। फिर अनेक प्रकारके सुन्दर फलोंद्वारा अपने स्वजनोंको तृप्त करे। उसके बाद अपनी सहोदरा बड़ी भगिनीके घर जाय और उसे भी भक्तिपूर्वक प्रणाम करते हुए कहे—'सौभाग्यवती बहिन! तुम कल्याणमयी हो। मैं अपने कल्याणके लिये तुम्हारे चरणारविन्दोंमें प्रणाम करनेके उद्देश्यसे तुम्हारे घर आया हूँ।' ऐसा कहकर बहिनको भगवद्बुद्धिसे प्रणाम करे। तब बहिन भाईसे यह उत्तम वचन कहे—'भैया! आज मैं तुम्हें पाकर धन्य हो गयी। आज सचमुच मैं मंगलमयी हूँ। कुलदीपक! आज अपनी आयुवृद्धिके लिये तुम्हें मेरे घरमें भोजन करना चाहिये। मेरे सहोदर भैया! पूर्वकालमें इसी कार्तिक शुक्ला द्वितीयाको यमुनाजीने अपने भाई यमराजको अपने ही घरपर भोजन कराया और उनका सत्कार किया था। उस दिन कर्मपाशमें बँधे हुए नारकीय पापियोंको भी यमराज छोड़ देते हैं, जिससे वे अपनी इच्छाके अनुसार घूमते हैं। इस तिथिमें विद्वान् पुरुष भी प्रायः अपने घर भोजन नहीं करते।' बहिनके ऐसा कहनेपर व्रतवान् पुरुष वस्त्र और आभूषणोंसे हर्षपूर्वक उसका पूजन करे। बड़ी बहिनको प्रणाम करके उसका आशीर्वाद ले। तत्पश्चात् सभी बहिनोंको वस्त्र और आभूषण देकर सन्तुष्ट करे। अपनी सगी बहिन न होनेपर चाचाकी पुत्री अथवा पिताकी बहिनके घर जाकर आदरपूर्वक भोजन करे।

नारद! जो इस प्रकार यमद्वितीयाका व्रत करता है, वह अपमृत्युसे मुक्त हो पुत्र-पौत्र आदिसे सम्पन्न होता है और अन्तमें मोक्ष पाता है। ये सभी व्रत और नाना प्रकारके दान गृहस्थके लिये ही योग्य हैं। व्रतमें लगा हुआ जो पुरुष यमद्वितीयाकी इस कथाको सुनता है, उसके सब पापोंका नाश हो जाता है, ऐसा माधवका कथन है। कार्तिक शुक्लकी द्वितीयाको यमुनाजीमें स्नान करनेवाला पुरुष यमलोकका दर्शन नहीं करता। जिन्होंने यमद्वितीयाके दिन अपनी सौभाग्यवती बहिनोंको वस्त्रदान आदिसे सन्तुष्ट किया है, उन्हें एक वर्षतक कलह अथवा शत्रुभयका सामना नहीं करना पड़ता। उस तिथिको यमुनाजीने बहिनके स्नेहसे यमराजदेवको भोजन कराया था। इसलिये उस दिन जो बहिनके हाथसे भोजन करता है, वह धन एवं उत्तम सम्पदाको प्राप्त होता है। राजाओंने जिन कैदियोंको कारागृहमें डाल रखा हो, उन्हें यमद्वितीयाके दिन बहिनके घर भोजन करनेके लिये अवश्य भेजना चाहिये। वह भी न हो तो मौसी अथवा मामाकी पुत्रीको बहिन माने अथवा गोत्र या कुटुम्बके सम्बन्धसे किसीके साथ बहिनका नाता जोड़ ले। सबके अभावमें किसी भी समान वर्णकी स्त्रीको बहिन मान ले और उसीका आदर करे। वह भी न मिल सके तो किसी गाय या नदी आदिको ही बहिन बना ले। उसके भी अभावमें किसी जंगल,

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

झाड़ीको ही बहिन मानकर वहाँ भोजन करे। यमद्वितीयाको कभी भी अपने घर भोजन न करे। भाईके भोजनमें वही द्वितीया ग्राह्य है, जो दोपहरके बादतक मौजूद रहे।

आँवलेके वृक्षकी उत्पत्ति और उसका माहात्म्य

सूतजी कहते हैं—कार्तिकके शुक्ल पक्षकी चतुर्दशीको आँवलेका पूजन करे। आँवलेका महान् वृक्ष सब पापोंका नाश करनेवाला है। उक्त चतुर्दशीका नाम वैकुण्ठचतुर्दशी है। उस दिन आँवलेकी छायामें जाकर मनुष्य राधासहित देवेश्वर श्रीहरिका पूजन करे। तदनन्तर आँवलेकी एक सौ आठ प्रदक्षिणा करे। फिर साष्टांग प्रणाम करके परमेश्वर श्यामसुन्दर श्रीकृष्णकी प्रार्थना करे। आँवलेकी छायामें बैठकर इस कथाको सुने, फिर ब्राह्मणोंको भोजन करावे और यथाशक्ति दक्षिणा दे। ब्राह्मणोंके सन्तुष्ट होनेपर मोक्षदायक श्रीहरि भी प्रसन्न होते हैं।

पूर्वकालमें जब सारा जगत् एकार्णवके जलमें निमग्न हो गया था, समस्त चराचर प्राणी नष्ट हो गये थे, उस समय देवाधिदेव सनातन परमात्मा ब्रह्माजी अविनाशी परब्रह्मका जप करने लगे थे। ब्रह्मका जप करते-करते उनके आगे श्वास निकला। साथ ही भगवद्दर्शनके अनुरागवश उनके नेत्रोंसे जल निकल आया। प्रेमके आँसुओंसे परिपूर्ण वह जलकी बूँद पृथ्वीपर गिर पड़ी। उसीसे आँवलेका महान् वृक्ष उत्पन्न हुआ, जिसमें बहुत-सी शाखाएँ और उपशाखाएँ निकली थीं। वह फलोंके भारसे लदा हुआ था। सब वृक्षोंमें सबसे पहले आँवला ही प्रकट हुआ, इसलिये उसे 'आदिरोह' कहा गया। ब्रह्माने पहले आँवलेको उत्पन्न किया। उसके बाद समस्त प्रजाकी सृष्टि की। जब देवता आदिकी भी सृष्टि हो गयी, तब वे उस स्थानपर आये जहाँ भगवान् विष्णुको प्रिय लगनेवाला आँवलेका वृक्ष था। उसे देखकर देवताओंको बड़ा आश्चर्य हुआ। उसी समय आकाशवाणी हुई—'यह आँवलेका वृक्ष सब वृक्षोंसे श्रेष्ठ है; क्योंकि यह भगवान् विष्णुको प्रिय है। इसके स्मरणमात्रसे मनुष्य गोदानका फल प्राप्त करता है। इसके दर्शनसे दुगुना और फल खानेसे तिगुना पुण्य होता है। इसलिये सर्वथा प्रयत्न करके आँवलेके वृक्षका सेवन करना चाहिये। क्योंकि वह भगवान् विष्णुको परम प्रिय एवं सब पापोंका नाश करनेवाला है, अतः समस्त कामनाओंकी सिद्धिके लिये आँवलेके वृक्षका पूजन करना उचित है।'

जो मनुष्य कार्तिकमें आँवलेके वनमें भगवान् श्रीहरिकी पूजा तथा आँवलेकी छायामें भोजन करता है, उसका पाप नष्ट हो जाता है। आँवलेकी छायामें वह जो भी पुण्य करता है, वह कोटिगुना हो जाता है। प्राचीन कालकी बात है, कावेरीके उत्तर तटपर देवशर्मा नामसे विख्यात एक श्रेष्ठ ब्राह्मण थे, जो वेद-वेदांगोंके पारंगत विद्वान् थे। उनके एक पुत्र हुआ जो बड़ा दुराचारी निकला। पिताने उसे हितकी बात बताते हुए कहा—'बेटा! इस समय कार्तिकका महीना है जो भगवान् विष्णुको बहुत ही प्रिय है। तुम इसमें स्नान, दान, व्रत और नियमोंका पालन करो; तुलसीके फूलसहित भगवान् विष्णुकी पूजा करो। भगवान्के लिये दीप-दान, नमस्कार तथा प्रदक्षिणा करो।' पिताकी यह बात सुनकर वह दुष्टात्मा पुत्र क्रोधसे जल उठा, उसके ओष्ठ फड़कने लगे और उसने पिताकी निन्दा करते हुए कहा—'तात! मैं कार्तिकमें पुण्य-संग्रह नहीं करूँगा।' पुत्रका यह उद्दण्डतापूर्ण वचन सुनकर देवशर्माने क्रोधपूर्वक कहा—'ओ दुर्बुद्धि! तू वृक्षके खोखलेमें चूहा हो जा।' इस शापके भयसे डरे हुए पुत्रने पिताको नमस्कार करके पूछा—'पूज्यवर! उस घृणित योनिसे मेरी मुक्ति कैसे

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

होगी, यह बताइये।' इस प्रकार पुत्रके द्वारा प्रसन्न किये जानेपर ब्राह्मणने शापनिवृत्तिका कारण बताया—'जब तुम भगवान्‌को प्रिय लगनेवाले कार्तिकव्रतका पवित्र माहात्म्य सुनोगे, उस समय उस कथाके श्रवणमात्रसे तुम्हारी मुक्ति हो जायगी।' पिताके ऐसा कहनेपर वह उसी क्षण चूहा हो गया और कई वर्षोंतक सघन वनमें निवास करता रहा। एक दिन कार्तिकमासमें विश्वामित्रजी अपने शिष्योंके साथ उधर आ निकले तथा नदीमें स्नान करके भगवान्‌की पूजा करनेके पश्चात् आँवलेकी छायामें बैठे। वहाँ बैठकर वे अपने शिष्योंको कार्तिकमासका माहात्म्य सुनाने लगे। उसी समय कोई दुराचारी व्याध शिकार खेलता हुआ वहाँ आया। वह प्राणियोंकी हत्या करनेवाला तो था ही, ऋषियोंको देखकर उन्हें भी मार डालनेकी इच्छा करने लगा। परंतु उन महात्माओंके दर्शनसे उसके भीतर सुबुद्धि जाग उठी। उसने ब्राह्मणोंको नमस्कार करके कहा—'आपलोग यहाँ क्या करते हैं?' उसके ऐसा पूछनेपर विश्वामित्र बोले—'कार्तिकमास सब महीनोंमें श्रेष्ठ बताया जाता है। उसमें जो कर्म किया जाता है, वह बरगदके बीजकी भाँति बढ़ता है। जो कार्तिकमासमें स्नान, दान और पूजन करके ब्राह्मण-भोजन कराता है, उसका वह पुण्य अक्षय फल देनेवाला होता है।'

व्याधकी प्रेरणासे विश्वामित्रजीके कहे हुए इस धर्मको सुनकर वह शापभ्रष्ट ब्राह्मणकुमार चूहेका शरीर छोड़कर तत्काल दिव्य देहसे युक्त हो गया और विश्वामित्रको प्रणाम करके अपना वृत्तान्त निवेदन कर ऋषिकी आज्ञा ले विमानपर बैठकर स्वर्गको चला गया। इससे विश्वामित्र और व्याध दोनोंको बड़ा विस्मय हुआ। व्याध भी कार्तिक-व्रतका पालन करके भगवान् विष्णुके धाममें गया। इसलिये कार्तिकमें सब प्रकारसे प्रयत्न करके आँवलेकी छायामें बैठकर भगवान् श्रीकृष्णके सम्मुख कथा-श्रवण करे। जो ब्राह्मण कार्तिकमासमें आँवले और तुलसीकी माला धारण करता है, उसे अनन्त पुण्यकी प्राप्ति होती है। जो मनुष्य आँवलेकी छायामें बैठकर दीपमाला समर्पित करता है, उसको अनन्त पुण्य प्राप्त होता है। विशेषतः तुलसी-वृक्षके नीचे श्रीराधा और श्यामसुन्दर भगवान् श्रीकृष्णकी पूजा करनी चाहिये। तुलसीके अभावमें यह शुभ पूजा आँवलेके नीचे करनी चाहिये। जो आँवलेकी छायाके नीचे कार्तिकमें ब्राह्मण-दम्पतिको एक बार भी भोजन देकर स्वयं भी भोजन करता है,वह अन्न-दोषसे मुक्त हो जाता है। लक्ष्मी-प्राप्तिकी इच्छा रखनेवाला मनुष्य सदा आँवलोंसे स्नान करे। विशेषतः एकादशी तिथिको आँवलेसे स्नान करनेपर भगवान् विष्णु सन्तुष्ट होते हैं। नवमी, अमावास्या, सप्तमी, संक्रान्ति-दिन, रविवार, चन्द्रग्रहण तथा सूर्यग्रहणके दिन आँवलेसे स्नान नहीं करना चाहिये*। जो मनुष्य आँवलेकी छायामें बैठकर पिण्डदान करता है, उसके पितर भगवान् विष्णुके प्रसादसे मोक्षको प्राप्त होते हैं। तीर्थ या घरमें जहाँ-जहाँ मनुष्य आँवलेसे स्नान करता है, वहाँ-वहाँ भगवान् विष्णु स्थित होते हैं। जिसके शरीरकी हड्डियाँ आँवलेके स्नानसे धोयी जाती हैं, वह फिर गर्भमें वास नहीं करता। जिनके सिरके बाल आँवलामिश्रित जलसे रंगे जाते हैं, वे मनुष्य कलियुगके दोषोंका नाश करके भगवान् विष्णुको प्राप्त होते हैं। जिस घरमें सदा आँवला रखा रहता है, वहाँ भूत, प्रेत, कूष्माण्ड और राक्षस नहीं जाते। जो कार्तिकमें आँवलेकी छायामें बैठकर भोजन करता है, उसके एक वर्षतक अन्न-संसर्गसे उत्पन्न हुए पापका नाश हो जाता है।

---

* नवम्यां दर्शे सप्तम्यां संक्रान्तौ रविवासरे। चन्द्रसूर्योपरागे च स्नानमामलकैस्त्यजेत्॥ (स्क० पु०, वै० का० मा० १२। ७५)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

गुणवतीका कार्तिकव्रतके पुण्यसे सत्यभामाके रूपमें अवतार तथा भगवान्‌के द्वारा शंखासुरका वध और वेदोंका उद्धार

सूतजी कहते हैं—एक समय हर्षोल्लाससे प्रसन्नमुखवाली देवी सत्यभामाने भगवान् श्रीकृष्णसे कहा—'भगवन्! मैं धन्य हूँ, कृतकृत्य हूँ और मेरा जीवन सफल है। प्रभो! मैंने पूर्वजन्ममें कौन-सा दान, व्रत अथवा तप किया है, जिससे मर्त्यलोकमें जन्म लेकर भी मैं आपकी अर्द्धांगिनी हुई हूँ? जन्मान्तरमें मेरा कैसा स्वभाव था, मैं कौन थी और किसकी पुत्री थी, जो इस जन्ममें आपकी प्रियतमा पत्नी हुई? यह सब बातें मुझे बताइये।'

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—प्रिये! सत्ययुगके अन्तमें हरद्वारमें एक श्रेष्ठ ब्राह्मण रहते थे, जिनका नाम देवशर्मा था। वे अत्रिकुलमें उत्पन्न हुए थे और वेद-वेदांगोंके पारंगत विद्वान् थे। उनकी अवस्था बहुत अधिक हो चली थी, किंतु उनके कोई पुत्र नहीं हुआ। केवल एक कन्या थी, जिसका नाम गुणवती था। देवशर्माने चन्द्र नामक अपने शिष्यको ही अपनी पुत्री ब्याह दी और उसीको पुत्रकी भाँति माना। चन्द्र जितेन्द्रिय तथा आज्ञाकारी था; वह देवशर्माको पिताके ही समान मानकर उनकी सेवा करता था। एक दिन वे दोनों कुश लानेके लिये वनमें गये; वहाँ यमराजके समान आकारवाले किसी विकराल राक्षसने उन दोनोंको मार डाला। वे दोनों अपने-अपने पुण्यके प्रभावसे भगवान् विष्णुके लोकमें गये। उनके मारे जानेका समाचार सुनकर गुणवती पिता और पतिके वियोगदु:खसे पीड़ित होकर करुणस्वरमें विलाप करने लगी। उसने घरका सारा सामान बेचकर अपनी शक्तिके अनुसार उन दोनोंका पारलौकिक कर्म सम्पन्न किया। उसके बाद वह उसी नगरमें निवास करने लगी। जीवित रहनेपर भी गुणवती संसारके लिये मर चुकी थी। उसने होश सँभालनेके बादसे मृत्युपर्यन्त दो व्रतोंका विधिपूर्वक पालन किया—एक तो एकादशीका उपवास और दूसरा कार्तिकमासका भलीभाँति सेवन। इस प्रकार गुणवती प्रतिवर्ष कार्तिकका व्रत किया करती थी। एक समय, जब कि वह रुग्णा थी, उसके सारे अंग दुर्बल हो गये थे और ज्वरसे वह बहुत पीड़ित थी, किसी तरह धीरे-धीरे चलकर गंगाजीमें स्नान करनेके लिये गयी। ज्यों-ही जलके भीतर घुसी, शीतसे पीड़ित हो काँपती हुई गिर पड़ी। उस व्याकुलताकी दशामें ही उसने देखा, आकाशसे विमान उतर रहा है। मृत्युके पश्चात् वह दिव्य रूपसे उस विमानपर बैठकर वैकुण्ठलोकको चली गयी। कार्तिकव्रतके पुण्यसे वह मेरे समीप रहने लगी। तदनन्तर ब्रह्मा आदि देवताओंकी प्रार्थनासे जब मैं इस पृथ्वीपर आया, तब मेरे साथ मेरे समस्त पार्षद भी यहाँ आये। भामिनि! ये सब यदुवंशी मेरे पार्षदगण ही हैं। पूर्वजन्मके देवशर्मा ही तुम्हारे पिता सत्राजित हुए और वे चन्द्र नामक

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

ब्राह्मण ही इस समय अक्रूर हुए हैं तथा तुम वही कल्याणमयी गुणवती हो। कार्तिकव्रतके पुण्यसे तुम मेरे लिये अधिक प्रसन्नता देनेवाली बन गयी। पूर्वजन्ममें तुमने जो मेरे मन्दिरके द्वारपर तुलसीकी वाटिका लगा रखी थी, उसीका फल है कि इस समय तुम्हारे आँगनमें यह कल्पवृक्ष शोभा पा रहा है। तुमने जो मृत्युपर्यन्त कार्तिकव्रतका अनुष्ठान किया है, उसके प्रभावसे तुम्हारा मुझसे कभी भी वियोग नहीं होगा।

प्रिये! पूर्वकालमें राजा पृथु और महर्षि नारदका इस विषयमें जो संवाद हुआ है, उसको सुनो। पृथुके पूछनेपर नारदजीने इस प्रकार कहना आरम्भ किया। प्राचीन कालमें शंख नामक एक असुर था, जो समुद्रसे उत्पन्न हुआ था। उसने इन्द्र आदि समस्त लोकपालोंके अधिकार छीन लिये। देवता मेरुगिरिकी दुर्गम कन्दराओंमें छिपकर रहने लगे। उस समय दैत्यने विचार किया—'यद्यपि मैंने देवताओंको जीत लिया है तथापि वे बलवान् दिखायी देते हैं। अब इस विषयमें मुझे क्या करना चाहिये। यह बात तो मुझे अच्छी तरह मालूम है कि देवता वेदमन्त्रोंके बलसे ही प्रबल प्रतीत होते हैं। अतः मैं वेदोंका ही अपहरण करूँगा। इससे सब देवता निर्बल हो जायँगे।' ऐसा निश्चय करके वह दैत्य ब्रह्माजीके सत्यलोकसे शीघ्र ही वेदोंको हर लाया। उसके द्वारा ले जाये जाते हुए वेद भयसे उसके चंगुलसे निकल भागे और यज्ञ, मन्त्र एवं बीजोंके साथ जलमें समा गये। शंखासुर उन्हें ढूँढ़ता हुआ समुद्रके भीतर घूमने लगा, किंतु उसने कहीं भी एक जगह वेदमन्त्रोंको नहीं देखा। इधर देवताओंने भगवान् विष्णुके पास जाकर उनकी स्तुति की। तब भगवान् जगे और इस प्रकार बोले—'देवताओ! मैं तुम्हारे गीत, वाद्य आदि मंगल साधनोंसे प्रसन्न होकर तुम्हें वर देनेके लिये उद्यत हूँ। कार्तिक शुक्ल पक्षकी एकादशीको तुमने मुझे जगाया है, इसलिये यह तिथि मेरे लिये अत्यन्त प्रीतिदायिनी और माननीय है। शंखासुरके द्वारा हरे गये सम्पूर्ण वेद जलमें स्थित हैं। मैं सागरपुत्र शंखका वध करके उन वेदोंको अभी लाये देता हूँ। इस कार्तिकमासमें जो श्रेष्ठ मनुष्य प्रातःकाल स्नान करते हैं, वे सब यज्ञके अवभृथ-स्नानद्वारा भलीभाँति नहा लेते हैं। आजसे मैं भी कार्तिकमें जलके भीतर निवास करूँगा। तुम सब देवता भी मुनीश्वरोंसहित मेरे साथ जलमें आओ।' ऐसा कहकर मछलीके समान रूप धारण करके भगवान् विष्णु आकाशसे जलमें गिरे। फिर, शंखासुरको मारकर भगवान् विष्णु बदरीवनमें आ गये और वहाँ उन्होंने सम्पूर्ण ऋषियोंको बुलाकर इस प्रकार आदेश दिया—'मुनीश्वरो! तुम जलके भीतर बिखरे हुए वेदमन्त्रोंकी खोज करो और जितनी जल्दी हो सके, उन्हें सागरके जलसे बाहर निकाल लाओ। तबतक मैं देवताओंके साथ प्रयागमें ठहरता हूँ।'

तब उन तपोबलसम्पन्न महर्षियोंने यज्ञ और बीजोंसहित सम्पूर्ण वेदमन्त्रोंका उद्धार किया। उनमेंसे जितने मन्त्र जिस ऋषिने उपलब्ध किये, वही उन मन्त्रोंका उस दिनसे ऋषि माना जाने लगा। तदनन्तर सब ऋषि एकत्र होकर प्रयागमें गये। वहाँ उन्होंने ब्रह्माजीसहित भगवान् विष्णुको उपलब्ध हुए सभी वेदमन्त्र समर्पित कर दिये। सब वेदोंको पाकर ब्रह्माजी बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने देवताओं और ऋषियोंके साथ प्रयागमें अश्वमेध यज्ञ किया। यज्ञ समाप्त होनेपर सब देवताओंने भगवान्से यह निवेदन किया—

देवता बोले—देवाधिदेव जगन्नाथ! इस स्थानपर ब्रह्माजीने खोये हुए वेदोंको पुनः प्राप्त किया है और हमने भी यहाँ आपके प्रसादसे यज्ञभाग पाये हैं। अतः यह स्थान पृथ्वीपर सबसे श्रेष्ठ, पुण्यकी वृद्धि करनेवाला एवं भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाला हो। साथ ही यह समय भी महापुण्यमय और ब्रह्मघाती आदि महापापियोंकी भी शुद्धि करनेवाला

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

हो तथा यह स्थान यहाँ दिये हुए दानको अक्षय बना देनेवाला भी हो, यह वर दीजिये।

भगवान् विष्णुने कहा—देवताओ! तुमने जो कुछ कहा है, वह मुझे भी स्वीकार है; तुम्हारी इच्छा पूर्ण हो। आजसे यह स्थान ब्रह्मक्षेत्रके नामसे प्रसिद्ध होगा। सूर्यवंशमें उत्पन्न राजा भगीरथ यहाँ गंगाको ले आयेंगे और वह यहाँ सूर्यकन्या यमुनासे मिलेंगी। ब्रह्माजी और तुम सब देवता मेरे साथ यहाँ निवास करो। आजसे यह तीर्थ तीर्थराजके नामसे विख्यात होगा। तीर्थराजके दर्शनसे तत्काल सब पाप नष्ट हो जायँगे। सूर्य जब मकर राशिमें स्थित होंगे, उस समय यहाँ स्नान करनेवाले मनुष्योंके सब पापोंका यह तीर्थ नाश करेगा। यह काल भी मनुष्योंके लिये सदा महान् पुण्यफल देनेवाला होगा। माघमें सूर्यके मकर राशिमें स्थित होनेपर यहाँ स्नान करनेसे सालोक्य आदि फल प्राप्त होंगे।

देवाधिदेव भगवान् विष्णु देवताओंसे ऐसा कहकर ब्रह्माजीके साथ वहीं अन्तर्धान हो गये। तत्पश्चात् इन्द्रादि देवता भी अपने अंशसे प्रयागमें रहते हुए वहाँसे अन्तर्धान हो गये। जो मनुष्य कार्तिकमें तुलसीजीकी जड़के समीप श्रीहरिका पूजन करता है, वह इस लोकमें सम्पूर्ण भोगोंका उपभोग करके अन्तमें वैकुण्ठधामको जाता है।

कार्तिकव्रतके पुण्यदानसे एक राक्षसीका उद्धार

नारदजी कहते हैं—कार्तिकके उद्यापनमें तुलसीके मूल प्रदेशमें भगवान् विष्णुकी पूजा की जाती है, क्योंकि वह उन्हें अधिक प्रीति प्रदान करनेवाली मानी गयी है। राजन्! जिसके घरमें तुलसीवन है, वह घर तीर्थस्वरूप है; वहाँ यमराजके दूत नहीं आते। तुलसीका वन सदा सब पापोंका नाश करनेवाला तथा अभीष्ट कामनाओंको देनेवाला है। जो श्रेष्ठ मनुष्य तुलसीका बगीचा लगाते हैं, वे यमराजको नहीं देखते। नर्मदाका दर्शन, गंगाका स्नान और तुलसीवनका संसर्ग—ये तीनों एक समान कहे गये हैं। जो तुलसीकी मंजरीसे संयुक्त होकर प्राणत्याग करता है, वह सैकड़ों पापोंसे युक्त हो, तो भी यमराज उसकी ओर नहीं देख सकते। जो मनुष्य आँवलेके फलों और तुलसीके पत्तोंसे मिश्रित जलके द्वारा स्नान करता है, उसे गंगास्नान करनेका फल प्राप्त होता है।

पूर्वकालकी बात है, सह्यपर्वतपर करवीरपुरमें धर्मदत्त नामसे विख्यात कोई धर्मज्ञ ब्राह्मण थे। एक दिन कार्तिकमासमें भगवान् विष्णुके समीप जागरण करनेके लिये वे भगवान्‌के मन्दिरकी ओर चले। उस समय एक पहर रात बाकी थी। भगवान्‌के पूजनकी सामग्री साथ लिये जाते हुए ब्राह्मणने मार्गमें देखा एक भयंकर राक्षसी आ रही है। उसे देखते ही ब्राह्मण भयसे थर्रा उठे। उनका सारा शरीर काँपने लगा। उन्होंने साहस करके पूजाकी सामग्री तथा जलसे ही उस राक्षसीके ऊपर प्रहार किया। उन्होंने हरिनामका स्मरण करके तुलसीदलमिश्रित जलसे उसको मारा था, इसलिये उसका सारा पातक नष्ट हो गया। अब उसे अपने पूर्वजन्मके कर्मोंके परिणामस्वरूप प्राप्त हुई दुर्दशाका स्मरण हो आया। उसने ब्राह्मणको दण्डवत् प्रणाम करके इस प्रकार कहा—'ब्रह्मन्! मैं पूर्वजन्मके कर्मोंके फलसे इस दशाको पहुँची हूँ। अब कैसे मुझे उत्तम गतिकी प्राप्ति होगी?'

धर्मदत्तने पूछा—किस कर्मके फलसे तुम इस दशाको पहुँची हो? कहाँकी रहनेवाली हो? तुम्हारा नाम क्या है और आचार-व्यवहार कैसा है? ये सारी बातें मुझे बताओ।

कलहा बोली—ब्रह्मन्! मेरे पूर्वजन्मकी बात है, सौराष्ट्र नगरमें भिक्षु नामके एक ब्राह्मण रहते

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

थे। मैं उन्हींकी पत्नी थी। मेरा नाम कलहा था और मैं बड़े क्रूरस्वभावकी स्त्री थी। मैंने वचनसे भी कभी अपने पतिका भला नहीं किया, उन्हें कभी मीठा भोजन नहीं परोसा। सदा अपने स्वामीको धोखा ही देती रही। मुझे कलह विशेष प्रिय था, इससे मेरे पतिका मन मुझसे सदा उद्विग्न रहा करता था। अन्ततोगत्वा उन्होंने दूसरी स्त्रीसे विवाह करनेका निश्चय कर लिया। तब मैंने विष खाकर अपने प्राण त्याग दिये। फिर यमराजके दूत आये और मुझे बाँधकर पीटते हुए यमलोकमें ले गये। वहाँ यमराजने मुझे देखकर चित्रगुप्तसे पूछा—'चित्रगुप्त! देखो तो सही इसने कैसा कर्म किया है? जैसा इसका कर्म हो, उसके अनुसार यह शुभ या अशुभ प्राप्त करे।'

चित्रगुप्तने कहा—इसका किया हुआ कोई भी शुभ कर्म नहीं है। यह स्वयं मिठाइयाँ उड़ाती थी और अपने स्वामीको उसमेंसे कुछ भी नहीं देती थी। इसने सदा अपने स्वामीसे द्वेष किया है, इसलिये यह चमगादुरी होकर रहे। तथा सदा कलहमें ही इसकी प्रवृत्ति रही है, इसलिये यह विष्ठाभोजी सूकरीकी योनिमें रहे। जिस बरतनमें भोजन बनाया जाता है, उसीमें यह सदा अकेली खाया करती थी। अतः उसके दोषसे यह अपनी ही सन्तानका भक्षण करनेवाली बिल्ली हो। इसने अपने पतिको निमित्त बनाकर आत्मघात किया है, इसलिये यह अत्यन्त निन्दनीय स्त्री प्रेतके शरीरमें भी कुछ कालतक अकेली ही रहे। इसे यमदूतोंके द्वारा निर्जल प्रदेशमें भेज देना चाहिये, वहाँ दीर्घकालतक यह प्रेतके शरीरमें निवास करे। उसके बाद यह पापिनी शेष तीन योनियोंका भी उपभोग करेगी।

कलहा कहती है—विप्रवर! मैं वही पापिनी कलहा हूँ। इस प्रेतशरीरमें आये मुझे पाँच सौ वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। मैं सदा भूख-प्याससे पीड़ित रहा करती हूँ। एक बनियेके शरीरमें प्रवेश करके मैं इस दक्षिण देशमें कृष्णा और वेणीके संगमतक आयी हूँ। ज्यों-ही संगम-तटपर पहुँची, त्यों-ही भगवान् शिव और विष्णुके पार्षदोंने मुझे बलपूर्वक उसके शरीरसे दूर भगा दिया। तबसे मैं भूखका कष्ट सहन करती हुई इधर-उधर घूम रही हूँ। इतनेमें ही आपके ऊपर मेरी दृष्टि पड़ी है। आपके हाथसे तुलसीमिश्रित जलका संसर्ग पाकर मेरे सब पाप नष्ट हो गये। द्विजश्रेष्ठ! अब आप ही कोई उपाय कीजिये। बताइये मैं इस प्रेतशरीरसे और भविष्यमें होनेवाली भयंकर तीन योनियोंसे किस प्रकार मुक्त होऊँगी?

कलहाका यह वचन सुनकर द्विजश्रेष्ठ धर्मदत्तने बहुत समयतक सोच-विचार करनेके बाद कहा—'तीर्थमें दान और व्रत आदि सत्कर्म करनेसे मनुष्यके पाप नष्ट हो जाते हैं, परंतु तू तो प्रेतके शरीरमें है; अतः उन कर्मोंको करनेकी अधिकारिणी नहीं है। इसलिये मैंने जन्मसे लेकर अबतक जो कार्तिकका व्रत किया है, उसके पुण्यका आधा भाग मैं तुझे देता हूँ। तू उसीसे सद्गतिको प्राप्त हो जा।' यों कहकर धर्मदत्तने द्वादशाक्षर-मन्त्रका श्रवण कराते हुए तुलसीमिश्रित जलसे ज्यों-ही उसका अभिषेक किया, त्यों-ही वह प्रेतयोनिसे मुक्त हो प्रज्वलित अग्निशिखाके समान तेजस्विनी एवं दिव्य-रूपधारिणी देवी हो गयी और सौन्दर्यमें लक्ष्मीजीकी समानता करने लगी। तदनन्तर उसने भूमिपर दण्डकी भाँति गिरकर ब्राह्मणदेवताको प्रणाम किया और हर्षगद्गद वाणीमें कहा—'द्विजश्रेष्ठ! आपके प्रसादसे आज मैं इस नरकसे छुटकारा पा गयी। मैं पापके समुद्रमें डूब रही थी, आप मेरे लिये नौकाके समान हो गये।' वह इस प्रकार ब्राह्मणसे कह ही रही थी कि आकाशसे एक दिव्य विमान उतरता दिखायी दिया। वह अत्यन्त प्रकाशमान एवं विष्णुरूपधारी पार्षदोंसे युक्त था। विमानके द्वारपर खड़े हुए

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

पुण्यशील और सुशीलने उस देवीको उठाकर श्रेष्ठ विमानपर चढ़ा लिया। तब धर्मदत्तने बड़े विस्मयके साथ उस विमानको देखा और विष्णुरूपधारी पार्षदोंको देखकर साष्टांग प्रणाम किया। पुण्यशील और सुशीलने प्रणाम करनेवाले ब्राह्मणको उठाया और उसकी सराहना करते हुए कहा—'द्विजश्रेष्ठ! तुम्हें साधुवाद है; क्योंकि तुम सदा भगवान् विष्णुके भजनमें तत्पर रहते हो, दीनोंपर दया करते हो, सर्वज्ञ हो तथा भगवान् विष्णुके व्रतका पालन करते हो। तुमने बचपनसे लेकर अबतक जो कार्तिकव्रतका अनुष्ठान किया है, उसके आधे भागका दान करनेसे तुम्हें दूना पुण्य प्राप्त हुआ है और इसके सैकड़ों जन्मोंके पाप नष्ट हो गये हैं। अब यह वैकुण्ठधाममें ले जायी जा रही है। तुम भी इस जन्मके अन्तमें अपनी दोनों स्त्रियोंके साथ भगवान् विष्णुके वैकुण्ठधाममें जाओगे। धर्मदत्त! जिन्होंने तुम्हारे समान भक्तिपूर्वक भगवान् विष्णुकी आराधना की है, वे धन्य और कृतकृत्य हैं। इस संसारमें उन्हींका जन्म सफल है। भलीभाँति आराधना करनेपर भगवान् विष्णु देहधारी प्राणियोंको क्या नहीं देते हैं? उन्होंने ही उत्तानपादके पुत्रको पूर्वकालमें ध्रुवपदपर स्थापित किया। उनके नामोंका स्मरण करनेमात्रसे समस्त जीव सद्‌गतिको प्राप्त होते हैं। पूर्वकालमें ग्राहग्रस्त गजराज उन्हींके नामोंका स्मरण करनेसे मुक्त हुआ था। तुमने जन्मसे ही लेकर जो भगवान् विष्णुको सन्तुष्ट करनेवाले व्रतका अनुष्ठान किया है, उससे बढ़कर न यज्ञ है, न दान है और न तीर्थ हैं। विप्रवर! तुम धन्य हो, क्योंकि तुमने जगद्‌गुरु भगवान् विष्णुको प्रसन्न करनेवाला ऐसा व्रत किया है कि जिसके आधे भागके फलको पाकर यह स्त्री हमारे साथ भगवान्‌के लोकमें जा रही है।'

भक्तिके प्रभावसे विष्णुदास और राजा चोलका भगवान्‌के पार्षद होना

नारदजी कहते हैं—इस प्रकार विष्णुपार्षदोंके वचन सुनकर धर्मदत्तने कहा, 'प्रायः सभी मनुष्य भक्तोंका कष्ट दूर करनेवाले श्रीविष्णुकी यज्ञ, दान, व्रत, तीर्थसेवन तथा तपस्याओंके द्वारा विधिपूर्वक आराधना करते हैं। उन समस्त साधनोंमें कौन-सा ऐसा साधन है, जो भगवान् विष्णुकी प्रसन्नताको बढ़ानेवाला तथा उनके सामीप्यकी प्राप्ति करानेवाला है।'

दोनों पार्षद अपने पूर्वजन्मकी कथा कहने लगे—ब्रह्मन्! पहले कांचीपुरीमें चोल नामक एक चक्रवर्ती राजा हो गये हैं। उन्हींके नामपर उनके अधीन रहनेवाले सभी देश चोल नामसे विख्यात हुए। राजा चोल जब इस भूमण्डलका शासन करते थे, उस समय उनके राज्यमें कोई भी मनुष्य दरिद्र, दुःखी, पापमें मन लगानेवाला अथवा रोगी नहीं था। एक समयकी बात है, राजा चोल अनन्तशयन नामक तीर्थमें गये, जहाँ जगदीश्वर भगवान् विष्णुने योगनिद्राका आश्रय लेकर शयन किया था। वहाँ भगवान् विष्णुके दिव्य विग्रहकी राजाने विधिपूर्वक पूजा की। दिव्य मणि, मुक्ताफल तथा सुवर्णके बने हुए सुन्दर पुष्पोंसे पूजन करके राजाने साष्टांग प्रणाम किया। प्रणाम करके वे ज्यों ही बैठे, उसी समय उनकी दृष्टि भगवान्‌के पास आते हुए एक ब्राह्मणपर पड़ी, जो उन्हींकी कांचीनगरीके निवासी थे। उनका नाम विष्णुदास था। उन्होंने भगवान्‌की पूजाके लिये अपने हाथमें तुलसीदल और जल ले रखा था। निकट आनेपर उन ब्रह्मर्षिने विष्णुसूक्तका पाठ करते हुए देवाधिदेव भगवान्‌को स्नान कराया और तुलसीकी मंजरी तथा पत्तोंसे उनकी विधिवत्

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

पूजा की। राजा चोलने जो पहले रत्नोंसे भगवान्‌की पूजा की थी, वह सब तुलसीपूजासे ढक गयी। यह देख राजा कुपित होकर बोले—'विष्णुदास! मैंने मणियों तथा सुवर्णसे भगवान्‌की जो पूजा की थी, वह कितनी शोभा पा रही थी; तुमने तुलसीदल चढ़ाकर उसे ढक दिया। बताओ, ऐसा क्यों किया? मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि तुम दरिद्र और गँवार हो! भगवान् विष्णुकी भक्तिको बिलकुल नहीं जानते!'

राजाकी यह बात सुनकर द्विजश्रेष्ठ विष्णुदासने कहा—'राजन्! आपको भक्तिका कुछ भी पता नहीं है, केवल राजलक्ष्मीके कारण आप घमण्ड कर रहे हैं। बतलाइये तो, आजसे पहले आपने कितने वैष्णवव्रतोंका पालन किया है?' तब नृपश्रेष्ठ चोलने हँसकर कहा—'तुम तो दरिद्र और निर्धन हो, तुम्हारी भगवान् विष्णुमें भक्ति ही कितनी है? तुमने भगवान् विष्णुको सन्तुष्ट करनेवाला कोई भी यज्ञ और दान आदि नहीं किया और न पहले कभी कोई देवमन्दिर ही बनवाया है। इतनेपर भी तुम्हें अपनी भक्तिका इतना गर्व है! अच्छा, तो ये सभी ब्राह्मण मेरी बात सुन लें। भगवान् विष्णुके दर्शन पहले मैं करता हूँ, या यह ब्राह्मण। इस बातको आप सब लोग देखें। फिर हम दोनोंमेंसे किसकी भक्ति कैसी है, यह सब लोग स्वतः जान लेंगे।'

ऐसा कहकर राजा अपने राजभवनको चले गये। वहाँ उन्होंने महर्षि मुद्गलको आचार्य बनाकर वैष्णव यज्ञ प्रारम्भ किया। उधर सदैव भगवान् विष्णुको प्रसन्न करनेवाले शास्त्रोक्त नियमोंमें तत्पर विष्णुदास भी व्रतका पालन करते हुए वहीं भगवान् विष्णुके मन्दिरमें टिक गये। उन्होंने माघ और कार्तिकके उत्तम व्रतका अनुष्ठान, तुलसीवनकी रक्षा, एकादशीको द्वादशाक्षर (**ॐ नमो भगवते वासुदेवाय**) मन्त्रका जप, नृत्य, गीत आदि मंगलमय आयोजनोंके साथ प्रतिदिन षोडशोपचारसे भगवान् विष्णुकी पूजा आदि नियमोंका आचरण किया। वे प्रतिदिन चलते, फिरते और सोते—सब समय भगवान् विष्णुका स्मरण किया करते थे। उनकी दृष्टि सर्वत्र सम हो गयी थी। वे सब प्राणियोंके भीतर एकमात्र भगवान् विष्णुको ही स्थित देखते थे। इस प्रकार राजा चोल और विष्णुदास दोनों ही भगवान् लक्ष्मीपतिकी आराधनामें संलग्न थे, दोनों ही अपने-अपने व्रतमें स्थित रहते थे और दोनोंकी ही सम्पूर्ण इन्द्रियाँ तथा समस्त कर्म भगवान् विष्णुको समर्पित हो चुके थे। इस अवस्थामें उन दोनोंने दीर्घकाल व्यतीत किया।

एक दिनकी बात है, विष्णुदासने नित्यकर्म करनेके पश्चात् भोजन तैयार किया। किंतु कोई अलक्षित रहकर उसको चुरा ले गया। विष्णुदासने देखा भोजन नहीं है, परन्तु उन्होंने दुबारा भोजन नहीं बनाया; क्योंकि ऐसा करनेपर सायंकालकी पूजाके लिये उन्हें अवकाश नहीं मिलता। अतः प्रतिदिनके नियमका भंग हो जानेका भय था। दूसरे दिन पुनः उसी समयपर भोजन बनाकर वे ज्यों ही भगवान् विष्णुको भोग अर्पण करनेके लिये गये, त्यों ही किसीने आकर फिर सारा भोजन हड़प लिया। इस प्रकार लगातार सात दिनोंतक कोई आ-आकर उनके भोजनका अपहरण करता रहा। इससे विष्णुदासको बड़ा विस्मय हुआ। वे मन-ही-मन इस प्रकार विचार करने लगे—'अहो! कौन प्रतिदिन आकर मेरी रसोई चुरा ले जाता है। यदि दुबारा रसोई बनाकर भोजन करता हूँ तो सायंकालकी पूजा छूट जाती है! यदि रसोई बनाकर तुरंत ही भोजन कर लेना उचित हो तो भी मुझसे यह न होगा; क्योंकि भगवान् विष्णुको सब कुछ अर्पण किये बिना कोई भी वैष्णव भोजन नहीं करता। आज उपवास करते मुझे सात दिन हो गये। इस प्रकार मैं व्रतमें कबतक स्थिर रह सकता हूँ। अच्छा आज मैं रसोईकी भलीभाँति रक्षा करूँगा।'

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth 279 Skandpuran_Section_16_1_Back

ऐसा निश्चय करके भोजन बनानेके पश्चात् वे वहीं कहीं छिपकर खड़े हो गये। इतनेमें ही उन्हें एक चाण्डाल दिखायी दिया, जो रसोईका अन्न हरकर जानेके लिये तैयार खड़ा था। भूखके मारे उसका सारा शरीर दुर्बल हो गया था, मुखपर दीनता छा रही थी, शरीरमें हाड़ और चामके सिवा और कुछ शेष नहीं बचा था। उसे देखकर श्रेष्ठ ब्राह्मण विष्णुदासका हृदय करुणासे भर आया। उन्होंने भोजन चुरानेवाले चाण्डालकी ओर देखकर कहा—'भैया! जरा ठहरो, ठहरो। क्यों रूखा-सूखा खाते हो? यह घी तो ले लो।' यों कहते हुए विप्रवर विष्णुदासको आते देख वह चाण्डाल भयके मारे बड़े वेगसे भागा और कुछ

ही दूरपर मूर्छित होकर गिर पड़ा। चाण्डालको भयभीत और मूर्छित देखकर द्विजश्रेष्ठ विष्णुदास बड़े वेगसे उसके समीप आये तथा दयावश अपने वस्त्रके छोरसे उसको हवा करने लगे। तदनन्तर जब वह उठकर खड़ा हुआ तब विष्णुदासने देखा, वहाँ चाण्डाल नहीं है, साक्षात् भगवान् नारायण ही शंख, चक्र और गदा धारण किये सामने उपस्थित हैं। अपने प्रभुको प्रत्यक्ष देखकर विष्णुदास सात्त्विक भावोंके वशीभूत हो गये। वे स्तुति और नमस्कार करनेमें भी समर्थ न हो सके। तब भगवान् विष्णुने सात्त्विक व्रतका पालन करनेवाले अपने भक्त विष्णुदासको छातीसे लगा लिया और उन्हें अपने ही जैसा रूप देकर वे वैकुण्ठधामको ले चले। उस समय यज्ञमें दीक्षित हुए राजा चोलने देखा—विष्णुदास एक श्रेष्ठ विमानपर बैठकर भगवान् विष्णुके समीप जा रहे हैं। विष्णुदासको वैकुण्ठधाममें जाते देख राजाने शीघ्र ही अपने गुरु महर्षि मुद्गलको बुलाया और इस प्रकार कहना प्रारम्भ किया—'जिसके साथ स्पर्धा करके मैंने इस यज्ञ, दान आदि कर्मका अनुष्ठान किया है वह ब्राह्मण आज भगवान् विष्णुका रूप धारण करके मुझसे पहले ही वैकुण्ठधामको जा रहा है। मैंने इस वैष्णवयागमें भलीभाँति दीक्षित होकर अग्निमें हवन किया और दान आदिके द्वारा ब्राह्मणोंका मनोरथ पूर्ण किया। तथापि अभीतक भगवान् विष्णु मुझपर प्रसन्न नहीं हुए और इस विष्णुदासको केवल भक्तिके ही कारण श्रीहरिने प्रत्यक्ष दर्शन दिया है। अतः जान पड़ता है भगवान् विष्णु केवल दान और यज्ञोंसे प्रसन्न नहीं होते। उन प्रभुका दर्शन करानेमें भक्ति ही प्रधान कारण है।'

दोनों पार्षद कहते हैं—यों कहकर राजाने अपने भानजेको राजसिंहासनपर अभिषिक्त कर दिया। वे बचपनसे ही यज्ञकी दीक्षा लेकर उसीमें संलग्न रहते थे, इसलिये उन्हें कोई पुत्र नहीं हुआ था। यही कारण है कि उस देशमें अबतक भानजे ही राज्यके उत्तराधिकारी होते हैं। भानजेको राज्य देकर राजा यज्ञशालामें गये और यज्ञकुण्डके सामने खड़े होकर भगवान् विष्णुको सम्बोधित करते हुए तीन बार उच्चस्वरसे निम्नांकित वचन बोले—'भगवान् विष्णु! आप मुझे मन, वाणी, शरीर और क्रियाद्वारा होनेवाली

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

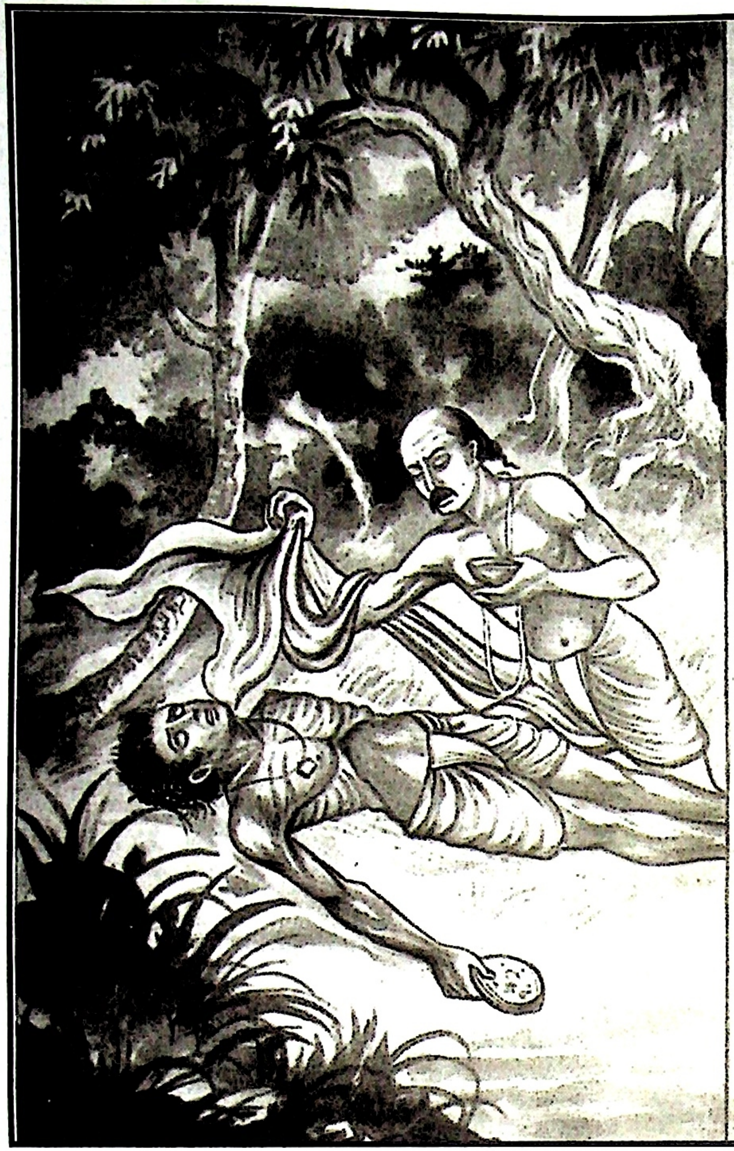

भक्त विष्णुदासके द्वारा चाण्डालकी सेवा

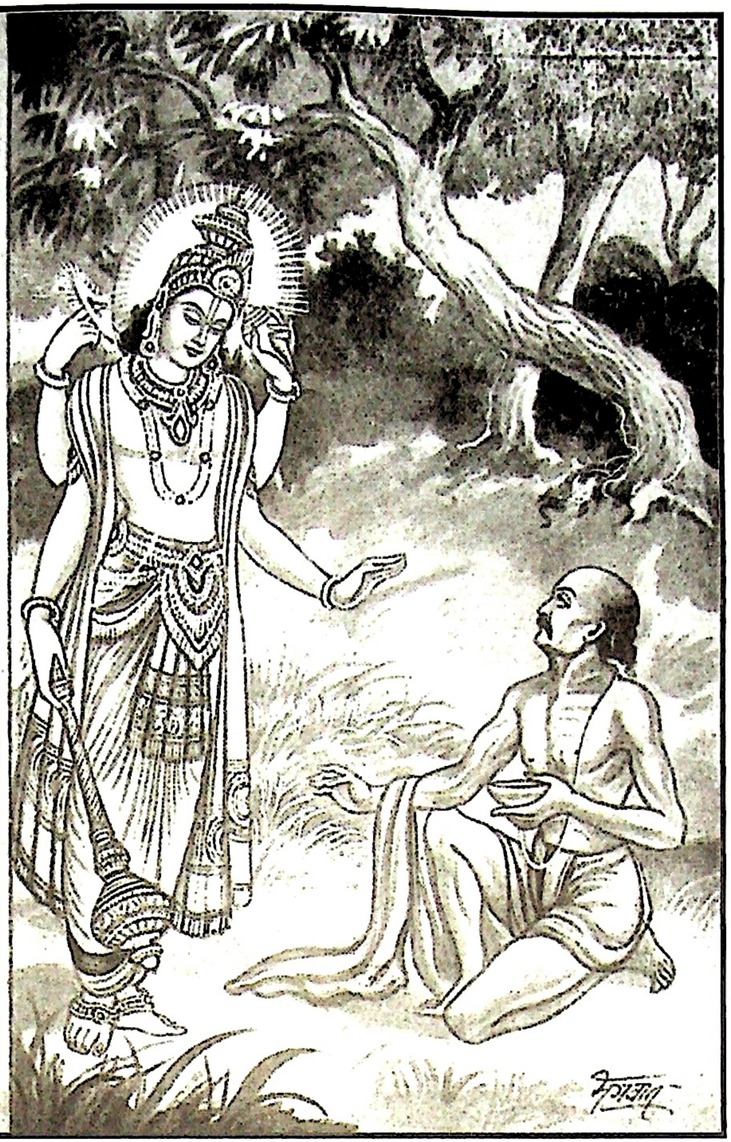

चाण्डालके स्थानपर विष्णुदासको भगवान्‌का दर्शन

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

अविचल भक्ति प्रदान कीजिये।' यों कहकर वे सबके देखते-देखते अग्निकुण्डमें कूद पड़े। बस, उसी क्षण भक्तवत्सल भगवान् विष्णु अग्निकुण्डमें प्रकट हो गये। उन्होंने राजाको छातीसे लगाकर एक श्रेष्ठ विमानपर बैठाया और उन्हें साथ ले वैकुण्ठधामको प्रस्थान किया।

नारदजी कहते हैं—राजन्! जो विष्णुदास थे, वे तो पुण्यशील नामसे प्रसिद्ध भगवान्के पार्षद हुए और जो राजा चोल थे, उनका नाम सुशील हुआ। इन दोनोंको अपने ही समान रूप देकर भगवान् लक्ष्मीपतिने अपना द्वारपाल बना लिया।

जय-विजयका चरित्र

धर्मदत्तने पूछा—मैंने सुना है कि जय और विजय भी भगवान् विष्णुके द्वारपाल हैं। उन्होंने पूर्वजन्ममें कौन-सा पुण्य किया था, जिससे वे भगवान्के समान रूप धारण करके वैकुण्ठधामके द्वारपाल हुए?

दोनों पार्षदोंने कहा—ब्रह्मन्! पूर्वकालमें तृणविन्दुकी कन्या देवहूतिके गर्भसे महर्षि कर्दमकी दृष्टिमात्रसे दो पुत्र उत्पन्न हुए। उनमेंसे बड़ेका नाम जय था और छोटेका विजय। पीछे उसी देवहूतिके गर्भसे योगधर्मके जाननेवाले भगवान् कपिल उत्पन्न हुए। जय और विजय सदा भगवान् विष्णुकी भक्तिमें तत्पर रहते थे। वे नित्य अष्टाक्षर (**ॐ नमो नारायणाय**) मन्त्रका जप और वैष्णवव्रतोंका पालन करते थे। एक समय राजा मरुत्तने उन दोनोंको अपने यज्ञमें बुलाया। वहाँ जय ब्रह्मा बनाये गये और विजय आचार्य। उन्होंने यज्ञकी सम्पूर्ण विधि पूर्ण की। यज्ञान्तमें अवभृथस्नानके पश्चात् राजा मरुत्तने उन दोनोंको बहुत धन दिया। धन लेकर दोनों भाई अपने आश्रमपर गये। वहाँ उस धनका विभाग करते समय दोनोंमें परस्पर लागडाँट पैदा हो गयी। जयने कहा—'इस धनको बराबर-बराबर बाँट लिया जाय।' विजयका कहना था—'नहीं। जिसको जो मिला है, वह उसीके पास रहे।' तब जयने क्रोधमें आकर लोभी विजयको शाप दिया—'तुम ग्रहण करके देते नहीं हो, इसलिये ग्राह हो जाओ।' जयके इस शापको सुनकर विजयने भी शाप दिया—'तुमने मदसे भ्रान्त होकर शाप दिया है, इसलिये मातंग (हाथी)-की योनिमें जाओ।' तत्पश्चात् उन्होंने भगवान्से शापनिवृत्तिके लिये प्रार्थना की। श्रीभगवान्ने कहा—'तुम मेरे भक्त हो, तुम्हारा वचन कभी असत्य नहीं होगा। तुम दोनों अपने ही दिये हुए इन शापोंको भोगकर फिर मेरे धामको प्राप्त होओगे।' ऐसा कहकर भगवान् विष्णु अन्तर्धान हो गये। तदनन्तर वे दोनों गण्डकी नदीके तटपर ग्राह और गज हो गये। उस योनिमें भी उन्हें पूर्वजन्मका स्मरण बना रहा और वे विष्णुके व्रतमें तत्पर रहे। किसी समय वह गजराज कार्तिकमासमें स्नानके लिये गण्डकी नदीमें गया। उस समय ग्राहने शापके हेतुको स्मरण करते हुए उस गजको पकड़ लिया। ग्राहसे पकड़े जानेपर गजराजने भगवान् रमानाथका स्मरण किया। तब भगवान् विष्णु शंख, चक्र और गदा धारण किये वहाँ प्रकट हो गये। उन्होंने चक्र चलाकर ग्राह और गजराज दोनोंका उद्धार किया और उन्हें अपने ही जैसा रूप देकर वे वैकुण्ठधामको ले गये। तबसे वह स्थान हरिक्षेत्रके नामसे प्रसिद्ध है। वे ही दोनों विश्वविख्यात जय और विजय हैं, जो भगवान् विष्णुके द्वारपाल हुए हैं।

धर्मदत्त! तुम भी मात्सर्य और दम्भका त्याग करके सदा भगवान् विष्णुके व्रतमें स्थिर रहो, समदर्शी बनो, तुला (कार्तिक), मकर (माघ) और मेष (वैशाख)-के महीनोंमें सदैव प्रातःकाल

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

स्नान करो। एकादशीव्रतके पालनमें स्थिर रहो। तुलसीके बगीचेकी रक्षा करते रहो। ऐसा करनेसे तुम भी शरीरका अन्त होनेपर भगवान् विष्णुके परम पदको प्राप्त होओगे। भगवान् विष्णुको सन्तुष्ट करनेवाले तुम्हारे इस व्रतसे बढ़कर न यज्ञ हैं, न दान हैं और न तीर्थ ही हैं। विप्रवर! तुम धन्य हो, जिसके व्रतके आधे भागका फल पाकर यह स्त्री हमारे द्वारा वैकुण्ठधाममें ले जायी जा रही है।

नारदजी कहते हैं—राजन्! धर्मदत्तको इस प्रकार उपदेश करके वे दोनों विमानचारी पार्षद उस कलहाके साथ वैकुण्ठधामको चले गये। धर्मदत्त जीवनभर भगवान्‌के व्रतमें स्थिर रहे और देहावसानके बाद उन्होंने अपनी दोनों स्त्रियोंके साथ वैकुण्ठधाम प्राप्त कर लिया। इस प्राचीन इतिहासको जो सुनता और सुनाता है, वह जगद्‌गुरु भगवान्‌की कृपासे उनका सान्निध्य प्राप्त करानेवाली उत्तम गति पाता है।

सांसर्गिक पुण्यसे धनेश्वरका उद्धार, दूसरोंके पुण्य और पापकी आंशिक प्राप्तिके कारण तथा मासोपवास व्रतकी संक्षिप्त विधि

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—प्रिये! नारदजीके मुखसे यह कथा सुनकर राजा पृथुके मनमें बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने नारदजीका भलीभाँति पूजन करनेके पश्चात् उन्हें विदा किया। पूर्वकालमें अवन्तिपुरीमें धनेश्वर नामक एक ब्राह्मण रहता था। वह क्रय-विक्रयके कार्यसे घूमता हुआ किसी समय माहिष्मतीपुरीमें जा पहुँचा, जहाँ पापनाशिनी नर्मदा सदैव शोभा पाती है। वहाँ कार्तिकका व्रत करनेवाले बहुत-से मनुष्य अनेक गाँवोंसे स्नान करनेके लिये आये हुए थे। धनेश्वरने उन सबको देखा और अपना सामान बेचता हुआ वह एक मासतक वहीं रहा। वह प्रतिदिन नर्मदाके किनारे घूम-घूमकर स्नान, जप और देवार्चनमें लगे हुए ब्राह्मणोंको देखता और वैष्णवोंके मुखसे भगवान् विष्णुके नामोंका कीर्तन सुनता था। इस प्रकार नर्मदा-तटपर रहते हुए उसको जब एक मास बीत गया, तब एक दिन अकस्मात् उसे किसी काले साँपने डँस लिया। इससे विह्वल होकर वह भूमिपर गिर पड़ा। यमदूत उसे बाँधकर ले गये और कुम्भीपाकमें डाल दिया। वहाँ उसके गिरते ही सारा कुण्ड शीतल हो गया; ठीक उसी तरह, जैसे पूर्वकालमें प्रह्लादजीको डालनेसे दैत्योंकी जलायी हुई आग ठंडी हो गयी थी। तदनन्तर यमराज इस विषयमें पूछ-ताछ करने लगे। इतनेमें ही वहाँ नारदजी आये और इस प्रकार बोले—'सूर्यनन्दन! यह नरकोंका उपभोग करने योग्य नहीं है। जो मनुष्य पुण्यकर्म करनेवाले लोगोंका दर्शन, स्पर्श और उनके साथ वार्तालाप करता है, वह उनके पुण्यका छठा अंश प्राप्त कर लेता है। यह धनेश्वर तो एक मासतक श्रीहरिके कार्तिकव्रतका अनुष्ठान करनेवाले असंख्य मनुष्योंके संपर्कमें रहा है, अतः यह उन सबके पुण्यांशका भागी हुआ है। इसको अनिच्छासे पुण्य प्राप्त हुआ है, इसलिये यह यक्षकी योनिमें रहे और पापभोगके रूपमें सब नरकोंका दर्शनमात्र करके ही यमयातनासे मुक्त हो जाय।'

प्रिये! यों कहकर देवर्षि नारद चले गये। तब प्रेतराजने धनेश्वरको नरकोंके समीप ले जाकर उन सबको दिखलाते हुए कहा—'धनेश्वर! महान् भय देनेवाले इन घोर नरकोंकी ओर दृष्टि डालो। इनमें पापी पुरुष सदा दूतोंद्वारा पकाये जाते हैं। इन नरकोंके पृथक्-पृथक् चौरासी भेद हैं। तुम्हें कार्तिकव्रत करनेवाले पुरुषोंका संसर्ग प्राप्त हुआ था, उससे पुण्यकी वृद्धि हो जानेके

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

कारण ये सभी नरक तुम्हारे लिये निश्चय ही नष्ट हो गये हैं।' इस प्रकार धनेश्वरको नरकोंका दर्शन कराकर प्रेतराज उसे यक्षलोकमें ले गये। वहाँ जाकर वह यक्ष हुआ। वही कुबेरके अनुचर 'धनयक्ष'के नामसे प्रसिद्ध हुआ।

सूतजी कहते हैं—इस प्रकार अपनी अत्यन्त प्रिय सत्यभामाको यह कथा सुनाकर भगवान् श्रीकृष्ण सन्ध्योपासना करनेके लिये माताके घरमें गये।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! यदि कार्तिकव्रत करनेके लिये अपनेमें सामर्थ्य न हो तो अन्य उपायसे भी इसका फल प्राप्त हो सकता है। ब्राह्मणको धन देकर कार्तिकव्रतके उत्तम फलको ग्रहण करे। शिष्यसे, भृत्यवर्गसे, स्त्रियोंसे अथवा अपने किसी विश्वासपात्र मनुष्यसे भी व्रतका पालन करावे। ऐसा करनेसे भी मनुष्य फलका भागी होता है।

नारदजीने पूछा—पितामह! यह कार्तिकव्रत थोड़े परिश्रमद्वारा साध्य होनेवाला और महान् फल देनेवाला है, तो भी मनुष्य इसे क्यों नहीं करते हैं ?

ब्रह्माजीने कहा—काम, क्रोध और लोभके वशीभूत होनेवाले मनुष्य व्रत आदि धर्मकृत्य नहीं कर पाते। जो इनसे मुक्त हैं वे ही धर्मकार्य करते हैं। इस पृथ्वीपर श्रद्धा और मेधा—ये दो वस्तुएँ ऐसी हैं जो काम, क्रोध आदिका विनाश करनेवाली हैं। इनसे व्याप्त मनुष्य भगवान् विष्णुका श्रवण, कीर्तन आदि करता है। पर जिसकी बुद्धि खोटी है वह यह सब नहीं करता। इसीसे वह अन्धकारपूर्ण नरकमें गिरता है। पढ़ानेसे, यज्ञ करानेसे और एक पंक्तिमें बैठकर भोजन करनेसे मनुष्य दूसरोंके किये हुए पुण्य और पापका चौथाई भाग प्राप्त कर लेता है। एक आसनपर बैठने, एक सवारीपर यात्रा करने तथा श्वाससे शरीरका स्पर्श होनेसे मनुष्य निश्चय ही पुण्य और पापके छठे अंशके फलका भागी होता है। दूसरेके स्पर्शसे, भाषणसे तथा उसकी प्रशंसा करनेसे भी मानव सदा उसके पुण्य और पापके दसवें अंशको पाता है। दर्शन और श्रवणसे अथवा मनके द्वारा उसका चिन्तन करनेसे, वह दूसरेके पुण्य और पापका शतांश प्राप्त करता है। जो दूसरेकी निन्दा करता, चुगली खाता तथा उसे धिक्कार देता है, वह उसके किये हुए पातकको स्वयं लेकर बदलेमें उसे अपना पुण्य देता है। जो मनुष्य किसी पुण्यकर्म करनेवाले पुरुषकी सेवा करता है, वह यदि उसकी पत्नी, भृत्य और शिष्योंसे भिन्न है तथा उसे उसकी सेवाके अनुरूप कुछ धन नहीं दिया जा रहा है, तो वह भी सेवाके अनुसार उस पुण्यात्माके पुण्यफलका भागी होता है। जो एक पंक्तिमें बैठे हुए पुरुषको रसोई परोसते समय छोड़कर आगे बढ़ जाता है, उसके पुण्यका छठा अंश वह छूटा हुआ व्यक्ति पा लेता है। स्नान और सन्ध्या आदि करते समय जो दूसरेका स्पर्श अथवा दूसरेसे भाषण करता है, वह अपने कर्मजनित पुण्यका छठा अंश उसे निश्चय ही दे डालता है। जो धर्मके उद्देश्यसे दूसरोंके पास जाकर धनकी याचना करता है, उसके उस पुण्यकर्मजनित फलका भागी वह धन देनेवाला भी होता है। जो दूसरोंका धन चुराकर उसके द्वारा पुण्यकर्म करता है, वहाँ कर्म करनेवाला तो पापी होता है तथा जिसका धन चुराकर उस कर्ममें लगाया गया है, वही उसके पुण्यफलको प्राप्त करता है। जो दूसरोंका ऋण चुकाये बिना मर जाता है, उसके पुण्यमेंसे वह धनी अपने धनके अनुरूप हिस्सा बँटा लेता है। जो बुद्धि (सलाह) देनेवाला, अनुमोदन करनेवाला, साधनसामग्री देनेवाला तथा बल लगानेवाला है, वह भी पुण्य-पापमेंसे छठे अंशको ग्रहण करता है। प्रजाके पुण्य और पापमेंसे छठा अंश राजा लेता है। इसी प्रकार शिष्यसे गुरु, स्त्रीसे उसका पति और पुत्रसे उसका पिता पुण्य-पापका छठा

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

अंश ग्रहण करता है। स्त्री भी यदि अपने पतिके मनके अनुकूल चलनेवाली और सदा उसे सन्तुष्ट रखनेवाली हो तो वह उसके पुण्यका आधा भाग प्राप्त कर लेती है। जो दूसरेके हाथसे दान आदि पुण्य कर्म करता है, उसके पुण्यका छठा अंश वह कर्ता ही ले लेता है परंतु यदि वह पुत्र अथवा भृत्य हो तो षष्ठांशका भागी नहीं होता है। वृत्ति देनेवाला पुरुष वृत्ति भोगनेवालेके पुण्यका छठा अंश ले लेता है। किंतु ऐसा तभी होता है जब वह उस वृत्ति भोगनेवालेसे अपनी या दूसरेकी सेवा न कराता हो। इस प्रकार दूसरोंके द्वारा संचित किये हुए पुण्य-पाप बिना दिये हुए भी आ जाते हैं। पूर्वकालमें एक दम्भी तपस्वी पतिव्रता स्त्रीके शुद्ध प्रभावसे, पिता-माताका पूजन देखनेसे, कार्तिकव्रतका सेवन करके उत्तम लोकको प्राप्त हो गया था।

नारदजीने कहा—भगवन्! मैं मासोपवासकी विधि और उसके फलका यथोचित वर्णन सुनना चाहता हूँ।

ब्रह्माजीने कहा—नारद! जैसे देवताओंमें भगवान् विष्णु श्रेष्ठ हैं उसी प्रकार सम्पूर्ण व्रतोंमें यह मासोपवास व्रत श्रेष्ठ है। अपने शरीरके बलाबलको समझकर मासोपवास व्रत करना चाहिये। आश्विनके शुक्लपक्षकी एकादशीको उपवास करके तीस दिनोंके लिये इस व्रतको ग्रहण करना चाहिये और उतने दिनोंतक भगवान्के मन्दिरमें जाकर तीनों समय भक्तिपूर्वक नैवेद्य, धूप, दीप तथा नाना प्रकारके पुष्पोंसे मन, वाणी और क्रियाद्वारा भगवान् गरुडध्वजकी पूजा करनी चाहिये। स्वधर्मपरायण मनुष्य और अपनी इन्द्रियोंको वशमें रखनेवाली सौभाग्यवती अथवा विधवा स्त्री भगवान् वासुदेवकी पूजा करे। दूसरेका अन्न ग्रहण न करे, परंतु स्वयं दूसरोंको अन्न दे। व्रतस्थ पुरुष शरीरमें उबटन लगाना, मस्तकमें तेल मलना, पान खाना और चन्दन आदिका लेप करना छोड़ दे। इसके सिवा अन्य निषिद्ध वस्तुओंका भी त्याग करे। व्रतका पालन करनेवाला मनुष्य विपरीत कर्ममें लगे रहनेवाले किसी मनुष्यका न तो स्पर्श करे और न उससे वार्तालाप ही करे। गृहस्थ भी देवमन्दिरमें रहकर व्रतका आचरण करे। यथोक्त विधिसे मासोपवासव्रत पूरा करके द्वादशीमें परम पवित्र भगवान् विष्णुका पूजन करे, दक्षिणा दे। मासोपवासके अन्तमें तेरह ब्राह्मणोंका वरण करके वैष्णव यज्ञ करावे। तत्पश्चात् ब्राह्मणोंको भोजन करावे और उन्हें ताम्बूलसहित दो-दो वस्त्र देकर पूजनपूर्वक विदा करे। इस प्रकार मासोपवासकी विधि बतायी गयी।

तुलसीविवाह और भीष्मपंचक-व्रतकी विधि एवं महिमा

ब्रह्माजी कहते हैं—कार्तिक शुक्ला नवमीको द्वापर युगका प्रारम्भ हुआ है। अतः वह तिथि दान और उपवासमें क्रमशः पूर्वाह्नव्यापिनी तथा पराह्नव्यापिनी हो तो ग्राह्य है। इसी तिथिको (नवमीसे एकादशीतक) मनुष्य शास्त्रोक्त विधिसे तुलसीके विवाहका उत्सव करे तो उसे कन्यादानका फल होता है। पूर्वकालमें कनककी पुत्री किशोरीने एकादशी तिथिमें सन्ध्याके समय तुलसीकी वैवाहिकविधि सम्पन्न की। इससे वह किशोरी वैधव्य दोषसे मुक्त हो गयी। अब मैं उसकी विधि बतलाता हूँ—एक तोला सुवर्णकी भगवान् विष्णुकी सुन्दर प्रतिमा तैयार करावे अथवा अपनी शक्तिके अनुसार आधे या चौथाई तोलेकी ही प्रतिमा बनवा ले। फिर तुलसी और भगवान् विष्णुकी प्रतिमामें प्राणप्रतिष्ठा करके स्तुति आदिके द्वारा भगवान्को उठावे। पुनः

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

पुरुषसूक्तके मन्त्रोंद्वारा षोडशोपचारसे पूजा करे। पहले देश-कालका स्मरण करके गणेशपूजन करे, फिर पुण्याह-वाचन कराकर नान्दीश्राद्ध करे। तत्पश्चात् वेद-मन्त्रोंके उच्चारण और बाजे आदिकी ध्वनिके साथ भगवान् विष्णुकी प्रतिमाको तुलसीजीके निकट लाकर रखे। प्रतिमाको वस्त्रोंसे आच्छादित किये रहे। उस समय भगवान्‌का इस प्रकार आवाहन करे—

आगच्छ भगवन् देव अर्चयिष्यामि केशव।
तुभ्यं दास्यामि तुलसीं सर्वकामप्रदो भव॥

'भगवान् केशव! आइये, देव! मैं आपकी पूजा करूँगा। आपकी सेवामें तुलसीको समर्पित करूँगा। आप मेरे सम्पूर्ण मनोरथोंको पूर्ण करें।'

इस प्रकार आवाहनके पश्चात् तीन-तीन बार अर्घ्य, पाद्य और विष्टरका उच्चारण करके इन्हें बारी-बारीसे भगवान्‌को समर्पित करे। फिर आचमनीय पदका तीन बार उच्चारण करके भगवान्‌को आचमन करावे। इसके बाद कांस्यके पात्रमें दही, घी और मधु रखकर उसे कांस्यके पात्रसे ही ढक दे तथा भगवान्‌को अर्पण करते हुए इस प्रकार कहे—'वासुदेव! आपको नमस्कार है, यह मधुपर्क ग्रहण कीजिये।' तदनन्तर हरिद्रालेपन और अभ्यंग-कार्य सम्पन्न करके गोधूलिकी बेलामें तुलसी और श्रीविष्णुका पूजन पृथक्-पृथक् करना चाहिये। दोनोंको एक-दूसरेके सम्मुख रखकर मंगल-पाठ करे। जब भगवान् सूर्य कुछ-कुछ दिखायी देते हों, तब कन्यादानका संकल्प करे। अपने गोत्र और प्रवरका उच्चारण करके आदिकी तीन पीढ़ियोंका भी आवर्तन करे। तत्पश्चात् भगवान्‌से इस प्रकार कहे—

अनादिमध्यनिधन त्रैलोक्यप्रतिपालक।
इमां गृहाण तुलसीं विवाहविधिनेश्वर॥
पार्वतीबीजसम्भूतां वृन्दाभस्मनि संस्थिताम्।
अनादिमध्यनिधनां वल्लभां ते ददाम्यहम्॥
पयोघटैश्च सेवाभिः कन्यावद्वर्द्धिता मया।
त्वत्प्रियां तुलसीं तुभ्यं ददामि त्वं गृहाण भोः॥

'आदि, मध्य और अन्तसे रहित त्रिभुवन-प्रतिपालक परमेश्वर! इस तुलसीको आप विवाहकी विधिसे ग्रहण करें। यह पार्वतीके बीजसे प्रकट हुई है, वृन्दाकी भस्ममें स्थित रही है तथा आदि, मध्य और अन्तसे शून्य है। आपको तुलसी बहुत ही प्रिय है, अतः इसे मैं आपकी सेवामें अर्पित करता हूँ। मैंने जलके घड़ोंसे सींचकर और अन्य प्रकारकी सेवाएँ करके अपनी पुत्रीकी भाँति इसे पाला, पोसा और बढ़ाया है, आपकी प्रिया तुलसी मैं आपको ही दे रहा हूँ। प्रभो! आप इसे ग्रहण करें।'

इस प्रकार तुलसीका दान करके फिर उन दोनों (तुलसी और विष्णु)-की पूजा करे। विवाहका उत्सव मनाये। सबेरा होनेपर पुनः तुलसी और विष्णुका पूजन करे। अग्निकी स्थापना करके उसमें द्वादशाक्षरमन्त्रसे खीर, घी, मधु और तिलमिश्रित हवनीय द्रव्यकी एक सौ आठ आहुति दे। फिर 'स्विष्टकृत्' होम करके पूर्णाहुति दे। आचार्यकी पूजा करके होमकी शेष विधि पूरी करे। उसके बाद भगवान्‌से इस प्रकार प्रार्थना करे—'देव! प्रभो!! आपकी प्रसन्नताके लिये मैंने यह व्रत किया है। जनार्दन! इसमें जो न्यूनता हो, वह आपके प्रसादसे पूर्णताको प्राप्त हो जाय।'

यदि द्वादशीमें रेवतीका चौथा चरण बीत रहा हो तो उस समय पारण न करे। जो उस समय भी पारण करता है, वह अपने व्रतको निष्फल कर देता है। भोजनके पश्चात् तुलसीके स्वतः गलकर गिरे हुए पत्तोंको खाकर मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। भोजनके अन्तमें ऊख, आँवला और बेरका फल खा लेनेसे उच्छिष्ट-दोष मिट जाता है।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

तदनन्तर भगवान्‌का विसर्जन करते हुए कहे—'भगवन्! आप तुलसीके साथ वैकुण्ठधाममें पधारें। प्रभो! मेरे द्वारा की हुई पूजा ग्रहण करके आप सदा सन्तुष्ट रहें।' इस प्रकार देवेश्वर विष्णुका विसर्जन करके मूर्ति आदि सब सामग्री आचार्यको अर्पण करे। इससे मनुष्य कृतार्थ हो जाता है।

कार्तिक शुक्ल पक्षमें एकादशीको प्रातःकाल विधिपूर्वक स्नान करके पाँच दिनका व्रत ग्रहण करे। बाणशय्यापर सोये हुए महात्मा भीष्मने राजधर्म, मोक्षधर्म और दानधर्मका वर्णन किया, जिसे पाण्डवोंके साथ ही भगवान् श्रीकृष्णने भी सुना। उससे प्रसन्न होकर भगवान् वासुदेवने कहा—'भीष्म! तुम धन्य हो, धन्य हो, तुमने धर्मोंका स्वरूप अच्छी तरह श्रवण कराया है। कार्तिककी एकादशीको तुमने जलके लिये याचना की और अर्जुनने बाणके वेगसे गंगाजल प्रस्तुत किया, जिससे तुम्हारे तन, मन, प्राण सन्तुष्ट हुए। इसलिये आजसे लेकर पूर्णिमातक तुम्हें सब लोग अर्घ्यदानसे तृप्त करें और मुझको सन्तुष्ट करनेवाले इस भीष्मपंचक नामक व्रतका पालन प्रतिवर्ष करते रहें।'

निम्नांकित मन्त्र पढ़कर सव्यभावसे महात्मा भीष्मके लिये तर्पण करना चाहिये। यह भीष्मतर्पण सभी वर्णोंके लोगोंके लिये कर्तव्य है*। मन्त्र इस प्रकार है—

सत्यव्रताय शुचये गाङ्गेयाय महात्मने।
भीष्मायैतद् ददाम्यर्घ्यमाजन्मब्रह्मचारिणे॥

'आजन्म ब्रह्मचर्यका पालन करनेवाले परम पवित्र सत्यव्रतपरायण गंगानन्दन महात्मा भीष्मको मैं यह अर्घ्य देता हूँ।'

जो मनुष्य पुत्रकी कामनासे स्त्रीसहित भीष्मपंचकव्रतका पालन करता है, वह वर्षके भीतर ही पुत्र प्राप्त करता है। जो भीष्मपंचकव्रतका पालन करता है, उसके द्वारा सब प्रकारके शुभकृत्योंका पालन हो जाता है। यह महापुण्यमय व्रत महापातकोंका नाश करनेवाला है। अतः मनुष्योंको प्रयत्नपूर्वक इसका अनुष्ठान करना चाहिये। इसमें भीष्मजीके लिये जलदान और अर्घ्यदान विशेष यत्नसे करना चाहिये। जो नीचे लिखे मन्त्रसे भीष्मजीके लिये अर्घ्यदान करता है, वह मोक्षका भागी होता है।

अर्घ्य-मन्त्र

वैयाघ्रपदगोत्राय साङ्कृतप्रवराय च।
अपुत्राय ददाम्येतदुदकं भीष्मवर्मणे॥
वसूनामवताराय शन्तनोरात्मजाय च।
अर्घ्यं ददामि भीष्माय आजन्मब्रह्मचारिणे॥

'जिनका व्याघ्रपद गोत्र और सांकृत प्रवर है, उन पुत्ररहित भीष्मवर्माको मैं यह जल देता हूँ। वसुओंके अवतार, शन्तनुके पुत्र, आजन्म ब्रह्मचारी भीष्मको मैं अर्घ्य देता हूँ।'

पंचगव्य, सुगन्धित चन्दनके जल, चन्दन, उत्तम गन्ध और कुंकुमके द्वारा भक्तिपूर्वक सर्वपापहारी श्रीहरिका पूजन करे। कर्पूर और खस मिले हुए कुंकुमसे भगवान् गरुड़ध्वजके अंगोंमें लेप करे। सुन्दर पुष्प एवं गन्ध, धूप आदिके द्वारा भगवान्‌की अर्चना करे। पाँच दिनोंतक भगवान्‌के समीप दिन-रात दीपक जलाता रहे। देवाधिदेव भगवान्‌के लिये उत्तम-से-उत्तम नैवेद्य निवेदन करे। इस प्रकार भगवान्‌की पूजा-अर्चा, ध्यान और नमस्कारके पश्चात् '**ॐ नमो वासुदेवाय**' इस मन्त्रका एक सौ आठ बार जप करे। फिर घी मिलाये हुए तिल, चावल और जौ आदिके द्वारा स्वाहाविशिष्ट षडक्षर (**ॐ रामाय नमः**) मन्त्रसे आहुति दे। इसके बाद सायं-सन्ध्या करके

* सव्येनानेन मन्त्रेण तर्पणं सार्ववर्णिकम्। (स्क० पु०, वै० का० मा० ३२। १०)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

भगवान् विष्णुको प्रणाम करे तथा पूर्ववत् मन्त्र जपकर धरतीपर ही शयन करे। भक्तिपूर्वक भगवान्‌में ही मनको लगावे। व्रतके समय बुद्धिमान् पुरुष ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए पापपूर्ण विचार तथा पापके कारणभूत मैथुनका परित्याग करे। शाकाहार तथा मुनियोंके अन्नसे निर्वाह करते हुए सदा भगवान् विष्णुके पूजनमें तत्पर रहे। रात्रिमें पंचगव्य लेकर भोजन करे। इस प्रकार भलीभाँति व्रतको समाप्त करे। ऐसा करनेसे मनुष्य शास्त्रोक्त फलको पाता है। स्त्रियोंको अपने पतिकी आज्ञा लेकर पुण्यकी वृद्धि करनी चाहिये। विधवाओंको भी मोक्षसुखकी वृद्धिके लिये व्रतका अनुष्ठान करना चाहिये। पहले अयोध्यापुरीमें कोई अतिथि नामके राजा हो गये हैं। उन्होंने वसिष्ठजीके वचनसे इस परम दुर्लभ व्रतका अनुष्ठान किया था, जिससे इस लोकमें सम्पूर्ण भोगोंका उपभोग करके अन्तमें वे भगवान् विष्णुके परम धाममें गये। इस प्रकार नियम, उपवास और पंचगव्यसे तथा दूध, फल, मूल एवं हविष्यके आहारसे निर्वाह करते हुए भीष्मपंचक व्रतका पालन करे। पौर्णमासी आनेपर पहलेके समान पूजन करके ब्राह्मणोंको भोजन करावे और बछड़े सहित गौका दान करे। एकादशीसे लेकर पूर्णिमातक पाँच दिनोंका भीष्मपंचकव्रत समस्त भूमण्डलमें प्रसिद्ध है। अन्न भोजन करनेवाले पुरुषके लिये यह व्रत नहीं कहा गया है, इसमें अन्नका निषेध है। इस व्रतका पालन करनेपर भगवान् विष्णु शुभ फल प्रदान करते हैं।

एकादशीको भगवान्‌के जगानेकी विधि, कार्तिकव्रतका उद्यापन और अन्तिम तीन तिथियोंकी महिमाके साथ ग्रन्थका उपसंहार

ब्रह्माजी कहते हैं—जो पुरुष कार्तिकमासमें प्रतिदिन पुरुषसूक्तके मन्त्रोंद्वारा अथवा पांचरात्र आगममें बतायी हुई विधिके अनुसार भगवान् विष्णुका पूजन करता है, वह मोक्षका भागी होता है। जो कार्तिकमें **'ॐ नमो नारायणाय'**—इस मन्त्रसे श्रीहरिकी आराधना करता है, वह नरकके दुःखोंसे मुक्त हो, रोग-शोकसे रहित वैकुण्ठधामको प्राप्त होता है। कार्तिकमासमें जो मनुष्य विष्णुसहस्रनाम तथा गजेन्द्रमोक्षका पाठ करता है, उसका फिर संसारमें जन्म नहीं होता। सुव्रत! जो कार्तिकमासमें रात्रिके पिछले पहरमें भगवान्‌की स्तुतिका गान करता है, वह पितरोंसहित श्वेतद्वीपमें निवास करता है। आषाढ़के शुक्ल पक्षमें एकादशी तिथिको शंखासुर दैत्य मारा गया है। अतः उसी दिनसे आरम्भ करके भगवान् चार मासतक क्षीरसमुद्रमें शयन करते हैं और कार्तिक शुक्ला एकादशीको जागते हैं। इस कारण वैष्णवोंको एकादशीमें निम्नांकित मन्त्रका उच्चारण करके भगवान्‌को जगाना चाहिये।

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ गोविन्द उत्तिष्ठ गरुडध्वज।
उत्तिष्ठ कमलाकान्त त्रैलोक्यमङ्गलं कुरु॥

'हे गोविन्द! उठिये, उठिये, हे गरुड़ध्वज! उठिये, हे कमलाकान्त! निद्राका त्याग कर तीनों लोकोंका मंगल कीजिये।'

ऐसा कहकर प्रातःकाल शंख और नगाड़े आदि बजवावे। वीणा, वेणु और मृदंग आदिकी मधुर ध्वनिके साथ नृत्य-गीत और कीर्तन आदि करे। देवेश्वर श्रीविष्णुको उठाकर उनकी पूजा करे और सायंकालमें तुलसीकी वैवाहिक विधिको सम्पन्न करे। एकादशी सदा ही पवित्र है, विशेषतः

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

कार्तिककी एकादशी परम पुण्यमयी मानी गयी है। उत्तम बुद्धिवाला मनुष्य वृद्ध माता-पिताका विधिपूर्वक पूजन करके अपनी स्त्रियोंके साथ भगवान् विष्णुके प्रसादको भक्षण करे। जो इस प्रकार विधिसे द्वादशी व्रतका अनुष्ठान करता है, वह मनुष्य उत्तम सुखोंका उपभोग करके अन्तमें मोक्षको प्राप्त होता है। मुनिश्रेष्ठ! जो मनुष्य द्वादशी तिथिके इस परम उत्तम पुण्यमय माहात्म्यका पाठ अथवा श्रवण करता है, वह उत्तम गतिको प्राप्त होता है।

अब मैं कार्तिक-व्रतके उद्यापनका वर्णन करता हूँ, जो सब पापोंका नाश करनेवाला है। व्रतका पालन करनेवाला मनुष्य कार्तिक शुक्ला चतुर्दशीको व्रतकी पूर्ति और भगवान् विष्णुकी प्रीतिके लिये उद्यापन करे। तुलसीके ऊपर एक सुन्दर मण्डप बनवावे। उसे केलेके खंभोंसे संयुक्त करके नाना प्रकारकी धातुओंसे उसकी विचित्र शोभा बढ़ावे। मण्डपके चारों ओर दीपकोंकी श्रेणी सुन्दर ढंगसे सजाकर रखे। उस मण्डपमें सुन्दर बंदनवारोंसे सुशोभित चार दरवाजे बनावे और उन्हें फूलों तथा चँवरसे सुसज्जित करे। द्वारोंपर पृथक्-पृथक् मिट्टीके द्वारपाल बनाकर उनकी पूजा करे। उनके नाम इस प्रकार हैं—जय, विजय, चण्ड, प्रचण्ड, नन्द, सुनन्द, कुमुद और कुमुदाक्ष। उन्हें चारों दरवाजोंपर दो-दोके क्रमसे स्थापित कर भक्तिपूर्वक पूजन करे। तुलसीकी जड़के समीप चार रंगोंसे सुशोभित सर्वतोभद्रमण्डल बनावे और उसके ऊपर पूर्णपात्र तथा पंचरत्नसे संयुक्त कलशकी स्थापना करे। कलशके ऊपर शंख-चक्र-गदाधारी भगवान् विष्णुका पूजन करे। भक्तिपूर्वक उस तिथिमें उपवास करे तथा रात्रिमें गीत, वाद्य, कीर्तन आदि मंगलमय आयोजनोंके साथ जागरण करे। जो भगवान् विष्णुके लिये जागरण करते समय भक्तिपूर्वक भगवत्सम्बन्धी पदोंका गान करते हैं, वे सैकड़ों जन्मोंकी पापराशिसे मुक्त हो जाते हैं। उसके बाद पूर्णमासीमें एक सपत्नीक ब्राह्मणको निमन्त्रित करे। प्रातःकाल स्नान और देवपूजन करके वेदीपर अग्निकी स्थापना करे और '**अतो देव०**' इत्यादि मन्त्रके द्वारा देवाधिदेव भगवान्‌की प्रीतिके लिये तिल और खीरकी आहुति दे। होमकी शेष विधि पूरी करके भक्तिपूर्वक ब्राह्मणोंका पूजन करे और उन्हें यथाशक्ति दक्षिणा दे। भगवान् द्वादशी तिथिको शयनसे उठे, त्रयोदशीको देवताओंसे मिले और चतुर्दशीको सबने उनका दर्शन एवं पूजन किया, इसलिये उस तिथिमें भगवान्‌की पूजा करनी चाहिये। गुरुकी आज्ञासे भगवान् विष्णुकी सुवर्णमयी प्रतिमाका पूजन करे। इस पूर्णिमाको पुष्कर तीर्थकी यात्रा श्रेष्ठ मानी गयी है। नारद! कार्तिकमासमें इस विधिका पालन करना चाहिये। जो इस प्रकार कार्तिकके व्रतका पालन करते हैं, वे धन्य और पूजनीय हैं; उन्हें उत्तम फलकी प्राप्ति होती है। जो भगवान् विष्णुकी भक्तिमें तत्पर हो कार्तिकमें व्रतका पालन करते हैं, उनके शरीरमें स्थित सभी पाप तत्काल नष्ट हो जाते हैं। जो श्रद्धापूर्वक कार्तिकके उद्यापनका माहात्म्य सुनता है या सुनाता है, वह भगवान् विष्णुका सायुज्य प्राप्त करता है।

भगवान् विष्णुकी पूजामें रात्रिकालव्यापिनी चतुर्दशी ग्रहण करनी चाहिये और अरुणोदयके समय भगवान् शिवकी पूजा करनी चाहिये। सायंकाल काशीके पंचगंगातीर्थमें स्नान करके भगवान् विन्दुमाधवकी पूजा करे। पहले विष्णुकांचीमें स्नान करके भगवान् अनन्तसेनकी पूजा करे। फिर रुद्रकांचीमें स्नान करके ओंकारेश्वरके अग्नितीर्थमें नहाकर भगवान् नारायणकी, रेतोदकमें स्नान करके केदारेश्वरकी, प्रयागकी यमुनामें नहाकर भगवान् वेणीमाधवकी और फिर गंगामें स्नान करके संगमेश्वरकी पूजा करे। जो ऐसा करता है, उसके सब प्रकारकी सम्पत्तियाँ अधीन हो जाती हैं।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

कार्तिकमासके शुक्ल पक्षमें जो अन्तिम तीन पुण्यमयी तिथियाँ हैं, वे त्रयोदशी, चतुर्दशी और पूर्णिमा कल्याण करनेवाली मानी गयी हैं। उनकी अति पुष्करिणी संज्ञा है। वे सब पापोंका नाश करनेवाली हैं। जो पूरे कार्तिकमासमें स्नान करता है, वह इन्हीं तीन तिथियोंमें स्नान करके पूर्ण फलका भागी होता है। त्रयोदशीमें समस्त वेद जाकर प्राणियोंको पवित्र करते हैं, चतुर्दशीमें यज्ञ और देवता सब जीवोंको पावन बनाते हैं और पूर्णिमामें भगवान् विष्णुसे अधिष्ठित सम्पूर्ण श्रेष्ठ तीर्थ ब्रह्मघाती और शराबी आदि सब पापी प्राणियोंको शुद्ध करते हैं। जो गृहस्थ उक्त तीन तिथियोंमें ब्राह्मणकुटुम्बको भोजन कराता है, वह अपने समस्त पितरोंका उद्धार करके परम पदको प्राप्त होता है। जो कार्तिकके अन्तिम तीन दिनोंमें गीतापाठ करता है, उसे प्रतिदिन अश्वमेधयज्ञका फल प्राप्त होता है। जो उक्त तीनों दिन विष्णुसहस्रनामका पाठ करता है, वह जलसे कमलके पत्तोंकी भाँति पापोंसे कभी लिप्त नहीं होता। वैसा करनेवाले कुछ मनुष्य देवता और कुछ सिद्ध होते हैं। कार्तिकमासकी अन्तिम तीन तिथियोंमें सब पुण्योंका उदय होता है। उनमें भी पूर्णिमाका महत्त्व विशेष है। पूर्णिमाको प्रातःकाल उठकर शौच-स्नानादिसे निवृत्त हो समस्त नित्यकर्मोंकी समाप्ति करके भगवान् विष्णुका पूजन करे। बगीचेमें अथवा घरपर भगवद्भक्त पुरुष कार्तिक-पूर्णिमाके दिन मण्डप बनावे। उसे केलेके खंभोंसे सुशोभित करे। उसमें आमके पल्लवोंकी बंदनवार लगावे और ऊखके डंडे खड़े करके उस मण्डपको सजावे। विचित्र वस्त्रोंसे मण्डपको अलंकृत करके उसमें भगवान् विष्णुकी पूजा करे। पवित्र, चतुर, शान्त, ईर्ष्यारहित, साधु, दयालु, उत्तम वक्ता और श्रेष्ठ बुद्धिवाला पुराणज्ञ विद्वान् वहाँ बैठकर पवित्र कथा कहे। पौराणिक विद्वान् जब व्यासासनपर बैठ जाय, तबसे लेकर उस प्रसंगकी समाप्ति होनेतक किसीको नमस्कार न करे। जहाँ दुष्ट मनुष्य भरे हुए हों, जो शूद्र और हिंसक प्राणियोंसे घिरा हुआ हो अथवा जहाँ जुएका अड्डा हो—ऐसे स्थानमें बुद्धिमान् पुरुष पुण्यकथा न कहे। जो शुद्ध और भक्तिसे संयुक्त, अन्य कार्योंकी अभिलाषा न रखनेवाले, मौन, पवित्र एवं चतुर हों, वे ही श्रोता पुण्यके भागी होते हैं। जो मनुष्य बिना भक्तिके तथा अधम भाव लेकर पवित्र कथाको सुनते हैं, उनको पुण्यफल नहीं प्राप्त होता। मासके अन्तमें गन्ध-माल्य-वस्त्र-आभूषण तथा धनके द्वारा भक्तिपूर्वक पौराणिक विद्वान्का पूजन करे। जो मनुष्य कल्याणमयी पुराणकथाको सुनाते हैं, वे सौ कोटि कल्पोंसे अधिक कालतक ब्रह्मलोकमें निवास करते हैं। जो पौराणिक विद्वान्के बैठनेके लिये कम्बल, मृगचर्म, वस्त्र, चौकी अथवा पलंग देते हैं, जो पहननेके लिये कपड़े देते हैं, वे ब्रह्मलोकमें निवास करते हैं। यह कार्तिक-माहात्म्य सब रोगों और सम्पूर्ण पापोंका नाश करनेवाला है। जो मनुष्य इस माहात्म्यको भक्तिपूर्वक पढ़ता और जो सुनकर धारण करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो भगवान् विष्णुके लोकमें जाता है। जिसकी बुद्धि खोटी हो तथा जो श्रद्धासे हीन हो, ऐसे किसी भी मनुष्यको यह माहात्म्य नहीं सुनाना चाहिये।

सूतजी कहते हैं—ब्रह्माजीके मुखसे इस प्रकार कार्तिक-माहात्म्यकी कथा सुनकर नारदजी प्रेममें मग्न हो गये। उन्होंने ब्रह्माजीको बारंबार प्रणाम किया और स्वेच्छानुसार वहाँसे चले गये।

कार्तिकमास-माहात्म्य सम्पूर्ण।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

मार्गशीर्षमास-माहात्म्य

मार्गशीर्षमासमें प्रातःस्नानकी महिमा, स्नानविधि, तिलक-धारण, गोपीचन्दनका माहात्म्य, तुलसीमालाका महत्त्व, भगवत्पूजनका विधान और शंखकी महिमा

सूतजी कहते हैं—

देवकीनन्दनं कृष्णं जगदानन्दकारकम्।
भुक्तिमुक्तिप्रदं वन्दे माधवं भक्तवत्सलम्॥

'जो सम्पूर्ण जगत्को आनन्द प्रदान करनेवाले तथा भोग और मोक्ष देनेवाले हैं, उन लक्ष्मीपति भक्तवत्सल देवकीनन्दन श्रीकृष्णको मैं प्रणाम करता हूँ।'

श्वेतद्वीपमें देवाधिदेव भगवान् रमाकान्त सुखसे विराजमान थे। उस समय ब्रह्माजीने उन्हें नमस्कार करके पूछा—'हृषीकेश! आप सम्पूर्ण जगत्को धारण करनेवाले हैं। आपके नामोंका श्रवण और

कीर्तन परम पवित्र है। आपने पहले यह कहा है कि **'मासानां मार्गशीर्षोऽहम्'**—महीनोंमें मैं मार्गशीर्ष हूँ। अतः उस महीनेका माहात्म्य क्या है, यह मैं यथार्थरूपसे जानना चाहता हूँ।'

श्रीभगवान् बोले—ब्रह्मन्! जो कोई पुण्य करनेवाले मेरे भक्त हैं, उन्हें मार्गशीर्षमासका व्रत अवश्य करना चाहिये, क्योंकि यह मेरी प्राप्ति करानेवाला है। मार्गशीर्षमास मुझे सदैव प्रिय है। जो मनुष्य प्रातःकाल उठकर मार्गशीर्षमें विधिपूर्वक स्नान करता है, उसपर सन्तुष्ट होकर मैं अपने-आपको भी उसे समर्पित कर देता हूँ। इस विषयमें इस इतिहासका उदाहरण दिया करते हैं—इस पृथ्वीपर महात्मा नन्दगोप सर्वत्र विख्यात थे। उनके रमणीय गोकुलमें सहस्रों गोपकन्याएँ थीं। उन सबका चित्त मेरे स्वरूपमें लग गया। तब मैंने उन्हें मार्गशीर्षमें स्नान करनेकी सलाह दी। उन्होंने उस समय प्रतिदिन प्रातःकाल विधिपूर्वक स्नान और पूजन किया, हविष्यान्न भोजन किया और अपने इष्टदेवको नमस्कार किया। इस प्रकार विधिपूर्वक मार्गशीर्षव्रतका पालन करनेसे मैं उनपर बहुत प्रसन्न हुआ और वरदानके रूपमें मैंने अपने-आपको ही उनके अर्पित कर दिया। अतः सब लोगोंको मार्गशीर्ष-व्रतकी विधिका पालन करना चाहिये।

रात्रिके अन्तमें शयनसे उठकर विधिपूर्वक आचमन करके अपने गुरुको नमस्कार करे तथा आलस्य छोड़कर मेरा चिन्तन करे। भक्तिपूर्वक सहस्रनामोंका पाठ एवं कीर्तन करे। फिर मौन होकर गाँवके बाहर जाय और विधिपूर्वक मल-मूत्रका त्याग करके हाथ-मुँह धोवे, यथोचित रीतिसे कुल्ला करे तथा शुद्ध होकर दन्तधावनपूर्वक स्नान करे। स्नानकी विधि इस प्रकार है—तुलसीके

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

जड़की मिट्टीको उसके पत्रके साथ लेकर मूलमन्त्र (**ॐ नमो नारायणाय**) अथवा गायत्रीमन्त्रके द्वारा अभिमन्त्रित करे। मन्त्रसे ही उस मृत्तिकाको अपने अंगोंमें लगावे और जलमें प्रवेश करके अघमर्षण स्नान करे। विद्वान् पुरुष उक्त अष्टाक्षर मन्त्रसे ही तीर्थकी कल्पना करे। '**ॐ नमो नारायणाय**' इस मन्त्रको ही मूलमन्त्र कहा गया है। स्नान करते समय निम्नांकित मन्त्रसे गंगाजीकी प्रार्थना करे।

विष्णुपादप्रसूतासि वैष्णवी विष्णुदेवता।
त्राहि नस्त्वमघादस्मादाजन्ममरणान्तिकात्॥

'गंगे! तुम भगवान् विष्णुके चरणोंसे प्रकट हुई हो, इसलिये वैष्णवी हो। श्रीविष्णु ही तुम्हारे देवता हैं। तुम जन्मसे लेकर मृत्युपर्यन्त सभी पापोंसे मेरी रक्षा करो।'

इस प्रकार सात बार जप करके हाथ जोड़कर तीर्थजलको प्रणाम करे और तीन, चार, पाँच या सात बार जलमें गोता लगावे। तत्पश्चात् पूर्ववत् मिट्टीको भी अभिमन्त्रित करके उसका शरीरमें लेप करे तथा नहावे। मृत्तिकाको अभिमन्त्रित करनेका मन्त्र इस प्रकार है—

अश्वक्रान्ते रथक्रान्ते विष्णुक्रान्ते वसुन्धरे।
मृत्तिके हर मे पापं यन्मया दुष्कृतं कृतम्॥
उद्धृतासि वराहेण कृष्णेन शतबाहुना।
नमस्ते सर्वभूतानां प्रभवारणि सुव्रते॥

'वसुन्धरे! तुम्हारे ऊपर अश्व और रथ चलते हैं, भगवान् विष्णुने तुम्हें अपने पगोंसे नाप लिया था। मृत्तिके! मैंने जो दुष्कर्म किया है, उस मेरे सारे पापको तुम हर लो। उत्तम व्रतका पालन करनेवाली देवी! जैसे अरणीसे अग्नि प्रकट होती है, उसी प्रकार तुम समस्त प्राणियोंकी उत्पत्तिका अधिष्ठान हो। तुम्हें सैकड़ों भुजाओंवाले वराहावतारधारी भगवान् विष्णुने एकार्णवके जलसे ऊपर निकाला है, तुम्हें नमस्कार है।'

इस प्रकार स्नान करके विधिपूर्वक आचमन करे और जलाशयके किनारे आकर दो शुद्ध वस्त्र धारण करे। तत्पश्चात् पुनः आचमन करके देवताओं, पितरों तथा ऋषियोंका तर्पण करनेके बाद खोले हुए वस्त्रको निचोड़े। तदनन्तर पुनः आचमन करके धौत वस्त्रसे अपनेको आच्छादित कर तीर्थकी विमल मृत्तिका हाथमें ले और उक्त मन्त्रसे ही अभिमन्त्रित करके उसके द्वारा वैष्णव पुरुष ललाट आदि अंगोंमें ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करे। ललाटमें तिलक लगाते समय '**केशवाय नमः**' कहकर भगवान् केशवका चिन्तन करे। इसी प्रकार उदरमें नारायण, वक्षःस्थलमें माधव, कण्ठकूपमें गोविन्द, दाहिनी कुक्षिमें विष्णु, दाहिनी भुजामें मधुसूदन, कानोंके मूलभागमें त्रिविक्रम, वामपार्श्वमें वामन, बायीं भुजामें श्रीधर, पीठमें पद्मनाभ, गर्दनके पीछे दामोदर और मस्तकमें भगवान् वासुदेवका न्यास एवं चिन्तन करे। इस प्रकार भगवान् विष्णुके सालोक्यकी सिद्धिके लिये नित्य ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करना चाहिये।

जो द्वारकाकी मृत्तिकाको हाथमें लेकर उससे प्रतिदिन अपने ललाटमें ऊर्ध्वपुण्ड्र करता है, उसके द्वारा किये जानेवाले सत्कर्मोंका फल कोटिगुना हो जाता है। ललाटमें गोपीचन्दनका तिलक करनेसे मनुष्य अपने कर्मोंका अक्षय फल पाता है। जो ब्राह्मण गोपीचन्दनका सुन्दर ऊर्ध्वपुण्ड्र प्रतिदिन अपने ललाटमें धारण करता है, वह मेरे धाममें स्थित होता है और मैं लक्ष्मीजीके साथ उस घरमें सदैव निवास करता हूँ। मृत्युकालमें जिसकी भुजाओंमें, ललाटमें, हृदयमें और मस्तकमें गोपीचन्दन लगा होता है, वह मुझ लक्ष्मीपतिके लोकमें जाता है। जिसके ललाटमें गोपीचन्दन विद्यमान है, उसको मेरे प्रभावसे ग्रह, राक्षस, यक्ष, पिशाच, नाग और भूत आदि पीड़ा नहीं देते हैं। चतुरानन! मेरा प्रिय करनेके लिये तथा अपने कल्याण और रक्षाके लिये मेरा भक्त प्रतिदिन सायंकाल और प्रातःकाल मेरी पूजा और होममें एकाग्रचित्त हो, ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करे। ऊर्ध्वपुण्ड्र संसारबन्धनका नाश करनेवाला है।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

जो तुलसीकाष्ठकी माला मुझे भक्तिपूर्वक निवेदन करके फिर प्रसादरूपसे उसको स्वयं धारण करता है, उसके पातकोंका नाश हो जाता है और उसके ऊपर मैं सदैव प्रसन्न रहता हूँ। जिसके घरमें तुलसीका काष्ठ अथवा तुलसीका हरा या सूखा पत्ता रहता है, उसके घरमें कलियुगका पाप नहीं फैलता। इसलिये तुलसीकी मालाको प्रयत्नपूर्वक धारण करना चाहिये। पद्माक्ष और आँवलेकी माला भी भक्तिपूर्वक मुझे निवेदन करके धारण की जाय, तो वह उत्तम पुण्य देनेवाली होती है।

रत्नमय सिंहासनकी भावना करके उसके ऊपर अष्टदल कमलका चिन्तन करे। उसके प्रत्येक दलमें '**ॐ नमो नारायणाय**' इस अष्टाक्षर मन्त्रका एक-एक अक्षर है—उस कमलपर बैठे हुए कोटि-कोटि चन्द्रमाके समान कान्तिमान् मुझ चतुर्भुज विष्णुका ध्यान करे। उस समय मेरे हाथोंमें महान् पद्म, शंख, चक्र और गदा सुशोभित हैं, नेत्र विकसित कमलदलके समान विशाल हैं, विग्रह समस्त शुभ लक्षणोंसे लक्षित है, वक्षस्थलमें श्रीवत्सचिह्न और कौस्तुभमणि शोभा पा रहे हैं, कटिप्रदेशमें पीताम्बर शोभायमान है मेरा स्वरूप दिव्य अलंकारोंसे अलंकृत, दिव्य चन्दनोंसे चर्चित दिव्य पुष्पोंसे सुशोभित तथा तुलसीके कोमल दल और वनमालासे विभूषित है। मेरी अंगकान्ति करोड़ों प्रभातकालीन सूर्योंके सदृश उद्भासित हो रही है। मेरे साथ समस्त शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न दिव्यरूपा महालक्ष्मीजी भी विराजमान हैं। इस प्रकार मेरा ध्यान करते हुए एकाग्रचित्त हो मेरे मन्त्रका यथाशक्ति हजार या सौ बार जप करे। पहले मानसिक पूजन करके फिर पूजन-सामग्रियोंद्वारा विधिपूर्वक बाह्य पूजा करे। मेरा स्मरण करके पूजनके प्रारम्भमें मंगलपाठ करे। उसके बाद मेरे परम प्रिय पांचजन्य शंखकी पूजा करे। शंखके पूजनमें निम्नांकित मन्त्रोंका उच्चारण करते हुए प्रार्थना करे—

त्वं पुरा सागरोत्पन्न विष्णुना विधृतः करे।
निर्मितः सर्वदेवैश्च पाञ्चजन्य नमोऽस्तु ते॥
तव नादेन जीमूता वित्रसन्ति सुरासुराः।
शशाङ्कायुतदीप्ताभ पाञ्चजन्य नमोऽस्तु ते॥

'पांचजन्य शंख! तुम पूर्वकालमें समुद्रसे उत्पन्न हुए और भगवान् श्रीविष्णुने तुम्हें अपने हाथमें धारण किया तथा सम्पूर्ण देवताओंने मिलकर तुम्हें सँवारा है। तुम्हें नमस्कार है। तुम्हारी गम्भीर ध्वनिसे मेघ डर जाते हैं, देवता और असुर थर्रा उठते हैं, तुम्हारी उज्ज्वल आभा दस हजार चन्द्रमाओंसे भी अधिक उद्दीप्त है। पांचजन्य! तुम्हें नमस्कार है।'

तत्पश्चात् सुगन्धित तेलसे मेरे विग्रहमें अभ्यंग (आमर्दन) करे। फिर कस्तूरीके चन्दनसे उबटन आदि लगावे। उत्तम गन्धसे वासित शुभ जलसे मन्त्रोच्चारणपूर्वक नहलाकर पाद्य, अर्घ्य और आचमनीय अर्पण करे। उसके बाद अन्य सब उपचारोंको भी क्रमशः चढ़ावे। पीठको दिव्य वस्त्र और आभूषणोंसे अलंकृत करके पुष्पोंसे उसकी पूजा करे। उसके ऊपर मेरे विग्रहको पधराकर श्रद्धापूर्वक मेरे लिये वस्त्र, अलंकार और गन्ध आदि निवेदन करे। खीर तथा पूआ आदिके साथ नाना प्रकारका नैवेद्य भोग लगावे। फिर भक्तिपूर्वक कर्पूरयुक्त ताम्बूल भेंट करे। उत्तम गन्धवाले पुष्पोंको भक्तिभावसे निवेदन करे। दशांग अथवा अष्टांग धूप देकर अतिशय सुन्दर दीप जलाकर रखे। प्रणाम करके आदरपूर्वक स्तुति करे। तदनन्तर पलंगपर सुलाकर मंगल अर्घ्य निवेदन करे।

द्वादशी अथवा पूर्णिमाको यदि गायके दूधसे मुझे स्नान कराया जाय तो वह बड़े-बड़े पातकोंका नाश करनेवाला है। जो मनुष्य मार्गशीर्षमासमें मुझको मधु और शक्करसे स्नान कराता है, वह स्वर्गसे इस लोकमें लौटनेपर राजा होता है। जो अगहनमें मुझे दूधसे नहलाता है, वह

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

स्वर्गलोकमें चन्द्रमा, इन्द्र, रुद्र और मरुद्‌गणोंपर विजय पाता है। जो उपासक मार्गशीर्षके महीनेमें शंखमें तीर्थका जल लेकर उसकी एक बूँदसे भी मुझे नहलाता है, वह अपने समूचे कुलको तार देता है। जो अगहनमासमें भक्तिपूर्वक शंखध्वनि करके मुझे स्नान कराता है, उसके पितर स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होते हैं। जो शंखमें जल लेकर '**ॐ नमो नारायणाय**' का उच्चारण करते हुए मुझे नहलाता है, वह सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त हो जाता है। नदी, तड़ाग, बावड़ी और कूआँ आदिका जो जल शंखमें रखा जाता है, वह सब गंगाजलके समान हो जाता है। जो वैष्णव मेरे चरणोदकको शंखमें रखकर अपने मस्तकपर धारण करता है, वह तपस्वी मुनियोंमें सबसे श्रेष्ठ है। तीनों लोकोंमें जितने तीर्थ हैं, वे सब मेरी आज्ञासे शंखमें निवास करते हैं, इसलिये शंख श्रेष्ठ माना गया है। जो शंखमें फूल, जल और अक्षत रखकर मुझे अर्घ्य देता है, उसे अनन्त पुण्यकी प्राप्ति होती है। जो वैष्णव मेरे मस्तकपर शंखका जल घुमाकर उससे अपने घरको सींचता है, उसके घरमें कोई अशुभ नहीं होता है। बाजोंके उच्च स्वर और गीत-कीर्तन आदिके मंगलमय शब्दोंके साथ जो भक्तिपूर्वक मुझे स्नान कराता है, वह जीवन्मुक्त हो जाता है।

भगवान्‌के पूजनमें घण्टानाद, चन्दन, पुष्प, तुलसीदल, धूप और दीपका माहात्म्य

श्रीभगवान् कहते हैं—घण्टा सर्ववाद्यमय है, वह मुझे सर्वदा प्रिय है। मेरी पूजाके समय उसे बजानेसे मनुष्य सौ कोटि यज्ञोंका फल प्राप्त करता है। घण्टानाद सदा ही करने योग्य है। विशेषत: मेरी पूजाके समय घण्टा अवश्य बजाना चाहिये। मृदंग और शंखकी ध्वनि तथा प्रणवके उच्चारणके साथ किया हुआ मेरा पूजन मनुष्योंको सदैव मोक्ष प्रदान करनेवाला है। मेरे पूजनके समय जो घण्टानाद करता है, उसके सौ जन्मोंके पाप तत्काल नष्ट हो जाते हैं। जो मनुष्य गरुड़की पीठपर लक्ष्मीके साथ बैठे हुए मुझ शंख, चक्र, गदा और पद्मधारी विष्णुकी पूजा करते हैं, वे मेरे धामको प्राप्त होते हैं। मेरे समीप गीत, कीर्तन और नृत्य करके मनुष्य अपने पितरोंका उद्धार करता है। जो गरुड़चिह्नसे युक्त घण्टा हाथमें लेकर धूप, आरती, स्नान, पूजा और विलेपनके समय मेरे आगे प्रतिदिन बजाता है, वह प्रत्येक उपचारमें बजानेके बदले सौ-सौ चान्द्रायणसे प्राप्त होनेवाले फलको पाता है। जो तुलसीकाष्ठका घिसा हुआ चन्दन मुझे अर्पण करता है, उसके सौ जन्मोंके समस्त पातकोंको मैं भस्म कर देता हूँ। जो कलियुगके मार्गशीर्षमासमें मुझे तुलसीकाष्ठका चन्दन देते हैं, वे निश्चय ही कृतार्थ हो जाते हैं। जो शंखमें चन्दन रखकर मार्गशीर्षमासमें मेरे अंगोंमें लगाता है, उसके ऊपर मैं विशेष प्रेम करता हूँ। जो अगहनमें तुलसीदल और आँवलोंसे भक्तिपूर्वक मेरी सेवा करता है, वह मनोवांछित फलको पाता है।

बेला, चमेली, जूही, अतिमुक्ता (माधवी लता), कनेर, वैजयन्ती, विजया, चमेलीके गुच्छे, कर्णिकार, कुरैया, चम्पक, चातक, कुन्द, कर्चूर, मल्लिका, अशोक, तिलक तथा अपरयूथिका इत्यादि फूल मेरी पूजाके लिये उत्तम होते हैं। केतकीका पत्ता और पुष्प, भृंगराज, तुलसीका पत्ता और फूल—ये सब मुझे शीघ्र प्रसन्न करनेवाले हैं। लाल, नील और सफेद कमल मार्गशीर्षमासमें मुझे अत्यन्त प्रिय हैं। मेरी पूजाके लिये वे ही फूल उत्तम माने गये हैं, जो सुन्दर रंगवाले होनेके साथ ही सरस

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

और सुगन्धित हों। बिल्वपत्र, शमीपत्र, भृंगराजपत्र और आमलकीपत्र—ये मेरे पूजनके लिये शुभ हैं। वन अथवा पर्वतमें उत्पन्न होनेवाले फूल और पत्र यदि तुरंतके तोड़े हुए छिद्ररहित और कीटवर्जित हों, तो उन्हें जलसे धोकर उनके द्वारा मेरी पूजा करनी चाहिये। बगीचेमें खिलनेवाले फूलोंसे भी मेरी पूजा की जा सकती है। जिन वृक्षोंके फूल मेरी पूजाके लिये उत्तम माने गये हैं, उनके पत्ते भी उत्तम हैं। फूलों और पत्तोंके अभावमें उनके फल भी चढ़ाये जा सकते हैं। इन पत्तों, फलों और फूलोंसे जो अगहनमें मेरी पूजा करता है, उसपर प्रसन्न होकर मैं अपनी भक्ति देता हूँ।

जो मनुष्य तुलसीकी मंजरियोंसे मेरी पूजा करता है, वह मोक्षका भागी होता है। जो तुलसीका पौधा लगाकर उसके पत्तोंसे मेरी पूजा करता है, वह मेरे निवासस्थान श्वेतद्वीपमें आनन्दका अनुभव करता है। जो तुलसीदलसे प्रतिदिन मुझ लक्ष्मीपतिकी पूजा करता है, उसके महापातक भी नष्ट हो जाते हैं, फिर उपपातकोंकी तो बात ही क्या है। बासी फूल और बासी जल पूजाके लिये वर्जित हैं। परंतु तुलसीदल और गंगाजल बासी होनेपर भी वर्जित नहीं हैं।* बिल्वपत्र, शमीपत्र, चमेलीपत्र और कमल तथा कौस्तुभमणिसे भी तुलसीदल मुझे अधिक प्रिय है। जिसके पत्ते कटे न हों और जो मंजरीके साथ हो, ऐसी तुलसी मुझे लक्ष्मीके समान प्रिय है। जैसी कृष्ण और शुक्ल दोनों पक्षोंकी एकादशी मुझे प्रिय है, उसी प्रकार गौर और कृष्ण दोनों प्रकारकी तुलसी मुझे प्रिय है। कौस्तुभ आदि असंख्य रत्न तभीतक गर्जते हैं, जबतक कि श्यामा तुलसीकी श्याम मंजरी नहीं मिलती है। जो मेरी पूजाके लिये माँगनेवालोंको तुलसीदल देते हैं तथा अन्य भक्तोंको भी तुलसीदल अर्पण करते हैं, वे मेरे अविनाशी धामको जाते हैं।

जो काले अगुरुके बने हुए धूपसे मेरे मन्दिरको सुवासित करता है, वह वैष्णव नरक-समुद्रसे मुक्त हो जाता है। गुग्गुलमें भैंसका घी और शक्कर मिलाकर जो मुझे धूप देता है, उसकी अभिलाषाको मैं पूर्ण करता हूँ। अगुरुका धूप देह और गेह दोनोंको पवित्र करता है, रालका बना हुआ धूप यक्षों और राक्षसोंका नाश करता है। चमेलीका फूल, इलायची, गुग्गुल, हर्रे, कूट, राल, गुड़, छडछरीला और वज्रनखी नामक गन्ध-द्रव्य—इनके साथ धूपका संयोग होनेसे इन सबको दशांग धूप कहते हैं†। यदि मेरे अत्यन्त प्रिय मार्गशीर्षमासमें कोई मनुष्य दशांग धूप देता है, तो मैं उसे अत्यन्त दुर्लभ मनोरथ, बल, पुष्टि, स्त्री, पुत्र और भक्ति देता हूँ।

अनेक बत्तियोंसे युक्त और घीसे भरे हुए दीपको जलाकर जो मनुष्य मेरी आरती उतारता है, वह कोटि कल्पोंतक स्वर्गलोकमें निवास करता है। जो अगहनके महीनेमें मेरे आगे होती हुई आरतीका दर्शन करता है, वह अन्तमें परमपदको प्राप्त होता है। जो मेरे आगे भक्तिपूर्वक कपूरकी आरती करता है, वह मुझ अनन्तमें प्रवेश कर जाता है। जो मन्त्रहीन और क्रियाहीन मेरा पूजन किया गया है, वह मेरी आरती कर देनेपर सर्वथा परिपूर्ण हो जाता है। जो मार्गशीर्षमासमें कपूरसे दीपक जलाकर मुझे अर्पण करता है, वह अश्वमेध यज्ञका फल पाता और अपने कुलका उद्धार कर देता है।

* वर्ज्यं पर्युषितं पुष्पं वर्ज्यं पर्युषितं जलम्। न वर्ज्यं तुलसीपत्रं न वर्ज्यं जाह्नवीजलम्॥

†जातिपुष्पमथैला च गुग्गुलश्च हरीतकी। कूटः सर्जरसश्चैव गुडः शैलाच्छडस्तथा॥
नखयुक्तानि चैतानि दशाङ्गो धूप उच्यते।

(स्क० पु०, वै० मा० मा० ८।९, ८।२७)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

स्तुतिपाठ, मन्त्रजप, साष्टांग प्रणाम तथा दामोदरमन्त्रके जपका माहात्म्य

श्रीभगवान् कहते हैं—तदनन्तर नैवेद्यका भोग लग जानेपर कर्पूरवासित जलसे मुझे आचमन करावे, पान दे और हाथ धोनेके लिये चन्दन अर्पण करे। फिर पुष्पांजलि देकर भक्तिपूर्वक कपूरसे आरती करे। मुकुट और आभूषण आदि समर्पित करके छत्र, चँवर भेंट करे तथा श्यामसुन्दर विग्रहवाले भगवान् विष्णु मेरे प्रति कृपापूर्वक प्रसन्नमुख हैं, ऐसा ध्यान करते हुए अष्टाक्षर मन्त्रका एक सौ आठ बार जप और स्तोत्रोंद्वारा भगवान्‌का स्तवन करे। विद्वान् पुरुष चलते, हँसते और अगल-बगलमें देखते हुए तथा पैरसे पैरको दबाकर हाथको मस्तकपर रखकर, खड़े होकर और व्यग्रचित्त होकर मेरे मन्त्रका जप न करे। जपके समय तथा व्रत, होम और पूजन आदिमें दूसरोंसे वार्तालाप न करे। जपका फल तीर्थ आदिमें सहस्रगुना और मेरे समीप अनन्तगुना होता है।

इस प्रकार अगहनके महीनेमें मेरी पूजा करके जो प्रदक्षिणा करता है, वह पग-पगपर सात द्वीपोंवाली पृथ्वीकी परिक्रमाका पुण्यफल पाता है। सहस्रनामका पाठ अथवा केवल एक नामका उच्चारण करते हुए जो भक्तिपूर्वक मेरी एक परिक्रमा भी करता है, वह प्रतिदिनके पापको भस्म कर डालता है। जिसने भक्तिभावके साथ मेरी एक सौ आठ बार परिक्रमा की है, उसने उत्तम दक्षिणावाले सम्पूर्ण यज्ञोंका अनुष्ठान पूरा कर लिया। अब तुम एक गूढ़ रहस्यकी बात सुनो। अपने दामोदर नामसे मुझे ऐसी प्रसन्नता होती है कि जिसकी कहीं तुलना नहीं है। गोकुलमें जब मैंने दहीका मटका फोड़ डाला, तब मैया यशोदाने मेरी कमरमें रस्सी लपेटकर मुझे खूब कसकर ओखलीमें बाँध दिया, तभीसे मेरा दामोदर नाम प्रसिद्ध हुआ। जो प्रतिदिन एकाग्र चित्त हो सूर्योदयकालमें पवित्रतापूर्वक '**दामोदराय नमः**' इस मन्त्रका तीन हजार जप करता है और साढ़े तीन लाख जप पूरा होनेपर उसका उद्यापन करता है, जपके दशांशका हवन, तर्पण और ब्राह्मण-भोजन कराता है और इस प्रकार भक्तिपूर्वक इस अनुष्ठानको पूरा करता है, उसे मैं मनोवांछित वस्तुएँ देता हूँ। '**दामोदराय नमः**' इस मन्त्रराजका जप करते हुए प्रतिदिन मेरी प्रदक्षिणा और दण्डकी भाँति पृथ्वीपर गिरकर सदैव मुझे साष्टांग प्रणाम करना चाहिये। दोनों हाथ, दोनों पैर, दोनों घुटने, छाती, मस्तक, मन, वाणी और दृष्टिसे जो प्रणाम किया जाता है, उसे साष्टांग प्रणाम कहते हैं*। अपने मस्तकको मेरे चरणोंपर रखकर दोनों भुजाओंको परस्पर मिला दे और प्रार्थना करे, 'हे परमेश्वर! मैं मृत्युरूपी ग्राहसे परिपूर्ण इस संसारसमुद्रसे भयभीत होकर आपकी शरणमें आया हूँ, आप मेरी रक्षा करें।' फिर मेरेद्वारा दी हुई प्रसाद-माला आदिको सादर मस्तकपर चढ़ाकर मेरी पूजाकी पूर्तिके लिये इस प्रकार कहे 'देव जनार्दन! मैंने मन्त्रहीन, भक्तिहीन और क्रियाहीन जो पूजन किया है, वह सब आपकी कृपासे परिपूर्ण हो।'†

विष्णुसहस्रनाम, भीष्मस्तवराज, गजेन्द्रमोक्ष,

---

* पद्भ्यां कराभ्यां जानुभ्यामुरसा शिरसा तथा। मनसा वचसा दृष्ट्या प्रणामोऽष्टाङ्ग उच्यते॥

† मन्त्रहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं जनार्दन। यत्पूजितं मया देव परिपूर्णं तदस्तु मे॥

(स्क० पु०, वै० मा० मा० १०। ३०, ३३)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

अनुस्मृति तथा गीता—ये पाँच प्रकारके स्तोत्र मुझे अभीष्ट हैं। महाभाग! इन्हें सुनकर मुझे बड़ी प्रसन्नता होती है। जो मनुष्य एक बूँद भी शालग्रामशिलाका जल पी लेता है, वह मोक्षका भागी होता है। जिनके मस्तकपर शालग्राम-शिलाका चरणोदक है तथा जो उस चरणोदकको पीते हैं, उनपर सूतक और मृतकका भी अशौच लागू नहीं होता। मृत्युकालमें जिसको वह चरणामृत दिया जाता है, वह भी उत्तम गतिको प्राप्त होता है।

राजा वीरबाहुके पूर्वजन्मका वृत्तान्त एवं एकादशीव्रत और उसका उद्यापन

श्रीभगवान् कहते हैं—ब्रह्मन्! काम्पिल्य नगरमें वीरबाहु नामसे प्रसिद्ध एक राजा हो गये हैं। वे सत्यवादी, क्रोधपर विजय पानेवाले, ब्रह्मज्ञानी तथा मेरे भक्त थे। उनका स्वभाव बड़ा दयालु था। वे वैष्णवोंके भक्त थे और मेरी कथा सुननेमें सदा रुचि रखते थे। दानी, विद्वान्, क्षमाशील, पराक्रमी, जितेन्द्रिय तथा अपनी ही स्त्रीसे स्नेह रखनेवाले थे। उनकी स्त्री पतिव्रता, परम साध्वी तथा मेरी भक्तिमें तत्पर रहनेवाली थी। अपनी उस रानीके साथ वे समूची पृथ्वीका पालन करते और मेरे सिवा दूसरे किसी देवताको नहीं जानते थे। एक दिन महामुनि भारद्वाज महात्मा वीरबाहुके घर पधारे। उन्हें देखकर राजाने विधिपूर्वक अर्घ्य दे उनका स्वागत-सत्कार किया। अपने ही हाथसे उनके लिये आसन बिछाया और बड़ी भक्तिसे प्रणाम करके मुनिके आगे खड़े होकर कहा—'ब्रह्मर्षे! आज मेरा जन्म सफल हो गया। परमात्मा भगवान् विष्णु मुझपर बहुत प्रसन्न हैं, जिससे आप-जैसे योगिराजने आज मेरे घरपर पदार्पण किया। आपकी पवित्र दृष्टि पड़नेसे आज मैं कोटि-कोटि पापोंसे मुक्त हो गया।'

भारद्वाज बोले—महाभाग! तुम भगवान् विष्णुके भक्त हो। उत्तम प्रजाओंसे युक्त वह धरती धन्य है, जिसकी तुम रक्षा करते हो। जहाँका राजा भगवान् विष्णुका भक्त न हो, उस राज्यमें निवास नहीं करना चाहिये। जंगल और तीर्थमें निवास करना अच्छा है, परंतु वैष्णवहीन राज्यमें रहना कदापि श्रेयस्कर नहीं। जहाँ भगवद्भक्त राजा इस पृथ्वीका शासन करता है, उस पापशून्य राज्यको वैकुण्ठ मानना चाहिये। जैसे मन्त्रहीन आहुति, मरे हुए बछड़ेवाली गायका दूध, दशमी-विद्धा एकादशी, लम्बे-लम्बे केश रखनेवाली विधवा तथा स्नानके बिना व्रत—ये सब श्रेष्ठ नहीं माने जाते, उसी प्रकार बिना वैष्णवका राज्य भी अच्छा नहीं है।*

राजन्! मैंने जो तुम्हारी ओर देखा है, उससे मेरी दृष्टि सफल हो गयी। जो तुम्हारे साथ वार्तालाप करती है, वह मेरी वाणी भी आज सफल हो गयी। तुम भगवान् विष्णुके भजनमें तत्पर रहनेवाले परम पवित्र राजा हो। मैंने तुम्हारा दर्शन कर लिया। तुम्हारा कल्याण हो, तुम सुखी रहो, अब मैं जाऊँगा।

इसी समय महारानी कान्तिमतीने भी आकर मुनिश्रेष्ठ भारद्वाजको प्रणाम किया। तब मुनिने उन्हें आशीर्वाद देते हुए कहा—'सुन्दरि! तुम

* यथाऽऽहुतिर्मन्त्रहीना मृतवत्सापयो यथा॥
सकेशा विधवा यद्वद् व्रतं स्नानविवर्जितम्। एकादशी दशमीयुक्ता तथा राष्ट्रमवैष्णवम्॥

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

सौभाग्यवती और पतिव्रता रहो। शुभे! भगवान् विष्णुमें तुम्हारी अविचल भक्ति हो।' तत्पश्चात्

राजाने पूछा—'मुनिश्रेष्ठ! मैंने पूर्वजन्ममें कौन-सा पुण्य किया है, जिससे मुझे अकण्टक राज्य, गुणवान् पुत्र, मुझमें मन लगाये रहनेवाली परम सुन्दरी एवं भगवद्भक्त पत्नी आदिकी प्राप्ति हुई? मुने! मैं कौन था और मेरी यह स्त्री कौन थी?'

भारद्वाजने कहा—राजन्! तुम पूर्वजन्ममें जीवहिंसापरायण शूद्र थे। नास्तिक, दुराचारी, परस्त्रीगामी, कृतघ्न, उद्दण्ड और सदाचारशून्य थे। परंतु तुम्हारी जो यह स्त्री है, यह पूर्वजन्ममें भी तुम्हारी ही पत्नी थी। इसके लिये मन, वाणी और क्रियाद्वारा सेवन करने योग्य तुम्हारे सिवा दूसरा कोई नहीं था। यह पतिव्रता नारी निरन्तर तुम्हारी ही सेवामें रहती थी। तुम पापकर्मी थे इसलिये मित्रोंने तुम्हारा साथ छोड़ा, भाई-बन्धुओंने तुम्हें त्याग दिया, तुम्हारे पूर्वजोंने जो धन संचित कर रखा था, वह सब नष्ट हो गया। धन नष्ट हो जानेपर भी तुम्हें भोगकी अभिलाषा ज्यों-की-त्यों बनी रही। पूर्वकर्मोंके परिणामसे तुम्हारी खेती भी चौपट हो गयी। उस दशामें सबने तुम्हें छोड़ दिया, परंतु इस साध्वी स्त्रीने प्रतिदिन क्षीणकाय होती हुई भी तुम्हें नहीं छोड़ा। सब ओरसे विफलमनोरथ होकर तुम निर्जन वनमें चले गये और वहाँ अनेक प्रकारके जीवोंको मारकर अपना पोषण करने लगे। इस प्रकार रहते हुए तुम्हें बहुत वर्ष बीत गये।

एक दिनकी बात है, एक महामुनि राह भूलकर उधर आ निकले। वे श्रेष्ठ ब्राह्मण थे और उनका नाम देवशर्मा था। उन्हें दिशाका भी ज्ञान नहीं रह गया था। वे भूख और प्याससे अत्यन्त पीड़ित होकर दोपहरके समय वनमें गिर पड़े। उस दुःखसे पीड़ित ब्राह्मणको देखकर तुम्हारे मनमें दया आ गयी। वे बूढ़े थे और तुमसे अपरिचित भी थे, तो भी तुमने उनका हाथ पकड़कर उठाया और कहा—'ब्रह्मर्षे! तुम कृपा करके मेरे आश्रमपर चलो। वहाँ जलसे भरा हुआ सरोवर है, जो कमलोंके समुदायसे सदा सुशोभित रहता है। वह आश्रम सुन्दर फल-फूलोंवाले मनोहर वृक्षोंसे घिरा हुआ है। वहाँ ठंडे जलमें स्नान करके नित्यकर्म करो, उसके बाद फल खाओ और शीतल जल पीओ।' ब्राह्मणको कुछ-कुछ चेत हुआ और वे उस शूद्रका हाथ पकड़कर जलाशयके समीप गये। वहाँ सरोवरके तटपर वृक्षकी छायामें बैठे। फिर विधिपूर्वक स्नान करके देवताओं और पितरोंका तर्पण करनेके पश्चात् भगवान् विष्णुकी पूजा की और शीतल जल पिया। वृक्षके नीचे आकर जब वे विश्राम करने लगे, तब उस शूद्रने अपनी स्त्रीके साथ आकर मुनिको साष्टांग प्रणाम किया और बड़ी भक्तिसे कहा—'ब्रह्मर्षे! आप हमारे अतिथि हैं और हम दोनोंका उद्धार करनेके लिये यहाँ पधारे हैं। आपके दर्शनमात्रसे हमारे सब पापोंका नाश हो गया।' यह कहकर उसने अपनी स्त्रीसे कहा—'प्रिये! इन ब्राह्मण देवताके लिये

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

तुम स्वादिष्ट, कोमल, सरस, पके हुए तथा प्रिय लगनेवाले फल अर्पण करो।'

ब्राह्मण बोले—बेटा! मैं तुम्हें नहीं जानता। पहले तुम अपनी जाति और कुलका परिचय दो, क्योंकि बिना जाने हुए ब्राह्मणके यहाँ भी भोजन नहीं करना चाहिये।

शूद्रने कहा—द्विजश्रेष्ठ! मैं शूद्र हूँ, मेरे दुष्ट बन्धुओंने मुझे त्याग दिया है।

वे दोनों इस प्रकार बात कर रहे थे। इतनेमें ही शूद्रकी पत्नीने ब्राह्मणके आगे फल परोस दिये। ब्राह्मणने उन फलोंका भोजन किया और ठंडा जल पीकर उनका चित्त बहुत प्रसन्न हुआ। वहाँ सुख पाकर उन्होंने वृक्षके नीचे विश्राम किया। शूद्रने भी घरमें जाकर अपनी पत्नीके साथ भोजन किया और फिर ब्राह्मणके समीप आकर कहा—'मुनिश्रेष्ठ! आप कहाँसे इस निर्जन वनमें आये हैं।'

ब्राह्मणने उत्तर दिया—महाभाग! मैं ब्राह्मण हूँ और प्रयाग जाना चाहता हूँ। अपरिचित मार्गसे चलकर इस भयंकर वनमें आ गया हूँ। तुमने आज मुझे जीवनदान दिया है। बोलो, मैं तुम्हारा क्या उपकार करूँ? शूद्र बोला—'राजा भीमसे सुरक्षित विदर्भ नगरी मेरा निवासस्थान है, मैं महाराष्ट्र प्रान्तका रहनेवाला हूँ, मेरी जाति शूद्र है, मैं सदा पापमें ही लगा रहा, अपने वर्णधर्मको मैंने छोड़ दिया, फिर बन्धुओंने मुझे त्याग दिया और मैं इस वनमें चला आया। यहाँ प्रतिदिन जीवहिंसा करके अपनी स्त्रीके साथ जीवन-निर्वाह करता हूँ। महामुने! अब इस पातकसे मुझे अत्यन्त खेद और वैराग्य हो गया है। प्रभो! मुझ पापीके ऊपर कुछ अनुग्रह कीजिये। द्विजश्रेष्ठ! मेरे किसी पूर्वपुण्यके प्रभावसे आप यहाँ आये हैं। आप कृपा करके ऐसा उपदेश दें, जिसके प्रभावसे मुझे अपनी पत्नीके साथ यमराजका दर्शन न करना पड़े। मैं भगवान् विष्णुको छोड़कर और कुछ नहीं चाहता।'

देवशर्माने कहा—शूद्र! सहसा तुम्हारे मनमें भगवान् विष्णुके ऊपर जो ऐसी पूर्ण श्रद्धाबुद्धि हुई है, इससे तुम तीर्थ और व्रतके बिना ही करोड़ों पापोंसे मुक्त हो गये। आतिथ्य-सत्कार और भक्तिसे तुम्हें भगवान् विष्णुका पद प्राप्त हुआ। यों कहकर देवशर्मा ब्राह्मण तीर्थराज प्रयागको चले गये। राजन्! तुमने जो कुछ पूछा था, वह सब कुछ मैंने तुमसे कह सुनाया।

राजा बोले—ब्रह्मन्! सम्पूर्ण एकादशीकी उत्तम विधिका उपदेश कीजिये, जिससे भगवान् विष्णुकी प्रसन्नता प्राप्त हो।

ऋषिने कहा—नृपश्रेष्ठ! मार्गशीर्ष आदि महीनोंमें सभी द्वादशी तिथियोंको कल्याणमय अखण्ड एकादशी-व्रतका पालन करना चाहिये। दशमीको नक्तव्रत करे, एकादशीको दिनमें और रात्रिमें भी उपवास करे तथा द्वादशीको पारणाके रूपमें केवल एक बार भोजन करे। इसे अखण्डा एकादशी कहते हैं। दिनके आठवें भागमें जब सूर्यकी ज्योति मन्द हो गयी हो, उसी समयको नक्त जानना चाहिये; उसीमें किये हुए भोजनको नक्तव्रत कहते हैं। रात्रिमें भोजन करनेका नाम नक्तव्रत नहीं है।[१] काँस्यके बर्तनमें भोजन, उड़द, मसूर, चना, कोदो, साग, शहद, दूसरेका अन्न, दुबारा भोजन और मैथुन—इन दस वस्तुओंको विष्णुभक्त मनुष्य दशमीको त्याग दे।[२] बार-बार

१- दशम्यां चैव नक्तं च एकादश्यामुपोषणम्। द्वादश्यामेकभुक्तं च अखण्डा इति कथ्यते॥
दिवसस्याष्टमे भागे मन्दीभूते दिवाकरे। तद्धि नक्तं विजानीयान्न नक्तं निशि भोजनम्॥
(स्क० पु०, वै० मा० मा० १२। २२—२४)

२- कांस्यं माषं मसूरांश्च चणकान् कोद्रवाँस्तथा। शाकं मधु परान्नं च पुनर्भोजनमैथुने॥
विष्णुभक्तो नरो वापि दशम्यां दश वर्जयेत्।
(स्क० पु०, वै० मा० मा० १२। २४-२५)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

जलपान, हिंसा, अपवित्रता, असत्य-भाषण, पान चबाना, दाँतन करना, दिनमें सोना, मैथुन-सेवन, जुआ खेलना, रातमें सोना और पतित मनुष्योंसे वार्तालाप करना—विष्णुभक्त पुरुष इन ग्यारह बातोंको एकादशीके दिन त्याग दे। एकादशीको भगवान्से प्रार्थना करे कि—'हे केशव! आज आपकी प्रसन्नताके लिये मेरे द्वारा दिन और रातमें संयम-नियमका पालन हो। मेरी सोयी हुई इन्द्रियोंके द्वारा यदि स्वप्नमें कोई विकलता, भोजन या मैथुनकी क्रिया हो जाय अथवा मेरे दाँतोंके अंदर यदि पहलेसे अन्न सटा हुआ हो तो हे पुरुषोत्तम! इन सब बातोंको क्षमा कीजिये।'

पापोंसे उपावृत्त (निवृत्त) होकर जो गुणोंके साथ वास किया जाय, उसीको 'उपवास' समझना चाहिये। शरीरको सुखा डालनेका नाम 'उपवास' नहीं है*। पहले कही हुई दस बातें तथा पराया अन्न, शहद और शरीरमें तेल मलना आदि कार्य द्वादशीके दिन विष्णुभक्त पुरुष न करे। फिर द्वादशी आनेपर भगवान्से इस प्रकार प्रार्थना करे—'हे भगवान् गरुड़ध्वज! आज सब पापोंका नाश करनेवाली पुण्यमयी पवित्र द्वादशी तिथि मेरे लिये प्राप्त हुई है। इसमें मैं पारण करूँगा। आप प्रसन्न होइये।'

तदनन्तर ब्राह्मणोंको भोजन कराकर स्वयं भोजन करे। इस विधिसे जबतक वर्षकी समाप्ति हो, तबतक विद्वान् पुरुष एकादशी-व्रत करता रहे। वर्ष पूरा होनेपर उसका उद्यापन करे। मार्गशीर्षमासके शुभ शुक्ल पक्षमें एकादशीका उद्यापन किया जाता है। उसमें विधिके जाननेवाले बारह ब्राह्मणोंको आमन्त्रित करके तेरहवें विधिज्ञ आचार्यको पत्नीसहित आमन्त्रित करे। यजमान स्नान करके पवित्र हो श्रद्धा एवं इन्द्रियसंयमपूर्वक पाद्य, अर्घ्य और वस्त्र आदि सामग्रियोंसे आचार्य आदिका पूजन करे। तत्पश्चात् आचार्य उत्तम रंगोंसे चक्र-कमलसंयुक्त सर्वतोभद्रमण्डल बनावे। उस मण्डलको श्वेत वस्त्रसे आवेष्टित करे। फिर पंचपल्लव तथा पंचरत्नसे युक्त कर्पूर और अगुरुके सुगन्धसे वासित जलपूर्ण कलशको लाल कपड़ेसे वेष्टित करके उसके ऊपर ताँबेका पूर्णपात्र रखे। साथ ही उस कलशको फूलोंकी मालाओंसे भी आवेष्टित करे और उसे सर्वतोभद्रमण्डलके ऊपर स्थापित कर दे। कलशके ऊपर भगवान् श्रीलक्ष्मीनारायणकी स्थापना करे। तदनन्तर सर्वतोभद्रमण्डलमें बारह मासोंके अधिपतियोंकी स्थापना करके अखण्ड व्रतकी पूर्तिके लिये उनका पूजन करना चाहिये। मण्डलसे पूर्वभागमें शुभ शंखकी स्थापना करते हुए कहे—'हे पांचजन्य! तुम पहले समुद्रसे उत्पन्न हुए, फिर भगवान् विष्णुने तुम्हें अपने हाथोंमें धारण किया। सम्पूर्ण देवताओंने तुम्हारे रूपको सँवारा है, तुम्हें नमस्कार है।'

सर्वतोभद्रमण्डलसे उत्तर दिशामें हवनके लिये वेदी बनावे और संकल्पपूर्वक वेदोक्त विष्णुसम्बन्धी मन्त्रोंसे हवन करे। फिर भगवान् विष्णुकी प्रतिमाका स्थापन और पुरुषसूक्त एवं पौराणिक शुभ मन्त्रोंसे उसका पूजन करे। नैवेद्य चढ़ावे, धूप-दीप आदि उपहार भेंट करके आरती उतारे। फिर यक्ष-कर्दम (कपूर, अगुरु, कस्तूरी और कंकोलसे बनाये हुए अंगलेप)-से पूजा करके परिक्रमा करे। ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन कराकर नमस्कार करे। उसके बाद ब्राह्मणोंको आचार्य आदि क्रमसे वैदिक मन्त्रोंका जप करना चाहिये। जपके लिये पवमानसूक्त, मण्डलब्राह्मण **'मधुव्वाता ऋतायते०'** इत्यादि तीन मन्त्र **'तेजोऽसि०'**, **'सुक्रजं०'**, **'वाचं ब्रह्म०'** (साम०), **'पवित्रवन्तं सूर्यस्य०'** तथा **'विष्णोर्महसि०'** इत्यादि वैदिक

* उपावृत्तस्तु पापेभ्यो यस्तु वासो गुणैः सह। उपवासः स विज्ञेयो न शरीरस्य शोषणम्॥
(स्क० पु०, वै० मा० मा० १२। ३०)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

संहितोक्त मन्त्र श्रेष्ठ माने गये हैं। जपके अन्तमें भगवान् विष्णुका कलशके ऊपर स्थापन करना चाहिये। सबेरे दिन निकलनेपर नीचे लिखे क्रमसे हवन करे। यज्ञाग्निक्रियापरायण पुरुष पहले पात्र-स्थापन करके विधिपूर्वक पूजा करनेके पश्चात् स्तुति करे। उसके बाद अपनी शाखाके गृह्यसूत्रमें बतायी हुई विधिके अनुसार चरुपूर्वक होम करे। चरु दो पात्रोंमें तैयार करे। पुरुषसूक्तके मन्त्रसे चरुकी सोलह आहुतियाँ दे तथा घृतयुक्त पायसद्वारा चार बार श्रेष्ठ आहुति प्रदान करे। उसके बाद प्रादेशमात्र (अँगूठेसे लेकर तर्जनीतककी लंबी) एक सौ पलाशकी समिधाएँ लेकर उन्हें घीमें डुबो दे और '**इदं विष्णुर्विचक्रमे॰**' इत्यादि मन्त्रोंसे कर्मकी सिद्धिके लिये उनका हवन करे। समिधाओंकी एक सौ आहुति देनेके बाद तिलकी दो सौ आहुतियाँ दे। इस प्रकार वैष्णव होम करके ग्रहयज्ञ प्रारम्भ करे। उसमें भी क्रमशः समिधाहोम, चरुहोम और तिलहोम करने चाहिये। तत्पश्चात् स्वस्तिवाचन कराकर पूजन करे। फिर ऋत्विजोंको दक्षिणा दे और भगवान्‌की प्रसन्नताके लिये ब्राह्मणको एक दूध देनेवाली गौ तथा सुन्दर बैल दे। तदनन्तर ब्राह्मणोंको तेरह पद दान करे। सपत्नीक आचार्यको वस्त्रोंसे सन्तुष्ट करे और धनसहित महादान दे। पारण कर लेनेपर रातको ब्राह्मणोंको जलसे भरे हुए वस्त्र-वेष्टित पचीस कलश दान करे। अपनी शक्तिके अनुसार व्रतका उद्यापन करना चाहिये। इस प्रकार अखण्ड एकादशी-व्रतका वर्णन किया गया।

एकादशीके जागरण और मत्स्योत्सवकी विधि एवं माहात्म्य

श्रीभगवान् कहते हैं—गीत, वाद्य, नृत्य, पुराणपाठ, धूप, दीप, नैवेद्य, पुष्प, चन्दन, अनुलेपन, फल-निवेदन, श्रद्धा, दान, इन्द्रियसंयम, सत्यभाषण, निद्रात्याग, प्रसन्नतापूर्वक मेरा पूजन, आश्चर्य और उत्साहसहित पाप और आलस्यादिका त्याग, प्रदक्षिणा, नमस्कार, हर्षयुक्त हृदयसे नीराजन तथा प्रत्येक पहरमें आरती—इन गुणोंसे युक्त जागरण एकादशीकी रात्रिमें करना चाहिये। जो इस प्रकार भक्तिपूर्वक जागरण करता है, वह पुनः इस संसारमें जन्म नहीं लेता। यदि कोई कथावाचक मिले तो एकादशीके जागरणमें पहले पुराणपाठकी व्यवस्था करनी चाहिये। जो अविद्ध एकादशीके दिन-रातमें मेरे लिये जागरण करते हैं, उनके बीचमें मैं प्रसन्न होकर नृत्य करता हूँ। जो एकादशीकी रातमें जागरण करते समय दीप-दान करता है, वह एक-एक निमेषमें गोदानका फल पाता है। जो जागरणमें मेरे लिये कपूर और गुग्गुल मिलाया हुआ धूप देता है, वह अपने लाखों जन्मोंकी पापराशिको भस्म कर डालता है। मेरे लिये जागरण करते समय जो भक्तिपूर्वक पुराणकी पुस्तक बाँचता है, वह मेरे समीप निवास करता है। मेरी परिक्रमा करनेसे विद्वानोंने जिस फलकी प्राप्ति बतायी है, वह पुण्यफल चार करोड़ यज्ञोंसे भी नहीं प्राप्त हो सकता। जो जागरणकालमें मेरे बालचरित्रोंका पाठ करता है, वह कोटि सहस्र युगोंतक श्वेतद्वीपमें निवास करता है। जो रात्रिमें गीता और श्रीविष्णुसहस्रनामका पाठ करता है, वह उसके साथ जागरण करनेसे वेद और पुराणोंमें बताये हुए सभी पुण्यफलोंको पाता है। जो मन, वाणी और क्रियाद्वारा जागरण करते हैं, उनकी मेरे लोकसे किसी प्रकार भी पुनरावृत्ति नहीं होती। बहुत पुत्रोंके उत्पन्न होनेसे क्या लाभ, एक ही गुणवान् एवं भक्त पुत्र हो तो एकादशीके जागरणसे समस्त पूर्वजोंको तार दे। जो मेरे द्वारा कहे हुए जागरणके माहात्म्यको भक्तिपर्वूक पढ़ता

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

है, वह सौ पीढ़ियोंका उद्धार कर देता है। अनजानमें या जान-बूझकर जो पातक किया गया है, पूर्वजन्ममें और इस जन्ममें ही जिस पापराशिका संचय किया गया है, एकादशीके जागरणसे उन सबका नाश हो जाता है। चतुरानन! जो द्वादशीके इस माहात्म्यको पढ़ता अथवा सुनता है, वह सब पापोंसे शुद्ध होकर सनातन गतिको प्राप्त होता है। द्वादशी-व्रतके प्रभावसे सदा धर्मपर बुद्धि स्थिर रहती है, मेरे प्रति अत्यन्त निर्मल भक्तिका उदय होता है और मनुष्यको पाप नहीं लगता।

मार्गशीर्ष शुक्ल पक्षकी द्वादशी तिथिमें विद्वानोंको प्रातःकाल विधिपूर्वक मत्स्योत्सव मनाना चाहिये। उसकी विधि इस प्रकार है—मार्गशीर्षमासकी दशमी तिथिको मन और इन्द्रियोंको संयममें रखते हुए बुद्धिमान् पुरुष देवपूजनके पश्चात् विधिपूर्वक अग्निस्थापन करे। उसके बाद शंख, चक्र, गदा, किरीट तथा पीताम्बर धारण करनेवाले सर्वलक्षणलक्षित मुझ प्रसन्नवदनारविन्द गोविन्दका ध्यान करके हाथमें अर्घ्यके लिये जल ले और मुझे सूर्यमण्डलमें स्थित जानकर उस हाथके जलसे अर्घ्य दे। उस समय इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये—'कमलके समान नेत्रोंवाले भगवान् अच्युत! मैं एकादशीको निराहार रहकर दूसरे दिन भोजन करूँगा, आप मेरे रक्षक हों।'

तदनन्तर रात्रिमें मेरे विग्रहके समीप बैठकर विधिपूर्वक '**ॐ नमो नारायणाय**' इस मन्त्रका जप करे। एकादशीको प्रातःकाल किसी स्वच्छ जलवाली समुद्रगामिनी नदीके समीप जाकर अथवा दूसरी किसी नदी या तड़ागके समीप पहुँचकर आगे बताये जानेवाले मन्त्रसे वहाँकी मिट्टी ले—

धारणं पोषणं त्वत्तो भूतानां देवि सर्वदा।
तेन सत्येन मे पापं यावन्मोचय सुव्रते॥

'उत्तम व्रतका पालन करनेवाली देवि! सम्पूर्ण भूतोंका धारण और पोषण सदा तुमसे ही होता है, इस सत्यके प्रभावसे तुम मेरे समस्त पापोंको छुड़ाओ।'

तत्पश्चात् वरुणसे प्रार्थना करे—

त्वयि नित्यं रसाः सर्वे स्थिता वरुण सर्वदा।
तेनेमां मृत्तिकां प्लाव्य पूतां कुरुष्व मा चिरम्॥

'हे वरुण! सब रस सदा आपमें ही स्थित रहते हैं, इसलिये इस मृत्तिकाको आप्लावित करके आप शीघ्र पवित्र कीजिये।'

इस प्रकार मृत्तिका और जलके अधिष्ठाता देवताओंको प्रसन्न करके उस मिट्टी और जलको अपने शरीरमें लगावे। समूची मिट्टीके तीन भाग करके उसे जलमें मिलाकर नाभिसे नीचेके भागोंमें, नाभि और वक्षःस्थलके बीचमें तथा वक्षःस्थलसे ऊपरके भागमें लगाना चाहिये। उसके बाद जलमें, जहाँ मगर और कछुओंका भय न हो, नहाकर नित्यकर्म करके फिर मेरे मन्दिरमें आवे और मुझ भगवान् नारायणकी आराधना करे। '**केशवाय नमः**' इस मन्त्रसे मेरे दोनों पैरोंकी पूजा करे। इसी प्रकार '**दामोदराय नमः**' से कटिभागकी, '**नृसिंहाय नमः**' से दोनों घुटनोंकी, '**श्रीवत्सधारिणे नमः**' से वक्षःस्थलकी, '**कौस्तुभनाभाय नमः**' से कण्ठकी, '**श्रीपतये नमः**' से हृदयकी, '**त्रैलोक्यविजयाय नमः**' से बाहुकी, '**सर्वात्मने नमः**' से सिरकी, '**रथाङ्गधारिणे नमः**' से चक्रकी, '**श्रीकराय नमः**' से शंखकी, '**गम्भीराय नमः**' से गदाकी और '**शान्तमूर्तये नमः**' से पद्मकी पूजा करे। इस प्रकार सबके स्वामी मुझ देवेश्वर नारायणकी पूजा करके मेरे आगे चार कलशोंकी स्थापना करे, जो जलसे भरे हुए, मालासे सुशोभित, श्वेत चन्दनसे चर्चित, आम्रपल्लवोंसे संयुक्त, श्वेत वस्त्रोंसे अवगुण्ठित तथा सुवर्णयुक्त तिलसहित ताँबेके पूर्णपात्रोंसे आच्छादित हों। उन सबके मध्यमें एक पीठ (छोटी-सी चौकी) स्थापित करे;

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

जिसके ऊपर वस्त्र बिछा हुआ हो। उस पीठके ऊपर एक पात्र रखे और उसे जलसे भर दे। फिर उसमें मत्स्यावतार भगवान्की सुवर्णमयी प्रतिमा रखे। उस प्रतिमामें देवाधिदेव भगवान्के सभी अंग स्पष्ट होने चाहिये। उनके हाथ श्रुतियों और स्मृतियोंके ग्रन्थोंसे विभूषित हों। वहाँ अनेक प्रकारके भक्ष्य पदार्थों, फल, फूल, गन्ध, धूप और वस्त्र आदि सामग्रियोंसे विधिपूर्वक भगवान्की पूजा करके यह प्रार्थना करे—

रसातलगता वेदा यथा देव त्वयोद्धृताः।
मत्स्यरूपेण तद्वन्मां भवादुद्धर केशव॥

'देव! केशव! पूर्वकालमें मत्स्यरूप धारण करके आपने जिस प्रकार रसातलमें गये हुए वेदोंका उद्धार किया, उसी प्रकार मेरा भी इस संसारसे उद्धार कीजिये।'

ऐसा कहकर भगवान्के आगे जागरण करे। फिर प्रातःकाल होनेपर वे चारों कलश चार ब्राह्मणोंको दे दे। भगवान् मत्स्यकी मूर्तिको गन्ध, धूप और वस्त्र आदिसे पूजित करके आचार्यको दे दे। जो मनुष्य इस विधिसे मत्स्योत्सव करता है और भक्तिपूर्वक इस उत्तम द्वादशीव्रतको सुनता-सुनाता है, वह सभी पातकोंसे छूट जाता है।

ब्राह्मण-भोजन, प्रसाद-भक्षण और श्रीकृष्णकीर्तनकी महिमा

श्रीभगवान् कहते हैं—मार्गशीर्षमासमें कीर्तियुक्त भगवान् केशवकी पूर्वोक्त विधिसे पूजा करनी चाहिये। जो प्रतिदिन एक बार भोजन करके समूचे मार्गशीर्षको व्यतीत करता है और भक्तिपूर्वक ब्राह्मणोंको भोजन कराता है, वह रोगों और पातकोंसे मुक्त हो जाता है। मानद! अग्नि और ब्राह्मण दोनों ही मेरे मुख हैं, परंतु ब्राह्मण नामक मुख जैसा श्रेष्ठ है, वैसा अग्नि नहीं है। अग्नि नामक मुख तो ब्राह्मणके अधीन है, परंतु ब्राह्मण स्वतन्त्र है। अगहनमें कुमुदके समान स्वच्छ और सुगन्धदायक सुन्दर भात, मूँगकी दाल और गायके प्रचुर घीसे पूर्ण भोजनका ब्राह्मणके मुखमें हवन करे। चतुर्मुख! मेरे भक्तोंको मेरा प्रसाद भोजन करना चाहिये। वह पवित्र करनेवाला तथा पापियोंको भी मुक्त करनेवाला है। इसलिये अन्न-पानादि ओषधि मुझको अर्पण करे और अशुद्धको भी शुद्ध करनेवाले उस प्रसादको भक्तिपूर्वक भोजन करे। अन्य देवताओंका नैवेद्य न ग्रहण करे। अगहनके महीनेमें विशेषरूपसे 'कृष्ण-कृष्ण' कहकर मेरा नाम लेना चाहिये। यह मुझे अत्यन्त प्रसन्न करनेवाला है। मेरी एक प्रतिज्ञा है, जिसे देवता और असुर भी नहीं जानते। वह प्रतिज्ञा इस प्रकार है—जो मन, वाणी और क्रियाद्वारा मेरी शरणमें आ जाता है, वह यहाँ सम्पूर्ण लौकिक कामनाओंको प्राप्त कर लेता है और अन्तमें सर्वोत्कृष्ट वैकुण्ठधाममें जाता है। जो 'हे कृष्ण! हे कृष्ण!! हे कृष्ण!!!' ऐसा कहकर मेरा प्रतिदिन स्मरण करता है, उसे जिस प्रकार कमल जलको भेदकर ऊपर निकल आता है, उसी प्रकार मैं नरकसे निकाल लाता हूँ।* जो विनोदसे, पाखण्डसे, मूर्खतासे, लोभसे अथवा छलसे भी मेरा भजन करता है, वह मेरा भक्त कभी कष्टमें नहीं पड़ता। मृत्युकाल उपस्थित होनेपर जो कृष्ण-नामकी रट लगाते हैं, वे यदि पापी हों तो भी कभी यमराजका दर्शन नहीं करते। पूर्व अवस्थामें किसीने सम्पूर्ण पाप किये हों तथापि यदि वह अन्तकालमें श्रीकृष्णका स्मरण कर लेता है, तो निश्चय ही

* कृष्ण कृष्णेति कृष्णेति यो मां स्मरति नित्यशः। जलं भित्त्वा यथा पद्मं नरकादुद्धराम्यहम्॥
(स्क० पु०, वै० मा० मा० १५। ३६)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

मुझे प्राप्त होता है। मृत्युकाल उपस्थित होनेपर यदि कोई 'परमात्मा श्रीकृष्णको नमस्कार है' ऐसा विवश होकर भी कहे, तो वह अविनाशी पदको प्राप्त होता है। जो श्रीकृष्णका उच्चारण करके प्राण त्याग करता है, उसे प्रेतराज यम दूरसे ही खड़े होकर स्वर्गमें जाते देखते हैं। यदि कृष्ण-कृष्णका उच्चारण करता हुआ कोई श्मशानमें अथवा सड़कपर भी मर जाता है तो वह मुझे ही प्राप्त होता है, इसमें संशय नहीं है। जो मेरे भक्तोंका दर्शन करके कहीं मृत्युको प्राप्त होता है, वह मनुष्य मेरा स्मरण किये बिना भी मोक्ष प्राप्त कर लेता है*। बेटा! पापरूपी प्रज्वलित अग्निसे भय न करो, श्रीकृष्णके नामरूपी मेघोंके जलकी बूँदोंसे उसे सींचकर बुझा दिया जाता है। तीखे दाढ़ोंवाले कलिकालरूपी सर्पका क्या भय है? श्रीकृष्णके नामरूपी इन्धनसे उत्पन्न आगके द्वारा वह जलकर नष्ट हो जाता है। पापरूपी अग्निसे दग्ध होकर जो सत्कर्मकी चेष्टासे शून्य हो गये हैं, ऐसे मनुष्योंके लिये श्रीकृष्णके नामस्मरणके सिवा दूसरी कोई ओषधि नहीं है। जैसे प्रयागमें गंगा, शुक्लतीर्थमें नर्मदा और कुरुक्षेत्रमें सरस्वती हैं, उसी प्रकार सर्वत्र श्रीकृष्णका कीर्तन सब पापोंका नाश करनेवाला है। संसार-समुद्रमें डूबकर जो महान् पापोंकी लहरोंमें गिर गये हैं, ऐसे मनुष्योंके लिये श्रीकृष्ण-स्मरणके सिवा दूसरी कोई गति नहीं है। जो पापी हैं, जिनमें श्रीकृष्ण-स्मरणकी इच्छा नहीं है, ऐसे मनुष्योंके लिये मृत्युकालमें तथा परलोककी यात्राके समय श्रीकृष्ण-चिन्तनके सिवा दूसरा कोई पाथेय (राहखर्च) नहीं है। बेटा! जिस मन्दिरमें प्रतिदिन कृष्ण-कृष्णका कीर्तन होता है, वहाँ गया, काशी, पुष्कर और कुरुक्षेत्र सब तीर्थ हैं। उसीका जन्म और जीवन सफल है तथा उसीका मुख सार्थक है, जिसकी जिह्वा सदा 'कृष्ण-कृष्ण' का कीर्तन करती है। जिसने एक बार भी 'हरि' इन दो अक्षरोंका उच्चारण कर लिया, उसने मोक्षके लिये जानेको कमर कस ली है। समस्त पापोंको भस्म कर डालनेके लिये मुझ भगवान्‌के नाममें जितनी शक्ति है, उतना पातक कोई पातकी मनुष्य कर ही नहीं सकता†। 'कृष्ण-कृष्ण'के कीर्तनसे मनुष्यका शरीर और मन कभी श्रान्त नहीं होता, उसे पाप नहीं लगता और विकलता भी नहीं होती। जो श्रीकृष्णनामोच्चारणरूपी पथ्यका कलियुगमें त्याग नहीं करता, उसके चित्तमें पापरूपी रोग नहीं पैदा होते। श्रीकृष्णनामका कीर्तन करते हुए मनुष्यकी आवाज सुनकर दक्षिण दिशाके अधिपति यमराज उसके सौ जन्मोंके पापोंका परिमार्जन कर देते हैं। सैकड़ों चान्द्रायण और सहस्रों पराक व्रतसे जो पाप नष्ट नहीं होता, वह कृष्ण-कृष्णके कीर्तनसे चला जाता है। श्रीकृष्णनामका उच्चारण करनेसे मेरी अधिकाधिक प्रीति बढ़ती है। कोटि-कोटि चन्द्रग्रहण और सूर्यग्रहणमें स्नान करनेसे जो फल बतलाया गया है, उसे मनुष्य कृष्ण-कृष्णके कीर्तनमात्रसे पा लेता है। जैसे सूर्य-किरणोंके तापसे बर्फ गल जाती है, उसी

* श्मशाने यदि रथ्यायां कृष्ण कृष्णेति जल्पति। म्रियते यदि चेत्पुत्र मामेवैति न संशयः॥
दर्शनान्मम भक्तानां मृत्युमाप्नोति यः क्वचित्। विना मत्स्मरणात्पुत्र मुक्तिमेति स मानवः॥
(स्क० पु०, वै० मा० मा० १५। ४२-४३)

† जीवितं जन्मसाफल्यं मुखं तस्यैव सार्थकम्। सततं रसना यस्य कृष्ण कृष्णेति जल्पति॥
सकृदुच्चरितं येन हरिरित्यक्षरद्वयम्। बद्धः परिकरस्तेन मोक्षाय गमनं प्रति॥
नाम्नोश्च यावती शक्तिः पापनिर्दहने मम। तावत् कर्तुं न शक्नोति पातकं पातकी जनः॥
(स्क० पु०, वै० मा० मा० १५। ५१—५३)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

प्रकार श्रीकृष्ण-कीर्तनसे गुरुपत्नीगमन और सुवर्णकी चोरी आदि महापातक नष्ट हो जाते हैं। अगम्यागमन आदि महापापोंसे युक्त मनुष्य भी अन्तकालमें एक बार श्रीकृष्णनामका कीर्तन कर ले तो वह उससे पापमुक्त हो जाता है। जो जिह्वा कलिकालमें श्रीकृष्णके गुणोंका कीर्तन नहीं करती, वह दुष्टा मुँहमें न रहे, रसातलको चली जाय। जो कलियुगमें श्रीकृष्णके गुणोंका प्रयत्नपूर्वक कीर्तन करती है, वह जिह्वा अपने मुखमें हो या दूसरेके मुखमें, वन्दना करने योग्य है। जो दिन-रात श्रीकृष्णके गुणोंका कीर्तन नहीं करती, वह जिह्वा नहीं—मुखमें कोई पापमयी लता है, जिसे जिह्वाके नामसे पुकारा जाता है। जो 'श्रीकृष्ण-कृष्ण-कृष्ण-श्रीकृष्ण' इस प्रकार श्रीकृष्णनामका कीर्तन नहीं करती, वह रोगरूपिणी जिह्वा सौ टुकड़े होकर गिर जाय*।

जो श्रीकृष्णके नामकी इस महिमाका प्रातःकाल उठकर पाठ करता है, उसके लिये निश्चय ही मैं कल्याणदाता होता हूँ। जो तीनों सन्ध्याओंके समय श्रीकृष्णनामके माहात्म्यका पाठ करता है, वह जीते-जी सम्पूर्ण कामनाओंको और मरनेपर परम गतिको पाता है।

श्रीकृष्णके बालस्वरूपका ध्यान, दामोदरमन्त्रके अधिकारी शिष्य और गुरुका लक्षण और श्रीमद्भागवतकी महिमा

श्रीभगवान् कहते हैं—ब्रह्मन्! अब मैं ध्यानका वर्णन करता हूँ। शोभाशाली उद्यानसे घिरी हुई एक सुवर्णमयी स्थली है। उसमें जगमगाते हुए रत्नोंका बना हुआ एक प्रकाशमान मण्डप है। उसके भीतर कल्पवृक्ष शोभा पा रहा है। उसके नीचे उद्दीप्त रत्नमय सिंहासन है, जिसके ऊपर कमलका आसन है। उसके ऊपर बालगोपाल श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण विराजमान हैं। उनके श्रीअंगोंकी कान्ति महानील-मणिके समान श्याम है। उनकी अत्यन्त बाल्यावस्था है। मुखके समीपतक चिकने काले, घुँघराले बाल बिखरे हुए हैं। उनसे उनके मुग्ध मुखारविन्दकी ऐसी शोभा हो रही है, मानो खिले हुए कमलपर भ्रमरोंके समूह छा रहे हों। उनके नेत्र नीलकमलके समान परम सुन्दर हैं। फूलके समान खिले हुए गाल हिलते हुए कुण्डलोंसे अतिशय सुशोभित हो रहे हैं। उनकी नुकीली नाक, लाल ओष्ठ और मन्द-मुसकानसे सुशोभित मुख सभी सुन्दर हैं। कण्ठमें अनेकानेक चमकते हुए आभूषण उनकी शोभा बढ़ा रहे हैं। वे विकसित कमलके समान बघनखा पहने हुए हैं। उनके नेत्र सुन्दर हैं। गौओंकी धूलि पड़नेसे उनका वक्षःस्थल धूसरित हो रहा है। उनके सभी अंग हृष्ट-पुष्ट हैं। सुवर्णमय अलंकारोंसे उनकी दीप्ति बढ़ रही है। मनोहर पिण्डलियों और जाँघोंसे सुशोभित कटिप्रदेशमें करधनी बँधी हुई है, जिसकी क्षुद्रघण्टिकाओंसे मधुर झनकार हो रही है। बन्धुजीव पुष्पके समान लाल-लाल हथेली और लाल कमलके समान चरणोंकी उदार शोभासे वे सुशोभित हैं। वे मन्द-मन्द हँस रहे हैं। उनके दाहिने हाथमें खीर है और बायें हाथमें वे तुरंतका निकाला हुआ शुद्ध माखन लिये हुए हैं। गायें और गोपियाँ उन्हें घेरकर बैठी हैं। इन्द्र आदि देवता भी उनके चरणोंमें मस्तक

* पततां शतखण्डा तु सा जिह्वा रोगरूपिणी। श्रीकृष्णकृष्णकृष्णेति श्रीकृष्णेति न जल्पति॥
(स्क० पु०, वै० मा० मा० १५। ६६)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

झुकाते हैं। शेषनाग और वज्र आदिसे उपलक्षित उन देवाधिदेव भगवान् श्रीकृष्णका चिन्तन करके भक्तिभावसे नम्र हो प्रातःकाल उनकी पूजा करे और माखन-मिश्री, दही-दूध एवं कमल आदि अर्पण करके उन्हें प्रसन्न करे।

जो मनुष्य प्रतिदिन प्रातःकाल आस्तिक भावसे युक्त होकर सदा इसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्णका पूजन करता है, वह शीघ्र ही इस लोकमें समग्र लक्ष्मीको प्राप्त करता है और मृत्युके पश्चात् शुद्ध परम धाममें गमन करता है। उनका लोकमनोहर मन्त्र पहले ही बतलाया गया है। उसका नाम है श्रीमद्दामोदर-मन्त्र (**श्रीदामोदराय नमः**)। इस मन्त्रके कौन-कौन अधिकारी हैं, उनका वर्णन सुनो। इस मन्त्रराजका उपदेश किसी अयोग्य व्यक्तिको नहीं देना चाहिये। यह शीघ्र सिद्धि प्रदान करनेवाला एक रहस्य है, इसलिये यत्नपूर्वक इसकी रक्षा करनी चाहिये। आलसी, मलिन, क्लेशग्रस्त, दम्भी, मोहयुक्त, दरिद्र, रोगी, क्रोधी, रागी, भोगलोलुप, दोषदर्शी, ईर्ष्या रखनेवाला, शठ, कटुवादी, अन्यायपूर्वक धन कमानेवाला, परस्त्रियोंमें आसक्त रहनेवाला, विद्वानोंका वैरी, मूर्ख, अपनेको पण्डित माननेवाला, व्रतभ्रष्ट, जीविकाके क्लेशसे युक्त, चुगलखोर, दुष्टचित्त, बहुभोजी, निर्दयतापूर्ण चेष्टावाला, दुष्टोंका नेता, कंजूस, पापी, भयंकर, आश्रितोंको भय देनेवाला—इस प्रकारके दुर्गुणोंसे युक्त शिष्यको इस मन्त्रके उपदेशके लिये कभी नहीं ग्रहण करना चाहिये। यदि कोई ग्रहण करता है तो शिष्यका दोष प्रायः गुरुमें भी आ जाता है। मन्त्रीका दोष राजामें, स्त्रीका दोष पतिमें और शिष्यका दोष गुरुमें आता है—इसमें कोई सन्देह नहीं। इसलिये गुरुको चाहिये कि वह सदा शिष्यकी परीक्षा लेकर ही उसे ग्रहण करे।

जो मन, वाणी और शरीरसे गुरुकी सेवामें तत्पर रहनेवाला हो, जिसमें चोरीकी वृत्तिका सर्वथा अभाव हो, जो आस्तिक होनेके साथ ही मोक्षके लिये उद्योगशील हो, ब्रह्मचर्यका पालन करता हो, सदा दृढ़तापूर्वक व्रतमें स्थित रहता हो, जिसकी पापमें प्रवृत्ति न हो, जिसका चित्त प्रसन्न और अन्तःकरण निर्मल हो, जिसमें शठताका अभाव हो, जो शुद्ध, परोपकारी और स्वार्थकामनासे रहित हो, अपने तन, मन और धनसे गुरुको सन्तुष्ट रखनेवाला हो, आश्रितजनोंको प्रसन्न रखनेवाला और पवित्र हो—ऐसे ही शिष्यको मन्त्रका उपदेश दे, अन्यथा नहीं।

अब गुरुका लक्षण बतलाता हूँ। जिसका चित्त सम और शान्त हो, जो क्रोधरहित, सब लोगोंका सुहृद्, साधु, महात्मा, लोकमें सबपर समान दृष्टि रखनेवाला हो, वह गुरु कहा गया है। जो सदा मेरे व्रतको धारण करता है, वैष्णवगण जिसे सम्मानकी दृष्टिसे देखते हैं, जो मेरी कथावार्तामें अनुरक्त और मेरे उत्सवोंमें संलग्न रहता है, जो दयासगर, पूर्णकाम, सर्वभूतोपकारी, सब ओरसे निःस्पृह, सिद्ध, सर्वविद्याविशारद, समस्त संशयोंको निवारण करनेवाला और आलस्यरहित है, जो सब कालोंका ज्ञाता है तथा सबपर अनुग्रह रखता है, ऐसा आदरणीय ब्राह्मण गुरु कहा गया है। पूर्वोक्त लक्षणोंसे युक्त शिष्य ऐसे गुरुसे मेरी प्राप्ति करानेवाले मार्गशीर्षमासमें उक्त दामोदर-मन्त्रका उपदेश ग्रहण करे।

विद्वान् पुरुषको चाहिये कि वह वैष्णवोंके व्रतोंको स्वीकार करे। जो मुझे प्रिय लगनेवाले परम उत्तम श्रीमद्भागवतपुराणका पाठ करता है, उसे प्रत्येक अक्षरपर कपिला गौके दानका फल मिलता है। जो प्रतिदिन श्रीमद्भागवतके आधे या चौथाई श्लोकका पाठ करता अथवा सुनता है, उसे सहस्र गोदानका फल मिलता है। जो प्रतिदिन पवित्रचित्त हो भागवतके श्लोकका पाठ करता है, उसे अठारह पुराणोंके पाठ करनेका फल मिलता है। जहाँ नित्य मेरी कथा होती है, वहाँ वैष्णवगण स्थित होते हैं। जो सदा मेरी

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

पूजा करते हैं, वे मनुष्य कलियुगके बाहर हैं। जो कलियुगमें अपने घरपर प्रतिदिन भागवतशास्त्रकी पूजा करते हैं, उनके ऊपर मैं प्रसन्न होता हूँ। बेटा! जितने दिनोंतक घरमें भागवतशास्त्र रहता है, उतने दिनोंतक पितर दूध, घी और मधुके साथ जल पीते हैं। जो भक्तिपूर्वक वैष्णव विद्वान्‌को भागवतशास्त्र देते हैं, वे मेरे लोकमें निवास करते हैं। जो अपने घरपर सदा भागवतशास्त्रकी पूजा करते हैं, उनके उस पूजनसे सब देवता प्रलयकालतकके लिये तृप्त हो जाते हैं। सदा मेरी प्रसन्नताके लिये सबको वैष्णव-शास्त्रोंका संग्रह करना चाहिये। कलियुगमें जहाँ-जहाँ परम पवित्र भागवतशास्त्र रहता है, वहाँ-वहाँ मैं सम्पूर्ण देवताओंके साथ सदैव निवास करता हूँ। वहीं सम्पूर्ण तीर्थ, नदी, नद, सरोवर, यज्ञ, सातों पुरी तथा सम्पूर्ण पवित्र पर्वत निवास करते हैं। धर्मबुद्धि पुरुषको पापके नाश और मोक्षकी प्राप्तिके लिये सदा भागवतशास्त्र श्रवण करना चाहिये। श्रीमद्भागवत परम पवित्र, आयु, आरोग्य तथा पुष्टिको देनेवाला है। इसके पढ़ने और सुननेसे मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। जो परम उत्तम श्रीमद्भागवतको न तो सुनते हैं और न सुनकर प्रसन्न ही होते हैं, उनपर सदा यमराजका प्रभुत्व रहता है, यह सर्वथा सत्य बात है। जिसके घरमें भागवतका एक या आधा श्लोक भी लिखकर रखा हुआ है, उसके यहाँ मैं स्वयं निवास करता हूँ। जो मेरी कथा बाँचता है, मेरी कथा सुननेमें संलग्न रहता है और मेरी कथा सुनकर जिसका मन प्रसन्न होता है, उस मनुष्यको मैं कभी नहीं छोड़ता। जो श्रीमद्भागवतका दर्शन करके उठकर खड़ा हो जाता और बारंबार प्रणामके द्वारा उसका सम्मान करता है, उसको देखकर मुझे अनुपम प्रसन्नता होती है। जो दूरसे भागवतशास्त्रको देखकर उसके सामने जाता है, उसे पग-पगपर अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त होता है, इसमें सन्देह नहीं। जो श्रीमद्भागवतको सुनते हैं, मैं उनके वशमें होता हूँ। जो वस्त्र, आभूषण, पुष्प, धूप, दीप और नाना प्रकारके उपहारोंके साथ भक्तिपूर्वक मेरी प्रसन्नताके लिये श्रीमद्भागवत सुनते हैं, वे मुझे वशमें कर लेते हैं। ठीक उसी तरह जैसे साध्वी स्त्री अपने श्रेष्ठ पतिको वशमें कर लेती है।

मार्गशीर्षमासमें मथुरासेवनका माहात्म्य और ग्रन्थका उपसंहार

श्रीभगवान् कहते हैं—मथुरा नामसे विख्यात जो मेरा उत्तम क्षेत्र है, वह मेरी परम प्रिय प्रशस्त एवं रमणीय जन्मभूमि है। चतुर्मुख! मथुरामें जहाँ कहीं भी मनुष्य स्नान करता है, घोर पापसे मुक्त हो जाता है। सब धर्मोंसे रहित दुष्टात्मा पुरुषोंके लिये पापनाशिनी मथुरा नरककी पीड़ा दूर करनेवाली है। कृतघ्न, शराबी, चोर तथा प्रतिज्ञा भंग करनेवाला मनुष्य मथुरामें जाकर घोर पापसे मुक्त हो जाता है। जो किसी दूसरे प्रसंगसे अथवा व्यापार या नौकरीके लिये भी जाते हैं, वे भी मथुरामें स्नान करनेमात्रसे पापरहित होकर स्वर्गलोकमें चले जाते हैं। मथुराका नाम लेनेवाले लोगोंकी भी मुक्ति होती है। जो मनुष्य वहाँ तीन रात भी निवास करते हैं, वे अपने दर्शन तथा चरणरेणुके स्पर्शसे भी दूसरोंको पवित्र कर देते हैं। जैसे छोटी-छोटी चिनगारियाँ घास-फूसके बड़े भारी ढेरको भी जला डालती हैं, उसी प्रकार मथुरापुरी बड़े-बड़े पापोंको भस्म कर देती है। अन्य स्थानोंमें किया हुआ पाप तीर्थस्थानमें जानेसे नष्ट होता है, किंतु तीर्थोंमें किया हुआ पाप वज्रलेप हो जाता है*। चतुरानन! अन्य स्थानोंमें जिस पापका

* अन्यत्र हि कृतं पापं तीर्थमासाद्य नश्यति। तीर्थेषु यत्कृतं पापं वज्रलेपो भविष्यति॥ (स्क० पु० वै० मा० मा० १७। १७)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

भोग दस वर्षमें पूरा होता है, वह मथुरामें दस दिनमें ही पूरा हो जाता है। स्वर्ग, पाताल, अन्तरिक्ष तथा मनुष्यलोकमें मथुरापुरीके समान मेरा प्रिय क्षेत्र दूसरा नहीं है।

तीर्थराज प्रयागमें एक हजार वर्षतक निवास करनेसे जो फल प्राप्त होता है, वह मथुरापुरीमें केवल अगहनमें निवास करनेसे मिल जाता है। जिसने कभी मथुरापुरी नहीं देखी है और उसे देखनेकी इच्छा रखता है, उसकी कहीं भी मृत्यु क्यों न हो, वह मथुरामें जन्म लेता है। मेरे प्रिय भक्तो! तुम मथुरापुरीमें निवास करो, निवास करो। वहाँ गोपकन्याओंसे घिरा हुआ मैं सदैव निवास करता हूँ। संसारमें डूबे हुए शिष्यो! मेरी बात सुनो—यदि तुम घनीभूत आनन्द पाना चाहते हो, तो मथुरापुरीमें निवास करो। अहो! यह संसार बड़ा अंधा है, आँखें होते हुए भी नहीं देखता। मुक्तिदायिनी मथुराके होते हुए भी सदा जन्म-मरणरूपी संसार-चक्रका ही सेवन करता है। सौभाग्यवश अनुपम मनुष्ययोनि पाकर भी जिन्होंने मथुरापुरी नहीं देखी, उनकी आयु व्यर्थ ही बीत गयी। अहो! यह कैसी बुद्धिकी दुर्बलता है, मोहकी कितनी अद्भुत महिमा है कि मनुष्य मथुरापुरीका सेवन नहीं करते। जो मथुरापुरीको पाकर भी अन्यत्र जानेकी अभिलाषा करता है, वह अज्ञानसे ही सम्पन्न है। जो पापकी राशियोंसे आक्रान्त हैं, दरिद्रतासे पराजित हैं और जिनकी कहीं भी गति नहीं है, उन सबके लिये मेरी मथुरापुरी आश्रय है। यह सारसे भी अतिशय सारभूत स्थान है, गोपनीयसे भी अति गोपनीय परम रहस्य है। उत्तम गतिकी खोज करनेवाले पुरुषोंके लिये मथुरापुरी परम गति है। योगयुक्त ब्रह्मज्ञानी मनीषी पुरुषकी जो गति होती है, वही मथुरामें प्राणत्याग करनेवाले मनुष्यकी भी होती है। संसारमें काशी आदि पुरियाँ भी मोक्ष देनेके लिये प्रसिद्ध हैं तथापि उनमें मथुरा ही धन्य है; क्योंकि वह मनुष्योंको चार प्रकारकी मुक्ति प्रदान करती है। मथुरामें आकर मरे हुए कीट, पतंग आदि भी चतुर्भुजरूप हो जाते हैं। मथुरामें जिसे साँप डँस लेता है, जो पशुओंसे मारे जाते हैं, आगमें जलकर या पानीमें डूबकर मरते हैं—इस प्रकार अपमृत्यु पानेवाले लोग भी मेरे लोकमें जाते हैं। जो कामना रखनेवाले पुरुषोंको धर्म, अर्थ और काम देनेवाली है, मनुष्योंको मुक्ति प्रदान करती है और भक्तिकी इच्छा रखनेवालोंको भक्ति देती है, उस मथुराका कौन विद्वान् पुरुष आश्रय नहीं लेगा। ऐसी महिमामयी मधुपुरी मार्गशीर्षमासमें सेवन करने योग्य है। मार्गशीर्षमासमें जो पूर्णिमा होती है, उसमें जो पुण्य किया जाता है, वह मुझे अधिक प्रसन्न करनेवाला होता है। पुष्कर और मथुरामें पूर्णिमा तिथिको स्नान अवश्य करना चाहिये। मार्गशीर्षकी पूर्णिमा अनन्त फल देनेवाली है। अतः सब प्रकारके प्रयत्नोंसे उसका आदर करना चाहिये। जो भक्तिपूर्वक मेरे परम प्रिय मार्गशीर्षमासका व्रत करता है, वह पुत्ररहित हो तो पुत्र पाता है, निर्धन हो तो उसे धन मिलता है, विद्यार्थी हो तो विद्या और रूपार्थी हो तो रूप प्राप्त करता है। ब्राह्मण ब्रह्मतेजको पाता है, क्षत्रिय विजयी होता है, वैश्य खजानेका मालिक होता है और शूद्र पापसे शुद्ध होता है। तीनों लोकोंमें जो दुर्लभ वस्तु है, वह सब मनुष्य मार्गशीर्षमासमें स्नान एवं व्रत करनेसे प्राप्त कर लेता है। मुझको वशमें करनेवाली उत्तम भक्ति सर्वथा दुर्लभ है। वह भी इस मार्गशीर्षमासका माहात्म्य श्रवण करनेपर प्राप्त हो जाती है।

मार्गशीर्षमास-माहात्म्य सम्पूर्ण

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

श्रीमद्भागवत-माहात्म्य

परीक्षित् और वज्रनाभका समागम, शाण्डिल्य मुनिके मुखसे भगवान्‌की लीलाके रहस्य और व्रजभूमिके महत्त्वका वर्णन

महर्षि व्यास कहते हैं—

श्रीसच्चिदानन्दघनस्वरूपिणे
कृष्णाय चानन्तसुखाभिवर्षिणे।
विश्वोद्भवस्थाननिरोधहेतवे
नुमो वयं भक्तिरसाप्तयेऽनिशम्॥

'जिनका स्वरूप सच्चिदानन्दघन है, जो अपने सौन्दर्य और माधुर्यादि गुणोंसे सबका मन अपनी ओर आकर्षित कर लेते हैं और सदा-सर्वदा अनन्त सुखकी वर्षा करते रहते हैं, जिनकी ही शक्तिसे इस विश्वकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय होते हैं—उन भगवान् श्रीकृष्णको हम भक्तिरसका आस्वादन करनेके लिये नित्य-निरन्तर प्रणाम करते हैं।'

नैमिषारण्यक्षेत्रकी बात है, श्रीसूतजी स्वस्थ चित्तसे अपने आसनपर बैठे हुए थे। उस समय भगवान्‌की अमृतमयी लीलाकथाके रसिक, उसके रसास्वादनमें अत्यन्त कुशल शौनकादि ऋषियोंने सूतजीको प्रणाम करके उनसे यह प्रश्न किया।

ऋषियोंने पूछा—सूतजी! धर्मराज युधिष्ठिर जब मथुरामण्डलमें अनिरुद्धनन्दन वज्रका और हस्तिनापुरमें अपने पौत्र परीक्षित्‌का राज्याभिषेक करके हिमालयपर चले गये, तब राजा वज्र और परीक्षित्‌ने कैसे-कैसे कौन-कौन-सा कार्य किया?

सूतजी बोले—शौनकादि ब्रह्मर्षियो! जब धर्मराज युधिष्ठिर आदि पाण्डवगण स्वर्गारोहणके लिये हिमालय चले गये, तब सम्राट् परीक्षित् एक दिन मथुरा गये। उनकी इस यात्राका उद्देश्य इतना ही था कि वहाँ जाकर वज्रनाभसे मिल-जुल आयें। जब वज्रनाभको यह समाचार मालूम हुआ कि मेरे पितातुल्य परीक्षित् मुझसे मिलनेके लिये आ रहे हैं, तब उनका हृदय प्रेमसे भर गया। उन्होंने नगरसे आगे बढ़कर उनकी अगवानी की, चरणोंमें प्रणाम किया और बड़े प्रेमसे उन्हें वे अपने महलमें ले आये। वीर परीक्षित् भगवान् श्रीकृष्णके परम प्रेमी भक्त थे। उनका मन नित्य-निरन्तर आनन्दघन श्रीकृष्णचन्द्रमें ही रमता रहता था। उन्होंने भगवान् श्रीकृष्णके प्रपौत्र वज्रनाभका बड़े प्रेमसे आलिंगन किया। इसके बाद अन्तःपुरमें जाकर भगवान् श्रीकृष्णकी पत्नियोंको नमस्कार किया। श्रीकृष्ण-पत्नियोंने भी सम्राट् परीक्षित्‌का अत्यन्त सम्मान किया। वे जब आरामसे बैठ गये, तब उन्होंने वज्रनाभसे यह बात कही।

राजा परीक्षित्‌ने कहा—तुम्हारे पिता और पितामहोंने मेरे पिता-पितामहको बड़े-बड़े संकटोंसे बचाया है। मेरी रक्षा भी उन्होंने ही की है।

वज्रनाभ बोले—महाराज! आप मुझसे जो कुछ कह रहे हैं, वह सर्वथा आपके अनुरूप है। आपके पिताने भी मुझे धनुर्वेदकी शिक्षा देकर मेरा महान् उपकार किया है। इसलिये मुझे किसी बातकी तनिक भी चिन्ता नहीं है। क्योंकि उनकी कृपासे मैं क्षत्रियोचित शूरवीरतासे भली-भाँति सम्पन्न हूँ। मुझे चिन्ता है, तो केवल एक बातकी। सचमुच वह बहुत बड़ी चिन्ता है। आप उसके सम्बन्धमें कुछ विचार कीजिये। वह चिन्ता यह है कि यद्यपि मैं मथुरामण्डलके राज्यपर अभिषिक्त हूँ, तथापि मैं यहाँ निर्जन वनमें ही रहता हूँ। इस

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

बातका मुझे कुछ भी पता नहीं है कि यहाँकी प्रजा कहाँ चली गयी; क्योंकि राज्यका सुख तो तभी है जब प्रजा रहे। जब वज्रनाभने परीक्षित्से यह बात कही, तब उन्होंने वज्रनाभका सन्देह मिटानेके लिये महर्षि शाण्डिल्यको बुलवाया। ये ही महर्षि शाण्डिल्य पहले नन्द आदि गोपोंके पुरोहित थे। परीक्षित्का सन्देश पाते ही महर्षि शाण्डिल्य वहाँ आ पहुँचे। वज्रनाभने विधिपूर्वक उनका स्वागत-सत्कार किया और वे एक ऊँचे आसनपर विराजमान हुए एवं उनको सान्त्वना देते हुए कहने लगे।

शाण्डिल्यजीने कहा—प्रिय परीक्षित् और वज्रनाभ! मैं तुमलोगोंसे व्रजभूमिका रहस्य बतलाता हूँ। तुम एकाग्र होकर सुनो! 'व्रज' शब्दका अर्थ है व्याप्ति। व्यापक होनेके कारण ही इस भूमिका नाम 'व्रज' पड़ा है। सत्त्व, रज, तम—इन तीन गुणोंसे अतीत जो परब्रह्म है, वही व्यापक है। इसलिये उसे 'व्रज' कहते हैं। वह सदानन्दस्वरूप, परम ज्योतिर्मय और अविनाशी है। जीवन्मुक्त पुरुष उसीमें स्थित रहते हैं। इस परब्रह्मस्वरूप व्रजधाममें नन्दनन्दन भगवान् श्रीकृष्णका निवास है। उनका एक-एक अंग सच्चिदानन्दस्वरूप है। वे आप्तकाम हैं। प्रेमरसमें डूबे हुए रसिकजन ही उनका अनुभव करते हैं। 'काम' शब्दका अर्थ है—कामना, अभिलाषा; व्रजमें भगवान् श्रीकृष्णके वांछित पदार्थ हैं—गौएँ, ग्वालबाल, गोपियाँ और उनके साथ लीला-विहार आदि; वे सब-के-सब यहाँ नित्य प्राप्त हैं। इसीसे श्रीकृष्णको 'आप्तकाम' कहा गया है। भगवान् श्रीकृष्णकी यह रहस्यलीला प्रकृतिसे परे है। वे जिस समय प्रकृतिके साथ खेलने लगते हैं, उस समय दूसरे लोग भी उनकी लीलाका अनुभव करते हैं। प्रकृतिके साथ होनेवाली लीलामें ही रजोगुण, सत्त्वगुण और तमोगुणके द्वारा सृष्टि, स्थिति और प्रलयकी प्रतीति होती है। इस प्रकार यह निश्चय होता है कि भगवान्की लीला दो प्रकारकी है—एक वास्तवी और दूसरी व्यावहारिकी। वास्तवी लीला स्वसंवेद्य है—उसे स्वयं भगवान् और उनके रसिक भक्तजन ही जानते हैं। जीवोंके सामने जो लीला होती है, वह व्यावहारिकी लीला है। वास्तवी लीलाके बिना व्यावहारिकी लीला नहीं हो सकती; परंतु व्यावहारिकी लीलाका वास्तवी लीलाके राज्यमें कभी प्रवेश नहीं हो सकता। तुम दोनों भगवान्की जिस लीलाको देख रहे हो, यह व्यावहारिकी लीला है। यह पृथ्वी और स्वर्ग आदि लोक इसी लीलाके अन्तर्गत हैं। इसी पृथ्वीपर यह मथुरामण्डल है। यहीं वह व्रजभूमि है, जिसमें भगवान्की वह वास्तवी रहस्यलीला गुप्तरूपसे सदा होती रहती है। वह कभी-कभी प्रेमपूर्ण हृदयवाले रसिक भक्तोंको सब ओर दीखने लगती है। कभी अट्ठाईसवें द्वापरके अन्तमें जब भगवान्की रहस्य-लीलाके अधिकारी भक्तजन यहाँ एकत्र होते हैं, जैसा कि इस समय भी कुछ काल पहले हुए थे, उस समय भगवान् अपने अन्तरंग प्रेमियोंके साथ अवतार लेते हैं। उनके अवतारका यह प्रयोजन होता है कि रहस्यलीलाके अधिकारी भक्तजन भी अन्तरंग परिकरोंके साथ सम्मिलित होकर लीला-रसका आस्वादन कर सकें। इस प्रकार जब भगवान् अवतार ग्रहण करते हैं, उस समय भगवान्के अभिमत प्रेमी देवता और ऋषि आदि भी सब ओर अवतार लेते हैं।

अभी-अभी जो अवतार हुआ था, उसमें भगवान् अपने सभी प्रेमियोंकी अभिलाषाएँ पूर्ण करके अब अन्तर्धान हो चुके हैं। इससे यह निश्चय हुआ कि यहाँ पहले तीन प्रकारके भक्तजन उपस्थित थे; ऐसा माननेमें तनिक भी सन्देहके लिये गुंजाइश नहीं है। उन तीनोंमें प्रथम तो उनकी श्रेणी है, जो भगवान्के नित्य 'अन्तरंग' पार्षद हैं—जिनका भगवान्से कभी वियोग होता ही नहीं। दूसरे वे हैं, जो एकमात्र भगवान्को पानेकी इच्छा रखते

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

हैं—उनकी अन्तरंग लीलामें अपना प्रवेश चाहते हैं। तीसरी श्रेणीमें देवता आदि हैं। इनमेंसे जो देवता आदिके अंशसे अवतीर्ण हुए थे, उन्हें भगवान्‌ने व्रजभूमिसे हटाकर पहले ही द्वारका पहुँचा दिया था; फिर जब ब्राह्मणोंके शापसे यदुवंशका संहार करनेके लिये साम्बके पेटसे मूसल प्रकट हुआ और उस मूसलके चूरेसे प्रभासक्षेत्रमें एरका नामकी घास उत्पन्न हो गयी, उस समय परस्पर कलह होनेपर सभी यदुवंशी उन एरकाओंसे एक-दूसरेको मारकर मर गये। इस प्रकार भगवान्‌ने उस मूसलके मार्गसे यदुकुलमें उत्पन्न हुए देवताओंको स्वर्गमें भेजकर पुनः अपने-अपने अधिकारपर स्थापित कर दिया। तथा जिन्हें एकमात्र भगवान्‌को ही पानेकी इच्छा थी, उन्हें प्रेमानन्दस्वरूप बनाकर श्रीकृष्णने सदाके लिये अपने नित्य अन्तरंग पार्षदोंमें सम्मिलित कर लिया। जो नित्य पार्षद हैं, वे यद्यपि यहाँ गुप्तरूपसे होनेवाली नित्यलीलामें सदा ही रहते हैं, परंतु जो उनके दर्शनके अधिकारी नहीं हैं, ऐसे पुरुषोंके लिये वे भी अदृश्य हो गये हैं। जो लोग व्यावहारिक लीलामें स्थित हैं, वे नित्यलीलाका दर्शन पानेके अधिकारी नहीं हैं; इसीलिये यहाँ आनेवालोंको सब ओर निर्जन वन—सूना-ही-सूना दिखायी देता है, क्योंकि वे वास्तविक लीलामें स्थित भक्तजनोंको देख नहीं सकते।

इसलिये वज्रनाभ! तुम्हें तनिक भी चिन्ता न करनी चाहिये। तुम मेरी आज्ञासे यहाँ बहुत-से गाँव बसाओ; इससे निश्चय ही तुम्हारे मनोरथोंकी सिद्धि होगी। भगवान् श्रीकृष्णने जहाँ जैसी लीला की है, उसके अनुसार उस स्थानका नाम रखकर तुम अनेकों गाँव बसाओ और इस प्रकार परम उत्तम व्रजभूमिका सम्यक् प्रकारसे सेवन करते रहो। गोवर्धन, दीर्घपुर (डीग), मथुरा, महावन (गोकुल), नन्दिग्राम (नन्दगाँव) और वृहत्सानु (बरसाना) आदिमें तुम्हें अपने लिये छावनी बनवानी चाहिये और उन-उन स्थानोंमें रहकर भगवान्‌की लीलाके स्थल नदी, पर्वत, कन्दरा, सरोवर और कुण्ड तथा कुंज-वन आदिका सेवन करते रहना चाहिये। ऐसा करनेसे तुम्हारे राज्यमें प्रजा बहुत ही सम्पन्न होगी और तुम भी अत्यन्त प्रसन्न रहोगे। यह व्रजभूमि सच्चिदानन्दमयी है—इसके कण-कणमें भगवान् श्रीकृष्ण रम रहे हैं; अतः तुम्हें हर तरहसे प्रयत्नपूर्वक इस भूमिका सेवन करना चाहिये। मैं आशीर्वाद देता हूँ; मेरी कृपासे भगवान्‌की लीलाके जितने भी स्थल हैं, सबकी तुम्हें ठीक-ठीक पहचान हो जायगी। वज्रनाभ! एक और बड़े महत्त्वकी बात बतलाता हूँ। इस व्रजभूमिका सेवन करते रहनेसे तुम्हें किसी दिन उद्धवजी मिल जायँगे। फिर तो अपनी माताओंसहित तुम उन्हींसे इस भूमिका तथा भगवान्‌की लीलाका रहस्य भी जान लोगे।

मुनिवर शाण्डिल्यजी उन दोनोंको इस प्रकार समझा-बुझाकर भगवान् श्रीकृष्णका स्मरण करते हुए अपने आश्रमपर चले गये। उनकी बातें सुनकर राजा परीक्षित् और वज्रनाभ दोनों ही बहुत प्रसन्न हुए।

यमुना और श्रीकृष्णपत्नियोंका संवाद, कीर्तनोत्सवमें उद्धवजीका प्रकट होना

सूतजी कहने लगे—महाराज परीक्षित्‌को भगवान् श्रीकृष्णने ही जीवन-दान दिया था; अतः वे उनके पौत्र वज्रनाभके लिये क्या नहीं कर सकते थे? अखिल भूमण्डलके सम्राट् तो थे ही, उनकी

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth 279 Skandpuran_Section_17_1_Back

आज्ञा कौन नहीं मानता? उन्होंने इन्द्रप्रस्थ (दिल्ली)-से हजारों बड़े-बड़े सेठोंको बुलवाकर उन्हें मथुरामें रहनेकी जगह दी। इनके अतिरिक्त मथुरामण्डलके ब्राह्मणोंको, जो भगवान्‌के बड़े ही प्रेमी थे, बुलवाया और उन्हें आदरके योग्य समझकर मथुरानगरीमें बसाया। इस प्रकार राजा परीक्षित्‌की सहायता और महर्षि शाण्डिल्यकी कृपासे वज्रनाभने क्रमशः उन सभी स्थानोंकी खोज की, जहाँ भगवान् श्रीकृष्ण अपने प्रेमी गोप-गोपियोंके साथ नाना प्रकारकी लीलाएँ करते थे। लीलास्थानोंका ठीक-ठीक निश्चय हो जानेपर उन्होंने वहाँ-वहाँकी लीलाके अनुसार उस-उस स्थानका नामकरण किया, भगवान्‌के लीलाविग्रहोंकी स्थापना की तथा उन-उन स्थानोंपर अनेकों गाँव बसाये। स्थान-स्थानपर भगवान्‌के नामसे कुण्ड और कुएँ खुदवाये। कुंज और बगीचे लगवाये, शिव आदि देवताओंकी स्थापना की तथा गोविन्ददेव, हरिदेव आदि नामोंसे भगवद्विग्रह स्थापित किये। इन सब शुभ कर्मोंके द्वारा वज्रनाभने अपने राज्यमें सब ओर एकमात्र श्रीकृष्णभक्तिका प्रचार किया और ऐसा करके वे बड़े ही प्रसन्न हुए। उनके प्रजाजनोंको भी बड़ा आनन्द था। वे सदा भगवान्‌के मधुर नाम तथा लीलाओंके कीर्तनमें संलग्न हो परमानन्दके समुद्रमें डूबे रहते थे और सदा ही वज्रनाभके राज्यकी प्रशंसा किया करते थे।

एक दिनकी बात है, भगवान् श्रीकृष्णकी सोलह हजार रानियाँ यमुनाके तटपर स्नानके लिये गयीं। वे सभी निरन्तर भगवान्‌की विरह-वेदनासे व्याकुल रहती थीं। यमुनाजी भी भगवान्‌की ही पत्नी थीं, पर उनपर भगवान्‌के वियोगका कुछ असर न था। श्रीकृष्णकी पत्नियोंने देखा—यमुनाजी बहुत प्रसन्न हैं, उनके अंदरसे आनन्दकी लहरें उठ रही हैं। सौतकी यह प्रसन्नता देखकर भी रानियोंके मनमें डाह नहीं हुई। वे सरलभावसे पूछ बैठीं।

श्रीकृष्णकी रानियोंने कहा—बहिन कालिन्दी! जैसे हम सब श्रीकृष्णकी धर्मपत्नी हैं, वैसे ही तुम भी तो हो। हम तो उनकी विरहाग्निमें जली जा रही हैं, उनके वियोगदुःखसे हमारा हृदय व्यथित हो रहा है; किंतु तुम्हारी यह स्थिति नहीं है, तुम प्रसन्न हो। इसका क्या कारण है? कल्याणी! कुछ बताओ तो सही।

उनका प्रश्न सुनकर यमुनाजी हँस पड़ीं। साथ ही यह सोचकर कि मेरे प्रियतमकी पत्नी होनेके कारण ये भी मेरी ही बहिनें हैं, पिघल गयीं; उनका हृदय दयासे द्रवित हो उठा। अतः वे इस प्रकार कहने लगीं।

यमुनाजी बोलीं—अपनी आत्मामें ही रमण करनेके कारण भगवान् श्रीकृष्ण आत्माराम हैं और उनकी आत्मा हैं—श्रीराधाजी। मैं दासीकी भाँति राधाजीकी सेवा करती रहती हूँ; अवश्य ही उनकी सेवाका यह फल है कि मैं प्रसन्न हूँ। उनकी दासताके प्रभावसे ही विरह-शोक मुझे छू भी नहीं सकता। भगवान् श्रीकृष्णकी जितनी भी रानियाँ हैं, सब-की-सब श्रीराधाके ही अंशका विस्तार हैं। भगवान् श्रीकृष्ण और राधा सदा एक-दूसरेके सम्मुख हैं, उनका परस्पर नित्य संयोग है, इसलिये राधाके स्वरूपमें अंशतः विद्यमान जो श्रीकृष्णकी अन्य रानियाँ हैं, उनको भी भगवान्‌का नित्य संयोग प्राप्त है। श्रीकृष्ण ही राधा हैं और राधा ही श्रीकृष्ण हैं। उन दोनोंका प्रेम ही वंशी है तथा राधाकी प्यारी सखी चन्द्रावली भी श्रीकृष्णचरणोंके नखरूपी चन्द्रमाओंकी सेवामें आसक्त रहनेके कारण ही 'चन्द्रावली' नामसे कही जाती है। श्रीराधा और श्रीकृष्णकी सेवामें उसकी बड़ी लालसा, बड़ी लगन है। इसीलिये वह कोई दूसरा स्वरूप धारण

279 Skandpuran_Section_17_2_Front
In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

नहीं करती। मैंने श्रीराधामें ही रुक्मिणी आदिका भी समावेश देखा है। यह सब तरहसे निश्चित बात है कि तुमलोगोंका भी श्रीकृष्णसे वियोग नहीं हुआ है; किंतु तुम इस रहस्यको इस रूपमें जानती नहीं हो, इसीलिये इतनी व्याकुल हो रही हो। इसी प्रकार पहले भी जब अक्रूर श्रीकृष्णको नन्दगाँवसे मथुरामें ले आये थे, उस अवसरपर जो गोपियोंको श्रीकृष्णसे विरहकी प्रतीति हुई थी, वह भी वास्तविक विरह नहीं, केवल विरहका आभास था। इस बातको जबतक वे नहीं जानती थीं, तबतक उन्हें बड़ा कष्ट था; फिर जब उद्धवजीने आकर उनका समाधान किया, तब वे इस बातको समझ सकीं। उद्धवजीने उनके इस विरहको विरहाभास ही बतलाया, वास्तवमें तो उनका भगवान्से नित्य संयोग था। यदि तुम्हें भी उद्धवजीका सत्संग प्राप्त हो जाय, तो तुम सब भी अपने प्रियतम श्रीकृष्णके साथ नित्य विहारका सुख प्राप्त कर लोगी।

सूतजी कहते हैं—ऋषिगण! जब उन्होंने इस प्रकार समझाया, तब श्रीकृष्णकी पत्नियाँ सदा प्रसन्न रहनेवाली यमुनाजीसे पुनः बोलीं। उस समय उनके हृदयमें इस बातकी बड़ी लालसा थी कि किसी उपायसे उद्धवजीका दर्शन हो, जिससे हमें अपने प्रियतमके नित्य संयोगका सौभाग्य प्राप्त हो सके।

श्रीकृष्णपत्नियोंने कहा—सखी! तुम्हारा ही जीवन धन्य है; क्योंकि तुम्हें कभी भी अपने प्राणनाथके वियोगका दुःख नहीं भोगना पड़ता। जिन श्रीराधिकाजीकी कृपासे तुम्हारे अभीष्ट अर्थकी सिद्धि हुई है, उनकी अब हमलोग भी दासी हुईं। किंतु तुम अभी कह चुकी हो कि उद्धवजीके मिलनेपर ही हमारे सभी मनोरथ पूर्ण होंगे; इसलिये कालिन्दी! अब ऐसा कोई उपाय बताओ, जिससे उद्धवजी भी शीघ्र ही मिल जायँ।

सूतजी कहते हैं—श्रीकृष्णकी रानियोंने जब यमुनाजीसे इस प्रकार कहा, तब वे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी सोलह कलाओंका चिन्तन करती हुई उनसे कहने लगीं—"उद्धवजी भगवान् श्रीकृष्णके मन्त्री थे। जब भगवान् अपने परमधामको पधारने लगे, तब उन्होंने मन्त्री उद्धवसे कहा—'उद्धव! साधना करनेकी भूमि है बदरिकाश्रम, अतः अपनी साधना पूर्ण करनेके लिये तुम वहीं जाओ।' भगवान्की इस आज्ञाके अनुसार उद्धवजी इस समय अपने साक्षात् स्वरूपसे बदरिकाश्रममें विराजमान हैं और वहाँ जानेवाले जिज्ञासु लोगोंको भगवान्के बताये हुए ज्ञानका उपदेश करते रहते हैं। साधनकी फलरूपा भूमि है—व्रजभूमि; इसे भी इसके रहस्योंसहित भगवान्ने पहले ही उद्धवको दे दिया था। किंतु वह फलभूमि यहाँसे भगवान्के अन्तर्धान होनेके साथ ही स्थूल दृष्टिसे परे जा चुकी है; इसीलिये इस समय यहाँ उद्धव प्रत्यक्ष दिखायी नहीं पड़ते। फिर भी एक स्थान है, जहाँ उद्धवजीका दर्शन हो सकता है। गोवर्धन पर्वतके निकट भगवान्की लीलासहचरी गोपियोंकी विहार-स्थली है; वहाँकी लता, अंकुर और बेलोंके रूपमें अवश्य ही उद्धवजी वहाँ निवास करते हैं। लताओंके रूपमें उनके रहनेका यही उद्देश्य है कि भगवान्की प्रियतमा गोपियोंकी चरणरज उनपर पड़ती रहे। उद्धवजीके सम्बन्धमें एक निश्चित बात यह भी है कि उन्हें भगवान्ने अपना उत्सव-स्वरूप प्रदान किया है। भगवान्का उत्सव उद्धवजीका अंग है, वे उससे अलग नहीं रह सकते; इसलिये अब तुमलोग वज्रनाभको साथ लेकर वहाँ जाओ और कुसुमसरोवरके पास ठहरो। भगवद्भक्तोंकी मण्डली एकत्रित करके वीणा, वेणु और मृदंग आदि बाजोंके साथ भगवान्के नाम और लीलाओंके कीर्तन, भगवत्सम्बन्धी काव्य-कथाओंके श्रवण तथा भगवद्गुणगानसे युक्त सरस संगीतोंद्वारा महान् उत्सव आरम्भ करो। इस प्रकार जब उस महान्

279 Skandpuran_Section_17_2_Back
In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

उत्सवका विस्तार होगा, तब निश्चय है कि वहाँ उद्धवजीका दर्शन मिलेगा। उद्धवजी ही भलीभाँति तुम सब लोगोंके मनोरथ पूर्ण करेंगे।''

सूतजी कहते हैं—यमुनाजीकी बतायी हुई बातें सुनकर श्रीकृष्णकी रानियाँ बहुत प्रसन्न हुईं। उन्होंने यमुनाजीको प्रणाम किया और वहाँसे लौटकर वज्रनाभ तथा परीक्षित्से वे सारी बातें कह सुनायीं। सब बातें सुनकर परीक्षित्को बड़ी प्रसन्नता हुई और उन्होंने वज्रनाभ तथा श्रीकृष्णपत्नियोंको उसी समय साथ ले उस स्थानपर पहुँचकर तत्काल वह सब कार्य आरम्भ करवा दिया, जो कि यमुनाजीने बताया था। गोवर्धनके निकट वृन्दावनके भीतर कुसुमसरोवरपर, जो सखियोंकी विहार-स्थली है, वहाँ ही श्रीकृष्णकीर्तनका उत्सव आरम्भ हुआ। श्रीराधाजी तथा उनके प्रियतम श्रीकृष्णकी वह लीलाभूमि जब साक्षात् संकीर्तनकी शोभासे सम्पन्न हो गयी, उस समय वहाँ रहनेवाले सभी भक्तजन एकाग्र हो गये; उनकी दृष्टि, उनके मनकी वृत्ति कहीं अन्यत्र न जाती थी। तदनन्तर सबके देखते-देखते वहाँ फैले हुए तृण, गुल्म और लताओंके समूहसे प्रकट होकर श्रीउद्धवजी सबके सामने आये। उनका शरीर श्यामवर्ण था, उसपर पीताम्बर शोभा पा रहा था। वे गलेमें वनमाला और गुंजाकी माला धारण किये हुए थे तथा मुखसे बारंबार गोपीवल्लभ श्रीकृष्णकी मधुर लीलाओंका गान कर रहे थे। उद्धवजीके आगमनसे उस

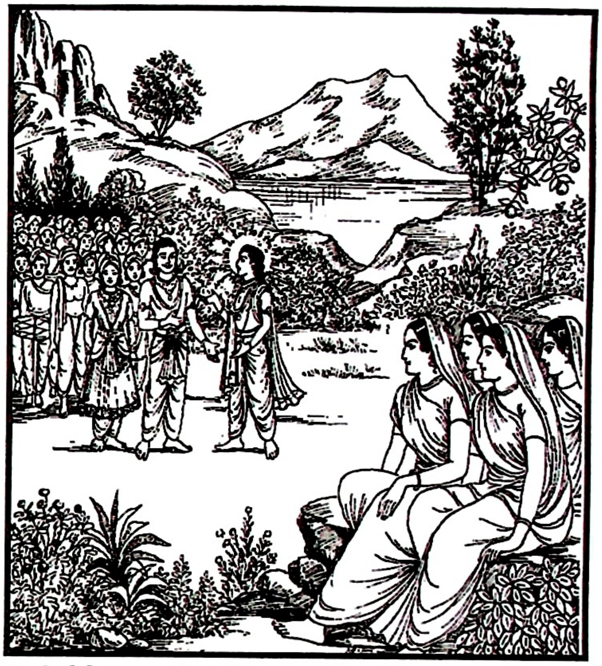

संकीर्तनोत्सवकी शोभा कई गुनी बढ़ गयी। उस समय सभी लोग आनन्दके समुद्रमें निमग्न हो अपना सब कुछ भूल गये, सारी सुध-बुध खो बैठे। थोड़ी देर बाद जब उनकी चेतना दिव्य लोकसे नीचे आयी, अर्थात् जब उन्हें होश हुआ तब उद्धवजीको भगवान् श्रीकृष्णके स्वरूपमें उपस्थित देख, अपना मनोरथ पूर्ण हो जानेके कारण प्रसन्न हो वे उनकी पूजा करने लगे।

श्रीमद्भागवतका माहात्म्य, भागवतश्रवणसे श्रोताओंको भगवद्धामकी प्राप्ति

सूतजी कहते हैं—उद्धवजीने वहाँ एकत्र हुए सब लोगोंको श्रीकृष्णकीर्तनमें लगा देखकर सभीका सत्कार किया और राजा परीक्षित्को हृदयसे लगाकर कहा।

उद्धवजी बोले—राजन्! तुम्हारा मन इस श्रीकृष्णकीर्तनके उत्सवमें रम रहा है, अतः तुम धन्य हो; तुम्हारा अन्तःकरण सदा ही केवल श्रीकृष्ण-भक्तिसे परिपूर्ण रहता है। तात! तुम जो कुछ कर रहे हो, सब तुम्हारे अनुरूप ही है। क्यों न हो, श्रीकृष्णने ही तुम्हें शरीर और वैभव प्रदान किया है; अतः तुम्हारा उनके प्रपौत्रपर प्रेम होना स्वाभाविक ही है। इसमें

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

तनिक भी सन्देह नहीं कि समस्त द्वारकावासियोंमें ये लोग सबसे बढ़कर धन्यवादके पात्र हैं, जिन्हें व्रजमें निवास करानेके लिये भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनको आज्ञा की थी। श्रीकृष्णका मनरूपी चन्द्रमा राधाके मुखकी प्रभारूप चाँदनीसे युक्त हो उनकी लीलाभूमि वृन्दावनको अपनी किरणोंसे सुशोभित करता हुआ यहाँ सदा प्रकाशमान रहता है। श्रीकृष्णचन्द्र नित्य परिपूर्ण हैं, प्राकृत चन्द्रमाकी भाँति उनमें वृद्धि और क्षयरूप विकार नहीं होते। उनकी जो सोलह कलाएँ हैं, उनसे सहस्रों चिन्मय किरणें निकलती रहती हैं; इससे उनके सहस्रों भेद हो जाते हैं। इन सभी कलाओंसे युक्त, नित्य परिपूर्ण श्रीकृष्ण इस व्रजभूमिमें सदा ही विद्यमान रहते हैं। इस भूमिमें और उनके स्वरूपमें कुछ अन्तर नहीं है। राजेन्द्र परीक्षित्! इस प्रकार विचार करनेपर सभी व्रजवासी भगवान्के अंगमें स्थित हैं। शरणागतोंका भय दूर करनेवाले जो ये वज्र हैं, इनका स्थान श्रीकृष्णके दाहिने चरणमें है। श्रीकृष्णका प्रकाश प्राप्त हुए बिना किसीको भी अपने स्वरूपका बोध नहीं हो सकता। जीवोंके अन्तःकरणमें जो श्रीकृष्णतत्त्वका प्रकाश है, उसपर सदा मायाका पर्दा पड़ा रहता है। अट्ठाईसवें द्वापरके अन्तमें जब भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं ही सामने प्रकट होकर मायाका पर्दा उठा लेते हैं, उस समय जीवोंको उनका प्रकाश प्राप्त होता है। किंतु अब वह समय तो बीत गया; इसलिये उनके प्रकाशकी प्राप्तिके लिये अब दूसरा उपाय बतलाया जा रहा है, सुनो। अट्ठाईसवें द्वापरके अतिरिक्त समयमें यदि कोई श्रीकृष्णतत्त्वका प्रकाश पाना चाहे, तो उसे वह श्रीमद्भागवतसे ही प्राप्त हो सकता है। भगवान्के भक्त जहाँ जब कभी श्रीमद्भागवतशास्त्रका कीर्तन और श्रवण करते हैं, वहाँ उस समय भगवान् श्रीकृष्ण साक्षात्‌रूपसे विराजमान रहते हैं। जहाँ श्रीमद्भागवतके एक या आधे श्लोकका ही पाठ होता है, वहाँ भी श्रीकृष्ण अपनी प्रियतमा गोपियोंके साथ विद्यमान रहते हैं। जिन बड़भागियोंने प्रतिदिन श्रीमद्भागवतशास्त्रका सेवन किया है, उन्होंने अपने पिता, माता और पत्नी—तीनोंके ही कुलका भलीभाँति उद्धार कर दिया। श्रीमद्भागवतके स्वाध्याय और श्रवणसे ब्राह्मणोंको विद्याका प्रकाश (बोध) प्राप्त होता है, क्षत्रियलोग शत्रुओंपर विजय पाते हैं, वैश्योंको धन मिलता है और शूद्र स्वस्थ—नीरोग बने रहते हैं। श्रीमद्भागवतसे स्त्रियों तथा अन्त्यज आदि अन्य लोगोंकी भी इच्छा पूर्ण होती है। अतः कौन ऐसा भाग्यवान् पुरुष है, जो श्रीमद्भागवतका नित्य ही सेवन न करेगा। अनेकों जन्मोंतक साधना करते-करते जब मनुष्य पूर्ण सिद्ध हो जाता है, तब उसे श्रीमद्भागवतकी प्राप्ति होती है। भागवतसे भगवान्का प्रकाश मिलता है, जिससे भगवद्भक्ति उत्पन्न होती है। पूर्वकालमें भगवान्ने श्रीमद्भागवतका उपदेश देकर कहा—'ब्रह्मन्! तुम अपने मनोरथकी सिद्धिके लिये सदा ही इसका सेवन करते रहो।' ब्रह्माजी श्रीमद्भागवतका उपदेश पाकर बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने श्रीकृष्णकी नित्य-प्राप्तिके लिये तथा सात आवरणोंको भंग करनेके लिये श्रीमद्भागवतका सप्ताह-पारायण किया।

उद्धवजी कहते हैं—श्रीमद्भागवतके माहात्म्यके सम्बन्धमें यह आख्यायिका मैंने अपने गुरु श्रीबृहस्पतिजीसे सुनी, और उनसे भागवतका उपदेश प्राप्त कर उनके चरणोंमें प्रणाम करके मैं बहुत ही प्रसन्न हुआ। तत्पश्चात् मैंने भी एक मासतक श्रीमद्भागवत-कथाका भलीभाँति रसास्वादन किया। उतनेसे ही मैं भगवान् श्रीकृष्णका प्रियतम सखा हो गया। इसके पश्चात् भगवान्ने मुझे व्रजमें अपनी प्रियतमा गोपियोंकी सेवामें

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

लगाया। यद्यपि भगवान् अपने लीला-परिकरोंके साथ नित्य विहार करते रहते हैं, इसलिये गोपियोंका श्रीकृष्णसे कभी भी वियोग नहीं होता; तथापि जो भ्रमसे विरहवेदनाका अनुभव कर रही थीं, उन गोपियोंके प्रति भगवान्ने मेरे मुखसे सन्देश कहलाया। उस सन्देशको अपनी बुद्धिके अनुसार ग्रहण कर गोपियाँ तुरंत ही विरह-वेदनासे मुक्त हो गयीं। मैं भागवतके इस रहस्यको तो नहीं समझ सका, परंतु उसका चमत्कार मैंने प्रत्यक्ष देखा। इसके बहुत समयके बाद जब ब्रह्मादि देवता भगवान्से अपने परम धाममें पधारनेकी प्रार्थना करके चले गये, उस समय पीपलके वृक्षकी जड़के पास अपने सामने खड़े हुए मुझे भगवान्ने श्रीमद्भागवत-विषयक उस रहस्यका स्वयं ही उपदेश किया और मेरी बुद्धिमें उसका दृढ़ निश्चय करा दिया। उसीके प्रभावसे मैं बदरिकाश्रममें रहकर भी यहाँ व्रजकी लताओं और बेलोंमें निवास करता हूँ। उसीके बलसे यहाँ नारदकुण्डपर सदा स्वेच्छानुसार विराजमान रहता हूँ। भगवान्के भक्तोंको श्रीमद्भागवतके सेवनसे श्रीकृष्ण-तत्त्वका प्रकाश प्राप्त हो सकता है, इस कारण यहाँ उपस्थित हुए इन सभी भक्तजनोंके कार्यकी सिद्धिके लिये मैं श्रीमद्भागवतका पाठ करूँगा; किंतु इस कार्यमें तुम्हें ही सहायता करनी पड़ेगी।

सूतजी कहते हैं—यह सुनकर राजा परीक्षित् उद्धवजीको प्रणाम करके उनसे बोले।

परीक्षित्ने कहा—हरिदास उद्धवजी! आप निश्चिन्त होकर श्रीमद्भागवत-कथाका कीर्तन करें और इस कार्यमें मुझे जिस प्रकारकी सहायता करनी आवश्यक हो, उसके लिये आज्ञा दें।

सूतजी कहते हैं—परीक्षित्का यह वचन सुनकर उद्धवजी मन-ही-मन बहुत प्रसन्न हुए और बोले।

उद्धवजीने कहा—राजन्! भगवान् श्रीकृष्णने जबसे इस पृथ्वीतलका परित्याग कर दिया है, तबसे यहाँ अत्यन्त बलवान् कलियुगका प्रभुत्व हो गया है। जिस समय यह शुभ अनुष्ठान यहाँ आरम्भ हो जायगा, बलवान् कलियुग अवश्य ही इसमें बहुत बड़ा विघ्न डालेगा। इसलिये तुम दिग्विजयके लिये जाओ और कलियुगको जीतकर अपने वशमें करो। इधर, मैं तुम्हारी सहायतासे वैष्णवी रीतिका सहारा लेकर एक महीनेतक यहाँ श्रीमद्भागवत-कथाका रसास्वादन कराऊँगा और इस प्रकार भागवत-कथाके रसका प्रसार करके इन सभी श्रोताओंको भगवान् मधुसूदनके नित्य गोलोकधाममें पहुँचा दूँगा।

सूतजी कहते हैं—उद्धवजीकी बात सुनकर राजा परीक्षित् पहले तो कलियुगपर विजय पानेके विचारसे बड़े ही प्रसन्न हुए; परंतु पीछे यह सोचकर कि मुझे भागवत-कथाके श्रवणसे वंचित ही रहना पड़ेगा, चिन्तासे व्याकुल हो उठे। उस समय उन्होंने उद्धवजीसे अपना अभिप्राय इस प्रकार प्रकट किया।

परीक्षित् बोले—हे तात! आपकी आज्ञाके अनुसार तत्पर होकर मैं कलियुगको तो अवश्य ही अपने वशमें करूँगा, परंतु श्रीमद्भागवतकी प्राप्ति मुझे कैसे होगी? मैं भी आपके चरणोंकी शरणमें आया हूँ, अतः मुझपर भी आपको अनुग्रह करना चाहिये।

सूतजी कहते हैं—उनके इस वचनको सुनकर उद्धवजी पुनः बोले।

उद्धवजीने कहा—राजन्! तुम्हें तो किसी भी बातके लिये किसी प्रकार भी चिन्ता न करनी चाहिये; क्योंकि इस भागवतशास्त्रके प्रधान अधिकारी तो तुम्हीं हो। संसारके मनुष्य नाना प्रकारके कर्मोंमें रचे-पचे हुए हैं, वे लोग आजतक प्रायः भागवत-श्रवणकी बात भी नहीं जानते। तुम्हारे ही प्रसादसे इस भारतवर्षमें

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

रहनेवाले अधिकांश मनुष्य श्रीमद्भागवत-कथाकी प्राप्ति होनेपर उस नित्य सनातन सुखस्वरूप परमात्माको प्राप्त करेंगे। महर्षि भगवान् श्रीशुकदेवजी साक्षात् नन्दनन्दन श्रीकृष्णके स्वरूप हैं। वे ही तुम्हें श्रीमद्भागवतकी कथा सुनायेंगे, इसमें तनिक भी सन्देहकी बात नहीं है। राजन्! उस कथाके श्रवणसे तुम व्रजेश्वर श्रीकृष्णके नित्यधामको प्राप्त करोगे। इसके पश्चात् इस पृथ्वीपर श्रीमद्भागवत-कथाका प्रचार होगा। अतः राजेन्द्र परीक्षित्! तुम जाओ और कलियुगको जीतकर अपने वशमें करो।

सूतजी कहते हैं—उद्धवजीके इस प्रकार कहनेपर राजा परीक्षित्ने उनकी परिक्रमा करके उन्हें प्रणाम किया और दिग्विजयके लिये चले गये। इधर वज्रने भी अपने पुत्र प्रतिबाहुको अपनी राजधानी मथुराका राजा बना दिया और माताओंको साथ ले उसी स्थानपर, जहाँ उद्धवजी प्रकट हुए थे, जाकर श्रीमद्भागवत सुननेकी इच्छासे रहने लगे। तदनन्तर उद्धवजीने वृन्दावनमें गोवर्धन पर्वतके निकट एक महीनेतक श्रीमद्भागवत-कथाके रसकी धारा बहायी। उस रसका आस्वादन करते समय प्रेमी श्रोताओंकी दृष्टिमें सब ओर भगवान्की सच्चिदानन्दमयी लीला प्रकाशित हो गयी और उन्हें सर्वत्र श्रीकृष्णचन्द्रका साक्षात्कार होने लगा। उस समय सभी श्रोताओंने अपनेको भगवान्के स्वरूपमें स्थित देखा। वज्रनाभने श्रीकृष्णके दाहिने चरणकमलमें अपनेको स्थित देखा और श्रीकृष्णके विरहशोकसे मुक्त होकर उस स्थानपर अत्यन्त सुशोभित होने लगे। वज्रनाभकी वे रोहिणी आदि माताएँ भी रासकी रजनीमें प्रकाशित होनेवाले श्रीकृष्णरूपी चन्द्रमाके विग्रहमें अपनेको कला और प्रभाके रूपमें स्थित देख बहुत ही विस्मित हुईं तथा अपने प्राणप्यारेकी विरह-वेदनासे छुटकारा पाकर उनके परम धाममें प्रविष्ट हो गयीं। इनके अतिरिक्त भी जो श्रोतागण वहाँ उपस्थित थे, वे भी भगवान्की नित्य अन्तरंग लीलामें सम्मिलित होकर इस स्थूल व्यावहारिक जगत्से तत्काल अन्तर्धान हो गये। वे सभी सदा ही गोवर्धन पर्वतके कुंज और झाड़ियोंमें, वृन्दावन-काम्यवन आदि वनोंमें तथा वहाँकी दिव्य गौओंके बीचमें श्रीकृष्णके साथ विचरते हुए अनन्त आनन्दका अनुभव करते रहते हैं। जो लोग श्रीकृष्णके प्रेममें मग्न हैं, उन भावुक भक्तोंको उनके दर्शन भी होते हैं।

सूतजी कहते हैं—जो लोग इस भगवत्प्राप्तिकी कथाको सुनेंगे और कहेंगे, उन्हें भगवान् मिल जायँगे और उनके दुःखोंका सदाके लिये अन्त हो जायगा।

श्रीमद्भागवतका स्वरूप, प्रमाण, श्रोता-वक्ताके लक्षण, श्रवणविधि और माहात्म्य

सूतजी कहते हैं—ऋषिगण! श्रीमद्भागवत और श्रीभगवान्का स्वरूप सदा एक ही है और वह है सच्चिदानन्दमय। भगवान् श्रीकृष्णमें जिनकी लगन लगी है, उन भावुक भक्तोंके हृदयमें जो भगवान्के माधुर्य भावको अभिव्यक्त करनेवाला, उनके दिव्य माधुर्य-रसका आस्वादन करानेवाला सर्वोत्कृष्ट वचन है, उसे श्रीमद्भागवत समझो। जो वाक्य ज्ञान, विज्ञान, भक्ति एवं इनके अंगभूत साधनचतुष्टयको प्रकाशित करनेवाला है तथा जो मायाका मर्दन करनेमें समर्थ है, उसे भी तुम श्रीमद्भागवत समझो। श्रीमद्भागवत अनन्त, अक्षरस्वरूप है; इसका नियत प्रमाण भला कौन

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

जान सकता है? पूर्वकालमें भगवान् विष्णुने ब्रह्माजीके प्रति चार श्लोकोंमें इसका दिग्दर्शनमात्र कराया था। विप्रगण! इस भागवतकी अपार गहराईमें डुबकी लगाकर इसमेंसे अपनी अभीष्ट वस्तुको प्राप्त करनेमें केवल ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि ही समर्थ हैं, दूसरे नहीं। परंतु जिनकी बुद्धि आदि वृत्तियाँ परिमित हैं, ऐसे मनुष्योंका हितसाधन करनेके लिये श्रीव्यासजीने परीक्षित् और शुकदेवजीके संवादके रूपमें जिसका गायन किया है, उसीका नाम श्रीमद्भागवत है। उस ग्रन्थकी श्लोकसंख्या अठारह हजार है। इस भवसागरमें जो प्राणी कलिरूपी ग्राहसे ग्रस्त हो रहे हैं, उनके लिये वह श्रीमद्भागवत ही सर्वोत्तम अवलम्बन है।

श्रोता दो प्रकारके माने गये हैं—प्रवर (उत्तम) तथा अवर (अधम)। प्रवर श्रोताओंके 'चातक', 'हंस', 'शुक' और 'मीन' आदि कई भेद हैं। अवरके भी 'वृक', 'भूरुण्ड', 'वृष' और 'उष्ट्र' आदि अनेकों भेद बतलाये गये हैं। 'चातक' कहते हैं पपीहेको। वह जैसे बादलसे बरसते हुए जलमें ही स्पृहा रखता है, दूसरे जलको छूता ही नहीं—उसी प्रकार जो श्रोता सब कुछ छोड़कर केवल श्रीकृष्णसम्बन्धी शास्त्रोंके श्रवणका व्रत ले लेता है, वह 'चातक' कहा गया है। जैसे हंस दूधके साथ मिलकर एक हुए जलसे निर्मल दूध ग्रहण कर लेता और पानीको छोड़ देता है, उसी प्रकार जो श्रोता अनेकों शास्त्रोंका श्रवण करके भी उसमेंसे सार भाग अलग करके ग्रहण करता है, उसे 'हंस' कहते हैं। जिस प्रकार भलीभाँति पढ़ाया हुआ तोता अपनी मधुर वाणीसे शिक्षकको तथा पास आनेवाले दूसरे लोगोंको भी प्रसन्न करता है, उसी प्रकार जो श्रोता कथावाचक व्यासके मुँहसे उपदेश सुनकर उसे सुन्दर और परिमित वाणीमें पुनः सुना देता और व्यास एवं अन्यान्य श्रोताओंको अत्यन्त आनन्दित करता है, वह 'शुक' कहलाता है। जैसे क्षीरसागरमें मछली मौन रहकर अपलक आँखोंसे देखती हुई सदा दुग्ध पान करती रहती है, उसी प्रकार जो कथा सुनते समय निर्मिमेष नयनोंसे देखता हुआ मुँहसे कभी एक शब्द भी नहीं निकालता और निरन्तर कथारसका ही आस्वादन करता रहता है, वह प्रेमी श्रोता 'मीन' कहा गया है। ये प्रवर अर्थात् उत्तम श्रोताओंके भेद बताये गये। अब अवर यानी अधम श्रोता बताये जाते हैं। 'वृक' कहते हैं भेड़ियेको। जैसे भेड़िया वनके भीतर वेणुकी मीठी आवाज सुननेमें लगे हुए मृगोंको डरानेवाली भयानक गर्जना करता है, वैसे ही जो मूर्ख कथाश्रवणके समय रसिक श्रोताओंको उद्विग्न करता हुआ बीच-बीचमें जोर-जोरसे बोल उठता है, वह 'वृक' कहलाता है। हिमालयके शिखरपर एक भूरुण्ड जातिका पक्षी होता है। वह किसीके शिक्षाप्रद वाक्य सुनकर वैसा ही बोला करता है, किन्तु स्वयं उससे लाभ नहीं उठाता। इसी प्रकार जो उपदेशकी बात सुनकर उसे दूसरोंको तो सिखाये, पर स्वयं आचरणमें न लाये, ऐसे श्रोताको 'भूरुण्ड' कहते हैं। 'वृष' कहते हैं बैलको। उसके सामने मीठे-मीठे अंगूर हों या कड़वी खली, दोनोंको वह एक-सा ही मानकर खाता है। उसी प्रकार जो सुनी हुई सभी बातें ग्रहण करता है, पर सार और असार वस्तुका विचार करनेमें उसकी बुद्धि अंधी—असमर्थ होती है, ऐसा श्रोता 'वृष' कहलाता है। जिस प्रकार ऊँट माधुर्यगुणसे युक्त आमको भी छोड़कर केवल नीमकी ही पत्ती चबाता है, उसी प्रकार जो भगवान्‌की मधुर कथाको छोड़कर उसके विपरीत संसारी बातोंमें रमता रहता है, उसे 'उष्ट्र' कहते हैं। ये कुछ थोड़े-से भेद यहाँ बताये गये। इनके अतिरिक्त भी प्रवर-अवर दोनों

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

प्रकारके श्रोताओंके 'भ्रमर' और 'गर्दभ' आदि बहुत-से भेद हैं; इन सब भेदोंको उन-उन श्रोताओंके स्वाभाविक आचार-व्यवहारोंसे परखना चाहिये। जो वक्ताके सामने उन्हें विधिवत् प्रणाम करके बैठे और अन्य संसारी बातोंको छोड़कर केवल श्रीभगवान्‌की लीला-कथाओंको ही सुननेकी इच्छा रखे, समझनेमें अत्यन्त कुशल हो, नम्र हो, हाथ जोड़े रहे, शिष्यभावसे उपदेश ग्रहण करे और भीतर श्रद्धा तथा विश्वास रखे, इसके सिवा जो कुछ सुने उसका बराबर चिन्तन करता रहे, जो बात समझमें न आवे, उसे पूछे और पवित्र भावसे रहे तथा श्रीकृष्णके भक्तोंपर सदा ही प्रेम रखता हो—ऐसे ही श्रोताको वक्तालोग उत्तम श्रोता कहते हैं। अब वक्ताके लक्षण बतलाते हैं। जिसका मन सदा भगवान्‌में लगा रहे, जिसे किसी भी वस्तुकी अपेक्षा न हो, जो सबका सुहृद् और दीनोंपर दया करनेवाला हो तथा अनेकों युक्तियोंसे तत्त्वका बोध करा देनेमें चतुर हो, उसी वक्ताका मुनिलोग भी सम्मान करते हैं।

विप्रगण! अब मैं भारतवर्षकी भूमिपर श्रीमद्भागवत-कथाका सेवन करनेके लिये जो आवश्यक विधि है, उसे बतलाता हूँ; आप सुनें। इस विधिके पालनसे श्रोताकी सुख-परम्पराका विस्तार होता है। श्रीमद्भागवतका सेवन चार प्रकारका है—सात्त्विक, राजस, तामस और निर्गुण। जिसमें यज्ञकी भाँति तैयारी की गयी हो, बहुत-सी पूजासामग्रियोंके कारण जो अत्यन्त शोभासम्पन्न दिखायी दे रहा हो और बड़े ही परिश्रमसे बहुत उतावलीके साथ सात दिनोंमें ही जिसकी समाप्ति की जाय, वह प्रसन्नतापूर्वक किया हुआ श्रीमद्भागवतका सेवन 'राजस' है। एक या दो महीनेमें धीरे-धीरे कथाके रसका आस्वादन करते हुए बिना परिश्रमके जो श्रवण होता है, वह पूर्ण आनन्दको बढ़ानेवाला 'सात्त्विक' सेवन कहलाता है। तामस सेवन वह है जो कभी भूलसे छोड़ दिया जाय और याद आनेपर फिर आरम्भ कर दिया जाय, इस प्रकार एक वर्षतक आलस्य और अश्रद्धाके साथ चलाया जाय। यह 'तामस' सेवन भी न करनेकी अपेक्षा अच्छा और सुख ही देनेवाला है। जब वर्ष, महीना और दिनोंके नियमका आग्रह छोड़कर सदा ही प्रेम और भक्तिके साथ श्रवण किया जाय, तब वह सेवन 'निर्गुण' माना गया है। राजा परीक्षित् और शुकदेवके संवादमें भी जो भागवतका सेवन हुआ था, वह निर्गुण ही बताया गया है। उसमें जो सात दिनोंकी बात आती है, वह राजाकी आयुके बचे हुए दिनोंकी संख्याके अनुसार है, सप्ताहकथाका नियम करनेके लिये नहीं।

भारतवर्षके अतिरिक्त अन्य स्थानोंमें भी त्रिगुण (सात्त्विक, राजस और तामस) अथवा निर्गुण सेवन अपनी रुचिके अनुसार करना चाहिये। तात्पर्य यह कि जिस किसी प्रकार भी हो सके, श्रीमद्भागवतका सेवन, उसका श्रवण करना ही चाहिये। जो केवल श्रीकृष्णकी लीलाओंके ही श्रवण, कीर्तन एवं रसास्वादनके लिये लालायित रहते और मोक्षकी भी इच्छा नहीं रखते उनका तो श्रीमद्भागवत ही धन है तथा जो संसारके दुःखोंसे घबड़ाकर अपनी मुक्ति चाहते हैं, उनके लिये भी यही इस भवरोगकी ओषधि है। अतः इस कलिकालमें इसका प्रयत्नपूर्वक सेवन करना चाहिये। इनके अतिरिक्त जो लोग विषयभोगोंमें ही परायण रहनेवाले हैं, सांसारिक सुखोंकी ही जिन्हें सदा चाह रहती है, उनके लिये भी अब इस कलियुगमें सामर्थ्य, धन और विधि-विधानका ज्ञान न होनेके कारण कर्ममार्ग (यज्ञादि)-से मिलनेवाली सिद्धि अत्यन्त

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

दुर्लभ हो गयी है। ऐसी दशामें उन्हें भी सब प्रकारसे अब इस भागवतकथाका ही सेवन करना चाहिये। यह श्रीमद्भागवतकी कथा धन, पुत्र, स्त्री, हाथी-घोड़े आदि वाहन, यश, मकान और निष्कण्टक राज्य भी दे सकती है। सकाम भावसे भागवतका सहारा लेनेवाले मनुष्य इस संसारमें मनोवांछित उत्तम भोगोंको भोगकर अन्तमें श्रीमद्भागवतके ही संगसे श्रीहरिके परमधामको प्राप्त हो जाते हैं।

जिनके यहाँ श्रीमद्भागवतकी कथा-वार्ता होती हो तथा जो लोग उस कथाके श्रवणमें लगे रहते हों, उनकी सेवा और सहायता अपने शरीर और धनसे करनी चाहिये। उन्हींके अनुग्रहसे सहायता करनेवाले पुरुषको भी भागवत-सेवनका पुण्य प्राप्त होता है। कामना दो वस्तुओंकी होती है—श्रीकृष्णकी और धनकी। श्रीकृष्णके सिवा जो कुछ भी चाहा जाय यह सब धनके अन्तर्गत है, उसकी 'धन' संज्ञा है। श्रोता और वक्ता भी दो प्रकारके माने गये हैं, एक श्रीकृष्णको चाहनेवाले और दूसरे धनको चाहनेवाले। जैसा वक्ता, वैसा ही श्रोता भी हो तो वहाँ कथामें रस मिलता है, अतः सुखकी वृद्धि होती है। यदि दोनों विपरीत विचारके हों तो रसाभास हो जाता है, अतः फलकी हानि होती है। किंतु जो श्रीकृष्णको चाहनेवाले वक्ता और श्रोता हैं, उन्हें विलम्ब होनेपर भी सिद्धि अवश्य मिलती है। श्रीकृष्णकी चाह रखनेवाला सर्वथा गुणहीन हो और उसकी विधिमें कुछ कमी रह जाय तो भी, यदि उसके हृदयमें प्रेम है तो, वही उसके लिये सर्वोत्तम विधि है। सकाम पुरुषको कथाकी समाप्तिके दिनतक स्वयं सावधानीके साथ सभी विधियोंका पालन करना चाहिये। भागवतकथाके श्रोता और वक्ता दोनोंके ही पालन करनेयोग्य विधि यह है—प्रतिदिन प्रातःकाल स्नान करके अपना नित्यकर्म पूरा कर ले। फिर भगवान्‌का चरणामृत पीकर पूजाके सामानसे श्रीमद्भागवतकी पुस्तक और गुरुदेव (व्यास)-का पूजन करे। इसके पश्चात् अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक श्रीमद्भागवतकी कथा स्वयं कहे अथवा सुने। दूध या खीरका मौन भोजन करे। नित्य ब्रह्मचर्यका पालन और भूमिपर शयन करे। क्रोध और लोभ आदिको त्याग दे। प्रतिदिन कथाके अन्तमें कीर्तन करे और कथा समाप्त होनेपर रात्रिमें जागरण करे। समाप्ति होनेपर ब्राह्मणोंको भोजन कराकर उन्हें दक्षिणासे सन्तुष्ट करे। कथावाचक गुरुको वस्त्र, आभूषण आदि देकर गौ भी अर्पण करे। इस प्रकार विधि-विधान पूर्ण करनेपर मनुष्यको स्त्री, घर, पुत्र, राज्य और धन आदि जो-जो उसे अभीष्ट होता है, वह सब मनोवांछित फल प्राप्त होता है। परंतु सकामभाव बहुत बड़ी विडम्बना है, वह श्रीमद्भागवतकी कथामें शोभा नहीं देता। श्रीशुकदेवजीके मुखसे कहा हुआ यह श्रीमद्भागवतशास्त्र तो कलियुगमें साक्षात् श्रीकृष्णकी प्राप्ति करानेवाला और नित्य प्रेमानन्द प्रदान करनेवाला है। इसका तुच्छ कामनाके लिये उपयोग उचित नहीं है।

श्रीमद्भागवत-माहात्म्य सम्पूर्ण

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

वैशाखमास-माहात्म्य

वैशाखमासकी श्रेष्ठता; उसमें जल, व्यजन, छत्र, पादुका और अन्न आदि दानोंकी महिमा

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्॥

'भगवान् नारायण, नरश्रेष्ठ नर, देवी सरस्वती तथा महर्षि वेदव्यासको नमस्कार करके भगवान्‌की विजय-कथासे परिपूर्ण इतिहास-पुराण आदिका पाठ करना चाहिये।'

सूतजी कहते हैं—राजा अम्बरीषने परमेष्ठी ब्रह्माके पुत्र देवर्षि नारदसे पुण्यमय वैशाखमासका माहात्म्य इस प्रकार पूछा—'ब्रह्मन्! मैंने आपसे सभी महीनोंका माहात्म्य सुना। उस समय आपने यह कहा था कि सब महीनोंमें वैशाखमास श्रेष्ठ है। इसलिये यह बतानेकी कृपा करें कि वैशाख-मास क्यों भगवान् विष्णुको प्रिय है और उस समय कौन-कौन-से धर्म भगवान् विष्णुके लिये प्रीतिकारक हैं?'

नारदजीने कहा—वैशाखमासको ब्रह्माजीने सब मासोंमें उत्तम सिद्ध किया है। वह माताकी भाँति सब जीवोंको सदा अभीष्ट वस्तु प्रदान करनेवाला है। धर्म, यज्ञ, क्रिया और तपस्याका सार है। सम्पूर्ण देवताओंद्वारा पूजित है। जैसे विद्याओंमें वेद-विद्या, मन्त्रोंमें प्रणव, वृक्षोंमें कल्पवृक्ष, धेनुओंमें कामधेनु, देवताओंमें विष्णु, वर्णोंमें ब्राह्मण, प्रिय वस्तुओंमें प्राण, नदियोंमें गंगाजी, तेजोंमें सूर्य, अस्त्र-शस्त्रोंमें चक्र, धातुओंमें सुवर्ण, वैष्णवोंमें शिव तथा रत्नोंमें कौस्तुभमणि है, उसी प्रकार धर्मके साधनभूत महीनोंमें वैशाखमास सबसे उत्तम है। संसारमें इसके समान भगवान् विष्णुको प्रसन्न करनेवाला दूसरा कोई मास नहीं है। जो वैशाखमासमें सूर्योदयसे पहले स्नान करता है, उससे भगवान् विष्णु निरन्तर प्रीति करते हैं। पाप तभीतक गर्जते हैं, जबतक जीव वैशाखमासमें प्रातःकाल जलमें स्नान नहीं करता। राजन्! वैशाखके महीनेमें सब तीर्थ आदि देवता (तीर्थके अतिरिक्त) बाहरके जलमें भी सदैव स्थित रहते हैं। भगवान् विष्णुकी आज्ञासे मनुष्योंका कल्याण करनेके लिये वे सूर्योदयसे लेकर छः दण्डके भीतरतक वहाँ मौजूद रहते हैं।

वैशाखके समान कोई मास नहीं है, सत्ययुगके समान कोई युग नहीं है, वेदके समान कोई शास्त्र नहीं है और गंगाजीके समान कोई तीर्थ नहीं है।* जलके समान दान नहीं है, खेतीके समान धन नहीं है और जीवनसे बढ़कर कोई लाभ नहीं है। उपवासके समान कोई तप नहीं, दानसे बढ़कर कोई सुख नहीं, दयाके समान धर्म नहीं, धर्मके समान मित्र नहीं, सत्यके समान यश नहीं, आरोग्यके समान उन्नति नहीं, भगवान् विष्णुसे बढ़कर कोई रक्षक नहीं और वैशाखमासके समान संसारमें कोई पवित्र मास नहीं है। ऐसा विद्वान् पुरुषोंका मत है। वैशाख श्रेष्ठ मास है और शेषशायी भगवान् विष्णुको सदा प्रिय है। सब दानोंसे जो पुण्य होता है और सब तीर्थोंमें जो फल होता है, उसीको मनुष्य वैशाखमासमें केवल जलदान करके प्राप्त कर लेता है। जो जलदानमें असमर्थ है, ऐसे ऐश्वर्यकी अभिलाषा रखनेवाले पुरुषको उचित है कि वह दूसरेको

* न माधवसमो मासो न कृतेन युगं समम्। न च वेदसमं शास्त्रं न तीर्थं गङ्गया समम्॥ (स्क० पु०, वै० वै० मा० २।१)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

प्रबोध करे, दूसरेको जलदानका महत्त्व समझावे। यह सब दानोंसे बढ़कर हितकारी है। जो मनुष्य वैशाखमें सड़कपर यात्रियोंके लिये प्याऊ लगाता है, वह विष्णुलोकमें प्रतिष्ठित होता है। नृपश्रेष्ठ! प्रपादान (पौंसला या प्याऊ) देवताओं, पितरों तथा ऋषियोंको अत्यन्त प्रीति देनेवाला है। जिसने प्याऊ लगाकर रास्तेके थके-माँदे मनुष्योंको सन्तुष्ट किया है, उसने ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि देवताओंको सन्तुष्ट कर लिया है। राजन्! वैशाखमासमें जलकी इच्छा रखनेवालेको जल, छाया चाहनेवालेको छाता और पंखेकी इच्छा रखनेवालेको पंखा देना चाहिये। राजेन्द्र! जो प्याससे पीड़ित महात्मा पुरुषके लिये शीतल जल प्रदान करता है, वह उतने ही मात्रसे दस हजार राजसूय यज्ञोंका फल पाता है। धूप और परिश्रमसे पीड़ित ब्राह्मणको जो पंखा डुलाकर हवा करता है, वह उतने ही मात्रसे निष्पाप होकर भगवान्‌का पार्षद हो जाता है। जो मार्गसे थके हुए श्रेष्ठ द्विजको वस्त्रसे भी हवा करता है, वह उतनेसे ही मुक्त हो भगवान् विष्णुका सायुज्य प्राप्त कर लेता है। जो शुद्ध चित्तसे ताड़का पंखा देता है, वह सब पापोंका नाश करके ब्रह्मलोकको जाता है। जो विष्णुप्रिय वैशाखमासमें पादुका दान करता है, वह यमदूतोंका तिरस्कार करके विष्णुलोकमें जाता है। जो मार्गमें अनाथोंके ठहरने लिये विश्रामशाला बनवाता है, उसके पुण्य-फलका वर्णन किया नहीं जा सकता। मध्याह्नमें आये हुए ब्राह्मण अतिथिको यदि कोई भोजन दे, तो उसके फलका अन्त नहीं है। राजन्! अन्नदान मनुष्योंको तत्काल तृप्त करनेवाला है, इसलिये संसारमें अन्नके समान कोई दान नहीं है। जो मनुष्य मार्गके थके हुए ब्राह्मणके लिये आश्रय देता है, उसके पुण्यफलका वर्णन किया नहीं जा सकता। भूपाल! जो अन्नदाता है, वह माता-पिता आदिका भी विस्मरण करा देता है। इसलिये तीनों लोकोंके निवासी अन्नदानकी ही प्रशंसा करते हैं। माता और पिता केवल जन्मके हेतु हैं, पर जो अन्न देकर पालन करता है, मनीषी पुरुष इस लोकमें उसीको पिता कहते हैं।

वैशाखमासमें विविध वस्तुओंके दानका महत्त्व तथा वैशाखस्नानके नियम

नारदजी कहते हैं—वैशाखमासमें धूपसे तपे और थके-माँदे ब्राह्मणोंको श्रमनाशक सुखद पलंग देकर मनुष्य कभी जन्म-मृत्यु आदिके क्लेशोंसे कष्ट नहीं पाता। जो वैशाखमासमें पहननेके लिये कपड़े और बिछावन देता है, वह उसी जन्ममें सब भोगोंसे सम्पन्न हो जाता है और समस्त पापोंसे रहित हो ब्रह्मनिर्वाण (मोक्ष)-को प्राप्त होता है। जो तिनकेकी बनी हुई या अन्य खजूर आदिके पत्तोंकी बनी हुई चटाई दान करता है, उसकी उस चटाईपर साक्षात् भगवान् विष्णु शयन करते हैं। चटाई देनेवाला बैठने और बिछाने आदिमें सब ओरसे सुखी रहता है। जो सोनेके लिये चटाई और कम्बल देता है, वह उतने ही मात्रसे मुक्त हो जाता है। निद्रासे दुःखका नाश होता है, निद्रासे थकावट दूर होती है और वह निद्रा चटाईपर सोनेवालेको सुखपूर्वक आ जाती है। धूपसे कष्ट पाये हुए श्रेष्ठ ब्राह्मणको जो सूक्ष्मतर वस्त्र दान करता है, वह पूर्ण आयु और परलोकमें उत्तम गतिको पाता है। जो पुरुष ब्राह्मणको फूल और

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

रोली देता है, वह लौकिक भोगोंका भोग करके मोक्षको प्राप्त होता है। जो खस, कुश और जलसे वासित चन्दन देता है, वह सब भोगोंमें देवताओंकी सहायता पाता है तथा उसके पाप और दुःखकी हानि होकर परमानन्दकी प्राप्ति होती है। वैशाखके धर्मको जाननेवाला जो पुरुष गोरोचन और कस्तूरीका दान करता है, वह तीनों तापोंसे मुक्त होकर परम शान्तिको प्राप्त होता है। जो विश्रामशाला बनवाकर प्याऊसहित ब्राह्मणको दान करता है, वह लोकोंका अधिपति होता है। जो सड़कके किनारे बगीचा, पोखरा, कुआँ और मण्डप बनवाता है, वह धर्मात्मा है, उसे पुत्रोंकी क्या आवश्यकता है। उत्तम शास्त्रका श्रवण, तीर्थयात्रा, सत्संग, जलदान, अन्नदान, पीपलका वृक्ष लगाना तथा पुत्र—इन सातको विज्ञ पुरुष सन्तान मानते हैं। जो वैशाखमासमें तापनाशक तक्र दान करता है, वह इस पृथ्वीपर विद्वान् और धनवान् होता है। धूपके समय मट्ठेके समान कोई दान नहीं, इसलिये रास्तेके थके-माँदे ब्राह्मणको मट्ठा देना चाहिये। जो वैशाखमासमें धूपकी शान्तिके लिये दही और खाँड़ दान करता है तथा विष्णुप्रिय वैशाखमासमें जो स्वच्छ चावल देता है, वह पूर्ण आयु और सम्पूर्ण यज्ञोंका फल पाता है। जो पुरुष ब्राह्मणके लिये गोघृत अर्पण करता है, वह अश्वमेध यज्ञका फल पाकर विष्णुलोकमें आनन्दका अनुभव करता है। जो दिनके तापकी शान्तिके लिये सायंकालमें ब्राह्मणको ऊख दान करता है, उसको अक्षय पुण्य प्राप्त होता है। जो वैशाखमासमें शामको ब्राह्मणके लिये फल और शर्बत देता है, उससे उसके पितरोंको निश्चय ही अमृतपानका अवसर मिलता है। जो वैशाखके महीनेमें पके हुए आमके फलके साथ शर्बत देता है, उसके सारे पाप निश्चय ही नष्ट हो जाते हैं। जो वैशाखकी अमावास्याको पितरोंके उद्देश्यसे कस्तूरी, कपूर, बेला और खसकी सुगन्धसे वासित शर्बतसे भरा हुआ घड़ा दान करता है, वह छियानबे घड़ा दान करनेका पुण्य पाता है।

वैशाखमें तेल लगाना, दिनमें सोना, कांस्यके पात्रमें भोजन करना, खाटपर सोना, घरमें नहाना, निषिद्ध पदार्थ खाना, दुबारा भोजन करना तथा रातमें खाना—ये आठ बातें त्याग देनी चाहिये*। जो वैशाखमें व्रतका पालन करनेवाला पुरुष पद्म-पत्तेमें भोजन करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो विष्णुलोकमें जाता है। जो विष्णुभक्त पुरुष वैशाखमासमें नदी-स्नान करता है, वह तीन जन्मोंके पापसे निश्चय ही मुक्त हो जाता है। जो प्रातःकाल सूर्योदयके समय किसी समुद्रगामिनी नदीमें वैशाख-स्नान करता है, वह सात जन्मोंके पापसे तत्काल छूट जाता है। जो मनुष्य सात गंगाओंमेंसे किसीमें ऊषःकालमें स्नान करता है, वह करोड़ों जन्मोंमें उपार्जित किये हुए पापसे निस्सन्देह मुक्त हो जाता है। जाह्नवी (गंगा), वृद्ध गंगा (गोदावरी), कालिन्दी (यमुना), सरस्वती, कावेरी, नर्मदा और वेणी—ये सात गंगाएँ कही गयी हैं।† वैशाखमास आनेपर जो प्रातःकाल बावलियोंमें स्नान करता है, उसके महापातकोंका नाश हो जाता है। कन्द, मूल, फल, शाक, नमक, गुड़, बेर, पत्र, जल और तक्र—जो भी वैशाखमें दिया जाय, वह सब अक्षय होता है।

---

* तैलाभ्यङ्गं दिवास्वापं तथा वै कांस्यभोजनम्। खट्वानिद्रां गृहे स्नानं निषिद्धस्य च भक्षणम्॥
वैशाखे वर्जयेदष्टौ द्विभुक्तं नक्तभोजनम्।
(स्क० पु०, वै० वै० मा० ४। १-२)

† जाह्नवी वृद्धगङ्गा च कालिन्दी च सरस्वती। कावेरी नर्मदा वेणी सप्तगङ्गा प्रकीर्तिता॥ (स्क० पु०, वै० वै० मा० ४। १५)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

ब्रह्मा आदि देवता भी बिना दिये हुए कोई वस्तु नहीं पाते। जो दानसे हीन है, वह निर्धन होता है। अतः सुखकी इच्छा रखनेवाले पुरुषको वैशाखमासमें अवश्य दान करना चाहिये। सूर्यदेवके मेषराशिमें स्थित होनेपर भगवान् विष्णुके उद्देश्यसे अवश्य प्रातःकाल स्नान करके भगवान् विष्णुकी पूजा करनी चाहिये। कोई महीरथ नामक एक राजा था, जो कामनाओंमें आसक्त और अजितेन्द्रिय था। वह केवल वैशाख-स्नानके सुयोगसे स्वतः वैकुण्ठधामको चला गया। वैशाखमासके देवता भगवान् मधुसूदन हैं। अतएव वह सफल मास है। वैशाखमासमें भगवान्की प्रार्थनाका मन्त्र इस प्रकार है—

मधुसूदन देवेश वैशाखे मेषगे रवौ।
प्रातःस्नानं करिष्यामि निर्विघ्नं कुरु माधव॥

'हे मधुसूदन! हे देवेश्वर माधव! मैं मेषराशिमें सूर्यके स्थित होनेपर वैशाखमासमें प्रातःस्नान करूँगा, आप इसे निर्विघ्न पूर्ण कीजिये।'

तत्पश्चात् निम्नांकित मन्त्रसे अर्घ्य प्रदान करे—

वैशाखे मेषगे भानौ प्रातःस्नानपरायणः।
अर्घ्यं तेऽहं प्रदास्यामि गृहाण मधुसूदन॥

'सूर्यके मेषराशिपर स्थित रहते हुए वैशाख-मासमें प्रातःस्नानके नियममें संलग्न होकर मैं आपको अर्घ्य देता हूँ। मधुसूदन! इसे ग्रहण कीजिये।'

इस प्रकार अर्घ्य समर्पण करके स्नान करे। फिर वस्त्रोंको पहनकर सन्ध्या-तर्पण आदि सब कर्मोंको पूरा करके वैशाखमासमें विकसित होनेवाले पुष्पोंसे भगवान् विष्णुकी पूजा करे। उसके बाद वैशाखमासके माहात्म्यको सूचित करनेवाली भगवान् विष्णुकी कथा सुने। ऐसा करनेसे कोटि जन्मोंके पापोंसे मुक्त होकर मनुष्य मोक्षको प्राप्त होता है। यह शरीर अपने अधीन है, जल भी अपने अधीन ही है, साथ ही अपनी जिह्वा भी अपने वशमें है। अतः इस स्वाधीन शरीरसे स्वाधीन जलमें स्नान करके स्वाधीन जिह्वासे 'हरि' इन दो अक्षरोंका उच्चारण करे। जो वैशाखमासमें तुलसीदलसे भगवान् विष्णुकी पूजा करता है, वह विष्णुकी सायुज्य मुक्तिको पाता है। अतः अनेक प्रकारके भक्तिमार्गसे तथा भाँति-भाँतिके व्रतोंद्वारा भगवान् विष्णुकी सेवा तथा उनके सगुण या निर्गुण स्वरूपका अनन्य चित्तसे ध्यान करना चाहिये।

वैशाखमासमें छत्रदानसे हेमकान्तका उद्धार

नारदजी कहते हैं—एक समय विदेहराज जनकके घर दोपहरके समय श्रुतदेव नामसे विख्यात एक श्रेष्ठ मुनि पधारे, जो वेदोंके ज्ञाता थे। उन्हें देखकर राजा बड़े उल्लासके साथ उठकर खड़े हो गये और मधुपर्क आदि सामग्रियोंसे उनकी विधिपूर्वक पूजा करके राजाने उनके चरणोदकको अपने मस्तकपर धारण किया। इस प्रकार स्वागत-सत्कारके पश्चात् जब वे आसनपर विराजमान हुए, तब विदेहराजके प्रश्नके अनुसार वैशाखमासके माहात्म्यका वर्णन करते हुए वे इस प्रकार बोले।

श्रुतदेवने कहा—राजन्! जो लोग वैशाखमासमें धूपसे सन्तप्त होनेवाले महात्मा पुरुषोंके ऊपर छाता लगाते हैं, उन्हें अनन्त पुण्यकी प्राप्ति होती है। इस विषयमें एक प्राचीन इतिहासका उदाहरण दिया करते हैं। पहले वंगदेशमें हेमकान्त नामसे विख्यात एक राजा हो गये हैं। वे कुशकेतुके पुत्र परम बुद्धिमान् और शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ थे। एक दिन वे शिकार खेलनेमें आसक्त होकर एक गहन वनमें जा घुसे। वहाँ अनेक प्रकारके मृग और वराह आदि जन्तुओंको मारकर जब वे बहुत

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

थक गये, तब दोपहरके समय मुनियोंके आश्रमपर आये। उस समय आश्रमपर उत्तम व्रतका पालन करनेवाले शतर्चि नामवाले ऋषि समाधि लगाये बैठे थे, जिन्हें बाहरके कार्योंका कुछ भी भान नहीं होता था। उन्हें निश्चल बैठे देख राजाको बड़ा क्रोध हुआ और उन्होंने उन महात्माओंको मार डालनेका निश्चय किया। तब उन ऋषियोंके दस हजार शिष्योंने राजाको मना करते हुए कहा—'ओ खोटी बुद्धिवाले नरेश! हमारे गुरुलोग इस समय समाधिमें स्थित हैं, बाहर कहाँ क्या हो रहा है—इसको ये नहीं जानते। इसलिये इनपर तुम्हें क्रोध नहीं करना चाहिये।'

तब राजाने क्रोधसे विह्वल होकर शिष्योंसे कहा—द्विजकुमारो! मैं मार्गसे थका-माँदा यहाँ आया हूँ। अतः तुम्हीं लोग मेरा आतिथ्य करो। राजाके ऐसा कहनेपर वे शिष्य बोले—'हमलोग भिक्षा माँगकर खानेवाले हैं। गुरुजनोंने हमें किसीके आतिथ्यके लिये आज्ञा नहीं दी है। हम सर्वथा गुरुके अधीन हैं। अतः तुम्हारा आतिथ्य कैसे कर सकते हैं।' शिष्योंका यह कोरा उत्तर पाकर राजाने उन्हें मारनेके लिये धनुष उठाया और इस प्रकार कहा—'मैंने हिंसक जीवों और लुटेरोंके भय आदिसे जिनकी अनेकों बार रक्षा की है, जो मेरे दिये हुए दानोंपर ही पलते हैं, वे आज मुझे ही सिखलाने चले हैं। ये मुझे नहीं जानते, ये सभी कृतघ्न और बड़े अभिमानी हैं। इन आततायियोंको मार डालनेपर भी मुझे कोई दोष नहीं लगेगा।' ऐसा कहकर वे कुपित हो धनुषसे बाण छोड़ने लगे। बेचारे शिष्य आश्रम छोड़कर भयसे भाग चले। भागनेपर भी हेमकान्तने उनका पीछा किया और तीन सौ शिष्योंको मार गिराया। शिष्योंके भाग जानेपर आश्रमपर जो कुछ सामग्री थी, उसे राजाके पापात्मा सैनिकोंने लूट लिया। राजाके अनुमोदनसे ही उन्होंने वहाँ इच्छानुसार भोजन किया। तत्पश्चात् दिन बीतते-बीतते राजा सेनाके साथ अपनी पुरीमें आ गये। राजा कुशकेतुने जब अपने पुत्रका यह अन्यायपूर्ण कार्य सुना, तब उसे राज्य करनेके अयोग्य जानकर उसकी निन्दा करते हुए उसे देशनिकाला दे दिया। पिताके त्याग देनेपर हेमकान्त घने वनमें चला गया। वहाँ उसने बहुत वर्षोंतक निवास किया। ब्रह्महत्या उसका सदा पीछा करती रहती थी, इसलिये वह कहीं भी स्थिरतापूर्वक रह नहीं पाता था। इस प्रकार उस दुष्टात्माके अट्ठाईस वर्ष व्यतीत हो गये। एक दिन वैशाखमासमें जब दोपहरका समय हो रहा था, महामुनि त्रित तीर्थयात्राके प्रसंगसे उस वनमें आये। वे धूपसे अत्यन्त संतप्त और तृषासे बहुत पीड़ित थे, इसलिये किसी वृक्षहीन प्रदेशमें मूर्छित होकर गिर पड़े। दैवयोगसे हेमकान्त उधर आ निकला; उसने मुनिको प्याससे पीड़ित, मूर्छित और थका-माँदा देख उनपर बड़ी दया की। उसने पलाशके पत्तोंसे छत्र बनाकर उनके ऊपर आती हुई धूपका निवारण किया। वह स्वयं मुनिके मस्तकपर छाता लगाये खड़ा हुआ और तूँबीमें रखा हुआ जल उनके मुँहमें डाला। इस उपचारसे मुनिको चेत हो आया और उन्होंने क्षत्रियको दिये हुए पत्तेके छातेको लेकर अपनी व्याकुलता दूर की। उनकी इन्द्रियोंमें कुछ शक्ति आयी और वे धीरे-धीरे किसी गाँवमें पहुँच गये। उस पुण्यके प्रभावसे हेमकान्तकी तीन सौ ब्रह्महत्याएँ नष्ट हो गयीं। इसी समय यमराजके दूत हेमकान्तको लेनेके लिये वनमें आये। उन्होंने उसके प्राण लेनेके लिये संग्रहणी रोग पैदा किया। उस समय प्राण छूटनेकी पीड़ासे छटपटाते हुए हेमकान्तने तीन अत्यन्त भयंकर यमदूतोंको देखा, जिनके बाल ऊपरकी ओर उठे हुए थे। उस समय अपने कर्मोंको याद करके वह चुप हो गया। छत्र-दानके प्रभावसे उसको भगवान् विष्णुका स्मरण हुआ। उसके स्मरण करनेपर भगवान् महाविष्णुने विष्वक्सेनसे कहा—'तुम शीघ्र जाओ, यमदूतोंको

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

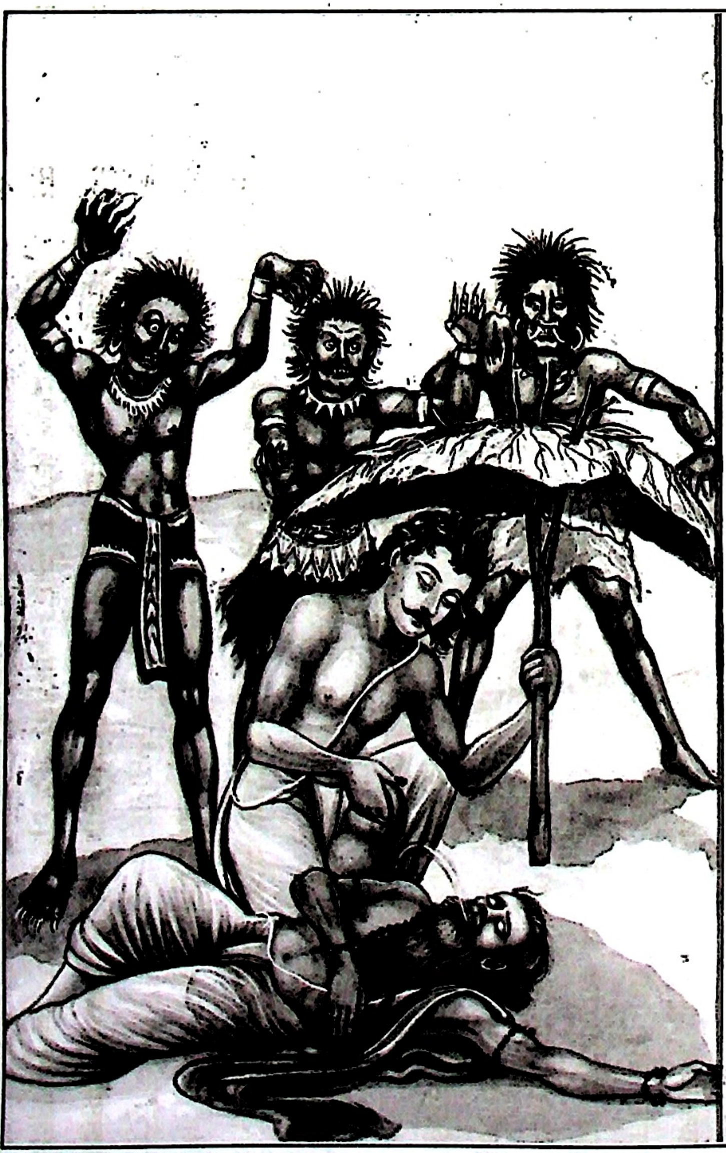

हेमकान्तके द्वारा त्रितमुनिको छत्र-जल-दान

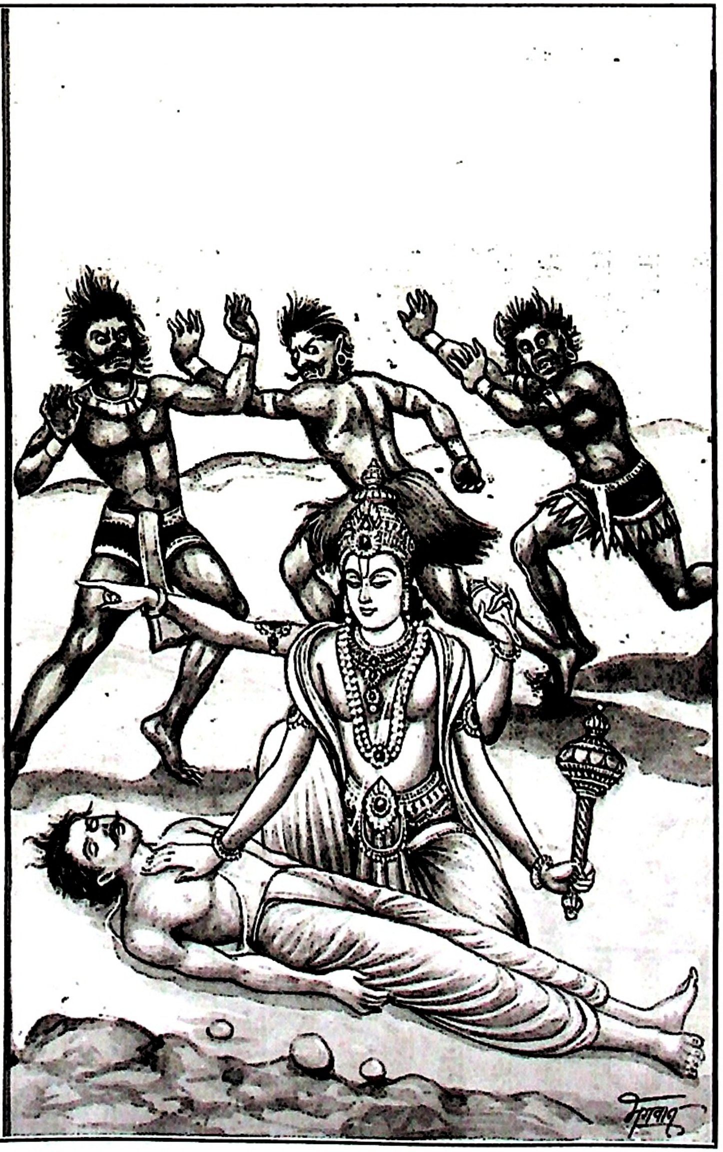

छत्र और जल-दानसे हेमकान्तपर भगवत्कृपा

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

रोको, हेमकान्तकी रक्षा करो। अब वह निष्पाप एवं मेरा भक्त हो गया है। उसे नगरमें ले जाकर उसके पिताको सौंप दो। साथ ही मेरे कहनेसे कुशकेतुको यह समझाओ कि तुम्हारे पुत्रने अपराधी होनेपर भी वैशाखमासमें छत्र-दान करके एक मुनिकी रक्षा की है। अतः वह पापरहित हो गया है। इस पुण्यके प्रभावसे वह मन और इन्द्रियोंको अपने वशमें रखनेवाला दीर्घायु, शूरता और उदारता आदि गुणोंसे युक्त तथा तुम्हारे समान गुणवान् हो गया है। इसलिये अपने इस महाबली पुत्रको तुम राज्यका भार सँभालनेके लिये नियुक्त करो। भगवान् विष्णुने तुम्हें ऐसी ही आज्ञा दी है। इस प्रकार राजाको आदेश देकर हेमकान्तको उनके अधीन करके यहाँ लौट आओ।'

भगवान् विष्णुका यह आदेश पाकर महाबली विष्वक्सेनने हेमकान्तके पास आकर यमदूतोंको रोका और अपने कल्याणमय हाथोंसे उसके सब अंगोंमें स्पर्श किया। भगवद्भक्तके स्पर्शसे हेमकान्तकी सारी व्याधि क्षणभरमें दूर हो गयी। तदनन्तर विष्वक्सेन उसके साथ राजाकी पुरीमें गये। उन्हें देखकर महाराज कुशकेतुने आश्चर्ययुक्त हो भक्तिपूर्वक मस्तक झुकाकर पृथ्वीपर साष्टांग प्रणाम किया और भगवान्के पार्षदका अपने घरमें प्रवेश कराया। वहाँ नाना प्रकारके स्तोत्रोंसे इनकी स्तुति तथा वैभवोंसे उनका पूजन किया। तत्पश्चात् महाबली विष्वक्सेनने अत्यन्त प्रसन्न होकर राजाको हेमकान्तके विषयमें भगवान् विष्णुने जो सन्देश दिया था, वह सब कह सुनाया। उसे सुनकर कुशकेतुने पुत्रको राज्यपर बिठा दिया और स्वयं विष्वक्सेनकी आज्ञा लेकर उन्होंने पत्नीसहित वनको प्रस्थान किया। तदनन्तर महामना विष्वक्सेन हेमकान्तसे पूछकर और उसकी प्रशंसा करके श्वेतद्वीपमें भगवान् विष्णुके समीप चले गये। तबसे राजा हेमकान्त वैशाखमासमें बताये हुए भगवान्की प्रसन्नताको बढ़ानेवाले शुभ धर्मोंका प्रतिवर्ष पालन करने लगे। वे ब्राह्मणभक्त, धर्मनिष्ठ, शान्त, जितेन्द्रिय, सब प्राणियोंके प्रति दयालु और सम्पूर्ण यज्ञोंकी दीक्षामें स्थित रहकर सब प्रकारकी सम्पदाओंसे सम्पन्न हो गये। उन्होंने पुत्र-पौत्र आदिके साथ समस्त भोगोंका उपभोग करके भगवान् विष्णुका लोक प्राप्त किया। वैशाख सुखसे साध्य, अतिशय पुण्य प्रदान करनेवाला है। पापरूपी इन्धनको अग्निकी भाँति जलानेवाला, परम सुलभ तथा धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष—चारों पुरुषार्थोंको देनेवाला है।

महर्षि वसिष्ठके उपदेशसे राजा कीर्तिमान्का अपने राज्यमें वैशाखमासके धर्मका पालन कराना और यमराजका ब्रह्माजीसे राजाके लिये शिकायत करना

मिथिलापतिने पूछा—ब्रह्मन्! जब वैशाखमासके धर्म अतिशय सुलभ, पुण्यराशि प्रदान करनेवाले, भगवान् विष्णुके लिये प्रीतिकारक, चारों पुरुषार्थोंकी तत्काल सिद्धि करनेवाले, सनातन और वेदोक्त हैं, तब संसारमें उनकी प्रसिद्धि कैसे नहीं हुई?

श्रुतदेवजीने कहा—राजन्! इस पृथ्वीपर लौकिक कामना रखनेवाले ही मनुष्य अधिक हैं। उनमेंसे कुछ राजस और कुछ तामस हैं। वे लोग इस संसारके भोगों तथा पुत्र-पौत्रादि सम्पदाओंकी ही अभिलाषा रखते हैं। कहीं किसी प्रकार कभी बड़ी कठिनाईसे कोई एक मनुष्य ऐसा मिलता है, जो स्वर्गलोकके लिये प्रयत्न करता है और

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

इसीलिये वह यज्ञ आदि पुण्यकर्मोंका अनुष्ठान बड़े प्रयत्नसे करता है; परंतु मोक्षकी उपासना प्रायः कोई नहीं करता। तुच्छ आशाएँ लेकर बहुत-से कर्मोंका आयोजन करनेवाले लोग प्रायः काम्य-कर्मोंके ही उपासक हैं। यही कारण है कि संसारमें राजस और तामस धर्म अधिक विख्यात हो गये, परंतु सात्त्विक धर्मोंकी प्रसिद्धि नहीं हुई। ये सात्त्विक धर्म भगवान् विष्णुको प्रसन्न करनेवाले हैं, निष्काम भावसे किये जाते हैं और इहलोक तथा परलोकमें सुख प्रदान करते हैं। देवमायासे मोहित होनेके कारण मूढ़ मनुष्य इन धर्मोंको जानते ही नहीं हैं।

पूर्वकालकी बात है, काशीपुरीमें कीर्तिमान् नामसे विख्यात एक चक्रवर्ती राजा थे। वे इक्ष्वाकुवंशके भूषण तथा महाराज नृगके पुत्र थे। संसारमें उनका बड़ा यश था। वे अपनी इन्द्रियोंपर और क्रोधपर विजय पा चुके थे। ब्राह्मणोंके प्रति उनके मनमें बड़ी भक्ति थी। राजाओंमें उनका स्थान बहुत ऊँचा था। एक दिन वे मृगयामें आसक्त होकर महर्षि वसिष्ठके आश्रमपर आये। वैशाखकी चिलचिलाती हुई धूपमें यात्रा करते हुए राजाने मार्गमें देखा, महात्मा वसिष्ठके शिष्य जगह-जगह अनेक प्रकारके कार्योंमें विशेष तत्परताके साथ संलग्न थे। वे कहीं पौंसला बनाते थे और कहीं छायामण्डप। किनारेपर झरनोंके जलको रोककर स्वच्छ बावली बनाते थे। कहीं वृक्षोंके नीचे बैठे हुए लोगोंको वे पंखा डुलाकर हवा करते थे, कहीं ऊख देते, कहीं सुगन्धित पदार्थ भेंट करते और कहीं फल देते थे। दोपहरीमें लोगोंको छाता देते और सन्ध्याके समय शर्बत। कोई शिष्य घनी छायावाले वनमें झाड़-बुहारकर साफ किये हुए आश्रमके प्रांगणोंमें हितकारक बालुका बिछाते थे और कुछ लोग वृक्षोंकी शाखामें झूला लटकाते थे। उन्हें देखकर राजाने पूछा—'आपलोग कौन हैं?' उन्होंने उत्तर दिया—'हमलोग महर्षि वसिष्ठके शिष्य हैं।' राजाने पूछा—'यह सब क्या हो रहा है?' वे बोले—'ये वैशाखमासमें कर्तव्यरूपसे बताये गये धर्म हैं, 'जो धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष—चारों पुरुषार्थोंके साधक हैं। हमलोग गुरुदेव वसिष्ठकी आज्ञासे इन धर्मोंका पालन करते हैं।' राजाने पुनः पूछा—'इनके अनुष्ठानसे मनुष्योंको कौन-सा फल मिलता है? किस देवताकी प्रसन्नता होती है?' उन्होंने उत्तर दिया—'हमें इस समय यह बतानेके लिये अवकाश नहीं है, आप गुरुजीसे ही यथोचित प्रश्न कीजिये। वे महायशस्वी महर्षि इन धर्मोंको यथार्थरूपसे जानते हैं।'

शिष्योंसे ऐसा उत्तर पाकर राजा शीघ्र ही महर्षि वसिष्ठके पवित्र आश्रमपर, जो विद्या और योगशक्तिसे सम्पन्न था, गये। राजाको आते देख महर्षि वसिष्ठ मन-ही-मन बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने सेवकोंसहित महात्मा राजाका विधिपूर्वक आतिथ्य-सत्कार किया। जब वे आरामसे बैठ गये, तब गुरु वसिष्ठसे प्रसन्नतापूर्वक बोले—'भगवन्! मैंने मार्गमें आपके शिष्योंद्वारा परम आश्चर्यमय शुभ कर्मोंका अनुष्ठान होते देखा है; किंतु उसके सम्बन्धमें जब प्रश्न किया, तब उन्होंने दूसरी कोई बात न बताकर आपके पास जानेकी आज्ञा दी। उनकी आज्ञाके अनुसार मैं इस समय आपके समीप आया हूँ। मेरे मनमें उन धर्मोंको सुननेकी बड़ी इच्छा है। अतः आप मुझसे उनका वर्णन करें।'

तब महायशस्वी वसिष्ठजीने प्रसन्नतापूर्वक कहा—राजन्! तुम्हारी बुद्धिको उत्तम शिक्षा मिली है। अतः उसने यह उत्तम निश्चय किया है। भगवान् विष्णुकी कथाके श्रवण और भगवद्धर्मोंके अनुष्ठानमें जो तुम्हारी बुद्धिकी आत्यन्तिक प्रवृत्ति हुई है, यह तुम्हारे किसी पुण्यका ही फल है। जिसने वैशाखमासमें बताये हुए महाधर्मोंके द्वारा

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

भगवान् श्रीहरिकी आराधना की है, उसके उन धर्मोंसे भगवान् बहुत सन्तुष्ट होते और उसे मनोवांछित वस्तु प्रदान करते हैं। सम्पूर्ण जगत्के स्वामी भगवान् लक्ष्मीपति समस्त पापराशिका विनाश करनेवाले हैं। वे सूक्ष्म धर्मोंसे प्रसन्न होते हैं, केवल परिश्रम और धनसे नहीं। भगवान् विष्णु भक्तिसे पूजित होनेपर अभीष्ट वस्तु प्रदान करते हैं; इसलिये सदा भगवान् विष्णुकी भक्ति करनी चाहिये। जगदीश्वर श्रीहरि जलसे भी पूजा करनेपर अशेष क्लेशका नाश करते और शीघ्र प्रसन्न होते हैं। वैशाखमासमें बताये हुए ये धर्म थोड़े-से परिश्रमद्वारा साध्य होनेपर भी भगवान् विष्णुके लिये प्रीतिकारक एवं शुभ होनेके कारण अधिक व्ययसे सिद्ध होनेवाले बड़े-बड़े यज्ञादि कर्मोंका भी तिरस्कार करनेवाले हैं। अतः भूपाल! तुम भी वैशाखमासमें बताये हुए धर्मोंका पालन करो और तुम्हारे राज्यमें निवास करनेवाले अन्य सब लोगोंसे भी उन कल्याणकारी धर्मोंका पालन कराओ।

इस प्रकारसे वैशाख-धर्मके पालनकी आवश्यकताको शास्त्रों और युक्तियोंसे भलीभाँति सिद्ध करके वसिष्ठजीने वैशाखमासके सब धर्मोंका राजाके समक्ष वर्णन किया। उन सब धर्मोंको सुनकर राजाने गुरुका भक्तिभावसे पूजन किया और घर आकर वे सब धर्मोंका विधिपूर्वक पालन करने लगे। देवाधिदेव भगवान् विष्णुमें भक्ति रखते हुए राजा कीर्तिमान् देवेश्वर पद्मनाभके अतिरिक्त और किसी देवताको नहीं देखते थे। उन्होंने हाथीकी पीठपर नगाड़ा रखकर सिपाहियोंसे अपने राज्यभरमें डंकेकी चोट यह घोषणा करा दी कि 'मेरे राज्यमें जो आठ वर्षसे अधिककी आयुवाला मनुष्य है, उसकी आयु जबतक अस्सी वर्षकी न हो जाय, तबतक मेषराशिमें सूर्यके स्थित होनेपर यदि वह प्रातःकाल स्नान नहीं करेगा तो मेरे द्वारा दण्डनीय, वध्य तथा राज्यसे निकाल देने योग्य समझा जायगा—यह मेरा निश्चित आदेश है। पिता, पुत्र, अथवा सुहृद्—जो कोई भी वैशाखधर्मका पालन नहीं करेगा, वह चोरकी भाँति दण्डका पात्र समझा जायगा। प्रातःकाल शुभ जलमें स्नान करके श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको दान करना चाहिये। तुम सब लोग अपनी शक्तिके अनुसार पौंसला और दान आदि धर्मोंका आचारण करो।'

राजा कीर्तिमान्ने प्रत्येक ग्राममें धर्मका उपदेश करनेवाले एक-एक ब्राह्मणको बसाया। पाँच-पाँच गाँवोंपर एक-एक ऐसे अधिकारीकी नियुक्ति की, जो धर्मका त्याग करनेवाले लोगोंको दण्ड दे सके। उस अधिकारीकी सेवामें दस-दस घुड़सवार रहते थे। इस प्रकार चक्रवर्ती नरेशके शासनसे सर्वत्र और सब देशोंमें यह धर्मका पौधा प्रारम्भ हुआ और आगे चलकर खूब बढ़े हुए वृक्षके रूपमें परिणत हो गया। उस राजाके राज्यमें जो लोग मर जाते थे, वे भगवान् विष्णुके धाममें जाते थे। वहाँके मनुष्योंको विष्णुलोककी प्राप्ति निश्चित थी। एक बार भी वैशाखस्नान कर लेनेसे मनुष्य यमराजके पास नहीं जाता। अपने धर्मानुकूल कर्ममें स्थित हुए सब लोगोंके विष्णुलोकमें चले जानेसे यमपुरीके सब नरक खाली हो गये। वहाँ एक भी पापी प्राणी नहीं रह गया। वैशाखमासके प्रभावसे यमपुरीके मार्गकी यात्रा ही बंद हो गयी। सब मनुष्य दिव्य आकृति धारण करके भगवान्के धाममें जाने लगे। देवताओंके जो लोक हैं, वे सब भी शून्य हो गये। स्वर्ग और नरक दोनोंके शून्य हो जानेपर एक दिन नारदजीने धर्मराजके पास जाकर कहा—'धर्मराज! आपके इस नरकमें अब पहले-जैसा कोलाहल नहीं सुनायी पड़ता, पहलेकी भाँति पाप-कर्मोंका लेखा भी नहीं लिखा जा रहा है। चित्रगुप्तजी तो ऐसे मौनभावसे बैठे हुए हैं, जैसे कोई मुनि हों। महाराज! इसका कारण तो बताइये?'

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

महात्मा नारदके ऐसा कहनेपर राजा यमने कुछ दीनताके स्वरमें कहा—नारद! इस समय पृथ्वीपर जो यह राजा राज्य करता है, वह पुराणपुरुषोत्तम भगवान् विष्णुका बड़ा भक्त है। उसके भयसे कोई भी मनुष्य कभी वैशाखमासका उल्लंघन नहीं करता। उस पुण्यकर्मके प्रभावसे सभी भगवान् विष्णुके परम धाममें चले जाते हैं। मुनिश्रेष्ठ! उस राजाने इस समय मेरे लोकका मार्ग लुप्त-सा कर रखा है। स्वर्ग और नरक दोनोंको शून्य बना दिया है। अतः ब्रह्माजीके समीप जाकर यह सब समाचार उनसे निवेदन करके तभी मैं स्वस्थ होऊँगा। ऐसा निश्चय करके यमराज ब्रह्माजीके लोकमें गये और वहाँ बैठे हुए उन ब्रह्माजीका दर्शन किया, जिनका आश्रय ध्रुव है, जो इस जगत्के बीज तथा सब लोकोंके पितामह हैं और समस्त लोकपाल, दिक्पाल तथा देवता जिनकी उपासना करते हैं।

ब्रह्माजीने यमराजको देखा और यमराज ब्रह्माजीके आगे पृथ्वीपर गिर पड़े। फिर यमराजने कहा—'कमलासन! काममें लगाया हुआ जो पुरुष स्वामीकी आज्ञाका ठीक-ठीक पालन नहीं करता और उसका धन लेकर भोगता है, वह काठका कीड़ा होता है। जो बुद्धिमान् मनुष्य लोभवश स्वामीके धनका उपभोग करता है, वह तीन सौ कल्पोंतक तिर्यग्-योनिरूप नरकमें जाता है। जो कार्यमें नियुक्त हुआ पुरुष कार्य करनेमें समर्थ होकर भी अपने घरमें ही बैठा रहता है, वह बिलाव होता है। देव! मैं आपकी आज्ञासे धर्मपूर्वक प्रजाका शासन करता आ रहा हूँ। मैं अबतक मुनियों और धर्मशास्त्रोंके कथनानुसार पुण्यात्माको पुण्यके फलसे और पापात्माको पापके फलसे संयुक्त किया करता था, परंतु अब आपकी आज्ञाका पालन करनेमें असमर्थ हो गया हूँ। कीर्तिमान्के राज्यमें सब लोग वैशाखमासोक्त पुण्यकर्मोंका अनुष्ठान करके पितरों और पितामहोंके साथ वैकुण्ठधाममें चले जाते हैं। उनके मरे हुए पितर और मातामह आदि भी विष्णुलोकमें चले जाते हैं। इतना ही नहीं, पत्नीके पिता—श्वशुर आदि भी मेरे लेखको मिटाकर विष्णुलोकमें चले जाते हैं। देव! बड़े-बड़े यज्ञोंद्वारा भी मनुष्य वैसी गति नहीं पाता है, जैसी वैशाखमासमें मिल रही है। सम्पूर्ण तीर्थोंसे, दान आदिसे, तपस्याओंसे, व्रतोंसे अथवा सम्पूर्ण धर्मोंसे युक्त मनुष्य भी उस गतिको नहीं पाता, जो वैशाखधर्ममें तत्पर हुए मनुष्यको प्राप्त हो रही है। वैशाखमें प्रातःकाल स्नान करके देवपूजन, मास-माहात्म्यकी कथाका श्रवण तथा भगवान् विष्णुको प्रिय लगनेवाले तदनुकूल धर्मोंका पालन करनेवाला मनुष्य एकमात्र विष्णुलोकका स्वामी होता है और जगत्पति भगवान् विष्णुके लोककी तो मेरी समझमें कोई सीमा ही नहीं है; क्योंकि सब ओरसे कोटि-कोटि प्राणियोंका समुदाय वहाँ पहुँच रहा है तो भी वह भरता नहीं है। इस संसारमें पवित्र और अपवित्र सभी लोग राजाकी आज्ञासे वैशाखमासके धर्मका पालन करके विष्णुलोकको जा रहे हैं। लोकनाथ! उसकी प्रेरणासे संस्कारहीन मनुष्य भी वैशाख-स्नानमात्रसे वैकुण्ठधाममें चले जाते हैं। वह केवल भगवान् विष्णुके चरणोंकी शरण लेनेवाला है। जान पड़ता है, वह समस्त संसारको विष्णुलोकमें पहुँचा देगा। जो पुत्र धर्म, अर्थ, काम और मोक्षके प्रतिकूल चलता हो, वह पृथ्वीपर माताके पेटसे पैदा हुआ रोग है। वह अधम पुरुष अपनी माताका घात करनेवाला कहा जाता है; किंतु राजा कीर्तिमान्की माता और उसकी पत्नीका पुण्य संसारमें विख्यात है। उसकी माता एकमात्र वीरजननी है और वह राजा निश्चय ही संसारमें बहुत बड़ा वीर है। जिस प्रकार कीर्तिमान् मेरी लिपिको मिटानेमें उद्यत हुआ है, ऐसा उद्योग पुराणोंमें और किसीका

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

नहीं सुना गया है। भगवान् विष्णुकी भक्तिमें तत्पर हुए राजा कीर्तिमान्‌के सिवा दूसरे ऐसे किसीको मैं नहीं जानता, जो डंका बजाकर घोषणा करते हुए लोगोंको ऐसी प्रेरणा देता हो और मेरे लोकके मार्गको विलुप्त करनेकी चेष्टा करता रहा हो।'

ब्रह्माजीका यमराजको समझाना और भगवान् विष्णुका उन्हें वैशाखमासमें भाग दिलाना

ब्रह्माजीने कहा—यमराज! तुमने क्या आश्चर्य देखा है? क्यों तुम्हें खेद हो रहा है? भगवान् गोविन्दको एक बार भी प्रणाम कर लिया जाय तो वह सौ अश्वमेध यज्ञोंके अवभृथ-स्नानके समान होता है। यज्ञ करनेवाला तो पुनः इस संसारमें जन्म लेता है, परंतु भगवान्‌को किया हुआ प्रणाम पुनर्जन्मका हेतु नहीं बनता—मुक्तिकी प्राप्ति करा देता है।* जिसकी जिह्वाके अग्रभागपर 'हरि' ये दो अक्षर विद्यमान हैं, उसको कुरुक्षेत्र-तीर्थके सेवन अथवा सरस्वती नदीके जलमें स्नान करनेसे क्या लेना है? जो मृत्युकालमें भगवान् विष्णुका स्मरण करता है, वह अभक्ष्य-भक्षण आदिसे प्राप्त हुई पापराशिका परित्याग करके भगवान् विष्णुके सायुज्यको पाता है; क्योंकि भगवान् विष्णुको अपना स्मरण बहुत ही प्रिय है। यमराज! इसी प्रकार वैशाख नामक मास भी भगवान् विष्णुको प्रिय है। जिसके धर्मको श्रवण करनेमात्रसे मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है, उसके अनुष्ठानमें तत्पर रहनेवाला मनुष्य यदि मुक्तिको प्राप्त हो तो उसके लिये क्या कहना है? वैशाखमासमें भगवान् पुरुषोत्तमके नाम और यशका गान किया जाता है, जिससे भगवान् बहुत प्रसन्न होते हैं। पुरुषोत्तम श्रीहरि सम्पूर्ण जगत्‌के स्वामी और हमारे जनक हैं। यह राजा कीर्तिमान् वैशाखमासमें उन्हीं भगवान्‌के प्रिय धर्मोंका अनुष्ठान करता है, जिससे प्रसन्नचित्त होकर भगवान् विष्णु सदा उसकी सहायतामें स्थित रहते हैं। भगवान् वासुदेवके भक्तोंका कभी अमंगल नहीं होता; उन्हें जन्म, मृत्यु, जरा और व्याधिका भय भी नहीं प्राप्त होता। कार्यमें नियुक्त किया हुआ पुरुष यदि अपनी पूरी शक्ति लगाकर स्वामीके कार्यसाधनकी चेष्टा करता है तो उतनेसे ही वह कृतार्थ हो जाता है। यदि शक्तिके बाहरका कार्य उपस्थित हो जाय तो स्वामीको उसकी सूचना दे दे। उतना कर देनेसे वह उऋण हो जाता है और सुखका भागी होता है। जिसने उस प्रयोजनको स्वामीसे निवेदित कर दिया है, उसके ऊपर न तो कोई ऋण है और न पातक ही लगता है। अपने कर्तव्य-पालनके लिये पूरा यत्न कर लेनेपर प्राणीका कोई अपराध नहीं रहता। यह कार्य तुम्हारे लिये असम्भव है। अतः इसके विषयमें तुम्हें शोक नहीं करना चाहिये।

ब्रह्माजीके ऐसा कहनेपर यमराजने दीन वाणीमें कहा—'तात! मैंने आपके चरणोंकी सेवासे सब कुछ पा लिया।' तब ब्रह्माजीने पुनः समझाते हुए कहा—'धर्मराज! राजा कीर्तिमान् विष्णु-धर्मके पालनमें तत्पर है। चलो, हमलोग भगवान् विष्णुके समीप चलें और उन्हें सब बात

* एकोऽपि गोविन्दकृतः प्रणामः शताश्वमेधावभृथेन तुल्यः।
यज्ञस्य कर्ता पुनरेति जन्म हरेः प्रणामो न पुनर्भवाय॥
(स्क० पु०, वै० वै० मा० १३। ३)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

बताकर पीछे उनके कथनानुसार कार्य किया जायगा। वे ही इस जगत्के कर्ता, धर्मके रक्षक और नियामक हैं।'

इस प्रकार यमराजको आश्वासन देकर ब्रह्माजी उनके साथ क्षीरसागरके तटपर गये। वहाँ उन्होंने सच्चिदानन्दस्वरूप गुणातीत परमेश्वर विष्णुका स्तवन किया। ब्रह्माजीकी स्तुतिसे संतुष्ट होकर भगवान् विष्णु वहाँ प्रकट हुए। यमराज और ब्रह्माजीने तुरंत ही उनके चरणोंमें मस्तक झुकाया। तब भगवान् महाविष्णुने मेघके समान गम्भीर वाणीमें उन दोनोंसे कहा—'तुमलोग यहाँ क्यों आये हो?' ब्रह्माजीने कहा—'प्रभो! आपके श्रेष्ठ भक्त राजा कीर्तिमान्के शासनकालमें सब मनुष्य वैशाख-धर्मके पालनमें संलग्न हो आपके अविनाशी पदको प्राप्त हो रहे हैं। इससे यमपुरी सूनी हो गयी है।'

उनके ऐसा कहनेपर भगवान् विष्णु हँसते हुए बोले—मैं लक्ष्मीको त्याग दूँगा। अपने प्राण, शरीर, श्रीवत्स, कौस्तुभमणि, वैजयन्ती माला, श्वेतद्वीप, वैकुण्ठधाम, क्षीरसागर, शेषनाग तथा गरुड़जीको भी छोड़ दूँगा, परंतु अपने भक्तका त्याग नहीं कर सकूँगा। जिन्होंने मेरे लिये सब भोगोंका त्याग करके अपना जीवनतक मुझे सौंप दिया है, जो मुझमें मन लगाकर मेरे स्वरूप हो गये हैं, उन महाभाग भक्तोंको मैं कैसे त्याग सकता हूँ?* राजा कीर्तिमान्को इस पृथ्वीपर मैंने दस हजार वर्षोंकी आयु दी है। उसमेंसे आठ हजार वर्ष तो बीत गये। शेष आयु और बीत जानेपर उसे मेरा सायुज्य प्राप्त होगा। उसके बाद पृथ्वीपर बेन नामक दुष्टात्मा राजा होगा, जो संपूर्ण वेदोक्त महाधर्मोंका लोप कर देगा। उस समय वैशाखमासके धर्म भी छिन्न-भिन्न हो जायँगे। बेन अपने ही पापसे भस्म हो जायगा। तत्पश्चात् मैं पृथु होकर पुनः सब धर्मोंका प्रचार करूँगा। उस समय लोगोंमें वैशाखमासके धर्मको भी प्रसिद्ध करूँगा। सहस्रों मनुष्योंमें कोई ऐसा होता है, जो मुझमें अपने मन-प्राण अर्पित करके अपना सर्वस्व मुझे समर्पित कर दे और मेरा भक्त हो जाय। जो ऐसा होता है, वही मेरे धर्मोंका प्रचार करता है। इस वैशाखमासमेंसे भी मैं वैशाखधर्ममें तत्पर रहनेवाले महात्मा पुरुषों तथा राजाके द्वारा समयानुसार तुम्हारे लिये भाग दिलाऊँगा। लोकमें जो कोई भी वैशाखमासका व्रत करेंगे, वे तुम्हें भाग देनेवाले होंगे। उनके वैशाखमासमें बताये हुए महाधर्मके पालनमें तुम कभी विघ्न न उपस्थित करना।

यमराजको इस प्रकार आश्वासन देकर भगवान् विष्णु वहीं अन्तर्धान हो गये। ब्रह्माजी भी अपने सेवकोंके साथ सत्यलोकको चले गये। उनके बाद यमराज भी अपनी पुरीको पधारे। वैशाखमासकी पूर्णिमाको पहले धर्मराजके उद्देश्यसे जलसे भरा हुआ घड़ा, दही और अन्न देना चाहिये। उसके बाद पितरों, गुरुओं और भगवान् विष्णुके उद्देश्यसे शीतल जल, दही, अन्न, पान और दक्षिणा फलके साथ काँसीके पात्रमें रखकर ब्राह्मणको देना चाहिये। भगवान् विष्णुकी दिव्य प्रतिमा वैशाखमासकी माहात्म्यकथा सुनानेवाले दीन ब्राह्मणको देनी चाहिये। उस धर्मवक्ता ब्राह्मणको अपने धनसे भी पूजित करना चाहिये। राजा कीर्तिमान्ने सब कुछ उसी प्रकार किया। उन्होंने पृथ्वीपर मनोवांछित भोग भोगकर शेष आयु पूर्ण होनेके पश्चात् पुत्र-पौत्र आदिके साथ श्रीविष्णुधामको प्रस्थान किया।

---

* लक्ष्मीं वापि परित्यक्ष्ये प्राणान्देहमथापि वा। श्रीवत्सं कौस्तुभं मालां वैजयन्तीमथापि वा॥
श्वेतद्वीपं च वैकुण्ठं क्षीरसागरमेव च। शेषं च गरुडं चैव न भक्तं त्यक्तुमुत्सहे॥
विसृज्य सकलान् भोगान् मदर्थे त्यक्तजीवितान्। मदात्मकान् महाभागान् कथं तांस्त्यक्तुमुत्सहे॥
(स्क० पु०, वै० वै० मा० १३। ३४—३६)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

मिथिलापतिने कहा—महामते! दुरात्मा राजा बेन प्रथम (स्वायम्भुव) मन्वन्तरमें हुआ था और ये राजा इक्ष्वाकुकुलभूषण कीर्तिमान् वैवस्वत मन्वन्तरके व्यक्ति हैं। यह बात पहले मैंने आपके मुखसे सुन रखी है। परंतु इस समय आपने और ही बात कही है कि यह राजा जब वैकुण्ठवासी हो जायँगे, उसके बाद राजा बेन उत्पन्न होगा। मेरे इस संशयको आप निवृत्त कीजिये।

श्रुतदेवने कहा—राजन्! पुराणोंमें जो विषमता प्रतीत होती है, वह युगभेद और कल्पभेदकी व्यवस्थाके अनुसार है। (किसी कल्पमें ऐसा ही हुआ होगा कि पहले राजा कीर्तिमान् और पीछे बेन हुआ होगा) इसलिये कहीं कथामें समयकी विपरीतता देखकर उसके अप्रामाणिक होनेकी आशंका नहीं करनी चाहिये।

भगवत्कथाके श्रवण और कीर्तनका महत्त्व तथा वैशाखमासके धर्मोंके अनुष्ठानसे राजा पुरुयशाका संकटसे उद्धार

श्रुतदेव बोले—मेषराशिमें सूर्यके स्थित रहनेपर जो वैशाख मासमें प्रातःकाल स्नान करता है और भगवान् विष्णुकी पूजा करके इस कथाको सुनता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो भगवान् विष्णुके परम धामको प्राप्त होता है। इस विषयमें एक प्राचीन इतिहास कहते हैं, जो सब पापोंका नाशक, पवित्रकारक, धर्मानुकूल, वन्दनीय और पुरातन है।

गोदावरीके तटपर शुभ ब्रह्मेश्वर क्षेत्रमें महर्षि दुर्वासाके दो शिष्य रहते थे, जो परमहंस, ब्रह्मनिष्ठ, उपनिषद्विद्यामें परिनिष्ठित और इच्छारहित थे। वे भिक्षामात्र भोजन करते और पुण्यमय जीवन बिताते हुए गुफामें निवास करते थे। उनमेंसे एकका नाम था सत्यनिष्ठ और दूसरेका तपोनिष्ठ। वे इन्हीं नामोंसे तीनों लोकोंमें विख्यात थे। सत्यनिष्ठ सदा भगवान् विष्णुकी कथामें तत्पर रहते थे। जब कोई श्रोता अथवा वक्ता न होता, तब वे अपने नित्यकर्म किया करते थे। यदि कोई श्रोता उपस्थित होता तो उसे निरन्तर वे भगवत्कथा सुनाते और यदि कोई कथावाचक भगवान् विष्णुकी कल्याणमयी पवित्र कथा कहता तो वे अपने सब कर्मोंको समेटकर श्रवणमें तत्पर हो उस कथाको सुनने लगते थे। वे अत्यन्त दूरके तीर्थों और देवमन्दिरोंको छोड़कर तथा कथाविरोधी कर्मोंका परित्याग करके भगवान्की दिव्य कथा सुनते और श्रोताओंको स्वयं भी सुनाते थे। कथा समाप्त होनेपर सत्यनिष्ठ अपना शेष कार्य पूरा करते थे। कथा सुननेवाले पुरुषको जन्म-मृत्युमय संसारबन्धनकी प्राप्ति नहीं होती। उसके अन्तःकरणकी शुद्धि होती है, भगवान् विष्णुमें जो अनुरागकी कमी है, वह दूर हो जाती है और उनके प्रति गाढ़ अनुराग होता है। साथ ही साधुपुरुषोंके प्रति सौहार्द बढ़ता है। रजोगुणरहित गुणातीत परमात्मा शीघ्र ही हृदयमें स्थित हो जाते हैं। श्रवणसे ज्ञान पाकर मनुष्य भगवच्चिन्तनमें समर्थ होता है। श्रवण, ध्यान और मनन—यह वेदोंमें अनेक प्रकारसे बताया गया है। जहाँ भगवान् विष्णुकी कथा न होती हो और जहाँ साधुपुरुष न रहते हों, वह स्थान साक्षात् गंगातट ही क्यों न हो, निःसन्देह त्याग देने योग्य है। जिस देशमें तुलसी नहीं हैं अथवा भगवान् विष्णुका मन्दिर नहीं है, ऐसा स्थान निवास करने योग्य नहीं है। यह निश्चय करके मुनिवर सत्यनिष्ठ सदा भगवान् विष्णुकी कथा और चिन्तनमें संलग्न रहते थे।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

दुर्वासाका दूसरा शिष्य तपोनिष्ठ दुराग्रहपूर्वक कर्ममें तत्पर रहता था। वह भगवान्‌की कथा छोड़कर अपना कर्म पूरा करनेके लिये इधर-उधर हट जाता था। कथाकी अवहेलनासे उसे बड़ा कष्ट उठाना पड़ा। अन्ततोगत्वा कथापरायण सत्यनिष्ठने ही उसका संकटसे उद्धार किया।

जहाँ लोगोंके पापका नाश करनेवाली भगवान् विष्णुकी पवित्र कथा होती है, वहाँ सब तीर्थ और अनेक प्रकारके क्षेत्र स्थित रहते हैं। जहाँ विष्णु-कथारूपी पुण्यमयी नदी बहती रहती है, उस देशमें निवास करनेवालोंकी मुक्ति उनके हाथमें ही है।

पूर्वकालमें पांचालदेशमें पुरुयशा नामक एक राजा थे, जो पुण्यशील एवं बुद्धिमान् राजा भूरियशाके पुत्र थे। पिताके मरनेपर पुरुयशा राज्यसिंहासनपर बैठे। वे धर्मकी अभिलाषा रखनेवाले, शूरता, उदारता आदि गुणोंसे सम्पन्न और धनुर्वेदमें प्रवीण थे। उन महामति नरेशने अपने धर्मके अनुसार पृथ्वीका पालन किया। कुछ कालके पश्चात् राजाका धन नष्ट हो गया। हाथी और घोड़े बड़े-बड़े रोगोंसे पीड़ित होकर मर गये। उनके राज्यमें ऐसा भारी अकाल पड़ा, जो मनुष्योंका अत्यन्त विनाश करनेवाला था। पांचालनरेश राजा पुरुयशाको निर्बल जानकर उनके शत्रुओंने आक्रमण किया और युद्धमें उनको जीत लिया। तदनन्तर पराजित हुए राजाने अपनी पत्नी शिखिणीके साथ पर्वतकी कन्दरामें प्रवेश किया। साथमें दासी आदि सेवकगण भी थे। इस प्रकार छिपे रहकर राजा मन-ही-मन विचार करने लगे कि मेरी यह क्या अवस्था हो गयी। मैं जन्म और कर्मसे शुद्ध हूँ, माता और पिताके हितमें तत्पर रहा हूँ, गुरुभक्त, उदार, ब्राह्मणोंका सेवक, धर्मपरायण, सब प्राणियोंके प्रति दयालु, देवपूजक और जितेन्द्रिय भी हूँ; फिर किस कर्मसे मुझे यह विशेष दुःख देनेवाली दरिद्रता प्राप्त हुई है? किस कर्मसे मेरी पराजय हुई और किस कर्मके फलस्वरूप मुझे यह वनवास मिला है?

इस प्रकार चिन्तासे व्याकुल होकर राजाने खिन्न चित्तसे अपने सर्वज्ञ गुरु मुनिश्रेष्ठ याज और उपयाजका स्मरण किया। राजाके आवाहन करनेपर दोनों बुद्धिमान् मुनीश्वर वहाँ आये। उन्हें देखकर पांचालप्रिय नरेश सहसा उठकर खड़े हो गये और बड़ी भक्तिके साथ गुरुके चरणोंमें मस्तक रखकर प्रणाम किया। फिर वनमें पैदा होनेवाली शुभ सामग्रियोंके द्वारा उन्होंने उन दोनोंका पूजन किया और विनीतभावसे पूछा—'विप्रवरो! मैं गुरुचरणोंमें भक्ति रखनेवाला हूँ। मुझे किस कर्मसे यह दरिद्रता, कोषहानि और शत्रुओंसे पराजय प्राप्त हुई है? किस कारणसे मेरा वनवास हुआ और मुझे अकेले रहना पड़ा? मेरे न कोई पुत्र है, न भाई है और न हितकारी मित्र ही हैं। मेरे द्वारा सुरक्षित राज्यमें यह बड़ा भारी अकाल कैसे पड़ गया? ये सब बातें विस्तारपूर्वक मुझे बताइये।'

राजाके इस प्रकार पूछनेपर वे दोनों मुनिश्रेष्ठ कुछ देर ध्यानमग्न हो इस प्रकार बोले—राजन्! तुम पहलेके दस जन्मोंतक महापापी व्याध रहे हो। तुम सब लोगोंके प्रति क्रूर और हिंसापरायण थे। तुमने कभी लेशमात्र भी धर्मका अनुष्ठान नहीं किया। इन्द्रियसंयम तथा मनोनिग्रहका तुममें सर्वथा अभाव था। तुम्हारी जिह्वा किसी प्रकार भगवान् विष्णुके नाम नहीं लेती थी। तुम्हारा चित्त गोविन्दके चारु चरणारविन्दोंका चिन्तन नहीं करता था और तुमने कभी मस्तक नवाकर परमात्माको प्रणाम नहीं किया। इस प्रकार दुरात्मा व्याधका जीवन व्यतीत करते हुए तुम्हारे नौ जन्म पूरे हो गये। दसवाँ जन्म प्राप्त होनेपर तुम सह्य पर्वतपर पुनः व्याध हुए। वहाँ सब लोगोंके प्रति क्रूरता करना ही तुम्हारा स्वभाव था। तुम मनुष्योंके लिये यमके समान थे। दयाहीन, शस्त्रजीवी और हिंसापरायण थे।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

अपनी स्त्रीके साथ रहते हुए राह चलनेवाले पथिकोंको तुम बड़ा कष्ट दिया करते थे। बड़े भारी शठ थे। इस प्रकार अपने हितको न जानते हुए तुमने बहुत वर्ष व्यतीत किये। जिनके छोटे-छोटे बच्चे हैं, ऐसे मृगों और पक्षियोंके वध करनेके कारण तुम दयाहीन दुर्बुद्धिको इस जन्ममें कोई पुत्र नहीं प्राप्त हुआ। तुमने सबके साथ विश्वासघात किया, इसलिये तुम्हारे कोई सहोदर भाई नहीं हुआ। मार्गमें सबको पीड़ा देते रहे, इसलिये इस जन्ममें तुम मित्ररहित हो। साधुपुरुषोंके तिरस्कारसे शत्रुओंद्वारा तुम्हारी पराजय हुई है। कभी दान न देनेके दोषसे तुम्हारे घरमें दरिद्रता प्राप्त हुई है। तुमने दूसरोंको सदा उद्वेगमें डाला, इसलिये तुम्हें दुःसह वनवास मिला। सबके अप्रिय होनेके कारण तुम्हें असह्य दुःख मिला है। तुम्हारे क्रूर कर्मोंके फलसे ही इस जन्ममें मिला हुआ राज्य भी छिन गया है। वैशाख मासकी गरमीमें तुमने स्वार्थवश एक दिन एक ऋषिको दूरसे तालाब बता दिया था और हवाके लिये पलाशका एक सूखा पत्ता दे दिया था। बस, जीवनमें इस एक ही पुण्यके कारण तुम्हारा यह जन्म परम पवित्र राजवंशमें हुआ है। अब यदि तुम सुख, राज्य, धन-धान्यादि सम्पत्ति, स्वर्ग और मोक्ष चाहते हो अथवा सायुज्य एवं श्रीहरिके पदकी अभिलाषा रखते हो तो वैशाख मासके धर्मोंका पालन करो। इससे सब प्रकारके सुख पाओगे। इस समय वैशाख मास चल रहा है। आज अक्षय तृतीया है। आज तुम विधिपूर्वक स्नान और भगवान् लक्ष्मीपतिकी पूजा करो। यदि अपने समान ही गुणवान् पुत्रोंकी अभिलाषा करते हो तो सब प्राणियोंके हितके लिये प्याऊ लगाओ। इस पवित्र वैशाख मासमें भगवान् मधुसूदनकी प्रसन्नताके लिये यदि तुम निष्कामभावसे धर्मोंका अनुष्ठान करोगे, तो अन्तःकरण शुद्ध होनेपर तुम्हें भगवान् विष्णुका प्रत्यक्ष दर्शन होगा।

यों कहकर राजाकी अनुमति ले उनके दोनों ब्राह्मण पुरोहित याज और उपयाज जैसे आये थे, वैसे ही चले गये। उनसे उपदेश पाकर महाराज पुरुयशाने वैशाख मासके सम्पूर्ण धर्मोंका श्रद्धापूर्वक पालन किया और भगवान् मधुसूदनकी आराधना की। इससे उनका प्रभाव बढ़ गया तथा बन्धु-बान्धव उनसे आकर मिल गये। तत्पश्चात् वे मरनेसे बची हुई सेनाको साथ ले बन्धुओंसहित पांचाल नगरीके समीप आये। उस समय पांचाल राजाके साथ राजाओंका पुनः संग्राम हुआ। महारथी पुरुयशाने अकेले ही समस्त महाबाहु राजाओंपर विजय पायी। विरोधी राजाओंने भागकर विभिन्न देशोंके मार्गोंका आश्रय लिया। विजयी पांचालराजने भागे हुए राजाओंके कोष, दस करोड़ घोड़े, तीन करोड़ हाथी, एक अरब रथ, दस हजार ऊँट और तीन लाख खच्चरोंको अपने अधिकारमें करके अपनी पुरीमें पहुँचा दिया। वैशाखधर्मके माहात्म्यसे सब राजा भग्नमनोरथ हो पुरुयशाको कर देनेवाले हो गये और पांचालदेशमें अनुपम सुकाल आ गया। भगवान् विष्णुकी प्रसन्नतासे इस वसुधापर उनका एकछत्र राज्य हुआ और गुरुता, उदारता आदि गुणोंसे युक्त उनके पाँच पुत्र हुए, जो धृष्टकीर्ति, धृष्टकेतु, धृष्टद्युम्न, विजय और चित्रकेतुके नामसे प्रसिद्ध थे। धर्मपूर्वक प्रतिपालित होकर समस्त प्रजा राजाके प्रति अनुरक्त हो गयी। इससे उसी क्षण उन्हें वैशाख मासके प्रभावका निश्चय हो गया। तबसे पांचालराज भगवान् विष्णुकी प्रसन्नताके लिये वैशाख मासके धर्मोंका निष्कामभावसे बराबर पालन करने लगे। उनके इस धर्मसे सन्तुष्ट होकर भगवान् विष्णुने अक्षय तृतीयाके दिन उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन दिया।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

राजा पुरुयशाको भगवान्‌का दर्शन, उनके द्वारा भगवत्स्तुति और भगवान्‌के वरदानसे राजाकी सायुज्य मुक्ति

श्रुतदेव कहते हैं—परमात्मा भगवान् नारायण चार भुजाओंसे सुशोभित थे। उन्होंने हाथोंमें शंख, चक्र, गदा और पद्म धारण कर रखे थे। वे पीताम्बर धारण करके वनमालासे विभूषित थे। भगवती लक्ष्मी तथा एक पार्षदके साथ गरुड़की पीठपर विराजित थे। उनका दुःसह तेज देखकर राजाके नेत्र सहसा मुँद गये। उनके सब अंगोंमें रोमांच हो आया और नेत्रोंसे अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी। भगवद्दर्शनके आनन्दमें उनका हृदय सर्वथा डूब गया। उन्होंने तत्काल आगे बढ़कर भगवान्‌को साष्टांग प्रणाम किया; फिर प्रेमविह्वल नेत्रोंसे विश्वात्मदेव जगदीश्वर श्रीहरिको बहुत देरतक निहारकर उनके चरण धोये और उस जलको अपने मस्तकपर धारण किया। उन्हीं चरणोंकी धोवनरूपा श्रीगंगाजी ब्रह्माजीसहित तीनों लोकोंको पवित्र करती हैं। तत्पश्चात् राजाने महान् वैभवसे, बहुमूल्य वस्त्र-आभूषण और चन्दनसे, हार, धूप, दीप तथा अमृतके समान नैवेद्यके निवेदन आदिसे एवं अपने तन, मन, धन और आत्माका समर्पण करके अद्वितीय पुराणपुरुष भगवान् विष्णुका पूजन किया। पूजाके बाद इस प्रकार स्तुति की—'जो निर्गुण, निरंजन एवं प्रजापतियोंके भी अधीश्वर हैं, ब्रह्मा आदि सम्पूर्ण देवता जिनकी वन्दना करते रहते हैं, उन परम पुरुष भगवान् श्रीहरिको मैं प्रणाम करता हूँ। शरणागतोंकी पापराशिका नाश करनेवाले आपके चरणारविन्दोंको परिपक्व योगवाले योगियोंने जो अपने हृदयमें धारण किया है, यह उनके लिये बड़े सौभाग्यकी बात है। बढ़ी हुई भक्तिके द्वारा अपने अन्तःकरण तथा जीवभावको भी आपके चरणोंमें ही चढ़ाकर वे योगीजन उन चरणोंके चिन्तनमात्रसे आपके धामको प्राप्त हुए हैं। विचित्र कर्म करनेवाले! आप स्वतन्त्र परमेश्वरको नमस्कार है। साधु पुरुषोंपर अनुग्रह करनेवाले! आप परमात्माको प्रणाम है। प्रभो! आपकी मायासे मोहित होकर मैं स्त्री और धनरूपी विषयोंमें ही भटकता रहा हूँ, अनर्थमें ही मेरी अर्थदृष्टि हो गयी थी। प्रभो! विश्वमूर्ते! जब जीवपर आप अनन्त शक्ति परमेश्वरकी कृपा होती है, तभी उसे महापुरुषोंका संग प्राप्त होता है, जिससे यह संसारसमुद्र गोपदके समान हो जाता है। ईश्वर! जब सत्संग मिलता है, तभी आपमें मन तथा बुद्धिका अनुराग होता है*। मेरा समस्त राज्य जो मुझसे छिन गया था, वह भी आपका मुझपर महान् अनुग्रह ही हुआ था, ऐसा मैं मानता हूँ। मैं न तो राज्य चाहता हूँ, न पुत्र आदिकी इच्छा रखता हूँ और न कोषकी ही अभिलाषा करता हूँ। अपितु मुनियोंके द्वारा ध्यान करने योग्य जो आपके आराधनीय चरणारविन्द हैं, उन्हींका नित्य सेवन करना चाहता हूँ। देवेश्वर! जगन्निवास! मुझपर प्रसन्न होइये, जिससे आपके चरणकमलोंकी स्मृति बराबर बनी रहे। तथा स्त्री, पुत्र, खजाना एवं आत्मीय कहे जानेवाले सब पदार्थोंमें जो मेरी आसक्ति

---

* तदैव जीवस्य भवेत्कृपा विभो दुरन्तशक्तेस्तव विश्वमूर्ते।
समागमः स्यान्महतां हि पुंसां भवाम्बुधिर्येन हि गोष्पदायते॥
सत्संगमो देव यदैव भूयात्तर्हीश देवे त्वयि जायते मतिः।
(स्क० पु०, वै० वै० मा० १६। १८-१९)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

है, वह सदाके लिये दूर हो जाय। भगवन्! मेरा मन सदा आपके चरणारविन्दोंके चिन्तनमें लगा रहे, मेरी वाणी आपकी दिव्य कथाके निरन्तर वर्णनमें तत्पर हो, मेरे ये दोनों नेत्र आपके श्रीविग्रहके दर्शनमें, कान कथाश्रवणमें तथा रसना आपके भोग लगाये हुए प्रसादके आस्वादनमें प्रवृत्त हो। प्रभो! मेरी नासिका आपके चरणकमलोंकी तथा आपके भक्तजनोंके गन्ध-विलेपन आदिकी सुगन्ध लेनेमें, दोनों हाथ आपके मन्दिरमें झाड़ू देने आदिकी सेवामें, दोनों पैर आपके तीर्थ और कथास्थानकी यात्रा करनेमें तथा मस्तक निरन्तर आपको प्रणाम करनेमें संलग्न रहें। मेरी कामना आपकी उत्तम कथामें और बुद्धि अहर्निश आपका चिन्तन करनेमें तत्पर हो। मेरे घरपर पधारे हुए मुनियोंद्वारा आपकी उत्तम कथाका वर्णन तथा आपकी महिमाका गान होता रहे और इसीमें मेरे दिन बीतें। विष्णो! एक क्षण तथा आधे पलके लिये भी ऐसा प्रसंग न उपस्थित हो, जो आपकी चर्चासे रहित हो। हरे! मैं परमेष्ठी ब्रह्माका पद, भूतलका चक्रवर्ती राज्य और मोक्ष भी नहीं चाहता, केवल आपके चरणोंकी निरन्तर सेवा चाहता हूँ, जिसके लिये लक्ष्मीजी तथा ब्रह्मा, शंकर आदि देवता भी सदा प्रार्थना किया करते हैं।*

राजाके इस प्रकार स्तुति करनेपर कमलनयन भगवान् विष्णुने प्रसन्न हो मेघके समान गम्भीर वाणीमें इस प्रकार कहा—'राजन्! मैं जानता हूँ—तुम मेरे श्रेष्ठ भक्त हो, कामनारहित और निष्पाप हो। नरेश्वर! मुझमें तुम्हारी दृढ़ भक्ति हो और अन्तमें तुम मेरा सायुज्य प्राप्त करो। तुम्हारे द्वारा किये हुए इस स्तोत्रसे इस पृथ्वीपर जो लोग स्तुति करेंगे, उनके ऊपर सन्तुष्ट हो मैं उन्हें भोग और मोक्ष प्रदान करूँगा। यह अक्षय तृतीया इस पृथ्वीपर प्रसिद्ध होगी, जिसमें भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाला मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हुआ। जो मनुष्य इस तिथिको किसी भी बहानेसे अथवा स्वभावसे ही स्नान, दान आदि क्रियाएँ करते हैं, वे मेरे अविनाशी पदको प्राप्त होते हैं। जो मनुष्य पितरोंके उद्देश्यसे अक्षय तृतीयाको श्राद्ध करते हैं, उनका किया हुआ वह श्राद्ध अक्षय होता है। इस तिथिमें थोड़ा-सा भी जो पुण्य किया जाता है, उसका फल अक्षय होता है। नृपश्रेष्ठ! जो कुटुम्बी ब्राह्मणको गाय दान करता है, उसके हाथमें सब सम्पत्तियोंकी वर्षा करनेवाली भुक्ति और मुक्ति भी आ जाती है। जो वैशाख मासमें मेरा प्रिय करनेवाले धर्मोंका अनुष्ठान करता है, उसके जन्म, मृत्यु, जरा, भय और पापको मैं हर लेता हूँ। अनघ! यह वैशाख मास मेरे चरण-चिन्तनकी ही भाँति ऐसे सहस्रों

---

* भूयान्मनः कृष्णपदारविन्दयोर्वचांसि ते दिव्यकथानुवर्णने।
नेत्रे ममेमे तव विग्रहेक्षणे श्रोत्रे कथायां रसना त्वदर्पिते॥
घ्राणं च त्वत्पादसरोजसौरभे त्वद्भक्तगन्धादिविलेपनेऽसकृत्।
स्यातां च हस्तौ तव मन्दिरे विभो सम्मार्जनादौ मम नित्यदैव॥
पादौ विभोः क्षेत्रकथानुसर्पणे मूर्धा च मे स्यात्तव वन्दनेऽनिशम्।
कामश्च मे स्यात्तव सत्कथायां बुद्धिश्च मे स्यात्तव चिन्तनेऽनिशम्॥
दिनानि मे स्युस्तव सत्कथोदयैरुद्गीयमानैर्मुनिभिर्गृहागतैः।
हीनः प्रसंगस्तव मे न भूयात् क्षणं निमेषार्धमथापि विष्णो॥
न पारमेष्ठ्यं न च सार्वभौमं न चापवर्गं स्पृहयामि विष्णो।
त्वत्पादसेवां च सदैव कामये प्रार्थ्यां श्रिया ब्रह्मभवादिभिः सुरैः॥

(स्क० पु०, वै० वै० मा० १६। २४—२८)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

पापोंको हर लेता है, जिनके लिये शास्त्रोंमें कोई प्रायश्चित्त नहीं मिलता है।'

राजाको यह वरदान देकर देवाधिदेव भगवान् जनार्दन सबके देखते-देखते वहीं अन्तर्धान हो गये। तदनन्तर राजा पुरुयशा सदा भगवान्में ही मन लगाये हुए उन्हींकी सेवामें तत्पर रहकर इस पृथ्वीका पालन करने लगे। देवदुर्लभ समस्त मनोरथोंका उपभोग करके अन्तमें उन्होंने चक्रधारी भगवान् विष्णुका सायुज्य प्राप्त कर लिया। जो इस उत्तम उपाख्यानको सुनते और सुनाते हैं, वे सब पापोंसे मुक्त हो भगवान् विष्णुके परम पदको प्राप्त होते हैं।

शंख-व्याध-संवाद, व्याधके पूर्वजन्मका वृत्तान्त

श्रुतदेवजी कहते हैं—राजन्! पम्पाके तटपर कोई शंख नामसे प्रसिद्ध परम यशस्वी ब्राह्मण थे, जो बृहस्पतिके सिंह राशिमें स्थित होनेपर कल्याणमयी गोदावरी नदीमें स्नान करनेके लिये गये। मार्गमें परम पवित्र भीमरथीको पार करनेके बाद दुर्गम, जलशून्य एवं भयंकर निर्जन वनमें धूपसे विकल हो गये थे। वैशाखका महीना था और दोपहरका समय। वे किसी वृक्षके नीचे जा बैठे। इसी समय कोई दुराचारी व्याध हाथमें धनुष धारण किये वहाँ आया। ब्राह्मणके दर्शनसे उसकी बुद्धि पवित्र हो गयी और वह इस प्रकार बोला—'मुने! मैं अत्यन्त दुर्बुद्धि एवं पापी हूँ। मेरे ऊपर आपने बड़ी कृपा की है; क्योंकि साधु-महात्मा स्वभावसे ही दयालु होते हैं। कहाँ मैं नीच कुलमें उत्पन्न हुआ व्याध और कहाँ मेरी ऐसी पवित्र बुद्धि—मैं इसे केवल आपका ही उत्तम अनुग्रह मानता हूँ। साधुबाबा! मैं आपका शिष्य हूँ, कृपापात्र हूँ। साधुपुरुषोंका समागम होनेपर मनुष्य फिर कभी दुःखको नहीं प्राप्त होता; अतः आप मुझे अपने पापनाशक वचनोंद्वारा ऐसा उपदेश दीजिये, जिससे संसारबन्धनसे छूटनेकी इच्छा रखनेवाले मनुष्य अनायास ही भवसागरसे पार हो जाते हैं। साधु पुरुषोंका चित्त सबके प्रति समान होता है। वे सब प्राणियोंके प्रति दयालु होते हैं। उनकी दृष्टिमें न कोई नीच है, न ऊँच; न अपना है, न पराया। मनुष्य सन्तप्त होकर जब-जब गुरुजनोंसे उपाय पूछता है, तब-तब वे उसे संसार-बन्धनसे छुड़ानेवाले ज्ञानका उपदेश करते हैं। जैसे गंगाजी मनुष्योंके पापका नाश करनेवाली हैं, उसी प्रकार मूढ़ जनोंका उद्धार करना साधुपुरुषोंका स्वभाव ही माना गया है।'

व्याधके ये वचन सुनकर शंखने कहा—'व्याध! यदि तुम कल्याण चाहते हो तो वैशाख मासमें भगवान् विष्णुको प्रसन्न और संसार-समुद्रसे पार करनेवाले जो दिव्य धर्म बताये गये हैं, उनका पालन करो।' मुनिश्रेष्ठ शंख प्याससे बहुत कष्ट पा रहे थे। दोपहरके समय उन्होंने सुन्दर सरोवरमें स्नान किया और युगल वस्त्र धारण करके मध्याह्नकालकी उपासना पूरी की। फिर देव-पूजा करनेके पश्चात् व्याधके लाये हुए श्रमहारी एवं स्वादिष्ट कैथका फल खाया। जब वे खा-पीकर सुखपूर्वक विराजमान हुए, उस समय व्याधने हाथ जोड़कर कहा—'मुने! किस कर्मसे मेरा तमोमय व्याध कुलमें जन्म हुआ और किससे ऐसी सद्बुद्धि तथा महात्माकी संगति प्राप्त हुई? प्रभो! यदि आप ठीक समझें तो मैंने जो कुछ पूछा है, वह तथा अन्य जानने योग्य बातें भी मुझसे कहिये।'

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

शंख बोले—पूर्वजन्ममें तुम वेदोंके पारंगत विद्वान् ब्राह्मण थे। शाकल्य नगरमें तुम्हारा जन्म हुआ था। तुम्हारा गोत्र श्रीवत्स और नाम स्तम्भ था। उस समय तुम बड़े तेजस्वी समझे जाते थे; किंतु आगे चलकर किसी वेश्यामें तुम्हारी आसक्ति हो गयी। उसके संग-दोषसे तुमने नित्यकर्मोंको त्याग दिया और शूद्रकी भाँति घर आकर रहने लगे। यद्यपि तुम सदाचारशून्य, दुष्ट तथा धर्म-कर्मोंके त्यागी थे, तो भी उस समय तुम्हारी ब्राह्मणी पत्नी कान्तिमतीने वेश्यासहित तुम्हारी सेवा की। वह सदा तुम्हारा प्रिय करनेमें लगी रहती थी। वह तुम दोनोंके पैर धोती, दोनोंकी आज्ञाका पालन करती और दोनोंसे नीचे आसनपर सोती थी। इस प्रकार वेश्यासहित पतिकी सेवा करती हुई उस दुःखिनी ब्राह्मणीका इस भूतलपर बहुत समय बीत गया। एक दिन उसके पतिने मूलीसहित उड़द खाया और तिलमिश्रित निष्पाव भक्षण किया। उस अपथ्य भोजनसे उसका मुँह-पेट चलने लगा और उसे बड़ा भयंकर भगन्दर रोग हो गया। वह उस रोगसे दिन-रात जलने लगा। जबतक घरमें धन रहा, तबतक वेश्या भी वहाँ टिकी रही। उसका सारा धन लेकर पीछे उसने उसका घर छोड़ दिया। वेश्या तो क्रूर और निर्दयी होती ही है। उसे छोड़कर दूसरेके पास चली गयी!

तब वह ब्राह्मण रोगसे व्याकुलचित्त हो रोता हुआ अपनी स्त्रीसे बोला—'देवि! मैं वेश्याके प्रति आसक्त और अत्यन्त निष्ठुर मनुष्य हूँ, मेरी रक्षा करो। सुन्दरी! तुम परम पवित्र हो, मैंने तुम्हारा कुछ भी उपकार नहीं किया। कल्याणि! जो पापी एवं निन्दित मनुष्य अपनी विनीत पत्नीका आदर नहीं करता, वह पंद्रह जन्मोंतक नपुंसक होता है। महाभागे! दिन-रात साधुपुरुष उसकी निन्दा करते हैं। तुम साध्वी और पतिव्रता हो, मैं तुम्हारा अनादर करके पाप योनिमें गिरूँगा। तुम्हारा अनादर करनेसे जो तुम्हारे मनमें क्रोध हुआ होगा, उससे मैं दग्ध हो चुका हूँ।'

इस प्रकार अनुतापयुक्त वचन कहते हुए पतिसे वह पतिव्रता हाथ जोड़कर बोली—'प्राणनाथ! आप मेरे प्रति किये हुए व्यवहारको लेकर दुःख न मानें, लज्जाका अनुभव न करें। मेरा आपके ऊपर तनिक भी क्रोध नहीं है, जिससे आप अपनेको दग्ध हुआ बतलाते हैं। पूर्वजन्ममें किये हुए पाप ही इस जन्ममें दुःखरूप होकर आते हैं। जो उन दुःखोंको धैर्यपूर्वक सहन करती है, वही स्त्री साध्वी मानी जाती है और वही पुरुष श्रेष्ठ समझा जाता है।' वह उत्तम वर्णवाली स्त्री अपने पिता और भाइयोंसे धन माँगकर लायी और उसीसे पतिका पालन करने लगी। उसने अपने स्वामीको साक्षात् क्षीरसागरनिवासी विष्णु ही माना। वह दिन-रात पतिके मल-मूत्र साफ करती और उसके शरीरमें पड़े हुए कष्टदायक कीड़ोंको धीरे-धीरे नखसे खींचकर निकालती थी। ब्राह्मणी न रातमें सोती थी, न दिनमें। अपने स्वामीके दुःखसे संतप्त होकर वह दुःखिनी सदा इस प्रकार प्रार्थना किया करती थी—'प्रसिद्ध देवता और पितर मेरे स्वामीकी रक्षा करें, इन्हें रोगहीन एवं निष्पाप कर दें। मैं पतिके आरोग्यके लिये चण्डिकादेवीको भैंसका दही और उत्तम अन्न चढ़ाऊँगी, महात्मा गणेशजीकी प्रसन्नताके लिये मोदक बनवाऊँगी, दस शनिवारोंको उपवास करूँगी तथा मीठा और घी नहीं खाऊँगी। मेरे पति रोगहीन होकर सौ वर्ष जीवें।'

इस प्रकार वह देवी प्रतिदिन देवताओंसे प्रार्थना करती थी। उन्हीं दिनों कोई देवल नामक महात्मा वहाँ आये। वैशाख मासमें धूपसे पीड़ित हो सायंकालके समय उस ब्राह्मणके घरमें उन्होंने

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

पदार्पण किया। ब्राह्मणीने महात्माके चरण धोकर उस जलको मस्तकपर चढ़ाया और धूपसे कष्ट पाये हुए महात्माको पीनेके लिये शर्बत दिया। प्रातःकाल सूर्योदय होनेपर मुनि जैसे आये थे, वैसे चले गये। तदनन्तर थोड़े ही समयमें उस ब्राह्मणको सन्निपात हो गया। ब्राह्मणी सोंठ, मिर्च और पीपल लेकर जब उसके मुँहमें डालने लगी, तब उसने पत्नीकी अँगुली काट ली। उसके दोनों दाँत सहसा सट गये और ब्राह्मणीकी अँगुलीका वह कोमल खण्ड उसके मुँहमें ही रह गया। अँगुली काटकर उस वेश्याका ही चिन्तन करता हुआ वह ब्राह्मण मर गया। तब उसकी पत्नी कान्तिमतीने कंगन बेचकर बहुत-सा इन्धन खरीदा और चिता बनाकर वह साध्वी पतिके साथ उसमें जा बैठी। उसने पतिके रोगी शरीरका गाढ़ आलिंगन करके उसके साथ अपने आपको भी चितामें जला दिया। शरीर त्यागकर वह सहसा भगवान् विष्णुके धाममें चली गयी। उसने वैशाख मासमें जो देवल मुनिको शर्बत पिलाया और उनके चरणोदकको शीशपर चढ़ाया था, इससे उसको योगिगम्य परम पदकी प्राप्ति हुई। तुमने अन्तकालमें वेश्याका चिन्तन करते हुए शरीर त्याग किया था, इसलिये इस घोर व्याधके शरीरमें आये हो और हिंसामें आसक्त हो सबको उद्वेगमें डाला करते हो। तुमने वैशाख मासमें मुनिको शर्बत देनेके लिये ब्राह्मणीको अनुमति दी थी, उसी पुण्यसे आज व्याध होनेपर भी तुम्हें सब सुखोंके एकमात्र साधन धर्मविषयक प्रश्न पूछनेके लिये उत्तम बुद्धि प्राप्त हुई है। तुमने जो सब पापोंको हरनेवाले मुनिके चरणोदकको सिरपर धारण किया था, उसीका यह फल है कि वनमें तुम्हें मेरा संग मिला है।

भगवान् विष्णुके स्वरूपका विवेचन, प्राणकी श्रेष्ठता, जीवोंके विभिन्न स्वभावों और कर्मोंका कारण तथा भागवतधर्म

व्याधने पूछा—ब्रह्मन्! आपने पहले कहा था कि भगवान् विष्णुकी प्रीतिके लिये कल्याणकारी भागवतधर्मोंका और उनमें भी वैशाख मासमें कर्तव्यरूपसे बताये हुए नियमोंका विशेषरूपसे पालन करना चाहिये। वे भगवान् विष्णु कैसे हैं? उनका क्या लक्षण है? उनकी सत्तामें क्या प्रमाण है तथा वे सर्वव्यापी भगवान् किनके द्वारा जानने योग्य हैं? वैष्णव धर्म कैसे हैं? और किससे भगवान् श्रीहरि प्रसन्न होते हैं? महामते! मैं आपका किंकर हूँ, मुझे ये सब बातें बताइये।

व्याधके इस प्रकार पूछनेपर शंखने रोग-शोकसे रहित सम्पूर्ण जगत्के स्वामी भगवान् नारायणको प्रणाम करके कहा—व्याध! भगवान् विष्णुका स्वरूप कैसा है, यह सुनो। भगवान् समस्त शक्तियोंके आश्रय, सम्पूर्ण गुणोंकी निधि तथा सबके ईश्वर बताये गये हैं। वे निर्गुण, निष्कल तथा अनन्त हैं। सत्-चित् और आनन्द—यही उनका स्वरूप है। यह जो अखिल चराचर जगत् है, अपने अधीश्वर और आश्रयके साथ नियत रूपसे जिसके वशमें स्थित है, जिससे इसकी उत्पत्ति, पालन, संहार, पुनरावृत्ति तथा नियमन आदि होते हैं, प्रकाश, बन्धन, मोक्ष और जीविका—इन सबकी प्रवृत्ति जहाँसे होती है, वे ही ब्रह्म नामसे प्रसिद्ध भगवान् विष्णु हैं। वे ही विद्वानोंके सम्मान्य सर्वव्यापी परमेश्वर हैं। ज्ञानी पुरुषोंने उन्हींको साक्षात् परब्रह्म कहा है। वेद, शास्त्र, स्मृति, पुराण, इतिहास, पांचरात्र और महाभारत—सब विष्णुस्वरूप हैं—विष्णुके ही

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

प्रतिपादक हैं। इन्हींके द्वारा महाविष्णु जानने योग्य हैं। वेदवेद्य, सनातनदेव भगवान् नारायणको कोई इन्द्रियोंसे (प्रत्यक्ष प्रमाणद्वारा), अनुमानसे और तर्कसे भी नहीं जान सकता है। उन्हींके दिव्य जन्म-कर्म तथा गुणोंको अपनी बुद्धिके अनुसार जानकर उनके अधीन रहनेवाले जीव-समूह सदा मुक्त होते हैं। यह सम्पूर्ण जगत् प्राणसे उत्पन्न हुआ है, प्राणस्वरूप है, प्राणरूपी सूत्रमें पिरोया हुआ है तथा प्राणसे ही चेष्टा करता है। सबका आधारभूत यह सूत्रात्मा प्राण ही विष्णु है,—ऐसा विद्वान् पुरुष कहते हैं।

व्याधने पूछा—ब्रह्मन्! जीवोंमें यह सूत्रात्मा प्राण सबसे श्रेष्ठ किस प्रकार है?

शंखने कहा—व्याध! पूर्वकालमें सनातन देव भगवान् नारायणने ब्रह्मा आदि देवताओंकी सृष्टि करके कहा—'देवताओ! मैं तुम्हारे सम्राट्के पदपर ब्रह्माजीकी स्थापना करता हूँ, यही तुम सबके स्वामी हैं। अब तुमलोगोंमें जो सबसे अधिक शक्तिशाली हो, उसे तुम स्वयं ही युवराजके पदपर प्रतिष्ठित करो।' भगवान्के इस प्रकार कहनेपर इन्द्र आदि सब देवता आपसमें विवाद करते हुए कहने लगे—'मैं युवराज होऊँगा, मैं होऊँगा।' किसीने सूर्यको श्रेष्ठ बताया और किसीने इन्द्रको। किन्हींकी दृष्टिमें कामदेव ही सबसे श्रेष्ठ थे। कुछ लोग मौन ही खड़े रहे। आपसमें कोई निर्णय होता न देखकर वे भगवान् नारायणके पास पूछनेके लिये गये और प्रणाम करके हाथ जोड़कर बोले—'महाविष्णो! हम सबने अच्छी तरह विचार कर लिया, किंतु हम सबमें श्रेष्ठ कौन है, यह हम अभीतक किसी प्रकार निश्चय न कर सके। अब आप ही निर्णय कीजिये।' तब भगवान् विष्णुने हँसते हुए कहा—'इस विराट् ब्रह्माण्डरूपी शरीरसे जिसके निकल जानेपर यह गिर जायगा और जिसके प्रवेश करनेपर पुनः उठकर खड़ा हो जायगा, वही देवता सबसे श्रेष्ठ है।'

भगवान्के ऐसा कहनेपर सब देवताओंने कहा—'अच्छा ऐसा ही हो।' तब सबसे पहले देवेश्वर जयन्त विराट् शरीरके पैरसे बाहर निकला। उसके निकलनेसे उस शरीरको लोग पंगु कहने लगे; परंतु शरीर गिर न सका। यद्यपि वह चल नहीं पाता था तो भी सुनता, पीता, बोलता, सूँघता और देखता हुआ पूर्ववत् स्थिर रहा। तत्पश्चात् गुह्यदेशसे दक्ष प्रजापति निकलकर अलग हो गये। तब लोगोंने उसे नपुंसक कहा; किंतु उस समय भी वह शरीर गिर न सका। उसके बाद विराट् शरीरके हाथसे सब देवताओंके राजा इन्द्र बाहर निकले। उस समय भी शरीरपात नहीं हुआ। विराट् पुरुषको सब लोग हस्तहीन (लूला) कहने लगे। इसी प्रकार नेत्रोंसे सूर्य निकले। तब लोगोंने उसे अंधा और काना कहा। उस समय भी शरीरका पतन नहीं हुआ। तदनन्तर नासिकासे अश्विनीकुमार निकले, किंतु शरीर नहीं गिर सका। केवल इतना ही कहा जाने लगा कि यह सूँघ नहीं सकता। कानसे अधिष्ठातृ देवियाँ दिशाएँ निकलीं। उस समय लोग उसे बधिर कहने लगे; परंतु उसकी मृत्यु नहीं हुई। तत्पश्चात् जिह्वासे वरुणदेव निकले। तब लोगोंने यही कहा कि यह पुरुष रसका अनुभव नहीं कर सकता; किंतु देहपात नहीं हुआ। तदनन्तर वाक्-इन्द्रियसे उसके स्वामी अग्निदेव निकले। उस समय उसे गूँगा कहा गया; किंतु शरीर नहीं गिरा। फिर अन्तःकरणसे बोधस्वरूप रुद्र देवता अलग हो गये। उस दशामें लोगोंने उसे जड कहा; किंतु शरीरपात नहीं हुआ। सबके अन्तमें उस शरीरसे प्राण निकला; तब लोगोंने उसे मरा हुआ बतलाया। इससे देवताओंके मनमें बड़ा विस्मय हुआ। वे बोले—'हमलोगोंमेंसे जो भी इस शरीरमें प्रवेश करके इसे पूर्ववत् उठा देगा—जीवित कर देगा, वही युवराज होगा।' ऐसी प्रतिज्ञा करके सब क्रमशः उस शरीरमें प्रवेश करने लगे। जयन्तने पैरोंमें प्रवेश किया;

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

किंतु वह शरीर नहीं उठा। प्रजापति दक्षने गुह्य इन्द्रियोंमें प्रवेश किया; फिर भी शरीर नहीं उठा। इन्द्रने हाथमें, सूर्यने नेत्रोंमें, दिशाओंने कानमें, वरुणदेवने जिह्वामें, अश्विनीकुमारने नासिकामें, अग्निने वाक्-इन्द्रियमें तथा रुद्रने अन्तःकरणमें प्रवेश किया; किंतु वह शरीर नहीं उठा, नहीं उठा। सबके अन्तमें प्राणने प्रवेश किया, तब वह शरीर उठकर खड़ा हो गया। तब देवताओंने प्राणको ही सब देवताओंमें श्रेष्ठ निश्चित किया। बल, ज्ञान, धैर्य, वैराग्य और जीवनशक्तिमें प्राणको ही सर्वाधिक मानकर देवताओंने उसीको युवराज पदपर अभिषिक्त किया। इस उत्कृष्ट स्थितिके कारण प्राणको उक्थ कहा गया है। अतः समस्त चराचर जगत् प्राणात्मक है। जगदीश्वर प्राण अपने पूर्ण एवं बलशाली अंशोंद्वारा सर्वत्र परिपूर्ण है। प्राणहीन जगत्का अस्तित्व नहीं है। प्राणहीन कोई भी वस्तु वृद्धिको नहीं प्राप्त होती। इस जगत्में किसी भी प्राणहीन वस्तुकी स्थिति नहीं है; इस कारण प्राण सब जीवोंमें श्रेष्ठ, सबका अन्तरात्मा और सर्वाधिक बलशाली सिद्ध हुआ। इसलिये प्राणोपासक प्राणको ही सर्वश्रेष्ठ कहते हैं। प्राण सर्वदेवात्मक है, सब देवता प्राणमय हैं। वह भगवान् वासुदेवका अनुगामी तथा सदा उन्हींमें स्थित है। मनीषी पुरुष प्राणको महाविष्णुका बल बतलाते हैं। महाविष्णुके माहात्म्य और लक्षणको इस प्रकार जानकर मनुष्य पूर्वबन्धनका अनुसरण करनेवाले अज्ञानमय लिंगको उसी प्रकार त्याग देता है, जैसे सर्प पुरानी केंचुलको। लिंगदेहका त्याग करके वह परम पुरुष अनामय भगवान् नारायणको प्राप्त होता है।

शंख मुनिकी कही हुई यह बात सुनकर व्याधने पुनः पूछा—ब्रह्मन्! यह प्राण जब इतना महान् प्रभावशाली और इस सम्पूर्ण जगत्का गुरु एवं ईश्वर है, तब लोकमें इसकी महिमा क्यों नहीं प्रसिद्ध हुई?

शंखने कहा—पहलेकी बात है। प्राण अश्वमेध यज्ञोंद्वारा अनामय भगवान् नारायणका यजन करनेके लिये गंगाके तटपर प्रसन्नतापूर्वक गया। अनेक मुनिगणोंके साथ उसने फलोंके द्वारा पृथ्वीका शोधन किया। उस समय वहाँ समाधिमें स्थित हुए महात्मा कण्व बाँबीकी मिट्टीमें छिपे हुए बैठे थे। हल जोतनेपर बाँबी गिर जानेसे वे बाहर निकल आये और क्रोधपूर्वक देखकर सामने खड़े हुए महाप्रभु प्राणको शाप देते हुए बोले—'देवेश्वर! आजसे लेकर आपकी महिमा तीनों लोकोंमें—विशेषतः भूलोकमें प्रसिद्ध न होगी। हाँ, आपके अवतार तीनों लोकोंमें विख्यात होंगे।'

व्याध! तभीसे संसारमें महाप्रभु प्राणकी महिमा प्रसिद्ध नहीं हुई। भूलोकमें तो उसकी ख्याति विशेष रूपसे नहीं।

व्याधने पूछा—महामते! भगवान् विष्णुके रचे हुए करोड़ों एवं सहस्रों सनातन जीव नाना मार्गपर चलने और भिन्न-भिन्न कर्म करनेवाले क्यों दिखायी देते हैं? इन सबका एक-सा स्वभाव क्यों नहीं है? यह सब विस्तारपूर्वक बतलाइये?

शंखने कहा—रजोगुण, तमोगुण और सत्त्वगुणके भेदसे तीन प्रकारके जीवसमुदाय होते हैं। उनमें राजस स्वभाववाले जीव राजस कर्म, तमोगुणी जीव तामस कर्म तथा सात्त्विक स्वभाववाले जीव सात्त्विक कर्म करते हैं। कभी-कभी संसारमें इनके गुणोंमें विषमता भी होती है, उसीसे वे ऊँच और नीच कर्म करते हुए तदनुसार फलके भागी होते हैं। कभी सुख, कभी दुःख और कभी दोनोंको ही ये मनुष्य गुणोंकी विषमतासे प्राप्त करते हैं। प्रकृतिमें स्थित होनेपर जीव इन तीनों गुणोंसे बँधते हैं। गुण और कर्मोंके अनुसार उनके कर्मोंका भिन्न-भिन्न फल होता है। ये जीव फिर गुणोंके अनुसार ही प्रकृतिको प्राप्त होते हैं। प्रकृतिमें स्थित हुए प्राकृतिक प्राणी

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

गुण और कर्मसे व्याप्त होकर प्राकृतिक गतिको प्राप्त होते हैं। तमोगुणी जीव तामसीवृत्तिसे ही जीवननिर्वाह करते और सदा महान् दुःखमें डूबे रहते हैं। उनमें दया नहीं होती, वे बड़े क्रूर होते हैं और लोकमें सदा द्वेषसे ही उनका जीवन चलता है। राक्षस और पिशाच आदि तमोगुणी जीव हैं, जो तामसी गतिको प्राप्त होते हैं। राजसी लोगोंकी बुद्धि मिश्रित होती है। वे पुण्य तथा पाप दोनों करते हैं; पुण्यसे स्वर्ग पाते और पापसे यातना भोगते हैं। इसी कारण ये मन्दभाग्य पुरुष बार-बार इस संसारमें आते-जाते रहते हैं। जो सात्त्विक स्वभावके मनुष्य हैं, वे धर्मशील, दयालु, श्रद्धालु, दूसरोंके दोष न देखनेवाले तथा सात्त्विक वृत्तिसे जीवननिर्वाह करनेवाले होते हैं। इसीलिये भिन्न-भिन्न कर्म करनेवाले जीवोंके एक-दूसरेसे पृथक् अनेक प्रकारके भाव हैं; उनके गुण और कर्मके अनुसार महाप्रभु विष्णु अपने स्वरूपकी प्राप्ति करानेके लिये उनसे कर्मोंका अनुष्ठान करवाते हैं। भगवान् विष्णु पूर्णकाम हैं, उनमें विषमता और निर्दयता आदि दोष नहीं हैं। वे समभावसे ही सृष्टि, पालन और संहार करते हैं। सब जीव अपने गुणसे ही कर्मफलके भागी होते हैं। जैसे माली बगीचेमें लगे हुए सब वृक्षोंको समानरूपसे सींचता है और एक ही कुआँके जलसे सभी वृक्ष पलते हैं तथापि वे पृथक्-पृथक् स्वभावको प्राप्त होते हैं। बगीचा लगानेवालेमें किसी प्रकार विषमता और निर्दयताका दोष नहीं होता।

देवाधिदेव भगवान् विष्णुका एक निमेष ब्रह्माजीके एक कल्पके समान माना गया है। ब्रह्मकल्पके अन्तमें देवाधिदेवशिरोमणि भगवान् विष्णुका उन्मेष होता है अर्थात् वे आँख खोलकर देखते हैं। जबतक निमेष रहता है तबतक प्रलय है। निमेषके अन्तमें भगवान् अपने उदरमें स्थित सम्पूर्ण लोकोंकी सृष्टि करनेकी इच्छा करते हैं। सृष्टिकी इच्छा होनेपर भगवान् अपने उदरमें स्थित हुए अनेक प्रकारके जीवसमूहोंको देखते हैं। उनकी कुक्षिमें रहते हुए भी सम्पूर्ण जीव उनके ध्यानमें स्थित होते हैं। अर्थात् कौन जीव कहाँ किस रूपमें है, इसकी स्मृति भगवान्को सदा बनी रहती है। भगवान् विष्णु चतुर्व्यूहस्वरूप हैं। वे उन्मेषकालके प्रथम भागमें ही चतुर्व्यूह रूपमें प्रकट हो, व्यूहगामी वासुदेवस्वरूपसे महात्माओंमेंसे किसीको सायुज्य-साधक तत्त्वज्ञान, किसीको सारूप्य, किसीको सामीप्य और किसीको सालोक्य प्रदान करते हैं। फिर अनिरुद्ध मूर्तिके वशमें स्थित हुए सम्पूर्ण लोकोंको वे देखते हैं, देखकर उन्हें प्रद्युम्न मूर्तिके वशमें देते हैं और सृष्टि करनेका संकल्प करते हैं। भगवान् श्रीहरिने पूर्ण गुणवाले वासुदेव आदि चार व्यूहोंके द्वारा क्रमशः माया, जया, कृति और शान्तिको स्वयं स्वीकार किया है। उनसे संयुक्त चतुर्व्यूहात्मक महाविष्णुने पूर्णकाम होकर भी भिन्न-भिन्न कर्म और वासनावाले लोकोंकी सृष्टि की है। उन्मेषकालका अन्त होनेपर भगवान् विष्णु पुनः योगमायाका आश्रय लेकर व्यूहगामी संकर्षण स्वरूपसे इस चराचर जगत्का संहार करते हैं। इस प्रकार महात्मा विष्णुका यह सब चिन्तन करनेयोग्य कार्य बतलाया गया, जो ब्रह्मा आदि योगसे सम्पन्न पुरुषोंके लिये भी अचिन्त्य एवं दुर्विभाव्य है।

व्याधने पूछा—मुने! भागवतधर्म कौन-कौन-से हैं और किनके द्वारा भगवान् विष्णु प्रसन्न होते हैं?

शंखने कहा—जिससे अन्तःकरणकी शुद्धि होती है, जो साधुपुरुषोंका उपकार करनेवाला है तथा जिसकी किसीने भी निन्दा नहीं की है, उसे तुम सात्त्विक धर्म समझो। वेदों और स्मृतियोंमें बताये हुए धर्मका यदि निष्कामभावसे पालन किया जाय तथा वह लोकसे विरुद्ध न

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

हो, तो उसे भी सात्त्विक धर्म जानना चाहिये। वर्ण और आश्रम विभागके अनुसार जो चार-चार प्रकारके धर्म हैं, वे सभी नित्य, नैमित्तिक और काम्य भेदसे तीन प्रकारके माने गये हैं। वे सभी अपने-अपने वर्ण और आश्रमके धर्म जब भगवान् विष्णुको समर्पित कर दिये जाते हैं, तब उन्हें सात्त्विक धर्म जानना चाहिये। वे सात्त्विक धर्म ही मंगलमय भागवतधर्म हैं। अन्यान्य देवताओंकी प्रीतिके लिये सकामभावसे किये जानेवाले धर्म राजस माने गये हैं। यक्ष, राक्षस, पिशाच आदिके उद्देश्यसे किये जानेवाले लोकनिष्ठुर, हिंसात्मक निन्दित कर्मोंको तामस धर्म कहा गया है। जो सत्त्वगुणमें स्थित हो भगवान् विष्णुको प्रसन्न करनेवाले शुभकारक सात्त्विक धर्मोंका सदा निष्कामभावसे अनुष्ठान करते हैं, वे भागवत (विष्णुभक्त) माने गये हैं। जिनका चित्त सदा भगवान् विष्णुमें लगा रहता है, जिनकी जिह्वापर भगवान्‌का नाम है और जिनके हृदयमें भगवान्‌के चरण विराजमान हैं, वे भागवत कहे गये हैं। जो सदाचारपरायण, सबका उपकार करनेवाले और सदैव ममतासे रहित हैं, वे भागवत माने गये हैं। जिनका शास्त्रमें, गुरुमें और सत्कर्मोंमें विश्वास है तथा जो सदा भगवान् विष्णुके भजनमें लगे रहते हैं, उन्हें भागवत कहा गया है। उन भगवद्भक्त महात्माओंको जो धर्म नित्य मान्य हैं, जो भगवान् विष्णुको प्रिय हैं तथा वेदों और स्मृतियोंमें जिनका प्रतिपादन किया गया है, वे ही सनातनधर्म माने गये हैं*। जिनका चित्त विषयोंमें आसक्त है, उनका सब देशोंमें घूमना, सब कर्मोंको देखना और सब धर्मोंको सुनना कुछ भी लाभकारक नहीं है। साधु-पुरुषोंका मन साधु-महात्माओंके दर्शनसे पिघल जाता है। निष्काम पुरुषोंद्वारा श्रद्धापूर्वक जिसका सेवन किया जाता है तथा जो भगवान् विष्णुको सदा ही प्रिय है, वह भागवत धर्म माना गया है।

भगवान् विष्णुने क्षीरसागरमें सबके हितकी कामनासे भगवती लक्ष्मीजीको दहीसे निकाले हुए मक्खनकी भाँति सब शास्त्रोंके सारभूत वैशाख धर्मका उपदेश किया है। जो दम्भरहित होकर वैशाख मासके व्रतका अनुष्ठान करता है, वह सब पापोंसे रहित हो सूर्यमण्डलको भेदकर भगवान् विष्णुके योगिदुर्लभ परम धाममें जाता है।

इस प्रकार द्विजश्रेष्ठ शंखके द्वारा भगवान् विष्णुके प्रिय वैशाख मासके धर्मोंका वर्णन होते समय वह पाँच शाखाओंवाला वटवृक्ष तुरंत ही भूमिपर गिर पड़ा। उसके खोंखलेमें एक विकराल अजगर रहता था, वह भी पापयोनिमय शरीरको त्यागकर तत्काल दिव्य स्वरूप हो मस्तक झुकाये शंखके सामने हाथ जोड़कर खड़ा हो गया।

वैशाखमासके माहात्म्य-श्रवणसे एक सर्पका उद्धार और वैशाखधर्मके पालन तथा रामनाम-जपसे व्याधका वाल्मीकि होना

श्रुतदेव कहते हैं—तदनन्तर व्याधसहित शंख मुनिने विस्मित होकर पूछा—'तुम कौन हो? और तुम्हें यह दशा कैसे प्राप्त हुई थी?'

सर्पने कहा—पूर्वजन्ममें मैं प्रयागका एक

* तेषां हि संमता धर्माः शाश्वता विष्णुवल्लभाः। श्रुतिस्मृत्युदिता ये च ते धर्माः शाश्वता मताः॥ (स्क० पु०, वै० वै० मा० २०। ६३)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

ब्राह्मण था। मेरे पिताका नाम कुशीद मुनि और मेरा नाम रोचन था। मैं धनाढ्य, अनेक पुत्रोंका पिता और सदैव अभिमानसे दूषित था। बैठे-बैठे बहुत बकवाद किया करता था। बैठना, सोना, नींद लेना, मैथुन करना, जुआ खेलना, लोगोंकी बातें करना और सूद लेना यही मेरे व्यापार थे। मैं लोकनिन्दासे डरकर नाममात्रके शुभ कर्म करता था; सो भी दम्भके साथ। उन कर्मोंमें मेरी श्रद्धा नहीं थी। इस प्रकार मुझ दुष्ट और दुर्बुद्धिके कितने ही वर्ष बीत गये। तदनन्तर इसी वैशाख मासमें जयन्त नामक ब्राह्मण प्रयागक्षेत्रमें निवास करनेवाले पुण्यात्मा द्विजोंको वैशाख मासके धर्म सुनाने लगे। स्त्री, पुरुष, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—सहस्रों श्रोता प्रातःकाल स्नान करके अविनाशी भगवान् विष्णुकी पूजाके पश्चात् प्रतिदिन जयन्तकी कही हुई कथा सुनते थे। वे सभी पवित्र एवं मौन होकर उस भगवत्कथामें अनुरक्त रहते थे। एक दिन मैं भी कौतूहलवश देखनेकी इच्छासे श्रोताओंकी उस मण्डलीमें जा बैठा। मेरे मस्तकपर पगड़ी बँधी थी। इसलिये मैंने नमस्कार तक नहीं किया और संसारी वार्तालापमें अनुरक्त हो कथामें विघ्न डालने लगा। कभी मैं कपड़े फैलाता, कभी किसीकी निन्दा करता और कभी जोरसे हँस पड़ता था। जबतक कथा समाप्त हुई, तबतक मैंने इसी प्रकार समय बिताया। तत्पश्चात् दूसरे दिन सन्निपात रोगसे मेरी मृत्यु हो गयी। मैं तपाये हुए शीशेके जलसे भरे हुए हलाहल नरकमें डाल दिया गया और चौदह मन्वन्तरोंतक वहाँ यातना भोगता रहा। उसके बाद चौरासी लाख योनियोंमें क्रमशः जन्म लेता और मरता हुआ मैं इस समय क्रूर तमोगुणी सर्प होकर इस वृक्षके खोंखलेमें निवास करता था। मुने! सौभाग्यवश आपके मुखारविन्दसे निकली हुई अमृतमयी कथाको मैंने अपने दोनों नेत्रोंसे सुना, जिससे तत्काल मेरे सारे पाप नष्ट हो गये। मुनिश्रेष्ठ! मैं नहीं जानता कि आप किस जन्मके मेरे बन्धु हैं; क्योंकि मैंने कभी किसीका उपकार नहीं किया है तो भी मुझपर आपकी कृपा हुई। जिनका चित्त समान है, जो सब प्राणियोंपर दया करनेवाले साधुपुरुष हैं, उनमें परोपकारकी स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है। उनकी कभी किसीके प्रति विपरीत बुद्धि नहीं होती। आज आप मुझपर कृपा कीजिये, जिससे मेरी बुद्धि धर्ममें लगे। देवाधिदेव भगवान् विष्णुकी मुझे कभी विस्मृति न हो और साधु चरित्रवाले महापुरुषोंका सदा ही संग प्राप्त हो। जो लोग मदसे अंधे हो रहे हों, उनके लिये एकमात्र दरिद्रता ही उत्तम अंजन है। इस प्रकार नाना भाँतिसे स्तुति करके रोचनने बार-बार शंखको प्रणाम किया और हाथ जोड़कर चुपचाप उनके आगे खड़ा हो गया।

तब शंखने कहा—ब्रह्मन्! तुमने वैशाख मास और भगवान् विष्णुका माहात्म्य सुना है, इससे उसी क्षण तुम्हारा सारा बन्धन नष्ट हो गया। द्विजश्रेष्ठ! परिहास, भय, क्रोध, द्वेष, कामना अथवा स्नेहसे भी एक बार भगवान् विष्णुके पापहारी नामका उच्चारण करके बड़े भारी पापी भी रोग-शोकरहित वैकुण्ठधाममें चले जाते हैं। फिर जो श्रद्धासे युक्त हो क्रोध और इन्द्रियोंको जीतकर सबके प्रति दयाभाव रखते हुए भगवान्‌की कथा सुनते हैं, वे उनके लोकमें जाते हैं, इस विषयमें तो कहना ही क्या है*। कितने ही मनुष्य

* हास्याद्भयात्तथा क्रोधाद्द्वेषात्कामादथापि वा। स्नेहाद्वा सकृदुच्चार्य विष्णोर्नामाघहारि च॥
पापिष्ठा अपि गच्छन्ति विष्णोर्धाम निरामयम्। किमु तच्छ्रद्धया युक्ता जितक्रोधा जितेन्द्रियाः॥
दयावन्तः कथां श्रुत्वा गच्छन्तीति द्विजोत्तम।
(स्क० पु०, वै० वै० मा० २१। ३६—३८)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

केवल भक्तिके बलसे एकमात्र भगवान्‌की कथा-वार्तामें तत्पर हो अन्य सब धर्मोंका त्याग कर देनेपर भी भगवान् विष्णुके परम पदको पा लेते हैं। भक्तिसे अथवा द्वेष आदिसे भी जो कोई भगवान्‌की भक्ति करते हैं, वे भी प्राणहारिणी पूतनाकी भाँति परमपदको प्राप्त होते हैं। सदा महात्मा पुरुषोंका संग और उन्हींके विषयमें वार्तालाप करना चाहिये। रचना शिथिल होनेपर भी जिसके प्रत्येक श्लोकमें भगवान्‌के सुयशसूचक नाम हैं, वही वाणी जनसमुदायकी पापराशिका नाश करनेवाली होती है; क्योंकि साधुपुरुष उसीको सुनते, गाते और कहते हैं। जो भगवान् किसीसे कष्टसाध्य सेवा नहीं चाहते, आसन आदि विशेष उपकरणोंकी इच्छा नहीं रखते तथा सुन्दर रूप और जवानी नहीं चाहते, अपितु एक बार भी स्मरण कर लेनेपर अपना परम प्रकाशमय वैकुण्ठधाम दे डालते हैं, उन दयालु भगवान्‌को छोड़कर मनुष्य किसकी शरणमें जाय। उन्हीं रोग-शोकसे रहित, चित्तद्वारा चिन्तन करनेयोग्य, अव्यक्त, दयानिधान, भक्तवत्सल भगवान् नारायणकी शरणमें जाओ। महामते! वैशाख मासमें कहे हुए इन सब धर्मोंका पालन करो, उससे प्रसन्न होकर भगवान् जगन्नाथ तुम्हारा कल्याण करेंगे।

ऐसा कहकर शंख मुनि व्याधकी ओर देखकर चुप हो रहे। तब उस दिव्य पुरुषने पुनः इस प्रकार कहा—'मुने! मैं धन्य हूँ, आप-जैसे दयालु महात्माने मुझपर अनुग्रह किया है। मेरी कुत्सित योनि दूर हो गयी और अब मैं परमगतिको प्राप्त हो रहा हूँ, यह मेरे लिये सौभाग्यकी बात है।' यों कहकर दिव्य पुरुषने शंख मुनिकी परिक्रमा की तथा उनकी आज्ञा लेकर वह दिव्यलोकको चला गया। तदनन्तर सन्ध्या हो गयी। व्याधने शंखको अपनी सेवासे सन्तुष्ट किया और उन्होंने सांयकालकी सन्ध्योपासना करके शेष रात्रि व्यतीत की। भगवान्‌के लीलावतारोंकी कथा-वार्ताद्वारा रात व्यतीत करके शंख मुनि ब्राह्ममुहूर्तमें उठे और दोनों पैर धोकर मौनभावसे तारक ब्रह्मका ध्यान करने लगे। तत्पश्चात् शौचादि क्रियासे निवृत्त होकर वैशाख मासमें सूर्योदयसे पहले स्नान किया और सन्ध्या-तर्पण आदि सब कर्म समाप्त करके उन्होंने हर्षयुक्त हृदयसे व्याधको बुलाया। बुलाकर उसे 'राम' इस दो अक्षरवाले नामका उपदेश दिया, जो वेदसे भी अधिक शुभकारक है। उपदेश देकर इस प्रकार कहा—'भगवान् विष्णुका एक-एक नाम भी सम्पूर्ण वेदोंसे अधिक महत्त्वशाली माना गया है। ऐसे अनन्त नामोंसे अधिक है भगवान् विष्णुका सहस्रनाम। उस सहस्रनामके समान राम-नाम माना गया है*। इसलिये व्याध! तुम निरन्तर रामनामका जप करो और मृत्युपर्यन्त मेरे बताये हुए धर्मोंका पालन करते रहो। इस धर्मके प्रभावसे तुम्हारा वल्मीक ऋषिके घर जन्म होगा और तुम इस पृथ्वीपर वाल्मीकि नामसे प्रसिद्ध होओगे।'

व्याधको ऐसा आदेश देकर मुनिवर शंखने दक्षिण दिशाको प्रस्थान किया। व्याधने भी शंख मुनिकी परिक्रमा करके बार-बार उनके चरणोंमें प्रणाम किया और जबतक वे दिखायी दिये, तबतक उन्हींकी ओर देखता रहा। फिर उसने अति योग्य वैशाखोक्त धर्मोंका पालन किया। जंगली कैथ, कटहल, जामुन और आम आदिके फलोंसे राह चलनेवाले थके-माँदे पथिकोंको वह भोजन कराता था। जूता, चन्दन, छाता, पंखा आदिके द्वारा तथा बालूके बिछावन और छाया आदिकी व्यवस्थासे पथिकोंके परिश्रम और

* विष्णोरेकैकनामापि सर्ववेदाधिकं मतम्। तेभ्यश्चानन्तनामभ्योऽधिकं नाम्नां सहस्रकम्॥
तादृङ्नामसहस्रेण रामनामसमं मतम्।
(स्क० पु०, वै० वै० मा० २१। ५३-५४)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

पसीनेका निवारण करता था। प्रातःकाल स्नान करके दिन-रात राम-नामका जप करता था। इस प्रकार धर्मानुष्ठान करके वह दूसरे जन्ममें वल्मीकका पुत्र हुआ। उस समय वह महायशस्वी वाल्मीकिके नामसे विख्यात हुआ। उन्हीं वाल्मीकिजीने अपने मनोहर प्रबन्ध रचनाद्वारा संसारमें दिव्य राम-कथाको प्रकाशित किया, जो समस्त कर्म-बन्धनोंका उच्छेद करनेवाली है।

मिथिलापते! देखो, वैशाखका माहात्म्य कैसा ऐश्वर्य प्रदान करनेवाला है, जिससे एक व्याध भी परम दुर्लभ ऋषिभावको प्राप्त हो गया। यह रोमांचकारी उपाख्यान सब पापोंका नाश करनेवाला है। जो इसे सुनता और सुनाता है, वह पुनः माताके स्तनका दूध पीनेवाला नहीं होता।

धर्मवर्णकी कथा, कलिकी अवस्थाका वर्णन, धर्मवर्ण और पितरोंका संवाद एवं वैशाखकी अमावास्याकी श्रेष्ठता

मिथिलापतिने पूछा—ब्रह्मन्! इस वैशाख मासमें कौन-कौन-सी तिथियाँ पुण्यदायिनी हैं?

श्रुतदेवजी बोले—सूर्यके मेष राशिपर स्थित होनेपर वैशाख मासमें तीसों तिथियाँ पुण्यदायिनी मानी गयी हैं। एकादशीमें किया हुआ पुण्य कोटिगुना होता है। उसमें स्नान, दान, तपस्या, होम, देवपूजा, पुण्यकर्म एवं कथाका श्रवण किया जाय तो वह तत्काल मुक्ति देनेवाला है। जो रोग आदिसे ग्रस्त और दरिद्रतासे पीड़ित हो वह मनुष्य इस पुण्यमयी कथाको सुनकर कृतकृत्य होता है। वैशाख मास मनसे सेवन करने योग्य है; क्योंकि वह समय उत्तम गुणोंसे युक्त है। दरिद्र, धनाढ्य, पंगु, अन्धा, नपुंसक, विधवा, साधारण स्त्री, पुरुष, बालक, युवा, वृद्ध तथा रोगसे पीड़ित मनुष्य ही क्यों न हो, वैशाख मासका धर्म सबके लिये अत्यन्त सुखसाध्य है। परम पुण्यमय वैशाख मासमें जब सूर्य मेष राशिमें स्थित हों, तब पापनाशिनी अमावास्या कोटि गयाके समान फल देनेवाली होती है। राजन्! जब पृथ्वीपर राजर्षि सावर्णिका शासन था, उस समय तीसवें कलियुगके अन्तमें सभी धर्मोंका लोप हो चुका था। उसी समय आनर्त देशमें धर्मवर्ण नामसे विख्यात एक ब्राह्मण थे। मुनिवर धर्मवर्णने उस कलियुगमें ही किसी समय महात्मा मुनियोंके सत्रयागमें सम्मिलित होनेके लिये पुष्कर क्षेत्रकी यात्रा की। वहाँ कुछ व्रतधारी महर्षियोंने कलियुगकी प्रशंसा करते हुए इस प्रकार कहा था—'सत्ययुगमें भगवान् विष्णुको संतुष्ट करनेवाला जो पुण्य एक वर्षमें साध्य है, वही त्रेतामें एक मासमें और द्वापरमें पंद्रह दिनोंमें साध्य होता है; परंतु कलियुगमें भगवान् विष्णुका स्मरण कर लेनेसे ही उससे दसगुना पुण्य होता है*। कलिमें बहुत थोड़ा पुण्य भी कोटिगुना होता है। जो एक बार भी भगवान्‌का नाम लेकर दयादान करता है और दुर्भिक्षमें अन्न देता है, वह निश्चय ही ऊर्ध्वलोकमें गमन करता है।'

यह सुनकर देवर्षि नारद हँसते हुए उन्मत्तके समान नृत्य करने लगे। सभासदोंने पूछा—'नारदजी! यह क्या बात है?' तब बुद्धिमान् नारदजीने हँसते हुए उन सबको उत्तर दिया—

* कृते यद् वत्सरात्साध्यं पुण्यं माधवतोषणम्। त्रेतायां मासतः साध्यं द्वापरे पक्षतो नृप॥
तस्माद्दशगुणं पुण्यं कलौ विष्णुस्मृतेर्भवेत्।

(स्क० पु०, वै० वै० मा० २२। २०-२१)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

'आपलोगोंका कथन सत्य है। इसमें सन्देह नहीं कि कलियुगमें स्वल्प कर्मसे भी महान् पुण्यका साधन किया जाता है तथा क्लेशोंका नाश करनेवाले भगवान् केशव स्मरणमात्रसे ही प्रसन्न हो जाते हैं। तथापि मैं आपलोगोंसे यह कहता हूँ कि कलियुगमें ये दो बातें दुर्घट हैं— शिश्नेन्द्रियका निग्रह और जिह्वाको वशमें रखना। ये दोनों कार्य जो सिद्ध कर ले, वही नारायणस्वरूप है। अतः कलियुगमें आपको यहाँ नहीं ठहरना चाहिये।'

नारदजीकी यह बात सुनकर उत्तम व्रतका पालन करनेवाले महर्षि सहसा यज्ञको समाप्त करके सुखपूर्वक चले गये। धर्मवर्णने भी वह बात सुनकर भूलोकको त्याग देनेका विचार किया। उन्होंने ब्रह्मचर्य-व्रत धारण करके दण्ड और कमण्डलु हाथमें लिया और जटा-वल्कलधारी होकर वे कलियुगके अनाचारी पुरुषोंको देखनेके लिये घर छोड़कर चल दिये। उनके मनमें बड़ा विस्मय हो रहा था। उन्होंने देखा, प्रायः मनुष्य पापाचारमें प्रवृत्त हो बड़े भयंकर एवं दुष्ट हो गये हैं। ब्राह्मण पाखण्डी हो चले हैं। शूद्र संन्यास धारण करते हैं। पत्नी अपने पतिसे द्वेष रखती है। शिष्य गुरुसे वैर करता है। सेवक स्वामीके और पुत्र पिताके घातमें लगा हुआ है। ब्राह्मण शूद्रवत् और गौएँ बकरियोंके समान हो गयी हैं। वेदोंमें गाथाकी ही प्रधानता रह गयी है। शुभकर्म साधारण लौकिक कृत्योंके ही समान रह गये हैं, इनके प्रति किसीकी महत्त्व बुद्धि नहीं है। भूत, प्रेत और पिशाच आदिकी उपासना चल पड़ी है। सब लोग मैथुनमें आसक्त हैं और उसके लिये अपने प्राण भी खो बैठते हैं। सब लोग झूठी गवाही देते हैं। मनमें सदा छल और कपट भरा रहता है। कलियुगमें सदा लोगोंके मनमें कुछ और, वाणीमें कुछ और तथा क्रियामें कुछ और ही देखा जाता है। सबकी विद्या किसी-न-किसी स्वार्थको लेकर ही होती है और केवल राजभवनमें उसका आदर होता है। संगीत आदि कलात्मक विद्याएँ भी राजाओंको प्रिय हैं। कलिमें अधम मनुष्य पूजे जाते हैं और श्रेष्ठ पुरुषोंकी अवहेलना होती है। कलिमें वेदोंके विद्वान् ब्राह्मण दरिद्र होते हैं। लोगोंमें प्रायः भगवान्की भक्ति नहीं होती। पुण्यक्षेत्रमें पाखण्ड अधिक बढ़ जाता है। शूद्रलोग जटाधारी तपस्वी बनकर धर्मकी व्याख्या करते हैं। सभी मनुष्य अल्पायु, दयाहीन और शठ होते हैं। कलिमें प्रायः सभी धर्मके व्याख्याता बन जाते हैं और दूसरोंसे कुछ लेनेमें ही उत्सव मानते हैं। अपनी पूजा कराना चाहते हैं और व्यर्थ ही दूसरोंकी निन्दा करते हैं। अपने घर आनेपर सभी अपने स्वामीके दोषोंकी चर्चामें तत्पर रहते हैं। कलिमें लोग साधुओंको नहीं जानते। पापियोंको ही बहुत आदर देते हैं। दुराग्रही लोग इतने दुराग्रही होते हैं कि साधुपुरुषोंके एक दोषका भी ढिंढोरा पीटते हैं और पापात्माओंके दोषसमूहोंको भी गुण बतलाते हैं। कलिमें गुणहीन मनुष्य दूसरोंके गुण न देखकर उनके दोष ही ग्रहण करते हैं। जैसे पानीमें रहनेवाली जोंक प्राणियोंके रक्त पीती है, जल नहीं पीती, उसी प्रकार जोंकके धर्मसे संयुक्त हो मनुष्य दूसरेका रक्त चूसते हैं। ओषधियाँ शक्तिहीन होती हैं। ऋतुओंमें उलट-फेर हो जाता है। सब राष्ट्रोंमें अकाल पड़ता है। कन्या योग्य समयमें सन्तानोत्पत्ति नहीं करती। लोग नट और नर्तकोंकी विद्याओंसे विशेष प्रेम करते हैं। जो वेद-वेदान्तकी विद्याओंमें तत्पर और अधिक गुणवान् हैं, उन्हें अज्ञानी मनुष्य सेवककी दृष्टिसे देखते हैं, वे सब-के-सब भ्रष्ट होते हैं। कलिमें प्रायः लोग श्राद्धकर्मका त्याग करते हैं। वैदिक कर्मोंको छोड़ बैठते हैं। प्रायः जिह्वापर भगवान्

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

विष्णुके नाम कभी नहीं आते। लोग शृंगार रसमें आनन्दका अनुभव करते हैं और उसीके गीत गाते हैं। कलियुगके मनुष्योंमें न कभी भगवान् विष्णुकी सेवा देखी जाती है, न शास्त्रीय चर्चा होती है, न कहीं यज्ञकी दीक्षा है, न विचारका लेश है, न तीर्थयात्रा है और न दान-धर्म ही होते देखे जाते हैं। यह कितने आश्चर्यकी बात है?

उन सबको देखकर धर्मवर्णको बड़ा भय लगा। पापसे कुलकी हानि होती देख, अत्यन्त आश्चर्यसे चकित हो वे दूसरे द्वीपमें चले गये। सब द्वीपों और लोकोंमें विचरते हुए बुद्धिमान् धर्मवर्ण किसी समय कौतूहलवश पितृलोकमें गये। वहाँ उन्होंने कर्मसे कष्ट पाते हुए पितरोंको बड़ी भयंकर दशामें देखा। वे दौड़ते, रोते और गिरते-पड़ते थे। उन्होंने अपने पितरोंको भी नीचे अन्धकूपमें पड़े हुए देखा। उनको देखकर आश्चर्यचकित हो दयालु धर्मवर्णने पूछा— 'आपलोग कौन हैं, किस दुस्तर कर्मके प्रभावसे इस अन्धकूपमें पड़े हैं?'

पितरोंने कहा—हम श्रीवत्स गोत्रवाले हैं। पृथ्वीपर हमारी कोई सन्तान नहीं रह गयी है, अतः हम श्राद्ध और पिण्डसे वंचित हैं, इसीलिये यहाँ हमें नरकका कष्ट भोगना पड़ता है। सन्तानहीन दुरात्माओंका अन्धकूपमें पतन होता है। हमारे वंशमें एक ही महायशस्वी पुरुष है, जो धर्मवर्णके नामसे विख्यात है। किंतु वह विरक्त होकर अकेला घूमता-फिरता है। उसने गृहस्थ-धर्मको नहीं स्वीकार किया है। वह एक ही तन्तु हमारे कुलमें अवशिष्ट है। उसकी भी आयु क्षीण हो जानेपर हमलोग घोर अन्धकूपमें गिर पड़ेंगे, जहाँसे फिर निकलना कठिन होगा। इसलिये तुम पृथ्वीपर जाकर धर्मवर्णको समझाओ। हमलोग दयाके पात्र हैं, हमारे वचनोंसे उसको यह बताओ कि 'हमारी वंशरूपा दूर्वाको कालरूपी चूहा प्रतिदिन खा रहा है। क्रमशः सारे वंशका नाश हो गया है, एक तुम्हीं बचे हो। जब तुम भी मर जाओगे तब सन्तान-परम्परा न होनेके कारण तुम्हें भी अन्धकूपमें गिरना पड़ेगा। इसलिये गृहस्थ-धर्मको स्वीकार करके सन्तानकी वृद्धि करो। इससे हमारी और तुम्हारी दोनोंकी ऊर्ध्वगति होगी। यदि एक भी पुत्र वैशाख, माघ अथवा कार्तिक मासमें हमारे उद्देश्यसे स्नान, श्राद्ध और दान करेगा तो उससे हमलोगोंकी ऊर्ध्वगति होगी और नरकसे उद्धार हो जायगा। यदि एक पुत्र भी भगवान् विष्णुका भक्त हो जाय, एक भी एकादशीका व्रत रहने लगे अथवा यदि एक भी भगवान् विष्णुकी पापनाशक कथा श्रवण करे तो उसकी सौ बीती हुई पीढ़ियोंका तथा सौ भावी पीढ़ियोंका उद्धार होता है। वे पीढ़ियाँ पापसे आवृत होनेपर भी नरकका दर्शन नहीं करतीं। दया और धर्मसे रहित उन बहुत-से पुत्रोंके जन्मसे क्या लाभ, जो कुलमें उत्पन्न होकर सर्वव्यापी भगवान् नारायणकी पूजा नहीं करते*।' इस प्रकार प्रिय वचनोंद्वारा धर्मवर्णको समझाकर तुम उसे विरक्तिपूर्ण ब्रह्मचर्य-आश्रमसे गृहस्थ-आश्रममें प्रवेश करनेकी सलाह दो।

पितरोंकी यह बात सुनकर धर्मवर्ण अत्यन्त विस्मित हुआ और हाथ जोड़कर बोला—'मैं ही धर्मवर्ण नामसे विख्यात आपके वंशका दुराग्रही बालक हूँ। यज्ञमें महात्मा नारदजीका यह वचन सुनकर कि 'कलियुगमें प्रायः कोई भी रसनेन्द्रिय और शिश्नेन्द्रियको दृढ़तापूर्वक संयममें नहीं रखता'— मैं दुर्जनोंकी संगतिसे भयभीत हो अबतक दूसरे-दूसरे द्वीपोंमें घूमता रहा। इस कलियुगके तीन चरण बीत गये, अन्तिम चरणमें भी साढ़े तीन भाग व्यतीत हो चुके हैं। मेरा जन्म व्यर्थ बीता है; क्योंकि जिस कुलमें मैंने जन्म लिया, उसमें

* किमन्यैर्बहुभिः पुत्रैर्दयाधर्मविवर्जितैः। ये जाता नार्चयन्त्यद्धा विष्णुं नारायणं कुले॥ (स्क० पु०, वै० वै० मा० २२। ८१)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

माता-पिताके ऋणको भी मैंने नहीं चुकाया। पृथ्वीके भारभूत उस शत्रुतुल्य पुत्रके उत्पन्न होनेसे क्या लाभ जो पैदा होकर भगवान् विष्णु और देवताओं तथा पितरोंकी पूजा न करे। मैं आपलोगोंकी आज्ञाका पालन करूँगा। बताइये, पृथ्वीपर किस प्रकार मुझे कलियुगसे और संसारसे भी बाधा नहीं प्राप्त होगी?'

धर्मवर्णकी बात सुनकर पितरोंके मनको कुछ आश्वासन मिला, वे बोले—बेटा! तुम गृहस्थ-आश्रम स्वीकार करके सन्तानोत्पत्तिके द्वारा हमारा उद्धार करो। जो भगवान् विष्णुकी कथामें अनुरक्त होते, निरन्तर श्रीहरिका स्मरण करते और सदाचारके पालनमें तत्पर रहते हैं, उन्हें कलियुग बाधा नहीं पहुँचाता। मानद! जिसके घरमें शालग्राम शिला अथवा महाभारतकी पुस्तक हो, उसे भी कलियुग बाधा नहीं दे सकता। जो वैशाख मासके धर्मोंका पालन करता, माघ-स्नानमें तत्पर होता और कार्तिकमें दीप देता है, उसे भी कलिकी बाधा नहीं प्राप्त होती। जो प्रतिदिन महात्मा भगवान् विष्णुकी पापनाशक एवं मोक्षदायिनी दिव्य कथा सुनता है, जिसके घरमें बलिवैश्वदेव होता है, शुभकारिणी तुलसी स्थित होती हैं तथा जिसके आँगनमें उत्तम गौ रहती हैं, उसे भी कलियुग बाधा नहीं देता। अतः इस पापात्मक युगमें भी तुम्हें कोई भय नहीं है। बेटा! शीघ्र पृथ्वीपर जाओ। इस समय वैशाख मास चल रहा है, यह सबका उपकार करनेवाला मास है। सूर्यके मेषराशिमें स्थित होनेपर तीसों तिथियाँ पुण्यदायिनी मानी गयी हैं। एक-एक तिथिमें किया हुआ पुण्य कोटि-कोटि गुना अधिक होता है। उनमें भी जो वैशाखकी अमावास्या तिथि है, वह मनुष्योंको मोक्ष देनेवाली है, देवताओं और पितरोंको वह बहुत प्रिय है, शीघ्र ही मोक्षकी प्राप्ति करानेवाली है। जो उस दिन पितरोंके उद्देश्यसे श्राद्ध करते और जलसे भरा हुआ घड़ा एवं पिण्ड देते हैं, उन्हें अक्षय फलकी प्राप्ति होती है। अतः महामते! तुम शीघ्र जाओ और जब अमावास्या हो, तब कुम्भसहित श्राद्ध एवं पिण्डदान करो। सबका उपकार करनेके लिये गृहस्थ-धर्मका आश्रय लो। धर्म, अर्थ और कामसे सन्तुष्ट हो, उत्तम सन्तान पाकर फिर मुनिवृत्तिसे रहते हुए सुखपूर्वक द्वीप-द्वीपान्तरोंमें विचरण करो।

पितरोंके इस प्रकार आदेश देनेपर धर्मवर्ण मुनि शीघ्रतापूर्वक भूलोकमें गये। वहाँ मेषराशिमें सूर्यके स्थित रहते हुए वैशाख मासमें प्रातःकाल स्नान करके देवताओं, ऋषियों तथा पितरोंका तर्पण किया; फिर कुम्भदानसहित पापविनाशक श्राद्ध करके उसके द्वारा पितरोंको पुनरावृत्तिरहित मुक्ति प्रदान की। तत्पश्चात् उन्होंने स्वयं विवाह करके उत्तम सन्तानको जन्म दिया और लोकमें उस पापनाशिनी अमावास्या तिथिको प्रसिद्ध किया। तदनन्तर वे भक्तिपूर्वक भगवान्‌की आराधना करनेके लिये हर्षके साथ गन्धमादन पर्वतपर चले गये। इसलिये वैशाख मासकी यह अमावास्या तिथि परम पवित्र मानी गयी है।

वैशाखकी अक्षय तृतीया और द्वादशीकी महत्ता, द्वादशीके पुण्यदानसे एक कुतियाका उद्धार

श्रुतदेवजी कहते हैं—जो मनुष्य अक्षय तृतीयाको सूर्योदयकालमें प्रातःस्नान करते हैं और भगवान् विष्णुकी पूजा करके कथा सुनते हैं, वे मोक्षके भागी होते हैं। जो उस दिन श्रीमधुसूदनकी प्रसन्नताके लिये दान करते हैं, उनका वह पुण्यकर्म भगवान्‌की आज्ञासे अक्षय फल देता है। वैशाख

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

मासकी पवित्र तिथियोंमें शुक्ल पक्षकी द्वादशी समस्त पापराशिका विनाश करनेवाली है। शुक्ला द्वादशीको योग्य पात्रके लिये जो अन्न दिया जाता है, उसके एक-एक दानेमें कोटि-कोटि ब्राह्मण-भोजनका पुण्य होता है। शुक्ल पक्षकी एकादशी तिथिमें जो भगवान् विष्णुकी प्रसन्नताके लिये जागरण करता है, वह जीवन्मुक्त होता है। जो वैशाखकी द्वादशी तिथिको तुलसीके कोमलदलोंसे भगवान् विष्णुकी पूजा करता है, वह समूचे कुलका उद्धार करके वैकुण्ठलोकका अधिपति होता है। जो मनुष्य त्रयोदशी तिथिको दूध, दही, शक्कर, घी और शुद्ध मधु—इन पाँच द्रव्योंसे भगवान् विष्णुकी प्रसन्नताके लिये उनकी पूजा करता है तथा जो पंचामृतसे भक्तिपूर्वक श्रीहरिको स्नान कराता है, वह सम्पूर्ण कुलका उद्धार करके भगवान् विष्णुके लोकमें प्रतिष्ठित होता है। जो सायंकालमें भगवान् विष्णुकी प्रसन्नताके लिये शर्बत देता है, वह अपने पुराने पापको शीघ्र ही त्याग देता है। वैशाख शुक्ला द्वादशीमें मनुष्य जो कुछ पुण्य करता है, वह अक्षय फल देनेवाला होता है।

प्राचीन कालमें काश्मीरदेशमें देवव्रत नामक एक ब्राह्मण थे। उनके सुन्दर रूपवाली एक कन्या थी, जो मालिनीके नामसे प्रसिद्ध थी। ब्राह्मणने उस कन्याका विवाह सत्यशील नामक बुद्धिमान् द्विजके साथ कर दिया। मालिनी कुमार्गपर चलनेवाली पुंश्चली होकर स्वच्छन्दतापूर्वक इधर-उधर रहने लगी। वह केवल आभूषण धारण करनेके लिये पतिका जीवन चाहती थी, उसकी हितैषिणी नहीं थी। उसके घरमें काम-काज करनेके बहाने उपपति रहा करता था। सभी जातिके मनुष्य जारके रूपमें उसके यहाँ ठहरते थे। वह कभी पतिकी आज्ञाका पालन करनेमें तत्पर नहीं हुई। इसी दोषसे उसके सब अंगोंमें कीड़े पड़ गये, जो काल, अन्तक और यमकी भाँति उसकी हड्डियोंको भी छेदे डालते थे। उन कीड़ोंसे उसकी नाक, जिह्वा और कानोंका उच्छेद हो गया, स्तन तथा अंगुलियाँ गल गयीं, उसमें पंगुता भी आ गयी। इन सब क्लेशोंसे मृत्युको प्राप्त होकर वह नरककी यातनाएँ भोगने लगी। एक लाख पचास हजार वर्षोंतक वह ताँबेके भाण्डमें रखकर जलायी गयी, सौ बार उसे कुत्तेकी योनिमें जन्म लेना पड़ा। तत्पश्चात् सौवीर देशमें पद्मबन्धु नामक ब्राह्मणके घरमें वह अनेक दुःखोंसे घिरी हुई कुतिया हुई। उस समय भी उसके कान, नाक, पूँछ और पैर कटे हुए थे, उसके सिरमें कीड़े पड़ गये थे और योनिमें भी कीड़े भरे रहते थे। राजन्! इस प्रकार तीस वर्ष बीत गये। एक दिन वैशाखके शुक्ल पक्षकी द्वादशी तिथिको पद्मबन्धुका पुत्र नदीमें स्नान करके पवित्र हो भीगे वस्त्रसे घर आया। उसने तुलसीकी वेदीके पास जाकर अपने पैर धोये। दैवयोगसे वह कुतिया वेदीके नीचे सोयी हुई थी। सूर्योदयसे पहलेका समय था, ब्राह्मणकुमारके चरणोदकसे वह नहा गयी और तत्काल उसके सारे पाप नष्ट हो गये। फिर तो उसी क्षण उसे अपने पूर्वजन्मोंका स्मरण हो आया। पहलेके कर्मोंकी याद आनेसे वह कुतिया तपस्वीके पास जाकर दीनतापूर्वक पुकारने लगी—'हे मुने! आप हमारी रक्षा करें।' उसने पद्मबन्धु मुनिके पुत्रसे अपने पूर्वजन्मके दुराचारपूर्ण वृत्तान्त सुनाये और यह

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

भी कहा—'ब्रह्मन्! जो कोई भी दूसरी युवती पतिके ऊपर वशीकरणका प्रयोग करती है, वह दुराचारिणी मेरी ही तरह ताँबेके पात्रमें पकायी जाती है। पति स्वामी है, पति गुरु है और पति उत्तम देवता है। साध्वी स्त्री उस पतिका अपराध करके कैसे सुख पा सकती है?* पतिका अपराध करनेवाली स्त्री सैकड़ों बार तिर्यग्योनि (पशु-पक्षियोंकी योनि)-में और अरबों बार कीड़ेकी योनिमें जन्म लेती है। इसलिये स्त्रियोंको सदैव अपने पतिकी आज्ञा पालन करनी चाहिये। ब्रह्मन्! आज मैं आपकी दृष्टिके सम्मुख आयी हूँ। यदि आप मेरा उद्धार नहीं करेंगे, तो मुझे पुनः इसी यातनापूर्ण घृणित योनिका दर्शन करना पड़ेगा। अतः विप्रवर! मुझ पापाचारिणीको वैशाख शुक्ल पक्षमें अपना पुण्य प्रदान करके उबार लीजिये। आपने जो पुण्यकी वृद्धि करनेवाली द्वादशी की है, उसमें स्नान, दान और अन्नभोजन करानेसे जो पुण्य हुआ है, उससे मुझ दुराचारिणीका भी उद्धार हो जायगा। महाभाग! दीनवत्सल! मुझ दुःखियाके प्रति दया कीजिये। आपके स्वामी जगदीश्वर जनार्दन दीनोंके रक्षक हैं। उनके भक्त भी उन्हींके समान होते हैं। दीनवत्सल! मैं आपके दरवाजेपर रहनेवाली कुतिया हूँ। मुझ दीनाके प्रति दया कीजिये, मेरा उद्धार कीजिये। अन्तमें मैं आप द्विजेन्द्रको नमस्कार करती हूँ।'

उसका वचन सुनकर मुनिके पुत्रने कहा— कुतिया! सब प्राणी अपने किये हुए कर्मोंके ही सुख-दुःखरूप फल भोगते हैं। जैसे साँपको दिया हुआ शर्करामिश्रित दूध केवल विषकी वृद्धि करता है, उसी प्रकार पापीको दिया हुआ पुण्य उसके पापमें सहायक होता है।

मुनिकुमारके ऐसा कहनेपर कुतिया दुःखमें डूब गयी और उसके पिताके पास जाकर आर्तस्वरसे क्रन्दन करती हुई बोली—'पद्मबन्धु बाबा! मैं तुम्हारे दरवाजेकी कुतिया हूँ। मैंने सदा तुम्हारी जूठन खायी है। मेरी रक्षा करो, मुझे बचाओ। गृहस्थ महात्माके घरपर जो पालतू जीव रहते हैं, उनका उद्धार करना चाहिये, यह वेदवेत्ताओंका मत है। चाण्डाल, कौवे, कुत्ते—ये प्रतिदिन गृहस्थोंके दिये हुए टुकड़े खाते हैं; अतः उनकी दयाके पात्र हैं। जो अपने ही पाले हुए रोगादिसे ग्रस्त एवं असमर्थ प्राणीका उद्धार नहीं करता, वह नरकमें पड़ता है, यह विद्वानोंका मत है। संसारकी सृष्टि करनेवाले भगवान् विष्णु एकको कर्ता बनाकर स्वयं ही पत्नी, पुत्र आदिके व्याजसे समस्त जन्तुओंका पालन करते हैं; अतः अपने पोष्यवर्गकी रक्षा करनी चाहिये, यह भगवान्की आज्ञा है। दयालु होनेके कारण आप मेरा उद्धार कीजिये।'

दुःखसे आतुर हुई कुतियाकी यह बात सुनकर घरमें बैठा हुआ मुनिपुत्र तुरंत घरसे बाहर निकला। इसी समय दयानिधान पद्मबन्धुने कुतियासे पूछा—'यह क्या वृत्तान्त है?' तब पुत्रने सब समाचार कह सुनाया। उसे सुनकर पद्मबन्धु बोले—'बेटा! तुमने कुतियासे ऐसा वचन क्यों कहा? साधुपुरुषोंके मुँहसे ऐसी बात नहीं निकलती। वत्स! देखो तो, सब लोग दूसरोंका उपकार करनेके लिये उद्यत रहते हैं। चन्द्रमा, सूर्य, वायु, रात्रि, अग्नि, जल, चन्दन, वृक्ष और साधुपुरुष सदा दूसरोंकी भलाईमें लगे रहते हैं। दैत्योंको महाबली जानकर महर्षि दधीचिने देवताओंका उपकार करनेके लिये दयापूर्वक उन्हें अपने शरीरकी हड्डी दे दी थी। महाभाग!

* भर्ता नाथो गुरुर्भर्ता भर्ता दैवतमुत्तमम्। विक्रियां कृत्य साध्वी सा कथं सुखमवाप्नुयात्॥
(स्क० पु०, वै० वै० मा० २४। ६२)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

पूर्वकालमें राजा शिविने कबूतरके प्राण बचानेके लिये भूखे बाजको अपने शरीरका मांस दे दिया था। पहले इस पृथ्वीपर जीमूतवाहन नामक राजा हो गये हैं। उन्होंने एक सर्पका प्राण बचानेके लिये महात्मा गरुड़को अपना जीवन समर्पित कर दिया था। इसलिये विद्वान् ब्राह्मणको दयालु होना चाहिये; क्या इन्द्रदेव शुद्ध स्थानमें ही वर्षा करते हैं, अशुद्ध स्थानमें जल नहीं बरसाते? क्या चन्द्रमा चाण्डालोंके घरमें प्रकाश नहीं करते? अतः बार-बार प्रार्थना करनेवाली इस कुतियाका मैं अपने पुण्योंसे उद्धार करूँगा।'

इस प्रकार पुत्रकी मान्यताका निराकरण करके परम बुद्धिमान् पद्मबन्धुने संकल्प किया—'कुतिया! ले, मैंने द्वादशीका महापुण्य तुझे दे दिया।' ब्राह्मणके इतना कहते ही कुतियाने सहसा अपने प्राचीन शरीरका त्याग कर दिया और दिव्य देह धारणकर दिव्य वस्त्र-आभूषणोंसे विभूषित हो, दसों दिशाओंको प्रकाशित करती

हुई ब्राह्मणकी आज्ञा ले स्वर्गलोकको चली गयी। वहाँ महान् सुखोंका उपभोग करके इस पृथ्वीपर भगवान् नर-नारायणके अंशसे 'उर्वशी' नामसे प्रकट हुई।

वैशाख मासकी अन्तिम तीन तिथियोंकी महत्ता तथा ग्रन्थका उपसंहार

श्रुतदेवजी कहते हैं—राजेन्द्र! वैशाखके शुक्ल पक्षमें जो अन्तिम तीन त्रयोदशीसे लेकर पूर्णिमातककी तिथियाँ हैं, वे बड़ी पवित्र और शुभकारक हैं। उनका नाम 'पुष्करिणी' है, वे सब पापोंका क्षय करनेवाली हैं। जो सम्पूर्ण वैशाख मासमें स्नान करनेमें असमर्थ हो, वह यदि इन तीन तिथियोंमें भी स्नान करे तो वैशाख मासका पूरा फल पा लेता है। पूर्वकालमें वैशाख मासकी एकादशी तिथिको शुभ अमृत प्रकट हुआ। द्वादशीको भगवान् विष्णुने उसकी रक्षा की। त्रयोदशीको उन श्रीहरिने देवताओंको सुधा-पान कराया। चतुर्दशीको देवविरोधी दैत्योंका संहार किया और पूर्णिमाके दिन समस्त देवताओंको उनका साम्राज्य प्राप्त हो गया। इसलिये देवताओंने सन्तुष्ट होकर इन तीन तिथियोंको वर दिया—'वैशाख मासकी ये तीन शुभ तिथियाँ मनुष्योंके पापोंका नाश करनेवाली तथा उन्हें पुत्र-पौत्रादि फल देनेवाली हों। जो मनुष्य इस सम्पूर्ण मासमें स्नान न कर सका हो, वह इन तिथियोंमें स्नान कर लेनेपर पूर्ण फलको ही पाता है। वैशाख मासमें लौकिक कामनाओंका नियमन करनेपर मनुष्य निश्चय ही भगवान् विष्णुका सायुज्य प्राप्त कर लेता

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

है। महीनेभर नियम निभानेमें असमर्थ मानव यदि उक्त तीन दिन भी कामनाओंका संयम कर सके तो उतनेसे ही पूर्ण फलको पाकर भगवान् विष्णुके धाममें आनन्दका अनुभव करता है।'

इस प्रकार वर देकर देवता अपने धामको चले गये। अतः पुष्करिणी नामसे प्रसिद्ध अन्तिम तीन तिथियाँ पुण्यदायिनी, समस्त पापराशिका नाश करनेवाली तथा पुत्र-पौत्रको बढ़ानेवाली हैं। जो वैशाख मासमें अन्तिम तीन दिन गीताका पाठ करता है, उसे प्रतिदिन अश्वमेधयज्ञका फल मिलता है। जो उक्त तीनों दिन विष्णुसहस्रनामका पाठ करता है, उसके पुण्यफलका वर्णन करनेमें इस भूलोक तथा स्वर्गलोकमें कौन समर्थ है? पूर्णिमाको सहस्रनामोंके द्वारा भगवान् मधुसूदनको दूधसे नहलाकर मनुष्य पापहीन वैकुण्ठधाममें जाता है। वैशाख मासमें प्रतिदिन भागवतके आधे या चौथाई श्लोकका पाठ करनेवाला मनुष्य ब्रह्मभावको प्राप्त होता है। जो वैशाखके अन्तिम तीन दिनोंमें भागवतशास्त्रका श्रवण करता है, वह जलसे कमलके पत्तेकी भाँति कभी पापोंसे लिप्त नहीं होता। उक्त तीनों दिनोंके सेवनसे कितने ही मनुष्योंने देवत्व प्राप्त कर लिया, कितने ही सिद्ध हो गये और कितनोंने ब्रह्मत्व पा लिया। ब्रह्मज्ञानसे मुक्ति होती है। अथवा प्रयागमें मृत्यु होनेसे या वैशाख मासमें नियमपूर्वक प्रातःकाल जलमें स्नान करनेसे मोक्षकी प्राप्ति होती है। इसलिये वैशाखके अन्तिम तीन दिनोंमें स्नान, दान और भगवत्पूजन आदि अवश्य करना चाहिये। वैशाख मासके उत्तम माहात्म्यका पूरा-पूरा वर्णन रोग-शोकसे रहित जगदीश्वर भगवान् नारायणके सिवा दूसरा कौन कर सकता है। तुम भी वैशाख मासमें दान आदि उत्तम कर्मका अनुष्ठान करो। इससे निश्चय ही तुम्हें भोग और मोक्षकी प्राप्ति होगी।

इस प्रकार मिथिलापति जनकको उपदेश देकर श्रुतदेवजीने उनकी अनुमति ले वहाँसे जानेका विचार किया। तब राजर्षि जनकने अपने अभ्युदयके लिये उत्तम उत्सव कराया और श्रुतदेवजीको पालकीपर बिठाकर विदा किया। वस्त्र, आभूषण, गौ, भूमि, तिल और सुवर्ण आदिसे उनकी पूजा और वन्दना करके राजाने उनकी परिक्रमा की। तत्पश्चात् उनसे विदा हो महातेजस्वी एवं परम यशस्वी श्रुतदेवजी सन्तुष्ट हो प्रसन्नतापूर्वक वहाँसे अपने स्थानको गये। राजाने वैशाखधर्मका पालन करके मोक्ष प्राप्त किया।

नारदजी कहते हैं—अम्बरीष! यह उत्तम उपाख्यान मैंने तुम्हें सुनाया है, जो कि सब पापोंका नाशक तथा सम्पूर्ण सम्पत्तियोंको देनेवाला है। इससे मनुष्य भुक्ति, मुक्ति, ज्ञान एवं मोक्ष पाता है।

नारदजीका यह वचन सुनकर महायशस्वी राजा अम्बरीष मन-ही-मन बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने बाह्य जगत्के व्यापारोंसे निवृत्त होकर मुनिको साष्टांग प्रणाम किया और अपने सम्पूर्ण वैभवोंसे उनकी पूजा की। तत्पश्चात् उनसे विदा लेकर देवर्षि नारदजी दूसरे लोकमें चले गये; क्योंकि दक्ष प्रजापतिके शापसे वे एक स्थानपर नहीं ठहर सकते। राजर्षि अम्बरीष भी नारदजीके बताये हुए सब धर्मोंका अनुष्ठान करके निर्गुण परब्रह्म परमात्मामें विलीन हो गये। जो इस पापनाशक एवं पुण्यवर्द्धक उपाख्यानको सुनता अथवा पढ़ता है, वह परम गतिको प्राप्त होता है। जिनके घरमें यह लिखी हुई पुस्तक रहती है, उनके हाथमें मुक्ति आ जाती है। फिर जो सदा इसके श्रवणमें मन लगाते हैं, उनके लिये तो कहना ही क्या है।

वैशाखमास-माहात्म्य सम्पूर्ण

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

श्रीअयोध्या-माहात्म्य

अयोध्यापुरीकी महिमा और सीमाका वर्णन, चक्रतीर्थ एवं श्रीविष्णुहरिका माहात्म्य

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्॥

महाक्षेत्र कुरुक्षेत्रमें जब महात्मा राजा श्रीरामचन्द्रजीका बारह वर्षोंमें पूरा होनेवाला यज्ञ चल रहा था, उस समय उस यज्ञमें निमन्त्रित होकर शुद्ध अन्तःकरणवाले सभी मुनि पधारे थे, जो वेदों और वेदांगोंके पारगामी विद्वान् थे। वे वहाँ स्नान करके न्यायपूर्वक जप आदि कर्म करके वेद-वेदांगोंके पारंगत पण्डित भरद्वाज मुनिको आगे करके क्रमशः विचित्र-विचित्र आसनोंपर बैठे। उस समय व्यासशिष्य रोमहर्षण सूतजीसे भरद्वाज आदि मुनिवरोंने पूछा—'महाभाग! इस समय हम महापुरी अयोध्याका गुणोंसे उज्ज्वल एवं रहस्ययुक्त सनातन माहात्म्य सुनना चाहते हैं। विष्णुप्रिया अयोध्या कैसी है? उसमें कैसे स्थान हैं, कौन-कौन-से तीर्थ हैं और उसके सेवनसे कैसा फल प्राप्त होता है?'

सूतजी बोले—तपोधनो! मैं भगवान् व्यासको प्रणाम करके आपके आगे महापुरी अयोध्याके रहस्ययुक्त माहात्म्यका यथावत् वर्णन करता हूँ। अलसीके फूलकी भाँति जिनकी श्याम कान्ति है तथा जिन्होंने रावणका विनाश किया है, उन कमलके समान नेत्रोंवाले अविनाशी परमात्मा श्रीरामचन्द्रजीको मैं नमस्कार करता हूँ।* अयोध्यापुरी परम पवित्र है, पापी मनुष्योंको इसकी प्राप्ति होनी बहुत कठिन है। जिसमें साक्षात् भगवान् श्रीहरि निवास करते हैं, वह अयोध्यापुरी भला किसके सेवनके योग्य नहीं है? अयोध्या सरयूके तटपर बसी है। वह दिव्य पुरी परम शोभासे युक्त है। प्रायः बहुत-से तपस्वी महात्मा उसके भीतर निवास करते हैं। जिस पुरीमें सूर्यवंशी इक्ष्वाकु आदि सब राजा प्रजापालनमें तत्पर रहे हैं। जिसके किनारे मानसरोवरसे निकली हुई पुण्यसलिला सरयू नामवाली नदी सदा सुशोभित होती है और उसके तटपर भ्रमरोंके गुंजन एवं पक्षियोंके कलरव होते रहते हैं। मुनिवरो! भगवान् विष्णुके दहिने चरणके अँगूठेसे गंगाजी और बायें चरणके अँगूठेसे शुभकारिणी सरयूजी निकली हैं। इसलिये वे दोनों नदियाँ परम पवित्र तथा सम्पूर्ण देवताओंसे वन्दित हैं। इनमें स्नान करनेमात्रसे मनुष्य ब्रह्महत्याका नाश कर डालता है। अकार कहते हैं ब्रह्माको, यकार विष्णुका नाम है और धकार रुद्रस्वरूप है, इन सबके योगसे 'अयोध्या' नाम शोभित होता है। समस्त उपपातकोंके साथ ब्रह्महत्या आदि महापातक इस पुरीसे युद्ध नहीं कर सकते, इसलिये इसे 'अयोध्या' कहते हैं। यह भगवान् विष्णुकी आदिपुरी है और विष्णुके सुदर्शनचक्रपर स्थित है। अतएव पृथ्वीपर अतिशय पुण्यदायिनी है। इस पुरीकी महिमाका वर्णन कौन कर सकता है, जहाँ साक्षात् भगवान् विष्णु आदरपूर्वक निवास करते हैं। सहस्रधारातीर्थसे पूर्व दिशामें एक योजनतक और सम नामक स्थानसे पश्चिम दिशामें एक योजनतक, सरयूतटसे दक्षिण दिशामें एक योजनतक और तमसासे उत्तर दिशामें एक योजनतक इस अयोध्याक्षेत्रकी स्थिति है। यही भगवान् विष्णुका अन्तर्गृह है। यह

* नमामि परमात्मानं रामं राजीवलोचनम्। अतसीकुसुमश्यामं रावणान्तकमव्ययम्॥ (स्क० पु०, वै० अ० मा० १।२९)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

विष्णुपुरी मछलीके आकारवाली बतलायी गयी है। पश्चिम दिशामें गो-प्रतारतीर्थसे लेकर असीतीर्थपर्यन्त इसका मस्तक है, पूर्व दिशामें इसका पुच्छ भाग है और दक्षिण एवं उत्तर दिशामें इसका मध्यम भाग है।

प्राचीन कालमें विष्णुशर्मा नामसे विख्यात एक श्रेष्ठ ब्राह्मण थे। वे वेद-वेदांगके तत्त्वज्ञ और धर्म-कर्ममें तत्पर रहनेवाले थे। विष्णुशर्मा निरन्तर भगवान् विष्णुके भजनमें संलग्न रहते थे। एक दिनकी बात है, वे तीर्थयात्राके प्रसंगसे अयोध्यापुरीमें आये। वहाँ उन्होंने शाक, मूल और फल खाकर तपस्या प्रारम्भ की। सबेरे स्नान करके विधिपूर्वक भगवान् विष्णुकी पूजा करते और इन्द्रियसमुदायको वशमें करके विशुद्ध चित्तसे भगवान् विष्णुमें मन लगाकर प्राणायाम करते हुए ओंकारका जप करते तथा हृदयमें विकसित कमलका चिन्तन करके उसके ऊपर पीताम्बरधारी शंख-चक्र-गदाधर भगवान् विष्णुका ध्यान एवं पुष्प आदिसे मानसिक पूजन करते थे। ब्रह्मरूप श्रीहरिका ध्यान और द्वादशाक्षर मन्त्रका जप करते हुए वे वायु पीकर रहने लगे। इस प्रकार उस ब्राह्मणके तीन वर्ष बीत गये। तदनन्तर विप्रवर विष्णुशर्माने ध्यानपूर्वक भगवान् विष्णुका इस प्रकार स्तवन किया।

विष्णुशर्मा बोले—भगवन्! विष्णो! आप प्रसन्न होइये। पुरुषोत्तम! प्रसन्न होइये। देवदेवेश्वर! प्रसन्न होइये। कमलनयन! प्रसन्न होइये। कृष्ण! आपकी जय हो। अचिन्त्य परमेश्वर! आपकी जय हो। विष्णो! आपकी जय हो। अव्यय! आपकी जय हो। नाथ! यज्ञपते! आपकी जय हो। विष्णो! आप सबके पालक और सर्वत्र व्यापक हैं, आपकी जय हो। पापहारी अनन्त! आपकी जय हो। जन्मरूपी ज्वरका निवारण करनेवाले प्रभो! आपकी जय हो। जिनकी नाभिसे कमल प्रकट हुआ है तथा जो कमलकी माला धारण करते हैं, ऐसे आप श्रीहरिको नमस्कार है, नमस्कार है। सर्वेश! आपको नमस्कार है। कैटभका संहार करनेवाले भूतेश्वर! आपको नमस्कार है। जगत्के मूल कारण जगदीश्वर! आप तीनों लोकोंके रक्षक हैं, आपको नमस्कार है। आप देवताओंके भी अधिदेवता हैं, आपको नमस्कार है। आप जलमें शयन करनेवाले नारायण हैं, आपको नमस्कार है। सबको अपनी ओर आकृष्ट करनेवाले सच्चिदानन्दमय श्रीकृष्णको नमस्कार है। जहाँ योगीजनोंका मन रमण करता है, उन श्रीरामको नमस्कार है। चक्र-सुदर्शनधारी श्रीहरिको नमस्कार है। आप सब लोगोंकी माता हैं, आप ही जगत्के पिता हैं, भयसे व्याकुल प्राणियोंके लिये आप ही सुहृद् और मित्र हैं, आप ही पिता और पितामह हैं, हविष्य, वषट्कार, प्रभु और अग्नि सब कुछ आप ही हैं, आप ही करण, कारण, कर्ता और परमेश्वर हैं। हाथमें शंख-चक्र-गदा धारण करनेवाले माधव! मेरा उद्धार कीजिये। मन्दराचलधारी कच्छप! आप प्रसन्न होइये। मधुसूदन! प्रसन्न होइये। कमलाकान्त! प्रसन्न होइये। भुवनेश्वर! प्रसन्न होइये।

इस प्रकार स्तुति करते हुए महात्मा विष्णुशर्माकी भक्तिसे प्रसन्न हो विश्वात्मा भगवान् विष्णु गरुड़की पीठपर बैठे हुए वहाँ प्रकट हुए। उनके हाथोंमें शंख, चक्र और गदा शोभा पा रहे थे। वे पीताम्बरधारी अविनाशी श्रीहरि प्रसन्न चित्त हो विष्णुशर्मासे इस प्रकार बोले—'वत्स! मैं तुम्हारी बड़ी भारी तपस्यासे इस समय सन्तुष्ट हूँ। इस स्तोत्रसे तुम्हारा पाप नष्ट हो गया है। विप्रवर! कोई वर माँगो।' विष्णुशर्मा बोले—'देवेश! इस समय आपके दर्शनसे मैं कृतार्थ हो गया हूँ। जगदीश्वर! मुझे एकमात्र अपनी अविचल भक्ति प्रदान कीजिये।'

श्रीभगवान्ने कहा—तुम्हें मोक्ष देनेवाली मेरी अविचल वैष्णवी भक्ति प्राप्त हो और यहींपर

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

मुक्तिदायिनी गंगा भी प्रकट होकर अविचल-रूपसे रहें।

यों कहकर देवदेवेश्वर श्रीविष्णुने चक्रसे उस स्थलको खोदकर पातालमण्डलसे गंगाजीका जल प्रकट किया। तबसे वह स्थान चक्रतीर्थके नामसे विख्यात हुआ। वह त्रिभुवनप्रसिद्ध तीर्थ समस्त पापराशिका नाश करनेवाला है। वहाँ स्नान और दान करनेसे मनुष्य विष्णुलोकमें जाता है। तदनन्तर भगवान् विष्णुने विष्णुशर्मासे पुनः कहा—'विप्रवर! यहाँ भक्तोंको मुक्ति देनेवाली मेरी मूर्ति विष्णुहरिके नामसे प्रसिद्ध होकर रहे।' भगवान्की यह बात सुनकर बुद्धिमान् ब्राह्मणने भगवान् विष्णुकी उस मूर्तिको स्थापित किया। तबसे शंख, चक्र, गदा और पीताम्बर धारण करनेवाले चतुर्भुज भगवान् विष्णु वहाँ विष्णुहरिके नामसे स्थित हुए। कार्तिक शुक्ल पक्षकी दशमीसे लेकर पूर्णिमातक वहाँकी वार्षिक यात्रा होती है। चक्रतीर्थमें स्नान करके मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। जो वहाँ पितरोंके उद्देश्यसे पिण्डदान करेगा, उसके पितर तृप्त होकर भगवान् विष्णुके लोकमें जायँगे। समस्त सद्गुणोंके सागर ध्येयमूर्ति सच्चिदानन्दमय श्रीहरि इस प्रकार लोगोंको मुक्ति प्रदान करनेके लिये उत्तम स्वरूप धारण करके वहाँ स्थित हुए। जो वहाँ चक्रतीर्थमें स्नान करके अधिक भक्तिभावसे भगवान् विष्णुहरिकी पूजा करता है, वह पुण्यात्मा मनुष्य वैकुण्ठधाममें निवास करता है।

ब्रह्मकुण्ड, ऋणमोचन तथा पापमोचन आदि तीर्थोंकी महिमा

सूतजी कहते हैं—प्राचीन कालमें जगत्स्रष्टा ब्रह्माजीने भगवान् विष्णुको अयोध्यापुरीमें निवास करते देख स्वयं भी वहाँ रहनेका निश्चय किया। उन्होंने वहाँकी यात्रा की और अपने नामसे एक विशाल कुण्ड बनाया, जो अनेक देवताओंसे संयुक्त तथा अगाध जलराशिकी लोल लहरोंसे सुशोभित था। कुमुद, उत्पल, कह्लार और पुण्डरीकसे आच्छादित हुआ वह कुण्ड सब पापोंका नाश करनेवाला है। उस समय ब्रह्माजीने कुण्डके विषयमें इस प्रकार कहा—'इसमें विधिपूर्वक स्नान करनेसे पापी जीव भी विमानपर बैठकर सुन्दर, दिव्य वस्त्रसे सुशोभित हो प्रलयकालपर्यन्त ब्रह्मलोकमें निवास करेंगे। यहाँ यथाशक्ति दान और होम करनेसे मनुष्य तुलादान और अश्वमेध यज्ञका पुण्य प्राप्त कर लेंगे। इस तीर्थमें विधिपूर्वक किया हुआ स्नान, दान और जप आदि कर्म सम्पूर्ण यज्ञोंके समान महापातकोंका नाश करनेवाला होगा। यह कुण्ड ब्रह्मकुण्डके नामसे प्रसिद्ध होगा और इसके समीप मैं सदा निवास करूँगा।'

यों कहकर देवदेव, लोकपितामह ब्रह्माजी उस तीर्थको देखकर देवताओंके साथ अन्तर्धान हो गये। तभीसे वह कुण्ड इस पृथ्वीपर विशेष विख्यात है। वह महाकुण्ड चक्रतीर्थसे पूर्व दिशामें स्थित है। ब्रह्मकुण्डसे पूर्व-उत्तर दिशामें सात सौ धनुषकी दूरीपर सरयूजीके जलमें ऋणमोचन नामक तीर्थ विद्यमान है। वहाँ पूर्वकालमें तीर्थयात्राके प्रसंगसे आये हुए मुनिवर लोमशने विधिपूर्वक स्नान किया था। इससे वे ऋणमुक्त एवं पापशून्य हो गये। तब उन्होंने अपनी दोनों भुजाएँ ऊपर उठाकर हर्षसे आँसू बहाते हुए कहा—'यह ऋणमोचन नामक तीर्थ बहुत उत्तम है। मनुष्यपर इहलोक और परलोकके जो तीन प्रकारके ऋण हैं, वे सब इस तीर्थमें स्नान करनेमात्रसे क्षणभरमें नष्ट हो जाते हैं। इसलिये यहाँ फलकी इच्छा रखनेवाले पुरुषोंको श्रद्धापूर्वक विधिके साथ यथाशक्ति स्नान और दान करना चाहिये।' इस प्रकार तीर्थका माहात्म्य बतलाकर मुनिश्रेष्ठ लोमश उसके गुणकी प्रशंसा करते हुए अन्तर्धान हो गये। ऋणमोचन

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

तीर्थसे पूर्व दिशामें बीस धनुषकी दूरीपर पापमोचन तीर्थ है। यह भी सरयूके जलमें ही है। वहाँ स्नान करनेसे मनुष्य उसी क्षण सब पापोंसे मुक्त हो शुद्धचित्त हो जाता है। पांचालदेशमें नरहरि नामसे प्रसिद्ध एक ब्राह्मण था जो दुष्टोंके संगके प्रभावसे पापात्मा हो गया था। उसने ब्रह्महत्या आदि अनेक प्रकारके पाप किये थे। पापियोंके संसर्गमें आकर वह तीनों वेदोंके मार्गकी निन्दा करता था। वह किसी समय साधुओंके साथ तीर्थयात्राके प्रसंगसे अयोध्याजीमें आया। उस महापातकी ब्राह्मणने साधुसंगसे पापमोचन तीर्थमें स्नान किया। फिर तो उसी क्षण उसकी सारी पापराशि नष्ट हो गयी और वह निष्पाप हो दिव्य विमानपर बैठकर विष्णुधाममें चला गया। मनुष्योंको सब पापकी शुद्धिके लिये वहाँ माघकृष्ण चतुर्दशीको विशेषरूपसे स्नान और दान करना चाहिये। अन्य समयमें भी स्नान करनेपर सब पापोंका क्षय हो जाता है।

पापमोचन तीर्थसे पूर्व दिशामें सौ धनुषकी दूरीपर सहस्रधारा नामक उत्तम तीर्थ है जो सब पापोंका नाश करनेवाला है। उसीमें शत्रु-वीरोंका नाश करनेवाले वीरवर लक्ष्मण श्रीरामचन्द्रकी आज्ञासे योगशक्तिद्वारा प्राण त्यागकर अपने शेष नामक स्वरूपको प्राप्त हुए थे। एक धनुषका प्रमाण साढ़े तीन हाथ माना गया है और चार हाथका एक दण्ड बताया गया है। पहलेकी बात है, रघुकुलनायक श्रीरामचन्द्रजी देवताओंका कार्य पूरा करके कालके साथ बैठकर एकान्तमें मन्त्रणा कर रहे थे। उस समय उन्होंने यह प्रतिज्ञा की थी कि परस्पर मन्त्रणा करते समय हम दोनोंको जो कोई समीप आकर देखेगा, वह शीघ्र ही मेरे द्वारा त्याग दिया जायगा। ऐसा निश्चय करके जब वे मन्त्रणा करने लगे तब लक्ष्मणजी राजद्वारपर खड़े हो पहरा देने लगे। उसी समय तेजोनिधि, तपोराशि दुर्वासाजी आ पहुँचे और भूखसे व्याकुल हो लक्ष्मणजीसे प्रेमपूर्वक बोले—'सुमित्रानन्दन! तुम शीघ्र जाओ तथा श्रीरामचन्द्रजीके आगे मेरे आगमनकी सूचना दो। मैं कार्यवश उनसे मिलने आया हूँ। तुम्हें मेरी यह बात टालनी नहीं चाहिये।'

तब लक्ष्मणजी शापसे डरकर शीघ्र ही भीतर गये और श्रीरामचन्द्रजी तथा कालदेव दोनोंके सामने खड़े हो यह निवेदन किया कि 'तपोराशि अत्रिनन्दन दुर्वासा श्रीरघुनाथजीका दर्शन करनेके लिये आये हैं।' श्रीरामचन्द्रजीने कालसे सलाह करके उन्हें विदा किया तथा स्वयं बाहर निकले। बाहर आनेपर उन्होंने मुनिको देखा और प्रणाम करके उन्हें आदरपूर्वक भोजन कराया। उसके बाद उन्हें सम्मानपूर्वक विदा किया तथा सत्य-भंग होनेके भयसे श्रीरघुवीरने लक्ष्मणको त्याग दिया। लक्ष्मणजी भी अपने बड़े भाईकी आज्ञाको सफल बनानेके लिये सरयूके तटपर आये और स्नान करके ध्यानका आश्रय ले सच्चिदानन्दमय परमेश्वरमें अपने शान्त मनको शीघ्र ही लगाकर अविचलभावसे बैठ गये। तदनन्तर सहस्रफणोंसे

सुशोभित शेषनाग पृथ्वीको सहस्र छिद्रोंमें भेदन करके वहाँ प्रकट हुए। इसी समय देवराज इन्द्र

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

भी देवताओंको साथ लेकर स्वर्गलोकसे वहाँ आये। शेषनागके फणोंकी सहस्र मणियोंसे वहाँकी पृथ्वी दग्ध हो गयी थी; इसलिये सरयूतटवर्ती यह शुभकारक महातीर्थ सहस्रधाराके नामसे विख्यात हुआ। इस क्षेत्रका प्रमाण पचीस धनुष है; इस तीर्थमें मनुष्य श्रद्धापूर्वक स्नान, दान और श्राद्ध करनेसे सब पापोंसे शुद्ध हो भगवान् विष्णुके लोकमें जाता है। इसमें स्नान करके अविनाशी भगवान् शेषकी विधिपूर्वक पूजा करनेवाला मनुष्य वैकुण्ठधामको प्राप्त होता है। अतः इस तीर्थमें विधिवत् स्नान करना चाहिये। श्रावणके शुक्ल पक्षमें जो पंचमी तिथि होती है, उसमें यहाँ नागोंके उद्देश्यसे यत्नपूर्वक उत्सव करना चाहिये। उस उत्सवमें पहले शेषनागका पूजन करना उचित है। नागपूजापूर्वक ब्राह्मणको भक्तिपूर्वक सन्तुष्ट किया जाय, तो सभी सर्प प्रसन्न होते हैं और प्रसन्न होनेपर वे मनुष्योंको कभी पीड़ा नहीं देते हैं। जो वैशाख मासमें एकाग्रचित्त होकर यहाँ स्नान करते हैं, उनकी पुनरावृत्ति नहीं होती। इसलिये मनुष्योंको इस तीर्थमें यत्नपूर्वक वैशाख मासका स्नान, दान, श्रीहरिका पूजन और ब्राह्मणोंका सत्कार करना चाहिये। जो बुद्धिमान् मनुष्य इस तीर्थमें अपनी शक्तिके अनुसार विधिपूर्वक स्नान-दान आदि करता है, वह शुद्धचित्त होकर इस लोकमें प्रचुर सुखोंका उपभोग करता है और भक्तिभावके प्रभावसे अन्तमें शेषशायी भगवान् विष्णुका सायुज्य प्राप्त कर लेता है।

स्वर्गद्वार तथा चन्द्रहरितीर्थकी महिमा, चन्द्रसहस्त्रव्रतकी उद्यापनविधि

सूतजी कहते हैं—स्वर्गद्वार नामसे प्रसिद्ध तीर्थ सब पापोंको दूर करनेवाला है। स्वर्गद्वारके माहात्म्यका विस्तारपूर्वक वर्णन करनेमें कोई भी समर्थ नहीं है, इसलिये संक्षेपसे सुनो। सरयूके जलमें सहस्रधारा तीर्थसे लेकर पूर्व दिशामें छः सौ छत्तीस धनुषतक पुराणके ज्ञाताओंने स्वर्गद्वारका विस्तार बतलाया है। सब तीर्थोंमें स्नान करनेका फल अपनेको प्राप्त हो, ऐसी इच्छा रखनेवाले पुरुषको यहाँ विशेषरूपसे प्रातःकाल स्नान करना चाहिये। स्वर्गद्वारमें जो जप, तप, हवन, दर्शन और ध्यान, अध्ययन एवं दान आदि किया जाता है, वह सब अक्षय होता है। सहस्रों जन्मान्तरोंमें पहले जो पाप संचित किया गया है, वह स्वर्गद्वारमें प्रवेश करनेमात्रसे तत्काल नष्ट हो जाता है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, वर्णसंकर, म्लेच्छ, संकीर्ण पापयोनि, कीड़े, मकोड़े, मृग, पक्षी जो भी स्वर्गद्वारमें कालसे मृत्युको प्राप्त होते हैं, वे सब हाथमें कौमोदकी गदा ले गरुड़ध्वज रथपर आरूढ़ हो सुन्दर कल्याणमय वैकुण्ठधाममें जाते हैं। जो लोग आदरपूर्वक वहाँ मध्याह्नमें स्नान करते हैं तथा जो जितेन्द्रिय पुरुष स्वर्गद्वारमें निराहार व्रत करते हैं अथवा जो एक मासतक उपवास करनेवाले हैं, वे सभी उत्तम स्थानको प्राप्त होते हैं। जो स्वर्गद्वारमें ब्राह्मणोंको अन्नदान, रत्नदान, भूमिदान, गोदान तथा वस्त्रदान करते हैं, वे सब श्रीहरिके धामको जाते हैं। देवाधिदेव भगवान् विष्णु अपने स्वरूपको चार शरीरोंमें व्यक्त करके रघुवंशशिरोमणि श्रीराम होकर अपने तीनों भाइयोंके साथ यहाँ नित्य विहार करते हैं। इसी स्वर्गद्वारमें कैलासनिवासी शिव भी वास करते हैं। मेरु तथा मन्दराचलके समान पापकी बड़ी भारी राशि भी स्वर्गद्वारमें पहुँचते ही नष्ट हो जाती है। ऋषि, देवता, असुर, जप-होमपरायण मनुष्य, संन्यासी और मुमुक्षु पुरुष स्वर्गद्वारका सेवन करते हैं। काशीमें योगयुक्त होकर शरीर त्याग करनेवाले पुरुषोंको

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

जो गति प्राप्त होती है, वही एकादशीको सरयूमें स्नान करनेमात्रसे मिल जाती है। वे भगवान् विष्णुकी भक्तिको पाकर निश्चय ही परमानन्दको प्राप्त होते हैं।

एक समय शीतरश्मि चन्द्रमा अयोध्यावासी भगवान् विष्णुको नमस्कार करके उत्कण्ठापूर्वक यहाँके तीर्थकी महिमाका साक्षात्कार करनेके लिये आये। यहाँ आकर उन्होंने क्रमशः प्रत्येक तीर्थमें विधिपूर्वक यात्रा की। इससे उन्हें अनेक प्रकारके आश्चर्यका अनुभव हुआ। तत्पश्चात् दुष्कर तपस्याद्वारा भगवान् विष्णुकी आराधना करके उनकी प्रसन्नता प्राप्त की और वहाँ अपने नामके साथ भगवान्का नाम रखकर उनके अर्चाविग्रहको स्थापित किया। इससे वे भगवान् वहाँ चन्द्रहरिके नामसे विख्यात हुए। श्रीवासुदेवके प्रसादसे वह स्थान अद्भुत हो गया। वह श्रीविष्णुका अत्यन्त गूढ़ स्थान है। समस्त प्राणियोंके मोक्षके स्वामी श्रीरघुनाथजीके इस दिव्य स्थानमें सिद्धपुरुष सदा श्रीविष्णुका व्रत धारण किये निवास करते हैं। नाना प्रकारके वेषवाले जितेन्द्रिय मुक्तात्मा पुरुष यहाँ विष्णुलोककी आकांक्षा रखकर नित्य उत्तम योगका अभ्यास करते हैं। यहाँ मनुष्य जिस प्रकार धर्मका फल पाता है, वैसा अन्यत्र कहीं नहीं पाता। इसमें किया हुआ दान, व्रत और होम सब अक्षय होता है। मनुष्योंको यहाँ भगवान् चन्द्रहरिके आगे ब्राह्मणकी प्रधानतामें चन्द्रसहस्रव्रतकी उद्यापनविधि करनी चाहिये। दो वर्ष, आठ महीने और सत्रह दिन बीतनेपर दिनके आठवें भागमें एक अधिमास आकर प्राप्त होता है*। तिरासी वर्ष चार महीनेमें एक सहस्रसे अधिक चन्द्रमा (पूर्णमासी तिथिमें) होते हैं। उतने समयतक जो मनुष्य जीवित रहता है, उसको यात्राके प्रसंगसे यहाँ आकर उद्यापन करना चाहिये। चतुर्दशीमें दन्तधावनपूर्वक स्नान करके पवित्र हो, ब्रह्मचर्यव्रतका पालन करते हुए मन, वाणी और शरीरको काबूमें रखे और पूर्णिमा तिथिको भी उसी प्रकार रहते हुए चन्द्रमाकी पूजा करे। पहले गौरी आदि षोडश मातृकाओंकी पूजा करनी चाहिये। उसके बाद भक्तिपूर्वक नान्दीमुख श्राद्ध करके ऋत्विजोंका पूजन करे। मनको पवित्र रखते हुए चन्द्रमण्डलके आकारकी प्रतिमा बनवावे। तदनन्तर शास्त्रोक्त विधानसे चन्द्रमाकी पूजा करे। चन्द्रमाके मन्त्रसे होम करे। प्रतिमा स्थापन करते समय भी सोममन्त्रका उच्चारण करे, सोमकी उत्पत्ति और सोमसूक्तका पाठ करे। मण्डलमें चन्द्रन्यास, कलान्यास और विधिपूर्वक एकादश इन्द्रियोंका न्यास करे। उत्तम अक्षतोंसे चन्द्रबिम्बके समान मण्डल बनावे। उसके बीचमें गायके दूधसे भरे हुए कलशकी स्थापना करे। फिर उस मण्डलमें भिन्न-भिन्न नामोंद्वारा क्रमशः चन्द्रमाकी पूजा करे— **हिमांशवे नमः, सोमचन्द्राय नमः, चन्द्राय नमः, विधवे नमः, कुमुदबन्धवे नमः, सुधांशवे नमः, सोमाय नमः, ओषधीशाय नमः, अब्जाय नमः, मृगाङ्काय नमः, कलानिधये नमः, नक्षत्रनाथाय नमः, शर्वरीपतये नमः, जैवातृकाय नमः, द्विजराजाय नमः, चन्द्रमसे नमः** —इन सोलह नामोंसे क्रमशः चन्द्रमाका स्तवन करे। तदनन्तर पवित्र चित्त हो शंखमें जल, फल, फूल और चन्दन लेकर निम्नांकित मन्त्रसे विधिपूर्वक अर्घ्य दे—

अर्घ्य-मन्त्र

नमस्ते मासमासान्ते जायमान पुनः पुनः।
गृहाणार्घ्यं शशाङ्क त्वं रोहिण्या सहितो मम॥

'प्रत्येक मासके अन्तमें पूर्णरूपेण प्रकट होनेवाले चन्द्रदेव! आपको नमस्कार है, आप रोहिणी देवीके साथ पधारकर मेरा यह अर्घ्य स्वीकार करें।'

इस प्रकार विधिपूर्वक अर्घ्य देकर चन्द्रमाको

* गते वर्षद्वये सार्धे पञ्चपक्षे दिनद्वये। दिवसस्याष्टमे भागे पतत्येकोऽधिमासकः॥ (स्क० पु०, वै० अ० मा० ३।५६)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

प्रणाम करे। दूधसे भरे हुए अन्य सोलह कलशोंको वस्त्रसे आच्छादित करके शान्तिके लिये ब्राह्मणोंको दान करना चाहिये। तत्पश्चात् दूधमिश्रित जलसे अभिषेक करे; फिर वैभवके अनुसार दक्षिणा देकर ऋत्विजोंको सन्तुष्ट करे। उसके बाद ब्राह्मणको उसके कुटुम्बसहित भोजन करावे। द्विजदम्पतिकी वस्त्रोंद्वारा विधिपूर्वक पूजा करे। तदनन्तर पर्याप्त दक्षिणा दान करना चाहिये; फिर उपवासकी विधिसे बुद्धिमान् पुरुष शेष दिन व्यतीत करे। दूसरे दिन पुनः भगवान् विष्णुकी पूजा करके भाई-बन्धुओंके साथ भोजन करे और नियमका विसर्जन करे। जो इस प्रकार उत्तम चन्द्रसहस्रव्रतका पालन करता है, वह महापातकी हो, तो भी शुद्धचित्त होकर चन्द्रलोकमें जाता है।

धर्महरिकी स्थापना और स्वर्णखनि तीर्थ, रघुका सर्वस्व दान तथा कौत्सकी याचनाको सफल करना

चन्द्रहरिके स्थानसे अग्निकोणमें भगवान् धर्महरिके नामसे विराजमान हैं, जो कलिके समस्त पापोंका नाश करनेवाले हैं। प्राचीनकालमें वेद और वेदांगोंके तत्त्वज्ञ तथा अपने वर्णाश्रमोचित कर्ममें तत्पर धर्म नामक ब्राह्मण तीर्थयात्रा करनेकी इच्छासे अयोध्यापुरीमें आये और बड़ी श्रद्धाके साथ यहाँके प्रत्येक तीर्थमें घूमते रहे। अयोध्याका अनुपम माहात्म्य देखकर उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ और उन्होंने बड़े हर्षके साथ यह उद्गार प्रकट किया, 'अहो! अयोध्याके समान दूसरी कोई पुरी नहीं दिखायी देती। जहाँ साक्षात् भगवान् विष्णु निवास करते हैं, उसकी किससे उपमा हो सकती है। अहो! यहाँके सब तीर्थ भगवान् विष्णुका लोक प्रदान करनेवाले हैं।' ऐसा कहकर ब्राह्मणने आनन्दमग्न होकर बहुत नृत्य किया। अयोध्याका विशेष माहात्म्य देखकर जब धर्म नृत्य कर रहे थे, उस समय पीताम्बरधारी भगवान् विष्णु उनपर कृपा करके प्रकट हुए। धर्मने भगवान्को प्रणाम करके आदरपूर्वक उनका स्तवन किया।

धर्म बोले—क्षीरसागरमें निवास करनेवाले आपको नमस्कार है। शेषनागकी शय्यापर शयन करनेवाले श्रीहरिको नमस्कार है। भगवान् शंकर जिनके दिव्य चरणारविन्दोंका स्पर्श करते हैं, उन भगवान् विष्णुको नमस्कार है। जिनके उत्तम चरण भक्तिभावसे पूजित हैं, उन भगवान्को नमस्कार है। ब्रह्मा आदिके प्रियतम आप श्रीनारायणको नमस्कार है। शुभ अंग तथा सुन्दर नेत्रोंवाले भगवान् लक्ष्मीपतिको बार-बार नमस्कार है। जिनके चरण कमलके समान सुन्दर हैं, उन भगवान्को नमस्कार है। जिनकी नाभिसे कमल प्रकट हुआ है, उन मधुसूदनको नमस्कार है। क्षीरसागरकी उत्ताल तरंगे जिनके श्रीअंगोंका स्पर्श करती रहती हैं, उन शार्ङ्ग-धनुषधारी भगवान् विष्णुको नमस्कार है। योगनिद्राका आश्रय लेनेवाले भगवान्को नमस्कार है। गरुड़की पीठपर बैठनेवाले भगवान् गोविन्ददेवको बार-बार नमस्कार है। जिनके केश, नासिका और ललाट सब सुन्दर हैं, उन भगवान् चक्रपाणिको नमस्कार है। सुन्दर वस्त्र तथा मनोहर श्यामवर्णवाले भगवान् श्रीधरको बार-बार नमस्कार है। सुन्दर भुजाओंवाले आप श्रीहरिको नमस्कार है। मनोहर जंघावाले आपको नमस्कार है। सुन्दर वस्त्र, सुन्दर दिव्य वेष और सुन्दर विद्यावाले आप भगवान् गदाधरको नमस्कार है। शान्तस्वरूप, वामनरूपधारी केशवको बार-बार नमस्कार है। जिन्हें धर्म प्रिय है, उन पीताम्बरधारी आप भगवान् विष्णुको नमस्कार है।

धर्मके द्वारा स्तुति की जानेपर सम्पूर्ण जगत्के

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

स्वामी भगवान् लक्ष्मीपतिने प्रसन्न होकर कहा—'धर्म! मैं तुम्हारे इस स्तोत्रसे बहुत प्रसन्न हूँ। उत्तम व्रतका पालन करनेवाले धर्मज्ञ धर्म! जो तुम्हारे मनको प्रिय हो, ऐसा कोई वर माँगो। जो मनुष्य इस स्तोत्रद्वारा मेरी स्तुति करेगा, वह सब कामनाओंको प्राप्त कर लेगा।'

धर्म बोले—भगवन्! देवदेव जगत्पते! जगद्गुरो! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं, तो मैं यहाँ आपकी स्थापना करूँगा।

'एवमस्तु' कहकर सर्वव्यापक भगवान् विष्णु धर्महरिके नामसे प्रसिद्ध हुए। भगवान् धर्महरिका स्मरण करनेमात्रसे मनुष्य मुक्त हो जाता है। कितनी ही चिन्तासे व्याकुल क्यों न हो, यदि सरयूजीके जलमें स्नान करके मनुष्य भगवान् धर्महरिका दर्शन करता है तो वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है; जहाँ साक्षात् भगवान् विष्णु आदरपूर्वक निवास करते हैं; अतः मनुष्य इसकी महिमाका वर्णन नहीं कर सकता। आषाढ़ मासके शुक्ल पक्षकी एकादशी तिथिमें वहाँकी वार्षिक यात्रा विधिपूर्वक सम्पन्न करनी चाहिये। स्वर्गद्वारमें स्नान करके भगवान् धर्महरिका दर्शन करनेसे मनुष्य सब पापोंसे शुद्ध हो भगवान् विष्णुके धाममें निवास करता है।

धर्महरिसे दक्षिण दिशामें सोनेकी उत्तम खान है, जहाँ कुबेरने राजा रघुके भयसे सोनेकी वर्षा की थी। पूर्वकालमें इक्ष्वाकुवंशकी कीर्ति बढ़ानेवाले राजा रघु अपनी उदार भुजाओंके बलसे सम्पूर्ण भूमण्डलका शासन करते थे। उनके प्रतापसे संतप्त हुए शत्रुवर्गके लोग उनके उत्तम यशका वर्णन करते थे। प्रजाओंका न्यायपूर्वक पालन करनेवाले उस नीतिमान् राजाने अपने यशके प्रवाहसे दसों दिशाओंको उज्ज्वल प्रभासे आलोकित कर रखा था। उन्होंने दिग्विजययात्राके क्रमसे बहुत अधिक धनका संग्रह किया था। घर लौटकर उन्होंने यज्ञके लिये उत्सुक हो अपनी वंश-परम्पराके योग्य कर्म किया और निर्मल बुद्धिका परिचय दिया। वशिष्ठ मुनिसे आज्ञा लेकर राजा रघुने वामदेव, कश्यप तथा अन्य मुनिवरोंको, जो अनेक तीर्थोंमें निवास करते थे, एक विनयशील ब्राह्मणके द्वारा बुलवाया। प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्वी उन सब मुनियोंके वहाँ उपस्थित होनेका समाचार पाकर शत्रुविजयी महायशस्वी रघु स्वयं ही राजभवनसे बाहर निकले और उन सबके सामने नतमस्तक होकर यज्ञकी सिद्धिके लिये यह धर्मयुक्त वचन बोले—'मुनिवरो! मैं यज्ञ करना चाहता हूँ, इसके लिये आप मुझे आज्ञा प्रदान करें।'

मुनि बोले—राजन्! विश्वजित् नामक यज्ञ सब यज्ञोंमें उत्तम है। इस समय उसीका यत्नपूर्वक अनुष्ठान कीजिये।

तब राजाने अनेक प्रकारकी सामग्रियोंसे परम मनोहर प्रतीत होनेवाला वह विश्वदिग्जय (विश्वजित्) नामक यज्ञ किया, जिसमें सर्वस्वकी दक्षिणा दे दी जाती है। नाना प्रकारके दानसे उन्होंने मुनियोंको सन्तोष और हर्ष प्रदान किया और ब्राह्मणोंको अत्यन्त आदरपूर्वक सर्वस्व दान कर दिया। वे सब ब्राह्मण जब राजाद्वारा पूजित होकर अपने-अपने घरोंको चले गये तथा प्रणाम आदिसे सत्कृत हुए मुनि भी अपने आश्रमको पधारे, तब वे सदाचारी राजा रघु विधिपूर्वक किये हुए उस यज्ञसे बड़ी शोभा पाने लगे। इसी समय विश्वामित्र मुनिके शिष्य एवं संयमी पुरुषोंमें श्रेष्ठ कौत्स गुरुकी दक्षिणाके लिये राजाको पवित्र करनेके लिये आये। उनको आया हुआ जान राजा रघु बड़े आदरसे उठे और विधिपूर्वक उनका पूजन किया। राजाने मिट्टीके पात्रोंद्वारा ही कौत्स मुनिका पूजनकार्य सम्पन्न किया। तत्पश्चात् कौत्सने कहा—'राजन्! आपका अभ्युदय हो, इस समय मैं अन्यत्र जाता हूँ। आपने अपना सर्वस्व दक्षिणामें दे डाला है। मैं गुरुजीको देनेके लिये धन माँगनेके लिये आया था, किंतु आपके पास धनका अभाव है; इसलिये आपसे याचना नहीं करता।'

मुनिके ऐसा कहनेपर शत्रुविजयी रघुने क्षणभर

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

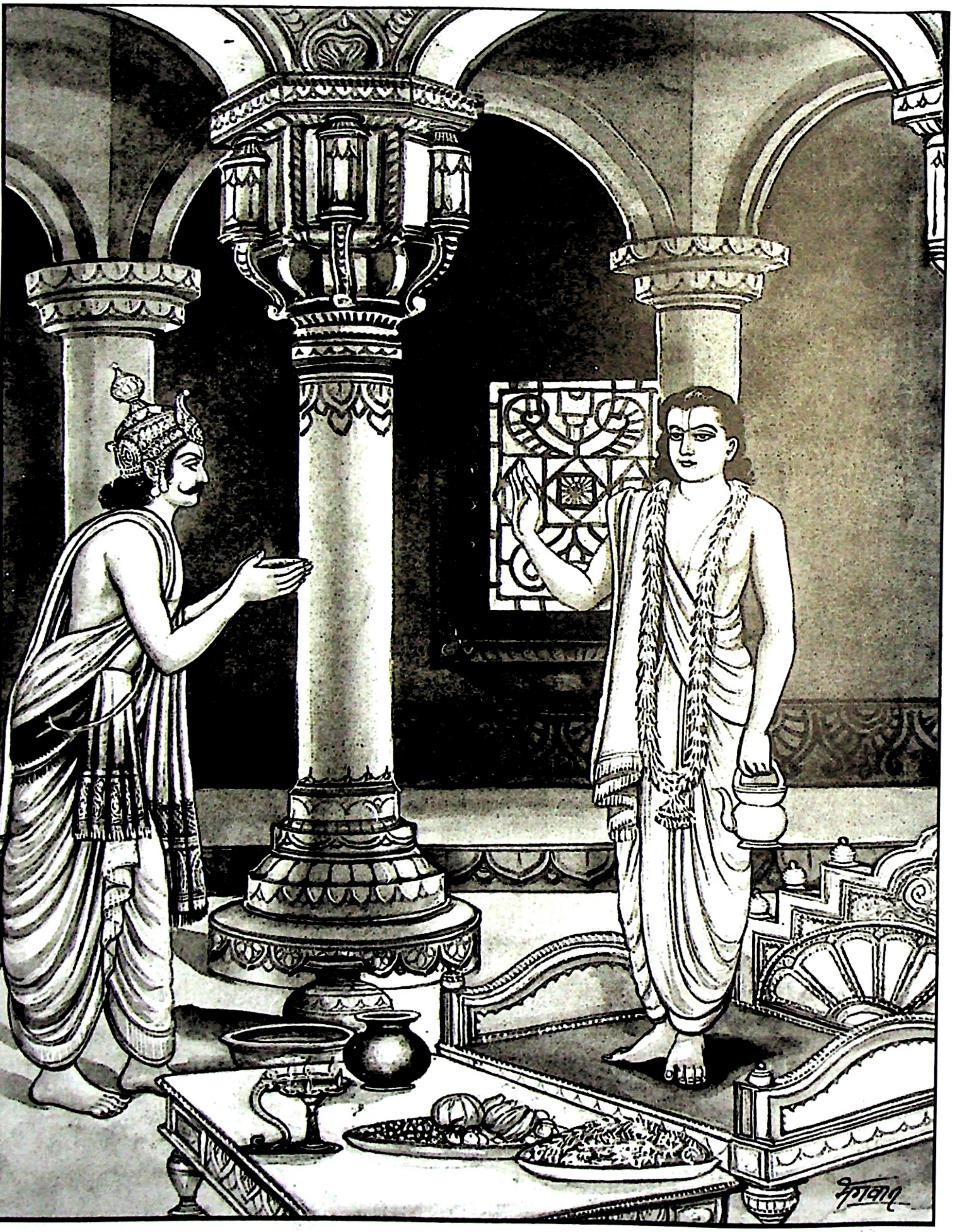

सर्वस्वदानी रघु और ब्राह्मण कौत्स

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

कुछ विचार किया; फिर विनयसे हाथ जोड़कर कहा—'भगवन्! मेरे महलमें एक दिन ठहरिये। तबतक मैं आपके धनके लिये विशेष प्रयत्न करता हूँ।' उदारबुद्धिवाले राजा रघुने यह परम उदारतापूर्ण वचन कहकर धनाध्यक्ष कुबेरको जीतनेकी इच्छासे प्रस्थान किया। कुबेरजीने उन्हें आते देख सन्देश भेजकर उनके मनको संतुष्ट किया और अयोध्यामें ही सुवर्णकी अक्षय वर्षा की। जहाँ वह वर्षा हुई थी, वहाँ सोनेकी उत्तम खान बन गयी। कुबेरकी दी हुई वह सोनेकी खान राजाने मुनिको दिखलायी और उन्हें समर्पित कर दी। मुनीश्वर कौत्सने भी गुरुके लिये जितना आवश्यक था, उतना धन आदरपूर्वक ले लिया और शेष सारा धन राजाको ही निवेदन किया और कहा—'राजन्! तुम्हें अपने कुलके गुणोंसे सम्पन्न सत्पुत्रकी प्राप्ति हो और यह जो सुवर्णकी खान है, वह मनोवांछित फल देनेवाली हो। यहाँ सब पापोंका अपहरण करनेवाला उत्तम तीर्थ हो जाय। वैशाख मासके शुक्ल पक्षकी द्वादशी तिथिको यहाँकी वार्षिक यात्रा हो और उसमें मेरे कथनानुसार लोगोंको अनेक प्रकारके अभीष्ट फलकी प्राप्ति हो।'

इस प्रकार राजाको वर देकर संतुष्ट चित्तवाले कौत्स मुनि अपना कार्य सिद्ध करनेके लिये उत्कण्ठापूर्वक गुरुके आश्रमपर चले गये।

सम्भेदतीर्थ, सीताकुण्ड, गुप्तहरि और चक्रहरि तीर्थकी महिमा

सूतजी कहते हैं—स्वर्णखनिसे दक्षिण दिशामें सिद्धसेवित 'सम्भेद' तीर्थ है, जो तिलोदकी और सरयूके संगमसे विख्यात हुआ है। महाभाग! उसमें स्नान करके मनुष्य पापरहित होते हैं। दस अश्वमेध यज्ञोंका अनुष्ठान करनेसे जो फल होता है, वही धर्मात्मा पुरुष नियमपूर्वक उसमें स्नान करके प्राप्त कर लेता है। जो मनुष्य वहाँ वेदोंके पारगामी विद्वान् ब्राह्मणको सुवर्ण आदि देता है, वह उत्तम गतिको पाता है। भादोंके कृष्ण पक्षकी अमावास्याको वहाँकी यात्रा होती है। भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने दूसरे समुद्रकी भाँति उस नदीका निर्माण किया था। उसमें तिलकी तरह काले रंगका जल सदा शोभा पाता था। इसलिये वह पुण्यसलिला नदी 'तिलोदकी' नामसे विख्यात हुई। पवित्र व्रत धारण करनेवाला मनुष्य संगमसे अन्यत्र भी यदि तिलोदकीमें स्नान करे तो वह सात जन्मके पापोंसे मुक्त हो जाता है। धर्मकी अभिलाषा रखनेवाले मनुष्योंको यत्नपूर्वक वहाँ स्नान करना चाहिये। वहाँ किये हुए स्नान, दान, व्रत, होम सभी अक्षय होते हैं। उस संगमसे पश्चिम दिशामें तटपर 'सीताकुण्ड' नामसे विख्यात एक तीर्थ है, जो समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाला है। उसमें स्नान करके मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। सीताजीने स्वयं ही उस कुण्डका निर्माण किया है तथा श्रीरामचन्द्रजीने वरदान देकर उसे महान् फलोंकी निधि बना दिया है।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

श्रीराम बोले—सौभाग्यवती सीते! इस तीर्थमें विधिपूर्वक किया हुआ स्नान, दान, जप, होम अथवा तप सब अक्षय हो। मार्गशीर्ष कृष्णा चतुर्दशीको यहाँ स्नानका विशेष पर्व होगा। उस समय इसमें स्नान करनेवाले मनुष्योंके समस्त पापोंका नाश होगा।

प्रजाप्रेमी श्रीरामचन्द्रजीने सीताजीको इस प्रकार वरदान दिया था। तभीसे यह तीर्थ पृथ्वीपर प्रसिद्ध है। सीताकुण्ड मनुष्योंके लिये बड़ा अद्भुत तीर्थ है। उस तीर्थमें स्नान करके मनुष्य निश्चय ही भगवान् श्रीरामचन्द्रजीको प्राप्त कर लेता है। उसमें स्नान, दान और तपस्या करके चन्दन, माला, धूप, दीप तथा अनेक भाँतिके वैभवविस्तारसे श्रीराम और सीताजीकी पूजा करके मनुष्य मुक्त हो जाता है। मार्गशीर्ष मासमें यहाँ स्नान करना चाहिये। इससे फिर गर्भमें नहीं आना पड़ता। अन्य समयमें भी यहाँ स्नान करके मनुष्य भगवान् विष्णुके लोकमें जाता है। भगवान् विष्णुहरिके पश्चिम दिशामें चक्रहरि नामसे प्रसिद्ध श्रीविष्णु निवास करते हैं, जो समस्त मनोवांछित फलोंको देनेवाले हैं। बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ विद्वान् पुरुष भी चक्रहरिकी महिमाका वर्णन नहीं कर सकते। वहाँसे पश्चिम हरिस्मृति नामसे प्रसिद्ध भगवान् विष्णुका परम पवित्र मन्दिर है, जो पारमार्थिक फल देनेवाला है। उसके दर्शनमात्रसे मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। चक्रहरि और हरिस्मृति इन दोनोंके दर्शनसे मनुष्य इस पृथ्वीपर जितने पाप करते हैं, उन सबका नाश हो जाता है।

पूर्वकालकी बात है, देवताओं और असुरोंमें बड़ा भयंकर संग्राम हुआ। वरदानके मदसे उन्मत्त हुए दैत्योंने उस युद्धमें देवताओंको परास्त कर दिया। देवता भागने लगे। तब भगवान् शंकरने उनका अगुआ बनकर उन्हें रोका और ब्रह्माजीको आगे करके सब लोग क्षीरसागरपर गये। वहाँ भगवान् विष्णु क्षीरसमुद्रमें शेषनागकी शय्यापर शयन कर रहे थे। भगवती लक्ष्मी उनके पास बैठकर अपने हाथसे उनके चरणारविन्दोंकी सेवा करती थीं। नारद आदि श्रेष्ठ मुनि भगवान्के गुण-गौरवका उच्चस्वरसे गान कर रहे थे। गरुड़जी सामने खड़े होकर निरन्तर हाथ जोड़े उनकी स्तुति करते थे। क्षीरसागरके जलसे उठती हुई तरंगोंके कारण भगवान्के पीताम्बरमें जलके कुछ छींटे पड़े हुए थे। नक्षत्रसमुदायके समान प्रकाशमान उज्ज्वल हार भगवान्के वक्षःस्थलकी शोभा बढ़ा रहे थे। उनके कटिप्रदेशमें पीताम्बर शोभायमान था। मुखपर मुसकानकी छटा छा रही थी। भगवान् एक अद्भुत भावसे भावित थे। कानोंमें मोती जड़े हुए दिव्य एवं स्थूल कुण्डल पहने हुए थे। श्वेतद्वीपकी स्वच्छ रत्नमयी लता-सी भगवान्ने धारण कर रखी थी। मस्तकपर किरीट और हाथोंमें पद्मरागमणिके वलय सुशोभित थे। भगवान् शंकरने विनीतभावसे सम्पूर्ण देवताओंके साथ उस समय भगवान्की शरण ली और एकाग्रचित्त होकर स्तवन किया।

भगवान् शिव बोले—जो संसारसमुद्रसे तारने और गरुड़जीको सुख देनेवाले हैं, घनीभूत मोहान्धकारका निवारण करनेके लिये चन्द्रस्वरूप हैं, उन भगवान् श्रीहरिको नमस्कार है। जहाँ ज्ञानमयी मणिकी प्रज्वलित शिखा प्रकाशित होती है तथा जो चित्तमें भगवत्संगरूपी सुधाकी वर्षा करनेवाली चन्द्रिकाके तुल्य है, मानसके उद्यानमें जो प्रवाहित होती है, उस भगवद्भक्तिरूपी मन्दाकिनीकी मैं शरण लेता हूँ। वह लीलापूर्वक उत्साहशक्तिको जाग्रत् करनेवाली तथा सम्पूर्ण जगत्में व्याप्त है। सात्त्विक भावोंकी पूर्वकोटि है। उसे ही वैष्णवी शक्ति कहते हैं। हवासे हिलते हुए कमलदलके पर्वके भीतर रहनेवाले पतनशील जन्तुओंकी भाँति पतनके गर्तमें गिरनेवाले प्राणियोंको स्थिरता देनेवाली एकमात्र श्रीहरिकी

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

स्मृति ही है। हृदयकमलकी कलिकाको विकसित करनेवाली ज्ञानरूपी किरणमालाओंसे मण्डित सूर्यस्वरूप आप भगवान्‌को नमस्कार है। योगियोंकी एकमात्र गति आप संयमशील श्रीहरिको नमस्कार है। तेज और अन्धकार दोनोंसे परे विराजमान आप परमेश्वरको नमस्कार है। आप यज्ञस्वरूप, हविष्यके उपभोक्ता तथा ऋक्, यजु एवं सामवेदस्वरूप हैं, आपको नमस्कार है। भगवती सरस्वतीके द्वारा गाये जानेवाले दिव्य सद्‌गुणोंसे विभूषित आप भगवान् विष्णुको नमस्कार है। आप शान्तस्वरूप, धर्मके निधि, क्षेत्रज्ञ एवं अमृतात्मा हैं, आपको नमस्कार है। आप साधकके योगकी प्रतिष्ठा तथा जीवके एकमात्र हेतु हैं, आपको नमस्कार है। आप घोरस्वरूप, मायाकी विधि तथा सहस्रों मस्तकवाले हैं, आपको नमस्कार है। आप योगनिद्रास्वरूप होकर शयन करते और अपने नाभिकमलसे उत्पन्न संसारकी सृष्टि रचते हैं, आपको नमस्कार है। आप जलस्वरूप एवं संसारकी स्थितिके कारण हैं, आपको नमस्कार है। आपके कार्योंद्वारा आपकी शक्तिका अनुमान होता है। आप महाबली, सबके जीवन और परमात्मा हैं, आपको नमस्कार है। समस्त भूतोंके रक्षक और प्राण आप ही हैं, आप ही विश्व तथा उसके स्रष्टा ब्रह्मा हैं, आपको नमस्कार है। आप नृसिंहशरीर धारण करके दर्पयुक्त हो दैत्यका संहार करनेवाले हैं, आपको नमस्कार है। आप ही सबके पराक्रम हैं। आपका हृदय अनन्त है। आप सम्पूर्ण संसारके भावको ग्रहण करनेवाले हैं, आपको नमस्कार है। आप संसारके कारणभूत अज्ञानरूपी घोर अन्धकारका नाश करनेवाले हैं। आपका धाम अचिन्त्य है, आपको नमस्कार है। आप गूढ़रूपसे स्थित तथा अत्यन्त उद्वेगकारक रुद्र हैं, आपको नमस्कार है। आप शान्त हैं, जहाँ समस्त ऊर्मियाँ शान्त हो जाती हैं ऐसे कैवल्यपदको देनेवाले हैं। सम्पूर्ण भावपदार्थोंसे परे तथा सर्वमय हैं, आपको नमस्कार है। जो नील कमलके समान श्याम हैं और चमकते हुए केसरके समान सुशोभित कौस्तुभमणि धारण करते हैं तथा नेत्रोंके लिये रसायनरूप हैं, ऐसे आप भगवान् विष्णुको मैं प्रणाम करता हूँ।

इस प्रकार स्तुति करनेपर प्रसन्नचित्त, वरदायक भगवान् गरुड़ध्वजने कृपायुक्त हो सम्पूर्ण देवताओंपर अपनी सुधावर्षिणी दृष्टिसे अमृतकी वर्षा की और विनीत देवताओंसे यह मधुर वचन कहा—'देवताओ! मैं ध्यानसे तुम्हारा सारा अभिप्राय जान गया हूँ। मैं इस समय अयोध्या नगरमें जाकर तुम्हारे तेजकी वृद्धि और दैत्योंके उपद्रवकी शान्तिके लिये गुप्त रहकर उत्तम तपका अनुष्ठान करूँगा। तुमलोग भी शुद्धचित्त हो अयोध्यामें जाकर दैत्योंके विनाशके लिये तीव्र तपस्या करो।'

ऐसा कहकर भगवान् गरुड़वाहन अन्तर्धान हो गये। उन्होंने अयोध्यामें आकर गुप्त रहकर देवताओंके तेजकी वृद्धिके लिये शीघ्र उत्तम तपस्या प्रारम्भ की। इसलिये वे गुप्तहरिके नामसे प्रसिद्ध हुए। यहाँ पहले आये हुए भगवान् विष्णुके हाथसे सुदर्शन-चक्र छूटकर गिरा था, अतः चक्रहरिके नामसे भगवान्‌की प्रसिद्धि हुई। उन दोनोंके दर्शनमात्रसे मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। भगवान् श्रीहरिके प्रभावसे देवता प्रबल तेजस्वी हो गये। उन्होंने युद्धमें दैत्योंको परास्त करके अपना स्थान प्राप्त कर लिया और परम आनन्दयुक्त हो वे अतिशय शोभा पाने लगे। तत्पश्चात् बृहस्पति आदि सब देवताओंने भगवान्‌को प्रणाम किया और उनके दर्शनके लिये उत्कण्ठित हो सब-के-सब अयोध्यामें आये। वहाँ पुनः प्रणाम करके हाथ जोड़कर एकाग्रचित्तसे श्रीहरिका ध्यान करते हुए उन्हींमें तन्मय हो गये। तब भगवान् विष्णुने उनसे कहा—'देवताओ! मैं इस समय तुम्हारी कौन-सी इच्छा पूर्ण करूँ।'

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

देवता बोले—जगत्पते! इस समय आपके द्वारा हमारा सब कार्य सिद्ध हो गया तथापि हमारी रक्षाके लिये आपको सदैव यहीं रहना चाहिये।

श्रीभगवान् बोले—देवताओ! यह कथा संसारमें प्रसिद्धिको प्राप्त होगी। समस्त प्राणियोंमें श्रेष्ठ जो पुरुष यहाँ उत्तम भक्तिसे पूजा, यज्ञ और जप आदिका अनुष्ठान करता है, वह परमगतिको प्राप्त होता है। जो जितेन्द्रिय मानव अपनी शक्तिके अनुसार यहाँ दान करता है, वह अनुपम स्वर्गलोकको पाकर फिर कभी शोक नहीं करता। यहाँ मेरी प्रसन्नताके लिये शुद्धचित्तसे गोदान करना चाहिये। जो मेरी भक्तिमें तत्पर होकर यहाँ आत्मशुद्धिके लिये स्नान करते हैं, उनकी मुक्ति उनके हाथमें ही है। भगवान् चक्रहरिके स्थानपर मेरी प्रीतिके लिये प्रयत्नपूर्वक उत्तम दान और जप-होमादि करना चाहिये। श्रेष्ठ देवताओ! तुम भी यहाँ विधानसे यात्रा करो। इस गुप्तहरिके स्थानके निकट ही शुभ संगम है, जहाँ गोप्रतारघाटसे तीन योजन पश्चिम घाघरा नदीसे सरयूका संगम हुआ है। वहाँ विधिपूर्वक स्नान करके समस्त मनोरथोंकी सिद्धि करनेवाले भगवान् गुप्तहरिका दर्शन करना चाहिये।

ऐसा कहकर पीताम्बरधारी भगवान् विष्णु वहीं अन्तर्धान हो गये। देवता भी विधिपूर्वक यात्रा करके यत्नपूर्वक अयोध्यामें रहने लगे। तबसे यह स्थान पृथ्वीमें विख्यात हो गया। कार्तिककी पूर्णिमाको विशेषरूपसे यहाँकी वार्षिक यात्रा होती है। वहाँ संगमस्नान करके भगवान् गुप्तहरिका दर्शन किया जाता है। तत्पश्चात् सरयू और घाघराके मिले हुए जलके तटपर गोप्रतारतीर्थमें स्नान करके सम्पूर्ण कामनाओंको देनेवाले भगवान्‌की पूजा करनी चाहिये। मार्गशीर्ष शुक्ला द्वादशीको चक्रहरिकी यात्रा करनी चाहिये। जो इस प्रकार यात्रा करता है, वह भगवान् विष्णुके लोकमें आनन्दका अनुभव करता है।

गोप्रतारतीर्थकी महिमा और श्रीरामके परमधामगमनकी कथा

सरयू और घाघराके संगममें दस कोटिसहस्र तथा दस कोटिशत तीर्थ हैं। उस संगमके जलमें स्नान करके एकाग्रचित्त हो देवताओं और पितरोंका तर्पण करे तथा अपनी शक्तिके अनुसार दान दे। फिर वैष्णवमन्त्रसे हवन करके पवित्र होवे। अमावास्या, पूर्णिमा, दोनों द्वादशी तिथि, अयन और व्यतीपातयोग आनेपर संगममें किया हुआ स्नान विष्णुलोक प्रदान करनेवाला है। विष्णुभक्त पुरुष भगवान् विष्णुकी पूजा करके उन्हींकी लीला-कथाका श्रवण करते हुए विष्णुप्रीतिकारक गीत, वाद्य, नृत्य तथा पुण्यमयी कथा-वार्ताके द्वारा रात्रिमें जागरण करे। तत्पश्चात् प्रातःकाल विधिपूर्वक श्रद्धासे स्नान करके भगवान् विष्णुका पूजन करे और ब्राह्मणोंको यथाशक्ति सुवर्ण आदि दान करे। जो संगमपर श्रद्धापूर्वक सुवर्ण, अन्न और वस्त्र देता है, वह उत्तम गतिको प्राप्त होता है। संगममें स्नान करनेवाला मनुष्य सात पीढ़ी पूर्वकी तथा सात पीढ़ी भावी सन्तति इन सबको तार देता है। संगमके समीप ही एक दूसरा गोप्रतार नामक तीर्थ है। वह भी बड़े-बड़े पातकोंका नाश करनेवाला है। उसमें स्नान और दान करनेसे मनुष्य कभी शोकके वशीभूत नहीं होता है। जैसे काशीमें मणिकर्णिका, उज्जयिनीमें महाकाल-मन्दिर तथा नैमिषारण्यमें चक्रवापीतीर्थ सबसे श्रेष्ठ है, उसी प्रकार अयोध्यामें गोप्रतार-तीर्थका महत्त्व सबसे अधिक है, जहाँ भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञासे समस्त साकेतनिवासियोंको उनके दिव्य धामकी प्राप्ति हुई थी।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

पूर्वकालमें भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने आलस्यहीन हो देवताओंका कार्य पूरा करके अपने भाइयोंके साथ परम धाममें जानेका विचार किया। गुप्तचरोंके मुँहसे यह समाचार सुनकर इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले वानर, भालु, गोपुच्छ एवं राक्षस झुंड-के-झुंड वहाँ आये। वानरगण देवताओं, गन्धर्वों तथा ऋषियोंके पुत्र थे। वे सब-के-सब श्रीरामचन्द्रजीके अन्तर्धान होनेका समाचार पाकर वहाँ आ पहुँचे। श्रीरामचन्द्रजीके समीप आकर सब वानर यूथपतियोंने कहा—'राजन्! हम सब लोग आपके साथ चलनेके लिये आये हैं। पुरुषोत्तम! यदि आप हमें छोड़कर चले जायँगे तो हम सब लोग महान् दण्डसे मारे गये प्राणियोंकी-सी अवस्थामें पहुँच जायँगे।' उन वानर, भालु और राक्षसोंकी बात सुनकर श्रीरामचन्द्रजीने उसी क्षण विभीषणसे कहा—'विभीषण! जबतक भूतलपर प्रजा रहे, तबतक तुम भी यहीं रहकर लंकाके महान् साम्राज्यका पालन करो। मेरा वचन अन्यथा न करो।' विभीषणसे ऐसा कहकर भगवान् श्रीरामचन्द्र हनुमान्‌जीसे बोले—'वायुनन्दन! तुम चिरजीवी रहो। कपिश्रेष्ठ! जबतक लोग मेरी कथा कहें, तबतक तुम प्राणोंको धारण करो। मयंद और द्विविद—ये दोनों अमृतभोजी वानर हैं। ये दोनों तबतक इस पृथ्वीपर जीवित रहें, जबतक कि सम्पूर्ण लोकोंकी सत्ता बनी रहे। ये सभी वानर यहाँ रहकर मेरे पुत्र-पौत्रोंकी रक्षा करते रहें।'

ऐसा कहकर श्रीरामचन्द्रजीने शेष वानरोंसे कहा—'तुम सब लोग मेरे साथ चलो।' तदनन्तर रात बीतनेपर जब प्रातःकाल हुआ, तब विशालवक्ष और कमलदलके समान नेत्रोंवाले महाबाहु श्रीराम अपने पुरोहित वशिष्ठजीसे बोले—'भगवन्! प्रज्वलित अग्निहोत्रकी अग्नि आगे चले। वाजपेय यज्ञ और अतिरात्र यज्ञकी अग्नि भी आगे-आगे ले जायी जाय।' तब महातेजस्वी वशिष्ठजीने अपने मनमें सब बातोंका निश्चय करके विधिपूर्वक महाप्रस्थान-कालोचित कर्म किया। तदनन्तर ब्रह्मचर्यपूर्वक रेशमी वस्त्र धारण किये भगवान् श्रीराम दोनों हाथोंमें कुश लेकर महाप्रस्थानको उद्यत हुए। वे नगरसे बाहर निकलकर शुभ या अशुभ कोई वचन नहीं बोले। भगवान् श्रीरामके वामपार्श्वमें हाथमें कमल लिये लक्ष्मीजी खड़ी हुईं और दाहिने पार्श्वमें विशाल नेत्रोंवाली लज्जा देवी उपस्थित हुईं। आगे मूर्तिमान् व्यवसाय (उद्योग एवं दृढ़निश्चय) विद्यमान था। धनुष, प्रत्यंचा और बाण आदि नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्र पुरुषशरीर धारण करके भगवान्‌के पीछे-पीछे चले। ब्राह्मणरूपधारी वेद वामभागमें और गायत्री दक्षिण भागमें स्थित हुई। ॐकार, वषट्कार सभी श्रीरामचन्द्रजीके साथ चले। ऋषि, महात्मा और पर्वत सभी स्वर्गद्वारपर उपस्थित भगवान् श्रीरामके पीछे-पीछे चले। अन्तःपुरकी स्त्रियाँ वृद्ध, बालक, दासी और द्वाररक्षक सबको साथ लेकर श्रीरामचन्द्रजीके साथ प्रस्थित हुईं। रनिवासकी स्त्रियोंको साथ ले शत्रुघ्नसहित भरत भी चले। रघुकुलसे अनुराग रखनेवाले महात्मा ब्राह्मण भी स्त्री, पुत्र और अग्निहोत्रसहित जाते हुए श्रीरामचन्द्रजीके पीछे-पीछे चले। मन्त्री भी सेवक, पुत्र, बन्धु-बान्धव तथा अनुगामियोंसहित श्रीरामचन्द्रजीके पीछे गये। भगवान्‌के गुणोंसे सतत प्रसन्न रहनेवाली अयोध्याकी सारी प्रजा हृष्ट-पुष्ट मनुष्योंसे घिरी हुई श्रीरामचन्द्रजीका अनुगमन करनेके लिये घरसे चल दी। उस समय वहाँ कोई दीन, भयभीत अथवा दुःखी नहीं था, सभी हर्ष और आनन्दमें मग्न थे। अयोध्यामें उस समय कोई अत्यन्त सूक्ष्म प्राणी भी ऐसा नहीं था जो स्वर्गद्वारके समीप खड़े हुए श्रीरामचन्द्रजीके पीछे न गया हो। वहाँसे

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

आधा योजन दक्षिण जाकर भगवान् पश्चिमकी ओर मुख करके चलने लगे। आगे जाकर रघुनाथजीने पुण्यसलिला सरयूका दर्शन किया। उस समय सब देवताओं तथा महात्मा ऋषियोंसे घिरे हुए लोकपितामह ब्रह्माजी श्रीरामचन्द्रजीके समीप आये। उनके साथ सौ कोटि दिव्य विमान भी थे। वे उस समय आकाशको सब ओरसे तेजोमय एवं प्रकाशित कर रहे थे। वहाँ परम पवित्र सुगन्धित एवं सुखदायिनी वायु चलने लगी। श्रीरामचन्द्रजीने अपने चरणोंसे सरयूजीके जलका स्पर्श किया।

तदनन्तर ब्रह्माजी देवताओंके साथ श्रीराम-चन्द्रजीकी स्तुति करने लगे—देव! आप समस्त लोकोंके पति हैं, आपके स्वरूपको कोई नहीं जानता। विशाललोचन! आप अचिन्त्य एवं अविनाशी ब्रह्मरूप हैं। महावीर्य! आप अपने जिस दिव्य स्वरूपको ग्रहण करना चाहें ग्रहण करें। ब्रह्माजीके ऐसा कहनेपर भगवान् श्रीरामने अपने भाइयोंसहित दिव्य वैष्णवतेजमें सशरीर प्रवेश किया। तत्पश्चात् सुरश्रेष्ठ भगवान् विष्णुका सब देवताओंने पूजन किया। देवताओंका मनोरथ पूर्ण हुआ था; इसलिये वे सब बहुत प्रसन्न थे। उस समय महातेजस्वी भगवान् विष्णुने पितामह ब्रह्मासे कहा—'सुव्रत! इस जनसमुदायको तुम्हें उत्तम लोक देना चाहिये।' भगवान्का यह आदेश पाकर सर्वलोकेश्वर ब्रह्माने कहा—'वे समस्त मानव सान्तानिक लोकमें निवास करेंगे। स्वर्गद्वार तीर्थमें श्रीरामचन्द्रजीका चिन्तन करते हुए जो प्राणत्याग करता है वह परम उत्तम सान्तानिक लोकको प्राप्त होता है। सान्तानिक लोक मेरे लोकसे भी ऊपर है। वानर आदिमेंसे जो जिस देवताके अंश थे, वे उसीमें मिलेंगे। सूर्यपुत्र सुग्रीव सूर्यमण्डलमें चले जायँगे। ऋषि, नाग और यक्ष सभी अपने-अपने कारणको प्राप्त होंगे।'

देवेश्वर ब्रह्माजीके ऐसा कहनेपर गोप्रतारतीर्थमें उपस्थित जल सरयूको प्राप्त हुआ। तत्पश्चात् वहाँ सरयूजल परिपूर्ण हो गया। फिर तो सबने जलमें डुबकी लगायी और हर्षपूर्वक प्राणत्याग करके मनुष्य-शरीरको त्याग दिया तथा विमानोंपर बैठकर दिव्यलोकको प्रस्थान किया। पशु-पक्षी आदिकी योनिमें जो जीव थे, वे भी सरयूमें प्रवेश करके शरीर त्यागकर दिव्यरूपधारी हो गये। इसी प्रकार अन्य चराचर प्राणी भी उत्तम शरीर पाकर देवलोक (सान्तानिक)-में गये। भगवान् श्रीराम देवताओंके साथ परमधामको गये। अतः सबको तारनेवाला वह तीर्थ 'गोप्रतार' के नामसे प्रसिद्ध हुआ। गोप्रतारतीर्थमें उत्तम मोक्ष प्राप्त होता है। गोप्रतारतीर्थमें निःसन्देह भगवान् विष्णु स्थित हैं। उसमें जो स्नान करता है, वह निश्चय ही योगियोंके लिये भी दुर्लभ परम धामको प्राप्त होता है। जितेन्द्रिय मनुष्योंको वहाँ विशेषरूपसे कार्तिककी पूर्णिमामें स्नान करना चाहिये। नियमपूर्वक व्रत पालन करनेवाले श्रद्धालु पुरुषोंको भगवान् विष्णुके उद्देश्यसे वहाँ स्नानपूर्वक ब्राह्मणोंका विशेषरूपसे पूजन करना चाहिये तथा श्रीहरिकी प्राप्तिके लिये बड़ी भक्तिके साथ नाना प्रकारके अन्न, सुवर्ण और भाँति-भाँतिके वस्त्र दान करना चाहिये। इस प्रकार पुण्यात्मा पुरुष उत्तम विधिसे गोप्रतारतीर्थमें यत्नपूर्वक स्नान करके आदरपूर्वक भगवान् विष्णुकी पूजा करनेपर समस्त पाप-तापसे रहित हो उन्हींके सायुज्यको प्राप्त होता है।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

क्षीरोदकतीर्थ, बृहस्पतिकुण्ड, रुक्मिणी आदि कुण्डोंका माहात्म्य

सूतजी कहते हैं—सीताकुण्डसे वायव्य कोणमें क्षीरोदक नामक तीर्थ है, जो सब दुःखोंका नाश करनेवाला है। पूर्वकालमें राजा दशरथने वहीं पुत्रके लिये पुत्रेष्टि नामक यज्ञ किया था। यज्ञके अन्तमें वहाँ भगवान् अग्निदेव अपने हाथमें हविष्यसे भरा हुआ सोनेका पात्र लिये दृष्टिगोचर हुए थे। उस हविष्यमें परम उत्तम विष्णुतेज व्याप्त था। राजाने उसके चार भाग करके अपनी पत्नियोंको बाँट दिया। जहाँ उस क्षीर (खीर या हविष्य)-की प्राप्ति हुई, वहीं क्षीरोदक नामवाला तीर्थ प्रसिद्ध हुआ। जितेन्द्रिय पुरुष उस तीर्थमें आदरपूर्वक स्नान करके सम्पूर्ण भोगों और बहुज्ञ पुत्रोंको प्राप्त करता है। आश्विन शुक्ला एकादशीको व्रतका पालन करनेवाला पुरुष वहाँ विधिपूर्वक स्नान करके ब्राह्मणको यथाशक्ति दान दे। इससे वह सम्पूर्ण मनोरथोंको प्राप्त कर लेता है। उस क्षीरोदक स्थानसे नैर्ऋत्यकोणमें बृहस्पतिका कुण्ड प्रसिद्ध है। वह सब पापोंका नाशक तथा पवित्र जलकी तरंगोंसे सुशोभित है, जहाँ साक्षात् बृहस्पतिजीने निवास किया है। वह तीर्थ सघन पत्तोंकी छायासे सुशोभित एवं नाना प्रकारके फल देनेवाला है। पापियोंके लिये वह दुर्लभ है। भादोंके शुक्ल पक्षकी पंचमी तिथिमें वहाँकी यात्रा फलदायिनी होती है। अन्य समयमें भी बृहस्पतिके दिन उसमें किया हुआ स्नान बहुत फलदायक है। जो मनुष्य वहाँ भगवान् विष्णु तथा बृहस्पतिका पूजन करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो वैकुण्ठधाममें आनन्दका अनुभव करता है।

उसके दक्षिण भागमें परम उत्तम रुक्मिणीकुण्ड है, जिसे श्रीकृष्णकी प्रियतमा महारानी रुक्मिणी देवीने स्वयं निर्माण कराया था। उस समय भगवान् विष्णुने स्वयं ही उस कुण्डके जलमें निवास किया। पत्नीके स्नेहसे वर देकर भगवान्ने उस कुण्डके महत्त्वको और बढ़ा दिया है। मनुष्यको चाहिये कि वह मन और इन्द्रियोंको संयममें रखकर वहाँ स्नान, दान, वैष्णवमन्त्रसे होम, ब्राह्मणपूजन तथा भगवान् विष्णुका अर्चन करे। कार्तिक कृष्णा नवमीको वहाँकी वार्षिक यात्रा करनी चाहिये। इससे सब पापोंका नाश होता है। यात्रा करनेवाला मनुष्य रुक्मिणी और श्रीकृष्णकी प्रीतिके लिये अपनी शक्तिके अनुसार दान दे। वहाँ शंख, चक्र, गदा एवं पद्म धारण करनेवाले भगवान् लक्ष्मीपतिका इस प्रकार ध्यान करना चाहिये—भगवान्‌के श्रीअंगोंमें पीताम्बर शोभा पा रहा है। वे वनमाला पहने हुए हैं और नारद आदि ऋषि उनकी स्तुति करते हैं। मस्तकपर मुकुट शोभा पा रहा है तथा वे इन्द्रनीलमणि आदि दिव्य रत्नोंके आभूषणोंसे विभूषित हैं। वक्षःस्थलमें कौस्तुभमणि प्रकाशित हो रही है, जो समस्त कामनाओं एवं फलकी प्राप्ति करानेवाली है। भगवान्‌की अंगकान्ति अलसीके फूलकी भाँति श्याम है। उनके नेत्र कमलदलके समान परम सुन्दर हैं। इस प्रकार ध्यान करनेपर मनुष्य निःसन्देह सम्पूर्ण मनोरथोंको पा लेता है और इहलोकमें सुख भोगकर भगवान्‌के लोकमें आनन्दका अनुभव करता है।

रुक्मिणीकुण्डके वायव्य कोणमें 'धनयक्ष' नामसे प्रसिद्ध उत्तम तीर्थ है। पूर्वकालकी बात है विश्वामित्र मुनिने राजसूय यज्ञ करनेवाले राजा हरिश्चन्द्रसे (दानमें) सारा राज्य ले लिया। तत्पश्चात् वह सब राज्य और धन एक यक्षके संरक्षणमें दे दिया। किसी समय परम बुद्धिमान् विश्वामित्र मुनि उस यक्षपर प्रसन्न हुए और बोले—'यक्ष! यह तीर्थ 'धनयक्ष' के नामसे प्रसिद्ध होगा। यहाँ नवों निधियोंका पूजन करनेसे मनुष्य इहलोकमें सुख और परलोकमें आनन्दका अनुभव करता है। महापद्म, पद्म, शंख, मकर,

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

कच्छप, मुकुन्द, कुन्द, नील और खर्व—ये नौ निधियाँ हैं*। इन सबका इस कुण्डमें निवास होगा। यहाँ जलमें निधि-लक्ष्मीका पूजन करना चाहिये। माघ कृष्णा चतुर्दशीको यहाँकी वार्षिक यात्रा होनी चाहिये। उस समय स्नान और पितृतर्पण विशेषरूपसे करने चाहिये।'

धनयक्षतीर्थसे उत्तर दिशामें वशिष्ठकुण्ड नामक विख्यात तीर्थ है, जो सदा सब पापोंका नाश करनेवाला है। वहाँ तपोनिधि वशिष्ठ और निर्मल व्रतवाली अरुन्धतीजीका नित्य निवास है। उसमें आलस्य छोड़कर जो बुद्धिमान् पुरुष स्नान और विशेषरूपसे श्राद्ध करता है, उसे उत्तम पुण्यकी प्राप्ति होती है। वहाँ वशिष्ठ और वामदेवजीका यत्नपूर्वक पूजन करना चाहिये। पतिव्रता अरुन्धती देवी वहाँ विशेषरूपसे पूजनीय हैं। उस तीर्थमें विधिपूर्वक स्नान और यथाशक्ति दान करना चाहिये। जो उसमें स्नान करता है, वह वशिष्ठके समान होता है। भाद्रमासकी शुक्ला पंचमीको विधिपूर्वक मन और इन्द्रियोंको संयममें रखते हुए वहाँकी वार्षिक यात्रा करनी चाहिये और प्रयत्नपूर्वक श्रद्धासे भगवान् विष्णुकी पूजा करनी चाहिये। ऐसा करनेवाला पुरुष सब पापोंसे शुद्धचित्त हो भगवान् विष्णुके लोकमें जाता है।

वशिष्ठकुण्डसे पश्चिम दिशामें सागरकुण्डके नामसे विख्यात एक तीर्थ है, जो सम्पूर्ण कामनाओं और मनोरथोंकी सिद्धि देनेवाला है। उसमें स्नान और दान करनेसे मनुष्य सम्पूर्ण कामनाओंको प्राप्त कर लेता है। सागरसे नैर्ऋत्यकोणमें उत्तम योगिनीकुण्ड है, जहाँ जलमें चौंसठ योगिनियाँ निवास करती हैं। वे पुरुषोंका सम्पूर्ण मनोरथ सिद्ध करती हैं और स्त्रियोंको विशेषरूपसे उत्तम सिद्धि प्रदान करनेवाली हैं। वे सब-की-सब समस्त मनोवांछित फलोंको देनेवाली हैं। योगिनीकुण्डसे पूर्व परम उत्तम उर्वशीकुण्ड है, जिसमें स्नान करनेवाला पुरुष स्वर्गमें उर्वशीको प्राप्त करता है। यहाँ स्नान करके मनुष्योंको भगवान् विष्णुका पूजन करना चाहिये। ऐसा करनेवाला विद्वान् मनुष्य सदैव विष्णुलोकमें निवास करता है। वह स्त्री हो या पुरुष, सब मनोरथोंको पाता है। उर्वशीकुण्डके दक्षिणभागमें उत्तम घोषार्ककुण्ड है, जो सब पापोंका नाश करनेवाला है। वहाँ स्नान और दान करनेसे मनुष्य सूर्यलोकमें प्रतिष्ठित होता है। घावसे युक्त, कोढ़ी, निर्धन अथवा दुःखसे घिरा हुआ जो कोई भी मनुष्य वहाँ विधिपूर्वक स्नान करता है, वह सम्पूर्ण कामनाओंको प्राप्त कर लेता है। विशेषतः रविवारको वहाँ आदरपूर्वक स्नान करना चाहिये। रविवारके साथ यदि सप्तमी तिथिका भी योग हो तो वहाँका स्नान बहुत फलदायक होता है। घोष नामक एक राजाने किसी समय उस तीर्थमें स्नान और सन्ध्या करते हुए मुनियोंको देखा। तब उसने भी विधिपूर्वक आचमन करके स्नान किया। स्नान करते ही राजाका शरीर दिव्य हो गया। उनका मन आनन्दसे परिपूर्ण हो गया। तब मुनियोंसे उस तीर्थकी महिमा जानकर राजाने सूर्यदेवकी प्रसन्नताके लिये स्तुति की।

राजा बोले—देवदेवेश्वर! भगवान् सूर्य! आपका स्वरूप सच्चिदानन्दमय है, आपको नमस्कार है। आप सम्पूर्ण जगत्‌को उत्पन्न करनेवाले तथा जगत्‌को आनन्द देनेवाले सूर्यदेवको नमस्कार है। आप प्रभाके निकेतन तथा दिव्यरूपधारी हैं। तीनों वेद आपके ही स्वरूप हैं, आपको नमस्कार है। योगके ज्ञाता एवं सत्स्वरूप आप भगवान् विवस्वान्‌को नमस्कार है। आप सबसे परे हैं, परमेश्वर हैं और त्रिलोकीका अन्धकार नष्ट करनेवाले हैं, आपको नमस्कार है। आपका स्वरूप अचिन्त्य है, आप प्रभा फैलानेवाले तेजसे सम्पन्न हैं, आपको सदा नमस्कार है। आप योगप्रिय, योगस्वरूप और योगज्ञ हैं, आपको

* महापद्मस्तथा पद्मः शंखो मकरकच्छपौ। मुकुन्दकुन्दनीलाश्च खर्वश्च निधयो नव॥ (स्क० पु०, वै० अ० मा० ७। ५१)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

सदैव नमस्कार है। आप ओंकाररूप, वषट्कारस्वरूप और ज्ञानरूप हैं, आपको नमस्कार है। यज्ञ, यजमान, हविष्य तथा ऋत्विज सब कुछ आप हैं, आपको नमस्कार है। आप सम्पूर्ण रोगोंके नाशक, आत्मस्वरूप तथा कमलोंको आनन्द प्रदान करनेवाले हैं, आपको नमस्कार है। आप अत्यन्त कोमल और अतिशय तीक्ष्ण हैं, सम्पूर्ण देवताओंका पालन करनेवाले आपको नमस्कार है। आप यज्ञभोक्ता, भक्तरक्षक तथा प्रियस्वरूप हैं, आपको नमस्कार है। आप निरन्तर प्रकाश देनेवाले और समस्त लोकोंके हितकारी हैं, आपको नमस्कार है। मैं आपके चरणोंमें प्रणाम करनेवाला शरणागत भक्त हूँ। प्रभो! आज मुझपर प्रसन्न होइये।

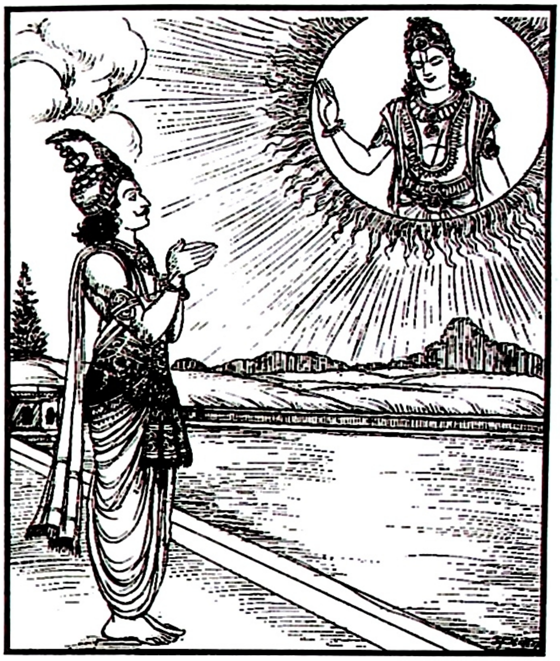

इस प्रकार स्तुति करते हुए अपने भक्त राजा घोषपर भगवान् सूर्य प्रसन्न हो गये और भक्तका प्रिय करनेकी इच्छासे सहसा प्रकट होकर बोले— 'राजेन्द्र! तुमने जो यह स्तवन किया है, इसे जो मनुष्य पढ़ेंगे, उनपर प्रसन्न होकर मैं उनके सब मनोरथोंको पूर्ण करूँगा। यह स्थान आजसे इस पृथ्वीपर तुम्हारे ही नामसे विख्यात होगा। जो यहाँ स्नान करेगा, वह अपनी सम्पूर्ण कामनाओंको प्राप्त कर लेगा। इस प्रकार वरदान देकर भगवान् सूर्यदेव अन्तर्धान हो गये। राजाने भगवान् सूर्यके शरीरसे प्रकट हुई दिव्य सूर्यमूर्ति लेकर वहाँ उसको स्थापित किया और स्वयं ही उसकी पूजा की। अतः राजा घोषके नामपर उस तीर्थका नाम घोषार्ककुण्ड हुआ।

अयोध्याक्षेत्रके अन्य विविध तीर्थोंका वर्णन तथा वसिष्ठके मुखसे विभीषण आदिका अयोध्या-माहात्म्य-श्रवण

घोषार्कतीर्थसे पश्चिम दिशामें रतिकुण्ड नामक प्रसिद्ध तीर्थ है, जो सब पापोंको हरनेवाला है। उससे पश्चिम कुसुमायुधकुण्ड है, जो समस्त मनोरथोंकी सिद्धिके लिये प्रसिद्ध है। जो पति-पत्नी इन दोनों कुण्डोंमें स्नान करते हैं, वे रति और कामदेवके समान सुन्दर होते हैं। कुसुमायुधकुण्डसे पश्चिम दिशामें मन्त्रेश्वरतीर्थ है। उसमें स्नान करके जो भगवान् मन्त्रेश्वरका दर्शन करता है, वह परम गतिको पाता है। उसके उत्तर कुमुद और कमलोंसे सुशोभित एक सुन्दर सरोवर है, जिसमें किये हुए स्नान और दान अनेक प्रकारके फल देनेवाले हैं। चैत्र शुक्ला चतुर्दशीको वहाँकी वार्षिक यात्रा उत्तम मानी गयी है। मन्त्रेश्वरकी महिमाका कोई भी भलीभाँति वर्णन नहीं कर सकता। सुगन्धित पुष्प, धूप, चन्दन आदि उपचारोंसे उनका प्रयत्नपूर्वक पूजन करना चाहिये। वे सम्पूर्ण कामनाओं और प्रयोजनोंको सिद्ध करनेवाले हैं। उनके पूजनसे मुक्ति हो जाती है। वहीं पूर्व दिशामें महारत्ननामक तीर्थ है, जो सब तीर्थोंमें उत्तम है। उसमें स्नान, दान और ब्राह्मण-पूजन करनेसे

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

समस्त कामनाओंकी सिद्धि होती है। भादों कृष्णा चतुर्दशीको वहाँकी वार्षिक यात्रा होती है। उससे नैर्ऋत्यकोणमें दुर्भर सरोवर है, जहाँ स्नान करनेसे मनुष्य स्वर्गलोकको प्राप्त करता है। महारत्न और दुर्भर दोनों तीर्थोंमें भक्तिभावसे स्नान करके नीलकण्ठ महादेवजीका गन्ध-पुष्प आदिके द्वारा भलीभाँति पूजन करना चाहिये। पार्वतीसहित भगवान् शिवका ध्यान करके मनुष्य सब कामनाओंको शीघ्र पाकर सदैव शिवलोकमें निवास करता है। भादों कृष्णा चतुर्दशीको जो मनुष्य श्रद्धासहित विधिपूर्वक शिवपूजा तथा ब्राह्मणपूजा विशेषरूपसे करता है, वह शिवलोकमें निवास करता है। भगवान् विष्णु और शिव उसके ऊपर बहुत प्रसन्न होते हैं, जिनके स्मरणमात्रसे मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है।

दुर्भरस्थानसे ईशान कोणमें महाविद्या नामक महान् तीर्थ है। उसके दर्शनमात्रसे मनुष्योंके हाथमें सब सिद्धियाँ उपस्थित हो जाती हैं। महाविद्याके आगे सरोवरमें स्नान करके जो महाविद्याका श्रद्धा और भक्तिसे दर्शन करता है, वह परम गतिको प्राप्त होता है। वहीं सुप्रसिद्ध सिद्धपीठ है। वहाँ उत्तम भक्तिसे पूजा करनी चाहिये। जो पवित्र मनुष्य वहाँ श्रद्धासे शिव, शक्ति, गणपति तथा भगवान् विष्णुके मन्त्रको एकाग्रचित्त होकर जपता है, उसको सदा सिद्धि प्राप्त होती है। आश्विन शुक्ल पक्षके नवरात्रमें वहाँकी यात्रा करके मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। उसके समीप ही क्षीरकुण्डमें दुग्धेश्वर नामसे प्रसिद्ध भगवान् शिव विराजमान हैं। उस क्षीरसंगम कुण्डका सीताजीने बड़ा सत्कार किया है, इसलिये सीताकुण्डके नामसे भी उसकी प्रसिद्धि हुई है। सीताकुण्डमें स्नान करके सीता, राम, लक्ष्मण और दुग्धेश्वरनाथका पूजन करके मनुष्य सब मनोरथोंको पा लेता है। ज्येष्ठ मासकी चतुर्दशीको वहाँकी वार्षिक यात्रा सम्पन्न होती है। वहाँ पूर्व दिशामें सुग्रीवद्वारा निर्मित एक उत्तम तीर्थ है, जो तपोनिधितीर्थके नामसे विख्यात है। उसमें स्नान, दान करके श्रीरामचन्द्रजीका यत्नपूर्वक पूजन करनेसे मनुष्य सम्पूर्ण कामनाओंको प्राप्त कर लेता है। उससे पश्चिम हनुमत्कुण्ड है और हनुमत्कुण्डके पश्चिम विभीषणकुण्ड है। उन दोनोंमें स्नान, दान और श्रीरामचन्द्रजीका पूजन करनेसे मनुष्य सब कामनाओंको प्राप्त कर लेता है।

एक समय विभीषण आदिने मुनिवर वशिष्ठसे विनयपूर्वक पूछा—तपोनिधे! विद्वान् पुरुष अयोध्याका जो सर्वोत्तम माहात्म्य बतलाते हैं, उसका वर्णन कीजिये।

वशिष्ठजीने कहा—यह अयोध्या नामक उत्तम तीर्थ अत्यन्त गुप्त है। यह सदा सभी प्राणियोंके मोक्षका साधक है। इसमें सिद्ध और देवता भी वैष्णवव्रतका आश्रय लेकर नाना प्रकारके वेष धारण किये विष्णुलोककी अभिलाषासे नित्य निवास करते हैं। नाना प्रकारके वृक्षोंसे व्याप्त एवं अनेकानेक विहंगमोंके कलरवसे युक्त इस उत्तम तीर्थमें वे सिद्ध और देवता जितेन्द्रिय हो प्राणायामपूर्वक योगाभ्यास करते हैं। इस उत्तम क्षेत्रमें निवास करना भगवान् विष्णुको सदैव रुचिकर है। जिन्होंने अपने समस्त कर्म भगवान् विष्णुको समर्पित कर दिये हैं, वे विष्णुभक्त यहाँ मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं। यहाँ भगवान् विष्णुका निवास है, इसलिये यह अयोध्या नामक महाक्षेत्र अत्यन्त उत्तम है। जो मोक्ष अन्यत्र दुर्लभ माना गया है, वही यहाँ सब सिद्धों और महर्षियोंको प्राप्त होता है। जिसका चित्त विषयोंमें आसक्त है और जिसने धर्मका अनुराग त्याग दिया है, ऐसा मनुष्य भी यदि इस क्षेत्रमें मृत्युको प्राप्त हो तो वह पुनः संसार-बन्धनमें नहीं

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

पड़ता। सहस्रों जन्मोंतक योगाभ्यास करनेवाला योगी भी जिस मोक्षको नहीं पाता, उसीको यहाँ मृत्यु होनेसे मनुष्य प्राप्त कर लेता है। यह अयोध्या ही उत्तम स्थान है, यही परम पद है। यहाँ पुण्याभिलाषी पुरुषोंको विधिपूर्वक यात्रा करनी चाहिये। नियमपूर्वक स्नान और यथाशक्ति दान करना चाहिये। मनको वशमें करके पवित्र व्रतवाला पुरुष भलीभाँति यहाँकी यात्रा सम्पन्न करे। अयोध्यामें जहाँ कहीं भी मृत्युको प्राप्त होनेपर धीर पुरुष उत्तम मोक्षको पाता है।

वशिष्ठजीका कहा हुआ यह माहात्म्य सुनकर विभीषण आदि सब लोगोंका चित्त निर्मल हो गया।

गयाकूप आदि अनेक तीर्थोंका माहात्म्य तथा ग्रन्थका उपसंहार

वहाँसे आग्नेय कोणमें गयाकूप नामक तीर्थ प्रसिद्ध है, जो सम्पूर्ण अभीष्ट फलोंको देनेवाला है। इन्द्रियोंको संयममें रखनेवाला श्रेष्ठ द्विज उसमें स्नान करके यथाशक्ति दान दे और पितरोंका श्राद्ध करे तो वह सम्पूर्ण मनोरथोंको प्राप्त कर लेता है। उस तीर्थमें श्राद्ध करनेपर नरकमें पड़े हुए पितर और पितामह विष्णुलोकमें चले जाते हैं। सोमवती अमावास्या हो उस समय वहाँ पितरोंके उद्देश्यसे किया हुआ श्राद्ध अक्षय एवं अनन्त फल देनेवाला होता है। वहाँसे पूर्वभागमें पिशाचमोचन नामक सर्वश्रेष्ठ तीर्थ है जो उत्तम फल देनेवाला है। उसमें स्नान और दान करनेसे मनुष्य पिशाच नहीं होता। अत: अगहनकी शुक्ला चतुर्दशीको वहाँ विशेषरूपसे स्नान करना चाहिये। पिशाचमोचनके पास ही पूर्वभागमें मानस नामक तीर्थ है। वहाँ स्नान और दान करनेसे मनुष्य सब कामनाओंको प्राप्त कर लेता है। मन, वाणी और शरीरमें जो कुछ पाप होता है वह सब मानसतीर्थमें स्नान करनेसे नष्ट हो जाता है। उससे दक्षिण दिशामें तमसा नामक नदी है, जिसमें किया हुआ स्नान और दान सब पापोंको हरनेवाला है। तमसाके सुन्दर तटपर पवित्रात्मा मुनियोंके अनेक स्थान हैं और माण्डव्य मुनिका भी पापनाशक आश्रम है। जहाँसे उत्तम तरंगोंवाली तमसा नदी प्रकट हुई है, वह वन अत्यन्त पवित्र है। उसके दर्शनसे मनुष्योंके सब पापोंका नाश हो जाता है। वह तीर्थ सब ओरसे मनोहर है। वहाँ माण्डव्य मुनिने बड़ी भारी तपस्या की, जिसके प्रभावसे वह तीर्थ परम पावन हुआ है। वहाँ पहले गौतम ऋषिका परम पवित्र आश्रम था। च्यवन और पराशर मुनिका भी पूर्वकालमें वहाँ स्थान रहा है। इसमें किये हुए स्नान, दान और श्राद्धसे सम्पूर्ण मनोरथोंकी सिद्धि होती है। मार्गशीर्ष शुक्ल पक्षकी पूर्णिमामें वहाँका स्नान मनुष्योंके लिये विशेष फलकी प्राप्ति करानेवाला है। उसके उत्तर भागमें सुन्दर भरतकुण्ड है, जिसमें स्नान करके मनुष्य सब पापोंसे छूट जाता है। पूर्वकालमें रघुकुलमें उत्पन्न भरतजी वहीं नन्दिग्राममें निवास करते थे। श्रीरामवनवासके बाद निर्मल अन्त:करणवाले भरतजी इन्द्रियोंको संयममें रखकर श्रीरामचन्द्रजीका हृदयमें ध्यान करते हुए वहीं रहकर प्रजाका पालन करते थे। उस कुण्डमें स्नान करनेसे बड़ा भारी पुण्य होता है। उसके पश्चिम भागमें अति उत्तम जटाकुण्ड है, जहाँ वनसे लौटनेपर श्रीराम आदिने अपनी जटाएँ कटवायी थीं। उनके जटा छोड़नेसे ही उसका नाम जटाकुण्ड हो गया। वह सब तीर्थोंमें उत्तम तीर्थ है। वहाँ स्नान और दान करनेसे मनुष्य सब कामनाओंको प्राप्त कर लेता है। पूर्वकुण्डोंमें श्रीभरतजीका पूजन करना चाहिये। जटाकुण्डमें सीता, राम और लक्ष्मणजीका पूजन करना उचित है। चैत्र कृष्णा चतुर्दशीको वहाँकी वार्षिक यात्रा होती है। इस प्रकार पूजन करके पुण्यात्मा मनुष्य विष्णुलोकमें निवास करता है।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

इसके उत्तरमें वीर मत्तगजेन्द्रका शुभ सूचक स्थान है। उनके सामने जो सरोवर है, उसमें स्नान करके जो निश्चितरूपसे वहाँ निवास करता है, वह पूर्ण सिद्धिको पाता है। अयोध्याकी रक्षा करनेवाले वीर मत्तगजेन्द्र समस्त कामनाओंकी सिद्धि करनेवाले हैं। उसके पश्चिम भागमें परम पुरुषार्थी वीर पिण्डारकका स्थान है। सरयूके जलमें स्नान करके वीर पिण्डारककी पूजा करे। वे पापियोंको मोहनेवाले और पुण्यात्माओंको सदा सद्‌बुद्धि प्रदान करनेवाले हैं। पिण्डारकके पश्चिम भागमें विघ्नेश्वर (गणेश)-जीकी पूजा करे। उनके दर्शन करनेसे मनुष्योंको लेशमात्र विघ्नका भी सामना नहीं करना पड़ता।

विघ्नेशसे ईशान कोणमें श्रीरामजन्म-स्थान है। इसे 'जन्म-स्थान' कहते हैं। यह मोक्षादि फलोंकी सिद्धि करनेवाला है। विघ्नेशसे पूर्व, वशिष्ठसे उत्तर तथा लोमशसे पश्चिम भागमें जन्मस्थान तीर्थ माना गया है। उसका दर्शन करके मनुष्य गर्भवासपर विजय पा लेता है। रामनवमीके दिन व्रत करनेवाला मनुष्य स्नान और दानके प्रभावसे जन्म-मृत्युके बन्धनसे छूट जाता है। आश्रममें निवास करनेवाले तपस्वी पुरुषोंको जो फल प्राप्त होता है, सहस्रों राजसूय और प्रतिवर्ष अग्निहोत्र करनेसे जो फल मिलता है, जन्मस्थानमें नियममें स्थित पुरुषके दर्शनसे तथा माता, पिता और गुरुकी भक्ति करनेवाले सत्पुरुषोंके दर्शनसे मनुष्य जिस फलको पाता है, वही सब फल जन्मभूमिके दर्शनसे प्राप्त कर लेता है। सरयूका दर्शन करके भी मनुष्य उस फलको पा लेता है। एक निमेष या आधे निमेष भी किया हुआ श्रीरामचन्द्रजीका ध्यान मनुष्योंके संसार-बन्धनके कारणभूत अज्ञानका निश्चय ही नाश करनेवाला है। जहाँ कहीं भी रहकर जो मनसे अयोध्याजीका स्मरण करता है, उसकी पुनरावृत्ति नहीं होती। सरयू नदी सदा मोक्ष देनेवाली है। यह जलरूपसे साक्षात् परब्रह्म है। यहाँ कर्मका भोग नहीं करना पड़ता। इसमें स्नान करनेसे मनुष्य श्रीरामरूप हो जाता है। पशु, पक्षी, मृग तथा अन्य जो पापयोनि प्राणी हैं, वे सभी मुक्त होकर स्वर्गलोकमें जाते हैं, जैसा कि श्रीरामचन्द्रजीका वचन है। सत्यतीर्थ, क्षमातीर्थ, इन्द्रियनिग्रहतीर्थ, सर्वभूतदयातीर्थ, सत्यवादितातीर्थ, ज्ञानतीर्थ और तपस्तीर्थ—ये सात मानसतीर्थ कहे गये हैं। सम्पूर्ण प्राणियोंके प्रति दया करनारूप जो तीर्थ है, उसमें मनकी विशेष शुद्धि होती है। केवल जलसे शरीरको पवित्र कर लेना ही स्नान नहीं कहलाता। जिस पुरुषका मन भलीभाँति शुद्ध है, उसीने वास्तवमें तीर्थस्नान किया है*। भूमिपर वर्तमान जो तीर्थ हैं उनकी पवित्रताका कारण यह है। जैसे शरीरके कोई अंग मध्यम और कोई उत्तम माने गये हैं, उसी प्रकार पृथ्वीपर भी कुछ प्रदेश अत्यन्त पवित्र होते हैं। इसलिये भौम और मानस दोनों प्रकारके तीर्थोंमें निवास करना चाहिये। जो दोनोंमें स्नान करता है वह परमगतिको प्राप्त होता है। जलचर जीव जलमें ही जन्म लेते और जलमें ही मरते हैं, परंतु वे स्वर्गमें नहीं जाते; क्योंकि उनका मन अशुद्ध होता है और वे मलिन होते हैं। विषयोंमें निरन्तर राग होना मनका मल कहलाता है। उन्हीं विषयोंमें जब

---

* सत्यतीर्थं क्षमातीर्थं तीर्थमिन्द्रियनिग्रहः। सर्वभूतदयातीर्थं तीर्थानां सत्यवादिता॥
ज्ञानतीर्थं तपस्तीर्थं कथितं तीर्थसप्तकम्। सर्वभूतदयातीर्थे विशुद्धिर्मनसो भवेत्॥
न तोयपूतदेहस्य स्नानमित्यभिधीयते। स स्नातो यस्य वै पुंसः सुविशुद्धं मनो मतम्॥
(स्क० पु०, वै० अ० मा० १०। ४६—४८)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth279 Skandpuran_Section_19_1_Back

आसक्ति न रह जाय, तब उसे मनकी निर्मलता कहते हैं। यदि मनुष्य भावसे निर्मल है—उसके अन्तःकरणमें शुद्ध भाव है तो उसके लिये दान, यज्ञ, तप, शौच, तीर्थसेवा और वेदोंका अध्ययन—ये सभी तीर्थ हैं। इन्द्रियसमुदायको वशमें रखनेवाला पुरुष जहाँ निवास करता है, वहीं उसके लिये कुरुक्षेत्र, नैमिषारण्य और पुष्कर हैं। यह मानसतीर्थका लक्षण बतलाया गया, जिसमें स्नान करनेसे क्रियावान् पुरुषोंके सब कर्म सफल होते हैं।

बुद्धिमान् मनुष्य प्रातःकाल उठकर संगममें स्नान करे, फिर भगवान् विष्णुहरिका दर्शन करके ब्रह्मकुण्डमें स्नान करे। तत्पश्चात् चक्रतीर्थमें स्नान करके मनुष्य भगवान् चक्रहरिका दर्शन करे। उसके बाद धर्महरिका दर्शन करके वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। प्रत्येक एकादशीको यह यात्रा शुभकारक होती है।

बुद्धिमान् पुरुष प्रातःकाल उठकर स्वर्गद्वारके जलमें गोता लगावे। फिर नित्य कर्म करके अयोध्यापुरीका दर्शन करे। तत्पश्चात् पुनः सरयूका दर्शन करके वीर मत्तगजेन्द्र, वन्दीदेवी, शीतलादेवी और वटुकभैरवका दर्शन करे। उनके आगे सरोवरमें स्नानकर महाविद्याका दर्शन करे। तत्पश्चात् पिण्डारकका दर्शन करे। अष्टमी और चतुर्दशीको यह यात्रा फलवती होती है। अंगारक चतुर्थीको पूर्वोक्त देवताओंके साथ-साथ समस्त कामनाओंकी सिद्धिके लिये विघ्नेशका भी दर्शन करे।

पूर्ववत् प्रातःकाल उठकर बुद्धिमान् पुरुष ब्रह्मकुण्डके जलमें स्नान करे। फिर विष्णु और विष्णुहरिका दर्शन करके मनुष्यके मन, वाणी और शरीरकी शुद्धि होती है। उसके बाद मन्त्रेश्वर और महाविद्याका दर्शन करे। तत्पश्चात् सब कामनाओंकी सिद्धिके लिये अयोध्याका दर्शन करके जितेन्द्रिय पुरुष स्वर्गद्वारमें वस्त्रसहित स्नान करे। उससे मनुष्यके अनेक जन्मोंके उपार्जित नाना प्रकारके पाप नष्ट हो जाते हैं। इसलिये वस्त्रसहित स्नान अवश्य करे। यह यात्रा सब पापोंका नाश करनेवाली बतायी गयी है। जो प्रतिदिन इस प्रकार शुभ फल देनेवाली यात्रा करता है, उसकी सौ कोटि कल्पोंमें भी पुनरावृत्ति नहीं होती। अयोध्यापुरी सर्वोत्तम स्थान है। यह भगवान् विष्णुके चक्रपर प्रतिष्ठित है।

सूतजी कहते हैं—जो मनुष्य पवित्रचित्त होकर अयोध्याके इस अनुपम माहात्म्यका पाठ करता है अथवा जो श्रद्धासे इसको सुनता है, वह परमगतिको प्राप्त होता है। अतः मनुष्योंको सदा यत्नपूर्वक इसका श्रवण करना चाहिये। ब्राह्मणों तथा भगवान् विष्णुकी पूजा करनी चाहिये और अपनी शक्तिके अनुसार ब्राह्मणके लिये सुवर्ण आदि देना चाहिये। पुत्रकी इच्छा रखनेवाला पुरुष इस माहात्म्यको सुनकर पुत्र पाता है और धर्मार्थीको धर्मकी प्राप्ति होती है। जो श्रेष्ठ मनुष्य अति विस्तृत विधानके साथ वर्णित इस धर्मयुक्त आदिक्षेत्रके उत्तम माहात्म्यका भक्तिपूर्वक श्रवण करता है, वह लक्ष्मीसे सनाथ होकर संसारमें सब उत्तम भोगोंको भोगनेके पश्चात् भगवान् विष्णुके लोकमें निवास करता है।

श्रीअयोध्या-माहात्म्य सम्पूर्ण।

वैष्णवखण्ड समाप्त

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

ॐ

श्रीपरमात्मने नम:

श्रीउमामहेश्वराभ्यां नम:

संक्षिप्त श्रीस्कन्दमहापुराण

ब्राह्मखण्ड

सेतु-माहात्म्य

सेतुतीर्थ (रामेश्वर-क्षेत्र)-की महिमा

शुक्लाम्बरधरं विष्णुं शशिवर्णं चतुर्भुजम्।
प्रसन्नवदनं ध्यायेत्सर्वविघ्नोपशान्तये॥

'जिन्होंने श्वेत वस्त्र धारण कर रखा है, जिनका चन्द्रमाके समान गौर वर्ण है, चार भुजाएँ हैं और मुखपर प्रसन्नता छा रही है, ऐसे भगवान् विष्णुका सब विघ्नोंकी शान्तिके लिये ध्यान करना चाहिये।'

नैमिषारण्य तीर्थमें शौनक आदि ऋषि अष्टांगयोगके साधनमें तत्पर हो एकमात्र ब्रह्मज्ञानके साधनमें संलग्न थे। वे सभी महात्मा संसार-बन्धनसे मुक्ति चाहनेवाले थे। उनमें ममताका सर्वथा अभाव था। वे ब्रह्मवादी, धर्मज्ञ, किसीके दोष न देखनेवाले, सत्यव्रती, इन्द्रियसंयमी, क्रोधको जीतनेवाले तथा सब प्राणियोंके प्रति दया रखनेवाले थे। शौनक आदि महर्षि इस परम पवित्र मोक्षदायक नैमिषारण्यमें अतिशय भक्तिके साथ सनातनदेव भगवान् विष्णुकी पूजा करते हुए तपस्यामें लगे रहते थे। एक समय उन महात्माओंने उत्तम सत्संगका आयोजन किया। उसमें वे परम पुण्यमयी पापनाशक कथाएँ कहते और मुक्तिके उपायपर परस्पर प्रश्नोत्तर किया करते थे। उसी अवसरपर वहाँ व्यासजीके शिष्य महाविद्वान् पौराणिकोंमें श्रेष्ठ मुनिवर सूतजी आये। उन्हें देखकर शौनकादि महर्षियोंने अर्घ्य आदिके द्वारा उनका पूजन किया। जब वे सुखपूर्वक उत्तम आसनपर बैठे, तब महर्षियोंने उनसे पूछा—'सूतजी! जीवोंकी संसारसागरसे किस प्रकार मुक्ति होती है? भगवान् शिव अथवा विष्णुमें मनुष्योंकी भक्ति कैसे होती है? ये तथा अन्य सब बातें भी आप कृपा करके हमें बताइये।'

तब सूतजीने पहले अपने गुरु श्रीव्यासदेवजीको प्रणाम करके इस प्रकार कहना प्रारम्भ किया—'ब्राह्मणो! श्रीरामचन्द्रजीके द्वारा बँधाये हुए सेतुसे जो परम पवित्र हो गया है, वह रामेश्वर नामक क्षेत्र सब तीर्थोंमें उत्तम है। उसके दर्शनमात्रसे संसारसागरसे मुक्ति हो जाती है। भगवान् विष्णु और शिवमें भक्ति तथा पुण्यकी वृद्धि होती है। सेतुका दर्शन करनेपर मनुष्य सब यज्ञोंका कर्ता माना गया है। उसने सब तीर्थोंमें स्नान और सब प्रकारकी तपस्याका अनुष्ठान कर लिया। सेतुमें स्नान करनेवाला पुरुष विष्णुधाममें जाकर वहीं मुक्त हो जाता है। सेतु, रामेश्वर-लिंग और गन्धमादनपर्वतका चिन्तन करनेवाला मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। द्विजवरो! जो सेतुकी

279 Skandpuran_Section_19_2_Back
In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

बालुकाओंमें शयन करता है, उसकी धूलसे वेष्टित होता है, उसके शरीरमें बालूके जितने कण सटते हैं, उतनी ब्रह्महत्याओंका नाश हो जाता है। सेतुके मध्यवर्ती प्रदेशकी वायु जिसके सम्पूर्ण शरीरका स्पर्श करती है, उसके दस हजार सुरापानका पाप तत्काल नष्ट हो जाता है। पुत्र और पौत्रोंके द्वारा जिसकी हड्डी सेतुमें डाली गयी है, उसका दस हजार बार की हुई सुवर्णकी चोरीका पाप उसी क्षण नष्ट हो जाता है। जिस मनुष्यका स्मरण करके सेतुतीर्थमें कोई स्नान करता है, उसका भी महापातकियोंके संसर्गसे प्राप्त हुआ दोष तत्क्षण नष्ट हो जाता है। मार्गको नष्ट करनेवाला, केवल अपने लिये भोजन बनानेवाला, संन्यासियों और ब्राह्मणोंकी निन्दा करनेवाला, चाण्डालका अन्न खानेवाला और वेद बेचनेवाला—ये पाँच ब्रह्महत्यारे कहे गये हैं। जो ब्राह्मणोंको बुलाकर यह आशा देता है कि 'तुम्हें धन आदि दूँगा' और फिर यह कह देता है कि 'मेरे पास नहीं है' वह भी ब्रह्महत्यारा कहा गया है। जो जिससे धर्मका उपदेश ग्रहण करता है, वह उसीसे द्वेष करे या उसकी अवहेलना करे तो वह भी ब्रह्महत्यारा कहा गया है। जो पानी पीनेके लिये जलाशयकी ओर जाती हुई गौओंके समूहको रोक देता है, उसको भी ब्रह्मघाती कहा गया है। सेतुतीर्थमें आकर वे सभी अपनी पापराशिसे मुक्त हो जाते हैं। ब्रह्महत्यारोंके समान जो दूसरे पापी हैं, वे भी सेतुतीर्थमें आकर अपने पापोंसे छुटकारा पा जाते हैं। जो उपासनाका परित्याग करता, देवताका अन्न खाता, शराब पीता, शराब पीनेवाली स्त्रीसे संसर्ग रखता, वेश्याका अन्न खाता और किसी समुदाय अथवा संस्थाका अन्न भोजन करता है तथा जो पतितका अन्न खानेमें तत्पर रहता है, ये सभी सुरापी (शराब पीनेवाले) कहे गये हैं। ये सब कर्मोंसे बहिष्कृत हैं। ऐसे लोग भी सेतुतीर्थमें स्नान करनेसे पापरहित हो मुक्त हो जाते हैं। शराब पीनेवालेके समान अन्य जो पापी हैं, वे भी सेतुमें गोता लगानेसे पापमुक्त हो जाते हैं। कन्द, मूल, फल, कस्तूरी, रेशमी वस्त्र, दूध, चन्दन, कपूर, सुपारी, शहद, घी, ताँबा, काँस तथा रुद्राक्षकी चोरी करनेवाले मनुष्योंको सुवर्ण चुरानेवाला समझना चाहिये। वे सेतुक्षेत्रमें आकर मुक्त हो जाते हैं। अन्य प्रकारके चोर भी वहाँ स्नान करनेसे पापमुक्त होते हैं। बहिन, पुत्रवधू, रजस्वला स्त्री, भाईकी स्त्री, मित्रकी स्त्री, मदिरा पीनेवाली स्त्री, परायी स्त्री, हीन जातिकी स्त्री तथा अपने ऊपर विश्वास रखनेवाली स्त्रीके पास जब आसक्त पुरुष जाता है, तब वह गुरुशय्यागामी समझा जाने योग्य है। वह सब कर्मोंसे बहिष्कृत है। ये तथा और भी जो गुरुशय्यागामीके समान पापी हैं, वे सेतुतीर्थमें स्नान करके पापमुक्त हो जाते हैं। इन सबके साथ संसर्ग रखनेवाले जो पापी हैं, वे भी सेतुतीर्थके महास्नानसे पापरहित हो जाते हैं। सेतुतीर्थका स्नान अन्तःकरणको शुद्ध करनेवाला तथा मोक्ष देनेवाला है। पापनाशक सेतुतीर्थमें निष्कामभावसे किया हुआ स्नान मोक्ष देनेवाला है। जो मनुष्य धन-सम्पत्तिके उद्देश्यसे सेतुतीर्थमें स्नान करता है, वह प्रचुर सम्पत्ति पाता है और यदि वह आत्मशुद्धिके लिये स्नान करता है तो आत्मशुद्धिको पाता है। यदि स्वर्गीय सुख भोगनेके लिये स्नान करता है, तो उसे ही प्राप्त करता है और यदि मोक्षदायक सेतुतीर्थमें मुक्तिके लिये स्नान करे, तो मनुष्य पुनरावृत्तिरहित मुक्तिको पाता है। जो अंगोंसहित चारों वेदोंके ज्ञानमें पारंगत होने, समस्त शास्त्रोंकी विद्वत्ता और सम्पूर्ण मन्त्रोंकी अभिज्ञता प्राप्त करनेके उद्देश्यसे सर्वार्थसिद्धिदायक सेतुतीर्थमें स्नान करता है, वह उस मनोवांछित सिद्धिको अवश्य प्राप्त होता है। श्रद्धालु मनुष्य हो या श्रद्धाहीन, यदि वह सेतुतीर्थमें स्नान करता है तो इहलोक और

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

परलोकमें कभी दु:खका भागी नहीं होता। संसारमें कामधेनु, चिन्तामणि तथा कल्पवृक्ष जिस प्रकार मनुष्योंको अभीष्ट वस्तुएँ प्रदान करते हैं, वैसे ही सेतुस्नान मनुष्योंके सब मनोरथ पूर्ण करता है। जो मनुष्य सेतुतीर्थमें जानेवाले पुरुषको धन-धान्य अथवा वस्त्र आदि देकर उसमें प्रवृत्त कराता है, वह अश्वमेधादि यज्ञोंके उत्तम फलको पाता है। उसके ब्रह्महत्या आदि पापोंका नाश हो जाता है। जो मनुष्य 'मैं सेतुतीर्थमें जाऊँगा' ऐसा कहकर दूसरोंसे धन लेता है और लेकर लोभवश नहीं जाता, उसको ब्रह्मघाती कहते हैं। जो सम्पन्न होकर भी दरिद्रकी भाँति सेतुतीर्थमें जानेके लिये लोभवश धनकी याचना करता है, उसे विद्वानोंने चोर कहा है। जिस किसी उपायसे हो सके, मनुष्य प्रसन्नतापूर्वक सेतुतीर्थकी यात्रा करे। जो वहाँतक जानेमें असमर्थ हो, वह ब्राह्मणको दक्षिणा देकर उससे वहाँकी यात्रा करवावे।

सेतुबन्धकी कथा तथा सेतुमें स्थित मुख्य-मुख्य तीर्थोंके नाम

ऋषियोंने पूछा—महाभाग सूतजी! अनायास ही सब कार्य करनेवाले श्रीरामचन्द्रजीने अगाध समुद्रमें किस प्रकार सेतु बाँधा? सेतुतीर्थमें एवं गन्धमादन पर्वतपर कितने तीर्थ हैं? ये सब हमें बताइये।

श्रीसूतजीने कहा—मुनिवरो! पिताकी आज्ञासे भगवान् श्रीराम सीताजी और लक्ष्मणके साथ दण्डकारण्यके अन्तर्गत पंचवटीमें एकाग्रचित्त होकर निवास करते थे। वहाँ रहते हुए महात्मा रघुनाथजीकी पत्नी सीताको मारीचद्वारा छल करके रावणने हर लिया। दशरथनन्दन श्रीराम उस वनमें अपनी पत्नी सीताकी खोज करते हुए किष्किन्धामें पम्पासरोवरके तटपर गये। वहाँ उन्हें कोई वानर दिखायी दिया। उस वानरने निकट आकर श्रीरामचन्द्रजीसे पूछा—'आप कौन हैं?' तब उन्होंने अपना सब वृत्तान्त प्रारम्भसे ही उसको कह सुनाया। तत्पश्चात् श्रीरामने भी वानरसे पूछा—'तुम कौन हो?' तब उसने महात्मा राघवेन्द्रको अपना परिचय इस प्रकार दिया—'मैं सुग्रीवका मन्त्री हनुमान् नामक वानर हूँ। सुग्रीवके भेजनेसे मैं यहाँ आया हूँ। वे आप दोनोंसे मित्रता करना चाहते हैं। आपका कल्याण हो, आप दोनों शीघ्र ही सुग्रीवके समीप चलें।' 'बहुत अच्छा' कहकर श्रीरामचन्द्रजी हनुमान्‌जीके साथ सुग्रीवके समीप आये। सुग्रीवने उनके साथ अग्निको साक्षी देकर मित्रता स्थापित की। श्रीरामचन्द्रजीने उनसे बालिके वधकी प्रतिज्ञा की और सुग्रीवने विदेहराजनन्दिनी सीताको पुन: खोज लानेके लिये प्रतिज्ञा की। इस प्रकार प्रतिज्ञापूर्वक परस्पर विश्वास करके वे दोनों नरराज और वानरराज प्रसन्नतापूर्वक ऋष्यमूक पर्वतपर रहने लगे। श्रीरामचन्द्रजीने सुग्रीवको अपनी शक्तिका विश्वास दिलानेके लिये दुन्दुभि दानवके शरीरको शीघ्र ही पैरके अंगूठेसे मारकर अनेक योजन दूर फेंक दिया तथा एक ही बाणसे सात ताल बींध डाले। यह सब देखकर सुग्रीवके मनमें बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने श्रीरामचन्द्रजीसे कहा—'रघुनन्दन! मुझे इन्द्र आदि देवताओंसे भी भय नहीं है, क्योंकि आप-जैसे अत्यन्त पराक्रमी वीर मुझे मित्रके रूपमें प्राप्त हुए हैं। मैं लंकापति रावणको मारकर आपकी पत्नी सीताको यहाँ ले आऊँगा।'

तदनन्तर लक्ष्मण, सुग्रीव और महाबली श्रीरामचन्द्रजी बालिके द्वारा सुरक्षित किष्किन्धापुरीमें शीघ्रतापूर्वक गये। वहाँ बालिको युद्धके लिये बुलानेकी इच्छासे सुग्रीवने बड़ी भारी गर्जना की। अपने छोटे भाईकी वह गर्जना बालि नहीं सह सका। वह अन्त:पुरसे बाहर निकला और सुग्रीवसे भिड़ गया। बालिके मुक्केकी मारसे आहत हो सुग्रीव बहुत व्याकुल हो गये और शीघ्र ही वहाँ चले

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

गये, जहाँ महाबली श्रीरामचन्द्रजी खड़े थे। तब महाबाहु श्रीरामने सुग्रीवके गलेमें पहचाननेके लिये चिह्नस्वरूप एक लता बाँध दी और पुनः युद्धके लिये भेजा। सुग्रीवने फिर गर्जना करके बालिको ललकारा तथा श्रीरामचन्द्रजीकी प्रेरणासे उसके साथ बाहुयुद्ध प्रारम्भ किया। इसी समय राघवेन्द्रने एक ही बाणसे बालिको मार डाला। उसके मारे जानेपर सुग्रीवने किष्किन्धाके राज्यपर अधिकार पाया। तत्पश्चात् वर्षा बीत जानेपर वानरराज सुग्रीव सीताको खोज लानेके लिये वानरोंकी विशाल सेना साथ लेकर राजकुमार श्रीराम और लक्ष्मणके समीप आये। सीताकी खोजके लिये उन्होंने बहुत-से वानरोंको इधर-उधर भेजा। वायुपुत्र हनुमान्‌जीने लंकामें जाकर विदेहनन्दिनी सीताका पता लगाया और वहाँसे लौटकर सीताकी दी हुई चूड़ामणि श्रीरामचन्द्रजीको भेट की। उसे पाकर श्रीरामचन्द्रजीको हर्ष तथा शोक दोनों हुआ।

तत्पश्चात् सुग्रीव, लक्ष्मण, हनुमान् तथा जाम्बवान् और नल आदि अन्य वानर वीरोंके साथ श्रीरघुनाथजीने अभिजित् मुहूर्तमें यात्रा की और अनेक प्रकारके देशोंको लाँघकर वे महेन्द्रपर्वतपर जा पहुँचे। वहाँ चक्रतीर्थमें जाकर उन सबने निवास किया। वहीं राक्षसराज रावणके भाई धर्मात्मा विभीषण आकर श्रीरामचन्द्रजीसे मिले। महामना श्रीरामने स्वागतपूर्वक उन्हें ग्रहण किया। उस समय सुग्रीवके मनमें यह शंका हुई कि 'हो न हो, यह कोई गुप्तचर है।' परंतु राघवेन्द्रने विभीषणकी उत्तम चेष्टाओं और हितकारक चरित्रोंसे ही यह समझ लिया कि इसके मनमें कोई दुष्टता नहीं है। तभी उन्होंने विभीषणका स्वागत-सत्कार किया तथा उन्हें समस्त राक्षसोंके राज्यपर अभिषिक्त कर दिया। श्रीरामने सूर्यनन्दन सुग्रीवको अपना श्रेष्ठ मन्त्री नियुक्त किया और कुछ विचार करते हुए सुग्रीव आदिसे कहा—'मित्रो! आपने इस समुद्रको लाँघनेके लिये कौन-सा उपाय सोचा है?'

श्रीरामचन्द्रजीके इस प्रकार पूछनेपर सुग्रीव आदिने हाथ जोड़कर कहा—'भगवन्! हम सब लोग नाना प्रकारकी नावोंसे समुद्रको पार करेंगे।' तब विभीषणने कहा—'राजा सगरके पुत्रोंने वरुणके निवासभूत इस समुद्रको खोदा है, अतः श्रीरामचन्द्रजीको समुद्रकी शरणमें जाना चाहिये। ये सगरके कुटुम्बी हैं, अतः समुद्र इनका कार्य अवश्य सिद्ध करेगा।' यह सुनकर श्रीरामचन्द्रजीने वानरोंको समझाते हुए कहा—'श्रेष्ठ वानरो! हमारी सेनाके लिये बहुत-सी नौकाएँ चाहिये, सो यहाँ उपस्थित नहीं हैं। यदि व्यापारी बनियोंकी नावें ले ली जायँ, तो उनकी बड़ी हानि होगी। हम-जैसे लोग यह अनुचित कार्य कैसे कर सकेंगे। हमारी सेनाका विस्तार बहुत अधिक है। यदि नावपर बैठकर या तैरकर समुद्रमें जायँ, तो यह छिद्र देखकर कोई भी शत्रु हमपर प्रहार कर सकता है। इसलिये तैरकर जाना या नावसे पार करना मुझे ठीक नहीं जँचता। विभीषणकी ही बात मुझे सुखदायक प्रतीत होती है। अतः मार्गकी सिद्धिके लिये मैं इस समुद्रकी उपासना करूँगा। यदि यह मार्ग नहीं दिखायेगा, तो अपने महान् अस्त्रोंसे इसे जलाकर राख कर दूँगा।'

ऐसा कहकर श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणके साथ समुद्रके जलका स्पर्श करके तटपर बिछाये हुए कुशके आसनपर बैठे। श्रीरामचन्द्रजी नीतिके ज्ञाता और धर्मपरायण थे; उन्होंने समुद्रसे मार्गकी प्राप्तिके लिये तीन राततक उसकी उपासना की तथा यथायोग्य सामग्रियोंसे उसका पूजन भी किया। तथापि उसने अपने-आपको श्रीरामचन्द्रजीके सम्मुख प्रकट नहीं किया। इससे श्रीरामको समुद्रपर बड़ा क्रोध हुआ। उनकी आँखें लाल-लाल हो गयीं। उन्होंने पास ही बैठे हुए लक्ष्मणसे कहा—'सुमित्रानन्दन! आज मैं अपने बाणोंसे समुद्रनिवासी मगर आदि जल-जन्तुओंको छिन्न-भिन्न करते हुए सागरके जलको क्षणभरमें स्तब्ध कर दूँगा

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

और शंख, शुक्ति, मछली, मगर आदिके सहित इस जलनिधिको अमोघ बाणोंद्वारा सुखा डालूँगा। मुझे क्षमायुक्त देखकर यह असमर्थ समझने लगा। शान्तिपूर्ण ढंगसे प्रार्थना करनेपर यह अपने-आपको मेरे सामने नहीं प्रकट करता है। लक्ष्मण! तुम शीघ्र मेरा धनुष और सर्पोंके समान मेरे बाण उठा लाओ, अब सागरको सुखा दूँगा। मेरे वानर सैनिक पैदल ही इसे पार करें।'

ऐसा कहकर भगवान् श्रीरामने धनुष हाथमें लिया। वे उस समय त्रिपुरविनाशक शिवजीकी भाँति दुर्धर्ष प्रतीत होने लगे। उन्होंने धनुषको खींचकर अपने बाणोंसे संसारको कम्पित करते हुए उन भयंकर बाणोंको उसी प्रकार छोड़ा, जैसे भगवान् शंकरने त्रिपुरोंके ऊपर बाणका प्रहार किया था। वे तेजस्वी बाण दसों दिशाओंको प्रकाशित करते हुए अभिमानी दानवोंसे भरे हुए समुद्रके जलमें धँस गये। तब तो समुद्र भयभीत होकर काँपने लगा और कहीं भी शरण न पाकर पातालसे उठकर हाथ जोड़े हुए मोक्षके कारणभूत भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी शरणमें आया। उसने मनोहर शब्दोंमें राघवेन्द्रकी इस प्रकार स्तुति की।

समुद्र बोला—रघुकुलशिरोमणि सीतापते! मैं आपके चरणारविन्दोंको नमस्कार करता हूँ, जो अपनी सेवा करनेवाले पुरुषोंको सुख देनेवाले हैं। देववृन्दसे सेवित आपकी श्रीचरणरेणुको प्रणाम करता हूँ, जो गौतमपत्नी अहल्याको शापसे मुक्त करनेवाली है। राम! राम! आप देवताओंका कार्य करनेकी इच्छासे रघुकुलमें अवतीर्ण हुए हैं और भक्तोंका अभीष्ट सिद्ध करनेवाले हैं, मैं आपको नमस्कार करता हूँ। आप आदि-अन्तरहित, मोक्षदायक, कल्याणस्वरूप तथा अपनी महिमासे कभी च्युत न होनेवाले नारायण हैं, मैं आपको प्रणाम करता हूँ। राम! महाबाहु श्रीराम! मैं आपकी शरणमें आया हूँ, मेरी रक्षा कीजिये। राजेन्द्र! आप अपने क्रोधको शान्त कीजिये। करुणालय! मेरे अपराधको क्षमा कीजिये। रघुवंशशिरोमणे! पृथ्वी, वायु, आकाश, जल और अग्नि—इन सबको विधाताने जिस स्वभावका बनाया है, वे उसी स्वभावके अनुसार बर्तते हैं। मेरा स्वभाव ही अगाधता है। यदि मैं अगाध न होऊँ, तो यह मेरे लिये विकारकी बात होगी, मैं यह सब आपसे सत्य कहता हूँ। राघवेन्द्र! लोभ, काम, भय अथवा रागसे भी मैं वंशपरम्परासे प्राप्त हुए अपने गुणका किसी प्रकार त्याग करनेमें समर्थ नहीं; अतः इस समय आपकी सेनाके पार उतारनेमें मैं सहायता करूँगा। सर्वथा सूख नहीं जाऊँगा। यदि सेनासहित पार जानेकी इच्छावाले आपकी आज्ञासे मैं सूख जाऊँ, तो दूसरे लोग भी मुझे धनुषके बलसे ऐसी ही आज्ञा देंगे। अतः आपकी सेनाके उतरनेके लिये मैं दूसरा उपाय बतलाता हूँ—भगवन्! आपकी सेनामें यहाँ नल नामक वानर मौजूद है; वह बड़े-बड़े कारीगरोंमें माननीय है। महाबली नल साक्षात् विश्वकर्माका पुत्र है। वह अपने हाथसे जो कुछ भी काठ, तृण अथवा पत्थर मेरे अंदर फेंकेगा, वह सब मैं पानीके ऊपर धारण करूँगा। वही आपके लिये सेतु (पुल) हो जायगा, उसीके द्वारा आप रावणपालित लंकामें सेनासहित जाइये।

यों कहकर समुद्र अन्तर्धान हो गया। तब श्रीरामचन्द्रजीने नलसे कहा—'महामते! तुम समुद्रमें पुल बनाओ; क्योंकि तुममें यह कार्य करनेकी शक्ति है।' उस समय नलने धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजीसे कहा—'भगवन्! मैं अगाध समुद्रमें सेतुका निर्माण करूँगा। मन्दराचल पर्वतपर विश्वकर्माने मेरी माताको वरदान दिया था कि तुम्हारा पुत्र मेरे समान शिल्पकर्ममें निपुण होगा। अतः समस्त श्रेष्ठ वानर आज ही सेतु बाँधना आरम्भ कर दें।' तब श्रीरामचन्द्रजीके भेजे हुए अतिशय बलवान् वानर पर्वत, गिरिशिखर, लता, तृण तथा वृक्षोंको उठा-उठाकर लाने लगे। वे सभी गरुड़के समान वेगवान् तथा विशालकाय वानर थे। नलने समुद्रके बीचमें बहुत बड़ा पुल

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

तैयार किया, जो दस योजन चौड़ा और सौ

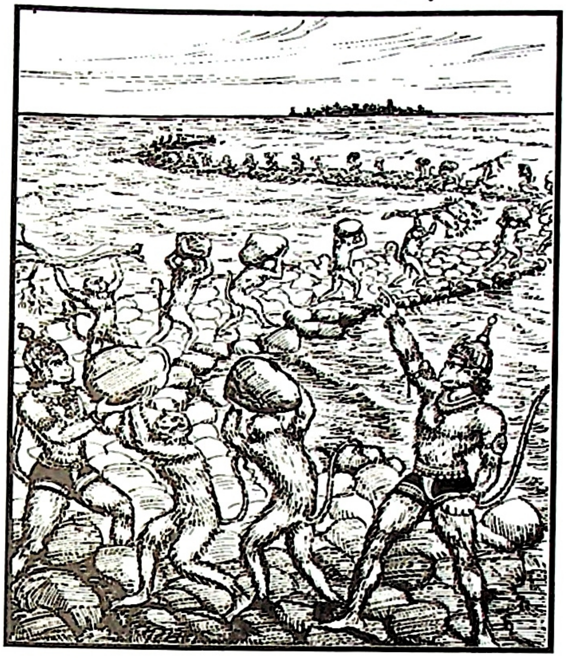

योजन लंबा था। इस प्रकार सीतावल्लभ श्रीरामने विश्वकर्मापुत्र वानरराज नलके द्वारा इस सेतुका निर्माण कराया। उस सेतुपर पहुँचकर सम्पूर्ण पातकी मनुष्य सब प्रकारके पातकोंसे मुक्त हो जाते हैं। श्रीरामचन्द्रजीने लंकामें जानेकी इच्छासे वानरोंद्वारा उस पवित्र पापनाशक सेतुका जहाँ प्रारम्भ कराया, वह स्थान आगे चलकर लोगोंमें दर्भशयनके नामसे प्रसिद्ध हुआ। इस प्रकार समुद्रमें सेतुबन्धनकी कथा कही गयी। वहाँ अनेक पवित्र तीर्थ हैं, जिनमें चौबीस तीर्थ प्रधान हैं। वे सब सेतुपर ही स्थित हैं। पहला चक्रतीर्थ है, दूसरा वेतालवरदतीर्थ और तीसरा पापविनाशनतीर्थ है, जो सब लोकोंमें विख्यात है। उसके बाद सीतासरोवर नामक पुण्यतीर्थ है। तत्पश्चात् मंगलतीर्थ है। मंगलतीर्थके अनन्तर सब पापोंका नाश करनेवाली अमृतवापिका है। फिर ब्रह्मकुण्ड, हनुमत्कुण्ड, अगस्त्यतीर्थ, रामतीर्थ, लक्ष्मणतीर्थ, जयतीर्थ, लक्ष्मीतीर्थ, अग्नितीर्थ, चक्रतीर्थ, शिवतीर्थ, शंखतीर्थ, यामुनतीर्थ, गंगातीर्थ, गयातीर्थ, कोटितीर्थ, साध्यामृततीर्थ, मानसतीर्थ तथा धनुष्कोटितीर्थ है। विप्रवरो! ये सेतुके मध्यमें स्थित प्रधान-प्रधान तीर्थ बताये गये हैं, जो सब पापोंका अपहरण करनेवाले हैं। जो मनुष्य भक्तिपूर्वक इस प्रसंगको पढ़ता और सुनता है, वह अनन्त विजय प्राप्त करता है तथा परलोकमें भी उसे पुनर्जन्मका क्लेश नहीं उठाना पड़ता।

चक्रतीर्थका माहात्म्य—गालवमुनि तथा धर्मकी तपस्याका वर्णन

ऋषि बोले—आपने पापनाशक सेतुपर स्थित जिन चौबीस तीर्थोंके नाम बताये हैं, उनमें सबसे पहले तीर्थका नाम चक्रतीर्थ कैसे हुआ?

श्रीसूतजीने कहा—विप्रवरो! चौबीस प्रधान तीर्थोंमें जो आदितीर्थ बताया गया है, वह सब लोकोंमें विख्यात है। उसकी चक्रतीर्थके नामसे प्रसिद्धि क्यों हुई, यह बात बता रहा हूँ, सुनो। जो स्थान सेतुका मूल कहा गया है, वही दर्भशयनतीर्थ है। वहींपर महापातकोंका नाश करनेवाला चक्रतीर्थ है। पूर्वकालमें वहाँपर गालव नामसे प्रसिद्ध एक वैष्णव महात्मा रहते थे। वे दक्षिण समुद्रके तटपर हालास्यसे थोड़ी दूरपर फुल्लग्रामके समीप क्षीरसरोवरके निकट धर्मपुष्करिणीके किनारे बड़ी भारी तपस्या करते थे। उनका स्वभाव दयालु था, वे सत्यवादी और जितेन्द्रिय थे और उन्होंने आहारका सर्वथा त्याग कर दिया था। वे सब प्राणियोंको अपने ही समान देखते हुए विषयकी स्पृहासे रहित, सब प्राणियोंके हितैषी, मनको वशमें रखनेवाले तथा सब प्रकारके द्वन्द्वोंसे दूर थे। कुछ वर्षोंतक तो वे सूखे पत्ते चबाकर रहे, फिर कुछ समयतक उन्होंने केवल जलका आहार किया। तत्पश्चात् कुछ वर्षोंतक वे वायु पीकर रहे। इस प्रकार उन महामुनिने बड़ी कठोर तपस्या की। कितने ही वर्षोंतक वे बिना खाये, बिना किसीकी ओर

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

देखे, बिना श्वास लिये और बिना आश्रयके रहे। वर्षा-ऋतुमें आकाशसे गिरती हुई पानीकी धाराका कष्ट सहन करते, सर्दीकी रातमें जलके भीतर खड़े रहते और गरमीके समय पंचाग्नि सेवन करते हुए भगवान् विष्णुके ध्यानमें तत्पर रहते थे। मुखसे अष्टाक्षर मन्त्रका* जप और हृदयमें भगवान् विष्णुका ध्यान करते हुए वे महातेजस्वी गालव मुनि तपस्यामें संलग्न रहे। इस प्रकार कितने ही वर्ष बीतनेपर भगवान् लक्ष्मीपतिने उनकी तपस्यासे सन्तुष्ट हो उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन दिया। भगवान्ने अपने हाथोंमें शंख, चक्र और गदा आदि धारण कर रखे थे, उनके नेत्र विकसित कमलदलके समान सुशोभित थे, उनका तेज कोटि सूर्योंके समान था, वे गरुड़की पीठपर आरूढ़ थे, उनके सिरपर छत्र और पार्श्वभागमें डुलाये जाते हुए चवँरकी शोभा हो रही थी। वे हार, भुजबन्द, मुकुट और कड़े आदि आभूषणोंसे विभूषित थे, विष्वक्सेन तथा सुनन्द आदि पार्षद उन्हें सब ओरसे घेरकर खड़े थे। भगवान् अपनी मन्द मुसकानसे त्रिभुवनके मनको मोहित किये लेते थे तथा अपनी दिव्य कान्तिसे समस्त पदार्थों एवं दसों दिशाओंको प्रकाशित कर रहे थे। कण्ठमें धारण की हुई कौस्तुभमणिसे उनकी बड़ी शोभा हो रही थी।

उस समय उन पीताम्बरधारी भगवान् विष्णुको देखकर महामुनि गालव बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने बड़ी भक्तिसे भगवान् जगदीश्वरका स्तवन किया—'शंख, चक्र तथा गदा धारण करनेवाले देवाधिदेव भगवान् विष्णुको नमस्कार है। नित्य शुद्ध सच्चिदानन्दस्वरूप श्रीनारायणको नमस्कार है। भक्तोंकी पीड़ाका नाश करनेवाले हव्य-कव्यस्वरूप आप यज्ञपुरुषको नमस्कार है। जगत्की सृष्टि, पालन और संहार करनेवाले आप ब्रह्मा, विष्णु और शिवरूप त्रिमूर्तिको नमस्कार है। आप परमेश्वरको नमस्कार है। सर्वव्यापी प्रभुको नमस्कार है। जगत्की रचना करनेवाले आप लक्ष्मीपतिको नमस्कार है। सूर्य और चन्द्रमारूपी नेत्रोंवाले आप भगवान्को नमस्कार है। ब्रह्मा आदि देवताओंसे वन्दित आप भगवान् विष्णुको नमस्कार है। जो नाम और जाति आदि भेदोंसे रहित तथा समस्त दोषोंसे वर्जित हैं, समस्त संसारका भय दूर करनेवाले उन दैत्यविनाशक विष्णुको नमस्कार है। जो वेदान्तवेद्य परमेश्वर हैं, वैकुण्ठधाममें जिनका निवास है, जो ब्रह्माजीके पिता हैं, भक्तजनोंके दुःखोंका तत्काल नाश करनेवाले हैं, उन अमित पराक्रमी भगवान् नारायणको नमस्कार है। शार्ङ्गधनुष धारण करनेवाले आप भगवान् वासुदेवको नमस्कार है। शेषनागकी शय्यापर शयन करनेवाले आप भगवान् नारायणको बार-बार नमस्कार है।'

इस प्रकार महात्मा गालवकी की हुई स्तुति सुनकर भगवान्ने प्रसन्न हो उन्हें चारों हाथोंसे खींचकर छातीसे लगा लिया और प्रेमपूर्वक कहा—'गालव! मैं तुम्हारी तपस्या और इस स्तुतिसे बहुत सन्तुष्ट हूँ तथा वर देनेके लिये आया हूँ।' गालवने कहा—'नारायण! रमानाथ! पीताम्बर! जगन्मय! जनार्दन! जगद्धाम! गोविन्द! नरकान्तक! मैं आपके दर्शनमात्रसे सर्वाधिक कृतार्थ हो गया। इससे अधिक दूसरा वर क्या हो सकता है। जिन्हें योगी नहीं देख पाते, कर्मठ लोग भी जिनका दर्शन नहीं कर पाते, उन्हीं परमात्माका आज मैं साक्षात् दर्शन कर रहा हूँ। इससे अधिक दूसरा वर क्या हो सकता है। जगत्पते! जनार्दन! मैं इतनेसे ही कृतार्थ हो गया। जिनके नामोंका स्मरण करनेमात्रसे महापातकी भी मुक्तिको प्राप्त होते हैं, उन्हीं भगवान् विष्णुको मैं यहाँ प्रत्यक्ष देख रहा हूँ। प्रभो! आपके युगल चरणारविन्दोंमें मेरी अविचल भक्ति हो।'

भगवान् विष्णुने कहा—गालव! मुझमें तुम्हारी दृढ़ एवं निष्काम भक्ति हो। प्रारब्धके फलस्वरूप

* 'ॐ नमो नारायणाय' यह अष्टाक्षर मन्त्र है।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

इस शरीरका अन्त होनेपर तुम्हें मेरे स्वरूपकी प्राप्ति होगी। मुनिश्रेष्ठ! तुम इसी पवित्र आश्रमपर निवास करो। यह धर्मपुष्करिणी पुण्यमयी एवं पापनाशिनी है। इसके किनारे तप करनेवाला मनुष्य सिद्धिको प्राप्त होता है। पूर्वकालमें धर्मराजने यहाँ आकर दक्षिण समुद्रके तटपर महादेवजीका चिन्तन करते हुए तपस्या की थी। इसीसे यह धर्मपुष्करणीके नामसे प्रसिद्ध है। धर्मराजकी तपस्यासे प्रसन्न हो शूलपाणि भगवान् महेश्वर अपनी प्रभासे दसों दिशाओंको प्रकाशित करते हुए प्रकट हुए। तब धर्मने उनकी इस प्रकार स्तुति की—'मैं जगत्के स्वामी ॐकारस्वरूप ईश्वरको नमस्कार करता हूँ। समस्त देवता जिनके स्वरूप हैं, जो आदि, मध्य और अन्तसे रहित हैं, जिनके नेत्र भयंकर हैं, उन विश्वरूप ऊर्ध्वरेता भगवान् शंकरको मैं नमस्कार करता हूँ। जो सम्पूर्ण जगत्के आधार, अनन्त, अजन्मा और अविनाशी हैं, योगीश्वर जिनको सदा प्रणाम करते हैं, उन पुष्टिवर्द्धक भगवान् शिवको मैं प्रणाम करता हूँ। जो समस्त लोकोंके स्वामी हैं, उन भगवान् महादेवको नमस्कार है। जिनके कण्ठमें नील चिह्न है, जो समस्त पशुओं (जीवों) के पालन करनेवाले पति हैं, उन भगवान् महेश्वरको बार-बार नमस्कार है। समस्त पापोंका नाश करनेवाले भगवान् शंकरको नमस्कार है। समस्त कामनाओंकी वर्षा करनेवाले महेश्वरको नमस्कार है। रुद्रदेवको नमस्कार है। सर्पोंको प्रश्रय देनेवाले शिवको नमस्कार है। उत्कृष्ट चित्तवाले प्रचेता (वरुण) रूप शम्भुको नमस्कार है। हाथोंमें पिनाक और त्रिशूल धारण करनेवाले आपको बार-बार नमस्कार है। चैतन्यरूप शिवको नमस्कार है। पुष्टिपालक महेश्वरको नमस्कार है। समस्त क्षेत्रों (शरीरों) के स्वामी भगवान् पंचानन शिवको नमस्कार है।'

इस प्रकार स्तुति करनेपर लोककल्याणकारी भगवान् शंकरने कहा—महामते धर्म! मैं तुम्हारे इस स्तोत्रसे बहुत प्रसन्न हूँ, तुम मुझसे वर माँगो।

धर्मने कहा—पार्वतीपते! मैं सदा आपका वाहन होऊँ।

शिवजीने कहा—धर्म! तुम सदैव मनुष्योंसे पूजित हो, तुम मेरे वाहन बनो। तुम्हारा सेवन करनेवाले मनुष्योंकी मुझमें सदैव भक्ती बनी रहेगी और तुमने दक्षिण समुद्रके तटपर जो तीर्थ बनाया है, वह धर्मपुष्करिणीके नामसे प्रसिद्ध होगा।

इस प्रकार उस धर्मतीर्थके लिये वर देकर भगवान् शंकर वृषभरूपधारी धर्मपर आरूढ़ हो कैलास पर्वतपर चले गये। महर्षि गालव! तुम भी इस धर्मपुष्करिणीके किनारे तपस्या करते हुए तबतक निवास करो, जबतक कि तुम्हारे शरीरका अन्त न हो जाय।

ऐसा कहकर भगवान् विष्णु वहीं अन्तर्धान हो गये। तब मुनिश्रेष्ठ गालव धर्मपुष्करिणीके तटपर भगवान् विष्णुके ध्यानमें तत्पर हो निवास करने लगे। किसी समय माघ मासमें शुक्ल पक्षकी एकादशीको उपवास करके उन्होंने रात्रिमें जागरण किया और दूसरे दिन द्वादशीको धर्मपुष्करिणीके जलमें स्नान करके सन्ध्या-वन्दनपूर्वक नित्य कर्मोंका अनुष्ठान किया। तत्पश्चात् भगवान् विष्णुकी पूजा सम्पन्न करके उन्होंने इस प्रकार स्तवन किया—

गालव बोले—सहस्रों मस्तक धारण करनेवाले भगवान् विष्णुको मैं नमस्कार करता हूँ। मत्स्य, कूर्म, वाराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, राम, बलराम, श्रीकृष्ण तथा कल्किरूप धारण करनेवाले भगवान् विष्णुको मैं प्रणाम करता हूँ। जो प्रणतजनोंकी पीड़ाका नाश करनेवाले और समस्त प्राणियोंके आधार हैं, उन आधारशून्य वासुदेव भगवान् जनार्दनको मैं प्रणाम करता हूँ। जो सर्वज्ञ, सबके कर्ता, सच्चिदानन्द-स्वरूप, तर्कके अविषय एवं नामनिर्देशसे रहित हैं, उन भगवान् जनार्दनको मैं प्रणाम करता हूँ।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

सुदर्शनचक्रके द्वारा गालवमुनिकी रक्षा

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

इस प्रकार स्तुति करते हुए महायोगी गालव मुनि धर्मपुष्करिणीके तटपर ध्यानमग्न होकर बैठे। इसी समय कोई भयंकर राक्षस क्षुधासे पीड़ित हो गालव मुनिको खा जानेके लिये वहाँ आया। उसने गालव मुनिको बड़े वेगसे पकड़ लिया। तब गालवजीने शरणागतरक्षक, दयासागर, चक्रपाणि भगवान् नारायणको बार-बार पुकारते हुए कहा—'प्रभो! मेरी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये। परेश! परमानन्द! शरणागतपालक! करुणासिन्धो! मेरी रक्षा कीजिये। लक्ष्मीकान्त! हरे! विष्णो! वैकुण्ठ! गरुड़ध्वज! मेरी रक्षा कीजिये। दामोदर! जगन्नाथ! हिरण्यकशिपुमर्दन! प्रह्लादकी भाँति मेरी रक्षा कीजिये।'

इस प्रकार स्तुति करते हुए अपने भक्त गालव मुनिके भयको जानकर चक्रपाणि भगवान् विष्णुने भक्तकी रक्षाके लिये अपने चक्रको प्रेरित किया। भगवान्‌का भेजा हुआ वह चक्र धर्मपुष्करिणीके तटपर बड़े वेगसे आया। सुदर्शनचक्रको आया देख राक्षस वहाँसे भागा। किंतु ज्वालामालाओंसे मण्डित उस चक्रने भागते हुए राक्षसका मस्तक सहसा धड़से अलग कर दिया!

तब गालवजीने सुदर्शन चक्रकी इस प्रकार स्तुति की—सम्पूर्ण विश्वकी रक्षाका व्रत लेनेवाले चक्र! तुम्हें नमस्कार है। भगवान् नारायणके करकमलोंको विभूषित करनेवाले तुम सुदर्शनको नमस्कार है। महान् गर्जना करनेवाले सुदर्शन! तुम युद्धमें असुरोंका संहार करनेमें प्रवीण हो, भक्तोंकी पीड़ाका नाश करनेवाले तुम्हें नमस्कार है। मैं भयसे उद्विग्न हूँ, तुम समस्त कल्मषोंसे मेरी रक्षा करो। स्वामिन्! प्रभो! सुदर्शन! तुम सदा मुक्तिकी इच्छा रखनेवाले जगत्‌के हितके लिये इस तीर्थमें निवास करो।

महर्षि गालवके ऐसा कहनेपर भगवान् विष्णुके उस चक्रने अपने सौहार्दसे उन्हे प्रसन्न करते हुए-से कहा—गालवजी! यह महापुण्यमय, परम उत्तम धर्मतीर्थ है। मैं इसमें सम्पूर्ण लोकोंके हितके लिये सदैव निवास करूँगा। तुम सदा भगवान् विष्णुके भक्त बने रहोगे। मेरे निवाससे यह धर्मपुष्करिणी अब चक्रतीर्थके नामसे प्रसिद्ध होगी। जो मनुष्य इस मुक्तिदायक चक्रतीर्थमें निवास करेंगे, उनके कुलमें पैदा हुए सभी पुरुष पापरहित होकर भगवान् विष्णुके परम धामको जायँगे। गालव! जो लोग यहाँ पितरोंके लिये पिण्ड देते हैं, वे स्वर्गमें जाते हैं और उनके पितर भी यहाँ तृप्त होते हैं।

यों कहकर भगवान् विष्णुका वह चक्र गालव मुनिके देखते-देखते सहसा उस पापनाशिनी धर्मपुष्करिणीमें समा गया। तबसे धर्मतीर्थकी चक्रतीर्थके नामसे प्रसिद्धि हुई। यह प्रसंग मैंने तुम सब लोगोंको सुनाया। जो मनुष्य धर्मतीर्थ, उग्र समाधियोगमें स्थित गालव मुनि तथा सुदर्शनचक्रका एक बार स्मरण करता है, वह कभी पापका भागी नहीं होता।

सेतुबन्धन आरम्भ करनेकी बात तथा सेतुयात्राका क्रम एवं विधान

श्रीसूतजी कहते हैं—मुनीश्वरो! जहाँ जानकी-वल्लभ रघुकुलशिरोमणि श्रीरामचन्द्रजीने नौ पत्थरोंकी स्थापना करके पहले-पहल समुद्रमें सेतु बाँधा था, वहींपर देवीपत्तन नामक नगर है। उसीके एक किनारेपर चक्रतीर्थ है।

भगवान् श्रीरामने शुभ मुहूर्तमें अच्छे दिनको देवीपत्तनसे कार्य प्रारम्भ किया। उन्होंने प्रारम्भमें गणेशजीकी पूजा करके महादेवजीकी आज्ञा ले अपने हाथसे प्रसन्नतापूर्वक नौ प्रस्तरोंकी स्थापना की। इस प्रकार उनके द्वारा सेतुबन्धनका कार्य प्रारम्भ होनेपर वानरलोग पर्वत, शाखायुक्त वृक्ष, शिलाखण्ड, काष्ठसमूह और तृणराशि एकत्र

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

करके लाने लगे। नलने उन सबको लेकर महासागरमें सेतु निर्माण किया। उन्होंने पाँच ही दिनमें लंकाके समीपतक पुल बाँध दिया। उसकी लंबाई सौ योजन और चौड़ाई दस योजन थी। इस प्रकार नलके द्वारा वह पापनाशक पुण्यमय सेतु तैयार किया गया। देवीपुरके निकट जो नौ पत्थर गड़े हैं, वे ही सेतुके मूल हैं। मनुष्य वहाँ अपने पापकी शुद्धिके लिये स्नान करे। फिर चक्रतीर्थमें स्नान करके सेतुके स्वामी श्रीहरिका पूजन करे। देवीपत्तनसे लेकर जो सेतु बाँधा गया है, उसके कारण वह यथार्थरूपसे सेतुमूल कहलाता है। सेतुका पश्चिम किनारा दर्भशयनतीर्थ कहा गया है और पूर्व किनारा देवीपत्तन। ये दोनों ही सेतुके मूल हैं। दोनोंको ही परम पवित्र, पुण्यजनक एवं पापनाशक कहा गया है। जो मनुष्य जिस मार्गसे जिस (पूर्व या पश्चिम) सेतुमूलको जायँ, वे उसी मार्गसे उस मोक्षदायक सेतुमूलमें स्नान करके फिर चक्रतीर्थमें स्नान करें। तत्पश्चात् संकल्पपूर्वक सेतुबन्धतीर्थको जायँ। प्रसन्नतापूर्वक श्रीरामचन्द्रजीका हृदयमें ध्यान करते हुए सबसे पहले सेतुको नमस्कार करें। सेतुवन्दनका मन्त्र इस प्रकार है—

रघुवीरपदन्यासपवित्रीकृतपांसवे ।
दशकण्ठशिरश्छेदहेतवे सेतवे नमः ॥
केतवे रामचन्द्रस्य मोक्षमार्गैकहेतवे ।
सीताया मानसाम्भोजभानवे सेतवे नमः ॥

'श्रीरघुवीरके चरण रखनेसे जिसकी धूलि परम पवित्र हो गयी है, जो दशग्रीव रावणके शिरश्छेदका एकमात्र हेतु है, उस सेतुको नमस्कार है। जो मोक्षमार्गका प्रधान हेतु तथा श्रीरामचन्द्रजीके सुयशको फहरानेवाला केतु (ध्वज) है और सीताजीके हृदयकमलको विकसित करनेके लिये सूर्यदेवके समान है, उस सेतुको नमस्कार है।'

इस मन्त्रसे सेतुको साष्टांग प्रणाम करके परम शक्तिशाली वेतालवरद नामक तीर्थको जायँ। जो मनुष्य चक्रतीर्थके दक्षिण भागमें स्थित इस वेतालवरद नामक तीर्थमें कभी स्नान करते हैं, वे जीवन्मुक्त होते हैं। यहाँ संकल्पपूर्वक स्नान करके पितरोंको पिण्ड देना चाहिये। वेतालवरदमें स्नान करनेके पश्चात् मनुष्य धीरे-धीरे गन्धमादन पर्वतको जाय। वह पर्वत समुद्रमें सेतुके रूपमें विद्यमान है। उस सेतुरूप गन्धमादनपर्वतकी इस प्रकार प्रार्थना करे—'परमपुण्यमय गन्धमादनपर्वत! तुम्हें सब देवता नमस्कार करते हैं। विष्णु आदि देवता भी तुम्हारा सेवन करते हैं। नगश्रेष्ठ! उसी तुम्हारे शिखरपर मैं पैरोंसे चलूँगा, मेरे चरणोंसे तुम्हारे ऊपर आघात होगा। मुझ पापात्माके अपराधको कृपापूर्वक क्षमा करो और तुम्हारे शिखरपर निवास करनेवाले भगवान् शंकरका मुझे दर्शन कराओ।' इस प्रकार प्रार्थना करके उस श्रेष्ठ पर्वतपर धीरे-धीरे पैर रखते हुए चले। वहाँ समुद्रमें स्नान करके गन्धमादन पर्वतपर मनुष्य यदि सरसोंभर भी पिण्डदान करे, तो उससे प्रलयकालतक पितर तृप्त रहते हैं। तत्पश्चात् वहाँ सब तीर्थोंमें उत्तम, जो पापविनाशन नामक महातीर्थ है, उसका दर्शन करनेके लिये जाय। वहाँ पहुँचकर शरीरके मलोंका नाश करनेवाले उस तीर्थमें स्नान करे। वहाँ स्नान करनेसे मनुष्य वैकुण्ठधाममें जाता है।

~~o~~

सीतासरोवर और मंगलतीर्थका माहात्म्य, राजा मनोजवकी कथा

श्रीसूतजी कहते हैं—सब पापोंका नाश करनेवाले पापनाशनतीर्थमें स्नान करनेके पश्चात् मनुष्य यम-नियमका पालन करते हुए सीतासरोवरमें स्नान करनेके लिये जाय। श्रीरामचन्द्रजीको अपने सतीत्वका विश्वास दिलानेके लिये जब जनकनन्दिनी सीताने सम्पूर्ण देवताओंके समीप प्रज्वलित अग्निमें

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

प्रवेश किया और सब अंगोंसे सुशोभित एवं पवित्र रूपसे वे उस अग्निसे बाहर निकलीं, तब लोकरक्षाके लिये उन्होंने अपने नामसे एक उत्तम तीर्थ निर्माण किया तथा स्वयं भी उसमें स्नान किया। इसलिये उस तीर्थका नाम सीतासरोवर हुआ। उसमें जो मनुष्य स्नान करता है, वह सम्पूर्ण कामनाओंको पाता है। विप्रवरो! उस तीर्थमें अवगाहन करके अनेक प्रकारके दान देकर एवं बहुत दक्षिणावाले यज्ञोंका अनुष्ठान करके मनुष्य परमेश्वरके परम धामको जाता है।

महापवित्र सीताकुण्डमें स्नान करके मनुष्य एकाग्रचित्त हो मंगलतीर्थकी यात्रा करे। वहाँ भगवान् विष्णुकी प्यारी पत्नी लक्ष्मीजी सदा निवास करती हैं। पूर्वकालमें मनोजव नामसे प्रसिद्ध एक चन्द्रवंशी राजा हो गये हैं। उन्होंने प्रतिवर्ष यज्ञोंद्वारा देवताओंको, अन्नराशिसे ब्राह्मणोंको तथा श्राद्धसे पितरोंको तृप्त किया। वे निरन्तर वेदोंका स्वाध्याय किया करते थे। इस प्रकार राजा मनोजव धर्मपूर्वक पृथ्वीका पालन करते थे। उनके शासनकालमें उस राज्यमें एक भी शत्रु नहीं रह गया था, इससे राजाके मनमें अहंकार उत्पन्न हो गया। जहाँ अहंकार होता है, वहाँ लोभ, मद, काम, क्रोध, हिंसा तथा मोहमें डालनेवाली असूया—ये सभी प्रकट हो जाते हैं। और जिस पुरुषमें ये उत्पन्न होते हैं, वह पुत्र-पौत्र तथा सम्पत्तियोंके साथ प्राणोंसे भी हाथ धो बैठता है। उस राजाके मनमें यह विचार उत्पन्न हुआ कि मैं ब्राह्मणोंके गाँवोंमें कर लगाऊँगा। मनसे ऐसा निश्चय करके उसने वही किया। शिव और विष्णु आदि देवताओंके भी धन उसने ले लिये। अहंकारने उसकी विवेक-बुद्धिको नष्ट कर दिया था। इसलिये उसने ब्राह्मणोंके खेत छीन लिये थे। इस दुष्कर्मका परिणाम यह हुआ कि एक बलवान् शत्रुने आकर उसके नगरको घेर लिया। रणदेशके राजा गोलभ ही उसके शत्रु बन बैठे। गोलभने चतुरंगिणी सेनाके साथ आक्रमण किया। दुरात्मा मनोजवका गोलभके साथ छः महीनेतक युद्ध चलता रहा। अन्तमें गोलभकी जीत हुई। मनोजव पराजित होकर राज्यसे वंचित हो गया। उसने अपनी स्त्री और पुत्रके साथ वनका आश्रय लिया। गोलभ उस राज्यका पालन करते हुए दीर्घकालतक मनोजवपुरमें टिके रहे। इधर एक दिन मनोजवका बालक पुत्र क्षुधासे पीड़ित हो माता-पितासे खानेके लिये अन्न माँगने लगा—'पिताजी! मुझे खानेको दो। मा! मुझे भोजन दो, बहुत भूख लगी है।' पुत्रका यह करुणाजनक वचन सुनकर माता-पिता शोकसे पीड़ित हो सहसा मूर्छित हो गये। कुछ चेत होनेपर राजाने अपनी स्त्रीसे कहा—'सुमित्रे! मैं क्या करूँ? कहाँ जाऊँ? मेरी क्या गति होगी? मेरा यह पुत्र भूखसे पीड़ित होकर थोड़ी ही देरमें मर जायगा। हाय! मैंने ब्राह्मणोंके खेत छीन लिये, विष्णु और शिव आदि देवताओंके धनका हरण कर लिया। इस प्रकार दुष्कर्मकी अधिकताके कारण ही गोलभने मुझे परास्त किया है। मेरे पास अन्नका एक दाना भी नहीं है। मैं निर्धन हूँ, दुःखी हूँ और स्वयं भी भूखा-प्यासा हूँ। इस समय इस भूखे बालकको कैसे अन्न दूँगा?'

इस प्रकार विलाप करता हुआ राजा मनोजव अत्यन्त खिन्न हो पृथ्वीपर गिर पड़ा और मूर्छित हो गया। सुमित्रा पतिको इस प्रकार गिरा हुआ देख उसे हृदयसे लगाकर विलाप करने लगी। उसी समय मुनिवर पराशरजी स्वेच्छासे घूमते हुए वहाँ आ गये। उन्हें देखकर पतिव्रता सुमित्राने पुत्रसहित उठकर उनके चरणोंमें प्रणाम किया। पराशरजीने सुमित्राको आश्वासन देते हुए पूछा—'सुन्दरी! तुम कौन हो? यह कौन तुम्हारे आगे पड़ा हुआ है और यह बालक कौन है?'

पतिव्रता सुमित्रा बोलीं—मुनिश्रेष्ठ! ये मेरे

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

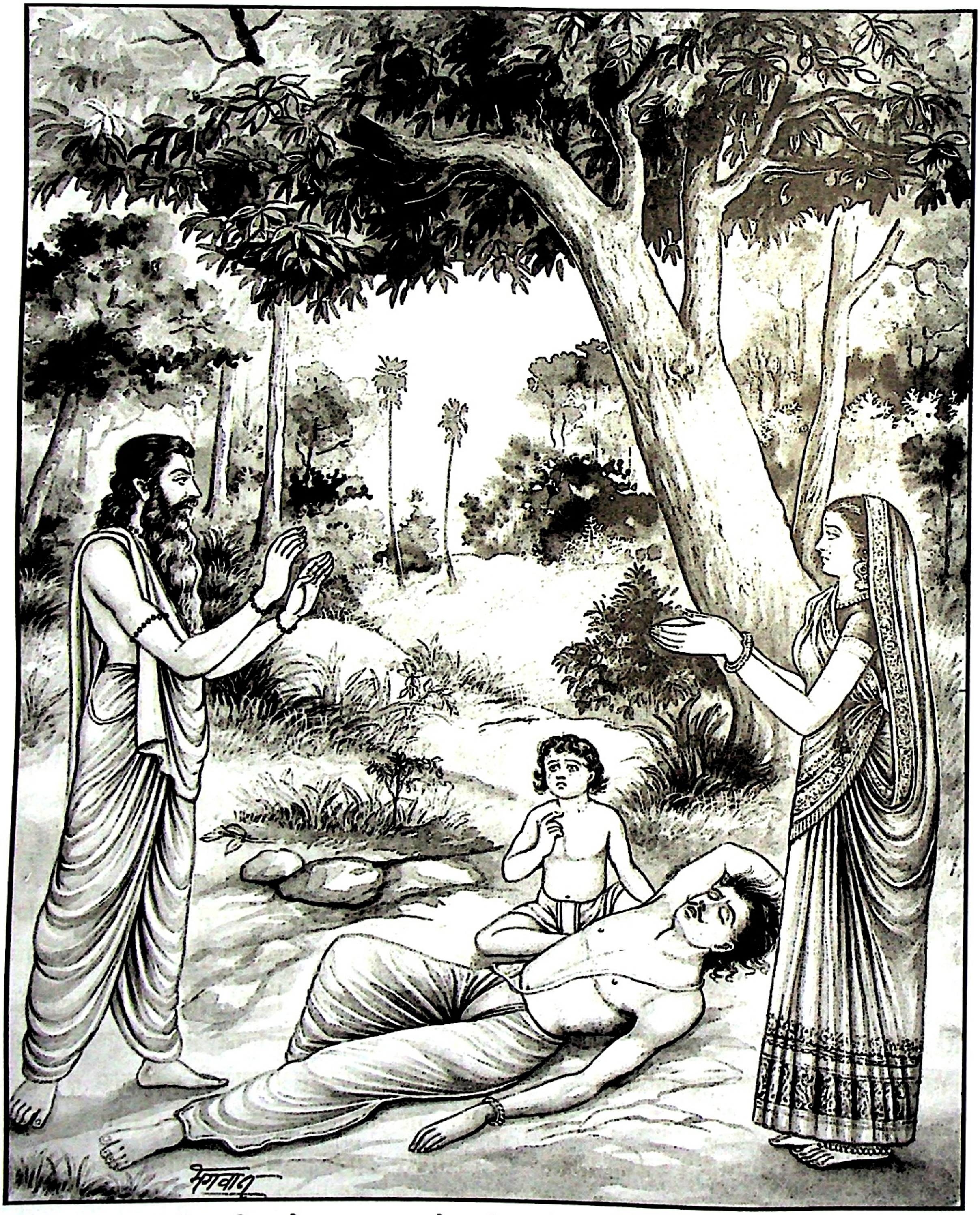

रानी सुमित्राके द्वारा अपने पति और पुत्रकी दशाका वर्णन

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

पति हैं। हम दोनोंसे उत्पन्न यह चन्द्रकान्त हमारा पुत्र है। मेरे पतिदेव चन्द्रवंशी राजा मनोजव हैं। ये विक्रमाढ्यके पुत्र हैं। मैं इनकी पतिव्रता पत्नी सुमित्रा हूँ। गोलभने राजा मनोजवको युद्धमें परास्त किया है। ये राज्यसे भ्रष्ट हो अवलम्बशून्य होकर पत्नी और पुत्रके साथ इस भयंकर वनमें चले आये हैं। यहाँ मेरे भूखे पुत्रने हम दोनोंसे भोजन माँगा है। राजा अन्नहीन होनेके कारण पुत्रको क्षुधासे व्याकुल देख शोकसे मूर्छित हो गिर पड़े हैं।

रानीकी यह बात सुनकर दयालु पराशर मुनिने कहा—सुमित्रे! तुमको किसी प्रकारका भय नहीं होना चाहिये। अब तुमलोगोंका अमंगल शीघ्र ही नष्ट हो जायगा। यों कहकर मन्त्र-जप करते हुए भगवान् शंकरका ध्यान करके पराशरजीने अपने हाथसे राजाका स्पर्श किया। महामुनिके हाथका स्पर्श पाते ही राजा मनोजव मूर्च्छा त्यागकर सहसा उठ बैठे और पराशर मुनिको प्रणाम करके हाथ जोड़कर बोले—'मुने! आज आपके चरणकमलोंके सेवनसे मेरी मूर्च्छा शीघ्र ही दूर हो गयी और मेरे सब पातकोंका भी नाश हो गया। जो पुण्यात्मा नहीं है, उसको आपका दर्शन कदापि नहीं हो सकता। मुझे शत्रुओंने अपने नगरसे बाहर निकाल दिया है। आप अपनी कृपादृष्टिसे देखकर मेरी रक्षा कीजिये।'

पराशरजी बोले—राजन्! तुम्हें शत्रुपर विजय पानेके लिये मैं एक उपाय बतलाता हूँ। परम पुण्यमय गन्धमादन पर्वतपर जहाँ श्रीरामचन्द्रजीका परम पुण्यमय सेतु है, वहाँ सब ऐश्वर्योंको देनेवाला मंगलतीर्थ विद्यमान है। उस सरोवरमें सब लोगोंका उपकार करनेके लिये रघुनाथजी लक्ष्मीस्वरूपा सीताजीके साथ सदैव स्थित रहते हैं। तुम पुत्र और स्त्रीसहित वहाँ जाकर भक्तिपूर्वक स्नान करो। उस तीर्थके प्रभावसे तुम्हें शीघ्र ही सब प्रकारके मंगलोंकी प्राप्ति होगी और युद्धमें शत्रुओंको जीतकर पुनः अपना राज्य प्राप्त कर लोगे।

ऐसा कहकर राजा, रानी और बालक इन तीनोंके साथ पराशर मुनि मंगलतीर्थमें स्नानके उद्देश्यसे रामसेतुपर गये। वहाँ विधिपूर्वक संकल्प लेकर मुनिश्रेष्ठ पराशरने स्वयं स्नान किया और राजा आदिसे भी विधिपूर्वक स्नान करवाया। राजा, रानी और राजकुमारने वहाँ तीन महीनेतक नियमपूर्वक स्नान किया। तत्पश्चात् मुनिने राजाको रामजीके एकाक्षर मन्त्रका, जो सब अनर्थोंका नाश करनेवाला है, उपदेश दिया। राजाने चालीस दिनोंतक विधिपूर्वक उस एकाक्षर मन्त्रका जप किया। इस प्रकार मन्त्र जपते हुए राजाके आगे एक सुदृढ़ धनुष प्रकट हुआ। दो अक्षय तरकश, सोनेकी मूठवाली दो तलवारें, एक ढाल, एक गदा, एक उत्तम मुशल, एक भयंकर शब्द करनेवाला शंख, एक घोड़ोंसे जुता हुआ रथ, सारथि, पताका, अग्निके समान प्रकाशमान सुवर्णमय कवच, हार, केयूर, मुकुट और वलय आदि आभूषण, सहस्रों दिव्य वस्त्र और दिव्य माला—ये सब वस्तुएँ उस तीर्थसे प्रकट हुईं। यह सब देखकर राजाने मुनिसे निवेदन किया। तब मुनिने तीर्थका जल लेकर उसे मन्त्रसे अभिमन्त्रित करके उसके द्वारा राजाका अभिषेक किया।

तदनन्तर राजा मनोजव कमर कसकर युद्धके लिये तैयार हुए। उन्होंने कवच, खड्ग, धनुष और बाण धारण किया। हार, केयूर, मुकुट और कंकण आदिसे विभूषित हो दिव्य वस्त्र धारणकर उस घोड़े जुते हुए रथपर बैठे। महामुनि पराशरने राजाको अंग, रहस्य, प्रयोग और उपसंहारकी विधिके साथ ब्रह्मास्त्र आदिका उपदेश दिया। राजाने रथसे उतरकर मुनिको प्रणाम किया और आशीर्वाद ले उनकी आज्ञा पाकर तथा उनकी परिक्रमा करके वे पत्नी और पुत्रके साथ विजयके लिये उस रथपर आरूढ़ हुए। नगरमें पहुँचकर राजाने शंख बजाया। शंखनाद

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

सुनकर गोलभ सेनाके साथ युद्धके लिये तुरंत ही बाहर निकला और मनोजवके साथ तीन दिनोंतक युद्ध करता रहा। चौथे दिन मनोजवने युद्धमें ब्रह्मास्त्रका प्रयोग करके सेनासहित गोलभको नष्ट कर दिया। उसके बाद स्त्री और पुत्रसहित नगरमें आकर राजा समूची पृथ्वीका पालन करने लगा। तबसे उसने कभी अहंकार नहीं किया। असूया आदि दोषोंको त्याग दिया। अहिंसा, इन्द्रियसंयम और धर्ममें सदा तत्पर रहने लगा। इस प्रकार सहस्रों वर्षोंतक राजाने पृथ्वीका पालन किया। फिर विरक्त होकर अपने पुत्रको राज्य दे वह गन्धमादनपर्वतपर मंगलतीर्थपर चला गया। वहाँ हृदयमें भगवान् सदाशिवका ध्यान करते हुए तपस्यामें संलग्न हो गया। तदनन्तर थोड़े ही समयमें शरीर त्यागकर मनोजवने उस तीर्थके माहात्म्यसे शिवलोकको प्रस्थान किया। उसकी पत्नी सुमित्रा भी उसके शरीरका आलिंगन करके चितापर आरूढ़ हो गयी और पतिलोकको प्राप्त हुई।

इसलिये मंगलतीर्थ सर्वथा प्रयत्न करके सेवन करने योग्य है। यह तीर्थ अतिशय सुन्दर एवं कल्याणमय है। मनुष्योंको सदा भोग और मोक्ष देनेवाला है। पापराशिरूपी तिनकों और रूईके ढेरको जलानेके लिये अग्निके समान है। इसका मोक्षके लिये सब लोग सेवन करो।

एकान्तरामनाथ, ब्रह्मकुण्ड, हनुमत्कुण्ड और अगस्त्यतीर्थका माहात्म्य

श्रीसूतजी कहते हैं—मंगल नामक महातीर्थमें स्नान करके पापरहित हुआ मनुष्य 'एकान्तरामनाथ' नामक उत्तम क्षेत्रमें जाय। वहाँ समस्त लोगोंपर अनुग्रह करनेकी इच्छासे जगदीश्वर भगवान् श्रीरामचन्द्रजी सीता, लक्ष्मण तथा हनुमान् आदि वानरोंके साथ सदा निवास करते हैं। वहाँ 'अमृतवापिका' नामक एक पुण्यदायिनी पुष्करिणी है, जिसमें गोता लगानेवाले मनुष्योंको जरा और मृत्युका भय नहीं होता। जो मनुष्य श्रद्धापूर्वक उस अमृतवापीमें स्नान करता है, वह भगवान् शंकरके प्रसादसे अमृतत्वको प्राप्त होता है। जो मनुष्य इस तीर्थमें सावधान होकर तीन वर्षोंतक स्नान करते हैं, वे मोक्षको प्राप्त होते हैं।

ऋषियोंने पूछा—सूतजी! उस क्षेत्रका नाम 'एकान्तरामनाथ' कैसे हुआ?

श्रीसूतजी बोले—पूर्वकालमें दशरथनन्दन श्रीरामचन्द्रजी सुग्रीव, विभीषण, लक्ष्मण और मन्त्रज्ञ हनुमान् इन सबके साथ वानरोंद्वारा बाँधे हुए सेतुपर समुद्रके बीचमें एकान्त प्रदेशमें मन-ही-मन सीताका चिन्तन करते हुए कुछ सलाह करने लगे। उस समय समुद्र अपनी उत्ताल तरंगोंके साथ जोर-जोरसे गर्जना करने लगा। उसकी भयंकर ध्वनि बढ़ती ही चली जाती थी। इसलिये वे परस्परकी बातचीतको सुन नहीं पाते थे। तब श्रीरामचन्द्रजीने समुद्रको बलपूर्वक काबूमें करके राक्षसोंको मारनेके विषयमें एकान्तमें उन सबके साथ परामर्श किया। इसीलिये उस क्षेत्रका नाम 'एकान्तरामनाथ' हो गया। उस स्थानपर आज भी समुद्रका जल निश्चल एवं शान्त दिखायी देता है। जो मनुष्य वहाँ जाकर अमृतवापीमें नियमपूर्वक स्नान करेंगे और श्रीराम आदिकी सेवामें तत्पर होंगे, वे सब मुक्तिको प्राप्त होंगे।

अमृतवापीमें स्नान और एकान्तरामनाथका सेवन करके जितेन्द्रिय मनुष्य ब्रह्मकुण्डमें स्नान करनेके लिये जाय। गन्धमादनपर्वतपर सेतुके मध्यभागमें वह महातीर्थ ब्रह्मकुण्ड विद्यमान है। ब्रह्मकुण्डका दर्शन सब पापराशिका नाश करनेवाला है। वह लाखों ब्रह्महत्याओंका निवारण करनेवाला है। ब्रह्मकुण्डसे उत्पन्न हुए भस्मसे जो त्रिपुण्ड्र लगाते हैं, मोक्ष उनके हाथमें ही स्थित है। जो मनुष्य इस तीर्थमें आकर स्नान करते हैं, वे

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

अवश्य ही महादेवजीका सायुज्य प्राप्त कर लेते हैं। जो एक बार ब्रह्मकुण्डमें स्नान कर लेता है, उसके लिये मोक्षधामके द्वारके कपाट खुल जाते हैं। यह उत्तम कुण्ड देवता, मनुष्य और मुनीश्वरोंसे वन्दित, सबके संसार-बन्धनका नाश करनेवाला, शुभकारक, सर्वपापहारक तथा सम्पूर्ण मनोरथोंको देनेवाला है।

महापुण्यमय ब्रह्मकुण्डमें स्नान करनेके पश्चात् एकाग्रचित्त होकर मनुष्य हनुमत्कुण्डपर जाय। पूर्वकालमें समस्त राक्षसोंका वध हो जानेपर जब युद्ध समाप्त हो गया और श्रीरामचन्द्रजी आदि लंकासे लौटकर गन्धमादन पर्वतपर आ गये, तब पवनपुत्र हनुमान्‌जीने सब लोकोंका उपकार करनेके लिये अपने नामसे एक उत्तम तीर्थका निर्माण किया, जो सब तीर्थोंसे उत्तम है। उसमें स्नान करके मनुष्य सनातन शिवलोकको प्राप्त होते हैं। पूर्वकालमें धर्मसख नामसे प्रसिद्ध एक राजा राज्य करते थे। वे शत्रुविजयी, परम धार्मिक, प्रजापालनपरायण तथा नीतिमान् थे। उनके सौ पतिव्रता स्त्रियाँ थीं। किंतु उनसे कोई वंशकी वृद्धि करनेवाला पुत्र नहीं हुआ। तब राजाने ब्राह्मणोंसे कहा—'विप्रवरो! मैंने बहुत सोच-विचारकर सौ स्त्रियोंसे विवाह किया, उन सबके साथ रहते हुए मेरी वृद्धावस्था आ गयी। अत: आप बतावें किस उपायसे मेरे बहुत-से पुत्र होंगे? मेरी सौ स्त्रियोंमेंसे प्रत्येकको एक-एक गुणवान् पुत्र हो जाय, वह यत्न सोचिये। छोटा-बड़ा अथवा दुष्कर ही कर्म क्यों न हो, यदि उससे यह कार्य सिद्ध होनेवाला हो, तो उसे मैं अवश्य करूँगा।'

राजाके इस प्रकार पूछनेपर सब ऋत्विज् और पुरोहित एकत्र हो उनसे अपना निश्चय किया हुआ विचार प्रकट करते हुए बोले—'राजन्! कोई परम पवित्र गन्धमादन पर्वत है, जो दक्षिण समुद्रके बीच सेतुके रूपमें विद्यमान है। वहाँ लोकविख्यात हनुमत्कुण्ड है, जो बड़े भारी दु:खोंका नाश करनेवाला और स्वर्ग एवं मोक्षरूपी फल देनेवाला है। वह नरकोंके क्लेशका निवारण तथा दरिद्रताको दूर करनेवाला है। पुत्रहीन मनुष्योंको पुत्र और स्त्रीहीन पुरुषोंको स्त्री देनेवाला है। वहाँ संयमपूर्वक स्नान करके तुम एकाग्रचित्त हो उस तीर्थके तटपर पुत्रेष्टि यज्ञ करो। उससे तुम्हारी सौ स्त्रियोंमें प्रत्येकको एक-एक पुत्र प्राप्त हो सकता है।' यह सुनकर राजा धर्मसख अपनी स्त्रियों, मन्त्रियों, सेवकों और पुरोहितजीको साथ ले यज्ञकी आवश्यक सामग्रीसहित दक्षिणसमुद्रके किनारे गन्धमादन पर्वतपर गये। वहाँ हनुमत्कुण्डमें जाकर उन्होंने सैनिकोंके साथ स्नान किया। इस प्रकार वे उसके किनारे एक मासतक ठहरकर प्रतिदिन स्नान करते रहे। तत्पश्चात् वसन्त आनेपर चैत्र मासमें पुरोहितसहित राजाने पुत्रेष्टि यज्ञ प्रारम्भ किया। पुरोहित और ऋत्विजोंने विधिपूर्वक सब कर्म सम्पन्न किये। सपत्नीक राजाका जब वह यज्ञ समाप्त हुआ, तब पुरोहितने हवनसे बचे हुए हविष्यको लेकर राजाकी सब स्त्रियोंको भोजन कराया। उसके बाद राजा धर्मसखने अपनी सौ पत्नियोंके साथ यज्ञान्तस्नान किया और ऋत्विजोंको बहुत-सी दक्षिणा दी। इस प्रकार यज्ञ पूरा करके मन्त्री, परिवार और पत्नियोंके साथ वे धर्मात्मा राजा प्रसन्नतापूर्वक अपनी राजधानीको लौट आये। कुछ समयमें जब दसवाँ मास व्यतीत हो गया, तब उन सौ स्त्रियोंने सौ गुणवान् पुत्रोंको जन्म दिया। ब्राह्मणो! जब वे सब पुत्र बढ़कर युवा हुए, तब राजाने उन्हें राज्य बाँटकर दे दिया और स्वयं अपनी स्त्रियोंके साथ गन्धमादन पर्वतपर हनुमत्कुण्डके किनारे जाकर तपस्या करने लगे। भगवान् शंकरका ध्यान करते हुए तपस्यामें तत्पर हुए राजाको जब वहाँ बहुत समय व्यतीत हो गया, तब एक दिन वे मृत्युको प्राप्त हुए। उनकी पत्नियोंने

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

भी उन्हींका अनुसरण किया। राजाके ज्येष्ठ पुत्र सुचन्द्रने पिता-माताका दाहसंस्कार करके श्रद्धापूर्वक श्राद्धपर्यन्त सब कर्म किये। राजा पत्नियोंसहित वैकुण्ठलोकमें गये। सुचन्द्र आदि सब महातेजस्वी राजकुमार आपसमें ईर्ष्या-द्वेषका त्याग करके अपने-अपने राज्यका उपभोग करने लगे। अतः समस्त कामनाओंकी सिद्धिके लिये मनुष्य हनुमान्‌जीके कुण्डमें स्नान करे।

हनुमत्कुण्डमें स्नान करनेके पश्चात् एकाग्रचित्त होकर अगस्त्यतीर्थमें जाय। साक्षात् अगस्त्यजीने इस तीर्थका निर्माण किया है। एक समयकी बात है, अगस्त्यजी दक्षिणके देशोंमें भ्रमण करते हुए गन्धमादन पर्वतपर गये। वहाँ गन्धमादनका माहात्म्य जानकर महर्षि अगस्त्यने अपने नामसे यह महापुण्यमय तीर्थ बनाया। वे आज भी अपनी धर्मपत्नी लोपामुद्राके साथ वहाँ निवास करते हैं। उसमें स्नान और जलपान करके मनुष्य पुनर्जन्मका भागी नहीं होता।

रामतीर्थ, लक्ष्मणतीर्थ और जटातीर्थकी महिमा

श्रीसूतजी कहते हैं—अगस्त्यतीर्थमें स्नान करनेके पश्चात् सब पापोंसे मुक्त होनेके लिये परम पवित्र रामकुण्डको जाय। रघुनाथजीका वह पवित्र सरोवर पुण्यदायक तथा पापोंका अपहरण करनेवाला है। रामकुण्डके किनारे किया हुआ थोड़ी दक्षिणावाला यज्ञ भी पूर्ण फल देनेवाला होता है। इसी प्रकार स्वाध्याय और जप भी थोड़ा भी हो, तो वहाँ पूर्ण फलद होता है। रामकुण्डके किनारे मुट्ठीभर अन्न भी यदि वेदज्ञ ब्राह्मणको दिया जाय, तो वह अनन्तगुना फल देनेवाला होता है। विप्रवरो! मुनिवर अगस्त्यके शिष्य एक मुनि थे, जो अपने मन और इन्द्रियोंको संयममें रखते थे। उनका नाम सुतीक्ष्ण था। वे भगवान् श्रीरामके चरणारविन्दोंका चिन्तन करते हुए रामकुण्डके तटपर अत्यन्त दुष्कर तपस्या करने लगे। प्रतिदिन श्रीरामचन्द्रजीके षडक्षर मन्त्र* रूप मन्त्रराजका पाँच हजार जप करते थे। आलस्य छोड़कर रघुनाथसरोवरके जलमें स्नान करते, भिक्षाके अन्नका नियमपूर्वक आहार करते तथा क्रोधको काबूमें और इन्द्रियोंको वशमें रखते थे। इस प्रकार उनका बहुत समय व्यतीत हो गया। एक दिन सुतीक्ष्णजी सीतासहित श्रीरामका हृदयमें ध्यान करते हुए भक्तिपूर्वक उनकी स्तुति करने लगे।

सुतीक्ष्ण बोले—जानकीनाथ! आपको नमस्कार है। विश्वामित्रके यज्ञकी रक्षाका व्रत लेनेवाले श्रीराम! आपको नमस्कार है। कौसल्यानन्दन! आपको नमस्कार है। विश्वामित्रजीके परमप्रिय! आपको प्रणाम है। शिवधनुषको भंग करनेवाले रघुवीर! आपको नमस्कार है। दशरथनन्दन विष्णो! आप परशुरामजीको जीतनेवाले हैं, आपको प्रणाम है। समुद्रके गर्वको हरनेवाले और उसमें सेतुनिर्माण करनेवाले आपको प्रणाम है।

इस प्रकार सुतीक्ष्णजी श्रीरामचन्द्रजीमें चित्त लगाकर प्रतिदिन उनकी स्तुति करते हुए समय बिताते थे। सदा श्रीरामके षडक्षर मन्त्रका जप, उनकी स्तुति और रामकुण्डमें स्नान आदि करते हुए उनकी श्रीरामचन्द्रजीमें अत्यन्त निर्मल एवं निश्चल भक्ति हो गयी। उन्हें आत्मसाक्षात्कार करानेवाला अद्वैत विज्ञान प्राप्त हुआ और बिना पढ़े हुए ही तीनों वेदोंका ज्ञान हो गया। बिना सुनी हुई बातको भी जान लेना, दूसरेके शरीरमें प्रवेश करना, आकाशमें विचरण करना, समस्त कलाओंमें निपुण हो जाना, जो शास्त्र कभी

* 'ॐ रामाय नमः' यह षडक्षर मन्त्र है।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

नहीं सुने गये, उनका भी बिना गुरुके ही ज्ञान हो जाना, सब लोकोंमें बेरोक-टोक आना-जाना, इन्द्रियातीत विषयोंका भी साक्षात्कार होना, देवताओंसे वार्तालाप होना, चींटी आदि जन्तुओंकी भी बातें समझ लेना तथा ब्रह्मा, विष्णु और शिवके लोकोंमें भी चला जाना आदि जो योगियोंको प्राप्त होनेवाली एवं अन्यान्य दुर्लभ सिद्धियाँ हैं, वे सभी श्रीरामतीर्थके सेवनसे सुतीक्ष्णजीको प्राप्त हो गयीं। उस तीर्थका ऐसा ही प्रभाव है। वह बड़े-बड़े पातकोंका नाश करनेवाला है। उसके द्वारा बड़ी-बड़ी सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। वह अपमृत्युनिवारक, भोग-मोक्षदायक तथा नरकसम्बन्धी क्लेशोंको दूर करनेवाला है। वह तीर्थ सदा श्रीरामचन्द्रजीकी भक्ति देनेवाला तथा संसारबन्धनका नाश करनेवाला है। रामतीर्थके तटपर समस्त लोकोंपर अनुग्रहकी इच्छासे महान् शिवलिंग प्रकट हुआ है। उस तीर्थमें स्नान करके उक्त शिवलिंगका दर्शन करनेसे मनुष्योंको मोक्षतक प्राप्त हो जाता है, फिर अन्य विभूतियोंकी तो बात ही क्या है?

तारकब्रह्म श्रीरामचन्द्रजीके तीर्थमें स्नान करनेके अनन्तर चित्तको एकाग्र करके श्रीलक्ष्मणजीके तीर्थमें जाय। उसमें स्नान करके सब पापोंसे मुक्त हुआ मनुष्य निर्मल मुक्तिको प्राप्त होता है। लक्ष्मणतीर्थके तटपर जो उनके मन्त्रका जप करता है, वह सब शास्त्रोंका विद्वान् और चारों वेदोंका ज्ञाता होता है। उसके तटपर लक्ष्मणजीने महान् शिवलिंगकी स्थापना की है। जो उस तीर्थमें स्नान करके लक्ष्मणेश्वरका सेवन करता है, वह इस संसारमें दरिद्रता, रोग और संसारबन्धनसे मुक्त हो जाता है।

लक्ष्मणजीके महान् तीर्थमें स्नान करके अपने चित्तकी शुद्धिके लिये जटातीर्थमें जाना चाहिये। पूर्वकालमें साक्षात् भगवान् शंकरने गन्धमादन पर्वतपर सबके उपकारके लिये इस अज्ञाननाशक तीर्थको प्रकट किया है। रावणके मारे जानेपर धर्मात्मा भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने जिस जलमें अपनी जटाको धोया था, वही जटातीर्थ कहलाता है। उसमें स्नान करनेवाले मनुष्योंके अन्तःकरणकी शुद्धि हो जाती है। उससे ज्ञान होता है और उस ज्ञानसे मनुष्य मोक्ष प्राप्त कर लेता है। वह अखण्ड सच्चिदानन्दस्वरूपसे स्थित होता है। पूर्वकालमें मुनिश्रेष्ठ व्यासजीको प्रणाम करके शुकदेवजीने पूछा—'तात! जिससे अन्तःकरणकी शुद्धि, अज्ञानका नाश, ज्ञानका उदय और अन्तमें सनातन मुक्ति प्राप्त हो, वह उपाय मुझे बतलाइये।'

व्यासजी बोले—बेटा शुकदेव! महापुण्यमय गन्धमादन पर्वतपर जो रामसेतु है, वहाँ सब पापोंका नाश करनेवाला जटातीर्थ है। वह अविद्याकी ग्रन्थिको भेदन करनेवाला, अन्तःकरणको शुद्ध बनानेवाला तथा मनुष्योंके जन्म-मृत्यु आदि भयका नाश करनेवाला है। वहाँ दशरथनन्दन श्रीरामचन्द्रजीने अपनी जटा धोयी है और उस तीर्थको यह वरदान दिया है कि 'यज्ञ, ज्ञान, जप और उपवासके बिना ही केवल जटातीर्थमें स्नान करनेमात्रसे मनुष्योंकी बुद्धि शुद्ध हो जायगी।'

शुक! वरुणनन्दन भृगुने पूर्वकालमें अपने पितासे जब बुद्धिको शुद्ध करनेवाले शुभ एवं पावन उपायके विषयमें प्रश्न किया, तब वरुणने उन्हें जटातीर्थमें स्नान करनेकी सलाह दी। पिताके कहनेसे भृगुजी जटातीर्थमें गये और वहाँ स्नान करनेसे उनकी बुद्धि शुद्ध हो गयी। तत्पश्चात् वे अद्वैत बोध प्राप्त करके अखण्ड सच्चिदानन्दस्वरूप पूर्णतम परमात्मरूपसे स्थित हुए। इसी प्रकार शिवजीके अंश दुर्वासा भी जटातीर्थमें स्नान करनेसे अन्तः-शुद्धिको प्राप्त हो ब्रह्मानन्दमय हो गये। जो अपने अज्ञानका नाश चाहता है, वह सब पापोंका नाश करनेवाले पुण्यमय परम शुद्ध जटातीर्थमें स्नान करे। इसलिये तुम जटातीर्थमें जाओ और मनको शुद्ध करनेवाले उस पुण्यदायक तीर्थमें स्नान करो।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

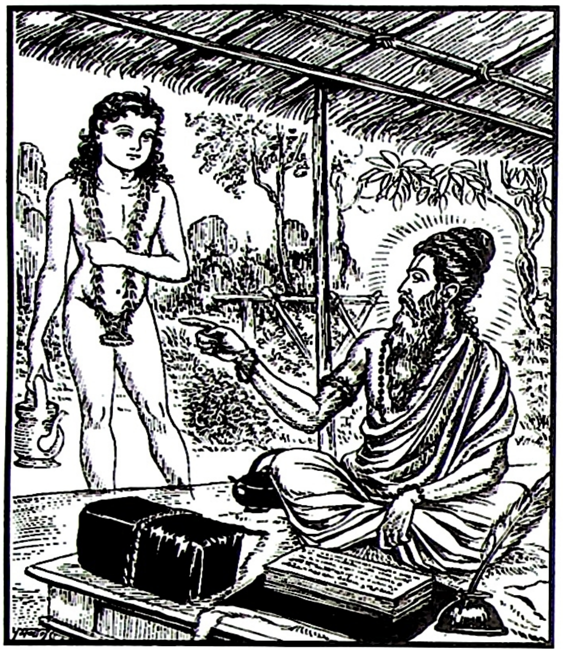

पिताकी बात मानकर शुकदेवजी महापुण्यमय रामसेतुरूप गन्धमादन पर्वतपर गये और शुद्धिदायक जटातीर्थमें स्नान करनेकी इच्छासे संकल्प करके उसमें स्नान किया। इससे अन्तःशुद्धिको पाकर अज्ञानका नाश हो जानेपर वे अपने परमानन्द-स्वरूपको प्राप्त हो गये। दूसरे लोग भी, जो मनकी शुद्धि चाहते हैं, जटातीर्थमें भक्तिपूर्वक स्नान करें। वेदोंके प्रवचनसे, पुण्यसे, यज्ञ, दान, तप और व्रतसे तथा उपवास, जप और योगसे भी मनुष्योंके मनकी शुद्धि होती है, किंतु परमपावन जटातीर्थमें स्नान कर लेनेपर इन पूर्वोक्त साधनोंके बिना भी निश्चितरूपसे मनकी शुद्धि हो जाती है। इस प्रकार यह जटातीर्थका माहात्म्य बतलाया गया।

लक्ष्मीतीर्थ और अग्नितीर्थका माहात्म्य—पिशाचयोनिको प्राप्त हुए दुष्पण्यका उद्धार

श्रीसूतजी कहते हैं—सब पातकोंका नाश करनेवाले जटातीर्थमें स्नान करके विशुद्ध चित्तवाला पुरुष लक्ष्मीतीर्थको जाय। जो-जो कामना मनमें रखकर मनुष्य लक्ष्मीतीर्थमें स्नान करता है, वह सब प्राप्त कर लेता है। लक्ष्मीतीर्थ बड़ी भारी दरिद्रताकी शान्ति करनेवाला, महान् धन-धान्यकी समृद्धि देनेवाला, बड़े-बड़े दुःखोंका नाश करनेवाला और महान् वैभवको बढ़ानेवाला है। वह स्वर्ग और मोक्ष देनेवाला, महान् ऋणसे छुटकारा दिलानेवाला तथा श्रेष्ठ पुत्र प्रदान करनेवाला है। ब्राह्मणो! इस प्रकार यह लक्ष्मीतीर्थका माहात्म्य बतलाया गया।

इस तीर्थमें स्नान करनेके पश्चात् अग्नितीर्थको जाय। वह महापुण्यमय और महापातकोंका विनाशक है। पूर्वकालमें रावणको उसकी सेनासहित मारकर तथा विभीषणको लंकाका राजा बनाकर दशरथनन्दन श्रीरामचन्द्रजी जब सीता और लक्ष्मणके साथ सेतुमार्गसे गन्धमादन पर्वतपर आये, तब लक्ष्मीतीर्थके किनारे ठहरकर उन्होंने देवताओं, ऋषियों और पितरोंके समीप वहाँ अग्निदेवका आवाहन किया। तब लक्ष्मीतीर्थसे कुछ दूरपर अग्निदेव महासागरसे ऊपर उठे और मानवरूपधारी श्रीरघुनाथजीको देखकर इस प्रकार बोले—'राम! राक्षसोंको भय देनेवाले महाबाहु श्रीराम! आपने जो रावणका वध किया है, वह जानकीजीके पातिव्रत्य धर्मके बलसे ही सम्भव हुआ है। यह बात सत्य है, सत्य है, सत्य है। ये साक्षात् जगन्माता लक्ष्मी हैं। इन्होंने लीलाके लिये मानव-शरीर धारण किया है। जब आप देवशरीरमें स्थित होते हैं, तब ये भी दिव्य देहसे आपकी सेवा करती हैं। आपने मानवशरीर धारण किया है, इसलिये ये भी मानवकन्याके रूपमें प्रकट हुई हैं। आप भगवान् विष्णुके शरीरके अनुरूप ही ये भी शरीर धारण कर लेती हैं। जगत्स्वामिन्! देवाधिदेव

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

जनार्दन! आप जब-जब अवतार धारण करते हैं, तब-तब ये आपकी सहायिका होती हैं। जब आप भृगुनन्दन परशुरामके रूपमें अवतीर्ण हुए थे, तब ये धरणी नामसे प्रकट हुई थीं। इस समय आपके साथ ये जनकनन्दिनी सीताके रूपमें प्रकट हुई हैं और भविष्यमें जब आप श्रीकृष्ण अवतार लेंगे, तब ये रुक्मिणी होंगी। इसी प्रकार अन्यान्य अवतारोंमें भी ये आपकी सहायिका होती हैं। अतः रघुनन्दन! आप मेरे कहनेसे इन्हें आदरपूर्वक ग्रहण करें।'

अग्निका यह वचन सुनकर देवताओं और महर्षियोंने दशरथनन्दन श्रीराम तथा जनकनन्दिनी सीताकी बार-बार प्रशंसा की। श्रीरामचन्द्रजीने अग्निके साक्षी देनेसे परम निर्मल सती-साध्वी सीताको ग्रहण किया। जिस स्थानपर अग्निदेव प्रकट हुए, उसीको अग्नितीर्थ समझो। अग्निके प्रकट होनेसे ही उसका नाम अग्नितीर्थ हुआ। उस मोक्षदायक तीर्थमें भक्तिपूर्वक स्नान करके मनुष्य उपवासपूर्वक वेदवेत्ता ब्राह्मणोंको भोजन करावे। उन्हें वस्त्र और धन दे। ऐसा करनेसे वह सब पापोंसे मुक्त हो भगवान् विष्णुका सायुज्य प्राप्त कर लेता है।

पूर्वकालकी बात है, पाटलिपुत्रमें पशुमान् नामक एक वैश्य रहते थे। वे सदा धर्ममें तत्पर और ब्राह्मणोंकी सेवामें संलग्न रहा करते थे। सदा कृषि और गोरक्षा करते हुए पशुमान् बाजारकी गलियोंमें धर्मतः सुवर्ण आदिका विक्रय किया करते थे। उनके तीन स्त्रियाँ थीं, जो सदा पतिकी सेवामें लगी रहती थीं। उन तीनों स्त्रियोंसे सुपण्य आदि आठ पुत्र उत्पन्न हुए। वे जब पाँच वर्षके हो गये तब उन्हें कर्तव्यकी शिक्षा दी जाने लगी। वे धीरे-धीरे खेती, गोरक्षा और व्यापारका काम भलीभाँति सीख गये। सुपण्य आदि सात पुत्र पिताकी बात सुनते और पशुमान् जो कहते उस कार्यको तत्काल पूरा करते थे। उन्होंने सोनेके कारबारमें भी अत्यन्त कुशलता प्राप्त कर ली।

किंतु वैश्यका आठवाँ पुत्र 'दुष्पण्य' बचपनसे ही खोटे मार्गपर चलने लगा। वह पिताकी बात नहीं सुनता था। दुष्पण्य बाल्यकालसे ही बालकोंको सताया करता था। पशुमान्ने उसे दुष्कर्मपरायण देखकर भी 'यह नादान है' ऐसा कहकर उसकी उपेक्षा कर दी। तदनन्तर वैश्यके आठों पुत्र युवावस्थाको प्राप्त हुए। आठवाँ पुत्र दुष्पण्य नगरके बालकोंको दोनों हाथोंमें पकड़ लेता और कुआँ, नदी या तालाबमें फेंक देता था। उसके इस दुश्चरित्रको कोई नहीं जानता था। जलमें उनका शव देखकर लोग उनका संस्कार करते थे। तब पुरवासियोंने आकर राजासे यह वृत्तान्त निवेदन किया। उनका वचन सुनकर राजाने ग्रामरक्षकोंको बुलाया और यह आज्ञा दी—'बालकोंकी मृत्युका क्या कारण है, इसका पता लगाओ।' ग्रामरक्षक बालकोंके मारे जानेके रहस्यका पता लगाने लगे। किंतु बहुत खोज करनेपर भी उन्हें उस बालघातकका पता नहीं लगा। वे डरते हुए राजाके पास गये और बोले—'महाराज! हम बहुत खोज करनेपर भी यह न जान सके कि कौन इस नगरमें रहकर निरन्तर बालकोंकी हत्या करता है।'

तदनन्तर किसी समय वह वैश्य-बालक अन्य पाँच बालकोंके साथ कमल निकालकर ले आनेके बहाने सरोवरके निकट गया। वहाँ उसने उन बालकोंको जबरदस्ती पकड़कर पानीमें डुबो दिया। वे बालक चीखते-चिल्लाते रहे तो भी उस क्रूरात्माने उन्हें कण्ठतक पानीमें ले जाकर डुबा दिया। उन सबको मरा हुआ जानकर दुष्पण्य शीघ्र अपने घरको चला गया। उन पाँचों बालकोंके पिता अपने पुत्रोंको नगरमें ढूँढ़ने लगे। वे पाँचों बालक अधिक छोटे नहीं थे। पानीमें डाल देनेपर भी वे मर न सके, धीरे-धीरे सरोवरके किनारे आ गये और वहीं घूमते रहे। इतनेमें ही अपने बन्धुओंद्वारा नाम ले-लेकर पुकारनेकी आवाज

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

उन्हें दूरसे सुनायी दी। तब उन्होंने भी जोरसे बोलकर उत्तर दिया। बालकोंकी आवाज सुनकर उनके पिता सरोवरके तटपर गये। वहाँ उन्हें जीवित देखकर उन सबको बड़ा हर्ष हुआ। फिर पिता आदिने पूछा—'तुम्हारी ऐसी दशा क्यों हुई?' तब बालकोंने दुष्पण्यके उस दुष्कर्मका वृत्तान्त अपने बन्धुओंको कह सुनाया। यह बात जानकर पुरवासियोंने राजाको इसकी सूचना दी। राजाने पशुमान्को बुलाकर कहा—'पशुमन्! यह नगर बहुत-से बालकोंसे भरा-पूरा रहा है, किंतु तुम्हारे दुरात्मा पुत्रने इसे प्रायः सूना कर दिया। अभी-अभी इन बालकोंको उसने जलमें डुबो दिया था, परंतु दैवयोगसे ये जीवित निकल आये हैं। बताओ, इस समय क्या करना चाहिये? मैं तुम्हींसे पूछता हूँ, क्योंकि तुम सदा धर्ममें तत्पर रहते हो।'

राजाके ऐसा कहनेपर धर्मज्ञ पशुमान्ने कहा—राजन्! जिसने सारे नगरको सूना कर दिया है, वह वधके ही योग्य है। इस विषयमें कुछ पूछनेकी बात ही नहीं है। यह अत्यन्त पापात्मा मेरा पुत्र नहीं, शत्रु ही है। जिसने इस नगरको बालकोंसे खाली कर दिया, उस दुष्टके उद्धारका मुझे कोई उपाय नहीं दिखायी देता। मैं सच कहता हूँ, इस दुष्टात्माको प्राणदण्ड दिया जाय। पशुमान्का यह वचन सुनकर समस्त पुरवासी पशुमान्की प्रशंसा करते हुए राजासे बोले—'महाराज! इस दुष्टको मारा न जाय अपितु चुपचाप नगरसे निकाल दिया जाय।' तब राजाने दुष्पण्यको बुलाकर कहा—'ओ दुष्टात्मन्! तू शीघ्र हमारे राज्यसे बाहर चला जा। यदि यहाँ रहेगा, तो मैं तेरा वध कर डालूँगा।' इस प्रकार डाँट बताकर राजाने दूतोंद्वारा उसे नगरसे निर्वासित कर दिया।

तदनन्तर दुष्पण्य भयभीत हो उस देशको छोड़कर मुनिमण्डलीसे युक्त वनमें चला गया। वहाँ जाकर भी उसने एक मुनिके बालकको जलमें डुबो दिया। कुछ बालक खेलनेके लिये गये हुए थे, उन्होंने उस बालकको मरा हुआ देख अत्यन्त दुःखी हो उसके पितासे यह समाचार कहा। तब उग्रश्रवाने बालकोंसे अपने पुत्रके मारे जानेका समाचार सुनकर तपके प्रभावसे दुष्पण्यके चरित्रको जान लिया और उसे शाप देते हुए कहा—'अरे, तूने मेरे पुत्रको पानीमें फेंककर मार डाला है, इसलिये तेरी मृत्यु भी जलमें ही डूबनेसे होगी और मरनेके बाद तू दीर्घकालतक पिशाच बना रहेगा।' यह शाप सुनकर दुष्पण्यको बड़ा दुःख हुआ तथा वह उस वनको छोड़कर सिंह आदि क्रूर जन्तुओंसे युक्त दूसरे भयंकर वनमें चला गया। वहाँ बड़े जोरकी वर्षा और आँधी चलने लगी। दुष्पण्यने देखा एक मरे हुए हाथीका सूखा कंकाल पड़ा है। उस समय आँधी और प्रचण्ड वर्षाके कष्टको न सह सकनेके कारण वह उस हाथीके पेटकी गुफामें घुस गया। फिर बड़ी भारी वर्षा हुई। जलका महान् प्रवाह हाथीके पेटमें भी भर गया। हाथीका शव उस महाप्रवाहमें बहते-बहते समुद्रमें चला गया। दुष्पण्य उस जलमें डूबकर क्षणभरमें प्राणहीन हो गया। मृत्युके बाद उसे पिशाचकी योनि मिली। भूख-प्याससे पीड़ित होकर वह भयानक रूपधारी पिशाच अनेक प्रकारके दुःख सहता हुआ गहन वनमें रहने लगा। एक वनसे दूसरे वनमें दौड़ता और कष्ट भोगता हुआ वह क्रमशः दण्डकारण्यमें आया। वहाँ उसने उच्चस्वरसे पुकार लगायी—'हे तपस्वी महात्माओ! आपलोग बड़े कृपालु और सब प्राणियोंके हितमें तत्पर रहनेवाले हैं। मैं दुःखसे अत्यन्त पीड़ित हूँ। अतः मुझे अपनी दयादृष्टिसे अनुगृहीत करें। पूर्वकालमें मैं पाटलिपुत्र नगरमें पशुमान्का पुत्र दुष्पण्य नामक वैश्य था। उस समय मैंने बहुत-से बालकोंकी हत्या की। अब मैं पिशाचयोनिको प्राप्त हुआ हूँ। भूख-प्यास सहन करनेकी मुझमें शक्ति नहीं रह गयी है। अतः आपलोग कृपा करके मेरी रक्षा करें। तपोधनो! जिस प्रकार मैं पिशाचयोनिसे छूट जाऊँ वैसा प्रयत्न कीजिये।'

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

पिशाचका यह वचन सुनकर तपस्वी मुनियोंने महर्षि अगस्त्यजीसे कहा—'भगवन्! इस पिशाचके उद्धारका कोई उपाय बतलावें।' तब अगस्त्यजीने अपने प्रिय शिष्य सुतीक्ष्णको बुलाकर कहा—'वत्स सुतीक्ष्ण! तुम शीघ्र गन्धमादन पर्वतपर चले जाओ। वहाँ सब पापोंका नाश करनेवाला महान् अग्नितीर्थ है। महामते! इस पिशाचके उद्धारके उद्देश्यसे तुम उस तीर्थमें स्नान करो।' अगस्त्यजीके ऐसा कहनेपर सुतीक्ष्णजी गन्धमादन पर्वतपर गये और अग्नितीर्थमें जाकर पिशाचके लिये स्नानका संकल्प करके वहाँ उन्होंने तीन दिनतक नियमपूर्वक स्नान किया। फिर रामनाथ आदि तीर्थोंका सेवन और स्नान करके श्रेष्ठ ब्राह्मण सुतीक्ष्णजी अपने आश्रमपर लौट आये। उस तीर्थमें स्नानके प्रभावसे वह पिशाच शीघ्र ही दिव्य देहको प्राप्त हुआ और सुतीक्ष्ण, अगस्त्य तथा अन्य तपोधनोंको बार-बार प्रणाम करके उनकी आज्ञा ले प्रसन्नतापूर्वक स्वर्गलोकको चला गया।

चक्रतीर्थ, शिवतीर्थ, शंखतीर्थ और यमुना, गंगा एवं गयातीर्थकी महिमा—राजा जानश्रुतिको रैक्वके उपदेशसे ब्रह्मभावकी प्राप्ति

अग्नितीर्थमें स्नान करके शुद्धात्मा पुरुष सब पातकोंका नाश करनेवाले चक्रतीर्थकी यात्रा करे। जिस-जिस कामनाके उद्देश्यसे मनुष्य चक्रतीर्थमें स्नान करता है, उस-उसको वह प्राप्त कर लेता है। पूर्वकालमें कठोर नियमोंका पालन करनेवाले 'अहिर्बुध्न्य' नामक तपस्वी महर्षि इस गन्धमादन तीर्थमें सुदर्शनचक्रकी उपासना करते थे। वहाँ तपस्या करते हुए मुनिको भयानक-रूपधारी राक्षस सताते और उनकी तपस्यामें विघ्न डाला करते थे। तब भक्तकी रक्षा करनेके लिये सुदर्शन चक्रने आकर बाधा देनेवाले उन समस्त राक्षसोंको लीलापूर्वक मार डाला। भक्तकी प्रार्थनासे वह चक्र उसी तीर्थमें रहने लगा। तभीसे उसका नाम चक्रतीर्थ हो गया। उस तीर्थमें स्नान करनेपर सुदर्शन चक्रके प्रसादसे राक्षस और पिशाच आदिकी पीड़ा कभी नहीं होती।

श्यामलापुरमें हरिहर नामक एक ब्राह्मण निवास करते थे। वे एक दिन वनमें गये। वहाँ एक वनवासी व्याध मनोरंजनके लिये लक्ष्य-भेदन कर रहा था। हरिहर बाबा उसके बाणोंके लक्ष्यमें आ गये और उनके दोनों पैर कट गये। तब मुनियोंकी प्रेरणासे वे गन्धमादन पर्वतपर पहुँचाये गये और वहाँ इस तीर्थमें स्नान करनेपर उनके दोनों पैर पुनः ज्यों-के-त्यों हो गये। तबसे यह पुण्यतीर्थ मुनितीर्थ कहलाता था। आगे चलकर चक्रके नामसे यह चक्रतीर्थ कहलाने लगा। जिनके हाथ, पैर या अन्य कोई अंग कट गये हों, वे उस कटे हुए अंगकी पूर्तिके लिये सर्वमनोरथदायक इस चक्रतीर्थका सेवन करें। इस प्रकार यह चक्रतीर्थका प्रभाव बतलाया गया।

चक्रतीर्थमें स्नान करके मनुष्य शिवतीर्थको जाय, जहाँ स्नान करनेसे कोटि-कोटि महापातक नष्ट हो जाते हैं। महापातकोंके संसर्गसे होनेवाले पाप भी उसी क्षण दूर हो जाते हैं। शिवतीर्थ महान् दुःखों और नरकके क्लेशोंका निवारण करनेवाला है तथा स्वर्ग और मोक्षको देनेवाला है।

शिवतीर्थमें स्नान करनेके पश्चात् अपने पापसमुदायकी शान्तिके लिये शंखतीर्थकी यात्रा करे, जिसमें स्नान करनेमात्रसे कृतघ्न पुरुष भी पापमुक्त हो जाता है। पूर्वकालमें गन्धमादन पर्वतपर शंख नामक मुनि निवास करते थे। वे एकाग्रचित्त हो भगवान् विष्णुका ध्यान करते हुए तपस्यामें

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

संलग्न रहते थे। उन्होंने वहाँ स्नान करनेके लिये उत्तम तीर्थका निर्माण किया। शंखसे निर्मित होनेके कारण उसे शंखतीर्थ कहते हैं। उसमें स्नान करनेसे माता-पिता और गुरुसे द्रोह करनेवाले पापी तथा अन्य कृतघ्न भी मुक्त हो जाते हैं। इस कारण कृतघ्न मनुष्योंको इस तीर्थका अवश्य सेवन करना चाहिये। जो माता-पिताका पालन नहीं करता और गुरुदक्षिणा नहीं देता, वह कृतघ्नताको प्राप्त होता है। स्वयं ही चितामें जल मरना उसका प्रायश्चित्त है। परंतु इस शंखतीर्थमें स्नानमात्रसे ही उस कृतघ्नताका भी प्रायश्चित्त हो जाता है।

शंखतीर्थमें स्नान करके मनुष्य क्रमशः यमुना, गंगा और गया आदि तीर्थोंकी यात्रा करे। ये तीनों तीर्थ मनुष्योंके महापातकोंका नाश करनेवाले, परम पवित्र हैं और समस्त लोकोंमें प्रसिद्ध हैं। इनके द्वारा समस्त विघ्नों तथा रोगोंका निवारण हो जाता है। ये तीर्थ अज्ञानका नाश और ज्ञान प्रदान करनेवाले हैं। पूर्वकालमें महाराज जानश्रुतिने इन्हीं तीर्थोंमें स्नान करके द्विजश्रेष्ठ रैक्वसे उत्तम ज्ञान प्राप्त किया था।

महर्षि रैक्व पहले गन्धमादन पर्वतपर रहकर अत्यन्त दुष्कर तपस्या करते थे। वे जन्मसे ही पंगु थे। अतः गन्धमादन पर्वतपर जो-जो तीर्थ हैं, वे उन्हींकी यात्रा करते थे; क्योंकि वे सब समीपवर्ती थे। पैदल न चल सकनेके कारण वे गाड़ीसे ही उन तीर्थोंमें जाते थे। इसीलिये गाड़ीवाले रैक्वके नामसे उनकी प्रसिद्धि हुई। उन्होंने तपस्यासे अपना शरीर सुखा डाला था। उनके उस शरीरमें खाज हो गयी थी, जिसे वे दिन-रात खुजलाते रहते थे। फिर भी उन्होंने तपस्या नहीं छोड़ी। एक दिन उनके मनमें ऐसा विचार हुआ कि 'मैं यमुना, गंगा और गया—इन तीनों पवित्र तीर्थोंमें स्नान करूँ; परंतु मैं तो जन्मसे ही पंगु हूँ, अतः मेरे लिये वहाँका स्नान दुर्लभ है। गाड़ीसे इतनी दूरकी यात्रा नहीं की जा सकती। तब इस समय मैं क्या करूँ?' इस प्रकार तर्क-वितर्क करते हुए महाबुद्धिमान् रैक्वने तीनों तीर्थोंमें स्नान करनेके सम्बन्धमें अपने कर्तव्यका निश्चय किया। उन्होंने सोचा—'मेरा तपोबल दुर्धर्ष एवं असह्य है, उसीके द्वारा मैं यहाँ उक्त तीर्थोंका आवाहन करूँगा।' मन-ही-मन ऐसा निश्चय करके वे पूर्वाभिमुख बैठे, मन-इन्द्रियोंको संयममें रखकर तीन बार आचमन किया और एक क्षणतक ध्यानमें लगे रहे। उनके मन्त्रके प्रभावसे महानदी यमुना, गंगा और पापनाशिनी गया—तीनों भूमि फोड़कर सहसा पातालसे प्रकट हुईं और मानव-शरीर धारणकर गाड़ीवाले रैक्वके समीप आ उन्हें प्रसन्न करती हुई प्रसन्नतापूर्वक बोलीं—'रैक्व! तुम्हारा कल्याण हो, इस ध्यानसे निवृत्त होओ। तुम्हारे मन्त्रसे आकृष्ट हो हम तीनों यहाँ उपस्थित हुई हैं।'

उनका यह वचन सुनकर महामुनि रैक्व ध्यानसे निवृत्त हुए और उन्हें अपने सामने उपस्थित देखा। तब उन्होंने उन तीनोंका पूजन करके कहा—'हे यमुने! हे देवि गंगे! और हे पापनाशिनी गये! तुम तीनों गन्धमादन पर्वतपर वहीं निवास करो, जहाँ भूमि फोड़कर यहाँ प्रकट हुई हो। वे स्थान तुम्हारे नामसे पवित्र तीर्थ हो जायँ।' तब वे तीनों देवियाँ 'तथास्तु' कहकर सहसा अन्तर्धान हो गयीं। तबसे ये तीनों तीर्थ भूतलमें मनुष्योंद्वारा उन्हींके नामसे पुकारे जाते हैं। जहाँ भूमि फोड़कर यमुना निकली, उसी स्थानको लोग 'यमुनातीर्थ' कहते हैं, जहाँ पृथ्वीके छिद्रसे सहसा गंगाका प्रादुर्भाव हुआ, वह स्थान लोकमें पापनाशक 'गंगातीर्थ'के नामसे विख्यात हुआ और जहाँ गयाका प्रादुर्भाव हुआ, वह भूमि-विवर 'गयातीर्थ' कहलाता है। इस प्रकार वे तीनों तीर्थ बड़े पवित्र हैं। जो मनुष्य इन उत्तम तीर्थोंमें स्नान करते हैं, उनके अज्ञानका नाश और ज्ञानका उदय होता है। रैक्व मुनि अपने मन्त्रद्वारा आकर्षित किये हुए उन तीनों तीर्थोंमें स्नान करते हुए समय व्यतीत करने लगे।

इसी समय महाराज जानश्रुति इस भूतलपर

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

राज्य करते थे। वे राजर्षि पुत्रके पौत्र थे और एकमात्र धर्मके आचरणमें ही संलग्न रहते थे। याचकोंको श्रद्धापूर्वक अन्न आदि देते थे। अतः मुनिलोग उन्हें लोकमें 'श्रद्धादेय' कहते थे। भूखे याचकोंकी तृप्तिके लिये उस अन्न-धन-सम्पन्न राजाके यहाँ नाना प्रकारके वचन कहे जाते थे, इसलिये सब याचकोंने उनका नाम 'बहुवाक्य' रख दिया था। जनश्रुतके पुत्र महाबली जानश्रुतिको अतिथि बहुत प्रिय थे। इसलिये वे बहुत दान करनेके कारण 'बहुदायी' के नामसे प्रसिद्ध हुए। नगरोंमें, राज्यमें, गाँवों और जंगलोंमें, चौराहोंपर तथा सभी बड़े-बड़े मार्गोंमें उनकी ओरसे खाने-पीनेकी बहुत सामग्री प्रस्तुत रहती थी। अतिथियोंकी तृप्तिके लिये वे अन्न, पान, दाल, साग आदि उत्तम भोजनकी व्यवस्था रखते थे। उस पौत्रायण राजाके गुणोंसे महाभाग देवर्षि बहुत सन्तुष्ट हुए। उन सबके मनमें राजाके ऊपर कृपा करनेकी इच्छा हुई। एक दिन राजा जानश्रुति गरमीकी रातमें अपने महलके भीतर खिड़कीके पास सो रहे थे। उसी समय देवर्षिगण हंसका रूप धारण करके एक पंक्तिमें आकाशमार्गसे उड़ते हुए आये और राजाके ऊपर होकर जाने लगे। उस समय बड़े वेगसे उड़ते हुए एक हंसने आगे जानेवाले हंसको सम्बोधित करके राजाको सुनाते हुए उपहासपूर्वक कहा—'भल्लाक्ष! अरे ओ भल्लाक्ष! क्या आगे-आगे जाता हुआ तू अन्धोंकी नाईं देखता नहीं है कि आगे पूजनीय राजा जानश्रुति विराजमान हैं? यदि तू उन राजर्षिको लाँघकर ऊपर जायगा, तो उनका तेज इस समय तुझे जलाकर भस्म कर डालेगा।' ऐसा कहते हुए उस हंसको आगे जानेवाले हंसने उत्तर दिया—'अहो! तुम तो बड़े ज्ञानी हो, विद्वानोंके द्वारा भी प्रशंसनीय हो, तथापि इस तुच्छ मनुष्यकी इतनी प्रशंसा क्यों करते हो? यह धर्मोंके रहस्यको नहीं जानता, जैसा कि ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ गाड़ीवाले रैक्व मुनि जानते हैं। इस राजाका तेज उनके समान नहीं है। रैक्वकी पुण्यराशियोंकी इयत्ता (संख्या) नहीं हो सकती। पृथ्वीके धूलिकण गिने जा सकते हैं, आकाशके नक्षत्र भी गणनामें आ सकते हैं, परंतु रैक्व मुनिके महामेरु-सदृश पुण्यपुंजोंकी गणना नहीं की जा सकती। राजा जानश्रुतिमें तो वैसा धर्म ही नहीं है, फिर वह ज्ञान-वैभव कहाँसे हो सकता है। अतः इस तुच्छ मनुष्यकी चर्चा छोड़कर उसी गाड़ीवाले रैक्व मुनिकी प्रशंसा करो। उन्होंने जन्मसे पंगु होकर भी स्नान करनेकी इच्छासे मन्त्रद्वारा यमुना, गंगा और गयाको भी अपने आश्रमके समीप बुला लिया है।'

आगे जानेवाला हंस जब ऐसा कहकर चुप हो गया, तब वे हंसरूपधारी देवर्षि पुनः ब्रह्मलोकको चले गये। तदनन्तर पौत्रायण राजा जानश्रुति रैक्व मुनिको उन्नतिकी चरम सीमापर पहुँचे हुए सुनकर बहुत उदास हो गये और बारंबार लंबी साँस खींचते हुए विचार करने लगे—'उस हंसने रैक्वको ऊँचा बताते हुए मुझे तुच्छ कहा था। अहो! रैक्वकी कैसी महिमा है? अब मैं संसार तथा समूचे राज्यको छोड़कर गाड़ीवाले महात्मा रैक्वकी शरणमें जाता हूँ। वे कृपानिधान मुनि अपनी शरणमें आये हुए मुझे अपनाकर आत्मज्ञानका उपदेश देंगे।' रात्रि बीतनेपर महाराज जानश्रुतिने सारथीको बुलाकर कहा—'सूत! तुम तीव्रगामी रथपर आरूढ़ हो शीघ्र जाओ और महर्षियोंके आश्रमों, पवित्र वनों, एकान्त प्रदेशों, सत्पुरुषोंके निवासस्थानों, तीर्थों, नदी-तटों तथा अन्यान्य स्थानोंमें, जहाँ मुनीश्वर लोग रहते हैं, योगीश्वर रैक्वका पता लगाओ। वे जन्मसे पंगु हैं, गाड़ीपर बैठे रहते हैं, सब धर्मोंके एकमात्र आश्रय हैं और ब्रह्मज्ञानकी निधि हैं। मेरी प्रसन्नताके लिये उनका शीघ्र अन्वेषण करके पुनः मेरे पास लौट आओ।'

'बहुत अच्छा' कहकर सारथी वेगवान् रथपर बैठकर नगरसे बाहर निकला। उसने ब्रह्मज्ञानी

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

रैक्व मुनिकी सर्वत्र खोज की। अनेकों स्थानोंमें ढूँढ़नेके पश्चात् वह क्रमशः महर्षियोंसे भरे हुए गन्धमादन पर्वतपर गया। वहाँ खोजते-खोजते उसने मुनीश्वर रैक्वको देखा, जो गाड़ीपर बैठकर अपनी खाज खुजला रहे थे। वे कलारहित अद्वैत ब्रह्मके चिन्तनमें संलग्न थे। गाड़ीसहित उस महामुनिको देखकर सारथीने पहचान लिया कि यही रैक्व हैं। तब उनके पास जाकर उसने प्रणाम किया और उनके समीप बैठकर विनयपूर्वक पूछा—'ब्रह्मन्! क्या आप ही गाड़ीवाले रैक्व नामसे विख्यात हैं?' मुनि बोले—'हाँ, मैं ही गाड़ीवाला रैक्व हूँ।' मुनिका यह वचन सुनकर सारथी गन्धमादन पर्वतसे लौटा और राजाके पास पहुँचकर उसने सब समाचार निवेदन किया। तब राजा जानश्रुति छः सौ गौएँ, धन और स्वर्णमुद्राओंका भार और खच्चरियोंसे जुता हुआ रथ अपने साथ लेकर शीघ्रतापूर्वक रैक्व मुनिके समीप चले। वहाँ पहुँचकर राजाने रैक्वसे कहा—'भगवन्! मेरी दी हुई ये सब वस्तुएँ स्वीकार कीजिये। इन सबको लेकर मेरे लिये अद्वैत ब्रह्मज्ञानका उपदेश कीजिये।' तब गाड़ीवाले रैक्वने राजा जानश्रुतिको इस प्रकार उत्तर दिया—'राजन्! ये गौएँ, यह सोनेका भार और यह रथ सब तुम्हारे ही पास रहें, मैं तो बहुत कल्पोंतक जीवित रहनेवाला हूँ। इस धनके द्वारा मेरा कौन-सा लाभ होगा?'

रैक्वका यह वचन सुनकर जानश्रुतिने कहा—ब्रह्मन्! आपके द्वारा उपदेश किये जानेवाले ब्रह्मज्ञानका मूल्य नहीं है। आप ये गाय, धन और रथ ग्रहण करें या न करें, किंतु मुझे निष्कल अद्वैत ब्रह्मज्ञानका उपदेश अवश्य दें।

रैक्व बोले—जिसका संसारमें वैराग्य हो और जिसके पुण्य-पापरूप प्रारब्धका विनाश हो जाय, वही ज्ञानके उपदेशका भागी है। यद्यपि तुम्हें संसारसे वैराग्य हो गया है तथापि अभी तुम्हारे पुण्य-पापोंका विनाश नहीं हुआ है। यहाँपर तीन पवित्र तीर्थ हैं, जो समस्त मनोवांछित फलोंको देनेवाले हैं। उनके नाम हैं—यमुनातीर्थ, गंगातीर्थ और गयातीर्थ। इन तीनोंमें तुम शीघ्र स्नान करो। इससे तुम्हारे सब प्रारब्ध कर्मोंका क्षय हो जायगा और अन्तःकरण शुद्ध होगा। तब मैं तुमको ज्ञानका उपदेश करूँगा।'

रैक्व मुनिके ऐसा कहनेपर राजाके नेत्र हर्षसे खिल उठे। उन्होंने शीघ्रतापूर्वक तीनों तीर्थोंमें स्नान किया। उस स्नानमात्रसे उनका चित्त शुद्ध हो गया। तब वे अपने गुरु रैक्व मुनिके पास आये। रैक्वने जानश्रुतिको कृपापूर्वक ज्ञानका उपदेश दिया। उपदेश प्राप्त होनेपर राजा अबाधित अनुभवसे सम्पन्न हो योगी रैक्वके प्रसादसे ब्रह्मभावको प्राप्त हो गये।

कोटितीर्थकी महिमा—भगवान् श्रीकृष्णका अवतार, कंसवध तथा श्रीकृष्णका कोटितीर्थमें स्नान

श्रीसूतजी कहते हैं—यमुना, गंगा और गया तीर्थमें प्रसन्नतापूर्वक स्नान करके 'कोटितीर्थ' की यात्रा करे। वह महापुण्यमय तीर्थ सब लोकोंमें विख्यात है। दुःस्वप्न, महापातक और बड़े-बड़े विघ्नोंका नाश करनेवाला तथा मनुष्योंको परम शान्ति देनेवाला है। पूर्वकालमें दशरथनन्दन श्रीरामचन्द्रजीने युद्धमें रावणको मारकर गन्धमादन पर्वतपर लोकानुग्रहके लिये एक शिवलिंगकी स्थापना की। उस लिंगका अभिषेक करनेके लिये वे शुद्ध जल ढूँढ़ने लगे। किंतु वैसा जल उन्हें प्राप्त नहीं हुआ। तब रघुनाथजीने मन-ही-मन गंगाजीका स्मरण करते हुए धनुषकी कोटिसे शीघ्र ही पृथ्वीको विदीर्ण किया। श्रीरामके धनुषकी वह कोटि रसातलतक पहुँच गयी। फिर उन्होंने धनुषको

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

पृथ्वीसे ऊपर निकाला। तब उसी मार्गसे पातालगंगा बाहर निकल आयीं। उसी जलसे श्रीरामचन्द्रजीने शिवलिंगका अभिषेक किया। श्रीरामचन्द्रजीकी धनुषकी कोटिसे उस तीर्थका निर्माण हुआ था, इसलिये वह तीनों लोकोंमें 'कोटितीर्थ'के नामसे विख्यात हुआ। गन्धमादन पर्वतपर जो-जो तीर्थ हैं, उन सबमें पहले स्नान करके पापरहित हुआ मनुष्य अवशिष्ट पापोंसे छूटनेके लिये कोटितीर्थमें स्नान करे। अन्य तीर्थोंमें स्नान करनेसे भी जो पापसमुदाय नहीं नष्ट होता, वह अनेक कोटि जन्मोंका उपार्जित तथा शरीरकी हड्डियोंमें स्थित पापपुंज कोटितीर्थमें स्नान करनेसे पूर्णत: नष्ट हो जाता है। यदि कोई स्वेच्छानुसार कहीं जा रहा हो या तीर्थयात्रा करता हो और मार्गमें उसे कोई तीर्थ या देवालय मिल जाय, तो उसको देख या सुनकर भी जो मोहवश उसका सेवन नहीं करता, वह मनुष्य अधम है—ऐसा महर्षियोंका वचन है। इसलिये सेतुको जानेवाला पुरुष यदि वहाँके अन्य तीर्थोंमें स्नान नहीं करता, तो वह तीर्थोल्लंघनके दोषसे ब्राह्मणोंद्वारा बाहर कर देने योग्य है। अत: चक्रतीर्थ आदिमें अवश्य स्नान करना चाहिये। इन तीर्थोंमें स्नान करनेके पश्चात् शेष पापोंसे छुटकारा पानेके लिये मनुष्योंको कोटितीर्थमें स्नान करना चाहिये। पूर्वकालमें श्रीरामचन्द्रजी उसमें स्नान करके उसी क्षण पुष्पक विमानपर आरूढ़ हो वानरों तथा लक्ष्मण और सीताके साथ अयोध्याको चल दिये थे। अत: उन्हींकी भाँति कोटितीर्थमें स्नान करके शेष पापसे छूटा हुआ मनुष्य उसी क्षण वहाँ लौट आवे। यह श्रेष्ठ तीर्थ सब लोकोंमें प्रसिद्ध है। श्रीरामचन्द्रजीने भगवान् रामेश्वरका अभिषेक करनेके लिये उसका निर्माण किया था। साक्षात् भगवती गंगा उसमें निवास करती हैं तथा तारकब्रह्म श्रीरामने वहाँ स्नान किया है। उस कोटितीर्थकी महिमाका वर्णन कौन कर सकता है।

यदुवंशमें वसुदेव नामसे विख्यात एक क्षत्रिय थे, जो शूरसेनके पुत्र थे। उन्हीं दिनों भोजकुलमें देवककी एक पुत्री थी, जो देवकीके नामसे विख्यात थी। वसुदेवजी देवकीसे विवाह करके रथपर आरूढ़ हो अपने निवासस्थानको चले। उस समय उग्रसेनका पुत्र कंस वसुदेवका सारथि बनकर रथ हाँकने लगा। इतनेमें ही बहिन और बहनोईको ले जानेवाले कंसको सम्बोधित करके आकाशवाणीने कहा—'शत्रुदमन कंस! जिस देवकीको तुम लिये जा रहे हो, उसका आठवाँ गर्भ तुम्हारा घातक होगा।' यह दिव्यवाणी सुनकर कंसने तलवार खींच ली और बहिनको मार डालनेका प्रयत्न किया। यह देख वसुदेवजीने कहा—'कंस! इससे जो सन्तानें पैदा होंगी, उन सबको मैं तुम्हें सौंप दूँगा। यह तुम्हारी बहिन है, इसको मत मारो। इससे तो तुम्हें कोई भय नहीं है।' यह सुनकर कंसने देवकीको मारनेका विचार छोड़ दिया और वसुदेव-देवकीके साथ अपने घरको लौटा। कंस बड़ा दुष्टात्मा था। उसने बहिन और बहनोई दोनोंके पैरोंमें बेड़ी डालकर कारागारमें कैद कर लिया। तदनन्तर बहुत समय व्यतीत होनेपर देवकीने वसुदेवजीसे क्रमश: छ: पुत्रोंको जन्म दिया। उन सबको वसुदेवने कंसको अर्पित कर दिया और कंसने उनका वध कर डाला। इस प्रकार देवकीके गर्भसे उत्पन्न होनेवाले छ: पुत्रोंके मारे जानेपर सातवें गर्भके रूपमें साक्षात् भगवान् शेषने देवकीके उदरमें प्रवेश किया। उस समय भगवान् विष्णुकी आज्ञासे मायादेवीने उस गर्भको रोहिणीके उदरमें स्थापित कर दिया। रोहिणी उन दिनों नन्दगोपके घरमें निवास करती थी। लोगोंमें यह बात फैल गयी कि देवकीका सातवाँ गर्भ गिर गया। तदनन्तर स्वयं भगवान् विष्णुने आठवाँ गर्भ होकर देवकीकी कुक्षिमें प्रवेश किया। दस महीने बीत जानेपर अविनाशी भगवान् श्रीहरि

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

देवकीके उदरसे प्रकट हुए, जो कृष्ण नामसे विख्यात हुए। जन्मके समय वे शंख, चक्र, गदा और खड्गसे सुशोभित चतुर्भुजरूपमें दृष्टिगोचर हुए। उनके मस्तकपर किरीट और गलेमें वनमाला शोभा पा रही थी। वे माता-पिताके शोकका नाश करनेवाले थे। सर्वेश्वर भगवान् श्रीहरिको देखकर वसुदेवजीने उनका स्तवन किया।

वसुदेवजी बोले—प्रभो! आप ही सम्पूर्ण विश्वके रूपमें विराजमान हैं। आप ही इस विश्वके पालक हैं, इसकी उत्पत्तिके स्थान भी आप ही हैं, यह सम्पूर्ण विश्व आपमें ही स्थित है। भगवन्! आप ही प्रकृति, महत्तत्त्व, विराट्, स्वराट् और सम्राट् सब कुछ हैं। इस प्रकार आपका तेज सम्पूर्ण जगत्का कारणभूत है, आपके पराक्रमका कोई परिमाण नहीं है। आप साक्षात् नारायण हैं। आपको नमस्कार है। आप शार्ङ्ग धनुष, सुदर्शन चक्र, नन्दक खड्ग और कौमोदकी गदा धारण करनेवाले हैं, आपको नमस्कार है। अत्यन्त मनोरम रूप धारण करनेवाले आपको नमस्कार है।

इस प्रकार स्तुति करनेवाले वसुदेवको और देवी देवकीको भी प्रसन्न करते हुए भगवान् श्रीहरिने कहा—'माता और पिताजी! आप दोनों भयभीत न हों, मैं कंसका वध करूँगा। नन्दगोपकी पत्नी यशोदाने एक पुत्रीको जन्म दिया है। वह सब लोकोंको मोहनेवाली मेरी माया ही है। आप मुझे ले जाकर यशोदाकी शय्यापर सुला दें और यशोदाकी पुत्रीको लाकर देवकीकी शय्यापर सुलावें।' भगवान् श्रीकृष्णके ऐसा कहनेपर वसुदेवजीने वैसा ही किया। देवकीकी शय्यापर सुलाते ही वह मायामयी पुत्री रोने लगी। बालकके रोनेकी ध्वनि सुनकर कंस व्याकुलचित्त होकर आया और सूतिकाघरमें घुसकर उसने कन्याको ले लिया। उसके मनमें तनिक भी लज्जा और दया नहीं थी। उसने उस बालिकाको ले जाकर पत्थरपर पटक दिया। उसके हाथसे छूटते ही वह बालिका आठ बड़ी-बड़ी भुजाओंसे युक्त अस्त्र-शस्त्रोंसे सुशोभित महादेवीके रूपमें प्रकट हुई और कंसको पुकारकर अत्यन्त कुपित होकर बोली—'अरे पापात्मा कंस! ओ दुर्बुद्धे। रे मूर्ख! तेरे प्राणोंको हरनेवाला शत्रु कहीं-न-कहीं उत्पन्न हो गया है। अब तू अपनी मृत्युरूप उस शत्रुकी खोज करता रह।' ऐसा कहकर देवी, जो मनुष्योंसे पूजा पाकर उनका अभीष्ट सिद्ध करनेवाली है, दिव्य स्थानोंमें चली गयी। देवीका वचन सुनकर कंस अत्यन्त व्याकुल हो उठा। उसने अपना प्राणान्त करनेवाले शत्रुको पीड़ा देनेके लिये तथा दूसरे-दूसरे बालकोंको भी सतानेके लिये पूतना आदि बालग्रहोंको भिन्न-भिन्न स्थानोंमें भेजा। वे सभी बालग्रह नन्दके गोकुलमें गये और वहाँ श्रीकृष्णके हाथों मारे गये। तदनन्तर कुछ दिन और बीत जानेपर बलभद्र और श्रीकृष्ण गोकुलमें बढ़कर सयाने हो गये। उन्होंने अनेक प्रकारकी बालक्रीडाओंसे खेल किये। कुछ कालतक वे दोनों भाई बाँसुरी बजाते हुए बछड़े चराते रहे। कुछ वर्षोंतक गाय चराते रहे। उस समय वे वनमें गुंजा और तापिच्छके आभूषण धारण करते थे। इस प्रकार बलराम और श्रीकृष्ण दीर्घकालतक गोकुलमें नाना प्रकारकी लीलाएँ करते रहे।

एक समय कंसने बलराम और श्रीकृष्णको बुलानेके लिये अक्रूरजीको गोकुलमें भेजा। अक्रूरजी कंसकी आज्ञासे जाकर उन दोनों भाइयोंको गोकुलसे मथुरा बुला ले आये। मथुरापुरी सुवर्णमय द्वारसे शोभा पा रही थी। बलराम और श्रीकृष्णको लाकर अक्रूरजी पुरीमें गये और कंससे मिलकर उसे सब समाचार बताया। तत्पश्चात् उन्होंने अपने घरमें प्रवेश किया। तदनन्तर दूसरे दिन वसुदेवके दोनों पुत्र अपने प्रिय मित्र गोपबालकोंके साथ मथुरापुरीमें आये। नगरकी युवतियाँ उनके रूप-गुणकी प्रशंसा करतीं और वे उसे सुनते हुए आगे बढ़ते जाते थे। तदनन्तर, श्रीकृष्णने

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

बलरामके साथ धनुषशालामें जाकर दृढ़ प्रत्यंचावाले बड़े भारी धनुषको देखा और सब रक्षकोंको दूर भगाकर लीलापूर्वक उस धनुषको हाथमें ले लिया। फिर जब प्रत्यंचा चढ़ानेके लिये उसे झुकाया, तब बीचसे टूटकर उसके दो टुकड़े हो गये। धनुष टूटनेका शब्द सुनकर वहाँ आये हुए बलवान् रक्षकोंको मारनेके लिये उन दोनों महाबली बन्धुओंने धनुषके दोनों टुकड़े उठा लिये और उन्हींसे सबको मार गिराया। तत्पश्चात् रंगशालाके द्वारपर खड़े हुए कुवलयापीड नामक हाथीको मारकर महान् बल और पराक्रमसे युक्त बलराम तथा श्रीकृष्णने उसके दोनों दाँत उखाड़ लिये और उन्हें हाथसे पकड़कर कन्धेपर रखे हुए क्षणभरमें वे रंगभूमिमें जा पहुँचे। वहाँ उन दोनोंने चाणूर, मुष्टिक, बल तथा दूसरे-दूसरे प्रमुख पहलवानोंको मारकर परम धामको पहुँचा दिया। फिर दोनों भाई शीघ्र ही उछलकर ऊँचे मंचपर चढ़ गये। वहाँ कंस एक ऊँचे आसनपर बैठा हुआ था। उसे तिनकेके समान समझकर वे उसके समीप इस प्रकार स्थित हुए, जैसे दो सिंह तुच्छ मृगके पास खड़े हों। तदनन्तर श्रीकृष्णने मंचपर बैठे हुए कंसके पैर पकड़कर उसे खींच लिया और बड़े वेगसे आकाशमें घुमाया। इतनेमें ही उसके प्राण-पखेरू उड़ गये। तब प्राणरहित कंसको उन्होंने धरतीपर गिरा दिया। फिर बलरामजीने भी कंसके आठ भाइयोंको मुक्कोंसे ही मार गिराया। इस प्रकार कंसको मारकर श्रीकृष्णने अत्यन्त दुःख भोगनेवाले अपने माता-पिताको कारागारके बन्धनसे मुक्त किया और अन्य सब लोगोंको भी बलराम तथा श्रीकृष्णने आश्वासन दिया। श्रीकृष्णके द्वारा कंस मारा गया, यह समाचार सुनकर वसुदेवके अन्य बन्धु-बान्धव, जो पहले कंसके द्वारा पीड़ित होकर अन्यत्र चले गये थे, मथुरापुरीमें लौट आये। भगवान् श्रीकृष्णने मथुराके राज्यपर उग्रसेनको स्थापित किया।

तत्पश्चात् एक दिन भगवान् श्रीकृष्णने दर्शनके लिये अपने पास आये हुए नारदादि मुनियोंसे इस प्रकार पूछा—'ब्राह्मणो! मैंने अत्यन्त पापात्मा कंसका वध किया है, पर वह कंस मेरा मामा था। शास्त्रोंके ज्ञाता विद्वान् मामाके वधमें दोष बताते हैं; अतः उस दोषके निवारणके लिये आपलोग मुझे कोई प्रायश्चित्त बतलाइये।' यह सुनकर नारदजीने अद्भुत पराक्रमी श्रीकृष्णसे मधुर वाणीमें भक्ति एवं प्रेमके साथ कहा—'यदुनन्दन! आप नित्य, शुद्ध, बुद्ध एवं मुक्त सच्चिदानन्दस्वरूप सनातन परमात्मा हैं, आपके लिये पुण्य अथवा पाप नहीं है। तथापि गरुड़ध्वज! आपको लोकशिक्षाके लिये विधिपूर्वक प्रायश्चित्त अवश्य करना चाहिये। माधव! गन्धमादन पर्वतपर जो परम पुण्यमय रामसेतु है, वहाँ पूर्वकालमें भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके द्वारा स्थापित किया हुआ रामेश्वर नामक शिवलिंग है। उसके अभिषेकके लिये जलकी आवश्यकता होनेपर श्रीरघुनाथजीने धनुषकी कोटिसे पृथ्वीको भेदकर एक तीर्थ प्रकट किया था, जो कोटितीर्थके नामसे विख्यात है। वह धर्मके लिये हितकर और पापोंका नाश करनेवाला तीर्थ है। आप उसीमें स्नान करें। कोटितीर्थका स्नान ब्रह्महत्या आदिका भी निवारण करनेवाला है।'

नारदजीका यह वचन सुनकर भगवान् श्रीकृष्ण रामसेतुपर गये और कुछ दिनोंमें कोटितीर्थमें स्नान एवं अनेक प्रकारके दान करके रामेश्वरकी सेवा-पूजा करनेके पश्चात् मथुरापुरीमें लौट आये। कोटितीर्थका ऐसा ही पुण्यमय प्रभाव है। ब्राह्मणो! इस तीर्थमें स्नान करनेसे ब्रह्मा, विष्णु, शिव तथा अन्य देवता भी प्रसन्न होते हैं। इस प्रकार यह कोटितीर्थका माहात्म्य बतलाया गया, जिसका श्रवण करके मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

सर्वतीर्थ तथा धनुष्कोटि तीर्थोंकी महिमा

श्रीसूतजी कहते हैं—तदनन्तर मनुष्य सर्वतीर्थकी यात्रा करे। पूर्वकालमें सुचरित नामसे प्रसिद्ध एक मुनि थे, जो सदा ही नियमोंमें संलग्न रहते थे। उनका जन्म भृगुवंशमें हुआ था। वे जन्मके ही अन्धे थे, फिर बुढ़ापेने आकर उनको और भी आतुर बना दिया। नेत्र न होनेके कारण वे तीर्थयात्रा करनेमें असमर्थ थे। उनके मनमें सभी तीर्थोंमें स्नान करनेकी इच्छा होती थी। वे महामुनि दक्षिण समुद्रके तटपर पुण्यमय गन्धमादन पर्वतपर गये और भगवान् शंकरकी प्रसन्नताके लिये अत्यन्त दुष्कर तपस्या करने लगे। वे तीनों समय इन्द्रियसंयमपूर्वक भगवान् शिवकी पूजा करते थे। तीनों समय स्नान और अतिथियोंका सत्कार उनकी दिनचर्याका अंग बन गया था। वे भस्मद्वारा त्रिपुण्ड्र लगाते और जाबालोपनिषद्‌में बतायी हुई रीतिसे रुद्राक्षकी माला धारण करते थे। इस प्रकार ब्राह्मणने दस वर्षोंतक उग्र तपस्या की। इससे भगवान् चन्द्रशेखर बहुत प्रसन्न हुए और सुचरित मुनिके आगे प्रकट हुए। वे महान् वृषभ नन्दीपर आरूढ़ हो

भूतसमुदायसे घिरे हुए थे। उनके आधे शरीरमें भगवती गिरिराजनन्दिनी विद्यमान थीं। वे अपने दिव्य प्रकाशसे सम्पूर्ण दिशाओंको अन्धकारशून्य किये देते थे। उनका सब अंग विभूतियोंसे उज्ज्वल दिखायी देता था। वे जटाभारसे शोभा पा रहे थे। भगवान् शिवने अपने स्वरूपका दर्शन करानेके लिये उन्हें दो नेत्र प्रदान किये। तब सुचरितने परमेश्वर शिवका दर्शन करके प्रसन्नचित्त हो इस प्रकार स्तुति की।

सुचरित बोले—देव महेश्वर! आपकी जय हो। कल्याणकारी धूर्जटे! आपकी जय हो। ब्रह्मा आदि देवताओंके पूजनीय देव! आप त्रिपुरासुरके विनाशक तथा कालके भी काल हैं, आपकी जय हो। भगवती उमाके स्वामी महादेव! आपकी जय हो। कामदेवका विनाश करनेवाले निर्मल परमेश्वर! आपकी जय हो। शिव! आप संसाररोगका निवारण करनेवाले वैद्य, सम्पूर्ण भूतोंके रक्षक तथा अविनाशी देवता हैं, आपकी जय हो। त्रिलोचन! आपने भक्तोंकी रक्षाका व्रत ग्रहण किया है, आपको नमस्कार है। व्योमकेश! आपको नमस्कार है। करुणाविग्रह! आपकी जय हो। नीलकण्ठ! आपको नमस्कार है। आप संसारबन्धनसे छुड़ानेवाले हैं, आपकी जय हो। महेश्वर! परमानन्दस्वरूप! आपको नमस्कार है। गंगाधर! आपको नमस्कार है। विश्वेश्वर! सुखस्वरूप अविनाशी देव! आपको नमस्कार है। आप भगवान् वासुदेव हैं। शम्भो! आपको नमस्कार है। आप शर्व, उग्र, भर्ग एवं कैलाशपतिको नमस्कार है। करुणासिन्धो! अपनी कृपादृष्टिसे देखकर मेरी रक्षा कीजिये। भगवान् हर! मेरे चरित्रकी ओर न देखकर अपनी दयासे ही मेरा उद्धार कीजिये।

इस प्रकार स्तुति करनेपर भगवान् उमानाथने

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

सुचरित मुनिसे कहा—'मुने! तुम कोई मनोवांछित वर माँगो।' तब मुनिने दयानिधान शिवजीसे कहा—'भगवन्! चन्द्रशेखर! वृद्धावस्थाके कारण मेरा शरीर बहुत ढीला हो गया है, इसलिये मैं कहीं भी जानेमें असमर्थ हूँ। तथापि सब तीर्थोंमें स्नान करनेकी मेरी इच्छा है। अतः सब तीर्थोंमें स्नान करनेसे मनुष्य जिस फलको पाता है, उसकी प्राप्तिका साधन मुझे भी बताइये।'

महादेवजी बोले—श्रीरामचन्द्रजीके सेतुसे पवित्र हुए इस गन्धमादन पर्वतपर मैं सम्पूर्ण तीर्थोंका आवाहन करूँगा।

यों कहकर महादेवजीने मुनिकी प्रसन्नताके लिये वहाँ सब तीर्थोंका आवाहन किया और सुचरितसे इस प्रकार कहा—'मुने! यहाँ सब तीर्थोंका निवास होनेसे इसका नाम 'सर्वतीर्थ' होगा। यह सर्वतीर्थ बड़े-बड़े पातकोंका नाश करनेवाला होगा। अतः शीघ्र मुक्ति पानेके लिये इस तीर्थमें स्नान करो। यह काम, मोह, भय, क्रोध, लोभ और रोग आदिका नाशक, तत्काल मोक्षकी प्राप्तिका साधन, जन्म-मृत्यु आदि ग्राहसमूहोंसे भरे हुए संसारसमुद्रसे पार उतारनेवाला तथा कुम्भीपाक आदि समस्त नरकोंकी आग बुझा देनेवाला है।'

भगवान् शंकरके ऐसा कहनेपर सुचरितने उनके समीप ही सर्वतीर्थमें स्नान किया। स्नान करके जब वे जलसे बाहर निकले, तब सब मनुष्योंने देखा, उनके शरीरमें वृद्धावस्थाकी झुर्रियाँ नहीं रह गयी हैं और वे अत्यन्त सुन्दर तरुण हो गये हैं।

तदनन्तर महादेवजीने कहा—'सुचरित! तुम इस तीर्थके किनारे रहते हुए मुझ मुक्तिदाता शिवका स्मरण करते हुए सदा इसीमें स्नान करो, अन्य देशके तीर्थोंमें मत जाओ। अन्तमें इस तीर्थके माहात्म्यसे तुम मुझे अवश्य प्राप्त कर लोगे। दूसरे मनुष्य भी जो इस तीर्थमें स्नान करेंगे, वे मुझे प्राप्त कर लेंगे।

ऐसा कहकर महादेवजी वहीं अन्तर्धान हो गये। उसके बाद सुचरित मुनि बहुत समयतक सर्वतीर्थके किनारे टिके रहे। वे मनको संयममें रखते हुए सदा उसी तीर्थमें स्नान करते थे। देहावसान होनेपर उन्होंने सब बन्धनोंसे मुक्त हो भगवान् शिवका सायुज्य प्राप्त कर लिया। इस प्रकार यहाँ सर्वतीर्थके माहात्म्यका वर्णन किया गया। जो मनुष्य इसे पढ़ता अथवा सुनता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है।

अत्यन्त पावन सर्वतीर्थमें स्नान करनेके पश्चात् मनुष्य ब्रह्महत्या आदि पापोंका नाश करनेवाली धनुष्कोटिमें स्नान करनेके लिये जाय। उसके स्मरणमात्रसे मनुष्य मुक्त हो जाता है। जो लोग धनुष्कोटिका दर्शन, उसमें स्नान अथवा उसकी चर्चा करते हैं, वे अट्ठाईस भेदोंवाले नरकमें कभी नहीं पड़ते। मनुष्योंको तुलापुरुषके दानसे जो फल मिलता है, वही धनुष्कोटिमें गोता लगानेसे भी मिल जाता है। एक सहस्र गोदान करनेसे जिस पुण्यकी प्राप्ति होती है, वह धनुष्कोटिमें स्नान करनेसे प्राप्त हो जाता है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चारोंमेंसे मनुष्य जिस-जिस पुरुषार्थकी इच्छा करता है, उस-उसको धनुष्कोटिमें स्नान करनेसे तत्क्षण प्राप्त कर लेता है। धनुष्कोटितीर्थ सब पातकोंका नाशक, अद्वैत ज्ञान देनेवाला, भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाला, अभीष्ट मनोरथोंका दाता तथा अज्ञान दूर करनेवाला है। उसके होते भी मनुष्य उस तीर्थको छोड़कर अन्यत्र रमता रहता है, यह बड़े आश्चर्यकी बात है।

ऋषियोंने पूछा—सूतजी! उस तीर्थका नाम धनुष्तीर्थ कैसे हुआ?

सूतजी बोले—समस्त लोकोंके लिये कण्टकरूप रावण जब युद्धमें श्रीरामचन्द्रजीके हाथों मारा गया और विभीषणको लंकाके राज्यपर स्थापित कर दिया गया, तब सीता, लक्ष्मण तथा सुग्रीव

279 Skandpuran_Section_20_1_Front In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

आदि वानरोंके साथ श्रीरामचन्द्रजी गन्धमादन पर्वतपर आये। वहाँ आनेपर धर्मज्ञ विभीषणने महात्मा रघुनाथजीसे हाथ जोड़कर प्रार्थना की—'भगवन्! आपके बनाये हुए इस सेतुके मार्गसे सभी बलाभिमानी राजा आकर मेरी लंकापुरीको पीड़ित करेंगे। अतः आप अपनी धनुषकी कोटिसे इस सेतुको तोड़ डालिये।' विभीषणके इस प्रकार प्रार्थना करनेपर श्रीरामचन्द्रजीने धनुषकी कोटिसे उस पुलको तोड़ डाला। इसीलिये उस तीर्थका नाम धनुष्कोटि हो गया। श्रीरामके धनुषकी कोटिसे की हुई रेखाका जो दर्शन करता है, उसकी मुक्ति हो जाती है। नर्मदाके तटपर किया हुआ तप बड़े-बड़े पातकोंका नाश करनेवाला है, गंगातटपर मृत्यु हो तो वह मोक्षरूप फल देनेवाली है और कुरुक्षेत्रमें दिया हुआ दान ब्रह्महत्या आदि पापोंको शुद्ध करनेवाला है; किंतु धनुष्कोटिमें तप, मृत्यु अथवा दान कोई भी हो तो वह महापातकोंका नाश, मोक्षकी प्राप्ति और मनोरथकी सिद्धि करानेवाला होता है। मनुष्य तभीतक पातकों और उपपातकोंसे पीड़ित होता है, जबतक कि उसे मोक्षदायक धनुष्कोटिका दर्शन नहीं होता। धनुष्कोटिका दर्शन करनेवाले पुरुषके हृदयकी अज्ञानमयी ग्रन्थि कट जाती है, उसके सब संशय नष्ट हो जाते हैं और समस्त पापकर्मोंका क्षय हो जाता है। पृथ्वीपर दस कोटि सहस्र (एक खर्व) तीर्थ हैं। उन सबका निवास इस धनुष्कोटिमें है। धनुष्कोटिमें तपस्या करके देवता और महर्षि बड़ी-बड़ी सिद्धियोंको प्राप्त हुए हैं। जो मनुष्य उसमें स्नान करके देवताओं तथा पितरोंका तर्पण करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो ब्रह्मलोकमें पूजित होता है। जो मनुष्य भक्तिपूर्वक यहाँ एक ब्राह्मणको भोजन कराता है, वह इहलोक और परलोकमें अक्षय सुखका भागी होता है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अथवा शूद्र—कोई भी धनुष्कोटिमें स्नान करनेसे निन्दित योनिमें जन्म नहीं लेता। जो मानव मकर राशिमें सूर्यके स्थित होनेपर माघ मासमें धनुष्कोटिमें स्नान करता है, वह गंगा आदि सब तीर्थोंमें स्नान करनेका पुण्य प्राप्त करता है। उसे अक्षय लोकोंकी तथा मोक्षकी प्राप्ति होती है। स्त्री अथवा पुरुषके जन्मसे लेकर जितने पाप हैं, वे सब माघ मासमें धनुष्कोटितीर्थमें स्नान करनेसे नाशको प्राप्त होते हैं। जो क्रोधको जीतकर प्रतिदिन एक समय भोजन करते हुए माघ मासमें धनुष्कोटिमें नहाता है, वह ब्रह्महत्यासे मुक्त हो जाता है। शिवरात्रिमें निराहार एवं जितेन्द्रिय रहकर रातमें जागरण करे और प्रत्येक पहरमें रामेश्वर महादेवकी विशेष विधिपूर्वक पूजा करे। फिर दूसरे दिन सूर्योदय होनेपर धनुष्कोटिमें गोता लगाकर अन्य तीर्थोंमें भी नियमपूर्वक रहकर स्नान करे। पुनः नित्यकर्म करके भगवान् रामेश्वरकी आराधना करे, ब्राह्मणोंको यथाशक्ति अन्न भोजन करावे। उसके बाद अपनी शक्तिके अनुसार भूमि, गौ, तिल, धान्य और धन दान करे। तदनन्तर ब्राह्मणोंसे आज्ञा ले स्वयं भी मौन होकर भोजन करे। ऐसा करनेवाले पुरुषके ऊपर प्रसन्न हो भगवान् रामेश्वर उसके सब पाप छुड़ा देते और उसे भोग एवं मोक्ष प्रदान करते हैं। अतः मोक्ष चाहनेवाले पुरुषोंको माघ मासमें धनुष्कोटिमें अवश्य स्नान करना चाहिये। जो सूर्यनारायणके आधे उदयके समय धनुष्कोटिमें स्नान करता है, उसके वशमें ब्रह्मा, विष्णु और शिव तीनों देवता हो जाते हैं। जो मनुष्य चन्द्रग्रहण और सूर्यग्रहणके समय इस तीर्थमें स्नान करता है, वह सायुज्य मोक्षको पाता है। मुनिवरो! तुम सब कुछ छोड़कर भोग और मोक्षरूप फल देनेवाले परम पवित्र धनुष्कोटिको जाओ। वहाँ जाकर पितरोंको पिण्डदान करो। क्योंकि वहाँ पिण्डदान करनेसे कल्पपर्यन्त

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

पितरोंकी तृप्ति होती है। सेतुमूल, धनुष्कोटि तथा गन्धमादन पर्वत ये देवनिर्मित तीनों स्थान ऋणसे छुटकारा दिलानेवाले कहे गये हैं। इसलिये सर्वथा प्रयत्न करके धनुष्कोटिका सेवन करना चाहिये। द्रोणाचार्यका पुत्र अश्वत्थामा धनुष्कोटिमें आकर यहाँ नियमपूर्वक स्नान करके सोते हुए बालकोंको मारनेके भयंकर पापसे क्षणभरमें मुक्त हो गया।

अश्वत्थामाके द्वारा सोते हुए पाण्डव योद्धाओंका वध तथा धनुष्कोटिमें स्नान करनेसे उसका उद्धार

ऋषियोंने पूछा—सूतजी! अश्वत्थामाने किस प्रकार सोते हुए मनुष्योंको मारनेका पाप किया और कैसे धनुष्कोटिमें स्नान करके वह पापमुक्त हो गया?

सूतजी बोले—ब्राह्मणो! पहले पाण्डवोंका धृतराष्ट्रके पुत्रोंके साथ राज्यके लिये युद्ध छिड़ा था। अनेक अक्षौहिणी सेनाओंसे युक्त उस महायुद्धमें लगातार दस दिनोंतक संग्राम करके शान्तनुनन्दन भीष्मजी मारे गये। पाँच दिन युद्ध करनेपर द्रोणाचार्य, दो दिनकी लड़ाईमें कर्ण और एक दिन युद्ध करके राजा शल्य मार डाले गये। अठारहवें दिनके युद्धमें जब दुर्योधनसे सामना हुआ, तब भीमने गदा मारकर उसकी जाँघ तोड़ डाली। इससे वह श्रेष्ठ राजा दुर्योधन धराशायी हो गया। तदनन्तर युद्धकी समाप्ति हो गयी। सब राजा अपनी-अपनी छावनीपर लौट जानेकी जल्दी करने लगे। सबने प्रसन्नतापूर्वक शिविरको प्रस्थान किया। धृष्टद्युम्न, शिखण्डी आदि समस्त सृंजयवंशी क्षत्रिय तथा अन्य राजा लोग भी अपने-अपने शिविरको लौट गये। श्रीकृष्ण और सात्यकिके साथ पाण्डव भी अपने शिविरमें चले गये। उस समय श्रीकृष्णने पाण्डवोंसे कहा—'हमलोगोंको मंगलके लिये आजकी रातमें शिविरसे बाहर निवास करना चाहिये। तब श्रीकृष्ण और सात्यकिके साथ सब पाण्डव छावनीसे बाहर निकल गये। उन सबने ओघवती नदीके किनारे जाकर सुखपूर्वक वह रात्रि व्यतीत की।'

इधर कृतवर्मा, कृपाचार्य और अश्वत्थामा सूर्यास्त होनेसे पहले दुर्योधनके पास गये। दुर्योधन रणभूमिमें धूलि-धूसरित होकर पड़ा था। उसका सारा वदन रक्तसे नहा गया था और वह धरतीपर पड़ा-पड़ा छटपटाता था। उसे उस अवस्थामें देखकर अश्वत्थामा आदि तीनोंको बड़ा शोक हुआ। राजा दुर्योधन भी उन सुहृदोंको देखकर शोकमग्न हो गया। तब अश्वत्थामा क्रोधसे प्रचण्ड अग्निकी भाँति जल उठा और इस प्रकार बोला—'राजन्! इन नीच शत्रुओंने छलसे मेरे पिताजीको रणभूमिमें गिरा दिया था, परंतु उसके कारण मुझे वैसा शोक नहीं हुआ, जितना कि आज तुम्हारे गिराये जानेपर हो रहा है। सुयोधन! मैं अपने सत्कर्मोंकी शपथ खाकर कहता हूँ, आज रातमें सृंजयोंसहित पाण्डवोंका श्रीकृष्णके देखते-देखते वध कर डालूँगा, मुझे आज्ञा दो।'

अश्वत्थामाके ऐसा कहनेपर राजा दुर्योधनने 'तथास्तु' कहकर उसे स्वीकृति दे दी और कृपाचार्यसे कहा—'आचार्य! आप द्रोणपुत्रको कलशके जलसे सेनापतिके पदपर अभिषिक्त कीजिये।' कृपाचार्यने ऐसा ही किया। सेनापतिके रूपमें अभिषिक्त होनेपर अश्वत्थामाने दुर्योधनको हृदयसे लगाया और कृपाचार्य तथा कृतवर्माके साथ तुरंत वहाँसे चल दिया। वे तीनों वीर दक्षिणकी ओर गये और सूर्यास्तसे पहले ही

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

शिविरके समीप पहुँच गये। वहाँ पाण्डवोंकी भयंकर गर्जना सुनकर वे तीनों विजयाभिलाषी योद्धा भयसे भाग चले। एक स्थानपर उन्होंने घोड़ोंको पानी पिलाया। पास ही अनेक शाखाओंसे युक्त सघन वटका वृक्ष था। वहाँ जाकर तीनों रथसे उतर गये और घोड़ोंको वहीं छोड़कर आचमन एवं सन्ध्योपासना की। तदनन्तर, अन्धकारसे व्याप्त भयानक रात्रि सब ओर फैल गयी। कृतवर्मा, कृपाचार्य और अश्वत्थामा शोकसे पीड़ित हो वटके समीप बैठ गये। कृतवर्मा और कृपाचार्यको तो नींद आ गयी, किंतु क्रोधसे कलुषितचित्त होनेके कारण अश्वत्थामाको निद्रा नहीं आती थी। वह सर्पकी भाँति लंबी साँस खींचता रहा। उसने देखा, इस बरगदपर बहुत-से कौए रहते हैं और सब-के-सब भिन्न-भिन्न शाखाओंपर सुखपूर्वक सो गये हैं। इतनेमें ही वहाँ मास नामक पक्षी आया। वह बड़ा भयंकर था। मास बहुत शब्द करके उस वृक्षमें छिप गया और उछल-उछलकर सोये हुए कौओंको मारने लगा। थोड़ी ही देरमें कौओंके कटे हुए अंगोंसे उस वृक्षके सब ओरका भाग आच्छादित हो गया। इस प्रकार कौओंका अन्त करके वह उल्लू बहुत प्रसन्न हुआ।

अश्वत्थामाने उल्लूकी वह सारी करतूत रातमें देखी। फिर उसने भी मनमें यह निश्चय किया कि मैं भी इसी प्रकार रात्रिमें सोते हुए शत्रुओंका संहार करूँगा। उसने उल्लूके उस कुकृत्यको अपने लिये उपदेश माना और सोचा, सीधे मार्गसे युद्ध करके मैं पाण्डवोंको जीत नहीं सकूँगा, अतः छलसे ही उन्हें मारना चाहिये। ऐसा विचार करके अश्वत्थामाने सोते हुए कृपाचार्य और कृतवर्माको जगाया और इस प्रकार कहा—'निर्दयी भीमने राजा दुर्योधनके सिरपर लात मारी है, अतः आज रातमें पाण्डवोंके शिविरमें जाकर हमलोग उन्हें सोतेमें ही अनेक अस्त्र-शस्त्रोंसे मार डालेंगे।' यह सुनकर कृपाचार्यने कहा—'सोते हुओंको मारना इस लोकमें धर्म नहीं है। इस कुकर्मका कहीं भी आदर नहीं होता। इसी प्रकार जो लोग शस्त्र, रथ और घोड़ोंको त्याग चुके हैं, उनको भी मारना धर्म नहीं है। हमलोग धृतराष्ट्र, पतिव्रता गान्धारी तथा विदुरजीसे पूछ लें और वे लोग जैसा कहें, वैसा करें।' तब अश्वत्थामा बोला—'मामाजी! पाण्डवोंने छलसे युद्धमें मेरे पिताको मारा है, उसी प्रकार मैं भी रातमें सोते हुए पाण्डवोंका वध करूँगा।'

ऐसा कहकर अश्वत्थामा घोड़े जुते हुए रथपर सवार हो क्रोधसे जलता हुआ पाण्डवोंकी ओर चल दिया। उसके पीछे-पीछे कृतवर्मा और कृपाचार्य भी गये। शिविरके द्वारपर पहुँचकर द्रोणपुत्र अश्वत्थामा खड़ा हो गया। उसने रातमें ही कृपानिधान महादेवजीकी आराधना करके उनसे एक उज्ज्वल खड्ग प्राप्त किया। तत्पश्चात् कृतवर्मा और कृपाचार्य दोनोंको शिविरके द्वारपर ही खड़ा करके वह स्वयं भीतर घुस गया। उस समय द्रोणपुत्र अत्यन्त कुपित हो तेजसे प्रज्वलित-सा हो रहा था। धीरे-धीरे वह धृष्टद्युम्नके शिविरमें गया। वहाँ महायुद्धसे थके हुए धृष्टद्युम्न आदि वीर अपनी सेनाके साथ निश्चिन्त होकर सो रहे थे। अश्वत्थामाने उत्तम शय्यापर सोते हुए महाबली धृष्टद्युम्नको क्रोधपूर्वक लातसे मारा। उस आघातसे जगकर धृष्टद्युम्न शय्यासे उठने लगा। उसी समय द्रोणपुत्रने उसके बाल खींचकर उसे पृथ्वीपर गिरा दिया और उसकी छातीपर चढ़कर धनुषकी डोरीसे उसके गलेको कसकर बाँध दिया। बेचारा विवश होकर चीखता और छटपटाता रहा, किंतु अश्वत्थामाने उसे पशुकी तरह गला दबाकर मार डाला। उसने सब सैनिकोंको भी सोतेमें ही मार डाला। युधामन्यु

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

और महापराक्रमी उत्तमौजाको, द्रौपदीके पाँचों पुत्रोंको तथा युद्धसे बचे हुए सोमक नामवाले क्षत्रिय वीरोंको भी उसने मौतके घाट उतार दिया। शिखण्डी आदि बहुत-से क्षत्रिय वीरोंको अश्वत्थामाने तलवारसे काट डाला। उसके भयसे भागकर जो लोग दरवाजेसे निकले, उन सब सैनिकोंको कृतवर्मा और कृपाचार्यने मृत्युका ग्रास बना दिया। इस प्रकार सारी सेनाके मारे जानेसे वह शिविर उसी प्रकार सूना हो गया, जैसे प्रलयकालमें तीनों लोक शून्य हो जाते हैं। तदनन्तर वे तीनों योद्धा पाण्डवोंसे भयभीत होकर शीघ्र गतिसे इधर-उधर निकल भागे।

अश्वत्थामा नर्मदाके मनोरम तटपर चला गया। वहाँ सहस्रों वेदवादी ऋषि परस्पर पुण्यकथाएँ कहते हुए उत्तम तपस्यामें संलग्न रहते थे। द्रोणाचार्यका पुत्र उन ऋषियोंके आश्रमोंमें गया। उसके प्रवेश करते ही ब्रह्मवादी मुनियोंने योगबलसे उसका दुश्चरित्र जान लिया और इस प्रकार कहा—'द्रोणपुत्र! तू सोते हुए मनुष्योंको मारनेवाला पापी अधम ब्राह्मण है। तेरे दर्शनसे भी हमलोग निश्चय ही पतित हो जायँगे। तुझसे वार्तालाप करनेपर दस हजार ब्रह्महत्याओंका पाप लगेगा। अतः नराधम! तू हमारे आश्रमोंसे दूर हो जा।'

उनके ऐसा कहनेपर अश्वत्थामा लज्जित हो उस मुनिसेवित आश्रमसे निकल गया। इसी प्रकार वह काशी आदि सभी पुण्यतीर्थोंमें गया; परंतु वहाँके महात्मा ब्राह्मणोंसे निन्दित होकर लौट आया और अन्तमें प्रायश्चित करनेकी इच्छासे भगवान् वेदव्यासजीकी शरणमें गया। महामुनि व्यासजी बदरिकारण्यमें विराजमान थे। उनके पास जाकर उसने भक्तिपूर्वक प्रणाम किया। तब व्यासजीने उससे कहा—'द्रोणकुमार! तू शीघ्र मेरे आश्रमसे निकल जा। सोते हुओंको मारनेके पापसे तू महापातकी हो गया है। तेरे साथ बात करनेसे भी मुझे महान् पाप लगेगा।'

अश्वत्थामा बोला—भगवन्! सबसे निन्दित होकर मैं आपकी शरणमें आया हूँ। यदि आप भी ऐसी बात कहते हैं तो दूसरा कौन मुझे शरण देनेवाला होगा? ब्रह्मन्! मुझपर कृपा कीजिये। क्योंकि साधुपुरुष दीनोंपर दया करनेवाले होते हैं। सोते हुए मनुष्योंको मारनेसे जो पाप हुआ है, उसकी शान्तिके लिये आप मुझे कोई प्रायश्चित्त बताइये। कारण कि आप सर्वज्ञ हैं।

अश्वत्थामाके ऐसा कहनेपर व्यासजीने दीर्घकालतक सोच-विचारकर उससे कहा—इस पापकी शान्तिके लिये धर्मशास्त्रोंमें कोई प्रायश्चित्त नहीं है। तथापि मैं उस दोषके निवारणके लिये एक उपाय बतलाता हूँ। दक्षिण समुद्रके तटपर जो परम पवित्र रामसेतु है, वह मोक्ष देनेवाला है। वहीं धनुष्कोटि नामसे विख्यात एक महान् तीर्थ है, जो बड़े-बड़े पातकोंका नाश करनेवाला और मनुष्योंको स्वर्ग एवं मोक्ष देनेवाला है। उसमें स्नान करनेसे ब्रह्महत्या आदि पाप भी शुद्ध हो जाते हैं। वह पवित्रोंमें सबसे अधिक पवित्र तथा तीर्थोंमें सबसे उत्तम है। दुःस्वप्न और नरकके क्लेशोंका नाशक तथा पुण्यजनक है। उस धनुष्कोटितीर्थमें जाकर तुम एक महीनेतक निरन्तर स्नान करो तो सोते हुओंको मारनेके पापसे शुद्ध हो जाओगे।

महर्षि व्यासके इस प्रकार कहनेपर अश्वत्थामा रामसेतुपर जाकर पुण्यदायिनी धनुष्कोटिमें पहुँचा। वहाँ उसने संकल्पपूर्वक एक मासतक निरन्तर स्नान किया। वह प्रतिदिन तीनों समय श्रीरामेश्वर शिवकी सेवामें रहता था। तदनन्तर तीसवें दिन जलमें स्नान करके उसने पंचाक्षर मन्त्रका जप और उपवास किया। फिर रातमें भगवान् रामेश्वरके समीप जागरण किया। दूसरे दिन पुनः संकल्पपूर्वक धनुष्कोटिमें स्नान करके उसने श्रीरामेश्वरकी भक्तिपूर्वक सेवा-पूजा की। तदनन्तर आनन्दके आँसू बहाता हुआ वह शिवजीके आगे नृत्य करने

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

लगा। उस समय भगवान् शंकर प्रसन्न होकर उसके सामने प्रकट हो गये। उनका दर्शन करके उसने भगवान् शिवका इस प्रकार स्तवन किया—'देवदेवेश्वर! आपको नमस्कार है। करुणाकर शंकर! विपत्ति-रूपी समुद्रमें डूबे हुए प्राणियोंको पार लगानेके लिये आपके चरणारविन्द जहाजरूप हैं। मृत्युंजय! त्रिलोचन! आप अपनी कृपादृष्टिसे मेरी रक्षा कीजिये।'

इस प्रकार स्तुति करनेपर महादेवजी प्रसन्न हो अश्वत्थामासे बोले—'द्रोणकुमार! सोते हुओंको मारनेके कारण जो तुम्हें पाप लगा था, वह धनुष्कोटिमें नहानेसे दूर हो गया। अब तुम कोई वर माँगो।' अश्वत्थामा बोला—'महेश्वर! आज आपके दर्शनमात्रसे मैं कृतार्थ हो गया। आपके चरणारविन्दोंमें मेरी अविचल भक्ति हो।' 'तथास्तु' कहकर देवदेव महादेवजी वहीं अन्तर्धान हो गये। इस प्रकार पापरहित, शुद्ध एवं निर्मल हुए अश्वत्थामाको उस समयसे सभी महर्षियोंने ग्रहण किया।

धनुष्कोटिमें स्नान करनेसे परावसुका पापसे उद्धार

सूतजी कहते हैं—पहलेकी बात है, बृहद्द्युम्न नामसे प्रसिद्ध एक महाबली चक्रवर्ती राजा हो गये हैं। वे समुद्रपर्यन्त समस्त पृथ्वीका धर्मपूर्वक पालन करते थे। उन्होंने सत्रयागद्वारा इन्द्र आदि देवताओंका यजन किया। परम विद्वान् धर्मात्मा रैभ्यजी उनके पुरोहित थे। रैभ्यके दो पुत्र हुए, अर्वावसु और परावसु। वे दोनों छहों अंगोंसहित सम्पूर्ण वेदोंके विद्वान् तथा श्रौत-स्मार्त कर्मोंके तत्त्वज्ञ थे। न्याय, मीमांसा, सांख्य, वेदान्त, वैशेषिक, योगशास्त्र और व्याकरणशास्त्रके मर्मज्ञ विद्वान् थे। मनु आदि धर्मशास्त्रोंके वे निष्णात पण्डित और सम्पूर्ण शास्त्रोंके ज्ञानमें चतुर थे। इन दोनों विद्वानोंको सत्रयागमें सहायता करनेके लिये राजा बृहद्द्युम्नने माँगा। पिताकी आज्ञा ले वे दोनों भाई बृहद्द्युम्नके सत्रमें गये। वे युगल अश्विनीकुमारोंकी भाँति परम सुन्दर दिखायी देते थे। रैभ्य मुनि जेठी पुत्रवधूके साथ स्वयं ही आश्रमपर रह गये थे।

उन दोनों बन्धुओंने वहाँ जाकर राजा बृहद्द्युम्नके यज्ञको बड़ी उत्तमतासे सम्पन्न कराया। जब वह यज्ञ होने लगा, तब राजाके बुलाये हुए सभी मुनि उस यज्ञको देखनेके लिये आये। उनको आया हुआ देख महाराज बृहद्द्युम्नने सबका आदरपूर्वक अर्घ्य आदिसे सत्कार किया। उसी समय आमन्त्रित हुए राजालोग आदरपूर्वक वह यज्ञोत्सव देखनेके लिये अनेक दिशाओंसे चतुरंगिणी सेनाके साथ आये। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र—इन चारों वर्णों तथा ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यासी—इन चारों आश्रमोंके लोग भी वहाँ जुटे हुए थे। श्रेष्ठ राजाने उन सबका यथायोग्य सत्कार किया और सबको भोजनके लिये अन्न, घी आदि पदार्थ दिये। वस्त्र, सुवर्ण, हार एवं नाना प्रकारके रत्न भी भेंट किये। इस प्रकार राजा बृहद्द्युम्नने यज्ञमें पधारे हुए सभी अतिथियोंका सत्कार किया।

रैभ्यके पुत्र अर्वावसु और परावसुने यज्ञ आदि कर्मोंको बिना किसी भूलके विधिपूर्वक कराया। उन दोनों भाइयोंकी निपुणता देखकर वसिष्ठ आदि सभी महर्षियोंने उनकी प्रशंसा की। परावसु कुछ कर्म कराकर तृतीय सवनके अन्तमें सायंकालके समय घरका काम-काज देखनेके लिये चले गये। उस समय रैभ्य मुनि काला मृगचर्म ओढ़कर वनमें विचर रहे थे। उन्हें देखकर परावसुके मनमें मृगकी आशंका हुई। रात्रिमें निविड अन्धकारमें उनके नेत्र निद्रासे

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

भारी हो रहे थे। उन्होंने पिताको देखकर यह समझा कि यह कोई वनवासी मृग है, मुझे मारनेके लिये आ रहा है। ऐसा सोचकर उस सघन वनमें अपने शरीरकी रक्षा चाहनेवाले परावसुने मृगके धोखेसे अपने पिताको ही मार डाला। निकट जाकर उसने अपने मरे हुए पिताको पहचाना; फिर तो वह शोकमें डूब गया। उसकी सारी इन्द्रियाँ व्यथासे व्याकुल हो उठीं। तत्पश्चात् परावसु पिताका दाहसंस्कार करके पुनः राजाके सत्रमें आ गये और अपने द्वारा जो पाप हो गया था, वह सब उन्होंने छोटे भाईको बताया। पिताको मरा हुआ सुन अर्वावसु शोकसे व्याकुल हो उठा। तब बड़े भाईने छोटेको यह आदेश दिया कि राजाका यह महान् यज्ञ आरम्भ हुआ है, तुम अभी बालक हो, तुममें इस यज्ञका भार सँभालनेकी शक्ति नहीं है। मैंने रातमें मृगकी आशंकासे पिताका ही वध कर डाला है, अतः उस ब्रह्महत्यासे मुक्त होनेके लिये प्रायश्चित्त भी करना चाहिये। तात! छोटे भैया! तुम्हीं मेरे लिये व्रत करो। मैं अकेला भी इस यज्ञका भार वहन करनेमें समर्थ हूँ।

बड़े भाईके ऐसा कहनेपर अर्वावसुने कहा— बड़े भैया! आपकी जैसी आज्ञा हो वैसा ही होगा। ऐसा कहकर वह यज्ञसे निकल गया और बड़े भाईने सब कर्मोंको कराया। छोटे भाईने बारह वर्षोंतक बड़े भाईके लिये ब्रह्महत्यानाशके लिये व्रत किया। तत्पश्चात् प्रसन्नतापूर्वक वह पुनः सत्रयज्ञमें आया। अपने भाईको आया देख ज्येष्ठने राजा बृहद्द्युम्नसे कहा—'राजन्! यह अर्वावसु ब्रह्महत्यारा है, इस समय आपके यज्ञमें आया है। नृपश्रेष्ठ! इसे शीघ्र ही इस यज्ञसे हटा दीजिये, अन्यथा सत्रयागके फलकी हानि होगी।' परावसुके ऐसा कहनेपर राजाने अपने सेवकोंद्वारा अर्वावसुको यज्ञसे निकाल दिया। वहाँके ब्राह्मण भी उसे धिक्कार दे रहे थे। अर्वावसु यह सब सहन करके चुपचाप वनको चला गया और वहाँ ऐसी तपस्या की, जो देवताओंके लिये भी दुष्कर थी। उसके तपसे भगवान् सूर्यनारायण प्रसन्न हो सामने प्रकट हुए और इस प्रकार बोले—'अर्वावसो! तुम तपस्या, ब्रह्मचर्य, आचार, शास्त्रश्रवण तथा वेद-शास्त्र आदिकी शिक्षाकी दृष्टिसे सर्वश्रेष्ठ हो। परावसुने तुम्हें अपमानपूर्वक निकाला है तथापि क्षमायुक्त होकर तुम उसके प्रति क्रोध नहीं करते हो। तुम्हारे बड़े भाईने ही पिताको मारा है, तुमने नहीं; फिर भी तुमने भाईकी शुद्धिके लिये स्वयं ही ब्रह्महत्यानाशक व्रत किया है, इसलिये हम तुम्हें श्रेष्ठ स्वीकार करते हैं।' ऐसा कहकर देवताओंने उसको ज्येष्ठ बना दिया। तत्पश्चात् इन्द्रादि देवताओंने सूर्यनारायणको आगे करके कहा—'अर्वावसो! तुम कोई वर माँगो।' उसने प्रार्थना की—'मेरे पिता जीवित हो जायँ और उन्हें अपने मारे जानेकी स्मृति न हो।' देवताओंने कहा—'ऐसा ही होगा। इसके सिवा हम तुम्हें दूसरा वर भी देना चाहते हैं, माँगो।'

अर्वावसु बोला—मेरे भाईकी दुष्टता दूर हो। अर्वावसुकी यह बात सुनकर देवताओंने कहा—'परावसुने अपने ब्राह्मणपिताकी हत्या की है, अतः उसे महान् पाप लगा है। दूसरेके किये हुए पापकी दूसरे द्वारा किये गये प्रायश्चित्तसे निवृत्ति नहीं होती, विशेषतः पाँच महापातकोंके सम्बन्धमें ऐसी ही बात है। इस कारण तुम्हारे भाई परावसुका अभी पापसे उद्धार नहीं हुआ है।' देवताओंकी यह बात सुनकर अर्वावसुने कहा—'आपका कहना ठीक है तथापि आपलोगोंके माहात्म्य और प्रसादसे पिता और ब्राह्मणकी हत्या करनेवाले मेरे भाईका जिस प्रकार उद्धार हो, वह उपाय कृपापूर्वक आप बतावें।'

अर्वावसुका यह वचन सुनकर देवताओंने दीर्घकालतक विचार किया। फिर एक निश्चयपर

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

पहुँचकर इस प्रकार कहा—'उस महापातकके निवारणका उपाय तुम्हें हम बता रहे हैं। दक्षिण समुद्रके तटपर जो परम पवित्र मोक्षदायक रामसेतु है, उसीपर धनुष्कोटि नामसे विख्यात एक परम उत्तम मुक्तिदायक तीर्थ है, जो ब्रह्महत्या, मदिरापान, सुवर्णकी चोरी, गुरुशय्यागमन तथा इन सबके संसर्गरूप महापातकोंका विनाश करनेवाला है। जो मनुष्य मनमें कोई कामना नहीं रखकर उसमें स्नान करता है, उसको वह तीर्थ मोक्षफल प्रदान करता है। वह दुःस्वप्नों तथा नरकके क्लेशोंका नाश करनेवाला एवं धन्य है। तुम्हारा ज्येष्ठ भाई परावसु यदि वहीं जाकर स्नान करे तो तत्काल ब्रह्महत्यासे मुक्त हो सकता है।' यों कहकर देवतालोग अपनी पुरीको चले गये।

तदनन्तर अर्वावसु अपने बड़े भाई परावसुको साथ ले श्रीरामचन्द्रजीके धनुष्कोटि नामक तीर्थमें गया। परावसुने पातकशुद्धिके लिये उस सेतुवर्ती तीर्थमें संकल्प करके अपने भाईके साथ नियमपूर्वक स्नान किया। स्नान करके जब वे उठे, तब आकाशवाणीने कहा—'परावसो! तुम्हारी पितृहत्या और ब्रह्महत्या नष्ट हो गयी।' तब छोटे भाईके साथ परावसुने श्रीरामचन्द्रजीकी धनुष्कोटिको भक्तिपूर्वक प्रणाम किया और रामेश्वर महादेवको भक्तिभावसे मस्तक नवाकर दोनों भाई अपने पिताके आश्रमपर गये। वहाँ रैभ्य मुनि मरकर पुनः जीवित हो गये थे। उन्होंने अपने दोनों पुत्रोंको आया देख मन-ही-मन बड़े सन्तोषका अनुभव किया और पुत्रोंके साथ वे आश्रमपर सुखपूर्वक रहने लगे। श्रीरामचन्द्रजीकी धनुष्कोटिमें स्नान करनेसे परावसुके पातकका नाश हो गया था। इसलिये सब मुनियोंने उन्हें स्वीकार किया।

धनुष्कोटिकी महिमा; सियार, वानर तथा दुराचार ब्राह्मणकी कथा और महालय श्राद्धकी आवश्यकता

सूतजी कहते हैं—अब मैं धनुष्कोटिकी प्रशंसामें सियार और वानरके संवादका वर्णन करता हूँ। प्राचीन कालमें एक स्थानपर सियार और वानर रहते थे। दोनोंको अपने पूर्वजन्मकी बातोंका स्मरण था। वे दोनों परस्पर मित्र थे। सियारका नाम रुद्रभूमिष्ठ था। एक समय वानरने शृगालको श्मशानभूमिमें देखकर पूर्वजन्मका स्मरण करते हुए पूछा—'सियार! तुमने पूर्वजन्ममें कौन-सा अत्यन्त भयंकर पाप किया था, जिससे तुम श्मशानभूमिमें घृणित एवं दुर्गन्धयुक्त मुर्दोंको खा रहे हो?' वानरके ऐसा पूछनेपर सियारने कहा—'वानर! मैं पूर्वजन्ममें वेदोंका पारंगत विद्वान् और समस्त कर्मकलापोंका ज्ञाता ब्राह्मण था। मेरा नाम वेदशर्मा था। मैंने उस जन्ममें एक ब्राह्मणको धन देनेके लिये संकल्प करके भी वह धन उसे नहीं दिया, उसीसे सियार हुआ और अब इस प्रकारके अत्यन्त घृणित पदार्थोंको खाता हूँ। जो दुरात्मा देनेकी प्रतिज्ञा करके भी कोई वस्तु नहीं देते हैं, वे अत्यन्त घृणित सियारकी योनिको प्राप्त होते हैं। वानर! ब्राह्मणको देनेकी प्रतिज्ञा करके यदि वह वस्तु उसे न दी जाय, तो उसी क्षण उसके दस जन्मोंका पुण्य नष्ट हो जाता है। इसलिये समझदार मनुष्यको उचित है कि वह देनेकी प्रतिज्ञा करनेपर उस वस्तुको अवश्य दे डाले।'

ऐसा कहकर सियारने वानरसे पूछा—तुमने क्या पाप किया था, जो वानर हो गये?

वानर बोला—पूर्वजन्ममें मैं भी ब्राह्मण था। मेरा नाम वेदनाथ था। मेरे पिता विश्वनाथ नामसे विख्यात थे और मेरी माताका नाम कमलालया था। सियार! पूर्वजन्ममें भी हमारी तुम्हारी मित्रता

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

थी। तुम इस बातको नहीं जानते हो, परंतु पुण्यके गौरवसे मुझे उसका स्मरण है। पूर्वजन्ममें मैंने ब्राह्मणका साग चुरा लिया था, उसी पापसे मैं वानर हुआ हूँ। अतः ब्राह्मणका धन अपहरण नहीं करना चाहिये। ब्राह्मणका धन लेनेसे नरक होता है और नरक भोगनेके बाद वानरकी योनि मिलती है। ब्राह्मणका धन अपहरण करनेसे बढ़कर दूसरा कोई पाप नहीं है। विष तो केवल पीनेवालेको मारता है, किंतु ब्राह्मणका धन समूचे कुलको जला डालता है। ब्राह्मणके धनका अपहरण करनेसे पापी मनुष्य कुम्भीपाक नामक नरकमें पकाया जाता है। पश्चात् शेष पापोंके फलस्वरूप वह वानर योनिको प्राप्त होता है। इसलिये ब्राह्मणके धनका अपहरण नहीं करना चाहिये। उनके साथ सदा क्षमाका ही व्यवहार करना चाहिये। बालक, दरिद्र, कृपण तथा वेदशास्त्र आदिके ज्ञानसे शून्य ब्राह्मणोंका भी अपमान नहीं करना चाहिये; क्योंकि क्रोधमें आनेपर वे अग्निके समान भस्म कर देनेवाले हो जाते हैं। सियार! कितने ही समयसे ऐसा कष्ट भोगते हुए हम दोनोंको इस पापसे छुड़ानेवाला कौन होगा?

सियार और वानर इस प्रकार बातचीत कर रहे थे, इतनेमेंही दैवयोगसे अथवा पूर्वजन्मके किसी पुण्यवश वहाँ महातेजस्वी सिन्धुद्वीप नामक मुनि स्वेच्छानुसार घूमते हुए आ पहुँचे। वे रुद्राक्षकी मालासे विभूषित हो भगवान् शिवके नामोंका कीर्तन कर रहे थे। सियार और वानरने मुनिको देखकर प्रणाम किया तथा इस प्रकार पूछा—'भगवन्! आप सब धर्मोंके ज्ञाता हैं, अपनी कृपादृष्टिसे हमारी ओर देखिये और हम दोनोंकी रक्षा कीजिये। हमारी वानर और सियारकी योनि जिस उपायसे छूट जाय, उसे बतानेकी कृपा कीजिये। साधुपुरुष सदा किसी प्रकारकी अपेक्षा न रखते हुए अपनी कृपादृष्टिसे अनाथों, दीनों, अज्ञानियों, बालकों तथा रोगपीड़ित मनुष्योंकी रक्षा करते हैं।'

उन दोनोंके ऐसा कहनेपर महामुनि सिन्धुद्वीपने मन-ही-मन बहुत देरतक विचार किया और इस प्रकार कहा—'सियार और वानर! तुम दोनोंके पापकी शान्तिके लिये मैं एक उपाय बताता हूँ। तुम दोनों दक्षिण समुद्रके तटपर श्रीरामचन्द्रजीके धनुष्कोटि तीर्थमें शीघ्र जाकर स्नान करो। ऐसा करनेसे पापसे मुक्त हो जाओगे।' सिन्धुद्वीपके इस वचनको सुनकर सियार और वानर बड़े प्रयाससे धनुष्कोटिमें गये और उसके जलमें स्नान करके सब पापोंसे मुक्त हो श्रेष्ठ विमानपर आरूढ़ होकर देवलोकमें चले गये। वहाँ उन्हें इन्द्रका आधा आसन प्राप्त हुआ।

गोदावरीके तटपर दुराचार नामसे प्रसिद्ध एक ब्राह्मण रहता था। वह बड़ा पापी और निर्दयतापूर्ण कर्म करनेवाला था। ब्रह्महत्यारे, शराबी, सुवर्णकी चोरी करनेवाले तथा गुरुपत्नीगामी महापातकियोंके संसर्गसे दूषित होकर वह सदा वैसे ही लोगोंके साथ निवास करता था। महापातकियोंके संसर्गदोषसे उस ब्राह्मणकी ब्राह्मणता पूर्णतः नष्ट हो गयी थी। ब्राह्मणतासे हीन उस दुराचार ब्राह्मणको एक महाभयंकर महाबलवान् वेतालने अपने अधीन कर लिया। वेतालके आवेशसे अत्यन्त पीड़ित एवं परवश होकर वह देश-देश और वन-वन घूमने लगा। घूमते-घूमते वह श्रीरामचन्द्रजीके धनुष्कोटिमें चला गया। वहाँ वेतालने प्रेरित करके उसे धनुष्कोटिके जलमें नहलाया। स्नान करके वह ज्यों ही जलसे निकला, वेतालने उसे छोड़ दिया। तब वह ब्राह्मण स्वस्थ होकर विचार करने लगा कि 'यह समुद्रके किनारे कौन-सा देश है? गोदावरीके तटपर निवास करनेवाला मैं यहाँ कैसे आ गया?' इसी चिन्तामें पड़ा हुआ वह धनुष्कोटिनिवासी योगिप्रवर महात्मा दत्तात्रेयके पास गया और उन्हें प्रणाम करके बोला—

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

'भगवन्! मैं नहीं जानता यह कौन-सा देश है? मेरा घर तो गोदावरीके किनारे है, मैं यहाँ कैसे

आ पहुँचा। यह सब बतानेकी कृपा करें।' उसकी यह बात सुनकर महायोगी दत्तात्रेयने थोड़ी देरतक ध्यान करके कहा—'पहले महापातकियोंके संसर्गसे तुम्हारी ब्राह्मणता नष्ट हो गयी थी, इसलिये तुम्हें किसी वेतालने पकड़ लिया। उसीके आवेशसे विवश होकर तुम यहाँ आये हो। वेतालने तुम्हें धनुष्कोटिके जलमें नहलाया है। धनुष्कोटिमें स्नान करनेसे ही तुम्हारा महापातकियोंके संसर्गका दोष सर्वथा नष्ट हो गया। जिस वेतालने तुम्हें पकड़ रखा था, वह पूर्वजन्ममें ब्राह्मण था। उसने आश्विनमासके कृष्ण पक्षमें पार्वणकी विधिसे पितरोंका हर्षपूर्वक महालय श्राद्ध नहीं किया। अतः पितरोंके शाप देनेसे वह वेतालभावको प्राप्त हुआ। इस धनुष्कोटिके दर्शनसे वह वेताल भी वेताल-योनिसे मुक्त हो भगवान् विष्णुके लोकको प्राप्त हुआ है। जो मनुष्य आश्विनमासके कृष्णपक्षमें अत्यन्त लोभवश पितरोंके उद्देश्यसे महालय श्राद्ध नहीं करते, वे वेताल होते हैं। जो आश्विनमासके कृष्णपक्षमें महालय श्राद्धके अवसरपर अपनी शक्तिके अनुसार एक, दो या तीन ब्राह्मणोंको भोजन कराता है, उसकी कभी दुर्गति नहीं होती। भादों शुक्लपक्षसे लेकर मार्गशीर्षमासके अन्ततक तत्त्वदर्शी मुनियोंने महालय श्राद्धका समय बतलाया है। इसमें भी भादोंका शुक्लपक्ष विशिष्ट है और उसकी अपेक्षा भी आश्विनका कृष्णपक्ष अधिक उत्तम माना गया है। उस कृष्णपक्षमें प्रतिपदा तिथिको जो मनुष्य भक्तिपूर्वक महालय श्राद्ध करता है, उसके ऊपर सबको पवित्र करनेवाले भगवान् अग्निदेव प्रसन्न होते हैं। वह अग्निलोकको प्राप्त होता है। जो मनुष्य द्वितीया तिथिमें महालय श्राद्ध करता है, उसके ऊपर गिरिजापति भगवान् शंकर प्रसन्न होते हैं और वह कैलाशको प्राप्त होता है। जो तृतीया तिथिमें भक्तिपूर्वक महालय श्राद्ध करता है, उसपर ब्रह्मा, विष्णु और शिव तीनों देवता अनुग्रह करते हैं। इसी प्रकार तृतीयासे लेकर चतुर्दशीतक महालय श्राद्धकी उत्तरोत्तर अधिक-से-अधिक महिमा है। जो मनुष्य भक्तिपूर्वक अमावास्या तिथिमें महालय श्राद्ध करता है, उसके पितरोंको अनन्तकालतक तृप्ति बनी रहती है। स्वर्गलोकमें देवताओंको अमृत पीनेसे जो तृप्ति प्राप्त होती है, वैसी ही अनन्त तृप्ति पितरोंको अमावास्यामें महालय श्राद्ध करनेसे होती है। अमावास्या तिथि भगवान् शंकरको अत्यन्त प्रिय है। यह परम शान्त तिथि है। इसमें महालय श्राद्ध करके वेदवेत्ता ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये। अमावास्याको श्राद्ध करनेवाला पुरुष प्रत्यगात्मा और ब्रह्मकी एकताको जानकर सायुज्य मोक्षको प्राप्त होता है।'

'भाद्रपदमास आनेपर देवस्वरूप पितर हर्षसे नाचने लगते हैं कि हमारे पुत्र हमलोगोंको तृप्तिके उद्देश्यसे श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको भोजन करायेंगे। उस भोजनसे हमें अत्यन्त दारुण नरकका क्लेश नहीं भोगना पड़ेगा और जबतक चन्द्रमा तथा सूर्य बने

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

रहेंगे, तबतक हमारा स्वर्गलोकमें निवास होगा। पितरोंको तृप्ति देनेवाले भाद्रपदमास एवं आश्विन-मास प्राप्त होनेपर प्रतिदिन भक्तिपूर्वक एक-एक ब्राह्मणको भोजन कराना चाहिये। इससे उसके पितृकुल और मातृकुलके पितर तृप्तिको प्राप्त होते हैं। आश्विन कृष्णा सप्तमीसे लेकर अमावास्यातक मनुष्य प्रतिदिन तीन-तीन ब्राह्मणोंको सत्कारपूर्वक भोजन करावे। द्वादशीसे लेकर अमावास्यातक तो अवश्य ही ऐसा करे। वेदवेत्ता ब्राह्मणोंको इस प्रकार भोजन करावे, जिससे उन्हें पूर्णतः तृप्ति हो। उस ब्राह्मणकी तृप्तिसे ब्रह्मा, विष्णु और शिव तृप्त होते हैं। अग्निष्वात्त आदि पितर, इन्द्र आदि देवता और अधिक कहाँतक कहें, तीनों लोक भी तृप्त होते हैं। मनुष्य महालय पार्वणविधिसे श्राद्ध करे। महालय श्राद्धमें पितृकुलके पितरोंकी ही भाँति मातृकुलके मातामहादि पितरोंको भी प्रसन्नतापूर्वक भोजन कराना चाहिये। भोजनके पश्चात् यथाशक्ति दक्षिणा देनी चाहिये। जैसे आगे चलनेवाले बैलोंके बिना गाड़ी रास्तेमें आगे नहीं बढ़ती, उसी प्रकार पितृयज्ञ भी बिना दक्षिणाके सफल नहीं होता। अतः कल्याणकी सिद्धिके लिये महालय श्राद्ध अवश्य करना चाहिये। यदि माता-पिताके क्षयाहके दिन एक-उद्दिष्ट श्राद्ध भूलसे न किया गया हो तो भी महालय श्राद्ध अवश्य करे। यदि अपने पास शक्ति न हो तो दूसरोंसे धनकी याचना करके भी पितरोंका महालय श्राद्ध करे। पहले ब्राह्मणोंसे याचना करनी चाहिये। यदि उनसे धन-धान्य आदिकी प्राप्ति न हो तो महालय श्राद्ध करनेकी इच्छासे उत्तम क्षत्रियोंके यहाँ याचना करे। यदि क्षत्रिय भी देनेवाले न हों तो वैश्योंसे माँगे। यदि लोकमें वैश्य भी दाता न हों तो पितरोंकी तृप्तिके लिये भाद्रपदमासमें गोग्रास अर्पण करे। यदि भादों या आश्विनमासमें सूतक आदिके द्वारा श्राद्धमें विघ्न उपस्थित हो जाय, तो सूतकका समय निवृत्त होनेपर अगहनमासके भीतर किसी दिन भी पार्वण श्राद्ध कर लेना चाहिये। विद्वान् पुरुषको चाहिये कि वह महालय श्राद्धके लिये नौ ब्राह्मणोंका वरण करे। एक ब्राह्मण पिताके लिये, एक पितामहके लिये और एक प्रपितामहके लिये वरण करे। इसी प्रकार मातामह, प्रमातामह और वृद्धप्रमातामहके लिये भी एक-एक ब्राह्मणका वरण करे। दो श्रेष्ठ ब्राह्मणोंका वरण विश्वेदेवोंके लिये करे और एक वेदवेत्ता ब्राह्मणका वरण भगवान् विष्णुके लिये करना चाहिये। अथवा पितृवर्गके लिये एक, मातामह वर्गके लिये एक, विश्वेदेवोंके लिये एक और भगवान् विष्णुके लिये एक। इस प्रकार चार ब्राह्मणोंका महालय श्राद्धके लिये वरण करे। वे ब्राह्मण वेदज्ञ एवं सुशील होने चाहिये। जो खोटे स्वभाववाले ब्राह्मणोंका वरण करता है, वह श्राद्धका घातक है। भाद्रपद शुक्लपक्षमें अथवा विशेषतः आश्विन कृष्णपक्षमें महालय श्राद्ध करना चाहिये। जो श्रद्धापूर्वक इस प्रकार महालय श्राद्ध करता है, वह सब तीर्थोंमें स्नान करनेका फल पा लेता है। महालय श्राद्ध नित्यकर्ममें गिना जाता है। अतः उसे न करनेपर बड़ा भारी पाप लगता है।'

'धर्मपुत्र युधिष्ठिर वनवासमें महालय श्राद्ध करनेसे ही दुःखके समुद्रसे पार हो धृतराष्ट्रपुत्रोंको मारकर युद्धमें विजयी हुए। मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठ, अत्रि, भृगु, कुत्स, गौतम, अंगिरा, काश्यप, भरद्वाज, विश्वामित्र, अगस्त्य, पराशर, मृकण्ड तथा अन्यान्य मुनिवर विधिपूर्वक उत्तम महालय श्राद्धका अनुष्ठान करके ही अणिमा आदि आठों सिद्धियों, व्रतों और तपस्याओंके निवासस्थान बन गये। महालय श्राद्ध करनेसे ही उन्हें सर्वश्रेष्ठ स्थान प्राप्त हुआ। अतः अपना कल्याण एवं अभ्युदय चाहनेवाले पुरुषको महालय श्राद्ध अवश्य करना चाहिये। तुम्हारे भीतर जिस भूतने प्रवेश किया था, वह पूर्वजन्ममें ब्राह्मण

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

था। उसका नाम वेदनिधि था। वह महात्मा भरद्वाजका पुत्र तथा कुशस्थली ग्रामका निवासी था। उसने विधिपूर्वक महालय श्राद्धको नहीं किया, इसलिये पितरोंके शापसे वह वेताल हो गया। दुराचार! तुम भाद्रपदमास (आश्विन कृष्णपक्ष) में पितरोंकी तृप्तिके लिये षड्रस भोजन तैयार करके ब्राह्मणोंको भक्तिपूर्वक भोजन कराओ। ऐसा करनेसे तुम्हें कभी दरिद्रता नहीं होगी और तुम सदा सुखी रहोगे। आजसे तुम कभी महापातकियोंसे संसर्ग न रखना, मैं तुम्हें आज्ञा देता हूँ। अब शीघ्रतापूर्वक अपने देशको चले जाओ।'

योगी दत्तात्रेय मुनिके इस प्रकार आज्ञा देनेपर दुराचार कृतार्थमनसे उन्हें प्रणाम करके अपने देशको चला गया और दत्तात्रेयजीके बताये हुए मार्गसे अपने वर्णाश्रमोचित कर्तव्यका पालन करते हुए प्रसन्नतापूर्वक रहने लगा। उसने महापातकियोंका संसर्ग त्याग दिया। श्रीरामचन्द्रजीके धनुष्कोटितीर्थमें स्नान करनेकी महिमासे दुराचार देहान्त होनेपर परम मोक्षको प्राप्त हुआ। ब्राह्मणो! इस प्रकार मैंने तुम्हें दुराचारके उद्धारकी पवित्र कथा कह सुनायी। इस प्रकार धनुष्कोटितीर्थ बड़े-बड़े पातकोंका नाश करनेवाला है।

क्षीरकुण्डकी उत्पत्ति और महिमा—महर्षि मुद्गलको भगवान् विष्णुका दर्शन

श्रीसूतजी कहते हैं—नैमिषारण्यनिवासियो! चक्रतीर्थसे लेकर धनुष्कोटिपर्यन्त चौबीस तीर्थोंका तुमसे वर्णन किया, अब और क्या सुनना चाहते हो?

मुनि बोले—सूतजी! हमलोग क्षीरकुण्डका माहात्म्य सुनना चाहते हैं, जिसके समीप पहले आपने चक्रतीर्थकी स्थिति बतलायी है।

सूतजीने कहा—मुनिवरो! परम पवित्र देवीपुरसे पश्चिम थोड़ी ही दूरपर फुल्लग्रामके नामसे प्रसिद्ध बड़ा भारी स्थान है, जहाँसे प्रारम्भ करके श्रीरामचन्द्रजीने महासागरमें सेतु बाँधा है। वह फुल्लग्राम अतिशय पुण्यतम क्षेत्र है। वहाँपर महापातकोंका नाश करनेवाला क्षीरकुण्ड है, जो दर्शन, स्पर्श, ध्यान और कीर्तनसे भी मोक्ष देनेवाला है। प्राचीन कालमें दक्षिण समुद्रके तटपर अतिशय पवित्र फुल्लग्राममें वेदोक्त मार्गपर चलनेवाले मुद्गल नामक मुनि निवास करते थे। उन्होंने भगवान् विष्णुको प्रसन्न करनेवाले एक उत्तम यज्ञका अनुष्ठान किया। उस यज्ञसे सन्तुष्ट होकर प्रसन्नात्मा भगवान् विष्णु उनके आगे प्रकट हुए। उनकी कान्ति श्याम मेघके समान थी। वे पीताम्बरसे सुशोभित थे। विनतानन्दन गरुड़की पीठपर बैठे हुए थे। कौस्तुभमणि उनके वक्षःस्थलकी शोभा बढ़ा रही थी। उनके चारों हाथ शंख, चक्र, गदा और पद्मसे शोभायमान थे। उनका दर्शन करके मुद्गल मुनि भक्ति एवं प्रेमसे विह्वल हो गये। उनके शरीरमें रोमांच हो आया। उन्होंने कानोंको सुख देनेवाले मधुर शब्दोंमें भगवान् विष्णुका स्तवन किया।

मुद्गल बोले—पहले संसारके सृष्टिकर्ता ब्रह्माजीके रूपमें, तत्पश्चात् उसका पालन करनेवाले विष्णुके रूपमें, तदनन्तर जगत्का संहार करनेवाले रुद्ररूपमें आप भगवान् नारायणको मेरा नमस्कार है। मत्स्य और कच्छपरूप धारण करनेवाले आप सच्चिदानन्दमय प्रभुको प्रणाम है। वराह और नृसिंहरूप धारण करनेवाले आपको नमस्कार है। वामन और परशुरामरूपधारी आप भगवान्को प्रणाम है। राम और बलरामके रूपमें आपको नमस्कार

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

है। श्रीकृष्ण, कल्कि तथा विज्ञानात्मा बुद्धके रूपमें आपको नमस्कार है। करुणासिन्धो! नारायण! जगत्पते! आप मेरी रक्षा कीजिये। मैं निर्लज्ज, कृपण, क्रूर, चुगलखोर, दम्भी, दुर्बल, परायी स्त्री, पराये धन और पराये क्षेत्रके लिये सदा लोलुप रहनेवाला तथा मनसे सबके दोषोंपर ही दृष्टि रखनेवाला हूँ। हरे! कृपया मेरी रक्षा कीजिये।

महर्षि मुद्गलके इस प्रकार स्तुति करनेपर साक्षात् भगवान् विष्णु मेघके समान गम्भीर वाणीमें इस प्रकार बोले—मुद्गल! मैं तुम्हारे इस स्तोत्र और यज्ञसे बहुत प्रसन्न हूँ और प्रत्यक्षरूपसे हविष्यको भोग लगानेके लिये तुम्हारे यज्ञमें आया हूँ।

मुद्गलने कहा—हृषीकेश! मैं कृतार्थ हो गया। मेरी धर्मपत्नी भी धन्य-धन्य हो गयी। आज मेरा जन्म सफल हुआ। मेरी तपस्या सफल हुई; मेरा वंश, मेरे पुत्र, मेरा आश्रय और मेरा सब कुछ आज सफल हो गया। क्योंकि आप साक्षात् भगवान् विष्णु मेरी यज्ञशालामें हविष्य ग्रहण करनेके लिये पधारे हैं। योगपरायण योगी लोग अपने हृदयमें जिनकी खोज करते हैं, उन्हीं आप नारायणको मैं आज प्रत्यक्ष देख रहा हूँ।

ऐसा कहकर भगवान् विष्णुके लिये आसन दे मुनिने चन्दन और पुष्प आदि उपचारोंसे भगवान्‌को अर्घ्य दे उनका पूजन किया और उनके लिये प्रसन्नतापूर्वक पुरोडाश आदि हविष्य अर्पण किया। विश्वभावन भगवान् विष्णुने महर्षि मुद्गलके द्वारा समर्पित उस हविष्यको स्वयं हाथसे लेकर भोजन किया। भगवान् विष्णुके द्वारा उस हविष्यके भोजन करनेपर अग्निसहित सम्पूर्ण देवता तृप्त हो गये। इतना ही नहीं, ऋत्विज्, यजमान, वहाँके ब्राह्मण तथा जीवलोकमें जो कोई भी चराचर प्राणी थे, वे सब-के-सब तृप्त हो गये। सम्पूर्ण जगत् तृप्त हुआ। तदनन्तर भगवान् विष्णुने कहा—'सुव्रत! मैं प्रसन्न हूँ और वर देनेको उद्यत हूँ, अतः कोई वर माँगो।' भगवान् विष्णुके ऐसा कहनेपर महर्षि बोले—'प्रभो! आपने प्रत्यक्षरूपसे दर्शन देकर मेरे यज्ञमें हविष्यको भोग लगाया है। इतनेसे ही मैं कृतार्थ हो गया। इससे अधिक और क्या वर हो सकता है। तथापि भगवन्! 'आपमें निश्चल एवं निष्कपट भक्ति सदा बनी रहे' यह मेरा प्रथम वर है। माधव! मैं प्रतिदिन सायंकाल और प्रातःकाल आपके स्वरूपभूत अग्निकी तृप्ति एवं आपकी प्रीतिके लिये गायके दूधसे हवन करना चाहता हूँ, मेरी यह इच्छा पूर्ण हो—यह मेरे लिये दूसरा वर है।' मुद्गलजीके ऐसा कहनेपर भगवान् नारायणने अमृतभोजी देवता विश्वकर्मा शिल्पीको बुलाकर उनके द्वारा एक सुन्दर सरोवरका निर्माण करवाया। विश्वकर्माने उसे चारों ओरसे चहारदिवारी आदि लगाकर सब प्रकारसे सुशोभित कर दिया। उसके बाद भगवान्‌ने सुरभिको बुलाकर कहा—'सुरभे! ये मेरे भक्त मुद्गलजी प्रतिदिन मेरी प्रसन्नताके लिये दूधसे हवन करना चाहते हैं। अतः तुम मेरे आदेशसे नित्य सबेरे और सन्ध्याके समय यहाँ आकर इस सरोवरको दूधसे भर दिया करो।' सुरभिने 'बहुत अच्छा' कहकर भगवान्‌की आज्ञा स्वीकार की। फिर भगवान्‌ने मुद्गलजीसे कहा—'ब्रह्मन्! इस सरोवरमें सदा सुरभिका दूध वर्तमान रहेगा। तुम उसके द्वारा प्रतिदिन सायंकाल और प्रातःकाल मेरी प्रसन्नताके लिये अग्निमें होम करो। इससे मैं तुमपर प्रसन्न रहूँगा और मेरी प्रसन्नतासे तुम्हें सम्पूर्ण सिद्धि प्राप्त होगी। यह 'क्षीरसरोवर' नामसे विख्यात तीर्थ होगा। इसमें स्नान करनेवाले मनुष्योंके पाँच महापातक तथा अन्यान्य पाप तत्काल नष्ट हो जायँगे। मुद्गल! तुम देहावसान होनेपर सब बन्धनोंसे मुक्त हो मुझे प्राप्त होओगे।'

यों कहकर भगवान् विष्णुने मुद्गलको हृदयसे

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

लगा लिया। तत्पश्चात् महर्षि मुद्गलने भगवान्‌को प्रणाम किया और भगवान् वहीं अन्तर्धान हो गये। भगवान् विष्णुके चले जानेपर महर्षि मुद्गलने प्रतिदिन सुरभिके दूधसे श्रीहरिकी प्रसन्नताके लिये अग्निमें आहुति करते हुए मोक्षदायक फुल्लग्राममें अनेक सौ वर्षोंतक निवास किया। तदनन्तर देहान्त होनेपर उन्होंने भगवान् विष्णुका सायुज्य प्राप्त कर लिया।

कपितीर्थकी महिमा—उसमें स्नान करनेसे रम्भा और घृताचीका शापसे उद्धार

श्रीसूतजी कहते हैं—अब मैं 'कपितीर्थ' के माहात्म्यका वर्णन करता हूँ, जिसे पूर्वकालमें सब वानरोंने मिलकर गन्धमादन पर्वतपर निर्माण किया था। उस तीर्थको बनाकर वानरोंने उसमें हर्षपूर्वक स्नान किया और तीर्थके लिये इस प्रकार वर दिया—'जो मनुष्य भक्तिसे विनीतचित्त होकर इस तीर्थमें स्नान करेंगे, वे महापातकोंसे मुक्त होकर मोक्षके भागी होंगे। इस तीर्थमें गोता लगानेवाले पुरुषोंको नरकका भय नहीं होगा। इसमें स्नान करनेवाले लोगोंको दरिद्रता नहीं प्राप्त होगी। यमराजकी यातना भी नहीं भोगनी पड़ेगी।' इस प्रकार इस तीर्थके लिये वरदान देकर कपीश्वरोंने दशरथनन्दन श्रीरामचन्द्रजीको प्रणाम करके उनसे भी प्रार्थना की—'स्वामिन्! आप भी इस तीर्थके लिये अद्भुत वरदान दें।' वानरोंके इस प्रकार प्रार्थना करनेपर उनकी प्रीतिके लिये श्रीरामचन्द्रजीने हर्षपूर्वक उस तीर्थको वरदान दिया—'इस तीर्थमें गोता लगानेवालोंको गंगास्नानका फल मिलेगा, प्रयागस्नानका पुण्य प्राप्त होगा तथा सब तीर्थोंके फलकी प्राप्ति होगी। यह अति उत्तम तीर्थ कपियोंद्वारा बनाया गया है, इसलिये संसारमें 'कपितीर्थ' के नामसे इसकी प्रसिद्धि होगी।' अतः मोक्षकी इच्छा रखनेवाले पुरुषोंको इस तीर्थमें अवश्य स्नान करना चाहिये। प्राचीन कालकी बात है, कुशिकवंशमें विश्वामित्र नामक राजा हुए। एक समय महाराज विश्वामित्रने अपने राज्यका निरीक्षण करनेके लिये विशाल सेनाके साथ पृथ्वीपर घूमना आरम्भ किया। अनेक देशोंमें घूमकर वे वसिष्ठजीके आश्रमपर गये। महात्मा वसिष्ठने अपनी कामधेनुके प्रभावसे राजा विश्वामित्रका उत्तम आतिथ्य-सत्कार किया। कौशिक विश्वामित्रने कामधेनुका प्रभाव जानकर वसिष्ठजीसे वह सब मनोरथोंको देनेवाली गाय माँगी। वसिष्ठजीने उसे देना अस्वीकार कर दिया। तब वे बलपूर्वक उस गायको खींचकर ले चले। कामधेनुने म्लेच्छोंकी बहुत बड़ी सेना उत्पन्न की, जिससे विश्वामित्रको हार खानी पड़ी। तब उन्होंने महादेवजीकी आराधना करके उनसे अनेक प्रकारके अस्त्र-शस्त्र प्राप्त किये और वसिष्ठजीके आश्रमपर जाकर उन सबका प्रयोग करना प्रारम्भ किया। विश्वामित्रने सब अस्त्र चलाये, ब्रह्मास्त्रका भी प्रयोग किया; परंतु ब्रह्मनन्दन वसिष्ठजीने अपने तपोबलसे एकमात्र ब्रह्मदण्डके द्वारा विश्वामित्रके उन सब अस्त्रोंको नष्ट कर दिया। इस प्रकार पराजित होनेपर विश्वामित्रको बड़ी लज्जा हुई। अब वे स्वयं ब्राह्मणत्वप्राप्तिके उद्देश्यसे तपस्या करनेके लिये वनमें चले गये। उन्होंने उत्तर दिशामें जाकर हिमालय पर्वतपर कौशिकी नदीके पापनाशक पुण्यमय तटपर एक हजार दिव्य वर्षोंतक तपस्या की। निराहार और जितेन्द्रिय रहकर नेत्र बंद करके श्वास और क्रोधको जीतकर वे निश्चल भावसे खड़े रहे। तब इन्द्र आदि देवताओंने रम्भासे कहा—'रम्भे! तुम हिमालय पर्वतपर कौशिकी नदीके किनारे तपस्या करनेवाले महामुनि

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

विश्वामित्रको अपने हाव-भावोंसे लुभाओ। जिस प्रकार उनकी तपस्यामें विघ्न पड़े, वैसा प्रयत्न करो।'

इन्द्रके ऐसा कहनेपर रम्भा विश्वामित्रके आश्रमपर गयी और मुनिके नेत्रोंके सामने खड़ी हो सुन्दर रूप धारण करके अपनी मनोहर चेष्टाओंद्वारा उनके मनको लुभाने लगी। इतनेमें ही मनमें आनन्द बढ़ाती हुई कोयल भी कूक उठी। पिकीका मधुर कलरव सुनकर और रम्भाको वहाँ उपस्थित देखकर मुनिवर विश्वामित्रका हृदय संशयमें पड़ गया। उन्होंने समझ लिया कि 'यह सारी करतूत इन्द्रकी है।' तब उन तपोधनने क्रोधमें आकर रम्भाको शाप दिया— 'रम्भे! मैं क्रोधको जीतनेकी इच्छा रखता हूँ और तू यहाँ विघ्न डालनेके लिये आकर मेरे क्रोधको बढ़ा रही है, इसलिये तू दस लाख वर्षोंतक यहाँ शिला होकर पड़ी रह।'

विश्वामित्रके इस प्रकार शाप देनेपर रम्भा उनके आश्रमपर बहुत कालतक शिला होकर रही। धर्मात्मा विश्वामित्रने पुनः बड़ी भारी तपस्या करके वसिष्ठके वचनोंद्वारा अनुमोदित तथा दूसरे क्षत्रियोंके लिये दुर्लभ ब्राह्मणत्व प्राप्त कर लिया। फिर उसी पवित्र आश्रममें अगस्त्यजीके प्रिय शिष्य श्वेत मुनिने मोक्षकी इच्छा रखकर बड़ा भारी तप किया। दीर्घकालतक तपस्यामें लगे हुए मुनिवर श्वेतके आश्रमपर एक दिन कोई राक्षसी आयी। उसका नाम अंगारका था। उस भयानक राक्षसीने मूत्र, रक्त और विष्ठा आदिके द्वारा उनके आश्रमको गंदा कर दिया और अनेक उपद्रवोंसे उन्हें सताना आरम्भ किया। तब श्वेतजीने कुपित हो विश्वामित्रजीके शापसे शिलाभावको प्राप्त रम्भाको ही वायव्यास्त्रसे संयोजित करके उस राक्षसीके ऊपर फेंका। वह शिला वायव्यास्त्रसे प्रेरित हो राक्षसीके ऊपर टूट पड़ी। राक्षसी उस शिलाके भयसे भाग चली। भागते-भागते वह दक्षिण समुद्रके तटपर कपितीर्थके समीप जा पहुँची। भयसे वह राक्षसी अत्यन्त व्याकुल हो रही थी। वह शिला भी राक्षसीका पीछा करती हुई वहाँतक गयी और कपितीर्थमें गोता लगाती हुई राक्षसीके ऊपर गिर पड़ी। मस्तकपर शिलाके आघातसे राक्षसी वहीं मर गयी। इधर कपितीर्थमें स्नान करनेसे विश्वामित्रके शापको प्राप्त हुई वह शिला अपने शिलारूपको छोड़कर रम्भाके रूपमें परिणत हो गयी। तत्पश्चात् दिव्य वस्त्रोंसे सुशोभित हो वह दिव्य विमानपर चढ़ी और बारंबार कपितीर्थके माहात्म्यकी प्रशंसा करती हुई अमरावती पुरीको चली गयी। वह राक्षसी भी घृताची नामक अप्सरा थी, जो कपितीर्थमें स्नान करके अपने स्वरूपको प्राप्त हुई। इस प्रकार अगस्त्यशिष्य श्वेतजीके प्रसादसे रम्भा और घृताची कपितीर्थमें स्नान करके शिलाभाव और राक्षसीरूपको त्यागकर अपने-अपने स्वरूपको प्राप्त हो गयीं। इसलिये प्रयत्नपूर्वक कपितीर्थमें स्नान करना चाहिये।

रामेश्वर नामक महालिंगकी महिमा

श्रीसूतजी कहते हैं—जो मनुष्य भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके द्वारा स्थापित रामेश्वर शिवलिंगका एक बार दर्शन कर लेता है, वह भगवान् शंकरके सायुज्यस्वरूप मोक्षको प्राप्त करता है। सत्ययुगमें दस वर्षोंमें जो पुण्य किया जाता है, उसीको त्रेताके मनुष्य एक वर्षमें सिद्ध करते हैं। वही द्वापरमें एक मास और कलियुगमें एक दिनमें साध्य होता है। परंतु जो लोग भगवान् रामेश्वरका दर्शन करते हैं, उनको वही पुण्य कोटिगुना होकर एक-एक पलमें प्राप्त होता है,

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

इसमें सन्देह नहीं है*। रामेश्वर नामक महालिंगमें सब तीर्थ, सम्पूर्ण देवता, ऋषि-मुनि तथा पितर विद्यमान हैं। जो एक समय, दो समय, तीनों समय अथवा सर्वदा ही मोक्षदायक रामेश्वर नामक महादेवजीका स्मरण या कीर्तन करते हैं, वे पापसमूहसे मुक्त हो जाते हैं और सच्चिदानन्दमय अद्वैतरूप साम्बशिवको प्राप्त होते हैं। रामेश्वर नामक शिवलिंग भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके द्वारा पूजित हुआ है, उसके स्मरण करनेमात्रसे यमराजकी पीड़ा नहीं प्राप्त होती। जो मनुष्य रामेश्वर नामक महालिंगको नमस्कार और उसका पूजन करते हैं, उनका जन्म सफल है, वे कृतार्थ हो जाते हैं। जो मनुष्य रामेश्वर नामक महालिंगके प्रति भक्ति रखते हैं, उन लोगोंके प्रणाम, स्मरण और पूजनमें तत्पर रहनेवाले मानव भी कभी दुःख नहीं देखते। करोड़ों जन्मोंमें किये गये जो कोई भी पाप हैं, वे भगवान् रामेश्वरका दर्शन कर लेनेपर तत्काल नष्ट हो जाते हैं। रामेश्वर महालिंगका कीर्तन और पूजन करनेवाला मनुष्य अवश्य ही भगवान् रुद्रका सारूप्य प्राप्त कर लेता है। जैसे प्रज्वलित अग्नि क्षणभरमें काष्ठके ढेरको भस्म कर डालती है, वैसे ही भगवान् रामेश्वरका दर्शन करनेवाले लोगोंके सब पाप तत्काल भस्म हो जाते हैं। रामेश्वर महालिंगकी भक्ति आठ प्रकारकी बतायी गयी है—(१) रामेश्वरके भक्तोंके प्रति स्नेह एवं दयाभाव रखना, (२) उन भक्तोंका पूजन करके उन्हें सन्तुष्ट करना, (३) स्वयं भगवान् रामेश्वरकी भक्तिपूर्वक पूजा करना, (४) उन्हींके लिये देहकी सारी चेष्टाओंका होना, (५) श्रीरामेश्वरकी माहात्म्य-कथा श्रवण करनेमें आदरभाव रखना, (६) उनके प्रति प्रेमाधिक्यके कारण वाणीका गद्गद होना, नेत्रोंमें आँसू आना, शरीरमें रोमांचका उदय होना आदि भावोंका स्फुरण, (७) श्रीरामेश्वर महालिंगका निरन्तर स्मरण करना तथा (८) उसीकी शरण लेकर जीवनधारण करना। जिस-किसी म्लेच्छमें भी ऐसी आठ प्रकारकी भक्ति हो, वह भी मुक्तिक्षेत्रोंके मोक्षरूपी धनका अधिकारी बताया गया है। अनन्य भक्ति और ब्रह्मज्ञानके द्वारा मुक्ति निश्चित है। ऊर्ध्वरेता संन्यासियोंको वेदान्तशास्त्रके श्रवणसे जो मुक्ति प्राप्त होती है, वही सब वर्णों और सब आश्रमके लोगोंको दर्शनशास्त्रके श्रवणजनित ज्ञानके बिना ही केवल रामेश्वर महालिंगके दर्शनसे ही प्राप्त हो जाती है। योगयुक्त ऊर्ध्वरेता मुनियोंकी जो गति होती है, वही भगवान् रामेश्वरका दर्शन करनेवाले समस्त प्राणियोंकी होती है। जो मनुष्य रामेश्वर शिवके क्षेत्रकी प्रसन्नतापूर्वक यात्रा करते हैं, उन्हें पग-पगपर अश्वमेध-यज्ञका पुण्य प्राप्त होता है। अम्बा-पार्वतीसहित परम दयालु रामेश्वर महालिंगरूप भगवान् शिवमें भक्ति होनी अत्यन्त दुर्लभ है, उनकी पूजाका शुभ अवसर भी दुर्लभ है तथा उनका स्तवन और स्मरण भी अत्यन्त दुर्लभ है। जिसकी बुद्धि निरन्तर रामेश्वर महालिंगका चिन्तन करती है, वही इस पृथ्वीपर धन्यातिधन्य पुरुष है। श्रीरामेश्वर महालिंगका दर्शन करनेवाले पुरुषके दर्शनमात्रसे दूसरे प्राणियोंका पाप तत्काल नष्ट हो जाता है। जो प्रातःकाल उठकर तीन बार रामनाथ (रामेश्वर) शब्दका

---

* दशवर्षैस्तु यत्पुण्यं क्रियते तु कृते युगे। त्रेतायामेकवर्षेण तत्पुण्यं साध्यते नृभिः॥
द्वापरे तच्च मासेन तद्दिनेन कलौ युगे। तत्फलं कोटिगुणितं निमिषे निमिषे नृणाम्॥
निस्सन्देहं भवेदेवं रामनाथविलोकिनाम्॥
(स्क० पु० ब्रा० से० मा० ४३। ३—५)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

उच्चारण करता है, उसका पहले दिनका पाप तत्काल नष्ट हो जाता है। यदि प्राणत्यागके समय मनुष्य भगवान् रामेश्वरका स्मरण करे, तो फिर उसका जन्म नहीं होता। 'रामनाथ! महादेव! करुणानिधे! सदा मेरी रक्षा कीजिये।' इस प्रकार जो सदा उच्चारण करता है, वह कलियुगसे पीड़ित नहीं होता*। 'रामनाथ! जगन्नाथ! धूर्जटे! नीललोहित!' जो इस प्रकार सदा बोलता है, उसे माया नही सताती। 'नीलकण्ठ! महादेव! रामेश्वर! सदाशिव!' सदा ऐसा बोलनेवाला प्राणी कभी कामसे कष्ट नहीं पाता। 'हे रामेश्वर! हे यमराजके शत्रु! हे कालकूट विषका भक्षण करनेवाले शिव!' प्रतिदिन इस प्रकार उच्चारण करनेवाला पुरुष कभी क्रोधसे पीड़ित नहीं होता। जो स्फटिक आदि भिन्न-भिन्न शिलाओंसे भगवान् रामेश्वरका मन्दिर बनाता है, वह श्रेष्ठ विमानपर बैठकर भगवान् शिवके लोकको जाता है। जो मनुष्य भक्तिपूर्वक त्रिशूलधारी भगवान् रामेश्वरके स्नानके समयमें रुद्राध्याय, चमक, पुरुषसूक्त, त्रिसुपर्ण, पंचशान्ति तथा पावमानी आदि ऋचाओंको प्रेमपूर्वक जपता है, वह कभी नरकका कष्ट नहीं भोगता है। जो रामेश्वर महालिंगको गायके दूधसे स्नान कराता है, वह अपनी इक्कीस पीढ़ियोंका उद्धार करके शिवलोकमें पूजित होता है। दहीसे स्नान करानेवाला पुरुष सब पापोंसे छूटकर भगवान् विष्णुके लोकमें प्रतिष्ठित होता है। रामेश्वर शिवको नारियलके जलसे कराया हुआ स्नान ब्रह्महत्या आदि पापोंका नाशक बताया गया है। वस्त्रसे छानकर शुद्ध किये हुए जलके द्वारा रामेश्वर महादेवको स्नान करानेवाला पुरुष वरुणलोकमें जाता है। पुष्पोंके सुगन्धसे वासित जलके द्वारा दयानिधान रामेश्वर महालिंगको स्नान करानेवाला मनुष्य शिवलोकमें पूजित होती है। 'रामसेतु धनुष्कोटिमें विराजमान भगवान् रामेश्वर!' ऐसा उच्चारण करके मनुष्य जहाँ कहीं भी स्नान करे, सेतु-स्नानका फल प्राप्त करता है। जो मनुष्य रामेश्वर शिवके टूटे-फूटे हुए मन्दिरको बनाता या उसकी मरम्मत करता है, वह दस सहस्र ब्रह्महत्याओंको जला डालता है। जो मनुष्य भगवान् रामेश्वरके आगे प्रसन्नतापूर्वक दीपक अर्पण करता है, वह अविद्यामय अन्धकारका भेदन करके प्रकाशस्वरूप सनातन ब्रह्मको प्राप्त होता है। भगवान् रामेश्वरके उद्देश्यसे जो थोड़ा भी आदरपूर्वक दान किया जाता है, वह दाताको परलोकमें अनन्त फल देनेवाला होता है। महाक्षेत्र रामेश्वरमें श्रीरामनाथजीके समीप निवास करनेवाला मनुष्य पुनरावृत्तिरहित मोक्षको प्राप्त होता है। संसारका लाड़-प्यार छोड़कर आपत्तिग्रस्त मनुष्योंकी पीड़ा दूर करनेवाले रामेश्वर महालिंगका श्रवण, कीर्तन और स्मरण करना चाहिये। भगवान् रामेश्वरका पूजन, वन्दन, स्मरण, श्रवण और दर्शन कर लेनेपर कोई वस्तु दुर्लभ नहीं रह जाती। जो लाये हुए गंगाजलके द्वारा रामेश्वर नामक महालिंगको स्नान कराता है, वह भगवान् शिवके लिये भी आदरणीय हो जाता है। जबतक मृत्यु नहीं आती, जबतक बुढ़ापाका आक्रमण नहीं होता और जबतक सम्पूर्ण इन्द्रियाँ शिथिल नहीं हो जातीं, तभीतक मोक्ष चाहनेवाले मनुष्योंको सदैव भगवान् रामेश्वरका वन्दन, पूजन, चिन्तन तथा स्तवन कर लेना चाहिये। परम दयालु भगवान् रामेश्वरका जो भक्तिपूर्वक सदा भजन करते हैं, वे इस

* रामनाथ महादेव मां रक्ष करुणानिधे। इति यः सततं ब्रूयात् कलिनासौ न बाध्यते॥
(स्क० पु०, ब्रा० से० मा० ४३। ७१)

' In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

भूतलपर सदा सुखी होते हैं और अन्तमें सनातन मोक्षको प्राप्त होते हैं। इस प्रकार रामेश्वर महालिंगकी महिमाका वर्णन किया गया। जो इस प्रसंगको भक्तिपूर्वक पढ़ता और सुनता है, वह श्रीरामेश्वरकी सेवाके परम उत्तम फलको पाता है।

भगवान् श्रीरामके द्वारा राक्षसोंसहित रावणका वध और सेतुके क्षेत्रमें रामेश्वरलिंगकी स्थापना

ऋषि बोले—सब प्राणियोंका उपकार करनेवाले सूतजी! आपने इस पुराणकी कथा सुनाकर हमलोगोंपर बड़ा अनुग्रह किया। दशरथनन्दन श्रीरामचन्द्रजीने जिस प्रकार शिवलिंगकी स्थापना की है, उसको हमलोग सुनना चाहते हैं।

सूतजीने कहा—वानरोंकी सेनाके साथ महेन्द्रगिरिपर आकर लक्ष्मणसहित महाबली श्रीरामचन्द्रजीने समुद्रका दर्शन किया। तत्पश्चात् अपार समुद्रके ऊपर सेतु बाँधकर उसीके मार्गसे श्रीरघुनाथजी रावणपालित लंकापुरीको गये। वहाँ पहुँचनेपर सूर्यास्त हो गया। पूर्णिमाके प्रदोषकालमें सेनासहित श्रीरामचन्द्रजी सुवेल पर्वतपर आरूढ़ हो गये। तदनन्तर रात्रिमें महलकी छतपर खड़े हुए लंकापति रावणको देखकर महाबली सूर्यपुत्र सुग्रीवने उसके मुकुटको धरतीपर गिरा दिया। मुकुट भंग हो जानेसे राक्षस घरमें घुस गया। लंकेश्वरके घरमें घुस जानेपर सुग्रीव, लक्ष्मण और सेनासहित श्रीरामचन्द्रजीने पर्वतके किनारेसे उतरकर लंकाके समीप अपनी सेनाको ठहराया। वहाँ ठहराये जाते हुए वानरोंपर रावणके विशालकाय सैनिकोंने अस्त्र-शस्त्र लेकर आक्रमण किया। वे सभी दुष्टात्मा राक्षस अदृश्य होकर आये थे। विभीषणने उन सबका अन्तर्धान-विद्यासे ही वध किया। बहुतसे बलवान् वानरोंद्वारा कितने ही राक्षस मारे गये। भयंकर पराक्रमी वानरोंने जिनका अंग-भंग कर दिया था, ऐसे मरनेसे बचे हुए राक्षस शीघ्र ही रावणपालित लंकापुरीमें भाग गये। उस सेनाके नष्ट हो जानेपर रावणके भेजे हुए इन्द्रजित्ने युद्धमें अत्यन्त भयंकर नागास्त्रोंद्वारा दोनों दशरथकुमार श्रीराम और लक्ष्मणको बाँध लिया। तत्पश्चात् विनतानन्दन महात्मा गरुड़ने आकर उन दोनों भाइयोंको नागपाशसे मुक्त किया। तब विभीषणने आठ घण्टावाली विशाल शक्ति हाथमें लेकर उसे अभिमन्त्रित करके प्रहस्तके मस्तकपर चलाया। उस वज्रकी भाँति गिरती हुई शक्तिने राक्षसका मस्तक काट लिया, जिससे वह आँधीसे गिराये हुए वृक्षकी भाँति दिखायी देने लगा। राक्षस प्रहस्तको युद्धमें मारा गया देख धूम्राक्षने बड़े वेगसे वानरोंपर आक्रमण किया। वानर भाग चले। वानर-सेनाको भागते हुए देख पवनकुमार हनुमान्‌जीने धूम्राक्षको शीघ्र ही मार डाला। धूम्राक्षको मारा गया देख मरनेसे बचे हुए निशाचरोंने सब समाचार राजा रावणको बताया। तब रावणने कुम्भकर्णको सोतेसे जगाया और उसे युद्ध करनेके लिये भेजा। युद्धमें आये हुए कुम्भकर्णको लक्ष्मणजीने कुपित होकर ब्रह्मास्त्रसे मारा, जिससे वह प्राणहीन होकर धरतीपर गिर पड़ा। तब वहाँ दूषण नामक राक्षसके दो छोटे भाई वज्रवेग और प्रमाथी, जो युद्धमें रावणके समान ही बली थे, आये और हनुमान् एवं अंगदके हाथों मारे गये। विश्वकर्माके पुत्र नलने वज्रदंष्ट्रको तथा कुमुद नामक श्रेष्ठ वानरने अकम्पनको मारा। लक्ष्मणजीने अतिकाय और त्रिशिराका वध किया। सुग्रीवने देवान्तक तथा

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

नरान्तकको मौतके घाट उतारा। हनुमान्‌जीने कुम्भकर्णके दोनों पुत्रोंको मार डाला। विभीषणने खरके पुत्र मकराक्षका वध किया।

तदनन्तर रावणने इन्द्रजित्‌को युद्धके लिये भेजा। इन्द्रजित्‌ने दोनों भाई राम और लक्ष्मणको मोहित किया। इतनेमें ही अंगदने उसके रथके घोड़ोंको मार डाला। वाहनशून्य हो जानेपर वह आकाशमें स्थित हो गया। उसके प्रहारसे घायल हुए कुमुद, अंगद, सुग्रीव, नल और जाम्बवान् आदिके साथ प्रायः सभी वानर धरतीपर गिर पड़े। इस प्रकार सेनासहित श्रीराम और लक्ष्मणको युद्धमें घायल करके महाबली मेघनाद आकाशमें अदृश्य हो गया। तब विभीषणने इक्ष्वाकुकुलभूषण श्रीरामचन्द्रजीसे बारंबार प्रणाम करके हाथ जोड़कर कहा—'प्रभो! कुबेरकी आज्ञासे एक गुह्यक आपकी सेवामें यह दिव्य जल लेकर उपस्थित हुआ है, महाराज! इसे कुबेर अन्तर्धान-विद्यासे अदृश्य हुए प्राणियोंको देखनेके लिये आपको अर्पित करते हैं। इसको आँखमें लगा लेनेसे आप आकाशमें अदृश्य हुए प्राणियोंको भी देख सकेंगे और जिसके लिये आप यह जल देंगे, वह भी उन प्राणियोंको देख सकेगा।' 'बहुत अच्छा' कहकर श्रीरामचन्द्रजीने आदरपूर्वक उस जलको ग्रहण किया और उससे अपने नेत्रोंको धोया। तत्पश्चात् महाबली लक्ष्मण, सुग्रीव, जाम्बवान्, हनुमान्, अंगद, मैंद, द्विविद, नील तथा अन्य जो वानर थे, उन सबने श्रीरामचन्द्रजीके दिये हुए जलसे अपने-अपने नेत्र धो लिये। तब उन्होंने आकाशमें छिपे हुए वीरवर मेघनादको देखा। दृष्टि पड़ जानेपर सुमित्रानन्दन लक्ष्मणने उसपर आक्रमण किया। तब लक्ष्मण और मेघनादमें अत्यन्त विचित्र तथा आश्चर्यजनक युद्ध हुआ। तीसरे दिन बड़े प्रयाससे महाबली लक्ष्मणके द्वारा मेघनाद युद्धमें मारा गया।

अपने प्रिय पुत्रके मारे जानेपर रावणको बड़ा क्रोध हुआ। वह बहुत-सी सेना साथ ले रथपर बैठकर नगरसे बाहर निकला। तब इन्द्रसारथि मातलि हरे घोड़े जुते हुए सूर्यके समान तेजस्वी रथके साथ श्रीरामचन्द्रजीकी सेवामें उपस्थित हुए। धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ श्रीरामने इन्द्रके भेजे हुए उस रथपर सवार हो युद्धमें ब्रह्मास्त्रका प्रयोग करके राक्षसराज रावणके सभी मस्तक काट डाले। रावणके मारे जानेपर देवताओं और ऋषियोंने दशरथनन्दन श्रीरामको आशीर्वाद दे उनकी जय-जयकार की और अत्यन्त सन्तुष्ट हो भगवान्‌का स्तवन किया। सिद्धों तथा विद्याधरोंने कमलनयन श्रीरामचन्द्रजीपर फूलोंकी वर्षा की। तब श्रीरामचन्द्रजी उन देवताओं, वानर सैनिकों तथा सीता और लक्ष्मणके साथ लंकामें विभीषणको राजाके पदपर अभिषिक्त करके पुष्पक विमानपर आरूढ़ हो गन्धमादन पर्वतपर आये। गन्धमादन पर्वतपर विदेहनन्दिनी सीताकी अग्निपरीक्षाद्वारा शुद्धि की गयी। तदनन्तर दण्डकारण्यमें निवास करनेवाले मुनि अगस्त्यजीको आगे करके कमलनयन जानकी-वल्लभ श्रीरामचन्द्रजीका दर्शन करनेके लिये आये और उनकी स्तुति करने लगे।

मुनि बोले—सम्पूर्ण लोकोंपर अनुग्रह करनेवाले आप भगवान् श्रीरामचन्द्रजीको नमस्कार है। आपने इस संसारको रावणसे शून्य करनेके लिये अवतार लिया है, आपको नमस्कार है। ताड़काका संहार और विश्वामित्रके यज्ञकी रक्षा करनेवाले आपको नमस्कार है। मारीचको जीतनेवाले, सुबाहुका प्राण हरण करनेवाले श्रीराम! आपको नमस्कार है। आपके चरणारविन्दोंकी धूलि अहल्याको मुक्ति देनेवाली है, आपने भगवान् शंकरके धनुषको लीलापूर्वक भंग किया है, आपको नमस्कार है। मिथिलेशकुमारी सीताके पाणिग्रहण-सम्बन्धी उत्सवसे सुशोभित होनेवाले आपको नमस्कार है। रेणुकानन्दन परशुरामजीको पराजित करनेवाले आपको नमस्कार है। कैकेयीके दो

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

वरदानोंसे विवश हुए पिताके वचनको सत्य करनेके लिये सीता और लक्ष्मणके साथ वनकी यात्रा करनेवाले आपको नमस्कार है। भरतकी प्रार्थनापर उन्हें अपने चरणोंकी युगल पादुका समर्पित करनेवाले आपको नमस्कार है। शरभंग मुनिको अपने परम धामकी प्राप्ति करानेवाले आपको नमस्कार है। विराध राक्षसका संहार करनेवाले तथा गृध्रराज जटायुको अपना सखा बनानेवाले आपको नमस्कार है। मायासे मृगका रूप धारण करके आये हुए महाक्रूर मारीचके शरीरको अपने बाणोंसे विदीर्ण करनेवाले आपको नमस्कार है। रावणसे हरी गयी सीताको छुड़ानेके लिये जिन्होंने युद्धमें अपने शरीरका त्याग कर दिया, उन जटायुको अपने हाथसे दाह-संस्कार करके कैवल्य मोक्ष प्रदान करनेवाले आपको नमस्कार है। कबन्धका संहार करनेवाले आपको नमस्कार है। शबरीने आपके चरणारविन्दोंका पूजन किया है, आपने सुग्रीवके साथ मैत्री जोड़ी है तथा बालि नामक वानरका वध किया है, आपको नमस्कार है। वरुणालय समुद्रमें सेतुनिर्माण करनेवाले आपको नमस्कार है। समस्त राक्षसोंका संहार तथा रावणका प्राण हरण करनेवाले आपको नमस्कार है। आपके चरणारविन्द संसारसागरसे पार उतारनेके लिये जहाज हैं, आपको नमस्कार है। भक्तोंकी पीड़ा दूर करनेवाले सच्चिदानन्दस्वरूप आप श्रीरघुनाथजीको नमस्कार है। जगत्के अभ्युदयके कारणभूत आप श्रीरामभद्रको नमस्कार है। राम आदि पवित्र नामोंका जप करनेवाले मनुष्योंके पाप हर लेनेवाले आपको नमस्कार है। आप सब लोकोंकी सृष्टि, पालन और संहार करनेवाले हैं, आपको नमस्कार है। करुणामूर्ति! आपको नमस्कार है। भक्तोंकी रक्षाके व्रतकी दीक्षा लेनेवाले प्रभो! आपको नमस्कार है। सीतासहित आपको नमस्कार है। विभीषणको सुख देनेवाले श्रीराम! आपने लंकापति रावणका वध करके सम्पूर्ण जगत्की रक्षा की है, आपको नमस्कार है। जगन्नाथ! हमारी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये। जानकीपते! हम सबका पालन कीजिये।

इस प्रकार स्तुति करके सब मुनि चुप हो गये।

सूतजी कहते हैं—मुनियोंद्वारा किये हुए श्रीरामचन्द्रजीके इस स्तोत्रका जो भक्तिपूर्वक तीनों समय पाठ करता है, वह भोग और मोक्षको प्राप्त करता है। इस स्तोत्रका पाठ करनेसे भूत-वेताल भाग जाते हैं, रोग दूर होते हैं और पापसमूहोंका नाश हो जाता है।

तदनन्तर श्रीरामचन्द्रजीने हाथ जोड़ प्रणाम करके मुनियोंसे कहा—मुनिवरो! जो सदा आत्मलाभसे ही सन्तुष्ट, सम्पूर्ण भूतोंके सुहृद्, अहंकारशून्य, शान्त और ऊर्ध्वरेता (नैष्ठिक ब्रह्मचारी) हैं, उन साधु-महात्माओंको मैं भक्तियुक्त चित्तसे प्रणाम करता हूँ। मैं ब्राह्मणोंका हितकारी—ब्रह्मण्यदेव हूँ; इसलिये सदा ब्राह्मणोंका सेवन करता हूँ। इस समय आपलोगोंसे मैं कुछ पूछता हूँ, आप उसे विचारकर उत्तर दें। ब्राह्मणो! रावणके वधसे मुझे जो पाप लगा है, उसका प्रायश्चित्त क्या है? यह मुझे बताइये।

मुनि बोले—सत्यकी रक्षाका व्रत लेनेवाले जगन्नाथ! आप समस्त संसारकी रक्षाका भार वहन करनेवाले हैं। सम्पूर्ण जगत्के उपकारके लिये यहाँ शिवजीकी आराधना कीजिये। गन्धमादन पर्वतका यह शिखर अतिशय पुण्यमय तथा मोक्ष देनेवाला है। आप यहाँ लोकसंग्रहके लिये शिवलिंगकी प्रतिष्ठा कीजिये। इससे रावणके मारनेसे होनेवाला दोष भी दूर हो जायगा। प्रभो! गन्धमादन पर्वतपर आपके द्वारा जिस शिवलिंगकी स्थापना होगी, उसका दर्शन मनुष्योंको काशी-विश्वनाथके दर्शनसे कोटिगुना अधिक फल देनेवाला होगा। साथ ही वह शिवलिंग संसारमें आपके ही नामसे ख्यातिलाभ करेगा। इसलिये रघुनाथजी! आप शिवलिंग-स्थापनाके कार्यमें विलम्ब न करें।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

मुनियोंके ये वचन सुनकर जगत्पति श्रीरामचन्द्रजीने लिंगस्थापनाके लिये पुण्यकाल निश्चित किया, जो दो ही मुहूर्तमें आनेवाला था। उसे निश्चित करके उन्होंने हनुमान्‌जीको शिवलिंग ले आनेके लिये कैलास पर्वतपर भेजा। हनुमान्‌जी बड़े पराक्रमी थे, उन्होंने दो मुहूर्तका पुण्यकाल जानकर भी भुजाओंपर ताल ठोंकी। वे सब देवताओं तथा महात्मा ऋषियोंके देखते-देखते बड़े वेगसे ऊपरको उड़े और आकाशमार्गको लाँघते हुए कैलास पर्वतपर जा पहुँचे। वहाँ उन्हें लिङ्गरूपधारी महादेवजीका दर्शन नहीं हुआ। तब उन्होंने महादेवजीको प्रसन्न किया और उनकी कृपासे शिवलिंगको प्राप्त किया। इतनेमें ही वहाँ तत्त्वदर्शी मुनियोंने जब यह देखा कि हनुमान्‌जी अभी नहीं आये तथा स्थापनाका मुहूर्त अब बीतना ही चाहता है, तब उन्होंने परम बुद्धिमान् श्रीरामचन्द्रजीसे कहा—'महाबाहु श्रीरामचन्द्रजी! अब तो पुण्यकाल बीत रहा है, अत: जानकीने जो लीलापूर्वक बालूका शिवलिंगका बनाया है, उसीको इस समय स्थापित कर दीजिये।' यह सुनकर श्रीरघुनाथजीने शीघ्रतापूर्वक श्रीजानकीजी तथा मुनियोंके सहित मंगलाचार आरम्भ किया और ज्येष्ठ मासके शुक्ल पक्षकी दशमी तिथिको बुधवार और हस्त नक्षत्रके योगमें गद करण, आनन्द और व्यतीपात योग, कन्याराशिके चन्द्रमा तथा वृषराशिके सूर्यमें परम पुण्यमय उपयुक्त दस योगोंकी उपस्थितिमें गन्धमादन पर्वतपर सेतुकी सीमामें लिंगरूपधारी भगवान् शिवकी स्थापना की। उस समय लिंगमें पार्वतीसहित भगवान् शंकर प्रत्यक्ष प्रकट हो गये थे। उनके ललाटपर चन्द्रमाकी कला और साक्षात् गंगा शोभा पा रही थीं। भगवान् साम्बशिवने सब लोगोंको शरण देनेवाले महात्मा रघुनाथजीको इस प्रकार वरदान दिया—'राघवेन्द्र! आपके द्वारा यहाँ स्थापित किये गये शिवलिंगका जो दर्शन करेंगे, वे महापातकोंसे युक्त होंगे, तो भी उनके पापोंका नाश हो जायगा। जैसे धनुष्कोटिमें गोता लगानेसे सारे पाप नष्ट हो जाते हैं, उसी प्रकार इस 'रामेश्वर लिंग'के दर्शनसे महापातक भी नष्ट हो जायँगे।'

तत्पश्चात् श्रीरामचन्द्रजीने भगवान् रामेश्वरके सामने नन्दिकेश्वरको स्थापित किया और अपने धनुषकी कोटिसे रामेश्वर शिवके अभिषेकके लिये धरती फोड़कर एक कूप तैयार किया। फिर उससे जल लेकर भगवान् शंकरको स्नान कराया। वही पुण्यमय तीर्थ 'कोटितीर्थ' के नामसे विख्यात हुआ। मुनिवरो! कोटितीर्थकी महिमाका वर्णन पहले किया जा चुका है।

श्रीरामचन्द्रजीके द्वारा हनुमान्‌जीको ज्ञानोपदेश

श्रीसूतजी कहते हैं—इस प्रकार अनायास ही सब कर्म करनेवाले श्रीरामचन्द्रजीके द्वारा उस शिवलिंगकी प्रतिष्ठा हो जानेपर पवनपुत्र हनुमान्‌जी एक उत्तम शिवलिंग लेकर आ पहुँचे। आकर उन्होंने दशरथनन्दन वीरवर श्रीरामचन्द्रजीको प्रणाम किया। फिर क्रमश: सीता, लक्ष्मण तथा सुग्रीवको भी मस्तक झुकाया। हनुमान्‌जीने देखा रघुनाथजी सीताजीके बनाये हुए बालुकामय शिवलिंगका मुनियोंके साथ पूजन कर रहे हैं। तब वे खिन्न होकर बोले—'भगवन्! कैलास पहुँचनेपर वहाँ मुझे भगवान् शंकरका दर्शन नहीं हुआ। तब मैंने तपस्याद्वारा उन्हें प्रसन्न किया और उनकी कृपासे शिवलिंग प्राप्त होनेपर मैं तुरंत यहाँ लौट आया हूँ। तबतक आपने दूसरे ही बालुकामय शिवलिंगकी स्थापना कर ली और अब मुनियों, देवताओं तथा गन्धर्वोंके साथ

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

उसीकी पूजा करते हैं। मैं जो कैलास पर्वतसे इस शिवलिंगको लेकर आया सो व्यर्थ ही हुआ। अब मैं इस शिवलिंगको क्या करूँ?'

श्रीरामचन्द्रजी बोले—कपे! इस संसारमें जो जन्म ले चुके हैं, जो जन्म लेनेवाले हैं और जो मर चुके हैं, उन सबके तथा अपने और पराये सब कार्योंको मैं भलीभाँति जानता हूँ। जीव अपने कर्मके अनुसार अकेला ही जन्म लेता और अकेला ही मरता है। अपने कर्मोंके अनुसार नरकमें भी वह अकेला ही जाता है। वानरश्रेष्ठ! तत्त्वज्ञानमें बाधा उपस्थित करनेवाले इस शोकको अपने मनमें क्यों स्थान देते हो। तत्त्वज्ञानमें ही सदा स्थित रहो। यह आत्मा स्वयंप्रकाश है, तुम सदा आत्माके इसी स्वरूपका चिन्तन करो। देह आदिमें ममता त्याग दो, सदा धर्मका आश्रय लो, साधु पुरुषोंका सेवन करो, सम्पूर्ण इन्द्रियोंका दमन करो, दूसरोंके दोषकी चर्चासे दूर रहो एवं शिव और विष्णु आदि देवताओंकी सदा पूजा करो। सर्वदा सत्य बोलो, शोक छोड़कर आत्मा और परमात्माकी एकताका अनुभव करो। इस संसारमें भ्रम भी यथार्थकी भाँति प्रतीत होता है, कहीं शोभनमें अशोभनका भ्रम होता है और कहीं अशोभनमें शोभनका। यह सब मोहके वैभवसे ही होता है। भ्रान्त मनुष्योंका विभिन्न विषयोंमें राग हो जाता है। राग और द्वेषके बलसे बँधकर वे धर्म और अधर्मके वशीभूत होते हैं तथा उन्हींके अनुसार देव, तिर्यक्, मनुष्य आदि योनियोंमें तथा नरकोंमें पड़ते हैं। चन्दन, अगर और कपूर आदि पदार्थ अत्यन्त शोभन हैं, परंतु जिसके स्पर्शसे ये भी मलरूप हो जाते हैं, वह शरीर सुखस्वरूप कैसे माना जा सकता है? जिसके सम्पर्कसे अत्यन्त सुन्दर भक्ष्य-भोजन आदि सब उत्तम पदार्थ विष्ठारूपमें बदल जाते हैं, वह शरीर सुखरूप कैसे हो सकता है? जिसके संगसे सुगन्धित एवं शीतल जल मूत्ररूप हो जाता है, उस शरीरको शोभन कैसे कहा जा सकता है? कपे! तुम्हीं बताओ, जिसके संसर्गमें आनेपर अत्यन्त सफेद एवं धुले हुए वस्त्र भी पसीने आदिके लगनेसे मैले हो जाते हैं, वह शरीर कैसे शोभन माना जा सकता है? वायुनन्दन! मुझसे परमार्थकी बात सुनो। यह संसार एक गड्ढेके समान है। इसमें कुछ भी सुख नहीं। यहाँ पहले तो जीवका जन्म होता है, तत्पश्चात् उसकी बाल्यावस्था रहती है, फिर वह जवान होता है। उसके बाद वह बुढ़ापा भोगता है। तदनन्तर मृत्युको प्राप्त होता है और मृत्युके बाद पुनः जन्मका कष्ट भोगता है। इस प्रकार अज्ञानके प्रभावसे ही मनुष्य दुःख पाता है और अज्ञानकी निवृत्ति हो जानेपर उसे उत्तम सुखकी प्राप्ति होती है। अज्ञानकी निवृत्ति ज्ञानसे ही होती है, कर्मसे नहीं। ज्ञान परब्रह्म परमात्माका नाम है। वेदान्तवाक्यके श्रवण और मननसे जो ज्ञान होता है, वह विरक्त पुरुषको ही होता है, दूसरेको नहीं। श्रेष्ठ अधिकारीको गुरुदेवकी कृपासे भी ज्ञान हो जाता है—यह सत्य है। मनुष्यके हृदयमें जो कामनाएँ हैं, वे सब-की-सब जब छूट जाती हैं, तब वह जीवन्मुक्त होकर इसी जीवनमें परब्रह्मका साक्षात्कार कर लेता है। क्रूर काल जागते, सोते, खाते और ठहरते समय सदा ही इस जीवको अपनी ओर खींचता रहता है। संग्रहका अन्त विनाश है, अधिक ऊँचे चढ़नेका अन्त नीचे गिरना है, संयोगका अन्त वियोग और जीवनका अन्त मरण है*। जैसे पके हुए फलोंको गिरनेके

* सर्वे क्षयान्ता निचयाः पतनान्ताः समुच्छ्रयाः। संयोगा विप्रयोगान्ता मरणान्तं च जीवितम्॥
(स्क० पु०, ब्रा० से० मा० ४५। ४१)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

सिवा और कोई भय नहीं है, वैसे ही जन्म लेनेवाले मनुष्योंको मृत्युके सिवा और कोई भय नहीं है। जैसे सुदृढ़ खम्भोंवाला गृह सुदीर्घकालके बाद जीर्ण होनेपर नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार मनुष्य जराजीर्ण होकर मृत्युके अधीन हो नष्ट हो जाता है। दिन और रात बीतते चले जा रहे हैं। इससे मनुष्योंकी आयु नष्ट होती है। इस दशामें तुम अपनी आत्माके लिये शोक करो। दूसरी किसी बातके लिये क्यों शोक करते हो? कपीश्वर! कोई खड़ा हो या दौड़ता हो, उसकी आयुका प्रतिक्षण नाश हो रहा है। मृत्यु साथ-साथ चलती है, साथ ही बैठती है और दूर देशमें साथ-साथ जाकर पुनः साथ ही लौट आती है*। शरीरमें झुर्रियाँ पड़ गयीं, सिरके बाल सफेद हो गये और वृद्धावस्था एवं दमा और खाँसीसे देह शिथिल होती जाती है। कपिश्रेष्ठ! जैसे समुद्रमें बहते हुए दो काठ एक-दूसरेसे मिलकर फिर विलग हो जाते हैं, उसी प्रकार कालयोगसे मनुष्योंका एक-दूसरेके साथ संयोग और वियोग होता है। इसी प्रकार स्त्री, पुत्र, भाई, क्षेत्र और धन—ये सब कभी कुछ कालके लिये एकत्र होते और फिर अन्यत्र चले जाते हैं। जैसे कोई पथिक राह चलते हुए किसी दूसरे पथिकसे कहता है कि 'ठहरिये मैं भी आपके साथ चलूँगा' और इस प्रकार दोनों कुछ कालतक साथ हो जाते हैं और फिर अलग-अलग चले जाते हैं, कपे! इसी प्रकार स्त्री और पुत्र आदिका समागम नश्वर है। शरीरके उत्पन्न होनेके साथ ही निश्चय ही मृत्यु भी उत्पन्न होती है। इस अवश्यम्भावी मृत्युको टालनेका कोई उपाय नहीं है। वत्स! इस शरीरका अन्त हो जानेपर देहाभिमानी जीव अपने कर्मकी गतिके अनुसार दूसरा शरीर धारण कर लेता है। वानर! प्राणियोंका सदा एक स्थानपर निवास नहीं होता। अपने-अपने कर्मवश सभी जीव एक-दूसरेसे विलग हो जाते हैं।

कपिश्रेष्ठ! जीवोंके शरीर जिस प्रकार उत्पन्न होते और नष्ट हो जाते हैं, उस प्रकार आत्माका जन्म और मरण नहीं होता। अंजनानन्दन! तुम शोकरहित अद्वैत ज्ञानमय सत्स्वरूप निर्मल परब्रह्म परमात्माका दिन-रात चिन्तन करो। ऐसी दृष्टि होनेपर तुम्हारा किया हुआ प्रत्येक कर्म मेरा किया हुआ है और मेरा किया हुआ प्रत्येक कर्म तुम्हारा किया हुआ है। इसलिये कपे! मैंने जो शिवलिंगकी स्थापना की है, वह तुमने ही की है—ऐसा समझना चाहिये। शिवलिंगस्थापनका पुण्यकाल बीता जा रहा था, इसलिये मैंने सीताजीके बनाये हुए बालुकामय शिवलिंगको यहाँ स्थापित किया है। अतः तुम कोप और दुःख न करो। आज शुभ दिन है। इसमें कैलाससे लाये हुए शिवलिंगको तुम्हीं स्थापित करो। यह लिंग तीनों लोकोंमें तुम्हारे नामसे प्रसिद्ध होगा। पहले हनुमदीश्वरका दर्शन करके तब रामेश्वरका दर्शन होगा। कपे! तुमने ब्रह्मराक्षसोंके समुदायका वध किया है, इसलिये अपने नामसे शिवलिंगकी स्थापना करनेपर तुम उस पापसे छूट सकोगे। यह हनुमन्नामक शिवलिंग साक्षात् भगवान् शिवका दिया हुआ है। इसका दर्शन करके जो रामेश्वर शिवका दर्शन करेगा, वह कृतकृत्य हो जायगा।

~~~०~~~

---

* नश्यत्यायुः स्थितस्यापि धावतोऽपि कपीश्वर।
सहैव मृत्युर्व्रजति सह मृत्युर्निषीदति। चरित्वा दूरदेशं च सह मृत्युर्निवर्तते॥
(स्क० पु०, ब्रा० से० मा० ४५। ४५-४६)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth
~~~

हनुमान्जीद्वारा भगवान् श्रीराम और सीताका स्तवन तथा अपने लाये हुए शिवलिंगका स्थापन

सूतजी कहते हैं—तदनन्तर परम दयालु दशरथनन्दन श्रीरामचन्द्रजीकी ओर देखकर हनुमान्जीने पृथ्वीपर दण्डकी भाँति गिरकर साष्टांग प्रणाम किया और हाथ जोड़कर श्रवण-सुखद स्तोत्रोंद्वारा भगवान् जानकीनाथका स्तवन किया।

हनुमान्जी बोले—सबकी उत्पत्तिके आदिकारण सर्वव्यापी श्रीहरिस्वरूप श्रीरामचन्द्रजीको नमस्कार है। आदिदेव पुराणपुरुष भगवान् गदाधरको नमस्कार है। पुष्पकके आसनपर नित्य विराजमान होनेवाले महात्मा श्रीरघुनाथजीको नमस्कार है। प्रभो! हर्षमें भरे हुए वानरोंका समुदाय आपके युगल चरणारविन्दोंकी सेवा करता है, आपको नमस्कार है। राक्षसराज रावणको पीस डालनेवाले तथा सम्पूर्ण जगत्का अभीष्ट सिद्ध करनेवाले श्रीरामचन्द्रजीको नमस्कार है। आपके सहस्रों मस्तक, सहस्रों चरण और सहस्रों नेत्र हैं, आप विशुद्ध विष्णुस्वरूप राघवेन्द्रको नमस्कार है। आप भक्तोंकी पीड़ा दूर करनेवाले तथा सीताके प्राणवल्लभ हैं, आपको नमस्कार है। दैत्यराज हिरण्यकशिपुके वक्षःस्थलको विदीर्ण करनेवाले आप नृसिंहरूपधारी भगवान् विष्णुको नमस्कार है। अपनी दाढ़ोंपर पृथ्वीको उठानेवाले भगवान् वराह! आपको नमस्कार है। बलिके यज्ञको भंग करनेवाले आप भगवान् त्रिविक्रमको नमस्कार है। वामनरूपधारी भगवान्को नमस्कार है। अपनी पीठपर महान् मन्दराचल धारण करनेवाले भगवान् कच्छपको नमस्कार है। तीनों वेदोंकी सुरक्षा करनेवाले मत्स्यरूपधारी भगवान्को नमस्कार है। क्षत्रियोंको अन्त करनेवाले परशुरामरूपी रामको नमस्कार है। राक्षसोंका नाश करनेवाले आपको नमस्कार है। राघवेन्द्रका रूप धारण करनेवाले आपको नमस्कार है। महादेवजीके महान् भयंकर महाधनुषको भंग करनेवाले आपको नमस्कार है। क्षत्रियोंका अन्त करनेवाले क्रूर परशुरामको भी त्रास देनेवाले आपको नमस्कार है। भगवन्! आप अहल्याका सन्ताप और महादेवजीका चाप हरनेवाले हैं, आपको नमस्कार है। दस हजार हाथियोंका बल रखनेवाली ताड़काके शरीरका अन्त करनेवाले आपको नमस्कार है। पत्थरके समान कठोर और चौड़ी बालिकी छाती छेद डालनेवाले आपको नमस्कार है। आप मायामय मृगका नाश करनेवाले तथा अज्ञानको हर लेनेवाले हैं, आपको नमस्कार है। दशरथजीके दुःखरूपी समुद्रको शोष लेनेके लिये आप मूर्तिमान् अगस्त्य हैं, आपको नमस्कार है। अनन्त उत्ताल तरंगोंसे उद्वेलित समुद्रका भी दर्प दलन करनेवाले आपको नमस्कार है। मिथिलेशनन्दिनी सीताके हृदयकमलको विकसित करनेवाले सूर्यरूप आप लोकसाक्षी श्रीहरिको नमस्कार है। हरे! आप राजाओंके भी राजा और जानकीजीके प्राणवल्लभ हैं, आपको नमस्कार है। कमलनयन! आप ही तारक ब्रह्म हैं, आपको नमस्कार है। आप ही योगियोंके मनको रमानेवाले 'राम' हैं। राम होते हुए चन्द्रमाके समान आह्लाद प्रदान करनेके कारण 'रामचन्द्र' हैं। सबसे श्रेष्ठ और सुखस्वरूप हैं। आप विश्वामित्रजीके प्रिय हैं, खर नामक राक्षसका हृदय विदीर्ण करनेवाले हैं, आपको नमस्कार है। भक्तोंको अभयदान देनेवाले देवदेवेश्वर! प्रसन्न होइये। करुणासिन्धु श्रीरामचन्द्र! आपको नमस्कार है, मेरी रक्षा कीजिये। वेदवाणीके भी अगोचर राघवेन्द्र! मेरी रक्षा कीजिये। श्रीराम! कृपा करके मुझे उबारिये। मैं आपकी शरणमें आया हूँ। रघुवीर! मेरे महान् मोहको इस समय दूर कीजिये। रघुनन्दन! स्नान, आचमन, भोजन, जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति आदि

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

हनुमान्‌जीके द्वारा भगवान् श्रीराम और सीताका स्तवन

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

सभी क्रियाओं और सब अवस्थाओंमें आप मेरी रक्षा कीजिये। तीनों लोकोंमें कौन ऐसा पुरुष है, जो आपकी महिमाका वर्णन या स्तवन करनेमें समर्थ हो सकता है। रघुकुलको आनन्दित करनेवाले श्रीराम! आप ही अपनी महिमाको जानते हैं।

करुणानिधान श्रीरामचन्द्रजीकी इस प्रकार स्तुति करके वायुपुत्र हनुमान्‌ने भक्तियुक्त चित्तसे सीताजीका भी स्तवन किया। 'जनकनन्दिनी! आपको नमस्कार करता हूँ। आप सब पापोंका नाश तथा दारिद्र्यका संहार करनेवाली हैं। भक्तोंको अभीष्ट वस्तु देनेवाली भी आप ही हैं। राघवेन्द्र श्रीरामको आनन्द प्रदान करनेवाली विदेहराज जनककी लाड़िली श्रीकिशोरीजीको मैं प्रणाम करता हूँ। आप पृथ्वीकी कन्या और विद्या हैं, कल्याणमयी प्रकृति भी आप ही हैं। रावणके ऐश्वर्यका संहार तथा भक्तोंके अभीष्टका दान करनेवाली सरस्वतीरूपा भगवती सीताको मैं नमस्कार करता हूँ। पतिव्रताओंमें अग्रगण्य आप श्रीजनकदुलारीको मैं प्रणाम करता हूँ। आप सबपर अनुग्रह करनेवाली समृद्धि, पापरहित और श्रीविष्णुप्रिया लक्ष्मी हैं। आप ही आत्मविद्या, वेदत्रयी तथा पार्वतीस्वरूपा हैं, आपको मैं नमस्कार करता हूँ। आप ही क्षीरसागरकी कन्या और चन्द्रमाकी भगिनी कल्याणमयी महालक्ष्मी हैं, जो भक्तोंपर कृपाप्रसादका प्रसाद करनेके लिये सदा उत्सुक रहती हैं, आप सर्वांगसुन्दरी सीताको मैं प्रणाम करता हूँ। आप धर्मका आश्रय और करुणामयी वेदमाता गायत्री हैं, आपको मैं प्रणाम करता हूँ। आपका कमलवनमें निवास है, आप ही हाथमें कमल धारण करनेवाली तथा भगवान् विष्णुके वक्षःस्थलमें निवास करनेवाली लक्ष्मी हैं, चन्द्रमण्डलमें भी आपका निवास है, आप चन्द्रमुखी सीतादेवीको मैं नमस्कार करता हूँ। आप श्रीरघुनन्दनकी आह्लादमयी शक्ति हैं, कल्याणमयी सिद्धि हैं और कल्याणकारिणी सती हैं। श्रीरामचन्द्रजीकी परम प्रियतमा जगदम्बा जानकीको मैं प्रणाम करता हूँ। सर्वांगसुन्दरी सीताका मैं अपने हृदयमें सदैव चिन्तन करता हूँ।'

श्रीसूतजी कहते हैं—द्विजवरो! इस प्रकार हनुमान्‌जी भक्तिपूर्वक श्रीसीताजी और श्रीरामचन्द्रजीकी स्तुति करके आनन्दके आँसू बहाते हुए मौन हो गये। जो वायुपुत्र हनुमान्‌जीद्वारा वर्णित श्रीराम और सीताके इस पापनाशक स्तोत्रका प्रतिदिन पाठ करता है, वह सदा मनोवांछित महान् ऐश्वर्यका उपभोग करता है। अनेक क्षेत्र, धान्य, दूध देनेवाली गौएँ, आयु, विद्या, मनोरमा भार्या तथा श्रेष्ठ पुत्र प्राप्त करता है। इस स्तोत्रका एक बार भी पाठ करनेवाला मनुष्य इन सब वस्तुओंको निःसन्देह प्राप्त कर लेता है। इसके पाठसे मनुष्य नरकमें नहीं पड़ता है, उसके ब्रह्महत्या आदि बड़े-बड़े पाप नष्ट हो जाते हैं। वह सब पापोंसे मुक्त हो देहावसान होनेपर मोक्ष पा लेता है।

तदनन्तर वायुपुत्र हनुमान्‌जीने श्रीरामेश्वरके उत्तर भागमें भगवान् रामचन्द्रजीकी आज्ञाके अनुसार अपने द्वारा लाये हुए शिवलिंगको स्थापित किया।

भगवान् रामेश्वरके प्रभावसे राजा शंकरका ब्रह्महत्या और स्त्रीहत्याके पापसे उद्धार

श्रीसूतजी कहते हैं—मुनिवरो! प्राचीन कालमें पाण्ड्य देशमें शंकर नामसे प्रसिद्ध एक राजा हो गये हैं। वे बड़े ब्राह्मणभक्त, सत्यप्रतिज्ञ, यज्ञनिष्ठ तथा धर्मात्मा थे। चारों वर्णों और आश्रमोंका धर्मपूर्वक पालन करते थे। वे भगवान् विष्णु और शिवके समानरूपसे उपासक थे। महात्मा ब्राह्मणोंको

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

बड़े-बड़े दान देते थे। एक दिन बुद्धिमान् राजा शंकर शिकार खेलनेके लिये तपोवनमें गये और वहाँ दुर्गम एवं रमणीय प्रदेशों, पर्वतों तथा गुफाओंमें भ्रमण करने लगे। वनके एक भागमें व्याघ्रचर्मधारी, शान्त, जितेन्द्रिय एवं मनको वशमें रखनेवाले एक मुनि गुफाके भीतर निवास करते थे। राजाने दूरसे उन्हें देखकर व्याघ्र ही समझा और बड़े वेगसे झुकी हुई गाँठवाले बाणका प्रहार करके उन्हें मार डाला। राजाके उस बाणने पतिके पास बैठी हुई पतिव्रता मुनिपत्नीका भी वध कर डाला। माता और पिता दोनोंको मारा गया देख उनका पुत्र अत्यन्त दु:खसे पीड़ित होकर कातरभावसे वनमें रोने और विलाप करने लगा—'हा तात! हा माता! तुम दोनों मुझे छोड़कर कहाँ चले गये। पिताजी! अब मुझे वेद-शास्त्र कौन पढ़ायेगा? मा! कौन मुझे शिक्षाके साथ-साथ भोजन देगी। हाय तात! आप तो परलोकगामी हो गये। अब मुझे सदाचारकी शिक्षा कौन देगा? हाय! आज किस पापीने अपने बाणोंसे बिना किसी अपराधके आप दोनोंको मार डाला! आप ही दोनों मेरे गुरु और मेरे प्राण थे, सदा तपस्यामें लगे रहते थे, तो भी न जाने किस पापीके हाथसे आप मारे गये?'

इस प्रकार कहकर उन दोनों दम्पतिका पुत्र फूट-फूटकर रोने लगा। उसका प्रलाप सुनकर वनमें विचरनेवाले राजा शंकर तुरंत ही उस शब्दकी ओर लक्ष्य करके उस कन्दराके समीप जा पहुँचे। उस वनके रहनेवाले मुनि भी उस आश्रमपर एकत्रित हो गये। मुनियोंने बाणसे मरे हुए मुनि और उनकी पत्नीको देखा। पासमें धनुष धारण किये हुए राजा शंकरपर भी दृष्टिपात किया तथा माता-पिताके लिये विलपते हुए उस मुनिकुमारको भी देखा। उसे देखकर वे अत्यन्त व्याकुल हो उठे और 'मत रोओ' ऐसा कहते हुए उस कातर बालकको धैर्य बँधाने लगे।

मुनि बोले—बेटा! धनी, दरिद्र, मूर्ख, पण्डित, मोटे अथवा पतले, सभी जीवोंके प्रति यमराजका समान बर्ताव होता है। कोई वनमें रहता हो, या नगर और गाँवमें; पर्वतपर रहता हो, या दूसरे किसी स्थानमें—सभी जन्तुओंको एक दिन मृत्युके वशमें जाना पड़ता है। वत्स! गर्भमें रहनेवाले, जन्म ग्रहण कर चुकनेवाले, बालक, जवान और बूढ़े—सभी जीवोंको यमलोककी यात्रा करनी पड़ती है। ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यासी सबको समय आनेपर यह शरीर त्यागना पड़ता है। महामते! द्विजपुत्र! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और वर्णसंकर सबको एक दिन यमलोक जाना पड़ता है। देवता, मुनि, यक्ष, गन्धर्व, नाग, राक्षस तथा अन्य सब प्राणी भी नाशको प्राप्त होते हैं। इसलिये तुम्हें शोक नहीं करना चाहिये। अद्वितीय सच्चिदानन्दस्वरूप जो उपनिषत्प्रतिपादित ब्रह्म है, उसका जन्म-मरण और वृद्धिको प्राप्त होना नहीं बनता। यह नौ द्वारोंवाला शरीर मल-मूत्रका भाण्ड है, पीब और रक्तका घर है। पानीके बुलबुलेके समान यह क्षणभंगुर है एवं इसमें कीड़ोंका ढेर (कीटाणुओंका समुदाय) भरा है। काम, क्रोध, भय, द्रोह, मोह और मात्सर्यका एकमात्र कारण यह शरीर ही है। मल और मूत्रका यह एकमात्र भाजन है। ऐसे घृणित शरीरमें जो सुन्दर एवं श्रेष्ठ बुद्धि रखता है, वह मूर्ख है तथा वह खोटी बुद्धिवाला है। जैसे अनेक छेदवाले घड़ेमें पानी नहीं ठहरता, उसी प्रकार अनेक छेदोंवाले इस अपवित्र शरीरमें प्राणवायुकी स्थिति दीर्घकालतक कैसे हो सकती है? अत: तुम अपने पिता और माताके लिये शोक न करो। वे दोनों अपने कर्मवश इस घरको छोड़कर कहीं चले गये। तुम अपने कर्मवश इस भूतलपर वर्तमान हो। जब तुम्हारे प्रारब्धकर्मका क्षय होगा, तब तुम भी मर जाओगे। तब उनके लिये शोक क्या

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

करना है? क्या मरनेवाला प्रेत मरे हुए प्रेतके लिये शोक करे? तुम्हारे माता और पिता जब उत्पन्न हुए थे, उस समय तुम्हारा जन्म नहीं हुआ था। अतः तुमसे उनकी गति भिन्न है। यदि तुम्हारी और उनकी समान गति होती, तो तुम भी उन्हींके साथ चले जाते। जिस बाणसे वे मरे हैं, उसीसे तुम भी मर गये होते और वे मरकर जहाँ गये हैं, वहीं तुम भी पहुँच जाते। ऐसा नहीं हुआ इससे सिद्ध है कि तुम्हारी और उनकी समान गति नहीं है। अतः उनके लिये शोक नहीं करना चाहिये। मरे हुए प्राणियोंके भाई-बन्धु जो इस भूतलपर आँसू बहाते हैं, उन आँसुओंको मरे हुए प्रेत परलोकमें पीते हैं*। अतः शोक छोड़कर एकाग्रचित्त हो धैर्य धारण करो और वैदिक रीतिसे माता-पिताका प्रेतकार्य करो। तुम्हारे पिता और माता बाणके आघातसे मरे हैं, अतः उस दोषकी शान्तिके लिये इनकी अस्थियाँ लेकर रामेश्वर शिवके क्षेत्रमें मुक्तिदायक रामसेतुमें स्थापित करो तथा सपिण्डीकरण आदि श्राद्ध भी वहीं करो। इससे उनके दुर्मृत्युजनित दोषकी शान्ति हो जायगी।

मुनियोंके ऐसा कहनेपर शाकल्यपुत्र जांगलने माता-पिताके सब अन्त्येष्टि संस्कार किये। तत्पश्चात् दूसरे दिन उनकी अस्थियाँ लेकर वे हालास्य क्षेत्रमें गये। हालास्य क्षेत्रसे रामेश्वरक्षेत्रमें जाकर मुनियोंके बताये अनुसार वहाँ उन अस्थियोंको डाल दिया और वहीं रहकर एक वर्ष पूरा होनेतक सब श्राद्ध आदि कार्य सम्पन्न किये। वर्षभर निवास करनेके पश्चात् एक दिन जांगल मुनिने रातको सपनेमें अपने माता-पिताको देखा। उन दोनोंने अपने-अपने हाथोंमें शंख, चक्र, गदा आदि धारण कर रखे थे। दोनों ही पद्ममाला और तुलसीकी मालासे विभूषित हो गरुड़की पीठपर बैठे थे। उनके कानोंमें मकराकृति कुण्डल झिलमिला रहे थे, कौस्तुभमणि उनके वक्षःस्थलको अलंकृत कर रही थी और वे दोनों पीत वस्त्र धारर्ण करके अतिशय शोभा पा रहे थे। मुनिपुत्रने इस प्रकारकी झाँकीमें माता-पिताका दर्शन करके मन-ही-मन बड़ी प्रसन्नताका अनुभव किया। तदनन्तर जांगल मुनि पुनः अपने आश्रमपर आकर सुखपूर्वक रहने लगे। उन्होंने माता-पिताके विषयमें सपनेमें देखा हुआ वृत्तान्त वहाँके सब ब्राह्मणोंको बड़ी प्रसन्नताके साथ सुनाया। सुनकर वे सब मुनि बड़े प्रसन्न हुए।

इधर जांगलको अन्त्येष्टि संस्कारका आदेश देनेके पश्चात् राजा शंकरकी ओर देखकर उन सभी महर्षियोंने उस समय बड़ा क्रोध किया। वे उन्हें कोसते हुए बोले—'महामूर्ख पाण्ड्यनरेश! तूने क्रूरतावश ब्राह्मणकी हत्या की है, तुझे स्त्रीहत्या और ब्रह्महत्याका पाप लगा है। अतः तू प्रज्वलित अग्निमें जलकर अपने शरीरका त्याग कर दे। अन्यथा सैकड़ों प्रायश्चित्त करनेपर भी तेरी शुद्धि न होगी। तेरे साथ वार्तालाप करनेमात्रसे दूसरोंको भारी पाप लगेगा।' मुनियोंके ऐसा कहनेपर राजा शंकरने कहा—'महात्माओ! ऐसा ही हो। मैं ब्रह्महत्याकी शुद्धिके लिये आपके समीप प्रज्वलित अग्निमें अपने शरीरकी आहुति दे दूँगा। आपलोग मुझपर अनुग्रह करें, जिससे शरीर त्याग देनेपर मेरा यह पातक नष्ट हो जाय।' सब मुनियोंसे ऐसा कहकर पाण्ड्यनरेशने अपने मन्त्रियोंको बुलाकर कहा—'सचिवगण! मैंने अनजानमें ब्रह्महत्या तथा क्रूरतापूर्ण स्त्रीहत्या कर डाली है, जो महानरक प्रदान करनेवाली है। इस पातककी शुद्धिके लिये मैं बड़ी-बड़ी

* मृतानां बान्धवा ये तु मुञ्चन्त्यश्रूणि भूतले। पिबन्त्यश्रूणि तान्यद्धा मृताः प्रेताः परत्र वै॥ (स्क० पु०, ब्रा० से० मा० ४८। ४२)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

लपटोंवाली प्रज्वलित अग्निमें मुनियोंकी आज्ञासे अपने शरीरको त्याग दूँगा। तुम जल्दी काष्ठ ले आओ और उसके द्वारा अग्निको प्रज्वलित करो। मेरे पुत्र सुरुचिको शीघ्र ही राज्यसिंहासनपर बिठा दो।'

राजाके इस प्रकार आज्ञा देनेपर मन्त्रीलोग रोने लगे और बोले—पाण्ड्यनाथ! महाराज! आप तो शत्रुओंपर भी स्नेह रखनेवाले हैं। हम सबको आपने सदा पुत्रकी भाँति पाला है। हम आपके बिना देवपुरीके समान सुन्दर अपनी राजधानीमें प्रवेश नहीं करेंगे। हम भी आपके साथ महाकाष्ठोंद्वारा प्रज्वलित अग्निमें प्रवेश कर जायँगे।

मन्त्रियोंका प्रलाप सुनकर पाण्ड्यनरेश शंकरने उन्हें समझाते हुए कहा—'मन्त्रियो! मुझ महापातकी राजाको लेकर क्या करोगे? अग्निमें प्रवेश करनेके लिये शीघ्र काष्ठ एकत्रित करो। उनके ऐसा कहनेपर मन्त्रीलोग शीघ्र काष्ठ ले आये। राजा शंकरने देखा, काष्ठोंद्वारा अग्नि प्रज्वलित हो चुकी है। तब उन्होंने स्नान और आचमन करके शुद्धचित्त हो मुनियोंके समीप उस अग्निकी परिक्रमा की। फिर उन मुनियोंकी भी परिक्रमा करके अग्नि और मुनि दोनोंको प्रणाम किया। उसके बाद भगवान् शंकरका ध्यान करके राजा धैर्यपूर्वक ज्यों ही अग्निमें गिरनेको तैयार हुए, त्यों ही सब ऋषि-मुनियोंके सुनते-सुनते आकाशवाणी हुई—'राजा शंकर! तुम अभी अग्निमें प्रवेश न करो। महामते! तुम्हें ब्रह्महत्याके कारण भय नहीं होना चाहिये। दक्षिण समुद्रके किनारे गन्धमादन पर्वतपर महापातकोंका नाश करनेवाले परम पुण्यमय रामसेतुमें श्रीरामचन्द्रजीके द्वारा स्थापित जो रामेश्वर नामक शिवलिंग है, उसकी एक वर्षतक तीनों समय भक्तिपूर्वक सेवा करो। भगवान् रामेश्वरकी परिक्रमापूर्वक उन्हें नमस्कार करो, उनका महाभिषेक करो और प्रतिदिन नाना प्रकारका नैवेद्य निवेदन करो। चन्दन, अगर और कपूरके द्वारा श्रीरामलिंगकी पूजा करो। दो भार गायके घीसे भगवान्‌का अभिषेक कराओ। प्रतिदिन दो भार गोदुग्धसे और एक द्रोण शहदसे उस शिवलिंगको नहलाओ। नित्यप्रति खीरसे भगवान्‌को नैवेद्य लगाओ तथा रोज-रोज रातमें तिलके तेलसे दीपक जलाकर दीपदानद्वारा आराधना करो। महाराज! रामेश्वर शिवकी इस प्रकार उपासना करनेसे तुम्हारी स्त्रीहत्या और ब्रह्महत्या तत्काल नष्ट हो जायगी। तुम शीघ्र रामसेतुपर जाओ और निरन्तर रामेश्वरका भजन करो। इस कार्यमें विलम्ब न करो।'

वह आकाशवाणी सुनकर सब ऋषि राजाको जल्दी जानेकी प्रेरणा देने लगे—महाराज! मोक्षदायक रामसेतुपर शीघ्र जाओ। हमने भगवान् रामेश्वरके माहात्म्यको न जाननेके कारण ही आपको प्रज्वलित अग्निमें देह त्याग करनेकी सलाह दी थी। मुनीश्वरोंकी ऐसी आज्ञा पाकर महाराज शंकरने चतुरंगिणी सेना तो नगरमें भेज दी और स्वयं हर्षयुक्त चित्तसे महर्षियोंको नमस्कार करके कुछ इने-गिने सैनिकोंके साथ बहुत धन लेकर भगवान् रामेश्वरकी सेवाके लिये गन्धमादन पर्वतपर गये तथा वहाँ शुद्धिदायक रामसेतुपर उन्होंने एक वर्षतक निवास किया। राजा एक समय भोजन करते और क्रोध एवं इन्द्रियसमूहको वशमें रखते थे। वे तीनों समय भक्तिपूर्वक भगवान् रामेश्वरकी सेवा करते हुए उन्हें प्रतिदिन दस भार धन भेंट करते थे। उन्होंने नित्यप्रति भगवान् रामेश्वरकी महापूजा करवायी। प्रतिदिन धनुष्कोटिमें भक्तिपूर्वक स्नान और प्रसन्नतापूर्वक ब्राह्मणोंको अन्नदान किया। आकाशवाणीने जैसा बताया था, उसके अनुसार सब पूजन किया। इस प्रकार एक वर्ष पूरा होनेपर राजा शंकरने सन्तुष्टचित्त हो दयानिधान भगवान् रामेश्वरका इस प्रकार स्तवन किया—'मैं सबके ईश्वर रुद्रको नमस्कार करता हूँ। रामेश्वर नामसे प्रसिद्ध भगवान् उमापतिको

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

प्रणाम करता हूँ। देव! कृपया मेरी रक्षा कीजिये और मेरी ब्रह्महत्याको शीघ्र जला डालिये। त्रिपुरासुरका नाश करनेवाले महादेव! आप कालकूट विषको भक्षण करनेवाले हैं। दयासिन्धो! आप मेरी रक्षा करें और मुझे स्त्रीहत्यारूपी पापसे छुड़ावें। गंगाधर! विरूपाक्ष! रामनाथ! त्रिलोचन! प्रभो! आप अपनी कृपादृष्टिसे मेरा पालन कीजिये। विभो! मेरा पातक नष्ट कर दीजिये। कामारे! आप भक्तोंकी मनोवांछित कामनाओंको देनेवाले हैं। रामेश्वर! मुझपर कृपाकटाक्ष कीजिये। धूर्जटे! मुझे शुद्ध बना लीजिये। मार्कण्डेयजीको भयसे बचानेवाले मृत्युंजय! आप अविनाशी शिव हैं, भगवती गिरिराजनन्दिनी आपके आधे अंगमें निवास करती हैं, आपको नमस्कार है। आप मुझे पापरहित कीजिये। रुद्राक्षकी मालासे विभूषित चन्द्रशेखर भगवान् शंकर! आप मुझे वैदिक सदाचारके योग्य बना दीजिये, आपको नमस्कार है। रामेश्वरदेवको नमस्कार है। आप मुझे शुद्धि देनेवाले हों। जो आनन्दस्वरूप और सच्चिदानन्दघन हैं, उन रामेश्वर शिवको मैं बार-बार नमस्कार करता हूँ। मेरा पातक नष्ट हो जाय।'

इस प्रकार रामेश्वर महादेवकी भक्तिपूर्वक स्तुति करते हुए राजा शंकरके मुखसे अत्यन्त भयानक ब्रह्महत्या निकली, जो नील वस्त्र धारण करनेवाली और अत्यन्त क्रूर थी। उसके सिरके बाल रक्तकी भाँति लाल थे। राजाके मुखसे निकली हुई उस बीभत्स ब्रह्महत्याको भगवान् शंकरकी आज्ञासे भैरवने त्रिशूलसे मार डाला। तब भगवान् रामेश्वरने राजासे कहा—'पाण्ड्यनरेश! महाराज! मैं तुम्हारे इस स्तोत्रसे प्रसन्न होकर तुम्हें वर देना चाहता हूँ, तुम कोई मनोवांछित वर माँगो। स्त्रीहत्या और ब्रह्महत्यासे जो तुम्हें दोष लगा था, वह निकल गया। अब तुम शुद्ध हो, निष्पाप हो, पूर्ववत् अपने राज्यका पालन करो। राजन्! मेरी सेवा करनेवाले मनुष्य फिर संसारमें जन्म नहीं लेते। वे मेरे सायुज्य मोक्षको प्राप्त कर लेते हैं। जो मानव इस स्तोत्रद्वारा भक्तिपूर्वक मेरी स्तुति करेंगे, उनके महापातकोंकी राशिको मैं अवश्य नष्ट कर दूँगा। अब तुम इच्छानुसार वर माँगो।'

राजा बोले—महेश्वर! मैं आपके दर्शनमात्रसे ही कृतार्थ हो गया हूँ। इस समय मुझे इससे बढ़कर माँगने योग्य कोई वस्तु नहीं प्रतीत होती। आपके दोनों चरणकमलोंमें मेरी अविचल भक्ति बनी रहे।

'तथास्तु' कहकर भगवान् रामेश्वरने राजापर अनुग्रह किया और वे पुनः उसी शिवलिंगमें अन्तर्धान हो गये। भगवान् रामेश्वरकी कृपा प्राप्त करके राजा भी कृतार्थ हो गये और उन्हें प्रणाम करके अपनी पुरीको चले गये। उन्होंने वनवासी मुनियोंको यह वृत्तान्त बतलाया। तब उन मुनियोंने प्रसन्नचित्त होकर राजाको पुनः उनके राज्यपर अभिषिक्त किया। तदनन्तर अन्तकाल आनेपर राजाने रामेश्वर शिवका ध्यान करते हुए देहका त्याग किया और भगवान् रामेश्वरके सायुज्य मोक्षको प्राप्त कर लिया।

राजा पुण्यनिधिके यहाँ महालक्ष्मीका पुत्रीके रूपमें निवास एवं सेतुमाधवकी महिमा

श्रीसूतजी कहते हैं—पूर्वकालमें चन्द्रवंशी राजा पुण्यनिधि मथुरा नामक पुरीका पालन करते थे। किसी समय राजा पुण्यनिधि मथुरामें अपने पुत्रका राज्याभिषेक करके अन्तःपुरकी रानियोंके साथ स्नानके लिये उत्सुक हो रामसेतु नामक तीर्थमें गये। उनके साथ उनकी चतुरंगिणी सेना भी थी। वहाँ धनुष्कोटिमें संकल्पपूर्वक स्नान करके उन नृपश्रेष्ठने वहाँके अन्य तीर्थोंमें

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

भी स्नान किया और भक्तिपूर्वक भगवान् रामेश्वरकी सेवा की। इस प्रकार उन्होंने बहुत कालतक उसी तीर्थमें सुखपूर्वक निवास किया। वहाँ रहते हुए राजा पुण्यनिधिने किसी समय भगवान् विष्णुको प्रसन्न करनेवाला एक यज्ञ किया। यज्ञ पूर्ण होनेपर वे अपनी स्त्री तथा परिवारके लोगोंके साथ अवभृथ स्नानके लिये श्रीरामचन्द्रजीकी धनुष्कोटिमें गये और वहाँ विधिपूर्वक स्नान किया।

इस प्रकार राजा पुण्यनिधि जब उस तीर्थमें निवास करते थे, उसी समय एक दिन राजाकी भक्तिकी परीक्षा करनेके लिये भगवान् विष्णुने लक्ष्मीजीको भेजा। वे आठ वर्षकी सुन्दरी बालिका होकर गन्धमादन पर्वतपर गयीं। उस समय राजा पुण्यनिधि धनुष्कोटिमें स्नान करनेके लिये गये थे। वहाँ स्नान करके पुण्यकर्म करनेके पश्चात् राजाने अलौकिक रूप-सौन्दर्यसे सुशोभित एक अष्टवर्षीया कन्या देखी। उसे देखकर पुण्यनिधिने पूछा—'बेटी! तुम कौन हो? यहाँ तुम्हारे आनेका क्या प्रयोजन है?' राजाके इस प्रकार पूछनेपर कन्याने कहा—'महाराज! मेरे न माता हैं, न पिता हैं और न कोई भाई-बन्धु हैं। मैं अनाथ हूँ। मैं आपकी पुत्री होकर रहना चाहती हूँ। आपको पिताके रूपमें देखती हुई सदा आपके घरमें निवास करूँगी। परन्तु मेरी एक शर्त है, 'जो मुझे हाथसे पकड़े अथवा हठपूर्वक खींचकर ले जाय, उसको यदि आप दण्ड दें, तभी मैं आपके घरमें आपकी पुत्री होकर चिरकालतक निवास करूँगी।' कन्याके ऐसा कहनेपर राजा पुण्यनिधि बोले—'शुभे! मैं तुम्हारी कही हुई सब बातें मानूँगा। मेरे भी कोई पुत्री नहीं है। एक ही वंशधर पुत्र है। भद्रे! जिसके प्रति तुम्हारा अनुराग होगा, उसे ही तुम्हें समर्पित करूँगा। बेटी! आओ मेरे घर चलो और मेरी पत्नीकी पुत्री होकर अन्तःपुरमें स्वेच्छानुसार निवास करो।'

'बहुत अच्छा' कहकर वह कन्या राजाके साथ उनके घर गयी। राजाने अपनी पत्नीके हाथमें उस कल्याणमयी कन्याको सौंप दिया। रानीका नाम विन्ध्यावली था। राजाने उनसे कहा—'देवि! यह हम दोनोंकी पुत्री है। इसकी दूसरे पुरुषोंसे सर्वथा रक्षा करो।' विन्ध्यावलीने राजाकी आज्ञा शिरोधार्य की और उस कन्याको हाथमें ले लिया। राजाके द्वारा कन्याका पुत्रकी भाँति पालन-पोषण होने लगा। वह लाड़-प्यार और सुखसे राजभवनमें रहने लगी। तदनन्तर जगदीश्वर भगवान् विष्णु अपनी लक्ष्मीको ढूँढ़नेके लिये वैकुण्ठसे निकले और रामसेतुपर गये। वहाँ सब ओर भ्रमण करते रहे। इसी समय फूल तोड़नेके कौतूहलसे वह कन्या सखियोंके सहित राजाके गृहोद्यानमें गयी और वृक्षोंसे फूल चुनने लगी। तब भगवान् विष्णु ब्राह्मणका रूप धारण करके वहीं आकर खड़े हो गये। ब्राह्मणको सहसा वहाँ आया देख वह कन्या ठिठककर खड़ी रह गयी। उस मधुरभाषिणी कन्याको देखकर उस द्विजने शीघ्रतापूर्वक उसका हाथ पकड़ लिया। यह देख वह कन्या अपनी सखियोंके साथ उस उपवनमें चिल्लाने लगी। उसकी चिल्लाहट सुनकर राजा पुण्यनिधि वहाँ आ गये। वहाँ राजाने उस कन्या और उसकी सखियोंसे पूछा—'बेटी! तुम इस समय अपनी सखियोंके साथ क्यों चिल्ला उठी थी?'

कन्या बोली—पाण्ड्यनाथ! इस ब्राह्मणने हठपूर्वक मेरा हाथ पकड़ लिया था। तात! यहीं उस वृक्षके नीचे वह निर्भय होकर खड़ा है। राजा परम बुद्धिमान् और सद्‌गुणोंके निधान थे। उन्होंने उस ब्राह्मणका यथार्थ बल न जानते हुए उसे हठात् पकड़ लिया और रामेश्वर मन्दिरमें ले जाकर वहाँ पैरोंमें बेड़ी डाल और हाथोंमें रस्सीसे बाँधकर पुनः उसे मण्डपमें ले आये। अपनी पुत्रीको आश्वासन देकर राजाने अन्तःपुरमें भेज दिया और स्वयं भी परम सुन्दर भवनमें

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

ब्राह्मणके द्वारा राजकन्याका हाथ पकड़ा जाना

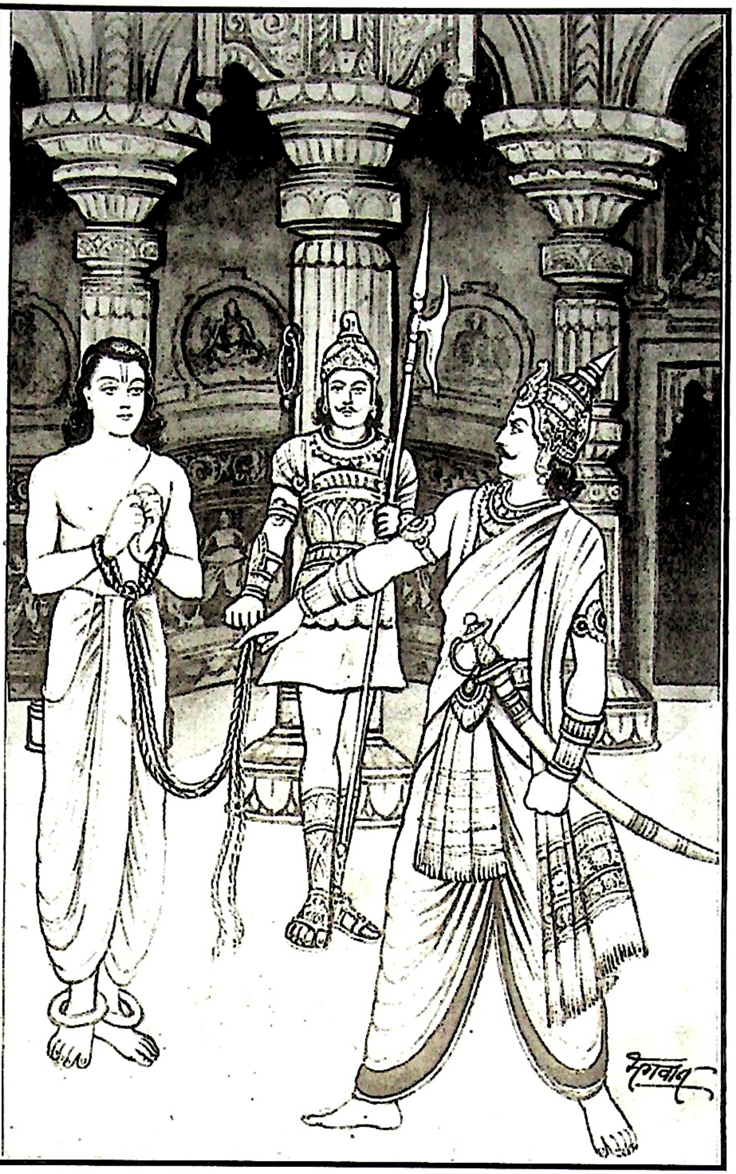

राजाके द्वारा ब्राह्मणको बन्दी बनाया जाना

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

जाकर शयन किया। सोते समय उन्होंने स्वप्नमें उस ब्राह्मणको देखा। वह शंख, चक्र, गदा, पद्म और वनमालासे विभूषित था। उसके वक्षःस्थलपर कौस्तुभमणिका आभूषण शोभा पा रहा था। ब्राह्मणके रूपमें साक्षात् श्रीहरि विराजमान थे। उन्होंने अपने श्रीअंगोंमें पीताम्बर धारण किया था। उनके श्रीअंगोंकी कान्ति कृष्ण मेघके समान श्याम थी, मुखपर मनोहर मुसकानकी मनोहर छटा छा रही थी और स्वच्छ दन्तपंक्ति चमक रही थी। कानोंमें मकराकृति कुण्डल शोभायमान थे। विष्वक्सेन आदि पार्षद उनकी सेवामें उपस्थित थे। भगवान् शेषशय्यापर लेटे हुए थे और नारद आदि देवर्षि उनकी स्तुति कर रहे थे। वहीं उन्होंने अपनी कन्याको भी देखा, जो विकसित कमलके आसनपर विराजमान थी। वह कन्या नहीं, साक्षात् लक्ष्मी थीं। उन्होंने अपने हाथमें कमल धारण कर रखा था और उनके मस्तकपर काले-काले घुँघराले बाल बड़ी शोभा पा रहे थे। इस प्रकार राजाने रात्रिमें अपनी कन्याको महालक्ष्मीके स्वरूपमें देखा। यह देखकर राजा सहसा उठ बैठे और कन्याके घरमें गये। वहाँ उन्होंने कन्याको उसी रूपमें देखा, जैसे स्वप्नमें उसका दर्शन हुआ था। प्रातःकाल सूर्योदय होनेपर राजा पुण्यनिधि कन्याको साथ ले रामेश्वरमन्दिरमें पहुँचे और उस श्रेष्ठ मण्डपमें गये, जहाँ ब्राह्मणको रख छोड़ा था। वहाँ ब्राह्मण देवताको उन्होंने साक्षात् श्रीहरिके रूपमें देखा, ठीक उसी रूपमें, जैसा कि स्वप्नमें दर्शन हुआ था। वनमाला आदि चिह्नोंसे पहचाने जानेवाले भगवान् विष्णुको जानकर राजाने उनकी इस प्रकार स्तुति की—'कमलाकान्त! आपको नमस्कार है। गरुड़ध्वज! आप प्रसन्न होइये। शार्ङ्गपाणे! आपको नमस्कार है, आप मेरा अपराध क्षमा करें। आप निर्गुण, अप्रमेय तथा बुद्धिके साक्षी विष्णु हैं, आपको नमस्कार है। सम्पूर्ण जगत्को धारण करनेवाले परमात्मा श्रीनिवासको नमस्कार है। कृपामूर्ते! आपके लिये नमस्कार है। मधुसूदन! आप मेरा यह अपराध क्षमा करें।'

इस प्रकार महाविष्णुकी स्तुति करके राजा पुण्यनिधिने सम्पूर्ण जीवोंकी जननी श्रीलक्ष्मीजीका भी स्तवन किया—'सम्पूर्ण जगत्को धारण करनेवाली देवि! आपको नमस्कार है। आप भगवान् विष्णुके वक्षःस्थलमें निवास करनेवाली हैं, आपको नमस्कार है। समुद्रसे प्रकट हुई हरिप्रिया महालक्ष्मी! आपको नमस्कार है। आप ही सिद्धि, पुष्टि, स्वधा, स्वाहा, सन्ध्या, प्रभा, धात्री, भूति, श्रद्धा, मेधा और सरस्वती हैं, आपको बारंबार नमस्कार है। देवेश्वरि! आप ही यज्ञविद्या, महाविद्या, अतिशय शोभामयी गुह्यविद्या, आत्मविद्या तथा सब प्राणियोंको मुक्ति देनेवाली हैं, आपको नमस्कार है। संसारकी रक्षा करनेवाली जगदम्बिके! आप अपनी दयादृष्टिसे मेरी रक्षा करें। महेश्वरि! आप ब्रह्माजीकी माता हैं, आपको नमस्कार है।'

महालक्ष्मीकी इस प्रकार स्तुति करके राजाने पुनः भगवान् विष्णुसे इस प्रकार प्रार्थना की— विष्णो! मैंने अज्ञानवश आपके पैरोंमें बेड़ी डालकर जो इस समय आपके प्रति अपराध किया है, वह स्पष्ट ही द्रोह है आप उसे क्षमा करें। मधुसूदन! आप सम्पूर्ण जगत्के पिता हैं, पिताको पुत्रका अपराध क्षमा करना चाहिये। आपने अपराधी दैत्योंको अपना स्वरूपतक दे डाला है। भगवन्! मेरे भी इस अपराधको आप क्षमा करें। कृपानिधे! मारनेके लिये आयी हुई पूतनाको भी आपने अपने चरण-कमलोंमें स्थान दिया है, मेरी भी रक्षा कीजिये। लक्ष्मीकान्त! केशव! मुझपर अपनी कृपापूर्ण दृष्टि डालिये।

राजाके इस प्रकार प्रार्थना करनेपर भगवान् विष्णुने कहा—राजन्! मुझे बन्धनमें डालनेके कारण जो तुमको भय हो रहा है, उसे त्याग दो। तुमने इस तीर्थमें मेरी प्रसन्नताके लिये यज्ञ किया है। अतः तुम मेरे प्रिय भक्त हो। शत्रुदमन! मैं भक्तोंके अपराध सदा ही क्षमा करता हूँ। तुम्हारी भक्ति जाननेके लिये मेरी

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

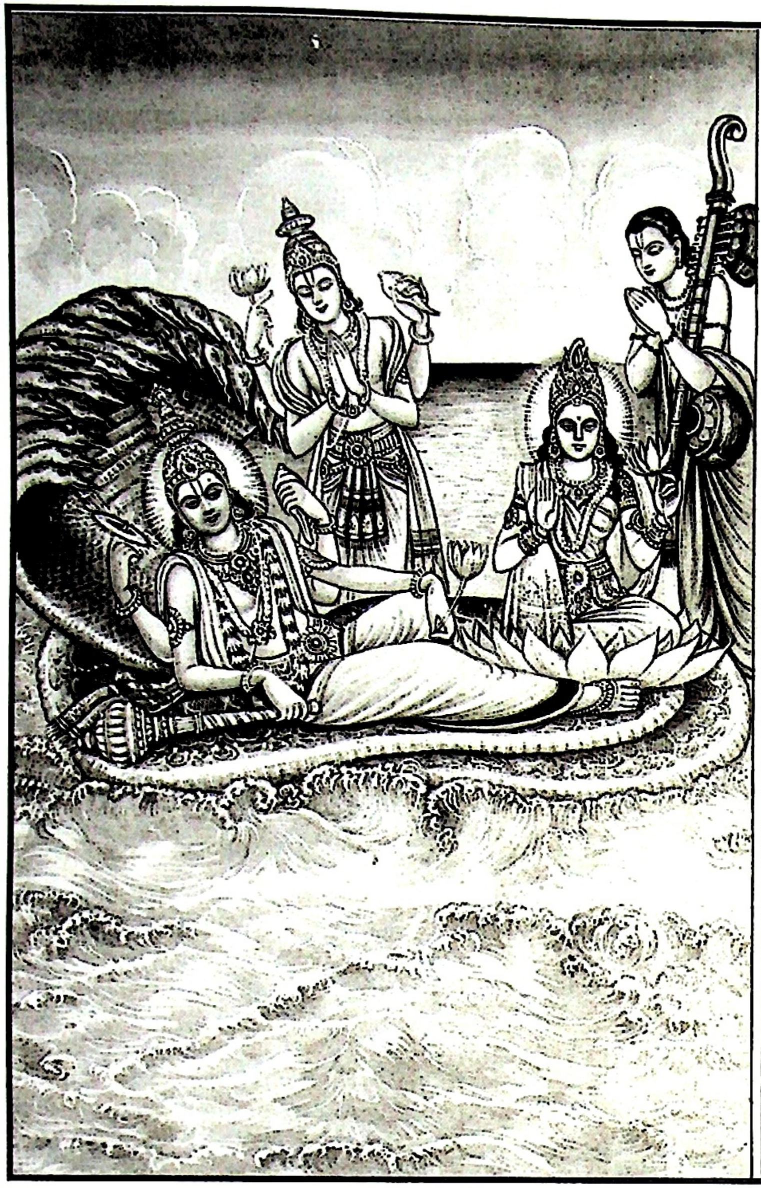

राजाको स्वप्नमें भगवान्‌के दर्शन

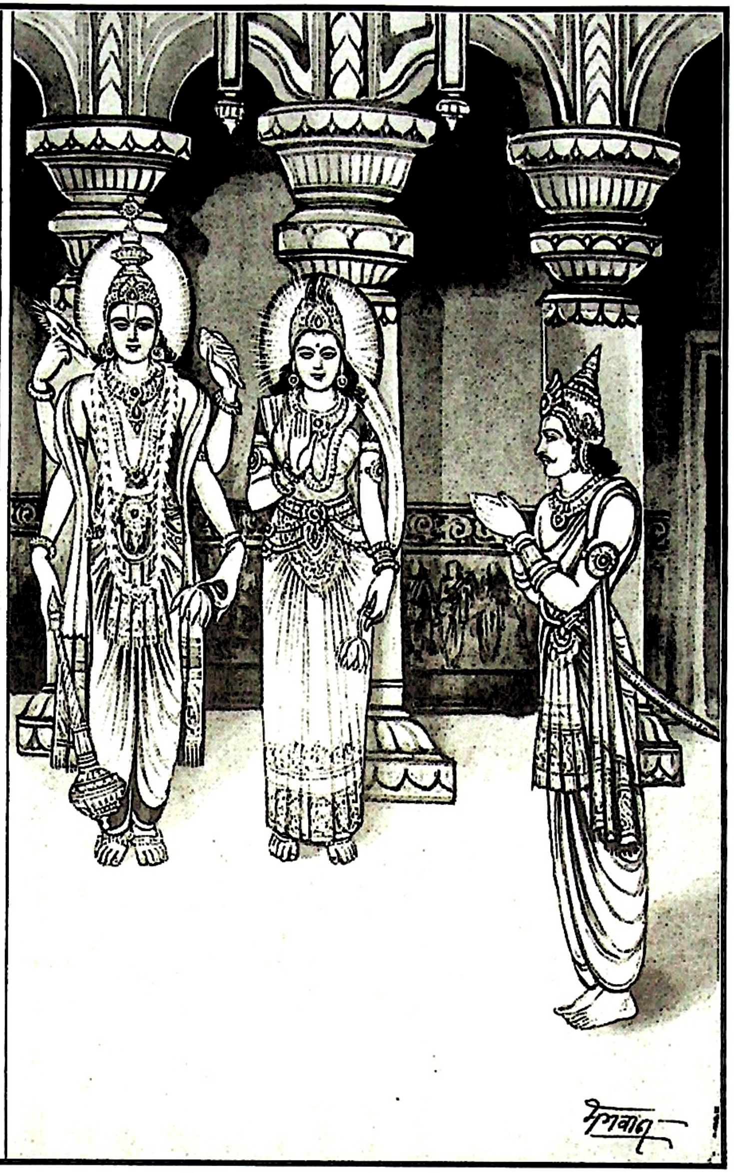

राजाके द्वारा लक्ष्मीनारायणका स्तवन

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

ही प्रेरणासे मेरी प्रिया लक्ष्मी तुम्हारे घर आयी थीं और तुमने इनका भलीभाँति संरक्षण किया है। अतः मैं तुमपर बहुत सन्तुष्ट हूँ। संसारमें जो पुरुष मेरी स्वरूपभूता इन महालक्ष्मीमें भक्ति रखता है, वह मेरा भक्त कहलाता है और जो इनसे विमुख है, वह मेरा द्वेषपात्र माना गया है। तुमने भक्तिपूर्वक इनका पूजन किया है,अतः तुम्हारे द्वारा मेरी भी पूजा सम्पन्न हो गयी; क्योंकि ये लक्ष्मी मुझसे अभिन्न हैं। इसलिये तुमने मेरा अपराध नहीं, पूजन ही किया है। मेरी स्वरूपभूता लक्ष्मी सम्पूर्ण जगत्की माता तथा वेदत्रयीरूपा हैं। उनकी रक्षा करते हुए जो तुमने मुझे बन्धनमें डाला है, वह मुझे अत्यन्त प्रिय है। ये लक्ष्मी वास्तवमें तुम्हारी पुत्री हैं।

भगवान् विष्णुके ऐसा कहनेके पश्चात् लक्ष्मीने भी कहा—राजन्! तुमने अपने घरमें मेरी रक्षा की, इससे मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ। तुम्हारी भक्तिका शोधन करनेके लिये ही मैं और भगवान् दोनों यहाँ आये हैं। तुम्हारे मन:संयमरूप योग और भक्तिभावसे हमें बड़ी प्रसन्नता हुई है। हम

दोनोंकी कृपासे तुम्हें सदा सुखकी प्राप्ति होगी। हमारे चरणोंमें तुम्हारी अविचल भक्ति बनी रहेगी और देहावसान होनेपर तुम्हें पुनरावृत्तिरहित मेरा सायुज्य मोक्ष प्राप्त होगा। भगवान् विष्णुकी भक्तिसे युक्त तुम्हारी बुद्धि सदा धर्ममें लगी रहेगी।

तदनन्तर भगवान् विष्णुने पुनः इस प्रकार कहा—नृपश्रेष्ठ! तुमने जिस प्रकार मुझे यहाँ बेड़ीसे बाँधा है, उसी रूपसे मैं इस मण्डपमें निवास करूँगा। 'सेतुमाधव' के नामसे यहाँ मेरी प्रसिद्धि होगी। जो मनुष्य यहाँ मुझ सेतुमाधवकी सेवा करेंगे, वे सम्पूर्ण मनोरथों और अन्तमें सायुज्य मोक्षको भी प्राप्त होंगे। तुम्हारे द्वारा किये हुए मेरे तथा लक्ष्मीजीके स्तोत्रको जो प्रसन्नतापूर्वक पढ़ेंगे, सुनेंगे और लिखेंगे, उनकी मेरे परमधामसे कभी पुनरावृत्ति नहीं होगी। राजा पुण्यनिधिसे ऐसा कहकर भगवान् विष्णु सदा पूर्णरूपसे वहाँ निवास करने लगे हैं। राजाने सेतुमाधवरूपी भगवान् विष्णुको प्रणाम करके भक्तिभावसे उनकी महापूजा की और श्रीरामेश्वरका सेवन करके अपने घरको प्रस्थान किया। मथुरामें उन्होंने अपने पुत्रको राजा बना दिया और स्वयं जीवनभर उस परम उत्तम सेतुतीर्थमें निवास किया। देहावसान होनेपर राजाने मोक्ष प्राप्त कर लिया। उनकी पत्नी विन्ध्यावली भी उन्हींके साथ मृत्युको प्राप्त हुई। उस पतिव्रताने भी पतिके साथ उत्तम गति प्राप्त कर ली।

जो सेतुतीर्थमें भक्तिपूर्वक प्रतिदिन सेतुमाधवका दर्शन करते हैं, उनकी कभी पुनरावृत्ति नहीं होती। जो सेतुतीर्थकी रेणुका लेकर गंगाजीमें डालता है, वह मृत्युके पश्चात् भगवान् विष्णुके वैकुण्ठधाममें निवास करता है। जो गंगाजीका जल लाकर भगवान् रामेश्वरको स्नान कराता और उसके भारको सेतुतीर्थमें रखता है, वह निश्चय ही परब्रह्मको प्राप्त होता है। ब्राह्मणो! इस प्रकार तुमसे भगवान् सेतुमाधवकी महिमाका वर्णन किया गया।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

सेतुतीर्थकी यात्राका क्रम

सूतजी कहते हैं—द्विजवरो! अब मैं सेतुतीर्थकी यात्राका क्रम बतलाता हूँ, जिसे सुनकर मनुष्य तत्काल सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। श्रेष्ठ बुद्धिवाला पुरुष स्नान और आचमन करके विशुद्धचित्त हो नित्यकर्म पूरा कर ले। उसके बाद भगवान् रामेश्वर शिव तथा राघवेन्द्र श्रीरामचन्द्रजीकी प्रसन्नताके लिये वेदोंके पारगामी ब्राह्मणोंको यथाशक्ति भोजन करावे। फिर सब अंगोंमें भस्म धारण करके मस्तकमें त्रिपुण्ड्र अथवा गोपीचन्दनसे तिलक करे। रुद्राक्षकी माला धारण करके हाथमें पवित्री पहन ले और पवित्रतापूर्वक यह संकल्प करे कि 'मैं सेतुतीर्थकी यात्रा करूँगा।' तत्पश्चात् भक्तिभावसे अष्टाक्षर मन्त्रका जप करते हुए मौनावलम्बनपूर्वक अपने घरसे निकले। अथवा शिवजीका पंचाक्षर नाममन्त्र जपता रहे। मनको वशमें रखे। प्रतिदिन एक बार हविष्यान्न भोजन करे। क्रोध और इन्द्रियोंको काबूमें रखे। जूता, खड़ाऊँ अथवा छाता न धारण करे। पान न खाये। तेल न लगावे। स्त्री-प्रसंग आदिसे बचकर रहे। शौच-सन्तोष आदि नियमोंके तथा सदाचारके पालनमें तत्पर रहे। समयपर सन्ध्योपासना करे। तीनों समय गायत्रीकी उपासना और श्रीरामचन्द्रजीका ध्यान करता रहे। मार्गमें सेतुतीर्थकी महिमाका प्रतिदिन आदरपूर्वक पाठ करे अथवा रामायण या किसी अन्य पुराणका पाठ करे। व्यर्थकी बातें छोड़कर सेतुतीर्थकी यात्रा करे। आत्मशुद्धिके लिये प्रतिग्रह न स्वीकार करे। सदाचारको न छोड़े। मार्गमें शिव-विष्णु आदिकी पूजा तथा बलिवैश्वदेवादि कर्म करता रहे। ब्रह्मयज्ञ आदि धर्म, अग्निहोत्र कर्म तथा शक्तिके अनुसार अतिथियोंको अन्न-पान आदिका दान करे। रास्तेमें भगवान् शिव और विष्णु आदिके नाम जपे तथा उनके स्तोत्रोंका पाठ करे। निषिद्ध कर्मोंको सर्वथा त्याग दे और सदा धर्मका ही आचरण करे। इस प्रकारके नियमोंका पालन करते हुए पहले सेतुमूल स्थानको जाय। वहाँ एकाग्रचित्त हो समुद्रका आवाहन करके उसे प्रणाम करे। तदनन्तर समुद्रके लिये अर्घ्य दे। अर्घ्यके पश्चात् भगवान्से आज्ञा लेकर समुद्रमें स्नान करे। मन-ही-मन भगवान्का चिन्तन करते हुए मुनि, देवता, वानर और पितरोंके लिये तर्पण करे।

समुद्रको प्रणाम करनेका मन्त्र

नमस्ते विश्वगुप्ताय नमो विष्णो ह्यपाम्पते।
नमो हिरण्यशृङ्गाय नदीनां पतये नमः॥

'विश्वमें गुप्तरूपसे व्यापक एवं जलोंके स्वामी श्रीविष्णुदेव*! आपको नमस्कार है, नमस्कार है। हिरण्यमय शृंगसे सुशोभित नदीपति सागर! आपको नमस्कार है।'

अर्घ्यदानका मन्त्र

सर्वरत्नमयः श्रीमान् सर्वरत्नाकराकर।
सर्वरत्नप्रधानस्त्वं गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते॥

'सब रत्नोंके आकर महासागर! तुम सर्वरत्नमय एवं श्रीसम्पन्न हो। तुम्हीं सब रत्नोंमें प्रधान हो। मेरा दिया हुआ यह अर्घ्य स्वीकार करो।'

भगवान्से आज्ञा लेनेका मन्त्र

अशेषजगदाधार शंखचक्रगदाधर।
देहि देव ममानुज्ञां युष्मत्तीर्थनिषेवणे॥

'सम्पूर्ण जगत्के आधार शंख-चक्र-गदाधारी नारायण! अपने तीर्थका सेवन करनेके लिये मुझे आज्ञा दीजिये।'

सेतुकी पूर्व दिशामें सुग्रीवका, दक्षिणमें नलका, पश्चिममें मयन्दका, उत्तरमें द्विविदका और मध्यमें श्रीराम, लक्ष्मण, यशस्विनी सीता, अंगद, वायुपुत्र

* 'सरसामस्मि सागरः' इस भगवद्वचनके अनुसार समुद्र भगवान्की विभूति है। इसलिये उसे 'विष्णु' कहा गया है।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

हनुमान् तथा विभीषणका स्मरण करना चाहिये। 'हिरण्यश्रृंगम्' इत्यादि दो मन्त्रोंद्वारा नाभिमें भगवान् नारायणका स्मरण करे। स्नानादि कर्मोंमें भगवान् नारायणका चिन्तन करनेवाला पुरुष ब्रह्मलोकको प्राप्त होता है। वह इस संसारमें फिर जन्म नहीं लेता; उसके समस्त पापोंका भी प्रायश्चित्त हो जाता है। प्रह्लाद, नारद, व्यास, अम्बरीष, शुक तथा अन्यान्य भगवद्भक्तोंका एकाग्रचित्त होकर चिन्तन करना चाहिये।*

समुद्रमें स्नान करनेका मन्त्र

वेदादिर्यो वेदवसिष्ठयोनिः सरित्पतिः सागररत्नयोनिः।
अग्निश्च ते योनिरिडा च देहो रेतोधा विष्णोरमृतस्य नाभिः॥
इदं तेऽन्याभिरस्यमानमद्भिर्याः काश्च सिन्धुं प्रविशन्त्यापः।
सर्पो जीर्णामिव त्वचं जहामि पापं शरीरात्सशिरस्कोऽभ्युपेत्य॥

'हे सागर! तुम वेदोंके आदि तथा वेद और वशिष्ठकी योनि हो, सरिताओंके स्वामी हो और सम्पूर्ण रत्नोंकी उत्पत्तिके स्थान हो। अग्नि तुम्हारा कारण तथा यज्ञ तुम्हारे शरीरका उपादान है। तुम भगवान् विष्णुके वीर्यको धारण करते हो। तुम अमृतकी नाभि हो। तुम्हारे जलसे तथा जो नदियाँ समुद्रमें प्रवेश करती हैं, उनसे सम्बन्ध रखनेवाले अन्य जलसे भी सिरसहित स्नान करके मैं अपने इस पापको शरीरसे उसी प्रकार त्याग देता हूँ, जैसे सर्प अपने पुराने केंचुलको त्याग देता है।'

इस प्रकार सेतुमें तीन बार स्नान करे। यदि मनुष्य देवीपत्तनसे प्रारम्भ करके सेतुकी यात्रा करे, तो नौ प्रस्तरोंके बीचसे मोक्षदायक सेतुमें अपनी पापराशिके निवारणके लिये समुद्र-स्नान करे और यदि दर्भशयनके मार्गसे मुक्तिदायक सेतुतीर्थमें जाय तो वहाँ समुद्रमें ही स्नान करे।

स्नानके पश्चात् पिप्पलाद, कवि, कण्व, कृतान्त, जीवितेश्वर, मन्यु, कालरात्रि, विद्या, अहः, गणेश्वर, वसिष्ठ, वामदेव, पराशर, उमापति, वाल्मीकि, नारद, वालखिल्य मुनिगण, नल, नील, गवाक्ष, गवय, गन्धमादन, मैन्द, द्विविद, शरभ, ऋषभ, सुग्रीव, हनुमान्, वेगदर्शन, राम, लक्ष्मण, महाभागा यशस्विनी सीता तथा विभु—इन सबके लिये चतुर्थ्यन्त नामोंका नमःसहित उच्चारण करके तर्पण करना चाहिये। जैसे **'पिप्पलादाय नमः'**, **'कवये नमः'** इत्यादि। देवताओं, ऋषियों तथा पितरोंको विधिपूर्वक क्रमशः अक्षत, यव, तिलयुक्त जलसे उनके द्वितीयान्त नामोंका उच्चारण करके तर्पण करे। यथा **'ब्रह्माणं तर्पयामि, विष्णुं तर्पयामि'** इत्यादि। मनुष्य प्रसन्नचित्त हो हाथमें पवित्री धारण करके जलमें खड़ा होकर तर्पण करे। इस प्रकार तर्पण और नमस्कार करके जलसे बाहर निकले। भीगे वस्त्रको खोलकर सूखा वस्त्र पहन ले; फिर आचमन करके हाथमें पवित्री लिये हुए विधिपूर्वक श्राद्ध करे। तिल और चावलोंसे पितरोंको पिण्ड दे।

तदनन्तर चक्रतीर्थमें जाकर वहाँ भी स्नान करे और सेतुके अधिपति भगवान् श्रीनारायणका दर्शन करे। जो पश्चिम मार्गसे जाता हो, वह वहाँके चक्रतीर्थमें स्नान करके दर्भशय्यापर सोनेवाले भगवान्‌का भक्तिपूर्वक दर्शन करे। उसके बाद कपितीर्थमें स्नान करके सीताकुण्डमें गोता लगावे। तत्पश्चात् उत्तम फलवाले ऋणमोचनतीर्थमें स्नान करके वहाँ भगवान् श्रीरामचन्द्रजीको प्रणाम करे। फिर लक्ष्मणतीर्थमें जाय और कण्ठसे ऊपर क्षौर कराकर अपने पापोंका चिन्तन करते हुए उसमें स्नान करे। इसके बाद रामतीर्थमें नहाकर देवालयमें जाय। पुनः पापविनाशनतीर्थमें नहाकर गंगा, यमुना, सावित्री, सरस्वती, गायत्री एवं हनुमत्कुण्डमें स्नान करके ब्रह्मकुण्डमें जाकर विधिपूर्वक स्नान करे। ब्रह्मकुण्डके बाद नागकुण्डमें जाकर स्नान

* प्रह्लादं नारदं व्यासमम्बरीषं शुकं तथा। अन्यांश्च भगवद्भक्तांश्चिन्तयेदेकमानसः॥ (स्क० पु०, ब्रा० से० मा० ५१। २९-३०)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

करे, वह समस्त पापों और नरकके क्लेशोंका नाश करनेवाला है।

तदनन्तर अति उत्तम अगस्त्यतीर्थमें स्नान करे। वहाँसे अग्नितीर्थमें जाकर स्नान, तर्पण और विधिपूर्वक श्राद्ध करे। चक्र आदि तीर्थ सब पातकोंका अपहरण करनेवाले हैं। वे क्रमशः यहाँ बताये गये हैं। उसी क्रमसे अथवा अपनी रुचिके अनुसार उन सब तीर्थोंमें नहाकर श्राद्ध आदि करे। तत्पश्चात् रामेश्वरमें पहुँचकर परमेश्वर भगवान् शिवकी सेवा करे। फिर सेतुमाधवमें आकर क्रमशः राम, लक्ष्मण, सीता, हनुमान् तथा अन्य कपिवरोंके तीर्थोंमें वहाँ जाकर नियमपूर्वक स्नान करे। फिर भगवान् रामेश्वर तथा श्रीरामचन्द्रजीको नमस्कार करके धनुष्कोटिमें नहानेके लिये जाय। वहाँ स्नान करके अपनी शक्तिके अनुसार धन-दान करे। उसके बाद कोटितीर्थमें आकर नियमपूर्वक स्नान करे और रामेश्वर नामक भगवान् शिवको प्रणाम करके अपने पास धन हो तो ब्राह्मणोंको सुवर्ण-दान करे। तिल, धान्य, गौ, क्षेत्र, वस्त्र, चावल आदि दान करे। धूप, दीप, नैवेद्य एवं पूजाके अन्य उपकरण भगवान् रामेश्वरको अर्पण करे। फिर भक्तिपूर्वक प्रणाम करके आज्ञा ले सेतुमाधवके समीप जाय। उन्हें भी धूप, दीप आदि भेंट करके उनकी आज्ञा ले पूर्वोक्त नियमोंका पालन करते हुए अपने घर लौटे। घर आनेपर षड्रस भोजनके द्वारा ब्राह्मणोंको तृप्त करे। इससे भगवान् रामेश्वर प्रसन्न होकर उसे मनोवांछित वस्तु देते हैं। उसके लिये नरकका भय नहीं रहता और उसकी दरिद्रताका नाश हो जाता है। उस पुरुषकी सन्तति बढ़ती है और शीघ्र ही संसारबन्धनका नाश करके वह सायुज्य मोक्षको प्राप्त होता है। जो यहाँकी यात्रा करनेमें असमर्थ हो, वह श्रुति-स्मृति तथा आगम ग्रन्थोंमें जो सेतुमाहात्म्यसूचक परम पुण्यमय ग्रन्थ हो, उसका पाठ करावे अथवा स्वयं भक्तिपूर्वक उसका पाठ करे। ऐसा करनेसे वह सेतुस्नानके पुण्य-फलको निःसन्देह प्राप्त कर लेता है। मनीषी पुरुषोंने यह सुविधा अन्धे और पंगु मनुष्योंके लिये ही बतायी है। विप्रवरो! इस प्रकार यहाँ सेतुतीर्थकी यात्राका क्रम बतलाया गया। जो इसे पढ़ता अथवा सुनता है, वह सब दुःखोंसे मुक्त हो जाता है।

सेतुतीर्थका माहात्म्य तथा इस खण्डका उपसंहार

श्रीसूतजी कहते हैं—मुनिवरो! सेतुतीर्थमें किया हुआ जप, होम, तप और दान सब अक्षय कहा जाता है। धनुष्कोटिमें स्नान करके भक्तिपूर्वक श्रीरामेश्वर शिवका दर्शन करते हुए मनुष्य तीन दिन यहाँ निवास करे। यहाँ आदि षडक्षर (**ॐ नमः शिवाय**) इस मन्त्रका भक्तिपूर्वक एक हजार आठ बार जप करके मनुष्य भगवान् शिवका सायुज्य प्राप्त कर लेता है। इस सेतुतीर्थकी महिमाका वर्णन करनेके उद्देश्यसे '**द्वौ समुद्रौ०**' इत्यादि श्रुति सनातन कालसे विद्यमान है, जो माताके समान आदरणीय है। इसी प्रकार '**अदो यद्दारु०**' यह दूसरी श्रुति भी उसी विषयमें है। '**विष्णोः कर्माणि पश्यत०**' यह श्रुति भी सेतुतीर्थके वैभवका वर्णन करनेवाली है। '**तद्विष्णोः०**' यह दूसरी श्रुति भी सेतुका माहात्म्य सूचित करती है। इन वैदिक श्रुतियोंके अतिरिक्त इतिहास, पुराण और स्मृतियाँ भी एक स्वरसे सेतुतीर्थकी महिमाका वर्णन करती हैं। चन्द्रग्रहण और सूर्यग्रहणके अवसरपर सेतुतीर्थमें स्नान करनेवाला मनुष्य तत्काल कोटि जन्मोंके पापका नाश कर

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

देता है। विषुवयोग, उत्तरायण या दक्षिणायनके प्रारम्भ दिन, संक्रान्तिकाल, सोमवार तथा अमावास्या एवं पूर्णिमा तिथि—इन सभी अवसरोंपर सेतुतीर्थका दर्शन करनेमात्रसे सात जन्मोंका पाप नष्ट हो जाता है। सूर्यनारायणके मकर राशिमें स्थित होनेपर सूर्योदयकालमें तीन दिनतक धनुष्कोटिमें स्नान करनेसे मनुष्य पापहीन हो जाता है। जो मनुष्य माघ मासमें पंद्रह दिनोंतक धनुष्कोटिमें स्नान करता है, वह वैकुण्ठधामको पाता है। माघ मासमें रामसेतुतीर्थमें बीस दिनोंतक स्नान करनेवाला मनुष्य भगवान् शिवका सामीप्य प्राप्त करता और उन्हींके साथ आनन्दित होता है तथा तीस दिनोंतक वहाँ स्नान करनेवाला मनुष्य भगवान् शिवका सायुज्य प्राप्त कर लेता है। अतः माघ मासमें जब सूर्यका किंचिन्मात्र उदय हुआ हो, उस समय मनुष्य रामसेतुमें अवश्य स्नान करे। वह स्नान ब्रह्महत्यादि पातकोंका नाशक है। चन्द्रग्रहण, सूर्यग्रहण तथा अर्धोदय योगमें धनुष्कोटि तीर्थमें स्नान करना अत्यन्त आवश्यक है। पूर्वकालमें भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने रावणका विनाश करनेके लिये इस तीर्थमें स्नान किया था और उक्त योगोंमें स्नानका नियम बताया था। उस समय सिद्ध, चारण, गन्धर्व, किन्नर, नाग, ब्रह्मर्षि, देवर्षि, राजर्षि, पितृसमुदाय तथा ब्रह्मा आदि देवसमुदाय भी धनुष्कोटि तीर्थका सेवन करते हैं। जो मनुष्य पुण्यमय रामसेतुका स्मरण करके जहाँ कहीं भी पोखरे आदिके जलमें स्नान करता है, उसका किंचिन्मात्र भी पाप कभी शेष नहीं रहता। सेतुके मध्यमें विद्यमान तीर्थोंमें मुट्ठीभर अन्न देनेसे भी सब रोग और भ्रूणहत्या आदि पाप नष्ट हो जाते हैं। धनुष्कोटिके दर्शनमात्रसे मनुष्य अपने समस्त कुलको तार देता है। श्रीरामचन्द्रजीके धनुषकी कोटिसे की हुई रेखामें स्नान करनेसे करोड़ों पातकोंका तत्काल नाश हो जाता है। जहाँ सीताजी अग्निमें समायी थीं, उस कुण्डमें स्नान करनेसे सैकड़ों भ्रूणहत्याएँ क्षणभरमें नष्ट हो जाती हैं। जैसे श्रीरामचन्द्रजी हैं, वैसा ही सेतुतीर्थ है। जैसे विष्णुभगवान् हैं, वैसे ही गंगा भी है। अतः 'हे गंगे! हे हरे! हे रामसेतुतीर्थ!' ऐसा उच्चारण करता हुआ जहाँ कहीं तीर्थके बाहर भी स्नान करता है, उससे वह परम गतिको प्राप्त होता है। गन्धमादन पर्वतपर सेतुमें अर्धोदय योगकी बेलामें स्नान करके जो पितरोंके उद्देश्यसे सरसोंभर भी पिण्डदान देता है, उसके पितर जबतक सूर्य और चन्द्रमा स्थिर रहते हैं, तबतक तृप्त रहते हैं। सेतु, पद्मनाभ, गोकर्ण और पुरुषोत्तम—इन तीर्थोंमें समुद्रके जलमें किया जानेवाला स्नान सभी समयोंमें अभीष्ट है। शुक्र, मंगल, शनैश्चरके दिन सन्तानकी इच्छा रखनेवाला मनुष्य सेतुतीर्थके सिवा और कहीं क्षारसमुद्रमें स्नान न करे। जिसकी पत्नी गर्भिणी हो, वह भी सेतुके सिवा अन्य स्थानोंमें समुद्रमें स्नान न करे। सेतुका स्नान सदैव उत्तम है। दिन, तिथि और नक्षत्रके नियम सेतुसे भिन्न तीर्थोंके लिये ही हैं। सेतुमें, नदी और समुद्रके संगममें, गंगा-सागर-संगममें, गोकर्ण क्षेत्रमें और पुरुषोत्तमतीर्थमें भी सदैव समुद्र-स्नानका विधान है। इन तीर्थोंके अतिरिक्त और कहीं बिना पर्वके समुद्रके जलका स्पर्श नहीं करे। सीता और लक्ष्मणके साथ भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने यहाँ सब देवताओं, पितरों और मुनियोंके सुनते हुए यह प्रतिज्ञा की थी—'जो मनुष्य यहाँ मेरे द्वारा निर्मित सेतुमें स्नान करेंगे, वे यहाँ मेरे प्रसादसे फिर जन्म नहीं ग्रहण करेंगे। मेरे सेतुके दर्शनमात्रसे सब पाप नष्ट हो जाते हैं।' रामसेतुमें रक्षाके लिये भगवान् महाविष्णु सेतुमाधव नामसे प्रसिद्ध होकर निवास करते हैं। माघके महीनेमें जब सूर्यनारायण श्रवण नक्षत्रमें स्थित हों, तब रविवारके दिन सूर्यके अर्धोदय कालमें यदि नाग-करण रहित

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

अमावास्या हो, साथ ही व्यतीपात योग भी हो, तो उस समय वह अर्धोदययोग पुण्यदायक माना गया है। उस योगमें सेतुतीर्थमें किया हुआ स्नान सायुज्य मुक्तिका कारण है। पूर्वोक्त योगोंमेंसे यदि एक-एक भी मिल जाय तो वह स्नान, दान, जप और पूजनसे मोक्षदायक होता है। फिर तिथि, वार, नक्षत्र, योग और संक्रान्ति—ये पाँचों मिल जायँ तब तो पुण्यके विषयमें कहना ही क्या है? नक्षत्रोंमें श्रवण, तिथियोंमें अमावास्या, योगोंमें व्यतीपात और दिनोंमें रविवार यहाँके लिये श्रेष्ठ हैं। मकरराशिमें सूर्यके स्थित होनेपर यदि पूर्वोक्त चारोंका योग हो तो उस समय जो मनुष्य सेतुतीर्थमें स्नान करता है, वह मानव फिर कभी माताके गर्भमें नहीं जाता, अपितु सायुज्य मोक्षको पा लेता है। इस प्रकार उक्त महोदयकारक काल पुण्यकाल बताया गया है। इन पुण्य समयोंमें सेतुतीर्थके भीतर दानका विधान है।

जिस ब्राह्मणमें सदाचार, तप, वेद, वेदान्त-श्रवण, शिव-विष्णु आदिकी पूजा तथा पुराणार्थ-प्रवचनकी शक्ति हो, वह दानका उत्तम पात्र बताया गया है। यदि सेतुतीर्थमें सुपात्र ब्राह्मण मिल जाय तो उसीको दान देना चाहिये। फलको चाहनेवाले पुरुषोंके लिये उचित है कि वे अधम पात्रके लिये दान न दें।

एक समय राजा दिलीपने श्रीवसिष्ठजीसे पूछा—पुरोहितजी! दान किसको देने चाहिये? यह यथार्थ रूपसे बतलाइये।

वसिष्ठजी बोले—वैदिक आचारके पालनमें लगा हुआ ब्राह्मण समस्त दानपात्रोंमें सर्वोत्तम है। वेद-पुराणोंके मन्त्र, शिव-विष्णु आदिका पूजन, वर्णाश्रमधर्मोंका अनुष्ठान—ये सब जिसमें सदा विद्यमान हों तथा जो दरिद्र और कुटुम्बी हो, वह दानका श्रेष्ठ पात्र कहलाता है। उस सत्पात्रको दिया हुआ दान धर्म, अर्थ, काम और मोक्षका साधक होता है। पुण्यतीर्थोंमें विशेषतः सत्पात्रको दिया हुआ दान हितकारक होता है। दुष्ट पात्रको दान देनेसे नाना प्रकारके दोष प्राप्त होते हैं, अतः सब प्रकारके यत्न करके सत्पात्रको दान देना चाहिये। सत्पात्र तीर्थमें उपस्थित न हो तो किसी भी सत्पात्रको देनेका संकल्प करके तीर्थमें जल छोड़ देना चाहिये। यदि वह सत्पात्र जीवित न हो तो संकल्पित वस्तु उसके पुत्रको देनी चाहिये, परंतु तीर्थमें अधम पात्रको दान कदापि नहीं देना चाहिये।

श्रीसूतजी कहते हैं—वसिष्ठजीके ऐसा कहनेपर राजा दिलीपने तबसे सदा सत्पात्रको ही उत्तम दान दिया। अयोध्या, दण्डकारण्य, विरूपाक्ष, वेंकटाचल, शालग्राम, प्रयाग, कांची, द्वारका, मदुरा, पद्मनाभ, काशी विश्वनाथपुरी, सब नदियाँ, समुद्र तथा भास्कर पर्वत—इन क्षेत्रोंमें मुण्डन और उपवास आवश्यक बताया गया है। जो मनुष्य मुण्डन और उपवास न करके अपने घरको चला जाता है, उसके साथ ही उसके पातक भी उसके घर लौट जाते हैं। गन्धमादन पर्वतपर जो चौबीस तीर्थ हैं, उनमेंसे लक्ष्मणतीर्थमें मुनियोंने मुण्डन करानेका आदेश दिया है। लक्ष्मणतीर्थके तटपर केवल सिरके बाल बनवाने चाहिये। इस प्रकार सेतुमें सदा अर्धोदय योगमें स्नान करना चाहिये। सेतुमें अर्धोदयके समय अर्धोदय नामसे प्रसिद्ध निर्मल भगवान् जगन्नाथका पूजन करे। उससे श्रीविष्णु प्रसन्न होते हैं।

तत्पश्चात् निम्नांकित मन्त्र पढ़कर सूर्य और चन्द्रमाको अर्घ्य दे—

दिवाकर नमस्तेऽस्तु तेजोराशे जगत्पते।
अत्रिगोत्रसमुत्पन्न लक्ष्मीदेव्याः सहोदर॥
अर्घ्यं गृहाण भगवन् सुधाकुम्भ नमोऽस्तु ते।

'सम्पूर्ण जगत्के स्वामी तेजोराशि दिवाकर! आपको नमस्कार है। लक्ष्मीदेवीके सहोदर सुधा-कलशरूप भगवन् चन्द्रदेव! आप अत्रिगोत्रमें

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

उत्पन्न हुए हैं, आपको नमस्कार है। यह अर्घ्य स्वीकार करें।'

व्यतीपात योगके लिये अर्घ्यदानका मन्त्र

व्यतीपात महायोगिन् महापातकनाशन।
सहस्रबाहो सर्वात्मन् गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते॥

'महापातकोंका नाश करनेवाली महायोगी व्यतीपात! सहस्रबाहो! सर्वात्मन्! आपको नमस्कार है। यह अर्घ्य ग्रहण करें।'

तिथि, वार, नक्षत्रके स्वामीको अर्घ्यदान-मन्त्र

तिथिनक्षत्रवाराणामधीश परमेश्वर।
मासरूप गृहाणार्घ्यं कालरूप नमोऽस्तु ते॥

'तिथि, नक्षत्र और दिनोंके अधीश्वर! मासरूप और कालरूप परमेश्वर! आपको नमस्कार है। यह अर्घ्य ग्रहण कीजिये।'

इस प्रकार पृथक्-पृथक् मन्त्रोंसे अर्धोदय कालमें अर्घ्य देकर चौदह, बारह, आठ, सात, छः अथवा पाँच ब्राह्मणोंको अपनी शक्तिके अनुसार अन्न-पान आदिसे पूजित करे। तत्पश्चात् भगवान् जगन्नाथ, चन्द्रमा, सूर्य, व्यतीपात एवं भगवान् विष्णुकी इस प्रकार प्रार्थना करे—'जगन्नाथ! केशव! श्रवण नक्षत्र, वामनावतारके समय आपके जन्म-समय जन्मनक्षत्र रहा है, इसमें मैंने याचकोंको जो कुछ दिया है, वह आपके लिये अक्षय हो। देवताओंको अमृत प्रदान करनेवाले रोहिणीवल्लभ कलाशेष नक्षत्राधिपते! आपको नमस्कार है। दीनानाथ! जगन्नाथ! कालनाथ! कृपानिधान! सूर्यदेव! आपके युगल चरणारविन्दोंमें मेरी अविचल भक्ति हो। चन्द्रमा और सूर्यके पुत्र व्यतीपात! आपको नमस्कार है। आपकी उपस्थितिमें मैंने जो दान आदि कर्म किया है, वह अक्षय हो। भगवान् वासुदेव! जनार्दन! आप याचकोंके लिये कल्पवृक्ष हैं। मास, ऋतु, अयन और काल, सबके स्वामी हैं। हरे! मेरे पापोंको शान्त कीजिये।'

इस प्रकार पूजन और प्रार्थना करके श्राद्ध आरम्भ करे। अपनी रुचिके अनुसार हिरण्यश्राद्ध[१], आमश्राद्ध[२], अथवा पाकश्राद्ध[३] करे। उसके बाद पार्वणश्राद्ध भी करे। स्नानकालमें 'सेतु' 'सेतु' इस नामका उच्चस्वरसे उच्चारण करनेपर मनुष्योंके करोड़ों पातक तत्काल नष्ट हो जाते हैं और वे भगवान् विष्णुके परमपदको प्राप्त होते हैं। रामसेतु, धनुष्कोटि, राम, सीता और लक्ष्मण, रामेश्वर, हनुमान्, सुग्रीव आदि वानर, विभीषण, नारद, विश्वामित्र, अगस्त्य, वसिष्ठ, वामदेव, जाबालि तथा कश्यप—इन सबका स्नानकालमें चिन्तन करनेवाला रामभक्त या अन्य पुरुष सब दुःखोंसे छूट जाता और परमपदको प्राप्त होता है। सत्यक्षेत्र, हरिक्षेत्र, कृष्णक्षेत्र, नैमिषक्षेत्र, शालग्रामतीर्थ, बदरिकाश्रम, हस्तिशैल (कालहस्ती), वृषाचल, शेषाद्रि, चित्रकूट, लक्ष्मीक्षेत्र, कुरंगक्षेत्र, कांची, कुम्भकोण, मोहिनीपुर, इन्द्राचल, श्वेताचल, पुण्यमय महास्थल पद्मनाभ, फुल्लग्राम, घटिकाद्रि, सारक्षेत्र, हरिस्थल, श्रीनिवासक्षेत्र, भक्तनाथ-महास्थल, अलिन्द नामक महाक्षेत्र, शुकक्षेत्र, वारुणक्षेत्र, मथुरा, श्रीगोष्ठी, पुरुषोत्तम, श्रीरंगक्षेत्र पुण्डरीकाक्ष तथा अन्य वैष्णवस्थलोंमें स्नान करनेसे जो पाप नष्ट होते हैं, वे सब केवल सेतुतीर्थमें स्नान करनेसे निश्चय ही नष्ट हो जाते हैं।

जो प्रातःकाल जलाशयमें जाकर स्नान और आचमन करके शुद्धचित्त हो प्रसन्न मनसे सन्ध्योपासनपूर्वक वेदमाता गायत्रीकी उपासना नहीं करता अथवा जो पापसे दूषित अन्तःकरणवाले मनुष्य आलस्य छोड़कर सायं, प्रातः एवं मध्याह्न-

१- श्राद्धमें प्रत्येक अवसरपर जो अन्न आदि सामग्री अपेक्षित होती है, उसकी पूर्ति तथा श्राद्ध-प्रतिष्ठाके लिये निष्क्रयरूपसे सुवर्ण दक्षिणामात्र दे देना हिरण्यश्राद्ध है।

२- कच्चा अन्न संकल्प करके श्राद्धमें दिया जाय तो वह आमश्राद्ध है।

३- जिसमें पाक बनाकर उसका पिण्ड दिया जाय और ब्राह्मणोंको पक्वान्न भोजन कराया जाय, वह पाकश्राद्ध कहलाता है।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

कालकी सन्ध्या नहीं करते, ब्रह्मयज्ञ, बलिवैश्वदेव और दोपहरके समय अतिथिपूजासे मुँह मोड़ते हैं, इसी प्रकार जो सायंकालमें भी अतिथियोंका उनकी इच्छाके अनुरूप सत्कार नहीं करते, उन सबके उन-उन कर्मोंके त्यागसे होनेवाले समस्त पाप धनुष्कोटिमें स्नान करनेसे नष्ट हो जाते हैं। जो मनुष्य मध्याह्नकालमें संन्यासियोंको भिक्षा नहीं देते, जो कुत्सित बुद्धिवाले विप्र अपने पढ़े हुए तीनों वेदोंको भूल जाते अथवा वेद और वेदांगोंका अध्ययन नहीं करते, प्रत्येक वर्षमें माता-पिताका श्राद्ध नहीं करते तथा जो लोभवश महालयश्राद्ध, नित्यश्राद्ध, अष्टकाश्राद्ध और अन्य नैमित्तिक श्राद्धोंसे जी चुराते हैं, उनके भी पातक धनुष्कोटिमें नहानेसे दूर हो जाते हैं। कोई दुराचारी रहा हो अथवा उत्तम आचरणवाला हो, यदि वह धनुष्कोटि तीर्थका सेवन करता है, तो उसके संसारबन्धनका नाश और पुनर्जन्मका अभाव हो जाता है। जो संसारसमुद्रसे पार होना चाहता हो, उसे शीघ्र ही श्रीरामचन्द्रजीके धनुष्कोटिमें जाना चाहिये। मुनीश्वरो! तुम भी मुक्तिकी सिद्धिके लिये श्रीरामचन्द्रजीकी धनुष्कोटिमें जाओ।

विप्रवरो! इस प्रकार तुमसे मैंने सेतुतीर्थके उत्तम माहात्म्यका वर्णन किया। जो मनुष्य एकाग्रचित्त होकर इस पवित्र माहात्म्यको पढ़ता अथवा सुनता है, वह अग्निष्टोम आदि यज्ञोंका पूर्ण फल पाता है। जो इसका दो बार पाठ या श्रवण करता है, वह श्रेष्ठ विमानपर आरूढ़ हो भगवान् शिवके समीप जाता है। जो तीन बार एकाग्रचित्तसे इसका पाठ या श्रवण करता है, वह शिवजीको प्रसन्न करके उनका सारूप्य प्राप्त कर लेता है। जो बार-बार इस उत्तम माहात्म्यको पढ़ता अथवा सुनता है, वह गिरिजापति महादेवजीका सायुज्य प्राप्त करता है। जो मनुष्य प्रतिदिन इस माहात्म्यका एक श्लोक, आधा श्लोक, एक चरण, एक पद—अथवा एक अक्षर भी पढ़ता है, उसका उस दिनका किया हुआ पाप उसी क्षण नष्ट हो जाता है। सेतुके मध्यमें विद्यमान अन्य तीर्थोंमें स्नान करनेसे जो फल होता है, वह इस माहात्म्यके पढ़ने और सुननेसे प्राप्त हो जाता है। जिसके घरमें यह माहात्म्य हस्तलिखित पुस्तकके रूपमें विद्यमान है, वहाँ भूत, वेतालादिसे भय नहीं प्राप्त होता। शनैश्चर, मंगल आदि क्रूर ग्रहोंकी पीड़ा भी नहीं रहती। यह पवित्र एवं उत्तम माहात्म्य जिसके घरमें विद्यमान हो, उसके घरको रामसेतु तीर्थ जानना चाहिये। इस पुण्यदायक माहात्म्यको मठ अथवा देवालयमें पढ़ना चाहिये। नदी और सरोवरके किनारे अथवा पवित्र वनभूमि या श्रोत्रियोंके घरपर इसका पाठ करना चाहिये। विषुवयोगमें, अयनारम्भके दिन, पुण्यमय एकादशी तिथिको तथा अष्टमी और चतुर्दशीको इस माहात्म्यका विशेषरूपसे पाठ करना चाहिये। मनुष्य मन और इन्द्रियोंको संयममें रखकर ही इस माहात्म्यको पढ़े तथा श्रोता भी शौच-सन्तोषादि नियमोंसे युक्त होकर ही इस उत्तम प्रसंगको सुने। यह पवित्र माहात्म्य वेदार्थोंके समावेशसे विस्तारको प्राप्त हुआ है। यह सब पापोंका नाश करनेवाला है। स्मृतिकारोंको यह मान्य है और मुनिवर व्यासजीको भी अत्यन्त प्रिय है। अपना कल्याण चाहनेवाले पुरुषको इसका श्रवण और पाठ करना चाहिये। सुनानेवाले आचार्यको भी अपनी-अपनी शक्तिके अनुसार जो कुछ बन सके, सुवर्ण आदि देना चाहिये; क्योंकि कथावाचकके पूजित होनेपर ब्रह्मा, विष्णु और शिव—तीनों देवता पूजित होते हैं और उनके पूजित होनेपर तीनों लोक पूजित हो जाते हैं। दशरथनन्दन श्रीरामके रूपमें भूतलपर अवतीर्ण हुए साक्षात् श्रीहरि

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

सीता और लक्ष्मणके साथ कृपा करके इस महावाक्यके वक्ता और श्रोताओंको इहलोकमें भोग और परलोकमें मुक्ति प्रदान करते हैं।

नैमिषारण्यनिवासियो! तुमलोगोंने मुझसे इस वेदसम्मत गूढ़ माहात्म्यका भलीभाँति श्रवण किया। अब प्रतिदिन नियमपूर्वक रहकर आदरके साथ इस माहात्म्यको पढ़ो और अपने नियमपरायण शिष्योंको निरन्तर पढ़ाओ। ऐसा कहकर सूतजी रोमांचित शरीर होकर अपने गुरु श्रीव्यासजीका मन-ही-मन स्मरण करते हुए आँसू बहाने और नृत्य करने लगे। इसी बीचमें महाविद्वान् पराशरनन्दन महामुनि व्यास शिष्यपर अनुग्रह करनेकी इच्छासे वहाँ शीघ्र प्रकट हो गये। सत्यवतीनन्दन व्यासजीको वहाँ आया हुआ देख सूतजीने नैमिषारण्यवासी समस्त मुनियोंके साथ उनके चरणारविन्दोंमें दण्डकी भाँति गिरकर साष्टांग प्रणाम किया और आनन्दके आँसू बहाने लगे। चरणोंमें पड़े हुए अपने प्यारे शिष्यको व्यासजीने दोनों हाथोंसे उठाया तथा आशीर्वादसे प्रसन्न करते हुए बारंबार हृदयसे लगाया। तत्पश्चात् मुनियोंके लाये हुए उत्तम आसनपर महातेजस्वी व्यासजी बैठे। उस समय उन्होंने शौनकादि मुनियोंसे कहा—'मुनिवरो! मैंने इस समय यह जान लिया था कि मेरे शिष्य सूतने तुमसे सेतुतीर्थका उत्तम माहात्म्य कहा है, जो बड़े-बड़े पातकोंका नाश करनेवाला है। यह माहात्म्य बड़ा ही महत्त्वपूर्ण है। सब पुराणोंमें यही मुझे अधिक प्रिय है। धर्मराज युधिष्ठिर मेरी आज्ञा मानकर अपने पुरोहित धौम्यसे प्रतिदिन यह माहात्म्य सुनते हैं। अतः तुम भी इस उत्तम सेतु-माहात्म्यको सदा पढ़ो, सुनो और अपने शिष्योंको पढ़ाओ।' व्यासजीका यह वचन सुनकर मुनियोंने 'बहुत अच्छा' कहकर उनकी आज्ञा शिरोधार्य की। तदनन्तर व्यासजी भी अपने शिष्य सूतजीको साथ ले मुनियोंसे पूछकर कैलास पर्वतको चले गये।

सेतु-माहात्म्य सम्पूर्ण।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

धर्मारण्य-माहात्म्य

धर्मकी तपस्यासे धर्मारण्यक्षेत्रकी प्रसिद्धि और उसका माहात्म्य

तर्तुं संसृतिवारिधिं त्रिजगतां नौर्नाम यस्य प्रभो-
र्येनेदं सकलं विभाति सततं जातं स्थितं संसृतम्।
यश्चैतन्यघनप्रमाणविधुरो वेदान्तवेद्यो विभु-
स्तं वन्दे सहजप्रकाशममलं श्रीरामचन्द्रं परम्॥
दाराः पुत्रा धनं वा परिजनसहितो बन्धुवर्गः प्रियो वा
माता भ्राता पिता वा श्वशुरकुलजना भृत्य ऐश्वर्यवित्ते।
विद्या रूपं विमलभवनं यौवनं यौवतं वा
सर्वं व्यर्थं मरणसमये धर्म एकः सहायः॥

'जिन भगवान्‌का नाम तीनों लोकोंमें संसार-समुद्रसे पार होनेके लिये नौकारूप है, जिनसे उत्पन्न और पालित होकर यह सम्पूर्ण संसार सदैव शोभा पाता है, जो चैतन्यघनस्वरूप एवं प्रमाणसे परे हैं, वेदान्तशास्त्रके द्वारा जाननेके योग्य और सर्वत्र व्यापक हैं, उन सहज प्रकाशरूप निर्मल परमात्मा श्रीरामचन्द्रजीको मैं प्रणाम करता हूँ। स्त्री, पुत्र, धन, परिजन, भाई, बन्धु, प्रिय, सुहृद्, माता, पिता, भ्राता, श्वशुर-कुलके लोग, भृत्यवर्ग, ऐश्वर्य, धन, विद्या, रूप, उज्ज्वल भवन, जवानी और युवतियोंका समुदाय—ये सभी मृत्युकालमें व्यर्थ सिद्ध होते हैं। उस समय एकमात्र धर्म ही सहायक होता है।'

एक समय सूतजीको आते हुए देख नैमिषारण्यवासी शौनक आदि महर्षियोंने बड़े हर्षसे जाकर उन्हें सब ओरसे घेर लिया। फिर जब वे सभी तपस्वी महात्मा बैठ गये, तब उनके बताये हुए आसनपर लोमहर्षणकुमार सूतजी भी विनयपूर्वक विराजमान हुए। तब उन ऋषियोंने सूतजीसे कहा—'मुने! आप पापोंका नाश करनेवाली कोई पुण्यमयी कथा कहिये।'

सूतजी बोले—मैं श्रीसरस्वतीजी, गणेशजीके तथा सम्पूर्ण देवताओंके युगल चरणारविन्दोंको नमस्कार करके और सबके नियन्ता धर्मस्वरूप परमेश्वरके चरणोंमें मस्तक झुकाकर उन सबके प्रसादसे तीर्थोंके उत्तम फलका वर्णन करता हूँ। एक समयकी बात है, सत्यवतीनन्दन व्यासजी राजा युधिष्ठिरके दरबारमें आये। उनके आनेका समाचार सुनकर सबको बड़ा हर्ष हुआ। भीमसेन आदि सब भाई धर्मराज युधिष्ठिरके साथ उठकर खड़े हो गये। तदनन्तर युधिष्ठिरने सामने जाकर भाइयोंसहित उन्हें साष्टांग प्रणाम किया और विधिपूर्वक उनकी पूजा करके उन्हें सिंहासनपर बिठाकर उनका कुशल-मंगल पूछा। तब धर्मज्ञ व्यासजीने उनसे पवित्र एवं दिव्य कथा सुनायी। कथाके अन्तमें राजा युधिष्ठिरने मुनिश्रेष्ठ व्याससे इस प्रकार कहा—'ब्रह्मन्! आपके प्रसादसे मैंने बहुत-सी उत्तम कथाएँ सुनी हैं। इस समय मैं धर्मारण्यके उत्तम माहात्म्यकी कथा सुनना चाहता हूँ।'

व्यासजीने कहा—नृपश्रेष्ठ! धर्मारण्य अनेक प्रकारके वृक्षोंसे युक्त तथा भाँति-भाँतिकी लताओं और गुल्मोंसे सुशोभित है। वह सदैव पुण्यदायक है तथा निरन्तर फलोंसे भरा रहता है। वहाँ किसीका किसीसे भी वैर नहीं होता। धर्मारण्य सर्वथा निर्भय स्थान है। वहाँ गौ और व्याघ्र, चूहे और बिलाव साथ-साथ क्रीडा करते हैं। मेढक साँपके साथ खेलता है, मनुष्य राक्षसोंके साथ विहार करते हैं। धर्मारण्य महानन्दमय, दिव्य एवं पावनसे भी पावन है। स्वर्गमें देवतालोग धर्मारण्यनिवासियोंकी प्रशंसा करते हैं।

युधिष्ठिरने पूछा—मुने! देवताओंने उस क्षेत्रका नाम धर्मारण्य कब रखा?

व्यासजी बोले—नृपश्रेष्ठ! एक समय धर्मराजने बड़ी कठिन तपस्या की। तपस्यामें लगे हुए

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

धर्मराजको देखकर ब्रह्मा और इन्द्र आदि सब देवता कैलास पर्वतपर गये। वहाँ भगवान् शंकर भगवती उमादेवीके साथ पारिजात वृक्षकी छायामें बैठे थे। उनके पास पहुँचकर ब्रह्माजीने इस प्रकार स्तवन किया—'नीलकण्ठ! आपके अनन्तरूप हैं, आपको बार-बार नमस्कार है। आपके इस स्वरूपका यथावत् ज्ञान किसीको नहीं है, आप कैवल्य एवं अमृतस्वरूप हैं, आपको नमस्कार है। देवता जिसका अन्त नहीं जानते, उन भगवान् शिवको नमस्कार है, नमस्कार है। वाणी जिनकी प्रशंसा (गुणगान) करनेमें असमर्थ है, उन चिदात्मा शिवको नमस्कार है। योगी समाधिमें निश्चल होकर अपने हृदयकमलके कोषमें जिनके ज्योतिर्मय स्वरूपका दर्शन करते हैं, उन श्रीब्रह्मको नमस्कार है। जो कालसे परे, कालस्वरूप, स्वेच्छासे पुरुषरूप धारण करनेवाले, त्रिगुणस्वरूप तथा प्रकृतिरूप हैं, उन भगवान् शंकरको नमस्कार है। प्रभो! आप भक्तजनोंपर कृपा करके स्वेच्छासे सगुण रूप धारण करते हैं, आपको नमस्कार है। भगवन्! आपके मनसे चन्द्रमा और नेत्रोंसे सूर्यकी उत्पत्ति हुई है। देव! आप ही सब कुछ हैं, आपमें ही सबकी स्थिति है। इस लोकमें सब प्रकारकी स्तुतियोंके द्वारा स्तवन करने योग्य आप ही हैं। ईश्वर! आपके द्वारा यह सम्पूर्ण विश्वप्रपंच व्याप्त है, आपको पुनः-पुनः नमस्कार है।

इस प्रकार महादेवजीकी स्तुति करके ब्रह्मा आदि देवता उनके आगे दण्डकी भाँति पृथ्वीपर गिर पड़े। तब भगवान् शंकरने उनसे कहा—'देवताओ! तुम क्या चाहते हो?'

ब्रह्माजीने कहा—सबके दुःखोंका नाश करनेवाले महादेव! धर्मात्मा धर्मराजने बड़ी दुःसह तपस्या की है। न जाने वे देवताओंका कौन-सा उत्तम स्थान लेना चाहते हैं, यही सोचकर इन्द्र आदि सब देवता उनकी तपस्यासे थर्रा उठे हैं। देवेश! आप उन्हें तपस्यासे उठाइये।

महादेवजी बोले—देवताओ! मैं सच कहता हूँ, तुम्हें धर्मराजसे कोई भय नहीं है।

यह सुनकर सब देवता उठे और भगवान् शिवकी परिक्रमा एवं बारंबार नमस्कार करके अपने-अपने स्थानको चले गये। परंतु इन्द्रको नींद नहीं आयी, उनकी सुख-शान्ति खो गयी। वे मन-ही-मन सोचने लगे, 'मेरे लिये यह बड़ा भारी विघ्न उपस्थित हुआ। धर्मराजने मेरा इन्द्रपद हड़प लेनेके लिये ही यह अत्यन्त दुष्कर तप प्रारम्भ किया है।' ऐसा विचार करते हुए इन्द्रने देवताओंसे कहा—'मैंने बहुत क्लेश उठाकर जिसे प्राप्त किया है, उसीको धर्मराज क्या मुझसे छीन लेना चाहते हैं?' यह सुनकर बृहस्पतिजी बोले—'इनकी तपस्यामें विघ्न डालनेके लिये वहाँ उर्वशी आदि अप्सराओंको भेजा जाय।' तब इन्द्रने अप्सराओंसे कहा—'तुम सब लोग शीघ्र धर्मारण्यको जाओ और जहाँ धर्मराज दुष्कर तपस्यामें संलग्न हैं, वहाँ पहुँचकर उन्हें इस प्रकार लुभाओ, जिससे वे तपस्यासे भ्रष्ट हो जायँ।' इन्द्रका यह वचन सुनकर वर्द्धिनी नामक अप्सराने कहा—'पाकशासन! मैं देवताओंके कार्यकी सिद्धिके लिये अपनी माया तथा रूपके बलसे पूरी चेष्टा करूँगी।' ऐसा कहकर वर्द्धिनी उस स्थानपर गयी, जहाँ धर्मराज तपस्या करते थे। वह अधिकाधिक वस्त्रों और आभूषणोंसे विभूषित हो कपोलपर रोलीकी बेंदी और नयनोंमें काजर लगा मनोहर रूप बनाकर उनके सामने गयी और सबके मनको लुभानेवाला नृत्य करने लगी। उस समय धर्मराजका मन सहसा क्षुब्ध-सा हो उठा। राजन्! भूतलमें नारीका योनिकुण्ड कुम्भीपाकके समान रचा गया है। वे रमणियाँ अपने नेत्ररूपी रज्जुसे दृढ़तापूर्वक बाँधकर मनस्वी पुरुषोंको नीचा दिखाती हैं। अज्ञानी पुरुषको अपने कुचरूपी महादण्डोंसे ताड़ित करके अचेत कर देतीं और शीघ्र ही उसे नरकमें गिरा देती हैं। तबतक ही मनकी स्थिरता, शास्त्रज्ञान तथा

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

सत्य आदि गुण सुरक्षित रहते हैं, जबतक कि सचेत पुरुषोंके आगे बिछाये हुए जालकी भाँति रूप-यौवनके मदसे मतवाली युवती नहीं आती है। तभीतक तपस्याकी वृद्धि होती है, तभीतक दान, दया और इन्द्रियसंयम सूझते हैं तथा तभीतक स्वाध्याय, सदाचार, पवित्रता, धैर्य और व्रतकी रक्षा होती है, जबतक कि मनुष्य भयभीत हरिणीकी भाँति चंचल लोचनोंवाली चपला तरुणीको नेत्रोंसे नहीं देखता है।

वर्द्धिनीने धर्मराजसे पूछा—प्रभो! समस्त चराचर जगत् धर्ममें ही स्थित है। वही साक्षात् धर्मरूप होकर आप यह दुष्कर तप क्यों कर रहे हैं?

यमराजने कहा—भामिनि! मैं भगवान् महेश्वरके स्वरूपका दर्शन करना चाहता हूँ। इसीलिये कठिन तपस्या कर रहा हूँ।

वर्द्धिनी बोली—धर्म! इस तपस्याके ही कारण इन्द्र आपसे भयभीत हो गये हैं। उन्हींसे प्रेरित होकर मैं यहाँ आपकी तपस्यामें विघ्न डालनेके लिये आयी हूँ।

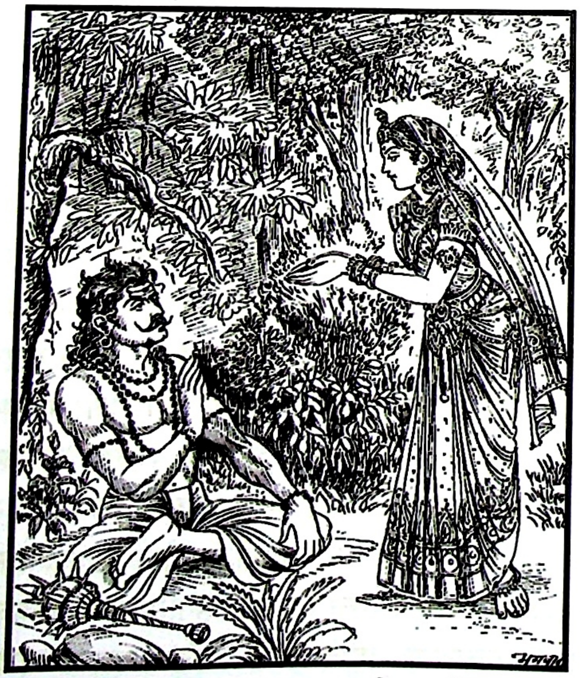

वर्द्धिनीके इस सत्य भाषणसे सूर्यनन्दन यम बहुत सन्तुष्ट हुए। उन्होंने वर्द्धिनीसे इस प्रकार कहा—'मैं समस्त पापकर्मा दुष्टात्मा प्राणियोंके लिये यमराज हूँ और सभी जितेन्द्रिय मनुष्योंके लिये धर्मस्वरूप हूँ। वही मैं तुम्हें दुर्लभ वर देता हूँ। तुम कोई मनोवांछित वर माँगो।'

वर्द्धिनी बोली—धर्मधारियोंमें श्रेष्ठ! मुझे लोकोंके हितके लिये इन्द्रलोकमें स्थिरतापूर्वक निवास प्रदान कीजिये।

यमराजने कहा—'एवमस्तु'। अब तुम शीघ्रतापूर्वक कोई दूसरा वर और माँगो।

वर्द्धिनी बोली—महामते! इस महाक्षेत्रमें इसी स्थानपर मेरे नामसे एक प्रसिद्ध तीर्थ हो, जो सब पापोंका नाश करनेवाला हो। उसमें किया हुआ दान, होम, तप और स्वाध्याय अक्षय हो।

'तथास्तु' कहकर भगवान् धर्मराज चुप हो गये। तब वर्द्धिनीने उनकी तीन बार परिक्रमा करके मस्तक नवाकर स्वर्गलोकको प्रस्थान किया। वहाँ जाकर वह देवराज इन्द्रसे इस प्रकार बोली—'देवेश! आप सूर्यनन्दन यमसे भय न कीजिये। वे यशके लिये तपस्या कर रहे हैं।' इतना कहकर वह इन्द्रको प्रणाम करके अपने स्थानको चली गयी। तदनन्तर धर्मराज विधिपूर्वक तपस्यामें स्थित हो गये। उनकी घोर तपस्या देखकर देवताओंकी प्रार्थनासे भगवान् शंकर वृषभपर आरूढ़ हो अस्त्र-शस्त्र एवं सुन्दर कवच धारण करके उस स्थानको गये, जहाँ धर्मराज तपस्यामें स्थित थे। वहाँ पहुँचकर महादेवजी बोले—'धर्म! तुम्हारी इस तपस्यासे मेरा चित्त बहुत सन्तुष्ट है। तुम कोई वर माँगो, वर माँगो, वर माँगो।'

इस प्रकार सम्भाषण करते हुए भगवान् महेश्वरको देखकर धर्मराज बाँबीसे उठकर खड़े हो गये और दोनों हाथ जोड़कर शुद्ध वचनोंद्वारा उन्होंने लोकनाथ शिवका इस प्रकार स्तवन किया—'भगवन्! आप सबपर शासन करनेवाले ईश्वर हैं, आपको नमस्कार है। योगरूपी आप परमेश्वरको

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

नमस्कार है। नीलकण्ठ! आपका स्वरूप तेजोमय है, आपको नमस्कार है, नमस्कार है। ध्यान करनेवाले मनुष्य आपके स्वरूपका जिस प्रकार चिन्तन करते हैं, उसके अनुरूप ही विग्रह धारण करके आप प्रकट होते हैं, आपको नमस्कार है। केवल भक्तिभावसे प्राप्त होनेवाले आप प्रभुको नमस्कार है। ब्रह्माजीके रूपमें आपको नमस्कार है। विष्णुरूपधारी प्रभो! आपको नमस्कार है। आप ही स्थूल और सूक्ष्म जगत् हैं, आपको नमस्कार है। अणुरूपधारी आपको नमस्कार है। कामरूपमें प्रकट हुए अथवा इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले आपको नमस्कार है। आप ही सृष्टि, पालन और संहार करनेवाले हैं, आपको नमस्कार है। आप नित्य, सौम्य, मृड (सुखस्वरूप) एवं श्रीहरि हैं, आपको बारंबार नमस्कार है, आप ही सब ओरसे तपानेवाले सूर्य तथा शीतल किरणोंवाले चन्द्रमा हैं, आपको नमस्कार है, नमस्कार है। सृष्टिस्वरूप! आपको नमस्कार है। लोकपाल! आपको नमस्कार है। आप रुद्र, भीम एवं शान्तस्वरूप हैं, आपको नमस्कार है। आपके रूप अनन्त हैं, आप सम्पूर्ण विश्वरूप हैं, आपको नमस्कार है। चन्द्रशेखर! आपके सब अंगोंमें भस्म लगा हुआ है, आपको नमस्कार है, नमस्कार है। आपके पाँच मुख एवं तीन नेत्र हैं, आपको बार-बार नमस्कार है। सर्प आपके आभूषण हैं तथा आप दिशाओंको ही वस्त्रके रूपमें धारण करते हैं, आप अन्धकासुरका विनाश करनेवाले और दक्षके पापको हर लेनेवाले हैं, आपको नमस्कार है। त्रिपुरारे! आपने कामदेवको भस्म किया है, आपको नमस्कार है। मेरे द्वारा कहे हुए इन चालीस नामोंका जो पाठ करे और पवित्र होकर तीनों काल इसको पढ़े अथवा सुने, वह सब पापोंसे छूटकर कैलाशधामको जाय।'

इस प्रकार धर्मराजने प्रणाम करके जब बड़ी भक्तिसे भगवान् शिवका स्तवन किया, तब शिवजीने कहा—'महाभाग! तुम्हारे मनमें जो कोई अभिलाषा हो, उसके अनुसार कोई वर माँगो।'

यमराजने कहा—देव! शंकर! यदि मुझे आप मनोवांछित वर देते हैं तो इस महाक्षेत्रमें आप मेरे नामसे प्रसिद्ध होकर निवास कीजिये। यह स्थान धर्मारण्यके नामसे तीनों लोकोंमें प्रसिद्धि प्राप्त करे।

महादेवजी बोले—धर्मराज! यह स्थान प्रत्येक युगमें सदा धर्मारण्यके नामसे विख्यात होगा। तुम्हारे मनमें और भी कोई इच्छा हो तो बताओ, उसे भी पूर्ण करूँगा।

धर्मराजने कहा—भगवन्! दो योजन विस्तारवाला यह उत्तम स्थान मेरे नामसे प्रसिद्ध तीर्थ हो। यह समस्त देहधारियोंके लिये पावन एवं सनातन मोक्षस्थान हो।

महादेवजी बोले—'एवमस्तु' एक अंशसे इस तीर्थमें मेरी भी स्थिति होगी। तुम्हारे इस निर्मल स्थानको मैं कभी नहीं छोड़ूँगा। यहाँ मेरे नामसे विश्वेश्वर नामक महालिंग प्रकट होगा।

ऐसा कहकर महादेवजी वहीं अन्तर्धान हो गये। तत्पश्चात् वहाँ एक अद्भुत लिंग प्रकट हुआ। धर्मके द्वारा स्थापित किया हुआ वह लिंग धर्मेश्वरके नामसे प्रसिद्ध हुआ। उसका स्मरण और पूजन करनेसे मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। धर्मराजने वहींपर एक धर्मवापीका निर्माण किया, जो बड़ी मनोरम है। उसमें स्नान और जलपान करके मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। जो मनुष्य व्याधिदोषके नाश और क्लेशकी शान्तिके लिये उस धर्मवापीमें स्नान करके यमतर्पण करता है, उसको कोई उपद्रव नहीं होता। अँतरिया, तिजारी, चार दिनोंपर होनेवाला ज्वर, किसी नियत समयपर होनेवाला ज्वर तथा शीतज्वर आदि जितने भी रोग हैं, सभी उस मनुष्यको पीड़ा नहीं देते। जो मानव उस परम पुण्यमयी

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

धर्मवापीमें स्नान करके शमीके पत्तेके बराबर भी पिण्डदान करता है, वह गर्भवासको नहीं प्राप्त होता है तथा महाभयंकर कुम्भीपाक, रौरव एवं अन्धतामिस्र आदि नरकसे भी छुटकारा पा जाता है। धर्मवापीमें तर्पण करनेसे बर्हिषद्, अग्निष्वात्त, आज्यप और सोमप नामवाले पितर उत्तम तृप्तिको प्राप्त होते हैं। जो मायासे मोहित होकर इस क्षेत्रमें अत्यन्त दूषित परस्त्रीगमन तथा सुवर्णकी चोरी आदि पाप करते हैं, वे सभी नरकमें पड़ते हैं। दूसरे क्षेत्रमें किया हुआ पाप धर्मारण्यमें नष्ट होता है; किंतु धर्मारण्यमें किया हुआ पाप वज्रलेप हो जाता है। पुण्य, पाप या जो कुछ भी शुभाशुभ कर्म होता है, वह सब सौ वर्षतक यहाँ नित्य बढ़ता रहता है। मनमें कामना रखनेवालोंके लिये यह पवित्र तीर्थ कामदायक है, योगियोंके लिये मुक्तिदायक है तथा सिद्धोंके लिये सदैव सिद्धिदायक बताया गया है।

सदाचार—शौच, स्नान, सन्ध्या, तर्पण, बलिवैश्वदेव आदिका महत्त्व

व्यासजी कहते हैं—धर्मारण्यमें शुद्ध कुलमें उत्पन्न हुए अठारह हजार ब्राह्मण रहते हैं, जो ब्रह्मा, विष्णु और शिवजीके द्वारा उत्पन्न किये गये हैं। वे सभी सदाचारी, पवित्र तथा ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ हैं। उनके दर्शनमात्रसे मनुष्य बड़े-बड़े पापोंसे मुक्त हो जाता है। चार प्रकारके जीवोंमें प्राणधारी अति उत्तम हैं। प्राणधारियोंमें भी जो बुद्धिजीवी हैं, वे सभी श्रेष्ठ माने गये हैं। बुद्धिजीवी प्राणियोंमें भी मनुष्य श्रेष्ठ हैं। मनुष्योंसे भी ब्राह्मण, उनसे भी विद्वान्, विद्वानोंसे भी पवित्र बुद्धिवाले, उनसे भी कर्मठ, कर्मठोंसे भी ब्रह्मपरायण पुरुष सबसे श्रेष्ठ है। युधिष्ठिर! ब्रह्मपरायण पुरुषोंसे श्रेष्ठ तीनों लोकोंमें कोई नहीं है। ब्रह्माजीने ब्राह्मणको सब प्राणियोंका स्वामी बनाया है। इसलिये संसारमें जो कुछ है, सबका योग्य अधिकारी ब्राह्मण ही है। सदाचारी ब्राह्मण ही सब कार्यों एवं अधिकारोंके योग्य होता है। जो आचारसे भ्रष्ट हो गया है, वह योग्य नहीं है। इसलिये ब्राह्मणको सदा आचारवान् होना चाहिये। राग और द्वेषसे रहित उत्तम बुद्धिवाले महापुरुष जिसका पालन करते हैं, उसीको विद्वानोंने धर्ममूलक सदाचार कहा है। जो अच्छे लक्षणोंसे हीन है, उस मनुष्यको भी चाहिये कि वह श्रद्धालु एवं अदोषदर्शी होकर भलीभाँति सदाचारका पालन करे; ऐसा करनेसे वह सौ वर्षोंतक (आयुभर) जीवित रह सकता है। अपने-अपने वर्णाश्रमोचित कर्मोंमें वेदों और स्मृतियोंद्वारा प्रतिपादित धर्ममूलक सदाचारका आलस्य छोड़कर सेवन करे। दुराचारी मनुष्य संसारमें निन्दनीय होता है। साथ ही वह अनेक प्रकारके रोगोंसे ग्रस्त हो अल्पायु तथा सदैव अतिशय दुःखका भागी होता है। जिस कर्मके करते समय अन्तरात्मामें सहज प्रसाद—निर्मलताका उदय होता है, उसी कर्मको करना चाहिये। इसके विपरीत कर्म कभी न करे। धर्मकी इच्छा रखनेवाले पुरुषको यम-नियमोंके पालनके लिये ही विशेष यत्न करना चाहिये। सत्य, क्षमा, सरलता, ध्यान, क्रूरताका अभाव, हिंसाका सर्वथा त्याग, मन और इन्द्रियोंका संयम, सदा प्रसन्न रहना, मधुर बर्ताव करना और सबके प्रति कोमल भाव रखना—ये दस 'यम' कहे गये हैं। शौच, स्नान, तप, दान, मौन, यज्ञ, स्वाध्याय, व्रत, उपवास और उपस्थ-इन्द्रियका दमन—ये दस 'नियम' बताये गये हैं*। काम, क्रोध, मद, मोह, लोभ और मात्सर्य—इन

* सत्यं क्षमाऽऽर्जवं ध्यानमानृशंस्यमहिंसनम् । दमः प्रसादो माधुर्यं मृदुतेति यमा दश॥
शौचं स्नानं तपो दानं मौनेज्याध्ययनं व्रतम् । उपोषणोपस्थदण्डौ दशैते नियमाः स्मृताः॥
(स्क० पु०, ब्रा० ध० मा० ५। १९—२१)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

छः वैरियोंको जीतकर मनुष्य सर्वत्र विजयी होता है। दूसरोंको कष्ट न देते हुए परलोकमें सहायता देनेवाले धर्मका धीरे-धीरे संग्रह करे। यदि धर्मकी भलीभाँति रक्षा की जाय तो वही परलोकमें सहायक होता है। पिता, माता, पुत्र, भाई, स्त्री और बन्धुजनोंसे भी बढ़कर मनुष्यका सहायक धर्म ही है। जीव अकेला ही जन्म लेता, अकेला मरता, अकेला पुण्य भोगता और अकेला ही पापका उपभोग करता है। मृत्यु हो जानेपर इस शरीरको काठ और मिट्टीके ढेलेकी भाँति त्यागकर भाई-बन्धु मुँह फेर लेते हैं। परलोकमें जाते हुए जीवके साथ केवल उसका धर्म ही जाता है*। अतः धर्मका संग्रह अवश्य करे। धर्म ही इस लोक और परलोकमें सहायक होता है। धर्मकी सहायता पाकर जीव नरकके दुस्तर अन्धकारसे पार हो जाता है। बुद्धिमान् पुरुष सदा उत्तम-उत्तम पुरुषोंके साथ सम्बन्ध जोड़े। अधम कोटिके मनुष्योंका संग छोड़कर अपने कुलको उन्नतिशील बनावे। सद्धर्मके पालनसे ब्राह्मण श्रेष्ठताको प्राप्त होता है। जो स्वाध्याय नहीं करता, सदाचारका उल्लंघन करता है, आलसी और दूषित अन्न खानेवाला है, ऐसे ब्राह्मणको यमराज कष्ट देते हैं। अतः ब्राह्मण प्रयत्नपूर्वक सदाचारका पालन करे।

रात्रिके अन्तमें आधे पहरका समय ब्राह्ममुहूर्त कहलाता है। उस समय उठकर विद्वान् पुरुष सर्वदा अपने हितका चिन्तन करे। फिर गणेश, शिव, पार्वती, श्रीरंग (विष्णु), लक्ष्मी, ब्रह्मा, इन्द्रादि देवता, वसिष्ठ आदि मुनि, गंगा आदि नदी, श्रीशैल आदि पर्वत, क्षीरसागर आदि समुद्र, मानसरोवर आदि तड़ाग, कामधेनु आदि गौ तथा प्रह्लाद आदि भगवद्भक्त पुरुषोंका स्मरण करे। माताके चरण सब तीर्थोंसे भी अधिक उत्तम हैं, अतः उनका स्मरण करके पिता और गुरुका भी हृदयमें ध्यान करे। तत्पश्चात् आवश्यक कार्य (शौच आदि) करनेके लिये नैर्ऋत्य कोणकी ओर जाय। गाँवसे सौ धनुष दूर जाना चाहिये और नगरसे चार सौ धनुष। वहाँ तिनकेसे पृथ्वीको आच्छादित करके अपने मस्तकको भी कपड़ेसे अच्छी तरह ढक ले। यज्ञोपवीतको कानपर चढ़ाकर उत्तरकी ओर मुँह किये हुए मौनभावसे बैठकर मल-मूत्रका त्याग करे। उत्तराभिमुख बैठनेका नियम दिनमें और दोनों सन्ध्याओंके समय है। रात्रिमें शौच आदिके लिये दक्षिण दिशाकी ओर मुँह करके बैठना चाहिये। खड़े होकर मल-मूत्रका त्याग न करे। इस कार्यमें जल्दबाजी भी न करे। ब्राह्मण, गौ, अग्नि तथा आती हुई वायुकी ओर मुँह करके भी शौचके लिये न बैठे। फालसे जोती हुई भूमिमें, सड़कपर और उठने-बैठनेके योग्य भूमिमें मल-मूत्रका त्याग न करे। मलोत्सर्गके समय चारों दिशाओंकी ओर न देखे। ग्रह और नक्षत्रोंकी ओर दृष्टि न डाले। ऊपर आकाशकी ओर न ताके। मलकी ओर भी दृष्टिपात न करे। मलत्यागके पश्चात् मनुष्य कंकड़ आदिसे रहित चिकनी मिट्टी ले। वह मिट्टी चूहोंकी खोदी हुई या शौचसे बची हुई या केश आदिसे मिली हुई नहीं होनी चाहिये। बायें हाथसे गुदामें एक बार मिट्टी लगाकर उसे जलसे धो डाले। इसी प्रकार पाँच बार मिट्टी लगाकर गुदाको धोये। एक-एक बार दोनों पैरोंमें मिट्टी लगाकर धोये और दोनों हाथोंको तीन-तीन बार मृत्तिकालेपनपूर्वक धोये। गृहस्थ पुरुष इसी प्रकार शौचकी शुद्धि करे।

* जायते चैकलः प्राणी म्रियते च तथैकलः। एकलः सुकृतं भुङ्क्ते भुङ्क्ते दुष्कृतमेकलः॥
देहे पञ्चत्वमापन्ने त्यक्त्वैकं काष्ठलोष्टवत्। बान्धवा विमुखा यान्ति धर्मो यान्तमनुव्रजेत्॥
(स्क० पु०, ब्रा० ध० मा० ५। २४—२६)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

जबतक मलका लेप और दुर्गन्ध मिट न जाय, तबतक उसे धोना ही चाहिये। ब्रह्मचर्य आदि तीन आश्रमोंमें क्रमशः दुगुने शौचका विधान है। दिनमें जो शौचका विधान है, उससे आधा रात्रिमें करना चाहिये। पराये गाँवमें उससे आधा और मार्गमें उससे भी आधे शौचका विधान है। रोगीके लिये उससे भी आधे शौचका नियम है। परंतु जब मनुष्य स्वस्थ हो जाय, तब शौचसम्बन्धी नियमोंके पूर्ण पालनमें कमी न करे। हाथ-पैरोंकी शुद्धिके पश्चात् मनुष्य पवित्र भूमिमें बैठकर पूर्व या उत्तरकी ओर मुँह करके जलसे कुल्ला करे। उस जलमें भूसी, कोयला, अस्थि एवं भस्मका संसर्ग नहीं रहना चाहिये। अत्यन्त शुद्ध एवं स्वच्छ जलसे आचमन करे। आचमनमें इतना जल पीये कि वह हृदयतक पहुँच सके। इस कार्यमें जल्दी नहीं करनी चाहिये। ब्राह्मण ब्रह्मतीर्थसे आचमन करे। आचमनके लिये जल लेते समय उसे भलीभाँति दृष्टि डालकर देख ले। वह पवित्र हो तभी उसका उपयोग करे। यदि दोनों पैरोंको न धोये तो आचमन करनेपर भी मनुष्य अशुद्ध ही माना जाता है। अपनी शुद्धिके लिये मनुष्य तीन बार जल पीकर आँख, कान आदि इन्द्रियछिद्रोंका स्पर्शद्वारा शुद्ध करे। अंगूठेके मूल भागसे अपने ओठोंको पोंछे, जलसे हृदयका स्पर्श करके समस्त अंगुलियोंसे मस्तकका स्पर्श करे। जलसहित अंगुलियोंके अग्रभागसे दोनों कन्धोंका स्पर्श करे। सड़क या गलीमें घूम आनेपर आचमन किया हुआ मनुष्य भी फिर आचमन करे। स्नान, भोजन और जलपान करनेपर, शुभ कर्मके प्रारम्भमें, सोकर उठनेपर, वस्त्र बदलने या नूतन वस्त्र धारण करनेपर, कोई अमांगलिक वस्तु दीख जानेपर अथवा भूलसे किसी अपवित्र वस्तुको छू लेने या उसकी याद कर लेनेपर दो बार आचमन करनेसे मनुष्य शुद्ध होता है। तदनन्तर धर्मशास्त्रोंमें बताये हुए नियमोंके अनुसार दन्तधावन करे; क्योंकि आचमन करनेवाला मनुष्य भी यदि दन्तधावन न करे तो वह अपवित्र ही माना गया है। प्रतिपदा, अमावास्या, षष्ठी, नवमी तथा रविवारको काठकी दाँतन न करे। जिस दिन दाँतन निषिद्ध है, उस दिन मुखकी शुद्धिके लिये बारह बार कुल्ला करना चाहिये। कनिष्ठा अंगुलीके बराबर मोटी, बारह अंगुल लंबी, हरी, गीली लकड़ी, जिसका छिलका उतारा न गया हो तथा जिसमें छेद या रोग न हो, दाँतनके लिये उपयुक्त मानी गयी है। दन्तधावनके काष्ठका अग्रभाग एक अंगुलतक चबाना चाहिये फिर उसीके कूँचेसे दाँतोंको रगड़कर साफ करना और जलसे कुल्ला करना चाहिये। शरीरशुद्धिके लिये प्रातःकाल स्नान करना चाहिये। यदि तीर्थ (तालाब या नदी)-का जल मिल जाय तो विशेष उत्तम है। शरीरके नौ छिद्रोंसे दिन-रात मल निकलता रहता है, अतः वह सदा मलिन है। प्रातःकाल स्नान करनेसे इसकी शुद्धि होती है। प्रातःकालका स्नान प्राजापत्य व्रतके समान पापनाशक माना गया है। वह उत्साह, मेधा, सौभाग्य, रूप तथा सम्पदाको बढ़ानेवाला है। वह दरिद्रता, पाप, ग्लानि, अपवित्रता और दुःस्वप्नका नाश करनेवाला है तथा तुष्टि और पुष्टि प्रदान करनेवाला है।

नृपश्रेष्ठ! अब मैं प्रसंगवश स्नानकी विधिका वर्णन करता हूँ; क्योंकि विद्वानोंने विधिपूर्वक किये हुए स्नानका महत्त्व साधारण स्नानसे सौगुना अधिक बताया है। विशुद्ध कुशा लेकर पवित्र स्थानपर रखे और आचमन करके स्नान करे। हाथमें कुश लेकर, शिखा बाँधकर जलके भीतर प्रवेश करे और अपनी शाखामें बतायी हुई विधिके अनुसार विधिपूर्वक स्नान करे। इस प्रकार स्नानकार्य समाप्त करके वस्त्र निचोड़कर दो नूतन वस्त्र धारण करे। फिर आचमन करके

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

कुश हाथमें लिये हुए ही प्रातःकालकी सन्ध्या करे। अपने मनको दृढ़तापूर्वक संयममें रखकर प्राणायाम करनेवाला ब्राह्मण दिन और रातमें किये हुए पापोंसे तत्काल मुक्त हो जाता है। यदि मनको संयममें रखकर दस या बारह बार प्राणायाम कर लिये जायँ तो ऐसा मानना चाहिये कि उस पुरुषने बड़ी भारी तपस्या कर ली। व्याहृति और प्रणवके साथ किये हुए सोलह प्राणायाम यदि प्रतिदिन होते रहें तो एक मासमें वे भ्रूणहत्या करनेवाले पापीको भी पवित्र कर देते हैं। जैसे पार्थिव धातुओंका मल आगमें तपानेसे जल जाता है, उसी प्रकार इन्द्रियोंद्वारा किये हुए दोष प्राणायामसे भस्म हो जाते हैं। नृपश्रेष्ठ! प्रणव परब्रह्म है। प्राणायाम उत्तम तपस्या है और गायत्रीसे बढ़कर दूसरा कोई पवित्र करनेवाला मन्त्र नहीं है। मनुष्य मन, वाणी और क्रियाद्वारा रातमें जो पाप करता है, वह प्रातःसन्ध्याकी उपासना करते हुए प्राणायामोंके द्वारा शुद्ध कर देता है। इसी प्रकार मन, वाणी और क्रियाद्वारा दिनमें जो पाप करता है, उसे सायंकालकी सन्ध्योपासनामें प्राणायामोंके द्वारा नष्ट कर डालता है। सायंकालकी सन्ध्या करनेवाला पुरुष दिनमें किये हुए पापका नाश करता है। जो प्रातःकाल और सायंकालकी सन्ध्या नहीं करता, वह समस्त ब्राह्मणोचित कर्मोंसे शूद्रकी भाँति बाहर कर देने योग्य है*।

प्राणायामके पश्चात् विधिपूर्वक आचमन करे। फिर **'आपो हिष्ठा मयो भुवः'** इत्यादि तीन ऋचाओंद्वारा मार्जन करे। पृथ्वीपर, मस्तकपर, आकाशमें, आकाशमें, पृथ्वीपर, मस्तकपर, मस्तकपर, आकाशमें तथा भूमिपर—इस तरह नौ बार नौ स्थानोंमें जल छिड़कना चाहिये। यहाँ भूमि या पृथ्वी शब्दसे दोनों चरण लिये गये हैं। आकाशका अर्थ हृदय माना गया है। सिर या मस्तक शब्द अपने प्रसिद्ध अर्थमें ही है। इस प्रकार इन्हीं अंगोंका मार्जन उक्त मन्त्रोंद्वारा बताया गया है। स्नान छः प्रकारके होते हैं—वारुण स्नान (जलसे किया हुआ स्नान), आग्नेय स्नान (अग्निकी लपटोंसे अपने अंगोंको तपाना या सर्वांगसे धूप-सेवन करना), वायव्य स्नान (स्वच्छ वायुका सेवन), ऐन्द्र स्नान (वर्षाके जलसे नहाना), मन्त्र स्नान (मन्त्रोच्चारण और श्रवणसे अपनेको शुद्ध करना) तथा ब्राह्म स्नान (वेद-मन्त्रोंद्वारा मार्जन या अभिषेक)। इनमें पूर्वोक्त सभी स्नानोंकी अपेक्षा यह ब्राह्म-स्नान (मार्जन) अधिक उत्तम है। जो ब्राह्म-स्नानकी विधिसे स्नान करता है, वह बाहर और भीतरसे भी शुद्ध हो जाता है तथा सर्वत्र देवपूजा आदि कर्मोंमें सम्मिलित होनेकी योग्यता प्राप्त कर लेता है; क्योंकि इससे अन्तःशुद्धि एवं भावशुद्धि हो जाती है। केवल जलस्नानसे ही कोई परम शुद्ध नहीं माना जाता। जो भावसे दूषित हैं, वे सैकड़ों बार स्नान करके भी शुद्ध नहीं होते। जिसका चित्त निर्मल है, उसीने सब तीर्थोंमें स्नान किया है, वही सब प्रकारके मलोंसे रहित है और उसीने सैकड़ों यज्ञोंका अनुष्ठान किया है।

चित्त जिस प्रकार निर्मल होता है, वह

* एकाक्षरं परं ब्रह्म प्राणायामः परं तपः। गायत्र्यास्तु परं नास्ति पावनं च नृपोत्तम॥
कर्मणा मनसा वाचा यद्रात्रौ कुरुते त्वघम्। उत्तिष्ठन् पूर्वसन्ध्यायां प्राणायामैर्विशोधयेत्॥
यदह्ना कुरुते पापं मनोवाक्कायकर्मभिः। आसीनः पश्चिमां सन्ध्यां प्राणायामैर्व्यपोहति॥
पश्चिमां तु समासीनो मलं हन्ति दिवाकृतम्। नोपत्तिष्ठेत्तु यः पूर्वां नोपास्ते यस्तु पश्चिमाम्॥
स शूद्रवद् बहिष्कार्यः सर्वस्माद् द्विजकर्मणः।

(स्क० पु०, ब्रा० ध० मा० ५। ७३—७६)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

बतलाता हूँ, सुनो। यदि भगवान् विश्वनाथ प्रसन्न हो जायँ तो चित्त शुद्ध होता है। अतएव चित्तकी शुद्धिके लिये काशीपति विश्वनाथकी शरण लेनी चाहिये। जो ऐसा करता है, वह इस शरीरका त्याग करनेके बाद परब्रह्मको प्राप्त होता है। पूर्वोक्त मार्जन करनेके अनन्तर **'द्रुपदादिव मुमुचानः०'** इत्यादि मन्त्रका जप करते हुए जलको अभिमन्त्रित करे और उस जलको सिरपर छिड़क ले। उसके बाद हाथमें जल लेकर विधिज्ञ पुरुष **'ऋतञ्च सत्यञ्च०'** इत्यादि मन्त्रके द्वारा अघमर्षण करे। जो विद्वान् जलमें गोता लगाकर तीन बार अघमर्षण मन्त्रका जप करता है अथवा स्थलमें भी बैठकर हाथमें जल ले अघमर्षण मन्त्रका जप करता है, उसकी पापराशि उसी प्रकार नष्ट हो जाती है, जैसे सूर्योदय होनेपर अन्धकार। अघमर्षणके पश्चात् प्रणव तथा महाव्याहृतिके साथ गायत्री-मन्त्रका जप करते हुए खड़ा होकर सूर्यके लिये तीन अंजलि जल दे। वह जल वज्रके समान होकर उन्हें प्राप्त होता है और उसके द्वारा मन्देह नामक राक्षस शीघ्र नष्ट हो जाते हैं, जो कि पर्वताकार शरीर धारण करके सूर्यके तेजको आच्छादित किया करते हैं। प्रातःकाल गायत्री-जप करते हुए तबतक खड़ा रहे, जबतक कि सूर्यका दर्शन न हो जाय। इसी प्रकार सायंकालमें बैठकर तबतक गायत्री-जप करना चाहिये, जबतक नक्षत्रोंका दर्शन न होने लगे। अपना हित चाहनेवाले द्विजको सन्ध्योपासनाके कालका लोप नहीं करना चाहिये। जब सूर्यका आधा उदय या आधा अस्त हुआ हो, उस समय उनके लिये अंजलिका वज्रोदक डालना चाहिये। विधिपूर्वक की हुई सन्ध्या भी समय बिताकर करनेसे निष्फल हो जाती है*। बायाँ हाथ जलमें डालकर द्विजोंद्वारा जो सन्ध्या की जाती है, वह वृषली (शूद्रा) जानने योग्य है। वह राक्षसगणोंको आनन्द देनेवाली मानी गयी है। सूर्यार्घ्य देनेके पश्चात् अपनी शाखामें बतायी हुई विधिके अनुसार सूर्यका उपस्थान करे। एक हजार अथवा एक सौ अथवा दस बार गायत्री-मन्त्रके जपद्वारा सूर्योपस्थान करना चाहिये। जो अधिक-से-अधिक एक हजार, मध्यम श्रेणीमें एक सौ अथवा कम-से-कम दस बार प्रतिदिन, गायत्रीमन्त्रका जप करता है, वह पापोंसे लिप्त नहीं होता। लाल चन्दनमिश्रित जल, फूल और कुशोंके द्वारा वेदोक्त अथवा आगमोक्त मन्त्रोंका उच्चारण करते हुए सूर्यको अर्घ्य देना चाहिये†। जिसने भगवान् सूर्यदेवका पूजन किया, उसने तीनों लोकोंकी पूजा कर ली। भगवान् सूर्य पूजित होनेपर पुत्र, पशु और धन देते हैं, रोग हर लेते हैं, पूरी आयु देते हैं और मनोवांछित कामनाओंको पूर्ण करते हैं।

इस प्रकार सन्ध्योपासना पूर्ण होनेपर अपनी शाखामें कही हुई विधिके अनुसार चन्दन, अगरु, कपूर, सुगन्धित पुष्प एवं शुद्ध जलसे **'तृप्यन्तु'** का उच्चारण करते हुए ब्रह्मा आदि देवताओं, मरीचि आदि मुनियों तथा अन्य ऋषि, देवता और पितरोंका तर्पण करना चाहिये। निवीती होकर अर्थात् यज्ञोपवीतको गलेमें मालाकी भाँति करके सनकादि मनुष्योंका जौ मिले हुए जलसे तर्पण करे। यह तर्पण सीधे एवं उत्तराग्र कुशद्वारा प्राजापत्य तीर्थसे होना चाहिये। फिर प्राचीनावीती होकर अर्थात् जनेऊको दाहिने कंधेपर करके

* विधिनापि कृता सन्ध्या कालातीताऽफला भवेत्। (स्क० पु०, ब्रा० ध० मा० ५। ९४)

† रक्तचन्दनमिश्राभिरद्भिश्च कुसुमैः कुशैः। वेदोक्तैरागमोक्तैर्वा मन्त्रैरर्घ्यं प्रदापयेत्॥ (स्क० पु०, ब्रा० ध० मा० ५। ९८-९९)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

दुहरे मुड़े हुए कुशों एवं तिलमिश्रित जलसे पितृतीर्थसे कव्यवाट्, अनल आदि दिव्य पितरोंका तर्पण करे। रविवार, शुक्ल पक्षकी त्रयोदशी, सप्तमी तिथि, रात्रि एवं दोनों सन्ध्याकालमें कल्याणकी इच्छा रखनेवाला ब्राह्मण कभी तिलसे तर्पण न करे। यदि करना ही पड़े तो सफेद तिलोंसे ही तर्पण करे। तत्पश्चात् चौदह यमोंके नामोंका उच्चारण करते हुए उनके लिये तर्पण करे। यमतर्पणके बाद अपना बायाँ घुटना जमीनपर रखकर मौन हो अपने गोत्रका उच्चारण करते हुए अपने पितरोंका पितृतीर्थसे प्रसन्नतापूर्वक तर्पण करे। तर्पणमें देवता एक-एक अंजलि, सनकादि दो-दो अंजलि तथा पितर तीन-तीन अंजलि जल चाहते हैं। पितृवर्गमें जो स्त्रियाँ हैं, वे एक-एक अंजलि जलकी ही इच्छा रखती हैं। अंगुलियोंका अग्रभाग देवतीर्थ है; अंगुलियोंका मूलभाग ऋषितीर्थ है; अंगूठेके मूलमें ब्राह्मतीर्थ है और हाथके बीचमें प्रजापतितीर्थ है। अंगुष्ठ और तर्जनीके बीचके भागको पितृतीर्थ कहते हैं। ब्रह्मासे लेकर कीटपर्यन्त जो भी देवता, ऋषि, मनुष्य, पितर, पिता, माता, मातामह आदि हैं, वे सब तृप्त हों—ऐसा कहकर अथवा और भी जो वैदिक या पौराणिक मन्त्र हैं, उनका उच्चारण करके पितरोंका सांग तर्पण करना चाहिये। वह पितरोंको सुख देनेवाला है।

तत्पश्चात् अग्निहोत्र करके वेदाभ्यास करना चाहिये। वेदाभ्यास पाँच प्रकारसे किया जाता है—(१) स्वीकार (गुरुसे ग्रहण), (२) अर्थ-विचार, (३) मन्त्र-पाठका अभ्यास, (४) तप (वेदानुसार आचरण) और (५) शिष्योंको पढ़ाना। प्राप्तकी रक्षा और अप्राप्तकी प्राप्तिके लिये यह द्विजातियोंका प्रातःकालिक कृत्य बताया गया है। अथवा प्रातःकाल उठकर शौचादि आवश्यक कार्योंसे निवृत्त हो हाथ-पैरोंकी शुद्धि एवं आचमन करके दन्तधावन करे। सारे शरीरकी शुद्धि करके प्रातःसन्ध्या करे। वेदार्थोंका विचार करे। नाना प्रकारके शास्त्रोंको पढ़े और अपने हितमें लगे हुए पवित्र एवं बुद्धिमान् शिष्योंको पढ़ावे तथा योग-क्षेम आदिकी सिद्धिके लिये परमेश्वरकी शरण ले। तत्पश्चात् मध्याह्नकालके नियमोंकी सिद्धिके लिये पुनः पूर्वोक्त रीतिसे स्नान करे, स्नान करके मध्याह्न-सन्ध्या करे। देवताकी पूजा करके नैमित्तिक कृत्योंका पालन करे। अग्निको प्रज्वलित करके बलिवैश्वदेव करे। निष्पाव, कोदो, उड़द, मटर और चनाका वैश्वदेव-होममें त्याग करे। तेलका पका, बिना पका तथा नमक मिलाया हुआ सब अन्न छोड़ दे। अरहर, मसूर, गोलधान्यसे बना हुआ भोजन, दूसरोंके खानेसे बचा हुआ भोजन अथवा बासी अन्नको भी वैश्वदेव-होममें त्याग दे। हाथमें कुश धारण करके आचमन और प्राणायाम करे। फिर '**पृष्टो दिवि०**' इत्यादि मन्त्रसे दो बार अग्निका पर्युक्षण करके कुशास्तरण करे। फिर वैदिक मन्त्रसे अग्निको अपने अभिमुख करके गन्ध, पुष्प तथा अक्षत आदिके द्वारा पूजा करे। फिर अपनी शाखामें बतायी हुई विधिके अनुसार विद्वान् पुरुष होम करे। राह चलनेवाला पथिक, जिसकी जीविका नष्ट हो गयी हो ऐसा पुरुष, विद्यार्थी, गुरुका पालन-पोषण करनेवाला पुरुष, संन्यासी और ब्रह्मचारी—ये छः धर्मभिक्षुक माने गये हैं*। चाण्डाल और कुत्तेको भी दिया हुआ अन्न निष्फल नहीं होता। अतः अन्नकी याचना करनेके लिये कोई आवे तो उसके अपाय होनेका विचार नहीं करना चाहिये। कुत्ते, पतित, चाण्डाल, पापरोगी, काक और कीड़ोंके लिये घरसे बाहर पृथ्वीपर अन्न डाल देना चाहिये। कौओंको

* अध्वगः क्षीणवृत्तिश्च विद्यार्थी गुरुपोषकः। यतिश्च ब्रह्मचारी च षडेते धर्मभिक्षुकाः॥

(स्क० पु०, ब्रा० ध० मा० ५। १२६)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

अन्नका भाग देते हुए इस प्रकार कहना चाहिये— 'पूर्व, पश्चिम, उत्तर, वायव्य और नैर्ऋत्य कोणमें रहनेवाले जो कौए हैं, वे सब भूमिपर मेरे द्वारा समर्पित किये हुए अन्नके ग्रासको ग्रहण करें।' इस प्रकार पंचभूतोंके लिये बलि अर्पण करके जितनी देरमें गाय दुही जाती है, उतनी देरतक किसी अतिथिके आनेकी राह देखे। यदि कोई आ जाय तो उसे भोजन देनेके लिये रसोईघरमें प्रवेश करे। काकबलि न करके नित्यश्राद्ध करे। नित्यश्राद्धमें अपनी शक्तिके अनुसार तीन, दो अथवा एक ब्राह्मणको भोजन करावे। पितृयज्ञके लिये जल निकालकर देवे। नित्यश्राद्ध विश्वेदेव तथा नियमोंसे रहित होता है। उसमें दक्षिणाकी भी आवश्यकता नहीं होती। यह नित्यश्राद्ध दाता और भोक्ता दोनोंको परम तृप्त करनेवाला है। इस प्रकार पितृयज्ञ करके स्वस्थबुद्धिसे आतुरभावका परित्याग करके पवित्र आसनपर बैठकर भोजन करे। उत्तम गन्धसे युक्त माला और दो शुद्ध वस्त्र धारण करके प्रसन्नचित्त हो पूर्व या उत्तर दिशाकी ओर मुँह करके भोजन करना चाहिये। भोजनके पहले आचमन करके भोजनके बाद भी आचमन करना चाहिये। नीचे और ऊपरसे जलद्वारा आच्छादित होनेके कारण अन्न नग्न नहीं रहता। इस प्रकार आचमनकी विधिसे उत्तम बुद्धिवाला पुरुष भोजन करे। भोजन प्रारम्भ करनेसे पूर्व भूमिपर तीन ग्रास बलि अर्पण करे। फिर उसके ऊपर जल गिरा दे। तत्पश्चात् एक बार आचमन करके प्राणाग्निहोत्र करे। **'प्राणाय स्वाहा०'** इत्यादि मन्त्रोंसे अपने उदरकुण्डकी अग्निमें अन्नकी पाँच आहुतियाँ डाले। उस समय हाथमें कुशकी पवित्री पहने रहे और चित्तको प्रसन्न रखे। जो अपने एक हाथमें कुश धारण किये हुए दूसरे हाथसे भोजन करता है, उसे केश और कीट आदिके स्पर्शसे उत्पन्न दोष नहीं लगता। अतः कुशधारणपूर्वक ही भोजन करे। भोजन करते समय मौन रहे। दाँतोंको परस्पर रगड़े नहीं। धोने योग्य जूठे हाथके अँगूठेके मूलसे जल गिराते हुए रौरवनरकके पापमय आश्रयमें रहनेवाले और उच्छिष्ट जल चाहनेवाले नरकनिवासी जीवोंको अक्षय्योदक दे। मनमें यह भाव रखे कि यह जल उन जीवोंको प्राप्त हो। तदनन्तर आचमन करके पवित्र हो मेधावी पुरुष मुखशुद्धि करके पुराण-श्रवण आदिके द्वारा दिनका शेष भाग व्यतीत करे। तत्पश्चात् सायंकालमें पुनः सन्ध्योपासना करे। इस प्रकार यह नित्यकर्मका विधान संक्षेपसे बताया गया है। इसका पालन करनेवाला ब्राह्मण कभी दुःखी नहीं होता।

वेदोंके स्वाध्याय, बलिवैश्वदेव, अतिथिसेवा, आठ प्रकारके विवाह, पंचयज्ञ तथा व्यावहारिक शिष्टाचारोंका कथन

व्यासजी कहते हैं—गृहस्थ-आश्रममें निवास करनेवाले साधुपुरुषोंके उपकारके लिये जिस प्रकार धर्मका अनुष्ठान किया जाता है, उसका मैं यथावत् रूपसे वर्णन करता हूँ। युधिष्ठिर! गृहस्थधर्मका आश्रय लेकर मनुष्य इस सम्पूर्ण जगत्का पोषण करता है। इसलिये वह मनोवांछित लोकोंपर अधिकार प्राप्त करता है। देवता, पितर, मनुष्य, भूतप्राणी, कृमि, कीट, पतंग, पक्षी और असुर—ये सभी गृहस्थके सहारे जीवननिर्वाह करते हैं और उसीसे उनकी तृप्ति होती है। युधिष्ठिर! ऋक्, साम और यजुः—इन तीन वेदरूप शरीरवाली एक धेनु है, जो सबकी आधारभूत है। उस वेदत्रयीरूपा

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

धेनुमें ही सम्पूर्ण विश्व प्रतिष्ठित है। वही इस विश्वका कारण मानी गयी है। ऋग्वेद उसकी पीठ है, यजुर्वेद मध्यभाग है और सामवेद उसकी कुक्षि एवं स्तन हैं। इष्ट (यज्ञ-याग आदि) और आपूर्त (वापी, कूप, तड़ाग, उद्यानादि)— ये दो उस धेनुके सींग हैं। वेदोंके जो उत्तम सूक्त हैं, वे ही इस गौके रोम हैं। शान्तिकर्म और पुष्टिकर्म उसके गोबर और मूत्र हैं। अक्षर ही उसके चरण हैं। पद, क्रम, जटा और घन पाठके द्वारा वह जगत्के लिये उपजीव्य होती है। स्वाहाकार, स्वधाकार, वषट्कार और हन्तकार— ये उस धेनुके चार स्तन हैं। स्वाहाकाररूपी स्तनको देवता, स्वधाकारको पितर, वषट्कारको देवता, भूत, ऋषि, मुनि एवं सुरेश्वरगण तथा हन्तकाररूपी स्तनको मनुष्य सदा पान करते हैं। इस प्रकार यह त्रयीरूपा धेनु सम्पूर्ण जगत्को तृप्त करती है। जो पुरुष इन वेदोंका उच्छेद करनेवाला है, वह असंख्य पाप करनेवाला मानव अन्धतामिस्र नामक अन्धकारमय नरकमें डूबता है। जो इस गौको अपने देवतादि बछड़ोंसे उचित समयपर संयोग कराकर दुग्धपानका अवसर देता है, वह स्वर्गलोकको जाता है। इसलिये मनुष्यको प्रतिदिन अपने शरीरकी ही भाँति देवता, ऋषि, पितर, मनुष्य एवं अन्य प्राणियोंका पोषण करना चाहिये। स्नान करके पवित्र हो ब्रह्मयज्ञके अन्तमें एकाग्रचित्तसे जलद्वारा देवताओं, ऋषियों और पितरोंका तर्पण करना चाहिये। पुष्प, गन्ध और धूप आदिसे देवताओंकी पूजा करके अग्निहोत्रके द्वारा अग्निका तर्पण करे। उसके बाद बलिवैश्वदेव करे। राक्षसों और भूतोंके लिये आकाशमें बलि अर्पण करे और पितरोंके लिये दक्षिणाभिमुख होकर अन्न दे। तदनन्तर गृहस्थ पुरुष एकाग्रचित्त हो जल हाथमें लेकर उन सबकी आचमनक्रियाके लिये उन्हीं-उन्हीं स्थानोंपर उन्हीं-उन्हीं देवताओंका नाम लेकर जल छोड़े। इस प्रकार घरमें बलि अर्पण करके गृहस्थ पुरुष पवित्र हो आचमन करे। तत्पश्चात् घरके दरवाजेकी ओर देखे और कुछ समयतक अतिथिके आगमनकी प्रतीक्षा करे। यदि कोई अतिथि आ जाय तो अर्घ्य और पाद्यके जलसे उसका सत्कार करे। खानेकी इच्छासे आये हुए थके-माँदे अकिंचन याचक ब्राह्मणको अतिथि कहा गया है। ऐसे अतिथिकी यथाशक्ति पूजा करके उसके आचरण और स्वाध्यायके विषयमें प्रश्न न करे। वह सुन्दर हो या असुन्दर, उसे साक्षात् प्रजापति समझे। वह नित्य स्थित नहीं रहता, इसीलिये अतिथि कहलाता है। ऐसे अतिथिको देकर जो भोजन करता है, वह अमृत भोजन करता है। जिसके घरसे अतिथि निराश होकर लौटता है, वह उसे अपना पाप देकर बदलेमें उसका पुण्य ले जाता है*। अत:साग देकर अथवा

* अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात्प्रतिनिवर्तते। स दत्त्वा दुष्कृतं तस्मै पुण्यमादाय गच्छति॥
(स्क० पु०, ब्रा० ध० मा० ६। २३-२४)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

केवल जल ही देकर अपनी शक्तिके अनुसार मनुष्य अतिथिका पूजन करे। तभी वह उसके ऋणसे मुक्त होता है।

युधिष्ठिर बोले—मुने! आठ प्रकारके विवाह बतलाये जाते हैं—ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, आसुर, गान्धर्व, राक्षस और पैशाच। इन विवाहोंकी विधि तथा इनमें करने योग्य कार्यका यथावत् वर्णन कीजिये।

व्यासजीने कहा—जहाँ वरको बुलाकर वस्त्र और आभूषणोंसे अलंकृत हुई अपनी कन्या दी जाती है, वह ब्राह्म-विवाह है। यज्ञमें वरण किये हुए ऋत्विजके लिये जो कन्यादान किया जाता है, वह दैव-विवाह है। वरसे एक गाय और एक बैल लेकर जो उसको कन्या दी जाती है, वह आर्ष-विवाह है। जहाँ वर और कन्याको यह कहकर कि तुम दोनों साथ-साथ रहकर धर्मका पालन करो, विवाह-बन्धनमें आबद्ध किया जाता है, वह प्राजापत्य-विवाह कहा गया है। जहाँ एक-दूसरेसे मैत्री होनेके कारण वर और वधूमें स्वेच्छासे वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित हो जाता है, वह गान्धर्व-विवाह कहलाता है। बलपूर्वक कन्याको अपहरण कर लेनेसे राक्षस-विवाह होता है, जो सत्पुरुषोंद्वारा निन्दित है। छलसे कन्याका अपहरण करनेपर पैशाच-विवाह माना गया है, यह अत्यन्त निन्दित है। [कन्याके माता-पिताको धन देकर जो कन्या खरीद ली जाती है और उससे विवाह किया जाता है, ऐसे विवाहको आसुर-विवाह कहते हैं।] यह आठवाँ जो पैशाच विवाह है, वह अत्यन्त पापिष्ठ है। ऐसे विवाहसे पापिष्ठ सन्तानोंकी ही उत्पत्ति होती है। अपने समान वर्णकी स्त्रियोंसे ही पाणिग्रहण करना चाहिये, यह विधि है। धर्मानुकूल विवाहमें धार्मिक एवं सौ वर्षोंतक जीवित रहनेवाले पुत्र पैदा होते हैं तथा अधार्मिक विवाहसे धर्मरहित, मन्दभाग्य, धनहीन और अल्पायु सन्तान उत्पन्न होती हैं। ऋतुकाल आनेपर स्त्रीके साथ समागम करना गृहस्थके लिये श्रेष्ठ धर्म है। दिनमें स्त्रीके साथ समागम पुरुषके लिये बड़ा भारी आयुका नाशक माना गया है। श्राद्धके दिन तथा सभी पर्वोंके दिन बुद्धिमान् पुरुषोंको स्त्रीसम्भोग नहीं करना चाहिये। उन अवसरोंपर मोहवश स्त्री-समागम करनेवाला पुरुष धर्मसे गिर जाता है। जो केवल ऋतुकालमें स्त्री-समागम करता और सदा अपनी ही स्त्रीमें अनुराग रखता है, वह गृहस्थ रहनेपर भी सदा ब्रह्मचारी ही जानने योग्य है*। आर्ष-विवाहमें जो दो गौ लेनेकी बात कही गयी है, वह उत्तम नहीं है। क्योंकि कन्याका थोड़ा भी शुल्क लिया जाय, तो वह कन्या-विक्रयरूपी पापका कारण बनता है। कन्या-विक्रय करनेसे मनुष्य एक कल्पतक विष्ठा एवं कृमिभोजन नामक नरकमें निवास करता है। अतः कन्याके थोड़े-से धनका भी मनुष्यको अपने जीवनमें उपयोग नहीं करना चाहिये। वाणिज्य, नीच पुरुषोंकी सेवा, वेदाध्ययनका अभाव, निन्दित विवाह और क्रियालोप—ये कुलमें पतनके हेतु बनते हैं। गृहस्थ पुरुष वैवाहिक अग्निमें प्रतिदिन गृह्यकर्मका अनुष्ठान करे। प्रतिदिन पंचयज्ञका अनुष्ठान तथा पाकयज्ञ करे। गृहस्थ पुरुषसे प्रतिदिन पाँच प्रकारके हिंसापूर्ण कर्म बनते हैं। ओखली, चक्की, चूल्हा, जलका घड़ा और झाड़ू—इनसे होनेवाली पाँच प्रकारकी हिंसाओंके निवारणके लिये पाँच यज्ञ बताये गये हैं, जो गृहस्थके कल्याणकी अभिवृद्धि करनेवाले हैं। वेद-शास्त्रोंका स्वाध्याय ब्रह्मयज्ञ है, तर्पण पितृयज्ञ है, होम देवयज्ञ है, बलि भूतयज्ञ है और अतिथि-सत्कार मनुष्ययज्ञ है।

---

* ऋतुकालाभिगामी यः स्वदारनिरतश्च यः। स सदा ब्रह्मचारी हि विज्ञेयः स गृहाश्रमी॥

(स्क० पु०, ब्रा० ध० मा० ६। ३७)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

जो बलिवैश्वदेव कर्मके भीतर आ जाय अथवा सूर्यके मध्याह्नकालमें आनेपर भूख और तापसे सन्तप्त हो द्वारपर आ जाय, वह अतिथि माना गया है। देवता, पितर और अतिथियोंको देकर जो गृहस्थ भोजन करता है, वह अमृतभोजी है। जो इन सबको अन्न दिये बिना ही भोजन करता है, वह केवल अपना पेट भरनेवाला है [शास्त्रोंमें ऐसे मनुष्यको पापभोजी बताया गया है]। जो वैश्वदेवसे हीन और आतिथ्यसे वर्जित हैं, वे वेदोंके विद्वान् हों तो भी उन्हें शूद्र ही समझना चाहिये। जो अधम द्विज बलिवैश्वदेव न करके भोजन कर लेते हैं, वे इस लोकमें अन्नहीन होते हैं और मरनेपर कौवेकी योनिमें जाते हैं। वेदोक्त कर्मका ज्ञान प्राप्त करके नित्य आलस्य छोड़कर यदि उसका यथाशक्ति पालन करे, तो मनुष्य परम सद्‌गतिको प्राप्त होता है।

उदय और अस्त होते हुए तथा मध्याह्नकालके सूर्यको न देखे। सूर्यग्रहणके समय तथा उदयके पहले अण्डस्थ (अण्डाकारमें स्थित) सूर्यपर दृष्टिपात न करे। जलमें अपनी परछाहीं न देखे, कीचड़में न दौड़े, नंगी स्त्रीकी ओर न देखे और नंगा होकर जलमें न घुसे। देवमन्दिर, ब्राह्मण, गौ, मधु, मिट्टीका ढेर, उत्तम जाति, अवस्थामें बड़े और विद्यामें बड़े मनुष्य, अश्वत्थ-वृक्ष, चैत्य-वृक्ष, गुरु, जलसे भरे हुए घड़े, तैयार अन्न, दही और सरसों आदिको अपनेसे दाहिने करके जाना चाहिये। रजस्वला स्त्रीका सेवन न करे, स्त्रीके साथ बैठकर न खाय, एक वस्त्र धारण करके भोजन न करे और जिसपर आरामसे बैठ न सकें ऐसे आसनपर भोजन न करे। तेजकी इच्छा रखनेवाला श्रेष्ठ द्विज अपवित्र स्त्रीकी ओर न देखे, देवताओं और पितरोंको तृप्त किये बिना कहीं कदापि अन्न ग्रहण नहीं करे। गोशालामें, बाँबीमें तथा राखमें कभी मूत्रत्याग न करे, जिस गड्ढेमें जीव रहते हों उसमें भी पेशाब न करे, खड़ा होकर या चलते-चलते मूत्रत्याग न करे, ब्राह्मण, सूर्य, अग्नि, चन्द्रमा, नक्षत्र और गुरुजनोंकी ओर देखते हुए मल-मूत्रका त्याग न करे। मुखसे आग न फूँके, वस्त्रहीन अवस्थामें स्त्रीकी ओर न देखे, अपने पैरोंको आगमें न तपावे तथा कोई अपवित्र वस्तु अग्निमें न डाले तथा किसी भी जीवकी हिंसा न करे। दोनों सन्ध्याओंके समय भोजन न करे। प्रातःकाल और सायंकालकी गोधूलि वेलामें विद्वान् पुरुष शयन न करे। दूध पिलाती हुई गायको देखकर भी किसीसे न कहे। इन्द्रधनुष किसीको न दिखावे। कहीं शून्यस्थानमें अकेला न सोवे। किसी सोये हुए मनुष्यको न जगावे, अकेला रास्ता न चले और अंजलिसे जल न पीये। जिसकी मलाई उतार ली गयी हो, ऐसे दहीको दिनमें न खाय और रात्रिमें तो दहीका सर्वथा निषेध है। रजस्वला स्त्रीसे बातचीत न करे, रात्रिमें भरपेट भोजन न करे। नाचने-गाने और बाजा बजानेके प्रेमी न हो। काँसेके बरतनमें पैर न धुलावे। जो अज्ञानी मनुष्य अपने घर श्राद्ध करके फिर दूसरे घर भोजन करता है, उसमें दाताको श्राद्धका फल नहीं मिलता और भोजन करनेवाला पापका भागी होता है। दूसरेके पहने हुए वस्त्र और जूते न पहने, फूटे हुए बरतनमें न खाय और आगसे जले हुए आसनपर न बैठे। जो दीर्घकालतक जीवित रहना चाहता हो, वह गाय-बैलोंकी पीठपर न चढ़े, चिताका धूम अपने अंगमें न लगने दे, (गिरनेकी आशंकावाले) नदीके तटपर न बैठे, उदयकालीन सूर्यकी किरणोंका स्पर्श न करे और दिनका सोना छोड़ दे। स्नान कर लेनेपर शरीरका मार्जन न करे, रास्तेमें शिखा खोलकर न चले, हाथ और सिरको न कँपाये। पैरसे आसन खींचकर न बैठे, हाथसे शरीरको न पोंछे अथवा स्नानकालमें पहने हुए वस्त्रसे भी न पोंछे। स्नानकालीन वस्त्रसे शरीर पोंछनेपर कुत्तेसे चाटे हुएके समान अशुद्ध हो जाता है।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

उस दशामें पुनः स्नान करनेसे ही शुद्धि होती है। दाँतसे कभी नख या रोएँको न काटे। यदि शुभकी इच्छा हो तो नखसे नखको न काटे। अपने घरमें भी कभी बिना दरवाजेके (दीवार फाँदकर) न जाय, धर्मघातीके साथ न बैठे, कभी नग्न होकर न सोवे और हाथमें भोजन रखकर न खाय। हाथ, पैर और मुख भीगे रखकर भोजन करनेवाला मनुष्य दीर्घजीवी होता है। भीगे हुए पैरोंवाला मनुष्य शयन न करे, जूँठे मुँह कहीं न जाय, शय्यापर बैठकर न खाय और न जल ही पीये। जूता पहने हुए न बैठे, खड़ा होकर पानी न पीये, आरोग्यकी इच्छा रखनेवाला मनुष्य सब खट्टी वस्तुओंको त्याग दे। जूँठे हाथसे सिरका स्पर्श न करे, भूसी, अंगार, भस्म, केश और कपालके ऊपर खड़ा न हो। पतित मनुष्योंके साथ निवास करना पतनका ही कारण होता है। शूद्रके लिये ऊँचा आसन और मंच न दे। द्विजोंकी सेवा करना शूद्रोंके लिये परम धर्म माना गया है। दोनों हाथोंसे सिर खुजलाना शुभ नहीं है। शूद्रको कभी वैदिक मन्त्रका उपदेश नहीं करना चाहिये, उसे वेदोपदेश करनेवाला ब्राह्मण ब्राह्मणत्वसे गिर जाता है, और शूद्र भी स्वधर्मसे भ्रष्ट हो जाता है। दोनों हाथोंसे किसीको पीटना, निन्दा करना, बाल नोचना, शास्त्रके विपरीत बर्ताव करना और लोभीसे दान लेना—यह सब करनेवाला ब्राह्मण इक्कीस नरकोंमें पड़ता है।

असमयमें मेघकी गर्जना सुनायी दे, वर्षा-ऋतुमें धूल बरसानेवाली आँधी चले तथा रात्रिमें बालकोंके रोनेकी विशेष ध्वनि हो, तब अनध्याय बताया गया है। उल्कापात, भूकम्प और दिग्दाह (अग्निकाण्ड) होनेपर, अर्धरात्रिमें, दोनों सन्ध्या-कालमें, शूद्रके समीप, राज्यके अपहरण होनेपर, सूतकमें, दस अष्टकाओंमें, चतुर्दशीको, श्राद्धके दिन, प्रतिपदा तिथिमें, पूर्णिमामें, अष्टमीमें, कुत्तेके रोनेपर, राज्यभंग होनेपर, वेदोंके उपाकर्म और उत्सर्गके दिन, कल्पादि एवं युगादि तिथियोंमें, आरण्यकका अध्ययन पूरा होनेपर, बाण और सामकी ध्वनि सुनायी देनेपर अनध्याय होता है। इन अनध्यायोंमें कदापि स्वाध्याय नहीं करना चाहिये।

चतुर्दशी, अष्टमी, अमावस्या और पूर्णिमाको सदा ब्रह्मचर्यका पालन करे। परायी स्त्रीसे सम्बन्ध रखना इस लोकमें आयुका विनाश करनेवाला है, अतः पर-स्त्री-संसर्ग दूरसे ही त्याग दे। शत्रुओंका सेवन भी दूरसे ही त्याग देना चाहिये। सत्य बोले, प्रिय बोले, अप्रिय सत्य कभी न बोले, प्रिय भी असत्य हो तो न बोले। यह धर्म वेद-शास्त्रोंद्वारा विहित है*। वाणी, मन और जिह्वाके वेगको रोके, गुप्तांगोंमें जो रोएँ हैं, उनका त्याग करे; क्योंकि उनके स्पर्शसे मनुष्य अशुद्ध हो जाता है। पैरोंके धोवनका जल, मूत्र और पीनेसे बचा हुआ जूठा जल, थूक तथा कफ—इन सबको घरसे दूर फेंकना चाहिये। दिन-रात वैदिक मन्त्रके जपसे, शौच और सदाचारके सेवनसे तथा द्रोहरहित बुद्धिसे मनुष्य अपने पूर्वजन्मका स्मरण कर लेता है। बड़े-बूढ़े पुरुषोंको यत्नपूर्वक प्रणाम करे, उन्हें बैठनेके लिये अपना आसन दे, उनके सामने नतमस्तक होकर रहे और जब वे जाने लगें, तब उनके पीछे-पीछे जाय। वेद, ब्राह्मण, देवता, राजा, साधु, तपस्वी और पतिव्रता स्त्रियोंकी कभी निन्दा न करे। दूसरेके जलाशयमें स्नान करना हो तो उसमेंसे पाँच ढेला मिट्टी निकाल करके स्नान करे। उत्तम देश और उत्तम कालमें किसी सुपात्रको पाकर

* सत्यं ब्रूयात्प्रियं ब्रूयान्न ब्रूयात्सत्यमप्रियम्। प्रियं च नानृतं ब्रूयादेष धर्मो विधीयते॥
(स्क० पु०, ब्रा० ध० मा० ६। ८८)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

उसे श्रद्धा और विधिके साथ जो धन दिया जाता है, वह अक्षय फल देनेवाला होता है।

भूमिदान करनेवाला मण्डलेश्वर होता है, अन्नदाता सर्वत्र सुखी होता है और जल देनेवाला सुन्दर रूप पाता है। भोजन देनेवाला हृष्ट-पुष्ट होता है। दीप देनेवाला निर्मल नेत्रसे युक्त होता है। गोदान देनवाला सूर्यलोकका भागी होता है। सुवर्ण देनेवाला दीर्घायु और तिल देनेवाला उत्तम प्रजासे युक्त होता है। घर देनेवाला बहुत ऊँचे महलोंका मालिक होता है। वस्त्र देनेवाला चन्द्रलोकमें जाता है। घोड़ा देनेवाला दिव्य शरीरसे युक्त होता है। बैल देनेवाला लक्ष्मीवान् होता है। पालकी देनेवाला सुन्दर स्त्री पाता है। उत्तम पलंग देनेवालेको भी यही फल मिलता है। जो श्रद्धापूर्वक दान देता और श्रद्धापूर्वक ग्रहण करता है, वे दोनों स्वर्गलोकके अधिकारी होते हैं तथा अश्रद्धासे दोनोंका अध:पतन होता है। झूठ बोलनेसे यज्ञका फल नष्ट होता है। अपने तपको लेकर आश्चर्य प्रकट करनेसे तपस्या क्षीण होती है और दानके बिना कीर्तिका नाश होता है। गन्ध, पुष्प, कुश, गौ, दूध, दही, साग, मधु, जल, फल, मूल, ईंधन और अभयदक्षिणा—ये वस्तुएँ निकृष्ट मनुष्यसे भी प्राप्त हों तो ग्रहण करनी चाहिये।

पतिव्रता स्त्रियोंके बर्ताव, धर्म और नियम तथा श्राद्ध और धर्मारण्यका महत्त्व

व्यासजी कहते हैं—जो मनुष्य धर्मवापीमें पितरोंका तर्पण करता है, उसके पितर तबतक तृप्त रहते हैं, जबतक कि चौदह इन्द्र बीत नहीं जाते। यहाँ पितरोंकी भी पूजा करनी चाहिये। जो पूर्वज पितर स्वर्गमें गये हों, उन सबके लिये इस मोक्षदायिनी वापीके तटपर जाकर पिण्डदान करना चाहिये। त्रेतामें पाँच दिनोंतक और द्वापरमें तीन दिनोंतक श्राद्ध करनेसे जो फल मिलता है, वही कलियुगमें एकचित्त होकर जो एक पिण्डदान देता है, उसको भी मिल जाता है। कलियुग आनेपर संसारके मनुष्य लोलुप और पर-स्त्री-लम्पट हो जाते हैं एवं स्त्रियाँ अत्यन्त चपल हो जाती हैं। स्त्री, पुरुष और नपुंसक—ये सब दूसरोंसे द्रोह करनेवाले, परनिन्दापरायण तथा सदैव दूसरोंके छिद्र देखनेवाले होते हैं; दूसरोंको उद्वेगमें डालनेवाले, झगड़ालु और दो मित्रोंमें फूट पैदा करनेवाले होते हैं। वे सब भी इस धर्मारण्यमें आकर पवित्र हो जाते हैं। ब्रह्मा, विष्णु और शिव तीनोंने अपने श्रीमुखसे धर्मारण्यकी ऐसी महिमा बतलायी है। महाभाग! इस प्रकार मैंने धर्मारण्यका वर्णन किया। जो इसका पठन करते हैं अथवा इस तीर्थका सेवन करते हैं, वे मन, वाणी और शरीरसे शुद्ध होते हैं। जो परायी स्त्रियोंसे मुँह मोड़ लेते हैं, कहीं भी द्रोह न करके सर्वत्र समबुद्धि रखते हैं, शुद्धाचारी और माता-पिताके भक्त होते हैं, उनमें लोभ और चपलता नहीं होती। वे दान-धर्ममें तत्पर, आस्तिक, धर्मज्ञ और स्वामिभक्ति-परायण होते हैं। जो स्त्री इस तीर्थका सेवन करती है, वह पतिव्रता और पतिसेवामें तत्पर रहनेवाली होती है। धर्मारण्यके सेवनसे सब मनुष्य अहिंसक, अतिथिपूजक और सदा स्वधर्मपरायण होते हैं।

शौनकजी बोले—सब धर्मज्ञोंमें श्रेष्ठ महाभाग सूतजी! पतिव्रता स्त्रियोंका कैसा लक्षण होता है, यह बतलाइये।

सूतजी बोले—(गुरुदेव व्यासजीने राजा युधिष्ठिरको यह बात इस प्रकार बतायी थी) जिसके घरमें पतिव्रता स्त्री होती है, उसका जीवन सफल हो जाता है। उसके अंगोंकी छायाके

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

तुल्य उसकी कथा भी पुण्यकारक होती है। पतिव्रता स्त्रियाँ अरुन्धती, सावित्री, अनुसूया, शाण्डिली, सती, लक्ष्मी, शतरूपा, सुनीति, संज्ञा और स्वाहाके समान होती हैं। पतिव्रताओंके धर्म मुनिवर व्यासजीने इस प्रकार बतलाये हैं—पतिव्रता स्त्री पतिके भोजन कर लेनेपर भोजन करती है, उनके खड़े रहनेपर स्वयं भी खड़ी रहती हैं, पतिके सो जानेपर सोती है और पहले ही जाग उठती है। स्वामी यदि दूसरे देशमें हो, तो वह अपने शरीरका शृंगार नहीं करती अथवा यदि किसी कार्यवश पति बाहर जायँ तो वह सब प्रकारके आभूषणोंको उतार देती है। पतिकी आयु बढ़े, इस उद्देश्यसे वह कभी पतिके नामका उच्चारण नहीं करती। वह दूसरे पुरुषका नाम भी कभी नहीं लेती। पति चाहे कितनी ही खरी-खोटी बात क्यों न कह डाले, वह उसे नहीं कोसती। जब स्वामी कहते हैं कि 'यह कार्य करो' तब वह शीघ्र उत्तर देती 'जो आज्ञा नाथ! मैंने अभी इस कामको पूरा किया। आप यह समझ लें कि कार्य पूरा हो गया।' पतिके बुलानेपर वह घरका काम-काज छोड़कर तुरंत उनके पास दौड़ी जाती है और पूछती है—'प्राणनाथ! किस लिये दासीको बुलाया है? मुझे सेवाका आदेश देकर अपने कृपाप्रसादकी भागिनी बनाइये।' वह घरके दरवाजेपर देरतक नहीं खड़ी होती। दरवाजेपर सोती-बैठती भी नहीं। जो वस्तु नहीं देने योग्य होती है, उसे वह स्वयं किसीको कभी नहीं देती। पतिव्रता स्त्रीको चाहिये कि स्वामीके लिये पूजनकी सामग्री बिना कहे ही जुटा दे। नित्य-नियमके लिये जल, कुशा, पत्र, पुष्प, अक्षत आदि प्रस्तुत करे और पतिकी प्रतीक्षामें खड़ी होकर जिस समय जो वस्तु आवश्यक हो, वह सब शीघ्र बिना किसी उद्वेगके अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक प्रस्तुत करे। स्वामीके भोजनसे बचे हुए प्रसादस्वरूप अन्न और फल आदिको अत्यन्त प्रिय मानकर ग्रहण करे। सामाजिक उत्सवोंका दर्शन तो वह दूरसे ही त्याग दे। पतिकी आज्ञाके बिना वह तीर्थयात्राको और विवाहोत्सवोंको देखने आदिके लिये भी न जाय। पति सुखसे सोये हों, सुखसे बैठे हों या स्वेच्छानुसार किसी कार्य अथवा विचारमें रम रहे हों, तो कार्यमें विघ्न आनेपर भी उन्हें कभी न उठावे। रजस्वला होनेपर वह तीन राततक पतिको अपना मुँह न दिखावे। जबतक स्नान करके शुद्ध न हो जाय, तबतक अपनी आवाज भी पतिके कानोंमें न पड़ने दे। भलीभाँति स्नान कर लेनेपर सबसे पहले पतिके ही मुखका दर्शन करे, दूसरे किसीका नहीं। अथवा पतिदेव उपस्थित न हों तो मन-ही-मन उनका ध्यान करके सूर्यदेवका दर्शन करे। पतिकी आयु बढ़नेकी इच्छा रखनेवाली पतिव्रता स्त्री हल्दी, कुंकुम, सिन्दूर, कज्जल, चोली, पान, मांगलिक आभूषण, केशोंके शृंगार तथा हाथ और कान आदिके आभूषण अपने शरीरसे कभी अलग न करे। पतिसे विद्वेष रखनेवाली स्त्रीसे पतिव्रता नारी कभी बातचीत न करे। कभी अकेली न रहे और नंगी होकर न नहाये। ओखली, मूसल, झाड़ू, सिलवट, चक्की और चौकठ (देहली)-पर सती स्त्री कभी न बैठे। पतिके सम्मुख धृष्टता न करे। जहाँ-जहाँ पतिकी रुचि हो, वहाँ-वहाँ उसे भी प्रेम रखना चाहिये। स्त्रियोंके लिये यही सबसे उत्तम व्रत, यही महान् धर्म और यही पूजा है कि वह पतिकी आज्ञाका उल्लंघन न करे। नपुंसक, दुर्दशाग्रस्त, रोगी, वृद्ध, सुस्थिर अथवा दुःस्थिर कैसा भी पति क्यों न हो, उस पतिका वह कभी उल्लंघन न करे। वह लोहेके बरतनमें भोजन न करे। यदि उसे तीर्थस्नानकी इच्छा हो, तो वह प्रतिदिन पतिका चरणोदक पीये। उसके लिये शंकर और भगवान् विष्णुसे भी बढ़कर उसका

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

पति ही है। जो स्त्री पतिकी आज्ञाका उल्लंघन करके व्रत और उपवास आदिका नियम करती है, वह पतिकी आयु हर लेती है और मरनेपर नरकमें जाती है।*

जो नारी पतिके कोई बात कहनेपर क्रोधपूर्वक उसका उत्तर देती है, वह गाँवमें कुतिया और निर्जन वनमें सियारिन होती है। स्त्रियोंके लिये एकमात्र यही सर्वोत्तम नियम बताया गया है कि वह प्रतिदिन अपने पतिके चरणोंकी पूजा करके ही भोजन करे और दृढ़ निश्चयपूर्वक इस नियमका पालन करे। पतिसे ऊँचे आसनपर न बैठे। दूसरेके घरमें न जाय और कड़वी बातें कभी मुँहसे न निकाले। गुरुजनोंके समीप जोरसे न बोले तथा न किसीको पुकारे ही। जो खोटी बुद्धिवाली स्त्री पतिका साथ छोड़कर एकान्तमें विचरती है, वह वृक्षके खोंखलेमें सोनेवाली क्रूर उलूकी होती है। जो दूसरे पुरुषकी ओर कटाक्षसे देखती है, वह ऐंची आँखवाली हो जाती है। जो पतिको छोड़कर अकेली मिठाइयाँ उड़ाती है, वह गाँवकी विष्ठाभोजी सूकरी अथवा चमगादड़ होती है। जो हुंकार और त्वंकार करके (पतिके प्रति अनादरसूचक वचन कहकर) अप्रिय भाषण करती है, वह गूँगी होती है। जो सौतसे सदा ही ईर्ष्या रखती है, वह खोटे भाग्यवाली होती है। जो पतिकी आँख बचाकर किसी दूसरे पुरुषको निहारती है, वह कानी, विकृत मुखवाली अथवा कुरूपा होती है। पतिको बाहरसे आते देख जो तुरंत उठकर पानी और आसन देती है, पानका बीड़ा खिलाती है, पंखा करती, पाँव दबाती, प्रिय वचन बोलती और पसीना आदि दूर करके प्रियतमको सन्तुष्ट करती है, उसके द्वारा तीनों लोक तृप्त हो जाते हैं। पिता, भाई और पुत्र—ये सब परिमित—नपी-तुली वस्तुएँ प्रदान करते हैं, परंतु पति अपनी पत्नीको अपरिमित दान करता है। इसके दानकी कोई सीमा नहीं होती। ऐसे पतिका कौन ऐसी स्त्री है, जो पूजन न करे? पति ही देवता है, पति ही गुरु है और पति ही धर्म, तीर्थ एवं व्रत है। अतः स्त्री सब छोड़कर एकमात्र पतिकी पूजा करे।†

कन्याके विवाहकालमें ब्राह्मणलोग यह प्रतिज्ञा करवाते हैं कि तू पतिके जीवन और मरणमें भी उनकी सहचरी होकर रह। जो श्मशानमें जाते हुए स्वामीके शवके पीछे-पीछे घरसे (सती होनेके लिये) प्रसन्नतापूर्वक जाती है, उसे पग-पगपर अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त होता है। जैसे साँप पकड़नेवाला मनुष्य साँपको बलपूर्वक बिलसे बाहर निकाल लेता है, उसी प्रकार सती स्त्री अपने पतिको बलपूर्वक यमदूतोंके हाथसे छीनकर स्वर्गमें ले जाती है। पतिव्रता स्त्रीको देखकर यमदूत भाग जाते हैं, सूर्य भी उसके तेजसे सन्तप्त होते हैं और अग्निदेव भी उसके तेजकी आँचसे जलने लगते हैं। पतिव्रताका तेज देखकर सम्पूर्ण तेज काँप उठते हैं। अपने शरीरमें जितने रोएँ हैं, उतने करोड़ अयुत वर्षोंतक वह पतिके साथ स्वर्गसुख भोगती है और विहार करती है। संसारमें वह माता धन्य है, वह पिता धन्य है और वह पति धन्य है, जिनके घरमें पतिव्रता स्त्री शोभा पाती है। केवल पतिव्रता नारीके पुण्यसे उसके पिता, माता और पति—इन तीनों कुलोंकी तीन-तीन पीढ़ियाँ स्वर्गीय सुख भोगती हैं। दुराचारिणी स्त्रियाँ अपना शील

* व्रतोपवासनियमं पतिमुल्लङ्घ्य या चरेत्। आयुष्यं हरते भर्तुर्मृता निरयमृच्छति॥
(स्क० पु०, ब्रा० ध० मा० ७। ३७)

† मितं ददाति हि पिता मितं भ्राता मितं सुतः। अमितस्य हि दातारं भर्तारं का न पूजयेत्॥
भर्ता देवो गुरुर्भर्त्ता धर्मतीर्थव्रतानि च। तस्मात् सर्वं परित्यज्य पतिमेकं समर्चयेत्॥
(स्क० पु०, ब्रा० ध० मा० ७। ४७-४८)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

भंग करनेके कारण पिता-माता और पति तीनों कुलोंको नरकमें गिराती हैं और स्वयं भी इहलोक तथा परलोकमें दुःख भोगती हैं। पतिव्रताका चरण जहाँ-जहाँ धरतीका स्पर्श करता है, वह-वह स्थान तीर्थभूमिकी भाँति मान्य है। वहाँ भूमिपर कोई भार नहीं रहता। वह स्थान परम पावन हो जाता है। सूर्य भी डरते-डरते अपनी किरणोंसे पतिव्रताका स्पर्श करते हैं। चन्द्रमा अपनेको पवित्र करनेके लिये ही उसका स्पर्श करते हैं। जल सदा पतिव्रता देवीके चरणस्पर्शकी अभिलाषा रखता है। वह जानता है कि पतिव्रता गायत्रीदेवीके द्वारा जो हमारे पापका नाश होता है, उसमें उस देवीका पातिव्रत्य ही कारण है। पातिव्रत्यके बलसे ही वह हमारे पापोंका नाश करती है। क्या घर-घरमें अपने रूप और लावण्यपर गर्व करनेवाली नारियाँ नहीं हैं? परंतु पतिव्रता स्त्री भगवान् विश्वेश्वरकी भक्तिसे ही प्राप्त होती हैं। गृहस्थ-आश्रमका मूल भार्या है। सुखका मूल कारण भार्या है, धर्मफलकी प्राप्ति तथा सन्तानवृद्धिका कारण भी भार्या ही है। भार्यासे इहलोक और परलोक दोनोंपर विजय प्राप्त होती है। घरमें भार्याके होनेसे देवताओं, पितरों और अतिथियोंकी तृप्ति होती है। वास्तवमें गृहस्थ उसीको समझना चाहिये, जिसके घरमें पतिव्रता स्त्री है। जैसे गंगामें स्नान करनेसे शरीर पवित्र होता है, उसी प्रकार पतिव्रताका दर्शन करके सम्पूर्ण गृह पवित्र हो जाता है।

यदि विधवा स्त्री पलंगपर सोती है, तो वह पतिको नरकमें गिरा देती है; अतः पतिके सुखकी इच्छासे विधवा स्त्रीको धरतीपर ही शयन करना चाहिये। विधवा स्त्रीको कभी अपने अंगोंमें उबटन नहीं लगाना चाहिये तथा उसे कभी सुगन्धित वस्तुका उपयोग भी नहीं करना चाहिये। प्रतिदिन तिल और कुशयुक्त जलसे पतिके लिये तर्पण करना चाहिये तथा पतिके पिता और पितामहके भी नाम-गोत्र आदिका उच्चारण करते हुए उनके लिये जलकी अंजलि देनी चाहिये। पतिबुद्धिसे भगवान् विष्णुका पूजन करना चाहिये। वह विष्णुरूपधारी पति-परमेश्वरका ही ध्यान करे। संसारमें जो-जो वस्तु पतिको प्रिय रही हो, वह पतिको तृप्त करनेकी इच्छासे गुणवान् विद्वान्को देनी चाहिये। विधवा स्त्री वैशाख और कार्तिक मासमें विशेष नियमोंका पालन करे। स्नान, दान, तीर्थयात्रा और पुराणश्रवण बारंबार करती रहे।

मनुष्यको चाहिये कि वह धर्मकूपपर पितरोंके लिये विधिपूर्वक श्राद्ध करे। श्राद्धमें मनुष्य जो भूमिपर अन्न बिखेरते हैं, उससे पिशाच योनिको प्राप्त हुए पितर तृप्त होते हैं। जिनके स्नानवस्त्रसे पृथ्वीपर जल गिरता है, उनके उस जलसे स्थावरयोनिको प्राप्त हुए पितर तृप्त होते हैं। श्राद्धकर्ता मनुष्योंके हाथसे जो यवान्नकी कणिका पृथ्वीपर गिरती है, उससे देवभावको प्राप्त हुए पितरोंकी तृप्ति होती है। तथा पिण्डोंके उठानेपर जो यवान्नकी कणिका गिरती है, उससे पातालमें गये हुए पितरोंकी तृप्ति होती है। जो वर्ण और आश्रमके आचार एवं कर्मका लोप करनेवाले एवं संस्कारहीन होकर मरे हैं, वे श्राद्धमें सम्मार्जनके लिये जो जलका छींटा दिया जाता है, उससे तृप्त होते हैं। ब्राह्मणलोग भोजन करके जब मुँह-हाथ धोते और आचमन करते हैं, उस समय जो जल गिरता है, उससे अन्यान्य पितरोंकी तृप्ति होती है। इसी प्रकार यजमानके हाथसे अथवा उन श्राद्धसम्बन्धी ब्राह्मणोंके हाथसे जो शुद्ध या स्पर्शरहित जल और अन्न गिराया जाता है, उससे उन पितरोंकी तृप्ति होती है, जो नरकमें पड़े हैं अथवा दूसरी किसी योनिमें चले गये हैं। मनुष्य अन्यायोपार्जित द्रव्यसे जो श्राद्ध करते

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

हैं, उससे चाण्डाल आदि योनिके पितरोंकी तृप्ति होती है। वत्स! इस प्रकार श्राद्धसे अनेकानेक बान्धवोंकी तृप्ति होती है। यदि अन्नद्वारा श्राद्ध करनेकी शक्ति न हो तो केवल सागोंसे भी उसका अनुष्ठान हो सकता है। अतः मनुष्य भक्तिपूर्वक शाकसे भी श्राद्ध करे। श्राद्ध करनेवाले मनुष्यका कुल कभी दुःखमें नहीं पड़ता।

यदि धर्मारण्यमें सब पाप-ही-पाप किया गया तो निश्चय ही पाप भी बढ़ता है और उसे करनेवाला घोर नरकमें पकाया जाता है। जैसे पुण्य, वैसे पाप; धर्मारण्यमें किया हुआ सब शुभाशुभ कर्म अवश्य वृद्धिको प्राप्त होता है।

धर्मारण्यवासी ब्राह्मणोंके गोत्र तथा उनकी रक्षाके लिये कामधेनुद्वारा वैश्योंकी उत्पत्ति

युधिष्ठिरने पूछा—धर्मारण्यमें जिन श्रेष्ठ आचार-व्यवहारवाले ब्राह्मणोंने निवास किया, वे किस कुलमें उत्पन्न हुए थे?

व्यासजी बोले—नृपश्रेष्ठ! उन ऊर्ध्वरेता ऋषियों एवं महात्मा ब्राह्मणोंकी शाखा, प्रशाखा, पुत्र-पौत्र आदिकी संख्या बहुत हुई। मुख्य-मुख्य चौबीस गोत्रोंके नाम तुम्हें बतलाता हूँ—भारद्वाज, वत्स (प्रथम), कौशिक, कुश, शाण्डिल्य, काश्यप, गौतम, छान्दन, जातूकर्ण्य, वत्स (द्वितीय), वसिष्ठ, धारण, आत्रेय, भाण्डिल, लौकिक, कृष्णायन, उपमन्यु, गार्ग्य, मुद्गल, मौषक, पुण्यासन, पराशर, कौण्डिन्य तथा गांगासन। इन गोत्रोंमें उत्पन्न ब्राह्मण वेदोंके पारंगत विद्वान्, नाना प्रकारके यज्ञानुष्ठानमें तत्पर, द्विजपूजन कर्ममें संलग्न, सत्कर्मपरायण तथा गुणवान् हुए। धर्मारण्यनिवासी सब ब्राह्मण सदाचारी, अत्यन्त दक्ष, वेद-शास्त्रपरायण, यज्ञकर्ता तथा सत्य और शौचाचारमें प्रवृत्त रहनेवाले हैं। राजा युधिष्ठिर! पहले वहाँके ब्राह्मणोंको यक्ष, राक्षस और पिशाच आदि व्याकुल किये रहते थे। तब उन ब्राह्मणोंने देवताओंसे कहा—'देवगण! यक्ष और राक्षस आदिसे हम सताये जाते हैं, अतः उनके भयसे हमलोग अब इस उत्तम स्थानको त्याग देंगे।' यह सुनकर देवताओंने लोकहितकी कामनासे ब्राह्मणोंकी रक्षाके लिये प्रत्येक गोत्रमें एक-एक योगिनीकी स्थापना की। जिस गोत्रकी रक्षा और पालनमें जो शक्ति समर्थ हुई, वह उस गोत्रकी कुलदेवी मानी गयी। श्रीमाता, तारणीदेवी, गोत्रपा, आशापूरी, इच्छार्तिनाशिनी, पिप्पली, विकारवशा, जगन्माता, महामाता, सिद्धा, भट्टारिका, कदम्बा, विकरा, मीठा, सुपर्णा, वसुजा, महादेवी, मातंगी, वाणी, मुकुटेश्वरी, भद्री, महाशक्ति संहारी, महाबला और महादेवी चामुण्डा। ये गोत्रोंकी माताएँ हैं। ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि देवताओंने वहाँ रक्षाके लिये उन गोत्रमातृकाओंकी स्थापना की है। वहाँके स्वधर्मपरायण श्रेष्ठ ब्राह्मण उन सब योगिनियोंकी पूजा करने लगे। तभीसे योगिनियोंद्वारा वे अपने-अपने समयमें सुरक्षित हुए। सब ब्राह्मण स्वस्थ एवं पुत्र-पौत्रोंसे संयुक्त हो गये।

राजन्! सौ वर्ष बीतनेके पश्चात् ब्रह्मा, विष्णु और शिव धर्मारण्यको देखनेके लिये प्रातःकाल सूर्योदयके समय उत्तम विमानपर बैठकर आये। उस समय ब्राह्मणलोग समिधा, पुष्प और कुशा लानेके लिये आश्रम छोड़कर सब दिशाओंमें चले गये थे। आश्रम सूना देखकर महादेवजीने भगवान्से कहा—'प्रभो! यहाँके ब्राह्मण बड़ा कष्ट पाते हैं, अतः इनकी सेवाके लिये कुछ सेवकोंकी व्यवस्था करूँ, ऐसा मेरा विचार हो रहा है।' भगवान् शंकरका यह वचन सुनकर श्रीविष्णुने कहा—'ठीक है, ठीक है।' फिर वे ब्रह्माजीसे बोले—

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

'ब्रह्मन्! आप यहाँके ब्राह्मणोंकी सेवाके लिये कोई उपाय कीजिये।' भगवान् विष्णुका यह आदेश सुनकर ब्रह्माजीने कामधेनुका स्मरण किया। स्मरण करनेसे कामधेनु उसी क्षण वहाँ आ गयी।

तब ब्रह्माजीने कामधेनुसे कहा—मातः! इन ब्राह्मणोंमेंसे प्रत्येकके लिये दो-दो शुद्ध हृदयवाले अनुचरोंकी व्यवस्था करो। 'बहुत अच्छा' कहकर उस महाधेनुने खुरसे पृथ्वीको खोदा और हुंकार किया। इससे छत्तीस हजार शिखा-सूत्रधारी मनुष्य प्रकट हुए। वे सभी महाबली वैश्य थे। उन्होंने

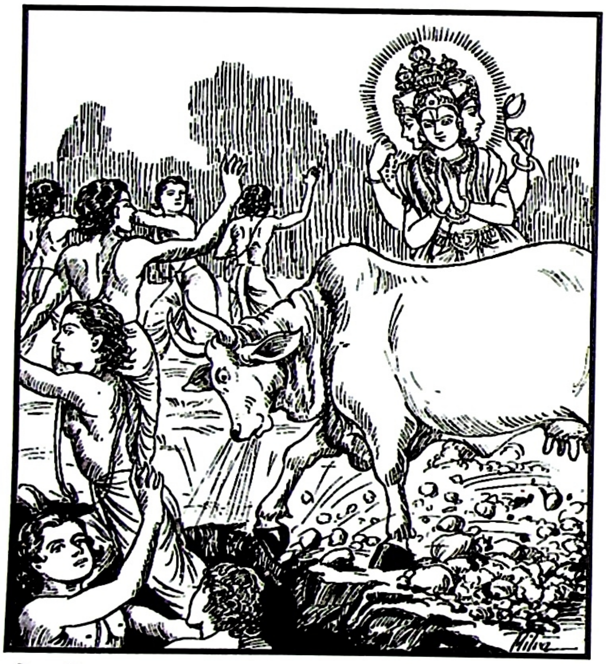

यज्ञोपवीत धारण कर रखा था। वे सब शास्त्रोंमें चतुर, ब्राह्मणभक्त, ब्राह्मणोंका हित चाहनेवाले, तपस्वी, उत्तम आचारवाले और धार्मिक थे। उस समय एक-एक ब्राह्मणके लिये दो-दो अनुचर दिये गये। राजन्! ब्राह्मणका पहले जो गोत्र बताया गया है, वही उसके अनुचरका भी हुआ। तदनन्तर ब्रह्माजीने उनके हितके लिये कहा—'तुम सब लोग इन ब्राह्मणोंका वचन मानो और इन्हें जिस-जिस वस्तुकी आवश्यकता हो, उसे ला दिया करो। प्रतिदिन समिधा, कुशा और फूल आदि ले आओ। सदा इनकी आज्ञाके अनुसार चलो, कभी इनका अनादर न करो। जातकर्म, नामकरण, अन्नप्राशन, चूडाकरण ,उपनयन आदि संस्कार तथा जो व्रत, दान, उपवास आदि कर्म प्राप्त हों, उन्हें इन ब्राह्मणोंकी आज्ञाके अनुसार ही करना चाहिये। इनकी आज्ञा लिये बिना जो दर्शयाग, श्राद्धकार्य या और कोई कर्म करेगा, वह दरिद्रता, पुत्रशोक एवं कीर्तिनाशको प्राप्त होगा।' तब उन अनुचरोंने 'बहुत अच्छा' कहकर देवताओंकी आज्ञा स्वीकार की। तदनन्तर वे इन्द्र आदि श्रेष्ठ देवता कामधेनुकी स्तुति करने लगे—'अनघे! तुम सब देवताओंकी माता और सब यज्ञोंका कारण हो। सब तीर्थोंमें तुम्ही उत्तम तीर्थ हो। तुम्हें सदा नमस्कार है। तुम्हारे ललाटमें सूर्य, चन्द्रमा, अरुण तथा भगवान् शंकर विराजमान हैं। हुंकारमें सरस्वती वास करती हैं, गलेके कंबलमें नागोंका निवास है, खुरपृष्ठमें गन्धर्व और चारों वेद हैं तथा तुम्हारे मुखके अग्रभागमें समस्त चराचर तीर्थ हैं।' इस प्रकार भाँति-भाँतिके वचनोंसे प्रसन्न की हुई कामधेनु स्वर्गको चली गयी।

उन वैश्योंके विवाहके लिये भगवान् शंकर और यमने गन्धर्वोंकी कन्याओंको लाकर उनकी पत्नीके रूपमें स्थापित किया। 'विश्वावसु' नामसे प्रसिद्ध जो गन्धर्वोंके राजा हैं, उनके यहाँ साठ हजार कन्याएँ थीं। वे सभी रूप, यौवन और उदारतासे सम्पन्न थीं। उन्हींको वेदोक्त विधिसे देवताके समीप उन वैश्योंके लिये अर्पण किया। उस समय उन वैश्योंने गन्धर्वोंको, पूर्वज देवताओंको, सूर्य और चन्द्रमाको तथा यमराज और मृत्युको भी आज्यभाग दिया। विधिपूर्वक आज्यभाग अर्पण करनेके पश्चात् ही उन वैश्योंने उन कन्याओंका वरण (पाणिग्रहण) किया। तबसे लेकर आजतक गान्धर्व विवाह उपस्थित होनेपर देवता आज्यभाग ग्रहण करते हैं। जिन छत्तीस हजार धेनुकुमारोंकी चर्चा की गयी है, उनके पुत्र-पौत्रोंकी संख्या

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

लाखोंतक पहुँच गयी। वे सब ब्राह्मणोंके सेवक हुए। तत्पश्चात् देवताओंके चले जानेपर सब ब्राह्मण इस स्थानपर निवास करने लगे। राजन्! तबसे वहाँके ब्राह्मण निर्भय हो पुत्र-पौत्रोंके साथ रहते और वेदोंका पाठ करते हैं। वे वेदज्ञ विद्वान् कभी शास्त्रोंका अर्थ सुनाते, कभी कोई भगवान् विष्णुका जप करते, कोई शिवजीके गुण गाते, कोई ब्रह्माजीके नाम लेते और कोई यमसूक्तका जप करते हैं। कितने ही याजक बनकर यज्ञ एवं अग्निहोत्रकी उपासना करते हैं। वे स्वाहाकार, स्वधाकार और वषट्कारके शब्दोंसे चराचर प्राणियोंसहित सम्पूर्ण त्रिलोकीको परिपूर्ण करते रहते हैं। वहाँके वैश्य भी बड़े दक्ष होते हैं और सदा ब्राह्मणोंकी सेवाके लिये उत्कण्ठित रहते हैं। वे धर्मारण्यके दिव्य प्रदेशमें सुस्थिर होकर बसते हैं और ब्राह्मणोंके लिये अन्न, पान, समिधा, कुश तथा फल आदिका प्रबन्ध करते हैं। पुष्पोपहारका संग्रह करना, स्नान किये हुए वस्त्रको धोना, उपले आदि बनाना, झाड़ने-बुहारनेका काम करना तथा कूटना और पीसना आदि कार्य उन वैश्योंकी स्त्रियाँ करती थीं। ब्रह्मा, विष्णु और शिवके वचनसे सब लोग उन ब्राह्मणोंकी सेवा करते थे। तबसे सब ब्राह्मण स्वस्थ हो, हर्षपूर्वक दिन-रात ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदिकी उपासना करने लगे।

लोलजिह्वाक्षका वध, गणेशजीकी उत्पत्ति और देवताओंद्वारा उनका स्तवन

व्यासजी बोले—तत्पश्चात् कुछ काल बीतनेपर जब सत्ययुगकी समाप्ति हुई, तब त्रेताके प्रारम्भमें 'लोलजिह्वाक्ष' नामका एक राक्षस हुआ, जो समस्त राक्षसोंका राजा था। उसने ब्राह्मणोंसे सेवित उस परम पवित्र एवं सुन्दर धर्मारण्यमें द्वेषवश आग लाग दी। अपने नगरको जलते देख वे श्रेष्ठ ब्राह्मण भाग खड़े हुए। तब श्रीमाता आदि देवियाँ क्रोधमें भरकर उस राक्षसको फटकारती हुई उसपर प्रहार करने लगीं। राक्षसने उन देवियोंको देखकर भयंकर सिंहनाद किया। उस समय धर्मारण्यमें बड़ा भारी कोलाहल मच गया। उसे सुनकर इन्द्रने नलकूबरको भेजा। नलकूबर वहाँ गये और श्रीमाता तथा लोलजिह्वाक्षमें जो महान् युद्ध चल रहा था, उसको उन्होंने देखा। जैसा देखा, वैसा ही इन्द्रके आगे निवेदन किया। यह समाचार सुनकर भगवान् विष्णु सुदर्शन चक्र लेकर सत्यलोकसे पृथ्वीपर आये। धर्मारण्यमें पहुँचकर उन्होंने चक्र चलाया। तब लोलजिह्वाक्ष राक्षस मूर्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा और प्राण त्यागकर परम धामको चला गया। देवता और गन्धर्वोंने हर्षमें भरकर जगदीश्वर भगवान् विष्णुका स्तवन किया। उस नगरको उजड़ा हुआ देख भगवान् विष्णुने कहा—'ऋषियोंके आश्रममें निवास करनेवाले वे सब ब्राह्मण कहाँ हैं?' देवता और गन्धर्वोंने इधर-उधर भगे हुए ब्राह्मणोंको खोज निकाला तथा इस प्रकार कहा—'ब्राह्मणो! उस अधम राक्षसको भगवान् वासुदेवने अपने चक्रसे काट डाला है।' यह सुनकर ब्राह्मणोंके नेत्र हर्षसे खिल उठे और उन सबने अपने-अपने स्थानमें प्रवेश किया तथा भगवान् श्रीलक्ष्मीपतिसे कहा—'प्रभो! आपने सत्यलोकसे आकर ब्राह्मणोंके हितके लिये इस मन्दिररूपी नगरकी पुनः स्थापना की है। इसलिये संसारमें यह सत्यमन्दिरके नामसे विख्यात होगा। सत्ययुगमें यह धर्मारण्य था, त्रेतामें इसका नाम सत्यमन्दिर होगा।' भगवान् विष्णुने 'तथास्तु' कहकर उनकी प्रार्थना स्वीकार की।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

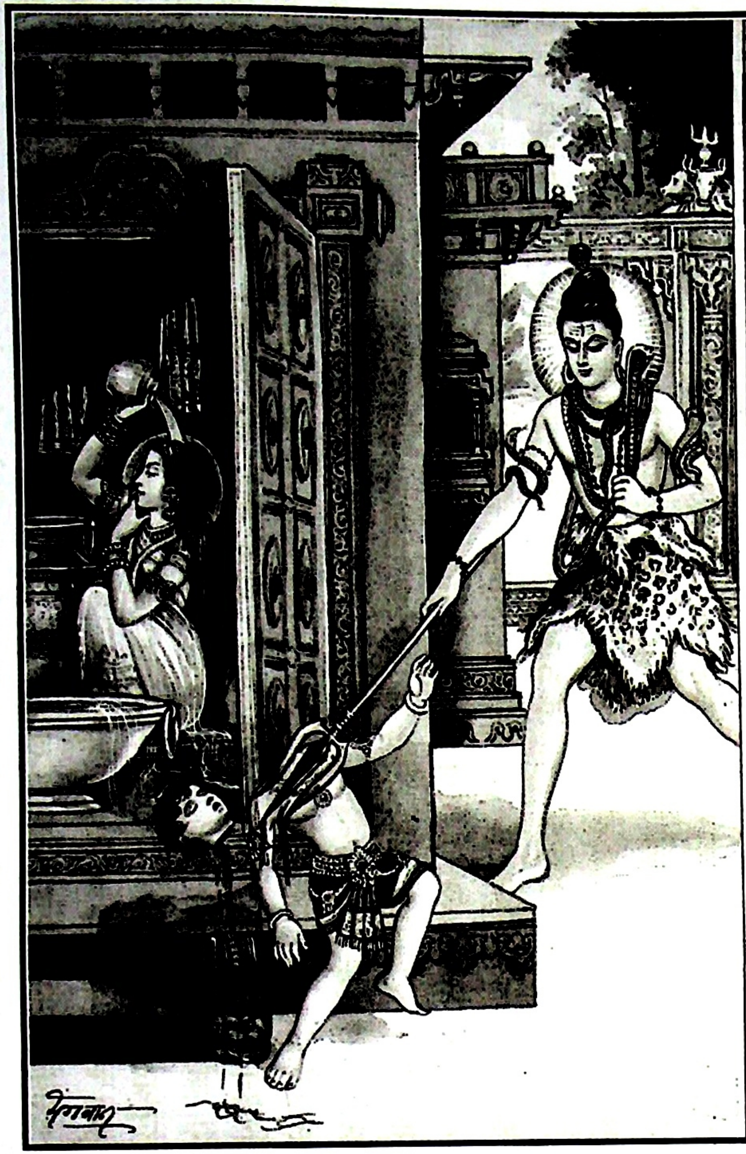

गणेशजीका मस्तक-छेदन

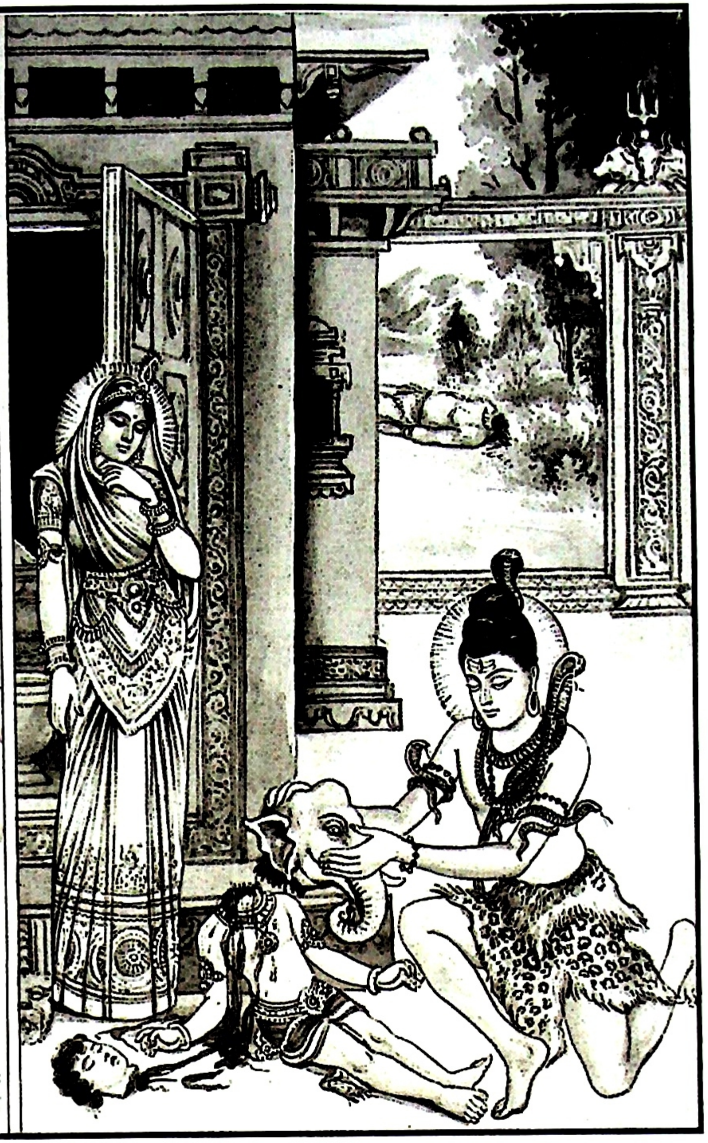

गणेशजीको गजमस्तक-दान

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

तदनन्तर वे सब ब्राह्मण अपने पुत्र-पौत्र, पत्नी और सेवकोंके साथ पूर्ववत् निवास करने लगे।

उस नगरके पूर्वभागमें धर्मेश्वर, दक्षिणमें गणेश, पश्चिममें सूर्यदेव और उत्तरमें साक्षात् स्वयम्भू ब्रह्माजीका स्थान है।

युधिष्ठिरजीने पूछा—महाभाग! गणेशजीको किसने स्थापित किया?

व्यासजी बोले—महाराज! पूर्वकालमें सब देवताओंने धर्मारण्यमें दुर्गाजीके पुत्र गणेशजीको स्थापित किया था। अब मैं गणेशजीकी उत्पत्तिका कारण बतलाता हूँ। एक समय पार्वतीजीने अपने अंगोंमें उबटन लगाया और उससे जो मैल निकली, उसे हाथपर रखकर उसकी एक सुन्दर स्वरूप प्रतिमा बना दी। फिर उसमें उन्होंने जीवका भी संचार कर दिया। तब वह बालक उनके आगे उठकर खड़ा हो गया और मातासे बोला—'आज्ञा दीजिये, मैं कौन-सा कार्य करूँ?'

पार्वतीजीने कहा—मैं जबतक स्नान करूँ, तबतक तुम मेरे द्वारपर खड़े रहो। महादेवीके इस प्रकार आज्ञा देनेपर गणेशजी हथियार ले द्वारपर खड़े हो गये। इसी समय महादेवजी आये और उन्होंने घरके भीतर प्रवेश करनेका विचार किया। किंतु द्वारपर खड़े हुए बालकने उन्हें भीतर नहीं जाने दिया। इससे महादेवजी कुपित हो उठे और दोनों पिता-पुत्रमें परस्पर युद्ध होने लगा। महादेवजीने त्रिशूलसे उस बालकका मस्तक काट डाला। अपने पुत्रको मरकर गिरा हुआ देख पार्वतीजी फूट-फूटकर रोने लगीं। पार्वतीजीको दुःखी देखकर भगवान् शंकरको बड़ी चिन्ता हुई। इतनेमें ही उनकी दृष्टि वहाँ आये हुए गजासुरपर पड़ी। उस महादैत्यको देखकर भगवान् शंकरने उसे मार डाला और उसका मस्तक लेकर पार्वतीके बनाये हुए बालकके धड़से जोड़ दिया। तब वह बालक उठकर खड़ा हो गया। शिवजीने उसका नाम गजानन रखा। फिर सब देवताओं और मुनियोंने मिलकर गणेशजीका स्तवन किया।

देवता बोले—भगवन्! आपको नमस्कार है। आप देवताओंके ईश्वर तथा गणोंके स्वामी हैं, आपको नमस्कार है। गजानन! आप महादेवजीके भी अधिदेवता हैं, आपको नमस्कार है। गणाध्यक्ष! आप भक्तिप्रिय देवता हैं, आपको नमस्कार है।

इन शुभ स्तोत्रोंद्वारा स्तुति करनेपर गणोंके स्वामी गणेशजी अत्यन्त प्रसन्न होकर इस प्रकार बोले—देवताओ! मैं तुमपर बहुत सन्तुष्ट हूँ, तुम कोई मनोवांछित वस्तु माँगो, मैं तुम्हें देता हूँ।

देवता बोले—महाभाग! आप यहीं रहकर हमारा कार्य-साधन करें। धर्मारण्यमें रहनेवाले ब्राह्मण, वैश्यजन, धार्मिक पुरुष तथा वर्णाश्रमसे भिन्न मनुष्योंका भी आप सदा संरक्षण करें। आपके प्रसादसे यहाँके ब्राह्मण और महाबली वैश्य सदा धन और सुखसे सम्पन्न हों। जबतक सूर्य, चन्द्रमा और पृथ्वी रहे, तबतक आप यहीं रहकर सबकी रक्षा करते रहें।

गणेशजीने 'एवमस्तु' कहकर उनकी प्रार्थना स्वीकार की। तब देवताओंने हर्षमें भरकर गणेशजीका पूजन किया। संसारके दूसरे लोगोंने भी विघ्ननिवारणके लिये उनकी पूजा की। इसीलिये गणेशजी विवाह, उत्सव और यज्ञमें पहले पूजित होते हैं। धर्मारण्यमें रहनेवाले लोगोंपर वे सर्वदा प्रसन्न रहते हैं।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

संज्ञाकी तपस्या, अश्विनीकुमारोंका जन्म तथा वकुलादित्यकी स्थापना

व्यासजी कहते हैं—महाभाग युधिष्ठिर! भगवान् शंकरके पश्चिम भागमें कश्यपनन्दन भगवान् सूर्यकी स्थापना की गयी है। वह स्थान रविक्षेत्र कहलाता है। वहीं रूप और यौवनसे सम्पन्न नासत्य नामसे प्रसिद्ध महादिव्य दोनों अश्विनीकुमार उत्पन्न हुए, जो देवलोकके वैद्योंके रूपमें प्रसिद्ध हैं। विश्वकर्माकी पुत्री संज्ञा अंशुमाली भगवान् सूर्यको ब्याही गयी थी। संज्ञाके यमराज और यमुना—ये दो सन्तान उत्पन्न हुईं। यमुना महानदीके रूपमें प्रसिद्ध हुई। संज्ञाको भगवान् सूर्यका तेज सहन नहीं होता था। अतः उसने अपनी छायाका ही आवाहन करके उससे कहा—'तुम मेरी ही भाँति भगवान् सूर्यकी सेवामें उपस्थित रहो। मेरे पुत्रोंसे और मेरे पतिदेव सूर्यदेवसे सदा उत्तम बर्ताव करना, ऐसा कहकर संज्ञादेवी पिताके घर चली गयी। वहाँ उसने अपने पिता विश्वकर्माका दर्शन किया और विश्वकर्माने भी बड़े आदरसे उन्हें रखा। कुछ समयतक वे पिताके घरमें ही टिकी रहीं। तब उनके धर्मज्ञ पिता विश्वकर्माने अपनी पुत्रीसे प्रेमपूर्वक कहा—'बेटी! यहाँ तुम्हारे रहनेसे धर्मका लोप हो रहा है, क्योंकि अपने बन्धु-बान्धवोंके साथ स्त्रियोंका अधिक कालतक रहना उनके लिये यशकारक नहीं होता। स्त्री पतिके घरमें रहे, तभी उसकी शोभा है। इसलिये तुम पतिके घर जाओ।' पिताके ऐसा कहनेपर संज्ञाने 'बहुत अच्छा' कहकर उनका आदर किया और वहाँसे निकलकर उत्तर कुरुको प्रस्थान किया। वे सूर्यके तेजसे भयभीत थीं, अतः घोड़ीका रूप धारण करके वहाँ तपस्या करने लगीं। इधर भगवान् सूर्यने अपनी दूसरी पत्नीको संज्ञा ही समझकर उसके गर्भसे दो पुत्र और एक सुन्दर कन्याको जन्म दिया। छाया अपनी सन्तानोंके प्रति जैसा प्रेमपूर्ण बर्ताव करती थी, वैसा संज्ञाकी कन्या एवं पुत्रोंके साथ नहीं करती थी। लाड़-प्यार तथा भोजन आदिमें वह प्रतिदिन भेदभाव करती थी। यमुनाने तो उसके इस बर्तावको सह लिये किंतु यमराजसे नहीं सहा गया। उन्होंने पिताके समीप जाकर प्रणामपूर्वक कहा—'तात! यह मेरी माता नहीं है।' यह सुनकर भगवान् सूर्यने छाया—संज्ञाको बुलाकर पूछा—'देवी! संज्ञा कहाँ चली गयीं?' उनके बार-बार पूछनेपर भी जब उसने नहीं बताया, तब वे क्रोधमें आकर शाप देनेको उद्यत हो गये। इससे भयभीत हो उसने सब वृत्तान्त ज्यों-का-त्यों बता दिया। यथार्थ बात ज्ञात होनेपर सूर्यदेव विश्वकर्माके घर गये और विश्वकर्मासे उन्होंने संज्ञाके विषयमें पूछा। वे बोले—'देव! संज्ञा आपके भेजनेसे मेरे घर आयी अवश्य थी, किंतु मैंने उसे पुनः वहीं भेज दिया।' यह सुनकर भगवान् सूर्यने समाधिमें स्थित होकर देखा कि संज्ञा घोड़ीका रूप धारण करके उत्तर कुरुमें तपस्या कर रही हैं। उन्होंने ध्यानके द्वारा यह भी समझ लिया कि तेजसे असह्य होनेके कारण वह मेरी ओर देखनेमें समर्थ न हो सकी। आज पचास वर्ष व्यतीत हो गये। उसने पृथ्वीपर जाकर तपस्या की है। तब भगवान् सूर्य शीघ्रतापूर्वक संज्ञाके पास गये। उस समय वे धर्मारण्यपुरमें आकर तपस्यामें संलग्न थीं। भगवान् सूर्यको आया हुआ देख सूर्यपत्नी संज्ञा पुनः घोड़ीके रूपमें स्थित हो गयीं। तब भगवान् सूर्य भी अश्व हो गये। फिर उन दोनोंका मिलन हुआ। इससे वे दोनों अश्विनीकुमार जुड़वें प्रकट हुए। उनके दाहिने खुरसे पृथ्वी विदीर्ण हो जानेके कारण वहाँ एक कुण्ड बन गया और उसमें जल प्रकट हो गया। इसी प्रकार पिछले चरणोंसे भी एक दूसरा कुण्ड

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth 279 Skandpuran_Section_22_2_Back

बन गया। उसमें स्नान करनेसे मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है और उसका शरीर कोढ़ आदि रोगोंसे पीड़ित नहीं होता। राजन्! इस प्रकार तुमसे अश्विनीकुमारोंकी उत्पत्तिका वृत्तान्त बतलाया। देवताओंने वहाँ भगवान् सूर्यको वकुलवनके स्वामीके रूपमें स्थापित किया। साथ ही वहाँ संज्ञारानी और दोनों अश्विनीकुमारोंकी भी स्थापना की गयी। जो मनुष्य इन्द्रियोंको संयममें रखकर श्रद्धापूर्वक सूर्यकुण्डमें स्नान करता है, वह महानरकमें पड़े हुए पितरोंका भी उद्धार कर देता है। जो श्रद्धापूर्वक देवताओं और पितरोंका तर्पण करके उस कुण्डका जल पीता है, उसका पुण्य कोटिगुना होता है। रविवारयुक्त सप्तमीमें तथा चन्द्रग्रहण और सूर्यग्रहणके समय जो सूर्यकुण्डमें स्नान करते हैं, वे फिर गर्भमें नहीं जाते। संक्रान्ति, व्यतीपात और वैधृति योगमें, पर्वोंके अवसरपर, शुक्ल और कृष्ण पक्षकी पूर्णिमा, अमावास्या एवं चतुर्दशीको जो सूर्यकुण्डमें स्नान करता है, उसे कोटि यज्ञोंका फल प्राप्त होता है। जो मनुष्य एकचित्त होकर वकुलादित्यका पूजन करता है, वह जबतक सूर्यदेव तपते हैं तबतक परम धाममें निवास करता है। उसे कभी सर्पका भय नहीं होता। भूत और प्रेत आदिकी बाधा भी नहीं प्राप्त होती। जो मनुष्य रोगग्रस्त हो, वह सूर्यकुण्डमें छः महीनेतक स्नान करनेसे सभी रोगोंसे मुक्त हो जाता है। युधिष्ठिर! जो मनुष्य इस धर्मारण्यक्षेत्रमें कन्यादान करता है, वह उस विवाहयज्ञसे पवित्रचित्त होकर ब्रह्मलोकमें पूजित होता है। इस क्षेत्रमें गोदान, शय्यादान, मूँगा, घोड़ा, दासी, भैंस, तिल एवं सुवर्णका दान करना चाहिये। रविवारयुक्त सप्तमी तिथिमें जो वकुलादित्यका स्मरण करता है, उसे ज्वर आदि रोगों, शत्रुओं तथा व्याधियोंसे भय नहीं प्राप्त होता।

युधिष्ठिरजीने पूछा—मुने! वहाँ भगवान् सूर्यका वकुलार्क अथवा वकुलादित्य नाम कैसे पड़ा?

व्यासजी बोले—राजेन्द्र! जब संज्ञारानीने भगवान् सूर्यकी प्राप्ति तथा उनके तेजकी शान्तिके लिये एकचित्त होकर वकुल-वृक्षके नीचे तपस्या की, उस समय उस वृक्षके नीचे आकर भगवान् सूर्य बहुत शान्त हो गये। तभी रानीने दो परम मनोहर दिव्यरूपधारी पुत्र उत्पन्न किये। इसीसे भगवान् सूर्यका नाम वकुलार्क हुआ। जो वहाँ स्नान करता है, उसे कोई व्याधि पीड़ा नहीं देती तथा वह धर्म, अर्थ एवं कामको प्राप्त करता है। वहाँ छः महीनेमें मनुष्यको सिद्धि प्राप्त होती है और वह अन्तमें मोक्ष पाता है।

इन्द्रेश्वरकी स्थापना और उनकी महिमा, देवमज्जनक तड़ागका माहात्म्य तथा लोहासुरके अत्याचारसे धर्मारण्यकी जनताका पलायन

व्यासजी कहते हैं—भारत! धर्मारण्यपुरसे उत्तर दिशामें देवराज इन्द्रने भगवान् शंकरको प्रसन्न करनेके लिये तीन सौ वर्षोंतक अत्यन्त दुष्कर तप किया। वृत्रासुरके वधसे जो पाप लगा था, उसको दूर करनेके लिये ही इन्द्र जितेन्द्रिय एवं एकाग्रचित्त होकर भगवान् शंकरकी आराधनामें लगे थे। उस समय भगवान् चन्द्रशेखर उनकी तपस्यासे बहुत प्रसन्न हुए और उनके समीप आकर बोले—'देवराज! तुम जो कुछ माँगते हो, उसे मैं दूँगा।'

इन्द्रने कहा—देवेश्वर! कृपासिन्धु महेश्वर! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो वृत्रासुरके मरनेसे जो पाप लगा है, उसका नाश कीजिये।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

भगवान् शिवने कहा—देवराज! धर्मारण्यमें ब्रह्महत्या किसीको पीड़ा नहीं दे सकती। गोहत्या, द्विजहत्या, बालहत्या और स्त्रीहत्या भी मेरे, ब्रह्माजीके, भगवान् विष्णुके तथा यमराजके वचनसे कभी यहाँ प्रवेश नहीं करती। अत: तुम इस तीर्थमें प्रवेश करके स्नान करो।

इन्द्रने कहा—दयासिन्धो! महेश्वर! यदि आप मुझपर सन्तुष्ट हैं तो मेरे नामसे यहाँ स्थापित हों।

तब महादेवजीने 'तथास्तु' कहकर इन्द्रकी प्रार्थना स्वीकार की और लोगोंके हितकी इच्छासे सबके पापोंकी शुद्धिके लिये धर्मारण्यमें इन्द्रेश्वर नामसे वे विराजमान हुए। जो मनुष्य सदा भक्तिपूर्वक पुष्प और धूप आदिसे भगवान् इन्द्रेश्वरका पूजन करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। विशेषत: माघ मासमें अष्टमी और चतुर्दशी तिथिको सब पापोंकी शुद्धिके लिये भगवान् शिवकी पूजा करनेवाला पुरुष शिवलोकमें प्रतिष्ठित होता है। जो चतुर्दशी तिथिमें सांग रुद्रजप करता है, वह सब पापोंसे शुद्धचित्त हो परम पदको प्राप्त होता है। जो कुष्ठ आदि महारोगोंसे ग्रस्त होते हैं, वे स्नानमात्रसे शुद्ध हो दिव्य देह धारण कर लेते हैं। जो स्नान करके देवाधिदेव इन्द्रेश्वरका पूजन करता है, वह ज्वरके बन्धनसे छूट जाता है। जो वन्ध्या, दुर्भाग्यवती, काकवन्ध्या, जिसकी सन्तान मर जाती हो, वह, मृतवत्सा तथा महादुष्टा नारी कुण्डमें भगवान् शिवके आगे स्नान करके एकचित्तसे उनकी पूजा करती है, वह स्नानमात्रसे ही शुद्ध हो जाती है।

इस प्रकार इन्द्रको बहुतसे वरदान देकर पिनाकधारी भगवान् शंकर देवता और असुरोंसे सेवित हो अपने धामको चले गये। तत्पश्चात् महातेजस्वी इन्द्र भी अपनी पुरीको गये। इन्द्रपुत्र जयन्तने भी वहाँ उत्तम शिवलिंगकी स्थापना की है। उस लिंगमें स्थित भगवान् शिव जयन्तके द्वारा अपनी स्तुति सुनकर सदा उनपर सन्तुष्ट रहते हैं।

राजन्! वहाँ 'धराक्षेत्र' नामक तीर्थ है, जिसमें 'देवमज्जनक' नामक उत्तम तड़ाग शोभा पाता है। आश्विन कृष्णा चतुर्दशीके दिन उसमें स्नान और जलपान करके मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। विधिपूर्वक उपवास करके देवेश्वर भगवान् शिवकी पूजा करनेसे शाकिनी, डाकिनी, वेताल, पितर, ग्रह और नक्षत्र पीड़ा नहीं देते। वहाँ सांग रुद्रजप करनेसे सब पापोंसे छुटकारा मिल जाता है और अनेक प्रकारके रोग नष्ट हो जाते हैं। यह देवमज्जनक तड़ागका शुभ माहात्म्य बतलाया गया। इस प्रसंगके स्मरण और कीर्तनसे कायिक, वाचिक और मानसिक तीनों प्रकारके पाप नष्ट हो जाते हैं। जो इस माहात्म्यको सुनता है, वह सब प्रकारके सुखसे सम्पन्न होता है।

त्रेतायुगकी बात है। 'लोहासुर' नामक एक मदोन्मत्त राक्षस ब्राह्मणका वेष धारण करके सदा धर्मारण्य क्षेत्रमें आता और वहाँके धर्मज्ञ ब्राह्मणोंको सताया करता था। वह उस क्षेत्रके शूद्रों और वैश्योंको डंडोंसे पीटता था। यज्ञ आदिको विध्वंस करता और होमकी सामग्री खा जाता था। वहाँकी वेदी और बावली आदिको देखकर वह मोहवश उन सबको अपवित्र कर दिया करता था। उस स्थानमें जो-जो पुण्यभूमि थी, उसे लोहासुरने मल-मूत्र डालकर गंदा कर दिया। उसके डरसे व्याकुल हो सब ब्राह्मण परिवारसहित सब दिशाओंमें भाग गये। वैश्य भी भयभीत होकर ब्राह्मणोंके ही पीछे चले गये। महान् भयसे व्याकुल हो दूर जाकर सब शूद्रों और ब्राह्मणोंके साथ मिलकर वैश्योंने कुछ विचार किया और सब एक मत होकर परम पवित्र 'मुक्तारण्य' नामक निर्जन वनमें चले गये। वहाँ थोड़ी ही दूरपर उन्होंने निवास बनाया और उस गाँवको 'वजिङ्' नामसे बसाया। वह गाँव संसारमें 'शम्भुग्राम'के नामसे विख्यात हुआ।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

तदनन्तर भयसे भागे हुए कुछ वैश्योंने थोड़ी दूर जाकर 'मण्डल' नामसे एक गाँव बसाया। कुछ वैश्य ब्राह्मणोंके यूथसे अलग होकर किसी दूसरे मार्गमें जा पहुँचे और धर्मारण्यसे थोड़ी ही दूर जाकर इस चिन्तामें पड़े कि हमलोग कहाँ चले आये। वहाँ उन्होंने 'अडालंज' नामसे प्रसिद्ध एक ग्राम बसाया। जिस गाँवका आदिनिवासी वैश्य जिस नामसे प्रसिद्ध था, उसी नामसे उस गाँवकी प्रसिद्धि हुई। सब वैश्य और ब्राह्मण भयसे व्याकुल हो मोहको प्राप्त हुए। इसलिये उन्होंने अपनी निवास-भूमिका नाम 'मोहमयी' रखा। इस प्रकार सब लोग धर्मारण्यसे दसों दिशाओंकी ओर पलायन कर गये। ब्राह्मण और वैश्य कोई भी धर्मारण्यमें नहीं ठहर सके। उस समय सब तीर्थोंका भूषणरूप परम दुर्लभ धर्मारण्य क्षेत्र उजाड़ हो गया। लोहासुरने उसकी बड़ी दुर्दशा कर डाली। वह दानव उस स्थानके तीर्थोंका नाश और ब्राह्मणोंका निष्कासन करके बहुत प्रसन्न हो अपने घरको चला गया।

सरस्वती नदी, द्वारकातीर्थ एवं गोवत्स आदि तीर्थोंकी महिमा

सूतजी बोले—अब मैं धर्मारण्यतीर्थके उत्तम माहात्म्यकी दूसरी कथा कहता हूँ। धर्मारण्यमें सत्यलोकसे जिस प्रकार सरस्वतीजी लायी गयीं, वह प्रसंग सुनिये। एक समय प्रभातकालीन सूर्यके समान तेजस्वी तथा सब शास्त्रोंमें प्रवीण महामुनिसेवित महर्षि मार्कण्डेयजीको भक्तिपूर्वक प्रणाम करके सब ऋषियोंने कहा—'भगवन्! आपने ब्रह्माजीकी पुत्री जिस सरस्वती नदीको उतारा है, वह दर्शनसे प्राणियोंके पापोंका नाश करनेवाली और पुण्य देनेवाली है, उसके माहात्म्यका वर्णन कीजिये।'

मार्कण्डेयजी बोले—ब्राह्मणो! मैंने शरणार्थियोंको शरण देनेवाली सरस्वती देवीको भाद्रपद मासके शुक्ल पक्षकी पुण्यमयी द्वादशी तिथिको धर्मारण्यके अन्तर्गत द्वारावतीतीर्थमें उतारा था। द्वारावतीतीर्थ मुनियों और गन्धर्वोंसे सेवित है। उक्त तिथिको उस तीर्थमें पिण्डदान आदि करना चाहिये। उसमें पितरोंको दिया हुआ अक्षय होता है और श्राद्धकर्ता भी उसके पुण्यफलको प्राप्त होता है। यह महत्त्वपूर्ण उपाख्यान पापोंका नाशक एवं पुण्यदायक है। पवित्र वस्तुओंमें पवित्र और महापातकोंका निवारण करनेवाला है। सरस्वतीजीका जल समस्त मंगलोंके लिये मंगलकारक और परम पवित्र है। प्रभास तीर्थके मध्यमें सरस्वतीका जो पुण्यमय जल है, वह क्या ऊपरके लोकोंमें सुलभ है? सरस्वतीका जल मनुष्योंकी ब्रह्महत्याको भी दूर करता है। सरस्वतीमें स्नान और देवता-पितरोंका तर्पण करके पश्चात् पिण्ड देनेवाले मनुष्य फिर कभी माताका दूध पीनेवाले शिशु नहीं होते। जैसे कामधेनु गौएँ मनोवांछित फल देनेवाली होती हैं, उसी प्रकार सरस्वती नदी भी स्वर्ग और मोक्षकी एकमात्र हेतु है।

व्यासजी कहते हैं—मार्कण्डेयजीने सरस्वती देवीको यहाँ लाकर वैकुण्ठका दरवाजा खोल दिया है। जो फलकी आकांक्षासे यहाँ शरीर-त्याग करते हैं, वे उस फलको पाते हैं और अन्तमें भगवान् विष्णुका सायुज्य प्राप्त कर लेते हैं। अधिक कहनेसे क्या लाभ; मनुष्योंको सदैव विष्णुलोक प्राप्त करनेकी इच्छासे द्वारकामें ही शरीर-त्याग करना चाहिये। द्वारकामें मृत्युको प्राप्त हुए मनुष्य सब पापोंसे छूटकर भगवान् विष्णुके धाममें जाते हैं। उस तीर्थमें स्नान करके जो मनुष्य भगवान् विष्णुका पूजन करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो विष्णुधामको जाता है। वह सब तीर्थोंमें उत्तम तीर्थ है, जहाँ साक्षात् श्रीहरि निवास

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

करते और उस तीर्थमें रहनेवाले मनुष्यके सब पापोंको हर लेते हैं। द्वारकातीर्थ मोक्ष चाहनेवाले मनुष्योंको मुक्ति देनेवाला, धनार्थियोंको धन देनेवाला तथा आयु, सुख एवं सम्पूर्ण मनोवांछित फल प्रदान करनेवाला है। जो मनुष्य वहाँ एकादशीमें उपवास करके श्राद्ध करता है, वह नरकोंसे सब पितरोंका उद्धार कर देता है।

वहाँ द्वारकाके समीप मार्कण्डेयजीसे उपलक्षित एक गोवत्स नामक तीर्थ है, जो पृथ्वीमें सर्वत्र विख्यात है। उस तीर्थमें जगत्पति उमाकान्त भगवान् शिव गायके बछड़ेके रूपमें अवतीर्ण हो स्वयम्भू लिंगरूपसे विराज रहे हैं। पूर्वकालमें बलाहक नामके एक शत्रुविजयी राजा थे, जो महान् बलवान् और भगवान् शिवके परम भक्त थे। एक दिन जब वे शिकार खेलनेमें लगे थे, उनके किसी पैदल सैनिकने मृगोंके झुण्डमें एक गायके बछड़ेको स्थित देखकर राजासे कहा—'नृपश्रेष्ठ! मैंने मृगोंके समुदायमें एक गायका बछड़ा देखा है, जो उन्हींमें हिला-मिला है। उसकी माँ उसके साथ नहीं है।' राजाने उस नौकरसे कहा—'तू मुझे उस बछड़ेको दिखा।' तब उस पैदल सेवकने वनमें जाकर राजाको वह बछड़ा दिखाया। उस समय पैदल सैनिकोंके भयसे मृगोंका वह झुण्ड पीलु वृक्षकी झाड़ीकी ओर भागा। तब गायका बछड़ा भी उसी ओर चला। राजा उसे पकड़नेके लिये झाड़ीमें घुस गये और ज्यों ही उसे पकड़ने लगे त्यों ही वह उज्ज्वल शिवलिंगके रूपमें परिणत हो गया। यह देखकर राजाको बड़ा विस्मय हुआ। वे सोचने लगे—'यह क्या बात है।' तबतक उस शिवलिंगके मध्य भागमें उन्होंने गायके बछड़ेको स्थित देखा। अब उनके मनमें यह निश्चय हो गया कि 'अवश्य ही गायके बछड़ेके रूपमें साक्षात् भगवान् महेश्वर विराजमान हैं।' तदनन्तर उन्हें ले जानेके लिये उद्यत हो राजाने उस शिवलिंगको उखाड़नेका प्रयत्न किया, किंतु वे उस देवलिंगको किसी प्रकार उठा न सके। तब राजाके साथ सब देवताओंने भगवान् शंकरसे प्रार्थना की।

देवता बोले—भगवन्! सर्वदेवेश्वर! प्रभो! आपको सब लोकोंका हित-साधन करनेकी इच्छासे शुक्ल लिंगरूपसे स्थित होना चाहिये।

श्रीमहादेवजीने कहा—देवताओ! मैं यहाँ सदा ही लिंगरूपसे स्थित रहूँगा। भाद्रपद मासके कृष्ण पक्षमें अमावास्याके दिन मेरा प्राकट्य हुआ है, इसलिये उस दिन विधिपूर्वक स्नान करके जो लोग इस शिवलिंगका पूजन करेंगे, उन्हें भय नहीं होगा। यहाँ पिण्डदान करनेसे पूर्वजोंको सदाके लिये उत्तम लोककी प्राप्ति होगी। घोर रौरव, कुम्भीपाक तथा अन्य अनेक नरकोंमें गिरे हुए अथवा पशु-पक्षियोंकी योनिमें पड़े हुए जो पितर हैं, उन्हें यहाँ एक बार पिण्डदान करनेसे अक्षय गतिकी प्राप्ति होती है।

तदनन्तर राजा बलाहकने सब देवताओंके समीप उस शिवलिंगको स्थापित किया और लोकहितकी कामनासे अनेक प्रकारके दान दिये। जबतक वे उस लिंगकी पूजा करते रहे, तभीतक साक्षात् भगवान् शिव भी वहाँ आ गये।

शिवजीने कहा—जो मनुष्य आजकी रातमें श्रद्धा और भक्तिसे इस देवेश्वर शिवकी पूजा करेंगे, उन्हें अक्षय पुण्यकी प्राप्ति होगी। जो गीता-शास्त्रका पाठ करते हुए जागरण करेंगे, वे मनुष्य अपनी एक सौ एक पीढ़ियोंका उद्धार कर देंगे।

यह देवाधिदेव भगवान् शिवका अद्भुत लिंग है। जो मनुष्य भक्तिपूर्वक इसका माहात्म्य सुनता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। गोवत्स नामसे विख्यात शिवलिंग मनुष्योंको परम पुण्य प्रदान करनेवाला है। वह अनेक जन्मोंके पापोंका नाश कर देता है, ऐसा मार्कण्डेयजीका वचन है। जिनका चित्त पापसे दूषित है, उनके पापयुक्त

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

शरीरकी शुद्धिके लिये उस तीर्थमें स्नान करना आवश्यक है। गोवत्सतीर्थमें एक बार किया हुआ स्नान भी मनुष्योंको रुद्रलोक प्रदान करनेवाला है। वहाँ विशेषत: भाद्रपद मासमें पक्षके अन्तमें कूपके तटपर तर्पण और श्राद्ध करनेसे कलियुगमें पितरोंको अधिक तृप्ति होती है। गयामें इक्कीस बार तर्पण करनेपर पितरोंको जो परम तृप्ति होती है, वह गंगकूपमें एक बार तर्पण करनेसे ही हो जाती है। गोवत्स महादेवके समीप ही गंगकूप विद्यमान है। वहाँ तिल और जलसे भी तर्पण करनेपर पितर सद्‌गतिको प्राप्त होते हैं, नरकोंसे छूट जाते हैं। उस तीर्थमें मुनीश्वरगण गोदानकी प्रशंसा करते हैं। वहाँ दो पीलुके वृक्ष स्थित हैं। वहीं मुनिसेवित गोवत्सतीर्थ है, जो स्नानसे स्वर्ग देनेवाला, आचमनसे पापकी शुद्धि करनेवाला, कीर्तनसे पुण्य उत्पन्न करनेवाला और सेवनसे मोक्ष देनेवाला है।

गोवत्सतीर्थसे नैर्ऋत्य कोणमें 'लोहयष्टि' दीख पड़ती है। वहाँ स्वयम्भू लिंगके रूपमें साक्षात् भगवान् शंकर विराजमान हैं। भाद्रपद (आश्विन)-की अमावास्याके दिन लोहयष्टिमें श्राद्ध करनेपर पितर प्रेतयोनिसे मुक्त हो स्वर्गमें क्रीड़ा करते हैं। पितरलोग यह कहते हैं 'क्या हमारे कुलमें भी ऐसा कोई पुरुष उत्पन्न होगा, जो श्राद्धपक्षमें आश्विनकी अमावास्याके दिन लोहयष्टि तीर्थमें हमारे लिये तिल, जल, पिण्डदान अथवा केवल जल ही प्रदान करेगा?' मुनि कहते हैं—'यदि पितर अधिक प्रिय हों तो भाद्रपद (आश्विन)-की अमावास्या तिथिको उनके लिये अवश्य श्राद्ध करना चाहिये।' जो सरस्वतीके जलमें स्नान करके दूधसे और श्वेत तिलोंसे पितरोंका तर्पण करता है, उसके पितर अवश्य तृप्त होते हैं। लोहयष्टि तीर्थमें भक्ति-भावसे तर्पण करनेपर मनुष्य स्वयं भी तृप्तिको प्राप्त होता है। जल देनेवाला तृप्ति और अन्न देनेवाला अक्षय सुख पाता है। फल देनेवाला पितृभक्त पुत्र और अभय देनेवाला आरोग्य लाभ करता है। न्यायोपार्जित धनमेंसे जो थोड़ा भी दान दिया जाय, तो वह महान् फल देनेवाला होता है। उस तीर्थमें स्नान करनेसे मनुष्य भगवान् शिवका पार्षद होता है।

संक्षेपसे श्रीरामचन्द्रजीके सम्पूर्ण चरित्रका वर्णन

व्यासजी कहते हैं—पूर्वकालमें त्रेतायुग आनेपर भगवान् विष्णुका अंश सूर्यवंशमें रघुवंशशिरोमणि कमलनयन श्रीरामचन्द्रजीके रूपमें अवतीर्ण हुआ। श्रीराम और लक्ष्मण अभी काकपक्षधारी बालक थे, तभी पिताकी आज्ञासे वे विश्वामित्रके अनुगामी हो गये। राजा दशरथने यज्ञकी रक्षाके लिये उन अपने दोनों कुमारोंको विश्वामित्रजीकी सेवामें सौंप दिया था। वे दोनों वीर धनुष और बाण धारण करके पिताकी आज्ञाका पालन करनेके लिये चले। रास्तेमें जाते हुए उन दोनों भाइयोंके समक्ष ताड़का नामवाली राक्षसी विघ्न डालनेके लिये आ खड़ी हुई। तब विश्वामित्र मुनिकी आज्ञासे श्रीरामचन्द्रजीने ताड़काको मार डाला। विश्वामित्रजीने श्रीरामचन्द्रजीको धनुर्वेद विद्याका उपदेश भी दिया। रघुनाथजीके चरणोंके स्पर्शसे शिलारूपधारिणी अहल्या, जो इन्द्रके साथ संयोग होनेके कारण शापवश प्रस्तर हो गयी थी, पुन: गौतम-वधूके रूपमें प्रकट हो गयी। विश्वामित्रजीका यज्ञ आरम्भ होनेपर रघुनाथजीने मारीचको मार भगाया और सुबाहुको अपने उत्तम बाणोंसे मौतके घाट उतार दिया। उन्होंने राजा जनकके घरमें रखे हुए महादेवजीके धनुषको तोड़ डाला और अयोनिजा सीताके साथ विवाह किया। जब वे अयोध्याको लौटने लगे, तब रास्तेमें परशुरामजी

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

मिले। उन्हें जीतकर श्रीरामचन्द्रजी सीताके साथ घर आये। तत्पश्चात् सत्ताईसवें वर्षकी आयुमें जब श्रीरामचन्द्रजीको युवराज पद दिया जाने लगा, तब कैकेयीने राजासे दो वर माँगे। उनमेंसे एक वरके द्वारा यह माँगा कि 'श्रीराम जटा धारण करके चौदह वर्षोंके लिये वनमें चले जायँ और दूसरे वरसे यह माँग लिया कि भरत युवराज-पदके अधिकारी हों।' कैकेयी भोली-भाली थी। उसने मन्थराके बहकानेसे ऐसा वर माँगा। राजा दशरथने जानकी और लक्ष्मणके साथ श्रीरामचन्द्रजीको वनवास दे दिया। श्रीरामचन्द्रजी तीन राततक केवल जल पीकर रहे। चौथे दिन फलाहार किया और पाँचवें दिन चित्रकूटमें पहुँचकर उन्होंने पर्णकुटी बनायी। उस समय राजा दशरथ श्रीरामचन्द्रजीका नाम लेते हुए स्वर्गको सिधारे। उन्होंने ऋषिके शापको सफल बनाकर स्वर्गलोकको प्रस्थान किया। उसके बाद भरत और शत्रुघ्न चित्रकूटमें आये। भरतने पिताके स्वर्गगामी होनेका समाचार बतलाकर श्रीरामचन्द्रजीको घर लौट चलनेके लिये समझाया। जब वे लौटनेको राजी न हुए, तब उनकी चरणपादुका लेकर भरत और शत्रुघ्न नन्दिग्रामको लौट आये। वहाँ दोनों भाई राज्यकी रक्षा करते हुए श्रीरामकी चरणपादुकाके पूजनमें तत्पर रहे।

श्रीरामचन्द्रजी महात्मा अत्रिसे मिलकर दण्डकारण्यमें आये और राक्षसोंका वध आरम्भ किया। सबसे पहले विराध मारा गया। उसके बाद साढ़े बारह वर्षोंतक श्रीरामचन्द्रजी पंचवटीमें टिके रहे। वहाँ उन्होंने लक्ष्मणजीके द्वारा 'शूर्पणखा' नामक राक्षसीको कुरूप करा दिया। जानकीके साथ वनमें विचरते हुए श्रीरामचन्द्रजीके आश्रमके समीप भयंकर राक्षस रावण आया। वह सीताका अपहरण करनेके लिये आया था। माघ मासके कृष्ण पक्षकी अष्टमी तिथिको वृन्द मुहूर्तमें जब राम और लक्ष्मण दोनों आश्रमसे बाहर चले गये थे, दशमुख रावणने सीताको अकेली पाकर हर लिया। रावण पहले मारीचके आश्रमपर गया था। मारीच मृगरूपमें आकर लक्ष्मणसहित श्रीरामको दूर हटा ले गया था। तब श्रीरामचन्द्रजीने मृगरूपधारी मारीचको मार डाला और पुनः लौटकर जब वे आश्रमपर आये, तब उसे सीतासे रहित एवं सूना देखा।

उधर सीता रावणके द्वारा हरी जानेपर कुररीकी भाँति विलाप करने लगी—'हा राम! हा राम! मुझे राक्षस हरकर लिये जाता है, आप आकर मुझे बचाइये, मेरी रक्षा कीजिये।' जैसे भूखा बाज चीत्कार करती हुई चिड़ियाको उठा ले जाता है, वैसे ही राक्षस रावण जनकनन्दिनी सीताको हरकर लिये जा रहा था। यह समाचार सुनकर पक्षिराज जटायुने राक्षसराज रावणसे युद्ध किया। अन्तमें रावणने उन्हें घायल करके गिरा दिया। माघ कृष्णा नवमीको रावणके घरमें निवास करनेवाली सीताकी खोज करते हुए दोनों भाई राम और लक्ष्मण जटायुसे मिले। उसके मुखसे राक्षसद्वारा हरी गयी सीताका समाचार पाकर श्रीरामने भक्तिपूर्वक पक्षिराजका दाहादि संस्कार किया। फिर आगे-आगे श्रीराम और उनके पीछे लक्ष्मण चले। पम्पासरोवरके निकट पहुँचकर उन्होंने शबरीपर अनुग्रह किया। फिर पम्पासरोवरके जलका आचमन करके श्रीरामजी हनुमान्जीसे मिले। तदनन्तर रघुनाथजीने हनुमान् एवं सुग्रीवसे मैत्री की। सुग्रीवके पास आकर उन्होंने बाली नामक वानरको मारा। तत्पश्चात् श्रीरामदेवने अपनी प्राणवल्लभा सीताकी खोजके लिये हनुमान् आदि प्रमुख वानरोंको भेजा। हनुमान्जी श्रीरामकी अँगूठी लेकर गये। दसवें महीनेमें सम्पातीने हनुमान्जीको सीताका पता बतलाया। सम्पातीके कहनेसे हनुमान्जी सौ

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

योजन समुद्र लाँघकर लंकामें पहुँचे और रातभर सब ओर सीताकी खोज करते रहे। रात्रि समाप्त होते-होते हनुमान्‌जीको सीताका दर्शन हुआ। द्वादशीको हनुमान्‌जी अशोक वृक्षपर बैठे रहे। उसी रातमें उन्होंने जानकीजीके विश्वासके लिये उत्तम कथा कही। तदनन्तर त्रयोदशीको अक्षकुमार आदिके साथ युद्ध हुआ। त्रयोदशीको ही मेघनादने ब्रह्मास्त्रसे हनुमान्‌को बाँध लिया। ब्रह्मास्त्रसे बँधे होनेपर भी वायुपुत्र हनुमान्‌जीने राक्षसराज रावणको कितने ही रूखे एवं कठोर वचन सुनाये। तब राक्षसोंने उनकी पूँछमें आग लगा दी। उसी आगसे हनुमान्‌जीने समस्त लंकाको जला डाला और वे पूर्णिमाको पुनः महेन्द्र पर्वतपर लौट आये। मार्गशीर्ष प्रतिपदासे पाँच दिनतक रास्तेमें रहकर वे मधुवनमें आये और षष्ठीको मधुवनका विध्वंस किया। फिर सप्तमीको श्रीरामचन्द्रजीकी सेवामें पहुँचकर पहचान देते हुए सब समाचार निवेदन किया। सीताजीकी मणि देकर श्रीरामसे उन्होंने सब बातें बतायीं। फिर अष्टमीको उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रमें, जब विजयसंज्ञक मुहूर्त व्यतीत हो रहा था, ठीक दोपहरके समयमें श्रीरामचन्द्रजीने प्रस्थान किया। रामने दक्षिण दिशामें जानेकी प्रतिज्ञा करते हुए कहा—'मैं समुद्रको लाँघकर भी राक्षसराज रावणका वध करूँगा। दक्षिण दिशाकी ओर प्रस्थान करते समय श्रीरामचन्द्रजीके साथी वानरराज सुग्रीव हुए। सात दिनोंमें समुद्रके तटपर सेनाकी छावनी पड़ी। पौष शुक्ला प्रतिपदासे लेकर तृतीयातक सेनासहित श्रीरामचन्द्रजीकी उपस्थिति सागरके तटपर हुई। चतुर्थीको विभीषण आकर श्रीरामचन्द्रजीसे मिले। पंचमीको समुद्र पार करनेके विषयमें विचार किया गया। उसके बाद चार दिनतक श्रीरामचन्द्रजीने समुद्रके किनारे उपवास-व्रत किया। चौथे दिन समुद्रसे वर प्राप्त हुआ। साथ ही समुद्रने समुद्र-पार करनेका उपाय बताया। दशमीसे सेतु बाँधनेका कार्य प्रारम्भ हुआ और त्रयोदशीको पूरा हो गया। चतुर्दशीको सुबेल पर्वतपर पहुँचकर श्रीरामचन्द्रजीने सेनाका पड़ाव डाला। पूर्णिमासे लेकर द्वितीयातक तीन दिनोंमें सारी सेना समुद्र पार करके लंका पहुँच गयी। तत्पश्चात् शुभलक्षण श्रीरामने सीताको प्राप्त करनेके लिये शूरवीर वानरोंकी सेनाके साथ लंकापुरीको चारों ओरसे घेर लिया। तृतीयासे लेकर दशमीतक आठ दिनोंतक सेना टिकी रही। एकादशीके दिन शुक और सारण इन दो मन्त्रियोंका आगमन हुआ। पौष कृष्णा द्वादशीको सेनाकी गणना की गयी। कपिश्रेष्ठ सुग्रीवने अपनी सेनाके बलाबलका वर्णन किया। त्रयोदशीसे लेकर अमावास्यातक तीन दिन लंकामें रावणने अपनी सेनाका संगठन, उसकी गणना एवं सैनिकोंमें युद्धके लिये उत्साह भरनेका कार्य किया। माघ शुक्ला प्रतिपदाको अंगदजी दूत बनकर रावणके दरबारमें गये। द्वितीयाके दिन सीताजीको मायासे उनके पतिके कटे हुए मस्तक आदिका दर्शन कराया गया। उस दिनसे सात दिनोंतक अर्थात् अष्टमी तिथितक राक्षसों और वानरोंमें घमासान युद्ध हुआ। माघ शुक्ला नवमीकी रातमें मेघनादने युद्ध करके राम और लक्ष्मणको नागपाशमें बाँध लिया। इससे सब कपीश्वर व्याकुल और हताश हो गये। तब वायुके उपदेशसे श्रीरघुनाथजीने गरुड़का स्मरण किया। दशमीको गरुड़जी नागपाशसे छुड़ानेके लिये आये। फिर माघ शुक्ला एकादशीसे लेकर दो दिनतक युद्ध बंद रहा। द्वादशीको हनुमान्‌जीने धूम्राक्षका और त्रयोदशीको उन्होंने ही अकम्पनका वध किया। रावणने श्रीरामको मायामयी सीताका दर्शन कराकर समस्त सैनिकोंको भयभीत कर दिया। माघ शुक्ला चतुर्दशीसे लेकर कृष्ण पक्षकी प्रतिपदातक तीन दिनमें

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

नीलने प्रहस्तका वध किया। माघ कृष्णा द्वितीयासे लेकर चतुर्थीतक तीन दिनोंमें श्रीरामचन्द्रजीने तुमुल युद्ध करके रावणको रणस्थलसे मार भगाया। पंचमीसे अष्टमीतक रावणद्वारा जगाया हुआ कुम्भकर्ण चार दिनतक केवल भोजन ही करता रहा। नवमीसे चार दिनतक कुम्भकर्णने युद्ध किया और बहुतसे वानरोंको खा डाला। अन्तमें वह श्रीरामचन्द्रजीके हाथसे मारा गया। अमावास्याके दिन लंकामें उसके लिये शोक मनाया गया। फाल्गुन शुक्ला प्रतिपदासे लेकर चतुर्थीतक चार दिनोंमें नरान्तक आदि पाँच राक्षस मारे गये। पंचमीसे सप्तमीतक तीन दिनोंमें अतिकायका वध हुआ। अष्टमीसे द्वादशीतक पाँच दिनोंमें निकुम्भ और कुम्भ मारे गये। फिर चार दिनोंमें मकराक्षका वध किया गया। फाल्गुन कृष्णा द्वितीयाके दिन मेघनाद पराजित हुआ। तीजसे लेकर सप्तमीतक पाँच दिन दवा आदि लानेकी व्यग्रताके कारण युद्ध बंद रहा। अष्टमीको दुर्बुद्धि रावणने शोकके आवेगसे मायामयी मैथिलीका वध किया। तत्पश्चात् श्रीरामचन्द्रजीने सेनाके द्वारा इसका पूर्णतः निश्चय किया। फिर त्रयोदशीसे पाँच दिनोंमें लक्ष्मणजीने विख्यात बल और पराक्रमवाले मेघनादको युद्धमें मार डाला। चतुर्दशीको रावणने युद्ध बंद करके यज्ञकी दीक्षा ली। फिर अमावास्याके दिन वह युद्धके लिये निकला। चैत्र शुक्ला प्रतिपदासे लेकर पाँच दिनतक रावण लगातार युद्ध करता रहा। इस युद्धमें बहुत-से राक्षसोंका संहार हुआ। फिर तीन दिनोंतक रावणके रथ, घोड़े आदि मारे गये। चैत्र शुक्ला नवमीको लक्ष्मणजीको शक्ति लगी। तब श्रीरामचन्द्रजीने क्रोधमें भरकर दशमुख रावणको खदेड़ दिया। फिर विभीषणकी सलाहसे हनुमान्‌जी लक्ष्मणके लिये ओषधि लानेको द्रोणाचल पर्वतपर गये और वहाँसे विशल्या (संजीवनी बूटी) ले आकर उन्होंने लक्ष्मणको पिलायी। दशमीके दिन युद्ध बंद रहा। रातमें राक्षसोंने युद्ध आरम्भ किया। एकादशीके दिन श्रीरामचन्द्रजीके पास मातलि नामक सारथिके साथ इन्द्रका रथ आ पहुँचा। चैत्र शुक्ला द्वादशीसे लेकर कृष्णा चतुर्दशीतक अठारह दिनोंमें श्रीरामचन्द्रजीने द्वन्द्वयुद्ध करके रावणको मार डाला। अमावास्याके दिन रावण आदि राक्षसोंके दाह-संस्कार हुए। इस प्रकार घोर संग्राम होनेपर श्रीरामचन्द्रजीको विजय प्राप्त हुई। माघ शुक्ला द्वितीयासे लेकर चैत्र कृष्णा चतुर्दशीतक सत्तासी दिनके संग्राममें केवल पंद्रह दिन युद्ध बंद रहा। शेष बहत्तर दिन युद्ध चालू रहा। वैशाख शुक्ला प्रतिपदाको श्रीरामचन्द्रजी रणभूमिमें ही रहे। द्वितीयाके दिन उन्होंने विभीषणका लंकाके राज्यपर अभिषेक किया। तृतीयाको सीताकी शुद्धि हुई, देवताओंसे वरदान प्राप्त हुआ। उसी दिन दशरथजीका आगमन हुआ और उनके द्वारा भी सीताजीकी पवित्रताके विषयमे अनुमोदन प्राप्त हुआ।

इस प्रकार श्रीरामचन्द्रजी राक्षसोंद्वारा कष्टमें डाली हुई परम पवित्र जानकीको बड़े प्रेमसे ग्रहण करके वहाँसे लौटे। वैशाखकी चतुर्थीको श्रीरामचन्द्रजी पुष्पक विमानपर बैठे और आकाशमार्गसे अयोध्यापुरीकी ओर चल दिये। चौदहवाँ वर्ष पूर्ण होनेपर वैशाख शुक्ला पंचमीको श्रीरामचन्द्रजी अपने दलबलके साथ भरद्वाज आश्रमपर आकर रहे। फिर षष्ठीको पुष्पक विमानसे वे नन्दिग्राममें आये। सप्तमीमें अयोध्याके राज्यपर रघुनाथजीका अभिषेक हुआ। चौदह महीने दस दिनतक सीताको रामसे अलग रावणके घरमें रहना पड़ा था। बयालीसवें वर्षमें श्रीरामचन्द्रजीने राज्यकार्य प्रारम्भ किया। उस समय सीताजीकी आयु पैंतीस वर्षकी थी। चौदह वर्षके बाद ही

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

श्रीरामने अयोध्यापुरीमें प्रवेश किया था। उस समय रावणका दर्प दलन करनेवाले श्रीरामचन्द्रजी बहुत प्रसन्न थे। उन्होंने अपने भाइयोंके साथ ग्यारह हजार वर्षोंतक राज्य किया। राज्यका पालन करनेके पश्चात् वे सबके साथ परम धाममें गये। रामराज्यमें सब लोग बहुत प्रसन्न रहते थे। सभी धन-धान्यसे सम्पन्न तथा पुत्र-पौत्रोंसे भरे-पूरे थे। बादल इच्छाके अनुसार पानी बरसाते थे, अन्नकी उपज कई गुनी अधिक होती थी, गौएँ घड़ाभर दूध देती थीं और वृक्षोंमें सदैव फल लगे रहते थे। श्रीरामचन्द्रजीके राज्यमें किसीको आधि-व्याधि नहीं सताती थी, सभी स्त्रियाँ पतिव्रता होती थीं, पुरुष पिता-माताकी भक्ति करनेवाले होते थे, ब्राह्मण सदा वेदपाठमें लगे रहते, क्षत्रिय ब्राह्मणोंकी सेवा करते और वैश्यलोग ब्राह्मणों एवं गौओंमें सदा भक्ति रखते थे। उस समय वर्णसंकरता और कर्मसंकरताका नाम नहीं सुना जाता था। कोई भी स्त्री वन्ध्या, दुर्भाग्यवती, काकवन्ध्या, मृतवत्सा अथवा विधवा नहीं थी। सधवा स्त्रीको कभी विलाप नहीं करना पड़ता था। कोई भी माता-पिता और गुरुकी अवहेलना नहीं करते थे। प्रत्येक मनुष्य पुण्य करता और बड़े-बूढ़ोंकी आज्ञा नहीं टालता था। कोई दूसरेकी भूमिपर अधिकार नहीं जमाते थे। सभी परायी स्त्रियोंसे विमुख रहते थे। कोई मनुष्य परनिन्दक, दरिद्र, रोगी, चोर, जुआरी, शराबी और पापी नहीं था। सुवर्ण चुरानेवाला, गुरुपत्नीगमन करनेवाला, ब्रह्महत्या, स्त्रीहत्या और बालहत्या करनेवाला तथा झूठ बोलनेवाला एक भी मनुष्य नहीं था। कोई किसीकी जीविका नष्ट नहीं करता और झूठी गवाही नहीं देता था। शठ, कृतघ्न और मलिन मनुष्य कहीं देखनेको भी नहीं मिलता था। ब्राह्मण वेदोंके पारंगत विद्वान् होते थे और सदा सर्वत्र उनकी पूजा होती थी। अत्यन्त विख्यात रामराज्यमें कोई भी मनुष्य ऐसा नहीं था, जो व्रतका पालन करनेवाला एवं ईश्वरका भक्त न हो। राज्य करते हुए श्रीरामचन्द्रजीके पास उनके पुरोहित महाभाग वसिष्ठ मुनि अनेक तीर्थोंमें भ्रमण करके आये। श्रीरामचन्द्रजीने अभ्युत्थान, अर्घ्य, पाद्य और मधुपर्क आदिके द्वारा मुनियोंसहित गुरु वसिष्ठका पूजन किया। तत्पश्चात् मुनिवर वसिष्ठने श्रीरामचन्द्रजीसे उनके राज्य, अश्व, हाथी, खजाना, देश, उत्तम बन्धु तथा सेवकोंके विषयमें कुशल-समाचार पूछा। श्रीरामचन्द्रजीने कहा—'गुरुदेव! आपके प्रसादसे मेरे लिये सर्वत्र कुशल है।' तदनन्तर श्रीरामने मुनिवर वसिष्ठजीसे उनकी पत्नी और पुत्रके कुशल-मंगलका समाचार पूछा। तब वसिष्ठजीने भूमण्डलमें जिन-जिन क्षेत्रों, तीर्थों और देवालयोंका सेवन किया था, उन सबकी चर्चा करते हुए सर्वत्र अपना कुशल-मंगल बतलाया। इससे कमलनयन श्रीरामचन्द्रजी बड़े विस्मित होकर वसिष्ठजीसे उत्तमोत्तम तीर्थका माहात्म्य पूछने लगे।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

वसिष्ठजीके द्वारा भिन्न-भिन्न तीर्थोंकी महिमाका वर्णन, श्रीरामकी धर्मारण्ययात्रा, वहाँके भगे हुए ब्राह्मणोंको पुनः लाकर बसाना और सत्यमन्दिरकी स्थापना करना

श्रीरामचन्द्रजीने कहा—भगवन्! आपने जिन-जिन तीर्थोंका सेवन किया है, उनमें सबसे उत्तम तीर्थ कौन है, यह मुझे बताइये। सीताका अपहरण होनेपर मैंने बहुत-से ब्रह्मराक्षसोंका वध किया है। उस पापकी शुद्धिके लिये आप मुझे किसी ऐसे तीर्थका परिचय दीजिये, जो उत्तम-से-उत्तम हो।

वसिष्ठजी बोले—गंगा, नर्मदा, तापी, यमुना, सरस्वती, गण्डकी, गोमती और पूर्णा—ये सभी नदियाँ परम पावन हैं। इन सबमें नर्मदा और त्रिपथगामिनी गंगा श्रेष्ठ हैं। रघुनन्दन! श्रीगंगाजी दर्शनमात्रसे ही सब पापोंको जला देती हैं। कलियुगमें नर्मदाका दर्शन करनेसे सौ जन्मोंके, समीप जानेसे तीन सौ जन्मोंके और जलमें स्नान करनेसे एक हजार जन्मोंके पापोंका वह नाश कर देती हैं। नर्मदाके तटपर जाकर साग और मूल-फलसे भी एक ब्राह्मणको भोजन करानेसे कोटि ब्राह्मणोंको भोजन देनेका फल होता है। जो सौ योजन दूरसे भी गंगा-गंगाका उच्चारण करता है, वह सब पापोंसे मुक्त होता और भगवान् विष्णुके लोकमें जाता है*। फाल्गुन (चैत्र) मासके अन्तमें अमावास्या तिथिको तथा भाद्रपद (आश्विन) कृष्ण पक्षमें गंगाजीके तटपर जाकर जो मनुष्य स्नान, पितरोंका तर्पण और पिण्डदान करता है, वह अक्षय फलका भागी होता है। तापी नदीका स्मरण करनेपर महापातकियोंके भी सात गोत्रोंका उद्धार हो जाता है। यमुनामें स्नान करनेसे मनुष्य सब पापोंसे छूट जाता है और महापातकोंसे युक्त होनेपर भी परम गतिको प्राप्त होता है। कार्तिककी पूर्णिमाको कृत्तिका नक्षत्रका योग होनेपर जो सरस्वती नदीमें स्नान करता है, वह गरुड़की पीठपर बैठकर उत्तम देवताओंके मुखसे अपनी स्तुति सुनता हुआ वैकुण्ठधामको जाता है। जो कार्तिक मासमें प्राची सरस्वतीके जलमें स्नान करके भगवान् प्राचीमाधवकी स्तुति करता है, वह परम गतिको प्राप्त होता है। जो गण्डकी (नारायणी) नदीके पुण्यतीर्थमें स्नान करता और शालग्रामशिलाकी पूजा करता है, उसका फिर जन्म नहीं होता है। जो द्वारकावासी श्रीकृष्णके समीप गोमतीके जलकी लहरोंमें स्नान करता है, वह चतुर्भुजरूप धारण करके वैकुण्ठधाममें आनन्दका अनुभव करता है। चर्मण्वती (चम्बल) नदीको नमस्कार करके

* गंगा गङ्गेति यो ब्रूयाद् योजनानां शतैरपि। मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति॥

(स्क० पु०, ब्रा० ध० मा० ३१। ७)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

जो उसके जलका स्पर्श करता है, वह पहले और पीछेकी दस-दस पीढ़ियोंका उद्धार कर देता है। दोनोंका संगम देखकर अथवा समुद्रकी ध्वनि सुनकर ब्रह्महत्यासे युक्त मनुष्य भी पवित्र हो परम गतिको प्राप्त होता है। जो मनुष्य माघ मासमें प्रयागमें गोता लगाता है, वह इहलोकमें सुख भोगकर अन्तमें विष्णुधामको प्राप्त होता है। जो मनुष्य प्रभासक्षेत्रमें तीन राततक ब्रह्मचर्य-पालनपूर्वक निवास करते हैं, वे यमलोक एवं कुम्भीपाक आदिका दर्शन नहीं करते। जो मनुष्य नैमिषारण्यमें निवास करता है, वह देवत्वको प्राप्त होता है। श्रीराम! जो मनुष्य कुरुक्षेत्रमें चन्द्रग्रहण और सूर्यग्रहणके अवसरपर स्नान करके सुवर्णदान करता है, उसका इस लोकमें पुनर्जन्म नहीं होता। जो मनुष्य इस पृथ्वीपर कपिला गौको स्पर्श करके दान देता है, वह कामधेनु गौओंके निवासभूत ऋषिलोकको जाता है। जो वैशाख मासमें उज्जयिनीपुरीमें क्षिप्राके जलमें स्नान करता है, वह अपने सहस्रों पूर्वजोंको घोर रौरव नरकसे छुटकारा दिला देता है। जो मनुष्य तीन दिनोंतक सिन्धुनदी अथवा समुद्रमें स्नान करता है, वह सब पापोंसे शुद्धचित्त हो कैलासमें आनन्द भोगता है। कोटितीर्थमें स्नान करके कोटीश्वर शिवका दर्शन करनेवाला मनुष्य कहीं भी ब्रह्महत्या आदि पापोंसे लिप्त नहीं होता। महान् अपवित्र स्थानमें जानेवाले अज्ञानी जीव भी यदि भगवान्के चरणोंसे प्रकट हुई गंगाका जल पी लें तो उनका सब पाप नष्ट हो जाता है। जो मनुष्य सूर्योदयकालमें वेदवती नदीमें स्नान करता है, वह सब रोगोंसे मुक्त हो उत्तम सुखका भागी होता है। रघुनन्दन! प्रायः सभी तीर्थ स्नान, जलपान तथा गोता लगानेसे अनायास ही मनुष्योंके सब पापोंका नाश कर देते हैं। सब तीर्थोंमें उत्तम तीर्थ धर्मारण्य बतलाया जाता है; क्योंकि ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि देवताओंने पूर्वकालमें सबसे पहले इसी तीर्थको स्थापित किया था। सब वनों और तीर्थोंमें विशेषतः धर्मारण्यसे बढ़कर भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाला दूसरा कोई तीर्थ नहीं है। स्वर्गके देवता भी धर्मारण्यनिवासी मनुष्योंकी सराहना करते हैं।

रघुनन्दन! द्वारका, काशी, त्रिशूलधारी शिव तथा भैरव—ये सब जैसे मुक्तिदायक हैं, उसी प्रकार धर्मारण्य भी मोक्ष देनेवाला उत्तम तीर्थ है। यह सुनकर महाधनुर्धर श्रीरामचन्द्रजी बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने सीतादेवी और अपने भाइयोंके साथ तीर्थयात्राके लिये प्रस्थान किया। उनके पीछे कपीश्वर हनुमान्जी, माता कौशल्या, सुमित्रा और कैकेयी, लक्ष्मण, भरत, सेनासहित शत्रुघ्न, अयोध्याके अन्यान्य निवासी तथा प्रजावर्गके लोग भी गये। तीर्थयात्राकी विधिका पालन करनेके लिये घरसे चले हुए राजा श्रीरामने अपने कुलके आचार्य महर्षि वसिष्ठसे कहा—'मुने! यह बड़े आश्चर्यकी बात है कि आदिमें यह धर्मारण्य क्षेत्र हुआ या द्वारका हुई। धर्मारण्य क्षेत्रकी उत्पत्ति कितने कालसे हुई है, यह बताइये।'

वसिष्ठजी बोले—महाराज! मैं नहीं जानता कि यह क्षेत्र कितने दिनोंसे प्रकट है। दीर्घजीवी लोमश और जाम्बवान् इसका कारण जानते होंगे। शरीरमें जो अनेक जन्म-जन्मान्तरोंका किया हुआ पाप संचित है, उन सभी पापोंका उत्तम प्रायश्चित्त यह धर्मारण्य क्षेत्र माना गया है।

वसिष्ठजीका यह वचन सुनकर श्रीरामचन्द्रजीने वहाँ जानेका विचार करके यात्रा-विधिका पालन किया। फिर वसिष्ठजीको आगे करके महामाण्डलिक राजाओं (सामन्तों)-के साथ पुरश्चरणविधि पूर्ण कर उत्तर दिशाकी ओर प्रस्थान किया। आगे जाकर फिर वे पश्चिम दिशाकी ओर मुड़ गये। गाँव-से-गाँव, देश-से-देश और वन-से-वनको लाँघते हुए आगे बढ़ते चले गये। सेना, सामान, हजारों हाथी, घोड़े, करोड़ों रथ आदि वाहनों और असंख्य शिविकाओंके साथ श्रीरघुनाथजी

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

यात्रा कर रहे थे। वे हाथीपर बैठकर नाना प्रकारसे मैत्रीभाव प्रदर्शित करनेवाले विभिन्न देशोंको देखते हुए जा रहे थे। उनके ऊपर श्वेत छत्र तना हुआ था और उनके पार्श्व भागमें सुन्दर चँवर डुलाया जा रहा था।

दसवें दिन श्रीरामचन्द्रजी परम उत्तम धर्मारण्य क्षेत्रके निकट पहुँच गये। धर्मारण्यके समीप ही 'माण्डलिकपुर' को देखकर श्रीरामने अपनी सेनाके साथ रातमें वहीं निवास किया। उन्होंने सुना, धर्मारण्य क्षेत्र इस समय निर्जन एवं उजाड़ होकर बड़ा भयानक प्रतीत होता है। वहाँ बाघ और सिंह भरे हुए हैं। यक्ष और राक्षस निवास करते हैं। धर्मारण्य अब केवल जंगल रह गया है। जनताके मुखसे ये सारी बातें सुनकर श्रीरामचन्द्रजीने कहा—'तुमलोग चिन्ता न करो।' उन्होंने वहाँके व्यवसायकुशल, शूरवीर, महान् बली एवं पराक्रमी तथा समर्थ वैश्योंको बुलाकर कहा—'तुमलोग मेरी यह सोनेकी पालकी शीघ्र ले चलो, जिससे मैं अभी धर्मारण्यमें पहुँच जाऊँ। वहाँ स्नान और जलपान करनेसे मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है।' इस प्रकार श्रीरामचन्द्रजीसे प्रेरित होकर उन सभी वैश्योंने 'तथास्तु' कहकर पालकी उठायी और उन्हें धर्मारण्यमें पहुँचा दिया। सेनासहित श्रीरामने जब उस क्षेत्रमें प्रवेश किया तब प्रत्येक वाहनकी गति मन्द हो गयी। बाजोंकी आवाज भी कम हो गयी, हाथी मन्द गतिसे चलने लगे, घोड़ोंकी भी यही दशा हुई। यह सब देखकर श्रीरामचन्द्रजीको बड़ा विस्मय हुआ। उन्होंने विनयपूर्वक मुनिश्रेष्ठ गुरु वसिष्ठसे पूछा—'मुनीश्वर! यह क्या बात है? सब वाहनोंकी गति मन्द हो गयी, यह तो एक विचित्र बात है?' तब तीनों कालोंकी बात जाननेवाले मुनि वसिष्ठने कहा—'राम! यह धर्मक्षेत्र आ गया। इस पुरातन तीर्थमें पैदल यात्रा करनी चाहिये। ऐसा करनेसे पीछे सेनाको सुख मिलेगा।' तब श्रीरामचन्द्रजी सेनाके साथ पैदल चलने लगे। जाते-जाते वे 'मधुवासनक' नामवाले परम पावन ग्राममें पहुँचे। वहाँ गुरु वसिष्ठकी बतायी हुई पद्धतिसे भाँति-भाँतिके उपहारोंद्वारा प्रतिष्ठाविधिके साथ मातृकाओंका पूजन किया। तदनन्तर श्रीरामने सुवर्णा नदीके दक्षिण तटपर हरिक्षेत्रका निरीक्षण किया और यज्ञके योग्य बहुत-से स्थलोंको देखा। उस समय रघुनाथजीने धर्मस्थानका निरीक्षण करके अपने-आपको कृतार्थ माना और सुवर्णाके उत्तर तटपर सैनिकोंको उतारकर स्वयं उस क्षेत्रमें भ्रमण करने लगे। वहाँके सभी तीर्थों और देवमन्दिरोंमें जा-जाकर श्रीरामने सभी शास्त्रोक्त कर्म विधिपूर्वक सम्पन्न किये। उन्होंने बड़ी श्रद्धाके साथ विधिपूर्वक पितरोंका श्राद्ध किया। स्थानसे वायव्य कोणमें सुवर्णाके दोनों तटोंपर श्रीरामेश्वर और कामेश्वरका स्थापन किया। इन सब विधियोंका पालन करके वे अपनी पत्नी सीताके साथ रात्रिमें उस नदीके तटपर ही सोये। जब आधी रात हुई, तब सबके सो जानेपर भी धर्मवत्सल श्रीराम अकेले जागते रहे। उस समय उन्हें किसी स्त्रीके रोनेका शब्द सुनायी दिया। वह करुणाजनक बातें कहकर उस रातमें कुररीकी भाँति विलाप कर रही थी। श्रीरामने उसी क्षण गुप्तचर भेजकर उस स्त्रीका निरीक्षण कराया। करुणाजनक स्वरसे क्रन्दन करती हुई उस व्याकुल नारीको देखकर श्रीरामके दूतोंने पूछा—'सुन्दरी! तुम कौन हो? देवी हो या दानवी? किसने तुम्हें भय पहुँचाया है? किसने तुम्हारा धन लूट लिया है, जिससे व्याकुल हो बार-बार तुम कठोर शब्दोंका उच्चारण करती हुई रो रही हो? सच-सच बताओ, राजा श्रीराम तुम्हारा समाचार पूछते हैं?' उस स्त्रीने उत्तर दिया—'दूतो! अपने स्वामीको ही मेरे पास भेज दो, जिससे मैं अपने मानसिक दुःखको उनसे कहूँ और शान्ति पाऊँ।' 'बहुत अच्छा' कहकर दूत लौट गये और उन्होंने श्रीरामचन्द्रजीके पास जाकर सब बातें कह सुनायीं।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

दूत बोले—भगवन्! उस स्त्रीने कहा है कि श्रीरामचन्द्रजी ही मेरे दु:खका निवारण कर सकते हैं; अत: तुम्हारा कल्याण हो, तुम उन्हींको भेज दो।

यह सुनकर श्रीरामचन्द्रजी तुरंत वहाँ गये और दु:खसे सन्तप्त हुई उस अबलाको देखकर वे स्वयं भी दुखी हो गये। उस समय उन्होंने दोनों हाथ जोड़कर पूछा—'शुभे! तुम कौन हो?

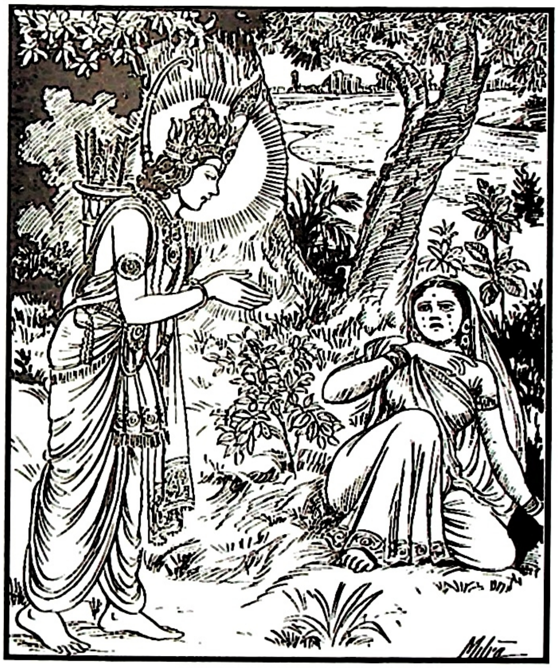

किसकी पत्नी हो? किसने तुम्हें दुखी करके इस निर्जन वनमें निकाल दिया है? किसने तुम्हारा धन लूटा है? ये सब बातें मेरे सामने कहो।'

उनके इस प्रकार पूछनेपर उस स्त्रीने मधुर वाणीमें प्रेमपूर्वक श्रीरामचन्द्रजीका स्तवन किया—परमात्मन्! आप सनातन परमेश्वर एवं सबका दु:ख हरनेवाले हैं। जिसके लिये आपका अवतार हुआ था, वह कार्य आपने पूरा कर लिया। रावण, कुम्भकर्ण, मेघनाद, खर, दूषण, त्रिशिरा, मारीच और अक्षकुमार आदि असंख्य भयानक राक्षसोंको आपने समरांगणमें परास्त किया है। लोकेश! मैं आपकी उत्तम कीर्तिका वर्णन क्या कर सकती हूँ, जब साक्षात् ब्रह्माजी आपकी नाभिसे प्रकट कमलसे उत्पन्न हुए हैं और जैसे वटके बीजमें महान् वटवृक्षकी स्थिति मानी गयी है, उसी प्रकार उन्होंने इस सम्पूर्ण विश्वको आपके उदरमें विराजमान देखा है। श्रीराम! संसारमें राजा दशरथ तथा आपकी माता कौशल्या धन्य हैं, जिनकी कुक्षिसे आप प्रकट हुए हैं। वह कुल धन्य है, जिसमें आप स्वयं आये हैं। वह अयोध्या नगरी धन्य है, जिसे आपकी जन्मभूमि होनेका गौरव मिला है। वे लोग धन्य हैं, जो आपकी शरणमें रहते हैं। वे महर्षि वाल्मीकि धन्य हैं, जिन्होंने मुख्य-मुख्य ब्राह्मणोंके लिये अपनी बुद्धिसे भावी रामायणकी रचना की। आपके द्वारा यह रघुकुल अत्यन्त पवित्र हो गया है। लोकमें जो साधारण राजा होता है, उसे भी सब लोग भगवान् विष्णुका अंश समझते हैं। परंतु आप तो अपने रमणीय गुणोंसे सुशोभित स्वयं ही साक्षात् विष्णु हैं। लोकहितका कोई भी कार्य, जिसे करनेका विचार करके आपने यहाँ अवतार लिया है, करते समय आपके मार्गमें कभी कोई विघ्न-बाधा न आवे। इस प्रकार स्तुति करके उसने श्रीरामजीसे कहा—'रघुनन्दन! आप-जैसे स्वामीके रहते हुए जो मैं दीर्घकालसे सूनी हो रही हूँ, यह आपका ही दोष है। मुझे धर्मारण्य क्षेत्रकी अधिदेवता समझिये। आज बारह वर्ष हो गये, मैं यहीं दु:खमें डूबी रहती हूँ। महामते! आजसे आप यहाँकी निर्जनता दूर कीजिये। इस तीर्थमें निवास करनेवाले ब्राह्मण लोहासुरके भयसे सब दिशाओंमें भाग गये हैं, उन्हींके साथ सब वैश्य भी दु:खी होकर भिन्न-भिन्न स्थानोंमें चले गये। यद्यपि देवताओंने यहाँ आक्रमण करके उस महामायावी दुर्जय एवं दुर्धर्ष दैत्यको मार डाला है तथापि उसके भयसे अत्यन्त शंकित रहनेवाले मनुष्य अबतक यहाँ लौटकर

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

नहीं आ रहे हैं। बारह वर्ष बीत गये, यहाँका प्रत्येक घर अनाथकी भाँति सूनसान पड़ा है। जिस बावलीमें स्नान और दानके लिये उद्यत मनुष्योंकी भीड़ लगती थी, उसीमें अब सूअर कूदते हैं। जहाँ ब्राह्मणलोग निरन्तर सामवेदका गान करते थे, वहाँ अब सियारिनोंके अत्यन्त भयंकर शब्द सुनायी देते हैं। जहाँ घर-घरमें अग्निहोत्रका धूम दृष्टिगोचर होता था, वहीं अत्यन्त भयंकर दावानल धूएँके साथ दिखायी देता है। जिस सभामण्डपमें मन्त्रजप करनेवाले ब्राह्मण बैठा करते थे, वहीं अब गवय, रीछ और स्याही आदि जीव बैठते हैं। यहाँ जो ऊँची-ऊँची यज्ञकी चौकोर वेदियाँ बनी थीं, वे अब बाँबीकी मिट्टीके ढेरसे घिरी दिखायी देती हैं। नृपश्रेष्ठ श्रीराम! अब मेरा निवास-स्थान इस दशाको पहुँच गया है। यहाँसे जो ब्राह्मण चले गये, इसका मुझे बहुत दुःख है। नरेश्वर! मुझे इस संकटपूर्ण अवस्थासे उबारिये।'

यह सुनकर श्रीरामचन्द्रजी बोले—आपके ब्राह्मण चारों दिशाओंमें चले गये हैं। मैं न तो उनकी संख्या जानता हूँ और न उनके नाम-गोत्रसे ही मेरा परिचय है। अतः उनकी जाति और गोत्रके विषयमें आप यथार्थ रूपसे बताइये, जिससे उन सबको यहाँ ले आकर मैं अपने-अपने स्थानपर बसाऊँ।

श्रीमाता बोली—नरेश्वर! ब्रह्मा, विष्णु और शिवने जिन्हें यहाँ स्थापित किया था, वे वेदोंके पारंगत विद्वान् ब्राह्मण अठारह हजारकी संख्यामें यहाँ रहते थे। तीनों वेदोंकी विद्यामें उनकी बड़ी ख्याति है। वे प्रतिष्ठित ब्राह्मण चौंसठ गोत्रोंके हैं। उनके साथ छत्तीस हजार वैश्य थे, जो धर्मपरायण, सदाचारी और ब्राह्मणोंकी सेवामें संलग्न रहनेवाले थे। जहाँ संज्ञारानीके साथ राजा वकुलादित्य नामसे विख्यात भगवान् सूर्य विराजते हैं; जहाँ दोनों अश्विनीकुमार हैं, जहाँ व्ययकी पूर्ति करनेवाले साक्षात् कुबेर हैं, वही यह धर्मारण्य क्षेत्र है, जिसकी अधिष्ठातृदेवी मैं मानी गयी हूँ। मैं यहाँकी भट्टारिका (स्वामिनी) हूँ।

श्रीसूतजी कहते हैं—उस स्थानके जो आचार और वहाँ रहनेवालोंके जो कुलाचार थे, उन सब प्राचीन वृत्तान्तोंको श्रीमाताने श्रीरामचन्द्रजीके आगे निवेदन किया। उसकी बात सुनकर रघुनाथजीको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने कहा—'आपने मुझसे सत्य-सत्य बातें बतायी हैं। अतः मैं इसी नामसे यहाँ नगर बसाऊँगा। यह नगर तीनों लोकोंमें उत्तम सत्यमन्दिरके नामसे विख्यात होगा।' यों कहकर श्रीरामचन्द्रजीने अपने एक लाख सेवकोंको ब्राह्मणोंको बुला लानेके लिये भेजा और कहा—'जिस देश, प्रदेश, नदी, तट, वन अथवा ग्राममें जहाँ-जहाँ धर्मारण्यनिवासी ब्राह्मण गये हों, वहाँ-वहाँसे अर्घ्य-पाद्य आदिके द्वारा उनकी पूजा करके उन्हें तुमलोग शीघ्र यहाँ बुला लाओ। मैं तभी यहाँ भोजन करूँगा, जब उन श्रेष्ठ ब्राह्मणोंके दर्शन कर लूँगा।'

भगवान्‌का यह आदेश सुनकर उनके आज्ञापालक दूत सब दिशाओंमें चले गये। उन्होंने सब ब्राह्मणोंको खोज निकाला और उन्हें पाकर सब-के-सब बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने शास्त्रोक्त विधानसे अर्घ्य-पाद्य आदिके द्वारा उन सबका पूजन किया, स्तुति की और विनययुक्त बर्ताव करते हुए श्रीरामचन्द्रजीका अनुरोध सुनाकर उन सबको धर्मारण्य चलनेके लिये आमन्त्रित किया। तदनन्तर वे सभी वेद-शास्त्रपरायण ब्राह्मण सेवकोंके साथ वहाँ जानेको उद्यत हुए और बड़े आदरपूर्वक श्रीरामके समीप गये। उन्हें देखकर दशरथनन्दन महाराज रामके अंगोंमें हर्षसे रोमांच हो आया और उन्होंने अपनेको कृतार्थ-सा माना। वे बड़े वेगसे उठकर पैदल ही उनकी अगवानीके लिये

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

गये और धरतीपर घुटने टेककर आनन्दके आँसू बहाते हुए दोनों हाथ जोड़कर बोले—'ब्राह्मणो! मैं ब्राह्मणके ही प्रसादसे लक्ष्मीपति हूँ, ब्राह्मणके ही प्रसादसे धरणीधर हूँ, ब्राह्मणके ही प्रसादसे जगतीपति हूँ और ब्राह्मणके ही प्रसादसे मेरा राम नाम है*।' श्रीरामचन्द्रजीके ऐसा कहनेपर वे ब्राह्मण बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने जय-जयकार एवं आशीर्वादसे उनका सम्मान करते हुए कहा—'रघुनन्दन! आप दीर्घायु हों।' श्रीरामने उन्हें पुनः प्रणाम करके पाद्य, अर्घ्य और आसन आदिके द्वारा उनका सत्कार किया और दण्डवत् प्रणाम करके स्तुति की। तत्पश्चात् हाथ जोड़कर उनके चरणोंकी वन्दना की। फिर विचित्र प्रकारके आसन और सोनेके आभूषण समर्पित किये। अँगूठी, यज्ञोपवीत और कानोंके कुण्डल दिये। इतना ही नहीं, उन्होंने उन श्रेष्ठ ब्राह्मणोंके लिये अनेक रंगकी सौ-सौ गायें भी दीं, जो बछड़ेवाली थीं और जिनके थन घड़ेके समान थे। उनकी पीठपर वस्त्र ओढ़ाया गया था, गलेमें घंटे बँधे थे, सींग सोनेसे और खुर चाँदीसे मढ़े गये थे। उनका पृष्ठभाग ताम्रपत्रसे विभूषित था और दूध दूहनेके लिये प्रत्येक गायके साथ एक-एक काँसेका पात्र था।

तत्पश्चात् श्रीराम बोले—ब्राह्मणो! मैं श्रीमाताकी आज्ञासे इस तीर्थका जीर्णोद्धार करूँगा। आपलोग इस कार्यके लिये मुझे आज्ञा दें और मेरा दान ग्रहण करें। सत्पात्रको ही दान देना चाहिये। अपात्रको कुछ नहीं दिया जाता; क्योंकि सुपात्र नौकाकी भाँति सदा पार उतारता है और अपात्र लोहपिण्डके समान केवल डुबानेवाला होता है। द्विजो! केवल जातिमात्रसे ब्राह्मणता नहीं आती है, उसके साथ-साथ ब्राह्मणोचित कर्म भी होना चाहिये। संसारमें क्रिया बलवती होती है। कर्महीन ब्राह्मणोंको दान देनेसे कहाँसे फल प्राप्त होगा? इस कारण सत्यवादी ब्राह्मण ही परम पूजनीय माने गये हैं। अब यज्ञकार्य प्रारम्भ होनेवाला है, इसमें आपलोग सदा कृपा करें।

तब वे सब ब्राह्मण आपसमें मिलकर विचार करने लगे। उनमेंसे कुछ ब्राह्मणोंने श्रीरामचन्द्रजीसे इस प्रकार कहा—'रघुनन्दन! हम सब शिलोञ्छवृत्तिसे जीविका चलानेवाले हैं। पूर्ण सन्तोषका आश्रय लेकर धर्मानुष्ठानमें लगे रहते हैं। अतः हमें दान लेनेसे कोई प्रयोजन नहीं है। राजाका प्रतिग्रह बड़ा भयंकर होता है, अतः हम भयदायक प्रतिग्रह नहीं लेना चाहते।' उन ब्राह्मणोंमेंसे कुछ एकाहित व्रतवाले थे। वे दिनमें एक बार भोजन करते थे। कुछ अमृतवृत्तिसे रहते थे—बिना माँगे जो कुछ मिल जाय, उसीपर सन्तोष करते थे। कुछ कुम्भीधान्य संज्ञावाले ब्राह्मण थे, वे एक घड़ेसे अधिक धान्यका संग्रह नहीं करते थे। कुछ ब्राह्मण यजन-याजन, अध्ययन-अध्यापन और दान तथा प्रतिग्रह—इन छः कर्मोंमें तत्पर रहते थे। वे सभी ब्राह्मण ब्रह्मा, विष्णु और शिव—इन तीन मूर्तियोंके स्थापित किये हुए थे। सबके स्वभाव और गुण पृथक्-पृथक् थे। कुछ ब्राह्मण इस प्रकार बोले—'हमलोग ब्रह्मा, विष्णु और शिव—इन तीनों स्वरूपोंकी आज्ञा लिये बिना कैसे प्रतिग्रह स्वीकार कर सकते हैं। जबतक ब्रह्मा, विष्णु आदि देवताओंने नहीं कहा, तबतक हमने किसीका ताम्बूल भी स्वीकार नहीं किया है।'

यह सुनकर श्रीरामचन्द्रजीने महात्मा वसिष्ठजीसे परामर्श किया और गुरुके साथ ही उन्होंने ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव आदि देवताओंका स्मरण

* विप्रप्रसादात्कमलावरोऽहं विप्रप्रसादाद्धरणीधरोऽहम्। विप्रप्रसादाज्जगतीपतिश्च विप्रप्रसादान्मम राम नाम॥
(स्क० पु०, ब्रा० ध० मा० ३२। ६०)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

भगवान् रामचन्द्रका दान

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

किया। स्मरण करते ही सब देवता वहाँ आ पहुँचे। उनके विमानोंकी पंक्ति कोटि-कोटि सूर्योंके समान प्रकाशित हो रही थी। श्रीरामने बड़ी प्रसन्नताके साथ उन सबका यथायोग्य पूजन किया और वह सब वृत्तान्त निवेदन करते हुए कहा—'मैं इस क्षेत्रकी अधिदेवीके कहनेसे यहाँ धर्मारण्य हरिक्षेत्रमें धर्मकूपके समीप जीर्णोद्धार करना चाहता हूँ।' तदनन्तर वे सब ब्राह्मण तीनों मूर्तियोंको प्रणाम करके हर्षमें भर गये। उनका मनोरथ सफल हो गया। उन्होंने अर्घ्य-पाद्य आदिकी विधिसे श्रद्धापूर्वक उनका पूजन किया। वे तीनों देवता ब्रह्मा, विष्णु और शिव क्षणभर विश्राम करके विनयसे हाथ जोड़े हुए महाशक्तिशाली श्रीरामचन्द्रजीसे बोले—'सूर्यवंश-विभूषण राम! तुमने देवद्रोही रावण आदि राक्षसोंका जो संहार किया है, इससे हमलोग बहुत प्रसन्न हैं। तुम इस महास्थानका उद्धार करो और महान् सुयश प्राप्त करो।'

उन देवताओंकी आज्ञा पाकर दशरथनन्दन श्रीरामचन्द्रजी बहुत प्रसन्न हुए और ब्रह्मा आदि देवताओंके समीप जीर्णोद्धारका कार्य प्रारम्भ किया। उन्होंने पहले महान् पर्वतके समान सुन्दर एवं विशाल वेदी बनवायी और उसके ऊपर अनेकानेक सुन्दर बाह्यशाला, गृहशाला तथा ब्रह्मशालाका निर्माण कराया। उन शालाओंमें यथास्थान खजाना और गृहोपयोगी आवश्यक वस्तुओंका संग्रह किया गया। कोटि-कोटि स्वर्णमुद्राओं तथा रस और वस्त्र आदिसे वे शालाएँ भर गयीं। उनमें धन-धान्य-समृद्धि एवं सब प्रकारके धातुओंका भी संग्रह किया गया था। यह सब करके श्रीरामने ब्राह्मणोंको दान दिया। उन्होंने एक-एक ब्राह्मणके लिये दस-दस दूध देनेवाली गौएँ दीं। उन्होंने वेदवेत्ता ब्राह्मणोंके लिये चार हजार चार गाँव दिये। ब्रह्मा, विष्णु और शिव—इन तीन देवताओंने उन्हें स्थापित किया था, इसीलिये संसारमें त्रैविद्य नामसे उनकी ख्याति हुई। इस प्रकार ब्राह्मणोंको वह परम अद्भुत दान दिया। मण्डलोंमें जो उत्तम शूद्र वैश्यवृत्तिसे जीविका चला रहे थे, उनकी संख्या सवा लाख थी। वे सब श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञाका पालन करनेवाले थे और माण्डलिक कहलाते थे। उन सबको श्रीरामने ब्राह्मणोंकी सेवामें नियुक्त किया। श्रीरामचन्द्रजीने दो चँवर और खड्ग दिये। प्रतिष्ठा-विधिके साथ अपने कुलके स्वामी भगवान् सूर्यको स्थापित किया। चार वेदोंसे युक्त ब्रह्माजीकी स्थापना की, महाशक्ति श्रीमाता एवं श्रीहरिको भी स्थापित किया। विघ्नोंका निवारण करनेके लिये दक्षिण द्वारपर उन्होंने गणेशजी तथा अन्य देवताओंकी स्थापना की। वीरवर श्रीरघुनाथजीने सात मंजिलके मन्दिर बनवाये और यह नियम किया कि 'जो कोई भी यहाँ शुभ एवं मांगलिक कार्य करे, पुत्र होनेपर जातकर्म, अन्नप्राशन तथा मुण्डन आदि कर्म करे, यज्ञकर्मोंमें लक्ष होम और कोटि होम करे, वास्तुपूजा एवं ग्रहशान्ति करे तथा ऐसे महोत्सवोंके अवसरपर मनुष्य जो कुछ भी द्रव्य, अन्न, वस्त्र, धेनु, सुवर्ण, रजत आदिका दान ब्राह्मणों, शूद्रों, दीनों, अनाथों और अन्धोंके लिये देवे, उस समय पहले कार्यकी निर्विघ्नतापूर्वक सिद्धि होनेके लिये भगवान् वकुलादित्य और श्रीमाताका भाग निकाल दे। जो मनुष्य मेरी आज्ञाका उल्लंघन करके विपरीत आचरण करेगा, उसके उस कर्ममें विघ्न उपस्थित होगा।'

ऐसा कहकर श्रीरामने प्रसन्नचित्तसे देवताओंकी बावलियों, सुन्दर चहारदिवारियों, दुर्गके उपकरणों, विस्तृत सड़कों और गलियों, कुण्ड, सरोवर, तलैया, धर्मवापी तथा अन्यान्य देवनिर्मित कूपोंका पुनर्निर्माण कराया। इस प्रकार मनोरम धर्मारण्यमें इन सब वस्तुओंका विस्तारपूर्वक निर्माण कराकर

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

श्रीरघुनाथजीने उन्हें त्रयीविद्याके मुख्य-मुख्य विद्वानोंको सौंप दिया। श्रीरामचन्द्रजीका शासन वहाँ ताम्रपत्रपर लिखकर रख लिया गया है। जो उसको लोप करेगा, उसके पूर्वज नरकमें पड़ेंगे और आगे उसके कुलमें संतति नहीं होगी। तत्पश्चात् श्रीरामने पवनपुत्र हनुमान्जीको बुलाकर कहा—'महावीर वायुकुमार! तुम्हारी भी पूजा होगी। तुम इस क्षेत्रकी रक्षाके लिये यहाँ निवास करो।' हनुमान्जीने प्रणाम करके प्रभुकी आज्ञाको शिरोधार्य किया। इस प्रकार उस तीर्थका जीर्णोद्धार किया। श्रीमाताका पूजन करके वे अन्य तीर्थोंमें जानेको उद्यत हुए। ब्रह्मा आदि देवता भी श्रीरामको आशीर्वाद दे अपने-अपने लोकको चले गये।

रामनामकी महिमा, कलियुगका प्रभाव तथा धर्मारण्यक्षेत्रके माहात्म्यश्रवणका फल

व्यासजी कहते हैं—जो लोग 'राम-राम-राम' इस मन्त्रका उच्चारण करते हैं, खाते, पीते, सोते, चलते और बैठते समय सुखमें या दुःखमें राममन्त्रका जप करते हैं, उन्हें दुःख, दुर्भाग्य, आधि-व्याधिका भय नहीं रहता। उनकी आयु, सम्पत्ति और बल प्रतिदिन बढ़ते रहते हैं। रामका नाम लेनेसे मनुष्य भयंकर पापसे छूट जाता है। वह नरकमें नहीं पड़ता और अक्षयगतिको प्राप्त होता है।

इस प्रकार श्रीरामजीने तीर्थोद्धारका सब कार्य पूरा कर ब्राह्मणोंकी परिक्रमा करके उन्हें प्रणाम किया और गाय, घोड़े, भैंस तथा रथ आदि बहुत-से दान देकर वे सेनासहित लौट आये। क्रमशः अयोध्या नगरीमें आकर उन्होंने दीर्घकालतक राज्य किया।

युधिष्ठिरने पूछा—मुने! कलियुग प्राप्त होनेपर संसारमें कैसा भय होता है?

व्यासजी बोले—राजन्! कलियुगमें लोग असत्यवादी और साधुपुरुषोंकी निन्दा करनेवाले होंगे। वे सभी लुटेरोंके कर्म करनेवाले तथा पितृभक्तिसे दूर होंगे। अपने ही गोत्रकी स्त्रियोंसे रमण करनेवाले और चपलताके ही चिन्तनमें तत्पर होंगे। सब एक-दूसरेके विरोधी, ब्राह्मणद्वेषी तथा शरणागतोंका वध करनेवाले होंगे। कलियुग प्राप्त होनेपर ब्राह्मण वेदभ्रष्ट, अहंकारी, वैश्योचित आचार (कृषि, गोरक्षा और वाणिज्य)-में तत्पर और सन्ध्याकर्मका लोप करनेवाले होंगे। शान्तिकालमें शूरताकी डींग मारनेवाले और भय प्राप्त होनेपर अत्यन्त दीन होंगे। श्राद्ध और तर्पणसे दूर रहेंगे। असुरोंके समान आचारवाले तथा विष्णुभक्तिसे रहित होंगे। दूसरोंके धन हड़पनेकी इच्छावाले और सूदखोर होंगे। ब्राह्मण बिना नहाये भोजन कर लेंगे। क्षत्रिय युद्धका नाम सुनकर दूर भागेंगे। कलिमें सब लोग दुष्टवृत्तिवाले तथा मलिन होंगे। मदिरा पीयेंगे और जो यज्ञके अधिकारी नहीं हैं, ऐसे लोगोंसे भी यज्ञ करावेंगे। स्त्रियाँ पतिसे द्वेष करनेवाली तथा पुत्र पितासे वैर रखनेवाले होंगे। कलियुगके क्षुद्र मनुष्य भाईसे शत्रुता रखेंगे। ब्राह्मण धनसंग्रहमें तत्पर होकर गायका दूध, दही और घी बेचेंगे। कलिकालमें गौएँ प्रायः दूध नहीं देती हैं, वृक्षोंमें कभी फल नहीं लगते हैं। लोग कन्या बेचनेवाले होंगे। गाय और बकरीको भी बेचेंगे। विष-विक्रय तथा रस-विक्रय करेंगे। कलियुगके ब्राह्मण वेद बेचनेवाले होंगे। स्त्रियाँ ग्यारह वर्षकी आयुमें

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

ही गर्भ धारण करेंगी। प्राय: लोग एकादशीके उपवाससे रहित होंगे। तीर्थसेवनमें ब्राह्मणोंकी प्रवृत्ति नहीं होगी। ब्राह्मण अधिक खानेवाले और अधिक सोनेवाले होंगे। सब लोग कुटिलवृत्तिसे जीविका चलानेवाले तथा वेदोंकी निन्दामें तत्पर होंगे। संन्यासियोंकी निन्दा करेंगे और परस्पर एक-दूसरेको छलनेवाले होंगे। कलियुगमें छूआछूतके दोषको नहीं मानेंगे। क्षत्रियलोग राज्यसे वंचित होंगे और म्लेच्छ राजा होगा। प्राय: सब विश्वासघाती, गुरुद्रोही, मित्रद्रोही तथा शिश्नोदरपरायण होंगे। महाराज! कलियुग आनेपर चारों वर्णके लोग एक हो जायँगे, यह मेरा वचन अन्यथा नहीं होगा। कलियुग प्राप्त होनेपर सब ब्राह्मण स्थानसे भ्रष्ट होंगे। वे बलवान् पक्षको ग्रहण करेंगे और पक्षपाती होंगे तथा वेदभ्रष्ट होंगे।

प्राचीन कालमें ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि देवताओंने धर्मारण्य तीर्थको स्थापित किया था। सत्ययुगमें इस तीर्थका नाम धर्मारण्य, त्रेतामें सत्यमन्दिर, द्वापरमें वेदभवन और कलियुगमें मोहेरक हुआ*। जो मनुष्य श्रद्धापूर्वक सब पापोंका नाश करनेवाले धर्मारण्य-माहात्म्यको सुनता है, वह मन, वाणी और शरीरसे होनेवाले त्रिविध पातकका नाश कर देता है। एक बार इसके सुनने अथवा कीर्तन करनेसे सब पापोंका नाश हो जाता है। स्त्री हो या पुरुष, जो भक्तिपूर्वक इसे सुनता है, वह कभी नरकका दर्शन नहीं करता है। श्रेष्ठ पुरुष पवित्रचित्त होकर इस पुराणकी पुस्तकको किसी उत्तम स्थानपर स्थापित करके रेशमी वस्त्र तथा गन्ध, माल्य आदिसे इसकी पृथक्-पृथक् पूजा करे। कथा समाप्त होनेपर वाचककी भी पूजा करे। विचित्र वस्त्र दे। गन्ध, माला और चन्दन आदिके द्वारा देवताके समान पूजा करके वाचकको दूध देनेवाली गौका दान करे।

धर्मारण्य-माहात्म्य सम्पूर्ण।

* धर्मारण्यं कृतयुगे त्रेतायां सत्यमन्दिरम्। द्वापरे वेदभवनं कलौ मोहेरकं स्मृतम्॥
(स्क० पु०, ब्रा० ध० मा० ४०। ६७)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

चातुर्मास्य-माहात्म्य

चातुर्मास्य व्रतका माहात्म्य, संयम-नियम, दयाधर्म तथा चौमासेमें अन्न आदि दानोंकी महिमा

नारदजी बोले—देवाधिदेव! इस समय मैं शुभकारक चातुर्मास्य व्रतको सुनना चाहता हूँ।

ब्रह्माजीने कहा—देवर्षे! ये भगवान् विष्णु ही सबको मोक्ष देनेवाले तथा संसारसागरसे पार उतारनेवाले हैं। इनके स्मरणमात्रसे मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। संसारमें मनुष्य-जन्म दुर्लभ है। उसमें भी उत्तम कुलमें जन्म पाना और दुर्लभ है। कुलीन होनेपर भी दयालु स्वभावका होना और कठिन है। यह सब होनेपर भी कल्याणमय सत्संग प्राप्त होना और भी दुर्लभ है। जहाँ सत्संग नहीं, विष्णुभक्ति नहीं और व्रत नहीं हैं, वहाँ कल्याणकी प्राप्ति दुर्लभ है। विशेषतः चातुर्मास्यमें भगवान् विष्णुका व्रत करनेवाला मनुष्य उत्तम माना गया है। सब तीर्थ, दान, पुण्य और देवस्थान चातुर्मास्य आनेपर भगवान् विष्णुकी शरण लेकर स्थित होते हैं। जो चातुर्मास्यमें श्रीहरिको प्रणाम करता है, उसीका जीवन शुभ है। संसारमें मनुष्यका जन्म और भगवान् विष्णुकी भक्ति दोनों ही दुर्लभ हैं। जो मनुष्य चातुर्मास्यमें नदीस्नान करता है, वह सिद्धिको प्राप्त होता है। जो झरना, तड़ाग और बावलीमें स्नान करता है, उसके सहस्रों पाप तत्काल नष्ट हो जाते हैं। पुष्कर, प्रयाग अथवा और किसी महातीर्थके जलमें जो चातुर्मास्यमें स्नान करता है, उसके पुण्यकी संख्या नहीं है। नर्मदा, भास्करक्षेत्र, प्राची सरस्वती तथा समुद्र-संगममें एक दिन भी जो चातुर्मास्यमें स्नान करता है, उसमें पापका लेशमात्र भी नहीं रह जाता। जो नर्मदामें एकाग्रचित्त होकर तीन दिन भी चौमासेका स्नान करता है, उसके पापके सहस्रों टुकड़े हो जाते हैं। जो गोदावरी नदीमें सूर्योदयके समय चौमासेमें पंद्रह दिनतक स्नान करता है, वह कर्मजनित शरीरका परित्याग करके भगवान् विष्णुके धाममें जाता है। जो मनुष्य तिलमिश्रित एवं आँवलामिश्रित जलसे अथवा बिल्वपत्रके जलसे चातुर्मास्यमें स्नान करता है, उसमें दोषका लेशमात्र भी नहीं रह जाता। देवाधिदेव भगवान् विष्णुके चरणोंके अंगुष्ठसे प्रवाहित होनेवाली गंगाजी सदा ही पापनाशिनी कही गयी हैं। चातुर्मास्यमें उनका यह माहात्म्य विशेषरूपसे प्रकट होता है। भगवान् विष्णु स्मरण करनेपर सहस्रों पाप भस्म कर डालते हैं, इसलिये उनका चरणोदक मस्तकपर चौमासेमें धारण किया जाय तो वह कल्याणकारी होता है। चातुर्मास्यमें भगवान् नारायण जलमें

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

शयन करते हैं, अतः उसमें भगवान् विष्णुके तेजका अंश व्याप्त रहता है। उस समय उसमें किया हुआ स्नान सब तीर्थोंसे अधिक फल देनेवाला होता है। नारद! बिना स्नानके जो पुण्यकार्यमय शुभकर्म किया जाता है, वह निष्फल होता है, उसे राक्षस ग्रहण कर लेते हैं। स्नानसे मनुष्य सत्यको पाता है। स्नान सनातन धर्म है, धर्मसे मोक्षरूप फल पाकर मनुष्य फिर दुःखी नहीं होता[१]। रातको और सन्ध्याकालमें बिना ग्रहणके स्नान न करे, गर्म जलसे भी स्नान नहीं करना चाहिये। सूर्यके दर्शनसे सब कर्मोंमें शुद्धि कही गयी है। चातुर्मास्यमें विशेषरूपसे जलकी शुद्धि होती है। शरीर असमर्थ हो तो भस्मस्नानसे उसकी शुद्धि होती है। मन्त्रस्नानसे, भगवान् विष्णुके चरणोदकसे अथवा भगवान् नारायणके आगे क्षेत्र, तीर्थ और नदी आदिमें जो स्नान करता है, उसका चित्त शुद्ध हो जाता है। चातुर्मास्यमें यह महत्त्व और बढ़ जाता है।

चातुर्मास्यमें भगवान्‌के शयन करनेपर प्रतिदिन स्नानके अन्तमें श्रद्धायुक्त चित्तसे पितरोंका तर्पण करना चाहिये। इससे महान् फलकी प्राप्ति होती है। नदियोंके संगममें स्नानके पश्चात् पितरों और देवताओंका तर्पण करके जप, होम आदि कर्म करनेसे अनन्त फलकी प्राप्ति होती है। पहले भगवान् गोविन्दका स्मरण करके पीछे शुभकर्मोंका अनुष्ठान करना चाहिये। ये भगवान् गोविन्द ही देवता, पितर और मनुष्य आदिको तृप्ति देनेवाले हैं। चातुर्मास्य सब गुणोंसे उत्कृष्ट समय है। उसमें धर्मयुक्त श्रद्धा एवं स्मृतिसे पवित्र समस्त कर्मोंका अनुष्ठान करना चाहिये। सत्संग, ब्राह्मणभक्ति, गुरु, देवता और अग्निका तर्पण, गोदान, वेदपाठ, सत्कर्म, सत्यभाषण, गोभक्ति और दानमें प्रीति—ये सब सदा धर्मके साधन हैं[२]। भगवान् विष्णुके शयन करनेपर उक्त धर्मोंका साधन एवं नियम भी महान् फल देनेवाला होता है। दो घड़ी भी भगवान् विष्णुका ध्यान एवं उन निरंजन परमेश्वरके सेवनसे सौ जन्मोंका पाप भस्म हो जाता है। यदि मनुष्य चौमासेमें भक्तिपूर्वक योगके अभ्यासमें तत्पर न हुआ, तो निःसन्देह उसके हाथसे अमृत गिर गया। बुद्धिमान् मनुष्यको सदैव मनको संयममें रखनेका प्रयत्न करना चाहिये; क्योंकि मनके भलीभाँति वशमें होनेसे ही पूर्णतः ज्ञानकी प्राप्ति होती है। यह बात निश्चयपूर्वक कही जा सकती है। अतः क्षमाके द्वारा मनको वशमें करना चाहिये। एकमात्र सत्य ही परम धर्म है, एक सत्य ही परम तप है, केवल सत्य ही परम ज्ञान है और सत्यमें ही धर्मकी प्रतिष्ठा है। अहिंसा धर्मका मूल है, इसलिये उस अहिंसाको मन, वाणी और क्रियाके द्वारा आचरणमें लाना चाहिये[३]। पराये धनका अपहरण और चोरी आदि पापकर्म सदा सब मनुष्योंके लिये वर्जित हैं। चातुर्मास्यमें इनसे विशेषरूपसे बचना चाहिये। ब्राह्मण तथा देवताकी सम्पत्तिका विशेषरूपसे त्याग करना चाहिये। न करने योग्य कर्मोंका आचरण विद्वान् पुरुषोंके

१- स्नानेन सत्यमाप्नोति स्नानं धर्मः सनातनः। धर्मान्मोक्षफलं प्राप्य पुनर्नैवावसीदति॥
(स्क० पु०, ब्रा० चा० मा० १। २५)

२- सत्संगो द्विजभक्तिश्च गुरुदेवाग्नितर्पणम्। गोप्रदानं वेदपाठः सत्क्रिया सत्यभाषणम्॥
गोभक्तिर्दानभक्तिश्च सदा धर्मस्य साधनम्।
(स्क० पु०, ब्रा० चा० मा० २। ५-६)

३- सत्यमेकं परो धर्मः सत्यमेकं परं तपः। सत्यमेकं परं ज्ञानं सत्ये धर्मः प्रतिष्ठितः॥
धर्ममूलमहिंसा च मनसा तां च चिन्तयन्। कर्मणा च तथा वाचा तत एतां समाचरेत्॥
(स्क० पु०, ब्रा० चा० मा० २। १८-१९)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

लिये सदैव त्याज्य है। नारद! जो सम्पूर्ण कार्योंमें निष्कामभावसे प्रवृत्त होता है, जिसमें अहंबुद्धिका अभाव है, जो बुद्धिके नेत्रोंसे ही देखता है, ऐसा पुरुष ही महाज्ञानी और योगी है। मनुष्योंके शरीरमें यह अहंकार विष है। अतः वह सदैव त्याग देने योग्य है। मनुष्य कामनाके त्यागद्वारा क्रोध और लोभको जीते। ऐसे मनुष्यके सहस्रों पाप उसके शरीरसे निकलकर सहस्रों टुकड़ोंमें नष्ट हो जाते हैं। शान्तिके द्वारा मोह और मनको जीतकर विचारके द्वारा शान्तिभावको अपनाना चाहिये। सन्तोषसे भी शान्तिका उदय होता है। जो अपनी कोमलता एवं सरलताके द्वारा ईर्ष्याभावको दबा देता है, यह मुनीश्वर है। चातुर्मास्यमें जीवदया विशेष धर्म है। प्राणियोंसे द्रोह करना कभी भी धर्म नहीं माना गया है। अतः सदा सब मासोंमें भूतद्रोहका परित्याग करना चाहिये। मनीषी पुरुष इस भूतद्रोहको सहस्रों पापोंका मूल बताते हैं। इसलिये मनुष्योंको सर्वथा प्रयत्न करके प्राणियोंके प्रति दया करनी चाहिये। सब प्राणियोंके हृदयमें सदा भगवान् विष्णु विराज रहे हैं। जो उन प्राणियोंसे द्रोह करनेवाला है, उसके द्वारा भगवान्‌का ही तिरस्कार होता है। जिस धर्ममें दया नहीं है, वह दूषित माना गया है। दयाके बिना न विज्ञान होता है, न धर्म होता है और न ज्ञान ही होता है। अतः सब प्राणियोंके प्रति आत्मभाव रखकर सबके ऊपर दया करना सनातन धर्म है, जो सब पुरुषोंके द्वारा सदा सेवन करने योग्य है।

सब धर्मोंमें दानधर्मकी विद्वान् लोग सदा प्रशंसा करते हैं। वेदमें अन्नको ब्रह्म कहा गया है, अन्नमें ही प्राणोंकी प्रतिष्ठा है। अतः मनुष्य सदा अन्न एवं जलका दान करे। जल देनेवाला तृप्तिको और अन्न-दान करनेवाला मनुष्य अक्षय सुखको पाता है। अन्न और जलके समान दूसरा कोई दान न हुआ है, न होगा। मणि, रत्न, मूँगा, चाँदी, सोना और वस्त्र तथा अन्य वस्तुओंके दानोंमें भी अन्नदान ही सबसे बढ़कर है[1]। चातुर्मास्यमें अन्न और जलका दान, गोदान, प्रतिदिन वेदपाठ और अग्निमें हवन—ये सब महान् फल देनेवाले हैं। यदि भगवान् विष्णुके साथ समागमके लिये वैकुण्ठधाममें जानेकी इच्छा हो, तो सब पापोंके नाशके लिये चौमासेमें अन्नदान करना चाहिये। अन्नदान करनेसे सब प्राणी प्रसन्न होते हैं। देवता भी अन्नदाताकी स्पृहा रखते हैं। गुरु और ब्राह्मणोंको भोजन कराना, घृतदान करना तथा सत्कर्मोंमें संलग्न रहना—ये सब बातें चातुर्मास्यकालमें जिसमें मौजूद हैं, वह साधारण मनुष्य नहीं है। सद्धर्म, सत्कथा, सत्पुरुषोंकी सेवा, संतोंका दर्शन, भगवान् विष्णुका पूजन और दानमें अनुराग—ये सब बातें चौमासेमें दुर्लभ बतायी गयी हैं[2]। जो मनुष्य चौमासेमें पितरोंके उद्देश्यसे अन्नदान करता है, वह सब पापोंसे शुद्धचित्त होकर पितरोंके लोकमें जाता है। उसके अन्नदानसे तृप्त हुए देवतालोग उसे मनोवांछित वस्तु प्रदान करते हैं। चींटी भी उसके घरसे भोजन लेकर जाती है। अन्नदान सबसे उत्तम है, उसका न रातमें निषेध है, न दिनमें। चौमासेमें वह विशेषरूपसे पापोंका नाश करनेवाला है। शत्रुओंको भी अन्न देना मना नहीं है। चौमासेमें दूध, दही एवं मट्ठाका दान

१- अन्नं ब्रह्म इति प्रोक्तमन्ने प्राणाः प्रतिष्ठिताः। तस्मादन्नप्रदो नित्यं वारिदश्च भवेन्नरः॥
वारिदस्तृप्तिमायाति सुखमक्षय्यमन्नदः। वार्यन्नयोः समं दानं न भूतं न भविष्यति॥
मणिरत्नप्रवालानां रूप्यहाटकवाससाम्। अन्येषामपि दानानामन्नदानं विशिष्यते॥
(स्क० पु०, ब्रा० चा० मा० ३। २—४)

२- सद्धर्मः सत्कथा चैव सत्सेवा दर्शनं सताम्। विष्णुपूजा रतिर्दाने चातुर्मास्यसुदुर्लभा॥
(स्क० पु०, ब्रा० चा० मा० ३। ११)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

महान् फल देनेवाला होता है। जन्मकालमें जिससे यह शरीर पुष्ट हुआ है, उस अन्न एवं दुग्धका दान उत्तम है। साग देनेवाला मनुष्य न कभी नरकमें जाता है और न यमलोकका दर्शन करता है। वस्त्र देनेवाला प्रलयकालतक चन्द्रलोकमें निवास करता है। जो चातुर्मास्यमें चन्दन, अगुरु और धूपका दान करता है, वह मनुष्य पुत्र-पौत्रोंसहित विष्णुरूप होता है। भगवान् विष्णुके शयनकालमें जो मनुष्य वेदवेत्ता ब्राह्मणको फल दान करता है, वह यमलोकको नहीं देखता। जो चौमासेमें भगवान् विष्णुकी प्रीतिके लिये विद्यादान, गोदान और भूमिदान करता है, वह अपने पूर्वजोंका उद्धार कर देता है। जो जिस देवताके उद्देश्यसे चौमासेमें गुड़, नमक, तेल, शहद, तिक्त पदार्थ, तिल और अन्न देता है, वह उसीके लोकमें जाता है। विशेषत: चातुर्मास्यमें मनुष्यको अग्निमें आहुति देनी चाहिये, ब्राह्मणको दान देना चाहिये और गौओंकी भलीभाँति सेवा-पूजा करनी चाहिये। भविष्यमें दान देनेकी प्रतिज्ञा न करके शीघ्र ही दे डालना चाहिये। मनुष्य जो कुछ देनेकी इच्छा करे, वह अवश्य दे डाले। जिसको देनेका निश्चय किया हो उसे ही दे, दूसरेको न दे। दी हुई वस्तु उससे वापस न ले। जो श्रीहरिके शयनकालमें ब्राह्मणोंके लिये सब प्रकारका दान देता है, वह पूर्वजोंसहित अपनेको पापोंसे मुक्त कर लेता है।

चातुर्मास्यमें इष्ट वस्तुके परित्याग तथा नियम-पालनका महत्त्व

ब्रह्माजी कहते हैं—मनुष्य सदा प्रिय वस्तुकी इच्छा करता है। अत: जो चातुर्मास्यमें भगवान् नारायणकी प्रीतिके लिये अपने प्रिय भोगोंका पूर्ण प्रयत्नपूर्वक त्याग करता है, उसकी त्यागी हुई वे वस्तुएँ उसे अक्षयरूपमें प्राप्त होती हैं। जो मनुष्य श्रद्धापूर्वक प्रिय वस्तुका त्याग करता है, वह अनन्त फलका भागी होता है। धातुपात्रोंका त्याग करके पलाशके पत्तेमें भोजन करनेवाला मनुष्य ब्रह्मभावको प्राप्त होता है। गृहस्थ मनुष्य ताँबेके पात्रमें कदापि भोजन न करे। चौमासेमें तो ताँबेके पात्रमें भोजन विशेषरूपसे त्याज्य है। मदारके पत्तेमें भोजन करनेवाला मनुष्य अनुपम फलको पाता है। चातुर्मास्यमें विशेषत: वटके पत्रमें भोजन करना चाहिये। चातुर्मास्यमें भगवान् विष्णुकी प्रीतिके लिये गृहस्थ-आश्रमका परित्याग करके बाह्य आश्रमका सेवन करनेवाले मनुष्यका पुनर्जन्म नहीं होता। मिर्च छोड़नेसे राजा होता है, रेशमी वस्त्रोंके त्यागसे अक्षय सुख मिलता है, उड़द और चना छोड़ देनेसे पुनर्जन्मकी प्राप्ति नहीं होती। चातुर्मास्यमें विशेषत: काले रंगका वस्त्र त्याग देना चाहिये। नीले वस्त्रको देख लेनेसे जो दोष लगता है, उसकी शुद्धि भगवान् सूर्यनारायणके दर्शनसे होती है। कुसुम्भ रंगके परित्याग करनेसे मनुष्य यमराजको नहीं देखता। केशरके त्यागसे वह राजाका प्रिय होता है। फूलोंको छोड़नेसे मनुष्य ज्ञानी होता है, शय्याका परित्याग करनेसे महान् सुखकी प्राप्ति होती है। असत्यभाषणके त्यागसे मोक्षका दरवाजा खुल जाता है। चातुर्मास्यमें परनिन्दाका विशेषरूपसे परित्याग करे। पर-निन्दा महान् पाप है, पर-निन्दा महान् भय है, पर-निन्दा महान् दु:ख है और पर-निन्दासे बढ़कर दूसरा कोई पातक नहीं है*। पर-निन्दाको सुननेवाला भी पापी होता है। चौमासेमें केशोंका सँवारना (हजामत)

* परनिन्दा महापापं परनिन्दा महाभयम्। परनिन्दा महद्दु:खं न तस्या: पातकं परम्॥

(स्क० पु०, ब्रा० चा० मा० ४। २५)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

त्याग दे तो वह तीनों तापोंसे रहित होता है। जो भगवान्‌के शयन करनेपर विशेषत: नख और रोम धारण किये रहता है, उसे प्रतिदिन गंगास्नानका फल मिलता है। मनुष्यको सब उपायोंद्वारा योगियोंके ध्येय भगवान् विष्णुको ही प्रसन्न करना चाहिये। समस्त वर्णों एवं श्रेष्ठ पुरुषोंके द्वारा भी भगवान् श्रीहरिका ही चिन्तन करना चाहिये। भगवान् विष्णुके नामसे मनुष्य घोर बन्धनसे मुक्त हो जाता है। चातुर्मास्यमें उनका विशेषरूपसे स्मरण करना उचित है।

कर्ककी संक्रान्तिके दिन भगवान् विष्णुका भक्तिपूर्वक पूजन करके प्रशस्त एवं शुभ जामुनके फलोंसे अर्घ्य देना चाहिये। अर्घ्य देते समय इस भावका चिन्तन करे—'छः महीनेके भीतर जहाँ कहीं भी मेरी मृत्यु हो जाय तो मानो मैंने स्वयं ही अपने-आपको भगवान् वासुदेवके चरणोंमें ही समर्पित कर दिया।' सर्वथा प्रयत्न करके भगवान् जनार्दनका सेवन करना चाहिये। जो मनुष्य भगवान् विष्णुकी कथा, पूजा, ध्यान और नमस्कार सब कुछ उन्हीं श्रीहरिकी प्रसन्नताके लिये करता है, वह मोक्षका भागी होता है*। सत्यस्वरूप सनातन विष्णु वर्णाश्रम-धर्मके स्वरूप हैं। जन्म-मृत्यु आदिके कष्टका उन्हींके द्वारा नाश होता है। अत: चातुर्मास्यमें विशेषरूपसे व्रतद्वारा श्रीहरिको ही ग्रहण करना चाहिये। तपोनिधि भगवान् नारायणके शयन करनेपर अपने इस शरीरको तपस्याद्वारा शुद्ध करना चाहिये। भगवान् विष्णुकी भक्तिसे युक्त जो व्रत है, उसे विष्णुव्रत जानो। धर्ममें संलग्न होना तप है। व्रतोंमें सबसे उत्तम व्रत है—ब्रह्मचर्यका पालन। ब्रह्मचर्य तपस्याका सार है और ब्रह्मचर्य महान् फल देनेवाला है। इसलिये समस्त कर्मोंमें ब्रह्मचर्यको बढ़ावे। ब्रह्मचर्यके प्रभावसे उग्र तपस्या होती है। ब्रह्मचर्यसे बढ़कर धर्मका उत्तम साधन दूसरा नहीं है। विशेषत: चातुर्मास्यमें भगवान् विष्णुके शयन करनेपर यह महान् व्रत संसारमें अधिक गुणकारक है—ऐसा जानो। जो इस वैष्णवधर्मका पालन करता है, वह कभी कर्मोंसे लिप्त नहीं होता। भगवान्‌के शयन करनेपर जो यह प्रतिज्ञा करके कि—'हे भगवन्! मैं आपकी प्रसन्नताके लिये अमुक सत्कर्म करूँगा।' उसका पालन करता है, तो उसीको व्रत कहते हैं। वह व्रत अधिक गुणोंवाला होता है। अग्निहोत्र, ब्राह्मणभक्ति, धर्मविषयक श्रद्धा, उत्तम बुद्धि, सत्संग, विष्णुपूजा, सत्यभाषण, हृदयमें दया, सरलता एवं कोमलता, मधुर वाणी, उत्तम चरित्रमें अनुराग, वेदपाठ, चोरीका त्याग, अहिंसा, लज्जा, क्षमा, मन और इन्द्रियोंका संयम, लोभ, क्रोध और मोहका अभाव, इन्द्रियसंयममें प्रेम, वैदिक कर्मोंका उत्तम ज्ञान तथा श्रीकृष्णको अपने चित्तका समर्पण—ये नियम जिस पुरुषमें स्थिर हैं, वह जीवन्मुक्त कहा गया है। वह पातकोंसे कभी लिप्त नहीं होता। एक बारका किया हुआ व्रत भी सदैव महान् फल देनेवाला होता है। चातुर्मास्यमें ब्रह्मचर्य आदिका सेवन अधिक फलद होता है। चातुर्मास्यव्रतका अनुष्ठान सभी वर्णके लोगोंके लिये महान् फलदायक है। व्रतके सेवनमें लगे हुए मनुष्योंद्वारा सर्वत्र भगवान् विष्णुका दर्शन होता है। चातुर्मास्य आनेपर व्रतका यत्नपूर्वक पालन करे। विष्णु, ब्राह्मण और अग्निस्वरूप तीर्थका सेवन करे। चारों वेदमय स्वरूपवाले अजन्मा विराट् पुरुषको भजे, जिनके प्रसादसे मनुष्य मोक्षरूपी महान् वृक्षके ऊपर चढ़ जाता है और कभी सन्तापको नहीं प्राप्त होता।

---

* विष्णोः कथा विष्णुपूजा ध्यानं विष्णोर्नतिस्तथा। सर्वमेव हरिप्रीत्या यः करोति स मुक्तिभाक्॥

(स्क० पु०, ब्रा० चा० मा० ५।७-८)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

चातुर्मास्यमें विशेष-विशेष तप और भगवान्‌की षोडशोपचार पूजाका क्रम

ब्रह्माजी कहते हैं—षोडशोपचारसे सदैव भगवान् विष्णुकी पूजा करना तप है और भगवान्‌के शयन करनेपर वही महातप कहा गया है। इसी प्रकार सदा पंचयज्ञोंका अनुष्ठान भी तप है; परंतु चातुर्मास्यमें श्रीहरिको निवेदन करनेपर वही महातप हो जाता है। ऋतुकालमें स्त्रीके साथ सम्बन्ध करना गृहस्थके लिये सदा ही तप माना गया है, किंतु वही चातुर्मास्यमें श्रीहरिकी प्रीतिके लिये किया जाय तो महातप है। सदा सत्य बोलना तप है। यह भूतलपर निवास करनेवाले प्राणियोंके लिये दुर्लभ तप कहा गया है। देवेश्वर श्रीहरिके शयन करनेपर यह सत्यभाषणरूपी तपस्या करनेवाला मनुष्य अनन्त फलका भागी होता है। अहिंसा आदि गुणोंका पालन करना सदा ही तप है; किंतु चातुर्मास्यमें वैरभावका परित्याग करके उसका पालन किया जाय तो वह महातप कहा गया है। पंचायतन पूजा महातप है। मनुष्य चातुर्मास्यमें श्रीहरिकी प्रीतिके लिये इस महातपका विशेषरूपसे अनुष्ठान करे। सभी पर्वोंके अवसरपर सदा दान देना चाहिये, यह तप है; परंतु चातुर्मास्यमें विशेषरूपसे उसका पालन करनेपर वह दान अनन्त होता है।

चौमासेमें दो प्रकारका शौच ग्रहण करना चाहिये। एक बाह्य शौच और दूसरा आन्तरिक शौच। जलसे नहाना-धोना बाह्य शौच कहलाता है और श्रद्धासे अन्तःकरणको शुद्ध करना आन्तरिक शौच है। इन्द्रियोंका निग्रह करना चाहिये। यह तपस्याका उत्तम लक्षण है। किंतु चातुर्मास्यमें इन्द्रियोंकी चंचलता दूर हो तो वह महातप कहा गया है। इन्द्रियरूपी घोड़ोंको काबूमें रखकर मनुष्य सदा सुख पाता है। वे इन्द्रियरूपी अश्व जब कुमार्गसे चलने लगते हैं, तब जीवको नरकमें गिराते हैं। यह काम महान् शत्रु है। इस एकको ही दृढ़तापूर्वक जीते। जिन महात्माओंने कामको जीत लिया है, उन्होंने सम्पूर्ण जगत्‌पर विजय पा ली है। काम और संकल्पपर विजय पा लेना ही तपस्याका मूल है। वही सबसे उत्तम ज्ञान है जिसके द्वारा कामको जीत लिया जाय। लोभ सदा त्याग देनेयोग्य है; क्योंकि लोभमें पापकी स्थिति है। लोभको जीत लेना ही तप है। चातुर्मास्यमें इसका विशेष महत्त्व है। मोहका अर्थ है अविवेक। वह सदा त्याग देनेयोग्य है। जो मोहसे रहित है, वही ज्ञानी है। मनुष्योंके शरीरमें रहनेवाला मद ही महान् शत्रु है। यों तो सदा ही, किंतु चातुर्मास्यमें विशेषरूपसे उसका निग्रह करना चाहिये। मान बड़ा भयंकर शत्रु है। वह सब प्राणियोंके भीतर निवास करता है। उसे क्षमाद्वारा जीतना चाहिये। चातुर्मास्यमें उसे जीतना अधिक गुणकारी होता है। मात्सर्य (ईर्ष्या) भी महान् पातकका कारण है। अतः विद्वान् पुरुष चातुर्मास्यमें उसको जीते। जिसने उसे जीत लिया, उसने तीनों लोक जीत लिये। अहंकारके वशीभूत हुए अजितेन्द्रिय मुनि धर्ममार्गको छोड़कर कुमार्गके कर्म करने लगते हैं। अतः अहंकारका परित्याग करके मनुष्य सदैव सुख पाता है। विशेषतः चातुर्मास्यमें अहंकारके त्यागका महान् फल है। यह तपस्याका मूल है। जो मनुष्य विष्णुके शयनकालमें प्रतिदिन एक समय भोजन करता है, उसे द्वादशाह यज्ञका फल मिलता है। जो मनुष्य चातुर्मास्यमें प्रतिमास नित्य चान्द्रायणव्रत करता है, उसके पुण्यका वर्णन नहीं किया जा सकता। जो भगवान् विष्णुके शयनकालमें कृच्छ्र व्रतका सेवन करता

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

है, वह पापराशिका नाश करके वैकुण्ठमें भगवान्‌का पार्षद होता है। जो चातुर्मास्यमें केवल दूध पीकर रहता है, उसके सहस्रों पाप तत्काल विलीन हो जाते हैं। यदि धीर पुरुष चौमासेमें नित्य परिमित अन्नका भोजन करता है, तो वह सब पातकोंका नाश करके वैकुण्ठधाम पाता है। चौमासेमें एक अन्न भोजन करनेवाला मनुष्य रोगी नहीं होता। जो क्षार लवणका सेवन करनेवाला नहीं है, उसमें पापका अभाव हो जाता है। चौमासेमें भगवान् विष्णुकी प्रसन्नताके लिये फलाहार करनेवाला मनुष्य बड़े-बड़े पापोंसे मुक्त हो जाता है। जो कन्द-मूलका आहार करता है, वह अपने साथ पूर्वजोंका भी घोर नरकसे उद्धार करके भगवान् विष्णुके लोकमें जाता है। जो प्रतिदिन चौमासेमें केवल जल पीकर रहता है, उसे रोज-रोज अश्वमेधयज्ञका फल प्राप्त होता है। जो मनुष्य चौमासेमें श्रीहरिकी प्रीतिके लिये शीत और वर्षा सहन करता है, उसपर प्रसन्न होकर भगवान् जगन्नाथ उसे अपने-आपको दे डालते हैं। जो मन-ही-मन भगवान् नारायणका चिन्तन करके इस परम पवित्र और पापकी शुद्धिके हेतुभूत पुराणको सुनता अथवा पढ़ता है, वह मरकर मोक्षको प्राप्त होता है।

नारदजीने पूछा—प्रजापते! सोलह उपचारोंसे किस प्रकार भगवान्‌की पूजा की जाती है?

ब्रह्माजीने कहा—वेदों और शास्त्रोंके विधानके अनुसार भगवान् विष्णुकी भक्ति दृढ़ करनी चाहिये। यह सब जो कुछ दिखायी देता है, सबका मूल वेद है और वेद सनातन भगवान् विष्णुका स्वरूप है। वेदोंके आधार हैं ब्राह्मण तथा ब्राह्मणोंके देवता अग्नि हैं। अग्निमें आहुति डालनेवाला ब्राह्मण यज्ञमें सदा भगवान् श्रीहरिका यजन करता हुआ तथा श्रीविष्णुकी पूजामें निरन्तर संलग्न रहता हुआ सम्पूर्ण जगत्‌को धारण करता है। भगवान् नारायणका स्मरण और ध्यान क्लेश, दुःख आदिका नाश करनेवाला है। चातुर्मास्यमें भगवान् श्रीहरि जलमें विशेषरूपसे व्याप्त रहते हैं। जलसे अन्न पैदा होता है, जिससे जगत्‌की तृप्ति होती है। वह अन्न भगवान् विष्णुके शरीरके अंशसे उत्पन्न होता है। अन्नको '**ब्रह्म**' कहते हैं। वह अन्न आवाहनपूर्वक भगवान् विष्णुको समर्पण करके मनुष्य पुनर्जन्म, वृद्धता और क्लेशके संस्कारोंद्वारा तिरस्कृत नहीं होता। '**सहस्रशीर्षा पुरुषः०**' इत्यादि जो सोलह ऋचाओंवाला यजुर्वेदका महासूक्त है, वह सर्वोत्कृष्ट नारायणमय है। उसके पाठमात्रसे भी ब्रह्महत्या दूर हो जाती है। ब्राह्मणको उचित है कि वह पहले स्मृतियोंमें बतायी हुई विधिके अनुसार अपने शरीरमें उक्त सोलह सूक्तोंका न्यास करे। तत्पश्चात् भगवान्‌की प्रतिमा अथवा शालग्रामशिलामें विशेषरूपसे न्यास करे। फिर क्रमशः आवाहन आदि करे। वैकुण्ठधाममें विराजमान, कौस्तुभमणिसे सुशोभित, कोटि-कोटि सूर्योंके समान तेजस्वी, दण्डधारी, शिखासूत्रसे सुशोभित पीताम्बरधारी-रूपसे भगवान् विष्णुका आवाहन करके ध्यान करे। सब पापोंके समूहका नाश करनेवाले श्रीविष्णुको इस रूपमें अपने ध्यानमें स्थिर करके उन्हें पूजाके लिये अपने आगे आवाहन करे। पुरुषसूक्तकी प्रथम ऋचा '**सहस्रशीर्षा पुरुषः**' इत्यादि मन्त्रके आदिमें ॐकार जोड़कर उसका उच्चारण करे और उसीके द्वारा भगवान्‌का आवाहन करे। इसी प्रकार दूसरी ऋचा '**पुरुष एवेदम्**' इत्यादिसे पार्षदोंसहित श्रीहरिको आसन समर्पित करे। वे सभी आसन सुवर्णमय हैं, ऐसा मन-ही-मन चिन्तन करे। भक्तियोगसे चिन्तन करनेपर वह परिपूर्ण होता है। फिर तीसरी ऋचासे पाद्य समर्पण करे और उसमें गंगाजीका स्मरण करे। उसके बाद सरिताओं तथा सातों समुद्रोंके जलसे जगदीश भगवान् विष्णुको अर्घ्य दे। सरिताओं और सागरोंका चिन्तनमात्र करना

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

चाहिये। चौथी ऋचासे अर्घ्यदान करना उचित है। इसके बाद श्रीहरिको अमृतसे आचमन करावे। तीन आचमनसे ब्राह्मणकी शुद्धि बतायी गयी है। आचमनका जल स्वच्छ एवं फेन और बुद्बुदसे रहित होना चाहिये। ब्राह्मण इतने जलसे आचमन करे कि वह उसके हृदयतक पहुँच जाय, क्षत्रिय कण्ठतक जाने लायक जलसे आचमन करे और वैश्य तालुतक पहुँचने लायक जलसे आचमन करे। स्त्री और शूद्र एक बार जलका स्पर्शमात्र करनेसे शुद्ध हो जाते हैं। पाँचवीं ऋचाके द्वारा भक्तियुक्त चित्तसे आचमन करना चाहिये। भगवान् हृषीकेश भक्तिसे ग्रहण करने योग्य हैं। भक्तिसे वे अपने-आपको भी समर्पित कर देते हैं। तत्पश्चात् सुगन्धित पदार्थोंद्वारा सुवासित और सभी ओषधियोंसे युक्त सुवर्णमय कलशोंमें रखे हुए जलसे भगवान्‌को स्नान करावे। श्रद्धापूर्वक मनसे भावनाद्वारा लाये हुए तीर्थजलसे स्नान कराना चाहिये। श्रद्धाके बिना दी हुई रत्नोंकी राशि भी निष्फल होती है और श्रद्धासे दिया हुआ जल भी अक्षय फल देनेवाला होता है। छठी ऋचासे स्नान कराकर पुनः आचमन कराना चाहिये।

सातवीं ऋचासे भगवान् विष्णुके लिये वस्त्र देना चाहिये। आठवींसे यज्ञोपवीत समर्पित करे, नवीं ऋचासे यज्ञमूर्ति श्रीहरिके श्रीअंगोंपर उत्तम चन्दनका लेप करना चाहिये। जिसने सुन्दर यक्षकर्दमके द्वारा जगद्गुरु भगवान् विष्णुके अंगोंमें लेप किया है, उसने अपने सुयशसे इस संसारको आच्छादित एवं तृप्त किया है। चन्दन देनेवाला मनुष्य संसारमें अपने तेजसे भगवान् सूर्यके समान होकर देवभावको प्राप्त होता और ब्रह्मादि देवताओंके लोकमें आनन्दका अनुभव करता है। जो मनुष्य चातुर्मास्यमें भगवान् विष्णुको चन्दनके आलेपसे सुन्दर रूपमें देखते हैं, वे कभी यमपुरीमें नहीं जाते। दसवीं ऋचासे भक्तिपूर्वक पुष्प चढ़ाकर भगवान्‌की पूजा करे। पुष्पोंसे पूजित हुए भगवान् विष्णुको यदि दूसरे लोग भी प्रणाम करते हैं, तो उन्हें भी अक्षय लोक प्राप्त होते हैं। ग्यारहवीं ऋचासे श्रीहरिको धूप-दान करना चाहिये—'उत्तम गन्धसे युक्त दिव्य वनस्पतिका रस तथा अतिशय सुगन्धित यह धूप सम्पूर्ण देवताओंके सूँघने योग्य है, भगवन्! आप इसे ग्रहण करें।' इस मन्त्रका उच्चारण करके भगवान्‌को अगुरुका धूप निवेदन करे। चातुर्मास्यमें इसका महान् फल है। कपूर, चन्दनदल, मिश्री, मधु और जटामासीसे युक्त धूप श्रीहरिके शयनकालमें निवेदन करना चाहिये। देवता सूँघनेसे ही प्रसन्न होते हैं। अतः धूप उनकी घ्राणेन्द्रियको तृप्त करनेका शुभ साधन है। मुक्तिकी इच्छा रखनेवाले पुरुषोंको बारहवीं ऋचासे दीपदान करना चाहिये। जो चातुर्मास्यमें भगवान् विष्णुके आगे दीपदान करता है, उसकी पापराशि पलभरमें जलकर भस्म हो जाती है।

दीपदानके अनन्तर मोक्षपदमें स्थित भक्तियुक्त पुरुषोंको तेरहवीं ऋचाके द्वारा भगवान्‌को अन्नमय नैवेद्य निवेदन करना चाहिये। अन्नदानके अनन्तर भगवान्‌को पुनः आचमन कराना चाहिये। तत्पश्चात् चौदहवीं ऋचासे सब पापोंका नाश करनेवाली आरती उतारे और भगवान्‌को नमस्कार करे। पंद्रहवीं ऋचाके द्वारा ब्राह्मणोंके साथ भगवान्‌के चारों ओर घूमकर परिक्रमा करनी चाहिये। चार बार परिक्रमा करनेसे चराचर प्राणियोंसहित सम्पूर्ण जगत्‌की परिक्रमा तथा भगवत्सम्बन्धी तीर्थोंकी यात्रा सम्पन्न हो जाती है। तदनन्तर सोलहवीं ऋचाद्वारा भगवान् विष्णुके साथ अपनी एकताका चिन्तन करे—'मैं ही सदा विष्णु हूँ' इस प्रकार अपने मनमें भावना करनेवाला ब्राह्मण जीवन्मुक्त हो जाता है। चौमासेमें ब्राह्मणको विशेषरूपसे योगयुक्त होना चाहिये। इस प्रकार यहाँ मोक्षमार्ग प्रदान करनेवाले भगवान् विष्णुकी भक्ति बतायी गयी।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

ब्रह्माजीके द्वारा मानसी और शारीरिक सृष्टिका प्रादुर्भाव, चारों वर्णोंके धर्म तथा शूद्र जातियोंके भेदोंका वर्णन

नारदजीने पूछा—पितामह! अट्ठारह प्रकारकी प्रजाएँ कौन-कौन-सी हैं? उनकी जीवनवृत्ति और धर्म क्या है? यह सब बताइये।

ब्रह्माजीने कहा—अपने कालके परिमाणसे जब जगदीश्वर भगवान् श्रीहरि योगनिद्रासे जाग्रत् हुए, तब उस समय उनकी नाभिसे प्रकट हुए कमलकोषसे मेरा जन्म हुआ। तदनन्तर उस कमलकी नालसे भगवान्‌के उदरमें प्रवेश करके जब मैंने देखा, तब वहाँ मुझे कोटि-कोटि ब्रह्माण्डोंके दर्शन हुए; परंतु फिर जब बाहर आया तब सृष्टिके पदार्थ और उसके हेतुओंको भूल गया। तब आकाशवाणी हुई—'महामते! तपस्या करो।' यह भगवदीय आदेश पाकर मैंने दस हजार वर्षोंतक तपस्या की। फिर मनके द्वारा पहले मानसी सृष्टिका चिन्तन किया। उससे मरीचि आदि मुनीश्वर ब्राह्मण प्रकट हुए। नारद! उन्हींमें सबसे छोटे होकर तुम उत्पन्न हुए। तुम ज्ञानी एवं वेदान्तके पारंगत पण्डित हुए। वे सब मुनि कर्मनिष्ठ हो सदा सृष्टिविस्तारके लिये उद्योग करने लगे। परंतु तुम अनन्यभावसे भगवान् विष्णुके भक्त हुए। एकान्ततः ब्रह्मचिन्तनपरायण, ममता और अहंकारसे शून्य हुए। तुम भी मेरे मानस पुत्र ही हो। मानसी सृष्टिके पश्चात् मैंने देहजा सृष्टिकी रचना की। मेरे मुखसे ब्राह्मण, भुजाओंसे क्षत्रिय, दोनों ऊरुओंसे वैश्य और चरणोंसे शूद्र उत्पन्न हुए। अनुलोम और विलोम क्रमसे शूद्रसे नीचे-नीचे सब मेरे चरणतलोंसे ही प्रकट हुए हैं। वे सब प्रकृतियाँ (प्रजाजन) मेरे शरीरके अवयव-विशेषसे उत्पन्न हैं। नारद! मैं तुमसे उनके नाम बताता हूँ, सुनो—ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य—ये तीन ही द्विज हैं। वेद, तपस्या, पठन, यज्ञ करना और दान देना—ये सब इनके कर्म हैं। द्विजोंको पढ़ाने और थोड़ा-सा प्रतिग्रह लेनेसे ब्राह्मणोंकी जीविका चलती है। यद्यपि ब्राह्मण तपस्याके प्रभावसे दान ग्रहण करनेमें समर्थ है, तथापि वह प्रतिग्रह न स्वीकार करे; क्योंकि उसे अपने तपोबलकी रक्षा सदा करनी चाहिये। वेदपाठ, विष्णु-पूजन, ब्रह्मध्यान, लोभका अभाव, क्रोध न होना, ममताशून्यता, क्षमासारता, आर्यता (श्रेष्ठ आचारका पालन), सत्कर्मपरायणता, दानरूपी कर्म तथा सत्यभाषण आदि सद्‌गुणोंसे जो सदा विभूषित होता है, वह ब्राह्मण कहलाता है। क्षत्रियको तपस्या, यज्ञ, दान, वेदपाठ और ब्राह्मणभक्ति—ये सब कर्म करने चाहिये। शस्त्रोंसे इनकी जीविका चलती है। स्त्री, बालक, गौ, ब्राह्मण और भूमिकी रक्षाके लिये, स्वामीपर आये हुए संकटको टालनेके लिये, शरणमें आये हुएकी रक्षाके लिये तथा पीड़ितोंकी आर्त पुकार सुनकर उन सबका संकट दूर करनेके लिये जो सदा तत्पर रहते हैं, वे ही क्षत्रिय हैं। वैश्य धन बढ़ानेवाला, पशुओंका पालक, कृषिकर्म करनेवाला, रस आदिका विक्रेता तथा देवताओं और ब्राह्मणोंका पूजक है। वह सूद लेकर धनकी उत्पत्ति करे, यज्ञ आदि कर्मोंका अनुष्ठान करता रहे, दान और स्वाध्याय भी करे। ये सब वैश्यके कर्म बताये गये हैं। शूद्र भी प्रातःकाल उठकर भगवान्‌का चरण-वन्दन करके विष्णुभक्तिमय श्लोकोंका पाठ करते हुए भगवान् विष्णुके स्वरूपको प्राप्त होता है। जो वर्षमें आनेवाले सभी व्रतोंका तिथि तथा वारके अधिदेवताकी प्रसन्नताके लिये पालन करता है और सब जीवोंको अन्नदान करता है, वह शूद्र गृहस्थ श्रेष्ठ माना गया है। वह वेदमन्त्रोंके उच्चारणके

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

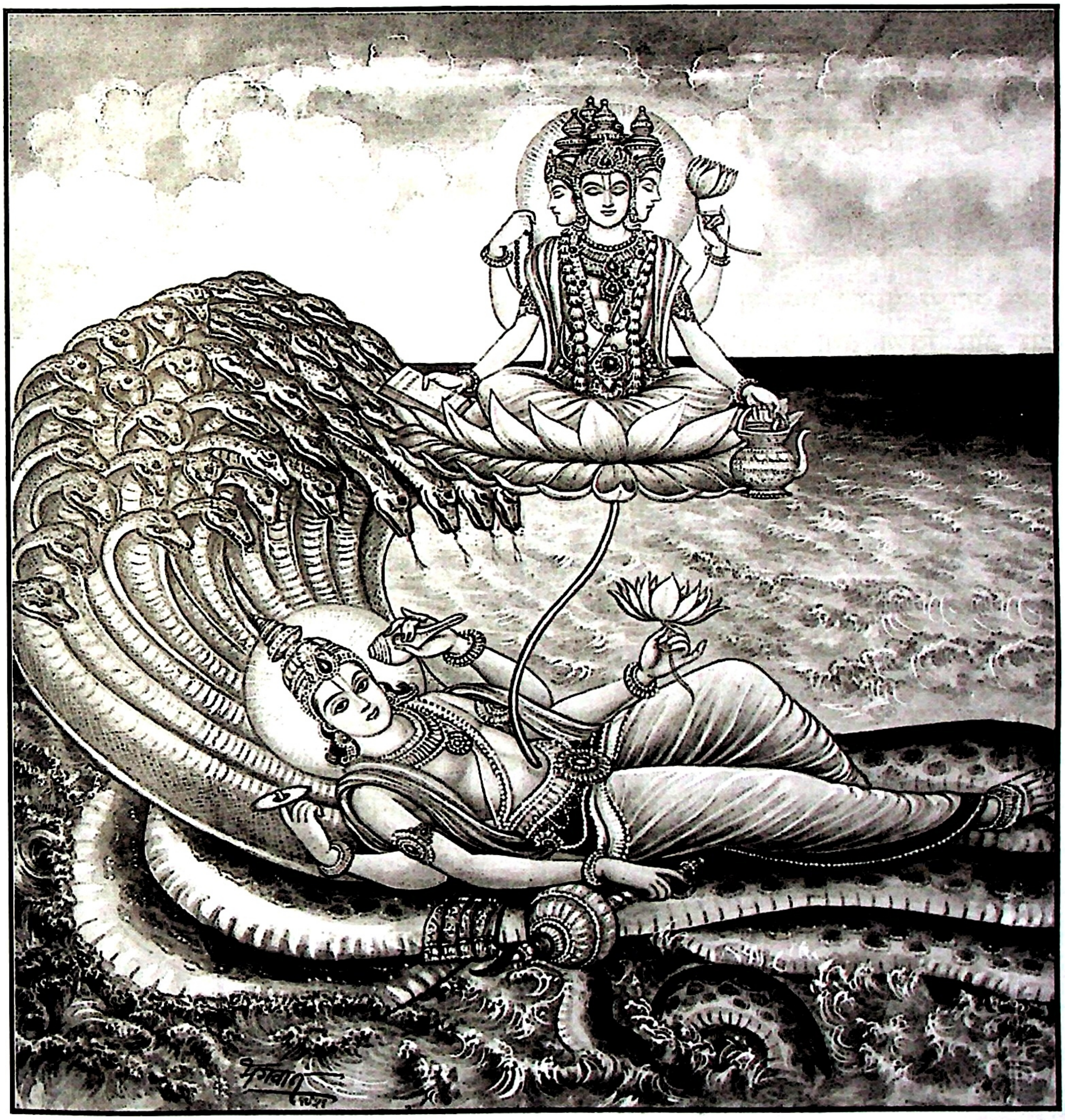

ब्रह्माजीका प्राकट्य

279 Skandpuran_Section_23_1_Front In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

बिना ही इस लोकमें सब कर्म करते हुए मुक्त होता है। चातुर्मास्यका व्रत करनेवाला शूद्र भी श्रीहरिके स्वरूपको प्राप्त होता है। महामुने! सभी वर्णों, आश्रमों और जातियोंके लिये भगवान् विष्णुकी भक्ति सबसे उत्तम मानी गयी है। जो पवित्र चित्तवाला मनुष्य इस परम पवित्र पुराणको पढ़ता अथवा सुनता है, वह पूर्वजन्मोपार्जित समस्त पापोंका नाश करके श्रीविष्णुकी आराधनामें तत्पर हो विष्णुलोकको प्राप्त होता है।

पैजवन शूद्र और महर्षि गालवका संवाद तथा शालग्रामशिलाके पूजनका महत्त्व

ब्रह्माजी कहते हैं—महामते! प्राचीन त्रेतायुगमें पैजवन नामसे प्रसिद्ध एक शूद्र था, जो धर्ममें तत्पर और विष्णु तथा ब्राह्मणोंका पूजक था। वह न्यायपूर्वक धनका उपार्जन करता और सदा शान्तभावसे रहता था। सभी लोग उससे प्रेम करते थे। वह सत्यवादी और विवेकशील था। उसकी स्त्री समान कुलमें उत्पन्न, धर्मपूर्वक विवाहित तथा शुभ आचरणवाली पतिव्रता थी। वह भी सदा देवताओं और ब्राह्मणोंके हितमें तत्पर रहती थी। महात्मा पैजवनको पूर्वपुण्यके प्रभावसे धनकी प्राप्ति हुई थी। वह सदा स्वजनोंके द्वारा स्वदेश और परदेशमें व्यापार किया करता था। अपने और दूसरेके धनसे भी वह व्यापार करता-कराता था। इस प्रकार धर्मपर दृष्टि रखनेवाले उस पैजवनको नाना प्रकारका प्रचुर धन प्राप्त हुआ। उसके दो पुत्र हुए। वे दोनों ही पिताकी सेवा-शुश्रूषामें लगे रहनेवाले थे। धन आदिका अहंकार तो उन्हें छू तक नहीं गया था। वे अपने धर्मयुक्त आचरणसे शोभा पाते थे और पिता-माताकी सेवाके अतिरिक्त दूसरी किसी वस्तुका आदर नहीं करते थे। उनकी स्त्रियाँ भी अपने सास-श्वशुरकी सेवामें अनिवार्य-रूपसे लगी रहती थीं। पैजवनका घर धन-धान्यसे भरा रहता था। वह स्वयं भी सदा धर्मपरायण हो देवताओं और अतिथियोंके पूजनमें तत्पर रहता था। उसके घरपर आया हुआ कोई भी अतिथि विमुख नहीं लौटता था। वह शीतकालमें धन और उष्णकालमें अन्न एवं जलका दान करता था। वर्षाकालमें वस्त्र तथा अन्न बाँटा करता था। भगवान् शिव और विष्णुके व्रतमें स्थित होकर उचित समयमें वह बावली, कूप, तड़ाग, प्याऊ तथा देवमन्दिर बनवाता था। चातुर्मास्यमें वह विशेषरूपसे भगवान् विष्णुके भजनमें लगा रहता था।

एक दिन ब्रह्मज्ञानपरायण शान्त तपस्वी परम जितेन्द्रिय गालव मुनि पैजवन शूद्रके घरमें आये। वह अभ्युत्थान और आसन आदि उपचारोंसे मुनिकी पूजा करके मधुर वाणीमें बोला—'आज मेरा जन्म सफल हो गया, जीवन अति उत्तम हो गया, आज मेरा धर्माचरण भी सार्थक हुआ। मुने! आपने यहाँ पधारकर कुलसहित मुझे उन्नत कर दिया। आपकी दृष्टिसे मेरे सहस्रों पाप जलकर भस्म हो गये, मुझ गृहस्थके सम्पूर्ण गृहको आज आपने पवित्र कर दिया।'

उस शूद्रकी भक्तिसे गालव मुनि बहुत प्रसन्न हुए। उनकी सारी थकावट दूर हो गयी। वे हाथ जोड़कर खड़े हुए शूद्रसे बोले—'सौम्य! तुम कुशलसे तो हो न? तुम्हारा मन धर्ममें लगता है न? क्योंकि भाई-बन्धु, स्त्री-पुत्र आदि सब लोग सदा स्वार्थसे ही सम्बन्ध रखते हैं। तुम गोविन्दमें सदा भक्ति रखते हो न? दानमें तो तुम्हारी रुचि है न? क्या धर्म, अर्थ और कामसम्बन्धी कार्योंमें

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth 279 Skandpuran_Section_23_1_Back

तुम्हारा मन उत्साहके साथ संलग्न होता है? भगवान् विष्णुका चरणोदक प्रतिदिन सिरपर धारण करते हो न? भगवान् विष्णुका भजन, श्रीविष्णुकी कथा, श्रीविष्णुका स्तोत्र, श्रीविष्णुका नमस्कार, श्रीविष्णुका ध्यान और भगवान् विष्णुका पूजन— यह सब भगवान्‌के शयनकाल (चातुर्मास्य) में किया जाय तो मोक्ष देनेवाला होता है।'

ऐसा कहते हुए मुनिको प्रणाम करके शूद्रने फिर कहा—मुने! आपकी कृपादृष्टिसे ही मुझे इस आश्रमका पूरा-पूरा फल मिल गया। तथापि मैं आपकी उपदेशयुक्त वाणी सुनना चाहता हूँ। आपके आगमनका क्या प्रयोजन है, यह कृपा करके बतावें?

तब गालवजीने उस धर्मात्मा एवं सत्यवादी शूद्रसे कहा—इधर तीर्थयात्रामें लगे हुए मुझे कई मास व्यतीत हो गये, अब चातुर्मास्य आ गया है। अतः अपने आश्रमको जाऊँगा। भगवान् नारायणकी प्रसन्नताके लिये आषाढ़ शुक्ला एकादशीको अपने घरपर चातुर्मास्यका नियम ग्रहण करूँगा।

पैजवन बोला—द्विजश्रेष्ठ! मेरे ऊपर अनुग्रह करके कोई ज्ञानकी बात मुझे भी बताइये। वेदमें मेरा अधिकार नहीं है। वेदसारके जपका भी मुझे अधिकार नहीं है। अतः विशेषतः चातुर्मास्यमें पालन करने योग्य यदि कोई मोक्षसाधक उपाय हो तो उसे बताइये।

गालवजीने कहा—जो मनुष्य शालग्राममें स्थित भगवान् विष्णुका पूजन करते हैं, भक्ति उनसे दूर नहीं है। जिसका मन भगवान् शालग्रामके चिन्तनमें लगा हुआ है, उसके द्वारा जो कुछ भी शुभ कर्म किया जाता है, वह अक्षय होता है। चातुर्मास्यमें इसका विशेष माहात्म्य है। जहाँ शालग्राम-शिला और द्वारकाकी शिला दोनोंका संगम हो, वहाँ मनुष्यके लिये मुक्ति दुर्लभ नहीं है। जिस भूमिमें सैकड़ों पापोंसे युक्त मनुष्योंद्वारा भी शालग्रामकी शिला पूजी जाती है, वहाँ यह शिला पाँच कोसतकके प्रदेशको पवित्र करती है। यह शालग्रामशिला तेजोमय पिण्ड है, साक्षात् ब्रह्मस्वरूप है। इसके दर्शनमात्रसे भी तत्काल सब पापोंका नाश हो जाता है। महाशूद्र! शालग्रामशिलाकी उपस्थितिसे सब तीर्थ और देवमन्दिर पवित्र हो जाते हैं तथा समस्त नदियाँ तीर्थत्वको प्राप्त होती हैं। शालग्रामशिलाकी सन्निधिमात्रसे सर्वत्र सम्पूर्ण क्रियाएँ शोभन होती हैं। जिसके घरमें शुभ शालग्रामशिलाका कोमल तुलसीदलोंद्वारा पूजन होता है, वहाँ यमराज अपना मुँह नहीं दिखाते। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा सच्छूद्रोंको भी शालग्रामशिलाके पूजनका अधिकार है।

सच्छूद्रने पूछा—ब्रह्मन्! आप वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ हैं। सुना जाता है कि स्त्री और शूद्र आदिके लिये शालग्रामशिलाके पूजनका निषेध है। अतः मेरे-जैसा मनुष्य किस प्रकार शालग्रामका पूजन करे?

गालवजीने कहा—मानद! शूद्रोंमें केवल असत् शूद्रके लिये शालग्रामशिलाका निषेध है। स्त्रियोंमें भी पतिव्रता स्त्रियोंके लिये उसका निषेध नहीं किया गया है। जो शालग्रामशिलाके ऊपर चढ़ायी

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

हुई माला अपने मस्तकपर धारण करते हैं, उनके सहस्रों पाप तत्काल नष्ट हो जाते हैं। जो शालग्राम-शिलाके आगे दीपदान करते हैं, उनका कभी यमपुरमें निवास नहीं होता। जो शालग्राममें व्याप्त भगवान् विष्णुकी मनोहर पुष्पोंद्वारा पूजा करते हैं तथा जो भगवान् विष्णुके शयनकाल (चातुर्मास्य)-में शालग्रामशिलाको पंचामृतसे स्नान कराते हैं, वे मनुष्य संसारबन्धनमें कभी नहीं पड़ते। मुक्तिके आदिकारण निर्मल शालग्रामगत श्रीहरिको अपने हृदयमें स्थापित करके जो प्रतिदिन भक्तिपूर्वक उनका चिन्तन करता है, वह मोक्षका भागी होता है। जो सब समयमें, विशेषत: चातुर्मास्यकालमें, भगवान् शालग्रामके ऊपर तुलसीदलकी माला चढ़ाता है, वह सम्पूर्ण कामनाओंको प्राप्त कर लेता है। तुलसीदेवी भगवान् विष्णुको सदा प्रिय हैं। शालग्राम महाविष्णुके स्वरूप हैं और तुलसीदेवी साक्षात् लक्ष्मी हैं। इसलिये चन्दनचर्चित सुगन्धित जलसे तुलसीमंजरीसहित शालग्रामशिलारूप श्रीहरिको नहलाकर जो तुलसीकी मंजरियोंसे उनका पूजन करता है, वह सम्पूर्ण कामनाओंको पाता है। उत्तम पुष्पोंसे पूजित भगवान् शालग्रामका दर्शन करके मनुष्य सब पापोंसे शुद्धचित्त होकर श्रीहरिमें तन्मयताको प्राप्त होता है। शालग्राम-शिलाके चौबीस भेद हैं, उनका वर्णन सुनो। पहले केशव हैं, उनकी पूजा करनी चाहिये। दूसरे मधुसूदन, तीसरे संकर्षण, चौथे दामोदर, पाँचवें वासुदेव, छठें प्रद्युम्न, सातवें विष्णु, आठवें माधव, नवें अनन्तमूर्ति, दसवें पुरुषोत्तम, ग्यारहवें अधोक्षज, बारहवें जनार्दन, तेरहवें गोविन्द, चौदहवें त्रिविक्रम, पंद्रहवें श्रीधर, सोलहवें हृषीकेश, सत्रहवें नृसिंह, अठारहवें विश्वयोनि, उन्नीसवें वामन, बीसवें नारायण, इक्कीसवें पुण्डरीकाक्ष, बाईसवें उपेन्द्र, तेईसवें हरि और चौबीसवें श्रीकृष्ण कहे गये हैं। ये चौबीस मूर्तियाँ चौबीस एकादशियोंसे सम्बन्ध रखती हैं। सालभरमें चौबीस एकादशियाँ और ये चौबीस मूर्तियाँ पूजी जाती हैं। इनकी नित्य पूजा करनेवाला मनुष्य भक्तिमान् होता है। जो मनुष्य भक्तिपूर्वक इस प्रसंगको सुनता और पढ़ता है, उसके ऊपर भूतसृष्टिकी रक्षा करनेवाले भगवान् श्रीहरि प्रसन्न होते हैं।

सतीका देहत्याग, पार्वतीविवाह, भगवान् शिवका हरिहररूपमें प्राकट्य और शालग्रामशिलाका महत्त्व

गालवजी कहते हैं—भगवान् विष्णु जिस प्रकार शालग्रामशिलाके स्वरूपको प्राप्त हुए हैं और भगवान् शिव भी जिस प्रकार लिंगाकारमें स्थित हुए हैं, वह सब प्रसंग मैं तुमसे कहता हूँ, सुनो। पूर्वकालमें ब्रह्माजीके अंगूठेसे प्रजापति दक्ष उत्पन्न हुए थे। दक्षके सती नामकी एक पुत्री हुई, जो उत्तम लक्षणोंसे सम्पन्न और बड़ी साध्वी थी। विधिके ज्ञाता भगवान् शंकरने सतीके साथ वेदोक्त विधिसे विवाह किया। दक्ष प्रजापतिका चित्त मोहवश मूढताको प्राप्त हो गया था। उन्होंने एक महान् यज्ञका आयोजन किया और उसमें भगवान् शंकरके प्रति द्वेष-भावका परिचय दिया। पिताके उस महान् द्वेषसे सतीदेवी कुपित हो उठीं और यज्ञवेदीमें आकर प्राणायाममें तत्पर हो उन्होंने अग्निमयी धारणाके द्वारा अपना शरीर त्याग दिया। उनके शरीरमें जो पैतृक अंश था, उसका परित्याग करके अपने भागके साथ सतीदेवीने मन-ही-मन शीतल हिमालयका चिन्तन किया। मृत्युकालमें अपने कर्मके अधीन हुआ मन जहाँ-जहाँ जाता है, वहीं-वहीं उसका अवतार होता है। अत:

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth 279 Skandpuran_Section_23_2_Back

अग्निमें जली हुई सतीदेवी शीतल हिमालयका चिन्तन करनेके कारण हिमालयकी पुत्री हुईं। वहाँ पर्वतकन्या होकर उन्होंने शिवभक्तिमें तत्पर हो बड़ी उग्र तपस्या की। तदनन्तर सहस्रों वर्षोंके पश्चात् भूतभावन भगवान् महेश्वर ब्राह्मणका वेष धारण कर उस स्थानपर आये और पार्वतीके कर्म एवं स्वभावकी परीक्षा लेकर उन्हें तपस्यासे विशुद्ध जाना। तत्पश्चात् दिव्यशरीर धारण करके भगवान् शिवने पार्वतीका हाथ पकड़ लिया और कहा—'देवि! तुमने तपस्यासे मुझे जीत लिया है, बोलो तुम्हारा कौन-सा प्रिय कार्य करूँ?' तब पार्वतीने महेश्वरसे कहा—'आप मुझे अंगीकार करनेमें मेरे पिताको निमित्त बनाइये।' उनके इस प्रकार कहनेपर भगवान् शंकरने सप्तर्षियोंको हिमालयके पास भेजा। सप्तर्षियोंने हिमालयके पास जाकर लग्नका समय बतलाया और महादेवजीसे सब समाचार कहकर वे अपने स्थानको चले गये। तदनन्तर लग्नके दिन इन्द्र आदि सब देवता ब्रह्मा, विष्णु और अग्निको आगे करके आये और 'वर' वेषमें भगवान् शंकरका दर्शन करके बड़े प्रसन्न हुए। हिमवान्ने दूलह-वेषमें भगवान् शंकरका दर्शन करके अपनेको कृतार्थ माना और प्रसन्नतापूर्वक मधुपर्क आदि शुभ उपचारोंसे उनका पूजन किया। तत्पश्चात् वेदोक्त विधिसे उस गुणवती कन्याको हिमवान्ने भगवान् शिवको सौंप दिया। उसके बाद भगवान् शिवने अग्निकी परिक्रमा की और जब उनसे गोत्र आदि पूछा गया, तब वे लज्जित-से हो गये। तत्पश्चात् ब्रह्माजीके कथनानुसार विवाहकी शेष विधि पूरी की गयी। जो यज्ञमें चरु ग्रहण करते समय अपने पाँच मुख प्रकाशित करनेवाले हैं, वे ही भगवान् महेश्वर गिरिराजनन्दिनीके लिये सुन्दर रूप और वेष-भूषासे सम्पन्न 'वर' बने हुए विराजमान थे। पार्वतीने भगवान् शंकरको ही अपना प्राणवल्लभ स्वीकार किया। विवाहके पश्चात् दहेज देकर हिमालयने शिवजीको विदा किया। वहाँसे भगवान् शिव मन्दराचल पर्वतपर आये। वहाँ विश्वकर्माने उनके लिये क्षणभरमें मणिमय भवनका निर्माण किया। वह मन्दिर देवाधिदेव भगवान् शिवकी इच्छाके अनुसार बढ़नेवाला था। उस सुन्दर भवनमें पार्वतीके साथ निवास करते हुए भगवान् शंकरकी दृष्टिमें वायुरूपधारी कामदेव आया। कामदेवने शिवजीको देखकर इस प्रकार स्तवन किया—'वृषभध्वज! आपको नमस्कार है। आप सर्वस्वरूप हैं, आपको नमस्कार है। आप गणोंके स्वामी हैं, आपको नमस्कार है। हे नाथ! मेरी रक्षा कीजिये। प्रभो! आपके इस चराचर जगत्में कोई ऐसी वस्तु नहीं दिखायी देती, जो आपसे रहित हो। आप ही रक्षक, आप ही सृष्टि करनेवाले तथा आप ही समस्त संसारका संहार करनेवाले हैं। महादेव! मुझपर कृपा कीजिये और मुझे देहदान दीजिये।'

भगवान् शिव बोले—कामदेव! मैंने पूर्व कालमें तुम्हें पार्वतीके आगे भस्म किया है। अब पुनः उन्हींके समीप शरीरधारी हो जाओ।

भगवान् शिवके ऐसा कहनेपर कामदेवने अपना शरीर धारण किया और विनयसे नम्र हो उसने पार्वतीके दोनों चरणोंमें प्रणाम किया। उस समय उसके मनमें बड़ी प्रसन्नता थी। पार्वती और परमेश्वरका प्रसाद पाकर महामोह एवं बलसे सम्पन्न महातेजस्वी कामदेव तीनों लोकोंमें विचरण करने लगा।

प्राचीन कालमें देवासुर-संग्रामके अवसरपर भयंकर रूप धारण करनेवाले बलोन्मत्त दानवोंने देवताओंको मारा। देवता भयभीत होकर ब्रह्माजीकी शरणमें गये। बृहस्पति आदि सभी देवताओंने जगत्पिता ब्रह्माको नमस्कार करके उनका स्तवन किया। फिर सब-के-सब हाथ जोड़कर खड़े हो गये। तब ब्रह्माजीने उनसे पूछा—'देवताओ! किसलिये मेरे पास आये हो?'

देवता बोले—तात! अद्भुत पराक्रम करनेवाले

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

दैत्योंने युद्धमें हमें परास्त कर दिया। अत: हम सब लोग आपकी शरणमें आये हैं। देवेश्वर! अपनी शरणमें आये हुए हमलोगोंकी आप रक्षा कीजिये।

देवताओंकी यह बात सुनकर ब्रह्माजीने कहा— एक समय शिवभक्तोंने भगवान् विष्णुके भक्तोंके साथ एक-दूसरेको जीतनेकी इच्छासे बड़ा विवाद हुआ। तब भगवान् शंकरने अपने भक्तोंके देखते-देखते एक परम अद्भुत रूप धारण किया। वह उनका हरिहरस्वरूप था। वे आधे शरीरसे शिव और आधे शरीरसे विष्णु हो गये। एक ओर भगवान् विष्णुके चिह्न और दूसरी ओर भगवान् शिवके चिह्न प्रकट हुए। एक ओर गरुड़ और दूसरी ओर नन्दी वृषभ उपस्थित थे। एक ओर मेघके समान श्याम वर्ण था तो दूसरी ओर कर्पूरके समान गौर वर्ण। दोनोंमें एकताका स्पष्टीकरण हुआ। इसी प्रकार सम्पूर्ण विश्वमें एक ही भगवान् व्यापक हैं। अत: विश्व भगवान्‌से भिन्न नहीं है। इस तरह भगवान्‌की एकताका बोध हुआ। श्रुतियों और स्मृतियोंके अर्थको बाधित करनेवाली भेदबुद्धि नष्ट हो गयी। पाखण्डी और युक्तिवादी सब आश्चर्यचकित हो गये। सबने अपने-अपने मतका आग्रह छोड़कर मोक्षमार्गकी शरण ली। मन्दराचल पर्वतपर वह हरिहर-मूर्ति आज भी विद्यमान है, जिसकी प्रमथ आदि गण सदा स्तुति करते रहते हैं। सृष्टि, पालन और संहार करनेवाली वह मूर्ति सम्पूर्ण विश्वका बीज एवं अनन्त है। शिव और विष्णुकी उस संयुक्त मूर्तिका स्मरण करनेपर वह सम्पूर्ण पापोंका नाश करनेवाली है। वह परम सत्य एवं योगी पुरुषोंके द्वारा चिन्तन करने योग्य है। मुक्तिकी इच्छा करनेवाले मनुष्य उस मूर्तिका ध्यान करके परम पदको प्राप्त होते हैं। चातुर्मास्यमें विशेषरूपसे उसका ध्यान करके मनुष्य फिर मानवलोकमें जन्म नहीं लेता। उस हरिहर-मूर्तिके समीप जो लोग जाते हैं, उनका वे भगवान् कल्याण करते हैं।

ऐसा कहकर ब्रह्माजी वहीं अन्तर्धान हो गये। तत्पश्चात् वे अग्नि आदि देवता मन्दराचल पर्वतपर गये और भगवान् महेश्वरको खोजते हुए वहीं भ्रमण करने लगे। तदनन्तर चातुर्मास्य पूर्ण होनेपर हरिहरस्वरूपधारी भगवान् शिव उनके ऊपर प्रसन्न हो प्रत्यक्ष दर्शन देकर बोले—'देवेश्वरो! अब तुमलोग जाओ और अपने-अपने अधिकारोंका उपभोग करो। मैंने उन दानवोंको जिनसे तुम्हें भय था, मार डाला है।' तब प्रसन्नचित्त एवं बाधारहित देवता कोटि-कोटि विमानोंके द्वारा अपने-अपने अधिकारोंको प्राप्त हुए।

एक समय सब देवताओं तथा भगवान् विष्णु और शिवके द्वारा भी पार्वतीजीकी इच्छाके प्रतिकूल कोई कार्य हो गया। इससे उन्होंने देवताओंको मर्त्यलोकमें प्रस्तर-प्रतिमा होनेका शाप दिया। उसी समय उन्होंने भगवान् विष्णुसे कहा—'आप भी मर्त्यलोकमें शिलारूप होंगे और शिवजीको भी ब्राह्मणोंके शापसे लिंगाकार प्रस्तररूप प्राप्त होगा।' तब भगवान् विष्णुने पार्वतीजीको प्रणाम करके कहा—'महाव्रते! महादेवि! आप सदैव महादेवजीकी प्रिया हैं। सम्पूर्ण भूतोंकी जननि! आपको नमस्कार

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

है। आप कल्याणमयी हैं, आपको नमस्कार है।' तब पार्वतीजीने प्रसन्न होकर कहा—'जनार्दन! आप शिलारूपमें रहकर भी योगीश्वरोंको मोक्ष देनेवाले होंगे। विशेषत: चातुर्मास्यमें सब भक्तोंकी कामनाएँ पूर्ण करनेवाले होंगे। ब्रह्माजीकी प्यारी पुत्री जो गण्डकी नामवाली नदी है, वह महान् जलराशिसे भरी हुई और परम पुण्यदायिनी है। उसीके अत्यन्त निर्मल नीरमें आपका निवास होगा। पुराणोंके ज्ञाता आपको चौबीस स्वरूपोंमें देखेंगे। आपके मुखमें सुवर्ण होगा और शालग्राम आपकी संज्ञा होगी। गोलाकार तेजोमय शरीर अपूर्व शोभासे युक्त होगा। उस शालग्रामस्वरूपमें आप सम्पूर्ण सामर्थ्यसे युक्त होकर योगियोंको भी मोक्ष देनेवाले होंगे। शालग्राम-शिलामें व्याप्त हुए आपका जो मनुष्य पूजन करेंगे, उन भक्तोंको आप मनोवांछित सिद्धि प्रदान करेंगे।'

गालवजी कहते हैं—महाशूद्र! भगवान् विष्णु जिस प्रकार शालग्राम-शिलामय स्वरूपको प्राप्त हुए, वह सब प्रसंग मैंने तुम्हें बता दिया।

शालग्राम-पूजन, द्वादशाक्षर मन्त्र एवं रामनामकी महिमा

गालवजी कहते हैं—गण्डकी नदीमें भगवान् विष्णु शालग्रामरूपसे प्रकट होते हैं और नर्मदा नदीमें भगवान् शिव नर्मदेश्वर रूपसे उत्पन्न होते हैं। ये दोनों स्वयं प्रकट हैं, कृत्रिम नहीं। शालग्रामशिलामें व्याप्त भगवान् विष्णु चौबीस भेदोंसे उपलब्ध होते हैं; किन्तु भगवान् सदाशिव सदा एक हाथसे ही नर्मदासे प्रकट होते हैं। जहाँ गण्डकीके जलमें शालग्रामशिला उपलब्ध होती है, वहाँ स्नान और जलपान करके मनुष्य ब्रह्मपदको प्राप्त होता है। गण्डकीसे प्रकट होनेवाली शालग्रामशिलाका पूजन करके मनुष्य शुद्धात्मा योगीश्वर होता है। भगवान् विष्णु पूजन, पठन, ध्यान और स्मरण करनेपर समस्त पापोंका नाश करनेवाले हैं। फिर शालग्रामशिलामें उनकी पूजा की जाय, तो उसके महत्त्वके विषयमें क्या कहना है; क्योंकि शालग्राममें साक्षात् श्रीहरि विराजमान होते हैं। चातुर्मास्यमें शालग्रामगत भगवान् विष्णुको नैवेद्य, फल और जल अर्पण करना विशेषरूपसे शुभ होता है। चातुर्मास्यमें शालग्रामशिला सबको पवित्र करती है। जहाँ शालग्रामस्वरूप भगवान् विष्णुकी पूजा की जाती है, वहाँ पाँच कोसतकके भूभागको वे भगवान् पवित्र कर देते हैं। वहाँ कोई अशुभ नहीं होता। जहाँ लक्ष्मीपति भगवान् शालग्रामका पूजन होता है, वहाँ वह पूजन ही सबसे बड़ा सौभाग्य है, वही महान् तप है और वही उत्तम मोक्ष है। जहाँ दक्षिणावर्त शंख, लक्ष्मीनारायणस्वरूप शालग्रामशिला, तुलसीका वृक्ष, कृष्णसार मृग और द्वारकाकी शिला (गोमतीचक्र) हो, वहाँ लक्ष्मी, विजय, विष्णु और मुक्ति—इन चारोंकी उपस्थिति होती है। भगवान् लक्ष्मीनारायण (शालग्राम)-की पूजा करनेवाले मनुष्यको भगवान् अति पुण्य प्रदान करते हैं, जिससे वह उसी क्षण मुक्त हो जाता है। भगवान् विष्णुका ध्यान पापोंका नाश करनेवाला है। तुलसीकी मंजरियोंसे पूजित हुए भगवान् शालग्राम पुनर्जन्मका नाश करनेवाले हैं। सब प्रकारसे यत्न करके उन्हीं जगदीश्वर विष्णुका सेवन करना चाहिये। वे सम्पूर्ण संसारमें व्याप्त होकर स्थित हैं।

एक समय पार्वतीजीने शिवजीसे कहा—महेश्वर! आपके हाथमें यह रुद्राक्षकी माला सदा मौजूद रहती है। देव! आप किस मन्त्रका जप करते हैं, यह सन्देह मेरे मनमें उठा करता है; क्योंकि आप ही सबके स्वामी हैं। आपसे बढ़कर दूसरे किसीको मैं नहीं जानती। फिर भी आप बड़ी भक्तिसे सदा किसी मन्त्रका जप करते

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

हुए दिखायी देते हैं। देवेश! आपसे भी श्रेष्ठ और कौन है, जिसका आप मन-ही-मन चिन्तन किया करते हैं।

भगवान् शिव बोले—प्रिये! भगवान् विष्णुके सहस्र नामोंमें जो सारभूत नाम है, मैं उसीका नित्य निरन्तर चिन्तन करता हूँ। मैं रामनाम जपता हूँ और उसीके अंककी इस मालाद्वारा गणना करता हूँ। श्रीरामका अवतार बहुत ही श्रेष्ठ है। द्वादश अक्षरोंसे युक्त जो सनातन ब्रह्मरूप प्रणव है वह अ, ऊ, म—इन तीन अक्षरोंसे सम्बद्ध है, तीन ग्रामोंसे युक्त है। उस विन्दुयुक्त प्रणव-मन्त्रका मैं सदैव मालाद्वारा जप करता हूँ। यह सम्पूर्ण वेदोंका सारभूत है। यह नित्य, अक्षर, निर्मल, अमृत, शान्त, तद्रूप, अमृततुल्य, कलातीत, सम्पूर्ण जगत्का आधार, मध्य और कोटि-कोटि ब्रह्माण्डोंका बीज है। इसको जानकर मनुष्य शीघ्र ही घोर संसारबन्धनसे मुक्त हो जाता है। ॐकारसहित जो द्वादशाक्षर बीज है, उसका जप करनेवाले मनुष्यके लिये वह कोटि-कोटि पापोंका दाह करनेवाला दावानल बन जाता है। द्वादशाक्षर मन्त्र (**ॐ नमो भगवते वासुदेवाय**)-का चिन्तन ही सबसे उत्तम ज्ञान है, जो शुभ और अशुभ दोनोंका विनाश करनेवाला है। द्वादशाक्षर मन्त्र करोड़ों जन्मोंमें कहीं किसीको उपलब्ध होता है। चातुर्मास्यमें उसका स्मरण विशेषरूपसे ब्रह्मकी प्राप्ति करानेवाला तथा मनोवांछित वस्तु देनेवाला है। इस अक्षरसे प्रकट हुए मन्त्रका जो मन, वाणी और क्रियाद्वारा आश्रय लेता है, उसका पुनर्जन्म नहीं होता। जो भगवान् विष्णुकी भक्तिमें तत्पर हो उनके बारह मास सम्बन्धी पापहारी नामोंका शालग्रामशिलामें न्यास करता है, उसे प्रतिदिन द्वादशाह यज्ञका फल प्राप्त होता है। द्वादशाक्षर मन्त्रके माहात्म्यका सहस्रों जिह्वाओंद्वारा भी वर्णन नहीं किया जा सकता। संसारमें इसका जप, ध्यान और स्तवन करनेपर यह महामन्त्र सभी मासोंमें पाप-नाश करनेवाला होता है; किंतु चातुर्मास्यमें तो इसका यह माहात्म्य विशेषरूपसे बढ़ जाता है। इस मन्त्रके चिन्तनमात्रसे ही मनुष्योंको मनचाही सिद्धि प्राप्त हो जाती है। इसके जपसे सनातन मोक्ष प्राप्त होता है। शान्तिपरायण जप एवं ध्यानसे मनुष्य निश्चय ही मोक्षको प्राप्त होता है। शूद्रों और स्त्रियोंके लिये प्रणवरहित जपका विधान है। पूर्वोक्त अठारह शूद्र जातिवाले मनुष्योंको जप-तप करनेकी आवश्यकता नहीं है। वे ब्राह्मण-भक्ति, दान और विष्णु भगवान्‌के चिन्तनसे सिद्ध हो जाते हैं। उनके लिये रामनाम मन्त्र ही है। यही उन्हें कोटि मन्त्रोंसे अधिक फल देनेवाला होता है। 'राम' इस दो अक्षरके नामका जप सब पापोंका नाश करनेवाला है। मनुष्य चलते, खड़े होते और सोते समय भी श्रीरामनामका कीर्तन करनेसे इहलोकमें सुख पाता है और अन्तमें भगवान् विष्णुका पार्षद होता है। 'राम' यह दो अक्षरोंका मन्त्र कोटिशत मन्त्रोंसे भी बढ़कर है। यह सभी संकर जातियोंके पापका नाशक बतलाया गया है। चातुर्मास्य प्राप्त होनेपर तो यह राममन्त्र अनन्त फल देनेवाला होता है। इस भूतलपर रामनामसे बढ़कर कोई पाठ नहीं है। जो रामनामकी शरण ले चुके हैं, उन्हें कभी यमलोककी यातना नहीं भोगनी पड़ती। जो-जो विघ्नकारक दोष हैं, सब रामनामका उच्चारण करनेमात्रसे नष्ट हो जाते हैं। जो परमात्मा समस्त स्थावर-जंगम प्राणियोंमें अन्तर्यामी आत्मारूपसे रम रहा है, उसे 'राम' कहते हैं। 'राम' यह मन्त्रराज भय तथा व्याधियोंका नाश करनेवाला है। यह युद्धमें विजय देनेवाला तथा समस्त कार्यों एवं मनोरथोंको सिद्ध करनेवाला है। रामनामको सम्पूर्ण तीर्थोंका फल कहा गया है। वह ब्राह्मणोंके लिये भी मनोवांछित फल देनेवाला है। रामचन्द्र,

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

राम-राम इत्यादि रूपसे उच्चारण किया जानेवाला यह दो अक्षरोंका मन्त्रराज भूतलपर सब कार्य सिद्ध करनेवाला है। देवता भी रामनामके गुण गाते हैं। इसलिये पार्वती! तुम भी सदा रामनामका जप करो। जो रामनामका जप करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। रामनामसे ही सहस्र नामोंका पुण्य होता है। विशेषत: चातुर्मास्यमें उसका पुण्य दसगुना बढ़ जाता है। रामनामके उच्चारणसे हीनजातिमें उत्पन्न हुए लोगोंका महान् पाप भी भस्म हो जाता है। ये भगवान् श्रीराम सम्पूर्ण जगत्को अपने तेजसे व्याप्त करके स्थित हैं और सब मनुष्योंमें अन्तरात्मारूपसे रहकर उनके पूर्वजन्मोपार्जित स्थूल एवं सूक्ष्म पापोंको क्षणभरमें भस्म करके उन्हें पवित्र कर देते हैं।

भगवान् शिवका नर्मदेश्वर शिवलिंगरूप होना तथा गालव-शूद्र-संवादका उपसंहार

श्रीमहादेवजी कहते हैं—पार्वती! द्विजोंके लिये ॐकारसहित द्वादशाक्षर मन्त्रका विधान है तथा स्त्रियों और शूद्रोंके लिये ॐकाररहित नमस्कारपूर्वक (**नमो भगवते वासुदेवाय**) द्वादशाक्षर मन्त्रका जप बताया गया है[१]। संकरजातियोंके लिये रामनामका षडक्षरमन्त्र (**ॐ रामाय नम:**) है। वह भी प्रणवसे रहित ही होना चाहिये, ऐसा पुराणों और स्मृतियोंका निर्णय है। यही क्रम सब वर्णोंके लिये है और संकरजातियोंके लिये भी सदा ऐसा ही क्रम है। पार्वती! प्रणव-जपमें तुम्हारा अधिकार नहीं है। अत: तुम्हें सदा '**नमो भगवते वासुदेवाय**' इसी मन्त्रका जप करना चाहिये।[२] यह प्रणव सब देवताओंका आदि कहा गया है। ब्रह्मा, विष्णु और शिव सभी अपनी प्रिय पत्नियोंके साथ प्रणवमें निवास करते हैं। सब प्राणी और समस्त तीर्थ उसमें विभागपूर्वक स्थित हैं। प्रणव सर्वतीर्थमय तथा कैवल्य ब्रह्ममय है। शुभानने! जब तुम चातुर्मास्यमें भगवान् विष्णुकी प्रसन्नताके लिये तप करोगी, तब प्रणवसहित द्वादशाक्षरके जप करनेके योग्य होओगी। जब तपस्याकी वृद्धि होती है, तब भगवान् विष्णुमें भक्ति होती है। प्रतिदिन भगवान् विष्णुका स्मरण करना चाहिये। इससे जिह्वा पवित्र होती है। जैसे दीपक प्रज्वलित होनेपर बड़े भारी अन्धकारका नाश हो जाता है, उसी प्रकार भगवान् विष्णुकी कथा सुननेसे सब पाप नष्ट हो जाते हैं। अत: पार्वती! तुम भगवान् विष्णुके शयनकालमें द्वादशाक्षर मन्त्रराजका विशुद्धचित्त होकर जप करो। वे ही भगवान् सन्तुष्ट होकर तुम्हें द्वादशाक्षरसहित अखण्ड ब्रह्मस्वरूपका उत्तम ज्ञान प्रदान करेंगे। तुम ब्रह्माजीके कोटि कल्पोंतक द्वादशाक्षरमन्त्रका जप करती रहो। जो प्रणवसहित मन्त्रराजका ध्यान करता है, उसका कभी नाश नहीं होता।

महादेवजीके ऐसा कहनेपर पार्वतीजी चौमासा आनेपर हिमालयके शिखरपर तपस्या करनेके लिये गयीं। वे तीन वस्त्रोंसे युक्त हो ब्रह्मचर्य-व्रतका पालन करती हुई प्रात:, मध्याह्न और सायं तीनों समय भगवान्के हरिहरस्वरूपका ध्यान करने लगीं। उनके साथ उनकी सखियाँ

---

१. द्विजातानां सहोङ्कार: सहितो द्वादशाक्षर:। स्त्रीशूद्राणां नमस्कारपूर्वक: समुदाहृत:॥
(स्क० पु०, ब्रा० चा० मा० २५। २)

२. ईश्वर उवाच—
प्रणवस्याधिकारो न तवास्ति वरवर्णिनि। नमो भगवते वासुदेवायेति जप: सदा॥
(स्क० पु०, ब्रा० चा० मा० २५। ६)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

भी थीं। विशाल नेत्रोंवाली पार्वतीने अपने पिता हिमालयके मनोहर शिखरपर क्षमा आदि गुणोंसे सुशोभित हो तपस्या की।

पार्वतीजीके तपस्यामें संलग्न होनेपर भगवान् शंकर सब ओर पृथ्वीपर विचरण करने लगे। एक दिन उन्होंने जलकी उत्ताल तरंग-मालाओंसे सुशोभित यमुनाजीको देखकर उसमें स्नान करनेका विचार किया। वे ज्यों ही जलमें घुसे कि उनके शरीरकी अग्निके तेजसे वह जल काला हो गया। यमुना भी दिव्यरूप धारण करके अपने श्यामस्वरूपसे प्रकट हुईं और भगवान् शंकरकी स्तुति एवं नमस्कार करके बोलीं—'देवेश्वर! मुझपर प्रसन्न होइये, मैं आपके अधीन हूँ।'

महादेवजीने कहा—जो मनुष्य इस पुण्यतीर्थमें स्नान करेगा, उसके सहस्रों पाप क्षणभरमें नष्ट हो जायँगे। यह पवित्र तीर्थ संसारमें 'हरतीर्थ' के नामसे विख्यात होगा। ऐसा कहकर भगवान् शिव यमुनाको प्रणाम करके अन्तर्धान हो गये। उन्होंने यमुनाके किनारे मनोहर रूप धारण करके हाथमें वाद्य ले लिया और ललाटमें त्रिपुण्ड्र धारण करके शिखरपर जटा बढ़ाये मुनियोंके घरोंमें स्वेच्छानुसार घूम-घूमकर अंगोंकी चपल चेष्टाका प्रदर्शन प्रारम्भ किया। वे कहीं गीत गाते और कहीं अपनी मौजसे नाचने लगते थे। स्त्रियोंके बीचमें जाकर कभी क्रोध करते और कभी हँसने लगते थे। इस प्रकार उन्हें सब ओर घूमते देखकर मुनिलोगोंने क्रोध किया और यह शाप दिया कि 'तुम लिंगरूप हो जाओ।' शाप होनेपर भगवान् शिव अन्यत्र बहुत दूर चले गये। उनका वह लिंगरूप अमरकण्टक पर्वतके रूपमें अभिव्यक्त हुआ और वहाँसे नर्मदा नामक नदी प्रकट हुई। नर्मदामें नहाकर, उसका जल पीकर तथा उसके जलसे पितरोंका तर्पण करके मनुष्य इस पृथ्वीपर दुर्लभ कामनाओंको भी प्राप्त कर लेता है। जो मनुष्य नर्मदामें स्थित शिवलिंगोंका पूजन करेंगे, वे शिवस्वरूप हो जायँगे। विशेषतः चातुर्मास्यमें शिवलिंगकी पूजा महान् फल देनेवाली है। चातुर्मास्यमें रुद्रमन्त्रका जप, शिवकी पूजा और शिवमें अनुराग विशेष फलद है। जो पंचामृतसे भगवान् शिवको स्नान कराते हैं, उन्हें गर्भकी वेदना नहीं सहन करनी पड़ती। जो शिवलिंगके मस्तकपर मधुसे अभिषेक करेंगे, उनके सहस्रों दुःख तत्काल नष्ट हो जायँगे। जो चातुर्मास्यमें शिवजीके आगे दीपदान करते हैं, वे शिवलोकके भागी होते हैं। जो जलधारासे युक्त नर्मदेश्वर महालिंगका चातुर्मास्यमें विधिपूर्वक पूजन करता है, वह शिवस्वरूप हो जाता है।

गालवजी कहते हैं—यह सब श्रीविष्णुके शालग्राम होनेकी और महेश्वर शिवके लिंगरूप होनेकी कथा सुनायी गयी। अतः जो लिंगरूपी शिव और शालग्रामगत श्रीविष्णुका भक्तिपूर्वक पूजन करते हैं, उन्हें दुःखमयी यातना नहीं भोगनी पड़ती। चौमासेमें शिव और विष्णुका विशेषरूपसे पूजन करना चाहिये। दोनोंमें भेदभाव न रखते हुए यदि उनकी पूजा की जाय तो वे स्वर्ग और मोक्ष प्रदान करनेवाले होते हैं। जो भक्तिपूर्वक हरि और हरकी पूजा करते हैं, उन्हें भगवान् श्रीहरि मोक्ष प्रदान करते हैं। विवेक आदि गुणोंसे युक्त शूद्र उत्तम गतिको प्राप्त होता है। हे महाशूद्र! तुम्हें बिना मन्त्रके भगवान् विष्णु और गिरिजापति महादेवजीका षोडशोपचारसे पूजन करना चाहिये। उनकी पूजा बड़े-बड़े पापोंका नाश करनेवाली है।

ऐसा कहकर पैजवनसे पूजित हो महर्षि गालव शीघ्र ही अपने आश्रमको चले गये। जो मनुष्य इस प्रसंगको सुनता और पढ़कर दूसरोंको भी सुनाता है, उसके पुण्यका कभी अन्त नहीं होता।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

महादेवजीके द्वारा पार्वतीके प्रति ध्यानयोग एवं ज्ञानयोगका निरूपण

पार्वतीजी बोलीं—देवेश्वर! आप ऐसा उपाय कीजिये, जिससे मैं ध्यानयोगको पाकर ज्ञानयोगकी प्राप्ति कर सकूँ।

महादेवजीने कहा—प्रिये! पहले जिस द्वादशाक्षर नामक मन्त्रराजका वर्णन किया गया है, उसीका तुम्हें जप करना चाहिये। वह वेदका सनातन सार तत्त्व है। प्रणव (ॐकार) सब वेदोंका आदि है। वह समस्त ब्रह्माण्डोंका याजक है तथा समस्त कार्योंमें प्रथम उच्चारण करने योग्य तथा सब सिद्धियोंका दाता है। उसका शुक्ल वर्ण है, मधुच्छन्दा ब्रह्मा ऋषि हैं, परमात्मा देवता हैं, गायत्री छन्द है तथा समस्त कर्मोंमें उसका विनियोग किया जाता है। देवि! जो प्रतिदिन सम्पूर्ण बीजाक्षरमय द्वादशाक्षर मन्त्रका जप करता है, वह पापोंसे लिप्त नहीं होता। यह द्वादश लिंगमय अक्षरोंसे युक्त द्वादशाक्षर मन्त्र कूर्मचक्रमें स्थित है। विनियोगसहित प्रत्येक वर्णके ध्यान, ऋषि, बीज, छन्द और देवता आदिके चिन्तनपूर्वक ध्यान, जप और पूजन करनेपर भक्तोंका कर्मजनित बन्धनोंसे मोक्ष हो जाता है। ध्यानयोगसे समस्त पापोंका नाश होता है। जप और ध्यान ही योगका स्वरूप है। शब्दब्रह्म (ॐकार एवं वेद)-से प्रकट हुआ द्वादशाक्षर मन्त्र वेदके समान है। ध्यानसे मनुष्य सब कुछ पाता है। ध्यानसे वह शुद्धताको प्राप्त होता है, ध्यानसे परब्रह्मका बोध होता है तथा सगुण स्वरूपमें चित्तवृत्तिकी एकाग्रतारूप योग भी ध्यानसे ही सम्भव होता है*। ध्यानयोग दो प्रकारका होता है। एक सालम्ब (सविशेष) और दूसरा निरालम्ब (निर्विशेष)। सगुण साकार विग्रह नारायणका दर्शन सालम्ब ध्यान है। दूसरा जो निरालम्ब ध्यान है, वह ज्ञानयोगके द्वारा बताया गया है। वह सबका आलम्ब है। रूपरहित, अप्रमेय तथा सर्वस्वरूप जो सनातन तेज है, जिसका प्रकाश कोटि-कोटि विद्युतोंके समान है, जो सदा उदयशील एवं पूर्णतम है, जो निष्कल, सकल एवं निरंजनमय है, आकाशके समान सर्वव्यापक है, सुखस्वरूप एवं तुरीयातीत है, जिसकी कहीं उपमा नहीं है, वही परमेश्वरका निराकारस्वरूप निरालम्ब ध्यानयोगके द्वारा चिन्तन करने योग्य है। वह द्वन्द्वोंसे रहित एवं साक्षीमात्र है। शुद्ध स्फटिकके समान निर्मल है। अपने तेजसे उपमारहित और अगाध है। उसीको तुम अंगीकार करो।

भगवान् नारायणका सूर्य मस्तक है, पृथ्वीलोक हृदय है तथा रसातल चरण है। वे मूर्तामूर्त स्वरूपसे सम्पूर्ण ब्रह्माण्डमें स्थित हैं। भगवान् विष्णु ही ब्रह्मरूपसे ज्ञानयोगके आश्रय हैं। वे ही समस्त प्राणियोंकी सृष्टि और पालन करते हैं तथा वे ही सबका संहार करते हैं। वे सर्वदेवमय हैं। सनातन कालसे ही भगवान् विष्णु बारह मासोंके अधिपति हैं। इसलिये सम्पूर्ण मासों, समस्त दिनों और सब प्रहरोंमें श्रीहरिका स्मरण करनेवाला पुरुष संसार-बन्धनसे मुक्त हो जाता है।

यह कथा जिस किसी (अनधिकारी)-के सामने नहीं कहनी चाहिये। जो नित्य भक्त, जितेन्द्रिय तथा शम (मनोनिग्रह) आदि गुणोंसे युक्त हो, उससे यह कथा कहनी चाहिये। भगवान् विष्णुका भक्त शूद्र हो या ब्राह्मण, उसे भी यह कथा सुनाने योग्य है। पार्वती! मेरी भक्तिसे तुम शीघ्र योगसिद्धि

* ध्यानेन सर्वमाप्नोति ध्यानेनाप्नोति शुद्धताम्। ध्यानेन परमं ब्रह्म मूर्तौ योगस्तु ध्यानजः॥
(स्क० पु०, ब्रा० चा० मा० ३०। २८-२९)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

प्राप्त करो और ज्ञानसे प्राप्त होने योग्य सर्वोत्कृष्ट भगवान् नारायणके स्वरूपको समझो। योगका अभ्यास सदा करना चाहिये। विशेषत: चातुर्मास्यमें योगकी साधना करनेवाला पुरुष अपने सब पापोंका नाश करता है। जो योगी दो घड़ी भी अपने कानोंको बंद करके अपने मनको ब्रह्मरन्ध्रमें स्थापित करता है, वह पापोंसे मुक्त हो जाता है। जिसके घरमें एक भी योगी पुरुष एक ग्रास अन्न भी भोजन कर लेता है, वह अपने सहित तीन पीढ़ियोंका अवश्य उद्धार कर देता है। यदि ब्राह्मण योगी हो तो वह दर्शनसे भी अवश्य सब प्राणियोंकी पापराशिका संहार कर देता है। यदि ब्रह्मपरायण उत्तम कर्मोंवाला श्रेष्ठ शूद्र योगका अभ्यास करता है, सद्गुरुमें भक्ति रखता है और नियमित आहार करते हुए जो योगी परब्रह्मकी समाधिमें स्थित होता है, वह भगवान् विष्णुका सायुज्य प्राप्त करता है। भगवान् श्रीहरिकी प्रीतिसे मनुष्य उनके स्वरूपमें लीन हो जाता है। पार्वती! यह योग ज्ञानकी सिद्धि प्रदान करनेवाला है। सनकादि आचार्यों तथा मुक्तिकी इच्छावाले देवेश्वरोंने भी इसका सेवन किया है। सर्वप्रथम योगियोंके जो सदा ज्ञानकी सम्पत्ति होती है, उस ज्ञानसम्पत्तिसे गृहीत होकर मनुष्य योगी होता है। तदनन्तर योगीके आगे अणिमा आदि सिद्धियाँ उपस्थित होती हैं, परंतु श्रेष्ठ योगी उनमें मन नहीं लगाता। योगसे सम्पूर्ण दानों और यज्ञोंका फल प्राप्त होता है। योगसे सम्पूर्ण कामनाओंकी प्राप्ति होती है। कोई ऐसी वस्तु नहीं, जो योगसे प्राप्त न होती हो। योगसे हृदयकी गाँठ नहीं रहने पाती। योगसे ममतारूपी शत्रु नहीं पैदा होता। योगसिद्ध पुरुषका मन कोई भी लुभा नहीं सकता। भगवान् विष्णु स्वयं ही इस चराचर जगत्में व्याप्त हैं। योगेश्वरोंके परम उपास्य उन भगवान्‌को अपने ब्रह्मरन्ध्रमें स्थित जानकर मनुष्य इस मायामय जगत्‌का मोह उसी प्रकार छोड़ देता है, जैसे सर्प अपनी केंचुलको त्याग देता है।

ज्ञानयोग और उसके साधन, स्कन्दस्वामीका सेनापतित्व और कौमारव्रत

महादेवजी कहते हैं—जब शरीरमें ममता नहीं रहती, जब चित्त अत्यन्त निर्मल होता है और जब श्रीहरिमें भक्तियोग दृढ़ होता है, तब कर्मसे बन्धन नहीं होता। जब कर्म करते हुए ही मनुष्योंका मन सदा शान्त रहे, तब योगमयी सिद्धि प्राप्त होती है। भगवान् विष्णुको कर्मोंके स्वामी जानो। उनमें सब कर्मोंका समर्पण करके मनुष्य संसार-बन्धनसे छूट जाता है। यही उत्तम ज्ञान है, यही उत्तम तप है और यही उत्तम श्रेय है कि भगवान् श्रीकृष्णको सर्वकर्म समर्पण कर दिया जाय। यही निर्मल योग है। इसीको निर्गुण कहा गया है। संसारमें वही ज्ञानवान्, वही योगियोंमें अग्रगण्य और वही महायज्ञोंका अनुष्ठान करनेवाला है, जो श्रीहरिके चरणोंमें भक्ति रखता है। निरंजन भगवान् विष्णुको जान लेनेपर जिसने मनोमय, कर्ममय और वाणीमय दण्डको धारण किया है—यानी इन तीनोंको वशमें कर लिया है, वही त्रिदण्डी जानने योग्य है। अज्ञानी सदा बन्धनात्मक कर्मद्वारा बाँधा जाता है। द्विजोंको श्रुतियों और स्मृतियोंके अनुशीलनसे मोक्षका मार्ग प्राप्त होता है। यह मोक्ष मानो एक नगर है, जिसके चार दरवाजे हैं। उन दरवाजोंपर शम आदि चार द्वारपाल सदा विद्यमान रहते हैं। वे ही मोक्ष-नगरमें प्रवेश करानेवाले हैं। अत: मनुष्योंको पहले उन्हीं चारोंका सेवन करना चाहिये। उनके नाम इस प्रकार हैं—शम,

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

सद्विचार, सन्तोष और साधुसंग। ये चारों जिसके हाथमें हैं, उसकी सिद्धि दूर नहीं है। भगवान् विष्णुकी भक्ति तथा उत्तम धर्मके आचरणसे मनुष्योंको योगसिद्धि प्राप्त होती है। मनुष्य ज्ञानके लिये विद्यालयोंमें भटकता फिरता है। यदि कहीं सद्गुरु प्राप्त हो जायँ तो उनसे तत्काल निर्मल दीपशिखाकी भाँति यथार्थ ज्ञानकी उपलब्धि हो जाती है। राग और द्वेष छोड़कर जो क्रोध और लोभसे रहित हो गया है, जिसकी सर्वत्र समान दृष्टि है, जो विष्णुभक्तका दर्शन करता है, जिसके हृदयमें सब जीवोंके प्रति दयाका भाव स्थिर है तथा जो शौच एवं सदाचारसे युक्त है, वह योगी कभी दुःख नहीं पाता। जो माया आदिके आवरणोंसे रहित तथा मिथ्या वस्तुसे विरक्त है और कुसंगसे दूर रहता है, वह योगसिद्ध पुरुष है। बुद्धि दो प्रकारकी होती है। एक त्याज्य और दूसरी ग्राह्य। संसारविषयक बुद्धि त्याग देने योग्य है और परब्रह्मके चिन्तनमें लगनेवाली कल्याणमयी बुद्धि ग्रहण करने योग्य है। पार्वती! श्रीविष्णुका जो साकार और निराकार स्वरूप है, उसमें प्रतिष्ठित होनेवाले इस अक्षर, अव्यक्त, अमृत एवं सम्पूर्ण तत्त्वको बताया गया। इस प्रकार जानकर योगीपुरुष संसारबन्धनसे मुक्त हो जाता है। मनुष्य सद्गुरुके उपदेशसे इस ज्ञानको पाता है। जब उसके ऊपर गुरु प्रसन्नचित्त होते हैं, तब मानो सम्पूर्ण विश्व प्रसन्न हो जाता है, जिसने गुरुको सन्तुष्ट किया, उसने समस्त देवताओं और पितरोंको सन्तुष्ट कर लिया। गुरुका उपदेश, भगवत्प्रतिमाका पूजन, उत्तम विचार, शममें मनका तत्पर होना और ज्ञानपूर्वक कर्मका अनुष्ठान करना—यह सब मोक्षसिद्धिका लक्षण है। द्वादशाक्षरमन्त्र सब पापोंका नाश करनेवाला है। यह दुष्टोंका दमन करनेवाला और परब्रह्मकी प्राप्ति करानेवाला है। देवि! द्वादशाक्षररूपधारी निर्मल परब्रह्मके स्वरूपको मैंने तुमसे प्रकाशित किया है। जो मनुष्य इस द्वादशाक्षर मन्त्ररूप भगवत्स्वरूपको, जो योगियोंके ध्यान करने योग्य तथा भक्तिसे ग्राह्य है, चातुर्मास्यमें श्रद्धापूर्वक चिन्तन करता है, भगवान् विष्णु उसके कोटि जन्मोंके पापोंको जलाकर मोक्ष प्रदान करते हैं।

ब्रह्माजी कहते हैं—एक समय महाबली तारकासुरके भयसे भागे हुए देवताओंने महादेवजीकी स्तुति की और उनकी आज्ञासे कुमार कार्तिकेयको अपना सेनापति बनाया। फिर स्कन्दके तेजसे प्रबल होकर सब देवता तारकासुरसे युद्ध करने लगे। उस समय देवताओंने दानवोंकी सेनाको मार गिराया। भगवान् विष्णुके चक्रसे छिन्न-भिन्न होकर सहस्रों दैत्य पृथ्वीपर गिर पड़े। युद्धमें दानवसेनाको नष्ट होती देख तारकासुर देवताओंका सामना करने लगा। देवेश्वर स्कन्दने बाणोंकी बौछारसे उसकी सेनाको शीघ्र ही तितर-बितर कर डाला। तत्पश्चात् भगवान् विष्णुकी प्रेरणासे कार्तिकेयजीने शक्तिका प्रहार करके सारथिसहित तारकासुरको क्षणभरमें भस्म कर दिया। शेष दैत्य तारकासुरको मरा हुआ देख पातालमें भाग गये। तब देवताओंने कुमारके पराक्रमकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। विजय प्राप्त करके शिव आदि सब देवताओंने स्वामी कार्तिकेयको देवताओंके सेनापति पदपर अभिषिक्त किया। इस प्रकार तारकासुरको मारकर सातवें दिन बालक कार्तिकेयने मन्दराचलपर जा अपने माता-पिताको प्रसन्न किया। परमानन्दमें निमग्न हो स्कन्दने सब वृत्तान्त स्वयं ही माता-पितासे कहा। उस समय भगवान् शंकरने पुत्रका विवाह कर देनेका विचार किया और कार्तिकेयसे कहा—'वत्स! तुम्हारे विवाहका समय प्राप्त है, तुम पत्नी प्राप्त करके उसके साथ धर्माचरण करो।' पिताकी यह बात सुनकर स्वामी कार्तिकेयने कहा—'भगवन्! संसारके दृश्य और अदृश्य

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

पदार्थोंमेंसे मैं किसका ग्रहण और किसका त्याग करूँ। जगत्में जितनी स्त्रियाँ हैं, वे सब मेरे लिये माता पार्वतीके समान हैं और जितने भी पुरुष हैं, उन सबको मैं आपके रूपमें देखता हूँ। आप मेरे गुरु हैं, अतः मुझे नरकमें डूबनेसे बचाइये। मैंने आपके प्रसादसे यह विवेक प्राप्त किया है। भयंकर संसार-सागरमें मैं फिर न गिर जाऊँ, इसकी चेष्टा रखें। जैसे दीपक हाथमें लेकर किसी वस्तुको खोजनेवाला पुरुष उस वस्तुको देख लेनेपर उसके लिये स्वीकार किये जानेवाले अन्य सब साधनोंको त्याग देता है, उसी प्रकार योगी ज्ञान प्राप्त कर लेनेपर संसारको त्याग देता है। सर्वज्ञ परमेश्वर! सर्वव्यापी ब्रह्मको जानकर जिसके सब कर्म निवृत्त हो जाते हैं, उसको विद्वान् पुरुष योगी कहते हैं। महेश्वर! मानवोंके लिये ज्ञान अत्यन्त दुर्लभ है। ज्ञानीजन प्राप्त किये हुए ज्ञानको किसी प्रकार भी खोना नहीं चाहते। यह ज्ञान आपके प्रभावसे ही प्राप्त होने योग्य है। मैं संसारबन्धनसे छूटनेकी इच्छा रखता हूँ। अतः मुझसे इस प्रकार विवाह आदि करनेकी बात नहीं कहनी चाहिये।'

जब देवी पार्वतीने विवाहके लिये बार-बार आग्रह किया, तब कार्तिकेयजी पिता-माताको प्रणाम करके क्रौंच पर्वतपर चले गये और वहाँ परम पवित्र आश्रममें बैठकर बड़ी भारी तपस्या करने लगे। उन्होंने द्वादशाक्षर बीजरूप परब्रह्मका

जप किया और पहले ध्यानसे सब इन्द्रियोंका वशमें करके एक मासतक मनको योगमें लगाकर ज्ञानयोग प्राप्त कर लिया। जब उनके सामने अणिमा आदि सिद्धियाँ आयीं, तब वे उनसे क्रोधपूर्वक बोले—'अरी! यदि अपनी दुष्टताके कारण तुमलोग मेरे पास भी चली आयीं, तो मेरे-जैसे शान्तपुरुषोंका कभी पराभव न कर सकोगी।'

यह चातुर्मास्यका माहात्म्य सब पापोंका नाश करनेवाला है। जो भगवान् शिव अथवा विष्णुको अपने हृदयमें स्थापित करके अभेद-बुद्धिसे उनके अद्वितीय स्वरूपका चिन्तन करता है, उसके लिये शत्रु भी अत्यन्त प्रिय हो जाता है।

चातुर्मास्य-माहात्म्य सम्पूर्ण।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

ब्रह्मोत्तरखण्ड

शिवके षडक्षर एवं पंचाक्षर मन्त्रका माहात्म्य; राजा दाशार्ह तथा रानी कलावतीकी कथा

ज्योतिर्मात्रस्वरूपाय निर्मलज्ञानचक्षुषे।
नमः शिवाय शान्ताय ब्रह्मणे लिंगमूर्तये॥

'ज्योतिमात्र जिनका स्वरूप है, निर्मल ज्ञान ही जिनका नेत्र है, जो लिंगस्वरूप ब्रह्म हैं, उन परम शान्त कल्याणमय भगवान् शिवको नमस्कार है।'

ऋषि बोले—सूतजी! आपने संक्षेपसे भगवान् विष्णुके उत्तम माहात्म्यका वर्णन किया, जो समस्त पापोंका अपहरण करनेवाला और परम पवित्र है। हमने भी उसे ध्यानपूर्वक सुना है। अब हमलोग त्रिपुरविनाशक शिवजीके माहात्म्य और उनके मन्त्रोंकी महिमाको सुनना चाहते हैं।

सूतजीने कहा—मुनियो! मरणधर्मा मनुष्योंके लिये इतना ही सबसे उत्तम एवं सनातन श्रेय है कि भगवान् महेश्वरकी कथामें अकारण भक्तिभावका उदय हो*। समस्त पुण्यों, श्रेयके सम्पूर्ण साधनों और समस्त यज्ञोंमें जपयज्ञको ही सर्वोत्तम माना गया है†। जैसे सब देवताओंमें त्रिपुरारि भगवान् शंकर श्रेष्ठ हैं, उसी प्रकार सब मन्त्रोंमें शिवका षडक्षर मन्त्र श्रेष्ठ है। उसीको प्रणवसे रहित होनेपर पंचाक्षर मन्त्र भी कहते हैं। वह जप करनेवाले पुरुषोंको मोक्ष देनेवाला है। सिद्धिकी इच्छा रखनेवाले सब श्रेष्ठ मुनि इस मन्त्रका सम्यग् रूपसे सेवन करते हैं। शिवजीके शुभ पंचाक्षर मन्त्रमें सर्वज्ञ, परिपूर्ण, सच्चिदानन्दस्वरूप भगवान् शिव सदा रमते रहते हैं। यह मन्त्रराज सम्पूर्ण उपनिषदोंका आत्मा है। इसके जपसे सब मुनियोंने निरामय परब्रह्मका साक्षात्कार किया है। **'नमः शिवाय'** मन्त्रमें **'नमः'** पदके अर्थभूत नमस्कारके द्वारा जीवभाव परमात्मा शिवमें मिलकर तद्रूप हो जाता है। अतः वह मन्त्र साक्षात् परब्रह्मस्वरूप है। संसार-बन्धनमें बँधे हुए देहधारियोंके हितकी कामनासे स्वयं भगवान् शिवने **'ॐ नमः शिवाय'** इस आदिमन्त्रका प्रतिपादन किया है। जिसके हृदयमें **'ॐ नमः शिवाय'** यह मन्त्र निवास करता है, उसके लिये बहुत-से मन्त्र, तीर्थ, तप और यज्ञोंकी क्या आवश्यकता है‡? देहधारी मनुष्य तभीतक दुःखोंसे भरे हुए इस भयंकर संसारमें भटकते हैं, जबतक कि वे एक बार भी इस षडक्षर मन्त्रका उच्चारण नहीं करते। यह षडक्षर मन्त्र सम्पूर्ण ज्ञानोंकी निधि है। यह मोक्षमार्गको प्रकाशित करनेवाला दीपक है। अविद्याके समुद्रको सोखनेवाला वडवानल है और महापातकोंके जंगलको जला डालनेवाला दावानल है। अतः यह पंचाक्षर मन्त्र सब कुछ देनेवाला माना गया

* एतावदेव मर्त्यानां परं श्रेयः सनातनम्। यदीश्वरकथायां वै जाता भक्तिरहैतुकी॥
(स्क० पु०, ब्रा० ब्रह्मो० १। ५)

† सर्वेषामपि पुण्यानां सर्वेषां श्रेयसामपि। सर्वेषामपि यज्ञानां जपयज्ञः परः स्मृतः॥
(स्क० पु०, ब्रा० ब्रह्मो० १। ७)

‡ किं तस्य बहुभिर्मन्त्रैः किं तीर्थैः किं तपोऽध्वरैः। यस्यो नमः शिवायेति मन्त्रो हृदयगोचरः॥
(स्क० पु०, ब्रा० ब्रह्मो० १। १६)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

है। इसे मोक्षकी अभिलाषा रखनेवाले स्त्री-समुदाय, शूद्र और वर्णसंकर धारण कर सकते हैं। इस मन्त्रके लिये दीक्षा, होम, संस्कार, तर्पण, समय-शुद्धि तथा गुरुमुखसे उपदेश आदिकी आवश्यकता नहीं है। यह मन्त्र सदा पवित्र है*। 'शिव' यह दो अक्षरका मन्त्र ही बड़े-बड़े पातकोंका नाश करनेमें समर्थ है और उसमें 'नमः' पद जोड़ दिया गया, तब तो वह मोक्ष देनेवाला हो जाता है। जो गुरु निर्मल, शान्त, साधु, स्वल्पभाषी, काम-क्रोधसे रहित, सदाचारी और जितेन्द्रिय हों, उनके द्वारा दयापूर्वक दिया हुआ मन्त्र शीघ्र ही सिद्ध हो जाता है। प्रयाग, पुष्कर, केदार, सेतुबन्ध, गोकर्ण और नैमिषारण्य— ये सब क्षेत्र मनुष्योंको शीघ्र ही सिद्धि प्रदान करनेवाले हैं।

मथुरापुरीमें दाशार्ह नामसे विख्यात एक राजा हो गये हैं, जो यदुकुलमें श्रेष्ठ, बुद्धिमान्, अत्यन्त उत्साही और महान् बलवान् थे। वे शास्त्रोंके ज्ञाता, नीतियुक्त वचन बोलनेवाले, शूरवीर, धैर्यवान् तथा परम कान्तिमान् थे। अनेक शास्त्रोंके तात्पर्यको जाननेमें राजाने कुशलता प्राप्त की थी। वे उदार, रूपवान्, तरुण तथा शुभ लक्षणोंसे सुशोभित थे। उन्होंने काशिराजकी पुत्री कलावतीके साथ विवाह किया था। ब्याह करके घर आनेपर रात्रिमें पलंगपर बैठी हुई उस स्त्रीको राजाने अपने पास बुलाया। पतिके बुलानेपर भी वह उनके समीप नहीं आयी। तब राजा उसे बलपूर्वक अपनी शय्यापर ले आनेके लिये उठे। यह देख रानीने कहा—'महाराज! मैं कारणका ज्ञान रखनेवाली तथा व्रतमें तत्पर हूँ। मेरा स्पर्श न कीजिये। आप तो धर्म-अधर्मको जानते हैं। अतः मेरे ऊपर बलप्रयोग न कीजिये। पति-पत्नीमें प्रेमपूर्वक जो समागम होता है, वही एक-दूसरेकी प्रसन्नताको बढ़ानेवाला है। बलपूर्वक स्त्रियोंका सम्भोग करनेसे पुरुषोंको क्या प्रसन्नता होती है और कौन-सा सुख मिलता है? जो प्रेम न करती हो, रोगिणी हो, गर्भवती अथवा किसी व्रतका पालन करनेवाली हो, रजस्वला और रतिकी इच्छा न रखनेवाली हो, ऐसी स्त्रीके साथ पुरुषको बलपूर्वक समागमकी इच्छा नहीं रखनी चाहिये।'

रानीके इस प्रकार कहनेपर भी राजा दाशार्हने उसकी बात नहीं मानी। रानीका शरीर तपाये हुए लोहेके पिण्डके समान तप रहा था। उसका स्पर्श करते ही सहसा राजाका अंग-अंग जलने लगा। उन्होंने भयसे विह्वल होकर अपने शरीरको जलानेवाली रानीको छोड़ दिया।

राजा बोले—प्रिये! यह तो बड़े आश्चर्यकी बात है कि पल्लवके समान कोमल यह तुम्हारा शरीर अग्निके समान तप्त कैसे हो गया।

रानीने उत्तर दिया—राजन्! बचपनमें मुनिवर दुर्वासाने मुझपर दया करके शिवजीके पंचाक्षर मन्त्रका उपदेश किया था। उस मन्त्रके प्रभावसे मेरा शरीर निष्पाप हो गया है। पापी पुरुष इसका स्पर्श नहीं कर सकते। महाराज! आपने स्वभावसे ही मदिरा पीनेवाली कुलटा और वेश्याओंका सेवन किया है। आप पवित्र मन्त्रका जप और भगवान् शंकरकी आराधना भी नहीं करते। फिर मेरा स्पर्श कैसे कर सकते हैं?

राजा बोले—सुन्दरी! तुम मुझे भी भगवान् शंकरके शुभ पंचाक्षर मन्त्रका उपदेश करो।

रानीने कहा—आप मेरे गुरु हैं, मैं आपको उपदेश नहीं कर सकती। आप मन्त्रवेत्ताओंमें श्रेष्ठ गुरु गर्गाचार्यके समीप जाइये।

---

* तस्मात् सर्वप्रदो मन्त्रः सोऽयं पञ्चाक्षरः स्मृतः। स्त्रीभिः शूद्रैश्च संकीर्णैर्धार्यते मुक्तिकाङ्क्षिभिः॥
नास्य दीक्षा न होमश्च न संस्कारो न तर्पणम्। न कालो नोपदेशश्च सदा शुचिरयं मनुः॥
(स्क० पु०, ब्रा० ब्रह्मो० १। २०, २१)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

इस प्रकार बातचीत करते हुए दोनों पति-पत्नी गर्ग मुनिके समीप गये और उनके चरणोंमें मस्तक रखकर प्रणाम किया। तत्पश्चात् राजाने विनीतभावसे एकान्तमें कहा—'गुरुदेव! आपका हृदय दयासे भरा हुआ है, आप मुझे भगवान् शिवके पंचाक्षर मन्त्रका उपदेश देकर कृतार्थ कीजिये।' राजाके इस प्रकार प्रार्थना करनेपर विप्रवर गर्गाचार्य दोनों दम्पतिको यमुनाजीके महापुण्यमय उत्तम तटपर ले गये। वहाँ गुरुजी एक पवित्र वृक्षके मूल भागमें बैठ गये। राजाने उपवासपूर्वक उस पुण्य तीर्थके निर्मल जलमें स्नान किया। तब उन्होंने राजाको पूर्वाभिमुख बिठाकर भगवान् शिवके चरणारविन्दोंमें नमस्कार किया और राजाके मस्तकपर हाथ रखकर उन्हें शिवस्वरूप पंचाक्षर मन्त्रका उपदेश दिया। उस मन्त्रको धारण करते ही गुरुजीके हस्तकमलका स्पर्श होनेसे राजा दाशार्हके शरीरसे करोड़ों पाप कौओंका रूप धारण करके बाहर निकल गये।

तब गुरु गर्गाचार्यने कहा—राजन्! भगवान् शिवका पंचाक्षर मन्त्र जब तुम्हारे हृदयमें पहुँचा, तभी तुम्हारे कोटि-कोटि पाप कौओंके रूपमें बाहर निकल गये हैं। सहस्रों कोटि जन्मोंमें जो पापराशि संचित की गयी है, वह शिवके पंचाक्षर मन्त्रको धारण करते ही क्षणभरमें भस्म हो जाती है। राजन्! इस समय तुम्हारे करोड़ों पातक जल गये। अब तुम पवित्रचित्त होकर अपनी इस रानीके साथ सुखपूर्वक विहार करो। ऐसा कहकर मुनिश्रेष्ठ गर्गजी उन दोनों दम्पतिके साथ घरको लौटे। तदनन्तर गुरुजीसे आज्ञा ले राजा और रानी प्रसन्नतापूर्वक महलमें चले गये। यह पंचाक्षर मन्त्र सम्पूर्ण वेद, उपनिषद्, पुराण और शास्त्रोंका आभूषण है, सब पापोंका नाश करनेवाला है। इस प्रकार मैंने पंचाक्षर मन्त्रका महान् प्रभाव संक्षेपसे बताया है।

शिवरात्रिको शिवपूजनका महत्त्व, राजा मित्रसहका वसिष्ठके शापसे राक्षस होकर ब्राह्मणकी हत्या करना और गौतमजीका उन्हें गोकर्णक्षेत्रकी महिमा सुनाना

सूतजी कहते हैं—माघ (फाल्गुन) मासमें कृष्ण पक्षकी चतुर्दशीका उपवास अत्यन्त दुर्लभ है। उसमें भी शिवरात्रिमें जागरण करना तो मैं मनुष्योंके लिये और दुर्लभ मानता हूँ। उससे भी अत्यन्त दुर्लभ है शिवलिंगका दर्शन। तथा परमेश्वर शिवके पूजनको तो मैं और भी दुर्लभतर मानता हूँ। सौ करोड़ जन्मोंमें उत्पन्न हुई पुण्यराशिके प्रभावसे कभी भगवान् शंकरकी बिल्वपत्रसे पूजा करनेका अवसर प्राप्त होता है। दस हजार वर्षोंतक जिसने गंगाजीके जलमें स्नान किया है, उसको जो फल मिलता है, वही फल मनुष्य एक बार बिल्वपत्रसे भगवान् शंकरकी पूजा करके प्राप्त कर लेता है। प्रत्येक युगमें जो-जो पुण्य इस संसारमें लुप्त हुए हैं, वे सभी फाल्गुन कृष्णा चतुर्दशी (शिवरात्रि) में पूर्णतः विद्यमान रहते हैं। लोकमें ब्रह्मा आदि देवता और वसिष्ठ आदि मुनि इस फाल्गुन कृष्णा चतुर्दशीकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं। इस शिवरात्रिको यदि किसीने उपवास किया तो उसे सौ यज्ञोंसे अधिक पुण्य होता है। जिसने एक बिल्वपत्रसे शिवलिंगका पूजन किया है, उसके पुण्यकी समता तीनों लोकोंमें कौन कर सकता है?

इस विषयमें एक परम सुन्दर पुण्य-कथा कही जाती है। इक्ष्वाकुवंशमें 'मित्रसह' नामसे

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

प्रसिद्ध एक परम धर्मात्मा राजा हो गये हैं। वे समस्त धनुर्धारियोंमें श्रेष्ठ, सब अस्त्र-शस्त्रोंके ज्ञाता, शास्त्रज्ञ, वेदोंके पारंगत विद्वान्, शूरवीर, अत्यन्त बली, उत्साही, नित्य उद्योगी और दयाके निधान थे। राजाको शिकार खेलनेका व्यसन था। एक दिन उन्होंने अपनी बहुत बड़ी सेना साथ लेकर भयंकर वनमें प्रवेश किया और वहाँ बहुतसे व्याघ्र, जंगली सूअर तथा सिंहोंको अपने बाणोंसे बींध डाला। राजा मित्रसह रथपर सवार हो कवचसे सुरक्षित होकर वनमें विचर रहे थे। उसी समय उन्होंने अग्निके समान आकृतिवाले एक निशाचरको मारा। उसका छोटा भाई दूरसे यह देखकर शोकमग्न हो गया और वहीं कहीं छिप गया। भाईको मारा गया देख उसने मन-ही-मन इस प्रकार विचार किया—'यह राजा बड़ा दुर्धर्ष वीर है, इसे छलसे ही जीतना चाहिये।' ऐसा निश्चय करके वह पापात्मा राक्षस मनुष्यके समान आकृति बनाकर राजाके समीप आया। राजाने सेवा करनेके लिये विनीतभावसे आये हुए उस पुरुषको देखकर अज्ञानवश उसे रसोईघरका अध्यक्ष बना दिया। तत्पश्चात् राजा लौटकर अपनी पुरीको आये। महाराज मित्रसहकी पत्नी मदयन्ती नामसे प्रसिद्ध थी। वह नलकी स्त्री दमयन्तीके समान बड़ी पतिव्रता थी। एक दिन राजा मित्रसहने श्राद्धके दिन मुनिवर वसिष्ठको निमन्त्रित करके अपने घरपर बुलाया। उस समय रसोइयेके रूपमें राक्षसने सागमें मनुष्यका मांस मिला दिया और वही वसिष्ठजीके आगे परोस दिया। उसे देखकर वसिष्ठजी बोले—'राजन्! तुझे धिक्कार है, धिक्कार है। तू इतना दुष्ट और छली है कि मेरे आगे मनुष्यका मांस रख दिया। इस पापके कारण तू राक्षस हो जायगा।' जब मुनिको यह मालूम हुआ कि यह सारी करतूत राक्षसकी है, तब उन्होंने उस शापको बारह वर्षोंकी अवधिमें सीमित कर दिया। तब राजा भी कुपित होकर बोले—'यह मेरी करतूत नहीं थी और न मैं इस विषयमें कुछ जानता ही था, तो भी आपने मुझे अकारण शाप दे दिया। इसलिये गुरु होनेपर भी आपको मैं भी शाप देता हूँ।' ऐसा कहकर राजा अंजलिमें जल ले गुरुको शाप देनेके लिये उद्यत हुए। यह देख रानी मदयन्तीने पतिके चरणोंमें गिरकर उन्हें ऐसा करनेसे रोका। रानीके वचनका मान रखनेके लिये राजा शाप देनेसे निवृत्त हो गये और उस अंजलिके जलको उन्होंने अपने दोनों पैरोंपर डाल दिया। इससे राजाके दोनों पैर कल्मषयुक्त (मलिन) हो गये। तबसे राजाका नाम कल्माषपाद हो गया।

गुरुके शापसे राजा वनमें विचरनेवाले राक्षस हुए। एक दिन वनमें कहीं किशोर अवस्थावाले नवविवाहित मुनि-दम्पति रमण कर रहे थे। उस समय उस नर-भक्षी राक्षसने तरुण मुनिकुमारको खानेके लिये पकड़ लिया। ठीक उसी तरह, जैसे छोटे-से मृगशिशुको कोई व्याघ्र पकड़ लेता है। राक्षसके वशमें पड़े हुए अपने पतिको देखकर उसकी प्यारी स्त्री करुणापूर्वक बोली—'सूर्यवंशयशोधर महाराज! आप ऐसा पाप न कीजिये। आप राक्षस नहीं, अयोध्याके सम्राट् हैं, रानी मदयन्तीके पति हैं। प्रभो! ये मेरे स्वामी मुझे प्राणोंसे भी अधिक प्रियतम हैं, इन्हें न खाइये। शरणमें आये हुए दीन, दुःखी मनुष्योंको आप ही सहारा देनेवाले हैं। इन महात्मा पतिके बिना मेरा यह शरीर मेरे लिये महान् भार है। इस मलिन पापमय पांचभौतिक शरीरसे क्या सुख होगा? ये मुनिकुमार देखनेको बालक हैं; किंतु वेदोंके विद्वान्, शान्त, तपस्वी और अनेक शास्त्रोंके ज्ञाता हैं। इन्हें प्राणदान देकर आपको सम्पूर्ण जगत्के रक्षा करनेका पुण्य होगा। महाराज! मैं ब्राह्मणकी स्त्री हूँ, अभी बालिका हूँ, मुझपर

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

कृपा कीजिये। आप-जैसे साधु पुरुष अनाथों, दीनों और पीड़ितोंपर कृपा करनेवाले होते हैं।'

इस प्रकार प्रार्थना करनेपर भी उस निर्दयी, नर-भक्षी राक्षसने उस ब्राह्मणकुमारकी गर्दन मरोड़ डाली और उन्हें उदरस्थ कर लिया। तब वह पतिव्रता ब्राह्मणी अत्यन्त शोकसे ग्रस्त हो विलाप करने लगी। उसने पतिकी हड्डियोंको एकत्रित करके भयंकर चिता प्रज्वलित की और पतिका अनुसरण करनेके लिये अग्निमें प्रवेश करते समय राक्षसरूपधारी राजाको इस प्रकार शाप दिया—'अरे ओ पापात्मन्! तूने मेरे पतिको खा लिया है, अत: तू भी जब स्त्रीसे समागम करेगा, उसी समय तेरी मृत्यु हो जायगी।' यों कहकर वह पतिव्रता स्त्री चिताकी आगमें प्रवेश कर गयी।

गुरुके शापका उपभोग करके राजा पुन: अपने स्वरूपको प्राप्त हुए और प्रसन्नतापूर्वक घरको गये। रानी मदयन्ती उस पतिव्रता ब्राह्मणीके शापको जानती थीं। इसलिये वैधव्यसे डरकर उन्होंने रतिकी इच्छावाले पतिको अपने पास आनेसे मना कर दिया। राजा मित्रसह राज्यके सुखभोगसे विरक्त हो गये और सम्पूर्ण लक्ष्मीका परित्याग करके पुन: वनमें चले गये। राज्य छोड़कर सम्पूर्ण पृथ्वीपर विचरते हुए राजाने अपने पीछे-पीछे आती हुई एक भयंकर रूपवाली पिशाचीको देखा। वह ब्रह्महत्या थी। श्रेष्ठ मुनियोंके उपदेशसे राजाने उस ब्रह्महत्याको पहचाना। उसके निवारणके लिये विरक्तचित्तवाले राजाने अनेक वर्षोंतक बहुत-से क्षेत्रोंमें विचरण किया। फिर भी जब ब्रह्महत्या निवृत्त नहीं हुई, तब वे मिथिलामें आये। इसी समय उधर आते हुए निर्मल अन्त:करणवाले गौतम मुनिको उन्होंने देखा और उनके समीप जाकर बार-बार प्रणाम किया। तब मुनिश्रेष्ठ गौतमने राजाको आशीर्वाद दे मन्द-मन्द मुसकराते हुए कहा—'राजन्! तुम्हारे यहाँ कुशल तो है न? तुम्हारे राज्यमें कोई विघ्न-बाधा तो नहीं है?'

राजाने कहा—ब्रह्मन्! आपकी कृपासे हम सब लोग कुशलसे हैं; परंतु यह भयंकर रूपवाली पिशाची हमें बड़ा दु:ख देती है। शापग्रस्त होकर हमने जो दुर्लङ्घ्य पाप कर डाला है, उसकी शान्ति सहस्रों प्रायश्चित्तोंसे भी नहीं हो रही है। आप प्रेमपूर्वक सम्भाषण करके मेरे चित्तको आनन्दित कर रहे हैं। महाभाग! आज अपने चरणकमलोंकी शरणमें आये हुए मुझ पापीको शान्ति प्रदान कीजिये, जिससे मुझे सुख मिले।

तब करुणानिधि गौतमजीने कहा—राजेन्द्र! तुम्हें साधुवाद है? अब अपने महान् पापोंसे होनेवाले भयको त्याग दो। जब भगवान् शंकर रक्षा करनेवाले हैं, तब उनकी शरणमें आये हुए भक्तोंको कहाँसे भय हो सकता है? गोकर्ण नामक मनोरम क्षेत्र महापातकोंका संहार करनेवाला है। वहाँ बड़े-से-बड़े पाप भी नहीं टिक सकते। गोकर्ण क्षेत्रमें विद्यमान भगवान् शिव स्मरण करनेमात्रसे समस्त पापोंका नाश कर डालते हैं। जैसे कैलास और मन्दराचलके शिखरपर भगवान् शिवका निश्चित निवास है, उसी प्रकार गोकर्णमण्डलमें भी है। वहाँ महादेवजी महाबल नामसे निवास करते हैं। रावण नामक राक्षसने घोर तपस्या करके जिस शिवलिंगको प्राप्त किया था, उसीको गणेशजीने गोकर्ण क्षेत्रमें स्थापित किया है। सनक-सनन्दन आदि महात्मा तथा मृगचर्ममय वस्त्र धारण करनेवाले साध्य एवं मुनिगण वहाँ बैठकर भगवान् शिवकी उपासना करते हैं। दण्डी, मुण्डी, स्नातक, ब्रह्मचारी तथा तपसे समस्त पातकोंको जला डालनेवाले महात्मा भी देवाधिदेव शिवकी उत्तम भक्तिसे उपासना करते हैं। इस ब्रह्माण्ड-मण्डलमें गोकर्णके समान दूसरा क्षेत्र नहीं है। वहाँ महात्मा अगस्त्य मुनिने घोर तपस्या की है। राजन्! इस तीर्थमें सम्पूर्ण देवताओंके स्थान हैं। देवाधिदेव भगवान् विष्णु,

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

परमेष्ठी ब्रह्मा, वीरवर कार्तिकेय तथा गणेशजीके स्थान हैं। गोकर्ण तीर्थमें कोटि-कोटि शिवलिंग विद्यमान हैं। वहाँ पग-पगपर असंख्य तीर्थ मौजूद हैं। सत्ययुगमें महाबल नामक भगवान् शिव श्वेतवर्णके होते हैं, त्रेतामें उनका रंग अत्यन्त लाल हो जाता है, द्वापरमें वे पीत वर्णके और कलियुगमें श्याम वर्णके हो जायँगे। महाबल शिव भयंकर कलियुग प्राप्त होनेपर कोमल भावको प्राप्त होंगे। परम उत्तम गोकर्ण क्षेत्र पश्चिम समुद्रके तटपर है। वह ब्रह्महत्या आदि पापोंको भस्म कर डालता है। इस संसारमें जो ब्रह्मघाती, भूतद्रोही, शठ और अन्यान्य पापी होते हैं, वे सब गोकर्ण तीर्थमें पहुँचकर वहाँके तीर्थोंमें स्नान करके महाबल नामक शिवजीका दर्शन करनेपर शिवलोकको प्राप्त होते हैं। वहाँ पुण्य तिथियोंको पुण्य नक्षत्र एवं पुण्य दिनमें जो महेश्वर शिवकी पूजा करते हैं, वे सब शिवरूप हो जाते हैं। यदा-कदा जो कोई भी मनुष्य गोकर्ण तीर्थमें जाकर भगवान् शंकरकी पूजा करता है, वह ब्रह्मपदको प्राप्त होता है। रविवार, सोमवार तथा बुधवारको जब अमावास्या तिथिका योग हो, तब वहाँ समुद्रमें किया हुआ स्नान, दान, पितृतर्पण, शिवपूजा, जप, होम, व्रतचर्या और ब्राह्मणोंका सत्कार अनन्त फल देनेवाला होता है। महाप्रदोषकी बेलामें भगवान् शिवका पूजन मोक्ष देनेवाला है। माघ मास (फाल्गुन) में जो परम पुण्यमयी कृष्ण पक्षकी चतुर्दशी आती है, उस दिन शिवलिंग और बिल्वपत्र इन सबका सुयोग दुर्लभ है। अहो! माया कैसी प्रबल है कि जिससे मूढ़ हुए मनुष्य भगवान् शिवकी इस महातिथिको उपवासतक नहीं करते। शिवरात्रिका उपवास, जागरण, भगवान् शंकरके समीप निवास तथा गोकर्ण क्षेत्रका वास इन सबका सुयोग होना मनुष्योंके लिये शिवलोकमें जानेकी सीढ़ी है। राजन्! मैं भी इस समय गोकर्ण तीर्थसे लौटकर आया हूँ। शिवरात्रिको उपवास करके भगवान् शिवका महोत्सव देखकर लौटा हूँ। शिवरात्रिपर वहाँका महान् उत्सव देखनेके लिये सब देशोंसे चारों वर्णोंके लोग आये थे। स्त्री, बालक, वृद्ध तथा चारों आश्रमोंके निवासी वहाँ आकर देवेश्वर शिवका दर्शन करके कृतकृत्यताको प्राप्त हुए। लौटते समय मार्गमें एक अद्भुत आश्चर्यकी बात देखकर मैं परमानन्दमें निमग्न हो कृतार्थ हो गया हूँ।

गोकर्ण क्षेत्रमें शिवरात्रिके शिव-पूजनके माहात्म्यसे एक चाण्डालीका परमधाम-गमन

राजाने पूछा—ब्रह्मन्! आपने मार्गमें कहाँ कौन-सी आश्चर्यकी बात देखी है, वह मुझे भी बताइये।

गौतमजीने कहा—राजन्! गोकर्णसे आते समय एक स्थानपर दोपहरके समय मुझे एक स्वच्छ सरोवर दिखायी दिया। वहाँ जल पीकर मैंने रास्तेकी थकावट दूर की और घनी एवं शीतल छायावाले बरगदके नीचे विश्राम किया। उसी समय थोड़ी ही दूरपर मैंने एक अन्धी, बूढ़ी एवं दुबली-पतली चाण्डालीको देखा। उसका मुँह सूख गया था। उसने कुछ भी भोजन नहीं किया था और वह अनेक प्रकारके रोगोंसे पीड़ित थी। उसके सब अंगोंमें कोढ़का घाव हो गया था तथा उसमें बहुत-से कीड़े पड़ गये थे। उसकी कमरमें पीब और रक्तसे सना हुआ एक फटा-पुराना वस्त्र लिपटा हुआ था। उसे

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

उस दशामें देखकर मुझे बड़ी दया आयी और उसके मृत्युकालकी प्रतीक्षा करता हुआ मैं क्षणभर वहीं बैठा रहा। इतनेहीमें भगवान् शंकरके पार्षदोंद्वारा लाया जाता हुआ एक विमान देखा, जो अपनी किरणोंसे आकाशमार्गको आलोकित कर रहा था। तब मैंने शीघ्र ही समीप जाकर आकाशमें खड़े हुए उन शिवगणोंसे पूछा—'आपलोगोंको नमस्कार है। मैंने आपलोगोंको पहचान लिया है। आप सभी महादेवजीके चरणोंके सेवक हैं। आपने इस समय जो यहाँ आनेका कष्ट उठाया है, यह आपकी यात्रा सम्पूर्ण लोकोंकी रक्षाके लिये हुई है या आपलोगोंको कोई विनोद सूझा है? कृपा करके मुझे बतलाइये। आप यहाँ किसलिये पधारे हैं?'

शिवजीके दूत बोले—मुने! यह सामने जो बूढ़ी चाण्डाली मर रही है, इसीको ले जानेके लिये भगवान् शिवने हमें आदेश दिया है।

यह सुनकर मैंने पूछा—अहो! यह महापापात्मा घोर चाण्डाली इस दिव्य विमानपर बैठनेकी अधिकारिणी कैसे हो सकती है? यह तो जन्मसे लेकर जीवनभर प्रायः अपवित्रतामें ही डूबी रही है। पापमग्ना एवं पापका अनुगमन करनेवाली है। इस दुराचारिणीको आपलोग शिवलोकमें क्यों ले जाना चाहते हैं? इसने कभी शिवजीका पंचाक्षर मन्त्र नहीं जपा, शिवजीका पूजन नहीं किया और न कभी भगवान् शंकरका ध्यान ही किया है? सत्संगसे सदा दूर रहनेवाली इस अत्यन्त क्रोधी स्वभाववाली स्त्रीको आपलोग भगवान् शिवके लोकमें कैसे ले जाना चाहते हैं। अहो! ईश्वरकी इस लीलाका रहस्य देहधारियोंकी समझमें आना कठिन है, जिसमें पापात्मा प्राणी भी दया करके परम पदमें पहुँचाये जाते हैं।

मेरे ऐसा कहनेपर देवाधिदेव भगवान् शिवके दूत इस प्रकार बोले—महामते! यह कर्मोंके परिपाकसे प्राप्त होनेवाली गति देखो, जो कि एक नीच-से-नीच नारी भी आज रोग-शोकसे रहित परम धामपर आरूढ़ हो रही है। इसने पूर्वजन्ममें अन्न-दान आदि नहीं किया था, अतः भूख-प्यास आदि क्लेशोंसे यहाँ पीड़ित हो रही है। इसने जो मदिराके नशेमें अन्धी होकर बड़ा भयंकर पाप कर डाला था, उसीके फलसे यह जन्मान्ध हो गयी। पूर्वजन्ममें इसने जान-बूझकर गायके बछड़ेको खाया था, इसलिये इस जन्ममें यह अतिशय निन्दित चाण्डाली हुई। इसने सदाचारका मार्ग त्यागकर पूर्वजन्ममें व्यभिचारके मार्गको अपनाया था, उसी अकथनीय पापसे इस जन्ममें यह दुराचारिणी और दुर्भाग्यवती हुई। विधवा होकर भी इसने दूसरे पतिका आलिंगन किया, उसी महान् पापके कारण इसके शरीरमें कोढ़के बहुत-से घाव हो गये हैं। इसने कामवेदनासे व्याकुल होकर स्वेच्छानुसार शूद्रसे रमण किया, उस पापके कारण इसे महारक्त पीब और कीड़ोंसे पीड़ित होना पड़ा है। इसने कभी उत्तम व्रतोंका पालन नहीं किया, यज्ञपूजा नहीं की, कुआँ आदि खुदवाने या बगीचे लगानेका काम नहीं किया, उसी पापसे यह सब प्रकारके भोग-साधनोंसे रहित होकर दुःख पा रही है। पूर्वजन्ममें इस मूढ़ स्त्रीने मदिरा-पान किया था, उसी पापसे यह महायक्ष्माकी पीड़ा और हृदय-शूलसे तड़प रही है। मुनिश्रेष्ठ! विवेकी महात्मा यहींपर सब मनुष्योंमें उनके सम्पूर्ण पापचिह्न देखते हैं। यहाँ जो बहुतसे रोगोंद्वारा पीड़ित और पुत्र तथा धनसे हीन हैं, जो दुष्ट लक्षणोंसे क्लेश पानेवाले और लाज छोड़कर भीख माँगनेवाले हैं, वस्त्र, अन्न, पान, शय्या, भूषण और अभ्यंग आदिसे वंचित, कुरूप, विद्याहीन, विकल अंगोंवाले (लूले-लँगड़े आदि), कुत्सित भोजन करनेवाले, दुर्भाग्यवान्, निन्दित तथा दूसरोंके सेवक हैं—ये सभी पूर्वजन्ममें बड़े भारी पापी रहे हैं। इस प्रकार यत्नपूर्वक विचार करके और संसारके मनुष्योंकी

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

दशा देखकर विद्वान् पुरुष कभी पाप नहीं करता। यदि करे तो वह आत्मघाती है। जीवका यह मनुष्य-शरीर अनेक प्रकारके सत्कर्मोंका एकमात्र साधन है। इसके द्वारा सदा शुभ कर्मोंका ही सेवन करे। पापकर्मोंको सर्वथा एवं सर्वदा त्याग दे। सुखकी इच्छा रखनेवालेको पुण्य करना चाहिये। मनुष्यका यह शरीर अत्यन्त दुर्लभ है। इसे पाकर जो कोई भी अपना हित चाहनेवाला मानव एकमात्र भगवान् शिवकी शरण लेता है, एकचित्त होकर उन्हींका ध्यान करता है, वह समस्त पातकोंसे तर जाता है। पहले इस दुराचारिणी स्त्रीके मुखसे असावधानीमें शिवजीका नाम उच्चारित हुआ है। श्रीगोकर्ण क्षेत्रमें शिवरात्रिको उपवास करके रातमें इसने जागरण किया और शिवजीके मस्तकपर बिल्वपत्र चढ़ाया है। उसीका जो उत्तम फल है, उसे यह आज भोगने जा रही है। यह सब तुम अपनी आँखों देखते हो।

गौतमजी कहते हैं—राजन्! इस प्रकार कहकर उन शिवदूतोंने उस चाण्डालकी योनिसे जीवको खींचकर उसे दिव्य तेजसे सम्पन्न कर दिया।

उस नारीको दिव्य शरीरकी प्राप्ति हुई और वह तेजकी राशिसे उद्भासित हो उठी। तत्पश्चात् शिवके दूतोंने प्रसन्न होकर उसे विमानपर बैठाया। वह परम उदाररूप और लावण्यसे सुशोभित तथा दिव्य वस्त्र धारण करनेवाली हो गयी। उसकी देहसे सब ओर दिव्य सुगन्ध और दिव्य प्रकाश फैल रहे थे। वह विमानपर बैठी हुई शिवजीके चरणारविन्दोंका स्मरण कर रही थी। उसे वे पार्षद भगवान् महादेवजीके समीप ले गये। उस समय सब लोकपाल आश्चर्यचकित होकर यह सब देख रहे थे। राजन्! गिरिजापति भगवान् शंकरके प्रति लेशमात्र भक्तिका यह अत्यन्त आश्चर्यजनक माहात्म्य मैंने तुम्हें बताया है, जो समस्त पापराशिका विनाश करनेवाला है।

राजाने पूछा—भगवन्! परमेश्वर शिवका उत्तम लोक कैसा है। यदि आपकी मुझपर दया है तो मुझे शिवलोकका लक्षण बतलाइये।

गौतमजी बोले—ब्रह्मा आदि देवेश्वरोंके लोकोंमें भी जो अत्यन्त दुर्लभ आनन्द है, वह जिस दिव्य धाममें नित्य-निरन्तर विद्यमान रहता है, वही परमेश्वर शिवका लोक है। जहाँ सब लोकोंको लाँघकर जाना होता है, जिसमें दिव्य प्रकाश स्थित है तथा जहाँ अविद्यामय अन्धकारका कहीं लेशमात्र भी संयोग नहीं है, वही परमेश्वर शिवका लोक है। जहाँ काम, क्रोध, लोभ और मद आदि विकार निवास नहीं करते तथा जहाँ जन्म आदि अवस्थाएँ नहीं प्राप्त होतीं, वह परमेश्वर शिवका लोक है। सम्पूर्ण वेदोंका जो एकमात्र प्रधान क्षेत्र कहा जाता है, जिससे अधिक उत्तम वैभव कहीं नहीं है, वह परमेश्वर शिवका धाम है। वहाँ जानेके लिये योगीजन सदा आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार और ध्यान आदि साधनोंसे युक्त योगमार्गका सहारा लेकर प्रयत्न करते रहते हैं। जो लोग भगवान् शिवकी भक्तिसे परिपूर्ण हैं, वे ही

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

उस दिव्य धाममें जाते हैं। जो भगवान् शंकरकी कथा सुनने और कहनेमें हर्षका अनुभव करते हैं, केवल शान्तिमें जिनकी स्थिति है, जो सब प्राणियोंके अकारण सुहृद् और मोहरहित हैं, वे संसारचक्रको लाँघकर भगवान् शंकरके आनन्दमय धामको पाकर सुखी होते हैं। राजेन्द्र! इसी प्रकार तुम भी गोकर्ण क्षेत्रमें भगवान् शंकरके स्थानपर जाकर उनके दर्शनसे समस्त पापराशिका निवारण करो और कृतकृत्य हो जाओ। वहाँ सब समयमें स्नान करके महाबल शिवकी पूजा करो और शिवचतुर्दशीको एकाग्रतापूर्वक उपवास करके रात्रिमें जागरण तथा बिल्वपत्रद्वारा भगवान् शंकरका पूजन करो। इससे तुम सब पापोंसे मुक्त होकर शिवलोकको प्राप्त करोगे। ऐसा कहकर मुनिवर गौतम प्रसन्नतापूर्वक मिथिलापुरीको चले गये तथा राजा मित्रसह गोकर्ण क्षेत्रमें आये। वहाँ महाबल नामसे प्रसिद्ध महादेवजीका दर्शन और पूजन करनेसे उनकी समस्त पापराशि धुल गयी। उन्होंने भगवान् शिवके परमधामको प्राप्त कर लिया। जो मनुष्य भगवान् शिवकी इस मनोहर कथाको प्रतिदिन भक्तिपूर्वक सुनता अथवा सुनाता है, वह परमगतिको प्राप्त होता है।

शिव-पूजाकी महिमाके विषयमें परम शिवभक्त राजा चन्द्रसेन और भक्त श्रीकर गोपकी अद्भुत कथा

सूतजी कहते हैं—भगवान् शिव गुरु हैं, शिव देवता हैं, शिव ही प्राणियोंके बन्धु हैं, शिव ही आत्मा और शिव ही जीव हैं। शिवसे भिन्न दूसरा कुछ नहीं है*। भगवान् शिवके उद्देश्यसे जो कुछ भी दान, जप और होम किया जाता है, उसका फल अनन्त बताया गया है। यह समस्त शास्त्रोंका निर्णय है। जो एकमात्र भगवान् शिवका भजन करता है, वह सब बन्धनोंसे मुक्त हो जाता है। जो प्रीति अपने पुत्र, स्त्री और धनमें की जाती है, वही यदि भगवान् शिवकी पूजामें की जाय तो वह उद्धार कर देती है। इसलिये कितने ही महात्मा पुरुष भगवान् शिवकी पूजाके लिये सम्पूर्ण विषयरूपी मदिराको छोड़ देते हैं। वही जिह्वा सफल है, जो भगवान् शिवकी स्तुति करती है। वही मन सार्थक है, जो शिवके ध्यानमें संलग्न होता है। वे ही कान सफल हैं, जो उनकी कथा सुननेके लिये उत्सुक रहते हैं और वे ही दोनों हाथ सार्थक हैं, जो शिवजीकी पूजा करते हैं। वे नेत्र धन्य हैं, जो महादेवजीकी पूजाका दर्शन करते हैं। वह मस्तक धन्य है, जो शिवके सामने झुक जाता है। वे पैर धन्य हैं, जो भक्तिपूर्वक शिवके क्षेत्रोंमें सदा भ्रमण करते हैं। जिसकी सम्पूर्ण इन्द्रियाँ भगवान् शिवके कार्योंमें लगी रहती हैं, वह संसारसागरके पार हो जाता है और भोग तथा मोक्ष प्राप्त कर लेता है। शिवकी भक्तिसे युक्त मनुष्य चाण्डाल, पुल्कस, नारी, पुरुष अथवा नपुंसक कोई भी क्यों न हो तत्काल संसार-बन्धनसे मुक्त हो जाता है†। जिसके हृदयमें भगवान् शिवकी

---

* शिवो गुरुः शिवो देवः शिवो बन्धुः शरीरिणाम्। शिव आत्मा शिवो जीवः शिवादन्यन्न किञ्चन॥
(स्क० पु०, ब्रा० ब्रह्मो० ४।१)

† सा जिह्वा या शिवं स्तौति तन्मनो ध्यायते शिवम्। तौ कर्णौ तत्कथालोलौ तौ हस्तौ तस्य पूजकौ॥
ते नेत्रे पश्यतः पूजां तच्छिरः प्रणतं शिवे। तौ पादौ यौ शिवक्षेत्रं भक्त्या पर्यटतः सदा॥
यस्येन्द्रियाणि सर्वाणि वर्तन्ते शिवकर्मसु। स निस्तरति संसारे भुक्तिं मुक्तिं च विन्दति॥
शिवभक्तियुतो मर्त्यश्चाण्डालः पुल्कसोऽपि च। नारी नरो वा षण्ढो वा सद्यो मुच्येत संसृतेः॥
(स्क० पु०, ब्रा० ब्रह्मो० ४।७—१०)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

लेशमात्र भी भक्ति है, वह समस्त देहधारियोंके लिये वन्दनीय है।

उज्जयिनीमें चन्द्रसेन नामक एक राजा थे। वे उसी नगरमें निवास करनेवाले भगवान् महाकालका पूजन करते थे। शिवके पार्षदोंमें अग्रगण्य तथा अमंगलोंको जीतनेवाले विश्ववन्दित मणिभद्रजी राजा चन्द्रसेनके सखा हो गये थे। उन्होंने राजापर प्रसन्न होकर एक समय उन्हें दिव्य चिन्तामणि प्रदान की, जो कौस्तुभमणि तथा सूर्यके समान देदीप्यमान थी। वह देखने, सुनने अथवा ध्यान करनेपर भी मनुष्योंको मनोवांछित वस्तु प्रदान करती थी। राजा उस चिन्तामणिको कण्ठमें धारण करके जब सिंहासनपर बैठते थे, तब देवताओंमें सूर्यनारायणकी भाँति उनकी शोभा होती थी। राजा चन्द्रसेनके विषयमें यह सब बात सुनकर समस्त राजाओंके मनमें उस मणिके प्रति लोभकी मात्रा बढ़ गयी और वे क्षुब्ध रहने लगे। एक बार उन सबने बहुत-सी सेना साथ लेकर क्रोधपूर्वक पृथ्वीको कम्पित करते हुए आक्रमण किया और उज्जयिनीके चारों द्वारोंको घेर लिया। अपनी पुरीको घिरी हुई देख राजा चन्द्रसेन भगवान् महाकालकी शरणमें गये और मनको सन्देहरहित करके दृढ़ निश्चयके साथ उपवासपूर्वक दिन-रात अनन्यभावसे भगवान् गौरीपतिकी आराधना करने लगे। उन्हीं दिनों उस नगरमें कोई ग्वालिन रहती थी, जिसके एकमात्र पुत्र था। वह विधवा थी और उज्जयिनीमें बहुत दिनोंसे रहती थी। वह अपने पाँच वर्षके बालकको लिये हुए महाकालके मन्दिरमें गयी और राजा चन्द्रसेनद्वारा की हुई गिरिजापतिकी महापूजाका दर्शन किया। शिवपूजनका वह आश्चर्यमय उत्सव देखकर उसने भगवान्को प्रणाम किया और पुनः अपने निवासस्थानपर लौट आयी। ग्वालिनके उस बालकने भी वह सारी पूजा देखी थी। अतः घर आनेपर उसने कौतूहलवश शिवजीकी पूजा प्रारम्भ की, जो संसारसे वैराग्य प्रदान करनेवाली है। एक सुन्दर पत्थर लाकर उसे घरसे थोड़ी ही दूरपर एकान्त स्थानमें रख दिया और उसीको शिवलिंग माना। फिर अपने हाथसे मिलने लायक जो कोई भी फूल दिखायी दिये, उन सबका संग्रह करके उस बालकने जलसे शिवलिंगको स्नान कराया और भक्तिपूर्वक पूजन किया। तत्पश्चात् कृत्रिम अलंकार, चन्दन, धूप, दीप और अक्षत आदि उपचारोंसे अर्चना करके मनःकल्पित दिव्य वस्तुओंसे भगवान्को नैवेद्य निवेदन किया। सुन्दर-सुन्दर पत्रों और फूलोंसे बार-बार पूजा करके भाँति-भाँतिसे नृत्य किया और बारंबार भगवान्के चरणोंमें सीस झुकाया। इस प्रकार अनन्यचित्त होकर शिवकी आराधनामें लगे हुए अपने पुत्रको ग्वालिनने बड़े प्यारसे भोजनके लिये बुलाया। उसका मन तो पूजामें लगा हुआ था, माताके बहुत बुलानेपर भी उसे भोजन करनेकी इच्छा न हुई। तब उसकी माँ स्वयं उसके पास गयी और उसे शिवके आगे आँख बंद करके ध्यान लगाये बैठा देख हाथ पकड़कर खींचने लगी। इतनेपर भी जब वह न उठा, तब उसने क्रोधमें आकर उसे खूब पीटा। खींचने और मारने-पीटनेपर भी जब उसका पुत्र नहीं आया, तब उसने वह शिवलिंग उठाकर दूर फेंक दिया और उसपर चढ़ायी हुई सारी पूजा-सामग्री नष्ट कर दी। यह देख बालक 'हाय-हाय' करके रो उठा। रोषमें भरी हुई ग्वालिन अपने बेटेको डाँट-डपटकर पुनः घरमें चली गयी। भगवान् शिवकी पूजाको माताके द्वारा नष्ट की हुई देखकर वह बालक 'देव! देव! महादेव!' की पुकार करते हुए सहसा मूर्च्छित होकर गिर पड़ा। उसके नेत्रोंसे आँसुओंकी धारा प्रवाहित हो रही थी। दो घड़ी बाद जब उसे चेत हुआ, तब उसने

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

आँखें खोलीं और देखा—उसका वही निवासस्थान परम सुन्दर शिवालय हो गया था। मणियोंके खम्भे उसकी शोभा बढ़ा रहे थे। उसके द्वार, किवाड़ तथा सदर फाटक सब सुवर्णमय हो गये थे। वहाँकी भूमि बहुमूल्य नीलमणि तथा हीरोंकी वेदिकाओंसे सुशोभित थी। यह सब देखकर वह सहसा उठा और हर्षसे परमानन्दके समुद्रमें निमग्न-सा हो गया। उसने समझ लिया कि यह सब शिवजीकी पूजाका माहात्म्य है। उसीके प्रभावसे यह दिव्य विभूति प्रकट हुई है। तत्पश्चात् उस बालकने अपनी माताके अपराधकी शान्तिके लिये पृथ्वीपर मस्तक रखकर साष्टांग प्रणाम किया और इस प्रकार कहा—'देव! उमापते! मेरी माताका अपराध क्षमा कीजिये। वह मूढ़ है, आपके प्रभावको नहीं जानती है। शंकर! आप उसपर प्रसन्न होइये, यदि मुझमें आपकी भक्तिसे उत्पन्न हुआ कुछ भी पुण्य है, तो उससे मेरी माता आपकी दया प्राप्त करे।'

इस प्रकार भगवान् शंकरको बार-बार प्रसन्न करके उनके चरणोंमें मस्तक झुकाकर सूर्यास्तके समय वह बालक शिवालयसे बाहर निकला और उसने अपने शिविरको देखा। वह इन्द्रनगरके समान शोभा पा रहा था। वहाँ सब कुछ तत्काल सुवर्णमय होकर विचित्र वैभवसे प्रकाशित होने लगा। भवनके भीतर प्रवेश करके बालकने देखा, उसकी माँ बहुमूल्य रत्नमय पलंगपर बिछी हुई श्वेत रंगकी शय्यापर निर्भय होकर सो रही है और उसीको याद करती है। उसने माताको जगाया। ग्वालिन बड़े वेगसे उठी और अपनेको, अपने पुत्रको तथा अपने घरको भी अपूर्व रूपमें देखकर आनन्दसे विह्वल हो गयी। पुत्रके मुखसे गिरिजापति शंकरका वह सब प्रसाद सुनकर ग्वालिनने राजाको सूचना दी, जो निरन्तर भगवान् शिवके भजनमें लगे रहते थे। राजा अपना नियम पूरा करके रातमें सहसा वहाँ आये और ग्वालिनके पुत्रका वह प्रभाव, जो शंकरजीके सन्तोषसे प्रकट हुआ था, देखा। सुवर्णमय शिव-मन्दिर, रत्नमय शिवलिंग तथा सुन्दर मणि-माणिक्योंसे जगमगाता हुआ ग्वालिनका महल देखकर राजा चन्द्रसेन पुरोहित और मन्त्रियोंके साथ दो घड़ीतक आश्चर्य-चकित हो परमानन्दमें डूबे रहे। तत्पश्चात् उन्होंने नेत्रोंसे प्रेमके आँसू बहाते हुए ग्वालिनके उस बालकको हृदयसे लगा लिया। भगवान् शिवके इस अद्‌भुत माहात्म्यकी चर्चा समस्त पुरवासियोंमें बड़े वेगसे फैली और यही कहते-सुनते वह रात मानो क्षणभरमें व्यतीत हो गयी।

युद्धके लिये आये हुए और नगरको चारों ओरसे घेरकर खड़े हुए राजाओंने भी प्रातःकाल दूतोंके मुखसे यह परम अद्भुत समाचार सुना। सुनते ही उनके मनसे वैरभाव निकल गया। उन्होंने सहसा हथियार डाल दिये और चकित होकर महाराज चन्द्रसेनकी आज्ञासे नगरमें प्रवेश किया। उस रमणीय नगरीमें प्रवेश करके भगवान् महाकालको प्रणाम करनेके पश्चात् सब राजा उस ग्वालिनके घरपर आये। वहाँ राजा चन्द्रसेनने आगे बढ़कर उनका स्वागत किया। वे बहुमूल्य आसनोंपर बैठे और प्रीतिपूर्वक विस्मित एवं आनन्दित हुए। गोप-बालकपर कृपा करनेके लिये स्वतः प्रकट हुए शिवालय और शिवलिंगका दर्शन करके सब राजाओंने भगवान् शिवको अपनी उत्तम बुद्धि समर्पित की, उनमें भक्तिपूर्वक मन लगाया।

इसी समय सब देवताओंसे पूजित परम तेजस्वी वानरराज हनुमान्‌जी वहाँ प्रकट हुए। उनके आते ही सब राजाओंने बड़े वेगसे उठकर भक्तिभावसे विनीत हो उन्हें नमस्कार किया। तब हनुमान्‌जीने कहा—'राजाओ! भगवान् शिवकी पूजाके सिवा देहधारियोंके लिये दूसरी कोई गति नहीं है। यह बड़े सौभाग्यकी बात है कि इस गोप-बालकने शनिवारको प्रदोषव्रतके दिन बिना

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

मन्त्रके भी शिवका पूजन करके उन्हें पा लिया। शनिवारको प्रदोषव्रत समस्त देहधारियोंके लिये दुर्लभ है। कृष्ण पक्ष आनेपर तो वह और भी दुर्लभ है। गोपवंशकी कीर्ति बढ़ानेवाला यह बालक संसारमें सबसे अधिक पुण्यात्मा है। इसकी वंश-परम्परामें आठवीं पीढ़ीमें महायशस्वी नन्द उत्पन्न होंगे, जिनके यहाँ साक्षात् भगवान् नारायण उनके पुत्ररूपसे प्रकट हो श्रीकृष्णके नामसे प्रसिद्ध होंगे। आजसे यह गोपालनन्दन संसारमें 'श्रीकर' नामसे विख्यात होगा।'

अंजनिनन्दन हनुमान्‌जी ऐसा कहकर उस गोपबालकको शिवोपासनाके आचार-व्यवहारका उपदेश दे वहीं अन्तर्धान हो गये। वे सब राजा हर्षमें भरकर महाराज चन्द्रसेनकी आज्ञा ले जैसे आये थे वैसे ही लौट गये। महातेजस्वी श्रीकर भी हनुमान्‌जीका उपदेश पाकर धर्मज्ञ ब्राह्मणोंके साथ शंकरजीकी आराधना करने लगा। समयानुसार भक्त श्रीकर गोप तथा राजा चन्द्रसेन दोनोंने भक्तिपूर्वक शिवकी आराधना करके परम पद प्राप्त किया। यह परम पवित्र उपाख्यान कहा गया। यह गोपनीय रहस्य है, सुयश एवं पुण्यसमृद्धिको बढ़ानेवाला है तथा गौरीपति भगवान् शिवके चरणारविन्दोंमें भक्तिभावकी वृद्धि और पापराशिका निवारण करनेवाला है।

प्रदोषमें शिवपूजनकी अवहेलनासे दोषकी प्राप्तिके प्रसंगमें विदर्भराज और उसके पुत्रकी कथा

सूतजी कहते हैं—त्रयोदशी तिथिमें सायंकाल प्रदोष कहा गया है। प्रदोषके समय महादेवजी कैलासपर्वतके रजतभवनमें नृत्य करते हैं और देवता उनके गुणोंका स्तवन करते हैं। अतः धर्म, अर्थ, काम और मोक्षकी इच्छा रखनेवाले पुरुषोंको प्रदोषमें नियमपूर्वक भगवान् शिवकी पूजा, होम, कथा और गुणगान करने चाहिये। दरिद्रताके तिमिरसे अन्धे और भवसागरमें डूबे हुए संसारभयसे भीरु मनुष्योंके लिये यह प्रदोषव्रत पार लगानेवाली नौका है। भगवान् शिवकी पूजा करनेसे मनुष्य दरिद्रता, मृत्यु-दुःख और पर्वतके समान भारी ऋण-भारको शीघ्र ही दूर करके सम्पत्तियोंसे पूजित होता है।

विदर्भ देशमें सत्यरथ नामसे प्रसिद्ध एक राजा थे, जो सब धर्मोंमें तत्पर, धीर, सुशील और सत्यप्रतिज्ञ थे। धर्मपूर्वक पृथ्वीका पालन करते हुए उनका बहुत-सा समय सुखपूर्वक बीत गया। तदनन्तर शाल्व देशके राजाओंने विदर्भनगरपर आक्रमण करके उसे चारों ओरसे घेर लिया। अपनी पुरीको शत्रुओंसे घिरी हुई देख विदर्भराज विशाल सेना साथ लेकर युद्धके लिये आये। बलोन्मत्त शाल्वदेशीय क्षत्रियोंके साथ राजाका अत्यन्त भयंकर युद्ध हुआ। शाल्वोंकी बहुत बड़ी सेना मारी गयी; परंतु अन्तमें विदर्भराज भी उनके हाथसे मारे गये। मन्त्रियोंसहित उस महारथी वीर राजाके मारे जानेपर मरनेसे बचे हुए सैनिक भाग खड़े हुए। उस समय विदर्भराज सत्यरथकी एक पतिव्रता स्त्री अत्यन्त शोकग्रस्त हो रातके समय राजभवनसे निकलकर पश्चिम दिशाकी ओर चली गयी। वह गर्भवती थी। सबेरा होनेपर धीरे-धीरे मार्गसे जाती हुई उस साध्वी रानीने बहुत दूरका रास्ता तै कर लेनेके पश्चात् एक स्वच्छ तालाब देखा और वह उसके किनारे शोभा पानेवाले एक छायादार वृक्षके नीचे बैठ गयी। भाग्यवश उसी निर्जन स्थानमें वृक्षके ही नीचे पतिव्रता रानीने उत्तम गुणोंसे युक्त शुभ

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

मुहूर्तमें एक पुत्रको जन्म दिया। तत्पश्चात् अत्यन्त प्याससे व्याकुल हो वह सुन्दर अंगोंवाली रानी जलाशयमें उतरी। इतनेमें ही एक बड़े भारी ग्राहने आकर उसे अपना ग्रास बना लिया। वह बालक पैदा होते ही माता-पितासे हीन हो गया और भूख-प्याससे पीड़ित हो उस सरोवरके किनारे जोर-जोरसे रोने लगा। वह नवजात शिशु जब इस प्रकार क्रन्दन कर रहा था, उसी समय भाग्यवश वहाँ एक श्रेष्ठ ब्राह्मणी आ पहुँची। वह भी अपने एक वर्षके बालकको गोदमें लिये हुए आयी थी। ब्राह्मणी निर्धन और विधवा थी।

घर-घर भीख माँगकर जीवन-निर्वाह करती थी। उसका नाम उमा था। उसी सती-साध्वी ब्राह्मणीने उस राजकुमारको देखा। उसे अनाथकी भाँति क्रन्दन करते देखकर उसने मन-ही-मन विचार किया—'अहो! यह तो बड़े आश्चर्यकी बात दिखायी देती है कि यह नवजात शिशु, जिसकी नाल भी अभीतक नहीं कटी है, पड़ा हुआ है। इसकी माता कहाँ चली गयी। न इसका पिता है न और कोई बन्धु-बान्धव है। यह दीन अनाथ बालक बिना बिस्तरके भूमिपर सो रहा है। यह चाण्डालका पुत्र है या शूद्रका, वैश्यका बालक है या ब्राह्मणका अथवा यह क्षत्रियका शिशु है। इसका निश्चय कैसे किया जाय? मैं इस शिशुको उठाकर अपने सगे पुत्रकी तरह अवश्य पालन कर सकती हूँ; परंतु यह किस कुलका है, यह न जाननेके कारण इसे छूनेका साहस नहीं होता।' वह पतिव्रता ब्राह्मणी जब इस प्रकार कह रही थी, उसी समय कोई संन्यासी महात्मा वहाँ आ गये। वे ऐसे जान पड़ते थे, मानो साक्षात् शंकर हों। उन श्रेष्ठ भिक्षुने उस स्त्रीसे कहा—'ब्राह्मणी! खेद न करो, हृदयकी संशयवृत्ति दूरकर इस बालककी रक्षा करो। इससे तुम्हें शीघ्र ही परम कल्याणकी प्राप्ति होगी।' इतना कहकर वे दयालु भिक्षु तुरंत वहाँसे चले गये। उनके जानेके बाद ब्राह्मणीने विश्वासपूर्वक उस बालकको लेकर अपने घरकी ओर प्रस्थान किया। उस राजकुमारका ब्राह्मणीने अपने बेटेके समान ही पालन-पोषण किया। एकचक्रा नामक नगरमें उस ब्राह्मणीका घर था। वह भिक्षाके अन्नसे ही अपने पुत्र और राजकुमारको भी पालने लगी। ब्राह्मणोंने ब्राह्मणीके तथा राजाके भी पुत्रका संस्कार कर दिया। वे दोनों सर्वत्र सम्मानित होकर दिन-दिन बढ़ने लगे। समय आनेपर उनका उपनयन-संस्कार हुआ। अब वे दोनों बालक एक साथ रहकर नियमोंका पालन करने लगे। दोनों माताके साथ प्रतिदिन भिक्षाके लिये जाते थे। एक दिन वह ब्राह्मणी उन दोनों बालकोंके साथ भीख माँगती हुई दैवयोगसे देव-मन्दिरमें गयी। वहाँ बड़े-बूढ़े ऋषि-मुनि रहा करते थे। उन दोनों बालकोंको देखकर परम बुद्धिमान् शाण्डिल्य नामक मुनिने कहा—'अहो! दैवका बल बड़ा विचित्र है। कर्मोंका उल्लंघन करना किसी भी जीवके लिये अत्यन्त कठिन है। देखो न, यह बालक दूसरी माताकी शरण लेकर भिक्षासे जीवननिर्वाह करता है। इस ब्राह्मणीको

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

ही श्रेष्ठ माताके रूपमें पाकर ब्राह्मण बालकके साथ ब्राह्मणभावको प्राप्त हो गया है।' शाण्डिल्य मुनिका यह वचन सुनकर ब्राह्मणीको बड़ा विस्मय हुआ। उसने भरी सभामें मुनिको प्रणाम करके पूछा—'ब्रह्मन्! एक संन्यासीके कहनेसे मैं इस बालकको अपने घर ले आयी हूँ। यद्यपि अभीतक इसके कुलका पता नहीं लगा, तथापि मैं पुत्रकी भाँति इसका पालन-पोषण करती हूँ। आप ज्ञानके नेत्रोंसे देखते हैं, अतः आपसे मैं यह जानना चाहती हूँ कि यह बालक किस कुलमें उत्पन्न हुआ है और इसके माता-पिता कौन हैं?'

मुनि बोले—यह विदर्भदेशके राजाका पुत्र है। इतना कहकर मुनिने उस बालकके पिताके युद्धमें मारे जानेका तथा उसकी माताके ग्राहद्वारा ग्रस्त होनेका सब समाचार पूर्णरूपसे बतलाया। यह सुनकर ब्राह्मणीको और भी आश्चर्य हुआ। अतः उसने फिर प्रश्न किया—'महामुने! वे राजा सम्पूर्ण भोगोंको छोड़कर युद्धमें क्यों मरे और इस बालकको दरिद्रता कैसे प्राप्त हुई? अब दरिद्रताको पूर्णतः नष्ट करके यह पुनः राज्य कैसे प्राप्त करेगा? मेरा यह पुत्र भी भिक्षान्नसे ही जीवन-निर्वाह करता है। अतः इसकी दरिद्रताके निवारणका भी क्या उपाय है, यह बतानेकी कृपा करें?'

शाण्डिल्यने कहा—इस राजकुमारके पिता विदर्भराज पूर्वजन्ममें पाण्ड्य देशके श्रेष्ठ राजा थे। वे सब धर्मोंके ज्ञाता थे और सम्पूर्ण पृथ्वीका धर्मपूर्वक पालन करते थे। एक दिन प्रदोषकालमें राजा भगवान् शंकरका पूजन कर रहे थे और बड़ी भक्तिसे त्रिलोकीनाथ महादेवजीकी आराधनामें संलग्न थे। उसी समय नगरमें सब ओर बड़ा भारी कोलाहल मचा। उस उत्कट शब्दको सुनकर राजाने बीचमें ही भगवान् शंकरकी पूजा छोड़ दी और नगरमें क्षोभ फैलनेकी आशंकासे राजभवनसे बाहर निकल गये। इसी समय राजाका महाबली मन्त्री शत्रुको पकड़कर उनके समीप ले आया। वह शत्रु पाण्ड्यराजका ही सामन्त था। उसे देखकर राजाने क्रोधपूर्वक उसका मस्तक कटवा दिया। शिवपूजा छोड़कर नियमको समाप्त किये बिना ही राजाने रातमें भोजन भी कर लिया। इसी प्रकार राजकुमार भी प्रदोषकालमें शिवजीकी पूजा किये बिना ही भोजन करके सो गया। वही राजा दूसरे जन्ममें विदर्भराज हुआ था। शिवजीकी पूजामें विघ्न होनेके कारण शत्रुओंने उसको सुखभोगके बीचमें ही मार डाला। पूर्वजन्ममें जो उसका पुत्र था, वही इस जन्ममें भी हुआ है। शिवजीकी पूजाका उल्लंघन करनेके कारण यह दरिद्रताको प्राप्त हुआ है। इसकी माताने पूर्वजन्ममें छलसे अपनी सौतको मार डाला था। उस महान् पापके कारण ही वह इस जन्ममें ग्राहके द्वारा मारी गयी। मैं सत्य कहता हूँ, परलोकमें हितकी बात कहता हूँ, शास्त्रोंका सार एवं उपनिषदोंका हृदय कहता हूँ, इस भयंकर असार संसारको प्राप्त हुए जीवके लिये ईश्वरके चरणारविन्दोंकी सेवा ही सार वस्तु है। जो प्रदोषकालमें अनन्यचित्त होकर परमेश्वरके चरणारविन्दोंकी पूजा करते हैं, वे इसी संसारमें सदा बढ़नेवाले धन-धान्य, स्त्री-पुत्र, सौभाग्य और सम्पत्तिके द्वारा सबसे बढ़कर होते हैं। ब्राह्मणी! यह तुम्हारा पुत्र पूर्वजन्ममें उत्तम ब्राह्मण था। इसने सारी आयु केवल दान लेनेमें बितायी है। यज्ञ आदि सत्कर्म नहीं किये हैं। इसीलिये यह दरिद्रताको प्राप्त हुआ है। उस दोषका निवारण करनेके लिये अब यह भगवान् शंकरकी शरणमें जाय।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

प्रदोषव्रतकी विधि, इसके पालनसे द्विजकुमार और राजकुमारकी दरिद्रताका निवारण तथा राज्यकी प्राप्ति

सूतजी कहते हैं—मुनिके इस प्रकार कहनेपर साध्वी ब्राह्मणीने उन्हें प्रणाम करके शिवपूजनकी विधिका क्रम पूछा।

शाण्डिल्य बोले—दोनों पक्षोंकी त्रयोदशीको मनुष्य जब निराहार रहे, तब सूर्यास्तसे तीन घड़ी पहले स्नान करे। फिर श्वेत वस्त्र धारण करके धीर पुरुष सन्ध्या और जप आदि नित्यकर्मकी विधि पूरी करके मौन हो शास्त्रविधिका पालन करते हुए भगवान् शिवकी पूजा प्रारम्भ करे। भगवद्विग्रहके आगेकी भूमिको नये निकाले हुए शुद्ध जलसे भलीभाँति लीप-पोतकर सुन्दर मण्डल बनावे। धौत-वस्त्र आदिके द्वारा उस मण्डलको सब ओरसे घेर दे। ऊपरसे चँदोवा आदि लगाकर फल-फूल और नवीन अंकुरोंसे उसको सजावे। मण्डलके मध्यकी भूमिमें पाँच रंगोंसे युक्त विचित्र कमल अंकित करके उसीपर सुस्थिर एवं उत्तम आसन बिछाकर बैठे और हृदयमें भक्तिभावसे युक्त हो पूजाकी सब सामग्री एकत्र करे। फिर पवित्र भावसे शास्त्रोक्त मन्त्रद्वारा देवपीठको आमन्त्रित करे। तत्पश्चात् क्रमशः आत्मशुद्धि और भूतशुद्धि आदि करके तीन प्राणायाम करे। उसके बाद विन्दुयुक्त बीजाक्षरोंके द्वारा विधिपूर्वक मातृकान्यास करे। तदनन्तर परा देवताका ध्यान करके मातृकान्यासकी विधि पूरी करे। फिर परम शिवका ध्यान करके पीठके वाम भागमें गुरुको प्रणाम करे, दक्षिण भागमें गणेशजीको मस्तक झुकावे, दोनों अंशों (कन्धों) और ऊरुओं (जाँघों) में धर्म आदि (धर्म, ज्ञान, वैराग्य तथा ऐश्वर्य) का न्यास करे। नाभि तथा पार्श्वभागोंमें अधर्म (अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य और अनैश्वर्य) आदिका न्यास करे। तत्पश्चात् हृदयमें अनन्त आदिका न्यास करके देवपीठपर मन्त्रका न्यास करे। आधारशक्तिसे लेकर ज्ञानात्मातकका क्रमशः न्यास करके हृदयमें एक कमलकी भलीभाँति भावना करे। वह कमल नौ शक्तियोंसे युक्त एवं परम सुन्दर हो। उसी कमलकी कर्णिकामें कोटि-कोटि चन्द्रमाओंके समान प्रकाशमान उमापति भगवान् शिवका ध्यान करे। भगवान्के तीन नेत्र हैं। मस्तकपर चन्द्रमाका मुकुट शोभा पाता है। जटाजूट कुछ-कुछ पीला हो गया है। उसपर रत्नजटित किरीट सुशोभित है। उनके कण्ठमें नील चिह्न है और अंग-अंगसे उदारता सूचित होती है। सर्पोंके हारसे उनकी बड़ी शोभा हो रही है। उनके एक हाथमें वरद और दूसरेमें अभयकी मुद्रा है। वे फरसा धारण करते हैं। उन्होंने नागोंका कंकण, केयूर, अंगद तथा मुद्रिका धारण कर रखी है। वे व्याघ्रचर्म पहने हुए रत्नमय सिंहासनपर विराजमान हैं। उनके वाम भागमें गिरिराजनन्दिनी उमादेवीका चिन्तन करे। इस प्रकार महादेवजी तथा गिरिजादेवीका ध्यान करके क्रमशः गन्ध आदिसे उनकी मानसिक पूजा करे। पाँच वैदिक मन्त्रोंसे गन्ध आदि द्वारा पूर्वोक्त पाँच स्थानोंमें अथवा हृदयमें पूजा करे। फिर मूलमन्त्रसे तीन बार हृदयमें ही पुष्पांजलि दे। उसके बाद बाह्यपीठ (सिंहासन) पर महादेवजीका पुनः पूजन प्रारम्भ करे। पूजाके आरम्भमें एकाग्रचित्त होकर संकल्प पढ़े। तदनन्तर हाथ जोड़कर मन-ही-मन भगवान् शिवका ध्यान एवं आवाहन करे—'हे भगवान् शंकर! आप ऋण, पातक, दुर्भाग्य और दरिद्रता आदिकी निवृत्तिके लिये तथा सम्पूर्ण पापोंका नाश करनेके लिये मुझपर प्रसन्न होइये। मैं दुःख और शोककी आगमें जल रहा हूँ, संसारभयसे पीड़ित हूँ, अनेक प्रकारके रोगोंसे व्याकुल और दीन हूँ। वृषवाहन! मेरी रक्षा कीजिये। देवदेवेश्वर! सबको निर्भय

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

कर देनेवाले महादेवजी! आप यहाँ पधारिये और मेरी की हुई इस पूजाको पार्वतीजीके साथ ग्रहण कीजिये।' इस प्रकार संकल्प और आवाहन करके पूजा आरम्भ करनी चाहिये। तत्पश्चात् मनुष्य एकाग्रचित्त हो रुद्रसूक्तका पाठ करते हुए वहाँ स्थापित किये हुए शंखके जलसे और पंचामृतसे महादेवजीका अभिषेक करके भाँति-भाँतिके मन्त्रोंसे आसन आदि उपचारोंको समर्पित करे। भावनाद्वारा दिव्य वस्त्रोंसे विभूषित स्वर्णसिंहासनकी कल्पना करे और उसीपर भगवान्‌को विराजमान करके अष्टगुणयुक्त अर्घ्य और पाद्य निवेदन करे। फिर शुद्ध जलसे आचमन कराकर मधुपर्क दे। उसके बाद पुनः आचमनके लिये जल देकर मन्त्रोच्चारणपूर्वक स्नान करावे। फिर यज्ञोपवीत, वस्त्र और आभूषण अर्पण करे। परम पवित्र अष्टांगयुक्त चन्दन चढ़ावे। बिल्व, मदार, लाल कमल, धतूर, कनेर, सनईका फूल, चमेली, कुशा, अपामार्ग, तुलसी, जूही, चम्पा, भटकटइया और करवीरके फूलोंमेंसे जितने मिल जायँ, उन सबको शिवोपासक भगवान् शिवपर चढ़ावे। इनके अतिरिक्त भी नाना प्रकारके सुगन्धित पुष्प निवेदन करे। तत्पश्चात् लाल चन्दनसे उत्पन्न धूप और निर्मल दीप समर्पित करे। उसके बाद हाथ धोकर घी, नमकीन और साग, मिठाई, पूआ, शक्कर तथा गुड़के बने हुए पदार्थ एवं खीरका नैवेद्य भोग लगावे। मधु, दही और जल भी अर्पण करे। उस खीरका ही मन्त्रद्वारा प्रज्वलित की हुई अग्निमें हवन करे। यह होम शास्त्रोक्तविधिसे आचार्यके कथनानुसार सम्पन्न करना चाहिये। भगवान् शंकरको नैवेद्य देकर मुखशुद्धिके लिये उत्तम ताम्बूल अर्पण करे। धूप, आरती, सुन्दर छत्र, उत्तम दर्पणको वैदिक—तान्त्रिक मन्त्रोंद्वारा विधिपूर्वक समर्पित करे। यदि यह सब करनेकी अपनेमें शक्ति न हो, अधिक धनका अभाव हो, तो अपने पास जितना धन हो, उसीके अनुसार भगवान्‌की पूजा करे। गौरीपति भगवान् शंकर भक्तिपूर्वक भेंट किये हुए पुष्पमात्रसे भी सन्तुष्ट हो जाते हैं। तदनन्तर स्तोत्रोंद्वारा स्तुति करके भगवान्‌को साष्टांग प्रणाम करे। फिर परिक्रमा करके पूजा समर्पित करनेके पश्चात् विधिपूर्वक श्रीगिरिजापतिकी प्रार्थना करे।

'देव! जगन्नाथ! आपकी जय हो। सनातन शंकर! आपकी जय हो। सम्पूर्ण देवताओंके अधीश्वर! आपकी जय हो। सर्वदेवपूजित! आपकी जय हो। सर्वगुणातीत! आपकी जय हो। सबको वर देनेवाले प्रभो! आपकी जय हो। नित्य, आधाररहित, अविनाशी विश्वम्भर! आपकी जय हो, जय हो। सम्पूर्ण विश्वके लिये एकमात्र जानने योग्य महेश्वर! आपकी जय हो। नागराज वासुकिको आभूषणके रूपमें धारण करनेवाले प्रभो! आपकी जय हो। गौरीपते! आपकी जय हो। चन्द्रार्धशेखर शम्भो! आपकी जय हो। कोटि सूर्योंके समान तेजस्वी शिव! आपकी जय हो। अनन्त गुणोंके आश्रय! आपकी जय हो। भयंकर नेत्रोंवाले रुद्र! आपकी जय हो। अचिन्त्य! निरंजन! आपकी जय हो। नाथ! दयासिन्धो! आपकी जय हो। भक्तोंकी पीड़ाका नाश करनेवाले प्रभो! आपकी जय हो। दुस्तर संसारसागरसे पार उतारनेवाले परमेश्वर! आपकी जय हो। महादेव! मैं संसारके दुःखोंसे पीड़ित एवं खिन्न हूँ, मुझपर प्रसन्न होइये। परमेश्वर! समस्त पापोंके भयका अपहरण करके मेरी रक्षा कीजिये। मैं महान् दारिद्र्यके समुद्रमें डूबा हुआ हूँ। बड़े-बड़े पापोंने मुझे आक्रान्त कर लिया है। मैं महान् शोकसे नष्ट और बड़े-बड़े रोगोंसे व्याकुल हूँ। सब ओरसे ऋणके भारसे लदा हुआ हूँ। पापकर्मोंकी आगमें जल रहा हूँ और ग्रहोंसे पीड़ित हो रहा हूँ। शंकर! मुझपर प्रसन्न होइये*।'

---

* जय देव जगन्नाथ जय शंकर शाश्वत। जय सर्वसुराध्यक्ष जय सर्वसुरार्चित॥
जय सर्वगुणातीत जय सर्ववरप्रद। जय नित्य निराधार जय विश्वम्भराव्यय॥

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

निर्धन मनुष्य इस प्रकार पूजाके अन्तमें भगवान् गिरिजापतिकी प्रार्थना करे। धनाढ्य अथवा राजाको इस प्रकार भगवान् शंकरकी प्रार्थना करनी चाहिये—'हे शंकरजी! आपके प्रसादसे मेरे सदा आनन्द रहे। मेरे राज्यमें लुटेरे न रहें, सब लोग निरापद होकर रहें। पृथ्वीपर अकाल, महामारी आदिके सन्ताप शान्त हो जायँ। सबकी खेती धन-धान्यसे समृद्ध हो। सम्पूर्ण दिशाओंमें सुखका साम्राज्य छा जाय।' इस प्रकार प्रदोषव्रतके दिन गिरिजापति भगवान् शंकरकी आराधना करे, ब्राह्मणोंको भोजन करावे और उन्हें दक्षिणा देकर सन्तुष्ट करे। इस प्रकार मैंने सब पापोंका नाश, सब प्रकारकी दरिद्रताका निवारण तथा समस्त मनोवांछित वस्तुओंका दान करनेवाली शिवपूजाका वर्णन किया। यह शिवकी पूजा शिवजीके द्रव्यका हरण करनेके पापको छोड़कर शेष सभी महापातकों और उपपातकोंके महान् समुदायका नाश करती है। यदि ये दोनों बालक इसी प्रकार भगवान् शंकरका पूजन प्रत्येक प्रदोषके दिन करते रहें, तो वर्षभरके भीतर ही इन्हें उत्तम सिद्धिकी प्राप्ति होगी।

शाण्डिल्य मुनिका यह वचन सुनकर उस ब्राह्मणीने दोनों बालकोंके साथ मुनिके चरणोंमें प्रणाम किया और इस प्रकार कहा—'भगवन्! आज मैं आपके दर्शनमात्रसे कृतार्थ हो गयी। ये दोनों बालक आजसे आपकी शरणमें हैं। ब्रह्मन्! यह मेरा पुत्र है और इसका नाम शुचिव्रत है और यह राजकुमार है, जिसका नाम मैंने धर्मगुप्त रख दिया है। ये दोनों बालक और मैं सभी आपके चरणोंके दास हैं। इस घोर दारिद्र्यसागरमें गिरे हुए हम सबका आप उद्धार कीजिये।'

इस प्रकार शरणमें आयी हुई ब्राह्मणीको अमृतके समान मधुर वचनोंद्वारा आश्वासन देकर मुनिने उसके दोनों बालकोंको भगवान् शंकरके आराधनकी मन्त्र-विद्याका उपदेश दिया। तत्पश्चात् दोनों बालक और ब्राह्मणी मुनिकी आज्ञा ले वहाँसे चले गये। मुनिवरके उपदेशानुसार दोनों बालक प्रत्येक प्रदोषव्रतके दिन पार्वतीवल्लभ शिवकी आराधना करने लगे। इस प्रकार शिवपूजा करते हुए द्विजकुमार और राजकुमारके चार महीने सुखपूर्वक बीत गये। एक दिन द्विजकुमार राजकुमारको साथ लिये बिना ही नदीके तटपर स्नान करनेके लिये गया और वहाँ मौजसे देरतक इधर-उधर घूमता रहा। वहाँ झरनेके जलके आघातसे खाईंकी भूमि कट जानेसे उसमें गड़ा हुआ एक बड़ा भारी खजानेका कलश चमक रहा था, जिसपर ब्राह्मणकुमारकी दृष्टि पड़ी। उसे देखकर वह सहसा हर्ष और कौतूहलमें भरकर उसके समीप गया और उसे देवताके प्रसादसे प्राप्त हुआ मानकर सिरपर लेकर घरको चल दिया तथा घरके भीतर उस घड़ेको रखकर मातासे कहा—'माँ! यह भगवान् शंकरका प्रसाद तो देखो, उन्होंने दया करके घड़ेके रूपमें यह खजाना दिखला दिया।' तब उस पतिव्रता ब्राह्मणीने राजकुमारको भी बुलाकर कहा—'पुत्रो! इस खजानेके घड़ेको तुम दोनों आपसमें बराबर-बराबर बाँट लो।' माताकी बातको सुनकर ब्राह्मणके पुत्रको प्रसन्नता हुई। किंतु राजपुत्रने उससे कहा—'माँ! यह तुम्हारे ही पुत्रके पुण्यसे प्राप्त हुआ है, अतः मैं इस खजानेको बाँटकर लेना नहीं चाहता हूँ। अपने पुण्यसे प्राप्त हुए खजानेका ये स्वयं ही उपभोग करें। वे ही भगवान्

जय विश्वैकवेद्येश जय नागेन्द्रभूषण। जय गौरीपते शम्भो जय चन्द्रार्धशेखर॥
जय कोट्यर्कसंकाश जयानन्तगुणाश्रय। जय रुद्र विरूपाक्ष जयाचिन्त्य निरञ्जन॥
जय नाथ कृपासिन्धो जय भक्तार्तिभञ्जन। जय दुस्तरसंसारसागरोत्तारण प्रभो॥
प्रसीद मे महादेव संसारार्तस्य खिद्यतः। सर्वपापभयं हत्वा रक्ष मां परमेश्वर॥
महादारिद्र्यमग्नस्य महापापहतस्य च। महाशोकविनष्टस्य महारोगातुरस्य च॥
ऋणभारपरीतस्य दह्यमानस्य कर्मभिः। ग्रहैः प्रपीड्यमानस्य प्रसीद मम शंकर॥
(स्क० पु०, ब्रा० ब्रह्मो० ७।५९—६६)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

शंकर मुझपर भी कृपा करेंगे।' इस प्रकार प्रसन्नतापूर्वक भगवान् शंकरकी पूजा करते हुए उन दोनों कुमारोंका उसी घरमें एक वर्ष व्यतीत हो गया। एक दिन राजकुमार उस ब्राह्मणकुमारके साथ वसन्त-ऋतुमें वनमें भ्रमण करनेके लिये गया। कुछ दूर जानेपर उन्होंने सैकड़ों गन्धर्वकन्याओंको परस्पर क्रीडा करते हुए देखा। उन्हें देखकर ब्राह्मणकुमारने दूरसे ही राजकुमारसे कहा—'यहाँसे आगे जाना उचित नहीं है; क्योंकि उधर स्त्रियाँ विहार कर रही हैं। स्वच्छ अन्तःकरणवाले विद्वान् पुरुष स्त्रियोंका सामीप्य त्याग देते हैं। ये रमणियाँ छल करनेवाली तथा वाणीद्वारा अनुनय-विनय करनेमें कुशल हैं। ये पुरुषोंको अपनी दृष्टिमात्रसे मोहित कर लेती हैं। इसलिये अपने धर्ममें तत्पर ब्रह्मचारी कभी स्त्रियोंके समीप जाकर उनके साथ वार्तालाप न करे।' ऐसा कहकर ब्राह्मणकुमार लौट पड़ा और दूर जाकर खड़ा हो गया। किंतु राजकुमार अकेला ही निर्भय होकर स्त्रियोंकी उस क्रीडास्थलीकी ओर चला गया। उन गन्धर्वकन्याओंमेंसे एकने राजकुमारको आते देख मन-ही-मन कुछ विचार किया और सखियोंसे कहा—'सहेलियो! यहाँसे थोड़ी ही दूरपर एक उत्तम वन है, जहाँ विचित्र चम्पा, अशोक, पुन्नाग और वकुल आदि वृक्ष खिले हुए हैं। वहाँ जाकर तुम सब लोग फूल तोड़ो। तबतक मैं यहीं बैठी हूँ। तुम फूलोंका संग्रह करके पुनः यहाँ आ जाना।' उसके इस प्रकार आदेश देनेपर सखियाँ वनके भीतर चली गयीं और वह गन्धर्वकन्या राजकुमारपर दृष्टि लगाये वहीं खड़ी रही। उसे देखकर राजकुमार कामदेवके बाणोंसे पीड़ित हो गया। गन्धर्वकन्याने अपने पास आये हुए राजकुमारको बैठनेके लिये कोमल पल्लवोंका आसन दिया और पूछा—'कमलनयन! तुम कौन हो? किस देशसे यहाँ आये हो और किसके पुत्र हो?' इस प्रकार पूछनेपर राजकुमारने अपना पूरा परिचय बतलाया—'मैं विदर्भराजका पुत्र हूँ। मेरे पिता-माता बचपनमें ही मर गये हैं। शत्रुओंने मेरे राज्यपर अधिकार जमा लिया है और मैं दूसरेके राज्यमें गुजारा करता हूँ।'

ये सारी बातें बताकर राजकुमारने उस गन्धर्वकन्यासे पूछा—सुन्दरी! तुम कौन हो? यहाँ तुम्हारा क्या कार्य है और तुम किसकी पुत्री हो? उनके इस प्रकार पूछनेपर कन्याने कहा—'महाराजकुमार! एक द्रविक नामक गन्धर्व हैं, जो समस्त गन्धर्वकुलके अगुआ माने जाते हैं। मैं उन्हींकी पुत्री हूँ और मेरा नाम अंशुमती है। सब सखियोंको छोड़कर मैं यहाँ अकेली हूँ। मैं तुम्हारी अभिलाषा जानती हूँ। तुम्हारा मन मुझमें आसक्त हो गया है। इसी प्रकार दैवने मेरे मनमें भी तुम्हारे लिये उत्कण्ठा भर दी है। अब हम दोनोंका स्नेह कभी भंग नहीं होना चाहिये।' ऐसा कहकर गन्धर्वकुमारीने शीघ्र ही अपने गलेसे मोतीका हार निकालकर प्रेमपूर्वक राजकुमारको भेंट किया। उस अद्भुत हारको देखकर राजकुमारने पूछा—'भीरु! मैं एक बात कहता हूँ। मैं राज्यहीन और निर्धन हूँ। तुम मेरी प्रिया कैसे होना चाहती हो? मूर्ख स्त्रीकी भाँति पिताकी आज्ञाका उल्लंघन करके अपनी इच्छाके अनुसार आचरण क्यों करती हो?' यह सुनकर गन्धर्वकन्याने कहा—'प्रियतम! आपका कहना ठीक है। मैं पिताकी आज्ञाके विरुद्ध नहीं करूँगी। आप इस समय घरको पधारें और परसों प्रातःकाल पुनः यहीं दर्शन दें। आपसे कुछ हमारा कार्य है।' इतना कहकर वह गन्धर्वकन्या अपनी सखियोंके आ जानेसे उनके साथ चली गयी और राजकुमार भी हर्षपूर्वक ब्राह्मणकुमारके समीप लौट आया। उसने द्विजपुत्रसे सब बातें बतायीं और उसके साथ घरको प्रस्थान किया। वहाँ पतिव्रता ब्राह्मणीको भी यह शुभ समाचार सुनाकर राजकुमारने प्रसन्न किया तथा पूर्वनिश्चित समय आनेपर वह पुनः द्विजपुत्रके साथ वनमें गया।

नियत स्थानपर पहुँचकर राजकुमारने देखा—

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

गन्धर्वराज और उनकी कन्या दोनों उपस्थित हैं। गन्धर्वराजने वहाँ आये हुए दोनों कुमारोंका अभिनन्दन किया और सुन्दर आसनपर बिठाकर राजपुत्रसे कहा—'विदर्भराजकुमार ! मैं कल कैलास पर्वतपर गया था। वहाँ मैंने पार्वतीजीके साथ महादेवजीके दर्शन किये। देवेश्वर भगवान् शिव करुणारूपी अमृतके सागर हैं। उन्होंने मुझे बुलाकर सब देवताओंके समीप इस प्रकार कहा—'पृथ्वीतलपर धर्मगुप्त नामसे प्रसिद्ध एक राजकुमार है, जो इस समय अकिंचन है। उसका राज्य छिन गया है, शत्रुओंने उसके देशको अपने अधिकारमें कर लिया है। अब वह बालक अपने गुरुकी आज्ञासे सदा मेरी आराधनामें संलग्न रहता है। उसीके प्रभावसे आज उसके समस्त पितर मेरे स्वरूपको प्राप्त हो गये हैं। गन्धर्वश्रेष्ठ! तुम भी उस राजकुमारकी सहायता करो। अब वह शत्रुओंको मारकर अपने राज्यसिंहासनपर आसीन हो जायगा।' महादेवजीके इस प्रकार आज्ञा देनेपर मैं अपने घरको आया। यहाँ इस मेरी कन्याने भी तुम्हारे लिये बहुत प्रार्थना की। यह सब परमदयालु भगवान् शिवकी प्रेरणासे ही हो रहा है, ऐसा समझकर मैं इस कन्याको साथ लेकर आया हूँ। अतः अपनी पुत्री अंशुमतीको मैं तुम्हें पत्नीरूपमें देता हूँ और भगवान् शिवजीकी आज्ञासे शत्रुओंको मारकर तुम्हें तुम्हारे राज्यपर बिठाऊँगा। अपने उस नगरमें तुम अपनी इस धर्मपत्नीके साथ दस हजार वर्षोंतक मनोवांछित सुख भोगकर अन्तमें भगवान् शिवके लोकमें जाओगे और वहाँ भी मेरी यह कन्या तुम्हारी ही सेवामें प्रस्तुत रहेगी।'

इस प्रकार कहकर गन्धर्वराजने उसी वनमें राजकुमारके साथ अपनी पुत्रीका विवाह कर दिया और दहेजमें परम उज्ज्वल रत्नभार भेंट किये। चन्द्रमाके समान चमकीली चूड़ामणि तथा दमकते हुए मोतियोंके मनोहर हार दिये। दिव्य आभूषण, वस्त्र, सुवर्णके बने हुए बहुत-से सामान, दस हजार हाथी, एक लाख नीले घोड़े और हजारों सोनेके बड़े-बड़े रथ प्रदान किये। अन्तमें एक दिव्य रथ, इन्द्रके धनुषके समान विशाल धनुष, सहस्रों अस्त्र-शस्त्र, अक्षय बाणोंसे भरे हुए दो तरकस, अभेद्य सुवर्णमय कवच तथा शत्रुओंका संहार करनेवाली शक्ति समर्पित की। अपनी पुत्रीकी सेवाके लिये गन्धर्वराजने प्रसन्नचित्त होकर पाँच हजार दासियाँ दीं। इतना ही नहीं, राजकुमारकी सहायताके लिये उन्होंने अत्यन्त उग्र गन्धर्वोंकी चतुरंगिणी सेना भी भेंट की। इस प्रकार परम उत्तम सम्पत्तिको पाकर राजकुमार अपनी मनोवांछित पत्नीके साथ बहुत प्रसन्न हुए। पुत्रीका विवाह कराकर गन्धर्वराज स्वर्गलोकमें चले गये। धर्मगुप्त विवाहके अनन्तर गन्धर्वोंकी सेनाके साथ अपने नगरको गये और वहाँ उन्होंने शत्रुसेनाका संहार करके राजधानीमें प्रवेश किया। तत्पश्चात् श्रेष्ठ ब्राह्मणों और मन्त्रियोंने मिलकर राजकुमारका अभिषेक किया और वे रत्नमय सिंहासनपर आरूढ़ होकर अकण्टक राज्यका उपभोग करने लगे। जिस ब्राह्मण-पत्नीने उनका अपने पुत्रकी भाँति पालन किया था, वही उनकी माता हुईं। वह द्विजकुमार ही भाई हुआ तथा गन्धर्वराजपुत्री अंशुमती महारानीके पदपर प्रतिष्ठित हुई। भगवान् शंकरकी आराधना करके धर्मगुप्त विदर्भ देशके राजा हो गये। इसी प्रकार दूसरे लोग भी प्रदोषव्रतके दिन गिरिजापतिकी आराधना करके मनोवांछित कामनाओंको प्राप्त कर लेते हैं और देहावसान होनेपर परम गतिको प्राप्त होते हैं।

सूतजी कहते हैं—जो प्रदोषव्रतके परम अद्भुत पुण्यमय माहात्म्यको उस व्रतके दिन शिवपूजनके पश्चात् एकाग्रचित्त होकर सुनता अथवा पढ़ता है, उसे सौ जन्मोंतक कभी दरिद्रता नहीं होती और अन्तमें वह ज्ञानके ऐश्वर्यसे युक्त हो भगवान् शंकरके परमधामको प्राप्त होता है।

~~~o~~~

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth
~~~

सोमवार-व्रतके प्रभावसे सीमन्तिनीको पुनः परम सौभाग्यकी प्राप्ति

सूतजी कहते हैं—जो नित्य, आनन्दमय, शान्त, निर्विकल्प, निरामय, अनादि, अनन्त शिव-तत्त्वको जानते हैं, वे परम पदको प्राप्त होते हैं। जो धीर पुरुष कामभोगोंसे विरक्त हो भगवान् शंकरमें हेतुरहित पराभक्ति करते हैं, उनका मोक्ष हो जाता है, वे संसारबन्धनमें नहीं पड़ते। जो मायामय संसारमें चिरकालतक सुखपूर्वक विहार करके देहावसान होनेपर मोक्ष चाहते हैं, उनके लिये यह धर्म बताया गया है कि संसारमें भगवान् शिवकी पूजा सदा ही स्वर्ग और मोक्षका हेतु है। यदि प्रदोष आदिके गुणोंसे युक्त सोमवारके दिन यह पूजा की जाय तो उसका विशेष माहात्म्य है। जो केवल सोमवारको भी भगवान् शंकरकी पूजा करते हैं, उनके लिये इहलोक और परलोकमें कोई भी वस्तु दुर्लभ नहीं है। सोमवारको उपवास करके पवित्र हो इन्द्रियोंको वशमें रखते हुए वैदिक अथवा लौकिक मन्त्रोंसे विधिपूर्वक भगवान् शिवकी पूजा करनी चाहिये। ब्रह्मचारी, गृहस्थ, कन्या, सुहागिन स्त्री अथवा विधवा कोई भी क्यों न हो, भगवान् शिवकी पूजा करके मनोवांछित वर पाता है। इस विषयमें मैं एक कथा कहूँगा, जिसको सुनकर मनुष्य मोक्ष पाते हैं और उनके मनमें भगवान् शिवकी भक्ति होती है।

आर्यावर्तमें चित्रवर्मा नामसे प्रसिद्ध एक राजा थे। वे दुष्टोंको दण्ड देनेके लिये यमराजके समान समझे जाते थे। वे धर्ममर्यादाओंके रक्षक, कुमार्गगामी पुरुषोंको दण्ड देकर राहपर लानेवाले, समस्त यज्ञोंका अनुष्ठान करनेवाले और शरणार्थियोंकी रक्षा करनेमें समर्थ थे। भगवान् शिव और विष्णुमें उनकी बड़ी भक्ति थी। राजा चित्रवर्माने अनेक परम पराक्रमी पुत्रोंको पाकर अन्तमें एक सुन्दर मुखवाली कन्या प्राप्त की। एक दिन राजाने जातकके लक्षण जाननेवाले श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको बुलाकर कन्याकी जन्मकुण्डलीके अनुसार भावी फल पूछे। तब उन ब्राह्मणोंमेंसे एक बहुज्ञ विद्वान्ने कहा—'महाराज! यह आपकी कन्या सीमन्तिनी नामसे प्रसिद्ध होगी। यह भगवती उमाकी भाँति मांगल्यमयी, दमयन्तीकी भाँति परम सुन्दरी, सरस्वतीके समान सब कलाओंको जाननेवाली तथा लक्ष्मीकी भाँति अत्यन्त सद्गुणोंसे सुशोभित होगी। यह दस हजार वर्षोंतक अपने स्वामीके साथ आनन्द भोगेगी और आठ पुत्रोंको जन्म देकर उत्तम सुखका उपभोग करेगी।' तत्पश्चात् एक दूसरे ब्राह्मणने कहा—'यह कन्या चौदहवें

वर्षमें विधवा हो जायगी।' यह वज्राघातके समान दारुण वचन सुनकर राजा दो घड़ीतक चिन्तामें डूबे रहे। तदनन्तर सब ब्राह्मणोंको विदा करके राजाने 'सब कुछ भाग्यके अनुसार ही होता है' ऐसा समझकर चिन्ता छोड़ दी। सीमन्तिनी धीरे-धीरे सयानी हुई। अपनी सखीके मुखसे भावी वैधव्यकी बात सुनकर उसे बड़ा खेद हुआ। उसने चिन्तामग्न होकर याज्ञवल्क्य मुनिकी पत्नी

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

मैत्रेयीसे पूछा—'माताजी! मैं आपके चरणोंकी शरणमें आयी हूँ। मुझे सौभाग्य बढ़ानेवाले सत्कर्मका उपदेश दीजिये।' इस प्रकार शरणमें आयी हुई राजकन्यासे पतिव्रता मैत्रेयीने कहा—'सुन्दरी! तू शिवसहित पार्वतीजीकी शरणमें जा और सोमवारको एकाग्रचित्त हो स्नान और उपवासपूर्वक स्वच्छ वस्त्र धारण करके शिव और पार्वतीका पूजन कर। सोमवारके दिन शिव और पार्वतीकी आराधना करती रह। इससे बड़ी भारी आपत्ति पड़नेपर भी तू उससे मुक्त हो जायगी। घोर-से-घोर एवं भयंकर महाक्लेशमें पड़कर भी शिव-पूजा न छोड़ना। उसके प्रभावसे महान् भयसे पार हो जाओगी।' इस प्रकर सीमन्तिनीको आश्वासन देकर पतिव्रता मैत्रेयी आश्रमको चली गयीं। राजकुमारीने उनके कथनानुसार भगवान् शिवका पूजन प्रारम्भ किया।

निषध देशमें नलकी पत्नी दमयन्तीके गर्भसे इन्द्रसेन नामक पुत्र हुआ था। राजा इन्द्रसेनके पुत्र चन्द्रांगद हुए। नृपश्रेष्ठ चित्रवर्माने राजकुमार चन्द्रांगदको बुलाकर गुरुजनोंकी आज्ञासे उन्हींके साथ अपनी पुत्री सीमन्तिनीका विवाह कर दिया। उस विवाहमें बड़ा उत्सव हुआ था। विवाहके पश्चात् चन्द्रांगद कुछ कालतक ससुरालमें ही रहे। एक दिन राजकुमार यमुनाके पार जानेके लिये कुछ मित्रोंके साथ नावपर सवार हुए। भाग्यवश नाव यमुनाके भँवरमें मल्लाहोंसहित डूब गयी। यमुनाके दोनों तटोंपर बड़ा भारी हाहाकार मच गया। इस दुर्घटनाको देखनेवाले समस्त सैनिकोंके विलापसे सारा आकाशमण्डल गूँज उठा। डूबनेवालोंमेंसे कुछ तो मर गये और कुछ ग्राहोंके पेटमें चले गये तथा राजकुमार आदि कुछ लोग उस महाजलमें अदृश्य हो गये। यह समाचार सुनकर राजा चित्रवर्मा बड़े व्याकुल हुए और यमुनाके किनारे आकर मूर्छित होकर गिर पड़े। सीमन्तिनीने भी जब यह समाचार सुना तब वह अचेत होकर धरतीपर गिर पड़ी। राजा इन्द्रसेन भी अपने पुत्रके डूबनेका समाचार पाकर रानियोंसहित बहुत दुःखी हुए और सुध-बुध खोकर गिर पड़े। तदनन्तर बड़े-बूढ़ोंके समझानेपर राजा चित्रवर्मा धीरे-धीरे नगरमें आये और उन्होंने अपनी पुत्रीको धीरज बँधाया।

राजा चित्रवर्माने जलमें डूबे हुए अपने दामादका और्ध्वदैहिक कृत्य वहाँ आये हुए उनके बन्धु-बान्धवोंसे करवाया। पतिव्रता सीमन्तिनीने चितामें बैठकर पतिलोकमें जानेका विचार किया। किंतु उसके पिताने स्नेहवश रोक दिया। तब वह विधवा-जीवन व्यतीत करने लगी। मुनिपत्नी मैत्रेयीने जिस शुभ सोमवार व्रतका उपदेश दिया था, उसे सदाचारपरायणा सीमन्तिनीने विधवा होनेपर भी नहीं छोड़ा। इस प्रकार चौदहवें वर्षकी आयुमें अत्यन्त दारुण दुःख पाकर वह भगवान् शिवके चरणारविन्दोंका चिन्तन करने लगी। शिवकी आराधना करते-करते उसके तीन वर्ष व्यतीत हो गये। उधर पुत्रशोकसे उन्मत्त हुए राजा इन्द्रसेनको बलपूर्वक दबाकर उनके भाइयोंने सारा राज्य छीन लिया और उन्हें पत्नीसहित पकड़कर कारागृहमें डाल दिया।

इन्द्रसेनके पुत्र चन्द्रांगद यमुनाके जलमें डूबनेपर नीचे-नीचे गहराईमें उतरने लगे। बहुत नीचे जानेपर उन्होंने नागवधुओंको जलक्रीडामें निमग्न देखा। राजकुमारको देखकर वे भी विस्मित हुईं और उन्हें पाताललोकमें ले गयीं। वहाँ चन्द्रांगदने तक्षक नागके परम अद्भुत रमणीय नगरमें प्रवेश किया और इन्द्रभवनके समान मनोहर एक सुन्दर महल देखा, जो बड़े-बड़े रत्नोंकी प्रकाशमान किरणोंसे उद्दीप्त हो रहा था। भगवान् सूर्यके समान तेजस्वी तक्षक नागको सभाभवनमें विराजमान देख परम बुद्धिमान् राजकुमारने प्रणाम किया और हाथ जोड़कर खड़े हो गये। तक्षकके तेजसे उनके नेत्र

 In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

चौंधिया गये। नागराजने भी मनोरम राजकुमारको देखकर उन नागिनोंसे पूछा—'यह कौन है और कहाँसे आया है?' उन्होंने उत्तर दिया—'हमने इसे यमुनाजलमें देखा है और इसके कुल तथा नामका परिचय न होनेके कारण आपके पास ले आयी हैं।' तब तक्षकने राजकुमारसे पूछा—'तुम किसके पुत्र हो, कौन हो, कौन-सा तुम्हारा देश है और यहाँपर तुम्हारा कैसे आगमन हुआ है?'

राजपुत्रने कहा—भूमण्डलमें निषध नामसे प्रसिद्ध एक देश है। उसके स्वामी राजा नल महायशस्वी हो गये हैं। वे पुण्यश्लोक माने जाते हैं। उनके पुत्र इन्द्रसेन हुए और इन्द्रसेनका पुत्र मैं हुआ। मेरा नाम 'चन्द्रांगद' है। मैं अभी नूतन विवाह करके ससुरालमें ही टिका था और यमुनाजीके जलमें विहार करता हुआ दैवकी प्रेरणासे डूब गया। ये नागपत्नियाँ मुझे आपके पास ले आयी हैं। जन्मान्तरके उपार्जित पुण्योंके प्रभावसे यहाँ मैंने आपके चरणारविन्दोंका दर्शन किया है। आज मैं धन्य हूँ, मेरे माता-पिता कृतार्थ हो गये; क्योंकि आपने दया करके मेरी ओर देखा और मुझसे वार्तालाप किया है।

इस प्रकार अत्यन्त मनोहर उदारतापूर्ण वचन सुनकर तक्षकने कहा—राजकुमार! तुम भय न करो, धैर्य रखो और बताओ, तुम सम्पूर्ण देवताओंमें किसकी पूजा करते हो?

राजकुमारने कहा—जो सम्पूर्ण देवोंमें महादेव कहे जाते हैं, उन्हीं विश्वात्मा उमापति भगवान् शिवकी मैं पूजा करता हूँ। जो विधाताके भी विधाता, कारणके भी कारण और तेजोंमें सर्वोत्कृष्ट तेज हैं, वे भगवान् शिव मेरी परम गति हैं। जो अत्यन्त निकट होकर भी पापसे दूषित चित्तवाले पुरुषोंके लिये बहुत दूर हैं तथा जिनके तेजकी कोई सीमा नहीं है, जो अग्नि, भूमि, वायु, जल और आकाशमें भी स्थित हैं, वे विश्वात्मा भगवान् सदाशिव हम सबके लिये परम पूजनीय हैं। जो सम्पूर्ण भूतोंके साक्षी, सबकी आत्मामें स्थित रहनेवाले परमेश्वर तथा निरंजन हैं, सम्पूर्ण संसार जिनकी इच्छाके अधीन है, मैं उन भगवान् शिवकी पूजा करता हूँ। ज्ञानी पुरुष जिन्हें एक, आदि और पुराणपुरुष कहते हैं, गुणोंके भेदसे जिनमें भिन्नताकी प्रतीति होती है, जिन्हें कोई तो क्षेत्रज्ञ, कोई तुरीय और कोई कूटस्थ कहते हैं, वे भगवान् शिव मेरे परम आश्रय हैं। जो चैतन्यमय अचिन्त्य तत्त्व हैं, जिनके तेजका कहीं अन्त नहीं है, श्रुतिके नेति-नेति वचनोंसे तद्भिन्न समस्त वस्तुओंका बाध करके जिनके स्वरूपका निश्चय किया जाता है तथा आत्मज्ञानी पुरुषोंके भी मन और वाणीकी वृत्तियाँ जिनका स्पर्श नहीं कर पातीं, वे ही ये भगवान् शिव मेरे परम पूज्य हैं। जिनका प्रसाद पाकर साधुपुरुष अत्यन्त उज्ज्वल इन्द्रपदकी भी अभिलाषा नहीं रखते तथा कर्मोंकी अर्गला (आगल) और कालचक्रको लाँघकर निर्भय होकर विचरते हैं, वे भगवान् शिव मेरी गति हैं। जिनकी स्मृति चाण्डालकी योनिमें जन्म पानेवाले मनुष्योंके भी समस्त पापरूपी रोगोंका नाश करती है तथा जिनका सम्पूर्ण रूप श्रुतियोंके लिये भी ढूँढ़ने योग्य है, उन्हीं भगवान् शिवके उद्देश्यसे मैं सदैव पूजा करता हूँ। देवनदी गंगा जिनके मस्तकपर स्थान पाकर सुशोभित होती हैं, भगवती जगदम्बिका जिनके अर्धांगमें निवास करती हैं, अहा हा! तक्षक और वासुकि दोनों नागराज जिनके कानोंके कुण्डल हैं, वे चन्द्रार्धशेखर भगवान् शिव मेरे परम आश्रय हैं। जिनके चरणकमल वेदोंके शीर्षस्थानीय उपनिषदोंमें गौरवान्वित होते हैं, वेदान्तकी श्रुति भी जिनके चरणारविन्दोंका गुणगान करती है, जिनका दिव्य स्वरूप सदा योगियोंके हृदयमें प्रकाशित होता है तथा जिनकी सगुण मूर्ति सम्पूर्ण तत्त्वोंका प्रकाश करनेवाली है, गुणमयी सृष्टिपर विजय पानेवाले वे भगवान् शंकर मेरे द्वारा पूजित होते हैं।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth 279 Skandpuran_Section_24_2_Back

राजकुमारकी यह बात सुनकर तक्षकका चित्त प्रसन्न हो गया। उनके हृदयमें महादेवजीके प्रति नूतन भक्तिभावका उदय हो आया और वे उनसे इस प्रकार बोले—'राजेन्द्रनन्दन! तुम्हारा कल्याण हो, मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ; क्योंकि तुम बालक होकर भी सर्वोत्कृष्ट परात्पर शिवतत्त्वको जानते हो। देखो, यह रत्नमय लोक है। ये मनोहर नेत्रोंवाली युवतियाँ हैं। ये मनोवांछित कामना पूर्ण करनेवाले कल्पवृक्ष हैं तथा ये अमृतरूपी जलसे भरी हुई बावलियाँ हैं। यहाँ मृत्युका दारुण भय नहीं है। बुढ़ापा और रोगसे यहाँ किसीको पीड़ा नहीं होती। तुम इच्छानुसार यहीं विहरो और यथायोग्य सुखभोगोंका उपभोग करो।' नागराजके ऐसा कहनेपर राजकुमार हाथ जोड़कर बोले—'नागराज! मैंने समयपर विवाह किया है। मेरी पत्नी उत्तम व्रतका पालन करनेवाली और शिवपूजा-परायणा है और मैं अपने माता-पिताका इकलौता पुत्र हूँ। वे सब लोग इस समय मुझे मरा हुआ मानकर महान् शोकसे घिर गये होंगे। अतः मुझे किसी प्रकार भी यहाँ अधिक समयतक नहीं ठहरना चाहिये। आप कृपा करके मुझे उसी मनुष्यलोकमें पुनः पहुँचा दें।'

नागराज तक्षकने कहा—राजकुमार! तुम जब-जब मेरी याद करोगे, तब-तब तुम्हारे सामने प्रकट हो जाऊँगा। ऐसा कहकर उन्होंने राजकुमारको एक सुन्दर अश्व भेंट किया, जो इच्छाके अनुसार चलनेवाला था। अनेक प्रकारके द्वीपों, समुद्रों और लोकोंमें उसकी अप्रतिहत गति थी। इसके सिवा उन्हें रत्नमय आभूषण, दिव्य वस्त्र एवं दिव्य अलंकार भेंट किये। उनकी सहायताके लिये सारी व्यवस्था करनेके पश्चात् तक्षकने 'जाओ' कहकर प्रेमपूर्वक उन्हें विदा किया। चन्द्रांगद उस घोड़ेपर सवार हो निकले और थोड़ी ही देरमें यमुनाके जलसे बाहर आकर उस दिव्य अश्वपर चढ़े हुए ही नदीके रमणीय तटपर घूमने लगे। इसी समय पतिव्रता सीमन्तिनी अपनी सखियोंसे घिरी हुई वहाँ स्नान करनेके लिये आयी। उसने यमुनाके तटपर मनुष्यरूपधारी नागकुमारके साथ भ्रमण करते हुए राजकुमार चन्द्रांगदको देखा। दिव्य अश्वपर आरूढ़ हुए अपूर्व आकारवाले उन राजकुमारको देखकर वह उन्हींकी ओर दृष्टि लगाये खड़ी हो गयी। उसे देखकर चन्द्रांगदने भी मन-ही-मन विचार किया—जान पड़ता है इसे मैंने पहले कभी देखा है। तत्पश्चात् वे घोड़ेसे उतरकर नदीके किनारे आ बैठे और उस सुन्दरीको बुलाकर समीप बैठाकर पूछा—'तुम कौन हो, किसकी स्त्री और किसकी कन्या हो?' सीमन्तिनी लज्जावश स्वयं कुछ बोल न सकी। तब उसकी सखीने सब बातें बतायीं—'इसका नाम सीमन्तिनी है। यह निषधराज इन्द्रसेनकी पुत्रवधू, युवराज चन्द्रांगदकी रानी तथा महाराज चित्रवर्माकी पुत्री है। दुर्भाग्यवश इसके पति इस महाजलमें डूब गये। इससे वैधव्यका दुःख प्राप्त करके यह बाला शोकसे सूखती जा रही है। अत्यन्त प्रबल शोकमें ही इसने तीन वर्ष व्यतीत किये हैं। आज सोमवार है, इसलिये यहाँ यमुनाजीमें स्नान करनेके लिये आयी है। इसके श्वशुरका राज्य भी शत्रुओंने छीन लिया है। बलपूर्वक उसपर अधिकार जमा लिया है और वे महाराज अपनी पत्नीके साथ उनकी कैदमें पड़े हैं। यह सब होनेपर भी यह निर्मल अन्तःकरणवाली सदाचारपरायणा राजकुमारी प्रति सोमवारको अत्यन्त भक्तिभावके साथ पार्वतीसहित महादेवजीकी पूजा करती है।'

उत्तम व्रतका पालन करनेवाली सीमन्तिनीने अपनी सखीके मुखसे सब बातें कहलवाकर स्वयं भी राजकुमारसे पूछा—आप कौन हैं? आपके पार्श्ववर्ती ये दोनों पुरुष कौन हैं? आपने मेरे वृत्तान्तको एक स्नेहीकी भाँति क्यों पूछा है? महाबाहो! मुझे ऐसा जान पड़ता है कि पहले

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

कभी मैंने आपको देखा है। आप मुझे स्वजनकी भाँति प्रतीत होते हैं।

इतना कहकर राजकुमारी सीमन्तिनी नेत्रोंसे आँसूकी धारा बहाती हुई बहुत देरतक फूट-फूटकर रोती रही और मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़ी। अपनी प्रियतमाके शोकका कारण सुनकर चन्द्रांगद भी शोकसे व्याकुल हो दो घड़ीतक चुपचाप बैठे रहे। तदनन्तर सीमन्तिनी उठकर राजकुमारकी ओर बारंबार निहारने लगी। उसने पहले देखे हुए अंगचिह्नों, स्वर आदि लक्षणों, अवस्थाके प्रमाण तथा रूप-रंग आदिकी परीक्षा करके यह निश्चय किया कि 'अवश्य यही मेरे पति हैं; क्योंकि मेरा हृदय प्रेमसे अधीर होकर इन्हींमें अनुरक्त हुआ है। परंतु क्या मुझ अभागिनीको अपने मरे हुए पतिका दर्शन हो सकता है? यह स्वप्न है या भ्रम अथवा मुनिपत्नी मैत्रेयीने जो मुझे यह कहा था कि तुम भारी-से-भारी विपत्तिमें पड़नेपर भी इस व्रतका पालन करती रहना, उसीका तो यह फल नहीं है। एक श्रेष्ठ ब्राह्मणने मेरा दस हजार वर्षोंका सौभाग्य बतलाया था। उन ब्राह्मण देवताका यह वचन अवश्य सत्य होगा। यह ईश्वरके बिना कौन जान सकता है? इधर प्रतिदिन मुझे मंगलसूचक शुभ शकुन दिखायी देते हैं। पार्वती देवीके प्राणनाथ भगवान् शिवके प्रसन्न होनेपर देहधारियोंके लिये कौन-सी वस्तु दुर्लभ हो सकती है।' इस प्रकार भाँति-भाँतिसे विचार करके उसका सन्देह दूर हो गया। तब लज्जासे उसने अपना मुख नीचेकी ओर कर लिया। उस समय राजकुमारने कहा—'भद्रे! मैं तुम्हारे पतिके शोकसन्तप्त माता-पितासे यह समाचार बतलानेके लिये जा रहा हूँ। तुम्हारा कल्याण हो। तुम्हारे पति तुमसे शीघ्र ही मिलेंगे।'

यों कहकर राजकुमार घोड़ेपर सवार हुए और अपने दोनों सहायकोंके साथ शीघ्र ही अपने राज्यमें जा पहुँचे। वहाँ नगरोद्यानके समीप स्थित होकर उन्होंने नागराजके पुत्रको राजसिंहासनपर अधिकार जमाये बैठे हुए बन्धुओंके समीप भेजा। नागकुमारने शीघ्र जाकर उन सबसे कहा—'तुम सब लोग महाराज इन्द्रसेनको अविलम्ब कारागृहसे मुक्त करो और सिंहासन छोड़कर हट जाओ। महाराजके पुत्र चन्द्रांगद पाताललोकसे लौटकर यहाँ आये हैं। तुम आनाकानी न करो, नहीं तो चन्द्रांगदके बाण तुम्हारे प्राण हर लेंगे। वे यमुनाजीके जलमें डूबकर नागराज तक्षकके घर जा पहुँचे थे। वहाँसे उनकी सहायता पाकर पुनः इस लोकमें लौटे हैं।'

नागकुमारकी कही हुई ये सारी बातें सुनकर शत्रुओंने भी 'बहुत अच्छा, बहुत अच्छा' कहकर उनकी आज्ञा स्वीकार की और महाराज इन्द्रसेनको उनके खोये हुए पुत्रके पुनः लौट आनेका समाचार बताकर उनका सिंहासन उन्हें लौटा दिया। महाराजको प्रसन्न करके भी वे लोग भयभीत बने रहे।

मेरा पुत्र आ रहा है, यह बात सुनकर राजा प्रेमके आँसू बहाते हुए आनन्दमें डूब गये। यही दशा महारानीकी भी थी। तदनन्तर सब नागरिक, वृद्ध मन्त्री और पुरोहित आगे जाकर चन्द्रांगदसे मिले और उन्हें हृदयसे लगाकर महाराजके समीप ले आये। अपने भवनमें प्रवेश करके अश्रुवर्षा करते हुए राजकुमारने माता-पिताके चरणोंमें प्रणाम किया। चरणोंमें पड़े हुए पुत्रको उठाकर राजाने अश्रुसिक्त हृदयसे लगा लिया। फिर क्रमशः सब माताओंको प्रणाम करके उनका आशीर्वाद ले राजकुमार पुरवासियोंसे मिले और उन्होंने सबको यथायोग्य सम्मान दिया। पुनः सबके साथ राजसभामें बैठकर अपना सब वृत्तान्त पितासे निवेदन किया और नागराज तक्षकसे मित्रता होनेकी भी बात बतलायी। राजकुमारका चरित्र देख और सुनकर राजा इन्द्रसेन हर्षसे विह्वल हो गये। उन्होंने अपने मनमें यही माना कि मेरी पुत्रवधूने भगवान् महेश्वरकी आराधना करके इस अनुपम सौभाग्यका

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

अर्जन किया है। निषधराजने यह मंगलमयी वार्ता दूतोंके द्वारा महाराज चित्रवर्माको भी कहला दी। यह अमृतमयी वार्ता सुनकर महाराज चित्रवर्मा आनन्दसे विह्वल हो गये और बड़े वेगसे उठकर उन्होंने सन्देशवाहकोंको उपहारमें बहुत धन दिया। फिर अपनी पुत्रीको बुलाकर उन्होंने उससे वैधव्यके चिह्नोंका परित्याग करवाया और उसे नाना प्रकारके आभूषणोंसे विभूषित किया। तत्पश्चात् समूचे राष्ट्रके गाँव और नगर आदिमें बड़ा भारी उत्सव हुआ और सब लोगोंने राजकुमारी सीमन्तिनीके सदाचारकी बड़ी प्रशंसा की। चित्रवर्माने इन्द्रसेनके पुत्र चन्द्रांगदको बुलाकर सीमन्तिनीको उनके साथ विदा कर दिया। चन्द्रांगदने तक्षकके घरसे लाये हुए रत्न आदि आभूषणोंके द्वारा, जो मानवमात्रके लिये अत्यन्त दुर्लभ हैं, अपनी पत्नीको अलंकृत किया। तपे हुए सुवर्णके समान सुशोभित चालीस कोसतक जानेवाली सुगन्धसे युक्त दिव्य अंगरागसे सीमन्तिनीकी बड़ी शोभा हो रही थी। कमलके केसरके समान रंगवाले कल्पवृक्षके पुष्पोंसे बनी हुई और कभी न कुम्हलानेवाली माला भी सती सीमन्तिनीकी शोभा बढ़ा रही थी। इस प्रकार शुभ मुहूर्तमें अपनी पत्नीको साथ लेकर श्वशुरकी आज्ञासे चन्द्रांगद पुनः अपनी नगरीमें आये। महाराज इन्द्रसेनने अपने पुत्रको राजसिंहासनपर बिठाकर तपस्याद्वारा भगवान् शिवकी आराधना करके योगी पुरुषोंको उपलब्ध होनेवाली उत्तम गति प्राप्त की। राजा चन्द्रांगदने अपनी धर्मपत्नी सीमन्तिनीके साथ दस हजार वर्षोंतक नाना प्रकारके विषयोंका उपभोग किया। उन्होंने आठ पुत्रों और एक कन्याको जन्म दिया। सीमन्तिनी प्रतिदिन भगवान् महेश्वरकी पूजा करती हुई अपने स्वामीके साथ सुखपूर्वक रहने लगी। उसने सोमवारव्रतके प्रभावसे अपना खोया हुआ सौभाग्य प्राप्त कर लिया।

त्यागी हुई रानी और राजकुमारकी वैश्य एवं शिवयोगीद्वारा रक्षा तथा शिवयोगीका राजपुत्रको धर्मका उपदेश करना

सूतजी कहते हैं—एक समय दशार्णदेशके राजा वज्रबाहुकी पत्नी सुमति अपने नवजात शिशुके साथ असाध्य रोगकी शिकार हो गयी थी; इसलिये दुष्टबुद्धि राजाने उसे वनमें त्याग दिया। वहाँ अनेक प्रकारके कष्ट भोगती हुई वह यत्नपूर्वक आगे बढ़ने लगी। बहुत दूर जानेपर उसने वैश्योंका एक नगर देखा, जिसमें बहुत-से स्त्री-पुरुष निवास करते थे। उस नगरका रक्षक एक बहुत बड़ा महाजन वैश्य था, जो पद्माकरके नामसे प्रसिद्ध था। वह दूसरे कुबेरके समान धनवान् था। उस वैश्यराजके घरमें सेवा-टहलका कार्य करनेवाली कोई दासी उधर ही आ रही थी। वह दूरसे ही राजपत्नीको देखकर उनके समीप आयी। उसने रानीको देखते ही उसका सारा हाल जान लिया। वह पुत्रसहित अत्यन्त कष्ट भोग रही थी। दासीने अपने स्वामीको उस स्त्रीका दर्शन कराया। वैश्यराजने रोगी पुत्रके साथ स्वयं भी रोगसे पीड़ित हुई राजपत्नीको एकान्तमें बुलाकर उसका सब वृत्तान्त पूछा और सब बात जान लेनेपर अपने घरके पास ही एकान्त गृहमें उसे ठहराया। अन्न, वस्त्र, जल और शय्या आदिका प्रबन्ध करके वैश्यने माताके समान उसका आदर किया। उस घरमें सुरक्षित होकर निवास करती हुई राजपत्नीके व्रण और यक्ष्मा आदि रोगोंकी शान्ति नहीं हुई। कुछ ही दिनोंमें रानीका पुत्र घावसे पीड़ित होकर वैद्योंकी चिकित्साशक्तिसे परे जा पहुँचा और मृत्युको प्राप्त हो गया। पुत्रके मरनेपर रानी महान्

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

शोकसे ग्रस्त हो मूर्च्छित हो गयी और टूटी हुई लताके समान धरतीपर गिर पड़ी। फिर सचेत होनेपर वैश्योंकी स्त्रियोंने उसे बहुत समझाया तथापि वह अत्यन्त दुःखित हो विलाप करने लगी—'हा पुत्र! बन्धु-बान्धवोंसे त्यागी हुई अपनी इस दीन एवं अनाथ माताको छोड़कर तुम कहाँ चले गये।' जब वह इस प्रकार विलाप कर रही थी, उसी समय ऋषभ नामसे प्रसिद्ध शिवयोगी वहाँ आ पहुँचे। वैश्यराजने अर्घ्य देकर उनका सत्कार किया। तत्पश्चात् वे शोकग्रस्त राजपत्नीके समीप जाकर इस प्रकार बोले— 'बेटी! तुम इतनी क्यों रो रही हो? संसारमें किसका जन्म हुआ और कौन मृत्युको प्राप्त हुआ। ये शरीर आदि जलके फेनके समान क्षणभंगुर हैं। कभी इनकी प्रतीतिका भ्रम होता है, कभी ये शान्त हो जाते हैं और कभी पुनः इनकी स्थिति होती है। अतः फेनके समान इस शरीरकी मृत्यु होनेपर विद्वान् पुरुष शोक नहीं करते। सत्त्व आदि तीनों गुण मायासे उत्पन्न होते हैं। उन्हीं तीनों गुणोंसे शरीरकी उत्पत्ति हुई है। अतः सबके शरीर त्रिगुणमय ही हैं। सत्त्वगुणकी अधिकता होनेसे जीव देवयोनिको प्राप्त होता है, रजोगुणसे मानवयोनिमें जन्म लेता है और तमोगुणकी अधिकतासे अपनी वासनाके अनुसार वह पशु-पक्षी आदि योनिमें उत्पन्न होता है। वर्तमान संसारमें जीव अपने कर्मोंके बन्धनसे बँधकर बार-बार ऐसी सुख-दुःखमयी अवस्थाको प्राप्त होता है, जिसका अनुमान करना अत्यन्त कठिन है। जिनकी आयु एक कल्पतककी मानी गयी है, ऐसे देवताओंकी स्थितिमें भी उलट-फेर होता रहता है। फिर जो अनेक प्रकारके रोगोंसे ग्रस्त हैं, ऐसे मानव-देहधारी प्राणियोंकी तो बात ही क्या है? कोई कालको ही इस शरीरकी उत्पत्तिमें कारण बताते हैं, कोई कर्मको और कोई गुणोंको हेतु मानते हैं। वस्तुतः काल, कर्म और गुण तीनोंसे ही शरीरका आधान हुआ है। यह पांचभौतिक शरीर उत्पन्न हो या मरे, इसे देखकर विद्वान् पुरुष हर्ष और शोक नहीं करते। जीव अव्यक्तसे उत्पन्न होता और अव्यक्तमें ही लीन होता है, केवल मध्यकालमें जलके बुलबुलेकी भाँति व्यक्त-सा प्रतीत होता है। जीव जब गर्भमें आता है, उसी समय उसकी मृत्यु निश्चित हो जाती है। वह दैववश जन्म लेकर जीवित रहता है अथवा जन्म लेते ही सहसा उसकी मृत्यु हो जाती है। कितने ही जीव गर्भमें ही नष्ट हो जाते हैं, कुछ जन्म लेनेपर तत्काल मर जाते हैं, कुछ जवान होनेपर मृत्युको प्राप्त होते हैं, और कुछ बुढ़ापेमें परलोकगामी होते हैं। पहलेका कर्म जैसा होता है, वैसा ही शरीर जीवको प्राप्त होता है तथा वह कर्मोंके अनुसार ही सुख-दुःख भोगता है। विधाताके द्वारा ललाटमें लिखी हुई आयु, सुख, दुःख, विद्या और धनको लिये हुए जीव जन्म लेता है। कर्मोंका उल्लंघन करना असम्भव है। कालका भी अतिक्रमण करना किसीके लिये सम्भव नहीं है। जगत्के समस्त पदार्थ अनित्य हैं। इसलिये तुम्हें शोक नहीं करना चाहिये। स्वप्नके पदार्थोंमें नियमपूर्वक स्थिरता कहाँ है? इन्द्रजालमें सच्चाई कहाँ है? शरद्-ऋतुके बादलोंमें चिरस्थायिता कहाँ है और प्राणियोंके शरीरमें नित्यता कहाँ है?* अबतक तुम्हारे सौ कोटि अयुत (दस हजार) जन्म व्यतीत हो चुके हैं। अब तुम्हीं बताओ, तुम किसकी-किसकी पुत्री हो, किसकी-किसकी माता हो और किसकी-किसकी पत्नी हो? यह शरीर पाँच भूतोंका बना हुआ है। यह त्वचा, रक्त और मांससे बँधा हुआ है। मेदा, मज्जा और हड्डियोंका समूह है तथा मल-मूत्र और

* क्व स्वप्ने नियतं स्थैर्यमिन्द्रजाले क्व सत्यता। क्व नित्यता शरन्मेघे क्व शश्वत्त्वं कलेवरे॥ (स्क० पु०, ब्रा० ब्रह्मो० १०। ६४)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

कफका भाजन है। मोहमें पड़ी हुई नारी! यह जो तुम्हारे पास दूसरा शरीर (तुम्हारे पुत्रका शव) पड़ा हुआ है, इस अपने पुत्रको भी अपने शरीरसे निकला हुआ मल समझकर तुम्हें शोक नहीं करना चाहिये। कोई पण्डित भी अपनी तपस्या, विद्या, बुद्धि, मन्त्र, ओषधि तथा रसायनसे मृत्युका उल्लंघन नहीं कर सकता*। सुमुखि! आज एक जीवकी मृत्यु होती है तो कल दूसरेकी। अत: इस अनित्य शरीरके लिये तुम्हें शोक नहीं करना चाहिये। मृत्यु सदा समीप ही रहती है। फिर बताओ, देहधारियोंको क्या सुख है? अत: यदि तुम जन्म, बुढ़ापा और मृत्युको जीतना चाहती हो तो मृत्युको जीतनेवाले सबके ईश्वर भगवान् उमापतिकी शरणमें जाओ। तभीतक मृत्युका घोर भय है तथा जन्म और जरावस्थाका भय है, जबतक कि जीव भगवान् शिवके चरणारविन्दोंकी शरणमें नहीं जाता। अत्यन्त भयंकर संसारमें नाना प्रकारके दु:खोंका अनुभव करके मनुष्यका मन जब उसकी ओरसे विरक्त हो जाता है, उस समय उसे भगवान् महेश्वरका ध्यान करना चाहिये। जो मनसे भगवान् शिवके ध्यानरूपी रसामृतका पान करता है, उस पुरुषको फिर संसारकी विषयरूपी मदिराको पीनेकी तृष्णा नहीं होती। जब सब प्रकारकी आसक्तियोंसे छूटा हुआ मन वैराग्यके अधीन हो भगवान् शिवके चरणोंके चिन्तनमें मग्न हो जाता है, तब मनुष्यका इस संसारमें फिर जन्म नहीं होता है। भद्रे! यह मन भगवान् शिवके ध्यानका एकमात्र साधन है, उसे शोक और मोहमें न डुबाओ। शिवजीका भजन करो।'

इस प्रकार शिवयोगीने अनुनयपूर्वक जब रानीको समझाया तब उसने उन्हींको गुरु मानकर उनके चरणकमलोंमें प्रणाम करके कहा— भगवन्! जिसका एकमात्र पुत्र मर गया हो, जिसे प्रिय बन्धुओंने त्याग दिया हो तथा जो महान् रोगसे अत्यन्त पीड़ित रहती हो, ऐसी मुझ अभागिनीके लिये मृत्युके सिवा दूसरी कौन गति है? इसलिये मैं इस शिशुके साथ ही प्राण त्याग देना चाहती हूँ। मृत्युके समय जो आपका दर्शन हो गया, मैं इतनेसे ही कृतार्थ हूँ।

रानीकी यह बात सुनकर दयानिधान शिवयोगी मरे हुए बालकके पास आये और शिवमन्त्रसे अभिमन्त्रित भस्म लेकर उसके मुँहमें डाल दिया। विभूतिके पड़ते ही वह मरा हुआ बालक प्राणयुक्त हो गया। प्राण लौट आनेपर बालकने आँखें खोल दीं। उसकी इन्द्रियोंमें पूर्ववत् शक्ति आ गयी और वह दूध पीनेकी इच्छासे रोने लगा। तब नेत्रोंसे आनन्दके आँसू बहाती हुई रानीने झपटकर बालकको गोदमें उठा लिया और उसे छातीसे चिपकाकर वह अपूर्व आनन्दमें डूब गयी। तत्पश्चात् शिवयोगीने माता और बालकके विषैले घावोंसे युक्त शरीरमें भस्मका स्पर्श कराया। इससे उन दोनोंके शरीर दिव्य हो गये। उन्होंने देवताओंके समान कान्तिमान् स्वरूप धारण कर लिया। तत्पश्चात् ऋषभने रानीसे कहा—'बेटी! तुम दीर्घकालतक जीवित रहो। जबतक इस संसारमें जीवित रहोगी, तबतक वृद्धावस्था तुम्हारा स्पर्श नहीं कर सकेगी। साध्वी! तुम्हारा यह पुत्र लोकमें भद्रायु नामसे विख्यात होगा और अपना राज्य प्राप्त कर लेगा। तबतक तुम इन्हीं वैश्यराजके घरमें निवास करो, जबतक कि तुम्हारा पुत्र पूर्ण विद्वान् न हो जाय।'

इस प्रकार ऋषभ योगीने भस्मकी शक्तिसे मरे हुए राजकुमारको जीवित करके अपने अभीष्ट स्थानको प्रस्थान किया। भद्रायु उन्हीं वैश्यराजके घरमें क्रमश: बढ़ने लगा। वैश्यके भी 'सुनय' नामक एक पुत्र था, जो राजकुमारका

* तपसा विद्यया बुद्ध्या मन्त्रौषधिरसायनै:। अतियाति परं मृत्युं न कश्चिदपि पण्डित:॥ (स्क० पु०, ब्रा० ब्रह्मो० १०। ७०)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

सखा हुआ। राजकुमार और वैश्यकुमार दोनों परस्पर बड़ा स्नेह रखते थे। वैश्यराजने विद्वान् ब्राह्मणोंके द्वारा राजकुमार और अपने पुत्रका भी संस्कार विस्तारपूर्वक करवाया। समयपर उपनयन-संस्कार हो जानेके पश्चात् दोनों बालकोंने गुरुसेवामें तत्पर हो विनयपूर्वक सम्पूर्ण विद्याओंका संग्रह किया। तदनन्तर जब राजकुमारका सोलहवाँ वर्ष लगा, तब वे ही ऋषभ योगी पुन: वैश्यराजके घर आये। रानी और राजकुमारने बड़े हर्षके साथ उनको बार-बार प्रणाम करके उनकी

यथायोग्य पूजा की। उन दोनोंसे पूजित होनेपर योगीश्वर शिवयोगीने कहा—'बेटा! तुम कुशलसे तो हो न? तुम्हारी माताको भी कोई कष्ट तो नहीं है? क्या तुमने सब विद्याओंका अध्ययन कर लिया? गुरुजनोंकी सेवामें सदा संलग्न रहते हो न? वत्स! क्या मुझ प्राणदाता गुरुका कभी स्मरण करते हो?'

योगीश्वर ऋषभके ऐसा कहते समय विनय-शीला रानीने अपने पुत्रको उनके चरणोंमें डाल दिया और कहा—गुरुदेव! यह आपका ही पुत्र है। आप ही इसके प्राणदाता पिता हैं। आप दया करके अपने इस शिष्यको अनुगृहीत करें और इसे सत्पुरुषोंके उत्तम मार्ग—शुभ कर्मका उपदेश दें। रानीके द्वारा इस प्रकार प्रसन्न कराये जानेपर परम बुद्धिमान् शिवयोगीने राजकुमारको सन्मार्गका उपदेश दिया।

ऋषभ बोले—वेद, स्मृति और पुराणोंमें जिसका उपदेश किया गया है, वही सनातन धर्म है। सब लोगोंको चाहिये कि अपने-अपने वर्ण और आश्रमके अनुसार सदा शास्त्रोक्त धर्मका सेवन करें। वत्स! तुम सदा सत्पुरुषोंके मार्गपर चलो। उत्तम आचारका ही पालन करो। देवताओंकी आज्ञाका कभी उल्लंघन न करो, देवताओंकी अवहेलना भी न करो। गौ, देवता, गुरु और ब्राह्मणके प्रति सदा भक्तिभाव रखो। अतिथिके रूपमें चाण्डाल भी अपने घर आ जाय, तो सदा उसका सत्कार करो। अपने प्राणोंपर संकट आ जाय तो भी सत्यका परित्याग न करो। महाबाहो! पराये धनकी, परायी स्त्रीकी, देवता तथा ब्राह्मणकी वस्तुओंकी और अत्यन्त दुर्लभ पदार्थोंकी भी तृष्णा त्याग दो। महामते! सदा उत्तम कथा, उत्तम आचार, उत्तम व्रत, सत्पुरुषोंके आगमन तथा धर्म आदिके संग्रहकी ही अभिलाषा करो। स्नान, जप, होम, स्वाध्याय, पितृतर्पण, गोपूजा, देवपूजा और अतिथिपूजामें कभी आलस्यको समीप न आने दो। क्रोध, द्वेष, भय, शठता, चुगली, अनुचित आग्रह, कुटिलता, दम्भ और उद्वेगका यत्नपूर्वक त्याग करो। अकारण वैर, व्यर्थकी बकवाद और दूसरोंकी निन्दा छोड़ दो। मृगया, द्यूतक्रीडा, मद्यपान, स्त्री और स्त्रीलम्पट पुरुष—इन सबके संगका परित्याग करो। अधिक भोजन, अधिक परिश्रम, अधिक बातचीत और अधिक खेल-कूद तथा क्रीडा-विलासको सदाके लिये छोड़ दो। अधिक विद्या, अधिक श्रद्धा, अधिक पुण्य, अधिक स्मरण, अधिक उत्साह, अधिक प्रसिद्धि और अधिक धैर्य जैसे भी प्राप्त

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

हो, उसके लिये सदा चेष्टा करो। अपनी ही पत्नीके प्रति सकाम बनो। अपने शत्रुओंपर ही क्रोध करो। पुण्यराशिके संग्रहके लिये ही लोभ करो। पापाचारियोंके प्रति ही असूया (दोषदृष्टि) करो। पाखण्डियोंके प्रति द्वेष तथा साधुपुरुषोंके प्रति राग रखो। बुरी सलाहको समझानेमें और ग्रहण करनेमें मूर्ख बने रहो। चुगुलोंकी बातें अनसुनी करनेके लिये बहरे हो जाओ। धूर्त, अत्यन्त क्रोधी, शठ, क्रूर, छली, चंचल, दुष्ट, पतित, नास्तिक और कुटिल मनुष्यको दूरसे ही त्याग दो। अपनी प्रशंसा न करो। दूसरोंकी चेष्टाओं और इशारोंको समझो। धन और कुटुम्बमें अधिक आसक्ति न रखो। पतिव्रता पत्नी, माता, श्वशुर, साधु पुरुष और गुरुके वचनोंमें सदा विश्वास करो। अपनी रक्षामें तत्पर होकर सदा सावधान रहो। उत्तम व्रतका पालन करो। अपने सेवकोंपर भी कभी पूर्ण विश्वास न करो। महामते! जो तुम्हारा विश्वासपात्र रहा हो ऐसा कोई पुरुष यदि चोरीमें भी पकड़ा जाय, तो उसे प्राणदण्ड न दो। पापरहित मनुष्योंपर सन्देह न करो। सत्यसे विचलित न होओ। अनाथ, दीन, वृद्ध, स्त्री, बालक और निरपराध मनुष्यकी धनसे, बुद्धिसे, शक्तिसे, बलसे तथा अपने प्राणोंद्वारा भी रक्षा करो। वध करने योग्य शत्रु भी यदि शरणमें आ जाय तो उसे न मारो। माता-पिता और गुरुके कोपसे बचो। धनका व्यय, पुत्रों तथा ब्राह्मणोंका अपराध सहन करो। जिस प्रकार ब्राह्मण प्रसन्न हों, वैसा उनका हित करो। क्योंकि श्रेष्ठ द्विज संकटमें पड़े हुए राजाका उस संकटसे उद्धार करते हैं। आयु, यश, बल, सुख, धन, पुण्य और प्रजाजनोंकी उन्नति—यह सब जिस सत्कर्मसे सम्भव हो, उसका सदा सेवन करना चाहिये। देश, काल, शक्ति, कर्तव्य, अकर्तव्यका भलीभाँति विचार करके सदा यत्नपूर्वक कर्म करो। स्वयं किसीको बाधा न पहुँचाओ। दूसरोंकी बाधाका निवारण करो। उत्तम नीति और शक्तिसे चोरों तथा दुष्टोंका दमन करो। स्नान, जप, होम, देवपूजा तथा श्राद्धकर्ममें उतावली न करो। नींद लेने और भोजनमें शीघ्रता करो। उदारतायुक्त, शठतासे रहित, सत्य, मनुष्योंके मनको प्रिय लगनेवाली तथा थोड़ेसे अक्षर और अधिक अर्थवाली बात बोलो। कहीं भी भय न करो। शत्रुओं और विपत्तियोंमें पड़कर भी निडर बने रहो। ब्राह्मणकुल, गुरुकी आज्ञा तथा पापाचरणसे डरो। कुटुम्बीजनों, भाई-बन्धुओं, ब्राह्मणों, पत्नियों, पुत्रों तथा भोजनकी पंक्तियोंमें समतापूर्ण बर्ताव करो। सत्पुरुषोंके हितकारक उपदेशों, पुण्य कथाओं, विद्या-गोष्ठियों तथा धर्मचर्चाओंसे कभी मुँह न मोड़ो। जलके निकट, सर्वत्र विख्यात, ब्राह्मणोंके निवाससे युक्त, परम पवित्र तथा कल्याणमय प्रशस्त स्थानमें सदा निवास करो। जहाँ कुलटाएँ और वेश्याएँ रहती हों, जहाँ कामलम्पट पुरुषोंका निवास हो, ऐसे नीच जनसेवित दूषित स्थानमें तुम कभी निवास न करो। त्रिभुवनके स्वामी एकमात्र भगवान् शिवकी शरण लेकर भी तुम सभी देवताओंकी यथासमय उपासना करते रहो और उनके दिनों (तत्सम्बन्धी तिथियों)-का भी समादर करो। वत्स! तुम सदा पवित्र, सदा दक्ष, सदा शान्त, सदा स्थिर, सदा काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य—इन छहों शत्रुओंको जीतनेवाले तथा सदा एकान्तवासी बनो। वेदवेत्ता ब्राह्मण, नियमोंसे प्रकाशित होनेवाले शान्त संन्यासी, पुण्य वृक्ष, पुण्य नदी, पुण्य तीर्थ, महासरोवर, धेनु, वृषभ, पतिव्रता स्त्री तथा अपने घरके देवताओंको उनके पास जाते ही सहसा नमस्कार करो।

ब्राह्म मुहूर्तमें उठकर भलीभाँति आचमन करके तुम पहले अपने गुरुजीको प्रणाम करो। तत्पश्चात् उमापति भगवान् शिवका ध्यान करके लक्ष्मीपति नारायण, ब्रह्मा, गणेश, स्कन्द, कात्यायनी देवी, महालक्ष्मी, सरस्वती, इन्द्र आदि लोकपाल तथा पुण्यश्लोक (पवित्र यशवाले) महर्षियोंका चिन्तन

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

करो। उसके बाद उदयकालमें सदा भगवान् सूर्यको प्रणाम करो। गन्ध, पुष्प, ताम्बूल, शाक और पके फल आदि भक्ष्य-भोज्य प्रिय एवं नूतन पदार्थ पहले भगवान् शिवको अर्पण करके फिर प्रसादरूपसे उसका उपभोग करो। जो कुछ दान, सत्कर्म, जप, स्नान, होम, चिन्तन तथा तप तुम्हारे द्वारा किया जाय, वह सब भगवान् शिवको समर्पित कर दो। खाते, पाठ करते, सोते, घूमते, देखते, सुनते, बोलते और ग्रहण करते समय सदा भगवान् शिवका ही चिन्तन करो। प्रतिदिन मन्त्रराज पंचाक्षरका जप और ध्यान करते हुए सदा भगवान् सदाशिवके चरणोंमें अपने मनको रमाते रहो। वत्स! यह संक्षेपसे तुम्हारे लिये धर्मका उपदेश किया गया है।

शिवयोगीसे शिव-कवचका उपदेश और दिव्य खड्ग एवं शंख पाकर भद्रायुका शत्रुओंको जीतना तथा निषधराजकी पुत्रीसे उसका विवाह

ऋषभ शिवयोगी कहते हैं—हे भद्रायु! पवित्र स्थानमें यथायोग्य आसन बिछाकर बैठे। इन्द्रियोंको अपने वशमें करके प्राणायामपूर्वक अविनाशी भगवान् शिवका चिन्तन करे। परमानन्दमय भगवान् महेश्वर हृदय-कमलके भीतरकी कर्णिकामें विराजमान हैं। उन्होंने अपने तेजसे आकाशमण्डलको व्याप्त कर रखा है। वे इन्द्रियातीत, सूक्ष्म, अनन्त एवं सबके आदि कारण हैं। इस प्रकार ध्यानके द्वारा समस्त कर्मबन्धनका नाश करके चिरकालतक चिदानन्दमय भगवान् सदाशिवमें अपने चित्तको लगाये रहे। फिर षडक्षरन्यासके द्वारा अपने मनको एकाग्र करके मनुष्य (निम्नलिखित) शिवकवचके द्वारा अपनी रक्षा करे।

'सर्वदेवमय महादेवजी गहरे संसार-कूपमें गिरे हुए मुझ असहायकी रक्षा करें। उनका दिव्य नाम मेरे समस्त हृदयस्थित पापोंका नाश करे। सम्पूर्ण विश्व जिनकी मूर्ति है, जो ज्योतिर्मय आनन्दघनस्वरूप चिदात्मा हैं, वे भगवान् शिव मेरी सर्वत्र रक्षा करें। जो सूक्ष्मसे भी अत्यन्त सूक्ष्म हैं, महान् शक्तिसे सम्पन्न हैं, वे 'ईश्वर' महादेवजी सम्पूर्ण भयोंसे मेरी रक्षा करें। जिन्होंने पृथ्वीके रूपमें इस विश्वको धारण कर रखा है, वे अष्टमूर्ति 'गिरीश' पृथ्वीसे मेरी रक्षा करें। जो जलके रूपमें जीवोंको जीवन-दान दे रहे हैं, वे जलसे मेरी रक्षा करें। जो विशद लीलाविहारी 'शिव' कल्पके अन्तमें समस्त भुवनोंको विदग्ध करके आनन्दसे नृत्य करते हैं, वे कालरुद्र भगवान् दावानलसे, आँधी-तूफानोंसे और समस्त तापोंसे मेरी रक्षा करें। प्रदीप्त विद्युत् एवं स्वर्णके सदृश जिनकी कान्ति है, विद्या, वर, अभय (मुद्रा) और कुठार जिनके करकमलोंमें सुशोभित हैं, जो चतुर्मुख और त्रिलोचन हैं, वे 'सत्पुरुष' भगवान् पूर्व दिशामें निरन्तर मेरी रक्षा करें। जो कुठार, वेद, अंकुश, पाश, शूल, कपाल, नगाड़ा और रुद्राक्षकी मालाको धारण किये हुए हैं, जो चतुर्मुख हैं, वे नीलरुचि, त्रिनेत्र 'अघोर' भगवान् दक्षिण दिशामें मेरी रक्षा करें। कुन्द, चन्द्रमा, शंख और स्फटिकके समान जिनकी उज्ज्वल कान्ति है, वेद, रुद्राक्षमाला, वर और अभय (मुद्रा)-से जो सुशोभित हैं, वे महाप्रभावशाली चतुरानन, त्रिलोचन 'सद्योधिजात' भगवान् पश्चिम दिशामें मेरी रक्षा करें। जिनके हाथोंमें वर, अभय (मुद्रा), रुद्राक्षमाला और टाँकी विराजमान है, कमल-किंजल्कके सदृश जिनका वर्ण है, वे चतुर्मुख त्रिनेत्र 'वामदेव'

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

भगवान् उत्तर दिशामें मेरी रक्षा करें। जिनके करकमलोंमें वेद, अभय, वर, अंकुश, टाँकी, पाश, कपाल, नगाड़ा, रुद्राक्षमाला और शूल सुशोभित हैं, जो सितद्युति हैं, वे परम प्रकाशरूप पंचमुख 'ईशान' भगवान् मेरी ऊपरसे रक्षा करें। भगवान् 'चन्द्रमौलि' मेरे सिरकी, 'भालनेत्र' मेरे भालकी, 'भगनेत्रहारी' मेरे नेत्रोंकी, 'विश्वनाथ' मेरी नासिकाकी, 'श्रुतिगीतकीर्ति' कानोंकी, 'पंचमुख' मुखकी, 'वेदजिह्व' जीभकी, 'गिरीश' गलेकी, 'नीलकण्ठ' दोनों हाथोंकी, 'धर्मबाहु' कन्धोंकी, 'दक्षयज्ञ-विध्वंसी' वक्ष:स्थलकी, 'गिरीन्द्रधन्वा' पेटकी, 'कामदेवके नाशक' मध्यदेशकी, 'गणेशजीके पिता' नाभिकी, 'धूर्जटि' कटिकी, 'कुबेरमित्र' दोनों पिण्डलियोंकी, 'जगदीश्वर' दोनों घुटनोंकी, 'पुंगवकेतु' दोनों जाँघोंकी और 'सुरवन्द्यचरण' मेरे पैरोंकी सदैव रक्षा करें। 'महेश्वर' दिनके पहले प्रहरमें मेरी रक्षा करें। 'वामदेव' मध्यके प्रहरमें, 'त्र्यम्बक' तीसरे प्रहरमें और 'वृषभध्वज' दिनके अन्तवाले प्रहरमें मेरी रक्षा करें। 'शशिशेखर' रात्रिके आरम्भमें, 'गंगाधर' अर्धरात्रिमें, 'गौरीपति' रात्रिके अन्तमें और 'मृत्युंजय' सर्वकालमें मेरी रक्षा करें। 'शंकर' अन्त:स्थित अवस्थामें मेरी रक्षा करें। 'स्थाणु' बहि:स्थित रक्षा करें। 'पशुपति' बीचमें रक्षा करें और 'सदाशिव' सब ओर मेरी रक्षा करें। 'भुवनैकनाथ' खड़े होनेके समय, 'प्रमथनाथ' चलते समय, 'वेदान्तवेद्य' बैठे रहते समय और 'अविनाशी शिव' सोते समय मेरी रक्षा करें। 'नीलकण्ठ' रास्तेमें मेरी रक्षा करें। 'त्रिपुरारी' शैलादि दुर्गोंमें और उदारशक्ति 'मृगव्याध' वनवासादि महान् प्रवासोंमें मेरी रक्षा करें। जिनका प्रबल क्रोध कल्पोंका अन्त करनेमें अत्यन्त पटु है, जिनके प्रचण्ड अट्टहास्यसे ब्रह्माण्ड काँप उठता है, वे 'वीरभद्रजी' समुद्रके सदृश भयानक शत्रुसेनाके दुर्निवार महान् भयसे मेरी रक्षा करें। भगवान् 'मृड' मुझपर आततायीरूपसे आक्रमण करनेवालोंकी हजारों, दस हजारों, लाखों और करोड़ों पैदलों, घोड़ों, हाथियों और रथोंसे युक्त अति भीषण सैकड़ों अक्षौहिणी सेनाओंका अपनी घोर कुठार-धारसे छेदन करें। भगवान् 'त्रिपुरान्तक'का प्रलयाग्निके समान ज्वालाओंसे युक्त जलता हुआ त्रिशूल मेरे दस्युदलका विनाश कर दे और उनका पिनाक धनुष शार्दूल, सिंह, रीछ और भेड़िया आदि हिंस्र जन्तुओंको सन्त्रस्त करे। वे जगदीश्वर मेरे बुरे स्वप्न, बुरे शकुन, बुरी गति, मनकी दुष्ट भावना, दुर्भिक्ष, दुर्व्यसन, दु:सह अपयश, उत्पात, सन्ताप, विषभय, दुष्ट ग्रहोंके दु:ख तथा समस्त रोगोंका नाश करें।'

''सम्पूर्ण तत्त्व जिनके स्वरूप हैं, जो सम्पूर्ण तत्त्वोंमें विचरण करनेवाले, समस्त लोकोंके एकमात्र कर्ता और सम्पूर्ण विश्वके एकमात्र भरण-पोषण करनेवाले हैं, जो अखिल विश्वके एक ही संहारकारी, सब लोकोंके एकमात्र गुरु, समस्त संसारके एक ही साक्षी, सम्पूर्ण वेदोंके गूढ़ तत्त्व, सबको वर देनेवाले, समस्त पापों और पीड़ाओंका नाश करनेवाले, सारे संसारको अभय देनेवाले, सब लोगोंके एकमात्र कल्याणकारी, चन्द्रमाका मुकुट धारण करनेवाले, अपने सनातन प्रकाशसे प्रकाशित होनेवाले, निर्गुण, उपमारहित, निराकार, निराभास, निरामय, निष्प्रपंच, निष्कलंक, निर्द्वन्द्व, नि:संग, निर्मल, गतिशून्य, नित्यरूप, नित्यवैभवसे सम्पन्न, अनुपम ऐश्वर्यसे सुशोभित, आधारशून्य, नित्य, शुद्ध-बुद्ध, परिपूर्ण, सच्चिदानन्दघन, अद्वितीय तथा परम शान्त, प्रकाशमय, तेजस्वरूप हैं, उन भगवान् सदाशिवको नमस्कार है। हे महारुद्र! महारौद्र, भद्रावतार, दु:खदावाग्नि-विदारण, महाभैरव, कालभैरव कल्पान्तभैरव, कपालमालाधारी! हे खट्वांग, खड्ग, ढाल, पाश, अंकुश, डमरू, शूल, धनुष, बाण, गदा, शक्ति, भिन्दिपाल, तोमर, मुशल, मुद्गर, पट्टिश, परशु, परिघ, भुशुण्डि, शतघ्नी और चक्र आदि आयुधोंके द्वारा भयंकर हजार हाथोंवाली!

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

हे मुखदंष्ट्राकराल, विकटअट्टहास्य-विस्फारित-ब्रह्माण्डमण्डल, नागेन्द्रकुण्डल, नागेन्द्रवलय, नागेन्द्रचर्मधर, मृत्युंजय, त्र्यम्बक, त्रिपुरान्तक, विरूपाक्ष विश्वेश्वर, विश्वरूप, वृषवाहन, विधुभूषण और विश्वतोमुख! आपकी जय हो, जय हो। आप मेरी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये। मेरे महामृत्यु-भयको जला दीजिये, जला दीजिये। अपमृत्युका नाश कीजिये, नाश कीजिये। (बाहरी और भीतरी) रोग-भयको जड़से मिटा दीजिये, जड़से मिटा दीजिये। सर्पविष-भयको शान्त कीजिये, शान्त कीजिये। चोर-भयको मार डालिये, मार डालिये। मेरे (काम-क्रोध-लोभादि भीतरी तथा इन्द्रियोंके और शरीरके द्वारा होनेवाले पाप-कर्मरूपी बाहरी) शत्रुओंको उच्चाटन कीजिये, उच्चाटन कीजिये। शूलके द्वारा विदारण कीजिये, विदारण कीजिये। कुठारके द्वारा काट डालिये, काट डालिये। खड्गके द्वारा छेद डालिये, छेद डालिये। खट्वांगके द्वारा नाश कीजिये, नाश कीजिये। मुशलके द्वारा पीस डालिये, पीस डालिये और बाणोंके द्वारा बींध डालिये, बींध डालिये। आप मेरी हिंसा करनेवाले राक्षसोंको भय दिखाइये, भय दिखाइये। भूतोंका विदारण कीजिये, विदारण कीजिये। कूष्माण्ड, बेताल, मारियों और ब्रह्मराक्षसोंको सन्त्रस्त कीजिये, सन्त्रस्त कीजिये। मुझको अभय कीजिये, अभय कीजिये। मुझ डरे हुएको आश्वासन दीजिये, आश्वासन दीजिये। नरक-भयसे मेरा उद्धार कीजिये, उद्धार कीजिये। मुझे जीवन-दान दीजिये, जीवन-दान दीजिये। क्षुधा-तृष्णासे मुझको आप्यायित कीजिये, आप्यायित कीजिये। आपकी जय हो, जय हो। मुझ दुःखातुरको आनन्दित कीजिये, आनन्दित कीजिये। शिवकवचसे मुझे आच्छादित कीजिये, आच्छादित कीजिये। त्र्यम्बक! सदाशिव! आपको नमस्कार है, नमस्कार है, नमस्कार है।''

इस प्रकार मैंने तुम्हें वरदायक शिव-कवचका उपदेश किया है। यह सब बाधाओंको शान्त करनेवाला तथा समस्त प्राणियोंके लिये गोपनीय वस्तु है। जो मनुष्य इस उत्तम शिव-कवचको सदा धारण करता है, उसे भगवान् शंकरकी कृपासे कहीं भी भय नहीं प्राप्त होता। जिसकी आयु क्षीण हो गयी है, जो मरणासन्न है अथवा महान् रोगसे मृतप्राय हो रहा है, वह भी इस कवचको धारण करनेसे तत्काल सुखी होता है और दीर्घ आयु पाता है। वत्स! मेरे दिये हुए इस उत्तम शिव-कवचको तुम श्रद्धापूर्वक धारण करो, इससे तुम शीघ्र ही कल्याणके भागी होओगे।

ऐसा कहकर ऋषभ योगीने उस राजकुमारको बड़ी भारी आवाज करनेवाला एक शंख तथा शत्रुओंका नाश करनेवाला एक खड्ग दिया। फिर भस्मको अभिमन्त्रित करके राजकुमारके सब अंगोंमें लगाया और उसे बारह हजार हाथियोंका बल प्रदान किया। तदनन्तर योगीने कहा—'इस तलवारकी धार बड़ी पैनी है। तुम जिसको एक बार इसे दिखा दोगे, उस शत्रुकी तत्काल मृत्यु हो जायगी; तथा तुम्हारे जो शत्रु इस शंखकी ध्वनि सुनेंगे, वे मूर्च्छित होकर गिर जायँगे, अचेत होकर हथियार डाल देंगे। ये खड्ग और शंख दोनों ही दिव्य हैं। इनके प्रभावसे और भगवान् शिवके कवचकी महिमासे बारह हजार हाथियोंके समान महान् बलसे तथा भस्मधारणजनित शक्तिसे तुम शत्रु-सेनापर अवश्य विजय प्राप्त करोगे। पिताके सिंहासनको पाकर इस पृथ्वीकी रक्षा करोगे।' इस प्रकार मातासहित भद्रायुको भलीभाँति उपदेश करके उन दोनोंसे पूजित हो योगीबाबा इच्छानुसार चले गये।

इधर मगध देशके राजाने राजा वज्रबाहुको युद्धमें हराकर उनकी राजधानीको नष्ट-भ्रष्ट कर दिया, उनकी स्त्रियों और गोधन आदिको हर लिया और वज्रबाहुको भी बलपूर्वक बाँधकर रथपर बैठाकर वे शत्रुलोग अपने नगरको ले गये। इस प्रकार राष्ट्रके विनाशका भयंकर कोलाहल

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

होनेपर बलवान् राजकुमार भद्रायुने भी यह समाचार सुना कि शत्रुओंने मेरे पिताको बाँध लिया, मेरी माताओंको भी हर लिया और दशार्णदेशका राज्य नष्ट कर दिया है। यह सुनकर राजकुमार भद्रायु सिंहकी भाँति गर्जना करने लगा। उसने शंख और खड्ग ले लिये, कवच पहना और घोड़ेपर सवार हो वह शत्रुओंको जीतनेकी इच्छासे बड़े वेगसे उस स्थानपर आया, जहाँ मागधसेना भरी हुई थी। राजकुमार शीघ्र ही शत्रुओंकी सेनामें घुस गया और धनुषको कानतक खींचकर बाणोंकी वर्षा करने लगा। राजपुत्रके बाणोंकी मार खाकर शत्रु भी उसपर टूट पड़े और बड़े वेगसे भयंकर बाणोंद्वारा उसे घायल करने लगे। युद्धोन्मत्त शत्रुओंके अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षासे आहत होकर भी धीर-वीर राजकुमार रणभूमिमें विचलित नहीं हुआ। वह शिवकवचसे पूर्णत: सुरक्षित था। मागध-सैनिकोंकी अस्त्र-वर्षाका सामना करते हुए ही वीरवर भद्रायुने शत्रुसेनामें प्रवेश करके बहुत-से रथों, हाथियों और पैदल सैनिकोंको शीघ्रतापूर्वक मार गिराया। रणभूमिमें ही एक रथीको सारथिसहित मारकर राजकुमारने उस रथपर अधिकार कर लिया और अपने मित्र वैश्यकुमारको सारथि बनाकर युद्धमें विचरण प्रारम्भ किया। ऐसा जान पड़ता था, मानो मृगोंके झुंडमें कोई सिंह भ्रमण कर रहा है। तब शत्रुसेनाके सभी बलवान् सेनापति अपना धनुष उठाये क्रोधमें भरकर केवल उसीकी ओर दौड़ पड़े। यह देख राजकुमार भद्रायु उन आक्रमणकारियोंके सामने अपना भयंकर खड्ग उठाये उन्हें अपना पराक्रम दिखलानेंके लिये आगे बढ़ा। चमकती हुई विकराल तलवारको देखते ही सब सेनापति सहसा उसके प्रभावसे प्रतिहत हो प्राणोंसे हाथ धो बैठे। उस रणभूमिमें जो-जो सैनिक उस चमचमाती हुई तलवारको देख लेते थे, उन सबकी तत्काल मृत्यु हो जाती थी। तदनन्तर भद्रायुने शत्रुओंकी सम्पूर्ण सेनाका नाश करनेके लिये अतिशय गर्जना करनेवाले उस महाशंखको बजाया। उस शंख-ध्वनिके सुनते ही सब शत्रु मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़े। अचेत होकर पृथ्वीपर पड़े हुए शस्त्रहीन सैनिकोंको मृततुल्य मानकर धर्मशास्त्रके ज्ञाता राजकुमारने उनका वध नहीं किया। अपने बँधे हुए पिताको बन्धनमुक्त करके शत्रुओंके वशमें पड़ी हुई अपनी माताओंको भी राजकुमारने छुड़ाया। इसी प्रकार मुख्य-मुख्य मन्त्रियों तथा अन्य पुरवासियोंकी स्त्रियों, बालकों और कन्याओंको गोधन आदिसहित शत्रुओंके भयसे मुक्त करके उन सबको धैर्य बँधाया। तत्पश्चात् राजकुमारने नगरके राजा, मन्त्री तथा मुख्य-मुख्य अधिकारियों और सेनापतियोंको कैद करके बलपूर्वक अपनी पुरीमें प्रवेश कराया। पहले युद्धमें जो लोग चारों दिशाओंमें भाग गये थे, वे सब विश्वस्त होकर लौट आये और राजकुमारका पराक्रम देखकर सबके मनमें बड़ा विस्मय हुआ। सब लोग सोचने लगे—'अहो! यह कोई योगसिद्ध अथव तप:सिद्ध पुरुष है, या कोई देवता है। क्योंकि इसने जो महान् कर्म किया है, वह मनुष्यकी शक्तिसे परे है। इस अनन्त शक्तिधारी वीरने नौ अक्षौहिणी सेनाको परास्त किया है।'

इसी समय भद्रायुके पिता राजा वज्रबाहु विस्मय और आह्लादमें डूबे हुए तथा नेत्रोंसे आनन्दके आँसू बहाते हुए उसके सामने आये। राजकुमारने प्रेमसे विह्वल होकर पिताको प्रणाम किया। तब राजाने पूछा—'महामते! तुम कौन हो, देवता हो या मनुष्य? अथवा कोई गन्धर्व तो नहीं हो? तुम्हारे माता-पिता कौन हैं, तुम्हारा देश कौन-सा है और तुम्हारा नाम क्या है? तुमने हमें और हमारी स्त्रियोंको किस कारणसे शत्रुओंके बन्धनसे छुड़ाया है? तुम्हारे इस ऋणसे बन्धु-बान्धवोंसमेत मैं हजार जन्मोंमें भी मुक्त नहीं हो सकता। इन पुत्रों, इन पत्नियों तथा इस राज्य और नगरको छोड़कर मेरा चित्त तुम्हींमें प्रेमपूर्वक बँधा हुआ है।'

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

भद्रायु बोला—राजन्! यह मेरा सखा वैश्यपुत्र है। इसका नाम सुनय है। मैं इसीके सुन्दर गृहमें अपनी माताके साथ निवास करता हूँ। मेरा नाम भद्रायु है। मैं अपना वृत्तान्त पीछे आपको बताऊँगा। इस समय आप स्त्रियों और मित्रजनोंके साथ नगरमें प्रवेश कीजिये और शत्रुओंका भय छोड़कर सुखसे रहिये। जबतक मैं पुनः लौटकर न आऊँ, तबतक इन शत्रुओंको न छोड़ियेगा।

ऐसा कहकर राजकुमार भद्रायु राजाकी आज्ञा ले अपने घरको आया और वहाँ उसने अपनी मातासे सब समाचार कह सुनाया। रानीने प्रसन्न होकर अपने पुत्रको हृदयसे लगा लिया और वैश्यराजने भी प्रेमसे राजकुमारका आलिंगन करके उसका विशेष सत्कार किया। इधर महाराज वज्रबाहु स्त्री, पुत्र और मन्त्रियोंके साथ अपने राजमहलमें प्रवेश करके बहुत प्रसन्न हुए। वह रात्रि व्यतीत होनेपर योगियोंमें श्रेष्ठ ऋषभ महारानी सीमन्तिनीके पति राजा चन्द्रांगदके समीप गये और भद्रायुकी उत्पत्ति तथा उसके अलौकिक पराक्रमका वर्णन करके एकान्तमें प्रेमपूर्वक बोले—'राजन्! तुम अपनी पुत्री कीर्तिमालिनीका विवाह राजकुमार भद्रायुके साथ करो। इस प्रकार निषधराजको समझाकर योगी ऋषभ चले गये।'

तदनन्तर राजा चन्द्रांगदने वैवाहिक मंगलके लिये उपयुक्त शुभ मुहूर्तमें भद्रायुको बुलाया और अपनी कीर्तिमालिनी नामक पुत्री उसे ब्याह दी। भद्रायुके पिता राजा वज्रबाहुको भी बुलाकर निषधराजने मन्त्रियोंसहित उनकी अगवानी की और नगरमें आनेपर उनका यथावत् सत्कार किया। वज्रबाहुने देखा शत्रुओंका नाश करनेवाला भद्रायु विवाह करके मेरे चरणोंमें प्रणाम कर रहा है। तब उन्होंने बड़े प्रेम और हर्षसे उठाकर उसे हृदयसे लगा लिया तथा निषधराजसे कहा—'चन्द्रांगदजी! आपका यह दामाद बड़ा बलवान् है। मैं इसके वंश और जन्मका यथार्थ परिचय सुनना चाहता हूँ।' उनके इस प्रकार पूछनेपर निषधराजने उनसे एकान्तमें मिलकर हँसते हुए कहा—'महाराज! यह आपका ही पुत्र है। शैशवकालमें यह रोगसे पीड़ित था और इसकी माता भी रोगसे व्याकुल रहती थी। अतः आपने मातासहित इस बालकको वनमें त्याग दिया था। बालकके साथ वनमें घूमती हुई वह असहाय नारी दैवयोगसे एक वैश्यके घरमें जा पहुँची। वैश्यने उसकी रक्षा की। फिर आपका यह बालक रोगसे अत्यन्त पीड़ित होकर मर गया। किंतु किसी योगिराजने आकर इसे पुनः जीवित कर दिया। योगिराजका नाम ऋषभ है। शिवयोगी ऋषभके ही प्रभावसे ये माँ, बेटे देवताओंके समान दिव्य रूपको प्राप्त हुए हैं। उन्हींके दिये हुए शत्रुनाशक खड्ग और शंखके द्वारा शिव-कवचसे सुरक्षित हो भद्रायुने युद्धमें शत्रुओंपर विजय पायी है। ये अकेले ही बारह हजार हाथियोंका बल धारण करते हैं। ये सब विद्याओंमें पारंगत हैं और अब मेरे जामाता भी हो गये हैं। अतः आप इन्हें और इनकी पतिव्रता माताको साथ लेकर अपने नगरको जाइये। इससे आप उत्तम कल्याणके भागी होंगे।'

ये सब बातें बताकर राजा चन्द्रांगद अपने रनिवासमें ठहरी हुई राजाकी ज्येष्ठ पत्नीको वहाँ ले आये। वे वस्त्र-आभूषणोंसे विभूषित थीं। उन्होंने वज्रबाहुको रानीसे मिलाया। यह सब वृत्तान्त सुनकर और देखकर राजा वज्रबाहु बहुत लज्जित हुए और मूर्खतावश उनके द्वारा जो अनुचित कर्म हो गया था, उसकी वे स्वयं ही निन्दा करने लगे। पत्नी और पुत्रके दर्शनसे उन्हें बड़ी प्रसन्नता प्राप्त हुई। उनके सब अंगोंमें रोमांच हो आया और उन्होंने दोनोंको हृदयसे लगा लिया। इस प्रकार निषधराजसे पूजित और प्रशंसित होकर राजा वज्रबाहुने अपनी बड़ी रानीको, राजकुमार भद्रायुको और पुत्रवधू कीर्तिमालिनीको भी साथ ले परिवारसहित अपनी राजधानीको प्रस्थान किया।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

वहाँ जाकर भद्रायुने समस्त पुरवासियोंको आनन्दित किया। समय आनेपर उसके पिता जब स्वर्गवासी हो गये, तब युवावस्थामें अद्‌भुत पराक्रमी भद्रायुने ही सम्पूर्ण पृथ्वीका शासन किया और ब्रह्मर्षियोंके समीप मगधराज हेमरथसे मित्रता जोड़कर उन्हें अपने बन्धनसे मुक्त किया।

भद्रायु तथा कीर्तिमालिनीके भक्तिभावकी परीक्षा लेकर भगवान् शिवका उन्हें वरदान देना

सूतजी कहते हैं—राजसिंहासन प्राप्त कर लेनेपर वीर राजा भद्रायुने किसी समय अपनी धर्मपत्नीके साथ रमणीय वनमें प्रवेश किया। वहाँ उन्होंने देखा, कुछ ही दूरपर एक ब्राह्मण पति-पत्नी चिल्लाते हुए भागे जाते हैं और कोई बाघ उनका पीछा कर रहा है। वे दोनों पति-पत्नी कह रहे थे—'महाराज! हा राजन्! हे करुणानिधे! हमारी रक्षा कीजिये,रक्षा कीजिये।' यह पुकार सुनकर राजाने अपना धनुष उठाया। इतनेमें ही वह व्याघ्र आ पहुँचा। उसने ब्राह्मणीको पकड़ लिया। वह 'हा नाथ! हा नाथ! हा प्राणवल्लभ! हा शम्भो! हा जगदीश्वर!' आदि कहकर विलाप करने लगी। व्याघ्र बड़ा भयानक था। उसने ज्यों ही ब्राह्मणीको पकड़ा, त्यों ही राजा भद्रायुने अपने तीखे बाणोंसे

उसके मर्ममें आघात किया। किंतु वह महाबली व्याघ्र उन बाणोंसे तनिक भी व्यथित न हो, ब्राह्मणीको बलपूर्वक खींचकर दूर निकल गया। अपनी पत्नीको व्याघ्रके पंजेमें पड़ी हुई देख ब्राह्मणको बड़ा दुःख हुआ। वह विलाप करने लगा—'हा प्रिये! हा कान्ते! हा पतिव्रते! मुझे यहाँ अकेला छोड़कर तुम परलोकमें कैसे चली गयी? तुमको छोड़कर मैं कैसे जीवित रह सकता हूँ। राजन्! तुम्हारे वे बड़े-बड़े अस्त्र-शस्त्र कहाँ हैं, जिनकी बड़ी प्रशंसा सुनी जाती थी? वह महान् धनुष अब क्या हो गया? तुम्हारा बारह हजार हाथियोंसे भी अधिक बल कहाँ है? तुम्हारे शंख, खड्ग तथा मन्त्रास्त्रविद्यासे क्या लाभ हुआ? दूसरोंको क्षीण होनेसे बचाना क्षत्रियका परम धर्म है। धर्मज्ञ राजा अपना धन और प्राण देकर भी शरणमें आये हुए दीन-दुःखियोंकी रक्षा करते हैं। जो पीड़ितोंकी प्राणरक्षा नहीं कर सकते, ऐसे लोगोंके जीवनकी अपेक्षा तो उनकी मृत्यु ही श्रेष्ठ है।'

इस प्रकार ब्राह्मणका विलाप और उसके मुखसे अपने पराक्रमकी निन्दा सुनकर राजाने शोकसे मन-ही-मन इस प्रकार विचार किया—'अहो! आज भाग्यके उलट-फेरसे मेरा पराक्रम नष्ट हो गया। मेरे धर्मका भी नाश हो गया। अतः अब मेरी सम्पदा, राज्य और आयुका भी निश्चय ही नाश हो जायगा।' यों विचारकर राजा भद्रायु ब्राह्मणके चरणोंमें गिर पड़े और

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

उसे धीरज बँधाते हुए बोले—'ब्रह्मन्! मेरा पराक्रम नष्ट हो गया है। मुझ क्षत्रियाधमपर आप कृपा कीजिये। महामते! शोक छोड़ दीजिये। मैं आपको मनोवांछित पदार्थ दूँगा। यह राज्य, यह रानी और मेरा यह शरीर सब कुछ आपके अधीन है। बोलिये आप क्या चाहते हैं?'

ब्राह्मण बोले—राजन्! अन्धेको दर्पणसे क्या काम? जो भिक्षा माँगकर जीवन-निर्वाह करता हो, वह बहुत-से घर लेकर क्या करेगा। जो मूर्ख है, उसे पुस्तकसे क्या काम तथा जिसके पास स्त्री नहीं है, वह धन लेकर क्या करेगा? मेरी पत्नी चली गयी, मैंने कभी काम-सुखका उपभोग नहीं किया। अतः कामभोगके लिये आप अपनी इस बड़ी रानीको मुझे दे दीजिये।

राजाने कहा—ब्रह्मन्! क्या यही तुम्हारा धर्म है? क्या तुम्हें गुरुने यही उपदेश किया है? क्या तुम नहीं जानते कि परायी स्त्रीका स्पर्श स्वर्ग एवं सुयशकी हानि करनेवाला है? परस्त्रीके उपभोगसे जो पाप कमाया जाता है, उसे सैकड़ों प्रायश्चित्तोंद्वारा भी धोया नहीं जा सकता।

ब्राह्मण बोले—राजन्! मैं अपनी तपस्यासे भयंकर ब्रह्महत्या और मदिरापान-जैसे पापका भी नाश कर डालूँगा। फिर परस्त्रीसंगम किस गिनतीमें है। अतः आप अपनी इस भार्याको मुझे अवश्य दे दीजिये। अन्यथा आप निश्चय ही नरकमें पड़ेंगे।

ब्राह्मणकी इस बातपर राजाने मन-ही-मन विचार किया कि ब्राह्मणके प्राणोंकी रक्षा न करनेसे महापाप होगा। अतः इससे बचनेके लिये पत्नीको दे डालना ही श्रेष्ठ है। इस श्रेष्ठ ब्राह्मणको अपनी पत्नी देकर मैं पापसे मुक्त हो शीघ्र ही अग्निमें प्रवेश कर जाऊँगा। मन-ही-मन ऐसा निश्चय करके राजाने आग जलायी और ब्राह्मणको बुलाकर उसके प्रति अपनी पत्नीको दे दिया। तत्पश्चात् स्नान करके पवित्र हो देवताओंको प्रणाम करके उन्होंने अग्निकी दो बार परिक्रमा की और एकाग्रचित्त होकर भगवान् शिवका ध्यान किया। इस प्रकार राजाको अग्निमें गिरनेके लिये उद्यत देख जगत्पति भगवान् विश्वनाथ सहसा वहाँ प्रकट हो गये। उनके पाँच मुँह थे। मस्तकपर चन्द्रकला आभूषणका काम दे रही थी। कुछ-कुछ पीले रंगकी जटा लटकी हुई थी। वे कोटि-कोटि सूर्योंके समान तेजस्वी थे। हाथोंमें त्रिशूल, खट्वांग, कुठार, ढाल, मृग, अभय, वरद और पिनाक धारण किये, बैलकी पीठपर बैठे हुए भगवान् नीलकण्ठको राजाने अपने आगे प्रत्यक्ष देखा। उनके दर्शनजनित आनन्दसे युक्त हो राजा भद्रायुने हाथ जोड़कर स्तवन किया।

राजा बोले—जिनका दूसरा कोई स्वामी नहीं है, जो अविकारी, प्रधान गुणोंसे युक्त और महान् हैं तथा स्वयं कारणरहित होकर कारणोंके भी कारण हैं, उन सच्चिदानन्दमय प्रशान्तस्वरूप देव परमशिवको मैं नमस्कार करता हूँ। आप सम्पूर्ण विश्वके साक्षी, इस जगत्के कर्ता, महान् तेजोमय तथा सबके हृदयमें अन्तर्यामी रूपसे स्थित हैं। इसीलिये विद्वान् पुरुष सदा आपकी खोज करते हैं और योगीजन अपनी चित्तवृत्तियोंको रोककर अनेक प्रकारके योग-साधनोंद्वारा आपकी आराधना करते हैं। जो लोग एकात्मताकी भावना करते हैं, उनके लिये आप एक हैं और जिनकी बुद्धिमें नानात्वकी प्रतीति होती है, उनके लिये आप ही अनेक रूपोंमें व्यक्त हुए हैं। आपका पद (स्वरूप) इन्द्रियोंसे परे, सबका साक्षी, आविर्भाव और तिरोभावकी लीलासे युक्त तथा मनकी पहुँचसे दूर है। आप मन और वाणीके लिये दुर्लभ हैं। आपमें मोहका सर्वथा अभाव है। आप परमात्मरूप हैं। मेरी वाणी केवल सत्त्वादि गुणोंमें स्थित और प्रकृतिमें विलीन होनेवाली है। अतः वह आपके दिव्य विग्रहकी स्तुति करनेमें कैसे

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

समर्थ हो सकती है? तथापि शरणागतोंका दुःख दूर करनेवाले आपके चरण-कमलोंका जो लोग भक्तिपूर्वक आश्रय लेते हैं, वे आपको प्राप्त होते हैं। अतः भयंकर भवरूपी दावानलसे पीड़ित हो मैं संसारभयकी शान्तिके लिये नित्य आपका भजन करता हूँ। देवताओंके भी देवता, कल्याणनिकेतन, भगवान् महादेवको नमस्कार है। सृष्टि, पालन और संहार करनेवाले त्रिमूर्तिरूप आपको नमस्कार है। विश्वके आदिरूप और संसारके प्रथम साक्षी आपको नमस्कार है। सत्तामात्र तत्त्व आपका स्वरूप है, आपको नमस्कार है। आप ज्ञानानन्दघन हैं, आपको नमस्कार है। आप सम्पूर्ण क्षेत्रोंमें निवास करनेवाले हैं। आपकी आत्मशक्ति सब क्षेत्रोंसे भिन्न है। आप ही अशक्त हैं और आप ही अतिशय शक्तिमान्‌के रूपमें आभासित होते हैं। आप भूमा परमेश्वरको नमस्कार है। आप नित्य, निराभास, सत्यज्ञानमय विशुद्ध अन्तरात्मा हैं, सबसे दूर और समस्त कर्मोंसे मुक्त हैं। आपको प्रणाम है। आप वेदान्तद्वारा जाननेयोग्य तथा वेदके मूलभागमें निवास करनेवाले हैं, आपको प्रणाम है। आपकी चेष्टाएँ (लीलाएँ) विवेकयुक्त एवं पवित्र होती हैं। आप त्रिगुणमयी वृत्तियोंसे सर्वथा दूर हैं, आपको नमस्कार है। आपका पराक्रम कल्याणमय है, आप कल्याणमय फल देनेवाले हैं, आपको नमस्कार है। आप अनन्त, महान्, शान्त एवं शिवरूप हैं, आपको नमस्कार है। आप अघोर (सौम्य), अत्यन्त घोर और घोर पापराशिका विदारण करनेवाले हैं। संसारबन्धनके बीजोंको भून डालनेवाले सर्वश्रेष्ठ गुरु भगवान् भर्गको नमस्कार है। मोहरहित एवं निर्मल आत्मगुणोंवाले आपको नमस्कार है। जगदीश्वर! सनातन देव शंकर! विरूपाक्ष रुद्र! अविनाशी मृत्युंजय! मेरी रक्षा कीजिये। हे कल्याणमय चन्द्रशेखर! शान्तमूर्ति गौरीपते! सूर्य, चन्द्र एवं अग्निमय नेत्रोंवाले गंगाधर! अन्धकासुरका नाश करनेवाले पुण्यकीर्ति भूतनाथ! और कैलाश पर्वतपर निवास करनेवाले महादेव! आपको बारंबार नमस्कार है।

राजाके इस प्रकार स्तुति करनेपर माता पार्वतीके साथ प्रसन्न हुए करुणानिधान महेश्वरने कहा—राजन्! तुमने किसी अन्यका चिन्तन न करके जो सदा-सर्वदा मेरा पूजन किया है, तुम्हारी इस भक्तिके कारण और तुम्हारे द्वारा की हुई इस पवित्र स्तुतिको सुनकर मैं बहुत प्रसन्न हुआ हूँ। तुम्हारे भक्तिभावकी परीक्षाके लिये मैं स्वयं ब्राह्मण बनकर आया था। जिसे व्याघ्रने ग्रस लिया था, वह ब्राह्मणी और कोई नहीं, ये गिरिराजनन्दिनी उमादेवी ही थीं। तुम्हारे बाण मारनेसे भी जिसके शरीरको चोट नहीं पहुँची, वह व्याघ्र मायानिर्मित था। तुम्हारे धैर्यको देखनेके लिये ही मैंने तुम्हारी पत्नीको माँगा था। इस कीर्तिमालिनीकी और तुम्हारी भक्तिसे मैं सन्तुष्ट हूँ। तुम कोई दुर्लभ वर माँगो, मैं उसे दूँगा।

राजा बोले—देव! आप साक्षात् परमेश्वर हैं। आपने सांसारिक तापसे घिरे हुए मुझ अधमको जो प्रत्यक्ष दर्शन दिया है, यही मेरे लिये महान् वर है। देव! आप वरदाताओंमें श्रेष्ठ हैं। आपसे मैं दूसरा कोई वर नहीं माँगता। मेरी यही इच्छा है कि मैं, मेरी रानी, मेरे माता-पिता, पद्माकर वैश्य और उसके पुत्र सुनय—इन सबको आप अपना पार्श्ववर्ती सेवक बना लीजिये।

तत्पश्चात् रानी कीर्तिमालिनीने प्रणाम करके अपनी भक्तिसे भगवान् शंकरको प्रसन्न किया और यह उत्तम वर माँगा—'महादेव! मेरे पिता चन्द्रांगद और माता सीमन्तिनी—इन दोनोंको भी आपके समीप निवास प्राप्त हो।' भक्तवत्सल भगवान् गौरीपतिने प्रसन्न होकर 'एवमस्तु' कहा और उन दोनों पति-पत्नीको इच्छानुसार वर देकर वे क्षणभरमें अन्तर्धान हो गये। इधर राजाने

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

भगवान् शंकरका प्रसाद प्राप्त करके रानी कीर्तिमालिनीके साथ प्रिय विषयोंका उपभोग किया और दस हजार वर्षोंतक राज्य करनेके पश्चात् अपने पुत्रोंको राज्य देकर उन्होंने शिवजीके परम पदको प्राप्त किया। राजा और रानी दोनों ही भक्तिपूर्वक महादेवजीकी पूजा करके भगवान् शिवके धामको प्राप्त हुए। यह परम पवित्र, पापनाशक एवं अत्यन्त गोपनीय भगवान् शिवका विचित्र गुणानुवाद जो विद्वानोंको सुनाता है अथवा स्वयं भी शुद्धचित्त होकर पढ़ता है, वह इस लोकमें भोग-ऐश्वर्यको प्राप्तकर अन्तमें भगवान् शिवको प्राप्त होता है।

भस्मकी महिमासे ब्रह्मराक्षसका उद्धार

सूतजी कहते हैं—वामदेव नामसे प्रसिद्ध एक महातपस्वी शिवयोगी हुए हैं, जो सुख-दुःख आदि द्वन्द्वोंसे रहित, निर्गुण, शान्त, असंग, समदर्शी, आत्माराम, क्रोधको जीतनेवाले तथा गृह और गृहिणीसे हीन थे। सबके ऊपर दया करनेमें संलग्न रहनेवाले वे महात्मा एक दिन स्वेच्छानुसार घूमते-फिरते बड़े भयंकर क्रौंचारण्यमें जा पहुँचे। उस निर्जन वनमें कोई भूख-प्याससे व्याकुल अत्यन्त भयानक ब्रह्मराक्षस रहता था। वामदेवजीको देखकर उन्हें खा जानेके लिये वह राक्षस बड़े वेगसे उनकी ओर दौड़ा। उसे आते देख योगीश्वर वामदेव तनिक भी विचलित नहीं हुए। उस घोर ब्रह्मराक्षसने वेगसे दौड़कर उन्हें पकड़ लिया। पर वामदेवके अंगोंका स्पर्श होते ही उसकी सारी पापराशि तत्काल नष्ट हो गयी और उसे अपने पूर्वजन्मका स्मरण हो आया। जैसे चिन्तामणि (स्पर्शमणि)-का स्पर्श करके लोहा भी सुवर्ण हो जाता है, जैसे जम्बू नदीमें पड़ी हुई मिट्टी भी सोना हो जाती है, जैसे मानस-सरोवरमें आकर कौए भी हंस हो जाते हैं और जिस प्रकार एक बार भी अमृत पी लेनेपर मनुष्य अजर-अमर देवता हो जाता है, उसी प्रकार महात्मा पुरुष अपने दर्शन तथा स्पर्श आदिसे पापियोंको भी तत्काल पवित्र कर देते हैं। अतः सत्संग दुर्लभ है*। जो राक्षस पहले भूख-प्याससे विकल हो घोररूप धारण करके वनमें भटकता फिरता था, वही साधुके सम्पर्कसे पूर्णानन्दमय हो गया। उसने योगीके युगल-चरणारविन्दोंमें प्रणाम करके कहा—'महायोगिन्! मुझपर प्रसन्न होइये। करुणानिधे! प्रसन्न होइये। कहाँ सब प्राणियोंको भय देनेवाला मुझ-जैसा पापात्मा और कहाँ आप-जैसे दयालु महात्माका दर्शन!'

वामदेवजी बोले—भयानक राक्षसका रूप धारण करके इस वनमें विचरनेवाले तुम कौन हो और यहाँ किस लिये रहते हो?

राक्षसने कहा—इससे पचीसवें जन्म पूर्व मैं पवनराष्ट्रका रक्षक था। उस समय मेरा नाम दुर्जय था। मैं बड़ा पापी और स्वेच्छाचारी था। प्रतिदिन नयी-नयी स्त्रीका उपभोग करनेकी इच्छा रखता था। नित्य एक-एक स्त्रीको भोगकर छोड़ देता और उसे घरके भीतर रखकर अन्य स्त्रियोंका अपहरण करवाता था। मेरे द्वारा भोगी हुई वे स्त्रियाँ घरके भीतर बंद रहकर दिन-रात शोकमें डूबी रहती थीं। मेरे राज्यमें जितने ब्राह्मण थे, वे सब स्त्रियोंसहित भाग गये। मैं

* यथा चिन्तामणिं स्पृष्ट्वा लोहं काञ्चनतां व्रजेत्। यथा जम्बूनदीं प्राप्य मृत्तिका स्वर्णतां व्रजेत्॥
यथा मानसमभ्येत्य वायसा यान्ति हंसताम्। यथामृतं सकृत्पीत्वा नरो देवत्वमाप्नुयात्॥
तथैव हि महात्मानो दर्शनस्पर्शनादिभिः। सद्यः पुनन्त्यघोपेतान्सत्सङ्गो दुर्लभः कृतः॥
(स्क० पु०, ब्रा० ब्रह्मो० १५। १२—१४)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

सधवा, विधवा, कुमारी तथा रजस्वला सभी तरहकी स्त्रियोंका हरण करके उनके साथ कुकर्म करता था। इस प्रकार दूषित विषयभोगोंमें आसक्त, मत्त एवं मदिरापानमें रत रहनेके कारण मुझे जवानीमें ही यक्ष्मा आदि बड़े-बड़े रोगोंने घेर लिया। मन्त्रियों और सेवकोंने भी मुझे त्याग दिया। अन्तमें अपने ही कुकर्मके कारण मैं मर गया। जो मनुष्य धर्मसे भ्रष्ट हो जाता है, उसकी आयु नष्ट होती है, अयश बढ़ता है, भाग्य क्षीण होता है। वह अत्यन्त दुर्गतिमें पड़ता है तथा उसके पूर्वज पितर स्वर्गसे निश्चय ही गिर जाते हैं*। मृत्युके पश्चात् यमराजके दूत मुझे यमलोक ले गये। वहाँ मैं भयंकर नरककुण्डमें डाल दिया गया। उस कुण्डके भीतर यमदूतोंसे पीड़ित होकर मुझे तीस हजार वर्षोंतक रहना पड़ा। तदनन्तर बचे हुए पापके फलसे मैं निर्जन वनमें भूख-प्याससे विकल पिशाच हुआ। पिशाचयोनिमें मैंने एक सौ दिव्य वर्ष व्यतीत किये। फिर दूसरे जन्ममें व्याघ्र, तीसरेमें अजगर, चौथेमें भेड़िया, पाँचवेंमें सूअर, छठेमें गिरगिट, सातवेंमें कुत्ता, आठवेंमें सियार, नवेंमें गवय (नीलगाय), दसवेंमें मृग, ग्यारहवें जन्ममें वानर, बारहवेंमें गीध, तेरहवेंमें नेवला, चौदहवेंमें कौआ, पंद्रहवेंमें रीछ, सोलहवेंमें वनमुर्गा, सत्रहवेंमें गदहा, अठारहवेंमें बिलाव, उन्नीसवेंमें मेढक, बीसवेंमें कछुआ, इक्कीसवेंमें मछली, बाईसवेंमें चूहा, तेईसवेंमें उल्लू, चौबीसवेंमें जंगली हाथी और पचीसवें जन्ममें मैं ब्रह्मराक्षस हुआ। इस समय आपके शरीरके स्पर्शमात्रसे मेरी पूर्वजन्मोंकी स्मृति जाग उठी है। आपके संगसे मेरे मनमें वैराग्य एवं प्रसन्नता हुई है। महामते! ऐसा प्रभाव आपको कैसे प्राप्त हुआ?

वामदेवजी बोले—यह मेरे शरीरमें लगे हुए भस्मका महान् प्रभाव है। भगवान् शंकरके सिवा दूसरा कौन है, जो भस्मकी शक्तिको जानता हो। महादेवजीका जैसा माहात्म्य है, वैसा ही भस्मका भी है। भस्मके संसर्गसे तुम्हारी बुद्धि भी निर्मल हो गयी। अतः तुम भी श्रद्धासे पवित्र त्रिपुण्ड्र धारण करो।

महातपस्वी शिवयोगी वामदेवने इस प्रकार भस्मका माहात्म्य बतलाकर भस्मको अभिमन्त्रित करके उसे घोर ब्रह्मराक्षसको दिया। उससे ब्रह्मराक्षसने अपने ललाटमें त्रिपुण्ड्र धारण किया और उसके प्रभावसे वह तत्काल ब्रह्मराक्षस-शरीरका त्याग करके दिव्य स्वरूपसे सुशोभित होने लगा। उसने भक्तिपूर्वक गुरु वामदेवकी परिक्रमा की और दिव्य विमानपर बैठकर पुण्यलोकको प्रस्थान किया। महायोगी वामदेव साक्षात् शिवकी ही भाँति पुनः संसारमें भ्रमण करने लगे।

भस्मकी महिमा, शबरकी चिताभस्मद्वारा की हुई पूजासे शिवजीकी प्रसन्नता और उसकी जली हुई पत्नीका पुनः जीवित होना

सूतजी कहते हैं—श्रद्धा ही सम्पूर्ण धर्मोंके लिये अत्यन्त हितकर है। श्रद्धासे ही मनुष्योंको दोनों लोकोंमें सिद्धि प्राप्त होती है। श्रद्धासे भजन करनेवाले पुरुषको पत्थरकी मूर्ति भी फल देनेवाली होती है। श्रद्धा-भक्तिसे पूजा करनेपर अज्ञानी गुरु भी सिद्धिदायक हो जाता है। श्रद्धासे

* आयुर्विनश्यत्ययशो विवर्धते भाग्यं क्षयं यात्यतिदुर्गतिं व्रजेत्। स्वर्गाच्च्यवन्ते पितरः पुरातना धर्मव्यपेतस्य नरस्य निश्चितम्॥
(स्क० पु०, ब्रा० ब्रह्मो० १५। ३५)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

जप किया हुआ मन्त्र अव्यवस्थित होनेपर भी फलदाता होता है। श्रद्धासे पूजा करनेपर देवता नीच पुरुषको भी फल देनेवाले होते हैं। अश्रद्धासे की हुई पूजा, दान, यज्ञ, तप और व्रत सभी निष्फल होते हैं, जैसे बाँझ वृक्षका फूल व्यर्थ होता है। जो सर्वत्र संशययुक्त, श्रद्धाहीन और अत्यन्त चपल होता है, वह परमार्थसे भ्रष्ट होकर संसार-बन्धनसे मुक्त नहीं हो पाता। मन्त्र, तीर्थ, ब्राह्मण, देवता, ज्योतिषी, ओषधि तथा गुरुमें जिसकी जैसी भावना होती है, उसे वैसी सिद्धि प्राप्त होती है*।

इस विषयमें एक अत्यन्त अद्‌भुत उपाख्यान बतलाया जाता है, जिसके श्रवणसे सब मनुष्योंकी अश्रद्धा तत्काल दूर हो जाती है। पूर्वकालमें पांचाल देशके राजाके सिंहकेतु नामसे विख्यात एक पुत्र था, जो समस्त उत्तम गुणोंसे युक्त और सदा क्षत्रियधर्ममें तत्पर रहनेवाला था। एक दिन महाबली सिंहकेतु कुछ सेवकोंको साथ लेकर शिकार खेलनेके लिये वनमें गया। राजकुमारका कोई सेवक, जो शबर (भील) कुलमें उत्पन्न हुआ था, शिकारकी खोजमें इधर-उधर घूम रहा था। उसने एक टूटा-फूटा, गिरा-पड़ा पुराना देवालय देखा। उसमें चबूतरेपर एक शिवलिंग पड़ा था, जो पीठ (जलेरी)-से टूटकर अलग हो गया था। वह शिवलिंग सीधा और सूक्ष्म था। शबरने उसे मूर्तिमान् सौभाग्यकी भाँति देखा। पूर्वकर्मसे प्रेरित होकर उसने उस शिवलिंगको शीघ्रतापूर्वक उठा लिया और बुद्धिमान् राजपुत्रको दिखाया—'प्रभो! देखिये, यह कैसा सुन्दर शिवलिंग है। मैंने इसे यहीं देखा है। मैं आदरपूर्वक इसकी पूजा करूँगा। आप मुझे पूजाकी विधि बता दें, जिससे मन्त्र न जाननेवाले मुझ-जैसे पुरुषोंके द्वारा भी की हुई पूजासे भगवान् शिव प्रसन्न हों।'

निषादके इस प्रकार पूछनेपर परिहासकुशल राजकुमारने हँसकर कहा—शिवलिंगको शुद्ध आसनपर स्थापित करके सदा संकल्पपूर्वक नूतन जलसे अभिषेक करे। शुभ गन्ध, अक्षत, वनके नये-नये पत्र, पुष्प तथा धूप-दीप आदिके द्वारा पूजन करे। चिताका भस्म चढ़ावे और अपने भोजन करनेयोग्य अन्नके द्वारा भगवान्‌को नैवेद्य लगावे। पुनः धूप-दीप आदि उपचारोंको अर्पित करे। यथायोग्य नृत्य, वाद्य और गीत आदिकी भी व्यवस्था करे। फिर नमस्कार करके विधि-पूर्वक भगवान्‌का प्रसाद ग्रहण करना चाहिये। यह मैंने तुम्हें शिवपूजनकी साधारण विधि बतलायी है।

अपने स्वामीके इस प्रकार उपदेश देनेपर चण्डक नामवाले शबरने उसे सादर शिरोधार्य किया और अपने घर आकर लिंगमूर्ति महेश्वरका प्रतिदिन पूजन प्रारम्भ किया। वह प्रतिदिन चिता-भस्मका उपहार भेंट करता था। अपने लिये जो-जो वस्तु प्रिय थी, वह सब गन्ध, पुष्प, अक्षत आदि पहले भगवान् शिवको निवेदन करता। उसके बाद वह भगवत्प्रसादको स्वयं ग्रहण करता था। इस प्रकार वह पत्नीके साथ भक्तिपूर्वक महेश्वरकी पूजामें संलग्न रहा। इस

---

* श्रद्धैव सर्वधर्मस्य चातीव हितकारिणी। श्रद्धयैव नृणां सिद्धिर्जायते लोकयोर्द्वयोः॥
श्रद्धया भजतः पुंसः शिलापि फलदायिनी। मूर्खोऽपि पूजितो भक्त्या गुरुर्भवति सिद्धिदः॥
श्रद्धया पठितो मन्त्रस्त्वबद्धोऽपि फलप्रदः। श्रद्धया पूजितो देवो नीचस्यापि फलप्रदः॥
अश्रद्धया कृता पूजा दानं यज्ञस्तपो व्रतम्। सर्वं निष्फलतां याति पुष्पं वन्ध्यतरोरिव॥
सर्वत्र संशयाविष्टः श्रद्धाहीनोऽतिचञ्चलः। परमार्थातपरिभ्रष्टः संसृतेर्न हि मुच्यते॥
मन्त्रे तीर्थे द्विजे देवे दैवज्ञे भेषजे गुरौ। यादृशी भावना यत्र सिद्धिर्भवति तादृशी॥
(स्क० पु०, ब्रा० ब्रह्मो० १७। ३—८)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

आराधनामें उसके कई वर्ष बीत गये। एक दिन वह शबर जब शिवपूजाके लिये बैठा, तब देखता है कि पात्रमें चिताका भस्म तनिक भी शेष नहीं है। तब वह तुरंत उठकर दूर-दूरतक चिताभस्म ढूँढ़ता हुआ घूम आया, किंतु कहीं भी उसे चिताभस्म नहीं मिला। अन्तमें वह थककर घर लौट आया और अपनी पत्नीको बुलाकर उसने कहा—'प्रिये! चिताभस्म तो मुझे नहीं मिला। बताओ, अब क्या करूँ? आज मुझ पापीके शिव-पूजनमें विघ्न पड़ गया। पूजाके बिना मैं क्षणभर भी जीवित नहीं रह सकता।'

पतिको इस प्रकार व्याकुल देख शबरकी स्त्रीने कहा—नाथ! डरिये मत, मैं एक उपाय बताती हूँ। यह अपना घर बहुत दिनोंका पुराना हो गया है। मैं इसमें आग लगाकर उस अग्निमें प्रवेश कर जाऊँगी। इससे आपके लिये बहुत-सा चिताभस्म तैयार हो जायगा।

शबर बोला—प्रिये! यह मानव-शरीर ही धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्षका सबसे श्रेष्ठ साधन है। इस नवयौवन-सम्पन्न सुखोचित शरीरको क्यों त्याग रही हो?

शबरकी स्त्रीने कहा—जीवनकी सफलता इसीमें है कि दूसरोंके हितके लिये अपने प्राणोंका त्याग किया जाय। फिर साक्षात् शिवके लिये जो स्वयं प्राणत्याग करे, उसके लिये तो कहना ही क्या है? मैंने कौन-सी घोर तपस्या की है, जिससे भगवान् शिवकी प्रीतिके लिये प्रज्वलित अग्निमें अपने शरीरका त्याग करती हूँ।

अपनी पत्नीकी इस प्रकार स्थिरबुद्धि और शिवभक्ति देखकर दृढ़ संकल्पवाले शबरने 'तथास्तु' कहकर उसकी सराहना की। शबरीने स्वामीकी आज्ञा पाकर स्नानसे पवित्र हो अलंकार धारण किया और अपने घरमें आग लगाकर अग्निदेवकी भक्तिपूर्वक परिक्रमा करके अपने पतिदेव गुरुको नमस्कार और हृदयमें भगवान् सदाशिवका ध्यान करके अग्निमें प्रवेश करनेके लिये उद्यत हो हाथ जोड़कर इस प्रकार स्तवन किया—'हे देव! मेरी इन्द्रियाँ आपकी पूजाके लिये पुष्प हों, यह शरीर धूप एवं अगुरु हों, हृदय दीपक हो, प्राण हविष्यका काम दें और कर्मेन्द्रियाँ आपके लिये अक्षत होवें। इस समय यह जीव आपकी पूजाके फलको प्राप्त हो। मैं धनाधिपति कुबेरका पद नहीं चाहती, अविचल स्वर्गभूमिकी भी इच्छा नहीं रखती तथा ब्रह्माजीके पदकी भी अभिलाषा नहीं करती। बस, यही चाहती हूँ कि यदि फिर इस संसारमें मेरा जन्म हो, तो मैं प्रत्येक जन्ममें आपके चरणारविन्दोंके सुन्दर मकरन्दका पान करनेवाली भ्रमरी होऊँ। मेरे देवता! भले ही मेरे सैकड़ों जन्म हों, परंतु अज्ञानकी हेतुभूत माया मेरे चित्तमें प्रवेश न करे। किंचित् आधे क्षणके लिये भी मेरा हृदय आपके चरणकमलोंसे अलग न हो। महेश्वर! आपको नमस्कार है, नमस्कार है*।'

इस प्रकार देवेश्वर भगवान् शिवको प्रसन्न करके दृढ़ निश्चयवाली शबरी प्रज्वलित अग्निमें

---

* पुष्पाणि सन्तु तव देव ममेन्द्रियाणि धूपोऽगुरुर्वपुरिदं हृदयं प्रदीपः।
प्राणा हवींषि करणानि तवाक्षताश्च पूजाफलं व्रजतु साम्प्रतमेष जीवः॥
वाञ्छामि नाहमपि सर्वधनाधिपत्यं न स्वर्गभूमिमचलां न पदं विधातुः।
भूयो भवामि यदि जन्मनि जन्मनि स्यां त्वत्पादपङ्कजलसन्मकरन्दभृङ्गी॥
जन्मानि सन्तु मम देव शताधिकानि माया न मे विशतु चित्तममोघहेतुः।
किञ्चित्क्षणार्धमपि ते चरणारविन्दान्नापैतु मे हृदयमीश नमो नमस्ते॥
(स्क० पु०, ब्रा० ब्रह्मो० १७। ४३—४५)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

प्रवेश कर गयी और क्षणभरमें जलकर भस्म हो गयी। फिर शबरने उस भस्मको लेकर जले हुए घरके समीप ही भगवान् शिवका पूजन किया। पूजनके अन्तमें उसने प्रसाद लेनेको नित्य आनेवाली अपनी प्रियतमाका स्मरण किया। स्मरण करते ही वह पहलेकी भाँति हाथ जोड़कर सामने खड़ी दिखायी दी। पत्नीको देखकर तथा जलकर भस्म हुए घरको भी पूर्ववत् स्थित पाकर शबर आश्चर्यचकित हो सोचने लगा—'अहो! अग्नि तो अपने तेजसे वस्तुको जलाती है, सूर्य केवल किरणोंसे तपाते हैं, राजा अपने दण्डके द्वारा अपराधीको दग्ध करता है और ब्राह्मण मनसे जला डालता है। मेरी पत्नी तो प्रत्यक्ष अग्निमें जल गयी थी। यह जीवित कैसे हो गयी? पता नहीं यह स्वप्न है अथवा भ्रममें डालनेवाली माया।' इस प्रकार विचार करते हुए शबरने अपनी स्त्रीसे पूछा—'प्रिये! तुम तो अग्निमें भस्म हो गयी थी, यहाँ कैसे आ गयी और यह जला हुआ घर फिर पहलेके ही समान खड़ा कैसे हो गया?'

शबरीने कहा—जब मैं घरमें आग लगाकर उसके भीतर प्रविष्ट हुई, तबसे अपने-आपकी मुझे कोई सुध न रही। न तो मैंने आग देखी है और न लेशमात्र भी तापका अनुभव किया है। जान पड़ता था, मानो मैं जलमें घुसी हूँ। मैं आधे क्षणतक गाढ़ निद्रामें सोयी-सी रही और अब क्षणभरमें जाग उठी हूँ। उठते ही मैंने देखा अपना घर जला हुआ नहीं है, पूर्ववत् सुस्थिर है। इस समय भगवान्‌की पूजाके अन्तमें प्रसाद लेनेके लिये आपके पास आयी हूँ।

इस प्रकार वे दोनों दम्पति प्रेमपूर्वक आपसमें वार्तालाप कर रहे थे, इतनेमें ही उनके आगे परम अद्‌भुत दिव्य विमान प्रकट हुआ। उसपर भगवान् शंकरके चार सेवक आगेकी ओर बैठे थे। उन्होंने दोनों निषाद-दम्पतिका हाथ पकड़कर उन्हें विमानपर बिठा लिया। शबर और शबरीको अपने शरीरका त्याग भी नहीं करना पड़ा। शिवदूतोंके हाथोंका स्पर्श प्राप्त होते ही निषाद-दम्पतिके वे ही शरीर तत्काल उन्हींके समान दिव्य हो गये। इसलिये समस्त पुण्यकर्मोंमें श्रद्धा ही करनी चाहिये, क्योंकि शबरने नीच होकर भी श्रद्धाके बलसे योगियोंकी गति प्राप्त की। सब वर्णके लोगोंसे उत्तम जन्म पानेसे क्या लाभ? सम्पूर्ण शास्त्रोंका विचार करनेवाली विद्यासे भी यदि श्रद्धा न हो, तो क्या लाभ है? जिसके चित्तमें सदा भगवान् शिवकी भक्ति बनी रहती है, उससे बढ़कर तीनों लोकोंमें कौन पुरुष धन्य है।

उमामहेश्वरव्रतकी महिमा, इसके पालनसे शारदाको शिवलोककी प्राप्ति तथा सत्कथा-श्रवणका माहात्म्य और ब्राह्मखण्डकी समाप्ति

सूतजी कहते हैं—आनर्तदेशमें वेदरथ नामक एक ब्राह्मण थे। उनका जन्म उत्तम कुलमें हुआ था। वे स्त्री-पुत्रसे सम्पन्न और विद्वान् थे। ब्राह्मणके एक कन्या हुई, जिसका नाम शारदा रखा गया। वह रूप और शुभ लक्षणोंसे सुशोभित कन्या जब बारह वर्षकी हुई, तब उसे पद्मनाभ नामक एक प्रौढ़ ब्राह्मणने माँगा। पद्मनाभजीकी पत्नी मर गयी थी। वे बड़े धनी, शान्त और राजाके मित्र थे। पिताने उनकी याचना भंग होनेके भयसे अपनी कन्या उन्हें दे दी। दोपहरमें विवाह करके पद्मनाभजी ससुरालमें सायंकाल होनेपर सन्ध्योपासना करनेके लिये एक सरोवरके

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

तटपर गये। वहाँ विधिपूर्वक सन्ध्योपासन करके जब लौटने लगे, तब अन्धकारपूर्ण मार्गमें एक साँपने उन्हें काट लिया। इससे उनकी मृत्यु हो गयी। विवाह करनेके पश्चात् सहसा उनकी मृत्यु होनेपर भाई-बन्धु रोने और विलाप करने लगे। सास-श्वशुर और वह कन्या सभी शोकमें डूब गये। भाई-बन्धु मृतकका दाह-संस्कार करके अपने-अपने घर लौट गये। विधवा शारदा पिताके ही घरमें रह गयी।

एक दिन 'नैध्रुव नामवाले कोई अन्धे मुनि अपने शिष्यका हाथ पकड़े हुए शारदाके घरपर आये। मुनि बहुत वृद्ध हो गये थे। जिस समय वे घरपर पधारे, शारदाके भाई कहीं बाहर चले गये थे। अतः शारदा ही उनके समीप आयी और इस प्रकार बोली—'महाभाग! आपका स्वागत है, इस पीढ़ेपर बैठिये। आप मुनिनाथको मेरा नमस्कार है। आज्ञा दीजिये मैं आपका कौन-सा कार्य करूँ?' यों कहकर शारदाने बड़े भक्ति-भावसे मुनिके पैर धुलवाये और पंखेसे हवा करके उन्हें सन्तुष्ट किया। थके-माँदे मुनिको पीढ़ेपर बिठाकर उन्हें विधिपूर्वक स्नान कराया और जब वे देवपूजा करके सुखपूर्वक आसनपर बैठे, तब उन्हें आदरपूर्वक उत्तम अन्न भोजन कराया। भोजन करके तृप्त हो जब वे मुनि आनन्दसे परिपूर्ण हुए, तब अन्धमुनिने उस कन्याके लिये उत्तम आशीर्वाद दिया—'भद्रे! तुम पतिके साथ विहार करके सर्वगुणसम्पन्न श्रेष्ठ पुत्र प्राप्त करो और संसारमें बड़ी भारी कीर्ति पाकर देवताओंके प्रसादकी अधिकारिणी बनो।'

अन्धमुनिके द्वारा कहे हुए इस वचनको सुनकर शारदा बहुत विस्मित हुई और हाथ जोड़कर बोली—ब्रह्मन्! आपका वचन सदा सत्य होता है, कभी झूठ नहीं होता। परंतु यह मुझ अभागिनीके लिये कैसे सफल होगा? मैं विधवा हूँ, आपके इन आशीर्वादोंकी पात्र कैसे हो सकूँगी।

मुनि बोले—शुभे! मुझ अन्धेने तुझे न देख सकनेके कारण तुम्हारे लिये जो कुछ कहा है, उसे मैं अवश्य सिद्ध करूँगा। तुम मेरी आज्ञाका पालन करो। यदि तुम उमा-महेश्वर नामक व्रत करोगी, तो उसके प्रभावसे शीघ्र ही कल्याण-भागिनी होओगी।

शारदाने कहा—ब्रह्मन्! आपके बताये हुए दुष्कर व्रतका भी मैं यत्नपूर्वक पालन करूँगी। मुझे वह व्रत और उसका विधान विस्तार-पूर्वक बताइये।

मुनि बोले—चैत्र अथवा मार्गशीर्ष मासके शुक्ल पक्षमें शुभ दिनको इस व्रतका प्रारम्भ करना चाहिये। अष्टमी, चतुर्दशी, अमावास्या अथवा पूर्णिमाको विधिपूर्वक संकल्प करके प्रातःकाल स्नान करे, देवताओं और पितरोंका तर्पण करके अपने घर आकर एक सुन्दर मण्डप बनावे, जो चँदोवे आदिसे अलंकृत हो। उसे फल, फूल, पल्लव और बन्दनवारोंसे सजावे। बीचमें पाँच प्रकारके रंगोंसे कमलका चिह्न अंकित करे। उसके मध्यभागमें धान्य अथवा चावलोंकी राशि करके उसके ऊपर कुशा रखे और उस कुशाके ऊपर जलपूर्ण कलश स्थापित करके उसके ऊपर रँगा हुआ वस्त्र रखे। वस्त्रके ऊपर सोनेकी दो प्रतिमाएँ (जो शिव-पार्वतीकी प्रतीक हैं) स्थापित करे। तत्पश्चात् भक्तिभावसे अपनी शक्तिके अनुसार विस्तारपूर्वक उनकी पूजा करे। पंचामृतसे स्नान कराकर फिर शुद्ध जलसे नहलावे। एकादश रुद्रमन्त्रका जप करके एक सौ आठ बार '**नमः शिवाय**' इस पंचाक्षरमन्त्रसे अभिमन्त्रित करे। फिर सिंहासनपर उन प्रतिमाओंको पधराकर पूजा करे। बुद्धिमान् पुरुष स्वयं धुले हुए श्वेत वस्त्र धारण करके शुद्ध आसनपर बैठे। पीठको अभिमन्त्रित करके प्राणायाम करे। भगवान् शिवके आगे हाथ जोड़कर यों संकल्प पढ़े—

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

'मेरे सैकड़ों जन्मोंमें जो भयंकर पाप संचित हुए हैं, उन सबका विनाश करनेके लिये मैं शिवकी पूजा प्रारम्भ करता हूँ। सौभाग्य, विजय, आरोग्य, धर्म और ऐश्वर्यकी वृद्धि तथा स्वर्ग एवं मोक्षकी सिद्धिके लिये मैं शिवजीकी पूजा करूँगा'—इस प्रकार संकल्प बोलकर मनुष्य एकाग्रतापूर्वक यथायोग्य अंगन्यास करके शिव और पार्वतीका ध्यान करे। अपने हृदय-कमलकी कर्णिकामें जगत्के माता-पिता शिव-पार्वतीका ध्यान करके तत्सम्बन्धी मन्त्रोंका जप करे। जपके पश्चात् बाह्य-पूजन प्रारम्भ करे। दोनों सुवर्ण-प्रतिमाओंमें शिव-पार्वतीका आवाहन करके उनके लिये आसन आदि दे। फिर निम्नांकित मन्त्रसे मन्त्रज्ञ पुरुष उन्हें अर्घ्य दे—

नमस्ते पार्वतीनाथ त्रैलोक्यवरदर्षभ।
त्र्यम्बकेश महादेव गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते॥
नमस्ते देवदेवेशि प्रपन्नभयहारिणि।
अम्बिके वरदे देवि गृहाणार्घ्यं शिवप्रिये॥

'तीनों लोकोंको वर देनेवाले देवताओंमें सबसे श्रेष्ठ पार्वतीनाथ! आपको नमस्कार है। त्र्यम्बकेश्वर महादेव! आपको नमस्कार है, यह अर्घ्य ग्रहण कीजिये। शरणागतोंका भय दूर करनेवाली देवदेवेश्वरी जगदम्बिके! वरदायिनी देवि! शिवप्रिये! आप यह अर्घ्य स्वीकार कीजिये।'

इस प्रकार तीन बार कहकर मनुष्य एकाग्रचित्त हो उन्हें अर्घ्य दे। फिर विधिपूर्वक गन्ध, पुष्प, अक्षत, धूप और दीप आदि उपचारोंको चढ़ावे। खीरके साथ घीमें तैयार किया हुआ नैवेद्य अर्पण करे। तत्पश्चात् मूलमन्त्रद्वारा एक सौ आठ बार हविष्यकी आहुति दे। फिर नैवेद्य हटाकर धूप, आरती करके ताम्बूल अर्पण करे और मनको एकाग्र करके नमस्कार करे। इस प्रकार उपचारसे पूजा करके ब्राह्मण-दम्पतिको भोजन करावे। इसी प्रकार सायंकालकी पूजा करके ब्राह्मणकी अनुमति ले रातमें मौनभावसे दूधमें तैयार किया हुआ हविष्य भोजन करे। इस प्रकार विद्वान् पुरुष एक वर्षतक दोनों पक्षोंमें इस व्रतका पालन करता रहे। वर्ष पूरा होनेपर व्रतका उद्यापन करे। शतरुद्रियका पाठ करते हुए दोनों प्रतिमाओंको जलसे स्नान करावे। आगमोक्त मन्त्रोंसे शिव-पार्वतीकी भलीभाँति पूजा करे। अन्तमें वस्त्र, सुवर्ण और प्रतिमासहित कलश सदाचारी आचार्यको देकर ब्राह्मणोंको भोजन करावे। उनका भी यथाशक्ति स्वागत-सत्कार करके उन्हें गौ, सुवर्ण और वस्त्र आदिकी दक्षिणा दे। तत्पश्चात् ब्राह्मणोंकी आज्ञा लेकर अपने इष्टमित्रों और बन्धु-बान्धवोंके साथ स्वयं भी भोजन करे। इस प्रकार जो भक्तिपूर्वक इस त्रिभुवनप्रसिद्ध व्रतका पालन करता है, वह अपनी इक्कीस पीढ़ियोंका उद्धार करके मनोवांछित भोगोंका उपभोग करता है। इन्द्र आदि लोकपालोंके दिव्य लोकोंमें रमण करता है और अन्तमें भगवान् शिवको ही प्राप्त होता है। शुभे! मेरे बताये हुए इस महाव्रतका तुम भी श्रद्धापूर्वक अनुष्ठान करो। इससे अत्यन्त दुर्लभ मनोरथको भी प्राप्त कर लोगी।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

मुनीश्वर नैध्रुवके इस प्रकार आदेश देनेपर शारदाने विश्वासपूर्वक उनके वचनोंको ग्रहण किया। तत्पश्चात् उसके पिता, माता और भाई बाहरसे घरमें आये। उन्होंने देखा मुनि भोजन करके सुखपूर्वक बैठे हुए हैं। सबने सहसा आकर उन महात्माके चरणोंमें प्रणाम किया और स्वयं भी उनका पूजन किया। 'साध्वी शारदाने उस श्रेष्ठ मुनिका पूजन किया है और मुनिने उसे अनुग्रहपूर्वक व्रतका उपदेश दिया है'—यह सब सुनकर उसके भाई-बन्धुओंको बड़ा हर्ष हुआ। वे सब हाथ जोड़कर बोले—'मुने! आज आपके आगमनमात्रसे हम सब लोग धन्य हो गये। हमारा समस्त कुल पवित्र हो गया और यह घर भी सार्थक हो गया। आप हमारे घरके पास ही निवास करें और जो यह घरका मठ है, यह स्नान, पूजाके लिये बहुत उपयोगी है अतः इसीमें रहिये।' इस प्रकार प्रार्थना करनेपर उन मुनिश्रेष्ठने 'बहुत अच्छा' कहकर ब्राह्मणके उत्तम मठमें निवास किया।

इस प्रकार मुनिके समीप नियममें मन लगाकर उस महाव्रतका पालन करती हुई शारदाका एक वर्ष पूरा हो गया। वर्ष व्यतीत होनेपर उसने पिताके घरमें ही ब्राह्मण-भोजनपूर्वक भलीभाँति व्रतका उद्यापन किया। उन ब्राह्मणोंको यथायोग्य दक्षिणा देकर प्रणामपूर्वक विदा किया। माता-पिताने उसके इस कार्यकी बड़ी प्रशंसा की। शारदा उस दिन भी उपवास करके नियम-पालनपूर्वक महात्मा नैध्रुवके बताये हुए उत्तम मन्त्रका जप करती रही। तदनन्तर प्रदोषकाल आनेपर उसने भगवान् शंकरका पूजन किया और घरके पासवाले मठमें भगवान् शिवका ध्यान करती हुई साध्वी शारदा रातभर भगवान् शिवके समीप जागती रही। शारदाकी भक्ति और मुनिकी तपस्या एवं समाधिसे सन्तुष्ट होकर जगन्माता पार्वती उनके सामने प्रकट हुईं। उनके प्रकट होते ही अन्धे मुनिको दो नेत्र प्राप्त हो गये। अपने सम्मुख प्रकट हुई जगन्माता पार्वतीका दर्शन करके वे मुनि और वह ब्राह्मण-कन्या दोनों उनके चरणोंमें गिर पड़े। तब उन दोनोंको उठाकर पार्वतीदेवीने बड़े प्रेमसे कहा—'मुनिश्रेष्ठ! मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हूँ। पापरहित पुत्री शारदा! तुम्हारे ऊपर भी मैं प्रसन्न हूँ। बोलो, तुम्हारी रुचिके अनुसार कौन-सा देवदुर्लभ वर प्रदान करूँ?'

मुनि बोले—देवि! यह 'शारदा' नामकी कन्या विधवा हो गयी है। मैंने अन्ध होनेके कारण इस बातको न जानकर इसकी सेवासे सन्तुष्ट हो यह आशीर्वाद दिया है कि 'तुम अपने पतिके साथ चिरकालतक विहार करके उत्तम पुत्र प्राप्त करो।' जगदम्बा! आप मेरे इस वचनको सत्य करें, आपको नमस्कार है।

श्रीपार्वतीदेवीने कहा—ब्रह्मन्! यह शारदा पूर्वजन्ममें एक द्राविड़ ब्राह्मणकी द्वितीय पत्नी थी। उस समय इसका नाम भामिनी था। भामिनी अपने पतिकी बड़ी प्यारी थी। अपनी रूपमाधुरीसे परम मनोहर दिखायी देनेवाली भामिनीने रूपवशीकरण आदि छलपूर्ण उपायोंसे पतिको अपने वशमें कर लिया। वह मोहग्रस्त ब्राह्मण अपनी छोटी पत्नीमें ही आसक्त होनेके कारण अपनी ज्येष्ठ एवं पतिव्रता पत्नीके पास कभी नहीं गया। पति-समागमसे वंचित होनेसे वह स्त्री पुत्रहीन रह गयी। इससे वह मन-ही-मन सदा सन्तप्त रहती थी और उसी दशामें समयानुसार उसकी मृत्यु हो गयी। भामिनीके घरके पास एक तरुण ब्राह्मण रहता था। वह इस सुन्दरीको देखकर मोहित हो गया था। एक दिन उसने कामसे आतुर होकर इसका हाथ पकड़ लिया। उस समय इसने क्रोधसे लाल आँखें करके उसे दूर

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

भगा दिया। वह दिन-रात इसीका चिन्तन करते-करते मृत्युको प्राप्त हुआ।

इसने स्वामीको मोहित करके जो उन्हें ज्येष्ठ पत्नीसे विमुख किया था, उसी पापसे यह इस जन्ममें विधवा हुई। जो स्त्रियाँ संसारमें पति-पत्नीमें वियोग कराती हैं, उन्हें इक्कीस जन्मोंतक बाल्यावस्थामें विधवा होना पड़ता है। और वह काममोहित ब्राह्मण जो परायी स्त्रीके विरहसे पीड़ित होकर मृत्युको प्राप्त हुआ था, उसने भी पाप ही किया था। अतः इस जन्ममें वह इसका पाणिग्रहणमात्र करके मृत्युको प्राप्त हुआ है। पूर्वजन्ममें जो इसका पति था, वह इस समय पाण्ड्यदेशमें एक श्रेष्ठ ब्राह्मणके रूपमें उत्पन्न हुआ है। उसके पास धन, सम्पत्ति, स्त्री तथा सुखभोगकी सामग्री सब कुछ है। यह शारदा अपने उसी पतिके साथ प्रत्येक रात्रिमें स्वप्नावस्थामें समागम करके जागरण कालकी अपेक्षा भी श्रेष्ठ रतिसुखका अनुभव करे। स्वप्नावस्थामें पति-समागमसे यह कुछ ही समयमें वेद-वेदांगोंके पारंगत विद्वान् पुत्र प्राप्त कर लेगी। वे ब्राह्मणदेवता भी स्वप्नमें अपने साथ चिरसमागमसे इसके गर्भसे उत्पन्न हुए पुत्रको सदैव देखा करेंगे। महामुने! पूर्वजन्ममें इसने मेरी आराधना की है और इसीको वर देनेके लिये मैं प्रकट हुई हूँ।

तदनन्तर महादेवी पार्वतीने शारदासे आदरपूर्वक कहा—बेटी! तुम मेरी उत्तम बात सुनो। जब कभी भी किसी देशमें अपने स्वप्नमें देखे हुए पूर्वपतिको देखना, तब समझ लेना कि यही मेरे पुरातन पति हैं। वे ब्राह्मण भी तुम्हें देखकर पहचान लेंगे। उस समय तुम दोनोंमें वार्तालाप होगा। ऐसा अवसर आनेपर तुम अपने विद्वान् पुत्रको उन्हीं ब्राह्मणकी सेवामें समर्पित कर देना। उमा-महेश्वर-व्रतका जो श्रेष्ठ फल है, उसके अर्धभागको इस प्रकार उन्हींके हाथोंमें सौंप देना और तबसे उन्हींके अधीन होकर रहना। तुम दोनोंको स्वप्न-मिलनके सिवा कभी शारीरिक संग नहीं करना चाहिये। समय आनेपर वे श्रेष्ठ ब्राह्मण जब मृत्युको प्राप्त होंगे, तब उन्हींके साथ चिताकी अग्निमें प्रवेश करके तुम मेरे धामको प्राप्त होओगी।

ऐसा कहकर जगन्माता पार्वती अन्तर्धान हो गयीं। वह कन्या करुणामयी पार्वतीका वरदान पाकर बहुत प्रसन्न हुई। रात्रि व्यतीत होनेपर नूतन नेत्र पाये हुए धर्मज्ञ मुनिने उसके माता-पितासे एकान्तमें सब बात बतायी। तत्पश्चात् वे चले गये। इस प्रकार कुछ दिन बीतनेपर शारदाने स्वप्नमें पतिका समागम प्राप्त किया। पार्वतीदेवीके वरदानसे उसके गर्भ रह गया। उस विधवाको गर्भवती हुई सुनकर सब लोग व्यभिचारिणी कहकर उसे धिक्कार देने लगे। उसके मरे हुए पतिके जातिभाइयोंने जब यह असह्य बात सुनी, तब वे सब लोग शारदाके पिताके घर आये। गाँवके बड़े-बूढ़े पण्डित भी आये। सबने कुलके वृद्ध पुरुषोंके साथ बैठकर गोष्ठी की। लज्जासे नतमुख हुई गर्भवती शारदाको बुलाकर कुछ लोग बड़े क्रोधमें भरकर उसे डाँटने लगे। कुछ लोगोंने उसकी ओरसे मुँह फेर लिया। कुछ निर्दयी वृद्धोंने अपना निर्णय इस प्रकार व्यक्त किया—'यह पापबुद्धिवाली कन्या दोनों कुलोंका नाश करनेवाली है, इसके केश मुँड़वाकर नाक और कान काट दिये जायँ और इसे कुल और जातिसे बहिष्कृत करके गाँवसे बाहर निकाल दिया जाय।' यह सुनकर सब लोग ऐसा ही करनेको तैयार हो गये। इसी समय सबको आकाशवाणी सुनायी पड़ी—'इस कन्याने न तो कोई पाप किया है, न कुलमें कलंक लगाया है और न इसके पातिव्रत्यका भंग ही हुआ है। यह सदाचारपरायणा स्त्री है। इसके बाद जो लोग

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

भी इसे कुलटा या व्यभिचारिणी कहेंगे, उन पापमोहित मनुष्योंकी जिह्वा तत्काल विदीर्ण हो जायगी।'

इस प्रकार आकाशवाणी सुनकर उसके माता-पिता आदि सब लोगोंको बड़ा हर्ष हुआ। कुछ अविश्वासी मनुष्य बोल उठे—'यह आकाशवाणी झूठी है।' इतना कहते ही उनकी जिह्वा दो टूक हो गयी। फिर तो सब जाति-भाई, बन्धु-बान्धव, स्त्रियाँ और बड़े-बूढ़े 'साधु! साधु' कहकर शारदाकी प्रशंसा करने लगे। कुलकी स्त्रियाँ प्रसन्न हो गयीं। दूसरे लोग कहने लगे—'देवता झूठ नहीं बोलते। परंतु यह समझमें नहीं आता कि इसने कैसे गर्भ धारण किया?' इस प्रकार संशयमें पड़े हुए लोगोंको देखकर लोक-तत्त्वको जाननेवाले एक वृद्ध पुरुषने कहा—'यह जो कुछ देखने और सुननेमें आता है, वह सम्पूर्ण विश्व मायामय है। इस क्षणभंगुर संसारमें अकथनीय और असम्भव बातें भी मायासे होती रहती हैं। माया ईश्वरके अधीन है। अतः उस ईश्वरकी लीलाका रहस्य कौन जानता है? सत्यवती मछलीके पेटसे पैदा हुई और महिषासुर भैंसके गर्भसे उत्पन्न हुआ है। वसुदेवजीसे रोहिणीके गर्भसे पुत्रका जन्म हुआ। मुनिके शापसे साम्बके पेटसे मूसल पैदा हुआ और मुनियोंके मन्त्रबलसे राजा युवनाश्वके भी गर्भ रह गया था। इसी प्रकार यह कल्याणमयी सती शारदा भी अपने महान् व्रतके प्रभावसे गर्भवती हुई है, यह बात निश्चयपूर्वक कही जा सकती है। इस विषयमें स्त्रियाँ ही इसे एकान्तमें ले जाकर सच्ची बात पूछें?'

इस निश्चयके अनुसार स्त्रियोंने उसे एकान्तमें ले जाकर इस विषयमें पूछा। शारदाने उन स्त्रियोंसे अपना अत्यन्त अद्भुत वृत्तान्त पूर्णरूपसे कह सुनाया। यथार्थ बातका पता लगनेपर सब लोग उस सतीका आदर करके प्रसन्नचित्त हो अपने-अपने घरको गये। तदनन्तर शुभ समय आनेपर शुद्ध अन्तःकरणवाली शारदाने बालसूर्यके समान तेजस्वी बालकको जन्म दिया। वह कुमार बाल्यावस्थामें ही बहुत अधिक विद्या प्राप्त करके परम बुद्धिमान् हो गया। तत्पश्चात् गुरुने समयपर उसका उपनयन-संस्कार किया। वह लोकमनोहर बालक लोकमें शारदेय नामसे विख्यात हुआ। उसने आठवें वर्षकी आयुमें ऋग्वेद, नवें वर्षमें यजुर्वेद और दसवें वर्षमें सामवेदको लीलापूर्वक पढ़ डाला। तदनन्तर त्रिलोकपूजित शिवपर्व प्राप्त होनेपर सब देशके निवासी मनुष्य गोकर्णतीर्थमें जाने लगे। सती शारदा भी अपने पुत्रके साथ गोकर्णतीर्थमें गयी। वहाँ उसने अपने पूर्वजन्मके पतिको, जिनका स्वप्नमें सदा ही दर्शन किया था, आया हुआ देखा। वे ब्राह्मण बन्धुओंसे घिरे हुए थे। उन्हें देखकर शारदा प्रेममग्न हो गयी और उन्हींकी ओर दृष्टि लगाये खड़ी रही। ब्राह्मण भी रूप और लक्षणोंसे पहचानी हुई तथा स्वप्नमें सदा भोगी जानेवाली उस स्त्रीको और स्वप्नमें ही अपनेसे उत्पन्न हुए उस कुमारको भी देखकर आश्चर्यचकित हो उसके समीप आये और इस प्रकार बोले—'कल्याणी! तुम कौन हो, किसकी स्त्री हो, कौन तुम्हारा देश है और किसकी पुत्री हो?'

उनके द्वारा इस प्रकार पूछी जानेपर उस स्त्रीने बाल्यावस्थामें अपने विधवा होनेका सब वृत्तान्त कहा। तब ब्राह्मणने पुनः प्रश्न किया—'देवि! यह किसका पुत्र है? चन्द्रमाके समान सुन्दर इस बालकको तुमने कैसे गर्भमें धारण किया है?'

शारदा बोली—स्वामी! यह सब विद्याओंमें विशारद मेरा ही पुत्र है। मेरे ही नामपर इसको लोग 'शारदेय' कहते हैं।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

उसकी यह बात सुनकर श्रेष्ठ ब्राह्मण हँसकर बोले—देवि! तुम्हारा पति तो पाणिग्रहणमात्र करके मर गया। फिर इस पुत्रका जन्म कैसे हुआ, इसका कारण बताओ।

शारदा बोली—महामते! परिहाससे कोई लाभ नहीं! आप मुझे जानते हैं और मैं आपको जानती हूँ। इस विषयमें हम दोनोंके मन ही प्रमाण है।

ऐसा कहकर उसने देवीके दिये हुए वरदान आदिकी बातें बतायीं और अपने व्रतके आधे भाग व्रतधारी कुमार शारदेयको उन्हें सौंप दिया। वे ब्राह्मण देवता बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने कुमारको हृदयसे लगा लिया और शारदाके माता-पिताकी आज्ञा लेकर शारदा तथा उस बालकको अपने घर बुला ले गये। ब्राह्मणके घरमें शारदाने कई मास व्यतीत किये। जब उनकी मृत्यु हो गयी, तब उन्हींके साथ चिताकी अग्निमें प्रवेश करके उसने उनका अनुसरण किया। फिर भी दोनों दिव्य दम्पति होकर दिव्य विमानपर बैठे और भगवान् शिवके लोकमें चले गये। इस प्रकार मैंने यह पवित्र उपाख्यान सुनाया, जो पढ़ने और सुननेवालोंको भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाला है।

प्रतिदिन भगवत्सम्बन्धी उत्तम कथाके श्रवणसे मनुष्य परम गतिको प्राप्त होता है। पुण्यक्षेत्रमें निवास करनेसे चित्त शुद्ध होता है। उत्तम कथाके सुननेसे मनुष्य जिस प्रकार उत्तम गतिको पाता है, उस प्रकार अन्य उत्तम व्रतोंसे नहीं। अन्य व्रतोंसे उसकी बुद्धि वैसी उत्तम नहीं होती। जैसे बार-बार शोधन करनेपर दर्पण निर्मल होता है, वैसे ही सत्कथाश्रवणसे चित्त अधिकाधिक शुद्ध होता है। चित्त शुद्ध होनेपर मनुष्योंके द्वारा शिवजीका ध्यान सिद्ध होता है। ध्यानसे पुण्यात्मा पुरुष मन, वाणी और शरीरद्वारा संचित समस्त पापराशिको धोकर भगवान् शिवके परम पदको प्राप्त होते हैं। अतः जिन्होंने अपना पुण्य भगवान् शिवके चरणोंमें समर्पित कर दिया है, उन लोगोंके लिये भगवान् शिवकी उत्तम कथाका श्रवण-कीर्तन ही सर्वोत्तम साधन है; क्योंकि कथासे ध्यान सिद्ध होता है और ध्यानसे कैवल्यकी प्राप्ति होती है।

मुनिवरो! आप सब लोग बड़े सौभाग्यशाली हैं। आपका ही जीवन सफल है; क्योंकि आपलोग सदा भगवान् शिवके उत्तम कथामृत-रसका सेवन करते हैं। इस जीव-जगत्में वस्तुतः उन्हींका जन्म सफल है, जिनका मन सदा भगवान् विश्वनाथका ध्यान करता है, वाणी उनके गुण गाती है और दोनों कान उन्हींकी कथा सुनते हैं। ऐसे ही लोग इस संसार-सागरको पार करते हैं। नाना प्रकारके गुणविभेद जिनके स्वरूपका कभी स्पर्श नहीं करते, जो अपनी महिमासे जगत्के बाहर और भीतर समान रूपसे व्याप्त हैं, जो अपने ही प्रकाशमें विहार करते हैं और जो मन-वाणीकी वृत्तियोंसे बहुत दूर हैं, मैं उन अनन्तानन्दघनस्वरूप परम शिवकी शरण लेता हूँ।

ब्रह्मोत्तर-खण्ड सम्पूर्ण।

ब्राह्म-खण्ड समाप्त

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

ॐ

श्रीपरमात्मने नमः

श्रीउमामहेश्वराभ्यां नमः

संक्षिप्त श्रीस्कन्दमहापुराण

काशीखण्ड पूर्वार्ध

मेरुगिरिसे स्पर्धा करके विन्ध्याचलका सूर्यके मार्गको रोकना और ब्रह्माजीके आदेशसे देवताओंका काशीमें अगस्त्य मुनिके समीप जाना

तं मन्महे महेशानं महेशानप्रियार्भकम्।
गणेशानं करिगणेशाननमनामयम्॥

'जिनका मुख गजराजके मुखके समान है, जो महादेवजीकी प्रिया पार्वतीजीके लाड़ले पुत्र हैं, सबके महान् शासक हैं तथा रोग-शोकसे सर्वथा रहित हैं, उन श्रीगणेशजीका हम चिन्तन करते हैं।'

भूमिष्ठापि न यात्र भूस्त्रिदिवतोऽप्युच्चैरधःस्थापि या
या बद्धा भुवि मुक्तिदा स्युरमृतं यस्यां मृता जन्तवः।
या नित्यं त्रिजगत्पवित्रतटिनी तीरे सुरैः सेव्यते
सा काशी त्रिपुरारिराजनगरी पायादपायाज्जगत्॥

'जो पृथ्वीपर स्थित होकर भी यहाँ पृथ्वीसे सम्बन्ध नहीं रखती, जो पदमें स्वर्गसे ऊँची होनेपर भी नीचेके लोकमें स्थापित की गयी है, जो इस पांचभौतिक जगत्में आबद्ध (प्रविष्ट) होनेपर भी सबको मोक्ष देनेवाली है, जिसमें मरे हुए सभी जीव अमृतमय ब्रह्म हो जाते हैं, जो सदा तीनों लोकोंमें पवित्र नदी श्रीगंगाजीके तटपर सुशोभित है और देवता भी जिसका सेवन करते हैं, वह त्रिपुरारि महादेवजीकी राजधानी काशीपुरी सम्पूर्ण जगत्को विनाशसे बचावे।'

श्रीव्यासदेवजी कहते हैं—एक समय देवर्षि नारद नर्मदाके जलमें स्नान और श्रीॐकारनाथजीका भलीभाँति पूजन करके जब आगे गये, तब उन्हें वह विन्ध्यपर्वत दिखायी दिया, जो संसार-तापका संहार करनेवाली नर्मदा नदीके जलसे सुशोभित होता है। आकाशको अपने तेजसे प्रकाशित करनेवाले नारदजीको दूरसे आते देख गिरिराज विन्ध्यने उनकी अगवानी की। ब्रह्मकुमारके तेजसे उसका आन्तरिक अन्धकार दूर हो गया था। वह ब्रह्मतेजसे प्रभावित हो नारदजीके प्रति आदरका भाव रखकर उनका उत्तम सत्कार करनेको उद्यत हुआ। ऊपरसे कठोर होनेपर भी विन्ध्यगिरिने कोमलता धारण की। स्थावर-जंगम दोनों रूपोंमें उसकी कोमलता देखकर नारदजीको बड़ी प्रसन्नता हुई। अपने घरपर आते हुए बड़े या छोटेको देखकर जो छोटा बनकर नम्रता धारण करता है, वही बड़ा है। आयुमें बड़ा होनेसे कोई बड़ा नहीं होता। विन्ध्यगिरिने पृथ्वीपर मस्तक रखकर महामुनि नारदजीको प्रणाम किया और नारदजी दोनों हाथोंसे उसे उठाकर आशीर्वादसे प्रसन्न करके उसके दिये हुए आसनपर बैठे। विन्ध्यने दही, शहद, घी, जलसे भीगे अक्षत, दूर्वा, तिल, कुश और पुष्प—इन आठ अंगोंसे युक्त अर्घ्य देकर मुनिका पूजन किया। फिर पैर दबाने आदि सेवाके द्वारा उसने थके हुए मुनिकी थकावट दूर की। जब मुनि विश्राम कर चुके, तब विन्ध्यगिरिने विनीतभावसे कहा—'मुने! आज आपके चरणोंकी धूलि पड़नेसे मेरे भीतरका रजोगुण तत्काल दूर हो गया और आपके अंगोंके तेजसे मेरे भीतरका तमोगुण भी सहसा नष्ट हो गया। देवर्षे! आज ही मेरे लिये

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

सुदिन है; पूर्वजन्मोंके किये हुए मेरे चिरसंचित पुण्य आज ही फलीभूत हुए हैं।'

विन्ध्यगिरिकी यह बात सुनकर नारदजी कुछ लंबी साँस खींचकर रह गये। तब सब पर्वतोंमें श्रेष्ठ विन्ध्यने कहा—'सब अर्थोंके ज्ञाता विप्रवर! मुझे अपने उच्छ्वासका कारण बताइये।' नारदजीने मन-ही-मन सोचा—बढ़ते हुए अभिमानका संसर्ग किसीके लिये बड़प्पनका कारण नहीं है। अतः आज विन्ध्यगिरिका बल देखना चाहिये। यों सोचकर मुनि बोले—'पर्वतोंमें श्रेष्ठ मेरुगिरि तुम्हारा अपमान करता है, इसीलिये मैंने लंबी साँस खींची है और यह बात तुमसे बता दी है। तुम्हारा कल्याण हो।' ऐसा कहकर नारद मुनि आकाशमार्गसे चले गये। मुनिके जाते ही विन्ध्याचल अत्यन्त उद्विग्नचित्त हो बड़ी चिन्तामें पड़ गया और मन-ही-मन कहने लगा—'जिसने शास्त्रका एक अंश भी नहीं पढ़ा है, उसके जीवनको धिक्कार है। जो उद्योगहीन है, उसके जीनेको भी धिक्कार है और जिसका मनोरथ पूर्ण नहीं होता, उसके जीनेको भी धिक्कार है। पुरानी बातोंको जाननेवाले विद्वान् पुरुषोंने यह ठीक ही कहा है कि चिन्ताका स्वरूप बड़ा भयंकर है। चिन्ता न तो औषधोंसे शान्त होती है और न दूसरे किसी उपायसे। चिन्तारूपी ज्वर मनुष्योंकी भूख, नींद और बल हर लेता है। रूप, उत्साह, बुद्धि, सम्पत्ति और जीवनको भी नष्ट कर देता है। ज्वर छः दिन व्यतीत होनेपर जीर्णज्वर कहलाता है, किंतु तीव्र चिन्ताज्वर प्रतिदिन नूतनताको प्राप्त होता है*। इसे दूर करनेमें धन्वन्तरि भी धन्यवादके पात्र नहीं हो पाते। इसमें चरक भी विचरण नहीं कर सकते। इतना ही नहीं, नासत्य (दोनों अश्विनीकुमार) भी इसमें सत्य नहीं हो पाते। क्या करूँ, कहाँ जाऊँ, कैसे मेरुपर्वतको परास्त करूँ। यहाँ उचित और अनुचितके विचारका कोई उपयोग नहीं है, अथवा इन व्यर्थकी चिन्ताओंसे क्या लाभ? मैं विश्वकी उत्पत्ति करनेवाले भगवान् विश्वनाथकी ही शरणमें चलूँ। वे ही मुझे बुद्धि प्रदान करेंगे। ग्रह, नक्षत्र और तारागणोंके साथ भगवान् सूर्य मेरुको अधिक बलवान् मानकर प्रतिदिन उसकी प्रदक्षिणा करते हैं।'

ये ही सब बातें सोचकर विन्ध्यगिरि ऊँचाईकी ओर बढ़ने लगा, मानो वह अपने शिखरोंसे अनन्त आकाशका अन्त कर देना चाहता हो। गिरिराज विन्ध्य सूर्यका मार्ग रोककर ही कुछ स्वस्थ-सा हुआ।

तदनन्तर अन्धकारका नाश करनेवाले भगवान् सूर्य उदयाचल पर्वतपर उदित हुए और क्रमशः दक्षिण दिशाकी ओर चले। किंतु जब उनके घोड़े आगे न बढ़ सके, तब अनूरु (अरुण) नामक सारथिने सूचित किया—'भानुदेव! अभिमानसे ऊँचे उठा हुआ यह विन्ध्यपर्वत आकाशका मार्ग रोककर खड़ा है। आप जो मेरुगिरिकी प्रदक्षिणा किया करते हैं, उसके कारण यह गिरिराज मेरुसे लाग-डाँट रखता है।' अनूरुकी बात सुनकर भगवान् सूर्यने मन-ही-मन सोचा—'अहो! आकाशका मार्ग भी रोका जाता है। यह बड़े विस्मयकी बात है।' जो आधे पलमें दो हजार दो सौ दो योजन चलते हैं, वे सूर्य भी दैववश एक ही जगह अधिक समयतक रुके रह गये। इस प्रकार दीर्घकालतक प्रचण्डरश्मि सूर्यके ठहर जानेसे पूर्व और उत्तर दिशामें रहनेवाले जीव उनकी किरणोंके तापसे सन्तप्त हो बहुत व्याकुल हो गये। दक्षिण और पश्चिमके लोग लेटे हुए ही ग्रह तथा नक्षत्रोंसहित आकाशको देखने लगे। वे सोचते थे 'सूर्यका दर्शन नहीं हुआ, इसलिये यह दिन नहीं है और रात भी नहीं है; क्योंकि चन्द्रमा अस्त हो गये। आकाशके तारे भी लुप्त होते जाते हैं। अतः यह कौन-सा समय है, इसका पता नहीं चलता।' पृथ्वीपर स्वाहा (देवयज्ञ), स्वधा (पितृयज्ञ) और

* चिन्ताज्वरो मनुष्याणां क्षुधां निद्रां बलं हरेत्। रूपमुत्साहबुद्धिं श्रीं जीवितं च न संशयः॥
ज्वरो व्यतीते षडहे जीर्णज्वर इहोच्यते। असौ चिन्ताज्वरस्तीव्रः प्रत्यहं नवतां व्रजेत्॥
(स्क० पु०, का० पू० १। ६९-७०)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

वषट्कार (ब्रह्मयज्ञ आदि) का सर्वथा अभाव हो गया। पंचयज्ञ कर्मका लोप हो जानेसे तीनों लोक काँप उठे। चित्रगुप्त आदि सब लोग सूर्यसे ही कालका ज्ञान रखते हैं। एकमात्र भगवान् सूर्य ही जगत्के सृष्टि, पालन और संहारके हेतु हैं। सूर्यदेवकी गति रुक जानेसे तीनों लोक स्तब्ध हो उठे। जो जहाँ था, वहीं चित्रलिखित-सा रह गया। एक ओर तो रातके अन्धेरेसे और दूसरी ओर सूर्यकी गरमीसे बहुत-से जीवोंकी मृत्यु हो गयी। समस्त चेतन जगत् भयसे इधर-उधर भागने लगा। यह अवस्था देख सब देवता ब्रह्माजीकी शरणमें गये और नाना प्रकारकी स्तुतियोंद्वारा उनके गुणगान करने लगे।

देवता बोले—परब्रह्मस्वरूप हिरण्यगर्भ ब्रह्माजीको नमस्कार है। जिनका स्वरूप किसीको ज्ञात नहीं है, जो कैवल्य एवं अमृतरूप हैं, जिन्हें इन्द्रियाँ और उनके अधिष्ठाता देवता भी नहीं जानते, जहाँ मनकी भी पहुँच नहीं है और जहाँ वाणीका भी प्रस्तार नहीं हो पाता, उन सच्चिदानन्दमय परमात्माको नमस्कार है। योगीजन अविचलभावसे समाधिमें स्थित हो ध्यानके द्वारा अपने हृदयाकाशमें जिनके ज्योतिर्मय स्वरूपका साक्षात्कार करते हैं, उन श्रीब्रह्माजीको नमस्कार है। जो कालसे परे होकर भी कालस्वरूप हैं, स्वेच्छा (अथवा अपने भक्तोंकी इच्छा)से पुरुषरूप धारण करते हैं, सत्त्व, रज और तम—ये तीनों गुण जिनके स्वरूप हैं तथा गुणोंकी साम्यावस्थारूप प्रकृति भी जिनका ही रूप है, उन ब्रह्मा, विष्णु, शिवरूप परमेश्वरको नमस्कार है। प्रभो! वेद आपके निःश्वास हैं, सम्पूर्ण विश्व आपके एक अंशमें स्थित है, द्युलोक आपके मस्तकसे प्रकट हुआ है, आपकी नाभिसे अन्तरिक्ष लोकका आविर्भाव हुआ है और वनस्पति आपके लोम हैं। भगवन्! चन्द्रमा आपके मनसे और सूर्य आपके नेत्रसे उत्पन्न हुए हैं। देव! आप ही सब कुछ हैं, आपमें ही सबकी स्थिति है, आप परमेश्वरसे यह सम्पूर्ण जगत् भलीभाँति व्याप्त है, आपको बारंबार नमस्कार है।

इस प्रकार ब्रह्माजीकी स्तुति करके सब देवता दण्डकी भाँति पृथ्वीपर पड़ गये। तब ब्रह्माजीने उनसे इस प्रकार कहा—'देवताओ! मैं तुम्हारी स्तुतिसे सन्तुष्ट हूँ, उठो और इच्छानुसार वर माँगो।' देवतालोग जब प्रणाम करके खड़े हुए, तब ब्रह्माजीने उनसे पुनः इस प्रकार कहा—'विन्ध्याचल मेरु पर्वतसे डाह करता है, इसीलिये उसने सूर्यका मार्ग रोक रखा है। इसी संकटको टालनेके लिये तुमलोग मेरे पास आये हो। अतः इसके लिये मैं तुम्हें एक उत्तम उपाय बतलाता हूँ। मित्रावरुणके पुत्र महर्षि अगस्त्य बड़े भारी तपस्वी हैं। सबको मुक्ति देनेवाले अविमुक्त नामक महाक्षेत्र (काशी) में, जहाँ तारकमन्त्रका उपदेश देनेके लिये साक्षात् विश्वनाथजी सदा विद्यमान रहते हैं, वे अगस्त्य मुनि भगवान् विश्वनाथमें मन लगाकर बड़ी भारी तपस्या कर रहे हैं। वहाँ जाकर उन्हींसे इस कार्यके लिये याचना करो। वे तुम्हारा कार्य अवश्य सिद्ध करेंगे।'

ऐसा कहकर ब्रह्माजी अन्तर्धान हो गये। तदनन्तर सब देवता आपसमें कहने लगे—'अहो! हम परम धन्य हैं, क्योंकि इसी कार्यके प्रसंगसे हमें मंगलमयी काशी और कल्याणमय काशीपतिका भी दर्शन प्राप्त होगा। हमने ब्रह्माजीके मुखसे जो काशीकी चर्चा सुनी है, उसके श्रवणजनित पुण्यसे आज काशीमें पहुँचेंगे।' ऐसा कहते हुए सब देवता प्रसन्नमुख हो काशीपुरीमें आये।

महर्षियोंसहित देवताओंने काशीपुरीमें पहुँचकर पहले मणिकर्णिका तीर्थमें विधिपूर्वक वस्त्रसहित स्नान और सन्ध्योपासन आदि पुण्यकर्म किया। तत्पश्चात् विश्वनाथजीका दर्शन, नमस्कार और स्तवन करके वे परोपकारके लिये उस स्थानपर गये, जहाँ अगस्त्य मुनि रहते थे। वे मुनि अपने नामसे शिवलिंगकी स्थापना करके उसके सामने कुण्ड निर्माण कराकर वहाँ शतरुद्रिय सूक्तका स्थिरचित्तसे जप करते थे। उनको दूरसे ही देखकर देवता परस्पर इस प्रकार कहने लगे—'अहो! इस आश्रमके चारों ओर हिंसक जीव भी सात्त्विक

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

दिखायी देते हैं। अपने स्वाभाविक वैरको भी त्यागकर प्रेमपूर्वक रहते हैं।' किंतु जो मनुष्य पापसे मोहित होकर मांस पकाता है, वह उस पशुके शरीरमें जितने रोएँ होते हैं, उतने वर्षोंतक नरकमें निवास करता है। जो दूषित बुद्धिवाले मनुष्य पराये प्राणोंसे अपने प्राणोंका पोषण करते हैं, वे एक कल्पतक नरक भोगकर इस संसारमें जन्म लेते और उन्हीं प्राणियोंके खाद्य बनते हैं। भूखसे प्राण निकलकर कण्ठतक आ गये हों तो भी मांस नहीं खाना चाहिये *। ये हिंसक जीव भी मनुष्योंकी अपेक्षा श्रेष्ठ हैं, जो अगस्त्यजीकी सेवासे ऐसी स्थितिको प्राप्त हो गये हैं कि हिंसाकी ओर इनका मन जाता ही नहीं। कहाँ मांस-भक्षण और कहाँ भगवान् शिवकी भक्ति। जो मद्य और मांसमें आसक्त हैं, उनसे भगवान् शंकर बहुत दूर रहते हैं। भगवान् शिवके प्रसादके बिना भ्रमका कहीं नाश नहीं होता। इस प्रकार आश्रमके पास विचरनेवाले पशु-पक्षियोंको भी मुनियोंके समान बर्ताव करते देख देवताओंने यह समझा कि यह इस पुण्यक्षेत्रका प्रभाव है; क्योंकि भगवान् विश्वनाथ इस क्षेत्रमें रहनेवाले पशु-पक्षियोंको भी मृत्युकालमें तारक मन्त्रका उपदेश देकर मुक्त करेंगे। इस तरह आश्चर्यमें पड़े हुए देवता ज्यों-ही मुनिके आश्रमपर पहुँचे त्यों-ही वहाँके पक्षिसमूहको देखकर अपने मनमें बहुत प्रसन्न हुए। पढ़ती हुई मैना तोतेको सार तत्त्वका उपदेश देती हुई कह रही थी—'हे शुक! इस अपार संसार-सागरसे पार उतारनेवाले केवल भगवान् शिव हैं।' कोयल कोमल वाणीमें अपनी कूक सुनाती हुई कहती थी—'काशी-निवासी प्राणियोंको कलियुग और यमराज अपना ग्रास नहीं बनाता।' वहाँके पशुओं और पक्षियोंकी ऐसी चेष्टा देखकर देवता आपसमें कहने लगे—ये काशी-निवासी पशु-पक्षी और मृग धन्य हैं, जिनकी इस संसारमें पुनरावृत्ति नहीं होगी। देवता ऐसे भाग्यशाली नहीं हैं; क्योंकि उनका पुनर्जन्मसे पिण्ड नहीं छूटता।

ऐसा कहते हुए देवताओंने मुनिकी पर्णकुटी देखी, जो होम एवं धूपकी सुगन्धसे सुवासित तथा बहुत-से ब्रह्मचारी विद्यार्थियोंसे सुशोभित थी। पतिव्रताशिरोमणि लोपामुद्राके चरण-चिह्नोंसे

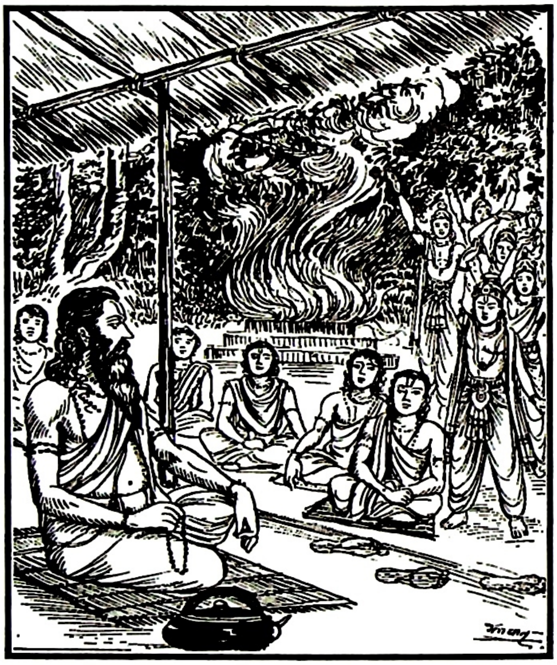

चिह्नित पर्णकुटीके आँगनको देखकर सब देवताओंने नमस्कार किया। महर्षि अगस्त्य समाधिसे उठकर कुशासनपर बैठे थे। उनका दर्शन करके इन्द्रादि देवता प्रसन्नमुख हो उच्चस्वरसे बोले—'जय हो, जय हो।' मुनि उठकर खड़े हो गये और उन सबको यथायोग्य आसनपर बैठाया। आशीर्वादसे उनका अभिनन्दन किया और वहाँ आनेका कारण पूछा।

~~o~~

* यः स्वार्थं मांसपचनं कुरुते पापमोहितः। यावन्त्यस्य तु रोमाणि तावत्स नरके वसेत्॥
परप्राणैस्तु ये प्राणान् स्वान् पुष्णन्ति हि दुर्धियः। आकल्पं नरकान् भुक्त्वा ते भुज्यन्तेऽत्र तैः पुनः॥
जातु मांसं न भोक्तव्यं प्राणैः कण्ठगतैरपि॥

(स्क० पु०, का० पू० ३। ५१—५३)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth 279 Skandpuran_Section_25_1_Back

बृहस्पतिजीके मुखसे लोपामुद्राके पातिव्रतधर्मका वर्णन

अगस्त्यजीका वचन सुनकर सब देवता बृहस्पतिजीके मुखकी ओर देखने लगे। तब बृहस्पतिजीने कहा—'महाभाग अगस्त्यजी! आप धन्य हैं, कृतकृत्य हैं और महात्मा पुरुषोंके लिये भी माननीय हैं। आपमें तपस्याकी सम्पत्ति है, आपमें स्थिर ब्रह्मतेज है, आपमें पुण्यकी उत्कृष्ट शोभा है, आपमें उदारता है और आपमें विवेकशील मन है। आपकी सहधर्मिणी ये कल्याणमयी लोपामुद्रा बड़ी पतिव्रता हैं, आपके शरीरकी छायाके तुल्य हैं। इनकी चर्चा भी पुण्य देनेवाली है। मुने! ये आपके भोजन कर लेनेपर ही भोजन करतीं, आपके खड़े होनेपर स्वयं भी खड़ी रहतीं, आपके सो जानेपर सोतीं और आपसे पहले जाग उठती हैं। ये कभी अपने-आपको आपके सामने अलंकारहीन अवस्थामें नहीं उपस्थित करतीं। जब आप किसी कार्यसे कहीं परदेशमें जाते हैं, तब ये एक भी अलंकार नहीं धारण करतीं। आपकी आयु बढ़े—इस उद्देश्यसे ये कभी आपका नाम नहीं उच्चारण करती हैं। दूसरे पुरुषका नाम भी ये कभी अपनी जीभपर नहीं लातीं। ये कड़वी बात सह लेती हैं, किंतु स्वयं बदलेमें कोई कटु वचन मुँहसे नहीं निकालतीं। आपके द्वारा ताड़ना पाकर भी प्रसन्न ही होती हैं। जब आप इनसे कहते हैं—'प्रिये! अमुक कार्य करो' तब ये उत्तर देती हैं—'स्वामिन्! अभी किया। आप समझ लें वह काम पूरा हो गया।' आपके बुलानेपर ये घरके आवश्यक काम छोड़कर भी तुरंत चली आती हैं और कहती हैं—'प्राणनाथ! दासीको किसलिये बुलाया है। आज्ञा देकर मुझे अपने प्रसादकी भागिनी बनाइये।' ये दरवाजेपर देरतक नहीं खड़ी होतीं, द्वारपर बैठती और सोती भी नहीं हैं। आपकी आज्ञाके बिना कोई वस्तु किसीको नहीं देतीं, आप न कहें तब भी ये स्वयं ही आपके लिये पूजाका सब सामान जुटा देती हैं। नियमके लिये जल, कुशा, पत्र-पुष्प और अक्षत आदि प्रस्तुत करती हैं। सेवाके लिये अवसर देखती रहती हैं और जिस समय जो वस्तु आवश्यक अथवा उचित है, वह सब बिना किसी उद्वेगके अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक उपस्थित करती हैं। पतिके भोजन करनेके बाद बचा हुआ अन्न और फल आदि खाती और पतिकी दी हुई प्रत्येक वस्तुको महाप्रसाद कहकर शिरोधार्य करती हैं। देवता, पितर और अतिथियोंको तथा सेवकों, गौओं और याचकोंको भी उनका भाग अर्पण किये बिना ये कभी भोजन नहीं करतीं। वस्त्र, आभूषण आदि सामग्रियोंको स्वच्छ एवं सुरक्षित रखती हैं। ये गृहकार्यमें कुशल हैं, सदा प्रसन्न रहती हैं, फजूल खर्च नहीं करतीं, एवं आपकी आज्ञा लिये बिना ये कोई उपवास और व्रत आदि नहीं करती हैं। जनसमूहके द्वारा मनाये जानेवाले उत्सवोंका दर्शन दूरसे ही त्याग देती हैं। तीर्थयात्रा आदि तथा विवाहोत्सव-दर्शन आदि कार्योंके लिये भी ये कभी नहीं जातीं। पति सुखसे सोये हों, आरामसे बैठे हों अथवा अपनी मौजसे कहीं रम रहे हों, तो उस समय कोई अन्तरंग कार्य आ जानेपर भी उन्हें कभी नहीं उठातीं। रजस्वला होनेपर ये तीन राततक अपना मुँह पतिको नही दिखातीं। जबतक स्नान करके शुद्ध न हो जायँ, तबतक अपनी बात भी पतिके कानोंमें नहीं पड़ने देतीं। भलीभाँति स्नान कर लेनेपर पहले पतिका ही मुँह देखती हैं और किसीका नहीं। अथवा यदि पतिदेव उपस्थित न हों तो मन-ही-मन उनका ध्यान करके सूर्यदेवका दर्शन करती हैं। पतिकी आयुवृद्धि चाहती हुई पतिव्रता स्त्री अपने शरीरसे हल्दी, रोली, सिन्दूर, काजल, चोली, पान, शुभ मांगलिक आभूषण कभी दूर न करे। केशोंका सँवारना, वेणी गूँथना तथा हाथ और कान आदिके आभूषणोंको धारण करना कभी बंद न करे। अपने स्वामीसे द्वेष

Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

रखनेवाली स्त्रीसे ये कभी बाततक नहीं करती हैं। ये कहीं भी अकेली नही रहतीं और न कभी नंगी होकर स्नान करती हैं। सती स्त्रीको ओखली, मूसल, झाड़ू, सिलौट, चक्की और चौकठपर कभी नहीं बैठना चाहिये। पतिव्रता स्त्री कभी धृष्टताका परिचय न दे। जहाँ-जहाँ पतिकी रुचि हो, वहीं सती स्त्री सदा प्रेम रखे। यही स्त्रियोंका उत्तम व्रत, यही उनका परम धर्म और यही एकमात्र देवपूजा है कि वे पतिकी आज्ञाका उल्लंघन न करें। पति नपुंसक, दुर्दशाग्रस्त, रोगी, बूढ़ा, अच्छी स्थितिवाला अथवा बुरी परिस्थितिमें पड़ा हुआ हो, तो भी पतिका कभी त्याग न करे। पतिके हर्षमें हर्ष माने और पतिके मुखपर विषादकी छाया देखकर स्वयं भी विषादग्रस्त हो। पुण्यात्मा सती सम्पत्ति और विपत्तिमें भी पतिके साथ एकरूप होकर रहे। पतिको चिन्ता और परिश्रममें न डाले। तीर्थस्नानकी इच्छा रखनेवाली स्त्री अपने पतिका चरणोदक पीये; क्योंकि उसके लिये केवल पति ही भगवान् शिव और विष्णुसे बढ़कर है। जो पतिकी आज्ञाका उल्लंघन करके व्रत और उपवास आदिके नियम पालती है, वह अपने पतिकी आयु हर लेती है और मरनेपर नरकमें गिरती है। जो स्वयं प्रसन्न रहकर पतिको प्रसन्न रखती है, उसने तीनों लोकोंको प्रसन्न कर लिया है। पिता थोड़ा सुख देता है, भाई थोड़ा सुख देता है और पुत्र भी थोड़ा ही सुख देता है, अपरिमित सुख देनेवाला तो पति ही है। अतः उसकी सदा पूजा करनी चाहिये। पति ही देवता है, पति ही गुरु है और पति ही धर्म, तीर्थ एवं व्रत है। इसलिये स्त्री सबको छोड़कर केवल पतिकी पूजा करे।

इतना कहकर बृहस्पतिजी लोपामुद्रासे बोले— पतिके चरणारविन्दोंपर दृष्टि रखनेवाली महामाता लोपामुद्रे! हमने काशीमें आकर जो गंगा-स्नान किया है, उसीका यह फल है कि हमें आपका दर्शन प्राप्त हुआ है। लोपामुद्राकी इस प्रकार स्तुति करके देवगुरुने अगस्त्य मुनिसे कहा—'महर्षे! आप प्रणव हैं और ये लोपामुद्रा श्रुति हैं। आप मूर्तिमान् तप हैं और ये क्षमा हैं। आप फल हैं और ये सत्क्रिया हैं। महामुने! इन्हें पाकर आप धन्य हैं। ये देवी पातिव्रतका मूर्तिमान् तेज हैं और आप साक्षात् सर्वोत्कृष्ट ब्रह्मतेज हैं। इसपर भी आपमें यह तपस्याका तेज और बढ़ा हुआ है। भला आपके लिये कौन-सा कार्य असाध्य है। यद्यपि कुछ भी आपसे अविदित नहीं है तथापि देवतालोग जिस उद्देश्यसे यहाँ आये हैं, वह मैं बतलाता हूँ। मुने! ध्यान देकर सुनें। विन्ध्य नामसे प्रसिद्ध पर्वत मेरु गिरिसे डाह रखनेके कारण बढ़कर इतना ऊँचा हो गया है कि उसने सूर्यदेवका मार्ग रोक लिया है, उसकी इस वृद्धिको आप रोकिये।'

देवगुरुका यह वचन सुनकर महामुनि अगस्त्यने क्षणभरके लिये चित्तको एकाग्र किया और 'बहुत अच्छा, आपलोगोंका कार्य सिद्ध करूँगा।' ऐसा कहकर देवताओंको विदा किया। तत्पश्चात् वे पुनः कुछ चिन्तन करते हुए ध्यानमग्न हो गये।

अगस्त्यजीका काशीपुरीसे प्रस्थान, विन्ध्यपर्वतको लघुरूपमें रहनेका आदेश और महालक्ष्मीकी स्तुति

वेदव्यासजी कहते हैं—सूत! तदनन्तर ध्यानद्वारा भगवान् विश्वनाथजीका दर्शन करके मुनीश्वर अगस्त्य पुण्यमयी लोपामुद्रासे इस प्रकार बोले—'प्रिये! काशीको लक्ष्य करके तत्त्वदर्शी मुनियोंने यह कहा है कि मोक्षकी इच्छा रखनेवाले पुरुषोंको कभी अविमुक्त क्षेत्र (काशीतीर्थ) का त्याग नहीं करना चाहिये, क्योंकि यह सदा सुलभ नहीं है। कहाँ विश्वाधार परमात्माको प्रकाशित करनेवाली काशीपुरी और कहाँ सब ओरसे अत्यन्त दुःख देनेवाला दूसरा कार्य। ऐसी

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

काशीको शीघ्र कालके गालमें जानेवाला मनुष्य क्यों छोड़े। जो पाप एवं अविद्याका नाश करती है, देवताओंके लिये भी जो दुर्लभ है, गंगाजीके स्वच्छ जलसे जिसकी शोभा हो रही है, जो भव-बन्धनका नाश करनेवाली है, भगवान् शिव और अन्नपूर्णा जिसे कभी नहीं छोड़ते तथा जो मोक्षरूप मोतीको प्रकट करनेके लिये एकमात्र सीपी है, ऐसी मुक्तिमयी काशीपुरीको जीवन्मुक्त पुरुष कदापि नहीं छोड़ते। जो लहरें लेती हुई गंगाजीके जलसे अत्यन्त सुन्दर प्रतीत होती है, जो प्रलयकालमें भी महादेवजीके त्रिशूलके अग्रभागपर स्थापित रहती है, ऐसी काशीको छोड़कर लोग अपने मनको जो अन्यत्र ले जाते हैं, यह उनकी कैसी जड़ता है! ब्राह्मणोंके आशीर्वाद और भगवान् विश्वनाथकी कृपासे ही काशी सुलभ होती है। काशी अपनी शरणमें आये हुए जीवोंकी रक्षा करनेवाली है। यहाँ मृत्युकालमें भगवान् शंकर सब जीवोंके कानमें तारक मन्त्रका उपदेश देते हैं, जिससे वे सब ब्रह्मस्वरूप हो जाते हैं। वेदवादी विद्वान् कहते हैं कि काशीपुरीमें भगवान् शिव तारक मन्त्रके उपदेशसे वहाँ रहनेवाले सब जीवोंको निश्चय ही मुक्त कर देते हैं।'

तदनन्तर अगस्त्य मुनि कालभैरवजीके पास गये और प्रणाम करके बोले—भगवन्! आप काशीपुरीके स्वामी हैं, अतः मैं आपसे आज्ञा लेने आया हूँ। कालराज! मुझ निरपराधपर किस कारण आपकी यह अपराधदृष्टि हो गयी? क्यों आप मुझे काशीसे अन्यत्र जानेका अवसर देते हैं? यक्षराज! आप क्यों मुझे काशीसे बाहर भेजते हैं?—इस प्रकार विरहीकी भाँति विलाप करके 'हा काशी! हा काशी' की रट लगाते हुए अगस्त्यमुनि अपनी धर्मपत्नी लोपामुद्राके साथ चले और आधे पलमें उस स्थानपर जा पहुँचे, जहाँ विन्ध्यपर्वत ऊँचे आकाशको रोककर खड़ा था। मुनिने अपने सामने ही खड़े हुए विन्ध्याचलपर दृष्टिपात किया। पर्वत भी पत्नीसहित अगस्त्य मुनिको अपने आगे खड़े देखकर काँप गया। वे तपस्या और क्रोधसे तथा काशीके विरहसे प्रकट हुई त्रिविध अग्नियोंसे प्रलयंकर अनलकी भाँति अत्यन्त प्रज्वलित-से जान पड़ते थे। उनपर दृष्टि पड़ते ही विन्ध्यपर्वत इतना छोटा हो गया मानो धरतीमें समा जाना चाहता हो। छोटा रूप धारण करके वह बोला—'भगवन्! मैं आपका सेवक हूँ, मेरे योग्य सेवाके लिये आज्ञा देकर मुझपर कृपा करें।'

अगस्त्यजी बोले—विन्ध्य! तुम साधुपुरुष हो, बुद्धिमान् हो और मुझे अच्छी तरह जानते हो। देखो, जबतक यहाँ पुनः लौटकर मेरा आना न हो, तबतक तुम अत्यन्त लघु रूपमें ही रहो। यों कहकर मुनिने अपने पदार्पणसे दक्षिण दिशाको सनाथ किया। मुनिवर अगस्त्यके चले जानेपर विन्ध्यपर्वतने मन-ही-मन विचार किया—आज अगस्त्य मुनिने जो मुझे शाप नहीं दिया है, इससे मैं समझता हूँ कि मेरा पुनः नया जन्म हुआ है। उस समय कालका ज्ञान रखनेवाले अरुण सारथिने अपने घोड़ोंको आगे बढ़ाया। पहलेकी भाँति सूर्यदेवके संचारणसे सम्पूर्ण जगत् पूर्णतः स्वस्थ हुआ। आज, कल अथवा परसोंतक मुनि अवश्य आवेंगे मानो इसी चिन्ताके महाभारसे दबा हुआ विन्ध्यगिरि ज्यों-का-त्यों स्थित है, परंतु आजतक न तो अगस्त्य मुनि आये और न पर्वत बढ़ा।

मुनिवर अगस्त्यजी गोदावरीके रमणीय तटपर विचरते हुए भी काशी-विरहजनित महान् सन्तापको नहीं छोड़ सके। वे पत्नीसहित विचरते हुए कोलापुरनिवासिनी महालक्ष्मीजीके समीप गये और उन्हें प्रणाम करके इस प्रकार स्तुति करने लगे—'कमलके समान विशाल नेत्रोंवाली मातः कमले! मैं आपको प्रणाम करता हूँ। आप भगवान् विष्णुके हृदयकमलमें निवास करनेवाली तथा सम्पूर्ण विश्वकी जननी हैं। कमलके कोमल गर्भके सदृश गौर वर्णवाली क्षीरसागरकी पुत्री

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

महालक्ष्मी! आप अपनी शरणमें आये हुए प्रणतजनोंका पालन करनेवाली हैं। आप सदा मुझपर प्रसन्न हों। मदनकी एकमात्र जननी रुक्मिणीरूपधारिणी लक्ष्मी! आप भगवान् विष्णुके वैकुण्ठधाममें 'श्री' नामसे प्रसिद्ध हैं। चन्द्रमाके समान मनोहर मुखवाली देवि! आप ही चन्द्रमामें चाँदनी हैं, सूर्यमें प्रभा हैं और तीनों लोकोंमें आप ही प्रभासित होती हैं। प्रणतजनोंको आश्रय देनेवाली माता लक्ष्मी! आप सदा मुझपर प्रसन्न हों। आप ही अग्निमें दाहिका शक्ति हैं। ब्रह्माजी आपकी ही सहायतासे विविध प्रकारके जगत्की रचना करते हैं। सम्पूर्ण विश्वका भरण-पोषण करनेवाले भगवान् विष्णु भी आपके ही भरोसे सबका पालन करते हैं। शरणमें आकर चरणमें मस्तक झुकानेवाले पुरुषोंकी निरन्तर रक्षा करनेवाली माता महालक्ष्मी! आप मुझपर प्रसन्न हों। निर्मल स्वरूपवाली देवि! जिनको आपने त्याग दिया है, उन्हींका भगवान् रुद्र संहार करते हैं। वास्तवमें आप ही जगत्का पालन, संहार और सृष्टि करनेवाली हैं। आप ही कार्य-कारणरूप जगत् हैं। निर्मलस्वरूपा लक्ष्मी! आपको प्राप्त करके ही भगवान् श्रीहरि सबके पूज्य बन गये। माँ! आप प्रणतजनोंका सदैव पालन करनेवाली हैं, मुझपर प्रसन्न हों। शुभे! जिस पुरुषपर आपका करुणापूर्ण कटाक्षपात होता है, संसारमें एकमात्र वही शूरवीर, गुणवान्, विद्वान्, धन्य, मान्य, कुलीन, शीलवान्, अनेक कलाओंका ज्ञाता और परम पवित्र माना जाता है। देवि! आप जिस किसी पुरुष, हाथी, घोड़ा, नपुंसक, तिनका, सरोवर, देवमन्दिर, गृह, अन्न, रत्न, पशु-पक्षी, शय्या और भूमिमें क्षणभर भी निवास करती हैं, समस्त संसारमें केवल वही शोभासम्पन्न होता है, दूसरा नहीं। हे श्रीविष्णुपत्नि! हे कमले! हे कमलालये! हे माता लक्ष्मी! आपने जिसका स्पर्श किया है, वह पवित्र हो जाता है और आपने जिसे त्याग दिया है, वही सब इस जगत्में अपवित्र है। जहाँ आपका नाम है, वहीं उत्तम मंगल है। जो लक्ष्मी, श्री, कमला, कमलालया, पद्मा, रमा, नलिनयुग्मकरा (दोनों हाथोंमें कमल धारण करनेवाली), माँ, क्षीरोदजा, अमृतकुम्भकरा (हाथोंमें अमृतका कलश धारण करनेवाली), इरा और विष्णुप्रिया—इन नामोंका सदा जप करते हैं, उनके लिये कहाँ दुःख है।'*

इस प्रकार हरिप्रिया भगवती महालक्ष्मीकी

---

* अगस्तिरुवाच—

मातर्नमामि कमले कमलायताक्षि श्रीविष्णुहृत्कमलवासिनि विश्वमातः।
क्षीरोदजे कमलकोमलगर्भगौरि लक्ष्मि प्रसीद सततं नमतां शरण्ये॥
त्वं श्रीरुपेन्द्रसदने मदनैकमातर्ज्योत्स्नासि चन्द्रमसि चन्द्रमनोहरास्ये।
सूर्ये प्रभासि च जगत्त्रितये प्रभासि लक्ष्मि प्रसीद सततं नमतां शरण्ये॥
त्वं जातवेदसि सदा दहनात्मशक्तिर्वेधास्त्वया जगदिदं विविधं विदध्यात्।
विश्वम्भरोऽपि बिभृयादखिलं भवत्या लक्ष्मि प्रसीद सततं नमतां शरण्ये॥
त्वत्त्यक्तमेतदमले हरते हरोऽपि त्वं पासि हंसि विदधासि परावरासि।
ईड्यो बभूव हरिरप्यमले त्वदाप्त्या लक्ष्मि प्रसीद सततं नमतां शरण्ये॥
शूरः स एव स गुणी स बुधः स धन्यो मान्यः स एव कुलशीलकलाकलापैः।
एकः शुचिः स हि पुमान् सकलेऽपि लोके यत्रापतेत्तव शुभे करुणाकटाक्षः॥
यस्मिन्वसेः क्षणमहो पुरुषे गजेऽश्वे स्त्रैणे तृणे सरसि देवकुले गृहेऽन्ने।
रत्ने पतत्रिणि पशौ शयने धरायां सश्रीकमेव सकले तदिहास्ति नान्यत्॥
त्वत्स्पृष्टमेव सकलं शुचितां लभेत त्वत्त्यक्तमेव सकलं त्वशुचीह लक्ष्मि।
त्वन्नाम यत्र च सुमङ्गलमेव तत्र श्रीविष्णुपत्नि कमले कमलालयेऽपि॥
लक्ष्मीं श्रियं च कमलां कमलालयां च पद्मां रमां नलिनयुग्मकरां च मां च।
क्षीरोदजाममृतकुम्भकरामिरां च विष्णुप्रियामिति सदा जपतां क्व दुःखम्॥
(स्क० पु०, का० पू० ५।८०—८७)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

स्तुति करके पत्नीसहित अगस्त्य मुनिने दण्डकी भाँति पृथ्वीपर गिरकर उन्हें साष्टांग प्रणाम किया।

लक्ष्मीजीने कहा—मित्रावरुणनन्दन अगस्त्य! उठो, उठो, तुम्हारा कल्याण हो। उत्तम व्रतका आचरण करनेवाली पतिव्रते लोपामुद्रे! तुम भी उठो। मैं इस स्तुतिसे बहुत प्रसन्न हूँ, तुम मनोवांछित वर माँगो।

यों कहकर विष्णुप्रिया श्रीलक्ष्मीजीने मुनिपत्नी लोपामुद्राको हृदयसे लगा लिया और प्रेमपूर्वक अनेक प्रकारके सौभाग्यसूचक आभूषणोंसे उन्हें विभूषित किया। तत्पश्चात् वे पुनः बोलीं—'मुने! मैं तुम्हारे आन्तरिक तापका कारण जानती हूँ।' यह सुनकर महाभाग मुनिवर अगस्त्यजीने लक्ष्मीदेवीको प्रणाम करके भक्तिसे भरा हुआ वचन कहा—'देवि! यदि मैं वर देनेयोग्य होऊँ तो आप मेरे लिये यही वर प्रदान करें कि मुझे पुनः काशीकी प्राप्ति हो। मेरे द्वारा की हुई आपकी इस स्तुतिका जो सदा भक्तिपूर्वक पाठ करें, उन्हें कभी सन्ताप और दरिद्रता न हो।'

लक्ष्मीजीने कहा—मुने! 'एवमस्तु'। तुमने जो कुछ कहा है, वह सब पूरा होगा। इस स्तोत्रका पाठ मेरे सामीप्यकी प्राप्ति करानेवाला होगा। मुनीश्वर! आनेवाले उनतीसवें द्वापरमें तुम व्यास होओगे। उस समय काशीमें आकर वेदों-पुराणोंका विस्तार करके सम्पूर्ण धर्मोंका उपदेश देकर तुम मनोवांछित सिद्धि प्राप्त करोगे। इस समय मैं तुम्हारे हितकी एक बात बतलाती हूँ, उसका पालन करो। यहाँसे कुछ ही दूरीपर जाकर अपने सामने खड़े हुए स्वामिकार्तिकेयका दर्शन करो। ब्रह्मन्! वे तुम्हें काशीका यथार्थ रहस्य बतलायेंगे।

इस प्रकार वरदान पाकर महालक्ष्मीको प्रणाम करके मुनिवर अगस्त्य उस स्थानपर गये, जहाँ श्रीकार्तिकेयजी विराजमान हैं।

मुक्तिदायक तीर्थोंका वर्णन तथा मानसतीर्थ एवं काशीकी श्रेष्ठता

श्रीव्यासजी कहते हैं—सूत! जिन सत्पुरुषोंके हृदयमें परोपकारकी भावना जाग्रत् रहती है, उनकी विपत्तियाँ नष्ट हो जाती हैं और उन्हें पग-पगपर सम्पत्ति प्राप्त होती है। उपकारके द्वारा जैसे पुण्य-फलकी प्राप्ति होती है, तीर्थोंमें स्नान करनेसे भी वैसी शुद्धि नहीं होती, बहुतेरे दान देनेसे भी वह फल नहीं मिलता और कठोर तपस्याओंसे भी उस पुण्यकी प्राप्ति नहीं होती। परोपकारसे जो धर्म होता है तथा दान आदि सत्कर्मोंसे जिस धर्मकी प्राप्ति होती है, उन दोनोंको ब्रह्माजीने तौला था। उस समय परोपकारजनित धर्मका ही पलड़ा भारी रहा। सम्पूर्ण वाङ्मय (शास्त्र)-का मन्थन करके यही निर्णय किया गया है कि उपकारसे बढ़कर कोई धर्म नहीं और अपकारसे बढ़कर कोई पाप नहीं है। परोपकारजनित पुण्यके प्रभावसे ही साक्षात् महालक्ष्मीका दर्शन करके मुनिवर अगस्त्य कृतार्थ हो गये। वहाँसे आगे बढ़नेपर मुनिने श्रीपर्वतको

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

देखा, जहाँ साक्षात् त्रिपुरारि महादेवजी निवास करते हैं। उसे देखकर मुनिके मनमें बड़ी प्रसन्नता हुई और उन्होंने अपनी पत्नीसे कहा—'प्रिये! देखो। यह जो परम शोभायमान श्रीशैलका शिखर दिखायी देता है, इसके दर्शनसे मनुष्योंका इस संसारमें पुनर्जन्म कभी नहीं होता। इसका विस्तार चौरासी योजनका है। यह सम्पूर्ण पर्वत शिवमय है, अतः इसकी परिक्रमा करनी चाहिये।'

लोपामुद्रा बोली—यदि प्राणनाथकी आज्ञा हो तो मैं कुछ निवेदन करना चाहती हूँ; क्योंकि पतिकी आज्ञाके बिना जो स्त्री बोलती है, वह अपने धर्मसे गिर जाती है।

अगस्त्यजीने कहा—देवि! तुम क्या कहना चाहती हो, कहो। तुम्हारे-जैसी साध्वी स्त्रियोंका वचन पतिके लिये खेदजनक नहीं होता।

तदनन्तर मुनिको प्रणाम करके देवी लोपामुद्राने विनयपूर्वक पूछा—महर्षे! श्रीशैलका दर्शन करके मनुष्यका पुनर्जन्म नहीं होता है, यदि यह बात सत्य है, तो आप काशीकी अभिलाषा क्यों करते हैं।

अगस्त्यजी बोले—वरारोहे! सुनो। तत्त्वका विचार करनेवाले ज्ञानी मुनियोंने बार-बार यह निर्णय किया है कि मुक्तिके अनेक स्थान हैं। पहला तीर्थराज प्रयाग है, जो सर्वत्र विख्यात है। वह धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों पुरुषार्थोंको देनेवाला है। इसके सिवा नैमिषारण्य, कुरुक्षेत्र, गंगाद्वार (हरिद्वार), अवन्ती, अयोध्या, मथुरा, द्वारका, अमरावती, सरस्वती और समुद्रका संगम, गंगासागर-संगम, कांचीपुरी, त्र्यम्बक तीर्थ, सप्त गोदावरीतट, कालंजरतीर्थ, प्रभास क्षेत्र, बदरिकाश्रम, महालय, ॐकारक्षेत्र (अमरकण्टक), पुरुषोत्तमक्षेत्र (जगन्नाथपुरी), गोकर्णतीर्थ, भृगुकच्छ, भृगुतुंग, पुष्कर, श्रीपर्वत और धारातीर्थ आदि बहुत-से तीर्थ मुक्तिदायक हैं। सत्य, दया आदि जो मानसिक-तीर्थ हैं, वे भी मोक्ष देनेवाले हैं। गया क्षेत्र भी पितरोंके लिये मोक्षदायक बताया गया है। वहाँ श्राद्ध करनेसे मनुष्य अपने पितरों, पितामहोंके ऋणसे मुक्त होते हैं।

लोपामुद्राने पूछा—महामते! आपने जिन्हें मानसतीर्थ कहा है, वे कौन-कौनसे हैं? बतानेकी कृपा करें।

अगस्त्यजीने कहा—शुभे! सत्य तीर्थ है, क्षमा तीर्थ है, इन्द्रियोंको वशमें रखना भी तीर्थ है, सब प्राणियोंपर दया करना तीर्थ है और सरलता भी तीर्थ है। दान, दम (मनका संयम) तथा सन्तोष—ये भी तीर्थ कहे गये हैं। ब्रह्मचर्यका पालन उत्तम तीर्थ है। प्रिय वचन बोलना भी तीर्थ ही है। ज्ञान तीर्थ है, धैर्य तीर्थ है और तपस्याको भी तीर्थ कहा गया है। तीर्थोंमें भी सबसे बड़ा तीर्थ है अन्तःकरणकी आत्यन्तिक शुद्धि। पानीमें शरीरको डुबो लेना ही स्नान नहीं कहलाता। जिसने दम तीर्थमें स्नान किया है, मन और इन्द्रियोंको संयममें रखा है, उसीने वास्तविक स्नान किया है। जिसने मनकी मैल धो डाली है, वही शुद्ध है। जो लोभी, चुगलखोर, क्रूर, पाखण्डी और विषयासक्त है, वह सब तीर्थोंमें स्नान करके भी पापी और मलिन ही रह जाता है। केवल शरीरके मलका त्याग करनेसे ही मनुष्य निर्मल नहीं होता। मानसिक मलका परित्याग करनेपर ही वह भीतरसे अत्यन्त निर्मल होता है। जलमें निवास करनेवाले जीव जलमें ही जन्म लेते और मरते हैं। किंतु उनका मानसिक मल नहीं धुलता। इसलिये वे स्वर्गको नहीं जाते। विषयोंके प्रति अत्यन्त राग होना मानसिक मल कहलाता है और उन्हीं विषयोंमें विराग होना निर्मलता कही गयी है। यदि अपने भीतरका मन दूषित है तो मनुष्य तीर्थस्नानसे शुद्ध नहीं होता। जैसे मदिरासे भरे हुए घड़ेको ऊपरसे जलद्वारा सैकड़ों बार धोया जाय, तो भी वह पवित्र नहीं होता, उसी प्रकार दूषित अन्तःकरणवाला मनुष्य भी तीर्थस्नानसे शुद्ध नहीं होता। भीतरका

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

भाव शुद्ध न हो तो दान, यज्ञ, तप, शौच, तीर्थसेवन, शास्त्रोंका श्रवण एवं स्वाध्याय—ये सभी अतीर्थ हो जाते हैं। जिसने अपने इन्द्रियसमुदायको वशमें कर लिया है, वह मनुष्य जहाँ निवास करता है, वहीं उसके लिये कुरुक्षेत्र, नैमिषारण्य और पुष्कर आदि तीर्थ हैं। ध्यानसे पवित्र तथा ज्ञानरूपी जलसे भरे हुए राग-द्वेषमय मलको दूर करनेवाले मानसतीर्थमें जो पुरुष स्नान करता है, वह उत्तम गतिको प्राप्त होता है *। देवि! यह तुम्हें मानसतीर्थका लक्षण बताया गया। अब पृथ्वीपर जो तीर्थ हैं, उनकी पवित्रताका क्या हेतु है, यह सुनो। जैसे शरीरके कुछ अंग अत्यन्त पवित्र माने गये हैं, उसी प्रकार पृथ्वीके कुछ भाग अत्यन्त पुण्यमय हैं। पृथ्वीके अद्भुत प्रभाव, जलके विलक्षण तेज तथा मुनियोंके निवासस्थान होनेसे तीर्थ पुण्यस्वरूप माने जाते हैं। अत: जो प्रतिदिन भूमण्डलके तीर्थों और मानसतीर्थोंमें भी स्नान करता है, वह परम-गतिको प्राप्त होता है। जिसके हाथ, पैर, मन, विद्या, तप और कीर्ति सभी संयममें हैं, वह तीर्थके पूर्ण फलका भागी होता है। जो प्रतिग्रह नहीं लेता और जिस किसी भी वस्तुसे सन्तुष्ट रहता है तथा जिसमें अहंकारका सर्वथा अभाव है, वह तीर्थफलका भागी होता है। जो दम्भी नहीं है, नये-नये कार्योंका प्रारम्भ नहीं करता, थोड़ा खाता है, इन्द्रियोंको काबूमें रखता है और सब प्रकारकी आसक्तियोंसे दूर रहता है, वह तीर्थफलका भागी होता है। जो क्रोधी नहीं है, जिसकी बुद्धि निर्मल है, जो सत्य बोलनेवाला और दृढ़तापूर्वक व्रतका पालन करनेवाला है, जो सब प्राणियोंके प्रति अपने ही समान बर्ताव करता है, वह तीर्थफलका भागी होता है। जो तीर्थोंका सेवन करनेवाला, धीर, श्रद्धालु और एकाग्रचित्त है, वह पहलेका पापाचारी हो, तो भी शुद्ध हो जाता है। फिर जो पुण्यकर्म करनेवाला है, उसके लिये तो कहना ही क्या है। तीर्थसेवी मनुष्य कभी पशुयोनिमें जन्म नहीं लेता। कुदेशमें उसका जन्म नहीं होता और वह कभी दु:खका भागी नहीं होता। वह स्वर्ग भोगता और मोक्षका उपाय प्राप्त कर लेता है। अश्रद्धालु, पापात्मा, नास्तिक, संशयात्मा और केवल तर्कका सहारा लेनेवाला—ये पाँच प्रकारके मनुष्य तीर्थसेवनका फल नहीं पाते।

तीर्थयात्राकी इच्छा करनेवाला मनुष्य पहले अपने घरमें उपवास करके श्रीगणेशजीका यथाशक्ति पूजन करे। तत्पश्चात् पितरों, ब्राह्मणों और साधुपुरुषोंकी भी शक्तिके अनुसार पूजा करके व्रतका पारण करे। फिर प्रसन्नतापूर्वक संयम-नियमका पालन करते हुए तीर्थमें जाय। वहाँ पहुँचकर पितरोंका भलीभाँति पूजन करे। ऐसा करनेवाला पुरुष तीर्थके यथार्थ फलका भागी होता है। तीर्थमें ब्राह्मणके पूर्ण गोत्र और विद्याकी परीक्षा नहीं करनी चाहिये। यदि वह अन्नकी इच्छा रखनेवाला हो, तब तो उसे अवश्य भोजन कराना चाहिये। तीर्थोंमें सत्तू, चरु, खीर, पिण्याक (तिलके चूर्ण) और गुड़से पिण्डदान करना चाहिये। तीर्थमें अर्घ्य और आवाहनके बिना श्राद्ध करना चाहिये। श्राद्धके योग्य समय हो अथवा न हो, तीर्थमें पहुँचनेपर श्राद्ध और तर्पण अविलम्ब करना चाहिये। श्राद्धमें किसी प्रकार विघ्न नहीं आने देना चाहिये। अन्य कार्यके प्रसंगसे तीर्थमें जानेपर भी वहाँ अवश्य स्नान करे। ऐसा करनेसे वह स्नानजनित फलको पाता है, तीर्थयात्रासम्बन्धी फलको नहीं। पापचारी मनुष्योंके पापका तीर्थमें स्नान करनेसे नाश होता है। श्रद्धालु मनुष्योंको तीर्थ यथार्थ फल देनेवाला होता है। जो दूसरेके लिये तीर्थयात्रा करता है, वह तीर्थजनित पुण्यके सोलहवें अंशको पाता है। कुशका एक पुतला बनाकर उसे तीर्थके जलमें नहलावे। जिस पुरुषके

* ध्यानपूते ज्ञानजले रागद्वेषमलापहे। यः स्नाति मानसे तीर्थे स याति परमां गतिम्॥ (स्क० पु०, का० पू० ६।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

उद्देश्यसे उस पुतलेको नहलाया जाता है, वह तीर्थ-स्नानजनित पुण्यके आठवें अंशको प्राप्त कर लेता है। तीर्थमें जाकर उपवास तथा सिरका मुण्डन कराना चाहिये; क्योंकि मुण्डन करानेसे सिरपर चढ़े हुए पाप दूर हो जाते हैं। जिस दिन तीर्थमें पहुँचना हो उसके पहले दिन उपवास करना चाहिये और तीर्थमें पहुँचनेके दिन पितरोंके लिये श्राद्ध एवं दान करना चाहिये। काशी, कांची, माया (लक्ष्मणझूलेसे कनखलतक), अयोध्या, द्वारका, मथुरा और अवन्ती—ये सात पुरियाँ मोक्ष देनेवाली हैं।* श्रीशैल नामक पर्वतका सम्पूर्ण प्रदेश मोक्ष देनेवाला है। केदारतीर्थका महत्त्व उससे भी अधिक है। श्रीशैल और केदारसे भी उत्तम मोक्षदायक तीर्थ प्रयाग है तथा तीर्थश्रेष्ठ प्रयागसे भी बढ़कर अविमुक्त क्षेत्र है। अविमुक्त क्षेत्र (काशी)-में जैसा मोक्ष प्राप्त होता है, वैसा कहीं नहीं।

शिवशर्माका सात पुरियोंकी यात्रा करना और हरद्वारमें उसका परमधाम-गमन

अगस्त्यजी कहते हैं—मथुरामें एक श्रेष्ठ ब्राह्मण थे। उनके पुत्रका नाम शिवशर्मा था। शिवशर्मा बड़े तेजस्वी और सम्पूर्ण शास्त्रोंके ज्ञाता थे। जब जवानी बीत गयी और कानोंके समीप बाल सफेद हो गये तब बुढ़ापाको आया हुआ देख द्विजश्रेष्ठ शिवशर्माको बड़ी चिन्ता हुई। वे सोचने लगे—'मेरा सारा समय पढ़ने और धनोपार्जन करनेमें चला गया। मैंने कर्मोंकी जड़ उखाड़नेमें समर्थ भगवान् महेश्वरकी आराधना कभी नहीं की। सम्पूर्ण पापोंका हरण करनेवाले श्रीहरिको भी मैंने कभी सन्तुष्ट नहीं किया। ये वेद, शास्त्र, धन, स्त्री, पुत्र, खेत और महल आदि परलोकमें जाते समय मेरे साथ नहीं जायँगे।' इस प्रकार विचार करके शिवशर्माने यह निश्चय किया कि जबतक मेरा यह शरीर स्वस्थ है, जबतक मेरी इन्द्रियोंमें विकलता नहीं आयी है, तबतक मैं अपने कल्याणके लिये तीर्थयात्रा करूँगा। यह विचार कर शुभ तिथि, शुभ दिन और शुभ लग्नमें शिवशर्माने एक रात उपवास करके प्रातःकाल पितरोंका श्राद्ध किया और श्रीगणेशजी तथा ब्राह्मणोंको नमस्कार करके व्रतका पारण करनेके पश्चात् तीर्थयात्राके लिये प्रस्थान किया। मार्गमें ब्राह्मणने सोचा—'मैं पहले किस तीर्थमें जाऊँ। इस पृथ्वीपर अनेक तीर्थ हैं। आयु क्षणभंगुर है और मन चंचल है। अतः मैं सबसे पहले सप्तपुरियोंकी यात्रा करूँ; क्योंकि वहाँ सभी तीर्थ विद्यमान हैं।' इस निश्चयके अनुसार वे अयोध्यापुरीमें गये, सरयूमें स्नान किया और वहाँके भिन्न-भिन्न तीर्थोंमें पिण्डदान और तर्पण करके पितरोंको सन्तुष्ट किया। पाँच रात अयोध्यामें निवास करके वे प्रसन्नतापूर्वक तीर्थराज प्रयागको गये, जहाँ श्याम और श्वेत सलिलवाली सरिताओंमें श्रेष्ठ देवदुर्लभ यमुना तथा गंगाजी विराज रही हैं। जिनका शरीर प्रयागतीर्थके जलसे भीगता है, उन यज्ञकर्ताओंका इस संसारमें पुनरागमन नहीं होता। वहाँ शूलटंक महादेवजी निवास करते हैं; वहीं अक्षयवट है, जिसकी जड़ सात पाताललोकोंतक फैली हुई है। प्रलयकालमें उसीपर आरूढ़ होकर मार्कण्डेयजीने निवास किया था। अक्षयवटको वटवृक्षरूपधारी साक्षात् ब्रह्मा जानना चाहिये। उसके समीप ब्राह्मणोंको भक्तिपूर्वक भोजन कराकर मनुष्य अक्षय पुण्यका भागी होता है। वहाँ लक्ष्मीपति भगवान् विष्णु वैकुण्ठधामसे आकर श्रीमाधवस्वरूपसे

* काशी काञ्ची च मायाख्या त्वयोध्या द्वारवत्यपि। मथुरावन्तिका चैताः सप्त पुर्योऽत्र मोक्षदाः॥ (स्क० पु०, का० पू० ६। ६८)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

निवास करते हैं और मनुष्योंको अपने परम धाममें पहुँचाते हैं। श्याम और श्वेत जलवाली दो नदियाँ वैदिक मन्त्रोंद्वारा वर्णित हुई हैं। उन सितासित सरिताओं—यमुना और गंगामें गोता लगानेवाले पुरुष अमृतत्वको प्राप्त होते हैं। माघमासमें अरुणोदयके समय प्रयागतीर्थमें स्नान करनेके लिये शिवलोक, ब्रह्मलोक, पार्वतीलोक, कुमारलोक, वैकुण्ठलोक और सत्यलोकसे भी वहाँके निवासी आते हैं। तपोलोक, जनलोक, महर्लोक तथा स्वर्गलोकके निवासी भी आते हैं। भुवर्लोक, भूलोक तथा सम्पूर्ण नागलोकसे भी वहाँके रहनेवाले प्राणी पधारते हैं। हिमवान् आदि श्रेष्ठ पर्वत और कल्पवृक्ष आदि तरुवर भी माघमें प्रयाग-स्नान करनेके लिये आते हैं। प्रयाग निश्चय ही इच्छानुसार फल देनेवाला तथा मोक्ष प्रदान करनेवाला तीर्थ है। 'ज्ञानी पुरुष भगवान् विष्णुके उस सच्चिदानन्दमय पदको सदा देखते हैं, वेदकी श्रुतियोंद्वारा जिसके विषयमें बारंबार यह बात कही जाती है, वह प्रयागतीर्थ ही है। देवि! तीर्थराज प्रयाग सब तीर्थोंद्वारा सेवित है, उसके गुणोंका वर्णन करनेमें यहाँ कौन समर्थ है। उत्तम बुद्धिवाले शिवशर्मा प्रयागके गुणोंको जानकर माघभर वहीं रहे। उसके बाद वे काशीपुरीमें चले आये। वहाँ प्रवेश करते ही उन्हें पुरीकी द्वारदेहलीपर भगवान् गणेशजीका दर्शन हुआ। शिवशर्माने भक्तिपूर्वक गणेशजीके ऊपर घी मिलाये हुए सिन्दूरका लेप किया और उन्हें पाँच मोदकोंका नैवेद्य लगाकर क्षेत्रके भीतर प्रवेश किया। वहाँ मणिकर्णिकातीर्थमें जाकर उन्होंने देखा कि स्वर्गीय नदी गंगाजी दक्षिणसे उत्तरकी ओर प्रवाहित हो रही हैं। पापहीन पुण्यात्मा मनुष्य उन्हें तटपर घेरे हुए हैं। उत्तरवाहिनी गंगाका दर्शन करके शिवशर्माने वस्त्रसहित निर्मल जलमें गोता लगाया; इससे उनकी बुद्धि तत्काल शुद्ध हो गयी। वे कर्मकाण्डके ज्ञाता थे; अतः स्नान करके उन्होंने विधिपूर्वक देवताओं, ऋषियों, दिव्य मनुष्यों, दिव्य पितरों, (चतुर्दश यमों) तथा अपने पितरोंका तर्पण किया। फिर शीघ्र ही काशीके पंचतीर्थोंका सेवन करके अपने वैभवके अनुसार भगवान् विश्वनाथका पूजन किया। शिवशर्मा भगवान् शिवकी उस पुरीको बारंबार देखकर बहुत विस्मित हुए और सोचने लगे—इस काशीकी महिमाका वर्णन कोई नहीं कर सकता। काशीमें यह मणिकर्णिका तीर्थ संसारी जीवोंके लिये साक्षात् चिन्तामणिके समान है। यहाँ साधुपुरुषोंके कानोंमें मृत्युके समय भगवान् शिव तारक मन्त्रका उपदेश देते हैं। इसीलिये उसका नाम मणिकार्णिका है। यहाँ निवास करनेवाले जरायुज (मनुष्य आदि), अण्डज (पक्षी आदि), उद्भिज्ज (वृक्ष आदि) और स्वेदज (मक्खी आदि) सभी जीव मोक्षके भागी होते हैं। इस प्रकार विचार करते हुए शिवशर्मा बार-बार उस पवित्र एवं विचित्र क्षेत्रको नेत्रोंसे निहारते रहे; परंतु उन्हें तृप्ति नहीं होती थी। वे मन-ही-मन कहने लगे—'मैं उत्तम मोक्ष प्रदान करनेमें कुशल काशीपुरीको सातों पुरियोंमें श्रेष्ठ समझता हूँ। तथापि काशी और अयोध्याके अतिरिक्त अन्य पुरियोंका मैंने अभीतक दर्शन नहीं किया है; इसलिये उनका भी प्रभाव जानकर मैं पुनः यहाँ आऊँगा।'

अगस्त्यजी कहते हैं—प्रिये! अनेकानेक शास्त्रीय प्रमाणोंसे उस क्षेत्रके श्रेष्ठ गुणोंको जानकर भी तीर्थयात्रापरायण शिवशर्मा ब्राह्मण काशीपुरीसे बाहर निकले, यह कितने आश्चर्यकी बात है! वे एक देशसे दूसरे देशमें भ्रमण करते हुए महाकालपुरी (उज्जयिनी या अवन्ती)-में पहुँचे, जहाँ कभी कलिकालका प्रभाव नहीं पड़ता। वह पुरी पापसे अवन—रक्षा करती है, इसलिये उसे 'अवन्ती' कहते हैं। कलियुगमें उसका नाम 'उज्जयिनी' होता है। भगवान् शिवका एक ही स्वरूप पातालमें 'हाटकेश्वर', भूतलपर 'महाकाल' तथा स्वर्गलोकमें

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

'तारकेश्वर' नामसे तीन रूपोंमें अभिव्यक्त होकर तीनों लोकोंको व्याप्त करके स्थित है। जो 'महाकाल, महाकाल, महाकाल' इस प्रकार सदा स्मरण करता है, उसका स्मरण भगवान् श्रीहरि और महादेवजी निरन्तर करते रहते हैं।

भूतनाथ भगवान् महाकालकी आराधना करके शिवशर्मा कांचीपुरीमें गये, जो तीनों लोकोंसे भी अधिक कमनीय है, जहाँ साक्षात् भगवान् लक्ष्मीपति निवास करते हैं। कान्तिमान् पुरुषोंसे सेवित कान्तिमती कांचीनगरीका दर्शन कर, वहाँके आवश्यक तीर्थकृत्योंका पालन करके वे द्वारकापुरीकी ओर गये। वहाँ सब ओर धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष— इन चतुर्विध पुरुषार्थोंके द्वार हैं; इसीलिये तत्त्वज्ञ विद्वानोंने उसे 'द्वारवती' कहा है। यमराज अपने दूतोंसे कहते हैं—'जिसके ललाटमें गोपीचन्दनका तिलक लगा हो, उसे प्रज्वलित अग्निकी भाँति समझकर प्रयत्नपूर्वक दूरसे ही त्याग देना उचित है। दूतो! जो तुलसीकी मालासे विभूषित, तुलसी नामका जप करनेवाले तथा तुलसीवनके रक्षक हैं, वे दूरसे ही त्याग देने योग्य हैं। द्वारकापुरीमें जो जीव कालसे प्रेरित हो मृत्युको प्राप्त होते हैं, वे वैकुण्ठधाममें पहुँचकर पीताम्बरधारी तथा चार भुजाओंसे विभूषित होते हैं।' वहाँ जाकर शिवशर्माने उस क्षेत्रके सभी तीर्थोंमें स्नान और देवता, ऋषि, मनुष्य एवं पितरोंका तर्पण किया। वहाँसे वे मायापुरी (कनखलसे हरद्वार, ऋषिकेश होते हुए लक्ष्मणझूला)-में गये, जो पापी मनुष्योंके लिये अत्यन्त दुर्लभ है और जहाँ वैष्णवी माया अपने मायापाशमें जीवोंको नही बाँधती है। कोई उसे 'हरिद्वार', कोई 'मोक्षद्वार', कोई 'गंगाद्वार' तथा कोई 'मायापुरी' कहते हैं। वहाँ पर्वतमालाओंसे बाहर निकली हुई गंगा इस भूतलपर भागीरथीके नामसे विख्यात होती है, जिसके नामोच्चारण करनेमात्रसे मनुष्योंकी पापराशिके सहस्रों टुकड़े हो जाते हैं। ज्ञानी पुरुष हरिद्वारको वैकुण्ठका एक सोपान कहते हैं। वहाँ स्नान करनेवाले पुरुष भगवान् विष्णुके परम पदको प्राप्त होते हैं। उस तीर्थमें उपवास करके उन्होंने प्रात:काल गंगामें स्नान किया ओर जो-जो तर्पण करने योग्य हैं—उन देवताओं, ऋषियों तथा पितरोंका तर्पण करके ज्यों-ही पारणा करनेका विचार किया, त्यों-ही वे शीतज्वरसे आक्रान्त हो थरथर काँपने लगे। एक तो वे परदेशमें थे, दूसरे अकेले ही वहाँ आये थे, कोई भी सहायक नहीं था। इस दशामें अत्यन्त ज्वरसे पीड़ित होनेपर उनके मनमें बड़ी भारी चिन्ता हुई। वे सोचने लगे—'यह कैसी विपत्ति आ गयी। किंतु अब अत्यन्त सन्ताप देनेवाली व्यर्थकी चिन्ताओंसे क्या लाभ। मैं परम कल्याणकारी भगवान् विष्णु और शिवका चिन्तन करूँ। मैंने मुक्तिके एक उपायका तो भली-भाँति साधन कर लिया। मुक्ति देनेवाली सातों पुरियोंका अपने नेत्रोंसे दर्शन किया है। संग्राममें अथवा तीर्थमें मृत्यु होना श्रेष्ठ है। यह शरीर हाड़ और चामका संग्रह है; इसके द्वारा यहाँ मृत्यु होनेसे मैं निश्चय ही कल्याणमयी मुक्ति प्राप्त करूँगा।'

इस प्रकार चिन्तन करते हुए शिवशर्माको अत्यन्त भयंकर पीड़ा हुई। करोड़ों बिच्छुओंके डंक मारनेसे मनुष्यकी जो दशा हो सकती है, वही शिवशर्माको भी प्राप्त हुई। 'मैं कौन हूँ, कहाँ हूँ' इसकी सुध न रही। स्मरण करने योग्य सभी बातें भूल गयीं। दो सप्ताह रोगग्रस्त रहकर शिवशर्मा मृत्युको प्राप्त हुए। इतनेमें ही वहाँ वैकुण्ठधामसे विमान आया। उसपर सुन्दर मुख और चार भुजावाले पुण्यशील और सुशील नामक दो पार्षद विराजमान थे। शिवशर्मा ब्राह्मणने उस विमानपर बैठकर चतुर्भुज रूप धारण कर लिया और पीताम्बर एवं दिव्य आभूषणोंसे विभूषित हो आकाश-मार्गकी शोभा बढ़ाते हुए वहाँसे प्रस्थान किया।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

शिवशर्मा और विष्णुपार्षदोंका संवाद तथा विभिन्न लोकोंका वर्णन

शिवशर्माने कहा—हे विष्णुपार्षदो! आप दोनों पुण्यात्मा हैं। आप दोनोंके नेत्र कमलदलके समान परम सुन्दर हैं। मैं आपके नामको नहीं जानता, परंतु आकृतिसे कुछ-कुछ समझता हूँ। आप दोनों पुण्यशील और सुशील नामवाले गण हैं, ऐसा मेरा अनुमान है।

दोनों गण बोले—ठीक है, तुमने जैसा कहा है वही हमारा नाम है।

दिव्यरूपधारी ब्राह्मण शिवशर्माने पूछा—यह कौन-सा लोक है?

दोनों गण बोले—यह पिशाचलोक है। इसमें मांसभक्षी जीव निवास करते हैं। जो दान देकर पछताते हैं, नहीं-नहीं करते हुए देते हैं, कभी प्रसंगवश एक बार शिवजीकी पूजा करके सदा प्रायः अपवित्र चित्त ही रहते हैं एवं जिनका पुण्य बहुत थोड़ा और धन-सम्पत्ति भी बहुत थोड़ी है, सखे! वे ही ये पिशाच हैं।

तदनन्तर आगे जानेपर शिवशर्माने देखा, हृष्ट-पुष्ट नर-नारियोंसे भरा हुआ एक सुन्दर लोक है। उसे देखकर उन्होंने पूछा—'पार्षदो! यह कौन-सा लोक है और किस पुण्यसे यहाँ आना होता है?'

दोनों गण बोले—ब्रह्मन्! यह गुह्यकलोक है। यहाँके निवासी गुह्यक माने गये हैं। जो न्यायपूर्वक धन कमाकर उसे धरतीमें गाड़कर छिपा देते हैं, अपने मार्गपर चलते और धनाढ्य होते हैं, जिनका व्यवहार प्रायः शूद्रोंके समान होता है, जो कुटुम्बके साथ रहकर और आपसमें बाँटकर खाते हैं, जिनमें क्रोध और असूया आदि दोष नहीं होते, वे ही ये गुह्यक हैं। ये सदा सुखमें मग्न होनेके कारण तिथि, वार, संक्रान्ति आदि पर्वका ज्ञान नहीं रखते। केवल एक बात जानते हैं। ये कुलपूज्य पुरोहित ब्राह्मणको गोदान देते और उसकी आज्ञाका पालन करते हैं। उसी पुण्यसे गुह्यकलोग समृद्धिशाली होते और यहाँ देवताओंकी भाँति निर्भय होकर स्वर्गीय सुख भोगते हैं।

तदनन्तर आगेके लोकको देखकर शिवशर्माने पूछा—ये कौन लोग हैं और इस लोकका क्या नाम है?

दोनों गण बोले—यह गन्धर्वलोक है, ये लोग उत्तम व्रतका पालन करनेवाले गन्धर्व हैं। ये देवताओंके गायक हैं। मनुष्योंमें जो स्तुति-पाठ करनेवाले चारण हैं, जो संगीतकी कलाको जानते हैं और अपने अति मनोहर गीतसे राजाओंको सन्तुष्ट करते हैं, वे राजाओंके प्रसादसे प्राप्त हुए उत्तम वस्त्र, धन, द्रव्य और सुगन्धित कर्पूर आदि अनेक पदार्थोंको जब ब्राह्मणोंके लिये दान देते हैं, तब उसी पुण्यसे उनको यह गन्धर्वलोक प्राप्त होता है। यह गुह्यकलोककी अपेक्षा श्रेष्ठ है। तुम्बुरु और नारद—ये दोनों गन्धर्व देवताओंके लिये भी अत्यन्त दुर्लभ हैं। नाद साक्षात् भगवान् शिवका स्वरूप है। वे दोनों उस नादतत्त्वके ज्ञाता हैं। यदि किसीने कहीं भगवान् विष्णु और शिवके समीप गीत गाया है, तो उसका फल मोक्ष है अथवा उन दोनोंके सामीप्यकी प्राप्तिको उसका फल बताया गया है। अतः संगीतमालाके द्वारा भगवान् विष्णुकी सदा पूजा करनी चाहिये।

तत्पश्चात् शिवशर्मा क्षणभरमें दूसरे मनोहर लोकमें जा पहुँचे और उन्होंने पूछा—इस नगरका क्या नाम है?'

दोनों गणोंने कहा—यह विद्याधरोंका लोक है। अनेक प्रकारकी विद्याओंमें विशारद ये विद्याधर लोग विद्यार्थियोंको अन्न और ओषधि दान करते रहे हैं। विद्याके गर्वसे रहित हो इन्होंने छात्रोंको नाना प्रकारकी कलाएँ सिखलायी हैं। शिष्यको पुत्रके समान देखा तथा भोजन और वस्त्र आदिसे उसका सत्कार किया है। ये धर्मपूर्वक अपनी सुन्दरी कन्याओंको वस्त्र और आभूषणोंसे विभूषित करके उनका विवाह

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

करते रहे हैं और प्रतिदिन फलकी इच्छासे इन्होंने इष्टदेवोंकी पूजा की है। उन्हीं पुण्योंसे ये विद्याधरलोग यहाँ निवास करते हैं।

शिवशर्मा और विष्णुपार्षदोंमें इस प्रकार बातचीत हो रही थी कि धर्मराज वहाँ आ पहुँचे और इस प्रकार बोले—शिवशर्मन्! तुम्हें साधुवाद है। तुमने वह कार्य किया, जो ब्राह्मणकुलके लिये सर्वथा उचित है। पहले वेदोंका अभ्यास किया, गुरुजनोंको अपनी सेवासे सन्तुष्ट किया, धर्मशास्त्र और पुराणोंमें प्रतिपादित धर्मको जाना और उसका आदर किया तथा इस क्षणभंगुर शरीरको मोक्षदायिनी सात पुरियोंके जलसे नहलाया। इसीलिये बुद्धिमान् पुरुष विद्वत्ताका आदर करते हैं; क्योंकि विद्वान् लोग दिनका एक क्षण भी व्यर्थ नहीं बीतने देते। आयु शीघ्र बीत जानेवाली है, लोक शोकमें डूबा हुआ है, अतः श्रेष्ठ धर्मात्मा पुरुषोंको तुम्हारी ही भाँति सदा धर्ममें मन लगाना चाहिये। देखो, यह सत्कर्मोंका ही फल है कि तुम्हारे और मेरे लिये भी वन्दनीय ये भगवान्के पार्षद आज तुम्हारे सखा हो गये हैं। आज मैं धन्य हूँ कि यहाँ मुझे भगवान्के युगल पार्षदोंका दर्शन हुआ।

तत्पश्चात् उन दोनों गणोंके कहनेपर यमराज अपनी पुरीको लौट गये। उसके बाद शिवशर्माने उन दोनों पार्षदोंसे कहा—'ये साक्षात् धर्मराज थे, इनकी आकृति तो बड़ी ही सौम्य है। यह संयमनी पुरी भी अतिशय शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न है, जिसका नाम सुनकर भी पापी जीव अत्यन्त भयभीत हो उठते हैं। मर्त्यलोकमें मनुष्य यमराजके स्वरूपका अन्य प्रकारसे वर्णन करते हैं, परंतु मैंने यहाँ इन्हें और ही प्रकारसे देखा है। इसका क्या कारण है, यह आपलोग बतलावें।'

दोनों गण बोले—सौम्य! सुनो, तुम-जैसे पुण्यात्मा पुरुषोंको ही ये अत्यन्त सौम्य दिखायी देते हैं; क्योंकि धर्मराज स्वभावसे ही धर्ममूर्ति हैं। ये ही पापियोंके लिये विकराल स्वरूप धारण कर लेते हैं। इनकी पीली-पीली आँखें क्रोधसे लाल हो उठती हैं, बड़ी-बड़ी दाढ़ोंसे इनका मुख विकराल हो उठता है तथा बिजलीकी-सी लपलपाती हुई जिह्वासे ये और भी भयंकर दिखायी देते हैं। इनके केश ऊपरकी ओर उठे होते हैं, शरीरका रंग अत्यन्त काला हो जाता है और इनकी आवाज प्रलयकालीन मेघोंकी गम्भीर गर्जनाके समान होती है। हाथमें कालदण्ड उठाये टेढ़ी भौंहोंसे कुटिल मुख किये यमराज अपने दूतोंको आज्ञा देते हैं—'इस पापात्माको यहाँ लाओ, नीचे गिरा दो, अच्छी तरह बाँध दो और कठोर दण्ड दो। इस दुराचारीके मस्तकपर लोहेके मुद्गरोंसे जोर-जोरसे मारो। दोनों पैर पकड़कर इसे पत्थरकी चट्टानोंपर दे मारो। अपने पैरोंसे इसका गला दबाकर इसकी दोनों आँखें निकाल लो। परायी स्त्रीकी ओर फैलनेवाले इस पापात्माके हाथ काट डालो। परायी स्त्रीके शरीरमें नखक्षत करनेवाले इस दुरात्माके शरीरमें सब ओरसे रोम-रोममें सूई चुभो दो। पर-स्त्रीका मुख चूमने और सूँघनेवाले इस दुष्टके मुँहमें थूक दो। दूसरोंकी निन्दा करनेवाले इस पापीके मुँहमें तीखी कील ठोंक दो। इस कुलकलंकिनी कुलटाको तपाये हुए लोहेके बने उपपतिके शरीरसे सटा दो। जो अजितेन्द्रिय पुरुष अपने ही ग्रहण किये हुए नियमोंका त्याग करता है, उस दुष्टात्माको भ्रमरदंश नामक नरकमें बार-बार गिराओ।' इत्यादि बातें कहते हुए यमराजका शब्द दुराचारी पुरुषोंको दूरसे ही सुनायी देता है। पापात्माओंको यमराज अत्यन्त भयंकर दिखायी देते हैं।

जो राजा इस जगत्में अपने औरस पुत्रोंकी भाँति प्रजाका पालन करते और धर्मके अनुसार दण्ड देते हैं, वे यमराजकी सभाके सदस्य होते हैं। जो ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य सदा अपने धर्ममें तत्पर रहते हैं तथा दूसरे भी जो संयमी जीवन व्यतीत करनेवाले हैं, वे सब लोग संयमनीपुरीमें धर्मसभाके सदस्य होकर निवास करते हैं। उशीनर (शिवि), सुधन्वा, वृषपर्वा,

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

जयद्रथ, रजि, सहस्त्रजित्, कुक्षि, दृढ़धन्वा, रिपुंजय, युवनाश्व, दन्तवक्र, शत्रुओंका भी मंगल चाहनेवाले नाभाग, करन्धम, धर्मसेन, परमर्द तथा परान्तक— ये और दूसरे भी बहुत-से नीतिज्ञ राजा, जो धर्म और अधर्मका विचार करनेमें कुशल हैं, धर्मराजकी सुधर्मा सभामें बैठते हैं।

यमराज अपने दूतोंसे कहते हैं—मेरे सेवको! जो मनुष्य गोविन्द, माधव, मुकुन्द, हरे, मुरारे, शम्भु, शिव, ईश, चन्द्रशेखर, शूलपाणि, दामोदर, अच्युत, जनार्दन और वासुदेव इत्यादि नामोंका सदा उच्चारण करते रहते हैं, उनको दूरसे ही त्याग देना। दूतो! जो लोग सदा गंगाधर, अन्धकरिपु, हर, नीलकण्ठ, वैकुण्ठ, कैटभरिपु, कमठ, पद्मपाणि, भूतेश, खण्डपरशु, मृड, चण्डिकेश आदि नामोंका जप करते हैं, वे तुम्हारे लिये सर्वथा त्याज्य हैं। मेरे दूतो! विष्णु, नृसिंह, मधुसूदन, चक्रपाणि, गौरीपति, गिरीश, शंकर, चन्द्रचूड, नारायण, असुरविनाशन, शार्ङ्गपाणि इत्यादि नामोंका सदा जो लोग कीर्तन करते रहते हैं, उन्हें भी दूरसे ही त्याग देना उचित है*।

अगस्त्यजी कहते हैं—प्रिये लोपामुद्रे! इस प्रकार पापरहित मनोरम कथाका श्रवण करते हुए शिवशर्माने प्रसन्नमुख होकर अपने सामने अप्सराओंकी पुरी देखी।

शिवशर्माका सूर्यलोकमें पहुँचकर सूर्यदेवकी महिमा श्रवण करना

अगस्त्यजी कहते हैं—तदनन्तर विमानपर बैठे हुए शिवशर्मा सूर्यलोकमें जा पहुँचे। उन्होंने सूर्यदेवको हाथ जोड़कर प्रणाम किया। भगवान् सूर्य अपने भ्रूभंगमात्रसे उनके प्रणामको स्वीकार

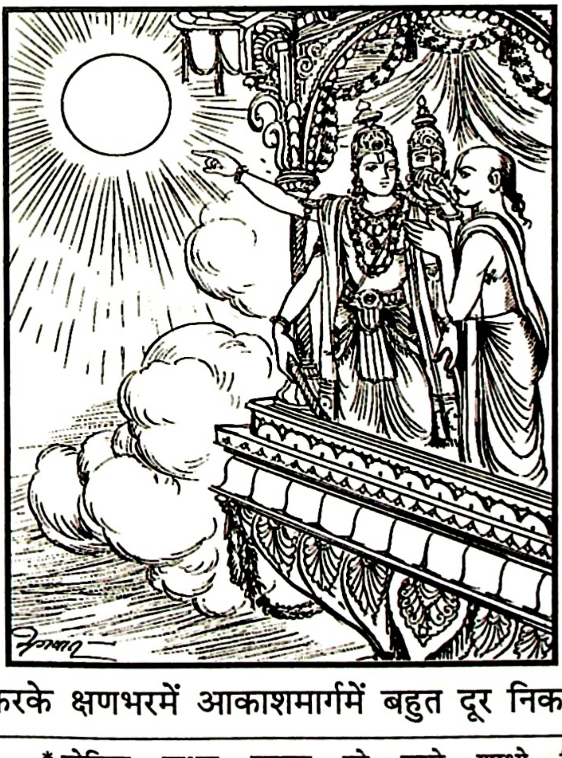

करके क्षणभरमें आकाशमार्गमें बहुत दूर निकल गये। तब शिवशर्माने भगवत्पार्षदोंसे पूछा— 'भगवान् सूर्यका लोक कैसे प्राप्त होता है?'

भगवान् विष्णुके पार्षदोंने कहा—ब्रह्मन्! सुनो। जो समस्त प्राणियोंके एकमात्र नियन्ता, परम कारण, नाम और गोत्रसे रहित तथा रूप आदिसे शून्य हैं, जिनकी भौंहोंके विलासमात्रसे जगत्की सृष्टि और प्रलय होते हैं, वे सर्वात्मा वेद-पुरुष ऐसा कहते हैं कि जो आदित्य-मण्डलमें अन्तर्यामी पुरुष सूर्यदेव हैं, वही मैं हूँ। जो गायत्रीमन्त्रकी दीक्षा प्राप्त करके तीनों कालमें ठीक समयपर सन्ध्योपासना, सूर्योपस्थान तथा गायत्री-मन्त्रका जप नहीं करता, वह एक सप्ताहमें स्वधर्मसे भ्रष्ट हो जाता है, इसमें संशय नहीं। प्रातःकाल सन्ध्योपासना करके गायत्री-मन्त्रका जप करते हुए तबतक खड़ा रहे, जबतक कि सूर्यदेवका आधा उदय न हो जाय। सायंकालमें मौनभावसे आसनपर बैठे हुए ही तबतक जप करता रहे, जबतक ताराओंका उदय न हो जाय। मध्याह्न-सन्ध्यामें सूर्यकी ओर मुख करके जप

* गोविन्द माधव मुकुन्द हरे मुरारे शम्भो शिवेश शशिशेखर शूलपाणे।
दामोदराच्युत जनार्दन वासुदेव त्याज्या भटा य इति सन्ततमामनन्ति॥ (स्क० पु०, का० पू० ८।९९)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

करना चाहिये। समयपर ही अन्न आदि ओषधियोंमें फल लगते हैं, समयपर ही वृक्षोंमें फूल खिलते हैं और समयपर ही मेघगण पानी बरसाते हैं। इसलिये सन्ध्याके लिये उचित कालका उल्लंघन न करे[१]। जिसने समयपर भगवान् सूर्यको गायत्रीमन्त्रसे अभिमन्त्रित जलकी तीन अंजलियाँ प्रदान कीं, उसने क्या तीनों लोकोंका दान नहीं कर दिया? ठीक समयसे उपासना करनेपर भगवान् सूर्य मनुष्यको आयु, आरोग्य, ऐश्वर्य, धन, पशु, मित्र, पुत्र, स्त्री, भाँति-भाँतिके क्षेत्र, आठ प्रकारके भोग, स्वर्ग तथा मोक्ष क्या-क्या नहीं देते। सब मन्त्रोंमें प्रणवसहित गायत्री दुर्लभ है। तीनों वेदोंमें गायत्रीसे बढ़कर कोई मन्त्र नहीं बताया गया है। गायत्रीके समान मन्त्र, काशीके सदृश पुरी तथा भगवान् विश्वनाथके तुल्य शिवमूर्ति कहीं नहीं है। गायत्री वेदोंकी माता और ब्राह्मणोंकी जननी है। वह अपना गान करनेवाले उपासकका त्राण करती है, इसलिये 'गायत्री' कहलाती है[२]। गायत्री-मन्त्र और भगवान् सूर्य इन दोनोंमें वाच्य-वाचक सम्बन्ध है। साक्षात् भगवान् सूर्य वाच्य (अर्थरूप) हैं और मन्त्रोंमें श्रेष्ठ गायत्री वाचक है। गायत्रीके प्रभावसे ही जितेन्द्रिय विश्वामित्र क्षत्रिय होनेपर भी राजर्षिपदका परित्याग करके ब्रह्मर्षिपदको प्राप्त हुए। गायत्री ही परम विष्णु है, गायत्री ही परम शिव है, गायत्री ही परम ब्रह्मा है और गायत्री ही तीनों वेद है।[३] जो ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि आलस्य छोड़कर सूर्यदेवतासम्बन्धी वैदिक सूक्तोंद्वारा सदैव भगवान् सूर्यका उपस्थान करते और उन्हें मस्तक झुकाते हैं, वे साक्षात् सूर्यके ही समान हैं। सूर्यग्रहणके समय जो कुछ स्नान, दान, जप, होम तथा श्राद्ध आदि सत्कर्मोंका अनुष्ठान किया जाता है, वह सब भगवान् सूर्यके सामीप्यकी प्राप्तिमें सहायक होता है। १ हंस, २ भानु, ३ सहस्रांशु, ४ तपन, ५ तापन, ६ रवि, ७ विकर्तन, ८ विवस्वान्, ९ विश्वकर्मा, १० विभावसु, ११ विश्वरूप, १२ विश्वकर्ता, १३ मार्तण्ड, १४ मिहिर, १५ अंशुमान्, १६ आदित्य, १७ उष्णगु, १८ सूर्य, १९ अर्यमा, २० ब्रध्न, २१ दिवाकर, २२ द्वादशात्मा, २३ सप्तहय, २४ भास्कर, २५ अहस्कर, २६ खग, २७ सूर, २८ प्रभाकर, २९ श्रीमान्, ३० लोकचक्षु, ३१ ग्रहेश्वर, ३२ त्रिलोकेश, ३३ लोकसाक्षी, ३४ तमारि, ३५ शाश्वत, ३६ शुचि, ३७ गभस्तिहस्त, ३८ तीव्रांशु, ३९ तरणि, ४० सुमहोरणि, ४१ द्युमणि, ४२ हरिदश्व, ४३ अर्क, ४४ भानुमान्, ४५ भयनाशन, ४६ छन्दोश्व, ४७ वेदवेद्य,

---

गंगाधरान्धकरिपो हर नीलकण्ठ वैकुण्ठ कैटभरिपो कमठाब्जपाणे।
भूतेश खण्डपरशो मृड चण्डिकेश त्याज्या भटा य इति सन्ततमामनन्ति॥
विष्णो नृसिंह मधुसूदन चक्रपाणे गौरीपते गिरिश शङ्कर चन्द्रचूड।
नारायणासुरनिबर्हणशार्ङ्गपाणे त्याज्या भटा य इति सन्ततमामनन्ति॥
(स्क० पु०, का० पू० ८। १००-१०१)

१- उपलभ्य च सावित्रीं नोपतिष्ठेत यः पराम्। काले त्रिकालं सप्ताहात्स पतेन्नात्र संशयः॥
तावत्प्रातर्जपंस्तिष्ठेद्यावदर्धोदयो रवेः। आसनस्थो जपेन्मौनी प्रत्यगा तारकोदयात्॥
सादित्यां मध्यमां सन्ध्यां जपेदादित्यसम्मुखः। काललोपो न कर्तव्यस्ततः कालं प्रतीक्षयेत्॥
काले फलन्त्योषधयः काले पुष्पन्ति पादपाः। वर्षन्ति तोयदाः काले तस्मात्कालं न लङ्घयेत्॥
(स्क० पु०, का० पू० ९। ४१—४४)

२- दुर्लभा सर्वमन्त्रेषु गायत्री प्रणवान्विता। न गायत्र्याधिकं किञ्चित्त्रयीषु परिगीयते॥
न गायत्रीसमो मन्त्रो न काशीसदृशी पुरी। न विश्वेशसमं लिंगं सत्यं सत्यं पुनः पुनः॥
गायत्री वेदजननी गायत्री ब्राह्मणप्रसूः। गातारं त्रायते यस्माद्गायत्री तेन गीयते॥
(स्क० पु०, का० पू० ९। ५१—५३)

३- गायत्र्येव परो विष्णुर्गायत्र्येव परः शिवः। गायत्र्येव परो ब्रह्मा गायत्र्येव त्रयी ततः॥
(स्क० पु०, का० पू० ९। ५७)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

४८ भास्वान्, ४९ पूषा, ५० वृषाकपि, ५१ एक-चक्ररथ, ५२ मित्र, ५३ मन्देहारि, ५४ तमिस्रहा, ५५ दैत्यहा, ५६ पापहर्ता, ५७ धर्म, ५८ धर्मप्रकाशक, ५९ हेलिक, ६० चित्रभानु, ६१ कलिघ्न, ६२ तार्क्ष्यवाहन, ६३ दिक्पति, ६४ पद्मिनीनाथ, ६५ कुशेशयकर, ६६ हरि, ६७ धर्मरश्मि, ६८ दुर्निरिक्ष्य, ६९ चण्डांशु और ७० कश्यपात्मज *— सूर्यदेवके इन परम पवित्र नामोंके आदिमें प्रणव और अन्तमें '**नमः**' शब्द जोड़कर प्रत्येक नामको चतुर्थ्यन्त करके उसका उच्चारण

* इन सत्तर नामोंका संक्षेपसे अर्थ-बोध कराया जाता है—

१. हन्ति गच्छति जानाति सर्वम् इति वा हंसः।

जो सर्वत्र जाता है अथवा सबको जानता है, वह हंस है, इस व्युत्पत्तिके अनुसार सर्वव्यापी सर्वज्ञ परमात्माका नाम ही हंस है। 'हंस' या 'सोऽहम्' यह अजपा-मन्त्र भी है।

२. भातीति भानुः, भाः नुदति प्रेरयति इति वा भानुः।

जो विभासित हो अथवा अपनी प्रभाका प्रसार करे, वह भानु है। ३. सहस्र (असंख्य) किरणोंवाले। ४. तपनेवाले। ५. तपानेवाले। ६. लोकान् अवति रक्षति इति रविः; जो सम्पूर्ण लोकोंका अवन—रक्षण करे, वह रवि है। अवधातुके पूर्वमें 'रुट्' का आगम होता है, जिससे 'रवि' शब्दकी सिद्धि होती है। जैसा कि अन्यत्र बताया गया है—

'अवेति रक्षणे धातुः प्रत्ययेऽस्य रुडागमः।
अवति त्रीनिमाँल्लोकांस्तेनासौ रविरुच्यते॥' ॥ इति॥

७. विश्वकर्माके द्वारा भगवान् सूर्यके तेजका विशेषरूपसे कर्तन—संक्षिप्तीकरण किया गया है, इसलिये उनका नाम विकर्तन है। ८. जिनका वसु अर्थात् तेज सबसे विशिष्ट है, उन्हें विवस्वान् कहते हैं। ९. सम्पूर्ण विश्व जिनका कर्म है अथवा जिनसे सम्पूर्ण विश्वकी कर्ममें प्रवृत्ति होती है, उन भगवान् सूर्यका नाम विश्वकर्मा है। १०. अग्निस्वरूप होनेसे सूर्यदेवका नाम विभावसु है अथवा जिनके वसु—किरण अनेक प्रकारसे विभासित हैं, वे विभावसु कहलाते हैं। ११. सम्पूर्ण विश्वमें जिनका तेजोमय स्वरूप व्याप्त है अथवा यह विश्व जिनका ही स्वरूप है, वे भगवान् सूर्य विश्वरूप कहे गये हैं। १२. सम्पूर्ण विश्वको उत्पन्न करनेवाले। १३. मृत्तिकामय अर्थात् अचेतन अण्डमें वैराजरूपसे प्रविष्ट होनेके कारण सूर्यदेवका नाम मार्तण्ड हुआ। १४. मिहि राति गृह्णाति नाशयति इति वा मिहिरः। हिम अथवा कुहरेको ग्रहण करते या नष्ट करते हैं, इसलिये सूर्य मिहिर कहलाते हैं। १५. किरणोंसे युक्त। १६. अदितिके पुत्र। १७ उष्ण (गरम) किरणोंवाले। १८. सूते इति सूर्यः; जो सबका उत्पादन करे, वह सूर्य है। १९. अर्यमा त्रैमूर्तिः; वेदत्रयी जिनका स्वरूप है, वे सूर्यदेव अर्यमा कहलाते हैं। २०. जो सम्पूर्ण जगत्को बढ़ाता है, वह ब्रध्न है। २१. दिनको प्रकट करनेवाले। २२.बारह महीनोंमें बारह स्वरूपोंसे आदित्यमण्डलका संचालन करनेवाले। २३ सात घोड़ोंवाले। २४ प्रभाको फैलानेवाले। २५ दिन प्रकट करनेवाले। २६ आकाशमें चलनेवाले। २७ जगत् सूते इति सूरः; संसारको उत्पन्न करते हैं, इसलिये सूर हैं। २८ प्रभाका विस्तार करनेवाले। २९ कान्तिमान्। ३० सम्पूर्ण जगत्के नेत्रोंमें प्रकाश देनेवाले। ३१ ग्रहोंके स्वामी। ३२ तीनों लोकोंके स्वामी। ३३ अन्तर्यामीरूपसे सम्पूर्ण जगत्के साक्षी। ३४ अन्धकारके शत्रु। ३५ नित्य। ३६ पवित्र। ३७ किरणरूपी हाथोंवाले। ३८ तीक्ष्ण किरणवाले। ३९ संसार-समुद्रसे तारनेवाले नौकारूप। ४० अत्यन्त महान् तेजकी उत्पत्तिके स्थान। ४१ आकाशमें मणिके समान प्रकाशित होनेवाले। ४२ हरे रंगके घोड़ेवाले। ४३ अतिशयेन इयति गच्छति इत्यर्कः; जो अत्यन्त तीव्र वेगसे गमन करे, वह अर्क है। ४४ प्रकाशमान किरणोंवाले। ४५ भयका निवारण करनेवाले। ४६ गायत्री आदि सात छन्द ही सूर्यदेवके सात अश्व हैं, इसलिये उनका नाम छन्दोश्व है। ४७ वेदोंके द्वारा जाननेयोग्य। ४८ प्रकाशवान्। ४९ वृष्टिः आदि द्वारेण सर्वं जगत् पुष्णाति इति पूषा; वर्षा आदिके द्वारा समस्त जगत्का पोषण करते हैं, इसलिये उनका नाम पूषा है। ५० वर्षति पुण्यफलम् आकम्पयति पापम् इति वृषाकपिः; पुण्यफलकी वर्षा करते और पापको आकम्पित (नष्ट) करते हैं, इसलिये सूर्यदेव वृषाकपि कहलाते हैं। ५१ सूर्यका रथ एक पहियेवाला है, इसलिये वे एक-चक्ररथ हैं। ५२ स्वभावतः सबके सुहृद् होनेसे उनका नाम मित्र है। ५३ आलस्यके प्रतीक मन्देह नामक राक्षसोंका शत्रु होनेके कारण भगवान् सूर्यको मन्देहारि कहते हैं। ५४ अन्धकारनाशक। ५५ दैत्योंके नाशक। ५६ पापोंका अपहरण करनेवाले। ५७ धारण करनेवाले अथवा धर्मस्वरूप। ५८ धर्मको प्रकाशित करनेवाले। ५९ हे आकाशे लिंकति गच्छति इति हेलिकः; 'ह' अर्थात् आकाशमें गमन करनेवाले होनेके कारण वे हेलिक हैं। ६० चित्र अर्थात् अनेक प्रकारकी किरणोंवाले। ६१ कलिके दोषोंका नाश करनेवाले। ६२ विष्णुरूपसे गरुड़की पीठपर चलनेवाले; अथवा तार्क्ष्य नाम है अरुणका, वह जिनका वाहन अर्थात् सारथि है, वे सूर्यदेव तार्क्ष्यवाहन कहे गये हैं। ६३ दिशाओंके स्वामी। ६४ कमलिनीके स्वामी अथवा उसे विकसित करनेवाले। ६५ हाथमें कमल धारण करनेवाले। ६६ अज्ञान एवं अन्धकारका अपहरण करनेवाले। ६७ उष्ण किरणवाले। ६८ जिनकी ओर देखना कठिन होता है। ६९ प्रचण्ड किरणवाले। ७० कश्यपजीके पुत्र।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

करते हुए भगवान् सूर्यको अर्घ्य देना चाहिये। यथा—'**ॐ हंसाय नमः, ॐ भानवे नमः**' इत्यादि। अर्घ्यकी विधि इस प्रकार है—दोनों हाथोंमें निर्मल ताम्रपात्र लेकर उसे जलसे भर ले। उसमें कनेर आदिके पुष्प, रक्त चन्दन, दूर्वादल और अक्षत डाल दे। तत्पश्चात् पृथ्वीपर दोनों घुटने टेककर सूर्यकी ओर देख-देखकर एक-एक नामका पूर्वोक्त रूपसे उच्चारण करते हुए अर्घ्यपात्रको अपने मस्तकके पास लाकर परम पूजनीय सूर्यदेवको ध्यानपूर्वक अर्घ्य दे। सूर्योदय और सूर्यास्तके समय महामन्त्र-रहस्यरूप इन सत्तर नामोंके द्वारा प्रत्येक नाममय मन्त्रके साथ सूर्यदेवको नमस्कार करना चाहिये। ऐसा करनेवाला मनुष्य न कभी दरिद्र होता है और न कभी दुःखका ही भागी होता है। वह पूर्वजन्मोपार्जित भयंकर रोगोंसे भी मुक्त हो जाता है और समयपर मृत्युको प्राप्त होकर भगवान् सूर्यके लोकमें प्रतिष्ठित होता है।

इस पुण्यकथाको सुनते हुए शिवशर्माने क्षणभरमें देवराज इन्द्रके लोकमें पहुँचकर उनकी महापुरीका दर्शन किया।

इन्द्रलोक तथा अग्निलोकका वर्णन, विश्वानर मुनिके द्वारा की हुई आराधनासे प्रसन्न होकर शिवजीका उन्हें वरदान देना

शिवशर्माने पूछा—यह उत्तम पुरी किसकी है?

दोनों भगवत्पार्षदोंने कहा—महाभाग! यह देवराज इन्द्रकी पुरी है। विश्वकर्माजीने बड़ी भारी तपस्याके बलसे इस पुरीका निर्माण किया है। इस अमरावतीमें कपड़ा बुननेवाले और आभूषण बनानेवाले नहीं रहते; क्योंकि यहाँ कल्पवृक्ष ही सबको रुचिके अनुसार वस्त्र और आभूषण देता है। यहाँ रसोई बनानेके कार्यमें कुशल रसोइये भी नहीं हैं, एकमात्र कामधेनु ही यहाँ सम्पूर्ण रसोंको प्रस्तुत करती है। यहीं सहस्र नेत्रोंवाले इन्द्र हैं। ये ही स्वर्गलोकके अधिपति हैं। इन्होंने सौ अश्वमेध यज्ञोंका अनुष्ठान किया है, इसलिये ये इन्द्रदेव शतमन्यु कहलाते हैं। अग्नि आदि सात लोकपाल इनकी उपासना करते हैं। जो कोई भी जितेन्द्रिय पुरुष पृथ्वीपर निर्विघ्नतापूर्वक सौ अश्वमेध यज्ञोंका अनुष्ठान पूरा कर लेता है, वह इन्द्रपुरीमें जाकर इन्द्र-पदवीको पाता है। जिन्होंने सौ यज्ञ पूरे नहीं किये हैं, वे यज्ञकर्ता राजा भी इस लोकमें निवास करते हैं। जो ब्राह्मण ज्योतिष्टोम आदि यज्ञोंद्वारा यजन करते हैं, वे भी इस लोकमें निवास करते है। जो तुलापुरुषदान आदि सोलह महादानोंका अनुष्ठान करते हैं, वे शुद्ध चित्तवाले पुण्यात्मा पुरुष अमरावतीपुरीको प्राप्त करते हैं। जो संग्राममें कभी पीठ नहीं दिखाते, कायरोंकी-सी बात नहीं करते, धीरतापूर्वक पराक्रम दिखाते हुए वीरशय्यापर वीरगतिको प्राप्त होते हैं, वे राजा भी यहाँ निवास करते हैं। यज्ञविद्यामें कुशल यज्ञकर्ता मनुष्य भी यहाँ निवास करते हैं। इस प्रकार देवराज इन्द्रके नगरकी स्थिति संक्षेपसे बतायी गयी है। अब तुम इस ज्योतिर्मयी अग्निपुरीकी ओर देखो। जो उत्तम व्रतका पालन करनेवाले पुरुष अग्निदेवके उपासक हैं, वे इस लोकमें निवास करते हैं। अग्निहोत्रपरायण ब्राह्मण, अग्निसेवी ब्रह्मचारी तथा पंचाग्निव्रतका पालन करनेवाले तपस्वी अग्निलोकमें अग्निके समान तेजस्वी होकर रहते हैं। जो सर्दीके समय शीतका कष्ट दूर करनेके लिये सूखे काठ दान करते तथा मन्दाग्नि रोगवाले मनुष्यके जठराग्निकी वृद्धिके लिये वैश्वानर चूर्ण आदि औषध प्रदान करते हैं, वे चिरकालतक अग्निलोकमें निवास करते हैं। जो यज्ञके लिये

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

उपयोगी सामग्री अथवा धन अपनी शक्तिके अनुसार देते हैं, वे अर्चिष्मती पुरीमें स्थान पाते हैं। द्विजातियोंके लिये एकमात्र अग्निदेवता ही परम कल्याणकारी हैं—गुरु, देवता, व्रत और तीर्थ सब अग्नि ही हैं। सभी अपवित्र वस्तुएँ अग्निके संसर्गमें आनेपर क्षणभरमें पवित्र हो जाती हैं, अतएव उनका नाम पावक है। अग्निदेव त्रिभुवनके स्वामी परमेश्वरके नेत्र हैं। जब संसार घोर अन्धकारसे आच्छादित हो जाता है उस समय उनके सिवा दूसरा कौन प्रकाशक होता है।

पूर्वकालकी बात है, नर्मदा नदीके रमणीय तटपर नर्मपुरमें एक विश्वानर नामक मुनि थे, जो भगवान् शिवके भक्त और बड़े पुण्यात्मा थे। एक समय भगवान् शिवका ध्यान करके वे मन-ही-मन विचार करने लगे कि चारों आश्रमोंमें कौन-सा आश्रम सत्पुरुषोंके लिये विशेष कल्याणकारक है, जिसका भलीभाँति पालन करनेपर इहलोक और परलोकमें भी सुख होता है। यह साधन श्रेष्ठ है, यह उससे भी श्रेष्ठ है और यह सुगम है, इस प्रकार सबकी आलोचना करके उन्होंने गृहस्थ-आश्रमकी प्रशंसा की। ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ अथवा संन्यासी—इन सबका आधार गृहस्थ-आश्रम ही है। देवता, मनुष्य, पितर तथा पशु-पक्षी आदि भी प्रतिदिन गृहस्थसे ही अपनी जीविका चलाते हैं, इसलिये गृहस्थाश्रमी पुरुष ही सर्वश्रेष्ठ है। जो गृहस्थ स्नान, होम अथवा दान किये बिना ही भोजन कर लेता है, वह देवता आदिका ऋणी होकर नरकमें पड़ता है। जो हठसे, लोकभयसे अथवा स्वार्थसे ब्रह्मचर्य-व्रतको धारण करता है, किंतु मन-ही-मन विषयभोगोंका चिन्तन करता रहता है, उसका धारण किया हुआ व्रत भी नहींके समान हो जाता है। परायी स्त्रीका परित्याग करने, अपनी ही स्त्रीसे सन्तुष्ट रहने तथा ऋतुकालके समय पत्नी-समागम करनेवाले गृहस्थको ब्रह्मचारी ही कहा गया है। जिसने राग-द्वेषको त्याग दिया है, जो काम-क्रोधसे दूर रहता है, वह अग्नि और स्त्रीके साथ रहनेवाला गृहस्थ वानप्रस्थसे भी बढ़कर है। जो वैराग्यसे घर छोड़कर निकले, किंतु हृदयमें घरका सदा चिन्तन करता रहे, वह दोनों ओरसे भ्रष्ट होता है। उसको न तो गृहस्थ कहा जा सकता है और न वानप्रस्थ ही। जो गृहस्थ ब्राह्मण बिना माँगे प्राप्त हुई जीविकासे जीवन-निर्वाह करता और जिस किसी वस्तुसे भी सन्तुष्ट रहता है, वह संन्यासीसे भी बढ़कर है। जो संन्यासी जहाँ कहीं भी कोई दुर्लभ वस्तु भी माँग बैठता है और भोजनसे सन्तुष्ट नहीं होता, वह संन्यास-धर्मसे भ्रष्ट हो जाता है।

इस प्रकार गुण-अवगुणका विचार करके विश्वानर ब्राह्मणने अपने योग्य उत्तम कुलकी कन्याके साथ विधिपूर्वक विवाह किया। वे अग्निसेवामें तत्पर रहते, पंचयज्ञोंका अनुष्ठान करते, सदा यजन-याजन, अध्ययन-अध्यापन और दान-प्रतिग्रह—इन छः कर्मोंमें संलग्न रहते तथा देवता, पितर एवं अतिथियोंसे प्रेम रखते थे। मनको संयममें रखनेवाले विश्वानर मुनि धर्म, अर्थ और कामका तदनुकूल समयमें संग्रह करते थे। दोनों दम्पति एक-दूसरेके अनुकूल चलते थे; अतः उनमें परस्पर कोई संकोच नहीं था। वे ब्राह्मण कर्मकाण्डके ज्ञाता थे, अतः पूर्वाह्णकालमें देवयज्ञ, मध्याह्नमें मनुष्ययज्ञ (अतिथि-सेवा) तथा अपराह्णमें पितृयज्ञ करते थे। इस तरह बहुत समय बीत जानेपर उन ब्राह्मणदेवताकी पतिव्रता पत्नी शुचिष्मती एक दिन अपने पतिसे इस प्रकार बोली—'प्राणनाथ! स्त्रियोंके योग्य जितने भोग हैं, वे सब आपके प्रसादसे मेरे द्वारा पूर्णरूपसे भोगे गये हैं। अब आप मुझे भगवान् शंकरके सदृश पुत्र प्रदान करें।'

शुचिष्मतीका यह वचन सुनकर विश्वानर मुनिने क्षणभर समाधि लगाकर मन-ही-मन इस प्रकार विचार किया—'अहो! मेरी इस पत्नीने यह कैसा अत्यन्त दुर्लभ वर माँगा है। परंतु

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

इसके मुखमें वचनरूपसे स्थित होकर साक्षात् भगवान् शिवने ही यह बात कही है, अतः इसे टालने या बदलनेकी भी सामर्थ्य किसमें है।' यों सोच-विचारकर विश्वानर मुनिने पत्नीसे कहा—'प्रिये! ऐसा ही होगा।' उसे इस प्रकार आश्वासन देकर मुनि तपस्याके लिये चल दिये। उन्होंने काशीमें जाकर मणिकर्णिकाका दर्शन किया और सौ जन्मोंमें उपार्जित त्रिविध पाप-तापोंका परित्याग कर दिया। विश्वेश्वर आदि सम्पूर्ण शिवलिंगोंका दर्शन करके सभी कुण्डों, बावड़ियों, कुओं और तालाबोंमें स्नान किया। सम्पूर्ण गणेश-विग्रहोंको नमस्कार करके समस्त गौरी-विग्रहोंके चरणोंमें मस्तक झुकाया। तत्पश्चात् पापोंका भक्षण करनेवाले कालराज भैरवका भलीभाँति पूजन करके आदिकेशव, आदिश्रीविष्णु-विग्रहोंको सन्तुष्ट किया। फिर लोलार्क आदि सूर्य-विग्रहोंको बार-बार नमस्कार करके सब तीर्थोंमें पिण्डदान किया। सहस्रोंकी संख्यामें भोजन कराकर संन्यासियों और ब्राह्मणोंको तृप्त किया।

तदनन्तर वे बार-बार यह सोचने लगे कि कौन-सा शिवलिंग शीघ्र सिद्धि प्रदान करनेवाला है। क्षणभर सोच-विचार करनेके बाद वे इस निर्णयपर पहुँचे कि जहाँ सिद्धिरूपिणी विकटा देवी प्रकट हुई हैं और जहाँ सिद्धिविनायकजी सब विघ्नोंका निवारण करके समस्त सिद्धियाँ प्रदान करते हैं, वह सिद्धिक्षेत्र ही अविमुक्त क्षेत्रमें सबसे प्रधान स्थान है। वहाँ वीरेश्वर नामसे प्रसिद्ध शिवलिंग अत्यन्त गुह्यतम माना गया है। काशीमें ऐसी भूमि नहीं है, जहाँ कोई शिवलिंग न हो। परंतु वीरेश्वरलिंगके समान शीघ्र सिद्धि प्रदान करनेवाला तथा धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष देनेवाला दूसरा लिंग नहीं है। शिवभक्तोंमें श्रेष्ठ चन्द्रमौलि तथा भरद्वाजजी पूर्वकालमें वीरेश्वरकी आराधना करके उनकी महिमाका गान करते हुए उन्हींमें लीन हो गये। नागराज शंखचूडने भी प्रतिदिन रातमें अपने फनोंकी मणियोंसे बार-बार आरती उतारते हुए छः महीनेमें सिद्धि प्राप्त कर ली। यहाँ वसुदत्त और रत्नदत्त नामक वैश्योंने एक वर्षतक श्रीवीरेश्वरकी आराधना करके सत्यवतीके समान पुत्री प्राप्त की थी। अतः मैं भी यहाँ तीनों काल वीरेश्वरकी आराधना करके अपनी स्त्रीकी रुचिके अनुसार शीघ्र ही पुत्र प्राप्त करूँगा।

धीर बुद्धिवाले विप्रवर विश्वानरने ऐसा निश्चय करके चन्द्रकूपके जलसे स्नान किया और व्रतकी दीक्षा ले नियम ग्रहण किया। वे एक मासतक प्रतिदिन केवल एक बार भोजन करके रहे। फिर दूसरे मासमें दिनभर उपवास करके केवल रातमें ही भोजन करते रहे। फिर एक मासतक बिना माँगे जो कुछ मिल जाय, उसीपर निर्वाह करते रहे। उसके बाद पूरे एक मासतक उन्होंने अखण्ड उपवास किया। तदनन्तर, एक मासतक दूध पीकर, एक मासतक साग और फल खाकर, एक महीनेतक मुट्ठीभर तिल चबाकर और एक महीनेतक केवल जल पीकर जीवन-निर्वाह किया। तत्पश्चात् एक मासतक वे केवल पंचगव्य पीकर रहे, एक मासतक चान्द्रायण व्रतमें लगे रहे, एक मासतक कुशाके अग्रभागपर जितना जल आता है, उतना ही पीकर तप करते रहे और एक मासतक उन्होंने केवल वायुका आहार किया। इसके बाद तेरहवें मासमें गंगाजीके जलमें स्नान करके वे प्रातःकाल ज्यों ही भगवान् वीरेश्वरके समीप गये, त्यों ही उस लिंगके मध्यभागमें उन्हें एक विभूति-भूषित अष्टवर्षीय सुन्दर बालक दिखायी दिया। उसके नेत्र कानोंके समीपतक फैले हुए थे। ओठ बहुत ही लाल थे। मस्तकपर पीले रंगकी जटाका मनोहर मुकुट शोभा पा रहा था। वह बालक नंगा था और उसके मुखपर हास्यकी छटा छा रही थी। उसने बालकोचित वेष-भूषा धारण कर रखी थी। वह मनोहर बालक वैदिक सूक्तोंका पाठ करता और खेल-खेलमें ही हँसता था।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

उसे देखकर विश्वानरके शरीरमें आनन्दातिरेकसे रोमांच हो आया और वे गद्‌गदकण्ठसे बोल उठे—'नमस्कार है, नमस्कार है।' तत्पश्चात् उन्होंने इस प्रकार स्तवन किया—'यहाँ सब कुछ एकमात्र अद्वितीय ब्रह्म ही है। यह बात सत्य है, सत्य है। इस विश्वमें भेद या नानात्व कुछ भी नहीं है। इसलिये एक अद्वितीयरूप आप महेश्वरकी मैं शरण लेता हूँ। शम्भो! आप रूपरहित अथवा एकरूप होकर भी जगत्‌के नाना स्वरूपोंमें अनेककी भाँति प्रतीत होते हैं। ठीक उसी तरह, जैसे जलके भिन्न-भिन्न पात्रोंमें एक ही सूर्य अनेकवत् दृष्टिगोचर होता है। अतः आपके सिवा और किसी स्वामीकी मैं शरण नहीं लेता। जैसे रज्जुका ज्ञान हो जानेपर सर्पका भ्रम मिट जाता है, सीपीका बोध होते ही चाँदीकी प्रतीति नष्ट हो जाती है तथा मृगमरीचिकाका निश्चय होनेपर उसमें प्रतीत होनेवाला जलप्रवाह असत्य सिद्ध हो जाता है, उसी प्रकार जिनका ज्ञान होनेपर सब ओर प्रतीत होनेवाला यह सम्पूर्ण प्रपंच उन्हींमें विलीन हो जाता है, उन महेश्वरकी मैं शरण लेता हूँ। शम्भो! जैसे जलमें शीतलता, अग्निमें दाहकता, सूर्यमें ताप, चन्द्रमामें आह्लाद, पुष्पमें सुगन्ध तथा दूधमें घी स्थित है, उसी प्रकार सम्पूर्ण विश्वमें आप व्याप्त हैं, इसलिये मैं आपकी ही शरण लेता हूँ। आप बिना कानके ही शब्दको सुनते हैं, नासिकाके बिना ही सूँघते हैं, पैरोंके बिना ही दूरसे चले आते हैं, नेत्रोंके बिना ही देखते और रसनाके बिना ही रसका अनुभव करते हैं, आपको यथार्थरूपसे कौन जानता है? अतः मैं आपकी ही शरण लेता हूँ। ईश! वेद भी आपके साक्षात् स्वरूपको नहीं जानता, बड़े-बड़े योगीश्वर तथा इन्द्र आदि देवता भी आपको यथार्थरूपसे नहीं जानते, परंतु आपका भक्त आपकी ही कृपासे आपको जानता है, अतः मैं आपकी ही शरण लेता हूँ। आप ही वृद्ध हैं, आप ही तरुण हैं और आप ही बालक हैं। कौन-सा ऐसा तत्त्व है, जो आप नहीं हैं, सब कुछ आप ही हैं, अतः मैं आपके चरणोंमें मस्तक नवाता हूँ।'

इस प्रकार स्तुति करके विप्रवर विश्वानर अतिशय आनन्दमग्न हो दण्डकी भाँति पृथ्वीपर पड़ गये। इतनेमें ही बालकरूपधारी शिव बोल उठे—'भूदेव! तुम कोई वर माँगो। तुमने अपनी धर्मपत्नी शुचिष्मतीके विषयमें अपने मनमें जो अभिलाषा की है, वह थोड़े ही समयमें पूर्ण होगी। महामते! मैं स्वयं ही शुचिष्मतीके गर्भमें आकर तुम्हारा पुत्र होऊँगा। उस समय सब देवताओंका परम प्रिय मैं गृहपति (अग्नि)-के नामसे विख्यात होऊँगा। तुमने जो इस अभिलाषाष्टक नामक पवित्र स्तोत्रका पाठ किया है, इस स्तोत्रको तीनों समय मेरे समीप यदि पढ़ा जाय तो यह सम्पूर्ण कामनाओंको देनेवाला होगा। इस स्तोत्रका पाठ पुत्र, पौत्र और धन देनेवाला होगा, सब प्रकारकी शान्ति करनेवाला और सम्पूर्ण आपत्तियोंका नाशक होगा। इतना ही नहीं, यह स्वर्ग, मोक्ष तथा सम्पत्ति देनेवाला भी होगा। एक वर्षतक पाठ करनेपर यह स्तोत्र पुत्रदान करनेवाला होगा, इसमें संशय नहीं है।' ऐसा कहकर बालरूपधारी महादेवजी अन्तर्धान हो गये और विप्रवर विश्वानर भी अपने घर लौट गये।

विश्वानरके पुत्र गृहपतिका भगवान् शिवकी आराधनासे अग्नि एवं दिक्पालका पद प्राप्त करना

अगस्त्यजी कहते हैं—तदनन्तर विश्वानरद्वारा विधिपूर्वक गर्भाधान-संस्कार सम्पन्न होनेपर उनकी स्त्री शुचिष्मती गर्भवती हुई। तत्पश्चात् विद्वान् विश्वानरने गृह्यसूत्रोक्त विधिसे बालककी पुरुषोचित शक्ति बढ़ानेके उद्देश्यसे गर्भिणीका पुंसवन-संस्कार किया। यह संस्कार गर्भस्थ बालकके

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

गर्भमें चलने-फिरनेसे पहले ही सम्पन्न किया गया। तदनन्तर आठवें मासमें सीमन्तोन्नयन संस्कार किया, जो गर्भस्थ बालकके अवयवोंको पुष्ट करनेवाला है। उसके बाद सुखपूर्वक पुत्रका जन्म हो जाय, इसके लिये भी विद्वान् ब्राह्मणने सोष्यन्ती नामक वैदिक कर्म सम्पन्न किया। यह सब होनेके पश्चात् शुभ ग्रह एवं नक्षत्रोंके योगमें शुचिष्मतीके गर्भसे एक चन्द्रमाके समान सुन्दर मुखवाला पुत्र उत्पन्न हुआ, जो सब प्रकारके अरिष्टोंका नाश करनेवाला था। वह अपने अंगोंकी प्रभासे सूतिकागृहको प्रकाशित कर रहा था। स्वयं ब्रह्माजीने आकर उस बालकका जातकर्म-संस्कार किया और यह बताया कि इस बालकका नाम गृहपति होगा। विष्णु और महादेवजीके साथ बालकके लिये उचित रक्षा-विधान करके सबके प्रपितामह ब्रह्माजी हंसपर आरूढ़ हो चले गये। चौथे महीनेमें बालकका घरसे बाहर निष्क्रमण हुआ। छठे महीनेमें उसका अन्नप्राशन-संस्कार किया गया और वर्ष पूरा होनेपर चूड़ाकरण। तदनन्तर श्रवण नक्षत्रमें कर्णवेध संस्कार करके ब्रह्मतेजकी वृद्धिके लिये पाँचवें वर्षमें उपनयन-संस्कारपूर्वक उसे यज्ञोपवीत दे दिया गया। उसके बाद श्रावणीमें उपाकर्म करके विद्वान् विश्वानरने उसे वेद पढ़ाना प्रारम्भ किया। तीन ही वर्षमें उस बालकने अंग, पद और क्रमके साथ विधिपूर्वक सम्पूर्ण वेदोंका अध्ययन कर लिया। विनय आदि सद्‌गुणोंको प्रकट करनेवाले उस शक्तिमान् विप्रकुमारने गुरुमुखको साक्षीमात्र बनाकर समस्त विद्याएँ ग्रहण कर लीं।

तदनन्तर नवें वर्षमें विश्वानरकुमार गृहपति जब माता-पिताकी सेवामें संलग्न था, उस समय इच्छानुसार विचरनेवाले देवर्षि नारदजी विश्वानरकी पर्णशालामें आये और उस बालकको देखकर अर्घ्य और आसन ग्रहण करनेके पश्चात् उन्होंने वहाँका कुशल-समाचार पूछा—'महाभाग विश्वानर और उत्तम व्रतका पालन करनेवाली देवी शुचिष्मती! यह बालक गृहपति तुम दोनोंकी आज्ञाका पालन तो करता है न? क्योंकि पुत्रके लिये पिता-माताके आज्ञापालनको छोड़कर दूसरा कोई धर्म नहीं है, दूसरा कोई तीर्थ नहीं है तथा दूसरा कोई देवता, गुरु और सत्कर्म नहीं है। त्रिलोकीमें पुत्रके लिये माता-पितासे बढ़कर कोई वस्तु नहीं है। गर्भमें धारण और बाल्यावस्थामें पोषण करनेके कारण माताका गौरव पितासे भी बढ़कर है। समस्त कर्मोंका संन्यास (त्याग) करनेवाले संन्यासीके द्वारा भी पिता वन्दनीय है। उस सर्ववन्द्य संन्यासीको भी प्रयत्नपूर्वक अपनी माताके चरणोंकी वन्दना करनी चाहिये। यही अत्यन्त उग्र तपस्या है, यही सबसे श्रेष्ठ व्रत है और यही सर्वोत्तम धर्म है कि पिता-माताको सन्तुष्ट किया जाय *। विश्वानरकुमार! मेरे पास आओ मेरी गोदमें बैठो और अपना दाहिना हाथ दिखाओ। तुम्हारे लक्षण कैसे हैं, यह मैं देखूँगा।'

देवर्षि नारदके ऐसा कहनेपर बालक गृहपति पिता-माताकी आज्ञा ले नारदजीको प्रणाम करके भक्तिसे विनीत हो उनके समीप आ बैठा। उसे अच्छी तरह देखनेके बाद नारदजीने कहा—'विप्रवर! तुम्हारा यह पुत्र समूची पृथ्वीका पालन करनेवाला होगा और दिक्पाल पदवी धारण करेगा। इसके पास महान् ऐश्वर्य होगा। इसमें राजा होनेके लक्षण हैं। यह अत्यन्त सुलक्षण बालक है; किंतु सर्वगुणसम्पन्न, समस्त शुभ लक्षणोंसे लक्षित तथा सम्पूर्ण निर्मल कलाओंसे युक्त होनेपर भी इसे दुर्दैव चन्द्रमाकी भाँति नीचे गिरा सकता है। अतः पूर्ण प्रयत्न करके तुम्हें अपने इस शिशुकी रक्षा करनी चाहिये। बारहवें वर्षकी अवस्थामें इसको बिजलीकी अग्निसे भय है।' ऐसा कहकर बुद्धिमान् नारदजी जैसे आये थे, वैसे

* संन्यस्ताखिलकर्मापि पितुर्वन्द्यो हि मस्करी। सर्ववन्द्येन यतिना प्रसूर्वन्द्या प्रयत्नतः॥
इदमेव तपोऽत्युग्रमिदमेव परं व्रतम्। अयमेव परो धर्मो यत्पित्रोः परितोषणम्॥
(स्क० पु०, का० पू० ११। ५०-५१)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

ही लौट गये। नारदजीके चले जानेपर माता-पिताको शोकसे घिरा हुआ देख गृहपतिने मुसकराते हुए कहा—'माता और पिताजी! आपलोगोंको इतना भय क्यों हो रहा है? आप दोनोंके चरणोंकी धूलिसे मेरे शरीरकी रक्षा हो रही है। मुझे काल भी अपना ग्रास नहीं बना सकता, फिर बेचारी बिजली तो बहुत छोटी वस्तु है। आप दोनों मेरी प्रतिज्ञा सुनें। यदि मैं आप दोनोंका पुत्र हूँ तो ऐसा प्रयत्न करूँगा जिससे बिजली स्वयं मुझसे भयभीत होगी। जो साधु-महात्माओंको सब कुछ देनेवाले और सर्वज्ञ हैं, कालके भी काल, कालकूट विषका भक्षण करनेवाले महाकाल हैं, उन भगवान् मृत्युंजयकी आराधना करके मैं निर्भय हो जाऊँगा।' पुत्रकी यह बात सुनकर बूढ़े ब्राह्मण-दम्पति इस प्रकार बोले—'बेटा! तुम भगवान् शिवकी शरणमें जाओ। इससे बढ़कर हितकी दूसरी कोई बात नहीं हो सकती। भगवान् शिव आशातीत फलको देनेवाले और कालका भी संहार करनेवाले हैं। जिसने तीनों लोकोंकी सम्पत्तिका अपहरण कर लिया था, उस महाभिमानी जालन्धरको जिन्होंने अपने चरणोंके अंगुष्ठकी रेखासे प्रकट हुए चक्रके द्वारा मार डाला था, जो ब्रह्मा आदि देवताओंके एकमात्र उत्पादक हैं और अपनी महिमासे कभी च्युत नहीं होते, उन सम्पूर्ण विश्वकी रक्षाके लिये चिन्तामणिस्वरूप भगवान् शिवकी शरणमें जाओ।'

माता-पिताकी ऐसी आज्ञा पाकर बालक गृहपति उनके चरणोंमें प्रणाम करके काशीमें गया। वहाँ विधिपूर्वक स्नान करके उसने तीनों लोकोंके प्राणियोंकी रक्षा करनेवाले भगवान् विश्वनाथका दर्शन एवं उन्हें प्रणाम किया। विश्वनाथजीका दर्शन करके गृहपतिके हृदयमें बड़ा सन्तोष हुआ। उसने मन-ही-मन कहा—'यह दिव्य शिवस्वरूप वास्तवमें परमानन्दकन्द है। इस मोक्षदायक मूर्तिमें सम्पूर्ण विश्वका और विश्वके बीजभूत कर्मोंका लय होता है, इसलिये यह 'विश्वनाथ' है। मेरे भाग्यका उदय हुआ था, इसीलिये महर्षि नारदने उस दिन आकर वैसी बात कही थी। इसीसे आज मैं विश्वनाथजीका दर्शन करके कृतकृत्य हो रहा हूँ।' इस प्रकार आनन्द-सुधारससे पारण-सा करके गृहपतिने अत्यन्त कठोर नियम ग्रहण किये। वह प्रतिदिन गंगाके अमृतमय जलसे भरे हुए एक सौ आठ कलशोंके वस्त्रद्वारा छाने हुए जलसे भगवान् शिवको स्नान कराता और उन्हें नीलकमलकी माला समर्पित करता था। वह माला एक हजार आठ पुष्पोंकी बनी हुई होती थी। गृहपति पंद्रह-पंद्रह दिनपर कन्द-मूल-फल भोजन करता था। इस तरह उसने छः मास व्यतीत किये। फिर छः महीनोंतक उसने एक-एक पक्षपर सूखे पत्ते चबाये। छः महीनोंतक उसने जलकी एक-एक बूँदका ही आहार किया और छः महीनोंतक केवल वायुभक्षण किया। इस प्रकार तपस्या करते हुए उस बालकके दो वर्ष व्यतीत हो गये। जन्मसे बारहवें वर्षमें वज्रधारी इन्द्र उसके समीप आये और बोले—'तुम कोई मनोवांछित वर माँगो, मैं उसे दूँगा।'

बालक बोला—इन्द्र! मैं आपको जानता हूँ, किंतु आपसे वर नहीं माँगूँगा। मुझे वर देनेवाले तो भगवान् शंकर हैं।

इन्द्रने कहा—बालक! मैं देवताओंका भी देवता हूँ। मुझसे भिन्न दूसरा कोई कल्याणकारी शंकर नहीं है। तुम मूर्खता छोड़कर मुझसे वर माँगो।

ब्राह्मणबालक बोला—पाकशासन! मैं भगवान् शिवके अतिरिक्त दूसरे किसी देवतासे याचना नहीं कर सकता।

उसकी यह बात सुनकर इन्द्रके नेत्र क्रोधसे लाल हो गये। उन्होंने भयानक वज्र उठाकर उस बालकको भयभीत किया। विद्युत्की सैकड़ों ज्वालाओंसे व्याप्त वज्रको देखकर ब्राह्मणबालकको देवर्षि नारदके वचनका स्मरण हो आया और वह भयसे व्याकुल होकर मूर्छित हो गया। इसी समय अज्ञानान्धकारको दूर करनेवाले गौरीपति भगवान् शंकर वहाँ प्रकट हो गये और अपने स्पर्शसे उस बालकमें नवजीवनका संचार-सा करते हुए बोले—'वत्स! तुम्हारा कल्याण हो, उठो, उठो।' उसने रातमें सोये हुएकी भाँति बंद नेत्रकमलोंको

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

खोलकर और उठकर देखा, आगे भगवान् शिव विराजमान हैं। उनका तेज सैकड़ों सूर्योंसे भी अधिक प्रकाशमान है, मस्तकपर जटाजूट उनकी

शोभा बढ़ा रहा है, त्रिशूल और आजगव धनुष (पिनाक) ये दोनों आयुध उनके हाथोंमें सुशोभित हैं। कर्पूरके समान गौर अंग उद्भासित हो रहा है। गुरुजनों और शास्त्रके वचनसे उक्त लक्षणोंद्वारा महादेवजीको पहचानकर गृहपतिके नेत्रोंमें आनन्दके आँसू छलक आये। वह एक क्षणतक ठगा हुआ-सा खड़ा रहा। स्तुति, नमस्कार अथवा कुछ निवेदन करनेमें भी समर्थ न हुआ। तब भगवान् शंकर मुसकराते हुए बोले—'वत्स गृहपते! तुम भयभीत न होओ। इन्द्रवज्र अथवा काल भी मेरे भक्तका अनिष्ट करनेमें समर्थ नहीं है। मैंने ही इन्द्रका रूप धरकर तुम्हें डराया था। भद्र! मैं तुम्हें वर देता हूँ, तुम अग्निपदवीके भागी बनो। तुम सम्पूर्ण देवताओंके मुख होओगे। अग्ने! तुम समस्त प्राणियोंके भीतर विचरण करो। इन्द्र (पूर्व) और धर्मराज (दक्षिण)-के मध्यमें तुम दिक्पाल बनकर रहो और अपना राज्य ग्रहण करो। तुमने जो यह शिवजीकी मूर्ति स्थापित की है, तुम्हारे ही नामसे प्रसिद्ध होगी। अग्नीश्वर नामसे विख्यात यह सब तेजोंको बढ़ानेवाली होगी। सब समृद्धियोंको देनेवाले अग्नीश्वरकी पूजा करके दैववश काशीसे अन्यत्र मरनेवाला पुरुष भी अग्निलोकमें प्रतिष्ठित होगा।' ऐसा कहकर गृहपति अग्निको दिक्पाल पदपर अभिषिक्त करके भगवान् शंकर उसी शिवमूर्तिमें समा गये।

नैर्ऋत्यलोक तथा वरुणलोकका वर्णन

शिवशर्मा बोले—नारायणस्वरूप भगवत्पार्षदो! अब आपलोग नैर्ऋत्य आदि लोकोंका क्रमशः वर्णन करें।

दोनों भगवत्पार्षदोंने कहा—महाभाग! संयमनीपुरीसे आगे जो निर्ऋति नामक दिक्पालकी पुण्यमयी पुरी है, उसका वर्णन सुनो। उसमें पुण्यजन निवास करते हैं। यद्यपि इसमें राक्षसोंका ही वास है, तथापि वे राक्षस कभी भी दूसरोंसे द्रोह नहीं रखते। वे जातिमात्रसे राक्षस हैं, आचार-व्यवहारसे तो ये पुण्यजन हैं—पुण्यात्मा पुरुष हैं। ये सदा तीर्थ-स्नानपरायण हो प्रतिदिन देवपूजामें तत्पर रहते हैं। अपने नाम-गोत्रका उच्चारण करके ब्राह्मणोंको प्रणाम करते हैं। दम (मनोनिग्रह), दान, दया, क्षमा, शौच, इन्द्रियनिग्रह, अस्तेय (चोरी न करना), सत्य और अहिंसा—ये सभी प्राणियोंके लिये धर्ममें सहायक हैं। जो मनुष्य जहाँ कहीं भी जन्म लेकर सदा आवश्यक कार्योंके लिये उद्यमशील बने रहते हैं, वे सब प्रकारकी भोग-सामग्रियोंसे सम्पन्न हो इस नैर्ऋत्यलोकमें निवास करते हैं। काशी छोड़कर अन्य उत्तम तीर्थोंमें मरे हुए म्लेच्छकोटिके लोग यदि आत्मघाती न हों तो वे इस लोकमें भोगसम्पन्न होकर निवास करते हैं। जो कोई अन्त्यज भी दयाधर्मका अनुसरण करनेवाले और परोपकारपरायण

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

होते हैं, वे इस लोकमें श्रेष्ठतम होकर निवास करते हैं।

पूर्वकालमें विन्ध्याचलके जंगलोंमें पिंगाक्ष नामसे प्रसिद्ध एक भील रहता था, जो भीलोंका सरदार था। निर्विन्ध्या नदीके तटपर उसका घर था। वह शूरवीर होनेके साथ ही क्रूरकर्मोंसे विमुख था। पथिकोंपर डाका डालनेवाले लुटेरोंको वह दूर रहकर भी मरवा डालता था और व्याघ्र आदि दुष्ट एवं हिंसक जीवोंको प्रयत्नपूर्वक मारता था। यद्यपि व्याधोंके आचार-व्यवहारसे ही उसकी जीविका चलती थी तथापि उस दशामें भी वह जीवोंके प्रति बड़ा दयालु था। वह थके-माँदे बटोहियोंको विश्राम देता, भूखोंको भोजन देकर उनकी भूख मिटाता और नंगे पाँववाले मनुष्योंको जूता देता था। जिनके पास वस्त्र नहीं होता, उन्हें कोमल मृगचर्म देता और दुर्गम मार्ग एवं निर्जन प्रान्तरमें वह पथिकोंके पीछे-पीछे जाकर उन्हें अभीष्ट स्थानपर पहुँचा आता था। उनके देनेपर भी उनसे कभी धन नहीं लेना चाहता और सबको अभयदान करता था। पिंगाक्षके रहनेसे विन्ध्याचलका वह भयानक वन नगर-सा हो गया था। उसके डरसे कोई भी राह चलनेवालोंकी रोक-टोक नहीं करता था।

पिंगाक्षके घरके समीप ही एक-दूसरे गाँवमें उसका चाचा निवास करता था। एक दिन उसने गेरुए वस्त्र धारण करनेवाले तीर्थयात्रियोंके समूहका बड़ा भारी कोलाहल सुना। उन यात्रियोंके पास बहुत धन था। वह नीच व्याध उस धनके लोभसे उन्हें मार डालनेको उद्यत हो गया और आगे जाकर बहुत छिपे हुए उसने उस मार्गको घेर लिया। उस समय पिंगाक्ष भी शिकार खेलनेके लिये उस जंगलमें गया था और रातमें उसी मार्गके समीप टिका हुआ था। यह सम्पूर्ण जगत् भगवान् विश्वनाथसे सुरक्षित होकर कुशलपूर्वक रहता है। अतः विद्वान् पुरुष कभी किसी भी जीवका अनिष्टचिन्तन न करे। होगा वही जो विधाताने रच रखा है। बुरा चाहनेवालोंको केवल पाप ही हाथ लगेगा। इसलिये आत्मसुखकी इच्छा रखनेवाला पुरुष किसीका बुरा न सोचे। यदि कुछ सोचना ही हो तो मोक्षके उपायका चिन्तन करे और किसी बात का नहीं *।

तदनन्तर जब रात बीतने लगी और प्रातःकाल निकट आ गया, उस समय बड़ा भारी कोलाहल मचा। एक ओरसे आवाज आयी—'योद्धाओ! सबको मार डालो, नीचे गिरा दो और नंगे करके तलाशी लो।' दूसरी ओरसे करुणाभरी पुकार सुनायी पड़ी—'सिपाहियो! मत मारो, रक्षा करो, हम तीर्थयात्री हैं। हमारे पास जो कुछ है, उसे बिना परिश्रमके लूट लो और ले जाओ। हम अनाथ बटोही हैं, भगवान् विश्वनाथके उपासक हैं और उन्हींसे सनाथ हैं। पिंगाक्षके विश्वाससे हम सदा इस मार्गपर निर्भय होकर आया-जाया करते हैं, किंतु आज वह भी यहाँसे बहुत दूर है।'

तीर्थयात्रियोंकी यह बात सुनकर पिंगाक्ष दूरसे ही 'मत डरो, मत डरो' की रट लगाता हुआ सहसा वहाँ आ पहुँचा और बोला—'यह कौन दुराचारी है, जो मुझ पिंगाक्षके जीते-जी मेरे प्राणोंके समान प्यारे पथिकोंको लूटना चाहता है।' उसका यह वचन सुनकर उसके पापी पितृव्य ताराक्षने क्रोधपूर्वक अपने सेवकोंको आज्ञा दी—'पहले इसीको मार डालो, उसके बाद इन साधु यात्रियोंको लूटना।' यह सुनकर वे सभी दुराचारी भील मिलकर अकेले पिंगाक्षके साथ युद्ध करने लगे। किसी-किसी तरह उन सबका सामना करता हुआ पिंगाक्ष यात्रियोंको अपने घरके समीपतक ले गया। इसी बीचमें विरोधियोंके बाणोंसे उसके धनुष-बाण और कवच सभी कट गये। वे यात्री भी निर्भय होकर उसकी बस्तीमें पहुँच गये और उसने दूसरोंकी रक्षाके लिये लड़ते-लड़ते प्राण त्याग दिये। मरते समय उसके मनमें यह अभिलाषा थी कि यदि

* तस्मादात्मसुखं प्रेप्सुरिष्टानिष्टं न चिन्तयेत्। चिन्तयेच्चेत्तदा चिन्त्यो मोक्षोपायो न चेतरः॥ (स्क० पु०, का० पू० १२। ३१)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

मैं समर्थ होता तो इन सबको मार गिराता। अन्तकालमें जैसी मति होती है, उसके अनुरूप ही गति होती है। अतः वह नैर्ऋत्यलोकमें राक्षसोंका राजा एवं दिक्पाल हुआ। इस प्रकार हम दोनोंने तुम्हें निर्ऋतिके स्वरूपका परिचय दिया है।

नैर्ऋत्यपुरीसे उत्तर दिशामें वह वरुणदेवका अद्भुत लोक है। जो लोग न्यायोपार्जित धनसे कुआँ-बावली और तालाब बनवाते हैं, वे वरुणलोकमें वरुणके ही समान कान्तिमान् होकर सम्मानपूर्वक निवास करते हैं। जो निर्जल प्रदेशमें जल देते, दूसरोंके सन्ताप दूर करते और याचकोंको विचित्र छाता एवं कमण्डलु देते हैं, जो नाना प्रकारकी खान-पानकी सामग्रियोंसे युक्त पौंसला बनवाते, सुगन्धित जलसे भरे हुए धर्मघट दान करते, जो पीपलके वृक्षको सींचते और मार्गमें वृक्ष लगाते हैं, यात्रियोंके ठहरनेके लिये धर्मशालाएँ बनवाते, थके-माँदे पथिकोंका कष्ट दूर करते, गरमीमें मोरपंख आदिके बने हुए पंखे बाँटते और यात्रियोंका पसीना दूर करते हैं तथा जो पुण्यात्मा मानव दुराचारी मनुष्योंद्वारा गलेमें फाँसी लगाये हुए जीवोंको बन्धनसे मुक्त करते हैं, वे निर्भय होकर वरुण देवताके इस लोकमें निवास करते हैं। ये वरुणदेव ही सम्पूर्ण जलाशयों तथा जलजन्तुओंके एकमात्र स्वामी और सब कर्मोंके साक्षी हैं। इस प्रकार यह वरुणलोकका स्वरूप बताया गया है। इस प्रसंगको सुनकर मनुष्य कहीं भी दुर्मृत्युके कष्टसे पीड़ित नहीं होता है।

वायु, कुबेर, ईशान और चन्द्रमाके लोकोंकी स्थितिका वर्णन

भगवान्‌के दोनों पार्षद कहते हैं—ब्रह्मन्! वरुणकी पुरीसे उत्तर भागमें इस पुण्यमयी पुरीको देखो। यह वायुदेवकी गन्धवती नामवाली नगरी है। इसमें सम्पूर्ण जगत्के प्राणस्वरूप प्रभंजन (वायु) नामक दिक्पाल निवास करते हैं। इन्होंने महादेवजीकी आराधना करके दिक्पालका पद प्राप्त किया है। पहलेकी बात है। कश्यपजीके पुत्र पूतात्माने महादेवजीकी राजधानी काशीपुरीमें दस लाख वर्षोंतक बड़ी भारी तपस्या की। उन्होंने वहाँ पवनेश्वर नामक परम पवित्र महान् शिवजीके स्वरूपकी स्थापना की, जिसके दर्शनमात्रसे मनुष्यका अन्तःकरण परम पवित्र हो जाता है और वह पापकी केंचुल त्यागकर वायुदेवके पवित्र नगरमें निवास करता है। तदनन्तर पूतात्माकी घोर तपस्यासे प्रसन्न हो तपका फल देनेवाले ज्योतिस्वरूप भगवान् महेश्वर उस मूर्तिसे प्रकट हुए और बोले—'सुव्रत! उठो, उठो। मनोवांछित वर माँगो।'

पूतात्मा बोला—देवाधिदेव महादेव! आप देवताओंको अभयदान देनेवाले हैं। प्रभो! वेद भी नेति-नेति कहते हुए आपके सम्बन्धमें यह नहीं जानते कि आपका स्वरूप कैसा है? फिर मेरे-जैसा मनुष्य आपकी स्तुति करनेमें कैसे समर्थ हो सकता है? योगी भी आपके तत्त्वको वास्तवमें नहीं उपलब्ध कर पाते। आप एक होकर भी शिव और शक्तिके भेदसे दो स्वरूपोंमें अभिव्यक्त हुए हैं। आप ज्ञानस्वरूप भगवान् हैं और आपकी इच्छा ही शक्तिस्वरूपा है। शिव और शक्तिरूप आप दोनोंके द्वारा लीलापूर्वक क्रियाशक्ति उत्पन्न की गयी है, जिसके द्वारा इस सम्पूर्ण जगत्की सृष्टि की गयी है। आप ज्ञानशक्ति महेश्वर हैं और उमादेवी इच्छाशक्ति मानी गयी हैं। यह सम्पूर्ण जगत् क्रियाशक्तिमय है और आप इसके कारण हैं। नाथ! आपको नमस्कार है, नमस्कार है, नमस्कार है।

पूतात्माके ऐसा कहनेपर सर्वशक्तिमान् देवेश्वर शिवने उन्हें अपना स्वरूप प्रदान किया और दिक्पालके पदपर प्रतिष्ठित किया। तत्पश्चात् इस प्रकार कहा—'तुम सब तत्त्वोंके ज्ञाता और सबकी आयुरूप होओगे। जो मनुष्य तुम्हारे द्वारा स्थापित की हुई मेरी इस दिव्य मूर्तिका यहाँ दर्शन करेंगे, वे तुम्हारे लोकमें सब भोगोंसे सम्पन्न हो सुखके भागी

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

होंगे।' इस प्रकार वरदान देकर महादेवजी उस मूर्तिमें विलीन हो गये।

ब्रह्मन्! गन्धवतीपुरीके स्वरूपका निरूपण किया गया। उसके पूर्वभागमें शोभामयी कुबेरकी अलकापुरी है। इसके स्वामी कुबेर अपने भक्तिभावके प्रभावसे भगवान् शिवके सखा हो गये हैं। शिवकी पूजाके बलसे वे पद्म आदि नवनिधियोंके दाता और भोक्ता हैं।

अलकापुरीके पूर्वभागमें भगवान् शंकरकी ईशानपुरी है, जो महान् अभ्युदयसे सदा सुशोभित है। उसके भीतर भगवान् शंकरके तपस्वी भक्त निवास करते हैं। जो भगवान् शिवके चिन्तनमें संलग्न रहते, शिवसम्बन्धी व्रतोंका पालन करते, अपने समस्त कर्म भगवान् शिवको अर्पित कर देते और सदा शिवकी पूजामें तत्पर रहते तथा जो स्वर्गभोगकी अभिलाषा लेकर भगवान् शिवकी प्रसन्नताके लिये तप करते हैं, वे सब मानव रुद्ररूप धारण करके इस परम रमणीय रुद्रपुरीमें निवास करते हैं। इस पुरीमें अजैकपात् और अहिर्बुध्न्य आदि ग्यारह रुद्र अधिपतिरूपसे हाथमें त्रिशूल लिये विराजमान रहते हैं। ये देवद्रोहियोंसे आठ पुरियोंकी रक्षा करते और शिवभक्तोंको सदैव वर देते हैं। इन्होंने भी काशीपुरीमें जाकर शुभदायक ईशानेश्वरकी स्थापना करके बड़ी भारी तपस्या की है और भगवान् ईशानेश्वरके प्रसादसे ईशानकोणमें ये दिक्पाल हुए हैं। ये ग्यारहों रुद्र जटाके मुकुटसे मण्डित हो एक साथ चलते हैं।

इस प्रकार स्वर्गमार्गमें विष्णुपार्षदोंकी कही हुई कथा सुनते हुए शिवशर्माने आगे जाकर दिनमें भी चन्द्रमाकी चटकीली चाँदनी देखी, जो सब इन्द्रियोंके साथ-साथ मनको परम आह्लाद प्रदान करती थी। उसे देखकर शिवशर्माने पूछा— 'भगवत्पार्षदो! वह कौन-सा लोक है?'

दोनों पार्षदोंने कहा—महाभाग! यह चन्द्रमाका लोक है, जिसकी अमृतकी वर्षा करनेवाली किरणोंसे यह सम्पूर्ण जगत् परिपुष्ट होता है। चन्द्रमाके पिता महर्षि अत्रि हैं, जो पूर्वकालमें प्रजासर्गकी इच्छा रखनेवाले ब्रह्माजीके मनसे प्रकट हुए थे। हमने सुना है, मुनिवर अत्रिने प्राचीन कालमें तीन हजार दिव्य वर्षोंतक लोकोत्तर तपस्या की है। उन्हींके पुत्र चन्द्रमा हैं। स्वयं ब्रह्माजीने उनका पालन-पोषण किया है। तेज प्राप्त करके भगवान् चन्द्रमाने बहुत वर्षोंतक बड़ी भारी तपस्या की। परम पावन अविमुक्त क्षेत्र (काशीधाम)-में जाकर अपने नामसे उन्होंने चन्द्रेश्वर नामक मूर्तिकी स्थापना की। इससे वे पिनाकधारी देवाधिदेव श्रीविश्वनाथजीकी कृपासे बीज, ओषधि, जल और ब्राह्मणोंके राजा हुए। वहाँ उन्होंने अमृतोद नामसे प्रसिद्ध कूपका निर्माण कराया, जिसके जलको पीने और जिसमें स्नान करनेसे मनुष्य अज्ञानसे मुक्त हो जाता है। देवदेव महादेवने प्रसन्न होकर जगत्‌को जीवन प्रदान करनेवाली चन्द्रमाकी एक उत्तम कलाको लेकर अपने मस्तकपर धारण किया। तत्पश्चात् दक्षके शापसे मासकी समाप्तिपर अमावास्या तिथिको क्षीण होनेपर भी केवल उसी कलाके द्वारा पुनः वे वृद्धि एवं पुष्टिको प्राप्त होते हैं।

जब सोमवारको अमावास्या तिथि हो, तब सज्जन पुरुषोंको आदरपूर्वक चतुर्दशी तिथिमें उपवास करना चाहिये। नित्यकर्म करके त्रयोदशी तिथिमें शनिप्रदोषयोगमें चन्द्रेश्वरलिंगका पूजन करके त्रयोदशीमें नक्त व्रत करे और उसीमें नियम ग्रहण करके चतुर्दशीको उपवास एवं रात्रि-जागरण करे। प्रातःकाल सोमवती अमावास्याके योगमें चन्द्रोदतीर्थके जलसे स्नान करे। तत्पश्चात् विधिपूर्वक सन्ध्योपासना करके तर्पण आदि कर्म करे। फिर चन्द्रोदतीर्थके समीप ही शास्त्रोक्त विधिके अनुसार श्राद्ध करे। आवाहन और अर्घ्यदान कर्मके बिना ही यत्नपूर्वक पिण्डदान दे। वसु, रुद्र और आदित्यस्वरूप पिता, पितामह और प्रपितामहको क्रमशः पिण्ड देकर मातामह, प्रमातामह तथा वृद्धप्रमातामहके उद्देश्यसे पिण्ड दे। तदनन्तर अपने गोत्रमें उत्पन्न हुए अन्य लोगोंको एवं गुरु, श्वशुर और बन्धुजनोंको भी उनके नाम लेकर पिण्ड देवे। जो श्रद्धापूर्वक चन्द्रोदतीर्थमें पिण्डदान करता है, वह अपने

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

सम्पूर्ण पितरोंका उद्धार कर देता है। जैसे गयामें पिण्ड देनेसे पितर तृप्त होते हैं, उसी प्रकार इस चन्द्रोदकुण्डके समीप श्राद्ध करनेसे भी उनकी तृप्ति होती है। काशीक्षेत्रमें निवास करनेवाले लोगोंको तारकमन्त्रके ज्ञानकी प्राप्तिके लिये चैत्रकी महापूर्णिमाको यहाँ यात्रा करनी चाहिये। यह यात्रा इस क्षेत्रके निवासमें आनेवाले विघ्नका निवारण करनेवाली है। काशीसे अन्यत्र निवास करनेवाला पुरुष भी यदि यहाँ आकर चन्द्रेश्वरकी भलीभाँति पूजा कर ले तो वह पापराशिका भेदन करके चन्द्रलोकको प्राप्त होगा। सोमवारका व्रत करनेवाले और सोमयागमें सोमरस पीनेवाले मनुष्य चन्द्रमाके समान प्रकाशमान विमानद्वारा जाकर सोमलोकमें ही निवास करते हैं।

अगस्त्यजी कहते हैं—प्रिये! भगवान्‌के दोनों दिव्य पार्षद उस दिव्य मार्गमें शिवशर्माको यह कल्याणकारिणी कथा सुनाते हुए परम उज्ज्वल नक्षत्रलोकमें जा पहुँचे।

बुधलोक और शुक्रलोककी स्थिति, बुध और शुक्रके द्वारा भगवान् शिवकी स्तुति और वरदान-प्राप्ति

अगस्त्यजी कहते हैं—तदनन्तर शिवशर्माको बुधका लोक दृष्टिगोचर हुआ। तब उन्होंने पूछा—'भगवत्पार्षदो! यह अनुपम लोक किसका है?'

भगवान्‌के पार्षदोंने कहा—शिवशर्मन्! यह चन्द्रमाके पुत्र बुधका लोक है। बुध अपने पिता चन्द्रदेवकी आज्ञा लेकर काशीपुरीमें गये। वहाँ उन्होंने अपने नामसे बुधेश्वरको स्थापित किया और हृदयमें भगवान् शिवका ध्यान करते हुए दस हजार वर्षोंतक बड़ी भारी तपस्या की। तब सम्पूर्ण जगत्‌के स्वामी विश्वभावन भगवान् विश्वनाथ बुधेश्वर नामसे प्रकट हुए। उनका स्वरूप ज्योतिर्मय था। वे प्रसन्नचित्त होकर बोले—'बुध! तुम वर माँगो।'

बुध बोले—पूतात्मा वायुरूप! आपको नमस्कार है (अथवा पवित्र अन्तःकरणवाले आप परमेश्वरको नमस्कार है)। ज्योतिःस्वरूप महेश्वर! आपको नमस्कार है। सम्पूर्ण विश्व आपका ही स्वरूप है, आपको नमस्कार है। आप रूपसे अतीत, निराकार हैं, आपको नमस्कार है। सबकी पीड़ाओंका नाश करनेवाले आपको नमस्कार है। शरणागतोंके लिये कल्याणरूप आपको नमस्कार है। आप सबके ज्ञाता और सर्वस्रष्टा हैं, आपको नमस्कार है। आप परम दयालु हैं, आपको नमस्कार है। भक्तिभावसे आप प्राप्त होने योग्य हैं, आपको नमस्कार है। आप तपस्याओंका फल देनेवाले और तपःस्वरूप हैं, आपको नमस्कार है। शम्भो! शिव! शिवाकान्त! शान्त! श्रीकण्ठ! शूलपाणे! चन्द्रशेखर! सर्वेश! शंकर! ईश्वर! धूर्जटे! पिनाकपाणे! गिरीश! शितिकण्ठ! सदाशिव! महादेव! आपको नमस्कार है। देवदेव! आपको नमस्कार है। स्तुतिप्रिय महेश्वर! मैं स्तुति करना नहीं जानता। आपके युगल चरणारविन्दोंमें मेरी निश्चल भक्ति हो।

उनकी स्तुतिसे प्रसन्न हो भगवान् महेश्वर बोले—महाभाग! तुम्हारा स्थान नक्षत्रलोकसे ऊपर होगा और तुम समस्त ग्रहोंमें अधिक सम्मान प्राप्त करोगे। तुम्हारे द्वारा स्थापित की हुई यह मेरी मूर्ति सबको बुद्धि देनेवाली, दुर्बुद्धि हरनेवाली और तुम्हारे लोकमें निवास देनेवाली है। ऐसा कहकर भगवान् शंकर वहीं अन्तर्धान हो गये। महादेवजीका प्रसाद प्राप्त करके बुध पुनः स्वर्गलोकमें लौट आये।

काशीमें बुधेश्वरकी पूजासे उत्तम बुद्धि पाकर मनुष्य अगाध संसारसागरमें प्रवेश करते हुए डूब नहीं सकता और अन्तमें वह बुधलोकमें निवास करता है। चन्द्रेश्वरके पूर्वभागमें बुधेश्वरका दर्शन

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

करके मनुष्य मृत्युकालमें भी कभी बुद्धिसे हीन नहीं होता।

महामते शिवशर्मन्! बुधलोकसे ऊपर यह परम अद्भुत शुक्रलोक है। यहाँ दानवों और दैत्योंके गुरु शुक्राचार्य निवास करते हैं, जिन्होंने सहस्र वर्षोंतक तपस्या करके महादेवजीसे मृत्युसंजीवनी नामवाली महाविद्या प्राप्त की थी। इस दुर्लभ विद्याको देवगुरु बृहस्पति भी नहीं जानते। भृगुवंशी शुक्रने अण्डज, स्वेदज, उद्भिज्ज और जरायुज—इन चार प्रकारके प्राणियोंको मुक्ति प्रदान करनेवाली काशीपुरीमें जाकर एक शिवमूर्तिको स्थापित किया और बिल्वपत्र आदि सहस्रों प्रकारके पत्तों और पुष्पोंसे उसका भलीभाँति पूजन किया। चन्दन और यक्षकर्दमसे लेपन किया। सुगन्धित उबटन लगाया, नृत्य और गीतसे भी भगवान्‌को रिझाया तथा भाँति-भाँतिकी भेंट-सामग्री समर्पित करके सहस्रनाम आदि स्तोत्रोंसे भगवान् शंकरका स्तवन किया। इस प्रकार पाँच हजार वर्षोंतक शुक्राचार्यने भगवान् शिवकी भलीभाँति आराधना की। तत्पश्चात् इन्द्रियोंसहित चित्तके चांचल्य (विक्षेप)-रूपी महान् मलको ध्यानरूपी जलसे धोकर अपने निर्मल किये हुए चित्तरत्नको उन्होंने पिनाकपाणि भगवान् शिवकी सेवामें समर्पित कर दिया। तब भगवान् शंकर प्रसन्न हो सहस्रों सूर्योंसे भी अधिक तेजस्वी रूप धारण कर उस मूर्तिसे प्रकट हुए और बोले—'भृगुनन्दन! मैं प्रसन्न हूँ, वर माँगो।'

भगवान् शंकरका वचन सुनकर शुक्राचार्यने दोनों हाथ जोड़ जय-जयकार करते हुए उनका इस प्रकार स्तवन किया। 'सूर्यस्वरूप जगदीश्वर! आप अपनी प्रभासे निशाचरोंको प्रिय लगनेवाले अन्धकारको तिरस्कृत करके उसे सर्वथा विलुप्त कर देते और तीनों लोकोंके हितके लिये आकाशमें देदीप्यमान होते हैं, अतः आपको नमस्कार है। हे चन्द्रस्वरूप शिव! आप अमृतमयी किरणोंसे परिपूर्ण हैं, समस्त अन्धकारको दूर भगानेवाले और परम सुन्दर हैं। आप संसारमें निरन्तर असीम एवं महान् प्रकाश फैलाकर कुमुद पुष्पोंको प्रमोद देते तथा संसारके प्राणियोंके लिये आनन्दका समुद्र उड़ेल देते हैं। इतना ही नहीं, आप समुद्रको भी आनन्दसे परिपूर्ण करते हैं, अतः आपको नमस्कार है। हे वायुरूप परमेश्वर! आप नम्रता एवं विनयसे रहित चराचर जगत्‌को भग्न करनेवाले हैं, सब जीवोंको अपनी प्राणशक्ति देकर बढ़ानेवाले हैं, वायुभक्षी सर्पोंको सन्तुष्ट करनेवाले हैं, सर्वव्यापी! आप सदा पावन पथपर

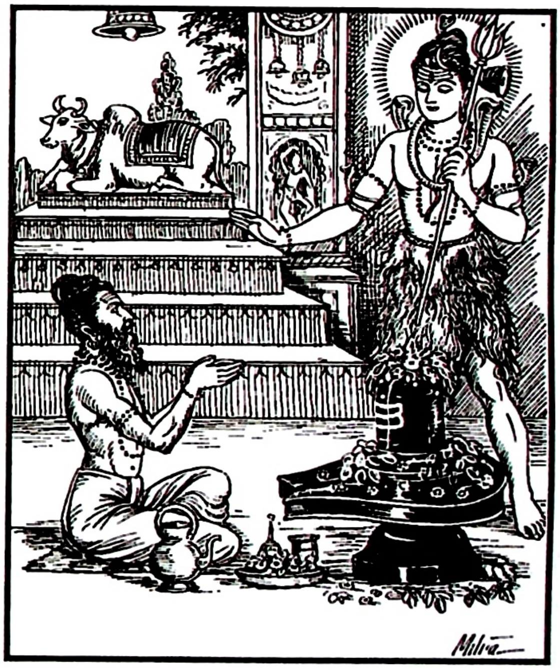

चलते हुए सबके उपास्य हैं। सम्पूर्ण जगत्‌को जीवन प्रदान करनेवाले देव! आपके बिना इस संसारमें कौन जीवित रह सकता है, आपको नमस्कार है। हे अग्निस्वरूप महेश्वर! आप सम्पूर्ण जगत्‌के एकमात्र पवित्र करनेवाले और प्रणतजनोंके रक्षक हैं, अमृतब्रह्मस्वरूप हैं। सम्पूर्ण विश्वके अन्तरात्मा पावक! क्या आपकी पावनशक्तिके बिना यह आधिदैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक जगत् कभी जीवित रह सकता है? कदापि नहीं। आपको किया हुआ नमस्कार प्रतिक्षण शान्ति देनेवाला होता है। जलस्वरूप परमेश्वर! आप सम्पूर्ण जगत्‌में परम पवित्र हैं,

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

आपका उत्तम चरित्र परम विचित्र है। हे विश्वनाथ! आप इस विचित्र जगत्को जलपान और स्नानकी सुविधा देकर निश्चय ही बाहर-भीतरसे पवित्र एवं निर्मल कर देते हैं, अतः आपको मैं नमस्कार करता हूँ। हे आकाशस्वरूप महादेव! हे ईश्वर! आपके द्वारा बाहर और भीतरसे अवकाश मिलनेके कारण यह सम्पूर्ण विश्व नित्य विकसित होता रहता है। सदा सबपर दया रखनेवाले प्रभो! आपसे ही यह जगत् जीवन धारण करता है और आपमें ही स्वभावतः इसका लय होता है, अतः मैं आपको प्रणाम करता हूँ। हे पृथ्वीरूप परमेश्वर! हे विभो! हे विश्वनाथ! हे अज्ञानान्धकारका नाश करनेवाले शिव! इस सम्पूर्ण विश्वको यहाँ आपके सिवा दूसरा कौन धारण करता है? गिरिराजनन्दिनी उमा और नागराज वासुकि आपके आभूषण हैं, आप परात्पर हैं। शान्ति, क्षमा आदि गुणोंसे विभूषित देवताओंमें आपसे बढ़कर दूसरा कोई स्तवन करने योग्य नहीं है। अथवा शम, दम आदि साधनोंसे सम्पन्न संत-महात्माओंके द्वारा स्तवन करने योग्य आपके सिवा दूसरा कोई नहीं है, अतः मैं आपको नमस्कार करता हूँ। हे आत्मस्वरूप शिव! हे अज्ञानका अपहरण करनेवाले हर! सबके अन्तरात्मामें निवास करनेवाले परमात्मस्वरूप! अष्टमूर्ते! आपकी इन रूप-परम्पराओं—सूर्य, चन्द्र, पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश और आत्मा—इन आठ मूर्तियोंसे यह समस्त चराचर जगत् व्याप्त है। आप प्रत्येक रूपमें व्यापक होनेके कारण तदनुरूप प्रतीत होते हैं, अतः मैं सदा आपको नमस्कार करता हूँ। प्रभो! प्रणतजनोंको प्राप्त होनेवाले सम्पूर्ण अर्थसमूहोंमें आप ही परमार्थस्वरूप हैं। भगवती उमा आपके चरणारविन्दोंकी वन्दना करती हैं। आप वन्दनीय पुरुषोंके द्वारा भी अतिशय वन्दनीय हैं। आप ही इस विश्वके उत्पादक हैं। आपकी मूर्ति सम्पूर्ण विश्वके प्राणियोंका हित साधन करनेवाली है। आपकी पूर्वोक्त आठ मूर्तियोंद्वारा यह विशाल जगत् व्याप्त है, अतः मैं आपको नमस्कार करता हूँ।'

भृगुनन्दन शुक्रने अष्टमूर्त्यष्टक स्तोत्रसे इस प्रकार अपने इष्टदेव शिवकी स्तुति करके धरतीपर मस्तक टेककर उन्हें बार-बार प्रणाम किया। तब महादेवजीने उन्हें अपने दोनों हाथोंसे पकड़कर उठाया और इस प्रकार कहा—'ब्रह्मन्! मेरे द्वारा तपोबलसे प्रकट की हुई जो मेरी मृतसंजीवनी नामक निर्मल विद्या है, उस मन्त्ररूपा विद्याका ज्ञान आज मैं तुम्हें कराऊँगा। उस विद्याके लिये तुम्हारी योग्यता है। तुम जिस-जिस व्यक्तिके लिये इस विद्याका जप करोगे, वह-वह निश्चय ही जीवित हो उठेगा। आकाशमें तुम्हारा तेज सब नक्षत्रोंसे भी अधिक प्रकाशित होगा। तुम ग्रहोंमें श्रेष्ठ माने जाओगे। तुम्हारे उदय होनेपर ही विवाह आदि शुभ एवं धार्मिक कार्य सफल होंगे। तुम्हारे द्वारा स्थापित किये हुए इस शुक्रेश्वरका जो मनुष्य पूजन करेंगे, उन्हें सिद्धि प्राप्त होगी। जो एक वर्षतक प्रति शुक्रवारको केवल रात्रिमें भोजन करनेका नियम लेंगे और तुम्हारे दिनमें शुक्रकूपमें स्नान करके तर्पण आदि कर्म करनेके पश्चात् शुक्रेश्वरकी पूजा करेंगे, वे मनुष्य अधिक वीर्यवान्, पुत्रवान्, सौभाग्यशाली एवं सुखी होंगे।' यह वरदान देकर महादेवजी वहीं अन्तर्धान हो गये।

जो शुक्रेश्वरके भक्त होते हैं, वे शुक्रलोकमें निवास करते हैं। शुक्रेश्वर विश्वनाथके दक्षिण भागमें है। उसके दर्शनमात्रसे मनुष्य शुक्रलोकमें प्रतिष्ठित होता है। महामते! इस प्रकार तुम्हें शुक्रलोककी स्थिति बतायी गयी।

अगस्त्यजी कहते हैं—प्रिये! इस प्रकार शुक्रलोककी कथा सुनते हुए शिवशर्माने अपने समीप मंगललोकको देखा।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

मंगल, बृहस्पति और शनिके लोकोंकी स्थिति

शिवशर्माने पूछा—यह किसका लोक है?

भगवत्पार्षदोंने कहा—शिवशर्मन्! यह मंगलग्रहका लोक है। मंगलकी उत्पत्ति पृथ्वीसे हुई है, पृथ्वीमाताने ही उनका स्नेहपूर्वक पालन-पोषण किया है। जहाँ जगत्का हित करनेवाली असी और वरणा नामक दो शोभायमान नदियाँ उत्तरवाहिनी गंगासे मिली हैं, जहाँ मृत्युको प्राप्त हुए देहधारी जीव भगवान् विश्वनाथका महान् अनुग्रह प्राप्त करके अमृतमय ब्रह्मस्वरूप हो जाते हैं, उस काशीपुरीमें जाकर मंगलने अपने नामसे अंगारकेश्वरको स्थापित किया और वहाँ वे तबतक तपस्या करते रहे जबतक कि उनके शरीरसे प्रज्वलित अंगारके समान तेज नहीं निकला। अंगारके समान तेज प्रकट होनेसे वे सब लोकोंमें अंगारक नामसे विख्यात हुए। तदनन्तर उनसे सन्तुष्ट हुए महादेवजीने उन्हें महान् ग्रहका पद प्रदान किया। जो मनुष्य अंगारकचतुर्थीको उत्तरवाहिनी गंगाके जलमें स्नान करके अंगारकेश्वरकी पूजा और उन्हें नमस्कार करेंगे, उन्हें कभी कहीं भी ग्रहजनित पीड़ा नहीं होगी।

अगस्त्यजी कहते हैं—इस प्रकार सुन्दर एवं पुण्यमयी कथा कहते हुए भगवत्पार्षदोंको देवगुरु बृहस्पतिकी पुरी दृष्टिगोचर हुई।

शिवशर्माने पूछा—यह किसकी पुरी है?

भगवत्पार्षदोंने कहा—सखे! प्रजापति अंगिराके पुत्र देवपूज्य बृहस्पति हुए। वे अपनी बुद्धिसे देवताओं और विद्वानोंमें सबसे श्रेष्ठ हैं। शान्त और जितेन्द्रिय हैं, उन्होंने क्रोधको जीत लिया है। उनकी वाणी मधुर और अन्तःकरण निर्मल है। वे वेदों और वेदार्थोंके तत्त्वज्ञ, समस्त कलाओंमें कुशल, निर्मल, समस्त शास्त्रोंमें पारंगत तथा नीतिविद्याके विशेषज्ञ हैं। वे हितका उपदेश करनेवाले, हितकारक, रूपवान्, सुशील, गुणवान्, देश-कालको जाननेवाले, समस्त शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न और गुरुजनोंके प्रति भक्ति रखनेवाले हैं। उन्होंने काशीमें तपस्वीजनोंकी वृत्तिका आश्रय लेकर और शिवजीकी मूर्तिकी स्थापना करके बड़ी भारी तपस्या की। तब भगवान् शिव प्रसन्न होकर प्रकट हुए और बोले—'बृहस्पते! वर माँगो।' भगवान् शंकरको अपने सामने उपस्थित देख बृहस्पतिजी हर्षमें भर गये और इस प्रकार स्तुति करने लगे—'चन्द्रमाके समान गौर कान्तिवाले, शान्तस्वरूप शंकर! आपकी जय हो। आप रुचिके अनुकूल मनोहर पदार्थों एवं चारों पुरुषार्थोंको देनेवाले हैं। सर्वस्वरूप, सब कुछ देनेवाले तथा नित्य शुद्ध हैं। पवित्र भक्तोंद्वारा शुद्धभावसे दी हुई महती उपहार-सामग्रीको ग्रहण करते हैं। भक्तजनोंपर आयी हुई घोर सन्ताप-परम्पराका आप नाश करनेवाले हैं। आपने सबके हृदयाकाशको व्याप्त कर रखा है। प्रणतजनोंको आप मनोवांछित वर देनेवाले हैं। शरणागत भक्तोंके पापरूपी महान् वनको जलानेके लिये दावानलस्वरूप हैं। अपने शरीरसे भाँति-भाँतिकी लीलाएँ करते रहते हैं। आपका श्रीअंग परम सुन्दर है। आप कामदेवके बाणोंको सुखा देनेवाले हैं। धैर्यनिधे! आपकी जय हो। आप मृत्यु आदि विकारोंसे सर्वथा रहित हैं तथा अपने चरणोंमें प्रणाम करनेवाले भक्तजनोंको भी मृत्यु आदि विकारोंसे रहित कर देते हैं। पुण्यात्मा पुरुषोंका मनोरथ पूर्ण करते और सर्पोंको आभूषणरूपमें धारण करते हैं। आपका वामांग भाग गिरिराजनन्दिनी उमासे व्याप्त है। आपने अपने सर्वव्यापी स्वरूपसे सम्पूर्ण जगत्को व्याप्त कर रखा है। तीनों लोक आपके ही स्वरूप हैं, फिर भी आप इन सभी

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

रूपोंसे परे हैं। आपकी दृष्टि बड़ी सुन्दर है। आप अपने नेत्रोंके खोलने-मीचनेसे जगत्‌की सृष्टि और प्रलय करनेवाले हैं। आपने ही अग्निदेवको प्रकट किया है। जगत्‌को उत्पन्न करनेवाले भूतनाथ! एकमात्र आप ही प्रमथगणोंके पालक और स्वामी हैं। अपनी शरणमें आये हुए पतितजनोंपर भी आप अपना वरद हस्त फैलाते रहते हैं। आप सम्पूर्ण भूतलमें फैले हुए आवरणका निवारण करनेवाले तथा प्रणवनादरूपी सुधाधौलिगृहमें निवास करनेवाले हैं। आपने चन्द्रमाको अपने ललाटमें धारण कर रखा है। गिरिराजकुमारी पार्वतीके द्वारा सर्वथा सन्तुष्ट रहनेवाले शिव! मैं आपको नमस्कार करता हूँ। शिव! देव! गिरीश! महेश! विभो! आप वैभव प्रदान करनेवाले और कैलास पर्वतपर सोनेवाले हैं। पार्वतीवल्लभ! आप सबको सुख देनेवाले हैं। चन्द्रधर! आप भक्तिका विघात करनेवाले दुष्टोंको कठोर दण्ड देनेवाले हैं। तीनों लोकोंको सुखी बनाइये। सबकी पीड़ा हरनेवाले महादेव! मैं कालसे भी नहीं डरता। अमोघमते! आप शीघ्र मेरी पापराशिका विनाश कीजिये। शिवके चरणारविन्दोंमें नमस्कार करनेके सिवा दूसरी किसी विचारधाराको मैं जीवोंके लिये कल्याणकारी नहीं मानता, अतः आपके चरणोंमें ही मस्तक झुकाता हूँ। इस सम्पूर्ण विशाल जगत्‌में भगवान् शिवको सन्तुष्ट करना ही सब पापोंका नाशक तथा परम गुणकारी है। हे ईश! आप त्रिगुणमय प्रपंचसे अतीत, नागराज वासुकिका महान् कंगन धारण करनेवाले तथा प्रलयकालमें सबका विनाश करनेवाले हैं, अतः मैं आपको नमस्कार करता हूँ।'

इस प्रकार महादेवजीकी स्तुति करके बृहस्पतिजी मौन हो गये। इस स्तुतिसे सन्तुष्ट होकर महादेवजीने कहा—'ब्रह्मन्! तुमने बृहत् तप किया है, इसलिये बृहत् अर्थात् बड़े-बड़े देवताओंके पति (पालक) बने रहो। तुम ग्रहोंमें बृहस्पति नामसे पूजित होओ। तीन वर्षोंतक तीनों समय इस स्तोत्रका पाठ करनेसे जिस पुरुषके प्रति सरस्वती उदित हों, उसकी वाणी संस्कृत होगी*। इस स्तोत्रके पाठसे किसीकी दुराचारमें प्रवृत्ति नहीं हो सकती। तुम्हारे द्वारा स्थापित की हुई इस मूर्तिकी पूजा करके इस स्तोत्रका पाठ करनेवाला पुरुष मनोवांछित फल प्राप्त करेगा। तुम्हारे द्वारा स्थापित यह मूर्ति काशीमें बृहस्पतीश्वरके नामसे विख्यात होगी। बृहस्पतिवार और पुष्य नक्षत्रके योगमें इसकी पूजा करके मनुष्य जो कार्य प्रारम्भ करेंगे, उसमें उन्हें सिद्धि प्राप्त होगी। चन्द्रेश्वरके दक्षिण और वीरेश्वरसे नैर्ऋत्यकोणमें स्थित बृहस्पतीश्वरका पूजन करके मनुष्य बृहस्पतिलोकमें सम्मानित होगा।'

अगस्त्यजी कहते हैं—लोपामुद्रे! बृहस्पति-लोकके ऊपर जाकर शिवशर्माने शनिका लोक देखा और उसके विषयमें प्रश्न किया। तब दोनों भगवत्पार्षदोंने कहा—'ब्रह्मन्! यह सूर्यके पुत्र शनिकी पुरी है। भगवान् सूर्यसे सवर्णाके गर्भसे शनैश्चरकी उत्पत्ति हुई। शनैश्चरने देववन्दित काशीपुरीमें जाकर शिवलिंग स्थापित किया और उसके समीप बड़ी भारी तपस्या करके शिवपूजनके प्रभावसे इस शनिलोकको तथा ग्रहकी पदवीको प्राप्त किया। काशीमें परम सुन्दर शनैश्चरेश्वरका दर्शन करके शनिवारको उनकी पूजा करनेसे शनैश्चरकी बाधा नहीं होती है। विश्वनाथजीसे दक्षिण और शुक्रेश्वरसे उत्तर भागमें शनैश्चरेश्वरकी पूजा करके मनुष्य इस शनिलोकमें आनन्दका भागी होता है।'

---

* अस्य स्तोत्रस्य पठनादपि वागुदियाच्च यम्। तस्य स्यात्संस्कृता वाणी त्रिभिर्वर्षैस्त्रिकालतः॥

(स्क० पु०, का० पू० १७ । ४६)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

सप्तर्षिलोक और ध्रुवलोककी स्थिति, ध्रुवकी तपस्या और वरदान-प्राप्ति

अगस्त्यजी कहते हैं—तदनन्तर शिवशर्माने सप्तर्षिमण्डलको अपने नेत्रोंसे देखा और पूछा—'यह अनुपम तेजोमय शुभ लोक किसका है?'

दोनों भगवत्पार्षदोंने कहा—ब्रह्मन्! इस लोकमें सदा निर्मल अन्त:करणवाले सप्तर्षि निवास करते हैं। ब्रह्माजीके द्वारा सृष्टिकार्यमें नियुक्त होकर वे यहीं रहते हैं। मरीचि, अत्रि, पुलह, पुलस्त्य, क्रतु, अंगिरा और महाभाग वसिष्ठ—ये ब्रह्माजीके मानसपुत्र हैं। पुराणोंमें ये सात ब्रह्मा निश्चित किये गये हैं। सम्भूति, अनसूया, क्षमा, प्रीति, सन्नति, स्मृति और अरुन्धती—ये क्रमशः इन सात ऋषियोंकी पत्नियाँ हैं, जो लोकमाता कही गयी हैं। इन सप्तर्षियोंने काशीक्षेत्रमें जाकर अपने-अपने नामसे एक-एक शिव-मूर्ति स्थापित की और शिवमें बड़ी भक्ति रखकर अत्यन्त कठोर तपस्या प्रारम्भ की। इनकी तपस्यासे सन्तुष्ट होकर भगवान् शंकरने इन्हें प्रजापतिका पद दिया। जो लोग प्रयत्नपूर्वक काशीमें अत्रीश्वर आदि शिव-मूर्तियोंका दर्शन करते हैं, वे उज्ज्वल तेजसे सम्पन्न हो इस प्राजापत्यलोकमें निवास करते हैं। अत्रीश्वर लिंग गोकर्णेश्वरकुण्डके पश्चिम तटपर प्रतिष्ठित है। कर्कोटककुण्डके ईशानकोणमें मरीचिकुण्ड है। वहीं मरीचीश्वर-संज्ञक शिवलिंग प्रतिष्ठित है। पुलहेश्वर और पुलस्त्येश्वर लिंग स्वर्गद्वारके पश्चिम भागमें हैं। आंगिरसेश्वर लिंग हरिकेश वनमें स्थित है। वसिष्ठेश्वर लिंग वरणा नदीके रमणीय तटपर है। क्रत्वीश्वर लिंग भी वहीं है। शुभकी इच्छा रखनेवाले पुरुषोंद्वारा काशीतीर्थमें सेवित होनेपर ये सातों लिंग इहलोक और परलोकमें मनोवांछित फल देते हैं। इस सप्तर्षिलोकमें महापुण्यमयी पतिव्रता एवं परम सुन्दरी वसिष्ठपत्नी अरुन्धती रहती हैं, जिनके स्मरण करनेमात्रसे मनुष्य गंगास्नानका फल पाता है। भगवान् नारायण अरुन्धतीके पातिव्रत्यसे सन्तुष्ट होकर लक्ष्मीजीके सामने प्रसन्नतापूर्वक उनकी चर्चा किया करते हैं और कहते हैं—'कमले! पतिव्रताओंमें अरुन्धतीका अन्त:करण जैसा शुद्ध है, वैसा कहीं किसीका भी नहीं है। वैसा रूप, वैसा शील-स्वभाव, वैसी कुलीनता, वह कला-कौशल, वह पतिसेवापरायणता, वह माधुर्य, वह गम्भीरता और वह गुरुजनोंको सन्तुष्ट रखनेका भाव जैसा अरुन्धती देवीमें है, वैसा अन्य स्त्रियोंमें कहीं नहीं है। जो वार्तालापके प्रसंगमें अरुन्धतीका नाम भी लेती हैं, वे युवतियाँ संसारमें धन्य हैं, सौभाग्यवती हैं और शुद्ध चित्तवाली हैं।

तदनन्तर शिवशर्माके समक्ष ध्रुवलोक प्राप्त हुआ। उसे देखकर उन्होंने पूछा—'भगवत्पार्षदो! यह कौन लोक है?'

भगवत्पार्षदोंने कहा—ब्रह्मन्! स्वायम्भुव मनुके एक पुत्रका नाम उत्तानपाद था। राजा उत्तानपादके दो पुत्र हुए। रानी सुरुचिके गर्भसे उत्तमका जन्म हुआ था, जो ज्येष्ठ था और सुनीतिके गर्भसे ध्रुव नामक पुत्र हुआ था, जो कनिष्ठ था। एक दिन राजा उत्तानपाद जब राजसभामें बैठे हुए थे, उस समय सुनीतिने अपने पुत्रको वस्त्राभूषणोंसे विभूषित करके राजाकी सेवामें भेजा। विनयशील ध्रुवने धायके बालकोंके साथ वहाँ जाकर महाराज उत्तानपादके चरणोंमें प्रणाम किया और ऊँचे सिंहासनपर बैठे हुए पिताकी गोदमें उत्तम भैयाको बैठा देख बालोचित चपलताके कारण उसने भी पिताकी गोदमें चढ़नेकी चेष्टा की। सुरुचिने ध्रुवको पिताकी गोदमें चढ़नेके लिये उत्सुक देख फटकारते हुए कहा—'ओ अभागिनीके पुत्र! क्या तू महाराजकी गोदमें बैठना चाहता है? इस सिंहासनपर बैठनेके योग्य पुण्य तूने नहीं किया है। यदि तेरा कुछ

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

पुण्य होता तो तू एक अभागिनी स्त्रीके पेटसे कैसे पैदा होता? मेरे परम सुन्दर उत्तमको देख ले। वह सौभाग्यवतीकी अच्छी कोखसे पैदा हुआ है। इसीलिये वह पृथ्वीपतिके अंकमें सम्मानपूर्वक बैठा हुआ है।'

राजसभाके बीचमें सुरुचिके द्वारा इस प्रकार अपमानित होनेपर ध्रुवने गिरते हुए आँसुओंको रोक लिया और धैर्य धारण करके कुछ भी उत्तर नहीं दिया। राजाने भी उचित-अनुचित कुछ नहीं कहा। वे रानी सुरुचिके वशीभूत थे। कुमार ध्रुव राजाको प्रणाम करके बालकोंके साथ अपने घर लौट गया। सुनीतिने बालकके मुखकी कान्ति देखकर ही ताड़ लिया कि ध्रुवका अपमान हुआ है। उन्होंने बार-बार अपने पुत्रका मस्तक सूँघा और सान्त्वना देकर हृदयसे लगा लिया। एकान्तमें माता सुनीतिको देखकर बालक ध्रुव फूट-फूटकर रोने लगा। माताके नेत्रोंसे भी आँसू बहने लगे।

सुनीतिने समझा-बुझाकर आँचलसे ध्रुवका मुँह पोंछा और कहा—'बेटा! तुम्हारे रोनेका क्या कारण है, बताओ। महाराजके रहते हुए किसने तुम्हारा अपमान किया है?' माताके आग्रहपूर्वक पूछनेपर ध्रुवने कहा—'माँ! मैं तुमसे एक बात पूछता हूँ। तुम और सुरुचि दोनों ही महाराजकी पत्नी हो, तो भी राजाको केवल सुरुचि क्यों प्यारी है और क्यों तुमपर उनका प्रेम नहीं है? मैं और उत्तम दोनों समानरूपसे राजकुमार हैं, फिर सुरुचिका पुत्र उत्तम क्यों उत्तम है और क्यों मैं अधम हूँ? राजसिंहासन क्यों उत्तमके ही योग्य है और क्यों मेरे योग्य नहीं है?'

ध्रुवका यह वचन सुनकर सुनीतिने लंबी साँस खींचकर कहा—वत्स! सुरुचिने जो कुछ कहा है, सब सत्य है। वह महाराजकी पटरानी है, इसलिये सब रानियोंमें अधिक प्रिय है। तात! उसने दूसरे जन्ममें बड़ा भारी पुण्य किया है। उसी पुण्यकी वृद्धिसे सुरुचिके प्रति राजा अच्छी रुचि रखते हैं। जो मेरी-जैसी अभागिनी स्त्रियाँ हैं, उनमें राजाकी वैसी प्रीति नहीं है। उत्तमने भी महान् पुण्यराशिका उपार्जन किया है, इसीलिये उसने उस पुण्यात्मा स्त्रीकी उत्तम कोखमें निवास किया है और यही कारण है कि वह राजसिंहासनपर बैठनेका अधिकारी माना गया है। महामते! थोड़ी तपस्या करनेके कारण मैं और तुम राजाके समीप पहुँचकर भी राजलक्ष्मीके पात्र नहीं हो सके। बेटा! अपना पूर्वजन्मका कर्म ही मान और अपमानमें कारण होता है, अतः तुम इसके लिये शोक न करो।

ध्रुव बोला—माँ! यदि मैं मनुके कुलमें उत्पन्न हुआ हूँ, राजा उत्तानपादका पुत्र हूँ और तुम्हारी कोखसे पैदा हुआ हूँ तो मेरी बात सुनो। यदि तपस्या ही सब सम्पत्तियोंका कारण है तो आजतक जो स्थान दूसरोंके लिये दुर्लभ रहा है, उसे भी मैंने प्राप्त कर लिया, ऐसा समझो। माँ! तुम केवल मुझे तपस्याके लिये जानेकी आज्ञा दे दो और अपने आशीर्वादसे मेरा उत्साह बढ़ाओ।

तब सुनीतिने कहा—राजकुमार! तुम्हारी आयु अभी कम है, अतः मैं तुम्हें वनमें जानेकी आज्ञा देनेमें असमर्थ हूँ। तथापि इस समय आज्ञा देती हूँ। तपस्याके लिये तुम्हारे जानेपर मेरे कठोर प्राण

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

किसी तरह कण्ठमें अटके रहेंगे।

इस प्रकार माताकी आज्ञा पाकर ध्रुवने उनके चरणकमलोंमें मस्तक रखकर प्रणाम किया और वह वहाँसे चल दिया। माताने मार्गमें पुत्रकी रक्षाके लिये शतशः आशीर्वाद दिये। वह तरुणोंके समान पराक्रमी बालक अपने महलसे निकलकर वनमें गया। उस समय अनुकूल वायु चलकर उसे मार्ग दिखा रही थी। वनमें ध्रुवने सप्तर्षियोंको देखा। भोले-भाले असहाय जीवोंका भाग्य सहायक होता है। कहाँ राजकुमार और कहाँ वह घोर जंगल; परंतु जहाँ जिसकी शुभ या अशुभ भवितव्यता होती है, वहाँ उस मनुष्यको वह अपनी रस्सीमें बाँधकर खींच लेती है। मनुष्य अपने बुद्धिविभवसे कुछ और करनेकी चेष्टा करता है, किंतु भावीकी सहायतासे विधाता कुछ और ही कर डालता है। सप्तर्षियोंका दर्शन करके ध्रुव बहुत प्रसन्न हुआ और उनके पास जा हाथ जोड़े हुए प्रणाम करके ललित वाणीमें बोला—'मुनिवरो! आप मुझे राजा उत्तानपादका पुत्र ध्रुव जानें। मैं माता सुनीतिकी कोखसे पैदा हुआ हूँ।' वे सप्तर्षिगण स्वभावसे ही मधुर आकृतिवाले, अतिशय नीतिकुशल, मृदुल, गम्भीरभाषी उस तेजस्वी बालकको देखकर इस प्रकार बोले—'बालक! तू अपने खेदका कारण बता।' उनके सहज स्नेहसे सने हुए वचन सुनकर ध्रुवने कहा—'मुनीश्वरो! मेरी माताने मुझे महाराजकी सेवामें भेजा था। जब मैं वहाँ जाकर उनकी गोदीमें बैठनेको उत्सुक हुआ तब विमाता सुरुचिने मेरा बहुत तिरस्कार किया। उसने अपने पुत्र उत्तमको तो उत्तम बताया और मुझको तथा मेरी माताको धिक्कार देकर अपनी प्रशंसा की। यही मेरे खेदका कारण है।'

बालक ध्रुवकी यह बात सुनकर सप्तर्षि आपसमें एक-दूसरेकी ओर देखकर उसके क्षत्रियस्वभावकी चर्चा करने लगे—'अहो! देखो तो सही इस छोटे-से बालकमें भी अपमान सहन करनेकी शक्ति नहीं।'

ऋषि बोले—वत्स! हमसे तुम्हारा क्या काम है? तुम्हारा कौन-सा मनोरथ है?

ध्रुवने कहा—मुनियो! मेरे सर्वोत्तम बन्धु जो उत्तम हैं, वे पिताजीके दिये श्रेष्ठ राजसिंहासनपर बैठें। मैं आपके द्वारा इतनी ही सहायता चाहता हूँ कि मैं बालक होनेके कारण प्रायः कुछ साधन-भजन नहीं जानता, अतः मेरे लिये आप उसीका उपदेश करें। मैं पिताके दिये हुए सिंहासनको नहीं चाहता, मैं तो अपनी भुजाओंके बलसे उपार्जित उस उत्तम वस्तुको पाना चाहता हूँ, जो मेरे पिताके लिये भी आशातीत हो। जो पिताकी सम्पत्ति भोगनेवाले हैं, वे प्रायः यशके धनी नहीं होते। श्रेष्ठ मनुष्य तो उन्हें जानना चाहिये, जो पितासे भी अधिक उन्नति करके दिखा दें।

इस प्रकार उसके नीतिसे युक्त वचन सुनकर मरीचि आदि मुनियोंने उससे इस प्रकार कहा—

मरीचि बोले—प्रिय वत्स! मैं झूठ नहीं कहता, तुम जिस स्थानको पानेकी बात करते हो, उसे, जिसने भगवान् विष्णुके चरणारविन्दोंकी आराधना नहीं की है, वह पुरुष कैसे पा सकता है?

अत्रिने कहा—जिसने भगवान् गोविन्दके चरणकमलोंकी धूलिके रसका आस्वादन नहीं किया है, वह आशातीत समृद्धिशाली पदको नहीं पा सकता।

अंगिरा बोले—जो भगवान् लक्ष्मीपतिके कान्तिमान् चरणकमलोंका भलीभाँति चिन्तन करता है, उसके लिये सम्पूर्ण सम्पदाओंका स्थान दूर नहीं है।

पुलस्त्यने कहा—ध्रुव! जिनके स्मरणमात्रसे महापातकोंकी परम्पराका सर्वथा नाश हो जाता है, वे भगवान् विष्णु ही सब कुछ देनेवाले हैं।

पुलह बोले—जिनको प्रकृति और पुरुषसे परे परब्रह्म कहते हैं तथा जिनकी मायासे सम्पूर्ण जगत्‌का विस्तार किया गया है, वे भगवान् विष्णु ही सब कुछ देंगे।

क्रतुने कहा—जो यज्ञपुरुष हैं, सर्वत्र व्यापक

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

हैं, सम्पूर्ण वेदोंके द्वारा जाननेयोग्य तथा समस्त जगत्‌के अन्तरात्मा हैं, वे भगवान् जनार्दन यदि सन्तुष्ट हो जायँ तो क्या नहीं दे सकते हैं?

वसिष्ठ बोले—राजकुमार! जिनके भ्रूभंगमात्रसे अणिमा आदि आठों सिद्धियाँ आज्ञाके अनुसार कार्य करनेको प्रस्तुत रहती हैं, उन भगवान् हृषीकेशकी आराधना करनेपर मोक्ष भी दूर नहीं है।

ध्रुवने कहा—मुनीश्वरो! आपने भगवान् विष्णुकी आराधनाके विषयमें जो विचार व्यक्त किया है, वह सत्य है। परंतु भगवान् विष्णुकी आराधना कैसे की जाती है, उसकी विधि क्या है, इसका उपदेश करें।

मुनि बोले—खड़े होते, चलते, सोते, जागते, लेटे अथवा बैठे हुए सब समय भगवान् नारायणके नामका जप करना चाहिये। चार भुजाधारी भगवान् विष्णुका ध्यान करते हुए वासुदेवस्वरूप द्वादशाक्षर मन्त्र (**ॐ नमो भगवते वासुदेवाय**) द्वारा जप करके कौन सिद्धिको नहीं प्राप्त हुआ है *? अलसीके फूलकी भाँति श्याम कान्तिवाले पीतवस्त्रधारी सर्वात्मा अच्युतका एक क्षण भी ध्यान करनेवाला कौन ऐसा पुरुष है, जो इस भूतलपर सिद्धिको नहीं पाता? भगवान् वासुदेवका जप करनेवाला मनुष्य स्त्री, पुत्र, मित्र, राज्य, स्वर्ग और अपवर्ग (मोक्ष) सब कुछ निःसन्देह प्राप्त कर लेता है। वासुदेवके मन्त्र-जपमें लगे हुए पापी मनुष्योंको भी विघ्न तथा भयंकर यमदूत नहीं छू सकते। महा समृद्धिशाली और विष्णुभक्त तुम्हारे दादा मनुने भी राज्यकी कामनासे इस महामन्त्रका जप किया था। तुम भी इसी मन्त्रसे भगवान् वासुदेवकी आराधनामें लग जाओ। इससे तुम शीघ्र ही मनोवांछित सिद्धि प्राप्त कर लोगे।

ऐसा कहकर वे सब महात्मा मुनीश्वर वहीं अन्तर्धान हो गये। इधर ध्रुव भी भगवान् वासुदेवके चिन्तनमें मन लगाकर तपस्याके लिये चल दिये। जंगलसे निकलकर वे यमुनाके किनारे मनोहर मधुवनमें गये। वह भगवान् श्रीहरिका परम पवित्र आदिस्थान है, जहाँ पहुँचकर पापी जीव भी निष्पाप हो जाता है। वहाँ जाकर ध्रुवने वासुदेव नामक निरामय परब्रह्मका जप प्रारम्भ किया। उनके नेत्र ध्यानमें निश्चल रहते थे और वे सम्पूर्ण विश्वको वासुदेवमय देखते थे। सम्पूर्ण दिशाओंमें श्रीहरि हैं, वे ही पातालमें अनन्तरूपसे रहते हैं, आकाशमें भी वे ही अनन्तरूपसे व्याप्त हैं। यद्यपि वे एक हैं तथापि अनन्त रूपभेदके कारण अनन्तताको प्राप्त हुए हैं। जो सदा देवताओंमें वास करें अथवा देवताओंके वासस्थान हों या व्यापकशक्तिसे सर्वत्र देदीप्यमान हों, वे भगवान् वासुदेव कहलाते हैं। '**विष्लृ व्याप्तौ**' धातु है। इसका प्रयोग व्याप्ति अर्थमें होता है। (इसीसे 'विष्णु' शब्द बनता है) भगवान् विष्णुके सर्वव्यापी नाम एवं स्वरूपमें ही यह धातु पूर्णतः सार्थक होती है। जो परमेश्वर सम्पूर्ण हृषीक अर्थात् इन्द्रियोंके स्वामी होनेसे 'हृषीकेश' कहलाते हैं, वे ही सर्वत्र स्थित हैं। जिनके भक्त भी महाप्रलयमें अपने स्वरूपसे च्युत नहीं होते, वे भगवान् सम्पूर्ण लोकोंमें 'अच्युत' कहलाते हैं। जो एकमात्र अविनाशी एवं सर्वत्र व्यापक हैं, जो पालन-पोषण करने और स्वरूपकी प्राप्ति करानेके द्वारा इस समस्त चराचर विश्वका लीलापूर्वक भरण करते हैं, वे भगवान् विश्वम्भर यहाँ विराजमान हैं। ध्रुवकी आँखें भगवान् विष्णुके स्वरूपके अतिरिक्त दूसरी किसी वस्तुको नहीं देखती थीं। उन्होंने यह नियम बना लिया था कि केवल कमलनयन भगवान् विष्णु ही दर्शन करनेयोग्य हैं, दूसरा कोई नहीं। उनके कान गोविन्द, मुकुन्द, दामोदर, चतुर्भुज आदि शब्दोंके बिना दूसरा कोई शब्द नहीं ग्रहण करते थे। उनके दोनों हाथ गोविन्दके चरणारविन्दोंकी पूजा

* तिष्ठता गच्छता वापि स्वपता जाग्रता तथा। शयानेनोपविष्टेन जप्यो नारायणः सदा॥
द्वादशाक्षरमन्त्रेण वासुदेवात्मकेन च। ध्यायंश्चतुर्भुजं विष्णुं जप्त्वा सिद्धिं न को गतः॥
(स्क० पु०, का० पू० १९। १७-१८)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

तथा उन्हें प्रिय लगनेवाले कर्मोंको छोड़कर और कोई कर्म नहीं करते थे। उनका मन अन्य सारी बातोंका मनन छोड़कर केवल भगवान्‌के द्वन्द्वरहित युगल चरणकमलोंका चिन्तन करता हुआ स्थिर हो गया था। तपस्या करते हुए ध्रुवके दोनों पैर भगवान् नारायणका आँगन छोड़कर अन्यत्र नहीं जाते थे। परम सारभूत तपस्या करते हुए राजकुमारने मौन धारण कर लिया था। केवल गोविन्दका गुणगान करनेमें वे अपनी वाणीको प्रमाणित करते थे। निरन्तर भगवान् कमलाकान्तके नामामृतरसका आस्वादन करती हुई ध्रुवकी रसना अन्य लौकिक रसोंकी स्पृहा त्याग चुकी थी। उनकी घ्राणेन्द्रिय श्रीमुकुन्दके युगल चरणारविन्दोंकी सुगन्धसे परमानन्दमें निमग्न रहती थी। इसलिये वह और किसी गन्धको नहीं सूँघती थी। राजकुमार ध्रुवके शरीरकी त्वचा-इन्द्रिय भगवान् मधुसूदनके युगल चरणोंका स्पर्श करती हुई सम्पूर्ण स्पर्शसुखको प्राप्त कर लेती थी। उनकी समस्त इन्द्रियाँ शब्दादि सभी विषयोंके आधार एवं सारभूत परात्पर भगवान् दामोदरकी सेवामें संलग्न हो कृतार्थ हो गयी थीं। ध्रुवकी तपस्यारूपी सूर्यका उदय होनेपर तीनों लोक सन्तप्त होने लगे। इन्द्र, सोम, अग्नि, वरुण, वायु, कुबेर, यम और निर्ऋति आदि समस्त दिक्पाल अपना-अपना पद खो जानेके भयसे शंकित हो उठे। ध्रुव पृथ्वीपर जहाँ-जहाँ पाँव रखते थे, वहाँ-वहाँ वह महान् भारसे दबने लगती थी। उनके अंगके स्पर्शमें आये हुए समस्त जल अपनी मलिनताका परित्याग करके सरस एवं स्वच्छ हो गये थे। राजकुमारने कौस्तुभमणिसे उद्भासित वक्षवाले पीताम्बरधारी भगवान् विष्णुका ध्यान करनेके कारण सम्पूर्ण विश्वको तेजोमय ही देखा। उनकी तपस्याके भयसे इन्द्रको बड़ी भारी चिन्ता हुई। वे सोचने लगे—'ध्रुव चाहे तो मेरा इन्द्रपद अवश्य हर लेगा। अप्सराओंका समूह उस बालकपर अपना कोई प्रभाव नहीं डाल सकता। काम और क्रोध उसे विचलित करनेमें समर्थ न होंगे। उसे डिगानेके लिये एक ही उपाय है, उसके पास भयंकर आकारवाले भूतोंकी सेना भेजें। बालक होनेके कारण वह भूतोंसे डरकर निश्चय ही अपनी तपस्या त्याग देगा।' ऐसा निश्चय करके इन्द्रने भूतोंकी सेना भेज दी। उन भूतोंमेंसे कोई यक्षिणी किसीके रोते हुए शिशुको उठा लायी और उसकी कोख फाड़कर उसका रक्त पीने लगी। फिर उसने उसकी हड्डियोंको चबा डाला और ध्रुवको सम्बोधित करके कहा—'अरे! इसी बालककी भाँति तेरी हड्डियोंको भी चबाकर मैं आज प्यास लगनेपर तेरा रक्त पीऊँगी।' किसी भूतनीने बवंडर (तूफान)-का रूप धारण करके कितने ही वृक्षों और गिरि-शिखरोंको तोड़-फोड़कर आकाशके मार्गको ढँक दिया और उस बालकको कम्पित करने लगी। परंतु उन भूत-भूतनियोंका भय त्यागकर ध्रुव केवल भगवान् नारायणके ध्यानमें तत्पर रहे। भय दिखानेवाली भूतावलियोंने देखा—ध्रुवके चारों ओर भगवान्‌का सुदर्शनचक्र प्रज्वलित हो उठा है। वह मण्डलाकार चक्र सूर्यकी परिधिके समान अत्यन्त प्रकाशित हो रहा था। भगवान्‌ने भूतावलियोंसे भक्तकी रक्षाके लिये उसे प्रकट किया था। उस चक्रको देख डरी हुई भूतोंकी सेना ध्रुवको नमस्कार करके जैसे आयी थी, वैसे ही लौट गयी।

ब्रह्मन्! तदनन्तर भयभीत हुए सम्पूर्ण देवता इन्द्रके साथ ब्रह्माजीकी शरणमें गये और उनको प्रणाम करके सबने उनका स्तवन किया। तत्पश्चात् बोलनेका अवसर देख इस प्रकार कहा—'पितामह! उत्तानपादके तेजस्वी पुत्रने तपस्या करके तीनों लोकोंके सम्पूर्ण निवासियोंको सन्तप्त कर दिया है। तात! ध्रुवका मनोरथ क्या है, यह हम अच्छी तरह नहीं जानते। पता नहीं, वह महातपस्वी बालक हमलोगोंमेंसे किसके पदको चाहता है।'

देवताओंकी यह बात सुनकर चतुर्मुख ब्रह्माजी हँसकर बोले—देवताओ! ध्रुव ध्रुवपद (अविनाशी स्थान) प्राप्त करना चाहता है। अतः

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

उससे तुम्हें भय नहीं मानना चाहिये। तुम सब लोग निश्चिन्त होकर जाओ। वह तुम्हारा पद नहीं लेना चाहता। ध्रुव भगवान्‌का भक्त है, उससे किसीको कहीं भी भय नहीं होना चाहिये। यह निश्चित है कि भगवान् विष्णुके भक्त दूसरोंको सन्ताप देनेवाले नहीं होते। देवेश्वर श्रीविष्णुकी आराधना करके उनसे अपनी मनोवांछित वस्तु प्राप्त करके ध्रुव तुम सब देवताओंके भी स्थानोंको स्थिर करेगा।

ब्रह्माजीकी कही हुई यह बात सुनकर देवता बड़े प्रसन्न हुए और उन्हें प्रणाम करके अपने-अपने स्थानको चले गये। इधर भगवान् विष्णु उस अनन्यशरण बालकको स्थिरचित्त देखकर गरुड़पर आरूढ़ हो उसके पास गये और इस प्रकार बोले—'महाभाग! मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ, तुम कोई वर माँगो।' यह अमृतके समान वचन सुनकर ध्रुवने आँखें खोल दीं और देखा—इन्द्रनीलमणिके समान श्याम तेजका पुंज सामने प्रकाशित हो रहा है। पीताम्बरधारी, मेघके समान श्याम गरुड़वाहन भगवान् विष्णुको ध्रुवने देखा। देखते ही ध्रुव दण्डकी भाँति उनके चरणोंमें पड़ गये और सब ओर लोटने लगे। फिर जैसे दुःखी बालक दीर्घकालके बाद पिताको देखकर रोता है, उसी प्रकार वे फूट-फूटकर रोने लगे। उस समय भगवान्‌के कमल-समान नेत्रोंमें करुणापूर्ण अश्रुजल भर आया और उन्होंने अपने हाथसे ध्रुवको उठाया तथा उनके धूलिधूसरित अंगोंको प्रेमपूर्वक सहलाया। देवाधिदेव श्रीहरिके स्पर्शमात्रसे ध्रुवके मुखसे संस्कृतमयी शुभ वाणी प्रकट हुई और उन्होंने इस प्रकार स्तवन किया—

ध्रुव बोले—सम्पूर्ण जगत्‌की सृष्टि करनेवाले हिरण्यगर्भस्वरूप आपको नमस्कार है। आप उत्तम ज्ञान प्रदान करनेवाले हैं, आपको नमस्कार है। समस्त भूतोंका संहार करनेवाले हरस्वरूप! आपको नमस्कार है। पंचमहाभूतस्वरूप तथा समस्त भूत-प्राणियोंके स्वामी आपको नमस्कार है। सर्वशक्तिमान् अथवा जगत्‌के उत्पादक, पालनकर्ता आप भगवान् विष्णुको नमस्कार है। विषयोंकी तृष्णा हर लेनेवाले सच्चिदानन्द श्रीकृष्णस्वरूप आपको नमस्कार है। कूर्म और वाराह आदि अवतारोंके रूप आप समस्त विश्वका महान् भार सहन करते हैं, आपको नमस्कार है। लक्ष्मीजीके स्वामी एवं सुदर्शनचक्र धारण करनेवाले आपको नमस्कार है। पृथ्वीको अपने दाढ़ोंपर उठानेवाले आप वाराहरूपधारी परमात्माको नमस्कार है। वेदान्तोंद्वारा आप ही जानने योग्य हैं, आपको नमस्कार है। आप अपने वक्षःस्थलमें श्रीवत्सचिह्न धारण करते हैं, आपको नमस्कार है। आप सत्त्वादि गुणस्वरूप तथा सगुण एवं निर्गुण ब्रह्म हैं, आपको नमस्कार है। आपकी नाभिसे ब्रह्माण्डरूपी कमल प्रकट हुआ है, आपको नमस्कार है। आप पांचजन्य नामक शंख धारण करते हैं, आपको नमस्कार है। वासुदेव! आपको नमस्कार है। देवकीनन्दन! आपको नमस्कार है। दामोदर! हृषीकेश! गोविन्द! अच्युत! माधव! उपेन्द्र! मधुसूदन! और अधोक्षज! आपको नमस्कार है। आपका कहीं अन्त नहीं है, इसलिये अनन्त कहलाते हैं। आपको नमस्कार है। आप अनन्त नामक शेषनागकी शय्यापर शयन करनेवाले हैं, आपको नमस्कार है। रुक्मिणीके पति! आपको नमस्कार है। मुकुन्द! परमानन्द! नन्दगोपके प्रिय! आपको नमस्कार है। पुण्डरीकाक्ष! आपको नमस्कार है। गोपालरूप धारण करके वंशी बजानेवाले! आपको नमस्कार है। गोपीवल्लभ! गोवर्द्धनधारी! आपको नमस्कार है। आपमें योगीजन रमण करते हैं, इसलिये आप राम हैं, रघुकुलके स्वामी होनेसे रघुनाथ हैं तथा रघुवंशमें अवतार ग्रहण करनेके कारण आप राघव कहलाते हैं। आपको बार-बार नमस्कार है। विभीषणको आश्रय देनेवाले आपको नमस्कार है। आप अजन्मा एवं जयस्वरूप हैं, आपको नमस्कार है। क्षण, निमेष आदि जितने कालभेद हैं, वे सब आपके ही स्वरूप हैं। आप अनेक रूप धारण करनेवाले हैं, आपको नमस्कार है। आप शार्ङ्ग

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

ध्रुवकी सफल साधना

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

नामक धनुष, कौमोदकी गदा और सुदर्शन चक्र धारण करनेवाले हैं, आपको नमस्कार है। आप गौओं और ब्राह्मणोंके हितकारी हैं, आपको नमस्कार है। धर्मस्वरूप आपको नमस्कार है। सत्त्वगुण धारण करनेवाले आपको नमस्कार है। आपके सहस्रों मस्तक हैं, आप परम पुरुष परमेश्वर हैं, आपको नमस्कार है। आपके सहस्रों नेत्र, सहस्रों चरण, सहस्रों किरणें और सहस्रों मूर्तियाँ हैं, आपको नमस्कार है। श्रीकान्त! यज्ञपुरुष! आपको नमस्कार है। आपका स्वरूप वेदोंके द्वारा जाननेयोग्य है और वेद आपको बहुत प्रिय हैं, आपको नमस्कार है। वेदस्वरूप, वेदोंके वक्ता और सदाचारके पथपर चलनेवाले आपको नमस्कार है। आप वैकुण्ठधामस्वरूप तथा वैकुण्ठधामके निवासी हैं, आपको नमस्कार है। विस्तृत यशवाले आप भगवान् गरुड़वाहनको नमस्कार है। विष्वक्सेन! आपको नमस्कार है। जगन्मय जनार्दन! आपको नमस्कार है। आप अपने तीन पगोंसे त्रिलोकीको माप लेनेवाले, सत्यस्वरूप तथा सत्यप्रिय हैं, आपको नमस्कार है। केशव! आपको नमस्कार है। आप मायाशक्तिसे सम्पन्न हैं और वेदोंके गायक हैं अथवा ब्रह्म नामसे आपकी महिमाका गान किया जाता है, आपको नमस्कार है। आप तपःस्वरूप और तपस्याका फल देनेवाले हैं, आपको नमस्कार है। आप ही स्तवन करनेयोग्य देवता हैं, स्तुति भी आपका ही स्वरूप है तथा आप अपने भक्तजनोंकी स्तुतिमें तत्पर रहते हैं, आपको नमस्कार है। आप श्रुतिरूप हैं और श्रुतियोंमें प्रतिपादित सदाचार आपको विशेष प्रिय है, आपको नमस्कार है। अण्डज, स्वेदज, जरायुज और उद्भिज्ज सभी जीव आपके स्वरूप हैं; उन सभी रूपोंमें आपको नमस्कार है। आप देवताओंमें इन्द्र, ग्रहोंमें सूर्य, लोकोंमें सत्यलोक, समुद्रोंमें क्षीरसागर, नदियोंमें गंगा, सरोवरोंमें मानस, पर्वतमें हिमवान्, धेनुओंमें कामधेनु, धातुओंमें सुवर्ण, पत्थरोंमें स्फटिक, फूलोंमें नीलकमल, वृक्षोंमें तुलसी, सम्पूर्ण पूजनीय शिलाओंमें शालग्राम शिला, मुक्तिदायक क्षेत्रोंमें काशी, तीर्थोंमें प्रयाग, रंगोंमें श्वेत रंग, मनुष्योंमें ब्राह्मण, पक्षियोंमें गरुड़, कर्मेन्द्रियोंमें वाणी, वेदोंमें उपनिषद्, मन्त्रोंमें प्रणव, अक्षरोंमें अकार, यज्ञकर्ताओंमें सोमरूपधारी, प्रतापियोंमें अग्नि, क्षमाशीलोंमें क्षमा (पृथ्वी), दाताओंमें मेघ, पवित्रोंमें परम पवित्र, सम्पूर्ण अस्त्र-शस्त्रोंमें धनुष, वेगवानोंमें वायु, इन्द्रियोंमें मन, भयशून्य अंगोंमें हाथ, व्यापक वस्तुओंमें आकाश, आत्माओंमें परमात्मा, सम्पूर्ण नित्यकर्मोंमें सन्ध्योपासना, यज्ञोंमें अश्वमेध-यज्ञ, दानोंमें अभयदान, लाभोंमें पुत्रलाभ, ऋतुओंमें वसन्त, युगोंमें प्रथम (सत्ययुग), तिथियोंमें अमावास्या, नक्षत्रोंमें पुष्य, सब पर्वोंमें संक्रान्ति, योगोंमें व्यतीपात, तृणोंमें कुश और सब पुरुषार्थोंमें मोक्ष हैं। अजन्मा प्रभो! सम्पूर्ण बुद्धियोंमें आप धर्मबुद्धि हैं, सब वृक्षोंमें पीपल हैं, लताओंमें सोमलता हैं, समस्त पवित्र साधनोंमें प्राणायाम हैं तथा सम्पूर्ण शिवलिंगोंमें आप सब कुछ देनेवाले साक्षात् विश्वनाथ हैं। मित्रोंमें पत्नी और सब बन्धुओंमें धर्म आप ही हैं। नारायण! इस चराचर जगत्में आपसे भिन्न कोई वस्तु नहीं है। आप ही माता, आप ही पिता, आप ही सुहृद्, आप ही महान् वैभव, आप ही सौख्य-सम्पत्ति तथा आप ही आयु और जीवनके स्वामी हैं। वही कथा है, जहाँ आपके नामकी महिमा बतायी जाती है। वही मन है, जो आपको समर्पित होता है। वही कर्म है, जो आपकी प्रसन्नताके लिये किया जाता है और वही तपस्या है, जिससे आपकी स्मृति होती है। धनियोंका वही धन शुद्ध है, जो आपके लिये व्यय किया जाता हो। विष्णो! वही काल सफल है, जिसमें आपकी पूजा होती है। यह जीवन तभीतक कल्याणकारी है, जबतक हृदयमें आपका चिन्तन होता रहता है। आपका चरणोदक पीनेसे सब रोग शान्त हो जाते हैं। गोविन्द! आपके वासुदेव नामका कीर्तन करनेसे अनेक जन्मोंद्वारा उपार्जित महान् पाप तत्काल नष्ट हो जाते हैं। अहो! मनुष्योंमें कैसा अद्भुत महान् मोह

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

है, कैसा प्रमाद है कि वे भगवान् वासुदेवकी अवहेलना करके दूसरोंको रिझानेके लिये परिश्रम करते हैं। भगवान्‌के नामोंका जो कीर्तन किया जाता है, वही परम मंगल है, वही धनका उपार्जन है और वही जीवनका फल है। भगवान् अधोक्षज (विष्णु)-से भिन्न कोई धर्म नहीं है, नारायणसे परे कोई अर्थ नहीं है, केशवसे भिन्न कोई काम नहीं है और श्रीहरिके बिना मोक्ष नहीं है। भगवान् वासुदेवका स्मरण और ध्यान न हो तो यही सबसे बड़ी हानि है, यही महान् उपद्रव है और यही बड़ा भारी दुर्भाग्य है। अहो! भगवान् विष्णुकी आराधना मनुष्योंके लिये क्या-क्या नहीं करती। पुत्र, मित्र, स्त्री, धन, राज्य, स्वर्ग और मोक्ष सब कुछ तो वही देती है। श्रीहरिकी आराधना पापको हर लेती है, रोगोंका नाश करती है और मानसिक चिन्ताओंको मिटा देती है। इतना ही नहीं, वह धर्मको बढ़ाती और शीघ्र ही मनोवांछित वस्तु प्रदान करती है। यदि पापी भी प्रसंगवश भी भगवान्‌के युगल चरणोंका निर्द्वन्द्व ध्यान करता है, तो वह उसके लिये परम हितकी बात है। पापियोंके जो महापाप और सामान्य पाप हैं, उन सबको भगवान्‌के ध्यानपूर्वक किया हुआ नामोच्चारण अविलम्ब हर लेता है। जैसे आगकी चिनगारी भूलसे भी छू जाय तो वह जला ही देती है, उसी प्रकार होठोंसे श्रीहरिनामका स्पर्श होते ही वह समस्त पापोंको हर लेता है *। जो अपने चित्तको शान्त करके उसे क्षणभर भी कमलाकान्तके चिन्तनमें लगाता है तो उसके यहाँ लक्ष्मी निश्चल होकर रहती है। भगवान् विष्णुका चरणामृत पान करना ही सबसे बड़ा धर्म है, यही सर्वोत्तम तप है और यही सर्वोत्कृष्ट तीर्थ है। यज्ञपुरुष! जो आपको भोग लगाये हुए नैवेद्यका प्रसाद भक्तिपूर्वक ग्रहण करता है, उस परम बुद्धिमान् मनुष्यने मानो निश्चय ही यज्ञका पुरोडाश प्राप्त कर लिया। जो मनुष्य भगवान् विष्णुका चरणोदक शंखमें रखकर उससे अपने सिर आदि अंगोंका अभिषेक करता है, वही अवभृथ-स्नान करता है और वही गंगाजीके जलमें गोता लगाता है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र अथवा इतर जातिका मनुष्य, कोई भी क्यों न हो, यदि वह भगवान् विष्णुकी भक्तिसे युक्त है तो उसे सर्वश्रेष्ठ जानना चाहिये। जो प्रतिदिन द्वारकाके गोमतीचक्रके साथ शालग्रामकी बारह शिलाओंका पूजन करता है, वह वैकुण्ठधाममें प्रतिष्ठित होता है। जिसके घरमें प्रतिदिन तुलसीकी पूजा होती है, उसके घरमें कभी यमराजके दूत नहीं जाते। जिसके मुखमें भगवन्नामके अक्षर हों, ललाटमें गोपीचन्दनका तिलक हो और जिसका वक्षःस्थल तुलसीकी मालासे सुशोभित हो, उसे यमराजके दूत छू नहीं सकते। गोपीचन्दन, तुलसी, शंख, शालग्राम शिला और गोमतीचक्र—ये पाँच वस्तुएँ जिसके घरमें विद्यमान हैं, उसे पापका भय कैसे हो सकता है। जो मुहूर्त, जो क्षण, जो काष्ठा और जो निमेष भगवान् विष्णुका स्मरण किये बिना बीत जाते हैं, उन्हींमें मनुष्य यमके द्वारा लूटा जाता है। कहाँ तो आगकी जलती हुई चिनगारियोंके समान हरि-नामके दो अक्षर और कहाँ रूईकी ढेरीके समान पातकोंकी बड़ी भारी राशि। मैं तो गोविन्द, परमानन्द, मुकुन्द एवं मधुसूदन आदि नामोंवाले भगवान् विष्णुको छोड़कर दूसरेको नहीं जानता, नहीं भजता और नहीं स्मरण करता हूँ। श्रीहरिके बिना मैं दूसरेको न तो नमस्कार करता हूँ, न उसकी स्तुति करता हूँ, न नेत्रोंसे उसे देखता हूँ, न शरीरसे उसका स्पर्श करता हूँ, न उसके पास जाता हूँ और न उसकी महिमाके गीत ही गाता हूँ। मैं जलमें, स्थलमें, पातालमें, अग्निमें, वायुमें, पर्वतमें, विद्याधरमें, असुर और देवताओंमें, किन्नरमें, वानरमें, नरमें, तिनकेमें, स्त्रियोंके समुदायमें, पत्थरमें, वृक्ष, झाड़ी और लताओंमें, सर्वत्र श्रीवत्सचिह्नसे विभूषित वक्षवाले श्यामसुन्दर श्रीहरिको ही देखता हूँ। प्रभो! आप सबके हृदयमें अन्तर्यामीरूपसे निवास करते हैं। आप ही सबके साक्षात् साक्षी हैं। अपने बाहर और भीतर आप सर्वव्यापी

* प्रमादादपि संस्पृष्टो यथानलकणो दहेत्। तथौष्ठपुटसंस्पृष्टं हरिनाम हरेदघम्॥ (स्क० पु०, का० पू० २१। ५७)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

परमेश्वरको छोड़कर मैं दूसरेको नहीं जानता।

शिवशर्मन्! ऐसा कहकर भक्त ध्रुव चुप हो गये। तब भगवान् विष्णुने प्रसन्नतापूर्ण दृष्टिसे

देखते हुए कहा—'वत्स ध्रुव! मैंने तुम्हारे मनोरथको अच्छी तरह जान लिया है। देखो, सब प्राणी अन्नसे उत्पन्न होते हैं, अन्न वर्षासे उत्पन्न होता है, उस वर्षाके कारण हैं सूर्यदेव, परंतु तुम सूर्यके भी आधार हो जाओ। आकाशमें भ्रमण करनेवाले समस्त ग्रह-नक्षत्र आदिका जो ज्योतिर्मण्डल है, उसके तुम आधार होओगे। इस दिव्य पदपर तुम पूरे कल्पभर शासन करोगे। तुम्हारी माता सुनीति भी तुम्हारे समीप आ पहुँचेगी। जो मनुष्य एकाग्रचित्त हो तुम्हारे द्वारा किये हुए इस उत्तम स्तोत्रका तीनों समय पाठ करेगा, उसकी पापराशि नष्ट हो जायगी और लक्ष्मी उसका घर नहीं छोड़ेगी; उसका मातासे वियोग नहीं होगा और भाई-बन्धुओंके साथ कभी कलह नहीं होगा।'

भगवान्‌के दोनों पार्षद कहते हैं—ब्रह्मन्! ध्रुवसे ऐसा कहकर भगवान् गरुड़ध्वज वहाँसे चले गये।

महर्लोक, जनलोक और तपोलोककी स्थिति; ब्रह्माजीके द्वारा सत्यलोकका महत्त्व-कथन और भारतवर्ष एवं वहाँके तीर्थोंकी महत्ता बताते हुए प्रयाग और काशीकी महिमाका प्रतिपादन

अगस्त्यजी कहते हैं—तदनन्तर वायुके समान वेगशाली वह विमान स्वर्गलोकसे ऊपर अत्यन्त अद्भुत महर्लोकमें जा पहुँचा। तब ब्राह्मणने पूछा—'यह मनोहर लोक कौन-सा है?'

दोनों भगवत्पार्षदोंने कहा—ब्रह्मन्! यह महर्लोक है, जो स्वर्गलोकसे भी अद्भुत है। जिन्होंने तपस्यासे अपनी पापराशि धो डाली है वे कल्पान्तजीवी तपस्वी यहाँ निवास करते हैं। भगवान् विष्णुका निरन्तर स्मरण करनेसे उनकी समस्त पापराशि नष्ट हो जाती है।

इस प्रकार वे दोनों पार्षद कह ही रहे थे कि आधे क्षणमें वह विमान उन सबको लेकर जनलोकमें जा पहुँचा। यहाँ ब्रह्माजीके मानसपुत्र निर्मल योगीश्वर एवं नैष्ठिक ब्रह्मचारी सनक, सनन्दन आदि निवास करते हैं। अखण्ड ब्रह्मचर्यका पालन करनेवाले अन्यान्य योगी भी सब प्रकारके द्वन्द्वोंसे मुक्त हो अत्यन्त निर्मल होकर जनलोकमें निवास करते हैं। मनके समान वेगसे चलनेवाले उस विमानने जनलोकसे ऊपर जाकर शीघ्र ही तपोलोकको दृष्टिगोचर कराया, जहाँ वैराज नामवाले देवता निवास करते हैं। जिनका मन भगवान् वासुदेवमें लगा होता है, जो अपने समस्त कर्म वासुदेवको समर्पित कर देते हैं तथा तपस्याद्वारा भगवान् गोविन्दको सन्तुष्ट करके जो सब प्रकारकी इच्छाओंका त्याग कर चुके हैं, ऐसे जितेन्द्रिय महात्मा तपोलोकमें जाकर निवास करते हैं। जो तपस्याओंसे अपने शरीरको क्लेश देकर तपरूपी धनका संग्रह कर चुके हैं, वे ब्रह्माजीके समान आयुवाले होकर निर्भयतापूर्वक निवास करते हैं।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

पुण्यात्मा शिवशर्मा जबतक भगवत्पार्षदोंके मुखसे इस प्रकार तपोलोककी महिमा सुनते रहे, तबतक उनके नेत्रोंके सामने परम प्रकाशमय सत्यलोक आ पहुँचा। वहाँ जाते ही वे दोनों पार्षद उनके साथ तुरंत ही विमानसे उतर पड़े और उन सबने समस्त लोकोंके स्रष्टा ब्रह्माजीके चरणोंमें प्रणाम किया।

ब्रह्माजी बोले—भगवत्पार्षदो! ये बुद्धिमान् ब्राह्मण शिवशर्मा वेद-वेदांगोंके पारंगत विद्वान् हैं। स्मृतियों और धर्मशास्त्रोंमें बताये हुए सदाचारके पालनमें परम प्रवीण हैं तथा पापकर्मोंसे सदा विमुख रहे हैं। परम बुद्धिमान् द्विज शिवशर्मन्! मैं तुम्हें अच्छी तरह जानता हूँ। वत्स! तुमने उत्तम तीर्थमें प्राणत्याग करके बहुत ही अच्छा किया। तुमने यह जो कुछ देखा है, वह सब शीघ्र नष्ट होनेवाला है। मेरे प्रत्येक दिनके अन्तमें प्रलय होता है और मैं दिनके प्रारम्भमें बार-बार सृष्टि करता हूँ। जब स्वर्गादि लोकोंकी यह अवस्था है तब मरणशील मनुष्योंकी तो बात ही क्या है। परंतु चार प्रकारके जीव (स्वेदज, उद्भिज्ज, जरायुज तथा अण्डज) समुदायमेंसे मनुष्योंमें ही एक ऐसा गुण है कि वे कर्मभूमि भारतमें मनसहित चंचल इन्द्रियोंको जीतकर, गुणोंके शत्रु लोभका त्याग करके, धर्मकी परम्परा तथा धनराशिका नाश करनेवाले कामको विचारके द्वारा मनसे बाहर निकालकर, धैर्यसे क्रोधरूपी शत्रुको जीतकर और मदका परित्याग, अहंकारका निवारण तथा मोहका नाश करके, धर्मकी सीढ़ीपर चढ़कर, अनायास ही इस सत्यलोकमें आ जाते हैं। आर्यावर्तके समान देश, काशीके समान पुरी तथा विश्वनाथजीके समान लिंग इस ब्रह्माण्डमण्डलमें कहीं भी नहीं है। समुद्रके बीचमें अनेक द्वीप हैं, किंतु इस पृथ्वीपर जम्बूद्वीपके समान दूसरा कोई द्वीप नहीं है। जम्बूद्वीपमें भी नौ वर्ष हैं, जिनमें भारतवर्ष सबसे श्रेष्ठ है। इसे कर्मभूमि कहा गया है। यह देवताओंके लिये भी दुर्लभ है। किंपुरुष आदि जो आठ वर्ष हैं, वे देवभोग्य हैं; उनमें देवतालोग स्वर्गसे आकर रमण करते हैं। यह भारतवर्ष नौ हजार योजन विस्तृत है। इस भारतवर्षमें भी हिमवान् और विन्ध्यगिरिके बीचका भाग अत्यन्त पुण्यदायक है। इसमें भी गंगा और यमुनाके बीचका भाग पृथ्वीकी अन्तर्वेदी है। यहाँके क्षेत्रोंमें कुरुक्षेत्र सबसे बढ़कर है। उससे भी उत्तम नैमिषारण्यक्षेत्र है जो स्वर्गका श्रेष्ठ साधन है। इस समस्त भूमण्डलमें नैमिषारण्यसे तथा अन्य सब तीर्थोंसे भी बढ़कर तीर्थराज प्रयाग है। वह स्वर्ग, मोक्ष तथा सम्पूर्ण मनोवांछित फलोंको देनेवाला है। इसीलिये प्रयाग महान् क्षेत्र है और उसे सब तीर्थोंका राजा माना गया है। मैंने पूर्वकालमें सब यज्ञोंको एक ओर तराजूपर रखा और दूसरी ओर तीर्थोंमें श्रेष्ठ प्रयागको रखा, किंतु उसीका पलड़ा भारी रहा। दक्षिणा आदिसे पुष्ट समस्त यागोंकी अपेक्षा इस क्षेत्रको प्रधान देखकर विष्णु और शिव आदिने उसका नाम प्रयाग रख दिया। उसके नाममात्रका तीनों कालमें स्मरण करनेसे मनुष्यके शरीरमें कभी कहीं पाप नहीं ठहरता है। असंख्य जन्मान्तरोंमें जिस पापराशिका संग्रह किया गया है, व्रत, दान, जप और तपसे भी जिसको दूर करना अत्यन्त कठिन है, वह पापराशि भी जब कोई तीर्थराज प्रयागमें जानेके लिये उद्यत होता है, तब आँधीके मारे हुए वृक्षकी भाँति शरीरके भीतर थर-थर काँपने लगती है। तत्पश्चात् प्रयाग जानेका दृढ़ संकल्प लेकर जो आधा रास्ता तय कर लेता है, उस पुरुषके शरीरसे वह पापराशि पग-पगपर निकलनेकी इच्छा करती है। यदि भाग्यवश उस महात्माको तीर्थराज प्रयागका दर्शन हो जाता है, तब तो उसके पाप उसी प्रकार शीघ्र भाग जाते हैं, जैसे सूर्योदय होनेपर अन्धकार। सात धातुओंके बने हुए मानवशरीरमें जो-जो पाप हैं, वे केशोंमें आकर ठहरते हैं। अतः केशोंका मुण्डन करा देनेपर वे भी निकल जाते हैं। इस प्रकार निष्पाप होकर, गंगा-यमुनाके श्वेत-श्याम सलिलके संगममें स्नान करना चाहिये। उस स्नानसे मनुष्य महान् पुण्यराशि, मनोवांछित पुण्यमय भोग तथा स्वर्गको भी पाता है और जो निष्काम भावसे स्नान करता है, वह मोक्ष पाता है। ब्रह्मन्!

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

मैं सत्यलोक और प्रयागमें कोई अन्तर नहीं समझता, क्योंकि वहाँ रहकर जो शुभ कर्मोंका अनुष्ठान करते हैं, वे मेरे लोकके निवासी होते हैं। जिस भाग्यवान् मनुष्यकी हड्डियाँ भी प्रयागमें पड़ जाती हैं, उसे किसी जन्ममें लेशमात्र भी दुःख नहीं प्राप्त होता। ब्रह्महत्या आदि पापोंका प्रायश्चित्त करनेकी इच्छावाले पुरुषको ब्राह्मणकी आज्ञा लेकर विधिपूर्वक प्रयागतीर्थका सेवन करना चाहिये।

तीर्थराज प्रयागसे भी श्रेष्ठ तीर्थ है काशी। वह सम्पूर्ण भुवनोंमें सबसे उत्तम है। काशीमें देहावसान होनेसे अनायास मुक्ति होती है। इसमें संशय नहीं कि काशीक्षेत्र प्रयागसे भी अधिक रमणीय है, जहाँ साक्षात् भगवान् विश्वनाथ निवास करते हैं। विश्वनाथजीके निवासस्थान अविमुक्त नामक महाक्षेत्रसे अधिक रमणीय तीर्थ इस ब्रह्माण्डमें कहीं नहीं है। अविमुक्त क्षेत्र ब्रह्माण्डके भीतर रहकर भी ब्रह्माण्डमें नहीं है। इसकी लम्बाई पाँच कोस है। प्रलयकालमें एकार्णवका जल जैसे-जैसे बढ़ता है, वैसे-वैसे इस क्षेत्रको शिवजी ऊपर उठाते जाते हैं। काशीक्षेत्र महादेवजीके त्रिशूलकी नोकपर स्थित है। यह न तो आकाशमें स्थित है और न भूमिपर ही। किंतु मूढबुद्धि मनुष्य इसे इस रूपमें नहीं देख पाते। यहाँ सदा सत्ययुग रहता है, सदा महापर्व लगा रहता है। विश्वनाथजीके निवासस्थानमें ग्रहोंके अस्त-उदयजनित दोषकी प्राप्ति नहीं होती। वहाँ सदा उत्तरायण है, सदा महान् अभ्युदय है और सदैव मंगल है, जहाँ कि भगवान् विश्वनाथकी स्थिति है। विप्रवर! चौदहों भुवनोंकी सृष्टि मैंने ही की है, परंतु इस काशीपुरीके निर्माता साक्षात् भगवान् विश्वनाथ हैं, मैं नहीं। काशीमें देहत्याग करनेवालोंका नियन्त्रण स्वयं भगवान् विश्वनाथ करते हैं। जिन्होंने वहाँ रहकर भी पाप किये हैं, उनको दण्ड देनेवाले कालभैरव हैं। वहाँ कभी किसीको पाप नहीं करना चाहिये, क्योंकि वहाँ पाप करनेवालोंको दारुण रुद्रयातना भोगनी पड़ती है, जो नरकसे भी अधिक दुःसह है। जो मनुष्य दूसरोंकी निन्दा और परस्त्रीकी अभिलाषा करते हैं, उन्हें काशीका सेवन नहीं करना चाहिये; क्योंकि कहाँ काशी और कहाँ वह नरक। जो वहाँ सदा प्रतिग्रह लेकर धन संग्रह करनेकी अभिलाषा रखते हैं अथवा कपटपूर्वक दूसरोंका धन हड़प लेना चाहते हैं, ऐसे लोगोंको भी काशीका सेवन नहीं करना चाहिये। काशीमें रहनेवाले पुरुषको दूसरोंको पीड़ा देनेवाला कर्म सदाके लिये त्याग देना चहिये। यदि वहाँ भी वही करना हो तो दुष्ट चित्तवाले पुरुषोंका काशीमें निवास करना किस कामका है। जो दूसरोंसे द्रोहकी बात सोचते, दूसरोंसे डाह रखते और सदा दूसरोंको सताया करते हैं, उनके लिये काशीपुरी सिद्धिदायक नहीं। इस पृथ्वीपर ज्ञानके बिना कहीं मोक्ष नहीं होता। वह ज्ञान न तो चान्द्रायण आदि व्रतोंसे प्राप्त होता है और न उत्तम देश, कालमें सत्पात्रोंको विधि एवं श्रद्धापूर्वक दिये हुए तुलापुरुष आदि मुख्य-मुख्य दानोंसे ही मिलता है। अहिंसा-ब्रह्मचर्य आदि यमों, शौच-सन्तोषादि नियमों, पूजन आदि सत्कर्मों तथा शरीरको सुखानेवाली कठोर तपस्याओंसे भी उसकी प्राप्ति नहीं होती। गुरुओंद्वारा दिये हुए महामन्त्रोंके जपसे, स्वाध्यायसे, शास्त्रोक्त विधिसे, अग्निहोत्र करनेसे, गुरुओंकी सेवासे, श्राद्धसे, देवपूजासे तथा अनेकों तीर्थोंकी यात्रा करनेसे भी उस ज्ञानकी प्राप्ति नहीं होती; क्योंकि योगके बिना ज्ञान नहीं होता। गुरुके उपदेश किये हुए मार्गसे निरन्तर अभ्यासपूर्वक तत्त्वार्थ विचार करना ही योग है। उस योगमें भी अनेक प्रकारके विघ्न आया करते हैं, अतः एक ही जन्ममें प्रायः ज्ञानकी प्राप्ति नहीं होती, परंतु इस काशीपुरीमें जप, तप और योगके बिना भी एक ही जन्ममें कल्याणकी प्राप्ति हो जाती है। द्विजश्रेष्ठ! तुमने शुद्ध बुद्धिसे काशीतीर्थमें जो कल्याणकारी पुण्यका उपार्जन किया है, उसका भारी फल महान् है। भगवत्पार्षदोंके सामने ही इस प्रकार कहकर ब्रह्माजी मौन हो गये और महामना शिवशर्मा भी बहुत प्रसन्न हुए।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

वैकुण्ठ और कैलासकी स्थिति तथा शिव और विष्णुकी अभिन्नता एवं महत्ताका निरूपण

अगस्त्यजी कहते हैं—तदनन्तर भगवान्‌के पार्षद ब्रह्माजीको प्रणाम करके प्रसन्नतापूर्वक चले और अपने विमानपर बैठकर वैकुण्ठधामके समीप जा पहुँचे। सत्यलोकसे जाते समय शिवशर्माने पुनः पूछा—'भगवत्पार्षदो! अब हमलोग कितनी दूर आये हैं और अभी कितनी दूर और चलना है।'

भगवत्पार्षद बोले—ब्रह्मन्! सूर्य और चन्द्रमाकी किरणोंका प्रकाश जहाँतक जाता है, समुद्र, पर्वत और वनसहित उतनी ही पृथ्वी मानी गयी है। उसके ऊपर आकाश है। पृथ्वीसे एक लाख योजन ऊपर सूर्यकी स्थिति है। पृथ्वीपर समुद्र, द्वीप, पर्वत और वनसहित जो कोई भी वस्तु है, वह सब भूलोकके नामसे विख्यात है। भूलोकसे लेकर सूर्यलोकतक भुवर्लोक कहलाता है। सूर्यसे ध्रुवलोकतक स्वर्गलोक कहलाता है। पृथ्वीसे एक करोड़ योजनकी ऊँचाईपर महर्लोक है, दो करोड़ योजन ऊँचे जनलोक है, चार करोड़ योजनकी ऊँचाईपर तपोलोक और पृथ्वीसे आठ करोड़ योजन ऊँचे सत्यलोक बताया गया है। सत्यलोकसे भी ऊपर वैकुण्ठधाम है, जो पृथ्वीसे सोलह करोड़ योजन ऊपर स्थित है, जहाँ सबको अभयदान करनेवाले साक्षात् भगवान् लक्ष्मीपति निवास करते हैं*। वैकुण्ठकी अपेक्षा सोलहगुनी ऊँचाईपर शिवजीका निवासस्थान कैलासधाम अवस्थित है (अर्थात् वह पृथ्वीसे २ अरब ५६ करोड़ योजनकी दूरीपर स्थित है), जहाँ गिरिराजनन्दिनी उमा, गणेशजी, कार्तिकेयजी तथा नन्दी आदिके साथ कल्याणस्वरूप भगवान् विश्वनाथ विराजमान हैं। लीलास्वरूप धारण करनेवाले उन भगवान्‌का यह सब दृश्यप्रपंच खेलमात्र है। वे सम्पूर्ण विश्वके स्वामीरूपसे विख्यात हैं और यह समस्त जगत् उनकी आज्ञाका पालक है। श्रुतियोंमें साकार, निराकार, सर्वव्यापी, नित्य, सत्य एवं द्वैतरहित कहकर जिस परब्रह्मका प्रतिपादन किया गया है, वे ही भगवान् शिव हैं। वे समस्त कारणोंसे परे एवं परात्पर हैं। उन्हींके विषयमें श्रुतियाँ कहती हैं कि ब्रह्मका स्वरूप परमानन्दमय है। उन भगवान् शिवको वेद भी नहीं जानते, वाणी मनके साथ उनतक न पहुँचकर लौट आती है। वे अपने द्वारा आप ही जानने योग्य हैं, परम ज्योतिःस्वरूप हैं और सबके हृदयमें अन्तर्यामीस्वरूपसे स्थित हैं। योगी पुरुष समाधिमें उनका साक्षात्कार करते हैं। वे वाणीद्वारा अनिर्वचनीय हैं। मायासे अनेक रूप धारण करके वास्तवमें रूपरहित हैं। वे अनन्त हैं, अन्तकस्वरूप हैं। सर्वज्ञ एवं कर्मशून्य हैं। उनका ऐश्वर्यमय स्वरूप इस प्रकार है—वे अर्धचन्द्रका मुकुट धारण करते हैं। उनका कण्ठ तमालके समान श्यामवर्ण है। ललाटमें ज्योतिर्मय नेत्र प्रकाशित होता है। उनके शरीरका वामार्ध भाग नारीके रूपमें सुशोभित होता है। वे अपने हाथोंमें शेषनागका भुजबंद पहनते हैं। गंगाजीकी तरंगोंके संसर्गसे उनकी जटाका तटप्रान्त सदा धुलता रहता है। उनका अंग विभूतिसमूहसे उज्ज्वल प्रतीत होता है। भगवान् रुद्रके पर और अपर (सगुण-निर्गुण अथवा कार्य-कारण) दो रूप हैं, जो सम्पूर्ण जगत्‌को व्याप्त करके स्थित हैं। वे निराकार होकर भी साकार हैं। भगवान् शिव ही भोग और

* दिव्य वैकुण्ठधाम ब्रह्माण्डके अन्तर्गत नहीं, वह सबसे परे शुद्ध सच्चिदानन्दस्वरूप है। भगवान् और उनके परम धाममें कोई अन्तर नहीं है। वह सर्वत्र व्यापक होकर भी त्रिपाद्विभूति परमव्योममें अभिव्यक्त है। भागवतमें उसे मूर्तिमान् कैवल्य बताया गया है—'कैवल्यमिव मूर्तिमत्'। यहाँ जिस वैकुण्ठलोककी चर्चा की गयी है, वह ब्रह्मलोककी ही भाँति कोई अवान्तर लोक है।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

मोक्षके कारण हैं। जैसे शिव हैं वैसे विष्णु हैं, जैसे विष्णु हैं वैसे शिव हैं। शिव और विष्णुमें तनिक भी अन्तर नहीं है*। भगवान् विष्णु शार्ङ्ग धनुष एवं कौमोदकी गदा धारण करके सम्पूर्ण त्रिलोकीका शासन करते हैं और साधुपुरुषोंकी रक्षाके लिये दानवोंका विनाश करते हैं। शिवशर्मन्! अब तुम भगवान् विष्णुके लोकमें निवास करो।

अगस्त्यजी कहते हैं—प्रिये लोपामुद्रे! इस प्रकार शिवशर्मा ब्राह्मण मोक्षपदको प्राप्त हुए। जो इस पुण्यमय उपाख्यानको सुनता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो उत्तम ज्ञानको प्राप्त होता है।

अगस्त्यजीका श्रीशैलपर कार्तिकेयजीकी सेवामें जाना और उनके मुखसे काशीकी महिमा श्रवण करना

व्यासजी कहते हैं—सूत! इस प्रकार काशीकी महिमा सुनाते हुए अगस्त्यजीने अपनी पत्नीके साथ श्रीपर्वतकी परिक्रमा करनेके पश्चात् कार्तिकेयजीके सुन्दर एवं विशाल वनको देखा। वहाँ लोहित नामका पर्वत है। उस पर्वतके समीप मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यने अपनी पत्नीके साथ छः मुखोंवाले साक्षात् कार्तिकेयजीका दर्शन किया और पृथ्वीपर दण्डकी भाँति पड़कर उन्हें साष्टांग प्रणाम किया। तत्पश्चात् हाथ जोड़कर वैदिक सूक्तों तथा अपने बनाये हुए स्तोत्रद्वारा उनकी स्तुति की। स्तुतिके पश्चात् **'नमो नमः'** कहते हुए कार्तिकेयजीकी दो-तीन बार परिक्रमा करके उनके द्वारा बैठनेकी आज्ञा मिलनेपर वे उनके सामने बैठे।

तब कार्तिकेयजीने कहा—देवताओंके मुख्य सहायक मुनिवर अगस्त्यजी! कुशल तो है न? आप यहाँ आये हैं, यह मुझे मालूम हो गया था। विन्ध्याचल पर्वत ऊँचा उठ गया था, इसका भी मुझे पता है। वास्तवमें कुशल तो अविमुक्त नामक महाक्षेत्रमें ही है, जो भगवान् त्रिलोचनद्वारा सुरक्षित है और जहाँ साक्षात् भगवान् शिव मरे हुए प्राणियोंको मोक्षदान करते हैं। भूलोक, भुवर्लोक तथा स्वर्लोकमें अथवा पातालमें या महर्लोक आदि ऊपरके लोकोंमें भी मैंने वैसा उत्तम क्षेत्र कहीं नहीं देखा है। मुने! यद्यपि मैं अकेला ही सर्वत्र विचरता रहता हूँ तथापि काशीक्षेत्रकी प्राप्तिके लिये यहाँ तपस्या करता हूँ। किंतु आजतक मेरा मनोरथ सफल नहीं हुआ। पुण्य, दान, जप, तप तथा नाना प्रकारके यज्ञोंद्वारा काशीक्षेत्र मिलनेवाला नहीं है। उसकी प्राप्ति तो केवल श्रीमहादेवजीके अनुग्रहसे होती है। अत्यन्त दुर्लभ काशीपुरीका निवास केवल ईश्वरके अनुग्रहसे ही सुलभ है। शरीर प्रतिदिन बूढ़ा होता जाता है, इन्द्रियाँ जराजर्जर हो रही हैं और आयुरूपी मृगको मृत्युरूपी शिकारी अपना निशाना बनाना ही चाहता है। ऐसी दशामें सम्पत्तिको विपत्ति जानकर और आयुको विद्युत्के समान चपल मानकर मनुष्य काशीपुरीका भलीभाँति सेवन करे। जबतक जीवनका अन्त न हो जाय, तबतक काशी न छोड़े। अहो! बुढ़ापा निकट आ गया है, रोग अत्यन्त पीड़ा दे रहे हैं तथापि नाना प्रकारकी चेष्टाओंमें लगा हुआ देहधारी जीव काशीका सेवन करना नहीं चाहता! अर्थोपार्जनका उपाय किये बिना भी धन प्राप्त हो सकता है, यह एक निश्चित बात है। अतः धनकी चिन्ता छोड़कर एकमात्र धर्मकी शरण ले। धर्मसे स्वर्ग भी सुलभ है, परंतु एक काशीपुरी अत्यन्त दुर्लभ है। पाशुपतयोग मोक्षका साधन है। प्रयागमें गंगा-यमुनाके संगमका सेवन भी मुक्तिप्रद है तथा उससे भी बढ़कर अविमुक्त क्षेत्र है, जो अनायास

* यथा शिवस्तथा विष्णुर्यथा विष्णुस्तथा शिवः। अन्तरं शिवविष्णोश्च मनागपि न विद्यते॥ (स्क० पु०, का० पू० २३। ४१)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

मोक्ष देनेवाला है। प्रतिदिन अविच्छिन्नरूपसे वेदोंका पाठ, मन्त्रोंका जप, अग्निहोत्र, दान, अनेक प्रकारके यज्ञ, देवताओंकी उपासना, त्रिरात्र अथवा पंचरात्र आदि आगमोक्त विधिसे आराधना, सांख्य, योग और श्रीविष्णुकी आराधना—ये सभी श्रेष्ठ कर्म मोक्षके साधन बताये गये हैं। अयोध्या, मथुरा आदि पुरियाँ भी मरे हुए जीवोंको मोक्ष देनेवाली बतायी गयी हैं। ये सभी कैवल्य मोक्षके साधन हैं, इसमें सन्देह नहीं। अन्य तीर्थ काशीकी प्राप्ति कराते हैं और काशीको प्राप्त होकर मनुष्य मुक्त हो जाता है। इसीलिये वह पवित्र क्षेत्र इस ब्रह्माण्डमण्डलमें भगवान् विश्वनाथको सदा प्रिय है। सुव्रत! मैं तो काशीसे आनेवाली वायुका भी स्पर्श चाहता हूँ। तुम तो साक्षात् काशीमें रहकर आये हो। जो जितेन्द्रिय होकर तीन रात भी काशीमें निवास करते हैं, उनकी चरणधूलिका स्पर्श अवश्य ही पवित्र कर देता है। तुम तो वहाँके निवासी ही थे, अतः तुम्हारे लिये क्या कहना है।

यों कहकर कार्तिकेयजीने अगस्त्य मुनिके सब अंगोंका स्पर्श किया और ऐसा करके उन्होंने अमृतके सरोवरमें स्नान करनेका सुख पाया। तत्पश्चात् 'जय विश्वनाथ' ऐसा कहकर उन्होंने अपने दोनों नेत्र बंद कर लिये और एक क्षणतक भगवान् शिवके अनिर्वचनीय स्वरूपका ध्यान किया। ध्यानसे निवृत्त होनेपर उनसे अगस्त्यजीने पूछा—'स्वामिन्! आप मुझसे काशीकी महिमा कहिये। वह क्षेत्र मुझे बहुत प्रिय है।'

स्कन्द बोले—अगस्त्यजी! काशीक्षेत्र इस लोकमें अत्यन्त गोपनीय बताया गया है। वहाँ सब प्रकारकी सिद्धि सन्निकट है; क्योंकि उसमें साक्षात् परमेश्वर सदा निवास करते हैं। काशीक्षेत्र आकाशमें स्थित है। वह इस भूलोकसे संलग्न नहीं है, किंतु इस बातको केवल योगीजन देख पाते हैं, अयोगी नहीं। जो पलभर भी अविमुक्त क्षेत्रके प्रति अतिशय भक्ति-भाव धारण करता है, उसने मानो ब्रह्मचर्यपालनपूर्वक बड़ी भारी तपस्या कर ली। उसके द्वारा शिवसम्बन्धी सम्पूर्ण दिव्य व्रतोंका पालन हो जाता है। जो एक वर्षतक काशीमें क्रोधको जीतकर इन्द्रियसंयमपूर्वक रहता है, दूसरेके धनसे अपने शरीरका पोषण न करके पराये अन्नका परित्याग करता है, परनिन्दासे बचता है और प्रतिदिन कुछ-न-कुछ दान करता रहता है, उसने पूर्वजन्ममें सहस्रों वर्षोंतक बड़ी भारी तपस्या की है, ऐसा मानना चाहिये। जो काशीक्षेत्रके माहात्म्यको जाननेवाला मनुष्य जीवनभर काशीवास करता है, वह जन्म-मृत्युका भय छोड़कर परम गतिको प्राप्त होता है। जो मृत्युपर्यन्त काशीका परित्याग नहीं करता, उसकी केवल ब्रह्महत्या ही नहीं दूर होती, अविद्या भी दूर हो जाती है। जो अनन्यचित्त होकर काशीक्षेत्रको नहीं छोड़ता, वह जरा-मृत्यु तथा गर्भवासके अत्यन्त दुःसह दुःखको त्याग देता है। जो बुद्धिमान् मानव इस पृथ्वीपर फिर जन्म लेना नहीं चाहता, वह देवताओं तथा ऋषियोंद्वारा सेवित काशीक्षेत्रका कभी त्याग न करे। अन्तकालमें वातसे पीड़ित हुए मनुष्यके मर्मस्थान जब विदीर्ण होने लगते हैं, उस समय वह अपनी सुध-बुध खो बैठता है। इसी समय साक्षात् भगवान् विश्वनाथ प्राणत्यागकालमें उपस्थित हो उस मुमूर्षु जीवको तारक मन्त्रका उपदेश देते हैं, जिससे वह शिवस्वरूप हो जाता है। अतः अतिशय पापोंसे भरे हुए इस मानव-शरीरको अनित्य जानकर मनुष्य संसारभयका नाश करनेवाले काशीक्षेत्रका सेवन करे। जो विघ्नोंसे आहत होनेपर भी काशीक्षेत्रका त्याग नहीं करता, वह मोक्ष-सम्पत्तिको पाकर ऐसी स्थितिमें पहुँच जाता है, जहाँ दुःखका सर्वथा अभाव है। अतः कौन ऐसा बुद्धिमान् पुरुष है, जो बड़े-बड़े पापपुंजका नाश तथा पुण्योंकी वृद्धि करनेवाली और अन्तमें भोग एवं मोक्ष देनेवाली काशीपुरीका सेवन न करेगा? अविमुक्त क्षेत्रके माहात्म्यका मैं केवल छः मुखोंसे किस प्रकार वर्णन कर सकता हूँ, जब कि शेषनाग सहस्र मुखोंसे भी उसका वर्णन करनेमें असमर्थ हैं।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

काशीकी उत्पत्ति-कथा, काशी और मणिकर्णिकाका माहात्म्य

अगस्त्यजीने पूछा—भगवन्! यह अविमुक्त क्षेत्र इस भूतलपर कबसे प्रसिद्ध हुआ और किस प्रकार यह मोक्ष देनेवाला हुआ?

स्कन्द बोले—मुने! मेरे पिता महादेवजीने माता पार्वतीको इसी प्रश्नका उत्तर इस प्रकार दिया था—'महाप्रलयकालमें समस्त चराचर प्राणी नष्ट हो गये थे। सर्वत्र अन्धकार छा रहा था। सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह, नक्षत्र, दिन, रात आदि कुछ भी नहीं था। केवल वह सत्स्वरूप ब्रह्म ही शेष था, जिसका श्रुति **'एकमेवाद्वितीयम्'** कहकर वर्णन करती है। वह मन और वाणीका विषय नहीं है। उसका न कोई नाम है, न रूप। वह सत्य, ज्ञान, अनन्त, आनन्दस्वरूप एवं परम प्रकाशमय है। वहाँ किसी भी प्रमाणकी पहुँच नहीं है। वह आधाररहित, निर्विकार एवं निराकार है। निर्गुण, योगिगम्य, सर्वव्यापी, एकमात्र कारण, निर्विकल्प, कर्मोंके आरम्भोंसे रहित, मायासे परे और उपद्रवशून्य है। जिस परमात्माके लिये इस प्रकार विशेषण दिये जाते हैं, वह कल्पान्तमें अकेला ही था। कल्पके आदिमें उसके मनमें यह संकल्प हुआ कि 'मैं एकसे दो हो जाऊँ।' अत: यद्यपि वह निराकार है तो भी उसने अपनी लीलाशक्तिसे साकाररूप धारण किया। परमेश्वरके संकल्पसे प्रकट हुई वह द्वितीय मूर्ति सम्पूर्ण ऐश्वर्य-गुणोंसे युक्त, सर्वज्ञानमयी, शुभ, सर्वव्यापक, सर्वस्वरूप, सबकी साक्षी, सबको उत्पन्न करनेवाली और सबके लिये एकमात्र वन्दनीय थी। प्रिये! उस निराकार परब्रह्मकी वह मूर्ति मैं ही हूँ। प्राचीन और अर्वाचीन विद्वान् मुझे ईश्वर कहते हैं। तदनन्तर साकाररूपमें प्रकट होकर भी मैं अकेला ही स्वेच्छानुसार विहार करता रहा। फिर अपने शरीरसे कभी अलग न होनेवाली तुम प्रकृतिको मैंने अपने ही विग्रहसे प्रकट किया। तुम्हीं प्रधान, प्रकृति और गुणवती माया हो। तुम्हें बुद्धितत्त्वकी जननी तथा निर्विकार बताया जाता है। फिर एक ही समय मुझ कालस्वरूप आदिपुरुषने तुम शक्तिके साथ उस काशीक्षेत्रको भी प्रकट किया।

स्कन्द कहते हैं—मुने! वह शक्ति प्रकृति कही गयी है और ईश्वरको परम पुरुष कहा गया है। वे दोनों परमानन्दस्वरूपसे उस परमानन्दमय काशीक्षेत्रमें रमण करने लगे। उस क्षेत्रका परिमाण पाँच कोसका बताया गया है। मुने! प्रलयकालमें भी उन दोनों (शिव-पार्वती)-ने उस क्षेत्रका कभी त्याग नहीं किया है, इसलिये उसे 'अविमुक्त' क्षेत्र कहते हैं। जब यह भूमण्डल नहीं रहता और जब जलकी भी सत्ता नहीं रह जाती, उस समय अपने विहारके लिये जगदीश्वर शिवने इस क्षेत्रका निर्माण किया है। कुम्भज! काशीक्षेत्रके इस रहस्यको कोई नहीं जानता। यह काशीक्षेत्र भगवान् शिवके आनन्दका हेतु है, इसलिये उन्होंने पहले इसका नाम 'आनन्दवन' रखा था। उस आनन्दकाननमें इधर-उधर जो सम्पूर्ण शिवलिंग हैं, उन्हें आनन्दकन्दके बीजोंके अंकुरकी भाँति जानना चाहिये। तदनन्तर भगवान् शिवने सच्चिदानन्दरूपिणी जगदम्बाके साथ अपने बायें अंगमें अमृतकी वर्षा करनेवाली दृष्टि डाली। तब उससे एक त्रिभुवनसुन्दर पुरुष प्रकट हुआ, जो परम शान्त, सत्त्वगुणसे पूर्ण, समुद्रसे भी अधिक गम्भीर और क्षमावान् था। उसके अंगोंकी कान्ति इन्द्रनीलमणिके समान श्याम थी। नेत्र विकसित कमलदलके समान सुन्दर थे। उसने सुवर्णरंगके दो सुन्दर पीताम्बरोंसे अपने शरीरको आच्छादित कर रखा था। वह सुन्दर एवं प्रचण्ड युगल बाहुदण्डोंसे सुशोभित था। उसके नाभिकमलसे बड़ी उत्तम सुगन्ध फैल रही थी। वह अकेला ही सम्पूर्ण गुणोंका आश्रय और अकेला ही समस्त कलाओंकी निधि था। वह एक ही सब पुरुषोंसे उत्तम था, इसलिये 'पुरुषोत्तम' कहलाया। तत्पश्चात् महामहिमासे विभूषित उस महान् पुरुषको देखकर

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

महादेवजीने कहा—'अच्युत! तुम महाविष्णु हो, तुम्हारे नि:श्वाससे वेद प्रकट होंगे और उनसे तुम सब कुछ जानोगे।' उनसे ऐसा कहकर भगवान् शिव शिवाके साथ पुन: आनन्दकाननमें प्रवेश कर गये।

तत्पश्चात् भगवान् विष्णुने क्षणभर ध्यानमें तत्पर हो तपस्यामें ही मन लगाया। उन्होंने अपने चक्रसे एक सुन्दर पुष्करिणी खोदकर उसे अपने शरीरके

पसीनेके जलसे भर दिया। फिर उसीके किनारे घोर तपस्या की। तब शिवजी पार्वतीजीके साथ वहाँ प्रकट हुए और बोले—'महाविष्णो! वर माँगो।'

श्रीविष्णु बोले—देवदेव महेश्वर! यदि आप प्रसन्न हैं तो मैं सदा भवानीसहित आपका दर्शन करना चाहता हूँ।

भगवान् शिव बोले—'एवमस्तु'। जनार्दन! इस स्थानपर मेरी मणिजटित कर्णिका (मणिमय कुण्डल) गिर पड़ी है, इसलिये इस तीर्थका नाम मणिकर्णिका हो।

श्रीविष्णुने कहा—प्रभो! यहाँ मुक्तामय कुण्डल गिरनेसे यह उत्तम तीर्थ मुक्तिका प्रधान क्षेत्र हो। यहाँ शिवस्वरूप अनिर्वचनीय ज्योति प्रकाशित होती है, इसलिये इसका दूसरा नाम 'काशी' प्रसिद्ध हो। चार प्रकारके जीवसमुदायमें ब्रह्मासे लेकर कीटतक जितने भी जीव हैं, वे सब काशीमें मरनेपर मोक्षको प्राप्त हों तथा इस मणिकर्णिका नामक श्रेष्ठ तीर्थमें स्नान, सन्ध्या, जप, होम, वेदाध्ययन, तर्पण, पिण्डदान, गौ, भूमि, तिल, सुवर्ण, अश्व, दीप, अन्न, वस्त्र, आभूषण और कन्या—इन सबका दान, अनेक यज्ञ, व्रतोद्यापन, वृषोत्सर्ग और शिवलिंग आदिकी स्थापना—इत्यादि शुभकर्मोंको जो बुद्धिमान् मनुष्य करे, उसके उस कर्मका फल मोक्ष हो। जो है, जो होगा और जो हो चुका है, उन सबसे यह क्षेत्र अधिक एवं शुभोदयकारी हो। काशीका नाम लेनेवाले लोगोंके भी पापका सदा ही क्षय हो।

श्रीमहादेवजी बोले—महाबाहु विष्णु! तुम नाना प्रकारकी यथायोग्य सृष्टि करो और जो पापके मार्गपर चलनेवाले दुष्टात्मा हैं, उनका संहार करनेमें कारण बनो। यह पाँच-पाँच कोसका लम्बा-चौड़ा क्षेत्र काशीधाम मुझे बहुत प्रिय है। यहाँ केवल मेरी आज्ञा चल सकती है, यमराज आदि दूसरोंकी नहीं। अविमुक्त क्षेत्रमें निवास करनेवाले पापी जीवोंका भी मैं ही शासक हूँ, दूसरा नहीं। काशीसे सौ योजन दूर रहकर भी जो इस क्षेत्रका मन-ही-मन स्मरण करता है, वह पापोंसे पीड़ित नहीं होता। काशीमें पहुँचकर मनुष्य उसके पुण्यसे मोक्षपदका भागी होता है। जो मन-इन्द्रियोंको वशमें रखकर काशीमें बहुत समयतक निवास करके भी दैवयोगसे अन्यत्र मृत्युको प्राप्त होता है, वह भी स्वर्गीय सुख भोगकर अन्तमें काशीको प्राप्त हो मोक्षसम्पत्तिको पा लेता है। जो भगवान् विश्वनाथकी प्रसन्नताके लिये काशीमें न्यायपूर्वक धन देता है, अथवा निधन (मृत्यु)-को प्राप्त होता है, वह धन्य है और वही धर्मका ज्ञाता है। पाँच कोसका लम्बा-चौड़ा सम्पूर्ण अविमुक्त क्षेत्र विश्वनाथ नामसे प्रसिद्ध एक ज्योतिर्लिंगस्वरूप है, ऐसा जानना चाहिये। जैसे आकाशके एक देशमें स्थित होनेपर भी सर्वगत सूर्यमण्डल सबको दिखायी देता

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

है, उसी प्रकार विश्वनाथ केवल काशीमें स्थित होकर भी सर्वव्यापी होनेके कारण सर्वत्र उपलब्ध होते हैं। जो क्षेत्रकी महिमाको नहीं जानता, जिसमें श्रद्धाका सर्वथा अभाव है, वह भी यदि समयानुसार काशीमें प्रवेश कर गया, तो निष्पाप हो जाता है और यदि वहाँ उसकी मृत्यु हो गयी तो वह भी मोक्ष प्राप्त कर लेता है। काशीमें पाप करके भी मनुष्य यदि काशीमें ही मर जाय तो पहले रुद्रपिशाच होकर वह पुनः मुक्तिको प्राप्त कर लेगा। इस शरीरको नाशवान् जानकर और गर्भवासके समय होनेवाली वेदनाको याद करके धन-धान्यसे सम्पन्न राज्यको भी त्यागकर निरन्तर काशीपुरीका सेवन करना चाहिये। अभी मैं नौजवान हूँ, अभी मेरी मृत्यु बहुत दूर है, ऐसी बात चित्तमें कभी नहीं लानी चाहिये। वृद्धावस्थाको प्राप्त होनेके पहले ही पुरानी झोंपड़ीकी तरह अपने तुच्छ गृहको त्यागकर शीघ्र शंकरजीकी पुरी काशीकी यात्रा करनी चाहिये।

श्रीगंगाजीकी महिमा

श्रीमहादेवजी कहते हैं—विष्णो! सूर्यवंशके महातेजस्वी परम धार्मिक राजा भगीरथ अपने पितामहोंका उद्धार करनेकी इच्छासे तपस्याके लिये पर्वतश्रेष्ठ हिमवान्‌को गये। हरे! ब्राह्मणकी शापाग्निसे दग्ध होकर बड़ी भारी दुर्गतिमें पड़े हुए जीवोंको गंगाके सिवा दूसरा कौन स्वर्गलोकमें पहुँचा सकता है, क्योंकि वह शुद्ध, विद्यास्वरूपा, इच्छा, ज्ञान एवं क्रियारूप तीन शक्तियोंवाली, दयामयी, आनन्दामृतरूपा तथा शुद्ध धर्मस्वरूपिणी हैं। जगद्धात्री परब्रह्मस्वरूपिणी गंगाको मैं अखिल विश्वकी रक्षा करनेके लिये लीलापूर्वक अपने मस्तकपर धारण करता हूँ। विष्णो! जो गंगाजीका सेवन करता है, उसने सब तीर्थोंमें स्नान कर लिया, सब यज्ञोंकी दीक्षा ले ली और सम्पूर्ण व्रतोंका अनुष्ठान पूरा कर लिया। कलियुगमें कलुषित चित्तवाले, पराये धनका लोभ रखनेवाले तथा विधिहीन कर्म करनेवाले मनुष्योंके लिये गंगाजीके बिना दूसरी कोई गति नहीं है। जो दूर रहकर भी गंगाजीके माहात्म्यको जानता है और भगवान् गोविन्दमें भक्ति रखता है, वह अयोग्य हो तो भी गंगा उसपर प्रसन्न होती हैं। अज्ञान, राग और लोभ आदिसे मोहित चित्तवाले पुरुषोंकी धर्म और गंगामें विशेष श्रद्धा नहीं होती। गंगाके गर्भमें मेरा तेजस्वरूप अग्नि है, वह मेरे वीर्यसे सुरक्षित है। अतएव सब दोषोंको जलानेवाली तथा सम्पूर्ण पापोंका नाश करनेवाली है। जैसे वज्रका मारा हुआ पर्वत सैकड़ों टुकड़ोंमें बिखर जाता है, उसी प्रकार पापोंका समूह गंगाके स्मरणमात्रसे शतधा नष्ट हो जाता है। जो चलते, खड़े होते, जप और ध्यान करते, खाते-पीते, जागते-सोते तथा बात करते समय भी सदा गंगाजीका स्मरण करता रहता है, वह संसार-बन्धनसे मुक्त हो जाता है[१]। जो पितरोंके उद्देश्यसे भक्तिपूर्वक गुड़, घी और तिलके साथ मधुयुक्त खीर गंगामें डालते हैं, उसके पितर सौ वर्षतक तृप्त बने रहते हैं और वे सन्तुष्ट होकर अपनी सन्तानोंको नाना प्रकारकी मनोवांछित वस्तुएँ प्रदान करते हैं। जैसे बिना इच्छाके भी स्पर्श करनेपर आग जला ही देती है, उसी प्रकार अनिच्छासे भी अपने जलमें स्नान करनेपर गंगा मनुष्यके पापोंको भस्म कर देती हैं[२]। जो गंगा-स्नानके लिये उद्यत होकर चलता है और मार्गमें ही मर जाता है, वह

१. गच्छंस्तिष्ठन् जपन् ध्यायन् भुञ्जन् जाग्रत् स्वपन् वदन्। यः स्मरेत् सततं गङ्गां स हि मुच्येत बन्धनात्॥
(स्क० पु०, का० पू० २७ । ३७)

२. अनिच्छयापि संस्पृष्टो दहनो हि यथा दहेत्। अनिच्छयापि संस्नाता गङ्गा पापं तथा दहेत्॥
(स्क० पु०, का० पू० २७ । ४९)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

भी निःसन्देह गंगा-स्नानका फल पाता है। जो लोग खोटी बुद्धिवाले, दुराचारी, कोरा तर्क करनेवाले और अधिक सन्देह रखनेवाले मोहित मनुष्य हैं, वे गंगाको अन्य साधारण नदियोंके समान ही देखते हैं। जैसे क्रोधसे तपका, कामसे बुद्धिका, अन्यायसे लक्ष्मीका, अभिमानसे विद्याका तथा पाखण्ड, कुटिलता और छल-कपटसे धर्मका नाश होता है, उसी प्रकार गंगाजीके दर्शनमात्रसे सब पाप नष्ट हो जाते हैं। जैसे मन्त्रोंमें ॐकार, धर्मोंमें अहिंसा और कमनीय वस्तुओंमें लक्ष्मी श्रेष्ठ हैं तथा जिस प्रकार विद्याओंमें आत्मविद्या और स्त्रियोंमें गौरीदेवी उत्तम हैं, उसी प्रकार सम्पूर्ण तीर्थोंमें गंगातीर्थ विशेष माना गया है। हरे! जो परम बुद्धिमान् मनुष्य तुममें और मुझमें भेद-भाव नहीं करता, वही शिवभक्त जानने योग्य है। अनेक रूपवाले पितर सदा यह गाथा गाते हैं कि 'क्या हमारे कुलमें भी कोई गंगा नहानेवाला होगा, जो विधि और श्रद्धाके साथ गंगा-स्नान कर देवताओं तथा ऋषियोंका भलीभाँति तर्पण करके दीनों, अनाथों और दुःखियोंको तृप्त करते हुए हमारे निमित्त जलांजलि देगा? हमारे कुलमें कोई ऐसा पुरुष उत्पन्न हो, जो भगवान् शिव और विष्णुमें समान दृष्टि रखते हुए उनके लिये मन्दिर बनवावे और भक्तिपूर्वक उस मन्दिरमें झाड़ू देने आदिका कार्य करे।' जो गंगाका सेवन करता है, वही मुनि है और वही पण्डित है। वह धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष—चारों पुरुषार्थोंकी सिद्धि करके कृतार्थ जानने योग्य है। गंगास्नान करनेके लिये तिथि, नक्षत्र और पूर्व आदि दिशाका विचार नहीं करना चाहिये; क्योंकि गंगामें स्नान करनेमात्रसे समस्त संचित पापका नाश हो जाता है। जो प्रतिदिन आदरसे गंगाजीका माहात्म्य सुनते हैं, उन्हें गंगा-स्नानका फल होता है। जो पितरोंके उद्देश्यसे गंगाजलके द्वारा शिवलिंगको स्नान कराते हैं, उनके पितर यदि बड़े भारी नरकमें पड़े हों तो भी तृप्त हो जाते हैं। जो एक बार भी ताँबेके पात्रमें रखे हुए अष्टद्रव्ययुक्त गंगाजलसे भगवान् सूर्यको अर्घ्य देते हैं, वे अपने पितरोंके साथ सूर्यलोकमें जाकर प्रतिष्ठित होते हैं। जल, दूध, कुशका अग्रभाग, घी, मधु, गायका दही, लाल कनेर तथा लाल चन्दन—इन आठ अंगोंसे युक्त अष्टांग अर्घ्य बताया गया है, जो सूर्यदेवको अधिक सन्तुष्ट करनेवाला है[१]। चन्द्रमा और सूर्यके ग्रहणमें, व्यतीपात योगमें, विषुवयोगमें[२] तथा दोनों अयनोंमें (मकर और कर्ककी संक्रान्तिके दिन) किया हुआ गंगा-स्नान लाखगुना पुण्य देनेवाला होता है। यदि सोमवारको चन्द्रग्रहण तथा रविवारको सूर्यग्रहण हो तो वह चूड़ामणि नामक पर्व कहलाता है। उसमें किया हुआ गंगा-स्नान असंख्य पुण्यदायक है। ज्येष्ठमासके शुक्ल पक्षमें हस्त नक्षत्रयुक्त दशमी तिथिको स्त्री हो या पुरुष भक्तिभावसे गंगाजीके तटपर रात्रिमें जागरण करे और दस प्रकारके दस-दस सुगन्धित पुष्प, फल, नैवेद्य, दस दीप और दशांग धूपके द्वारा बुद्धिमान् पुरुष श्रद्धा और विधिके साथ दस बार गंगाजीकी पूजा करे। गंगाजीके जलमें घृतसहित तिलोंकी दस अंजलि डाले। फिर गुड़ और सत्तूके दस पिण्ड बनाकर उन्हें भी गंगाजीमें डाले। यह सब कार्य मन्त्रद्वारा होना चाहिये। मन्त्र इस प्रकार है—'**ॐ नमः शिवायै नारायण्यै दशहरायै गंगायै स्वाहा।**' यह बीस अक्षरका मन्त्र है। गंगाजीके लिये पूजा, दान, जप, होम सब इसी मन्त्रसे करने योग्य है। इस प्रकार मन्त्रोच्चारणके साथ धूप, दीप आदि समर्पण करते हुए पूजा करके मुझ शिवका, तुम

१- आपः क्षीरं कुशाग्राणि घृतं मधु गवां दधि । रक्तानि करवीराणि रक्तचन्दनमित्यपि॥
अष्टाङ्गार्घ्योऽयमुद्दिष्टस्त्वतीव रवितोषणः॥
(स्क० पु०, का० पू० २७। ९८-९९)

२- ज्योतिषके अनुसार वह समय जब कि सूर्य विषुवरेखापर पहुँचता है और दिन-रात दोनों बराबर होते हैं, विषुवयोग कहलाता है। ऐसा समय वर्षमें दो बार आता है। एक तो सौर चैत्रमासकी नवमी तिथिको और दूसरा सौर आश्विनकी नवमी तिथिको।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

विष्णुका, ब्रह्माका, सूर्यका, हिमवान् पर्वतका और राजा भगीरथका भलीभाँति पूजन करे। दस ब्राह्मणोंको आदरपूर्वक दस सेर तिल दे। इस प्रकार विधानसे पूजा सम्पन्न करके दिनभर उपवास करनेवाला पुरुष निम्नांकित दस पापोंसे मुक्त हो जाता है। बिना दी हुई वस्तुको लेना, निषिद्ध हिंसा, परस्त्री-संगम—यह तीन प्रकारका दैहिक पाप माना गया है। कठोर वचन मुँहसे निकालना, झूठ बोलना, सब ओर चुगली करना और अंट-संट बातें बकना—ये वाणीसे होनेवाले चार प्रकारके पाप हैं। दूसरेके धनको लेनेका विचार करना, मनसे दूसरोंका बुरा सोचना और असत्य वस्तुओंमें आग्रह रखना—ये तीन प्रकारके मानसिक पाप कहे गये हैं *। पूर्वोक्त प्रकारसे दान-पूजा और व्रत करनेवाला पुरुष दस जन्मोंमें उपार्जित इन दस प्रकारके पापोंसे निःसन्देह छूट जाता है।

तदनन्तर गंगाजीके सम्मुख श्रद्धापूर्वक इस स्तोत्रको पढ़े—'ॐ' शिवस्वरूपा श्रीगंगाजीको नमस्कार है। कल्याणदायिनी गंगाको नमस्कार है। देवि गंगे! आप विष्णुरूपिणी हैं, आपको नमस्कार है। ब्रह्मस्वरूपा! आपको नमस्कार है, रुद्ररूपिणी! आपको नमस्कार है। शंकरप्रिया! आपको नमस्कार है, नमस्कार है। देवस्वरूपिणी! आपको नमस्कार है। ओषधिरूपा! आपको नमस्कार है। आप सबके सम्पूर्ण रोगोंकी श्रेष्ठ वैद्या हैं, आपको नमस्कार है। स्थावर और जंगम प्राणियोंसे प्रकट होनेवाले विषका आप नाश करनेवाली हैं। आपको नमस्कार है। संसाररूपी विषका नाश करनेवाली जीवनरूपा आपको नमस्कार है। आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक—तीनों प्रकारके क्लेशोंका संहार करनेवाली आपको नमस्कार है। प्राणोंकी स्वामिनी आपको नमस्कार है, नमस्कार है। शान्तिका विस्तार करनेवाली शुद्धस्वरूपा आपको नमस्कार है। सबको शुद्ध करनेवाली तथा पापोंकी शत्रुस्वरूपा आपको नमस्कार है। भोग, मोक्ष तथा कल्याण प्रदान करनेवाली आपको बार-बार नमस्कार है। भोग और उपभोग देनेवाली भोगवती नामसे प्रसिद्ध आप पातालगंगाको नमस्कार है। मन्दाकिनी नामसे प्रसिद्ध तथा स्वर्ग प्रदान करनेवाली आप आकाशगंगाको बार-बार नमस्कार है। आप भूतल, आकाश और पाताल—तीन मार्गोंसे जानेवाली और तीनों लोकोंकी आभूषणस्वरूपा हैं, आपको बार-बार नमस्कार है। गंगाद्वार, प्रयाग और गंगासागर-संगम—इन तीन विशुद्ध तीर्थस्थानोंमें विराजमान आपको नमस्कार है। क्षमावती आपको नमस्कार है। गार्हपत्य, आहवनीय और दक्षिणाग्निरूप त्रिविध अग्नियोंमें स्थित रहनेवाली तेजोमयी आपको बार-बार नमस्कार है। आप ही अलकनन्दा हैं, आपको नमस्कार है। शिवलिंग धारण करनेवाली आपको नमस्कार है। सुधाधारामयी आपको नमस्कार है। जगत्‌में मुख्य सरितारूप आपको नमस्कार है। रेवती-नक्षत्ररूपा आपको नमस्कार है। बृहती नामसे प्रसिद्ध आपको नमस्कार है। लोकोंको धारण करनेवाली आपको नमस्कार है। सम्पूर्ण विश्वके लिये मित्ररूपा आपको नमस्कार है। सबको समृद्धि देकर आनन्दित करनेवाली आपको बारंबार नमस्कार है। आप पृथ्वीरूपा हैं, आपको नमस्कार है। आपका जल कल्याणमय है और आप उत्तम धर्मस्वरूपा हैं, आपको नमस्कार है, नमस्कार है। बड़े-छोटे सैकड़ों प्राणियोंसे सेवित आपको नमस्कार है। सबको तारनेवाली आपको नमस्कार है, नमस्कार है। संसार-बन्धनका उच्छेद करनेवाली अद्वैतरूपा आपको नमस्कार है। आप परम शान्त, सर्वश्रेष्ठ

* अदत्तानामुपादानं हिंसा चैवाविधानतः। परदारोपसेवा च कायिकं त्रिविधं स्मृतम्॥
पारुष्यमनृतं चैव पैशुन्यं चैव सर्वशः। असम्बद्धप्रलापश्च वाङ्मयं स्याच्चतुर्विधम्॥
परद्रव्येष्वभिध्यानं मनसानिष्टचिन्तनम्। वितथाभिनिवेशश्च मानसं त्रिविधं स्मृतम्॥
(स्क० पु०, का० पू० २७। १५२—१५४)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

तथा मनोवांछित वर देनेवाली हैं, आपको बारंबार नमस्कार है। आप प्रलयकालमें उग्ररूपा हैं, अन्य समयमें सदा सुखका भोग करानेवाली हैं तथा उत्तम जीवन प्रदान करनेवाली हैं, आपको नमस्कार है। आप ब्रह्मनिष्ठ, ब्रह्मज्ञान देनेवाली तथा पापोंका नाश करनेवाली हैं, आपको बार-बार नमस्कार है। प्रणतजनोंकी पीड़ाका नाश करनेवाली जगन्माता आपको नमस्कार है। आप समस्त विपत्तियोंकी शत्रुभूता तथा सबके लिये मंगलस्वरूपा हैं, आपके लिये बार-बार नमस्कार है। शरणागतों, दीनों तथा पीड़ितोंकी रक्षामें संलग्न रहनेवाली और सबकी पीड़ा दूर करनेवाली देवि नारायणि! आपको नमस्कार है। आप पाप-ताप अथवा अविद्यारूपी मलसे निर्लिप्त, दुर्गम दुःखका नाश करनेवाली तथा दक्ष हैं, आपको बारंबार नमस्कार है। आप पर और अपर सबसे परे हैं। मोक्षदायिनी गंगे! आपको नमस्कार है। गंगे! आप मेरे आगे हों, गंगे! आप मेरे पीछे रहें, गंगे! आप मेरे उभयपार्श्वमें स्थित हों तथा गंगे! मेरी आपमें ही स्थिति हो। आकाशगामिनी कल्याणमयी गंगे! आदि, मध्य और अन्तमें सर्वत्र आप हैं। गंगे! आप ही मूल-प्रकृति हैं, आप ही परम पुरुष हैं तथा आप ही परमात्मा शिव हैं; शिवे! आपको नमस्कार है*। जो श्रद्धापूर्वक इस स्तोत्रको पढ़ता और सुनता है, वह मन, वाणी और शरीरद्वारा होनेवाले पूर्वोक्त दस प्रकारके पापोंसे मुक्त हो जाता है। यह स्तोत्र जिसके घरमें लिखकर रखा हुआ हो, उसे कभी अग्नि, चोर और सर्प आदिका भय नहीं होता। ज्येष्ठमासके शुक्ल पक्षमें हस्त नक्षत्रसहित दशमी तिथिका यदि बुधवारसे योग हो, तो उस दिन गंगाजीके जलमें खड़ा होकर जो दस बार इस स्तोत्रका पाठ करता है, वह दरिद्र हो या असमर्थ, वह भी उसी फलको प्राप्त होता है, जो पूर्वोक्त विधिसे यत्नपूर्वक गंगाजीकी पूजा करनेपर उपलब्ध होनेवाला बताया गया है। विष्णो! जैसे मैं हूँ, वैसे तुम हो, जैसे तुम हो, वैसी उमादेवी हैं और जैसी उमादेवी हैं, वैसी गंगा हैं। इन चारों रूपोंमें भेद नहीं है।

---

* ॐ नमः शिवायै गंगायै शिवदायै नमो नमः। नमस्ते विष्णुरूपिण्यै ब्रह्ममूर्त्यै नमोऽस्तु ते॥
नमस्ते रुद्ररूपिण्यै शाङ्कर्यै ते नमो नमः। सर्वदेवस्वरूपिण्यै नमो भेषजमूर्तये॥
सर्वस्य सर्वव्याधीनां भिषक्छ्रेष्ठ्यै नमोऽस्तु ते। स्थास्नुजङ्गमसंभूतविषहन्त्र्यै नमोऽस्तु ते॥
संसारविषनाशिन्यै जीवनायै नमोऽस्तु ते। तापत्रितयसंहन्त्र्यै प्राणेश्यै ते नमो नमः॥
शान्तिसन्तानकारिण्यै नमस्ते शुद्धमूर्तये। सर्वसंशुद्धिकारिण्यै नमः पापारिमूर्तये॥
भुक्तिमुक्तिप्रदायिन्यै भद्रदायै नमो नमः। भोगोपभोगदायिन्यै भोगवत्यै नमोऽस्तु ते॥
मन्दाकिन्यै नमस्तेऽस्तु स्वर्गदायै नमो नमः। नमस्त्रैलोक्यभूषायै त्रिपथायै नमो नमः॥
नमस्त्रिशुक्लसंस्थायै क्षमावत्यै नमो नमः। त्रिहुताशनसंस्थायै तेजोवत्यै नमो नमः॥
नन्दायै लिङ्गधारिण्यै सुधाधारात्मने नमः। नमस्ते विश्वमुख्यायै रेवत्यै ते नमो नमः॥
बृहत्यै ते नमस्तेऽस्तु लोकधात्र्यै नमोऽस्तु ते। नमस्ते विश्वमित्रायै नन्दिन्यै ते नमो नमः॥
पृथ्व्यै शिवामृतायै च सुवृषायै नमो नमः। परापरशताढ्यायै तारायै ते नमो नमः॥
पाशजालनिकृन्तिन्यै अभिन्नायै नमोऽस्तु ते। शान्तायै च वरिष्ठायै वरदायै नमो नमः॥
उग्रायै सुखजग्ध्यै च सञ्जीवन्यै नमोऽस्तु ते। ब्रह्मिष्ठायै ब्रह्मदायै दुरितघ्न्यै नमो नमः॥
प्रणतार्तिप्रभञ्जिन्यै जगन्मात्रे नमोऽस्तु ते। सर्वापत्प्रतिपक्षायै मङ्गलायै नमो नमः॥
शरणागतदीनार्तपरित्राणपरायणे। सर्वस्यार्तिहरे देवि नारायणि नमोऽस्तु ते॥
निर्लेपायै दुर्गहन्त्र्यै दक्षायै ते नमो नमः। परापरपरायै च गङ्गे निर्वाणदायिनि॥
गङ्गे ममाग्रतो भूया गङ्गे मे तिष्ठ पृष्ठतः। गङ्गे मे पार्श्वयोरेधि गङ्गे त्वय्यस्तु मे स्थितिः॥
आदौ त्वमन्ते मध्ये च सर्वं त्वं गाङ्गते शिवे।
त्वमेव मूलप्रकृतिस्त्वं पुमान् पर एव हि। गङ्गे त्वं परमात्मा च शिवस्तुभ्यं नमः शिवे॥
(स्क० पु०, का० पू० २७। १५७—१७४)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

गंगाजीकी महिमा

भगवान् शिव कहते हैं—जो तीनों लोकोंमें प्रवाहित होनेवाली गंगाजीके तटपर जाकर एक बार भी पिण्डदान करता है, वह तिलमिश्रित जलके द्वारा अपने पितरोंका भवसागरसे उद्धार कर देता है। सम्पूर्ण देवता और पितर गंगाजीमें सदा वर्तमान रहते हैं इसलिये वहाँ उनका आवाहन और विसर्जन नहीं होता। पिताके कुलमें अथवा माताके कुलमें तथा गुरु, श्वशुर और भाई-बन्धुओंके कुलमें जो अपने सम्बन्धी मरे हों; अथवा जो अन्य बन्धु-बान्धव मृत्युको प्राप्त हुए हों; जो दाँत निकलनेके पहले अथवा गर्भमें ही पीड़ित होकर मरे हों; जो अग्नि, बिजली और चोरके द्वारा मरे हों; जो व्याघ्र अथवा अन्य दाढ़ोंवाले हिंसक जीवोंसे मारे गये हों; जो फाँसी लगाकर या ऊपरसे नीचे गिरकर मरे हों; जिन्होंने आत्मघात किया हो अथवा जो अपना शरीर बेचनेवाले, चोर, यज्ञके अनधिकारियोंसे यज्ञ करानेवाले, रस-विक्रयी, पापरोगी, घरोंमें आग लगानेवाले, जहर देनेवाले अथवा गोहत्यारे रहे हों और अपने कुलमें ही उनका जन्म हुआ रहा हो; उनको भी यदि एक बार मनुष्य विधिपूर्वक गंगाजलसे तर्पण करे तो वे भी स्वर्गलोकमें पहुँच जाते हैं और यदि पहलेसे स्वर्गमें हों तो मोक्षको प्राप्त होते हैं। तीनों लोकोंमें जो कोई भी मनोवांछित फल देनेवाले हैं, वे सब काशीमें उत्तरवाहिनी गंगाका सेवन करते हैं। केवल गंगा भी मुक्ति देनेमें समर्थ हैं, ऐसा निर्णय हो चुका है। किंतु अविमुक्त क्षेत्रमें मेरे निवासस्थानके गौरवसे वे विशेषरूपसे मुक्तिदायिनी होती हैं। पापोंसे चंचल चित्तवाले तथा संसाररूपी रोगसे ग्रस्त रहनेवाले मन्दबुद्धि मनुष्योंके लिये गंगाजी ही सर्वश्रेष्ठ हैं। जो गंगाजीके तटपर टूटे-फूटे घाटोंका संस्कार करते हैं अथवा वहाँके गिरे-पड़े देवमन्दिरोंका जीर्णोद्धार करते हैं, वे मेरे लोकमें चिरकालतक अक्षय सुख भोगते हैं। मनुष्योंकी हड्डी जबतक गंगाजीके जलमें स्थित रहती है, उतने हजार वर्षोंतक वे स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होते हैं।

स्कन्दजी कहते हैं—मुनिवर अगस्त्य! वस्तुशक्तिका यह विचार अद्भुत एवं अनिर्वचनीय है। गंगाजी द्रवके रूपमें भगवान् सदाशिवकी कोई परा शक्ति हैं। करुणारूपी अमृतरससे भरे हुए देवाधिदेव भगवान् शंकरने समस्त संसारका उद्धार करनेके लिये ही गंगाजीको प्रवृत्त किया है। मुने! गंगाधर शिवने दयावश श्रुतियोंके अक्षरोंको निचोड़कर उस ब्रह्मद्रवसे ही गंगाका निर्माण किया है। जो गंगाजीके तटकी मिट्टीको अपने मस्तकपर लगाता है उसका अज्ञानान्धकार नष्ट हो जाता है। गंगा अपने नामका कीर्तन करनेसे पुण्यकी वृद्धि और पापका नाश करती है। दर्शन, स्पर्श, जलपान तथा उसमें स्नान करनेसे क्रमशः दसगुना फल होता है, ऐसा जानना चाहिये। ऋषियोंद्वारा सेवित, भगवान् विष्णुके चरणोंसे उत्पन्न, अति प्राचीन तथा परम पुण्यमयी धारासे युक्त भगवती गंगाकी जो लोग मनसे शरण लेते हैं वे ब्रह्मधामको प्राप्त होते हैं। जो माताकी भाँति इस संसारके जीवोंको पुत्र मानकर सदा उन्हें स्वर्गलोकको पहुँचाती है और सम्पूर्ण उत्तम गुणोंसे सम्पन्न है, उत्तम ब्रह्मलोककी इच्छा रखनेवाले जितेन्द्रिय पुरुषोंको सदा ही उस गंगाकी उपासना करनी चाहिये। जैसे ब्रह्मलोक सब लोकोंमें उत्तम है, उसी प्रकार गंगा समस्त सरिताओं और सरोवरोंसे श्रेष्ठ है। गंगाके जलमें स्नान करनेवाले पुरुषका समस्त पातक तत्काल नष्ट हो जाता है और उसे उसी क्षण महान् श्रेयकी प्राप्ति हो जाती है। गंगामें पुत्र-पौत्र आदि यदि अपने पितरोंके लिये श्रद्धापूर्वक जल देते हैं तो उस जलसे वे पितर तीन वर्षोंतक पूर्णतया तृप्त रहते हैं।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

गंगासहस्त्रनामस्तोत्र[१]

अगस्त्यजी बोले—गंगामें स्नान किये बिना मनुष्योंका जन्म व्यर्थ ही बीतता है। क्या कोई दूसरा उपाय भी है, जिससे गंगास्नानका फल प्राप्त हो सके?

स्कन्दने कहा—अगस्त्यजी! जान पड़ता है, यही सोचकर देवाधिदेव भगवान् शंकरने अपने मस्तकपर गंगाजीको धारण कर रखा है। एक परम गोपनीय उपाय है, जिससे देवनदी गंगामें स्नान करनेका पूरा फल प्राप्त होता है। वह उपाय उसीको बतलाना चाहिये, जो भगवान् शिव और विष्णुका भक्त, शान्त, श्रद्धालु, आस्तिक तथा गर्भवाससे छूटनेकी इच्छा रखनेवाला हो। दूसरे किसीके सामने कहीं भी उसकी चर्चा नहीं करनी चाहिये। वह परम रहस्यमय साधन महापातकोंका नाश करनेवाला है। वह उपाय है— भगवती गंगाका सहस्रनामस्तोत्र। वह सम्पूर्ण उत्तम स्तोत्रोंमें श्रेष्ठ है, जपनेयोग्य मन्त्रोंमें सर्वोत्तम है और वेदोंके उपनिषद्-भागके समान मनन करनेयोग्य है। साधकको मौन होकर प्रयत्नपूर्वक इसका जप करना चाहिये। यदि पवित्र स्थान हो तो वहाँ स्वयं भी पवित्रभावसे बैठकर सुस्पष्ट अक्षरोंमें इसका पाठ करना चाहिये।

स्कन्दजी कहते हैं—ॐ नमो गङ्गादेव्यै। **१ ॐकाररूपिणी**—प्रणवरूपा, सच्चिदानन्दस्वरूपा अथवा ब्रह्मा-विष्णु-शिवरूपिणी, **२ अजरा**—वृद्धावस्थासे रहित, **३ अतुला**—तुलनारहित, **४ अनन्ता**—जिसका कभी कहीं भी अन्त न हो, ऐसी, **५ अमृतस्त्रवा**—अमृतमय जलका स्रोत बहानेवाली, **६ अत्युदारा**—अतिशय उदार, किसीको भी शरणमें लेने अथवा सद्गति देनेमें संकोच न करनेवाली, **७ अभया**—भयरहित, जिसका आश्रय लेनेसे संसार-भयका निवारण हो जाता है, ऐसी, **८ अशोका**—शोकसे रहित अथवा जिससे शोकका निवारण होता है, ऐसी, **९ अलकनन्दा**—अलकावासियोंको आनन्द देनेवाली अथवा केशोंमें जिसके जलका स्पर्श होनेसे आनन्द प्राप्त होता है, ऐसी, **१० अमृता**—सुधारूपिणी अथवा मुक्ति देनेके कारण अमृतस्वरूपा, **११ अमला**—निर्मल जलवाली अथवा संसाररूपी मलका निवारण करनेवाली।[२]

१२ अनाथवत्सला—अनाथोंपर दया करनेवाली, **१३ अमोघा**—जिनकी सेवा कभी व्यर्थ नहीं जाती, ऐसी, **१४ अपांयोनिः**—जलकी उत्पत्तिका स्थान, **१५ अमृतप्रदा**—मोक्ष प्रदान करनेवाली, **१६ अव्यक्तलक्षणा**—अव्यक्तब्रह्मस्वरूपा अथवा अव्याकृत प्रकृतिरूपा, **१७ अक्षोभ्या**—किसीके द्वारा भी क्षुब्ध न की जा सकनेवाली, **१८ अनवच्छिन्ना**—अपने दिव्य एवं व्यापक स्वरूपके कारण त्रिविध परिच्छेदसे शून्य, **१९ अपरा**—जिसके लिये कोई भी पराया नहीं है अथवा जिससे श्रेष्ठ दूसरा कोई नहीं है, ऐसी, **२० अजिता**—किसीसे भी परास्त न होनेवाली।[३]

२१ अनाथनाथा—अनाथोंको भी शरण देनेवाली, **२२ अभीष्टार्थसिद्धिदा**—भक्तजनोंके अभीष्ट अर्थकी सिद्धि करनेवाली, **२३ अनङ्गवर्द्धिनी**—कामनाकी पूर्ति या मनोवांछित भोगोंकी वृद्धि करनेवाली अथवा कामभावका नाश या निराकार ब्रह्मकी प्राप्ति करानेवाली, **२४ अणिमादि-गुणा**—अणिमा आदि आठ प्रकारके ऐश्वर्य प्रदान करना जिसका स्वाभाविक गुण है, ऐसी, **२५ आधारा**—'अ' अर्थात् विष्णु आधार हैं जिसके, ऐसी, **२६ अग्रगण्या**—श्रेष्ठता और पवित्रतामें सबसे प्रथम गणना करने योग्य, **२७ अलीकहारिणी**—अलीक अर्थात् अज्ञानका हरण करनेवाली।[४]

२८ अचिन्त्यशक्तिः—जिनकी शक्ति चिन्तनका

१. स्कन्दपुराण, काशीखण्ड पूर्वार्ध, अध्याय २९, श्लोक १७ से ६८ तक।

२. ॐकाररूपिण्यजरातुलानन्तामृतस्त्रवा । अत्युदाराभयाशोकालकनन्दामृतामला ॥

३. अनाथवत्सलामोघापांयोनिरमृतप्रदा । अव्यक्तलक्षणाक्षोभ्यानवच्छिन्नापराजिता ॥

४. अनाथनाथाभीष्टार्थसिद्धिदानङ्गवर्द्धिनी । अणिमादिगुणाऽऽधाराग्रगण्यालीकहारिणी ॥

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

विषय नहीं है, ऐसी, **२९ अनघा**—निष्पाप, **३० अद्भुतरूपा**—आश्चर्यमय स्वरूपवाली, **३१ अघहारिणी**—अपने कीर्तन, दर्शन, स्पर्श और जलस्नानसे सबके पापोंको हर लेनेवाली, **३२ अद्रिराजसुता**—गिरिराज हिमालयकी पुत्री, **३३ अष्टाङ्गयोगसिद्धिप्रदा**—अष्टांगयोगसे प्राप्त होनेवाली सिद्धि (मुक्ति)-को देनेवाली, **३४ अच्युता**—अपनी महिमासे कभी च्युत न होनेवाली अथवा विष्णुस्वरूपा।[१]

३५ अक्षुण्णशक्तिः—जिसकी शक्ति कभी खण्डित या कुण्ठित नहीं होती, वह, **३६ असुदा**—अपने जीवनरूपी जलसे प्राणदान करनेवाली, **३७ अनन्ततीर्था**—सर्वतीर्थमयी होनेके कारण असंख्य तीर्थोंसे युक्त, **३८ अमृतोदका**—अमृतके समान मधुर अथवा मोक्षदायक जलवाली, **३९ अनन्तमहिमा**—जिसकी महिमाका कहीं अन्त नहीं है, ऐसी, **४० अपारा**—सीमारहित, **४१ अनन्तसौख्यप्रदा**—मोक्ष या भगवत्प्राप्तिका अक्षय सुख प्रदान करनेवाली, **४२ अन्नदा**—भोग प्रदान करनेवाली।[२]

४३ अशेषदेवतामूर्तिः—सम्पूर्ण देवस्वरूपा, **४४ अघोरा**—शान्तस्वरूपा, **४५ अमृतरूपिणी**—मोक्षस्वरूपा, **४६ अविद्याजालशमनी**—अविद्यारूपी आवरणका नाश करनेवाली, **४७ अप्रतर्क्यगतिप्रदा**—जहाँ मन और वाणीकी पहुँच नहीं है, ऐसी मोक्षरूप गति प्रदान करनेवाली।[३]

४८ अशेषविघ्नसंहर्त्री—समस्त विघ्नोंका संहार करनेवाली, **४९ अशेषगुणगुम्फिता**—सम्पूर्ण सद्‌गुणोंसे ग्रथित, **५० अज्ञानतिमिरज्योतिः**—अज्ञानमय अन्धकारका नाश करनेवाली ज्योतिः-स्वरूपा, **५१ अनुग्रहपरायणा**—भक्तोंपर अनुग्रह करनेमें तत्पर।[४]

५२ अभिरामा—सब ओरसे मनोरम, **५३ अनवद्याङ्गी**—निर्दोष स्वरूपवाली, **५४ अनन्तसारा**—जिसके सार अर्थात् शक्तिका अन्त नहीं है, ऐसी, **५५ अकलङ्किनी**—कलंकसे रहित, **५६ आरोग्यदा**—अपने अमृतमय जलसे आरोग्य प्रदान करनेवाली, **५७ आनन्दवल्ली**—दिव्य आनन्दकी प्राप्ति करानेवाली कल्पलताके समान, **५८ आपन्नार्तिविनाशिनी**—शरणमें आये हुए जीवोंकी पीड़ा (संसार-बन्धन)-का नाश करनेवाली।[५]

५९ आश्चर्यमूर्तिः—आश्चर्यमय स्वरूपवाली, **६० आयुष्या**—आयु प्रदान करनेवाली, **६१ आढ्या**—दिव्य वैभवसे सम्पन्न, **६२ आद्या**—सबकी कारणभूता आदिशक्ति, **६३ आप्रा**—सब ओरसे परिपूर्ण, **६४ आर्यसेविता**—श्रेष्ठ पुरुषों (देवता और ऋषि आदि)-के द्वारा सेवित, **६५ आप्यायिनी**—सबको तृप्त करनेवाली, **६६ आप्तविद्या**—ब्रह्मविद्यास्वरूपा अथवा सम्पूर्ण विद्याओंको जाननेवाली, **६७ आख्या**—सदा और सर्वत्र प्रसिद्ध, **६८ आनन्दा**—सुखस्वरूपा, **६९ आश्वासदायिनी**—नरक आदिके भयसे डरे हुए प्राणियोंको सान्त्वना प्रदान करनेवाली।[६]

७० आलस्यघ्नी—आलस्यका नाश करनेवाली, **७१ आपदां हन्त्री**—आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक आपत्तियोंका नाश करनेवाली, **७२ आनन्दामृतवर्षिणी**—ब्रह्मानन्दमय अमृतकी वर्षा करनेवाली, **७३ इरावती**—इरावती नामवाली नदी अथवा इरा अर्थात् लक्ष्मीसे युक्त, **७४ इष्टदात्री**—भक्तोंको अभीष्ट वस्तु देनेवाली, **७५ इष्टा**—आराध्यदेवी अथवा सबके द्वारा पूजित, **७६ इष्टापूर्तफलप्रदा**—इष्ट— यज्ञ, होम आदि और आपूर्त— कूप, तड़ाग, वापीनिर्माण आदि, इन सबके पुण्यफलको देनेवाली।[७]

७७ इतिहासश्रुतीड्यार्था—इतिहास और वेद दोनोंके द्वारा जिसके पुरुषार्थकी स्तुति की जाती

---

१. अचिन्त्यशक्तिरनघाद्भुतरूपाघहारिणी । अद्रिराजसुताष्टाङ्गयोगसिद्धिप्रदाच्युता ॥
२. अक्षुण्णशक्तिरसुदानन्ततीर्थामृतोदका । अनन्तमहिमापारानन्तसौख्यप्रदान्नदा ॥
३. अशेषदेवतामूर्तिरघोरामृतरूपिणी । अविद्याजालशमनी ह्यप्रतर्क्यगतिप्रदा ॥
४. अशेषविघ्नसंहर्त्री त्वशेषगुणगुम्फिता । अज्ञानतिमिरज्योतिरनुग्रहपरायणा ॥
५. अभिरामानवद्याङ्ग्यनन्तसाराकलङ्किनी । आरोग्यदाऽऽनन्दवल्ली त्वापन्नार्तिविनाशिनी ॥
६. आश्चर्यमूर्तिरायुष्या ह्याढ्याऽऽद्याऽऽप्राऽऽर्यसेविता । आप्यायिन्याप्तविद्याऽऽख्या त्वानन्दाऽऽश्वासदायिनी ॥
७. आलस्यघ्न्यापदां हन्त्री ह्यनन्दामृतवर्षिणी । इरावतीष्टदात्रीष्टा त्विष्टापूर्तफलप्रदा ॥

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

है, ऐसी, ७८ **इहामुत्र शुभप्रदा**—इहलोक और परलोकमें कल्याण प्रदान करनेवाली, ७९ **इज्याशीलसमिज्येष्ठा**—यज्ञ आदि करनेवाले कर्मनिष्ठ तथा समस्वरूप ब्रह्मका विचार करनेवाले ज्ञानी, दोनोंमें श्रेष्ठ अथवा इन दोनोंके लिये श्रेष्ठ मानकर पूजनीय, ८० **इन्द्रादिपरिवन्दिता**—इन्द्र आदि देवताओंद्वारा वन्दित।[१]

८१ **इलालङ्कारमाला**—पृथ्वीको विभूषित करनेवाली पुष्पमालाके सदृश, ८२ **इद्धा**—दीप्तिमती अथवा प्रकाशस्वरूपा, ८३ **इन्दिरा**—लक्ष्मीस्वरूपा, ८४ **रम्यमन्दिरा**—भगवच्चरणारविन्द, ब्रह्मकमण्डलु तथा भगवान् शंकरका मस्तक—ये सब रमणीय आश्रय हैं जिसके, ऐसी, ८५ **इदिन्दिरादिसंसेव्या**—निरन्तर लक्ष्मी आदि देवियोंके सेवन करने योग्य, ८६ **ईश्वरी**—ऐश्वर्यसम्पन्न, ८७ **ईश्वरवल्लभा**—शंकरप्रिया।[२]

८८ **ईतिभीतिहरा**—अतिवृष्टि, अनावृष्टि, टिड्डी पड़ना, चूहे लगना, तोते आदि पक्षियोंकी अधिकता और दूसरे राजाकी चढ़ाई—इन छ: प्रकारके उपद्रवोंका भय दूर करनेवाली, ८९ **ईड्या**—स्तवन करने योग्य, ९० **ईडनीयचरित्रभृत्**—स्तुत्य चरित्र धारण करनेवाली, ९१ **उत्कृष्टशक्तिः**—उत्तम शक्तिसे युक्त, ९२ **उत्कृष्टा**—श्रेष्ठ, ९३ **उडुपमण्डलचारिणी**—चन्द्रमण्डलमें विचरनेवाली।[३]

९४ **उदिताम्बरमार्गा**—जिसके द्वारा आकाशमें मार्गका उदय होता है अथवा जो ऊर्ध्वलोकमें जानेके लिये प्रकाशित मार्गके समान है, ऐसी, ९५ **उस्रा**—उज्ज्वल किरणके समान प्रकाशमान, ९६ **उरगलोकविहारिणी**—पाताललोकमें प्रवाहित होनेवाली, ९७ **उक्षा**—भूतलको सींचनेवाली, ९८ **उर्वरा**—भूमिको उर्वरा (उपजाऊ) बनानेमें हेतु, ९९ **उत्पला**—कमलस्वरूपा, १०० **उत्कुम्भा**—जिसमें भरे जानेवाले कलश उत्कृष्ट हो जाते हैं, वह, १०१ **उपेन्द्रचरणद्रवा**—भगवान् वामनके चरण पखारनेसे प्रकट चरणोदकस्वरूपा।[४]

१०२ **उदन्वत्पूर्तिहेतुः**—समुद्रको पूर्ण करनेमें कारणभूत, १०३ **उदारा**—उत्तम गति प्रदान करनेमें उदार, १०४ **उत्साहप्रवर्द्धिनी**—अपने आश्रितोंका उत्साह बढ़ानेवाली, १०५ **उद्वेगघ्नी**—घबराहट अथवा भयको मिटानेवाली, १०६ **उष्णशमनी**—गर्मीको शान्त करनेवाली, १०७ **उष्णरश्मिसुताप्रिया**—सूर्यकन्या यमुनाकी प्रिय सखी।[५]

१०८ **उत्पत्तिस्थितिसंहारकारिणी**—ब्रह्मशक्ति, विष्णुशक्ति तथा रुद्रशक्तिके रूपमें उत्पत्ति, पालन और संहार करनेवाली, १०९ **उपरिचारिणी**—पृथ्वी अथवा स्वर्गलोकके ऊपर विचरनेवाली, ११० **ऊर्जंवहन्ती**—बलवर्द्धक जलको प्रवाहित करनेवाली, १११ **ऊर्जधरा**—बल अथवा प्राण-शक्तिको धारण करनेवाली, ११२ **ऊर्जावती**—बल अथवा प्राणशक्तिका आश्रय, ११३ **ऊर्मिमालिनी**—तरंग-मालाओंसे युक्त।[६]

११४ **ऊर्ध्वरेतःप्रिया**—ऊर्ध्वरेता महात्माओंको प्रिय लगनेवाली, ११५ **ऊर्ध्वाध्वा**—जिसका मार्ग ऊपर विष्णुलोककी ओर गया है, ऐसी, ११६ **ऊर्मिला**—लहरोंको धारण करनेवाली अथवा भक्तोंके शोक, मोह, जरा, मृत्यु, क्षुधा, पिपासा—इन छः ऊर्मियोंको ग्रहण करनेवाली, ११७ **ऊर्ध्वगतिप्रदा**—अपने सम्पर्कमें आये हुए मुमूर्षुओंको ऊर्ध्वगति (स्वर्ग एवं मोक्ष) प्रदान करनेवाली, ११८ **ऋषिवृन्दस्तुता**—महर्षियोंके समुदायसे प्रशंसित, ११९ **ऋद्धिः**—समृद्धिस्वरूपा, १२० **ऋणत्रयविनाशिनी**—देवऋण, ऋषिऋण और पितृऋणका नाश करनेवाली।[७]

१२१ **ऋतम्भरा**—ऋत अर्थात् सत्य एवं ब्रह्मका

१. इतिहासश्रुतीड्यार्था त्विहामुत्रशुभप्रदा। इज्याशीलसमिज्येष्ठा त्विन्द्रादिपरिवन्दिता॥
२. इलालङ्कारमालेद्धा त्विन्दिरा रम्यमन्दिरा। इदिन्दिरादिसंसेव्या त्वीश्वरीश्वरवल्लभा॥
३. ईतिभीतिहरेड्या च त्वीडनीयचरित्रभृत्। उत्कृष्टशक्तिरुत्कृष्टोडुपमण्डलचारिणी॥
४. उदिताम्बरमार्गोस्रोरगलोकविहारिणी। उक्षोर्वरोत्पलोत्कुम्भा उपेन्द्रचरणद्रवा॥
५. उदन्वत्पूर्तिहेतुश्चोदारोत्साहप्रवर्द्धिनी। उद्वेगघ्न्युष्णशमनी ह्युष्णरश्मिसुताप्रिया॥
६. उत्पत्तिस्थितिसंहारकारिण्युपरिचारिणी। ऊर्जंवहन्त्यूर्जधरोर्जावती चोर्मिमालिनी॥
७. ऊर्ध्वरेतःप्रियोर्ध्वाध्वा ह्यूर्मिलोर्ध्वगतिप्रदा। ऋषिवृन्दस्तुतर्द्धिश्च ऋणत्रयविनाशिनी॥

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

आश्रय लेनेवाली बुद्धिस्वरूपा, **१२२ ऋद्धिदात्री**—समृद्धि देनेवाली, **१२३ ऋक्स्वरूपा**—ऋग्वेदरूपिणी, **१२४ ऋजुप्रिया**—सरल स्वभाववाले साधु महात्माओंको प्रिय लगनेवाली, **१२५ ऋक्षमार्गवहा**—नक्षत्रलोकके मार्गसे बहनेवाली, **१२६ ऋक्षार्चिः**—ताराओंके सदृश उज्ज्वल कान्तिवाली, **१२७ ऋजुमार्गप्रदर्शिनी**—धर्म एवं मोक्षका सरल मार्ग दिखानेवाली।[१]

१२८ एधिताखिलधर्मार्था—सम्पूर्ण धर्म और अर्थको बढ़ानेवाली, **१२९ एका**—अपने ढंगकी अकेली, **१३० एकामृतदायिनी**—एकमात्र अमृतस्वरूप ब्रह्मकी प्राप्ति करानेवाली, **१३१ एधनीयस्वभावा**—जिसके दया, उदारता आदि स्वाभाविक गुण निरन्तर बढ़ने योग्य हों, ऐसी **१३२ एज्या**—पूजनीया, **१३३ एजिताशेषपातका**—सम्पूर्ण पातकोंको कम्पित करनेवाली।[२]

१३४ ऐश्वर्यदा—अणिमा, महिमा आदि ऐश्वर्य प्रदान करनेवाली, **१३५ ऐश्वर्यरूपा**—भगवद्विभूतिस्वरूपा, **१३६ ऐतिह्यम्**—इतिहासस्वरूपा, **१३७ ऐन्दवीद्युतिः**—चन्द्रमाकी कान्तिरूपा, **१३८ ओजस्विनी**—शक्तिमती, **१३९ ओषधीक्षेत्रम्**—अन्न पैदा करनेका क्षेत्र, **१४० ओजोदा**—बल एवं तेज प्रदान करनेवाली, **१४१ ओदनदायिनी**—धानकी पैदावार बढ़ाकर भात देनेवाली, अथवा अन्नदायिनी अन्नपूर्णारूपा।[३]

१४२ ओष्ठामृता—जिसका जल ओष्ठके भीतर आनेपर अमृतके समान प्रतीत होता है अथवा जिसके ओष्ठमें अमृत हो, वह, **१४३ औन्नत्यदात्री**—आध्यात्मिक, लौकिक एवं पारलौकिक उन्नति प्रदान करनेवाली, **१४४ भवरोगिणाम् औषधम्**—संसार-रोगसे ग्रस्त प्राणियोंके लिये ओषधिरूपा, **१४५ औदार्यचञ्चुरा**—उदारतामें कुशल, **१४६ औपेन्द्री**—उपेन्द्र अर्थात् वामनरूपधारी विष्णुकी पत्नी लक्ष्मीस्वरूपा अथवा विष्णुकी चरणोदकस्वरूपा, **१४७ औग्री**—रुद्रकी शक्ति, **१४८ औमेयरूपिणी**—उमाके सदृश रूपवाली।[४]

१४९ अम्बराध्ववहा—आकाशमार्गपर बहनेवाली, **१५० अम्बष्ठा**—अ अर्थात् विष्णुकी शरण लेनेवाले वैष्णवोंको अम्ब कहते हैं; उनमें स्थित होनेवाली, **१५१ अम्बरमाला**— आकाशमें पुष्पहारके समान शोभा पानेवाली, **१५२ अम्बुजेक्षणा**—कमलरूप अथवा कमल-सदृश नेत्रोंवाली, **१५३ अम्बिका**—जगदम्बास्वरूपा, **१५४ अम्बुमहायोनिः**—जलकी उत्पत्तिका मूल कारण, **१५५ अन्धोदा**—अन्न देनेवाली, **१५६ अन्धकहारिणी**—अन्धकासुरका नाश करनेवाले शिवकी शक्ति अथवा अज्ञानान्धकारका नाश करनेवाली।[५]

१५७ अंशुमाला—तेजका समुदाय, **१५८ अंशुमती**—तेजोमयी, **१५९ अङ्गीकृतषडानना**—छः मुखोंवाले स्कन्दको पुत्ररूपमें स्वीकार करनेवाली, **१६० अन्धतामिस्त्रहन्त्री**—अन्धतामिस्र आदि नरकोंका निवारण करनेवाली, **१६१ अन्धुः**—कूपमात्रमें स्वयं प्रकट होनेवाली, **१६२ अञ्जना**—आध्यात्मिक दृष्टिको शुद्ध करनेके लिये दिव्य अंजनरूपा अथवा हनुमान्‌जीको जन्म देनेवाली अंजनास्वरूपा, **१६३ अञ्जनावती**—ईशानकोणकी रक्षा करनेवाली हस्तिनी, अंजनावतीसे अभिन्न।[६]

१६४ कल्याणकारिणी—सबका कल्याण करनेवाली, **१६५ काम्या**—कमनीया, **१६६ कमलोत्पलगन्धिनी**—कमल और उत्पलकी सुगन्धसे सुवासित, **१६७ कुमुद्वती**—कुमुद पुष्पोंसे युक्त, **१६८ कमलिनी**—कमल पुष्पोंसे अलंकृत, **१६९ कान्तिः**—दीप्तिमयी, **१७० कल्पितदायिनी**—मनोवांछित वस्तु देनेवाली।[७]

---

१. ऋतम्भरर्द्धिदात्री च ऋक्स्वरूपा ऋजुप्रिया । ऋक्षमार्गवहर्क्षार्चिर्ऋजुमार्गप्रदर्शिनी ॥
२. एधिताखिलधर्मार्था त्वेकैकामृतदायिनी । एधनीयस्वभावैज्या त्वेजिताशेषपातका ॥
३. ऐश्वर्यदैश्वर्यरूपा ह्यैतिह्यं ह्यैन्दवीद्युतिः । ओजस्विन्योषधीक्षेत्रमोजोदौदनदायिनी ॥
४. ओष्ठामृतौन्नत्यदात्री त्वौषधं भवरोगिणाम् । औदार्यचञ्चुरौपेन्द्री त्वौग्री ह्यौमेयरूपिणी ॥
५. अम्बराध्ववहाम्बष्ठाम्बरमालाम्बुजेक्षणा । अम्बिकाम्बुमहायोनिरन्धोदान्धकहारिणी ॥
६. अंशुमाला ह्यंशुमती त्वङ्गीकृतषडानना । अन्धतामिस्रहन्त्र्यन्धुरञ्जना ह्यञ्जनावती ॥
७. कल्याणकारिणी काम्या कमलोत्पलगन्धिनी । कुमुद्वती कमलिनी कान्तिः कल्पितदायिनी ॥

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

१७१ **काञ्चनाक्षी**—सुवर्णके समान उद्दीप्त नेत्रोंवाली, १७२ **कामधेनुः**—भक्तोंकी मनोवांछा पूर्ण करनेमें कामधेनुके समान अथवा कामधेनुस्वरूपा, १७३ **कीर्तिकृत्**—अपने सुयशका विस्तार करनेवाली, १७४ **क्लेशनाशिनी**—अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेशरूप पाँच क्लेशोंका नाश करनेवाली, १७५ **क्रतुश्रेष्ठा**—यज्ञोंसे श्रेष्ठ— अश्वमेध आदि यज्ञोंसे अधिक फल देनेवाली, १७६ **क्रतुफला**—जिसमें स्नान करनेसे यज्ञोंका फल प्राप्त होता है, ऐसी, १७७ **कर्मबन्धविभेदिनी**—शुभाशुभकर्मजनित बन्धनका नाश करनेवाली।[१]

१७८ **कमलाक्षी**—कमलके समान या कमलरूप नेत्रोंवाली, १७९ **क्लमहरा**—सांसारिक क्लेशको हर लेनेवाली, १८० **कृशानुतपनद्युतिः**—आधिदैविक स्वरूपमें अग्नि और सूर्यके समान कान्तिवाली, १८१ **करुणार्द्रा**—करुणारससे भीगी हुई, १८२ **कल्याणी**—मंगलस्वरूपा, १८३ **कलिकल्मषनाशिनी**—कलिकालमें होनेवाले पापोंका नाश करनेवाली।[२]

१८४ **कामरूपा**—इच्छानुसार रूप धारण करनेवाली, १८५ **क्रियाशक्तिः**—क्रियाशक्ति, १८६ **कमलोत्पलमालिनी**—कमल और उत्पलोंकी माला धारण करनेवाली, १८७ **कूटस्था**—ब्रह्मस्वरूपा, १८८ **करुणा**—दयामयी, १८९ **कान्ता**—कान्तिमती, १९० **कूर्मयाना**—कच्छपरूप वाहनवाली, १९१ **कलावती**—चौंसठ कलाओंको जाननेवाली।[३]

१९२ **कमला**—लक्ष्मीस्वरूपा, १९३ **कल्पलतिका**— कल्पलताके समान सब कामनाओंको पूर्ण करनेवाली, १९४ **काली**—कालिकास्वरूपा, १९५ **कलुषवैरिणी**—पापोंका नाश करनेवाली, १९६ **कमनीयजला**—कमनीय अर्थात् स्वच्छ जलवाली, १९७ **कम्रा**—मनोहर स्वरूपवाली, १९८ **कपर्दिसुकपर्दगा**—भगवान् शंकरके सुन्दर जटाजूटमें वास करनेवाली।[४]

१९९ **कालकूटप्रशमनी**—भगवान् शंकरके पीये हुए कालकूट नामक विषकी ज्वालाको शान्त करनेवाली, २०० **कदम्बकुसुमप्रिया**—कदम्बके पुष्पोंमें रुचि रखनेवाली, २०१ **कालिन्दी**—कलिन्दकन्या यमुनास्वरूपा, २०२ **केलिललिता**—क्रीडासे मनोहर प्रतीत होनेवाली, २०३ **कलकल्लोलमालिका**—मनोहर लहरोंकी श्रेणियोंसे सुशोभित।[५]

२०४ **क्रान्तलोकत्रया**—स्वर्ग, भूतल और पाताल तीनों लोकोंको अपनी धारासे आक्रान्त करनेवाली, २०५ **कण्डूः**—अविद्या और उसके कार्यको खण्डित करनेवाली, २०६ **कण्डूतनयवत्सला**—कण्डू शब्द मृकण्डुका वाचक है, उनके पुत्र मार्कण्डेयजीपर वात्सल्य स्नेह रखनेवाली, २०७ **खड्गिनी**—देवी-रूपसे खड्ग धारण करनेवाली, २०८ **खड्गधाराभा**—तलवारकी धारके समान उज्ज्वल कान्तिवाली, २०९ **खगा**—आकाशमें प्रवाहित होनेवाली, २१० **खण्डेन्दुधारिणी**—अर्धचन्द्र धारण करनेवाली।[६]

२११ **खेखेलगामिनी**—आकाशमें लीलापूर्वक चलनेवाली, २१२ **खस्था**—आकाश अथवा ब्रह्ममें स्थित, २१३ **खण्डेन्दुतिलकप्रिया**—चन्द्रभाल शिवकी प्रिया अथवा अर्धचन्द्राकार तिलकसे प्रसन्न होनेवाली, २१४ **खेचरी**—आकाशमें विचरण करनेवाली, २१५ **खेचरीवन्द्या**—आकाशमें विहार करनेवाली सिद्धांगनाओंकी वन्दनीया, २१६ **ख्यातिः**—प्रतिष्ठास्वरूपा, २१७ **ख्यातिप्रदायिनी**—प्रतिष्ठा देनेवाली।[७]

---

१. काञ्चनाक्षी कामधेनुः कीर्तिकृत्क्लेशनाशिनी। क्रतुश्रेष्ठा क्रतुफला कर्मबन्धविभेदिनी॥
२. कमलाक्षी क्लमहरा कृशानुतपनद्युतिः। करुणार्द्रा च कल्याणी कलिकल्मषनाशिनी॥
३. कामरूपा क्रियाशक्तिः कमलोत्पलमालिनी। कूटस्था करुणा कान्ता कूर्मयाना कलावती॥
४. कमला कल्पलतिका काली कलुषवैरिणी। कमनीयजला कम्रा कपर्दिसुकपर्दगा॥
५. कालकूटप्रशमनी कदम्बकुसुमप्रिया। कालिन्दी केलिललिता कलकल्लोलमालिका॥
६. क्रान्तलोकत्रया कण्डूः कण्डूतनयवत्सला। खड्गिनी खड्गधाराभा खगा खण्डेन्दुधारिणी॥
७. खेखेलगामिनी खस्था खण्डेन्दुतिलकप्रिया। खेचरी खेचरीवन्द्या ख्यातिः ख्यातिप्रदायिनी॥

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

२१८ **खण्डितप्रणताघौघा**—शरणागतोंकी पापराशिका खण्डन करनेवाली, २१९ **खलबुद्धिविनाशिनी**—खलोंकी बुद्धि अथवा खलतापूर्ण बुद्धिका विनाश करनेवाली, २२० **खातैनःकन्दसन्दोहा**—पापरूपी कन्दसमुदायको उखाड़ फेंकनेवाली, २२१ **खड्गखट्वाङ्गखेटिनी**—खड्ग (तलवार), खट्वांग (खाटके पायेके आकारवाले शस्त्र) और खेट धारण करनेवाली।[1]

२२२ **खरसन्तापशमनी**—तीखे तापको शान्त करनेवाली, २२३ **पीयूषपाथसां खनिः**—अमृतके समान मधुर जलकी खान, २२४ **गंगा**—'**स्वर्गाद् गां गतवतीति गंगा**'—स्वर्गसे भूतलपर गमन करनेके कारण गंगा नामसे प्रसिद्ध, अथवा कलकल गान करनेवाली या ब्रह्मद्रवरूपा सच्चिदानन्दमयी देवी, २२५ **गन्धवती**—पृथ्वीस्वरूपा अथवा उत्तम गन्धसे युक्त, २२६ **गौरी**—गौर वर्णवाली अथवा पार्वतीस्वरूपा, २२७ **गन्धर्वनगरप्रिया**—गन्धर्वनगरके निवासियोंको प्रिय लगनेवाली।[2]

२२८ **गम्भीराङ्गी**—गहराईसे युक्त अथवा गहनस्वरूपवाली, २२९ **गुणमयी**—त्रिगुणात्मिका प्रकृतिरूपा अथवा सर्वज्ञता आदि गुणोंसे युक्त, २३० **गतातङ्का**—भयरहित अथवा अपने पास आनेवालोंके संसार-भयको निवृत्त करनेवाली, २३१ **गतिप्रिया**—निरन्तर गमन जिसे प्रिय है अथवा जो गति अर्थात् ज्ञानको प्रिय मानती है, ऐसी, २३२ **गणनाथाम्बिका**—गणेशजीकी माता, २३३ **गीता**—भगवद्गीतास्वरूपा, २३४ **गद्यपद्यपरिष्टुता**—गद्य-पद्यमय स्तोत्रोंसे जिसकी स्तुति की जाती है, वह।[3]

२३५ **गान्धारी**—पृथ्वीको धारण करनेवाली वाराहशक्तिस्वरूपा, अथवा धृतराष्ट्रपत्नीस्वरूपा, २३६ **गर्भशमनी**—मुक्ति प्रदान करके गर्भवासके कष्टको दूर करनेवाली, २३७ **गतिभ्रष्टगतिप्रदा**—गतिभ्रष्टों—पतितोंको भी सद्गति प्रदान करनेवाली, २३८ **गोमती**—द्वारका अथवा नैमिषारण्यमें स्थित गोमतीनदीस्वरूपा, २३९ **गुह्यविद्या**—ब्रह्मविद्या, २४० **गौः**—पृथ्वीस्वरूपा अथवा कामधेनुरूपिणी, २४१ **गोप्त्री**—सद्गति प्रदान करके सबकी रक्षा करनेवाली, २४२ **गगनगामिनी**—आकाशगामिनी।[4]

२४३ **गोत्रप्रवर्द्धिनी**—पर्वतोंसे निर्झर आदिका जल पाकर बढ़नेवाली अथवा अपने भक्तोंका गोत्र (वंश) बढ़ानेवाली, २४४ **गुण्या**—उत्तम गुणोंसे युक्त, २४५ **गुणातीता**—तीनों गुणोंसे परे, २४६ **गुणाग्रणीः**—सद्गुणोंके कारण अग्रगण्य, २४७ **गुहाम्बिका**—स्कन्दकी माता, २४८ **गिरिसुता**—हिमवान्‌की पुत्री, २४९ **गोविन्दाङ्घ्रिसमुद्भवा**—श्रीविष्णुके चरणोंसे प्रकट हुई।[5]

२५० **गुणनीयचरित्रा**—गुणन—प्रशंसा या गणना करनेयोग्य उत्तम चरित्रवाली, २५१ **गायत्री**—अपना गुणगान करनेवालेकी रक्षा करनेवाली अथवा गायत्रीदेवीस्वरूपा, २५२ **गिरिशप्रिया**—भगवान् शिवकी वल्लभा, २५३ **गूढरूपा**—छिपे हुए दिव्य स्वरूपवाली, २५४ **गुणवती**—शान्ति आदि उत्तम गुणोंसे युक्त, २५५ **गुर्वी**—गौरवमयी, २५६ **गौरववर्द्धिनी**—महत्त्व बढ़ानेवाली अथवा स्वयं ही गौरवसे बढ़नेवाली।[6]

२५७ **ग्रहपीडाहरा**—अनिष्ट स्थानोंमें स्थित ग्रहोंकी पीड़ा दूर करनेवाली, २५८ **गुन्द्रा**—'गु' अर्थात् अविद्याका द्रावण—नाश करनेवाली, २५९ **गरघ्नी**—विषका प्रभाव दूर करनेवाली,

---

१. खण्डितप्रणताघौघा खलबुद्धिविनाशिनी । खातैनःकन्दसन्दोहा खड्गखट्वाङ्गखेटिनी ॥
२. खरसन्तापशमनी खनिः पीयूषपाथसाम् । गंगा गन्धवती गौरी गन्धर्वनगरप्रिया ॥
३. गम्भीराङ्गी गुणमयी गतातङ्का गतिप्रिया । गणनाथाम्बिका गीता गद्यपद्यपरिष्टुता ॥
४. गान्धारी गर्भशमनी गतिभ्रष्टगतिप्रदा । गोमती गुह्यविद्या गौर्गोप्त्री गगनगामिनी ॥
५. गोत्रप्रवर्द्धिनी गुण्या गुणातीता गुणाग्रणीः । गुहाम्बिका गिरिसुता गोविन्दाङ्घ्रिसमुद्भवा ॥
६. गुणनीयचरित्रा च गायत्री गिरिशप्रिया । गूढरूपा गुणवती गुर्वी गौरववर्द्धिनी ॥

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

२६० गानवत्सला—संगीतप्रिया, **२६१ घर्महन्त्री**—घामका कष्ट निवारण करनेवाली, **२६२ घृतवती**—घीके समान गुणकारक जलवाली, **२६३ घृततुष्टिप्रदायिनी**—अपने जलसे ही घीके समान सन्तोष देनेवाली।[१]

२६४ घण्टारवप्रिया—घण्टानादसे प्रसन्न होनेवाली, **२६५ घोराघौघविध्वंसकारिणी**—भयंकर पापराशिका विनाश करनेवाली, **२६६ घ्राण-तुष्टिकरी**—घ्राणेन्द्रियको सन्तुष्ट करनेवाली, **२६७ घोषा**—अपने प्रवाह और तरंगोंसे कल-कल शब्द करनेवाली, **२६८ घनानन्दा**—घनीभूत आनन्दकी राशि अथवा आकाशगंगामें स्थित जलसे मेघोंको आनन्द देनेवाली, **२६९ घनप्रिया**—आकाशगंगारूपसे मेघोंको प्रिय लगनेवाली।[२]

२७० घातुका—पाप एवं अज्ञानका नाश करनेवाली, **२७१ घूर्णितजला**—भँवरयुक्त जलवाली, **२७२ घृष्टपातक सन्ततिः**—पातक-परम्पराको नष्ट कर देनेवाली, **२७३ घटकोटिप्रपीतापा**—जिसके करोड़ों घड़े जल नित्य पीये जाते हैं, वह, **२७४ घंटिताशेषमङ्गला**—पूर्ण मंगलकारिणी।[३]

२७५ घृणावती—दयालु, **२७६ घृणनिधिः**—दयासागर, **२७७ घस्मरा**—सब कुछ भक्षण करनेवाली, **२७८ घूकनादिनी**—तटपर उलूक और वक आदि पक्षियोंके शब्दसे युक्त, **२७९ घुसृणापिञ्जरतनुः**—कुंकुम, केशर आदिसे चर्चित होनेके कारण किंचित् पीले अंगोंवाली, **२८० घर्घरा**—घाघरानदीस्वरूपा, **२८१ घर्घरस्वना**—घर्घर ध्वनिसे युक्त।[४]

२८२ चन्द्रिका—चन्द्रप्रभास्वरूपा, **२८३ चन्द्र-कान्ताम्बुः**—चन्द्रमाके समान श्वेत जलवाली अथवा चन्द्रकान्तमणिके समान निर्मल जलवाली, **२८४ चञ्चदापा**—चंचल जलवाली, **२८५ चल-द्युतिः**—विद्युत्स्वरूपा, **२८६ चिन्मयी**—ज्ञानस्वरूपा, **२८७ चितिरूपा**—चैतन्यस्वभावा, **२८८ चन्द्रायुत-शतानना**—दस सहस्र चन्द्रमाओंके समान मनोरम मुखवाली।[५]

२८९ चाम्पेयलोचना—चम्पाके फूलोंके समान सुन्दर नेत्रोंवाली, **२९० चारुः**—मनोहारिणी, **२९१ चार्वङ्गी**—परम सुन्दर अंगोंवाली, **२९२ चारुगामिनी**—मनोहर चालसे चलनेवाली, **२९३ चार्या**—शरण लेनेयोग्य, **२९४ चारित्र-निलया**—सदाचारका आश्रय, **२९५ चित्रकृत्**—अद्भुत कार्य करनेवाली, **२९६ चित्ररूपिणी**—विचित्र रूपवाली।[६]

२९७ चम्पूः—गद्य-पद्यमय काव्यस्वरूपा अथवा चम्पापुष्पके समान रंगवाली, **२९८ चन्दन-शुच्यम्बुः**—चन्दनके समान पवित्र एवं सुगन्धित जलवाली, **२९९ चर्चनीया**—पूजन अथवा कीर्तन करने योग्य, **३०० चिरस्थिरा**—चिरन्तन कालतक स्थिर रहनेवाली, **३०१ चारुचम्पक-मालाढ्या**—मनोहर चम्पा पुष्पोंकी मालासे सुशोभित, **३०२ चमिताशेषदुष्कृता**—समस्त पापोंको पी जानेवाली।[७]

३०३ चिदाकाशवहा—चिदाकाशरूप ब्रह्मको प्राप्त होनेवाली, **३०४ चिन्त्या**—चिन्तन करने योग्य, **३०५ चञ्चत्**—देदीप्यमान, **३०६ चामर-वीजिता**—डुलाये जाते हुए चँवरसे सेवित, **३०७ चोरिताशेषवृजिना**—समस्त पापोंको हर लेनेवाली **चरिताशेषमण्डला**—ब्रह्मलोक आदि सब मण्डलों (स्थानों)-में विचरनेवाली।[८]

---

१. ग्रहपीडाहरा गुन्द्रा गरघ्नी गानवत्सला। घर्महन्त्री घृतवती घृततुष्टिप्रदायिनी॥
२. घण्टारवप्रिया घोराघौघविध्वंसकारिणी। घ्राणतुष्टिकरी घोषा घनानन्दा घनप्रिया॥
३. घातुका घूर्णितजला घृष्टपातकसन्ततिः। घटकोटिप्रपीतापा घटिताशेषमङ्गला॥
४. घृणावती घृणनिधिर्घस्मरा घूकनादिनी। घुसृणापिञ्जरतनुर्घर्घरा घर्घरस्वना॥
५. चन्द्रिका चन्द्रकान्ताम्बुश्चञ्चदापा चलद्युतिः। चिन्मयी चितिरूपा च चन्द्रायुतशतानना॥
६. चाम्पेयलोचना चारुश्चार्वङ्गी चारुगामिनी। चार्या चारित्रनिलया चित्रकृच्चित्ररूपिणी॥
७. चम्पूश्चन्दनशुच्यम्बुश्चर्चनीया चिरस्थिरा। चारुचम्पकमालाढ्या चमिताशेषदुष्कृता॥
८. चिदाकाशवहा चिन्त्या चञ्चच्चामरवीजिता। चोरिताशेषवृजिना चरिताशेषमण्डला॥

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

३०९ छेदिताखिलपापौघा—समस्त पापराशिका उच्छेद करनेवाली, **३१० छद्मघ्नी**—कपट, अज्ञान अथवा छद्म नामक विशेष रोगका नाश करनेवाली, **३११ छलहारिणी**—छलको हर लेनेवाली, **३१२ छन्नत्रिविष्टपतला**—स्वर्गलोकको व्याप्त करनेवाली, **३१३ छोटिताशेषबन्धना**—समस्त बन्धनोंको दूर करनेवाली।[१]

३१४ छुरितामृतधारौघा—अमृतमय जलकी धारा बहानेवाली, **३१५ छिन्नैनाः**—पापोंका उच्छेद करनेवाली, **३१६ छन्दगामिनी**—स्वच्छन्द चलनेवाली, **३१७ छत्रीकृतमरालौघा**—हंसोंके समूहको श्वेतछत्रके समान धारण करनेवाली, **३१८ छटीकृतनिजामृता**—अपने स्वरूपभूत जलको विशेष शोभाके रूपमें धारण करनेवाली।[२]

३१९ जाह्नवी—जह्नुकी पुत्री, **३२० ज्या**—पापरूपी मृगको भयभीत करनेके लिये धनुषकी प्रत्यंचाके समान, **३२१ जगन्माता**—विश्वजननी, **३२२ जप्या**—जप करने योग्य नामवाली, **३२३ जङ्घालवीचिका**—उत्ताल तरंगोंवाली, **३२४ जया**—विजयिनी अथवा पार्वतीकी सखी जया, **३२५ जनार्दनप्रीता**—भगवान् विष्णुसे प्रीति करनेवाली, **३२६ जुष्णीया**—देवता, ऋषि और मनुष्योंके द्वारा सेवन करनेयोग्य, **३२७ जगद्धिता**—जगत्का कल्याण करनेवाली।[३]

३२८ जीवनम्—जीवनहेतु, **३२९ जीवनप्राणा**—जीवनरूप जलसे जगत्को प्राणशक्तिसे युक्त करनेवाली अथवा जीवनप्राणस्वरूपा, **३३० जगत्**—विश्वरूपा अथवा सर्वत्र व्यापक, **३३१ ज्येष्ठा**—आद्याशक्ति, **३३२ जगन्मयी**—जगत्स्वरूपा, **३३३ जीवजीवातुलतिका**—प्राणियोंके लिये संजीवन औषधरूपा, **३३४ जन्मिजन्मनिबर्हिणी**—जन्मधारी प्राणियोंके जन्म-मरणका क्लेश दूर करनेवाली।[४]

३३५ जाड्यविध्वंसनकरी—जड़ता—अज्ञानका विनाश करनेवाली, **३३६ जगद्योनिः**—जगत्की कारणभूता प्रकृतिस्वरूपा, **३३७ जलाविला**—वर्षाके जलसे कुछ मलिन-सी, **३३८ जगदानन्दजननी**—जगत्के लिये आनन्ददायिनी। **३३९ जलजा**—कमलका उत्पति-स्थान, **३४० जलजेक्षणा**—कमलसदृश अथवा कमलस्वरूप नेत्रोंवाली।[५]

३४१ जनलोचनपीयूषा—जीवमात्रके नेत्रोंमें अमृतके समान सुखद प्रतीत होनेवाली, **३४२ जटातटविहारिणी**—भगवान् शंकरके जटा-प्रदेशमें विहार करनेवाली, **३४३ जयन्ती**—विजयशीला, **३४४ जञ्जपूकघ्नी**—पापोंका नाश करनेवाली, **३४५ जनितज्ञानविग्रहा**—जिसने अपने ज्ञानमय शरीरको प्रकट किया है, वह।[६]

३४६ झल्लरीवाद्यकुशला—अपने जलप्रवाहके द्वारा झल्लरीनामक वाद्यविशेषकी ध्वनि प्रकट करनेमें कुशल अथवा झल्लरी बजानेमें निपुण, **३४७ झलज्झालजलावृता**—झल-झल ध्वनि करनेवाले जलसे आच्छादित, **३४८ झिण्टीशवन्द्या**—भगवान् शिवके द्वारा वन्दनीया, **३४९ झाङ्कारकारिणी**—झंकार शब्द करनेवाली, **३५० झर्झरावती**—झर-झर शब्दसे युक्त।[७]

३५१ टीकिताशेषपाताला—भोगावती गंगाके रूपमें समस्त पाताललोकमें प्रवाहित होनेवाली, **३५२ टङ्किकैनोऽद्रिपाटने**—पापरूपी पर्वतको विदीर्ण करनेमें टंक (शस्त्रविशेष)-के समान, **३५३ टङ्कारनृत्यत्कल्लोला**—जिसकी चंचल लहरें टंकार शब्दके

---

१. छेदिताखिलपापौघा छद्मघ्नी छलहारिणी। छन्नत्रिविष्टपतला छोटिताशेषबन्धना॥
२. छुरितामृतधारौघा छिन्नैनाश्छन्दगामिनी। छत्रीकृतमरालौघा छटीकृतनिजामृता॥
३. जाह्नवी ज्या जगन्माता जप्या जङ्घालवीचिका। जया जनार्दनप्रीता जुष्णीया जगद्धिता॥
४. जीवनं जीवनप्राणा जगज्ज्येष्ठा जगन्मयी। जीवजीवातुलतिका जन्मिजन्मनिबर्हिणी॥
५. जाड्यविध्वंसनकरी जगद्योनिर्जलाविला। जगदानन्दजननी जलजा जलजेक्षणा॥
६. जनलोचनपीयूषा जटातटविहारिणी। जयन्ती जञ्जपूकघ्नी जनितज्ञानविग्रहा॥
७. झल्लरीवाद्यकुशला झलज्झालजलावृता। झिण्टीशवन्द्या झाङ्कारकारिणी झर्झरावती॥

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

साथ नृत्य-सी करती हैं, वह, **३५४ टीकनीयमहातटा**—जिसका विशाल तटप्रान्त सबके सेवन करने योग्य है, वह।[१]

३५५ डम्बरप्रवहा—बड़े वेगसे बहनेवाली, **३५६ डीनराजहंसकुलाकुला**—उड़ते हुए राजहंसोंके समुदायसे व्याप्त, **३५७ डमड्डुमरुहस्ता**—हाथमें डिमडिम शब्द करनेवाला डमरू लिये रहनेवाली, **३५८ डामरोक्तमहाण्डका**—डामरकल्पमें प्रतिपादित विराट् स्वरूपवाली।[२]

३५९ ढौकिताशेषनिर्वाणा—अपने भक्तोंको सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य, सार्ष्टि तथा सायुज्य-रूप सभी प्रकारके मोक्षकी प्राप्ति करानेवाली, **३६० ढक्कानादचलज्जला**—डंकेकी आवाजके समान ध्वनि-सी करनेवाले प्रवाहशील चंचल जलवाली, **३६१ ढुण्ढिविघ्नेशजननी**—ढुण्ढिराज गणेशकी माता, **३६२ ढणड्ढुणितपातका**—ढन्-ढन् शब्दके साथ पातकोंको धक्के देकर ढकेलनेवाली।[३]

३६३ तर्पणी—सबको तृप्त करनेवाली अथवा जिसके जलसे सभी तर्पण करते हैं, वह, **३६४ तीर्थतीर्था**—तीर्थोंके लिये भी तीर्थरूपा, **३६५ त्रिपथा**—स्वर्ग, भूतल और पाताल— तीन मार्गोंसे बहनेवाली, **३६६ त्रिदशेश्वरी**—देवताओंकी स्वामिनी, **३६७ त्रिलोकगोप्त्री**—तीनों लोकोंकी रक्षा करनेवाली, **३६८ तोयेशी**—जल अथवा उसकी अधिष्ठात्री देवियोंकी भी स्वामिनी, **३६९ त्रैलोक्यपरिवन्दिता**—त्रिभुवनविशेषवन्दिता।[४]

३७० तापत्रितयसंहर्त्री—आध्यात्मिक आदि तीनों तापोंका संहार करनेवाली, **३७१ तेजोबलविवर्धिनी**—तेज और बल बढ़ानेवाली, **३७२ त्रिलक्ष्या**—जिसका स्वरूप तीनों लोकोंमें लक्षित होता है, वह, **३७३ तारणी**—सबको तारनेवाली, **३७४ तारा**—तारनेवाली, प्रणवरूपा अथवा नक्षत्ररूपा, **३७५ तारापतिकरार्चिता**—चन्द्रमाकी किरणोंद्वारा पूजित अथवा चन्द्रमाद्वारा अपने हाथों पूजित।[५]

३७६ त्रैलोक्यपावनी पुण्या—तीनों लोकोंको पवित्र करनेवाली नदियोंमें सबसे अधिक पुण्यमयी, **३७७ तुष्टिदा**—सुख एवं सन्तोष देनेवाली, **३७८ तुष्टिरूपिणी**—सन्तोषवृत्तिरूपा, **३७९ तृष्णाच्छेत्री**— तृष्णाका उच्छेद करनेवाली, **३८० तीर्थमाता**—तीर्थोंकी माता, **३८१ त्रिविक्रमपदोद्भवा**—भगवान् वामनके चरण पखारनेसे प्रकट हुई।[६]

३८२ तपोमयी—इन्द्रिय और मनकी एकाग्रता-रूपा, **३८३ तपोरूपा**—कृच्छ्र-चान्द्रायणादि व्रत एवं तपस्यास्वरूपा, **३८४ तपःस्तोमफलप्रदा**—तपःसमुदायका फल देनेवाली, **३८५ त्रैलोक्यव्यापिनी**—तीनों लोकोंमें व्यापक, **३८६ तृप्तिः**—तृप्तिस्वरूपा, **३८७ तृप्तिकृत्**—सन्तुष्ट करनेवाली, **३८८ तत्त्वरूपिणी**—चौबीस तत्त्वरूपा अथवा परमार्थरूपिणी।[७]

३८९ त्रैलोक्यसुन्दरी—तीनों लोकोंमें सर्वाधिक सौन्दर्यवाली, **३९० तुर्या**—जाग्रत् आदि तीन अवस्थाओंसे परे, **३९१ तुर्यातीतफलप्रदा**—तुरीयातीत ब्रह्मपदको देनेवाली, **३९२ त्रैलोक्यलक्ष्मीः**—त्रिभुवनकी सम्पत्ति, **३९३ त्रिपदी**—तीनों लोकोंमें जिसका स्थान है, वह, **३९४ तथ्या**—तीनों कालोंसे अबाधित, परमार्थरूपा, **३९५ तिमिरचन्द्रिका**—अज्ञानरूपी अन्धकारको चाँदनीकी भाँति दूर करनेवाली।[८]

---

१. टीकिताशेषपाताला टङ्किकैनोऽद्रिपाटने । टङ्कारनृत्यत्कल्लोला टीकनीयमहातटा ॥
२. डम्बरप्रवहा डीनराजहंसकुलाकुला । डमड्डुमरुहस्ता च डामरोक्तमहाण्डका ॥
३. ढौकिताशेषनिर्वाणा ढक्कानादचलज्जला । ढुण्ढिविघ्नेशजननी ढणड्ढुणितपातका ॥
४. तर्पणी तीर्थतीर्था च त्रिपथा त्रिदशेश्वरी । त्रिलोकगोप्त्री तोयेशी त्रैलोक्यपरिवन्दिता ॥
५. तापत्रितयसंहर्त्री तेजोबलविवर्धिनी । त्रिलक्ष्या तारणी तारा तारापतिकरार्चिता ॥
६. त्रैलोक्यपावनी पुण्या तुष्टिदा तुष्टिरूपिणी । तृष्णाच्छेत्री तीर्थमाता त्रिविक्रमपदोद्भवा ॥
७. तपोमयी तपोरूपा तपःस्तोमफलप्रदा । त्रैलोक्यव्यापिनी तृप्तिस्तृप्तिकृत्तत्त्वरूपिणी ॥
८. त्रैलोक्यसुन्दरी तुर्या तुर्यातीतफलप्रदा । त्रैलोक्यलक्ष्मीस्त्रिपदी तथ्या तिमिरचन्द्रिका ॥

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

३९६ **तेजोगर्भा**—भगवान् शंकरका तेजोमय वीर्य जिसके गर्भमें स्थित था, वह, ३९७ **तपःसारा**—तपस्याकी सारभूता, ३९८ **त्रिपुरारिशिरोगृहा**—भगवान् शंकरके मस्तकरूपी गृहमें निवास करनेवाली, ३९९ **त्रयीस्वरूपिणी**—तीनों वेद जिसके स्वरूप हैं, वह, ४०० **तन्वी**—प्रपंचका विस्तार करनेवाली अथवा सुन्दरी, कृशांगी, ४०१ **तपनाङ्गजभीतिनुत्**—सूर्यपुत्र यमका भय दूर करनेवाली।[१]

४०२ **तरिः**—संसार-सागरसे पार होनेके लिये नौका, ४०३ **तरणिजामित्रम्**—सूर्यपुत्र यमके अधिकारमें बाधा डालनेके कारण उनके लिये अमित्ररूपा अथवा सूर्यकन्या यमुनाकी सखी, ४०४ **तर्पिताशेषपूर्वजा**—राजा भगीरथके अथवा समस्त जनसमुदायके सम्पूर्ण पूर्वजोंको तृप्त करनेवाली, ४०५ **तुलाविरहिता**—तुलनारहित, ४०६ **तीव्रपापतूलतनूनपात्**—भयंकर पापरूपी रूईके ढेरको जलानेके लिये अग्निके समान।[२]

४०७ **दारिद्र्यदमनी**—दुर्गति एवं दरिद्रताका दमन करनेवाली, ४०८ **दक्षा**—जगत्का उद्धार करनेमें कुशल, ४०९ **दुष्प्रेक्षा**—भक्तिभावके बिना जिसका दर्शन पाना अत्यन्त कठिन है, वह ४१० **दिव्यमण्डना**—अलौकिक आभूषणोंसे विभूषित, ४११ **दीक्षावती**—लोकहित एवं जीवोंके उद्धारकी दीक्षासे युक्त, ४१२ **दुरावाप्या**—दुर्लभा, ४१३ **द्राक्षामधुरवारिभृत्**—मुनक्काके समान मधुर जल धारण करनेवाली।[३]

४१४ **दर्शितानेककुतुका**—अपने जल-कल्लोलोंके द्वारा अनेक प्रकारके कौतुक दिखानेवाली, ४१५ **दुष्टदुर्जयदुःखहृत्**—दोषयुक्त दुर्जय दुःखोंको हर लेनेवाली, ४१६ **दैन्यहृत्**—दीनताको दूर करनेवाली, ४१७ **दुरितघ्नी**—पापोंका नाश करनेवाली, ४१८ **दानवारिपदाब्जजा**—श्रीविष्णुके चरणारविन्दोंसे प्रकट हुई।[४]

४१९ **दन्दशूकविषघ्नी**—सर्पोंके विषका नाश करनेवाली, ४२० **दारिताघौघसन्ततिः**—पापराशिकी परम्पराको विदीर्ण करनेवाली, ४२१ **द्रुता**—वेगसे बहनेवाली, ४२२ **देवद्रुमच्छन्ना**—सन्तान, कल्पवृक्ष, मन्दार, पारिजात तथा हरिचन्दन—इन पाँच देववृक्षोंसे आच्छादित, ४२३ **दुर्वाराघविघातिनी**—जिन्हें दूर करना कठिन है, ऐसे पातकोंका भी नाश करनेवाली।[५]

४२४ **दमग्राह्या**—मन और इन्द्रियोंके संयमसे प्राप्त होनेवाली, ४२५ **देवमाता**—अदितिस्वरूपा, ४२६ **देवलोकप्रदर्शिनी**—अपने उपासकोंको ब्रह्मलोक आदि दिव्यलोकोंकी प्राप्ति करानेवाली, ४२७ **देवदेवप्रिया**—देवाधिदेव शिवकी प्रिया, ४२८ **देवी**—द्युतिमती, प्रकाशस्वरूपा, ४२९ **दिक्पालपददायिनी**—इन्द्र आदि दिक्पालोंके पदकी प्राप्ति करानेवाली।[६]

४३० **दीर्घायुःकारिणी**—आयु बड़ी करनेवाली, ४३१ **दीर्घा**—विशाल, अनन्त, ४३२ **दोग्ध्री**—धर्म, अर्थ, काम और मोक्षको देनेवाली, ४३३ **दूषणवर्जिता**—दोषरहित, ४३४ **दुग्धाम्बुवाहिनी**—दूधके समान स्वच्छ, स्वादिष्ट एवं गुणकारी जल बहानेवाली, ४३५ **दोह्या**—इच्छानुसार दोहन करनेयोग्य—कामधेनुरूपा, ४३६ **दिव्या**—अलौकिक स्वरूपवाली, ४३७ **दिव्यगतिप्रदा**—दिव्य गति प्रदान करनेवाली।[७]

४३८ **द्युनदी**—स्वर्गलोककी गंगा, ४३९ **दीन-**

---

१. तेजोगर्भा तपःसारा त्रिपुरारिशिरोगृहा। त्रयीस्वरूपिणी तन्वी तपनाङ्गजभीतिनुत्॥
२. तरिस्तरणिजामित्रं तर्पिताशेषपूर्वजा। तुलाविरहिता तीव्रपापतूलतनूनपात्॥
३. दारिद्र्यदमनी दक्षा दुष्प्रेक्षा दिव्यमण्डना। दीक्षावती दुरावाप्या द्राक्षामधुरवारिभृत्॥
४. दर्शितानेककुतुका दुष्टदुर्जयदुःखहृत्। दैन्यहृद् दुरितघ्नी च दानवारिपदाब्जजा॥
५. दन्दशूकविषघ्नी च दारिताघौघसन्ततिः। द्रुता देवद्रुमच्छन्ना दुर्वाराघविघातिनी॥
६. दमग्राह्या देवमाता देवलोकप्रदर्शिनी। देवदेवप्रिया देवी दिक्पालपददायिनी॥
७. दीर्घायुःकारिणी दीर्घा दोग्ध्री दूषणवर्जिता। दुग्धाम्बुवाहिनी दोह्या दिव्या दिव्यगतिप्रदा॥

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

शरणम्—दीनों— महापातकियोंको भी शरण देकर उनका उद्धार करनेवाली, **४४० देहिदेहनिवारिणी**—देहधारियोंके देहका निवारण करनेवाली (उन्हें मुक्ति देकर जन्म-मृत्युसे रहित करनेवाली), **४४१ द्राघीयसी**—अतिशय विशाल, **४४२ दाघहन्त्री**—दाहकी शान्ति करनेवाली, **४४३ दितपातकसन्तति:**—पाप-परम्पराका खण्डन करनेवाली।[1]

४४४ दूरदेशान्तरचरी—दूर देशमें विचरनेवाली, **४४५ दुर्गमा**—दुर्लभा, **४४६ देववल्लभा**—देवताओंकी इष्टदेवी अथवा देव अर्थात् विष्णु एवं शिवकी प्रिया, **४४७ दुर्वृत्तघ्नी**—दुष्टों अथवा पापोंका नाश करनेवाली, **४४८ दुर्विगाह्या**—जिसमें स्नान करनेका अवसर बहुत दुर्लभ है, ऐसी, **४४९ दयाधारा**—करुणाकी भण्डार, **४५० दयावती**—दयालु-स्वभावा।[2]

४५१ दुरासदा—दुर्लभ अथवा दुर्बोध, **४५२ दानशीला**—स्वभावत: चारों पुरुषार्थोंको देनेवाली, **४५३ द्राविणी**—बड़े वेगसे प्रवाहित होनेवाली अथवा पाप-पुंजको भगानेवाली, **४५४ द्रुहिणस्तुता**—ब्रह्माजीके द्वारा प्रशंसित, **४५५ दैत्यदानवसंशुद्धिकर्त्री**—दैत्यों और दानवोंको भी भलीभाँति शुद्ध करनेवाली, **४५६ दुर्बुद्धिहारिणी**—खोटी बुद्धिका निवारण करनेवाली।[3]

४५७ दानसारा—दान जिसका सार तत्त्व है, वह, **४५८ दयासारा**—जिसमें स्वभावत: दया भरी है, वह, **४५९ द्यावाभूमिविगाहिनी**—आकाश और भूमिमें समान रूपसे विचरण करनेवाली, **४६० दृष्टादृष्टफलप्राप्ति:**—लौकिक और पारलौकिक फलकी प्राप्तिमें हेतु, **४६१ देवतावृन्दवन्दिता**—देवसमुदायके द्वारा नमस्कृत।[4]

४६२ दीर्घव्रता—लोकोपकारका महान् व्रत धारण करनेवाली, **४६३ दीर्घदृष्टि:**—जिसकी दृष्टि अर्थात् बुद्धि दीर्घ—दूरतककी बात सोच लेनेवाली हो, वह अथवा अपरिच्छिन्न ज्ञानस्वरूपा, **४६४ दीप्ततोया**—प्रकाशमान जलवाली, **४६५ दुरालभा**—दुर्लभा, **४६६ दण्डयित्री**—पापोंको दण्ड देनेवाली, **४६७ दण्डनीति:**—दण्डनीति नामवाली विद्यास्वरूपा, **४६८ दुष्टदण्डधरार्चिता**—दुष्टोंको दण्ड देनेवाले यमराजके द्वारा पूजित।[5]

४६९ दुरोदरघ्नी—जूआ आदि बुरे आचरणोंको नाश करनेवाली, **४७० दावार्चि:**—पापरूपी वनके लिये दावानलकी ज्वालाके समान, **४७१ द्रवत्**—सर्वव्यापक तत्त्व, **४७२ द्रव्यैकशेवधि:**—सम्पूर्ण द्रव्योंकी एकमात्र निधि, **४७३ दीनसन्तापशमनी**—दीनों—संसारदु:खसे दु:खी जीवोंके आध्यात्मिक आदि तापोंका निवारण करनेवाली, **४७४ दात्री**—चारों पुरुषार्थोंको देनेवाली, **४७५ दवथुवैरिणी**—संसार-भयसे होनेवाले सन्तापको दूर करनेवाली।[6]

४७६ दरीविदारणपरा—पर्वतोंकी गुफाओंको विदीर्ण करनेवाली, **४७७ दान्ता**—इन्द्रियोंको वशमें रखनेवाली, **४७८ दान्तजनप्रिया**—जितेन्द्रिय पुरुष जिसे प्रिय हों, ऐसी, **४७९ दारिताद्रितटा**—पर्वतोंके पार्श्वभागको विदीर्ण करके बहनेवाली, **४८० दुर्गा**—दुर्ग दैत्यका वध करनेवाली देवी, **४८१ दुर्गारण्यप्रचारिणी**—दुर्गम वनमें विचरनेवाली।[7]

४८२ धर्मद्रवा—धर्मस्वरूप है द्रव (जल)

---

१. द्युनदी दीनशरणं देहिदेहनिवारिणी। द्राघीयसी दाघहन्त्री दितपातकसन्तति:॥
२. दूरदेशान्तरचरी दुर्गमा देववल्लभा। दुर्वृत्तघ्नी दुर्विगाह्या दयाधारा दयावती॥
३. दुरासदा दानशीला द्राविणी द्रुहिणस्तुता। दैत्यदानवसंशुद्धिकर्त्री दुर्बुद्धिहारिणी॥
४. दानसारा दयासारा द्यावाभूमिविगाहिनी। दृष्टादृष्टफलप्राप्तिर्देवतावृन्दवन्दिता॥
५. दीर्घव्रता दीर्घदृष्टिर्दीप्ततोया दुरालभा। दण्डयित्री दण्डनीतिर्दुष्टदण्डधरार्चिता॥
६. दुरोदरघ्नी दावार्चिर्द्रवद्द्रव्यैकशेवधि:। दीनसन्तापशमनी दात्री दवथुवैरिणी॥
७. दरीविदारणपरा दान्ता दान्तजनप्रिया। दारिताद्रितटा दुर्गा दुर्गारण्यप्रचारिणी॥

Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

जिसका, ऐसी, **४८३ धर्मधुरा**—धर्मका आधार अथवा उत्कृष्ट धर्मस्वरूपा, **४८४ धेनुः**—कामधेनुस्वरूपा, **४८५ धीरा**—धैर्यशालिनी अथवा विदुषी, **४८६ धृतिः**—धारणाशक्ति, **४८७ ध्रुवा**—नित्या, **४८८ धेनुदानफलस्पर्शा**—जिसके जलका स्पर्श गोदानका फल देनेवाला है, वह, **४८९ धर्मकामार्थ मोक्षदा**—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चारों पुरुषार्थोंको देनेवाली।[१]

४९० धर्मोर्मिवाहिनी—धर्मरूपी लहरोंको धारण करनेवाली, **४९१ धुर्या**—श्रेष्ठा, **४९२ धात्री**—धारण-पोषण करनेवाली अथवा माता, **४९३ धात्रीविभूषणम्**—पृथ्वीका अलंकार, **४९४ धर्मिणी**—पुण्यवती, **४९५ धर्मशीला**—स्वभावत: धर्मका आचरण करनेवाली, **४९६ धन्विकोटिकृतावना**—कोटि-कोटि धनुर्धर वीरोंने जिसका रक्षण किया है, वह।[२]

४९७ ध्यातृपापहरा—ध्यान करनेवाले पुरुषके सब पापोंको हर लेनेवाली, **४९८ ध्येया**—ध्यान करनेयोग्य, **४९९ धावनी**—धोनेवाली, पवित्र करनेवाली, **५०० धूतकल्मषा**—पापोंको धो डालनेवाली, **५०१ धर्मधारा**—धर्मको धारण करनेवाली, **५०२ धर्मसारा**—सब धर्मोंकी सारभूता, **५०३ धनदा**—धन देनेवाली, **५०४ धनवर्द्धिनी**—धन बढ़ानेवाली।[३]

५०५ धर्माधर्मगुणच्छेत्री—धर्माधर्मके बन्धनको काटनेवाली ब्रह्मविद्यास्वरूपा, **५०६ धत्तूरकुसुमप्रिया**—धतूरके फूलमें रुचि रखनेवाली, **५०७ धर्मेशी**—धर्मकी स्वामिनी, **५०८ धर्मशास्त्रज्ञा**—धर्मशास्त्रको जाननेवाली, **५०९ धनधान्यसमृद्धिकृत्**—धन और धान्यको बढ़ानेवाली।[४]

५१० धर्मलभ्या—धर्मसे प्राप्त होने योग्य, **५११ धर्मजला**—धर्मस्वरूप जलवाली, **५१२ धर्मप्रसवधर्मिणी**—धर्मकी जननी तथा धर्मनिष्ठ, **५१३ ध्यानगम्यस्वरूपा**—जिसका स्वरूप ध्यानके द्वारा चिन्तन करने योग्य है, वह, **५१४ धरणी**—धारण करनेवाली, पृथ्वीरूपा, **५१५ धातृपूजिता**—ब्रह्माजीके द्वारा पूजित।[५]

५१६ धूः—पापोंको कम्पित करनेवाली, **५१७ धूर्जटिजटासंस्था**—भगवान् शंकरकी जटामें वास करनेवाली, **५१८ धन्या**—कृतार्थस्वरूपा, **५१९ धीः**—बुद्धिस्वरूपा, **५२० धारणावती**—धारणाशक्तिसे सम्पन्न, मेधास्वरूपा, **५२१ नन्दा**—नन्दा नामवाली गंगा अथवा जगत्‌को आनन्द देनेवाली, **५२२ निर्वाणजननी**—परम शान्ति अथवा मोक्ष देनेवाली, **२३ नन्दिनी**—दूसरोंको प्रसन्न करनेवाली अथवा वसिष्ठकी धेनु, **५२४ नुन्नपातका**—पातकोंको दूर करनेवाली।[६]

५२५ निषिद्धविघ्ननिचया—विघ्नसमुदायका निवारण करनेवाली, **५२६ निजानन्दप्रकाशिनी**—अपने स्वरूपभूत आनन्दको प्रकाशित करनेवाली, **५२७ नभोऽङ्गणचरी**—आकाशके आँगनमें विचरनेवाली, **५२८ नूतिः**—स्तुतिस्वरूपा, **५२९ नम्या**—वन्दनीया, **५३० नारायणी**—नारायणशक्तिस्वरूपा अथवा नारायणी (गण्डकी) नदीस्वरूपा, **५३१ नुता**—ब्रह्मा और इन्द्र आदि देवताओंके द्वारा अभिनन्दिता।[७]

५३२ निर्मला—संसाररूपी मलसे रहित, **५३३ निर्मलाख्याना**—जिसकी माहात्म्यकथा अत्यन्त निर्मल है, ऐसी, **५३४ नाशिनी तापसम्पदाम्**—सन्तापकी परम्पराका नाश करनेवाली,

१. धर्मद्रवा धर्मधुरा धेनुर्धीरा धृतिर्ध्रुवा। धेनुदानफलस्पर्शा धर्मकामार्थमोक्षदा॥
२. धर्मोर्मिवाहिनी धुर्या धात्री धात्रीविभूषणम्। धर्मिणी धर्मशीला च धन्विकोटिकृतावना॥
३. ध्यातृपापहरा ध्येया धावनी धूतकल्मषा। धर्मधारा धर्मसारा धनदा धनवर्द्धिनी॥
४. धर्माधर्मगुणच्छेत्री धत्तूरकुसुमप्रिया। धर्मेशी धर्मशास्त्रज्ञा धनधान्यसमृद्धिकृत्॥
५. धर्मलभ्या धर्मजला धर्मप्रसवधर्मिणी। ध्यानगम्यस्वरूपा च धरणी धातृपूजिता॥
६. धूर्धूर्जटिजटासंस्था धन्या धीर्धारणावती। नन्दा निर्वाणजननी नन्दिनी नुन्नपातका॥
७. निषिद्धविघ्ननिचया निजानन्दप्रकाशिनी। नभोऽङ्गणचरी नूतिर्नम्या नारायणी नुता॥

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth 279 Skandpuran_Section_27_1_Back

५३५ **नियता**—निमयपूर्वक रहनेवाली अथवा एकरूपा, ५३६ **नित्यसुखदा**—सदा सुख देनेवाली, ५३७ **नानाश्चर्यमहानिधिः**—अनेक प्रकारके आश्चर्योंका भण्डार।[१]

५३८ **नदी**—अव्यक्त शब्द करनेवाली सरिता, ५३९ **नदसरोमाता**—नदों और सरोवरोंकी जननी, ५४० **नायिका**—जीवोंको संसार-समुद्रसे पार ले जानेवाली अथवा सब नदियोंकी स्वामिनी, ५४१ **नाकदीर्घिका**—स्वर्गलोककी बावली, ५४२ **नष्टोद्धरणधीरा**—संसार-सागरमें गिरकर नष्ट होनेवाले जीवोंका उद्धार करनेमें दक्ष, ५४३ **नन्दना**—समृद्धि देनेवाली, ५४४ **नन्ददायिनी**—आनन्द देनेवाली।[२]

५४५ **निर्णिक्ताशेषभुवना**—समस्त लोकोंको पवित्र करनेवाली, ५४६ **निःसङ्गा**—आसक्तिरहित, ५४७ **निरुपद्रवा**—विघ्नरहित, ५४८ **निरालम्बा**—आधाररहित, अपनी ही महिमामें प्रतिष्ठित, ५४९ **निष्प्रपञ्चा**—प्रपंचसे परे स्थित, ५५० **निर्णाशितमहामला**—अज्ञानरूपी महामलका पूर्णतया नाश करनेवाली।[३]

५५१ **निर्मलज्ञानजननी**—विशुद्ध ज्ञानको प्रकट करनेवाली, ५५२ **निःशेषप्राणितापहृत्**—समस्त प्राणियोंका सन्ताप हर लेनेवाली, ५५३ **नित्योत्सवा**—नित्य उत्सवयुक्त, ५५४ **नित्यतृप्ता**—अपने स्वरूपभूत आनन्दसे सदा सन्तुष्ट, ५५५ **नमस्कार्या**—नमस्कार करनेयोग्य, ५५६ **निरञ्जना**—अज्ञानरहित।[४]

५५७ **निष्ठावती**—श्रद्धा एवं नियम-निष्ठासे युक्त, ५५८ **निरातङ्का**—भयरहित, ५५९ **निर्लेपा**—पाप आदिसे अलिप्त, शुद्धस्वरूपा, ५६० **निश्चलात्मिका**—स्थिर बुद्धिवाली, ५६१ **निरवद्या**—निर्दोष, ५६२ **निरीहा**—चेष्टारहित, ५६३ **नीललोहितमूर्द्धगा**—भगवान् शिवके मस्तकपर विराजमान।[५]

५६४ **नन्दिभृङ्गिगणस्तुत्या**—नन्दी, भृंगी आदि शिवगणोंसे स्तुति की जाने योग्य, ५६५ **नागा**—नागस्वरूपा, ५६६ **नन्दा**—समृद्धिदायिनी, ५६७ **नगात्मजा**—गिरिराज हिमवान्‌की पुत्री, ५६८ **निष्प्रत्यूहा**—विघ्न-बाधाओंसे रहित, ५६९ **नाकनदी**—स्वर्गलोककी नदी, ५७० **निरयार्णवदीर्घनौः**—नरक-समुद्रसे पार होनेके लिये विशाल नौकास्वरूप।[६]

५७१ **पुण्यप्रदा**—पुण्य देनेवाली, ५७२ **पुण्यगर्भा**—अपने भीतर पुण्य धारण करनेवाली, ५७३ **पुण्या**—पुण्यस्वरूपा, ५७४ **पुण्यतरङ्गिणी**—पवित्र लहरोंवाली, ५७५ **पृथुः**—विशाल एवं परिपूर्ण, ५७६ **पृथुफला**—महान् फलवाली, ५७७ **पूर्णा**—सर्वत्र व्यापक, अविच्छिन्न धारासे युक्त, ५७८ **प्रणतार्तिप्रभञ्जनी**—शरणागतोंकी पीड़ाका नाश करनेवाली।[७]

५७९ **प्राणदा**—प्राणदान करनेवाली, ५८० **प्राणिजननी**—जीवोंको जन्म देनेवाली, ५८१ **प्राणेशी**—प्राणोंकी अधीश्वरी, ५८२ **प्राणरूपिणी**—प्राणस्वरूपा, ५८३ **पद्मालया**—कमलोंमें वास करनेवाली लक्ष्मीस्वरूपा, ५८४ **पराशक्तिः**—सर्वोत्कृष्ट शक्ति, ५८५ **पुरजित्परमप्रिया**—त्रिपुरारि शिवकी अतिशय वल्लभा।[८]

५८६ **परा**—सर्वश्रेष्ठ, ५८७ **परफलप्राप्तिः**—

१. निर्मला निर्मलाख्याना नाशिनी तापसम्पदाम्। नियता नित्यसुखदा नानाश्चर्यमहानिधिः॥
२. नदी नदसरोमाता नायिका नाकदीर्घिका। नष्टोद्धरणधीरा च नन्दना नन्ददायिनी॥
३. निर्णिक्ताशेषभुवना निःसङ्गा निरुपद्रवा। निरालम्बा निष्प्रपञ्चा निर्णाशितमहामला॥
४. निर्मलज्ञानजननी निःशेषप्राणितापहृत्। नित्योत्सवा नित्यतृप्ता नमस्कार्या निरञ्जना॥
५. निष्ठावती निरातङ्का निर्लेपा निश्चलात्मिका। निरवद्या निरीहा च नीललोहितमूर्द्धगा॥
६. नन्दिभृङ्गिगणस्तुत्या नागा नन्दा नगात्मजा। निष्प्रत्यूहा नाकनदी निरयार्णवदीर्घनौः॥
७. पुण्यप्रदा पुण्यगर्भा पुण्या पुण्यतरङ्गिणी। पृथुः पृथुफला पूर्णा प्रणतार्तिप्रभञ्जनी॥
८. प्राणदा प्राणिजननी प्राणेशी प्राणरूपिणी। पद्मालया पराशक्तिः पुरजित्परमप्रिया॥

279 Skandpuran_Section_27_2_Front Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

सर्वोत्तम फल—मोक्षकी प्राप्ति करानेवाली, **५८८ पावनी**—सबको पवित्र करनेवाली, **५८९ पयस्विनी**—उत्तम जलवाली, **५९० परानन्दा**—परमानन्दस्वरूपा, **५९१ प्रकृष्टार्था**—श्रेष्ठ पुरुषार्थ-स्वरूपा, **५९२ प्रतिष्ठा**—सबकी आधारभूता, **५९३ पालिनी**—पालन करनेवाली, **५९४ परा**—परमात्मस्वरूपा।[१]

५९५ पुराणपठिता—पुराणोंमें जिसकी महिमाका प्रतिपादन किया गया है, वह, **५९६ प्रीता**—सबको प्रिय लगनेवाली, **५९७ प्रणवाक्षररूपिणी**—ॐकारस्वरूपा, **५९८ पार्वती**—पर्वतराजकन्या, **५९९ प्रेमसम्पन्ना**—प्रेमसे परिपूर्ण, **६०० पशुपाश-विमोचनी**—जीवोंके अज्ञानमय बन्धनको दूर करनेवाली।[२]

६०१ परमात्मस्वरूपा—परब्रह्मरूपिणी, **६०२ परब्रह्मप्रकाशिनी**—परब्रह्मको प्रकाशित करनेवाली, **६०३ परमानन्दनिष्पन्दा**—अपने स्वरूपभूत परमानन्दमें निमग्न होनेके कारण निश्चल, **६०४ प्रायश्चित्तस्वरूपिणी**—समस्त पापोंके लिये एकमात्र प्रायश्चित्तस्वरूपा।[३]

६०५ पानीयरूपनिर्वाणा—जिसमें जलरूपसे मोक्षका ही निवास है, वह, **६०६ परित्राणपरायणा**—शरणागतोंकी रक्षामें तत्पर, **६०७ पापेन्धन-दवज्वाला**—पापरूपी ईन्धनको जलानेके लिये दावाग्निकी लपट, **६०८ पापारिः**—पापोंकी शत्रु, **६०९ पापनामनुत्**—पापोंका नामतक मिटा देनेवाली।[४]

६१० परमैश्वर्यजननी—अणिमा आदि महान् ऐश्वर्योंको जन्म देनेवाली, **६११ प्रज्ञा**—उत्तम ज्ञानस्वरूपा, **६१२ प्राज्ञा**—विदुषी, **६१३ परापरा**—कारणकार्यस्वरूपा, **६१४ प्रत्यक्षलक्ष्मीः**—साक्षात् लक्ष्मीस्वरूपा, **६१५ पद्माक्षी**—कमलके समान अथवा कमलस्वरूप नेत्रोंवाली, **६१६ परव्योमामृतस्रवा**—परब्रह्मस्वरूप अमृतमय जलको बहानेवाली।[५]

६१७ प्रसन्नरूपा—आनन्दमय स्वरूपवाली, **६१८ प्रणिधिः**—सर्वाधार, **६१९ पूता**—परम पवित्र, **६२० प्रत्यक्षदेवता**—सबके नेत्रोंके समक्ष प्रकट हुई सच्चिदानन्दमयी देवी, **६२१ पिनाकि-परमप्रीता**—पिनाकधारी भगवान् शिवकी परम प्रियतमा, **६२२ परमेष्ठिकमण्डलुः**—ब्रह्माजीके कमण्डलुमें वास करनेवाली।[६]

६२३ पद्मनाभपदार्घ्येण प्रसूता—भगवान् विष्णुके चरण पखारनेसे प्रकट हुई, **६२४ पद्म-मालिनी**—कमल पुष्पोंकी माला धारण करनेवाली, **६२५ परर्द्धिदा**—उत्तम समृद्धि देनेवाली, **६२६ पुष्टिकरी**—पोषण करनेवाली, **६२७ पथ्या**—संसाररूपी रोगकी निवृत्तिके लिये हितकर आहार-स्वरूपा, **६२८ पूर्तिः**—पूर्णता, **६२९ प्रभावती**—प्रकाशवती।[७]

६३० पुनाना—पवित्र करनेवाली, **६३१ पीत-गर्भघ्नी**—पीतगर्भ अर्थात् राक्षसोंका नाश करनेवाली, **६३२ पापपर्वतनाशिनी**—पापरूपी पर्वतका नाश करनेवाली, **६३३ फलिनी**—देने योग्य फलसे युक्त, **६३४ फलहस्ता**—भक्तोंको देनेके लिये सब प्रकारके फल हाथमें धारण करनेवाली, **६३५ फुल्लाम्बुजविलोचना**—विकसित कमलके समान नेत्रोंवाली।[८]

---

१. परा परफलप्राप्तिः पावनी च पयस्विनी। परानन्दा प्रकृष्टार्था प्रतिष्ठा पालिनी परा॥
२. पुराणपठिता प्रीता प्रणवाक्षररूपिणी। पार्वती प्रेमसम्पन्ना पशुपाशविमोचनी॥
३. परमात्मस्वरूपा च परब्रह्मप्रकाशिनी। परमानन्दनिष्पन्दा प्रायश्चित्तस्वरूपिणी॥
४. पानीयरूपनिर्वाणा परित्राणपरायणा। पापेन्धनदवज्वाला पापारिः पापनामनुत्॥
५. परमैश्वर्यजननी प्रज्ञा प्राज्ञा परापरा। प्रत्यक्षलक्ष्मीः पद्माक्षी परव्योमामृतस्रवा॥
६. प्रसन्नरूपा प्रणिधिः पूता प्रत्यक्षदेवता। पिनाकिपरमप्रीता परमेष्ठिकमण्डलुः॥
७. पद्मनाभपदार्घ्येण प्रसूता पद्ममालिनी। परर्द्धिदा पुष्टिकरी पथ्या पूर्तिः प्रभावती॥
८. पुनाना पीतगर्भघ्नी पापपर्वतनाशिनी। फलिनी फलहस्ता च फुल्लाम्बुजविलोचना॥

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth 279 Skandpuran_Section_27_2_Back

६३६ **फालितैनोमहाक्षेत्रा**—पापोंके महाक्षेत्रको नष्ट करनेवाली, ६३७ **फणिलोकविभूषणम्**—भोगवती गंगाके रूपमें नागलोकको विभूषित करनेवाली, ६३८ **फेनच्छलप्रणुन्नैना:**—फेन छाँटनेके व्याजसे पापराशिको नाश करनेवाली, ६३९ **फुल्लकैरवगन्धिनी**—खिले हुए कुमुदपुष्पोंकी गन्धसे युक्त।[१]

६४० **फेनिलाच्छाम्बुधाराभा**—फेनयुक्त स्वच्छ जलकी धारासे उद्भासित होनेवाली, ६४१ **फुडुच्चाटितपातका**—'फुट्' इस शब्दके साथ पातकोंको उखाड़ फेंकनेवाली, ६४२ **फाणितस्वादुसलिला**—सीराके समान स्वादिष्ट जलवाली, ६४३ **फाण्टपथ्यजलाविला**—मट्ठाके समान पथ्य (हितकर) जलसे भरी हुई।[२]

६४४ **विश्वमाता**—समस्त संसारकी माता, ६४५ **विश्वेशी**—जगदीश्वरी, ६४६ **विश्वा**—सर्वस्वरूपा, ६४७ **विश्वेश्वरप्रिया**—विश्वनाथ-वल्लभा, ६४८ **ब्रह्मण्या**—ब्राह्मणहितकारिणी, ६४९ **ब्रह्मकृत्**—ब्रह्मा आदि देवताओंको उत्पन्न करनेवाली जगदीश्वरी, ६५० **ब्राह्मी**—ब्रह्मशक्ति, ६५१ **ब्रह्मिष्ठा**—ब्रह्मनिष्ठ, ६५२ **विमलोदका**—निर्मल जलवाली।[३]

६५३ **विभावरी**—रात्रिस्वरूपा, ६५४ **विरजा**—रजोगुणरहिता, ६५५ **विक्रान्तानेकविष्टपा**—अनेक भुवनोंमें व्याप्त, ६५६ **विश्वमित्रम्**—सम्पूर्ण जगत्की सुहृद्, ६५७ **विष्णुपदी**—भगवान् विष्णुके चरणोंसे प्रकट हुई, ६५८ **वैष्णवी**—विष्णुशक्ति, ६५९ **वैष्णवप्रिया**—विष्णुभक्तोंको प्रिय।[४]

६६० **विरूपाक्षप्रियकरी**—भगवान् शंकरका प्रियकार्य करनेवाली, ६६१ **विभूति:**—अणिमा आदि अष्टविध ऐश्वर्यरूपा, ६६२ **विश्वतोमुखी**—सब ओर मुखवाली, ६६३ **विपाशा**—बन्धनरहित, अथवा विपाशा (व्यास) नामक नदी, ६६४ **वैबुधी**—देवाधिदेव विष्णुकी शक्ति अथवा देवलोकमें प्रकट, ६६५ **वेद्या**—जानने योग्य, ६६६ **वेदाक्षररसस्रवा**—वेदके अक्षरोंसे प्रतिपादित ब्रह्मानन्दरसका स्रोत बहानेवाली, ब्रह्मद्रवरूपा।[५]

६६७ **विद्या**—ब्रह्मविद्यास्वरूपा, ६६८ **वेगवती**—बड़े वेगसे बहनेवाली, ६६९ **वन्द्या**—वन्दनीया, ६७० **बृंहणी**—बृहत्स्वरूपा अथवा विस्तार करनेवाली, ६७१ **ब्रह्मवादिनी**—ब्रह्मका उपदेश करनेवाली, ६७२ **वरदा**—वर देनेवाली, ६७३ **विप्रकृष्टा**—सर्वोत्तम, ६७४ **वरिष्ठा**—श्रेष्ठा, ६७५ **विशोधनी**—विशेषरूपसे शुद्ध (पवित्र) करनेवाली।[६]

६७६ **विद्याधरी**—सम्पूर्ण विद्याओंको धारण करनेवाली, ६७७ **विशोका**—शोकरहित, ६७८ **वयोवृन्दनिषेविता**—पक्षियोंके समुदायसे निषेवित, ६७९ **बहूदका**—बहुत जलवाली, ६८० **बलवती**—बलसे युक्त, ६८१ **व्योमस्था**—स्वर्गगंगारूपसे आकाशमें स्थित, ६८२ **विबुधप्रिया**—देवताओंकी प्रियनदी।[७]

६८३ **वाणी**—सरस्वतीस्वरूपा, ६८४ **वेदवती**—वैदिक ज्ञानसे सम्पन्न अथवा वेदवती नामवाली सती साध्वी स्वरूपा, ६८५ **वित्ता**—ज्ञानस्वरूपा, ६८६ **ब्रह्मविद्यातरङ्गिणी**—ब्रह्मविद्यारूपी तरंगोंसे युक्त, ६८७ **ब्रह्माण्डकोटिव्याप्ताम्बु:**—करोड़ों ब्रह्माण्डोंमें व्याप्त जलवाली, ६८८ **ब्रह्महत्यापहारिणी**—ब्रह्महत्याका अपहरण करनेवाली।[८]

---

१. फालितैनोमहाक्षेत्रा फणिलोकविभूषणम्। फेनच्छलप्रणुन्नैना: फुल्लकैरवगन्धिनी॥
२. फेनिलाच्छाम्बुधाराभा फुडुच्चाटितपातका। फाणितस्वादुसलिला फाण्टपथ्यजलाविला॥
३. विश्वमाता च विश्वेशी विश्वा विश्वेश्वरप्रिया। ब्रह्मण्या ब्रह्मकृद्ब्राह्मी ब्रह्मिष्ठा विमलोदका॥
४. विभावरी च विरजा विक्रान्तानेकविष्टपा। विश्वमित्रं विष्णुपदी वैष्णवी वैष्णवप्रिया॥
५. विरूपाक्षप्रियकरी विभूतिर्विश्वतोमुखी। विपाशा वैबुधी वेद्या वेदाक्षररसस्रवा॥
६. विद्या वेगवती वन्द्या बृंहणी ब्रह्मवादिनी। वरदा विप्रकृष्टा च वरिष्ठा च विशोधनी॥
७. विद्याधरी विशोका च वयोवृन्दनिषेविता। बहूदका बलवती व्योमस्था विबुधप्रिया॥
८. वाणी वेदवती वित्ता ब्रह्मविद्यातरङ्गिणी। ब्रह्माण्डकोटिव्याप्ताम्बुर्ब्रह्महत्यापहारिणी॥

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

६८९ **ब्रह्मेशविष्णुरूपा**—ब्रह्मा, शिव और विष्णुस्वरूपा, ६९० **बुद्धिः**—बुद्धिस्वरूपा, ६९१ **विभववर्द्धिनी**—धन बढ़ानेवाली, ६९२ **विलासिसुखदा**—विलासियोंको सुख देनेवाली, ६९३ **वश्या**—भगवदिच्छाके अधीन रहनेवाली, ६९४ **व्यापिनी**—सर्वत्र व्यापक, ६९५ **वृषारणिः**—धर्मोत्पत्तिकी कारणरूपा।[१]

६९६ **वृषाङ्कमौलिनिलया**—भगवान् शंकरके मस्तकपर निवास करनेवाली, ६९७ **विपन्नार्तिप्रभञ्जनी**—विपत्तिमें पड़े हुए भक्तजनोंकी पीड़ा अथवा अपने जलमें मृत्युको प्राप्त हुए पुरुषोंकी दुर्गति एवं कष्टका निवारण करनेवाली, ६९८ **विनीता**—विनयशीला, ६९९ **विनता**—विशेषत: नम्र, ७०० **ब्रध्नतनया**—सूर्यपुत्री यमुनास्वरूपा, ७०१ **विनयान्विता**—विनययुक्त।[२]

७०२ **विपञ्ची**—वीणास्वरूपा अथवा वीणाकी-सी मधुर ध्वनि करनेवाली, ७०३ **वाद्यकुशला**—सभी प्रकारके वाद्योंको बजानेमें चतुर, ७०४ **वेणुश्रुतिविचक्षणा**—वेणुगीत सुनने और समझनेमें कुशल, ७०५ **वर्चस्करी**—तेज उत्पन्न करनेवाली, ७०६ **बलकरी**—सामर्थ्य प्रदान करनेवाली, ७०७ **बलोन्मूलितकल्मषा**—बलपूर्वक पापोंका उच्छेद करनेवाली।[३]

७०८ **विपाप्मा**—पापरहित, ७०९ **विगतातङ्का**—भयरहित, ७१० **विकल्पपरिवर्जिता**—भेददृष्टिसे रहित, ७११ **वृष्टिकर्त्री**—सूर्यरूपसे वर्षा करनेवाली, ७१२ **वृष्टिजला**—वर्षाके कारणभूत जलवाली, ७१३ **विधिः**—ब्रह्मारूपसे सृष्टि करनेवाली, ७१४ **विच्छिन्नबन्धना**—अपने आश्रितोंके संसार-बन्धनका नाश करनेवाली।[४]

७१५ **व्रतरूपा**—कृच्छ्र-चान्द्रायणादि व्रतस्वरूपा अथवा भक्तोंके व्रत (संकल्प)-के अनुसार स्वरूप धारण करनेवाली, ७१६ **वित्तरूपा**—वैभवरूपिणी, ७१७ **बहुविघ्नविनाशकृत्**—बहुतसे विघ्नोंका विनाश करनेवाली, ७१८ **वसुधारा**—वसु (धन) धारण करनेवाली, आठ वसुओंको मातारूपसे गर्भमें धारण करनेवाली अथवा 'वसुधारा' स्वरूपा, ७१९ **वसुमती**—रत्नगर्भा वसुधारूपा, ७२० **विचित्राङ्गी**—अद्भुत शरीरवाली, ७२१ **विभावसुः**—अग्नि अथवा सूर्यकी भाँति प्रकाशित होनेवाली।[५]

७२२ **विजया**—विजयशालिनी, ७२३ **विश्वबीजम्**—जगत्की कारणस्वरूपा, ७२४ **वामदेवी**—वामदेव शिवकी शक्ति, मनोहारिणी देवी, ७२५ **वरप्रदा**—वर देनेवाली, ७२६ **वृषाश्रिता**—धर्मके आश्रित, ७२७ **विषघ्नी**—विषका प्रभाव नष्ट करनेवाली, ७२८ **विज्ञानोर्म्यंशुमालिनी**—विज्ञानमयी तरंगों और किरणोंसे युक्त।[६]

७२९ **भव्या**—कल्याणमयी, ७३० **भोगवती**—भोगवती नामसे प्रसिद्ध पातालगंगा, ७३१ **भद्रा**—मंगलमयी, ७३२ **भवानी**—शिवपत्नी, ७३३ **भूतभाविनी**—समस्त प्राणियोंकी उत्पत्ति और पालन करनेवाली, ७३४ **भूतधात्री**—चार प्रकारके जीवोंका धारण-पोषण करनेवाली, ७३५ **भयहरा**—संसारभयका निवारण करनेवाली, ७३६ **भक्तदारिद्र्यघातिनी**—भक्तोंकी दरिद्रताका नाश करनेवाली।[७]

७३७ **भुक्तिमुक्तिप्रदा**—भोग और मोक्ष देनेवाली, ७३८ **भेशी**—नक्षत्रोंकी अधीश्वरी, ७३९ **भक्तस्वर्गापवर्गदा**—भक्तोंको स्वर्ग और मोक्ष देनेवाली, ७४० **भागीरथी**—राजा भगीरथके द्वारा लायी

---

१. ब्रह्मेशविष्णुरूपा च बुद्धिर्विभववर्द्धिनी । विलासिसुखदा वश्या व्यापिनी च वृषारणिः॥
२. वृषाङ्कमौलिनिलया विपन्नार्तिप्रभञ्जनी । विनीता विनता ब्रध्नतनया विनयान्विता॥
३. विपञ्ची वाद्यकुशला वेणुश्रुतिविचक्षणा । वर्चस्करी बलकरी बलोन्मूलितकल्मषा॥
४. विपाप्मा विगतातङ्का विकल्पपरिवर्जिता । वृष्टिकर्त्री वृष्टिजला विधिर्विच्छिन्नबन्धना॥
५. व्रतरूपा वित्तरूपा बहुविघ्नविनाशकृत् । वसुधारा वसुमती विचित्राङ्गी विभावसुः॥
६. विजया विश्वबीजं च वामदेवी वरप्रदा । वृषाश्रिता विषघ्नी च विज्ञानोर्म्यंशुमालिनी॥
७. भव्या भोगवती भद्रा भवानी भूतभाविनी । भूतधात्री भयहरा भक्तदारिद्र्यघातिनी॥

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

हुई, ७४१ **भानुमती**—प्रकाशवती, ७४२ **भाग्यम्**—नियतिरूपा, ७४३ **भोगवती**—विविध प्रकारके भोगोंसे सम्पन्न, ७४४ **भृतिः**—भरण-पोषणका साधन।[१]

७४५ **भवप्रिया**—भगवान् शंकरकी प्रिया, ७४६ **भवद्वेष्ट्री**—संसार-बन्धनका नाश करनेवाली, ७४७ **भूतिदा**—ऐश्वर्य देनेवाली, ७४८ **भूतिभूषणा**—विभूतिसे विभूषित, ७४९ **भाललोचनभावज्ञा**—भगवान् शिवके भावको जाननेवाली, ७५० **भूतभव्यभवत्प्रभुः**—भूत, वर्तमान और भविष्य तीनों कालकी स्वामिनी।[२]

७५१ **भ्रान्तिज्ञानप्रशमनी**—भ्रमात्मक ज्ञानका निवारण करनेवाली, ७५२ **भिन्नब्रह्माण्डमण्डपा**—ब्रह्माण्डरूपी मण्डपका भेदन करनेवाली, ७५३ **भूरिदा**—बहुत देनेवाली, ७५४ **भक्तसुलभा**—भक्तोंको सुगमतापूर्वक प्राप्त होनेवाली, ७५५ **भाग्यवद्दृष्टिगोचरी**—भाग्यवानोंको प्रत्यक्ष दर्शन देनेवाली।[३]

७५६ **भञ्जितोपप्लवकुला**—भक्तजनोंके उपद्रवोंका नाश करनेवाली, ७५७ **भक्ष्यभोज्यसुखप्रदा**—भक्ष्य-भोज्यका सुख देनेवाली, ७५८ **भिक्षणीया**—अभ्युदय और निःश्रेयसकी इच्छावाले पुरुषोंद्वारा याचना करने योग्य, ७५९ **भिक्षुमाता**—भिक्षुओं—परमहंसजनोंको माताके समान सुख देनेवाली, ७६० **भावी**—सबको उत्पन्न करनेवाली, ७६१ **भावस्वरूपिणी**—पदार्थरूपा।[४]

७६२ **मन्दाकिनी**—स्वर्गंगा, ७६३ **महानन्दा**—परमानन्दस्वरूपा, ७६४ **माता**—सम्पूर्ण विश्वके पापरूपी मलको पुत्रवत्सला माताकी भाँति दूर करनेवाली, ७६५ **मुक्तितरङ्गिणी**—मोक्षरूप तरंगोंसे सुशोभित, ७६६ **महोदया**—महान् अभ्युदयरूप, ७६७ **मधुमती**—अमृतमय जलसे युक्त, ७६८ **महापुण्या**—महापुण्यस्वरूपा, ७६९ **मुदाकरी**—हर्षोल्लासकी निधि।[५]

७७० **मुनिस्तुता**—मुनियोंके द्वारा प्रशंसित एवं पूजित, ७७१ **मोहहन्त्री**—अज्ञानका नाश करनेवाली, ७७२ **महातीर्था**—महान् तीर्थस्वरूपा, ७७३ **मधुस्रवा**—मीठे जलका स्रोत बहानेवाली, ७७४ **माधवी**—विष्णुप्रिया, ७७५ **मानिनी**—सबके द्वारा सम्मान प्राप्त करनेवाली, ७७६ **मान्या**—माननीया, पूजनीया, ७७७ **मनोरथपथातिगा**—मनकी पहुँचसे परे विराजमान।[६]

७७८ **मोक्षदा**—मोक्ष देनेवाली, ७७९ **मतिदा**—उत्तम बुद्धि देनेवाली, ७८० **मुख्या**—श्रेष्ठा, ७८१ **महाभाग्यजनाश्रिता**—बड़भागी मनुष्योंद्वारा सेवित, ७८२ **महावेगवती**—बड़े वेगसे बहनेवाली, ७८३ **मेध्या**—पवित्रा, ७८४ **महा**—उत्सवरूपा, ७८५ **महिमभूषणा**—अपनी महिमासे विभूषित।[७]

७८६ **महाप्रभावा**—महान् प्रभावसे युक्त, ७८७ **महती**—विशाल, ७८८ **मीनचञ्चललोचना**—मीनके समान अथवा मीनस्वरूप चंचल नेत्रोंवाली, ७८९ **महाकारुण्यसम्पूर्णा**—अत्यन्त कृपासे भरी हुई, ७९० **महर्द्धिः**—बड़ी भारी समृद्धि देनेवाली अथवा महती समृद्धिरूपा, ७९१ **महोत्पला**—बड़े-बड़े कमलोंको उत्पन्न करनेवाली।[८]

७९२ **मूर्तिमत्**—मूर्तिमान् तेज, ७९३ **मुक्ति**-

---

१. भुक्तिमुक्तिप्रदा भेशी भक्तस्वर्गापवर्गदा। भागीरथी भानुमती भाग्यं भोगवती भृतिः॥
२. भवप्रिया भवद्वेष्ट्री भूतिदा भूतिभूषणा। भाललोचनभावज्ञा भूतभव्यभवत्प्रभुः॥
३. भ्रान्तिज्ञानप्रशमनी भिन्नब्रह्माण्डमण्डपा। भूरिदा भक्तसुलभा भाग्यवद्दृष्टिगोचरी॥
४. भञ्जितोपप्लवकुला भक्ष्यभोज्यसुखप्रदा। भिक्षणीया भिक्षुमाता भावी भावस्वरूपिणी॥
५. मन्दाकिनी महानन्दा माता मुक्तितरङ्गिणी। महोदया मधुमती महापुण्या मुदाकरी॥
६. मुनिस्तुता मोहहन्त्री महातीर्था मधुस्रवा। माधवी मानिनी मान्या मनोरथपथातिगा॥
७. मोक्षदा मतिदा मुख्या महाभाग्यजनाश्रिता। महावेगवती मेध्या महा महिमभूषणा॥
८. महाप्रभावा महती मीनचञ्चललोचना। महाकारुण्यसम्पूर्णा महर्द्धिश्च महोत्पला॥

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

रमणी—मुक्तिरूपा, रमण करने योग्य, ७९४ **मणिमाणिक्यभूषणा**—मणि-माणिक्यमय आभूषणोंवाली ७९५ **मुक्ताकलापनेपथ्या**—मोतियोंकी मालासे शृंगार करनेवाली, ७९६ **मनोनयननन्दिनी**—मन और नेत्रोंको आनन्द देनेवाली।[१]

७९७ **महापातकराशिघ्नी**—महापातकोंकी राशिका नाश करनेवाली, ७९८ **महादेवार्धहारिणी**—महादेवजीके आधे शरीरपर अधिकार करनेवाली गौरीस्वरूपा, ७९९ **महोर्मिमालिनी**—ऊँची तरंग-मालाओंसे युक्त, ८०० **मुक्ता**—मुक्तस्वरूपा, ८०१ **महादेवी**—महादेवी, ८०२ **मनोन्मनी**—मनको उन्मन (उत्तम ज्ञानसे युक्त) करनेवाली।[२]

८०३ **महापुण्योदयप्राप्या**—महान् पुण्यका उदय होनेपर प्राप्त होनेवाली, ८०४ **मायातिमिरचन्द्रिका**—मायामय अन्धकारका नाश करनेके लिये चन्द्रप्रभारूप, ८०५ **महाविद्या**—ब्रह्मविद्यास्वरूपा, ८०६ **महामाया**—महामाया, ८०७ **महामेधा**—महान् बुद्धिमती, ८०८ **महौषधम्**—उत्तम ओषधिरूपा।[३]

८०९ **मालाधरी**—माला धारण करनेवाली, ८१० **महोपाया**—मुक्तिकी प्राप्तिका महासाधन, ८११ **महोरगविभूषणा**—महान् सर्प जिसके आभूषण हैं, वह, ८१२ **महामोहप्रशमनी**—महान् मोहको शान्त करनेवाली, ८१३ **महामङ्गलमङ्गलम्**—महान् मंगलोंके लिये भी मंगलरूप।[४]

८१४ **मार्तण्डमण्डलचरी**—आकाशगंगारूपसे सूर्यलोकमें विचरनेवाली, ८१५ **महालक्ष्मीः**—महालक्ष्मीस्वरूपा, ८१६ **मदोज्झिता**—मदसे रहित, ८१७ **यशस्विनी**—उत्तम यशसे युक्त, ८१८ **यशोदा**—सुयश देनेवाली, ८१९ **योग्या**—सब प्रकारसे सुयोग्य, ८२० **युक्तात्मसेविता**—जितात्मा पुरुषोंद्वारा सेवित।[५]

८२१ **योगसिद्धिप्रदा**—योगसिद्धि देनेवाली, ८२२ **याच्या**—प्रार्थनीया, ८२३ **यज्ञेशपरिपूरिता**—यज्ञेश्वर विष्णुसे व्याप्त, ८२४ **यज्ञेशी**—यज्ञकी अधिष्ठात्री देवी, ८२५ **यज्ञफलदा**—स्मरण करनेपर यज्ञोंका फल देनेवाली, ८२६ **यजनीया**—पूजनीया, ८२७ **यशस्करी**—यश देनेवाली।[६]

८२८ **यमिसेव्या**—संयमी पुरुषोंद्वारा सेवन करनेयोग्य, ८२९ **योगयोनिः**—योगकी उत्पत्तिका स्थान, ८३० **योगिनी**—योगको जाननेवाली, ८३१ **युक्तबुद्धिदा**—योगयुक्त बुद्धि देनेवाली, ८३२ **योगज्ञानप्रदा**—योग और ज्ञान देनेवाली, ८३३ **युक्ता**—मन और इन्द्रियोंको संयममें रखनेवाली, ८३४ **यमाद्यष्टाङ्गयोगयुक्**—यम, नियम आदि आठ अंगोंवाले योगसे युक्त।[७]

८३५ **यन्त्रिताघौघसंचारा**—पापराशियोंके संचारको नियन्त्रित करनेवाली, ८३६ **यमलोकनिवारिणी**—यमलोकका निवारण करनेवाली, ८३७ **यातायातप्रशमनी**—आवागमन अथवा जन्म-मृत्युका कष्ट दूर करनेवाली, ८३८ **यातनानामकृन्तनी**—यातनाका नाम-निशान मिटानेवाली।[८]

८३९ **यामिनीशहिमाच्छोदा**—चन्द्रमा और बर्फके समान स्वच्छ एवं शीतल जलवाली, ८४० **युगधर्मविवर्जिता**—कलियुगधर्म— हिंसा और असत्य आदिसे सर्वथा रहित, ८४१ **रेवती**—रेवती नामक नक्षत्रस्वरूपा, ८४२ **रतिकृत्**—भगवान्‌के

१. मूर्तिमन्मुक्तिरमणी मणिमाणिक्यभूषणा। मुक्ताकलापनेपथ्या मनोनयननन्दिनी॥
२. महापातकराशिघ्नी महादेवार्धहारिणी। महोर्मिमालिनी मुक्ता महादेवी मनोन्मनी॥
३. महापुण्योदयप्राप्या मायातिमिरचन्द्रिका। महाविद्या महामाया महामेधा महौषधम्।
४. मालाधरी महोपाया महोरगविभूषणा। महामोहप्रशमनी महामङ्गलमङ्गलम्॥
५. मार्तण्डमण्डलचरी महालक्ष्मीर्मदोज्झिता। यशस्विनी यशोदा च योग्या युक्तात्मसेविता॥
६. योगसिद्धिप्रदा याच्या यज्ञेशपरिपूरिता। यज्ञेशी यज्ञफलदा यजनीया यशस्करी॥
७. यमिसेव्या योगयोनिर्योगिनी युक्तबुद्धिदा। योगज्ञानप्रदा युक्ता यमाद्यष्टाङ्गयोगयुक्।
८. यन्त्रिताघौघसंचारा यमलोकनिवारिणी। यातायातप्रशमनी यातनानामकृन्तनी॥

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

प्रति अनुराग रखनेवाली, **८४३ रम्या**—रमणीया, **८४४ रत्नगर्भा**—अपने भीतर रत्न धारण करनेवाली **८४५ रमा**—लक्ष्मीरूपा, **८४६ रतिः**—अनुरागरूपा।[१]

८४७ रत्नाकरप्रेमपात्रम्—रत्नाकर— समुद्रकी प्रीतिपात्र, **८४८ रसज्ञा**—रसको जाननेवाली, **८४९ रसरूपिणी**—रसस्वरूपा, **८५० रत्नप्रासादगर्भा**—जिसके भीतर रत्नमय देवालय शोभा पा रहे हैं, ऐसी, **८५१ रमणीयतरङ्गिणी**—रमणीय लहरोंसे युक्त।[२]

८५२ रत्नार्चिः—रत्नोंके समान कान्तिमती, **८५३ रुद्ररमणी**—भगवान् रुद्रकी जटामें रमण करनेवाली, **८५४ रागद्वेषविनाशिनी**—राग और द्वेषका नाश करनेवाली, **८५५ रमा**—नेत्र और मनको रमानेवाली, **८५६ रामा**—मनोहर स्त्री अथवा योगियोंके मनको रमानेवाली, **८५७ रम्यरूपा**—रमणीय रूपवाली, **८५८ रोगिजीवानुरूपिणी**—संसार-रोगसे ग्रस्त पुरुषोंके लिये संजीवन ओषधिरूपा।[३]

८५९ रुचिकृत्—प्रकाश करनेवाली, **८६० रोचनी**—अपने दर्शनकी रुचि उत्पन्न करनेवाली, **८६१ रम्या**—रमाकी हितकारिणी, **८६२ रुचिरा**—मनोहर रूपवाली, **८६३ रोगहारिणी**—संसाररूपी रोगका नाश करनेवाली, **८६४ राजहंसा**—शोभायमान हंसोंसे युक्त, **८६५ रत्नवती**—अनेक प्रकारके रत्नोंसे संयुक्त, **८६६ राजत्कल्लोलराजिका**—शोभाशाली तरंग-मालाओंसे युक्त।[४]

८६७ रामणीयकरेखा—जिसकी जलधारा रमणीयताकी रेखा है, वह, **८६८ रुजारिः**—रोगोंकी शत्रुभूता, **८६९ रोगरोषिणी**—रोगोंपर रोष प्रकट करनेवाली, **८७० राका**—पूर्णमासीस्वरूपा, **८७१ रङ्कार्तिशमनी**—दीन-दुःखियोंकी दैन्य वेदना शान्त करनेवाली, **८७२ रम्या**—रमणीया, **८७३ रोलम्बराविणी**—भ्रमरोंके गुंजारके समान जलकी कलकल ध्वनि करनेवाली।[५]

८७४ रागिणी—भगवान्के प्रति अनुराग रखनेवाली, **८७५ रञ्जितशिवा**—अपनी सन्निधिसे भगवान् शिवको प्रसन्न करनेवाली, **८७६ रूपलावण्यशेवधिः**—सौन्दर्य और कान्तिकी निधि, **८७७ लोकप्रसूः**—लोकमाता, **८७८ लोकवन्द्या**—सम्पूर्ण विश्वके लिये वन्दनीया, **८७९ लोलत्कल्लोलमालिनी**—चंचल लहरोंकी श्रेणियोंसे सुशोभित।[६]

८८० लीलावती—सृष्टिकी उत्पत्ति, पालन और संहारकी लीला करनेवाली, **८८१ लोकभूमिः**—सम्पूर्ण भुवनोंकी आधार, **८८२ लोकलोचनचन्द्रिका**—लोगोंके नेत्रोंमें चाँदनीकी भाँति आह्लाद उत्पन्न करनेवाली, **८८३ लेखस्रवन्ती**—देवनदी, **८८४ लटभा**—भगवत्प्रेमके लिये लोलुप-सी प्रतीत होनेवाली, **८८५ लघुवेगा**—शीतकालमें लघुवेगवाली, **८८६ लघुत्वहृत्**—भक्तोंकी लघुता दूर करनेवाली।[७]

८८७ लास्यतरङ्गहस्ता—नृत्य-सा करती हुई चंचल लहरें जिसके लिये मानो हाथ हैं, वह, **८८८ ललिता**—मनोहर रूपवाली, **८८९ लयभङ्गिमा**—लय— नृत्य, गति और वाद्यकी समताकी भंगी (अंदाज)-से चलनेवाली, **८९० लोकबन्धुः**—सम्पूर्ण जगत्का बन्धुकी भाँति हित चाहनेवाली, **८९१ लोकधात्री**—माताकी भाँति विश्वका पालन-पोषण करनेवाली, **८९२ लोकोत्तरगुणोर्जिता**—अलौकिक गुणोंसे बढ़ी-चढ़ी।[८]

---

१. यामिनीशहिमाच्छोदा युगधर्मविवर्जिता। रेवती रतिकृद् रम्या रत्नगर्भा रमा रतिः॥
२. रत्नाकरप्रेमपात्रं रसज्ञा रसरूपिणी। रत्नप्रासादगर्भा च रमणीयतरङ्गिणी॥
३. रत्नार्ची रुद्ररमणी रागद्वेषविनाशिनी। रमा रामा रम्यरूपा रोगिजीवानुरूपिणी॥
४. रुचिकृद् रोचनी रम्या रुचिरा रोगहारिणी। राजहंसा रत्नवती राजत्कल्लोलराजिका॥
५. रामणीयकरेखा च रुजारी रोगरोषिणी। राका रङ्कार्तिशमनी रम्या रोलम्बराविणी॥
६. रागिणी रञ्जितशिवा रूपलावण्यशेवधिः। लोकप्रसूर्लोकवन्द्या लोलत्कल्लोलमालिनी॥
७. लीलावती लोकभूमिर्लोकलोचनचन्द्रिका। लेखस्रवन्ती लटभा लघुवेगा लघुत्वहृत्॥
८. लास्यतरङ्गहस्ता च ललिता लयभङ्गिगा। लोकबन्धुर्लोकधात्री लोकोत्तरगुणोर्जिता॥

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

८९३ लोकत्रयहिता—तीनों लोकोंका हित करनेवाली, **८९४ लोका**—लोकस्वरूपा, **८९५ लक्ष्मीः**—लक्ष्मीस्वरूपा, **८९६ लक्षणलक्षिता**—शुभ लक्षणोंसे उपलक्षिता, **८९७ लीला**—भगवत्क्रीडास्वरूपा, **८९८ लक्षितनिर्वाणा**—मोक्षका साक्षात्कार करानेवाली, **८९९ लावण्यामृतवर्षिणी**—लावण्यमय अमृतकी वर्षा करनेवाली।[१]

९०० वैश्वानरी—वैश्वानर-अग्निस्वरूपा, **९०१ वासवेड्या**—इन्द्रके द्वारा स्तवन करनेयोग्य, **९०२ वन्ध्यत्वपरिहारिणी**—वन्ध्यापनका निवारण करनेवाली, **९०३ वासुदेवाङ्घ्रिरेणुघ्नी**—भगवान् विष्णुके चरणोंकी धूलिको धो लेनेवाली, **९०४ वज्रिवज्रनिवारिणी**—इन्द्रके वज्रका निवारण करनेवाली।[२]

९०५ शुभावती—मंगलमयी, **९०६ शुभफला**—शुभ फल देनेवाली, **९०७ शान्तिः**—शान्तिस्वरूपा, **९०८ शान्तनुवल्लभा**—राजा शान्तनुकी प्रिय पत्नी, **९०९ शूलिनी**—त्रिशूल धारण करनेवाली, **९१० शैशववया**—बाल्यावस्थासे युक्त, **९११ शीतलामृतवाहिनी**—शीतल जलकी धारा बहानेवाली।[३]

९१२ शोभावती—शोभायमान, **९१३ शीलवती**—सुशीला, **९१४ शोषिताशेषकिल्बिषा**—सम्पूर्ण पापोंका शोषण (नाश) करनेवाली, **९१५ शरण्या**—शरण लेने योग्य, **९१६ शिवदा**—कल्याणदायिनी, **९१७ शिष्टा**—श्रेष्ठा, **९१८ शरजन्मप्रसूः**—कार्तिकेयकी जननी, **९१९ शिवा**—कल्याणस्वरूपा।[४]

९२० शक्तिः—आह्लादिनी शक्तिस्वरूपा, **९२१ शशाङ्कविमला**—चन्द्रमाके समान उज्ज्वल वर्णवाली, **९२२ शमनस्वसृसम्मता**—यमराजकी बहिन यमुनाकी प्रिय सखी, **९२३ शमा**—अज्ञानका नाश करनेवाली अथवा शमस्वरूपा, **९२४ शमनमार्गघ्नी**—यमलोकके मार्गका निवारण करनेवाली, **९२५ शितिकण्ठमहाप्रिया**—नीलकण्ठ महादेवजीकी अत्यन्त वल्लभा।[५]

९२६ शुचिः—पवित्रा, **९२७ शुचिकरी**—पवित्र करनेवाली, **९२८ शेषा**—प्रलयके समय भी शेष रहनेवाली—सच्चिदानन्द ब्रह्मरूपा, **९२९ शेषशायिपदोद्भवा**—शेषनागकी शय्यापर शयन करनेवाले भगवान् विष्णुके चरणारविन्दोंसे प्रकट हुई, **९३० श्रीनिवासश्रुतिः**—भगवान् विष्णुसे जिनका प्रादुर्भाव सुना जाता है, वह, **९३१ श्रद्धा**—आस्तिक्य बुद्धिरूपा, **९३२ श्रीमती**—शोभायुक्त, **९३३ श्रीः**—लक्ष्मीस्वरूपा, **९३४ शुभव्रता**—शुभव्रतवाली।[६]

९३५ शुद्धविद्या—ब्रह्मविद्यास्वरूपा, **९३६ शुभावर्ता**—उत्तम भँवरवाली, **९३७ श्रुतानन्दा**—श्रवणमात्रसे आनन्द देनेवाली, **९३८ श्रुतिस्तुतिः**—श्रुतियों (वैदिक मन्त्रों) द्वारा जिसकी स्तुति की जाती है, वह, **९३९ शिवेतरघ्नी**—अमंगलकारी पापोंका नाश करनेवाली, **९४० शबरी**—किरातरूपधारी भगवान् महेश्वरकी प्रिया, **९४१ शाम्बरीरूपधारणी**—मायामय रूप धारण करनेवाली।[७]

९४२ श्मशानशोधनी—काशीकी महाश्मशानभूमिको शुद्ध करनेवाली, **९४३ शान्ता**—शान्तस्वरूपा, **९४४ शश्वत्**—सनातनी, **९४५ शतधृतिस्तुता**—ब्रह्माजीके द्वारा अभिवन्दित, **९४६ शालिनी**—शोभायमान, **९४७ शालिशोभाढ्या**—धानके हरे-भरे पौधोंकी शोभासे सम्पन्न, **९४८ शिखिवाहन-**

---

१. लोकत्रयहिता लोका लक्ष्मीर्लक्षणलक्षिता। लीला लक्षितनिर्वाणा लावण्यामृतवर्षिणी॥
२. वैश्वानरी वासवेड्या वन्ध्यत्वपरिहारिणी। वासुदेवाङ्घ्रिरेणुघ्नी वज्रिवज्रनिवारिणी॥
३. शुभावती शुभफला शान्तिः शान्तनुवल्लभा। शूलिनी शैशववया शीतलामृतवाहिनी॥
४. शोभावती शीलवती शोषिताशेषकिल्बिषा। शरण्या शिवदा शिष्टा शरजन्मप्रसूः शिवा॥
५. शक्तिः शशाङ्कविमला शमनस्वसृसम्मता। शमा शमनमार्गघ्नी शितिकण्ठमहाप्रिया॥
६. शुचिः शुचिकरी शेषा शेषशायिपदोद्भवा। श्रीनिवासश्रुतिः श्रद्धा श्रीमती श्रीः शुभव्रता॥
७. शुद्धविद्या शुभावर्ता श्रुतानन्दा श्रुतिस्तुतिः। शिवेतरघ्नी शबरी शाम्बरीरूपधारिणी॥

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

गर्भभृत्—कार्तिकेयको गर्भमें धारण करनेवाली।[१]

९४९ शंसनीयचरित्रा—स्तवन करनेयोग्य दिव्य चरित्रोंवाली, **९५० शातिताशेषपातका**—समस्त पातकोंका नाश करनेवाली, **९५१ षड्गुणैश्वर्यसम्पन्ना**—ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान तथा वैराग्य—इन छः प्रकारके ऐश्वर्योंसे सम्पन्न, **९५२ षडङ्गश्रुतिरूपिणी**—शिक्षा, व्याकरण, छन्द, निरुक्त, ज्यौतिष तथा कल्प—ये वेदके छः अंग तथा वेद जिसके स्वरूप हैं, वह।[२]

९५३ षण्ढताहारिसलिला—नपुंसकता एवं निर्वीर्यता आदि दोष दूर करनेमें समर्थ जलवाली, **९५४ स्त्यायन्नदनदीशता**—जिसमें सैकड़ों नद और नदियाँ कल-कल नादके साथ आकर मिलती हैं, वह, **९५५ सरिद्वरा**—नदियोंमें श्रेष्ठ, **९५६ सुरसा**—उत्तम रससे युक्त, **९५७ सुप्रभा**—सुन्दर प्रभावाली, **९५८ सुरदीर्घिका**—देवताओंकी बावली।[३]

९५९ स्वःसिन्धुः—स्वर्गलोककी नदी, **९६० सर्वदुःखघ्नी**—सबके दुःखोंका नाश करनेवाली, **९६१ सर्वव्याधिमहौषधम्**—समस्त रोगोंकी एकमात्र महौषधि, **९६२ सेव्या**—सेवन करने योग्य, **९६३ सिद्धिः**—अणिमा आदि अष्टसिद्धिस्वरूपा, **९६४ सती**—पतिव्रता, **९६५ सूक्तिः**—शुभ उक्तिरूप अथवा वैदिक-सूक्तस्वरूपा, **९६६ स्कन्दसूः**—कार्तिकेयजननी, **९६७ सरस्वती**—वाणीकी अधिष्ठात्री देवी।[४]

९६८ सम्पत्तरङ्गिणी—सम्पत्तिरूप लहरोंवाली, **९६९ स्तुत्या**—स्तवन करने योग्य, **९७० स्थाणुमौलिकृतालया**—भगवान् शंकरके मस्तकको अपना निवासस्थान बनानेवाली, **९७१ स्थैर्यदा**—स्थिरता प्रदान करनेवाली, **९७२ सुभगा**—उत्तम ऐश्वर्यसे युक्त, **९७३ सौख्या**—सुख देनेवाली, **९७४ स्त्रीषु सौभाग्यदायिनी**—स्त्रियोंको सौभाग्य प्रदान करनेवाली।[५]

९७५ स्वर्गनिःश्रेणिका—स्वर्गलोकमें जानेके लिये सीढ़ी, **९७६ सूक्ष्मा**—इन्द्रियोंकी पहुँचसे परे स्थित, सूक्ष्मस्वरूपा, **९७७ स्वधा**—पितृतृप्तिस्वरूपा, **९७८ स्वाहा**—हव्यस्वरूपा, **९७९ सुधाजला**—अमृतके समान मधुर जलवाली, **९८० समुद्ररूपिणी**—समुद्ररूपा, **९८१ स्वर्ग्या**—स्वर्गलोककी प्राप्तिमें सहायक, **९८२ सर्वपातकवैरिणी**—समस्त पापोंकी शत्रु।[६]

९८३ स्मृताघहारिणी—स्मरण करनेपर समस्त पापोंका संहार करनेवाली, **९८४ सीता**—सीता नामवाली गंगा, जनकनन्दिनीस्वरूपा, **९८५ संसाराब्धितरण्डिका**—संसारसागरसे पार उतारनेके लिये नौकारूप, **९८६ सौभाग्यसुन्दरी**—अतिशय सौभाग्यसे परम सुन्दर प्रतीत होनेवाली, **९८७ सन्ध्या**—सन्ध्याकालमें उपास्य गायत्रीरूपा, **९८८ सर्वसारसमन्विता**—समस्त शक्तियोंसे संयुक्त।[७]

९८९ हरप्रिया—भगवान् शिवकी वल्लभा, **९९० हृषीकेशी**—इन्द्रियोंकी स्वामिनी अथवा हृषीकेश भगवान् विष्णुकी पत्नी, **९९१ हंसरूपा**—शुद्धस्वरूपा, हंसरूपधारिणी, **९९२ हिरण्मयी**—स्वर्णमयी, ज्ञानस्वरूपा, **९९३ हृताघसंघा**—पापराशियोंका विनाश करनेवाली, **९९४ हितकृत्**—हित-साधन करनेवाली, **९९५ हेला**—एक प्रकारकी शृंगारजनित चेष्टा, **९९६ हेलाघगर्वहृत्**—लीलापूर्वक पापका घमण्ड चूर करनेवाली।[८]

---

१. श्मशानशोधनी शान्ता शश्वच्छतधृतिस्तुता। शालिनी शालिशोभाढ्या शिखिवाहनगर्भभृत्॥
२. शंसनीयचरित्रा च शातिताशेषपातका। षड्गुणैश्वर्यसम्पन्ना षडङ्गश्रुतिरूपिणी॥
३. षण्ढताहारिसलिला स्त्यायन्नदनदीशता। सरिद्वरा च सुरसा सुप्रभा सुरदीर्घिका॥
४. स्वःसिन्धुः सर्वदुःखघ्नी सर्वव्याधिमहौषधम्। सेव्या सिद्धिः सती सूक्तिः स्कन्दसूश्च सरस्वती॥
५. सम्पत्तरङ्गिणी स्तुत्या स्थाणुमौलिकृतालया। स्थैर्यदा सुभगा सौख्या स्त्रीषु सौभाग्यदायिनी॥
६. स्वर्गनिःश्रेणिका सूक्ष्मा स्वधा स्वाहा सुधाजला। समुद्ररूपिणी स्वर्ग्या सर्वपातकवैरिणी॥
७. स्मृताघहारिणी सीता संसाराब्धितरण्डिका। सौभाग्यसुन्दरी सन्ध्या सर्वसारसमन्विता॥
८. हरप्रिया हृषीकेशी हंसरूपा हिरण्मयी। हृताघसंघा हितकृद्धेला हेलाघगर्वहृत्॥

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

९९७ क्षेमदा—कल्याणदायिनी, **९९८ क्षालिताघौघा**—पापराशिको धो डालनेवाली, **९९९ क्षुद्रविद्राविणी**—दुष्टोंको मार भगानेवाली, **१००० क्षमा**—सहनशीला, पृथ्वीस्वरूपा। अगस्त्यजी! इस प्रकार गंगाजीके सहस्र नामोंका कीर्तन करके मनुष्य गंगास्नानका उत्तम फल पा लेता है।*

यह गंगासहस्रनाम सब पापोंका नाश और सम्पूर्ण विघ्नोंका निवारण करनेवाला है। समस्त स्तोत्रोंके जपसे इसका जप श्रेष्ठ है। यह सबको पवित्र करनेवाली वस्तुओंको भी पवित्र करनेवाला है। श्रद्धापूर्वक इसका पाठ करनेपर यह मनोवांछित फल देनेवाला है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों पुरुषार्थोंकी प्राप्ति करानेवाला है। मुने! इसका एक बार पाठ करनेसे भी एक यज्ञका फल प्राप्त होता है। गंगासहस्रनाम आयु तथा आरोग्य देनेवाला और सम्पूर्ण उपद्रवोंका नाश करनेवाला है। यह मनुष्योंको सब प्रकारकी सिद्धि देनेवाला है। जो इस स्तुतिका पाठ करता है, उसे सदाचारी जानना चाहिये। वह सदा पवित्र है तथा उसने सम्पूर्ण देवताओंकी पूजा सम्पन्न कर ली है। उसके तृप्त होनेसे साक्षात् गंगाजी तृप्त हो जाती हैं। अतः सर्वथा प्रयत्न करके गंगाजीके भक्तका पूजन करे। जो गंगाजीके इस स्तोत्रराजका श्रवण और पाठ करता है या दम्भ और लोभसे रहित होकर उनके भक्तोंको सुनाता है, वह मानसिक, वाचिक और शारीरिक तीनों प्रकारके पापोंसे मुक्त हो जाता है तथा पितरोंका प्रिय होता है। जिसके घरमें गंगाजीका यह स्तोत्र लिखकर इसकी पूजा की जाती है, वहाँ पापका कोई भय नहीं है। वह घर सदा पवित्र है।

शिवकी कृपाके बिना काशीवासकी दुर्लभता तथा काशीकी महिमा

स्कन्दजी कहते हैं—महाभाग अगस्त्यजी! सुनिये। सुप्रसिद्ध राजा भगीरथ श्रीमहादेवजीकी आराधना करके गंगाजीको बड़ी तपस्यासे भूमिपर ले आये। फिर वहाँसे तीनों लोकोंके हितके लिये गंगाको उस स्थानपर लाये जहाँ मणिकर्णिका तीर्थ है, भगवान् शंकरका आनन्दवन है और श्रीहरिका चक्रपुष्करिणी नामक तीर्थ है। वह परब्रह्म परमात्माका सर्वोत्तम क्षेत्र है, जो लीलासे ही समस्त जीवोंको मोक्ष अर्पण करता है। दिलीपनन्दन भगीरथ स्वयं आगे-आगे चलते हुए गंगाजीको उस पुरीमें ले आये, जो मोक्षको प्रकाशित करनेसे 'काशीपुरी' के नामसे विख्यात है। उस महाक्षेत्रको भगवान् शंकरने कभी नहीं छोड़ा है, इसलिये वह 'अविमुक्त' कहलाता है। मुने! काशीका महत्त्व पहलेसे ही अधिक था, फिर गंगाजीके जलके समागमसे जो उसकी महिमा बढ़ी, उसके विषयमें क्या कहना है। वहाँका चक्र-पुष्करिणी तीर्थ पहलेसे ही कल्याणका निकेतन था, फिर भगवान् शंकरके मणिमय कर्णभूषणके गिरनेसे वह और भी श्रेष्ठ हो गया। भगवान् शिवके निवासस्थान अविमुक्तक्षेत्र अथवा आनन्द-काननमें पहलेसे ही मुक्ति सिद्ध है, फिर गंगाजीका सम्पर्क होनेसे उस तीर्थकी महिमामें और उत्कर्ष आ गया। जबसे मणिकर्णिकामें गंगाजी आकर मिल गयीं, तबसे वह क्षेत्र देवताओंके लिये भी दुर्लभ हो गया। काशीमें निवास करनेवाला तथा वहीं मृत्युको प्राप्त हुआ पुरुष मुक्त हो जाता है। वेदान्तद्वारा जाननेयोग्य परब्रह्म परमात्माके निदिध्यासन, सांख्य और योगके बिना ही काशीमें मरा हुआ पुरुष मुक्त हो जाता है। कालसे काशीमें शरीरका परित्याग करके मरा हुआ पुरुष तारकमन्त्रका उपदेश पाकर अमर हो जाता है। काशीमें शरीरका त्याग करना ही दान है, वही तपस्या है और वही मोक्षका सुख देनेवाला योग है। देवताओंने वहाँ पापियोंकी खोटी बुद्धिका खण्डन करनेवाली महान्

* क्षेमदा क्षालिताघौघा क्षुद्रविद्राविणी क्षमा। इति नाम सहस्रं हि गंगायाः कलशोद्भव॥
कीर्तयित्वा नरः सम्यग्गंगास्नानफलं लभेत्।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

असि (खड्ग)-रूपा 'असी', दुष्टोंके प्रवेशका अवधूनन (नाश) करनेवाली 'धुनी' (नदी) तथा विघ्ननिवारण करनेवाली 'वरणा' (नदी)-का निर्माण किया है। काशीके दक्षिण भागमें 'असी' और उत्तरभागमें 'वरणा' को उस क्षेत्रके मोक्षरूपी गड़े हुए धनकी रक्षाके लिये स्थापित करके देवतालोग बहुत सन्तुष्ट हुए। तत्पश्चात् स्वयं भगवान् शंकरने काशीके पश्चिम क्षेत्रकी रक्षाके लिये 'देहली-विनायक' को नियुक्त किया।

इस विषयमें मैं एक प्राचीन इतिहास बतलाता हूँ। दक्षिण समुद्रके तटपर सेतुबन्धतीर्थके समीप कोई धनंजय नामवाला वैश्य रहता था। वह अपनी माताका बड़ा भक्त था। पुण्यके मार्गसे ही वह धन पैदा करता और उससे याचकोंको सन्तुष्ट करता था। धनंजय यशोदानन्दन श्रीकृष्णका उपासक था। वह समस्त सद्गुणोंका भण्डार था, तो भी गुणियोंकी मण्डलीमें अपने गुणी स्वरूपको छिपाये रखनेकी चेष्टा करता था। यद्यपि व्यापारसे ही उसकी जीविका चलती थी, तो भी वह सत्यप्रिय था। ब्राह्मण आदि उच्च वर्णोंके लोग उसके गुणोंका बखान करते थे। इस प्रकार उत्तम वृत्ति और बर्तावसे रहते हुए उस वैश्यकी माता, जो वृद्धावस्थासे अत्यन्त आतुर तथा रोगग्रस्त हो रही थी, मृत्युको प्राप्त हो गयी।

पूर्वकालमें जब वह जवान थी तो उसने अपने पतिको धोखा देकर परपुरुषसमागम किया था। जो स्त्री चार दिनोंकी जवानी पाकर मोहवश अपने स्वामीको धोखा देती है, वह अक्षय नरकमें पड़ती है। स्त्रियोंके सतीत्वका नाश होनेसे उसका धर्मपरायण पति भी बड़े दुःखसे प्राप्त किये हुए स्वर्गलोकसे गिर जाता है। इसलिये स्त्रीको शीलकी रक्षा करनी चाहिये। खोटी बुद्धिवाली व्यभिचारिणी स्त्री एक कल्पतक नरकके विष्ठाकुण्डमें पड़ी रहती है। इसके बाद गाँवमें सूकरी होती है। इसलिये स्त्रीको उचित है कि वह पुण्यके एकमात्र साधन अपने शरीरको विशेष यत्न करके सुखतुल्य प्रतीत होनेवाले परपुरुषके दुःखद स्पर्शसे बचावे। सती नारीने अपने स्वामीके अधीन किये हुए इसी शरीरके द्वारा आदेश देकर क्या उगते हुए सूर्यको नहीं रोक दिया था? अत्रिमुनिकी पत्नी पतिव्रता अनसूयाने पतिभक्तिके ही प्रभावसे क्या ब्रह्मा, विष्णु और शिवको अपने गर्भमें नहीं धारण किया था? नारी अपने पातिव्रत्यके प्रभावसे इस लोकमें महान् सुयश, वैकुण्ठधाममें अक्षय निवास तथा भगवती लक्ष्मीजीकी सखीका पद प्राप्त कर लेती है।

धनंजयकी माता अपने पति और सनातन धर्मका परित्याग करके दुराचारका आश्रय ले स्वेच्छाचारिणी हो गयी थी। इसलिये मृत्युके बाद वह नरकमें गयी। उसका पुत्र धनंजय पूर्वजन्मकी तपस्याका उदय होनेसे किसी शिवयोगीका साथ पाकर धर्माचरणमें तत्पर हुआ। वह माताका भक्त तो था ही, उसकी हड्डियाँ लेकर उन्हें पंचगव्य और पंचामृतसे स्नान कराया और यक्षकर्दमका लेप करके फूलोंसे उनका पूजन किया। तत्पश्चात् उन्हें नैनसुख वस्त्रसे लपेट कर ऊपरसे रेशमी वस्त्र लपेटा। फिर चिकने सूती वस्त्रसे आवृत करके मजीठ (गेरुवा)-के रंगमें रँगे हुए गेरुवे वस्त्रद्वारा उस पोटलीको आच्छादित किया। तदनन्तर नेपाली कम्बलसे ढककर उसपर शुद्ध मिट्टीका लेप कर दिया। तत्पश्चात् उसे ताँबेके सम्पुटमें रखकर वह गंगाजीके मार्गपर प्रस्थित हुआ। धनंजय नीच जातिका स्पर्श न करके पवित्रतापूर्वक रहता और वेदी या पवित्र भूमिपर सोता था। इस प्रकार उस गठरीको लाता हुआ वह रास्तेमें ज्वरसे ग्रस्त हो गया। तब उसने उचित मजदूरी देकर कोई कहार निश्चित किया और किसी तरह काशीपुरीमें आ पहुँचा। वहाँ वह कहारको रक्षाके लिये बिठाकर कुछ खाने-पीनेकी वस्तु लेनेको बाजारमें गया। कहार अवसर पाकर उस भारमेंसे ताँबेका सम्पुट लेकर अपने घरकी ओर चल दिया। धनंजयने विश्रामस्थानपर लौटकर देखा तो सब सामग्रियोंमें

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

वह ताँबेका सम्पुट नहीं दिखायी दिया। तब वह 'हाय-हाय' करता हुआ उसे ढूँढ़नेको चला और धीरे-धीरे उस कहारके घर जा पहुँचा। इधर वह कहार भी किसी वनमें पहुँचकर जब ताँबेके सम्पुटमें देखता है, तब उसे हड्डियाँ दिखायी देती हैं। यह देख उन्हें वहीं छोड़कर वह उदासभावसे घरको लौट गया। इसके बाद धनंजय उस कहारके घर पहुँचा और उसकी स्त्रीसे पूछने लगा—'सच बताओ, तुम्हारा पति कहाँ गया है? उसने मेरी माताकी हड्डियाँ ले ली हैं, उन्हें दिला दो। हड्डियोंको शीघ्र दिखाओ, मैं तुम्हें अधिक धन दूँगा।' तब उसकी स्त्रीने पतिसे सब बातें कहीं। कहार लज्जासे मस्तक झुकाये सब वृत्तान्त बताकर धनंजयको अपने साथ वनमें ले गया। परंतु दैवयोगसे वह उस स्थानको भूल गया और दिशा भूल जानेके कारण वनमें इधर-उधर भटकने लगा। एक वनसे दूसरे वनमें घूमते-घूमते वह थक गया और धनंजयको वहीं छोड़कर अपने घर लौट गया। दो-तीन दिन वहाँ घूम-घामकर धनंजय भी काशीपुरीमें लौट आया। उसका मुख बहुत उदास हो गया था। धनंजय गया और प्रयागतीर्थका सेवन करके पुनः अपने देशको लौट गया। अगस्त्यजी! भगवान् विश्वनाथकी आज्ञाके बिना उस स्त्रीकी हड्डियाँ काशीमें प्रवेश पाकर भी तत्काल बाहर हो गयीं। इसी प्रकार किसी पुण्यसे काशीमें पहुँचकर भी पापी मनुष्य उस क्षेत्रका फल नहीं पाता। वह तत्काल वहाँसे बाहर हो जाता है। अतः भगवान् विश्वनाथकी आज्ञा ही काशीमें रहनेका कारण होती है। महामुने! असी और वरणा—ये दो नदियाँ उस क्षेत्रकी रक्षाके लिये नियुक्त की गयी हैं। इसीलिये वह पुरी 'वाराणसी' के नामसे प्रसिद्ध हुई। काशीपुरी कहती है 'अरे जीव! तू बहुतेरे श्रेष्ठ तीर्थोंमें गोता लगा चुका, किंतु अबतक तुझे कभी शान्ति नहीं मिली। अब यहाँ मृत्युको प्राप्त होकर तू मेरे बलसे अमरत्व धारण करके शिवरूप हो जा।' अहा हा! क्या जीवको गर्भवासका कष्ट भूल गया? यमराजके दूतोंके हाथसे बाँधा जाना और पीड़ित होना क्या याद नहीं रहा? क्या कारण है कि भगवान् शंकरकी कृपासे मिलने योग्य काशीपुरीको पाकर भी मूर्ख मनुष्य हाथमें आयी हुई मुक्तिको त्यागकर अन्यत्र जाता है।

अगस्त्यजी! अविमुक्त क्षेत्रको भगवान् रुद्रका निवासस्थान बताया गया है। यहाँके सभी जीव रुद्रस्वरूप हैं। इसलिये काशीमें रहनेवाले चारों वर्णों तथा वर्णेतर मनुष्योंका भी ईश्वरबुद्धिसे श्रद्धापूर्वक सत्कार करके मनुष्य भगवान् शिवकी पूजाके फलका भागी होता है। प्रलयकालमें पृथ्वी जलमें विलीन हो जाती है, जल अग्निके मुखरूपी भयानक कन्दरामें समा जाता है। अग्नि वायुमें और वायु आकाशमें लीन हो जाती है। आकाश अहंकारमें लयको प्राप्त होता है। षोडश विकारोंके साथ अहंकार भी समष्टि बुद्धि नामक महत्तत्त्वमें लीन होता है। फिर महत्तत्त्व भी प्रकृतिके भीतर विलीन हो जाता है। वह त्रिगुणमयी प्रकृति उस निर्गुण पुरुषका आलिंगन करके स्थित होती है। वह परम पुरुष ही देह और गेहका स्वामी तथा सबको जीवन देनेवाला है। यह प्राकृत प्रलय कहलाता है। इसमें ब्रह्मा, विष्णु और शिव बने रहते हैं। कालस्वरूप परमात्मा उस प्रकृतिस्थ पुरुषको लीलापूर्वक अपनेसे अभिन्न कर लेते हैं। वे परम पुरुष परमेश्वर ही महाविष्णु कहलाते हैं। उन्हींको महादेव कहते हैं। वे ही आदि, मध्य और अन्तसे रहित शिव हैं। वे ही लक्ष्मीपति तथा वे ही पार्वतीपति हैं। प्रलयकालमें भगवान् शंकर काशीपुरीको अपने त्रिशूलके अग्रभागपर रखकर स्वयं इसकी रक्षा करते हैं। अतः काशी कलि और कालसे वर्जित है। इसीको वाराणसी, रुद्रावास, महाश्मशान तथा आनन्दवन कहा गया है। अगस्त्यजी! देवाधिदेव भगवान् शंकरने माता पार्वतीदेवीके आगे जो कुछ कहा था उसे ज्यों-का-त्यों मैंने सुना और वह सब तुमसे कहा। जो महापातकोंका नाश करनेवाले इस पुण्यमय प्रसंगको पढ़ता और सुनता है। वह शिवलोकमें प्रतिष्ठित होता है।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

काशीपुरीकी श्रेष्ठता, हरिकेश यक्षको शिवाराधनाके द्वारा दण्ड-पाणि-पदकी प्राप्ति और दण्डपाण्यष्टकस्तोत्र

स्कन्दजी कहते हैं—काशीमें भिक्षुकोंको आँवलेके फलके बराबर भी दी हुई भिक्षा सुमेरु पर्वतके समान भारी पुण्य देनेवाली होती है। जो काशीमें भूखे कुटुम्बीको वर्षभर खानेके लिये अन्न देता है और इस प्रकार वह जितने वर्षोंके लिये देता है, उतने ही युगोंतक स्वर्गमें पूजित होता है। जो काशीमें जीविकाके साधनसे रहित ब्राह्मणको एक वर्षतक भोजन देता है वह श्रेष्ठ पुरुष कभी भूख-प्यासका कष्ट नहीं भोगता। काशीमें निवास करनेवाले पुरुषोंको जिस पुण्यकी प्राप्ति होती है, वही पूरा-का-पूरा फल काशीवास करानेवालेको भी प्राप्त होता है। जिसका नाम लेनेसे भी ब्रह्महत्या आदि पाप मनुष्यको त्याग देते हैं, उस काशीपुरीकी यहाँ किससे उपमा दी जा सकती है। इस पुरीकी पूजा और प्रदक्षिणा करनी चाहिये। जो दूर देशमें होनेपर भी अविमुक्त नामक महाक्षेत्र (काशी)-का स्मरण करते हुए प्राणत्याग करता है उसका भी संसारमें पुनर्जन्म नहीं होता। जैसे योगी अपने योगबलसे मुक्त होते हैं, उसी प्रकार जीव यहाँ मृत्यु होनेमात्रसे मुक्त हो जाते हैं। यह काशीपुरी परम पद है, यह परम आनन्द है और यही परम ज्ञान है। अतः मोक्षकी इच्छा रखनेवाले पुरुषोंको इसका सेवन करना चाहिये। यहाँ भगवान् भैरव कपालमोचनतीर्थको आगे करके भक्तजनोंकी पाप-परम्पराका भक्षण करते हुए वहीं निवास करते हैं। भैरवजी काशीवासियोंके कलि और कालको अपना ग्रास बना लेते हैं। इसीलिये उनकी 'कालभैरव' संज्ञा हुई है।

अगस्त्यजीने कहा—कार्तिकेयजी! अब आप मुझे हरिकेशकी उत्पत्तिका वृत्तान्त सुनाइये।

कार्तिकेयजी बोले—मुने! प्राचीन कालमें गन्धमादनपर्वतपर 'रत्नभद्र' नामसे विख्यात एक परम धर्मात्मा यक्ष रहता था, जो लाखों पुण्यकर्मोंसे सुशोभित था। उसके 'पूर्णभद्र' नामक एक पुत्र हुआ। तदनन्तर अन्तिम अवस्थामें शरीर त्याग करके रत्नभद्र परम शान्त भगवान् शिवके धाममें जा पहुँचा। पिताकी मृत्यु हो जानेके बाद पूर्णभद्रने वैभव तथा भोगसामग्रीका अधिकारी होकर समस्त लौकिक मनोरथोंको प्राप्त किया। केवल एक ही वस्तु उसे नहीं मिली, जिसको 'पुत्र' कहते हैं, जो गृहस्थाश्रमका शृंगार, पितरोंका महान् हितकारी और सांसारिक तापसे सन्तप्त अंगोंको अमृतके फुहारोंकी तरह शीतल एवं सुखद प्रतीत होनेवाला है। पूर्णभद्र अपने सुन्दर गृहको सन्तान-सुखसे शून्य देखकर बहुत दुःखी हुआ। अगस्त्यजी! एक दिन उस यक्षने अपनी धर्मपत्नी श्रेष्ठ यक्षिणी कनककुण्डलाको समीप बुलाकर कहा—'प्रिये! यह महल पुत्रके बिना सूना दिखायी देता है। अतः सुखद नहीं जान पड़ता। क्या करूँ, किस उपायसे पुत्रका मुँह देखूँ? यदि इसका कोई उपाय हो तो बताओ।' अपने प्रियतम पतिको इस प्रकार विलाप करते देख पतिव्रता कनककुण्डला मन-ही-मन लंबी साँस खींचकर बोली—'प्राणनाथ! आप तो ज्ञानी हैं, आप इतना खेद क्यों करते हैं। उद्योगी पुरुषोंको इस चराचर जगत्में कौन-सी वस्तु दुर्लभ है। जो अत्यन्त कायर हैं, वे ही लोग प्रारब्ध (भाग्य)-को कारण बताया करते हैं। पूर्वजन्ममें अपना किया हुआ कर्म ही तो प्रारब्ध है। अतः वह पुरुषार्थसे भिन्न नहीं है। इसलिये पुरुषार्थका सहारा लेकर प्रतिकूल प्रारब्धको शान्त करनेके लिये समस्त कारणोंके भी कारणरूप भगवान् महेश्वरकी शरणमें जाना चाहिये। उन्होंने ही ब्रह्माजीको सृष्टि-रचनाका अधिकार दिया है। उन्हींकी कृपासे इन्द्र आदि देवता लोकपालके

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

पदपर प्रतिष्ठित हुए हैं। महर्षि शिलाद भी सन्तानहीन थे; किंतु भगवान् शिवकी कृपासे उन्होंने मृत्युपर विजय पानेवाला पुत्र प्राप्त कर लिया। श्वेतकेतु कालपाशसे मुक्त हुए तथा अन्धकासुर भी शिवकी कृपासे उनके गणोंका अधिनायक होकर भृंगी नामसे विख्यात हुआ। जिस वस्तुको हम मनसे सोच भी नहीं सकते, जिसका वाणीके द्वारा वर्णन भी नहीं हो सकता, उस मोक्षपदको भी सेवासे प्रत्यक्ष किये हुए भगवान् शिव क्षणभरमें दे सकते हैं। आर्यपुत्र! यदि आप सबका हित चाहनेवाले प्रिय पुत्रको प्राप्त करना चाहते हैं तो भगवान् शिवकी शरणमें जाइये।'

धर्मपत्नीका यह वचन सुनकर पूर्णभद्रने महादेवजीकी आराधना की। वह संगीत-कलाका ज्ञाता था। उसने अपनी संगीत-विद्यासे कुछ ही दिनोंमें भगवान् शंकरको रिझा लिया और उनकी कृपासे उसका मनोरथ पूर्ण हो गया। पूर्णभद्रने अपनी पत्नीके गर्भसे एक श्रेष्ठ पुत्र प्राप्त किया और उसका नाम हरिकेश रखा। बालकका मुख पूर्ण चन्द्रमाके समान मनोहर था। वह शुक्ल पक्षके शशीकी भाँति प्रतिक्षण वृद्धिको प्राप्त होने लगा। बालक हरिकेश जब आठ वर्षका हुआ तभीसे प्रतिदिन एकमात्र भगवान् शिवमें उसकी मान्यता बढ़ने लगी। वह धूलसे खेलनेमें संलग्न होकर भी धूलकी ही शिवमूर्ति बनाता और कोमल घाससे कौतूहलपूर्वक उनकी पूजा करता था। हरिकेश अपने सभी मित्रोंको भगवान् शिवके नामसे ही पुकारता था। चन्द्रशेखर, मृत्युंजय, त्रिलोचन, शम्भो, पिनाकिन्, शंकर, श्रीकण्ठ, नीलकण्ठ, ईश, पार्वतीपते, भाललोचन, शूलपाणे, महेश्वर, गंगाजीके जलसे भीगे जटाजूटवाले शिव आदि नामोंकी मालाका जप किया करता था और अपनी आयुके मित्र बालकोंको बड़े लाड़-प्यारसे इन्हीं नामोंद्वारा सम्बोधित करता था। उसके दोनों कान भगवान् शिवके नामोंके अतिरिक्त और कोई नाम सुनते ही नहीं थे। भगवान् भूतनाथके मन्दिरके आँगनके अतिरिक्त दूसरे किसी स्थानमें उसके पैर जाते ही नहीं थे। शिवके श्रीविग्रहके अतिरिक्त दूसरे किसी रूपका दर्शन करनेमें उसके नेत्र तत्पर नहीं होते थे। उसकी रसना सदा भगवान् शिवके नामाक्षरमय अमृतका पान करती रहती थी। उसकी नासिका महादेवजीके चरणारविन्दोंकी सुगन्धके अतिरिक्त दूसरी कोई गन्ध नहीं ग्रहण करना चाहती थी। उसके हाथ केवल शिवजीकी सेवा करनेको ही उत्सुक रहते थे और वह मनसे उनके सिवा दूसरी किसी वस्तुका चिन्तन नहीं करता था। पीने योग्य पदार्थोंको हरिकेश शुद्धभावसे भगवान् शंकरको निवेदन करके ही पीता था। भोजन भी वही करता था, जो भगवान् शिवको निवेदित होकर प्रसाद बन जाता था। सर्वत्र सब अवस्थाओंमें उसे भगवान् शिवके सिवा दूसरी कोई वस्तु नहीं दिखायी देती थी। चलते, गाते, सोते, खड़े होते, लेटते, खाते और पीते हुए भी वह सब ओर भगवान् शंकरको ही देखता था। दूसरे किसी भावका चिन्तन नहीं करता था। रातमें सो जानेपर भी वह स्वप्नमें बार-बार यही कहता था कि 'हे भगवान् महेश्वर! आप कहाँ चले जा रहे हैं? क्षणभर और ठहरिये।' इतना कहते-कहते वह सोतेसे जाग उठता था। हरिकेशकी ऐसी दशा देखकर उसके पिता पूर्णभद्र उसे शिक्षा देते थे—'वत्स! अब तुम घरके काम-काजमें लगो। यह सब धन-दौलत तुम्हारी ही है। पहले सब प्रकारकी विद्याओंका अभ्यास करो, फिर उत्तम-उत्तम भोग भोगो। तत्पश्चात् वृद्धावस्थामें पहुँचकर भक्तियोगका अनुष्ठान करना।' जब पिता बार-बार ऐसी शिक्षा देने लगे तब हरिकेश उसे स्वीकार न करके एक दिन चुपचाप घरसे बाहर निकल गया। बाहर जानेपर उसे दिग्भ्रम हो गया। तब वह भगवान् शंकरको पुकारते

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

हुए मन-ही-मन कहने लगा—'शम्भो! अब मैं कहाँ जाऊँ? कहाँ रहनेसे मेरा कल्याण होगा। मुझे कुछ भी ज्ञान नहीं है, मैंने पहलेसे सुन रखा है कि जिनकी कहीं भी गति नहीं है उनकी गति काशीपुरी ही है।'

ऐसा विचार करके हरिकेश काशीपुरीको चला गया। उस आनन्दवनमें पहुँचकर उसने तपस्याकी शरण ली। एक दिन उस वनमें विचरते हुए भगवान् शंकर पार्वतीदेवीसे इस प्रकार बोले—'देवि! जैसे तुम मुझे अत्यन्त प्रिय हो, उसी प्रकार यह आनन्दवन भी मुझे अत्यन्त प्रिय लगता है। यहाँ मेरे अनुग्रहसे मृत्युको प्राप्त हुए जीव अमृतरूपको प्राप्त हो गये हैं। संसारमें उनका पुनर्जन्म नहीं होता। जो संसारी जीव काशीमें प्राणत्याग करते हैं उनके कर्मोंके संस्कार मेरी आज्ञासे चिताकी आगमें ही भस्म हो जाते हैं। जीव ब्रह्मज्ञानसे मुक्त होते हैं अथवा ब्रह्मज्ञानमय क्षेत्र प्रयागमें शरीर त्याग करनेसे मुक्त होते हैं। उसी ब्रह्मज्ञानका तारकमन्त्रके रूपमें मैं काशीमें मरनेवाले प्राणियोंके लिये उपदेश करता हूँ, जिससे वे तत्काल मुक्त हो जाते हैं। कलियुगमें जिनका अन्तःकरण मलिन हो गया है तथा जिनकी इन्द्रियाँ स्वभावसे ही चंचल हैं, उन्हें ब्रह्मज्ञान कैसे प्राप्त हो सकता है? अतः उनके लिये मैं काशीपुरीमें तारक ब्रह्मका उपदेश देता हूँ। कलियुगमें मुझ विश्वनाथ देवका, काशीपुरीका, भागीरथी गंगाका और दानका विशेष महत्त्व है। काशीमें उत्तरवाहिनी गंगा और मेरा विश्वेश्वर नामक लिंग—ये दोनों मनुष्योंको मुक्ति देनेवाले हैं। कलिमें दानजनित पुण्यके बलसे इनकी प्राप्ति हो सकती है। योगियोंके हृदयाकाशमें, कैलासमें तथा मन्दराचल पर्वतपर भी निवास करनेकी मेरी वैसी रुचि नहीं है जैसी कि काशीपुरीमें निवास करनेकी मेरी रुचि रहती है।'

इस प्रकार बातचीत करते हुए महादेवजीने हरिकेशको देखा जो आनन्दवनके मध्यभागमें अशोक वृक्षके नीचे उसकी जड़के समीप बैठकर तपस्या कर रहा था। उसका शरीर तनिक भी हिलता-डुलता नहीं था। वह ऐसा जान पड़ता था मानो सूखी नस-नाड़ियोंसे बँधा हुआ कोई हड्डियोंका ढेर हो। उसे इस रूपमें देखकर पार्वतीदेवीने महादेवजीसे निवेदन किया—'नाथ! यह आपका तपस्वी भक्त है, इसे वरदान देकर प्रसन्न कीजिये।

इसका चित्त एकमात्र आपमें ही लगा हुआ है, इसका जीवन भी आपके ही अधीन है। यह आपकी ही प्रसन्नताके लिये सब कर्म करता और आपहीकी शरणमें रहता है। कठोर तपस्यासे इसका सारा अंग सूख गया है। अतः इस यक्षको वरदान देकर आप इसपर अनुग्रह करें। तब भगवान् शिवने दयार्द्रचित्त होकर समाधिमें आँख बंद करके बैठे हुए हरिकेशका अपने हाथसे स्पर्श किया। स्पर्श पाकर यक्षने आँखें खोल दीं और भगवान् त्रिलोचनको सामने देखकर हर्षगद्गद वाणीमें कहा—ईश! आपकी जय हो। शम्भो! गिरिजापते! शंकर! त्रिशूलपाणे! चन्द्रार्धशेखर! कृपालो! आपके कर-कमलोंका स्पर्श पाकर मेरा यह शरीर अमृतस्वरूप हो गया।' भगवान् महेश्वरने उस भक्तकी कही हुई यह कोमल वाणी सुनकर

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

प्रसन्नतापूर्वक उसे अनेकानेक वरदान दिये और इस प्रकार कहा—'यक्ष! अब तुम मेरे इस प्रिय क्षेत्र काशीधामके दण्डनायक होओ। इस समय तुम्हारा नाम दण्डपाणि होगा। तुम मेरी आज्ञासे मेरे समस्त उत्कट गणोंका शासन करो। ये दो सम्भ्रम और उद्भ्रम नामवाले गण सदा तुम्हारे अनुगामी होकर रहेंगे। तुम काशीनिवासी प्राणियोंके एकमात्र अन्नदाता, प्राणदाता, ज्ञानदाता और मेरे मुखसे निकले हुए तारकमन्त्रके उपदेशसे मोक्षदाता होकर यहाँ अविचल निवास प्राप्त करोगे। पापी मनुष्योंको नाना प्रकारके विघ्नसमूहोंसे पीड़ा देकर उनके मनमें उद्वेग पैदा करके उन्हें काशीपुरीसे बाहर निकाल दोगे और भक्तजनोंको दूरसे भी क्षणभरमें यहाँ ले आकर उन्हें उत्तम मोक्ष दिलानेवाले होओगे। यक्षराज! यह उत्तम क्षेत्र आजसे तुम्हारे अधीन कर दिया गया। अब यहाँ तुम्हारी आराधना किये बिना कौन पुरुष मोक्षका भागी हो सकता है। मेरा भक्त यहाँ आकर पहले तुम्हारी पूजा करेगा, तब मेरी करेगा। जो ज्ञानोद तीर्थमें स्नान, तर्पण आदि करके तुझ दण्डपाणि गणेशका पूजन करेगा, वही यहाँ पुण्यवान् होकर लोकमें मेरी असीम दयासे कृतार्थताका अनुभव करेगा। दण्डपाणे! तुम यहाँ दक्षिण दिशामें मेरे नेत्रोंके समक्ष निवास करो और पापी मनुष्योंको दण्ड तथा अपने भक्तोंको अभय दान देते रहो।'

स्कन्दजी कहते हैं—मुने! इस प्रकार दण्डपाणिको वरदान देकर भगवान् शिव वृषभराज नन्दीपर आरूढ़ हो आनन्दवनके भीतर अपने निवासस्थानको चले गये। तभीसे यक्षराज हरिकेश दण्डनायकके पदपर अभिषिक्त हो काशीपुरीका भलीभाँति शासन करते हैं। मैं भी उनके प्रति दोषदृष्टि रखनेके कारण ही यहाँ (काशीसे बाहर) रहनेको विवश हुआ हूँ, क्योंकि मैंने काशीमें रहकर भी कभी उनका आदर नहीं किया। मुने! ऐसे जितेन्द्रिय होकर भी तुमने जो उस क्षेत्रका त्याग किया है, इसमें भी दण्डपाणिकी ही अप्रसन्नता कारण है, ऐसा मुझे सन्देह होता है। यक्ष हरिकेश! कल्याणमय मोक्षकी प्राप्तिके लिये मुझे निर्विघ्न काशीवास प्रदान करो। महामते दण्डपाणे! यक्ष पूर्णभद्र धन्य है, माता कनककुण्डला भी धन्य है, जिनके उदरसे तुम्हारा प्रादुर्भाव हुआ है। यक्षपते! तुम्हारी जय हो। पीले नेत्रोंवाले धीरशिरोमणे! तुम्हारी जय हो, पीले रंगकी जटा धारण करनेवाले देव! तुम्हारी जय हो। दण्डरूप महान् आयुध धारण करनेवाले वीर! तुम्हारी जय हो। अविमुक्त नामक महाक्षेत्रके सूत्रधार तीव्र तपस्वी दण्डनायक भयंकरमुख! विश्वनाथप्रिय! तुम्हारी जय हो। सौम्य स्वभाववाले संतोंके लिये तुम सौम्य मुख हो और दूसरोंको भय पहुँचानेवाले पापियोंके लिये भयंकर हो। काशी क्षेत्रमें पापपूर्ण विचार रखनेवाले मनुष्योंके लिये काल हो। भगवान् महाकालके परम प्रिय सबके प्राणदाता यक्षराज! तुम्हारी जय हो। तुम्हीं काशीवास, काशीनिवासियोंको आनन्द तथा मोक्ष प्रदान करनेवाले हो, तुम्हारी जय हो। तुम्हारा शरीर बड़े-बड़े रत्नोंकी जगमगाती हुई ज्योतिसे प्रकाशमान है। तुम अभक्तोंको महान् सम्भ्रम और उद्भ्रम देनेवाले हो और भक्तोंके सम्भ्रम तथा उद्भ्रमका निवारण करनेवाले हो। प्राणियोंके अन्तकालीन शृंगार करनेमें परम चतुर तथा ज्ञानकी निधि प्रदान करनेवाले दण्डपाणे! तुम्हारी जय हो। गौरीचरणारविन्दोंके भ्रमर तथा मोक्षका साक्षात्कार करानेमें कुशल यक्षराज! तुम्हारी जय हो।' मुने! इस परम पुण्यमय यक्षराजाष्टक नामक स्तोत्रका मैं प्रतिदिन तीनों समय जप करता हूँ। यह काशीकी प्राप्ति करानेवाला है। जो बुद्धिमान् श्रद्धापूर्वक दण्डपाण्यष्टकका पाठ करता है वह कभी विघ्नोंसे तिरस्कृत नहीं होता और काशीनिवासका फल पाता है।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

ईशानके द्वारा ज्ञानोद (ज्ञानवापी) तीर्थका प्राकट्य, ज्ञानवापीकी महिमाके प्रसंगमें सुशीला (कलावती)-की कथा, काशीके विविध तीर्थोंका वर्णन

अगस्त्यजी बोले—स्कन्द! अब आप ज्ञानोद तीर्थका माहात्म्य बतलाइये, क्योंकि स्वर्गवासी भी इस ज्ञानवापीकी प्रशंसा करते हैं।

कार्तिकेयजीने कहा—अगस्त्य! यह काशी तीर्थ महानिद्रामें सोये (मृत्युको प्राप्त) हुए जीवोंको ज्ञान एवं मोक्ष देनेवाला है, संसारसागरके भँवरमें गिरे हुए प्राणियोंके लिये नौकास्वरूप है, आवागमनसे खिन्न जीवोंके लिये विश्रामस्थान है तथा अनेक जन्मोंके बँटे हुए कर्मसूत्रको काटनेवाला छुरा है। इतना ही नहीं, यह क्षेत्र सच्चिदानन्दमय परमेश्वरका धाम और परब्रह्म रसकी प्राप्ति करानेवाला है। यह सुखका विस्तार करनेवाला तथा मोक्षके साधनमें सिद्धि देनेवाला है। एक समय इस तीर्थमें ईशानकोणके अधिपति ईशान नामक रुद्र स्वेच्छासे विचरते हुए आये। यहाँ आकर उन्होंने भगवान् शिवके विशाल ज्योतिर्मय लिंगका दर्शन किया, जो सब ओरसे प्रकाशपुंजद्वारा व्याप्त था। देवता, ऋषि, सिद्ध और योगियोंके समुदाय निरन्तर उसकी आराधनामें संलग्न रहते थे। उसे देखकर ईशानके मनमें यह इच्छा हुई कि 'मैं शीतल जलसे भरे हुए कलशोंद्वारा इस महालिंगको स्नान कराऊँ।' तब उन्होंने विश्वेश्वर लिंगसे दक्षिण थोड़ी ही दूरपर त्रिशूलसे वेगपूर्वक एक कुण्ड खोदा। उस समय उस कुण्डसे पृथ्वीका आवरणरूप जल जो पृथ्वीमें ढका हुआ था, प्रकट हो गया। ईशानने उस जलसे उस ज्योतिर्मय लिंगको स्नान कराया। वह जल अत्यन्त शीतल, ज्ञानस्वरूप एवं पापपुंजका नाश करनेवाला था, संत-महात्माओंके हृदयकी भाँति स्वच्छ, भगवान् शिवके नामकी भाँति पवित्र, अमृतके समान स्वादिष्ट, पापहीन और अगाध था। ईशानने अज्ञानतापसे सन्तप्त प्राणियोंके प्राणोंकी एकमात्र रक्षा करनेवाले उस जलसे सहस्र धारावाले कलशोंद्वारा सहस्र बार विश्वनाथजीको स्नान कराया। तदनन्तर विश्वात्मा भगवान् शिव प्रसन्न होकर इस प्रकार बोले—'उत्तम व्रतका पालन करनेवाले ईशान! मैं तुम्हारे इस महान् कर्मसे बहुत प्रसन्न हूँ। अत: तुम कोई वर माँगो।'

ईशान बोले—देवेश! यदि आप प्रसन्न हैं और यदि मैं वर पानेके योग्य हूँ, तो यह अनुपम तीर्थ आपके नामसे प्रसिद्ध हो।

विश्वनाथजी बोले—त्रिलोकीमें जितने तीर्थ हैं, उन सबसे यह शिवतीर्थ परम श्रेष्ठ होगा। शिव ज्ञानको कहते हैं, वही ज्ञान मेरी महिमाके उदयसे इस कुण्डमें द्रवीभूत होकर प्रकट हुआ है। अत: यह तीर्थ तीनों लोकोंमें ज्ञानोद (ज्ञानवापी)-के नामसे प्रसिद्ध होगा। इसके जलके स्पर्शमात्रसे मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। ज्ञानोद तीर्थके स्पर्शसे अश्वमेधयज्ञका फल प्राप्त होता है। इसके जलके स्पर्श और आचमनसे राजसूय और अश्वमेध यज्ञोंका फल मिलता है। फल्गुतीर्थ (गया)-में स्नान और पितरोंका तर्पण करके मनुष्य जिस फलको पाता है उसे यहाँ ज्ञानवापीके समीप श्राद्ध करनेसे प्राप्त कर लेता है। जिस दिन गुरुवार, पुष्य नक्षत्र, कृष्णपक्षकी अष्टमी और व्यतीपातका योग हो, उस समय यहाँ श्राद्ध करनेसे गयाकी अपेक्षा कोटिगुना अधिक फल होता है। पुष्करतीर्थमें पितरोंका तर्पण करके मनुष्य जिस फलको पाता है, ज्ञानवापीतीर्थमें तिल और जलके द्वारा तर्पण करनेसे उससे कोटिगुना अधिक फल मिलता है। विशेषत: सोमवारको ईशानतीर्थमें स्नान करके जो देवताओं, ऋषियों और पितरोंका तर्पण कर अपनी शक्तिके अनुसार दान देता है; फिर विशेष पूजन-सामग्री जुटाकर मेरे श्रीलिंगकी विस्तारपूर्वक पूजा करके वहाँ भी यथाशक्ति दान

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

करता है वह मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है। ज्ञानवापी तीर्थके समीप सन्ध्योपासना करके द्विज काल-लोकजनित पापका क्षणभरमें नाश कर देता है और ज्ञानवान् हो जाता है। यही शिवतीर्थ कहा गया है और इसीको मंगलमय ज्ञानतीर्थ, तारकतीर्थ और मोक्षतीर्थ भी कहते हैं। ज्ञानोदतीर्थके स्मरण करनेमात्रसे भी पापराशिका निश्चय ही नाश हो जाता है और उसके दर्शन, स्पर्श, स्नान और जलपानसे धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों पुरुषार्थोंकी प्राप्ति होती है। जो उत्तम बुद्धिवाला पुरुष ज्ञानवापीके जलसे मेरे श्रीलिंगको स्नान कराता है, उसे सब तीर्थोंके जलसे स्नान करानेका फल प्राप्त होता है, इसमें सन्देह नहीं है।

इस प्रकार वरदान देकर भगवान् शंकर वहीं अन्तर्धान हो गये और उन त्रिशूलधारी ईशानने अपनेको कृतार्थ माना। अगस्त्यजी! प्राचीन कालकी बात है। काशीमें हरिस्वामीके नामसे विख्यात एक ब्राह्मण रहते थे। उनके एक कन्या थी, जो इस पृथ्वीपर अनुपम सुन्दरी थी। शील और सदाचारमें भी वह इस भूतलपर सबसे श्रेष्ठ थी। सम्पूर्ण कलाओंमें उस कन्याने निपुणता प्राप्त कर ली थी। ज्ञानोदतीर्थकी सेवासे वह सुशीला कुमारी सम्पूर्ण जगत्को बाहर और भीतरसे शिवमय देखती थी। एक दिन जब वह अपने घरके आँगनमें सोयी हुई थी, उसके रूप-वैभवसे मोहित होकर किसी विद्याधरने उसे हर लिया। वह रातमें आकाशमार्गसे उस कन्याको लेकर मलय पर्वतपर जाना चाहता था। इतनेमें ही भयानक आकारवाला विद्युन्माली राक्षस वहाँ आ गया और इस प्रकार बोला—'विद्याधरकुमार! अब तू मेरी दृष्टिके समक्ष आ गया। आज इस मानवकन्याके साथ तुझे यमलोक भेजे देता हूँ।' ऐसा कहकर राक्षसने विद्याधरको त्रिशूलसे मारा। विद्याधरकुमार भी बड़ा बलवान् था। उसने वज्रपातके समान मुक्केसे उस राक्षसको मारा। उसके मुष्टिकाघातसे चूर-चूर होकर वह राक्षस पृथ्वीपर गिर पड़ा। इधर त्रिशूलसे घायल हुआ विद्याधर भी उस संग्राममें प्राण त्यागकर वीरगतिको प्राप्त हुआ। सुशीलाने उस विद्याधरको ही पति मानकर शोकाग्निसे सन्तप्त हो अपने शरीरको भस्म कर दिया। विद्याधरकुमारने मृत्युकालमें अपनी प्रियतमाका स्मरण करते हुए ही प्राणोंका त्याग किया था, अतः राजा मलयकेतुके यहाँ उसने नूतन जन्म ग्रहण किया। उधर सुशीला भी विद्याधरकुमारका स्मरण करती हुई प्राण त्यागकर 'कर्नाटक' में उत्पन्न हुई। उसके पिताने अपनी उस कन्या कलावतीको समयानुसार मलयकेतुके पुत्रके साथ ब्याह दिया। पूर्वजन्मकी वासनासे वह सती इस जन्ममें भी शिवमूर्तिकी पूजामें तत्पर हुई। मलयकेतुके पुत्रका नाम माल्यकेतु था। उसे पतिरूपमें पाकर पतिव्रता कलावती दिव्य भोग एवं वैभवकी अधिकारिणी हुई। उसने तीन सन्तानोंको जन्म दिया। एक दिन कोई उत्तरभारतका चित्रकार राजा माल्यकेतुके यहाँ गया। उसने राजाको एक विचित्र चित्रपट दिखाया। वह चित्रपट लेकर राजाने उसे कलावतीको दे दिया। उस चित्रपटको देखते ही कलावतीके शरीरमें रोमांच हो आया। वह एकान्त स्थानमें बैठकर अपने प्राणाराध्य देवता भगवान् विश्वनाथको बार-बार देखती हुई अपनी सुध-बुध भूल गयी। थोड़ी देरमें सावधान होकर उसने देखा कि इस चित्रपटमें लोलार्ककुण्डके समीप उससे और आगे परम सुन्दर असी और गंगाका संगम है और उत्तरमें भगवान् केशवके चरणोंके समीप यह 'वरणा' नामवाली श्रेष्ठ नदी बहती है। इधर ये उत्तरवाहिनी गंगा हैं, जिनमें स्नान करनेके लिये स्वर्गवासी देवता भी सदा लालायित रहते हैं। यह परम शोभायमान मणिकर्णिका तीर्थ है जो साधुपुरुषोंके मोक्षका साधन है। जहाँ मृत्यु होना मंगल माना गया है, जहाँ जीना सफल होता है और जहाँ स्वर्ग तिनकेके समान समझा जाता है, वही यह श्रीमणिकर्णिका तीर्थ है। यही वह कुलस्तम्भ है जहाँ भगवान् श्रीकालभैरव इस तीर्थमें पाप करनेवाले प्राणियोंको तीव्र यातनाका अनुभव कराते हुए दण्ड देते हैं। यह पवित्र कपालमोचन तीर्थ है जहाँ भैरवके हाथसे कपाल गिरा था। यह

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

तीनों ऋणोंसे छुड़ानेवाला विशुद्धिकारक ऋणमोचन तीर्थ है। यह अद्भुत ॐकारेश्वरका स्थान है, जहाँ 'ॐकार' नामसे प्रसिद्ध परब्रह्म परमात्मा नित्य प्रकाशमान हैं। अ, उ, म्, नाद और विन्दु—इन पाँच स्वरूपोंवाले प्रणवरूप परब्रह्म जहाँ सदैव प्रकाशित होते हैं। यह परम सुन्दर 'मत्स्योदरी' तीर्थ तथा ये परम दयालु भगवान् त्रिलोचनदेव हैं। इधर ये कामेश्वरदेव हैं। यहाँ भक्तोंके मनोरथकी सिद्धिके लिये स्वयं भगवान् शंकर लीन हुए हैं। इस कारण उनकी 'स्वर्लीन' संज्ञा हो गयी है। काशीमें इस क्षेत्रके अभिमानी देवता जो महादेवजी हैं, इन्हें पुराणोंमें भगवान् विश्वनाथ कहा जाता है। यह उन्हींका अद्भुत मन्दिर है और वे स्कन्देश्वर महादेव हैं, इनका श्रद्धापूर्वक दर्शन करनेसे मनुष्य आजन्म ब्रह्मचर्यका फल प्राप्त करता है। इधर ये सब सिद्धियोंके देनेवाले विनायकेश्वर हैं, जिनकी सेवासे मनुष्योंके सम्पूर्ण विघ्न नष्ट हो जाते हैं। यह साक्षात् काशीदेवी हैं, जिनके दर्शनमात्रसे मनुष्योंका पुनर्गर्भवास नहीं होता। यह पार्वतीश्वरका महान् मन्दिर है, जहाँ मोक्षदाता भगवान् महेश्वर गौरीदेवीके साथ नित्य निवास करते हैं। ये महापातकोंका नाश करनेवाले भृंगीश्वर हैं तथा ये चार वेदोंको धारण करनेवाले चतुर्वेदेश्वर हैं, जिनके दर्शनसे ब्राह्मण वेदाध्ययनका फल पाता है। इधर यज्ञोंद्वारा स्थापित यज्ञेश्वर नामक शिवलिंग है, जिसकी पूजासे मनुष्य सम्पूर्ण यज्ञोंका महान् फल पाता है। यह पुराणेश्वरलिंग है, जिसके दर्शनसे मनुष्य अठारह विद्याओंका ज्ञाता होता है। यह धर्मशास्त्रेश्वर महादेव हैं, जिनके दर्शनसे धर्म शास्त्रोंके अध्ययनका पुण्य प्राप्त होता है। यह सब प्रकारकी जड़ताका विनाश करनेवाला सारस्वतलिंग है और इधर यह सप्ततीर्थेश्वरलिंग है जो सबको तत्काल शुद्धि देनेवाला है। यह शैलेश्वरलिंगका परम अद्भुत मण्डप है। इधर यह सप्तसागरेश्वर नामक मनोहर लिंग है, जिसके दर्शनसे मनुष्य सात समुद्रोंमें स्नान करनेका फल पाता है। वे भगवान् मन्त्रेश्वर हैं तथा यह त्रिपुरेश्वर शिवके आगेवाला महान् कुण्ड है। इसे पूर्वकालमें त्रिपुरवासियोंने खोदा था। यह सहस्रबाहुसे पूजित बाणेश्वरलिंग है। यह प्रह्लादकेशवके सम्मुख पूर्व दिशामें वैरोचनेश्वरलिंग है। उधर बलिकेशव, नारदकेशव और आदिकेशव हैं। आदिकेशवके पूर्वमें आदित्यकेशव हैं। तत्पश्चात् वे भीष्मकेशव हैं। इधर ये दत्तात्रेयेश्वर हैं। दत्तात्रेयेश्वरके पूर्व आदि गदाधर हैं। फिर भृगुकेशव और ये वामनकेशव हैं। ये दोनों नर-नारायण हैं। उधर यज्ञवाराहकेशव हैं। फिर विदार नारसिंह और गोपीगोविन्द हैं। इधर यह लक्ष्मीनृसिंहका रत्नमय प्रासाद है। ये खर्वविनायक हैं, जो मनुष्योंको महासिद्धि देनेवाले हैं। फिर शेषमाधव हैं, जिनके भक्त प्रलयकालकी आगमें नहीं जलते। ये शंखमाधव हैं, जो शंखासुरको मारकर यहाँ विराजमान हैं। यह सारस्वत स्रोत है, जहाँ महानदी गंगाके साथ सरस्वतीका संगम हुआ है। यहाँ गोता लगानेवाले मनुष्य पुनः इस पृथ्वीपर जन्म नहीं लेते। ये साक्षात् लक्ष्मीपति विन्दुमाधव हैं, जिन्हें श्रद्धापूर्वक नमस्कार करनेवाला मनुष्य पुनः गर्भगृहमें निवास नहीं करता, दरिद्रताको नहीं प्राप्त होता तथा रोगोंसे भी पीड़ित नहीं होता। जो नाद-विन्दु-स्वरूपधारी एकमात्र प्रणवरूप परमात्मा है, जिसे निराकार परब्रह्म कहते हैं, वही ये भगवान् विन्दुमाधव हैं। यह पंचब्रह्मात्मक पंचनद (पंचगंगा) तीर्थ है, इधर ये मंगला गौरी हैं। अज्ञानान्धकारका नाश करनेवाले मयूखादित्य नामक सूर्य हैं, उधर वे दिव्य ज्योति प्रदान करनेवाले गभस्तीश्वर नामक महाशिव हैं। ये तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध किरणेश्वर हैं। इधर यह पातकोंको धो डालनेवाला 'धौतपापेश्वर' नामक शिवलिंग है। ये निर्वाणनृसिंह हैं, उधर ये मणिप्रदीप नाग हैं, यह कपिलेश्वरलिंग है; इनके दर्शनसे नरोंकी तो बात ही क्या है, वानर भी मुक्त हो जाते हैं। यह प्रियव्रतेश्वर नामक लिंग प्रकाशित हो रहा है। इधर यह कलिकालकी पीड़ा दूर करनेवाले श्रीकालराजका श्रेष्ठ मन्दिर है। यह परम सुन्दर मन्दाकिनी है जो तपस्या करनेके लिये यहाँ आयी है। यह काशीवासका सुख पाकर अब भी स्वर्गलोकमें

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

नहीं जाना चाहती है। यहाँ विधिपूर्वक पितरोंका श्राद्ध और तर्पण करके पापी मनुष्य भी नरकका दर्शन नहीं करता। यह रत्नेश्वर नामक शिवलिंग है। रत्नेश्वरके प्रसादसे किसने मोक्षरूपी रत्न नहीं पाया है। भगवान् कृत्तिवासेश्वर सब लिंगोंमें प्रधान हैं। ये भगवती दुर्गा हैं और यह उत्तम पितृलिंग है। यह चित्रघण्टेश्वरीदेवी हैं और यह घण्टाकर्ण सरोवर है। यह ललिता गौरी और यह अद्भुत रूपवाली विशालाक्षी हैं। ये आशाविनायक हैं और यह परम अद्भुत धर्मकूप है जहाँ पिण्डदान करके मनुष्य अपने पितरोंको ब्रह्मलोकमें पहुँचा सकता है। ये विश्वभुजादेवी हैं और वे वन्दी देवी हैं। यह त्रिलोकवन्दित दशाश्वमेधतीर्थ है। यह सब तीर्थोंमें उत्तम है और इसे प्रयागतीर्थ बताया गया है। यह अशोकतीर्थ है और ये गंगाकेशव हैं। यह श्रेष्ठ मोक्ष-द्वारतीर्थ है और इसको स्वर्गद्वारतीर्थ भी कहते हैं।

ज्ञानवापीकी महिमा और उसके सेवनसे माल्यकेतु और कलावतीको तारक ब्रह्मकी प्राप्ति

स्कन्दजी कहते हैं—मुने! कलावतीने पुनः उस चित्रपटमें स्वर्गद्वारके आगे श्रीमणिकर्णिकातीर्थको देखा जहाँ संसाररूपी सर्पसे डसे हुए जीवोंके दाहिने कानमें भगवान् शिव अपने दाहिने हाथसे स्पर्श करते हुए तारक ब्रह्मका उपदेश देते हैं। बार-बार चित्रपटको निहारती हुई उसने भगवान् विश्वनाथके दक्षिण भागमें ज्ञानवापीको देखा। पुराणमें महादेवजीको जिन आठ मूर्तियोंसे युक्त बताया जाता है, उनमेंसे उनकी जलमयी मूर्ति यह ज्ञानवापी ही है, जो ज्ञान प्रदान करनेवाली है। ज्ञानवापीका दर्शन करके कलावतीके शरीरमें रोमांच हो आया। शरीर कुछ कम्पित होने लगा और माथेमें पसीना आ गया। उसके दोनों नेत्र आनन्दके आँसुओंसे भर आये। देह जडवत् हो गयी। मुँहका रंग फीका हो गया और वह चित्रपट उसके हाथसे छूटकर गिर पड़ा। वह क्षणभरके लिये अपने-आपको भूल गयी। तदनन्तर कलावतीकी दासियाँ इधर-उधरसे दौड़ती हुई आयीं और आपसमें पूछने लगीं—'क्या हुआ? क्या हुआ? यह क्या हो गया?' फिर वे शान्तिदायक उपचारोंसे धैर्यपूर्वक उसकी सेवामें जुट गयीं। उसे इस अवस्थामें देखकर बुद्धिशरीरिणी नामवाली एक सखी बोली—'मैं इसके सन्तापको शान्त करनेके लिये एक उत्तम ओषधि जानती हूँ। यह इस चित्रपटको देखकर तत्काल विकलताको प्राप्त हुई है, अतः फिर उसीका स्पर्श करनेसे सन्तापरहित होगी।' बुद्धिशरीरिणीके कहनेसे दासियोंने कलावतीके आगे उस चित्रपटको रखकर कहा—'रानीजी! इस चित्रपटको देखिये, जिसमें आपको आनन्द देनेवाले कोई इष्टदेव विराज रहे हैं।' चित्रपटका स्पर्श प्राप्त होते ही कलावती मूर्छा त्यागकर सहसा उठ बैठी। फिर उसने ज्ञानदायिनी ज्ञानवापीको देखा। चित्रपटमें अंकित उस ज्ञानवापीका स्पर्श करके ही उसने जन्मान्तरका वैसा ही ज्ञान प्राप्त कर लिया जैसा कि पूर्वजन्ममें था। तब उसने प्रसन्न होकर अपनी दासियोंसे पूर्वजन्मका वृत्तान्त कह सुनाया।

कलावती बोली—पूर्वजन्ममें मैं ब्राह्मणकी कन्या थी और काशीमें विश्वनाथ-मन्दिरके समीप ज्ञानवापीके तटपर प्रसन्नतापूर्वक खेला करती थी। मेरे पिताका नाम हरिस्वामी, माताका नाम प्रियंवदा और मेरा नाम सुशीला था। इस समय ज्ञानवापीको देखनेसे क्षणभरमें मुझे यह पूर्वजन्मका ज्ञान हो आया है।

कलावतीकी यह बात सुनकर बुद्धिशरीरिणी तथा वे सब दासियाँ हर्षमें भरकर बोलीं—अहो! जिस तीर्थका ऐसा प्रभाव है, उसका दर्शन हमें कैसे प्राप्त हो सकता है। कलावती रानी! आपको

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

नमस्कार है। आप हमारी मनोकामना पूर्ण करें। राजासे प्रार्थना करके हमको भी वहाँ ले चलें। जो चित्रपटमें प्राप्त होनेपर भी आपको ज्ञान देनेवाली हुई है, वह अवश्य ही नामसे 'ज्ञानवापी' कहलाने योग्य है।' कलावतीने उन सबकी प्रार्थना स्वीकार करके महाराजसे कहा—'प्राणनाथ! आप-जैसे

पतिको पाकर मेरे सब मनोरथ पूर्ण हो गये। आर्यपुत्र! अब एक ही मनोरथ शेष है, जिसके लिये मैं प्रार्थना करती हूँ।

राजाने कहा—प्रिये! मैं ऐसी कोई वस्तु नहीं देखता जो तुम्हारे लिये देने योग्य न हो। अतः शीघ्र कहो। तुम किससे माँगती हो, किस वस्तुको माँगती हो और कौन माँगनेवाला है? हम दोनोंका आपसका बर्ताव दो भिन्न-भिन्न व्यक्तियोंकी भाँति नहीं है। राज्य, कोष, सेना और दुर्ग तथा अन्य भी जितनी वस्तुएँ हैं, वे सब तुम्हारी हैं, मेरा कुछ भी नहीं है। मैं नाममात्रके लिये ही इनका स्वामी हूँ।

कलावती बोली—नाथ! मुझे शीघ्र काशीपुरीमें पहुँचाइये।

राजा माल्यकेतुने कहा—प्रिये! यदि तुमने काशी जानेका ही निश्चय कर लिया तो अब मुझे भी यहाँ रहनेकी क्या आवश्यकता। अतः हम-तुम दोनोंको काशी चलना चाहिये।

इस प्रकार अपनी प्यारी पत्नी कलावतीको आश्वासन देकर राजा माल्यकेतुने पुरवासियोंको बुलाकर सत्कार किया और पुत्रको राजसिंहासनपर बिठाकर कुछ रत्न-धन साथ ले काशीपुरीको प्रस्थान किया। विश्वनाथजीकी नगरीका दर्शन करके राजाने अपनेको कृतार्थ माना और संसार-सागरसे पार गया हुआ समझा। पहले जन्मकी वासनासे रानी कलावतीने उस पुरीकी समस्त गलियों और मार्गोंको स्वयं पहचान लिया। उन्होंने मणिकर्णिकामें स्नान करके बहुत धन दान किया और विश्वनाथजीकी पूजा करके परिक्रमा करनेके पश्चात् मुक्तिमण्डपमें प्रवेश किया। वहाँ धर्मकथा सुनकर धन-दान किया। फिर राजाने सायंकालकी महापूजा की और रातमें जागरण किया। तदनन्तर प्रातःकाल उठकर शौच और स्नानसे निवृत्त हो रानीके बताये हुए मार्गसे वे ज्ञानवापीपर गये। वहाँ हर्षमें भरे हुए राजाने कलावतीके साथ स्नान किया और श्रद्धापूर्वक पिण्डदान देकर पितरोंको तृप्त किया। वहाँ सुपात्र ब्राह्मणोंको सुवर्ण और रजत दान किये। फिर दीनों, अन्धों, दरिद्रों और अनाथोंको धनसे सन्तुष्ट करके नरेशने पारणा की तथा रत्नमयी सीढ़ियाँ लगवाकर ज्ञानवापीका संस्कार कराया। रानी कलावतीने अपने पतिके साथ ज्ञानवापीतीर्थके प्रति भक्ति-भाव बढ़ाया और आयुके शेष दिन तपस्यापूर्वक व्यतीत किये।

एक दिन प्रातःकाल वे दोनों दम्पति ज्ञानवापीमें स्नान करके बैठे हुए थे। इसी समय किसी जटाधारी व्यक्तिने आकर उनके हाथमें विभूति दी और इस प्रकार कहा—'उठो, आज एक ही क्षणमें तुम दोनोंको यहाँ तारक मन्त्रका उपदेश प्राप्त होगा।' उस जटाधारी तपस्वीके इतना कहते ही आकाशसे एक तेजस्वी विमान उतर आया और सब लोगोंके देखते-देखते भगवान् शिव उस

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

विमानसे उतरे। उतरकर उन्होंने उन दोनों पति-पत्नीके कानोंमें स्वयं ही ज्ञानका उपदेश किया। उपदेशके अनन्तर अनिर्वचनीय परम ज्योतिःस्वरूप वह श्रेष्ठ विमान आकाशमार्गको प्रकाशित करता हुआ तत्काल ऊपरको चला गया और महादेवजी भी अपने परम धाममें चले गये।

स्कन्दजी कहते हैं—तभीसे ज्ञानवापीतीर्थका महत्त्व इस संसारमें सबसे अधिक हो गया। ज्ञानवापी भगवान् शिवकी प्रत्यक्ष मूर्ति एवं ज्ञान उत्पन्न करनेवाली है।

संक्षेपसे सदाचार और उसके महत्त्वका वर्णन

अगस्त्यजी बोले—भगवन्! अविमुक्त नामक महाक्षेत्र परमुक्तिका कारण है। वह सम्पूर्ण क्षेत्रोंमें सबसे श्रेष्ठ और मंगलोंमें भी परम मंगलरूप है। जहाँ गंगा, विश्वनाथ और काशी—ये तीनों जागरूक हैं, वहाँ मोक्षरूपी सम्पत्ति मिलती है। इसमें कौन-सी आश्चर्यकी बात है। स्कन्दजी! किस-किस धर्मका आचरण करनेवाले पुरुषको काशीधामकी प्राप्ति होती है, यह बताइये। मैं तो ऐसा मानता हूँ कि सदाचारके बिना किसीके भी मनोरथ सिद्ध नहीं हो सकते। आचार परम धर्म है, आचार उत्तम तप है, आचारसे आयु बढ़ती है और आचारसे समस्त पापोंका क्षय हो जाता है*। इसलिये आप पहले आचारका ही वर्णन करें।

स्कन्द बोले—मुने! मैं सत्पुरुषोंके लिये हितकर सदाचारका वर्णन करता हूँ, सुनो। इस लोकमें सब प्रकारके प्राणियोंमें सबसे बढ़कर मनुष्य हैं। मनुष्योंमें श्रेष्ठ ब्राह्मण हैं और ब्राह्मणोंसे भी श्रेष्ठ विद्वान् हैं। विद्वानोंमें भी वे सबसे श्रेष्ठ हैं, जिनकी बुद्धि परम पवित्र एवं वशमें की हुई है। उनसे भी श्रेष्ठ वे लोग हैं जो पवित्र बुद्धिद्वारा किये हुए निश्चयके अनुसार कर्म करते हैं। उनसे भी श्रेष्ठ वे हैं जो सदा ब्रह्मचिन्तनमें तत्पर रहते हैं।

ब्रह्माजीने ब्राह्मणको सम्पूर्ण जीवोंका स्वामी बनाया है। इसलिये इस जगत्‌में जो कुछ भी स्थित है, उस सब वस्तुको प्राप्त करनेका योग्य अधिकारी ब्राह्मण ही है। उनमें भी जो सदाचारी है, वही सब कर्मोंके योग्य है, आचारभ्रष्ट नहीं। इसलिये ब्राह्मणको सदा आचारवान् होना चाहिये। मुने! राग-द्वेषसे रहित विद्वान् ब्राह्मण जिस आचारका पालन करते हैं, उसीको ज्ञानी पुरुष धर्ममूलक सदाचार मानते हैं। जो उत्तम लक्षणोंसे हीन होनेपर भी उत्तम आचारके पालनमें तत्पर, श्रद्धालु और दूसरोंके दोष न देखनेवाला है, वह मनुष्य सौ वर्षोंतक जीवित रहता है। अपने-अपने वर्णाश्रमोचित कर्मोंके विषयमें श्रुतियों और स्मृतियोंद्वारा जो धर्ममूलक सदाचार बतलाया गया है, उसका आलस्य छोड़कर पालन करना चाहिये। दुराचारी पुरुष इस संसारमें निन्दनीय होता है, उसे नाना प्रकारके रोग सताते हैं और वह सदा अत्यन्त दुःखका भागी एवं अल्पायु होता है। जिस कर्मको करते समय अन्तरात्मा प्रसन्न होता हो (जिसमें भय, आशंका एवं लज्जा आदिका अनुभव न होता हो), उसी कर्मको करना चाहिये, उससे विपरीत कर्मको नहीं। सत्य, क्षमा, आर्जव (सरलता एवं कोमलता), ध्यान, क्रूरताका अभाव, अहिंसा, दम (मन और इन्द्रियोंका संयम), प्रसन्नता, मधुरता और मृदुता—ये दस प्रकारके यम बताये गये हैं। शौच (बाहर-भीतरकी पवित्रता), स्नान, तप, दान, मौन, यज्ञ, स्वाध्याय, व्रत, उपवास और उपस्थइन्द्रियको वशमें रखना—ये दस नियम कहे गये हैं। काम, क्रोध, मद, मोह, मात्सर्य और लोभ—इन छः शत्रुओंको जीत लेनेपर मनुष्य सर्वत्र विजयी होता है। दूसरेको कष्ट न देते हुए धीरे-धीरे धर्मका संग्रह करना चाहिये। क्योंकि

* आचारः परमो धर्म आचारः परमं तपः। आचाराद्वर्धते ह्यायुराचारात् पापसंक्षयः॥ (स्क० पु०, का० पू० ३५। १५)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

वही परलोकमें सहायक होता है। परलोकमें केवल धर्म ही सहायक होता है। पिता, माता, पुत्र, भाई, पत्नी, बन्धु-बान्धव और घरका साज-सामान— ये सब वहाँ सहायता नहीं करते। जीव अकेला जन्म लेता और अकेला ही मरता है। पुण्य और पापका भोग भी वह अकेला ही करता है। मृत्युको प्राप्त हुए शरीरको लकड़ी और ढेलेकी भाँति पृथ्वीपर फेंककर भाई-बन्धु मुँह फेर चल देते हैं। परलोकमें जाते हुए जीवके साथ तो केवल उसका धर्म जाता है। अतः पुण्यात्मा पुरुष परलोकमें सहायता करनेवाले धर्मका संग्रह अवश्य करे। धर्मको सहायक पाकर जीव नरकके दुस्तर अन्धकारसे भलीभाँति पार हो जाता है। उत्तम बुद्धिवाला पुरुष सदा श्रेष्ठ पुरुषोंके साथ सम्बन्ध स्थापित करे और नीच पुरुषोंका संग त्यागकर अपने कुलको उन्नतिकी ओर ले जाय। जो स्वाध्याय नहीं करता, सदाचारका उल्लंघन करता है तथा आलसी एवं दूषित अन्न खानेवाला है, ऐसे ब्राह्मणको यमराज पीड़ा देते हैं। इसलिये द्विज सदा यत्नपूर्वक सदाचारका पालन करे। व्याहृति और प्रणवके साथ प्रतिदिन किये जानेवाले सोलह प्राणायाम एक ही मासमें भ्रूणहत्यारेको भी पवित्र कर देते हैं। जैसे सोने, चाँदी आदि धातुओंके मल आगमें तपानेसे जल जाते हैं, उसी प्रकार इन्द्रियोंद्वारा किये हुए दोष प्राणायामसे नष्ट हो जाते हैं। प्रणव, सातों व्याहृतियाँ और त्रिपदा गायत्री— ये सब मिलकर एक प्राणायाम-मन्त्र हैं, जो इनके जपमें संलग्न है, उसको कहीं भी भय नहीं है। ॐकार परब्रह्म हैं, प्राणायाम परम तपस्या है और गायत्री-मन्त्रसे बढ़कर परम पावन वस्तु दूसरी कोई नहीं है। केवल गायत्री-मन्त्रका जप करनेवाला जितेन्द्रिय ब्राह्मण भी श्रेष्ठ है।

इस लोकमें जिसका चित्त निर्मल (शुद्ध) है, वह सब तीर्थोंमें स्नान कर चुका। वही सब प्रकारके मलसे रहित है और उसीने सैकड़ों यज्ञोंद्वारा देवाराधन किया है। मुने! वह चित्त जिस प्रकार निर्मल होता है, वह उपाय सुनो। जब भगवान् विश्वनाथ प्रसन्न हों तभी चित्त शुद्ध होता है। अतः चित्तशुद्धिके लिये भगवान् काशीनाथकी शरण लेनी चाहिये। उनकी शरण लेनेसे निश्चय ही मनके मल नष्ट हो जाते हैं और मानसिक मलका नाश होनेपर भगवान् विश्वनाथकी कृपासे इस शरीरका त्याग करके मनुष्य परब्रह्मको प्राप्त होता है। मनुष्योंको भगवान् विश्वनाथकी कृपा होनेमें वेदों और स्मृतियोंद्वारा बताये हुए सदाचारको ही प्रधान हेतु माना गया है। इसलिये उसका पालन अवश्य करे। विधिपूर्वक सन्ध्योपासन और तर्पण करनेके पश्चात् नित्यहोम करके वेदोंका स्वाध्याय करे।

प्रतिदिन प्रातःकाल दो घड़ी रात रहते उठकर मलोत्सर्ग आदि आवश्यक कार्य करनेके पश्चात् अंगोंकी शुद्धि तथा आचमन (कुल्ला) करे। फिर दन्तधावन करे। स्नानके द्वारा समस्त शरीरको शुद्ध करके प्रातःकालकी सन्ध्या करे। वेदोंके अर्थका विचार तथा अनेक प्रकारके शास्त्रोंका अनुशीलन करे। पवित्र, हितकारी तथा बुद्धिमान् शिष्योंको पढ़ावे और योग-क्षेम आदिकी सिद्धिके लिये परमेश्वरकी शरण ले। तदनन्तर मध्याह्नकालके नित्यकर्मका अनुष्ठान करनेके लिये पूर्वोक्त रूपसे पुनः स्नान करे। स्नानके पश्चात् मध्याह्नकालकी सन्ध्या करे। तत्पश्चात् चूल्हेकी आगको प्रज्वलित करके बलिवैश्वदेव करे। निष्पाव, कोदो, उड़द, केराव, चना, तेलमें पकायी हुई वस्तुएँ तथा सब प्रकारके नमकीन भोजन वैश्वदेवमें त्याज्य हैं। अरहर, मसूर, मटर, वरट, भोजनसे बची हुई वस्तु अथवा बासी अन्न—इन सबको वैश्वदेवकर्ममें त्याग देना चाहिये। राही, जीविकाहीन, विद्यार्थी, गुरुका पोषण करनेवाला, संन्यासी और ब्रह्मचारी— ये छः धर्मभिक्षुक कहे गये हैं। राहीको 'अतिथि' जानना चाहिये और वेदोंके पारंगत विद्वान्को 'अनूचान' कहते हैं। ये दोनों ब्रह्मलोकप्राप्तिकी इच्छावाले सद्गृहस्थोंके लिये

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

सदैव सम्माननीय हैं। सायंकालकी सन्ध्योपासना एवं गायत्री-जप करके घरपर आये हुए अतिथिका मधुर वचन, रहनेके लिये स्थान, आसन और अन्न-जल आदिके द्वारा भलीभाँति सत्कार करे। इस प्रकार रात्रिका प्रथम प्रहर व्यतीत करके शयन करे। रातमें अधिक तृप्तिपूर्वक भोजन नहीं करना चाहिये (भूखसे कुछ कम ही खाना चाहिये)।

संस्कारोंका संक्षिप्त परिचय, ब्रह्मचारी एवं ब्रह्मचर्य-आश्रमके धर्म

स्कन्दजी कहते हैं—कुम्भज! ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य—ये तीनों वर्ण द्विज माने गये हैं। जिसका दो बार जन्म हो, उसको 'द्विज' कहते हैं। ये ब्राह्मण आदि वर्ण पहले तो मातासे उत्पन्न हुए हैं और फिर उपनयन-संस्कारसे इनका द्वितीय जन्म सम्पन्न हुआ है। इन सबकी गर्भाधान आदिसे लेकर अन्त्येष्टि कर्मतक समस्त क्रियाएँ वैदिक मन्त्रोंसे सम्पन्न होती हैं। बुद्धिमान् पुरुष ऋतुकालमें रजस्वला स्त्रीके स्नान आदिसे शुद्ध हो जानेपर उसके भीतर गर्भका आधान करे। गर्भाधानकर्ममें मूल और मघा नक्षत्रको त्याग दे। गर्भका बालक जब उदरमें चलने-फिरने लगता है, उसके पहले ही उसका पुंसवन-संस्कार होना चाहिये। तत्पश्चात् छठे या आठवें महीनेमें सीमन्तोन्नयन-संस्कार करे। जब बालक उत्पन्न हो जाय तब तुरंत जातकर्म-संस्कार करे। ग्यारहवें दिन नामकरण और चौथे महीनेमें बालकके घरसे बाहर निकलनेका मुहूर्त करे। छठे मासमें अन्नप्राशन और एक वर्षमें चूड़ाकर्म करे अथवा अपने कुलमें जैसा आचार हो, वैसा करे। इन सब संस्कारोंको करनेसे बीज अथवा गर्भजनित दोष नष्ट हो जाते हैं। कन्याओंके लिये ये सब संस्कार बिना मन्त्रके करने चाहिये। केवल विवाह-संस्कार मन्त्रयुक्त करनेका विधान है। ब्राह्मण सातवें या आठवें वर्षमें गायत्री-मन्त्रकी दीक्षा लेनेके योग्य हो जाता है, क्षत्रिय ग्यारहवें वर्षमें और वैश्य बारहवें वर्षमें इसके योग्य होता है अथवा जैसा अपने कुलका आचार हो वैसा करना चाहिये। ब्राह्मण ब्रह्मतेजकी वृद्धिके लिये पाँचवें वर्षमें, बलकी इच्छा रखनेवाला क्षत्रिय छठे वर्षमें और वैश्य आठवें वर्षमें मौंजी (मेखला) धारण करे। गुरुको चाहिये कि वह शिष्यका उपनयन-संस्कार करके उसे उसी समय महाव्याहृतिपूर्वक गायत्री-मन्त्रका उपदेश दें एवं वेदोंका स्वाध्याय करावें। साथ ही शिष्यको शौचाचारके पालनमें नियुक्त करें। ब्रह्मचारी बालक पूर्वोक्त विधिसे शौच और आचमन करे। दाँत और जिह्वाकी अच्छी तरह शुद्धि करके शरीरको खूब मल-मलकर स्नान करे। स्नानके समय जल-देवता-सम्बन्धी मन्त्रोंका भी उच्चारण करे। तत्पश्चात् यत्नपूर्वक प्राणायाम करके दोनों सन्ध्याओंके समय सूर्यका उपस्थान करे। फिर गायत्रीजपसे निवृत्त होकर अग्निहोत्र करके ब्राह्मणोंको प्रणाम करे। प्रणामके समय इस प्रकार कहे—**'अमुक गोत्रः अमुक शर्माहं भो ब्राह्मणा! भवतोऽभिवादये'** (मैं अमुक गोत्र और अमुक नामवाला हूँ, विप्रवरो! आपको मैं प्रणाम करता हूँ)। जो सदा गुरुजनोंको प्रणाम करता है और बड़े-बूढ़ोंकी सेवामें तत्पर रहता है, उसकी आयु, यश, बल और बुद्धि प्रतिदिन अधिक बढ़ती है*। शिष्यको चाहिये कि वह गुरुके बुलानेपर उनके समीप बैठकर पढ़े। भिक्षामें जो अन्न प्राप्त हो, वह गुरुकी सेवामें निवेदन करे। मन, वाणी और क्रियाद्वारा सदा गुरुके हितका कार्य करे। जो छात्र साधु, विश्वासपात्र, ज्ञानवान्, धन देनेमें समर्थ, शक्तिशाली, कृतज्ञ, पवित्र, द्रोहरहित और

* अभिवादनशीलस्य वृद्धसेवारतस्य च। आयुर्यशो बलं बुद्धिर्वर्द्धतेऽहरहोऽधिकम्॥ (स्क० पु०, का० पू० ३६। १३)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

दोषदृष्टि न रखनेवाले हों, उन सबको धर्मकी दृष्टिसे पढ़ाना गुरुका कर्तव्य है, अर्थके लोभसे नहीं। ब्रह्मचारी शिष्य मेखला, दण्ड, यज्ञोपवीत और मृगचर्म धारण करे। उत्तम ब्राह्मणोंके यहाँसे अपने निर्वाहके लिये भिक्षा ग्रहण करे। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य क्रमशः आदि, मध्य और अन्तमें 'भवत्' शब्दका प्रयोग करके भैक्षचर्या करे। यथा **'भवति भिक्षां मे देहि मातः!'** यह ब्राह्मण-बालक कहे; क्षत्रिय **'भिक्षां भवति मे देहि'** ऐसा कहे और वैश्य ब्रह्मचारी **'भिक्षां मे देहि भवति'** ऐसा बोले। गुरुकी आज्ञा लेकर मौनभावसे अन्नकी निन्दा न करते हुए भोजन करे। ब्रह्मचारी किसी एक व्यक्तिके घरका अन्न न खाय, परंतु श्राद्धमें अथवा आपत्तिकालमें वह एक व्यक्तिका अन्न भी खा सकता है। अधिक भोजन करना आरोग्य, आयु, स्वर्ग और पुण्यका नाश करनेवाला है। यह लोकविरुद्ध कार्य भी है। इसलिये अति भोजनका सर्वथा त्याग करे। मधु, मांस, प्राणियोंकी हिंसा, उगते हुए सूर्यकी ओर देखना, अंजन लगाना, स्त्रीकी ओर देखना, बासी और उच्छिष्ट अन्न खाना और दूसरोंकी निन्दा करना—ब्रह्मचारी यह सब सर्वथा त्याग दे। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्योंके उपनयनका अन्तिम समय क्रमशः सोलह वर्ष, बाईस वर्ष और चौबीस वर्षतक है। जिनकी आयु इससे ऊपरकी हो गयी है, उनका संस्कार नहीं करना चाहिये। वे पतित (व्रात्य) तथा धर्मसे भ्रष्ट होते हैं। व्रात्यस्तोम नामक यज्ञसे उनका पतितपन दूर होता है। जो गायत्री-मन्त्रसे भ्रष्ट हैं, ऐसे लोगोंके साथ विवाहादि सम्बन्ध नहीं करना चाहिये। ब्राह्मण आदि वर्णोंके लोग क्रमशः सन, रेशम और ऊनके वस्त्र धारण करें। ब्राह्मणकी मेखला मूँजकी, क्षत्रियकी मेखला मुर नामक तृणकी तथा वैश्यकी मेखला सनके तन्तुओंकी बनानी चाहिये। प्रत्येक मेखला तीन तारकी एवं चिकनी होनी चाहिये। ब्राह्मणादिके यज्ञोपवीत क्रमशः कपास, सन और ऊनके होने चाहिये। ब्राह्मणका दण्ड बेल और पलासका, क्षत्रियका दण्ड बरगद और खैरका तथा वैश्यका दण्ड पीलू और गूलरका होना चाहिये। पहले-पहल माता, मौसी, बहन और बुआ आदिसे भिक्षा माँगनी चाहिये तथा जो याचना करनेपर अस्वीकार न करें, ऐसी स्त्रियोंसे भी वह भिक्षा माँग सकता है। जबतक वेद पढ़े और वैदिक व्रतोंका पालन करता रहे, तबतक ब्रह्मचारी ही रहे। अध्ययन पूरा होनेके पश्चात् स्नातक होकर गृहस्थ होवे। जो गृहस्थ-आश्रमको स्वीकार करके पुनः ब्रह्मचर्याश्रमके नियमोंको ग्रहण करता है, वह सब आश्रमोंसे वर्जित हो जाता है। वह न तो वानप्रस्थ हो सकता है, न तो संन्यासी ही। आश्रमभ्रष्ट पुरुष जो जप, होम, व्रत, दान, स्वाध्याय और पितृतर्पण आदि कर्म करता है, वह उसका फल नहीं पाता। वेदपाठके आरम्भमें और अन्तमें सदा ॐकारका उच्चारण करे। ॐकारसे हीन वेदपाठ न तो सफल होता है और न सिद्धिदायक ही होता है। जो वेदोंका ज्ञाता ब्राह्मण दोनों सन्ध्याओंके समय ॐकार और व्याहृतियोंसहित गायत्रीमन्त्रका जप करता है, वह वेदपाठके पुण्यसे युक्त होता है।

विधिपूर्वक किये हुए यज्ञसे जपयज्ञ दसगुना उत्तम बताया गया है। उपांशु जप (सूक्ष्म स्वरसे उच्चारण किया हुआ जप) उससे सौगुना फल देनेवाला है। उपांशु जपकी अपेक्षा भी सहस्रगुना महत्त्व मानस-जपका माना गया है*। द्विजको अपनी शक्तिके अनुसार तीन, दो या एक वेदका अध्ययन करके सदा उसके अभ्यासमें लगे रहना चाहिये। वेदाभ्यास ब्राह्मणके लिये सर्वश्रेष्ठ तपस्या है। जो ब्राह्मण शिष्यका उपनयन-संस्कार करके उसे कल्प और रहस्यसहित वेद पढ़ाता है, उसे विद्वान् पुरुष आचार्य मानते हैं। जो जीविकाके

* विधिक्रतोर्दशगुणो जपक्रतुरुदीरितः। उपांशुस्तच्छतगुणः सहस्रो मानसस्ततः॥ (स्क० पु०, का० पू० ३६।४९)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

लिये वेदके किसी एक भागको अथवा वेदांगोंका ही अध्ययन कराता है, उसे विद्वान् पुरुष उपाध्याय कहते हैं। जो विधिपूर्वक गर्भाधान आदि संस्कार कराता है तथा अन्नसे पालन करता है, वह गुरु कहा गया है। जो जिसके द्वारा वरण किये जानेपर उसके यहाँ अग्न्याधानपूर्वक किये जानेवाले आहवनीय आदि कर्म, पाकयज्ञ तथा अग्निष्टोम आदि याग सम्पन्न करता है, वह उस यजमानका ऋत्विज कहलाता है। उपाध्यायकी अपेक्षा दसगुना गौरव आचार्यका है, आचार्यसे सौगुना महत्त्व पिताका है और पितासे भी सहस्रगुना गौरव धारण करनेके कारण माता बड़ी है[१]। ब्राह्मणोंमें वही बड़ा माना जाता है, जो ज्ञानमें बड़ा हो, क्षत्रियोंमें बलसे, वैश्योंमें धन-धान्यसे और शूद्रोंमें जन्मसे ज्येष्ठताका व्यवहार होता है। जैसे काठका हाथी और चमड़ेका मृग है, वैसे ही बिना पढ़ा हुआ ब्राह्मण है। ये तीनों केवल नाम धारण करनेवाले हैं। जहाँ गुरुकी निन्दा हो और जहाँ गुरुपर झूठे लांछन लगाये जाते हों, वहाँ अपने कानोंको मूँद लेना चाहिये अथवा उठकर अन्यत्र चले जाना चाहिये। गुरुकी सती एवं युवती पत्नीके दोनों चरणोंका स्पर्श करके कभी प्रणाम न करे, दूरसे ही नमस्कार करे। माता, पुत्री अथवा बहिनके साथ भी एकान्तमें नहीं रहना चाहिये, क्योंकि इन्द्रियाँ बड़ी प्रबल होती हैं। वे विद्वानोंको भी मोहमें डाल देती हैं[२]। जैसे प्रयत्नपूर्वक कुआँ खोदनेवाला पुरुष पृथ्वीसे जल प्राप्त कर लेता है, उसी प्रकार गुरुकी पूर्णतः सेवा करनेसे शिष्य विद्याको पा लेता है। पुत्रके जन्म और लालन-पालनमें पिता-माता जो क्लेश सहन करते हैं, उसका बदला सौ वर्षोंमें भी नहीं चुकाया जा सकता। इसलिये माता-पिता और गुरुका भी सदैव प्रिय करे। इन तीनोंके सन्तुष्ट हो जानेपर पूर्ण तपस्याका फल प्राप्त होता है। इन तीनोंकी सेवा श्रेष्ठ तपस्या कहलाती है। माताकी सेवासे भूलोक, पिताकी सेवासे भुवर्लोक और गुरुकी सेवासे पुण्यात्मा पुरुष स्वर्गलोकको जीत लेता है। भगवान् विश्वनाथकी कृपासे मनुष्य अखण्ड ब्रह्मचर्यसे युक्त होता है। विश्वनाथजीकी उत्तम दया ही काशीकी प्राप्ति करानेवाली है। काशीकी प्राप्तिसे ज्ञान होता है और ज्ञानसे मनुष्य निर्वाण (मोक्ष) प्राप्त कर लेता है। अतः मोक्षके उद्देश्यसे ही बुद्धिमानोंका सदाचारके लिये प्रयत्न होता है।

गृहस्थ-आश्रममें जिस प्रकार सदाचारका पालन होता है, वैसा दूसरे आश्रममें नहीं। इसलिये विद्याध्ययन पूर्ण करके अन्तमें गृहस्थ-आश्रमकी शरण लेनी चाहिये। यदि पत्नी अपने अधीन रहनेवाली हो तो गृहस्थ-आश्रमसे बढ़कर दूसरा कोई आश्रम नहीं है। पति और पत्नीकी अनुकूलता धर्म, अर्थ तथा कामकी प्राप्ति करानेवाली होती है। यदि स्त्री अपने अनुकूल रहनेवाली हो तो स्वर्गको लेकर भी क्या करना है और यदि पत्नी अपनेसे विपरीत चलनेवाली हो तब तो उसके सामने नरक भी किस गिनतीमें है? कार्यकुशल, पुत्रवती, पतिव्रता, मीठे वचन बोलनेवाली और अपने अधीन रहनेवाली—इन गुणोंसे युक्त पत्नी वस्तुतः स्त्रीके रूपमें साक्षात् लक्ष्मी है[३]। विद्याध्ययन समाप्त होनेपर ब्रह्मचारी गुरुकी आज्ञासे ब्रह्मचर्यव्रतका उद्यापन करके स्नातक होकर अपने ही वर्णकी शुभलक्षणा स्त्रीके साथ विवाह कर ले। वह स्त्री अपने पिताके गोत्रकी न हो और माताकी सपिण्ड न हो। विवाह-सम्बन्धमें ऐसे कुलका परित्याग कर दे, जिसमें मृगीरोग, राजयक्ष्मारोग और कोढ़का रोग होता हो। जिस कुलमें किसी प्रकारका कलंक लगा हो, उसको भी त्याग दे। जिससे केवल कन्या

१- उपाध्यायाद्दशाचार्य आचार्यात्तु शतं पिता। सहस्रं तु पितुर्माता गौरवेणातिरिच्यते॥ (स्क० पु०, का० पू० ३६। ५७)

२- न मात्रा न दुहित्रा वा न स्वस्रैकान्तशीलता। बलवतीन्द्रियाण्यत्र मोहयन्त्यपि कोविदान्॥ (स्क० पु०, का० पू० ३६। ६९)

३- दक्षा प्रजावती साध्वी प्रियवाक् च वशंवदा। गुणैरमीभिः संयुक्ता सा श्रीः स्त्रीरूपधारिणी॥ (स्क० पु०, का० पू० ३६। ८७)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

ही होनेकी सम्भावना हो, ऐसी स्त्रीसे विवाह न करे। जिसके कोई रोग न हो, जिसके भाई हों, जो अपनेसे कुछ छोटी हो, जिसका मुख सौम्य हो और जो मीठे वचन बोलनेवाली हो, ऐसी स्त्रीके साथ द्विजको विवाह करना चाहिये। पर्वत, भालू, वृक्ष, नदी, सर्प, पक्षी, नाग और दास आदिका बोध करानेवाले नामोंसे युक्त स्त्रीके साथ विवाह न करे। जिसका नाम सौम्य हो, उसीसे विवाह करे। जिसके कोई अंग अधिक या कम हों, जो बहुत बड़ी अथवा अत्यन्त दुबली हो, बिना रोमकी अथवा अधिक रोमवाली हो तथा जिसके केश रूखे एवं मोटे (चिपके हुए) हों, ऐसी स्त्रीके साथ भी विवाह न करे। मोहवश नीच कुलकी कन्यासे तो कभी विवाह न करे; क्योंकि हीन कुलकी कन्याके साथ विवाह करनेसे अपनी सन्तान भी हीनताको प्राप्त होती है। पहले कन्याके लक्षणोंकी परीक्षा करके तदनन्तर उसके साथ विवाह करे। उत्तम लक्षणोंवाली तथा सदाचारका पालन करनेवाली पत्नी पतिकी आयु बढ़ाती है। अगस्त्यजी! इस प्रकार मैंने आपसे ब्रह्मचारियोंके सदाचारका वर्णन किया है।

गृहस्थ-आश्रमके धर्म, पंचयज्ञकी महिमा, काशीवासकी महत्ता तथा राजा दिवोदासको पृथ्वीके राज्यकी प्राप्ति

स्कन्दजी कहते हैं—यदि स्त्री शुभलक्षणा हो तो गृहस्थ पुरुष सदा सुख भोगता है। अतः सुखकी वृद्धिके लिये पहले स्त्रीके लक्षणोंकी ही परीक्षा करे। शरीर, आवर्त, गन्ध, छाया (कान्ति), सत्त्व, स्वर, गति और वर्ण—विद्वानोंद्वारा स्त्रीके लक्षणोंकी परीक्षाके लिये यह आठ प्रकारका आधार बताया गया है। (सामुद्रिक शास्त्रीय) उत्तम लक्षणोंसे युक्त होनेपर भी जिसने अपना शील (सतीत्व) दूषित कर लिया हो, वह कुलक्षणा स्त्रियोंकी शिरोमणि है तथा जो बाह्य शुभ लक्षणोंसे युक्त न होनेपर भी सती-साध्वी है, उसे समस्त शुभ लक्षणोंका आधार मानना चाहिये। भगवान् विश्वनाथकी कृपासे ही गृहस्थके घरमें शुभलक्षणा, सदाचारिणी, पतिके अधीन रहनेवाली और पतिव्रता स्त्री प्राप्त होती है। जिन्होंने पूर्वजन्ममें उत्तम तीर्थोंमें अपने शरीरको क्षीण किया अथवा छोड़ा है, वे ही इस जगत्में शुभलक्षणा स्त्री होती हैं। जिन स्त्रियोंने जगन्माता पार्वतीजीका पूजन किया है, वे ही सदाचारिणी होती हैं। जिनका पति उनके गुणोंसे रीझकर उनके अनुकूल बना रहता है तथा जो उत्तम शील-स्वभाववाली हैं, ऐसी मृगनयनी स्त्रियोंके लिये यहीं स्वर्ग और अपवर्ग (मोक्ष) सुलभ है। वह उनके उत्तम लक्षणोंका ही फल है। स्त्रियाँ अपने अच्छे लक्षणों और विशुद्ध आचरणोंसे अल्पायु पतिको भी दीर्घायु एवं आनन्दका भागी बना देती हैं। अतः सुलक्षणा स्त्रीसे विवाह करना चाहिये।

गृहस्थ-आश्रममें रहनेवाले पुरुषके द्वारा प्रतिदिन पाँच प्रकारकी हिंसाएँ होती हैं। ओखली, चक्की, चूल्हा, जलका घड़ा और झाड़ू—ये पाँचों हिंसाके स्थान हैं। ऐसी हिंसाओंका निराकरण करनेके लिये पाँच यज्ञ बताये गये हैं, जो गृहस्थके कल्याणकी वृद्धि करनेवाले हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं—ब्रह्मयज्ञ, पितृयज्ञ, देवयज्ञ, भूतयज्ञ और मनुष्ययज्ञ। वेद और शास्त्रोंके पठन-पाठनका नाम ब्रह्मयज्ञ है। तर्पणको पितृयज्ञ कहते हैं। होम देवयज्ञ, बलिवैश्वदेव भूतयज्ञ और अतिथि-सत्कार मनुष्ययज्ञ है। जिसके घरसे आदर न पाकर अतिथि निराश लौट जाता है,

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

वह जन्मभरके संचित पुण्यसे तत्काल हाथ धो बैठता है[१]। अतः आये हुए अतिथिकी प्रसन्नताके लिये सान्त्वनापूर्ण मधुर वचन, सोनेके लिये स्थान, आसन और जल आदि वस्तुएँ तो सदा देनी ही चाहिये। सायंकालमें सूर्यास्तके समय आये हुए अतिथिका यत्नपूर्वक सत्कार करना चाहिये। सत्कार न पाकर यदि वह अन्यत्र चला जाता है तो अधिक पाप प्रदान करता है। जो अतिथिको भोजन करानेसे बचे हुए अन्नको स्वयं ग्रहण करता है, वह इस लोकमें दीर्घायु और धनवान् होता है। अतिथिको हटाकर स्वयं भोजन करनेवाला गृहस्थ पापका भागी होता है। वैश्वदेवकर्मके अन्तमें और सूर्यास्तके समय जो आता है वही अतिथि है। जो पहलेका आया हो अथवा कहींका देखा हुआ (परिचित) हो वह अतिथि नहीं है। छोटे बालक, (वृद्ध,) स्ववासिनी (पिताके घरमें रहनेवाली स्त्री), गर्भवती और अत्यन्त रोगी स्त्री-पुरुषोंको अतिथिसे पहले भी भोजन कराया जा सकता है। इसमें विचार नहीं करना चाहिये। देवता, पितर और मनुष्योंको देकर खानेवाला गृहस्थ अमृतभोजन करता है। जो केवल अपना पेट पालनेवाला है और अपने ही लिये रसोई बनाता है, वह मनुष्य पापमय भोजन करता है[२]। शूद्रको कभी वैदिक मन्त्रका श्रवण नहीं कराना चाहिये। उसे वेद-मन्त्रका श्रवण करानेपर ब्राह्मण ब्राह्मणत्वसे और शूद्र अपने धर्मसे गिर जाता है। ब्राह्मण आदि वर्णोंकी सेवा ही शूद्रोंका परम धर्म माना गया है। सदा मंगलमय वचन ही बोले, सबके मंगलका ही चिन्तन करे, कल्याणमय महापुरुषोंका ही संग करे, अमंगलकारी दुष्टोंका साथ कभी न करे[३]। बुद्धिमान् मनुष्यको चाहिये कि वह रूप, धन और कुलसे हीन मनुष्योंपर कभी आक्षेप न करे। मन, वाणी और जिह्वाके वेगको रोके। घूस, जुआ, दूतीपन और पीड़ित मनुष्यके धनको दूरसे ही त्याग दे। इस प्रकार देवता, ऋषि और पितरोंके ऋणसे उऋण होकर घरका सारा कार्यभार पुत्रको सौंप दे और स्वयं घरपर तटस्थ होकर रहे। घरमें रहकर भी ज्ञानका अभ्यास करे अथवा काशीकी शरण ले। क्योंकि सम्यग्ज्ञानसे मुक्ति प्राप्त होती है अथवा विश्वनाथपुरी काशीमें मुक्ति मिलती है। आज, कल, परसों अथवा सौ वर्ष बाद मृत्यु निश्चित है, शरीर शीघ्र जानेवाला है, अतः यदि वह काशीमें मृत्युको प्राप्त हो तो मनुष्य अमृत (मुक्त) हो जाता है। सदाचारी पुरुषको ही सदाके लिये काशी सुलभ होती है। अतः विद्वान् पुरुष मनसे भी सदाचारका उल्लंघन न करे। बड़ा भारी उपद्रव आनेपर भी जो काशीसे विलग न होने दे, वही महायोग है। अन्य जितने योग हैं, वे सब उपयोग हैं। भगवान् विश्वनाथको जो नियमपूर्वक शुद्ध हृदयसे पत्र, पुष्प, फल और जल अर्पण किया जाता है, वह यहाँ महादान ही है। भगवान् विश्वनाथके दक्षिण भागमें बैठकर हृदयमें उनका चिन्तन करते हुए जो क्षणभरके लिये नेत्र बंद किया जाता है, यही उत्तम महायोग है।

एक समयकी बात है। प्रजापति ब्रह्माजीने राजर्षियोंमें श्रेष्ठ राजा रिपुंजयको प्रत्यक्ष दर्शन दिया। रिपुंजय अविमुक्त नामक महाक्षेत्रमें मन, इन्द्रियोंको वशमें करके तपस्या कर रहे थे। उनका जन्म राजा मनुके वंशमें हुआ था। वे वीर तो थे ही, मूर्तिमान् क्षत्रियधर्मकी भाँति

१- अनर्चितोऽतिथिर्गेहाद् भग्नाशो यस्य गच्छति। आजन्मसञ्चितात्पुण्यात् क्षणात् स हि बहिर्भवेत्॥ (स्क० पु०, का० पू० ३८। २९)

२- कुमाराश्च स्ववासिन्यो गर्भिण्योऽतिरुजान्विताः। अतिथेरादितोऽप्येते भोज्या नात्र विचारणा॥
पितृदेवमनुष्येभ्यो दत्त्वाश्नात्यमृतं गृही। स्वार्थं पचन्नघं भुङ्क्ते केवलं स्वोदरंभरिः॥ (स्क० पु०, का० पू० ३८। ३६-३७)

३- भद्रमेव वदेन्नित्यं भद्रमेव विचिन्तयेत्। भद्रैरेवेह संसर्गो नाभद्रैश्च कदाचन॥ (स्क० पु०, का० पू० ३८। ८४)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

प्रकट हुए थे। उनके समीप जाकर ब्रह्माजीने कहा—'महामते! तुम समुद्र, पर्वत और वनोंसहित

समूची पृथ्वीका पालन करो। नागराज वासुकि तुम्हें पत्नी बनानेके लिये नागकन्या अनंगमोहिनीको देंगे। देवता भी प्रतिक्षण तुम्हारे प्रजापालनसे सन्तुष्ट होकर तुम्हें स्वर्गीय रत्न और पुष्प प्रदान करते रहेंगे। इसलिये **'दिवो दास्यन्ति'** इस व्युत्पत्तिके अनुसार तुम्हारा नाम 'दिवोदास' होगा। राजन्! मेरे प्रभावसे तुम्हें दिव्य सामर्थ्यकी प्राप्ति होगी।'

ब्रह्माजीकी बात सुनकर राजाओंमें श्रेष्ठ रिपुंजयने उनकी अनेक प्रकारसे स्तुति की और इस प्रकार कहा—पितामह! मनुष्योंसे भरे हुए इस भूतलपर क्या दूसरे राजालोग नहीं हैं? मुझे ही ऐसी आज्ञा क्यों मिल रही है?

ब्रह्माजीने कहा—राजन्! तुम राज करोगे तो इन्द्रदेव इस पृथ्वीपर वर्षा करेंगे। दूसरा कोई पापनिष्ठ राजा राज्य करेगा तो देव वर्षा नहीं करेंगे।

राजा बोले—महामान्य पितामह! आप स्वयं ही तीनों लोकोंकी रक्षा करनेमें समर्थ हैं, तो भी आप मुझे जो यह यश दे रहे हैं, यह आपका मेरे ऊपर महान् प्रसाद है। अतः मैं आपकी आज्ञा शिरोधार्य करता हूँ। परन्तु मुझे भी कुछ आपसे निवेदन करना है। यदि मेरे लिये मेरी इस प्रार्थनाको आप स्वीकार कर लेंगे तो मैं भूतलका अकण्टक राज्य करूँगा।

ब्रह्माजीने कहा—राजन्! तुम्हारे मनमें जो बात है, उसे शीघ्र कहो।

राजा बोले—पितामह! यदि मैं पृथ्वीका अधिपति होऊँ तो देवलोकके निवासी देवगण अपने ही लोकमें ठहरें, भूलोकमें न आवें। जब देवता देवलोकमें रहेंगे और मैं इस पृथ्वीपर निवास करूँगा तब यहाँ अकण्टक राज्य होनेसे प्रजावर्गको सुखकी प्राप्ति होगी।

'तथास्तु' कहकर ब्रह्माजीने जब उनकी प्रार्थना स्वीकार की, तब राजा दिवोदासने डंका बजाकर राज्यमें यह घोषणा करवा दी कि 'देवतालोग स्वर्गको चले जायँ और नागगण भी यहाँ कभी न आयें, जिससे मनुष्य स्वस्थ एवं सुखी रहें। पृथ्वीपर मेरे राज्य-शासनकालमें देवता स्वर्गमें सुखी रहें और मनुष्य पृथ्वीपर स्वस्थ रहें।'

गृहस्थोचित शिष्टाचार और धर्म

स्कन्दजी कहते हैं—महामते कुम्भज! अपनेको कल्याण प्रदान करनेवाले इस अविमुक्त क्षेत्र (काशी)-की प्राप्ति जिस प्रकार सम्भव है, उसे मैं बतलाता हूँ। पुण्यराशिसे मनोवांछित वस्तुकी प्राप्ति होती है और वह पुण्य वैदिक मार्गके सेवनसे उपलब्ध होता है। जो वैदिक मार्गका सेवन करता है उसके स्पर्शमात्रसे अवसर पाकर मनुष्यपर घात करनेकी इच्छा रखनेवाले कलि और काल दोनों नष्ट हो जाते हैं। निषिद्ध कर्मोंके सेवन और विहित कर्मोंके त्यागसे छिद्र देखकर

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

कलि और काल ब्राह्मणको नष्ट कर देते हैं। प्याज, लहसुन, लसोड़ेका फल (लहेसुवा), गाजर, दस दिनके भीतर ब्यायी हुई गौका दूध और धरतीका फूल—इन सबको त्याग देना चाहिये। वृक्ष काटनेसे निकलनेवाले गोंद, देवता-पितरोंको निवेदन किये बिना खीर, पूआ और पूड़ी तथा बिना बछड़ेकी गायका दूध—ये सब त्याग देने चाहिये। एक खुरके पशुका दूध त्याज्य है। ऊँटनी और भेड़का दूध भी नहीं ग्रहण करना चाहिये। रातमें दही नहीं खाना चाहिये। मछलीका सर्वथा त्याग करना चाहिये। आयु तथा स्वर्गकी इच्छा रखनेवालेको यत्नपूर्वक मांसका त्याग करना चाहिये। बासी अन्न सभी त्याग देनेयोग्य है, परंतु घीका बना हुआ बासी अन्न भी ग्राह्य है। जो अज्ञानी अपने शरीरकी पुष्टिके लिये दूसरे जीवोंकी हत्या करता है, उस दुराचारीको न तो इस लोकमें सुख मिलता है और न परलोकमें ही। जो मांस खाता है, जो जीवोंको मारनेकी अनुमति देता है, जो मांस पकाता है, जो उसको खरीदता और जो बेचता है, जो अपने हाथसे मारता है, जो बाँटता-परोसता है तथा जो आज्ञा देकर जीवहिंसा कराता है—ये आठ प्रकारके मनुष्य हिंसक माने गये हैं।[१] जो सौ वर्षोंतक प्रत्येक वर्षमें अश्वमेध यज्ञद्वारा यजन करता है तथा जो मांस-भक्षण नहीं करता है, इन दोनोंकी परस्पर तुलना की जाय तो मांसका त्याग करनेवाला ही श्रेष्ठ सिद्ध होता है[२]। सुखकी इच्छा रखनेवाले पुरुषको चाहिये कि वह जैसे अपने-आपको सुखी देखना चाहता है उसी प्रकार दूसरेको भी देखे। अपने और दूसरेमें बराबर ही सुख-दुःख होते हैं। दूसरे किसी जीवको जो सुख या दुःख दिया जाता है वह सब पीछे चलकर अपनेपर ही संघटित होता है। क्लेश उठाये बिना धन नहीं मिलता और धनके बिना कार्य कैसे हो सकते हैं। जो कर्म नहीं कर सकता, उसके द्वारा धर्मका अनुष्ठान कैसे सम्भव होगा और जो धर्महीन है उसे सुख कहाँसे मिलेगा। सुखकी अभिलाषा सभी रखते हैं। परंतु सुख धर्मसे ही प्राप्त होता है। अतः चारों वर्णोंके मनुष्योंको प्रयत्नपूर्वक अपने-अपने धर्मका पालन करना चाहिये। न्यायोपार्जित द्रव्यसे पारलौकिक कर्म करना चाहिये और उसीसे उत्तम देश, काल और पात्रमें विधि एवं श्रद्धापूर्वक दान देना चाहिये। जो अपने धनद्वारा माता-पितासे हीन बालकोंका यज्ञोपवीत और ब्याह आदि संस्कार करवाता है, उसे अक्षय कल्याणकी प्राप्ति होती है। गायको पेन्हानेमें बछड़ेका मुख पवित्र है और फल गिरानेमें पक्षीकी चोंच पवित्र मानी गयी है। बकरे और घोड़ेका मुख पवित्र है। गौएँ पीठकी ओरसे शुद्ध मानी गयी हैं तथा ब्राह्मणोंके चरण पवित्र हैं। यदि किसीने स्त्रीसे बलात् भोग कर लिया हो अथवा वह चोरके हाथमें पड़ गयी हो तो भी अपनी प्रिय पत्नीका परित्याग नहीं करना चाहिये। उसके त्यागका विधान नहीं है[३]। खटाईसे ताँबेके पात्रकी शुद्धि होती है, राखसे काँसेका बर्तन शुद्ध होता है, पत्नी रजोधर्मसे शुद्ध होती है और नदी प्रवाहसे पवित्र होती है। जो मनसे भी यहाँ पर-पुरुषका चिन्तन नहीं करती वह स्वर्गलोकमें पार्वतीजीके साथ सुख भोगती है और इस लोकमें भी सुयशकी भागिनी होती है।[४]

पिता, पितामह, भ्राता, कुलका कोई भी पुरुष

१- यो जन्तूनात्मपुष्ट्यर्थं हिनस्ति ज्ञानदुर्बलः। दुराचारस्य तस्येह नामुत्रापि सुखं क्वचित्॥
भोक्तानुमन्ता संस्कर्ता क्रयिविक्रयिहिंसकाः। उपहर्ता घातयिता हिंसकाश्चाष्टधा स्मृताः॥
(स्क० पु०, का० पू० ४०। २१-२२)

२- प्रत्यब्दमश्वमेधेन शतं वर्षाणि यो यजेत्। अमांसभक्षको यश्च तयोरन्त्यो विशिष्यते॥
(स्क० पु०, का० पू० ४०। २३)

३- बलात्कारोपभुक्ता वा चौरहस्तगतापि वा। न त्याज्या दयिता नारी नास्यास्त्यागो विधीयते॥
(स्क० पु०, का० पू० ४०। ४७)

४- मनसापि हि या नेह चिन्तयेत् पुरुषान्तरम्। सोमया सह सौख्यानि भुङ्क्ते चात्रापि कीर्तिभाक्॥
(स्क० पु०, का० पू० ४०। ४०)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

तथा माता—ये क्रमशः कन्यादानके अधिकारी हैं। इनमें पहले-पहलेके न रहनेपर दूसरा-दूसरा कन्यादान कर सकते हैं। कुलमें कोई भी कन्यादाता न हो तो कन्या स्वयं ही किसी योग्य पतिको वरण कर सकती है। अनिच्छापूर्वक बलात्कार हो जानेसे ऋतुकालमें स्त्रीकी शुद्धि हो जाती है। स्त्रियोंके सत्कारका अवसर आनेपर तथा उत्सवोंमें उन्हें वस्त्र-आभूषण और उत्तम अन्न आदि देकर सदा सम्मानित करना चाहिये। जहाँ भूषण, वस्त्र और अन्न आदिसे पूजित होकर स्त्रियाँ प्रसन्न रहती हैं वहाँ सब देवता सुखपूर्वक निवास करते हैं और वहाँ किये हुए समस्त सत्कर्म सफल होते हैं। जिस घरमें पतिसे पत्नी और पत्नीसे पति सन्तुष्ट रहते हैं वहाँ पग-पगपर कल्याणकी प्राप्ति होती है[१]। अहुत, हुत, प्रहुत, प्राशित तथा ब्राह्महुत—ये पाँच यज्ञ शुभ बताये गये हैं। इनमें जपको अहुत यज्ञ कहते हैं, होमका नाम हुत यज्ञ है, बलिवैश्वदेवको प्रहुत यज्ञ कहते हैं, पितरोंकी तृप्तिके लिये श्राद्ध आदि करना प्राशित यज्ञ है और ब्राह्मणोंका सत्कार करके उनको भोजन कराना ब्राह्महुत यज्ञ कहलाता है। इन पाँचों यज्ञोंका अनुष्ठान करनेवाला ब्राह्मण कभी दुखी नहीं होता और इनके न करनेसे वह पाँच प्रकारकी हिंसाओंका भागी होता है।

ब्राह्मणके साथ समागम होनेपर उससे कुशल पूछे, क्षत्रियसे अनामय (स्वास्थ्य) पूछे, वैश्यसे सुख और शूद्रसे सन्तोष पूछे। जो अपने द्वारा पोषण करनेयोग्य कुटुम्बीजन और सेवक आदि हैं उनका पालन-पोषण लौकिक और पारलौकिक दोनों फलोंका देनेवाला है और यदि उनका पालन नहीं किया जाय तो पाप होता है। अतः प्रयत्नपूर्वक उनके भरण-पोषणमें तत्पर रहना चाहिये। माता, पिता, गुरु, पत्नी, सन्तान, शरणागत व्यक्ति, अभ्यागत, अतिथि और अग्नि—ये नौ पोष्यवर्गके अन्तर्गत हैं। जो पुरुष इस लोकमें अनेक व्यक्तियोंकी जीविका चलाता है, उसीका जीवन सफल है। जो केवल अपना ही पेट भरता है, वह जीते-जी मृतकके तुल्य जाननेयोग्य है। जो देवता, पितर आदि सबको उनका यथायोग्य भाग अर्पण करता है, दयावान्, सुशील, क्षमाशील और देवता एवं अतिथियोंका भक्त है वह गृहस्थ धार्मिक माना गया है। रातके मध्यमें जो दूसरे और तीसरे प्रहर हैं, उनमें ही जो सोता और यज्ञशेष अन्नका भोजन करता है वह ब्राह्मण कभी दुखी नहीं होता। अभ्यागतके आनेपर गृहस्थको सदा ये नौ बातें करनी चाहिये, जो अमृतके समान मंगलकारक हैं—सौम्य वचन, सौम्य दृष्टि, सौम्य मन, सौम्य मुख, उठकर स्वागत करना, 'आइये-बैठिये' ऐसा कहना, स्नेहपूर्वक वार्तालाप करना, अतिथिके समीप बैठकर उसकी सेवा करना और जब वह जाने लगे तो उसके पीछे-पीछे पहुँचानेके लिये कुछ दूरतक जाना। ये नौ बातें गृहस्थकी उन्नति करनेवाली हैं। इसके सिवा जिनके करनेमें बहुत कम खर्च हैं, ऐसी नौ बातें और हैं, जो अवश्य करने योग्य हैं—अभ्यागतको आसन देना, उसके पैर धोना, उसे यथाशक्ति भोजन कराना, सोने-बैठनेके लिये भूमि, शय्या, तृण, जल, अभ्यंग (तैल-उबटन देना) और दीपक—ये नौ कार्य गृहस्थको सिद्धि देनेवाले हैं। चुगली, परस्त्रीसेवन, द्रोह, क्रोध, असत्यभाषण, अप्रिय वचन बोलना, द्वेष, दम्भ (पाखण्ड) और माया (छल-कपट)—ये नौ दुर्गुण स्वर्गका मार्ग रोकनेके लिये साँकलके समान हैं। अब नौ आवश्यक कर्म बतलाये जाते हैं, जो द्विजोंके द्वारा प्रतिदिन करने योग्य हैं—स्नान, सन्ध्या, जप, होम, स्वाध्याय, देवपूजा, बलिवैश्वदेव, अतिथि-सत्कार और पितृतर्पण[२]।

१- यत्र तुष्यति भर्त्रा स्त्री स्त्रिया भर्ता च तुष्यति। तत्र वेश्मनि कल्याणं सम्पद्येत पदे पदे॥ (स्क० पु०, का० पू० ४०। ६०)

२- नवावश्यककर्माणि कार्याणि प्रतिवासरम्। स्नानं सन्ध्या जपो होमः स्वाध्यायो देवतार्चनम्॥
वैश्वदेवं तथाऽऽतिथ्यं नवमं पितृतर्पणम्। (स्क० पु०, का० पू० ४०। ७७)

279 Skandpuran_Section_28_1_Front
In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

मुने! नौ बातें परम गोपनीय हैं, उनको सुनिये—अपने जन्मका नक्षत्र, मैथुनकर्म, मन्त्र, अपने घरका कोई कलंक, छलना अथवा छला जाना, अपनी आयु, धन, अपमान और पत्नी—ये कभी किसी प्रकार भी प्रकाशमें लानेयोग्य नहीं हैं। सुपात्र, मित्र, विनययुक्त, दीन, अनाथ, उपकारी, माता-पिता और गुरु—इन नौ प्रकारके मनुष्योंको जो कुछ दिया जाता है वह अक्षय होता है। चिकनी-चुपड़ी बातें करनेवाले, चारण (प्रशंसाके गीत गानेवाले), चोर, अयोग्य वैद्य, धूर्त, छली, शठ, पहलवान और वन्दी—इन नौ व्यक्तियोंको जो कुछ दिया जाता है वह निष्फल होता है। अपनी स्त्री, शरणागत पुरुष, दूसरेकी धरोहर, बन्धक, कुलकी जीविका, अधिक समयतकके लिये घरमें रखी हुई दूसरेकी वस्तु, स्त्रीका धन, पुत्र तथा पुत्र रहते हुए सर्वस्व—ये नौ वस्तुएँ आपत्तिकालमें भी किसी दूसरेको नहीं देनी चाहिये। जो मूढात्मा इन वस्तुओंको देता है, वह अनेकों प्रायश्चित्त करनेपर ही शुद्ध होता है। सत्य, शौच, अहिंसा, क्षमा, दान, दया, दम (मन-इन्द्रियोंका संयम), अस्तेय (चोरीसे दूर रहना) तथा इन्द्रियोंको विषयोंकी ओरसे हटाकर अपने भीतर स्थापित करना (प्रत्याहार)—ये नौ सबके लिये धर्मके साधन हैं[१]। जिसकी जिह्वा, स्त्री, पुत्र, भाई, मित्र, सेवक और आश्रित मनुष्य—ये सभी विनयशील हों उसका सर्वत्र गौरव है। मदिरापान, दुष्टोंका संग, पतिसे अलग रहना, स्वच्छन्द घूमना, अधिक सोना, दूसरेके घरमें निवास करना—ये छः बातें स्त्रियोंको दूषित करनेवाली हैं[२]।

जबतक तैयार किया हुआ अन्न गरम रहता है, जबतक उसे मौनपूर्वक भोजन किया जाता है और जबतक उस अन्न या हविष्यके गुणोंका वर्णन नहीं किया जाता, तबतक ही पितरलोग जीमनेवाले ब्राह्मणोंके साथ उस अन्नको भोजन करते हैं। विद्वान् और विनयशील वेदज्ञ ब्राह्मण जब घरपर आता है, तब घरके सब अन्न हर्षसे उछलने लगते हैं कि 'अब हम उत्तम गतिको प्राप्त होंगे।' शौच, व्रत और आचारसे रहित वैदिक ज्ञानसे शून्य मूर्ख ब्राह्मणको जब कोई अन्न दिया जाता है, तब वह अव्यक्त स्वरमें रोता है कि 'मैंने कौन-सा पाप किया था जो ऐसे व्यक्तिके उपयोगमें आया।' जिस ब्राह्मणके पेटमें गया हुआ अन्न वेद-वेदांगोंके अभ्यासद्वारा पचता है वह दाताको और उसकी पिछली दस-दस पीढ़ियोंको भी तार देता है। जो ज्येष्ठ भ्राताके अविवाहित रहते हुए स्वयं विवाह करता और अग्निहोत्रकी दीक्षा लेता है उसे परिवेत्ता जानना चाहिये। उसका बड़ा भाई 'परिवित्ति' कहलाता है। परिवित्ति, परिवेत्ता तथा जिस कन्यासे विवाह करनेके कारण यह 'परिवेत्ता' संज्ञा प्राप्त होती है, वह कन्या, उसका दान करनेवाला पिता तथा वह विवाह करानेवाला पुरोहित—ये पाँचों नरकमें पड़ते हैं। यदि बड़ा भाई नपुंसक हो, परदेश (भारतेतर विलायत आदि)-में रहने लग जाय, गूँगा हो, संन्यास ले या जड़ (अत्यन्त मूर्ख), कुब्ज (कुबड़ा), खर्व (नाटा) अथवा पतित हो जाय तो छोटे भाईके विवाह कर लेनेमें कोई दोष नहीं है। जो संन्यासी हो जानेके बाद पुनः मैथुनका सेवन करता है, वह साठ हजार वर्षोंतक विष्ठाका कीड़ा होता है। जो ब्राह्मण गोरक्षा और वाणिज्य-वृत्तिको अपना ले, कारीगर अथवा शिल्पी हो जाय, किसीकी दासता स्वीकार कर ले अथवा सूदपर रुपया लगावे तो वह शूद्रवत् बर्ताव करनेयोग्य होता है। देवताके धनको बाँटकर लेने, ब्राह्मणके धनका अपहरण करने तथा ब्राह्मणका तिरस्कार करनेसे समूचे कुलका शीघ्र विनाश हो जाता है। जो वाणीसे प्रतिज्ञा करके क्रियाद्वारा पूर्ण नहीं किया गया वह धर्मयुक्त ऋण इहलोक और परलोकमें भी बढ़ता

१- सत्यं शौचमहिंसा च क्षान्तिर्दानं दया दमः। अस्तेयमिन्द्रियाकोचः सर्वेषां धर्मसाधनम्॥ (स्क० पु०, का० पू० ४०। ८६)

२- पानं दुर्जनसंसर्गः पत्या च विरहोऽटनम्। स्वप्नोऽन्यगृहवासश्च नारीणां दूषणानि षट्॥ (स्क० पु०, का० पू० ४०। ८९)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth 279 Skandpuran_Section_28_1_Back

है। श्रेष्ठ द्विज स्नान करके जलद्वारा जो पितरोंका तर्पण करता है, उसीसे पितृयज्ञका सारा फल पा लेता है। जो यज्ञकर्ममें संलग्न हैं, किसी यज्ञ या मन्त्रकी दीक्षा ले चुके हैं अथवा जो संन्यासी, ब्रह्मचारी तथा कर्म करनेवाले ऋत्विज हैं, उनको सूतक नहीं लगता। श्मशान वृक्ष, चिता, यूप और शिवनिर्माल्य भोजन करनेवाले तथा वेद बेचनेवालेका स्पर्श कर लेनेपर वस्त्रसहित जलमें प्रवेश करके स्नान करे। अग्निशाला, गोशाला, देवता और ब्राह्मणके समीप तथा स्वाध्याय, भोजन और जलपानके समय खड़ाऊँ और जूते उतार देने चाहिये। धर्मशास्त्ररूपी रथपर चढ़े हुए और वेदरूपी खड्ग धारण करनेवाले ब्राह्मण खिलवाड़में भी जो कुछ कह दें, वह सब परम धर्म माना गया है। नीलमें रँगा हुआ वस्त्र दूरसे ही त्याग देना चाहिये। नीलके पालन, विक्रय और उसकी वृत्तिसे जीविका चलानेमात्रसे ब्राह्मण अपवित्र हो जाता है और तीन कृच्छ्र व्रत करनेपर उसकी शुद्धि होती है। जो नीलका रँगा हुआ वस्त्र पहनता है, उसके स्नान, दान, तप, होम, स्वाध्याय, पितृतर्पण और पंच महायज्ञ— ये सभी व्यर्थ हो जाते हैं। ब्राह्मण जब अपने अंगोंपर नीलका रँगा वस्त्र धारण कर लेता है, तब वह उस वस्त्रके ताने-बानेमें जितने सूत लगे हैं, उतने नरकोंमें निश्चय ही निवास करता है[१]। एक दिन-रात उपवास करके पंचगव्य पीनेसे उसकी शुद्धि होती है। नीलके रँगे वस्त्र धारण करके जो रसोई बनायी जाती है, उस अन्नको जो खाता है, वह मानो विष्ठा भोजन करता है। वह अन्न देनेवाला यजमान नरकमें जाता है।[२]

बलिवैश्वदेव, होम, देवपूजा, जप तथा ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेदके मन्त्रोंद्वारा संस्कृत होनेसे ब्राह्मणका अन्न अमृत कहा गया है। व्यवहारके अनुरूप, न्यायपूर्वक प्रजाका पालन करते हुए जिस अन्नका उपार्जन किया जाता है, वह क्षत्रियका अन्न दूधके समान है। यदि वैश्य सीता-यज्ञकी विधिके अनुसार एक पहरतक जोते जानेवाले बैलोंसे अन्न उत्पन्न करके देता है तो उसके द्वारा संस्कृत अन्न वास्तवमें अन्न कहा गया है। श्रेष्ठ मनुष्य छोटी-छोटी बातके लिये शपथ न करे। व्यर्थ शपथ करनेवाला मनुष्य इहलोक और परलोकमें भी नष्ट होता है। विद्वान् पुरुष यमराजको यमराज नहीं कहते, अपना मन ही यमराज कहलाता है। जिसने अपने मनको वशमें कर लिया है, उसका यमराज क्या कर लेगा? क्षमावाले पुरुषोंके लिये एक ही दोष है कि संसारके लोग उस क्षमाशील मनुष्यको असमर्थ (दुर्बल) मानते हैं। जो सदा एकान्तमें रहनेवाला, देवताकी आराधनामें तत्पर, सम्पूर्ण इन्द्रियोंकी प्रीतिसे दूर रहनेवाला तथा स्वाध्याय-योगमें मनको लगाये रखनेवाला है और जो कभी भी किसी जीवकी हिंसा नहीं करता, ऐसे पुरुषको निश्चय ही मोक्षकी प्राप्ति होती है[३]। परंतु काशीमें इन गुणोंके बिना भी सहज ही मुक्ति हो जाती है। वहाँ भगवान् विश्वनाथकी सेवा ही योग है, काशीवास ही तपस्या है, उत्तरवाहिनी गंगामें स्नान ही व्रत, दान, यम और नियमका पालन है।

जो न्यायसे धनका उपार्जन करता है, तत्त्वज्ञानमें स्थित है, अतिथियोंको प्यार करनेवाला है तथा श्राद्धकर्ता और सत्यवादी है, वह गृहस्थ

१.स्नानं दानं तपो होमः स्वाध्यायः पितृतर्पणम्। वृथा तस्य महायज्ञा नीलीवासो बिभर्ति यः॥
नीलीरक्तं यदा वस्त्रं विप्रः स्वाङ्गेषु धारयेत्। तन्तुसन्ततिसंख्याके नरके स वसेद् ध्रुवम्॥
(स्क० पु०, का० पू० ४०। १४४-१४५)

२. नीलीरक्तेन वस्त्रेण यदन्नमुपकल्पयेत्। भोक्ता विष्ठासमं भुङ्क्ते दाता च नरकं व्रजेत्॥
(स्क० पु०, का० पू० ४०। १४७)

३. एकान्तशीलस्य सदैव तस्य सर्वेन्द्रियप्रीतिनिवर्तकस्य। स्वाध्याययोगे गतमानसस्य मोक्षो ध्रुवं नित्यमहिंसकस्य॥
(स्क० पु०, का० पू० ४०। १६१)

279 Skandpuran_Section_28_2_Front
In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

होकर भी इस जगत्‌में मुक्त हो जाता है। गृहस्थ पुरुष दीनों, अन्धों, दरिद्रों एवं याचकोंको विशेषरूपसे अन्नदान करके गृह-कर्मोंका अनुष्ठान करता रहे तो वह कल्याणका भागी होता है। इस प्रकार सदाचारका पालन करनेवाले पुरुषोंपर काशीनाथ भगवान् विश्वनाथ प्रसन्न होते हैं और उनके प्रसादसे मोक्षदायिनी काशीपुरीकी प्राप्ति होती है।

वानप्रस्थ और संन्यास आश्रमके धर्मका वर्णन, योगमार्गका निरूपण

स्कन्दजी कहते हैं—मुने! इस प्रकार गृहस्थ आश्रममें धर्मपालनपूर्वक निवास करके जब सिरके बाल पक जायँ और मुँहपर झुर्रियाँ पड़ जायँ तब दूसरे आश्रमसे तीसरे आश्रम (वानप्रस्थ)-में प्रवेश करे एवं ग्रामीण विषय-भोगोंका त्याग करके पत्नीको पुत्रोंके संरक्षणमें सौंपकर या पत्नीको भी साथ ही लेकर वनमें जाय। मृगचर्म एवं पुराने वस्त्र धारण करे, मुनियोंके अन्नसे निर्वाह करते हुए प्रतिदिन अग्निमें आहुति दे, सिरपर जटा धारण करे। मूँछ-दाढ़ी न कटावे, नख और लोम धारण किये रहे तथा नित्य सायंकाल और प्रातःकाल स्नान करे। शाक और मूल-फल आदिसे जीवननिर्वाह करते हुए भी कभी पंचयज्ञोंका त्याग न करे। जल, मूल और फलकी भिक्षासे भिक्षुकों एवं अतिथियोंका सत्कार करे। किसीसे दान न ले। स्वयं ही दूसरोंको दान दे एवं मन और इन्द्रियोंको संयममें रखे। सद्ग्रन्थोंके स्वाध्यायमें तत्पर रहे। वैतानिक अग्निहोत्रका विधिपूर्वक हवन करे। स्वयं लाये हुए मुनिजनोचित अन्नद्वारा देवताओंके लिये यज्ञभाग अर्पित करे। लसौड़ा, लसौहा, सहजन, धरतीका फूल, मांस और मधु—इन सबको कभी काममें न ले। आश्विन मासमें पहलेके संचित किये हुए मुनिअन्न (तिन्नीके चावल)-को भी त्याग दे। गाँवोंमें पैदा होनेवाले फल-मूल तथा हलसे जोतकर पैदा किये गये अन्नका कभी भोजन न करे। दाँतसे ही ओखलीका काम ले। दाँतोंसे ही चबाकर खाय अथवा पत्थरपर कूट ले। संग्रह उतना ही करे जो तत्काल खा-पीकर साफ हो जाय अथवा एक मासके लिये भोजनका संग्रह कर सकता है, अथवा तीन मास, छः मास या अधिक-से-अधिक बारह मासतकके लिये अन्न और फल-मूल आदिका संग्रह करे। प्रतिदिन एक बार केवल रातमें ही भोजन करे अथवा एक दिनका अन्तर देकर भोजन करे अथवा दो दिनका अन्तर देकर तीसरे दिनकी सन्ध्याको भोजन करे या चान्द्रायणव्रत करता रहे अथवा पंद्रह दिन या एक मासपर भोजन किया करे अथवा वानप्रस्थ पुरुष सदा फल-मूलका ही भोजन करते हुए तपस्यासे अपने शरीरको सुखावे और प्रतिदिन देवताओं तथा पितरोंको तृप्त करे। ऐसा सम्भव न हो तो अग्निदेवको अपने आत्मामें ही भावनाद्वारा स्थापित करके अपने लिये कोई भी आश्रम न बनाकर विचरता रहे और प्राणयात्राके लिये वनवासी तपस्वियोंसे भिक्षा माँग ले अथवा गाँवमेंसे ही भिक्षा माँगकर लावे और वनमें ही रहकर प्रतिदिन आठ ग्रास भोजन करे। इस प्रकार वानप्रस्थ-आश्रममें स्थित हुआ ब्राह्मण ब्रह्मलोकमें प्रतिष्ठित होता है। आयुका तीसरा भाग वानप्रस्थ-आश्रममें व्यतीत करके आयुके चौथे भागमें सब प्रकारकी आसक्तियोंका त्याग करके संन्यास ले ले। यज्ञके द्वारा देवऋण, अध्ययनके द्वारा ऋषिऋण और तर्पण आदिके द्वारा पितृऋणको उतारे बिना पुत्रकी उत्पत्ति किये बिना तथा यज्ञोंका अनुष्ठान किये बिना संन्यास नहीं लेना चाहिये। इस लोकमें किसी भी प्राणीको जिससे थोड़ा भी भय न होता हो, उसे सब प्राणी यहाँ सदा

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth 279 Skandpuran_Section_28_2_Back

अभय प्रदान करते हैं। अग्नि और गृहसे रहित हो सदा अकेला ही विचरता रहे। मोक्षकी सिद्धिके लिये दूसरेकी सहायतासे रहित अकेला रहे। केवल अन्नकी भिक्षाके लिये गाँवमें जाना चाहिये। संन्यासी न तो जीनेकी इच्छा करे न तो मरनेकी ही। जैसे सेवक अपने स्वामीके आदेशकी प्रतीक्षा करता है वैसे ही संन्यासी मृत्युकालकी प्रतीक्षा करता है। जो कहीं भी ममता नहीं रखता और सर्वत्र समताके भावसे युक्त रहता है, वृक्षके नीचे ही जो सो लेता है, वही मुमुक्षु इस लोकमें प्रशंसित होता है। प्रतिदिन ध्यान लगाना, बाहर और भीतरसे पवित्र रहना, भिक्षा लाना और नित्य एकान्तमें रहना— ये ही चार कर्म संन्यासीके हैं। इनसे भिन्न कोई पाँचवाँ कर्म नहीं है[१]। वर्षाके चार महीनोंमें संन्यासी कहीं विचरण न करे; क्योंकि उस समय यात्रा करनेसे नूतन बीजके अंकुरों और जीव-जन्तुओंकी हिंसा होती है। संन्यासी जीव-जन्तुओंको बचाते हुए चले, वस्त्रसे छानकर जल पीये, उद्वेगरहित वचन बोले, कभी किसीके साथ क्रोधपूर्ण बर्ताव न करे, अपने आत्माके साथ विचरे, किसीसे कोई अपेक्षा न रखे, अपने लिये कोई घर अथवा आश्रय न बनावे, सदा अध्यात्म-चिन्तनमें तत्पर रहे, केश और नख आदिका संस्कार न करे, मन और इन्द्रियोंको वशमें रखे, भगवाँ रंगका वस्त्र पहने, दण्ड धारण करे, भिक्षाके अन्नका भोजन करे और अपनी प्रसिद्धि न होने दे। तुम्बी, काष्ठ, मिट्टी अथवा बाँसका पात्र संन्यासीके लिये उत्तम है। इनसे भिन्न किसी पाँचवीं वस्तुका पात्र नहीं होना चाहिये। संन्यासीको कभी तैजसपात्र (पीतल, काँसी आदिका बर्तन) नहीं ग्रहण करना चाहिये। 'यति यदि प्रतिदिन कौड़ी-कौड़ीभर भी जहाँ-तहाँसे धन संग्रह करे तो उसे एक सहस्र गौओंके वधका पाप लगता है' यह सनातन श्रुति है। यदि एक दिन भी वह हृदयमें स्नेहभावसे (आसक्तिपूर्वक) किसी स्त्रीको देख ले तो उसे दो करोड़ ब्रह्मकल्पोंतक कुम्भीपाक नरकमें निवास करना पड़ता है, इसमें संशय नहीं[२]। वह केवल एक समय भिक्षाके लिये विचरण करे, उसमें भी विस्तार न करे। जब रसोईघरसे धुँआ निकलना बंद हो जाय, मूसलसे कूटनेकी आवाज न होती हो, चूल्हेकी आग बुझ गयी हो और घरके सब लोग खा-पी चुके हों तब संन्यासी गृहस्थके घर भिक्षाके लिये जाय। भिक्षाके विषयमें उसे सदा इसी नियमका पालन करना चाहिये। जो थोड़ा खाता, एकान्तमें रहता, विषयोंके लिये लोलुप नहीं रहता तथा राग-द्वेषसे मुक्त होता है वही संन्यासी मोक्ष प्राप्त करनेमें समर्थ होता है। जिसके घर अथवा आश्रममें कोई संन्यासी दो घड़ी भी विश्राम कर ले वह कृतार्थ हो जाता है। गृहस्थने मृत्युपर्यन्त जो पापसंचय किया है वह सब पाप संन्यासी एक रात उसके घरमें विश्राम करके ही भस्म कर डालता है।

बुढ़ापा सबको दबा लेता है, जिससे असह्य दुःख होता है। रोगकी पीड़ा भी सहनी पड़ती है। एक दिन इस शरीरको त्याग देना पड़ता है। पुनः गर्भमें आकर जीव अत्यन्त भयंकर क्लेश भोगता है। अनेक प्रकारकी योनियोंमें वह निवास करनेको विवश होता है। उसे कभी प्रियजनोंके वियोगका और कभी अप्रिय जनोंके संयोगका कष्ट प्राप्त होता है। अधर्मसे दुःखकी

१- ध्यानं शौचं तथा भिक्षा नित्यमेकान्तशीलता। यतेश्चत्वारि कर्माणि पञ्चमं नोपपद्यते॥ (स्क० पु०, का० पू० ४१। २०)

२- वराटके संगृहीते यत्र तत्र दिने दिने। गोसहस्रवधं पापं श्रुतिरेषा सनातनी॥
हृदि सस्नेहभावेन चेद्द्रक्ष्येत्स्त्रियमेकदा[१]। कोटिद्वयं ब्रह्मकल्पं कुम्भीपाकी न संशयः॥
(स्क० पु०, का० पू० ४१। २५, २७)

१- 'चेत् रक्षेत्' ऐसा पदच्छेद करनेपर ऐसा अर्थ होगा कि यदि संन्यासी कामभावसे एक बार भी अपने हृदयमें किसी स्त्रीको रखे—उसका चिन्तन करे तो दो करोड़ ब्रह्मकल्पतक उसे कुम्भीपाकमें रहना पड़ता है।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

उत्पत्ति होती है, फिर नरकमें निवास होता है और नाना प्रकारकी नारकीय यातनाएँ भोगनी पड़ती हैं। कर्मदोषके कारण मनुष्योंकी अनेक प्रकारकी गति होती है। यह शरीर अनित्य है और परमात्मा नित्य हैं। इन सब बातोंको देखकर और इसपर भलीभाँति विचार करके, मनुष्य जहाँ कहीं भी जिस आश्रममें भी रहे, मोक्षके लिये प्रयत्न करता रहे। जो बिना पात्रके केवल हाथोंमें ही भिक्षा लेते हैं, वे करपात्री कहलाते हैं। उन्हें अन्य यतियोंकी अपेक्षा प्रतिदिन सौगुना पुण्य होता है। इस प्रकार विद्वान् पुरुष क्रमशः चारों आश्रमोंका सेवन करके द्वन्द्वोंसे रहित एवं असंग होकर ब्रह्मभावको प्राप्त होनेका अधिकारी हो जाता है। खोटी बुद्धिवाले मनुष्योंका वशमें नहीं किया हुआ मन उन्हें बन्धनमें डालनेका कारण होता है और उत्तम बुद्धिवाले पुरुषोंद्वारा वशमें किया हुआ वही मन रोग-शोकसे रहित मोक्षपद दे सकता है। श्रुति, स्मृति, पुराण, विद्या, उपनिषद्, श्लोक, सूत्र, भाष्य तथा अन्य जो कुछ भी वाङ्मय है, उसका तथा वेदोंके अनुवचनका ज्ञान प्राप्त करना और ब्रह्मचर्य, तपस्या, दम (इन्द्रियसंयम), श्रद्धा, उपवास तथा स्वाधीनता आदि साधन—ये सभी आत्मज्ञानके हेतु हैं। समस्त आश्रमवर्तियोंके द्वारा एकमात्र आत्मा ही जाननेयोग्य, श्रवण करनेयोग्य, मनन करनेयोग्य तथा यत्नपूर्वक साक्षात्कार करनेयोग्य है। आत्मज्ञानसे मुक्ति होती है, किंतु वह आत्मज्ञान योगके बिना नहीं होता और योग दीर्घकालतक अभ्यास करनेसे ही सिद्ध होता है। न केवल वनकी शरण लेनेसे, न नाना प्रकारके ग्रन्थोंका चिन्तन करनेसे, न दानसे, न व्रतसे, न तपस्यासे, न यज्ञोंसे, न पद्मासन लगानेसे, न नासिकाके अग्रभागपर दृष्टि जमाये रखनेसे, न शौचसे, न मौनसे और न मन्त्राराधनसे ही योग सिद्ध होता है। उत्साहपूर्वक लगे रहनेसे, निरन्तर अभ्यास करनेसे, दृढ़ निश्चयसे तथा बार-बार उसकी ओरसे अरुचि न होनेसे योगकी सिद्धि होती है, अन्यथा नहीं। जो सदा अपने आत्मामें ही क्रीडा करता है, आत्मामें ही रत रहता और आत्मामें ही पूर्णतः तृप्तिका अनुभव करता है, उसके लिये योगसिद्धि दूर नहीं है। जो इस जगत्में आत्माके सिवा दूसरी किसी वस्तुको नहीं देखता, वह आत्माराम योगीश्वर यहीं परब्रह्मस्वरूप हो जाता है*। आत्मा और मनके संयोगको ही विद्वान् पुरुष 'योग' कहते हैं। किन्हीं-किन्हींके मतमें प्राण और अपान वायुका सम्यक् मिलन ही 'योग' है। अज्ञानियोंकी दृष्टिमें विषय और इन्द्रियोंका संयोग ही योग है। परंतु जिनका चित्त विषयोंमें आसक्त है, उनसे ज्ञान और मोक्ष बहुत दूर हैं; क्योंकि जिसका रोकना अत्यन्त कठिन है, वह मनकी वृत्ति जबतक निवृत्त नहीं होती, तबतक योगकी चर्चा कैसे निकटवर्तिनी हो सकती है। जो अपने मनको वृत्तियोंसे शून्य करके उसे क्षेत्रज्ञ परमात्मामें लगाकर एकीभूत कर देता है और स्वयं मनकी आसक्तिसे मुक्त हो जाता है, वह योगयुक्त कहलाता है। समस्त बहिर्मुख इन्द्रियोंको अन्तर्मुख करके उन्हें मनमें स्थापित करे। फिर इन्द्रियसमुदायसहित मनको क्षेत्रज्ञ आत्मामें लगावे। सब भावविकारोंसे रहित क्षेत्रज्ञको परमानन्दस्वरूप ब्रह्ममें एकीभूत करे। यही ध्यान है और यही योग है। शेष जितनी बातें हैं, सब ग्रन्थकी विस्तारमात्र हैं। जो नित्य योगके अभ्यासमें लगा हुआ है, उसके लिये परब्रह्म परमात्मा स्वसंवेद्य (स्वानुभवैकगम्य) होता है। वह सनातन परब्रह्म सूक्ष्म होनेके कारण वाणीद्वारा अथवा किसी संकेतके द्वारा भी नहीं बताया जा सकता।

आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान

* अत्रात्मव्यतिरेकेण द्वितीयं यो न पश्यति। आत्मारामः स योगीन्द्रो ब्रह्मीभूतो भवेदिह॥ (स्क० पु०, का० पू० ४१। ४७)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

और समाधि—ये योगके छः अंग हैं[१]। साधनके लिये जिससे स्थिरता एवं सुखपूर्वक बैठा जाय, वह आसन है। योगीके लिये सिद्धासन[२] शीघ्र योगसिद्धि देनेवाला है। इसके अभ्याससे शरीर प्रतिदिन दृढतर होता जाता है। योगवेत्ता पुरुष अपने दाहिने पैरको बायीं जाँघपर रखकर बायें पैरको दाहिनी जाँघपर रखे तो उसे पद्मासन कहते हैं। इसे दृढ़तापूर्वक बाँधनेकी कलाको जाननेवाला पुरुष अपने दोनों हाथोंको पीठके पीछेसे लाकर दोनों पैरोंके अँगूठोंको पकड़ ले। इस पद्मासनके अभ्याससे मनुष्यका शरीर सुदृढ़ होता है। अथवा जिस स्वस्तिक आसनसे बैठनेमें साधकको सुख मालूम होता हो, उसीसे बैठकर योगवेत्ता पुरुष योगका अभ्यास करे। जो स्थान सब प्रकारकी बाधाओंसे रहित, सम्पूर्ण इन्द्रियोंको सुख देनेवाला तथा मनको प्रसन्नता देनेवाला हो, जहाँ पुष्पहार एवं धूप आदिकी सुगन्ध छा रही हो, ऐसे स्थानमें बैठकर योगाभ्यास करे। साधक न तो अधिक भोजन करके, न भूखसे पीड़ित रहकर, न मल-मूत्रके वेगको रोककर कष्ट सहते हुए, न राहके थके होनेपर और न चिन्तासे व्याकुल होनेपर ही योगका अभ्यास करे। जितने समयमें एक ह्रस्व अक्षरका उच्चारण होता है, उतने समयको 'एक मात्रा' कहते हैं, ऐसी बारह मात्राओंका प्राणायाम निकृष्ट श्रेणीका माना गया है। इससे दूनी चौबीस मात्राओंका प्राणायाम मध्यम कहा गया है और पहलेसे तीन गुनी अर्थात् छत्तीस मात्राओंका प्राणायाम उत्तम बताया गया है। ये तीनों क्रमशः स्वेद, कम्प और विषाद उत्पन्न करनेवाले हैं। इनमेंसे प्रथम अर्थात् बारह मात्रावाले प्राणायामके द्वारा स्वेद (पसीने)-को जीते, द्वितीय अर्थात् चौबीस मात्रावाले प्राणायामके द्वारा कम्पको जीते और तृतीय—छत्तीस मात्रावाले प्राणायामके द्वारा विषादपर विजय पावे। इससे योगीका प्राणायाम सिद्ध हो जाता है। क्रमशः सेवन करनेसे सिद्ध हुआ प्राण जहाँ योगीकी इच्छा होती है, वहाँ उसे ले जाता है। प्राणवायुको यदि हठपूर्वक रोका जाता है तो वह रोमकूपोंके मार्गसे निकल जाती है, देहको विदीर्ण करती है और कोढ़ आदि रोग पैदा कर देती है। अतः जैसे जंगलके हाथीको क्रमशः विश्वास दिलाकर उसे वशमें किया जाता है, उसी प्रकार प्राणवायुको धीरे-धीरे रोकनेका प्रयत्न करना चाहिये। योगीके द्वारा क्रमयोगसे हृदयमें स्थापित किया हुआ यह प्राण धीरे-धीरे अनुकूल हो जाता है। छत्तीस अंगुलका हंस (प्राणवायु) दक्षिण—वाममार्ग (इडा-पिंगला नामवाली दो नाड़ियों)-से बाहर निकलता है। प्रयाण करनेके कारण उसे 'प्राण' कहते हैं। जब समस्त नाड़ी-चक्र शान्त होकर शुद्ध हो जाता है, तभी योगी पुरुष अपने प्राणोंको रोकनेमें समर्थ होता है। दृढ़तापूर्वक आसनपर बैठकर योगी यथाशक्ति चन्द्रनाड़ी—इडाके मार्गसे (नासिकाके वाम छिद्रद्वारा) प्राणवायुको भीतर भरे। तत्पश्चात् सूर्यमार्ग—पिंगला नाड़ी (नासिकाके दाहिने छिद्र)-से उसे बाहर निकाले। यह पूरक और रेचक नामवाला प्राणायाम कहलाता है। योगी पुरुष कुम्भक नामक प्राणायामके द्वारा चन्द्रबीजसे युक्त झरती हुई सुधाधाराके प्रवाहका ध्यान करते हुए तत्काल सुखका अनुभव करता है। तदनन्तर योगी सूर्यनाड़ी अर्थात् नासिकाके दक्षिण छिद्रके द्वारा प्राणवायुको खींचकर उदरगुफाको भरे और कुछ देरतक प्राणवायुको रोकनेके पश्चात् चन्द्रनाड़ी अर्थात् नासिकाके वाम छिद्रसे वायुको धीरे-धीरे बाहर निकाल दे। उस समय प्रज्वलित अग्निपुंजके समान भगवान् सूर्यका हृदयमें ध्यान करता रहे। इस दक्षिण प्राणायामके द्वारा योगिराज परम कल्याणका भागी होता है। इस प्रकार तीन

१- आसनं प्राणसंरोधः प्रत्याहारश्च धारणा। ध्यानं समाधिरेतानि योगाङ्गानि भवन्ति षट्॥ (स्क० पु०, का० पू० ४१। ५९)

२- मलेन्द्रिय और मूत्रेन्द्रियके बीचमें बायें पैरका तलुआ तथा शिश्नके ऊपर दाहिना पैर और छातीके ऊपर चिबुक (ठोढ़ी) रखकर दोनों भौंहोंके मध्यभागको देखना सिद्धासन कहलाता है।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

महीनेके अभ्यासके वाम, दक्षिण दोनों प्रकारके प्राणायामका सेवन करके जब समस्त नाड़ियोंको सिद्ध कर लिया जाता है, तब उस योगीको 'सिद्धप्राण' कहते हैं। नाड़ीकी शुद्धि होनेसे योगी अपनी इच्छाके अनुसार वायुको धारण करता है। पेटकी अग्निको उद्दीप्त करता है। उसे अनाहत नाद सुनायी पड़ने लगता है अथवा नादतत्त्वका साक्षात्कार होने लगता है और उसका शरीर नीरोग बना रहता है। शरीरमें स्थित वायुका नाम प्राण है। उसे रोकनेको ही आयाम कहते हैं। जब प्राणवायु ब्रह्मरन्ध्रमें पहुँचती है, तब घण्टा आदि वाद्योंका महानाद सुन पड़ता है। फिर योगसिद्धि दूर नहीं रहती। नियमित प्राणायामसे समस्त रोगोंका नाश हो जाता है और उसके अनियमित अभ्याससे सब रोगोंकी उत्पत्ति होती है। प्राणवायुके व्यतिक्रमसे हिचकी, श्वास (दमा), कास (खाँसी), सिरदर्द, कर्णशूल तथा नेत्रपीड़ा आदि बहुतसे दोष प्रकट होते है। अतः थोड़ी-थोड़ी वायुका त्याग करे और थोड़ी-ही-थोड़ी वायुको खींचकर अपने भीतर भरे तथा नियमित वायुको ही रोकनेका प्रयत्न करे। ऐसा करनेसे योगवेत्ता पुरुषको सिद्धि प्राप्त होती है। सब ओर विषयोंमें स्वच्छन्द विचरती हुई इन्द्रियोंको किसी-न-किसी युक्तिसे विषयोंकी ओरसे समेटना 'प्रत्याहार' कहलाता है। जैसे कछुआ अपने अंगोंको सब ओरसे समेट लेता है, उसी प्रकार जो प्रत्याहारकी विधिसे अपनी सब इन्द्रियोंको विषयोंकी ओरसे समेट लेता है, वह पापरहित हो जाता है। नाभिप्रदेशमें सूर्य और तालुस्थानमें चन्द्रमा निवास करते हैं। चन्द्रमा नीचेको मुख करके अमृतकी वर्षा करते हैं और सूर्य ऊपरकी ओर मुँह करके उस अमृतरसको अपना ग्रास बना लेते हैं। अतः ऐसा उपाय करना चाहिये, जिससे वह अमृत प्राप्त हो सके। ऊपर नाभि हो और नीचे तालु हो जाय; ऊपर सूर्य हों और नीचे चन्द्रमा हो जायँ। ऐसे साधनको 'विपरीतकरणी मुद्रा' कहते हैं। यह अभ्याससे ही सिद्ध होती है। प्राणायामकी विधिको जाननेवाला योगी कौवेकी चोंचके समान किये हुए अपने मुखसे शीतल-शीतल प्राणधारक वायुका पान करे तो वह जरा-मृत्युसे रहित हो जाता है। जो अपनी जिह्वाको तालुके छिद्रमें रखकर ऊर्ध्वमुख हो अमृतपान करता है, वह छः मासके भीतर ही जरा-मृत्युसे रहित देवभावको प्राप्त हो जाता है। इसमें तनिक भी संशय नहीं है। जो योगी ऊपरकी ओर जिह्वा किये स्थिरतापूर्वक अमृतपान करता है, वह पंद्रह दिनमें मृत्युको जीत लेता है। जिह्वाके अग्रभागसे उसके मूलभागमें स्थित प्रकाशमान छिद्रको दबाकर जो अमृतमयी देवीका ध्यान करता है, वह छः महीनेमें कवि हो जाता है। जिस योगीका शरीर अमृतसे परिपूर्ण हो जाता है, वह दो ही तीन वर्षोंमें ऊर्ध्वरेता हो जाता है— उसके वीर्यकी गति ऊपरकी ओर हो जाती है, जो अणिमा आदि आठों सिद्धियोंके उदयकी सूचक है। जिस योगीका शरीर सदा अमृतकलासे परिपूर्ण रहता है, उसे यदि तक्षकनाग भी डँस ले तो उसपर उसके विषका प्रभाव नहीं पड़ता। आसन, प्राणायाम और प्रत्याहारसे सम्पन्न होकर धारणाका अभ्यास करे। मनको स्थिर करके अपने हृदयमें पृथक्-पृथक् पंचमहाभूतोंको जो धारण करना है, उसीको 'धारणा' कहते हैं।

'**ध्यै चिन्तायाम्**' इस धातुसूत्रके अनुसार '**ध्यै**' धातुका प्रयोग चिन्ता अर्थमें होता है। तत्त्वोंमें चित्तकी एकाग्रताको ही 'चिन्ता' कहते हैं। यह चिन्ता ही ध्यान है। ध्यान दो प्रकारका बताया गया है— सगुण और निर्गुण। रूप-रंग आदिके भेदसहित जो चिन्तन किया जाता है, वह सगुण ध्यान है और केवल तत्त्वका विचार निर्गुण ध्यान माना गया है। मन्त्रसहित ध्यानको सगुण और मन्त्ररहित ध्यानको निर्गुण समझना चाहिये। सुखद आसनपर बैठकर भीतर चित्तको और बाहर नेत्रको स्थिर करके शरीरको समभावसे रखना— यह ध्यानकी मुद्रा है, जो अत्यन्त सिद्धि

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

देनेवाली है। अश्वमेध और राजसूय यज्ञसे भी वह पुण्य नहीं मिलता, जिसे स्थिर आसनवाला योगी पुरुष एक बार ध्यान करके पा लेता है। जबतक श्रवण आदि इन्द्रियोंमें शब्द आदि तन्मात्राओंकी स्थिति बनी रहती है—उनकी स्फूर्ति होती रहती है, तभीतक ध्यानकी अवस्था मानी गयी है। इससे आगे समाधि है। पाँच दण्डतक चित्तका एकाग्र होना धारणा है, साठ दण्डतक चित्त एकाग्र हो तो उसे ध्यान कहते हैं और यदि बारह दिनोंतक मन ध्येय वस्तुमें एकाग्र रहा तो उसे समाधि कहते हैं। जैसे जल और नमकका मेल होनेपर उनमें एकता हो जाती है, उसी प्रकार आत्मा और मनकी एकता समाधि कहलाती है। जब प्राणजनित चंचलता क्षीण हो जाती है और मन ध्येय वस्तुमें विलीन हो जाता है, उस समय जो समरसताका अनुभव होता है, उसीको यहाँ समाधि कहते हैं। जीवात्मा और परमात्माकी जो समता होती है और जहाँ सब प्रकारके संकल्प-विकल्प नष्ट हो जाते हैं उस स्थितिका नाम समाधि है। समाधिमें स्थित हुआ योगीश्वर न अपनेको जानता है न दूसरेको, उसे न सर्दीका अनुभव होता है, न गरमीका तथा उसे न तो सांसारिक सुखका बोध होता है और न दुःखका ही। समाधियुक्त योगीको न तो काल अपना ग्रास बना सकता है, न वह कर्मोंसे लिप्त होता है और न अस्त्र-शस्त्रोंसे उसके शरीरको खण्डित ही किया जा सकता है। जिसका आहार-विहार नियमित है, जिसकी कर्मविषयक चेष्टा भी नियमित है और जिसका सोना-जागना भी नियमित रूपसे ही होता है, वह योगी तत्त्वका साक्षात्कार करता है*। ब्रह्मवेत्ता पुरुष विज्ञानमय आनन्दस्वरूप ब्रह्मको ही तत्त्व मानते हैं। जिसका कोई दृष्टान्त नहीं है तथा जो मन और वाणीका अगोचर है उस आलम्बशून्य, निर्भय एवं नीरोग परब्रह्म परमात्मामें योगी पुरुष षडंगयोगकी विधिसे लीन होता है। जैसे घीमें छोड़ा हुआ घी घृत ही होता है और दूधमें मिलाया हुआ दूध दूध ही होता है, उसी प्रकार योगी ब्रह्ममें तन्मयताको प्राप्त होता है। योगी विभूति आदि जलहीन वस्तुओंसे शरीर-मर्दन करे। गरम जल और नमकको त्याग दे और सदा दूधका ही आहार करे। ब्रह्मचर्यका पालन करे, क्रोध और लोभको जीते तथा किसीसे भी द्वेष न करे। इस प्रकार एक वर्षतक निरन्तर अभ्यास करनेसे मनुष्य योगी कहलाता है। जो महामुद्रा, खेचरी मुद्रा, उड्डीयान बन्ध, जलन्धर बन्ध और मूल बन्धको जानता है, वह योगी योगसिद्धिका भागी होता है। पूरक, कुम्भक और रेचक नामक प्राणायामसे नाड़ीसमूहको शुद्ध करना और चन्द्र तथा सूर्य नाड़ी—इडा और पिंगलाको जोड़ना तथा विकारके हेतुभूत रसोंको भलीभाँति सुखाना—इसको 'महामुद्रा' कहते हैं। बायें पैरसे जननेन्द्रियको दबाकर अपनी ठोढ़ीको वक्षःस्थलपर रखे और दोनों हाथोंसे फैले हुए दाहिने पैरको देरतक पकड़े रहे। फिर प्राणवायुसे अपने उदरको पूर्ण करके धीरे-धीरे उसे देरतक बाहर निकाले। यह महामुद्रा बतायी गयी है जो बड़े-बड़े पापोंकी राशिका विनाश करनेवाली है। इस प्रकार इडा नाड़ीद्वारा प्राणायामका अभ्यास करके फिर पिंगला नाड़ीमें उसका अभ्यास करे। जब पूरक आदिकी संख्या समान हो जाय तब मुद्राका विसर्जन करे। इसका अभ्यास हो जानेपर योगीके लिये पथ्य और अपथ्यका विचार नहीं रह जाता है। उसके लिये सभी विकारोत्पादक रस नीरस हो जाते हैं। भयानक विष भी पीये हुए अमृतकी भाँति पच जाता है। जो महामुद्राका अभ्यास कर लेता है, उसके क्षय, कोढ़, बवासीर, वायुगोला और अजीर्ण आदि रोग नष्ट हो जाते हैं। यदि उलटकर गयी हुई जिह्वा कपालके छिद्रमें प्रविष्ट हो और दृष्टि दोनों भौंहोंके बीचमें स्थिर रहे तो खेचरी मुद्रा होती है। जो खेचरी मुद्राको

* युक्ताहारविहारश्च युक्तचेष्टो हि कर्मसु। युक्तनिद्रावबोधश्च योगी तत्त्वं प्रपश्यति॥ (स्क० पु०, का० पू० ४१। १३०)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

जानता है, वह बाणसमूहसे पीड़ित नहीं होता और न कर्मोंसे ही लिप्त होता है। उसको काल भी बाधा नहीं दे सकता। इसमें चित्त आकाशमें विचरता है और जिह्वा भी आकाशगत होकर चरती है। इससे इस मुद्राका नाम खेचरी है। सिद्ध पुरुषोंने इसका सेवन किया है। शरीरमें जबतक विन्दु स्थित है, तबतक मृत्युका भय कहाँसे होगा और जबतक खेचरी मुद्रा बँधी हुई है, तबतक विन्दु बाहर नहीं जाता।

महापक्षी (महाप्राण) दिन-रात उड़ता रहता है। उसीको इस मुद्राद्वारा बाँधा जाता है। इसलिये इसका नाम उड्डीयान बन्ध है। नाभिके ऊपर और उदरमें पश्चिमतान* धारण करे। यह उड्डीयान बन्ध कहलाता है। इसके सिद्ध हो जानेपर मनुष्य मृत्युका भी भय त्याग देता है। जो नाड़ियोंके समूहको, जिसके द्वारा कि शरीरान्तर्गत छिद्रोंका जल नीचेकी ओर प्रवाहित होता है, बाँधता है, वह जालन्धर बन्ध कहलाता है, जो कण्ठमें होनेवाले दुःखसमुदायका नाश करनेवाला है। कण्ठको संकुचित करके किये जानेवाले इस जालन्धर बन्धके सिद्ध होनेपर ललाट और तालुवर्ती चन्द्रमण्डलमें स्थित अमृत उदरकी अग्निमें नहीं गिरता और वायुका भी प्रकोप नहीं होता। दोनों एड़ियोंसे लिंगको दबाकर और अपानवायुको ऊपरकी ओर खींचकर गुदाको संकुचित करे। इसे मूल बन्ध कहते हैं। मूल बन्धका सतत अभ्यास करनेसे अपान और प्राणवायुकी एकता होती है, मल-मूत्रका नाश होता है और वृद्ध पुरुष भी तरुण हो जाता है। प्राण और अपानवायुके वशमें होकर चंचल हुआ जीव इडा और पिंगला नाड़ीके द्वारा नीचे-ऊपर दौड़ता रहता है। वह कहीं स्थिर नहीं हो पाता। जैसे रस्सीमें बँधा हुआ पक्षी कहीं उड़कर जाय तो भी उसे पुनः अपने समीप खींच लिया जाता है, उसी प्रकार तीनों गुणोंमें बँधा हुआ जीव प्राणायामके द्वारा खींचा जाता है। अपान प्राणको और प्राण अपानको अपनी ओर खींचता है। ये दोनों ऊपर स्थित हैं। योगवेत्ता पुरुष इन्हें परस्पर संयुक्त कर देता है। श्वास हकारकी ध्वनिके साथ बाहर निकलता है और सकारकी ध्वनिके साथ पुनः भीतर प्रवेश करता है। इस प्रकार जीव सदा 'हंस-हंस' इस मन्त्रका जप करता रहता है। दिन-रातमें इक्कीस हजार छः सौ बार श्वासका आना-जाना होता है। अतः जीव उतनी ही बार 'हंस' मन्त्रका जप नित्यप्रति किया करता है। यह अजपा नामवाली गायत्री है जो योगियोंको मोक्ष देनेवाली है। इसके संकल्पमात्रसे मनुष्य समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है।

योगीके योगमार्गमें अनेक प्रकारके विघ्न आते हैं जो उसकी साधनामें हानि पहुँचानेवाले हैं। उसे दूरकी बातें सुनायी देती हैं, दूरका दृश्य अपने आगे प्रत्यक्ष दिखायी देता है, आधे पलमें सैकड़ों योजन जानेकी शक्ति आ जाती है, बिना पढ़े ही अथवा बिना स्मरण किये ही सब शास्त्र कण्ठस्थ हो जाते हैं, धारणाशक्ति बहुत बढ़ जाती है और महान् भार भी हलका प्रतीत होता है। वह क्षणमें दुबला, क्षणमें मोटा, क्षणमें छोटा और क्षणमें बड़ा हो जाता है। वह योगी दूसरेके शरीरमें प्रवेश कर जाता है, पशु-पक्षियोंकी बातें समझ लेता है, अपने शरीरमें दिव्य गन्ध धारण करता है और मुखसे दिव्य वचन बोलने लगता है। दिव्यलोककी कन्याएँ उससे प्रार्थना करती हैं और वह दिव्य देह धारण कर लेता है। ये सब विघ्न निकटवर्तिनी योगसिद्धिके सूचक हैं। यदि इन विघ्नोंसे योगीका मन चंचल नहीं हुआ तो उससे आगेकी भूमिकामें पहुँचकर वह ब्रह्मादि देवताओंके लिये भी दुर्लभ परम पदको प्राप्त कर लेता है। अगस्त्यजी!

* दोनों हाथोंके अग्रभागसे जुड़े हुए दोनों पैरोंके तलुओंको पकड़कर पैरोंको आगेकी ओर फैलावे। उस समय उन दोनों पैरोंका मध्यभाग (घुटनेके समीप) जैसा दिखायी देता है, वैसी ही आकृति पेटमें भी बन जाय तो उसे पश्चिमतान धारण करना कहते हैं। इस क्रियामें प्राण सुषुम्ना नाड़ीमें बद्ध हो जाता है और पेट भीतरकी ओर दबकर पीठमें सटता है।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

जिसे पाकर मनुष्य पुनः इस संसारमें नहीं लौटता और जिसकी प्राप्ति होनेपर शोकसे सदाके लिये छुटकारा मिल जाता है, उस पदको योगी षडंगयोगकी साधनासे पा लेता है, परंतु इन्द्रियोंकी वृत्ति चंचल होनेसे और कलियुगमें पापके बढ़नेसे थोड़ी आयुवाले मनुष्योंको यहाँ योगका महान् अभ्युदय कहाँ प्राप्त हो सकता है? इसीलिये करुणासागर भगवान् विश्वनाथ जीवोंको महोदय पद प्रदान करनेके लिये काशीपुरीमें विराजमान हैं। जीव काशीमें जिस प्रकार सुखसे कैवल्य प्राप्त कर लेते हैं, उस प्रकार अन्य किसी स्थानमें योग, युक्ति आदि उपायोंके द्वारा भी नहीं पा सकते हैं, क्योंकि काशीपुरीसे अपने शरीरका संयोग करा देना ही उत्तम योग बताया गया है। इस संसारमें दूसरे किसी योगके द्वारा मनुष्यकी शीघ्र मुक्ति नहीं होती है।

मृत्युसूचक चिह्नोंका वर्णन

अगस्त्यजीने पूछा—स्कन्दजी! मृत्यु निकट आ गयी है, यह बात कैसे जानी जाय?

कार्तिकेयजीने कहा—मुने! मृत्यु निकट आनेपर जो चिह्न प्रकट होते हैं, उन्हें सुनो। जिसकी दाहिनी नासिकामें एक दिन-रात अखण्डरूपसे वायु चलती रहती है, उसकी आयु तीन वर्षमें समाप्त हो जाती है और जिसका दक्षिण श्वास लगातार दो दिन या तीन दिनतक निरन्तर चलता रहता है, उसके जीवनकी अवधि इस संसारमें केवल एक वर्षकी बतायी जाती है। यदि दोनों नासिकाछिद्र दस दिनतक निरन्तर ऊर्ध्व श्वासके साथ चलते रहें तो मनुष्य तीन दिनतक जीवित रह सकता है। यदि श्वासवायु नासिकाके दोनों छिद्रोंको छोड़कर मुखसे बहने लगे तो दो दिनके पहले ही उसका यमलोकके मार्गपर प्रस्थान हो जायगा, यह सूचित कर देना चाहिये। जिस कालमें मृत्यु अकस्मात् निकट आ जाती है, मृत्युके भयसे डरनेवाले पुरुषको उस कालका प्रयत्नपूर्वक विचार करना चाहिये। जब सूर्य सप्तम राशिपर हों और चन्द्रमा जन्मनक्षत्रपर आ गये हों, तब यदि दाहिनी नासिकासे श्वास चलने लगे तो उस समय सूर्यदेवतासे अधिष्ठित काल प्राप्त होता है। उसपर विशेष लक्ष्य रखना चाहिये। जो अकस्मात् किसी काले-पीले पुरुषको देखता है, फिर उसी क्षण उसके रूपको अदृश्य पाता है, वह केवल दो वर्ष और जीवित रह सकता है। जिसके मल-मूत्र और वीर्य अथवा मल-मूत्र एवं छींक एक साथ ही गिरते हैं, उसकी आयु केवल एक वर्ष और शेष है, ऐसा मानना चाहिये। जो इन्द्रनीलमणिके समान रंगवाले नागोंके झुंडको आकाशमें इधर-उधर फैला हुआ देखता है, वह छः महीने भी जीवित नहीं रहता। जिसकी मृत्यु निकट है, वह अरुन्धती और ध्रुवको भी नहीं देख पाता। जो अकस्मात् नीले-पीले आदि रंगोंको तथा कड़ुवे, खट्टे आदि रसोंको विपरीतरूपमें देखने और अनुभव करने लगता है, वह छः महीनेमें मृत्युका भागी होता है। वीर्य, नख और नेत्रोंका कोना—ये सब यदि नीले या काले रंगके हो जायँ तो मनुष्य छठे मासमें यमपुरीकी यात्रा करता है। भलीभाँति स्नान करनेके बाद भी जिनका हृदय शीघ्र ही सूख जाता है तथा हाथ और पैर भी जल्दी ही सूख जाते हैं, उसका जीवन केवल तीन मासतक चलता है। जो मनुष्य जल, घी और दर्पण आदिमें अपने प्रतिबिम्बका मस्तक नहीं देखता, वह एक मासतक जीवित रहता है। बुद्धि भ्रष्ट हो जाय, वाणी स्पष्ट न निकले, रातमें इन्द्रधनुषका दर्शन हो, दो चन्द्रमा और दो सूर्य दिखायी दें तो ये सब मृत्युसूचक चिह्न हैं। इन सब चिह्नोंमेंसे यदि एक चिह्नको भी मनुष्य देखता है तो मृत्यु केवल एक मासतक उसकी प्रतीक्षा करती है। हाथसे कान बंद कर लेनेपर जब किसी प्रकारकी आवाज न सुनायी

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

दे तथा मोटा शरीर थोड़े ही दिनोंमें दुबला-पतला और दुबला-पतला शरीर मोटा हो जाय तो एक मासमें मृत्यु हो जाती है। जिसे स्वप्नमें भूत, प्रेत, पिशाच, असुर, कौए, कुत्ते, गीध, सियार, गधे और सूअर इधर-उधर ले जाते और खाते हैं, वह वर्षके अन्तमें प्राण त्यागकर यमराजका दर्शन करता है। जो स्वप्नकालमें गन्ध, पुष्प और लाल वस्त्रोंसे अपने शरीरको विभूषित देखता है, वह उस दिनसे केवल आठ मासतक जीवित रहता है। जो सपनेमें धूलकी राशि, विमौट (दीमकका घर) अथवा यूपदण्डपर चढ़ता है, वह छठे महीनेमें मृत्युको प्राप्त होता है। जो स्वप्नमें अपनेको तेल लगाये, मूड़ मुड़ाये और गदहेपर चढ़े दक्षिण दिशाकी ओर ले जाये जाते हुए देखता है अथवा अपने पूर्वजोंको इस रूपमें देखता है, उसकी मृत्यु छः महीनेमें हो जाती है। जो मनुष्य स्वप्नमें अपने मस्तक या शरीरपर तृण और सूखे काठ देखता है, वह छठे मासमें जीवित नहीं रहता। जो स्वप्नमें लोहेका डंडा और काला वस्त्र धारण करनेवाले किसी काले रंगके पुरुषको अपने आगे खड़ा देखता है, वह तीन माससे अधिक नहीं जीवित रहता। स्वप्नमें काले रंगकी कुमारी कन्या जिस पुरुषको अपने बाहुपाशमें कस ले, वह एक ही महीनेमें यमपुरीका दर्शन करेगा। जो मनुष्य स्वप्नमें वानरकी सवारीपर चढ़कर पूर्व दिशाकी ओर जाता है, वह पाँच ही दिनमें संयमनीपुरीको देखता है। यदि कृपण मनुष्य सहसा उदार हो ज़ाय या उदार मनुष्य सहसा कृपण हो जाय, इस प्रकार यदि प्रकृतिमें सहसा विकार आ जाय तो वह मनुष्य शीघ्र मृत्युको प्राप्त होता है। ये तथा और भी बहुतसे मृत्युसूचक चिह्न हैं, जिन्हें जानकर मनुष्य योगका अभ्यास करे अथवा काशीपुरीकी शरण ले।

मुने! मैं गर्भवासको रोकनेवाले भगवान् काशीपति शिवकी शरण लेनेके सिवा दूसरा कोई ऐसा उपाय नहीं जानता जो कालको भी वंचित करनेमें समर्थ हो। जिसने भगवान् विश्वनाथके निवासस्थान काशीपुरीको प्राप्त किया, उत्तरवाहिनी गंगाका जल पी लिया और श्रीविश्वेश्वर लिंगका स्पर्श कर लिया, ऐसा कौन पुरुष वन्दनीय नहीं होता। काल कुपित होकर काशीनिवासी मनुष्योंका क्या बिगाड़ लेगा। जबतक बुढ़ापेका आक्रमण नहीं होता और जबतक इन्द्रियाँ शिथिल नहीं हो जातीं, तभीतक बुद्धिमान् पुरुष समस्त तुच्छ प्रपंचका त्याग करके काशीपुरीकी शरण ले। अगस्त्यजी! मृत्युसूचक दूसरे चिह्न तो दूर रहे, सबसे पहला लक्षण तो बुढ़ापा ही है, परंतु आश्चर्य है कि उसके आनेपर भी लोगोंको भय नहीं होता। वृद्धावस्थाने जिसका आलिंगन कर लिया है, उस मनुष्यको भाई-बन्धु नहीं मानते। उसके पुत्र भी उसकी आज्ञाका पालन नहीं करते और पत्नी भी उससे प्रेम करना छोड़ देती है। काशीमें निवास करनेसे जिस प्रकार कालको शीघ्रतापूर्वक जीत लिया जाता है, उस प्रकार उस कालको तपस्या और योगकी युक्तियोंद्वारा नहीं जीता जा सकता।

महाराज दिवोदासके धर्मपूर्ण राज्यका वर्णन

अगस्त्यजीने पूछा—भगवन्! भगवान् शंकरने राजा दिवोदाससे किस प्रकार काशीपुरीका परित्याग करवाया?

कार्तिकेयजी बोले—गिरिराज मन्दरकी तपस्यासे सन्तुष्ट हुए भगवान् शिव ब्रह्माजीके वचनोंके गौरवसे मन्दराचलको चले गये। उनके चले जानेपर उन्हींके साथ सम्पूर्ण देवता भी वहीं चले गये। भगवान् विष्णु भी भूमण्डलके वैष्णव तीर्थोंका परित्याग करके जहाँ देवाधिदेव उमानाथ भगवान् शिव विराजमान थे उसी मन्दराचलपर चले गये। पृथ्वीसे देवसमुदायके चले जानेपर प्रतापी राजा दिवोदासने यहाँ निर्द्वन्द्व राज्य किया।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

उन्होंने काशीपुरीमें सुदृढ़ राजधानी बनाकर धर्मपूर्वक प्रजाका पालन करते हुए सबको उन्नतिशील बनाया। हाथियोंसे भी अधिक बलवान् महाराज दिवोदासका अपराध कभी नागलोग भी नहीं करते थे। दानव भी मानवकी आकृति धारण करके उनकी सेवा करते थे। गुह्यक लोग सब ओर मनुष्योंमें राजाके गुप्तचर बनकर रहते थे। उनके सभाभवनके आँगनमें बैठे हुए विद्वानों एवं मन्त्रियोंको किसीने कभी शास्त्रोंद्वारा पराजित नहीं किया तथा रणांगणमें डटे हुए उनके योद्धाओंको कभी किसीने अस्त्र-शस्त्रोंद्वारा परास्त नहीं किया। उनके राज्यमें कभी ऐसे लोग नहीं देखे गये, जो पदभ्रष्ट तथा दूसरोंके द्वेषभाजन हों। उस समय सब प्रजा अपने-अपने पदपर प्रतिष्ठित एवं सुखी थी। राजा दिवोदासके राज्यमें सभी गाँव ईति[१]-भीतिसे रहित थे। कोई गाँव ऐसा नहीं था, जिसकी रक्षाके लिये राजकर्मचारी उपस्थित न हों। घर-घरमें लोग कुबेरके समान धन दान करनेवाले थे।

इस प्रकार काशीमें राज्य करते हुए दिवोदासके अस्सी हजार वर्ष एक दिनके समान व्यतीत हो गये। अपने औरस पुत्रोंकी भाँति प्रजाका पालन करते रहनेवाले राजा रिपुंजय (दिवोदास)-के द्वारा थोड़ेसे भी अधर्मका संग्रह नहीं हुआ। वे राजनीति-सम्बन्धी छः गुणोंके[२] ज्ञाता थे। उनका चित्त अपनी त्रिविध[३] शक्तियोंसे सदा उत्साहित रहता था। वे नीतिनिपुण पुरुषोंके समस्त उपायोंका ज्ञान रखनेवाले थे। इसलिये उनके छिद्रों (दोषों)-को देवता भी नहीं जानते थे। दिवोदासके राष्ट्रमण्डलमें सभी पुरुष एकपत्नी-व्रती थे। स्त्रियोंमें कोई भी ऐसी नहीं थी जो पतिव्रता न हो। एक भी ब्राह्मण ऐसा नहीं था जिसने वेद-शास्त्रोंका अध्ययन न किया हो। कोई भी क्षत्रिय ऐसा न था जो शूरवीर न हो। एक भी वैश्य ऐसा नहीं दिखायी देता था जो अर्थोपार्जनके कर्ममें कुशल न हो। शूद्र अनन्य भावसे द्विजातियोंकी सेवामें लगे रहते थे। उनके राज्यमें अखण्ड ब्रह्मचर्यव्रतका पालन करनेवाले ब्रह्मचारी थे, जो सदा गुरुकुलके अधीन रहकर वेदविद्याके अध्ययनमें तत्पर थे। गृहस्थ लोग अतिथिसत्काररूपी धर्ममें कुशल, धर्मशास्त्रोंके मर्मज्ञ तथा सर्वदा शुभ आचरणोंमें संलग्न रहनेवाले थे। तीसरे आश्रमको स्वीकार करनेवाले वानप्रस्थी वनमें उपलब्ध होनेवाली जीविकाके प्रति ही आदर रखते थे। ग्रामीण वार्ताओंके प्रति उनके मनमें कोई उत्सुकता न थी और वे वैदिकमार्गमें चलनेवाले थे। उनके राज्यमें रहनेवाले संन्यासी सब प्रकारकी आसक्तियोंसे रहित, जीवन्मुक्त, संग्रहशून्य, मन, वाणी और कर्मरूपी दण्डसे युक्त तथा सर्वथा निःस्पृह थे। दूसरे अनुलोम[४] और विलोम[५] कर्मसे उत्पन्न होनेवाले मनुष्योंने भी अपनी पूर्वपरम्परासे प्रचलित धर्ममार्गका किंचिन्मात्र भी परित्याग नहीं किया था। राजा दिवोदासके राज्यमें कोई भी सन्तानहीन, निर्धन, वृद्धोंकी सेवा न करनेवाला तथा अकाल

---

१. अतिवृष्टि, अनावृष्टि, चूहोंका उपद्रव, टिड्डी गिरना, तोते आदि पक्षियोंद्वारा खेतीको हानि पहुँचना और अपने देशपर किसी शत्रु राजाका आक्रमण होना—ये छः प्रकारकी ईतियाँ हैं।

२. सन्धि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधीभाव और समाश्रय—ये छः गुण हैं। इनमें अवसर और आवश्यकताके अनुसार शत्रुसे मेल करना या रखना सन्धि, उससे लड़ाई छेड़ना विग्रह, स्वयं आक्रमण करना यान, योग्य समयकी प्रतीक्षामें बैठे रहना आसन, दुरंगी नीति बर्तना द्वैधीभाव और अपनेसे बलवान् राजाकी शरण लेना समाश्रय कहलाता है।

३. प्रभुशक्ति, उत्साहशक्ति और मन्त्रशक्ति—ये तीन प्रकारकी शक्तियाँ हैं। कोष और दण्ड आदिके सम्बन्धकी शक्ति प्रभु-शक्ति, सन्धि-विग्रह आदिके सम्बन्धकी शक्ति मन्त्रशक्ति और पराक्रम प्रकट करने तथा विजय प्राप्त करनेकी शक्ति उत्साह-शक्ति कहलाती है।

४. उच्च वर्णके पुरुष तथा नीच वर्णकी स्त्रीसे उत्पन्न हुआ मनुष्य अनुलोम कहा जाता है।

५. नीच वर्णके पुरुष और उच्च वर्णकी स्त्रीसे उत्पन्न हुआ मनुष्य विलोम कहा जाता है।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

मृत्युसे मरनेवाला नहीं था। चंचल, वाचाल, वंचक, हिंसक, पाखण्डी, भाँड़, रँडुवे और मदिरा बेचनेवाले भी नहीं थे। सर्वत्र मन्त्रोंका घोष सुनायी देता था। पद-पदपर शास्त्रचर्चा सुनायी देती थी। सब ओर शुभ वार्तालाप होते और आनन्दसे मंगलगीत गाये जाते थे। मांसभक्षी, ऋण लेनेवाले और चोर भी उनके राज्यमें नहीं थे। पुत्र पिताके चरणोंकी पूजा, देवाराधना, उपवास, व्रत, तीर्थ और देवोपासनाको परम धर्म समझकर करते थे। नारियाँ अपने पतिके चरणोंकी पूजा, उनके वचनोंको सुनना और स्वामीकी आज्ञाका पालन करना अपना श्रेष्ठ धर्म समझती थीं। सब लोग अपने बड़े भाईकी सदा पूजा करते थे। सेवक प्रसन्नतापूर्वक अपने स्वामीके चरणकमलोंकी पूजा करते थे। छोटी जातिके लोग ऊँची जातिके लोगोंके गुण और गौरवकी प्रशंसा करते थे। काशीपुरीके रहनेवाले सब मनुष्य तीनों समय वहाँके देवताओंकी बार-बार सेवा-पूजा करते थे। सब विद्वान् सब स्थानोंपर अपनी मनोवांछित वस्तु पाकर सम्मानित होते थे। विद्वान् लोग तपस्वी महात्माओंकी, तपस्वी महात्मा जितेन्द्रिय पुरुषोंकी, जितेन्द्रिय महापुरुष ज्ञानियोंकी और ज्ञानीलोग शिवयोगियोंकी पूजा करते थे। ब्राह्मणोंके मुखरूपी अग्निमें दिन-रात विधिपूर्वक उत्तम रूपसे तैयार की हुई मन्त्रपूत एवं बहुमूल्य हविका हवन किया जाता था। दिवोदासके राज्यमें जहाँ-तहाँ सब ओर पग-पगपर शुद्ध द्रव्यराशिके द्वारा बावली, कुआँ और पोखरा खुदवानेवाले तथा बगीचे लगानेवाले धर्मात्मा पुरुष बहुत बड़ी संख्यामें थे। वहाँ सब जातिके लोग अनिन्द्य (उत्तम) सेवाकार्यसे सम्पन्न हो हृष्ट-पुष्ट दिखायी देते थे। इस प्रकार सर्वत्र शुद्ध एवं पवित्र बर्ताव करनेवाले उस भूपालके छिद्र ढूँढ़नेके लिये देवताओंने बहुत चेष्टा की, किंतु उन्हें थोड़ा-सा भी छिद्र नहीं प्राप्त हो सका।

भगवान् शिवके आदेशसे सूर्यका काशीमें गमन और निवास तथा लोलार्कतीर्थका माहात्म्य

स्कन्दजी कहते हैं—अगस्त्य! इन्द्रादि देवताओंने दिवोदासके राज्य-शासनको असफल बनानेके लिये अनेक प्रकारके विघ्न उपस्थित किये, किंतु धर्मात्मा राजा दिवोदासने अपने तपोबलसे उन सब विघ्नोंपर विजय पायी। तदनन्तर मन्दराचलसे महादेवजीने चौंसठ योगिनियोंको राजाका छिद्र देखनेके लिये काशीमें भेजा। वे योगिनियाँ बारह महीनोंतक काशीमें रहकर निरन्तर चेष्टा करते रहनेपर भी राजाका कोई छिद्र (दोष) न पा सकीं। अतएव उनके ऊपर अपना कोई प्रभाव न डाल सकीं। जब वे लौटकर वापस नहीं गयीं, तब भगवान् शिवने सूर्यदेवको बुलाकर कहा—'सप्ताश्ववाहन! तुम उस मंगलमयी काशीपुरीको शीघ्रतापूर्वक जाओ जहाँ धर्मात्मा राजा दिवोदास विद्यमान हैं। राजाके धर्मविरोधसे जिस प्रकार वह क्षेत्र उजाड़ हो जाय, वैसा करो। परंतु उस राजाका अनादर न करना, क्योंकि धर्मके मार्गमें लगे हुए सत्पुरुषका जो अपमान किया जाता है वह अपने ही ऊपर पड़ता है और वैसा करनेसे महान् पाप भी होता है। यदि तुम्हारे बुद्धिविकाससे राजा धर्मसे च्युत हो जायँ, तब अपनी दुःसह किरणोंसे तुम्हें उस नगरको उजाड़ देना चाहिये। राजा दिवोदासमें काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या और अहंकारका सर्वथा अभाव है, इसलिये उन्हें काल भी नहीं जीत सकता। सूर्य! जबतक धर्ममें स्थिर बुद्धि है और धर्ममें मन स्थिरतापूर्वक लगा हुआ है, तबतक विपत्तिमें भी मनुष्योंके मार्गमें विघ्नका उदय कैसे हो सकता है। दिवाकर! इस संसारमें जितने जीव हैं उन सबकी चेष्टाओंको तुम जानते

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

हो, इसीलिये लोकचक्षु कहलाते हो। मेरे बताये हुए कार्यकी सिद्धिके लिये जाओ।'

भगवान् शिवकी आज्ञा शिरोधार्य करके सूर्यदेव काशीपुरीमें गये। वहाँ बाहर-भीतर विचरते हुए उन्होंने राजामें थोड़ा-सा भी धर्मका व्यतिक्रम नहीं देखा। वे अनेक रूप धारण करके एक वर्षतक काशीमें रहे। वे कभी अतिथि बनकर राजाके पास जाते और उनसे कुछ दुर्लभ वस्तु माँग बैठते थे, परंतु राजा दिवोदासके राज्यमें उन्हें कोई वस्तु दुर्लभ नहीं दिखायी दी। सूर्य कभी याचक बनते, कभी बहुत बड़े दानी होकर जाते, कभी दीनताको प्राप्त होते और कभी ज्योतिषी बन जाते थे। कभी प्रत्यक्षवादी बनकर इस लोकमें प्रत्यक्ष दिखायी देनेवाली वस्तुओंकी ही सत्यताका प्रतिपादन करते थे। कभी जटाधारी बनते, कभी दिगम्बर हो जाते और कभी विष उतारनेकी विद्यामें प्रवीण सँपेरा बन जाते थे। कभी-कभी उन्होंने नाना प्रकारके दृष्टान्तों और कथानकोंद्वारा अनेक प्रकारके व्रतका उपदेश करके वहाँकी पतिव्रता स्त्रियोंको बहकानेकी भी चेष्टा की। कभी तो वे ब्राह्मण बनते, कभी ब्रह्मज्ञानी, कहीं वेदाभ्यासी, कहीं क्षत्रिय, कहीं वैश्य और अन्त्यज, कहीं ब्रह्मचारी, कहीं गृहस्थ, कहीं वानप्रस्थ, कहीं संन्यासी— इस प्रकार अनेकानेक रूप धारण करके वे लोगोंको भ्रममें डालते थे। कहीं-कहीं तो वे सम्पूर्ण विद्याओंमें पारंगत एवं सर्वज्ञ बनकर उपस्थित होते थे। इस प्रकार काशीमें विचरते हुए सूर्यने कभी किसी मनुष्यमें भी कोई छिद्र नहीं पाया।

इस क्षणभंगुर शरीरके रहते हुए जिसने धर्मकी रक्षा की है, उसने तीनों लोकोंकी रक्षा कर ली। उसे अर्थ और कामकी भलीभाँति रक्षा करनेसे क्या प्रयोजन है? यदि बहुत-से मनुष्योंको सुखकारी प्रतीत होनेवाला काम भी रक्षा करनेके योग्य होता तो कामवैरी भगवान् शिव उसे क्षणभरमें भस्म करके अनंग (अंगहीन) क्यों बना देते? शिवि आदि राजाओं तथा दधीचि आदि समस्त ब्राह्मणोंने अपने शरीरका त्याग करके भी धर्मकी रक्षा की है।

दुर्लभ काशीपुरीको पाकर कौन सचेत पुरुष उसे छोड़ सकता है। इस संसारमें प्रत्येक जन्ममें पुत्र, मित्र, स्त्री, खेत और धन मिल सकते हैं, केवल काशीपुरी नहीं मिलती। जबतक काशीसेवनसे उत्पन्न पुण्यमय तेजका उदय नहीं होता, तभीतक जुगुनूके समान अन्यान्य तेज प्रकाशित होते हैं। इस प्रकार काशीके प्रभावको जाननेवाले तथा अन्धकारको दूर करनेवाले लोकचक्षु सूर्यदेव अपनेको बारह स्वरूपोंमें व्यक्त करके काशीपुरीमें स्थित हो गये। इनमें पहले लोलार्क है, दूसरे उत्तरार्क, तीसरे साम्बादित्य, चौथे द्रौपदादित्य, पाँचवें मयूखादित्य, छठे खखोल्कादित्य, सातवें अरुणादित्य, आठवें वृद्धादित्य, नवें केशवादित्य, दसवें विमलादित्य, ग्यारहवें गंगादित्य तथा बारहवें यमादित्य— ये बारहों काशीपुरीमें स्थित हैं। अगस्त्य! जिनका तमोगुण अधिक बढ़ा हुआ है, ऐसे दुष्टोंसे ये सदा इस क्षेत्रकी रक्षा करते हैं। अर्क अर्थात् भगवान् सूर्यका मन काशीके दर्शनके लिये लोल (चंचल) हो उठा था, इसलिये काशीमें उनकी लोलार्क नामसे ख्याति हुई। दक्षिण दिशामें असीसंगमके समीप लोलार्ककी स्थिति है, वे सदा काशीवासी मनुष्योंके योग-क्षेमकी सिद्धि करते हैं। मार्गशीर्षमासकी सप्तमी या षष्ठी तिथिको रविवारका योग होनेपर वहाँकी वार्षिक यात्रा करके मनुष्य समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है। मनुष्य असीसंगममें स्नान करके देवताओं और पितरोंका तर्पण एवं विधिपूर्वक श्राद्ध करे तो वह पितरोंके ऋणसे छूट जाता है। जो मनुष्य रविवारको लोलार्कका दर्शन करके उनका चरणामृत लेता है, उसे कोई दुःख नहीं होता और खुजली, दाद तथा फोड़ा-फुंसीका कष्ट भी नहीं भोगना पड़ता। जो श्रेष्ठ मनुष्य लोलार्कके इस माहात्म्यको सुनता है, वह इस दुःखसागर संसारमें कहीं भी दुःखी नहीं होता।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

उत्तरार्क सूर्यकी महिमा, सुलक्षणाकी तपस्या और उसपर शिव-पार्वतीकी कृपा

स्कन्दजी कहते हैं—काशीपुरीकी उत्तर दिशामें उत्तम अर्ककुण्ड है, जहाँ भगवान् सूर्य उत्तरार्क नामसे निवास करते हैं। मुने! वहाँ जो इतिहास घटित हो चुका है, उसको सुनो। काशीपुरीमें प्रियव्रत नामसे प्रसिद्ध एक ब्राह्मण थे जो आत्रेयकुलमें उत्पन्न, सदाचारी तथा अतिथिजनोंके प्रेमी थे। उनकी पत्नी अत्यन्त सुन्दरी तथा उत्तम व्रतका पालन करनेवाली थी। वह घरके काम-काजमें बड़ी चतुर तथा पतिकी सेवामें तत्पर रहनेवाली थी। ब्राह्मणने अपनी पत्नीसे एक उत्तम लक्षणोंवाली कन्याको जन्म दिया। वह कन्या मूल नक्षत्रके प्रथम चरणमें उत्पन्न हुई थी। उस समय बृहस्पति केन्द्रमें थे। ब्राह्मणकी वह कन्या पिता-माताके घरमें दिन-दिन बढ़ने लगी। वह बड़ी रूपवती, विनयशील, सदाचारपरायणा तथा माता-पिताका प्रिय करनेवाली थी। घरकी सामग्रियोंको माँज-धोकर साफ-सुथरा रखनेमें अत्यन्त निपुण थी। वह अपने पिताके घरमें जैसे-जैसे बढ़ने लगी, वैसे-ही-वैसे उसके पिताके मनमें यह चिन्ता भी बढ़ने लगी कि—'मेरी यह परम सुन्दरी उत्तम लक्षणोंवाली श्रेष्ठ कन्या किसको देनेयोग्य है। इसके योग्य उत्तम वर मुझे कहाँ मिलेगा जो कुल, अवस्था, शील, स्वभाव, शास्त्राध्ययन, रूप और धनसे भी सम्पन्न हो। किसके साथ ब्याह होनेपर इसे सुख मिलेगा।' इस प्रकार चिन्ता नामक ज्वरसे ग्रस्त हो प्रियव्रत ब्राह्मण गृह आदि सब वस्तुओंका त्याग करके मृत्युको प्राप्त हो गये। पिताके मरनेपर उस कन्याकी पतिव्रता माता भी कन्याको अकेली छोड़कर पतिके पीछे चली गयी। पतिव्रतका पालन करनेवाली सहधर्मिणीका यह धर्म ही है कि वह पतिके जीते-जी तथा मरनेपर भी पतिके ही साथ रहे। पुत्र, पिता, माता और बन्धु-बान्धव इनमेंसे कोई भी (पतिके सदृश) स्त्रीकी रक्षा नहीं करते। स्त्री अपने पतिके चरणोंकी जो सेवा करती है वह सेवा ही सर्वत्र उसकी रक्षा करती है। माता-पिताके मरनेपर वह सुलक्षणा नामवाली कन्या दुःखसे व्याकुल हो उठी। उसने उनके और्ध्वदैहिक संस्कार करके दशाह आदि क्रियाएँ सम्पन्न कीं और अनाथ एवं दीन होकर वह बड़ी भारी चिन्ता करने लगी—'अहो! मैं पिता-मातासे हीन असहाय अबला इस संसारसागरके उस पार, जहाँ पहुँचना अत्यन्त कठिन है, कैसे जा सकूँगी; क्योंकि स्त्रीभाव सबके द्वारा तिरस्कृत होनेवाला है। मेरे माता-पिताने मुझे किसी वरको अर्पण नहीं किया। ऐसी दशामें मैं स्वेच्छासे दूसरे किसी वरका वरण कैसे करूँ। यदि मैंने किसीका वरण कर भी लिया तो भी यदि वह कुलीन, गुणवान्, सुशील और अपने अनुकूल रहनेवाला न मिला तो उसका वरण करनेसे भी क्या लाभ होगा।'

इस प्रकार चिन्ता करती हुई रूप, उदारता और गुणोंसे युक्त उस ब्राह्मणकन्याने अनेकों युवकोंद्वारा प्रतिदिन बार-बार प्रार्थना की जानेपर भी किसीको अपने हृदयमें स्थान नहीं दिया। पिता-माताकी मृत्यु और उनके अद्भुत वात्सल्यका विचार करके वह बार-बार अपनी और इस नश्वर संसारकी निन्दा करने लगी—'अहो! जिन्होंने मुझे जन्म दिया और बड़े लाड़-प्यारसे पाला, वे मेरे माता-पिता कहाँ चले गये? देहधारी जीवकी इस अनित्यताको धिक्कार है। जैसे मेरे ही आगे मेरे माता-पिताका शरीर चला गया, उसी प्रकार मेरा भी शरीर चला जायगा।' ऐसा विचार करके उस बालिकाने अपने मन और इन्द्रियोंको काबूमें किया और स्थिरचित्त हो दृढ़तापूर्वक ब्रह्मचर्यका पालन करती हुई वह उत्तरार्कदेवके समीप कठोर तपस्या करने लगी। उसकी तपस्याके समय प्रतिदिन एक छोटी-सी बकरी उसके आगे आकर अविचल भावसे खड़ी हो जाती। फिर सन्ध्याके समय वह कुछ घास तथा पत्ते आदि चरकर और उत्तरार्क

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

कुण्डका जल पीकर अपने स्वामीके घरको लौट जाती थी। इस प्रकार पाँच-छः वर्ष व्यतीत होनेपर एक दिन भगवान् शिव पार्वतीदेवीके साथ लीलापूर्वक विचरते हुए वहाँ आये। उत्तरार्कदेवके समीप तपस्या करती हुई सुलक्षणाको उन्होंने ठूँठ पेड़की भाँति अविचल और तपस्यासे अत्यन्त दुर्बल देखा। तब दयामयी पार्वतीदेवीने भगवान् शंकरसे निवेदन किया—'देव! यह सुन्दरी कन्या बन्धु-बान्धवोंसे हीन है, इसे वर देकर अनुगृहीत कीजिये।' पार्वतीजीका यह वचन सुनकर दयासागर भगवान् शिवने नेत्र बंदकर समाधिमें स्थित हुई उस कन्यासे वर देनेके लिये उद्यत होकर बोले—'उत्तम व्रतका पालन करनेवाली सुलक्षणे! मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ, तुम कोई वर माँगो।'

महादेवजीकी यह अमृतवर्षिणी वाणी सुनकर सुलक्षणाने जब नेत्र खोले, तब देखा, सामने वरदान देनेके लिये उद्यत भगवान् त्रिलोचन खड़े हैं और उनके वामांग भागमें देवी उमा विराजमान हैं। उन दोनोंका दर्शन करके सुलक्षणाने हाथ जोड़कर प्रणाम किया। इतनेमें ही उसे अपने आगे खड़ी हुई वह बकरी दिखायी दी। तब वह सोचने लगी—'इस जीवलोकमें अपना स्वार्थ सिद्ध

करनेके लिये कौन मनुष्य जीवन नहीं धारण करता है? परंतु जो परोपकारके लिये जीवन धारण करता है, उसीका जीवनधारण सफल है।' मन-ही-मन ऐसा विचारकर उसने भगवान् शिवसे कहा—'कृपानिधान! यदि आप मुझे वर देना उचित समझते हैं तो पहले इस बेचारी बकरीपर अनुग्रह कीजिये।' सुलक्षणाकी यह परोपकारसे सुशोभित वाणी सुनकर शरणागतोंकी पीड़ा दूर करनेवाले भगवान् शंकर बहुत प्रसन्न हुए और पार्वतीदेवीसे इस प्रकार बोले—'गिरिराजनन्दिनी! देखो, साधु पुरुषोंकी ऐसी ही परोपकारयुक्त बुद्धि होती है। सम्पूर्ण लोकोंमें वे ही धन्य हैं और वे ही सम्पूर्ण धर्मोंके आश्रय हैं जो सर्वथा परोपकारके लिये यत्न करते हैं। सब वस्तुओंका संग्रह भी कहीं दीर्घकालतक नहीं ठहरता। एकमात्र परोपकार ही चिरस्थायी होता है। यह सुलक्षणा परम धन्य और अनुग्रह करनेयोग्य है। देवि! तुम्हीं बताओ, इस सुलक्षणाको और इस बकरीको भी कौन-सा वरदान देना चाहिये?'

पार्वतीदेवीने कहा—भगवन्! यह शुभ आचरणोंवाली सुलक्षणा कल्याणके लिये उद्योग करनेवाली है; यह मेरी सखी होकर रहे। यह बालब्रह्मचारिणी है, इससे मुझे अत्यन्त प्रिय होगी। मेरी इच्छा है कि यह दिव्य शरीर धारण करके सदैव मेरे समीप निवास करे। यह बकरी भी यहीं काशीनरेशकी कन्या होवे और काशीमें उत्तम भोगोंका उपभोग करके अन्तमें परम मोक्षको प्राप्त हो। इसने शीतसे भयभीत न होकर पौष मासके रविवारको सूर्योदयसे पहले इस कुण्डमें स्नान किया है, इसलिये इस अर्क कुण्डका नाम आजसे 'बर्करी कुण्ड' हो जाय। यहाँ सब मनुष्योंके द्वारा इस बकरीकी प्रतिमा पूजनीय होगी। काशीतीर्थके फलकी इच्छा रखनेवाले मनुष्योंको पौष मासके रविवारके दिन उत्तरार्कदेवकी वार्षिक यात्रा करनी चाहिये।

इस प्रकार पार्वतीजीके कहे हुए सब वचनको सिद्ध करके सर्वव्यापी भगवान् विश्वनाथने अपने मन्दिरमें प्रवेश किया।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

साम्बादित्य, द्रौपदादित्य और मयूखादित्यकी माहात्म्य-कथा

स्कन्दजी कहते हैं—मुने! द्वारकामें भगवान् श्रीकृष्णके एक लाख अस्सी पुत्र थे। वे सभी सूर्यके समान तेजस्वी, अत्यन्त सुन्दर, महाबलवान्, शस्त्र-विद्या और शास्त्रोंके अतिशय ज्ञाता तथा अत्यन्त सुलक्षण थे। उन सबमें साम्ब सबसे अधिक गुणवान् थे। उन्होंने काशीमें आकर सूर्यदेवकी आराधना की और एक कुण्ड बनवाया। जो मनुष्य रविवारको साम्ब कुण्डमें स्नान करके साम्बादित्यकी पूजा करता है, वह रोगोंसे पीडित नहीं होता है। माघके शुक्ल पक्षकी सप्तमीको यदि रविवार हो तो वह सूर्यग्रहणके समान कल्याणकारी महापर्व बताया गया है। उस दिन अरुणोदय कालमें साम्ब कुण्डमें स्नान करके जो साम्बादित्यकी पूजा करता है, वह बड़े-बड़े रोगोंसे मुक्त हो अक्षय धर्मको प्राप्त होता है। चैत्रमासके रविवारको साम्बादित्यकी वार्षिक यात्रा होती है। उस दिन साम्ब कुण्डमें विधिपूर्वक स्नान करके जो अशोक पुष्पोंसे साम्बादित्यकी पूजा करता है, वह कभी शोकग्रस्त नहीं होता। भगवान् विश्वनाथसे पश्चिम दिशामें महात्मा साम्बने यहाँ शुभ देनेवाली सूर्यमूर्तिकी भलीभाँति आराधना की थी। महामते! साम्बादित्यका पूजन और नमस्कार करके जो आठ बार उनकी परिक्रमा करता है, वह पापरहित हो काशीवासका फल पाता है।

अब मैं द्रौपदादित्यका परिचय दूँगा। द्रौपदादित्य भक्तोंको सिद्धि प्रदान करनेवाले हैं। अतः उनका भलीभाँति सेवन करना चाहिये। एक समयकी बात है, पाँचों पाण्डव अपने शत्रुओंद्वारा उपस्थित की हुई बड़ी भारी विपत्तिमें पड़कर वनवासी हो गये। पांचाल देशके राजा द्रुपदकी कन्या द्रौपदी उनकी धर्मपत्नी थी। उसने अपने पतियोंके दुःखसे सन्तप्त होकर भगवान् सूर्यकी आराधना की। इससे प्रसन्न होकर भगवान् सूर्यने द्रौपदीको करछुल और ढक्कनके साथ एक अक्षय स्थालीपात्र (बटलोई) दिया और इस प्रकार कहा—'महाभागे! इस स्थालीसे जितने भी अन्नकी इच्छा रखनेवाले लोग आयेंगे, वे सभी तृप्तिको प्राप्त होंगे। ऐसा तभीतक होगा, जबतक तुम भोजन नहीं कर लोगी। तुम्हारे भोजन कर लेनेपर यह खाली हो जायगी। यह रसीले व्यंजनोंकी निधि है और इच्छानुसार भोजन देनेवाली है। जो मनुष्य भगवान् विश्वनाथके दक्षिण भागमें तुम्हारे सम्मुख स्थित हुए मुझ द्रौपदादित्यकी आराधना करेगा, उसकी भूखकी पीड़ा नष्ट हो जायगी। धर्मप्रिय द्रौपदी! काशीमें तुम्हारे दर्शनसे रोग और भूख-प्यासका भय नहीं रहेगा।' इस प्रकार वर देकर सूर्यदेव भगवान् शंकरकी आराधनामें लग गये। जो मनुष्य द्रौपदीके द्वारा आराधित भगवान् सूर्यकी कथाको भक्तिपूर्वक सुनेगा, उसका पाप नष्ट हो जायगा।

स्कन्दजी कहते हैं—मुने! मैंने द्रौपदादित्यकी महिमा संक्षेपसे कही। अब मयूखादित्यका माहात्म्य सुनो। पूर्वकालमें त्रिभुवनविख्यात पंचगंगा तीर्थमें भगवान् सूर्यने अत्यन्त उग्र तपस्या की। गभस्तीश्वर नामक महालिंग और भक्तोंको मंगल प्रदान करनेवाली मंगला नामक गौरीदेवीकी स्थापना करके उनकी आराधना करते हुए भगवान् सूर्य तीव्र तपके तेजसे अत्यन्त जाज्वल्यमान हो उठे। उस समय पृथ्वी और आकाशके बीचका समस्त प्रदेश त्रिलोकीको दग्ध करनेमें समर्थ सूर्यकिरणोंद्वारा अत्यन्त सन्तप्त हो उठा। जैसे कदम्बफलके ऊपर सब ओरसे पुष्प ही दिखायी देते हैं, फल नहीं। उसी प्रकार ऊपर, नीचे और अगल-बगलमें सब ओर केवल सूर्यकी किरणें ही दिखायी देती थीं, सूर्यदेव नहीं। तेज और तपस्याकी राशिभूत सूर्यकी तपोमयी ज्वालाओंके तीव्र भयसे तीनों लोकोंके समस्त चराचर प्राणी काँप उठे। सब मन-ही-मन सोचने लगे— अहो! सूर्यदेव सम्पूर्ण जगत्के आत्मा

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

हैं। यदि वही हमें जलाने लगे तो कौन हमारा रक्षक होगा। सूर्य समस्त संसारके नेत्र हैं। ये ही सब ओर प्रकाश फैलाते हैं और प्रतिदिन प्रातःकाल मृतप्राय जगत्को नूतन जीवन देकर जाग्रत् करते हैं। ये ही अन्धकारमय अन्धकूपमें पड़े हुए समस्त प्राणियोंका चारों ओर अपने किरणरूप हाथ फैलाकर उद्धार करते हैं।

इस प्रकार सम्पूर्ण विश्वको व्याकुल देख विश्वरक्षक भगवान् विश्वनाथ सूर्यदेवको वर देनेके लिये गये। वे समाधिमें स्थित होकर अपने-आपको भी भूल गये थे। अत्यन्त निश्चलभावसे बैठे हुए अंशुमाली सूर्यको देखकर भगवान् शंकरने कहा—'आकाशमें प्रकाशित होनेवाले सूर्य! अब तपस्याकी आवश्यकता नहीं है, वह पूरी हो गयी। अब कोई वर माँगो।' सूर्यदेव ध्यान एवं समाधिके द्वारा अपनी इन्द्रियवृत्तियोंको रोककर स्थिर बैठे थे। अतः उन्होंने भगवान् शंकरकी बात नहीं सुनी। तब शिवजीने अपने हाथसे उनका स्पर्श किया। उनका स्पर्श पाते ही विश्वलोचन सूर्यने अपनी आँखें खोलीं और अपने आराध्यदेव भगवान् शिवको प्रत्यक्ष देखकर साष्टांग प्रणाम किया। तदनन्तर उन्होंने इस प्रकार स्तुति की—

सूर्य बोले—देवाधिदेव! जगत्पते! सर्वव्यापी! भर्ग! भीम! भव! चन्द्रभूषण! भूतनाथ तथा भवभयहारी देव! आप प्रणत जनोंको मनोवांछित वस्तु देनेवाले हैं, आपको नमस्कार है। चन्द्रचूड! मृड! धूर्जटे! हर! त्र्यक्ष! दक्षके सैकड़ों यज्ञोंका नाश करनेवाले शान्त! शाश्वत! शिवापते! शिव! आप प्रणत जनोंको मनोवांछित वस्तु देनेवाले हैं, आपको मैं नमस्कार करता हूँ। नीललोहित! अभीष्ट वस्तु देनेवाले त्रिलोचन! विरूपाक्ष! व्योमकेश! जीवोंके अज्ञानमय बन्धनका नाश करनेवाले। आप प्रणत जनोंकी मनोवांछा पूर्ण करनेवाले हैं, आपको मेरा नमस्कार है। वामदेव! शितिकण्ठ! शूलपाणे! चन्द्रशेखर! नागेन्द्रभूषण! कामनाशन! पशुपते! महेश्वर! आप शरणागतोंकी इच्छा पूर्ण करनेवाले हैं, आपको मैं नमस्कार करता हूँ। त्र्यम्बक! त्रिपुरारे! ईश्वर! सबकी रक्षा करनेवाले त्रिनयन! तीनों वेदस्वरूप! कालकूटके विषका दलन करनेवाले! कालके भी काल! आप प्रणत जनोंकी मनोवांछित वस्तुओंको देनेवाले हैं, आपको नमस्कार है। आप जहाँ हैं वहाँ रात्रिका अभाव है। शर्व! आप सर्वव्यापी हैं। स्वर्गमार्गका सुख देनेवाले तथा अपवर्ग (मोक्ष)-की प्राप्ति करानेवाले हैं। अन्धकासुरके शत्रु तथा जटाजूटधारी हैं। प्रभो! आप प्रणत जनोंकी इच्छा पूर्ण करनेवाले हैं, आपको मेरा नमस्कार है। आप भक्तोंके लिये कल्याणकारी और दुष्टोंके लिये उग्र हैं। गिरिराजनन्दिनीके प्राणवल्लभ! आप ही सबके वास्तविक पति हैं। विश्वनाथ! ब्रह्मा और विष्णु भी आपकी स्तुति करते हैं। आप ही वेदोंके द्वारा जाननेयोग्य परमात्मा हैं, आपको सबकी चेष्टाओंका ज्ञान है। नाथ! आप अपने चरणोंमें मस्तक झुकानेवाले भक्तोंको उनकी अभीष्ट वस्तुएँ देते हैं, आपको नमस्कार है। यह विश्व आपका ही स्वरूप है, तथापि आप सबसे परे हैं, आप ही निराकार ब्रह्म हैं, आपमें कुटिलताका सर्वथा अभाव है, आप अमृत

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

(मोक्ष) देनेवाले हैं, मन और वाणीकी पहुँचसे सर्वथा दूर हैं। दूरतक पहुँचे हुए सर्वव्यापी परमेश्वर! आप प्रणत जनोंको मनोवांछित वस्तुएँ प्रदान करनेवाले हैं, आपको मेरा नमस्कार है।[१]

इस प्रकार स्तुति करके सूर्यने महादेवजी और पार्वतीजीकी परिक्रमा की। तदनन्तर प्रसन्नचित्त होकर उन्होंने शिवके वामांग भागमें विराजमान गौरीदेवीका इस प्रकार स्तवन किया[२]।

सूर्य बोले—देवि! आपको प्रणाम करनेमें प्रवीण जो भक्त पुरुष अपने ललाटको आपके चरणारविन्दोंकी धूलिसे उज्ज्वल करता है, जन्मान्तरमें भी चन्द्रमाकी मनोहर लेखा उसके भाल-प्रदेशको अत्यन्त उज्ज्वल बना देती है। अर्थात् वह पुरुष भगवान् शंकरका सारूप्य प्राप्त कर लेता है। श्रीमती मंगलागौरी! आप सम्पूर्ण मंगलोंकी जन्मभूमि हैं। श्रीमंगले! आप सम्पूर्ण पापराशिरूपी रूईको दग्ध करनेके लिये प्रज्वलित अग्नि हैं। श्रीमंगले! आप सम्पूर्ण दानवोंके दर्पका दलन करनेवाली हैं। श्रीमंगले! आप इस सम्पूर्ण विश्वकी रक्षा करें। विश्वेश्वरी! आप ही समस्त जगत्के जीवोंकी सृष्टि, पालन तथा प्रलयकालमें उनका संहार करनेवाली हैं। आपके नामकीर्तनसे प्रकट हुई पुण्यमयी निर्मल नदी पातकरूपी तटवर्ती वृक्षोंको बहा ले जाती है। मातः! आप भगवान् शिवकी प्रिया हैं, आप ही संसारके दुःसह दुःखभारका निवारण करनेवाली हैं। इस जगत्में आपके सिवा दूसरी कोई ऐसी शक्ति नहीं है जो शरणागतोंकी रक्षा करनेमें समर्थ हो। जिनके ऊपर आपका कल्याणकारी कृपाकटाक्ष हो जाता है, वे ही समस्त भुवनोंमें धन्य हैं और वे ही माननीय हैं। देवि! आप सहज प्रकाशस्वरूपा हैं। काशीपुरीमें आप सदा निवास करती हैं और प्रणत जनोंके लिये मोक्ष-लक्ष्मीरूपा हैं। जो लोग निरन्तर आपका स्मरण करते हैं, वे मोक्षरूपी धनकी रक्षा करनेमें कुशल एवं उसे पानेके सुयोग्य पात्र हैं। उनकी बुद्धि परम शुद्ध है। आपके उन बड़भागी भक्तोंको कामारि भगवान् शिव भी सदा स्मरण करते

रविरुवाच

१- देवदेव जगताम्पते विभो भर्ग भीम भव चन्द्रभूषण।
भूतनाथ भवभीतिहारक त्वां नतोऽस्मि नतवांछितप्रद॥
चन्द्रचूड मृड धूर्जटे हर त्र्यक्ष दक्षशततन्तुशातन।
शान्त शाश्वत शिवापते शिव त्वां नतोऽस्मि नतवांछितप्रद॥
नीललोहित समीहितार्थद द्व्येकलोचन विरूपलोचन।
व्योमकेश पशुपाशनाशन त्वां नतोऽस्मि नतवांछितप्रद॥
वामदेव शितिकण्ठ शूलभृच्चन्द्रशेखर फणीन्द्रभूषण।
कामकृत्पशुपते महेश्वर त्वां नतोऽस्मि नतवांछितप्रद॥
त्र्यम्बक त्रिपुरसूदनेश्वर त्राणकृत्त्रिनयन त्रयीमय।
कालकूटदलनान्तकान्तक त्वां नतोऽस्मि नतवांछितप्रद॥
शर्वरीरहित शर्व सर्वग स्वर्गमार्गसुखदापवर्गद।
अन्धकासुररिपो कपर्दभृत् त्वां नतोऽस्मि नतवांछितप्रद॥
शङ्करोग्र गिरिजापते पते विश्वनाथ विधिविष्णुसंस्तुत।
वेदवेद्य विदिताखिलेङ्गित त्वां नतोऽस्मि नतवांछितप्रद॥
विश्वरूप पररूपवर्जित ब्रह्म जिह्मरहितामृतप्रद।
वाङ्मनोविषयदूर दूरग त्वां नतोऽस्मि नतवांछितप्रद॥

(स्क० पु०, का० पू० ४९। ४६—५३)

२- इत्थं परीत्य मार्तण्डो मृडं देवं मृडानिकाम्। अथ तुष्टाव प्रीतात्मा शिववामार्द्धहारिणीम्॥

(स्क० पु०, का० पू० ४९। ५४)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

हैं। मातः! जिसके हृदयमें आपके अत्यन्त निर्मल युगलचरणारविन्द सतत विराजमान हैं, यह सम्पूर्ण विश्व उसके हाथमें ही है। मंगलगौरि! जो प्रतिदिन आपके नामका जप करता है, उसके घरको अणिमा आदि आठों सिद्धियाँ कभी नहीं छोड़ती हैं। देवि! आप ही प्रणवस्वरूपा वेदमाता गायत्री हैं। आप ही द्विजोंके लिये कामधेनु हैं। आप ही तीनों व्याहृतियाँ (**भूः, भुवः, स्वः**) हैं और आप ही सम्पूर्ण कर्मोंकी सिद्धिके लिये देवताओं और पितरोंकी तृप्तिमें कारणभूत स्वाहा और स्वधा हैं। माता मंगलागौरी! आप ही भगवान् चन्द्रशेखरके समीप गौरीरूपसे विराजमान हैं। आप ही ब्रह्माजीके निकट सावित्री होकर रहती हैं। आप ही चक्रपाणि भगवान् विष्णुके यहाँ मनोहर लक्ष्मी रूपसे निवास करती हैं तथा आप ही काशीमें मोक्षलक्ष्मी हैं। निर्मल स्वरूप धारण करनेवाली देवि! आप ही इस जगत्में मुझ शरणागतकी रक्षा करनेवाली हैं*।

इस प्रकार भगवान् शिवके आधे शरीरकी शोभास्वरूपा मंगलादेवीका इस मंगलाष्टक नामक महास्तोत्रसे स्तवन करके सूर्यदेवने महादेवजी तथा मंगलागौरीको बारंबार प्रणाम किया और उन दोनोंके सामने चुपचाप पड़े रहे।

तब महादेवजीने कहा—सूर्यदेव! उठो, उठो, तुम्हारा कल्याण हो। महामते! मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ। मित्र! तुम तो सदा मेरे नेत्रमें ही स्थित हो, जिससे मैं समस्त चराचर जगत्को देखता हूँ। तुम मेरी आठ मूर्तियोंमेंसे एक हो। आजसे तुम सर्वज्ञ, सर्वव्यापी, सम्पूर्ण तेजोंका समुदाय तथा सबके सम्पूर्ण कर्मोंके ज्ञाता होओ। अपने सब भक्तोंके समस्त दुःखोंको दूर करो। तुमने मेरे चौंसठ नामोंके द्वारा जो यह अष्टकस्तोत्र सुनाया है, इसके द्वारा मेरी स्तुति करके मनुष्य मेरी भक्ति प्राप्त कर लेगा। यह मंगलागौरीका अष्टकस्तोत्र मंगलाष्टक नामसे विख्यात होगा। इसके द्वारा मंगलागौरीकी स्तुति करके मनुष्य मंगल प्राप्त करेगा। ये नामचतुःषष्ट्यष्टक तथा मंगलाष्टक नामक दोनों स्तोत्र श्रेष्ठ, पुण्यमय तथा सब पातकोंके नाशक हैं। जो काशीसे दूरदेशमें रहता है, वह भी यदि प्रतिदिन तीनों समय इन दोनों स्तोत्रोंका जप करे तो वह श्रेष्ठ एवं शुद्धचित्त होकर दुर्लभ काशीको प्राप्त

रविरुवाच

* देवि त्वदीयचरणाम्बुजरेणुगौरीं भालस्थलीं वहति यः प्रणतिप्रवीणः।
जन्मान्तरेऽपि रजनीकरचारुलेखा तां गौरयत्यतितरां किल तस्य पुंसः॥
श्रीमङ्गले सकलमङ्गलजन्मभूमे श्रीमङ्गले सकलकल्मषतूलवस्त्रे।
श्रीमङ्गले सकलदानवदर्पहन्त्रि श्रीमङ्गलेऽखिलमिदं परिपाहि विश्वम्॥
विश्वेश्वरि त्वमसि विश्वजनस्य कर्त्री त्वं पालयिष्यसि तथा प्रलयेऽपि हन्त्री।
त्वन्नामकीर्तनसमुल्लसदच्छपुण्या स्रोतस्विनी हरति पातककूलवृक्षान्॥
मातर्भवानि भवती भवतीव्रदुःखसंभारहारिणि शरण्यमिहास्ति नान्या।
धन्यास्त एव भुवनेषु त एव मान्या येषु स्फुरेत्तव शुभः करुणाकटाक्षः॥
ये त्वां स्मरन्ति सततं सहजप्रकाशां काशीपुरीस्थितिमतीं नतमोक्षलक्ष्मीम्।
तान् संस्मरेत्स्मरहरो धृतशुद्धबुद्धीन् निर्वाणरक्षणविचक्षणपात्रभूतान्॥
मातस्तवाङ्घ्रियुगलं विमलं हृदिस्थं यस्यास्ति तस्य भुवनं सकलं करस्थम्।
यो नाम ते जपति मङ्गलगौरि नित्यं सिद्ध्यष्टकं न परिमुञ्चति तस्य गेहम्॥
त्वं देवि वेदजननी प्रणवस्वरूपा गायत्र्यसि त्वमसि वै द्विजकामधेनुः।
त्वं व्याहृतित्रयमिहाखिलकर्मसिद्ध्यै स्वाहा स्वधासि सुमनःपितृतृप्तिहेतुः॥
गौरि त्वमेव शशिमौलिनि वेधसि त्वं सावित्र्यसि त्वमसि चक्रिणि चारुलक्ष्मीः।
काश्यां त्वमस्यमलरूपिणि मोक्षलक्ष्मीस्त्वं मे शरण्यमिह मङ्गलगौरि मातः॥

(स्क० पु०, का० पू० ४९। ५५—६२)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

करेगा। ये दोनों स्तोत्र काशीमें मोक्षसम्पत्ति प्रदान करते हैं। अतः मोक्षकी इच्छा रखनेवाले मनुष्योंको प्रयत्नपूर्वक अनेक स्तोत्रोंका परित्याग करके भी इन दोनों स्तोत्रोंका पाठ एवं जप करना चाहिये। तुम्हारे द्वारा स्थापित यह गभस्तीश्वरलिंग भक्तिभावसे सेवित होनेपर सब सिद्धियोंका दाता होगा। तुमने भक्तिभावसे चम्पा और कमलके समान कान्तिवाली गभस्तिमालाओं (किरणों)-से जो इस ईश्वरलिंगका पूजन किया है, उससे इसका नाम गभस्तीश्वर लिंग होगा। पंचगंगामें स्नान करके गभस्तीश्वरका पूजन करनेवाला मनुष्य सब पापोंसे रहित होकर कभी भी माताके गर्भमें जन्म धारण नहीं करेगा। जो स्त्री या पुरुष चैत्र शुक्ला तृतीयाको उपवास करके वस्त्र, आभूषण आदि महान् उपचारोंसे इन महादेवी मङ्गलागौरीकी पूजा करेगा और प्रातःकाल व्रत पूर्ण करके पारण करेगा, वह कभी दुर्भाग्य एवं दरिद्रताको नहीं प्राप्त होगा। उसके सारे पाप नष्ट हो जायँगे और वह पुण्यकी राशि प्राप्त करेगा। वन्ध्या भी इस मंगलागौरीव्रतको करके बालकको जन्म देती है। यहाँ तपस्या करते हुए तुम्हारे मयूखसमूह (किरणपुंज) ही देखे गये हैं, शरीर नहीं दिखायी दिया है। अतः अदितिनन्दन! तुम्हारा नाम मयूखादित्य होगा। तुम्हारी पूजा करनेसे मनुष्योंको कोई रोग-व्याधि नहीं होगी। रविवारको तुम्हारे दर्शनसे दरिद्रताका नाश होगा।

इस प्रकार मयूखादित्यको बहुत-से वर देकर भगवान् शिव अन्तर्धान हो गये और सूर्यदेवने वहीं निवास किया।

गरुडेश्वर लिंग तथा खखोल्कादित्यकी प्रादुर्भाव-कथा, काशीमें गरुड और विनताकी तपस्या और वरदान-प्राप्ति

स्कन्दजी कहते हैं—अगस्त्य! त्रिलोचन स्थानके उत्तरभागमें खखोल्क नामक आदित्यकी स्थिति बतायी गयी है। वे सब रोगोंका नाश करनेवाले हैं। पूर्वकालमें कद्रू और विनता—ये दोनों बहनें परस्पर खेल रही थीं। ये दक्ष प्रजापतिकी कन्याएँ और मरीचिनन्दन कश्यपकी धर्मपत्नियाँ थीं। उस खेलमें कद्रूने अपनी बहनसे कहा—'विनते! सूर्यके रथमें जो उच्चैःश्रवा नामक घोड़ा सुना जाता है, उसका रूप कैसा है, जानती हो तो कहो। हम दोनों शर्त रखकर इसका निर्णय करें, जो जिससे पराजित हो, वह उसकी दासी हो। हमारी इस प्रतिज्ञामें ये सब सखियाँ साक्षी हैं।' इस प्रकार आपसमें शर्त बदकर कद्रूने सूर्यके घोड़ेको चितकबरा बताया और विनताने श्वेत कहा। विनताके चले जानेपर कद्रूने अपने पुत्रोंको बुलाकर कहा—'तुम मेरे वचनसे शीघ्र ही उच्चैःश्रवा घोड़ेके समीप जाओ और उसे श्याम रंगसे युक्त चितकबरा कर दो।' कद्रूके बुद्धिमान् पुत्रोंने उच्चैःश्रवाके पास जाकर उसके शरीरको जगह-जगहसे काले केशके समान चितकबरा कर दिया। कद्रू और विनता दोनोंने सूर्यके रथमें घोड़ेको कुछ-कुछ काले रंगसे युक्त अर्थात् चितकबरा देखा। तब विनताने कहा—'बहन! तुम्हारी ही बात सत्य निकली, अतः तुमने मुझे जीत लिया।' तबसे विनता कद्रूकी दासी हो गयी। तदनन्तर विनताके पुत्र गरुड़ने नागोंको अमृत देकर अपनी माताको दासीभावसे मुक्त किया। दासीपनसे छुटकारा मिलनेपर विनताने गरुड़से कहा—बेटा! मैं दास्यजनित दुष्कृतको दूर करनेके लिये काशीपुरी जाऊँगी, वहाँ साक्षात्

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

भगवान् विश्वनाथ चन्द्रमाका आभूषण धारण किये तारकमन्त्ररूपी नौकाके द्वारा दुस्तर संसारसागरसे सबको पार लगा देते हैं। जिनपर भगवान् विश्वनाथकी कृपा होती है और जिनके समस्त कर्मबन्धन टूट जाते हैं, उन्हीं मनुष्योंकी बुद्धि काशीपुरीमें निवास करनेकी होती है। समस्त पाप धुल जानेके कारण जिनका मन काशीपुरीमें निवास करनेके लिये उत्सुक होता है, वे ही इस संसारमें वस्तुतः मनुष्य हैं। दूसरे लोग तो मनुष्यके रूपमें पशु ही हैं।'

माताकी यह बात सुनकर गरुड़ने नमस्कार करके कहा—मैं भी भगवान् शिवसे सम्मानित काशीपुरीका दर्शन करनेके लिये चलूँगा। तत्पश्चात् माताकी आज्ञा पाकर पक्षिराज गरुड़ उन्हींके साथ क्षणभरमें मोक्षभूमि वाराणसीपुरीमें आ पहुँचे। वहाँ इन दोनोंने बड़ी भारी तपस्या की। अविचल इन्द्रियोंवाले पक्षिराज गरुड़ने शिवलिंगकी स्थापना की और विनताने खखोल्क* नामक 'आदित्य' को स्थापित किया। थोड़े ही दिनोंमें उन दोनोंकी तीव्र तपस्यासे काशीमें भगवान् शंकर और सूर्यदेव दोनों प्रसन्न हो गये। गरुड़द्वारा स्थापित शिवलिंगसे उमानाथ भगवान् शिव प्रकट हुए और उन्होंने गरुड़को बहुत-से अत्यन्त दुर्लभ वरदान दिये—'पक्षिराज! मेरे यथार्थ रहस्यको, जिसे देवता भी नहीं जान सके हैं, तुम जान लोगे। तुम्हारे द्वारा स्थापित यह लिंग गरुडेश्वरके नामसे विख्यात होगा। इसका दर्शन, स्पर्श और पूजन मनुष्योंको परम ज्ञान देनेवाला होगा। हम ही वह विष्णु हैं और वह विष्णु ही हम हैं, हम दोनोंमें तुम्हारी भेददृष्टि नहीं होनी चाहिये। तुम भगवान् विष्णुके श्रेष्ठ वाहन होकर स्वयं भी पूजनीय हो जाओगे।' अपने भक्त गरुड़को इस प्रकार वरदान देकर भगवान् शंकर वहीं अन्तर्धान हो गये और गरुड़जी भी भगवान् विष्णुके वाहन होकर भूमण्डलमें सबके लिये पूजनीय हो गये।

तदनन्तर एक दिन तपस्यामें संलग्न हुई विनताको देखकर शिवके ही दूसरे स्वरूप 'खखोल्कादित्य' नामक सूर्यदेव प्रकट हुए और उन्होंने विनताको शिवज्ञानसे युक्त पापनाशक वरदान दिया। वरदान देकर वे काशीमें ही रह गये और विनतादित्यके नामसे प्रसिद्ध हुए। इस प्रकार काशीके विघ्नस्वरूप अन्धकारका नाश करनेवाले खखोल्क नामक आदित्य वहाँ निवास करते हैं। उनके दर्शनमात्रसे मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। काशीमें पैशंगिल (पिलपिला) तीर्थमें भगवान् खखोल्कादित्यका दर्शन करनेसे मनुष्य क्षणभरमें नीरोग हो जाता है और मनोवांछित वस्तुको प्राप्त करता है।

काशीखण्ड पूर्वार्ध सम्पूर्ण।

* एक बार गरुड़की माता विनता सर्पोंकी माता कद्रूको पीठपर चढ़ाकर सूर्य-मण्डलके समीप ले गयी। कद्रू सूर्यका ताप सहन न कर सकनेके कारण मूर्छित-सी होने लगी और घबराहटमें बोल उठी—'खखोल्का निपतेत्।' वह कहना चाहती थी, 'सखी उल्का निपतेत्'—'सखी! उल्का गिरेगी' परंतु निकल गया—'खखोल्का' तबसे सूर्यकी 'खखोल्क' संज्ञा हो गयी।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

काशीखण्ड (उत्तरार्ध)

अरुणादित्य, वृद्धादित्य, केशवादित्य, विमलादित्य, गंगादित्य तथा यमादित्यकी महिमाका वर्णन

स्कन्दजी कहते हैं—महामते! विनतानन्दन अरुणने काशीमें तपस्या करके भगवान् सूर्यकी आराधना की। इससे प्रसन्न होकर आदित्यने अरुणको अनेक वर दिये और उन्हींके नामपर अरुणादित्य नामसे विख्यात हुए।

सूर्यदेव बोले—विनतानन्दन! तुम जगत्के हितके लिये घोर अन्धकारका नाश करते हुए सदा मेरे रथपर आगे सारथिके स्थानपर बैठा करो। जो यहाँ अरुणादित्य नामसे प्रसिद्ध मेरा निरन्तर पूजन करेंगे, उन्हें दुःख, दरिद्रता और पापकी प्राप्ति नहीं होगी। वे न तो रोगोंसे पीड़ित होंगे और न उन्हें कोई उपद्रव ही सतावेंगे।

ऐसा कहकर भगवान् सूर्य उन्हें रथपर बिठाकर अपने साथ ले गये। तबसे लेकर आज भी प्रातःकाल सूर्यके रथपर अरुणका उदय होता है। जो मनुष्य प्रातःकाल उठकर प्रतिदिन सूर्यसहित अरुणको नमस्कार करता है, उसे दुःखका भय कहाँसे हो सकता है। जो श्रेष्ठ मनुष्य अरुणादित्यका माहात्म्य सुनेगा, उसे किसी प्रकारके पापकी प्राप्ति नहीं होगी।

अगस्त्य! अब वृद्धादित्यका माहात्म्य सुनो। प्राचीन कालमें काशीपुरीमें महातपस्वी वृद्ध हारीतने भगवान् सूर्यकी आराधना की। विशालाक्षी-देवीके दक्षिण भागमें सूर्यदेवकी शुभ लक्षणोंसे युक्त शुभदायिनी मूर्ति स्थापित करके दृढ़भक्तिके साथ उन्होंने सूर्यदेवका आराधन किया। इससे प्रसन्न होकर भगवान् सूर्यने वृद्धतपस्वी हारीतसे कहा—'माँगो, तुम्हें कौन-सा वर अभीष्ट है, जो दिया जाय?'

मुनिने कहा—मुझको पुनः युवावस्था प्रदान कीजिये। युवावस्था प्राप्त होनेपर मैं उत्तम तपस्या करूँगा; क्योंकि तपस्या ही श्रेष्ठ धर्म है, तपस्या ही श्रेष्ठ धन है, तपस्या ही श्रेष्ठ काम है और तपस्या ही श्रेष्ठ मोक्ष है। जितेन्द्रिय पुरुष दीर्घकालतक तपस्या करनेके लिये ही चिरस्थायी आयु चाहते हैं। दान करनेके लिये ही धन चाहते हैं, पुत्र प्राप्त करनेके लिये ही स्त्री चाहते हैं और मोक्षके लिये ही उत्तम ज्ञान चाहते हैं। तब सूर्यदेवने तत्काल ही वृद्धहारीतका बुढ़ापा दूर करके उन्हें रमणीयताकी हेतु और पुण्यकी साधनभूता युवावस्था प्रदान की। इस प्रकार महामुनि वृद्धहारीतने काशीमें सूर्यदेवसे युवावस्था प्राप्त करके उग्र तपस्या की। वृद्धसे पूजित होनेके कारण वहाँ भगवान् सूर्य वृद्धादित्यके नामसे प्रसिद्ध हैं। कुम्भज! बुढ़ापा, दुर्गति तथा रोगका नाश करनेवाले वृद्धादित्यकी काशीमें आराधना करके बहुतोंने सिद्धि प्राप्त की है। काशीमें रविवारके दिन वृद्धादित्यको नमस्कार करके मनुष्य मनोवांछित सिद्धि प्राप्त कर लेता है, उसकी कभी भी दुर्गति नहीं होती।

मुने! इसके बाद मैं तुम्हें केशवादित्यका उत्तम माहात्म्य सुनाता हूँ, सुनो। जिस प्रकार भगवान् केशवके समीप पहुँचकर सूर्यदेवने ज्ञान प्राप्त किया था, वह प्रसंग इस प्रकार है। एक दिन आकाशमें विचरण करते हुए सूर्यदेवने काशीमें भगवान् केशवको विश्वनाथजीकी पूजा करते देखा। तब वे कौतूहलवश दूसरे रूपसे आकाशसे उतर आये और भगवान् केशवके समीप बैठे। उस समय वे मौन होकर अविचल भावसे स्थित हो महान् आश्चर्यमें डूबे हुए अवसरकी प्रतीक्षा करते रहे। जब भगवान् विष्णुने पूजा समाप्त की, तब सूर्यदेवने हाथ जोड़कर उन्हें प्रणाम किया। श्रीहरिने

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

सूर्यदेवको अपने समीप बैठा लिया। तत्पश्चात् नमस्कार करके सूर्यदेवने कहा—'जगत्पते! आप सम्पूर्ण विश्वके पालक तथा समस्त जगत्के अन्तरात्मा हैं। जगत्पूज्य माधव! क्या इस काशीपुरीमें आपके लिये भी कोई पूजनीय है? यह समस्त संसार आपसे ही प्रकट होता और आपमें ही लयको प्राप्त होता है। आप ही सम्पूर्ण विश्वके पालक हैं। नाथ! समस्त संसारका सन्ताप दूर करनेवाले आप यह किसकी पूजा कर रहे हैं? आपके इस आश्चर्ययुक्त कार्यको देखकर ही मैं आपके समीप आया हूँ।'

सहस्रों किरणोंसे सुशोभित श्रीसूर्यदेवका यह वचन सुनकर भगवान् विष्णुने हाथके संकेतसे उन्हें मना किया कि 'जोरसे न बोलो।' तत्पश्चात् श्रीसूर्यको समझाते हुए कहा—'इस काशीपुरीमें समस्त कारणोंके कारणभूत एकमात्र देवदेव, नीलकण्ठ, उमानाथ महादेवजी ही पूजनीय हैं। जन्म-मृत्यु और जराका नाश करनेवाले एकमात्र मृत्युंजय ही पूज्य देवता हैं। राजा श्वेत भगवान् मृत्युंजयकी पूजा करके स्वयं भी मृत्युंजय हो गये थे। कालके भी काल महाकालकी आराधना करके भृंगीने भी कालपर विजय पायी। मृत्युंजयकी पूजा करनेवाले शिलादपुत्र नन्दीको भी मृत्युने छोड़ दिया है। जिन्होंने लीलापूर्वक एक ही बाणके प्रहारसे त्रिपुरासुरपर विजय पायी, उन भगवान् भूतनाथकी आराधना करके कौन पुरुष पूजनीय नहीं हो सकता। वे भगवान् शिव तीनों लोकोंपर विजय पानेवाले सबके सार तत्त्व हैं; उनकी उत्तम आराधना कौन नहीं करेगा। जिनके नेत्रोंकी पलकके संकोचमात्रसे सम्पूर्ण जगत्का संकोच (प्रलय) हो जाता है और जिनके नेत्रोंके खुलनेसे ही समस्त संसारकी सृष्टि होती है, वे भगवान् शिव किसके परम पूजनीय नहीं हैं। यहाँ भगवान् शिवके शिवविग्रहकी पूजा करके मनुष्य शीघ्र ही चारों पुरुषार्थोंको प्राप्त कर लेता है। काशीमें शिवलिंगकी आराधना करके मनुष्य क्षणभरमें सौ जन्मोंके संचित पाप-समूहको भी त्याग देता है। सूर्य! तुम भी अपने महान् तेजको बढ़ानेवाली परम शोभा-सम्पत्तिकी प्राप्तिके लिये भगवान् महेश्वरके श्रीविग्रहकी पूजा करो।'

भगवान् विष्णुका यह वचन सुनकर श्रीसूर्यदेव स्फटिक मणिका शिवलिंग बनाकर आज भी इसकी पूजा करते हैं। वे भगवान् केशवको गुरु मानकर उनके उत्तर भागमें आज भी स्थित हैं। इसीलिये वे केशवादित्यके नामसे विख्यात हैं। वे काशीमें अपने भक्तोंके अज्ञानमय अन्धकारको दूर करते हैं और पूजित होनेसे मनोवांछित फल देते हैं। श्रेष्ठ मनुष्य काशीमें केशवादित्यकी आराधना करके उस परम ज्ञानको पा लेता है, जिससे मोक्षकी प्राप्ति होती है। वहाँ पादोदकतीर्थमें स्नान, सन्ध्या और तर्पण आदि करके जो केशवादित्यका दर्शन करता है, वह जन्मभरके पातकोंसे छूट जाता है। अगस्त्य! यदि माघमासकी रथसप्तमी (अचला सप्तमी)-को रविवारका योग प्राप्त हो तो आदि-केशवके समीप पादोदकतीर्थमें प्रातःकाल स्नान करके केशवादित्यकी पूजा करनेसे मनुष्य सात जन्मोंके पातकोंसे तत्काल मुक्त हो जाता है। सप्तमीकी अधिष्ठात्री देवीसे यह प्रार्थना करे—'मैंने पहलेके सात जन्मोंमें जन्मभर जो-जो पातक किये हैं, उन सबको तथा मेरे रोग और शोकको भी माघमासकी सप्तमी नष्ट कर दे। हे माघकी सप्तमी! इस जन्मके किये हुए, दूसरे जन्मोंके किये हुए, मनसे, वाणीसे और शरीरसे किये हुए, जानकर या अनजानमें किये हुए—इन सात प्रकारके पापोंको, जो सात रोगोंसे युक्त हैं, तुम आजके स्नानसे हर लो।' इस प्रकार तीन मन्त्रोंका जप (मन्त्रार्थकी भावना) करके मनुष्य पादोदकतीर्थमें स्नान करे। तत्पश्चात् श्रीकेशवादित्यका दर्शन करके वह क्षणभरमें पापमुक्त हो जाता है। केशवादित्यके माहात्म्यका श्रद्धापूर्वक श्रवण करनेवाला मनुष्य पापसे लिप्त नहीं होता और भगवान् शिवकी भक्ति पा लेता है।

मुने! इसके पश्चात् अब विमलादित्यका उत्तम माहात्म्य सुनो। काशीके परम सुन्दर हरिकेश-

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

वनमें भगवान् विमलादित्य विराजमान हैं। प्राचीन कालकी बात है, उच्च देशमें कोई विमल नामक क्षत्रिय था। यद्यपि वह निर्मल मार्ग (सदाचार)-में ही स्थित था, तो भी पूर्वजन्मके किसी कर्मके योगसे उसको कोढ़का रोग हो गया। उसने स्त्री, गृह और धन सबका परित्याग करके काशीमें आकर सूर्यदेवकी आराधना की। वह विधिपूर्वक अर्घ्य देता और सूर्यदेवता-सम्बन्धी स्तोत्रोंका जप करता था। इस प्रकार आराधना करनेवाले विमलपर प्रसन्न हो भगवान् सूर्य उसे वर देनेको उद्यत हुए

और बोले—'विमल! तुम्हारा यह कुष्ठरोग दूर हो जाय, इसके सिवा तुम कोई और भी वर माँगो।' तब विमलने प्रणाम करके कहा—'भगवन्! आप सम्पूर्ण जगत्के नेत्र हैं। जो लोग आपमें भक्ति रखते हों, उनके कुलमें कभी कोई कोढ़ी न हो। इतना ही नहीं, उन्हें अन्य प्रकारके रोग भी न हों और उनके घरमें कभी दरिद्रता न रहे। आपके भक्तजनोंके मनमें कभी किसी प्रकारका सन्ताप न हो।'

भगवान् सूर्यने कहा—महाप्राज्ञ! ऐसा ही होगा, इसके सिवा दूसरा भी उत्तम वर तुम्हें दिया जाता है, सुनो। तुमने काशीमें मेरी जिस मूर्तिका पूजन किया है, उसका सान्निध्य मैं कभी नहीं छोड़ूँगा, यह प्रतिमा तुम्हारे ही नामसे विख्यात होगी। इसका नाम विमलादित्य होगा। यह प्रतिमा सदा भक्तोंको वर देनेवाली तथा सब रोगोंका नाश और समस्त पापोंका संहार करनेवाली होगी।

ऐसा वरदान दे भगवान् सूर्य वहीं अन्तर्धान हो गये। विमल भी निर्मल-शरीर होकर अपने घर चला गया। इस प्रकार काशीमें विमलादित्य सबका कल्याण प्रदान करनेवाले हैं। उनके दर्शनमात्रसे कोढ़का रोग नष्ट हो जाता है। जो मनुष्य विमलादित्यकी इस माहात्म्य-कथाको सुनता है, वह निर्मल शुद्धिको प्राप्त होता है और उसके मनकी मैल धुल जाती है।

भगवान् विश्वनाथके दक्षिण भागमें गंगादित्य हैं, उनके दर्शनमात्रसे मनुष्य यहाँ शुद्धिको प्राप्त होता है। जब राजा भगीरथको आगे करके गंगाजी काशीपुरीमें आयीं, उस समय भगवान् सूर्य गंगाजीकी स्तुति करनेके लिये वहीं स्थित हुए। इस समय भी वे गंगाजीको अपने सम्मुख करके दिन-रात उनकी स्तुति करते रहते हैं और प्रसन्नचित्त हो गंगाजीके भक्तोंको वरदान देते हैं। श्रेष्ठ मनुष्य काशीमें गंगादित्यकी आराधना करके कभी दुर्गतिको नहीं पाता और न रोगका ही भागी होता है।

महाभाग! अब यमादित्यके प्रकट होनेकी कथा सुनो। यमेशसे पश्चिम और वीरेशसे पूर्वकी दिशामें यमादित्यकी स्थिति है, उनका दर्शन कर लेनेपर मनुष्य कभी यमलोकको नहीं देखता। पूर्वकालमें यमने यमतीर्थमें बड़ी भारी निर्मल तपस्या करके भक्तोंके सिद्धिदाता यमेश और यमादित्यको स्थापित किया है। कुम्भज! वहाँ साक्षात् यमने आदित्यकी स्थापना की है, इसलिये वे 'यमादित्य' कहलाते हैं। यमादित्य जीवोंकी यमयातनाको हर लेते हैं। जो यमतीर्थमें स्नान करके यमके द्वारा स्थापित यमेश्वर और यमादित्यको नमस्कार करता है, वह कभी यमलोकको नहीं

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

देखता। चतुर्दशी तिथि, भरणी नक्षत्र और मंगलवारका योग होनेपर यमतीर्थमें स्नान, तर्पण और पिण्डदान करके मनुष्य पितरोंके ऋणसे मुक्त हो जाता है। नरकनिवासी पितर सदा यह अभिलाषा करते हैं कि 'मंगल, भरणी और चतुर्दशीका उत्तम योग आनेपर क्या कोई हमारे कुलका परम बुद्धिमान् मनुष्य ऐसा होगा जो काशीपुरीके भीतर यमतीर्थमें स्नान करके हमारी मुक्तिके लिये तिलसहित तर्पण करेगा।' यमतीर्थमें पितरोंका श्राद्ध, यमेश्वरका दर्शन-पूजन तथा यमादित्यको नमस्कार करके मनुष्य पितरोंके ऋणसे मुक्त हो जाता है।

मुने! इस प्रकार तुम्हें काशीके बारह आदित्योंका परिचय दिया गया जो पापोंका नाश करनेवाले हैं। इन सबकी उत्पत्ति या प्राकट्यकी कथा सुनकर मनुष्य कभी नरकमें नहीं पड़ता।

ब्रह्माजीका दिवोदासकी सहायतासे काशीमें यज्ञ करना और दशाश्वमेधतीर्थकी महिमा

स्कन्दजी कहते हैं—मुने! जब अंशुमाली सूर्य त्रिभुवनमोहिनी काशीपुरीको चले गये, तब मन्दराचल पर्वतपर विराजमान भगवान् शिव पुनः इस प्रकार विचार करने लगे—'अहो! अभीतक वहाँसे लौटकर न तो योगिनियाँ आयीं और न अबतक सूर्यदेव ही आये। काशीका समाचार भी मेरे लिये अत्यन्त दुर्लभ हो गया, यह बड़े आश्चर्यकी बात है। अब काशीकी वार्ता जाननेके लिये किसको यहाँसे भेजूँ? वहाँकी बातोंको ठीक-ठीक जाननेमें ब्रह्माजी ही समर्थ हैं।' यह विचारकर ब्रह्माजीको बुलाकर महादेवजीने कहा—'कमलोद्भव! मैंने काशीका समाचार जाननेके लिये पहले तो योगिनियोंको भेजा था, फिर सूर्यदेवको भी प्रस्थापित किया था, किंतु अभीतक वे वहाँसे लौट नहीं रहे हैं। अतः अब आप जाइये, आपका मार्ग कल्याणमय एवं उसका भविष्य मंगलमय हो।'

भगवान् शिवकी यह आज्ञा शिरोधार्य करके ब्रह्माजी काशीपुरीको गये। काशीका दर्शन करके ब्रह्माजीका मन हर्षोल्लाससे भर गया। वे वृद्ध ब्राह्मणका रूप धारण करके राजा दिवोदाससे मिले और हाथमें जल और अक्षत लेकर राजाके लिये स्वस्तिवाचन किया। राजाने उनके चरणोंमें प्रणाम किया। राजा दिवोदासने अभ्युत्थान और आसन आदिके द्वारा मुनिका यथावत् सत्कार किया और उनके शुभागमनका कारण पूछा।

तब ब्राह्मणने कहा—राजन्! मैं बहुत समय पहलेका पुराना हूँ, दीर्घकालसे यहाँ रहता हूँ। तुम मुझे नहीं जानते, परंतु मैं तुम्हें अच्छी तरह जानता हूँ। तुम्हारा पहला नाम रिपुंजय है। मैंने सैकड़ों ऐसे राजा देखे हैं जो छहों* शत्रुओंको जीत चुके थे। सुशील, सत्त्वसम्पन्न, वेद-शास्त्रोंके पारंगत विद्वान्, राजनीतिकुशल, दया और उदारतामें निपुण, सत्यव्रतपरायण, पृथ्वीके समान क्षमाशील तथा समुद्रसे भी अधिक गम्भीर थे। परंतु राजर्षे! तुम्हारे भीतर जो परम पवित्र दो-तीन सद्गुण हैं, वे उन राजाओंमें प्रायः मुझे देखनेको नहीं मिले हैं। तुम प्रजाजनोंको अपने कुटुम्बके लोगोंकी भाँति मानते हो। ब्राह्मण तुम्हारे देवता हैं और तुम बड़े-बड़े तपस्वी लोगोंके तपमें सहायक होते हो। ये बातें जैसी तुम्हारे भीतर हैं, वैसी औरोंमें नहीं देखी जातीं। अतः अन्य राजा तुम्हारे समान नहीं हैं। दिवोदास! तुम अपने सद्गुणोंके कारण धन्य हो, मान्य हो तथा सत्पुरुषोंके द्वारा भी आदरणीय हो। तुम्हारे डरसे देवता भी कुमार्गमें

* काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य—ये छः शत्रु हैं। बिना जीते हुए पाँच ज्ञानेन्द्रियोंसहित मनको भी छः शत्रुओंके समान माना गया है।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

जानेका साहस नहीं करते। हम धन आदिकी कामनाओंसे रहित ब्राह्मण हैं, हमें किसीकी स्तुति-प्रशंसासे क्या प्रयोजन है। किंतु क्या करें, तुम्हारे सद्‌गुण ही हम-जैसे लोगोंको भी स्तुतिमें लगा देते हैं। राजन्! मैं इस समय यहाँ यज्ञ करना चाहता हूँ और इस कार्यमें तुम्हें सहायक बनाना चाहता हूँ। तुम्हारी यह राजधानी कर्मभूमिमें सबसे अधिक उत्तम है। न्याय और सन्मार्गपर चलनेवाले पुरुषोंद्वारा जो धन संचय किया गया हो, उसका काशीमें सद्धर्मके कार्यमें उपयोग करना चाहिये; अन्यथा वह धन क्लेशका ही कारण होता है। भूपाल! सबको ज्ञान प्रदान करनेवाले त्रिनेत्रधारी शिवको छोड़कर दूसरा कोई भी काशीकी उत्तम महिमाको यथार्थ रूपसे नहीं जानता। मैं समझता हूँ, तुम परम धन्य हो जो कि सैकड़ों जन्मोंके पुण्यसे काशीपुरीका पालन कर रहे हो। 'काशी तीनों लोकोंका सार है, काशी तीनों वेदोंका सार है, काशी त्रिवर्ग—धर्म, अर्थ और कामसे परे सब पुरुषार्थोंका सारभूत मोक्ष है।' ऐसा महर्षियोंने निर्णय किया है। भगवान् विश्वनाथके अनुग्रहसे ही तुम्हारे द्वारा इस पुरीका पालन हो रहा है।

इतना कहकर जब ब्राह्मण देवता चुप हो गये, तब राजाने इस प्रकार उत्तर दिया—विप्रवर! मैंने आपकी कही हुई सब बातें हृदयमें धारण कर ली है। आप यज्ञ करनेके इच्छुक हैं, अतः आपकी सहायताके कार्यमें मैं आपका दास हूँ। आप मेरे कोषागारसे समस्त यज्ञ-सामग्रियोंको ले जायँ और एकाग्रचित्त होकर यज्ञ करें। ब्रह्मन्! मैं जो राज्य करता हूँ, उसमें थोड़ा-सा भी मेरा स्वार्थ नहीं है। मैं तो अपने पुत्र, कलत्र तथा शरीरद्वारा भी परोपकारके लिये ही यत्न करता हूँ। मनीषी महर्षियोंने राजाओंके लिये प्रजावर्गका यथावत् पालन ही एकमात्र महान् धर्म बताया है। द्विजोत्तम! मैं ब्राह्मणोंके मुखमें जो हवन करता हूँ, उसे यज्ञकर्मोंसे भी बढ़कर मानता हूँ। यह मेरे लिये बड़े आनन्दकी बात है कि आप मेरे घर कुछ माँगनेके लिये आये हैं।

धर्मात्मा राजा दिवोदासका यह वचन सुनकर ब्रह्माजी अपने मनमें बहुत सन्तुष्ट हुए। उन्होंने यज्ञ-सामग्रियोंका संग्रह किया और राजर्षि दिवोदासकी सहायता पाकर काशीमें दस अश्वमेध नामक महायज्ञोंद्वारा भगवान्‌का यजन किया। तभीसे वहाँ वाराणसीपुरीमें मंगलदायक दशाश्वमेध नामक तीर्थ प्रकट हुआ, जो सम्पूर्ण जगत्में विख्यात है। कुम्भज! पहले उस तीर्थका नाम 'रुद्रसरोवर' था, पीछेसे वह दशाश्वमेधके नामसे प्रसिद्ध हुआ। उसके बाद भगीरथके साथ स्वर्गलोककी नदी भागीरथी गंगाका वहाँ आगमन हुआ, इससे वह तीर्थ अत्यन्त पुण्यजनक हो गया। ब्रह्माजी वहाँ दशाश्वमेधेश्वर लिंगकी स्थापना करके स्थित हो गये। धर्मानुरागी राजा दिवोदासमें कोई भी छिद्र उन्हें नहीं मिला, अतः वे महादेवजीके सम्मुख जाकर क्या कहते। उस क्षेत्रके प्रभावको जानकर भगवान् विश्वनाथका ध्यान करते हुए ब्रह्मेश्वरकी स्थापना करके ब्रह्माजी भी काशीपुरीमें ही रह गये।

अगस्त्य! सब तीर्थोंमें उत्तम दशाश्वमेध है। वहाँ जाकर जो कुछ भी पुण्यकर्म किया जाता है, वह अक्षय कहा गया है। स्नान, दान, जप, होम, स्वाध्याय, देवपूजा, सन्ध्योपासन, तर्पण, श्राद्ध तथा पितरोंकी पूजा आदि सभी सत्कर्म वहाँ सफल एवं अक्षय होते हैं। जो श्रेष्ठ मनुष्य दशाश्वमेधतीर्थमें एक बार स्नान करके दशाश्वमेधेश्वरका दर्शन करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। ज्येष्ठ मासके शुक्ल पक्षकी प्रतिपदा तिथिको दशाश्वमेधतीर्थमें स्नान करके मनुष्य जन्मभरके पातकोंसे मुक्त हो जाता है। ज्येष्ठ शुक्ला द्वितीयाको रुद्रसरोवरमें स्नान करनेसे मनुष्यके दो जन्मोंके पाप तत्काल नष्ट हो जाते हैं। इसी प्रकार शुक्ल पक्षकी दशमीतक प्रत्येक तिथिमें क्रमशः स्नान करनेवाला मनुष्य प्रत्येक जन्मके पापको त्याग देता है। दस जन्मोंका पाप हर लेनेवाली गंगादशहरा तिथिको

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

दशाश्वमेधतीर्थमें स्नान करनेवाला पुरुष यम-यातनाको कभी नहीं देखता। जो मनुष्य भक्तिपूर्वक गंगादशहराके दिन दशाश्वमेधतीर्थमें स्नान करके दशाश्वमेधेश्वर नामक उत्तम लिंगका पूजन करता है, उसको गर्भदशा छू भी नहीं सकती। ज्येष्ठमासके शुक्ल पक्षमें वहाँकी वार्षिक यात्रा करके पंद्रह दिनोंतक रुद्रसरोवरमें स्नान करनेवाला पुरुष कभी विघ्नोंसे तिरस्कृत नहीं होता।

महाराज दिवोदासने यज्ञ पूर्ण करनेवाले वृद्ध ब्राह्मणरूपधारी ब्रह्माजीके लिये वहाँ एक ब्रह्मशाला बनवा दी। उसीमें वेद-मन्त्रोंके उच्चारणकी ध्वनिसे आकाशको गुँजाते हुए ब्रह्माजीने निवास किया।

पिशाचमोचनतीर्थकी महिमा

स्कन्दजी कहते हैं—अगस्त्य! भगवान् शिवके अत्यन्त प्रिय कपर्दी नामक गणाधीशने पित्रीश्वरलिंगके उत्तरभागमें एक शिवलिंग स्थापित किया और उसके आगे 'विमलोदक' नामसे प्रसिद्ध एक कुण्ड भी खुदवाया, जिसके जलका स्पर्श करनेमात्रसे मनुष्य निर्मल हो जाता है। प्राचीन त्रेतायुगकी बात है। शिवभक्तोंमें श्रेष्ठ वाल्मीकि नामक एक मुनि थे जो काशीमें प्रतिदिन कपर्दीश्वरकी पूजा करते हुए तपस्या करते थे। एक दिन हेमन्तके मार्गशीर्ष मासमें तपस्वी वाल्मीकिने मध्याह्नके समय विमलोदक नामवाले महातीर्थमें स्नान करके सिरसे लेकर पैरतक भस्म लगाया। फिर कपर्दीश्वरके दक्षिणभागमें बैठकर मध्याह्नकालोचित नित्य-कर्म प्रारम्भ किया। मस्तकपर भस्म रमाये हुए उन्होंने आध्यात्मिक सन्ध्याका चिन्तन किया और पंचाक्षर मन्त्र-(**नमः शिवाय**) का जप करते हुए जटाजूटधारी भगवान् शिवका ध्यान किया। तत्पश्चात् संहार-क्रम (वामावर्त)-से परिक्रमा करके तीन बार उच्चस्वरसे **'हुडुम्' 'हुडुम्' 'हुडुम्'** का उच्चारण किया। तदनन्तर प्रणवको ही सामने रखकर उसका षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पंचम, धैवत और निषाद—इन स्वरोंके भेदसे गान किया। गान करके आनन्दपूर्वक हस्तसंचालन करते हुए नृत्य भी किया। अंग-संचालनद्वारा मनोहर ढंगसे मण्डलयुक्त नृत्य करके

वे महातपस्वी कुछ क्षणोंतक उस सरोवरके ही तटपर बैठे रहे। इसी समय उन्होंने अत्यन्त विकराल आकृतिवाले एक भयानक पिशाचको देखा। उसकी आँखें कुछ-कुछ पीली थीं। उस प्रेतको देखकर बूढ़े तपस्वीने धैर्यपूर्वक पूछा—'तू कौन है?' तपस्वीका यह प्रेमपूर्वक वचन सुनकर पिशाचने हाथ जोड़कर कहा—'भगवन्! गोदावरी नदीके तटपर प्रतिष्ठान नामक एक देश है। वहाँ मैं तीर्थोंमें दान लेनेकी रुचि रखनेवाला एक ब्राह्मण था। उसी कर्मके फलस्वरूप मैं ऐसी दुर्गतिको प्राप्त हुआ हूँ। जल और वृक्षसे रहित महाभयंकर मरुस्थलमें निवास करते हुए मुझे बहुत समय

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

बीत गया है। वहाँ मैं भूख-प्याससे पीड़ित होकर सर्दी और गरमीका कष्ट भोगता रहा हूँ। मरुभूमिमें दीर्घकाल व्यतीत होनेके पश्चात् एक दिन मैंने किसी ब्राह्मणके पुत्रको देखा। उसने धोतीकी लाँग नहीं बाँध रखी थी। वह अपवित्र और सन्ध्याकर्मसे हीन था। उसे देखकर उसीके द्वारा कुछ भोग मिलनेकी आशासे मैं उसके शरीरमें समा गया। मुने! वह ब्राह्मण धनके लोभसे किसी वणिक्के साथ इस पुण्यमयी पुरीमें आ गया। मुनिश्रेष्ठ! इस पुरीके भीतर उसके प्रवेश करते ही मैं और उसके पाप क्षणभरमें एक ही साथ शरीरसे बाहर निकल गये। दयालो! इस समय सहसा शिव नामकी ध्वनि कानमें पड़नेसे मेरा पाप कुछ क्षीण हो गया है, इसलिये मैं काशीके अन्तर्गृहकी सीमामें प्रवेश कर पाया हूँ। अब आपका दर्शन हो जानेसे मैं अपनेको बड़ा भाग्यवान् समझता हूँ। आप कृपा करके मुझे इस भयंकर योनिसे निकालिये। मेरा उद्धार कीजिये।'

प्रेतका यह वचन सुनकर उन दयालु तपस्वीने इस प्रकार विचार किया—'अपना पेट तो पशु, पक्षी, मृग आदि सभी जीव भर लेते हैं। संसारमें वही धन्य है, जो सदा दूसरोंका उपकार करनेके लिये उद्यत रहता है। अतः आज मैं अपनी तपस्यासे मेरी शरणमें आये हुए इस पापातुर प्रेतका अवश्य उद्धार करूँगा।' इस प्रकार मन-ही-मन निश्चय करके उन साधुशिरोमणि तपस्वीने पिशाचसे कहा—'अरे ओ पिशाच! तू इस विमलोद नामक सरोवरमें स्नान कर ले। इस तीर्थके प्रभावसे तथा भगवान् कपर्दीश्वरके दर्शनसे तेरी पिशाचता आज क्षणभरमें नष्ट हो जायगी।'

यह सुनकर प्रेतने नमस्कारपूर्वक कहा—मुनिश्रेष्ठ! पानी तो मैं पीनेके लिये भी नहीं पाता, स्नान करनेकी तो बात ही क्या है? मेरे लिये तो यहाँके जलका स्पर्श भी दुर्लभ है।

तपस्वीने कहा—तू यह विभूति ले और अपने ललाटमें धारण कर, फिर तुझे कहीं कोई भी बाधा नहीं है। पापीका भी विभूतिसे उज्ज्वल ललाट देखकर यमराजके दूत पाशुपतास्त्रसे भयभीत होकर भाग जाते हैं।

ऐसा कहकर मुनिने भस्म ले प्रेतके हाथमें दे दिया और उसने भी आदरपूर्वक लेकर उसे ललाटमें लगा लिया। पिशाचको विभूति धारण किये देख जलके देवताओंने उसे जलमें स्नान करनेसे नहीं रोका। स्नान और जलपान करके वह ज्यों ही जलाशयसे बाहर निकला त्यों ही उसकी पिशाचता दूर हो गयी और उसने दिव्य शरीर धारण कर लिया। उसी समय दिव्य विमानपर बैठकर वह आकाशमार्गको प्राप्त हुआ। जाते समय उसने तपस्वीको नमस्कार करके उच्चस्वरसे कहा—'भगवन्! आपने मुझे इस अत्यन्त निन्दित पिशाच-योनिसे मुक्त किया है, इसलिये आजसे इस तीर्थका नाम पिशाचमोचन तीर्थ होगा। यहाँ स्नान करनेसे यह तीर्थ दूसरोंके भी पिशाचभावको हर लेगा। जो मनुष्य इस परम पुण्यमय तीर्थमें स्नान और सन्ध्या-तर्पण करके यहाँ पिण्डदान करेंगे, उनके पिता-पितामह यदि दैववश पिशाच-योनिको प्राप्त हुए हों तो उस योनिका परित्याग करके परम गतिको प्राप्त होंगे। आज मार्गशीर्ष मासके शुक्ल पक्षकी चतुर्दशी तिथि है, आजके दिन यहाँ स्नान आदि करना चाहिये। आजका स्नान पिशाच-योनिसे सर्वथा मुक्त करनेवाला है। जो लोग इस तिथिपर यहाँकी वार्षिक यात्रा करेंगे, वे तीर्थमें दान लेनेके पापसे मुक्त हो जायँगे।'

यों कहकर उस दिव्य पुरुषने बार-बार तपोधनको नमस्कार किया और दिव्य गति प्राप्त कर ली। तपस्वी वाल्मीकि भी उस महान् आश्चर्यको देखकर कपर्दीश्वरकी आराधनामें लगे रहे और समयानुसार मोक्ष प्राप्त कर लिया। महामुने! तबसे लेकर यह सब पापोंका अपहरण करनेवाला पिशाचमोचन तीर्थ काशीमें अत्यन्त प्रसिद्धिको प्राप्त हुआ।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

गणेशजीका काशीमें जाना और लोकप्रिय होना, गणेशजीका स्तवन

स्कन्दजी कहते हैं—मुने! तदनन्तर भगवान् शिवकी आज्ञा लेकर उनके काशीमें आनेके उपायका विचार करते हुए गणेशजी मन्दराचल पर्वतसे चले और ब्राह्मणका स्वरूप धारण करके काशीपुरीमें जा पहुँचे। वे बूढ़े ज्योतिषी बनकर प्रत्येक घरके भीतर जाते और नगरनिवासियोंको प्रसन्न करते थे। रनिवासमें प्रवेश करके अपनी दिव्य दृष्टिसे देखी हुई वस्तुको बता-बताकर स्त्रियोंके विश्वासपात्र हो गये। एक दिन अवसर पाकर महाराज दिवोदासकी रानी लीलावतीने महाराजसे उनके सम्बन्धमें निवेदन किया—'राजन्! एक बड़े विद्वान् एवं सुवक्ता वृद्ध ब्राह्मण आये हैं, जो अपने गुणोंके कारण बहुत बढ़े-चढ़े हैं। वे वेदोंकी मूर्तिमान् निधि हैं, आपको भी उनका दर्शन करना चाहिये।' राजाने प्रातःकाल उन वृद्ध ब्राह्मणको बुलवाया और भक्तिपूर्वक उत्तम वस्त्र आदि देकर उनका यथावत् सत्कार किया। तदनन्तर एकान्तमें राजाने अपने हृदयमें स्थित प्रश्नको उनसे इस प्रकार पूछा—'ब्रह्मन्! निश्चय ही आप एक श्रेष्ठ द्विज प्रतीत होते हैं। आपकी बुद्धि जिस प्रकार तत्त्वज्ञानसे सम्पन्न है, वैसी दूसरेकी नहीं है, ऐसी मेरी समझ है। इस समय मेरा मन सब कर्मोंसे विरक्त-सा हो रहा है; अतः आप भलीभाँति विचार करके मेरे शुभ भविष्यका वर्णन करें।'

ब्राह्मणने कहा—राजन्! आजके अठारहवें दिन कोई उत्तर दिशाका ब्राह्मण आकर निश्चय ही तुम्हें उपदेश करेगा। तुम्हें बिना विचारे उसके वचनको मानना और उसका पालन करना चाहिये। महामते! ऐसा करनेसे तुम्हारा सब मनोरथ सिद्ध होगा।

ऐसा कहकर राजाकी अनुमति ले वे श्रेष्ठ ब्राह्मण अपने आश्रमको चले गये। इस प्रकार विघ्नविजयी गणेशजीने समस्त काशीपुरीको अपने वशमें कर लिया और ऐसा करके उन्होंने अपनेको कृतकृत्य-सा माना। जब दिवोदास काशीके राजा नहीं थे, उस समय गणेशजीके जो-जो स्थान थे, उन-उन स्थानोंको गणेशजीने अनेक रूप धारण करके पुनः सुशोभित किया।

(गणेशजीकी पूजाके पश्चात् इस प्रकार उनकी स्तुति करे—) भक्तोंके विघ्नका निवारण करनेवाले! आपकी जय हो। विघ्नरहित! विघ्नशमन! आपकी जय हो। सम्पूर्ण गणोंके अधीश्वर! आपकी जय हो। समस्त गणोंके अग्रगण्य! आपकी जय हो। गणोंसे अभिवन्दित चरणारविन्दवाले देव! आपकी जय हो। असंख्य सद्गुणोंसे विभूषित गणेश! आपकी जय हो। सर्वव्यापी सर्वेश्वर तथा समस्त बुद्धियोंके एकमात्र निधान! आपकी जय हो। सम्पूर्ण मायाप्रपंचके ज्ञाता तथा सब कर्मोंमें सबसे प्रथम पूजित देव! आपकी जय हो। सब मंगलोंके लिये भी मंगलस्वरूप तथा सर्व-मंगलकारी गणाधीश! आपकी जय हो। अमंगलकी शान्ति करनेवाले तथा मंगलके हेतुभूत देव! आपकी जय हो। सृष्टिकर्ताओंके वन्दनीय! आपकी जय हो। सिद्धिदायक! आपकी जय हो। सम्पूर्ण सिद्धियोंके एकमात्र निवास-स्थान! आपकी जय हो। महाऋद्धि-सिद्धिके सूचक! आपकी जय हो। समस्त गुणोंका निर्माण करनेवाले, गुणोंसे परे तथा गुणोंद्वारा अग्रगण्य गणेश! आपकी जय हो। गुणवर्णित! सर्वबलाधीश्वर तथा इन्द्रको बल प्रदान करनेवाले गणाध्यक्ष! आपकी जय हो। अनन्त महिमाके आधार तथा पर्वतोंको विदीर्ण करनेवाले गणेश! आपकी जय हो। करुणामय! दिव्यमूर्ते! जो आपको नमस्कार करते हैं, वे भूमण्डलमें सम्पूर्ण पापोंके भाजन होकर भी अन्तमें मोक्षके भागी होते हैं। आप सदैव उनके बड़े-बड़े विघ्नों और उपद्रवोंका निवारण करते हैं तथा उन्हें उनकी रुचिके अनुसार स्वर्ग एवं मोक्ष भी देते हैं। विघ्नराज! जो लोग इस पृथ्वीपर क्षणभर भी आपके कृपाकटाक्षके द्वारा देखे जाते हैं उनके सारे पाप नष्ट हो जाते हैं और उन श्रेष्ठ पुरुषोंपर भगवती लक्ष्मी अपनी

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

कृपादृष्टि करती हैं। प्रणतजनोंके विघ्नका विनाश करनेमें चतुर तथा पार्वतीजीके हृदयकमलको विकसित करनेमें सूर्यस्वरूप गणेश! जो लोग आपकी स्तुति करते हैं, वे इस संसारमें प्रसिद्ध होते हैं। यह कोई अद्भुत बात नहीं है। जो सदा आपके युगल चरणोंकी सेवा करते हैं, वे पुत्र, पौत्र, धन, धान्य और समृद्धिके भागी होते हैं। बहुत-से भृत्य (दास-दासी आदि) उनके चरण-कमलोंकी सेवामें रहते हैं तथा वे राजाओंके उपभोगमें आनेयोग्य निर्मल लक्ष्मीकी प्राप्ति करते हैं। हे परमकारण! आप कारणोंके भी कारण हैं, वेदके विद्वानोंद्वारा सदा एकमात्र आप ही जाननेयोग्य हैं। आप ही वेदवाणीमें अनुसन्धान करनेयोग्य अनिर्वचनीय तत्त्व हैं, यह सम्पूर्ण चराचर जगत् आपके दिव्य स्वरूपका एक अंश है तथा आप वाणीके अविषय हैं। ढुण्ढिराज विनायक! आप समस्त पुरुषार्थोंको ढूँढ़ चुके हैं, इसलिये आपका नाम 'ढुण्ढि' है। आपको सन्तुष्ट किये बिना कौन देहधारी प्राणी इस काशीमें प्रवेश पा सकता है?

भगवान् विष्णुका काशी-गमन, केशव एवं पादोदकतीर्थकी महिमा, धर्मक्षेत्रमें पुण्य-कीर्तिका उपदेश तथा राजा दिवोदासकी निर्वाणप्राप्ति

स्कन्दजी कहते हैं—मुने! जब गणेशजी भी काशीमें आकर विलम्ब करने लगे तब भगवान् शिवने श्रीविष्णुजीकी ओर देखा और बड़े आदरके साथ कहा—'माधव! आप भी वैसा ही न कीजियेगा, जैसा कि पहलेके गये हुए लोगोंने किया है।'

भगवान् विष्णु बोले—गिरीश! इस लोकमें मनुष्य जो कुछ भी थोड़ा या अधिक कर्म करता है वह आपके चरणारविन्दोंके चिन्तनसे ही सिद्ध होता है। आपकी भक्तिरूपी सम्पदासे सम्पन्न हुए हमलोगोंका उद्योग प्रायः सफल ही होता है। शिव! अपनी बुद्धि, बल और पुरुषार्थसे जो कार्य अत्यन्त असाध्य होता है वह भी आपके निरन्तर स्मरणसे भलीभाँति सिद्ध हो जाता है। अतः आप अपनेद्वारा निश्चित किये हुए इस कार्यको सिद्ध हुआ ही जानें।

यों कहकर भगवान् विष्णुने शिवजीकी परिक्रमा की और बार-बार उन्हें प्रणाम करके लक्ष्मीजीके साथ मन्दराचलसे प्रस्थान किया। वहाँ पहुँचकर उन्होंने गंगा तथा वरणा नदीके संगममें हाथ-पाँव धोकर स्नान किया। पीताम्बरधारी श्रीहरिने पहले कल्याण प्रदान करनेवाले अपने दोनों चरण वहाँ धोये थे, इसलिये तभीसे उस तीर्थका नाम 'पादोदक' तीर्थ हो गया। जो मानव उस पादोदकतीर्थमें स्नान करते हैं, उनके सात जन्मोंके पाप नष्ट हो जाते हैं। जो मनुष्य वहाँ तिल और जलसे तर्पण करके पितरोंका श्राद्ध करेगा वह अपने वंशकी इक्कीस पीढ़ियोंको तार देगा। जिसने पादोदकतीर्थमें स्नान किया है, पादोदकतीर्थके जलको पी लिया है तथा पादोदकतीर्थके जलसे पितरोंका तर्पण किया है, ऐसे मनुष्यको कभी नरक छू भी नहीं सकता। जो पादोदकतीर्थके जलको शंखमें रखकर उसके द्वारा नहलाये हुए गोमतीचक्रसहित श्रीशालग्रामके चरणामृतको पान करता है, वह अमृतपदको प्राप्त होता है।

वहाँ लक्ष्मी और गरुड़के साथ नित्यकर्म करके केशवने अपने हाथसे अपनी ही प्रस्तरमय मूर्ति बनायी और समस्त सिद्धियों तथा समृद्धियोंको देनेवाली उस मूर्तिका स्वयं ही पूजन किया। जो मनुष्य केशव नामसे प्रसिद्ध उस परमेश्वरमूर्तिका भलीभाँति पूजन करता है वह वैकुण्ठधामको अपने घरके आँगनमें ही उतरा हुआ समझे। काशीकी सीमामें वह स्थान श्वेतद्वीप कहलाता है। उस केशवमूर्तिकी सेवा करनेवाले मनुष्य श्वेतद्वीपमें ही निवास करते हैं। केशवके आगे क्षीरसागर नामसे प्रसिद्ध दूसरा तीर्थ है, उसमें स्नान और तर्पण आदि कार्य करनेवाला मनुष्य

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

क्षीरसमुद्रके तटपर निवास करता है। वहीं त्रिभुवनवन्दित महालक्ष्मीकी मूर्ति है, उसे भक्तिपूर्वक प्रणाम करनेवाला मनुष्य कभी रोगी नहीं होता। भगवान् केशव उस मूर्तिमें अपने ही व्यापक स्वरूपको समाविष्ट करके पुनः भगवान् शंकरका कार्य सिद्ध करनेके लिये अंशांशसे बाहर निकले और काशीसे कुछ उत्तर जाकर उन चक्रधारी विष्णुने अपने रहनेके लिये एक स्थान निश्चित किया, जो 'धर्मक्षेत्र' (धर्मचक्र स्थान—सारनाथ)-के नामसे प्रसिद्ध है।

तदनन्तर भगवान् लक्ष्मीपतिने परम सुन्दर त्रिभुवन-मोहन रूप धारण किया और गरुड़जी भी अलौकिक रूप धारण करके उनके शिष्य हो गये। वे बड़ी अद्भुत मेधाशक्तिसे सम्पन्न, सब वस्तुओंकी ओरसे निःस्पृह तथा गुरुकी सेवामें तत्पर रहनेवाले थे। उन्होंने अपने हाथके अग्रभागमें एक पुस्तक रख ली थी। भगवान्ने अपना नाम

पुण्यकीर्ति और गरुड़का नाम विनयकीर्ति रखा। पुण्यकीर्तिने विनयकीर्तिको इस प्रकार उपदेश दिया।

पुण्यकीर्ति बोले—महामते विनयकीर्ते! तुमने जो सनातन धर्मके विषयमें प्रश्न किया है वह सब पूर्णरूपसे बतलाता हूँ, तुम ध्यान देकर सुनो। इहलोक और परलोकमें कल्याणकी प्राप्तिके लिये नाना प्रकारके शास्त्रोंका विचार करके महर्षियोंने चार प्रकारके दानोंका उपदेश दिया है। भयभीत पुरुषोंको अभयदान, रोगियोंको औषधदान, विद्यार्थियोंको विद्यादान तथा भूखसे व्याकुल मनुष्योंको अन्नदान देना चाहिये। वासनासहित क्लेशका उच्छेद हो जानेपर विज्ञानकी उपरति (अविद्याकी निवृत्ति) ही मोक्ष है, यह तत्त्वका विचार करनेवाले पुरुषोंको जानना चाहिये। वेदवादियोंके द्वारा यह प्रामाणिक श्रुति पढ़ी जाती है कि '**मा हिंस्यात्सर्वाभूतानि**'—किसी भी प्राणीकी हिंसा नहीं करनी चाहिये।

इस प्रकार पुण्यकीर्तिके धर्मोपदेश करनेपर क्रमशः पुरवासी एक-दूसरेसे सुनकर वहाँ भगवान्के निकट आने लगे। उपदेशका क्रम चालू था—'जबतक यह शरीर स्वस्थ है, जबतक इन्द्रियोंमें शिथिलता नहीं आती और जबतक बुढ़ापा दूर है, तबतक ही परम आनन्द (मोक्ष)-के लिये साधन कर लेना चाहिये। अस्वस्थता, इन्द्रियोंकी विकलता और वृद्धावस्थामें कैसे सुख हो सकता है। अतः परम सुखकी इच्छा रखनेवाले पुरुषोंको याचकोंके लिये अपना शरीर भी दे डालना चाहिये *। शरीर शीघ्र जानेवाला है, सभी संग्रह नष्ट हो जानेवाले हैं, ऐसा समझकर विज्ञ पुरुष इस शरीरके रहते हुए नित्यसुखके लिये साधन करे। अन्तमें यह शरीर कुत्तों और कौओंका भोजन बन जाता है। वेदमें यह सत्य ही कहा गया है कि शरीर अन्तमें भस्म हो जानेवाला है।'

मुने! इधर, विघ्नराज गणेशने दूर रहकर भी शत्रुविजयी राजा दिवोदासके चित्तको राज्यकी ओरसे विरक्त कर दिया। वे अठारह दिनोंकी

* यावत्स्वस्थमिदं वर्ष्म यावन्नेन्द्रियविक्लवः। यावज्जरा च दूरेऽस्ति तावत्सौख्यं प्रसाधयेत्॥
अस्वास्थ्येन्द्रियवैकल्ये वार्धके तु कुतः सुखम्। शरीरमपि दातव्यमर्थिभ्योऽतः सुखेप्सुभिः॥
(स्क० पु०, का० उ० ५८। १५-१६)

279 Skandpuran_Section_29_1_Front In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

अवधिको गिनने लगे और मन-ही-मन सोचने लगे कि 'ब्राह्मण देवता कब आयेंगे जो मुझे उपदेश करेंगे।' इस प्रकार अठारहवाँ दिन प्राप्त होनेपर दोपहरके समय वे पुण्यकीर्ति नामवाले श्रेष्ठ ब्राह्मण ही धर्मक्षेत्रसे राजाके द्वारपर आये। उन्हें दूरसे आते देख उत्कण्ठित हुए नरेशने अपने मनमें मान लिया कि ये मुझे उपदेश देने योग्य गुरु हैं। फिर वे उनके समीप गये और उन्हें बार-बार प्रणाम करके आशीर्वाद ले उन्हें अपने अन्तःपुरमें लिवा ले गये। वहाँ राजाने शास्त्रोक्त विधानसे भलीभाँति उनका पूजन किया और जब वे मार्गकी थकावटसे रहित, स्वस्थ एवं प्रसन्नमुख हो गये तब उन्हें भोजनके लिये नाना प्रकारकी वस्तुएँ भेंट कीं। उन्हें ग्रहण करके जब पुण्यकीर्ति पूर्णतः तृप्त हो गये और सुखपूर्वक आसनपर जा बैठे, तब राजाने कहा—'विप्रवर! मैं राज्यका भार ढोते-ढोते बहुत खिन्न हो गया हूँ, अब उसकी ओरसे वैराग्य-सा हो रहा है। मैं क्या करूँ, कहाँ जाऊँ, कैसे मुझे शान्ति प्राप्त होगी। यह सब सोचते-विचारते मेरा एक मास व्यतीत हो गया। मैंने अपने सगे पुत्रोंकी भाँति प्रजाजनोंका भलीभाँति पालन किया है और प्रतिदिन नाना प्रकारके धन देकर ब्राह्मणोंको तृप्त किया है। राज्यशासन करते समय मेरे द्वारा एक ही अपराध हुआ है, वह यह कि मैंने अपने तपोबलके अभिमानसे सम्पूर्ण देवताओंको तिनकेके समान समझा है। यद्यपि प्रजाके उपकारके लिये ही ऐसा किया है, स्वार्थसिद्धिके लिये नहीं। यह मैं आपसे शपथ खाकर कहता हूँ, मेरे शासनकालमें कोई भी पापवृत्तिका सेवन नहीं करता, सभी लोग धर्मपरायण और सुखी हैं। सबमें उत्तम विद्याका व्यसन है और सब लोग सन्मार्गपर चलनेवाले हैं, तथापि मुझे संसारके सभी भोग ऐसे प्रतीत होते हैं, जैसे एक बारके चबाये हुए अन्नको फिरसे चबाना। यह राज्य भी क्या है? पीसे हुएको पीसना। इसे लेकर क्या करना है। विप्रवर! आप ज्ञानी पुरुष हैं, मुझे कोई ऐसा उपदेश दीजिये, जिससे पुनः गर्भवासका कष्ट न भोगना पड़े। आप जो कुछ कहेंगे, निःसन्देह मैं वही करूँगा। इस समय आपके दर्शनसे मेरी सब इन्द्रियाँ विषयोंकी ओरसे निवृत्त हो गयी हैं और उपरतिका यह उत्तम सुख मुझे प्राप्त हुआ है। इस समय मुझे कोई ऐसा उपाय बताइये जो कर्मबन्धनका नाश करनेमें समर्थ हो।'

स्कन्दजी कहते हैं—राजाका ऐसा कथन सुनकर ब्राह्मणवेषधारी श्रीविष्णु बोले—'महाप्राज्ञ! राजशिरोमणे! मुझे जो कुछ उपदेश करना है वह सब तो तुम्हींने कह दिया। तुम तो पहलेसे ही कृतार्थ हो, मुझसे उपदेश लेकर मुझे सम्मान दे रहे हो। तुमने अपनी उत्तम तपस्याके निर्मल जलसे सम्पूर्ण इन्द्रियोंकी मलिनताको धो डाला है। भूपाल! तुमने जो कुछ कहा है वह सब सत्य है। तुम्हारे समान राजा इस पृथ्वीपर न हुआ है और न होगा। तुममें जो मुमुक्षा (मुक्तिकी इच्छा) जाग्रत् हुई है वह उचित ही है। तुम्हारे इस राज्यमें अधर्मका प्रवेश भी नहीं हुआ है। धर्मज्ञ! तुम्हारे द्वारा धर्ममें लगायी गयी प्रजाने जो धर्मका अनुष्ठान किया है उससे सम्पूर्ण देवता तृप्त हुए हैं। मेरे हृदयमें तुम्हारा एक ही दोष प्रतीत होता है कि तुमने भगवान् विश्वनाथको काशीसे दूर कर दिया है। मेरी समझमें तुम्हारा सबसे महान् अपराध यही है। इस पापकी शान्तिके लिये मैं तुम्हें बहुत उत्तम उपाय बतलाता हूँ। जिसने भगवान् शिवमें भक्ति रखकर यहाँ काशीमें एक शिवलिंगकी भी स्थापना की है, उसने अपनेसहित सम्पूर्ण जगत्की प्रतिष्ठाका पुण्य प्राप्त किया है। इसलिये तुम सर्वथा प्रयत्नपूर्वक शिवलिंगकी स्थापना करो, इससे कृतार्थ हो जाओगे। दिवोदास! तुम्हारे समीप होनेसे हमलोग भी धन्य-धन्य हो गये हैं। इस मर्त्यलोकमें जो तुम्हारा नाम लेते हैं वे भी परम धन्य हैं। राजन्! तुम्हारा मनोरथरूप महान् वृक्ष आज फलित हुआ है, तुम इसी शरीरसे परम पदको प्राप्त होओगे। भगवान् शिवके लिंगमय विग्रहकी स्थापना कर लेनेपर आजसे सातवें दिन

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth 279 Skandpuran_Section_29_1_Back

एक दिव्य विमान तुम्हें शिवधाममें ले जानेके लिये आयेगा। यह काशीपुरीके भलीभाँति सेवनका फल है।'

यह सब सुनकर प्रतापी राजा दिवोदास बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने ब्राह्मणके चरणोंमें बारंबार प्रणाम किया और प्रसन्न होकर कहा—'भगवन्! आपने मुझे संसार-सागरसे पार उतार दिया।' तत्पश्चात् ब्राह्मणवेषधारी विष्णुने भी राजासे पूछकर काशीपुरीका भलीभाँति निरीक्षण करके परम पवित्र पंचनद कुण्ड (पंचगंगा)-को देखा और वहाँ विधिपूर्वक स्नान करके वहीं निवास किया। फिर भगवान् शंकरके शुभागमनकी शीघ्र प्रतीक्षा करते हुए माधवने राजा दिवोदासके वृत्तान्तको जाननेवाले गरुड़जीको वहाँ भेजा।

उधर राजा दिवोदासने भी अपने गुरु विप्रवर पुण्यकीर्तिकी महिमाका बखान करते हुए समस्त प्रजाओं, मन्त्रियों तथा मण्डलेश्वरोंको बुलाया। खजाना, घोड़े और हाथी आदिकी देख-रेखके लिये नियुक्त सब अध्यक्षोंको, अपने पाँच सौ पुत्रोंको, ज्येष्ठ पुत्र समरंजयको, पुरोहित, प्रतीहार, ऋत्विज्, ज्योतिषी, ब्राह्मण, सामन्त, राजकुमार, रसोइये, चिकित्सक तथा नाना कार्योंके लिये आये हुए विदेशी मनुष्योंको भी एकत्र किया। इन सबको हाथ जोड़कर प्रसन्नचित्त राजाने ब्राह्मणकी कही हुई सब बातें कह सुनायीं और यह भी बताया कि 'सात दिनतक और मुझे इस लोकमें रहना है।' सब लोग विषादवश मुर्झाये हुए मुखसे यह आश्चर्यजनक वृत्तान्त सुन रहे थे। राजाने स्वयं ही कुमार समरंजयको राजमहलमें ले जाकर उन्हें राजाके पदपर अभिषिक्त किया। फिर नगर और राज्यके लोगोंको भी दान आदिसे प्रसन्न करके पुण्यात्मा राजाने गंगाके पश्चिम तटपर एक विशाल मन्दिर बनवाया। संग्राममें शत्रुओंको जीतकर उन्होंने जितनी सम्पत्ति संग्रह की थी वह सब लगाकर राजाने शिवमन्दिरका निर्माण कराया। राजाकी सम्पूर्ण सम्पत्ति वहाँ लगा दी गयी थी, इसलिये वह शुभ भूमि 'भूपालश्री' नामसे विख्यात हुई। राजा रिपुंजयने दिवोदासेश्वर लिंगकी स्थापना करके अपने-आपको कृतार्थ माना। तदनन्तर एक दिन विधिपूर्वक उस शिवलिंगकी पूजा और वन्दना करके ज्यों ही स्तुति करना प्रारम्भ किया त्यों ही आकाशसे एक दिव्य विमान उतरा जो हाथमें शूल और खट्वांग धारण करनेवाले शिव-पार्षदोंसे घिरा

हुआ था। तत्पश्चात् उन पार्षदोंने राजाको दिव्य माला, दिव्य गन्ध, दिव्य वस्त्र और दिव्य आभूषणोंसे अलंकृत किया और उन्हें शिवधाममें पहुँचा दिया। तबसे वह तीर्थ 'भूपालश्री' के नामसे प्रसिद्ध हुआ। वहाँ श्राद्ध आदि करके अपनी शक्तिके अनुसार दान देकर जो दिवोदासेश्वरका दर्शन और भक्तिपूर्वक पूजन करता है तथा राजाकी इस कथाको भी सुनता है वह फिर गर्भमें नहीं आता। जहाँ सब पातकोंका नाश करनेवाली दिवोदासकी कथा होती है वहाँ अनावृष्टि और अकालमृत्युका भय नहीं होता। इस माहात्म्य कथाके पाठसे सबके मनोरथ पूर्ण होंगे।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

धर्मनदतीर्थके पंचनद नाम पड़नेका कारण, अग्निविन्दुके द्वारा भगवान् विष्णुकी स्तुति, भगवान्‌के मुखसे पंचनद एवं विन्दुमाधवतीर्थकी महिमाका निरूपण

अगस्त्यजी बोले—पार्वतीनन्दन! आपने यह कहा है कि काशी परम पावन है, उसमें भी भगवान् विष्णुने पंचनद (पंचगंगा) तीर्थको बहुत उत्तम जाना। अतः हम जानना चाहते हैं कि उसका नाम पंचनदतीर्थ क्यों हुआ और वह सब तीर्थोंसे बढ़कर परम पावन क्योंकर हुआ? जो निराकार होकर भी साकार हैं, रूपहीन होते हुए भी रूपवान् हैं, अव्यक्त होकर भी व्यक्त हैं, प्रपंचसे परे होकर भी प्रपंचसेवी हैं, अजन्मा होकर भी जिन्होंने अनेक जन्म धारण किये हैं, नामरहित होकर भी स्पष्ट नाम धारण करनेवाले हैं, आलम्बशून्य होकर भी सबके परम आलम्ब हैं, निर्गुण होकर भी सगुणरूपसे प्रकट हैं और इन्द्रियरहित होकर भी इन्द्रियोंके स्वामी हैं तथा बिना पैरके भी सर्वत्र गमन करनेवाले हैं, उन सर्वव्यापी भगवान् जनार्दनके सर्वात्मभावसे परम उत्तम पंचनदतीर्थमें निवास करनेका क्या कारण है?

स्कन्दजीने कहा—एक समय काशीमें सूर्यदेवने बड़ी भारी तपस्या की। उस तीर्थमें तपस्या करते हुए मयूखादित्य नामक सूर्यकी किरणोंसे बहुत पसीना प्रकट हुआ। वह महास्वेदकी धारा किरणा नामसे प्रसिद्ध पुण्यमयी नदी बन गयी। फिर वह धूतपापा नदीसे मिली। धूतपापासे मिली हुई किरणा स्नानमात्रसे महापापरूपी घोर अन्धकारका नाश कर देती है। तदनन्तर दिलीपनन्दन भगीरथके साथ भागीरथी गंगा यमुना और सरस्वतीके साथ वहाँ आयीं। इस प्रकार उस तीर्थमें किरणा, धूतपापा, पुण्यसलिला सरस्वती, गंगा और यमुना—ये पाँच नदियाँ मिली हुई बतायी गयी हैं। इसीलिये वह त्रिभुवनविख्यात तीर्थ पंचनद (पंचगंगा)-के नामसे प्रसिद्ध है। उसमें डुबकी लगानेवाला मनुष्य पांचभौतिक शरीर नहीं ग्रहण करता। पाँच नदियोंका यह संगम समस्त पापराशिको विदीर्ण करनेवाला है। इसमें स्नान करनेमात्रसे मनुष्य ब्रह्माण्डमण्डलका भेदन करके ऊर्ध्वलोकको चला जाता है। काशीमें पग-पगपर अनेक बड़े-बड़े तीर्थ हैं, किंतु वे पंचनदतीर्थके करोड़वें अंशके समान भी नहीं हैं। पूरे माघभर प्रयाग तीर्थमें भलीभाँति स्नान करनेसे जो फल मिलता है, वह काशीके पंचनदतीर्थमें एक ही दिनके स्नानसे निश्चय ही प्राप्त हो जाता है। पंचनदतीर्थमें स्नान और पितरोंका तर्पण करके भगवान् विन्दुमाधवकी पूजा करनेसे मनुष्य फिर इस संसारमें जन्म नहीं लेता। जिन्होंने पंचनद नामक शुभ तीर्थमें श्राद्ध किया है, उनके पितर अनेक योनियोंमें गये हों तो भी मुक्त हो जाते हैं। वस्त्रसे छाने हुए पंचगंगाके पुण्यजलसे जो अपने इष्टदेवको स्नान कराता है वह महान् फलका भागी होता है। संतोंको महान् सुख देनेवाले पंचनद तीर्थके जलसे अभिषेक जितना प्रिय है उतना स्वर्गके राज्यपर यदि उनका अभिषेक किया जाय तो वह भी प्रिय नहीं है। सत्ययुगमें इस तीर्थका नाम धर्मनद, त्रेतामें धूतपाप, द्वापरमें विन्दुतीर्थ और कलियुगमें पंचनद कहा गया है। पुण्यमय धर्मनदतीर्थमें विधिपूर्वक अग्निको प्रज्वलित करके यदि उसमें एक भी आहुति दी जाय तो कोटि बार होमका फल मिलता है।

पंचनदतीर्थमें स्थित हुए भगवान् लक्ष्मीपतिने गरुड़को शिवजीके आगे सब वृत्तान्त निवेदन करनेके लिये भेजकर वहाँ एक दुर्बल शरीरवाले तपस्वीको देखा। उस तपस्वी मुनिने निकट आकर भगवान्‌का दर्शन किया। भगवान् लक्ष्मीपति गलेमें धारण की हुई वनमालासे सुशोभित थे। उनके पास ही भगवती लक्ष्मी विराजित थीं। चारों हाथोंमें क्रमशः शंख, पद्म, गदा और चक्र चमक रहे थे। वक्षःस्थल कौस्तुभमणिकी प्रभासे उद्भासित हो रहा था। उन्होंने

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

अपने श्रीअंगमें दिव्य रेशमी पीताम्बर धारण कर रखा था। उनकी अंगकान्ति सुन्दर नील कमलके समान श्याम थी। आकृति अत्यन्त स्निग्ध एवं मधुर प्रतीत होती थी। नाभिकुण्डमें कमल शोभा पा रहा था। ओठ बड़े ही सुन्दर और लाल थे, दाँत अनारके दानोंके समान सुन्दर एवं स्वच्छ थे। उनके किरीटकी द्युतिसे आकाश प्रकाशित हो रहा था, देवराज इन्द्र जिनके चरणोंमें मस्तक झुकाते हैं, सनक आदि महात्मा जिनकी स्तुति करते हैं, नारद आदि देवर्षियोंने जिनके महान् अभ्युदयका गीत गाया है तथा प्रह्लाद आदि भगवद्भक्त जिनके मनको सदा आनन्दित करते रहते हैं, जिन्होंने शार्ङ्ग नामक धनुषका दण्ड हाथमें ले रखा है, जो इन्द्रियोंके अविषय, निराकार और कैवल्यस्वरूप परब्रह्म हैं, वे ही प्रभु भक्तोंकी भक्तिके कारण यहाँ पुरुषरूपमें प्रकट हुए थे। जिनके उपनिषद्वर्णित स्वरूपको वेद भी नहीं जानते, ब्रह्मा आदि देवता भी नहीं समझ पाते, उन्हीं भगवान् विष्णुका उन तपस्वी मुनिने अपने नेत्रोंसे प्रत्यक्ष दर्शन किया और आनन्दमें भरकर पृथ्वीपर मस्तक रखकर उन्हें प्रणाम किया। उन महर्षिका नाम अग्निविन्दु था। महातपस्वी अग्निविन्दुने मस्तकके समीप अंजलि बाँधकर भगवान् विष्णुका भलीभाँति स्तवन किया।

अग्निविन्दु बोले—ॐ कमलके समान नेत्रोंवाले भगवान् नारायण! आप बाहर और भीतरको पवित्र करनेवाले हैं, आपको नमस्कार है। आपके सहस्रों मस्तक, सहस्रों नेत्र और सहस्रों पैर हैं। आप अन्तर्यामी पुरुष हैं, आपके दोनों चरण सब प्रकारके द्वन्द्वोंका निवारण करनेवाले हैं। इन्द्रादि देवताओंसे वन्दित विष्णो! आपके उन चरणोंको मैं द्वन्द्व-रहित शान्त बुद्धिसे प्रणाम करता हूँ। बृहस्पतिकी वाणी भी जिनकी स्तुति करनेमें समर्थ नहीं हो पाती, उन भगवान्की स्तुति करनेके लिये इस लोकमें कौन समर्थ हो सकता है। परंतु यहाँ भक्ति ही प्रबल है (भगवान् केवल भक्तिसे ही प्रसन्न हो जाते हैं)। जो भगवान् विष्णु पुरातन ब्रह्मा आदिके भी मन-वाणीके अगोचर हैं, उनकी स्तुति मेरे-जैसे अल्पबुद्धि पुरुष कैसे कर सकते हैं। जहाँ वाणीका प्रवेश नहीं है, मन जिनका मनन नहीं कर सकता, जो मन और वाणीसे सर्वथा परे हैं, उन परमेश्वरकी स्तुति करनेमें कौन समर्थ होगा। छः अंग, पद और क्रमसहित वेद जिनके निःश्वाससे प्रकट हुए हैं, उन भगवान् विष्णुकी महान् महिमाका यथावत् ज्ञान किनको हो सकता है? जिनकी मन-बुद्धि सदा जाग्रत् रहती हैं, वे सनकादि महर्षि अपने हृदयाकाशमें जिनका निरन्तर ध्यान करते रहनेपर भी उन्हें यथार्थरूपसे उपलब्ध नहीं कर पाते, आबालब्रह्मचारी नारद आदि मुनीश्वर जिनके चरित्रको सदा गाते रहते हैं, तो भी सम्यक्रूपसे जिनके तत्त्वका ज्ञान नहीं हो पाता, जो चराचरस्वरूप होकर भी चराचर जगत्से सर्वथा भिन्न हैं, जिनका स्वरूप अत्यन्त सूक्ष्म है, जो अजन्मा, अविकारी, एक, आदिकारण, ब्रह्मा आदिके अगोचर, अजेय, अनन्तशक्ति, निरामय, नित्य, निराकार एवं अचिन्त्यस्वरूप हैं, उन आप परमेश्वरको पूर्णरूपसे कौन जान सकता है? भगवन्, मुरारे, मुकुन्द, मधुसूदन, माधव इत्यादि रूपसे आपके एक-एक नामका भी यदि जप किया जाय तो वह पापियोंके जन्मभरके उपार्जित पापपुंजको उनकी महाविपत्तियोंके साथ हर लेता है और बड़े-बड़े यज्ञोंका महत्त्वपूर्ण फल प्रदान करता है। नारायण, नरकार्णवतारण, दामोदर, मधुसूदन, चतुर्भुज, विश्वम्भर, विरज और जनार्दन इत्यादि नामोंका जप करनेवाले पुरुषोंका इस संसारमें कहाँ जन्म हो सकता है तथा उन्हें कालका भय भी कहाँ प्राप्त हो सकता है*। त्रिविक्रम! आपकी कान्ति

* एकैकमेव तव नाम हरेन्मुरारे जन्मार्जिताघमघिनां च महापदाढ्यम्।
दद्यात्फलं च महितं महतो मखस्य जप्तं मुकुन्द मधुसूदन माधवेति॥
नारायणेति नरकार्णवतारणेति दामोदरेति मधुहेति चतुर्भुजेति।
विश्वम्भरेति विरजेति जनार्दनेति कास्तीह जन्म जपतां क्व कृतान्तभीतिः॥ (स्क० पु०, का० उ० ६०। ३४-३५)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

मेघमालाके समान सुन्दर एवं श्याम है। आपका श्रीअंग विद्युत्‌की भाँति प्रकाशमान पीताम्बरसे आवृत है और आपके नेत्र कमलदलके समान परम सुन्दर हैं। जो लोग आपकी इस छबिका अपने हृदयमें सदा चिन्तन करते हैं, वे भी आपकी अचिन्त्य कान्तिको प्राप्त कर लेते हैं। श्रीवत्सचिह्नसे सुशोभित श्रीहरे! अच्युत! कैटभारे! गोविन्द! गरुड़वाहन! केशव! चक्रपाणे! लक्ष्मीपते! दैत्यसूदन! शार्ङ्गपाणे! आपके प्रति भक्ति रखनेवाले पुरुषोंको कहीं भी भय नहीं प्राप्त होता। कमलनयन! जिनकी जिह्वापर आपका मनोवांछित फल देनेवाला नाम शोभा पाता है, जिनके कानोंमें आपकी कथाके सुमधुर अक्षर पड़ते हैं तथा जिनके हृदयरूपी भित्तिपर आपका स्वरूप अंकित होता है, उनके लिये राजाका पद दुर्लभ नहीं है। प्रभो! ब्रह्माजी आपके युगल चरणारविन्दोंकी वन्दना करते हैं। आप लीलासे ही अनेक प्रकारके लीलामय स्वरूप धारण करते हैं। आप ही क्षणभरमें जगत्‌की सृष्टि, पालन और संहार करते हैं। आप ही विश्व हैं, आप ही विश्वसे परे विश्वनाथ हैं तथा आप ही इस विश्वके बीज (आदिकारण) हैं, मैं आपको नित्य प्रणाम करता हूँ। भगवन्! आप ही स्तुति करनेवाले हैं, आप ही स्तुति हैं और आप ही स्तवन करनेयोग्य देवता हैं। इस जगत्‌में जो कुछ है, वह सब एकमात्र आप ही हैं। विष्णो! आपसे भिन्न किसी भी वस्तुको मैं नहीं जानता, आप संसारबन्धनका नाश करनेवाले हैं, सांसारिक विषयोंके प्रति होनेवाली मेरी तृष्णाका सदाके लिये नाश कीजिये।

इस प्रकार भगवान् विष्णुकी स्तुति करके महातपस्वी अग्निविन्दु चुप हो गये। तब वर देनेवाले भगवान् विष्णुने मुनिसे इस प्रकार कहा—'अग्निविन्दो! मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ, तुम कोई वर माँगो।'

अग्निविन्दु बोले—भगवन्! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो मैं यही माँगता हूँ कि आप

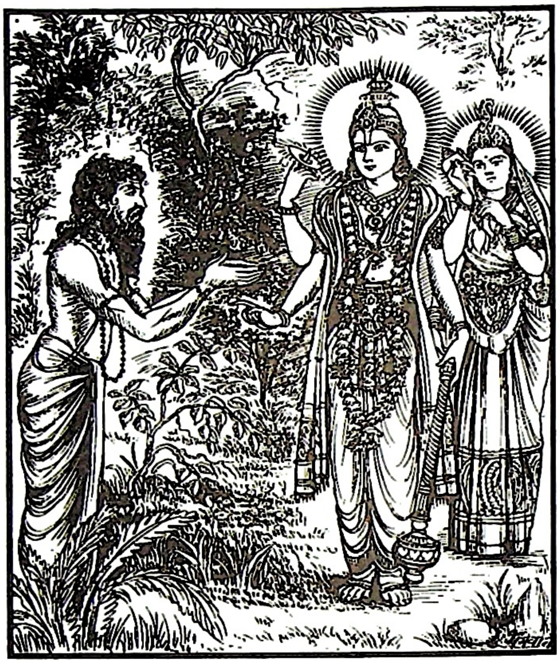

सर्वव्यापी होकर भी समस्त जन्तुओं, विशेषतः मुमुक्षु जीवोंके हितके लिये यहाँ पंचनदतीर्थमें निवास करें। साथ ही मुझे आपके चरणारविन्दोंमें भक्ति प्राप्त हो। इसके सिवा मैं दूसरा कोई वर नहीं माँगता हूँ।

इस प्रकार दूसरोंके उपकारके लिये माँगे हुए अग्निविन्दुके वरको सुनकर भगवान् मधुसूदन बड़े प्रसन्न हुए और बोले—मुनिश्रेष्ठ! तथास्तु, तुम जैसा चाहते हो वैसा ही होगा। मैं काशीपुरीके प्रति भक्ति रखनेवाले मनुष्योंको मुक्तिमार्गका उपदेश करता हुआ इस तीर्थमें निश्चय ही निवास करूँगा। मुझमें तुम्हारी अविचल भक्ति हो। मुने! यह काशीपुरी जबतक यहाँ विद्यमान है, तबतक मैं यहीं रहूँगा।

भगवान् विष्णुका यह वचन सुनकर महामुनि अग्निविन्दु फिर बोले—माधव! इस कल्याणमय पंचनदतीर्थमें मेरे नामसे स्थित होकर आप भक्त और अभक्त सभी जीवोंको सदा मुक्ति प्रदान करें। जो इस पंचनदतीर्थमें स्नान करके यहाँसे जाकर देशान्तरमें भी मृत्युको प्राप्त हों उनको भी आप निश्चय ही मुक्ति दें।

भगवान् विष्णु बोले—मुने! तुमने जो वर

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

माँगा है वह पूर्ण होगा। तुम्हारे नामके आधे भागके साथ और लक्ष्मीजीके नामके साथ मेरा नाम प्रसिद्ध होगा अर्थात् तीनों लोकोंमें विन्दुमाधवके नामसे मेरी ख्याति होगी। मेरा यह नाम काशीमें महान् पापोंका नाश करनेवाला होगा। जो पुण्यात्मा पुरुष इस पुण्यमय पंचनद कुण्डमें सदा मेरी पूजा करेंगे उन्हें संसारका भय कहाँ है। जिनके हृदयमें मुझ पंचनदतीर्थवासी विन्दुमाधवका निवास है, उनके पास सदा धनस्वरूपा लक्ष्मी और मोक्ष-लक्ष्मीका भी वास होता है। अग्निविन्दो! सब पातकोंका नाश करनेवाला यह श्रेष्ठ तीर्थ तुम्हारे नामसे विन्दुतीर्थ कहलायेगा। जो कार्तिक मासमें ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए सूर्योदयसे पहले ही विन्दुतीर्थमें स्नान करेगा उसे यमराजसे कहाँ भय है। मनुष्य मोहवश सहस्रों पाप करके भी यदि कार्तिकमें धर्मनदतीर्थमें स्नान कर लेता है तो क्षणभरमें पापहीन हो जाता है। यह शरीर अपवित्र मल-मूत्र आदिका भण्डार है। इसका एकभक्तव्रत, नक्तव्रत, अयाचितव्रत तथा उपवासव्रतके द्वारा भलीभाँति शोधन करना चाहिये। जो मनुष्य मेरे आगे उज्ज्वल बत्तीके साथ दीप जलाता है वह चराचर जीवोंसहित समस्त त्रिलोकीको अपने लिये प्रकाशमय देखता है। जो कार्तिकमें पंचामृतके कलशोंसे मुझको स्नान कराता है वह पुण्यात्मा एक कल्पतक क्षीरसागरके तटपर निवास करता है। जो मेरी भक्ति करते हुए भी भगवान् विश्वनाथसे द्वेष करते हैं उन्हें मेरा ही द्वेषी जानना चाहिये। वे पिशाचपदको प्राप्त होते हैं। कालभैरवके शासनसे पिशाचयोनिको प्राप्त होकर वे तीस हजार वर्षोंतक दुःखके सागरमें डूबे रहते हैं। तदनन्तर विश्वनाथजीकी कृपासे ही उन्हें मोक्षकी प्राप्ति होती है। जो अधम मनुष्य मनसे भी भगवान् विश्वनाथसे द्वेष रखते हैं, वे काशीसे अन्यत्र मृत्युको प्राप्त होकर सदा अन्धतामिस्र नरकमें निवास करते हैं। मुने! यह काशीपुरी भगवान् पशुपति (शिव) अथवा शिवभक्तोंकी निवासस्थली है। अतः यहाँ परम कल्याणकी इच्छा रखनेवाले पुरुषोंको सदा भगवान् शिवकी सेवा करनी चाहिये। महामुने! प्रथम तो यह आनन्दकानन ही परम पवित्र है, उसमें भी पंचनदतीर्थ अन्य तीर्थोंकी अपेक्षा अधिक पवित्र है और वहाँ भी मेरा सान्निध्य होना उससे भी अधिक पुण्यमय है। इसी अनुमानसे तुम पंचनद-तीर्थकी महिमा सब तीर्थोंसे अधिक उत्तम जानो। पंचनदके इस माहात्म्यको सुनकर बुद्धिमान् मनुष्य बड़े-बड़े पापोंसे मुक्त हो जाता है।

भगवान् विष्णुके मुखसे यह वचन सुनकर महामुनि अग्निविन्दुने श्रीविन्दुमाधवके चरणोंमें प्रणाम करके पुनः पूछा—'भगवन्! काशीमें आपके जितने स्वरूप हैं, उनका वर्णन कीजिये।'

भगवान् विष्णुद्वारा अपने आदिकेशव प्रभृति स्वरूपोंका वर्णन तथा अग्निविन्दुकी मुक्ति

श्रीविन्दुमाधवजी बोले—अग्निविन्दो! पहले तो पादोदकतीर्थमें मैं आदिकेशवके नामसे निवास करता हूँ, ऐसा जानो। पादोदकतीर्थसे दक्षिणमें जो श्वेतद्वीप नामक परम महान् तीर्थ है वहाँ मैं ज्ञानकेशवके नामसे रहकर मनुष्योंको ज्ञान प्रदान करता हूँ। तार्क्ष्यतीर्थमें मैं ही तार्क्ष्यकेशवके नामसे प्रसिद्ध हूँ। वहीं नारदतीर्थमें मैं नारदकेशव कहलाता हूँ। वहीं प्रह्लादतीर्थ भी है, जहाँ मैं प्रह्लादकेशवके नामसे प्रसिद्ध हूँ। भक्त पुरुषोंको वहाँ मेरे स्वरूपकी भलीभाँति आराधना करनी चाहिये। अम्बरीषतीर्थमें मेरा नाम आदित्यकेशव है। दत्तात्रेयेश्वरसे दक्षिण मेरा नाम आदिगदाधर है। वहीं भार्गवतीर्थमें मैं भृगुकेशवके नामसे विख्यात हूँ। वामन नामक मंगलकारी महातीर्थमें मैं वामनकेशव हूँ। नरनारायणतीर्थमें मैं नर-नारायणस्वरूप हूँ। यज्ञवाराह नामक तीर्थमें मेरा

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

नाम यज्ञवाराह है। विदारनारसिंह नामवाले तीर्थमें मैं विदारनारसिंह नामसे ही सेवन करने योग्य हूँ। गोपीगोविन्द नामक तीर्थमें मैं गोपीगोविन्द नामसे ही प्रसिद्ध हूँ। लक्ष्मीनृसिंह नामवाले पावन तीर्थमें मैं लक्ष्मीनृसिंह हूँ। पापहारी शेषतीर्थमें मैं शेषमाधव हूँ। शंखमाधवतीर्थमें मेरा नाम शंखमाधव है। हयग्रीव महातीर्थमें हयग्रीवकेशव नामसे मेरी प्रसिद्धि है। वृद्धिकालेश्वरसे पश्चिम मैं भीष्मकेशव नामसे प्रसिद्ध हूँ। लोलार्कसे उत्तर भागमें मेरा नाम निर्वाणकेशव है। त्रिपुरसुन्दरी देवीसे दक्षिण भागमें जो त्रिभुवनकेशव नामसे मेरी पूजा करेगा वह फिर कभी गर्भमें नहीं आवेगा। ज्ञानवापीके पूर्वभागमें मैं ज्ञानमाधवके नामसे प्रसिद्ध हूँ। विशालाक्षी देवीके समीप मैं श्वेतमाधवके नामसे स्थित हूँ। दशाश्वमेधसे उत्तरमें स्थित मुझ प्रयागमाधवका दर्शन करके मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है।

इस प्रकार जब भगवान् विन्दुमाधव अग्निविन्दु मुनिको काशीमें स्थित अपने विभिन्न स्वरूपोंका परिचय देते हुए माहात्म्य-कथा सुना रहे थे, उसी समय उन्हें गरुड़जी दिखायी दिये। गरुड़ने भगवान्‌को प्रणाम करके प्रसन्नतापूर्वक महादेवजीके शुभागमनकी सूचना दी।

भगवान्‌ने पूछा—महादेवजी कहाँ हैं?

गरुड़ बोले—जिसकी ध्वजापर महान् वृषभका चिह्न शोभा पाता है तथा जिसके रत्नमय ध्वजकी प्रभा इस पृथ्वी और आकाशको परिपूर्ण किये दे रही है, वह यह महादेवजीका रथ आ रहा है। उसका प्रत्यक्ष दर्शन कीजिये। तब श्रीहरिने भगवान् त्रिलोचनके वृषभ-ध्वजका दर्शन करके उसे दूरसे ही प्रणाम किया और अग्निविन्दु मुनिसे कहा—'मुने! तुम अपने दाहिने हाथसे इस सुदर्शनचक्रका स्पर्श कर लो।' भगवान्‌की ऐसी आज्ञा होनेपर उन्होंने ज्यों ही सुदर्शनका स्पर्श किया त्यों ही श्रीहरिके महान् अनुग्रहसे वे 'सुदर्शन' हो गये।

स्कन्दजी कहते हैं—अगस्त्य! फिर अग्निविन्दु मुनि ज्योतिःस्वरूप होकर भगवान् विन्दुमाधवकी सेवाके प्रभावसे उनकी दिव्य चिन्मय ज्योतिस्स्वरूपा कौस्तुभमणिमें मिलकर एकीभूत हो गये। जिन्होंने विन्दुमाधवके चरणारविन्दोंमें अपने चित्तको चंचरीककी भाँति लगा रखा है, वे भी अग्निविन्दुकी भाँति निश्चय ही भगवत्स्वरूपको प्राप्त होते हैं। इसलिये सदा काशीमें निवास, श्रीविन्दुमाधवका दर्शन और इस माहात्म्य-कथाका श्रवण करना चाहिये तथा ऐसा करके लौकिक गतिपर विजय पानी चाहिये। पंचनदकी उत्पत्ति-कथा पुण्यमयी है। भगवान् विन्दुमाधवकी कथा भी परम पवित्र है और काशीका निवास भी अतिशय पुण्यजनक है—ये तीनों बातें पुण्यात्माओंको ही सुलभ हैं।

भगवान् शिवका स्वागत या वृषभध्वजतीर्थकी महिमा तथा शिवका काशीपुरीमें प्रवेश

स्कन्दजी कहते हैं—तदनन्तर श्रीहरि ब्रह्माजीको आगे करके भगवान् शंकरकी अगवानीके लिये आगे बढ़े। देवाधिदेव भगवान् वृषभध्वजको देखकर श्रीविष्णुने उन्हें प्रणाम किया। तत्पश्चात् फलसहित भीगे अक्षतोंको दिखाते हुए ब्रह्माजीने स्वस्तिवाचनके लिये हाथ ऊँचे करके रुद्रसूक्तोंसे भगवान् शिवका स्तवन किया। श्रीगणेशजीने उनके चरणारविन्दोंमें मस्तक रखकर शीघ्रतापूर्वक नमस्कार किया। तब महादेवजीने हर्षमें भरकर गणेशजीका मस्तक सूँघा और उन्हें हृदयसे लगाकर अपने आसनपर बिठा लिया। सोम और नन्दी आदि गणोंने साष्टांग प्रणाम किया। योगिनियोंने भी महेश्वरको प्रणाम करके मंगलगान किया। तत्पश्चात् सूर्यदेवने शिवजीको नमस्कार किया। चन्द्रार्धशेखर भगवान् शिवने श्रीहरिको अपने सिंहासनके समीप ही वामभागमें बड़े आदरके साथ बिठाया और ब्रह्माजीको

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

अपने दक्षिण भागमें आसन दिया। प्रणाम करनेवाले अन्य सब गणोंको भी दृष्टिपात करके सम्मानित किया। मस्तक हिलाकर योगिनियोंको भी प्रसन्न किया और हाथके इशारेसे सूर्यदेवको सन्तुष्ट किया। तत्पश्चात् ब्रह्माजीने दोनों हाथ जोड़कर कहा—'देवदेवेश्वर! गिरिजापते! मैं काशी आनेके बाद जो पुनः आपकी सेवामें नहीं पहुँचा, मेरे इस अपराधको आप क्षमा करेंगे। आलस्य छोड़कर पुण्यके पथपर चलनेवाले धर्मात्मा राजा दिवोदासके प्रति कौन किंचिन्मात्र भी विरुद्धभाव धारण कर सकता है।'

ब्रह्माजीकी यह बात सुनकर शिवजीने हँसते हुए कहा—ब्रह्मन्! मैं सब कुछ जानता हूँ। आप यहाँ आकर पहले ब्राह्मण बने। आप ब्राह्मण तो हैं ही, अतः यहाँ भी ब्राह्मण बनना आपके लिये दोषकी बात नहीं है। ब्राह्मण बनकर भी आपने जो दस अश्वमेध यज्ञोंका अनुष्ठान किया, यह और भी उत्तम है। इसके सिवा आपने मेरे स्वरूपकी स्थापना करके अपना परम हित किया है।

देवेश्वर भगवान् शिवके ऐसा कहनेपर योगिनियोंने भी परस्पर एक-दूसरेका मुँह देखकर भीतर-ही-भीतर सन्तोषकी साँस ली। तत्पश्चात् चराचर जगत्‌को देखनेवाले सूर्यदेवने भी अवसर जानकर भगवान् शिवसे कहा—'नाथ! आपके समीपसे काशी आकर मैंने यथाशक्ति उपाय किया, किंतु कुछ भी करनेमें सफल न हो सका। राजा दिवोदास स्वधर्मका पालन करनेवाले थे। उनके होते हुए भी आपका यहाँ आगमन निश्चित है, ऐसा जानकर मैं यहीं ठहरा हुआ हूँ। आज श्रीचरणोंके दर्शनसे मेरा मनोरथरूपी वृक्ष फलित हुआ है।' सूर्यका यह वचन सुनकर महादेवजीने कहा—'भास्कर! राजा दिवोदासके शासनकालमें यहाँ देवताओंका प्रवेश नहीं होता था, तो भी तुम इस पुरीमें आकर जो ठहर गये, इससे मेरा ही कार्य सिद्ध हुआ है।' इस प्रकार सूर्यको आश्वासन देकर कृपानिधान महादेवजीने योगिनियोंको भी उत्तम दृष्टिसे देखकर प्रसन्न किया। इसके बाद उन्होंने चक्रधारी भगवान् विष्णुकी ओर देखा। महामना श्रीहरिने सर्वज्ञ शिवजीके आगे स्वयं कुछ भी नहीं कहा। भगवान् शिव गरुड़के मुखसे गणेशजी और श्रीविष्णुका वृत्तान्त सुन चुके थे। अतः वे मन-ही-मन इनपर बहुत प्रसन्न हुए, वाणीसे कुछ भी नहीं कहा।

इसी समय गोलोकसे पाँच गौएँ आयीं, जिनके नाम इस प्रकार हैं—सुनन्दा, सुमना, सुशीला, सुरभि और कपिला। ये सब पापोंका नाश करनेवाली थीं। भगवान् शिवजीके प्रति वात्सल्यस्नेहके कारण उनके स्तनोंसे दूध चूने लगे। उनके स्तनरूपी मेघ दूधकी धारा बरसाने लगे और तबतक बरसाते रहे जबतक कि एक सरोवर भर नहीं गया। पार्श्ववर्ती लोगोंने देखा एक कुण्ड भर गया। भगवान् शंकरके अधिष्ठानसे वह एक उत्तम तीर्थ हो गया। महेश्वरने उसका नाम कपिला कुण्ड रखा। तदनन्तर महादेवजीकी आज्ञासे सब देवताओंने उसमें स्नान किया। तत्पश्चात् उस तीर्थसे दिव्य पितर प्रकट हुए, उन्हें देखकर सब देवताओंने प्रसन्नतापूर्वक उनका तर्पण किया। अग्निष्वात्त, बर्हिषद्, आज्यप और सोमप आदि दिव्य पितरोंने तृप्त होकर शंकरजीसे निवेदन किया—'देवदेव जगन्नाथ! आप भक्तोंको अभय देनेवाले हैं। आपके समीप होनेसे इस तीर्थमें हमें अक्षय तृप्ति प्राप्त हुई है, इसलिये आप प्रसन्नचित्तसे वरदान दीजिये।' दिव्य पितरोंका यह वचन सुनकर शिवजीने कहा-'कपिला गौके दूधसे भरे हुए इस कापिलेयतीर्थमें जो श्रद्धापूर्वक पिण्डदान एवं श्राद्ध करेंगे उनके पितरोंको मेरी आज्ञासे पूर्ण तृप्ति होगी। अमावास्या और सोमवारके योगमें यहाँ दिया हुआ श्राद्धका दान अक्षय होगा। प्रलयकाल आनेपर समुद्र और उसके जल नष्ट हो जाते हैं, परंतु अमावास्या तथा सोमवारके योगमें किया हुआ यहाँका श्राद्ध कभी क्षीण नहीं होगा। गदाधर और ब्रह्माजी! आपलोग जहाँ विराजमान हैं तथा जहाँ मेरी भी स्थिति है वहाँ फल्गु नदी निःसन्देह विद्यमान है। पितरो! इस तीर्थके जो जो नाम आपलोगोंको तृप्ति देनेवाले हैं उनका परिचय देता हूँ। इसका प्रथम नाम मधुस्रवा है, दूसरा नाम कृतकृत्या

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

है, तीसरा नाम क्षीरसागर है। इसके सिवा वृषध्वजतीर्थ, पितामहतीर्थ, गदाधरतीर्थ और पितृतीर्थ आदि नाम हैं। इतना ही नहीं— कपिलधारा, सुधाखनि और शिवगया नामसे भी इस शुभ तीर्थको जानना चाहिये। पितरो! इस तीर्थके ये दस नाम बिना श्राद्ध और तर्पणके भी आपलोगोंको तृप्ति देनेवाले हैं। जो लोग पितरोंको तृप्त करनेकी इच्छा लेकर सूर्य-चन्द्रमाके संगम (अमावस्या)-के अवसरपर यहाँ ब्राह्मणोंको भोजन करावेंगे उनके द्वारा किया हुआ वह श्राद्ध अक्षय होगा। जो पितरोंकी तृप्तिके लिये यहाँ श्राद्धमें कपिला गौका दान करेंगे उनके पितर क्षीरसागरके तटपर निवास करेंगे। जिन्होंने इस वृषभध्वजतीर्थमें वृषोत्सर्ग किया है उन्होंने अपने पितरोंको अश्वमेध यज्ञके पुरोडाशसे तृप्त कर दिया। पिताके गोत्रमें और माताके पक्षमें जो लोग मरे हैं उनको यहाँ किया हुआ पिण्डदान अक्षय तृप्ति देनेवाला होता है। पत्नीवर्ग अथवा मित्रवर्गमें जो लोग मृत्युको प्राप्त हुए हैं वे भी वृषभध्वजतीर्थमें तर्पण करनेपर तृप्तिको प्राप्त होते हैं। जिनका वृषभध्वजतीर्थमें तर्पण किया गया है वे सब पितर ब्रह्मलोकको चले जाते हैं। यह तीर्थ सत्ययुगमें दूधसे भरा रहता है, त्रेतामें मधुसे पूर्ण होता है, द्वापरमें घीसे भरा होता है और कलियुगमें जलसे परिपूर्ण रहता है। यद्यपि यह शुभ तीर्थ काशीकी सीमासे बाहर है, तो भी यहाँ मेरा सामीप्य होनेके कारण इसे काशीपुरीके भीतर ही जानना चाहिये। काशीनिवासियोंने यहाँ मेरे वृषचिह्नयुक्त ध्वजका दर्शन किया है, इसलिये मैं इस तीर्थमें 'वृषध्वज' नामसे निवास करूँगा। पितरो! मैं तुम्हारे सन्तोषके लिये यहाँ ब्रह्मा, विष्णु, सूर्य तथा अपने पार्षदोंके साथ निवास करूँगा।'

इस प्रकार शिवजी पितरोंको वरदान दे रहे थे, इतनेहीमें नन्दिकेश्वरने निवेदन किया— प्रभो! रथ सुसज्जित होकर तैयार है, अतः अब श्रीचरणोंकी विजययात्रा प्रारम्भ हो। तब आठ मातृकाओंने भगवान् शिवकी आरती उतारी और भगवान् विश्वनाथ श्रीहरिसे हाथ मिलाये हुए उठकर खड़े हुए। उस समय दिव्य वाद्योंकी गम्भीर ध्वनिसे पृथ्वीसे लेकर आकाशतक गूँज उठा। देवियोंके मंगलगीत और चारणोंद्वारा की हुई स्तुतिके शब्दोंसे वह तुमुलनाद और भी बढ़ गया था। तैंतीस करोड़ देवता, बीस करोड़ शिवगण, नौ करोड़ चामुण्डा, एक करोड़ भैरवी तथा आठ करोड़ मेरे (स्कन्दके) महाबली अनुचर, जो छः मुखोंसे सुशोभित और मयूरके वाहनपर आरूढ़ थे, आये। चमकता हुआ फरसा हाथमें लिये सात करोड़ गणेशके गण उपस्थित हुए जो महावेगवान्, तोंदवाले, हाथीके-से मुखवाले तथा विघ्नविनाशक थे। छियासी हजार ब्रह्मवादी मुनि और इतने ही गृहस्थ भी वहाँ आये। तीन करोड़ पातालनिवासी नाग, दो-दो करोड़ शिवभक्त दानव और दैत्य, आठ लाख गन्धर्व, पचास लाख यक्ष और राक्षस, दो लाख दस हजार विद्याधर, साठ हजार सुन्दरी दिव्य अप्सराएँ, आठ लाख गोमाताएँ, साठ हजार गरुड़, नाना प्रकारके रत्नोंकी भेंट देनेवाले सात समुद्र, तिरपन हजार नदियाँ, आठ हजार पर्वत, तीन सौ वनस्पतियाँ और आठों दिग्गज— ये सब लोग उस स्थानपर उपस्थित हुए जहाँ पिनाकपाणि महादेवजी विराजमान थे। इन सबके साथ परम सन्तुष्ट भगवान् शिवने इधर-उधरसे अपनी स्तुति सुनते हुए रथपर आरूढ़ हो उत्तम काशीपुरीमें प्रवेश किया। उनके साथ गिरिराजनन्दिनी उमा भी थीं।

स्कन्दजी कहते हैं—यह परम उत्तम उपाख्यान कोटि जन्मोंका पाप नष्ट करनेवाला है। इसका पाठ करके अथवा ब्राह्मणद्वारा कराकर मनुष्य भगवान् शिवका सायुज्य प्राप्त कर लेता है। जो इस आख्यानका प्रसन्नतापूर्वक पाठ करके नूतन गृहमें प्रवेश करता है वह सब प्रकारके सुखका निकेतन बन जाता है। यह उत्तम उपाख्यान तीनों लोकोंके लिये आनन्दजनक है। इसके श्रवणमात्रसे भगवान् विश्वनाथ प्रसन्न होते हैं।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

जैगीषव्यपर भगवान् शिवकी कृपा और उनके द्वारा शिवकी स्तुति

अगस्त्यजी कहते हैं—भगवन्! काशीपुरीका दर्शन करके त्रिपुरारि भगवान् शिवने क्या किया?

स्कन्दजी बोले—अगस्त्य! सर्वज्ञ नाथ भक्त-वत्सल भगवान् शिवने काशीपुरीको देखनेके पश्चात् सबसे प्रथम किसी गुहामें बैठे हुए जैगीषव्य-मुनिको दर्शन दिया। जिस दिन भगवान् शिव काशी छोड़कर मन्दराचल गये उसी दिनसे जैगीषव्य-मुनिने यह दृढ़ नियम कर लिया था कि 'जब मैं पुनः यहाँ भगवान् शिवके चरणारविन्दोंका दर्शन करूँगा तभी एक बूँद जल भी मुँहमें डालूँगा।' किसी अद्भुत धारणाशक्तिसे अथवा भगवान् शंकरके अनुग्रहसे अन्न-जल त्याग देनेपर भी जैगीषव्य-मुनि वहाँ जीवित रहे। इस बातको केवल भगवान् शंकर जानते थे, दूसरा कोई नहीं। इसीलिये भगवान् विश्वनाथ सबसे पहले वहीं गये और नन्दीश्वरको सम्बोधित करके सब देवताओंके सुनते हुए इस प्रकार बोले—'शिलादपुत्र! यहाँ बड़ी मनोहर गुफा है, तुम शीघ्र इसके भीतर प्रवेश करो। इसके भीतर मेरे भक्त तपोधन जैगीषव्यमुनि रहते हैं, जिन्होंने मेरे दर्शनके लिये दृढ़तापूर्वक कठोर व्रत धारण किया है। उनको गुफासे बाहर ले आओ। जब मैं मन्दराचल पर्वतपर गया था तबसे लेकर आजतक उन्होंने आहार त्यागकर बड़े भारी नियमका पालन किया है। यह लीलाकमल ले लो, यह अमृतके समान पोषण करनेवाला है, इससे उनके अंगोंका स्पर्श करा दो।' तब नन्दी देवदेवेश्वर महादेवजीको प्रणाम करके वह लीलाकमल हाथमें ले गुफाके भीतर गये और वहाँ धारणामें दृढ़तापूर्वक चित्तको लगाये हुए तपस्याकी अग्निसे सूखे अंगोंवाले मुनिको देखकर उन्होंने उनके शरीरसे कमलका स्पर्श करा दिया। उस कमलका स्पर्श होते ही

योगीश्वर जैगीषव्य उल्लसित हो उठे। तदनन्तर नन्दी उन मुनीश्वरको लेकर शीघ्र आये और देवाधिदेव महादेवके चरणोंके आगे नमस्कारपूर्वक डाल दिया। अपने आगे भगवान् शंकरको देखकर वे हर्षसे फूल उठे। शंकरजीके वामांगमें गिरिराज-नन्दिनी पार्वती भी थीं। जैगीषव्यने भगवान्के आगे भूमिपर सब ओर लोटकर साष्टांग प्रणाम किया और अतिशय भक्ति पूर्वक उनकी स्तुति प्रारम्भ की।

जैगीषव्य बोले—शान्त, सर्वज्ञ एवं शुभस्वरूप भगवान् शिवको नमस्कार है। जगत्के आनन्दका मूलस्थान तथा परमानन्दकी प्राप्तिके हेतुभूत महादेवजीको नमस्कार है। प्रभो! आप ही स्थावर और जंगमरूप हैं, आपको बार-बार नमस्कार है। सर्वात्मन्! आपको नमस्कार है। परमात्मन्! आपको नमस्कार है। आप शेषनागका भुजबन्द धारण करनेवाले हैं, आपको नमस्कार है। आपके आधे शरीरमें शक्तिस्वरूपा पार्वतीका निवास है, आपको नमस्कार है। आप शरीररहित तथा सुन्दर शरीरसे

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

सम्पन्न हैं, आपको नमस्कार है। एक बार प्रणाम करनेमात्रसे देहधारी जीवोंके देहरूपी बन्धनका निवारण करनेवाले आपको नमस्कार है। खण्डपरशो! अर्धचन्द्रको धारण करनेवाले आपको नमस्कार है। स्कन्दकी उत्पत्तिके स्थान आप गौरीपति गिरीशको नमस्कार है। चन्द्रार्धरूप शुद्ध आभूषणवाले तथा सूर्य-चन्द्र एवं अग्निरूप नेत्रोंवाले आपको नमस्कार है। सम्पूर्ण दिशाएँ आपके लिये वस्त्ररूप हैं, आपको नमस्कार है। आप सम्पूर्ण जगत्के स्वामी, जीर्ण (पुरातन) जरा और जन्मका कष्ट हर लेनेवाले, जीवोंको जीवन देनेवाले तथा पाप आदिका अपहरण करनेवाले हैं, आपको नमस्कार है। आपके एक हाथमें डमरू और दूसरे हाथमें धनुष है, आपको नमस्कार है। समस्त जगत्के लोचनरूप आप भगवान् त्रिलोचनको नमस्कार है। गंगाधर! आपको नमस्कार है। आप तीन वेदस्वरूप, सदा सन्तुष्ट रहनेवाले और भक्तोंको सन्तोष देनेवाले हैं। आप जगत्के उद्धारकी दीक्षासे युक्त हैं, आप देवाधिदेव महादेवको नमस्कार है। सम्पूर्ण पापोंको विदीर्ण करनेवाले, दीर्घदर्शी, प्रपंचसे दूर रहनेवाले तथा सम्पूर्ण दोषोंका दलन करनेवाले आप परम दुर्लभ देवको नमस्कार है। आप चन्द्रमाकी कलाको धारण करनेवाले तथा दोषोंके संग्रहका सर्वथा त्याग करनेवाले हैं। धतूरका फूल आपको अधिक प्रिय है, प्रभो! मस्तकपर जटाभार धारण करनेवाले आपको नमस्कार है। आप धीर, धर्मस्वरूप तथा धर्मके रक्षक हैं। नीलग्रीव! आपको नमस्कार है। जो आपके नामोंका स्मरणमात्र करते हैं, उनके लिये आप तीनों लोकोंका ऐश्वर्य भर देते हैं। आप प्रमथगणोंके अधिपति तथा अपने एक हाथमें सदा पिनाक उठाये रहनेवाले हैं, आपको नमस्कार है। संसारी जीवोंके अज्ञानमय बन्धनको खोलनेवाले आप भगवान् पशुपतिको नमस्कार है। अपने नामका उच्चारण करनेमात्रसे बड़े-बड़े पातकोंको हर लेनेवाले आपको नमस्कार है। आप परसे भी परे, सबको पार उतारनेवाले, कार्य और कारणसे भी परे, अनन्त चरित्रवाले तथा परम पवित्र कथावाले हैं, आपको नमस्कार है। आप वामदेव हैं, अपने आधे अंगमें नारीस्वरूपको धारण करते हैं तथा धर्मस्वरूप वृषभपर यात्रा करनेवाले हैं, आपको नमस्कार है। प्रणतजनोंके भयका निवारण करनेवाले आपको नमस्कार है। आप जगत्की उत्पत्तिके कारण तथा संसार-बन्धनका नाश करनेवाले हैं, आप ही सम्पूर्ण भूतोंका पालन करनेवाले पति हैं, आपको नमस्कार है। महादेव! आपको नमस्कार है। महेश्वर! तेजोंके स्वामी! आपको नमस्कार है। आप पार्वतीके पति और मृत्युंजय हैं, आपको नमस्कार है। आप दक्षके यज्ञका नाश करनेवाले और यक्षराज कुबेरके प्रिय हैं, आपको नमस्कार है। आप बड़े-बड़े यज्ञ करनेवाले, यज्ञस्वरूप तथा यज्ञोंके फल देनेवाले हैं, आपको नमस्कार है। आप रुद्रस्वरूप, रुद्रपति तथा कुत्सित रोदनकारी कष्टको दूर करनेवाले हैं। आप भक्तोंके हृदयमें रमण करते हैं, आपको नमस्कार है। आप त्रिशूलधारी, सनातन ईश्वर, श्मशानभूमिमें विहार करनेवाले, सर्वस्वरूप तथा सर्वज्ञ हैं, भगवती पार्वतीके प्रियतम! आपको नमस्कार है। आप सबका कष्ट हरनेवाले क्षमास्वरूप और क्षेत्रज्ञ हैं। क्षमाशील महेश्वर! आप सब कुछ करनेमें समर्थ, पृथ्वीका संहार करनेवाले तथा दूधके समान गौर हैं, आपको नमस्कार है। अन्धकासुरके शत्रु आपको नमस्कार है। आदि-अन्तसे रहित आप परमेश्वरको नमस्कार है। आप पृथ्वीके आधार, ईश्वर तथा इन्द्र और उपेन्द्र आदि देवताओं-द्वारा प्रशंसित हैं, आप उमाकान्त, उग्र और ऊर्ध्वरेताको नमस्कार है। आप एक रूप, अद्वितीय तथा महान् ऐश्वर्य-स्वरूप हैं, आपको नमस्कार है। आप अनन्तकर्ता तथा पार्वतीके पति हैं, आपको नमस्कार है। आप ही ॐकार, वषट्कार, भूलोक, भुवर्लोक तथा स्वर्लोक हैं। उमापते! इस जगत्में दृश्य और अदृश्य जो कुछ भी है, वह सब आप ही हैं। देव! मैं स्तुति करना नहीं जानता। महेश्वर! आप

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

ही शब्द हैं, आप ही अर्थ हैं और आप ही वाणी हैं, मैं आपको प्रणाम करता हूँ। महादेव! मैं आपसे भिन्न और किसी ईश्वरको नहीं जानता। दूसरेका नाम लेनेमें गूँगा हूँ, दूसरेकी कथा सुननेमें बहरा हूँ, दूसरेके समीप जानेमें पंगु हूँ और अन्य किसी देवताका दर्शन करनेमें अन्धा हूँ। एकमात्र आप ही ईश्वर हैं, आप ही कर्ता हैं तथा आप ही पालन और संहार करनेवाले हैं। सृष्टि, पालन और संहार करनेवाले भिन्न-भिन्न देवता हैं, यह भेद-भाव मूर्खोंकी कल्पनामात्र है। अतः एकमात्र आप ही बार-बार मेरे लिये शरण हैं। महेश्वर! मैं संसार-समुद्रमें डूबा हूँ, मेरा उद्धार कीजिये।

इस प्रकार महेश्वरकी स्तुति करके महामुनि जैगीषव्य उनके सामने ठूँठकी तरह अविचल और मौन हो गये। मुनिद्वारा की हुई इस स्तुतिको सुनकर चन्द्रमौलि भगवान् शिवने प्रसन्न होकर कहा—'मुने! तुम कोई वर माँगो।'

जैगीषव्य बोले—देवेश! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो यही वर दीजिये कि मैं आपके चरणारविन्दोंसे कभी दूर न होऊँ और दूसरा वर मुझे यह देनेकी कृपा करें कि मैंने जो शिवलिंगकी स्थापना की है, उसमें आप सदा ही स्थित रहें।

महादेवजीने कहा—महाभाग जैगीषव्य! तुमने जो कुछ कहा है, वह सब तुम्हारी इच्छाके अनुसार पूर्ण हो। इसके सिवा मैं तुम्हें दूसरा वर और देता हूँ—मोक्षके साधनभूत योगशास्त्र मैं तुम्हें अर्पण करता हूँ। तुम सब योगियोंके मध्य योगाचार्यरूपसे प्रसिद्ध होओ। तपोधन! तुम मेरी कृपासे योगविद्याका यथावत् रहस्य जान लोगे, जिसके द्वारा तुम्हें मोक्षकी प्राप्ति होगी। जिस प्रकार नन्दी, भृंगी और सोमनन्दी मेरे भक्त हैं, उसी प्रकार तुम भी मेरे जरा-मृत्युसे रहित भक्त होओगे। तुम सदा मेरे चरणोंके समीप निवास करोगे और वहीं तुम्हें मोक्षलक्ष्मीकी प्राप्ति होगी। काशीमें जैगीषव्येश्वर नामक शिवलिंग परम दुर्लभ होगा। तीन वर्षोंतक उसका सेवन करके मनुष्य योगकी प्राप्ति कर सकता है, इसमें संशय नहीं। जैगीषव्य-गुहामें जाकर योगाभ्यास करनेवाला मनुष्य मेरी कृपासे छः महीनेमें मनोवांछित सिद्धि प्राप्त कर सकता है। तुम्हारे द्वारा स्थापित किया हुआ यह शिवलिंग ज्येष्ठेश्वर क्षेत्रमें सब प्रकारकी सिद्धियोंको देनेवाला होगा तथा दर्शन, स्पर्श और पूजन करनेपर सम्पूर्ण पापराशिका विनाश करेगा। जैगीषव्य! तुमने जो यह स्तवन किया है, यह बहुत उत्तम और योगसिद्धिमें सहायक है। यह बड़े-बड़े पापोंका नाशक, महान् पुण्यकी वृद्धि करनेवाला, महान् भयकी शान्ति और महाभक्तिकी वृद्धि करनेवाला है। इस स्तोत्रका जप करनेसे मनुष्योंके लिये कोई भी वस्तु दुर्लभ नहीं है। अतः उत्तम साधकोंको सर्वथा प्रयत्न करके इस स्तोत्रका जप करना चाहिये।

इस प्रकार जैगीषव्यको वर देकर महादेवजीने उस क्षेत्रमें निवास करनेवाले ब्राह्मणोंको देखा।

काशीके ब्राह्मणोंको भगवान् शिवका वरदान तथा काशी क्षेत्रकी महिमा

अगस्त्यजीने पूछा—षडानन! ब्राह्मणोंको देखकर भगवान् शंकरने उनसे क्या कहा?

स्कन्दजी बोले—अगस्त्य! जब ब्रह्माजीके गौरवकी रक्षाके लिये महादेवजी मन्दराचलको चले गये, तब वहाँके क्षेत्रसंन्यासी पापहीन ब्राह्मण निराश्रय हो गये। उन्होंने उस महाक्षेत्रमें प्रतिग्रह लेना सदाके लिये बंद कर दिया और अपने दण्डोंके अग्रभागसे भूमि खोद-खोदकर कन्द-मूल आदिसे वे जीवननिर्वाह करने लगे। इस प्रकार धरती खोद-खोदकर उन्होंने एक बड़ी सुन्दर पुष्करिणी तैयार कर दी। उसका नाम हुआ 'दण्डखात' तीर्थ। उस तीर्थके चारों ओर

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

उन्होंने अनेक बड़े-बड़े शिवलिंग स्थापित किये और भगवान् महेश्वरकी आराधनामें तत्पर हो प्रयत्नपूर्वक तपस्या की। वे नित्य ही विभूति धारण करते और रुद्राक्षकी माला पहनते थे। प्रतिदिन शिवलिंगका पूजन और शतरुद्रियका जप करते थे। मुने! उन ब्राह्मणोंने जब पुनः देवाधिदेव महादेवजीके शुभागमनका समाचार सुना, तब वे दण्डखात नामक महातीर्थसे उनका दर्शन करनेके लिये आये। उनकी संख्या पाँच हजार थी। वे अपने हाथोंमें नूतन दूर्वादल, आर्द्र अक्षत, फूल, फल और सुगन्धित माला लिये हुए थे और मुखसे भगवान् शिवकी जय-जयकार बोलते थे। उन्होंने बारंबार प्रणाम करके मंगलमय वैदिक सूक्तोंद्वारा महादेवजीका स्तवन किया। तब भगवान् शंकरने उन सबको अभय दान देकर प्रसन्नतापूर्वक उनका कुशल-मंगल पूछा।

वे ब्राह्मण बोले—नाथ! इस क्षेत्रमें निवास करनेवाले हमलोगोंके लिये सदा ही कुशल है। विशेषतः इस समय, जब कि हमने इन नेत्रोंसे आपके स्वरूपका प्रत्यक्ष दर्शन किया है, हमारी कुशलके लिये क्या कहना है। आप वही हैं, जिनके स्वरूपको श्रुतियाँ भी यथार्थरूपसे नहीं जानतीं। जो आपके क्षेत्रसे विमुख हैं, वे ही सदाके लिये कुशलसे वंचित हैं। सर्पोंका भुजबन्द धारण करनेवाले महादेव! जिनके हृदयमें सदैव काशीका चिन्तन होता है उनके ऊपर संसाररूपी सर्पके विषका कोई प्रभाव नहीं पड़ता। 'काशी' यह दो अक्षरोंका मन्त्र गर्भकी रक्षा करनेवाली (अथवा गर्भवाससे बचानेवाली) मणि है। यह जिसके कण्ठमें स्थित है, उसका अमंगल कैसे हो सकता है? जो प्रतिदिन 'काशी' इस दो अक्षरमयी सुधाका पान करता है, वह जरा आदि छः भावविकारोंसे रहित देवरूपताकी भी उपेक्षा करके साक्षात् अमृत (मोक्ष)-रूप हो जाता है। जिसने कानोंमें अमृतके समान प्रतीत होनेवाले 'काशी' इन दो अक्षरोंको सुना है, वह फिर कभी गर्भवासकी कथा नहीं सुनता। काशीसे अन्यत्र रहकर भी जो 'काशी-काशी-काशी' इस प्रकार जप करते हुए जीवन-यापन करता है, उसके आगे मुक्ति सदैव प्रकाशित होती है। भगवन्! यह काशीपुरी कल्याणस्वरूपा है, आप कल्याणस्वरूप हैं तथा गंगाजी भी कल्याणस्वरूपा हैं। दूसरा कोई ऐसा क्षेत्र नहीं है, जहाँ तीन-तीन कल्याणमूर्तियाँ रहती हों।

काशी क्षेत्रकी भक्तिसे परिपूर्ण यह ब्राह्मणोंका वचन सुनकर भगवान् शिव बहुत सन्तुष्ट हुए और प्रसन्नचित्त होकर बोले—द्विजवरो! तुम सब धन्य हो, मैं जानता हूँ, इस क्षेत्रका सेवन करनेसे तुम विशुद्ध सत्त्वमय हो गये हो, तुममें रजोगुण और तमोगुणका सर्वथा अभाव है। अतएव तुमलोग संसारसमुद्रसे पार हो गये हो। जो काशीपुरीके भक्त हैं, वे निश्चय ही मेरे भक्त हैं और जीवन्मुक्त हैं। जो पापहीन मानव इस आनन्दवनमें निवास करते हैं, वे निश्चय ही मेरे अन्तःकरणमें स्थित होते हैं। जो मेरे क्षेत्रमें रहकर मेरी भक्ति करते और मेरे चिह्नोंको धारण करते हैं, उन्हींको मैं उपदेश देता हूँ। काशीवासी ब्राह्मणो! मेरी भक्ति और चिह्न धारण करनेवाले तुम सब लोग धन्य हो। तुम्हारे हृदयसे न तो मैं दूर हूँ और न यह काशीपुरी ही दूर है। तुम सब लोग मुझसे अपनी रुचिसे वर माँगो।

ब्राह्मण बोले—उमापते! महेश्वर! सर्वज्ञ! हमारे लिये यह वर है कि आप भवताप हरनेवाली काशीपुरीका कदापि परित्याग न करें। यहाँ काशीमें ब्राह्मणोंके वचनसे कभी किसीके ऊपर भी ऐसा कोई शाप न लागू हो जो मोक्षमें विघ्न डालनेवाला हो। आपके युगल चरणारविन्दोंमें हमारी निर्द्वन्द्व भक्ति बनी रहे। इस शरीरके अन्ततक हमारा निरन्तर काशीमें ही निवास बना रहे। और किसी वरसे हमें क्या काम है, हमें

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

तो बस यही वर देना चाहिये। आपकी भक्तिसे प्रभावित होकर हमलोगोंने आपके प्रतिनिधिस्वरूप जिन लिंगोंकी स्थापना की है, उन सबमें आपका निरन्तर वास हो।

ब्राह्मणोंके ये वचन सुनकर शिवजीने कहा— '**तथास्तु**' ऐसा ही हो। इसके सिवा तुम्हें दूसरा वर यह देता हूँ कि तुम सब ब्राह्मणोंको यथार्थ ज्ञान प्राप्त होगा। मुक्तिकी इच्छा रखनेवाले पुरुषोंको उत्तरवाहिनी गंगाके सेवन, शिवलिंगका यत्नपूर्वक पूजन, दम (इन्द्रियसंयम), दान और दया—ये सदा ही करने चाहिये। इस क्षेत्रमें निवास करनेवाले लोगोंके लिये यही रहस्यकी बात बतायी गयी है। अपनी बुद्धिको दूसरोंके हित-चिन्तनमें लगाना चाहिये और किसीसे भी उद्वेगमें डालनेवाला वचन नहीं बोलना चाहिये। यहाँ विजयकी इच्छा रखनेवाले पुरुषोंको मनसे भी कभी पाप नहीं करना चाहिये, क्योंकि यहाँका किया हुआ पुण्य और पाप अक्षय होता है। अन्यत्रका किया हुआ पाप काशीमें नष्ट होता है, काशीमें किया हुआ पाप अन्तर्गृहमें नष्ट होता है, किंतु अन्तर्गृहमें किया हुआ पाप पैशाच्यनरककी प्राप्ति करानेवाला है। अन्तर्गृहमें पाप करनेवाला पुरुष यदि काशीसे बाहर चला जाता है तो उसे पिशाचनरककी प्राप्ति होती ही है, क्योंकि काशीमें किया हुआ पापकर्म करोड़ों कल्पोंमें भी शुद्ध नहीं होता। परंतु यदि यहीं उसकी मृत्यु हो तो उसे तीस हजार वर्षोंतक रुद्रपिशाच होकर रहना पड़ता है। जो काशीमें रहकर सदा पातकोंमें ही तत्पर रहता है, वह तीस हजार वर्षोंतक पिशाचयोनिमें रहेगा। उसके बाद फिर यहीं रहते हुए उसे उत्तम ज्ञानकी प्राप्ति होगी और उसी ज्ञानसे उसे परम उत्तम मोक्ष प्राप्त हो जायगा। इस संसारमें सब कुछ अनित्य है और मनुष्य-जन्म अनेक प्रकारके पापोंसे भरा हुआ है, ऐसा जानकर संसारभयसे छुड़ानेवाले अविमुक्त क्षेत्र (काशीधाम)-का सदैव सेवन करना चाहिये। ब्राह्मणो! मेरी भक्तिमें तत्पर जो पतिव्रता स्त्रियाँ अविमुक्त क्षेत्रमें मृत्युको प्राप्त होती हैं, वे परम गतिको पाती हैं। द्विजवरो! यहाँ प्राण निकलते समय मैं स्वयं ही जीवको तारक ब्रह्मका उपदेश देता हूँ जिससे वह ब्रह्मस्वरूप हो जाता है। मुझमें मन लगाये रखनेवाला तथा अपने सम्पूर्ण कर्मोंको मुझमें ही समर्पित करनेवाला मेरा भक्त इस काशीमें जिस प्रकार मोक्षको प्राप्त होता है वैसा अन्य किसी पुण्य क्षेत्रमें नहीं। देहधारी जीवकी मृत्यु निश्चित है, कर्मोंसे प्राप्त होनेवाली गति भी दुःखरूप ही है तथा प्रत्येक आगन्तुक वस्तु एक-न-एक दिन चली जानेवाली है। ऐसा समझकर काशीकी शरण लेनी चाहिये। जो अपने न्यायोपार्जित धनसे एक भी काशीवासी पुरुषको तृप्त करता है, उसने मेरे साथ सम्पूर्ण त्रिलोकीको तृप्त कर दिया। धर्मसे काशीकी रक्षा करनेवाले राजर्षि दिवोदास सशरीर मेरे उस लोकको प्राप्त हुए हैं जहाँसे पुनः इस संसारमें आना नहीं होता। जो पृथ्वीके अन्तमें रहकर भी मेरे अविमुक्त नामक लिंगका स्मरण करते हैं वे निश्चय ही बड़े-बड़े पापोंसे भी मुक्त हो जाते हैं। इस क्षेत्रमें जिसने भी मेरा दर्शन, स्पर्श और पूजन किया है वह तारक-ज्ञान प्राप्त करके पुनः इस संसारमें जन्म नहीं लेता। जो इस तीर्थमें मेरी पूजा करके अन्यत्र कहीं मृत्युको प्राप्त होता है वह दूसरे जन्ममें भी मुझे प्राप्त होकर मुक्त हो जायगा। इस प्रकार ब्राह्मणोंके आगे काशीक्षेत्रकी महिमाका वर्णन करके महादेवजी उन सब ब्राह्मणोंके देखते-देखते वहीं अन्तर्धान हो गये। वे ब्राह्मण भी भगवान् शंकरका प्रत्यक्ष दर्शन पाकर प्रसन्नचित्त हो अपने-अपने आश्रमको चले गये।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

परापरेश्वर और व्याघ्रेश्वर लिंगकी महिमा, भगवान् शिवद्वारा व्याघ्ररूपधारी दैत्यका वध

स्कन्दजी कहते हैं—कुम्भज! ज्येष्ठेश्वर क्षेत्रके सब ओर जो मुनियोंद्वारा स्थापित पाँच हजार शिवलिंग हैं, वे पूर्ण सिद्धि देनेवाले हैं। ज्येष्ठेश्वरसे उत्तरमें परम पूजनीय परापरेश्वर लिंग है, जिसके दर्शनमात्रसे निर्मल ज्ञानकी प्राप्ति होती है। दण्डखात नामक महातीर्थके समीप जब ब्राह्मणलोग परम उत्तम निष्काम तप कर रहे थे, उस समय प्रह्लादके मामा 'दुन्दुभिनिह्राद' नामक दुष्ट दैत्यने मन-ही-मन यह विचार किया कि देवताओंको किस प्रकार सुगमतापूर्वक जीता जा सकता है। इसका उपाय सोचते-सोचते उसने निश्चय किया कि 'ब्राह्मण ही देवताओंके सबल होनेमें कारण हैं, क्योंकि देवता यज्ञमें दिये हुए भागका ही आहार करते हैं। यज्ञ वेदोंसे सम्पन्न होते हैं और वे वेद ब्राह्मणोंके अधीन हैं। अतः ब्राह्मण ही देवताओंके बल हैं। यदि ब्राह्मण नष्ट हो जायँ तो वेद स्वयं नष्ट हो जायँगे और जब वेद नष्ट हो जायँगे तब यज्ञ तो नष्ट ही हैं। यज्ञोंका नाश होते ही देवताओंका आहार छिन जायगा। इस प्रकार निर्बल हुए देवतालोग सुगमतापूर्वक जीते जा सकते हैं। देवताओंके परास्त होनेपर मैं ही तीनों लोकोंका सम्माननीय सम्राट होऊँगा।' यह सोचकर उसने ब्राह्मणोंको ही मार डालनेका बार-बार उद्योग किया। काशीमें आकर उस मायावी दैत्यने कितने ही ब्राह्मणोंका वध किया। श्रेष्ठ द्विज जिस किसी ओर भी समिधा और कुशा लानेके लिये जाते, उधर ही वनमें उन सबको पकड़कर वह दुर्बुद्धि दैत्य अपना आहार बना लेता था। उसका रूप किसीको दिखायी नहीं देता था। देवता लोग भी उस मायावीको देख नहीं पाते थे। वह दिनभर मुनियोंके ही बीचमें बैठकर उन्हींकी भाँति ध्यान लगाये रहता था। पर्णशालामें किधरसे प्रवेश करने और किस ओरसे निकल भागनेका मार्ग है, यह सब वह दिनमें ही देख लेता था तथा रातमें व्याघ्रका रूप धारण करके वहाँ बहुतसे ब्राह्मणोंको खा डालता था। इस प्रकार उस दुष्ट दैत्यने बहुतसे ब्राह्मणोंको मार दिया।

एक दिन शिवरात्रिके समय एक शिवभक्त ब्राह्मण महादेवजीकी पूजा करके उनके ध्यानमें बैठा था। उसी समय अपने बलके घमंडमें भरे हुए दैत्यराज दुन्दुभिने व्याघ्रका रूप धारण करके उस भक्तको पकड़ लेनेका विचार किया। वह शिवभक्त अपने चित्तको दृढ़तापूर्वक स्थिर करके ध्यानमें स्थित हो भगवान् शिवके दर्शनमें तल्लीन था। उसने विधिपूर्वक मन्त्रके अंगन्यास, करन्यास, कवच और ध्यान आदिका प्रयोग कर लिया था। अतः वह दैत्य उस भक्तपर सहसा आक्रमण करनेमें समर्थ न हुआ। इसी समय सर्वव्यापी भगवान् शिवने उस दुष्ट दैत्यके मनोभावको समझकर उसका वध करनेका विचार किया। वे उस भक्तद्वारा पूजित शिवलिंगसे सहसा प्रकट हो गये। उन्हें आते देख वह दैत्य उसी रूपमें बढ़कर पर्वतके समान विशालकाय हो गया और उनकी ओर झपटा। इतनेमें ही उसे पकड़कर भगवान्ने अपनी काँखमें दबा लिया और उसीमें पीस डाला। इस

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

प्रकार काँखमें कुचला जाता हुआ वह दैत्य आकाश और पृथ्वीको गुँजाता हुआ आर्तनाद करने लगा। उसका चीत्कार सुनकर बहुत-से तपस्वी रात्रिमें उसी शब्दका लक्ष्य करके उस पर्णशालामें आ पहुँचे। वहाँ उन्होंने देखा—भगवान् शंकर अपनी काँखमें एक व्याघ्रको दबाये हुए खड़े हैं। यह देख सबने जय-जयकार करते हुए उनके चरणोंमें प्रणाम और स्तवन किया। 'जगद्गुरो! ईश! आप हमपर अनुग्रह कीजिये और इसी रूपमें व्याघ्रेश नाम धारण करके यहाँ निवास कीजिये। महादेव! इस श्रेष्ठ स्थानकी आप सदैव रक्षा करें।'

उन तपोधनोंका ऐसा वचन सुनकर चन्द्रभूषण भगवान् शिवने कहा—'ब्राह्मणो! ऐसा ही हो। जो श्रद्धापूर्वक यहाँ इस रूपमें मेरा दर्शन करेगा, उसके समस्त उपद्रवोंका मैं निश्चय ही नाश करूँगा।' ऐसा कहकर महादेवजी उस शिवलिंगमें लयको प्राप्त हो गये। तबसे वह शिवलिंग व्याघ्रेश्वरके नामसे प्रसिद्ध हुआ। ज्येष्ठेश्वरके उत्तरभागमें उसका दर्शन और स्पर्श करनेपर वह सम्पूर्ण भयोंका नाश करनेवाला है।

हिमवान्‌के द्वारा काशीमें शैलेश्वर लिंगकी प्रतिष्ठा

कार्तिकेयजी कहते हैं—एक समय पर्वतराज हिमवान्‌से उनकी पतिव्रता पत्नी मेनाने कहा—'आर्यपुत्र! मैं विवाहके बादसे अपनी बेटी गौरीका समाचार न पा सकी। इस समय महादेवजी कहाँ हैं? प्रभो! वे एक और अद्वितीय हैं। उन त्रिशूलधारी भगवान् शिवका समाचार जाननेके लिये कोई उद्योग कीजिये।'

गिरिराज हिमवान् बोले—देवि! मैं अपनी प्यारी पुत्रीकी खोज करनेके लिये स्वयं ही जाऊँगा। मैं तो ऐसा समझता हूँ कि जबसे गौरी मेरे घरसे गयी है तबसे इस घरकी लक्ष्मी ही चली गयी। ऐसा कहकर भाँति-भाँतिके रत्न और वस्त्र साथ ले गिरिराज हिमवान् शुभ लग्नमें घरसे चले। बहुत दूर आगे जानेपर उन्होंने दूरसे ही काशीपुरीको देखा जो कि मणियोंकी ज्योतिसे जगमगा रही थी और अपने प्रकाशसे सम्पूर्ण आकाशको व्याप्त करनेवाली थी। सब ओर वैजयन्ती पताकाओंके समुदायसे सुशोभित वह पुरी स्वर्गलोककी अमरावती-सी जान पड़ती थी। इसी समय वहाँ उन्हें कोई तीर्थयात्री दिखायी दिया। पर्वतराजने उसे बुलाकर आदरपूर्वक पूछा—'भाई कार्पटिक! यहाँका वृत्तान्त कहो, यह कौन-सा अपूर्व नगर है? इस समय यहाँका अधिष्ठाता कौन है और उसका कर्म क्या है?'

कार्पटिक बोला—मानद! अभी तो पाँच-छः दिन ही बीते हैं, गिरिराजनन्दिनी गौरीके पति भगवान् विश्वनाथ यहाँ काशीपुरीमें मन्दराचलसे पधारे हैं। यहाँके राजा दिवोदास परम धामको चले गये। जो सम्पूर्ण जगत्‌के अधिष्ठाता हैं, वे ही भगवान् शंकर इस काशीपुरीके भी स्वामी हैं। वे ही सब कुछ देनेवाले हैं। पर्वतराज हिमवान् भी श्रेष्ठ हैं, जिन्होंने प्राणोंसे भी अधिक प्यारी पुत्री देकर भगवान् विश्वनाथको सन्तुष्ट किया है। वेदोंके द्वारा जाननेयोग्य परमेश्वर शिवजीकी चेष्टाओंको कौन जानता है। मैं तो बहुत थोड़ा और इतना ही जानता हूँ कि यह सब जगत् उन्हींकी रचना है। इस समय भगवान् शिव गिरिराजकुमारी पार्वतीजीके साथ काशीके ज्येष्ठेश्वर नामक स्थानमें ठहरे हुए हैं। भगवान् विश्वनाथके लिये विश्वकर्माद्वारा जिस विशाल प्रासाद (मन्दिर)-का निर्माण किया जा रहा है, वह अपूर्व है। वैसा तो मैंने अपने कानोंसे कभी सुना भी नहीं है। जहाँ मणियों और रत्नोंकी शलाकाओंसे मन्दिरकी दीवारें बनायी गयी हैं, उस मन्दिरमें एक सौ बारह खम्भे हैं जो सूर्यके समान तेजस्वी प्रतीत होते हैं। ऐसा अपूर्व वैभव जिनके समीप सदा प्रकट होता है, उन भगवान् उमाकान्तको आप कैसे नहीं जानते?

अगस्त्य! अपने जामाताकी उस अद्भुत समृद्धिका वर्णन सुनकर पर्वतराज लज्जासे दब गये। उन्होंने

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

उस कार्पटिक (तीर्थयात्री)-को पारितोषिक देकर विदा किया और स्वयं इस प्रकार चिन्ता करने लगे—'अहो! इस जगत्‌में जितनी वैभवराशि सुनी जाती है, वह सब मेरे जामाताके भवनमें विद्यमान है। मैं कन्या और जामाताके संतोषके लिये भेंट देनेको जो कुछ लाया हूँ, वह सब उनके अगाध वैभवको देखते हुए मुझे अत्यन्त तुच्छ प्रतीत होता है। यह सम्पूर्ण जगत् जिनका ही पसारा है, जिन्हें उनसे पहले रहकर कोई भी नहीं जान सका है, वे वेदवेद्य सर्वज्ञ परमेश्वर ये ही हैं। जिन्हें मैंने सदा अनभिज्ञ (भोला) समझा था, वे ही सर्वज्ञ ईश्वर हैं। सबके समस्त नाम जिनके ही नाम हैं, वे सर्वदेश-व्यापी और सबको सब प्रकारकी सिद्धि देनेवाले परमात्मा ये ही हैं। जिनका कोई एक देश नहीं ज्ञात होता है, जिनको पहले मेरे-जैसा पाषाणबुद्धिका पुरुष आचारहीनके समान देखता था, वे ही ये साक्षात् ईश्वर हैं। जिनसे श्रुतियाँ और स्मृतियाँ भी आचारका ज्ञान प्राप्त करती हैं, अबतक मैं जिन्हें नाममात्रसे ईश्वर जानता था, वे साक्षात् ईश्वर हैं। ये दूसरोंको भी ऐश्वर्यकी प्राप्ति करानेवाले हैं। गुणातीत होकर भी समस्त गुणोंके आधार हैं। कार्य और कारण सब इन्हींके स्वरूप हैं। यद्यपि यहाँ ये अर्वाचीन (नवीन)-से प्रतीत होते हैं तथापि ये परम प्राचीन और परात्पर हैं। मैं केवल पर्वतोंका स्वामी हूँ और मेरे जामाता उमाकान्त सम्पूर्ण विश्वके स्वामी हैं। मेरी सम्पत्ति परिमित (बहुत थोड़ी) है, परंतु इनके दिव्य वैभवका कोई माप नहीं है। अतः मेरी लायी हुई यह उपहारकी सामग्री बहुत थोड़ी है। इससे इस समय मैं इन महेश्वरका दर्शन नहीं करूँगा।'

मन-ही-मन ऐसा निश्चय करके गिरिराज हिमवान्‌ने सायंकाल समस्त पर्वतीय अनुचरोंको बुलाकर आज्ञा दी, 'सेवको! तुम सब लोग शीघ्र ही सूर्योदयसे पहले यहाँ एक शिवालय निर्माण करो।' हिमवान्‌की यह आज्ञा पाकर अनुगामी सेवकोंने रात बीतनेके पहले ही सुन्दर शिवालय बनाकर तैयार कर दिया। फिर गिरिराज हिमवान्‌ने उसमें शैलेश्वर नामक शिवलिंगकी प्रतिष्ठा की जो चन्द्रकान्तमणिका बना हुआ था। जिसकी जगमगाती हुई प्रभासे सारा मण्डप उज्ज्वल आलोकमय हो रहा था। तदनन्तर प्रातःकाल होते ही गिरिराजने पंचनद कुण्डमें स्नान किया और कालराज (भैरव)-को नमस्कार एवं पूजन करके वहीं अपनी लायी हुई रत्नराशि छोड़कर वे अपने सब पर्वतीय सेवकोंके साथ तुरंत लौट गये। उसके बाद प्रातःकाल 'हुण्डन', 'मुण्डन' नामवाले दो शिवगणोंने वरणाके सुन्दर तटपर बने हुए उस सुन्दर देवालयको देखा। उसे देखकर वे बड़े प्रसन्न हुए। वे शिवजीके समीप गये और उन्हें साष्टांग प्रणाम करके हाथ जोड़कर बोले—'देवाधिदेव! हम नहीं जानते, किस सुदृढ़ भक्तने वरणाके तटपर परम मनोहर मन्दिरका निर्माण कराया है। कल शामतक तो हमने वहाँ कोई मन्दिर नहीं देखा था। आज ही प्रातःकाल वह देखा गया है।' अपने गणोंका यह कथन सुनकर भगवान् शिवने पार्वतीजीसे कहा—'गिरिराजकुमारी! वह मन्दिर देखनेके लिये हम और तुम दोनों चलें।' ऐसा कहकर पार्वती और गणोंसहित भगवान् शिव वहाँ गये और वहाँ उन्होंने वरणाके तटपर रातभरमें बनाये हुए उस परम सुन्दर देवमन्दिरको देखा। फिर मण्डपमें प्रवेश करके चन्द्रकान्तमणिमय शिवलिंगका भी दर्शन किया। 'किसने इस शिवलिंगकी स्थापना की है?' यह जिज्ञासा मनमें उठते ही महादेवजीने अपने आगे अंकित की हुई वह प्रशस्ति देखी जो मन्दिरका निर्माण और प्रतिष्ठा करनेवालेको सूचित कर रही थी। उसे मन-ही-मन बाँचकर भगवान् शिवने देवीसे कहा—'प्रिये! सौभाग्यवश यह तुम्हारे पिताकी ही कृति है, इसको अच्छी तरह देख लो।' यह सुनकर पार्वतीजीको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने महादेवजीके चरणोंमें प्रणाम करके प्रार्थना की—'नाथ! इस श्रेष्ठ लिंग-विग्रहमें आपको दिन-रात स्थित रहना चाहिये।' 'एवमस्तु—ऐसा ही होगा' यों कहकर महादेवजीने पुनः पार्वतीसे कहा—'वरणा नदीके जलमें स्नान करके जिनके द्वारा शैलेश्वर शिवकी पूजा होगी तथा जो पितरोंका

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

तर्पण करके प्रसन्नतापूर्वक अपनी शक्तिके अनुसार दान देंगे, उनकी इस संसारमें पुनरावृत्ति नहीं होगी। शुभे! शैलेश्वर नामवाले इस महालिंगमें मैं सदा निवास करूँगा तथा जो इस लिंगका पूजन करेगा उस मनुष्यको मैं परम मोक्ष प्रदान करूँगा। जो वरणाके सुन्दर तटपर शैलेश्वरका दर्शन करेंगे, काशीमें निवास करनेवाले उन लोगोंको कभी दुःख नहीं दबा सकेगा।'

रत्नेश्वर लिंगकी महिमा

स्कन्दजी कहते हैं—मुने! शैलेश्वरका दर्शन करके पार्वतीसहित भगवान् शिव उस स्थानपर आये, जहाँ रत्नमय लिंग प्रकट हुआ था। सब प्रकारके रत्नोंसे प्रकट हुए उस शुभ लिंगका दर्शन करके भवानीने शंकरजीसे पूछा—'देवदेव! जगन्नाथ!

आप सब भक्तोंको अभय देनेवाले हैं, यह लिंग कहाँसे प्रकट हुआ है? इसका मूल तो सातों पातालतक चला गया है! इसका क्या नाम है, क्या स्वरूप है और क्या प्रभाव है?'

महादेवजी बोले—देवि! तुम्हारे पिता गिरिराज हिमवान् तुम्हें देनेके लिये बहुतसे रत्नोंका भार यहाँ ला रहे थे, उन्हीं रत्नोंको यहाँ जमा करके वे पुनः अपने घर लौट गये। तुम्हारे या मेरे लिये काशीमें जो कुछ श्रद्धापूर्वक समर्पित किया जाता है, उसका फल ऐसा ही होता है। यहाँ जितने भी शिवलिंग हैं, उन सबमें यह श्रेष्ठ रत्नरूप है तथा मोक्षरत्नको देनेवाला है। इसलिये इसका नाम रत्नेश्वर है। काशीमें इसका प्रभाव बहुत बड़ा है। तुम्हारे पिताने जो यहाँ स्वर्णराशि जमा की है, उसीसे तुम यहाँ इस शिवलिंगके लिये मन्दिर बनवा दो। शिवमन्दिर बनानेसे या टूटे-फूटे मन्दिरकी मरम्मत करनेसे शिवलिंग-स्थापनका पुण्य अनायास ही प्राप्त हो जाता है।

'बहुत अच्छा' कहकर देवी पार्वतीने शिवमन्दिर बनवानेके लिये शिवनन्दी आदि असंख्य पार्षदोंको नियुक्त किया। उन पार्षदोंने एक ही पहरमें सुमेरुशिखरके समान सुन्दर सुवर्णमय मन्दिरका निर्माण कर दिया। तदनन्तर देवी पार्वतीने महादेव-जीको प्रणाम करके उस शिवलिंगकी महिमा पूछी।

श्रीमहादेवजीने कहा—देवि! यह कल्याणदायक शिवलिंग अनादिसिद्ध है। इस समय तुम्हारे पिताके पुण्य-गौरवसे प्रकट हुआ है। यह गोपनीय वस्तुओंमें परम गोपनीय है और इस क्षेत्रमें समस्त मनोवांछित वस्तुओंको देनेवाला है। कलियुगमें जो पापबुद्धिवाले मनुष्य हैं उनसे यह रहस्य प्रयत्नपूर्वक छिपाये रखनेयोग्य है। देवि! कोटि-कोटि रुद्रसूक्तोंके जपसे जो फल बताया गया है वह रत्नेश्वरकी पूजा करनेसे प्राप्त हो जाता है। सबको सब कुछ देनेवाले मेरे इस रत्नेश्वर लिंगका प्रभाव अनुपम है। इस लिंगकी आराधना करके सहस्रों सिद्धोंने सिद्धि प्राप्त की है। सुन्दरी! अबतक यह लिंग गुप्त रहा है, अब मेरे भक्त एवं तुम्हारे पिता हिमवान्ने अपने पुण्यसे उपार्जित महारत्नोंद्वारा रत्नेश्वरको प्रकट किया है। गिरिराजनन्दिनी! इस शिवलिंगमें मेरी निरन्तर प्रीति बनी रहती है। काशीमें इस शिवलिंगका यत्नपूर्वक पूजन करना चाहिये।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

कृत्तिवासेश्वर लिंगका प्राकट्य और उसकी महिमा

स्कन्दजी कहते हैं—कुम्भज! इस प्रकार भगवान् शंकर जब रत्नेश्वर लिंगकी महिमाका वर्णन कर रहे थे इसी समय सब ओरसे 'रक्षा करो, रक्षा करो' का महान् कोलाहल सुनायी दिया। लोग कह रहे थे 'यह वीर्यके मदसे उन्मत्त गजासुर आ रहा है जो महिषासुरका पुत्र है। वह जहाँ-जहाँ पृथ्वीपर पैर रखता है वहाँ-वहाँ उसके भारसे पृथ्वी डगमगाने लगती है। वह ब्रह्माजीके द्वारा कामदेवसे हारे हुए स्त्री-पुरुषोंसे अवध्य होनेका वरदान पाकर तीनों लोकोंको तृणके समान समझता है।'

तब त्रिशूलधारी भगवान् शिवने अपनी ओर आते हुए उस दैत्यको दूसरेसे अवध्य जानकर उसके ऊपर त्रिशूलका प्रहार किया। गजासुर उस त्रिशूलमें गुँथ गया और अपनेको भगवान्के सिरपर छत्र बना हुआ-सा मानकर उनसे इस प्रकार बोला—'शूलपाणे! देवेश्वर! मैं जानता हूँ, आपने कामदेवको परास्त किया है। अतः आपके हाथसे मेरा वध होना श्रेष्ठ ही है। मृत्युंजय! मेरी एक बात सुनिये। एकमात्र आप ही सम्पूर्ण विश्वके लिये वन्दनीय हैं और सबके ऊपर विराजमान हैं। फिर भी आज मैं आपके भी ऊपर स्थित हूँ। अतः मेरी ही विजय हुई है। आपके त्रिशूलके अग्रभागपर स्थित होकर आज मैं धन्य और अनुगृहीत हूँ। एक दिन सभीको कालके द्वारा मरना है, परंतु ऐसी मृत्यु परम कल्याणके लिये होती है।'

उसका ऐसा वचन सुनकर कृपानिधान भगवान् शिव हँसते हुए बोले—गजासुर! मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ, तुम अपने अनुकूल कोई वर माँगो।

गजासुर बोला—दिगम्बर! यदि आप प्रसन्न हों तो मेरे इस चमड़ेको वस्त्रके स्थानमें धारण करें। इससे सदैव उत्तम गन्ध निकले और यह सदा अत्यन्त कोमल बना रहे। इसमें कभी किसी प्रकारकी मैल न बैठे और यह आपके अंगमें महान आभूषणकी भाँति सुशोभित हो। तपोधनोंकी महातपस्याजनित अग्निज्वालाको पाकर भी मेरा यह चर्म दग्ध नहीं हुआ है, अतः यह पुण्य और सुगन्धकी निधि है। इसे धारण करके आजसे आपका नाम 'कृत्तिवासा' हो जायगा।

तब 'एवमस्तु' कहकर भगवान् शंकर बोले—दैत्य! इस मुक्तिक्षेत्रमें तुम्हारा यह शरीर सबको मोक्ष देनेवाला मेरा लिंगविग्रह हो जाय। इसका नाम कृत्तिवासेश्वर होगा और यह बड़े-बड़े पातकोंका नाश करनेवाला होकर समस्त शिवलिंगोंका शिरोमणि होगा। रुद्र, पाशुपत, सिद्ध, ऋषि, तत्त्वचिन्तक, शान्त (मनको वशमें रखनेवाले), दान्त (जितेन्द्रिय), क्रोधको काबूमें रखनेवाले, द्वन्द्वरहित, परिग्रहशून्य तथा मुक्तिकी इच्छा रखनेवाले जो मेरे भक्त काशीपुरीमें रहकर मान और अपमानमें समभाव रखते तथा ढेला, पत्थर और सुवर्णको समान समझते हैं, उन सबपर अनुग्रह करनेके लिये मैं कृत्तिवासेश्वर लिंगमें सदा निवास करूँगा। द्वापर और कलियुगमें उत्पन्न होनेवाले पाप-बुद्धि मनुष्य भी कृत्तिवासेश्वरकी शरण लेकर सब पापोंसे मुक्त हो सुखसे मोक्ष प्राप्त कर लेंगे, ठीक उसी तरह, जैसे पुण्यात्मा पुरुष प्राप्त करते हैं। जो माघ (फाल्गुन) कृष्णा चतुर्दशी (शिवरात्रि)-को उपवासपूर्वक कृत्तिवासेश्वरका पूजन करते हुए रातमें जागरण करता है वह परम गतिको प्राप्त होता है।

ऐसा कहकर देवेश्वर शिवने गजासुरके उस महान् चर्मको लेकर अपने ऊपर ओढ़ लिया। कुम्भज! जिस दिन दिगम्बर-देवने कृत्तिवासा नाम धारण किया उस दिन बड़ा भारी उत्सव हुआ। जहाँ पृथ्वीपर त्रिशूल गाड़कर उस दैत्यको छत्रके समान धारण किया गया था, वहाँ उस शूलको उखाड़नेसे एक बड़ा भारी कुण्ड बन गया। उस कुण्डमें स्नान और पितरोंका तर्पण करके कृत्तिवासेश्वरका दर्शन करनेवाला मनुष्य कृतार्थ हो जाता है। अगस्त्य! कृत्तिवासेश्वरके

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

समीप वह कुण्ड लोकमें हंसतीर्थके नामसे प्रसिद्ध है। इस तीर्थके सब ओर मुनियोंद्वारा स्थापित दस हजार दो सौ शिवलिंग हैं जिनमें कात्यायनेश्वर प्रथम और च्यवनेश्वर अन्तिम हैं। इनमेंसे एक-एक शिवलिंग भी अपनी पूजा की जानेपर समस्त काशीवासी मनुष्योंको सिद्धि देनेवाला है।

विभिन्न तीर्थोंके देवविग्रहोंका काशीमें आगमन और उनका स्थान

स्कन्दजी कहते हैं—जहाँ महादेवजीने लीलापूर्वक गजासुरके चर्मको ओढ़ा था, वह स्थान रुद्रावासके नामसे विख्यात हुआ। तदनन्तर महादेवजी पार्वतीजीके साथ स्वेच्छानुसार कृत्तिवास तीर्थमें निवास करने लगे। वहीं नन्दीने आकर उन्हें प्रणामपूर्वक यह सूचना दी—'भगवन्! तीनों लोकोंमें जो शुभ एवं मुक्तिदायक तीर्थ और देवता हैं, उन सबको मैं यहाँ ले आया हूँ। कुरुक्षेत्रसे उस तीर्थके साथ स्थाणु लिंगका आगमन हुआ है। कुरुक्षेत्रस्थली लोलार्कसे पश्चिम भागमें स्थित है। वह सब सिद्धियोंको देनेवाली है। ढुण्ढिराजसे उत्तर भागमें साधकको सिद्धि प्रदान करनेवाला देवदेवेश्वर नामसे प्रसिद्ध लिंग है। यहाँ गोकर्णस्थानसे स्वयं ही प्रकट हुआ महाबल नामक शिवलिंग साम्बादित्यके समीप स्थित है। ऋणमोचनसे पूर्वभागमें शशिभूषण नामक लिंग प्रतिष्ठित है। ॐकारेश्वर महालिंगसे पूर्व महाकाल नामक शिवलिंग है जो दर्शनमात्रसे मोक्ष देनेवाला है। श्रेष्ठ तीर्थ पुष्करसे आकर अयोगन्धेश्वर नामक शिवलिंग यहाँ स्वतः प्रकट हुआ है। मत्स्योदरीके उत्तर भागमें उसकी स्थिति है। महोत्कटेश्वर लिंग मरुत्कोटिसे आकर यहाँ प्रकट हुआ है। वह कामेश्वरके उत्तर भागमें है। विमलेश्वर लिंग भी विश्वस्थानसे यहाँ आया है। स्वर्नीलेश्वरसे पश्चिम भागमें उसका दर्शन होता है। जो मनुष्य इस अविमुक्त क्षेत्रमें महादेवजीका दर्शन करेगा, वह कहीं भी क्यों न मृत्युको प्राप्त हो, निश्चय ही भगवान् शिवके लोकमें जायगा। जिस लिंगस्वरूप महादेवने कल्पान्तरमें भी काशीपुरीका कभी त्याग नहीं किया, वह हिरण्यगर्भतीर्थसे पश्चिममें हैं। गयातीर्थसे यहाँ पितामहेश्वर लिंगका आगमन हुआ है, जो यहाँ फल्गु आदि साढ़े आठ करोड़ तीर्थोंके साथ वर्तमान है। प्रयागतीर्थके साथ शूलटंकेश्वर नामक महादेव वहाँसे स्वयं यहाँ आकर स्थित हुए हैं। परम सुन्दर मुक्तिमण्डपसे दक्षिण दिशामें उनका स्थान है। शंकुकर्ण नामक महाक्षेत्रसे यहाँ आकर महातेज नामक लिंग प्रकट हुआ है। उसका स्थान विनायकेश्वरसे पूर्वभागमें है। रुद्रकोटि नामक परम पावन तीर्थसे यहाँ स्वयं आकर महायोगीश्वर लिंग प्रकट हुआ है। वह पार्वतीश्वर लिंगके समीप स्थित है। उसके मन्दिरके सब ओर करोड़ों रुद्र-मन्दिर हैं, जो रुद्रमूर्तियोंद्वारा बड़े सुन्दर बनाये गये हैं। काशीमें वेदवादी विद्वान् उसे रुद्रस्थली कहते हैं। रुद्रस्थलीमें जिनकी मृत्यु हुई है वे कृमि, कीट, पतंग, पशु, पक्षी, मृग, मनुष्य, यज्ञदीक्षित यजमान अथवा म्लेच्छ ही क्यों न हों—साक्षात् रुद्रस्वरूप हो जाते हैं और उनका इस संसारमें पुनरागमन नहीं होता। कोई सकाम हो या निष्काम अथवा पशु-पक्षीकी योनिमें ही क्यों न हो, यदि वह रुद्रस्थलीमें प्राण त्याग करता है तो उत्तम मोक्षको प्राप्त होता है। एकाम्बर क्षेत्रसे स्वयं भगवान् कृत्तिवासा यहाँ पधारे हैं। वे यहाँके कृत्तिवासेश्वर लिंगमें प्रतिष्ठित हैं। इस स्थानमें पार्वती और ऋषियोंके साथ भगवान् शिव स्वयं ही अपने भक्तोंके कानमें वेदोंद्वारा प्रशंसित तारक ब्रह्मका उपदेश करते हैं। साक्षात् भगवान् चण्डीश्वर मरु-जांगल क्षेत्रसे आकर इस सिद्धिदायक क्षेत्रमें विराज रहे हैं। कालंजरसे भगवान् नीलकण्ठ स्वयं ही इस तीर्थमें पधारे हैं और दन्तकूट नामक गणेशजीके समीप उनका स्थान है। काश्मीरसे बीजेश्वर लिंग

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

यहाँ प्राप्त हुआ है। इसकी स्थिति शालकटंकटसे पूर्व भागमें है। त्रिदण्डापुरीसे यहाँ आये हुए भगवान् ऊर्ध्वरेता कूष्माण्ड गणेशजीको आगे करके स्थित हैं। मण्डलेश्वर क्षेत्रसे प्राप्त हुआ श्रीकण्ठ नामक लिंग मण्डविनायकसे उत्तर दिशामें स्थित है। महातीर्थ छागलाण्डसे पधारे हुए कपर्दीश्वर नामक शिव यहाँके पिशाचमोचन तीर्थमें स्वयं प्रकट हुए हैं। सूक्ष्मेश्वर लिंगका शुभागमन आम्रातकेश्वर क्षेत्रसे हुआ है। विकटदन्त नामक गणेशके समीप उनकी स्थिति है। मधुकेश्वर क्षेत्रसे पधारे हुए भगवान् जयन्तेश्वर यहाँ लम्बोदर गणेशके पूर्वमें स्थित हैं। श्रीशैलसे आकर त्रिपुरान्तक नामवाले देवेश्वर यहाँ प्रकट हुए हैं। श्रीविश्वनाथजीके पश्चिम भागमें स्थित भगवान् कुक्कुटेश्वर सौम्यस्थानसे यहाँ आये हैं। वे वक्रतुण्ड गणेशके समीप स्थित हैं। जालेश्वर तीर्थसे त्रिशूलीश्वरने पदार्पण किया है। वे कूटदन्त गणेशके पूर्व भागमें स्थित हैं। महाक्षेत्र रामेश्वरसे जटाधारी देव पधारे हैं जो एकदन्त गणेशके उत्तर भागमें पूजित होते हैं। त्रिसन्ध्य क्षेत्रसे भगवान् त्र्यम्बकका शुभागमन हुआ है जो त्रिमुखसे पूर्व भागमें स्थित हैं। हरिश्चन्द्र क्षेत्रसे यहाँ भगवान् हरेश्वर पधारे हैं। ये हरिश्चन्द्रेश्वरके पूर्व भागमें पूजित होते हैं। मध्यमकेश्वर स्थानसे भगवान् शर्वका आगमन हुआ है। वे चतुर्वेदेश्वर लिंगको आगे करके स्थित हैं। स्थलेश्वर तीर्थसे यहाँ यज्ञेश्वर नामक महालिंग प्रकट हुआ है। सुवर्ण क्षेत्रसे सहस्राक्ष नामक शिवलिंगका शुभागमन हुआ है जो शैलेश्वरसे दक्षिणमें स्थित है। हर्षित क्षेत्रसे प्राप्त हुए हर्षितेश्वर शिव मन्त्रेश्वरके समीप हैं। रुद्रमहालय क्षेत्रसे यहाँ रुद्रका आगमन हुआ है। भगवान् रुद्रेश्वर त्रिपुरेश्वरके समीप स्थित हैं। वृषेश्वर नामक महादेवजी वृषभध्वजतीर्थसे आकर बाणेश्वर लिंगके समीप स्थित हैं। ईशानेश्वर महादेव केदार क्षेत्रसे यहाँ आये हैं। प्रह्लादकेशवसे पश्चिम भागमें उनका दर्शन करना चाहिये। उत्तरवाहिनी गंगाके जलमें स्नान करके ईशानेश्वरकी पूजा करनेवाला मनुष्य ईशानके ही समान कान्तिमान् होकर उनके धाममें निवास करता है। भैरव क्षेत्रसे यहाँ परम मनोहर भैरव-मूर्ति प्राप्त हुई है जो खर्वविनायकसे पूर्वमें स्थित है। सिद्धिदायक भगवान् उग्र कनखलतीर्थसे यहाँ प्रकट हुए हैं। अर्कविनायकसे पूर्वमें स्थित उग्र लिंगकी पूजा करनेसे अत्यन्त उग्र उपद्रव भी शान्त हो जाते हैं। वस्त्रापथ नामक महान् क्षेत्रसे भगवान् भव स्वयं यहाँ आकर भीमचण्डीके समीप प्रकट हुए हैं। पातकोंको दण्ड देनेवाले भगवान् दण्डी देवदारु वनसे काशीमें आकर लिंगरूपसे यहाँ निवास करते हैं। देहलीविनायकसे पूर्व-दिशामें दण्डीश्वरकी पूजा करनी चाहिये। उनकी पूजासे मनुष्योंका पुनर्जन्म नहीं देखा जाता है। भद्रकर्ण कुण्डसे साक्षात् भद्रकर्णेश्वर शिव यहाँ आये हैं, उद्दण्ड गणेशसे पूर्वदिशामें उनका उत्तम तीर्थ है। यमलिंग नामक महातीर्थसे आकर काललिंग यहाँ स्थित हुआ है। जो मनुष्य मंगलवार तथा चतुर्दशी तिथिके योगमें यहाँकी यात्रा करेगा वह अतिपातकयुक्त होनेपर भी यमलोकमें नहीं जायगा। नेपाल नामक महाक्षेत्रसे साक्षात् भगवान् पशुपति यहाँ पधारे हैं। यहाँ पिनाकपाणि भगवान् शिवने पाशुपत योगका उपदेश किया है। करवीरकतीर्थसे कपालीश्वरने यहाँ पदार्पण किया है। कपालमोचनतीर्थमें उनका प्रयत्नपूर्वक दर्शन करना चाहिये। महेश्वर क्षेत्रसे आकर दीप्तेश्वर नामक लिंग भगवान् उमापतिके समीप स्थित है। गंगासागरतीर्थसे अमरेशलिंगका शुभागमन हुआ है। सप्तगोदावरीतीर्थसे भगवान् भीमेश्वर पधारे हैं और लिंगरूपी होकर यहाँ निवास करते हैं। भूतेश्वर क्षेत्रसे आकर भस्मगात्र नामक लिंग यहाँ स्थित हुआ है जो भीमेश्वरसे दक्षिण भागमें है। नकुलीश्वरतीर्थसे भक्तभयहारी भगवान् स्वयम्भू नामक शिव पधारकर काशीमें स्वयं प्रकट हुए हैं। प्रयागतीर्थके समीप धरणीवराह नामक देवका मन्दिर है जो विन्ध्याचलसे यहाँ प्राप्त हुआ है। कर्णिकार क्षेत्रसे आये हुए कर्णिकार नामक

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

गणेशजी पूज्य हैं। हिमकूट पर्वतसे विरूपाक्ष नामक शिवलिंग यहाँ आकर प्रकट हुआ है, जो कि महेश्वरसे दक्षिणमें स्थित हुआ है। हरिद्वारसे हिमके समान कान्तिमान् हिमस्थेश नामक लिंगका आगमन हुआ है जो ब्रह्मनालसे पश्चिममें दर्शन करनेयोग्य है। कैलाशसे गणेशजी तथा अन्य महाबली सात करोड़ पार्षद यहाँ पधारे हैं। उन सबने सात स्वर्गके समान दुर्ग बनाये हैं। फिर काशीके चारों ओर उन्होंने पर्वतके समान ऊँचा परकोटा तैयार किया है। साथ ही गहरी खाई भी तैयार की है जो मत्स्योदरीके जलसे भरी हुई है। बाहर और भीतरके भेदसे मत्स्योदरी दो भागोंमें विभक्त है। उसका जल गंगाके जलसे मिला हुआ है। अत: वह महातीर्थके रूपमें प्रसिद्ध है। जब संहारमार्गसे अर्थात् उलटा बहकर गंगाजीका जल इस मत्स्योदरीमें फैलता है तब मत्स्योदरीतीर्थका जल भारी पुण्यसे ही प्राप्त होता है। उस समय सूर्यग्रहण और चन्द्रग्रहण होनेपर पर्व शतकोटिगुना होकर प्राप्त होता है। मत्स्योदरीमें जहाँ-कहीं भी स्नान करके जो मनुष्य पितरोंको पिण्डदान करते हैं, वे फिर कभी माताके गर्भमें शयन नहीं करते। जब गंगाका जल चारों ओर फैल जाता है, तब यह अविमुक्त क्षेत्र मत्स्यके आकारका दिखायी देता है।

गन्धमादन पर्वतसे आकर भूर्भुव: नामक लिंग यहाँ स्वयं प्रकट हुआ है जो गणेशजीसे पूर्व भागमें स्थित है। पातालगंगासहित हाटकेश्वर महालिंग स्वयं सात पाताल-तलसे यहाँ आकर प्रकट हुआ है। वह लिंग ईशानेश्वरसे पूर्वमें है। आकाशके नक्षत्र-लोकसे यहाँ ज्योतिर्मय लिंग आकर प्रकट हुआ है। यह तारकेश्वर लिंग ज्ञानवापीसे पूर्व भागमें स्थित है। पूर्वकालमें महादेवजीने जहाँ किरातरूप धारण किया था, उस किराततीर्थसे किरातेश्वर लिंग यहाँ आकर प्रकट हुआ है। लंकापुरीसे मरुकेश्वर नामक लिंगका आगमन हुआ है, वह नैर्ऋत्य भागमें स्थित होनेके कारण नैर्ऋत्येश्वर नामसे भी प्रसिद्ध है और पौलस्त्यराघवसे पश्चिम-दिशामें पूजित होता है। स्थलतीर्थसे आया हुआ परम पुण्यमय जलप्रिय लिंग यहाँ गंगाजीके जलमें स्थित है। कोटीश्वरतीर्थसे आया हुआ श्रेष्ठ लिंग ज्येष्ठेश्वरके पश्चिम भागमें विराजमान है। बड़वानलके मुखसे प्रकट हुआ अनलेश्वर नामक लिंग यहाँ नलेश्वरके अग्रभागमें स्थित है। देवोंके देव त्रिलोचन महादेव वीरजतीर्थसे यहाँ आकर अनादिसिद्ध त्रिविष्टप लिंगमें स्थित हैं। अमर-कण्टकसे आकर ओंकारेश्वर महादेव यहाँके पुण्यमय पिलपिलातीर्थमें प्रकट हुए हैं। जब यहाँ गंगा नहीं आयी थी और जिस समय त्रिलोकीका उद्धार करनेके लिये यहाँ काशीपुरीका आविर्भाव हुआ था, तभीसे वह आदिलिंग प्रकट हुआ है। भगवन्! इस प्रकार मैं इन सब स्थानोंके श्रीविग्रहोंको काशीपुरीमें ले आया हूँ। अपने-अपने स्थानमें तो उन्हें अंश मात्रसे ही रख छोड़ा है। उन सब देवताओंके यहाँ गगनचुम्बी सुन्दर मन्दिर भी बन गये हैं। महेश्वर! अब इस समय मेरे लिये क्या आज्ञा है, जिसका पालन करूँ? यदि कोई कार्य हो तो उसे कृपापूर्वक बतावें।'

स्कन्दजी कहते हैं—नन्दीकी यह बात सुनकर

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

देव-देवेश्वर शिवजीने कहा—'यह तुमने बहुत अच्छा किया। अब चण्डिकाओंको उपयुक्त कार्योंमें नियुक्त करो। यहाँ नौ करोड़ चामुण्डाएँ रहती हैं। उनके देवता, भूत, बेताल और भैरव भी उनके साथ ही हैं। उनको पुरीकी रक्षाके कार्यमें लगाओ और प्रत्येक दुर्गमें उनको बसाओ।' इस प्रकार आज्ञा देकर महादेवजी पार्वतीके साथ त्रैविष्टप क्षेत्रमें चले गये। नन्दीने परमेश्वर शिवकी आज्ञाको शिरोधार्य करके सब दुर्गाओंको बुलाया और उन्हें प्रत्येक दुर्गमें यथास्थानपर बसाया।

दैत्योंसहित दुर्गमासुरका देवी और उनकी शक्तियोंके साथ युद्ध

स्कन्दजी कहते हैं—अगस्त्य! पूर्वकालमें दुर्ग नामक एक महान् दैत्य हुआ था, जो तीव्र तपस्या करके पुरुषमात्रसे अवध्य होनेका वरदान प्राप्त कर चुका था। वह रुरु दैत्यका पुत्र था। उसने भूलोक, भुवर्लोक और स्वर्लोक आदि समस्त लोकोंको बाहुबलसे जीतकर अपने अधीन कर लिया था। उसके भयसे पीड़ित होकर ब्राह्मण वेदाध्ययन नहीं कर पाते थे। उसके दुर्धर्ष सैनिकोंने यज्ञशालाओंका विध्वंस कर दिया था।

संसारमें वे ही लोग धन्य हैं जो विपत्तिमें पड़ जानेपर भी दीनतासे प्रेरित होकर धनसे मलिन चित्तवाले पुरुषोंके आँगनमें कभी नहीं जाते। किसीके सामने छोटा न बनकर शानसे मर जाना भी अच्छा है, परंतु संसारमें लघुता (अपमान)-से युक्त अमरत्व भी प्राप्त हो तो वह अच्छा नहीं है। लोकमें उन्हींका जीवन सफल है और वे ही पुण्यात्मा हैं, जिनका चित्तरूपी समुद्र विपत्तिमें भी गम्भीरताका त्याग नहीं करता।१ जगत्में कभी सम्पत्ति प्राप्त होती है और कभी विपत्ति। भाग्यवश इन दोनोंको प्राप्त करके भी धीर पुरुष अपनी धीरता न छोड़े। जो आपत्तिमें पड़नेपर दीनताग्रस्त होकर मरता है, उसके इहलोक और परलोक दोनों नष्ट हो जाते हैं। इसलिये दीनताको त्याग देना चाहिये। जो आपत्तिमें भी धैर्य नहीं छोड़ते उनकी धीरतासे तिरस्कृत होकर इहलोक या परलोकमें कहीं भी विपत्ति फिर उनके पास नहीं आती२। स्वर्गका राज्य छिन जानेपर देवतालोग भगवान् महेश्वरकी शरणमें गये। तब सर्वज्ञ शिवजीने उस असुरका नाश करनेके लिये देवीको आदेश दिया। भगवान् महेश्वरकी आज्ञा पाकर भवानीने देवसमूहको अभयदान देकर युद्धके लिये उद्योग किया। उन्होंने कमनीय कान्तिसे तीनों लोकोंमें सर्वाधिक सुन्दरी रुद्रशक्ति कालरात्रिको बुलाकर उस देवद्रोही दैत्यको युद्धके लिये ललकारनेके निमित्त भेजा। कालरात्रिने उस दैत्यके पास जाकर कहा—'दैत्यराज! तू त्रिभुवनकी सम्पत्तिका त्याग कर दे। त्रिलोकीका राज्य इन्द्रको प्राप्त हो और तू रसातलको चला जा, जिससे वेद-वादियोंकी सम्पूर्ण वैदिक क्रियाएँ बेरोक-टोक चलती रहें। यदि तुझे अपने बलका थोड़ा भी घमण्ड हो तो युद्धके लिये आ जा। अन्यथा, इन्द्रकी शरण ले। इन दोनोंमेंसे जो उचित जान पड़े, वही कर।'

महाकालीका यह वचन सुनकर दैत्यराज दुर्ग क्रोधसे जल उठा और सेवकोंसे बोला—पकड़ो,

---

१- विपद्यपि हि ते धन्या न ये दैन्यप्रणोदिताः। धनैर्मलिनचित्तानामालभन्तेऽङ्गनं क्वचित्॥
पञ्चत्वमेव हि वरं लोके लाघववर्जितम्। नामरत्वमपि श्रेयो लाघवेन समन्वितम्॥
त एव लोके जीवन्ति पुण्यभाजस्तु एव वै। विपद्यपि न गाम्भीर्यं यच्चेतोऽब्धिः परित्यजेत्॥
(स्क० पु०, का० उ० ७१। १६—१८)

२- आपद्यपि हि ये धीरा इहलोके परत्र च। न तान् पुनः स्पृशेदापत्तद्धैर्येणावधीरिता॥
(स्क० पु०, का० उ० ७१। २२)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

पकड़ लो इसे। इसीको प्राप्त करनेके लिये मैंने देवर्षियों तथा राजाओंको बन्दी बनाया है। आज मेरे सौभाग्यका उदय होनेसे यह अनायास ही प्राप्त हो गयी। अन्त:पुरके रक्षको! इसे मेरे अन्त:पुरमें ले जाओ।

दैत्यराजके ऐसा कहनेपर जब रनिवासके रक्षक उस देवीको लेनेके लिये आये, तब उसने दैत्यराजसे कहा—दैत्यराज! हमलोग तो दूतियाँ हैं। दूतियाँ सदैव परवश होती हैं। कोई क्षुद्र पुरुष भी दूतको कभी पीड़ा नहीं देते, फिर जो तुझ-जैसे महाबली हैं, राजा हैं, वे ऐसा कैसे कर सकते हैं? हमलोगोंकी जो स्वामिनी हैं उनको संग्राममें जीतकर तू हम-जैसी सहस्रों स्त्रियोंका यथेष्ट उपभोग कर सकता है।

कालरात्रिका यह वचन सुनकर काम और क्रोधसे मोहित हुए असुरने मृत्युकी दूतीके तुल्य उस एक ही दूतीको अपने लिये बहुत माना और अन्त:पुरके रक्षकोंको आदेश दिया कि 'इसे शीघ्र रनिवासमें पहुँचाओ।' दैत्यकी यह आज्ञा पाकर अन्त:पुरकी रक्षा करनेवाले सब खोजे उसे पकड़नेका उद्योग करने लगे, किंतु देवीने उन्हें पास आते ही हुंकारजनित अग्निसे शीघ्र भस्म कर दिया। यह देख दैत्यराज दुर्गने तीस हजार दैत्योंको भेजा और कहा—'दानवो! इस दुष्टाको पाशोंसे बाँधकर शीघ्र ले आओ।' दैत्यराजका यह आदेश पाकर बड़े-बड़े दैत्योंने उसे पकड़नेका प्रयास किया, परंतु देवीके नि:श्वासवायुसे आहत होकर सब दूर चले गये। तदनन्तर देवी कालरात्रि वहाँसे उड़कर आकाशमार्गसे गमन करने लगीं। तब सहस्रों महादैत्य उनके पीछे लग गये। दैत्यराज दुर्गने भी दैत्योंकी असंख्य सेनाके साथ प्रस्थान किया। उस समय महादेवी विन्ध्याचलमें निवास करती थीं। कालरात्रिने वहाँ आकर देवीका दर्शन किया और दुर्गके अपराध भी कह सुनाये। दैत्यराज दुर्गने भी महादेवीको देखकर अपने सेनापतियोंको आदेश दिया—'वीरो! तुममेंसे जो कोई भी धैर्य, बुद्धि, बल अथवा छलसे भी इस विन्ध्यवासिनीको मेरे समीप ले आयेगा, उसे मैं अवश्य इन्द्रका पद दे दूँगा।'

दानवराजका यह वचन सुनकर दैत्य दोनों हाथ जोड़े हुए उच्चस्वरसे बोले—महाराज! यह कौन-सा कठिन कार्य है। एक तो वह अनाथ, दूसरे अबला। भला, उसको पकड़ लानेमें महान् प्रयत्नकी क्या आवश्यकता है। राजन्! आप हमारा पुरुषार्थ तो देखिये। हम केवल अपने बल-पराक्रमसे ही उस स्त्रीको आपके पास पकड़ लाते हैं।

ऐसा कहकर वे सब दैत्य एक ही साथ चल पड़े, सब ओरसे रणभेरियाँ बज उठीं। दैत्योंका यह आक्रमण देखकर देवता भी भयसे त्रस्त हो उठे, धरती काँपने लगी। तब महादेवीने अपने श्रीअंगोंसे सहस्रों शक्तियोंको प्रकट किया। उन शक्तियोंने इन महाबली दैत्योंकी सेनाके प्रत्येक सैनिकको आगे बढ़नेसे रोक दिया। मानो सीमाका उल्लंघन करके उमड़ता हुआ समुद्र ही रोक दिया गया हो। महादैत्योंने उस युद्धमें जिन-जिन भयंकर अस्त्र-शस्त्रोंका प्रहार किया, उन सबको शक्तियोंने तृणके समान समझकर हाथमें ले-लेकर फेंक दिया। तब दैत्योंने मेघोंके समान अनेक प्रकारके अस्त्रों, वृक्षों तथा पत्थरोंकी बड़ी भारी वर्षा की। यह देख विन्ध्यपर्वतपर निवास करनेवाली महामायाने प्रचण्ड धनुष लेकर उसपर वायव्यास्त्रका अनुसन्धान किया और उसके द्वारा शस्त्रास्त्रसमूहोंको लीलापूर्वक दूर फेंक दिया। तब महासुर दुर्गने अपनी सेनाको शस्त्रहीन देख एक जलती हुई शक्ति हाथमें ली और उसे देवीके ऊपर दे मारा, परंतु देवीने अपनी ओर आती हुई उस महावेगवती शक्तिको अपने धनुषसे छूटे हुए बाणोंद्वारा चूर्ण कर डाला। शक्तिको टूटी हुई देख उस महादैत्यने चक्र चलाया, किंतु देवीके सैकड़ों बाणोंसे वह बीचमें ही कटकर टूक-टूक हो गया। तब दैत्यने सींगका बना हुआ धनुष लेकर देवीकी छातीमें ताककर बाण मारा, परन्तु देवीने कालदण्डके समान उस बाणको अपने

In Public Domain. Digitzed By Sarvagya Sharda Peeth

शीघ्रगामी बाणसे मारकर रोक दिया। यह देख दुर्गमासुरने प्रलयाग्निके समान प्रज्वलित शूल लेकर बड़े वेगसे देवीके ऊपर चलाया, किंतु चण्डिकाने अपने शूलद्वारा उसे बीचमें ही काट दिया। शूलके असफल होनेपर दैत्यराज दुर्ग गदा हाथमें लेकर सहसा कूद पड़ा और देवीकी भुजामें आघात किया। देवीकी भुजासे टकराते ही उस गदाके टूट-फूटकर सहस्रों टुकड़े हो गये। तदनन्तर देवीने अपने बायें पैरसे दैत्यराजकी छातीमें मारा। इससे दैत्यराज घायल होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा और उसके हृदयमें बड़ी पीड़ा हुई। गिरनेके बाद पुनः उसी क्षण वह उठकर खड़ा हुआ और सहसा अदृश्य हो गया। उस समय जगदम्बाकी प्रेरणासे उनकी शक्तियाँ दैत्योंकी सेनामें इस प्रकार विचरण करने लगीं, जैसे प्रलयकालमें मृत्युकी सेना संसारमें विचरण करती है।

दुर्गदैत्यका वध, देवताओंद्वारा देवीकी स्तुति और दुर्गा नामकी प्रसिद्धि

स्कन्दजी कहते हैं—मुने! देवीकी शक्तियोंने दैत्योंकी विशाल सेनाको उसी प्रकार नष्ट कर दिया, जैसे प्रलयाग्निकी लपटें समस्त संसारको दग्ध कर देती हैं। इतनेमें ही दैत्यराज दुर्ग बादलोंकी आड़में खड़ा हो प्रचण्ड आँधी और बवण्डरके साथ कंकड़-पत्थरोंकी वर्षा करने लगा। तब महादेवीने शोषणास्त्रका प्रयोग करके पानी और पत्थरोंकी वर्षाको क्षणभरमें रोक दिया। यह देख दैत्यराजने क्रोधमें पर्वतके शिखरको उखाड़कर आकाशसे ही देवीके ऊपर गिराया। अपने ऊपर गिरते हुए उस पर्वतशिखरको देखकर महादेवीने वज्रके प्रहारसे उसके टुकड़े-टुकड़े कर डाले। तब वह दैत्य हाथीका स्वरूप धारण करके अपने कुण्डलमण्डित मस्तकको डुलाता हुआ शीघ्रतापूर्वक देवीके सम्मुख दौड़ा। उस पर्वताकार हाथीको आते देख भगवतीने शीघ्रतापूर्वक पाशसे बाँधकर उसकी सूँड़को तलवारसे काट डाला। तदनन्तर उसने भैंसेका स्वरूप धारण किया और अपने सींगोंसे पर्वतोंको उखाड़कर देवीके ऊपर फेंका। उसके उपद्रवसे समस्त ब्रह्माण्डको व्याकुल देखकर भगवतीने दानवपर त्रिशूलसे आघात किया। तब वह भैंसेका रूप छोड़कर सहस्र भुजाधारी पुरुष बन गया और देवीका हाथ पकड़कर उन्हें आकाशमें खींच ले गया। वहाँ ऊँचेसे उसने जगदम्बिकाको छोड़ दिया और क्षणभरमें बाणोंके जालसे उन्हें आच्छादित कर दिया। तब महादेवीने अपने बाणोंसे शरसमूहको काटकर एक महाबाणके द्वारा उस दैत्यको बींध डाला। देवीका वह बाण दैत्यकी छातीमें घुस गया, उसकी आँखें नाचने लगीं और वह अत्यन्त व्याकुल होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा। महापराक्रमी दुर्गके गिरते ही देवताओंकी दुन्दुभियाँ बजने लगीं। समस्त संसारमें उल्लास छा गया। सूर्य, चन्द्रमा और अग्निदेवको अपने खोये हुए तेजकी प्राप्ति हुई। तदनन्तर सब देवता फूलोंकी वर्षा करते हुए महर्षियोंके साथ वहाँ आये और महादेवीकी स्तुति करने लगे।

देवता बोले—सम्पूर्ण जगत्‌का धारण-पोषण करनेवाली महादेवि! तुम्हें नमस्कार है। तीनों लोकोंकी उत्पत्तिकी आधारभूता महामहेश्वरकी शक्ति! तुम दैत्यरूपी वृक्षोंको काटनेके लिये कुठार हो, तुम्हें नमस्कार है। त्रैलोक्यव्यापिनी कल्याणमयी शिवे! तुम्हें नमस्कार है। शंख, चक्र और गदा धारण करनेवाली तथा अपने व्यग्र हाथोंमें शार्ङ्ग-धनुषको उठानेवाली विष्णुस्वरूपे देवि! तुम्हें नमस्कार है। सबकी सृष्टि करनेवाली, प्राचीनोंकी भाषा, संस्कृतिकी जन्मभूमि तथा हंसकी सवारीसे यात्रा करनेवाली चतुराननस्वरूपे देवि! तुम्हें नमस्कार है। तुम्हीं इन्द्र, कुबेर, वायु, वरुण, यम, निर्ऋति, ईशान और अग्निकी शक्ति हो, तुम्हीं चन्द्रमाकी चाँदनी और सूर्यकी शक्ति प्रभा हो। तुम्हीं सर्वदेवमयी

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

शक्ति और तुम्हीं परमेश्वरी हो। तुम्हीं गौरी हो, तुम्हीं सावित्री हो और तुम्हीं गायत्री एवं सरस्वती हो। तुम्हीं प्रकृति, तुम्हीं मति और तुम्हीं अहंकारस्वरूपा हो। तुम्हीं चित्त और समस्त इन्द्रियरूप हो, पंचतन्मात्राएँ भी तुम्हारा ही स्वरूप हैं। पंचमहाभूत-स्वरूपा जगदम्बिके! तुम्हें नमस्कार है। तुम्हीं शब्दादि विषयरूपिणी हो, तुम्हीं इन्द्रियोंकी अधिष्ठातृ देवता हो, देवि! तुम्हीं ब्रह्माण्डकी सृष्टि करनेवाली हो तथा इस ब्रह्माण्डके भीतर भी तुम्हीं व्याप्त हो। महादेवि! तुम्हीं पराशक्ति और तुम्हीं परापर (कार्य-कारण)-स्वरूपा तथा तुम्हीं पर और अपरसे भी परे रहनेवाली परमात्मस्वरूपिणी हो। ईशानि! तुम्हीं सर्वरूपा हो और तुम्हीं सर्वव्यापिनी निराकारस्वरूपा हो। महामाये! तुम्हीं चित्-शक्ति, तुम्हीं स्वाहा और तुम्हीं स्वधा हो। अकृतस्वरूपे! वषट् और वौषट् भी तुम्हारे ही स्वरूप हैं। तुम्हीं प्रणव हो तथा अन्य सब मन्त्र भी तुम्हारे ही स्वरूप हैं। ब्रह्मा आदि सब देवता तुमसे ही उत्पन्न हुए हैं। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—ये चारों वर्ग तुम्हारे ही स्वरूप हैं। चारों पुरुषार्थरूपी फलका उदय तुम्हींसे होता है। यह सम्पूर्ण विश्व तुम्हींसे उत्पन्न हुआ है, तुम्हींमें स्थित है और तुम्हींमें इसका लय होता है। तुम्हीं जगत्‌की आधारशक्ति हो। दृश्य, अदृश्य, स्थूल और सूक्ष्मरूपसे जो कुछ उपलब्ध होता है, सबमें तुम्हीं शक्तिरूपसे विद्यमान हो। तुम्हारे बिना कहीं किसी भी वस्तुकी स्थिति नहीं है। प्रणतजनोंको सदा शरण देनेवाली देवि! मातः! आज तुमने महादैत्यपति दुर्गको, जो स्वभावसे ही देवताओंके विरुद्ध दैत्यसेनाको प्रेरित करता रहता था, मारकर हमारी रक्षा की है। तुम्हारे सिवा दूसरा कौन है, जिसकी शरणमें हम जायँ? तुम्हीं हमें शरण देनेवाली हो। अहो! इस युद्धमें वह दुर्ग नामक दैत्य तुम्हारे अमृतमय दृष्टिपातको पाकर जो मृत्युके अधीन हुआ है, यह बड़ी ही अद्भुत बात है। भवानी! आज हमलोगोंने यह जान लिया कि तुम्हारी दृष्टिमें पड़कर कोई दुष्ट भी दुर्गतिको नहीं प्राप्त होता। देवि! आपकी शस्त्राग्निमें पतंगोंकी भाँति जलकर भी दैत्यलोग सूर्यकी-सी कान्ति प्राप्त करके दिव्य धामको जा रहे हैं। सच है, संतपुरुष दुष्टोंके प्रति भी दुष्टबुद्धि नहीं करते, अपितु साधुओंके प्रति जैसा स्नेह रखते हैं वैसा ही स्नेह उन दुष्टोंके प्रति भी रखकर उन्हें अपना मार्ग प्रदान करते हैं। मृडानी! हम तुम्हारे चरणोंमें नतमस्तक हैं, तुम सदा अब ओरसे हमारी रक्षा करो। भवानी! तुम प्रतिक्षण पग-पगपर विपत्तियोंसे हम सबकी रक्षा करो।

इस प्रकार जगदम्बाकी स्तुति करके ऋषि, गन्धर्व और चारणोंसहित इन्द्र आदि सम्पूर्ण देवताओंने जगदम्बाके चरणोंमें बारंबार प्रणाम किया। तब सन्तुष्ट हुई जगन्माता महादेवीने उन श्रेष्ठ देवताओंसे कहा—'आजसे सब देवता पहलेकी भाँति अपने-अपने अधिकारोंका पालन करें। तुमलोगोंने जो यह मेरी यथार्थ स्तुति की है, इससे मैं बहुत सन्तुष्ट हूँ, अतः तुम्हें दूसरा वरदान देती हूँ। जो मनुष्य पवित्रभावसे भक्तिपूर्वक इस स्तुतिद्वारा मेरा स्तवन करेगा उसकी विपत्तिका मैं पग-पगपर नाश करूँगी। संग्राममें अत्यन्त दुर्गम दुर्ग नामक दैत्यको मार गिरानेके कारण आजसे मेरा 'दुर्गा' नाम प्रसिद्ध होगा *। जो मुझ दुर्गाकी शरणमें आयेंगे, उनकी कभी दुर्गति नहीं होगी। यह वज्रपिंजर नामवाली दुर्गास्तुति पुण्यकी वृद्धि करनेवाली है।'

देवताओंको इस प्रकार वरदान देकर महादेवी उसी समय अन्तर्धान हो गयीं और स्वर्गवासी देवता भी अपने-अपने स्थानको चले गये। कुम्भज! इस प्रकार महादेवीका नाम दुर्गा हुआ। काशीमें अष्टमी, चतुर्दशी एवं विशेषतः मंगलवारको दुर्गतिनाशिनी दुर्गादेवीका सदैव पूजन करना चाहिये। नवरात्रमें प्रयत्नपूर्वक प्रतिदिन पूजित हुई दुर्गादेवी

* अद्यप्रभृति मे नाम दुर्गेति ख्यातिमेष्यति। दुर्गदैत्यस्य समरे पातनादतिदुर्गमात्॥ (स्क० पु०, का० उ० ७२। ७१)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

समस्त विघ्नसमूहोंका नाश और सद्बुद्धि प्रदान करेंगी। काशीमें दुर्गाकुण्डके भीतर स्नान करके समस्त दुर्गम पीड़ाओंका नाश करनेवाली दुर्गादेवीकी विधिवत् पूजा करनेवाला मनुष्य नौ जन्मोंके पापको त्याग देता है। दुर्गादेवी अपनी शक्तियोंके साथ सब ओरसे काशीकी रक्षा करती हैं। महादेवीकी उन कालरात्रि आदि शक्तियोंका प्रयत्नपूर्वक पूजन करना चाहिये। जो मनुष्य नाना शक्तियोंसे युक्त इस दुर्गविजय नामक पुण्यमय अध्यायको श्रवण करता है वह दुर्गम संकटसे शीघ्र ही पार हो जायगा।

काशीके अट्ठाईस प्रमुख लिंगोंका संक्षिप्त वर्णन तथा ॐकारेश्वरके प्राकट्यकी कथा, ब्रह्माजीके द्वारा ॐकारेश्वरका स्तवन और उनकी महिमा

अगस्त्यजीने पूछा—षडानन! जगदम्बा पार्वतीजीके साथ त्रिलोचन महादेवके समीप जाकर भगवान् शिवने क्या किया?

स्कन्दजी बोले—अगस्त्यजी! त्रिलोचन (या त्रिविष्टप) लिंगके समीप जानेपर माता पार्वतीदेवीने भगवान् शिवसे कहा—'देवदेव! विश्वनाथ! आप सर्वव्यापी तथा सब कुछ देनेवाले हैं। आप ही सबके साक्षी तथा जनक हैं। आपका परम प्रिय यह क्षेत्र कर्मजनित रोगकी ओषधि है, मोक्षलक्ष्मीका लीला निकेतन है। मुझे भी यह क्षेत्र अत्यन्त प्रिय है। इस क्षेत्रके एक-एक धूलि-कणके समक्ष सम्पूर्ण त्रिलोकी भी तिनकेके समान है। फिर इस सम्पूर्ण तीर्थकी महिमाको कौन जान सकता है? प्रभो! मैं यह जानना चाहती हूँ कि इस काशीधाममें कौन-कौनसे शिवलिंग अनादिसिद्ध हैं, जिनका जन्मभरमें एक बार भी पूजन करनेसे काशीमें स्थित सम्पूर्ण लिंग पूजित हो जाते हैं? मुझे उन सबका परिचय दीजिये।'

देवीका यह वचन सुनकर महेश्वरने कहा—प्रिये! जिनके नामोंका उच्चारण करनेमात्रसे समस्त पाप क्षीण हो जाते हैं और पुण्यराशिकी प्राप्ति होती है, ऐसे स्थूल, सूक्ष्म एवं रत्ननिर्मित शिवलिंग काशीमें असंख्य हैं। अनेकों धातुमय लिंग हैं और बहुतसे प्रस्तरमय लिंग भी हैं। इनमें बहुतेरे तो स्वयम्भू हैं—स्वतः प्रकट हुए हैं और बहुतसे देवताओं एवं ऋषियोंद्वारा स्थापित किये हुए हैं। सुन्दरि! तुमने जिन शिवलिंगोंका परिचय पूछा है, उनका वर्णन करता हूँ। वे लिंग कलियुगमें अत्यन्त गोप्य होंगे, परंतु उनका प्रभाव अपने-अपने स्थानका परित्याग नहीं करेगा। जो कलियुगके पापसे पुष्ट हो रहे हैं तथा जो दुष्ट, नास्तिक और शठ हैं, वे इन सिद्ध लिंगोंके नाम भी नहीं जान सकेंगे। उनमेंसे प्रथम ॐकार लिंग है, दूसरा त्रिलोचन, तीसरा महादेव, चौथा कृत्तिवासा, पाँचवाँ रत्नेश्वर, छठा चन्द्रेश्वर, सातवाँ केदारेश्वर, आठवाँ धर्मेश्वर, नवाँ वीरेश्वर, दसवाँ कामेश्वर, ग्यारहवाँ विश्वकर्मेश्वर, बारहवाँ मणिकर्णीश्वर, तेरहवाँ अविमुक्तेश्वर और चौदहवाँ विश्वेश्वर महालिंग है। प्रिये! ये चौदहों लिंग कल्याणके हेतु हैं, इनका समुदाय ही मुक्तिक्षेत्र कहा गया है। ये सब इस क्षेत्रके अधिष्ठाता देवता हैं और आराधना करनेपर मोक्षलक्ष्मी प्रदान करते हैं। प्रिये! इस आनन्दकाननमें देहधारियोंकी मुक्तिके लिये ये ही चौदह महालिंग परम पूजनीय माने गये हैं। प्रत्येक मासकी मंगलमयी प्रतिपदासे लेकर चतुर्दशीतक इन प्रधान-प्रधान लिंगोंकी यत्नपूर्वक यात्रा करनी चाहिये। जो इन चौदह महालिंगोंकी आराधना करता है, उसकी इस संसारमार्गमें कभी पुनरावृत्ति नहीं होती। यह काशीतीर्थका अनुपम कोष है, इसको जहाँ-तहाँ सब ओर प्रकाशित नहीं करना चाहिये। देवि! बहुत बड़ी विपत्तिमें भी इन लिंगोंके नामोंका उच्चारण किया जाय तो ये सब दुःख हर लेते हैं। यह इस क्षेत्रका परम गोपनीय रहस्य है। गिरिराजकुमारी! ये चौदह लिंग मेरे सामीप्यकी

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

प्राप्ति करानेवाले तथा अविमुक्त धामके हृदय हैं। प्रिये! इस क्षेत्रमें निश्चय ही सबकी मुक्ति होती है, ऐसी जो प्रसिद्धि है, उसमें ये मेरे चौदह महालिंग ही कारण हैं। जिन भक्तोंने आनन्द-वनमें इन लिंगोंका चिन्तन किया है, वे ही व्रतधारी और तपस्वी हैं। जिन्होंने दूरसे भी इन लिंगोंका दर्शन कर लिया है, वे ही उत्तम योगाभ्यासी और महादानी हैं।

तदनन्तर भगवान् शंकरने अपने भक्तोंके हितके लिये पार्वतीदेवीसे अन्य लिंगोंका भी इस प्रकार परिचय दिया—शैलेश्वर, संगमेश्वर, स्वर्लीनेश्वर, मध्यमेश्वर, हिरण्यगर्भेश्वर, ईशानेश्वर, गोप्रेक्षेश्वर, वृषभध्वजेश्वर, उपशान्तेश्वर, ज्येष्ठेश्वर, निवासेश्वर, शुक्रेश्वर, व्याघ्रेश्वर और जम्बुकेश्वर—ये चौदह लिंग भी काशीके महत्त्वपूर्ण आयतन हैं। इनकी सेवासे भी मनुष्य मोक्षको प्राप्त होता है। वैशाख कृष्ण प्रतिपदासे लेकर चतुर्दशीतक श्रेष्ठ पुरुषोंको इन लिंगोंकी पूजा करनी चाहिये। देवि! इनमेंसे एक-एक लिंगकी महिमाका भी कहीं आदि-अन्त नहीं है।

पार्वतीजी बोलीं—समस्त कारणोंके ईश्वर महादेव! आपने जो यह कहा है कि पूर्वोक्त लिंगोंमेंसे एक-एक लिंग भी काशीमें परम मोक्षका कारण है, इससे मेरी उत्सुकता बहुत बढ़ गयी है। जिनके नामश्रवणसे भी समस्त पापोंका अपहरण हो जाता है, उन चौदह लिंगोंमेंसे प्रत्येककी महिमाका वर्णन कीजिये। ॐकारेश्वर लिंगका स्वरूप क्या है, उनकी क्या महिमा है, पूर्वकालमें किसने इनकी आराधना की थी और आराधित होनेपर इन्होंने उसे कौन-सा फल प्रदान किया था?

महादेवजीने कहा—महादेवी! पूर्वकालकी बात है। जगत्स्रष्टा ब्रह्माजीने आनन्दवनमें समाधि लगाकर बड़ी भारी तपस्या की। तपस्या करते-करते जब एक सहस्र युग बीत गया तब सातों पातालोंका भेदन करके उनके आगे एक दिव्य ज्योति प्रकट हुई। उसके प्रकाशसे सम्पूर्ण दिशाएँ प्रकाशित हो उठी थीं। उनकी निर्व्याज समाधिसे जो परम ज्योति अन्तःकरणमें प्रकट हुई थी, वही बाहर व्यक्त हो गयी। ब्रह्माजीने समाधि त्याग करके जब आँखें खोलीं तब सामने आदि अक्षर ॐकारको प्रकट देखा। उसीमें अकारका दर्शन हुआ जो सत्त्वगुणसम्पन्न, ऋग्वेदका अधिष्ठान, सृष्टिपालक, साक्षात् नारायणस्वरूप तथा अज्ञानमय अन्धकारसे परे प्रतिष्ठित है। उसके बाद उकार दृष्टिगोचर हुआ जो रजोगुणस्वरूप, यजुर्वेदकी उत्पत्तिका स्थान तथा उन्हींके प्रतिबिम्बित स्वरूपकी भाँति ब्रह्ममय प्रतीत होता था। उसके बाद ब्रह्माजीने मकारको प्रत्यक्ष किया जो किसी प्रकारकी ध्वनिसे रहित, अन्धकारके संकेतस्थानके सदृश तथा तमोगुणस्वरूप ज्ञात हुआ। वह साक्षात् रुद्रस्वरूप मकार भी सामवेदकी उत्पत्तिका स्थान है। उसके बाद ब्रह्माजीने परमानन्दस्वरूप परा वाणीके आश्रयभूत नादतत्त्वका साक्षात्कार किया, जिसकी आकृति विश्वरूपमय है तथा जो सगुण और निर्गुणस्वरूप है। उसीको शब्दब्रह्म कहते हैं तथा वही समस्त वाङ्मयका कारण है। तत्पश्चात् विधाताने तपस्यासे प्रत्यक्ष हुए विन्दुतत्त्वका अवलोकन किया, जो समस्त कारणोंका भी कारण, समस्त जगत्की उत्पत्तिका स्थान तथा परम शिवरूप है। अपने प्रभावसे सबका अवन—(रक्षण) करनेके कारण प्रणवको ॐ कहते हैं अथवा भक्तमुन्नयति—भक्तको ऊर्ध्वलोकमें ले जाता है, इसलिये जिसे ॐ कहते हैं वह प्रणव निराकार होकर भी साकाररूपसे ब्रह्माजीको दृष्टिगोचर हुआ। जो अपने जपमें मन लगानेवाले भक्तको भवसागरसे तार देता है, इसीलिये जिसे 'तार' कहते हैं, उसी प्रणवका ब्रह्माजीने साक्षात्कार किया। समस्त मोक्षकामी पुरुषोंद्वारा यह प्रणुत (स्तुत अथवा प्रशंसित) होता है, इसलिये इसका नाम प्रणव है अथवा यह अपनी उपासना करनेवाले पुरुषोंको परम पदमें पहुँचाता है, इस कारण इसे प्रणव कहते हैं। वेदत्रयी जिसका स्वरूप है, जो तुरीय, तुरीयातीत और सर्वात्मक है उसी नादविन्दुस्वरूप

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

ॐकारका ब्रह्माजीको प्रत्यक्ष दर्शन हुआ। जिससे अंगोंसहित सम्पूर्ण वेद प्रकट होते हैं, जो वृषभरूप यज्ञमय परमेश्वर मन्त्र, ब्राह्मण और कल्प— तीनोंसे सम्बद्ध होकर बार-बार शब्द करता है अर्थात् वैदिक मन्त्रोंसे ध्वनित होता है, जो तेजोमय तथा सबसे श्रेष्ठ है। जिसमें ब्रह्मासे लेकर कीटपर्यन्त सम्पूर्ण जगत्का लय होता है, इसीलिये जो साधुपुरुषोंद्वारा लिंग-नामसे पूजित होता है उसी ॐकार लिंगका ब्रह्माजीने प्रत्यक्ष दर्शन किया। तदनन्तर अ, उ, म, नाद, विन्दु—इन पाँच अक्षरोंसे युक्त प्रपंचसे भिन्न लिंगरूपधारी ॐकारेश्वरका ब्रह्माजीने इस प्रकार स्तवन किया।

ब्रह्माजी बोले—सदाशिव! अक्षरस्वरूप धारण करनेवाले आप ॐकाररूप परमेश्वरको नमस्कार है। आप ही अकार आदि अक्षरोंके उत्पत्तिस्थान हैं, आपको नमस्कार है। निराकार परमात्मन्! आप अकार, उकार और मकार हैं। ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद आपके ही स्वरूप हैं, आप रूपातीत परमेश्वरको नमस्कार है। आप ही नाद, विन्दु और कलास्वरूप हैं, आपको नमस्कार है। लिंगरहित होते हुए भी लिंगरूपसे प्रकट होनेवाले आप सर्वस्वरूप महेश्वरको नमस्कार है। आप आदि-अन्तसे रहित एवं तेजकी निधि हैं, आपको नमस्कार है। आप भव (जगत्को उत्पन्न करनेवाले), रुद्र (दुःख दूर करनेवाले) और शर्व (संहारकारी) हैं, आपको नमस्कार है। आप पापियोंके लिये उग्र और भीमरूप हैं, आपको नमस्कार है। पशुओं (अज्ञानी जीवों)-का पालन करनेवाले आपको नमस्कार है। आप तारक प्रणवरूप हैं, आपसे ही सम्पूर्ण जगत्की उत्पत्ति होती है, आपको नमस्कार है। आप मायासे परे परम कल्याणस्वरूप हैं, आपको नमस्कार है। अ, इ, उ, ऋ, लृ, ए, ओ, ऐ, औ—ये सब स्वर आपके ही स्वरूप हैं, आपको नमस्कार है। 'क'से लेकर 'ह'तक सम्पूर्ण व्यंजन भी आपके ही स्वरूप हैं, आपको नमस्कार है। उदात्त, अनुदात्त और स्वरितरूप आपको बार-बार नमस्कार है। ह्रस्व, दीर्घ और प्लुतके नियन्ता तथा विसर्गसहित वर्णस्वरूप आपको नमस्कार है। अनुस्वाररूप आपको नमस्कार है। अनुनासिकमय आपको नमस्कार है। निरनुनासिक अक्षर तथा दन्त और तालुसे उच्चारित होनेवाले वर्ण आपके ही स्वरूप हैं, आपको नमस्कार है। ओष्ठ और हृदयसे निकलनेवाले अक्षर भी आपसे भिन्न नहीं हैं, ऊष्मा और अन्तःस्थवर्ण आपके ही स्वरूप हैं, आपको नमस्कार है। आप ही प्रत्येक वर्गके पंचम वर्ण हैं, आपको नमस्कार है। आप पिनाक धारण करनेवाले हैं, आपको नमस्कार है। आप ही निषाद (किरात) और निषादोंके स्वामी हैं, आपको नमस्कार है। वीणा, वेणु और मृदंग आदि वाद्य भी आपके ही स्वरूप हैं, आपको नमस्कार है। उच्च और गम्भीर ध्वनि-स्वरूप आपको नमस्कार है। आप पापियोंके लिये घोर (भयंकर) और भक्तोंके लिये अघोर (सौम्य)-रूप धारण करते हैं, आपको नमस्कार है। आप ही तानस्वरूप हैं, आपको नमस्कार है। आप ही इक्कीस मूर्छनाओंके पति हैं, आपको नमस्कार है। स्थायी और संचारीके भेदसे द्विविध भावरूप आपको नमस्कार है। आप तालप्रिय, तालस्वरूप तथा लास्य और ताण्डव नृत्यको प्रकट करनेवाले हैं, आपको नमस्कार है। तौर्यत्रिक (नृत्य, गान और वाद्य) आपका स्वरूप है। आप नृत्य, गान और वाद्यके बड़े प्रेमी हैं तथा भक्तिपूर्वक नृत्य, गान एवं वाद्यके द्वारा आपकी आराधना करनेवाले भक्तोंको आप मोक्षलक्ष्मी प्रदान करते हैं, आपको नमस्कार है। स्थूल और सूक्ष्म आपके ही स्वरूप हैं। दृश्य और अदृश्य रूप धारण करनेवाले आपको नमस्कार है। अर्वाचीन (नवीन) और प्राचीन सब आपके ही स्वरूप हैं, आपको नमस्कार है। वाणीका विस्तार भी आपका ही रूप है। आप समस्त वाङ्मय-प्रपंचसे परे हैं, आपको नमस्कार है। एक, अनेक रूप तथा सत्-असत्के स्वामी आपको नमस्कार है। शब्दब्रह्म (प्रणवरूप) आपको नमस्कार है। परब्रह्म! आपको नमस्कार है। वेदान्तके द्वारा जाननेयोग्य आपको नमस्कार है। वेदोंका पालन करनेवाले आपको नमस्कार है। आप वेदस्वरूप हैं, आपका रूप

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

वेदगम्य है, आपको नमस्कार है। पार्वतीपते! आपको नमस्कार है। जगदीश्वर! आपको नमस्कार है। देवदेवेश्वर! दिव्य पद प्रदान करनेवाले देव! आपको नमस्कार है। महेश्वर! परम कल्याणकारी आपको बारंबार नमस्कार है। जगदानन्द! चन्द्रशेखर! मृत्युंजय! आप त्रिनेत्रधारी शिवको नमस्कार है। पिनाक एवं त्रिशूल धारण करनेवाले आपको नमस्कार है। आप भक्तोंका विषाद दूर करते हैं। आप ही ज्ञान हैं, ज्ञान ही आपका स्वरूप है, आप सर्वज्ञ शिवको नमस्कार है। योगसत्तम! आप ही योगियोंको योगसिद्धि प्रदान करनेवाले हैं। तपोधन! आप ही तपस्वी लोगोंको तपस्याका फल देते हैं। आप ही मन्त्ररूप हैं और आप ही मन्त्रोंके फलदाता हैं। आप ही महादान देनेवाले और आप ही महादानके फल हैं। आप ही महायज्ञ और उसके फलदाता हैं। आप ही सर्व, सर्वगत, सब कुछ देनेवाले और सबके साक्षी हैं। सर्वभोक्ता, सर्वकर्ता और सर्व-संहारकारी भी आप ही हैं। योगियोंके हृदयाकाशमें निवास करनेवाले शिव! आपको नमस्कार है। आप ही विष्णुरूपसे शंख, चक्र और गदा धारण करके तीनों लोकोंका पालन करते हैं। जगत्पालक! सत्त्वस्वरूप! आपको नमस्कार है। आप ही सृष्टिरचनाके ज्ञाता ब्रह्मा होकर इस विश्वकी सृष्टि करते हैं। रजोगुणप्रधान रूप धारण करके भी आप रजोहीन मोक्षपद प्रदान करनेवाले हैं। आप ही कल्पके अन्तमें कालाग्निरुद्र होकर महाप्रलय आरम्भ करते हैं। कल्पके आदिमें आप ही अपने दृष्टिपातमात्रसे पुरुष और प्रकृतिरूपसे महत्तत्त्व आदि सम्पूर्ण जगत्‌को पुनः प्रकट कर देते हैं। आपकी पलकोंका खुलना और बंद होना—ये ही दोनों सृष्टि और संहारके कारण हैं। स्वेच्छानुसार विचरण करनेवाले आप परमेश्वरका यह सब खेल है। शम्भो! आपसे ही यह सब कुछ उत्पन्न हुआ है और आपमें ही सम्पूर्ण चराचर जगत् स्थित है। आप वेदवाणीके भी अगोचर हैं। आपकी यथावत् स्तुति कौन जानता है? आप ही स्तुति करनेवाले हैं, आप ही स्तुति हैं और आप ही स्तवनीय देवता हैं। मैं तो **'ॐ नमः शिवाय'** (प्रणवस्वरूप कल्याणमय शिवको नमस्कार है) इतना ही जानता हूँ, इसके सिवा और कुछ भी नहीं जानता। आप ही मुझे शरण देनेवाले हैं और आप ही परम गति हैं। ईश! मैं आपको ही प्रणाम करता हूँ, आपको नमस्कार है, नमस्कार है, नमस्कार है।

इस प्रकार बार-बार कहकर ब्रह्माजीने ॐकारनामक महालिंगरूपधारी महेश्वरको पृथ्वीपर दण्डकी भाँति गिरकर साष्टांग प्रणाम किया।

महादेवजी कहते हैं—पार्वती! ब्रह्माजीद्वारा की हुई उस उत्तम एवं अद्भुत स्तुतिको सुनकर मैं बहुत सन्तुष्ट हुआ और मैंने ब्रह्माजीसे कहा—'चतुरानन! मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ, वर माँगो।'

ब्रह्माजी बोले—देवेश्वर! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं और मुझे वरदानका अधिकारी मानते हैं तो इस महालिंगमें आपका सदैव निवास बना रहे और यह ॐकारेश्वर नामक शिवलिंग भक्तोंको एकमात्र मोक्ष प्रदान करनेवाला हो।

स्कन्दजी कहते हैं—ब्रह्मर्षे! ब्रह्माजीका यह वचन सुनकर भगवान् शिवने कहा—**'तथास्तु'** ऐसा ही होगा। सुरश्रेष्ठ! तुम तपस्याके कारण सर्वश्रेष्ठ हो और सम्पूर्ण वेदोंकी निधि हो। जब गंगा ॐकारेश्वरके समीपमें आवेगी तब देवताओं, ऋषियों और पितरोंको प्रिय लगनेवाला पुण्यकाल उपस्थित होगा। उस समय ॐकारेश्वरके समीप मत्स्योदरीके जलमें किया हुआ स्नान, जप, दान, होम और देवपूजन सब अक्षय होता है। ॐकारेश्वरके दर्शनसे ही मनुष्य अश्वमेध यज्ञका फल पाता है। अतः काशीमें प्रयत्नपूर्वक ॐकारेश्वरका दर्शन करना चाहिये। इस प्रकार कमलोद्भव ब्रह्माजीको वर देकर भगवान् शंकर पुनः उसी महालिंगमें लीन हो गये। अगस्त्य! ब्रह्माजी द्वारा की हुई स्तुतिका जप करनेवाला मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। महान् पुण्योंसे परिपूर्ण होता है और श्रेष्ठ ज्ञान प्राप्त कर लेता है।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

त्रिलोचन लिंगकी महिमा

स्कन्दजी कहते हैं—मुने! महादेवजीने त्रिविष्टप लिंगकी उत्पत्तिके विषयमें जो श्रमहारिणी कथा कही है, उसे सुनाता हूँ, सुनो।

महादेवजी बोले—पार्वती! पृथ्वीपर यह आनन्दवन सबसे श्रेष्ठ है। इसमें भी सब तीर्थ श्रेष्ठ हैं। तीर्थोंमें भी ॐकारेश्वरकी भूमि श्रेष्ठ है। मुक्तिका मार्ग प्रकाशित करनेवाले ॐकारेश्वर लिंगसे भी अत्यन्त श्रेष्ठ कल्याणस्वरूप त्रिलोचन लिंग है। जैसे तेजस्वियोंमें सूर्य और दर्शनीय वस्तुओंमें चन्द्रमा श्रेष्ठ हैं, उसी प्रकार समस्त लिंगोंमें त्रिलोचन लिंग श्रेष्ठ है। जो महाबुद्धिमान् मनुष्य काशीमें त्रिलोचन लिंगकी पूजा करते हैं वे मेरी प्रीति चाहनेवाले त्रिलोकनिवासियोंके द्वारा पूजनीय हैं। गिरिराजनन्दिनी! यद्यपि ॐकार आदि सभी मुख्य लिंग समस्त पापोंका नाश करनेवाले हैं, परन्तु भगवान् त्रिलोचनकी शक्ति कुछ और ही है। प्रिये! पूर्वकालमें जब मैं योगयुक्त होकर बैठा था, उस समय यह महान् लिंग सात पातालोंका भेदन करके भूतलसे मेरे सामने प्रकट हुआ था। यह त्रिलोचन लिंग ज्ञानदृष्टि देनेवाला बताया गया है। जो भगवान् त्रिलोचनके भक्त हैं वे सभी त्रिलोचनस्वरूप हैं, मेरे पार्षद हैं और जीवन्मुक्त हैं। वैशाख शुक्ला तृतीयाको पिलपिला कुण्डमें स्नान करके जो भक्तिपूर्वक उपवास करके रात्रिमें जागरण और त्रिलोचनकी पूजा करते हैं, फिर प्रातःकाल वहीं स्नान करके त्रिलोचन लिंगकी पूजा करके पितरोंके उद्देश्यसे अन्न और दक्षिणासहित धर्मघट दान करते हैं, तत्पश्चात् शिवभक्तोंके साथ बैठकर पारणा करते हैं वे इस पार्थिव शरीरका त्याग करके पुण्यसे प्रेरित हो निश्चय ही मेरे आगे चलनेवाले पार्षद होते हैं।

स्कन्दजी कहते हैं—मुने! प्राचीन रथन्तर कल्पकी बात है। भगवान् त्रिलोचनके मणि-माणिक्यनिर्मित मन्दिरमें कभी कबूतरोंका एक जोड़ा निवास करता था। वे दोनों कबूतर प्रतिदिन प्रातः, मध्याह्न और सायंकालमें मन्दिरकी परिक्रमा करते हुए सब ओर उड़ते और अपने पंखोंकी हवासे मन्दिरमें लगी हुई धूलको दूर किया करते थे। भक्तलोग जो सदा त्रिलोचन और त्रिविष्टप आदि नामोंका उच्चारण करते वह सब उनके कानोंमें पड़ा करता था। उन दोनों पक्षियोंके नेत्रोंमें मंगल आरतीकी दिव्य ज्योति पड़कर उन्हें भक्तजनोंकी चेष्टाएँ दिखाती थी। कभी-कभी तो वे युगल पक्षी वहाँका कौतुक देखते हुए चारा चुगनेकी भी चिन्ता छोड़ देते और स्थिर चित्तसे वहीं ठहरकर दर्शन करते थे, वहाँसे उड़कर किसी अभीष्ट स्थानको नहीं जा पाते थे। भक्तजनोंसे भरे हुए उस मन्दिरके चारों ओर बिखरे चावलके दानोंको चुगते-चुगते वे परिक्रमा किया करते थे। भगवान् त्रिलोचनके दक्षिण भागमें चतुःस्रोतस्विनीका सुन्दर जल था। तृषासे आतुर होनेपर वे उसीका जल पीते और कभी-कभी उसमें स्नान भी कर लेते थे। इस प्रकार त्रिलोचनके समीप उत्तम चेष्टाके साथ विचरते हुए उन पक्षियोंके बहुत वर्ष बीत गये।

तदनन्तर देवमन्दिरके स्कन्धभागमें गवाक्षके भीतर सुखपूर्वक बैठे हुए उन दोनों पक्षियोंको एक बाजने बड़ी क्रूर दृष्टिसे देखा। एक दिन वह बाज फिर आया। तब डरी हुई कबूतरीने कहा—'प्रियतम! यह स्थान दुष्टकी दृष्टिसे दूषित हो गया है। अतः इसको त्याग देना चाहिये।' यह सुनकर कबूतरने अवहेलनापूर्वक कहा—'प्रिये! वह मेरा क्या कर लेगा।'

कबूतरी बोली—जो उपद्रव आनेपर भी अपने स्थानको छोड़कर अन्यत्र नहीं चला जाता वह पंगु नदीके किनारेके वृक्षकी भाँति नाशको प्राप्त होता है। नाथ! जबतक यह कालरूपी बाज हमलोगोंसे बहुत दूर है, तभीतक तुम मुझे त्यागकर

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

भी दूर चले जाओ, क्योंकि तुम्हारे जीवित रहनेपर इस भूतलमें कुछ भी दुर्लभ नहीं होगा। तुम्हें पुनः स्त्री, मित्र, धन और गृह प्राप्त हो जायगा। यदि पुरुषने स्त्री और धनके द्वारा भी अपने आपकी रक्षा कर ली तो राजा हरिश्चन्द्रकी भाँति उसे इस लोकमें सब कुछ मिल जाता है। यह आत्मा ही प्रिय बन्धु है और यह आत्मा ही महान् धन है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्षका उपार्जन करनेवाला भी यह आत्मा ही है। जबतक आत्मामें क्षेम है, तभीतक त्रिलोकीमें क्षेम है किंतु उत्तम बुद्धिसे युक्त पुरुष उस क्षेमको भी यशके साथ प्राप्त करना चाहते हैं। जिस क्षेममें सुयशका अभाव है उससे तो मृत्यु ही अच्छी है। पुरुष जब नीतिके मार्गपर चलता है तभी उसे यशकी प्राप्ति होती है। अतः नाथ! इस नीतिके मार्गका श्रवण करके इस स्थानसे अन्यत्र चले जाइये।

उत्तम बुद्धिवाली अपनी स्त्री कपोतीके ऐसा कहनेपर भी कबूतर उस स्थानसे नहीं निकला। तब प्रातःकाल आकर उस बलवान् बाजने कपोतके निकलनेके मार्गको रोक लिया और उससे कहा— 'कपोत! तुझे धिक्कार है, तुझमें तो जरा भी पौरुष नहीं है। अरे! दुर्बुद्धि! या तो युद्ध कर या मेरी बात मानकर यहाँसे निकल भाग। यदि भूखसे क्षीण होकर तू यहाँ प्राण देगा तो तुझे पीछे निश्चय ही नरकमें जाना पड़ेगा। उत्तम बुद्धिवाले मनुष्य पुरुषार्थका आश्रय लेकर संकटसे मुक्त होनेके लिये प्रयत्न करते हैं।' इस प्रकार बाजके फटकारने और पत्नीके उत्साह दिलानेपर कबूतर अपने दुर्गके द्वारपर आकर उस बाजसे युद्ध करने लगा। बेचारा भूख-प्याससे पीड़ित था, अतः बलवान् बाजने उसे पंजोंसे पकड़ लिया और कबूतरीको भी चोंचमें दबा लिया। इस प्रकार उन दोनोंको पकड़कर बाज शीघ्र ही आकाशमें उड़ गया। तब कबूतरीने कहा—'नाथ! यह स्त्री है, ऐसा समझकर तुमने मेरी बातोंकी उपेक्षा की। इसीसे आज इस अवस्थाको प्राप्त हुए हो। क्या करूँ, मैं अबला हूँ, परंतु अब भी मैं तुम्हारे हितकी बात कहती हूँ। तुम बिना विचारे ही उसका पालन करो। जबतक मैं इसकी चोंचमें पड़ी हूँ और जबतक यह पृथ्वीपर पहुँचकर स्वस्थ नहीं हो जाता है तबतक ही तुम अपनेको इसके चंगुलसे छुड़ानेके लिये इस शत्रुके पंजेमें चोंच मारो।' पत्नीकी यह बात सुनकर कबूतरने वैसा ही किया। फिर तो पैरमें पीड़ा होनेसे बाज बहुत देरतक चीं-चीं करता रहा। इतनेमें ही कपोती उसके मुखसे छूटकर उड़ गयी। इधर पाँवकी अंगुलियोंके शिथिल होनेसे कबूतर भी छूटकर गिर पड़ा। अतः बुद्धिमान् पुरुषोंको विपत्तिमें भी कभी उद्योग नहीं छोड़ना चाहिये, क्योंकि उद्यमी पुरुष दुर्बल हों तो भी सफलताके भागी होते हैं। अतः मनीषी पुरुष विपत्तिकालमें भी उद्यमकी प्रशंसा करते हैं। तदनन्तर वे दोनों पक्षी कालयोगसे मुक्तिपुरी अयोध्यामें सरयूके किनारे मृत्युको प्राप्त हुए। उनमेंसे एक कबूतर तो विद्याधर हुआ। वह मन्दारदामाका पुत्र था और उसका नाम परिमलालय रखा गया था। वह कुमारावस्थासे ही शिवजीकी भक्तिमें तत्पर हुआ। उसने अपने मन और इन्द्रियोंको पूर्णतः जीत लिया था। भगवान् त्रिलोचनकी शरण लेनेसे पूर्वजन्मके अभ्यासवश उसने यह नियम कर लिया कि 'जबतक शरीर स्वस्थ है, जबतक इन्द्रियोंमें शिथिलता नहीं आ जाती तबतक काशीमें भगवान् त्रिलोचनकी पूजा किये बिना मैं थोड़ा भी भोजन नहीं करूँगा।' ऐसी प्रतिज्ञा लेकर वह परिमलालय प्रतिदिन काशीमें त्रिलोचनका दर्शन करनेके लिये आता था।

उधर वह कपोती भी पातालमें नागराज रत्नद्वीपके घरमें कन्यारूपसे उत्पन्न हुई। उसका नाम रत्नावली रखा गया। उसकी दो सखियाँ थीं, जिनमेंसे एकका नाम प्रभावती और दूसरीका नाम कलावती था। ये दोनों सदा रत्नावलीके साथ रहती थीं। उस कन्याने अपने पिताको शिवभक्तिमें तत्पर देख यह नियम लिया—'मैं प्रतिदिन अपनी दोनों सखियोंके साथ काशीमें त्रिलोचनकी पूजा करके ही मौन व्रतका त्याग करूँगी, अन्यथा नहीं।' इस

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

प्रकार वह नागकन्या अपनी दोनों सखियोंके साथ प्रतिदिन काशीमें आती और त्रिलोचनकी पूजा करके लौट जाती थी।

एक समय वैशाख मासकी तृतीयाको उपवास-पूर्वक रात्रिमें नृत्य, गीत और कथा आदिके द्वारा जागरण करके रत्नावलीने प्रातःकाल चतुर्थीको शुभ 'पिलपिला' तीर्थमें स्नान किया और त्रिलोचनदेवकी पूजा करके उन्हींके रंगमण्डपमें सो गयी। उस समय शुद्ध कर्पूरके समान गोरे अंगोंवाले जटा-मुकुटमण्डित शशिभूषण भगवान् त्रिलोचन उस लिंगसे निकलकर बोले—'कन्याओ! तुम सब लोग उठो।' तब उन्होंने उठकर, जिनके आगमनकी कोई सम्भावना नहीं थी उन, भगवान् त्रिलोचनको प्रत्यक्ष देखा और उन्हें लक्षणोंसे ईश्वर जानकर उनके चरणोंमें वन्दना की। भगवद्दर्शनसे उन कुमारियोंके मुखपर प्रसन्नता छा गयी और वे गद्गद कण्ठसे भगवान् शिवकी स्तुति करने लगीं—'शम्भो! आपकी जय हो, ईशान! आपकी जय हो, सर्वव्यापी और सब कुछ देनेवाले प्रभो! आपकी जय हो। त्रिभुवनको उत्पन्न करनेवाले तथा भक्तजनोंके अधीन रहनेवाले प्रमथनायक! आपकी जय हो। प्रणतजनोंको सब कुछ देनेवाले प्रभो! आपकी जय हो। सब विधियोंके ज्ञाता, विधाता भी आपकी स्तुति करनेमें कुशल नहीं हैं। नाथ! आपकी स्तुति करनेमें बृहस्पतिकी भी वाणी कुण्ठित हो जाती है। सर्वज्ञ! स्वामिन्! वेद भी आपको यथार्थरूपसे नहीं जानते, आप अनादि और अनन्त हैं, मन आपको मनन नहीं कर सकता। आपको नमस्कार है, नमस्कार है, नमस्कार है। त्रिलोचन! आपको नमस्कार है। त्रिविष्टिप! आपको नमस्कार है।'

यों कहकर उन कुमारियोंने दण्डकी भाँति पृथ्वीपर गिरकर प्रणाम किया। तब उन्हें उठाकर भगवान् चन्द्रभूषणने कहा—'मन्दारदामाका पुत्र परिमलालय समस्त विद्याधरोंमें श्रेष्ठ है, वही तुमलोगोंका पति होगा। तुम तीनों मेरी भक्त हो और वह तरुण विद्याधर भी मुझमें भक्ति रखता है। तुम चारों इस जीवनका अन्त होनेपर मोक्ष प्राप्त करोगे। जन्मान्तरमें तुम सबने मेरी सेवा की है, इससे तुमलोगोंको भक्तिभावित निर्मल जन्म प्राप्त हुआ है।'

भगवान् शंकरके ऐसा कहनेपर उन कन्याओंने प्रसन्नचित्त होकर हाथ जोड़ प्रणाम करके पूछा— नाथ! हम चारोंने पूर्वजन्ममें किस प्रकारसे आपकी सेवा की है?

भगवान् शिव बोले—नागकन्याओ! सुनो, यह रत्नावली पूर्वजन्ममें कपोती थी और श्रेष्ठ विद्याधर इसका पति कपोत था। यहीं मेरे मन्दिरमें इन दोनोंने दीर्घकालतक सुखपूर्वक निवास किया है। इन्होंने अपने पंखोंकी हवासे मेरे मन्दिरमें लगी हुई धूलको उड़ाकर साफ किया है। ऊपरसे लेकर नीचेतक प्रतिदिन अनेक बार मेरी परिक्रमाएँ की हैं। आकाशमें उड़ते और मेरे आँगनमें विचरते समय भी इन्होंने मेरी प्रदक्षिणा की है। यहाँके चतुर्नदतीर्थमें स्नान किया और बार-बार उसीका जल पीया है। मेरे भक्तोंने यहाँ जो-जो उत्सव और कौतुक किये हैं, उन सबको इन्होंने देखा है। अनेकों बार मेरी मंगल आरतीका दर्शन किया है और कानोंसे मेरे नामामृतका पान (श्रवण) किया है। यद्यपि इनकी मृत्यु मेरे समीप नहीं हुई तो भी इन्होंने काशीकी प्राप्ति करानेवाली अयोध्यामें प्राणत्याग किया है। अयोध्यामें मरनेसे ही यह रत्नद्वीप नागकी कन्या हुई है और इसका पति कबूतर विद्याधरका पुत्र हुआ है। तुमलोगोंमें जो ये प्रभावती और कलावती हैं, ये इससे तीसरे जन्म पहले महर्षि चारण्यकी पुत्रियाँ थीं। दोनोंमें परस्पर बड़ा अनुराग था और दोनों ही शील एवं सदाचारसे सम्पन्न थीं। इनके पिता चारण्यने आमुष्यायणके पुत्र नारायणसे इनका विवाह कर दिया। नारायण अभी किशोरावस्थाके थे। एक

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

दिन वे वनमें समिधा लानेके लिये गये, इतनेहीमें भाग्यवश किसी सर्पने उनको काट लिया। चारण्यकी दोनों कन्याएँ भवानी और गौतमी वैधव्य दुःखसे अत्यन्त दुःखी हो बड़ी दीनताको प्राप्त हो गयीं। इसीलिये ब्याह करनेवाले पुरुषको चाहिये कि वह देवता और नदी नामवाली कन्यासे विवाह न करे। तदनन्तर किसी ऋषिके अद्भुत आश्रममें जाकर इन कन्याओंने मोहवश ऋषिके दिये बिना ही कुछ केलेके फल तोड़ लिये। फलकी चोरीका परिणाम यह हुआ कि ये दोनों दूसरे जन्ममें वानरी हो गयीं, परंतु इन्होंने शील और सदाचारकी रक्षा की थी, अतः उस धर्मके प्रभावसे इनका जन्म काशीमें हुआ। वे नारायण ब्राह्मण सर्पसे डसे जानेपर भी अपने पिताकी सेवारूप व्रतके प्रभावसे काशीमें कबूतर हुए। इस प्रकार यह विद्याधर युवक जन्मान्तरमें इन दोनोंका भी पति रह चुका है और इस समय भी तुम तीनोंका पति होगा। इस मन्दिरके पार्श्वभागमें जो बहुत बड़ा बरगदका वृक्ष है, उसीपर वे दोनों वानरियाँ रहती थीं। वे चतुःस्रोतस्विनीतीर्थमें जलक्रीड़ापूर्वक स्नान करतीं और प्यास लगनेपर उसीका जल पीती थीं। वानरजातिके स्वभावसे इनमें चपलता तो थी ही, सब ओर क्रीड़ा करती हुई मन्दिरकी परिक्रमा करतीं और अनेक बार बहुतसे शिवलिंगोंका दर्शन करती थीं। एक दिन इस वटवृक्षके समीप स्वेच्छापूर्वक विचरती हुई दोनों वानरियोंको किसीने फँसाकर रस्सीमें बाँध लिया। तदनन्तर किसी समय कालवश उनकी मृत्यु हो गयी। काशीनिवासजनित पुण्य और भगवान् त्रिलोचनकी सेवा एवं प्रदक्षिणा आदिके पुण्यसे वे दोनों नागकुमारियाँ हुई हैं। अब तुम तीनों ही विद्याधरकुमार परिमलालयको पतिरूपमें प्राप्त करके स्वर्गीय भोगोंका उपभोग करोगी और अन्तमें काशीमें आकर यहीं मृत्युको प्राप्त हो मुक्तिको प्राप्त होओगी। काशीमें आकर यदि थोड़ा भी शुभ कर्म किया गया हो तो मेरे अनुग्रहसे उसका फल निश्चय ही मोक्ष होता है। तीनों लोकोंमें काशीपुरी सबसे श्रेष्ठ है, काशीमें भी ॐकारेश्वर लिंग सबसे श्रेष्ठ है, ॐकारेश्वरसे भी श्रेष्ठ त्रिलोचन लिंग है। इसमें सदा ही स्थित होकर मैं अपने भक्तोंको मोक्ष प्रदान करता हूँ। अतः काशीमें सर्वथा प्रयत्न करके भगवान् त्रिलोचनकी पूजा करनी चाहिये। ऐसा कहकर देवदेवेश्वर भगवान् शिव मन्दिरके भीतर चले गये। वे कन्याएँ भी अपने-अपने घर गयीं और वहाँ माताके आगे सब बातें बताकर कृतकृत्य-सी हो गयीं।

तदनन्तर एक दिन वैशाख मासमें महायात्राका समय आया। उसमें विद्याधर और नाग त्रिलोचन महादेवके समीप विरज महाक्षेत्रमें एकत्र हुए। फिर भगवान्‌के वरदानसे परस्पर कुलका परिचय पूछकर उन नागोंने अपनी तीनों कन्याओंको विद्याधरकुमार परिमलालयके साथ ब्याह दिया। इस विवाहसे तीनों पुत्रवधुओंको पाकर विद्याधरराज मन्दारदामा बहुत प्रसन्न हुए। इधर नागराज रत्नद्वीप, भुजंगराज पद्मी और फणीन्द्र त्रिशिख भी परिमलालयको जामाताके रूपमें पाकर परम सन्तुष्ट हुए। इस विवाहोत्सवको सम्पन्न करके सभी स्वजन भगवान् त्रिलोचन लिंगके गौरवका वर्णन करते हुए अपने-अपने लोकको चले गये। श्रीमान् विद्याधर परिमलालय उन नागकन्याओंके साथ पर्याप्त सुख भोगनेके पश्चात् काशीमें आकर भगवान् त्रिलोचनकी सेवामें संलग्न हुए और वहाँ मधुर गीत गाते हुए पत्नियोंसहित त्रिलोचन लिंगमें लयको प्राप्त हो गये।

स्कन्दजी कहते हैं—कलियुगमें भगवान् त्रिलोचनकी महिमा महादेवजीने गुप्त रखी है। इसलिये जिनमें सात्त्विक भावकी कमी है, ऐसे मनुष्य उस शिवलिंगकी उपासना नहीं करते हैं।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

केदारेश्वर लिंगकी माहात्म्य-कथा

पार्वतीजी बोलीं—करुणानिधान! अब अपने भक्तोंपर कृपा करके केदारका माहात्म्य कहिये।

श्रीमहादेवजीने कहा—पार्वती! प्राचीन कालकी बात है। उज्जयिनीपुरीसे एक ब्राह्मण यहाँ आया था। पिताने उसका उपनयन-संस्कार कर दिया था और वह ब्रह्मचर्य व्रतका पालन करता था। काशीपुरीका सब ओरसे अवलोकन करके उसके मनमें बड़ी प्रसन्नता हुई और उसने हिरण्यगर्भ नामक आचार्यसे पाशुपत नामक उत्तम व्रतकी दीक्षा ली। उसका नाम वशिष्ठ था। हिरण्यगर्भका वह शिष्य सब पाशुपतोंमें श्रेष्ठ हुआ। प्रतिदिन हरपाप नामक कुण्डमें प्रातःकाल स्नान करके तीनों कालमें वह शिवलिंगकी पूजा करता और नित्यप्रति विभूतिसे स्नान करता (सर्वांगमें विभूति लगाता) था। वह शिवलिंग तथा गुरुमें भेद नहीं मानता था। वशिष्ठकी अवस्था बारह वर्षकी थी, उसी समय वह अपने गुरुके साथ केदारतीर्थकी यात्रा करनेके लिये हिमालय पर्वतको गया। असिधार पर्वतपर पहुँचकर तपस्वी वशिष्ठके गुरु हिरण्यगर्भकी मृत्यु हो गयी। उस समय भगवान् शंकरके पार्षद आये और अन्य तपस्वियोंके देखते-देखते हिरण्यगर्भको विमानपर बिठाकर प्रसन्नतापूर्वक कैलासधामको ले गये। यह देखकर तपस्वी वशिष्ठने सब लिंगोंमें केदारलिंगको ही श्रेष्ठ माना। तदनन्तर केदार क्षेत्रकी यात्रा पूरी करके वह काशीपुरीमें लौट आया। यहाँ आकर उसने यह प्रतिज्ञा की कि 'मैं जबतक जीवित रहूँगा, तबतक काशीपुरीमें निवास करता हुआ प्रत्येक चैत्र मासकी पूर्णिमाको भगवान् केदारका अवश्य दर्शन करूँगा।' इस निश्चयके अनुसार उसने बड़े आनन्दके साथ सदा ब्रह्मचर्यपालनपूर्वक काशीमें निवास करते हुए हिमालयवर्ती केदार क्षेत्रकी इकसठ यात्राएँ पूरी कीं। तदनन्तर चैत्रमास निकट आनेपर उसने पुनः बड़े उत्साहके साथ यात्रा प्रारम्भ की। यद्यपि उसके सिरके बाल सफेद हो गये थे और शरीरपर वृद्धावस्थाका पूरा प्रभाव पड़ चुका था तथा उसके संगी-साथी तपस्वी जनोंने उसे करुणापूर्ण हृदयसे रोका भी, तो भी स्थिर चित्तवाले वशिष्ठका उत्साह भंग नहीं हुआ। उसने सोच लिया था कि 'यदि बीच रास्तेमें मृत्यु हो गयी तो गुरुजीकी तरह मेरी भी गति होगी।' देवि! तपस्वी वशिष्ठके चित्तकी यह दृढ़ता देख मैं उसपर बहुत सन्तुष्ट हुआ और स्वप्नमें उसे दर्शन देकर कहा—'दृढ़व्रत! मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ, मुझको ही केदार समझो और मुझसे मनोवांछित वर माँगो। किसी प्रकारका अन्यथा विचार मनमें न लाओ।'

मेरे इस प्रकार कहनेपर वशिष्ठने कहा—देवेश्वर! यदि आप प्रसन्न हैं तो यहाँ मेरे साथ रहनेवाले जितने लोग हैं इन सबपर अनुग्रह करें। उस परोपकारीका यह वचन सुनकर मेरी प्रसन्नता और भी बढ़ गयी और मैंने कहा 'तथास्तु' ऐसा ही होगा। फिर उसके परोपकारजनित पुण्यसे उसकी तपस्याको मैंने द्विगुणित कर दिया और पुनः उससे वर माँगनेके लिये कहा। तब वशिष्ठने यह प्रार्थना की कि 'आप हिमालयसे यहीं आकर रहें।' उसकी तपस्यासे आकृष्ट होकर मैं कलामात्रसे हिमालयपर रहकर सर्वतोभावेन यहाँ काशीमें आकर बस गया। वशिष्ठको उसके साथियोंसहित आगे करके मैं यहाँ आया और उसपर अनुग्रह करके हरपापकुण्ड-तीर्थके समीप स्थित हुआ। मेरे निवाससे सब लोग हरपापकुण्डमें स्नान, सन्ध्या, तर्पण आदि करके इसी शरीरसे सिद्धिको प्राप्त हो चुके हैं। तभीसे मैं साधकोंकी सिद्धिके लिये परम उत्तम अविमुक्त क्षेत्रमें इस केदार लिंगमें स्थित हुआ हूँ। हिमालयपर चढ़कर केदार-शिवका दर्शन करनेसे जो फल प्राप्त होता है, वही काशीमें केदारका दर्शन करनेपर सातगुना होकर मिलता है। हरपापतीर्थ सात जन्मोंके पापोंका नाश करनेवाला

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth 279 Skandpuran_Section_30_2_Back

है। और पीछेसे गंगामें मिल जानेसे तो वह करोड़ों जन्मोंकी अघराशिका नाश करनेवाला बन गया है। यहाँ जडताका नाश करनेवाली अमृतस्रवा गंगा है। आगे चलकर मानसरोवरने यहाँ तपस्या की थी। इसलिये यह हरपापतीर्थ मनुष्योंमें मानसतीर्थके नामसे विख्यात हुआ। जो केदारतीर्थमें स्नान करके बिना उतावलीके पितरोंके लिये पिण्डदान करता है, उसकी अनेक पीढ़ियाँ भवसागरसे पार हो जाती हैं। जब मंगलवारको अमावास्या तिथि हो, उस समय केदारतीर्थमें आकर जो श्राद्ध करता है, उसे गयामें श्राद्ध करनेकी क्या आवश्यकता। एक बार भी केदारेश्वरका दर्शन करके मनुष्य मेरा पार्षद हो सकता है। अत: काशीमें प्रयत्नपूर्वक केदारेश्वरका दर्शन करे। केदारसे उत्तरमें चित्रांगदेश्वर लिंग है। उसकी नित्य पूजा करनेसे मनुष्य स्वर्गीय भोग प्राप्त करता है। केदारके दक्षिण भागमें नीलकण्ठका दर्शन करनेपर मनुष्यको संसाररूपी सर्पके डँस लेनेपर भी उसके विषसे भय नहीं होता। केदारसे वायव्य कोणमें अम्बरीषेश्वर लिंग है। उसका दर्शन करनेसे मनुष्य दु:खसे भरे हुए इस संसारमें गर्भवासका कष्ट नहीं भोगता। उसीके समीप इन्द्रद्युम्नेश्वर लिंग है, जिसकी भलीभाँति पूजा करके भक्त पुरुष तेजोमय विमानपर आरूढ़ हो स्वर्गलोककी भूमिमें आनन्दका अनुभव करता है। उसके दक्षिण भागमें कालंजरेश्वर लिंग है, उसका दर्शन करके मनुष्य वृद्धावस्था और कालपर विजय पाकर चिरकालतक मेरे लोकमें निवास करता है। चित्रांगदेश्वरसे उत्तर क्षेमेश्वर लिंगका दर्शन करनेपर इहलोक और परलोकमें सर्वत्र कल्याणकी प्राप्ति होती है।

स्कन्दजी कहते हैं—अगस्त्य! केदारेश्वर लिंगके प्रकट होनेकी यह कथा सुनकर पुण्यात्मा पुरुष क्षणभरमें निष्पाप हो जाता है और अन्तमें शिवलोकको प्राप्त होता है।

श्रीधर्मेश्वर लिंगका माहात्म्य, धर्मपीठका गौरव तथा मनोरथतृतीया व्रतकी विधि और महिमा

श्रीमहादेवजी बोले—देवि! जहाँ 'विश्वभुजा' नामसे तुम स्वयं स्थित रहती हो, जहाँ क्षेत्रके विघ्नका नाश करनेवाला तुम्हारा प्रिय पुत्र गणेश 'आशा-विनायक' नामसे प्रसिद्ध होकर रहता है, जिसका दर्शन करके राजा दुर्दम क्षणभरमें धर्मबुद्धि हो गया था उस लिंगका माहात्म्य और उसके आविर्भावका वृत्तान्त मैं तुमसे कहूँगा। पूर्वकालमें विवस्वान्‌के पुत्र परम संयमी यमने तुम्हारे आगे बड़ी भारी तपस्या की थी। मेरे दर्शनकी तीव्र इच्छासे उन्होंने तपस्या करते हुए एक दिव्य चतुर्युगी व्यतीत कर दी। उनके तपसे सन्तुष्ट होकर मैं उन्हें वरदान देनेके लिये गया और मैंने कहा—'सूर्यनन्दन! वर माँगो।' तब यमराज मुझे प्रणाम करके मेरी स्तुति करने लगे।

यमराज बोले—कारणोंके भी कारण शिव! आपको नमस्कार है। आपका रूप कारणसे रहित और कार्यसे भिन्न है, आपको नमस्कार है। आपका स्वरूप निराकार है, तो भी समस्त रूप आपके ही हैं। आप परमाणुस्वरूप तथा पर (कारण) और अपर (कार्य) हैं, कोई भी आपका पार नहीं पा सकता। संसाररूपी महासागरसे आप ही सबको पार उतारनेवाले हैं, आप भगवान् चन्द्रशेखरको नमस्कार है। आपका दूसरा कोई ईश्वर नहीं है, आप ही सम्पूर्ण जगत्‌के ईश्वर हैं। आप गुणोंसे रहित हैं, तो भी समस्त गुण आपके ही स्वरूप हैं। आप काल और प्रकृतिसे परे हैं, तो भी आप ही काल और प्रकृतिरूप हैं, आपको नमस्कार है। अनन्तशक्ते! आप ही मोक्षपद प्रदान करनेवाले

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

तथा आप ही मोक्षरूप हैं। आप ही आत्मा, परमात्मा और चराचर जगत्के अन्तरात्मा हैं। आपसे ही जगत्की उत्पत्ति हुई है। आप साक्षात् जगत्स्वरूप ही हैं। यह जगत् आपका ही है। आप ही इसके एकमात्र बन्धु हैं। आप ही ब्रह्मा, विष्णु और शिवरूप होकर इस विश्वकी सृष्टि, पालन और संहार करनेवाले हैं। आपको नमस्कार है। वैदिक मार्गपर चलनेवाले पुरुषोंके लिये आप ही मृड (सुख)-रूप हैं और वेदविरुद्ध पथपर चलनेवाले लोगोंके लिये आप भीम (अत्यन्त भयंकर) हैं। साम्बशिव! आप भक्तोंके लिये कल्याणकारी शंकर हैं। जिनके मन और वचनमें नम्रता है, ऐसे पुरुषोंके लिये आप शिवस्वरूप हैं। जो आपके चरणारविन्दोंकी शरण लेते हैं, ऐसे भक्तोंके लिये आप श्रीकण्ठ हैं—उनपर आयी हुई विपत्तिरूपी हालाहल विषको पी जानेवाले हैं। शान्त! शम्भो! शंकर! चन्द्रकलाविभूषण। पिनाकपाणे! सर्पोंको आभूषणके रूपमें धारण करनेवाले, आपको नमस्कार है। प्रभो! वही धन्य है जो आपमें भक्ति रखता है। वही पुण्यात्मा है जो आपकी पूजा करनेवाला है। अनन्तशक्ते! मेरे-जैसा अल्प बुद्धि-वैभवसे युक्त कौन मनुष्य यहाँ आपकी स्तुति कर सकता है। प्राचीन वेदवाणीके लिये भी जो अगम्य हैं, ऐसे आपकी स्तुति केवल नमस्कारमात्र ही है।

स्कन्दजी कहते हैं—ऐसा कहकर यमराजने **'ॐ नमः शिवाय'** इस मन्त्रका उच्चारण करते हुए भगवान् शंकरको सहस्रों बार प्रणाम किया। तदनन्तर परमेश्वर शिवने यमराजको नमस्कारसे रोककर इस प्रकार वरदान दिया—'सूर्यनन्दन! तुम (कर्म और स्वरूपसे तो धर्म हो ही,) नामसे भी 'धर्मराज' हो जाओ। आजसे तुम समस्त चराचर प्राणियोंके धर्माधर्मके निर्णयमें मेरे द्वारा नियुक्त होकर मेरी आज्ञासे सबका शासन करो। तुम दक्षिण दिशाके अधिपति और समस्त जीवोंके कर्मके साक्षी होओ। उत्तम और अधम मनुष्य तुम्हारे दिखाये हुए मार्गसे ही कर्मानुसार गति प्राप्त करें। धर्म! मुझमें भक्ति रखते हुए तुमने जो यहाँ मेरे लिंगविग्रहकी आराधना की है उसके दर्शन, स्पर्श और पूजनसे मनुष्योंको शीघ्र सिद्धि प्राप्त होगी। जो विशुद्ध बुद्धिवाला पुरुष तुम्हारे आगे इस धर्म-तीर्थमें स्नान करके एक बार भी धर्मेश्वरका दर्शन करेगा उसके समस्त पुरुषार्थोंकी सिद्धि उससे दूर नहीं है। जो मनुष्य कार्तिक मासके शुक्ल पक्षकी अष्टमी तिथिको उपवासपूर्वक धर्मेश्वर तीर्थकी यात्रा करेंगे तथा रात्रिकालमें महान् उत्सवके साथ जागरण करेंगे, वे फिर इस पृथ्वीपर जन्म नहीं लेंगे।'

ऐसा कहकर परम सुखदायक भगवान् शिवने अपने हाथोंसे धर्मराजका स्पर्श किया। उनके करस्पर्शजनित सुखसे आनन्दमग्न हो धर्मराजने महादेवजीसे कहा—'सर्वज्ञ! करुणानिधान! ईश्वर! जब आपका प्रत्यक्ष दर्शन मिल गया तब मुझे दूसरे किसी वरकी क्या आवश्यकता है? नाथ! जिनको वेद भी भलीभाँति नहीं जानते तथा वेद-पुरुष ब्रह्मा और विष्णु भी नहीं जानते, उनसे भी यदि मैं वर पानेयोग्य हूँ, तो यही प्रार्थना करता हूँ कि ये जो पक्षियोंके मधुर बोली बोलनेवाले बच्चे हैं, जिनका कि मेरे सामने जन्म हुआ है, इनकी उत्पत्तिके समय रोगसे पीड़ित हो इनकी माता शुकी मृत्युको प्राप्त हुई और इनके पिता शुकको बाजने खा डाला है। अनाथनाथ! मेरे द्वारा रक्षित इन असहाय बच्चोंको आप वरदान दीजिये।' अगस्त्य! इस प्रकार धर्मराजका परोपकारयुक्त निर्मल वचन सुनकर शंकरजीने उन पक्षियोंको बुलाया और कहा—'पक्षियो! तुम बोलो, तुम्हारे लिये कौन-सा वरदान देना चाहिये।'

पक्षी बोले—संसारबन्धनका नाश करनेवाले परमेश्वर! आपको नमस्कार है। अनाथनाथ! सर्वज्ञ! त्रिनेत्र! हम पक्षीकी योनिमें जन्म लेकर भी जो आपका प्रत्यक्ष दर्शन कर सके हैं तथा आपकी कृपादृष्टिके भाजन हो सके हैं, इससे बढ़कर मनोवांछित वर और क्या हो सकता

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

है? गिरीश! लोकमें उद्यम करनेवाले लोगोंको सदा सैकड़ों लाभ मिला करें, परंतु सबसे महान् लाभ यही है कि आपका प्रत्यक्ष दर्शन हो। नाथ! यह जो कुछ दिखायी देता है, सब क्षणभंगुर है। एकमात्र आप ही अविनाशी हैं और आपकी आराधना भी अक्षय है। इन तपस्वीद्वारा की हुई आपके श्रीलिंगकी पूजा देखनेसे इस समय हमें अपने विचित्र-विचित्र करोड़ों जन्मोंका स्मरण हो आया है। महेश्वर! हमने दीर्घकालतक देवयोनिका सुख भी प्राप्त किया है। लीलापूर्वक सहस्रों दिव्यांगनाओंका उपभोग किया है। असुर, दानव, नाग, राक्षस, किन्नर, विद्याधर और गन्धर्वोंकी योनि भी हमने प्राप्त की है। मनुष्ययोनिमें जन्म लेकर राज्यका भी उपभोग किया है। जलमें जलचर और स्थलमें स्थलचर भी हमें होना पड़ा है। परंतु शम्भो! इस योनिसे उस योनिमें और उस योनिसे किसी तीसरी योनिमें भटकते हुए हमने कहीं भी किंचिन्मात्र भी सुख नहीं पाया है। इस समय धर्मेश्वरके दर्शनसे और सूर्यनन्दन यमकी तपस्यारूपी अग्निकी ज्वालासे हमारे सारे पाप जल गये हैं और हम आपका प्रत्यक्ष दर्शन करके कृतकृत्य हो गये हैं। भगवन्! अब आप हमें वह ज्ञान प्रदान करें जिससे मायामय बन्धनमें बँधे हुए हम सब लोग उससे मुक्त हो जायँ। हमें इन्द्र, चन्द्र तथा अन्य किसी देवताका लोक नहीं चाहिये। आपका सामीप्य प्राप्त होनेसे हम सब लोकोंकी स्थितिको अच्छी तरह जान गये हैं। समयानुसार आपके आनन्दवन—काशीमें शरीरका त्याग करना संसारबन्धनके विनाशका कारण तथा परम उत्तम ज्ञान है। प्रभो! तिर्यग्योनिमें पड़े हुए हम पक्षी भी धर्मराजकी तपस्यासे विकल्पहीन ज्ञानके पात्र हो गये हैं।

उन पक्षियोंकी यह बात सुनकर महादेवजीने धर्मपीठके गौरवका वर्णन करते हुए कहा—इस त्रिलोकनगरमें काशी ही मेरा राजभवन है और उसमें भी मोक्षलक्ष्मीविलास नामक मन्दिर (धर्मेश्वरका स्थान) मेरे लिये अत्यन्त सुखप्रद स्थान है। इस शिवालयके व्याजसे आनन्दकन्दका कोई अंकुर ही भूमि फोड़कर प्रकट हुआ है। उपनिषद्की वाणीद्वारा जिस निराकार परब्रह्मका वर्णन किया गया है, वही मैं हूँ। अपने भक्तोंपर कृपा करके साकाररूपसे प्रकट हो गया हूँ। उससे दक्षिण दिशामें मोक्षलक्ष्मीका धामस्वरूप मेरा मण्डप है, उसमें मैं सदा स्थित रहता हूँ। वह मेरा सभामण्डप (दरबार) है। पृथ्वीपर वह स्थान निर्वाणमण्डपके नामसे प्रसिद्ध है। वहाँ एक ऋचाका भी भलीभाँति जप करनेवाला मनुष्य सम्पूर्ण वेदोंके पाठका फल पाता है। जो मुक्तिमण्डपमें षडक्षर मन्त्रका एक बार भी उच्चारण कर लेता है, वह रुद्राध्यायके कोटि बार जप करनेका फल पा लेता है। जो वहाँ निष्कामभावसे मेरे मन्दिरमें धर्मशास्त्र, पुराण और इतिहासका पाठ करता है, वह मेरे लोकमें निवास करता है। मेरे मन्दिरसे पूर्वभागमें जो ज्ञानमण्डप है वहाँ सदा मेरा ध्यान करनेवाले सत्पुरुषोंको मैं ज्ञानका उपदेश देता हूँ। यहाँ काशीमें पग-पगपर अनेक सिद्धपीठ हैं, परंतु धर्मेशपीठकी कोई और ही शक्ति है, जो सबसे श्रेष्ठ है। जहाँ ये छोटे शुकशावक त्रात, त्रात (रक्षा करो, रक्षा करो)-का उच्चारण करते हुए मेरे सदुपदेशसे निर्मल ज्ञानके भाजन हो गये। सूर्यनन्दन धर्म! आजसे मैं तुम्हारे इस उत्तम तपोवन— धर्मेश्वरपीठका कभी त्याग नहीं करूँगा। देखो, मेरी कृपासे ये शुकपक्षी दिव्य विमानपर बैठकर मेरे परम धामको जा रहे हैं।

देवेश्वर भगवान् शंकरके ऐसा कहते ही कैलासशिखरके समान एक विशाल दिव्य विमान आ पहुँचा। वे निर्मल पक्षी दिव्य रूप धारण करके उसी विमानपर बैठे और धर्मराजसे पूछकर कैलासपर्वतपर चले गये।

अगस्त्य! उस आश्चर्यजनक वृत्तान्तको देखकर

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

जगदम्बा पार्वतीने कहा—महादेव! महेश्वर! इस धर्मपीठका यह माहात्म्य जानकर मैं आजसे धर्मेश्वरके समीपमें ही निवास करूँगी। जो स्त्री अथवा पुरुष इस धर्मेश्वर लिंगमें भक्ति रखनेवाले होंगे, उन सबकी मनोवांछित कामनाओंको मैं सदा सिद्ध करूँगी।

महादेवजी बोले—देवि यह तुमने बहुत अच्छा निश्चय किया। यहाँ तुम विश्वभुजाके नामसे विख्यात होओगी। जो यहाँ तुम्हारी पूजा करेंगे वे समस्त भोगोंसे सम्पन्न एवं सर्वमान्य होंगे। मनोरथतृतीयाको (चैत्र शुक्ला तृतीयाको) जो तुम्हारी भक्तिपूर्वक आराधना करेगा, मेरे अनुग्रहसे उसके सम्पूर्ण मनोरथोंकी सिद्धि होगी। पूर्वकालमें पुलोमकन्या इन्द्राणीने किसी मनोरथकी प्राप्तिके लिये बड़ी भारी तपस्या की, किंतु उन्हें तपस्याका फल नहीं मिला। तब उन्होंने बड़ी भक्ति और प्रसन्नताके साथ कोकिलाके समान मधुरस्वरसे रहस्ययुक्त गीत गाकर मेरी आराधना की। मृदु, मधुर, ताल-स्वरयुक्त तान, मात्रा और कलासे विशिष्ट उस गानके द्वारा मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। मैंने उसके पास जाकर कहा—'पुलोमनन्दिनि! मैं तुम्हारे इस सुमधुर गीत और मेरे श्रीविग्रहके पूजनसे प्रसन्न हूँ, तुम कोई वर माँगो।'

शची बोली—देवेश! यदि आप प्रसन्न हैं तो जो सब देवताओंमें माननीय, सुन्दर और यज्ञकर्ताओंमें श्रेष्ठ हों, वे ही मेरे पति हों। आप मुझे मेरी इच्छाके अनुसार रूप, सुख और आयु प्रदान करें। आपके अर्चाविग्रहकी पूजामें मेरी उत्तम भक्ति सदा बनी रहे और मेरा पातिव्रत्य कभी नष्ट न हो।

पुलोमपुत्री शचीके मनोरथको सुनकर महादेवजीने कहा—तुम व्रतका अनुष्ठान करनेसे पूर्वोक्त मनोरथोंको प्राप्त करोगी। मनोरथतृतीया नामका जो व्रत है, उसके पालनसे मनोरथकी सिद्धि होगी। बीस भुजाओंसे सुशोभित विश्वभुजा नामक गौरीदेवी उस व्रतकी अधिष्ठात्री देवी हैं। उन्हींकी पूजा करनी चाहिये। देवीके आगे वरदायक आशा-विनायकका भी पूजन करना चाहिये। चैत्र शुक्ला द्वितीयाको दन्त-धावन आदि करके सायंकालिक नियमोंका पालन करनेके पश्चात् अधिक तृप्तिपूर्वक भोजन न करके थोड़ा-सा आहार करे। तदनन्तर इस प्रकार नियम ग्रहण करे—'माता विश्वभुजा देवी! तुम्हारी प्रसन्नताके लिये कल प्रातःकाल मैं क्रोधको जीतकर, इन्द्रियोंको संयममें रखकर, अस्पृश्य वस्तुओंके स्पर्शसे दूर रहकर, व्रतमें ही मन लगाये हुए पवित्रतापूर्वक 'मनोरथतृतीया' नामक व्रतका अनुष्ठान करूँगा, इसमें मेरे मनोरथकी सिद्धिके लिये तुम सदा मेरे समीप रहो।'

बुद्धिमान् पुरुष प्रातःकाल उठकर आवश्यक कर्म करके शौच एवं आचमनसे निवृत्त हो अशोक वृक्षका उत्तम दन्तधावन ग्रहण करे। फिर नित्यकी स्नान आदि क्रिया पूरी करके दिनभर उपवास करे। तत्पश्चात् सायंकालमें स्नान करके शुद्ध वस्त्र धारणकर गौरीजीकी पूजा प्रारम्भ करे। सबसे पहले गणेशजीकी पूजा करके उन्हें घृतपक्व (पूरी, पूआ, घेवर आदि)-का भोग लगावे। तदनन्तर अशोकके सुन्दर फूलोंसे विश्वभुजा देवीकी पूजा करे। पहले कुंकुमसे अनुलेपन करके अशोकवर्ति, नैवेद्य, धूप, अगर आदिसे देवीकी पूजा करनेके पश्चात् एक बार देवीका प्रसाद भोजन करे। इस प्रकार चैत्रकी तृतीया बीत जानेपर वैशाखसे फाल्गुनतक प्रत्येक मासकी शुक्ला तृतीयाको इस उत्तम व्रतका पालन करे। जम्बू, अपामार्ग, खदिर, जाती, आम्र, कदम्ब, प्लक्ष, उदुम्बर, खर्जूर, बीजपूर और दाड़िम (अनार)—इन ग्यारह प्रकारके काष्ठोंका क्रमशः वैशाखसे लेकर फाल्गुनतक व्रतके दिन दातन करे। सिन्दूर, अगर, कस्तूरी, चन्दन, रक्तचन्दन, गोरोचन, देवदारु, पद्माक्ष और दो प्रकारकी हल्दी

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

(हल्दी और दारुहल्दी) तथा यक्षकर्दम—इनके द्वारा क्रमशः वैशाख आदि मासोंके व्रतमें देवीको अनुलेपन लगाना चाहिये। यदि पूर्वोक्त सब वस्तुओंकी प्राप्ति न हो तो प्रत्येक मासमें यक्षकर्दम ही उत्तम है। दो भाग कस्तूरी, दो भाग कुंकुम, तीन भाग चन्दन और एक भाग कपूर—इन सबको मिलाकर जो अनुलेपन तैयार किया जाता है उसका नाम यक्षकर्दम है। यह समस्त देवताओंको प्रिय है। गुलाब, बेला, कमल, केतकी, कनेर, उत्पल, राजचम्पा, तगर, चमेली, कुमारी और कर्णिकार—इन पुष्पोंद्वारा वैशाख आदि मासोंमें पूजन करना उचित है। फूल न मिले तो उनके पत्तोंसे ही पूजा करे। फूल और पत्ते दोनों न मिलें तो किन्हीं भी सुगन्धित पुष्पोंसे पूजा की जा सकती है। करम्भ (दधिमिश्रित सत्तू), दही-भात, आमके रससे युक्त मण्डक (मैदेकी एक प्रकारकी रोटी), फेणिक (पानीमें पकाया हुआ चावलका चूर्ण), बटक (बड़ा), शक्कर मिलाया हुआ पायस (खीर), इनका क्रमशः वैशाखसे आश्विनतक भोग लगावे। कार्तिकमें मूँग और घीके साथ भात निवेदन करे। अगहनमें इण्डेरिका (ईड़हर), पौषमें लड्डू, माघमें लम्पसिका (लपसी) और फाल्गुनमें चीनी भरकर घीमें पकायी हुई पूरियाँ श्रीगणेशजी तथा विश्वभुजा देवीको निवेदन करे। इस प्रकार एक वर्षतक प्रत्येक मासकी शुक्ला तृतीयाको विश्वभुजा देवीकी आराधना करके व्रतकी पूर्तिके लिये वेदीपर अग्निकी स्थापना करे। तत्पश्चात् अग्निदेवतासम्बन्धी मन्त्रद्वारा तिल और घी आदि द्रव्यसे एक सौ आठ बार होम करे। इस व्रतके लिये सदा रातमें ही पूजा बतायी गयी है। रातमें ही भोजनका नियम है, रातमें ही यह होम होता है तथा रातमें ही देवीसे क्षमा-प्रार्थना की जाती है। प्रार्थनाके लिये मन्त्र इस प्रकार हैं—

गृहाण पूजां मे भक्त्या मातर्विघ्नजिता सह।
नमोऽस्तु ते विश्वभुजे पूरयाशु मनोरथम्॥
नमो विघ्नकृते तुभ्यं नम आशाविनायक।
त्वं विश्वभुजया सार्धं मम देहि मनोरथम्॥

'मातः! आप विघ्नविजयी गणेशजीके साथ मेरी भक्तिपूर्वक की हुई यह पूजा स्वीकार करें। विश्वभुजे! आपको नमस्कार है। आप मेरे मनोरथको शीघ्र पूर्ण करें। आशाविनायक! आप विघ्नोंके स्रष्टा हैं (अथवा विघ्नोंको उच्छेद करनेवाले हैं), आपको नमस्कार है, नमस्कार है। आप विश्वभुजा देवीके साथ कृपा करके मेरा मनोरथ पूर्ण करें।'

इन दोनों मन्त्रोंका उच्चारण करके गौरी-गणेशकी पूजा करनी चाहिये। व्रतके लिये क्षमा-प्रार्थना करते समय पलंग, गद्दा, तकिया, दीवट, दीप और दर्पण देना चाहिये। आचार्यसे प्रार्थना करे—'भगवन्! मैंने मनोरथतृतीयाका व्रत किया है, इसमें जो न्यूनता या अधिकताका दोष आ गया हो वह दूर होकर आपके वचनसे मेरा यह व्रत पूर्ण हो जाय।' इस प्रकार आचार्यसे आज्ञा और आशीर्वाद लेकर गाँवकी सीमातक उन्हें पहुँचा आवे। यथाशक्ति दूसरोंको भी दान दे। फिर अपने परिवारके साथ रात्रिमें प्रसन्नतापूर्वक भोजन करे। प्रातःकाल चतुर्थीको चार कुमारों और बारह कुमारियोंको भोजन कराकर गन्ध, पुष्प, माला आदिसे उनकी पूजा करे। इस प्रकार यह निर्मल व्रत पूर्णताको प्राप्त होता है। मनोरथतृतीयाका यह व्रत करनेसे जिसका जो मनोरथ हो वह पूर्ण होता है।

इस उत्तम व्रतको सुनकर पुलोमकुमारी शचीने उसका पालन किया। इससे उनकी मनोवांछित कामना सिद्ध हुई। जो बुद्धिमान् पुरुष मन लगाकर इस पुण्यमयी कथाको सुनता है, वह शुभ बुद्धिको प्राप्त होता और सब पापोंसे मुक्त हो जाता है।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

वीरेश्वर लिंगकी महिमाके प्रसंगमें राजा अमित्रजित और मलयगन्धिनीका चरित्र

पार्वतीजीने कहा—महेश्वर! सुनती हूँ, वीरेश्वर लिंगकी बड़ी भारी महिमा है। काशीमें उस श्रेष्ठ लिंगका आविर्भाव किस प्रकार हुआ, यह मुझसे कहिये।

महादेवजी बोले—महादेवि! पूर्वकालमें अमित्रजित नामसे प्रसिद्ध एक राजा थे। वे बड़े धर्मात्मा, सत्त्वगुणसम्पन्न, प्रजाको प्रसन्न रखनेवाले, यशके धनी, उदार, उत्तम बुद्धिसे युक्त तथा ब्राह्मणोंको देवताके समान माननेवाले थे। सदा यज्ञान्त-स्नान करनेके कारण उनके केश गीले रहते थे। वे विनयशील, नीतिज्ञ, सम्पूर्ण कर्मोंमें कुशल, समस्त विद्याओंमें पारंगत, गुणवान्, गुणी जनोंपर स्नेह रखनेवाले, कृतज्ञ, मृदुभाषी, पाप कर्मोंसे विमुख, सत्यवादी, पवित्रताके स्थान, कम बोलनेवाले और जितेन्द्रिय थे। उन्होंने भगवान् वासुदेवके युगल चरणोंमें अपनी चित्तवृत्ति लगाकर ईति-भीतिसे रहित निर्द्वन्द्व राज्य किया। शिवे! उस परम सौभाग्यवान् नरेशके राज्यमें प्रत्येक महलके भीतर पग-पगपर भगवान्‌के ऊँचे-ऊँचे मन्दिर थे। वहाँके प्रत्येक मन्दिरमें गोविन्द, गोप, गोपाल, गोपीजनमनोहर, गदापाणे, गुणातीत, गुणाढ्य, गरुड़ध्वज, कमलापते, कृष्ण, केशव, कमलाक्ष, कालभयनाशन, पुरुषोत्तम, पापारि, पुण्डरीकलोचन, पीताम्बरधारी, पद्मनाभ, परात्पर, जनार्दन, जगन्नाथ, जाह्नवी-जलकी जन्मभूमि, जीवजन्महर, जंजपूकाघनाशन (नाम-जप करनेवालोंकी अघराशिका नाश करनेवाले), श्रीवत्सवक्ष, श्रीकान्त, श्रीकर, श्रेयोनिधे, श्रीरंग, शार्ङ्गधनुष धारण करनेवाले, शौरे, शीतांशुलोचन, दामोदर, देवकीहृदयानन्द, नागराजकी शय्यापर सोनेवाले, विष्णु, वैकुण्ठनिलय, विष्टरश्रवा, विष्वक्सेन, वनमालिन्, त्रिविक्रम, त्रिलोकीश, चक्रपाणे और चतुर्भुज इत्यादि पवित्र नामोंका कीर्तन होता था। स्त्री, वृद्ध, बाल और गोपाल सभीके मुखसे भगवन्नामका उच्चारण होता था। जहाँ-तहाँ सब ओर भगवान् विष्णुकी मनोहर लीला-कथा सुनायी पड़ती थी। घर-घरमें तुलसीके बगीचे देखे जाते थे। भगवान् लक्ष्मीपतिके पवित्र एवं विचित्र चरित्रोंकी चर्चा होती थी। महलकी दीवारोंपर श्रीहरिके विचित्र चरित्र ही चित्रकारोंद्वारा अंकित किये गये थे। भगवत्कथाके सिवा दूसरी कोई वार्ता वहाँ नहीं सुनायी देती थी। उस राजाके भयसे व्याधलोग हरिणोंपर बाण नहीं चलाते थे, क्योंकि वे हरिण श्रीहरिके नामका एक अंश धारण करते हैं। इसीलिये वे वनमें सुखपूर्वक विचरते थे। कोई मछली और मांस खानेवाला मनुष्य भी उस राजाके डरसे कभी मछली, कछुवा और वराह आदिका वध नहीं करता था। एकादशी तिथि आनेपर उस अमित्रजितके राज्यमें उत्तान सोनेवाले शिशु भी स्तनपान नहीं करते थे। पशु भी एकादशीको घास चरना छोड़कर उपवास करते थे, फिर औरोंकी तो बात ही क्या है। उस हरिभक्त राजाके शासनकालमें एकादशी प्राप्त होनेपर समस्त पुरवासी मिलकर बड़ा भारी उत्सव मनाते थे। वहाँके लोग प्रतिदिन जो शुभकर्म करते थे उन्हें निष्कामभावसे भगवान् वासुदेवको समर्पित कर देते थे। महाराज अमित्रजितके लिये श्रीकृष्ण ही परम देवता, श्रीकृष्ण ही परम गति और श्रीकृष्ण ही परम बन्धु थे।

इस प्रकार उस राजाके राज्य करते समय एक दिन श्रीमान् देवर्षि नारद उनसे मिलनेके लिये आये। राजाने मधुपर्ककी विधिसे उनका यथावत् स्वागत-सत्कार किया। तब नारदजीने उनसे कहा—'राजन्! तुम धन्य हो, कृतार्थ हो तथा सम्पूर्ण देवताओंके लिये भी माननीय हो; क्योंकि समस्त प्राणियोंमें तुम्हें भगवान् गोविन्दका ही दर्शन होता है। जो भगवान् विष्णु वेदपुरुष हैं,

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

यज्ञपुरुष हैं, इस जगत्के अन्तरात्मा हैं तथा इसकी सृष्टि, पालन और संहार करनेवाले भी हैं, इस सम्पूर्ण विश्वको उन्हीं भगवान्का स्वरूप समझनेवाले भूपालशिरोमणे! आज तुम्हारा कल्याणकारी दर्शन पाकर मैं परम पवित्र हो गया। इस क्षणभंगुर संसारमें एक ही सार वस्तु है, वह यह कि भगवान् लक्ष्मीकान्तके चरणारविन्दोंमें भक्ति-भाव बढ़ाया जाय; क्योंकि वह समस्त पुरुषार्थोंको देनेवाला है। जो सब कुछ छोड़कर सदा एकमात्र भगवान् विष्णुका भजन करता है, उस उत्तम बुद्धिवाले पुरुषकी सेवामें सब पदार्थ स्वयं ही उपस्थित होते हैं। जिसकी इन्द्रियाँ भगवान् हृषीकेशके चिन्तनमें स्थिर हो गयी हैं, वही इस अत्यन्त चंचल (क्षणभंगुर) ब्रह्माण्डमें स्थिरताको प्राप्त होता है। यौवन, धन और आयुको कमलके पत्तेपर पड़े हुए जलविन्दुके समान अत्यन्त चपल जानकर एकमात्र भगवान् अच्युतकी शरण लेनी चाहिये *। जिसकी वाणीमें, चित्तमें सर्वत्र भगवान् जनार्दन विद्यमान रहते हैं, वह नररूपमें साक्षात् नारायण है। सदा उसीकी वन्दना करनी चाहिये। भगवान् लक्ष्मीपतिका निष्कपटभावसे ध्यान और पूजन करके इस पृथ्वीपर कौन श्रेष्ठपुरुष नहीं हो गया है। भूपाल! तुम्हारी इस विष्णुभक्तिसे सन्तुष्ट होकर मैं तुम्हारा कुछ उपकार करना चाहता हूँ और इसीलिये जो कुछ कहता हूँ, उसे ध्यान देकर सुनो। विद्याधर-राजकुमारी मलयगन्धिनी अपने पिताके उद्यानमें अपनी सखियोंके साथ खेल रही थी। उसी समय कपालकेतुके पुत्र कंकालकेतु नामक महाबली दानवने आकर उसे हर लिया। आगामी तृतीयाको उसका पाणिग्रहण निश्चित हुआ है। वह कुमारी इस समय पाताललोककी चम्पकावती नगरीमें है। हाटकेश्वर शिवके स्थानसे मैं आ रहा था, तो उसने मुझे देखा और प्रणाम करके आँसू बहाते हुए कहा—''भगवन्! राजा अमित्रजितसे आप मेरा यह संदेश कह दें—'महाराज! मैं गन्धमादन पर्वतपर अपने पिताके उद्यानमें बालोचित खेल-कूदमें लगी हुई थी। उसी समय दुराचारी कंकालकेतु मुझे मूर्छित करके वहाँसे हर लाया। उसको दूसरे किसी अस्त्रके आघातसे जीतना कठिन है। वह अपने ही त्रिशूलसे मर सकता है। अन्यथा युद्धमें उसे परास्त करना असम्भव है। यदि कोई कृतज्ञ वीर मेरे दिये हुए त्रिशूलसे इस दुष्ट दानवको मारकर मुझे यहाँसे ले जाता, तो मेरा बड़ा उपकार होता। यदि यहाँ आकर आप मेरा उपकार करना चाहें, तो अवश्य आवें और उस दुष्ट दानवके हाथसे मेरा उद्धार करें। मुझे भी भगवती जगदम्बाने यह वर दिया है कि बेटी! परम बुद्धिमान् विष्णुभक्त पुरुष तुमसे विवाह करेगा। तृतीया तिथितक देवीका यह वरदान जिस प्रकार सत्य हो सके वैसा प्रयत्न करें। आप केवल निमित्तमात्र हो जायँ।' राजन्! इस प्रकार मलयगन्धिनीके वचनसे मैं तुम्हारे पास आया हूँ। तुम विष्णुभक्तिपरायण, तरुण और बुद्धिमान् हो। अतः कार्यकी सिद्धिके लिये जाओ और उस दुष्ट दानवको मारकर मलयगन्धिनीको शीघ्र ले आओ। नरेश्वर! वह विद्याधरकुमारी तुम्हारी राह देखकर ही जीवित है।''

नारदजीका यह वचन सुनकर राजा अमित्रजितने चम्पकावती नगरीमें जानेका उपाय पूछा। तब नारदजीने पुनः कहा—'राजन्! तुम पूर्णिमाके दिन शीघ्र ही समुद्रके तटपर पहुँचकर वहाँ एक नावपर बैठ जाओ। वहाँ तुम्हें एक रथपर कल्पवृक्ष दिखायी देगा। वहीं एक दिव्य पलंगपर कोई दिव्यांगना वीणा लेकर यह गाथा गान करती होगी—

यत्कर्म विहितं येन शुभं वाथ शुभेतरम्।
स एव भुङ्क्ते तत्तथ्यं विधिसूत्रनियन्त्रितः॥

'जिस मनुष्यके द्वारा जो शुभ या अशुभ किया गया है, वही भाग्यसूत्रमें बँधकर उस कर्मका फल भोगता है। यह सर्वथा सत्य है।'

इस गाथाका भलीभाँति गान करके वह बाला रथ, कल्पवृक्ष और पलंगके साथ क्षणभरमें समुद्रके भीतर प्रवेश कर जायगी। उस समय तुम भी

* यौवनं धनमायुष्यं पद्मिनीजलविन्दुवत्। अतीव चपलं ज्ञात्वाच्युतमेकं समाश्रयेत्॥ (स्क० पु०, का० उ० ८२।४३)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

निःशंक होकर नावसे उतरकर यज्ञवाराहकी स्तुति करते हुए शीघ्र उसके पीछे-पीछे चले जाना। ऐसा करनेपर तुम पाताललोकमें चम्पकावती नगरीको देखोगे।

यों कहकर ब्रह्मकुमार नारदजी अन्तर्धान हो गये। राजाने भी समुद्रतटपर पहुँचकर पूर्वोक्त सब बातोंका अवलोकन करके नारदजीके कहे अनुसार समुद्रके भीतर प्रवेश किया और वे चम्पकावती नगरीमें जा पहुँचे। वहाँ उन्होंने उस विद्याधरकुमारीको देखा, मानो तीनों लोकोंकी सौन्दर्यलक्ष्मी एकत्र मूर्तिमान् हो गयी है। राजा उसके समीप गये। वह भी झूलेपरसे उतरकर लज्जाके भारसे नीचे मुख किये उनसे बोली—'मनोहर रूपवाले पुरुष! आप कौन हैं, जो मुझ अभागिनीके चित्तको अपनी ओर खींचते हुए इस कालके घरमें चले आये हैं? वह क्रूर आकृतिवाला कंकालकेतु जबतक आ नहीं जाता, उसके पहले ही आप इस शस्त्रागारमें छिपकर बैठ जाइये। श्रीपार्वतीजीके वरदानसे वह मेरे कन्या-व्रतको भंग करनेमें समर्थ नहीं है, किंतु परसों आनेवाली तृतीया तिथिको वह मेरा पाणिग्रहण करना अवश्य चाहता है।'

विद्याधरीके ऐसा कहनेपर महाबाहु अमित्रजित शस्त्रागारमें छिपे हुए-से बैठ गये। तदनन्तर सायंकालमें मृत्युको भी भयभीत करनेवाला वह भयंकर आकारवाला दानव आकर विद्याधरीसे बोला—'सुन्दरी! इन दिव्य रत्नोंको ग्रहण करो। परसों पाणिग्रहण होनेसे तुम्हारा कन्याभाव निवृत्त हो जायगा। कल प्रातःकाल तुम्हारी सेवाके लिये सहस्रों दासियाँ दूँगा। दिक्पालोंके घरमें जितना भी वैभव है, उस सबकी तुम स्वामिनी होओगी। मेरी पत्नी बननेसे तुम मेरे साथ दिव्य भोगोंका उपभोग कर सकोगी।' इस प्रकार प्रलाप करके वह दानव अपनी गोदमें त्रिशूल रखकर उन्मत्त एवं निडर होकर सो गया। तब उसको सोया हुआ जानकर पार्वतीजीके वरदानको याद करती हुई विद्याधरकुमारीने मनुष्योंमें श्रेष्ठ सर्वांगसुन्दर तथा विष्णुभक्तिसे सुरक्षित राजाको बुलाया और दैत्यके अंगसे त्रिशूल लेकर कहा—'इसे ग्रहण कीजिये तथा इस दानवको शीघ्र मार डालिये।'

कन्याके हाथसे त्रिशूल लेकर बालसूर्यके समान कान्तिमान् राजा अमित्रजितने हर्षका अनुभव किया और उस विद्याधरकुमारीको अभयदान दिया। फिर जगत्की रक्षा करनेवाले मणिरत्नस्वरूप चक्रसुदर्शनधारी श्रीहरिका मन-ही-मन स्मरण करके निर्भय हो, बायीं लातसे उस दानवको मारा और कहा—'अरे ओ दुष्ट! उठकर खड़ा हो। कन्याओंपर बलात्कार करनेवाले लम्पट! आ, मेरे साथ युद्ध कर। मैं सोते हुए शत्रुको नहीं मारता।'

यह सुनकर वह दानव बड़े वेगसे उठा और बार-बार कहने लगा—प्रिये! मेरा त्रिशूल तो दो। यह कौन है, जो मौतके घरमें आ गया है? मैंने इसे देख लिया है, अतः आज इसकी आयु पूरी हो चुकी है। ऐसा कहकर उस दानवने राजाकी छातीमें बड़े जोरसे मुक्का मारा। राजाके रक्षक भगवान् थे। अतः उन्होंने उस आघातसे थोड़ी-सी भी वेदनाका अनुभव नहीं किया। प्रत्युत उनकी कठोर छातीसे टकराकर दानवका हाथ ही टूटने-सा लगा। तब राजाने उसके मुखमें एक तमाचा मारा। इससे दानवका सिर घूम गया और वह एक बार धरतीपर गिरकर पुनः उठ खड़ा हुआ। किसी प्रकार धैर्य धारण करके उसने राजासे कहा—'मैंने जान लिया तुम मनुष्य नहीं, मनुष्यरूपमें साक्षात् विष्णु हो। मधुसूदन! यदि तुम बलवान् हो तो एक बात करो। इस बड़े भारी त्रिशूलको त्यागकर अपने आयुधोंसे मेरे साथ युद्ध करो। तुमने वामनरूप धारण करके बलिको पातालमें भेजा है। तुम्हींने नृसिंहरूप धारण करके हिरण्यकशिपुका वध किया था। तुमने ही जटाधारी रामरूपसे लंकापति रावणको मारा था और तुम्हींने गोपवेष ग्रहण करके कंस आदि असुरोंका संहार किया है। मत्स्यरूपसे तुम्हारे द्वारा शंख आदि बहुतसे दानव मारे गये हैं। मायावियोंमें अग्रगण्य मैं तुमसे डरता नहीं हूँ।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

आज या कल प्रत्येक शरीरधारीको अवश्य मरना है। बल अथवा छलसे भी यदि तुम्हारे हाथसे मृत्यु हो, तो वही श्रेष्ठ है। यह विद्याधरी कन्या सती-साध्वी है। मैंने इसे कलंकित नहीं किया है, अपितु तुम्हारे लिये इसकी रक्षा की है।'

ऐसा कहकर दानवने पर्वतको भी हिला देनेवाले अपने बायें हाथके प्रहारसे राजाकी छातीपर आघात किया। राजाने उस प्रहारको सह लिया और हाथमें त्रिशूलको तौलते हुए उसकी छातीको निशाना बनाया। त्रिशूलकी मार खाकर दानवने उसी क्षण प्राण त्याग दिया। इस प्रकार देवताओंको कम्पित करनेवाले कंकालकेतुको मारकर राजाने विद्याधरीसे कहा—'सुन्दरि! देवर्षि नारदके मुखसे तुम्हारा सन्देश पाकर मैंने तुम्हारी इच्छाके अनुसार यह कार्य किया है। अब बताओ और क्या करूँ?'

मलयगन्धिनी बोली—वीर! तुम्हीं मेरे जीवन हो, मैं प्राणपणसे तुम्हारी हो चुकी हूँ, फिर मुझसे क्या पूछते हो।

विद्याधर-कन्याके ऐसा कहते ही देवलोकसे देवर्षि नारद मुनि आ पहुँचे। उनका दर्शन करके उन दोनोंको बड़ा सन्तोष हुआ। दोनोंने एक साथ मुनिको प्रणाम किया और मुनिने भी दोनोंको आशीर्वाद दिया। तत्पश्चात् नारदजीने पाणिग्रहणकी विधिसे दोनोंका मंगल अभिषेक किया और वे दोनों उन्हींके बताये हुए मार्गसे भूलोकमें आये। मलयगन्धिनीके साथ अमित्रजित काशीपुरीमें आये। वह पुरी पुरवासियोंद्वारा खूब सजायी गयी थी। विद्याधरीने दूरसे ही काशीका वैभव देखकर स्वर्गलोक और पातालनगरीको भी छोटा माना। राजा अमित्रजितने मलयगन्धिनीको धर्मपत्नीके रूपमें प्राप्त करके काशीमें धर्मप्रधान पीठका भलीभाँति सेवन किया और मनोवांछित उत्तम सुखको प्राप्त किया। एक समय उस पतिव्रता रानीने मनमें पुत्रकी कामना लेकर अपने विष्णुभक्त पतिसे एकान्तमें निवेदन किया—'राजन्! प्राणनाथ! यदि आपकी आज्ञा हो, तो मैं पुत्रकी कामनासे अभीष्ट तृतीयाका महान् व्रत करूँगी। वह व्रत मनोवांछित फलको देनेवाला है।'

राजाने पूछा—देवि! अभीष्ट तृतीयाको कैसे व्रत किया जाता है, उसमें किस देवताकी पूजा होती है तथा उसका विधान और फल क्या है? जो नारी अपने पतिकी आज्ञा लिये बिना ही व्रत आदिका अनुष्ठान करती है, वह जीते-जी दुःख उठाती है और मरनेके बाद नरकमें जाती है।*

वीरेश्वरका जन्म, तपस्या, वीरेश्वरगलिंगका प्राकट्य और उसकी महिमा

रानी बोली—पृथ्वीनाथ! पूर्वकालमें पुत्रकी इच्छा रखनेवाली कुबेरपत्नी श्रीमुखीके आगे ब्रह्मपुत्र नारदजीने इस व्रतका वर्णन किया था। देवी श्रीमुखीने इस व्रतका पालन किया और उन्हें नलकूबर नामक पुत्रकी प्राप्ति हुई। मार्गशीर्षमासके शुक्ल पक्षकी तृतीया तिथिको कलशके ऊपर एक ताम्रपत्र रखकर उसे चावलसे भर दे। उसके ऊपर एक वस्त्र बिछावे, जो फटा-पुराना न हो, नवीन हो और उसे हल्दीके रंगमें रँग दे। उस वस्त्रके ऊपर सूर्यकी किरणोंसे विकसित हुए सुन्दर कमलपुष्पको रखकर उसकी कर्णिकापर स्वर्णनिर्मित ब्रह्माणीजीकी प्रतिमाकी स्थापना करके रत्न और रेशमी वस्त्र आदिके द्वारा उसकी भक्तिपूर्वक पूजा करे। पूजामें नाना प्रकारके सुन्दर पुष्प, नारंगी आदि फल, चन्दन आदि सुगन्धित पदार्थ, कपूर, कस्तूरी, उत्तम अन्न आदिके नैवेद्य, अनेक प्रकारके पकवान तथा अगर आदि धूप—इन सब वस्तुओंका यथावत् उपयोग करना चाहिये। फूलोंसे सजाये हुए सुन्दर मण्डपमें बैठकर निद्रारहित हो उत्तम उत्सव मनाते हुए रात्रिको जागरण करे।

* नारी पत्यननुज्ञाता या व्रतादि समाचरेत्। जीवन्ती दुःखिनी सा स्यान्मृता निरयमृच्छति॥ (स्क० पु०, का० उ० ८२। १३९)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

मन्त्रवेत्ता द्विज एक हाथसे कुण्डमें अग्निकी स्थापना करके '**जातवेदसे......**' इत्यादि ऋचाद्वारा घृत और मधु आदिमें डुबोये हुए स्वत:विकसित एक सहस्र कमल-पुष्पोंकी आहुति दे। तत्पश्चात् नयी ब्यायी हुई सीधी-सादी सुलक्षणा कपिला गाय आचार्यको दान करे। पति-पत्नी नूतन वस्त्र और आभूषणोंसे विभूषित हो भक्तिपूर्वक उपवास करके दूसरे दिन चतुर्थीको प्रात:काल स्नानके अनन्तर आचार्यकी आदरपूर्वक पूजा करें। उन्हें प्रसन्नतापूर्वक वस्त्र, आभूषण, माला एवं दक्षिणा दें। फिर निम्नांकित मन्त्रका उच्चारण करके सब सामग्रियोंसहित स्वर्णप्रतिमा आचार्यको निवेदन करे—

नमो विश्वविधानज्ञे विधे विविधकारिणि।
सुतं वंशकरं देहि तुष्टामुष्माद्व्रताच्छुभात्॥

'सम्पूर्ण विश्वके विधानको जानने तथा नाना प्रकारकी सृष्टि करनेवाली देवी ब्रह्माणी! आपको नमस्कार है। इस शुभ व्रतके अनुष्ठानसे प्रसन्न होकर आप मुझे वंश चलानेवाला पुत्र दीजिये।'

तदनन्तर भक्तिपूर्वक ब्राह्मणभोजन कराकर शेष अन्नसे स्वयं पारण करना चाहिये। राजन्! इस प्रकार यह व्रत मैं आपके साथ करना चाहती हूँ। आप मेरा यह प्रिय कार्य सम्पन्न करें।

स्कन्दजी कहते हैं—मुने! यह सुनकर श्रेष्ठ राजा अमित्रजितने प्रसन्नतापूर्वक पत्नीके साथ उस व्रतका अनुष्ठान किया। रानी गर्भवती हुई। गर्भावस्थामें उसने देवी पार्वतीसे यह प्रार्थना की—'महामाये! मुझे साक्षात् भगवान् विष्णुके अंशसे उत्पन्न पुत्र प्रदान कीजिये, जो जन्म लेते ही स्वर्गलोकमें चला जाय और फिर लौट आवे। सम्पूर्ण भूमण्डलमें भगवान् शिवका वह सुप्रसिद्ध भक्त हो। मेरे स्तनोंका दूध पीये बिना ही वह क्षणभरमें सोलह वर्षकी-सी अवस्थावाले किशोरके समान हो जाय।'

रानीकी भक्तिसे अत्यन्त सन्तुष्ट होकर गौरीदेवीने भी '**तथास्तु**' कह दिया। तत्पश्चात् समय आनेपर रानीने मूलनक्षत्रमें एक पुत्रको जन्म दिया। उस समय हितैषी मन्त्रियोंने प्रसूतिगृहमें स्थित हुई रानीसे निवेदन किया—'देवि! आपका यह पुत्र दुष्ट नक्षत्रमें उत्पन्न हुआ है। यदि आप राजाके जीवनकी रक्षा चाहती हैं, तो इस पुत्रको त्याग दें।' यह सुनकर पतिव्रता रानीने उस पुत्रको त्याग दिया। उन्होंने धाईको बुलाकर कहा—'धाय! पंचमुद्र नामक महापीठमें विकटा नामवाली एक मातृका रहती हैं। उनके आगे इस बालकको रखकर तू इस प्रकार कहना—'देवि! इस पुत्रको पार्वतीदेवीने दिया है। अब इसे मैं आपकी सेवामें सौंपती हूँ। पतिके हितकी इच्छा रखनेवाली महारानीने यह बालक आपको समर्पित किया है।'

रानीकी इस आज्ञाके अनुसार धाय उस सुन्दर बालकको विकटादेवीके आगे रखकर अपने घर लौट आयी। तब विकटादेवीने योगिनियोंको बुलाकर कहा—'इस बालकको तुम मातृकागणके आगे ले जाओ और उनकी जैसी आज्ञा हो, वह करो। इसकी प्रयत्नपूर्वक रक्षा करना।' विकटाके कहनेसे आकाशगामिनी योगिनियोंने उस बालकको क्षणभरमें वहाँ पहुँचा दिया, जहाँ ब्राह्मी आदि मातृकाएँ विद्यमान हैं। ब्रह्माणी, वैष्णवी, रौद्री, वाराही, नारसिंही, कौमारी, माहेन्द्री, चामुण्डा और चण्डिका—इन नौ मातृकाओंने विकटाके भेजे हुए उस सुन्दर बालकको देखकर उससे एक साथ पूछा—'बेटा! तेरे पिता और माता कौन हैं?' जब वह कुछ न बोल सका, तब मातृकागणने योगिनियोंसे कहा—'इसमें बड़े उत्तम लक्षण दिखायी देते हैं, यह बालक राजा होनेके योग्य है। अतः योगिनियो! तुम इसे पुनः उसी पीठमें ले जाओ, जहाँ महादेवी पंचमुद्रा (विकटा) रहती हैं। उस पीठकी सेवा और विश्वनाथजीकी कृपासे सोलह वर्षकी-सी आकृतिवाले इस बालकको उत्तम सिद्धि प्राप्त होगी।' इस प्रकार मातृकागणोंका आशीर्वाद मिलनेपर योगिनियोंने पुनः क्षणभरमें उस बालकको उसी पंचमुद्रांकित पीठमें पहुँचा दिया। स्वर्गलोकसे इस लोकमें आया हुआ वह बालक काशीमें बड़ी भारी दिव्य तपस्या करने लगा। उसकी तीव्र तपस्यासे प्रसन्न हो भगवान् शिव लिंगरूपसे उसके आगे प्रकट हुए और बोले—'राजकुमार! तुम वर

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

माँगो, मैं तुमसे बहुत सन्तुष्ट हूँ।'

अत्यन्त कृपापूर्वक सात पाताल फोड़कर अपने आगे स्थित हुए ज्योतिर्मय लिंगको देखकर बालकने दण्डके समान पृथ्वीपर गिरकर प्रणाम किया और रुद्रदेवतासम्बन्धी सूक्तोंसे उनकी स्तुति करके बोला—'महादेव! आप सांसारिक ताप हरनेवाले हैं। कृपया सदा इस शिवलिंगमें स्थित रहें और अपने भक्तोंका मनोरथ पूर्ण किया करें। जो लोग यहाँ आकर आपका दर्शन, स्पर्श और नमस्कार करें, उन्हें आप परम उत्तम सिद्धि प्रदान करते रहें।' इस प्रकार उसके माँगे हुए वरको सुनकर भगवान् शिवने कहा—'वीर! तुमने जो कुछ माँगा है, वह सब कुछ पूर्ण हो। विष्णुभक्त राजा अमित्रजित तुम्हारे पिता हैं, तुम उन्हींसे उत्पन्न हुए हो और साक्षात् भगवान् विष्णुके अंश हो। हे वीर! यह शिवलिंग तुम्हारे ही नामपर 'वीरेश्वर' कहलायेगा। यह काशीमें अपने भक्तोंका मनोरथ सिद्ध करेगा। वीर! आजसे मैं सदा इस लिंगमें स्थित रहूँगा और शरणागतोंको परम उत्तम सिद्धि दूँगा। कलियुगमें प्रायः कोई भी मेरी महिमाको नहीं जानेगा। जो भाग्यसे जानेगा, वह उत्तम सिद्धिको प्राप्त होगा। यहाँ किया हुआ जप, होम, दान, पूजन एवं जीर्णोद्धार आदि पुण्यकार्य अक्षय फलका साधक होगा। तुम सब राजाओंके लिये दुर्लभ, श्रेष्ठ राज्य प्राप्त करके अन्तमें सिद्धि पाओगे। वीर! वीरेश्वर-तीर्थमें स्नान और वीरेश्वरकी पूजा करके मनुष्य सब तीर्थोंमें स्नान करनेका फल पा लेगा। चतुर्दशी तिथिमें वीरेश्वरकी पूजा करके यत्नपूर्वक एक रात्रिमें भी जागरण कर लेनेपर मनुष्य फिर पांचभौतिक शरीरको नहीं ग्रहण करता है। जो वीरेश्वरके समीप एक महारुद्रियका जप करे अथवा करावेगा, उसे कोटि रुद्रियका फल प्राप्त होगा। वीरेश्वरके निकट व्रती मनुष्य जो व्रत और उद्यापन आदि करते हैं, उनका वह पुण्यकर्म कोटिगुना हो जाता है। जिसने भगवान् वीरेश्वरके सम्मुख आठ बार नमस्कार कर लिये, उसे आठ करोड़ नमस्कारका फल मिलता है। वीर! यह वीरेश्वर-लिंग मेरे वरदानसे सब प्रकारकी सम्पत्तियोंका स्थान होगा। वीरेश्वर-लिंगकी सेवा करनेवाले पुरुषोंको मेरी आज्ञासे जीते-जी ही तारक ज्ञानकी प्राप्ति हो जायगी। इसलिये शुभकी इच्छा रखनेवाले पुरुषोंको इस वीरेश्वर-लिंगका सेवन अवश्य करना चाहिये।'

दुर्वासेश्वर (कामेश्वर)-लिंगकी महिमा

स्कन्दजी कहते हैं—एक समय महातपस्वी दुर्वासा ऋषि भगवान् शंकरके आनन्दवनमें आये। यहाँ अनेक प्रकारके मन्दिरोंसे सुशोभित भगवान् शंकरका क्रीडास्थान, बहुत-से कुण्ड और पोखरे देखकर उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। बहुत-से श्रेष्ठ शिवभक्त सब अंगोंमें विभूति लगाये, मस्तकपर जटा बढ़ाये, कौपीनमात्र पहने महादेवजीके ध्यानमें तत्पर थे। उनका दर्शन करके दुर्वासा मुनिको बड़ा हर्ष हुआ। कहीं-कहीं असंग, अपरिग्रह, कालसे भी भय न रखनेवाले तथा विश्वनाथजीके शरणागत त्रिदण्डी संन्यासी दिखायी देते थे। उन सबके दर्शनसे दुर्वासाजी बड़े आनन्दित हुए और मन-ही-मन कहने लगे 'यह परम कल्याणका स्थान है, ऐसा स्थान स्वर्गलोकमें भी कहाँ है। यह काशीपुरी तो पशु-पक्षियोंके भी परमानन्दको बढ़ानेवाली है। यह विश्वनाथपुरी मेरे चित्तको जिस प्रकार आकृष्ट कर रही है, वैसा आकर्षण न तो सम्पूर्ण भूमण्डलमें है, न स्वर्गलोकमें है और न पातालमें ही है।' इस प्रकार उस पुरीकी प्रशंसा करके दुर्वासाजीकी चित्तवृत्ति शान्त हुई। फिर वे वहाँ दीर्घकालतक भारी तपस्यामें लगे रहे, परंतु जब उसका कोई फल नहीं दिखायी दिया, तब उनके क्रोधकी सीमा नहीं रही। वे कहने लगे 'मुझको धिक्कार है, मेरे कठोर तपको

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

भी धिक्कार है और सबको ठगनेवाले इस शिवक्षेत्रको भी धिक्कार है। अब मैं ऐसा करूँ जिससे यहाँ किसीकी मुक्ति न हो।' ऐसा विचारकर जब वे काशीको शाप देनेके लिये उद्यत हुए, तब भगवान् शिव जोर-जोरसे हँसने लगे। तत्काल ही वहाँ एक शिवलिंग प्रकट हो गया, जो 'प्रहसितेश्वर' नामसे विख्यात हुआ। उससे साक्षात् भगवान् शंकर दुर्वासाके शापसे पुरीकी रक्षा करनेके लिये प्रकट हुए और इस प्रकार बोले—'महाक्रोधी तापस! मैं प्रसन्न हूँ, वर माँगो।'

शाप देनेके लिये जिनका हाथ उठ चुका था, वे दुर्वासा मुनि भगवान् शंकरका करुणामय वचन सुनकर लज्जित हो गये और बोले—तीनों लोकोंको अभय देनेवाली इस काशीपुरीको शाप देनेके लिये उद्यत होनेवाले मुझको धिक्कार है। जो बुद्धिमान् काशीपुरीकी स्तुति करता है, जो काशीको हृदयमें धारण करता है, उसने बड़ी भारी तपस्या की है और उसीने करोड़ों यज्ञोंका अनुष्ठान किया है। 'काशी' यह दो अक्षरोंका नाम जिसकी जिह्वाके अग्रभागपर स्थित है, उस उत्तम बुद्धिवाले पुरुषको कभी गर्भमें नहीं आना पड़ता। जो 'काशी' इस दो अक्षरके मन्त्रका प्रतिदिन प्रातःकाल जप करता है, वह इहलोक और परलोक—दोनोंको जीतकर लोकातीत पदको प्राप्त होता है।

भगवान् शिव बोले—अनसूयानन्दन! इस समय काशीकी स्तुतिके पुण्यसे तुम्हें जैसा उत्तम ज्ञान प्राप्त हुआ है, वैसा पहले तपस्यासे भी नहीं प्राप्त हुआ था। मुने! काशीकी स्तुतिकी लालसा रखनेवाला मनुष्य मुझे जैसा अतिशय प्रिय प्रतीत होता है, वैसा प्रिय यज्ञकी दीक्षा लेकर निरन्तर मेरा यजन करनेवाला पुरुष भी नहीं लगता।

यह सुनकर दुर्वासाजीने भगवान् शिवका स्तवन किया और प्रसन्न होकर वर माँगते हुए कहा—देवदेव! जगन्नाथ! करुणाकर! शंकर! मृत्युंजय! उग्र! भूतनाथ! पार्वतीपते! त्रिलोचन! नाथ! धूर्जटे! यहाँ प्रकट हुआ यह लिंग 'कामद' नामसे प्रसिद्ध होवे और यह तड़ाग 'कामकुण्ड' कहलाये।

देवदेवने कहा—महातेजस्वी मुने! 'एवमस्तु'। तुमने जो दुर्वासेश्वर-लिंगकी स्थापना की है, वही मनुष्योंकी कामना पूर्ण करनेके कारण कामेश्वर नामसे विख्यात होगा। जो शनिवारयुक्त त्रयोदशीको प्रातःकाल तुम्हारे स्थानपर स्थित कामकुण्डमें स्नान और तुम्हारे द्वारा स्थापित कामेश्वर-लिंगका दर्शन करेगा, वह कामजनित दोषसे यमयातनाको नहीं प्राप्त होगा। अनेक जन्मोंके उपार्जित नाना प्रकारके पाप काम-तीर्थके जलमें स्नान करनेसे क्षण भरमें नष्ट हो जायँगे। कामेश्वरकी सेवासे समस्त कामनाएँ पूर्ण होंगी।

ऐसा वरदान देकर भगवान् शिव उसी लिंगमें विलीन हो गये। उस शिवलिंगकी आराधनासे दुर्वासा ऋषिने सम्पूर्ण कामनाएँ प्राप्त कर लीं। इसलिये बड़ी-बड़ी अभिलाषा रखनेवाले पुरुषोंको सदा प्रयत्नपूर्वक काशीमें कामेश्वरकी पूजा करनी चाहिये। महापातकोंकी शान्तिके लिये कामकुण्डमें स्नान करके कामेश्वरका दर्शन-पूजन करना चाहिये।

~~~o~~~

श्रीविश्वकर्मेश्वर-लिंगकी महिमा

पार्वतीजी बोलीं—भगवन्! काशीमें परम विख्यात जो विश्वकर्मेश्वर-लिंग है, उसकी उत्पत्तिका वृत्तान्त कहिये।

महादेवजीने कहा—देवि! पूर्वकालमें त्वष्टा प्रजापतिके पुत्र विश्वकर्मा हुए, जो ब्रह्माजीके द्वितीय स्वरूप हैं। उपनयन-संस्कार हो जानेपर वे गुरुकुलमें रहकर भिक्षान्न-भोजन एवं गुरुशुश्रूषा करने लगे। एक दिन वर्षाकाल आनेपर गुरुने उन्हें आज्ञा दी—'वत्स! तुम मेरे लिये एक पर्णशाला बना दो, जहाँ वर्षाका कष्ट न हो, जो कभी नष्ट

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth
~~~

और पुरानी न हो।' तत्पश्चात् गुरुपत्नीने आज्ञा दी—'तुम मेरे लिये चोली बना दो, जो मेरे शरीरके अनुरूप हो, न कसी हुई हो और न ढीली ही हो। वह कपड़ेके बिना केवल वल्कलसे बनी हो, बहुत सुन्दर हो और सदा स्वच्छ रहनेवाली हो।' इसके बाद गुरुके पुत्रने आदेश दिया—'मेरे लिये दो खड़ाऊँ तैयार करो, जिनपर चढ़कर मेरे पैरोंको कभी कीचड़का स्पर्श न हो, उनमें चमड़े आदिका बन्धन न लगा हो, जो दौड़ते समय भी मुझे आराम देनेवाली हों तथा जिनके द्वारा मैं स्थल—भूमिकी भाँति जलके ऊपर भी अच्छी तरह चल सकूँ।' अन्तमें गुरुपुत्री बोली—'मेरे लिये अपने ही हाथसे दो सोनेके कर्णफूल बना दो। साथ ही लड़कियोंके खेलनेयोग्य खिलौने भी दो, जो हाथीदाँतके बने हुए और तुम्हारे ही हाथसे तैयार किये गये हों।'

पार्वती! तब विश्वकर्माने सबके आगे 'बहुत अच्छा, ऐसा ही होगा' इस प्रकार प्रतिज्ञा की और वनके भीतर प्रवेश करके वे चिन्ता करने लगे। कुछ करना तो जानते नहीं थे, परंतु 'मैं सब करूँगा' ऐसी प्रतिज्ञा सबके सामने कर चुके थे। अत: मन-ही-मन इस विचारमें पड़े कि 'क्या करूँ, कहाँ जाऊँ, कौन मुझे बुद्धिकी भी सहायता देगा, मैं किसकी शरणमें जाऊँ। जो मूढ़ मानव गुरु, गुरुपत्नी और गुरु-पुत्रकी आज्ञा स्वीकार करके उसे पूर्ण नहीं करता, वह नरकगामी होता है। ब्रह्मचारियोंका प्रधान धर्म गुरुशुश्रूषा ही है। गुरुजनोंकी आज्ञाका पालन न करनेपर जो दोष लगेगा, उससे मेरा उद्धार कैसे होगा। मैं इस वनमें रहकर उनकी बात कैसे पूरी कर सकूँगा। गुरुजनोंकी तो बात दूर रही, दूसरे छोटे मनुष्योंके भी कार्यको 'हाँ' कहकर स्वीकार कर लेनेपर जो उसे पूरा नहीं करता, वह नरकगामी होता है। मैं अज्ञानी हूँ, असहाय हूँ। इन सब कार्योंको मैं कैसे पूर्ण कर सकूँगा। इन्हें स्वीकार तो मैंने भयके कारण कर लिया है।'

वनके मध्यभागमें बैठे हुए विश्वकर्मा जब इस प्रकार चिन्तामें लगे थे, उसी समय उन्हें अकस्मात् एक तपस्वी महात्मा दिखायी दिये। उनको नमस्कार करके विश्वकर्माने पूछा—'आप कौन हैं, जो मेरे मनको बहुत सुखी कर रहे हैं? आप तापसरूपमें मेरे प्रारब्ध हैं अथवा साक्षात् करुणावरुणालय भगवान् शिव ही प्रकट हो गये हैं। आप जो हों, सो हों, आपको नमस्कार है। मुझे उपदेश दें, मैं गुरुकी, गुरुपत्नीकी तथा गुरुपुत्रोंकी आज्ञाका पालन कैसे कर सकता हूँ, इसके लिये कोई उपाय बताइये।' वनमें उस ब्रह्मचारी बालकके ऐसा कहनेपर तपस्वी बोले—'त्वाष्ट्र! यह कौन-सी अद्भुत बात है? ब्रह्माजी भी भगवान् विश्वनाथकी कृपासे ही सम्पूर्ण विश्वकी सृष्टि करनेमें प्रवीण हुए हैं। यदि तुम काशीमें जाकर सर्वज्ञ विश्वनाथजीकी आराधना करोगे तो तुम्हारा विश्वकर्मा नाम सार्थक होगा। श्रीकाशीपुरीमें विश्वनाथजीकी कृपासे कोई भी मनोरथ दुर्लभ नहीं है। बालक! यदि तुम अपने मनोरथोंको प्राप्त करना चाहते हो तो विश्वनाथजीके स्थान काशीपुरीमें जाओ।'

इस प्रकार तपस्वीका वचन सुनकर विश्वकर्माने पूछा—महात्मन्! भगवान् शिवका वह आनन्दवन—काशी कहाँ है?

तपस्वी बोले—मैं भी वहाँ जानेकी इच्छा रखता हूँ, मेरे साथ चलो, मैं तुम्हें पहुँचा देता हूँ।

तब उन अतिशय कृपालु महर्षिके साथ विश्वकर्मा विश्वनाथजीकी पुरीमें गये। वहाँ जानेसे उनका मन स्वस्थ हो गया। विश्वकर्माको काशीमें पहुँचाकर वे तपस्वी कहीं असम्भावित गतिसे चले गये। विश्वकर्मा सोचने लगे, 'कहाँ तो उस वनमें व्याकुल चित्तवाला मैं और कहाँ वे तापस मुनि, जो मुझे उत्तम उपदेश देकर यहाँ ले आये। यह सब उन्हीं त्रिनेत्रधारी भगवान् शिवकी लीला है, जिनके भक्तको कहीं कुछ भी दुर्लभ नहीं है। मेरी गुरुभक्ति ही भगवान् शिवको प्रसन्न करनेमें कारण हुई है। उसीसे सन्तुष्ट होकर परम दयालु भगवान् विश्वनाथने मुझपर अनुग्रह किया है। यदि मुझपर उनकी कृपा न होती तो तपस्वीका संग कैसे प्राप्त

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

होता। मनुष्य जब साधु पुरुषोंद्वारा सेवित वेदोक्त मार्गका त्याग नहीं करता, तभी उसपर भगवान् विश्वनाथ अपनी उत्तम दयाका विस्तार करते हैं।'

इस प्रकार अपने ऊपर भगवान् विश्वेश्वरकी कृपाका समर्थन करके विश्वकर्माने पवित्र भावसे एक शिवलिंगको स्थापित किया और स्वस्थचित्त होकर भगवान् विश्वनाथकी आराधना की। वे वनसे ऋतुके अनुकूल बहुत-से पुष्प लाकर स्नान करके नित्य भगवान् शिवकी पूजा करते तथा कन्द, मूल और फलसे जीविका चलाते थे। इस प्रकार शिवलिंगकी आराधनामें मन लगाये हुए विश्वकर्माके जब तीन वर्ष व्यतीत हो गये, तब करुणानिधान भगवान् शिव उनके ऊपर प्रसन्न हो उसी लिंगसे प्रकट होकर बोले—'त्वाष्ट्र! मैं तुम्हारी दृढ़ भक्तिसे बहुत सन्तुष्ट हूँ, तुम कोई वर माँगो। बालक! गुरु-गुरुपत्नी तथा गुरुपुत्रोंने तुमसे जो कुछ माँगा है, वह सब पूर्ण करनेकी शक्ति तुम्हें प्राप्त होगी। धातु, लकड़ी, पत्थर, मणि, रत्न, फूल, वस्त्र, कर्पूर आदि सुगन्धित पदार्थ, जल, कन्दमूल, फल, द्रव्य और वल्कल—इन सब वस्तुओंका काम बनानेकी विद्या तुम्हें प्राप्त होगी। जिस-जिस पुरुषकी, जैसे-जैसे घर या मन्दिर बनवानेकी रुचि होगी, उस-उसके सन्तोषके लिये तुम सब कुछ उसी प्रकार करनेकी कलामें प्रवीण होओगे। सब प्रकारके शृंगार और आभूषणोंकी रचना, सब प्रकारकी रसोईके संस्कार, सभी तरहके शिल्पकर्म, नृत्य, गीत और वाद्यसम्बन्धी सब वस्तुओंको बनानेकी विधि तुम्हें ज्ञात होगी। शिल्पनिर्माणकी कलामें तुम दूसरे ब्रह्मा समझे जाओगे। अनेक प्रकारके यन्त्र (मशीन), भाँति-भाँतिके अस्त्रोंका निर्माण, जलाशय (कूप, तड़ाग, बावली आदि) तथा उत्तम दुर्गकी रचनाका भी तुम्हें ज्ञान होगा। तुम मेरे वरदानसे सम्पूर्ण कलाओंके ज्ञाता हो जाओगे। सारी इन्द्रजाल-विद्या भी तुम्हारे अधीन होगी। सब कर्मोंमें कुशलता, सब बुद्धियोंकी श्रेष्ठता और सबकी मनोवृत्तियोंका ज्ञान तुम्हें स्वतः प्राप्त होगा। सम्पूर्ण विश्वमें अखिल कर्मोंका ज्ञाता होनेके कारण तुम्हारा यह विश्वकर्मा नाम यथार्थ होगा।'

विश्वकर्मा बोले—भगवन्! मैंने अज्ञ होते हुए भी यह जो शिवलिंग स्थापित किया है, इसकी आराधना करके मेरी ही भाँति दूसरे लोग भी सद्बुद्धिके पात्र हों।

महादेवजीने कहा—'एवमस्तु'। तुम्हारे द्वारा स्थापित लिंगकी आराधना करनेवाले सब लोग सद्बुद्धिके पात्र हों और सभी युक्तिकी दीक्षाके अधिकारी बनें। तात! ब्रह्माजीके वरदानसे जब दिवोदास यहाँके राजा होंगे, तब तुम मेरे आदेशसे मेरा मन्दिर निर्माण करोगे। विश्वकर्मन्! अब तुम जाओ और गुरुजीकी आज्ञाके पालनका यत्न करो, क्योंकि जो गुरुके भक्त हैं, वे निःसन्देह मेरे ही भक्त हैं। भक्तोंका अभीष्ट पूर्ण करनेवाला मैं तुम्हारे द्वारा स्थापित उस अर्चाविग्रहमें निरन्तर निवास करूँगा। अंगारेश्वरसे उत्तर भागमें जो तुम्हारे स्थापित किये हुए इस लिंगकी आराधना करेंगे, उन्हें पग-पगपर अभीष्ट मनोरथोंकी प्राप्ति होगी।'

ऐसा कहकर महादेवजी अन्तर्धान हो गये और विश्वकर्मा अपने गुरुके पास आये। गुरुकी अभिलाषा पूर्ण करके वे अपने घर चले गये। घरपर भी अपने सत्कर्मसे उन्होंने माता-पिताको सन्तुष्ट किया और सदा उनकी आज्ञाका पालन किया। तत्पश्चात् वे काशी चले आये और अपने द्वारा स्थापित शिवलिंगकी आराधनामें संलग्न हो गये।

श्रीमहादेवजी कहते हैं—पार्वती! तुमने काशीपुरीमें मुक्ति देनेकी शक्ति रखनेवाले जिन शिवलिंगोंका परिचय पूछा था, उन सबका वर्णन मैंने किया। ॐकारेश्वर, त्रिविष्टपेश्वर, महादेवेश्वर, कृत्तिवासेश्वर, रत्नेश्वर, चन्द्रेश्वर, केदारेश्वर, धर्मेश्वर, वीरेश्वर, कामेश्वर, विश्वकर्मेश्वर तथा मणिकर्णीश्वर, अविमुक्तेश्वर और सम्पूर्ण विश्वको सुख देनेवाले विश्वनाथ नामसे प्रसिद्ध विश्वेश्वर—ये सभी मुक्तिदायक लिंग हैं। अविमुक्तक्षेत्रमें आकर जिसने भगवान् विश्वेश्वरका पूजन कर लिया, उसका

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

सैकड़ों कल्पोंमें भी जन्म नहीं होता। जितेन्द्रिय संन्यासियोंको आठ महीने घूमनेका विधान है और वर्षाके चौमासेमें एक स्थानपर रहनेके लिये शास्त्रकी आज्ञा है। उन्हें किसी एक स्थानपर लगातार एक वर्षतक नहीं रहना चाहिये। परंतु अविमुक्त क्षेत्रमें जिनका प्रवेश हो गया है, ऐसे संन्यासियोंके लिये भ्रमण करनेका आदेश लागू नहीं होता और उन्हें यहाँ मोक्ष भी निःसन्देह प्राप्त हो जाता है। इसलिये कभी काशीपुरीका परित्याग नहीं करना चाहिये। इन चौदह लिंगोंकी माहात्म्य-कथा सुनकर श्रेष्ठ पुरुष चौदहों भुवनोंमें उत्तम सम्मान प्राप्त करेगा।

दक्षेश्वर तथा पार्वतीश्वर लिंगका माहात्म्य

स्कन्दजी कहते हैं—मुने! भगवान् शंकरके गणोंने जब दक्षयज्ञका विध्वंस कर दिया, उस समय ब्रह्माजीने दक्षको यह उपदेश दिया कि 'प्रजापते! भगवान् शंकरकी निन्दासे जो दुस्त्यज पापपंक उत्पन्न हो गया है, उसको धो डालनेकी इच्छा हो तो तुम काशीपुरीमें जाओ। बड़े-बड़े पापोंका नाश करनेवाली पुण्यमयी काशीपुरीमें जाकर तुम वहाँ शिवलिंगकी प्रतिष्ठा करो। इससे भगवान् शंकर सन्तुष्ट होते हैं और उनके सन्तुष्ट होनेपर यह सम्पूर्ण चराचर जगत् सन्तुष्ट हो जाता है। मनीषी महर्षियोंने ब्रह्महत्या आदि पापोंका प्रायश्चित्त तो कहा है, परंतु शिवनिन्दाजनित पापका प्रायश्चित्त नहीं बताया है। उसका प्रायश्चित्त तो केवल काशी ही है। जिन पुण्यात्माओंने काशीमें शिवलिंगकी प्रतिष्ठा की है, उनके द्वारा सब धर्मोंका अनुष्ठान हो गया। इस संसारमें वे ही पुरुषार्थी हैं।'

ब्रह्माजीका यह वचन सुनकर दक्ष प्रजापति शीघ्र ही काशीपुरीमें आये और वहाँ बड़ी भारी तपस्यामें संलग्न हो गये। उन्होंने विधिपूर्वक शिवलिंगकी स्थापना करके उसकी आराधना प्रारम्भ कर दी। उस लिंगसे भिन्न दूसरी किसी वस्तुको इस भूतलपर वे नहीं जानते थे। प्रजापति दक्ष दिन-रात भगवान् महेश्वरकी स्तुति, पूजा, नमस्कार, ध्यान और दर्शन करते थे। एकचित्त होकर उस ईश्वरलिंगकी आराधना करते हुए दक्षके बारह हजार वर्ष व्यतीत हो गये। दक्षकन्या सती अपना शरीर त्यागकर जब हिमाचलकी पतिव्रता पत्नी मेनाके गर्भसे प्रकट हुईं और उमारूपसे अत्यन्त तपस्या करके जब उन्होंने पिनाकपाणि भगवान् शिवको पतिरूपमें प्राप्त कर लिया, तबतक तपस्यामें निश्चलभावसे बैठे हुए दक्ष शिवलिंगकी आराधना करते रहे। तदनन्तर गिरिराजकिशोरी उमा जब अपने पतिके साथ काशी आयीं और दक्षको निश्चलचित्तसे शिवलिंगकी आराधनामें तत्पर देखा, तब देवीने महादेवजीसे निवेदन किया—'प्रभो! ये तपस्या करते-करते अत्यन्त दुर्बल हो गये हैं। कृपासिन्धो! अब तो इन प्रजापतिको वरदान देकर प्रसन्न कीजिये।'

देवी अपर्णाके ऐसा कहनेपर महेश्वरने दक्षसे कहा—महाभाग! वर माँगो।

भगवान् शंकरका ऐसा वचन सुनकर प्रजापतिने उन्हें अनेक बार प्रणाम किया और नाना प्रकारके स्तोत्रोंद्वारा उनकी स्तुति की। तत्पश्चात् उन्हें प्रसन्न देखकर इस प्रकार कहा—'देव! आपके युगल चरणारविन्दोंमें मेरी निर्द्वन्द्व भक्ति बनी रहे और मैंने जो आपके महालिंगकी यहाँ स्थापना की है, इसमें आप सदा निवास करें। कृपानिधे! मैंने जो आपका अपराध किया है, उसे क्षमा कर दें।'

यह सुनकर महादेवजी बहुत प्रसन्न हुए और बोले—तुमने जैसा कहा है, वह सब उसी प्रकार होगा। प्रजापते! तुमने जो दक्षेश्वर नामक शिवलिंगकी स्थापना की है, इसके सेवनसे मैं पुरुषोंके सहस्रों अपराध क्षमा कर दूँगा, इसमें सन्देह नहीं है।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

अतः मनुष्योंको इस दक्षेश्वर लिंगकी पूजा अवश्य करनी चाहिये और तुम इस लिंगार्चनके पुण्यसे सर्वमान्य होओगे। दो परार्ध व्यतीत होनेपर तुम मोक्षको प्राप्त हो जाओगे। ऐसा कहकर महादेवजी उसी लिंगमें अन्तर्धान हो गये। प्रजापति दक्ष भी पूर्णमनोरथ होकर अपने घरको लौट गये।

अगस्त्य! इस प्रकार दक्षेश्वरकी उत्पत्ति बतायी गयी।

अगस्त्यजी बोले—पार्वतीनन्दन! अब पार्वतीश्वर लिंगकी उत्पत्तिका वर्णन कीजिये।

स्कन्दजीने कहा—मुने! एक दिन हिमाचलकी पतिव्रता पत्नी मेनाने अपनी पुत्री पार्वतीसे पूछा—'बेटी! तुम्हारा और भगवान् महेश्वरका कौन-सा स्थान है, कौन घर है और कौन बन्धु है? तुम कुछ जानती हो तो बताओ।'

माताका यह प्रश्न सुनकर पार्वतीजीको बड़ी लज्जा हुई और उन्होंने अवसर पाकर भगवान् शिवको नमस्कार करके कहा—प्राणवल्लभ! अब मुझे निश्चितरूपसे ससुराल चलना चाहिये। यहाँ रहना उचित नहीं है, अतः मुझे अपने घर ले चलें। पार्वतीकी यह बात सुनकर यथार्थ रहस्यको जाननेवाले महादेवजीने हिमालयको छोड़ दिया और अपने परमधाम आनन्दवनमें चले आये। परमानन्दके हेतुभूत आनन्दवनमें आकर आनन्दस्वरूपा पार्वतीदेवी अपने पिताके घरको भूल गयीं।

तदनन्तर एक दिन गौरीदेवीने महेश्वरसे पूछा—भगवन्! इस क्षेत्रमें अविच्छिन्न आनन्दका समुद्र क्यों उमड़ रहा है, यह बतानेकी कृपा करें। गौरीका यह वचन सुनकर पिनाकधारी शिवने कहा—'यह पाँच कोसका क्षेत्र मुक्तिधाम है। यहाँ तिलके बराबर भी कोई कहीं ऐसा स्थान नहीं है, जहाँ कोई शिवलिंग न हो। यहाँ बहुत-से परमानन्द-स्वरूप लिंग हैं। चौदहों भुवनोंमें जो पुण्यात्मा निवास करते हैं, उन सबने अपने-अपने नामसे यहाँ लिंग-स्थापना की है और इससे कृतार्थताका अनुभव किया है। पार्वती! यही कारण है कि यह क्षेत्र असीम आनन्दका प्रधान हेतु बन गया है।'

महादेवी बोलीं—नाथ! तब मुझे भी यहाँ शिवलिंग स्थापित करनेकी आज्ञा दीजिये। पतिकी आज्ञा लेकर पतिव्रता नारी जो-जो कल्याणमय कार्य करती है, उसके श्रेयकी हानि कभी प्रलयकालमें भी नहीं होती। इस प्रकार देवेश्वरको प्रसन्न करके उनकी आज्ञा ले गौरीजीने महादेवेश्वरके समीप एक शिवलिंग स्थापित किया, जिसके दर्शनसे मनुष्योंके ब्रह्महत्या आदि पातक नष्ट हो जाते हैं और उन्हें फिर कभी देहबन्धन नहीं प्राप्त होता। मुने! महादेवजीने उस लिंगको जो वरदान दिया है, उसको श्रवण करो। 'जो कोई काशीमें पार्वतीश्वर नामक लिंगका भलीभाँति पूजन करेगा, वह देहावसान होनेपर मुझमें ही प्रवेश करेगा। चैत्र शुक्ला तृतीयाको पार्वतीश्वरकी पूजा करनेसे मनुष्य इस लोकमें सौभाग्य और परलोकमें सद्गति प्राप्त करता है। जो श्रेष्ठ पुरुष पार्वतीश्वरका माहात्म्य सुनेगा, वह परम बुद्धिमान् होकर इहलोक और परलोककी सम्पूर्ण कामनाओंको प्राप्त करेगा।'

~~~०~~~

नर्मदेश्वर तथा सतीश्वर लिंगका माहात्म्य

स्कन्दजी कहते हैं—मुने! अब मैं आपसे नर्मदेश्वरका माहात्म्य कहता हूँ, जिसके स्मरण-मात्रसे बड़े-बड़े पातकोंका नाश हो जाता है। इस वाराहकल्पके प्रारम्भमें बड़े-बड़े महर्षियोंने मार्कण्डेयजीसे पूछा—'मृकण्डनन्दन! सब नदियोंमें श्रेष्ठ नदी कौन-सी है?'

मार्कण्डेयजी बोले—मुनियो! आप सब लोग सुनें। भारतवर्षमें सैकड़ों नदियाँ हैं। वे सभी पापोंका नाश करनेवाली और पुण्य देनेवाली हैं। उन सबमें श्रेष्ठ वे नदियाँ हैं, जो समुद्रमें मिली हैं। उनमें भी गंगा, यमुना, नर्मदा और सरस्वती—ये चार नदियाँ सर्वश्रेष्ठ हैं। गंगा ऋग्वेदमूर्ति,

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth
~~~

यमुना यजुर्वेदमूर्ति, नर्मदा सामवेदमूर्ति और सरस्वती अथर्ववेदस्वरूपा हैं। इनमें भी गंगा ही सब नदियोंकी उत्पत्तिकी कारणभूता हैं, वे ही समुद्रको भी भरती हैं। इस भूमण्डलमें गंगाजीकी समता करनेवाली दूसरी कोई श्रेष्ठ नदी नहीं है। परंतु पूर्वकालमें नर्मदा नदीने बहुत वर्षोंतक तपस्या करके ब्रह्माजीको प्रसन्न किया। जब ब्रह्माजी वर देनेको उद्यत हुए, तब नर्मदाने इस प्रकार प्रार्थना की—'भगवन्! यदि आप प्रसन्न हैं तो मुझे गंगाजीके समान कर दीजिये।' तब ब्रह्माजीने मुसकराते हुए कहा—'यदि दूसरा कोई देवता भगवान् त्रिलोचनकी समता प्राप्त कर ले, दूसरा कोई पुरुष पुरुषोत्तम श्रीविष्णुके समान हो जाय, दूसरी कोई नारी भगवती पार्वतीकी समानता कर ले तथा दूसरी कोई नगरी काशीपुरीकी बराबरी कर सके तो दूसरी नदी भी गंगाके समान हो सकती है।'

ब्रह्माजीका यह वचन सुनकर नर्मदा उनके वरदानका त्याग करके काशीपुरीमें चली गयी। वहाँ भगवान् त्रिलोचनके समीप पिलपिलातीर्थमें उसने विधिपूर्वक शिवलिंग स्थापित किया। तब उस पुण्यात्मा नदीके ऊपर भगवान् शंकर बहुत प्रसन्न हुए और बोले—'सौभाग्यशालिनि! तुम अपनी रुचिके अनुसार वर माँगो।' यह सुनकर सरिताओंमें श्रेष्ठ नर्मदा बोली—'देवेश्वर! तुच्छ वर माँगनेसे क्या लाभ? आपके युगलचरणोंमें मेरी निर्द्वन्द्व भक्ति बनी रहे।' नर्मदाकी यह बात सुनकर भगवान् शंकर अत्यन्त प्रसन्न हो बोले—'नर्मदे! तुम्हारे तटपर जितने भी प्रस्तरखण्ड हैं, वे सब मेरे वरसे शिवलिंगस्वरूप हो जायँगे। गंगामें स्नान करनेपर शीघ्र ही पापका नाश होता है, यमुना सात दिनके स्नानसे और सरस्वती तीन दिनके स्नानसे सब पापोंका नाश करती है, परंतु तुम दर्शनमात्रसे सम्पूर्ण पापोंका निवारण करनेवाली होओगी। तुमने जो यहाँ नर्मदेश्वर नामक शिवलिंगकी स्थापना की है, वह लिंग परम पुण्यमय तथा शाश्वत मोक्ष देनेवाला होगा।'

ऐसा कहकर देवदेवेश्वर भगवान् शिव उसी लिंगमें लीन हो गये। अद्भुत पवित्रता पाकर नर्मदा भी बहुत सन्तुष्ट हुई। वह दर्शनमात्रसे पापहारिणी बनकर अपने देशको चली गयी।

इस प्रकार मार्कण्डेय मुनिका वचन सुनकर वे सब मुनीश्वर प्रसन्नचित्त हो गये और उन्होंने अपने-अपने हितका कार्य किया। नर्मदेश्वरके इस माहात्म्यको सुनकर भक्तियुक्त मनुष्य पापरूपी केंचुलका त्याग करके उत्तम ज्ञान प्राप्त करेगा।

स्कन्दजी कहते हैं—महादेवजी जब रुद्र-भावको प्राप्त हुए, तब महादेवी जगदम्बा दक्षकन्या सतीके रूपमें प्रकट हुईं। उन्होंने भी काशीमें तीव्र तपस्या की। उनकी तपस्याका उद्देश्य था, अपने अनुरूप श्रेष्ठ वरको प्राप्त करना। तपस्या करते-करते उन्होंने देखा, सामने भगवान् शंकर लिंगरूपमें प्रकट हुए हैं और स्पष्ट बोल रहे हैं—'महादेवि! अब तपस्याकी आवश्यकता नहीं, यह सतीश्वर लिंग तुम्हारे नामसे विख्यात होगा। दक्षकुमारी! यहाँ आकर जैसे तुम्हारा मनोरथ सफल हुआ है, उसी प्रकार इस लिंगकी आराधना करके दूसरोंका मनोरथ भी सफल होगा। कुमारी कन्या इस शिवलिंगकी पूजासे उत्तम पति प्राप्त करेगी और कुवाँरा पुरुष इसकी आराधनासे सुन्दर स्त्री प्राप्त करेगा। सतीश्वरकी भलीभाँति पूजा करके जो जिस फलको चाहेगा, उसे वह मनोवांछित फल शीघ्र ही प्राप्त होगा। आजसे आठवें दिन तुम्हारे पिता दक्ष प्रजापति तुम्हारा विवाह मेरे साथ करेंगे। तुम्हारा मनोरथ सफल हुआ।'

ऐसा कहकर देवदेवेश्वर शिव वहीं (उस लिंगमें) अन्तर्धान हो गये। दाक्षायणी भी प्रसन्नतापूर्वक अपने घरको लौट गयीं। फिर आठवें दिन उनके पिताने भगवान् शंकरके साथ उनका विवाह कर दिया।

स्कन्दजी कहते हैं—इस प्रकार काशीमें सतीश्वर लिंग प्रकट हुआ। रत्नेश्वरके पूर्वभागमें सतीश्वरका दर्शन करके मनुष्य तत्काल सब पापोंसे मुक्त होता और क्रमशः ज्ञान प्राप्त कर लेता है।

~~~0~~~

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth
~~~

अमृतेश्वर लिंगकी महिमा तथा व्यासोक्त व्रत एवं धर्मोंका निरूपण

स्कन्दजी कहते हैं—मुने! पूर्वकालकी बात है। यहाँ काशीपुरीमें सनारु नामवाले एक मुनि थे, जो गृहस्थ-आश्रमके धर्मका पालन करनेवाले, ब्रह्मयज्ञपरायण, अतिथिपूजक, शिवलिंग-पूजनमें तत्पर रहनेवाले और तीर्थमें दान नहीं लेनेवाले थे। उन सनारु मुनिके एक पुत्र हुआ, जिसका नाम उपजंघनि था। वह किसी दिन वनमें गया और वहाँ उसको एक साँपने डस लिया। तदनन्तर उसके समवयस्क मित्र उसे उठाकर आश्रममें ले आये। सनारुने लंबी साँस खींचकर उपजंघनिको स्वर्गद्वारके समीप महाश्मशानभूमिमें पहुँचाया। वहाँ श्रीफलके समान आकारवाला एक अत्यन्त गुप्त शिवलिंग था। वहीं उस शवको रखकर वे विचार करने लगे कि सर्पसे डसे हुए मनुष्यका दाह-संस्कार कैसे किया जाता है। इतनेमें ही उपजंघनि सोकर उठे हुएके समान जी उठा। उसे जीवित देख सनारु मुनिको बड़ा आश्चर्य हुआ। इसी समय एक चींटी कहीं मरे हुए एक चींटेको खींचकर वहाँ ले आयी। उस स्थानपर आते ही वह चींटा भी जी उठा और रेंगता हुआ अन्यत्र चला गया। यह देखकर मुनिने सोचा 'यहाँ कोई ऐसा तत्त्व अवश्य है, जिसमें मरे हुएको जीवित कर देनेकी शक्ति विद्यमान है।' ऐसा अनुमान करके मुनि अपने कोमल हाथसे धीरे-धीरे वहाँकी जमीन खोदने लगे। इतनेमें ही उन्हें श्रीफलके बराबर एक शिवलिंग दिखायी दिया। तब सनारुने वहाँ उसका पूजन किया और उस प्राचीन लिंगका नाम अमृतेश्वर रखा, जो अत्यन्त सार्थक था। वे बोले—'आनन्दवनमें यह अमृतेश्वर लिंग है। इसके स्पर्शसे निश्चय ही अमृतत्वकी प्राप्ति हो सकती है।' जिनका मरा हुआ पुत्र जी उठा था, वे सनारु मुनि अमृतेश्वरकी पूजा करके अपने घरको गये। तभीसे अमृतेश्वर लिंग काशीमें प्रसिद्ध हुआ, जो मनुष्योंको सिद्धि देनेवाला है। कलियुगमें वह पुनः गुप्त हो जायगा। अमृतेश्वरके संस्पर्शसे मरे हुए व्यक्ति तत्काल जी उठते हैं और जीवित मानव उसके स्पर्शसे जीवन्मुक्त हो जाते हैं। अमृतेश्वरके समान शिवलिंग इस भूतलमें कहीं भी नहीं है। भगवान् शिवने इसे यत्नपूर्वक गुप्त कर रखा है।

अगस्त्यजी बोले—स्कन्दजी! श्रीवेदव्यास इन्द्रिय-शुद्धिके लिये जिन कृच्छ्र-चान्द्रायण व्रतोंका निरूपण करेंगे, उनके स्वरूपका आप मुझसे वर्णन कीजिये।

स्कन्दजी बोले—महाबुद्धे! दिनमें एक बार भोजन करना, दूसरे दिन केवल रातमें एक बार भोजन करना, तीसरे दिन बिना माँगे जो कुछ मिल जाय उसीका एक बार आहार करना और चौथे दिन अखण्ड उपवास करना—इस प्रकार किया जानेवाला व्रत 'पादकृच्छ्र' कहलाता है। बरगद, गूलर, कमल, बिल्वपत्र और कुश—इनके पत्तोंसे क्रमशः एक-एक दिन जल पीकर रहना 'पर्णकृच्छ्र' कहा गया है। तिलकी खली, घी, मट्ठा, जल और सत्तू—इनको क्रमशः एक-एक दिन एक-एक बार खाकर रहना और अन्तमें एक दिन उपवास करना यह 'सौम्यकृच्छ्र' कहा गया है। तीन दिन प्रातःकाल हविष्य भोजन करना, तीन दिन सायंकाल भी हविष्य ग्रहण करना, फिर तीन दिन बिना माँगे प्राप्त होनेवाले हविष्यका आहार करना और अन्तमें तीन दिन अखण्ड उपवास करना—यह 'कृच्छ्र' व्रत है। 'अतिकृच्छ्र' व्रतका पालन करनेवाला द्विज प्रतिदिन एक-एक ग्रास करके तीन दिन प्रातःकाल, फिर तीन दिनतक सायंकाल भोजन करे और तीन दिन अयाचित आहार ग्रहण करके अन्तमें तीन दिनतक उपवास करे। केवल दूधसे इक्कीस दिनतक निर्वाह करना 'कृच्छ्रातिकृच्छ्र' व्रत है। बारह दिन अखण्ड उपवास करनेसे 'पराकव्रत' होता है। 'प्राजापत्य' व्रतका अनुष्ठान करनेवाला द्विज तीन दिन प्रातःकाल, तीन दिन सायंकाल

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

और तीन दिन अयाचित अन्न ग्रहण करे, फिर अन्तमें तीन दिनतक उपवास करे। एक दिन गोमूत्र, गोबर, दही, दूध, घी और कुशोदक— इन सबको मिलाकर पी ले और दूसरे दिन पूरे एक दिन-रातका उपवास करे तो यह 'कृच्छ्रसान्तपन' माना गया है। सान्तपनके छः द्रव्योंका पृथक्-पृथक् छः दिनमें उपयोग करके एक दिन उपवास करे अर्थात् एक दिन गोमूत्र पीकर, दूसरे दिन गोबर खाकर, तीसरे दिन दूध पीकर, चौथे दिन दही खाकर, पाँचवें दिन घृत पीकर, छठे दिन कुशका जल पीकर और सातवें दिन एक रातका उपवास करके एक सप्ताहमें किया हुआ यह कृच्छ्रव्रत 'महासान्तपन' कहा गया है। 'तप्तकृच्छ्र' व्रतका आचरण करनेवाला ब्राह्मण प्रतिदिन एक बार स्नान करके एकाग्रचित्त हो गरम जल, दूध, घी और वायु—इन चारोंको तीन-तीन दिनतक पान करे अर्थात् तीन दिन गरम जल पीये, तीन दिन गरम दूध पीये, तीन दिन गरम घी खाय और तीन दिन केवल वायु पीकर रहे। एक भर दूध, दो भर घी और एक भर जल ग्रहण करना—इसीको 'तप्तकृच्छ्र' कहा गया है। जो गोमूत्रके साथ यवान्न भोजन करता है, उसके शरीरकी शुद्धि करनेवाला यह व्रत 'एकाह्निक कृच्छ्र' कहा गया है। दोनों हाथोंको उत्तान करके दिनमें वायुका पान करे तथा रातमें तबतक पानीमें खड़ा रहे जबतक कि प्रातःकाल न हो जाय। यह प्राजापत्य व्रतके समान माना गया है। कृष्णपक्षमें एक-एक ग्रास भोजन घटावे और शुक्लपक्षमें एक-एक ग्रास बढ़ावे और प्रतिदिन तीनों समय स्नान करे, यह 'चान्द्रायण व्रत' कहा गया है। अथवा पहले शुक्लपक्षमें प्रतिदिन एक-एक ग्रास बढ़ावे और कृष्णपक्षमें नित्य एक-एक ग्रास घटावे। अमावास्याको बिलकुल भोजन न करे, यह चान्द्रायणकी विधि है। ब्राह्मण एकाग्रचित्त हो चार ग्रास अन्न सबेरे और चार ग्रास अन्न सूर्यास्त होनेके बाद ग्रहण करे। प्रतिदिन इसी प्रकार आठ ग्रास अन्न लेते हुए एक मासतक जो व्रत किया जाता है, उसे 'शिशु-चान्द्रायण' कहते हैं। प्रतिदिन मन और इन्द्रियोंको संयममें रखते हुए मध्याह्नकालमें केवल हविष्यके आठ ग्रास अन्न भोजन करे और एक मासतक इसी नियमसे रहे, तो इसे 'यति चान्द्रायण' कहते हैं। मनुष्य एकाग्रचित्त हो जिस किसी तरह भी एक मासमें हविष्यके दो सौ चालीस ग्रास ग्रहण करे, तो वह चन्द्रलोकको प्राप्त होता है। शरीरकी शुद्धि जलसे होती है, मनकी शुद्धि सत्यसे होती है, जीवात्माकी शुद्धि विद्या और तपसे होती है। और बुद्धि ज्ञानसे शुद्ध होती है। वह ज्ञान मनुष्योंको काशीसेवनसे प्राप्त होता है। काशीसेवनसे भगवान् विश्वनाथकी करुणाका उदय होता है, और उससे महान् अभ्युदयकी प्राप्ति होती है, जो कर्मबन्धनका उन्मूलन करनेमें समर्थ है। अतः काशीमें प्रयत्नपूर्वक स्नान, दान, तप, जप, व्रत, पुराण-श्रवण तथा धर्मशास्त्रोक्त मार्गका सेवन करना चाहिये। प्रतिदिन और प्रतिक्षण विश्वनाथजीके चरणोंका चिन्तन, तीनों समय शिवलिंगका पूजन, शिवलिंगकी स्थापना साधुपुरुषोंके साथ वार्तालाप, सम्भाषण, 'शिव'-'शिव' इस मन्त्रका जप, अतिथिसत्कार, तीर्थनिवासियोंसे मैत्री, आस्तिक्य बुद्धि, विनय, मान-अपमानमें समान बुद्धि, किसी वस्तुकी इच्छाका न होना, उद्दण्डताका अभाव, राग-द्वेषशून्यता, अहिंसा, अप्रतिग्रह और दयापूर्ण बुद्धि, दम्भ और ईर्ष्याका अभाव, बिना माँगे प्राप्त हुए धनका अंगीकार करना, लोभ और आलस्यका अभाव, कठोरताका त्याग तथा कभी दैन्यभावका आश्रय न लेना इत्यादि उत्तम प्रवृत्तियोंको काशीक्षेत्रमें रहनेवाले लोग अपनावें और उनका पालन करें। इस प्रकार वेदव्यास अपने शिष्योंको प्रतिदिन धर्मका उपदेश करते थे।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

काशीके तीर्थोंका संक्षिप्त वर्णन

पार्वतीजी बोलीं—प्रभो! काशीमें जहाँ-जहाँ जो-जो तीर्थ हैं, उन-उनको बतानेकी कृपा करें।

महादेवजी बोले—देवि! काशीमें महादेवेश्वर प्रथम तीर्थ कहे जाते हैं। उसके उत्तरमें सारस्वत महाकूप है, जो सरस्वतीकी प्राप्ति करानेवाला है। क्षेत्रके पूर्वोत्तर भागमें जीवोंके अज्ञानका नाश करनेवाला यह तीर्थ है। उसके पश्चिम भागमें मूर्तिमती काशीपुरी है, जो मनुष्योंके द्वारा पूजनीय है। महादेवके स्थानसे पूर्वभागमें गोप्रेक्षेश्वर नामक उत्तम लिंग है। वहाँ पूर्वकालमें स्वयं भगवान् शंकरने गोलोकसे गौओंको भेजा था। गोप्रेक्षेश्वरसे दक्षिण भागमें दधीचीश्वर और दधीचीश्वरसे पूर्वमें अत्रीश्वर हैं। अत्रीश्वर लिंगका यत्नपूर्वक दर्शन करनेवाला मनुष्य विष्णुलोकको जाता है। गोप्रेक्षेश्वरसे पूर्वभागमें विज्वर नामक लिंग भी है। विज्वरके पूर्वभागमें वेदेश्वर लिंग है, वेदेश्वरसे उत्तरमें क्षेत्रज्ञ आदिकेशव हैं। उससे पूर्वमें संगमेश्वर; संगमेश्वरसे पूर्वमें ब्रह्माजीद्वारा स्थापित चतुर्मुख लिंग है। उसीका दूसरा नाम प्रयाग लिंग भी है, जो पूजित होनेपर ब्रह्मलोक देनेवाला है। वहीं शान्तिकरी गौरीका स्थान है, जो आराधित होनेपर शान्तिकारक होती हैं। वरणाके पूर्वतटपर कुन्तीश्वर लिंग है। उससे उत्तरमें कपिल कुण्ड है। गोप्रेक्षेश्वरसे उत्तर भागमें आनुसूयेश्वर लिंग है। उससे पूर्वमें सिद्धिविनायक हैं और उसके पश्चिममें हिरण्यकशिपुद्वारा स्थापित शिवलिंग है। उससे पश्चिम मुण्डासुरेश्वर लिंग है। गोप्रेक्षेश्वरसे नैर्ऋत्य कोणमें वृषभेश्वर लिंग है। महादेवेश्वरके पश्चिममें स्कन्देश्वर लिंग है। उसके पास ही शाखेश्वर और विशाखेश्वर लिंग हैं। वहीं नैगमेयेश्वर लिंग और नन्दी आदि गणोंद्वारा स्थापित सहस्रों लिंग हैं। नन्दीश्वरसे पश्चिम शिलादेश्वर हैं और वहीं हिरण्याक्षेश्वर भी हैं। उससे दक्षिण अट्टहास लिंग है। उसके उत्तरमें प्रसन्नवदनेश्वर हैं। उनसे उत्तर भागमें प्रसन्नोद कुण्ड है। अट्टहासेश्वरसे पश्चिम भागमें मित्रेश्वर और वरुणेश्वर हैं। अट्टहासेश्वरसे नैर्ऋत्य कोणमें वृद्धवासिष्ठ लिंग है। वसिष्ठेश्वरके समीप कृष्णेश्वर हैं। उनसे दक्षिणमें याज्ञवल्क्येश्वर हैं। उनसे पश्चिम प्रह्लादेश्वर हैं। जहाँ भक्तोंपर दया करनेके लिये साक्षात् भगवान् शिव लीन हुए हैं, वह स्वलीनेश्वर नामक लिंग प्रह्लादेश्वरसे पूर्वभागमें है। स्वलीनेश्वरके समीपमें शरीर त्याग करनेवालोंकी मुक्ति होती है। स्वलीनेश्वरसे पूर्व वैरोचनेश्वर लिंग है। उससे उत्तरमें वलीश्वर और वहीं बाणेश्वर लिंग है। चन्द्रेश्वरसे पूर्व विघ्नेश्वर नामक लिंग है। उसके दक्षिण भागमें वीरेश्वर हैं। वहीं सब दुःखोंसे मुक्त करनेवाली विकटादेवी विद्यमान हैं। वहाँ जपे हुए महामन्त्र शीघ्र सिद्ध होते हैं। उस पीठके वायव्य कोणमें सगरेश्वर हैं। उनसे ईशान कोणमें वालीश्वर हैं और वालीश्वरसे उत्तर सुग्रीवेश्वरजी विद्यमान हैं। वहीं जाम्बवदीश्वर हैं। गंगाके पश्चिम तटपर आश्विनेयेश्वर नामक दो लिंग हैं। उनसे उत्तरमें गोदुग्धसे भरा हुआ भद्रकुण्ड है। सहस्रों कपिलाओंका दान करनेसे जो फल प्राप्त होता है, वही भद्रकुण्डमें स्नान करनेसे प्राप्त होता है। भद्रकुण्डके पश्चिम किनारे भद्रेश्वरके दर्शनजनित पुण्यसे मनुष्य गोलोकको प्राप्त होता है। भद्रेश्वरसे नैर्ऋत्य कोणमें उपशान्त्येश्वर शिव हैं, उनसे उत्तरमें चक्रेश्वर हैं। चक्रेश्वरके उत्तरमें चक्रकुण्ड है, उसके नैर्ऋत्य कोणमें शूलेश्वर हैं। शूलेश्वरसे पूर्वमें नारदजीने बड़ी भारी तपस्या की, शिवलिंग स्थापित किया और एक श्रेष्ठ कुण्डका भी निर्माण कराया है। नारदेश्वरके पूर्वभागमें अवभ्रातकेश्वर हैं। उसके आगे ताम्रकुण्ड है। उसके वायव्य कोणमें विघ्नहर्ता गणेश हैं, वहीं विघ्नहर कुण्ड भी है। उससे उत्तर उत्तम अनारकेश्वर लिंग है। उसके उत्तरमें वरणा नदीके मनोहर तटपर वरणेश्वर हैं। वरणेश्वरसे पश्चिममें शैलेश्वर हैं। शैलेश्वरसे दक्षिण कोटीश्वर लिंग है। कोटीश्वरसे अग्निकोणमें स्तम्भ है, जो कि कुलस्तम्भ नामसे

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

प्रसिद्ध है। वहीं कपालेश्वरके समीप कपालमोचन तीर्थ है। उससे उत्तर दिशामें ऋणमोचन तीर्थ है। वहीं अंगारक-कुण्ड है। उससे उत्तरमें ज्ञानदाता विश्वकर्मेश्वर लिंग है। उसके दक्षिणमें महामुण्डेश्वर हैं। वहीं शुभोदक नामक कूप भी है। वहाँ खट्वांग धारण करनेसे खट्वांगेश्वर लिंगका प्रादुर्भाव हुआ है। उससे दक्षिणमें भुवनेश्वर लिंग और भुवनेश्वर कुण्ड हैं। उनके दक्षिण भागमें विमलेश्वर लिंग और विमलोदक कुण्ड हैं। उनके पश्चिममें भृगुका मन्दिर है और उससे दक्षिणमें शुभेश्वर तीर्थ है।

अगस्त्य! इस प्रकार संक्षेपसे कुछ शिवलिंगोंका वर्णन किया गया है। कुछ लिंग ऐसे हैं, जो भक्तिपूर्वक दो-तीन बार स्थापित किये गये हैं। अत: उनको पुनरुक्त न मानकर श्रद्धापूर्वक उनकी पूजा करनी चाहिये। ये जो शिवलिंग, कुण्ड, कूप और वापी आदि बताये गये हैं, इन सबपर मनीषी पुरुषोंको श्रद्धा करनी चाहिये। इन सबके दर्शन और स्नानसे अधिकाधिक फल होता है। यहाँके शिवलिंग, कूप, सरोवर, बावड़ी तथा मूर्तियोंकी गणना करनेमें कौन समर्थ हो सकता है? क्योंकि आनन्दवनमें स्थित तृण भी बहुत श्रेष्ठ हैं। काशीपुरी दर्शन करनेपर तथा देहावसानतक सेवित होनेपर स्वर्ग और अपवर्गको देनेवाली है।

महादेवजी कहते हैं—देवी! तुम तो तपोबलसे मेरी प्रियतमा हुई हो, परंतु काशीपुरी स्वभावसे ही मेरे लिये सुख और विश्रामकी भूमि है। जो काशीका नाम लेते हैं और जो उसे सुनकर प्रसन्न होते हैं, वे मेरे लिये शाख, विशाख, स्कन्द, नन्दी और गणेशके समान प्रिय हैं। वे ही मेरे भक्त, वे ही मेरे सेवक और वे ही मुमुक्षु हैं, जो आनन्दवनमें निवास करते हैं। जो काशीमें निवास करते हैं, उन्होंने ही भारी तपस्या की है, बड़े-बड़े व्रत किये हैं और महादान किये हैं। वे ही सब तीर्थोंमें स्नानके पुण्यसे युक्त हैं और उन्होंने ही हिंसारहित यज्ञोंकी दीक्षा ली है। जिन्हें काशीका निवास प्राप्त है, उन्हींके द्वारा सब धर्मोंका अनुष्ठान हुआ है। जो विद्वान् पुरुष इस सर्वलिंगमय अध्यायका जप करता है, उसे यम और यमदूतोंकी बाधा नहीं होती। जो पवित्र और तद्गत चित्त होकर इस अध्यायका पाठ करता है, उस पुण्यात्माको ब्रह्मयज्ञका फल प्राप्त होता है। जो मेरे द्रोही, नास्तिक और वेदोंकी निन्दामें तत्पर हैं, ऐसे लोगोंको इसका उपदेश नहीं देना चाहिये।

इस प्रकार महादेवजी पार्वतीदेवीके आगे यह सब कथा सुना रहे थे, इतनेमें ही नन्दीने आकर प्रणामपूर्वक सूचित किया—भगवन्! विशाल-मन्दिर-निर्माणका कार्य अब पूरा हो गया। रथ सुसज्जित होकर तैयार है और ब्रह्मा आदि देवता भी एकत्र हो गये हैं। भगवान् विष्णु गरुड़पर आरूढ़ होकर अपने पार्षदोंसहित द्वारपर खड़े हैं और महामुनीश्वरोंको आगे करके अवसरकी प्रतीक्षा करते हैं। चौदहों भुवनोंमें जो-जो उत्तम व्रतवाले पुरुष हैं, वे आज मन्दिरप्रवेशके महोत्सवका समाचार सुनकर यहाँ एकत्र हो गये हैं।

स्कन्दजी कहते हैं—नन्दीका यह वचन सुनकर महादेवजी पार्वतीजीके साथ दिव्य रथपर बैठकर त्रिविष्टिप क्षेत्रसे निकले।

भगवान् शिवके मुखसे विश्वेश्वर लिंगकी महिमाका वर्णन

स्कन्दजी कहते हैं—मुने! मोक्षलक्ष्मीविलास नामक प्रासाद बन जानेपर महादेवजीने विरजपीठसे चलकर अन्तर्गृहमें प्रवेश किया। कार्तिक शुक्ला प्रतिपदाको अनुराधानक्षत्रसे युक्त बुधवारके दिन जब चन्द्रमा सप्तम राशिपर थे और शेष ग्रह भी उच्च स्थानोंमें स्थित थे, उस समय भगवान् शंकरने नूतन प्रासादमें प्रवेश किया। प्रवेशकालमें नाना प्रकारके बाजे बज रहे थे, सम्पूर्ण दिशाएँ प्रसन्न थीं, ब्राह्मणोंके वेदमन्त्रोच्चारणकी ध्वनिसे अन्य प्रकारके शब्द दब गये थे। भूलोकसे लेकर भुवर्लोकके बीचका मार्ग उसकी प्रतिध्वनिसे गूँज रहा था। भगवान् शिवके उस प्रवेशकालिक महोत्सवमें

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

सम्पूर्ण जगत् आनन्दमग्न हो रहा था। गन्धर्व गाते थे, अप्सराएँ नृत्य करती थीं, चारण स्तुति करते थे और देवता हर्ष मना रहे थे। सुगन्धित वायु चल रही थी और बादल फूलोंकी वर्षा करते थे। सब लोग मांगलिक वेष-भूषासे विभूषित थे, सभी मांगलिक वचन बोलते थे, स्थावर और जंगम सभी प्रकारके जीव आनन्दमें मग्न थे।

तदनन्तर ब्रह्माजीने महर्षियोंके साथ आकर पार्वतीके साथ शुभ सिंहासनपर बैठे हुए तथा कुमारवृन्दसे घिरे हुए देवाधिदेव महादेवजीका अभिषेक किया। देवताओं और बड़े-बड़े नागराजोंने असंख्य रत्नों, नाना प्रकारके दुकूलों तथा विचित्र-विचित्र सुगन्धित पुष्पहारोंसे महेश्वरका पूजन किया। मातृगणोंने आरती उतारी। तत्पश्चात् अखिल देववृन्दके द्वारा वन्दनीय भगवान् शिवने सबसे पहले मुनीश्वरोंको चिरवांछित मनोरथ देकर सन्तुष्ट किया। फिर ब्रह्माजीसे बातचीत करके भगवान् विष्णुसे कहा—'देव! तुम यहाँ आकर बैठो, मेरी समस्त प्रभुताके एकमात्र हेतु तुम्हीं हो। तुम दूर रहकर भी मेरे निकट हो, तुमसे बढ़कर मेरा कार्य करनेवाला कोई नहीं है। तुम्हींने अपने सदुपदेशोंसे राजाओंमें श्रेष्ठ दिवोदासको ऐसी शिक्षा दी, जिससे वे परम सिद्धिको प्राप्त हुए और मेरा भी मनोवांछित कार्य सिद्ध हो गया। आज मुझको जो यह आनन्दवन प्राप्त हुआ है, इसमें तुम और गणेश ये ही दो कारण हैं। जहाँ मरे हुए जन्तुओंका फिर जन्म नहीं होता, वह ब्रह्मरसायनकी खान काशीपुरी मेरे लिये जैसी उत्तम सुखकी भूमि है, वैसी प्रिय तीनों लोकोंमें कोई भी वस्तु नहीं है।'

विष्णुजी बोले—पिनाकपाणे! मैं आपके चरणारविन्दोंसे दूर न होऊँ।

मधुसूदनका यह वचन सुनकर महादेवजी बहुत प्रसन्न और सन्तुष्ट होकर बोले—मुरारे! मोक्षलक्ष्मीके आश्रयभूत इस स्थानपर तुम सदा मेरे समीप रहो। भक्तियुक्त होकर भी जो पहले तुम्हारी आराधना किये बिना मेरी सेवा-पूजा करेगा, उसकी मनोवांछा कदापि सिद्ध न होगी। अच्युत! इस मुक्तिमण्डपमें रहकर जो मुझे सब ओरसे सुख प्राप्त होता है, वह अत्यन्त निर्मल कैलास पर्वतपर भी नहीं मिलता और निश्चल शोभावाले भक्त-हृदयमें भी वैसे सुखकी प्राप्ति नहीं होती। जिनकी चित्तवृत्तियाँ स्थिर हैं, जो मेरे अनन्य भक्त तथा दृढ़ हृदयवाले हैं, वे यदि इस दक्षिण मण्डपमें पलभर भी स्थित होते हैं तो उन्हें पुनः गर्भावस्थामें नहीं आना पड़ता।

वहाँ पूर्वाभिमुख बैठे हुए महेश्वरके दक्षिण भागमें ब्रह्माजी और वामपार्श्वमें विष्णु स्थित हुए। देवराज इन्द्र उन्हें चवँर डुलाते थे, ऋषि उनको सब ओरसे घेरकर खड़े थे, पार्षदगण भगवान्‌के पृष्ठ भागमें चुपचाप आदरपूर्वक खड़े हुए थे और बहुत सम्मानवाले तथा हाथोंमें आयुध उठाये रहनेवाले अनेक सेवक उनकी सेवामें उपस्थित थे। उस समय महादेवजीने अपना दाहिना हाथ उठाकर भगवान् ब्रह्मा और विष्णुको एक शिवलिंग दिखलाया और कहा—'सब लोग देखो, यही परम ज्योति है, यही परात्पर ब्रह्म है और यही अत्यन्त सिद्धिदायक मेरा स्थावर रूप है। यहाँ जो ये मेरे भक्त रहते हैं, ये सिद्ध हैं, आबाल ब्रह्मचारी हैं, जितेन्द्रिय, तपस्वी, पंचाक्षर मन्त्रके ज्ञानसे निर्मल, भस्मसमूहपर शयन करनेवाले, इन्द्रियसंयमी, सुशील, ऊर्ध्वरेता, लिंगार्चनपरायण, मन और इन्द्रियोंको मेरे सिवा अन्यत्र न ले जानेवाले, जल और भस्मद्वारा स्नान करके अत्यन्त पवित्र, कन्द, मूल और फल भोजन करनेवाले, परम-तत्त्व सदाशिवकी ओर सदैव दृष्टि रखनेवाले, क्रोधको जीतनेवाले, मोहरहित, परिग्रहशून्य, निष्काम, निष्प्रपंच, निर्भय, नीरोग, धन-ऐश्वर्यसे रहित, निःसंग, निर्मल अन्तःकरणवाले, भयंकर संसारसागरके पार पहुँचे हुए, निर्विकल्प, निष्पाप, निर्द्वन्द्व, सिद्धान्तभूत अर्थको ग्रहण करनेवाले, अहंकारकी वृत्तियोंसे रहित, सदा ही मेरे परम प्रिय, मेरे पुत्रतुल्य तथा मेरे ही स्वरूप हैं। मेरी सेवामें संलग्न रहनेवाले मनुष्योंको चाहिये कि वे मेरे इन भक्तोंको सदा ही मेरा स्वरूप समझकर

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

इनका पूजन और नमस्कार करें। इनका पूजन करनेपर मैं बहुत प्रसन्न होऊँगा। मैं कभी किसीको प्रत्यक्ष दर्शन देता हूँ और कभी अदृश्य होता हूँ। देवताओ! सर्वदा सब भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये मैं इस आनन्दवनमें सदा स्वेच्छासे निवास करता हूँ और भक्तोंको मनोवांछित फल देनेवाला मैं यहाँ लिंगरूपसे सदैव निवास करता रहूँगा। इस तीर्थमें स्वयम्भू और अस्वयम्भू जितने भी लिंग हैं, वे सब सदा इस लिंगका दर्शन करनेके लिये आते हैं, इसमें सन्देह नहीं कि मैं सम्पूर्ण लिंगोंमें समान रूपसे स्थित हूँ तथापि यह तो लिंगस्वरूपा मेरी परा मूर्ति है। जिसने श्रद्धा और शुद्धदृष्टिसे मेरे इस लिंगका दर्शन किया है, उसने मानो मेरा प्रत्यक्ष दर्शन कर लिया है। ऋषियोंके साथ सम्पूर्ण देवता सुन लें—इस श्रेष्ठ लिंगका नाम श्रवण करनेसे भी जन्मभरका पातक क्षणभरमें नष्ट हो जाता है और इसके स्मरणसे दो जन्मोंका पाप दूर होता है। इस उत्तम लिंगके दर्शनके उद्देश्यसे अपने घरसे निकलते समय ही तीन जन्मोंका संचित किया हुआ महापाप भी लीन हो जाता है। देवताओ! मुझ विश्वेश्वरके इस स्वयम्भू लिंगका स्पर्श करनेमात्रसे सहस्त्रों राजसूय-यज्ञोंका फल प्राप्त होता है। इस लिंगराजकी भक्तिपूर्वक पूजामात्र करनेसे सहस्त्रों सुवर्णकमलोंद्वारा पूजन करनेका फल प्राप्त होता है। जो पंचामृत आदिके साथ इस शिवलिंगकी महापूजा करता है, उसे चारों पुरुषार्थोंकी प्राप्ति होती है। देवताओ! वस्त्रसे छाने हुए जलके द्वारा इस लिंगको स्नान कराकर श्रेष्ठ पुरुष एक लाख अश्वमेध-यज्ञोंका फल प्राप्त करता है। जो इस विश्वेश्वर लिंगका दर्शन करके अन्यत्र भी मृत्युको प्राप्त होता है, उसकी भी जन्मान्तरमें मुक्ति हो जाती है। जिसकी जिह्वाके अग्रभागमें 'विश्वनाथ' यह नाम विराज रहा है, कानोंमें विश्वनाथकी कथा सुनायी पड़ती है और चित्तमें भगवान् विश्वनाथका चिन्तन हो रहा है, उसका इस संसारमें जन्म कैसे हो सकता है। जो मुझ विश्वनाथके लिंगमय विग्रहका दर्शन करके मन-ही-मन प्रसन्न होता है, वह अपने महान् पुण्यके बलसे मेरे गणोंमें गिना जाता है। जो प्रतिदिन तीनों सन्ध्याओंके समय 'विश्वनाथ, विश्वनाथ, विश्वनाथ' का जप करता है, उस पुण्यात्माका नाम मैं भी निश्चय ही जपता रहता हूँ। देवताओ! यह महालिंग मेरे द्वारा भी सदैव पूजन करने योग्य है। इसलिये देवताओं, ऋषियों तथा मनुष्योंको तो सर्वथा प्रयत्न करके इसकी पूजा करनी चाहिये। जिन्होंने इस लिंगको प्रणाम किया है, वे देवताओं और दैत्योंसे भी वन्दित होते हैं। 'मैं अपनी भुजा उठाकर बारंबार इस बातको दुहराता हूँ कि इस त्रिगुणमय जगत्में तीन ही सार वस्तु हैं—विश्वनाथ लिंग, मणिकर्णिकाका जल और काशीपुरी।'

तदनन्तर महादेवजीने पार्वतीजीके साथ उठकर उस शुभ लिंगका स्वयं सुन्दर पूजन किया और फिर उसीमें लीन हो गये। तब उन देवताओंने जय-जयकारपूर्वक महेश्वरका स्तवन किया। अगस्त्य! इस प्रकार इस अविमुक्त क्षेत्रके प्रभावका एक अंशमात्र बताया गया, जो सब पापोंका नाश करनेवाला है। तुम थोड़े ही समयमें पुनः उत्तम काशीपुरीको प्राप्त होओगे। देखो, ये भगवान् सूर्य अस्ताचलके शिखरपर जा चुके हैं। इसलिये अब तुम्हारे और मेरे लिये भी मौन धारण करनेका समय आया है।

व्यासजी कहते हैं—सूत! इस प्रकार काशीकी महिमा सुनकर लोपामुद्रासहित मुनिवर अगस्त्य पार्वतीजीके पुत्र स्कन्दको बार-बार प्रणाम करके सन्ध्योपासनाके लिये चले गये। चन्द्रशेखर भगवान् शिवके क्षेत्र काशीधामका रहस्य जानकर अगस्त्यजी स्थिरचित्त हो शिवके ध्यानमें तत्पर हो गये। सूत! इस आनन्दवनकी बड़ी भारी महिमा है। कौन ऐसा मनुष्य है, जो सैकड़ों वर्षोंमें भी इसकी महिमाका वर्णन कर सकता है? परमात्मा शिवने पार्वतीजीसे काशीका जैसा माहात्म्य कहा था, वैसा ही स्कन्दने भी महर्षि अगस्त्यको सुनाया था। फिर उसी प्रसंगको मैंने तुम्हारे और शुकदेव आदिके आगे भलीभाँति कहा है।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

पंचतीर्थी, चतुर्दश आयतन, अष्ट आयतन, शैलेशादि और एकादश आयतनोंकी यात्रा, गौरीयात्रा, गणेशयात्रा, अन्तर्गृहयात्रा तथा विश्वनाथयात्राका वर्णन

सूतजी बोले—सत्यवतीनन्दन! सिद्धिकी इच्छा रखनेवाले मनुष्योंके हितके लिये आप काशी-यात्राके क्रमका वर्णन कीजिये।

व्यासजीने कहा—महाप्राज्ञ सूत! ध्यान देकर सुनो। यात्रियोंको सबसे पहले (१) चक्रपुष्करिणी (मणिकर्णिका)-के जलमें वस्त्रसहित स्नान करना चाहिये। फिर देवताओं, ऋषियों, पितरों तथा ब्राह्मणों एवं याचकोंको तृप्त करके (२) आदित्य, द्रौपदी, विष्णु, दण्डपाणि और महेश्वरको नमस्कार करे। तत्पश्चात् (३) ढुण्ढिराज गणेशका दर्शन करनेके लिये जाय। (४) उसके बाद ज्ञानवापीमें आचमन करके नन्दिकेश्वरका पूजन करे, साथ ही तारकेश्वरकी पूजा करके महाकालेश्वरका भी पूजन करे। (५) तदनन्तर पुनः दण्डपाणिका दर्शन, पूजन करे। यह पंचतीर्थी यात्रा कहलाती है। महान् फलकी इच्छा रखनेवाले पुरुषोंको प्रतिदिन यह यात्रा करनी चाहिये। इसके बाद विश्वनाथकी यात्रा करे, जो समस्त प्रयोजनोंकी सिद्धि करनेवाली है। कृष्णपक्षकी प्रतिपदासे लेकर चतुर्दशीपर्यन्त विधिपूर्वक चौदह आयतनोंकी भी प्रयत्नपूर्वक यात्रा करनी चाहिये। अथवा क्षेत्रसिद्धिकी इच्छा रखनेवाले पुरुषोंको प्रत्येक चतुर्दशीमें यात्रा करनी चाहिये। भिन्न-भिन्न तीर्थोंमें स्नान और वहाँके शिवलिंगोंकी पूजा करके मौनपूर्वक यात्रा करनेवाला यात्री मनोवांछित फलको पाता है। पहले मत्स्योदरीमें स्नान और तर्पण आदि करके ॐकारेश्वरका दर्शन करे। तत्पश्चात् क्रमशः त्रिविष्टप, महादेव, कृत्तिवासा, रत्नेश्वर, चन्द्रेश्वर, केदार, धर्मेश्वर, वीरेश्वर, कामेश्वर, विश्वकर्मेश्वर, मणिकर्णीश्वर और अविमुक्तेश्वरका दर्शन करके अन्तमें विश्वनाथजीका दर्शन-पूजन करना चाहिये। काशीक्षेत्रमें निवास करनेवाले पुरुषको यह यात्रा प्रयत्नपूर्वक करनी चाहिये। जो काशी-क्षेत्रमें रहकर इस यात्राको नहीं करता, उसे उस क्षेत्रसे मनको उचाट देनेवाले विघ्न प्राप्त होते हैं। इन विघ्नोंकी शान्तिके लिये अन्य आठ स्थानोंकी यात्रा करनी चाहिये। जिनके नाम इस प्रकार हैं—दक्षेश्वर, पार्वतीश्वर, पशुपतीश्वर, गंगेश्वर, नर्मदेश्वर, गभस्तीश्वर, सतीश्वर और आठवें तारकेश्वर। प्रत्येक अष्टमीको विशेषरूपसे इन लिंगोंका दर्शन करना चाहिये। यह दर्शन बड़े-बड़े पापोंकी शान्ति करनेवाला होता है। एक दूसरी भी शुभ यात्रा है, जो सदा योग और क्षेमकी सिद्धि करनेवाली है। वह सम्पूर्ण विघ्नोंका निवारण करनेवाली भी है। काशीक्षेत्रके निवासियोंको वह यात्रा अवश्य करनी चाहिये। प्रथम वरणामें स्नान करके शैलेश्वरका दर्शन करे, फिर संगममें स्नान करके संगमेश्वरका दर्शन-पूजन करे। तत्पश्चात् स्वलीनतीर्थमें भलीभाँति स्नान करके स्वलीनेश्वरका दर्शन करे। उसके बाद मन्दाकिनी-तीर्थमें स्नान करके मध्यमेश्वरका दर्शन करे। हिरण्यगर्भ-तीर्थमें स्नान-तर्पणादि जलक्रिया करके हिरण्यगर्भेश्वरका दर्शन करे। तदनन्तर मणिकर्णिकामें स्नान करके ईशानेश्वरका, कूपमें स्पर्श एवं आचमन करके गोप्रेक्षेश्वरका, कापिलेय-कुण्डमें स्नान करके वृषभध्वजका, उपशान्तकूपमें जलक्रिया करके उपशान्त्येश्वरका तथा पंचचूडाकुण्डमें स्नान करके ज्येष्ठ स्थानका दर्शन एवं पूजन करे। फिर चतुःसमुद्रमें स्नान करके महादेवका पूजन करे, महादेवके आगे जो बावड़ी है, उसमें स्नान करके फिर शुक्रेश्वरका दर्शन करना चाहिये और वहीं कूपमें स्नान और तर्पण आदि कार्य भी पूरा करना चाहिये। तदनन्तर दण्डखात-तीर्थमें स्नान करके व्याघ्रेश्वरका पूजन करे। फिर शौनकेश्वर कुण्डमें स्नान करके जम्बुकेश्वर

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

महालिंगकी आराधना करे। इस यात्राको पूर्ण करके मनुष्य संसाररूपी दु:खसागरमें फिर कभी जन्म नहीं लेता। यह यात्रा कृष्णाप्रतिपदासे आरम्भ करके चतुर्दशीतक क्रमसे करनी चाहिये। इसे कर लेनेपर पुन: संसारमें जन्म नहीं होता।

इसके सिवा ग्यारह मन्दिरोंकी एक यात्रा और है, जो करने ही योग्य है। आग्नीध्रकुण्डमें भलीभाँति स्नान करके आग्नीध्रेश्वरका दर्शन करे। उसके बाद उर्वशीश्वरतीर्थमें जाय। फिर वहाँसे नकुलीश्वरका दर्शन करके आषाढ़ीश्वरका दर्शन करे। तत्पश्चात् भारभूतेश्वर, लांगलीश्वर तथा त्रिपुरान्तकका दर्शन करके मन:प्रकामेश्वर और प्रीतिकेश्वर-तीर्थमें जाय। वहाँसे क्रमश: मदालसेश्वर तथा तिलपर्णेश्वरकी यात्रा करे। इस प्रकार इन ग्यारह लिंगोंकी प्रयत्नपूर्वक यात्रा करनी चाहिये। इस यात्राको करनेवाला पुरुष रुद्रत्वको प्राप्त होता है।

इसके बाद मैं परम उत्तम गौरीयात्राका वर्णन करता हूँ। शुक्लपक्षकी तृतीयाको की हुई यह यात्रा सब ओरसे समृद्धि देनेवाली होती है। गोप्रेक्षतीर्थमें स्नान करके मुखनिर्मालिका गौरीके समीप जाय। फिर ज्येष्ठवापीमें स्नान करके मनुष्य ज्येष्ठा गौरीकी आराधना करे। तत्पश्चात् ज्ञानवापीमें स्नान और तर्पण आदि करके सौभाग्यगौरीकी पूजा करे, फिर वहीं जलसम्बन्धी कार्य करके शृंगारगौरीकी अर्चना करे। उसके बाद विशालगंगामें स्नान करके विशालाक्षीदेवीका दर्शन करनेके लिये जाय। तदनन्तर ललितातीर्थमें भलीभाँति स्नान करके ललितादेवीकी पूजा करे। तत्पश्चात् भवानीतीर्थमें स्नान करके भवानीका पूजन करे। फिर विन्दु-तीर्थमें स्नान आदि करके मंगलागौरीकी पूजा करनी चाहिये। वहाँसे स्थिर लक्ष्मीकी वृद्धिके लिये महालक्ष्मीके समीप जाय। इस मुक्तिदायक क्षेत्रमें यह गौरीयात्रा करके मनुष्य इहलोक या परलोकमें कहीं भी दु:खोंसे पीड़ित नहीं होता।

काशीमें प्रत्येक चतुर्थीको विघ्नराज गणेशके समीप यात्रा करे और गणेशजीकी प्रीतिके उद्देश्यसे ब्राह्मणोंको मोदक दान करे। मंगलवारको कालभैरवके दर्शनकी यात्रा करे। यह यात्रा सब पातकोंका नाश करनेवाली है। रविवारको अथवा रविवारयुक्त षष्ठी एवं सप्तमीको सूर्यदेवके दर्शनकी यात्रा करनी चाहिये। यह यात्रा सब विघ्नोंकी शान्ति करनेवाली है। नवमी अथवा अष्टमी तिथिको चण्डी देवीकी यात्रा शुभ मानी गयी है।

काशीके अन्तर्गृहकी यात्रा प्रतिदिन करनी चाहिये। पहले प्रात:काल स्नान करके पाँचों विनायकोंको नमस्कार करे। फिर विश्वनाथजीको नमस्कार करके मुक्तिमण्डपमें स्थित हो 'मैं अपनी पापराशिके निवारणके लिये अन्तर्गृहकी यात्रा करूँगा'—इस प्रकार नियम लेकर पहले मणिकर्णिका तीर्थमें जाय। वहाँ स्नान करके मौनभावसे आकर मणिकर्णिकेश्वरकी पूजा करे। फिर कम्बल और अश्वतरको नमस्कार करके वासुकीश्वरको प्रणाम करे। तत्पश्चात् पर्वतेश्वरका दर्शन करके गंगाकेशवका दर्शन करे। फिर ललितादेवीका दर्शन करके जरासन्धेश्वरको नमस्कार करे। वहाँसे सोमनाथ और वाराहेश्वरका दर्शन करनेके लिये जाय। तत्पश्चात् क्रमश: ब्रह्मेश्वर, अगस्तीश्वर, कश्यपेश्वर और हरिकेशवको नमस्कार करके वैद्यनाथका दर्शन करे। तत्पश्चात् ध्रुवेश्वरका दर्शन करके गोकर्णेश्वरका पूजन करते हुए हाटकेश्वरके समीप जाय। वहाँसे अस्थिक्षेप तड़ागपर जाकर कीकशेश्वरका दर्शन करे। वहाँसे आगे जाकर क्रमश: भारभूतेश्वर, चित्रगुप्तेश्वर, चित्रघण्टादेवी तथा पशुपतीश्वरको नमस्कार करके पितामहेश्वरके समीप जाय। तत्पश्चात् कलशेश्वरका दर्शन करके क्रमश: चन्द्रेश्वर, वीरेश्वर, विद्येश्वर, अग्नीश्वर, नागेश्वर, हरिश्चन्द्रेश्वर, चिन्तामणि विनायक और सब विघ्नोंको हरनेवाले सेनाविनायकका दर्शन करे। तदनन्तर वसिष्ठ और वामदेव दोनों मूर्तिमान् महर्षियोंका काशीमें यत्नपूर्वक दर्शन करना चाहिये। ये दोनों बड़े-बड़े विघ्नोंका नाश करनेवाले हैं। तदनन्तर सीमाविनायक, करुणेश्वर, त्रिसन्ध्येश्वर, विशालाक्षी, धर्मेश्वर, विश्वभुजा, आशाविनायक, वृद्धादित्य, चतुर्वक्त्रेश्वर, ब्राह्मीश्वर, मन:प्रकामेश्वर,

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

ईशानेश्वर, चण्डी, चण्डीश्वर, भवानी, शंकर तथा ढुण्ढिराज गणेशका दर्शन एवं उन्हें प्रणाम करे। तदनन्तर राजराजेश्वरकी पूजा करे। उसके बाद लांगलीश्वर, नकुलीश्वर, पटान्नेश्वर, परद्रव्येश्वर, प्रतिग्रहेश्वर, निष्कलंकेश्वर और मार्कण्डेयेश्वरकी पूजा करके, अप्सरसेश्वर तथा गंगेश्वरका पूजन करे। तदनन्तर ज्ञानवापीमें स्नान करना चाहिये। स्नानके पश्चात् नन्दिकेश्वर, तारकेश्वर, महाकालेश्वर, दण्डपाणि, महेश्वर, मोक्षेश्वर, वीरभद्रेश्वर, अविमुक्तेश्वर तथा पाँचों विनायकोंको नमस्कार करके विश्वनाथजीका दर्शन करनेके लिये जाय। उसके बाद मौनव्रतका त्याग करके इस मन्त्रका उच्चारण करे—

अन्तर्गृहस्य यात्रेयं यथावद् या मया कृता।
न्यूनातिरिक्तया शम्भुः प्रीयतामनया विभुः॥

'मैंने जो यह अन्तर्गृहकी यथावत् यात्रा की है, इसमें न्यूनातिरिक्तताका दोष आ गया हो तो भी इसके द्वारा भगवान् विश्वनाथजी प्रसन्न हों।'

इस मन्त्रका उच्चारण करके क्षणभर मुक्तिमण्डपमें विश्राम करे। तत्पश्चात् निष्पाप एवं पुण्यवान् हुआ मनुष्य अपने घरको जाय। एकादशी तिथि आनेपर महान् पुण्यकी वृद्धिके लिये प्रयत्नपूर्वक काशीके सभी वैष्णव तीर्थोंकी यात्रा करे। भाद्रपदकी पूर्णिमाको कुलस्तम्भका पूजन करना चाहिये। उसकी पूजासे दुःख एवं रुद्रपिशाचताकी प्राप्ति नहीं होती। काशीक्षेत्रमें निवास करनेवाले मनुष्योंको चाहिये कि वे श्रद्धापूर्वक इन सभी यात्राओंको करें। पर्वके दिन भी ये सभी यात्राएँ करनेयोग्य हैं। पुण्यात्मा एवं विद्वान् पुरुष यात्राके बिना कोई भी दिन व्यर्थ न बीतने दे। प्रतिदिन प्रयत्नपूर्वक दो यात्राएँ तो अवश्य करनी चाहिये। पहली गंगाकी, दूसरी विश्वनाथजीकी। काशीमें निवास करते हुए भी जिसका दिन यात्राके बिना व्यर्थ बीत जाता है, उसी दिन उसके पितर निराश हो जाते हैं। जिसने काशीमें रहकर भी जिस दिन विश्वनाथजीका दर्शन नहीं किया, उस दिन उस मनुष्यको मानो कालसर्पने डस लिया, मृत्युने देख लिया अथवा किसीने उसका सर्वस्व लूट लिया। जिसने मणिकर्णिकामें स्नान करके विश्वनाथजीका दर्शन कर लिया, उसने सब तीर्थोंमें नहा लिया और सब यात्राएँ पूरी कर लीं। यह सत्य है, सत्य है, सत्य है और बार-बार सत्य है। प्रतिदिन मणिकर्णिकामें स्नान और विश्वनाथजीका दर्शन अवश्य करना चाहिये।

व्यासजी कहते हैं—सूत! सहस्रों पाप किये होनेपर भी मनुष्य स्कन्दपुराणके इस उत्तम काशी-माहात्म्यका श्रवण करके नरकमें नहीं जाता। सब तीर्थोंमें स्नान करके मनुष्य जिस श्रेयका उपार्जन करता है, वह सब काशीखण्डके श्रवणसे अवश्य प्राप्त होता है। सम्पूर्ण काशीखण्डका श्रद्धापूर्वक पाठ अथवा श्रवण करे—यही सबसे बड़ी देवाराधना बतायी गयी है। जो काशीखण्डकी एक कथा भी सुन लेता है, उसने सम्पूर्ण धर्मशास्त्रोंका श्रवण कर लिया। इसमें संशय नहीं है। यह काशीखण्ड महान् धर्मका उत्पादक, महान् अर्थकी प्राप्ति करानेवाला तथा सम्पूर्ण कामनाओंकी प्राप्तिका हेतु बताया गया है। इसके श्रवणसे मनुष्योंके लिये मोक्षकी प्राप्ति दूर नहीं रह जाती। इस उत्तम खण्डको सुनकर सब पितर तृप्त होते हैं। ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि सब देवता प्रसन्न होते हैं, मुनि आनन्दमग्न होते हैं और सनकादि मुनीश्वर भी अत्यन्त सन्तुष्ट होते हैं। जो विद्वान् इस काशीखण्डको पूरा, आधा, एक चौथाई अथवा एक अष्टमांश भी सुनाता है, वह यत्नपूर्वक प्रणाम करनेयोग्य तथा इष्टदेवकी भाँति पूजनीय है। भगवान् विश्वनाथकी प्रीतिके लिये उसको सदा अन्न, धन आदिका दान करना चाहिये, क्योंकि वाचकके सन्तुष्ट होनेपर निःसन्देह भगवान् विश्वनाथ ही सन्तुष्ट होते हैं। जहाँ परमानन्दके आश्रयभूत इस काशीखण्डका पाठ किया जाता है, वहाँ कोई अमंगलजनक विघ्न अपना प्रभाव नहीं डालता है।

काशीखण्ड (उत्तरार्ध) समाप्त।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

ॐ

श्रीपरमात्मने नमः

श्रीउमामहेश्वराभ्यां नमः

संक्षिप्त श्रीस्कन्दमहापुराण

आवन्त्यखण्ड

अवन्तीक्षेत्र-माहात्म्य

सनत्कुमारजीके द्वारा महाकालतीर्थकी श्रेष्ठताका निरूपण

स्रष्टारोऽपि प्रजानां प्रबलभवभयाद्यं नमस्यन्ति देवा
यश्चित्ते सम्प्रविष्टोऽप्यवहितमनसां ध्यानयुक्तात्मनां च।
लोकानामादिदेवः स जयतु भगवाञ्छ्रीमहाकालनामा
बिभ्राणः सोमलेखामहिवलययुतं व्यक्तलिङ्गं कपालम्॥

'प्रजाकी सृष्टि करनेवाले प्रजापति देव भी प्रबल संसार-भयसे मुक्त होनेके लिये जिन्हें नमस्कार करते हैं, जो सावधान चित्तवाले ध्यानपरायण महात्माओंके हृदय-मन्दिरमें सुखपूर्वक विराजमान होते हैं और चन्द्रमाकी कला, सर्पोंके कंकण तथा व्यक्त चिह्नवाले कपालको धारण करते हैं, सम्पूर्ण लोकोंके आदिदेव उन भगवान् श्रीमहाकालकी जय हो।'

पार्वतीजी बोलीं—भगवन्! पृथ्वीपर जो-जो पुण्यतीर्थ और पवित्र नदियाँ हैं, जिनमें श्राद्ध किया जाता है, उन सबका यत्नपूर्वक वर्णन कीजिये।

महादेवजीने कहा—देवि! त्रिपथगा गंगा सम्पूर्ण लोकोंमें विख्यात हैं। समस्त जगत्‌को पवित्र करनेवाली सूर्यपुत्री यमुना भी बड़े-बड़े पातकोंका नाश करनेवाली हैं। चन्द्रभागा (चनाब), वितस्ता (झेलम), नर्मदा, अमरकण्टक, कुरुक्षेत्र, गया, प्रभास क्षेत्र, नैमिषारण्य, केदार, पुष्कर, कायावरोहण तथा उत्तम महाकालवन अत्यन्त पवित्र तीर्थ हैं। पापोंको जलानेके लिये अग्निके समान श्रीमहाकाल यहाँ विराज रहे हैं, वह चार कोसतक फैला हुआ क्षेत्र ब्रह्महत्या आदि पातकोंका नाश करनेवाला है।

पार्वतीजी बोलीं—महेश्वर! आप इस महाकालक्षेत्रका माहात्म्य कहिये।

महादेवजीने कहा—देवि! महाकालक्षेत्र समस्त पातकोंका नाश करनेवाला आदिक्षेत्र है। श्रीमेरु पर्वतके समीप जो परमात्मा ब्रह्माजीका वैराज नामक भवन है, वहाँ कान्तिमती नामवाली सभा देवताओंको हर्ष प्रदान करनेवाली है। एक समय ब्रह्माजीके मानसपुत्र वागीश्वर सनत्कुमारजी उस सभामें बैठकर भगवान् शंकरकी आराधनामें लगे हुए थे। उसी समय पराशरनन्दन श्रीकृष्णद्वैपायन (व्यास) उन्हें प्रणाम करके उनसे महाकालका माहात्म्य पूछते हुए बोले—'भगवन्! महाकालवन सबसे श्रेष्ठ क्यों कहा जाता है और उसे गुह्यवन, पीठस्थान तथा ऊसर भूमि क्यों कहा गया है?'

सनत्कुमारजी बोले—यहाँ सब पातक क्षीण हो जाता है, इसलिये इसे क्षेत्र कहा जाता है। यह मातृकाओंका निवासस्थान होनेके कारण पीठ कहलाता है। इस भूमिमें मरे हुए जीव फिर जन्म नहीं लेते, इसीलिये इसे ऊसर नाम दिया गया है। अतः यह परमात्मा शंकरका गुह्य, प्रिय एवं नित्य क्षेत्र है और इसीलिये सम्पूर्ण भूतोंको बहुत प्रिय है। भगवान् शिवके इस अतिशय प्रिय क्षेत्रको श्मशान, महाकाल वन और विमुक्ति क्षेत्र भी कहते हैं। एकाम्रक, भद्रकाल, करवीर वन, कोलागिरि, काशी, प्रयाग, अमरेश्वर, भरत, केदार, दिव्यरुद्रमहालय—ये सब तीर्थ दिव्य श्मशान हैं, जो शिवजीको सदा ही अत्यन्त प्रिय हैं। इन सिद्ध क्षेत्रोंमें सर्वदा भगवान् शिव क्रीड़ा करते हैं। पृथ्वीपर नैमिषारण्य और पुष्करतीर्थ उत्तम हैं। कुरुक्षेत्र तीनों लोकोंमें उत्तम कहा जाता है। कुरुक्षेत्रसे दसगुनी पुण्यमयी काशीपुरी मानी गयी है और काशीसे भी दसगुना महाकाल वन है।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

महाकाल वनमें भगवान् शिवका प्रवेश, कपाल-मोचन, देवताओंद्वारा स्तवन तथा महापाशुपत व्रतकी महिमा

सनत्कुमारजी कहते हैं—व्यास! प्राचीन कालकी बात है। ब्रह्माजीने उत्तम कुशों और समिधाओंद्वारा अग्निहोत्र किया। अतः उस पुण्य स्थानका नाम 'कुशस्थली' हुआ। भगवान् विष्णुने नर-नारायण ऋषिके रूपसे बदरिकाश्रममें रहकर सम्पूर्ण जीवोंके लिये बड़ी भारी तपस्या की। (अतः उस पुण्यक्षेत्रको नर-नारायणाश्रम कहते हैं।) देवेश्वर भगवान् शिव हाथमें कपाल लेकर इस सम्पूर्ण पृथ्वीपर विचरण कर रहे थे। घूमते-घूमते वे कुशस्थलीमें जा पहुँचे और वहाँके उत्तम वनमें उन्होंने प्रवेश किया। वह वन अनेक प्रकारके वृक्षों और लताओंसे हरा-भरा और भाँति-भाँतिके पुष्पोंसे सुशोभित था। नाना भाँतिके पक्षी उसमें सब ओर कलरव करते थे तथा बहुत-से मृग वहाँ सब ओर फैले हुए थे। वह वन नन्दनकाननके समान मनोहर था। भगवान् शिवने उसकी ओर सौम्यदृष्टिसे देखा। भगवान् रुद्रको वहाँ पधारे हुए देख सब वृक्षोंने बड़ी भक्तिके साथ अपनी पुष्पसम्पदा उन्हें समर्पित करके उनके चरणोंमें फूलोंकी वर्षा की। वृक्षोंका वह पुष्पोपहार ग्रहण करके महेश्वरने उनसे कहा—'तुम्हारा कल्याण हो, तुम सब मुझसे वर माँगो।'

भगवान् शिवके ऐसा कहनेपर सब वृक्ष हाथ जोड़ उन्हें नमस्कार करके बोले—देवेश्वर! शरणागतवत्सल! आप यहीं इस वनमें सदा निवास करें।

महादेवजी बोले—बहुत अच्छा, इस उत्तम वनमें मेरा सदा मनसे निवास होगा। तुम्हें मैं दूसरा वरदान यह देता हूँ कि अग्नि, वायु, जल, सूर्य-किरणोंका ताप, बिजली, वज्रपात और सर्दी— इनमेंसे कुछ भी तुम्हारे लिये रोग नहीं उत्पन्न कर सकेगा।

इस प्रकार भगवान् शिवने वहाँके वृक्षोंको अनुगृहीत किया और एक वर्षतक वहीं रहकर कपालको पृथ्वीपर फेंक दिया। यह जानकर भगवान् ब्रह्माजी देवता और दैत्योंके साथ उस वनस्थलीको गये, जहाँ भगवान् वृषध्वज शिव विराजमान थे। उस वनकी अन्तिम सीमातक महादेवजीको ढूँढ़ते हुए देवताओंने कहीं भी उनको नहीं देखा। तब ब्रह्माजी देवताओंसे बोले—'भगवान् शिवके दर्शनके लिये सदा तीन उपाय हैं— श्रद्धापूर्वक ज्ञान, तपस्या और योग। इन्हीं तीनोंसे उनकी प्राप्ति बतायी जाती है। योगी महादेवजीके कलासहित और कलारहित दोनों स्वरूपोंका दर्शन करते हैं। तपस्वी केवल कलायुक्त रूपका और ज्ञानी केवल निष्कल रूपका दर्शन पाते हैं। ज्ञान प्रकट होनेपर भी जिसकी श्रद्धा मन्द है, वह भगवान्का दर्शन नहीं पाता। पराभक्तिसे युक्त योगी पुरुष उन परमात्माका साक्षात्कार करते हैं। अतः मन, वाणी और क्रियाद्वारा भगवान् महेश्वरकी आराधनामें निरन्तर संलग्न हो तुम सब लोग तपस्या करो।'

देवता बोले—ब्रह्मन्! आप हम सब लोगोंको ऐसी दीक्षा दीजिये, जो भगवान् शिवको सन्तुष्ट करनेवाली हो।

ब्रह्माजीने कहा—देवताओ! तुम शिवयज्ञके लिये यहाँ पर्याप्त सामग्री ले आओ और इस स्थानपर यज्ञकी वेदी बनाओ। उसीपर अष्टमूर्ति शिवका यजन (पूजन) किया जायगा।

ब्रह्माजीका यह वचन सुनकर देवताओंने सब कुछ उनके कथनानुसार किया। उन्होंने विनययुक्त वेषमें आकर ब्रह्माजीके चरणोंमें प्रणाम किया और वे निष्पाप देवता उनका अनुसरण—उनकी आज्ञाका पालन करने लगे। भगवान् शिवका प्रसाद प्राप्त करनेके लिये ब्रह्माजीने विधिपूर्वक चन्द्रार्धशेखर शिवका यजन किया। फिर अनुग्रहपूर्वक सम्पूर्ण देवताओंको व्रतोंमें श्रेष्ठ दिव्य पाशुपत व्रतका उपदेश किया। विरोधभावको भुला देनेवाले भगवान् ब्रह्माजीने स्वयं ही देवताओंको वह दीक्षा दी।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

महापाशुपत व्रतका वर्णन शिवशाखामें जैसा किया गया है, शास्त्रोंमें उसकी जैसी विधि बतायी गयी है और जैसे आचार-व्यवहारकी शिक्षा दी गयी है, उसके सहित वह शैव-व्रत देवताओंको बताया। वह व्रत पापों और दुःखोंका नाश करनेवाला, पुष्टि और बलको बढ़ानेवाला, सिद्धिदायक, सुयश बढ़ानेवाला, मनको प्रिय लगनेवाला तथा कलियुगके समस्त पापोंसे छुटकारा दिलानेवाला है। इस व्रतको धारण करनेवाले मनुष्योंको भस्म-स्नान करते हुए एकाग्रचित्त, जितेन्द्रिय, शान्त और दान्त (दमनशील) भावसे रहना चाहिये। तथा कमण्डलु धारण करना, रुद्राक्ष पहनना तथा अशुभदर्शन, असत् आलाप और आसक्ति आदिसे रहित होकर रहना चाहिये। ब्रह्माजीकी आज्ञासे सब देवताओंने इसी प्रकार व्रत धारण करके उस वनमें उमापति महादेवजीकी आराधना की। वे सभी पराभक्तिसे युक्त हो उत्तम विधिका पालन करते हुए दीर्घकालतक भगवान्‌का ध्यान करते रहे। रुद्रके ध्यानकी अग्निसे उनके समस्त पाप दग्ध हो गये और वे अपूर्व शोभा एवं दीप्तिसे सम्पन्न हो गये। तब भगवान् शंकरने देवताओंके पास जाकर उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन दिया। भगवान् सदाशिवको प्रत्यक्ष देखकर देवताओंने सृष्टि, पालन और संहार करनेवाले उन महेश्वरका इस प्रकार स्तवन किया।

देवता बोले—गणों तथा नन्दीसहित शान्तस्वरूप भगवान् शिवको नमस्कार है। जो धर्मस्वरूप वृषकी पीठपर आरूढ़ होनेवाले, सौम्यस्वरूप तथा शक्ति एवं शूल धारण करनेवाले हैं, उन्हें नमस्कार है। दिशाएँ तथा व्याघ्रचर्म आदि ही जिनके वस्त्र हैं, जिनका चित्त परम विशुद्ध और तेज अत्यन्त दुःसह है, जो ब्रह्मस्वरूप हैं, ब्रह्मा जिनका शरीर हैं तथा जो ब्रह्माजीके द्वारा भक्तानुग्रहके कार्यमें लगाये जाते हैं, उन भगवान् शिवको नमस्कार है। अन्धकासुरका नाश करनेवाले रुद्रको नमस्कार है। सम्पूर्ण देवताओंके स्वामी भगवान् शिवको बार-बार नमस्कार है। सब प्रकारके रोगोंका अपहरण करनेवाले पंचमुख रुद्रको नमस्कार है। कैलास पर्वतपर शयन करनेवाले देवताओंके स्वामी ईशानदेवको बारम्बार नमस्कार है। भीम, उग्रस्वरूप तथा विजयरूप शंकरको नमस्कार है, नमस्कार है। देवताओं, दैत्यों तथा यतियोंके भी अधिपति भगवान् शंकरको प्रणाम है। जो चण्ड (दैत्योंपर अत्यन्त क्रोध करनेवाले), चण्ड-दण्ड (भयंकर दण्ड देनेवाले) तथा श्रेष्ठ खट्वांग धारण करनेवाले हैं, उन रुद्रदेवको नमस्कार है। विरूपाक्ष (भयंकर नेत्रवाले), शुभाख्य (कल्याणकारी नामवाले) तथा विश्वरूपको बार-बार नमस्कार है। शान्त एवं ज्ञानस्वरूप त्रिनेत्रधारी शिवको बार-बार नमस्कार है। वेधा (ब्रह्मा), विश्वरूप (विष्णु) तथा विश्वसंहारकारी (रुद्र) को नमस्कार है। भक्तोंपर अत्यन्त कृपा करनेवाले तथा रुद्रज्ञानपरायण शिवको नमस्कार है। कुरूप, सुरूप तथा सैकड़ों रूप धारण करनेवाले भगवान् शंकरको नमस्कार है। पंचमुख, शुभमुख तथा चन्द्रमुख धारण करनेवाले शिवको नमस्कार है। वर देनेवाले, वरण करनेयोग्य तथा उत्तम कर्म करनेवाले शिवको नमस्कार है। त्रिपुरासुरका नाश करनेवाले त्रिलोचन! महेश्वर! हम मन, वाणी, शरीर और भावोंसे आपकी शरणमें आये हैं। आप हमारी रक्षा कीजिये।

सनत्कुमारजी कहते हैं—ब्रह्मा आदि देवताओंके द्वारा इस प्रकार स्तवन किये जानेपर महादेवजीने कहा—'महाभागगण! तुम सबने मेरे दर्शनकी इच्छासे बहुत ही श्रद्धापूर्वक मेरा आराधन किया है; अतः मैं तुम्हें उत्तम वरदान दूँगा। देवताओ! तुम्हारे हितके लिये उज्जयिनीपुरीमें आकर मैंने कपालको फेंक दिया है। अब तुम और क्या चाहते हो?'

देवताओंने पूछा—देव! आपने यहाँ कपाल फेंककर हमारा कौन-सा हित किया है, आपका यह कार्य निरर्थक नहीं हो सकता। अतः इस विषयमें जो यथार्थ कारण हो, उसे बताइये।

महादेवजीने कहा—तुमलोगोंके हितके लिये मैंने तुम्हारे ऊपर आनेवाले एक महान् भयको टाला है। हय नामक दैत्य, जो बहुत ही बलवान्,

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

योगमायाका जाननेवाला तथा असुरोंका स्वामी था, बलके घमण्डमें आकर रसातल लोकको अपने वशमें करके वहीं रहता था। उस दैत्यके बलवान् सेवक तुम सब लोगोंको तपस्यामें स्थित जानकर यहाँ मारनेके लिये आये थे। उन्होंने मायासे अपने शरीरको छिपा रखा था। यहाँ कपालके गिरानेसे जो अत्यन्त भयानक शब्द हुआ है, उससे और पृथ्वी काँपनेसे उन सब दैत्योंके प्राण निकल गये हैं। उन दैत्योंने सम्पूर्ण लोकोंकी सत्ताका विनाश करनेके लिये उद्योग किया था। वे राज्य और ऐश्वर्यके दर्पसे उन्मत्त हो उठे थे। इसीलिये मैंने उनका वध किया है।

देवता बोले—प्रभो! आप देवताओंके ऊपर बड़ी भारी कृपा करनेवाले हैं।

महादेवजी बोले—देवताओ! तुम्हारे इस तपसे तथा दुःसह कष्टसे तुम्हारा तेज सब ओरसे बढ़े और अधिक उत्कर्षको प्राप्त हो।

देवाधिदेव महादेवजीके ऐसा कहनेपर ब्रह्मा आदि देवता पृथ्वीपर घुटने टेककर, ऊपरकी ओर मुँह करके बोले—देवेश्वर! आप हमारे प्राणदाता हैं, कारण हैं। देव! तपस्यासे ही आपका दर्शन होता है। आपके ध्यानमें लगे हुए हम भक्तोंकी रक्षा कीजिये।

महादेवजी बोले—देवताओ! मैंने यत्नपूर्वक तुम्हें प्रत्यक्ष दर्शन दिया है। अब तुम वर माँगो, मैं तुम्हें बहुतसे वर दूँगा।

भगवान् शिवके ऐसा कहनेपर ब्रह्माजीने कहा—भगवन्! हमें उत्तम ऐश्वर्य और उन राक्षसोंको अक्षय धाम दीजिये।

भगवान् शिव बोले—देवताओ! इस लोकमें जो मेरे भक्त हैं अथवा जो मेरे हाथसे मारे गये हैं, वे दुर्गतिको नहीं प्राप्त होते। उन्हें परम उत्तम गतिकी प्राप्ति होती है। वे देवद्रोही असुर जटाजूटधारी एवं शूलपाणि होकर मेरे वाम पार्श्वमें विराजमान होते हैं। इन दैत्योंके निग्रह और आप लोगोंके बोधके लिये मैंने इस भूतलपर कपालको फेंका है। मेरी भक्तिकी इच्छा रखनेवाले भक्तोंपर इस प्रकार मैंने अनुग्रह किया है। वृक्षोंके प्रार्थना करनेपर मैंने इस वनमें नित्य निवास स्वीकार किया है। देवताओ! इस वनमें आये हुए मेरे और यहाँ तपस्या करनेवाले तुम्हारे सामीप्यसे यह महाकाल वन दो नामोंसे लोकमें विख्यात होगा—गुह्य वन और श्मशान। यह तीर्थ सब क्षेत्रोंमें श्रेष्ठ एवं महान् है।

मैंने कपाल-व्रतचर्याका वर्णन इस प्रकार किया है—कपालपात्रमें भोजन करे, कपाल-व्रतको ही आभूषणकी भाँति धारण करे, हाथमें कपाल लिये रहे, सदा सन्तोषपूर्वक रहे और नियमपूर्वक भिक्षान्नका आहार करे। श्मशानमें निवास करे, समस्त प्राणियोंके प्रति प्रसन्न रहे, प्रिय और अप्रियकी प्राप्तिमें समभाव रखे, सब अंगोंको भस्मसे विभूषित करे, विशेषतः ज्ञानवान् और जितेन्द्रिय हो, सब प्रकारकी आसक्तियोंको त्याग दे, मिट्टी, भस्म और जलमात्रका संग्रह करे, सदा योगयुक्त रहे, नित्य-निरन्तर जप करे। श्रेष्ठ आसनको जीते, पवित्र तीर्थमें आश्रम बनाकर रहे, धीरे-धीरे इष्टदेवमें चित्तको एकाग्र करे। यही लोकातीत उत्तम ज्ञान एवं महापाशुपत-व्रत है। पूर्वकालमें कपाल-व्रतका आश्रय लेकर मैंने स्वयं इसका पालन किया है। कपाल-व्रत परम गोपनीय, पवित्र एवं पापनाशक है। कपाल-व्रत कठिनतासे धारण करनेयोग्य और परम अद्भुत है। महापाशुपत-व्रत धारण करनेवाले एक महात्माको जो श्रद्धापूर्वक भोजन कराता है, उसे करोड़ों वेदवेत्ता ब्राह्मणोंको भोजन करानेका फल प्राप्त होता है। जो यतियोंको कपालपूरणी (नारियलके खप्परको भरकर) भिक्षा देता है, वह सब पापोंसे मुक्त होकर कभी दुर्गतिको नहीं प्राप्त होता है। यह लोक और वेदमें वन्दित तथा देवताओं और दानवोंद्वारा पूजित व्रत है। सम्पूर्ण भूतोंको मोहनेवाले इस कपाल-व्रतको जो धारण करते हैं, वे मेरे समान होकर इस पृथ्वीपर विचरते हैं तथा इस दीक्षा और योगसे समस्त प्राणियोंको तारते हैं। पितामह! जैसे मैं सम्पूर्ण देवताओंका पूजनीय हूँ, उसी प्रकार यह महाव्रत सम्पूर्ण योगोंसे

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth 279 Skandpuran_Section_31_1_Back

पूजनीय है। संसारके बन्धनसे छुटकारा दिलानेके लिये यह कल्याणमय व्रत परम पवित्र है, क्योंकि यह सम्पूर्ण धर्मके द्वारा मोक्षका कारण है। जो अजितेन्द्रिय पुरुष इस कपालव्रत (संन्यास)-को ग्रहण करके फिर छोड़ देता है, वह यमदूतोंद्वारा शीघ्र ही रौरव नरकमें डाला जाता है। जो भावसे इस व्रतकी बात तो करता है, किंतु तदनुकूल कर्म नहीं करता है, वह रागयुक्त चित्तवाला शृंगारी (शृंगाररसमें डूबा हुआ) पुरुष धर्मका प्रिय नहीं है। जो इस व्रतको लेकर भी किसी एक स्थानपर ही भोजन करता है, मिठाइयाँ उड़ाता है, निष्कपट बातें जिसे अच्छी नहीं लगतीं, जो बुरे गाँव और नगरोंमें रहता है, खेती और वाणिज्य-व्यवसायका सेवन करता है—इत्यादि दोषोंसे दूषित उस मिथ्याचारीके साथ वार्तालाप करनेसे भी मनुष्य नरकगामी होता है, क्योंकि वह मेरे व्रतको कलंकित करनेवाला है।

सनत्कुमारजी कहते हैं—ऐसा कहकर भगवान् सदाशिवने ब्रह्मा आदि देवताओंके साथ उस क्षेत्रको बसाया। श्रेष्ठ मुनिगण इस आदिक्षेत्रको श्मशान कहते हैं। जहाँ भगवान् शिवका निवास है, वह स्थान महाकाल वन कहलाता है। वह भूभाग भगवान् शंकरके अनुग्रहका घर है, इसमें संशय नहीं है। मरणशील प्राणियोंपर अनुग्रह करनेके लिये ही इस क्षेत्रका प्रादुर्भाव हुआ है। वहाँ सुवर्ण और मणिसे निर्मित वेदिका बनायी गयी, जो सब ओरसे परम सुन्दर थी। चौंतीस सुन्दर कलश स्थापित किये गये, जो भरे हुए थे। वहाँ वेदीके चारों ओर चार दरवाजे थे, जो होमाग्निसे तप रहे थे। उस स्थानपर रखे हुए घट नवोदित सूर्यकी भाँति दिखायी देते थे। ऐसे उत्तम महाकाल वनमें भगवान् शिव क्रीड़ा करते हैं। यह सब कुछ सत्ययुगमें सबको प्रत्यक्ष दिखायी देता है, त्रेतामें धर्मपरायण तपस्वी ब्रह्मचारी ही भगवान्‌को प्रत्यक्ष देखते हैं, द्वापरमें धर्मात्मा और वैदिक ज्ञानसे सम्पन्न पुरुष ही उन्हें देख पाते हैं, परंतु कलियुगमें विशुद्ध विज्ञानसे सुशोभित अधिक तपस्यावाले पुरुष ही महाकाल वनमें शूलपट्टिशधारी उन देवाधिदेव भगवान् महेश्वरका दर्शन करते हैं, जो सम्पूर्ण लोकोंपर अनुग्रह करनेवाले हैं। व्यास! मैंने तुम्हें यह सब यथार्थ वृत्तान्त बतलाया है। भगवान् शिवका यह स्थान विश्वविख्यात गुणगणोंसे पूजित है और सब दोषोंका नाश करनेवाला है। जो कल्याणमयी बुद्धिसे युक्त मानव इहलोकमें एकाग्रचित्त होकर इस स्थानके माहात्म्यको पढ़ता अथवा सुनता है, वह देवताओंसे अभिषिक्त एवं पूजित होकर भगवान् शंकरके धामको जाता है।

रुद्रभक्तिका निरूपण तथा महाकाल क्षेत्रमें निवास करनेवाले मनुष्योंके नियम

व्यासजीने पूछा—भगवन्! महाकाल वनमें रुद्रलोककी इच्छा रखनेवाले उस क्षेत्रके निवासियोंको किस विधिसे रहना चाहिये?

सनत्कुमारजीने कहा—व्यास! भगवान् शंकरकी भक्ति तीन प्रकारकी बतायी गयी है—मानसिक, वाचिक और कायिक। लौकिकी, वैदिकी और आध्यात्मिकी—ये तीन भेद और भी हैं। ध्यान, धारणा एवं बुद्धिके द्वारा जो भगवान् रुद्रके स्वरूपोंका स्मरण किया जाता है, वह रुद्रके प्रति भक्ति-भावको बढ़ानेवाली मानसी भक्ति कहलाती है। स्तुति और कीर्तन आदि वाचिकी भक्तिके अन्तर्गत हैं। इन्द्रियोंको रोककर संयममें रखनेवाले पुरुषोंद्वारा जो व्रत, उपवास और नियम आदिका पालन किया जाता है—ज्ञान और ध्यानमें स्थित धर्मात्मा पुरुषोंकी वह भक्ति कायिक कही गयी है। गोघृत, गोदुग्ध, गोदधि, चन्दन, कुंकुम, कुशोदक, गन्ध,

Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

विविध माल्य, अनेक प्रकारके धातु, घी, गुग्गुल, धूप, कालागुरु, सुगन्धित पदार्थ, सुवर्ण और रत्नोंके आभूषण, विचित्र माला, वस्त्र, स्तोत्र, पताका, व्यजन, नृत्य, वाद्य, गीत, सब प्रकारके उपहार, भक्ष्य, भोज्य, अनुपान तथा अक्षतोंके द्वारा जो पूजा की जाती है, वह लौकिकी भक्ति मानी गयी है। वेदमन्त्रोंके द्वारा हविष्यकी आहुति आदिके योगसे जो यजनक्रिया की जाती है, वह वैदिकी भक्ति कहलाती है। मुने! आध्यात्मिकी शिव-भक्ति दो प्रकारकी है—एक सांख्या भक्ति और दूसरी यौगिकी भक्ति। अब इनका विभागपूर्वक वर्णन सुनो। संख्यासे प्रधान (प्रकृति) आदि तत्त्व चौबीस* हैं। वे सभी अचेतन तथा चेतनके उपयोगमें आने योग्य भोग्य हैं। इनसे भिन्न पुरुष पचीसवाँ तत्त्व है, वह चेतन एवं भोक्ता है। भगवान् रुद्र छब्बीसवें तत्त्व हैं। वे कर्ता, सर्वज्ञ, चेतन और सबके स्वामी हैं। अव्यक्त प्रकृति नित्य (अनादि) एवं अजन्मा है तथा पुरुष उसका अधिष्ठाता और प्रेरक है। वह व्यक्त और नित्य है। महेश्वर इन सबके कारण हैं। पहले चौबीस तत्त्वोंकी सृष्टि हुई; फिर उन्हीं तत्त्वोंसे पंचभूतोंकी सृष्टि हुई है। प्रधान या प्रकृति त्रिगुणात्मक है। भगवान् रुद्रका पुरुषके साथ साधर्म्य है—चैतन्यरूप धर्म दोनोंमें समान रूपसे है; परंतु प्रधान तत्त्व जड होनेके कारण उनसे विपरीत धर्मवाला है। वह रुद्रकी इच्छा (संकल्पशक्ति)-के अनुसार भौतिक जगत्का कारण होता है। सर्वत्र रुद्रमें ही कर्तृत्व है, पुरुषमें कर्तृत्वका अभाव है और प्रधान (प्रकृति)-में अचेतनता है। इन तीनोंका विवेक तत्त्वज्ञान कहा गया है। कार्य और कारण दोनों तत्त्वान्तरसे मुक्त होते हैं। प्रेरक-तत्त्वमें जो विलक्षणता है, उसको जानकर रुद्रतत्त्वार्थका विचार करनेवाले पुरुष तत्त्वोंकी संख्या निश्चित करते हैं। इस प्रकार रुद्रके यथार्थस्वरूपका विवेचन तथा तत्त्वोंकी तात्त्विक संख्या बतायी गयी है। सांख्यमतमें रुद्रके स्वरूपका यह चिन्तन ही विद्वानोंद्वारा आध्यात्मिक सांख्या भक्ति बतायी गयी है।

ब्रह्मन्! अब मुझसे यौगिकी भक्तिका वर्णन सुनो। जो पुरुष अपनी इन्द्रियोंको संयममें रखकर सदा प्राणायाम-परायण होकर ध्यान करता है, अथवा जो हृदयमें धारणाको स्थिर करके महेश्वरका इस प्रकार ध्यान करता है कि 'हृदयकमलकी कर्णिकाके आसनपर भगवान् शिव विराजमान हैं, उनके पाँच मुख हैं, प्रत्येक मुखमें तीन नेत्र हैं, चन्द्रमाकी कलासे उनकी जटा जगमगा रही है और कटिभागमें सर्पकी करधनी शोभा पाती है। उनका श्रीअंग श्वेत है, वे दस भुजाओंसे सुशोभित हैं, उनका स्वरूप सबके लिये मंगलमय है, उनके हाथोंमें वरद और अभयकी मुद्रा है।' उस योगीके द्वारा किये जानेवाले इस ध्यानको भगवान् रुद्रकी 'पराभक्ति' कहते हैं। जो इस प्रकार भगवान् शिवके प्रति भक्ति रखता है, वह रुद्रभक्त कहलाता है।

व्यास! अब महाकाल क्षेत्रमें निवास करनेवाले मनुष्योंके लिये जो विधि बतायी गयी है, उसको सुनो। जो ब्राह्मण ममता, अहंकार, आसक्ति तथा परिग्रहसे रहित हैं, बन्धुजनोंके प्रति अनासक्त रहकर मिट्टी, पत्थर और सुवर्णको समान समझते हुए महाकाल वनमें निवास करते हैं, मन, वाणी और शरीरद्वारा किये जानेवाले त्रिविध कर्मोंद्वारा सदा सब प्राणियोंको अभय दान देते हैं, सांख्य और योगकी विधिको जानते हैं, धर्मके स्वरूपको समझते हैं और संशयरहित हो नाना प्रकारके यज्ञोंद्वारा भगवान् शंकरका यजन करते हैं, वहाँ मृत्यु होनेके पश्चात् वे सभी अत्यन्त दुर्लभ एवं अक्षय ब्रह्म-सायुज्यको प्राप्त होते हैं। इस संसारमें पुनर्जन्म न पाकर अक्षय मुक्ति लाभ करते हैं। क्षेत्रनिवासी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अथवा शूद्र सबको अपने-अपने धर्ममें तत्पर होना तथा अपनी ही वृत्ति एवं आचार-व्यवहारसे जीवन

* प्रकृति, महत्तत्त्व, अहंकार, शब्दतन्मात्रा, स्पर्शतन्मात्रा, रूपतन्मात्रा, रसतन्मात्रा, गन्धतन्मात्रा, पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय, मन और पंचमहाभूत—ये चौबीस तत्त्व हैं।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth 279 Skandpuran_Section_31_2_Back

निर्वाह करना चाहिये। भगवान् शिवके भक्त सर्वतोभावसे जीवोंपर अनुग्रह करनेवाले होते हैं। जो मुमुक्षु मानव महाकाल वन नामक क्षेत्रमें निवास करते हैं, वे मृत्युके पश्चात् सुन्दर विमानोंद्वारा रुद्रलोकमें जाते हैं। अथवा जो उपलब्ध हुई ज्ञानाग्निमें अपने शरीर आदि अनात्मपदार्थोंका हवन करता है, नित्य रुद्राध्यायका पाठ करता है और महान् सत्त्व (सत्त्वगुण एवं धैर्य) से सम्पन्न है, वह भगवान् शंकरके धाममें निवास करता है।

हालाहल दैत्यका वध, रुद्रसरोवरकी महिमा तथा कुशस्थलीमें चार समुद्रोंका आगमन और उसका माहात्म्य

व्यासजी बोले—भगवन्! आचार सब धर्मोंमें मुख्य है। वही सब धर्मोंका आश्रय है। जो स्वधर्ममें तत्पर, क्रोधको जीतनेवाले तथा इन्द्रियोंको वशमें रखनेवाले हैं, वे तो भगवान् शिवके लोकमें जाते ही हैं, उनके लिये मेरे मनमें कोई चिन्ता नहीं है। वैसे लोग तो किसी उत्तम क्षेत्रमें निवास किये बिना भी पूर्वोक्त नियमोंके पालनसे ही चन्द्रमाके समान कान्तिमान् विमानोंद्वारा निश्चय ही रुद्रलोकमें चले जाते हैं। परंतु जो स्त्रियाँ, शूद्र, म्लेच्छ, पशु-पक्षी, मृग, मूक, जड़, अन्ध और बधिर हैं, जिनमें तप और नियमका अभाव है, वे यदि महाकालक्षेत्रमें मृत्युको प्राप्त हों, तो उनकी क्या गति होती है?

सनत्कुमारजीने कहा—ब्रह्मन्! यदि स्त्री, म्लेच्छ, शूद्र, पशु-पक्षी और मृग भी अपनी स्वाभाविक वृत्तिसे ही उस क्षेत्रमें मरें तो वे दिव्य शरीर धारण करके रुद्रलोकमें जाते हैं और वहाँ सब प्रकारके सुखभोगसे सम्पन्न होते हैं।

एक समय देवताओंके लिये कण्टकरूप हालाहल नामक दानव महाकाल वनकी ओर दौड़ा हुआ आया। वह दुरात्मा क्रोधसे जल रहा था। ब्रह्माजीका वरदान पाकर देवताओंके लिये दुर्जय हो गया था। उसने भैंसेका स्वरूप धारण कर रखा था। उस देवशत्रुको आते देख पिनाकधारी भगवान् शिव अपने गणोंसे बोले—'पार्षदो! यह मायावी दैत्य तीनों लोकोंके लिये कण्टक है और बड़े वेगसे इधर आ रहा है, अतः तुम सब लोग मिलकर इसे मारो।' तब वहाँ आते हुए उस महादैत्यको शिवगणोंने त्रिशूलसमूहों, तलवारों, मूसलों तथा बाणसमुदायसे मूर्छित करके पृथ्वीपर मार गिराया। उसके मारे जानेपर महादेवजीने कहा—'अहो! इस मूढ़को बड़ा घमण्ड हो गया था, उसीसे यह मृत्युको प्राप्त हुआ है।' इसी समय पूर्वोक्त कपालसे बड़ी भयानक और प्रज्वलित मुखवाली प्रचण्ड मातृकाएँ प्रकट हुईं, जो बड़ी बलवती और भयानक अस्त्र-शस्त्रोंसे सुसज्जित थीं। वे उस स्थानपर दौड़ी हुई आयीं और महादेवजीको निवेदन करके उस महाबली दैत्यको काट-काटकर खाने लगीं। इससे वे इस क्षेत्रमें कपालमातृकाके नामसे विख्यात हुईं।

पूर्वकालमें वहाँ स्थापित हुए कपालको भेदकर एक कुण्ड प्रकट हुआ, जो शिवतड़ागके नामसे प्रसिद्ध है। वह सब पापोंका नाश करनेवाला है। आज भी वह महादिव्य रुद्रसरोवर वहाँ प्रकाशित होता है। गन्धर्वगण उसका सेवन करते हैं। रुद्रसरोवरका जल किसी पात्रमें रखा हो अथवा हाथमें निकाला गया हो, ठंडा हो, गरम हो या उसका क्वाथ बनाया गया हो, किसी प्रकार भी उपयोगमें लाये जानेपर वह अश्वमेध-यज्ञके अवभृथ-स्नानकी भाँति पवित्र करता है। सैकड़ों देवताओंसे घिरे हुए ब्रह्माजी भी उस रुद्रसरोवरपर गये हैं तथा उन्होंने उसे स्वर्गलोककी सीढ़ी कहा है। जो यहाँ प्राण त्याग करते हैं, वे रुद्रलोकमें जाते हैं। व्यासजी! जो लोग महाकाल वनमें निवास करते हैं, वे मनुष्य धन्य हैं। जो रुद्रसरोवरमें स्नान करते अथवा उसका जल पीते हैं, वे स्वधर्म तथा

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

सदाचारमें तत्पर रहनेवाले पुरुष सबके स्वामी महादेवजीका प्रत्यक्ष दर्शन करते हैं।

सनत्कुमारजी कहते हैं—प्राचीनकालमें सुद्युम्न नामक एक धर्मात्मा राजा थे। उनकी पत्नीका नाम सुदर्शना था। उसने दाल्भ्य मुनिका दर्शन करके पुत्रकी कामनासे पूछा—'भगवन्! किस दान, स्नान और विधिसे मुझे समस्त शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न पुत्र प्राप्त हो सकता है?'

दाल्भ्यजी बोले—बेटी! लोकस्रष्टा ब्रह्माजीने तुम्हारे लिये पहलेसे ही श्रेष्ठ पुत्र रच रखा है। तुम्हारे पतिदेव भगवान् शंकरकी आराधना करके उनके प्रसादसे अवन्तीपुरीमें जब चारों समुद्रोंको स्वरूपतः ले आवेंगे, तब उनमें राजाके स्नान करनेपर तुम्हें पुत्र प्राप्त होगा। अतः तुम अपने पतिको शंकरकी आराधनाके लिये प्रेरित करो।

दाल्भ्यके वचनसे रानी सुदर्शनाने अपने पतिको भगवान् शंकरकी आराधनाके लिये भेजा। उन्होंने गन्धमादन पर्वतपर जाकर आराधनाद्वारा भगवान् शिवको सन्तुष्ट किया। सन्तुष्ट होनेपर शंकरजी बोले—'राजेन्द्र! तुम अवन्तीपुरीको जाओ। वहाँ तुम्हें सुन्दर पुत्रकी प्राप्ति होगी। मेरे आदेशसे बादल उस मरुप्राय प्रदेशमें कुशस्थलीके निकट जायँगे और वहीं तुम्हें चारों समुद्र एकत्र दिखायी देंगे। नरश्रेष्ठ! तुम्हारे प्रार्थना करनेपर वे सभी समुद्र अंशकलाद्वारा वहाँ सदा निवास करेंगे।' ऐसा कहकर महादेवजी अन्तर्धान हो गये। तब राजा सुद्युम्न अपनी पत्नीके साथ कुशस्थलीमें गये और वहाँ उन्होंने राजस्थलके समीप चारों समुद्रोंको आया हुआ देखा। देखकर उन सबको नमस्कार किया। सुद्युम्नको नमस्कार करते देख वे समुद्र बोले—'सुव्रत! कोई उत्तम वरदान माँगो।' तब उन्होंने समस्त शुभ लक्षणोंसे युक्त पुत्र माँगा और इस प्रकार कहा—'जबतक यह पृथ्वी स्थित है, तबतक इस राजस्थलके समीप आप सब लोग निवास करें।'

समुद्रोंने कहा—राजन्! जबतक इस कल्पका अन्त न हो जायगा, तबतक हम सब लोग यहीं स्थित रहेंगे और हमारे जलमें स्नान करनेमात्रसे तुम्हें समस्त शुभ लक्षणोंसे युक्त पुत्रकी प्राप्ति होगी। इसलिये यहाँ स्नान करो।

व्यासजी! इस प्रकार राजा सुद्युम्नने अवन्तीपुरीमें चारो समुद्रोंको उतारा है। जो वहाँकी यात्रा करता है, उसके पुण्यफलका वर्णन सुनो। मनुष्यको चाहिये कि वह महापुण्यमय क्षार-समुद्रमें स्नान करके भक्तिपूर्वक पितरोंका श्राद्ध करे। फिर स्थलभागमें विद्यमान पार्वतीवल्लभ महादेवजीकी पूजा करे। तत्पश्चात् ताँबेका एक पात्र लेकर उसे नमकसे भर दे और उसमें कुछ सुवर्ण रखकर वेदवेत्ता ब्राह्मणको दान कर दे। उसके बाद सप्तधान्यसे युक्त और वस्त्रसे वेष्टित बाँसके पात्रमें फल और दक्षिणा रखकर यत्नपूर्वक अर्घ्य प्रदान करे। तदनन्तर क्षीरसागरमें जाकर पूर्ववत् स्नान करे और ताम्रके पात्रमें दूध भरकर दान करे। फिर दधिसमुद्रमें स्नान करके शुभ दही-भात दान करे। पुनः इक्षुसमुद्रमें स्नान करके ब्राह्मणको गुड़ समर्पित करे। इस प्रकार यात्रा करके दूध देनेवाली गौका दान करे। जो इस विधिसे राजस्थलके समीप यात्रा करता है, वह कल्याणमयी लक्ष्मी और सुन्दर पुत्र पाता है तथा मरनेपर स्वर्गलोकमें जाता है।

शंकरवापी, शंकरादित्य, गन्धवती नदी, हरसिद्धि देवी, वटयक्षिणी, पिशाचतीर्थ, शिप्रागुप्तेश्वर आदि तथा हनुमत्केश्वरकी महिमा

सनत्कुमारजी कहते हैं—व्यासजी! क्रीड़ा करते हुए भगवान् शंकरने 'शंकरवापी' नामक एक शुभ महातीर्थका निर्माण किया है। जो मनुष्य रविवारयुक्त अष्टमीको उक्त शंकरवापीमें पूर्व आदि दिशाओंके क्रमसे सभी दिशाओं और कोणोंमें एवं वापीके मध्यभागमें भी स्नान करके ब्राह्मणोंको

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

हविष्यान्नयुक्त नूतन कमण्डलु देता है और उन्हें शाक एवं मूल-फल अर्पण करता है, वह इहलोक और परलोकमें जो सम्पूर्ण भोगोंसे सम्पन्न स्थान है, वहाँ जाता और उत्तम ऐश्वर्य भोगता है।

तदनन्तर देवदेवेश्वर पिनाकपाणि भगवान् शिवने पवित्र भावसे देवाधिदेव दिवाकरका स्तवन किया। इससे सन्तुष्ट होकर दिवानाथ सूर्य वहाँ आये और इस प्रकार बोले—'भूतनाथ! आप मुझसे वर माँगिये।' भगवान् शिव बोले—'देव! आप समस्त देहधारियोंके हितके लिये यहाँ एक अंशसे स्थित होइये।' भगवान् शंकरका यह वचन सुनकर सूर्यदेवने वहाँ अवतार लिया। सम्पूर्ण लोकोंको शान्ति प्रदान करनेवाले देवेश्वर सूर्य वहाँ शंकरादित्यके नामसे प्रसिद्ध हैं। उस समय देवगण विस्मित होकर कहने लगे—'अहो! यह स्थान धन्य है, जहाँ साक्षात् भगवान् शिव विराजमान हैं और सूर्यदेव भी इस तीर्थका माहात्म्य बढ़ानेके लिये यहीं आकर बस गये हैं।' तदनन्तर ब्रह्मा आदि देवता शंकरादित्यकी स्थापना और पूजा आदि करके बोले—'प्रभो! जो मनुष्य आपकी स्तुति करेंगे, उन्हें जरा और मृत्युका कष्ट नहीं भोगना पड़ेगा। शंकरादित्यके दर्शन करनेवालेको कभी आधि-व्याधि और दारिद्र्य, रोग और बन्धु-वियोग आदि नहीं होते।'

सनत्कुमारजी कहते हैं—एक समय भगवान् महेश्वरने कपाल धोनेके लिये शुद्ध जल लेकर उससे कपालको अच्छी तरह धोकर उस जलको पृथ्वीपर फेंक दिया। वहीं त्रिभुवन-विख्यात गन्धवती नामवाली पुण्य नदी प्रकट हुई। उसमें स्नान करना सदा ही उत्तम है, ऐसा साक्षात् महादेवजीने कहा है। वहाँ किया हुआ श्राद्ध और तर्पण सब अक्षय होता है। जो मनुष्य वहाँ चन्द्रग्रहणमें स्नान करके पिण्डदान देता है, उसके पितर बारह वर्षोंतक तृप्त रहते हैं। काशी और गया आदि तीर्थोंमें जो एक मासमें तृप्ति होती है, वह यहाँ तत्काल हो जायगी और सन्तुष्ट हुए पितर उन मनुष्योंको मनोवांछित सिद्धिका वरदान देंगे। वहाँ दशाश्वमेध तीर्थमें स्नान करके शिवजीका दर्शन करनेपर मनुष्य दस अश्वमेध-यज्ञोंका फल पाता है।

अब मैं हरसिद्धि देवीका माहात्म्य बतलाऊँगा, जो उत्तम सिद्धि देनेवाली हैं। पूर्वकालमें चण्ड और प्रचण्ड नामवाले दो महाबली दानव स्वर्गलोकको उजाड़कर कैलास पर्वतपर आये। वहाँ उन्होंने दाहिने हाथमें पिनाक और खट्वांग लिये हुए और दूसरे हाथमें 'पाँसा' उठाये हुए भगवान् सदाशिवको देखा। तब वे दैत्य शिवजीके पार्षदोंको पीड़ा देने लगे। यह देख नन्दीने उन्हें रोका। उनके मना करनेपर उन दानवोंने अपने-अपने त्रिशूलोंसे एक ही साथ नन्दीके दायें और बायें पार्श्वमें आघात किया। नन्दी दोनों ओरसे विदीर्ण हो गये और उनके अंगोंसे रक्तकी बड़ी भारी धारा बह चली। उन्हें घायल हुआ देख भगवान् शिवने देवीसे कहा—'इन दोनों महादैत्योंको मार डालना चाहिये।' देवीने कहा—'अभी मारती हूँ।' इतना कहते-कहते वे दोनों बलाभिमानी दानव देवीके हाथसे मरे हुए दिखायी दिये। तब भगवान् हरने कहा—'चण्डि! तुमने दोनों दुष्ट दानवोंका तत्काल संहार किया है, इसलिये लोकमें तुम 'हरसिद्धि' के नामसे विख्यात होओगी। जो मनुष्य हरसिद्धि देवीका परम भक्तिपूर्वक दर्शन करता है, वह अक्षय भोग पाता और मृत्युके पश्चात् शिवधामको जाता है।'

जो मनुष्य भक्तिपूर्वक एक महीनेतक प्रतिदिन भगवती वटयक्षिणीका दर्शन करता है और धतूरके फूलोंसे उनकी पूजा करता है, उसकी सिद्धि कभी क्षीण नहीं होती।

जो मनुष्य पिशाचतीर्थमें विशेषत: चतुर्दशीको स्नान करके भक्तिपूर्वक तिलदान देता है, वह कभी पिशाच नहीं होता। इतना ही नहीं, उसका कुल भी पिशाचतासे मुक्त हो जाता है। जिसका नाम लेकर मनुष्य वहाँ स्नान करता है, वह भी पिशाचतासे छुटकारा पा जाता है। शिवभक्त एवं जितेन्द्रिय मनुष्य 'शिप्रागुप्तेश्वर' का दर्शन करके सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। जो मनुष्य

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

स्नान करके भक्तिपूर्वक अगस्त्येश्वरका दर्शन करता है, वह यमराजके घरमें न जाकर रुद्रलोकको जाता है। जो मनुष्य शिप्रामें स्नान करके ढुण्ढेश्वर शिवका दर्शन करता है, वह अश्वमेध-यज्ञका फल पाता है। पूर्वकालमें महादेवजीने यहाँ डमरू बजाया था, इसलिये वे डमरुकेश्वरके नामसे प्रसिद्ध हुए। जो भक्तिपूर्वक डमरुकेश्वर महादेवका दर्शन करता है, उसे रोगका भय नहीं होता और वह मरनेपर शिवलोकको जाता है। जो मानव भक्तिके साथ अनादिकल्पेश्वरका दर्शन करता है, वह स्वर्गलोकका राज्य पाता है। जो सिद्धेश्वर, वीरभद्र और चण्डिकाका दर्शन करता है, वह सिद्धि और सर्वत्र विजय पाता है। त्रिविष्टपतीर्थमें स्नान करके स्वर्णजालेश्वरका दर्शन करनेके पश्चात् जो स्वर्ण (धतूर) से उनका पूजन करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। जो स्नानके पश्चात् भक्तिपूर्वक कर्कटेश्वर शिवका दर्शन करता है, उसे कभी सर्पसे भय और दरिद्रता नहीं होती। जो पराभक्तिपूर्वक सनातनी महामायाका दर्शन करता है, वह विष्णुमायासे मुक्त होकर परम पदको प्राप्त होता है। स्वर्गद्वारमें स्नान करके भैरव-देवका दर्शन करनेसे मनुष्य सौ यज्ञोंका फल पाता है।

जो शिव-सरोवरमें स्नान करके हनुमत्केश्वरका दर्शन करता है, वह कोटि सहस्र कल्पोंतक वायुलोकमें आनन्द भोगता है।

व्यासजी बोले—भगवन्! आपने जिस हनुमत्-केश्वरकी चर्चा की है, उनकी सनातन कथा कहिये।

सनत्कुमारजीने कहा—ब्रह्मन्! पूर्वकालमें रावण नामक सुप्रसिद्ध राक्षस हो चुका है, जो तीनों लोकोंके लिये कण्टक था। भगवान् विष्णुने श्रीरामचन्द्रजीका अवतार धारण करके उसे लंकामें मार गिराया। दुष्ट रावणका वध करके जनकनन्दिनी सीताको साथ ले वे वानर और भालुओंसहित अपनी नगरी अयोध्याको लौटे। वहाँ राज्य पाकर श्रीरामचन्द्रजी ऋषियोंसे घिरे हुए बैठते और कथा सुनते थे। एक दिन कथाके अन्तमें श्रीरामने मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यसे पूछा—'मुने! भगवान् शंकर और हनुमान्‌जीमें कौन अधिक बलवान् है।' तब मुनिवर अगस्त्यने दशरथनन्दन श्रीरामसे कहा—'प्रभो! युद्ध और शौर्यमें जैसे भगवान् महेश्वरकी कहीं उपमा नहीं है, उसी प्रकार वायुनन्दन हनुमान्‌जीको भी समझना चाहिये।'

यह सुनकर हनुमान्‌जीने मन-ही-मन सोचा—'मुनिवर अगस्त्यजीने श्रीरघुनाथजीके सामने मेरी उपमा शिवजीके साथ दी है, अतः अब मैं लंकापुरीमें राक्षसराज विभीषणसे एक शिवलिंग माँग लानेके लिये जाऊँगा।' इस निश्चयके अनुसार वे लंकामें जाकर विभीषणसे बोले—'महाभाग! तुम मुझे एक उत्तम शिवलिंग प्रदान करो।' राक्षसराज विभीषण बोले—'सुव्रत! रावणके द्वारा स्थापित किये हुए ये छः लिंग हैं। इनमेंसे जो तुम्हें प्रिय हो उसे बताओ, वही मैं तुम्हें दे दूँगा।'

तदनन्तर हनुमान्‌जीने मोतीके समान स्वच्छ एक शिवलिंगका हाथसे स्पर्श किया। विभीषण बोले—'महावीर! तुमने जिस शिवलिंगको ग्रहण किया है, वह मैंने तुम्हें दे दिया।' तत्पश्चात् उस महालिंगको लेकर हनुमान्‌जी निर्मल आकाशमार्गसे चले और सातवें दिन अवन्तीपुरीमें आ पहुँचे। वहाँ रुद्रसरोवरके तटपर उसे स्थापित करके उन्होंने सरोवरमें स्नान किया और महाकालजीकी पूजाके लिये जानेका विचार किया। उस समय हनुमान्‌जीने उस लिंगको उठा लेनेकी चेष्टा की, किंतु उठानेमें समर्थ न हुए। तब वहाँ स्थित हुए महादेवजीने प्रत्यक्ष दर्शन दे वायुनन्दन हनुमान्‌से कहा—'हनुमन्! तुम इस क्षेत्रमें अपने नामसे मेरी स्थापना करके पूजन करो। यह शिवलिंग संसारमें हनुमत्केश्वरके नामसे प्रसिद्ध होगा।' तब हनुमान्‌जीने पर्वतके समान ऊँचे उस शिवलिंगको वहीं स्थापित कर दिया। जो मनुष्य शनिवारको हनुमत्केश्वर शिवका दर्शन करता है, उसे शत्रुका भय नहीं होता और वह संग्राममें विजय पाता है।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

महाकालकी परिक्रमा, यात्रा और विभिन्न देवताओंके दर्शनका माहात्म्य

सनत्कुमारजी कहते हैं—व्यासजी! जो मनुष्य यमेश्वरका दर्शन करता और तिलमिश्रित जलसे उन्हें स्नान कराकर कुंकुमका अनुलेप दे कमल-पुष्पोंसे उनकी पूजा करता है, उसकी जहाँ कहीं भी मृत्यु क्यों न हुई हो, यमराज उसके लिये पिताके समान बर्ताव करनेवाले हो जाते हैं।

रुद्रसरोवर नामक तीर्थ तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध है। जो उस तीर्थमें स्नान करके कोटीश्वर शिवका दर्शन करता है, वह सब पापोंसे मुक्त होता और भगवान् शिवके लोकमें जाता है। कोटि तीर्थमें पितरोंके उद्देश्यसे जो कुछ दिया जाता है, वह सब कोटिगुना होकर उन्हें मिलता है। कोटि तीर्थमें नहाकर जो अविनाशी परब्रह्मका चिन्तन करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। कार्तिक अथवा वैशाखकी पूर्णिमाको सामयिक पुष्पों तथा सुन्दर वस्त्र एवं गन्ध आदिसे महादेवजीकी पूजा करे। कर्पूर, पुष्प, चन्दन तथा अगरु—इन सबको बराबर-बराबर लेकर सिलपर पीस ले और उसीका महाकालजीके श्रीअंगोंमें अनुलेपन करे। जो इस प्रकार उनकी आराधना करता है, वह उन्हींका पार्षद होता है।

रुद्रसरोवरमें स्नान करके कोटीश्वर शिवका दर्शन तथा वन्दन करनेके पश्चात् मनुष्य सनातन महाकालजीका दर्शन करनेके लिये जाय। गन्ध, पुष्प, नमस्कार आदि उपचारोंके द्वारा उन देवेश्वर शिवकी भलीभाँति आराधना करके प्रणाम करे। तत्पश्चात् कपालमोचन तीर्थको जाय। यह वही स्थान है, जहाँ देवेश्वर शिवने पृथ्वीपर कपाल रखा था। वहाँ कपाल रखते ही एक उत्तम शिवलिंग प्रकट हुआ, जो कपालमोचन कहलाया। वह सब पापोंका नाश करनेवाला है। वहाँ कृपणता छोड़कर सौ पल घीसे कपालमोचनको स्नान करावे। इतना सम्भव न हो तो पचास, पचीस अथवा साढ़े बारह पल घीसे भी स्नान करावे। जो ऐसा करता है, वह आयु पूर्ण होनेपर शिवलोकमें प्रतिष्ठित होता है। तत्पश्चात् नमस्कार करके उत्तम कपिलेश्वर तीर्थमें जाय। कपिलेश्वरजीके दर्शनसे ब्रह्महत्यारा भी मुक्त हो जाता है। वहाँसे हनुमत्केश्वर देवका दर्शन करनेके लिये एकाग्रचित्तसे जाय। व्यासजी! हनुमत्केश्वरके दर्शनसे अतुल ऐश्वर्यकी प्राप्ति होती है। तदनन्तर सनातन पिप्पलाद महादेवजीके समीप जाय, जिनके दर्शनमात्रसे मुक्ति हो जाती है। तदनन्तर भक्ति और श्रद्धाके साथ स्वप्नेश्वरका दर्शन करनेके लिये जाय। स्वप्नेश्वरदेवके दर्शनसे दुःस्वप्नका नाश होता है। वहाँसे सब ओर मुखवाले विश्वतोमुख ईशान महादेवजीके पास जाय, जिनके दर्शनमात्रसे मनुष्य सम्पूर्ण विश्वका स्वामी होता है। तत्पश्चात् क्रोधको जीतकर इन्द्रियोंको वशमें रखते हुए सोमेश्वरका दर्शन करनेके लिये जाय। उनके दर्शनसे मनुष्य कुष्ठ रोग आदि दोषोंसे मुक्त हो जाता है। व्यासजी! वहाँसे एकाग्रचित्त होकर मनुष्य वैश्वानरेश्वरके समीप जाय। उनके दर्शनसे इहलोकमें मनुष्यका सदा अभ्युदय होता है। इसके बाद हाथमें बीजपूरक (बिजौरा नीबू) धारण करनेवाले लकुलीशके समीप जाय। उनके दर्शनसे रुद्रत्व प्राप्त होता है। तत्पश्चात् गणपेश्वर महादेवकी सेवामें जाय, जिनके दर्शनमात्रसे सब प्रकारकी सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। वहाँसे वयोवृद्ध सनातन महाकालका दर्शन करनेके लिये जाय, जिनके दर्शनसे रोग, जरा और व्याधिका सर्वथा अभाव हो जाता है। तदनन्तर विघ्नोंका नाश करनेवाले प्राणीशदेवके समीप जाय और भक्तिपूर्वक एकाग्रचित्त हो सौ घड़ा जलसे उनको स्नान करावे। उनको स्नान करानेसे सब प्रकारकी सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं और उनके दर्शनसे स्वर्ग मिलता है। तत्पश्चात् उसी मार्गमें प्राप्त होनेवाले दण्डपाणिजीके समीप जाय, जिनके दर्शनमात्रसे यमलोक नहीं देखना पड़ता। तदनन्तर भक्ति और

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

श्रद्धाके साथ पुष्यदन्तका दर्शन करनेके लिये जाय। उनके दर्शनमात्रसे मनुष्य सब पातकोंसे छूट जाता है। तत्पश्चात् एकाग्रचित्त हो गुह्यमहाकालके समीप जाय, जिनके दर्शनमात्रसे मनुष्यको गुप्त पापोंसे छुटकारा मिल जाता है। वहाँसे उत्तम दुर्वासेश्वरके समीप जाय, जिनके दर्शनमात्रसे मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है। दुर्वासेश्वरके समीप श्वास रोककर चले और महादुर्गा गौरीके पास जाकर श्वास छोड़े। इसके बाद एकाग्रचित्त होकर देवीकी पूजा करे। इसके अनन्तर कायेश्वर नामसे प्रसिद्ध देवाधिदेव महेश्वरके समीप जाय, जिनके दर्शनमात्रसे यमलोकको देखनेका अवसर नहीं आता। वहाँसे वधिरेश्वरका दर्शन करनेके लिये जाय, जिनके दर्शनमात्रसे बहरापन दूर हो जाता है। तत्पश्चात् यात्रेश्वरके समीप जाय, जो यात्राके पूर्ण फलको देनेवाले हैं। वहाँ अपने नाम, स्थान और गोत्रका उच्चारण करना चाहिये। यदि नामका उच्चारण न करे तो उसकी यात्रा निष्फल होती है। यात्रेश्वरदेवके आगे एकाग्रचित्त होकर बैठे और भक्तियुक्त होकर बार-बार नमस्कार करके स्तुति बोले। स्तुतिके पश्चात् इस प्रकार कहे—

मया समर्पिता यात्रा त्वत्प्रसादान्महेश्वर।
संसारसागराद् घोरान्मामुद्धर जगत्पते॥

'महेश्वर! मैंने आपकी ही कृपासे यह यात्रा पूरी करके आपके चरणोंमें समर्पित की है। जगत्पते! इस घोर संसार-सागरसे मेरा उद्धार कीजिये।'

जो इस विधिसे भगवान् महाकालकी प्रदक्षिणा करता है, उसके द्वारा सातों द्वीपोंसे युक्त समस्त पृथ्वीकी परिक्रमा हो जाती है। श्रेष्ठ ब्राह्मणको दो लाख गोदान करनेसे जो फल होता है, वही देवाधिदेव महाकालकी एक बार प्रदक्षिणा करनेसे मिल जाता है। महाकालकी प्रदक्षिणा बड़ी भक्तिके साथ करनी चाहिये। इससे पग-पगपर अश्वमेध-यज्ञका फल मिलता है। यह मुझसे साक्षात् भगवान् शंकरने कहा है। जो इस प्रकार भगवान् शिवका चिन्तन करते हुए यात्रा पूरी करता है और वस्त्रसहित दक्षिणा देता है, वह सात जन्मोंमें किये हुए समस्त पापोंसे छूट जाता है। इस तरह यात्रा समाप्त करके मनुष्य अपने घर जाय और यात्रामें जो मुख्य-मुख्य देवता आते हैं, उनकी संख्याके अनुसार छब्बीस श्रेष्ठ ब्राह्मणों तथा शिवध्यानपरायण शिवभक्तोंको भोजन करावे। फिर वस्त्रसहित दक्षिणा देकर उनसे आशीर्वाद ले उन्हें विदा करे। तदनन्तर सब भृत्यवर्गके साथ स्वयं भोजन करे। दीनों, अनाथों, दरिद्रों, अन्धों और अंगविकल मनुष्योंको भी भोजन करावे। यह सब करनेसे एकाग्रचित्तवाला मनुष्य माता-पिताकी सौ पीढ़ियोंका उद्धार करके शिवलोकमें आनन्दका अनुभव करता है।

वाल्मीकिकी तपस्या और वाल्मीकेश्वरकी महिमा

सनत्कुमारजी कहते हैं—व्यासजी! जो मौन और ध्यानपरायण होकर भक्तिपूर्वक वाल्मीकेश्वर देवका पूजन करता है, वह उत्तम कवित्व-शक्तिको प्राप्त होता है।

व्यासजीने पूछा—भगवन्! भगवान् वाल्मीकेश्वर कौन हैं और वे यहाँ किस प्रकार प्रकट हुए हैं?

सनत्कुमारजीने कहा—विप्रवर! प्राचीन कालमें सुमति नामक एक भृगुवंशी ब्राह्मण थे। उनकी पत्नी कौशिकवंशकी कन्या थीं। सुमतिके एक पुत्र हुआ, जिसका नाम अग्निशर्मा रखा गया। वह पिताके बार-बार कहनेपर भी वेदाभ्यासमें मन नहीं लगाता था। एक बार उसके देशमें बहुत दिनोंतक वर्षा नहीं हुई। उस समय बहुत लोग दक्षिण दिशामें चले गये। विप्रवर सुमति भी अपने पुत्र और स्त्रीके साथ विदिशाके वनमें चले गये और वहाँ आश्रम बनाकर रहने लगे। वहाँ अग्निशर्माका लुटेरोंसे साथ हो गया; अतः जो भी उस मार्गसे आता, उसे वह पापात्मा मारता और लूट लेता था। उसको अपने ब्राह्मणत्वकी स्मृति नहीं रही। वेदका अध्ययन जाता रहा, गोत्रका

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

ध्यान चला गया और वेद-शास्त्रोंकी सुधि भी जाती रही। किसी समय तीर्थयात्राके प्रसंगसे उत्तम व्रतका पालन करनेवाले सप्तर्षि उस मार्गपर आ निकले। अग्निशर्माने उन्हें देखकर मारनेकी इच्छासे कहा—'ये सब वस्त्र उतार दो, छाता और जूता भी रख दो।' उसकी यह बात सुनकर अत्रि बोले—'तुम्हारे हृदयमें हमें पीड़ा देनेका विचार कैसे उत्पन्न हो रहा है? हम तपस्वी हैं और तीर्थयात्राके लिये जा रहे हैं।'

अग्निशर्माने कहा—मेरे माता-पिता, पुत्र और पत्नी हैं। उन सबका पालन-पोषण मैं ही करता हूँ। इसलिये मेरे हृदयमें यह विचार प्रकट हुआ है।

अत्रि बोले—तुम अपने पितासे जाकर पूछो तो सही कि मैं आपलोगोंके लिये पाप करता हूँ, यह पाप किसको लगेगा। यदि वे यह पाप करनेकी आज्ञा न दें, तब तुम व्यर्थ प्राणियोंका वध न करो।

अग्निशर्मा बोला—अबतक तो कभी मैंने उन लोगोंसे ऐसी बात नहीं पूछी थी। आज आपलोगोंके कहनेसे मेरी समझमें यह बात आयी है। अब मैं उन सबसे जाकर पूछता हूँ। देखूँ किसका कैसा भाव है? जबतक मैं लौटकर नहीं आता, तबतक आपलोग यहीं रहें।

ऐसा कहकर अग्निशर्मा तुरंत अपने पिताके समीप गया और बोला—'पिताजी! धर्मका नाश करने और जीवोंको पीड़ा देनेसे बड़ा भारी पाप देखा जाता है (और मुझे जीविकाके लिये यही सब पाप करना पड़ता है)। बताइये, यह पाप किसको लगेगा?' पिता और माताने उत्तर दिया—'तुम्हारे पापसे हम दोनोंका कोई सम्बन्ध नहीं है। तुम करते हो, अतः तुम जानो। जो कुछ तुमने किया है, उसे फिर तुम्हें ही भोगना पड़ेगा।' उनका यह वचन सुनकर अग्निशर्माने अपनी पत्नीसे भी पूर्वोक्त बात पूछी। पत्नीने भी यही उत्तर दिया—'पापसे मेरा सम्बन्ध नहीं है, सब पाप तुम्हें ही लगेगा।' फिर उसने अपने पुत्रसे पूछा। पुत्र बोला—'मैं तो अभी बालक हूँ (मेरा आपके पापसे क्या सम्बन्ध?)।' उनकी बातचीत और व्यवहारको ठीक-ठीक समझकर अग्निशर्मा मन-ही-मन बोला—'हाय! मैं तो नष्ट हो गया। अब वे तपस्वी महात्मा ही मुझे शरण देनेवाले हैं।' फिर तो उसने उस डंडेको दूर फेंक दिया, जिससे कितने ही प्राणियोंका वध किया था और सिरके बाल बिखराये हुए वह तपस्वी महात्माओंके आगे जाकर खड़ा हुआ। वहाँ उनके चरणोंमें दण्डवत्-प्रणाम करके बोला—'तपोधनो! मेरे माता, पिता, पत्नी और पुत्र कोई नहीं हैं। सबने मुझे त्याग दिया है, अतः मैं आपलोगोंकी शरणमें आया हूँ। अब उत्तम उपदेश देकर आप नरकसे मेरा उद्धार करें।'

उसके इस प्रकार कहनेपर ऋषियोंने अत्रिजीसे कहा—मुने! आपके कथनसे ही इसको बोध प्राप्त हुआ है, अतः आप ही इसे अनुगृहीत करें। यह आपका शिष्य हो जाय। 'तथास्तु' कहकर अत्रिजी अग्निशर्मासे बोले—'तुम इस वृक्षके नीचे बैठकर इस प्रकार ध्यान करो। इस ध्यानयोगसे और महामन्त्र (रामनाम)-के जपसे तुम्हें परम सिद्धि प्राप्त होगी।' ऐसा कहकर वे सब ऋषि यथेष्ट स्थानको चले गये। अग्निशर्मा तेरह वर्षोंतक मुनिके बताये अनुसार ध्यानयोगमें संलग्न रहा। वह अविचल भावसे बैठा रहा और उसके ऊपर बाँबी जम गयी। तेरह वर्षोंके बाद जब वे सप्तर्षि पुनः उसी मार्गसे लौटे, तब उन्हें वल्मीकमेंसे उच्चारित होनेवाली रामनामकी ध्वनि सुनायी पड़ी। इससे उनको बड़ा विस्मय हुआ। उन्होंने काठकी कीलोंसे वह बाँबी खोदकर अग्निशर्माको देखा और उसे उठाया। उठकर उसने उन सभी श्रेष्ठ मुनियोंको, जो तपस्याके तेजसे उद्भासित हो रहे थे, प्रणाम किया और इस प्रकार कहा—'मुनिवरो! आपके ही प्रसादसे आज मैंने शुभ ज्ञान प्राप्त किया है। मैं पाप-पंकमें डूब रहा था, आपने मुझ दीनका उद्धार कर दिया है।'

उसकी यह बात सुनकर परम धर्मात्मा सप्तर्षि बोले—वत्स! तुम एकचित्त होकर दीर्घकालतक

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

वल्मीक (बाँबी) में बैठे रहे हो, अतः इस पृथ्वीपर तुम्हारा नाम 'वाल्मीकि' होगा। यों कहकर वे तपस्वी मुनि अपनी गन्तव्य दिशाकी ओर चल दिये। उनके चले जानेपर तपस्वीजनोंमें श्रेष्ठ वाल्मीकिने कुशस्थलीमें आकर महादेवजीकी आराधना की और उनसे कवित्वशक्ति पाकर एक मनोरम काव्यकी रचना की, जिसे 'रामायण' कहते हैं और जो कथा-साहित्यमें सबसे प्रथम माना गया है।

व्यासजी! तभीसे अवन्तीमें वाल्मीकेश्वर शिवकी ख्याति हुई, जो मनुष्योंको कवित्वशक्ति देनेवाले हैं।

शुक्रेश्वर आदिके पूजनकी महिमा, पंचेशानी यात्राका माहात्म्य तथा पद्मावती आदिके दर्शनका फल

सनत्कुमारजी कहते हैं—श्वेत पुष्प और चन्दनसे शुक्रेश्वरकी पूजा करके उन्हें भक्तिपूर्वक प्रणाम करनेसे मनुष्य रुद्रलोकमें प्रतिष्ठित होता है। व्यासजी! भीमेश्वरका दर्शन और भक्तिसे उनका पूजन करके मनुष्य युद्धमें, रात्रिमें, जलमें और अग्निमें कहीं भी भयको प्राप्त नहीं होता। जो मनुष्य तिलके तेलसे गर्गेश्वरको स्नान कराकर बिल्वपत्रसे उनका पूजन करता है, उसके धर्मकी वृद्धि होती है। जो चतुर्दशीको उपवास करके एक प्रस्थ तिलके जलसे गर्गेश्वरको नहलाकर तिलोंसे ही उनकी पूजा करता है, वह सदा सौख्यका भागी होता है। कामेश्वरका कुंकुम, चन्दन आदिसे भलीभाँति पूजन करके मनुष्य इच्छानुसार चलनेवाले विमानके द्वारा निःसन्देह स्वर्गलोकको जाता है। कार्तिक शुक्लपक्षकी नवमी तिथिमें चूडामणि देवको नमस्कार करके मनुष्य कभी विपरीत योनिमें नहीं जाता और उसकी बुद्धि सदा धर्ममें लगी रहती है। कृष्णपक्षकी अष्टमीको उपवास करके जो मनुष्य चण्डेश्वरजीकी पूजा करता है, वह निर्माल्य-लंघनजनित पाप-तापसे कभी लिप्त नहीं होता। महादेवजीके इन सब पवित्र तीर्थोंकी यात्रा करके विशुद्ध चित्तवाला मनुष्य सदाशिवके मनोहर धामको प्राप्त होता है।

जो मानव इस महाकाल-क्षेत्रमें निवास करते हैं, वे मृत्युके पश्चात् समस्त कामनाओंकी पूर्ति करनेवाले विमानोंद्वारा रुद्रलोकको जाते हैं। कृष्णपक्षकी चतुर्दशी अथवा अमावास्याको एक दिन उपवास करके जो मनुष्य महेश्वरके ध्यानपूर्वक प्रतिलोम और अनुलोम-क्रमसे पंचेशानी यात्रा करते हुए पाँचों ईशान-विग्रहोंको नमस्कार करता है, वह बहुत जन्मोंके किये हुए समस्त पापोंसे छुटकारा पा जाता है और वह इसी शरीरसे रुद्रलोकको जाता है।

पंचेशानी यात्रा इस प्रकार की जाती है—एकादशीको प्रातःकाल एकाग्रचित्त हो रुद्रसरोवरमें स्नान करे। तत्पश्चात् श्राद्ध करके महाकालेश्वरको प्रणाम करे। फिर पिंगलेश्वरके समीप जाकर वहाँ स्नान और श्राद्ध करे। तदनन्तर पिंगलेश्वर गणेशजीके समीप जाकर गन्ध, पुष्प और धूप आदिसे उनका पूजन करे। वहाँसे लौटकर फिर महाकालेश्वरके समीप आकर स्नान करे। स्नानके पश्चात् जितेन्द्रिय पुरुष स्वयं प्रकट हुए सनातन देवदेवेश्वर महाकालका पूजन करे। वहीं ईशानके समीप रात्रिमें भोजन करके महेश्वरका ध्यान करते हुए भूमिपर शयन करे। इस प्रकार रात्रि बितानेके अनन्तर द्वादशीको प्रातःकाल उठकर स्नानके पश्चात् पूर्ववत् सब कुछ करे। कायावरोहणतीर्थमें जाकर पिंगलेश्वरकी ही भाँति पूजा करे। इसी प्रकार त्रयोदशीको भी यात्रा करके पश्चिममें बिल्वेश्वरका पूजन करे। चतुर्दशीको उत्तर दिशामें उत्तरेश्वरका पूजन करे। फिर अमावास्यामें स्नान करके पवित्र हो महाकालेश्वरके समीप जाकर गन्ध, पुष्प, धूप और भाँति-भाँतिके नैवेद्योंद्वारा उनका पूजन करे। गीत, नृत्य

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

आदि एवं प्रणाम करके उनसे क्षमा-प्रार्थना करे। इस प्रकार यात्रा करके अपने घर जाय और वहाँ शिवभक्तिपरायण पाँच ब्राह्मणोंको भोजन करावे। व्यासजी! जो मनुष्य ऐसा करता है, वह स्वर्गलोकमें आनन्दका भागी होता है।

जो नियमपूर्वक कुशस्थलीकी परिक्रमा करता है, उसके द्वारा सात द्वीपोंवाली वसुन्धराकी परिक्रमा हो जाती है। जो मनुष्य पद्मावतीजीका दर्शन और कमलके पुष्पोंद्वारा उनका पूजन करता तथा धूप और नैवेद्य चढ़ाता है, वह मृत्युके पश्चात् ब्रह्मलोकमें जाता है। जो सुवर्णके समान पीले रंगवाले पुष्पोंसे महाभक्तिपूर्वक स्वर्णशृंगाटिका देवीकी पूजा करता है, वह शिवलोकको जाता है। जो त्रिभुवन-विख्यात अवन्ती देवीका दर्शन करता है, वह इच्छानुसार चलनेवाले विमानद्वारा इन्द्रलोकको जाता है। जो भक्तिपूर्वक कमलके फूलोंसे अमरावती देवीका पूजन करता है, वह स्वर्गमें देवताओंके साथ सदा आनन्द भोगता है। जो एकाग्रचित्त हो भक्तिपूर्वक उज्जयिनी देवीका दर्शन करता है, वह रुद्रलोकमें सम्पूर्ण ऐश्वर्योंसे सम्पन्न हो प्रतिष्ठित होता है। जो भगवान् शिवमें भक्ति रखते हुए विशाला देवीका दर्शन करता है, वह कायिक, वाचिक और मानसिक त्रिविध पापोंसे मुक्त हो जाता है।

कृष्ण पक्षकी अष्टमी तिथिको उपवास करके जितेन्द्रिय, पवित्र एवं जितात्मा होकर किसीके साथ भी वार्तालाप न करे—मौन रहे। इस प्रकार रहकर जो अक्रूरेश्वर देवका दर्शन और पूजन करता है, वह रुद्रलोकको प्राप्त होता है। जो स्नान करके पवित्र हो, इन्द्रियोंको वशमें रखते हुए ब्रह्माजीका दर्शन करता है, वह घोर पातकसे मुक्त हो ब्रह्मलोकको जाता है।

अंकपादतीर्थकी महिमा, श्रीकृष्णके द्वारा मरे हुए गुरुपुत्रके लाये जानेकी कथा

सनत्कुमारजी कहते हैं—जहाँ भगवान् महाकाल हैं, शिप्रा नदी है, अत्यन्त निर्मल गति प्राप्त होती है और जिस उज्जयिनीमें विशालाक्षी देवीका दर्शन प्राप्त होता है, वहाँका निवास किसको नहीं भाता है। जो मनुष्य महानदी शिप्रामें स्नान करके भगवान् महाकालको नमस्कार करता है, वह मृत्युका शोक नहीं करता। महाकाल क्षेत्रमें मरा हुआ कीट और पतंग भी भगवान् शिवका सेवक होता है। अवन्तीमें अंकपाद नामक तीर्थके भीतर श्रीबलराम और श्रीकृष्णका दर्शन करे। उन दोनोंके दर्शनमात्रसे मनुष्य यमलोकको नहीं देखता।

व्यासजीने पूछा—महामुने! वे दोनों बलराम और श्रीकृष्ण अंकपाद नामक तीर्थमें कैसे गये?

सनत्कुमारजीने कहा—मुने! बलराम और श्रीकृष्ण—ये दोनों भाई भगवान्‌के अवतार थे और इस पृथ्वीका भार उतारनेके लिये यदुकुलमें प्रकट हुए थे। उन दोनोंका रूप दिव्य था। दोनों ही बड़े तेजस्वी पुरुष थे। यदुश्रेष्ठ श्रीकृष्णने कंस और चाणूरको मारकर उग्रसेनको यदुकुलके राजपर अभिषिक्त किया और पूछा—'राजन्! अब मेरे लिये क्या आज्ञा है?' उनके ऐसा कहनेपर राजा उग्रसेन बोले—'कृष्ण! मेरा सब कार्य सिद्ध है, तुम्हारे रहते मेरे लिये कोई भी वस्तु दुर्लभ नहीं है। अब तुम दोनों उज्जयिनी पुरीमें जाकर विद्या पढ़ो।' राजाका यह आदेश पाकर बलराम और श्रीकृष्ण आचार्य सान्दीपनि मुनिके घर गये। वहाँ जाकर उन्होंने चारों वेदोंको कण्ठस्थ किया, सम्पूर्ण आचार-विचारका ज्ञान प्राप्त किया और रहस्य तथा संहारसहित धनुर्वेदकी शिक्षा प्राप्त की। यह सारा ज्ञान उन्होंने चौंसठ दिन-रातमें ही प्राप्त कर लिया। सान्दीपनि मुनिने उन दोनोंका यह असम्भव एवं अलौकिक कर्म देखकर सोचा,

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

जान पड़ता है इन दोनोंके रूपमें साक्षात् सूर्य और चन्द्रमा आ गये हैं। तदनन्तर वे अपने शिष्योंके साथ स्नान करनेके लिये महाकाल तीर्थमें गये। उन शिष्योंके साथ बलराम और श्रीकृष्ण भी थे। वहाँ उन दोनों भाइयोंने जब भगवान् महाकालको प्रणाम किया, तब वे साक्षात् प्रकट होकर उनसे बोले—'प्रभो! तुम सम्पूर्ण देवताओंके स्वामी हो। मनुष्यरूपमें अवतीर्ण हुए तुम्हारे द्वारा साधु पुरुषों और अज्ञानी जीवोंको भी सदा सुख ही प्राप्त हुआ है तथा मनुष्योंको पीड़ा देनेवाले राजा कंस आदि बलाभिमानी दैत्योंको तुम दोनोंने मार गिराया है। अब तुम्हें मुनियों, सिद्धों और देवताओंका पालन करना चाहिये।'

'बहुत अच्छा, ऐसा ही करूँगा'—ऐसा कहकर विश्ववन्द्य भगवान् श्रीकृष्ण वहाँसे चले गये। अपना अध्ययन पूरा करके कृतकृत्य हुए श्रीकृष्ण और बलरामने सान्दीपनि मुनिसे हर्षमें भरकर कहा—'आचार्य! श्रीचरणोंकी सेवामें गुरुदक्षिणाके रूपमें हम क्या दें।' उनका यह प्रिय वचन सुनकर गुरुने प्रसन्न होकर कहा—'मेरे एक पुत्र पैदा हुआ था। उसे तीर्थयात्रामें प्रभासक्षेत्रके भीतर समुद्रके जलमें एक जल-जन्तुने मार डाला। मेरे उसी पुत्रको तुम ले आओ।'

'बहुत अच्छा' कहकर श्रीकृष्ण बलरामजीके साथ चले गये। प्रभासक्षेत्रमें समुद्रने उनसे कहा—'भगवन्! मेरे जलमें पंचजन नामक एक महादैत्य रहता है। उसीने तिमिका रूप धारण करके उस बालकको खा लिया है।' तब ग्राहरूपी उस महाबली पंचजनको मारकर श्रीकृष्णने उसके उदरमें स्थित शंखको ग्रहण किया। उसके पेटमें जब बालक नहीं दिखायी दिया, तब वे वरुणलोकमें गये और वरुणदेवसे बोले—'भगवन्! मुझे एक महान् रथ दीजिये, जिसपर आरूढ़ होकर मैं प्रेतराज यमका दर्शन करूँ।' यह सुनकर वरुणजीने प्रसन्नचित्त होकर श्रीकृष्णको रथ प्रदान किया। उस रथको देखकर श्रीकृष्ण और बलराम बड़े प्रसन्न हुए और उसकी परिक्रमा करके बड़े भाईके साथ श्रीकृष्णचन्द्र उसपर आरूढ़ हुए। तदनन्तर वे यमलोकको लक्ष्य करके दक्षिण दिशाकी ओर गये। सहस्रों किरणोंसे आवृत यमपुरीको देखकर भगवान् श्रीकृष्णने शंख हाथमें लिया और उसे खूब जोरसे बजाया। उसकी ध्वनिसे समस्त यमलोकवासी भयभीत हो गये। श्रीकृष्णके दर्शनसे नरक-यातना भोगनेवाले पापियोंको भी सुख प्राप्त हुआ और उन नरकोंमें जलती हुई आग स्वतः बुझ गयी। जगदीश्वर श्रीकृष्णके नरकोंके समीप पदार्पण करनेपर सबके पापोंका नाश हो गया। सभी पापी नरकसे छूट गये और अक्षय धामको प्राप्त हो गये। उस समय सब नरक सूने हो गये। यह देख यमराजके दूतोंने नरकोंकी ओर जानेसे उनको रोका।

दूत बोले—वीरवर! इस मार्गसे अपना रथ न लाइये; क्योंकि यहाँ परस्त्रीहरण, परधनहरण करनेवाले पापी अपने पापके फलसे यमराजकी आज्ञाके अनुसार अधोगतिको प्राप्त हुए हैं। जिन्हें करोड़ों वर्षोंमें नरकसे छूटना चाहिये, वे आपका दर्शन करके तत्काल ही स्वर्गलोकको जा पहुँचे हैं।

यमदूतोंकी यह बात सुनकर श्रीकृष्णने दयासे आर्द्र होकर कहा—यमदूतो! मैं इन पापी जीवोंका उद्धार करनेके लिये ही यहाँ आया हूँ। मैं सबके लिये यमलोकका निवारक और स्वर्गलोकका दाता हूँ। तुम मेरी बातें यमराजसे जाकर कहो। श्रीकृष्णका यह कथन सुनकर यमदूत बड़ी उतावलीके साथ यमराजके समीप गये और उनसे नारकी जीवोंके मुक्त हो जानेका सब समाचार कह सुनाया। दूतोंकी बात सुनकर यमराजको बड़ा क्रोध हुआ। उन्होंने श्रीकृष्ण-बलरामके साथ घोर युद्ध किया; परंतु पग-पगपर उन्हें पराजित ही होना पड़ा। अन्ततोगत्वा यमने अमोघ अस्त्र कालदण्डका प्रहार किया। उस जलते हुए कालदण्डको आते देख बलरामजीने लीलापूर्वक पकड़ लिया और पुनः उसे यमराजपर ही चलानेका विचार किया। इतनेमें ही ब्रह्माजी उन दोनोंके बीचमें आ गये और उन्होंने श्रीकृष्णको युद्धसे रोका। तत्पश्चात् बलरामजीसे कहा—'चराचर

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

जगत्‌को धारण करनेवाले वीरवर बलभद्रजी! आप इस कालास्त्रको यमराजके ऊपर न छोड़िये। इस संसारमें आपकी समानता करनेवाला कोई नहीं है। सम्पूर्ण विश्वका पालन करनेवाले भगवान् विष्णुको भी आप सदा अपनी गोदमें धारण करते हैं। भला आपके समान दूसरा कौन है, जो सम्पूर्ण जगत्‌का भार वहन करनेमें समर्थ हो। जो जगत्‌की सृष्टि, पालन और संहार करनेवाले जगदीश्वर हैं, उन एकमात्र विश्वनायक विष्णुको भी आप गोदमें लेकर लाड़-प्यार करते हैं। जगत्‌में आपकी स्तुति कर सकनेवाला कौन है? कौन आपके गुणोंको जान सकता है? हम तो भगवान् विष्णुकी नाभिसे प्रकट हुए एक कमलके निवासी हैं, अतः सदा आपके अंकमें ही रहते हैं। हमें आपकी महान् महिमाका ज्ञान कैसे हो सकता है?'

बलरामजीसे इस प्रकार कहकर चतुर्मुख ब्रह्माने पुनः भगवान् वासुदेवसे कहा—कृष्ण! कृष्ण! आप इस विकराल काल (यमराज)-पर कृपा कीजिये। आप सम्पूर्ण विश्वके एकमात्र अधीश्वर साक्षात् विष्णु हैं और नरक-समुद्रसे सबका उद्धार करनेवाले हैं। जगन्नाथ! यह आपको नहीं जानता। भगवन्! आपने ही पूर्वकालमें इसे यमके पदपर स्थापित किया था। प्रभो! पापी पुरुषोंको नरकमें ले जानेके लिये ही यमराजकी नियुक्ति हुई है। अतः जगदीश्वर! पुरुषोत्तम! आप इसके अपराधको क्षमा करें। भगवन्! यमराज आपका अपराधी है। इससे आप जो कुछ कहना चाहते हैं, वह कहिये।

ब्रह्माजीकी यह बात सुनकर श्रीकृष्णने कहा—पितामह! सुनिये। मेरे गुरु सान्दीपनि मुनिका पुत्र यहाँ लाया गया है। हम उसीके लिये यहाँ आये हैं। हमें अपने श्रेष्ठ गुरुको गुरु-दक्षिणा देनेके लिये वह बालक सौंप दीजिये। प्रभो! हम दोनोंने जो प्रतिज्ञा कर ली है, उसका पालन करवाइये।

यह सुनकर ब्रह्माजीने युद्धमें हारे हुए यमराजको बुलाकर कहा—ये विष्णुस्वरूप श्रीकृष्ण जो आज्ञा देते हैं उसका पालन करो। यह सुनकर धर्मराजने सान्दीपनि मुनिके पुत्रको श्रीकृष्णकी सेवामें अर्पित कर दिया। गुरुपुत्रको पाकर प्रसन्न हुए श्रीकृष्णने ब्रह्माजीसे कहा—'ब्रह्मन्! आजसे लेकर उज्जयिनीमें मेरे चरणोंसे चिह्नित जो अंकपाद नामक स्थान है, वहाँ मरे हुए मनुष्य यमराजका दर्शन नहीं करेंगे। महाकालके उत्तर भागमें पुरुषोत्तम, विश्वरूप, गोविन्द, शंखोद्धार तथा केशव—इन पाँचों विग्रहोंका जो कुशस्थलीमें दर्शन करेंगे, वे कभी नरकमें नहीं जायँगे। इसी प्रकार मेरे और बलरामजीके यहाँ आनेसे नरकोंमें पड़े हुए जीव घोर नरकसे मुक्त होकर सब-के-सब दिव्यलोकको प्राप्त होंगे।'

भगवान् श्रीकृष्णके ऐसा कहनेपर ब्रह्माजीने प्रसन्न होकर कहा—श्रीकृष्ण! आपने जो कुछ कहा है, वह सब पूरा हो। इस प्रकार बलभद्रसहित श्रीकृष्ण गुरुपुत्रको साथ लेकर श्रीब्रह्माजीसे पूछकर अपने रथपर सवार हुए और नरकमें पड़े हुए प्राणियोंके उद्धारके लिये उन्होंने पुनः शंखध्वनि की। उस शंखनादको सुनकर और श्रीकृष्णके स्मरणजनित पुण्यसे समस्त नारकी जीव दिव्य विमानोंपर चढ़कर स्वर्गलोकमें चले गये। यमराजने भी पुनः बलदेवजीसे अपना दण्ड लेकर नगरमें प्रवेश किया और ब्रह्माजी वहीं अन्तर्धान हो गये। तदनन्तर बलभद्रसहित श्रीकृष्ण शीघ्रगामी रथके द्वारा उज्जयिनीपुरीमें आये। वहाँ उन्होंने गुरुको उनका पुत्र समर्पित किया।

इस प्रकार वहाँ आये हुए सान्दीपनि मुनिके पुत्रको देखकर समस्त नगर-निवासियों तथा वहाँके राजाको बड़ा विस्मय हुआ और उन्होंने श्रीकृष्ण-बलरामको कोई श्रेष्ठ देवता मानकर उनका पूजन किया। वहाँ शंखी, विश्वरूप, माधव और चक्री—ये चार भगवान् विष्णुके क्षेत्र हैं और पाँचवाँ अंकपाद नामक क्षेत्र है। अब मैं इनकी यात्राका क्रम बतलाऊँगा। मन्दाकिनीमें स्नान करके बलराम और श्रीकृष्णका दर्शन करे। तत्पश्चात् शंखोद्धारतीर्थमें

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

स्नान करके पुनः उन्हीं दोनोंका दर्शन करे। उसके बाद कुण्डमें स्नान करके गोविन्दकी पूजा करे। फिर चक्री और शंखीभगवान्‌का दर्शन करके युगल अंकपादों (चरणचिह्नों)-का दर्शन करके विश्वरूपका दर्शन करे। विश्वरूपके आगे करीकुण्डमें विधिपूर्वक स्नान करनेके पश्चात् पूर्ववत् बलराम और श्रीकृष्णका दर्शन करे। तदनन्तर पुनः कुण्डमें स्नान करके गोविन्दजीकी पूजा करे। उसके बाद चक्रधारी श्रीकृष्ण और बलरामका दर्शन करके केशवके समीप जाय। शिप्राके जलमें स्नान करके मनुष्य भक्तिपूर्वक केशवकी पूजा करे। फिर वहाँसे अंकपादमें लौटकर वहीं रात्रि व्यतीत करे। प्रातःकाल स्नान आदिसे पवित्र हो वहाँ उत्तम व्रतका पालन करनेवाले पाँच ब्राह्मणोंको भोजन करावे। जो पुरुष द्वादशीको उपवास करके चन्दन, पुष्प, धूप तथा भाँति-भाँतिके नैवेद्योंद्वारा अंकपादजीकी पूजा करता है तथा जो वहाँ श्राद्ध करता है, वह सदैव वैकुण्ठधाममें निवास करता है।

लड्डुकप्रिय गणेश, कुसुमेश्वर, मार्कण्डेयेश्वर, ब्रह्माणी देवी, ब्रह्मेश्वर, यज्ञवापी, रूपकुण्ड, अनंगेश्वर तथा सोमेश्वरका माहात्म्य

सनत्कुमारजी कहते हैं—देवताओंने लड्डुओंसे विघ्नराज गणेशजीकी पूजा की थी, तबसे यहाँ गणेशजी लड्डुकप्रियके नामसे प्रसिद्ध हैं। जो भक्तिपूर्वक विघ्नराज गणेशजीकी पूजा करता है, उसे कभी विघ्नका सामना नहीं करना पड़ता। गणेशजी सन्तुष्ट होकर उस पुरुषकी सम्पूर्ण कामनाएँ पूरी कर देते हैं। चतुर्थीको केवल रातमें भोजन करनेका व्रत लेकर विशेषतः शिप्रा नदीमें स्नान करके रक्त वस्त्र धारण करे और लाल चन्दनके जलसे मन्त्रोच्चारणपूर्वक गणेशजीको स्नान करावे। फिर लाल चन्दनका अनुलेपन करके लाल फूलोंसे उनकी पूजा करे। धूप और उत्तम गन्ध निवेदन करे। नैवेद्यमें लड्डुओंका भोग लगावे। जो ऐसा करता है, वह मृत्युके पश्चात् शिवधामको जाता है।

जो सुरद्वारमें देवदानववन्दित कुसुमेश्वर शिवकी श्रद्धासे पूजा करता है, वह शिवलोकमें आनन्दका अनुभव करता है। जो देवाधिदेव जयेश्वर महादेवका दर्शन करता है, वह सब कार्योंमें विजयी होता है और अन्तमें शिवलोकको जाता है। यदि मनुष्य शिवद्वारमें शिवलिंगका अर्चन करे तो विमानद्वारा दिव्यलोकको जाता है और गणपतिका पद प्राप्त करता है। पूर्वकालमें महामुनि मार्कण्डेयजीने जहाँ बड़ी भारी तपस्या की थी, वहाँ भगवान् शंकरका दर्शन करके मनुष्य वाजपेय यज्ञका फल पाता है और वह सब पापोंसे शुद्ध होकर दीर्घायु होता है। जहाँ हंसवाहिनी ब्रह्माणी देवी स्थित हैं, वह महास्थान अवन्ती पुरीमें बहुत उत्तम माना गया है। वे भक्तोंकी आशा पूर्ण करती तथा जैसे माता अपने पुत्रका पालन करती है, उसी प्रकार भक्तोंका पालन करती हैं। सब प्रकारकी सिद्धि देनेवाली उन हंसवाहिनी देवीका गन्ध, पुष्प और नैवेद्योंद्वारा पूजन करे। जो ब्रह्मसरोवरमें स्नान करके ब्रह्मेश्वर शिवका दर्शन करता है, वह संसार-बन्धनसे मुक्त हो ब्रह्मलोकमें आनन्दका अनुभव करता है। जहाँ ब्रह्माजीने यज्ञ किया था, उस स्थानपर यज्ञके लिये जो कुण्ड बनाया गया था, उसका नाम यज्ञवापी है। उसमें स्नान करके पवित्र हो जो पशुपतिका दर्शन करता है, वह पशुयोनिमें पड़े हुए पितरोंका भी उद्धार कर देता है और स्वयं शिवलोकमें जाता है, जहाँ साक्षात् महेश्वर निवास करते हैं। रूपकुण्डमें स्नान करके मनुष्य रूपवान् होता है। जो अनंगकुण्डमें स्नान करके अनंग (कामदेव) द्वारा पूजित अनंगेश्वर महादेवकी पूजा करता है, वह मनोवांछित कामना प्राप्त करता है और मरनेके बाद शिवधामको जाता है। जो करीकुण्डमें नहाकर भगवान् विश्वरूपका पूजन

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो विष्णुलोकको जाता है। जो मनुष्य अजागन्धमें स्नान करके ब्रह्मेश्वर शिवका दर्शन करता है, वह ब्रह्महत्याके समान पापोंको तत्काल नष्ट कर देता है। जो चक्रतीर्थमें स्नान करके चक्रस्वामीकी पूजा करता है, वह इस पृथ्वीपर चक्रवर्ती राजा होता है। जो विधिपूर्वक स्नान करके सिद्धेश्वरका दर्शन करता है, वह इच्छानुसार चलनेवाले विमानके द्वारा रुद्रलोकमें जाता है। जो मनुष्य सोमवतीमें स्नान करके सोमेश्वर शिवका पूजन करता है, वह चन्द्रमाके समान निर्मल होकर चन्द्रलोकमें आनन्द भोगता है।

व्यासजीने पूछा—भगवन्! सोमवतीतीर्थ और सोमेश्वर लिंगका प्राकट्य किस प्रकार हुआ, इसको मैं यथार्थरूपसे सुनना चाहता हूँ।

सनत्कुमारजीने कहा—व्यास! सुनो, सम्पूर्ण लोकोंको तृप्ति प्रदान करनेवाले जो भगवान् सोम हैं, उनके पिता महाभाग अत्रिमुनि पूर्वकालमें उज्जयिनीपुरीमें रहकर तीन हजार दिव्य वर्षोंतक बड़ी भारी तपस्यामें लगे रहे। वे दोनों भुजाएँ ऊपर उठाकर ब्रह्मध्यानमें तत्पर हो तपस्या करते थे। उन महात्माका ब्रह्मतेज उनके नेत्रोंसे प्रकट हुआ और सम्पूर्ण दिशाओंको प्रकाशित करता हुआ ऊर्ध्वलोकतक फैल गया। जब कोई भी उसे धारण करनेमें समर्थ न हुआ, तब वह असह्य तेज सम्पूर्ण लोकोंको उद्भासित करता हुआ पृथ्वीपर गिर पड़ा। उसीसे शीतकिरणोंवाले सोम प्रकट हुए, जो सब लोगोंको प्रिय हैं। उसी तेजसे सोमा नामकी एक नदी भी उत्पन्न हुई, जो अमृतमय जलसे पूरित हो शिप्रा नदीमें जाकर मिल गयी। तबसे वह तीर्थ सोमवती-शिप्राके नामसे विख्यात है। सोमवती-शिप्रा अत्यन्त पुण्यदायिनी है। उसका दर्शन करके मनुष्य सब पापोंको त्याग देता है। मुने! सोमवती अमावास्याका योग आनेपर जो बुद्धिमान् मनुष्य सोमवती-शिप्रामें स्नान-दान, जप तथा होम करता है, उसका किया हुआ वह सब पुण्य अक्षय होता है। यहाँपर तिल और जलद्वारा तर्पण तथा पिण्डदान करनेसे पितरोंकी यथावत् तृप्ति होती है। शिप्रा नदी एवं सोमवतीके संगमका जल कोटि तीर्थोंका फल देनेवाला है। यदि अमावास्या और सोमवारका योग मिल जाय तब तो वह साक्षात् पितृतीर्थ (गया)-के समान हो जाता है। अमावास्या, सोमवार और व्यतीपात तीनोंका योग होनेपर सोमवतीतीर्थमें गयासे सौ गुना अधिक पुण्य कहा गया है।

चन्द्रमाको पृथ्वीपर गिरा हुआ देख जगद्‌गुरु ब्रह्माजीने उन्हें सम्पूर्ण लोकोंके हितकी इच्छासे रथपर बिठाया। उस रथपर ब्रह्माजीके साथ चन्द्रमाको देखकर सब देवताओंने प्रसन्नतापूर्वक स्तवन किया। उस समय चन्द्रमाका प्रकाशमान तेज पृथ्वीपर सब ओर गिरा। ब्रह्माजीने उस रथसे इक्कीस बार पृथ्वीकी परिक्रमा की। इससे चन्द्रमाका शीतल तेज सर्वत्र गिरा। वह तेज ही पृथ्वीसे अत्यन्त निर्मल ओषधियों (अन्न आदि)-के रूपमें उत्पन्न हुआ। उन्हीं ओषधियोंके द्वारा यह सम्पूर्ण विश्व तथा यहाँ रहनेवाली चार प्रकारकी प्रजा जीवन धारण करती है। तदनन्तर भगवान् सोमने प्रसन्न होकर दस हजार वर्षोंतक अत्यन्त दुःसह तप किया। उस तपस्यासे सन्तुष्ट हुए लोकपितामह ब्रह्माजीने सोमको आधिपत्य प्रदान किया। वे बीज, ओषधि और ब्राह्मणोंके राजा हुए। प्रचेताओंके पुत्र प्रजापति दक्षने अपनी सत्ताईस कन्याओंको, जो महान् व्रतका पालन करनेवाली तथा नक्षत्र नामसे प्रसिद्ध थीं, राजा सोमके साथ ब्याह दिया।

एक समय सोमवारके दिन सोमवती अमावास्याके योगमें राजा सोम महादेवजीके दर्शनकी इच्छासे अवन्ती पुरीमें आये। उन्होंने अपनी इन्द्रियोंको वशमें करके सोमवतीमें स्नान किया और सोमेश्वरकी पूजा की। उनकी भक्तिसे सन्तुष्ट होकर महादेवजीने कहा—'सोम! मेरी कृपासे तुम्हारा शरीर बहुत सुन्दर एवं कमनीय हो जायगा और आजसे यह मेरा विग्रह सोमेश्वर नामसे विख्यात होकर भोग

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

और मोक्ष देनेवाला होगा।' व्यासजी! इस प्रकार वह शिवलिंग और तीर्थ अत्यन्त दुर्लभ बताया गया है। जो श्रावणमासमें इन्द्रियोंको संयममें रखते हुए प्रतिदिन भगवान् सोमेश्वरका दर्शन करता है, वह प्रतिदिन सौराष्ट्रप्रदेशके ज्योतिर्मय लिंग सोमनाथकी पूजाका फल पाता है।

नरकोंका संक्षिप्त वर्णन, केदारेश्वर, जटेश्वर, इन्द्रेश्वर, कुण्डेश्वर, गोपेश्वर, आनन्देश्वर तथा रामेश्वरके दर्शन-पूजनका माहात्म्य

सनत्कुमारजी कहते हैं—नरकतीर्थमें स्नान करके भगवान् महेश्वरका दर्शन करनेसे मनुष्यको कभी नरक नहीं देखना पड़ता।

व्यासजीने पूछा—प्रभो! नरक कितने हैं? और किस स्थानपर उनकी स्थिति है? यह बतानेकी कृपा करें।

सनत्कुमारजीने कहा—व्यास! समस्त नरक पाताललोकमें स्थित हैं, जो सदैव दुःख देनेवाले हैं। सब जीव अपने-अपने पुण्योंका नाश होनेसे अपने-अपने कर्मोंके अनुसार अधोगतिको प्राप्त होते हैं। रौरव, शूकर, रौद्र, ताल, विनशक, तप्तकुम्भ, तप्तायस, महाज्वाल, कुम्भीपाक, क्रकचन, अतिदारुण, कृमिभुक्ति, रक्त, लालाभक्ष, गण्डक, अधोमुख, अस्थिभंग, यन्त्र-पीड़नक, सन्दंश, रुधिरांग, असिपत्र और कुभोजन इत्यादि सभी नरक अत्यन्त भयंकर हैं। यमराजके राज्यमें उन सबकी स्थिति है। उनका नाम सुन लेनेमात्रसे अत्यन्त भय हो जाता है। पापकर्मोंमें संलग्न रहनेवाले मनुष्य उनमें गिरते हैं और गिरे हुए जीव अपने कर्मोंके अनुसार उनमें पकाये जाते हैं। भाँति-भाँतिकी यातनाओंद्वारा उनके भयानक पापकर्मोंका क्षय होता है। तपायी हुई लोहेकी साँकलसे मनुष्योंके दोनों हाथ खूब कसकर बाँध दिये जाते हैं और बड़े-बड़े वृक्षोंके शिखरोंपर यमदूत उन्हें लटका देते हैं। वे अपने-अपने कर्मोंके लिये शोक करते हुए चुपचाप लटके रहते हैं और भयंकर यमदूत अग्निके समान कीलों, काँटों और लोह-दण्डोंसे उन पापात्माओंको मारते-पीटते रहते हैं। कभी क्षणभरमें वे आगसे तपाये जाते हैं और कभी काटकर सारे शरीरको जर्जर करके उन्हें सब ओर फेंक दिया जाता है। इस प्रकार उन नरकोंमें यातना दे-देकर पापी पुरुषोंको पकाया जाता है। यह यातना उन्हीं पापियोंको भोगनी पड़ती है, जो बहुत पाप करके उनके लिये कोई प्रायश्चित्त नहीं करते। जिस पुरुषको पाप करनेके बाद उसके लिये बहुत पश्चात्ताप होता है, उसकी पापशुद्धिके लिये एकमात्र भगवान् शिवका स्मरण ही सर्वोत्तम प्रायश्चित्त है। इसलिये दिन-रात पुरुषोत्तम शिवका स्मरण करनेवाला मनुष्य अपने समस्त पापोंका नाश करके शुद्ध हो जाता है, फिर उसे नरकमें नहीं जाना पड़ता।

जो मनुष्य यहाँ समस्त लोकोंमें विख्यात केदारतीर्थमें स्नान करके शुद्ध हो केदारेश्वर महादेवका दर्शन करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो शिवलोकमें परमानन्दका अनुभव करता है। जटाशृंगतीर्थमें स्नानसे पवित्र हो जितेन्द्रिय पुरुष यदि जटेश्वर शिवका दर्शन करे, तो वह सब पापोंसे छुटकारा पा जाता है। इन्द्रतीर्थमें स्नान करके इन्द्रेश्वर शिवका दर्शन करनेवाला मनुष्य भी सम्पूर्ण पापोंसे छूटकर इन्द्रलोकमें प्रतिष्ठित होता है। जो शिवजीके ध्यानमें तत्पर हो कुण्डेश्वरका दर्शन करता है, वह शिवदीक्षाका शुभ फल प्राप्त करता है। गोपतीर्थमें स्नान करके गोपेश्वरका दर्शन करनेवाला मनुष्य शिवलोकको जाता है। चिपिटातीर्थमें स्नान करके जो भगवान् शिवको प्रणाम करता है, वह पशु-पक्षियोंकी योनिमें जन्म नहीं लेता। विजयतीर्थमें नहाकर आनन्देश्वरकी पूजा करनेसे समस्त पापोंसे छूटा हुआ मानव स्वर्गलोकमें विजयी होता है।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

पूर्वकालमें श्रीरामचन्द्रजी सीता और लक्ष्मणके साथ चित्रकूटसे इस उज्जयिनी पुरीमें आये। यहाँ मुनिश्रेष्ठ परशुरामजीसे मिलकर उन्होंने पूछा—'महामुने! यहाँ कौन-कौनसे पुण्यतीर्थ हैं और कौन-सा क्षेत्र है?' श्रीरामचन्द्रजीका यह वचन सुनकर विप्रवर परशुरामजीने कहा—'रघुवंशकी वृद्धि करनेवाले वीर श्रीराम! प्राचीन कालमें अवन्ति देशके अन्तर्गत जो कुशस्थली नामकी भूमि थी, वही इस समय उज्जयिनीके नामसे प्रसिद्ध है। वहाँ जाकर तुम अपने पिता दशरथजीको पिण्डदानसे तृप्त करो। उस पुरीमें देवताओं और दानवोंके गुरु भगवान् महाकाल निवास करते हैं। वहाँ जो ब्राह्मण और महाबली क्षत्रिय जाते हैं, उन्हें उस परम पदकी प्राप्ति होती है, जहाँ साक्षात् भगवान् महेश्वर विराजमान हैं।'

यह सुनकर भगवान् श्रीरामचन्द्रजी, जहाँ पुण्यदायिनी शिप्रा नदी बहती है, उस अवन्ती पुरीमें आये। वहाँ स्नान करके उन्होंने अपने पितरोंका तर्पण किया। तत्पश्चात् वे महाकालजीका दर्शन करनेके लिये चले। इसी समय आकाशवाणीके द्वारा देवाधिदेव महादेवजीने कहा—'रघुनन्दन! तुम्हारा कल्याण हो, तुम अपने नामसे यहाँ मेरी स्थापना करो।' यह आकाशवाणी सुनकर श्रीरामने लक्ष्मणसे कहा—'सुमित्रानन्दन! भगवान् शिवने मुझपर अनुग्रह किया है, अतः इस तीर्थमें तुम रामेश्वर नामक शुभ शिवलिंगकी प्रतिष्ठा करो।' यह आज्ञा पाकर लक्ष्मणने वहाँ भगवान् शंकरको स्थापित किया। फिर शिवजीका पूजन करके श्रीराम, लक्ष्मण तथा जानकीजीने वहाँसे यात्रा की। जो मनुष्य रामतीर्थमें स्नान करके रामेश्वर शिवका दर्शन करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो विष्णुलोकको जाता है।

सौभाग्य आदि तीर्थोंकी महिमा, अर्जुनको इन्द्रसे सूर्यप्रतिमाकी प्राप्ति तथा अवन्तीमें उसकी स्थापना और उनके दर्शनका माहात्म्य

सनत्कुमारजी बोले—सौभाग्यतीर्थमें स्नान करके सौभाग्येश्वरका दर्शन करनेपर मनुष्य सब पापोंसे छूटकर परम सौभाग्य पाता है। घृततीर्थमें स्नान करके भगवान् शिवको घृतसे नहलावे और अग्निमें घृतकी आहुति दे। ऐसा करनेवाला मनुष्य रुद्रलोकमें प्रतिष्ठित होता है। देवताओं और दैत्योंसे वन्दित योगीश्वरी देवीका पूजन करके मनुष्य सब पापोंसे शुद्ध हो जाता है और परम उत्तम योगको प्राप्त होता है। शृंखावर्त तीर्थमें स्नान करके सब पापोंसे छूटा हुआ पुरुष धन-धान्यसे सम्पन्न हो निर्मल कुलमें जन्म लेता है। शुद्धोदकतीर्थमें चतुर्दशीको मुक्तिके लिये स्नान करनेवाला मनुष्य सुरेश्वर शिवका दर्शन करके मोक्ष प्राप्त कर लेता है। अवन्तीमें पत्तनेश्वर नामसे प्रसिद्ध भगवान् महेश्वर दर्शनीय हैं। जो मनुष्य गन्ध, पुष्प, धूप और दीप आदि मनोरम उपचारोंसे भाव-भक्तिके साथ उनकी विधिवत् पूजा करता है, उसके वंशका नाश नहीं होता है और अन्तमें वह शिवलोकको जाता है। पूर्वकालमें भगवान् सूर्यदेवने शिप्रा नदीके तटपर दुर्धर्ष नामसे प्रसिद्ध तीर्थका निर्माण किया है। जो मनुष्य सप्तमी, अष्टमी, रविवार और संक्रान्तिके दिन उसमें स्नान करके पवित्र हो तीन रात वहाँ उपवास करता है और शिप्रा नदीके तटपर स्थित भगवान् शिवका दर्शन एवं भक्ति-भावसे पूजन करता है, वह पिता-माताके वंशका भलीभाँति उद्धार करके भगवान् शिवके समीप जाता है। गोपीन्द्र नामसे प्रसिद्ध जो तीर्थ है, उसमें स्नान करके मनुष्य इन्द्रके तुल्य पराक्रमी होता और स्वर्गलोक प्राप्त करता है। जो उस तीर्थमें मृत्युको प्राप्त होते हैं, वे पुनः इस भूतलपर जन्म नहीं

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

लेते। गंगातीर्थमें ज्येष्ठ शुक्ला दशमीको स्नान करनेका विशेष फल बताया जाता है। जो मनुष्य गंगातीर्थमें स्नान करके पुष्करण्डकका दर्शन करता है, वह स्वर्गलोकमें सुखी होता है। उत्तरेश्वरतीर्थमें स्नान करके मानव शीघ्र ही अपने पितरोंका नरकसे उद्धार कर देता है और स्वयं भी स्वर्गलोकमें जाता है। भूतेश्वरमें स्नान करके मनुष्य भूतेश्वरजीका गन्ध, पुष्प और नैवेद्य आदिसे पूजन करे। इससे मृत्युके पश्चात् वह स्वर्गलोकको जाता है। जो मनुष्य मन और इन्द्रियोंको संयममें रखकर एकाग्रचित्त हो अम्बालिका देवीका दर्शन करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। जो गन्ध और पुष्पद्वारा देवेश्वर शिवका अर्चन करता है, उसे शिवलोकमें निवास प्राप्त होता है। जो मनुष्य पवित्र हो भगवान् पुण्येश्वरका दर्शन करता है, वह गणपतिपदको प्राप्त होता है। जो लुम्पेश्वरतीर्थमें स्नान करके भगवान् महेश्वरकी भलीभाँति पूजा करता है, वह नरकमें नहीं जाता, स्वर्गलोकमें पूजित होता है। जो स्थविरविनायक तीर्थमें स्नान करके गन्ध, पुष्प, धूप और भक्ष्य, भोज्य आदि सामग्रियोंसे गणेशजीकी पूजा करता है, वह मृत्युके पश्चात् शिवलोकमें जाता है। जो विद्वान् मानव नवनदीके समीप गन्ध, पुष्प, धूप आदिके द्वारा पार्वतीजीका पूजन करता है, वह अनुपम सौभाग्यका भागी होता है। प्रयागतीर्थमें स्नान करके जो प्रयागेश्वरका दर्शन करता है, वह सब लोकोंको लाँघकर भगवान् शिवके लोकमें प्रतिष्ठित होता है।

पूर्वकालमें भगवान् नर और नारायणने इस पृथ्वीपर श्रीकृष्ण और अर्जुनके रूपमें अवतार लिया था। श्रीकृष्णके अवतारका उद्देश्य कुछ और था और अर्जुन किसी अन्य हेतुसे ही प्रकट हुए थे। श्रीकृष्णने कंस आदि समस्त दानवोंका युद्धमें संहार कर डाला। तदनन्तर कुन्तीपुत्र अर्जुन इन्द्रसे अस्त्रविद्याकी प्राप्तिके लिये स्वर्गलोकमें गये। वहाँ अस्त्रविद्या प्राप्त कर लेनेपर वीरवर अर्जुनने देवराज इन्द्रसे गुरुदक्षिणा माँगनेके लिये कहा। तब देवराज इन्द्रने कहा—'अर्जुन! हिरण्यपुरमें निवास करनेवाले जो निवातकवच नामक उग्र दानव हैं, उनका शीघ्र वध करो, यही मेरे लिये गुरुदक्षिणा होगी।' तब अर्जुनने उन दुष्ट दानवोंके वधकी प्रतिज्ञा की और एक भयंकर रथपर आरूढ़ हो धनुष-बाण लेकर युद्धके लिये प्रस्थान किया। उन समस्त दानवोंका संहार करके पार्थने अत्यन्त दुष्कर पराक्रम दिखाया और सम्पूर्ण देवताओंको प्रसन्न किया। उस समय कृतकार्य हुए अर्जुनसे इन्द्रने कहा—'वीर! तुम कोई उत्तम वर माँगो।' तब अर्जुनने उन दो प्रतिमाओंको माँगा, जिनकी पूजा साक्षात् ब्रह्माजीने की थी।

यह सुनकर इन्द्र बोले—अर्जुन! इन दोनों प्रतिमाओंका महात्मा शंकरने लाल कमलके फूलोंद्वारा ब्रह्माके एक दिनतक पूजन किया है। इसी प्रकार पूर्वकालमें भगवान् विष्णुने तीनों लोकोंका पालन करनेके लिये सुगन्धित नीलकमलके फूलोंसे सहस्रों वर्षोंतक इनकी पूजा की है। प्रजापति ब्रह्माजीने भी सृष्टि-रचनाकी कामना लेकर एकाग्रचित्त हो लाल कमलके फूलोंसे इन युगल प्रतिमाओंका पूजन किया है। कुन्तीनन्दन! तुम इन्हें मृत्युलोकमें कैसे ले जाओगे। इन प्रतिमाओंके बिना तो यह स्वर्गलोक तिनकेके तुल्य हो जायगा।

अर्जुनने कहा—प्रभो! मैं तो इसी वरदानका अभिलाषी हूँ, मुझे दूसरी कोई वस्तु नहीं चाहिये।

तब इन्द्रने कहा—वीर! तुम इन प्रतिमाओंको लेकर कुशस्थली (उज्जयिनी पुरी)-में स्थापित करो। शिप्राके उत्तर तटपर भगवान् केशव समस्त पापोंका नाश करनेवाले केशवार्ककी स्थापना करेंगे। सदा आषाढ़ और कार्तिकमासमें वहाँकी यात्रा होगी, मैं भी उस समय दर्शन करनेके लिये आऊँगा। मेरे साथ पवन, मेघ और बिजलियाँ भी होंगी। इन्हीं लक्षणोंसे मनुष्य कहेंगे कि 'देवराज इन्द्र आ गये।' मैं ब्रह्मा आदि देवताओंद्वारा पूजित भगवान् सूर्यको नमस्कार करके पुनः लौट आऊँगा।

ऐसा कहकर इन्द्रने अर्जुनको वे दोनों प्रतिमाएँ

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

दे दीं और उन्हें अपने पुत्रके साथ मर्त्यलोकको भेज दिया। देवर्षि नारदजी भगवान् श्रीकृष्णको बुलानेके लिये द्वारकामें गये और वहाँ इन्द्रका रहस्ययुक्त वचन सुनाकर कहा—'श्रीकृष्ण! आप कुशस्थलीको चलिये और विश्वकर्माद्वारा बनायी हुई पारिजात-निर्मित युगल प्रतिमाओंका पूजन कीजिये। इन्द्रने वे दोनों प्रतिमाएँ आप तथा अर्जुनके लिये भेंट की हैं।'

नारदजीका यह वचन सुनकर श्रीकृष्ण उज्जयिनी पुरीको गये और वहाँ पाण्डुनन्दन अर्जुनको हृदयसे लगाकर वे बहुत प्रसन्न हुए। तत्पश्चात् उन्होंने अर्जुनसे कहा—'पार्थ! आज मुझे अनुपम प्रसन्नता प्राप्त हुई है, तुम पूर्व दिशाकी ओर जाकर एक प्रतिमाकी स्थापना करो। दिनके पूर्वाह्णकालमें ही अति मनोरम शुभलग्नका उदय होगा। तब मैं भी प्रतिमा-स्थापनके लिये नदीके उत्तर तटको जाऊँगा। जब मेरा शंख बजे, उसी समय तुम सूर्यदेवकी स्थापना करो।'

यह आदेश पाकर अर्जुनने पूर्वदिशाकी ओर जा प्रतिमा-स्थापनाके योग्य शुभ स्थानका निरीक्षण किया। वे मन-ही-मन यह विचार करने लगे कि 'इस देवप्रतिमाका स्थापन कहाँ करूँ।' इतनेमें ही उस प्रतिमाने स्वयं ही कारणसहित उत्तम स्थान बता दिया और अपने तेजसे वह स्थान पार्थको दिखला भी दिया।

अर्जुन बोले—देव! यहाँ अनेक स्थान हैं, बताइये, कौन आपको अधिक पसंद है। गोपते! आप प्रजाजनोंके लिये सौम्य रूप और उत्तम दर्शनीय हो जाइये।

तब सूर्यदेवने अर्जुनसे कहा—पार्थ! तुम मेरे दर्शनसे भय न करो। ऐसा कहकर दाहिने हाथसे अभय प्रदान करते हुए उन्होंने आश्वासन दिया और सौम्य रूप धारण कर लिया। भगवान् प्रभाकरने उस समय अर्जुनको अपने तेजोमय स्वरूपका दर्शन कराया और कहा—'यही मेरा अविचल स्थान है।' इतनेमें ही लग्न आ गया और भगवान् श्रीकृष्णने अपने महान् शंखको बजाया। वह शंखनाद सुनकर नरावतार अर्जुनने देववन्दित सूर्यविग्रहको स्थापित कर दिया और इस प्रकार स्तवन किया।

अर्जुन बोले—किरणोंकी मालासे मण्डित, अत्यन्त प्रकाशमान एवं सात घोड़ोंके रथपर चलनेवाले उन भगवान् सूर्यकी जय हो, जिनका तेज समस्त भुवनोंमें व्याप्त है, जो पूर्व दिशाके अट्टहासकी-सी छवि धारण करते हैं तथा जिनके नामोंका कीर्तन करनेमात्रसे प्रचुर पाप-तापमय दोषोंसे ग्रस्त हुए मनुष्योंके अंग निष्पाप हो जाते हैं। उत्तम बुद्धिवाले प्रभो! ब्रह्मा आदि देवता और मुनि जिनकी स्तुति करते हैं, उन्हीं भगवान् पतंग (सूर्य)-की मैं अपनी बुद्धिद्वारा भलीभाँति विचार करके स्पष्ट अर्थ एवं मधुर अक्षरोंके योगसे युक्त विचित्र पद्योंद्वारा स्तुति करूँगा। नाथ! लाल कमलके समान निर्मल मण्डलवाले आप जबतक अपनी किरणोंसे अन्धकारका नाश करते हुए उदय नहीं होते, तबतक सम्पूर्ण जगत् निश्चल-सा ही (जड़वत्) प्रतीत होता है तथा तबतक नाना प्रकारकी क्रियाएँ भी सिद्ध नहीं होतीं। भगवन्! जबतक आप अपनी परम उत्तम प्रभासे वृक्षोंके सोये हुए पुष्प-गुच्छोंको विकसित (जाग्रत्) नहीं कर देते, तबतक उनके नेत्र बंद होनेके कारण वृक्षोंकी शाखाएँ शोभा नहीं पातीं और न उनपर भ्रमर ही मड़राते हैं। जिस समय आप आकाशमें उदित होते हैं, उस समय समस्त देवताओं और सिद्धोंके समुदाय, ब्रह्मा आदि देवेश्वर, दैत्य, मुनि, किन्नर, नाग, यक्ष तथा ज्ञानी देवगण अपने झुके हुए मस्तकोंद्वारा तथा चमकती हुई मुकुटमणियोंकी उत्तम प्रभाओंसे आपकी अर्चना करते हैं। सदा सबको वर देनेवाले भगवन्! आपके अस्त होनेपर सम्पूर्ण जगत् सो जाता है और आपके तपनेपर पुनः जाग्रत् हो उठता है, इस प्रकार एकमात्र आप ही समस्त विश्वका हित करनेके लिये अन्धकारका नाश करनेवाले हैं। नाथ! उत्साह, शक्ति, नीति और शौर्य आदिसे सम्पन्न तथा सेवा-प्रयोग एवं निर्माणक्रियामें तत्पर पुरुषोंके

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

भी कार्य जो फलद नहीं होते, उसमें निश्चय ही आपके प्रति उनकी भक्तिका न होना ही कारण है। शरणागतवत्सल! युद्धभूमिमें मनुष्य रथ, हाथी, भाला, शक्ति, नाराच, चक्र, बाण, तोमर तथा भयंकर खड्गोंद्वारा जो शीघ्र ही शत्रुओंको परास्त करके विजयी होकर लौटते हैं, वह सब आपकी ही दी हुई शक्तिका प्रभाव है। भयानक स्थानों, दुर्गम और ऊँची-नीची भूमियोंमें तथा रीछ, हाथी, सिंह, बहुत-से कण्टक तथा चोरोंके बीचमें पड़े हुए संकटग्रस्त एवं अतिशय शोकसे मोहित चित्तवाले मानव भी आपके नामोंका कीर्तन करनेमात्रसे मृत्युके भयसे छूट जाते हैं। तेजोराशे! सूर्य! इस संसारमें जो सब ओरसे दुःखी हैं, उन्हें आप ही शरण देनेवाले हैं। सम्पूर्ण जगत्में आपके समान दयालु दूसरा कोई नहीं है। एकमात्र आपमें ही की हुई भक्ति पूर्णतः सफल होती है। आपकी शरणमें आ जानेपर मनुष्योंको रोग, व्याधिका कष्ट कैसे हो सकता है? देव! आप देखा करते हैं कि कौन कुष्ठरोगसे पीड़ित है, किसे शत्रु और रोग आदि सता रहे हैं, कौन पंगु, अन्ध और जड़ है, किनके पैर गल गये हैं और कौन निर्धन तथा निष्क्रिय हो गया है। इस प्रकार निरीक्षण करके आप कृपापूर्वक प्राणियोंकी उन-उन दोषोंसे रक्षा करते हैं। आपकी जैसी परोपकारपूर्ण चेष्टा देखी जाती है, वैसी और किसमें है? धर्म सेवित होनेपर परलोकमें फल देनेके लिये उपस्थित होता है। देवता उपासना करनेपर कालान्तरमें वरदान देते हैं। परंतु प्रणतवत्सल! आप कल्याणकामी पुरुषोंद्वारा सेवित होनेपर तत्काल ही उन्हें अभीष्ट फल प्रदान करते हैं। यदि मनुष्योंने एक बार भी किसी प्रकार आपको मस्तक झुकाया है अथवा भुवनेश्वर! अन्तकालमें भी जिसने आपका चिन्तन किया है, वे संसारमें पापी होनेपर भी निष्पाप हो गये हैं और उन्होंने शुद्धचित्त होकर पुण्यात्माओंकी गति प्राप्त कर ली है। सुरश्रेष्ठ! जब आप उदय लेने लगते हैं, उस समय देवनदी गंगाके खिले हुए स्वर्णकमलोंसे निकले हुए झुंड-के-झुंड भ्रमर उनकी स्वर्णमयी धूलिसे अनुरंजित होकर उड़ते हैं। भगवन्! आप अपने किरणसमूहरूपी चरणोंके द्वारा समुद्रके मध्यमें स्थित होकर समस्त जीवोंके जीवनकी रक्षाके उद्देश्यसे तात्त्विक उपायका चिन्तन करनेके लिये मानो तपस्या करते हैं। तीनों लोकोंमें आपके समान दूसरा कौन है? सदा वेदके मार्गमें तत्पर रहनेवाले उदारबुद्धि ऋषि-मुनियोंद्वारा भी आपके गुणोंकी स्तुति नहीं की जा सकती। आप ही विष्णु हैं, आप ही चन्द्रमा हैं, आप ही दैत्योंका मान मर्दन करनेवाले स्वामिकार्तिकेय हैं। आप ही धनाध्यक्ष कुबेर हैं, आप ही काल हैं। आप ही ब्रह्मा हैं और आप ही पर्वत, मिट्टी, जलके आश्रय तथा अग्नि हैं। आप ही ब्राह्मणोंके जपनेयोग्य ॐकार हैं। आप ही वहाँ समुद्र हैं। आप ही यम, रुद्र, इन्द्र और मेघ हैं। आप ही व्रत, यम तथा नियम हैं और आप ही यह सम्पूर्ण जगत् हैं। त्रिपुरमथन! गोपते! सुराधीश! भगवन्! आपका मुख कमलके समान सुन्दर है। आप सम्पूर्ण देवताओंके गुरु हैं, तीनों लोकोंमें आपके समान गुणवान् कौन है? आदित्य! भास्कर! दिवाकर! सप्ताश्ववाहन! मार्तण्ड! सूर्य! हरिदश्व! पतंग! भानो! अश्रान्तवाहन! आकाशस्वरूप! अंशुमालिन्! लोकनाथ! यह दास आपकी शरणमें आया है। जगत्प्रदीप! आपको नमस्कार है, नमस्कार है। ब्रह्मण्य! सत्य! शुभ! मंगल! लोकनाथ! आकाशकमल! ईश! मुनिसंस्तुत! विश्वमूर्ते! आर्तजनोंका शोक नाश करनेवाले! सेवकोंका पालन करनेवाले! भगवन्! आप अपनी शरणमें आये हुए मुझपर प्रसन्न होइये। देव! आज मैंने मस्तकपर अंजलि बाँधे हुए दोनों हाथोंसे नमस्कारपूर्वक बड़े भक्ति-भावसे आपका स्तवन किया है, इसलिये प्रभो! आप मेरे ऊपर सौम्य रूप हो जाइये और मेरी बुद्धिको धर्ममें लगाइये। जो सम्पूर्ण जगत्के एकमात्र नेत्र हैं, वेदत्रयीमय हैं अथवा त्रिभुवनस्वरूप हैं, त्रिगुणात्मक शरीर धारण करनेवाले हैं और समस्त विश्वकी उत्पत्ति, पालन तथा संहारके

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

हेतु हैं, उन ब्रह्मा, विष्णु, शिवरूप भगवान् सूर्यको नमस्कार है।

सूर्यदेव बोले—उत्तम व्रतका पालन करनेवाले अर्जुन! मैं तुम्हारे इस स्तोत्रसे इस समय सन्तुष्ट हूँ, अतः तुम्हारे मनमें जो भी इच्छा हो, उसकी पूर्तिके लिये यत्नपूर्वक वर दूँगा।

अर्जुनने कहा—प्रभो! मेरे लिये यही सबसे उत्तम वर है कि आप इस विग्रहमें सदा स्थित रहें। जो मनुष्य आपको प्रणाम करके भक्तिपूर्वक आपकी स्तुति करें, उनको आप मनोवांछित वस्तु प्रदान करें।

सूर्यदेवने कहा—अर्जुन! जो भक्तिपूर्वक मेरी पूजा करके इस स्तोत्रद्वारा मेरी स्तुति करेंगे, उनके पास कभी धन-सम्पत्तिकी कमी नहीं होगी।

भगवान् सूर्यकी अष्टोत्तरशतनामोंद्वारा स्तुति तथा अन्यान्य तीर्थोंकी महिमा

सनत्कुमारजी कहते हैं—भगवान् श्रीकृष्णने भी शंख बजाकर सूर्यदेवकी भलीभाँति स्थापना करके एकाग्रचित्त हो इस प्रकार स्तवन किया—(१) आदित्य, (२) भास्कर, (३) भानु, (४) रवि, (५) सूर्य, (६) दिवाकर, (७) प्रभाकर, (८) दिवानाथ, (९) तपन, (१०) तपनेवालोंमें श्रेष्ठ, (११) वरेण्य, (१२) वरद, (१३) विष्णु, (१४) अनघ, (१५) वासवानुज (इन्द्रके छोटे भाई), (१६) बल, (१७) वीर्य, (१८) सहस्रांशु, (१९) सहस्रकिरणद्युति, (२०) मयूखमाली, (२१) विश्व, (२२) मार्तण्ड, (२३) चण्डकिरण, (२४) सदागति, (२५) भास्वान्, (२६) सप्ताश्व, (२७) सुखोदय, (२८) देवदेव, (२९) अहिर्बुध्न्य, (३०) घामनिधि, (३१) अनुत्तम, (३२) तप, (३३) ब्रह्ममयालोक, (३४) लोकपाल, (३५) अपाम्पति, (३६) जगत्प्रबोधक, (३७) देव, (३८) जगद्दीप, (३९) जगत्प्रभु, (४०) अर्क, (४१) निःश्रेयसपर, (४२) कारण, (४३) श्रेयसापर, (४४) इन, (४५) प्रभावी, (४६) पुण्य, (४७) पतंग, (४८) पतगेश्वर, (४९) मनोवांछितदाता, (५०) दृष्टफलप्रद, (५१) अदृष्टफलप्रद, (५२) ग्रह, (५३) ग्रहकर, (५४) हंस, (५५) हरिदश्व, (५६) हुताशन, (५७) मंगल्य, (५८) मंगल, (५९) मेध्य, (६०) ध्रुव, (६१) धर्मप्रबोधन, (६२) भव, (६३) सम्भावित, (६४) भाव, (६५) भूतभव्य, (६६) भवात्मक, (६७) दुर्गम, (६८) दुर्गतिहर, (६९) हरनेत्र, (७०) त्रयीमय, (७१) त्रैलोक्य-तिलक, (७२) तीर्थ, (७३) तरणि, (७४) सर्वतो-मुख, (७५) तेजोराशि, (७६) सुनिर्वाण, (७७) विश्वेश, (७८) शाश्वत, (७९) घाम, (८०) कल्प, (८१) कल्पानल, (८२) काल, (८३) कालचक्र, (८४) क्रतुप्रिय, (८५) भूषण, (८६) मरुत, (८७) सूर्य, (८८) मणिरत्न, (८९) सुलोचन, (९०) त्वष्टा, (९१) विष्टर, (९२) विश्व, (९३) सत्कर्मसाक्षी, (९४) असत्कर्म-साक्षी, (९५) सविता, (९६) सहस्राक्ष, (९७) प्रजापाल, (९८) अधोक्षज, (९९) ब्रह्मा, (१००) वासरारम्भ, (१०१) रक्तवर्ण, (१०२) महाद्युति, (१०३) शुक्ल, (१०४) मध्यन्दिन, (१०५) रुद्र, (१०६) श्याम, (१०७) विष्णु और (१०८) दिनान्त नामसे प्रसिद्ध भगवान् सूर्यको प्रणाम करता हूँ।

इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा कहे हुए इन एक सौ आठ दिव्य नामोंको जो मनुष्य पवित्र एवं एकाग्रचित्त हो भक्तिपूर्वक पढ़ता है, उसे कभी विपत्तियाँ नहीं प्राप्त होतीं तथा सर्वत्र शुभकी प्राप्ति होती है। इतना ही नहीं; उसे धन, धान्य, सुख, पुत्र, तेज, प्रज्ञा, परम ज्ञान, विशुद्ध बुद्धि एवं परम पदकी प्राप्ति भी होती है।

इस प्रकार स्तुति सुनकर जगदीश्वर सूर्यदेव अन्तर्धान हो गये। केशवादित्यके मुखारविन्दका

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

दर्शन करके सब पापोंसे मुक्त हुआ मनुष्य सूर्यलोकमें प्रतिष्ठित होता है।

सनत्कुमारजी कहते हैं—असुरोंके स्वामी तारकका वध करके महाबलवान् स्वामिकार्तिकेयजीने अपनी शक्तिको शिप्रा नदीके जलमें फेंक दिया। उस शक्तिने पातालतककी भूमिको विदीर्ण कर डाला। उसी मार्गसे भगवती गंगा ऊपर निकल आयीं, जो समस्त तपस्वी मुनियों और देवताओंके द्वारा वन्दनीय हैं। कोटितीर्थ तीनों लोकोंमें पवित्र कहा गया है, वहाँ ब्रह्माजीने कोटितीर्थेश्वर शिवकी स्थापना की है। कोटितीर्थमें स्नान करनेके पश्चात् कोटिश्वर शिवका दर्शन करके मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। मुने! जो वहाँ श्राद्ध करता है, उसे दस अश्वमेध यज्ञोंका फल प्राप्त होता है। जो पूर्णिमा तथा अमावास्याको शस्त्रधारी कार्तिकेयका दर्शन करता है, वह सात जन्मोंतक पुत्रहीन, निर्धन तथा रोगी नहीं होता। जो मनुष्य उस तीर्थके उत्तम जलमें प्रवेश करता है, वह दिव्य लोकमें तबतक अक्षय सुखका उपभोग करता है, जबतक कि सूर्य और चन्द्रमाकी सत्ता बनी रहती है।

स्वर्णक्षुर आदिकी महिमा, अन्धकासुरका युद्ध, नरदीप एवं शंखोद्धार आदिका माहात्म्य

सनत्कुमारजी कहते हैं—जो मनुष्य स्वर्णक्षुर नामक तीर्थमें स्नान करके भगवान् महेश्वरका दर्शन करता है, उसे सौ कपिलादानसे भी अधिक फल प्राप्त होता है। जो जितेन्द्रिय पुरुष ब्रह्माजीकी वापी (बावली या कुण्ड)-में स्नान करता है, वह हंसयुक्त विमानद्वारा ब्रह्मलोकको जाता है। जो मनुष्य चैत्र या फाल्गुनमासमें विष्णुवापीमें स्नान करके जितेन्द्रिय हो उपवासपूर्वक रात्रिमें जागरण करता है, वह सब पापोंसे मुक्त होता और भगवान् विष्णुके लोकमें जाता है। जो मनको संयममें रखकर भक्तिपूर्वक अभयेश्वर देवके पट्टबन्धका दर्शन करता है, वह रुद्रलोकको जाता है। मुने! जो मनुष्य एकचित्त होकर अगस्त्येश्वरके समीप जाता है और अगस्त्योदयके समय उनका दर्शन करता है, वह सम्पूर्ण पातकोंसे मुक्त हो जाता है।

काशपुष्पप्रतीकाश वह्निमारुतसंभव।
मित्रावरुणयोः पुत्र कुम्भयोने नमोऽस्तु ते॥

'काश-पुष्पके समान गौरवर्ण, अग्नि और वायु (अग्नीषोम)-से प्रकट मित्रावरुण-पुत्र कुम्भयोने! आपको नमस्कार है।'

इस मन्त्रसे अगस्त्यजीको अर्घ्य देनेवाला मानव पुत्रवान् और धनवान् होता है। मृत्युके पश्चात् वह स्वर्गलोकमें जाता है और स्वर्गभोगके अनन्तर पुनः इस मर्त्यलोकमें आकर पवित्र धनवानोंके घरमें जन्म लेता है अथवा महान् योगीश्वर होता है।

व्यास! उत्तम पुण्य प्रदान करनेवाली दिव्य पुरी उज्जयिनी प्रथम कल्पमें स्वर्णशृंगा कहलाती है, दूसरेमें इसका नाम कुशस्थली होता है। तीसरेमें इसे अवन्तिका कहते हैं। चतुर्थ कल्पमें इसका नाम अमरावती होता है। पंचम कल्पमें चूडामणि, छठेमें पद्मावती और सातवेंमें इसका नाम उज्जयिनी जानना चाहिये।

जो मनुष्य प्रातःकाल उठकर इन नामोंका पाठ करता है, वह निःसन्देह सात जन्मोंके पापसे मुक्त हो जाता है। प्राचीन कालकी बात है। उज्जयिनीपुरीमें अन्धक नामसे प्रसिद्ध दैत्य राज्य करता था। उसके महापराक्रमी पुत्रका नाम कनकदानव था। एक बार उस महाशक्तिशाली वीरने युद्धके लिये इन्द्रको ललकारा, तब इन्द्रने क्रोधपूर्वक उसके साथ युद्ध करके उसे मार गिराया। उस दानवको मारकर वे अन्धकासुरके भयसे भगवान् शंकरको ढूँढ़ते हुए कैलास पर्वतपर चले गये। वहाँ देवताओंके स्वामी इन्द्रने भगवान् चन्द्रशेखरका दर्शन करके अपनी अवस्था उन्हें

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

बतायी और प्रार्थना की—'भगवन्! मुझे अन्धकासुरसे अभय दीजिये।'

इन्द्रका ऐसा वचन सुनकर शरणागतवत्सल शिवने अभय देते हुए कहा—'इन्द्र! तुम अन्धकासुरसे भय न करो।' इस प्रकार सान्त्वना देकर भगवान् शिवने महाभयानक रौद्र रूप धारण किया और वे एक चरणसे पृथ्वीपर उतरे। जहाँ उनका पैर पड़ा, उसी स्थानपर सर्वदेववन्दित एक कुण्ड प्रकट हो गया। भगवान् शिवने वहाँ पैर रखा था, इसलिये उस कुण्डका नाम 'शिवपद' प्रसिद्ध हो गया। सर्वप्रथम श्रीशंकरके चरणांगुष्ठकी कोटि (कोना) वहाँ पड़ी थी, इसलिये वह तीर्थ सर्वपापनाशक कोटितीर्थके नामसे भी विख्यात हुआ। वहीं भगवान् अगस्त्यने करोड़ों तीर्थोंका स्थापन किया था, इस कारणसे भी लोकमें उसका 'कोटितीर्थ' नाम पड़ गया। उस तीर्थका दर्शन करके सब देवताओंने अपने हितकी इच्छासे उसमें स्नान किया। महाकालमय स्वरूप धारण करके भगवान् शिवका वहाँ आगमन हुआ था, इसीलिये वे उस तीर्थमें महाकालके नामसे प्रसिद्ध हुए हैं।

दानव अन्धकासुरने जब इन्द्रके द्वारा अपने पुत्रके मारे जानेका समाचार सुना, तब महान् क्रोधमें भरकर उसने रणके बाजे बजवाये और सेनासहित उस स्थानपर आया, जहाँ सब देवता मौजूद थे। रथ, हाथी आदिसे युक्त विशाल सेनाके साथ महायुद्धके लिये उद्यत हुए दानवोंको आते देख देवतालोग भगवान् शिवकी शरणमें गये। तब वे त्रिनेत्रधारी भगवान् महाकाल 'देवताओ! निर्भय रहो।' ऐसा कहकर हाथमें त्रिशूल लिये खड़े हो गये। दैत्योंपर भगवान् रुद्रका कोप होते ही सारा आकाश-मण्डल प्रज्वलित अग्निकी ज्वालाओंसे व्याप्त हो गया। अन्धकासुरने क्रोधमें भरकर देवताओंके विनाशके लिये करोड़ों दुःसह बाणोंकी झड़ी लगा दी। पिनाकधारी महाकालने आगकी चिनगारियों और ज्वालाओंको छोड़ते हुए उस दानवके अस्त्र-शस्त्रोंके सैकड़ों टुकड़े कर दिये। साथ ही अन्धकासुरको भी अनेक बाणोंसे घायल किया। जैसे भ्रमर कमलके फूलपर छा जाते हैं, उसी प्रकार भगवान् शंकरके बाणोंने अन्धकको सब ओरसे आच्छादित कर दिया। अन्धकासुर युद्धमें स्थित होनेपर भी अत्यन्त शिथिल हो गया, उसके अस्त्र-शस्त्र भी शिथिल हो गये। भगवान् शिवके गण भी बड़े भारी योद्धा थे, साथ ही उन्हें भगवान् शंकरका सामीप्य भी प्राप्त था; इसलिये उन्होंने युद्धमें उत्साहपूर्वक लड़कर अन्धकासुरकी सेनाको मार डाला।

अपनी सेनाको देवताओंद्वारा छिन्न-भिन्न की हुई देख और अपनेको भी महेश्वरके बाणोंसे क्षत-विक्षत हुआ पाकर अन्धकासुर विकल शरीरसे भयभीत हो उठा। तब उसने तामसी माया फैलायी। उस मायासे उसका शरीर अदृश्य हो गया और वह उत्तर दिशाकी ओर चल दिया। अन्धकासुर जिस-जिस मार्गसे गया, उसी-उसीसे शंकरजीने भी उसका पीछा किया। एक स्थानपर पहुँचकर अन्धकासुर बोला। फिर भगवान् शिव भी उसी प्रकार बोले। तबसे वहाँ वागन्धक नामसे विख्यात तीर्थ प्रकट हो गया। अगहन सुदी नवमीको वहाँ स्नान करके पवित्र हो जो श्रद्धापूर्वक शक्करसहित अन्नदान करता है, उसका वह सब पुण्य अक्षय होता है तथा दाता शिवलोकमें जाता है।

इसी समय अपने तेजसे दिशाओंके अन्धकारको दूर करते हुए (अर्जुनद्वारा स्थापित) भगवान् नरादित्य मनुष्यका रूप धारण करके उठे। उनके द्वारा अन्धकार नष्ट होनेपर प्रकाशमें जब वह दैत्य स्पष्ट दिखायी देने लगा, तब देवताओंको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने नाना प्रकारकी स्तुतियोंद्वारा नररूपधारी सूर्यनारायणका स्तवन किया और उनका नाम 'नरदीप' रख दिया। जो मनुष्य भक्तिपूर्वक नरदीप नामसे प्रसिद्ध भगवान् सूर्यका दर्शन करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। जो मनुष्य षष्ठी या सप्तमी तिथिको रविवारके दिन उपवास करके दिनक्षय, संक्रान्ति, ग्रहण तथा विषुवयोगपर कुण्डमें स्नान करके पवित्र हो मनको संयममें रखता और जप करते हुए स्तुति,

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

वाद्य और मंगलगीतके साथ भगवान् नरदीपका दर्शन करता है तथा पूजन और साष्टांग प्रणाम करके प्रातःकाल, मध्याह्न एवं अपराह्णमें सूर्यदेवकी परिक्रमा करता है, वह सात जन्मोंमें किये हुए समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है और अन्तमें सूर्यलोकको जाता है। पूर्वकालमें नरावतार अर्जुनने इन्द्रसे सूर्य-प्रतिमाको प्राप्त करके उसे प्रसन्नतापूर्वक इस तीर्थमें स्थापित किया है, इस कारणसे ये भगवान् सूर्य नरदीप कहे गये हैं।

ज्येष्ठ व्यतीत होनेपर भगवान् सूर्यको रथपर विराजमान करके श्रेष्ठ द्विज अपनी भुजाएँ लगाकर उस रथको कुशस्थलीमें पहुँचाते हैं। उस समय उत्तर दिशाको आते हुए भगवान् सूर्यका जो दर्शन करता है, उसे अग्निष्टोम यज्ञका पूरा फल प्राप्त होता है। जो केशवादित्यके स्थानसे लौटे हुए रथका दर्शन करता है अथवा रस्सी पकड़कर स्वयं भी उस रथको खींचता है, वह अपने कुलका एवं पिता-पितामह आदि पितरोंका उद्धार कर देता है। जो दक्षिण दिशामें नरदीप देवका संयमपूर्वक दर्शन करते हैं, वे स्वर्गलोकमें जाते हैं। जो मनुष्य भक्तिपूर्वक श्रीसूर्यदेवकी परिक्रमा करते हैं, उनके द्वारा सात द्वीपोंवाली पृथ्वीकी प्रदक्षिणा हो जाती है। प्रातःकाल उठकर मौन हो भक्तिभावसे भगवान् सूर्यके समीप जाय; पूर्वद्वारसे दर्शन और नमस्कार कर, दक्षिणद्वारसे प्रवेश करके रथचक्रकी पूजा करे। तदनन्तर उसी द्वारसे निकलकर प्रणामपूर्वक आगे जाय और पश्चिम द्वारका आश्रय ले रथमें स्थित हुए सूर्यदेवका अर्चन करे। जो मनुष्य इस प्रकार नरदीपजीकी रथ-यात्रा करता है, वह अपनी रुचिके अनुसार इन्द्रलोक, सूर्यलोक, शिवलोक तथा गोलोकका सुख पाता है। जो मनुष्य भगवान् सूर्यनारायणके अग्रभागमें स्थित वापीमें एक मासतक प्रतिदिन अवगाहन करके नरदीपजीका दर्शन करता है, उसके दुःस्वप्नका नाश हो जाता है।

अन्धकार नष्ट होनेपर जब सब ओर उत्तम प्रकाश छा गया, तब भगवान् महेश्वरने तीन शिखाओंवाले त्रिशूलसे अन्धकासुरको विदीर्ण कर डाला। इससे ब्रह्मा और इन्द्र आदि सम्पूर्ण देवता बहुत प्रसन्न हुए। उस समय भगवान् विष्णुने देवताओंके हितकी इच्छासे शंखनाद किया। जहाँ उन्होंने शंख बजाया, वहाँ शंखोद्धारण नामसे प्रसिद्ध तीर्थ हो गया। वहाँ भगवान् विष्णु सदा निवास करते हैं। वहीं अनादि चतुर्मुख लिंग भी है। उस लिंगके समीप ही विष्णुदेवके दक्षिण भागमें त्रिशूलसे लक्षित होनेवाले भगवान् शिव विराजमान हैं। जो जितेन्द्रिय पुरुष चतुर्दशी और अष्टमीको इन सबका दर्शन करते हैं, वे समस्त पापराशिके क्षीण हो जानेसे परम गतिको प्राप्त होते हैं। जो वहाँ स्नान और एकादशीका व्रत करके शंखधारी भगवान् जनार्दनका दर्शन करता है, वह अच्युतपद (वैकुण्ठधाम)-को प्राप्त होता है।

~~~o~~~

ॐकारेश्वर आदिका महत्त्व तथा अन्धकासुरको शिवगणोंमें श्रेष्ठ स्थानकी प्राप्ति

सनत्कुमारजी कहते हैं—भगवान् रुद्रके त्रिशूलसे अन्धकासुरके विदीर्ण होनेपर वहाँ एक विशेष प्रकारकी ध्वनि प्रकट हुई। उसी स्थानपर ॐकारेश्वर महादेवका अविर्भाव हुआ। उस तीर्थमें स्नान करके पवित्र हो समाधि तथा नियमसे जो ॐकारस्वरूप महादेवका दर्शन करता है, वह सब पातकोंसे मुक्त हो जाता है। अन्धकासुरको घायल करके वह त्रिशूल पातालगंगाके जलमें चला गया। पातालनिवासी भगवान् हाटकेश्वर उसी शूलके मार्गसे ऊपर निकले। इसीलिये उन्हें शूलेश्वर कहा गया है। उनके उत्तर भागमें धूतपाप नामक तीर्थ है। वहीं वह पापात्मा एवं पराक्रमी दैत्यराज त्रिशूलसे गिराया गया था।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth
~~~

इसीलिये उस तीर्थको धूतपाप कहते हैं। जो जितेन्द्रिय शिवभक्त अष्टमी, पूर्णिमा, चतुर्दशी तथा शनिवारको एक रात उपवास करके धूतपाप नामक महेश्वरका दर्शन करता है, वह सात जन्मोंमें किये हुए समस्त पापोंसे छूट जाता है और अन्तमें शिवलोकको प्राप्त होता है। जो मनुष्य पौषके महीनेमें वहाँ स्नान करके शिवजीका दर्शन करता है, वह शूलेश्वरके प्रभावसे ब्रह्महत्यासे मुक्त हो जाता है और मृत्युके पश्चात् परम पदको प्राप्त होता है।

इस प्रकार अन्धकासुरको विदीर्ण करके भगवान् शिवका त्रिशूल ज्यों-ही पातालगंगाको गया, त्यों-ही अन्धकासुरके रक्तसे उत्पन्न सहस्रों भयंकर दैत्य वहाँ युद्धके लिये खड़े हो गये। तब महादेवजीने बड़े जोरसे सिंहनाद किया। उस भयंकर गर्जनासे मूर्छित होकर वे पापी दैत्य पृथ्वीपर गिर पड़े। उस महावनमें जहाँ भगवान् शंकरने सिंहनाद किया था, वहाँ समस्त पापोंका नाश करनेवाले सिंहेश्वरदेव विराजमान हैं। उनका दर्शन करनेसे मनुष्य सिंहके समान बलवान् होता है। सिंहनाद करनेपर जहाँ भगवान्का श्री-विग्रह रौद्ररससे कण्टकित (रोमांचित) हो गया था, वहाँ वे कण्टकेश्वरदेवके नामसे विद्यमान हैं, जो भक्तोंको सदा सब कुछ देनेवाले हैं। जो मानव उस तीर्थमें स्नान करके कण्टकेश्वर शिवका दर्शन करता है, वह कहीं भयको नहीं प्राप्त होता। जहाँ शंकरजीने इन्द्रको अभयदान दिया था, वहाँ अभयेश्वर नामक उत्तम लिंग प्रकट हुआ। वहाँ स्नानसे पवित्र हो उपवास करके जो जितेन्द्रिय पुरुष देवदेवेश्वर शिवका पूजन करता है, वह अश्वमेध यज्ञके फलको प्राप्त होता है। उस समय भगवान् शिवके मस्तकसे पृथ्वीपर जो पसीनेकी बूँद गिरी, उससे अंगारके समान लाल अंगवाले भूमिपुत्र मंगल उत्पन्न हुए। अंगारक, रक्ताक्ष तथा महादेव-पुत्र इन नामोंसे स्तुति करके ब्राह्मणोंने उन्हें ग्रहोंके मध्यमें प्रतिष्ठित किया। तत्पश्चात् उसी स्थानपर ब्रह्माजीने अंगारकेश्वर नामक उत्तम शिवलिंगकी स्थापना की। जो पवित्रात्मा मनुष्य मंगलवारको उस तीर्थमें स्नान तथा अंगारकेश्वरका दर्शन करता है, वह समस्त पातकोंसे छूट जाता है। मंगलवारको चतुर्थी तिथिमें रात्रिके समय अर्घ्य देना चाहिये। जबतक चार चतुर्थी पूरी न हो जाय, तबतक प्रयत्नपूर्वक यह अर्घ्यदानका नियम चलाते रहना चाहिये।

इस प्रकार त्रिशूलसे आहत होनेके बाद अन्धकासुरको बड़ा भय हुआ। वह अपने प्राणोंकी रक्षाके लिये प्रयत्न करने लगा। संसारमें जीवन-रक्षाका दूसरा कोई उपाय न देखकर उसने भगवान् शंकरका ही स्तवन प्रारम्भ किया। वह बोला—'जो इस सम्पूर्ण चराचर जगत्के कर्ता और इसे अपने किये हुए कर्मोंके अनुसार सुख-दुःख देनेवाले हैं, जो संसारकी उत्पत्तिके हेतु तथा उसका अन्तकाल भी स्वयं ही हैं, सबको शरण देनेवाले उन्हीं भगवान् शंकरकी मैं शरण लेता हूँ। जिनके मोह, तमोगुण और रजोगुण दूर हो गये हैं, वे योगीजन, भक्तिसे मनको एकाग्र रखनेवाले निष्काम भक्त तथा अपरिच्छिन्न बुद्धिवाले ज्ञानी भी जिनका निरन्तर ध्यान करते हैं, उन अनन्त दिव्यस्वरूप शरणदाता भगवान् शंकरकी मैं शरण लेता हूँ। जो सुशोभित किरणोंवाले निर्मल अर्धचन्द्रका मुकुट बाँध सदा अपने मस्तकपर गंगाजीको धारण करते हैं और जिन्होंने अपने वामांग भागमें गिरिराजकिशोरी उमाको धारण कर रखा है, उन शरणदाता भगवान् शंकरकी मैं शरण लेता हूँ। सिद्ध और चारण जिनके चरणारविन्दोंकी सेवा करते रहते हैं और जिन्होंने आकाशसे ऊँची-ऊँची उत्ताल तरंगोंके साथ विषम वेगसे गिरती हुई त्रिभुवनपावनी गंगाको अपने मस्तकपर पुष्पमालाकी भाँति धारण कर लिया था, उन शरणदाता भगवान् शंकरकी मैं शरण लेता हूँ। जिसके भारसे कैलासपर्वतका शिखर हिलने लगता था, उस कैलास शृंगके सदृश विशालकाय दशाननने भी जिनके युगलचरणारविन्दोंकी सेवा की है, उन शरणदाता भगवान् शंकरकी मैं शरण लेता हूँ। महेश्वर! जो मूढ़ पुरुष चराचर जगत्के गुरु

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

आपको नहीं जानते हैं, वे ऐश्वर्यका अहंकार नष्ट होनेपर मेरी ही भाँति पश्चात्ताप करते और दुस्सह यातना भोगते हैं।'

इस प्रकार स्तुति करते हुए अन्धकासुरसे सबका कल्याण करनेवाले शूलपाणि भगवान् शिव प्रसन्न होकर बोले—वत्स! मैं प्रसन्न हूँ, अब तुम शुद्ध—निर्मल हो गये हो। अतः तुम्हें दिव्य नेत्र देता हूँ, निश्चिन्त होकर मेरी ओर देखो। दानवश्रेष्ठ! तुम्हारे मनमें जो कोई भी आकांक्षा हो, उसे माँगो; मैं तुम्हें सब कुछ दूँगा।

अन्धकासुर बोला—देवेश्वर! मुझे गणपतिपद प्रदान कीजिये, क्योंकि वह सदा अक्षय है।

भगवान् शिव बोले—वत्स! तुम मेरे गणोंके अध्यक्ष होकर रहो। तुम्हें अणिमा आदि समस्त सिद्धियाँ प्राप्त होंगी और सदैव तुम मेरे प्रिय बने रहोगे।

सनत्कुमारजी कहते हैं—इस प्रकार दुर्लभ वरदान पाकर वह अन्धक महादेवजीका मुख्य गण होकर वहीं अन्तर्धान हो गया। तदनन्तर भगवान् शिव कैलासपर्वतपर चले गये।

उज्जयिनीपुरीके कनकशृंगा आदि नाम पड़नेका कारण

व्यासजीने पूछा—भगवन्! इस महाकाल वनमें कितने तीर्थ और शिवलिंग हैं, यह बतानेकी कृपा करें।

सनत्कुमारजीने कहा—व्यास! महाकाल वनमें साठ कोटि सहस्र और साठ कोटि शत तीर्थ हैं तथा शिवलिंगोंकी तो कोई संख्या ही नहीं है। सकाम या निष्कामभाव रखनेवाला जो मनुष्य इस सुन्दर महाकाल वनमें जन्म लेता है, वह भगवान् शिवके धाममें प्रतिष्ठित होता है। ब्रह्मन्! सभी तीर्थ और सभी सिद्ध क्षेत्र सब ओरसे पवित्र एवं पुण्यजनक हैं। उन सबमें इस महाकालतीर्थ और क्षेत्रको मुख्य जानो।

व्यासजीने पूछा—मुने! उज्जयिनीपुरीका नाम पहले कनकशृंगा क्यों हुआ? फिर उसका कुशस्थली नाम कैसे हुआ? आगे चलकर अवन्ती नाम कैसे पड़ा? पद्मावती और उज्जयिनी नामोंका भी हेतु क्या है? यह सब बतावें।

सनत्कुमारजीने कहा—एक समय महादेवजी तथा ब्रह्माजी सुवर्णमय शिखरोंसे युक्त अद्भुत पुरीका दर्शन करनेके लिये भूतलपर आये। यहाँ आकर उन्होंने सम्पूर्ण विश्वके स्वामी भगवान् विष्णुरूपको नमस्कार किया। विष्णुरूपने भी विधि और आदरके साथ सेवकोंसहित उन दोनोंका स्वागत-सत्कार किया और पूछा—'महेश्वर! तथा ब्रह्माजी! आप दोनों अपने अनुगामियोंसहित देवलोकसे पृथ्वीपर कैसे पधारे हैं!' यह सुनकर ब्रह्मा और महादेवजी बोले—'प्रभो! जहाँ आप विराजमान हैं, वहीं हम दोनोंका भी स्नेह है। आपके बिना हमें स्वर्ग, पृथ्वी अथवा पातालमें भी सुख नहीं है। भगवन्! आपने यह सुवर्णमय शिखरवाली विचित्र पुरी कब बसायी है? जगदीश्वर! आप यहाँ हमें भी स्थान दें।'

यह सुनकर विश्वरूपमय विष्णुने प्रसन्नचित्त होकर कहा—मैं आप दोनोंको अभीष्ट स्थान देता हूँ। प्रजापते! इस पुरीके उत्तर भागमें आपका स्थान है और महेश्वर! आपके लिये दक्षिण भागमें स्थान दिया गया है। अतः आप वहीं पधारें। आप दोनोंने इस पुरीको सुवर्णमय शिखरवाली बताया है, इसलिये यह संसारमें 'कनकशृंगा' नामसे विख्यात होगी।

इस प्रकार इस पुरीका प्रथम नाम कनकशृंगा बताया जाता है। वहाँ ब्रह्मा, विष्णु और महादेवजी तीनों रहकर प्रसन्नताका अनुभव करते हैं और अपने भक्तोंको समस्त मनोवांछित फल देते हैं।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

व्यास! अब इस पुरीके कुशस्थली नाम होनेका कारण बताया जाता है, उसे सुनो। एक समय सृष्टिकी रचना करके ब्रह्माजीने भगवान् विष्णुका ध्यान किया। उनके ध्यान करनेपर विश्वरूपधारी भगवान् विष्णुने ब्रह्माजीसे कहा—'ब्रह्मन्! आपने मेरा उत्तम रीतिसे ध्यान किया है, इसलिये मैं आपके पास आया हूँ। समस्त प्राणियोंकी रक्षाके लिये उद्यत हुए मुझको देखिये।' भगवान्का यह वचन सुनकर ब्रह्माजी सहसा उठकर खड़े हो गये और अनन्यचित्तसे सामने खड़े हुए श्रीहरिका पूजन करते हुए उन्हें नमस्कार किया। तत्पश्चात् ब्रह्माजीने इस प्रकार कहा—'देवदेव! जगन्नाथ! इस जगत्की सृष्टि तो मैंने कर दी है, परंतु आपके कृपापूर्ण सहयोगके बिना इसका स्थिर रहना असम्भव है। आप ही इस संसारके शास्ता एवं पालक हैं। अतः आप ही इसको अपने अनुशासनमें रखें। यक्ष, नाग, राक्षस, देवता, दानव, गन्धर्व—ये परस्पर एक-दूसरेको मारते हैं। इन सबकी रक्षा करनेमें केवल आप ही समर्थ हैं। आप सबमें प्रवेश करनेवाले और सर्वत्र व्यापक हैं, इसीलिये मुनीश्वरोंने आपको 'विष्णु' कहा है। आपने ही अपनेमें इस सम्पूर्ण विश्वको बसाया है, इसलिये आप 'वासुदेव' कहलाते हैं। समस्त संसार आपका अनुगामी है, आप विभु हैं, सम्पूर्ण जगत्के राजा हैं। अखिल विश्व आपके लिये सेनाके सदृश है, इसीलिये आप 'विश्वसेन' कहे गये हैं। इस चराचर जगत्को अपनी ओर आकृष्ट करनेके कारण आपको लोग 'श्रीकृष्ण' कहते हैं। देव! आपने तीनों लोकोंको जीत लिया है, अतः आप 'जिष्णु' हैं। आप ही इस सम्पूर्ण जगत्के आदि राजा हों, आपका सिंहासन अद्वितीय हो। आपके हाथमें दक्षिणावर्त शंख है, इस कारण आप पुरुषोत्तम हैं। आपके पास सदा सुदर्शन नामक चक्र विद्यमान रहता है, अतः आप ही चक्री हैं। आपकी ध्वजा गरुड़से सेवित है तथा सुवर्णकी-सी पाँखवाले गरुड़जी आपके वाहन हैं। किरीट, पदक, भुजबन्द, कर्णपुष्प, केयूर, हार, उत्तम सुवर्णसूत्र, विचित्र वस्त्र, उत्तरीय तथा लाल रंगकी मालाओंसे आप विभूषित होइये। लक्ष्मी कभी आपका साथ नहीं छोड़तीं। आपका ऐश्वर्य अनन्त है। मुकुन्द! इस जगत्में साधुपुरुषोंकी आपमें भक्ति हो। आप भक्तके ऊपर प्रसन्न होइये।

सनत्कुमारजी कहते हैं—ब्रह्माजीके इस प्रकार स्तुति करनेपर भगवान् विष्णु प्रसन्न हो देवताओंके बीचमें इस प्रकार बोले—'विरंचि! मुझे कोई शुद्ध मण्डल दिखाइये, जो आपसे पृथक् न हो और जहाँ स्थिरतापूर्वक स्थित होकर मैं जगत्की रक्षा कर सकूँ।' तदनन्तर ब्रह्माजीने कुशकी एक मूठी ली और एक अत्यन्त उन्नत स्थल भूमिपर बिछाकर भगवान् विष्णुसे कहा—'देव! आपके लिये यही पवित्र मण्डल है, देवताओंसे पूजित होकर आप सदा यहीं विराजमान होइये। इन कुशोंपर बैठनेके कारण आप विष्टरश्रवा एवं कुशेश्वर होंगे।' ब्रह्माजीके ऐसा कहनेपर भगवान् लक्ष्मीपति वहाँ कुशके आसनपर आसीन हुए। तदनन्तर विश्वविधाता ब्रह्मा और भगवान् पुराण-पुरुषोत्तम दोनोंने उस पुरीका नाम कुशस्थली रख दिया। उस पुरीमें रहकर सम्पूर्ण विश्वके पालक, सर्वत्र व्यापक, विश्वेश्वर, विश्वस्रष्टा, विश्वात्मा एवं सर्वविश्वनियन्ता श्रीमान् विष्णुने समस्त संसारका पालन किया। इस प्रकार पहले जिसका नाम कनकशृंगा था, वही पुरी कुशस्थलीके नामसे प्रसिद्ध हुई।

प्राचीन कालकी बात है। दैत्योंसे पराजित होकर सम्पूर्ण देवताओंने मेरु पर्वतके शिखरपर जाकर वहाँके वन, कुंज और गुफा आदिकी शरण ली। वहाँ पहुँचकर उन्होंने परस्पर सलाह की और उस स्थानपर गये, जहाँ प्रजापति ब्रह्माजी विराजमान थे। देवताओंने अपने आगमनका सब कारण उनसे निवेदन किया। तब ब्रह्माजी देवताओंके साथ देवाधिदेव भगवान् महेश्वरके समीप गये। फिर महादेवजी भी उन सबके साथ वैकुण्ठधाममें भगवान् विष्णुके समीप गये और उन देवदेव जगदीश्वरकी स्तुति करने लगे।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

देवता बोले—सर्वत्र व्याप्त रहनेवाले भगवान् अनन्तको नमस्कार है। कूर्मरूपधारी श्रीहरिको बार-बार नमस्कार है। भयंकर नृसिंह और वाराह रूप धारण करनेवाले भगवान्को नमस्कार है। रघुनन्दन रामको एवं अनन्त शक्तिसम्पन्न ब्रह्मको नमस्कार है। परम शान्त वासुदेवको नमस्कार है। अज्ञानी जीवोंका भी पालन करनेवाले पशुपति, शुद्ध-बुद्धस्वरूप एवं म्लेच्छान्तकारी कल्किदेवको नमस्कार है।

इस प्रकार स्तुतिमें लगे हुए देवताओंको सम्बोधित करके आकाशवाणी हुई—देवगण! तुम सब लोग एकाग्रचित्त होकर सुनो। ब्रह्मर्षियोंद्वारा सेवित परम सुन्दर जो महाकाल वन है, वहाँ समस्त कामनाओं और फलोंको देनेवाली एक पवित्र पुरी है, जो बड़ी ही मनोरम और कुशस्थली नामसे प्रसिद्ध है। वहाँ सिद्ध और गन्धर्व निवास करते हैं, वहीं महादेवजी सदा निवास करते हैं। कल्पान्तकालमें जब समस्त चराचर प्राणी नष्ट हो जाते हैं, सब तीर्थ, समस्त पुण्य मन्दिर, नदी, समुद्र, सरोवर, उपवन, ओषधि, वृक्ष, लता, यन्त्र, मन्त्र, शुभ, अशुभ, नक्षत्र और सूर्य, चन्द्र आदि जगत्का अभाव हो जाता है, उस समय सबके बीज, पुण्य, जीव, कर्म तथा आशय (कर्मोंके संस्कार) सबको लेकर भगवान् शिव उस पुरीमें स्थित होते हैं। अतः कुशस्थलीपुरी सबके लिये परम हितकारिणी है। वहाँ मनुष्योंद्वारा किया हुआ थोड़ा-सा भी दान अनन्तानन्तगुना हो जाता है। तुम सब लोग यत्नपूर्वक वहीं जाओ। उस तीर्थमें जाकर तुम सब लोग उत्तम विधिसे स्नान, दान आदि शुभकर्म करो। उस पुण्यके बलसे तुम्हें पुनः स्वर्गलोककी प्राप्ति होगी।

वह आकाशवाणी सुनकर ब्रह्मा और शिव आदि सब देवता मस्तक झुकाकर भगवान्को प्रणाम करके उसी स्थानपर गये। वहाँ उस पुरीको देखकर देवता बहुत प्रसन्न हुए। कुशस्थलीमें पैशाचमोचन नामसे प्रसिद्ध एक तीर्थ है। उसमें स्नान, जप, होम और दान करनेसे देवताओंको अक्षय पुण्य प्राप्त हुआ। उसके बलसे वे दानवोंको जीतकर पुनः स्वर्गलोकमें अपने-अपने पदपर प्रतिष्ठित हो गये। जहाँ प्रत्येक कल्पमें देवता, तीर्थ, ओषधि, बीज तथा सम्पूर्ण प्राणियोंका पालन होता है, वह पुरी सबका अवन (रक्षण) करनेके कारण 'अवन्ती' है। आजसे इस कुशस्थलीका नाम अवन्तीपुरी होगा। ऐसा कहकर सब देवता अपने-अपने धामको चले गये। द्विजश्रेष्ठ! तभीसे भूतलपर वह पुरी अवन्तीके नामसे विख्यात हुई है।

व्यासजी! अब मैं यह बतलाऊँगा कि अवन्तीपुरीका नाम उज्जयिनी कैसे हुआ। एक समय सब दैत्योंके राजा महादैत्य त्रिपुरने ब्रह्माजीके सन्तोषके लिये बड़ी घोर तपस्या की। एक सहस्र वर्ष पूर्ण होनेपर ब्रह्माजी अत्यन्त प्रसन्न होकर उससे बोले—'असुरश्रेष्ठ! तुम मुझसे अपना मनोवांछित वर माँगो।' ब्रह्माजीके ऐसा कहनेपर त्रिपुर दैत्य बोला—'ब्रह्मन्! मैं देवता, दानव, गन्धर्व, पिशाच, नाग तथा राक्षस सबके द्वारा अवध्य हो जाऊँ।'

ब्रह्माजी बोले—वत्स! ऐसा ही होगा। तुम निर्भय होकर विचरो।

ऐसा कहकर ब्रह्माजी वहीं अन्तर्धान हो गये। तबसे लेकर उस दैत्यने पहलेके वैरका स्मरण करके देवताओंका महान् विनाश आरम्भ किया। उससे परास्त हुए देवता आपसमें सलाह करके ब्रह्माजीके पास गये और उनसे अपनी विपत्तिका सब समाचार कह सुनाया। यह सुनकर ब्रह्माजी सहसा उठे और देवताओंके साथ महाकाल वनमें जा पहुँचे। वहाँ उन्होंने समस्त देवताओंके साथ रुद्रसरोवरमें स्नान, दान, जप और होम किया। तत्पश्चात् महाकालजीकी पूजा करके श्रीब्रह्माजी बोले—'भक्तोंको अभय दान देनेवाले देवदेव महादेव! दैत्यराज त्रिपुर देवताओंका बड़ा भारी संहार कर रहा है। उसने कितने ही द्वीप, ग्राम और नगर उजाड़ दिये। ऋषियों और संन्यासियोंके आश्रम

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

फूँक दिये। अतः आप यत्नपूर्वक उसके वधका कोई उपाय सोचिये।'

ब्रह्माजीका यह वचन सुनकर महादेवजीने कुछ सोच-विचारकर कहा—देवताओ! उस दुरात्मा दैत्यको जीतनेका कोई उपाय करूँगा। तबतक तुमलोग तपस्या करो। अवन्तीपुरीमें जो होम, दान आदि पुण्य कर्म किया जाता है, वह सब अक्षय होता है। सब देवताओंसे ऐसा कहकर भगवान् शिव वहीं अन्तर्धान हो गये।

तदनन्तर उस दैत्यका विनाश करनेके लिये भगवान् शंकरने महापाशुपत नामक शस्त्र अपने हाथमें लिया। उस समय वे महान् आडम्बर धारण करके समस्त प्राणियोंके लिये भयंकर प्रतीत होने लगे। देवता उनकी स्तुति और जय-जयकार करते हुए उनके पीछे-पीछे चले। महादेवजीने एक ही बाणसे उस महामायावी असुरको मार डाला और मायायुद्धसे उसके तीन टुकड़े कर डाले। तत्पश्चात् वे देवसेवित अवन्तीपुरीमें लौट आये। उस समय ऋषि, सिद्ध और चारण अत्यन्त प्रसन्न हो जय-जयकारके साथ भगवान् सदाशिवकी स्तुति करने लगे। देवताओंको पुनः अपना स्थान प्राप्त हुआ। वहाँ त्रिपुर नामक दानवको उत्कर्षपूर्वक जीता गया था। इसलिये सब ऋषि-महर्षियोंने उसका नाम 'उज्जयिनी' रख दिया। तभीसे अवन्तीपुरीका नाम उज्जयिनी-पुरी हुआ। जो मानव उस पुरीमें स्नान, दान आदि करते हैं, उनके शरीरमें कोई पाप नहीं ठहर पाता। उज्जयिनीपुरीमें विद्याकी इच्छा रखनेवाला महादेवजीकी, धनार्थी पुरुष धनाध्यक्ष कुबेरकी, पुत्रार्थी सुरेश्वर इन्द्रकी, सुखार्थी मानव दिनेश्वर सूर्यकी, उत्तम बुद्धि चाहनेवाला गणेशकी तथा प्रिय वस्तुकी इच्छा रखनेवाला भगवान् शेषकी स्तोत्रमयी वाणीद्वारा आराधना करते हुए निवास करे। जो सौभाग्यशाली मानव सदा उज्जयिनीपुरीमें निवास करता है, वह मनोवांछित कामनाओंका उपभोग करके मृत्युके पश्चात् भगवान् शिवके धाममें जाता है।

अब उज्जयिनीपुरीका पद्मावती नाम पड़नेका कारण बतलाऊँगा। एक समय दुष्टात्मा दानवोंके द्वारा धर्मको बड़ी भारी हानि पहुँची। तब समस्त देवताओंने दैत्योंसे मिलकर समुद्रका मन्थन किया। उस समय समुद्रसे महालक्ष्मी प्रकट हुईं। वे उज्जयिनीके महाकाल वनमें रहने लगीं। तदनन्तर कौस्तुभ मणि, पारिजात वृक्ष, वारुणी मदिरा, धन्वन्तरि वैद्य, चन्द्रमा, कामधेनु, ऐरावत हाथी, उच्चैःश्रवा घोड़ा, अमृत-कलश, रम्भा अप्सरा, शार्ङ्ग धनुष, पांचजन्य शंख, महापद्म निधि और हालाहल विष—ये नाना प्रकारके चौदह रत्न प्राप्त हुए। इन सबको लेकर देवता और दैत्य माहेश्वर वनमें आये और वहाँ बैठकर अमृत पीनेके विषयमें विचार करने लगे। वे सभी 'पहले मैं, पहले मैं' ऐसा कहते हुए विवाद करने लगे। इसके कारण वहाँ बड़ा भारी कोलाहल मच गया। इसी समय वहाँ देवर्षि नारद आये। उन्होंने दोनों दलोंका वह कलह देखकर भगवान् विष्णुकी आराधना की। तब भगवान् श्रीहरि सबके मनको मोहनेवाली नारीका रूप धारण करके वहाँ आये। उस सुन्दरीको देखकर वे महादैत्य कामदेवके वशीभूत हो गये। इसी समय श्रीहरिने अपने हाथका कौशल दिखाते हुए दैत्योंको मदिरा और देवताओंको अमृतका कलश दे दिया। राहु नामक दैत्य देवताओंका-सा रूप धारण करके उन्हींके बीचमें बैठकर वह उत्तम अमृत पीने लगा। यह जानकर भगवान् विष्णुने तुरंत ही चक्रसे उसका मस्तक काट डाला। परंतु अमृतका स्पर्श हो जानेके कारण उस असुरकी मृत्यु नहीं हुई। वही इस महाकाल क्षेत्रमें राहु और केतुके नामसे विख्यात हुआ। तत्पश्चात् महाकाल वनमें देवताओंने उन रत्नोंको परस्पर बाँट लिया, जिससे वे रत्नभोगी हुए। मोहिनी देवीने कौस्तुभ मणि, लक्ष्मी, शार्ङ्ग-धनुष तथा पांचजन्य शंख—ये चार वस्तुएँ भगवान् विष्णुको दीं। उच्चैःश्रवा घोड़ा सूर्यको दिया, गजश्रेष्ठ ऐरावत इन्द्रको समर्पित किया। देवताओंको अमृत और शिवजीको चन्द्रमा प्रदान किया। वृक्षोंमें

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

श्रेष्ठ पारिजात तथा रम्भा अप्सराको इन्द्रके क्रीड़ा-कानन नन्दनवनमें भेज दिया। देवताओंको अपना खोया हुआ स्थान पुनः प्राप्त हो गया। कामधेनु गौको यज्ञकी सिद्धिके लिये ऋषियोंके अधीन किया। महापद्म नामकी निधि कुबेरके भवनमें गयी; परंतु उस हालाहल विषका किसीने भी आदर नहीं किया। भगवान् शंकरने जगत्के हितकी इच्छासे स्वयं ही उस विषको पीकर कण्ठमें धारण कर लिया। तभीसे महादेवजीका नाम नीलकण्ठ हुआ। जहाँ रत्नोंका बँटवारा हुआ, उस रत्नकुण्डमें स्नान करके जो मनुष्य भगवान् नीलकण्ठका दर्शन करता है, वह सब पापोंसे मुक्त होकर सब रत्नोंका भोगी होता है तथा अन्तमें शिवलोकको जाता है। उस समय हर्षमें भरे हुए ब्रह्मा, विष्णु आदि सब देवता कहने लगे—'इस उज्जयिनी-पुरीमें आकर हम सब लोग रत्नोंके भोगी हुए हैं तथा यहाँ सब समय भगवती पद्मा (लक्ष्मी) निश्चलरूपसे निवास करती हैं, अतः आजसे इस पुरीका नाम 'पद्मावती' होगा। जो महाभाग मानव इस पुरीमें स्नान, दान, पूजन तथा देवताओं, पितरोंका तर्पण करता है, उसके शरीरमें किंचिन्मात्र भी पाप नहीं रह जाता तथा उसे दरिद्रता और दुर्गतिकी भी प्राप्ति नहीं होती।

सनत्कुमारजी कहते हैं—व्यासजी! एक समय महर्षि लोमशने अपना अनुभव इस प्रकार सुनाया था।'

लोमशजी बोले—एक बार मैं तीर्थयात्राके प्रसंगसे कुशस्थलीपुरीमें गया था। वहाँ भगवान् महेश्वरके दर्शनमात्रसे मेरे सारे रोग, सारी चिन्ताएँ मिट गयीं और मैं निर्मल हो गया। वहीं दीर्घकालतक तपस्या करके मैं जरा और रोगसे रहित दीर्घायु हुआ। मैंने वहाँके सब तीर्थोंमें स्नान किया और पवित्र एवं एकाग्रचित्त हो समस्त पापोंसे रहित हो गया। उस तीर्थमें पार्वतीजीके साथ भगवान् शंकर सदा निवास करते हैं। उनका श्रीअंग चन्द्रमाके मुकुटसे सुशोभित है। उनके अंगोंमें चिताका भस्म लगा रहता है। वे सब ओर चन्द्रकलाकी चटकीली चाँदनी छिटकाते हुए शोभा पाते हैं और इसीलिये वहाँपर कृष्णपक्ष, अमावास्या तिथि और अन्धकार कभी नहीं हुआ। वहाँकी नदियाँ, सरोवर, बावली तथा पल्वल आदि सभी जलाशय कुमुदिनीसे व्याप्त होते हैं और उनसे आच्छादित हुई पृथ्वी चाँदनीमें डूबी हुई-सी प्रतीत होती है। वहाँ सब समय कुमुद्वती (कुमुदिनी) खिली रहती है। इसलिये उस पद्मावतीपुरीका नाम कुमुद्वती हो गया। जो मनुष्य एकाग्रचित्त हो कुमुद्वतीपुरीमें श्राद्ध करते हैं, उनके पितर कभी स्वर्गसे नीचे नहीं गिरते। वहाँका श्राद्ध अक्षय होता है।

व्यास! यह कुशस्थलीपुरी किस प्रकार अमरावती नामसे प्रसिद्ध हुई, वह प्रसंग सुनो। एक समय मुनिश्रेष्ठ मरीचिनन्दन कश्यपजीने अपनी पत्नीके साथ परम सुन्दर महाकाल वनमें बड़ी कठोर तपस्या की। तपस्या करते-करते जब एक सहस्र वर्ष पूरे हो गये, तब आकाशवाणी हुई—'द्विजश्रेष्ठ! तुमने फलकी इच्छासे यह तीव्र तपस्या की है, इसलिये जबतक सूर्य और चन्द्रमा रहेंगे तबतक इस पृथ्वीपर तुम्हारी सन्तति बनी रहेगी। तुम्हारी पतिव्रता पत्नी अदितिने भी तुम्हारे साथ रहकर तप किया है, इसलिये यह यशस्विनी देवी सदा छायाकी भाँति तुम्हारे साथ रहेगी। श्रीविष्णु (वामन) और चन्द्रमा आदि सब देवता जो तुम्हारे पुत्र हैं, देवलोकमें अजर-अमररूपमें विख्यात होंगे। ऋषिश्रेष्ठ! तुम भी मेरे वचनसे पापरहित प्रजापति होओगे।'

तभीसे महर्षि कश्यप अदिति और अग्निके साथ कुशस्थलीपुरीमें सदा निवास करते हैं। इसीलिये देवता, असुर और मानवरूप उनकी समस्त प्रजा सदा वृद्धिको प्राप्त होती है। व्यास! देवताओंने महाकाल वनमें ही अमृत-पान किया था, इसलिये वे अमर हो गये। उत्तम महाकाल वनमें ही जो नन्दनवन है, वहीं सब मनोरथों एवं वरोंको देनेवाली कामधेनुका निवास बताया गया है। समस्त ब्रह्माण्डमें जो दिव्य वस्तुएँ हैं, वे सब उत्तम महाकाल वनमें स्थित हैं। यहाँ अमरोंकी स्थिति है, इस कारण

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

इस पुरीका नाम अमरावती हुआ। जो इस पुरीमें स्नान, दान आदि करके भगवान् महेश्वरका दर्शन करता है, उसके लिये पुत्र या धन आदि कोई भी वस्तु दुर्लभ नहीं है। वह समस्त भोगोंको पाता है और मृत्युके पश्चात् भगवान् शिवके धाममें जाता है।

महाभाग व्यास! यह अमरावतीपुरी जिस प्रकार विशाला नामसे विख्यात हुई, वह प्रसंग भी सुनो। एक समय भगवती उमाने शिवजीसे कहा—'समस्त जगत्को धारण करनेवाले देवदेव जगदीश्वर! आप मेरे निवासके लिये समस्त कामनाओंको देनेवाली पुरीका निर्माण कीजिये।' पार्वतीजीका यह वचन सुनकर भगवान् शिवने सबके मनको प्रिय लगनेवाली सुन्दर पुरीका निर्माण किया, जो बहुत ही विशाल, विस्तृत, पुण्यमयी तथा पुण्यात्माओंका आश्रय थी। विशाल होनेके कारण ही उस सदा रहनेवाली पुरीका नाम 'विशाला' हुआ। जहाँ कहीं किसी भी अवस्थामें रहकर भी जो नित्य विशाला नामका उच्चारण करता है, वह मनुष्य भगवान् शिवके धाममें प्रतिष्ठित होता है। व्यास! इस समस्त पृथ्वीपर या सम्पूर्ण ब्रह्माण्डमें विशालाके समान भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाली दूसरी कोई पुरी नहीं है। जो मनुष्य श्राद्धकालमें पितरोंके उद्देश्यसे यहाँ दान करते हैं, उनका वह सब दान अक्षय होता है। जिन्होंने कभी दूसरे कार्यके प्रसंगसे भी विशालापुरीमें आकर स्नान, दान आदि पुण्यकार्य किया है, वे जहाँ कहीं भी मृत्युको प्राप्त होनेपर भगवान् शिवके ही धाममें जाते हैं। व्यासजी! इस प्रकार इस कुशस्थली-पुरीका नाम विशाला हुआ है।

काष्ठा, कला आदि कालमान, युग और कल्पभेद तथा प्रतिकल्पपुरीका माहात्म्य

सनत्कुमारजी कहते हैं—व्यास! पंद्रह निमेषोंकी एक काष्ठा होती है, तीस काष्ठाओंकी एक कला होती है, तीस कलाओंका एक मुहूर्त होता है और तीस मुहूर्तोंका एक दिन-रात होता है, ऐसा मनीषी पुरुषोंका कथन है। चन्द्रमा और सूर्यकी गति भी बतायी जाती है। सूर्यकी गतिविशेषसे मनुष्योंका दिन तथा रात्रि होती है। पंद्रह दिन-रातका एक पक्ष होता है। दो पक्षोंका मास और दो मासकी ऋतु कही जाती है। तीन ऋतुओंका एक अयन होता है। दो अयन मिलाकर एक वर्ष होता है। दक्षिणायन और उत्तरायण यही दो अयन हैं। इस मानके अनुसार जो दो पक्षोंका मास होता है, वही पितरोंका दिन-रात है। शुक्ल पक्ष उनका दिन और कृष्ण पक्ष उनकी रात्रि है। इसीसे पितरोंका श्राद्ध कृष्ण पक्षमें किया जाता है। मनुष्योंके कालमानके अनुसार जो एक वर्ष होता है, वही देवताओंका दिन-रात है। उत्तरायण उनका दिन है और दक्षिणायन रात्रि। देवताओंके चार हजार वर्षका एक सत्ययुग होता है। उतने ही सौ वर्षोंकी उसकी सन्ध्या और सन्ध्यांश है। देवताओंके तीन हजार वर्षका त्रेता और तीन-तीन सौ वर्षके उसके सन्ध्या-सन्ध्यांश होते हैं। दो हजार वर्षोंका द्वापर बताया गया है और दो-दो सौ वर्षोंके उसके सन्ध्या-सन्ध्यांश हैं। एक सहस्र दिव्य वर्षोंका कलियुग होता है और सौ-सौ वर्षके उसके सन्ध्या-सन्ध्यांश कहे गये हैं। इस प्रकार चारों युगोंकी वर्ष-संख्या दिव्यमानसे बारह हजार बतायी गयी है। सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग—इन चारोंको एक चतुर्युग कहते हैं। इकहत्तर चतुर्युगका एक मन्वन्तर बताया गया है। एक सहस्र युगका ब्रह्माजीका एक दिन बताया गया है। उसीको कल्प कहते हैं। उतने ही युगोंकी ब्रह्माजीकी रात्रि भी बतायी जाती है। ब्रह्माकी उस रात्रिमें पर्वत, वन और काननोंसहित समस्त पृथ्वी जलमें डूब जाती है।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

रात्रिके सहस्त्र युग पूर्ण हो जानेपर पुनः ब्रह्माजीका दिन आरम्भ होता है। उनके पूरे एक दिनके समयको पूर्णतः एक कल्प कहते हैं। पूर्वोक्त इकहत्तर चतुर्युगसे कुछ अधिक समय बीतनेपर एक मन्वन्तर पूरा होता है। इन मनुओंकी संख्या चौदह बतायी गयी है। ये मनु अपने कुलकी कीर्ति बढ़ानेवाले हैं। समस्त वेदों और पुराणोंमें ये प्रभावशाली तथा समस्त प्रजाओंके पालक बताये गये हैं। इन सबका कीर्तन धन्य है। एक सहस्त्र चतुर्युग पूर्ण हो जानेपर एक कल्पका समय समाप्त हो जाता है। उसमें सूर्यकी प्रचण्ड किरणोंसे सम्पूर्ण प्राणी दग्ध हो जाते हैं। ब्रह्मर्षिगण द्वादश आदित्योंके साथ ब्रह्माजीको आगे करके सुरश्रेष्ठ भगवान् नारायणमें प्रवेश कर जाते हैं। वे अव्यक्त सनातनदेव श्रीहरि ही ब्रह्मा आदिके रूपमें प्रत्येक कल्पमें बार-बार समस्त प्राणियोंकी सृष्टि करते हैं। यह सम्पूर्ण जगत् उन्हींका है। वे ही परमेश्वर परम सुन्दर महाकाल वनमें ब्रह्मा और महादेवजीके साथ निवास करते हैं। उत्तम महाकाल वनमें प्रलयकाल भी बाधा नहीं पहुँचाता। यह कुशस्थली-पुरी कल्प-कल्पमें अत्यन्त मनोहर होती जाती है। युग-युगमें पाप-तापसे रहित निर्भय और निर्विकार होती है।

व्यास! पूर्वकालसे ही इसी प्रकार प्रत्येक कल्पमें सृष्टिका आरम्भ होता है। वाराह, वामन, विष्णु और पितरोंके जो भिन्न-भिन्न कल्प बताये गये हैं, वे सभी इस कल्पान्तमें महाकाल वनमें ही प्रारम्भ हुए हैं। इस वनमें चौरासी कल्प व्यतीत हो गये। अतः उतने ही ज्योतिर्लिंग इस वनमें विराजमान हैं। पृथ्वी, समुद्र और पर्वत बार-बार उत्पन्न और नष्ट होते रहते हैं। भविष्यमें भी वे इसी प्रकार उत्पन्न और नष्ट होंगे। परंतु यह पुरी अचल मानी गयी है। इसीलिये सब समय और सब लोकोंमें इसकी महिमाका गान किया जाता है। यह प्रतिकल्पमें अचल रहती है। इसलिये इस पृथ्वीपर यह 'प्रतिकल्पा' नामसे विख्यात होगी।

वैशाखकी पूर्णिमाको प्रतिकल्पापुरीमें जाकर भगवान् महेश्वरका दर्शन करे और एक दिन उन्हें स्नान करावे। जो मानव किसी दूसरे प्रसंगसे भी शिप्रा नदीके जलमें स्नान करता है, उसके भीतर किंचिन्मात्र भी पाप शेष नहीं रहता और वह विष्णुलोकको जाता है। प्रत्येक कल्प और कल्पान्तमें यह पुरी अपने पूर्वरूपमें ही बनी रहती है। इसीलिये सब लोगोंमें यह 'प्रतिकल्पा' के नामसे विख्यात है। जो मनुष्य इस पुरीके प्रति प्रेम रखते हैं, उनके लिये यह कल्पभेद नहीं होता।

शिप्राका माहात्म्य, उसके 'ज्वरघ्नी' और 'अमृतोद्भवा' आदि नाम पड़नेका कारण

सनत्कुमारजी कहते हैं—महाभाग व्यास! इस पृथ्वीपर शिप्रा नदीके समान दूसरी कोई नदी नहीं है। जिसके तटका दर्शन करनेमात्रसे मुक्ति प्राप्त हो जाती है, फिर दीर्घकालतक सेवन करनेसे तो कहना ही क्या है। वैकुण्ठमें इसका नाम 'शिप्रा' है, देवलोकमें यह 'ज्वरघ्नी' कहलाती है, यमद्वारमें 'पापघ्नी' के नामसे प्रसिद्ध है, पातालमें इसे 'अमृत-सम्भवा' कहते हैं और वाराहकल्पमें इसका नाम 'विष्णुदेहा' कहा गया है। अवन्तीपुरीमें भी 'शिप्रा' के नामसे ही इसकी ख्याति है। यह नदी साक्षात् कामधेनुसे प्रकट हुई है। वैकुण्ठलोकसे उत्पन्न होकर शिप्रा नदी तीनों लोकोंमें विख्यात हुई है। व्यास! शिप्राका नाम ज्वरघ्नी क्यों हुआ, यह बताता हूँ, सुनो। अनिरुद्धसे अपमानित होकर दैत्यराज बाणासुरने जब भगवान् श्रीकृष्णके साथ अपनी सहस्त्रों भुजाओंमें नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्र लेकर युद्ध किया, तब वसुदेवनन्दन श्रीकृष्णने क्षुरप्र नामक शीघ्रगामी बाणके द्वारा शीघ्रतापूर्वक

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth 279 Skandpuran_Section_32_1_Back

उसकी सहस्र भुजाओंको काट डाला (केवल दो भुजाएँ शेष छोड़ दीं)। भुजाएँ कट जानेसे बाणासुरका उत्साह भंग हो गया। वह उस युद्धसे पीड़ित हो भगवान् शंकरकी शरणमें गया। अपने समीप आये हुए भयविह्वल बाणासुरको देखकर भगवान् शिवको बड़ी दया आयी। वे, युद्धमें जहाँ भगवान् श्रीकृष्ण अविचलभावसे खड़े थे, वहाँ गये और बाणोंकी वर्षा करते हुए उन्होंने श्रीकृष्णको आगे बढ़नेसे रोका। फिर तो दोनोंमें बड़ा भयंकर संग्राम छिड़ गया। भगवान् शिवने माहेश्वर ज्वरको प्रकट किया। यह देख श्रीकृष्णने भी वैष्णव ज्वरकी सृष्टि की। फिर वे दोनों ज्वर एक-दूसरेसे भयंकर युद्ध करने लगे। अन्तमें माहेश्वर ज्वर भाग खड़ा हुआ। वह सब लोकोंमें घूमता फिरा, पर कहीं भी उसे शान्ति नहीं मिली। अन्तमें वह महाकाल वनमें आया और वैष्णव ज्वरसे पीड़ित हो शिप्रा नदीके जलमें कूद पड़ा। इससे उसको बड़ी शान्ति मिली। माहेश्वर ज्वरको शान्त हुआ देख वैष्णव ज्वरने भी वहाँ पहुँचकर शिप्राके जलमें स्नान किया। उस जलके प्रभावसे विष्णु और शिव दोनोंके ही ज्वर शान्त एवं विनष्ट हो गये। इसलिये शिप्रा नदी सब समयमें ज्वरका तत्क्षण नाश करनेवाली मानी गयी है। ज्वरसे पीड़ित एवं परम दुःखित हुए जो मानव एकाग्रचित्त हो शिप्रामें गोता लगाते और उसके तटपर निवास करते हैं, उन्हें ज्वरजनित पीड़ा कभी कष्ट नहीं देती है।

महामते व्यास! एक समयकी बात है। भगवान् शिव हाथमें कपाल लेकर नागलोककी भोगवती-पुरीमें भिक्षाके लिये गये और घर-घर घूमकर उन्होंने '**भिक्षां देहि**' (भिक्षा दो) की रट लगायी। किंतु उन भूखे भगवान् शिवको किसीने भी भिक्षा नहीं दी। तब वे पुरीसे बाहर निकले और उस स्थानपर गये, जहाँ नागलोकके संरक्षणमें अमृतके इक्कीस कुण्ड भरे हुए थे। वहाँ पहुँचकर सर्वान्तर्यामी भगवान् शंकरने अपने तृतीय नेत्रके मार्गसे अमृतके समस्त कुण्डोंको पी लिया और फिर वहाँसे उठकर चल दिये। यह सब देख-सुनकर समस्त नागलोक काँप उठा और सब एक-दूसरेसे पूछने लगे, 'यह किसका कर्म है? किसने क्या कर दिया है, जिससे इन कुण्डोंका अमृत यहाँसे चला गया?'

परस्पर ऐसा कहकर वासुकि आदि सभी नाग किसी महात्माका अपराध हो जानेकी आशंकासे नगर छोड़कर बाहर निकले और 'क्या करें, कहाँ जायँ? अब हमारा जीवन-निर्वाह कैसे होगा?' इत्यादि रूपसे चिन्ता प्रकट करते हुए स्त्री-बालकोंके साथ वे मन-ही-मन भगवान् श्रीहरिकी शरणमें गये। तब उनपर अनुग्रह करनेके लिये आकाशवाणी हुई—'नागगण! तुमलोगोंने घरपर आये हुए देवताका अपमान किया, अतिथिसत्कारका समय जानकर हाथमें कपाल लिये भिक्षुके वेषमें भिक्षा लेनेके लिये साक्षात् भगवान् शंकर तुम्हारे द्वारपर आये थे। परंतु भोगवतीपुरीमें किसीने भी उनको भिक्षा नहीं दी, तब वे बाहर चले गये हैं। इसी व्यतिक्रमके कारण तुम्हारे कुण्डोंका सम्पूर्ण अमृत नष्ट हो गया है। अब तुमलोग पातालसे निकलकर उत्तम महाकाल वनमें जाओ। वहाँ तीनों लोकोंको पवित्र करनेवाली श्रेष्ठ नदी शिप्रा बहती है, जो समस्त कामनाओं और फलोंको देनेवाली है। वहाँ जाकर तुम सब लोग विधिपूर्वक स्नान और देवाधिदेव भगवान् शिवका भजन करो। ऐसा करनेपर नागलोकमें तुम्हारी नष्ट हुई अमृतराशि पुनः प्राप्त हो जायगी।'

इस आकाशवाणीको सुनकर सब नाग स्त्री-बालक और वृद्धोंके साथ महाकाल वनमें गये। उन्होंने उस त्रिभुवनवन्दिता शिप्रा नदीका दर्शन किया। इससे उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई और वहाँ स्नान-दानादि करके उन्होंने महादेवजीकी आराधना की। कभी मलिन न होनेवाली कमलपुष्पोंकी माला, नाना प्रकारके फूल, अक्षत, वस्त्र, पुष्पहार, अनुलेपन, चन्दन, गन्ध, धूप, दीप, नैवेद्य, ताम्बूल, दक्षिणा और कपूरकी आरती आदि पूजनसामग्री लेकर वे सब-के-सब महादेवजीकी सेवामें उपस्थित

279 Skandpuran_Section_32_2_Front In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

हुए। उस समय अमृतकी इच्छा रखनेवाले नागोंने भगवान् शिवकी पूजा करके इस प्रकार उनका स्तवन किया।

नाग बोले—जिनका कहीं अन्त नहीं है, ऐसे ब्रह्मस्वरूप शिवको नमस्कार है। सर्वदेवमय शिव! आपको बार-बार नमस्कार है। चन्द्रचूड! जटाका मुकुट धारण करनेवाले! आपको नमस्कार है। शंकरात्मन्! आपको नमस्कार है। सबके साक्षी शंकर! आपको नमस्कार है। समस्त बीजोंकी उत्पत्तिके कारणभूत महादेव! आपको नमस्कार है। अमृतका स्रोत बहानेवाले ईश्वर! आपको नमस्कार है। कमनीय कामस्वरूप आपको नमस्कार है। सर्वकामवरप्रद! आपको नमस्कार है। शान्तस्वरूप शिवको नमस्कार है। पशुओं (अज्ञानी जीवों)-का पालन करनेवाले भगवान् पशुपतिको नमस्कार है। मृड (सुखस्वरूप), दान्त (मन और इन्द्रियोंको वशमें रखनेवाले) और शान्तरूप आपको नमस्कार है।

नागोंके द्वारा इस प्रकार स्तुतिसे प्रसन्न किये हुए भगवान् शंकर प्रत्यक्ष दर्शन देकर बोले—नागगण! किसी पूर्वपुण्यके प्रभावसे तुम सब लोग नागलोक छोड़कर इस उत्तम महाकाल वनमें आये हो और बालकों, वृद्धों तथा स्त्रियोंके साथ तुमने सरिताओंमें श्रेष्ठ शिप्राका दर्शन किया है। तुम सब श्रेष्ठ नागोंने शिप्रामें स्नान किया है। अतः उसके पुण्यप्रभावसे तुम्हारे घर-घरमें अमृत प्राप्त होगा। तुम शिप्राका जल ले जाकर अपने अमृत-कुण्डोंमें छिड़क दो। उससे वे इक्कीसों कुण्ड अमृतसे भर जायँगे और स्थिर रहेंगे।

तब उन नागोंने 'बहुत अच्छा' कहकर भगवान् महेश्वरको प्रणाम किया और अपने हाथोंमें शिप्रा नदीका जल लेकर वे नागलोकमें लौट गये। तबसे नागलोकमें शिप्राका नाम अमृतोद्भवा (या अमृतसम्भवा) प्रसिद्ध हुआ। जो मनुष्य इसमें स्नान-दानादि पुण्यकर्म करते हैं, उनका पाप शेष नहीं रहता तथा उन्हें कभी आपत्ति और दुर्गति नहीं देखनी पड़ती।

जय-विजयको सनकादिका शाप, भगवान्का वाराहावतार, वाराहके हृदयसे शिप्राकी उत्पत्ति तथा उसका माहात्म्य

सनत्कुमारजी कहते हैं—महाभाग! शिप्रा नदी सर्वत्र पुण्यदायिनी, अतिशय पवित्र तथा पापहारिणी है। परंतु अवन्तीपुरीमें उसका यह महत्त्व बहुत बढ़ जाता है। पूर्वकालमें अनुपम तेजस्वी भगवान् विष्णुके मनोहर वैकुण्ठधाममें जय और विजय नामवाले दो द्वारपाल थे। दोनों ही बड़े पराक्रमी थे और सदा हाथमें डंडा लिये वैकुण्ठके द्वारपर खड़े रहते थे। मुनिश्रेष्ठ! एक समय ब्रह्माजीके मानसपुत्र सनकादि स्वेच्छासे सब लोकोंमें भ्रमण करते हुए भगवान् विष्णुके परम धाममें आये। उनके मनमें श्रीविष्णुके दर्शनकी बड़ी लालसा थी। द्वारपर आते ही द्वारपालोंने उन्हें सहसा रोक दिया। उनके धक्के खाकर वे चारों कुमार वहाँकी भूमिपर गिर पड़े और मूर्छित हो गये। द्वारपालोंके इस बर्तावसे उन्हें बड़ा दुःख हुआ। इतनेमें ही कमलके समान नेत्रवाले महाबाहु भगवान् विष्णु भी वहाँ आ गये। उन्होंने पृथ्वीपर दुःखित होकर पड़े हुए उन कुमारोंको ज्यों ही देखा, सहसा आगे बढ़कर उन्हें अपनी गोदमें उठा लिया। मधुसूदनने उन कुमारोंका मस्तक सूँघा और भुजाओंमें कसकर छातीसे चिपका लिया। तदनन्तर पूछा—'महात्माओ! आपको यह मूर्छा कैसे आ गयी। किसने आपलोगोंको इस भारी दुःखमें डाला है?'

कुमार बोले—महाराज! हम आपके दर्शनकी अभिलाषासे वैकुण्ठधामके भीतर आ रहे थे कि सहसा इन बलोन्मत्त द्वारपालोंने हमें रोक दिया, इसीसे हमें यह दशा प्राप्त हुई है। अतः आजसे इस स्थानपर इनकी सनातन स्थिति न हो, ये दोनों असुरयोनिको प्राप्त हो जायँ।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

सनकादि कुमारोंके इतना कहते ही वे दोनों जय और विजय तत्काल आसुरी योनिमें चले गये। वे दोनों प्रथम जन्ममें 'हिरण्यकशिपु' और 'हिरण्याक्ष', दूसरे जन्ममें 'कुम्भकर्ण' तथा 'रावण' और तीसरे जन्ममें 'दन्तवक्र' एवं 'शिशुपाल' कहलाये। हिरण्याक्ष नामक दैत्य बड़ा बलवान् था। वह सब देवताओंको जीतकर स्वयं ही उनके लोकोंका अधिकारी बन बैठा। राज्यभ्रष्ट देवता पराजित होकर स्वर्गसे निकाल दिये गये। उस समय सब लोग पाखण्डी, पराक्रमशून्य तथा धर्मविमुख हो गये। 'सब कुछ ब्रह्म ही है' ऐसा कहते हुए दम्भी दैत्य पशुओंके समान आचरणवाले हो गये थे।

संसारकी ऐसी दुरवस्था देख भगवान् महाविष्णुने विचार किया कि जब-जब धर्मकी हानि और अधर्मका उत्थान होता है, तब-तब मैं अपने-आपको संसारमें प्रकट करता हूँ।* अतः अब मुझे अवतार ग्रहण करना चाहिये। ऐसा सोचकर उन्होंने लीलासे ही श्वेतद्वीपके समान परम उज्ज्वल मंगलमय दिव्य वाराहशरीर धारण किया, जो पूर्णतः यज्ञमय था। यूप (यज्ञस्तम्भ) ही उनकी दाढ़ें थीं, हविष्यकी गन्ध ही उनके शरीरकी दिव्य गन्ध थी, बीज और ओषधियाँ ही उनकी रोमावलि थीं और चारों वेद ही उनके चार चरण थे। साक्षात् आदिपुरुष परमेश्वर ही, जिनके अनेकों नाम हैं और वेदोंमें जिनकी अनेक प्रकारसे स्तुति की गयी है, वाराहरूपसे प्रकट हुए थे। उन्होंने बड़ा भारी संग्राम करके उस दुर्धर्ष दैत्य हिरण्याक्षको मार डाला। उससे पीड़ित हुई यह पृथ्वी रसातलको चली गयी थी। उसे भगवान् वाराह अपनी दाढ़से उठाकर ऊपर ले आये। हिरण्याक्षके अनुगामी बहुतसे दैत्य मारे गये। शेष सभी भागकर पातालमें चले आये। उस समय पवित्र वायु चलने लगी। सूर्य उत्तम प्रभासे परिपूर्ण हो गये। अग्निकुण्डोंकी बुझी हुई अग्नियाँ पुनः प्रज्वलित हो उठीं और दिशाओंमें जो कोलाहल होते रहते थे, वे सब शान्त हो गये।

भगवान् वाराहमूर्ति सम्पूर्ण कामनाओं और फलोंको देनेवाले हैं। वे आनन्दसे परिपूर्ण दैव, दैत्योंका संहार करनेवाले तथा भक्तोंको वर देनेवाले हैं। उन्हींके हृदयसे यह सनातन नदी शिप्रा प्रकट हुई है, जो आनन्दमय जलसे परिपूर्ण तथा आनन्ददायक वर देनेवाली है। रमणीय महाकाल वनमें परम सुन्दर पद्मावतीपुरी है। उस पुरीमें सुन्दर कुण्ड परम रम्य प्राचीन और शुभ है। उसमें स्नान करके सब मनुष्य सनातन शिवलोकको जाते हैं। व्यास! उसी सुन्दर वनमें लोकपावनी शिप्रा लीन हुई है। भगवान् वाराहने समस्त दुष्ट दैत्योंका संहार करके देवताओंको निर्भय कर दिया। तदनन्तर इन्द्र आदि सब देवताओंने हाथ जोड़कर उन महाविष्णुको नमस्कार किया और सामने खड़े होकर इस प्रकार पूछा।

देवता बोले—देवदेव! जगन्नाथ! आपके गुणोंका श्रवण और कीर्तन परम पुण्यमय है। कृपया यह बताइये कि किस पुण्यके प्रभावसे हमें स्वर्गलोक प्राप्त हो सकता है?

भगवान् वाराह बोले—देवताओ! महाकाल वनमें तुम्हारी मनोरथसिद्धिका कारणभूत गुह्यसे भी गुह्य पुण्य-स्थान है। जहाँ मेरे शरीरसे उत्पन्न हुई शिप्रा नदी लीन हुई है, वह स्थान लीनगंगाके नामसे विख्यात है। जहाँ सरिताओंमें श्रेष्ठ लीनगंगा, प्राची, सरस्वती, पुष्कर, गयातीर्थ तथा शुभ पुरुषोत्तम सरोवर है, उस शिप्रा नदीको जाओ।

देवाधिदेव जगद्गुरु भगवान् वाराहका यह वचन सुनकर ब्रह्मा, इन्द्रादि सब देवता परम सुन्दर महाकाल वनमें, जहाँ सरिताओंमें श्रेष्ठ शिप्रा बहती हैं, गये। वहाँ स्नान-दानादि शुभकर्म करके उस पुण्यके प्रभावसे वे अपने-अपने लोकको प्राप्त हुए। व्यासजी! इस प्रकार शिप्रा नदी सम्पूर्ण लोकोंको पवित्र करनेवाली बतायी गयी है।

~~०~~

* यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत। अभ्युत्थानमधर्मस्य तदाऽऽत्मानं सृजाम्यहम्॥ (स्क० पु०, आ० अव० मा० ६३। ४०)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

क्षातासंगम तथा उसके निकटवर्ती तीर्थोंकी महिमा, राजा युगादिदेवके धर्ममय राज्यकी प्रशंसा

सनत्कुमारजी कहते हैं—व्यास! अब क्षाता नदीके संगमसे प्रकट हुए एक अन्य तीर्थका माहात्म्य बताया जाता है, जिसमें स्नान करनेमात्रसे मनुष्य महान् पातकोंसे मुक्त हो जाता है। जब अमावास्या और शनिवारका योग हो, तब मनुष्य एकाग्रचित्त होकर पितरोंके उद्देश्यसे श्राद्ध तथा तिल और जलसे तर्पण करे। तत्पश्चात् स्थावर लिंगके रूपमें प्रतिष्ठित उत्तम शनैश्चर देवका दर्शन करे। जो ऐसा करता है, उसे कभी शनैश्चर ग्रहसे पीड़ा नहीं होती। नर्मदा, चर्मण्वती और क्षाता—ये तीन नदियाँ पूर्वकालमें अमरकण्टक पर्वतसे पृथ्वीपर प्रकट हुईं। ये तीनों ही तीनों लोकोंको पवित्र करनेवाली हैं। क्षाता नर्मदा नदीका साथ छोड़कर उत्तम विन्ध्यगिरिका भेदन करती हुई परम सुन्दर महाकाल वनमें चली आयी, जहाँ सरिताओंमें श्रेष्ठ शिप्रा तथा परम पुण्यमयी यह अमरावतीपुरी है। यहाँ आकर क्षाता नदी पूर्वकालमें जहाँ शिप्राके साथ मिली थी, वहाँ 'क्षातासंगम' नामक उत्तम तीर्थ प्रकट हो गया।

यज्ञकुण्डसे उत्तर भागमें, जहाँ पवनपुत्र हनुमान्जी विराजमान हैं, 'धर्मसरोवर' नामसे विख्यात एक उत्तम तीर्थ है। पवनकुमार हनुमान्जीने वहीं तपस्याके द्वारा उत्तम सिद्धि प्राप्त की थी। जो मनुष्य उस तीर्थमें स्नान करके काँसेका पात्र दान करता है, वह ब्रह्मलोकमें पूजित होता है। जो श्रावणमासके शुक्ल पक्षकी एकादशी तिथिको उत्तम आचारका पालन करते हुए धर्मतीर्थमें स्नान और दानादि सत्कर्म करता है, उसे सनातन विष्णुलोककी प्राप्ति होती है। च्यवनजीके आश्रममें स्नान करके मनुष्य च्यवनेश्वर शिवका दर्शन करे, जहाँ वैद्योंमें श्रेष्ठ दोनों अश्विनीकुमार सिद्धिको प्राप्त हुए हैं। च्यवन मुनिकी कृपासे ही अश्विनीकुमारोंने देवताओंकी पंक्तिमें स्थान प्राप्त किया था और च्यवनने भी वहीं अश्विनीकुमारोंकी चिकित्सासे खोयी हुई दृष्टि प्राप्त की थी। द्विजश्रेष्ठ! उस तीर्थमें मनुष्य दिव्य दृष्टि प्राप्त करता है। वहीं भगवान् सूर्यने अग्निहोत्रसहित उत्तम आसन प्राप्त किया है। उसी तीर्थके प्रभावसे महाभागा संज्ञा और विश्वविख्यात सावित्रीने सूर्यलोकमें जाकर विपुल ऐश्वर्यका उपभोग किया है। अतः क्षातासंगमतीर्थ बहुत उत्तम, सब पापोंको हर लेनेवाला, पुण्यवर्धक तथा समस्त कामनाओं एवं वरोंको देनेवाला है।

व्यासजी! प्राचीन कालकी बात है। पुण्यमय सत्ययुगमें युगादिदेव नामसे प्रसिद्ध एक राजा हो गये हैं। वे बड़े धर्मात्मा थे। उनके गुणोंका श्रवण और कीर्तन भी पुण्यजनक माना गया है। वे प्रजाको अपने सगे पुत्रोंकी भाँति मानकर उसका भलीभाँति पालन करते थे। उनकी प्रजा सब साधनोंसे सम्पन्न तथा सब ओरसे सदैव उन्नतिशील थी। उनके शासनकालमें धर्म अपने चारों चरणोंसे युक्त था। सदा समयपर वर्षा होती और सब ऋतुएँ अपने अंगोंसे सम्पन्न होकर आती थीं। पृथ्वीपर अनाज और फल अधिक पैदा होता था। उस राजाके राज्यमें कोई भी मनुष्य आधि-व्याधिसे पीड़ित नहीं दिखायी देते थे। स्त्रियाँ भी दुःशीला, दुर्भगा और विधवा नहीं देखी जाती थीं। उनमें बहुत पुत्रोंवाली, थोड़े पुत्रोंवाली, मरे पुत्रोंवाली अथवा वन्ध्या भी कोई दृष्टिगोचर नहीं होती थीं। सभी रूपवती, सुशीला, गुणवती तथा पातिव्रतधर्मका पालन करनेवाली थीं। राह-बाटमें शत्रुओंका आक्रमण नहीं होता था। चोर-डाकुओंका भी भय नहीं रहता था। घर-घरमें सदा यही शब्द सुनायी पड़ता था कि होम करो, भोजन कराओ और सदा दान देते रहो। जप, दान, तप, होम, स्तुति और यज्ञकर्मोंमें लगे हुए मनुष्य ही सर्वत्र दिखायी देते थे। वे सब धर्मोंका पालन करते थे। धर्म अपने चारों पैरोंसे चलता था, परंतु अधर्मका एक ही पाद था। राजा युगादिदेव ऐसे धर्मात्मा थे। उन्होंने धर्मपूर्वक पृथ्वीका पालन किया और अपनी प्रजाको बढ़ाया। व्यासजी! अवन्तीपुरीमें भी राजा युगादिदेवने करोड़ों यज्ञोंका अनुष्ठान किया था।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

गयातीर्थकी महिमा, पुरुषोत्तममास और पुरुषोत्तमतीर्थकी महत्ता तथा गोमती कुण्डका माहात्म्य

सनत्कुमारजी कहते हैं—व्यास! 'कुमुद्वती पुरी' (उज्जयिनी) में गया नामक तीर्थ भी है। गयामें जो-जो तीर्थ और पुण्यस्थान हैं, वे सब इस तीर्थमें भी निश्चित रूपसे वर्तमान हैं। इस गयातीर्थमें स्नान करके मनुष्य मुख्य गयातीर्थके विभिन्न फलोंको प्राप्त करता है। यहाँका गयाक्षेत्र गयाश्राद्धका भी फल देनेवाला है। प्रधान गयाकी भाँति इस तीर्थमें भी श्रेष्ठ नदी 'फल्गू' है, जो वैसा ही फल देनेवाली है। यहाँ भी आदिगया, बुद्धगया और विष्णुपदतीर्थ है। कोष्ठक भगवान् गदाधरके चरणचिह्न, सोलह वेदियाँ, अक्षयवट, प्रेतोंको मुक्त करनेवाली शिला, अच्छोदा नामवाली नदी तथा पितरोंका उत्तम आश्रम भी है। इन सब स्थानोंमें स्नान-दानादि क्रिया करनी चाहिये और विधिपूर्वक श्राद्धका दान भी देना चाहिये। जो ऐसा करता है, उसे उस तीर्थका फल प्राप्त होता है। गयामें जो पितरोंका लोक है, वहाँ साक्षात् भगवान् विष्णु विराजमान हैं। उन कमल-नयन श्रीहरिका ध्यान करके मनुष्य तीनों ऋणोंसे मुक्त हो जाता है। वर्षभरमें एक पक्ष गयाश्राद्धके लिये प्रतिष्ठित है। भगवान् सूर्य जब हस्त नक्षत्र एवं कन्याराशिपर स्थित हो, तब आश्विन कृष्णपक्षमें महालय काल बताया गया है। उस समय पितरोंके लिये जो कुछ दिया जाता है, वह सब अक्षय होता है। व्यासजी! स्नान-दानादि कर्मोंके लिये परम मनोहर अवन्ती पुरी बहुत उत्तम है।

व्यासजीने कहा—प्रभो! आपने पहले 'पुरुषोत्तम' तीर्थकी भी चर्चा की है। अतः उस तीर्थकी भी महिमा विस्तारपूर्वक बताइये।

सनत्कुमारजी बोले—द्विजश्रेष्ठ! पूर्वकालकी बात है। भगवान् लक्ष्मीपति शुभ एवं निर्मल वैकुण्ठधाममें अपने पार्षदों, सनकादि महर्षियों तथा ब्रह्मा आदि देवेश्वरोंसे घिरे हुए बैठे थे। इन सबके बीचमें भगवती महालक्ष्मीने पूछा—'प्राणनाथ! पुण्यकी विधि क्या है? इसको मैं सुनना चाहती हूँ।'

भगवान् विष्णु बोले—कल्याणी! स्नान, दान और तपस्या सदा ही उत्तम है तथापि यदि वह विधिसे प्राप्त हो तो सब अक्षय होता है। पूर्णिमा, अमावास्या, संक्रान्ति, ग्रहण, वैधृति तथा व्यतीपात योगमें किया हुआ दान परम समृद्धिदायक माना गया है। गंगा, भास्करक्षेत्र, अरुणक्षेत्र, पुष्कर, गोदावरी नदी और गयातीर्थमें तथा अमरकण्टक पर्वत एवं अवन्ती पुरीमें किया हुआ होम और दानादि सब कर्म अक्षय होता है। अतः सर्वथा प्रयत्न करके पर्वोंपर तीर्थसेवन करना चाहिये।

लक्ष्मीजीने पूछा—भगवन्! कौन-कौनसे योग हैं और उनमें करने योग्य कर्म भी कौन हैं? यह सब विशेषरूपसे बतानेकी कृपा करें।

श्रीभगवान् बोले—प्रिये! तीन वर्षपर मलमास पर्व आता है। इसमें सूर्यकी संक्रान्ति नहीं होती, इसलिये इसको अधिकमास कहा गया है। मैं पुरुषोत्तम ही इस अधिकमासका अधिपति हूँ, इसीलिये इसे पुरुषोत्तम मास भी कहते हैं। महाकाल वनमें मेरे नामका उत्तम तीर्थ है। वहाँ मेरा पुरुषोत्तमधाम सदैव विद्यमान है। पुरुषोत्तम मास आनेपर मनुष्य मेरी प्रसन्नताके लिये उत्तम व्रतका पालन करे। जो श्रेष्ठ मानव पुरुषोत्तम मासमें मध्याह्नके समय स्नान-दान, जप-होम, स्वाध्याय, पितृतर्पण तथा देवार्चन करते हैं, उनका वह सब कर्म अवश्य ही अक्षय होता है। जो मनुष्य अवन्ती पुरीमें मलमास व्रत करनेवाले हैं, उन्हें मैं प्रसन्नतापूर्वक धन देता हूँ। मलमासमें जो कुछ थोड़ा भी दान बन सके वह इस तीर्थमें करना चाहिये। वह मेरी प्रसन्नतासे अनन्तगुना हो जाता है। प्रिये! जब संक्रान्तिशून्य मास (मलमास) मनुष्योंको प्राप्त हो, तब अपना हित चाहनेवाले लोगोंको उस समय बड़ा भारी

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

उत्सव करना चाहिये। देवेश्वरी! कृष्णपक्षकी चतुर्दशी, नवमी अथवा अष्टमीको शोकनाशक व्रत करना चाहिये। पुण्य दिवसमें प्रातःकाल उठकर पहले पूर्वाह्नमें किये जानेवाले नित्य-कर्मोंका अनुष्ठान करे। तत्पश्चात् मुझ वासुदेवका मन-ही-मन स्मरण करते हुए नियम ग्रहण करे। उपवास, नक्त-व्रत (केवल रात्रिमें भोजन करना) तथा एकभुक्तव्रत (केवल दिनमें एक बार अन्न-ग्रहण)—इन तीनोंमेंसे किसी एक व्रतके पालनका निश्चय करके ब्राह्मणोंको निमन्त्रित करे। वे ब्राह्मण सपत्नीक, सदाचारी, कुलीन एवं कुटुम्बी हों। तदनन्तर मध्याह्नकालमें नूतन एवं छिद्ररहित कलशके ऊपर लक्ष्मीसहित सनातन देव श्रीविष्णुकी स्थापना करे और ब्राह्मणोंद्वारा वेदमन्त्रोंका उच्चारण कराते हुए अपने भाई-बन्धुओंके साथ बैठकर उत्तम भक्तिके साथ ब्रह्माजीसहित भगवान् लक्ष्मीनारायणकी पूजा करे। पहले चन्दनयुक्त जलसे स्नान कराकर फिर पंचामृतसे स्नान करावे। तत्पश्चात् शुद्ध जलसे स्नान कराकर आच्छादनके लिये रेशमी वस्त्र भेट करे। फिर गन्ध, चन्दन, पुष्प, तुलसीदल, धूप, दीप तथा भाँति-भाँतिके मिष्टान्नयुक्त नैवेद्य अर्पण करे। अन्तमें घण्टा, मृदंग, शंखध्वनि एवं दिव्य घोषके साथ कपूर, अगर और चन्दनके द्वारा व्रती पुरुष भगवान्‌की आरती उतारे। कर्पूरादि न मिले तो घीमें डुबोयी हुई रूईकी बत्तियोंसे भी आरती कर सकते हैं। उसके बाद ताँबेके अर्घ्यपात्रमें रखे हुए जल, चन्दन, अक्षत और फूलसे प्रसन्नतापूर्वक भगवान्‌को विशेषार्घ्य दे। पूजन एवं अर्घ्यदानके समय अपनी पत्नीको भी साथ रखे। अर्घ्यपात्रमें जल-चन्दनादिके साथ पंचरत्न भी रखना चाहिये। अर्घ्य देनेकी विधि इस प्रकार है—दोनों घुटनोंको जमीनपर टेककर दोनों हाथोंसे अर्घ्यपात्र उठाकर भक्तिपूर्वक भगवान्‌के आगे वह जल गिरावे। अर्घ्यका मन्त्र इस प्रकार है—

कृपावान् सर्वभूतेषु जगदानन्दकारकः।
गृहाणार्घ्यमिदं देव सम्पूर्णफलदो भव॥

'देव! आप सम्पूर्ण जीवोंपर कृपा रखनेवाले हैं। जगत्‌को आनन्द देनेवाले हैं; इस अर्घ्यको ग्रहण कीजिये और मुझे व्रतका पूर्णफल प्रदान कीजिये।'

इसके बाद निम्नांकित मन्त्र पढ़कर प्रार्थना करे—

स्वयम्भुवे नमस्तुभ्यं ब्रह्मणेऽमिततेजसे।
नमोऽस्तु ते श्रियानन्द ब्रह्मानन्द कृपाकर॥

'अमित तेजस्वी स्वयम्भू ब्रह्माजीको नमस्कार है। लक्ष्मीजी तथा ब्रह्माजीको आनन्द प्रदान करनेवाले कृपानिधान पुरुषोत्तम! आपको सादर नमस्कार है।'

इस प्रकार भगवान् गोविन्दकी प्रार्थना करके लक्ष्मीनारायणका स्मरण करते हुए स्वयं ही सपत्नीक ब्राह्मणोंका पूजन करे। विधिपूर्वक पूजा सम्पन्न करके उन्हें घृतपक्व एवं खीर आदिका भोजन करावे। विद्या-विनयसे सम्पन्न सपत्नीक ब्राह्मणको विधिवत् भोजन कराकर यथाशक्ति वस्त्र, अलंकार और कुंकुम आदिके द्वारा उनका सत्कार करे। घीमें तैयार किये हुए गेहूँके आटेकी पूरी, कचौरी आदि उत्तम-उत्तम मिष्टान्न, भाँति-भाँतिके फल, शर्करा और घृतसे तैयार किये हुए भोज्यपदार्थ, मूली, अदरक, अनेक प्रकारके साग और गोरस आदि पदार्थोंको मीठे वचन बोल-बोलकर परोसना चाहिये। 'प्रभो! इसका रस बड़ा स्वादिष्ट है; यह भोजन करनेयोग्य बहुत उत्तम है, इसे तो आपके लिये खास तौरपर तैयार किया गया है, आपको जो रुचता हो वह और माँग लीजिये' इत्यादि बातें कह-कहकर प्रेमपूर्वक ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये। भोजनके पश्चात् ताम्बूल और दक्षिणा देकर उन्हें विदा करना चाहिये। ब्राह्मण-भोजनके अनन्तर व्रती पुरुष भाई-बन्धुओंके साथ स्वयं भोजन करे। प्रिये! जो नारी इस संसारमें मलमास व्रतका पालन करती है, उसे दरिद्रता, पुत्रशोक एवं विधवापन कभी प्राप्त नहीं होता। स्त्री हो या पुरुष, जो भी मलमासमें पूर्वोक्त व्रतका पालन करता है, वह उत्तम फलका भागी होता है।

भगवती लक्ष्मी जिनके चरणोंकी बड़े लाड़-

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

प्यारसे सेवा करती हैं, उन भगवान् पुरुषोत्तमकी लक्ष्मीसहित पूजा करके शंकरके साथ पार्वतीदेवीका भी पूजन करे। जो ऐसा करता है, वह सैकड़ों मनोवांछित फलोंको पाकर भगवान् विष्णुके लोकमें पूजित होता है। भाद्रपद शुक्ल पक्षकी एकादशी तिथिको एकाग्रचित्त होकर जो पुरुष पुरुषोत्तम-सरोवरमें स्नान करता है, उसे स्त्री, पुत्र, धन, आयु, आरोग्य और सम्पदा प्राप्त होती है। पुरुषोत्तम-सरोवरके ईशान कोणमें भृगुश्रेष्ठ परशुरामजीने आत्मशुद्धिके लिये तपस्या की है। वहींपर सब तीर्थोंका श्रेष्ठ फल प्रदान करनेवाली सरिताओंमें श्रेष्ठ 'कौशिकी' नदी भी है। उसमें स्नान करके मनुष्य जातिहत्याके दोषसे मुक्त होता है। वहीं भगवान् रामेश्वरका दर्शन करके मानव अपने सब पाप धो डालता है।

एक समय नैमिषारण्य क्षेत्रमें बैठे हुए शौनकादि मुनि आपसमें सब तीर्थोंके विषयकी पुण्यदायिनी शुभ कथा कह रहे थे। उस पुण्यमय अवसरपर देवर्षि नारदजीने काशीका उत्तम माहात्म्य वर्णन किया। तत्पश्चात् स्वयम्भू भगवान् ब्रह्माने सब देवताओं तथा ऋषियोंके समक्ष इस प्रकार कहा— 'समस्त पाताल और भूलोकमें गोमतीके समान दूसरी कोई नदी नहीं है, श्रीकृष्णके तुल्य कोई देवता नहीं हैं और द्वारकाके समान दूसरी कोई पुरी नहीं है।'

इस बातको निश्चितरूपसे जानकर वहाँ यत्र-तत्र बैठे हुए शौनकादि सभी ऋषियोंने वहीं गोमतीके तटपर प्रातःकाल सन्ध्योपासना की। महर्षि सान्दीपनि भी वहीं थे। उन्होंने भी गोमती-तटपर सन्ध्योपासना की। इस प्रकार दीर्घकालतक व्रतका पालन करनेवाले अवन्तीनिवासी सान्दीपनि मुनिके पास उन्हींकी कामना पूर्ण करनेके लिये सुकुमार अंगवाले ब्रह्मचारी बलराम और श्रीकृष्ण आये। उन्होंने गुरुजीसे कहा—'ब्रह्मन्! नदियोंमें श्रेष्ठ गोमती अब यहीं अवन्तीपुरीमें आ गयी है। यज्ञकुण्डमें गोमती और सरस्वती दोनोंका समागम हुआ है। गोमतीकुण्ड सब पापोंका नाश करनेवाला बताया गया है। भाद्रपदमासके कृष्ण पक्षकी अष्टमी तिथिको कृष्णजन्मके दिन उस कुण्डमें स्नान करके मनुष्य रात्रिमें जागरण करे और विधिपूर्वक उपवास करके शिष्यसहित व्यासजीकी पूजा करे। जो लोग एकाग्रचित्त होकर उस दिन गौ-ब्राह्मणोंकी पूजा करते हैं, उनके लिये सब लोकोंमें कोई भी वस्तु दुर्लभ नहीं है। उन्हें गोमती-स्नानका पुण्य, भगवान् वासुदेवका समागम तथा सब मनोरथोंकी सिद्धि प्राप्त होती है। चैत्र शुक्ला एकादशीके दिन मनुष्य गोमतीकुण्डमें विशेषरूपसे स्नान करके रात्रिमें जागरण और भगवान् विष्णुका पूजन करे। तत्पश्चात् आमलकी यात्रा करे तो उसे पग-पगपर सहस्रों गोदानका फल प्राप्त होता है।

गंगेश्वर और विश्वेश्वरतीर्थका माहात्म्य, बलिके द्वारा देवताओंकी पराजय, ब्रह्माजीका देवताओंको विष्णुसहस्रनामस्तोत्रका उपदेश देना

सनत्कुमारजी कहते हैं—ब्रह्मन्! गंगेश्वरके समीप जहाँ आकाशगंगाका संगम है, वहाँ सब पापोंको हरनेवाला एक श्रेष्ठ तीर्थ है। इस भूतलपर वह तीर्थ धन्य है और महान् पुण्यफल देनेवाला है। वहीं भगवान् शंकरने आकाशसे गिरती हुई गंगाको अपने मस्तकपर धारण किया था। उस तीर्थमें स्नान करके यदि मनुष्य गंगेश्वरका दर्शन करे तो वह गंगास्नानका फल पाकर विष्णुलोकमें पूजित होता है। विश्वनाथजीके पास पहुँचकर विश्वेश्वरतीर्थमें जो निवास करता है, वह सब पापोंसे शुद्धचित्त होकर विष्णुलोकको पाता है।

प्राचीन कालमें भगवान् विष्णुकी भक्तिमें तत्पर रहनेवाले एक दैत्यराज हो गये हैं, जो प्रह्लादके नामसे विख्यात थे। प्रह्लादजी समस्त धर्मात्माओंमें

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

श्रेष्ठ थे। उन्होंने आचरणके द्वारा धर्मपर विजय पायी, सत्यके द्वारा लक्ष्मीजीको जीता, धैर्यसे सम्पूर्ण लोक धारण किये, क्षमासे पृथ्वीको जीता, गम्भीरतासे दिव्य समुद्रको पराजित किया तथा शौर्यसे शत्रुगणोंको परास्त किया था। महात्मा प्रह्लादने विनयसे अतिथियोंको, दक्षिणासे यज्ञको और हविष्यसे अग्निदेवको जीत लिया था। बाहर-भीतरकी पवित्रता और सदाचारके पालनसे उनका अन्तःकरण पूर्णतः शुद्ध हो गया था। तपस्यासे उनका अशुभ नष्ट हो चुका था। दान, मान और भोजन-आच्छादनादिसे उन्होंने ब्राह्मणोंके हृदयको जीत लिया था। उन्होंने संस्कारसे जन्मको, दम (इन्द्रियसंयम) से सनातन आत्माको, प्राणायामसे वायुको और योगध्यानसे श्रीहरिको अपने वशमें कर लिया था। प्रह्लादजीके समान धीर कोई नहीं हुआ।

प्रह्लादजीके सदाचारी पौत्र बलिके नामसे प्रसिद्ध हैं। उनके शासनकालमें प्रजाकी उत्तरोत्तर वृद्धि होती थी। पृथ्वीपर कोई अल्पायु, जड़-मूर्ख, रोगी, ईर्ष्यालु, पुत्रहीन और धनहीन नहीं था। राजा बलि सम्राट् थे। वे प्रचुर दक्षिणाओंसे सम्पन्न अनेकानेक यज्ञ करते रहते थे। उन्होंने सात द्वीपोंवाली पृथ्वीका सदैव पालन किया है। एक समय राजा बलि सभाके बीच श्रेष्ठ सिंहासनपर बैठे थे। सब ओर उनकी जय-जयकार हो रही थी तथा पुराणों और स्मृतियोंकी दिव्य कथा-वार्ता चल रही थी। इसी समय वहाँ बहुत-से ऋषि पधारे। बड़े-बड़े दैत्य और दानव राजा बलिकी सेवामें उपस्थित हुए। सिद्ध, नाग, यक्ष, किन्नर और किंपुरुष आदि भी राजाके दरबारमें आये थे। इन सबके समागमसे दैत्यसम्राट् बलिकी वह परम दिव्य सभा बड़ी शोभा पा रही थी। तदनन्तर उस सभामें देवदर्शन नारदजी कहींसे आ गये। उन्हें देखकर सब दैत्य उठकर खड़े हो गये और सबने मस्तक झुकाकर प्रणाम किया। राजा बलिने नारदजीका स्वागत-सत्कार करके आसन दिया और उनका कुशल-समाचार पूछा।

तब आनन्दपूर्वक बैठकर देवर्षि नारदजीने कहा—दैत्यराज! भूतलपर सदा तुम्हारे पितरों और पितामहोंका अधिकार होता आया है। दानवश्रेष्ठ! अपने पितरोंकी परम्परासे चली आती हुई पृथ्वीको जीतकर तुम चक्रवर्ती सम्राट् हो जाओ। यह सुनकर बलिने इन्द्रसहित सब देवताओंको जीतकर अपने वशमें कर लिया और वे सब लोकोंके स्वामी हो गये। उस समय सब देवगण ब्रह्माजीकी शरणमें गये और इस प्रकार बोले—'ब्रह्मन्! बलिने हमें देवलोकसे अलग कर दिया, क्या करें? कहाँ जायँ?'

ब्रह्माजी बोले—देवताओ! तुमलोग परम मनोहर पद्मावतीपुरीको जाओ। वहाँ सब तीर्थोंमें श्रेष्ठ उत्तरमानस नामक तीर्थ है, जहाँ मनुष्योंको महासिद्धि देनेवाली अष्टसिद्धिदायिनी देवी विख्यात हैं। उसीसे दक्षिण भागमें परम उत्तम विष्णुतीर्थ है। वहाँ जाकर अमित तेजस्वी भगवान् विष्णुकी आराधना करो। वे तुम्हारी सब दुःखोंसे रक्षा करेंगे।

ब्रह्माजीकी यह बात सुनकर उन श्रेष्ठ देवताओंने पूछा—ब्रह्मन्! किस विधिसे भगवान् विष्णुकी आराधनामें तत्पर होना चाहिये?

शुक्लाम्बरधरं विष्णुं शशिवर्णं चतुर्भुजम्।
प्रसन्नवदनं ध्यायेत् सर्वविघ्नोपशान्तये॥
लाभस्तेषां जयस्तेषां कुतस्तेषां पराजयः।
येषामिन्दीवरश्यामो हृदयस्थो जनार्दनः॥

ब्रह्माजी बोले—देवताओ! भगवान् विष्णु श्वेत वस्त्र धारण किये चार भुजाओंसे सुशोभित हैं। उनके श्रीअंगोंकी कान्ति चन्द्रमाके समान गौर है, उनके मुखपर सदैव प्रसन्नता छायी रहती है। ऐसे श्रीहरिका सब विघ्नोंकी शान्तिके लिये ध्यान करे। नील कमलके समान श्यामसुन्दर श्रीविष्णु जिनके हृदयमें विराजमान हैं, उन्हींको लाभ होता है, उन्हींकी विजय होती है, उनकी पराजय कैसे हो सकती है? भगवान् विष्णुका जो सहस्रनामस्तोत्र है, वह अत्यन्त शुभ और विष्णुभक्ति प्रदान करनेवाला है।

विनियोगः

ॐ अस्य श्रीविष्णुसहस्रनामस्तोत्रमन्त्रस्य ब्रह्मा

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

ऋषिर्विष्णुर्देवता अनुष्टुप्छन्दः सर्वकामावाप्त्यर्थं जपे विनियोगः।

इस श्रीविष्णुसहस्रनामस्तोत्रका मैं ब्रह्मा ऋषि हूँ, भगवान् विष्णु देवता हैं, अनुष्टुप् छन्द है और सब कामनाओंकी प्राप्तिके लिये जप अथवा पाठ करनेमें इसका विनियोग किया जाता है।

ध्यानम्

सजलजलदनीलं दर्शितोदारशीलं
करतलधृतशैलं वेणुवाद्ये रसालम्।
व्रजजनकुलपालं कामिनीकेलिलोलं
तरुणतुलसिमालं नौमि गोपालबालम्॥

इस प्रकार विनियोग करके ध्यान करना चाहिये। वह इस प्रकार है—जिनके श्रीअंगोंकी कान्ति नूतन जलधरके समान श्याम है, जिन्होंने सदा उदारस्वभावका परिचय दिया है, अपने हाथपर गिरिराज गोवर्द्धनको उठाया है, जो बड़ी रसीली बाँसुरी बजाते हैं, व्रजवासियोंके समूहका पालन करते हैं, व्रजांगनाओंकी प्रसन्नताके लिये भाँति-भाँतिकी बाल-लीलाएँ करते डोलते हैं तथा जिनके गलेमें नूतन तुलसीकी माला शोभा पा रही है, उन गोपालबालक भगवान् श्रीकृष्णको मैं नमस्कार करता हूँ।

अथ विष्णुसहस्रनामस्तोत्रम्*

ॐ विष्णुर्जिष्णुर्हृषीकेशः सर्वात्मा सर्वभावनः।
सर्वगः शर्वरीनाथो भूतग्रामाशयाशयः॥
अनादिनिधनो देवः सर्वज्ञः सर्वसम्भवः।
सर्वव्यापी जगद्धाता सर्वशक्तिधरोऽनघः॥

ॐ विष्णु, जिष्णु, हृषीकेश, सर्वात्मा, सर्वभावन, सर्वग, शर्वरीनाथ, भूतग्रामाशयाशय, अनादिनिधन, देव, सर्वज्ञ, सर्वसम्भव, सर्वव्यापी, जगद्धाता, सर्वशक्तिधर, अनघ।

जगद्बीजं जगत्स्रष्टा जगदीशो जगत्पतिः।
जगद्गुरुर्जगन्नाथो जगद्धाता जगन्मयः॥
सर्वाकृतिधरः सर्वो विश्वरूपी जनार्दनः।
अजन्मा शाश्वतो नित्यो विश्वाधारो विभुः प्रभुः॥

जगद्बीज, जगत्स्रष्टा, जगदीश, जगत्पति, जगद्गुरु, जगन्नाथ, जगद्धाता, जगन्मय, सर्वाकृतिधर, सर्व, विश्वरूपी, जनार्दन, अजन्मा, शाश्वत, नित्य, विश्वाधार, विभु, प्रभु।

बहुरूपैकरूपश्च सर्वरूपधरो हरः।
कालाग्निप्रभवो वायुः प्रलयान्तकरोऽक्षयः॥
महार्णवो महामेघो जलबुद्बुदसम्भवः।
संस्कृतोऽविकृतो मत्स्यो महामत्स्यस्तिमिङ्गिलः॥

बहुरूप, एकरूप, सर्वरूपधर, हर, कालाग्निप्रभव, वायु, प्रलयान्तकर, अक्षय, महार्णव, महामेघ, जलबुद्बुदसम्भव, संस्कृत, अविकृत, मत्स्य, महामत्स्य, तिमिंगिल।

अनन्तो वासुकिः शेषो वराहो धरणीधरः।
पयःक्षीरविवेकाढ्यो हंसो हैमगिरिस्थितः॥
हयग्रीवो विशालाक्षो हयकर्णो हयाकृतिः।
मन्थनो रत्नहारी च कूर्मोऽधरधराधरः॥

अनन्त, वासुकि, शेष, वराह, धरणीधर, पयःक्षीर-विवेकाढ्य, हंस, हैमगिरिस्थित, हयग्रीव, विशालाक्ष, हयकर्ण, हयाकृति, मन्थन, रत्नहारी, कूर्म, अधरधराधर।

विनिद्रो निद्रितो नन्दी सुनन्दो नन्दनप्रियः।
नाभिनालमृणाली च स्वयम्भूश्चतुराननः॥
प्रजापतिपरो दक्षः सृष्टिकर्ता प्रजाकरः।
मरीचिः कश्यपो वत्सः सुरासुरगुरुः कविः॥

विनिद्र, निद्रित, नन्दी, सुनन्द, नन्दनप्रिय, नाभिनालमृणाली, स्वयम्भू, चतुरानन, प्रजापतिपर, दक्ष, सृष्टिकर्ता, प्रजाकर, मरीचि, कश्यप, वत्स, सुरासुरगुरु, कवि।

वामनो वामभागी च वामकर्मा बृहद्वपुः।
त्रैलोक्यक्रमणो दीपो बलियज्ञविनाशनः॥
यज्ञहर्ता यज्ञकर्ता यज्ञेशो यज्ञभुग् विभुः।
सहस्रांशुर्भगो भानुर्विवस्वान् रविरंशुमान्॥

* नवलकिशोरप्रेसकी छपी हुई प्रतिके अनुसार यह स्तोत्र स्कन्दपुराण आवन्त्यखण्ड-अवन्तीक्षेत्र-माहात्म्यके ७४ वें अध्यायमें श्लोकांक ७४ से लेकर २०३ तकमें है। इसका पाठ विशेषतः वेंकटेश्वरप्रेसकी छपी पुस्तकके अनुसार लिया गया है, उसमें अध्याय ६३ में यह स्तोत्र आया है।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

वामन, वामभागी, वामकर्मा, बृहद्वपु, त्रैलोक्यक्रमण, दीप, बलियज्ञविनाशन, यज्ञहर्ता, यज्ञकर्ता, यज्ञेश, यज्ञभुक्, विभु, सहस्रांशु, भग, भानु, विवस्वान्, रवि, अंशुमान्।

तिग्मतेजाश्चाल्पतेजाः कर्मसाक्षी मनुर्यमः।
देवराजः सुरपतिर्दानवारिः शचीपतिः॥
अग्निर्वायुसखो वह्निर्वरुणो यादसांपतिः।
नैर्ऋतो नादनोऽनादी रक्षोयक्षधनाधिपः॥

तिग्मतेजा, अल्पतेजा, कर्मसाक्षी, मनु, यम, देवराज, सुरपति, दानवारि, शचीपति, अग्नि, वायुसखा, वह्नि, वरुण, यादसाम्पति, नैर्ऋत, नादन, अनादि, रक्षोयक्षधनाधिप।

कुबेरो वित्तवान् वेगो वसुपालो विलासकृत्।
अमृतस्त्रवणः सोमः सोमपानकरः सुधीः॥
सर्वौषधिकरः श्रीमान्निशाकारो दिवाकरः।
विषारिर्विषहर्ता च विषकण्ठधरो गिरिः॥

कुबेर, वित्तवान्, वेग, वसुपाल, विलासकृत्, अमृतस्त्रवण, सोम, सोमपानकर, सुधी, सर्वौषधिकर, श्रीमान्, निशाकार, दिवाकर, विषारि, विषहर्ता, विषकण्ठधर, गिरि।

नीलकण्ठो वृषी रुद्रो भालचन्द्रो ह्युमापतिः।
शिवः शान्तो वशी वीरो ध्यानी मानी च मानदः॥
कृमिकीटो मृगव्याधो मृगहा मृगवत्सलः।
वटुको भैरवो बालः कपाली दण्डविग्रहः॥

नीलकण्ठ, वृषी, रुद्र, भालचन्द्र, उमापति, शिव, शान्त, वशी, वीर, ध्यानी, मानी, मानद, कृमिकीट, मृगव्याध, मृगहा, मृगवत्सल, वटुक, भैरव, बाल, कपाली, दण्डविग्रह।

श्मशानवासी मांसाशी दुष्टनाशी स्मरान्तकृत्।
योगिनीत्रासको योगी ध्यानस्थो ध्यानवासनः॥
सेनानीः सैन्यदः स्कन्दो महाकालो गणाधिपः।
आदिदेवो गणपतिर्विघ्नहा विघ्ननाशनः॥

श्मशानवासी, मांसाशी, दुष्टनाशी, स्मरान्तकृत्, योगिनीत्रासक, योगी, ध्यानस्थ, ध्यानवासन, सेनानी, सैन्यद, स्कन्द, महाकाल, गणाधिप, आदिदेव, गणपति, विघ्नहा, विघ्ननाशन।

ऋद्धिसिद्धिप्रदो दन्ती भालचन्द्रो गजाननः।
नृसिंह उग्रदंष्ट्रश्च नखी दानवनाशकृत्॥
प्रह्लादपोषकर्ता च सर्वदैत्यजनेश्वरः।
शलभः सागरः साक्षी कल्पद्रुमविकल्पकः॥

ऋद्धिसिद्धिप्रद, दन्ती, भालचन्द्र, गजानन, नृसिंह, उग्रदंष्ट्र, नखी, दानवनाशकृत्, प्रह्लादपोषकर्ता, सर्वदैत्य-जनेश्वर, शलभ, सागर, साक्षी, कल्पद्रुमविकल्पक।

हेमदो हेमभागी च हिमकर्ता हिमाचलः।
भूधरो भूमिदो मेरुः कैलासशिखरो गिरिः॥
लोकालोकान्तरो लोकी विलोकी भुवनेश्वरः।
दिक्पालो दिक्पतिर्दिव्यो दिव्यकायो जितेन्द्रियः॥

हेमद, हेमभागी, हिमकर्ता, हिमाचल, भूधर, भूमिद, मेरु, कैलासशिखर, गिरि, लोकालोकान्तर, लोकी, विलोकी, भुवनेश्वर, दिक्पाल, दिक्पति, दिव्य, दिव्यकाय, जितेन्द्रिय।

विरूपो रूपवान् रागी नृत्यगीतविशारदः।
हाहा हूहूश्चित्ररथो देवर्षिर्नारदः सखा॥
विश्वेदेवाः साध्यदेवा धृताशीश्च चलोऽचलः।
कपिलो जल्पको वादी दत्तो हैहयसंघराट्॥

विरूप, रूपवान्, रागी, नृत्यगीतविशारद, हाहा, हूहू, चित्ररथ, देवर्षि, नारद, सखा, विश्वेदेव, साध्यदेव, धृताशी, चल, अचल, कपिल, जल्पक, वादी, दत्त, हैहयसंघराट्।

वसिष्ठो वामदेवश्च सप्तर्षिप्रवरो भृगुः।
जामदग्न्यो महावीरः क्षत्रियान्तकरो ह्युषिः॥
हिरण्यकशिपुश्चैव हिरण्याक्षो हरप्रियः।
अगस्तिः पुलहो रक्षः पौलस्त्यो रावणो घटः॥

वसिष्ठ, वामदेव, सप्तर्षिप्रवर, भृगु, जामदग्न्य, महावीर, क्षत्रियान्तकर, ऋषि, हिरण्यकशिपु, हिरण्याक्ष, हरप्रिय, अगस्ति, पुलह, रक्ष, पौलस्त्य, रावण, घट।

देवारिस्तापसस्तापी विभीषणहरिप्रियः।
तेजस्वी तेजदस्तेजी ईशो राजपतिः प्रभुः॥
दाशरथी राघवो रामो रघुवंशविवर्धनः।
सीतापतिः पतिः श्रीमान् ब्रह्मण्यो भक्तवत्सलः॥

देवारि, तापस, तापी, विभीषणहरिप्रिय, तेजस्वी, तेजद, तेजी, ईश, राजपति, प्रभु, दाशरथि, राघव,

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

राम, रघुवंशविवर्धन, सीतापति, पति, श्रीमान्, ब्रह्मण्य, भक्तवत्सल।

सन्नद्धः कवची खड्गी, चीरवासा दिगम्बरः।
किरीटी कुण्डली चापी शङ्खचक्री गदाधरः॥
कौसल्यानन्दनोदारो भूमिशायी गुहप्रियः।
सौमित्रो भरतो बालः शत्रुघ्नो भरताग्रजः॥

सन्नद्ध, कवची, खड्गी, चीरवासा, दिगम्बर, किरीटी, कुण्डली, चापी, शंखचक्री, गदाधर, कौसल्यानन्दन, उदार, भूमिशायी, गुहप्रिय, सौमित्र, भरत, बाल, शत्रुघ्न, भरताग्रज।

लक्ष्मणः परवीरघ्नः स्त्रीसहायः कपीश्वरः।
हनुमान् ऋक्षराजश्च सुग्रीवो वालिनाशनः॥
दूतप्रियो दूतकारी ह्यङ्गदो गदतां वरः।
वनध्वंसी वनी वेगी वानरो वानरध्वजः॥

लक्ष्मण, परवीरघ्न, स्त्रीसहाय, कपीश्वर, हनुमान्, ऋक्षराज, सुग्रीव, वालिनाशन, दूतप्रिय, दूतकारी, अंगद, गदतां वर, वनध्वंसी, वनी, वेगी, वानर, वानरध्वज।

लाङ्गूली च नखी दंष्ट्री लङ्काहाहाकरो वरः।
भवसेतुर्महासेतुर्बद्धसेतू रमेश्वरः॥
जानकीवल्लभः कामी किरीटी कुण्डली खगी।
पुण्डरीकविशालाक्षो महाबाहुर्घनाकृतिः॥

लांगूली, नखी, दंष्ट्री, लंकाहाहाकर, वर, भवसेतु, महासेतु, बद्धसेतु, रमेश्वर, जानकीवल्लभ, कामी, किरीटी, कुण्डली, खगी, पुण्डरीकविशालाक्ष, महाबाहु, घनाकृति।

चञ्चलश्चपलः कामी वामी वामाङ्गवत्सलः।
स्त्रीप्रियः स्त्रीपरः स्त्रैणः स्त्रियो वामाङ्गवासकः॥
जितवैरी जितकामो जितक्रोधो जितेन्द्रियः।
शान्तो दान्तो दयाऽऽरामो ह्येकस्त्रीव्रतधारकः॥

चंचल, चपल, कामी, वामी, वामांगवत्सल, स्त्रीप्रिय, स्त्रीपर, स्त्रैण, स्त्रियो-वामांगवासक, जितवैरी, जितकाम, जितक्रोध, जितेन्द्रिय, शान्त, दान्त, दयाराम, एकस्त्रीव्रतधारक।

सात्त्विकः सत्त्वसंस्थानो मदहा क्रोधहा खरः।
बहुराक्षससंवीतः सर्वराक्षसनाशकृत्॥
रावणारी रणक्षुद्रदशमस्तकछेदकः।
राज्यकारी यज्ञकारी दाता भोक्ता तपोधनः॥

सात्त्विक, सत्त्वसंस्थान, मदहा, क्रोधहा, खर, बहुराक्षससंवीत, सर्वराक्षसनाशकृत्, रावणारि, रणक्षुद्रदशमस्तकछेदक, राज्यकारी, यज्ञकारी, दाता, भोक्ता, तपोधन।

अयोध्याधिपतिः कान्तो वैकुण्ठोऽकुण्ठविग्रहः।
सत्यव्रतो व्रती शूरस्तपी सत्यफलप्रदः॥
सर्वसाक्षी सर्वगश्च सर्वप्राणहरोऽव्ययः।
प्राणश्चाथाप्यपानश्च व्यानोदानः समानकः॥

अयोध्याधिपति, कान्त, वैकुण्ठ, अकुण्ठविग्रह, सत्यव्रत, व्रती, शूर, तपी, सत्यफलप्रद, सर्वसाक्षी, सर्वग, सर्वप्राणहर, अव्यय, प्राण, अपान, व्यान, उदान, समानक।

नागः कृकलः कूर्मश्च देवदत्तो धनञ्जयः।
सर्वप्राणविदो व्यापी योगधारकधारकः॥
तत्त्ववित्तत्त्वदस्तत्त्वी सर्वतत्त्वविशारदः।
ध्यानस्थो ध्यानशाली च मनस्वी योगवित्तमः॥

नाग, कृकल, कूर्म, देवदत्त, धनंजय, सर्वप्राणविद, व्यापी, योगधारकधारक, तत्त्ववित्, तत्त्वद, तत्त्वी, सर्वतत्त्वविशारद, ध्यानस्थ, ध्यानशाली, मनस्वी, योगवित्तम।

ब्रह्मज्ञो ब्रह्मदो ब्रह्मज्ञाता च ब्रह्मसम्भवः।
अध्यात्मविद् विदो दीपो ज्योतीरूपो निरञ्जनः॥
ज्ञानदोऽज्ञानहा ज्ञानी गुरुः शिष्योपदेशकः।
सुशिष्यः शिक्षितः शाली शिष्यशिक्षाविशारदः॥

ब्रह्मज्ञ, ब्रह्मद, ब्रह्मज्ञाता, ब्रह्मसम्भव, अध्यात्मवित्, विद, दीप, ज्योतीरूप, निरंजन, ज्ञानद, अज्ञानहा, ज्ञानी, गुरु, शिष्योपदेशक, सुशिष्य, शिक्षित, शाली, शिष्यशिक्षाविशारद।

मन्त्रदो मन्त्रहा मन्त्री तन्त्री तन्त्रजनप्रियः।
सन्मन्त्रो मन्त्रविन्मन्त्री यन्त्रमन्त्रैकभञ्जनः॥
मारणो मोहनो मोही स्तम्भोच्चाटनकृत् खलः।
बहुमायो विमायश्च महामायाविमोहकः॥

मन्त्रद, मन्त्रहा, मन्त्री, तन्त्री, तन्त्रजनप्रिय, सन्मन्त्र, मन्त्रवित्, मन्त्री, यन्त्रमन्त्रैकभंजन, मारण,

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

मोहन, मोही, स्तम्भोच्चाटनकृत्, खल, बहुमाय, विमाय, महामायाविमोहक।

मोक्षदो बन्धको वन्दी ह्याकर्षणविकर्षणः।
ह्रीङ्कारो बीजरूपी च क्लीङ्कारः कीलकाधिपः॥
सौङ्कारः शक्तिमाञ्छक्तिः सर्वशक्तिधरो धरः।
अकारोकार ओङ्कारश्छन्दो गायत्रसम्भवः॥

मोक्षद, बन्धक, वन्दी, आकर्षण, विकर्षण, ह्रींकार, बीजरूपी, क्लींकार, कीलकाधिप, सौंकार, शक्तिमान्, शक्ति, सर्वशक्तिधर, धर, अकार, उकार, ॐकार, छन्द, गायत्रसम्भव।

वेदो वेदविदो वेदी वेदाध्यायी सदाशिवः।
ऋग्यजुःसामाथर्वेशः सामगानकरोऽकरी॥
त्रिपदो बहुपादी च सत्पथः सर्वतोमुखः।
प्राकृतः संस्कृतो योगी गीतग्रन्थप्रहेलिकः॥

वेद, वेदविद, वेदी, वेदाध्यायी, सदाशिव, ऋग्यजुःसामाथर्वेश, सामगानकर, अकरी, त्रिपद, बहुपादी, सत्पथ, सर्वतोमुख, प्राकृत, संस्कृत, योगी, गीतग्रन्थप्रहेलिक।

सगुणो विगुणश्छन्दो निःसंगो विगुणो गुणी।
निर्गुणो गुणवान् संगी कर्मी धर्मी च कर्मदः॥
निष्कर्मा कामकामी च निःसंगः संगवर्जितः।
निर्लोभो निरहङ्कारी निष्किञ्चनजनप्रियः॥

सगुण, विगुण, छन्द, निःसंग, विगुण, गुणी, निर्गुण, गुणवान्, संगी, कर्मी, धर्मी, कर्मद, निष्कर्मा, कामकामी, निःसंग, संगवर्जित, निर्लोभ, निरहंकारी, निष्किंचनजनप्रिय।

सर्वसंगकरो रागी सर्वत्यागी बहिश्चरः।
एकपादो द्विपादश्च बहुपादोऽल्पपादकः॥
द्विपदस्त्रिपदः पादी विपादी पदसंग्रहः।
खेचरो भूचरो भ्रामी भृङ्गकीटमधुप्रियः॥

सर्वसंगकर, रागी, सर्वत्यागी, बहिश्चर, एकपाद, द्विपाद, बहुपाद, अल्पपादक, द्विपद, त्रिपद, पादी, विपादी, पदसंग्रह, खेचर, भूचर, भ्रामी, भृंगकीटमधुप्रिय।

ऋतुः संवत्सरो मासोऽयनः पक्षो ह्यहर्निशः।
कृतं त्रेता कलिश्चैव द्वापरश्चतुराकृतिः॥
देशकालकरः कालः कुलधर्मः सनातनः।
कला काष्ठा पला नाड्यो यामः पक्षः सितासितः॥

ऋतु, संवत्सर, मास, अयन, पक्ष, अहर्निश, कृत, त्रेता, कलि, द्वापर, चतुराकृति, देशकालकर, काल, सनातन कुलधर्म, कला, काष्ठा, पला, नाडी, याम, सितासित, पक्ष।

युगो युगन्धरो योग्यो युगधर्मप्रवर्तकः।
कुलाचारः कुलकरः कुलदैवकरः कुली॥
चतुराश्रमचारी च गृहस्थो ह्यतिथिप्रियः।
वनस्थो वनचारी च वानप्रस्थाश्रमाश्रमी॥

युग, युगन्धर, योग्य, युगधर्मप्रवर्तक, कुलाचार, कुलकर, कुलदैवकर, कुली, चतुराश्रमचारी, गृहस्थ, अतिथिप्रिय, वनस्थ, वनचारी, वानप्रस्थाश्रम, आश्रमी।

वटुको ब्रह्मचारी च शिखासूत्री कमण्डली।
त्रिजटी ध्यानवान् ध्यानी बद्रिकाश्रमवासकृत्॥
हेमाद्रिप्रभवो हैमो हेमराशिर्हिमाकरः।
महाप्रस्थानको विप्रो विरागी रागवान् गृही॥

वटुक, ब्रह्मचारी, शिखासूत्री, कमण्डली, त्रिजटी, ध्यानवान्, ध्यानी, बद्रिकाश्रमवासकृत्, हेमाद्रिप्रभव, हैम, हेमराशि, हिमाकर, महाप्रस्थानक, विप्र, विरागी, रागवान्, गृही।

नरनारायणो नागी केदारोदारविग्रहः।
गंगाद्वारतपःसारस्तपोवनतपोनिधिः॥
निधिरेष महापद्मः पद्माकरश्रियालयः।
पद्मनाभः परीतात्मा परिव्राट् पुरुषोत्तमः॥

नरनारायण, नागी, केदारोदारविग्रह, गंगाद्वार-तपःसार, तपोवनतपोनिधि, निधि, महापद्म, पद्माकर-श्रियालय, पद्मनाभ, परीतात्मा, परिव्राट्, पुरुषोत्तम।

परानन्दः पुराणश्च सम्राड् राजविराजकः।
चक्रस्थश्चक्रपालस्थश्चक्रवर्ती नराधिपः॥
आयुर्वेदविदो वैद्यो धन्वन्तरिश्च रोगहा।
ओषधीबीजसम्भूतो रोगिरोगविनाशकृत्॥

परानन्द, पुराण, सम्राट्, राजविराजक, चक्रस्थ, चक्रपालस्थ, चक्रवर्ती, नराधिप, आयुर्वेदवित्, वैद्य, धन्वन्तरि, रोगहा, ओषधीबीजसम्भूत, रोगिरोगविनाशकृत्।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

चेतनश्चेतकोऽचिन्त्यश्चित्तचिन्ताविनाशकृत् ।
अतीन्द्रियः सुखस्पर्शश्चरचारी विहङ्गमः ॥
गरुडः पक्षिराजश्च चाक्षुषो विनतात्मजः ।
विष्णुयानविमानस्थो मनोमयतुरङ्गमः ॥

चेतन, चेतक, अचिन्त्य, चित्तचिन्ताविनाशकृत्, अतीन्द्रिय, सुखस्पर्श, चरचारी, विहंगम, गरुड, पक्षिराज, चाक्षुष, विनतात्मज, विष्णुयानविमानस्थ, मनोमयतुरंगम।

बहुवृष्टिकरो वर्षी ऐरावणविरावणः ।
उच्चैःश्रवा हयो गामी हरिदश्वो हरिप्रियः ॥
प्रावृषो मेघमाली च गजरत्नं पुरन्दरः ।
वसुदो वसुधारश्च निद्रालुः पन्नगासनः ॥

बहुवृष्टिकर, वर्षी, ऐरावणविरावण, उच्चैःश्रवा हय, गामी, हरिदश्व, हरिप्रिय, प्रावृष, मेघमाली, गजरत्न, पुरन्दर, वसुद, वसुधार, निद्रालु, पन्नगासन।

शेषशायी जलेशायी व्यासः सत्यवतीसुतः ।
वेदव्यासकरो वाग्मी बहुशाखाविकल्पकः ॥
स्मृतिः पुराणधर्मार्थी परावरविचक्षणः ।
सहस्रशीर्षा सहस्राक्षः सहस्रवदनोज्ज्वलः ॥

शेषशायी, जलेशायी, व्यास, सत्यवतीसुत, वेदव्यासकर, वाग्मी, बहुशाखाविकल्पक, स्मृति, पुराणधर्मार्थी, परावरविचक्षण, सहस्रशीर्षा, सहस्राक्ष, सहस्रवदनोज्ज्वल।

सहस्रबाहुः सहस्रांशुः सहस्रकिरणोन्नतः ।
बहुशीर्षैकशीर्षश्च त्रिशिरा विशिराः शिखी ॥
जटिलो भस्मरागी च दिव्याम्बरधरः शुचिः ।
अणुरूपो बृहद्रूपो विरूपो विकराकृतिः ॥

सहस्रबाहु, सहस्रांशु, सहस्रकिरणोन्नत, बहुशीर्षा, एकशीर्ष, त्रिशिरा, विशिरा, शिखी, जटिल, भस्मरागी, दिव्याम्बरधर, शुचि, अणुरूप, बृहद्रूप, विरूप, विकराकृति।

समुद्रमाथको माथी सर्वरत्नहरो हरिः ।
वज्रवैडूर्यको वज्री चिन्तामणिमहामणिः ॥
अनिर्मूल्यो महामूल्यो निर्मूल्यः सुरभिः सुखी ।
पिता माता शिशुर्बन्धुर्धाता त्वष्टार्यमा यमः ॥

समुद्रमाथक, माथी, सर्वरत्नहर, हरि, वज्रवैडूर्यक, वज्री, चिन्तामणिमहामणि, अनिर्मूल्य, महामूल्य, निर्मूल्य, सुरभि, सुखी, पिता, माता, शिशु, बन्धु, धाता, त्वष्टा, अर्यमा, यम।

अन्तःस्थो बाह्यकारी च बहिःस्थो वै बहिश्चरः ।
पावनः पावकः पाकी सर्वभक्षी हुताशनः ॥
भगवान् भगहा भागी भवभञ्जो भयंकरः ।
कायस्थः कार्यकारी च कार्यकर्ता करप्रदः ॥

अन्तःस्थ, बाह्यकारी, बहिःस्थ, बहिश्चर, पावन, पावक, पाकी, सर्वभक्षी, हुताशन, भगवान्, भगहा, भागी, भवभंज, भयंकर, कायस्थ, कार्यकारी, कार्यकर्ता, करप्रद।

एकधर्मा द्विधर्मा च सुखी दूत्योपजीवकः ।
पालकस्तारकस्त्राता कालो मूषकभक्षकः ॥
सञ्जीवनो जीवकर्ता सजीवो जीवसम्भवः ।
षड्विंशको महाविष्णुः सर्वव्यापी महेश्वरः ॥

एकधर्मा, द्विधर्मा, सुखी, दूत्योपजीवक, पालक, तारक, त्राता, काल, मूषकभक्षक, संजीवन, जीव-कर्ता, सजीव, जीवसम्भव, षड्विंशक, महाविष्णु, सर्वव्यापी, महेश्वर।

दिव्याङ्गदो मुक्तमाली श्रीवत्सो मकरध्वजः ।
श्याममूर्तिर्घनश्यामः पीतवासाः शुभाननः ॥
चीरवासा बिवासाश्च भूतदानववल्लभः ।
अमृतोऽमृतभागी च मोहिनीरूपधारकः ॥

दिव्यांगद, मुक्तमाली, श्रीवत्स, मकरध्वज, श्याममूर्ति, घनश्याम, पीतवासा, शुभानन, चीरवासा, विवासा, भूत-दानववल्लभ, अमृत, अमृतभागी, मोहिनीरूपधारक।

दिव्यदृष्टिः समदृष्टिर्देवदानववञ्चकः ।
कबन्धः केतुकारी च स्वर्भानुश्चन्द्रतापनः ॥
ग्रहराजो ग्रही ग्राहः सर्वग्रहविमोचकः ।
दानमानजपो होमः सानुकूलः शुभग्रहः ॥

दिव्यदृष्टि, समदृष्टि, देवदानववंचक, कबन्ध, केतुकारी, स्वर्भानु, चन्द्रतापन, ग्रहराज, ग्रही, ग्राह, सर्वग्रहविमोचक, दानमानजप, होम, सानुकूल, शुभग्रह।

विघ्नकर्तापहर्ता च विघ्ननाशो विनायकः ।
अपकारोपकारी च सर्वसिद्धिफलप्रदः ॥

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

सेवकः सामदानी च भेदी दण्डी च मत्सरी।
दयावान् दानशीलश्च दानी यज्वा प्रतिग्रही॥

विघ्नकर्ता, अपहर्ता, विघ्ननाश, विनायक, अपकारोपकारी, सर्वसिद्धिफलप्रद, सेवक, सामदानी, भेदी, दण्डी, मत्सरी, दयावान्, दानशील, दानी, यज्वा प्रतिग्रही।

हविरग्निश्चरुस्थाली समिधश्च तिलो यवः।
होतोद्गाता शुचिः कुण्डः सामगो वैकृतिः सवः॥
द्रव्यं पात्राणि सङ्कल्पो मुसलो ह्यरणिः कुशः।
दीक्षितो मण्डपो वेदिर्यजमानः पशुः क्रतुः॥

हवि, अग्नि, चरुस्थाली, समिध, तिल, यव, होता, उद्गाता, शुचि, कुण्ड, सामग, वैकृति, सव, द्रव्य, पात्र, संकल्प, मुसल, अरणि, कुश, दीक्षित, मण्डप, वेदि, यजमान, पशु, क्रतु।

दक्षिणा स्वस्तिमान् स्वस्ति ह्याशीर्वादः शुभप्रदः।
आदिवृक्षो महावृक्षो देववृक्षो वनस्पतिः॥
प्रयागो वेणिमान् वेणी न्यग्रोधश्चाक्षयो वटः।
सुतीर्थस्तीर्थकारी च तीर्थराजो व्रती व्रतः॥

दक्षिणा, स्वस्तिमान्, स्वस्ति, आशीर्वाद, शुभप्रद, आदिवृक्ष, महावृक्ष, देववृक्ष, वनस्पति, प्रयाग, वेणिमान्, वेणी, न्यग्रोध, अक्षयवट, सुतीर्थ, तीर्थकारी, तीर्थराज, व्रती, व्रत।

वृत्तिदाता पृथुः पात्रो दोग्धा गौर्वत्स एव च।
क्षीरं क्षीरवहः क्षीरी क्षीरभागविभागवित्॥
राज्यभागविदो भागी सर्वभागविकल्पकः।
वाहनो वाहको वेगी पादचारी तपश्चरः॥

वृत्तिदाता, पृथु, पात्र, दोग्धा, गौ, वत्स, क्षीर, क्षीरवह, क्षीरी, क्षीरभागविभागवित्, राज्यभागवित्, भागी, सर्वभागविकल्पक, वाहन, वाहक, वेगी, पादचारी, तपश्चर।

गोपनो गोपको गोपी गोपकन्याविहारकृत्।
वासुदेवो विशालाक्षः कृष्णो गोपीजनप्रियः॥
देवकीनन्दनो नन्दी नन्दगोपगृहाश्रयी।
यशोदानन्दनो दामी दामोदर उलूखली॥

गोपन, गोपक, गोपी, गोपकन्याविहारकृत्, वासुदेव, विशालाक्ष, कृष्ण, गोपीजनप्रिय, देवकीनन्दन, नन्दी, नन्दगोपगृहाश्रयी, यशोदानन्दन, दामी, दामोदर, उलूखली।

पूतनारिस्तृणावर्तहारी शकटभञ्जकः।
नवनीतप्रियो वाग्मी वत्सपालकबालकः॥
वत्सरूपधरो वत्सी वत्सहा धेनुकान्तकृत्।
वकारिर्वनवासी च वनक्रीडाविशारदः॥

पूतनारि, तृणावर्तहारी, शकटभंजक, नवनीतप्रिय, वाग्मी, वत्सपालकबालक, वत्सरूपधर, वत्सी, वत्सहा, धेनुकान्तकृत्, वकारि, वनवासी, वनक्रीडाविशारद।

कृष्णवर्णाकृतिः कान्तो वेणुवेत्रविधारकः।
गोपमोक्षकरो मोक्षो यमुनापुलिनेचरः॥
मायावत्सकरो मायी ब्रह्ममायापमोहकः।
आत्मसारविहारज्ञो गोपदारकदारकः॥

कृष्णवर्णाकृति, कान्त, वेणुवेत्रविधारक, गोपमोक्षकर, मोक्ष, यमुनापुलिनेचर, मायावत्सकर, मायी, ब्रह्ममायापमोहक, आत्मसारविहारज्ञ, गोपदारकदारक।

गोचारी गोपतिर्गोपो गोवर्धनधरो बली।
इन्द्रद्युम्नमखध्वंसी वृष्टिहा गोपरक्षकः॥
सुरभित्राणकर्ता च दावपानकरः कली।
कालीयमर्दनः काली यमुनाह्रदविहारकः॥

गोचारी, गोपति, गोप, गोवर्धनधर, बली, इन्द्रद्युम्न-मखध्वंसी, वृष्टिहा, गोपरक्षक, सुरभि-त्राणकर्ता, दावपानकर, कली, कालीयमर्दन, काली, यमुनाह्रदविहारक।

संकर्षणो बलश्लाघ्यो बलदेवो हलायुधः।
लांगली मुसली चक्री रामो रोहिणिनन्दनः॥
यमुनाकर्षणोद्धारो नीलवासा हली तथा।
रेवतीरमणो लोलो बहुमानकरः परः॥

संकर्षण, बलश्लाघ्य, बलदेव, हलायुध, लांगली, मुसली, चक्री, राम, रोहिणिनन्दन, यमुनाकर्षणोद्धार, नीलवासा, हली, रेवतीरमण, लोल, बहुमानकर, पर।

धेनुकारिर्महावीरो गोपकन्याविदूषकः।
काममानहरः कामी गोपीवासोऽपतस्करः॥

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

वेणुवादी च नादी च नृत्यगीतविशारदः।
गोपीमोहकरो गानी रासको रजनीचरः॥

धेनुकारि, महावीर, गोपकन्याविदूषक, काममानहर, कामी, गोपीवासोऽपतस्कर, वेणुवादी, नादी, नृत्यगीत-विशारद, गोपीमोहकर, गानी, रासक, रजनीचर।

दिव्यमाली विमाली च वनमालाविभूषितः।
कैटभारिश्च कंसारिर्मधुहा मधुसूदनः॥
चाणूरमर्दनो मल्लो मुष्टिमुष्टिकनाशकृत्।
मुरहा मोदको मोदी मदघ्नो नरकान्तकृत्॥

दिव्यमाली, विमाली, वनमालाविभूषित, कैटभारि, कंसारि, मधुहा, मधुसूदन, चाणूरमर्दन, मल्ल, मुष्टिमुष्टिकनाशकृत्, मुरहा, मोदक, मोदी, मदघ्न, नरकान्तकृत्।

विद्याध्यायी भूमिशायी सुदाम्नश्च सखा सुखी।
सकलोऽविकलो वैद्यः कलितो वै कलानिधिः॥
विद्याशाली विशाली च पितृमातृविमोक्षकः।
रुक्मिणीरमणो रम्यः कालिन्दीपति शङ्खहा॥

विद्याध्यायी, भूमिशायी, सुदामसखा, सुखी, सकल, अविकल, वैद्य, कलित, कलानिधि, विद्याशाली, विशाली, पितृमातृविमोक्षक, रुक्मिणी-रमण, रम्य, कालिन्दीपति, शंखहा।

पाञ्चजन्यो महापद्मो बहुनायकनायकः।
धुन्धुमारो निकुम्भघ्नः शम्बरान्तो रतिप्रियः॥
प्रद्युम्नश्चानिरुद्धश्च सात्वतां पतिरर्जुनः।
फाल्गुनश्च गुडाकेशः सव्यसाची धनञ्जयः॥

पांचजन्य, महापद्म, बहुनायकनायक, धुन्धुमार, निकुम्भघ्न, शम्बरान्त, रतिप्रिय, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, सात्वतांपति, अर्जुन, फाल्गुन, गुडाकेश, सव्यसाची, धनंजय।

किरीटी च धनुष्पाणिर्धनुर्वेदविशारदः।
शिखण्डी सात्यकिः शैव्यो भीमो भीमपराक्रमः॥
पाञ्चालश्चाभिमन्युश्च सौभद्रो द्रौपदीपतिः।
युधिष्ठिरो धर्मराजः सत्यवादी शुचिव्रतः॥

किरीटी, धनुष्पाणि, धनुर्वेदविशारद, शिखण्डी, सात्यकि, शैव्य, भीम, भीमपराक्रम, पांचाल, अभिमन्यु, सौभद्र, द्रौपदीपति, युधिष्ठिर, धर्मराज, सत्यवादी, शुचिव्रत।

नकुलः सहदेवश्च कर्णो दुर्योधनो घृणी।
गाङ्गेयोऽथ गदापाणिर्भीष्मो भागीरथीसुतः॥
प्रज्ञाचक्षुर्धृतराष्ट्रो भारद्वाजोऽथ गौतमः।
अश्वत्थामा विकर्णश्च जह्नुर्युद्धविशारदः॥

नकुल, सहदेव, कर्ण, दुर्योधन, घृणी, गांगेय, गदापाणि, भीष्म, भागीरथीसुत, प्रज्ञाचक्षु, धृतराष्ट्र, भारद्वाज, गौतम, अश्वत्थामा, विकर्ण, जह्नु, युद्धविशारद।

सीमन्तिको गदी गाल्वो विश्वामित्रो दुरासदः।
दुर्वासा दुर्विनीतश्च मार्कण्डेयो महामुनिः॥
लोमशो निर्मलोऽलोमी दीर्घायुश्च चिरोऽचिरी।
पुनर्जीव्यमृतो भावी भूतो भव्यो भविष्यकः॥

सीमन्तिक, गदी, गाल्व, विश्वामित्र, दुरासद, दुर्वासा, दुर्विनीत, महामुनि मार्कण्डेय, लोमश, निर्मल, अलोमी, दीर्घायु, चिर, अचिरी, पुनर्जीवी, अमृत, भावी, भूत, भव्य, भविष्यक।

त्रिकालोऽथ त्रिलिंगश्च त्रिनेत्रस्त्रिपदीपतिः।
यादवो याज्ञवल्क्यश्च यदुवंशविवर्धनः॥
शल्यक्रीडी विक्रीडश्च यादवान्तकरः कलिः।
सदयो हृदयो दायो दायदो दायभाग् दयी॥

त्रिकाल, त्रिलिंग, त्रिनेत्र, त्रिपदीपति, यादव, याज्ञवल्क्य, यदुवंशविवर्धन, शल्यक्रीडी, विक्रीड, यादवान्तकर, कलि, सदयहृदय, दाय, दायद, दायभाक्, दयी।

महोदधिर्महीपृष्ठो नीलपर्वतवासकृत्।
एकवर्णो विवर्णश्च सर्ववर्णबहिश्चरः॥
यज्ञनिन्दी वेदनिन्दी वेदबाह्यो बलो बलिः।
बौद्धारिर्बाधको बाधो जगन्नाथो जगत्पतिः॥

महोदधि, महीपृष्ठ, नीलपर्वतवासकृत्, एकवर्ण, विवर्ण, सर्ववर्णबहिश्चर, यज्ञनिन्दी, वेदनिन्दी, वेदबाह्य, बल, बलि, बौद्धारि, बाधक, बाध, जगन्नाथ, जगत्पति।

भक्तिर्भागवतो भागी विभक्तो भगवत्प्रियः।
त्रिग्रामोऽथ नवारण्यो गुह्योपनिषदासनः॥
शालग्रामशिलायुक्तो विशालो गण्डकाश्रयः।
श्रुतदेवः श्रुतः श्रावी श्रुतबोधः श्रुतश्रवाः॥

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

भक्ति, भागवत, भागी, विभक्त, भगवत्प्रिय, त्रिग्राम, नवारण्य, गुह्योपनिषदासन, शालग्राम-शिलायुक्त, विशाल, गण्डकाश्रय, श्रुतदेव, श्रुत, श्रावी, श्रुतबोध, श्रुतश्रवा।

कल्किः कालकलः कल्को दुष्टम्लेच्छविनाशकृत्।
कुङ्कुमी धवलो धीरः क्षमाकरो वृषाकपिः॥
किङ्करः किन्नरः कण्वः केकी किम्पुरुषाधिपः।
एकरोमा विरोमा च बहुरोमा बृहत्कविः॥

कल्कि, कालकल, कल्क, दुष्टम्लेच्छविनाशकृत्, कुंकुमी, धवल, धीर, क्षमाकर, वृषाकपि, किंकर, किन्नर, कण्व, केकी, किम्पुरुषाधिप, एकरोमा, विरोमा, बहुरोमा, बृहत्कवि।

वज्रप्रहरणो वज्री वृत्रघ्नो वासवानुजः।
बहुतीर्थकरस्तीर्थः सर्वतीर्थजनेश्वरः॥
व्यतीपातोपरागश्च दानवृद्धिकरः शुभः।
असंख्येयोऽप्रमेयश्च संख्याकारो विसंख्यकः॥

वज्रप्रहरण, वज्री, वृत्रघ्न, वासवानुज, बहुतीर्थकर, तीर्थ, सर्वतीर्थजनेश्वर, व्यतीपातोपराग, दानवृद्धिकर, शुभ, असंख्येय, अप्रमेय, संख्याकार, विसंख्यक।

मिहिकोत्तारकस्तारो बालचन्द्रः सुधाकरः।
किंवर्णः कीदृशः किञ्चित्किंस्वभावः किमाश्रयः॥
निर्लोकश्च निराकारी बह्वाकारैककारकः।
दौहित्रः पुत्रकः पौत्रो नप्ता वंशधरो धरः॥

मिहिकोत्तारक, तार, बालचन्द्र, सुधाकर, किंवर्ण, कीदृश, किंचित्, किंस्वभाव, किमाश्रय, निर्लोक, निराकारी, बह्वाकारैककारक, दौहित्र, पुत्रक, पौत्र, नप्ता, वंशधर, धर।

द्रवीभूतो दयालुश्च सर्वसिद्धिप्रदो मणिः।
आधारोऽपि विधारश्च धरासूनुः सुमंगलः॥
मंगलो मंगलाकारो माङ्गल्यः सर्वमंगलः॥

द्रवीभूत, दयालु, सर्वसिद्धिप्रद, मणि, आधार, विधार, धरासूनु, सुमंगल, मंगल, मंगलाकार, मांगल्य, सर्वमंगल।

नाम्नां सहस्रं नामेदं विष्णोरतुलतेजसः।
सर्वसिद्धिकरं काम्यं पुण्यं हरिहरात्मकम्॥
यः पठेत्प्रातरुत्थाय शुचिर्भूत्वा समाहितः।
यश्चेदं शृणुयान्नित्यं नरो निश्चलमानसः।
त्रिसन्ध्यं श्रद्धया युक्तः सर्वपापैः प्रमुच्यते॥

अतुल तेजस्वी भगवान् विष्णुका यह सहस्रनामस्तोत्र पुण्यमय तथा हरिहरस्वरूप है। यह सब सिद्धियोंका दाता तथा मनोवांछित कामनाकी पूर्ति करनेवाला है। जो मनुष्य प्रतिदिन प्रातःकाल उठकर एकाग्र एवं स्थिरचित्त हो इस स्तोत्रका पाठ करता है तथा जो तीनों समय श्रद्धापूर्वक इसका श्रवण करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है।

जो भक्तिमान् एवं जितेन्द्रिय पुरुष तुलसीके बगीचेमें या तुलसीवृक्षके समीप, सरोवरके तटपर, देवमन्दिरमें, बदरिकाश्रम तीर्थके शुभ प्रदेशमें, हरिद्वारमें, तपोवनमें, मधुवन, प्रयाग, द्वारका एवं महाकाल वनमें एकाग्रचित हो, नियमपूर्वक इस विष्णुसहस्रनामस्तोत्रका सौ बार पाठ करते हैं, वे समस्त कामनाओंके इच्छुक होकर भी सिद्धिलाभ करते हैं तथा लोकमें दूसरोंके लिये भी सिद्धिदायक बनकर सब ओर विचरते रहते हैं। परस्परकी फूटसे जो अलग-अलग हो गये हैं, उनमें मैत्री करानेका यह सर्वोत्तम साधन है। मोहनेवाली शक्तियोंको भी यह मोहनेवाला है। साथ ही परम पवित्र और समस्त पापोंका नाश करनेवाला है। बालग्रहोंका विनाशक तथा शान्तिका उत्तम उपाय है। जो मनुष्य आहार, क्रोध और इन्द्रियोंको जीतकर पवित्र भावसे एकान्तमें बैठकर भगवान् विष्णुके समीप इस स्तोत्रका पाठ करता है, वह पीताम्बरधारी चतुर्भुजरूप धारण करके गरुड़की पीठपर बैठकर भगवान् विष्णुके धाममें जाता है।

पाठके पश्चात् निम्नांकित श्लोक पढ़कर भगवान् विष्णुको प्रणाम करना चाहिये—

सहस्राक्षः सहस्राङ्घ्रिः सहस्रवदनोज्ज्वलः।
सहस्रनामानन्ताक्षः सहस्रभुज ते नमः॥

'हे सहस्रभुजाधारी नारायण! आपके सहस्रों नेत्र और सहस्रों चरण हैं। आप सहस्रों तेजस्वी

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

मुखोंसे परम उज्ज्वल प्रतीत होते हैं। आपके सहस्रों नाम और असंख्य इन्द्रियाँ हैं, आपको नमस्कार है।'

भगवान् विष्णुका यह सहस्रनाम परम प्राचीन और वेदोंके तुल्य मान्य है। यह समस्त मंगलोंका भी मंगल है। इसका सदा भक्तिपूर्वक पाठ करना चाहिये।

भगवान्‌का वामनरूपसे प्रकट हो बलिसे तीन पग भूमि माँगना और वामनकुण्डकी महिमा

सनत्कुमारजी कहते हैं—ब्रह्मन्! ब्रह्माजीके उपदेशके अनुसार इस स्तोत्रके द्वारा भगवान्‌की स्तुतिमें संलग्न हुए देवताओंपर प्रसन्न होकर वरदायक भगवान् विष्णुने उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन देकर कहा—'देवताओ! मुझसे मनोवांछित वर माँगो।'

देवता बोले—विष्णो! हमारी प्रार्थना है कि आप अदितिके गर्भसे उत्पन्न होकर इन्द्रके छोटे भाई हों।

देवताओंके इस प्रकार प्रार्थना करनेपर 'तथास्तु' कहकर भगवान् विष्णु वहीं अन्तर्धान हो गये। तदनन्तर कुछ कालके पश्चात् भगवान् विष्णु अदितिके पुत्र होकर प्रकट हुए। वे देखनेमें वामन (अत्यन्त लघु) होनेके कारण 'वामन' कहलाये। व्यास! बलिने सौ अश्वमेध यज्ञोंद्वारा भगवान् यज्ञपुरुषका पूजन आरम्भ किया। कश्यपको ऋत्विग् और शुक्राचार्यजीको होता बनाकर उस यज्ञमें ब्रह्माजी स्वयं ही ब्रह्माके आसनपर आसीन हुए। महर्षि अत्रि अध्वर्यु और नारदजी उद्गाता हुए। वसिष्ठजीने सभासदका आसन ग्रहण किया। इस प्रकार ऋत्विजोंका वरण करके राजाओंमें श्रेष्ठ बलिने यज्ञकी दीक्षा ग्रहण की। जब यज्ञ प्रारम्भ हुआ, तब पवित्र मुसकानवाले वामनजी वहाँ आये। वे वेदोंके पारंगत विद्वान् थे और अपने मुखके अग्रभागसे चारों वेदोंके मन्त्रोंका उच्चारण कर रहे थे।

उस समय द्वारपालने राजा बलिसे यह निवेदन किया कि 'महाराज! एक श्रेष्ठ ब्राह्मण जो बहुत ही छोटे कदके हैं, दरवाजेपर खड़े हैं।' यह सुनकर महाराज बलि सहसा उठे और अर्घ्य लेकर सभासदोंके साथ उस स्थानपर गये। वहाँ समस्त लोकोंको उत्पन्न करनेवाले भगवान् वामनकी यथायोग्य पूजा करके वे उन्हें सभामण्डपमें ले आये और बैठनेके लिये आसन देकर राजाने पूछा—'ब्रह्मन्! कहाँसे आपका आगमन हुआ है, मैं आपको कौन-सी अभीष्ट वस्तु दूँ।'

वामनजी बोले—राजाधिराज! यह सारी सृष्टि ब्रह्माजीकी बनायी हुई है, मैं उन्हींके लोकसे तुम्हारा यह यज्ञ देखने और तुमसे कुछ माँगनेके लिये यहाँ आया हूँ।

राजा बलिने पूछा—द्विजश्रेष्ठ! आपकी अभीष्ट वस्तु क्या है, बताइये मैं उसे अभी देता हूँ।

वामनजी बोले—महाराज! यदि आपको जँचे तो मेरे रहनेके लिये तीन पग भूमि दीजिये।

राजा बलिने कहा—ब्रह्मन्! आपने यह क्या माँगा! यह तो बहुत थोड़ा है। नाना प्रकारके रत्न, हाथी, घोड़े, रथ, भूमि, दास-दासी, स्त्री और धनादि वस्तुएँ भी जितनी चाहिये, माँग लीजिये।

वामनजी बोले—राजन्! मुझे दूसरी किसी वस्तुकी आवश्यकता नहीं है। यदि आपकी श्रद्धा हो तो मुझे केवल तीन पग पृथ्वी ही दीजिये।

'मानद! आप अपने निवासके लिये यह तीन पग भूमि लीजिये।' ऐसा कहकर राजर्षि बलिने उन्हें भूमि संकल्प करके दे दी। व्यास! यद्यपि आचार्य शुक्रने उस समय बलिको रोका था, तो भी दैवसे प्रेरित होकर बलिने भूमिका दान कर ही दिया। संकल्पका जल हाथमें देते ही श्रीहरिने तत्काल विराट् रूप धारण करके समूचे ब्रह्माण्डको

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

नाप लिया। पर्वत, वन और काननोंसहित यह पृथ्वी तथा अन्य लोक सब भगवान्‌के ढाई पगमें ही आ गये। उस समय शेष आधे पगकी पूर्तिके लिये बलिने अपना शरीर भी भगवान्‌को समर्पित कर दिया।

इस प्रकार समस्त असुरोंको जीतकर और इन्द्रको राज्य देकर वामनजी कुमुद्वतीपुरीमें गये। वहाँ ऋद्धि-सिद्धि देनेवाले पुण्यमय प्रदेशमें अपने लिये एक तीर्थका निर्माण करके उन्होंने वहीं निवास किया। वामनजीने जो तीर्थ निर्माण किया, उसे वामनकुण्ड कहते हैं। भाद्रपद शुक्ल पक्षमें श्रवण नक्षत्रयुक्त द्वादशी तिथि वामनद्वादशी कहलाती है। वह करोड़ों हत्याओंका पाप नष्ट करनेवाली है। जो मनुष्य एकादशी तिथिको यहाँ उपवास करके रात्रिमें जागरण करते और द्वादशीको बड़े-बड़े दान देते हैं, वे ब्रह्मभावको प्राप्त होते हैं। उनके लिये तीनों लोकोंमें कोई भी वस्तु दुर्लभ नहीं है।

भैरवतीर्थ और नागतीर्थकी महिमा

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुनिवर! पूर्वकालमें कालचक्रके द्वारा कुछ कृत्याएँ प्रकट की गयी थीं, जो योगिनीगणके नामसे प्रसिद्ध थीं। उन्हीं योगिनियोंमें काली नामसे प्रसिद्ध एक योगिनी थी, जो बहुत उत्तम स्वभावकी थी। उसने भैरवजीको सदा अपने पुत्रकी भाँति पाला था। भैरवने उस क्षेत्रके समस्त दोष और उत्पात नष्ट कर दिये थे। महामारी, पूतना, कृत्या, शकुनि, रेवती, खला, कोटरी, तामसी और माया—ये नौ मातृकाएँ मानी गयी हैं। ये सब-की-सब दुष्ट दोषकी प्राप्ति करानेवाली दुष्ट स्वभावकी तथा समस्त प्राणियोंके लिये भयंकर हैं। समस्त कामनाओं तथा वरोंको देनेवाले धर्मात्मा भैरवने इन सबको वशमें किया। वे भैरवजी शिप्रा नदीके उत्तर तटपर सदा स्थित रहते हैं। आषाढ़मासके शुक्ल पक्षमें रविवारके दिन अष्टमी, नवमी अथवा विशेषतः चतुर्दशी तिथिका योग पाकर जो मनुष्य एकाग्र एवं स्थिरचित्त होकर उनकी पूजा करते हैं, वे परम कल्याणके भागी होते हैं। जिनके नेत्र निर्मल कमलके समान सुन्दर हैं, जिन्होंने मस्तकपर चन्द्रमाका मनोहर मुकुट धारण कर रखा है, जो सब गुणोंसे श्रेष्ठ हैं, सबके सन्तापका निवारण करते हैं तथा डाकिनियोंके नाशके हेतु हैं, हे मन! मनुष्योंके लिये कल्याणस्वरूप उन भगवान् भूतनाथ भैरवका भजन कर। जो संसारभयका निवारण करनेवाले, दुष्ट योगिनियोंके लिये भयंकर और समस्त देवताओंके स्वामी हैं, सुन्दर चन्द्रमा और सूर्य जिनके नेत्र हैं, जिन्होंने अपने मस्तकपर मुकुट और गलेमें मोतियोंकी माला धारण कर रखी है तथा जो मनुष्यमात्रके लिये कल्याणस्वरूप हैं, उन विशालकाय भगवान् भूतनाथ भैरवका हे मन! तू भजन कर। जो देखनेमें सुन्दर, बोलनेमें मनोहर, प्रियजनोंमें सर्वाधिक सुन्दर और यश, कीर्ति तथा तपस्याके द्वारा भी अत्यन्त मनोहर हैं, उन भगवान् भूतनाथ भैरवकी मैं शरण लेता हूँ। जो आदिदेव सनातन ब्रह्म पवित्रतामें तत्पर सिद्धिदाता मनोरथपूरक भक्तिसे सेवन करनेयोग्य, देवताओंमें श्रेष्ठ, भक्तियुक्त, सर्वथा योग्य, योग-विचारमें तत्पर, युगको धारण करनेवाले, दर्शनयोग्य मुखवाले, योगी, कलायुक्त, कलंकरहित तथा सत्पुरुषोंद्वारा सेवित हैं, उन भगवान् भैरवको मैं प्रणाम करता हूँ।

जो मनुष्य प्रातःकाल उठकर इस पवित्र भैरव-स्तोत्रका पाठ करता है, उसके दुःस्वप्नोंका नाश तथा मनोवांछित फलकी सिद्धि होती है। इस तीर्थमें मनुष्योंको स्नान-दानादि करने चाहिये। संसारके भयसे डरे हुए मानवोंको भगवान् भैरवका अवश्य पूजन करना चाहिये।

पूर्वकालमें नागगण अपनी माताके शापसे

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

परिभ्रष्ट होनेके कारण राजा जनमेजयके द्वारा अग्निकुण्डमें जलाये जा रहे थे। उस समय महात्मा आस्तीकने आकर उन सब नागोंको संकटसे मुक्त किया। तब नागोंने जरत्कारुपुत्र आस्तीकसे पूछा—'ब्रह्मन्! आपकी कृपासे हमलोग जनमेजयके यज्ञकी आगमें जलनेसे बचे हैं। अब आप हमें रहनेके लिये ऐसा कोई स्थान बतलाइये, जहाँ हमें किसी प्रकारका भय न हो।'

आस्तीकने कहा—श्रेष्ठ मातुलगण! मनोहर महाकाल वनमें जो कुशस्थली नामक पुरी है, उसके दक्षिण भागमें एक सनातनतीर्थ है। वहीं नागोंका स्थान बताया गया है। वहाँ भगवान् शंकरका नित्य निवास है। एक समय बकदाल्भ्य नामक ऋषिने उत्तम व्रतका पालन करते हुए वहाँ तपस्या की थी। महातेजस्वी लोमश मुनि भी वहीं रहते हैं। भगवान् कपिलदेव मुनि भी उसी श्रेष्ठ तीर्थमें सिद्धिको प्राप्त हुए हैं। अत: आप सब लोग वहीं चलकर विश्राम करें।

आस्तीकका यह वचन सुनकर उस समय सब श्रेष्ठ नाग वहाँ निवास करनेके लिये आये। एलापत्र, कम्बल, कर्कोटक, धनंजय, वासुकि, तक्षक, नील, पद्मक तथा अर्बुद नामवाले सभी प्रधान-प्रधान नागोंने वहाँ आकर अपने-अपने लिये स्थान बनाये। इन सबके नामपर वहाँ नौ परम सुन्दर कुण्ड निर्मित हुए, जो उत्तम तीर्थस्वरूप हैं। इन सब कुण्डोंको महान् पुण्यप्रद तथा बड़े-बड़े पापोंका नाशक बताया गया है। उस तीर्थमें स्नान करके मनुष्य परम कल्याणमय वैकुण्ठ-धामको जाता है और इस लोकमें सदा श्रीसम्पन्न रहता है। व्यासजी इस प्रकार वह नागतीर्थ सब पापोंको हरनेवाला उत्तम स्थान है। वहाँ राजा बलिका अद्भुत आश्रम है, जहाँ भगवान् विष्णु सदा स्थित रहते हैं। वहाँ स्नान आदि अवश्य करना चाहिये। उसमें स्नान करनेसे मनुष्य तत्काल सब पापोंसे विशुद्धचित्त हो जाता है।

~~~o~~~

नृसिंहतीर्थकी महिमा

सनत्कुमारजी कहते हैं—व्यास! अब नृसिंहतीर्थका माहात्म्य श्रवण करो। प्राचीन कालकी बात है। दैत्यराज हिरण्यकशिपुने इस सम्पूर्ण पृथ्वीपर अपना अधिकार स्थापित कर लिया था। उसके दुष्ट दैत्योंकी सेनासे सारी पृथ्वी छा गयी थी। अत: वह शोकसे पीड़ित हो गौका रूप धारणकर नेत्रोंसे आँसू बहाती हुई ब्रह्माजीकी शरणमें गयी। वसुधाको भारसे पीड़ित देख लोकपितामह ब्रह्माजीने उसके कष्टका निवारण करते हुए स्नेहयुक्त वाणीमें कहा—'वसुधे! इस दैत्यने पूर्वकालमें ऐसी दुष्कर तपस्या की थी, जो दूसरे किसी प्राणीके द्वारा असम्भव थी। अत: मैंने प्रसन्न होकर इसे वरदान दिया। इस दैत्यने यह माँगा था कि 'न दिनमें, न रातमें, न आकाशमें, न पृथ्वीपर, न सूखेसे, न गीलेसे, न अस्त्र-शस्त्रोंके आघातसे, न मनुष्यसे और न पक्षियोंसे मेरी मृत्यु हो। जो केवल एक थप्पड़ मारकर मन्त्री, सेना और वाहनसमेत मुझे मार डालनेमें समर्थ हो, वही वीर मेरी मृत्युका कारण बने।'

तब मैं 'तथास्तु' कहकर वहाँसे अपने लोकको चला आया। तबसे वह अतुलित बलशाली दैत्य समस्त लोकोंका शासक हुआ है।' पृथ्वीसे ऐसा कहकर ब्रह्माजी सब देवताओंसे बोले—'देवगण! अब तुमलोग महाकाल वनमें जाओ। वहाँ सब तीर्थोंमें उत्तम एक महान् तीर्थ है, जो कर्कराजसे उत्तर और संगमेश्वरके दक्षिण भागमें स्थित है। वैकुण्ठतीर्थके समीप वहाँसे पूर्व भागमें शिप्राके मंगलमय तटपर वह उत्तम तीर्थ प्रतिष्ठित है। उसका नाम है नृसिंहतीर्थ। देवताओ! उसी तीर्थमें जाकर तुम स्नान-दानादि शुभ कर्मोंका अनुष्ठान

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth
~~~

करो। इससे तुम्हें शीघ्र ही पुनः अपने लोकोंकी प्राप्ति होगी।'

ब्रह्माजीका यह वचन सुनकर इन्द्र आदि देवता महाकाल वनमें, जहाँ शिप्रा नदी बहती है, गये। वहाँ उन्होंने नृसिंहतीर्थके समीपवर्ती तटपर दीर्घकालतक निवास किया और स्नान-दान आदि करके भगवान् नृसिंहकी आराधना की। इस प्रकार विधिवत् धर्मानुष्ठान करके सब देवता परम सिद्धिको प्राप्त हुए। दुष्टोंका संहार करनेवाले श्रीहरिने नृसिंहरूप धारण करके उसके सभामण्डपमें प्रकट होकर हाथके एक ही तमाचेसे हिरण्यकशिपुका काम तमाम कर दिया। तदनन्तर सब देवताओंने अपना-अपना अधिकार प्राप्त किया। तबसे लेकर प्रतिदिन सब देवता जहाँ भगवान् नृसिंह विराजमान हैं, उस उत्तम तीर्थमें मध्याह्नकालिक उपासना किया करते हैं। जो पवित्रात्मा पुरुष उस तीर्थमें स्नान-दानादि शुभकर्म करते हैं, वे परम गतिको प्राप्त होते हैं। वह श्रेष्ठ तीर्थ सदा पुण्यदायक माना गया है। जो कभी नृसिंह चतुर्दशीका शुभ पर्व प्राप्त करके उस तीर्थमें स्नान करनेके अनन्तर देवेश्वर नृसिंहजीका एकाग्रचित्तसे दर्शन और पूजन करता है, लक्ष्मी उसके हाथमें आ जाती है।

उसी तीर्थमें पवनकुमार हनुमान्‌जी परम सिद्धिको प्राप्त हुए हैं। वे साधकोंके सब अर्थकी सिद्धि करनेके लिये नित्य वहाँ निवास करते हैं। पूर्वकालमें जहाँ अगस्त्यजीने बड़ी कठोर तपस्या की थी, वह वटवृक्ष न्यग्रोधके नामसे विख्यात है। जो स्त्री या पुरुष वहाँ सावित्री व्रतका आचरण करते हैं, वे परम सौभाग्यको प्राप्त होते हैं। सावित्री व्रतका पालन करनेवाली स्त्री अपने पतिको बहुत प्रिय होती है। वह पतिव्रता और परम सौभाग्यवती होकर कभी वैधव्यका दुःख नहीं भोगती।

कुटुम्बेश्वर, देवप्रयाग तथा कर्कराजतीर्थकी महिमा

सनत्कुमारजी कहते हैं—व्यास! प्राचीन कालकी बात है। नारदजीने प्रजापति दक्षके साठ पुत्रोंको वैराग्यका उपदेश देकर गृहत्यागी बना दिया, तब दक्ष प्रजापतिने इस उज्जयिनीपुरीमें आकर कुटुम्बवृद्धिके लिये तपस्या की थी। तभीसे वह तीर्थ कुटुम्बेश्वरके नामसे प्रसिद्ध हुआ। उस तीर्थमें स्नान करके पवित्र हो सनातन ब्रह्मका जप और ध्यान करते हुए प्रजापति दक्षने दस हजार वर्षोंतक बड़ी कठोर तपस्या की। उस तीर्थके प्रसादसे उन्होंने बहुत-सी सन्तानें प्राप्त कीं। उन प्रजाओंको पाकर ही प्रतापी दक्ष प्रजापतिके नामसे विख्यात हुए। ब्रह्माजीने भी वहाँ दुष्कर तपस्या की है। आज भी वहाँ चतुर्मुख शिवलिंगका दर्शन होता है। वहीं भद्रपीठपर विराजमान एक देवी हैं, जो भद्रकालीके नामसे विख्यात हैं। वे सदा वहीं क्रीड़ा करती और नियमपूर्वक रहती हैं। उन्हींके द्वारपर क्षेत्रपाल भैरवकी स्थिति है। वे भद्रकाली देवीके द्वारा पुत्रवत् पालित होकर सदा चौतरेपर स्थित रहते हैं। जो मनुष्य सदाचारका पालन करते हुए इस तीर्थमें स्नान करते हैं, उन्हें जन्मभर कोई वस्तु दुर्लभ नहीं होती।

फाल्गुन कृष्ण पक्षमें जो त्रयोदशीयुक्त चतुर्दशी होती है, उसे 'शिवरात्रि' कहते हैं। उस दिन मनुष्य स्नान करके रातभर जागरण करे। साथ ही बिल्वपत्र, जल, उत्तम गन्ध, बहुत-से पुष्प, फल, धूप, दीप, नैवेद्य, वस्त्र तथा आभूषण आदिके द्वारा गणोंसहित नित्य अविनाशी शिवकी पूजा करे। जो ऐसा करता है, उसका सब पाप नष्ट हो जाता है और वह मनुष्य भगवान् शिवके लोकमें प्रतिष्ठित होता है।

व्यासजी! 'देवप्रयाग' नामक तीर्थ सब पापोंका नाश करनेवाला है, वह शिप्रा नदीके पूर्वभागमें प्रतिष्ठित है। उस तीर्थमें स्नान करके जो सुरेश्वर देवमाधवका दर्शन करता है, उसे देवमाधवजी

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

मनोवांछित फल प्रदान करते हैं। ज्येष्ठमासके शुक्ल पक्षमें दशमीको बुधवार और हस्त नक्षत्रका योग होनेपर गंगाजीके जलका परम पवित्र पर्व दशहरा होता है*। उस दिन गंगाजी (शिप्रा) में स्नान करके मनुष्य सब तीर्थोंका फल पा लेता है।

ब्रह्माजी मार्कण्डेयजीसे कहते हैं—वत्स! भूतलपर जो अनुपम शिप्रा नदी है, उसके तटपर कर्कराज नामक विख्यात श्रेष्ठ तीर्थ है, जिसके दर्शनमात्रसे बड़े-बड़े पापोंका क्षय हो जाता है और मनके सब विकार दूर होते हैं। कर्कके स्थानमें जब सूर्य आते हैं, तबसे तीन ऋतुतक उनकी गति दक्षिणायनकी ओर रहती है। वह धूम्रमार्ग कहलाता है। ऐसे समयमें मृत्यु होनेपर योगी भी इस संसारमें लौट आते हैं (उनकी मुक्ति नहीं होती)। परंतु जो लोग चातुर्मास्य अथवा दक्षिणायनमें मृत्युको प्राप्त होते हैं, उनके उद्धार एवं सद्गतिके लिये यह कर्कराजतीर्थ निर्मित हुआ है। सब लोकोंमें इसकी महिमाका गान किया जाता है। भगवान् विष्णु सबको मुक्ति देनेवाले हैं। उनके स्मरणमात्रसे सब पापोंका क्षय हो जाता है। संसारमें मनुष्य-जन्म दुर्लभ है, उसमें भी उत्तम कुलमें जन्म पाना और भी दुर्लभ है, वहाँ भी संयमका होना अत्यन्त दुर्लभ है। संयम होनेपर भी सदा कल्याणमय सत्संग प्राप्त होता रहे यह तो नितान्त दुर्लभ है। जहाँ सत्संग नहीं मिलता, भगवान् विष्णुकी भक्ति और वैष्णव-व्रतके पालनका अवसर नहीं प्राप्त होता, ऐसे स्थानोंमें विशेषतः चातुर्मास्यके समय भगवान् विष्णुके व्रतका पालन करनेवाला पुरुष उत्तम होता है। चातुर्मास्य आनेपर भगवान् विष्णु सदैव कर्कराजतीर्थमें स्थित होते हैं। हृष्ट-पुष्ट शरीरसे युक्त होकर जीवित रहना उसीके लिये शुभ होता है, जिसने चातुर्मास्य आनेपर श्रीहरिका निरन्तर पूजन किया है। भगवान् विष्णुकी भक्ति दुर्लभ है। द्विजश्रेष्ठ! चौमासेमें कर्कराजतीर्थमें स्नान करके मनुष्य सब यज्ञोंका फल पाते और स्वर्गलोकमें देवताओंकी भाँति सुख भोगते हैं।

भगवान् विष्णुके चरणके अंगुष्ठसे प्रवाहित होनेवाली गंगाजी भी सदा सब पापोंका नाश करनेवाली बतायी गयी हैं। विशेषतः चातुर्मास्यमें उनकी यह शक्ति और भी बढ़ जाती है। चौमासेमें भगवान् नारायण जलमें शयन करते हैं, इसलिये जलमात्र उस समय भगवान् विष्णुके तेजके अंशसे व्याप्त रहता है। अतः चौमासेमें जलका स्नान सब तीर्थोंसे अधिक महत्त्व रखता है। भगवान् विष्णुके शयन करनेपर उनके नामोंका कीर्तन करते हुए दस प्रकारका स्नान करना चाहिये, जो महान् फल देनेवाला है। ऐसा करनेवाला मनुष्य देवत्वको प्राप्त होता है। स्नानसे मनुष्य सत्यको और सत्यसे सनातन धर्मको पाता है। फिर धर्मसे मोक्षको पाकर वह कभी दुःख नहीं भोगता। भगवान् विष्णु स्नान किये हुए मनुष्यके शरीरका आश्रय लेकर स्थित रहते हैं और समस्त कार्य-कलापोंमें पूर्ण फल देनेवाले होते हैं। सब कर्मोंमें सूर्यनारायणके दर्शनसे शुद्धिका विधान किया गया है परंतु चौमासेमें विशेषतः जलसे शुद्धि होती है। जो शरीरसे अशक्त है, वह भस्मद्वारा स्नान करनेसे शुद्ध हो जाता है। मन्त्र-स्नानसे अथवा भगवान् विष्णुके चरणोदकके स्पर्शरूप स्नानसे भी मनुष्यकी शुद्धि होती है। भगवान् विष्णुके आगे स्नान करना उत्तम है। समस्त क्षेत्रों, तीर्थों और नदियोंमें विशेषतः शिप्रा नदीके जलमें और वहाँ भी सर्वश्रेष्ठ कर्कराजतीर्थमें जो मनुष्य स्नान करता है, वह विष्णुधामको जाता है। चातुर्मास्यमें भगवान् विष्णुके शयन करनेपर जबतक हरिबोधिनी एकादशी नहीं आ जाती, तबतक कर्कराजतीर्थमें ही मुक्ति होती है। चौमासेमें भगवान् विष्णुके शयनकालमें भी यदि मनुष्य वहाँ शरीर छोड़ता है तो उसका यमलोकमें निवास नहीं होता।

~~~०~~~

* ज्येष्ठे मासे सिते पक्षे दशम्यां बुधहस्तयोः। दशहरा जायते व्यास गंगाजन्म परं शुचि॥ (स्क० पु०, आव० अव० मा० ७८।७)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth
~~~

अवन्तीक्षेत्रके महत्त्वपूर्ण तीर्थ, देवता, वहाँकी यात्राके क्रम एवं माहात्म्यका वर्णन

सनत्कुमारजी कहते हैं—एक समय पार्वतीजीने भगवान् शिवसे कहा—'महेश्वर! इस क्षेत्रके प्रभावका वर्णन कीजिये।'

महादेवजी बोले—देवि! अवन्ती क्षेत्रमें परम पुण्यमयी शिप्रा नदी, दिव्य नवनदी, नीलगंगा तथा गन्धवती—ये चारों मेरी प्रिय नदियाँ हैं। यहाँ चौरासी लिंगोंके रूपमें उतने ही शिव निवास करते हैं; आठ भैरव रहते हैं; ग्यारह रुद्र, बारह आदित्य और छः गणेश हैं तथा देवियोंकी संख्या चौबीस है। भद्रे! यहीं विष्णु और ब्रह्मा आदि सब देवता निवास करते हैं। यह एक योजनका क्षेत्र देव-मण्डलसे व्याप्त है। यहाँ दस विष्णु प्रसिद्ध हैं। उनके नाम सुनो—वासुदेव, अनन्त, बलराम, जनार्दन, नारायण, हृषीकेश, वाराह, धरणीधर, वामनरूपधारी विष्णु तथा लक्ष्मीजीके आश्रयभूत भगवान् शेषशायी। ये दस विष्णु सब पापोंका अपहरण करनेवाले बताये गये हैं। ऋद्धि-सिद्धिदाता, कामदाता, गणपति, विघ्ननाशक, प्रमोदी तथा चतुर्थी-व्रत-प्रिय—ये छः विनायक इस तीर्थमें निवास करनेवाले कहे गये हैं, जो समस्त विघ्नोंका नाश करनेवाले हैं। उमा, चण्डी, ईश्वरी, गौरी, ऋद्धिदा, सिद्धिदा, वरयक्षिणी और वीरभद्रा—ये आठ मातृकाएँ कही गयी हैं। महामाया सती, जो कपालमातृका नामसे विख्यात हैं, उनके साथ अम्बिका, शीतला, सिद्धिदायिनी, एकानंशा, ब्रह्माणी, पार्वती, योगशालिनी—योगिनी, भगवती कौमारी, षट्कृत्तिका, चर्पटमातृका, वरमातृका, सरस्वती, महालक्ष्मी, योगिनी मातृका, चतुष्षष्ठियोगिनी, कालिका, महाकाली, चामुण्डा, ब्रह्मचारिणी, वैष्णवी, वाराही, विन्ध्यवासिनी, अम्बा तथा अम्बालिका—ये चौबीस पराशक्तियाँ हैं। हनुमान्, ब्रह्मचारी, कुमारेश और महाबली—ये चार पवनपुत्र हनुमान्‌के स्वरूप बताये गये हैं। दण्डपाणि, विक्रान्त, महाभैरव, बटुक, बालक, बन्दी, षट्पंचाशतक तथा अपरकालभैरव—ये आठ भैरव महापापहारक हैं। कपर्दी, कपाली, कलानाथ, वृषासन, त्र्यम्बक, शूलपाणि, चीरवासा, दिगम्बर, गिरीश, कामचारी तथा सर्पांगभूषण शर्व—ये ग्यारह रुद्र बताये गये हैं, जो सब शत्रुओंका नाश करनेवाले हैं। अरुण, सूर्य, वेदांग, भानु, इन्द्र, रवि, अंशुमान्, सुवर्णरेता, अहःकर्ता, मित्र, विष्णु और सनातन—ये बारह आदित्य सब रोगोंका नाश करनेवाले हैं। इस पुरीके चार द्वारपाल हैं, जो महात्मा पुरुषोंको विदित हैं। पूर्व द्वारपर पिंगलेश्वर, दक्षिण द्वारपर कायावरोहणेश्वर, पश्चिम द्वारपर बिल्वकेश्वर तथा उत्तर द्वारपर उत्तरेश्वर विद्यमान हैं। इन सबके अतिरिक्त अन्यान्य बहुतसे शिवलिंग मनोहर महाकाल वनमें बताये गये हैं, जो सबको पवित्र करनेवाले कहे गये हैं। व्यास! यद्यपि महाकाल वनमें शिवलिंगोंकी कोई संख्या नहीं है—वहाँ असंख्य शिवलिंग हैं—तथापि मैंने यहाँ प्रधान-प्रधान लिंगोंका दिग्दर्शनमात्र कराया है। जिस देवताका जो तीर्थ है, वह उसीके नामसे प्रसिद्ध बताया गया है। उनमें स्नान और दान करके मनुष्य उस तीर्थके फलका भागी होता है। जो मनुष्य इन तीर्थोंमें स्नान करते हैं, उनके लिये तीनों लोकोंमें कोई भी वस्तु दुर्लभ नहीं है। पुत्रहीनको पुत्र और निर्धनको धन प्राप्त होता है। ब्राह्मण विद्वान् और क्षत्रिय विजयी होता है। इतना ही नहीं, उसकी सन्तान-परम्परा कभी क्षीण नहीं होती और अन्तमें वह भगवान् शिवके लोकमें पूजित होता है।

व्यासजी बोले—भगवन्! मैं आपसे पुनः यह सुनना चाहता हूँ कि सुन्दर महाकाल वनमें अवन्ती क्षेत्रके भीतर कितने तीर्थ विद्यमान हैं?

सनत्कुमारजीने कहा—द्विजश्रेष्ठ! इस विषयमें

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

परम बुद्धिमान् नारदजी तथा भगवान् उमा-महेश्वरका जो संवाद हुआ है, उसे सुनाता हूँ। नारदजीने भगवान् शंकरजीसे पूछा—'प्रभो! महाकाल वनमें कौन-कौन तीर्थ हैं?'

तब उमासहित महादेवजी बोले—मुनिश्रेष्ठ! उत्तम महाकाल वनमें जो तीर्थ हैं, उनका वर्णन करता हूँ, सुनो। भूतलपर पुष्करादि जो कोई भी तीर्थ हैं, वे सब उत्तम महाकाल वनमें वर्तमान हैं। केवल रुद्रसरोवरमें असंख्य सहस्र कोटि-कोटि तीर्थ आकर स्नान करते हैं, इसलिये उसका नाम कोटितीर्थ है। हेमन्त ऋतुमें जब हिमालयगिरि हिमकी वर्षा करने लगता है, उस समय किन्नरगण पिशाचमोचन तीर्थमें दृष्टिगोचर होते हैं। मुनिवर! मैं तीर्थोंकी नियत संख्याको तो नहीं जानता कि कितने तीर्थ और कितने लिंग हैं तथापि जो प्रधान-प्रधान तीर्थ हैं, उनकी चर्चा करूँगा। द्विजश्रेष्ठ! एक वर्षमें जितने दिन होते हैं, उतने दिनतक प्रतिदिन यहाँ मनुष्य नये-नये प्रसिद्ध तीर्थोंका स्नान प्राप्त करता है। एक वर्ष पूरा होनेपर अवन्तीपुरीकी यात्रा सम्पन्न होती है। जो विधिपूर्वक अवन्ती-यात्रा पूर्ण कर लेता है, वह देवताओंमें श्रेष्ठ होता है। इसलिये मोक्ष चाहनेवाले पुरुषको बड़े यत्नसे अवन्तीपुरीकी यात्रा करनी चाहिये। विशेषतः वैशाख मासमें अवन्तीपुरीमें स्नान करना चाहिये। जो वैशाख मास आनेपर अवन्तीपुरीमें जाता और एक वर्षतक वहाँ रहकर प्रतिदिन विधिपूर्वक एक-एक तीर्थमें स्नान करता है और सब प्रकारकी वस्तुएँ दान देता है, वह तीर्थसेवनके पूर्ण फलको पाता है। इहलोकमें अतिशय सुखका उपभोग करके अन्तमें शिवलोकमें प्रतिष्ठित होता है।

सनत्कुमारजी कहते हैं—व्यासजी! इस प्रकार पूर्वकालमें भगवान् शंकरने परम बुद्धिमान् नारदजीसे अवन्तीपुरीके माहात्म्यका वर्णन किया था।

व्यासजी बोले—ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ सनत्कुमारजी! अब आप मुझे ऐसा कोई उपाय बताइये, जिससे मनुष्य थोड़े ही समयमें अवन्तीतीर्थके सेवनका पूरा फल प्राप्त कर ले तथा सिद्ध होकर शिवलोकको जाय।

सनत्कुमारजीने कहा—अनघ! मनुष्य एकाग्रचित्त होकर महाकाल वनमें जाय और कोटितीर्थमें स्नान करे। ऐसा करनेवाले मनुष्यका फिर इस संसारमें जन्म नहीं होता। वत्स! इस भूतलपर शिप्राके समान दूसरी कोई नदी नहीं है, जिसके दर्शनमात्रसे मुक्ति हो जाती है। जो वैशाख मासमें भगवान् पुरुषोत्तमका प्रतिदिन पूजन करता है, वह मोचनतीर्थमें एक बार तर्पण करनेमात्रसे मुक्त हो जाता है। जो अवन्तीपुरीमें अंगपात नामक भगवान् विष्णुका दर्शन करते हैं, उनका इस संसारमें पुनरागमन नहीं होता।

जो सम्पूर्ण तीर्थोंके फलकी इच्छा रखनेवाला हो, वह पवित्र होकर मन-इन्द्रियोंको संयममें रखते हुए तीर्थ-स्नानका व्रत ग्रहण करे और अट्ठाईस तीर्थोंमें गोता लगावे। कार्तिक, माघ, आषाढ़ और विशेषतः वैशाख मासमें जब कभी भी इस पुरीमें आकर तीर्थ-स्नान करना चाहिये। ऐसा करनेवाला मनुष्य सब तीर्थोंका फल पाकर शिवलोकमें प्रतिष्ठित होता है।

शिप्रा नदीके तटपर जो प्रधान-प्रधान पुण्य तीर्थ हैं, उनका वर्णन करता हूँ, सुनो—पापपीड़ित मनुष्य 'विष्णु-विष्णु' का स्मरण करता हुआ स्नातक ब्रह्मचारियोंके पालन करनेयोग्य सभी नियमोंको ग्रहण करे। फिर रुद्र-सरोवरमें स्नान करके श्राद्ध-तर्पण आदि करे। तदनन्तर कर्कराज नामक तीर्थस्वरूप तडागको जाय और उसमें स्नान आदि करके घृत-पात्र दान करे। उसके बाद जो परम उत्तम नृसिंहतीर्थ है, उसमें स्नान करे और काला मृगचर्म दान दे। वहाँसे शिप्रा

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

और नीलगंगाके संगमपर जाय। उसमें स्नान करके पवित्र हो संगमेश्वर शिवका दर्शन करके ब्राह्मणोंको विविध वस्तुएँ दान दे। वहाँसे व्रती पुरुष पिशाचमोचन तीर्थकी यात्रा करे। उसमें विधिपूर्वक स्नान करके दैनिक कृत्य करे। उसके बाद विद्वान् ब्राह्मणको सवत्सा गौ दान दे। उस तीर्थमें सभी महादान करने चाहिये। तदनन्तर पिशाचेश्वर शिवका दर्शन करके मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। तत्पश्चात् व्रतपालक, नियमपरायण पुरुष गन्धर्वतीर्थकी यात्रा करे और उसमें स्नान करके पवित्र हो एकाग्रचित्तसे पितरोंका श्राद्ध करे। फिर षष्टिजलपेश्वर देवकी विधिवत् पूजा करनेके अनन्तर ब्राह्मणोंको गृहदान आदि करे। वहाँसे केदार नामक उत्तम तीर्थको जाय और उसमें स्नान करके ब्राह्मणोंको दान दे। उस तीर्थमें कम्बल, मृगचर्म और वस्त्र भी देने चाहिये। ऐसा करनेसे मनुष्य सब पापोंसे शुद्ध होकर शिवलोकमें प्रतिष्ठित होता है। चक्रतीर्थमें स्नान करके मनुष्य भगवान् चक्रपाणिकी भलीभाँति पूजा करे। ऐसा करनेसे वह विष्णुलोकमें पूजित होता है। सोमतीर्थमें स्नान करके सोमेश्वर शिवका दर्शन करनेसे मनुष्यका शरीर निर्मल हो जाता है। उसे कोढ़ आदिका रोग नहीं सताता। वहाँ ब्राह्मणके लिये ईख और गौ आदि दान देना चाहिये। तदनन्तर मनुष्य स्नानके लिये देवप्रयागतीर्थमें जाय और वहाँ स्नान करके पवित्र हो देवमाधवजीकी पूजा करे। फिर विधिपूर्वक ब्राह्मणको गुड़की बनी हुई गौ दान करनी चाहिये। जो ऐसा करता है, वह सब पापोंसे शुद्धचित्त होकर देवलोकमें प्रतिष्ठित होता है। व्यासजी! प्रयागमें अति उत्तम वेणी तीर्थ है। वहाँ तिल और आँवलेके साथ स्नान करना चाहिये। स्नानके पश्चात् प्रयागेश्वरका पूजन करके मनुष्य तीर्थसेवनके सम्पूर्ण फलका भागी होता है। वहाँ ब्राह्मणको विधिपूर्वक तिलकी गौ देनी चाहिये। जो ऐसा करता है, वह सम्पूर्ण कामनाओंकी सिद्धिका वरदान पाकर भगवान् विष्णुके लोकमें आनन्द भोगता है। वहाँसे व्रतका पालन करनेवाला पुरुष परम उत्तम योगतीर्थमें जाय और स्नान करके पवित्र हो योगिनीश्वरका पूजन करे। पूजाके पश्चात् वह जलमयी (बर्फकी बनी हुई) गौ दान करे। इससे मनुष्य दीर्घायु और सुखी होता है। तत्पश्चात् कपिलाश्रमतीर्थमें जाय और स्नान-दानादि करके कपिलेश्वरका पूजन करे। ऐसा करनेसे मनुष्य सब पापोंसे मुक्त होकर तपोलोकको जाता है। तदनन्तर शिप्राके पश्चिम तटपर जो घृतकुल्या नामक उत्तम तीर्थ है, वहाँ स्नान करके मनुष्य प्रतिदिन घृतधारयेश्वर शिवका पूजन करे और ब्राह्मणको घृतमयी धेनुका दान करे। ऐसा करके वह पुण्यात्माओंके लोकमें जाता और सब पापोंसे मुक्त होता है। तत्पश्चात् मधुकुल्यातीर्थमें स्नान करके मधुकुल्येश्वर शिवका पूजन करे और मधु एवं इक्षुधेनुका दान करे। उससे आगे सब तीर्थोंका फल प्रदान करनेवाला ऊसर नामक उत्तम तीर्थ है। उसमें स्नान करके मनुष्य ऊसरेश्वर महादेवका दर्शन करे। उस तीर्थमें फल, मूल आदिका दान करना चाहिये। इससे उत्तम मोक्षकी प्राप्ति होती है। जहाँ नरादित्य स्थित हैं, वहाँ भी उत्तम तीर्थ बताया गया है। वहाँ स्नान करनेके पश्चात् मनुष्य क्षेत्रादित्येश्वरका दर्शन करे। दर्शनके पश्चात् रथका दान करे तो भगवान् नरके लोकमें जाता है। भगवान् केशवार्क वहाँके प्रधान देवता हैं। उनका तीर्थ भी बहुत उत्तम बताया गया है। वहाँ स्नान और केशवादित्यका पूजन करना चाहिये। उस तीर्थमें नाना प्रकारके अन्नदानका विधान है। वहाँ स्नान करके पवित्र हो मनुष्य एकाग्रचित्तसे पापनाशिनी भगवती एकानंशाका पूजन करे। तदनन्तर दशाश्वमेधेश्वर शिवकी आराधना करे। ऐसा करनेवाला मनुष्य

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

सब पापोंसे शुद्धचित्त होकर स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है। वे जो पृथ्वीके पुत्र अंगारक देव (मंगल) हैं, उनका उत्तम तीर्थ सब तीर्थोंका फल प्रदान करनेवाला है। उस तीर्थमें स्नान करके मनुष्य मंगलेश्वरका पूजन करे। जहाँ गंगा और आकाशगंगाका संगम है, उस तीर्थमें स्नान करके गंगेश्वरका दर्शन करे। इससे मनुष्य सब पापोंसे मुक्त होता और विष्णुलोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त करता है। ऋणमोचनतीर्थ सब पापोंका अपहरण करनेवाला है। उसमें स्नान करके मनुष्य ऋणर्तेश्वरका पूजन करे। फिर अपनी शक्तिके अनुसार दान करके घृत-श्राद्ध करे। इससे मनुष्य तीनों ऋणोंसे मुक्त होकर स्वर्गलोकमें सम्मानित होता है। ऋणमोचन तीर्थसे चलकर पापरहित शक्तिभेद नामक तीर्थमें जाय। वह सब तीर्थोंमें उत्तम और समस्त पापोंका नाश करनेवाला है। वहाँ स्नान करके पवित्र एवं शुद्धचित्त होकर विद्वान् पुरुष समस्त मातृकाओंका दर्शन करे। फिर वहाँ विधिपूर्वक श्राद्ध करके शय्या आदि दान करे। ऐसा करनेवाला पुरुष माताके ऋणसे छूटकर सायुज्य मोक्ष पाता है। पापमोचन नामक जो श्रेष्ठ तीर्थ है, वहाँ श्राद्ध करके मनुष्योंको छायादान करना चाहिये। ऐसा करनेसे वे शुद्धचित्त हो जाते हैं। तत्पश्चात् विश्वविख्यात प्रेतशिला नामक तीर्थमें जाय, जो प्रेतोंको मोक्ष देनेवाला है। उसमें स्नान करके मनुष्य श्राद्धका दान करे, क्योंकि वहाँ तिलसहित जलद्वारा तर्पण करनेसे पितर उत्तम गतिको प्राप्त होते हैं। वहाँ रस और नमकके साथ अन्नका दान करना चाहिये। यमेश्वरकी पूजा करके मनुष्य कभी नरकमें नहीं पड़ता और उसके पितर प्रसन्न होकर सनातन ब्रह्मपदको प्राप्त होते हैं। जहाँ नवनदीका संगम है, वहाँ त्रिभुवन-वन्दित उत्तम तीर्थ है। वहीं पार्वती माता निवास करती हैं। उसमें स्नान करके पवित्र हो एकाग्रचित्तसे कल्याणमयी भगवती पार्वतीकी विधिपूर्वक पूजा करे, महादान दे। ऐसा करनेसे शुद्धचित्त मानव साक्षात् शिव होता है। नवनदी-संगमसे चलकर मन्दाकिनी तीर्थमें जाय। वहाँ स्नान करके पवित्र हो जो मनुष्य भगवान् सदाशिवका पूजन करता है और अन्न आदि देकर एक दोन तिलका दान करता है, वह सब पापोंसे शुद्ध होकर कुबेरके समान हो जाता है। तदनन्तर व्रतका पालन करनेवाला पुरुष ब्रह्माजीके उत्तम तीर्थमें जाय। विधिपूर्वक स्नान करे और सब प्रकारके दान दे। तत्पश्चात् यात्रेश्वर शिवका तुलसी, बिल्वपत्र तथा नाना प्रकारके सुगन्धित पुष्पोंद्वारा पूजन करके उन्हें धूप, दीप, नैवेद्य, मुखशुद्धि तथा उत्तरीय आदि अर्पण करे और व्रतकी पूर्तिके लिये उनसे इस प्रकार प्रार्थना करे—

यात्रेश्वर नमस्तुभ्यमुमानाथ जगत्पते।
त्वत्प्रसादात्कृतां यात्रां सफलां कुरु मे प्रभो॥

'यात्रेश्वर! उमानाथ! जगत्पते! आपको नमस्कार है। प्रभो! आपके प्रसादसे मैंने यह यात्रा की है। कृपया इसे सफल बनाइये।'

सनत्कुमारजी कहते हैं—द्विजश्रेष्ठ! इस प्रकार जो अवन्तीकी यात्रा करता है, उसे अवन्तीतीर्थमें निवास करनेका पुण्य प्राप्त होता है, इसमें सन्देह नहीं है। वह इस लोकमें नाना प्रकारके भोग, धन, स्त्री तथा सम्पत्ति आदिका सुख भोगकर सब पापोंसे शुद्धचित्त हो मृत्युके पश्चात् भगवान् शिवके लोकमें जाता है। जो मनुष्य इस पवित्र एवं पापहारिणी कथाको सुनते हैं, उनके लिये इस लोक और परलोकमें कोई भी वस्तु दुर्लभ नहीं रहती।

अवन्तीक्षेत्र-माहात्म्य सम्पूर्ण।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

रेवाखण्ड

राजा युधिष्ठिरके पूछनेपर मार्कण्डेयजीके द्वारा पुरूरवाकी तपस्यासे नर्मदाजीके मर्त्यलोकमें आगमनका वर्णन

सूतजी बोले—तपोधनो! एक समय महातेजस्वी मार्कण्डेयमुनि तीर्थयात्राका फल पाकर नर्मदाके तटपर बैठे हुए थे। वहीं उनका दर्शन करनेके लिये बहुत-से ऋषि-महर्षि आये। पुलस्त्य, वसिष्ठ, पुलह, क्रतु, भृगु, अत्रि, मरीचि, भारद्वाज, काश्यप, मनु, यम, अङ्गिरा, शातातप, पराशर, आपस्तम्ब, शम्बकाव्य (शुक्राचार्य), कात्यायन मुनि, गौतम, शंख, लिखित, दक्ष, कात्यायन, जामदग्न्य, याज्ञवल्क्य, ऋष्यशृंग, विभाण्डक, गर्ग, शौनक, दाल्भ्य, व्यास, उद्दालक, शुक, नारद, पर्वत, दुर्वासा, उग्रतापस, शाकल्य, गालव, जाबालि, मुद्गल और कौशिक-कुलोत्पन्न विश्वामित्र आदि देवसम्मानित महर्षि तथा धर्म, शतानन्द, वैशम्पायन, वैष्णव, शाकलायन, वार्धक्य, जुहुति, आवसु, भूमण्डल-निवासी महात्मा बालखिल्य आदि भी वहाँ उपस्थित हुए।

उसी समय तीर्थयात्राका फल सुनकर धर्मपुत्र युधिष्ठिर वेदवेत्ता एवं ज्ञानी ब्राह्मणों तथा अपनी प्रिया द्रौपदीके साथ नर्मदातटपर मार्कण्डेय मुनिके आश्रमपर आये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने भाइयोंसहित तीन बार मुनिकी परिक्रमा की और उन्हें साष्टांग प्रणाम करके बैठ गये। राजाको बैठा देख महामुनि मार्कण्डेय बोले—'नृपश्रेष्ठ! भाइयों और ब्राह्मणोंके साथ कुशलसे तो हो न?' युधिष्ठिरने हँसकर कहा-'मुने! आज आपके चरणारविन्दोंका दर्शन पाकर मैं कृतकृत्य हो गया। मेरे अन्तःकरणका मल नष्ट हो गया। तीनों लोकोंमें प्रवाहित होनेवाली गंगा, यमुना और सरस्वती, गंगाद्वार, हिमालय, कुब्जार्क, ब्रह्मयोनि, उग्रतीर्थ, कनखल, केदार, भैरवक्षेत्र, नैमिषारण्य, गया, कुरुक्षेत्र, पुष्कर इत्यादि पवित्र तीर्थोंको छोड़कर आप किस प्रयोजनसे केवल महानदी नर्मदाका ही सेवन करते हैं, इस बातको हम सब लोग सुनना चाहते हैं। आप कृपा करके इस रहस्यको बतावें।'

मार्कण्डेयजी बोले—राजन्! पूर्वकालकी बात है, चन्द्रवंशमें पुरूरवा नामसे विख्यात एक चक्रवर्ती राजा हुए थे। वे स्वर्गलोकका शासन करनेवाले इन्द्रकी भाँति समूची पृथ्वीका पालन करते थे। एक समय राजसभामें उन नृपश्रेष्ठने बड़े-बूढ़े ब्राह्मणोंसे पूछा—'विप्रवरो! पापमोहित मनुष्य किस उपायसे यज्ञ आदि कर्मोंके बिना ही स्वर्गलोकको प्राप्त हुए हैं और हो सकते हैं, यह बताइये।'

ब्राह्मणोंने कहा—महाराज! नर्मदा नदी सम्पूर्ण लोकोंको पवित्र करनेवाली हैं। वे सम्पूर्ण विश्वका पापहरण करनेमें समर्थ हैं। उन्हें स्वर्गलोकसे आप इस पृथ्वीपर उतारें। अपने मनको वशमें रखनेवाले उन ब्राह्मणोंका यह वचन सुनकर राजा पुरूरवाने कन्द, मूल, फल, शाक और जलका आहार करके निर्मल अन्तःकरणसे महादेवजीकी आराधना की। तब महादेवजीने प्रसन्न होकर कहा—'बेटा! वर माँगो। मैं तुम्हें तुम्हारी इच्छाके अनुसार वस्तु प्रदान करूँगा।'

पुरूरवा बोले—महादेव! आप समस्त लोकोंके हितके लिये नर्मदा नदीको पृथ्वीपर उतारिये। आज लाख योजनका विशाल जम्बूद्वीप निराधार हो रहा है। न देवता तृप्त होते हैं, न पितर और न मनुष्योंको ही तृप्ति हो रही है।

महादेवजीने कहा—राजन्! तुम तो अयाच्य वस्तुकी याचना करते हो। ऐसा वर तो देवताओंके लिये भी दुर्लभ है। नर्मदाको छोड़कर दूसरा जो कुछ भी वर माँगो, मैं दूँगा।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

पुरूरवा बोले—महादेव! मैं प्राण जानेपर भी दूसरा वर नहीं माँगूँगा।

राजाका यह निश्चय जानकर तथा उग्र तपस्या-द्वारा उनके किये हुए साधनको देखकर महादेवजीने नर्मदाको आज्ञा दी—सुरेश्वरि! तुम पृथ्वीपर उतरो और पुरूरवाकी तपस्याके फलसे मृत्युलोकके हितका साधन करो।

नर्मदाने कहा—महेश्वर! मैं बिना किसी आधारके स्वर्गलोकसे पृथ्वीपर कैसे जाऊँगी?

नर्मदाकी यह बात सुनकर देवाधिदेव महादेवजीने आठ पर्वतोंको बुलाया और उन सबसे पूछा—'तुममेंसे नर्मदा नदीको धारण करनेमें कौन समर्थ है?' तब विन्ध्यगिरिने कहा—'सुरेश्वर! आपके प्रसादसे मेरा पुत्र नर्मदाको धारण करनेमें समर्थ है। उसका नाम पर्यंक है।' तत्पश्चात् महादेवजीकी आज्ञा मिलनेपर पर्यंकने कहा—'महेश्वर! आपके प्रसादसे मैं नर्मदा नदीको धारण करूँगा।' तदनन्तर नर्मदादेवी पर्यंकगिरिके शिखरपर स्थित होकर उतरीं। उनकी जलराशिके वेगपूर्वक भ्रमणसे पर्वत, वन और काननोंसहित समस्त पृथ्वी जलसे आप्लावित हो उठी। सम्पूर्ण जगत् अकालमें ही प्रलयकालसे ग्रस्त हो गया। तब सम्पूर्ण देवताओंने मेकलकन्या नर्मदाकी स्तुति की और कहा—'कल्याणि! तुम मर्यादा धारण करो। किसी नियत सीमामें स्थित रहो और इस प्रकार विश्वके लिये हितकारिणी बनो।' देवताओंके इस प्रकार प्रार्थना करनेपर महादेवजीकी आज्ञासे नर्मदादेवीने पुनः अपने रूपको संकुचित कर लिया। अब वे संवृतरूपसे बहने लगीं। उस समय नर्मदाजीने पुरूरवासे कहा—'वत्स! तुम अपने हाथसे मेरे जलका स्पर्श करो।' उनकी आज्ञा पाकर पुरूरवाने उनके जलका स्पर्श एवं आचमन करके पितरोंका तिल और नर्मदा-जलसे तर्पण किया। उस जलसे तर्पण करनेपर राजाके समस्त पितर उस परम पदको प्राप्त हो गये, जो देवताओंके लिये भी दुर्लभ है। समस्त चराचर जगत् सब ओरसे पवित्र हो गया। वे देश, पर्वत, ग्राम और आश्रम भी पवित्र हैं, जहाँ नर्मदाजी विद्यमान हैं। सरस्वतीका जल तीन दिनमें पवित्र करता है। यमुना-जल सात दिनमें पावन बनाता है, गंगा-जल स्नान करनेपर तत्काल पवित्र करता है, परंतु नर्मदा नदी दर्शनमात्रसे ही मनुष्योंको पवित्र कर देती है। नर्मदाके संगममें जहाँ-कहीं भी स्नान, दान, जप, होम, वेदपाठ, पितृपूजन, देवाराधन, मन्त्रोपदेश, संन्यास और देहत्याग आदि जो कुछ भी किया जाता है, उसके फलका अन्त नहीं है। वैशाख, माघ अथवा कार्तिककी पूर्णिमाको, विषुवयोगमें, संक्रान्तिके समय, व्यतीपात और वैधृतियोगमें, अमावास्यामें, तिथिकी हानि और वृद्धिके दिन, मन्वादि युगादि और कल्पादि तिथियोंमें, माता-पिताके क्षयाहमें नर्मदा-तटवर्ती ॐकार भृगुक्षेत्र तथा विशेषतः संगममें जो सहस्र, शत अथवा एक गोदान एवं सम्पूर्ण महादान करता है तथा जो श्रेष्ठ मनुष्य नर्मदामें स्नान, दान, जप, होम और पूजन आदि करता है, वह अश्वमेध यज्ञका फल पाता है। युधिष्ठिर! मनुष्य नर्मदामें जहाँ-जहाँ स्नान करता है, वहीं-वहीं उसे अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त हो जाता है। जो मनुष्य प्रातःकाल उठकर नर्मदाका कीर्तन करता है, उसका सात जन्मोंका किया हुआ पाप उसी क्षण नष्ट हो जाता है तथा जहाँ संगम और बाणलिंगसे युक्त नर्मदा नदी स्थित है, वहाँ स्नान करके मनुष्य अश्वमेध यज्ञका फल पाता और अन्तमें शिवधामको जाता है।

~~~०~~~

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth
~~~

राजा हिरण्यतेजाके तपसे नर्मदाका अवतरण

युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! राजा पुरूरवासे पहले महाराज हिरण्यतेजाने नर्मदादेवीको किस प्रकार इस पृथ्वीपर उतारा था, यह बतानेकी कृपा करें।

मार्कण्डेयजी बोले—राजन्! चन्द्रवंशमें हिरण्यतेजा नामसे प्रसिद्ध एक राजर्षि हो गये हैं, जो समस्त धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ तथा प्रजापतिके समान थे। वे पर्वत, वन और काननोंसहित समूची पृथ्वीका एकछत्र शासन करते थे। उनकी राजधानी चन्द्रपुरी थी, जो इन्द्रकी अमरावतीके समान शोभा पाती थी। एक समय अमावास्याको सूर्यग्रहण लगनेपर इस जम्बूद्वीपमें बावली, कुआँ और सरोवर होनेपर भी कोई नदी नहीं उपलब्ध हो सकी, जहाँ देवताओं और पितरोंका विशेष सत्कार हो सके। उस समयतक जम्बूद्वीपमें कोई नदी थी ही नहीं। राजाने लाखों गौएँ, सुवर्ण, मणि, रत्न, खजाना, घोड़े और अगणित मतवाले हाथी ब्राह्मणोंको दानमें दिये। हव्य और कव्यसे पितरोंको भी तृप्त किया। उस समय उन्होंने देखा, पितरोंको जलपानका बड़ा कष्ट है। वे पितरोंसे बोले—'आपलोग कौन हैं और किस कर्मसे पवित्र हो सकते हैं?'

पितर बोले—महाभाग! यह द्वीप नदियोंसे रहित होनेके कारण यहाँका सब धर्म-कर्म नष्ट हो चुका है। नदीके अभावमें न तो देवता तृप्त होते हैं, न पितर। यदि इस द्वीपमें नर्मदा उतर आवे तो हम सब लोगोंकी मुक्ति हो जायगी। महाराज! यह यथार्थ बात हमने आपसे बता दी है। अब आपकी जैसी रुचि हो, वैसा करें।

हिरण्यतेजाने कहा—अब मुझे पितरोंका उद्धार करना ही उचित प्रतीत होता है। अन्यथा इस राज्यसे क्या काम? यदि मैं पितरोंको तृप्त न कर सका तो मेरा जीवन भी व्यर्थ है।

ऐसा कहकर राजा हिरण्यतेजा उदयाचल पर्वतपर गये और कन्द, मूल एवं फलका भोजन करते हुए भगवान् शिवकी उपासना करने लगे। उन्होंने बड़ी कठोर तपस्या की। उनकी उत्तम भक्ति जानकर त्रिनेत्रधारी भगवान् शंकरने प्रत्यक्ष दर्शन दिया। राजाने देवाधिदेव महादेवके दिव्य रूपका दर्शन पाकर उनकी तीन बार परिक्रमा की और साष्टांग प्रणाम करके उनका स्तवन किया।

राजा बोले—सुरेश्वर! आपको नमस्कार है। शूलपाणे! आपको नमस्कार है। प्रभो! आप ही पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध, बुद्धि, मन, अहंकार, प्रकृति और उसके तीनों गुण हैं। आप ही सम्पूर्ण इन्द्रियोंके प्रेरक, सर्वत्र व्यापक, समस्त कलाओंसे युक्त तथा कलारहित अविनाशी परमेश्वर हैं। ब्रह्मा और विष्णु आदि देवताओंको भी आपके आदि-अन्तका पता नहीं लगता। महातेजाका किया हुआ यह स्तोत्र सुनकर देवदेव जगदीश्वर शिवने कहा—'महाभाग! तुम अपने इच्छानुसार वर माँगो।' तब राजाने कहा—'देवेश्वर! सात कल्पोंतक प्रवाहित होनेवाली नर्मदादेवीको आप मर्त्यलोकमें उतारें। पितर घोर नरकमें डूब रहे हैं। उनका उद्धार हो और वे तृप्त होकर मुक्ति एवं परम गतिको प्राप्त हों, इसके लिये नर्मदादेवीका अवतरण आवश्यक है।'

महादेवजी बोले—तात! नर्मदाजी तो ब्रह्मा, विष्णु आदि देवताओं, दैत्यों तथा अन्य अल्पजीवी प्राणियोंद्वारा पृथ्वीपर नहीं उतारी जा सकतीं। अतः तुम कोई दूसरा वर माँगो। उसे अभी दे दूँगा।

तब महाभाग राजा हिरण्यतेजाने कहा—प्रभो! आपके प्रसन्न होनेपर तीनों लोकोंमें कुछ भी असाध्य नहीं। मैं तो सहस्रों जन्म धारण करनेपर भी दूसरा वर नहीं माँगूँगा। देवेश्वर! मैं आपके सेवकोंका भी सेवक हूँ। मुझे नर्मदाजीको ही दीजिये।

राजाका यह निश्चय जानकर भगवान् शंकरने लोकपावनी नर्मदादेवीका आवाहन किया। वे मगरके आसनपर आरूढ़ हो दिव्यरूपसे आकर शिवजीके आगे खड़ी हुईं और उमा-महेश्वर दोनोंके चरणोंका

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

स्पर्श करके नतमस्तक हो बोलीं—'देवेश! किसलिये मेरा स्मरण किया गया?'

महादेवजीने कहा—नर्मदे! राजा हिरण्यतेजाने अपना राज्य छोड़कर यहाँ चौदह हजार दिव्य वर्षोंतक घोर तपस्या की है; अतः तुम इनकी इच्छाके अनुसार पृथ्वीपर उतरो। शीघ्र जाओ और नरकमें पड़े हुए सब पितरोंका उद्धार करो।

नर्मदा बोलीं—देव! मैं बिना किसी आधारके जम्बूद्वीपमें कैसे जाऊँगी।

यह सुनकर महादेवजीने पर्वतोंसे कहा—तुम सब लोग क्षणभर स्थिर हो जाओ, जिससे सरिताओंमें श्रेष्ठ नर्मदा पृथ्वीपर जाय।

तब पर्वतोंने कहा—देव! हम नर्मदादेवीको धारण करनेमें असमर्थ हैं। उसी समय उदयाचलने खड़े होकर कहा—'महादेवजीकी कृपासे मैं नर्मदाको धारण करनेमें समर्थ हूँ।'

तदनन्तर उदयाचलकी चोटीपर चरण देकर नर्मदादेवी आकाशसे पृथ्वीपर आयीं और वायुके समान वेगसे पश्चिम दिशाको बह चलीं। उस समय तीनों लोकोंमें बड़ा हाहाकार मचा। नर्मदाके जलका वह भयंकर कल-कल नाद सुनकर पाताललोकसे एक तेजोमय प्रज्वलित लिंग प्रकट हुआ और हुंकारपूर्वक बोला—'सब पापोंको हरनेवाली तथा उत्तम व्रतका पालन करनेवाली नर्मदे! मर्यादा धारण करो। तुम्हें धारण करनेके लिये महादेवजीने तीन पर्वतोंकी सृष्टि की है—मेरु, हिमवान् और कैलाश तथा चौथा पर्वतश्रेष्ठ विन्ध्य भी तुम्हें धारण करनेमें समर्थ है। इन पर्वतोंकी लंबाई पूर्वसे पश्चिम दिशाकी ओर बत्तीस हजार योजन है और दक्षिणसे उत्तरकी ओर चौड़ाई पाँच सौ योजनकी है।'

तत्पश्चात् राजर्षि हिरण्यतेजाने नर्मदासे कहा—देवि! आपने हमारे पितरोंका उद्धार करनेके लिये बड़ा अनुग्रह किया है। नर्मदाने उत्तर दिया—'राजन्! तुमने मेरे लिये महादेवजीकी आराधना एवं तपस्या की है, इसलिये जो तुम्हारे माता-पिताके वंशके लोग हैं, वे और तुम्हारी रनिवासमें रहनेवाली स्त्रियोंके भी जो सगे-सम्बन्धी हैं, वे सब मेरे प्रभावसे उमा-महेश्वरके लोकमें चले जायँगे।'

तब राजाने नर्मदामें विधिपूर्वक स्नान करके देवताओं और पितरोंका तर्पण तथा श्राद्ध और पिण्डदान किया। इससे उनके सब पितर नरकसे निकलकर देवयानमार्गपर स्थित हुए। यह नर्मदाका पहला अवतरण आदिकल्पके सत्ययुगमें हुआ था। दूसरा अवतार दक्षसावर्णि मन्वन्तरमें हुआ और तीसरा अवतार राजा पुरूरवाके द्वारा वैष्णव मन्वन्तरमें सम्पन्न हुआ है। राजन्! यह प्राचीन वृत्तान्त जैसा मैंने अपनी आँखों देखा है, वैसा बतलाया। नर्मदामें स्नान करने, गोता लगाने, उसका जल पीने तथा स्मरण और कीर्तन करनेसे अनेक जन्मोंका घोर पाप तत्काल नष्ट हो जाता है।

नर्मदाका मर्त्यलोकमें आकर पुरुकुत्सुको अपना पति बनाना तथा नर्मदास्नानकी महिमा

मार्कण्डेयजी कहते हैं—राजन्! क्षत्रियकुलमें उत्पन्न पुरुकुत्सु नामक राजा महान् यशस्वी हो गये हैं। उन्होंने पहले एक सहस्र वर्षोंतक महादेवजीकी आराधना की। उनकी तपस्यासे सन्तुष्ट होकर महादेवजीने पूछा—'राजन्! तुम कौन-सा वर चाहते हो?' राजाने कहा—'देव! नर्मदा नामसे प्रसिद्ध परम सौभाग्यशालिनी नदी है, उसे आप इस भूतलपर उतारें।' महादेवजी बोले—'राजन्! इसे न माँगकर कोई दूसरा वरदान माँगो।' इतना सुनते ही वे महाभाग क्षत्रिय पुरुकुत्सु मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़े। यह देख शिवजीने कहा—'राजन्! तुम स्वस्थ हो जाओ। मैं सरिताओंमें

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

श्रेष्ठ नर्मदाको मर्त्यलोकमें उतारता हूँ।' तदनन्तर महादेवजीके कहनेपर पर्यंक नामक पर्वतने महानदी नर्मदाके वेगको धारण करना स्वीकार किया। राजा और देवताओंके साथ देवी नर्मदा बड़े वेगसे चली और पर्यंक-पर्वतकी चोटीपर होती हुई उस स्थानपर पहुँची, जहाँ पूर्वकालमें राजा पृथुने अश्वमेध यज्ञ किया था। वहीं एक बाँसके मूलभागसे महानदी नर्मदा निकली। उस समय सब देवता, गन्धर्व, यक्ष, मरुत्, अश्विनीकुमार, पिशाच, राक्षस, नाग और तपोधन ऋषि—सब लोग अर्घ्य और पाद्यसे पूजन करके नर्मदाजीकी शरणमें प्राप्त हुए और बोले—'आज हमलोगोंका जन्म सफल हुआ। हमारी तपस्या भी सफल हो गयी। देवि! यहाँ तुम्हारा दर्शन करके हम सब देवता कृतार्थ हो गये। हम उसीको पुरुष मानते हैं, जिसने नर्मदाजीको यहाँ उतारा है। नर्मदे! तुम अपने हाथसे देवताओंका स्पर्श करो, जिससे हम सब लोग पवित्र हो जायँ।'

यह सुनकर नर्मदा बोलीं—मैं अबतक कुमारी हूँ, मेरा पति नहीं है। अतः मैं देवगणोंका स्पर्श नहीं कर सकती। नर्मदाका यह उत्तर पाकर देवता चिन्तासे व्याकुल हो उठे और बोले—'देवि! तुम्हारे समान रूप-गुणसे सम्पन्न उत्तम वर कहाँसे प्राप्त हो सकता है। जिसने तुम्हें इस लोकमें प्रकट किया है, वही तुम्हारा पति हो। पूर्वकालमें ब्रह्माजीके शापसे समुद्र मर्त्यलोकमें जाकर राजा पुरुकुत्सुके रूपमें उत्पन्न हुआ है। वह इक्ष्वाकुकुलके आनन्दको बढ़ानेवाला है। वह देवतुल्य क्षत्रिय पुरुकुत्सु तुम्हारे लिये श्रेष्ठ वर हो।'

नर्मदा बोलीं—जिनमें इस प्रकार देवत्व है, जिनकी समस्त प्रजा धर्ममें स्थित है, उन महात्मा पुरुकुत्सुके लिये और क्या कहा जा सकता है। स्वयम्भू ब्रह्माजीके मानसपुत्र जिस प्रकार धर्मनिष्ठ बताये गये हैं, उसी प्रकार ये पुरुकुत्सु भी सब धर्मोंके पालनमें तत्पर हैं। अतः मैं इनको पतिरूपमें स्वीकार करती हूँ।

राजा पुरुकुत्सु बोले—नर्मदे! तुम देवकन्या हो। मुझपर कृपा करो, जिससे मेरे पितर स्वर्गको जायँ और मेरा भी महान् यश हो।

नर्मदाने कहा—राजेन्द्र! ऐसा ही हो। आप मुझसे जो-जो चाहते हैं, वह सब मेरे प्रसादसे आपको प्राप्त हो।

ऐसा कहकर देवी नर्मदा पर्यंकपर्वतसे निकलकर पश्चिम दिशाकी ओर चली गयीं। वे धनुषसे छूटे हुए बाणकी भाँति पृथ्वीको विदीर्ण करती और पर्वत-शिखरोंको तोड़ती-फोड़ती हुई बड़े वेगसे चली जा रही थीं। उस समय विन्ध्य पर्वतके प्रदेशमें वे जहाँ-जहाँ गयीं, वहाँ-वहाँ स्नान किया जाता है। वहाँ तीर्थवर्जित स्थानमें भी स्नान करनेपर सहस्रों गंगास्नानका फल होता है। तदनन्तर वेदज्ञ महर्षियोंने सुखका विस्तार करनेवाली लोकपावनी महादेवी नर्मदाका स्तवन किया। वेद धर्मके मूल हैं, स्मृतियाँ फूल और फल हैं, अग्निहोत्रपरायण पुण्यात्मा द्विज उस फलका उपभोग करते हैं। परंतु वे भी नर्मदाको स्वर्गकी सीढ़ी समझकर उसका सेवन करते हैं। जहाँ-जहाँ भगवान् शिवके शुभ मन्दिरके समीप पुण्यमयी नर्मदा विद्यमान हैं, वहाँ-वहाँ नर्मदा नदीका स्नान एक लाख गंगास्नानके समान होता है। अग्निहोत्रसे जो पुण्य होता है और पितरोंके श्राद्धसे जो फल प्राप्त होता है, वह सब नर्मदाके जलसे उपलब्ध हो जाता है। नर्मदाके नामका कीर्तन करना और उसके संगमतीर्थमें दान देना, इसके समान दूसरी कोई वस्तु नहीं है। जो बुद्धिमान् प्रातःकाल उठकर नर्मदा नदीका स्नान करते हैं, उनका पहले जन्मका और इस जन्मका किया हुआ पाप नष्ट हो जाता है। कोई भी मनुष्य यदि नर्मदामें जहाँ-कहीं भी स्नान कर लेता है, उसका किया हुआ सौ जन्मोंका पाप तत्काल नष्ट हो जाता है। जो नर्मदाके तटपर मृत्युको प्राप्त होता है, वह भगवान् शंकरके स्वरूपको प्राप्त होता है। जहाँ नर्मदा नहीं हैं,

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

वहाँ पापोंका प्रायश्चित्त करनेकी प्रेरणा की जाती है; परंतु नर्मदाजल प्राप्त होनेपर तो प्रायश्चित्तकी आवश्यकता ही नहीं रह जाती है।

विन्ध्यगिरिके आठ मानसपुत्र बताये गये हैं, जिनमें पर्यंक प्रथम है। उसे सब पर्वतोंमें श्रेष्ठ जानना चाहिये। नर्मदाके डेढ़ सौ स्रोत कहे गये हैं। आधे कोसके तृतीय भाग (पाँच सौ सत्तासी गज)-की चौड़ाईमें उसकी धारा बहती है, ऐसा विज्ञ पुरुषोंने बताया है। युधिष्ठिर! परमेश्वरी नर्मदाने देवताओं और मनुष्योंके हितके लिये स्वयं ही अपने-आपको धारण किया है। वे समस्त सरिताओंमें श्रेष्ठ हैं और सम्पूर्ण जगत्को तारनेके लिये ही यहाँ अवतीर्ण हुई हैं। उनके तटपर स्वर्ग और मोक्ष दोनों ही स्थित हैं।

नर्मदा-तटवर्ती अनन्तपुर एवं व्यासतीर्थकी महिमा

मार्कण्डेयजी कहते हैं—नर्मदाके उत्तर 'अनन्तपुर' नामक एक स्थान है, जहाँ सब पापोंका हरण करनेवाला अनन्तसिद्धि नामक लिंग है। उस अनन्तपुरमें ही वैश्रवण तीर्थ, कौबेरतीर्थ, घनदतीर्थ, मणिभद्रतीर्थ और यज्ञतीर्थ हैं, जो परम पवित्र, सर्वलोकप्रसिद्ध, मनोवांछित फल देनेवाले तथा मोक्षदायक हैं। वहीं ऋषियोंके पवित्र आश्रम भी हैं, जो सर्वदेवमय एवं शुभ हैं। वहाँ सावर्णि, कौशिक, अघमर्षण, शाकल्य, कुशाकर्ण्य, शरभंग, अग्निगर्भ—ये तथा और भी बहुत-से उत्तम व्रतका पालन करनेवाले महर्षि रहे थे, जो तपस्या करके इस नर्मदा तीर्थके माहात्म्यसे स्वर्गलोकको प्राप्त हुए हैं। ऋषियोंमें श्रेष्ठ वाल्मीकिजीने भी इसी तीर्थके प्रभावसे ब्रह्मतेजसे सम्पन्न शरीर प्राप्त किया था। इक्ष्वाकु, कुवलयाश्व, दिलीप, नहुष, वेणु, राजा ययाति, अजपाल और हैहय—ये तथा अन्य भी बहुत-से राजाओंने अनन्तपुरमें निवास किया है। इस अनन्तपुरके क्षेत्रमें ही नर्मदाके तटपर जो भगवान् महेश्वर निवास करते हैं, उनका विधिपूर्वक पूजन करके वे सभी नरेश स्वर्गलोकको प्राप्त हुए हैं। अनन्तपुरमें सप्तर्षितीर्थ, सप्तसारस्वत-तीर्थ, अमर्त्यसम्भव लिंग, अरण्यकेश्वर लिंग, अघौघनाशन तीर्थ, कल्मषापहतीर्थ, पंचब्रह्ममयतीर्थ, सहस्रशीर्षा महादेव, वाराहतीर्थ, वामनतीर्थ, यमतीर्थ, सौरभंगतीर्थ, सहस्राश्वमेधतीर्थ, हिरण्यगर्भतीर्थ, सावित्रतीर्थ और चातुर्वेदतीर्थ—ये सभी तीर्थ सम्पूर्ण लोकोंको पवित्र करनेवाले और श्रेष्ठ हैं। पर्यंक पर्वतसे पश्चिम जहाँतक अनन्तपुरका क्षेत्र है, वह परम शुभ है। इसके भीतर जिनकी मृत्यु होती है, वे दान-धर्मसे रहित हों तो भी चौदह इन्द्रोंके समयतक स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होते हैं। तदनन्तर द्वीपेश्वर नामक उत्तम तीर्थ है, जो व्यासतीर्थ कहलाता है। वहाँ स्नान करके मनुष्य अश्वमेध यज्ञका फल पाता है। वह इच्छानुसार उत्तम फल देनेवाला श्रेष्ठ तीर्थ है। द्वीपेश्वरमें स्नान करके जो वृषभ-दान करता है, वह सुवर्णमय विमानसे स्वर्गलोकमें जाता है। जो मनुष्य कार्तिकके कृष्ण पक्षकी चतुर्दशी तिथिको उपवास करके इन्द्रियोंको संयममें रखते हुए वहाँ भगवान् शिवको स्नान कराता है, वह सब पापोंसे मुक्त होकर रुद्रलोकमें सम्मानित होता है। ब्रह्मा आदि सम्पूर्ण देवता और तपोधन ऋषि, व्यासतीर्थमें जाकर भावितात्मा भगवान् शंकरकी स्तुति करते हैं। दूसरे भी जो सिद्ध, गन्धर्व, किन्नर और नाग आदि हैं, वे नाना प्रकारके स्तोत्रोंसे भगवान् शंकरका स्तवन करते हुए कहते हैं कि 'जिनके हाथमें शक्ति है, जिनके समान शक्तिशाली वीर दूसरा कोई नहीं है, वे समस्त देवताओंद्वारा आराधित और पूजित सुरश्रेष्ठ भगवान् भूतनाथ जिसको चाहें ऊँचा उठा सकते हैं और जिसे चाहें अवनतिमें डाल सकते हैं। जिनके एक बाणसे त्रिपुर भस्म कर दिया गया, जिनके ललाटवर्ती नेत्रद्वारा देखनेमात्रसे कामदेव

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

भस्म हो गया और जिन्होंने अपने श्रेष्ठ त्रिशूलसे अन्धकासुरको चीर डाला, उनके साथ कौन विरोध कर सकता है? जिन्होंने अपनी जटाके अग्र भागमें जलराशिकी उत्ताल तरंगोंसे संयुक्त गंगाजीको धारण कर रखा है, जिनके चरणारविन्दके अंगुष्ठका तनिक-सा दबाव पाकर लंकापति रावण मूर्छित होकर गिर पड़ा था, जिन्होंने समस्त देवताओं और असुरोंके समक्ष दक्षके यज्ञका क्षणभरमें विध्वंस कर डाला था, जिनके लिंगमय विग्रहके पूजनसे मनुष्य मनोवांछित फल प्राप्त करता है, उन भगवान् शंकरके समान या उनसे बढ़कर दूसरा कौन देवता है?' जो विधिपूर्वक महादेवजीकी आराधना करके '**यस्यास्ति शक्ति**' इत्यादि स्तोत्रका प्रातःकाल प्रयत्नपूर्वक पाठ या स्मरण करता है, वह भगवान् शंकरका पार्षद होता है। जो इस स्तोत्रका महादेवजीके समीप पाठ करता है, उसके ऊपर व्यासेश्वर शिव तथा नर्मदा दोनों ही प्रसन्न होते हैं।

तदनन्तर उत्तम व्रतका पालन करनेवाले मुनियों तथा व्यासजीने नर्मदातटपर पितरोंका श्राद्ध किया। यहाँ श्राद्ध करनेसे पितृगण बारह वर्षोंतक तृप्त रहते हैं।

वरांगना-नर्मदा-संगम तथा कपिलातीर्थका माहात्म्य, महाराज मनुकी त्रिपुरीयात्रा और नर्मदासे वरदान पाना

मार्कण्डेयजी कहते हैं—राजन्! व्यासतीर्थके अतिरिक्त एक दूसरा परम पुण्यमय तीर्थ है जो सब पापोंका नाश करनेवाला है। वहाँ अश्वमेध यज्ञसे प्रकट हुई 'वरांगना' नदी बहती है। वहाँ नर्मदा और वरांगनाके संगममें स्नान करनेसे अश्वमेधयज्ञका फल मिलता है। स्त्री हो या पुरुष—सभी वहाँ स्नान करनेसे रोगमुक्त हो जाते हैं। त्रिपुरीके पूर्वभागमें दक्षिण-दिशाकी ओर सब लोकोंपर अनुग्रह करनेके लिये भगवान् शंकर विराजमान हैं। अतः विद्वान् पुरुष उसे 'शिवक्षेत्र' कहते हैं। सूर्य-ग्रहणके समय इस शिवक्षेत्रको कुरुक्षेत्रके समान बताया गया है। कुरुक्षेत्रमें पचासी तीर्थ हैं और यहाँ भी उतने ही हैं। इस क्षेत्रमें देवेश्वर भगवान् मधुसूदन भी उत्पलावर्त नामसे निवास करते हैं, जिनके सहस्रों मस्तक हैं। भगवान् श्रीहरि, महादेवजी और तीसरी नर्मदा नदी—ये तीनों इस क्षेत्रके परम आराध्य देवता हैं। राजन्! इन्द्र आदि देवता भी नर्मदा नदीकी महिमाका क्या वर्णन कर सकते हैं? वहाँ स्नान करनेसे मनुष्यका फिर इस संसारमें जन्म नहीं होता। उक्त स्थानमें देवदेव महादेवके पूजनसे मनुष्य गणपति-पदको प्राप्त होता है। उस तीर्थमें प्रकट हुए शंख-चक्र-गदाधारी भगवान् विष्णुकी ब्रह्मा, इन्द्र आदि देवताओंद्वारा उपासना की जाती है। श्रीविष्णुके क्षेत्रमें मृत्युको प्राप्त हुए कीट-पतंग आदि भी हरिधामको चले जाते हैं। मनुष्य अपने वशमें हो या परवश, जो संगम-तीर्थमें प्राण-त्याग करता है, वह दस हजार वर्षोंतक विद्याधरलोकमें राजा होता है। युधिष्ठिर! जो यहाँ तिल और जलसे पितरोंका तर्पण और उन्हें पिण्डदान करता है, उसके पितर तृप्त होकर परम गतिको प्राप्त होते हैं। एकादशीको निराहार रहकर गन्ध और पुष्पोंसे भगवान् विष्णुका पूजन करे, रातमें जागकर दीप जलावे; फिर द्वादशीको पंचगव्य लेकर हविष्यान्नसे पारण करे। पारणके पूर्व ब्राह्मणोंको भोजन कराकर दक्षिणा दे। जो मनुष्य पवित्र एवं एकाग्रचित्त होकर उस क्षेत्रमें '**ॐ नमो भगवते वासुदेवाय**' इस द्वादशाक्षर मन्त्रका जप करता है, वह फिर गर्भमें नहीं आता और न उसका कभी जन्म ही होता है। वह अपने अनेक जन्मोंके भयंकर पापोंको उसी प्रकार तत्काल भस्म कर देता है, जैसे आग रूईके ढेर और सूखे काठको जला देती है।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

पूर्वकालमें महादेवजीने सम्पूर्ण लोकोंपर अनुग्रह तथा समस्त देवताओंका हित करनेके लिये पवित्र जलके भवँरमें अवतार लिया था। उस स्थानमें भगवान् शिवके अट्ठाईस स्वयंभू लिंग हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं—१ स्थानेश्वर, २ महादेव, ३ शूलपाणि, ४ सप्तेश्वर, ५ कल्पेश्वर, ६ हिरण्य, ७ जातवेद:, ८ प्राजापत्य, ९ सिद्धनाथ, १० शशांकनायक, ११ अनुकेश, १२ स्कन्द, १३ आश्विन, १४ तैजस, १५ ब्रह्मेश्वर, १६ अग्नि-गर्भ, १७ श्रीकण्ठ, १८ उमापति, १९ नीलकण्ठ, २० खट्वांग, २१ महाकाल, २२ घटेश्वर, २३ त्रिलोचन, २४ त्र्यम्बक, २५ देवदेव, २६ महेश्वर, २७ अनंग और २८ कामदेव—ये तथा और भी बहुत-से सिद्ध लिंग वहाँ हैं।

महाभाग युधिष्ठिर! तदनन्तर नर्मदाके उत्तर तटपर परम उत्तम कपिलातीर्थ है जो सब पापोंको हरनेवाला है। पुरुष हों या स्त्रियाँ-यदि वे जितेन्द्रिय होकर उस तीर्थमें स्नान करनेके पश्चात् देवताओं और पितरोंका तर्पण करते हैं, तो तीनों ऋणोंसे मुक्त हो जाते हैं। उस तीर्थमें ब्राह्मणोंको भोजन कराकर मनुष्य परम गतिको प्राप्त होता है।

उसके बाद नर्मदाके उत्तर तटपर त्रिपुरी नामक विख्यात एक उत्तम तीर्थ है, जो तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध है। भारत! वहाँ सवा लाख तीर्थोंका निवास है। उस तीर्थमें एक सौ आठ स्वयंभू शिवलिंग विद्यमान हैं। यह वही स्थान है, जहाँ त्रिशूलधारी देवाधिदेव महादेवने त्रिपुरको मार गिराया था। यहाँ देवदेव महादेवके नाम-कीर्तनसे तथा नर्मदाजीके जलद्वारा उनका स्नान और पूजन करनेसे ब्रह्महत्या नष्ट हो जाती है। गन्ध, पुष्प, धूप, दीप तथा वैभव-विस्तारसे पूजन करनेपर जो पुण्य होता है, उसकी गणना सहस्रों वर्षोंमें भी नहीं की जा सकती। भगवान् शिवके उद्देश्यसे जब दान किया जाता है, तब उस दानका पुण्य असंख्य हो जाता है। राजन्! वे मनुष्य धन्य हैं जो त्रिपुरीमें स्नान करके महादेवजीका दर्शन करते हैं। जो मानव त्रिपुरीमें निवास करता है, वह साक्षात् कैलाशमें निवास पाता है। जो इच्छा या अनिच्छासे भी त्रिपुरीमें प्राण-त्याग करता है, वह विमानद्वारा महादेवजीके परम धाममें जाकर वहाँके दिव्य विभवका उपभोग करता है। वहाँ देवेश्वर त्रिपुरारि शिव तैंतीस कोटि प्रसिद्ध देवताओंके साथ निवास करते हैं। इसलिये त्रिपुरी क्षेत्रको शिवक्षेत्र कहा गया है। उसकी लम्बाई-चौड़ाई दो कोसकी है। इस बीचमें जिनकी मृत्यु होती है, वे शुभ गतिको प्राप्त होते हैं।

यहीं सब सिद्धियोंको देनेवाले गोकर्ण, महादेव, वटेश्वर, सिद्धलिंग, सुरेश्वर, ईश्वर, कामेश्वर, अश्विनीकुमारेश्वर, अनंगेश्वर, वामदेव, कपोतेश्वर, सर्वेश्वर, सोमनाथ, ऋणमोचन, कपालमोचन, पापनाशन, इन्द्रेश्वर, ब्रह्मेश्वर, शिव, नारायण, भव, विश्वेदेव, सिद्धनाथ, अमरेश्वर, चान्द्रलिंग, सिद्धेश्वर, विद्याधरेश्वर, यज्ञेश्वर, तुलनारहित वासवेश्वर, ईशान, अग्निगर्भ, कुबेर, गायत्रलिंग, सावित्रलिंग तथा रोहिणीतीर्थ हैं। विष्णु, मरीचि, मैत्रेय, विभाण्डपुत्र ऋष्यशृंग, तपस्वी शौनक तथा उग्र तपस्वी दुर्वासा आदि पचास हजार सिद्ध त्रिपुरीमें निवास करते हैं। इस पुरीकी स्तुति सहस्रों वर्षोंमें भी नहीं की जा सकती।

जिसमें कपिल मुनिका अवतार हुआ था, वह कालसंज्ञक स्वयंभू मन्वन्तर प्राप्त होनेपर अयोध्यापुरीमें महायशस्वी मनु नामक एक चक्रवर्ती राजा हुए थे। उनका जन्म सूर्यवंशमें हुआ था। उन्होंने भगवान् शंकर और विष्णुकी आराधना करके अयोध्यापुरी प्राप्त की थी। जैसे कुबेरकी अलकापुरी विख्यात है तथा जिस प्रकार इन्द्रकी अमरावतीपुरी बड़ी मनोहर है, अयोध्या भी वैसी ही शोभासम्पन्न थी। वहाँ रहकर महाराज मनु सात द्वीप, नौ खण्ड तथा पर्वत, वन और काननोंसहित समस्त पृथ्वीका पालन करते थे। एक दिन पूर्णिमाको एक पहर रात व्यतीत होनेके पश्चात् राजाके कानोंमें आकाशमें विचरनेवाले विमानोंकी क्षुद्रघण्टिकाका शब्द सुनायी पड़ा।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

उनमें संगीत और वाद्यकी भी ध्वनि हो रही थी। वह सब देख-सुनकर राजाको बड़ा विस्मय हुआ। वे सोचने लगे 'ये विमान किसके हैं, जो मेरे ही भवनके ऊपर खड़े हैं। यह कितना साहसपूर्ण कार्य है?' इस प्रकार सोच-विचारमें पड़े हुए राजाकी वह रात्रि व्यतीत हो गयी। सूर्योदय होनेपर नैत्यिक धर्म-कर्मका अनुष्ठान पूरा करके राजर्षि मनुने वसिष्ठ मुनिसे कहा—'महामुने! यह मेरे महलके ऊपर किसके विमान हैं तथा ये किस कर्मके फलसे या किस-किस दान और नियमके पालनसे प्राप्त होते हैं? क्षत्रियवंशमें उत्पन्न होकर जो पृथ्वीका शासन करता है, वह यज्ञोंका अनुष्ठान करके माता और पिताके कुलको स्वर्गलोकमें पहुँचाता है। वास्तवमें उसी राजाका जन्म लेना सार्थक है, जिसके शासनमें इस भूमण्डलपर किसी प्रकारका पापकर्म नहीं हो पाता। दूसरे लोग तो केवल माता-पिताको क्लेश देनेके लिये ही उनके पुत्ररूपसे जन्मग्रहण करते हैं।'

राजा मनुके ऐसा कहनेपर वसिष्ठजी बोले— महाभाग! पुराण और वेदोंसे बाहर जो कर्म किया जाता है, उसकी साधुपुरुष प्रशंसा नहीं करते; क्योंकि उसके द्वारा धर्मकी हानि होती है। नर्मदाके तटपर त्रिपुरी नामसे विख्यात एक तीर्थ है। वहाँ जिन लोगोंने यज्ञ, दान और होम आदि सत्कर्म किये हैं, उन्हींके विमान महलोंके ऊपर खड़े थे। महाराज! एकमात्र नर्मदादेवी ही ऐसी हैं, जिन्होंने समस्त पापियों और दुराचारियोंको स्वर्गलोकमें पहुँचाया है। संसार-समुद्रमें डूबे हुए पापसे दूषित चित्तवाले जीवोंको भी स्वर्गलोकमें पहुँचानेके लिये यह नर्मदा नदी दिव्य विमानस्वरूप है। महाभाग! ब्रह्मा, विष्णु और महादेवजीको छोड़कर दूसरा कोई एक मुखवाला पुरुष नर्मदा नदीके पुण्योंका वर्णन नहीं कर सकता। नर्मदातटपर किये हुए तप, दान और सत्कर्मोंके पुण्यकी कोई भी गणना नहीं कर सकता। जम्बूद्वीपमें जो-जो तीर्थ और समुद्र हैं, उनमेंसे कोई भी नर्मदा नदीकी समता नहीं कर सकते। पुण्यक्षेत्रमें किया हुआ पाप वज्रलेप हो जाता है। यही बात धर्मके लिये भी है। वहाँ किया हुआ धर्म भी अक्षय होता है। यह जीवन चंचल है—क्षणभंगुर है। इसलिये मनुष्य कभी पाप न करे।

राजा मनुने नर्मदाके सुयशका वर्णन सुनकर अपने मन्त्रियों, सदस्यों तथा सेवकोंको आज्ञा दी—तुम सब लोग राजकीय सामग्री लेकर शीघ्र ही नर्मदाकी यात्रा करो, विलम्ब नहीं होना चाहिये।

तदनन्तर राजा वेदवेत्ता ब्राह्मणोंके साथ देव दानववन्दित त्रिपुरी पुरीको गये। वहाँ रानियों तथा समस्त परिवारके साथ नर्मदाजीके जलका दर्शन करके वे जन्मभरके पापोंसे मुक्त हो गये। उस तीर्थमें विधिपूर्वक स्नान करके देवताओं और पितरोंका तर्पण करनेके पश्चात् राजाने चन्दन और पुष्प आदिसे महादेवजीकी पूजा की और नर्मदाके तटपर दस योजनका विशाल यज्ञमण्डप निर्माण कराया। उत्तम व्रतका पालन करनेवाले, यज्ञकर्ममें कुशल, चारों विद्याओंके ज्ञाता तथा वेदज्ञ महर्षि एवं ब्राह्मण उस यज्ञके लिये निमन्त्रित किये गये। जैसे पुष्करतीर्थ ब्रह्मा, विष्णु और शिव—तीनों देवताओंका स्वरूप है, उसी प्रकार यह त्रिपुरीतीर्थ भी है। वहाँ राजाने परमोत्तम अश्वमेध यज्ञ प्रारम्भ किया। उस यज्ञमें सम्पूर्ण देवताओंका आवाहन किया गया। देवराज इन्द्र भी पधारे थे। मनुने अर्घ्य, पाद्य, मधुपर्क और विष्टर आदि देकर सबको सन्तुष्ट किया। वेदोक्त विधिके अनुसार यज्ञका कार्य पूर्ण हुआ। ब्राह्मणोंको वैभवके अनुसार दक्षिणा देकर प्रसन्न किया गया। देवता, पितर और मनुष्य सभी तृप्त होकर परम गतिको प्राप्त हो गये। ब्रह्मा, विष्णु और शिव राजाको वरदान देकर अपने-अपने लोकमें गये। इस तीर्थमें किया हुआ तप और दान सब कुछ अक्षय होता है।

इस प्रकार महातेजस्वी महाराज मनुका यज्ञ जब पूरा हो गया तब उन्होंने हाथ जोड़कर नर्मदासे कहा—देवि! केवल सहस्रों चान्द्रायण और सैकड़ों

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth 279 Skandpuran_Section_33_2_Back

सोमयागका जो फल है, वह तुम्हारे जलका पान करनेमात्रसे होनेवाले पुण्यकी समता नहीं कर सकता। तुमने सम्पूर्ण जगत्‌को तथा समस्त चराचर जीवोंको व्याप्त कर रखा है। जैसे आग रूईके ढेरको जला देती है, उसी प्रकार तुम्हारा जल स्नान, अवगाहन, पान, स्मरण और कीर्तन करनेसे मनुष्यके अनेक जन्मोंकी पापराशिको भस्म कर देता है। देवि! तुम पितरोंके हितकी कामनासे स्वर्गकी सीढ़ी बनकर आयी हो। चारों प्रकारके जीवोंको स्वर्गलोकमें पहुँचाओ। नर्मदे! लोकमें जो कोई भी नदियाँ और नाना प्रकारके तीर्थ हैं, उन सबकी जननी तुम्हीं हो। तुम पितरोंका उद्धार करनेवाली पराशक्ति हो। जैसे सूर्य और चन्द्रमाका प्रभाव सब जीवोंपर समानरूपसे पड़ता है, जैसे बादल अन्नके पौधों और घासोंपर समानरूपसे जलकी वर्षा करते हैं, उसी प्रकार तुम सम्पूर्ण विश्वपर समानरूपसे स्नेह रखनेवाली गौरवमयी माता हो। शुभे! ब्रह्मा और बृहस्पतिजी सहस्रों वर्षोंतक लगे रहनेपर भी तुम्हारे गुणोंका पूर्णतया वर्णन करनेमें समर्थ नहीं हैं।

अमिततेजस्वी मनुके द्वारा किये हुए इस स्तवनको सुनकर परम सौभाग्यशालिनी नर्मदादेवी बोलीं—महाभाग! मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ। तुम कोई मनोवांछित वर माँगो। तब महादेवी नर्मदाको नमस्कार करके राजाने कहा—'देवि! तुम सम्पूर्ण जगत्‌को पवित्र करो और अयोध्या प्रदेशमें अनेक नदियाँ प्रकट हो जायँ। देवलोकमें गंगा आदि अनेकों सरिताएँ बहती हैं, ऐसा सुना जाता है। वे सब इस भूलोकमें भी जिस प्रकार उतर आवें, वैसा उपाय करो।'

नर्मदा बोलीं—नृपश्रेष्ठ! त्रेताके प्रथम भागमें तुम्हारे कुलमें भगीरथ नामसे विख्यात एक राजा होंगे। वे इस लोकमें गंगाजीको लावेंगे। त्रेताके द्वितीय भागमें इस भारतवर्षके भीतर कालिन्दी, सरस्वती, सरयू तथा महाभागा गण्डकी आदि नदियाँ भी प्रकट हो जायँगी। तुम्हारे वंशमें उत्पन्न भगीरथके ही नामपर सरिताओंमें श्रेष्ठ गंगाजी 'भागीरथी' कहलायेंगी। भागीरथीके ही समान उनका दूसरा नाम 'जाह्नवी' भी होगा। उक्त सभी नदियाँ कन्या-द्वीपमें प्रसिद्धिको प्राप्त होंगी।

भृगुतीर्थ और भास्करतीर्थका माहात्म्य

मार्कण्डेयजी कहते हैं—राजन्! त्रिपुरी क्षेत्रमें ही मर्कटीतीर्थ है और मर्कटीतीर्थके पूर्वभागमें परम उत्तम भृगुतीर्थ स्थित है। कार्तिककी पूर्णिमाको इस तीर्थमें स्नान करके मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। वहीं नरकेश्वर नामसे प्रसिद्ध भगवान् शिव हैं, जो स्वर्ग और मोक्ष देनेवाले हैं। उनके आगे बाँसका वृक्ष दिखायी देता है। उसके पूर्वभागमें त्रिलोचन नामक महादेवजी विराजमान हैं। उनके ललाटमें स्थित तृतीय नेत्रका दर्शन करके मुनिश्रेष्ठ भृगुने पृथ्वीपर दण्डवत् प्रणाम किया और इस प्रकार उनकी स्तुति की।

भृगु बोले—जो सब जीवोंके भीतर उनके आत्मारूपसे विराजमान हैं, समस्त भूतोंके ईश्वर हैं, कल्याण एवं ऐश्वर्य प्रदान करनेवाले हैं, सबका पाप हर लेनेके कारण जिन्हें हर कहते हैं, जो कल्याणस्वरूप, तेजस्वरूप, पशुपति एवं अखिल विश्वके स्वामी हैं, जिनमें दोषमात्रका सर्वथा अभाव है तथा जो नित्य विज्ञानानन्दस्वरूप हैं, उन भगवान् शिवको मैं प्रणाम करता हूँ। प्रभो! मैं दूसरोंका तिरस्कार करनेके पापसे पराजित हूँ। मेरी उस पापसे रक्षा कीजिये। परमेश्वर! इस क्षणभंगुर शरीरके प्रति मेरे मनमें आत्माभिमानका उदय हो गया है—मैं देहको ही आत्मा मानने लगा हूँ। अतएव कुमार्गकी ओर दृष्टि रखनेवाले मुझ दीनकी आप रक्षा करें। प्रभो! मुझ दीन ब्राह्मणको ज्ञान देनेके लिये उद्यत होइये। आप तो

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

सदा सबका कल्याण करनेवाले हैं, फिर मुझे मूढ़ देखकर भी (ज्ञानदानमें) विलम्ब क्यों करते हैं? हर! आप मेरी बढ़ी हुई तृष्णाको हर लें और मुझे स्थिर रहनेवाली लक्ष्मी प्रदान करें। महेश्वर! आपके तीर्थोंमें जानेमात्रसे जो पुण्य होता है, वह सदा ही मोहका उच्छेद, पापोंका विनाश और संसार-सागरसे उद्धार करता है, परंतु मुझ भाग्यहीनने उस पुण्यका संचय भी नहीं किया है।

महर्षि भृगुके द्वारा कहे हुए इस 'करुणाहृदय' नामक स्तोत्रका जो प्रतिदिन प्रातःकाल उठकर पाठ करता है, वह परम गतिको प्राप्त होता है। इस स्तोत्रसे सन्तुष्ट होकर भगवान् शिवने भृगुसे कहा—'विप्रवर! तुम्हारे मनमें जिस-जिस वरकी अभिलाषा है, वह सब मैं तुझे दूँगा। साथ ही तुम्हें देवदुर्लभ उत्तम सिद्धि भी प्रदान करूँगा।'

भृगुने कहा—देवेश्वर! यदि आप सन्तुष्ट हैं और मुझे वर देना चाहते हैं, तो पृथ्वीपर मेरे ही नामसे इस तीर्थकी प्रसिद्धि हो। महेश्वर! मेरी दूसरी प्रार्थना यह है कि आप अपनेको उस भृगुक्षेत्रमें अवतरित करें, यहाँ सदा ही आपकी स्थिति बनी रहे।

भगवान् शंकर बोले—विप्रवर! ऐसा ही हो। तुम्हारे ही नामसे इस क्षेत्रकी ख्याति होगी।

युधिष्ठिर! इस भृगुक्षेत्रमें आठ रुद्र बताये गये हैं—भृगु, शूली, वेद, चन्द्र, मुख, अट्टहास, काल तथा कराली। इन सबके कारण भृगुक्षेत्र बहुत ही मनोरम और धन्य-धन्य हो गया है। अयन, विषुव, संक्रान्ति, ग्रहण, व्यतीपात, दिनक्षय और गजच्छाया आदि योगोंमें इस तीर्थके भीतर जो स्नान, दान, होम, तर्पण और देवपूजन आदि सत्कर्म किये जाते हैं, वे सब अक्षय होते हैं। जो भृगुक्षेत्रमें स्नान करके वहाँ एक रात्रि निवास करता है, उसे जो पुण्य प्राप्त होता है, वह सैकड़ों यज्ञोंद्वारा भी उपलब्ध होनेवाला नहीं है। संयमी मनुष्य भृगुतीर्थकी प्रदक्षिणा करके तत्काल विशुद्ध होकर शिवलोकमें प्रतिष्ठित होता है। इस तीर्थके माहात्म्यसे मनुष्य सब पातकोंसे मुक्त हो जाता है।

प्राचीन कालमें मोहन नामसे प्रसिद्ध एक गन्धर्वराज था। वह ब्रह्माजीकी सभामें स्थित होकर सदा उनकी आराधनामें तत्पर रहता था। एक दिन महर्षि दुर्वासाको वहाँ उपस्थित देख उसने उनकी हँसी उड़ायी। यह देख मुनिने शाप दिया, 'अरे! तुझे अपने सुन्दर रूपका बड़ा अभिमान है, तू जा चित्रकुष्ठ (चितकबरी कोढ़)-से पीड़ित रह।' उस शापसे भयभीत होकर गन्धर्वराजने मुनिसे कहा—'विप्रवर! मुझ अज्ञानीपर प्रसन्न होकर आप अपने शापका अन्त कीजिये।'

दुर्वासा बोले—गन्धर्वराज! तू त्रिपुरीमें नर्मदाके तटपर जा। वहाँ समस्त भयोंका नाश करनेवाले साक्षात् भगवान् सूर्य निवास करते हैं। नर्मदाके उत्तर तटपर उनका स्थान भास्करतीर्थके नामसे प्रसिद्ध है। उसमें स्नान करनेसे तुमपर लगा हुआ शाप निवृत्त हो जायगा।

तब वह गन्धर्वराज दुर्वासामुनिको प्रणाम करके नर्मदातटपर गया। वहाँ विधिपूर्वक स्नान करके उसने भगवान् भास्करकी आराधना की। तीन राततक आराधना होनेपर चौथे दिन प्रातःकाल भगवान् सूर्यने कहा—'महाभाग! तुम कोई मनोवांछित वर माँगो।' गन्धर्वने कहा—'देवेश्वर! आपके प्रसादसे मेरा यह चित्रकुष्ठ निवृत्त हो जाय।' भगवान् सूर्य बोले—'एवमस्तु।' तदनन्तर वह शापसे मुक्त होकर अपने लोकको चला गया।

युधिष्ठिर! भास्करतीर्थमें पुत्रकी कामनासे सावित्री-देवीकी आराधना की जाती है। यहाँ स्नान करके सूर्यदेवका पूजन करनेसे मनुष्य पुत्रवान् एवं रोगमुक्त होता है। वहीं दक्षिणभागमें कोटीश्वर महादेव हैं। उनका विधिपूर्वक पूजन करनेसे मनुष्य कोटि लिंगोंकी पूजाका फल पा लेता है। जो स्वाधीन अथवा पराधीन होकर भी वहाँ प्राणोंका त्याग करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो शिवलोकमें प्रतिष्ठित होता है।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

सोमतीर्थ, ब्रह्मकुण्ड, ब्रह्मेश्वर लिंग, सिद्धेश्वर लिंग तथा संगमतीर्थकी महिमा

मार्कण्डेयजी कहते हैं—राजन्! कोटितीर्थके दक्षिण भागमें नर्मदाके तटपर ही सोमतीर्थ है, जो भगवान् सोम (चन्द्रमा)-द्वारा आराधित है। वहाँ स्नान करके मनुष्य स्वर्गलोकमें जाते हैं और जिनकी वहाँ मृत्यु होती है, वे फिर इस संसारमें जन्म नहीं लेते हैं। सोमदेवके दक्षिण भागमें शक्रेश्वर महादेव विराजमान हैं। पूर्वकालमें इन्द्रने वहाँ सम्पूर्ण कामनाओंकी सिद्धिके लिये भगवान् शिवकी आराधना की थी। वहीं ब्रह्मकुण्ड नामसे प्रसिद्ध एक दूसरा तीर्थ है जहाँ नर्मदा नदीकी धारा उत्तरकी ओर बहती है और जहाँ साक्षात् भगवान् विष्णु निवास करते हैं। महाराज! वहाँ स्नान करके मनुष्य विष्णुलोकमें जाता है। अमावास्या तथा व्यतिपात योगमें वहाँ तिल और जलकी अंजलि देने तथा श्राद्ध करनेसे पितरोंको अक्षय तृप्ति होती है। नृपश्रेष्ठ! जहाँ उत्तरवाहिनी नर्मदा, पश्चिमवाहिनी गंगा और पूर्ववाहिनी सरस्वती प्राप्त हों, उस क्षेत्रकी अवश्य यात्रा करो। ब्रह्मकुण्डके उत्तर भागमें सनातनदेव लक्ष्मीपति भगवान् मधुसूदन अम्बरीषके नामसे विख्यात हैं। राजन्! जो एकादशीको वहाँ स्नान करके भगवान्‌की पूजा करता है, वह सब पापोंसे मुक्त होता और भगवान् विष्णुके लोकमें जाता है। उसीके पश्चिम भागमें हंसतीर्थ है। वहाँ भी स्नान करके जो श्राद्ध और दान करता है, वह हंसतीर्थके प्रभावसे तिर्यग्योनि (पशु-पक्षियोंकी योनि)-में नहीं जन्म लेता। उसके पश्चिम भागमें महाकाल नामसे प्रसिद्ध शिवलिंग है, जिसकी विधिपूर्वक पूजा करके मनुष्य भगवान् शिवके लोकमें जाता है। वहीं मातृतीर्थ नामसे प्रसिद्ध जो पुण्यस्थान है, उसमें मातृकेश्वर लिंग प्रतिष्ठित है। वहाँ स्नान करनेसे अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त होता है। सप्तविंशोद्भवतीर्थमें स्नान करके पितरोंको जल और पिण्ड देनेसे मनुष्य समस्त मनोवांछित कामनाओंसे सम्पन्न होकर भगवान् शिवके लोकमें सम्मानित होता है। वहाँसे पश्चिम ब्रह्मेश्वर लिंग है, जिसकी आराधना साक्षात् ब्रह्माजीने की है। वह शीघ्र ही समस्त कामनाओंके अनुसार फल देनेवाला है। ब्रह्मेश्वरदेवके दर्शनसे मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। मंगल और चतुर्दशीको विधिपूर्वक उनकी पूजा करके शिवभक्तिमें तत्पर रहनेवाला मानव शिवलोकमें प्रतिष्ठित होता है। उससे पश्चिम भागमें सिद्धेश्वर नामक प्रसिद्ध शिवलिंग है। उसीके समीप सब पापोंका नाश करनेवाला सिद्धेश्वर तीर्थ है। वहाँ स्नान करनेसे स्वर्गलोककी प्राप्ति होती है और जो वहाँ मृत्युको प्राप्त होते हैं, उनका फिर संसारमें जन्म नहीं होता। पौषमासके शुक्ल पक्षकी अष्टमी तिथिको विधिपूर्वक उनकी पूजा करके मनुष्य स्वर्गलोकमें आदर पाता है।

उससे उत्तर भागमें विश्वविख्यात संगमतीर्थ है। वहाँ गंगा, यमुना और नर्मदाका नित्य संगम जानना चाहिये। महाराज! उसमें स्नान करनेवालेको अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त होता है। उस तीर्थमें पितरोंका श्राद्ध अवश्य करना चाहिये। वह उनकी प्रसन्नताको बढ़ानेवाला होता है।

राजाने पूछा—मुनिश्रेष्ठ! इस तीर्थमें गंगा और यमुना कैसे आयीं, यह प्रसंग विस्तारपूर्वक बतलाइये।

मार्कण्डेयजी बोले—राजन्! त्रिपुरीमें मतंग नामसे प्रसिद्ध एक धर्मपरायण राजर्षि रहते थे। वे भगवान् शिवके भक्त, महान् योगी और वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ थे। एक दिन तपस्वी मतंग मुनिके समीप उसी मार्गसे जाते हुए सप्तर्षिगण आये। उन्होंने उन ऋषियोंको नमस्कार करके अर्घ्य और पाद्य आदिके द्वारा उन सबकी पूजा की। जब वे सब लोग कुशासनपर विराजमान हो गये, तब मतंग मुनि विनयपूर्वक बोले—'महर्षियो! आज मैं धन्य हो गया; क्योंकि आज मेरे यहाँ श्राद्धके दिन आप-जैसे महात्मा ब्राह्मण पधारे हैं।'

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

महामुनि मतंगका यह वचन सुनकर वसिष्ठजी बोले—महर्षे! हमलोग तो गंगा-यमुनाके संगममें स्नान करके ही भोजन करेंगे। तब मतंगजीने हँसकर कहा—'अच्छा, आज यहीं गंगा-यमुनाके संगममें आपलोगोंका स्नान होगा।' ऐसा कहकर मुनिने ध्यानमें स्थित होकर गंगा-यमुनाका आवाहन किया। उनके आवाहनसे गंगा और यमुना दोनों नदियाँ तत्काल वहाँ चली आयीं। तब मतंगजीने कहा—'मुनिवरो! अब आपलोग गंगा-यमुनाके संगममें स्नान करें।' सप्तर्षि महात्मा मतंगका यह अद्भुत कर्म देखकर मन-ही-मन बड़े विस्मित हुए। तदनन्तर उन मुनीश्वरोंने विधिपूर्वक स्नान किया और मतंग मुनिका पितृ-यज्ञ सम्पन्न कराकर स्वर्गलोकको प्रस्थान किया। गंगा और यमुना दोनों ही नर्मदामें समा गयीं। इस प्रकार वहाँ सब पापोंका नाश करनेवाला श्रेष्ठ संगमतीर्थ प्रकट हुआ। जो मनुष्य सब धर्मोंसे सम्पन्न और शिवभक्तिमें तत्पर होकर सोमवती अमावास्याके दिन संगमतीर्थमें स्नान करता है, वह पहले और पीछेकी सात-सात पीढ़ियोंका उद्धार करके तत्काल विशुद्ध होकर स्वर्गलोकमें सम्मानित होता है। उसे सब पापोंसे छुटकारा मिल जाता है। जो क्रोध और इन्द्रियोंको जीतकर लगातार छः महीनेतक प्रतिदिन वहाँ स्नान और महेश्वरकी पूजा करता है, वह किसी कारणसे यदि कभी म्लेच्छदेशमें या जहाँ कहीं भी मृत्युको प्राप्त हो जाय, अन्तमें भगवान् शिवके समीप ही जाता है।

ध्रुवेश्वर, वाराह, चान्द्रायण, द्वादशादित्य तथा गांजालतीर्थकी महिमा, राजा हरिकेशकी शुद्धि

मार्कण्डेयजी कहते हैं—राजन्! जो मानव ध्रुवतीर्थमें स्नान करके ध्रुवेश्वर महादेवजीका भक्तिपूर्वक पूजन करता है, वह शुभ विद्याधरलोकमें एक लाख वर्षोंतक राजाके पदपर प्रतिष्ठित होता है। नर्मदातटपर एक नाक्षत्र नामक तीर्थ है, जहाँ सब पापोंका नाश करनेवाले ऋक्षेश्वर महादेव प्रतिष्ठित हैं। वहाँ सत्ताईस नक्षत्र सिद्धिको प्राप्त हुए हैं। उस तीर्थमें स्नान करके लोग स्वर्गमें जाते हैं और जिनकी वहाँ मृत्यु होती है, वे फिर जन्म न लेकर मुक्त हो जाते हैं।

तदनन्तर 'वाराह' नामसे विख्यात एक श्रेष्ठ तीर्थ है, जहाँ कल्याणदायिनी नर्मदा 'शूकरा' कहलाती हैं। वहाँ एकादशी तिथिको स्नान करके शास्त्रोक्त दानादि सत्कर्म करनेके पश्चात् जो विष्णुपरायण व्रती पुरुष द्वादशीको शुद्ध भावसे गन्ध, पुष्प, धूप, दीप और नैवेद्य आदिके द्वारा भगवान् वाराहकी पूजा करता है, वह भगवान् विष्णुके वैकुण्ठधाममें सदा आनन्द भोगता है। जो ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए क्रोधको जीतकर वैष्णवधर्ममें तत्पर हो भक्तिपूर्वक वैष्णव ब्राह्मणोंको भोजन कराता है तथा विष्णुधर्म लिखवाकर श्रोत्रिय ब्राह्मणोंको निवेदन करता है, उसे ब्रह्मा, विष्णु और शिव तीनों देवता वर देते हैं। विद्यादानसे बड़ा और कोई दान नहीं है। उसके प्रभावसे दाताको सब फल प्राप्त हो जाता है।

तदनन्तर चान्द्रायण नामक एक उत्तम तीर्थ है। पूर्णिमा तिथिको जब चन्द्रमाका रोहिणी नक्षत्रसे योग हो, तब उस महोत्सवकी वेलामें सब सिद्धियोंको देनेवाले भगवान् चन्द्रभूषणकी पूजा करके मानव स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है। जो परम धर्मात्मा पुत्र पूर्णिमा तथा सूर्यग्रहणके अवसरपर पितरोंके लिये तिल और जलकी अंजलि अथवा पिण्डदान देता है, उसके पापात्मा पितर भी तृप्त हो जाते हैं।

वहीं द्वादशादित्यतीर्थ है। वह उत्तरायण कालमें पुण्यकी वृद्धि करनेवाला है। राजन्! वहाँ संक्रान्तिकाल और विषुवयोगमें स्नान एवं सूर्यदेवका

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

पूजन करके मनुष्य सूर्यलोकमें सम्मानित होता है। उत्तर दिशामें शंकर नामक शिवलिंग बताया गया है। जो अमावास्यामें भगवान् शंकरका पूजन करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो ब्रह्मलोकमें प्रतिष्ठित होता है। उसके बाद विश्वविख्यात संगमतीर्थ है, जहाँ नर्मदाके साथ दत्तात्रेया नदी मिली हुई है। वह उत्तरकी ओरसे आकर मिलती है। देवता और दैत्य सभी दत्तात्रेया नदीको मस्तक झुकाते हैं। वहाँ संगममें स्नान, दान और भगवान् विष्णुका पूजन करके मनुष्य श्रीहरिके लोकमें जाते हैं। मेधातिथि, कर, स्कन्द, सावर्णि, कौशिक, मनु, काश्यप, गालव तथा तपोनिधि मैत्रेय—ये और दूसरे भी उत्तम व्रतका पालन करनेवाले बहुत-से महर्षि इस तीर्थके प्रभावसे उत्तम सिद्धिको प्राप्त हो चुके हैं।

चन्द्रवंशमें सत्यधर्मपरायण देवानीक नामसे प्रसिद्ध एक राजा हो गये हैं। उनके एक पुत्र हुआ, जिसका नाम हरिकेश रखा गया। वह समस्त शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न महान् बलवान् चक्रवर्ती राजा हुआ। महात्मा हरिकेशने अनेक यज्ञ किये। उनकी राजधानी कन्यापुरमें थी, जो कुबेरकी अलकाके समान शोभा पाती थी। कन्यापुरकी समस्त प्रजा दीर्घायु और धन-धान्यसे सम्पन्न थी। श्रीशैल नामक पर्वतपर त्रिपुराके समीप तुंगभद्रा नामवाली एक नदी है जो मल्लिकार्जुनके दर्शनसे पाताल-गंगा कही गयी है। उस पुण्यतीर्थमें प्रतापी हरिकेशने सूर्यग्रहणके समय एक लाख गौ और एक सहस्र स्वर्णमुद्राकी व्यवस्था की। फिर सूर्यग्रहणसे पाँच दिन पूर्व उन्होंने वेदोंके विद्वान् एवं बहुश्रुत ब्राह्मणोंको बुलवाया। वे ग्रहणके समय इन सब गौओंका दान करना चाहते थे। ग्रहणसे पूर्व उन्होंने आग्नेयी इष्टि प्रारम्भ कर दी। दैवयोगसे उनके आहवनीय अग्निमें अत्यन्त तेजस्वी रुद्र देवतासम्बन्धी मन्त्रोंद्वारा आहुति डाली गयी। उस समय पातालसे प्रलयकालके समान प्रज्वलित अग्नि प्रकट हुई, जिसने वहाँके दस हजार ब्रह्मचारियों और एक लाख गौओंको जलाकर भस्म कर दिया। वहाँका यज्ञमण्डप और नगर भी भस्मसात् हो गया। यह सब देखकर हरिकेशके मनमें बड़ा विषाद हुआ। वे अग्निमें समा जानेके लिये अपनी रानियों और समस्त मन्त्रियोंके साथ आसनसे उठकर खड़े हो गये। उस समय सब ओर बड़ा हाहाकार मचा। तब एक ब्राह्मणने कहा—'महाभाग! तुम श्रेष्ठ नगर कल्पग्राममें चले जाओ।'

राजा हरिकेश वहाँ जाकर मुनियोंकी आज्ञा पाकर तत्पश्चात् सोमयज्ञ करनेके लिये कुरुक्षेत्रको गये और वहाँ सरस्वती नदीकी शरण ली। वहाँ पहुँचकर उन्होंने शिव, विष्णु और सरस्वतीका स्तोत्र एवं जप किया। वे बोले—'मैं कुरुक्षेत्रको जाऊँगा और कुरुक्षेत्रमें ही निवास करूँगा। कुरुक्षेत्रका नाम लेनेसे भी मनुष्य पापमुक्त हो जाता है। सम्पूर्ण शब्दरूपी महौषधोंसे जिन्होंने समस्त जीवोंके कलंकको धो डाला है, जिनके तीर्थोंका मुनिगण सेवन करते हैं, वे सरस्वती-देवी मेरे पापोंका नाश करें।'

राजाका यह वचन सुनकर पापोंका अपहरण करनेवाली सरस्वतीने कहा—राजन्! विषाद छोड़ो और मेरा श्रेष्ठ वचन सुनो। तुम्हारे यज्ञमें दस हजार ब्रह्महत्या तथा एक लाख गो-हत्या हुई है। इतने महान् पापसे छुटकारा दिलानेमें इस चराचर जगत्के भीतर एकमात्र नर्मदा नदी ही समर्थ है। नर्मदा समस्त पापोंका नाश करनेवाली है। मैं सूर्यग्रहणके अवसरपर बारहवें या चौबीसवें वर्ष सदैव नर्मदाके कोटितीर्थमें स्नान करनेके लिये जाया करती थी। इससे मैं भी परम शुद्ध हो गयी हूँ। नृपश्रेष्ठ! नर्मदामें स्नान और शिवका पूजन करके एक श्रेष्ठ यज्ञ करो और उसमें बहुत-से सुवर्णकी दक्षिणा दो। उससे तुम्हारा उद्धार हो जायगा। जो ब्राह्मण और गौएँ वहाँ मृत्युको प्राप्त हुई हैं, उनकी हड्डियोंको ले जाकर नर्मदाजीके जलमें बहा दो। उस जलका स्पर्श होनेसे उन सबको देवलोककी प्राप्ति हो जायगी और नर्मदाके

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

जल एवं तिलकी अंजलि देनेसे उन सबकी उत्तम मुक्ति हो जायगी।

सरस्वतीका यह वचन सुनकर राजाने उनको प्रणाम किया और रानियों तथा परिवारके साथ प्रसन्नतापूर्वक कन्यापुरमें लौट आये। वहाँ जाकर राजाने सेवकोंको आज्ञा दी कि 'तुम सब लोग सब आवश्यक सामान एकत्र करके यज्ञकी सामग्री भी साथ लेकर नर्मदा नदीके तटपर चलो।' यह आदेश पाकर सेवकोंने अन्य सामानोंके साथ-साथ उचित रीतिसे उन ब्राह्मणों और गौओंका अस्थिभस्म भी वहाँ पहुँचा दिया। तदनन्तर वह अस्थिभस्म आदि नर्मदाके जलमें मन्त्रोच्चारणपूर्वक बहा दिया गया और उत्तम विधिसे पूजन करके हाथ जोड़े हुए राजाने देवताओं और ब्राह्मणोंको तृप्त किया। उस स्थानपर एक स्रोत प्रकट होकर नर्मदाके जलमें जा मिला। वह नर्मदासंगम 'गांजाल' के नामसे प्रसिद्ध हुआ। जहाँ गांजाल है, वहीं एक सिद्ध लिंग भी है। जो ब्राह्मण और गौ उस प्रलयाग्निद्वारा दग्ध हुए थे, वे दिव्य विमानपर आरूढ़ हो आशीर्वाद देते हुए हरिकेशकी प्रशंसा करने लगे—'महाभाग! तुम्हारे प्रसादसे हम सब लोग दिव्यलोकमें देवभावको प्राप्त हो गये।' ऐसा कहकर वे सभी विष्णुधाममें चले गये।

राजाओंमें श्रेष्ठ हरिकेश भी अत्यन्त प्रसन्नताके साथ लोकपावनी नर्मदादेवीको नमस्कार करके एकाग्रचित्त हो उनकी स्तुति करने लगे—सरिताओंमें श्रेष्ठ नर्मदे! आपको नमस्कार है। आपके जलमें जहाँ कहीं भी स्नान करके मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है, इस घोर संसार-सागरमें फिर उसका जन्म नहीं होता। कोई भी बलवान् सहस्रों जन्मोंमें भी आपके वेगको रोक नहीं सकता। आपने सम्पूर्ण चराचर विश्वको अपने जलसे व्याप्त कर रखा है। महादेवि! आपके ही प्रसादसे मनुष्यकी इस भवसागरसे मुक्ति होती है।

राजाका यह स्तोत्र सुनकर नर्मदादेवीने उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन दिया और इस प्रकार कहा—महाभाग! तुम अपनी इच्छाके अनुसार वर माँगो। हरिकेशने कहा—'देवि! आप मुझे पवित्र कर दें। आपके जलमें स्नान, अवगाहन, पान तथा आपके नामका स्मरण एवं कीर्तन करनेसे तत्काल ही सात जन्मोंके किये हुए पाप नष्ट हो जायँ।' नर्मदा बोलीं—'नृपश्रेष्ठ! 'एवमस्तु'।' ऐसा कहकर नर्मदा देवी वहीं अन्तर्धान हो गयीं।

तदनन्तर चक्रवर्ती राजा हरिकेशने साष्टांग प्रणाम करके इच्छानुसार चलनेवाले रथपर आरूढ़ हो अपने नगरमें प्रवेश किया। वहाँ अन्तःपुर एवं परिवारके साथ उन्होंने प्रचुर भोगोंका उपभोग किया और अन्तकाल आनेपर वे देवलोकको प्राप्त हुए।

नर्मदा और मत्स्याके संगमका माहात्म्य, महर्षि आपस्तम्बके द्वारा गौओंकी महत्ताका प्रतिपादन तथा तीर्थके प्रभावसे निषादोंका मछलियोंसहित उद्धार

मार्कण्डेयजी कहते हैं—राजन्! पूर्वकालमें आपस्तम्ब नामसे प्रसिद्ध एक महर्षि हो गये हैं, जो ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ एवं उपवासव्रतमें तत्पर रहनेवाले थे। उन्होंने काम, क्रोध, लोभ और मोहको सदाके लिये त्यागकर नर्मदा और मत्स्याके संगमके जलमें प्रवेश किया था। जलके भवँरमें बैठे हुए महातपस्वी आपस्तम्बको मल्लाहोंने मछलियोंसहित जाल उठाते समय जलके बाहर खींच लिया। उन्हें इस दशामें देखकर वे निषाद भयसे व्याकुल हो उठे और मुनिके चरणोंमें प्रणाम करके इस प्रकार बोले—'ब्रह्मन्! हमने अनजानमें बड़े भारी अपराध कर डाले हैं, आप उन्हें क्षमा करें। इसके सिवा इस समय आपका प्रिय कार्य क्या है, उसके लिये आज्ञा दें।'

मुनिने देखा कि इन मल्लाहोंद्वारा यहाँकी मछलियोंका बड़ा भारी संहार हो रहा है। यह

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

देखकर उनका हृदय करुणासे भर आया। वे दु:खी होकर बोले—'भेददृष्टि रखनेवाले जीवोंके द्वारा दु:खमें डाले हुए प्राणियोंकी ओर जो अपने सुखकी इच्छासे ध्यान नहीं देता, उससे बढ़कर क्रूर इस संसारमें दूसरा कौन है। अहो, स्वस्थ प्राणियोंके प्रति यह निर्दयतापूर्ण अत्याचार तथा स्वार्थके लिये उनका व्यर्थ बलिदान—कैसे आश्चर्यकी बात है? ज्ञानियोंमें भी जो केवल अपने ही हितमें तत्पर है, वह श्रेष्ठ नहीं है; क्योंकि यदि ज्ञानी पुरुष भी अपने स्वार्थका आश्रय लेकर ध्यानमें स्थित होते हैं तो इस जगत्के दु:खातुर प्राणी किसकी शरणमें जायँगे। जो मनुष्य स्वयं अकेला ही सुख भोगना चाहता है, उसे मुमुक्षु पुरुष पापीसे भी महापापी बताते हैं। मेरे लिये वह कौन-सा उपाय है, जिससे मैं दु:खित चित्तवाले सम्पूर्ण जीवोंके भीतर प्रवेश करके अकेला ही सबके दु:खोंको भोगता रहूँ। मेरे पास जो कुछ भी पुण्य है, वह सभी दीन-दु:खियोंके पास चला जाय और उन्होंने जो कुछ पाप किया हो, वह सब मेरे पास आ जाय। इन दरिद्र, विकलांग तथा रोगी प्राणियोंको देखकर जिसके हृदयमें दया नहीं उत्पन्न होती, वह मेरे विचारसे मनुष्य नहीं, राक्षस है। जो समर्थ होकर भी प्राण-संकटमें पड़े हुए भयविह्वल प्राणियोंकी रक्षा नहीं करता, वह उसके पापको भोगता है। अत: मैं इन दीन-दु:खी मछलियोंको दु:खसे मुक्त करनेका कार्य छोड़कर मुक्तिको भी वरण करना नहीं चाहता, फिर स्वर्गलोककी तो बात ही क्या है?'

मुनिका यह वचन सुनकर मल्लाहलोग बहुत घबराये। उन्होंने महाराज नाभागके पास जाकर सब बातें यथार्थरूपसे बतलायीं। नाभाग भी वह वृत्तान्त सुनकर अपने मन्त्रियों तथा पुरोहितोंके साथ मुनिका दर्शन करनेके लिये तुरंत ही वहाँ आये। राजाने उन देवकल्प महर्षिका भलीभाँति पूजन करके कहा—'भगवन्! आज्ञा दीजिये, मैं आपकी कौन-सी सेवा करूँ?'

आपस्तम्ब बोले—राजन्! ये मल्लाह बड़े दु:खसे जीविका निर्वाह करते हैं। इन्होंने मुझे जलसे बाहर निकालकर बड़ा भारी परिश्रम किया है। अत: तुम मेरा जो उचित मूल्य समझो, वह इन्हें दे दो।

नाभाग बोले—भगवन्! मैं इन निषादोंको आपके बदलेमें एक लाख स्वर्णमुद्रा देता हूँ।

आपस्तम्बने कहा—राजन्! मेरा मूल्य एक लाख ही नियत करना उचित नहीं है। मेरे योग्य जो मूल्य हो, वह इन्हें अर्पण करो। इस सम्बन्धमें अपने मन्त्रियोंके साथ विचार कर लो।

नाभाग बोले—द्विजश्रेष्ठ! यदि पूर्वोक्त मूल्य उचित नहीं है तो इन निषादोंको एक करोड़ दे दिया जाय और यदि यह भी आपके योग्य न हो तो आज्ञा होनेपर और अधिक भी दिया जा सकता है।

आपस्तम्ब बोले—राजन्! मैं एक करोड़ या इससे अधिक मूल्यके योग्य नहीं हूँ। मेरे योग्य मूल्य चुकाओ। ब्राह्मणोंसे सलाह ले लो।

राजाने कहा—यदि ऐसी बात है तो मेरा आधा या पूरा राज्य इन निषादोंको दे दिया जाय। मेरे मतमें यह मूल्य आपके योग्य होगा। किंतु आप किस मूल्यको पर्याप्त मानते हैं, यह स्वयं बतानेकी कृपा करें।

आपस्तम्ब बोले—राजन्! तुम्हारा आधा या पूरा राज्य भी मेरे लिये उचित मूल्य नहीं है। मूल्य वह दो, जो मेरे योग्य हो। (समझमें न आता हो तो) ऋषियोंके साथ विचार कर लो।

महर्षिका यह वचन सुनकर मन्त्रियों और पुरोहितोंके साथ विचार-विमर्श करते हुए धर्मात्मा राजा नाभाग बड़ी चिन्तामें पड़ गये। इसी समय महातपस्वी लोमश ऋषि वहाँ आ गये। उन्होंने नाभागसे कहा—'राजन्! भय न करो। मैं मुनिको सन्तुष्ट कर लूँगा।'

राजा बोले—महाभाग! आप ही इनका मूल्य बता दें। अन्यथा ये महर्षि क्रोधमें आकर मेरे कुटुम्ब, कुल, बन्धु-बान्धव तथा समस्त चराचर त्रिलोकीको भस्म कर सकते हैं, फिर मुझ-जैसे

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

अत्यन्त तुच्छ, दीन एवं विषयी मनुष्यकी तो बात ही क्या है?

लोमशने कहा—महाराज! तुम उनका मूल्य देनेमें समर्थ हो। श्रेष्ठ द्विज जगत्के लिये पूजनीय हैं और गौएँ भी दिव्य एवं पूजनीय मानी गयी हैं। अतः तुम उनके लिये मूल्यके रूपमें 'गौ' ही दो।

लोमशजीका यह वचन सुनकर राजा नाभाग मन्त्री और पुरोहितोंके साथ बहुत प्रसन्न हुए और हर्षमें भरकर बोले—भगवन्! उठिये-उठिये। मुनिश्रेष्ठ! यह आपके लिये योग्यतम मूल्य प्रस्तुत कर दिया गया है।

आपस्तम्बने कहा—अब मैं प्रसन्नतापूर्वक उठता हूँ। राजन्! तुमने उचित मूल्य देकर मुझे खरीदा है। मैं गौओंसे बढ़कर दूसरा मूल्य कोई ऐसा नहीं देखता जो परम पवित्र एवं पापोंका नाश करनेवाला हो। गौओंकी परिक्रमा करनी चाहिये। वे सदा सबके लिये वन्दनीय हैं। गौएँ मंगलका स्थान हैं, दिव्य हैं। स्वयं ब्रह्माजीने इन्हें दिव्य गुणोंसे विभूषित बनाया है। जिनके गोबरसे ब्राह्मणोंके घर और देवताओंके मन्दिर भी शुद्ध होते हैं, उन गौओंसे बढ़कर अन्य किसको बतावें। गौओंके मूत्र, गोबर, दूध, दही और घी—ये पाँचों वस्तुएँ पवित्र हैं और सम्पूर्ण जगत्को पवित्र करती हैं। गायें मेरे आगे रहें, गायें मेरे पीछे रहें, गायें मेरे हृदयमें रहें और मैं गौओंके मध्यमें निवास करूँ।*

जो प्रतिदिन तीनों सन्ध्याओंके समय नियमपरायण एवं पवित्र होकर '**गावो मे चाग्रतो नित्यम्**' इत्यादि श्लोकका पाठ करता है। वह सब पापोंसे मुक्त होता और स्वर्गलोकमें जाता है। प्रतिदिन भक्तिभावसे गौओंको गोग्रास देनेमें श्रद्धा रखनी चाहिये। जो प्रतिदिन गोग्रास अर्पण करता है, उसने अग्निहोत्र कर लिया, पितरोंको तृप्त कर दिया और देवताओंकी पूजा भी सम्पन्न कर ली। गोग्रास देते समय प्रतिदिन इस मन्त्रार्थका चिन्तन करे। सुरभिकी पुत्री गोजाति सम्पूर्ण जगत्के लिये पूज्य है, वह सदा विष्णुपदमें स्थित है और सर्वदेवमयी है। मेरे दिये हुए इस ग्रासको गौमाता देखें और ग्रहण करें।†

ब्राह्मणोंकी रक्षा करने, गौओंको खुजलाने और सहलाने तथा दीन-दुर्बल-दुःखी प्राणियोंका पालन करनेसे मनुष्य स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है। यज्ञका आदि, अन्त और मध्य गौओंको ही बताया गया है। वे दूध, घी और अमृत सब कुछ देती हैं। इसलिये गौओंका दान करना चाहिये और उनकी प्रतिदिन पूजा करनी चाहिये। ये गौएँ स्वर्गलोकमें जानेके लिये सीढ़ी बनायी गयी हैं।

गौओंके इस उत्तम माहात्म्यको सुनकर निषादोंने महाभाग आपस्तम्बजीको प्रणाम करके कहा—प्रभो! हमने सुना है कि साधुपुरुषोंके सम्भाषण, दर्शन, स्पर्श, श्रवण और कीर्तन सभी पवित्र करनेवाले हैं। हमने यहाँ आप-जैसे महात्माके साथ वार्तालाप किया और आपका दर्शन भी कर लिया। अब हम आपकी शरणमें आये हैं, आप हमारे ऊपर अनुग्रह कीजिये।

आपस्तम्बजी बोले—इस गौको तुमलोग ग्रहण करो। इससे तुम सब लोग पापमुक्त हो जाओगे।

---

* गावः प्रदक्षिणी कार्या वन्दनीया हि नित्यशः। मङ्गलायतनं दिव्याः सृष्टास्त्वेताः स्वयम्भुवा॥
अप्यागाराणि विप्राणां देवतायतनानि च। यद्गोमयेन शुद्ध्यन्ति किं ब्रूमो ह्यधिकं ततः॥
गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिस्तथैव च। गवां पञ्च पवित्राणि पुनन्ति सकलं जगत्॥
गावो मे चाग्रतो नित्यं गावः पृष्ठत एव च। गावो मे हृदये चैव गवां मध्ये वसाम्यहम्॥
(स्क० पु०, आव० रे० १३। ६२—६५)

† तेनाग्नयो हुताः सम्यक् पितरश्चापि तर्पिताः। देवाश्च पूजितास्तेन यो ददाति गवाह्निकम्॥
गोग्रास-समर्पणमन्त्रः—
सौरभेयी जगत्पूज्या नित्यं विष्णुपदे स्थिता। सर्वदेवमयी ग्रासं मया दत्तं प्रतीक्षताम्॥
(स्क० पु०, आव० रे० १३। ६८-६९)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

निषाद निन्दित कर्मसे युक्त होनेपर भी प्राणियोंके मनमें प्रीति उत्पन्न करके इन जलचारी मत्स्योंके साथ स्वर्गलोकमें जायँ। मैं नरकको देखूँ या स्वर्गमें निवास करूँ, किंतु मेरे द्वारा मन, वाणी, शरीर और क्रियासे जो कुछ भी पुण्यकर्म बना हो, उससे ये सभी दुःखार्त प्राणी शुभ गतिको प्राप्त हों।

तदनन्तर शुद्धचित्तवाले महर्षि आपस्तम्बकी सत्यवाणीके प्रभावसे वे सभी मल्लाह मछलियोंके साथ स्वर्गलोकमें चले गये। मछलियोंसहित उन मत्स्यजीवी निषादोंको स्वर्गमें गया हुआ देख मन्त्रियों और सेवकोंके साथ राजा नाभागको बड़ा विस्मय हुआ। वे इस प्रकार बोले—'कल्याणकी इच्छा रखनेवाले पुरुषोंको सदा संतों एवं पवित्र जलवाले तीर्थोंका सेवन करना चाहिये। इस जगत्‌में एक क्षणके लिये भी उनका संग किया जाय तो वह कभी निष्फल नहीं होता। अतः साधु-महात्माओंके पास बैठे और उन्हींके साथ उत्तम कथा वार्ता करे।'

तदनन्तर आपस्तम्ब मुनि एवं महातपस्वी लोमशने नाना प्रकारके उत्तम पद सुनाकर राजाको बोध प्राप्त कराया। तब राजाने परम दुर्लभ धर्ममयी बुद्धि धारण की। तत्पश्चात् वे दोनों महर्षि राजा नाभागकी प्रशंसा करते हुए बोले—'अहो! राजेन्द्र! तुम धन्य हो, क्योंकि तुम्हारी बुद्धि धर्ममें तत्पर हुई है। मनुष्योंके लिये धर्म परम दुर्लभ है, विशेषतः राजाओंके लिये तो वह और भी दुर्लभ है। यदि राजा राज्यमदसे उन्मत्त होकर स्वधर्मका परित्याग न करे तो उससे बढ़कर दूसरा कौन हो सकता है? धर्म ही ध्रुव है—वह सदा अटल रहनेवाला है। राज्य तो मोहरूप अथवा मोहका आश्रय है। वह स्थिर रहनेवाला नहीं। परंतु राज्यविषयक मोह होनेपर नरककी प्राप्ति अत्यन्त ध्रुव है। अतः विद्वान् पुरुष राज्यकी निन्दा करते हैं। विषयलोलुप अविवेकी मनुष्य ही राज्यको मान्यता देते हैं। मनीषी पुरुष तो उसे सदा नरकके तुल्य देखते हैं। अतः महाराज! यदि तुम अपने लिये सनातन गति चाहते हो तो तुम्हें अपने मनमें शोक, मोह और मदको कभी स्थान नहीं देना चाहिये।'

मार्कण्डेयजी कहते हैं—राजन्! ऐसा कहकर वे दोनों महात्मा आपस्तम्ब और लोमश अपने-अपने आश्रमको चले गये। राजा नाभागने भी वरदान पाकर प्रसन्नतापूर्वक अपने नगरमें प्रवेश किया। महाराज! इस तीर्थमें स्नान करके मत्स्येश्वरकी पूजा करो। इसी तीर्थके प्रभावसे महाभाग आपस्तम्ब और मत्स्यजीवी निषाद मछलियोंके साथ दिव्य-लोकको प्राप्त हुए। वे सब आज भी दिव्य कान्ति धारण करके वैष्णवधाममें विहार करते हैं।

कलहंसेश्वर तीर्थका प्रादुर्भाव और उसका माहात्म्य

मार्कण्डेयजी कहते हैं—राजन्! अब मैं पापोंका नाश करनेवाले दूसरे तीर्थका माहात्म्य बताऊँगा। नर्मदाके तटपर कलहंस नामसे विख्यात एक देवर्षि ध्यान लगाया करते थे। उनके मनोहर आश्रममें बहुत-से ब्रह्मर्षि निवास करते थे। वे शाक और मूल-फल खाकर जप और ध्यानमें तत्पर रहते थे। युधिष्ठिर! समस्त प्राणियोंके हितमें संलग्न रहनेवाले कलहंसजी भगवान् शिवके ध्यानमें स्थित हो पंद्रह हजार वर्षोंतक एक पैरसे खड़े रहे। उनकी तपस्या और ध्याननिष्ठासे इन्द्रको बड़ा भय हुआ और वे कुबड़े तथा नाटे ब्राह्मणका रूप धारण करके कलहंसके आश्रमपर गये। वहाँ पहुँचकर उन वृद्ध ब्राह्मणने पूछा—'तपोधन! आप किस उद्देश्यसे तपस्या करते हैं?'

कलहंसने हँसते हुए कहा—महाभाग! मैं आपको जानता हूँ। आप देवताओंके स्वामी इन्द्र हैं। मैं इन्द्रपद नहीं चाहता। आप इच्छानुसार राज्य कीजिये। मैं महादेवजीकी आराधना करता हूँ और किसी देवताकी नहीं।

महर्षिका यह वचन सुनकर इन्द्र बोले—महाभाग! आप मुझसे वर माँगिये, जिससे आपको शंकरजीका दर्शन होगा।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

कलहंसने कहा—देवराज! मैं भगवान् शंकरको छोड़कर और किसी देवतासे वरदानकी याचना नहीं करूँगा।

उनके ऐसा कहनेपर इन्द्र सम्पूर्ण कामनाओंसे सम्पन्न हो लौट गये। कलहंसकी पराभक्तिको जानकर देवाधिदेव महेश्वरने उन्हें अपने नीलकण्ठ त्रिलोचन स्वरूपका प्रत्यक्ष दर्शन कराया। महादेवजीका वह स्वरूप देखकर मुनिश्रेष्ठ कलहंसने साष्टांग प्रणाम किया और इस प्रकार उनकी स्तुति की—'महादेव! आपको नमस्कार है। नीलकण्ठ! त्रिलोचन! आपको नमस्कार है। आप कल्याणस्वरूप और परम शान्त हैं, आपको नमस्कार है। हाथमें त्रिशूल धारण करनेवाले महादेव! आपको नमस्कार है। सबको जन्म देनेवाले भगवान् शिवको नमस्कार है। जिनका दूसरा कोई स्वामी नहीं है, उन महेश्वरको बार-बार नमस्कार है। महादेव इत्यादि नामोंसे जिनकी स्तुतिकी जाती है, उन भगवान् त्रिलोचनको नमस्कार है। ॐ कल्याणकी प्राप्ति करानेवाले देवता शिवको नमस्कार है। भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, चन्द्रमा, रुद्र, अन्धकार और प्रकाशमय सूर्य जिनके स्वरूप हैं, जो भयंकर प्रलयंकर अग्नि हैं, उन भगवान् महेश्वरको नमस्कार है। पंचमुख शम्भो! आपको नमस्कार है। महाशिव! आपको नमस्कार है। ब्रह्माजीका लोक, वन और पाताल जिनका स्वरूप है तथा जिनके कण्ठमें नील चिह्न शोभा पा रहा है, उन भगवान् शिवको नमस्कार है। ब्रह्म, शर्व, सुरेशान, हरि तथा हर आदि नामोंसे जिनके ही स्वरूपका बोध होता है, उन भगवान् शिवको बारंबार नमस्कार है। ज्ञानशक्ति, क्रियाशक्ति और चराचर जगत्स्वरूप आपको नमस्कार है। प्रभो! आप ही पातालनिवासी हाटकेश्वर अथवा स्वर्णरूप हैं, आपको नमस्कार है। उमानाथ! आपको नमस्कार है। ब्रह्मा, विष्णु, महादेव एवं सर्वज्ञ परमात्मा आप ही हैं, आपको नमस्कार है, नमस्कार है। आप ही सद्योजात, अघोर एवं तत्पुरुष कहलाते हैं, आपको बार-बार नमस्कार है। आपके द्वारा यह सम्पूर्ण चराचर त्रिलोकी व्याप्त है। आप आदि, मध्य तथा अन्तस्वरूप हैं। कलि और कालस्वरूप! आपको नमस्कार है। श्रीकण्ठ! नागेन्द्रभूषण! आपका आधा शरीर उमास्वरूप और आधा उमावल्लभरूप है, आपको नमस्कार है। आपके गुण तथा रूप अनन्त हैं। आप सर्पोंका यज्ञोपवीत धारण करते हैं, आपको नमस्कार है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, बुद्धि, मन और अहंकार—ये आठ तत्त्व आपकी आठ मूर्तियाँ हैं। अष्टमूर्ते! आपको नमस्कार है। आप ही सूर्य, अर्यमा, भग, त्वष्टा, पूषा, अर्क, सविता, रवि, गभस्तिमान्, काल, मृत्यु और प्रकाश करनेवाले धाता—ये बारह आदित्यरूप हैं। पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश भी आप ही हैं। चन्द्रमा, बृहस्पति, शुक्र, बुध और मंगल भी आपके ही स्वरूप हैं। इन्द्र, विवस्वान्, दीप्तांशु (सूर्य), शुचि (अग्नि), शौर्य (विष्णु) तथा जनेश्वर (राजा) भी आप ही हैं। विष्णु और ब्रह्मा आदि देवता आप की ही कला हैं। चारों वेद, कुबेर, यमराज भी आपके ही स्वरूप हैं। कला, काष्ठा, मुहूर्त, पक्ष, मास, ऋतु और संवत्सर आदि कालचक्र भी आप ही हैं। विभावसु (अग्नि), पुरुष (अन्तर्यामी), शाश्वत योग, व्यक्त, अव्यक्त, सनातन, परमेश्वर, लोकाध्यक्ष, सुराध्यक्ष, विश्वकर्मा, अन्धकारनिवारक, जलके अधिष्ठाता वरुण, शीतराशि, मेघ, जीवनरूप जल, शत्रुनाशक, भूत, यज्ञ और भूतनाथ भी आप ही हैं। समस्त लोकपाल आपकी सेवा करते हैं। आप ही मनु, सुपर्ण (बुद्धि) तथा भूतादि (अहंकार) हैं। सदाशिव! आपको नमस्कार है। प्रभो! मैंने स्तुतिके बहाने अपनी जिह्वाकी चपलताका परिचय देकर आपको कष्ट ही पहुँचाया। ब्रह्मा, विष्णु आदि देवताओंको भी जिनका अन्त नहीं मिलता, उन्हीं आप शिवकी स्तुति संसार-समुद्रमें डूबे हुए प्राणियोंमेंसे कोई भी प्राणी कैसे कर सकता है। शूलपाणे! मैंने अज्ञान अथवा ज्ञानसे जो कुछ भी अनुचित बात कह दी है, उसके लिये क्षमा करें।'

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

मार्कण्डेयजी कहते हैं—युधिष्ठिर! कलहंसद्वारा की हुई इस स्तुतिको सुनकर महादेवजी बोले—'महामते! मैं तुम्हारे इस स्तोत्रसे बहुत प्रसन्न हूँ। तुम कोई वर माँगो।'

कलहंसने कहा—देव! इस स्थानपर कलहंसेश्वर नामक तीर्थ एवं शिवलिंग प्रकट हो और यहाँ किये हुए होम-दान आदि सत्कर्म अक्षय बने रहें। जो मनुष्य स्वाधीन या पराधीन होकर यहाँ मृत्युको प्राप्त हो, वह आपकी आज्ञासे स्वर्गलोकमें जाय। कल्याणकारी महादेव! जो इस स्तोत्रके द्वारा आपकी स्तुति करें, वे बड़े-से-बड़े पापी क्यों न हों, इस तीर्थके प्रभावसे सभी शिवलोकको चले जायँ।

महादेवजी बोले—मुने! इस चराचर त्रिलोकीमें जो जिस-जिस वस्तुकी कामना करेगा, उसे इस तीर्थमें वह सब कुछ निःसन्देह प्राप्त होगी।

ऐसा कहकर भगवान् शिव कैलासपर्वतपर चले गये। तदनन्तर जितेन्द्रिय मुनि कलहंस भी ब्रह्मनिष्ठ मुनियोंके साथ भगवान् शिवके धाममें जाकर दिव्य भोगोंका उपभोग करने लगे। युधिष्ठिर! यह मैंने जिन कलहंसका यश तुम्हें सुनाया है, वे स्वारोचिष मन्वन्तरके आदि कल्पमें हुए थे। कलहंसके इस उपाख्यानका श्रवण और कीर्तन करनेसे कलियुगमें मनुष्य कष्ट नहीं पाते। वे पुत्र और स्त्रियोंसे संयुक्त होते हैं और पाप, माया तथा मोहसे उनका पिण्ड छूट जाता है; क्योंकि इस उपाख्यानके द्वारा वे मन, वाणी और क्रियासे महादेवजीका चिन्तन और स्मरण करते हैं।

नर्मदापुरका माहात्म्य, जमदग्निको कामधेनुकी प्राप्ति, कार्तवीर्यद्वारा मुनिका वध और धेनुका अपहरण तथा परशुरामद्वारा कार्तवीर्यका वध

मार्कण्डेयजी कहते हैं—राजेन्द्र! नर्मदाके उत्तर तटपर कपिलासंगमके बाद वैदूर्यके पश्चिम भागमें नर्मदापुर नामक स्थान विख्यात है। वहाँ बहुत-से देवर्षि, ब्रह्मर्षि, राजर्षि, तपस्वी तथा व्यवसायी लोग भी निवास करते थे। नर्मदापुरके निवासियोंमेंसे एक जमदग्नि नामक मुनि भी थे, जो सदा शिवभक्तिमें तत्पर रहते थे। वे प्रतिदिन नर्मदासंगममें स्नान करके नाना प्रकारके गन्ध-पुष्प तथा अगुरु आदि मनोहर उपचारोंद्वारा भगवान् महेश्वरकी पूजा करते और दक्षिणामूर्तिकी शरण लेकर शिवमन्त्रके जपमें संलग्न रहते थे। एक मासतक इस प्रकार जपमें लगे हुए मुनिको सिद्धेश्वर लिंगस्वरूप देवदेव महेश्वरने प्रत्यक्ष दर्शन देकर कहा—'ब्रह्मन्! मैं तुम्हारी भक्ति तथा रुद्र-जपसे सन्तुष्ट हूँ।'

जमदग्नि बोले—परमेश्वर! मुझे होम और यज्ञ-क्रियाके लिये कामधेनु प्रदान कीजिये। क्योंकि धर्म-कर्म और शुभ अनुष्ठानके लिये, शिवपूजा और तर्पणके लिये तथा देवकार्य और पितृकार्यकी सिद्धिके लिये गौओंको ही अत्यन्त पवित्र माना गया है।

महादेवजीने कहा—महाभाग! तुम्हें समस्त कामनाओंकी सिद्धिके लिये यह कामधेनु दी जा रही है।

ऐसा कहकर महादेवजी वहीं अन्तर्धान हो गये। जमदग्निमुनि जिन-जिन कामनाओंके लिये कामधेनुसे याचना करते, वे सब उन्हें प्राप्त हो जाती थीं। अब वे सोनेके पात्रमें भाँति-भाँतिके मनोवांछित भोज्य-पदार्थ परोसकर सहस्रों ऋषियोंको प्रतिदिन इच्छानुसार भोजन कराने लगे। माननीय ब्रह्मर्षि और देवतालोग भी मुनिवर जमदग्निके आश्रमपर आकर उनकी कीर्ति बढ़ाने लगे।

इस प्रकार कुछ समय व्यतीत होनेपर एक दिन राजा कार्तवीर्य अपनी माहिष्मतीपुरी छोड़कर

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

शिकार खेलनेके लिये विन्ध्यपर्वतपर आया और नर्मदाके तटपर उसने अपना पड़ाव डाल दिया। शिकार खेलते-खेलते वह जमदग्निके आश्रमपर गया और इस प्रकार बोला—'मुने! यह गौ तुम्हारे योग्य नहीं है। इसे मुझे दे दो।' कार्तवीर्यकी यह बात सुनकर मुनिवर जमदग्नि बहुत देरतक सोच-विचारमें पड़े रहे। उन्हें कुछ भी उत्तर न देते देख राजाने मुनिको मरवा दिया और स्वयं उनकी कामधेनुको बलपूर्वक हरकर ले जाने लगा। जब वह आश्रमसे बाहर निकला तब उस होमधेनुपर कोड़ोंकी मार पड़ने लगी। बार-बार ताड़ित होनेपर गौने शाप देते हुए कहा—'अरे ओ नृपाधम! रेणुकानन्दन परशुराम तेरे समस्त कुलका संहार कर डालेंगे।' इस प्रकार शाप देकर कामधेनु पुनः स्वर्गको चली गयी। उस समय लोगोंमें महान् हाहाकार मच गया। सब कहने लगे—'यह कौन दुराचारी आ गया, जिसने ब्राह्मणोंके कोपको बढ़ाया है।' तदनन्तर महावीर परशुरामने पिताके मारे जानेका समाचार सुना। सुनते ही वे प्रज्वलित अग्निकी भाँति क्रोधसे जल उठे और सहसा आश्रमपर आये। पिताको मारा गया देख क्रोधसे उनका पराक्रम दूना हो गया। वे सहसा उठकर माहिष्मतीपुरीकी ओर चल दिये। वहाँ कार्तवीर्य अर्जुनको देखकर परशुरामने क्रोधपूर्वक कहा—'अरे ओ नराधम! खड़ा रह। मेरे पिताकी हत्या करके अब तू कहाँ जा सकता है?' ऐसा कहकर उन्होंने अपनी कुल्हाड़ी हाथमें ली और कार्तवीर्यकी भुजारूपी वनको उसके मस्तकसहित काट डाला। उस समय मुनिवर परशुराम क्षत्रियजातिके लिये प्रलयंकर बन गये थे। महापराक्रमी दुरात्मा कार्तवीर्यके मारे जानेपर देवताओंकी दुन्दुभियाँ बज उठीं और आकाशसे फूलोंकी वर्षा होने लगी। उसीके प्रति क्रोध होनेसे परशुरामजीने समूची पृथ्वीको क्षत्रियोंसे रहित कर दिया और इस प्रकार अपनी प्रतिज्ञा पूरी करके वे पिताके आश्रमपर लौट आये। माता तथा अन्यान्य मुनीश्वरोंको नमस्कार करके उन्होंने विधिपूर्वक परशुरामेश्वर महादेवकी स्थापना की। उसके समीप ही विशोका, एरण्डिका और पावनी नामवाली तीन शिलाएँ हैं। उन्हींपर परशुरामजीने पिताकी मरणोत्तरकालीन श्राद्ध आदि क्रियाएँ सम्पन्न कीं। उस स्थानपर एक कपिल वर्णकी शिला है, जो देवद्रोणीके नामसे विख्यात है। वहाँ पिण्डदान करनेसे पितर स्वर्गमें जाते हैं। राजन्! इस प्रकार मैंने तुम्हें नर्मदापुरका माहात्म्य बतलाया है। इसके श्रवण और कीर्तनसे देवलोकमें देवत्वकी प्राप्ति होती है।

~~~०~~~

शिवनेत्र कुण्ड तथा जनकतीर्थका माहात्म्य

मार्कण्डेयजी कहते हैं—राजन्! जहाँ बृहती और नर्मदाका संगम हुआ है, वहाँ एक निषाद प्रतिदिन भगवान् त्रिलोचनका पूजन करता था। एक दिन व्यतिपात और संक्रान्तिका योग आनेपर उसने फूल लेकर शिवमन्दिरमें प्रवेश किया। वहाँ जाकर उसने देखा कि भगवान्का तीसरा नेत्र ही नहीं है। उसके चित्तमें बड़ा विस्मय हुआ और वह सोचने लगा, किस पापात्माने भगवान्के नेत्रका अपहरण किया है। ऐसा कहकर उसने तीखे बाणसे अपना नेत्र उखाड़ लिया और उसे ही देवदेव महादेवके ललाटमें लगा दिया। ऐसा करते समय उसके मनमें तनिक भी भय, कम्पन और दीनता नहीं आने पायी। उसके हृदयका भाव भी नहीं बदला। इससे देवेश्वर महादेवजी उस निषादके ऊपर बहुत प्रसन्न हुए और हँसकर बोले—'वत्स! तू मनोवांछित वरदान माँग ले।' भगवान् शिवके प्रसादसे उसकी बुद्धि और प्रकारकी (निर्मल) हो गयी और वह उन्हें साष्टांग प्रणाम करके बोला—'देवेश्वर! ये सभी निषाद अपने मृग, पक्षी,

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth
~~~

पशु, अपने पुत्र और स्त्री आदि परिवारके साथ आपके प्रसादसे आपके ही लोकमें जायँ तथा अन्य जितने पापयोनि हों, उनकी भी ऐसी ही गति हो।'

महादेवजी बोले—मेरे प्रसादसे तुम सब कामनाओंको प्राप्त करोगे।

ऐसा कहकर भगवान् शिव वहीं अन्तर्धान हो गये। तदनन्तर सेवकोंसहित वह निषाद इस तीर्थके प्रभावसे शिवजीके धाममें चला गया। राजन्! यह तुमको शिवनेत्र कुण्डका माहात्म्य बताया गया है। सैकड़ों पापयोनि मनुष्य नर्मदा और शिवके संयोगरूप उस तीर्थमें परम सिद्धिको प्राप्त हो गये हैं। जो वहाँ स्वतन्त्र या परतन्त्र होकर प्राण त्याग करता है, वह सहस्त्रों वर्षोंतक उमा-महेश्वरके धाममें निवास करता है। इस प्रसंगको सुनने और कहनेसे भी मनुष्य भव-बन्धनसे मुक्त हो जाता है।

नर्मदाके उत्तर तटपर एक परम उत्तम तीर्थ है, जो सब सिद्धियोंको देनेवाला है। उसे जनकतीर्थ कहते हैं। स्वारोचिष मन्वन्तर आनेपर त्रेतायुगमें राजा जनक अपने उपरोहित ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ ब्रह्मर्षि याज्ञवल्क्यको साथ लेकर अनेक मुनिवृन्दोंसे सेवित कश्यपजीके पवित्र आश्रमपर गये। उनके साथ यज्ञ करानेवाले ऋत्विज तथा यज्ञका सामान भी था। तदनन्तर वहाँ यज्ञोंमें उत्तम लक्षमेध यज्ञ आरम्भ हुआ। इन्द्र आदि श्रेष्ठ देवताओंने स्वयं आकर यज्ञभाग ग्रहण किया। तत्पश्चात् यज्ञ पूरा हुआ। राजा नर्मदामें यज्ञान्तस्नान करके पुत्र और पत्नीके साथ सुशोभित हुए। फिर शिव और विष्णुका पूजन करके उनके वरदानके प्रभावसे वे दिव्य विमानपर आरूढ़ हो दिव्य लोकमें जाते हुए देखे गये। मार्गमें उन्हें देखकर धर्मराज उठकर खड़े हो गये और अर्घ्य, पाद्य आदि लेकर पैदल ही उनके विमानके आगे आये। निकट आनेपर उन्होंने हाथ जोड़कर कहा—'महाराज! आपने तपस्या, ध्यानयोग, दान और देवपूजन आदिके द्वारा शिव और नर्मदाजीके प्रसादसे सम्पूर्ण दिव्य लोकोंपर विजय पायी है।' यह सुनकर राजा जनकने यशस्वी धर्मराजसे कहा—'प्रभो! सर्वत्र अपनी प्रभा फैलानेवाले भगवान् सूर्य जिस प्रकार जीवोंके आराध्य देव हैं, वैसे ही आपकी भी मूर्ति है। ब्रह्मा, विष्णु और शिव—ये जीवोंके समस्त कर्मोंके साक्षी हैं।'

इस प्रकार जनक और धर्मराजमें धर्माधर्म-विचारपूर्वक संवाद चल रहा था, इतनेमें ही देवराज इन्द्र, देवर्षि नारद, पर्वत तथा अन्य श्रेष्ठ मुनि राजा जनकका आगमन सुनकर धर्मराजके नगरमें आये। धर्मराजने उन सबका यथायोग्य पृथक्-पृथक् पूजन किया और वे सब लोग यथायोग्य आसनपर बैठे। तदनन्तर नारदजीने पूछा—'धर्मराज! पृथ्वीपर कौन-से देश, पर्वत, पवित्र नदियाँ, आश्रम और तीर्थ ऐसे हैं, जहाँ किये हुए मनुष्योंके दान, होम, जप, तप आदि कभी क्षीण नहीं होते। यह सब यथार्थरूपसे बताइये।'

धर्म बोले—मुने! नर्मदाके उत्तर तटपर लक्षमेध नामक तीर्थ है और वहीं लक्षमेधेश्वर नामक एक शिवलिंग भी है, जो परम पवित्र है। भगवान् शिवसे बढ़कर कोई देवता नहीं है। नर्मदासे बड़ी कोई नदी नहीं है। सत्यसे बढ़कर दूसरा कोई धर्म नहीं है और सब प्राणियोंपर दया करना—यह सबके लिये परम धर्म है।* जो मनुष्य शिवजीके चिन्तनमें तत्पर हो नर्मदा नदीके तटपर निवास करता है, उसपर यमराजका शासन नहीं चलता और वह कभी यमलोकका दर्शन नहीं करता। ब्रह्मा, विष्णु और शिव ही उसके स्वामी होते हैं।

धर्मराजके कहे हुए इस धर्माख्यानको सुनकर नारद आदि महर्षि बड़े प्रसन्न हुए।

~~~0~~~

* न शंकरात्परो देवो न रेवायाः परा नदी। न सत्यादपरो धर्मः कारुण्यं सर्वजन्तुषु॥ (स्क० पु०, आव० रे० १८। ३६)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth
~~~

सप्तसारस्वततीर्थकी उत्पत्ति, शाण्डिल्या और नर्मदाके संगमकी महिमा तथा नर्मदा-कुब्जाके संगमपर रन्तिदेवका यज्ञ

मार्कण्डेयजी कहते हैं—युधिष्ठिर! सप्तसारस्वत नामसे प्रसिद्ध एक गन्धर्व था जो भगवान् शिवके सुयशका गान किया करता था। वह गाने-बजानेकी विद्यामें बड़ा निपुण था, परंतु कुछ कालके बाद उसे मदिरा पीनेकी लत पड़ गयी और वह उसीमें अचेत रहा करता था। कामपीड़ित एवं काममोहित होकर उसने भगवान् शंकरकी उपासना त्याग दी और वह भक्ष्य-भोज्यके सेवनमें ही आसक्त रहने लगा। इस प्रकार कुछ काल व्यतीत होनेपर गन्धर्व उमापति महादेवजीका दर्शन करनेके लिये कैलास पर्वतपर गया। उसे शिव-भक्तिसे विमुख हुआ देख नन्दीने शाप दिया—'अरे! तू अपने पापके प्रभावसे चाण्डाल-योनिमें जन्म ले।' तब गन्धर्वने कहा—'महाभाग! मुझे मिले हुए इस शापका अन्त कब होगा, इसका निश्चय भी आपको कर देना चाहिये।'

नन्दी बोले—व्यतिपात योग आनेपर जब नर्मदा नदीमें स्नान करके महेश्वरका पूजन करोगे, तब शापका अन्त होगा और तुम पुनः यहाँ आ सकोगे।

यह सुनकर वह गन्धर्व वहाँसे चला गया और चाण्डालयोनिमें उत्पन्न हुआ। उस योनिमें भी उसे अपने पूर्वजन्मका स्मरण बना रहा और वह तीर्थयात्राके प्रसंगसे पर्वत, वन और काननोंसहित सम्पूर्ण पृथ्वीपर विचरण करने लगा। दैवयोगसे नर्मदाके तटपर आया। वहाँ उसने शंकरस्थण्डिल (शिववेदी)-में जाकर भाँति-भाँतिके पुष्प आदि उपचारोंसे भगवान् शिवका पूजन किया। गन्धर्वकी भक्ति जानकर भगवान् शिव उसके सामने प्रत्यक्ष प्रकट हुए। उसी स्थण्डिल (वेदी)-से जलमें परम पावन शिवलिंगके रूपमें उनका प्रादुर्भाव हुआ।

महादेवजी बोले—महाभाग! तुम्हारे मनमें जो इच्छा हो, उसके अनुसार वर माँगो।

गन्धर्वने कहा—महेश्वर! आपके प्रसादसे भूमण्डलमें यह स्थान मेरे नामपर सप्तसारस्वततीर्थके रूपमें विख्यात हो और यह शिवलिंग भी सारस्वत लिंग कहलाये। जो पापी, चाण्डाल एवं नराधम पशु-पक्षियोंकी योनिमें पड़े हों, वे भी इस तीर्थके प्रभावसे पापमुक्त हो स्वर्गलोकमें चले जायँ।

'एवमस्तु' कहकर भगवान् महेश्वर अन्तर्धान हो गये तथा वह गन्धर्व भी शापमुक्त हो शिवलोकको प्राप्त हुआ। जो मनुष्य सप्तसारस्वततीर्थमें स्नान करके भगवान् वृषभध्वजकी पूजा करता है, वह अपनी इक्कीस पीढ़ियोंका उद्धार करके स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है। जो वहाँ स्नान करते हैं, वे स्वर्गमें जाते हैं और जिनकी वहाँ मृत्यु हो जाती है, वे पुनर्जन्मसे मुक्त होते हैं।

शाण्डिल्या और नर्मदाका संगम सब पापोंको हरनेवाला और श्रेष्ठ तीर्थ है। वहीं शाण्डिल्येश्वर लिंग भी है। उस तीर्थमें स्नान करके महादेवजीकी पूजा करनेसे मनुष्य फिर कभी कर्मभूमिमें जन्म नहीं लेता। वहाँ तिल और जलकी अंजलि देने तथा हविष्यका पिण्डदान करनेसे पितर चौदह इन्द्रोंके समयतक तृप्त रहते हैं। उस तीर्थमें शाण्डिल्य, कौण्डिन्य, भाण्डव्य, कौशिक, कश्यप और भृगु—ये तथा अन्य भी बहुत-से महर्षिगण जप और ध्यानमें तत्पर रहते हैं। वहाँ साठ हजार मुनियोंने उग्र तपस्याका अनुष्ठान किया है। शाण्डिल्या और नर्मदाके संगममें शाण्डिल्यजीका आश्रम बहुत मनोहर है। लोकमें वह शाण्डिल्यपुरके नामसे प्रसिद्ध है। अनेक ब्रह्मर्षि वहाँ निवास करते हैं। नर्मदाके दक्षिण तटपर द्वादशादित्यतीर्थ, देवदारुतीर्थ और देववनतीर्थ हैं। द्वादशादित्यतीर्थ सब पापोंका नाश करनेवाला है, वहीं ज्ञानस्वरूप सिद्धलिंगमय महादेवजी स्थित हैं। उसी तीर्थमें कनकाको मोक्ष देनेवाला कल्याणमय कनकेश्वरलिंग

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

है। वहीं ज्वरेश्वरलिंग है, जहाँ ज्वरका अभाव है। उसके पास ही पंचब्रह्मेश्वरलिंग है, जो सब पापोंसे मुक्त करनेवाला है। पंचब्रह्मेश्वर, पुष्पेश्वर तथा स्थण्डिलेश्वर—ये तीन लिंग वहाँ प्रधान हैं। नित्य-नैमित्तिक कार्यमें, चन्द्रग्रहण और सूर्यग्रहणके समय श्रद्धापूर्वक संगममें स्नान करके तीनों लिंगोंका पूजन करनेसे पितर स्वर्गलोकमें जाते हैं। नर्मदाके दक्षिण भागमें गोप्य लिंग है। उसके पूजनसे ब्रह्महत्या आदि पाप सात रातमें नष्ट हो जाते हैं।

राजन्! पितर, पितामह तथा मातामह आदि सभी आपसमें यह गाथा गाते रहते हैं कि 'क्या हमारे कुलमें भी कोई ऐसा परम धार्मिक पुत्र उत्पन्न होगा जो हमें नर्मदाके जलसे पूजित तिलयुक्त हविष्यका पिण्ड देगा, जिससे कि लाखों वर्षोंतक तृप्त रहकर हम परम गतिको प्राप्त होंगे?'

नर्मदा और कुब्जाके संगममें स्नान करनेके लिये सोमवती अमावास्या प्रसिद्ध पर्व है। एरण्डी और चण्डवेगाका जहाँ नर्मदा नदीसे संगम हुआ है, वहाँ स्नान करनेके लिये सोमवती अमावास्या, व्यतिपात, संक्रान्ति, वैधृतियोग, विषुवयोग, दक्षिणायन और उत्तरायणके प्रारम्भिक दिन—ये पर्व उत्तम माने गये हैं। अमावास्याको स्नान करनेसे बीस गुना पुण्य होता है, व्यतिपात योगमें सौगुना, संक्रान्तिकाल तथा वैधृतियोगमें पचासगुना और सोमवती अमावास्या एवं चन्द्रग्रहणके समय कुरुक्षेत्रसे सौगुना पुण्य होता है। यह साक्षात् महादेवजीका कथन है। वहाँ बिल्वाम्रक नामसे प्रसिद्ध एक सिद्धलिंग है, जो ब्रह्महत्याका नाश करनेवाला है। उसके दर्शन और स्पर्शसे मनुष्य शिवलोकमें प्रतिष्ठित होता है। जो सोमवती अमावास्याके दिन वहाँ प्राण-त्याग करता है, वह महादेवजीके कल्याणमय धाममें निवास करता है।

राजन्! अयोध्याके चक्रवर्ती नरेश श्रीमान् रन्तिदेव इन्द्रके तुल्य महापराक्रमी राजा थे। वे समस्त धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ माने जाते थे। उनके राज्यमें मनुष्योंको शोक, मात्सर्य, रोग और दारिद्र्यका दुःख नहीं होता था। सब प्रजा दीर्घायु तथा धन-धान्यसे सम्पन्न थी, गौएँ स्वयं ही इच्छाके अनुसार दूध देती थीं और पृथ्वी सदा हरी-भरी खेतीसे सुशोभित रहती थी। इस प्रकार पृथ्वीका पालन करते हुए राजा रन्तिदेवने अपने पुरोहित मुनिवर वसिष्ठजीसे पूछा—'महामुने! किस तीर्थमें निर्विघ्नतापूर्वक यज्ञकी सिद्धि होती है?'

मुनिवर वसिष्ठने कहा—राजन्! पुराणमें सब तीर्थोंसे बढ़कर उत्तम तीर्थ उसीको बताया गया है, जहाँ नर्मदा नदी बहती हैं।

तब राजाने सेवक, मन्त्री और पुरोहितको आज्ञा देते हुए कहा—यज्ञका सामान शीघ्र ही तैयार किया जाय। तत्पश्चात् दूतोंको भिन्न-भिन्न देशोंमें शीघ्र जानेकी आज्ञा देते हुए कहा—'समस्त राष्ट्रमें यह घोषणा करा दी जाय कि 'सब राजा मेरे यज्ञमें पधारें।' रन्तिदेवकी आज्ञासे सभी सामन्त नरेश उस यज्ञमें सम्मिलित होनेके लिये आये। महाराज रन्तिदेव भी अपनी रानी और यज्ञसामग्रियोंके साथ दिव्य रथपर आरूढ़ हो नर्मदाके तटपर गये। वहाँ यज्ञमण्डप, यज्ञकुण्ड और यज्ञके यूप सभी सुवर्णमय बनाये गये थे। नाना प्रकारके भक्ष्य-भोज्य पदार्थ और पकवान तैयार किये गये थे। महाराजने अपनी धर्मपत्नीके साथ यज्ञकी दीक्षा ली। तदनन्तर नर्मदाके सुन्दर तटपर उनका यज्ञ प्रारम्भ हुआ। उसमें धूमरहित अग्निदेव प्रत्यक्ष प्रकट होकर प्रज्वलित हो रहे थे। ब्रह्मा और इन्द्र आदि देवता, लोकपाल, मरुद्गण, विश्वेदेव, साध्य, वसु, चन्द्रमा, सूर्य, नदियाँ, समुद्र, पर्वत, सब तीर्थ, मातृगण, सिद्ध, गन्धर्व, यक्ष, नाग, राक्षस, उमासहित शिव तथा देवेश्वर विष्णु—इन सबके लिये राजाने पृथक्-पृथक् यज्ञभाग दिये।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

कुब्जा और नर्मदाके संगमकी महिमा, हरिकेश ब्राह्मणका परिवारसहित ब्रह्मराक्षसयोनिसे उद्धार

मार्कण्डेयजी कहते हैं—शालग्रामक्षेत्रमें हरिकेश नामसे विख्यात एक श्रेष्ठ ब्राह्मण रहते थे। वे शिल और उञ्छवृत्तिसे* जीवन-निर्वाह करते थे। बड़े ही धर्मात्मा और सत्यपरायण थे। उनकी धर्मपत्नी ब्राह्मणी भी उत्तम व्रतका पालन करनेवाली, यशस्विनी, पतिव्रता, परम सौभाग्यवती और पतिसेवामें संलग्न रहनेवाली थी। वह स्त्री समयपर रजस्वला हुई और ब्राह्मणने ऋतुकालमें उसके साथ सहवास किया। ब्राह्मणीके गर्भसे सौ पुत्र उत्पन्न हुए। वे सभी कपिलापुरमें रहते थे। ब्राह्मणदेवता शिलोञ्छवृत्तिके प्रयोगसे एक प्रस्थ अन्न प्रतिदिन उपार्जन करते थे। इससे उनके बच्चे भूखसे दुर्बल होकर बड़े करुण स्वरमें रोते रहते थे। बालकोंको भूखा देख माता शोक और पीड़ासे व्याकुल रहती थी। एक दिन वह अत्यन्त दुःखसे कातर हो पतिसे बोली, 'आर्यपुत्र! बूढ़े माता-पिता, साध्वी पत्नी और छोटी अवस्थावाले बालक—इन सबका प्रयत्नपूर्वक भरण-पोषण करना चाहिये, यही सनातन धर्म है। यों तो सभी पोष्यवर्गका भरण-पोषण आवश्यक है, परंतु पुत्रोंके पालन-पोषणपर तो विशेष ध्यान देना चाहिये।'

युधिष्ठिर! ब्राह्मणीका यह वचन सुनकर हरिकेशजी शोकसे विह्वल हो उठे और इस प्रकार बोले—'देवि! मैं गाँव-गाँवमें भीख माँगकर सबके लिये पृथक्-पृथक् बाँटकर उत्तम अन्न देता ही हूँ। दूसरी कोई वृत्ति करता नहीं, फिर अधिक अन्न मैं कहाँसे लाऊँ?।'

ब्राह्मणी बोली—यदि बालक और वृद्ध भूखसे पीड़ित हों, तो बालहत्याके समान पाप लगता है। अतः दान ग्रहण करके भी अपने बालकोंका पालन-पोषण करना चाहिये। कहते हैं, कुरुक्षेत्रमें अयोध्यानरेश महाराज अम्बरीषका कोई महान् यज्ञ हो रहा है। वहाँ दान लेनेके लिये बहुत-से शालग्राम-निवासी ब्राह्मण गये थे। वहाँसे गौएँ, सुवर्ण और धन पाकर वे सब लोग लौटे हैं। जहाँ सब शालग्रामनिवासी ब्राह्मण गये थे, वहाँ आप भी जाइये।

तब पुत्रोंके भरण-पोषणकी इच्छासे हरिकेशजी भी ब्राह्मणी और बालकोंको साथ ले राजा अम्बरीषके महायज्ञमें गये और जहाँ ऋत्विग् लोग बैठे थे, वहाँ उन्होंने यज्ञमण्डपमें प्रवेश किया। महाराज अम्बरीषने उन श्रेष्ठ ब्राह्मणको देखकर मस्तक झुकाया और अर्घ्य-पाद्यके द्वारा उन सबका पूजन किया। तत्पश्चात् उन्होंने पूछा—'विप्रवर! आप पत्नी और पुत्रोंके साथ यहाँ किसलिये आये हैं? आपने आतिथ्यके समय यहाँ पदार्पण किया है। अतः जो उचित एवं आवश्यक वस्तु हो उसे माँगिये।'

ब्राह्मणने कहा—राजन्! आप मेरे एक-एक पुत्रको सौ-सौ वर्षोंकी जीविकाके लिये पर्याप्त धन दीजिये। साथ ही यज्ञ और होमके लिये उत्तम धेनु तथा सुवर्णके भारसे विभूषित दस हजार गौएँ प्रदान कीजिये। इसके अतिरिक्त एक करोड़ स्वर्णमुद्राएँ तथा उत्तम-उत्तम वस्त्र और आभूषण अर्पण कीजिये।

ब्राह्मणकी यह बात सुनकर महाराज अम्बरीषने बड़ी श्रद्धाके साथ वह सब कुछ उन्हें समर्पित किया और अपनी सवारियोंसे उन्हें शालग्राम स्थानतक पहुँचा दिया। इस प्रकार उस महान् यज्ञको परिपूर्ण करके वे राजर्षि दीर्घकालतक देवताओंकी भाँति आनन्द भोगते रहे। इधर हरिकेश ब्राह्मण अपनी पत्नी और पुत्रोंके साथ अनेक

* 'उञ्छः कणश आदानं कणिशाद्यर्जनं शिलम्' इस कोष-वाक्यके अनुसार बाजार या खलिहानका अन्न उठ जानेपर वहाँ बिखरे हुए एक-एक दानेको चुनना 'उञ्छ' कहलाता है और खेत कट जानेपर वहाँ गिरी हुई धान या गेहूँकी मंजरी (बाल) बीनना 'शिल' कहा गया है।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

प्रकारके भोग भोगकर कालान्तरमें मृत्युको प्राप्त हुए। मरनेके पश्चात् उन्हें निर्जल मरुप्रदेशमें ब्रह्मराक्षस होना पड़ा। राजाका प्रतिग्रह दोषयुक्त होता है। उसे लेनेसे फिर मानव-जन्म दुर्लभ हो जाता है। जो द्रव्यके लोभसे मोहित और विषयलोलुप होकर राजाका दान ग्रहण करता है, उसका रौरव-नरकमें गिरना अवश्यम्भावी है।

वह ब्रह्मराक्षस अपनी स्त्री और पुत्रोंके साथ कुरुक्षेत्रको गया और बारह वर्षोंतक भूखा रहकर इस चिन्तामें पड़ा कि 'क्या करूँ, मेरा यह शरीर किसी प्रकार छूट नहीं पाता। अब मैं अपने पापकी शुद्धिके लिये अग्निमें प्रवेश करूँगा।' तब उत्तम व्रतका पालन करनेवाली उसकी पुत्रवती पत्नीने अपने ब्रह्मराक्षस पतिसे कहा—'प्रभो! ब्राह्मणका यह सब धर्म अग्निसे ही सिद्ध होता है। अतः लकड़ी इकट्ठी करके आप उसमें आग जला दीजिये और मैं सौभाग्यवती रहकर पहले स्वयं ही अग्निमें प्रवेश करूँगी। अपनेसे पहले पतिको भयंकर आगमें गिरते नहीं देख सकूँगी।'

उसके ऐसा निश्चय करनेपर आकाशवाणीने उससे कहा—'शुभे! तुम्हें मृत्युका भय नहीं है, कुब्जा और नर्मदाके संगममें स्नान करनेसे ब्रह्मराक्षसयोनि छूट जाती है। उसमें स्नान करके बिल्वाम्रकेश्वरकी पूजासे मनुष्य स्वर्गलोकमें जाता है, ब्रह्मराक्षसयोनिसे मुक्त होता है और ब्रह्मलोकको प्राप्त होता है।' ऐसा कहकर आकाशवाणी मौन हो गयी। तब हरिकेशने अपनी स्त्री और पुत्रोंके साथ वहाँ जाकर महादेवजीको प्रणाम किया और कुब्जा एवं नर्मदाके संगममें विधिपूर्वक स्नान करके महादेवजीका पूजन किया। तत्पश्चात् वे सब-के-सब काम और क्रोधसे रहित हो भगवान् विष्णु और शिवका स्मरण करते हुए अपने घरकी भाँति प्रज्वलित अग्निमें बिना क्लेशके ही प्रवेश कर गये। फिर तो उन्हें तत्क्षण दिव्य देहकी प्राप्ति हुई और वे ब्रह्मतेजोमय शरीर धारण करके दिव्य विमानपर बैठकर ब्रह्मलोकको चले गये।

उस पवित्र संगममें एक सौ आठ शिवलिंग हैं।

माहेश्वरतीर्थकी महिमा, राजा सालंकायनका यज्ञ

मार्कण्डेयजी कहते हैं—राजन्! माहेश्वरपुरमें बहुत-से तीर्थ हैं, वहाँसे रौद्रवारुणतीर्थतक जो एक कोसकी भूमि है, उसके भीतरका स्थान शिवक्षेत्र कहा गया है। जो वहाँ मृत्युको प्राप्त होता है, वह शिवलोकमें आनन्दका भागी होता है। वहाँ पितरोंको तिल और जलकी अंजलि देनेसे माता और पिता दोनों कुलोंके पितर महाप्रलय-कालतक तृप्त रहते हैं। प्राचीन कालमें ब्रह्माजीके द्वारा वहाँ असंख्य उत्तम यज्ञ किये गये हैं। इन्द्रने भी वहीं यज्ञानुष्ठान करके देवराज-पदको प्राप्त किया है। कार्तवीर्य अर्जुनने भी वहीं पूर्वकालमें सौ यज्ञ किये थे। राजन्! पहलेकी बात है। अयोध्यापुरीमें सूर्यवंशी राजा वैवस्वत मनु, जो साक्षात् भगवान् सूर्यके ही पुत्र थे, चक्रवर्ती नरेशके पदपर प्रतिष्ठित थे। वे सदा यज्ञ और दानमें तत्पर रहते थे। उनके शासनकालमें उत्तम पुरी अयोध्याके भीतर मृत्यु, रोग और वृद्धावस्थाका कष्ट किसीको भी नहीं होता था। तदनन्तर उन्हींके वंशमें परम धर्मात्मा राजर्षि सालंकायन हुए, जिनके राज्यकालमें समूची पृथ्वी सस्य-श्यामला एवं धन-धान्यसे सम्पन्न थी। गौएँ स्वयं ही इच्छानुसार दूध देती थीं। एक समय अयोध्याके राज्यमें बारह वर्षोंतक वर्षा नहीं हुई। सम्पूर्ण देशवासी मनुष्य और पशु मरने लगे। घास, फूस, तृण, लता, बेलें तथा चार प्रकारके जीवसमुदाय भी नष्टप्राय हो गये। उस समय देवता, असुर तथा मनुष्योंमें बड़ा भारी हाहाकार मचा। युधिष्ठिर! अपने देशपर आयी हुई इस आपत्तिको देखकर राजर्षि सालंकायनको बड़ी चिन्ता हुई। उन्होंने सोचा 'जन्मसे लेकर अबतक मेरे द्वारा कोई पाप

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

नहीं हुआ, मैं सदा संसार-सागरसे पार उतारनेवाले भगवान् श्रीहरिका पूजन करता हूँ। ब्राह्मण और ऋषि-मुनियोंको भी मैंने इच्छानुसार तृप्त किया है, तो भी मेरे राष्ट्रमें यह विपत्ति क्यों आयी।'

इस प्रकार विचार करते हुए राजाने बृहस्पतिके समान बुद्धिमान् ब्रह्मवादी वसिष्ठ मुनिको भक्तिभावसे साष्टांग प्रणाम करके पूछा—ब्रह्मन्! यह बारह वर्षोंकी अनावृष्टि क्यों हुई है?

वसिष्ठजी बोले—महाबाहो! जनसमुदायमें महर्षियोंके वचन सुनकर उसीके अनुसार कोई उपाय करना चाहिये।

तब राजाने जनसभामें आसनपर बैठे हुए महर्षियोंके पास जाकर अनावृष्टिका कारण पूछा। उनके पूछनेपर महर्षिलोग इस प्रकार बोले—'राजन्! भूत और भविष्य-कालके तत्त्वको जाननेवाले गुरु एवं महात्मा मार्कण्डेय मुनिके आश्रमपर जाकर ब्राह्मणोंके साथ इस प्रश्नपर विचार करो। वे मुनि जो-जो धर्म बतावें, वह-वह तुम्हें पालन करना चाहिये।'

तदनन्तर राजा सालंकायन ब्राह्मणोंके साथ दिव्य रथपर आरूढ़ हो नर्मदाके तटपर गये और वहाँ मुनियोंके साथ बैठे हुए मुझ मार्कण्डेयको प्रणाम करके बैठ गये। तब मैंने उनसे कुशल-मंगल पूछा।

राजा बोले—ब्रह्मन्! आज आपके चरणारविन्दोंका दर्शन करनेसे मैं सकुशल हूँ। परंतु मेरे राष्ट्रका भविष्य क्या होगा, यह चिन्ता मुझे सदा पीड़ित किये रहती है।

मैंने कहा—प्रजाके कुमार्गगामी होनेसे, देवताओं और ब्राह्मणोंको कष्ट पहुँचानेसे तथा वर्णाश्रमधर्मका लोप करनेसे जो महान् अधर्म होता है, वह धर्मको हानि पहुँचाता है। अतः इस संकटसे मुक्ति पानेके लिये तुम नर्मदाके तटपर आकर रुद्रयज्ञ करो और महादेवजीकी विधिपूर्वक आराधना करो। इससे वर्तमान उपद्रवकी शान्ति होगी, बादल इच्छाके अनुसार वर्षा करेंगे और पुनः सृष्टिका सारा कार्य पूर्ववत् चलने लगेगा। तुम भी पापदोषसे छूट जाओगे तथा राज्य और स्वर्ग पाओगे।

मुनिका यह वचन सुनकर राजाने मुनियोंसहित मुझे नमस्कार किया और कहा—महामुने! आपने कृपापूर्वक जो कुछ बताया है उसे मैं अपने ऊपर आपका बहुत बड़ा अनुग्रह मानता हूँ। यह कहकर राजाने अयोध्यापुरीको सन्देश भेजकर अपनी रानियों और राजकुमारोंको यज्ञसामग्रीके साथ वहीं बुलवाया। उनके बुलानेपर महाराजकी एक हजार आठ रानियाँ, राजकुमार तथा घरका काम-काज करनेवाले अन्य सब लोग भी यज्ञसामग्रीसहित वहाँ उपस्थित हुए। तब राजा सालंकायन मुझे प्रणाम करके इस प्रकार बोले—'मुने! आज्ञा दीजिये कहाँ यज्ञ आरम्भ किया जाय?'

मैंने कहा—वैदूर्यपर्वतके पश्चिम भागमें यज्ञयूप और यज्ञमण्डप निर्माण कराओ तथा यज्ञकी अन्य सब सामग्रियोंका भी वहीं संग्रह कराओ।

तब राजाने यज्ञके लिये वसिष्ठ, वामदेव आदि बहुत-से ऋषियोंका वरण किया। यज्ञमण्डपमें सोनेके बड़े-बड़े खंभे लगाये गये, जिनसे वहाँ बड़ी शोभा हो रही थी। कुण्ड, वेदी और स्रुवा आदि सब सुवर्णमय थे। नाना प्रकारके भक्ष्य-भोज्य पदार्थ तथा भाँति-भाँतिके रस तैयार किये गये थे। वेदपाठी ब्राह्मणोंद्वारा देवताओंका आवाहन और पूजन किया गया। होमकुण्डमें अग्निका आधान हुआ। धूमरहित अग्नि प्रज्वलित हो उठी। वेदमन्त्रोंके उच्चारणसे आकाश गूँज उठा। आहुतियाँ दी जाने लगीं। इस प्रकार विधिपूर्वक यज्ञ पूर्ण होनेपर जब सब लोग अवभृथ-स्नानके लिये नर्मदामें गये तब उसका जल सूखा दिखायी दिया। यह देख राजाको बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने मुनिवर दुर्वासाजीसे पूछा—'यह क्या हुआ? वर्षा भी कहीं नहीं हुई और नर्मदाका जो पुराना जल था वह भी सूख गया। इसका क्या कारण है?'

राजाका प्रश्न सुनकर दुर्वासा बोले—राजन्! जल तो सभी लोकोंको अभीष्ट है। तप, होम और वेदमन्त्र ब्राह्मणोंके अधीन हैं और यज्ञरक्षा

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

एवं दक्षिणा यजमानके अधीन। सो सब कुछ विधिवत् सम्पन्न हुआ है। नर्मदा जलरहित हो गयी और मेघ अभीतक पानी नहीं बरसाते। इससे हताश होनेकी आवश्यकता नहीं है। जो चली गयी है, उस नर्मदा नदीके आनेकी बाट देखो।

तब राजाने नर्मदाकी स्तुति प्रारम्भ की— सुरेश्वरि! तुम्हें नमस्कार है। शंकरात्मजे! तुम्हें नमस्कार है। इडा, पिंगला, उमा, गंगा, सरस्वती, वेदमाता गायत्री, सावित्री, सरस्वती, ब्राह्मी, वैष्णवी और गौरी सब कुछ तुम्हीं हो। तुम्हीं परम यशस्विनी लोकमाता लक्ष्मी हो। पृथ्वीपर जितने भी तीर्थ बताये गये हैं, वे सब तुमसे व्याप्त हैं। समस्त चराचर जगत् तुम्हारे जलसे व्याप्त है। जगत्में ऐसा कोई स्थान नहीं दिखायी देता जो तुम्हारे जलसे आवृत न हो। तुम्हारे जलमें स्नान करनेमात्रसे तृप्त होकर सब जीव परम गतिको प्राप्त होते हैं।

अमिततेजस्वी राजाके मुखसे यह स्तवन सुनकर नर्मदादेवीने उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन दिया और कहा— राजन्! तुम्हारे मनमें जो अभिलाषा हो, उसके अनुसार वर माँगो।

राजाने कहा—देवि! तुम सात पूर्वके और सात दूसरे प्रवाहोंको अक्षय करो।

नर्मदा बोली—राजन्! लो, यह वरदान मैंने तुम्हें यथार्थरूपसे दे दिया।

ऐसा कहकर सरिताओंमें श्रेष्ठ नर्मदा जलराशिसे परिपूर्ण हो विस्तृत प्रवाहोंसे बहने लगी। राजा सालंकायनका यह अद्भुत कर्म देखकर सत्यधर्म-परायण सभी महर्षि उनकी प्रशंसा करने लगे। तदनन्तर उन सबने नर्मदामें स्नान, अवगाहन, जलपान और पितृतर्पण किया। तत्पश्चात् सर्वस्व दक्षिणा पाये हुए ब्राह्मणोंने वह यज्ञ समाप्त किया। जो जिस वस्तुकी कामना करता, उसे वही वस्तु दी जाती थी। तदनन्तर शिवालयमें जाकर समस्त मनोवांछित फलोंको देनेवाले देवपूजित माहेश्वरलिंगमें स्थित भोग-मोक्ष-प्रदाता उमा-महेश्वरका राजाने विधिपूर्वक पूजन किया। पूजामें प्रत्येक उपचार **'ॐ महेश्वराय देवाय शम्भवाय नमो नमः'—** इस मन्त्रसे चढ़ाया गया। पूजा समाप्त होनेपर राजा वहीं हाथ जोड़कर खड़े हो गये। तत्पश्चात् नर्मदादेवी भगवान् शंकरके चरणके नीचेसे प्रकट हुईं। उनका वह प्रवाह सम्पूर्ण देवताओंद्वारा पूजित हुआ। तदनन्तर सन्तुष्ट हुए महादेव आदि सब देवता बोले—'राजन्! तुम मनोवांछित वर माँगो।'

उनके ऐसा कहनेपर राजा सालंकायनने कहा— देवताओ! आपलोग कभी इस स्थानका परित्याग न करें। हमारे राष्ट्रमें अनावृष्टि आदि दोषोंसे पीड़ित प्रजाका कष्ट दूर हो और वह सदा फले-फूले। इसके सिवा इस स्थानपर आहवनीय अग्नि स्वयं ही सदा विद्यमान रहे।

देवताओंने कहा—राजन् तुमने जो कुछ कहा है, वह सब पूरा होगा।

ऐसा कहकर सब देवता वहाँसे अन्तर्धान हो गये। राजाका राज्य पुनः वृद्धिको प्राप्त हुआ और इन्द्र इच्छानुसार वर्षा करने लगे। वह यज्ञ पूरा करके राजा सालंकायन अपने मन्त्रियों तथा अन्तःपुरकी रानियोंके साथ देवनिर्मित अयोध्यापुरीमें लौट आये। युधिष्ठिर! इस प्रकार मैंने तुम्हें उमामहेश्वरतीर्थका माहात्म्य सुनाया है।

श्वेतकिंशुक आदि तीर्थोंकी महिमा

मार्कण्डेयजी कहते हैं—युधिष्ठिर! अमरेश्वरके पूर्वभागमें स्थित श्वेतकिंशुक नामक पापनाशन तीर्थका माहात्म्य सुनो, जिसमें स्नान करनेवाले मनुष्य स्वर्गलोकको प्राप्त होते हैं। वहाँ उत्तम सिद्धि प्रदान करनेवाला श्वेतकिंशुक नामक लिंग है तथा स्वर्गरूपी फल प्रदान करनेवाले ताटकेश्वर महादेव भी वहीं विराजमान हैं। उसके बाद वर्ण नामसे प्रसिद्ध एक दूसरा पापनाशक तीर्थ है,

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

जहाँ लोकमें वर देनेवाले त्र्यम्बक महादेव विद्यमान हैं। उस तीर्थके माहात्म्यसे गण्डेशको स्वर्गलोककी प्राप्ति हुई थी। वहाँ गण्डकेश्वर और शुक्लेश्वर लिंग प्रसिद्ध हैं। नर्मदा और दन्तिवनिकाका संगम सर्वत्र विख्यात है। वहीं सब सिद्धियोंको देनेवाला लिंगेश्वर लिंग है। बालकेश्वर और पूर्णकेश्वर लिंग भी वहीं हैं। नर्मदाके उत्तर तटपर उत्तम नर्मदापुर है। कपिशिला नामसे प्रसिद्ध एक तीर्थ है, जो सब अनर्थोंका निवारण करनेवाला है। वहीं सिद्धेश्वर तथा नाडकेश्वर लिंग हैं।

नृपश्रेष्ठ! तदनन्तर वैदूर्य पर्वतसे पश्चिम दिशाकी ओर जाय। वहाँ शशभी और नर्मदाका संगम है, जो सब पापोंका नाश करनेवाला है। वहीं भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाला शशभेश्वर लिंग है, जो तीनों लोकोंमें विख्यात है। वह गर्दभीकी योनिसे छुटकारा दिलानेवाला है। यहीं मण्डलेश्वर नामक तीर्थ और लिंग है, जहाँ माण्डलिक नरेश अजापाल और मनु सिद्धिको प्राप्त हुए हैं। वहाँ यज्ञ करके मनुष्य फिर इस संसारमें जन्म नहीं लेता। वहाँ तिल और जल देने तथा पिण्डदान करनेसे जबतक चन्द्रमा और सूर्यकी सत्ता है, तबतक पितरोंको तृप्ति बनी रहती है। वहाँ जो दान दिया जाता है, उसके पुण्यकी कोई संख्या नहीं है। वहाँसे कान्तारकतीर्थमें जाय, जो सब तीर्थोंमें श्रेष्ठ और शुभ है। वहाँ स्नान करनेवाले स्वर्गमें जाते हैं और मरनेवाले मोक्ष पाते हैं।

त्रेतायुगमें रघुवंशी राजकुमार श्रीराम और लक्ष्मण मिथिलेशकुमारी सीताके साथ यहाँ आकर नर्मदाके पार हुए थे। वे दोनों राजकुमार भगवान् विष्णुके अवतार थे और पिताकी आज्ञाका पालन करते हुए इस मार्गसे वनमें गये थे। उन्होंने इस श्रेष्ठ तीर्थमें स्नान करके भक्तिपूर्वक महादेवजीका पूजन किया था। जहाँ उनका स्नान हुआ, वह स्थान 'राजतीर्थ' के नामसे प्रसिद्ध है। वहाँ लक्ष्मणेश्वर तथा सीतेश्वर लिंग हैं, जो देवताओं और दानवोंद्वारा वन्दित हैं। उस तीर्थमें शूलपाणि महेश्वरका पूजन करके मनुष्य गणपतिपदको प्राप्त होता है।

नृपश्रेष्ठ! वहाँसे पुण्यतीर्थ शिवालयको जाय। वहीं परम मनोहर माहिष्मती पुरी है, जिसका दर्शन करके कोई भी नीचे नहीं गिरता। वहाँ अपनी ज्वालाओंसे प्रज्वलित कालाग्निरुद्रका निवास है। तदनन्तर कोटितीर्थ है, जहाँ कोटीश्वर लिंग विराजमान है। उसकी पूजासे कोटि यज्ञोंका फल प्राप्त होता है। वहाँ दिये हुए दानका पुण्य कोटि-गुना बढ़ जाता है। उसके बाद दशाश्वमेधतीर्थ है, जो भोग और मोक्ष देनेवाला है। वहाँ तिल और जलसे तर्पण करनेपर पितरोंकी उत्तम गति होती है। वहाँ स्नान करनेमात्रसे मनुष्य तेजस्वी हो जाता है। तत्पश्चात् वन्ध्या और नर्मदाका संगम है, जो देवताओं और असुरोंसे भी नमस्कृत है। राजेन्द्र! उस संगममें मुनकेश्वर लिंग है, जिसका दर्शन केवल योगियोंको होता है। साधारण मनुष्य उसे नहीं देख पाते। नर्मदाके दक्षिण तटपर चण्डीश्वर, उडुगणेश्वर और वकेश्वर लिंग हैं, जहाँ बगले स्वर्गको प्राप्त हुए हैं। गंगावह नामवाला एक तीर्थ है, जहाँ सब सिद्धियोंको देनेवाला एक शिवलिंग है। उस निर्मल शिवलिंगका नाम अंगारेश्वर जानना चाहिये। इसके बाद सोमतीर्थ और शुक्लतीर्थ हैं। फिर निरसतीर्थ और ध्रुवतीर्थ हैं। युधिष्ठिर! इन सबके सिवा वहाँ और भी अनेक सहस्र तीर्थ हैं। पिपीलिकातीर्थ भोग और मोक्ष देनेवाला है। वहाँ पूर्वसे पश्चिम एक कोसतककी भूमिमें पंद्रह हजार तीर्थ हैं, जो ऋषियों और देवताओंके द्वारा सेवित हैं। वहाँ जो दान और होम आदि किया जाता है, उसके पुण्यकी कोई संख्या नहीं है। जो वहाँ मृत्युको प्राप्त होता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो उमा-महेश्वरलोकमें आनन्द भोगता है। अतः मनुष्यको उचित है कि वह शान्तचित्त होकर महादेवजीका पूजन करे और सदा सबके प्रति मैत्री एवं करुणाका भाव बनाये रखे। राजन्! पुण्यवान् पुरुषोंमें ही मैत्री और मुदिता होती है। सब प्राणियोंमें पुण्यवानोंको ही सुख होता है, यह विचारकर पुण्यके लिये यत्न करे। जो पुण्यक्षेत्र नहीं हैं, ऐसे स्थानपर किया हुआ पुण्य सम होता

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

है (जितना किया जाता है, उतना ही रहता है)। परंतु जहाँ नर्मदाका संगम हो, वहाँका थोड़ा-सा भी पुण्य असंख्य होता है। अन्य स्थानोंपर किया हुआ पाप पुण्यक्षेत्रमें नष्ट हो जाता है, किंतु यदि पुण्यक्षेत्रमें पाप किया जाय तो वह वज्रलेप हो जायगा। महाबली कार्तिकेयजीने जहाँ नर्मदा पार की थी, वहाँ कार्तिकेश्वर नामक सिद्धिदायक लिंग प्रतिष्ठित है, यह जानना चाहिये। इसके सिवा वहाँ चन्द्रेश्वर, शिखीश्वर तथा सब पापोंका नाश करनेवाला शक्तीश्वर लिंग है। इन सब लिंगोंका भक्तिभावसे पूजन करके मनुष्य ब्रह्महत्या आदि पापोंसे मुक्त हो जाता है। इतना ही नहीं, अन्तमें वह शिवलोकको प्राप्त होता है और उसके पितरोंको स्वर्गलोकमें स्थान मिलता है।

मान्धाताका चरित्र

मार्कण्डेयजी कहते हैं—राजन्! तदनन्तर सर्वदेववन्दित गौरीखण्डकी यात्रा करे। वहाँ स्नान करके मनुष्य सब तीर्थोंका फल पाता है तथा उसमें तिल और जलसे तर्पण करनेपर पितरोंको अक्षय तृप्ति प्राप्त होती है। गौरीखण्डेश्वर नामक मणिमय लिंग जलके मध्यभागमें स्थित है। मनुष्य उसका दर्शन नहीं कर पाते। वह देवताओंद्वारा पूजित होता है। वहीं कुमारेश्वर नामक शिवलिंग प्रतिष्ठित है। साथ ही भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाला मयूरेश्वर लिंग भी है, जिसके माहात्म्यसे मयूरगण स्वर्गलोकको प्राप्त हुए हैं। उनके पूजनसे तिर्यग्योनिकी प्राप्ति नहीं होती।

तत्पश्चात् करमर्दा संगममें स्नान करनेके लिये जाय। युधिष्ठिर! उस तीर्थमें जिसने स्नान कर लिया, वह फिर इस संसारमें जन्म नहीं लेता। करमर्दामें स्नान करके करमर्देश्वर लिंगका पूजन करना चाहिये। वहाँ पितरोंका तर्पण करनेसे मनुष्य स्वर्गलोकको प्राप्त होता है।

युधिष्ठिर बोले—मुने! राजाओंमें श्रेष्ठ मान्धाता तीनों लोकोंमें विख्यात हैं। मैं उन बुद्धिमान् राजाका चरित्र सुनना चाहता हूँ।

मार्कण्डेयजीने कहा—महाभाग! इक्ष्वाकुवंशमें एक युवनाश्व नामक राजा हो गये हैं। वे राजर्षि बहुत समयतक सन्तानहीन ही रहे। तब उन्होंने अपना राज्य मन्त्रियोंके अधीन करके वनमें प्रवेश किया और शास्त्रोक्त विधिसे अपने मनका संयम करके फल-मूलका भक्षण करते हुए बड़ी भारी तपस्या की। एक दिनकी बात है। वे राजा प्याससे विकल हो गये। उनका गला सूखने लगा। तब वे पानीके लिये आश्रमके भीतर गये। रात्रिका समय था। सब लोग सो गये थे। अतः उनके माँगनेपर भी किसीने उनकी बात नहीं सुनी। किसी शक्तिशाली ऋषिने उन्हीं राजा युवनाश्वको पुत्रकी प्राप्तिके लिये मन्त्रोंसे अभिमन्त्रित करके एक जलपूर्ण कलश स्थापित कर रखा था। प्यासे हुए राजा बड़े वेगसे दौड़े और उसी जलको पीकर सो रहे। प्याससे व्याकुल राजा उस शीतल जलको पीकर बहुत सुखी हुए।

तदनन्तर मुनियोंको यह बात मालूम हुई। उन्होंने कुपित होकर पूछा—'किसने कलशका जल पी लिया है।' युवनाश्वने कहा—'महात्माओ! यह काम तो मैंने ही किया है।' तब महर्षि भार्गवने कहा—'राजन्! यह जल तुम्हारे पुत्र होनेके उद्देश्यसे तपस्यासे संचित एवं अभिमन्त्रित करके रखा गया था। इससे महाबलवान् एवं तपोबलसे युक्त सर्वधर्मपरायण पुत्रका जन्म हो, इस संकल्पसे मन्त्रयुक्त विधिके द्वारा इस जलका संस्कार किया गया था। यह तुम्हारे लिये पीने योग्य नहीं था। आज तुम्हारे द्वारा जो कार्य हुआ है, वह अवश्य ही प्रारब्धसे प्रेरित है। महाराज! इस जलको पीनेसे तुम गर्भवान् होओगे।'

तदनन्तर सौ वर्षोंके पश्चात् राजा युवनाश्वकी

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

बायीं कुक्षि फाड़कर सूर्यके समान तेजस्वी पुत्र उत्पन्न हुआ। तो भी राजाकी मृत्यु नहीं हुई। उस समय महातेजस्वी इन्द्र उस बालकको देखनेके लिये आये। देवता पूछने लगे—'देवराज! यह किसका दूध पीयेगा?' इन्द्र बोले—'**एष मां धाता**—यह मुझे ही पान करेगा।' ऐसा कहकर उन्होंने बालकके मुँहमें अपनी तर्जनी अँगुली डाल दी। बालक बड़े हर्षके साथ उस अँगुलीका अमृतरस पीने लगा। तत्पश्चात् इन्द्रने उसका 'मान्धाता' यह सार्थक नाम रख दिया।

इस प्रकार बालक मान्धाता सोलह वर्षोंतक इन्द्रकी तर्जनी पी-पीकर बढ़ता रहा। उसे आयुर्वेद आदि दिव्य शास्त्रोंका ज्ञान केवल उनके चिन्तनसे हो गया। आजगव नामक धनुष, सींगके बाण और अभेद्य कवच—ये तत्काल उनके पास स्वतः उपस्थित हो गये। इन्द्रने समस्त देवताओंके साथ मान्धाताका राज्याभिषेक किया। महाराज मान्धाताने धर्मसे सम्पूर्ण लोकोंको उसी प्रकार व्याप्त कर लिया, जैसे भगवान् विष्णुने अपने तीन पगोंसे त्रिलोकीको नाप लिया था। उन महात्माका शासनचक्र अप्रतिहत गतिसे चलता था। सैकड़ों राजा स्वयं उनकी सेवामें उपस्थित हुए। इस प्रकार उनका समूची पृथ्वीपर एकच्छत्र अधिकार था। उन्होंने प्रचुर दक्षिणावाले अनेक यज्ञोंद्वारा भगवान्‌का यजन किया। उन प्रसन्नचित्त, परम बुद्धिमान् और अमित तेजस्वी नरेशने अतिशय धर्मका अनुष्ठान करके इन्द्रके आधे सिंहासनको प्राप्त किया था। उन्होंने धर्मपूर्वक पृथ्वीका पालन किया। उन महात्माका राज्य दस करोड़ वर्षोंतक चलता रहा। एक समय बारह वर्षोंतक वृष्टि नहीं हुई। उस समय मान्धाताने वज्रपाणि इन्द्रके देखते-देखते अपने राज्यकी खेतीको बढ़ानेके लिये बलपूर्वक वर्षा करवा ली। वहीं महाराज मान्धाताका यह देवस्थान है। उन्हींके पुण्यतम देशमें अमरकण्टक पर्वत देखा जाता है। उन्होंने अमरकण्टकपर ॐकारेश्वर शिवके आगे सौ यज्ञोंका अनुष्ठान करके इस प्रकार स्तवन किया—'जगत्‌की उत्पत्ति करनेवाले परमेश्वर! आप ही कालगतिके प्रवर्तक हैं, आप ही संसारस्वरूप और संसारका संहार करनेवाले हैं, आपको नमस्कार है। ॐ महादेवजीको नमस्कार है। भगवान् शम्भु और भवको नमस्कार है। तीन नेत्र और तीन मूर्ति धारण करनेवाले तीनों लोकोंके स्वामी आपको नमस्कार है। कालरहित, जरारहित और मृत्युरहित आपको बारंबार नमस्कार है। जो लोग प्रतिदिन आदिदेव भगवान् ॐकारेश्वरका ध्यान करते हैं, उनकी इस संसारसमुद्रमें पुनरावृत्ति नहीं होती।'

कालरूपधारी ॐकारस्वरूप उमानाथ महादेवजीने यह स्तुति सुनकर राजा मान्धातासे कहा—सुव्रत! तुम कोई वर माँगो।

मान्धाताने कहा—देवेश्वर! वैदूर्य नामसे प्रसिद्ध यह शैलराज मान्धाता नाम धारण करे और आपके प्रसादसे देवस्थान बन जाय। यहाँ जो मनुष्य दान, तप, पूजा तथा प्राणविसर्जन करें, वे शिवधामके निवासी हों।

मान्धाताका यह वचन सुनकर महादेवजी बोले—नृपश्रेष्ठ! मेरे प्रसादसे यह सब कुछ होगा। इस प्रकार वरदान पाकर महाराज मान्धाता अपनी पुरीको लौट गये। युधिष्ठिर! यह सब मान्धाताका उत्तम चरित्र तुम्हें बताया गया। इस तीर्थके माहात्म्यसे मान्धाता आदि नरेश सम्पूर्ण मनोवांछित कामनाएँ प्राप्त करके भगवान् विष्णुके धाममें विहार करते हैं।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

बाणासुरके तीन पुरोंका भगवान् शंकरके द्वारा संहार, जालेश्वरनामक बाणलिंगकी उत्पत्ति और बाणासुरको शिवलोक-प्राप्ति

मार्कण्डेयजी कहते हैं—सत्ययुगमें बलि नामसे प्रसिद्ध एक श्रेष्ठ दैत्य हुए। उनके महापराक्रमी पुत्रका नाम बाणासुर था। वह अपनी सहस्र भुजाओंके कारण विख्यात था। उसने एक सहस्र दिव्य वर्षोंतक महादेवजीकी आराधना की। इससे सन्तुष्ट होकर महादेवजीने कहा—'वत्स! तू कोई श्रेष्ठ वर माँग ले।'

बाणासुर बोला—प्रभो! मेरा नगर दिव्य एवं सम्पूर्ण देवताओंके लिये अजेय हो। आपको छोड़कर दूसरे किसी देवताके लिये यहाँ प्रवेश पाना अत्यन्त कठिन हो। मेरा यह नगर मेरे स्थिर होनेपर स्थिर रहे और मेरे चलनेपर वह साथ-साथ चले— सर्वथा मेरे मनके अनुकूल बना रहे।

महादेवजीने कहा—'एवमस्तु'। तदनन्तर भगवान् विष्णुने भी बाणासुरसे कहा—'यदि महादेवजीने तुम्हें एक पुर तुम्हारे मनके अनुरूप दिया है तो मैं भी तुम्हें वैसा ही दूसरा पुर देता हूँ।' तत्पश्चात् दोनों देवता श्रीविष्णु और शिवने एकत्र होकर कहा—'बाणासुर! अब तुम शीघ्र ही ब्रह्माजीके पास जाओ।' तब बलिका पुत्र ब्रह्माजीके पास गया। ब्रह्माजीने उसे हृदयसे लगाया और कहा—'वत्स! भगवान् शिव और विष्णु दोनोंने तुम्हें एक-एक पुर प्रदान किया है। अतः मैं भी वैसा ही एक पुर और तुम्हें देता हूँ। इन तीनों पुरोंको प्राप्त करके बाणासुर त्रिपुरके नामसे विख्यात हुआ। युधिष्ठिर! इस प्रकार वरदान पाकर सहस्र भुजाओंके विस्तारसे शक्तिशाली बना हुआ बाणासुर समस्त देवताओंके लिये अवध्य हो गया। उसने यक्ष, विद्याधर, देव, दानव, गन्धर्व और राक्षसोंके समस्त निवासस्थानोंको नष्ट कर दिया। वहाँकी वेदिकाएँ तोड़-फोड़ डालीं। इन्द्रकी अमरावतीपुरीको उजाड़ दिया। उसके अत्याचारसे उद्विग्न होकर सब देवता महादेवजीके पास गये और इस प्रकार बोले—'भगवन्! आपने, श्रीविष्णुने तथा श्रीब्रह्माजीने भी बाणासुरको वरदान देकर अजेय बना दिया है। उसके साथ युद्ध करनेकी शक्ति किसीमें भी नहीं है। जो भी उसके सामने खड़ा होगा, उसे वह भस्म कर सकता है।'

महादेवजी बोले—देवताओ! तुम सब लोग तीस करोड़की संख्यामें हो और बड़े बलवान् हो। सब लोग संगठित होकर जाओ और यत्नपूर्वक त्रिपुरका विनाश करो।

यह सुनकर सब देवता तीखे अस्त्र-शस्त्र लेकर बाणासुरके—त्रिपुरके समीप गये। किंतु उस दैत्यने समस्त देवताओंको क्षणभरमें परास्त कर दिया। उन सबके अस्त्र-शस्त्र भी छीन लिये। देवताओंके पाँव उखड़ गये। वे हतोत्साह होकर पुनः महादेवजीके समीप आये। महादेवजीने पूछा—'तुम सब लोगोंने वहाँ जाकर क्या किया?' देवताओंने कहा—'भगवन्! क्या कहें, हम उसका पराक्रम वर्णन करनेमें असमर्थ हैं।

देवताओंकी वह बात सुनकर भगवान् शिवने कहा—अच्छा तो इस महादुष्ट त्रिपुरका संहार मैं स्वयं करूँगा। यह कहकर वे कैलाससे चले और जहाँ त्रिपुरासुर था वहाँ जा पहुँचे। उनके साथ देवी पार्वती भी थीं। चण्डेश्वर, नन्दी, महाकाल, महेश्वर, वृष, भृंगिरिटि, विघ्नेश (गणेश), स्कन्द, महावीर पुष्पदन्त, घण्टाकर्ण, महोदर, गोमुख, हस्तिकर्ण, स्थूलजंघ और वृकोदर—ये पंद्रह पार्षद भी भगवान् शिवके साथ गये। वे सब-के-सब महादेवजीके तुल्य पराक्रमी थे। जहाँ महान् क्षेत्रस्वरूप श्रीशैल नामका सिद्ध पर्वत है, वहीं ठहरकर महादेवजीने देवीसे कहा—'प्रिये! यहीं त्रिपुरासुरको मारना उचित होगा।' ऐसा कहकर भगवान् शंकरने उस पर्वतको अपना प्रधान निवास स्थान बनाया और व्यापक विराट्‌रूप धारण करके पिनाक नामक धनुष हाथमें लिया। फिर एक पैरसे पातालको

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

और दूसरेसे ब्रह्माण्डको दबाया तथा त्रिपुरासुरकी ओर लक्ष्य बाँधकर अघोर नामक बाणका प्रहार किया। उस अस्त्रसे दग्ध होकर त्रिपुरके तीन खण्ड हो गये। उसे जर्जर करके शिवजीने नर्मदाके जलमें गिरा दिया। वहाँ गिरनेपर वह सात पातालोंका भेदन करके रसातलको चला गया। इससे वहाँ जालेश्वर नामक तीर्थ प्रकट हुआ, जो तीनों लोकोंमें विख्यात है। जालेश्वरदेवका पूजन करनेसे मनुष्य ब्रह्महत्यासे छुटकारा पा जाता है और कोटि सहस्र कल्पोंतक भगवान् शिवके धाममें सुखपूर्वक निवास करता है। जो वहाँ स्नान करते हैं, वे तो स्वर्गमें जाते हैं और जो मृत्युको प्राप्त होते हैं, उनका पुनर्जन्म नहीं होता। युधिष्ठिर! वहाँ तिल और जलसे तर्पण करने तथा पिण्डदान देनेसे जबतक भगवान् शंकर और नर्मदाजी स्थित हैं, तबतक पितर तृप्त रहते हैं। कालाग्निरुद्रके समान प्रज्वलित त्रिपुरनाशक अघोरास्त्रको नर्मदाके सिवा दूसरा कौन धारण कर सकता है? इस प्रकार अघोरास्त्रसे छूटा हुआ बाणजाल ही 'जालेश्वर' (नामक बाणलिंग) कहलाया।

अपने तीनों पुरोंके दग्ध होनेपर बाणासुर भयभीत हो भगवान् शिवकी इस प्रकार स्तुति करने लगा—अनादिदेव! ईश! आपको नमस्कार है। विघ्नेश्वर! आपको नमस्कार है। महेश्वर! आपको नमस्कार है। सर्वज्ञ! अज्ञानहारी हर! ज्ञानदाता शिव! आपको नमस्कार है। अनन्तगुणमय रत्नोंसे विभूषित आप परमेश्वरको नमस्कार है। परात्पर! परातीत! उत्पत्ति और पालन करनेवाले शिव! आपको नमस्कार है। सब प्रयोजनोंकी सिद्धिके साधनभूत विश्वनाथ! आपको नमस्कार है। धनंजय! निराधार! स्वभावसे ही उपद्रवरहित आपको नमस्कार है। सदा प्रसन्न रहनेवाले परमेश्वर! आप सम्पूर्ण योगोंके स्वामी हैं। आपको नमस्कार है। भूतनाथ! जगन्नाथ! सर्वाधार! आपको नमस्कार है। सृष्टि, संहार, मोक्ष और सात पातालोंके आश्रय! आपको नमस्कार है। त्रिनेत्र और त्रिशूल धारण करनेवाले त्रिलोकस्वरूप आपको नमस्कार है। चन्द्रशेखर! देवता और असुर दोनों आपके चरणोंमें नतमस्तक होते हैं, आपको नमस्कार है। महाप्रभो! मैंने अपनी जिह्वाकी चपलताके कारण आपके विषयमें कुछ कहनेकी धृष्टता की है, आप उसे क्षमा करें। आपके गुणोंका वर्णन करनेमें कौन समर्थ है।

मार्कण्डेयजी कहते हैं—बाणासुरद्वारा की हुई इस स्तुतिको सुनकर भगवान् शिव उसपर प्रसन्न हो गये और इस प्रकार बोले—'दैत्यराज! सेवापराधजनित तुम्हारा यह दोष क्षमा किया गया। तुम कोई वर माँगो।'

बाणासुर बोला—देव! मैं अपने परिवारसहित इसी शरीरसे आपके उस परम धामको जाऊँ, जहाँ पुनर्जन्मका भय नहीं है।

बाणासुरका यह वचन सुनकर महादेवजीने कहा—दैत्यराज! तुम मेरी भक्तिके प्रसादसे मेरे समीप निवास करोगे। तत्पश्चात् वह दिव्य विमानपर आरूढ़ हो महादेवजीके प्रसादसे उन्हींके लोकमें चला गया।

~~~o~~~

अमरकण्टक और यज्ञपर्वतके श्रेष्ठ तीर्थ एवं लिंग, राजा इन्द्रद्युम्नका यज्ञ और उन्हें देवोंका वरदान

मार्कण्डेयजी कहते हैं—युधिष्ठिर! अमरकण्टक पर्वतपर सब ओर अत्यन्त गुप्त पुण्यका निवास है। उस गिरिश्रेष्ठसे लेकर नर्मदा नदीतक सब तीर्थ अत्यन्त पवित्र माने गये हैं। अमरकण्टकसे उत्तरभागमें यज्ञ पर्वत है, जो विन्ध्याचलका कनिष्ठ पुत्र और पर्यंक पर्वतका भाई है। पूर्वकालमें ब्रह्माजीने वहीं सौत्रामणि नामक यज्ञ किया था और इन्द्रने भी उसी पर्वतपर अश्वमेध-यज्ञका अनुष्ठान किया था।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth
~~~

महर्षि दधीचि तथा अन्य देवताओंने वहीं बड़े-बड़े यज्ञोंका अनुष्ठान किया है। उसी यज्ञ पर्वतसे चतु नामकी एक महानदी निकली है, जो नर्मदामें जाकर मिली है। वह संगम विश्वविख्यात तीर्थ है। उसके तटपर पीले रंगके कुश पृथ्वीपर फैले हैं। उनसे श्राद्ध करनेपर वे पितरोंको मोक्ष देनेवाले होते हैं। जहाँ चतु और नर्मदाका संगम है और जहाँ यज्ञ पर्वत है, इन दोनोंके बीचकी भूमिमें जो श्राद्धका अनुष्ठान करता है, उसके पितर पूर्ण तृप्त होते हैं। जो वहाँ स्नान और सिद्धेश्वर एवं चतुष्केश्वर लिंगकी परिक्रमा करता है, उस मनुष्यकी लोकमें पुनः गणना नहीं होती— वह मुक्त हो जाता है। युधिष्ठिर! वहाँ महादेवजी संगममें स्थित हैं। मनुष्य उनका दर्शन नहीं कर पाते। देवता, असुर और नागकन्याओंद्वारा उनका पूजन किया जाता है।

सुपर्ण नामसे प्रसिद्ध एक जितेन्द्रिय ब्रह्मर्षि थे। उनकी पतिव्रता धर्मपत्नीका नाम पुरुहूता था। वे दोनों दम्पति नैमिषारण्यमें निवास करते थे। एक दिन पर्वकालमें ऋतुस्नाता होनेपर पुरुहूताने अपने पतिको प्रसन्न करके कहा— 'महामुने! आज मेरे साथ सहवास कीजिये, जिससे मुझे सम्पूर्ण वंशको पवित्र करनेवाला पुत्र प्राप्त हो। पुत्रके द्वारा मनुष्य पुण्यलोकोंपर विजय पाता है। पुत्रसे देवता और पितर तृप्त होते हैं। अतः आप पुत्र उत्पन्न करें।'

ब्राह्मणने कहा—प्रिये! आज अमावास्या है। इसमें मैथुनका निषेध किया गया है। अतः आज यह नहीं करना चाहिये। पितरोंके लिये तो आजके दिन मैथुन विशेषरूपसे वर्जित है। जो अमावास्याके दिन ऋतुकालमें भी पत्नीसंगम करता है, पितर उसका मांस भोजन करते हैं। उनके इस कथनसे पत्नीको सन्तोष हो गया और दोनों शिवाराधनमें तत्पर हो गये।

नील गंगाके पश्चिम और नर्मदाके उत्तर व्यतीपातेश्वर नामक शिवलिंग है, जो परम सिद्धि देनेवाला है। उसे साक्षात् जगदीश्वर सोमनाथका ही स्वरूप समझो। वहाँ सावित्री और सप्तर्षियोंने तपस्या की थी। नर्मदाके तटपर सावित्रीकुण्ड एक विख्यात तीर्थ है। वहाँ स्नान करनेमात्रसे मनुष्यको कन्यादानका फल प्राप्त होता है। वहाँ तिलसहित जल देने और अन्नदान करनेसे पितर सावित्रीलोकमें रहकर तृप्तिलाभ करते हैं।

पातालेश्वर नामसे प्रसिद्ध देवताओंके स्वामी जगदीश्वर सोमनाथका पूजन करके सब लोग शिवधामको प्राप्त होते हैं। सावित्रीकुण्डमें स्नान करके उसीके जलसे भगवान् सोमनाथका पूजन करे, इससे उस मनुष्यका पुनः इस संसारमें जन्म नहीं होता।

मार्कण्डेयजी कहते हैं—युधिष्ठिर! सूर्यवंशमें इन्द्रद्युम्न नामसे प्रसिद्ध एक राजा हो गये हैं, जो अयोध्याके अधिपति थे। उन्होंने पर्वत, वन और काननोंसहित सम्पूर्ण पृथ्वीका पालन किया था। उनके राज्यकालमें चारों वर्णोंके लोग स्वधर्म-पालनमें तत्पर थे। प्रत्येक धेनु इच्छानुसार दूध देनेवाली कामधेनु थी और पृथ्वी हरी-भरी खेतीसे सुशोभित होती थी। एक दिन राजर्षि इन्द्रद्युम्नने महर्षि वसिष्ठसे पूछा—'महामुने! मैं अश्वमेध-यज्ञ करना चाहता हूँ, सो किस तीर्थमें उसका अनुष्ठान करूँ?'

वसिष्ठजी बोले—राजन्! वेदवेत्ता ब्रह्मर्षिगण! आपको जैसी सम्मति दें, उस प्रकार ब्राह्मण ऋत्विजोंके द्वारा आपको यज्ञका अनुष्ठान करना चाहिये। उस समय राजसभामें मरीचि, कश्यप, अंगिरा, गौतम, दुर्वासा, च्यवन, धूम्र, महामुनि कण्व तथा और भी बहुत-से उत्तम व्रतका पालन करनेवाले मुनीश्वर बैठे थे। महाराज इन्द्रद्युम्नने उन सबसे पूछा—'किस तीर्थमें किया हुआ यज्ञ मनोवांछित फल देनेवाला होता है?'

ऋषि बोले—राजन्! इस कार्यके लिये ऋषियोंने अनेक भिन्न-भिन्न तीर्थोंको श्रेष्ठ बताया है।

यह सुनकर दुर्वासाने हँसते हुए कहा—राजन्! ब्राह्मण ज्ञानकी अधिकतासे ज्येष्ठ माने जाते हैं, क्षत्रियोंमें जिसका बल और पराक्रम अधिक हो, वही ज्येष्ठ माना गया है, वैश्योंका ज्येष्ठत्व धन

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

और धान्यकी अधिकतापर निर्भर है तथा शूद्र जन्म एवं आयुके अनुसार ही ज्येष्ठ माने जाते हैं।* सात कल्पोंतक जीवित रहनेवाले तीनों वेदोंके ज्ञाता त्रिकालज्ञ महर्षि मार्कण्डेयजीके रहते हुए धर्मका निरूपण एवं निश्चय करनेकी शक्ति किसमें है? महाराज! आप नर्मदाके तटपर विद्यमान धर्मारण्यमें जाइये। वहाँ मार्कण्डेयजी जहाँ बतावें, उसी स्थानपर अपना यज्ञ प्रारम्भ करें।

'देवर्षे! आप जैसा कहते हैं, वैसा ही करूँगा'—यों कहकर राजा इन्द्रद्युम्नने अपने मन्त्री देवगर्भको यज्ञकी सब सामग्री ले चलनेका आदेश दिया और स्वयं वहाँके ब्राह्मणों एवं मुनियोंके साथ दिव्य वाहनपर बैठकर बड़ी प्रसन्नताके साथ यात्रा की। उनके साथ अन्तःपुरकी रानियाँ भी थीं। सबके साथ राजा इन्द्रद्युम्न धर्मारण्यमें पहुँचे, जहाँ मार्कण्डेयजी विद्यमान थे। वहाँ जाकर उन्होंने मार्कण्डेयजीको साष्टांग प्रणाम और उनका यथावत् पूजन किया। राजा इन्द्रद्युम्नको आया देख महामुनि मार्कण्डेयजीने पूछा—'नृपश्रेष्ठ! कुशल तो है न? बहुत दिनोंके बाद दिखायी दिये हो। इन ब्रह्मर्षियोंके साथ यहाँ किस प्रयोजनसे तुम्हारा आगमन हुआ है?'

इन्द्रद्युम्न बोले—द्विजश्रेष्ठ! मैं यज्ञ करनेके लिये आया हूँ, सो किस तीर्थमें उसका अनुष्ठान करूँ?

मार्कण्डेयजीने कहा—राजन्! समुद्रपर्यन्त पृथ्वीपर जितने तीर्थ हैं, वे सब नर्मदा नदीमें स्नान करनेके लिये आते हैं। उत्तरमें जितने शिवलिंग हैं और दक्षिणमें जो-जो तीर्थ हैं, वे सब कोटितीर्थमें लीन होते हैं, इसीलिये उसका नाम कोटितीर्थ हुआ है। भगवान् शंकरने पूर्वकालमें पार्वतीदेवी, कार्तिकेयजी, ब्रह्मा, विष्णु तथा इन्द्र आदि देवताओंके सम्मुख इस तीर्थके माहात्म्यका इस प्रकार वर्णन किया है—'ॐकारेश्वरके समीप नर्मदामें कोटितीर्थ बताया गया है। वहाँ जो दान, होम, यज्ञ तथा दुष्कर तप आदि पुण्यकर्म किया जाता है, उसके पुण्यका अन्त नहीं है। ग्रहणकालमें कुरुक्षेत्रकी प्रशंसा की जाती है। परंतु नर्मदा सदा सब कार्योंके लिये पुण्यदायिनी कही गयी है। अतः तुम कोटितीर्थमें यज्ञ करो।

यह सुनकर परम धर्मात्मा राजा इन्द्रद्युम्नने अमित तेजस्वी मार्कण्डेय मुनिके चरण पकड़े और कहा—मुने! आपने जो कुछ कहा है, उसके लिये मैं अपने ऊपर आपका बहुत बड़ा अनुग्रह मानता हूँ। इसी समय सुन्दर यज्ञयूप, विभिन्न देशोंके क्षत्रियवृन्द, गौ, अश्व, हाथी तथा अन्यान्य आवश्यक सामग्री साथ लेकर मन्त्री देवगर्भ वहाँ आ पहुँचे। तब राजाने तीस योजनका एक विशाल यज्ञ-मण्डप बनवाया। उसमें बहुत-से यूप लगाये और अपने प्रमाणके अनुसार नाना प्रकारके कुण्ड निर्माण कराये। यज्ञ प्रारम्भ हुआ और वेदमन्त्रोंकी उच्चारण-ध्वनिसे भूमि और आकाशका मध्यभाग गूँज उठा। सूर्यके सदृश तेजस्वी अग्निदेव अपने धूमरहित स्वरूपसे प्रज्वलित हो रहे थे। महाराज इन्द्रद्युम्नने उस यज्ञमें ब्रह्मा, विष्णु तथा शिवका भी आवाहन किया। इनके साथ सम्पूर्ण देवता भी पधारे। राजाके यज्ञमें घी और दूधकी नदियाँ बहती थीं, जहाँ दही और खीरकी कीच जमी हुई थी। अनेक प्रकारके भक्ष्य-भोज्य पदार्थ सदा सबके लिये प्रस्तुत रहते थे। देवता, मुनि तथा चार प्रकारके प्राणिसमुदाय भलीभाँति तृप्त हुए। अन्तमें ब्राह्मणोंको प्रचुर दक्षिणा दी गयी। इस प्रकार वह यज्ञ सम्पूर्ण हुआ।

तदनन्तर ध्रुव तथा ब्रह्मपुत्र महर्षियोंको विदा करके ॐकारेश्वरके स्वरूपको जानकर राजाने उनका पूजन किया। मणि-माणिक्य आदि रत्नोंसे पहले ॐकारलिंगको विभूषित किया। फिर गन्ध, नाना प्रकारके धूप, कपूर, अगर, चन्दन, ध्वज, छत्र, वितान, व्यजन और दिव्य चामरोंसे पूजा सम्पन्न करके इस प्रकार स्तुति की—'जिस विन्दुयुक्त ॐकारका योगीजन सदा ध्यान करते हैं तथा जो ॐकारस्वरूप काम और मोक्ष

* विप्राणां ज्ञानतो ज्यैष्ठ्यं क्षत्रियाणां तु वीर्यतः। वैश्यानां धान्यधनतः शूद्राणां चैव जन्मतः॥ (स्क० पु०, आव० रे० ३४। १९-२०)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

देनेवाले हैं, उनको बार-बार नमस्कार है। ब्रह्मा, विष्णु तथा इन्द्रको भी वर देनेवाले सर्वदेवमय शिव! आपको नमस्कार है। रुद्र! पुण्यसे सुशोभित होनेवाली जो आपकी कल्याणमयी अघोर (सौम्य) मूर्ति है, उसके द्वारा आप मुझपर कृपा कीजिये। आपके सब ओर हाथ और पैर हैं। सब ओर नेत्र, सिर और मुख हैं। लोकमें सब ओर आपके कान हैं तथा आप सबको व्याप्त करके स्थित हैं। आपको नमस्कार है।' इस प्रकार स्तुति करनेपर ॐकारलिंगके मध्यभागमें एक दूसरा लिंग दिखायी दिया, जो प्रज्वलित कालाग्निके समान कान्तिमान् था। उसने इन्द्रद्युम्नसे कहा— राजन्! तुम्हारा कल्याण हो। तुम्हारे मनमें जो कामना हो, उसके लिये वर माँगो।'

इन्द्रद्युम्न बोले—देव! वहाँ यज्ञ पर्वतपर देवद्रोणीमें भगवती पार्वतीके साथ पूजित होकर आप सदा निवास करें। देवदेवेश्वर! इस तीर्थमें जो प्राणत्याग करे, वह शिवलोकमें जाय।

ॐकारेश्वर बोले—नृपश्रेष्ठ! तुम्हारी यह सब कामना पूर्ण हो।

इतना कहकर वे वहीं अन्तर्धान हो गये। उन्हींके साथ अन्यान्य देवता भी अपने-अपने स्थानको चले गये। भगवान् शंकर कैलासधामको गये। राजा इन्द्रद्युम्नने वहाँ चार प्रकारके प्राणियोंको सुनाकर कहा—'तुम सब लोग मेरे यज्ञके प्रभावसे नीरोग हो जाओ और सभी तृप्त रहो।' तत्पश्चात् राजा इन्द्रद्युम्नने साष्टांग प्रणाम करके भगवान् विष्णुकी स्तुति की।

राजाने कहा—मैं केशव (जलमें शयन करनेवाले), माधव (लक्ष्मीपति), विष्णु (सर्वव्यापी), गोविन्द, मधुसूदन (मधु दैत्यको मारनेवाले), पद्मनाभ (नाभिसे कमल उत्पन्न करनेवाले), हृषीकेश (इन्द्रियोंके स्वामी), श्रीधर, त्रिविक्रम (तीन विशाल डगवाले विराट्रूपधारी वामन), दामोदर (माता यशोदाके द्वारा रस्सीसे कटिभागमें बँधनेवाले), वासुदेव (वसुदेवपुत्र) तथा श्रीहरि (पाप हरण करनेवाले)को प्रणाम करता हूँ। जो शंख, चक्र, गदा, शार्ङ्गधनुष और वनमालासे विभूषित हैं, सम्पूर्ण लोकोंके रक्षक, जगत्के स्वामी, लक्ष्मीजीके पति तथा सर्वज्ञोंमें श्रेष्ठ हैं, उन भगवान् श्रीकान्त, श्रीधर, श्रीश एवं श्रीनिवासको मैं नमस्कार करता हूँ। अच्युत! अनन्त! यज्ञेश! यज्ञाधिप! आपको नमस्कार है। ऋक्, साम, अथर्व और यज्ञ (यजुर्वेद)-स्वरूप आपको नमस्कार है। नृसिंह, मत्स्य, वाराह और कूर्मरूप धारण करनेवाले आपको नमस्कार है। पवित्र वाहनपर आरूढ़ होनेवाले गरुड़ध्वज! आपको नमस्कार है। जो सहस्र मस्तकोंवाले, सकल-निष्कल, जाननेयोग्य, पुरुष (अन्तर्यामी), अध्यक्ष (साक्षी) तथा सबके आदिकारण हैं, उन भगवान् नारायणदेवको मैं नमस्कार करता हूँ। दैत्योंका अन्त करनेवाले देवता श्रीहरिको मैं प्रणाम करता हूँ। हिरण्य, पृथ्वी तथा यज्ञको अपने गर्भमें धारण करनेवाले, अमृतकी उत्पत्तिके हेतुभूत श्रीविष्णुको मैं नमस्कार करता हूँ। वासुदेव! श्रीगर्भ एवं ज्ञानगर्भस्वरूप आपको नमस्कार है। प्रभो! आपने ही इस सम्पूर्ण चराचर जगत्की सृष्टि की है। आप ही प्रत्येक युगमें सृष्टि, पालन और संहार करनेवाले हैं। आपके सब ओर नेत्र हैं, सब ओर मुख हैं। आप अव्यक्त एवं जाननेयोग्य हैं। सम्पूर्ण विश्वके आत्मा, प्रकाशक और सबके भीतर निवास करनेवाले आपको नमस्कार है। आप सूर्य, वायु, अग्नि और चन्द्रमा हैं। देवदेवेश्वर! आप ही धाता, इन्द्र और प्रजापति हैं। सुरश्रेष्ठ! आपके ही प्रसादसे मेरे यज्ञकी सिद्धि हुई है।

राजाके द्वारा की हुई यह स्तुति सुनकर शंख, चक्र और गदा धारण करनेवाले भगवान् विष्णुने कहा—राजन्! तुम कोई वर माँगो।

राजा बोले—ॐकारलिंगके उत्तर भागमें वैदूर्य पर्वतकी चोटीपर आप जनार्दन लिंगके रूपमें निवास करें। यहाँ विधिपूर्वक आपकी पूजा करके मनुष्य श्रीविष्णुधामको प्राप्त हों, पशु-पक्षियोंकी योनिमें न जायँ तथा यमलोकमें भी प्रवेश न करें। यहाँ प्राणत्याग करनेपर मनुष्योंको

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

आपके परम धामकी प्राप्ति हो और इस तीर्थमें पितरोंके निमित्त अन्नदान करनेपर वे पितर आपके प्रसादसे विष्णुधामको प्राप्त करें।

भगवान् विष्णुने कहा—नृपश्रेष्ठ! मैं यहीं अवतार धारण करूँगा और तुमने जो कुछ माँगा है, वह सब मेरे प्रसादसे पूर्ण होगा।

ऐसा कहकर शंख, चक्र और गदा धारण करनेवाले भगवान् विष्णु अपने धामको चले गये। युधिष्ठिर! इस प्रकार राजा इन्द्रद्युम्नके महान् यज्ञका वर्णन किया गया। उस यज्ञसे ही वह पर्वत समस्त संसारमें पुण्यतीर्थके रूपमें विख्यात हुआ। सिद्धेश्वरलिंगको ब्रह्माका और नारायणेश्वरको श्रीहरिका स्वरूप समझो। इसके श्रवण और कीर्तनसे मनुष्य विष्णुलोकमें सम्मानित होता है।

तत्पश्चात् सत्यव्रतपरायण राजाने तीर्थोंका स्तवन किया—पितरोंका उद्धार करनेके लिये समस्त तीर्थोंको मेरा बार-बार नमस्कार है।

तीर्थ बोले—महाभाग! तुम हमसे मनोवांछित वर माँगो।

इन्द्रद्युम्नने कहा—तीर्थगण! आप सब लोग मुझपर अनुग्रह करके ॐकारके समीपवर्ती तीर्थमें निवास करें।

'एवमस्तु' कहकर तीर्थोंने नर्मदा नदीका इस प्रकार स्तवन किया—अनेक कल्पपर्यन्त स्थित रहनेवाली तथा महादेवजीकी सर्वोत्कृष्ट कलास्वरूपा नर्मदादेवीको हम नमस्कार करते हैं। सब लोकोंमें अत्यन्त प्रसिद्ध एवं नदियोंमें श्रेष्ठ नर्मदाको हम मस्तक नवाते हैं। देवि! आप हम तीर्थोंके प्रभावसे नहीं, किंतु स्वभावसे ही परम पवित्र हैं, ठीक उसी तरह जैसे भगवान् सूर्यकी प्रभा और अग्निदेवकी कान्ति पवित्र होती है।

नर्मदाकी स्तुति करके तीर्थोंने इन्द्रद्युम्नसे कहा—राजेन्द्र! जैसे चन्द्रमाकी कला पवित्र होती है, उसी प्रकारसे महानदी नर्मदा भी हैं। यों कहकर सब तीर्थ अन्तर्धान हो गये। तदनन्तर नृपश्रेष्ठ इन्द्रद्युम्नने अर्घ्य देकर गंगाजीकी स्तुति की—'गंगा, भागीरथी, देवि, भोगवती, शुभा, जाह्नवी, मोक्षदा, भद्रा, तारिणी और पापनाशिनी इत्यादि नामोंसे प्रसिद्ध गंगादेवीको मैं नमस्कार करता हूँ। मातः! आप ही स्वर्गमें देवाधिदेवोंसे वन्दित मन्दाकिनी कहलाती हैं। आप ही वेदमाता गायत्री, उमा और कात्यायनी हैं। देवि! आपको साक्षात् महादेवजीने अपने सिरपर धारण किया है। इससे अधिक आपके विषयमें और क्या कहा जा सकता है। भगवान् चन्द्रार्धशेखरको छोड़कर दूसरा कौन आपकी स्तुति करनेमें समर्थ है?'

गंगाजीने कहा—महाराज! मैं प्रसन्न हूँ। तुम कोई वर माँगो।

राजाने कहा—देवेश्वरि! आप सदा यहीं निवास करें।

गंगा बोली—राजेन्द्र! ऐसा ही होगा। मैं अपने एक अंशसे सदा यहीं प्रवाहित होऊँगी।

ऐसा कहकर गंगा अपने स्थानको चली गयीं। इसके बाद राजा इन्द्रद्युम्नने नर्मदादेवीकी स्तुति की—'देवि! तुम्हारे जलके प्रभावसे मैंने देवताओं और पितरोंको सन्तुष्ट किया है। तुमने चराचर प्राणियोंसहित समस्त त्रिलोकीको पवित्र किया है। तुम सम्पूर्ण प्राणियोंकी माता और मनुष्योंको संसार-सागरसे पार उतारनेवाली हो। महादेवि! मेकला, कल्पगा, नर्मदा और जलपूर्णा इत्यादि नामोंसे विख्यात होकर तुम विन्ध्यपर्वतकी शोभा बढ़ाती हो। शुभे! सहस्रों वर्षतक तुम्हारी स्तुतिमें संलग्न रहनेपर भी कौन तुम्हारा भलीभाँति स्तवन कर सकता है।'

इस स्तोत्रसे सन्तुष्ट होकर नर्मदाने कहा—'राजन्! तुम क्या चाहते हो, कहो। मैं तुम्हें वर दूँगी, जिससे सिद्धिको प्राप्त होओगे।' नर्मदाका यह वचन सुनकर ब्राह्मणोंसहित शिवभक्तिपरायण राजाने हँसते हुए कहा—'देवि!

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

यदि मुझे वर देना चाहती हो तो अपने दक्षिण तटसे लेकर उत्तर तटतक सात धाराएँ कर लो।'

नर्मदा बोलीं—राजन्! मेरे प्रभाव और प्रसादसे यह सब हो जायगा। इस बीचमें जो कुछ दान दिया जायगा, उसका पुण्य असंख्य होगा। यहाँ दान देनेवालोंका पुनः इस संसारमें जन्म नहीं होगा। शूद्र, चाण्डाल, मृग, पशु और सर्प आदि भी नीलगंगा-संगममें स्नान करने अथवा प्राण त्यागनेपर स्वर्गधामको जायँगे।

तत्पश्चात् नर्मदाको नमस्कार करके राजा इन्द्रद्युम्न अपने वाहनपर आरूढ़ हुए और सहस्रों राजाओंके साथ अपनी राजधानी देवनिर्मित पुरी अयोध्याको चले गये। वहाँ दीर्घकालतक राज्य करनेके पश्चात् वे स्वर्गलोगमें गये।

युधिष्ठिर! यह प्राचीन इतिहास तुमको सुनाया गया है। जो इसे कहते और सुनते हैं, वे यमलोक नहीं देखते और पापयोनिमें नहीं जाते हैं।

पुराणलक्षण, कलिकालका प्रभाव तथा राजर्षि वसुदानके यज्ञमें प्रकट हुई कपिला और नर्मदाके संगमका माहात्म्य

मार्कण्डेयजी कहते हैं—राजन्! सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर और वंशानुचरित—ये पुराणके पाँच लक्षण हैं*। कलियुगमें मनुष्य प्रायः असमर्थ और अल्पजीवी होंगे। बुद्धिहीन तथा दुराचारपरायण होंगे। स्वाध्याय, वषट्कार, तप और यज्ञ आदि कोई भी सत्कर्म उनके द्वारा न होगा। वे स्त्रियोंकी कामना रखनेवाले और विषयलोलुप होंगे। ब्राह्मण सकामभावसे ही कर्म करनेवाले और याचक होंगे। सदा दान लेंगे और परिवारके भरण-पोषणमें ही आसक्त रहेंगे। स्त्रियोंके प्रति आसक्ति होनेके कारण वे आत्माको नहीं जानेंगे। धर्मिष्ठ और तपस्वी भी कुकर्म करेंगे। कलिकाल आनेपर अधिकांश लोग वाममार्गी और दिगम्बर हो जायँगे। सब प्रजा एक वर्णकी हो जायगी। राजा म्लेच्छ होगा। हीनयुग आनेपर जब भगवान् विष्णुका बौद्धावतार होगा, तब मनुष्य अल्पायु, अल्पवीर्य तथा अल्पपराक्रमी होंगे। नाना प्रकारके देशव्यापी उपद्रव होते रहेंगे। चाण्डालोंके वंशमें उत्पन्न ब्राह्मण वेदोंको पढ़ावेंगे। दूसरोंको वेदका उपदेश करेंगे और अपने वेद बेचेंगे। धन पानेके लोभसे राजाओंके दरबारमें जायँगे। अग्निहोत्र और कन्याओंका विक्रय करेंगे। कलियुगके वेदपाठी ब्रह्मचर्यव्रतसे रहित होंगे। दस-बारह वर्षोंकी बालिका भी गर्भ धारण करेगी। स्त्री अपने पतिका और पुत्र अपने माता-पिताका आदर नहीं करेंगे। बहू सासकी और पुत्री माताकी बात नहीं मानेगी। ये सब बातें यहाँ संक्षेपसे बतायी गयी हैं।

युधिष्ठिर! एक दिव्य कथा श्रवण करो, जो सब पापोंका नाश करनेवाली है।

पूर्वकालमें वसुदान नामवाले एक चक्रवर्ती राजर्षि थे। उनकी राजधानी अयोध्या थी। उनके राज्यमें कोई दीन, दुःखी अथवा दरिद्र नहीं होता था। प्रत्येक गाय स्वयं ही इच्छानुसार दुग्ध देनेवाली और पृथ्वी हरी-भरी खेतीसे सुशोभित थी। एक समय राजर्षि वसुदान वेदके पारंगत ब्राह्मण ऋत्विजोंके साथ यज्ञकी सब सामग्रीका संग्रह करके अमरेश्वरतीर्थमें गये। वहाँ उनका यज्ञ प्रारम्भ हुआ और निर्विघ्न समाप्त भी हो गया। अवभृथके जलसे वहाँकी स्वर्णनिर्मित समूची पृथ्वी भीग गयी। उस यज्ञमें ब्रह्मा, विष्णु और शिवका एक साथ ही पूजन किया गया और वहाँ होमसे दूध और घीकी पृथक्-पृथक् धाराएँ बह निकलीं। गोमूत्रकी भी एक धारा बहने लगी और वेदोंके पारंगत विद्वान् ऋषि-मुनियोंने देवताओंको जो स्नान कराया था, उस जलकी भी एक धारा बह

* सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च। वंशानुचरितं चेति पुराणं पञ्चलक्षणम्॥ (स्क० पु०, आव० रे० ३५। १५)

279 Skandpuran_Section_34_1_Front
In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

चली। इन सब धाराओंके आपसमें मिल जानेपर ब्रह्मर्षियों और देवताओंने देखा, एक नदी बह रही है। वह नदी कपिला नामसे प्रसिद्ध हुई। कपिला और नर्मदाका जहाँ संगम है, वहाँ रुद्रावर्ततीर्थ बताया गया है।

तदनन्तर दक्षिणाओंद्वारा सब ब्राह्मणोंका भलीभाँति सत्कार किया गया। उन्हें नाना प्रकारके वस्त्राभूषणोंसे विभूषित करके हाथी, घोड़े और रथपर बिठाया गया। देवताओंको भी ऐसा ही सत्कार प्राप्त हुआ। सब देवता सन्तुष्ट होकर राजर्षि वसुदानसे बोले—'महाभाग! इस यज्ञसे हम बहुत प्रसन्न हैं, तुम कोई वर माँगो।'

वसुदान बोले—देवताओ! नर्मदा और कपिलाके संगममें स्नान करके जो मनुष्य महादेवजीकी पूजा करते हैं, वे दिव्य विमानोंद्वारा स्वर्गलोकमें जायँ और जिनकी यहाँ मृत्यु हो, वे पुनः संसारमें जन्म न लेकर मुक्त हो जायँ।

देवताओंने कहा—राजन्! तुम्हारे सभी अभीष्ट मनोरथ यथेष्ट सफल होंगे।

ऐसा कहकर सब देवता अपने-अपने विमानपर आरूढ़ हो प्रसन्नतापूर्वक स्वर्गलोकको चले गये। राजर्षि वसुदान भी वेदवेत्ता ब्राह्मणोंके साथ परम आनन्दसे युक्त हो अयोध्यापुरीमें लौट आये। उस तीर्थके प्रभावसे अन्तःपुर एवं परिवारसहित उन्होंने प्रचुर भोगोंका उपभोग किया और अन्तमें वे भगवान् शिवके परम धाममें गये। युधिष्ठिर! इस प्रकार नर्मदा और कपिलाके संगमका वृत्तान्त बताया गया। इसके श्रवण और कीर्तनसे मनुष्यको संसार-बन्धनसे छुटकारा मिल जाता है।

अमरावतीमें भगवान्‌का दैत्यसूदनरूपसे निवास तथा वहाँके अन्यान्य तीर्थों और शिवलिंगोंका माहात्म्य

मार्कण्डेयजी कहते हैं—महाराज! नर्मदाके दक्षिण और कपिलाके पश्चिम तटपर भगवान् विष्णुकी मनोहर पुरी अमरावती है, जिसमें भगवान् लक्ष्मीपति कोटि कल्प और युगोंतक निवास करते हैं। प्राचीन कालमें देवताओं और असुरोंके युद्धमें देवकण्टक दानवोंद्वारा सब देवता परास्त हो गये। उस समय दानवोंके अत्याचारसे पीड़ित होकर पृथ्वीदेवी और ब्रह्मा आदि देवता क्षीरसागरमें शयन करनेवाले भगवान् विष्णुकी शरणमें गये और उन्हें प्रणाम करके इस प्रकार उनकी स्तुति करने लगे—'दैत्योंका अन्त करनेवाले जनार्दन! देव! जगन्नाथ! आपकी जय हो। वेदोंके मूलस्थान जगदीश्वर! हम आपकी शरणमें आये हैं, आप हमारी रक्षा करें।'

इस स्तोत्रको सुनकर भगवान् विष्णुने कहा—ब्रह्मन्! भूलोकमें जो-जो दुर्धर्ष दानव हैं, उन सबका मैं शीघ्र ही नाश करूँगा। ऐसा कहकर भगवान् विष्णु देवताओंके साथ आये और सम्पूर्ण लोकोंके हितके लिये अपने सुदर्शनचक्रसे दैत्योंके मस्तक काटने लगे। तब समस्त दानव भगवान् विष्णुके भयसे थर्रा उठे और पृथ्वी छोड़कर रसातलमें भाग गये। तदनन्तर पुनः ब्राह्मण, देवता और तपस्वीजनोंके यज्ञ पूर्ववत् होने लगे। युधिष्ठिर! उस पुरी (अमरावती)-में भगवान् विष्णु दैत्यसूदनके नामसे प्रतिष्ठित हुए। जो मनुष्य वहाँ प्राणत्याग करता है, वह विमानके द्वारा विष्णुलोकमें सम्मानित होता है। कपिलाके पश्चिममें नीलगंगाका आगमन हुआ है। उसमें स्नान करके मनुष्य कोटितीर्थके सेवनका फल पाता है। सुदर्शन, दैत्यसूदन, विष्ण्वावर्त, शिवावर्त और लक्ष्म्यावर्त—इन तीर्थोंमें जो दान दिया जाता है, उसका पुण्य असंख्य होता है। वहाँ श्रीविष्णुको प्रसन्न करके मनुष्य अनन्त फलका भागी होता है। श्रीविष्णुक्षेत्रका

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth 279 Skandpuran_Section_34_1_Back

प्रमाण एक कोसका बताया गया है। उसके भीतर ब्रह्महत्याका प्रवेश नहीं होता। जो वहाँ एक मासतक उपवास तथा अग्निहोत्र करता है, जो स्त्री वहाँ पातिव्रत्यधर्मका पालन करती है तथा जो मनुष्य स्वाध्याय, यज्ञ, चान्द्रायण, पराक तथा पितरोंका तिल और जलसे तर्पण करते हैं, उनके पितर तृप्त होकर भगवान् विष्णुके धाममें विहार करते हैं और उन मनुष्योंको भी अपने सत्कर्मोंका उत्तम फल प्राप्त होता है। जो एकरात्र, त्रिरात्र, कृच्छ्र, सान्तपन, अतिकृच्छ्र, पर्णकृच्छ्र तथा अन्यान्य वैष्णवव्रत करता है और जो दोनों पक्षोंकी एकादशीको भोजन नहीं करता है, वह इन व्रतोंके द्वारा भगवान् विष्णुके लोकमें पूजित होता है। चाण्डाल, श्वपच अथवा पशु-पक्षीकी योनिमें पड़ा हुआ प्राणी भी यदि इस तीर्थमें अपने प्राणोंका त्याग करता है, तो वह भगवान् विष्णुके लोकमें जाता है। इस तीर्थमें मासोपवासव्रत करनेवाले पुरुषों तथा पतिव्रता स्त्रियोंको देखकर धर्मराज स्वयं ही वहाँ जा उनके लिये अर्घ्य समर्पण करते हैं और उन महात्माओंको वैष्णवलोकका दर्शन कराकर लौट आते हैं। ब्रह्माजीके मानसपुत्र सप्तर्षियोंने एक समय धर्मराजसे पूछा—'धर्म! क्या कारण है कि आप यहाँ स्वयं पैदल विचर रहे हैं? इससे हमें बड़ा विस्मय हुआ है। महाभाग! इसका कारण बताइये?'

यह सुनकर धर्मराजने हँसते हुए कहा— मुनिवरो! मेरे भयंकर दूत पतिव्रता स्त्रियों, मासोपवासी पुरुषों तथा इन सबके विमानोंकी उज्ज्वल दीप्तिकी ओर दृष्टिपात करनेमें असमर्थ हो रहे हैं। इसलिये वे लौट गये हैं। इसीलिये मैं पैदल गया था।

मार्कण्डेयजी कहते हैं— राजन्! अमरावतीमें अमिततेजस्वी भगवान् विष्णुका निवास है। वहाँ किया हुआ श्रीहरिका पूजन कलियुगके दोषोंका नाश करनेवाला है। नर्मदाके उत्तर तटपर एक अन्य श्रेष्ठ देवता हैं, जो ब्रह्मेश्वरके नामसे विख्यात हैं। वे सब पापोंका नाश करनेवाले हैं। उनके पूजनसे पापराशि नष्ट होती है और पितर तृप्त होकर ब्रह्मलोकको प्राप्त होते हैं। लंकेश्वरसे दक्षिण सिद्धलिंग बताया गया है। उसके पूजन और स्पर्शसे गणपतिपदकी प्राप्ति होती है। विश्वेश्वर नामक महालिंग सर्वदेवमय और शुभ है। वैशाख शुक्ला अष्टमीको उसके पूजनसे मनुष्य दस हजार शिवलिंगोंकी पूजाका फल पाता है और भगवान् शिवका अनुचर होता है। महाराज! तत्पश्चात् नर्मदा नदीके उत्तर तटकी यात्रा करे। वहाँ परम सिद्धिदायक पापनाशन लिंग है। वहाँ स्नान, तर्पण और पूजन करनेसे ब्रह्महत्याका नाश होता है। उसके बाद सब पापोंका नाश करनेवाला ऋणमोचन लिंग है। उसके पूजनसे अनेक जन्मोंका ऋण नष्ट हो जाता है। ऋणमोचनके दर्शनपूर्वक तिल और जलकी अंजलि देनेसे पितर तबतक तृप्त रहते हैं, जबतक कि सूर्य, चन्द्रमा और ताराओंकी स्थिति बनी रहती है। नर्मदा और चरुके संगममें शास्त्रोक्त रीतिसे स्नान करके संगमके जल और बिल्वपत्रसे जो महादेवजीको स्नान कराता और उनकी पूजा करता है, उसकी उमा-महेश्वरधामसे कभी पुनरावृत्ति नहीं होती। चतुष्केश्वर नामक एक सिद्धलिंग है, जो आँवलेके फलके बराबर है। देवता और दैत्य उसका पूजन करते हैं। मनुष्य उसे नहीं देख पाते। जो परम धार्मिक पुत्र उस तीर्थमें श्राद्ध करता है, उसके पितर महाप्रलय कालतक तृप्त रहते हैं। चरु नामवाली नदी यज्ञ पर्वतसे निकली है। पूर्वकालमें अपने पुरोहित बृहस्पतिजीके साथ देवराज इन्द्रने यहाँ यज्ञ किया था। तबसे लोकमें समस्त देवताओंद्वारा इसकी परम पवित्र महिमाका गान किया जाता है। वहाँ दारुवन नामसे विख्यात एक तीर्थ है, जो पृथ्वीपर सबके द्वारा सेवित होता है। त्रेतामें साठ हजार तपस्वी मुनियोंने उस तीर्थमें निवास किया था। वे सभी कन्द-मूल-फलका आहार करनेवाले और अग्निहोत्रपरायण थे। इस तीर्थके प्रभावसे उन्हें ब्रह्मलोककी प्राप्ति हुई है। दारुवनमें सब पापोंका नाश करनेवाला एक शिवलिंग है,

279 Skandpuran_Section_34_2_Front Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

जिसके पूजनसे मनुष्य गणपति होता है। वहीं सर्वदेवमय शुभ विमलेश्वर लिंग है। वहाँ स्नान करनेसे मनुष्य स्वर्गमें जाते हैं और जो मरते हैं, उनका पुनर्जन्म नहीं होता। उस तीर्थमें देवता और असुर सबको निर्मल करके पिनाकधारी महादेव अपने धाममें ले जाते हैं। जो वहाँ तिल, जल और पिण्डदान देकर पितरोंको तृप्त करता है, वह भगवान् महेश्वरके परम धामको जाता है। युधिष्ठिर! विमलेश्वर लिंगको तुम साक्षात् महेश्वर ही समझो। वहीं एक व्याघ्रेश्वर लिंग भी है, जहाँ व्याघ्रीको स्वर्गलोककी प्राप्ति हुई थी। उस तीर्थमें तिल, जल और हविष्यका पिण्डदान देनेसे पुत्र अपने पहले और पीछेकी सौ-सौ पीढ़ियोंका उद्धार कर देता है और स्वयं जबतक चौदह इन्द्र व्यतीत होते हैं तबतक वरुणलोकमें निवास करता है। व्याघ्रेश्वरदेवके पूजन, कीर्तन और श्रवणसे मनुष्य इन्द्रलोकको प्राप्त होता है।

अमरकण्टकपर सूत्रयागका माहात्म्य, कावेरी-संगम और पयोष्णी-संगमकी महिमा तथा वहाँके अन्य तीर्थोंके सेवनकी महत्ता

मार्कण्डेयजी कहते हैं—युधिष्ठिर! चन्द्रग्रहण, सूर्यग्रहण, षडशीतिमुख, युगादि, विषुव, व्यतिपात, संक्रान्ति, कार्तिक, माघ तथा वैशाखकी पूर्णिमा,कपिलषष्ठी, वैशाख शुक्ला तृतीया, कार्तिक शुक्ला नवमी, माघकी अमावास्या तथा भाद्रपद कृष्णा त्रयोदशी—ये युगादि तिथियाँ हैं। इन पर्वोंमें सूत्रयाग करना चाहिये। भगवान् शंकरके तुल्य जो पर्वत है, उसे उमासहित महादेवजी तथा गणेशजीका स्वरूप समझकर जो सूतसे लपेटता है, वह सहस्रों युगोंतक स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है। जो स्त्री उस पर्वतको सूतसे आवेष्टित करती है, वह पतिसे संयुक्त एवं पुत्रवती होती है। राजन्! रेशमी सूत अथवा कपासका सूत लेकर उसे नौ तागोंका या दस, बारह, अठारह अथवा चौबीस तागोंका कर ले। फिर उसे कोटितीर्थमें धोवे और गन्ध एवं धूपसे सुवासित करे। तत्पश्चात् उसमें फूलकी माला बाँधे और रातमें दीपावली जलावे। ॐकारतीर्थमें विधिपूर्वक रातमें जागरण करते हुए भगवान् शिवके ध्यानमें तत्पर रहे और निराहार रहकर रात्रि व्यतीत करे। फिर प्रातःकाल ॐकारेश्वरका पूजन एवं उत्सव करे। एकाग्रचित्त होकर अक्षयवटमें सूत बाँधे और सर्वतीर्थमय शुभस्वरूप कोटितीर्थकी यात्रा करे। वहाँसे ऋणमोचन, पापनाशन, नरकेश्वर, गन्धर्वेश्वर और अंगारेश्वरतीर्थमें होते हुए सर्वतीर्थमय ब्रह्मावर्तमें जाय। वहाँ स्नान करके मनुष्य शिवलोकको पाता है। उस तीर्थमें तिल और जल देनेसे पितरोंकी सद्गति होती है। सर्वपापनाशक दारुकेश्वर लिंगके पूजनसे मनुष्य विद्याधर होता है। दारुकेश्वरसे भृगुलिंगके समीप जाय। वहाँ जानेमात्रसे मनुष्य ब्रह्महत्यासे मुक्त हो जाता है। वहाँसे जालेश्वरतीर्थको जाय, जो सब तीर्थोंमें उत्तम है। वहाँ स्नानमात्र करनेवाला मनुष्य फिर इस संसारमें जन्म नहीं लेता। जालेश्वरमें तिल और जलकी अंजलि देनेसे पितरोंको अक्षय गति प्राप्त होती है। जालेश्वरसे पुनः कोटितीर्थमें आवे और विधिपूर्वक स्नान करके ॐकारेश्वर महादेवके श्रीअंगोंमें श्वेत सूत बाँधे। फिर ॐकारेश्वरकी पूजा करके दीपमाला जलावे। तत्पश्चात् इस प्रकार प्रार्थना करे—'महेश्वर! आपके प्रसादसे मेरा यह सूत्रयाग सफल हो।' तदनन्तर यतियोंको भोजन करावे और ब्राह्मणोंको यथाशक्ति दक्षिणा दे। उसके बाद भाई-बन्धु और भृत्यवर्गके साथ पारण करे। जो शारीरिक कष्ट उठाकर शिवपर्वतकी परिक्रमा करता है, उसे पग-पगपर यज्ञका फल प्राप्त होता है।

उत्तर और दक्षिणमें जो तीर्थ हैं, वे भगवान् शिवके साक्षात् स्थान कोटितीर्थमें विलीन होते हैं। समुद्रपर्यन्त पृथ्वीमें जो तीर्थ हैं, वे परम-

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth 279 Skandpuran_Section_34_2_Back

पदस्वरूप कोटितीर्थमें लयको प्राप्त होते हैं। नृपश्रेष्ठ! नर्मदा और अमरावती तथा नर्मदा और ॐकारेश्वरके मध्यभागमें कोटितीर्थ विद्यमान है, जिसमें पातालके एक लाख तीर्थ निवास करते हैं। साक्षात् महादेवजीने कपिला और नर्मदाके बीचमें उन सब तीर्थोंकी स्थापना की है। महाराज! इसके बीच रुद्रावर्तके जलमें जो मनुष्य विधिपूर्वक स्नान करते हैं, वे शिवलोकमें जाते हैं तथा जो नर्मदाके उत्तर तटमें निवास करते हैं, वे रुद्रलोकके निवासी होते हैं। जो वाम भाग (दक्षिण तट)-पर निवास करते हैं, वे विष्णुलोकमें जाते हैं। जो अमरकण्टक पर्वतपर पूर्व और पश्चिम भागमें निवास करते हैं, वे रुद्र, ब्रह्मा और विष्णुके लोकमें जाते हैं। सूर्यग्रहणके समय न्यायोपार्जित धनका कोटितीर्थमें दान करनेसे अनेक प्रकारके पुण्य होते हैं। कावेरीके पूर्वभागमें जहाँतक पर्यंक पर्वत है, उसके बीचमें तीर्थोंकी संख्या दस लाख बतायी गयी है। नर्मदासे लेकर जमदग्नि आश्रमके बीचमें श्रीकण्ठ और नीलकण्ठ नामक शिवलिंग स्थित हैं। नर्मदाके उभय तटोंपर एक कोसके भीतर जितने भी स्वयम्भू देवता हैं, उन सबको सिद्धिदायक जानना चाहिये। वे सभी इच्छानुसार काम, भोग और फल देनेवाले हैं। भारत! यह अमरकण्टक पर्वत जिस प्रकार सब ओरसे पवित्र है, वैसा पवित्र मुझे तीनों लोकोंमें दूसरा कोई पर्वत नहीं दिखायी देता। कोटितीर्थ और अमरकण्टक दोनों ही परम पवित्र हैं। इन्हें स्वर्ग, मोक्ष तथा सम्पूर्ण सिद्धियोंका दाता समझो। चतुर्दशी मंगलवारको जब व्यतिपात योग हो, तब कावेरीसंगममें स्नान करनेसे सहस्रगुना पुण्य होता है। जो शस्त्रद्वारा मारे गये हैं, ऐसे लोगोंके निमित्त वहाँ तिलमिश्रित जलकी अंजलि देनेसे और एकोद्दिष्ट श्राद्ध करनेसे वे स्वर्गलोक पाते हैं। नर्मदा और कावेरीके जल और जंगली तिलसे तृप्त किये हुए पितर परम गतिको प्राप्त होते हैं। सहस्रों धाराओंसे कावेरी नदी इस भूतलपर प्रसिद्ध है। कावेरीके जलसे समस्त पृथ्वी व्याप्त है। नर्मदाके दक्षिण तटपर वाराह और विन्ध्याचलमें सम्पूर्ण देवताओंको प्रत्यक्ष दिखायी देनेवाली पयोष्णी नदी प्रकट हुई है। पूर्वकालमें महादेवजीके आराधना करनेपर साक्षात् पार्वतीस्वरूपा पयोष्णी नदीका प्रादुर्भाव हुआ है। वह यशस्वी वाराह पर्वतके शरीरसे निकली है। उसमें स्नान करनेपर मनुष्य निश्चय ही इस संसारमें जन्म नहीं लेता। युधिष्ठिर! वहाँ तिलोदक देनेसे पितर लाखों वर्षोंतक भगवान् शिवके लोकमें क्रीडा करते हैं। चन्द्रग्रहणके समय वाराह और विन्ध्याचल पर्वतपर कुरुक्षेत्रके समान पुण्य होता है। यह साक्षात् भगवान् शंकरका कथन है। वाराह पर्वतसे लेकर पयोष्णी नदीके संगमतक एक करोड़ तीर्थ बताये गये हैं। पयोष्णीसंगममें सोमावर्त नामक तीर्थकी स्थिति कही जाती है। वह स्थान सब ओरसे पवित्र है। जहाँ चार भुजाधारी पुरुषोत्तम भगवान् श्रीपति निवास करते हैं, उस एक कोसके क्षेत्रको विष्णुक्षेत्र जानना चाहिये। आश्विनमासके कृष्ण पक्षकी चतुर्दशी और अमावास्या तथा शुक्ल पक्षकी प्रतिपदा—ये क्रमशः उस तीर्थके पर्व हैं। चतुर्दशीको चारका योग होनेपर अर्थात् मास, पक्ष, तिथि और विष्णुक्षेत्रका संयोग होनेपर वहाँ अमृतकी धारा बहती है। उस दिन वहाँ तर्पण करनेसे पितर अवश्य ही तृप्त होते हैं। सूर्यग्रहणके समय कुरुक्षेत्रमें जो फल बताया गया है, वह तापी और पयोष्णीके संगममें भी प्राप्त होता है। नर्मदाके दक्षिण पातालसे एक तीर्थ प्रकट हुआ है, जो तीनों लोकोंमें कावेरीकुण्डके नामसे विख्यात हुआ है। उसमें स्नानमात्र करनेसे मनुष्य गणाध्यक्ष पदको प्राप्त करता है। वहाँ कुण्डेश्वर नामक एक सिद्धलिंग है, जो देवताओं और सिद्धोंसे सुसेवित है। उस पवित्र लिंगका जो भूलसे भी पूजन कर लेता है, उसके पुण्यकी कोई संख्या नहीं है। स्वयं प्रकट हुए जो स्वयम्भू लिंग हैं, वे स्वर्ग और मोक्ष देनेवाले हैं। कावेरीमें मनुष्य जहाँ-कहीं भी स्नान करता है, वह अश्वमेधके फलको पाकर विष्णुलोकमें प्रतिष्ठित होता है।

~~~o~~~

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth
~~~

भद्ररुद्रेश्वरकी महिमा, दुर्वासाजीके द्वारा अमरकण्टकका गयातीर्थके तुल्य होना तथा राजा भरतका यज्ञ

मार्कण्डेयजी कहते हैं—राजन्! एक भद्ररुद्रेश्वर नामक लिंग है, जो उत्तम सिद्धियोंको देनेवाला है। पूर्वकल्पमें भद्र और रुद्र नामवाले दो गन्धर्व थे। वे दोनों भाई थे। उन्होंने विधिपूर्वक इस शिवलिंगकी अर्चना करके विद्याधरलोक प्राप्त किया।

आदिकल्पके चाक्षुष मन्वन्तरमें सत्ययुग आनेपर निमि नामसे प्रसिद्ध एक चक्रवर्ती राजा हुए। वे ब्राह्मणके क्रोधसे पक्षी-योनिमें पड़ गये थे। उन्होंने सोमवती अमावास्यामें यहाँ स्नान करके इस तीर्थके माहात्म्यसे पक्षी-योनि त्यागकर स्वर्गलोक प्राप्त किया।

एक समय उग्र तपस्वी दुर्वासा मुनि सब तीर्थोंमें घूम रहे थे। घूमते-घूमते वे पितरोंके हितकी कामनासे पितृतीर्थ गयाजीमें गये। वहाँ स्नान करके महादेवजी तथा ब्रह्माजीकी पूजा करनेके पश्चात् उन्होंने कुश और तिलयुक्त जलांजलि तथा पिण्ड पितरोंके लिये अर्पण किये। पिण्डदान करके दुर्वासाजीने मुनियोंसे कहा—'मुनिश्वरो! मैंने सुना था कि इस तीर्थमें पितरलोग उपस्थित होकर अपने हाथसे पिण्ड ग्रहण करते हैं, वह बात आज मैं नहीं देखता। अतः मेरी तो तीर्थयात्रा व्यर्थ हो गयी।'

मुनि बोले—अमावास्याको यहाँ दिया हुआ पिण्डदान पितरलोग अपने हाथमें लेते हैं, अतः आप अमावास्यातक प्रतीक्षा कीजिये।

दुर्वासाने कहा—अब न तो यहाँ पिण्ड दूँगा और न स्नान एवं दान ही करूँगा।

इसके बाद उन्होंने मुनिवर एरण्डसे कहा—आप क्यों अपने शरीरको क्लेश दे रहे हैं? कमण्डलु हाथमें लेकर ॐकारतीर्थ और नर्मदा नदीकी यात्रा कीजिये। ऐसा कहकर दुर्वासा मुनि ऋषियोंके साथ अमरकण्टक पर्वतपर आये और ॐकारेश्वरकी पूजा करके उनका इस प्रकार स्तवन किया।

दुर्वासा बोले—कालस्वरूप महादेवजीको नमस्कार है। त्रिमूर्तिधारी शिवको नमस्कार है। अव्यक्त और व्यक्तस्वरूप अनन्तानन्तगामी भगवान् शंकरको नमस्कार है। ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद जिनके स्वरूप हैं, उन सर्वज्ञ शिवको नमस्कार है। भवोद्भव! जगन्नाथ! उमाकान्त! आपको नमस्कार है। कल्याणकारी सुखदाता भवको नमस्कार है। मंगलकारी शंकरको नमस्कार है। तीन नेत्रोंवाले आपको नमस्कार है। अर्धचन्द्रधारी, श्रीकण्ठ और नीलकण्ठको नमस्कार है। सर्पोंका आभूषण धारण करनेवाले त्रिशूलधारी रुद्रको नमस्कार है। पिनाक धनुष धारण करनेवाले महादेवको नमस्कार है। प्रभो! आप शर्व, सर्वरूप और चराचर जगत्स्वरूप हैं, आपको नमस्कार है। सुरेश्वर! इस लोक और परलोकमें मेरे अपराधको आप क्षमा करें। देवेश! उमापते! आपके समान दूसरा कोई नहीं है।

यह दिव्य स्तुति सुनकर ॐकारस्वरूपधारी भगवान् शिव बोले—महाभाग! तुम वर माँगो।

दुर्वासाने कहा—देव! यह तीर्थ गयाके समान हो जाय।

भगवान् ॐकार बोले—तपोधन! मेरे प्रसादसे यह तीर्थ आजसे ही गयातुल्य हो जायगा।

इस प्रकार वरदान पाकर ब्रह्मर्षि दुर्वासा अमरकण्टकके पूर्वभागमें मुनियोंके साथ रहने लगे।

मार्कण्डेयजी कहते हैं—महाभाग! तदनन्तर नर्मदातटपर विद्यमान शल्या और विशल्या तीर्थमें जाय। वहाँ स्नान करके मनुष्य स्वर्गलोकको जाता है। उस तीर्थमें अतिशय उत्तम यज्ञेश्वर तथा धूपेश्वर लिंग हैं। उनको सिद्धिदाता और मोक्षदाता जानो। उस तीर्थमें तिल और जलसे तर्पण करनेपर पितर सूर्य, चन्द्रमा और नक्षत्रोंके स्थिति-कालतक तृप्त रहते हैं।

राजन्! सूर्यवंशमें भरत नामसे प्रसिद्ध एक

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

राजा हो गये हैं, जो सम्पूर्ण पृथ्वीका शासन करते थे। एक समय राजा भरतने यज्ञकर्ममें तत्पर हो भृगुपर्वतके दक्षिण भागमें दस योजन विस्तृत यज्ञभूमि निर्माण करायी, जो कुण्ड और यज्ञमण्डपसे सुशोभित थी। यज्ञकी सब सामग्रियोंसे सम्पन्न हो वेदमन्त्रोंके उच्चारणकी ध्वनिसे आकाश और पृथ्वीको गुँजाते हुए महाराज भरतने यज्ञ प्रारम्भ किया। उन्होंने होमसे सप्तलोकवासी देवताओंको तृप्त किया। इस प्रकार अमित तेजस्वी राजाका यज्ञ अभी चल ही रहा था कि उसका विध्वंस करनेके लिये भयानक रूपवाले राक्षस माल्यवान्, सुमाली, सुकेशी, शंख और दूषण आदि सहस्रोंकी संख्यामें आ धमके। उन्होंने यज्ञकी समस्त वस्तुएँ नष्ट-भ्रष्ट कर डालीं। सब देवता भाग चले, ऋत्विज मार गिराये गये। इस प्रकार राक्षसोंद्वारा उस यज्ञके नष्ट किये जानेपर राजा भरत आहुतिसे प्रज्वलित हुए अग्निकी भाँति क्रोधसे जल उठे और समस्त राक्षसोंका उन्होंने संहार कर डाला। तत्पश्चात् अपने ब्राह्मण ऋत्विजोंको राक्षसोंद्वारा भयभीत, धराशायी तथा मारे गये देख उन्हें बड़ा शोक हुआ। वे देवमन्त्री बृहस्पतिजीसे बोले—'ब्रह्मन्! आप सब देवताओंके गुरु, तीनों कालकी बातें जाननेवाले तथा त्रिवेदवेत्ता हैं। देवकण्टक राक्षसोंने मेरे लिये आये हुए इन ब्राह्मणोंकी हत्या कर डाली है। इसका प्रायश्चित्त मुझे क्या करना चाहिये।'

बृहस्पतिजी बोले—नृपश्रेष्ठ! मैं तुम्हें संजीवनी विद्या देता हूँ।

उस विद्याके प्रभावसे राजाने सब ब्राह्मणोंको जीवित किया। नूतन जीवन पाकर ब्राह्मणोंने देवगुरु बृहस्पतिकी बड़ी प्रशंसा की। तदनन्तर पूर्ण तथा उत्तम दक्षिणासे युक्त वह यज्ञ समाप्त हुआ। यज्ञमें जो यूप गड़े थे, उन्हींके मूलसे वहाँ शल्या और विशल्या नामवाली दो नदियाँ प्रकट हुईं। वे दोनों लोकपावनी नर्मदामें मिल गयीं। इसके बाद देवतालोग अपने-अपने विमानपर आरूढ़ हो स्वर्गको चले गये। राजा भरतने भी ब्राह्मणोंके साथ अपनी पुरीमें प्रवेश किया। भरतेश्वरलिंग ब्रह्मयोनिमें स्थित है।

ब्रह्माजीके द्वारा सौम्या इष्टिसे दानवोंका निवारण तथा रुद्रके एक सौ एक नामोंद्वारा शिवजीका स्तवन

मार्कण्डेयजी कहते हैं—राजन्! जो 'ॐ' इस एक अक्षरका जप और उसके अर्थभूत परब्रह्म परमात्माका चिन्तन करते हुए शरीरका त्याग करता है वह परम गतिको प्राप्त होता है।* वेदमाता गायत्री ॐकारसे ही प्रकट हुई हैं। 'ॐ' इस एक अक्षरवाले तत्त्वमें ब्रह्मा, विष्णु और शिव तीनों प्रतिष्ठित हैं। ॐकार ही वेदका मूल है। उसीसे श्रुतिरूपा शाखाएँ फैली हुई हैं। स्मृति और आगम ये फल, फूल एवं पत्ते हैं। जैसे ॐकार सब विद्याओंका आदि है, उसी प्रकार भगवान् महेश्वर सम्पूर्ण देवताओंके आदि हैं। तीनों सन्ध्याएँ, तीनों काल, त्रिविध अग्नि, तीनों लोक तथा धर्म, अर्थ और काम—ये तीन वर्ग—सभी ॐकारमें ही स्थित हैं।

युधिष्ठिर! स्वायम्भुव मन्वन्तरके आदिकल्पके सत्ययुगमें नर्मदाके तटपर रहनेवाले देवताओंको कंकोल, कालिकेय और कालक नामवाले दानवोंने परास्त करके वहाँसे मार भगाया। वे देवता ब्रह्माजीके साथ महादेवजीकी शरणमें गये। तब सात पातालोंको भेदकर '**ॐ भूर्भुवः स्वः**' का उच्चारण करते हुए पर्वतसे एक लिंग प्रकट हुआ, जो प्रज्वलित कालाग्निके समान कान्तिमान् था। उन लिंगरूपी

* ओमित्येकाक्षरं राजन् व्याहरन् समनुस्मरन्। यः प्रयाति त्यजन् देहं स याति परमां गतिम्॥
(स्क० पु०, आव० रे० ४७। १९-२०)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

भगवान् शिवने कहा—'ब्रह्मन्! तुम लोकोंमें शान्ति स्थापित करनेवाली सौम्या इष्टिको अपने रुचिके अनुसार करो। इसके लिये मैंने तुम्हें वेद समर्पित किये हैं।' तब ब्रह्माजीने दैत्योंका विनाश करनेवाली रौद्री इष्टि तथा लोकोंमें शान्ति स्थापित करनेवाली सौम्या इष्टिका अनुष्ठान किया। उस भयंकर इष्टिको देखकर ब्रह्माजीके शापके भयसे उद्विग्न हो सब दानव दसों दिशाओंमें भाग गये। भगवान् ॐकारके प्रभावसे देवता निर्भय हो गये। उस समय सुरेश्वर शिवका पूजन करके देवताओंने स्वर्गलोकको प्रस्थान किया। मार्कण्डेयलिंग, अविमुक्तलिंग, केदारलिंग, अमरेश्वर ओंकारलिंग तथा महाकाललिंग—इन पाँच पवित्र शिवलिंगोंका जो प्रतिदिन प्रातःकाल उठकर कीर्तन करता है, वह सब तीर्थोंके सेवनका फल पाकर शिवलोकमें प्रतिष्ठित होता है। जिसके चार कोसके अंदर ब्रह्महत्या नहीं प्रवेश करती, उस कावेरीके तटपर आग्नेयलिंग और सिद्धलिंग विद्यमान हैं। वहीं शिवखात नामक तीर्थ है, जिसमें स्नानमात्र करनेवाला मनुष्य फिर संसारमें जन्म नहीं लेता। जो कोई वहाँ पितरोंके लिये श्राद्ध एवं तिलोदक देता है, उसने मानो कोटिसहस्र युगोंतकके लिये पितरोंको तृप्त कर दिया है।

युधिष्ठिर! तदनन्तर भगवान् ॐकारने ब्रह्माजीको मन्त्रोपदेश किया। ब्रह्माजीने उनका उपदेश सुनकर इस प्रकार उनकी स्तुति की—'जो आकाशके तुल्य सर्वत्र व्यापक तथा आकाशका भी संहार करनेवाले हैं, जिनका कहीं अन्त नहीं है, कोई स्वामी नहीं है, जो अमृत एवं ध्रुवस्वरूप हैं, उन भगवान् शिवको नमस्कार है। जो कल्याणकी उत्पत्तिके स्थान, सनातन, योगासनपर विराजमान, योगाभ्यासपरायण तथा आकाशको हर लेनेवाले हैं, उन भगवान् शंकरको नमस्कार है। ॐकारस्वरूप एवं सबकी उत्पत्तिके कारण शिवको नमस्कार है। सर्वेश्वर शिवको नमस्कार है। सबकी उत्पत्तिके कारण शिवको नमस्कार है। सर्वेश्वर शिवको नमस्कार है। मूर्द्धारूप तत्पुरुषको, मुखस्वरूप अघोरको, हृदयस्वरूप वामदेवको, गुह्यस्वरूप सद्योजातको और सर्वमूर्ति ॐकारको बार-बार नमस्कार है। (यहाँतक भगवान् रुद्रके सोलह नाम पूरे होते है*।) (१७) कलातीत, (१८) अव्यय, (१९) बुद्ध, (२०) वज्रदेहोपमर्दन, (२१) अध्यक्ष, (२२) विधु, (२३) शास्ता, (२४) पिनाकी, (२५) त्रिदशाधिप, (२६) अग्नि, (२७) रुद्र, (२८) हुताश, (२९) पिंगल, (३०) पावन, (३१) हर, (३२) ज्वलन, (३३) दहन, (३४) वस्तु, (३५) भस्मान्त, (३६) क्षमन्तक, (३७) अपमृत्युहर, (३८) धाता, (३९) विधाता, (४०) कर्त्ता, (४१) काल, (४२) धर्मपति, (४३) शास्ता, (४४) वियोक्ता, (४५) अनवम (न्यूनतारहित), (४६) प्रिय, (४७) निमित्त, (४८) वारुण, (४९) हन्ता, (५०) क्रूरदृष्टि, (५१) भयावह, (५२) ऊर्ध्वदृष्टि, (५३) विरूपाक्ष, (५४) दंष्ट्रावान्, (५५) धूम्रलोचन, (५६) बाल, (५७) अतिबल, (५८) पाशहस्त, (५९) महाबल, (६०) श्वेत, (६१) विरूप, (६२) रुद्र, (६३) दीर्घबाहु, (६४) जडान्तक, (६५) शीघ्र, (६६) लघु, (६७) वायुवेग, (६८) भीम, (६९) वडवामुख, (७०) पंचशीर्षा, (७१) कपर्दी, (७२) सूक्ष्म, (७३) तीक्ष्ण, (७४) क्षपान्तक, (७५) निधीश, (७६) रौद्रवान्, (७७) धन्वी, (७८) सौम्यदेह, (७९) प्रमर्दन, (८०) अनन्त-पालक, (८१) धार, (८२) पातालेश, (८३) सधूम्र, (८४) शाश्वत, (८५) शर्व, (८६) सर्वपिंग, (८७) करालवान्, (८८) विष्णु, (८९) ईश, (९०) महात्मा, (९१) सुख, (९२) मृत्युविवर्जित,

* (१) व्योमसंख्यायी, (२)सर्वव्यापी व्योमहर, (३) अनन्त, (४) अनाथ, (५) अमृत, (६) ध्रुव, (७) शाश्वतशम्भव, (८) योगपीठसंस्थित, (९) नित्ययोगयोगी, (१०) शिव, (११) सर्वप्रभव, (१२) ईशान, (१३) तत्पुरुष, (१४) अघोर, (१५) वामदेव, (१६) सद्योजात।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

(९३) शम्भु, (९४) विभु, (९५) गणाध्यक्ष, (९६) त्र्यक्ष, (९७) दिवस्पति, (९८) समवाद, (९९) विवाद, (१००) प्रभविष्णु, (१०१) बिवर्धन। ये एक सौ एक रुद्रोंके नाम बताये गये हैं। ये सभी ॐकारमें प्रतिष्ठित हैं। इस प्रकार स्तुति करके ब्रह्माजीने भूमिपर लोटकर देवाधिदेव महेश्वरको साष्टांग प्रणाम किया और उनकी परिक्रमा करके मन-ही-मन उनके स्वरूपका चिन्तन करते हुए वे खड़े हो गये।'

ब्रह्माजीद्वारा किया हुआ यह स्तवन सुनकर महादेवजीने कहा—ब्रह्मन्! मैं तुम्हारे इस दिव्य स्तोत्रसे बहुत प्रसन्न हूँ, तुम कोई वर माँगो।

ब्रह्माजी बोले—देवेश्वर! जो ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य आपमें मन लगाकर ॐकारस्वरूप आपके आगे इस रुद्रस्तोत्रका पाठ करेंगे, वे इहलोक और परलोकमें समस्त कामनाओंको प्राप्त करेंगे। एकोत्तरशत नामका नित्य पाठ करके मनुष्य स्वर्गमें जाता है और जिस-जिस वस्तुकी कामना करता है, उस-उसको अवश्य प्राप्त कर लेता है।

ऐसा कहकर ब्रह्माजी भगवान् महेश्वरको नमस्कार करके दिव्य विमानपर आरूढ़ हो प्रसन्नतापूर्वक अपने लोकको चले गये।

कपिला-नर्मदा-संगम और ईशान आदि तीर्थोंकी महिमा, यमलोकके मार्गके कष्टों तथा अट्ठाईस नरककोटियोंका वर्णन

मार्कण्डेयजी कहते हैं—महाभाग! जहाँ कपिला और नर्मदाका संगम हुआ है, वहाँ चार हाथके भीतर सप्तपातालवासिनी पिप्पला नदी आकर मिली है। वहीं दो आवर्त बताये गये हैं—कपिलावर्त और पिप्पलावर्त। उस तृप्तिदायक तीर्थको प्राप्त करनेकी पितरलोग भी इच्छा करते हैं। अतः पुत्रको चाहिये कि उस तीर्थमें जाकर पितरोंके लिये यत्नपूर्वक जलांजलि और पिण्डदान दे। जो कोई इस तीर्थमें अमरनाथका दर्शन करता है, उसे अश्वमेध-यज्ञका फल प्राप्त होता है। चन्द्रग्रहण और सूर्यग्रहण आदि पर्वके अवसरपर उसका विशेष फल होता है। एक दूसरा ईशानतीर्थ है, जिसके विषयमें पहले सामान्यरूपसे चर्चा की गयी है। वह कपिलाके पूर्व भागमें थोड़ी ही दूरपर स्थित है। उस ईशान-लिंगकी अर्चनासे मनुष्य गणाध्यक्ष पदको प्राप्त होता है। भगवती पार्वतीजीने स्त्रियोंके लिये प्रसन्नतापूर्वक यह वरदान दिया है कि 'कपिलामें चतुर्दशी और अष्टमीको स्नान करनेसे नारी सौभाग्यवती होती है और उसका पुत्र चिरंजीवी होता है। शिवजीने भी इस वरदानका अनुमोदन किया है। कपिला नदी जहाँसे निकली है और जहाँ नर्मदामें जाकर मिली है, वहाँतक आठ हजार तीर्थ हैं, जो इच्छानुसार फल देनेवाले हैं। उन तीर्थोंमें कपिला गौका दान करे और यथाशक्ति ब्राह्मणोंको भोजन करावे। वहाँ सदा उपवास करके देवताओं और पितरोंका तर्पण करे। वहीं हेमजालेश्वर नामक सिद्धिदायक लिंग है, हेमजालेश्वर देवकी अर्चना करनेसे मनुष्य यमलोकको नहीं देखता। पूर्वकालमें वसुदान नामवाले एक राजर्षि हो गये हैं, जिन्होंने धुन्धु दैत्यको मारकर धुन्धुमार नाम धारण किया था। वे इस तीर्थके माहात्म्यसे स्वर्गलोकमें देवभावको प्राप्त हुए। नृपश्रेष्ठ! वहाँ जम्बुकेश्वर नामसे प्रसिद्ध एक शिवलिंग है जो पशु-पक्षियोंकी योनिसे छुटकारा दिलानेवाला है। इस पृथ्वीपर नैमिषारण्यतीर्थ, काशीतीर्थ और प्रयागतीर्थ हैं, परंतु अमरेश्वरतीर्थ तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध है, जिसे तैंतीस कोटि देवता तथा असुर भी मस्तक नवाते हैं। महाराज! वहाँ स्नान करनेवाला मनुष्य अश्वमेध यज्ञका फल पाता है। सारस्वतलिंग ब्रह्महत्याका नाश करनेवाला है।

युधिष्ठिरने पूछा—विप्रवर! कौन मनुष्य

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

यमराजके लोकमें जाते हैं और यमलोकके नरक कैसे हैं? ये सब मुझे बताइये।

मार्कण्डेयजीने कहा—सब दानोंमें अन्नदानको उत्तम माना गया है। वह सबको प्रसन्न करनेवाला, पुण्यजनक तथा बल और पुष्टिको बढ़ानेवाला है। तीनों लोकोंमें अन्नदानके समान दूसरा कोई दान नहीं है। अन्नसे ही प्राणी उत्पन्न होते और अन्नका अभाव होनेपर मर जाते हैं। शरीरमें रक्त, मांस, मज्जा और वीर्य—ये सब अन्नसे ही क्रमशः बनते हैं। वीर्यसे ही प्राणियोंकी उत्पत्ति होती है। इसलिये सम्पूर्ण जगत् अन्नमय है। सुवर्ण, रत्न, अश्व, हाथी, स्त्री, माला और चन्दन आदि भोगसामग्रियोंसे भी अन्नभोजनके समान सुख नहीं मिलता। युधिष्ठिर! इस कारण अन्नदान महान् पुण्यदायक है। अन्नदाताको प्राणदाता कहा गया है। अतः सदा ही अन्नदान करना चाहिये। इस लोक और परलोकमें अन्नपान आदि जो कुछ भी ऐश्वर्य है, वह सब अन्नदानका ही फल बताया गया है। जो पापी मनुष्य कुकर्म करते और ऐसे दानसे मुँह मोड़ते हैं, वे अत्यन्त भयानक दक्षिण मार्गसे यमलोकको जाते हैं। यमलोक सब ओरसे छियासी हजार योजन विस्तृत है। वहाँ नाना प्रकारके भयानक रूप धारण करनेवाले यमदूत रहते हैं और उन्हींके कारण वह पुरी बड़ी भयंकर प्रतीत होती है। दुष्टात्मा, क्रूर एवं पापी पुरुषोंके लिये यमपुरी दूर होनेपर भी निकट-सी ही प्रतीत होती है। वे तीखे काँटोंसे युक्त, कंकड़-पत्थरोंसे विभूषित, छुरेकी धारोंसे आच्छादित और तीक्ष्ण पत्थरोंसे निर्मित मार्गसे यात्रा करते हैं। कहीं लकड़ी चीरनेवाले घातक आरोंसे और कहीं लोहेकी भयंकर सूइयोंसे वे मार्ग भरे होते हैं। कहीं फैली हुई लताओंके कारण दुर्गम एवं वृक्षश्रेणियोंसे व्याप्त पर्वत उन मार्गोंको रोके रहते हैं। यमपुरीके मार्गमें कहीं भयंकर गड्ढे तथा तपे हुए ढेले और ईंटें रहती हैं, कहीं तपायी हुई बालू बिछी होती है, कहीं तीखी नोकवाली कीलें गड़ी होती हैं और अनेक टूटी हुई गलियोंसे मार्ग आच्छादित रहता है। ऐसे भयंकर अन्धकारसे ढके हुए कष्टदायक मार्गसे पापियोंको यमलोकमें जाना पड़ता है। उन मार्गोंमें तपे हुए अंगारे बिछे होते हैं और दहकते हुए दावानलका सामना करना पड़ता है। कहीं तपायी हुई शिलाएँ रखी रहती हैं और कहीं इतनी कीचड़ होती है कि चलनेवाले जीवका शरीर कटि (कमर)-तक उसमें डूब जाता है। कहीं दूषित जल और कहीं कण्डियोंकी सुलगती हुई आगसे वह मार्ग व्याप्त रहता है। कहीं गीध, वक, व्याघ्र, दुष्ट कीट, बिच्छू, अजगर, भयानक मच्छर और जहरीले साँप, मतवाले हाथी, सिंह और भैंसे आदि जीवोंसे यमपुरीका मार्ग भरा रहता है। भयंकर डाकिनी, शाकिनी, विकराल राक्षस, महाघोर व्याधि, दुर्धर्ष अग्नि, प्रचण्ड आँधी, बड़े-बड़े पत्थरोंकी भारी वर्षा आदिका कष्ट सहन करते हुए पापी जीव यमलोककी यात्रा करते हैं। कहीं-कहीं उनपर चारों ओरसे बाणवर्षा की जाती है और कहीं बिजलियाँ गिरती हैं। कहीं दारुण उल्कापात होता है और कहीं दहकते हुए अंगारोंकी वृष्टि होती है तथा इन सबका आघात सहते हुए उन्हें आगे बढ़ना पड़ता है। कहीं बड़ी भयानक आवाज होती है, जिससे वे बार-बार थर्रा उठते हैं। कहीं सब ओरसे पैने अस्त्र-शस्त्रोंकी बौछारसे भरे हुए मार्गके बीचसे निकलना पड़ता है। कहीं अत्यन्त खारे जलकी धारासे वे बार-बार नहा उठते हैं। अत्यन्त सर्दी और छुरेकी धार आदिका कष्ट भोगते हैं। अनेक प्रकारके सहस्रों क्लेशोंका सामना करते हैं। इस प्रकार यमलोकका मार्ग सन्तापपूर्ण, भयंकर, दुर्गम तथा विश्रामरहित होता है। वह सब दुःखोंका आश्रय एवं कष्टप्रद होता है। यमकी आज्ञाका पालन करनेवाले महाघोर यमदूत उसी मार्गसे बलपूर्वक पापियोंको ले जाते हैं। वे सभी जीव अकेले, पराधीन तथा मित्र और बन्धु-बान्धवोंसे रहित होते हैं। अपने कुकर्मोंके लिये बार-बार शोक करते और दग्ध होते रहते हैं। वे प्रेतों

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

और भूतोंके साथ होते हैं। उनके कण्ठ, तालू और ओठ सूखे रहते हैं। शरीर दुर्बल और मन अत्यन्त भयभीत होता है। उन्हें बार-बार आगसे जलाया जाता है। कोई सींकचोंमें बँधे होते हैं, कुछ पापी गंदगीमें डूबे रहते हैं और कुछ प्रचण्ड बलवान् यमदूतोंद्वारा जलाये और खींचे जाते हैं। किसीकी छातीमें, किसीके मुँहके नीचेके भागमें और किसीके केशोंमें रस्सी बाँधकर घसीटा जाता है। कितने ही जीवोंके ललाटमें बाण धँसाकर उन्हें खींचा जाता है। कितनोंको उत्तान लिटाकर उस दुर्गम मार्गपर घसीटते हुए ले जाया जाता है। कोई पसलीमें बँधे होते हैं, कोई भुजाओंमें, कोई पेट या कमरमें बाँधे जाते हैं; किन्हींके गलेमें फंदा डालकर घसीटा जाता है और वे अत्यन्त दुःखी होते हैं। किन्हींकी जीभमें कील धँसायी जाती है। किन्हींको अर्धचन्द्राकार हाथसे गलेमें पकड़कर (गरमेंचा देकर) इधर-उधर धक्का दिया जाता है। किन्हींके लिंग और अण्डकोषमें रस्सी बाँधकर उन्हें खींचा जाता है। कितने ही पापियोंके हाथ, पैर, कान, ओठ, नासिका, शिश्न, अण्डकोष, मस्तक तथा अन्यान्य अंग काट लिये जाते हैं। कोई अंकुशोंसे छेदे जाते हैं। किन्हींको साँप और बिच्छू काट खाते हैं तथा वे पापी जीव अनाथ, निराश्रय होकर इधर-उधर भागते और चिल्लाते रहते हैं। मुद्गरों और लोहेके डंडोंसे उनपर बार-बार मार पड़ती है। उन्हें भयंकर कोड़ोंसे भी पीटा जाता और भिन्दिपालोंद्वारा पीड़ित किया जाता है। उनके मुँहसे रक्त निकलता रहता है। वे कभी पानीमें गिरा दिये जाते हैं और कभी धूपसे सन्तप्त होकर छायाके लिये प्रार्थना करते हैं।

दानहीन मनुष्योंको इसी प्रकार दुर्दशा भोगते हुए यमलोकमें जाना पड़ता है। जिन्होंने अपने पापोंका प्रायश्चित्त कर लिया है, वे यमलोकमें सुखपूर्वक जाते हैं। इस तरह उस निकृष्ट मार्गसे यमराजके नगरमें गये हुए पापी जीव आज्ञा मिलनेपर दूतोंद्वारा यमराजके सम्मुख पहुँचाये जाते हैं। वहाँ चित्रगुप्त उन पापियोंको धर्मोपदेश करते हुए उनके पापोंका स्मरण कराते हैं और इस प्रकार कहते हैं—'अरे ओ पापाचारियो! ओ पराये धनको हड़प लेनेवाले लुटेरो! तुमलोगोंने अपने रूप और बलके घमण्डमें आकर परायी स्त्रियोंका सतीत्व नष्ट किया है। तुम्हें ज्ञात होना चाहिये कि जो जिस कर्मको करता है, उसीको उस कर्मका फल भोगना पड़ता है। फिर तुमने अपना ही सत्यानाश करनेके लिये पाप क्यों किया? और अब अपने उन्हीं कर्मोंके कारण जब क्लेश भोगना पड़ता है, तब दुखी क्यों होते हो? सबको अपने-अपने कर्म ही भोगने पड़ते हैं, इसमें किसीका कोई दोष नहीं है।'

तदनन्तर चित्रगुप्तजी यमराजसे कहते हैं—'स्वामिन्! ये भूलोकसे राजालोग आये हैं। इन्हें अपनी बुद्धि और बलपर बड़ा घमण्ड था; ये सभी नरेश अपने भयंकर दुष्कर्मोंसे प्रेरित होकर यहाँ आये हैं।' यमराजसे ऐसा कहकर वे उन राजाओंको सम्बोधित करके कहते हैं—'दुराचारी नरपालो! तुम सब लोग प्रजाका सर्वनाश करनेवाले रहे हो। तुमने थोड़े समयके लिये राज्य पाकर ऐसा पापकर्म क्यों किया? राज्यके लोभसे, मोहवश, अन्यायपूर्ण वृत्तियोंको अपनाकर तुमने जिन पापोंका संग्रह किया है, उनके यथार्थ फलका उपभोग करो। अरे! जिनके लिये तुमने अशुभ कर्म किये हैं, वह राज्य और वे स्त्रियाँ अब कहाँ हैं? वह सब कुछ छोड़कर तुम अकेले यहाँ आये हो। जिनके लिये तुमने प्रजाको सताया और नष्ट किया है, वे तुम्हारे भाई-बन्धु अब तुम्हारी यह यातना नहीं देख पा रहे हैं। इस समय यमदूत जब तुम्हें ऊँचेसे नीचे गिराते हैं, तब उन कर्मोंका कैसा मजा मिल रहा है।'

युधिष्ठिर! इस प्रकार चित्रगुप्तके अनेक तरहके कठोर वचनोंद्वारा उपालम्भ देनेपर वे राजालोग अपने-अपने कर्मोंको सोचते हैं और मौन रह जाते हैं। तदनन्तर धर्मराज यम उनके पापकी शुद्धिके लिये दूतोंको आज्ञा देते हैं—'चण्ड! महाचण्ड! तुम लोग इन राजाओंको पकड़कर

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

नरकोंकी आगमें तपाओ और इन्हें पापोंसे शुद्ध करो।' तब वे दूत शीघ्र उठकर उन राजाओंके पाँव पकड़ लेते हैं और वेगपूर्वक घुमाते हुए उन्हें खूब तपी हुई भूमिपर फेंक देते हैं और लोहेके वृक्षोंपर भी पटक देते हैं। उन प्रहारोंसे जर्जर होकर वे राजा अचेत और निश्चेष्ट हो जाते हैं। फिर वायुका स्पर्श होनेपर वे धीरे-धीरे सचेत होते हैं। तब उन्हें पापसे शुद्ध करनेके लिये यमदूत नरकके समुद्रमें डाल देते हैं। नरकोंकी अट्ठाईस श्रेणियाँ हैं, जो सातवें पातालके अन्तमें घोर अन्धकारके भीतर स्थित हैं। (१) अतिघोरा, (२) रौद्रा, (३) घोरतमा, (४) अत्यन्त दुःखजननी, (५) घोररूपा, (६) तरणतारा, (७) भयानका, (८) कालरात्रि, (९) घटोत्कटा, (१०) चण्डा, (११) महाचण्डा, (१२) चण्डकोलाहला, (१३) प्रचण्डा, (१४) वराग्निका, (१५) जघन्या, (१६) अवरालोमा, (१७) भीषणी, (१८) नायिका, (१९) कराला, (२०) विकराला, (२१) वज्रविंशति, (२२) अस्ता, (२३) पंचकोणा, (२४) सुदीर्घा, (२५) परिवर्तुला, (२६) सप्तभौमा, (२७) अष्टभौमा और (२८) दीर्घमाया—ये ही नरकोंकी अट्ठाईस कोटियाँ हैं। इन सबके क्रमशः पाँच-पाँच नायक होते हैं। इनमें पहला रौरव है, क्योंकि उसमें पड़े हुए प्राणी रोते रहते हैं। दूसरा महारौरव है, जिसकी दुःसह पीड़ाओंसे महान् साहसी भी रो देते हैं। तीसरा तम, चौथा शीत और पाँचवाँ उष्ण है—इस प्रकार पहली कोटिके ये पाँच नायक माने गये हैं। दूसरी कोटिके १ अघोर, २ तीक्ष्ण, ३ पद्म, ४ संजीवन और ५ शठ—ये पाँच नायक हैं। तीसरी कोटिके नायक हैं—१ महामाय, २ विलोम, ३ कण्टक, ४ कटक और ५ तीव्र। चौथी कोटिके नायक १ वाम, २ कराल, ३ किंकराल, ४ प्रकम्पन और ५ महाचक्र हैं। पाँचवी कोटिके नायक १ सुपद्म, २ कालसूत्र, ३ प्रगर्जन, ४ सूचीमुख और ५ सुनेमि हैं। छठी कोटिके नायक १ खादक, २ सुप्रपीडित, ३ कुम्भीपाक, ४ सुपाक और ५ क्रकच हैं। सातवीं कोटिके नायक १ सुदारुण, २ अंगाररात्रि, ३ पचन, ४ असृक्पूयभव तथा ५ सुतीक्ष्ण हैं। आठवीं कोटिके १ शुण्ड, २ शकुनि, ३ महासंवर्तक, ४ क्रतु और ५ तप्तजन्तु—ये पाँच नायक हैं। नवीं कोटिके नायक १ पंकलेप, २ पूतिमान्, ३ ह्रद, ४ त्रपु और ५ उच्छ्वास हैं। दसवीं कोटिके नायक १ निरुच्छ्वास, २ सुदीर्घ, ३ क्रूर, ४ शाल्मलि और ५ उष्ट्रित हैं। ग्यारहवीं कोटिके नायक १ महानाद, २ प्रवाह, ३ सुप्रवाहन, ४ वृषाश्रय तथा ५ वृषश्व हैं। बारहवीं कोटिके १ सिंहानन, २ व्याघ्रानन, ३ गजानन, ४ श्वानन और ५ सूकरानन—ये पाँच नायक हैं। तेरहवीं कोटिके नायक १ अजानन, २ महिषानन, ३ मेषानन, ४ मूषकानन तथा ५ खरानन हैं। चौदहवीं कोटिके १ ग्राहानन, २ कुम्भीरानन, ३ नक्रानन, ४ महाघोर और ५ भयानक—ये पाँच नायक हैं। पंद्रहवीं कोटिके नायक १ सर्वभक्ष, २ स्वभक्ष, ३ सर्वकर्मा, ४ अश्व तथा ५ वायस हैं। सोलहवीं कोटिके नायक १ गृध्रोलूक, २ उलूक, ३ शार्दूल, ४ कपि और ५ कच्छुर हैं। सत्रहवीं कोटिके १ गण्डक, २ पूतिवक्त्र्य, ३ रक्तास्य, ४ पूतिमूत्रिक और ५ कणधूम्र—ये पाँच नायक हैं। अठारहवीं कोटिके नायक १ तुषाराग्नि, २ कृत्रिमान्, ३ निरय, ४ आतोद्य और ५ प्रतोद्य हैं। उन्नीसवीं कोटिके नायक १ रुधिरोद्य, २ भोजन, ३ कालात्मग, ४ अनुभक्ष और ५ सर्वभक्ष हैं। बीसवीं कोटिके १ सुदारुण, २ कर्कट, ३ विशाल, ४ विकट और ५ कटपूतन—ये पाँच नायक हैं। इक्कीसवीं कोटिके नायक १ अम्बरीष, २ कटाह, ३ कष्टदायिनी वैतरणी, ४ सुतप्त तथा ५ लोहशंकु हैं। बाईसवीं कोटिके नायक १ एकपाद, २ अश्रुपूरण, ३ घोर असिपत्रवन, ४ प्रतिष्ठित अस्थिलिंग और ५ तिलयन्त्र हैं। तेईसवीं कोटिके १ अतसीयन्त्र, २ इक्षुयन्त्र, ३ कूट, ४ पाप तथा ५ प्रमर्दन—ये पाँच नायक हैं। चौबीसवीं कोटिके नायक १ महाचुल्ली, २ विचुल्ली, ३ तप्त लोहमयी शिला, ४ क्षुरधार

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

पर्वत तथा ५ मय हैं। पचीसवीं कोटिके नायक १ यमल पर्वत, २ सूचीकूप, ३ विष्ठाकूप, ४ अन्धकूप और ५ पतन हैं। छब्बीसवीं कोटिके १ पातन, २ मुसली, ३ वृषली, ४ अशिवा तथा ५ संकटला—ये पाँच नायक हैं। सत्ताईसवीं कोटिके नायक १ तालपत्र वन, २ असिगहन, ३ महामोहक, ४ सम्मोहन तथा ५ अस्थिभंग हैं। अट्ठाईसवीं कोटिके नायक १ तप्ताचलमय, २ अगुण, ३ बहुदुःख, ४ महादुःख तथा ५ कश्मल हैं। इनके सीवा यमल, हालाहल, विरूप, श्वरूप, च्युतमानस, एकपाद, त्रिपाद और तीव्र आदि नरक हैं। इस प्रकार यहाँ नरकोंके अट्ठाईस पंचक बताये गये हैं।

पापियोंकी नरक-यातनाका वर्णन

मार्कण्डेयजी कहते हैं—युधिष्ठिर! मनुष्य अपने कर्मोंके अनुसार क्रमशः एक-एक नरकका उपभोग करते हैं। अपनी कुत्सित कामनाओंके कारण जो कुकर्मोंका संग्रह किया गया है, उसीके फलस्वरूप तपायी हुई लोहेकी साँकलसे बाँधकर अँधेरेमें बड़े-बड़े वृक्षोंकी शाखाओंमें पापी मनुष्य लटका दिये जाते हैं। फिर यमदूत उन सबको बड़े जोर-जोरसे झुलाते हैं। वेगपूर्वक झुलाये हुए वे सभी पापी अचेत हो जाते हैं। फिर आकाशमें लटकते हुए उनके पैरोंमें सौ भार लोहा बाँध देते हैं। उस महान् भारसे वे सब लोग अत्यन्त सन्तप्त होते हैं और अपने-अपने कर्मोंका स्मरण करते हुए निश्चल भावसे मौन रह जाते हैं। तत्पश्चात् क्रमशः आगमें तपाकर खूब लाल किये हुए लोहेके कँटीले दण्डोंसे यमदूत उनके मस्तकपर मारते हैं। इसके बाद उन्हें विष्ठा और कीटोंसे भरे हुए कुएँमें डाल देते हैं। घोर यमदूत सब ओरसे घेरकर पापियोंको आगमें पकाते हैं। उसके बाद उनके शरीरपर नमकीन पानी डाल देते हैं। कितने ही पापियोंको लोहेके कड़ाहेमें बैंगनकी तरह भूनते हैं, फिर गंदे कूएँमें डाल देते हैं। मेदा, रक्त और पीबसे भरी हुई बावलीमें भी पापियोंको फेंक दिया जाता है और वहाँ उन्हें कीड़े तथा कौए लोहेके समान तीखी चोंचोंसे नोच-नोचकर खाते हैं। कितने ही पापी मनुष्योंको तीखे त्रिशूलोंमें गुम्फित करके उन्हें धधकते हुए अंगारोंपर मांसकी भाँति पकाया जाता है। इसी प्रकार यमदूत पापियोंको खूब तपे हुए तेलसे भरे कड़ाहोंमें अनेक बार पकाते हैं। जो असत्य और अप्रिय बोलनेवाले हैं, उनकी छातीपर चढ़कर और पाँवसे दबाकर तपाये हुए मजबूत सँड़सेसे उनकी जीभ उखाड़ ली जाती है। दम्भपूर्ण झूठे शास्त्रसे प्रेरित होकर जो ब्राह्मण यज्ञके नामपर अधिक धनका संग्रह करता है, उसकी जिह्वा भी तीखे भालेसे छेदी जाती है। जो मूढ़ मानव माता-पिता और गुरुको फटकारते हैं, उनके मुँहमें बार-बार बालू भरकर पानीसे सींचा जाता है। तदनन्तर खारा और गरम जल भरा जाता है। फिर खौलते हुए तेलको उड़ेल दिया जाता है। यमदूत उन पापियोंके पैर पकड़कर कीड़ोंसे भरी हुई विष्ठापर घसीटते हैं। फिर सींगसे दबाकर उन्हें लोहेके शाल्मलि वृक्षमें बाँध दिया जाता है। उसके बाद वे महाबली भयानक दूत उन्हें पीछेकी ओरसे मारते हैं। अत्यन्त प्रबल दाँतीदार आरेसे मस्तककी ओरसे चीरते हैं। अपने भयानक कर्मोंके परिणामसे वे पापी जीव भूख लगनेपर अपना ही मांस खाते और प्यास लगनेपर अपना ही रक्त पीते हैं। जिन मूढ़ पुरुषोंने कभी अन्न और जलका दान नहीं किया है और न किसीके दानका अनुमोदन ही किया है, वे मुद्गरोंसे जर्जर करके ईखकी तरह पेरे जाते हैं। घोर असिताल वनमें खण्ड-खण्ड करके काटे जाते हैं। उनके सब अंगोंमें सूई चुभोयी जाती है। तत्पश्चात् उन्हें शूलीपर चढ़ा दिया जाता है। शूलीपर चढ़ाकर उन्हें बार-बार हिलाया और खींचा जाता है। फिर भी उनकी मृत्यु नहीं होती।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

उनके शरीरसे मांस नोच लिया जाता है। लोहेके मुद्गरोंसे मारकर उनकी हड्डियाँ चूर-चूर कर दी जाती हैं। बलोन्मत्त यमदूत उस दशामें भी उन्हें अनेक बार जल्दी-जल्दी घसीटते हैं और वे पापी जीव दीर्घकालतक नरकमें रहकर दारुण यातनाएँ भोगते हैं। उनका मुँह बालूसे भरा होता है, इसलिये वे स्वाँसतक नहीं ले पाते। इन सब यातनाओंके बाद अनेक प्रकारके यमदूत रौरव आदि नरकोंमें उन्हें पीड़ा देते हैं। महारौरवकी पीड़ाओंसे महान् धीर पुरुष भी रो देते हैं। मुख, लिंग, गुदा पार्श्व, पैर, छाती और मस्तकमें तपाये हुए लोहेके तीखे मुद्गरोंसे यमदूत मारते हैं। जो स्त्रियाँ पराये पतियोंका आलिंगन करती हैं और अपने पतिकी सेवामें नहीं रहतीं, ऐसी स्त्रियोंसे यमदूत कहते हैं—'अरी! अब तू क्यों जल्दीसे भागी जा रही है? स्मरण है या नहीं, तूने अपने पतिको धोखा दिया था और एक पापान्ध परपुरुषको सुखपूर्वक गलेसे लगाया था?' ऐसा कहकर वे उन्हें लोहकुम्भ नामक नरकमें फेंक देते हैं और धीरे-धीरे पकाते हैं। कभी उन्हें प्रज्वलित अग्निमें राँधते हैं, तप्तशिलाओंपर बिठाते हैं, अँधेरे कुएँमें डालते हैं और अजगर सर्पोंद्वारा डँसाते हैं। जो धर्मका उपदेश देनेवाले महात्मा आचार्यकी निन्दा करते हैं, शिवभक्त, ब्राह्मण तथा सनातन शिवधर्मपर दोषारोपण करते हैं, उनकी छाती, कण्ठ, जिह्वा, शरीरकी सन्धियों तथा दोनों ओठोंमें काँटी ठोंककर यमदूत उन्हें कील देते हैं।

इस प्रकार पापाचारी पुरुषोंको यमलोकमें बड़ी भयानक यातनाएँ दी जाती हैं। एक-एक नरकमें सैकड़ों और सहस्रों प्रकारकी ऐसी यातनाएँ जाननी चाहिये, जो समस्त पापकर्मियोंको प्राप्त होती हैं। सम्पूर्ण नरकोंमें ऐसी-ऐसी अनन्त पीड़ाएँ भोगनी पड़ती हैं। अपने-अपने कर्मोंसे नरकोंमें गिराये हुए पापी जीव क्रमशः सभी नरकोंमें पकाये जाते हैं। महापातकी मनुष्य सब नरकोंमें चन्द्रमा और नक्षत्रोंकी स्थितिकालतक अनेकानेक यमदूतोंद्वारा पीड़ा भोगते रहते हैं। यही दशा पातकियोंकी भी होती है। उपपातकियोंको इनसे आधी यातना प्राप्त होती है। तात युधिष्ठिर! कब किसकी मृत्यु हो जायगी, यह ज्ञात नहीं होता और अकस्मात् यदि मृत्यु आ गयी तो कौन मनुष्य यहाँ वर्ष या दिन पा सकता है। फिर तो सब कुछ छोड़कर अकेले ही परलोककी यात्रा करनी पड़ेगी। इसलिये पूर्ण प्रयत्न करके सत्यधर्मपरायण होओ। यह सब नरकोंका लक्षण तुमसे बताया गया।

दान, पुण्य, शिवध्यान और नर्मदासेवनसे नरकसे उद्धार होनेका तथा संसारसे वैराग्यका उपदेश

युधिष्ठिरने पूछा—मुने! किस धर्मके द्वारा इस परम दुस्तर संसार-सागरको पार किया जा सकता है?

मार्कण्डेयजी बोले—मनुष्य अनेक प्रकारके राग और लोभके वशीभूत होकर संसारमें नाना प्रकारके क्लेश उठाता है। गर्भमें पड़ जानेसे मनुष्य कहे हुए शास्त्रको नहीं समझता और स्वर्ग तथा मोक्षसाधक कर्मोंकी चर्चा नहीं सुनता। सम्पूर्ण कामनाओं और प्रयोजनोंको सिद्ध करनेवाले भगवान् शंकरके ध्यानमें वह अज्ञानवश कष्ट मानने लगता है। वास्तवमें भगवान् शिवका चिन्तन ही नरकसे छुड़ाकर अपना परम अद्भुत कल्याण करनेवाला है। जो जम्बूद्वीपमें आकर मनुष्य-योनिमें जन्म लेता है, तथापि नर्मदादेवीकी शरणमें नहीं जाता, वह भाग्यहीन है। इस संसारमें पापसे दूषित चित्तवाले मनुष्योंको उत्तम गति देनेवाली नर्मदासे बढ़कर दूसरी कौन नदी है? जो पापहारिणी महादेवी नर्मदाका ध्यान करते हैं, उनकी पापराशि नष्ट हो जाती है। जो नर्मदाका मनसे स्मरण और वाणीद्वारा कीर्तन करता है, वह परलोकमें जानेपर

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

यमदूतोंद्वारा पीड़ित नहीं होता। नरकमें स्थित होनेपर भी जो नर्मदा नदी एवं भगवान् शिव और विष्णुका स्मरण करता है, उसे यमराजके दूत तत्काल त्याग देते हैं। यदि वैदूर्य पर्वत एवं अमरकण्टकपर भोग और मोक्ष फल देनेवाले परमेश्वर 'ॐकारजी' विद्यमान हैं, तो पापी मनुष्य यहाँ क्यों शोक करते हैं? वहीं सम्पूर्ण लोकोंपर अनुग्रह करनेवाले सिद्धलिंग सिद्धेश्वर, यज्ञेश्वर और शशिभूषण हैं। नर्मदाके दक्षिण भागमें महेश्वर एवं कपिलेश्वरलिंग हैं। उस स्थानको विद्वान् पुरुष शिवक्षेत्र कहते हैं। जो मनुष्य सदा पुष्प, धूप, आरती और तर्पण आदिके द्वारा भक्तिपूर्वक इन लिंगोंकी अर्चना करते हैं, वे नरकसे छूटकर शिवलोकको जाते हैं। अनघ! तुमने जो कुछ पूछा था, वह सब मैंने तुम्हें बताया। पापी पुरुषोंको यमराजने यह बताया है कि 'जो लोग गोदान, स्वर्णदान, तिलदान, अन्नदान, जलदान, सब सामग्रियोंका दान तथा महल और बगीचेका दान करते हैं, वे घोर नरकस्वरूप यमलोकमें नहीं जाते। भगवान् शिवके वचनानुसार वे सब पापोंसे मुक्त हो जाते हैं।'

सम्मानको अपमानने, प्रियजनोंके संयोगको वियोगने और जवानीको बुढ़ापेने ग्रस लिया है। सारा सुख दुःखके उपद्रवसे युक्त है। जब बाल पक जाते हैं, शरीरमें झुर्रियाँ पड़ जाती हैं, तब वृद्धावस्थामें जर्जरशरीर होकर विद्वान् मनुष्य क्या कर सकता है? स्त्री और पुरुषोंका यौवन तथा रूप, जो एक-दूसरेको बहुत ही प्रिय लगता है, जराग्रस्त हो जानेपर दोनोंके लिये अप्रिय हो जाता है। जो अपने-आपको अपूर्व शिथिलतासे युक्त देखकर भी संसारसे विरक्त नहीं होता, उससे बढ़कर मूर्ख दूसरा कौन हो सकता है? जराग्रस्त मनुष्य अशक्त होनेके कारण पत्नी-पुत्र आदि बान्धवों तथा दुराचारी सेवकोंद्वारा भी अपमानित होता है। वृद्ध मनुष्य धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष किसी भी पुरुषार्थका साधन करनेमें समर्थ नहीं होता। इसलिये बुढ़ापा आनेसे पहले ही धर्माचरण करे। युधिष्ठिर! शरीरमें वात, पित्त और कफ आदिकी विषमता होती रहती है तथा वात, पित्त, कफका समूह शरीरसे ही उत्पन्न बताया गया है। इसलिये अपना यह शरीर सदा रोगोंका ही आश्रय है, ऐसा जानना चाहिये। जब वातका प्रकोप होता है और मनुष्य ज्वरसे पीड़ित होता है, तब अनेक प्रकारसे होनेवाले रोगोंके कारण उसे बहुत दुःख सहन करने पड़ते हैं। इस शरीरमें मृत्युके साधन सौसे भी अधिक हैं। इनमेंसे एक मृत्यु तो कालरूप है और शेष मृत्युएँ आगन्तुक मानी गयी हैं। जो आगन्तुक होती हैं वे ओषधिसेवन तथा जप, होम और दान आदिसे शान्त हो जाती हैं; परंतु कालरूप मृत्यु किसी उपायसे भी शान्त नहीं होती। विष और मद्य आदिसे मनुष्यकी अपमृत्यु होती है। अतः इन सब वस्तुओंका सेवन कदापि न करे। अनेक प्रकारके रोग, कष्ट, सर्प आदि जीव, विष और मारण आदिके प्रयोग—ये सब देहधारियोंके लिये मृत्युके द्वार हैं। यदि मनुष्यका मृत्युकाल आ पहुँचा है, उस समय रोग, सर्प आदिसे पीड़ित हो तो साक्षात् धन्वन्तरि भी उसे नहीं बचा सकते। कालपीड़ित मनुष्यकी रक्षा करनेमें ओषधि, तप, दान, मित्र और बान्धव—कोई भी समर्थ नहीं हैं। मृत्युके समान कोई दुःख नहीं है, मृत्युके समान कोई शत्रु नहीं है तथा समस्त देहधारियोंके लिये मृत्युके समान दूसरा कोई काल नहीं है। युधिष्ठिर! श्रेष्ठ और सुन्दर स्त्री, पुत्र, मित्र, राज्य तथा ऐश्वर्य आदि नाना प्रकारके सम्पूर्ण सुखोंको मृत्यु सहसा छीन लेती है। राजन्! भाई-बन्धु आदिके रूपमें जो यह दुस्तर संसार है, इसका तुम्हें यत्किंचित् परिचय दिया गया है। यह सब परिणामी—नाशवान् है, कालका भोजन है। ऐसा जानकर प्रयत्नपूर्वक नर्मदाका सेवन करना चाहिये। नर्मदा सब दुःखोंका निवारण और सम्पूर्ण शोकोंका नाश करनेवाली है। जो जिन कामनाओंको पाना चाहता है, नर्मदादेवी उसे वे सभी वस्तुएँ देती हैं।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

मातंग, मृगवन और वाराहतीर्थकी महिमा

मार्कण्डेयजी कहते हैं—माहिष्मतीपुरीके पश्चिम अशोकवनिका नामक एक पापहारी तीर्थ है, जो सब प्रकारके शोकोंका विनाश करनेवाला है। वहाँ स्नान करके अपने वैभवके अनुसार गौरीदेवीका पूजन करे। वहीं मातंगमुनिका आश्रम है। जो स्त्री शुक्ल और कृष्ण पक्षकी तृतीयाको गन्ध, धूप, चन्दन, नाना प्रकारके उपहार तथा दीपावली जलाने आदिके द्वारा वहाँ भक्तिपूर्वक गौरीदेवीका पूजन करती है, वह रूप और सौभाग्यसे सम्पन्न पति प्राप्त करती है।

युधिष्ठिर! पूर्व कल्पकी बात है—मातंग नामसे प्रसिद्ध देवर्षिने नर्मदा नदीके तटपर रहकर बड़ी दुष्कर तपस्या की थी। महर्षियोंके सत्संग और नर्मदाके दर्शनसे उन्होंने पाप-बुद्धिका परित्याग करके धर्म-बुद्धिका आश्रय लिया था। 'मैं विरक्त और भिक्षु हूँ' ऐसा विचारकर वे अशोकवनिकामें गये और जटा, वल्कल धारण करके कन्द, मूल, फलका आहार करते हुए एक सहस्र दिव्य वर्षोंतक भगवान् शिवकी आराधनामें तत्पर रहे। सब मन्त्रोंमें उत्तम **'ॐ नमः शिवाय'** इस षडक्षर मन्त्रका वे दिन-रात अपने हृदयमें चिन्तन करते थे। उनकी उस पराभक्तिको जानकर देवाधिदेव महादेवजीने उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन दिया और कहा—'सुव्रत! इस ध्यानसे तुम्हारा कल्याण हो, तुम वर माँगो।'

मातंग बोले—देवेश्वर! यह तीर्थ मातंगके नामसे विख्यात हो। इसमें चाण्डाल, श्वपच आदि पापयोनिके जीव तथा जप आदिसे रहित पुरुष भी पापमुक्त होते रहें। जो यहाँ स्नान करके नर्मदातटवर्ती मातंगेश्वरलिंगका पूजन करे, उसका संसार-बन्धन छूट जाय।

मातंग मुनिका यह वचन सुनकर महादेवजी बोले—मुने! मेरे प्रसादसे यह सब कुछ तुम्हारे इच्छानुसार होगा। ऐसा कहकर भगवान् शिव पर्वतश्रेष्ठ कैलासको चले गये और मातंग मुनि वरदान पाकर दिव्य विमानपर आरूढ़ हो उमा-महेश्वर-धामको चले गये। चैत्रके कृष्ण पक्षमें जो चतुर्दशी और अमावास्या तिथि आती है, उसमें वहाँ जो कुछ दान, होम आदि किया जाता है, वह अक्षय फल देनेवाला होता है। उस तीर्थमें तिल और जलद्वारा तर्पण करनेसे और गुड़-सत्तूका पिण्डदान देनेसे चौदह इन्द्रोंके स्थित कालतक पितर तृप्त रहते हैं। अशोकवनिका नामसे प्रसिद्ध स्थान मातंग-तीर्थ कहलाता है, वह नर्मदाके उत्तर तटपर विद्यमान है।

युधिष्ठिर! अब मैं नर्मदाके दक्षिण तटपर विद्यमान मृगवन नामक तीर्थका वर्णन करूँगा। महाराज! वहाँ एकादशीको स्नान करके शंख-चक्र-गदाधारी भगवान् विष्णुका अर्चन करे और निराहार रहकर रात बितावे। प्रातःकाल होनेपर फिर गन्ध और पुष्पोंद्वारा मृगवनमें श्रीहरिकी पूजा करे। वहाँ एक ब्राह्मणको भोजन करानेपर लाख ब्राह्मणोंको भोजन करानेका पुण्य होता है। तिल और जलकी अंजलि देनेसे पितरोंको वैष्णव पदकी प्राप्ति होती है। वहीं उत्तम वाराहतीर्थ है, जहाँ वाराहरूप धारण करके भगवान्ने इस पृथ्वीका उद्धार किया था और वहीं अमित तेजस्वी श्रीहरिने विश्वरूपको भी धारण किया था। जो पतिव्रता नारी मासोपवास व्रत करके वहाँ विधिपूर्वक स्नान करती है, वह विष्णुधामको जाती है।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

संसारसे मुक्त होनेके लिये पाप और पाखण्डी जनोंके त्याग तथा शिव एवं नर्मदाके आश्रय लेनेका उपदेश

मार्कण्डेयजी कहते हैं—राजन्! नर्मदातटपर उत्तम सिद्धि देनेवाला मनोरथ नामक एक तीर्थ है, जो तीनों लोकोंमें विख्यात है। वहाँ स्नान करके मनुष्य जिस-जिस मनोरथको चाहता है, उस तीर्थके प्रभावसे वह सब कुछ प्राप्त कर लेता है। वहीं संगमपर अंगारेश्वरदेव स्थित हैं, जहाँ स्नान-मात्र करनेवाला मनुष्य गणपति-पदपर प्रतिष्ठित होता है।

पाप बड़े ही कड़वे और अत्यन्त दुःख देनेवाले होते हैं। इसलिये पाप कभी नहीं करना चाहिये। जिस देश-कालमें और जैसी आयुके द्वारा मनुष्य शुभाशुभ कर्म करता है, वह उसी प्रकार उसे भोगना पड़ता है। अतः अपनी शक्तिके अनुसार याचकको निरन्तर दान देना चाहिये। विद्वान् पुरुष शास्त्र और युक्तियोंद्वारा सदा आत्माके कल्याणका विचार करे। केवल अनुमानके ही द्वारा उसपर विचार नहीं करना चाहिये। कर्मोंके हीन और उत्तम नाना प्रकारके फल बताये गये हैं; अतः मनुष्य कोई कर्म करनेके पहले उसकी परीक्षा कर ले। जिसका श्रेष्ठ और महान् फल हो, वही पुण्यकर्म है। बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि वह पाखण्डी, शास्त्रविपरीत कर्म करनेवाले, वैडालव्रती (दम्भी), शठ, युक्तिवादी, तीर्थनिन्दक, दिगम्बर तथा अन्यान्य पाखण्डी जनोंको दूरसे ही त्याग दे। नंगे, मथमुण्डे और विष्ठाभोजी अघोरी—कलियुगमें धर्मके विपरीत आचार उपस्थित करते हैं। अतः उनके चलाये हुए पाखण्डका परित्याग करके तीनों वेदोंद्वारा प्रतिपादित धर्मका आचरण करे। सब धर्मोंमें ब्रह्मा, विष्णु और शिवजीके वचन ही प्रमाण हैं। जो उनके विपरीत बर्ताव करता है वह निश्चय ही नरकमें गिरता है। पितरोंका तर्पण करे, भिखारीको भीख दे, सब प्राणियोंपर दया करे तथा नर्मदाजीकी माहात्म्य-कथाका चिन्तन करे। यही सब कर्मोंको शुद्ध करनेवाला सम्पूर्ण ज्ञान है। जो आदि, मध्य और अन्तसे रहित, स्वभावसे सबके स्वामी, सर्वज्ञ और परिपूर्ण हैं, वे भगवान् शिव शैवशास्त्रोंद्वारा जाननेयोग्य हैं। उनके द्वारा प्रतिपादित जो ज्ञान है, वह संशयरहित एवं सम्पूर्ण प्रयोजनोंकी सिद्धि करनेवाला है। जो सर्वज्ञ हैं, सम्पूर्ण हैं, स्वभावतः निर्मल तथा सम्पूर्ण दोषोंसे रहित हैं, वे कल्याणमय शिव कोई विपरीत बात कैसे कह सकते हैं? भगवान् शिवकी आज्ञाके बिना संसारकी सृष्टि कैसे हो सकती है? यदि कहें कि प्रकृतिसे सृष्टि होती है, तो ठीक नहीं, क्योंकि वह जड है। यदि कहा जाय कि जीवात्मा ही सृष्टि करता है, तो यह भी उचित नहीं है; क्योंकि वह सर्वज्ञ नहीं, अज्ञ है। परमाणु आदि जो प्राकृत तत्त्व हैं, वे सब अचेतन हैं; अतः वे किसी बुद्धिमान् सहायकके बिना न तो स्वयं रचना कर सकते हैं, न देख ही सकते हैं। जैसे कुम्भकारके बिना मिट्टी स्वयं घड़ेके रूपमें नहीं परिणत होती, उसी प्रकार जड प्रकृति बुद्धिमान् चेतनके बिना स्वयं कुछ नहीं कर सकती। जैसे यह घोर संसार-समुद्र अनादिकालसे चला आ रहा है, उसी प्रकार इस संसारसे छुड़ानेवाले भगवान् शिव भी अनादि हैं। जैसे ओषधि स्वभावसे ही रोगोंका निवारण करनेवाली है, उसी प्रकार भगवान् शिव भी स्वभावसे ही घोर संसार-बन्धनका नाश करनेवाले माने गये हैं। जैसे वैद्यके बिना रोगी क्लेश उठाते हैं, उसी प्रकार भगवान् शिवके बिना सम्पूर्ण जगत् दुःख उठाता है। अतः अनादि, सर्वज्ञ, परिपूर्ण, परम शिव ही सबके त्राता हैं। उनके सिवा दूसरा कोई पुरुष इस संसार-समुद्रसे रक्षा करनेवाला नहीं है। जो अपने हृदयमें भगवान् शिवका चिन्तन करते हुए शिवज्ञानका अभ्यास करते हैं, उन्हें अवश्य ज्ञान होता है। नरश्रेष्ठ! ऐसा जानकर शिवस्वरूपा नर्मदादेवीका आश्रय

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

लेकर उसके तटपर धन-धान्यसे सम्पन्न दिव्य गृह तथा अच्छे-अच्छे अन्य आवश्यक सामान ब्राह्मणोंको आदरपूर्वक देने चाहिये। अनाथ, अत्यन्त वृद्ध, विकल एवं कुटुम्बी ब्राह्मणको विशेषरूपसे देना चाहिये। जो ब्राह्मणको काठ और मिट्टीसे बना हुआ गृह दान करता है अथवा उसके लिये अमरकण्टकपर सब ओर सुन्दर-सुन्दर दिव्य भवन निर्माण कराता है, वह सर्वोत्तम दानका फल प्राप्त करता है। केवल यही दान उसके समस्त कामनाओं और प्रयोजनोंका साधक होता है। जो मनुष्य भक्तिपूर्वक इस प्रसंगको सुनता है, वह सब पापोंसे मुक्त होता है।

शिवलोककी उत्कृष्टता, गोसेवाका महत्त्व, दानकी महिमा तथा नर्मदातटपर दान एवं शिवध्यानका माहात्म्य

युधिष्ठिरजी बोले—भगवन्! गोलोक कैसा बताया गया है, किस कर्मसे उसकी प्राप्ति होती है और कौन-कौन वहाँ निरन्तर रहते हैं?

मार्कण्डेयजीने कहा—सब लोकोंसे ऊपर महादेवजीका लोक है, वह परम दिव्य और सर्वश्रेष्ठ है। वहीं वृषभरूपसे धर्म भी विद्यमान हैं। जहाँ उनके पति वृषभरूप धर्म हैं, वहीं गोमाताएँ भी निवास करती हैं और उसी लोकमें देवताओं और असुरोंसे पूजित नर्मदादेवी भी विद्यमान हैं। उन्हींके जलसे गौएँ, बछड़े तथा सब देवता तृप्त होते हैं। ब्रह्मा, विष्णु, उमासहित महेश्वर, देवता, ऋषि, पितृगण, मातृगण तथा अन्यान्य लोकोंसहित शिवलोक और नर्मदालोक भी इस गोलोकके अन्तर्गत हैं। रुद्रलोकके जो गुण हैं, वही गोलोकके हैं। नन्दा, भद्रा, सुभद्रा, सुशीला तथा सुरभि—ये पाँच गोमाताएँ शिवलोकसे प्रकट हुई हैं। छठी नर्मदादेवी भी वहींसे सम्पूर्ण लोकोंपर अनुग्रह करनेकी इच्छासे प्रकट हुई हैं। महाराज! ये सब लोकमाताएँ अपने गुणोंद्वारा इस सम्पूर्ण जगत्‌को सदा तृप्त करती रहती हैं।

शिवलोकसे प्रकट हुई गौएँ यहाँ आकर घास खाती हैं, वनमें चरती हैं, निर्मल जल पीती हैं, शरीरको पवित्र करती हैं और मधुर दूध देती हैं, जिससे सम्पूर्ण जीव-जगत् जीवन धारण करता है। जैसे छोटे बच्चेवाली स्त्रियोंसे घरकी शोभा होती है, उसी प्रकार छोटे बछड़ेवाली गौओंसे जिनका घर सुशोभित है, उनके शरीरमें पाप कहाँसे रह सकते हैं। जो लोग ॐकार और नर्मदाका सदैव शिवरूपसे स्मरण करते हैं, उनका पुनः इस संसार-सागरमें जन्म नहीं होता। जो घास और जल देकर गौओंके प्रति परम भक्तिभाव रखते हैं, वे उन गौओंके प्रसादसे शिवलोकमें जाते हैं। ये गोमाताएँ सदा अनुकूल रहनेपर समस्त कामनाओंको देनेवाली हैं। जो इन कल्याणमयी गौओंकी रक्षा करते हैं, वे शिवलोकमें जाते हैं। जो उत्तम विधिके साथ एकाग्रचित्त हो भक्तिपूर्वक भगवान् शिवका पूजन करते हैं, वे निश्चय ही शिवके धामको जाते हैं। भगवान् शिवके निवासस्थानरूप तीर्थोंमें जो मनुष्य श्रद्धापूर्वक जाते हैं, विशेषतः जो नर्मदा और अमरकण्टककी यात्रा करते हैं, वे ब्रह्मा, विष्णु और शिवके लोकोंमें विहार करते हैं। राजन्! इस प्रकार तुम्हें नर्मदाका मंगलमय अवतार बताया गया है।

युधिष्ठिरजी बोले—मुने! अब मैं दान-धर्मका विधान सुनना चाहता हूँ। जो लोग दरिद्र और भिक्षुक हैं, उन्हें शिवधामकी प्राप्ति कैसे होती है?

मार्कण्डेयजीने कहा—राजन्! कमल, बिल्वपत्र, कुश और नर्मदाका जल—इन सबको भगवान् ब्रह्माजीने सामान्यतः धर्मका हेतु बताया है (ये सर्वसुलभ हैं)। सभी धर्म, पुराण और श्रुतियाँ—ये श्रद्धा और विश्वाससे ही पावन होते हैं।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

पुराणों और श्रुतियोंके उपदेश किये हुए धर्मका आचरण करनेसे मनुष्य स्वर्गलोकमें जाते हैं। जो शिवजीका ध्यान करनेवाले ब्राह्मणको श्रद्धापूर्वक रूई भरा हुआ बिस्तर, कटिसूत्रसहित लाल वस्त्र, नवीन वस्त्रमें लपेटा हुआ तथा पवित्र धूपसे सुवासित किया हुआ यज्ञोपवीत देता है, वह रूईके उन वस्त्रोंमें जितने तन्तु होते हैं और उन तन्तुओंमें जितने रोम होते हैं, उतने सहस्र वर्षोंतक शिवलोकमें प्रतिष्ठित होता है। जो भगवान् शिवके उद्देश्यसे शिवभक्तको नैवेद्य देता है अथवा शाक, मूल, फल आदि अर्पण करता है, वह तण्डुल, फल और दल आदिकी जितनी संख्या होती है, उतने सहस्र वर्षोंतक शिवलोकमें सम्मानित होता है। जो शिवभक्तको दही-भातसे भरा हुआ सुन्दर भिक्षापात्र अर्पण करता है, वह शिवधाममें निवास करता है। जो अपनी शक्तिके अनुसार शैवव्रतका पालन करनेवाले ब्राह्मणको भोजन कराता है, वह भगवान् शिवके लोकमें प्रतिष्ठित होता है। जो भक्तिपूर्वक शिवकी पूजा करते हैं, वे शिवलोकमें जाते हैं।

इस प्रकार प्रसंगवश शिवलोक, गोलोक* और नर्मदालोकका वर्णन किया गया है, जहाँ शिवभक्त पुरुषोंका निवास है। जो ज्ञानयोगसे शान्तचित्त हो परम शिवका जप करते हैं, वे सब दुःखोंसे मुक्त हो सदा सुखी बने रहते हैं। पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, अहंकार, सत्त्वगुण और प्रकृति— इन आठ आवरणोंसे युक्त शिवलोक है। वह दस हजार सूर्योंके समान कान्तिमान् परम स्थान है। ज्ञान और ध्यानमें संलग्न, शान्त, भिक्षान्नभोजी, जितेन्द्रिय, भगवान् शिवकी प्रसन्नताके लिये सत्कर्म करनेवाले और जिनके पाप दग्ध हो गये हैं, ऐसे श्रेष्ठ ब्राह्मण ही उस परम धाम शिवलोकको पानेके अधिकारी हैं। जिस सत्यस्वरूप लोकमें शुद्धचित्त एवं अविद्या आदिके क्लेशोंसे रहित महात्मा पुरुष निवास करते हैं, उसी उत्तम पदको नर्मदाजीका सेवन करनेवाले मनुष्य भी पा लेते हैं।

जो नर्मदाके तटपर मेरे बताये अनुसार दान करते हैं, वे सब कुछ जाननेवाले, सर्वत्र जानेकी शक्ति रखनेवाले शुद्ध एवं परिपूर्ण हो जाते हैं। जो शुद्धकर्मोंमें तत्पर रहते हैं, वे परम ऐश्वर्यसे सम्पन्न हो अपनी इच्छाके अनुसार साकार या निराकार रूपमें स्थित होते हैं। सम्पूर्ण जगत्के स्वामी पार्वतीवल्लभ भगवान् नीलकण्ठका यह दिव्य स्थान नित्य, विशुद्ध, अविनाशी एवं सदा एकरस रहनेवाला है। जो लोग नर्मदाके तटपर रहकर शिवजीके ज्ञानका अभ्यास करते हैं, वे काम-तृष्णासे मुक्त होकर शिवलोकमें जाते हैं। जो एक दिन भी शिवधर्मका पालन करते हुए भगवान् शिवके ध्यानमें तत्पर होता है, उसके धर्मका अन्त नहीं है।

~~~ o ~~~

अमरावतीके दक्षिण विष्णु-मन्दिरकी महिमा, मेघवनका महत्त्व तथा विभिन्न तीर्थोंकी महाशक्तियोंके नाम

मार्कण्डेयजी कहते हैं—गौएँ बड़ी पवित्र वस्तु हैं; वे सब प्रयोजनोंकी सिद्धि करनेवाली हैं। अतः गोदान और शिवभक्तिसे मनुष्य पापमुक्त हो जाता है। वैवस्वत मन्वन्तरमें राजर्षि वीरणके पुरोहित मैत्रेयजी हुए थे, जिन्होंने नर्मदाके तटपर भगवान् विष्णुका मन्दिर बनवाया है। वह मन्दिर अमरावती पुरीके दक्षिण दिशामें नर्मदा-तटपर विद्यमान है। उसके माहात्म्यसे और नर्मदाके प्रभावसे वे द्विजश्रेष्ठ भगवान् विष्णुके लोकमें आनन्द भोगते हैं।

युधिष्ठिर! नर्मदाके पश्चिम और उत्तर तटपर जो-जो उत्तम तीर्थ हैं, उनका वर्णन सुनो। यज्ञ पर्वतपर मेघवन नामसे प्रसिद्ध एक वन है, जहाँ

* यह गोलोक शिवलोकका ही एक अंग है।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth
~~~

पूर्वकालमें चक्रवर्ती राजा रन्तिदेवने देवता, असुर और मनुष्योंसहित अपने कुलको गोलोकमें पहुँचाया है।

विभिन्न तीर्थोंकी महाशक्तियोंके नाम इस प्रकार हैं—(१) काशीमें विशालाक्षी, (२) नैमिषारण्यमें लिंगधारिणी, (३) प्रयागमें ललिता देवी, (४) गन्धमादनमें कामुका देवी, (५) मानसमें कुमुदा, (६) अम्बरमें विश्वयोनि, (७) गोमन्त पर्वतपर गोमती, (८) मन्दराचलपर कामचारिणी, (९) चित्ररथ वनमें मदोत्कटा, (१०) हस्तिनापुरमें तपन्ती, (११) कान्यकुब्जमें गौरी, (१२) कमल पर्वतपर प्रभा, (१३) एकाग्रक्षेत्रमें कीर्तिमती, (१४) विश्वेश्वरक्षेत्रमें विश्वा, (१५) पुष्करमें पुरुहूता (१६) केदारमें मार्गदायिनी, (१७) हिमालय-पर नन्दा, (१८) गोकर्णक्षेत्रमें भद्रकणिका, (१९) स्थानेश्वरमें भवानी, (२०) विल्वकमें विल्व-पत्रिका, (२१) श्रीशैलपर माधवी, (२२) भद्रेश्वरमें भद्रा, (२३) वाराह पर्वतपर जया, (२४) कमलालयमें कमला, (२५) रुद्रकोटिमें रुद्राणी, (२६) कालंजरमें कोटि, (२७) महालिंगमें कपिला, (२८) माकोटमें मुकुटेश्वरी, (२९) शालग्राममें महादेवी, (३०) शिवलिंगमें जलप्रिया, (३१) मायापुरीमें कुमारी, (३२) सन्तानमें ललिता, (३३) उत्पलक्षेत्रमें सहस्राक्षी, (३४) हिरण्याक्षमें महोत्पला, (३५) तीर्थामें मंगला, (३६) पुरुषोत्तमक्षेत्रमें विमला, (३७) विपाशामें अमोघाक्षी, (३८) पुण्ड्रवर्धनमें पाटला, (३९) सुपार्श्वमें नारायणी, (४०) त्रिकूटमें भद्रसुन्दरी, (४१) विपुलमें विपुला, (४२) प्रलयाचलमें कल्याणी, (४३) विकोटितीर्थमें कोटी, (४४) यमुनामें मृगावती, (४५) करवीरमें महालक्ष्मी, (४६) विनायकमें उमादेवी, (४७) वैद्यनाथमें आरोग्या, (४८) महाकालमें महेश्वरी, (४९) कृष्णतीर्थमें अभया, (५०) विन्ध्य-गिरिकी कन्दरामें अमृता, (५१) माण्डव्यतीर्थमें माण्डुका, (५२) माहेश्वरपुरमें स्वाहा, (५३) प्रचण्डतीर्थमें छागलम्बा, (५४) अमरकण्टकमें चण्डिका, (५५) सोमेश्वरमें वाराही, (५६) प्रभासमें पुष्करावती, (५७) सरस्वतीमें देवमाता, (५८) पारावतमें पारा, (५९) महालयमें महाभागा, (६०) पयोष्णीमें पिंगलेश्वरी, (६१) कृतशौतीर्थमें संहिता, (६२) कार्तिकेयमें शांकरी, (६३) उत्पलावर्षकमें लोला, (६४) शोणसंगममें सुभद्रा, (६५) मालासिद्धतलमें लक्ष्मी, (६६) भारताश्रममें अनन्ता, (६७) जालन्धरमें सिद्धमुखी, (६८) किष्किन्धा पर्वतपर तारा, (६९) देवदारुवनमें पुष्टि, (७०) काश्मीरमण्डलमें मेधा, (७१) हिमालयमें भीमा देवी, (७२) वस्त्रेश्वरतीर्थमें तुष्टि, (७३) कपालमोचनमें सिद्धि, (७४) कायावरोहणमें माता, (७५) शंखोद्धारमें धृति, (७६) पिण्डारकमें ध्वनि, (७७) चन्द्रभागामें कला, (७८) अक्षोदमें शिवधारिणी, (७९) वैजयन्तीमें ऋता, (८०) बदरीमें ओषधि, (८१) उत्तरकुरुमें भी ओषधि, (८२) कुशद्वीपमें कुशोदका, (८३) हिमकूटमें मन्मथा, (८४) प्रमतमें सत्यवादिनी, (८५) अश्वत्थमें वन्दिनी, (८६) वैश्रवण (कुबेरतीर्थ)-में निधि, (८७) वेदवदनमें गायत्री, (८८) शिवके समीप पार्वती, (८९) देवलोकमें इन्द्राणी, (९०) ब्राह्मणके मुखमें सरस्वती, (९१) सूर्यबिम्बमें प्रभा, (९२) मातृकातीर्थमें मातृका, (९३) वैष्णवीतीर्थमें वैष्णवी, (९४) सतियोंमें अरुन्धती, (९५) अप्सराओंमें तिलोत्तमा, (९६) सब देहधारियोंमें चिति, (९७) ब्रह्मकला तथा (९८) शक्ति। ये नाम और तीर्थ संक्षेपसे बताये गये हैं। जो प्रातःकाल उठकर इनका पाठ करता है, वह परम गतिको प्राप्त होता है। इन तीर्थोंमें स्नान करके जो मनुष्य इन शक्तियोंका दर्शन करते हैं, वे सब पापोंसे मुक्त हो परम गतिको प्राप्त होते हैं। जो इन देवियोंके तीर्थस्थानोंमें अपने शरीरका त्याग करता है, वह ब्रह्मलोकको भेदकर शिवजीके परम धामको प्राप्त करता है। गोदानके समय, श्राद्धमें, विवाह आदि मंगलकार्योंमें तथा देवार्चनके समय भी जो इन नामोंका पाठ करता है, वह ब्रह्मपदको प्राप्त होता है।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

अशोकवनिकातीर्थमें महाराज रविश्चन्द्रके द्वारा यज्ञ, दान तथा मुनियोंका उद्धार

मार्कण्डेयजी कहते हैं—नर्मदाके दक्षिण भागमें माण्डव्यमुनिका आश्रम है। उसमें विभाण्डक, गार्ग्य तथा ऋष्यश्रृंग आदि उत्तम व्रतका पालन करनेवाले महर्षि सहस्रोंकी संख्यामें निवास करते हैं। राजन्! अशोकवनिका नामसे प्रसिद्ध उत्तम तीर्थकी महिमा सुनो। वहाँ भगवान् शंकर पार्वतीदेवीके साथ निवास करते हैं। वहाँ विशोका नदी और नर्मदाका संगम हुआ है। वहाँ स्नान करनेवाले मनुष्य स्वर्गमें जाते हैं और जिनकी वहाँ मृत्यु हो जाती है, वे मुक्त हो जाते हैं। वहीं अशोकेश्वरलिंग है, जो प्रत्यक्ष ही सिद्धि एवं कल्याण प्रदान करनेवाला है। उसी तीर्थमें देवर्षि नारदने शापभ्रष्ट ब्राह्मणोंको शापसे मुक्त किया था और अब वे ब्राह्मण उस तीर्थके माहात्म्यसे देवता होकर देवलोकमें आनन्द भोगते हैं।

स्वायम्भुव मन्वन्तरके आदिकल्पके सत्ययुगकी बात है। चन्द्रवंशमें रविश्चन्द्र नामसे प्रसिद्ध एक महायशस्वी चक्रवर्ती राजा हो गये हैं, जो कांची नगरीके नरेश थे। उन्होंने समस्त पृथ्वीका धर्मपूर्वक पालन किया था। एक समय वे अगस्त्येश्वरतीर्थमें गये जहाँ भगवान् शंकरका सुन्दर मन्दिर विद्यमान है। अगस्त्य आदि सभी तपस्वी मुनि उस तीर्थका सेवन करते हैं। वहाँ नर्मदा बहती हैं और अमरकण्टक पर्वत भी सुशोभित होता है। सूर्यग्रहणके समय राजा रविश्चन्द्र उस स्थानपर गये जहाँ मुनिमण्डलीसे घिरे हुए महर्षि अगस्त्य तपस्या करते थे। उस समय महातपस्वी शाण्डिल्यजीने महर्षि अगस्त्यको प्रणाम करके पूछा—'तपोनिधे! महातेजस्वी राजा रविश्चन्द्र आपके आश्रमपर पधारे हैं। मैं उनका पुरोहित हूँ। यदि आप कृपापूर्वक स्वीकार करें तो राजा आपके चरणारविन्दोंका अर्चन करना चाहते हैं।'

अगस्त्यजी बोले—नृपश्रेष्ठ रविश्चन्द्र यहाँ शीघ्र आवें और सिंहासनपर विराजमान हों।

उनकी आज्ञा पाकर राजा वहाँ आये और उन्होंने मुनिके चरणोंका स्पर्श किया। मुनिने अर्घ्य और पाद्य आदिके द्वारा राजाका सत्कार किया और कुशल-समाचार पूछते हुए कहा—'महाभाग! आप अन्तःपुर और परिवारके साथ सकुशल तो हैं न?'

राजा बोले—मुनीश्वर! आज मेरा जन्म और जीवन सफल हुआ, जो आपके चरणारविन्दोंका दर्शन पाकर मैं सब पापोंसे मुक्त हो गया। मुनिश्रेष्ठ! सर्वतीर्थमयी नर्मदा नदी तो सर्वत्र शुभ और पावन हैं। मैं किस स्थानपर यज्ञ करूँ?

अगस्त्यजीने कहा—राजन्! एकमात्र नर्मदादेवी ही पुण्यमयी और शुभ हैं। जम्बूद्वीप एक लाख योजनका बताया गया है, उसमें जितने भी चराचर प्राणी हैं, उनमेंसे जो तपस्यासे हीन हैं वे भी नर्मदाका जलपान करनेसे भगवान् शिवके लोकमें जाते हैं। ॐकार आदि शिवलिंग और वैदूर्य आदि पर्वत, द्वापर और कलियुगमें परम पावन होते हैं। नर्मदाके दक्षिण और उत्तर भागमें जो यह देव-दानववन्दित भूमि है इसे यज्ञभूमि कहते हैं। इसीमें अशोकवनिका है, जहाँ साक्षात् भगवान् महेश्वर निवास करते हैं। यहाँ किया हुआ यज्ञ बिना किसी विघ्न-बाधाके परिपूर्ण होता है। ऐसा भगवान् शंकरका कथन है।

राजा बोले—महामुने! आपका कल्याण हो, मैं आपके साथ वहीं चलूँगा।

ऐसा कहकर मुनियोंसे घिरे हुए राजा रविश्चन्द्र नर्मदाके दक्षिण तटपर वर्तमान सुन्दर पुण्यतीर्थ अशोकवनिकामें आये। वहाँ दस योजन विस्तृत भूमिमें यज्ञमण्डप बनाया गया और यूप गाड़े गये। उस मण्डपके सभी द्वार और स्तम्भ मणि-माणिक्य तथा रत्नोंकी राशिसे शोभा पा रहे थे। विश्वामित्र, भरद्वाज, कश्यप, भार्गव, ब्रह्मदृश्य, लोमश था दूसरे-दूसरे श्रेष्ठ महर्षि उस यज्ञमें

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

सम्मिलित हुए। प्रचुर दक्षिणा पानेवाले ब्राह्मणोंने यज्ञ प्रारम्भ किया। सब देवता बड़े प्रसन्न और तृप्त हुए। इसी समय महान् क्रोधी दुर्वासाजी, यमराज, चित्रगुप्त, काल और मृत्यु भी आये। उस यज्ञमें इनके लिये कोई भाग नहीं दिया गया था। यह देखकर ये सभी कुपित हो उठे। उन सबको रुष्ट देखकर राजा रविश्चन्द्रने कहा—'यज्ञके समयमें कोई मनुष्य भी आ जाय तो वह चार भुजाधारी भगवान् विष्णुके समान पूजनीय होता है। आपलोगोंको भी मैं अभीष्ट वस्तु दूँगा। अतः प्रसन्न हों।' इस प्रकार राजाके द्वारा अर्घ्य, पाद्य आदि देकर प्रसन्न कराये जानेपर वे सब मुनि सन्तुष्ट हुए।

उस समय दुर्वासाजीने कहा—राजन्! पूर्वकालमें जटा और वल्कल धारण करनेवाले तपस्वीलोग नेपालमें देवताओंके देवता भगवान् पशुपतिकी भक्तिभावसे पूजा करते थे, परंतु उनके साथ उन्होंने पार्वतीजीकी पूजा नहीं की। इसलिये पार्वतीजीने उन ब्राह्मणोंको शाप दिया—'तुमलोग एक सहस्र वर्षोंतक कुत्तेकी योनिमें रहोगे।' तबसे वे मुनीश्वर लोग कुत्तेकी योनिमें पड़े हुए हैं। राजन्! हमारा प्रिय करनेकी इच्छासे तुम उन सबको शापसे मुक्त कर दो।

राजा बोले—मैं उन ब्राह्मणोंको उस शापसे मुक्त करूँगा।

ऐसा कहकर राजाने अपने दूतोंको वनमें भेजा। दूतोंने उन वनवासी मुनियोंको नमस्कार करके उनके पूर्वजन्मका स्मरण कराया। तब वे सब लोग अशोकवनिकामें आये। उन सबको देखकर चक्रवर्ती राजा रविश्चन्द्रने बड़ी प्रसन्नताके साथ कहा—'भगवान् अशोकेश्वर एवं नर्मदादेवीकी महिमासे, मेरे दानके प्रभावसे तथा महर्षियोंके प्रसादसे ये सब मुनि कुत्तेकी योनि त्याग कर शिवलोकमें चले जायँ और इनका सब पाप मुझमें आ जाय।'

राजाके ऐसा कहते ही वे सब मुनि तत्क्षण शापसे मुक्त हो गये और राजासे इस प्रकार बोले—आप ही हमारे माता-पिता और मोक्षदाता गुरु हैं। ऐसा कहकर वे सब महर्षि उमामहेश्वर-धामको चले गये।

तब सम्पूर्ण देवताओंने राजाको धन्यवाद दिया। देवताओंकी दुन्दुभियाँ बजने लगीं और आकाशसे फूलोंकी वर्षा हुई।

उस समय दुर्वासाजीने कहा—महाराज! क्षत्रियोंमें मैंने तुम्हारे समान दूसरे किसीको न तो देखा है और न सुना ही है। मनुष्योंके लिये अपने प्राणोंको त्याग देना तो सुकर है, परंतु अपने संचित धर्मका त्याग करना बहुत ही कठिन है। तुम्हारा कल्याण हो, तुम कोई वर माँगो।

तब राजा हँसते हुए बोले—मुने! हमारे दानके प्रभावसे पापबुद्धिवाले मनुष्य भी उत्तम पदको प्राप्त हों, यही मेरा प्रिय वर है।

'एवमस्तु'—ऐसा ही होगा—यह कहकर मुनिवर दुर्वासा वहीं अन्तर्धान हो गये। अमित तेजस्वी राजाके उस अद्भुत कर्मको देखकर धर्मराजने कहा—'राजन्! मैं तुम्हें वर देता हूँ, जिसने अपना उत्तम पुण्य दे दिया, उसने यमलोक और देवलोकको भी जीत लिया। राजेन्द्र! तुम अवश्य वर पानेके योग्य हो।'

रविश्चन्द्र बोले—सूर्यनन्दन! मेरे सौ यज्ञ, दान और तपस्याके प्रभावसे वे सभी पापी जीव शिवधामको प्राप्त हो जायँ, जो इस समय पापयोनिमें पड़े हुए हैं। मैं इसी वरको प्राप्त करना चाहता हूँ, आप मुझपर कृपा करें।

यमराजने कहा—सत्यधर्मका पालन करनेवाले राजेन्द्र! तुम्हारी यह इच्छा पूर्ण हो। सुव्रत! इस सत्यके प्रभावसे तुम उत्तम लोकको जाओ। राजन्! तुमने जिन सैकड़ों क्षत्रियों और सहस्रों अन्यान्य जीवोंका पापसे उद्धार किया है, उन सबकी कोई गणना नहीं है।

ऐसा कहकर धर्मराज देव-दानववन्दित कामिक विमानपर आरूढ़ हो अपने लोकको चले गये।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

वागीश्वरतीर्थमें राजा ब्रह्मदत्तके यज्ञमें प्रेतोंका उद्धार तथा सहस्त्रावर्त आदि तीर्थोंकी महिमा

मार्कण्डेयजी कहते हैं—नर्मदाके उत्तर तटपर वागीश्वर नामका एक पुर है, वहाँ वागु नामवाली नदी नर्मदाके साथ मिली है। उस संगममें जो स्नान करते हैं वे स्वर्गको जाते हैं और जो मरते हैं वे मुक्त हो जाते हैं। वहाँ दानवोंका विनाश करनेवाली वागीशा चामुण्डा रहती हैं। मणिभद्र और वीरभद्र आदि सैकड़ों राजा उस तीर्थके प्रभावसे शापमुक्त हुए हैं। वहाँ तिलसहित पिण्डदान करनेसे पितरोंको उत्तम गति प्राप्त होती है। सूर्यवंशमें अयोध्याके चक्रवर्ती राजा ब्रह्मदत्त प्रसिद्ध हैं। वे धन-धान्यसे सम्पन्न तथा भय और दरिद्रतासे रहित थे। उनके शासनकालमें समस्त प्रजा बड़े आनन्दसे रहती थी। उन्होंने नर्मदा और वागुके संगममें एक श्रेष्ठ यज्ञ किया था, जिसमें ब्रह्मा, इन्द्र, विष्णु, गणेश तथा महादेवजी आदिने प्रत्यक्ष प्रकट होकर अपना भाग ग्रहण किया। राजा ब्रह्मदत्तकी यज्ञभूमि दस योजनतक फैली हुई थी। उनका यह यज्ञ स्वारोचिष मन्वन्तरके आदि-कल्पवाले सत्ययुगमें हुआ था। उस समय ब्रह्मदत्तके यज्ञसे तथा वागीश्वर और नर्मदाके प्रसादसे प्रेतोंको भी बड़ी तृप्ति हुई। वे प्रेत पहलेके वानप्रस्थ ऋषि थे। उन्होंने स्त्रियोंके आग्रहसे सूर्यग्रहणके अवसरपर कुरुक्षेत्रमें बहुत-सा दान लिया था। इसीसे वे प्रेतभावको प्राप्त हुए थे। प्रेत होनेपर भी उन्हें पूर्वजन्मका स्मरण बना रहा। अतः एकान्तमें बैठकर वे अपने विषयमें इस प्रकार शोक करने लगे—'अहो! जिनके लिये हमने प्रतिग्रह स्वीकार किया, वे हमारे पुत्र, पत्नी, भृत्य और भाई-बन्धु तो ज्यों-के-त्यों बने हुए हैं; वे उस प्रतिग्रहकी आगमें दग्ध नहीं हुए हैं। हमें अकेले ही उस आगमें जलना पड़ा है। यमदूतोंसे पकड़े हुए प्राणियोंके साथ उनके माता-पिता, भाई-बन्धु, स्त्री-पुत्र और धन आदि भी नहीं जाते, एकमात्र धर्म ही उनका साथ देता है।'

इस प्रकार दीर्घकालतक शोक करके स्त्री-पुत्रसे रहित हुए वे प्रेतगण सारी पृथ्वीपर घूम-घामकर नारदजीके उपदेशसे उमापति शिवका ध्यान करते हुए उसी वागीशपुरमें चले आये। वहाँ स्नान करके उन्होंने भगवान् शिव, विष्णु और सूर्यदेवका पूजन किया। ब्रह्मदत्तके उस यज्ञमें आकर वे सभी पापमुक्त हो गये और ब्रह्माजीके लोकमें गये। तदनन्तर राजा ब्रह्मदत्तके ऊपर फूलोंकी वर्षा होने लगी।

मार्कण्डेयजी कहते हैं—युधिष्ठिर! प्रतिग्रह एक भारी ग्रह है। जो लोभ और मोहसे मोहित हो उस ग्रहसे ग्रस्त हो गये हैं, वे घोर नरकमें डूबते हैं। यद्यपि वेदोक्त यज्ञ और तीर्थयात्रा आदि सत्कर्म भी सफल होते हैं, उनके द्वारा सद्गतिमें सहायता मिलती है, तथापि प्रतिग्रह (दान) लेनेवाले मनुष्य अपने आत्माको क्लेश देते हैं। दाता और याचककी क्या गति होती है, इसकी सूचना उनके हाथोंसे ही मिल जाती है। देनेवाला ऊपरको जाता है और लेनेवाला नीचेको।

सहस्त्रावर्तक नामसे प्रसिद्ध एक तीर्थ है। वहाँ विधिपूर्वक स्नान करनेवाले पुरुषको वृषोत्सर्गका फल प्राप्त होता है और वह अपनी सात पीढ़ीतकको पवित्र कर देता है। नर्मदाके उत्तर तटपर यह तीर्थ सहस्त्र धनुषतक फैला हुआ है। उसके अन्तमें काराका उत्तम वन है। वहाँ स्नान करनेसे अग्निष्टोम यज्ञका फल मिलता है और मनुष्य स्वर्गलोकको जाता है। नर्मदाके उत्तर भागमें सौगन्धिक नामक परम सुन्दर वन है, जिसमें प्रवेश करके मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। तदनन्तर नदियोंमें उत्तम सरस्वती नदी हैं। उनके जलमें स्नान करना चाहिये। वहाँ देवताओं और पितरोंका तर्पण करके मनुष्य अश्वमेध यज्ञका फल पाता है। वहीं ईशानाध्युषित नामक परम दुर्लभ तीर्थ है। नरश्रेष्ठ! व्यतिपात योग, संक्रान्ति और ग्रहणके समय उस

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

तीर्थमें स्नान करके मनुष्य सहस्र कपिला गौओं, सुगन्धित पदार्थों और सुवर्णोंके दानका तथा पंच-यज्ञोंके अनुष्ठानका फल पाकर स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है। भारत! वहीं त्रिशूल नामक तीर्थ है। वहाँ जाकर जो स्नान और देवता-पितरोंका पूजन करता है, वह देहत्यागके पश्चात् गणपति-पदको प्राप्त होता है। युधिष्ठिर! नर्मदाके उत्तर तटपर ब्रह्मोद नामसे विख्यात एक तीर्थ है जो इच्छानुसार भोग एवं फल देनेवाला है। यहाँपर श्राद्धका दान देनेसे पितर ब्रह्मलोकमें जाते हैं। नर्मदाके उत्तर भागमें अत्यन्त उत्तम सोमतीर्थ है। वहाँ स्नान करके मनुष्य स्वर्गलोकमें सम्मानित होता है।

देवपथतीर्थ, शुक्लतीर्थ, दीप्तिकेश्वरकी महिमा, देवासुरोंके द्वारा महादेवजीकी स्तुति तथा वैष्णव तीर्थकी महिमा

मार्कण्डेयजी कहते हैं—तदनन्तर देवपथ नामक सर्वदेवमय शुभ तीर्थ है। उसमें विधिपूर्वक स्नान करनेवाला पुरुष सब यज्ञोंका फल पाता है। वहीं देवपथ नामसे प्रसिद्ध शिवलिंग भी है, जिसका श्रद्धापूर्वक दर्शन करनेसे पितरोंकी उत्तम गति होती है। वहीं सहस्रयज्ञ नामका उत्तम तीर्थ है, जहाँ मार्गशीर्ष मासमें एकादशी तिथिको भगवान् विष्णुकी पूजा करके मनुष्य सहस्र यज्ञोंके अनुष्ठानका फल पाता है। उस तीर्थके प्रभावसे वह पापरहित हो जाता है। वह यमलोकको नहीं देखता और पशु-पक्षियोंकी योनिमें भी नहीं जाता। तदनन्तर शुक्लतीर्थमें जाय। उसमें स्नान करनेवाला मनुष्य दस गोदानका फल पाता है। शुक्लतीर्थ आठ हाथका है। वहाँ कालाग्निरुद्र तथा श्रीकण्ठदेव हैं। पूर्वकालमें इन्द्रने भी देवदेव उमापतिको नर्मदाके जलसे नहलाकर बिल्वपत्रोंद्वारा उनका पूजन किया था। शुक्लतीर्थके प्रभावसे ही देवता उद्दीप्त हो रहे हैं। वहीं कश्यपजीका देवताओं और सिद्धोंसे सेवित पुण्य आश्रम है। वहाँ दस हजार मुनि शुक्लेश्वरकी उपासना करते हैं। कुबेरने सूर्यग्रहणके अवसरपर शुक्लतीर्थमें चन्दन, अगर, कपूर, फूल-माला, चँदोवा, ध्वज तथा दीपमाला आदि उपचारोंसे महेश्वरका पूजन किया था। अतः उस तीर्थके प्रभावसे ही वे यक्षोंके राजा और धनके स्वामी हुए हैं। उसी तीर्थके प्रभावसे देवताओंने देवलोकमें नाना प्रकारके भोग प्राप्त किये हैं। वह तीर्थ सर्वतीर्थमय और सर्वदेवमय है। वहाँ स्नान और महादेवजीका पूजन करके मनुष्य सब देवताओं और दैत्योंके गणोंसे पूजित होता है।

राजन्! ययाति नामसे प्रसिद्ध एक चक्रवर्ती राजा हो गये हैं। उन्होंने बड़े-बड़े यज्ञोंद्वारा भगवान् यज्ञपुरुषका पूजन किया है। जहाँ पुण्यसलिला मधुमती नदी नर्मदाके साथ मिली है, वहाँ उन्होंने ब्राह्मण-ऋत्विजोंके साथ यज्ञ प्रारम्भ किया था। वहीं मध्येश्वरलिंग है जहाँ साक्षात् भगवान् महेश्वर निवास करते हैं। वहाँ स्नान करनेवाले स्वर्गमें जाते हैं और जो वहाँ मरते हैं वे मुक्त हो जाते हैं। उसी स्थानपर भगवान् विष्णुने मधु और कैटभ नामक दैत्योंका वध किया था। वहाँ श्रीविष्णुदेवके पूजनसे सहस्र गोदानका फल मिलता है। उस तीर्थमें तिलोंके साथ जलदान और पिण्डदान करनेसे पितर चौदह इन्द्रोंकी स्थिति-कालतक तृप्त रहते हैं। ययातिका यज्ञ पूर्ण होनेके पश्चात् वहाँ पातालसे कालाग्निके समान कान्तिमान् एक शिवलिंग प्रकट हुआ। भारत! उस लिंगकी प्रभासे सम्पूर्ण जगत् उज्ज्वल हो गया। तब लिंगरूपधारी भगवान् वृषध्वजने राजा ययातिसे कहा—'राजन्! तुम्हारा कल्याण हो, तुम कोई वर माँगो।'

ययाति बोले—देव! आप भगवती पार्वतीके साथ यहाँ रहें और इस स्थानका कभी त्याग न करें। यहाँ किये हुए यज्ञ, दान आदि सब

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

कार्य सदा अक्षय हों। तपस्या और दानसे रहित पापी मनुष्य भी यहाँ स्नान करके शुक्लतीर्थके प्रभावसे आपके लोकमें चले जायँ।

महादेवजीने कहा—राजन्! तुमने जो कुछ कहा है, वह सब सत्य होगा।

तत्पश्चात् सब देवता अपने-अपने विमानपर आरूढ़ हो स्वर्गलोकको चले गये। राजर्षि ययाति भी दीर्घकालतक राज्यका पालन करके अन्तमें स्वर्गलोकको गये।

मार्कण्डेयजी कहते हैं—दीप्तिकेश्वर नामसे प्रसिद्ध एक सिद्धलिंग कहा गया है, जिससे श्रेष्ठ तीनों लोकोंमें दूसरा कोई भी प्रसिद्ध नहीं है। दीप्तिकेश्वर देवका दर्शन, स्पर्श और पूजन करनेसे अनेक जन्मोंका घोर पाप क्षणभरमें नष्ट हो जाता है। जो मानव एक दिन या दो घड़ी भी उनकी पूजा करता है वह इस भयानक संसार-समुद्रमें फिर जन्म नहीं लेता।

देवताओंके स्वामी विष्णु, ब्रह्मा तथा अन्यान्य देवताओंके द्वारा विभिन्न नामोंसे उन उमावल्लभ महादेवजीकी स्तुति इस प्रकार की गयी— भगवान् शिव सदा रहनेवाले, अचल, प्रभा, प्रकाशरूप, दीप्तिमान्, श्रेष्ठ वर देनेवाले, अभीष्ट मनोरथ, पापहारी, श्वेतवर्ण, सब प्राणियोंका संहार करनेवाले, सर्वसमर्थ, संसारके कारण, वैराग्य एवं मोक्षके कारण, संयमरूप, सनातन, अटल, श्मशानवासी, भगवान्, आकाशमें विचरनेवाले, इन्द्रियोंमें व्याप्त, वन्दना करनेयोग्य, महान् कर्म करनेवाले, तपस्वी, समस्त प्राणियोंको उत्पन्न करनेवाले, मतवाले वेषमें अपने स्वरूपको छिपाये रखनेवाले, सम्पूर्ण लोकोंकी प्रजाके पालक और स्वामी, विराट्स्वरूप, विशाल शरीरवाले, समस्त लोकोंकी सृष्टि करनेवाले ब्रह्मा, समस्त प्राणियोंके परमात्मा, विविध रूपोंवाले, छोटे रूपवाले, मनन करनेवाले, सम्पूर्ण विश्वके पालक, छिपे रूपवाले, सदाप्रसन्न, संसार-बन्धनका नाश करनेवाले, प्रवृत्तिमार्गमें स्थित, महान् अंगोंवाले, समष्टिरूप, सबके सुनिश्चित आधार, सब कामनाओंसे सम्पन्न, स्वतः प्रकट होनेवाले, आदि और अन्त अर्थात् सृष्टि और संहार करनेवाले, जीवोंके आश्रय, सहस्रों नेत्रोंवाले, भयंकर नेत्रोंवाले, चन्द्रस्वरूप अथवा उमासहित, नक्षत्रोंको सिद्ध करनेवाले, चन्द्र, सूर्य, शनि, केतु, ग्रह, ग्रहपति, श्रेष्ठ, तपस्याके साक्षी, बलस्वरूप, खड़े रहनेवाले, यज्ञरूपी मृगपर बाण चलानेवाले, पापरहित, महान् तपस्वी, दीर्घकालतक तपस्या करनेवाले, सबकी उत्पत्तिके आदिकारण, दीनोंपर दया करनेवाले, सूर्यरूपसे वर्ष पूरा करनेवाले, मन्त्र, प्रमाण, परम तपःस्वरूप, योगी, योगकी महान् शक्तिसे सम्पन्न, महान् वीर्यवाले, हर, महाचेता, सर्वज्ञ, कारणसहित, संहारकारी, हरण करनेवाले, कमण्डलुधारी, धनुष धारण करनेवाले, सबके प्राणोंको अपने हाथपर रखनेवाले, प्रतापवान्, जीवात्मारूप, अपनेसे भिन्न अन्य किसी ईश्वरसे रहित, शूलधारी, खट्वांगधारी, पट्टिशधारी, पवित्र, पवित्रस्वरूप, तेजःस्वरूप, तेज प्रकट करनेवाले, आश्रयस्वरूप, मुकुट धारण करनेवाले, सुमुख, जलमें रहनेवाले, विस्तार करनेवाले, सूर्यरूप, सूर्य और चन्द्रमारूपी नेत्रवाले, सुन्दर तीर्थरूप, अपनी ओर आकृष्ट करनेवाले, शृगालेश्वररूपसे प्रकट, सर्वप्रयोजनरूप, सूँड़ धारण करनेवाले गणेशरूप, निर्मल, जलके आधारभूत कमण्डलुकी भाँति सम्पूर्ण संसारके आश्रय, अजन्मा, सुगन्धित माला धारण करनेवाले, हरिणरूपधारी, कपाल धारण करनेवाले, जिनके वीर्यकी गति ऊपरकी ओर है ऐसे, ऊपरके लोकोंके साक्षी, ऊँची उठी हुई भुजाओंवाले, नभ, अष्टमूर्तियोंमेंसे आकाशरूप, तीन जटा धारण करनेवाले, सब जीवोंके आवासस्थान, रुद्र, कार्तिकेयरूपसे देवताओंके सेनानायक, सर्वव्यापक, दिनमें चलने-फिरनेवाले, रातमें विचरनेवाले, जिनके श्रीअंगोंसे उत्तम सुगन्ध निकल रही है ऐसे, सम्पूर्ण दिशाओंके स्वामी राजाओंको मारनेवाले परशुरामरूप, त्रिपुरासुर-अन्धकासुर आदि दैत्योंको मारनेवाले, धारण-पोषण करनेवाले, रूपगुणस्वरूप, सिंह और

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

शार्दूलरूपसे प्रकट—व्याघ्रेश्वर, गजासुरका गीला चमड़ा धारण करनेवाले, पीड़ा हरनेवाले, समयसे योगसाधनामें तत्पर, महानादस्वरूप, सबके निवासस्थान, चारों ओर जानेवाले मार्गस्वरूप, दुर्धर्ष प्रेतोंमें विचरनेवाले, समस्त प्राणियोंमें रहनेवाले, महान् ईश्वर, अनेक रूपोंमें प्रकट, बहुत धनवाले, समस्त पुरुषार्थस्वरूप, उत्तम गतिस्वरूप, ताण्डव-नृत्यको पसंद करनेवाले, ताण्डव-नृत्य करनेवाले, नाचनेवाले, मेघस्वरूप, भयंकर, बड़ी भारी तपस्या करनेवाले, सबमें वास करनेवाले, अविनाशी, पर्वतोंको धारण करनेवाले आकाशरूप, सहस्रों रूपोंमें प्रकट, जाननेयोग्य, उद्योग एवं निश्चयरूप, निर्णय एवं सिद्धान्तरूप, अन्याय न सहनेवाले, क्षमाशील, चतुर, दक्ष-यज्ञका विध्वंस करनेवाले, दक्षयज्ञका अपहरण करनेवाले, उत्तम उत्सवरूप, मध्यस्थ, विरोधियोंके तेजका अपहरण करनेवाले, दक्ष-यज्ञमें देवताओंके यज्ञभागका हनन करनेवाले, प्रसन्न, पूजित, सबके उत्पादक, गम्भीर गर्जना करनेवाले, गाम्भीर्ययुक्त, गम्भीर, हविष्य पहुँचानेवाले अग्निस्वरूप, वटवृक्षरूप, बरगद या अक्षयवटरूप, नक्षत्रोंकी भाँति चमकनेवाले, समर्थ, विभु, तीखे बाणवाले, सूर्य और चन्द्ररूप नेत्रोंवाले, महादेव, कर्म और कालके ज्ञाता, यज्ञ एवं व्रतकी दीक्षा देनेवाले, भक्तोंद्वारा प्रसन्न किये जानेवाले, यज्ञस्वरूप, समुद्ररूप, समुद्रान्तर्वर्ती बडवानल नामक अग्नि, यज्ञमें आहुतिरूपसे प्राप्त हविष्यके भोक्ता, अग्निमुख, प्रसन्नात्मा, अग्निरूप, महान् तेजस्वी, उत्तम तेजस्वी, विजय, जय, ज्योतिर्मण्डलके आश्रय, सिद्धिरूप, शत्रुओंसे मेल रखनेकी नीतिरूप, अवसर देखकर शत्रुके साथ युद्ध करनेकी नीतिरूप, शिखाधारी, दण्डधारी, जटा धारण करनेवाले, लपटवाले, मूर्तिमान् जलरूप, बलहीन, बाह्यस्वरूप, बाँसका डंडा धारण करनेवाले, पापियोंको वेतालकी भाँति भय देनेवाले, कालाग्नि, कालको भी दण्ड देनेवाले, तारास्वरूप अथवा अविनाशी शरीरवाले, अभ्युदयरूप, ब्रह्मारूप, सुगन्ध वहन करनेवाले वायुरूप, सबसे ज्येष्ठ, प्रजाजनोंके रक्षक, विष्णुस्वरूप, भुजाकी भाँति सबके सहायक, यज्ञमें विशिष्ट भाग ग्रहण करनेवाले, सब ओर मुखवाले, संसार-बन्धनसे मुक्त करनेवाले, देवसमुदायरूप, सुवर्णमय कवच धारण करनेवाले, जगत्स्वरूप रजोगुणरहित, भस्म लगानेवाले, बड़े आचारवान्, विख्यात यशवाले, आदिरहित, सब प्राणियोंके आदिकारण, सबके आदिपुरुष, सबके जन्मदाता, सबके ज्ञानदाता, सर्पस्वरूप, महान् आवाससे युक्त, तुच्छ वस्तु (धतूरों)-की माला धारण करनेवाले, मस्तकपर उठती हुई गंगाकी लहरोंको जाननेवाले, तीन वेद और तीनों लोक जिनके पद अर्थात् स्थान हैं, वे भगवान् शिव त्रिनेत्रधारी, अव्यक्त, सब बन्धनोंसे मुक्त करनेवाले, ज्ञानसे प्रसन्न होनेवाले, असुन्दर वस्त्र धारण करनेवाले, समस्त साधनोंसे सेवित, अपने मस्तकसे गंगाजीका स्रोत बहानेवाले, विभागरहित, सदा एकरस, यज्ञविभागके ज्ञाता, सबमें सदा रहनेवाले, सर्वत्र विचरनेवाले, दुर्वासामुनिस्वरूप, भैरव, यमराजस्वरूप, शीतल, चन्द्रस्वरूप, यज्ञस्वरूप, सबका धारण-पोषण करनेवाले, विद्वानोंमें सर्वश्रेष्ठ, लाल-लाल आँखोंवाले, बड़े-बड़े नेत्रोंवाले, विजयस्वरूप, विशिष्ट विद्वान्, संग्रह, विग्रह, कर्म, नागेन्द्र-हारसे विभूषित, सबमें प्रमुख, विमुक्तदेह, शरीरमें रहनेवाले प्राणस्वरूप, कर्दमरूप, सर्वाचारस्वरूप, प्रसन्नतारूप, खेचरस्वरूप, बल और रूप धारण करनेवाले, आकाशवृत्तिरूप, निपात, सर्परूप, खलरूप, रौद्ररूप, देवताओंमें सूर्यरूप, रत्नस्वरूप किरणोंसे युक्त, उत्तम तेजवाले, वायुके समान वेगवाले, महान् वेगवाले, मनके समान वेगवाले, रात्रिचारी, सर्वावास, लक्ष्मीके निवासस्थान, व्यापक, लोकेश जिनकी कलाएँ हैं वे, हर, मुनि, आत्मगति, लोक, सहस्रमुख, विभुस्वरूप, यक्षोंसे युक्त, कुबेररूप, बाज पक्षीके समान वेगवाले, प्रकाशरूप, प्रजाओंके स्वामी, मतवाले, कामदेवके तुल्य रूपवाले, अर्थ और अनर्थकी प्राप्तिमें कारण, महान् सिद्धयोगस्वरूप, भक्तोंके क्लेशोंका अपहरण

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

करनेवाले, सिद्ध, सर्वार्थसाधक, भिक्षु, भिक्षुरूप, छः प्रकारके ऐश्वर्योंके स्वामी, कोमल चमड़ीवाले, विशाल सेनावाले कार्तिकेयरूप, विशाख—स्कन्द, जिनका भाग लाठीमें बाँधा जाता है वे, गौओंके पालक, हाथमें वज्र धारण करनेवाले, रोकनेवाले, विशेष रूपसे स्थित, स्तब्ध करनेवाले, नक्षत्ररूप, शत्रुको भी सहारा देनेवाले, काल, वसन्तरूप, महुआके समान नेत्रोंवाले, बृहस्पतिरूप, अन्न ही जिनकी सेना है ऐसे, निष्ठावान् आश्रमसूचक, ब्रह्मचारी, लोकचारी, सर्वचारी, उत्तम रत्नोंके ज्ञाता, ईशान, ईश्वर, काल, निशाचारी, एकमात्र सबके धारण करनेवाले, अमित प्रमाणातीत, नदों और नदियोंको उत्पन्न करनेवाले, अव्यय, नन्दीश्वर, सुनन्दी, नन्दन, नन्दवर्धन, नागहारी, विहारी, काल, ब्रह्मवेत्ताओंमें सर्वश्रेष्ठ, चतुर्मुख, महालिंग, चतुर्लिंग, लिंगाध्यक्ष, सुराध्यक्ष, कालाध्यक्ष, युगोंको धारण करनेवाले, उमापति, उमाकान्त, गंगाधर, वर, सर्वार्थ, सब प्राणियोंका अर्थ सिद्ध करनेवाले, नित्य, सब व्रतोंके पालक तथा शुचि (पवित्र) हैं। नाथ! ब्रह्मा आदि देवताओं और महर्षियोंको भी जिनका ज्ञान नहीं होता, उन्हीं आप परात्पर परमात्माकी स्तुति कैसे की जा सकती है?

मार्कण्डेयजी कहते हैं—इस स्तोत्रको सुनकर श्रीमान् द्वीपेश्वर शिव प्रसन्नतापूर्वक मुसकराते हुए बोले—'देवताओ! तुमलोग वर माँगो।'

देवता बोले—महेश्वर! आप दैत्योंके विनाश और हमारी रक्षाके लिये उद्यत रहें। जो पापपरायण अधम मनुष्य भी यहाँके पाँच लिंगोंका अर्चन करे उसे वह उत्तम गति प्राप्त हो, जो बड़े-बड़े यज्ञोंद्वारा भी दुर्लभ है।

पूर्वकालमें उसी तीर्थमें इन्द्रने देव-दानववन्दित देवाधिदेव उमापतिका सहस्र नामोंद्वारा स्तवन किया था। इससे भगवान् शंकरका प्रसाद प्राप्त करके वे देवराजके पदपर प्रतिष्ठित हुए। इसी प्रकार कुबेरने लक्षेश्वर देवका स्तवन किया था। युधिष्ठिर! उस तीर्थमें जो मोक्षदा नामवाली देवी हैं, उन्हींको पार्वती जानो। मोक्षेश्वर सिद्धलिंग है, वहाँ देवता और असुर भी मस्तक नवाते हैं।

तदनन्तर परम उत्तम वैष्णवतीर्थको जाय। वह तीर्थ कोकिला नामसे विख्यात है और सब पापोंका नाश करनेवाला है। देवाधिदेव भगवान् जनार्दन उसे वैष्णवक्षेत्र कहते हैं। जो मनुष्य वहाँ परम पवित्र एकादशी व्रत करके दीपमालाको जगाता है, उसकी इस दुःखद मर्त्यलोकमें पुनः आवृत्ति नहीं होती। वहाँपर श्राद्ध आदि करनेसे पितरोंको अनन्त कालतक तृप्ति बनी रहती है। इसी तीर्थमें किये हुए पुण्यसे ध्रुव नक्षत्रोंके तेजसे परम उज्ज्वल होकर ध्रुवपदको प्राप्त हुए हैं। नर्मदा सर्वतीर्थमयी है, महादेवजी भी सर्वदेवमय हैं, बुद्धि सर्वधर्ममयी है तथा तपस्या क्षमा और सत्यमय है। पाँचों इन्द्रियोंको वशमें करना ब्रह्मचर्य है और यह ब्रह्मचर्य ही तपस्याका मूल है। क्षमा, सत्य, जप, स्वाध्याय और तप—इन्हींका नाम संयम है। राजन्! जो मनुष्य प्रातःकाल उठकर द्वीपेश्वर, कपिलेश्वर और नरकेश्वर—इन सबका नाम लेता है, वह सब तीर्थोंका फल पाकर शिवलोकमें प्रतिष्ठित होता है।

नर्मदाजीकी तथा भगवान् विष्णुकी स्तुति

मार्कण्डेयजी कहते हैं—पूर्वकालमें जब नर्मदा इस लोकमें आ रही थीं, उस समय देवताओं और ब्रह्मर्षियोंने उन्हें नमस्कार करके उनका स्तवन किया—'देवि! आपने चराचर प्राणियोंसहित मर्त्यलोकको पवित्र एवं पुण्यमय कर दिया है। जलके रूपमें प्राप्त हुई नर्मदाजी महादेवजीकी उत्तम कला हैं। आप ही उमा, कात्यायनी, गंगा, यमुना, सरस्वती, चामुण्डा, चर्चिकादेवी तथा रेवा हैं। देवि! आपका प्रादुर्भाव भगवान् शंकरसे हुआ है। आप पुण्यमय प्रवाहस्वरूपा हैं। मेकल नामक

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

पर्वतसे प्रकट होनेके कारण आपको उसकी कन्या कहते हैं। सबने आपका स्तवन किया है। आपके तट यज्ञयूपसे सुशोभित हैं। आप समस्त तीर्थोंकी मुकुटमणि हैं और स्वर्ग तथा मोक्ष प्रदान करनेवाली हैं। आप ही सम्पूर्ण प्राणियोंको तारनेवाली और उनके पापोंका नाश करनेवाली हैं। लक्ष्मी, स्वाहा, स्वधा और यशस्विनी पुरुहूता भी आप ही हैं। सुव्रते! आपने जलरूपसे सम्पूर्ण जगत्को व्याप्त कर रखा है। आपके संगम और सिद्धलिंगको देवता तथा असुर भी नमस्कार करते हैं।

युधिष्ठिरने पूछा—मुनिश्रेष्ठ! जिस मनुष्यके कर्मरूप बन्धन नहीं टूटे हैं, उसे किस प्रकार परमपदकी प्राप्ति हो सकती है?

मार्कण्डेयजी बोले—राजन्! पूर्वकालमें भगवान् विष्णुने महात्मा ब्रह्माजीको परमपद-प्राप्तिका उपाय बताया था। वह उपाय है—भगवान् विष्णुका स्तवन, जो इस प्रकार है—

'मैं कमलके समान नेत्रोंवाले पापहारी हरि श्रीनारायणदेवकी शरण लेता हूँ। जो सम्पूर्ण लोकोंके रक्षक, सहस्रों नेत्रोंसे विभूषित, अविनाशी एवं परम पदस्वरूप हैं तथा भूत, भविष्य और वर्तमानके स्वामी हैं, उन भगवान् विष्णुकी मैं शरण लेता हूँ। जो सब भूतोंकी सृष्टि करनेवाले तथा अनन्त बल-पराक्रमसे सम्पन्न हैं, जिनकी नाभिसे कमल प्रकट हुआ है, जो इन्द्रियोंके स्वामी, सत्यस्वरूप तथा विकाररहित हैं, उन श्रीविष्णुकी मैं शरण लेता हूँ। जो हिरण्यगर्भस्वरूप, पृथ्वीको अपने गर्भमें रखनेवाले, अमृत (अविनाशी), सब ओर मुखवाले, नाशहीन तथा अपने सिवा किसी अन्य स्वामीसे रहित हैं, उन सूर्यके सदृश कान्तिमान् श्रीहरिकी मैं शरण लेता हूँ। जिनके सहस्रों मस्तक हैं, जो द्युतिमान् देव, वैकुण्ठधामके अधिपति, सूक्ष्म, अचल, वरेण्य और अभयदाता हैं, उन भगवान् गरुड़वाहनकी मैं शरण लेता हूँ। जिन्हें नारायण और हरि कहा गया है, जो योगात्मा, सनातन पुरुष तथा सब लोकोंको शरण देनेवाले हैं, उन अविनाशी ईश्वरकी मैं शरण लेता हूँ। जो सम्पूर्ण भूतोंके स्वामी हैं, जिनसे यह सम्पूर्ण जगत् व्याप्त हो रहा है तथा जो संहारकारी देवता हैं, वे भगवान् विष्णु मुझपर प्रसन्न हों। पूर्वकालमें जिनसे कमलयोनि प्रजापति ब्रह्माजीका प्रादुर्भाव हुआ है, वे पितामह ब्रह्मासे भी परे विराजमान भगवान् विष्णु मुझपर प्रसन्न हों। प्राचीन कालमें जब महाप्रलय हो गया था, सम्पूर्ण चराचर जगत् नष्ट हो चुका था, उस समय जो योगस्वरूप परमात्मा अकेले ही शेष थे, वे श्रीविष्णु मुझपर प्रसन्न हों। जो पृथुरूपसे इस पृथ्वीको जीत लेते हैं, अथवा वाराहरूप धारण करके पृथ्वीको अपने अधिकारमें करते हैं, जो सत्य, काल, धर्म, क्रिया, फल और गुणस्वरूप हैं, सत्पुरुषोंकी वाणीरूप वे भगवान् वासुदेव मुझपर प्रसन्न हों।'

'योगावास! आपको नमस्कार है। सबके आवासस्थान! वरदायक! यज्ञभोगी और पंचभोगी नारायण! आपको नमस्कार है। वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध—इन चार रूपोंवाले जगद्धाम! लक्ष्मीनिवास! वरप्रद! विश्वावास! साक्षीभूत! जगत्पते! आपको नमस्कार है। ज्ञानसागर! आप अजेय हैं। छः प्रकारकी ऊर्मियोंसे जिसका विभाग किया जाता है, वह सम्पूर्ण विश्व एकमात्र आपका ही स्वरूप है। आप वृषाकपि (शिव और विष्णु), मृगाधिप (नृसिंह) और काल हैं, आपको नमस्कार है। अव्यक्त प्रकृतिसे इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्डकी उत्पत्ति हुई है और प्रभु श्रीविष्णु अव्यक्तसे परे हैं। जिनसे परे कोई वस्तु नहीं है, उन भगवान् श्रीहरिकी मैं शरण लेता हूँ। ब्रह्मा और शिव आदि जिन शक्तिशाली श्रीहरिका नित्य चिन्तन करते हैं, जो व्यापक परमात्मा अपने एक अंशसे सम्पूर्ण जगत्को व्याप्त करके स्थित हैं, जिनका किसी भी इन्द्रियसे ग्रहण नहीं होता, जो निर्गुण होकर भी सम्पूर्ण जगत्के शासक हैं, उन श्रीहरिकी मैं शरण लेता हूँ। जो सूर्यनाड़ी पिंगला और चन्द्रनाड़ी इडाके मध्यभाग—सुषुम्णामें ज्योतिर्मय स्वरूपसे विराजमान हैं, जिन्हें क्षेत्रज्ञ कहते हैं, वे महात्मा श्रीविष्णु मुझपर प्रसन्न हों। जो कोई सिद्ध और महर्षि

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

ज्ञानयोगके द्वारा जिनके तत्त्वको जानकर संसार-बन्धनसे मुक्त हो जाते हैं, वे महात्मा मुझपर प्रसन्न हों। सब ओरसे कल्याणमय परमेश्वर! आपको नमस्कार है। आपके नेत्र, सिर और मुख सब ओर हैं। निर्विकार! आदिकल्प! हृदयस्थित परमेश्वर! आपको नमस्कार है। इन्द्रियातीत! आपको नमस्कार है। परमात्मन्! आपको नमस्कार है। जो राग-द्वेषसे मुक्त और लोभ-मोह आदिसे रहित पुरुष आपको जानते हैं, वे संसारमें आसक्त नहीं होते। आप शरीरसे रहित और अव्यक्त होते हुए भी सम्पूर्ण शरीरोंमें तदाकार हुए-से रहते हैं। अव्यक्त प्रकृति, बुद्धि, अहंकार, पंचमहाभूत और इन्द्रियाँ—ये सब आपमें स्थित हैं, आप उनमें नहीं हैं। वे आपके आश्रयके बिना स्वयं नहीं टिक सकतीं। आप अव्यक्त पुरुष हैं, अति कूटस्थ हैं, गुणोंके स्वामी और ईश्वर हैं, हेतुरहित आवर्त, प्रभु तथा अपने-आपमें स्थित हैं। पुण्डरीकाक्ष! आपको नमस्कार है। वासुदेव! आपको नमस्कार है। जगन्नाथ! आप ईश्वर हैं; इससे परे और क्या कहा जा सकता है। आप भक्तोंको मुक्ति देनेवाले, गुरु और देवताओंके स्वामी हैं। समस्त प्राणियोंका पालन करनेवाले वे ही आप श्रीहरि जन्म-जन्ममें मेरे स्वामी हों। मैं अहंकार तथा सत्त्व आदि तीनों गुणोंसे बँधा हूँ। मेरी नासिका अपने कारणभूत पृथ्वीतत्त्वमें मिल जाय, मेरी जिह्वा जलतत्त्वमें विलीन हो जाय, मेरे नेत्र तेजस्-तत्त्वमें समा जायँ, स्पर्शेन्द्रिय वायुमें विलीन हो जाय, श्रोत्रेन्द्रिय आकाशमें लीन हो जाय, मन अपने कारणतत्त्व अहंकारमें लीन हो जाय और मेरा अहंकार मेरी बुद्धिमें प्रवेश कर जाय तथा मेरी बुद्धि आपमें तल्लीन हो जाय। समस्त इन्द्रियों, शब्दादि विषयों और पंचभूतोंसे मेरा वियोग हो जाय। मेरे सत्त्व, रज और तम—ये तीनों गुण अपनी आश्रयभूता प्रकृतिमें समा जायँ। मैं तो प्रभुओंके भी प्रभु, दोषरहित श्रीहरिकी शरण लेता हूँ। जिनके सहस्रों मस्तक हैं, जो महान् ऋषि तथा सम्पूर्ण भूतोंको उत्पन्न करनेवाले हैं, उन भगवान् विष्णुकी मैं शरण लेता हूँ। जो ब्रह्मस्वरूप और सम्पूर्ण विश्वके उत्पत्तिस्थान हैं, वे श्रीविष्णु मुझपर प्रसन्न हों। महाप्रलयकालमें जब स्थावर-जंगम नष्ट हो जाते हैं और सम्पूर्ण भूत ब्रह्मपत्नी—मायामें विलीन हो जाते हैं और महत्तत्त्व प्रकृतिमें लीन हो जाता है तथा वह प्रकृति जिनके आश्रित रहती है और वैदिक मन्त्रोंद्वारा जिनके लिये आहुति दी जाती है, वे श्रीविष्णु मुझपर प्रसन्न हों। अग्नि, चन्द्रमा, सूर्य, देवता, ब्रह्म, रुद्र, इन्द्र तथा योगियोंके तेजोंको जो सदा बढ़ाते हैं, वे भगवान् विष्णु मुझपर प्रसन्न हों। प्रभो! आप अजन्मा हैं, जगत्के लिये वास्तविक मार्ग आप ही हैं। आपकी कोई मूर्ति नहीं है तो भी विश्वकी सब मूर्तियोंपर आपका अधिकार है। आप नित्य नूतन हैं। प्रकृति, महत्तत्त्व और चेतन पुरुष रूपसे आप ही सुशोभित होते हैं। जो आत्मारूपसे अगोप्य (अपरोक्ष अनुभवके योग्य) और सबसे श्रेष्ठ हैं, उन श्रीहरिकी मैं शरणमें आया हूँ। चन्द्रमा और सूर्यके सदृश जो अपने तेजको स्वयं ही इस धराधामपर उतारते हैं, जिनसे सम्पूर्ण दिशाएँ प्रकट हुई हैं, वे महात्मा श्रीहरि मुझपर प्रसन्न हों। जो सगुण, निर्गुण, चेतन, अचेतन, स्थूल, सूक्ष्म, सर्वगत और देहरहित हैं, वे महात्मा श्रीविष्णु मुझपर प्रसन्न हों। सूर्यके समीपमें चन्द्रमाकी स्थिति है अर्थात् पिंगला नाड़ीके निकट जो इड़ा नाड़ी है—इन दोनोंके मध्यभाग अर्थात् सुषुम्णा नाड़ीमें जिनका चिन्तन किया जाता है, जो वहाँ अविचल, तेजोमय स्वरूपसे प्रकाशित होते हैं, वे महात्मा श्रीहरि मुझपर प्रसन्न हों। प्रभो! जो नानात्वमें भी आपके एकत्वका दर्शन करते हैं, वे परमगतिको प्राप्त होते हैं। जो सब प्राणियोंमें सम, शत्रु, मित्र और उदासीन जनोंको प्रिय हैं, सबको समभावसे ग्रहण करते हैं, किसीसे कोई इच्छा नहीं रखते तथापि अपने भक्तोंको विशेषरूपसे अपनाते हैं, जो सब प्रकारसे जाननेयोग्य हैं, वे भगवान् विष्णु मुझपर प्रसन्न हों। यह समस्त चराचर जगत् और अण्डज, पिण्डज, स्वेदज, उद्भिज्ज—इन चार भेदोंवाला

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

प्राणिसमुदाय आपमें उसी प्रकार गुँथा हुआ है, जैसे डोरेमें मनके पिरोये होते हैं। आपके लिये धर्म और अधर्म नहीं है, आपका गर्भवास और जन्म भी नहीं होता। मैं जरा-जन्म और मृत्युके संकटोंसे मुक्ति पानेके लिये आप श्रीहरिकी शरणमें आया हूँ। श्रोत्र आदि इन्द्रियाँ, शब्द आदि विषय तथा श्वास-प्रश्वास आदि चेष्टाएँ सभी योनियोंमें सुलभ हैं। यह शरीर काष्ठकी भाँति एक दिन नष्ट हो जानेवाला है। आत्माके लिये तो यह बड़ी भारी विपत्तिरूप है। अपने-आपका अकेला होना तो स्वयंसिद्ध है। केवल शरीरके जन्मसे ही इसमें पुनर्जन्मकी प्रतीति होती है। भगवन्! मैं अपने मन, बुद्धि और प्राणोंको आपमें ही लगाकर, आपके भजनमें तत्पर और आपकी ही शरण प्राप्त होकर मृत्युकालमें भी आपका ही स्मरण करूँगा। प्रभो! मेरे द्वारा पूर्वजन्ममें जो अशुभ कर्म किये गये हों वे वातादिजनित रोगोंके रूपमें मेरे शरीरमें प्रवेश करें, जिससे उन सबका ऋण उतर जाय।'

अन्यान्य यशस्वी पुरुषोंके लिये भी कल्याणका सबसे श्रेष्ठ उपाय यही है कि वे इस स्तोत्रका पाठ करें। यह सब पापोंकी शुद्धि करनेवाला, पुण्यस्वरूप तथा परमपदरूप है। सदा प्रातःकाल, मध्याह्नकाल और सायंकालमें उठकर सब पापोंकी शान्ति करनेवाले इस जपनीय स्तोत्रका निरन्तर जप करना चाहिये—'मैं हरि, कृष्ण, हृषीकेश, वासुदेव, जनार्दन तथा जगन्नाथको प्रणाम करता हूँ। वे मेरे पापोंका निवारण करें। शंख, चक्र तथा शार्ङ्गधनुष धारण करनेवाले, मधुसूदन, लक्ष्मीपति श्रीविष्णुको प्रणाम करता हूँ। वे मेरे पापोंका नाश करें। जो जगत्का पालन करनेके लिये उद्यत रहनेवाले हैं, यशोदा माताके द्वारा कटिमें रस्सीसे बँधनेके कारण जो दामोदर नाम धारण करते हैं, सदा प्रसन्न रहते हैं तथा कमलके समान जिनके नेत्र हैं, उन अविनाशी विष्णुको मैं प्रणाम करता हूँ—वे मेरे पापोंका नाश करें। जो सब भूतोंके ईश्वर, अक्षर और अनिर्देश्य हैं और इसी रूपमें महात्मा पुरुष जिनका सदैव ध्यान करते हैं, उन भगवान् वासुदेवकी मैं शरणमें आया हूँ। सब प्रकारके बन्धनोंसे मुक्त हुआ पुरुष जिनमें प्रवेश करके पुनर्जन्मको नहीं प्राप्त होता, उन श्रीहरिकी मैं शरणमें आया हूँ। जो ब्रह्माजीका शरीर धारण करके देवता, असुर और मनुष्यसहित सम्पूर्ण जगत्की बार-बार सृष्टि करते हैं, उन भगवान् श्रीहरिकी मैं शरणमें आया हूँ। सम्पूर्ण जगत्की योनिरूप जो भगवान् जनार्दन ब्रह्माजीका शरीर धारण करके सदा सृष्टिकर्ममें संलग्न रहते हैं, उनको मैं प्रणाम करता हूँ। जिनसे परे दूसरी कोई वस्तु नहीं है, जिनमें यह सम्पूर्ण जगत् स्थित है, जो सबके भीतर अन्तर्यामीरूपसे विराजमान एवं अनन्त हैं, उन सर्वव्यापी श्रीहरिको मैं प्रणाम करता हूँ। जो सम्पूर्ण चराचर भूतोंमें व्याप्त हैं, वे श्रीविष्णु ही मेरे समस्त पापोंका नाश करें। मेरे द्वारा जो निवृत्तिप्रधान कर्म अथवा भगवान् विष्णुकी प्रसन्नताके लिये कर्म किया गया है, उससे मेरे अनेक जन्मोंके कर्मोंद्वारा संचित पाप अभी नष्ट हो जायँ। रात्रि, प्रातःकाल, मध्याह्न तथा अपराह्णकालमें अज्ञानवश मन, वाणी और क्रियाद्वारा जो कोई अशुभ कर्म किया गया हो, वह अभी क्षणभरमें नष्ट हो जाय। जैसे पानीमें नमक घुल-मिल जाता है, उसी प्रकार वह पापराशि भी विलीन हो जाय। दूसरोंको पीड़ा देना और परायी निन्दा करना आदि दोष जो मैंने जन्मभर किये हैं, उनसे तथा दूसरोंके धन, खेत आदिके प्रति लोभ होनेके कारण क्रोध होनेसे जो मेरे द्वारा पापराशिका संग्रह किया गया है, वह पानीमें पिघलनेवाले नमककी भाँति विलीन हो जाय। विष्णु, वासुदेव, हरि, केशव, जनार्दन तथा श्रीकृष्णको नमस्कार है, बार-बार नमस्कार है।'

युधिष्ठिर! इस स्तोत्रको ब्रह्माजीसे अंगिराने और अंगिरासे इन्द्रने प्राप्त किया। इधर, वसिष्ठजीने इस स्तोत्रको राजाओंमें श्रेष्ठ नाभागको सुनाया था। प्रजापालक राजर्षि नाभागने अतुल प्रभावशाली

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

इस विष्णुस्तोत्रका सदैव पाठ किया। तत्पश्चात् नर्मदाके जलमें स्नान और अनेक प्रकारके दान करके राजा नाभाग अपनी पुरीको गये।

जो इस स्तोत्रद्वारा भगवान् जनार्दनकी स्तुति करता है, उसका इस घोर संसार-सागरमें पुनरागमन नहीं होता।

मेघनादतीर्थका प्राकट्य और उसकी महिमा

मार्कण्डेयजी कहते हैं—युधिष्ठिर! प्राचीन त्रेतायुगकी बात है। पुलस्त्यपौत्र त्रिलोकविजयी रावण देवताओंके लिये कण्टक हो गया था। वह वरदान पाकर देवता, दानव, यक्ष, गन्धर्व, नाग तथा राक्षस सबके लिये अवध्य हो गया था और पृथ्वीपर सब ओर इच्छानुसार विचरण करता था। उन दिनों परम सुन्दर देवगिरिपर मय नामसे विख्यात एक बलोन्मत्त दानव रहता था। रावण वहाँ मयको उपस्थित जान उसके समीप जाकर विनीतभावसे खड़ा हो गया। मयने दान और सम्मानपूर्वक रावणका स्वागत-सत्कार किया। तब रावणने मयसे पूछा—'प्रभो! यह किसकी कन्या है, इसका नाम क्या है और यह किसलिये उग्र तपस्या कर रही है?'

मय बोला—राक्षसराज! मैं दानवोंका राजा मय हूँ, मेरी पत्नीका नाम तेजवती है। यह सुन्दरी कन्या भी मेरी ही है। इसका नाम मन्दोदरी है। यह पतिके लिये तपस्या कर रही है।

मयका यह वचन सुनकर मदोन्मत्त रावण मयसे विनीत होकर बोला—महाभाग! मैं देवताओं और दानवोंका दर्प दलन करनेवाला पुलस्त्यपौत्र राजा रावण हूँ और आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप अपनी कन्या मुझे दे दें। उसे पितामह ब्रह्माजीके कुलमें उत्पन्न जान महात्मा मयने भी विधि-विधानसे उसके साथ अपनी पुत्रीका ब्याह कर दिया। मन्दोदरीको लेकर दुरात्माद्वारा पूजित राक्षस दिव्य विमानोंपर बैठकर उसके साथ क्रीड़ा करने लगा। कुछ कालमें पुत्रवानोंमें श्रेष्ठ रावणने एक पुत्रको जन्म दिया। उस पुत्रने जन्म लेते ही संवर्तक मेघके समान बड़ी भारी गर्जना की, इसलिये ब्रह्माजीने उसका नाम मेघनाद रख दिया। मेघनादने बड़े होनेपर उत्तम व्रतका आश्रय लिया और उमासहित देवेश्वर भगवान् शंकरकी आराधना प्रारम्भ की। वह विधिपूर्वक व्रत, नियम, दान, होम, जप एवं दिव्य कृच्छ्र-चान्द्रायण आदि व्रतोंद्वारा अपने शरीरको कष्ट देने लगा। एक दिन मेघनाद कैलास पर्वतपर गया और वहाँसे एक शिवलिंग लेकर दक्षिण दिशाकी ओर लौट पड़ा। नर्मदाके किनारे पहुँचनेपर उसने उस लिंगको एक स्थानपर रख दिया और स्नान करके महादेवजीका पूजन किया। फिर अपना जप पूरा करके जब वह लंकामें जानेको उद्यत हुआ तब उसने वहाँ पड़े हुए एक अन्य शिवलिंगको बायें हाथसे उठाया। इस प्रकार जब वह पहलेवाले और दूसरे शिवलिंगको भी भक्तिपूर्वक ले जाने लगा, तब महादेवजीका वह महालिंग नर्मदाके जलमें गिर पड़ा और दूसरा भी नर्मदाके उत्तर तटपर गिर गया। जो नर्मदाके उत्तर तटपर गिरा, वह शोभायमान लिंग वहाँ मेघनादेश्वरके नामसे विख्यात हुआ और जो जलके भीतर गिर पड़ा, उसका नाम मध्यमेश्वर हुआ। मेघनाद उस लिंगको उठाना चाहता था, पर सफल न हुआ। उन दोनों विग्रहोंका अभिप्राय जानकर वह राक्षस आकाशमार्गसे लौट गया। तभीसे वह तीर्थ मेघनाद तथा मेघारव नामसे विख्यात हुआ। उत्तर तटपर खेटक नामक उत्तम तीर्थ हुआ। उसके पूर्वभागमें सब पापोंका नाश करनेवाला गर्जन नामक तीर्थ है। राजेन्द्र! जो उस तीर्थमें स्नान और एक दिन-रातका उपवास करता है, वह सनातन कल्याणका भागी होता है। जो उस तीर्थमें पिण्डदान करता है, उससे देवलोकमें पितृगण बारह वर्षोंतक तृप्त रहते हैं। जो वहाँ ब्राह्मणोंको भोजन कराता है, वह योगीजनोंको मिलनेवाले उत्तम फलको पाता है।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

करंजेश्वर तथा कुण्डलेश्वरतीर्थका प्रादुर्भाव और माहात्म्य

मार्कण्डेयजी कहते हैं—राजन्! पहले सत्ययुगमें ब्रह्माजीके मानसपुत्र मरीचि हुए, जो वेद-वेदांगोंके तत्त्वज्ञ थे। मरीचिसे दीर्घकालके बाद महर्षि कश्यपका जन्म हुआ, जो द्वितीय ब्रह्माके समान थे। उनमें अपने पिताके क्षमा, दम, दया, दान, सत्य, शौच तथा सरलता आदि सभी सद्‌गुण शोभा पाते थे। महर्षि कश्यपके इन गुणोंको जानकर प्रजापति दक्षने अपनी तेरह कन्याओंका विवाह उनके साथ कर दिया। उनके नाम अदिति और दनु आदि थे। भैया युधिष्ठिर! इन दक्ष-कन्याओंके पुत्रों और पौत्रोंकी संख्या बहुत अधिक है। अदितिने इन्द्र आदि पुत्रोंको जन्म दिया। इसी प्रकार अन्य कन्याओंने नाग, प्रेत, पिशाच, पक्षी, यक्ष, राक्षस, सिंह, व्याघ्र, वराह आदिको उत्पन्न किया। महाबाहो! प्रजापति कश्यपके पुत्रोंसे चराचर प्राणियोंसहित समस्त त्रिलोकी व्याप्त हो गयी।

युधिष्ठिर! दक्षकन्या दनुके गर्भसे एक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसका नाम करंज था। दानव करंजमें राजा बलिकी भाँति सभी प्रकारके उत्तम गुण विद्यमान थे। उसने बड़ी भारी तपस्या की, तब महादेवजीने उसे दर्शन देकर कहा—'करंज! तुम्हारे मनमें जो इच्छा हो, उसके अनुसार वर माँगो।'

करंज बोला—प्रभो! मुझे पुत्र और पौत्रोंके साथ धन दीजिये।

'तथास्तु' कहकर पार्वतीसहित शिव वृषभपर आरूढ़ हो वहाँसे अन्तर्धान हो गये। तब वह दैत्य भी प्रसन्नतापूर्वक अपने नामसे महादेवजीकी स्थापना करके घरको लौट गया। तभीसे उस स्थानकी करंजेश्वर तीर्थके नामसे प्रसिद्धि हुई। राजन्! वहाँ स्नानमात्र करनेवाला मनुष्य ब्रह्महत्या-जैसे पापोंसे भी मुक्त हो जाता है। जो उस तीर्थमें देवताओं और पितरोंका तर्पण करता है, वह निश्चय ही अश्वमेध-यज्ञका पुण्यफल प्राप्त करता है। जो वहाँ प्राणत्याग करता है, वह बीस हजार वर्षोंतक स्वर्गलोकमें निवास करता है और अन्तमें उत्तम कुलमें जन्म लेकर धनवान्, वेद-वेदांगोंका तत्त्वज्ञ, सर्वशास्त्रविशारद, राजा अथवा राजाके तुल्य होता है।

मार्कण्डेयजी कहते हैं—युधिष्ठिर! प्राचीन त्रेतायुगमें पुलस्त्यपुत्र विश्रवाने भरद्वाज मुनिकी पुत्रीसे विवाह किया। उससे धनंजय नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, जो पुत्रोचित गुणोंसे सम्पन्न था। उसके जन्मका समाचार सुनकर लोकपितामह ब्रह्माजीने ऋषियों और देवताओंके साथ बड़ी प्रसन्नतापूर्वक उस बालकका नामकरण-संस्कार किया और इस प्रकार कहा—'हे अनघ! यह बालक तुझ विश्रवासे प्रकट होकर मेरा पौत्र हुआ है। इसलिये मैंने तुम्हारे इस पुत्रको वैश्रवण नाम दिया है। यह सब देवताओंके धनका रक्षक होगा। लोकपालोंमें यह चौथा होगा। अविनाशी और यक्षोंका स्वामी होगा।'

आगे वही यक्षश्रेष्ठ कुण्डधार हुआ। उसने उत्तम स्वरूप और अवस्था पाकर माता-पिताकी आज्ञासे नर्मदाके तटपर बैठकर बड़ी भारी तपस्या की। तब दीर्घकालके पश्चात् महादेवजी उसपर प्रसन्न हुए और इस प्रकार बोले—'वत्स! तुम अपनी इच्छाके अनुसार वर माँगो।'

कुण्डधार बोला—देव! यह तीर्थ और लिंग मेरे नामसे प्रसिद्ध हो।

तब **'एवमस्तु'** कहकर पार्वतीसहित भगवान् शिव अन्तर्धान हो आकाशमार्गसे कैलास पर्वतको चले गये। तदनन्तर उस यक्षने भी आनन्दयुक्त हो वहाँ कुण्डलेश्वर महादेवको स्थापित किया। विविध उपचारोंके साथ शिवलिंगका पूजन और अन्न-पानादि तथा वस्त्राभूषणादिके द्वारा ब्राह्मणोंको तृप्त करके महादेवजीको सन्तुष्ट करनेके अनन्तर वह अपने घरको लौट गया। तबसे वह तीर्थ तीनों लोकोंमें कुण्डलेश्वरके नामसे विख्यात

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

हुआ। युधिष्ठिर! जो कोई भी उस तीर्थमें उपवासपूर्वक ईशान देवका पूजन करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। उस तीर्थमें स्नान करके जो ब्राह्मण ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेदकी एक-एक ऋचाका भी पाठ करता है, उसे चारों वेदोंके पाठका फल प्राप्त होता है। जो मनुष्य वहाँ ब्राह्मणोंके लिये गोदान अथवा अन्नदान करता है, उस गौ तथा उसकी सन्तानोंके शरीरमें जितने रोएँ होते हैं, उतने हजार वर्षोंतक वह दाता स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है।

पिप्पलेश्वर, विमलेश्वर, विश्वरूपा-नर्मदासंगम तथा एक दिनमें मेघनादेश्वर आदि पाँच लिंगोंकी यात्राका माहात्म्य, राजा धर्मसेनकी कथा

मार्कण्डेयजी कहते हैं—नर्मदाके तटपर पिप्पलाद नामक एक मुनि थे। वे माता-पितासे रहित थे। उन्होंने सोलह वर्षोंतक निराहार रहकर एकचित्त हो पार्वतीसहित भगवान् शंकरको प्रसन्न किया।

तब महादेवजी बोले—ब्रह्मन्! मैं तुम्हारी इस तपस्यासे सन्तुष्ट हूँ। तुम मनोवांछित वर माँगो।

पिप्पलाद बोले—देव! आप इस तीर्थमें सदा मेरे नामसे प्रसिद्ध होकर निवास करें।

पिप्पलादके ऐसा कहनेपर 'तथास्तु' कहकर महादेवजी वहीं अन्तर्धान हो गये। उनके चले जानेपर पिप्पलादने नर्मदाकी महाजलराशिमें स्नान किया और भगवान् शिवकी स्थापना करके वे उत्तर पर्वतपर चले गये। जो मनुष्य उस तीर्थमें भक्तिपूर्वक स्नान करके देवताओं और पितरोंका तर्पण एवं महेश्वरका पूजन करता है, वह अश्वमेध यज्ञका उत्तम फल पाता है। पिप्पलेश्वरके समीप जिसकी मृत्यु होती है, वह भगवान् शिवके धाममें जाता है। पिप्पलेश्वर तीर्थमें भक्तिपूर्वक पितरोंकी तृप्तिके उद्देश्यसे जो ब्राह्मणोंको भोजन कराता है, उसके पितर बारह हजार वर्षोंतक तृप्त रहकर उत्तम गतिको प्राप्त होते हैं।

राजेन्द्र! तदनन्तर उत्तम विमलेश्वरतीर्थको जाय। जहाँ एक मनोहर देवशिला है, जहाँ गर्जन और खेटक नामसे प्रसिद्ध तीर्थ है। वहीं उत्तम देवशिला भी है। जो मनुष्य वहाँ भक्तिपूर्वक स्नान करके देवताओं और पितरोंका तर्पण करता है, उसके पितर बारह वर्षोंतक परम तृप्त हो देवलोकमें आनन्द भोगते हैं। जो देवशिलातीर्थमें भक्तिभावसे थोड़े-से दानके द्वारा भी ब्राह्मणोंका सत्कार करता है, उसके पुण्यफलका अन्त नहीं है।

युधिष्ठिर! तदनन्तर नर्मदाके उत्तर तटकी यात्रा करे। मेघनादतीर्थके समीप सरिताओंमें श्रेष्ठ विश्वरूपा नदी बहती है। एक समय नर्मदाके तटपर विराजमान होकर भगवान् शंकर तपस्या करते-करते विश्वरूप हो गये। तब उन्हींके शरीरसे सरिताओंमें श्रेष्ठ विश्वरूपा प्रकट हुई और नर्मदाके जलमें जाकर मिल गयी। दोनोंका संगम बड़ा ही गुणवान् है। जो मनुष्य उस तीर्थमें जाकर स्नान करता है, वह फिर इस संसारमें जन्म नहीं लेता। वहाँ जो कर्म किया जाता है वह सब अक्षय होता है। उस तीर्थमें किया हुआ श्राद्ध, यज्ञ और शिवपूजन कोटिगुना फल देनेवाला होता है। वहाँ पाँच शिवलिंग प्रसिद्ध हैं—मेघनादेश्वर, गोष्ठेश्वर, वागीश्वर, काकडेश्वर और लक्षेश्वर। जो इन पाँचों लिंगोंका एक दिनमें पूजन करता है, वह इसी शरीरसे भगवान् शिवको पा लेता है और मोक्षका भागी होता है।

पूर्वकालमें अयोध्यापुरीमें धर्मसेन नामक बलवान् राजा राज्य करते थे। उन्होंने धर्मपूर्वक राज्यका पालन तथा बहुत-सी दक्षिणावाले अनेकानेक यज्ञोंका अनुष्ठान किया। एक समय धर्मशास्त्र सुनते हुए राजाने नर्मदा नदीका चरित्र सुना। सुनकर वे नर्मदाके उत्तर तटपर गये और नर्मदामें स्नान करके उन्होंने मेघनादेश्वरका पूजन किया। तत्पश्चात् सूर्योदय होते-होते घोड़ेपर सवार हो

279 Skandpuran_Section_35_1_Front Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

वे उत्तर दिशामें गोष्ठेश्वर शिवके समीप पहुँचे। गोष्ठेश्वरकी विधिपूर्वक पूजा करके राजा धर्मसेन वागीश्वर तीर्थमें गये। वहाँ विधिपूर्वक स्नान करके चन्दन, अगर, कपूर और धूप-दीप आदि विधानोंसे शिवकी पूजा सम्पन्न करके पुनः घोड़ेपर सवार हो वे श्रेष्ठ राजा काकडेश्वरमें आये। काकडेश्वरकी पूजा करके वे लक्षेश्वर तीर्थमें गये और वहाँ नर्मदाके जलमें स्थित लक्षेश्वरका विधिपूर्वक पूजन करके मेघनादतीर्थमें लौट आये। इतनेमें सूर्य अस्त हो गये। उस समय कालरूपधारी भगवान् शिवका ध्यान करते हुए राजा धर्मसेन ज्यों ही घोड़ेसे उतरकर खड़े हुए, त्यों ही वह दिव्य शरीर धारण करके इन्द्रके विमानमें जा बैठा और इन्द्रलोकको चला गया। राजाके पीछे-पीछे एक कुतिया भी तीर्थयात्रा कर रही थी। उसने भी दिव्य देह धारण करके स्वर्गलोकको प्रस्थान किया। यह सब देखकर धर्मसेनके मनमें बड़ा विस्मय हुआ। उन्होंने दिव्यदेहधारी अश्वसे पूछा—'यह सब क्या है?' तब उसने आकाशसे ही उत्तर दिया, 'राजन्! आप अपने मनमें खेद क्यों मानते हैं? शारीरिक कष्ट सहन करनेसे और तपस्यासे दिव्य विभूतियोंकी प्राप्ति होती है। अभीतक तो आपने दूसरेके पैरोंसे यात्रा की है, अब पैदल जाइये। जब पुनः अपने पैरोंसे यात्रा करेंगे तब आपको अवश्य सिद्धि प्राप्त होगी।'

यह सुनकर राजाने दूसरे दिन पुनः लिंग-पूजनके लिये प्रस्थान किया। उन पाँचों लिंगोंका पूजन करके नर्मदा-तटपर आकर जब उन्होंने मेघनादेश्वरका दर्शन किया तब द्वारपर ही उन्हें भगवान् शिवका दर्शन हुआ। उनके पाँच मुख, दस भुजाएँ और प्रत्येक मुखपर तीन-तीन नेत्र थे। हाथमें त्रिशूल शोभा पा रहा था। संसारको अपने गर्भमें धारण करनेवाले भगवान् शिव वृषभपर आरूढ़ थे और उनके मस्तकपर अर्धचन्द्रका मुकुट अपनी चाँदनी छिटका रहा था। उन देवदेवेश्वर परमेश्वरका दर्शन करके राजाने इस प्रकार स्तुति की—'देव! महादेव!! आपकी जय हो। महा-पातकोंका नाश करनेवाले शिव! मैं संसार-समुद्रमें डूबा हुआ हूँ, आप इस समय मेरा उद्धार कीजिये।'

महादेवजी बोले—महाभाग! तुम मेरे भक्त हो। अतः तुम्हारे मनमें जो इच्छा हो, उसके अनुसार वर माँगो। उसे मैं तुम्हें दूँगा।

राजाने कहा—देव! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो मुझे अपने साथ रहनेवाला सेवक बना लीजिये और जो लोग एक दिनमें इन पाँचों लिंगोंका पूजन करें, वे सभी आपके अनुचर हों। यही मेरे लिये वर है।

धर्मसेनकी बात सुनकर महादेवजीने 'एवमस्तु' कहा तथा उन्हें साथ लेकर वे कैलास पर्वतपर चले गये। युधिष्ठिर! भगवान् शिवने राजा धर्मसेनको अपने-आपमें लीन कर लिया।

मृकण्ड-आश्रममें दो गन्धर्वोंका उद्धार तथा चन्द्रमती-नर्मदासंगम आदि अन्य तीर्थोंकी महिमा

मार्कण्डेयजी कहते हैं—युधिष्ठिर! नर्मदाके दक्षिण तटपर मृकण्ड मुनिका पवित्र आश्रम है। उसमें परम धर्मात्मा मेरे पिता मृकण्डजीने दीर्घकालतक तपस्या की है। उनके आश्रममें उत्तम व्रतका पालन करनेवाले बहुत-से अन्य महर्षि भी निवास करते थे। इसी समय हेति और प्रहेति नामवाले दो गन्धर्व इन्द्रकी सभामें गये। वहाँ उन्होंने एक श्रेष्ठ अप्सराको देखा। देखते ही वे दोनों कामबाणसे पीड़ित हो गये। तब हेतिने मुर्गेकी और प्रहेतिने मोरकी बोली बोलकर मधुर स्वरसे उसे रिझानेकी चेष्टा की। उनका यह अभिप्राय जानकर देवराज इन्द्रने उन्हें शाप

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

दिया—'अरे! तुम दोनों वास्तवमें मुर्गा और मोर हो जाओगे। देवताओंके सौ वर्ष पूरे होनेपर फिर यहाँ आ सकोगे।'

युधिष्ठिर! इन्द्रके इस शापसे दोनों दुराचारी गन्धर्व पक्षीकी योनिमें आ गये। उस समय भी वे बड़े सुन्दर थे। उन्हें देखना सबको प्रिय लगता था। वे अपने पूर्वजन्मके वृत्तान्तको स्मरण करके सब तीर्थोंमें भ्रमण करने लगे। एक दिन उन्होंने देवर्षि नारदको देखा और इस प्रकार पूछा, 'शुभाचार ब्रह्मपुत्र! हम दोनों किस कर्मसे इस योनिसे मुक्ति पा सकेंगे।'

नारदजीने कहा—नर्मदाजीके दक्षिण तटपर मृकण्ड मुनिका शुभाश्रम है। वह पशु-पक्षियोंकी योनिसे मुक्ति देनेवाला उत्तम तीर्थ है। तुम दोनों वहाँ नर्मदाजीके जलमें गोता लगाओ, इससे तुम्हारा सब कार्य सिद्ध होगा।

तदनन्तर हेति और प्रहेति—दोनों उस तीर्थमें स्नान करके पूर्ववत् दिव्यरूपधारी हो गये। फिर विधिपूर्वक स्नान करके उन्होंने सदाशिव देवका ध्यान किया और कुछ कालतक ध्यानमें ही स्थित रहे। इसी समय पातालसे सैकड़ों सूर्योंके समान प्रकाशमान दो शिवलिंग वहाँ प्रकट हुए। एकका कुक्कुटेश्वर और दूसरेका मयूरेश्वर नाम हुआ। वे दोनों गन्धर्व विमानपर बैठकर इन्द्रलोकको चले गये। उस तीर्थमें स्नान करके मनुष्य फिर इस संसारमें जन्म नहीं लेता। स्नानके पश्चात् वहाँ तिल और जलसे तर्पण करनेपर पितरोंकी उत्तम गति होती है। जो वहाँ मृत्युको प्राप्त होता है, वह फिर इस घोर संसार-सागरमें लौटकर नहीं आता।

तत्पश्चात् चन्द्रमती और नर्मदाके संगममें जो उत्तम तीर्थ हैं, उनकी यात्रा करे। वहाँ चन्द्रेश्वर, सिद्धेश्वर, घण्टेश्वर तथा महिषेश्वर—ये चार सिद्धलिंग हैं। तदनन्तर अश्वतीर्थ, वृषसेनतीर्थ, हयग्रीवतीर्थ और शुकतीर्थ हैं। उनसे आगे रमेश्वरतीर्थकी यात्रा करे, जो सब पापोंका नाश करनेवाला है। राजन्! नर्मदाके तटपर रमेश्वरतीर्थ महापातकोंका भी नाश कर देता है। वहाँ स्नान करनेवाला मनुष्य फिर संसारमें जन्म नहीं लेता। पितरोंके लिये वहाँ विधिपूर्वक तिलोदक और पिण्डदान देना चाहिये। इससे पितरोंकी परम गति होती है। इससे आगे उत्तम हारिणतीर्थ है। वहाँ सिद्धलिंग हरिणेश्वर, धनुरीश्वर, बाणेश्वर तथा लुब्धकेश्वर—इन सबकी पूजा करके मनुष्य शिवलोकमें जाता है।

~~~०~~~

भानुमतीका तीर्थसेवन, शूलभेदतीर्थमें शबर-दम्पतिका उद्धार और सती भानुमतीको कैलासधामकी प्राप्ति

मार्कण्डेयजी कहते हैं—युधिष्ठिर! भगवान् शंकरकी पूजा करनेवाले पुरुषको चाहिये कि वह शास्त्रोक्त आठ मानस मन्त्रोंद्वारा आठ फूल निवेदन करे। उन फूलोंके नाम इस प्रकार हैं—वारिज, सौम्य, आग्नेय, वायव्य, पार्थिव, वानस्पत्य, प्राजापत्य और शिवपुष्प। अब इनके स्वरूपका निर्णय सुनो—जलको ही वारिज समझना चाहिये, मधुयुक्त दूध सौम्य कहलाता है, धूप और दीप आग्नेय पुष्पके अन्तर्गत हैं, चन्दन आदि वायव्य पुष्प हैं, कन्द-मूल आदि पार्थिव पुष्प और फल वानस्पत्य पुष्प है। अन्न आदि भोज्य पदार्थ प्राजापत्य पुष्प कहलाते हैं तथा उपासनाका ही नाम शिवपुष्प है। इनके सिवा अहिंसा प्रथम पुष्प है, इन्द्रियनिग्रह द्वितीय पुष्प और दया तृतीय पुष्प है। इन आध्यात्मिक पुष्पोंसे सब देवता सन्तुष्ट होते हैं। राजन्! इस हारिणतीर्थमें तपस्या और भक्तिके द्वारा भगवान् शिवकी पूजा करनी चाहिये। जो ब्राह्मण रुद्रसूक्त, पुरुषसूक्त और अपनी-अपनी शाखाके अनुसार गृह्यसूत्र—'इषे त्वा' इत्यादि मन्त्र, ज्योतिर्ब्राह्मण, गायत्रीमन्त्र, मधुब्राह्मण, मण्डल ब्राह्मण

Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth
~~~

तथा देवव्रत नामसे प्रसिद्ध दैव्यसूक्त आदि यजुर्वेदोक्त सूक्तोंका भक्तिपूर्वक जाप करते हैं, वे भगवान् शिवके लोकमें जाते हैं।

पूर्वकालमें वीरसेन नामसे विख्यात एक महापराक्रमी राजा हो गये हैं, वे चेदिदेशके स्वामी थे। बड़े-बड़े मण्डलाधीश्वर भी उनकी अधीनता स्वीकार कर चुके थे। राजा वीरसेनके राज्यमें कोई किसीका शत्रु नहीं था, किसीको रोग नहीं होता था और चोर आदिका उपद्रव भी नहीं था। उस राज्यमें कहीं भी अधर्म नहीं होता था, सदा सर्वत्र धर्मका ही पालन किया जाता था। राजा अपनी पत्नी और अनेक पुत्रोंके साथ सदा आनन्दसे रहते थे। उनके एक पुत्री थी, जो गिरिराजनन्दिनी उमाकी भाँति सुन्दरी थी। उसपर माता-पिता, भाई-बन्धु सभीकी स्नेहदृष्टि बनी रहती थी। समय आनेपर बारहवें वर्षमें चेदिराजने विधिपूर्वक अपनी पुत्रीका वैवाहिक कार्य सम्पन्न किया। विवाहके बाद उस कन्याका पति मृत्युको प्राप्त हो गया। बेटीको विधवा हुई देख राजा शोकमें डूब गये। उन्होंने दुःखसे पीड़ित होकर रानीसे कहा—'कल्याणी! यह तो जीवनभरके लिये अत्यन्त दुःसह दुःख आ पड़ा है। मेरी पुत्री रूप और यौवनसे सम्पन्न है, इसकी रक्षा कैसे की जा सकती है। भानुमतीके शीलकी रक्षाका अब कोई उपाय दिखायी नहीं देता।'

माता-पिता जब आपसमें इस प्रकार वार्तालाप कर रहे थे, उस समय उनकी बात सुनकर राजकुमारी भानुमती उनके समीप जाकर बोली—पिताजी! मैं शोकाग्निसे जल रही हूँ, इसलिये आज आपके सामने संकोच छोड़कर बोलती हूँ। मेरे कारण कोई दोषकी बात नहीं होने पायेगी, यह मैं आपसे सत्य कहती हूँ। आजसे मैं कभी शृंगार नहीं धारण करूँगी, मोटे वस्त्रोंसे अपना शरीर ढक लूँगी, संयमपूर्वक रहकर पुराणोक्त सभी व्रतोंका आचरण करूँगी और श्रीहरिके सन्तोषके लिये तपस्या करती हुई अपनी कायाको सुखा डालूँगी। तात! यदि आपकी सम्मति हो तो मैं ऐसा ही जीवन व्यतीत करना चाहती हूँ।

भानुमतीका यह वचन सुनकर राजा वीरसेन स्नेहसे कातर हो गये। उन्होंने कन्याकी तीर्थयात्राके उद्देश्यसे बहुत अधिक धन देकर उसे विदा किया। कुछ विश्वासपात्र वृद्ध पुरुषोंको पुत्रीकी रक्षामें नियुक्त किया और एक हथियारबंद सिपाही तथा पुरोहित ब्राह्मणको भी साथमें लगा दिया। भानुमती गंगाके तटपर गयी और वहाँ स्नान करके भगवान्‌के ध्यानमें तत्पर हुई। स्नान, ध्यान और पूजन यह उसका प्रतिदिनका नियम हो गया। उसकी रक्षा करनेमें समर्थ जो दास-दासियाँ आदि थे, वे भी उसके पिता राजा वीरसेनकी आज्ञासे वहीं गंगाके किनारे टिके रहे। इस प्रकार वह राजकुमारी बारह वर्षोंतक गंगाजीके तटपर रही। तदनन्तर किसी समय गंगाको छोड़कर अपने सहायक मन्त्रियोंके साथ दक्षिण दिशामें गयी, जहाँ महानदी नर्मदा बहती थीं। वहाँ अमरकण्टक पर्वत एवं ॐकारतीर्थमें वह छः महीनेतक रही। फिर एक तीर्थसे दूसरे तीर्थमें होती हुई अनेकानेक तीर्थोंमें भ्रमण करने लगी। प्रत्येक तीर्थमें स्नान करके भक्ति-भावसे पूजन करती हुई वह निवास करती थी। तत्पश्चात् वह पश्चिम दिशामें देवनदी और नर्मदाके संगमपर गयी। वहाँ ऋषियोंके समुदायसे सेवित एक पुण्य आश्रम दिखायी दिया। ऋषिवृन्दका दर्शन करके भानुमतीने सबको प्रणाम किया और पूछा—'महात्माओ! इस तीर्थका नाम और माहात्म्य क्या है? यह बतानेकी कृपा करें।'

तब एक ऋषिने कहा—तपस्विनि! यह स्थान चक्रतीर्थके नामसे विख्यात है। पूर्वकालमें त्रिशूलधारी देवाधिदेव महादेवने सन्तुष्ट होकर यहीं श्रीहरिको चक्र प्रदान किया था। जो इस तीर्थमें स्नान करके देवताओं और पितरोंका तर्पण करता है, उसे पुनरावृत्तिरहित उत्तम गति प्राप्त होती है। दूसरे दिन यहाँसे शूलभेदतीर्थमें जाना चाहिये। वहाँ रात्रिमें जागरण करके पुराणकी कथा पढ़े और सुने। पुष्प, धूप, दीप आदि निवेदन करके

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

भगवान् विष्णुकी पूजा करे। तीसरे दिन प्रातःकाल होनेपर ब्राह्मणोंको भोजन करावे और अपनी शक्तिके अनुसार उन्हें भक्तिपूर्वक दान दे। फिर चौथे दिन जहाँ प्राची सरस्वती हैं, वहाँ जाना चाहिये। वे सरस्वती सम्पूर्ण जगत्को पावन करनेके लिये साक्षात् ब्रह्माजीसे प्रकट हुई हैं। पाँचवें दिन मार्कण्डेयेश्वर लिंगके समीप जाय और वहाँ स्नान करे। वह परम उत्तम स्थान सर्वदेवमय और सर्वतीर्थमय है। जो पवित्र एवं जितेन्द्रिय होकर वहाँ एक वर्ष या छः मास या पंद्रह दिन अथवा तीन रात्रि भी निवास करता है, उसका फिर मर्त्यलोकमें निवास नहीं होता। वह सदा स्वर्गलोकमें अक्षय निवास पाता है। जो नियमपूर्वक वहाँ निवास करता है, वह तीन जन्मोंके पापोंसे मुक्त हो जाता है तथा जो विधवा नारी उत्तम व्रतका पालन करती हुई बारह वर्षोंतक वहाँ निवास करती है, वह अनन्त कालतक रुद्रलोकमें प्रतिष्ठित होती है।

मुनिका यह वचन सुनकर भानुमतीको बड़ी प्रसन्नता हुई। वह आलस्य छोड़कर अहर्निश तीर्थसेवन एवं स्नान करने लगी। उस तीर्थका प्रभाव देखकर राजकुमारीने पुरोहितजी और ब्राह्मणोंसे कहा—'आपलोग मेरी यह बात सुनें। मैं जबतक जीऊँगी, यहीं रहूँगी। ऐसे उत्तम स्थानका त्याग नहीं करूँगी। आपलोग जाकर मेरे माता-पिता तथा भाईसे यह बात कह दें कि 'भानुमती नियमपूर्वक व्रतका पालन करती हुई इस समय शूलभेदतीर्थमें रहती है और एक-एक दिनका अन्तर देकर उपवास करती हुई धीरे-धीरे एक मासतक उपवास करनेकी चेष्टा कर रही है। वह देवशिलापर रहकर प्रतिदिन भगवान् विष्णुका ध्यान करती और भूमिपर ही सोती है।'

यह सन्देश लेकर जब ब्राह्मणलोग चले गये, तब एक दिन दो शबर (भील) वहाँ आये। वे दोनों पति-पत्नी थे। शबरने अपनी स्त्रीसे कहा—'प्रिये! यहाँ जितने कमलपुष्प मिलें, उन्हें राजकुमारीको देकर तुम शीघ्र भोजन कर लो। मैंने आज यहाँ देवपूजनका विचार किया है, इसलिये मुझे आज भोजन नहीं करना चाहिये। मैंने कभी किसी विधि-निषेधका पालन नहीं किया है। सदा पाप बढ़ाया और अशुभ कर्म किया है। अतः आज मैं धर्मका पालन करना चाहता हूँ।'

शबरी बोली—प्राणनाथ! मैंने किसी भी दिन आपसे पहले भोजन नहीं किया है। जहाँतक मुझे स्मरण है, आपके भोजनसे बचा हुआ अन्न ही मैंने भोजन किया है।

पत्नीका यह निश्चय जानकर शबर स्नान करनेके लिये गया। उसने आधे उत्तरीय वस्त्रसे स्नान करके सब देवताओंको भक्तिपूर्वक स्नान कराया और देवशिलाके पास डरते-डरते जाकर खड़ा हुआ। वह मन-ही-मन भगवान् विष्णुका चिन्तन करता था। शबरीने कुमुदके दो फूल राजकुमारीकी दासीके हाथमें दिये। रानीने उन फूलोंको देखकर दासीसे पूछा—'तुमने ये दोनों फूल कहाँ पाये हैं, बताओ। शीघ्र जाओ और पता लगाओ। यदि और फूल मिलें तो ले आओ। धन देकर कमलके फूल खरीद लाना।'

भानुमतीकी यह बात सुनकर दासी शबरके पास गयी और बोली—बहुत-से श्रीफल तथा फूल मुझे ला दो।

शबरी बोली—मैं श्रीफल और विशेषतः फूल दूँगी, परंतु मुझे मूल्य लेनेकी इच्छा नहीं है।

तब दासी लौट गयी और रानीसे सब बात बता दी। तब रानी स्वयं आयीं और शबरसे बोलीं—तुम मूल्य लेकर मुझे फूल दो।

शबर बोला—देवि! मैं फल और फूलका मूल्य नहीं लेना चाहता। आपको जितनी आवश्यकता हो, मुझसे श्रीफल और फूल ले लें तथा विधिपूर्वक जगत्पति भगवान् वासुदेवकी पूजा करें।

रानी बोलीं—मैं मूल्य दिये बिना तुम्हारे कमलके फूल नहीं लूँगी। इन फूलोंके बदलेमें तुम धान्यका यह ढेर ले जाओ।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

शबर बोला—भद्रे! आज मैं भगवान्‌का चिन्तन छोड़कर आहारका चिन्तन नहीं करूँगा। देवपूजन किये बिना अन्य किसी कार्यमें मेरी बुद्धि नहीं लगती।

रानी बोलीं—तुम्हें अन्नका त्याग नहीं करना चाहिये, क्योंकि सब कुछ अन्नमें ही प्रतिष्ठित है। अतः प्रयत्न करके मेरे अन्नको ग्रहण करो।

शबर बोला—मैं पहलेसे आज अन्न न लेनेका निश्चय कर चुका हूँ। यह सत्य है। सत्य ही सम्पूर्ण जगत्‌का मूल्य है और सत्यमें ही सब कुछ प्रतिष्ठित है। सत्यसे ही सूर्य तपते हैं, सत्यसे ही चन्द्रमा प्रकाशित होते हैं, सत्यसे ही वायु चलती है तथा सत्यके ही आधारपर यह पृथ्वी टिकी हुई है। अतः पूरा प्रयत्न करके मनुष्य सत्यकी रक्षा करे। सत्यका लोप कदापि न करे।

रानी बोलीं—फूल चार प्रकारके बताये गये हैं—एक तो बगीचेसे चुनकर लाया हुआ, दूसरा जंगलसे तोड़ा हुआ, तीसरा मूल्य देकर खरीदा हुआ और चौथा दानके रूपमें प्राप्त हुआ। इनमें उत्तम फल तो उसका माना गया है, जो स्वयं ही जंगलसे तोड़कर लाया गया हो। बगीचेके फूलका मध्यम फल बताया गया है। खरीदे हुए फूलको निकृष्ट श्रेणीमें रखा गया है तथा जो प्रतिग्रहसे प्राप्त हुआ फूल है, उसे विद्वानोंने निष्फल बताया है।

तब पुरोहितजीने कहा—रानी! फूल ले लो और भगवान्‌की पूजा करो।

पुरोहितकी आज्ञासे रानीने शबरका उपकार करते हुए वे फूल ले लिये और उनके द्वारा भगवान् विष्णुका विधिवत् पूजन किया। रातको जागरण करके उन्होंने पुराणकी कथा भी सुनी। तदनन्तर शबरने भी धूप-दीप आदि निवेदन करके श्रीहरिका पूजन किया और भगवान् केशवका ध्यान करते हुए वह रातभर जागता रहा। फिर प्रातःकाल होनेपर उसने स्नानके लिये उत्सुक मनुष्योंकी भीड़पर दृष्टिपात किया। कोई शूलभेदमें नहाते हैं तो कोई देवनदीमें। कोई प्राची सरस्वतीमें स्नान करते हैं, कोई मार्कण्डेय ह्रदमें गोता लगाते हैं और कितने ही मनुष्य भक्तिभावसे चक्रतीर्थमें स्नान कर रहे हैं तथा स्नानसे पवित्र हुए सब लोग देवशिलापर यत्नपूर्वक श्राद्ध करते हैं। यह सब देखकर शबरने भी बेलका पिण्डदान किया और भानुमतीने भी सत्तूके पिण्ड बनाकर पितरोंके लिये अर्पण किये। फिर दम्भ-दोषरहित उत्तम ब्राह्मणको खीर, दही, शक्कर, मधु, घी, पायस और कृसर (खिचड़ी) आदि पदार्थ भोजन कराये। तदनन्तर भानुमतीके साथ सब ब्राह्मण शूलभेदतीर्थमें गये। वहाँ सबने देखा, शबर अपनी स्त्रीके साथ कुण्डमें खड़ा है। तत्पश्चात् शबर भृगु पर्वतके शिखरपर जाकर स्त्रीके साथ कूदकर प्राण देनेको उद्यत हुआ। यह देख राजकुमारीने कहा—'महासत्त्व! ठहरो-ठहरो, मेरी बात सुनो—तुम तो अभी जवान हो, किसलिये प्राणोंका त्याग करते हो? तुम्हें कौन-सा सन्ताप या उद्वेग हुआ है, कौन-सा दुःख अथवा रोग हुआ है?'

शबर बोला—मेरे प्राणत्याग करनेका कोई कारण नहीं है और न मुझे कोई दुःख ही है, परंतु संसारमें कुछ सार तत्त्व है, यह बात मेरी बुद्धिमें नहीं आती। मनुष्यका जन्म बड़े दुःखसे प्राप्त होता है। इस मनुष्य-जन्मको पाकर जो धर्माचरण नहीं करता, वह इस थोड़ेसे दोषके कारण घोर नरकमें पड़ता है। अतः तपस्विनि! मैं इस तीर्थमें गिरकर प्राण देना चाहता हूँ।

राजपुत्री बोली—शबर! अब भी समय है। तुम स्वधर्म पालन करते हुए नाना प्रकारके सत्कर्म कर सकते हो। मैं तुम्हें अन्न, वस्त्र और धन दूँगी। तुम भगवान्‌का ध्यान करते हुए सदैव धर्मका आचरण करो।

शबर बोला—देवि! मुझे अन्न और वस्त्र नहीं चाहिये; क्योंकि जो दूसरेका अन्न खाता है, वह पाप ही खाता है।

राजपुत्री बोली—कन्द, मूल, फलका आहार

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

करते हुए उत्तम भिक्षान्न भोजन करके तीर्थोंमें स्नान करो तो सब पापोंसे मुक्त हो जाओगे।

शबर बोला—देवि! मैंने अपना हित देखकर इस तीर्थमें प्राण त्यागनेका विचार कर लिया है। अब मैं सत्यका लोप नहीं कर सकता, यह मेरा निश्चित मत है। आप सब लोग मुझे क्षमा करें।

इतना कहकर उसने उत्तरीय वस्त्रसे अपनेको प्रयत्नपूर्वक बाँधा और स्त्रीके साथ भगवान्का ध्यान करके वह नीचे गिर पड़ा। लुढ़कता हुआ जब आधे पर्वतपर आ गया, तब उसके प्राण निकल गये। कुन्दके ऊपर जाकर उसका शरीर निश्चेष्ट हो गया। इसी समय शबर अपनी स्त्रीके साथ दिव्य विमानपर चढ़कर उत्तम गतिको प्राप्त हुआ।

तीर्थका यह माहात्म्य देखकर रानी भानुमती हर्षमें भर गयीं और मन-ही-मन कुछ सोच-विचारकर कुण्डके समीप पहुँचीं। फिर बहुत-से ब्राह्मणोंको बुलाकर उन्होंने पूजन किया और उन सबको नाना प्रकारके दान दिये। उसके बाद रानी पर्वतके ऊपर चढ़ गयी। उस दिन चैत्र मासकी अमावास्या तिथि थी। पर्वतके शिखरपर आरूढ़ होकर उसने दोनों हाथ जोड़ लिये और सब ब्राह्मणोंसे इस प्रकार कहा—'आप सब लोग मेरे माता-पिता, भाई तथा अन्य बन्धु-बान्धवोंसे यह कहियेगा कि सब लोग मेरी त्रुटियोंको क्षमा करेंगे और उन्हें यह सूचित कीजियेगा कि भानुमती शूलभेदतीर्थमें कठोर तपस्या करके शरीर त्यागकर स्वर्गको चली गयी।'

ऐसा सन्देश देकर रानीने सब लोगोंको विदा कर दिया और स्वयं पर्वतके शिखरपर खड़ी हुई। उसने अपने आधे उत्तरीय वस्त्रको खूब कसकर बाँध लिया और एकचित्त होकर पर्वतपरसे अपने शरीरको छोड़ दिया। वह आधे पर्वततक गिरकर आयी थी, इतनेमें ही देवताओं और दैत्योंने देखा—भानुमती दिव्य विमानपर आरूढ़ हो कैलास धामको चली गयीं।

आदित्येश्वरतीर्थकी महिमा, मुनियोंद्वारा नर्मदाका स्तवन और उस तीर्थमें गोदानकी महिमा

मार्कण्डेयजी कहते हैं—युधिष्ठिर! अब मैं आदित्येश्वरतीर्थका माहात्म्य बतलाता हूँ। एक समय दुर्भिक्षके मारे हुए ब्राह्मणलोग नर्मदाजीके तटपर आये और फल तथा फूलोंसे भरे हुए एक उत्तम वनमें घुसे। वहाँसे पुनः नर्मदाजीके समीप जाकर उन्होंने दर्शन किया। दर्शन करके कुछ लोग नतमस्तक हुए और कुछ लोग 'देवि! तुम्हारी जय हो, तुम्हें नमस्कार है' ऐसा कहते हुए उनकी स्तुति करने लगे।

ऋषि बोले—सिद्धगणोंसे सेवित नर्मदादेवी! आपको नमस्कार है। सबको पवित्र करनेवाली मंगलमयी देवि! तुम्हें नमस्कार है। सहस्रों ब्राह्मणोंद्वारा पूजित तथा भगवान् शंकरसे प्रकट हुई पराशक्ति नर्मदे! तुम्हें नमस्कार है। देवि! तुम स्वयं पवित्र होकर सबको पवित्र करनेवाली हो, श्रेष्ठ हो, तुम्हें नमस्कार है। हमपर प्रसन्न होओ। शीतल जलसे सुशोभित सुखदायिनी नर्मदे! तुम सरिताओंमें श्रेष्ठ, पापहारिणी और दयावती हो, तुम्हें नमस्कार है। अनेक प्राणियोंके शरीरसे तुम्हारे अंगोंकी शोभा हो रही है। तुम्हारा एक-एक अंग गन्धर्वों, यक्षों तथा नागगणोंको पवित्र करनेवाला है। तुम उत्तम वर और सुख प्रदान करनेवाली हो, हम सब लोग तुम्हें नमस्कार करते हैं। तुम दुःखसे व्याकुल प्राणियोंको अभयदान देती हो। अनेक देवताओंने तुम्हारा पूजन किया है। मर्त्यलोकके मानव विष्ठा और मूत्रके समुद्ररूप इस शरीरमें डूबे रहकर तभीतक नरकोंमें निवास करते हैं, जबतक कि वेगसे

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

चलनेवाली वायुके झोंकेसे उठती हुई उत्ताल तरंगोंसे सुशोभित तुम्हारे जलका स्पर्श नहीं करते। देवि! म्लेच्छ, पुलिन्द और राक्षस भी यदि तुम्हारे पवित्र जलको पीते हैं तो पापके घोर भयसे मुक्त हो जाते हैं, फिर भय और पापसे डरे हुए हम-जैसे ब्राह्मणोंको मुक्त करना तुम्हारे लिये कौन बड़ी बात है। इस घोर एवं अपवित्र कलियुगमें तुम्हीं निर्मल जलराशिसे परिपूर्ण होकर शोभा पाती हो। देवि! तुम्हारे ही प्रसादसे आकाशमें आकाशगंगाकी स्थिति है। इस समय तुम हमारी यथेष्ट रक्षा करो, जिससे तुम्हारे कृपाप्रसादसे हम सब लोग तुम्हारे लोकमें जा सकें। हमारे ऊपर अनुग्रह करो। हम तुम्हारे आश्रित हैं, तुम्हारी शरणमें आये हुए हैं, तुम्हीं हमारी गति हो। देवि! तुम आदिदेव महादेवजीसे प्रकट हुई हो, तुम्हारी शक्ति अद्भुत है।

मार्कण्डेयजी कहते हैं—युधिष्ठिर! ऋषियोंके इस प्रकार स्तवन करनेपर सरिताओंमें श्रेष्ठ महानदी नर्मदा प्रत्यक्ष होकर बोलीं—'विप्रगण! मैं तुमपर सन्तुष्ट हूँ और तुम्हें मनोवांछित वर देती हूँ।'

तदनन्तर मेघोंकी बड़ी भारी घटा घिर आयी और खूब वर्षा हुई। देशमें सब ओर बहुत अन्न हुआ तथा सर्वत्र कन्द, मूल, फल और शाक आदि सूखपूर्वक मिलने लगे।

युधिष्ठिर! जो मनुष्य जितेन्द्रिय भावसे भक्तिपूर्वक ग्रहणके अवसरपर सूर्यतीर्थकी यात्रा करते हैं तथा काम, क्रोध, राग और द्वेषसे मुक्त हो भगवान् विष्णुकी कथा सुनते हुए वेदोंका पाठ करते हैं, अथवा ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेदकी एक-एक ऋचाका ही पाठ करते हैं वे सम्पूर्ण वेदोंके पाठका पूरा-पूरा फल पा लेते हैं। वहाँ गायत्रीमन्त्रके जपसे मनुष्य चारों वेदोंका फल पाता है। प्रातःकाल वहाँ अन्नदान और सुवर्णदान आदिके द्वारा भगवान्‌का पूजन करे। जो उस तीर्थमें स्नान करके योग्य ब्राह्मणोंको कपिला गौ प्रदान करता है उसके द्वारा पर्वत, वन और काननों-सहित मानो समूची पृथ्वी दे दी जाती है। जिसने वहाँ गोदान किया उसके द्वारा भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक, तपोलोक तथा सत्यलोक एवं इक्कीस पातालोंका भी दान सम्पन्न हो जाता है। जो प्रातःकाल उठकर भक्तिपूर्वक प्रतिदिन कपिला गौकी प्रदक्षिणा करता है उसके द्वारा सात द्वीपोंवाली पृथ्वीकी परिक्रमा हो जाती है। जो कपिला गौके पंचगव्यसे भगवान् शंकरको स्नान कराता अथवा जगदाधार विष्णु, सूर्य या अन्य किसी देवताको नहलाता है और जो एक वर्षतक प्रतिदिन श्रोत्रिय ब्राह्मणको कपिला गौका दान देता है, इन दोनोंका फल एक बताया गया है। जो कोई भी मनको वशमें करके सूर्यतीर्थमें कपिला, कृष्णा, श्वेत रंग या लाल रंगकी दूध देनेवाली नयी गौको बछड़ेसहित ब्राह्मणके लिये देता है तथा ब्राह्मणको विष्णु, अपने-आपको भी विष्णु और गौको सूर्यस्वरूप समझते हुए गोदान करता है वह स्वर्गलोकमें निवास करता है और ब्रह्महत्या आदि पापोंसे भी मुक्त हो जाता है। युधिष्ठिर! धेनुदानसे सब पापोंका नाश हो जाता है। जो पापनाशक सुरभिसंगम नामक पुण्यतीर्थमें भक्तिपूर्वक प्रेतके लिये श्राद्ध करता है, उसके ऊपर भगवान् सूर्य और महादेवजी प्रसन्न रहते हैं।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

धनदतीर्थका माहात्म्य, पूज्य और अपूज्य ब्राह्मण, वृषोत्सर्गकी महत्ता तथा गौतमेश्वरतीर्थकी महिमा

मार्कण्डेयजी कहते हैं—राजेन्द्र! तदनन्तर सब पापोंका नाश करनेवाले परम उत्तम धनदतीर्थमें जाय, जो नर्मदाके दक्षिण तटपर स्थित है। वहाँ स्नान करनेसे सब तीर्थोंका फल प्राप्त होता है। चैत्र मासके शुक्ल पक्षमें त्रयोदशी तिथिको उपवास करके रातमें जागरण करे और परम भक्तिपूर्वक वरदायक भगवान् शिवको स्नान करावे। तत्पश्चात् भक्तिपूर्वक पूजा करके गीत और वाद्यके द्वारा आराधना करे। प्रातःकाल अपने कल्याणकी इच्छा रखनेवाले पुरुषको ब्राह्मणोंका पूजन करना चाहिये। जो ब्राह्मण दान नहीं लेते, विद्याके सिद्धान्तका प्रतिपादन करते और निन्दासे दूर रहते हैं, उनका भक्तिभावसे भरण-पोषण करना चाहिये। धनदतीर्थके प्रभावसे तीन जन्मोंका पाप नष्ट हो जाता है। यह तीर्थ दुष्टोंको स्वर्ग देनेवाला है और साधु पुरुषोंको मोक्ष प्रदान करनेवाला है।

जो ब्राह्मण संस्कारहीन, आचारभ्रष्ट, नपुंसक, सूदखोर, खेती करनेवाले और भेददृष्टि रखनेवाले हों, उनका कोई पूजन न करे। जिसके घरमें शूद्र जातिकी स्त्री हो, जो भैंसेसे हल चलवाते या भैंसेपर भार लादते हों, ऐसे ब्राह्मणोंको श्राद्ध और व्रतमें दूरसे ही त्याग देना चाहिये। जो काने, कुण्ड (जो पिताके जीते-जी किसी जार पुरुषसे उत्पन्न हुए हों), गोलक (जो पिताकी मृत्युके बाद दूसरेसे उत्पन्न हुए हों) और वैद्यवृत्तिसे जीविका चलानेवाले हैं—वे भी व्रत और श्राद्धमें वर्जित हैं। यदि अपने पितरोंको ऊर्ध्वलोकमें भेजनेकी इच्छा हो तो सदा सर्वांगसुन्दर धर्मिष्ठ ब्राह्मणोंका पूजन करना चाहिये।

जो सदा धर्मचर्चामें तत्पर रहनेवाले, देवता, ब्राह्मण और गुरुजनोंके भक्त, तीर्थसेवापरायण, मातृभक्त, पितृभक्त, स्वामिभक्त, क्रोध-द्रोह आदि दुर्गुणोंसे रहित और सब प्रकारके सद्‌गुणोंसे युक्त हैं, वे ही मनुष्य स्वर्गलोकके अधिकारी हैं।

कार्तिक और वैशाखकी पूर्णिमाको स्नान करके पवित्र एवं जितेन्द्रिय होकर भगवान् शिवके समीप उन्हींकी प्रीतिके लिये वृषोत्सर्ग करे और यह कहे कि 'इस उत्सर्गसे ब्रह्मा, विष्णु तथा महादेवजी प्रसन्न हों'—ऐसा करनेवाला मनुष्य भगवान् विष्णुके लोकमें पूजित होता है।

नर्मदाके उत्तर तटपर गौतमेश्वर नामक उत्तम तीर्थ है। महर्षि गौतमने सब लोगोंके हितकी इच्छासे स्वर्गकी सीढ़ीके रूपमें उस तीर्थकी स्थापना की है। युधिष्ठिर! वहाँ सब पातकोंका नाश करने और स्वर्गलोककी प्राप्ति करानेके लिये जगद्‌गुरु महादेवजी निवास करते हैं।

नर्मदाके दक्षिण तटपर शंखचूडेश्वर नामसे प्रसिद्ध तीर्थ है। उस तीर्थमें स्नान करके पवित्र और एकाग्रचित्त हो भक्तिपूर्वक मधु, दही और घीसे भगवान् शंखचूडको स्नान करावे। रातमें उनके आगे जागरण करे और उत्तम व्रतका पालन करनेवाले ब्राह्मणोंका दही-भातसे सत्कार करे। जो उस तीर्थमें साँपके डसनेसे भी मृत्युको प्राप्त होता है वह भी भगवान् शंखचूडकी आज्ञासे उत्तम लोकमें जाता है।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

पराशराश्रमकी महिमा, पराशर मुनिकी तपस्या, वरदान-प्राप्ति, भीमेश्वरमें गायत्री-जपका महत्त्व और नारदेश्वरतीर्थका माहात्म्य

मार्कण्डेयजी कहते हैं—राजन्! नर्मदाके उत्तर तटपर महर्षि पराशरने पुत्रके लिये बड़ी भारी तपस्या की। उन्होंने हिमाचलकन्या गौरी तथा नारायणसहित लक्ष्मीको अपनी पराभक्तिसे सन्तुष्ट किया। तब देवी पार्वतीने प्रत्यक्ष दर्शन देकर कहा—'मुनिश्रेष्ठ! मैं तुम्हारी भक्तिसे प्रसन्न हूँ। विप्रवर! तुम कोई वर माँगो।'

पराशरजी बोले—देवि! मुझे सब शास्त्रोंके ज्ञानमें निपुण एक पुत्र शीघ्र दीजिये और यह स्थान तीर्थ हो जाय तथा आप भी लोकोपकारके लिये सदा यहाँ निवास करें।

देवीने कहा—'एवमस्तु'—ऐसा ही होगा।

इतना कहकर पार्वतीदेवी अन्तर्धान हो गयीं। तब महात्मा पराशरजीने पार्वतीदेवी तथा भगवान् शंकरको वहाँ स्थापित किया जो देव-दानववन्दित तथा सब देवताओंद्वारा पूजित हैं। यह सब करके पराशर मुनि कृतकृत्य हो निश्चिन्त हो गये। राजन्! उस तीर्थमें भक्तिपूर्वक स्नान करके शुद्धचित्त हो चैत्र, श्रावण और मार्गशीर्ष मासके शुक्ल पक्षमें अष्टमी, चतुर्दशी एवं सूर्यग्रहणके पर्वमें सदा भगवान् शंकर और पार्वतीदेवीका पूजन करे। स्त्रियाँ हों या पुरुष—सभी काम-क्रोधसे रहित हो उपवास करके भक्ति-भावसे व्रतका पालन करें। फिर हाथभरके कुश और उत्तम तिल लेकर ब्राह्मणको उत्तराभिमुख बिठावे और स्वयं दक्षिण दिशाकी ओर मुँह करके बैठे। फिर कुशोंपर कच्चा अन्न रखकर ब्राह्मणके आगे इस प्रकार कहे—'इस उत्तम तीर्थके प्रभावसे अमुक प्रेतको श्रेष्ठ लोककी प्राप्ति हो। मेरा पाप नष्ट हो जाय, शुभ कर्मकी सदा वृद्धि हो, मेरे कुल और कुटुम्बका भी सर्वदा अभ्युदय हो।' ऐसा कहकर पराशर-आश्रममें ब्राह्मणको दान दे। जो मनुष्य भक्तिपूर्वक इस प्रसंगको सुनता है वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है।

तदनन्तर सब पापोंका नाश करनेवाले भीमेश्वरतीर्थको जाय, जो भयानक व्रत धारण करनेवाले ऋषियोंके समुदायसे सेवित है। जो उस तीर्थमें स्नान और उपवास करके इन्द्रियोंको वशमें रखते हुए सूर्यकी ओर दोनों हाथ उठाकर एकाक्षर मन्त्र प्रणवका जप करता है उसका जन्मभरका पाप उसी क्षण नष्ट हो जाता है और गायत्री-मन्त्रका जप करनेसे सात जन्मोंका संचित पाप निश्चय ही नाशको प्राप्त होता है। दस बार गायत्री जपनेसे एक जन्मका, सौ बार जपनेसे पूर्वजन्मका और सहस्र बार जपनेसे तीन जन्मोंके पापोंका गायत्री देवी नाश करती हैं। राजन्! वहाँ जप किया हुआ वैदिक या लौकिक मन्त्र सब पापोंको तत्काल जला देता है। परंतु यदि कोई इसीके भरोसे पाप करे तो उसको वह फल कभी नहीं मिलता।

वहाँसे उत्तम नारदेश्वरतीर्थको जाय, जिसकी स्थापना स्वयं देवर्षि नारदजीने की है। पूर्वकालमें ब्रह्माजीके पुत्र देवर्षि नारदजीने नर्मदाके उत्तर तटपर तपस्या की। वे नवों इन्द्रियछिद्रोंको रोककर काष्ठकी-सी दशाको प्राप्त हो गये। ऐसा कठोर तप करके उन्होंने महादेवजीको सन्तुष्ट किया। तब महादेवजी प्रत्यक्ष होकर बोले—'देवर्षे! मैं तुमपर प्रसन्न हूँ। तुम्हारे मनमें जो इच्छा हो, उसके अनुसार वर माँगो।'

नारदजीने कहा—देव! आपके प्रसादसे मेरा योग सिद्ध हो जाय।

महादेवजीने कहा—तुम्हारा योग सिद्ध हो और मुझमें सदा तुम्हारी भक्ति बनी रहे। तुम स्वर्ग, पाताल अथवा मर्त्यलोकमें अपनी इच्छाके अनुसार भ्रमण करो। कभी कोई तुम्हें रोक नहीं सकता। सात स्वर, तीन ग्राम और इक्कीस मूर्छनाओंके साथ दिव्य नृत्य एवं संगीतकलाका तुम्हें ज्ञान होगा, जो मुझे

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

बहुत ही प्रिय है। तुम्हारा यह तीर्थ भूतलपर मेरे प्रसादसे परम पवित्र माना जायगा।

ऐसा कहकर भगवान् शिव अन्तर्धान हो गये और देवर्षि नारदने सब प्राणियोंके उपकारके लिये वहाँ एक शिवलिंग स्थापित किया। नारदजीका वह तीर्थ इस पृथ्वीपर बहुत ही उत्तम है। मनुष्य जितेन्द्रिय होकर उस तीर्थमें जाय। जो लोग अस्त्र-शस्त्रद्वारा मारे गये हैं, उनकी सद्गतिके लिये वहाँ श्राद्ध करे। उस तीर्थमें किये हुए पिण्डदानके प्रभावसे वे मृतक पुरुष उत्तम लोकको जाते हैं। पूर्वकालमें नर्मदाजीके सामने नन्दीने भगवान् महेश्वरकी प्रसन्नताके लिये तप किया। तब महादेवजी प्रसन्न होकर बोले—'नन्दीश्वर! मैं सन्तुष्ट हूँ, तुम मनोवांछित वर माँगो।'

नन्दीने कहा—देवेश्वर! मैं धन नहीं चाहता, कुल और सन्तान नहीं चाहता, मोक्ष या और कोई वस्तु भी नहीं चाहता। मुझे तो केवल आपके चरणारविन्दोंकी सेवा चाहिये। जन्म-जन्ममें आपके प्रति अविचल भक्ति प्राप्त हो।

'तथास्तु' कहकर महादेवजी नन्दीका हाथ अपने हाथमें लेकर शीघ्र ही उनके साथ कैलासधाममें चले गये। जो मनुष्य उस तीर्थमें स्नान करके भक्तिभावसे भगवान् त्रिलोचनकी पूजा करता है वह अग्निष्टोम यज्ञके पुण्य और फलको पाता है।

~~~०~~~

नर्मदा-नागेशके संगममें कण्ठकी ब्रह्महत्यासे मुक्ति और सद्गति

मार्कण्डेयजी कहते हैं—राजन्! पूर्वकालमें शम्बर नामके एक राजा थे। शम्बरके पुत्र त्रिलोचन और त्रिलोचनका पुत्र कण्ठ हुआ। यह कण्ठ बड़ा नीच था। सदा पापोंमें ही लगा रहता था। एक दिन वह वनमें घूम रहा था। उसी समय उसे मृगोंका झुंड दिखायी दिया। कण्ठने उस पूरे झुंडको अपने बाणोंका निशाना बना दिया। उसी झुंडमें एक ब्राह्मण भी थे जो मृगका रूप धारण करके निर्जन वनमें विचर रहे थे। वे भी उस समय कण्ठके शस्त्रसे मारे गये। कण्ठको ब्रह्महत्या लगी और वह तेजोहीन होकर पृथ्वीपर विचरने लगा। घूमता-घूमता वह नर्मदा और नागेशके संगमपर जा पहुँचा तथा अधिक थका होनेके कारण एक वृक्षकी छायामें सो गया। तत्पश्चात् उठा और संगममें नहाकर बड़ी भक्तिके साथ उसने भगवान् सोमनाथका पूजन किया। इसके बाद कण्ठने कण्ठतक नर्मदाका पापनाशक जल पीया। इसी समय एक ब्राह्मण संगमतीर्थमें स्नान करनेके लिये आ रहे थे। रास्तेमें उन्हें वृक्षपर बैठी हुई एक भयानक स्त्री दिखायी दी। वह स्त्री उनसे बोली—'विप्रवर! यदि तुम संगममें स्नान करनेके लिये जाते हो तो वहाँ मेरा पति ठहरा हुआ है, उसे शीघ्र भेज देना।' यह सुनकर ब्राह्मणदेवता संगमपर गये और वहाँ वृक्षकी छायामें बैठे हुए कण्ठको देखकर बोले—'मैंने वनमें एक स्त्री देखी है। उसने मुझसे कहा है कि संगमपर मेरा पति है, उसको मेरे पास भेज दो।' तब कण्ठने अपने एक सेवकसे कहा—'तुम जाओ और उससे पूछो कि तुम कौन हो और कहाँसे आयी हो?' सेवक जहाँ वह स्त्री बैठी थी, वहाँ गया और इस प्रकार बोला—'बाले! राजा कण्ठ पूछते हैं कि तुम कौन हो?'

स्त्री बोली—जितात्मा पुरुषोंको शिक्षा देनेवाले गुरु हैं, दुष्टोंका शासन करनेवाले राजा हैं और इस लोकमें जो छिपे हुए पाप करते हैं, उन सबके शासक विवस्वान्के पुत्र यमराज हैं। इस कण्ठने मृगरूपधारी ब्राह्मणका वध किया है, अतः इसे ब्रह्महत्या लगी है। ब्रह्महत्या मैं ही हूँ। यद्यपि मैंने उसे पकड़ रखा था, तथापि इस तीर्थके प्रभावसे वह मुझसे छूट गया है। यहाँ नर्मदासे आधे कोसके अंदर ब्रह्महत्याका प्रवेश नहीं होता। अतः तुम जाओ, कण्ठको शीघ्र ही यहाँ भेज देना।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth
~~~

सेवकने लौटकर राजासे सब वृत्तान्त कह सुनाया। उसकी बात सुनकर राजा कण्ठ पृथ्वीपर गिर पड़ा। तब सेवकने कहा—'नाथ! आप पहलेके शुभाशुभके विषयमें इतना शोक क्यों करते हैं।' उसने उत्तर दिया—'मैं यहीं भगवान् सोमनाथके समीप प्राणत्याग करूँगा। तदनन्तर राजाने संगमके पापनाशक जलमें स्नान किया, भक्तिपूर्वक भगवान् सोमनाथकी पूजा की और तीन बार उनकी परिक्रमा करके प्रज्वलित अग्निमें प्रवेश किया। उस समय वह मन-ही-मन पीताम्बर और महान् मुकुट धारण करनेवाले भगवान् विष्णुका ध्यान कर रहा था तथा यह प्रार्थना करता था कि 'श्रीहरिके ध्यानसे मेरी उत्तम गति हो।'

उस समय उसके ऊपर आकाशसे फूलोंकी वर्षा हुई। यह अनुपम आश्चर्य देखकर कण्ठके सेवकोंने भी एक-दूसरेकी ओर दृष्टिपात किया और भगवान् गदाधरका ध्यान करते हुए उन्होंने उसी अग्निमें अपने शरीरकी भी आहुति दे दी। तब वे सब-के-सब दिव्य विमानपर आरूढ़ हो स्वर्गलोकको चले गये।

युधिष्ठिर! भगवान् सोमनाथका ऐसा ही प्रभाव है। अष्टमी और चतुर्दशीको शुभ दिनमें सब समय और विशेषतः शुक्ल पक्षमें सप्तमी तथा रविवारका योग होनेपर मनुष्य उपवास करके भक्तिभावसे रात्रिमें जागरण करे। भगवान् शिवको स्नान कराकर उनके श्रीविग्रहमें चन्दनका लेप करे और पुष्प, धूप आदि देकर घीसे दीपक जलावे। फिर दूसरे दिन अष्टमीयुक्त सोमवारको प्रातःकाल क्रोधको जीतनेवाले, निन्दासे दूर रहनेवाले, सर्वांगसुन्दर, शान्त, अपनी पत्नीका पालन करनेवाले, गायत्रीजपपरायण तथा कुकर्म-रहित ब्राह्मणका पूजन करे। ऐसा करनेसे वह भगवान् शिवके लोकमें जाता है।

पूतकेश्वर तथा जलशायी (चक्र) तीर्थका माहात्म्य, श्रीविष्णुके द्वारा नलमेघ दानवके वधकी कथा

मार्कण्डेयजी कहते हैं—राजेन्द्र! तदनन्तर नर्मदाके दक्षिण तटपर पूतकेश्वर नामक उत्तम तीर्थमें जाय, वह सब पापोंका नाश करनेवाला है। वहाँ लोगोंके हितकी कामनासे भगवान् शिवकी स्थापना की गयी है। युधिष्ठिर! जो मनुष्य वहाँ भगवान् शिवकी पूजा करता है, वह सब मनोरथोंको प्राप्त होता है। कृष्ण पक्षकी अष्टमी और चतुर्दशीको जो मनुष्य महाकालका पूजन करते हैं, वे कभी यमलोकमें नहीं जाते। नर्मदाके उत्तर तटपर उत्तम वैष्णवतीर्थ है, जो जलशायीके नामसे इस भूतलपर विख्यात है।

पूर्वकालमें नलमेघ नामसे प्रसिद्ध एक बड़ा भारी दैत्य था। उसने सब देवताओंको जीतकर उनका राज्य छीन लिया। नलमेघके भयसे इन्द्र आदि सब देवता सर्वोत्कृष्ट ब्रह्मलोकमें गये और भाँति-भाँतिके स्तोत्रोंद्वारा ब्रह्माजीकी स्तुति करने लगे। तब ब्रह्माजीने देवताओंसे कहा—'भगवान् विष्णुके बिना वह दैत्य दूसरेसे नहीं जीता जा सकता।' यह सुनकर सम्पूर्ण देवताओंने श्रीविष्णुका स्तवन किया—'शंख, चक्र, गदा और पद्म धारण करनेवाले प्रभो! आपकी जय हो।' देवताओंकी यह स्तुति सुनकर भगवान् जलशायी जाग उठे और मेघगर्जनाके समान, गम्भीर वाणीमें बोले—'ब्रह्मन्! आपने समस्त देवताओंके साथ आकर मुझे किसलिये जगाया है?'

ब्रह्माजी बोले—भगवन्! हमलोग नलमेघके भयसे आपके धाममें आये हैं। पापी नलमेघ दूसरे किसीके हाथसे नहीं मारा जा सकता। केवल आपके ही हाथसे उस दुष्टात्माकी मृत्यु होगी।

भगवान् विष्णु बोले—देवताओ! अपने-अपने स्थानको जाओ, मैं उस महाबली दैत्यका वध कर दूँगा।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

तदनन्तर भगवान् जनार्दनने अपने हाथमें शंख, चक्र, गदा और शार्ङ्ग धनुष लेकर गरुड़पर सवार हो उस दानवका वध करनेके लिये प्रस्थान किया। जगत्के स्वामी श्रीहरि गिरिराज हिमालयपर गये और उसके नगरके निकट पहुँचकर उन्होंने अपना पांचजन्य शंख बजाया। उसकी ध्वनि सुनकर नलमेघको बड़ा क्रोध हुआ और वह अपने रथपर आरूढ़ हो नगरसे बाहर निकला। इतनेमें ही शंख, चक्र और गदा धारण करनेवाले भगवान् विष्णुपर उसकी दृष्टि पड़ी।

तब नलमेघ बोला—दानवो! यह वही विष्णु है, जिसने दानव धुन्धुमारका वध किया है, इसे मार डालो।

ऐसा कहकर दानव नलमेघ अपने बाणोंसे भगवान् विष्णुपर आघात करने लगा। किंतु श्रीहरिने उसके सभी बाण काट डाले और उस दानवपर दुगुने बाणोंकी बौछार की। तब दानवने भी दूने-से-दूना करके विष्णुपर बाणोंकी वर्षा की। तब भगवान्ने नारसिंह बाण चलाया। उसे देखकर नलमेघ शीघ्रतापूर्वक रथसे उतर गया और हाथमें तलवार लेकर भगवान्को मारनेके लिये दौड़ा। यह देख श्रीहरिने अपना अमोघ चक्र लेकर उस दानवका मस्तक काट गिराया। तदनन्तर देवताओंने भगवान् विष्णुपर फूलोंकी वर्षा की। नलमेघके मारे जानेपर देवगण अपने-अपने स्थानको चले गये और भगवान् विष्णु नर्मदाके जलमें लीन हो गये। तबसे इस लोकमें वह स्थान जलशायी तीर्थ कहलाता है। वह अनेक पापोंका नाश करनेवाला है। कुछ लोग उसे चक्रतीर्थ भी कहते हैं। युधिष्ठिर! भारतवर्षमें नर्मदाके तटपर यह तीर्थ प्रसिद्ध है। मार्गशीर्ष मासमें शुक्ल पक्षकी एकादशी तिथिको शुभ दिनमें वहाँ जाकर जो मनुष्य काम और क्रोधसे रहित हो शेषशय्यापर शयन करनेवाले भगवान् लक्ष्मीपतिको स्नान कराते हैं, तथा जो लोग मधु, दूध, घी और गुड़ मिले हुए जलसे नहलाये जाते हुए श्रीविष्णुका भक्तिभावसे दर्शन करते हैं, वे पापरहित हो भगवान्के देव-दानववन्दित परम धामको जाते हैं। जो श्रेष्ठ मानव वहाँ भक्तिपूर्वक भगवान् विष्णुकी कथा सुनते हैं, वे ब्रह्महत्या आदि पापोंसे मुक्त हो जाते हैं। जो जलशायी भगवान् जगद्गुरु विष्णुकी प्रदक्षिणा करते हैं, उनके द्वारा सम्पूर्ण जम्बूद्वीपकी परिक्रमा हो जाती है। तदनन्तर निर्मल प्रातःकाल होनेपर यत्नपूर्वक पितरोंका तर्पण करके पूज्य ब्राह्मणोंके द्वारा श्राद्ध करावे। जो ब्राह्मण वेदका विद्वान् नहीं है, मादक वस्तुओंके सेवनसे उन्मत्त रहता है, मित्रद्रोही, कृतघ्न और व्रतहीन है, उसे दान नहीं देना चाहिये। जो वेदान्तको पढ़कर उसके तत्त्वको जानता हो, उसे गोदान देना चाहिये। जो सर्वांगसुन्दर, पवित्र और प्रिय वचन बोलनेवाला हो, ऐसे ही ब्राह्मणको गौ देनी चाहिये।

प्रभासेश्वर, मार्कण्डेयेश्वर, संकर्षण, मन्मथेश्वर तथा एरण्डीसंगममें पुत्रप्राप्तिपदतीर्थकी महिमा, अनसूयाजीके पुत्ररूपसे ब्रह्मा, शिव और विष्णुका अवतार

मार्कण्डेयजी कहते हैं—राजन्! सूर्यदेवकी स्त्री प्रभाने पूर्वकालमें उग्र तपस्याके द्वारा भगवान् शिवकी आराधना की। वह उन्हींके ध्यानमें तत्पर हो एक वर्षतक केवल वायु पीकर रही। इससे सन्तुष्ट होकर महादेवजीने प्रभासे कहा—'बाले! तू क्यों कष्ट उठा रही है? अपना मनोरथ प्रकट कर।'

प्रभा बोली—शम्भो! स्त्रीके लिये पतिके सिवा दूसरा कोई देवता नहीं है। भले ही पति कभी पत्नीका पोषण न करता हो, गुणवान् हो या गुणहीन, धनवान् हो या निर्धन, प्रेमी हो या द्वेषपात्र, किंतु स्त्रीके लिये तो पति ही उसका देवता है। महेश्वर! मैं पतिसे सुख नहीं पा रही हूँ। इसीलिये क्लेश उठाती हूँ।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

महादेवजीने कहा—देवि! तू मेरे प्रभावसे सूर्यदेवकी प्रियतमा होगी।

महादेवजीका वरदान पाकर प्रभाने वहाँ उनकी स्थापना की और इस प्रकार बोली—भगवन्! आप अपने अंशसे यहाँ निवास करें और इस तीर्थको प्रकाशमें लावें।

मार्कण्डेयजी कहते हैं—युधिष्ठिर! प्रभाद्वारा स्थापित शिवलिंग ही प्रभासेश्वर नामसे प्रसिद्ध हुआ। वह सम्पूर्ण लोकमें दुर्लभ है। माघमासकी सप्तमीको यह विशेष फलद होता है। जो उस तीर्थमें भक्तिसे कन्यादान देता है अथवा कन्याके समान अवस्थावाले धनी एवं कुलीन ब्राह्मणको विवाहके लिये कन्या दिलाता है, उसका पाप नष्ट हो जाता है। वहाँ कन्यादान करनेवाला पुरुष सूर्यलोकका भेदन करके कल्याणमय शिवलोकमें जाता है। युधिष्ठिर! मनुष्य तभीतक भटकता है, जबतक प्रभातीर्थमें नहीं जाता। वहाँ जानेपर अश्वमेधयज्ञका फल पाकर वह उत्तम गतिको पाता है।

तदनन्तर नर्मदाके दक्षिण तटपर उत्तम मार्कण्डेयेश्वर तीर्थमें जाय, जो देवताओंद्वारा वन्दित, कल्याणमय तथा गोपनीयसे भी गोपनीय है। उसकी स्थापना मैंने स्वयं ही की है। वह परम पवित्र तथा भोग एवं मोक्ष देनेवाला है। उसी तीर्थमें भगवान् शंकरके प्रसादसे मुझे ज्ञानकी प्राप्ति हुई है। पाण्डुनन्दन! जो वहाँ अन्यान्य सूक्तोंका चिन्तन तथा वहाँके जलमें 'द्रुपदादिव०' इत्यादि मन्त्रोंका जप करता है, वह घोर पापराशिसे मुक्त हो जाता है। जो अपनी पाँचों इन्द्रियोंको वशमें करके नर्मदाके दक्षिण तटपर बैठकर जलमें भक्तिपूर्वक पूर्वोक्त सूक्तोंका जप करता है, वह मन, वाणी और क्रियाद्वारा होनेवाले सब पापोंसे छुटकारा पा जाता है, ऐसा भगवान् शंकरका कथन है। जो मार्कण्डेयेश्वरतीर्थमें भक्तिपूर्वक पितरोंका श्राद्ध करता है, उसके पितर प्रलयकालतक तृप्त रहते हैं। जो वहाँ आँवला, बेर, बेल आदि फल, अक्षत और जलसे प्रेतोंका तर्पण करते हैं, उनके द्वारा तृप्त किये हुए वे प्रेत शुभ गतिको प्राप्त होते हैं।

राजेन्द्र! उसके बाद नर्मदाके उत्तर तटपर यज्ञवाट्के मध्यमें स्थित संकर्षण नामक तीर्थमें जाय, जो सब पापोंका नाश करनेवाला और भूतलमें प्रसिद्ध है। वहाँ पूर्वकालमें बलभद्रजीने नर्मदातटपर सब प्राणियोंके उपकारके लिये तपस्या की थी। वहीं समीपमें ही देवताओं तथा भगवती उमाके साथ भगवान् शिव निवास करते हैं। जो मनुष्य वहाँ क्रोध और इन्द्रियोंको वशमें रखकर शुक्ल पक्षकी एकादशी तिथिको भक्तिभावसे मन्त्रोच्चारणपूर्वक भगवान् शिवको स्नान कराता है तथा श्रद्धा-भक्तिके साथ प्रेतोंके लिये श्राद्ध एवं दान करता है, वह परम पदको प्राप्त होता है।

तत्पश्चात् मन्मथेश्वरतीर्थको जाय। वहाँ स्नान करनेमात्रसे मनुष्य कभी यमलोकको नहीं देखता। वहाँ स्नान करके पवित्रचित्त हो मुनिभावसे रहनेवाला जो मनुष्य उत्तम भक्तिपूर्वक उपवास करता है, उसे सहस्र गोदानका फल प्राप्त होता है।

इसके बाद एरण्डीश्वरतीर्थमे जाना चाहिये। ब्रह्माजीके मानसपुत्रोंमें एक महर्षि अत्रिके नामसे प्रसिद्ध हैं। उनकी पत्नीका नाम अनसूया है। उनमें पत्नीके सभी सद्गुण मौजूद हैं। वे पतिव्रता, पतिप्राणा और पतिके हित करनेमें सदा संलग्न रहनेवाली हैं। एक दिन वे दोनों श्रेष्ठ दम्पति अपराह्णकालमें कहीं सुखपूर्वक बैठे थे। उस समय मुनिवर अत्रिने कहा—"प्रिये! चराचर प्राणियोंसहित तीनों लोकोंमें तुम-जैसी पतिव्रता स्त्री दूसरी नहीं है। जो नारी अपने पति और पुत्र दोनोंको प्रिय हो तथा सुहृद्जनोंके हितमें संलग्न रहनेवाली हो, वह धन्य है। शास्त्रोंका कथन है—'पुत्रसे मनुष्य पुण्यलोकोंपर विजय पाता है, पुत्रसे उसकी परम गति होती है।' पृथ्वीपर पुत्रके सदृश कोई बन्धु नहीं देखा जाता है, जो कि घोर असिपत्रवनमें गिरते हुए पिताकी रक्षा करता है। अकालमें, दीनता आदिमें तथा बुढ़ापेमें भी पुत्र पिताका पालन करता है।"

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

अनसूया बोली—ब्रह्मन्! पतिदेव! जो नारी पतिव्रता है, वह पति और पुत्र दोनोंकी वृद्धि करनेवाली है तथा धर्म, अर्थ और काम तीनोंकी साधिका है। अतः वह सबके द्वारा पालन करने योग्य है। जप, तप, तीर्थयात्रा, पुत्रेष्टि तथा मन्त्र-साधना आदि साधन पुत्रकी प्राप्ति करानेवाले होते हैं, ऐसा सभी गुरुजन कहते हैं। यदि आपकी आज्ञा हो, तो मैं पुत्रके लिये दुष्कर तपस्या करूँ।

अत्रिने कहा—महाप्राज्ञे! तुम्हें साधुवाद है। मैं आज्ञा देता हूँ, तुम पुत्रके लिये तपस्या करो।

तब अनसूयाने अपने पतिको साष्टांग प्रणाम करके कहा—विप्रवर! आपके प्रसादसे मैं सिद्धि प्राप्त करूँगी। ऐसा कहकर अनसूया नर्मदा नदीके तटपर गयी, जो सोमनाथके तुल्य महत्त्व रखनेवाला था। नर्मदाके समीप दो योजनतक वहाँ दोनों तटकी भूमि बड़ी उत्तम है। नर्मदाके उत्तर तटपर पहुँचकर अनसूया नियमपालनमें संलग्न हुई। वह पत्ते चबाकर अथवा साग खाकर रहती और उत्तम स्तोत्रोंद्वारा देवताओंकी स्तुति करती थी। तब भगवान् विष्णु, महादेवजी और ब्रह्माजी एरण्डीसंगममें आये तथा ब्राह्मणका रूप धारण करके अनसूयाके आगे खड़े होकर मन्त्रोंका उच्चारण करने लगे। अनसूयाजी अर्घ्य देकर उठीं और कहने लगीं—'आज मेरा जन्म सफल हुआ और आज मेरी तपस्या सफल हो गयी।' ऐसा कहकर उन्होंने परिक्रमा की और प्रणाम करके कहा—'विप्रवरो! आज मैं दिव्य कन्द, मूल और फल भोजन कराकर आपलोगोंको तृप्त करूँगी।'

ब्राह्मण बोले—सुव्रते! तुम्हारे दर्शनसे ही हम तृप्त हैं। बताओ, तुम किसलिये तप कर रही हो?

अनसूयाने कहा—ब्राह्मणो! तपस्यासे स्वर्गकी सिद्धि होती है, तपस्यासे उत्तम गति मिलती है और तपस्यासे ही मनुष्य सम्पूर्ण मनोरथोंको पूर्ण करता है।

ब्राह्मण बोले—उत्तम व्रतका पालन करनेवाली देवि! वर माँगो। हम तीनों ब्रह्मा, विष्णु और महादेव हैं। लोककी दृष्टिमें हमने अपने स्वरूपको छिपा रखा है।

इतना कहकर उन्होंने अपने-अपने स्वरूपका दर्शन कराया। वे कोटि-कोटि सूर्योंके समान कान्तिमान् दिखायी देने लगे।

अनसूयाने कहा—यदि ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र कृपा करके मुझपर प्रसन्न हुए हैं, तो इस समय मुझे यही वरदान दें कि मेरे पुत्र होकर उत्पन्न हों।

तब भगवान् विष्णुने कहा—कल्याणी! मैं तुम्हें देवतुल्य पराक्रमी, पिताके समान गुणवान्, सोमयाजी और बहुश्रुत पुत्र देता हूँ।

अनसूयाने कहा—भगवन्! मैंने जैसी प्रार्थना की है, उसके अनुकूल, मनोवांछित वस्तु मुझे देनी चाहिये। उसके विपरीत नहीं करना चाहिये।

तब तीनों देवता बोले—कल्याणी! हम तुम्हारे अयोनिज पुत्र होंगे, क्योंकि देवता गर्भमें निवास नहीं करते।

इतना कहकर वे तीनों देवता चले गये। नर्मदातटपर यह श्रेष्ठ वरदान पाकर अनसूया देवी महेन्द्रपर्वतपर अपने पतिके समीप गयीं। उन्हें देखकर अत्रि मुनिने कहा—'महाप्राज्ञे! धन्यवाद। तुमने वह दुर्लभ वरदान पाया है, जो सम्पूर्ण स्त्रियोंके लिये असाध्य है।'

अनसूयाने कहा—महर्षे! आपके प्रसादसे ही मुझे दुर्लभ वरकी प्राप्ति हुई है।

ऐसा कहकर हर्षमें भरी हुई महादेवी अनसूयाने अपने प्राणवल्लभ मुनिकी ओर देखा और मुनिने भी उस शुभदर्शना पत्नीकी ओर दृष्टिपात किया। परस्पर दर्शनसे ही अत्रिके ललाटमें एक शुभ्र ज्योतिर्मण्डल प्रकट हुआ। जिसकी किरणें नौ सहस्र योजनतक फैली हुई थीं। कदम्बपुष्पके समान गोल आकारवाला ब्रह्ममण्डल त्रिविध परिधिमण्डलसे घिरा हुआ था। मण्डलके मध्यभागमें दिव्य पुरुषरूपधारी देवेश्वर ब्रह्माजी प्रकट हुए, जो सुवर्णके समान कान्तिमान् और कोटि-कोटि

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

सूर्योंके समान प्रभापुंजसे व्याप्त थे। ये ही अनसूयाके प्रथम पुत्र साक्षात् ब्रह्माजीके अवतार चन्द्रमा नामसे विख्यात हुए। इन्हींको सोम भी कहते हैं। ये सोलह कलाओंसे संयुक्त हो माता-पिताके श्रेष्ठ एवं प्रिय पुत्र हुए। इनकी कलाओंके नाम इस प्रकार हैं—प्रतिपत्, द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी, पंचमी, षष्ठी, सप्तमी, अष्टमी, नवमी, दशमी, एकादशी, द्वादशी, त्रयोदशी, चतुर्दशी तथा पंद्रहवी पूर्णमासी कही गयी है। सोलहवीं कलाका नाम अमावास्या है। ये चन्द्रमा सूक्ष्म होकर चार प्रकारके जीवोंसे युक्त सम्पूर्ण चराचर जगत्को तृप्त करते हैं। आहुतिमें दिया हुआ द्रव्य चन्द्रमामें ही स्थित होता है। अमावास्याके ये चन्द्रमा जब वनस्पतियोंमें व्याप्त रहते हैं, उस समय जो मूढ़ मानव किसी वनस्पतिको काटता है वह दुःख भोगता है और अपने किये हुए एक वर्षके पुण्यको भस्म कर देता है। इन दिव्य गुणोंसे विशिष्ट सोमरूपी ब्रह्माजी अनसूयाको आनन्द प्रदान करनेवाले प्रथम पुत्र हुए। उनके दूसरे पुत्र महाभाग दुर्वासा मुनि हैं, जो सृष्टिसंहारकारी साक्षात् महेश्वरके अवतार हैं। अनसूयाजीके तीसरे पुत्र दत्तात्रेयके नामसे विख्यात हुए, जो जगद्व्यापी जगन्नाथ साक्षात् भगवान् विष्णुके अवतार हैं। इस प्रकार ब्रह्मा और महादेवजीके साथ भगवान् विष्णुने अवतार ग्रहण किया। तभीसे नर्मदाके उत्तर तटपर अनसूयाजीके द्वारा प्रसिद्ध किया हुआ पुत्र-प्राप्तिपद नामक तीर्थ है, जो सब पापोंका नाश करनेवाला है।

सौवर्णतीर्थ, करण्डेश्वरतीर्थ, भाण्डारतीर्थ, रोहिणीतीर्थ, चक्रतीर्थ तथा धूमपाततीर्थका माहात्म्य और माहात्म्य-श्रवणका फल

मार्कण्डेयजी कहते हैं—युधिष्ठिर! तदनन्तर सौवर्ण नामक उत्तम तीर्थ है, जो तीनों लोकोंमें विख्यात और सब पापोंका नाश करनेवाला है। वहाँ संगमके समीप नर्मदास्नानका अवसर दुर्लभ है। उस पुण्यक्षेत्रमें वह पावन तीर्थ एक हाथ भूमिमें ही स्थित है। उस सुवर्णशिलकमें स्नान करके मनुष्य कल्याणमयी परम शान्तिको प्राप्त होता है। जो मनुष्य उपवास करके जितेन्द्रिय भावसे वहाँ शुक्ल पक्षकी अष्टमी तिथिको श्राद्ध करता है, वह अपने कुलकी दस पूर्व पीढ़ियोंका और दस आनेवाली पीढ़ियोंका उद्धार कर देता है।

इसीके समीप करण्डेश्वर नामक उत्तम तीर्थ है, जो नर्मदाके उत्तर तटपर स्थित है। वह सब पापोंको हरनेवाला तथा सब प्रकारके दुःखोंका नाश करनेवाला है। वहाँसे परम सुन्दर सौभाग्यकरण नामक तीर्थको जाय, जो मनुष्योंके सब पापोंका नाश करनेवाला है। युधिष्ठिर! जो भाग्यहीन स्त्री या पुरुष वहाँ स्नान करके उमा-महेश्वरका पूजन करते हैं, उन्हें सौभाग्यकी प्राप्ति होती है। तृतीया तिथिको दिन-रात उपवास करके जितेन्द्रिय पुरुष सुरूपवान् सपत्नीक ब्राह्मणको निमन्त्रित करे। आनेपर पाद्य-अर्घ्य आदि देनेके पश्चात् उन्हें सुगन्धित पुष्पोंकी मालाओंसे अलंकृत करे। फिर पुष्प देकर धूपकी सुगन्धसे सुवासित करे। तत्पश्चात् भक्तिभावसे खीर अथवा खिचड़ी भोजन करावे। विधिपूर्वक भोजन कराकर ब्राह्मण-दम्पतिकी परिक्रमा करे। फिर नर्मदाके जलमें स्नान और दान करे। ऐसा करनेवाली सौभाग्यवती स्त्री कभी पतिवियोगको नहीं प्राप्त होती।

तदनन्तर भाण्डारतीर्थकी यात्रा करे। वहाँ पूर्वकालमें कुबेरने तपस्या की थी, जिससे ब्रह्माजी प्रसन्न हुए थे।

उसके बाद परम उत्तम रोहिणीतीर्थ है। महाप्रलयके समय जब भयंकर एकार्णवके जलमें समस्त चराचर जगत्का नाश हो गया, तब जलके भीतर शयन करनेवाले देवाधिदेव भगवान्

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

विष्णुकी नाभिसे कर्णिका, केसर और दलोंसे युक्त एक महाकमल प्रकट हुआ, जो सूर्यमण्डलके समान देदीप्यमान था। उस कमलमें चार मुखारविन्दोंसे सुशोभित ब्रह्माजी उत्पन्न हुए और सोचने लगे कि 'मैं क्या करूँ?' इसी समय उनके शरीरसे भगवान् मरीचि प्रकट हुए। कुछ कालके बाद मरीचिसे कश्यप उत्पन्न हुए। उन्हीं दिनों दक्ष प्रजापतिके पचास कन्याएँ हुईं, जिनमेंसे दस धर्मको और तेरह कश्यपको ब्याह दी गयीं। सत्ताईस कन्याएँ उन्होंने चन्द्रमाको दे दीं। उन कन्याओंमें रोहिणी सबसे सुन्दरी एवं चन्द्रमाके समान मुखवाली थी। रोहिणी सभी स्त्रियोंको प्रिय लगती थी और पतिको तो वह विशेष प्रिय लगती थी। उसने तपस्या करनेका निश्चय करके नर्मदाजीके तटको प्रस्थान किया और वहाँ बड़ी कठोर तपस्या की। वह दीर्घकालतक निरन्तर महिषासुरमर्दिनी दुर्गादेवीकी आराधनामें लगी रही। प्रतिदिन नर्मदाके जलमें स्नान करके उसने व्रत और नियमोंका पालन किया। इससे प्रसन्न होकर भगवती नारायणीने उसे प्रत्यक्ष दर्शन दिया और इस प्रकार कहा—'महाभागे! तुम मनोवांछित वर माँगो।' रोहिणीने कहा—'देवि! मैं अपनी सपत्नियोंके बीचमें सबसे अधिक पतिकी प्यारी होऊँ। मेरी यह इच्छा शीघ्र पूर्ण हो, ऐसी कृपा करें।'

तब 'एवमस्तु' कहकर भगवती महालक्ष्मी भक्तिपरायण देवताओंकी स्तुति सुनती हुई वहाँसे अन्तर्धान हो गयीं। तबसे रोहिणी देवी चन्द्रमाको अधिक प्रिय हुई और सम्पूर्ण लोकोंको भी वह प्यारी लगने लगी। उस तीर्थमें जो स्त्री और पुरुष भक्तिपूर्वक स्नान करते हैं, उनमेंसे स्त्री अपने पतिको तथा पति अपनी स्त्रीको अधिक प्रिय होते हैं।

तदनन्तर सब पापोंका नाश करनेवाले परम उत्तम चक्रतीर्थमें जाय, जो सेनापुरके नामसे विख्यात है। यहीं देवाधिदेव चक्रधारी भगवान् विष्णुने स्वामिकार्तिकेयका सेनापतिके पदपर अभिषेक किया था। जो क्रोधको जीतकर भगवान् विष्णुके प्रिय चक्रतीर्थमें जाता है, वह पापोंसे मुक्त होता और भयंकर यमराजको नहीं देखता है। वहाँ रात्रिमें जागरण करके भगवान् विष्णुके लिये दीपदान करे और एकाग्रचित्त हो उन्हींकी कथा-वार्ता सुने। जो उस तीर्थमें भीमव्रत, पराक, कृच्छ्र, चान्द्रायण, त्रिरात्र आदिका अनुष्ठान करता है, वह अन्तमें वैतरणीनदीको तर जाता है और दिन-रात चलते हुए भीमचक्र, कूटशाल्मलि आदि नरकोंकी यातना कभी नहीं देखता है।

महाबाहो! इस प्रकार लोकपावनी नर्मदा तीनों लोकोंके लिये पूजनीय हैं। उनका अनुपम माहात्म्य मैंने तुम्हें सुनाया है। महाभाग! इसे भक्तिपूर्वक सुनकर मनुष्य रुद्रलोकमें प्रतिष्ठित होता है।

इस खण्डके आदि, मध्य और अन्तमें नर्मदा नदीका उत्तम माहात्म्य बताया गया है। जो कोई भक्तिपूर्वक इसका श्रवण करता है, उसे मनोवांछित फलकी प्राप्ति होती है। जो मनुष्य जितेन्द्रियभावसे इस अनुपम माहात्म्यको सुनकर दान करता है, उसके सम्पूर्ण मनोरथोंकी सिद्धि होती है। धूप, दीप और चन्दन आदिसे पुस्तककी पूजा करके इसका दान करना चाहिये। ब्राह्मणोंकी भी पूजा करनी चाहिये। इस माहात्म्यके श्रवण और दानसे नर्मदा देवी अत्यन्त प्रसन्न होती हैं। प्रत्येक तीर्थमें पवित्र माहात्म्य सुनकर दान करना चाहिये, तभी तीर्थसेवन सफल होता है।

इस प्रकार नर्मदाजीका माहात्म्य सुनकर धर्मराज युधिष्ठिरने नर्मदातटवर्ती तीर्थोंकी यात्रा की।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

श्रीसत्यनारायण-व्रतकी विधि, ब्राह्मण और लकड़हारेकी कथा

ऋषियोंने सूतजीसे पूछा—महामुने! किस व्रत या तपसे अभीष्ट फलकी प्राप्ति होती है? हम सुनना चाहते हैं, कृपया बताइये।

सूतजी बोले—देवर्षि नारदने यही बात भगवान् कमलाकान्तसे पूछी थी, उन्होंने जो उसका उत्तर दिया था, उसीको आप सुनिये। एक दिन दूसरोंपर अनुग्रह करनेवाले योगी नारदजी विविध लोकोंमें घूमते हुए मर्त्यलोकमें आये। उन्होंने देखा, यहाँके सभी मनुष्य भाँति-भाँतिके दुःखोंसे पीड़ित हैं और अपने-अपने कर्मके फलस्वरूप विविध योनियोंमें जन्म लेकर क्लेश पा रहे हैं। वे सोचने लगे—'किस उपायसे इनका दुःख निश्चितरूपसे दूर हो सकता है।' मन-ही-मन इस प्रकार सोचकर वे विष्णुलोकमें गये और वहाँ जाकर उन्होंने शंख-चक्र-गदा-पद्मधारी, वनमालासे विभूषित, शुक्लवर्ण चतुर्भुज देवदेवेश्वर भगवान् नारायणको देखकर कुछ कहना चाहा।

नारदजी बोले—आप मन और वाणीसे अतीत अनन्तशक्ति हैं। आदि, मध्य और अन्तसे रहित हैं, निर्गुण हैं, गुणात्मा हैं, सबके आदिभूत हैं और भक्तोंके दुःखका नाश करनेवाले हैं। आपको नमस्कार है।

भगवान् विष्णुने नारदका स्तवन सुनकर उत्तर दिया—

श्रीभगवान् बोले—महाभाग! तुम किस लिये यहाँ आये हो और तुम्हारे मनमें क्या अभिलाषा है? बताओ, मैं तुम्हारी सब बातोंका उत्तर दूँगा।

नारदजी बोले—मर्त्यलोकमें मनुष्य पापकर्मवश विविध योनियोंमें जन्म लेकर नाना प्रकारसे क्लेश पा रहे हैं और अपने-अपने पापोंका फल भोग रहे हैं। हे नाथ! उनके वे सारे क्लेश सहजमें ही कैसे दूर हो सकते हैं? यदि मुझपर आपकी कृपा है तो वह उपाय बताइये। उसीको सुननेकी मेरी इच्छा है।

श्रीभगवान्ने कहा—वत्स! लोगोंके प्रति अनुग्रहकामी होकर तुमने बड़ी अच्छी बात पूछी। जिसके करनेसे मनुष्य मोहसे मुक्त होता है, वह मैं तुमसे कह रहा हूँ, सुनो।

एक अत्यन्त पवित्र व्रत है, जो स्वर्ग या पृथ्वीपर अति दुर्लभ है। मैं स्नेहवश, हे विप्र! आज उसीको प्रकट कर रहा हूँ। इस व्रतका नाम सत्यनारायण-व्रत है। इसको भलीभाँति विधानपूर्वक बतलाता हूँ। इस व्रतका सम्यक्-रूपसे अनुष्ठान किये जानेपर इस लोकमें सुख भोगकर मनुष्य परलोकमें मोक्षको प्राप्त करता है।

भगवान्की इस बातको सुनकर नारदजीने फिर कहा—इस व्रतका क्या फल है, इसकी क्या विधि है और किसने यह व्रत किया था तथा कब किया था? यह सब विस्तारपूर्वक बतलाइये।

श्रीभगवान् बोले—इस व्रतसे दुःख-शोकादिका नाश होता है, धन-धान्यकी वृद्धि होती है और यह व्रत सौभाग्य, सन्तति तथा सर्वत्र विजय प्रदान करता है। मनुष्य भक्ति-श्रद्धाके साथ जिस किसी दिन यह व्रत कर सकता है। परंतु सत्यनारायणदेव निशामुख अर्थात् सन्ध्याके समय पूजे जानेपर सन्तुष्ट होते हैं। धर्मपरायण मनुष्य ब्राह्मण और बन्धु-बान्धवोंके साथ यह व्रत करे। भक्तिके द्वारा भोग लगावे। भोग उत्तम पदार्थोंका होना चाहिये। भोग सवाके हिसाबसे (जैसे सवा छटाक, सवा पाव, सवा सेर आदि) होना चाहिये। केला, घी, दूध, गेहूँ, गेहूँका आटा, गेहूँका आटा न मिलनेपर चावलका आटा और चीनी अथवा गुड़का भोग लगाना चाहिये। ये सभी चीजें परिमाणमें सवाके हिसाबसे होनी

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

चाहिये और सबको एकत्रकर निवेदन करना चाहिये। तदनन्तर घरके लोगोंके साथ कथा सुनकर ब्राह्मणको दक्षिणा देनी चाहिये। इसके बाद ब्राह्मणोंको प्रसाद खिलाकर अपने बन्धु-बान्धवोंके साथ भक्तिपूर्वक स्वयं प्रसाद ग्रहण करना चाहिये और भगवान्‌के सामने (प्रेमपरवश होकर) नाचना और गाना चाहिये। इसके बाद स्तुति करके सत्यनारायण भगवान्‌का स्मरण करते हुए घर जाना चाहिये। इस प्रकार करनेपर मनुष्योंको निश्चय ही मनोवांछित फल प्राप्त होगा। विशेषकर इस कलियुगमें तो सत्यनारायण-व्रतके अतिरिक्त पृथ्वीपर अभीष्टसिद्धिका और कोई उपाय ही नहीं है।

पूर्वकालमें एक ब्राह्मण इस व्रतको करके कृतकृत्य हो गये थे। अब उनकी कथा कहता हूँ। काशीपुर ग्राममें एक निर्धन ब्राह्मण रहते थे। वे भूख-प्याससे व्याकुल होकर सदा पृथ्वीपर भटका करते। ब्राह्मणको दुःखी देखकर ब्राह्मणप्रिय भगवान् वृद्ध ब्राह्मणका रूप बनाकर उनके पास आये और उन्होंने आदरके साथ पूछा—'ब्राह्मण देवता! आप किसलिये अत्यन्त दुःखित होकर सारी पृथ्वीपर भटक रहे हैं। यदि आपकी अभिरुचि हो तो सारी बात मुझसे कहिये। मैं सुनना चाहता हूँ।'

ब्राह्मणने कहा—मैं बड़ा गरीब हूँ और भीख माँगनेके लिये ही इस प्रकार भटकता रहता हूँ। आप कोई उपाय जानते हों, तो हे प्रभो! कृपापूर्वक मुझे बताइये।

वृद्ध ब्राह्मणने कहा—सत्यनारायण विष्णु-भगवान् मनचाहा फल देते हैं। द्विजश्रेष्ठ! आप सत्यनारायणका उत्तम व्रत करें। मनुष्य इस व्रतको करके सब दुःखोंसे मुक्त हो जाता है।

श्रीभगवान् बोले—वृद्ध बने हुए सत्यनारायण ब्राह्मणको आदरपूर्वक व्रतकी पूरी विधि बताकर वहाँसे अन्तर्धान हो गये। तदनन्तर वे ब्राह्मण मन-ही-मन भगवान्‌का चिन्तन करते हुए घर लौटे। उन्होंने समझा कि 'नारायणने ही मुझको यह व्रत बतलाया है, अतएव मैं इस व्रतको करूँगा' ब्राह्मण इसी सोच-विचारमें रहे। उनको रात्रिमें नींद नहीं आयी। प्रातःकाल उठते ही 'मैं सत्यनारायण-व्रत करूँगा' यह संकल्प करके ब्राह्मण भिक्षाके लिये चले। उस दिन ब्राह्मणको भिक्षामें प्रचुर द्रव्यकी प्राप्ति हुई। उसके द्वारा उन्होंने बन्धु-बान्धवोंके साथ सत्यनारायणका व्रत किया और उस व्रतके प्रभावसे वे श्रेष्ठ ब्राह्मण समस्त दुःखोंसे छूटकर सम्पूर्ण सम्पत्तिसे सम्पन्न हो गये। तबसे वे प्रतिमास सत्यनारायण-व्रत करने लगे।

श्रीभगवान्‌ने कहा—वे उत्तम ब्राह्मण वृद्धरूपधारी नारायणके द्वारा व्रतको जानकर सारे पापोंसे मुक्त हो गये और उन्होंने दुर्लभ मोक्षकी प्राप्ति की। नारद! जिस समय इस व्रतका पृथ्वीमें प्रचार होगा, उसी समय मनुष्योंके समस्त दुःख नष्ट हो जायँगे।

सूतजी बोले—ब्राह्मणो! नारायणने महात्मा नारदको जैसा कहा था, ठीक वैसा ही मैंने आपलोगोंसे कह दिया। अब और क्या कहूँ।

ऋषियोंने पूछा—इसके बाद पृथ्वीपर इस व्रतका अनुष्ठान किस मनुष्यने किया था? हे मुने! यह सब हम सुनना चाहते हैं। इस विषयमें हमारे मनमें बड़ी श्रद्धा उत्पन्न हो गयी।

सूतजी बोले—मुनियो! उसके बाद पृथ्वीपर किसने यह व्रत किया था, सो सुनो। एक दिन वे श्रेष्ठ ब्राह्मण अपने बन्धु-बान्धवोंके साथ अपने वैभवके अनुरूप व्रत कर रहे थे। इसी समय वहाँ एक लकड़हारा आया। लकड़हारेने लकड़ी बाहर रख दी और वह ब्राह्मणके घरके अंदर चला गया। उस समय वह प्याससे पीड़ित था। उन ब्राह्मणको कार्यमें लगे देखकर प्रणाम करके उसने पूछा—'महाराज! आप यह क्या कर रहे हैं?'

ब्राह्मणने कहा—यह सत्यनारायण-व्रत है।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

यह व्रत दुःख-दारिद्र्यका नाश करता है, सब प्रकारकी इच्छित वस्तुओंको देता है और पुत्र-पौत्रादिकी वृद्धि करता है। इस व्रतके प्रभावसे ही धन-धान्यादि महान् समृद्धिसे मेरा घर भर गया है। ब्राह्मणकी इस बातको सुनकर लकड़हारेको बड़ा हर्ष हुआ। वह जल पीकर और प्रसाद लेकर स्थिर मनसे सत्यनारायणदेवका चिन्तन करता हुआ नगरमें गया। उसने मन-ही-मन कहा कि 'आज लकड़ियोंके बेचनेपर जो कुछ मिलेगा, उसीके द्वारा मैं सत्यदेवका उत्तम व्रत करूँगा।' इस प्रकार मनमें विचारकर वह लकड़ियोंके बोझेको सिरपर उठा नगरमें धनियोंके रमणीय स्थानमें पहुँचा। आज लकड़हारेको लकड़ियोंका दूना मूल्य मिला। उसका हृदय प्रसन्न हो गया। वह पके हुए केले, चीनी, घी, दूध और गेहूँका आटा—सब वस्तुएँ सवाये हिसाबसे लेकर घर पहुँचा। तदनन्तर बन्धु-बान्धवोंको निमन्त्रण देकर उसने विधिपूर्वक व्रत किया। उस व्रतके प्रभावसे वह लकड़हारा धन और पुत्रसे सम्पन्न हो गया तथा इहलोकमें सुख भोगकर अन्तमें सत्यपुरको प्राप्त हुआ।

सत्यनारायण-व्रतकी महिमा, राजा उल्कामुख, साधु वणिक् और राजा वंशध्वजकी कथा

सूतजीने कहा—एक घटना और कहता हूँ, सुनो। पूर्वकालमें उल्कामुख नामक एक जितेन्द्रिय, सत्यवादी, प्रबल पराक्रमी राजा थे। वे बुद्धिमान् राजा प्रतिदिन भगवान्‌के मन्दिरमें जाते और धन देकर ब्राह्मणोंको सन्तुष्ट करते। उनकी पत्नीका नाम था भद्रशीला। वह सरोजवदना, प्रमुग्धा और पतिपरायणा सती थी। राजा रानीके साथ समुद्रके तीरपर जाकर सत्यनारायणका व्रत किया करते थे। एक दिन जब राजा व्रत कर रहे थे, एक साधु नामक वणिक् वहाँ आया। वह व्यापारके लिये नाना प्रकारके रत्नादि पदार्थोंको नौकामें भरकर लाया था। वणिक् समुद्रके किनारे नावको खड़ी करके तटके ऊपर आया और व्रत करते हुए राजाको देखकर उसने विनयपूर्वक पूछा।

साधुने कहा—राजन्! भक्तियुक्त चित्तसे आप यह क्या अनुष्ठान कर रहे हैं? इस समय मेरी इसे जाननेकी इच्छा है। अतएव आप समझाकर कहें।

राजा बोले—साधो! मैं अपने बन्धु-बान्धवोंके साथ अतुलनीय तेजयुक्त भगवान् विष्णुकी पूजा कर रहा हूँ। मेरा यह व्रत पुत्रादिकी प्राप्तिके लिये है।

तदनन्तर साधुने राजाको आदरपूर्वक प्रणामकर कहा—राजन्! इस व्रतकी सांगोपांग विधि आप मुझे बतलावें; क्योंकि मैं भी यह व्रत करूँगा। मेरे भी सन्तान नहीं है। इस व्रतसे मुझे निश्चय ही सन्तानकी प्राप्ति होगी।

इतना कहकर वणिक्‌ने उन राजासे व्रतकी विधि अच्छी तरह पूछकर वहाँसे प्रस्थान किया और अपने वाणिज्यका काम पूरा करके वह आनन्दके साथ घर लौट आया। कुछ ही दिनोंके बाद उसकी पतिव्रता पत्नी गर्भवती हुई और समयपर उसने एक अति सुन्दरी कन्याको जन्म दिया। कन्या शुक्ल पक्षके चन्द्रमाकी भाँति दिनोंदिन बढ़ने लगी। वणिक्‌ने उसका जातकर्मादि संस्कार करवाकर उसका नाम रखा कलावती। तदनन्तर वणिक्‌पत्नी लीलावतीने मधुर वचनोंमें पतिसे कहा—'स्वामी! आपने पूर्वमें जो (सत्यनारायण-व्रत करनेकी) प्रतिज्ञा की थी, उसे अब पूरी क्यों नहीं कर रहे हैं?'

साधुने उत्तर दिया—प्रिये! मैं कलावतीके विवाहके समय सत्यनारायणका व्रत करूँगा।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

पत्नीको इस प्रकार आश्वासन देकर साधु-वणिक् समुद्रके तटकी ओर चला गया। इधर पिताके घरमें कलावती बढ़ने लगी। इसके बाद धर्मके जाननेवाले पिताने जब अपनी पुत्रीको विवाहके योग्य देखा, तब अपने बन्धु-बान्धवोंसे परामर्श करके साधुने वर ढूँढ़नेके लिये दूतको भेजा। दूत साधुका आदेश पाकर कांचननगर गया और वहाँ कलावतीके योग्य एक उत्तम वरकी खोज करके वहाँसे उस वणिक्-पुत्रको साथ लेकर लौट आया।

साधु वणिक् उस सुन्दर और सद्गुणी वणिक् कुमारको देखकर बड़ा प्रसन्न हुआ और अपने जाति-बन्धुओंके साथ मिलकर प्रसन्नतापूर्वक यथाविधि अपनी कन्याको उसके अर्पण कर दिया।

दुर्भाग्यवश कलावतीके विवाहके समय भी वणिक् उस उत्तम व्रतकी बात भूल गया। इससे भगवान् उसपर रुष्ट हो गये। कुछ दिनोंके बाद वह व्यापारमें निपुण वणिक् अपने श्रीमान् जामाताको साथ लेकर व्यापारके लिये बाहर गया और राजा चन्द्रकेतुके राज्यमें समुद्रके समीप रमणीय रत्नसार नगरमें जा पहुँचा। वहाँ एक पुरी बनाकर वह अपना व्यापार करने लगा। उसी समय प्रभु सत्यनारायणने साधुको मिथ्यावादी जानकर उसे शाप देते हुए कहा—'आजसे कुछ ही दिनोंमें यहीं तुम दुःखको प्राप्त होओगे।' इधर उसी दिन एक चोरने राजमहलमें धन चुराया। चोर धनको लेकर साधुके मकानके बगलके रास्तेसे जा रहा था। उसने घूमकर पीछेकी ओर देखा, राजाके दूत उसके पीछे-पीछे दौड़े आ रहे थे। वह डर गया और चुराये हुए धनको वहीं छोड़कर जल्दीसे भाग निकला। दूतोंने आकर देखा, साधु वणिक्के घरके पास राजाका धन पड़ा है। तब उन्होंने जामाताके साथ साधुको पकड़ लिया और उन्हें बाँधकर प्रसन्न मनसे तुरंत राजाके समीप ले जाकर कहा—'प्रभो! दोनों चोर पकड़कर आ गये हैं। इनको देखिये और आज्ञा दीजिये कि क्या किया जाय?' तत्पश्चात् राजाकी आज्ञासे दूतोंने दोनों वणिकोंको अच्छी तरह बाँधकर बड़े कठिन कारागारमें डाल दिया।

उस समय उनके सम्बन्धमें कोई भी विचार नहीं किया गया। उन दोनोंने बहुत कुछ कहा; परंतु सत्यनारायणदेवकी मायासे किसीने उनकी एक भी नहीं सुनी। इसके बाद राजा चन्द्रकेतुने उनकी सारी धन-सम्पत्ति छीन ली। इधर सत्यदेवके शापसे घरमें लीलावती और कलावतीपर भी दुःख आ पड़ा। घरमें जो कुछ भी धन-सम्पत्ति थी, चोरोंने सारी अपहरण कर ली। लीलावती मानसिक और शारीरिक व्याधिसे तथा भूख-प्याससे पीड़ित हो दाने-दानेकी चिन्तामें नगरमें घर-घर भटकने लगी। इस प्रकार कलावती भी प्रतिदिन अन्नके लिये भटकने लगी। एक दिन भूखसे व्याकुल कलावती घरसे निकलकर किसी ब्राह्मणके घर पहुँची। उसने देखा, वहाँ सत्यनारायणका व्रत हो रहा है। वह वहाँ बैठ गयी और कथा सुनकर उसने भगवान्से मनोरथपूर्तिके लिये प्रार्थना की। इसके बाद प्रसाद लेकर उसी रातको वह अपने घर लौट आयी।

लीलावतीने कन्याको बहुत डाँटकर कहा—बेटी! तू इतनी राततक कहाँ थी? तेरे मनमें क्या है?

कलावतीने उत्तर दिया—माता! ब्राह्मणके घर सत्यनारायण भगवान्का व्रत था। मैं उसीको देख रही थी। सत्यनारायणका व्रत मनोरथ पूर्ण करनेवाला है।

कन्याकी यह बात सुनकर लीलावती व्रत करनेको तैयार हुई और उस साध्वी साधुपत्नीने अपने सुहृद्-बन्धुओंके साथ सत्यनारायण-व्रत किया। 'मेरे स्वामी और जामाता शीघ्र घर लौट आवें'—सत्यनारायणदेवसे उसने बार-बार इस वरके लिये प्रार्थना की और कहा, 'प्रभो! मेरे

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

पति और दामादका अपराध क्षमा कीजिये।' वणिक्‌पत्नीके व्रतसे प्रभु सत्यनारायण प्रसन्न हो गये और उन्होंने श्रेष्ठ राजा चन्द्रकेतुको स्वप्नमें दर्शन देकर कहा, 'राजन्! सबेरा होते ही दोनों वणिकोंको छोड़ देना और उनका जो धन छीना है, उससे दुगुना उन्हें दे देना। नहीं तो मैं राज्य, धन और पुत्रके साथ तुम्हारा विनाश कर दूँगा।' राजाको इतना कहकर प्रभु अन्तर्धान हो गये। प्रातःकाल होते ही राजा सभामें गये और स्वजनोंके साथ वहाँ बैठकर उन्होंने दूतोंको आज्ञा दी कि 'अभी जाकर दोनों बन्दी महाजनोंको तुरंत कैदसे छोड़ दो।'

राजाकी आज्ञा पाकर दूतोंने दोनों महाजनोंको मुक्त कर दिया और उन्हें साथ लेकर विनयपूर्वक राजासे कहा, 'दोनों वणिकोंकी हथकड़ी-बेड़ी खोलकर हम उन्हें यहाँ ले आये हैं।' इसी समय उन दोनोंके मनमें पुरानी बातका स्मरण हुआ और भगवान् सत्यनारायणकी महिमाको याद करके वे विस्मय और भयसे विह्वल हो गये। उन्होंने राजा चन्द्रकेतुको प्रणाम किया। राजाने भी उनको देखकर आदरपूर्वक कहा, 'दैवात् तुम्हें यह महान् कष्ट भोगना पड़ा। अब तुम्हें कोई भय नहीं है। तुम मुक्त हो, जाओ, क्षौर करा लो।' तदनन्तर श्रीमान् राजा चन्द्रकेतुने सोने और रत्नोंसे बने हुए गहनोंके द्वारा दोनों वणिकोंको अलंकृत किया। बड़ी मीठी वाणीसे उनको अति सुख पहुँचाया और छीने हुए धनसे दूना धन देकर उनसे कहा, 'साधो! अपने घर जाओ।'

साधुने राजाको प्रणाम करके कहा—आपकी कृपासे ही मैं घर जानेमें समर्थ हो सका हूँ। उस समय साधुने मंगलाचार करते हुए यात्रा की। ब्राह्मणोंको धनका दान किया और अपने नगरकी ओर दोनों चले।

कुछ ही दूर आगे बढ़नेपर प्रभु सत्यनारायणने दण्डीके वेशमें आकर उनसे पूछा—बताओ तो तुम्हारी नावमें क्या है? तब महाजनने प्रमत्त-से होकर बड़ी अवहेलनाके साथ हँसी उड़ाते हुए कहा, 'दण्डी! क्यों पूछ रहे हो? तुम्हें रुपये चाहिये क्या? मेरी नावमें तो लता-पत्र भरे हैं।'

दण्डीके वेशमें आये हुए सत्यनारायण भगवान्‌ने साधुके निष्ठुर वचन सुनकर कहा, 'तुम्हारे वचन सत्य हों।' और यह कहकर वे तुरंत वहाँसे चल दिये। दण्डीके कुछ दूर चले जानेपर साधु भी समुद्रके किनारे पहुँचा और नित्य-क्रियादि करके नावपर गया तो देखा, नावमें लता-पत्र भरे पड़े हैं। यह देखकर उसे बड़ा विस्मय हुआ और वह मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा। थोड़ी देरके बाद चेत होनेपर वह बड़ी चिन्तामें डूब गया। श्वशुरकी यह दशा देखकर जामाताने उनसे कहा, 'आप किसलिये शोक कर रहे हैं? यह सब दण्डीके शापका फल है। वे सब कुछ करनेमें समर्थ हैं। वे ही हर्ता-कर्ता हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं। हमलोग उन्हींकी शरण लें, तो हमारा मनोरथ पूर्ण हो जायगा।'

जामाताकी यह बात सुनकर साधु दौड़कर दण्डीके पास पहुँचा और उनके दर्शन करके भक्तिपूर्वक नमस्कार कर उनसे बोला—मैं बड़ा दुरात्मा हूँ। आपकी मायासे मुग्ध होकर मैंने जो कुछ कह दिया है, उसके लिये क्षमा करें। मैंने आपके सामने दुष्ट वाक्योंका प्रयोग किया है। हे नाथ! मुझे इसके लिये क्षमा करें। क्षमा ही साधुओंका धन है। साधु तो दूसरेका उपकार करनेमें ही लगे रहते हैं। यों कहकर शोक-विकल वणिक् बार-बार प्रणाम करने लगा और रोने लगा।

साधु वणिक्‌को विलाप करते देखकर दण्डीने कहा—रोओ मत, मेरी बात सुनो। दुर्मते! तुम मेरा अपमान करके मेरी पूजासे विमुख हो गये थे। उसीके फलस्वरूप बार-बार दुःखको प्राप्त होते हो।

भगवान्‌के इस प्रकारके वचनोंको सुनकर साधुने भगवान्‌की स्तुति की। साधु बोला—

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

प्रभो! ब्रह्मादि स्वर्गवासी देवता आपकी मायासे मोहित होकर आपके आश्चर्यमय रूप और गुणोंको नहीं जान पाते। मैं भी आपकी मायासे मुग्ध हूँ, अतएव आपको कैसे जान सकूँगा। आप प्रसन्न हों। मैं अपने वैभवके अनुसार आपकी पूजा करूँगा। मैं आपके शरणागत हूँ। मुझे पुत्र और वित्त दीजिये। मेरी रक्षा कीजिये।

साधुके इस प्रकारके भक्तियुक्त वचनोंको सुनकर भगवान् जनार्दन परितुष्ट हो गये और साधुको मनचाहा वर देकर वहीं अन्तर्धान हो गये। तदनन्तर साधुने नावपर चढ़कर देखा, नाव रत्नादिसे भरी है। 'सत्यदेवकी दयासे मुझे वांछित फल मिल गया।' यों कहकर साधुने अपने मित्रोंके साथ विधिवत् सत्यनारायणकी पूजा की और बड़े हर्षके साथ यात्रा आरम्भ की। नौका बड़े वेगसे चलने लगी। दोनों अपने देशमें आ पहुँचे। साधुने जामातासे कहा—'वत्स! वह देखो, मेरी पुरी दिखायी दे रही है।' तत्पश्चात् साधुने अपने धनके रखवाले दूतको नगरमें भेजा। दूतने साधुकी पत्नी लीलावतीके समीप जाकर हाथ जोड़कर प्रणाम करते हुए कहा, 'आपके पतिदेव नाना प्रकारके धन-रत्नोंके साथ अपने जामाता और सुहृद्-मित्रोंसे घिरे हुए आ रहे हैं।' साध्वी वणिक्-पत्नी दूतके मुखसे स्वामी और जामाताके आनेका समाचार सुनकर बड़ी हर्षित हुई और सत्यदेवकी पूजा करके उसने अपनी लड़कीसे कहा, 'मैं पतिकी अगवानीके लिये जाऊँगी, तुम भी तुरंत मेरे साथ चलो।' माताकी बात सुनकर कलावतीने सत्यनारायणका व्रत किया; परंतु प्रसाद लिये बिना ही वह पतिके सामने चल पड़ी। इससे सत्यनारायणदेव रुष्ट हो गये। धन-रत्न और जँवाईको लेकर नौका जलमें अदृश्य हो गयी। कलावतीने जब पतिको नहीं देखा, तब वह शोकसे अत्यन्त व्याकुल होकर रोती हुई जमीनपर गिर पड़ी। वह अपने पति और नावके न दीखनेसे अत्यन्त शोकातुर थी। कन्याकी इस दशाको देखकर साधु बहुत डर गया। उसने सोचा, यह क्या आश्चर्य हो गया! नाव खेनेवाले भी बड़ी चिन्ता करने लगे। यह सब देखकर पतिव्रता लीलावती अत्यन्त दु:खसे विह्वल होकर विलाप करती हुई स्वामीसे बोली, 'मैंने अभी-अभी जँवाईको देखा था। क्षणमात्रमें ही नौकाके साथ जामाता अदृश्य हो गये। अब वे कहीं नहीं दीख रहे हैं। पता नहीं, किस देवताने उन्हें इस प्रकार हरण कर लिया। आप क्या भगवान् सत्यदेवके प्रभावको नहीं जानते?' लीलावती इस प्रकार कहकर विलाप करने लगी। उसीके साथ सारे बन्धु-बान्धव भी रोने लगे। लीलावती अपनी कन्याको गोदमें लेकर रुदन करने लगी। कन्या कलावतीने स्वामीको डूबा हुआ जानकर दु:खित हृदयसे पतिकी पादुकाको लेकर सती होनेका निश्चय किया। धर्मको जाननेवाला साधु वणिक् कन्याकी यह स्थिति देखकर अपनी पत्नीके साथ शोकसे अत्यन्त व्याकुल हो उठा और उसने मन-ही-मन सोचा—'निश्चय ही सत्यदेवकी मायाके द्वारा ही मेरे जामाता हरे गये हैं। मैं अपने वैभवके अनुसार भगवान् सत्यनारायणकी पूजा करूँगा।'

साधुने वहाँ सब लोगोंको बुलाकर यह बात कही और अपना मनोरथ व्यक्त करते हुए पृथ्वीपर दण्डकी भाँति पड़कर वह बार-बार भगवान् सत्यदेवको प्रणाम करने लगा। इससे सत्यदेव प्रसन्न हो गये। उन्होंने आकाशसे ही साधुके प्रति कहा—'साधो! तुम्हारी कन्या मेरे भोगका तिरस्कार करके पतिको देखनेके लिये आ गयी। इसीलिये उसका पति अदृश्य हो गया। अब वह घर जाय। प्रसाद लेकर लौटकर आवे, तब अवश्य ही उसे स्वामीका सुख प्राप्त होगा, इसमें कोई सन्देह नहीं है।'

वणिक्-नन्दिनी कलावतीने गगनमण्डलसे यह प्राणदान करनेवाली वाणी सुनी और सुनकर

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

तुरंत ही वह घर चली गयी। वहाँ जाकर उसने प्रसाद लिया। तदनन्तर जब वह लौटकर आयी, तब अपने पतिको, नावको और समस्त बन्धुओंको देखकर अत्यन्त सुखी हुई। उसने पितासे कहा— 'पिताजी! आइये, हमलोग घर चलें। अब देर क्यों कर रहे हैं।' कन्याकी इस बातको सुनकर वणिक् प्रसन्न हो गया और विधि-विधानके साथ भगवान् सत्यनारायणकी पूजा करके धन-रत्न और बन्धुओंके साथ वह अपने घर पहुँचा। तदनन्तर प्रत्येक संक्रान्ति और पूर्णिमाको यथाविधि सत्यनारायणकी पूजा करता हुआ वह इस लोकमें सुखी होकर अन्तमें सत्यपुरको प्राप्त हो गया।

सूतजी बोले—श्रेष्ठ मुनियो! एक उपाख्यान और सुनिये। पूर्वकालमें वंशध्वज नामक एक प्रजापालनमें तत्पर राजा थे। उन्होंने सत्यदेवके प्रसादका परित्याग किया था। इसलिये वे दुःखको प्राप्त हुए। एक दिन राजाने वनमें जाकर विविध प्रकारके मृगोंका शिकार किया। फिर जब विश्रामके लिये वे बरगदके वृक्षके नीचे आये, तब उन्होंने देखा, ग्वाले लोग बड़े सन्तुष्ट-मनसे मित्रोंको साथ लेकर भक्तिपूर्वक सत्यनारायणदेवकी पूजा कर रहे हैं। राजाने सत्यनारायणकी पूजा होती देखी, पर घमण्डके कारण न तो वे वहाँ गये और न प्रणाम ही किया। ग्वाले राजाके पास प्रसाद रख आये और पूजाकी जगह आकर प्रसाद लेकर अपने घरोंको चले गये। राजाने प्रसाद नहीं लिया। इसीलिये वे बड़े दुःखमें पड़े। उनके सौ पुत्र मर गये। धन-धान्यादि समस्त सम्पत्ति नष्ट हो गयी। तब उन्होंने सोचा, 'सत्यदेवने ही मेरा सब कुछ नष्ट कर दिया है, इसलिये जिस स्थानपर ग्वाले पूजा कर रहे थे, मैं वहाँ जाऊँगा।' राजाने मन-ही-मन ऐसा निश्चय किया और ग्वालोंके पास जाकर उनके साथ भक्ति-श्रद्धापूर्वक यथाविधि सत्यदेवकी पूजा की। तब सत्यदेवकी कृपासे वे धन-पुत्रादिसे सम्पन्न हो गये और इस लोकमें सुख भोगकर अन्तमें विष्णुपुरमें जा पहुँचे।

जो मनुष्य इस परम दुर्लभ सत्यनारायण-व्रतका आचरण करता है, भुक्ति-मुक्तिदायिनी इस पवित्र कथाका श्रवण करता है, वह भगवान् सत्यदेवके प्रसादसे धन-धान्यादि समृद्धिको प्राप्त होता है। इससे दरिद्र धन पाता है, बन्दी बन्धनसे छूटता है, भयभीत भयसे छुटकारा पाता है और मनुष्य इस लोकमें मनोवांछित फलको पाकर अन्तमें सत्यपुरमें गमन करता है। यह सत्य है, इसमें सन्देह नहीं।

सूतजी कहते हैं—ब्राह्मणो! आपलोगोंको मैंने श्रीसत्यनारायण-व्रत सुनाया। इस व्रतका आचरण करके मनुष्य सारे दुःखोंसे छूट जाता है। विशेषतः कलिकालमें सत्यपूजा महान् फल देनेवाली है। इन देवको कोई 'सत्यनारायण' कहते हैं और कोई-कोई 'सत्यदेव' कहते हैं। ये नाना रूप धारण करके सबके मनोरथको प्रदान करते हैं। ये सनातन सत्यदेव कलियुगमें सत्यव्रतके रूपमें अवतीर्ण होंगे।

श्रेष्ठ मुनियो! जो मनुष्य नित्य इसका पठन या श्रवण करता है, सत्यदेवके प्रसादसे उसके सारे पाप नष्ट हो जाते हैं*।

रेवा-खण्ड सम्पूर्ण

आवन्त्यखण्ड समाप्त

* यह सत्यनारायण-व्रत-कथा बंगवासी प्रेस, कलकत्तासे प्रकाशित बंगला संस्करणके रेवाखण्डसे अनुवादित है।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

ॐ

श्रीपरमात्मने नमः

श्रीउमामहेश्वराभ्यां नमः

संक्षिप्त श्रीस्कन्दमहापुराण

नागरखण्ड (पूर्वार्ध)

राजा त्रिशंकुका वसिष्ठपुत्रोंके शापसे चाण्डाल होकर विश्वामित्र-मुनिकी शरणमें जाना, तीर्थसेवनसे राजाका उद्धार और विश्वामित्रजीके द्वारा उनसे यज्ञ करानेका उद्योग

स धूर्जटिजटाजूटो जायतां विजयाय वः।
यत्रैकपलितभ्रान्तिं करोत्यद्यापि जाह्नवी॥*

सूतजी बोले—पूर्वकालमें त्रिशंकु नामसे प्रसिद्ध एक सूर्यवंशी राजा थे। वे महर्षि वसिष्ठके शिष्य थे और सदा यज्ञ-याग आदि किया करते थे। उन्होंने प्रजाका पुत्रकी भाँति पालन किया था। एक दिन राजसभामें बैठे हुए मुनिवर वसिष्ठजीसे राजाने विनयपूर्वक कहा—'भगवन्! अब मैं ऐसे यज्ञके द्वारा भगवान्‌की आराधना करना चाहता हूँ, जिससे इस शरीरके साथ ही स्वर्गलोकमें शीघ्र जाना सम्भव हो सके।'

वसिष्ठजीने कहा—राजन्! ऐसा कोई यज्ञ नहीं है जिसके द्वारा इसी शरीरसे मनुष्य स्वर्गमें जा सके। स्वयम्भू ब्रह्माजीने जिन अग्निष्टोम आदि यज्ञोंका प्रतिपादन किया है, उनके करनेपर भी दूसरे ही शरीरसे स्वर्गकी प्राप्ति होती है।

त्रिशंकु बोले—प्रभो! यदि इसी शरीरसे स्वर्गकी प्राप्ति करानेवाला यज्ञ आप मुझसे नहीं करा सकते तो मैं किसी दूसरे ब्राह्मणको आचार्य बनाकर उस यज्ञका अनुष्ठान करूँगा।

सूतजी कहते हैं—त्रिशंकुका यह वचन सुनकर महर्षि वसिष्ठने हँसते हुए कहा—'पृथ्वीनाथ! आज ही वैसा यज्ञ कीजिये (मुझे कोई आपत्ति नहीं है)।' तब राजा वसिष्ठ मुनिको प्रणाम करके उस स्थानपर गये जहाँ उनके सौ पुत्र रहते थे। उनके सामने भी राजाने अपना वही प्रयोजन रखा। तब उन्होंने भी वही उत्तर दिया जो वसिष्ठजीने कहा था। यह सुनकर राजाने पुनः उनसे कहा—'गुरुपुत्रो! आपके पिताजी इस समय मुझे सशरीर स्वर्ग भेजनेमें असमर्थ हो गये हैं, अतः मैंने उनको छोड़ दिया है। अब मेरे पुरोहित वे नहीं रहे। यदि आपलोग भी मुझसे वैसा यज्ञ नहीं करवायेंगे तो आपको भी छोड़कर मैं शीघ्र दूसरे पुरोहितका वरण करूँगा।' यह सुनकर वे सभी गुरुपुत्र कुपित हो उठे और कठोर वाणीमें बोले—'पापी! तूने हितैषी गुरुका त्याग किया है, इसलिये तू सब लोगोंके द्वारा निन्दित चाण्डाल हो जा।' उनका यह वाक्य पूरा होते ही राजा त्रिशंकु उसी क्षण विकृत एवं विकराल शरीरधारी चाण्डाल हो गये। अपनेको विकृत चाण्डालके रूपमें देखकर राजाको बड़ी लज्जा हुई। वे बहुत दुःखी होकर इधर-उधर घूमने लगे। सोचने लगे—'क्या करूँ, कहाँ जाऊँ, किस प्रकार मुझे शान्ति मिलेगी? मैं जलती हुई आगमें समा जाऊँ अथवा विष खा लूँ? किस उपायसे आज मेरी मृत्यु हो जाय। ऐसे घृणित शरीरके द्वारा उन स्त्रियोंको मैं कैसे देखूँगा, जिनके साथ वैसे दिव्य शरीरसे क्रीड़ा की है।'

इस प्रकार शोक करते हुए राजाने रात्रिके

---

* भगवान् शंकरका वह जटा-जूट आपलोगोंको विजय देनेवाला हो, जिसके एक भागमें आज भी श्रीगंगाजी उसके पके होनेका भ्रम उत्पन्न करती है।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

समय अपने नगरमें प्रवेश किया तथा राजद्वारपर ठहरकर मन्त्रियोंसहित पुत्रको बुलाकर शापसम्बन्धी सब बातें बतायीं। दूर खड़े हुए राजाका यह वचन सुनकर वे मन्त्री और पुत्र भी शोकमग्न हो रोने लगे। तब राजाने मन्त्रियोंसे कहा—'यदि मेरे प्रति तुम्हारे हृदयमें अविचल भक्तिभाव हो तो अब मेरे पुत्रका मन्त्रित्व स्वीकार करो। मेरा ज्येष्ठ पुत्र हरिश्चन्द्र मुझे बहुत ही प्रिय है, अतः शान्तचित्त होकर इसीको मेरे स्थानपर यथासम्भव शीघ्र राजा बनाओ। मैं तो अब अपने संकल्पको पूरा करूँगा। या तो इसी प्रयत्नमें प्राण दे दूँगा या सदेह स्वर्गलोकमें जाऊँगा।' ऐसा कहकर त्रिशंकु वनमें चले गये और मन्त्रियोंने उनके पुत्रको राजसिंहासनपर बिठा दिया।

सूतजी कहते हैं—तदनन्तर त्रिशंकुने यह निश्चय किया कि इस समय त्रिलोकीमें विश्वामित्र मुनिको छोड़कर दूसरा कोई ऐसा नहीं है जो मुझे इस भयंकर दुःखसे बचावे। ऐसा विचारकर उन्होंने कुरुक्षेत्रको प्रस्थान किया। वहाँ पहुँचकर वे विश्वामित्रका आश्रम ढूँढ़ने लगे। इतनेमें ही दूरसे उन्हें काले धूएँका पुंज दिखायी दिया और जलका स्पर्श करके आती हुई शीतल वायुने उनकी सारी थकावट दूर कर दी। इससे जलाशय और आश्रमका अनुमान करके वे जल्दी-जल्दी चलने लगे। थोड़ी ही देरमें नदीके तटपर एक मनोहर आश्रम दृष्टिगोचर हुआ, जो सब ओरसे फूले-फले वृक्षोंद्वारा घिरा था। वहाँ नेवले सर्पोंके, उल्लू कौवोंके, बिलाव चूहोंके और व्याघ्र नाना प्रकारके मृगोंके साथ खेल रहे थे। उस आश्रमपर पहुँचकर त्रिशंकुने तपस्याके निधान विश्वामित्र मुनिको देखा। उनका दर्शन करके दूर खड़े हो अपने नामका परिचय देते हुए उन्होंने मुनिको साष्टांग प्रणाम किया और कहा—'विप्रवर! मैं शापसे छूटनेके लिये सम्पूर्ण जगत्के मित्र महर्षि विश्वामित्रकी शरणमें आया हूँ।'

विश्वामित्रजी बोले—नृपश्रेष्ठ! तुम तो वसिष्ठजीके यजमान हो, वसिष्ठ अथवा उनके पुत्रोंको ही तुम्हारा यज्ञ कराना चाहिये; फिर उन्होंने तुम्हें शाप क्यों दिया? तुमने उनका क्या अपराध किया था?

त्रिशंकुने कहा—मुने! मैंने वसिष्ठजीसे ऐसा यज्ञ करानेके लिये प्रार्थना की थी, जिसके द्वारा मेरा इसी शरीरसे स्वर्गलोकमें जाना हो सके। मेरी प्रार्थना सुनकर उन्होंने उत्तर दिया—'राजन्! ऐसा कोई यज्ञ नहीं है, जिससे देहान्तर ग्रहण किये बिना इसी शरीरसे स्वर्गलोकमें जाया जा सके।' इसपर मैंने उनसे कहा—'यदि आप किसी उत्तम यज्ञके प्रभावसे मुझे इस शरीरके साथ ही स्वर्गलोकमें नहीं पहुँचायँगे तो मैं आज ही अपने इस उद्देश्यकी सिद्धिके लिये किसी दूसरे ब्राह्मणको अपना पुरोहित बनाऊँगा।' मेरा यह विचार जानकर वे बोले—'जिससे तुम्हारा भला हो, वह करो।' तब मैंने उनके पुत्रोंके पास जाकर वसिष्ठजीके साथ की हुई सारी बातें कह सुनायीं। इसपर उन सबने मुझे शाप देकर चाण्डालकी दशामें पहुँचा दिया। मुनीश्वर! तब मैंने मन-ही-मन आपका स्मरण किया और बहुत दूरसे बड़ी भारी आशा लगाकर आपके पास यहाँ कुरुक्षेत्रमें आया हूँ। मुने! आपके लिये त्रिलोकीमें कुछ भी असाध्य नहीं है। अतः आप मुझ दुखियाके दुःख-निवारणका कोई उपाय करें।'

त्रिशंकुकी यह बात सुनकर विश्वामित्रजीने कहा—राजन्! मैं तुमसे वैसा यज्ञ कराऊँगा जिससे क्षणभरमें तुम स्वर्गलोकमें चले जाओगे। आओ, मेरे साथ तीर्थयात्राके लिये चलो, जिससे चाण्डालतासे मुक्त होकर यज्ञ करनेके योग्य हो जाओ। यों कहकर विश्वामित्रजी त्रिशंकुको अपने पीछे-पीछे आनेका आदेश दे तीर्थयात्राके लिये चल दिये। उन महात्माके साथ तीर्थोंमें विचरते हुए त्रिशंकुका बहुत समय बीत गया, किंतु वे पाप और चाण्डालत्वसे छुटकारा न पा सके। क्रमशः यात्रा करते हुए वे दोनों अर्बुदाचल (आबू)-

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

के समीप आये। उस पर्वतपर चढ़कर उन्होंने पापनाशक अचलेश्वरका दर्शन किया। मन्दिरसे निकलनेपर वहीं मुनिश्रेष्ठ मार्कण्डेयजीसे भेंट हो गयी। विश्वामित्रजीको देखकर मार्कण्डेयजीने पूछा—'मुनीश्वर! इस समय आप कहाँसे आ रहे हैं और आपके पीछे यह कौन दिखायी देता है?'

विश्वामित्रजी बोले—मुने! ये राजाओंमें श्रेष्ठ त्रिशंकु हैं। वसिष्ठके पुत्रोंने क्रोध करके इन्हें चाण्डालकी दशाको पहुँचा दिया है। मैंने इनसे प्रतिज्ञा की है कि जबतक तुम पवित्र नहीं हो जाओगे तबतक मैं तुम्हारे साथ सब तीर्थोंमें भ्रमण करूँगा। मैंने पृथ्वीके सभी तीर्थों और मन्दिरोंमें भ्रमण कर लिया। परंतु ये अभीतक पवित्र न हो सके। अतः अब मैं इस पृथ्वीको त्यागकर कहीं अन्यत्र चला जाऊँगा।

मार्कण्डेयजीने कहा—मुने! यदि ऐसा है तो आप इस पृथ्वीको त्यागकर कहीं न जाइये। इस पर्वतसे नैर्ऋत्यकोणमें आनर्त देशके भीतर एक स्थान है, जहाँ श्रेष्ठ देवताओंने पहले सुवर्णमय शिवलिंगकी स्थापना की थी। पातालमें जो हाटकेश्वर लिंग प्रसिद्ध है उसीके नामपर इस शिवलिंगको भी लोकमें हाटकेश्वर कहते हैं। द्विज श्रेष्ठ! वहीं पातालगंगाका जल है जो रसातलसे प्रकट हुआ है। उसीके द्वारा यत्नपूर्वक पातालमें प्रवेश करके श्रद्धापूर्वक आपलोग पातालगंगाके जलमें स्नान करें। तत्पश्चात् ये त्रिशंकु हाटकेश्वरका दर्शन करके चाण्डालत्वसे मुक्त एवं शुद्ध हो जायँगे।

मार्कण्डेयजीका यह वचन सुनकर विश्वामित्र मुनि त्रिशंकुको साथ लेकर वहाँ गये और पातालमें प्रवेश करके राजाको पातालगंगाके जलमें नहलाया। स्नानके पश्चात् हाटकेश्वरका दर्शन करके वे चाण्डालत्वसे मुक्त होकर सूर्यके समान तेजस्वी हो गये। निष्पाप होकर त्रिशंकुने मुनिवर विश्वामित्रको प्रणाम किया। मुनि बोले—'राजेन्द्र! सौभाग्यकी बात है, जो तुम इस समय चाण्डालत्वसे छुटकारा पा गये। मित्र! तुम्हारे लिये मैं स्वयं ब्रह्माजीके पास जाकर प्रार्थना करूँगा कि वे तुम्हारे यज्ञमें यज्ञभाग ग्रहण करें। अतः जबतक मैं ब्रह्मलोकसे आता हूँ, तबतक तुम यज्ञके सब सामान यहीं मँगाओ।' राजाने 'बहुत अच्छा' कहकर मुनिकी आज्ञा स्वीकार की। तब वे ब्रह्माजीके समीप जा उन्हें प्रणाम करके बोले—'प्रपितामह! मैं राजा त्रिशंकुके द्वारा इस संकल्पसे यज्ञ कराऊँगा कि वे मनुष्य-शरीरसे ही आपके लोकमें जा सकें। अतः आप शिव, विष्णु आदि सब देवताओंके साथ यज्ञमण्डपमें पधारें।'

ब्रह्माजीने कहा—ब्रह्मन्! देहान्तर ग्रहण किये बिना केवल यज्ञकर्मसे स्वर्गकी प्राप्ति नहीं हो सकती। हम सब देवताओंके मुख अग्नि हैं। वेदोक्त विधिसे भलीभाँति आहुति देनेपर हम सब लोग यज्ञमें अपना भाग ग्रहण करेंगे। अतः राजा अग्निमुखमें ही आहुति दें। फिर उस यज्ञके प्रसादसे देहत्यागके पश्चात् वे अवश्य स्वर्ग प्राप्त करेंगे।

~~~0~~~

विश्वामित्रजीके द्वारा त्रिशंकुका यज्ञ पूरा करके नूतन सृष्टि-रचनाका उद्योग, त्रिशंकुका ब्रह्माजीके साथ स्वर्गगमन

सूतजी कहते हैं—ब्रह्माजीका वचन सुनकर विश्वामित्रजी बोले—'अच्छा तो आप मेरी तपस्याका बल देखिये। मैं त्रिशंकुसे विधिवत् दक्षिणायुक्त यज्ञ कराकर उसीके द्वारा उन्हें यहाँ ले आऊँगा।' ऐसा कहकर विश्वामित्रजी पृथ्वीपर लौट गये और महात्मा त्रिशंकुके यज्ञको सम्पन्न करनेकी चेष्टामें संलग्न हो गये। यज्ञ-प्रारम्भके लिये योग्य शुभ समय आनेपर उसी श्रेष्ठ वनमें उन्होंने वेदोंके पारंगत ब्राह्मणोंको बुलाकर राजाको यज्ञकी दीक्षा दी। उस यज्ञमें वे स्वयं ही अध्वर्यु

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth
~~~

(यजुर्वेदपाठी) हुए। शाण्डिल्य मुनि होता (ऋग्वेदी)-के पदपर प्रतिष्ठित हुए, महर्षि गौतमको ब्रह्माका पद प्राप्त हुआ, मित्रावरुण कर्ममें महर्षि च्यवन आग्नीध्र बनाये गये। याज्ञवल्क्य उद्गाता (सामवेदी), जैमिनि प्रतिहर्ता, शंकुकर्ण प्रस्तोता, गालव उन्नेता, पुलस्त्यजी उच्छंसी तथा मुनीश्वर गर्ग होता हुए। अत्रि नेष्टा तथा भृगुजी अच्छावाक बनाये गये। श्रद्धालु त्रिशंकुने इन सबको ऋत्विज बनाया और स्वयं बाल कटवाकर मृगचर्म धारण किया। हाथमें हरिणका सींग लिया और दूध पीकर रहने लगे। उपर्युक्त सब महर्षियोंको वरण करके उन्हें यज्ञकर्ममें लगाया। इस प्रकार दीर्घकालतक चालू रहनेवाले उस यज्ञके आरम्भ होनेपर सब दिशाओंसे वेद-वेदांगोंके पारगामी ब्राह्मण वहाँ आने लगे। बहुत-से दीन, अन्ध, कृपण (कंगाल) गृहस्थ आये। वहाँ सब ओर अन्नमय पर्वत खड़े किये गये थे और श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको दान देनेके लिये अनेक प्रकारकी असंख्य वस्तुएँ संग्रह की गयी थीं। देवता अग्निमुखसे राजाके हविष्यको ग्रहण करते रहे। इस प्रकार यज्ञ करते हुए राजाके बारह वर्ष व्यतीत हो गये, किंतु उन्हें अभीष्ट फलकी प्राप्ति नहीं हुई। तत्पश्चात् उन्होंने यज्ञान्त-स्नान किया तथा ऋत्विजोंको यथायोग्य दक्षिणाएँ देकर तृप्त किया। ब्राह्मणोंको विदा करनेके पश्चात् राजा त्रिशंकुने वहाँ आये हुए अन्य सम्बन्धियों और मित्रोंको भी विदा किया। तदनन्तर वे विश्वामित्रजीसे बोले—'ब्रह्मन्! आपके प्रसादसे मुझे दुर्लभ फलकी प्राप्ति हुई। चाण्डालता भी नष्ट हो गयी, परंतु इसी शरीरसे स्वर्गलोक नहीं मिला। केवल यही एक दुःख मेरे हृदयमें काँटेकी तरह चुभ रहा है। मुने! अब वसिष्ठके पुत्र यह सब बात सुनकर मेरा उपहास करेंगे। अतः अब मैं वनमें रहकर तपस्या करूँगा। राज्य नहीं करूँगा।'

त्रिशंकुकी यह बात सुनकर विश्वामित्रजी बोले—राजन्! खेद न करो, मैं तुम्हें इसी शरीरसे स्वर्गलोकमें भेजूँगा। इतना कहकर विश्वामित्रने चन्द्रशेखर भगवान् शंकरका दर्शन किया और इस प्रकार उनकी स्तुति की—

विश्वामित्रजी बोले—अचिन्त्य महादेव! आपकी जय हो। पार्वतीवल्लभ! आपकी जय हो। कृष्ण! जगन्नाथ! कृष्ण! जगद्गुरो! आपकी जय हो। अचिन्त्य! अमेय! अनन्त! अच्युत! आपकी जय हो। अमर! अजेय! अव्यय! सुरेश्वर! आपकी जय हो। सर्वव्यापक! सर्वेश्वर! सर्वदेवाश्रय! सबके ध्यान करनेयोग्य शिव! आपकी जय हो। सर्वपापनाशन! आप ही धाता, विधाता, कर्ता और रक्षक हैं। देवेश! चार प्रकारके प्राणियोंका कल्याण करनेवाले भी आप ही हैं। जैसे तिलमें तेल और दहीमें घी व्याप्त रहता है, उसी प्रकार समस्त संसार आपसे व्याप्त है। आप ही ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र और अग्नि हैं। आप ही वषट्कार, यज्ञ तथा सूर्य हैं। अथवा बहुत कहने या स्तुति करनेकी क्या आवश्यकता है, प्रभो! मैं आपकी वेदवर्णित विभूतिको बहुत संक्षेपमें बतला रहा हूँ। भगवन्! तीनों लोकोंमें चर और अचर जो कुछ दिखायी देता है, सबमें आप व्याप्त हैं। ठीक उसी तरह, जैसे काष्ठमें अग्नि व्याप्त रहती है।

श्रीभगवान् बोले—मुने! मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ, तुम कोई वर माँगो।

विश्वामित्रजीने कहा—महेश्वर! आपकी कृपासे मुझमें संसारकी सृष्टि करनेका सामर्थ्य हो जाय।

'एवमस्तु' कहकर भगवान् शिव अन्तर्धान हो गये और विश्वामित्रजी वहीं स्थित हो ध्यानपूर्वक चार प्रकारकी सृष्टि रचने लगे। इस प्रकार जलमें प्रवेश करके सृष्टिचिन्तन करनेवाले विश्वामित्रने जिन-जिन वस्तुओंकी सृष्टि की, वे सब आज भी दृष्टिगोचर होती हैं। उन्होंने समस्त देवगण, नक्षत्र, ग्रह, मनुष्य, नाग, राक्षस, वृक्षयुक्त लता, सप्तर्षि और ध्रुव आदि सबकी रचना की तथा उन सबको अपने-अपने कर्तव्यकर्मोंमें नियुक्त किया। तब आकाशमें एक ही साथ दो सूर्य और दो चन्द्रमा उदित हुए तथा अन्यान्य ग्रह भी दुगुने उत्पन्न हो गये। सप्तर्षियोंसहित सम्पूर्ण नक्षत्र भी

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

दुगुने भासित होने लगे। इस प्रकार आकाशमें सभी ग्रह, नक्षत्र द्विगुण हो एक-दूसरेसे स्पर्धा रखकर लोगोंके मनमें भ्रम उत्पन्न करने लगे। यह देख इन्द्र सब देवताओंके साथ ब्रह्माजीके पास गये और प्रणाम करके बोले—'सुरश्रेष्ठ! इस समय विश्वामित्रजीने सृष्टिरचना प्रारम्भ की है। अतः जबतक उनकी सृष्टिसे यह सम्पूर्ण विश्व व्याप्त न हो जाय, तबतक ही आप स्वयं जाकर उन्हें रोकिये।' तब ब्रह्माजी मुनिवर विश्वामित्रके पास गये और इस प्रकार बोले—'ब्रह्मर्षे! तुम मेरे कहनेसे सृष्टि-रचनाका कार्य बंद करो।'

विश्वामित्रजी बोले—यदि नृपश्रेष्ठ त्रिशंकु इसी शरीरसे आपके लोकमें चले जायँ, तो मैं नयी सृष्टि नहीं करूँगा।

ब्रह्माजीने कहा—मुनीश्वर! मुझे स्वीकार है, ये राजा त्रिशंकु इसी शरीरसे मेरे साथ स्वर्गलोकमें चलें। तुम सृष्टिरचनासे मुक्त हो जाओ।

ऐसा कहकर ब्रह्माजी त्रिशंकुको साथ लेकर चले गये और महर्षि विश्वामित्र हर्षमें भरकर वहीं टिके रहे।

नागबिलका महत्त्व, इन्द्रकी ब्रह्महत्यासे मुक्ति, रक्तशृंग-पर्वतके द्वारा नागबिलका भरा जाना और मृगीके शापसे राजा चमत्कारका कोढ़ी होना

सूतजी कहते हैं—तबसे लेकर स्थान तीनों लोकोंमें उत्तम तीर्थके रूपमें विख्यात हुआ, जो धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों पदार्थोंके देनेवाला है। जो मनुष्य श्रद्धायुक्त चित्तसे वहाँ रहकर मृत्युको प्राप्त होता है, वह पापाचारी हो तो भी मोक्षको प्राप्त होता है। कीट, पक्षी, पतंग, पशु और मृग आदि जितने जन्तु हैं, वे भी वहाँ मरनेपर निश्चय ही भगवान् शिवके लोकमें जाते हैं। जो श्रद्धासे पवित्र किये हुए मनके द्वारा वहाँ स्नान करते हैं वे स्वर्गलोकमें जाते हैं। तदनन्तर विश्वामित्र मुनिने उस तीर्थका उत्तम माहात्म्य देखकर कुरुक्षेत्र छोड़कर वहीं निवास किया तथा अन्यान्य शान्त स्वभाववाले मुनि भी दूसरे तीर्थोंको त्यागकर बहुत दूर-दूरसे वहाँ आ गये और वहीं आश्रम बनाकर रहने लगे। इस प्रकार उस तीर्थके प्रभावसे सब मनुष्य स्वर्गको जाने लगे। तब कोई भी न यज्ञ करता था, न व्रत; न दान देता और न दूसरे किसी तीर्थका सेवन ही करता था। केवल उसी तीर्थमें एकाग्रचित्त होकर लोग स्नान करते और उत्तम विमानपर चढ़कर स्वर्गलोकमें चले जाते थे। उस समय स्वर्गलोक मनुष्योंसे भर गया। श्रेष्ठ देवताओंसे स्पर्धा करनेवाले मनुष्योंद्वारा स्वर्गको भरपूर हुआ देख संवर्तक वायुने इन्द्रकी आज्ञा पाकर पृथ्वीतलपर स्थित उस हाटकेश्वर-क्षेत्रको चारों ओरसे धूलसे आच्छादित कर दिया। इस प्रकार वह तीर्थभूमि केवल स्थलमात्र रह गयी। उसके बाद सर्वत्र यज्ञादि सत्कर्म होने लगे।

तदनन्तर पातालसे नागलोग बिलके मार्गसे मर्त्यलोकमें आते, पृथ्वीपर सब ओर घूमते और यहाँके भोगोंका इच्छानुसार उपभोग करके फिर उसी मार्गसे अपने निवासस्थानको लौट जाते थे। इससे वह स्थान इस पृथ्वीपर नागबिलके नामसे विख्यात हुआ।

एक समय वज्रके द्वारा वृत्रासुरका वध करनेसे इन्द्रको ब्रह्महत्या लग गयी थी, तब उनको इसका बड़ा दुःख हुआ। इस प्रकार दुःखको प्राप्त हुए इन्द्र एक पर्वतपर चढ़कर मृत्युका निश्चय करके वहाँसे अपने शरीरको नीचे गिराना ही चाहते थे कि आकाशवाणी सुनायी दी—'इन्द्र! ऐसा दुःसाहस न करो, इस पातकसे शुद्ध होनेके लिये सावधान होकर उपाय सुनो। हाटकेश्वरक्षेत्रमें, जहाँ भगवान् शिव स्वयं विराजमान हैं, जाओ

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

और वहाँ जिस बिलके मार्गसे नागलोग इस पृथ्वीपर आते-जाते हैं उसी मार्गसे तुम भी पातालमें प्रवेश करो और वहाँ पातालगंगामें स्नान करके हाटकेश्वर महादेवकी पूजा करो। इससे तुम अवश्य ही पापसे मुक्त हो जाओगे।'

यह आकाशवाणी सुनकर इन्द्र शीघ्र ही उस क्षेत्रमें गये और नागबिलके मार्गसे पातालमें प्रवेश करके वहाँकी गंगामें स्नान किया। स्नानके पश्चात् हाटकेश्वर लिंगका पूजन किया। इससे क्षणमात्रमें उनका शरीर निर्मल हो गया और तेज बढ़ गया। इसी समय ब्रह्मा-विष्णु आदि सब देवता वहाँ आये और अत्यन्त प्रसन्न हो पापमुक्त इन्द्रसे इस प्रकार बोले—'देवराज! तुम ब्रह्महत्यासे मुक्त होकर परम पवित्र हो गये हो। अतः आओ, हम साथ ही स्वर्गलोकको चलें।' तदनन्तर सब देवता स्वर्गलोकको चले गये। इन्द्रको पुनः देवताओंका राज्य प्राप्त हुआ और स्वर्गमें वृत्रासुरके मारे जानेसे बड़ा भारी उत्सव मनाया गया।

जो कोई मनुष्य एकाग्रचित्त हो भक्तिपूर्वक इस प्रसंगका कीर्तन और श्रवण करता है वह जरा-मृत्युसे रहित परमधामको प्राप्त होता है।

सूतजी कहते हैं—तदनन्तर देवगुरु बृहस्पतिजीने इन्द्रसे कहा—'देवराज! पृथ्वीपर हिमालय नामसे विख्यात एक पर्वत है। उसके तीन पुत्र हैं—मैनाक, नन्दिवर्धन और रक्तशृंग। उनमेंसे तीसरे पुत्र रक्तशृंगको ले आओ और उसीके द्वारा नागलोकके इस बिलको भर दो।'

बृहस्पतिजीका यह वचन सुनकर इन्द्र हिमालय पर्वतपर गये। वहाँ उन्होंने हिमाचलसे उनके पुत्रको माँगा। हिमाचलने उनकी आज्ञा शिरोधार्य की और पुत्रको उनके साथ जानेकी आज्ञा दे दी। तब रक्तशृंग बोला—'पिताजी! मेरे दोनों पंख इन्हीं इन्द्रने काट डाले हैं। अतः अब मुझमें यहाँसे जानेकी शक्ति नहीं है। ये मुझे ले जानेका विचार छोड़कर कोई दूसरा उपाय सोचें।'

इन्द्र बोले—रक्तशृंग! मैं तुम्हें अपने हाथपर रखकर ले चलूँगा। वहाँ भी तुम्हारे ऊपर हरे-भरे शोभासम्पन्न वृक्ष उत्पन्न होंगे। तुम्हारे सब ओर पुण्यतीर्थ एवं देवमन्दिर बनेंगे। मुनियोंके आश्रम बनेंगे। उस भूमिमें पापी पुरुष भी तुम्हारा दर्शन पाकर तृप्त हो जायँगे। इसलिये तुम मेरे साथ शीघ्र चले चलो। यदि आनाकानी करोगे तो इस वज्रसे तुम्हारे सैकड़ों टुकड़े कर दूँगा।

इन्द्रकी यह बात सुनकर रक्तशृंग डर गया और सहसा वहाँ जाकर उस नागबिलमें घुस गया। इस प्रकार हिमवान्‌कुमार रक्तशृंगको उस बिलपर बिठाकर इन्द्रने कहा—'तुम मुझसे कोई वर ग्रहण करो।'

पर्वत बोला—देवेश! मेरे लिये यही वरदान है कि मुझपर आप सन्तुष्ट हैं। मैं आपके प्रसादसे सुखी हूँ।

इन्द्र बोले—स्वप्नावस्थामें भी मेरा दर्शन व्यर्थ नहीं जाता, फिर साक्षात् दर्शन होनेपर कैसे निरर्थक होगा।

रक्तशृंगने कहा—देवराज! यदि आप मुझे वर देना ही चाहते हैं तो यही वर दें कि मेरा सम्पूर्ण ऐश्वर्य सदा ब्राह्मणोंके ही काम आये।

इन्द्र बोले—चमत्कार नामसे विख्यात एक राजा होंगे, जो तुम्हारे शिखरपर ब्राह्मणोंके रहनेके लिये एक नगर स्थापित करेंगे। उस नगरमें वेद-वेदांगोंके पारगामी विद्वान् (नागर) ब्राह्मण प्रसन्नतापूर्वक रहकर तुम्हारे सम्पूर्ण ऐश्वर्यका उपभोग करेंगे तथा चैत्र कृष्णा चतुर्दशीको मैं स्वयं तुम्हारे शिखरपर आकर हाटकेश्वर नामसे प्रसिद्ध भगवान् शिवकी पूजा करूँगा। इससे त्रिलोकमें तुम्हारे प्रभावका विस्तार होगा। अच्छा, अब मैं स्वर्गको जाऊँगा। तुम्हारा कल्याण हो।

ऐसा कहकर देवराज इन्द्र स्वर्गमें चले आये तथा रक्तशृंग उस नागबिलको ढककर स्थित हुआ। उसके शिखरपर मुख्य-मुख्य तीर्थ और मन्दिर स्थापित हो गये और मुनियोंके भी बहुत-से आश्रम बन गये।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

इसी समय आनर्तदेशके राजा चमत्कार वहाँ वनमें दुष्ट मृगोंका शिकार खेलनेके लिये आये। उन्होंने देखा, कुछ दूरपर एक वृक्षके नीचे एक मृगी स्थिर होकर खड़ी है और निर्भय होकर अपने बच्चेको दूध पिला रही है। उसे देखकर राजाने कानतक धनुषको खींचा और उसके मर्मस्थानपर बाणका प्रहार किया। उस बाणसे घायल होकर वह मृगी व्यथासे पीड़ित हो चारों ओर देखने लगी। इतनेमें ही थोड़ी दूरपर धनुष धारण किये राजाको देखकर उसने कहा—'राजन्! यह तुमने बड़ा अनुचित कार्य किया, जो कि छोटे बच्चेकी माता मुझ दीन हरिणीका वध किया। मैं अपनी मृत्युके लिये उतना शोक नहीं करती, जैसा कि इस दूध पीते दीन मृगछौनेके लिये मुझे दुःख हो रहा है। तुमने बड़ा निर्दय कर्म किया है, इसलिये तुम इसी समय कोढ़ी हो जाओ।'

राजा बोले—शिकार खेलना तो राजाओंका धर्म है, अतः अपने धर्ममें तत्पर हुए मुझ निर्दोषको तुझे शाप नहीं देना चाहिये।

मृगी बोली—भूपाल! तुम्हारा कहना ठीक है, परंतु शिकारमें भी क्षत्रियोंके लिये यह विधान है कि जो सोया हो, मैथुनमें आसक्त हो, बच्चेको दूध पिला रहा हो या स्वयं जल पीता हो—ऐसे हिंसक पशुका वध न करे उसका वध करनेपर मनुष्य पापसे लिप्त होता है। इसीलिये मैंने तुझे शाप दिया है।

ऐसा कहकर व्यथासे पीड़ित हुई मृगीने अपने प्राणोंको त्याग दिया और राजा चमत्कार भी कोढ़ी हो गये। अपने शरीरको कोढ़युक्त देखकर दुःखी हुए राजाने सेवकोंको बुलाकर कहा—'अब मैं तबतक तपस्या और भगवान् शिवकी पूजा करूँगा जबतक कि मेरे इस कुष्ठरोगका सर्वथा नाश न हो जाय।' ऐसा कहकर उन्होंने अपने सभी सेवकोंको विदा कर दिया।

शंखतीर्थकी उत्पत्ति, उसमें स्नानसे राजा चमत्कारके कुष्ठरोगकी निवृत्ति और राजाका ब्राह्मणोंके लिये श्रेष्ठ नगर निर्माण कराकर दान देना

सूतजी कहते हैं—तदनन्तर राजा चमत्कार तपस्यामें तत्पर हो भिक्षान्नका नियमित आहार करते हुए प्रभास आदि सम्पूर्ण क्षेत्रोंमें भ्रमण करने लगे, परंतु उन्हें कहीं कोई ऐसा मन्त्र, ओषधि या तीर्थ नहीं प्राप्त हुआ जिससे उनके रोगका भलीभाँति निवारण हो जाय। इससे राजाके मनमें बड़ा वैराग्य हुआ और वे अपने मन और बुद्धिको वशमें करके उस पुण्यक्षेत्रमें अकेले रहने लगे। वे अपने-आप गिरे हुए सूखे पत्ते चबाते और रातमें भूमिपर सोते थे। मद और अहंकार तो उन्हें छू भी नहीं गये थे। तदनन्तर कुछ कालके बाद उन्होंने तीर्थयात्राके लिये जानेवाले बहुत-से श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको देखा और उन सबको विनीत भावसे प्रणाम करके कहा—'विप्रवरो! मैं आनर्तदेशका सूर्यवंशी राजा हूँ। मेरा नाम चमत्कार है। इस समय मेरे सारे शरीरमें कोढ़ फैल गयी है। क्या यहाँ ऐसा कोई दैव या मानवी उपाय है जिससे मेरा कुष्ठरोग शान्त हो जाय? यदि है तो आपलोग मुझपर कृपा करके बतावें।'

तब उन दयालु ब्राह्मणोंने कहा—नृपश्रेष्ठ! यहाँसे थोड़ी ही दूरपर सुप्रसिद्ध शंखतीर्थ है, जो सब रोगोंका नाश करनेवाला है। जो मनुष्य रोगग्रस्त, काने, अन्धे, मूर्ख, किसी अंगसे हीन या अधिक अंगवाले कुरूप और विकृत मुखवाले हैं, वे भी चैत्रमासके कृष्णपक्षकी* आदितिथि (चैत्रपूर्णिमा)-को चित्रा नक्षत्रके योगमें वहाँ स्नान करके उपवास

* यहाँ शुक्लपक्षसे मासका आरम्भ और अमावास्याको मासकी समाप्ति समझनी चाहिये। अतः जहाँ कृष्ण पक्षसे मासका आरम्भ माना जाता है, उनकी दृष्टिसे यह चैत्रका कृष्णपक्ष वास्तवमें वैशाखका कृष्णपक्ष है।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

करनेपर उसी क्षण रोगसे रहित हो जाते हैं।

राजाने पूछा—विप्रवरो! शंखतीर्थका ज्ञान मुझे जैसे हो और उसकी उत्पत्ति किस प्रकार हुई है। यह सब आपलोग विस्तारपूर्वक बतावें।

ब्राह्मण बोले—राजन्! पूर्वकालमें इस पृथ्वीपर लिखित नामसे प्रसिद्ध एक श्रेष्ठ मुनि रहते थे। वे शिण्डिलमुनिके पुत्र थे। उनके छोटे भाईका नाम शंख था। शंख भी अपने बड़े भाईकी भाँति धर्मशास्त्रके ज्ञाता थे और कन्द, मूल, फलका आहार करते हुए सदैव तपस्यामें संलग्न रहते थे। एक दिन शंख भूखसे अत्यन्त पीड़ित होकर लिखितके आश्रमपर गये। महात्मा लिखितका आश्रम सूना था तो भी 'ये फल अपने ही हैं' ऐसा मानकर शंखने बहुत-से फल तोड़ लिये और उन्हें खा लिया। इसी समय लिखित अपने शिष्यके साथ वहाँ आये और शंखको फल लिये हुए देखकर क्रोधपूर्वक बोले—'तुमने मेरे दिये बिना ही ये फल कैसे ले लिये? क्या तुम यह नहीं समझते कि इस प्रकार बिना पूछे लेनेसे चोरीरूप दोषसे बँध जाना पड़ता है?'

शंख बोले—द्विजश्रेष्ठ! आपने जो कुछ कहा है, वह सत्य है। मैंने आपके सूने आश्रममें ये फल लिये हैं, अतः मेरे लिये चोरीका उचित दण्ड दीजिये जिससे मेरा इहलोक और परलोक दोनों सुखद हो।

तब लिखितने उसी क्षण अपने भाई शंखके दोनों हाथ कटवा दिये। हाथ कट जानेपर शंख अपने आश्रममें लौट आये। वहाँ उन्होंने पुनः बड़ी घोर तपस्या की। इससे सन्तुष्ट होकर महादेवजीने उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन दिया और कहा—'ब्रह्मन्! तुम मनोवांछित वर माँगो।'

शंख बोले—देव! मेरे दोनों हाथ पुनः पूर्ववत् हो जायँ और यह तीर्थ मेरे नामसे प्रसिद्ध हो। जो कोई अंगहीन, अधिकांग अथवा रोगग्रस्त यहाँ स्नान करे वह शीघ्र ही फिरसे नवीन हो जाय—नूतन निर्दोष शरीर प्राप्त कर ले।

भगवान् शिवने कहा—विप्रेन्द्र! आजसे यह तीर्थ तुम्हारे नामसे विख्यात होगा। चैत्रमासके शुक्लपक्षमें जब चन्द्रमा चित्रा नक्षत्रपर स्थित हों, उस समय जो कोई न्यूनांग या अधिकांग मनुष्य भी यहाँ स्नान करेगा, वह सुवर्णके समान गौर और सर्वांगसुन्दर हो जायगा। उस दिन वहाँ श्राद्ध करनेसे पितरलोग उत्तम तृप्तिको प्राप्त होंगे। विप्रवर! आज चैत्रमासका शुक्लपक्ष है। आज तीसरे पहर चन्द्रमाका चित्रा नक्षत्रसे योग हो जायगा। उस समय उपवासपूर्वक भलीभाँति स्नान करनेपर तुम्हारे दोनों हाथ तत्काल पूर्ववत् सुन्दररूपसे युक्त हो जायँगे।

ऐसा कहकर भगवान् शिव अन्तर्धान हो गये और शंखमुनिने कुतप काल (दिनके तीसरे पहर)-में स्नान किया। स्नान करते ही उनके दोनों हाथ पूर्ववत् हो गये।

नृपश्रेष्ठ! इसलिये तुम भी चैत्र शुक्लपक्षमें, जब चन्द्रमा चित्रा नक्षत्रपर स्थित हों, उस तीर्थमें स्नान करो। इससे तुम सब रोगोंसे मुक्त हो जाओगे, इसमें तनिक भी संशय नहीं है। इस तीर्थके लिये जो समय और योग बताया गया है, उसके प्राप्त होनेपर हम साथ चलकर तुमको उस तीर्थका दर्शन करायेंगे।

सूतजी कहते हैं—तदनन्तर कुछ दिनोंके बाद चैत्र शुक्लपक्ष आया और चित्रानक्षत्रमें चन्द्रमाके योगसे युक्त चतुर्दशी तिथि प्राप्त हुई तब वे राजाके हितैषी ब्राह्मण उन्हें साथ लेकर उसी समय शंखतीर्थमें गये। वहाँ राजाने अपने मनमें कुष्ठरोगके नाशका संकल्प लेकर बड़ी श्रद्धा-भक्तिसे विधिपूर्वक स्नान किया। स्नान करते ही वे कुष्ठरोगसे मुक्त एवं तेजस्वी हो गये और बड़े हर्षके साथ तीर्थके जलसे बाहर निकले, फिर उन ब्राह्मणोंको प्रणाम करके राजाने हाथ जोड़कर कहा—'विप्रवरो! आपलोगोंके प्रसादसे ही मैं इस कुष्ठरोगसे मुक्त हुआ हूँ। अब मैं राज्य नहीं करूँगा। इसी तीर्थमें रहकर सदा उत्तम तप करूँगा।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

यह राज्य, देश, हाथी, घोड़ा तथा और जो भी कुछ वैभव मेरे अधीन है, वह सब मुझपर अनुग्रह करनेके लिये ही कृपापूर्वक आपलोग ग्रहण करें।'

ब्राह्मण बोले—नृपश्रेष्ठ! हमलोग राज्यकी रक्षा करनेमें असमर्थ हैं। फिर उसे लेनेसे क्या लाभ हुआ, जिससे राज्यमें बड़ा भारी विप्लव मच जाय। पूर्वकालमें जमदग्निनन्दन परशुरामने इक्कीस बार इस पृथ्वीको क्षत्रियोंसे हीन करके हम ब्राह्मणोंको सौंप दिया था, परंतु बलवान् क्षत्रियोंने फिर समस्त ब्राह्मणोंका तिरस्कार करके अनायास ही बार-बार इसे छीन लिया था।

राजाने कहा—विप्रवरो! मैं तपस्यामें स्थित होकर भी आपलोगोंकी रक्षा करता रहूँगा, अतः इस कार्यमें आप लोगोंको किसी प्रकार भय नहीं मानना चाहिये।

ब्राह्मण बोले—यदि आपके मनमें हमें कुछ देनेकी दृढ़ श्रद्धा है, तो इस महापुण्यमय क्षेत्रमें एक श्रेष्ठ नगरका निर्माण कराके उसे दे दें। वह श्रेष्ठ नगर चहारदीवारी और खाईंसे घिरा हुआ हो, जिससे हम वहाँ सुखपूर्वक रहें और तीर्थस्नान किया करें। हम सब लोग सदा वेदोंके स्वाध्यायमें तत्पर और गृहस्थधर्मका पालन करनेवाले हैं, अतः हमें गृहकी आवश्यकता है।

यह सुनकर राजाने 'बहुत अच्छा' कहकर उनकी आज्ञा स्वीकार की और उस स्थानमें एक बहुत बड़े नगरका निर्माण कराया। नगरके चारों ओर ऊँची-ऊँची चहारदीवारी और गहरी खाईं तैयार करायी गयी। उस मनोहर नगरकी लंबाई और चौड़ाई एक कोसकी थी। इस प्रकार उत्तम नगरका निर्माण हो जानेपर उन राजाने ब्राह्मणोंके पैर धोये और जो जैसी-जैसी योग्यतावाले थे, उन्हें वैसे ही गृह शास्त्रोक्तविधिसे दान किये।

राजा चमत्कारकी तपस्यासे सन्तुष्ट हुए शिवका अचलेश्वररूपसे निवास और रक्तशृंग पर्वतकी परिक्रमा आदिका माहात्म्य

सूतजी कहते हैं—उन श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको वह उत्तम नगर दान करके राजा चमत्कार कृतकृत्य हो गये। तत्पश्चात् उन्होंने अपने पुत्र-पौत्र तथा सेवकोंको बुलाकर कहा—'मैंने यह नगर बनवाकर ब्राह्मणोंको निवेदन किया है। अतः तुमलोगोंको मेरी आज्ञासे इस नगरकी यत्नपूर्वक रक्षा करनी चाहिये, जिससे सब ब्राह्मण यहाँ सन्तुष्टचित्त एवं सुखी रह सकें। जो राजा भक्तियुक्त होकर इन सब ब्राह्मणोंका पालन करेगा, वह इस भूतलपर महान् तेज प्राप्त करेगा। ब्राह्मणोंके प्रसादसे और मेरे वचनसे वह दीर्घायु एवं नीरोग रहेगा। इसके विपरीत जो कोई इनके प्रति द्वेष रखकर इन श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको कष्ट पहुँचायेगा, वह निश्चय ही नरकमें पड़ेगा।' ऐसा कहकर राजा चमत्कार तपस्यामें तत्पर हो गये। उनके पुत्र-पौत्र आदिने भी उनकी दी हुई शिक्षाके अनुसार ही बर्ताव किया।

पुत्रोंको राज्य और ब्राह्मणोंको नगर देकर राजाने अपने लिये शंखतीर्थमें आश्रम बनाया और वहीं रहकर बड़ी श्रद्धाके साथ देवाधिदेव महेश्वरकी आराधना की। उनकी आराधनासे प्रसन्न होकर महादेवजीने प्रत्यक्ष दर्शन दिया और कहा—'राजन्! मुझसे मनोवांछित वर माँगो।'

राजा बोले—प्रभो! अनेक तीर्थोंका आश्रयभूत यह पुण्यतम क्षेत्र आप भगवान् हाटकेश्वरके माहात्म्यसे सब पापोंको नाश करनेवाला है। सम्पूर्ण देवताओंके अधीश्वर! मैंने श्रद्धायुक्त पवित्रचित्तसे इस उत्तम नगरका निर्माण कराके इसे ब्राह्मणोंकी सेवामें समर्पित किया है। इस नगरमें आप अपने समस्त पार्षदगणोंके साथ सदा अचलरूपसे निवास करें।

भगवान् शिवने कहा—राजन्! मैं इस नगरमें अचल होकर निवास करूँगा, अतएव तीनों लोकोंमें अचलेश्वर नामसे मेरी ख्याति होगी। जो मनुष्य यहाँ स्थित हुए मेरे स्वरूपका भक्तिपूर्वक दर्शन करेगा, उसके यहाँ सम्पूर्ण देवताओंकी विभूतियाँ अविचलरूपसे निवास करेंगी। जो माघमासके

 Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

शुक्लपक्षकी चतुर्दशीमें श्रद्धापूर्वक मेरे लिंगमय विग्रहको घृतसे स्नान करायेगा उसका समस्त पाप सूर्योदयसे अन्धकारकी भाँति नष्ट हो जायगा। अतः भूपाल! तुम यहीं मेरे लिंगमय स्वरूपकी स्थापना करो, मैं यहाँ अचलरूपसे निवास करूँगा।

ऐसा कहकर देवेश्वर शिव अन्तर्धान हो गये। तदनन्तर राजाने शीघ्रतापूर्वक एक परम मनोहर मन्दिर तैयार कराया और उसमें शिवलिंगको स्थापित किया। उसके दर्शन, स्पर्श, ध्यान और पूजनसे मनुष्य जन्मसे लेकर मृत्युतकके पापोंसे मुक्त हो जाता है। शिवलिंगकी स्थापना हो जानेपर आकाशवाणी हुई, 'नृपश्रेष्ठ! मैं इस लिंगमें नित्य, निरन्तर निवास करूँगा। मेरे इस विग्रहकी छाया सदा अचल होगी। वह केवल पृष्ठभागकी ओर रहेगी, दूसरी किसी दिशामें स्थित न होगी।'

तत्पश्चात् राजाने सब दिशाओंमें सूर्यके स्थित होनेपर उस शिवलिंगकी छायाको सदा एक ही रूपसे अविचल देखा। इससे उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई और उन्होंने भूमिमें मस्तक रखकर उस शिवलिंगको प्रणाम करके अपने-आपको कृतार्थ माना।

सूतजी कहते हैं—'महर्षियो! आज भी उस शिवलिंगकी छाया वैसी ही दिखायी देती है जो सबको विस्मयमें डालनेवाली है। जिसकी मृत्यु छः महीनेके भीतर ही होनेवाली है। वह उस छायाको नहीं देख पाता। उस क्षेत्रमें रहनेवाले सब मनुष्य भगवान् अचलेश्वरके माहात्म्यसे सम्पूर्ण मनोवांछित फलको पाते हैं।'

महर्षियो! उस तीर्थमें चैत्र कृष्ण चतुर्दशीको ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि सब देवता, सम्पूर्ण तीर्थ, सभी मन्दिर, नदी और समुद्र आदि जो भी पवित्र करनेवाली शक्तियाँ हैं वे सब उपस्थित होती हैं। जिस समय इन्द्र रक्तशृंग पर्वतको उस प्रदेशमें ले आये थे उसी समय उन्होंने यह कह दिया था कि तुम्हारे समीप सब देवता आवेंगे; इसलिये उस समय एक बार उस पर्वतकी प्रदक्षिणा कर लेनेपर उत्तम कल्याणकी प्राप्ति होती है। उस दिन वहाँ जो कुछ भी आदरपूर्वक दान किया जाता है, वह सूर्य और चन्द्रमाके स्थिति-कालतक अक्षय पुण्य देनेवाला होता है। जो कोई मनुष्य वहाँ भक्तिपूर्वक उत्तम अन्नसे ब्राह्मणोंको भोजन कराता है उसे गयातीर्थका फल प्राप्त होता है। जो जिस कामनाका चिन्तन करते हुए उस पर्वतकी परिक्रमा करता है वह उसी कामनाको पाता है और जो निष्कामभावसे परिक्रमा करता है वह मोक्षका भागी होता है। इसलिये बुद्धिमान् पुरुषोंको चाहिये कि वे सब कार्य छोड़कर प्रयत्नपूर्वक रक्तशृंग पर्वतके समीपकी भूमिका सेवन करें। ब्राह्मणो! भगवान् हाटकेश्वरका वह क्षेत्र स्मरण करनेसे भी मनुष्यको पवित्र कर देता है; फिर दर्शन और स्पर्शसे पवित्र कर दे इसके लिये तो कहना ही क्या है?

चमत्कारपुरमें गयाशीर्षतीर्थकी महिमा—राजा विदूरथके द्वारा तीन प्रेतोंका उद्धार

सूतजी कहते हैं—विप्रवरो! उस क्षेत्रकी लंबाई-चौड़ाई पाँच कोसकी है। उसके पूर्वमें गयाशीर्ष, पश्चिममें नृसिंहजीका स्थान और दक्षिण तथा उत्तरमें गोकर्णेश्वर शिव हैं। पहले वह हाटकेश्वरक्षेत्र कहलाता था। आगे चलकर वही संसारमें सर्वपातकनाशक उत्तम तीर्थके रूपमें विख्यात हुआ। राजा चमत्कारने जबसे वह स्थान ब्राह्मणोंको दे दिया, तबसे उन्हींके नामसे उसकी प्रसिद्धि हुई—लोग उसे चमत्कारपुर कहने लगे।

पूर्वकालमें विदूरथ नामसे प्रसिद्ध एक हैहयवंशी राजा हो गये हैं, जो बड़े-बड़े यज्ञ करनेवाले, दानपति तथा प्रत्येक कार्यमें दक्ष थे। एक समय

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

राजा विदूरथ अपनी सेनाके साथ हिंसक पशुओंसे भरे हुए वनमें शिकार खेलनेके लिये गये। वहाँ उन्होंने सर्पोंके समान विषैले बाणोंसे कितने ही चीता, शम्बर तथा व्याघ्र और सिंह आदि पशुओंको मारा। उन वन-जन्तुओंमेंसे एक पशु उनके बाणसे घायल होकर भी धरतीपर नहीं गिरा। बाण लिये जोरसे भागा। राजाने भी कौतूहलवश उसके पीछे अपना घोड़ा दौड़ाया। इस प्रकार वे अपनी सेनाको छोड़कर दूसरे घोर वनमें जा पहुँचे जो मनमें भय उत्पन्न करनेवाला था। उसमें प्रायः काँटेदार वृक्ष भरे हुए थे। वहाँकी सारी भूमि रूखी, पथरीली तथा जलसे हीन थी। उस वनमें जाकर राजा विदूरथ भूख और प्याससे व्याकुल हो गये और उस दुर्गम वनका अन्त ढूँढ़ते हुए अपने घोड़ेको कोड़ेसे पीट-पीटकर हाँकने लगे। घोड़ा हवासे बाते करने लगा और उसने राजाको सब जन्तुओंसे रहित दूरस्थ दुर्गम मार्गमें पहुँचा दिया। अन्तमें वह अश्व भी भूमिपर गिर पड़ा।

तदनन्तर भूख-प्याससे व्याकुल राजा उस वनके भीतर पैदल ही चलने लगे और एक जगह लड़खड़ाकर गिर पड़े। इतनेमें ही उन्होंने आकाशमें अत्यन्त भयंकर तीन प्रेत देखे। उन्हें देखकर वे भयसे थर्रा उठे और जीवनसे निराश होकर बड़े क्लेशसे बोले—'तुमलोग कौन हो। मैं भूख-प्याससे पीड़ित राजा विदूरथ हूँ। शिकारके पीछे जीव-जन्तुओंसे रहित इस वनमें आ पहुँचा हूँ।'

तब उन तीनों प्रेतोंमें जो सबसे ज्येष्ठ था, उसने विनयपूर्वक हाथ जोड़कर कहा—महाराज! हम तीनों प्रेत हैं और इसी वनमें रहते हैं। अपने कर्मजनित दोषसे हमलोग महान् दुःख उठा रहे हैं। मेरा नाम मांसाद है, यह दूसरा मेरा साथी विदैवत है और तीसरा कृतघ्न है, जो हम सबमें बढ़कर पापात्मा है। हमें जिस-जिस कर्मके द्वारा यहाँ एक ही साथ प्रेतयोनिकी प्राप्ति हुई है, वह सुनो। राजन्! हम तीनों वैदेशपुरमें देवरात नामक महात्मा ब्राह्मणके घरमें उत्पन्न हुए थे। हमने नास्तिक होकर धर्म-मर्यादाका उल्लंघन किया और हमलोग सदा परायी स्त्रियोंके मोहमें फँसे रहे। मैंने जिह्वाकी लोलुपताके कारण सदा मांस ही भोजन किया है, अतः मुझे अपने कर्मके अनुसार ही मांसाद नाम प्राप्त हुआ है। महाराज! यह दूसरा जो तुम्हारे सामने खड़ा है, इसने देवताओंका पूजन किये बिना ही सदा अन्न ग्रहण किया है, उसी कर्मके फलसे इसे प्रेत-योनिमें आना पड़ा है और देवताओंके विपरीत चलनेके कारण इसका नाम विदैवत हुआ है और जिस पापीने सदा दूसरोंके साथ कृतघ्नता—विश्वासघात किया है वही अपने कर्मके अनुसार कृतघ्न कहलाता है।

राजाने पूछा—इस मनुष्यलोकमें सब प्राणी आहारसे ही जीवन धारण करते हैं। यहाँ तुमलोगोंको कौन-सा आहार प्राप्त होता है, सो मुझे बताओ।

मांसाद बोला—जिस घरमें भोजनके समय स्त्रियोंमें युद्ध होता है, वहाँ प्रेत भोजन करते हैं। राजन्! जहाँ बलिवैश्वदेव किये बिना और भोजनमेंसे पहले अग्राशन—गोग्रास आदि दिये बिना भोजन किया जाता है, उस घरमें भी प्रेत भोजन करते हैं। जिस घरमें कभी झाड़ू नहीं लगता, जो कभी गोबर आदिसे लीपा नहीं जाता है तथा जहाँ मांगलिक कार्य और अतिथि आदिके सत्कार नहीं होते, उसमें भी प्रेत भोजन करते हैं। जिस घरमें फूटे बर्तनका त्याग नहीं किया जाता तथा वेदमन्त्रोंकी ध्वनि नहीं होती, वहाँ प्रेत आहार करते हैं। जो श्राद्ध दक्षिणासे रहित और शास्त्रोक्त विधिसे हीन होता है तथा जिसपर रजस्वला स्त्रीकी दृष्टि पड़ जाती है, वह श्राद्ध एवं भोजन हमारे अधिकारमें आ जाता है। जो अन्न केश, मूत्र, हड्डी और कफ आदिसे संयुक्त हो गया है और जिसे हीनजातिके मनुष्योंने छू दिया है, उसपर भी हमारा अधिकार हो जाता है। जो मनुष्य असहिष्णु, चुगली खानेवाला, दूसरोंका कष्ट देखकर प्रसन्न होनेवाला, कृतघ्न तथा गुरुकी

279 Skandpuran_Section_36_2_Front In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

शय्यापर सोनेवाला है और जो वेदों एवं ब्राह्मणोंकी निन्दा करता है, ब्राह्मणकुलमें पैदा होकर मांस खाता है और सदा प्राणियोंकी हिंसा करता है, वह प्रेत होता है। जो परायी स्त्रीमें आसक्त, दूसरेका धन हड़प लेनेवाला तथा परायी निन्दासे सन्तुष्ट होनेवाला है और जो धनकी इच्छासे नीच एवं वृद्ध पुरुषके साथ अपनी कन्याका व्याह कर देता है, वह प्रेत होता है। जो मनुष्य उत्तम कुलमें उत्पन्न, विनयशील और दोषरहित धर्मपत्नीका त्याग करता है, जो देवता, स्त्री और गुरुका धन लेकर उसे लौटा नहीं देता है तथा जो ब्राह्मणोंके लिये धनका दान होता देख उसमें विघ्न डालता है, वह प्रेत होता है।

राजाने पूछा—मांसाद! अब यह बताओ कि कौन-सा कर्म करनेसे मनुष्य प्रेत नहीं होता है?

मांसाद बोला—जो परायी स्त्रियोंको माताके समान, दूसरोंके धनको मिट्टीके ढेलेके समान तथा सब प्राणियोंको अपने समान देखता है, वह प्रेत नहीं होता। जो सदा अन्नदानमें तत्पर, विशेषतः अतिथि-सत्कारमें प्रेम रखनेवाला, स्वाध्यायशील और व्रतपरायण होता है, वह प्रेत नहीं होता। जो शत्रु और मित्रमें समभाव रखनेवाला और मान तथा अपमानमें भी समताका त्याग न करनेवाला है, वह प्रेत नहीं होता। जो धर्ममें लगे हुए तथा धर्ममार्गपर चलनेवाले मनुष्योंका उत्साह बढ़ाता है, वह भी प्रेत नहीं होता। जो सदा यज्ञकर्ममें तत्पर, सदैव तीर्थयात्रापरायण तथा सर्वदा शास्त्र-श्रवण करनेवाला है, वह मनुष्य प्रेत नहीं होता। जो बावली, कुआँ और पोखरा बनवाता, बगीचे लगाता और पौंसले (प्याऊ) चलाता है, वह प्रेत नहीं होता। राजन्! हम इस प्रेतयोनिसे बहुत कष्ट पा रहे हैं। तुम हमारा उद्धार करनेवाले हो जाओ। गयाशीर्ष नामक पवित्र तीर्थमें जाकर तुम हम तीनोंके लिये पृथक्-पृथक् श्राद्ध करो, जिससे हमारी यह प्रेतयोनि निवृत्त हो जाय।

राजा बोले—जिस योनिमें इस प्रकार पूर्वजन्मकी बातोंका स्मरण होता है, आकाशमें भी चलनेकी शक्ति प्राप्त है और धर्म तथा अधर्मका सम्यक् ज्ञान है, उसकी तुम निन्दा क्यों करते हो?

मांसादने कहा—राजन्! यह प्रेतयोनि अधम देवयोनि कहलाती है। इसमें केवल तीन ही गुण हैं—पूर्वजन्मका स्मरण, आकाशगमनकी शक्ति तथा धर्म और अधर्मका निश्चय। इसके सिवा इसमें सब दोष-ही-दोष भरे हैं। यदि हमलोग इस वनकी सीमासे बाहर जाते हैं तो हमारे ऊपर बिना देखे हुए मुद्गरोंकी मार पड़ती है। इसके सिवा समस्त धार्मिक क्रियाओंका अनुष्ठान केवल मनुष्यके लिये विहित है, प्रेतयोनि अथवा देवयोनिमें गये हुए जीवोंके लिये नहीं। राजन्! जब सूर्य वृष राशिपर स्थित होते हैं तब ज्येष्ठकी चिलचिलाती हुई धूपमें हम प्याससे व्याकुल होकर दूरसे ही जलसे भरे हुए जलाशयोंको देखते हैं। यदि उनके समीप चले जायँ तो हमारे ऊपर अदृष्ट मुद्गरोंकी मार पड़ती है। इसी प्रकार हम दूरसे देखते हैं, गृहस्थोंके घरोंमें नाना प्रकारकी रसोई तैयार करके रखी हुई है। हम भूखसे व्याकुल रहते हैं किंतु उस रसोईको ले नहीं सकते। अच्छे फलवाले वृक्षोंको हम देखते हैं, किंतु उन्हें सेवनका अवसर नहीं पाते। अधिक क्या कहूँ, जो-जो घृणित एवं क्लेशदायक कर्म हैं, सब हमारे पास स्वतः उपस्थित हो जाते हैं। बिना किसी दोषके हमारी प्राणयात्रा नहीं चलती। जल, छाया, अन्न और सवारी—ये सब हमारे लिये नहीं हैं। इसीलिये प्रदोषकाल आनेपर हम सदा छिद्र ढूँढ़ते हुए घूमते रहते हैं। हमारे आकाशगमनकी शक्तिकी बात जो तुमने कही है, वह भी व्यर्थ है। उस आकाशगमनकी शक्तिसे, धर्माधर्म-विवेकसे और पूर्वजन्मकी स्मृतिसे भी क्या लाभ है, जिसके द्वारा मोक्षकी सिद्धि नहीं हो सकती?* अतः राजन्! यद्यपि ये आकाशगमन आदि प्रेतोंके गुण बताये जाते हैं

* क्रियते खेचरत्वेन किं किं धर्मविनिश्चयैः। यया न सिद्ध्यते मोक्षो याति स्मृत्या हि किं तया॥ (स्क० पु०, ना० १८। ६७)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

तथापि इनके द्वारा कोई सिद्धि नहीं मिलती। उलटे इन गुणोंके कारण खेद ही अधिक होता है, क्योंकि प्रेतयोनियाँ किसी भी शुभ कर्मके करनेमें समर्थ नहीं हैं।

राजा बोले—यदि मैं इस महान् वनसे घरको लौट जाऊँगा तो निश्चय ही तुम सब लोगोंके लिये गयाश्राद्ध करूँगा और यत्नपूर्वक सब उपायोंसे तुम्हारा उद्धार करूँगा। इस समय तुम मुझे मनुष्योंसे सेवित कोई जलाशय बतलाओ जिससे जल प्राप्त करके मैं तुम्हारा उपकार करूँ।

मांसादने कहा—महाराज! इस स्थानसे थोड़ी ही दूरपर एक जलाशय है, जो नाना प्रकारके वृक्षोंसे घिरा हुआ और चित्तको आह्लाद प्रदान करनेवाला है। तुम यहाँसे सीधे उत्तरकी ओर चले जाओ।

सूतजी कहते हैं—तदनन्तर राजा विदूरथ धीरे-धीरे उत्तर दिशाकी ओर चले। थोड़ी ही दूरपर हरे-भरे वृक्षोंका समुदाय दिखायी दिया। वहाँ हंस, बक तथा सारस आदि पक्षी उड़ रहे थे। वहाँ पहुँचकर राजाने सौम्य प्राणियोंसे सुसेवित एक मनोहर आश्रम देखा। वहाँ एक वृक्षके नीचे तपस्वीजनोंसे सेवित मुनिश्रेष्ठ जैमिनि विराजमान थे। उनके समीप जाकर महाराजने उनके चरणोंमें मस्तक झुकाया और भूमिपर बैठे हुए मुनिके शिष्योंको भी प्रणाम किया। उन सबने राजाको देखकर पूछा—'महाराज! इन निर्जन वनमें तुम कहाँसे आये हो?'

राजाने कहा—इस समय मुझे प्यास सता रही है, अतः पहले पानी पीकर पीछे मैं अपना सब हाल बताऊँगा।

तब उन्होंने राजाको जल दिखा दिया। राजाने उसमें प्रवेश करके जल पीकर प्यास बुझायी और नीचे गिरे हुए वृक्षोंके फल लेकर इच्छापूर्वक भोजन किया। पूर्णतः तृप्त होनेपर वे पुनः महर्षि जैमिनिके समीप आये और प्रणाम करके बैठ गये। तदनन्तर अपना वृत्तान्त कहना प्रारम्भ किया—'मुनिवरो! मैं विदूरथ नामसे प्रसिद्ध राजा हूँ। माहिष्मती पुरीमें मेरा निवासस्थान है। मैंने अपनी सेना साथ लेकर इस भयंकर वनमें प्रवेश किया था। मेरे सब सैनिक लताओं और झाड़ियोंकी आड़में छिपकर मुझसे अदृश्य हो गये। पता नहीं उन सैनिकोंका क्या हाल है। मेरा घोड़ा भी एक स्थानपर गिर गया। मेरी आयु शेष थी कि मैं घूमता हुआ यहाँ आ पहुँचा। मुनिवरो! अब सन्ध्याका समय आ गया है। अतः हम सब लोगोंको यथायोग्य सन्ध्योपासन आदि विधि करनी चाहिये।'

तत्पश्चात् मुनियों तथा राजाने सन्ध्योपासना की। धीरे-धीरे रात्रि हो गयी। इसी समय राजाकी सेनाके कुछ मनुष्य उन्हें ढूँढ़ते हुए वहाँ आ पहुँचे और उन्हें देखकर बड़े आदरसे बोले—'अहोभाग्य! जो महाराज मिल गये।' यों कहकर वे राजाके चरणोंमें गिर गये। फिर उठकर उन्होंने राजासे सैनिकोंके कष्ट, जो देखे और सुने थे, बतलाये। तदनन्तर उन सब सेवकोंके साथ राजा वृक्षके नीचे पत्ते बिछाकर सो रहे। प्रातःकाल उठकर उन्होंने पूर्वाह्णकृत्य—स्नान, सन्ध्योपासन आदि पूरा किया। तत्पश्चात् मुनिवर जैमिनिको प्रणाम करके उनकी आज्ञा ले अपने सेवकोंके साथ माहिष्मती पुरीकी ओर प्रस्थान किया। मार्ग पूछते हुए धीरे-धीरे चलकर राजा कुछ कालमें अपने निवासस्थानपर जा पहुँचे और कुछ समय विश्राम करके उन्होंने शीघ्र ही गयाशीर्षकी यात्रा कर दी। समयानुसार वहाँ पहुँचकर राजाने स्नान किया और धुले हुए वस्त्र पहनकर पवित्र हो श्रद्धायुक्त हृदयसे पहले मांसादका श्राद्ध किया। तदनन्तर रातमें सोते समय स्वप्नमें उन्होंने देखा, मांसाद दिव्य माला और वस्त्र धारण किये दिव्य विमानपर आरूढ़ है। उस समय मांसादने राजासे कहा—'भूपाल! तुम्हारे प्रसादसे मैं प्रेतयोनिसे मुक्त हो गया हूँ, तुम्हारा कल्याण हो, मैं स्वर्गलोकको जाऊँगा।'

तब प्रातःकाल उठकर हर्षमें भरे हुए राजा

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

विदूरथने विदैवतके लिये यथायोग्य श्राद्ध किया। फिर वह भी उसी प्रकार राजाको स्वप्नमें दिखायी दिया और मांसादकी ही भाँति कृतज्ञता प्रकट करके स्वर्गलोकमें चला गया। फिर तीसरे दिन राजाने पूर्ववत् श्रद्धापूर्ण हृदयसे कृतघ्नके लिये श्राद्ध किया। रातको उसने भी स्वप्नमें दर्शन दिया, किंतु वह उसी प्रेतरूपमें आया था और बड़े दुःखसे घिरा हुआ था।

कृतघ्न बोला—महाराज! तड़ागके लिये नियत धनकी जिसने चोरी की है और जो सदा कृतघ्न रहा है—ऐसे मुझ पापात्माकी अभीतक मुक्ति नहीं हुई। अतः जिस प्रकार मुझे भी इस दुःखसे छुटकारा मिल जाय, वैसा कोई उपाय करो और अपनी की हुई सत्यप्रतिज्ञा पूरी करो। सत्य ही परब्रह्म है, सत्य ही परम तप है, सत्य ही परम ज्ञान है और सत्य ही परम शास्त्र है। सत्यके बलसे वायु चलती है। सत्यसे सूर्य तप रहा है और सत्य वचनसे ही समुद्र अपनी मर्यादाका लंघन नहीं करता। सत्यहीन मनुष्यके द्वारा किये हुए तीर्थ-सेवन, तप, दान, स्वाध्याय और गुरुसेवा—ये सब धर्म व्यर्थ हो जाते हैं। एक समय देवताओंने कौतूहलवश अपनी तुलापर एक ओर तो सम्पूर्ण धर्मोंको रखा और दूसरी ओर केवल सत्यको, परंतु सत्यका ही पलड़ा भारी रहा।* इसलिये महामते! तुम भी सत्यको ही आगे रखकर मेरा उद्धार करो। यह पुण्य तुम्हारे लिये तपस्यासे भी बढ़कर कल्याणका साधक होगा।

राजा विदूरथने पूछा—प्रेत! तुम्हारी मुक्ति किस उपायसे हो सकती है, शीघ्र बताओ। दुष्कर होनेपर भी मैं उसे अवश्य करूँगा।

प्रेतने कहा—राजन्! चमत्कारपुरमें जो हाटकेश्वरक्षेत्र है, वहीं कलियुगसे डरा हुआ गयाशीर्षतीर्थ प्लक्ष (पाकड़) नामक वृक्षके नीचे धूलमें छिपा हुआ है। उसके चारों ओर समयोचित शाक, कुशा और जंगली तिलके पौधे हैं। वहीं जाकर तुम तिल, अन्न, शाक और कुश आदि सामग्रियोंके द्वारा मेरे लिये श्राद्ध करो। ऐसा करनेपर शीघ्र मेरी मुक्ति हो जायगी।

प्रेतकी यह बात सुनकर दयालु राजा वहाँ गये और उसके बताये अनुसार उन्होंने सब कुछ किया। पहले जलके लिये वहाँ एक छोटा-सा कुआँ खोदा। फिर वेदोंके पारंगत श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको बुलाकर कृतघ्नके उद्देश्यसे शास्त्रोक्तविधिके अनुसार श्राद्ध किया। उस श्राद्धके पूर्ण होते ही कृतघ्न दिव्यरूपधारी पुरुष होकर श्रेष्ठ विमानपर आरूढ़ हुआ और विदूरथसे बोला—'प्रभो! तुम्हारे प्रसादसे मैं इस भयंकर प्रेतशरीरसे मुक्त हो गया। अब मैं स्वर्गको जा रहा हूँ।'

सूतजी कहते हैं—तबसे लेकर गयाशीर्षक्षेत्रमें वह 'लघुकूप' प्रसिद्ध हो गया। वह उस क्षेत्रमें पितरोंको पुष्टि देनेवाला है। जो आश्विनमासमें पितृपक्षकी अमावास्याको वहाँ कालशाक, जंगली तिल, तैयार किये हुए अन्न तथा कुशा आदिके द्वारा श्रद्धापूर्वक पितरोंका श्राद्ध करता है वह उत्तम फलका भागी होता है। अग्निष्वात्त, बर्हिषद्, आज्यप और सोमप—ये पितृगण वहाँ सदा निवास करते हैं; अतः उस तीर्थमें जाकर समय या असमयमें सदा ही प्रयत्नपूर्वक श्राद्ध करना चाहिये।

~~~o~~~

* सत्यमेव परं ब्रह्म सत्यमेव परं तपः। सत्यमेव परं ज्ञानं सत्यमेव परं श्रुतम्॥
सत्येन वायुर्वहति सत्येन तपते रविः। सागरः सत्यवाक्येन मर्यादां न विलङ्घयेत्॥
तीर्थसेवा तपो दानं स्वाध्यायो गुरुसेवनम्। सर्वं सत्यविहीनस्य व्यर्थं सञ्जायते यतः॥
सर्वे धर्मा धृताः पूर्वमेकतोऽन्यत्र वै ऋतम्। तुलाया कौतुकाद्देवैर्जातं तत्र ऋतं गुरु॥
(स्क० पु०, ना० १९। २०—२३)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth
~~~

मार्कण्डेय मुनिको अमरत्वकी प्राप्ति, ब्रह्माजीकी स्थापना, बालसख्यतीर्थकी महिमा

सूतजी कहते हैं—चमत्कारपुरके समीप मृकण्ड नामसे प्रसिद्ध एक श्रेष्ठ द्विज थे, जो वेदवेत्ता विद्वानोंमें अग्रगण्य माने जाते थे। वे वानप्रस्थ-आश्रममें स्थित थे। वहाँ उन्होंने बड़ी भारी तपस्या की थी। जिस समय वे गृहस्थ थे, तभी ढलती अवस्थामें उनके एक सर्वशुभ-लक्षणसम्पन्न पुत्र हुआ था। पिताने उसका नाम 'मार्कण्ड' रखा था। वानप्रस्थी पिताके आश्रममें ही बालकका लालन-पालन हुआ और वह जल्दी बढ़ गया। धीरे-धीरे उसकी अवस्था पाँच वर्षकी हो गयी। एक दिन जब वह पिताकी गोदमें बैठकर खेल रहा था, उसी समय वहाँ कोई सामुद्रिक शास्त्रका विद्वान् आया। उसने नखसे लेकर शिखातक उस बालककी ओर देखा। देखकर उसके नेत्र आश्चर्यसे चकित हो गये। फिर वह किंचित् मुसकराया।

मृकण्ड मुनिने उसे हँसते देख विनीतभावसे पूछा—'विप्रवर! मेरे इस पुत्रकी ओर देखकर आप चकित क्यों हो गये थे और फिर हँसे क्यों?' उनके बारंबार इस प्रकार पूछनेपर उस श्रेष्ठ ब्राह्मणने कहा—'मुने! इस शिशुके जो लक्षण देखे जाते हैं, वे यदि किसी मनुष्यके शरीरमें हों तो वह अजर-अमर होता है। परंतु इसमें जो एक विशेष लक्षण है उससे सूचित होता है कि आजके दिनसे छः महीने पूरे होते ही इसकी मृत्यु हो जायगी। ऐसा जानकर आप आजसे इसके लिये लोक-परलोकमें हितकर कार्य कीजिये।'

यों कहकर वह उत्तम ब्राह्मण अपनी अभीष्ट दिशाको चला गया। तब मृकण्ड मुनिने मन-ही-मन कुछ सोच-विचारकर उचित समयसे पहले ही बालकका यज्ञोपवीत संस्कार कर दिया। फिर उसे कर्तव्यका उपदेश देते हुए कहा—'बेटा! तुम जिस किसी भी ब्राह्मणको देखना उसे अवश्य विनयपूर्वक प्रणाम करना।' इस प्रकार व्रतमें स्थित हुए उस बालकके छः महीने पूर्ण होनेमें केवल तीन दिन शेष रह गये। वह सदा प्रत्येक ब्राह्मणको प्रणाम करता रहा। इसी बीचमें तीर्थयात्रापरायण सप्तर्षिगण उधर आ निकले, जहाँ वह मेखलाधारी मार्कण्ड खड़ा था। उसने उन सब मुनियोंको बारी-बारीसे प्रणाम किया और सबने पृथक्-पृथक् उसे 'दीर्घायु' होनेका आशीर्वाद दिया। तदनन्तर मुनिवर वसिष्ठने उस बालब्रह्मचारीकी ओर देखते हुए कहा—'हम सबने इस शिशुको दीर्घायु होनेका आशीर्वाद दिया है, परंतु यह तो आजके तीसरे ही दिन प्राण त्याग देगा; अतः हमलोगोंके वचनका इस प्रकार असत्य होना कदापि उचित नहीं है। इसलिये ऐसा कोई उपाय किया जाय जिससे यह बालक चिरंजीवी हो जाय।'

तदनन्तर वे सब महर्षि परस्पर विचार करके इस निश्चय पर पहुँचे कि 'ब्रह्माजीको छोड़कर दूसरा कोई इसके जीवनका उपाय नहीं है। अतः इस बालकको उनके आगे ले जाकर उन्हींकी आज्ञासे इसे चिरंजीवी बनाना चाहिये।' ऐसा निर्णय करके तीर्थभ्रमणका कार्य रोककर उस ब्रह्मचारीको साथ ले वे शीघ्र ही ब्रह्मलोकमें जा पहुँचे। वहाँ ब्रह्माजीको प्रणाम करके वेदोक्त स्तोत्रोंद्वारा उनकी स्तुति करनेके पश्चात् सब मुनि बैठे। इसके बाद उस बालकने भी ब्रह्माजीको प्रणाम किया और ब्रह्माजीने भी उसे दीर्घायु होनेका आशीर्वाद दिया। तत्पश्चात् ब्रह्माजीने सप्तर्षियोंसे पूछा—'तुमलोग कहाँसे और किसलिये इस समय यहाँ आये हो और यह उत्तम व्रत धारण करनेवाला बालक कौन है?'

सप्तर्षि बोले—पितामह! हमलोग तीर्थयात्राके प्रसंगसे पृथ्वीपर सब ओर घूमते हुए चमत्कारपुरके समीपतक गये थे। वहाँ इस बालकने हम सबको प्रणाम किया और क्रमशः हम सबने इसे दीर्घायु

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

होनेका आशीर्वाद दिया। परंतु इसकी आयु तो तीन दिन ही शेष रह गयी है, इसीलिये हम बहुत लज्जित हैं और इसे लेकर आपके पास आये हैं। यहाँ आनेपर आपने भी इस बालकको दीर्घायु होनेका आशीर्वाद दिया है। अतः आप और हम सब लोग सत्यवादी बने रहें, इसके लिये कोई उपाय आप करें।

मुनियोंका यह वचन सुनकर ब्रह्माजीने हँसते हुए कहा—यह बालक मेरे प्रसादसे वेद-विद्यामें प्रवीण तथा जरामृत्युसे रहित होगा। इसमें सन्देह नहीं है। अतः अब इसे शीघ्र भूतलपर ले जाकर इसके घर पहुँचा दो। यह सुनकर सप्तर्षि उस बालकको लेकर उसके पिताके आश्रमके समीप आये और अग्नितीर्थमें छोड़कर स्वयं तीर्थस्नानके लिये चले गये। इधर पुत्र-स्नेही मृकण्ड मुनि अपने पुत्रको न देख दुःखी हो विलाप करते थे, इतनेमें ही बालक मार्कण्डेय पिता-माताके निकट आ गया। उसे आते देख ब्राह्मण और ब्राह्मणी दोनों उसकी ओर दौड़े और बार-बार हृदयसे लगाकर पूछने लगे—'बेटा! अपनी मातासहित मुझको शोकके समुद्रमें डालकर तुम आश्रमसे कहाँ चले गये थे और अब कहाँसे आये हो? फिर कभी ऐसा न करना।'

मार्कण्डेयजी बोले—पिताजी! आज यहाँ मुनिलोग पधारे थे। मैंने आपकी आज्ञाका स्मरण रखते हुए बारी-बारीसे उन सबको विनयपूर्वक प्रणाम किया और उन्होंने मुझे दीर्घायु होनेका आशीर्वाद दिया। तब उनमेंसे वसिष्ठजीने हँसकर कहा—'मुनियो! आपने जिस बालकको 'दीर्घायु' कहा है, वह आजसे तीसरे ही दिन मृत्युको प्राप्त होनेवाला है।' तब असत्यसे डरे हुए उन महर्षियोंने तत्क्षण मुझे ब्रह्मलोकमें पहुँचा दिया। वहाँ जानेपर मैंने ब्रह्माजीको प्रणाम किया तब उन्होंने भी 'दीर्घायु' होनेका आशीर्वाद दिया। तब उन मुनियोंने मुझे आशीर्वाद देनेका सब वृत्तान्त कहा और यह अनुरोध किया कि 'पितामह! आपके प्रसादसे यह बालक जिस प्रकार दीर्घायु हो सके वैसा यत्न कीजिये।' तब ब्रह्माजीने मुझे अजर-अमर बना दिया और तुरंत उन सप्तर्षियोंके साथ घरको भेज दिया। वे मुनि मुझे आश्रमके समीप छोड़कर कुण्डमें स्नान करनेके लिये चले गये हैं।

मार्कण्डेयकी यह बात सुनकर मृकण्ड मुनिको बड़ा हर्ष हुआ। वे तुरंत उस स्थानपर गये जहाँ मुनिलोग स्थित थे। उन सबको प्रणाम करके वे हाथ जोड़कर खड़े हो गये और बोले—'मुनिवरो! आपलोगोंके प्रसादसे आज मेरे कुलकी वृद्धि हुई। किन्हीं आचार्योंने यह बहुत उत्तम बात कही है कि साधुपुरुषोंकी सेवा करके मनुष्य तीनों लोकोंमें ख्याति लाभ करता है। साधुजनोंका दर्शन पवित्र है, क्योंकि साधुपुरुष तीर्थस्वरूप है। तीर्थ तो कुछ समयके बाद ही फलता है; परंतु साधुपुरुषोंका समागम तत्काल फल देता है*। अतः आज आप सब लोग मेरे घर अतिथिरूपसे आये हैं; बताइये मैं किस प्रकार आपका आतिथ्य करूँ।'

ऋषि बोले—मुने! हमारे लिये तो यही करोड़ों आतिथ्यके तुल्य है कि आपका अल्पायु बालक भी अमर हो गया।

मृकण्डने कहा—मुनीश्वरो! जिसे मृत्युने गलेसे लगा लिया था, मेरे उस बालककी रक्षा करके आपने समस्त कुलका उद्धार कर दिया है। ब्रह्मघाती, शराबी, चोर तथा व्रतको भंग करनेवाले पापीके लिये सत्पुरुषोंने प्रायश्चित्त बताया है; परंतु कृतघ्नके उद्धारका कोई उपाय नहीं है। अतः मुनीश्वरो! मुझपर कृतघ्नताका दोष न आवे, ऐसा उपाय आपको करना चाहिये।

ऋषि बोले—द्विजश्रेष्ठ! यदि आप कोई प्रत्युपकार करना ही चाहते हैं तो हमारे कहनेसे यहाँ ब्रह्माजीके लिये, जिन्होंने आपके पुत्रको अमर बनाया है, एक मन्दिर बनवाइये और इस तीर्थमें ब्रह्माजीकी स्थापना कीजिये। तत्पश्चात् स्वयं भी

* साधूनां दर्शनं पुण्यं तीर्थभूता हि साधवः। तीर्थं फलति कालेन सद्यः साधुसमागमः॥ (स्क० पु०, ना० २१। ६८)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

आप पुत्रके साथ यहाँ रहकर दिन-रात उनकी आराधना करें। हम और दूसरे ब्राह्मण भी आपके साथ रहकर नित्यप्रति पितामहका पूजन करेंगे। यहाँ आपके बालकके साथ हमारा सख्यसम्बन्ध स्थापित हुआ है, इसलिये यह तीर्थ 'बालसख्य' के नामसे प्रसिद्ध होगा। हमारे वचनसे यह तीर्थ सदा रोगी और भयभीत पुरुषोंको रोग एवं भयसे मुक्त करेगा। जो लोग इस तीर्थमें अपने रोगार्त, भयार्त अथवा ग्रहपीड़ित बालकोंको स्नान करायेंगे, उनके वे बालक सब दोषोंसे रहित हो जायँगे। जो मनुष्य श्रद्धापूर्वक निष्कामभावसे इस तीर्थमें स्नान करेंगे वे उत्तम गतिको प्राप्त होंगे।

ऐसा कहकर वे सभी मुनीश्वर मृकण्ड मुनिकी अनुमति ले अन्य तीर्थोंमें चले गये। तत्पश्चात् पुत्रसहित मृकण्ड मुनिने ज्येष्ठमासकी पूर्णिमाको ज्येष्ठा नक्षत्रमें चन्द्रमाके स्थित होनेपर ब्रह्माजीकी स्थापना की और आलस्य छोड़कर वे दिन-रात श्रद्धापूर्वक उनकी आराधनामें लगे रहे। इससे उन्हें उत्तम गतिकी प्राप्ति हुई। ब्राह्मणो! जो बालक ज्येष्ठमासके ज्येष्ठा नक्षत्रमें वहाँ स्नान करता है, वह एक वर्षतक ग्रहादिजनित पीड़ाका अनुभव नहीं करता है।

मृगपदतीर्थ और विष्णुपदतीर्थका प्रादुर्भाव तथा माहात्म्य, विष्णुपदीमें स्नान और विष्णुपदके स्पर्श आदिका महत्त्व

सूतजी कहते हैं—उसी तीर्थके पश्चिम भागमें परम उत्तम एवं अतिशय पवित्र मृगतीर्थ है, जो समस्त भूतलमें विख्यात है। जो मानव उस तीर्थमें पूर्ण श्रद्धाके साथ चैत्र शुक्ला चतुर्दशीको मध्याह्नकालमें स्नान करते हैं वे समस्त दोषों और पापोंसे युक्त होनेपर भी किसी प्रकार पशु-पक्षियोंकी योनिमें नहीं जाते। जो कृतघ्न, नास्तिक, चोर तथा राजनिन्दक हैं वे भी वहाँ स्नान करके परम गतिको प्राप्त होते हैं।

ऋषियोंने पूछा—सूतनन्दन! उस क्षेत्रमें मृगतीर्थका आविर्भाव कैसे हुआ?

सूतजीने कहा—महर्षियो! पूर्वकालमें उस विशाल वनके भीतर एक दिन बहुत-से महाभयंकर व्याध अपने हाथोंमें धनुष लिये आ पहुँचे। उस समय एक वृक्षके नीचे मृगोंका झुंड विश्वस्त होकर बैठा था। व्याधोंकी दृष्टि उनके ऊपर पड़ी। मृग भी उन व्याधोंको दूरसे ही देखकर भयसे व्याकुल हो भाग चले और पास ही गहरे जलाशयको देख उसीमें समा गये। जलके भीतर प्रवेश करते ही वे सब मृग उसी तीर्थके प्रभावसे मानव-शरीरको प्राप्त हो गये। तब उनसे व्याधोंने पूछा—'भद्रपुरुषो! इस मार्गसे अभी-अभी मृगोंका झुंड आया है, बताइये वह किस मार्गसे निकला है?'

वे मनुष्य बोले—हमलोग ही वे मृग हैं। इस तीर्थके प्रभावसे हमने दुर्लभ मानव-शरीर प्राप्त कर लिया है।

यह सुनकर सब व्याध बड़े विस्मयमें पड़े और उन्होंने भी धनुष-बाण फेंककर उस तीर्थमें स्नान किया। स्नान करते ही वे दिव्य शरीरसे युक्त श्रेष्ठ राजा हो गये। प्राचीन कालमें जहाँ स्नान करके राजा त्रिशंकु उत्तम शरीरको प्राप्त हुए थे, उसी जलाशयमें स्नान करनेके कारण वे वधिक सब पापोंसे मुक्त होकर उत्तम शरीरको प्राप्त हुए।

उस शुभ तीर्थमें विष्णुपद नामसे प्रसिद्ध एक अन्य तीर्थ भी है जो समस्त पातकोंका नाश करनेवाला है। दक्षिणायन आरम्भ होनेपर मनुष्य एकाग्रचित्त हो वहाँ विष्णुपदका पूजन करे और श्रद्धापूर्वक भगवान्‌को आत्मनिवेदन करे। ऐसा करनेवाला पुरुष दक्षिणायनमें मरनेपर भी भगवान् विष्णुके परम पदको प्राप्त होता है, इसमें सन्देह

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

नहीं है। इसी प्रकार उत्तरायण आरम्भ होनेपर भी विधिपूर्वक विष्णुपदका पूजन करके एकाग्रचित्त हो भक्तिभावसे आत्मनिवेदन करे। ऐसा करनेवाला पुरुष भी भगवान् विष्णुके पुण्यधामको प्राप्त होकर सुखी होता है।

ऋषियोंने पूछा—भगवान् विष्णुका चरण उस तीर्थमें कैसे प्राप्त हुआ और वहाँ किस प्रकार आत्मनिवेदन किया जाता है?

सूतजीने कहा—सर्वशक्तिमान् भगवान् विष्णुने जिस समय बलिको बाँधा था, उस समय अपने तीन पगोंसे चराचर प्राणियोंसहित तीनों लोकोंको नाप लिया था। भगवान्के उन तीन पगोंमेंसे पहला पग इसी हाटकेश्वरक्षेत्रमें पड़ा था। दूसरा पग उन्होंने महर्लोकमें रखा। फिर भगवान् चक्रपाणिने जब तीसरा पग रखनेका उद्योग कियां तब उनके अंगुष्ठके अग्रभागसे ब्रह्माण्ड फूट गया और अत्यन्त लघुताको प्राप्त हो गया। फूटे ब्रह्माण्डके उस छिद्रसे निकला हुआ वह जल भगवान्के अंगुष्ठाग्रसे होता हुआ क्रमशः पृथ्वीतलपर आया। चन्द्रमाके समान उज्ज्वल जलसे विभूषित उस तीर्थको लोकमें विष्णुपदी गंगा कहते हैं। इस प्रकार उस क्षेत्रमें जब भगवान् विष्णुका चरण प्राप्त हुआ तब प्राणियोंके सब पापोंका नाश करनेवाली विष्णुपदी नामक एक नदी प्रकट हुई। जो उसमें श्रद्धापूर्वक स्नान करके भगवान् विष्णुके चरणका स्पर्श करता है, वह परमपदको प्राप्त होता है। जो उत्तम श्रद्धासे युक्त हो विष्णुपदीके तटपर श्राद्ध करता है, वह गयामें श्राद्ध करनेका फल पाता है। जो मनुष्य सदा माघमासमें प्रातःकाल उठकर स्नान करता है, वह प्रयागमें स्नानका फल पाता है। जो एक वर्षतक वहाँ निवास करके भक्तिपूर्वक उसमें स्नान करता है, वह मनुष्य मोक्षका भागी होता है। जिसकी हड्डियाँ उस तीर्थके जलमें डाल दी जाती हैं, वह परम गतिको प्राप्त होता है। जो प्याससे पीड़ित होकर बिना भक्तिके भी उस तीर्थके जलमें प्रवेश करते हैं, वे भी पापमुक्त हो शरीरका अन्त होनेके पश्चात् भगवान् विष्णुके जरा-मृत्यु-रहित परम धाममें जाते हैं। फिर जो पर्वकाल उपस्थित होनेपर श्रद्धापूर्वक स्नान करके वेदके ज्ञाता श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको दान देते हैं, उनके लिये क्या कहना है! इसलिये जो मनुष्य अपने कल्याणकी इच्छा रखता है, वह प्रयत्न-पूर्वक विष्णुपदीके जलमें स्नान तथा विष्णुपदका स्पर्श करे।

दक्षिणायन अथवा उत्तरायण प्राप्त होनेपर श्रीविष्णुपदका पूजन करके इस मन्त्रका उच्चारण करे—

षण्मासाभ्यन्तरे मृत्युर्यद्यकस्माद् भवेन्मम।
तत्ते पदं गतिर्मे स्यात् स्यामहं भृत्यतां गतः॥

'भगवन्! यदि छः महीनेके भीतर मेरी अकस्मात् मृत्यु हो जाय तो आपके चरणोंमें ही मुझे आश्रय मिले और मैं आपका सेवक (पार्षद) होऊँ।'

श्रीहरिसे ऐसा कहकर तत्पश्चात् ब्राह्मणोंका पूजन करे और उन्हींके साथ भोजन करे। ऐसा करनेवाला पुरुष उत्तम गतिको प्राप्त होता है।

विष्णुपदीकी अद्भुत महिमा, चण्डशर्माकी शुद्धि

सूतजी कहते हैं—विप्रवरो! पूर्वकालकी बात है। चमत्कारपुरमें उत्तम व्रतका पालन करनेवाले चण्डशर्मा नामसे विख्यात एक ब्राह्मण हो गये हैं, जो रूप और उदारता आदि गुणोंसे सम्पन्न थे। वे जब युवावस्थामें पहुँचे तब किसी वेश्यामें आसक्त हो गये। एक समय आधी रातमें वे प्याससे व्याकुल होकर उठे तो उस वेश्यासे बोले—'प्रिये! मैं पानी पीना चाहता हूँ।' तब उस वैश्याने पानीके भ्रमसे उन निद्राकुल ब्राह्मणको मदिरासे भरा हुआ पुरवा लाकर दे दिया। मुखमें मदिरा जाते ही ब्राह्मण कुपित हो उठे और उस वेश्याको बार-बार धिक्कारते हुए कड़ी फटकार

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

सुनाने लगे—'अरी पापिनी! तूने यह क्या किया। आज मदिरा पीनेसे मेरी ब्राह्मणता निश्चय ही नष्ट हो गयी; अतः मैं आत्मशुद्धिके लिये प्रायश्चित्त करूँगा।' ऐसा कहकर वे दुःखपूर्वक घरसे बाहर निकले और निर्जन वनमें जाकर करुणस्वरमें विलाप करने लगे। तत्पश्चात् प्रातःकाल होनेपर उन्होंने अपने शरीरके सब बाल बनवाकर वस्त्रसहित स्नान किया। तदनन्तर वे श्रेष्ठ ब्राह्मणोंकी सभामें गये और उन्हें प्रणाम करके बोले—'ब्राह्मणो! मैंने जलके धोखेसे मदिरा पी ली है, मुझे दण्ड दीजिये।' तब उन ब्राह्मणोंने बार-बार धर्मशास्त्रका विचार करके कहा—'ब्राह्मण यदि ज्ञान अथवा अज्ञानसे भी मदिरा पी ले तो मदिराके बराबर ही खौलता हुआ घी पी लेनेपर उसकी शुद्धि होती है; अतः यदि तुम आत्मशुद्धि चाहते हो तो यही प्रायश्चित्त करो।' 'बहुत अच्छा, ऐसा ही करूँगा' ऐसी प्रतिज्ञा करके ब्राह्मणने तत्काल घी लेकर उसे पीनेके लिये आगपर तपाया। इतनेमें ही यह समाचार सुनकर उनके पिता-माता भी आ पहुँचे और बोले—'यह क्या, यह क्या बेटा! तुम यह क्या करते हो?'

तब पुत्रने नेत्रोंसे आँसू बहाते हुए रातकी सब घटना कह सुनायी। यह सब सुनकर ब्राह्मण-दम्पतिने उन सब श्रेष्ठ ब्राह्मणोंसे प्रार्थना की, 'मेरे इस पुत्रको धर्मशास्त्रका विचार करके कोई दूसरा प्रायश्चित्त बताइये।' तब उन ब्राह्मणोंने पुनः आदरपूर्वक धर्मशास्त्रका विचार किया और इस प्रकार कहा—'ब्रह्मन्! धर्मशास्त्रमें तो कोई दूसरा उपाय नहीं है। तुम्हें जो उचित प्रतीत हो सो करो।' तब ब्राह्मणने पुत्रसे कहा—'बेटा! तीर्थयात्रा करो, फिर क्रमशः अनेक प्रकारका व्रत करनेसे पवित्रताको प्राप्त होओगे।'

पुत्र बोला—महाभाग! क्या ब्राह्मणोंका बताया हुआ प्रायश्चित्त पवित्रताके लिये पर्याप्त नहीं है, जो आप व्रत आदिका उपदेश करते हैं?

पुत्रका यह निश्चय जानकर पुत्रवत्सला पिता तथा उनकी सती पत्नीने भी मृत्युका निश्चय करके प्रसन्नतापूर्वक अपना सब कुछ ब्राह्मणोंको दान कर दिया। तब माताने कहा—'बेटा! जब हम दोनों अग्निमें प्रवेश कर जायँ उसके बाद तुम मौंजीहोम (मरणान्त प्रायश्चित्त) करना।' ऐसा कहकर वे दम्पति प्रसन्नतापूर्वक मृत्युके लिये अग्निके समीप गये। उनके साथ ही उनका पुत्र भी था। इतनेमें ही वेदोंके पारंगत विद्वान् शाण्डिल्य मुनि तीर्थ-यात्राके प्रसंगसे उस स्थानपर आ पहुँचे और सारी बात सुनकर उन सब ब्राह्मणोंको फटकारते हुए बोले—'अहो! तुम सब लोग अत्यन्त मूढ़ हो; क्योंकि तुम्हारे कारण सुगम प्रायश्चित्तके होते हुए भी आज ये तीन ब्राह्मण व्यर्थ ही मृत्युको प्राप्त हो रहे हैं। कृच्छ्र और चान्द्रायण आदि प्रायश्चित वहाँ दिये जाते हैं, जहाँ श्रीगंगाजी उपलब्ध न हों। यहाँ तो साक्षात् विष्णुपदी गंगा विद्यमान हैं; उसीमें यह स्नान करे तो पापसे शुद्ध हो जायगा।'

तब सब ब्राह्मणोंने शाण्डिल्य मुनिको साधुवाद देते हुए कहा—'मुने! आपका कथन सत्य है।' इसके बाद वे सब लोग ब्राह्मणको समझा-बुझाकर विष्णुपदी गंगाके तटपर ले गये। वहाँ ब्राह्मणने ज्यों-ही मुखमें गंगाजल डालकर कुल्ला किया, त्यों-ही वह शुद्ध हो गया। फिर जब वे उस शोभायमान जलमें स्नान करने लगे, उस समय स्पष्ट स्वरमें आकाशवाणी हुई—'विष्णुपदीका सम्पर्क होनेसे तथा उसके जलमें स्नान और आचमन करनेसे ब्राह्मणदेवता शुद्ध हो गये हैं; अतः अब वे अपने घर लौट जायँ।' यह सुनकर सब लोग हर्ष प्रकट करते हुए अपने-अपने घर चले गये।

सूतजी कहते हैं—ब्राह्मणो! ऐसे प्रभावशाली विष्णुपदी गंगा उस क्षेत्रकी पश्चिम सीमापर विद्यमान हैं, जो सब पापोंका नाश करनेवाली हैं।

~~~o~~~

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth
~~~

हाटकेश्वर-क्षेत्रकी दक्षिणोत्तर सीमाके गोकर्णोंका परिचय, गोकर्ण और यमका संवाद, नरकवर्णन, क्षेत्रसेवनका माहात्म्य

सूतजी कहते हैं—महर्षियो! भूतलपर यमुना नदीके किनारे मथुरा नामसे विख्यात एक महापुरी है, जो अनेक ब्राह्मणोंसे भरी हुई है। वहीं पूर्वकालमें गोकर्ण नामसे प्रसिद्ध एक ब्राह्मण रहते थे, जो वेदाध्ययनसे सम्पन्न और सब शास्त्रोंके पण्डित थे। वहीं उसी नामका और उसी अवस्थाका एक दूसरा ब्राह्मण भी रहता था, जो सब विद्याओंमें पारंगत था। एक दिन यमराजने अपने दूतसे कहा—'दूत!' तुम शीघ्र मथुरा जाओ और वहाँके गोकर्ण नामक श्रेष्ठ ब्राह्मणको यहाँ ले आओ। आज दोपहरके समय उनकी आयु समाप्त हो जायगी। देखना, उसी पुरीमें उस नामके एक दूसरे ब्राह्मण भी हैं, जो दीर्घजीवी हैं; कहीं भूलसे उनको न ले आना।'

यमराजकी आज्ञासे दूत बड़े वेगसे मथुरापुरीमें पहुँचा; परंतु भ्रम हो जानेसे वह दीर्घजीवी गोकर्णको ही पकड़ लाया। तब यमराजने कुपित होकर अपने सेवकसे कहा—'पापी! तुझे धिक्कार है। तू इन दीर्घायु महात्माको ले आया! तूने यह क्या किया। इन्हें शीघ्र ही ले जाकर वहाँ पहुँचा दे; अन्यथा भय है कि बन्धु-बान्धव इनकी देहका दाह-संस्कार न कर दें।'

ब्राह्मण बोले—मैं सौभाग्यवश आपके समीप आ गया हूँ। अब वहाँ लौटकर नहीं जाऊँगा। मैं तो दरिद्रतासे कष्ट पाकर स्वयं ही सदा मृत्युकी इच्छा रखता था।

यमराजने कहा—विप्रवर! यदि पलभर भी आयु शेष हो तो मैं किसी मनुष्यको पृथ्वीसे यहाँ नहीं बुलाता, इसीलिये लोग मुझे धर्मराज कहते हैं। मैं सब प्राणियोंपर पक्षपात छोड़कर समान भाव रखता हूँ। तुम मुझसे कोई वर माँगो। किसी भी देहधारीको मेरा दर्शन व्यर्थ नहीं होता।

ब्राह्मण बोले—देव! यदि मुझे अवश्य ही घर लौटकर जाना है तो मैं पूछता हूँ, उसको बताइये। वही मेरे लिये श्रेष्ठ वर होगा। पापकर्मी मनुष्य, जो इन भयंकर नरकोंका सेवन कर रहे हैं, इनमेंसे किस कर्मसे किसको कौन-सा नरक प्राप्त होता है?

यमराजने कहा—विप्रवर! नरक असंख्य हैं पर उनमेंसे जो मुख्य हैं, केवल उन्हींका परिचय मैं तुम्हें कराऊँगा। यहाँ मुख्य इक्कीस नरक हैं। उनमेंसे पहला रौरव नरक है, जिसमें अत्यन्त तप्त तेलसे भरे हुए कुण्डोंमें प्राणी पकाये जा रहे हैं। इसमें दूसरोंका धन हड़पनेवाले क्षुद्र मनुष्य यातना भोगते हैं। दूसरेका नाम है महारौरव, जिसमें कृतघ्न और गुरुशय्यागामी पापात्मा दाहसे पीड़ित होकर तथा तीखी धारवाले शस्त्रोंसे छिन्न-भिन्न होकर आर्तनाद करते हैं। तीसरे भयदायक नरकका नाम अन्धतम है। जिन नराधमोंने परायी स्त्रियोंको दूषित दृष्टि देखा है, वे जब यहाँ आते हैं तब लोहेके समान मुखवाले पक्षी उनकी दोनों आँखें निकाल लेते हैं। चौथा नरक प्रतप्त नामसे विख्यात है। यहाँ भी पापी जीव यातना भोगकर शुद्ध होते हैं। जिन्होंने गुरुजनों, देवताओं तथा तपस्वियोंकी सदैव निन्दा की है, उन लोगोंकी जिह्वा यहाँ उखाड़ ली जाती है। पाँचवाँ सुप्रसिद्ध नरक विदारक नामवाला है। यहाँ मित्रद्रोही मनुष्य आरेसे चीरे जाते हैं। छठा निकुम्भ नामक नरक है, जो तपायी हुई बालूसे भरा हुआ है और स्वयं भी अग्नि-से तप रहा है। जिन मनुष्योंने पहले बिना किसी अपराधके दूसरे ब्राह्मणोंको प्राणान्तकारी कष्ट पहुँचाया है, वे यहाँ तपी हुई बालूमें भूने जाते हैं। सातवाँ नरक बीभत्सु कहलाता है। वह अत्यन्त गर्हित है। उसमें सब ओरसे मल-मूत्र आदि गंदी वस्तुएँ भरी हुई हैं। जिन दुरात्माओंने राजाके पास जाकर लोगोंकी चुगली खायी है, उनके मुँहमें ये गंदी वस्तुएँ भरकर उन्हें इसी नरकमें डाल दिया जाता है। आठवाँ अधम नरक

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

कुत्सित नामसे प्रसिद्ध है। वह कफ और मूत्र आदि एवं दुर्गन्धयुक्त वस्तुओंसे भरा हुआ है। जिन्होंने गुरु, देवता, अतिथि और विशेषतः अपने कुटुम्बीजनों और सेवकोंको भोजन दिये बिना ही स्वयं भोजन किया है, वे लोग इसमें डाले जाते हैं। द्विजश्रेष्ठ! यह दुर्गम नामका नवाँ नरक है। यह तीखे काँटोंसे भरा हुआ है। इसके भीतर साँप और बिच्छू भी रहते हैं। जिन्होंने एक साथ यात्रा करनेवाले अपने भूखे-प्यासे कष्ट पाते हुए साथीको न देकर अकेले भोजन किया है, उन्हें इस नरकमें रखा जाता है। दसवें नरकका नाम दुस्सह है, जो सब ओरसे तप्त लोहमय खम्भोंसे घिरा हुआ है। जो पापी परायी स्त्रियोंमें तथा मांस-भोजनमें अनुरक्त होते हैं, उन मनुष्योंको यहाँ तप्त लोहमय खम्भोंका आलिंगन करना पड़ता है। ग्यारहवाँ नरक आकर्ष नामसे प्रसिद्ध है। यहाँ तपाये हुए सँड़से रखे रहते हैं। जो मनुष्य स्त्री, ब्राह्मण, गुरु और देवताका धन खाते हैं, उन्हें तपाये हुए सँड़सोंसे पकड़कर सब ओर खींचा जाता है। बारहवें नरकको सन्दंश कहते हैं। इसमें अभक्ष्य भक्षण करनेवाले नराधमोंको लोहेके समान दाँत और मुखवाले गीध नोच-नोचकर खाते हैं। तेरहवें नरकका नाम नियन्त्रक है। उसकी बड़ी ख्याति है। वह सब ओरसे कीटों तथा सुदृढ़ बन्धनोंसे व्याप्त है। जो पापी दूसरोंकी धरोहरको हड़प लेते हैं, वे यहाँ बन्धनोंसे कसकर बाँध दिये जाते हैं और कृमि, बिच्छू तथा कीट आदि उन्हें काटते और खाते हैं। चौदहवाँ नरक अधोमुख कहा गया है। इसका स्वरूप सब नरकोंसे अधिक भयंकर है। जो मनुष्य ब्राह्मणकी हत्या करते हैं, वे यहाँ एक वृक्षकी डालमें बाँधकर नीचे मुँह करके लटका दिये जाते हैं और नीचेसे आग प्रज्वलित करके उन्हें पकाया जाता है। पंद्रहवाँ भीषण नामवाला नरक है, जो जूँ और खटमल आदिसे भरा हुआ है। जो लोग झूठी गवाही देते या झूठ बोलते हैं, उनको तथा अन्य कुकर्मियोंको भी मैंने यहीं स्थान दे रखा है। यह सोलहवाँ नरक क्षुद्भद कहा गया है, जो चारों ओर क्षुधातुर मनुष्योंसे व्याप्त है। जिन द्विजोंने मांस भोजन किये हैं, वे यहाँ भूखसे पीड़ित होकर अपने ही शरीरको काट-काटकर खाते हैं। सत्रहवाँ क्षार नरक है, जो नमकसे भरा हुआ है। यह सब प्राणियोंके लिये बड़ा भयंकर है। जो मनुष्य व्रत भंग करनेवाले तथा पाखण्डी हैं, वे यहाँ आनेपर तीखे शस्त्रोंसे पीस डाले जाते हैं और ऊपरसे उनपर नमक छिड़का जाता है। यह अठारहवाँ नरक निदाघ नामसे प्रसिद्ध है, जो प्रज्वलित अंगारोंसे भरा है। जो मनुष्य शास्त्र, काव्य तथा ब्राह्मण-कन्याको कलंकित करते हैं, वे यहीं अंगारोंके भीतर रखे जाते हैं। उन्नीसवाँ नरक कूटशाल्मलि कहलाता है, जो सब ओरसे तीखे काँटोंसे भरा हुआ है। जो नास्तिक, मर्यादा भंग करनेवाले तथा ब्राह्मणघाती हैं, वे सब मनुष्य यहाँ सदैव चढ़ते और गिरते रहते हैं। बीसवें नरकका नाम असिपत्र वन है। जो दूसरोंके छिद्र देखते, झूठ-कपटसे भरे हुए कार्योंमें संलग्न रहते और शास्त्र बेचते हैं, वे ही इसमें आते हैं। इक्कीसवाँ नरक वैतरणी नामवाली नदी है, जिसे धर्मात्मा और पापी सभीको पार करना पड़ता है। जो मृत्युकालके समय गायकी पूँछ हाथमें लेकर उसका दान करते हैं, वे सुखपूर्वक उस नदीको पार कर जाते हैं। जो मानव गोदान किये बिना ही मर जाते हैं, उन्हें इस दुर्गम नदीको हाथोंसे ही तैरकर पार करना पड़ता है। द्विजश्रेष्ठ! तुमने जो कुछ पूछा है, वह सब वृत्तान्त मैंने तुमसे कह दिया। अब इच्छानुसार धन लेकर घर जाओ।

ब्राह्मण बोले—देव! अब यह बताइये कि कौन-सा कर्म करनेसे मनुष्य नरकमें नहीं जाता।

यमराजने कहा—जो सदा तीर्थयात्रामें तत्पर रहता, देवता और अतिथियोंकी पूजा करता, ब्राह्मणोंके प्रति भक्ति रखता तथा शरणमें आये हुएका पालन करता है, वह कभी भी नरकमें नहीं जाता। जो सर्वदा दूसरोंकी भलाईमें संलग्न रहता, हेमन्त

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

(सर्दी)–में आग तपाता, गरमीमें जल पिलाता और वर्षामें ठहरनेके लिये स्थान देता है, वह कभी नरकका दर्शन नहीं करता है। जो व्रत और उपवासमें तत्पर, शान्तचित्त, जितेन्द्रिय, ब्रह्मचारी तथा सदैव भगवान्‌का ध्यान करनेवाला है, वह मनुष्य भी नरकमें नहीं जाता है। जो अन्न और तिलका दान करता, किसी भी प्राणीकी हिंसा नहीं करता, वेदाध्ययन करके शास्त्रके आज्ञा–पालनमें तत्पर होता, मीठे वचन बोलता तथा सदा धार्मिक चर्चा किया करता है, वह कभी नरकको नहीं देखता।

ब्राह्मण बोले—धर्मराज! यह तो एक मूर्ख भी जानता है कि शुभ कर्ममें तत्पर रहनेवाला पुरुष नरकमें नहीं जाता और पापपरायण मनुष्य स्वर्गमें नहीं जा सकता। मुझे तो सब लोकोंको सुख पहुँचानेवाला वह श्रेष्ठ व्रत, नियम, तीर्थ, जप अथवा होम आदि उपाय बताइये, जिसको स्वल्प मात्रामें करनेपर भी पापी पुरुष भी अपने पापका नाश करके शीघ्र स्वर्गलोकमें जा सके।

यमराजने कहा—द्विजश्रेष्ठ! आनर्त देशमें परम मनोहर एवं सर्वतीर्थमय शुभ हाटकेश्वरक्षेत्र है जो महापातकोंका भी नाश करनेवाला है। जो उस क्षेत्रमें पंद्रह दिन भी भक्तिपूर्वक भगवान् शंकरकी पूजा करता है, वह सब पापोंसे युक्त होनेपर भी भगवान् शिवके लोकमें प्रतिष्ठित होता है। अतः तुम वहीं जाकर भक्तिभावसे भगवान् शंकरकी आराधना करो। इससे अपनी दस पीढ़ियोंके साथ तुम मोक्ष प्राप्त करोगे।

सूतजी कहते हैं—यह उपदेश सुनकर गोकर्णजी ज्योंही अपने घरकी ओर प्रस्थित हुए त्यों ही यमदूत दूसरे गोकर्णको भी साथ लेकर वहाँ आ पहुँचा और शीघ्र ही उसने धर्मराजके सामने उसे उपस्थित किया। तब धर्मराजने प्रसन्न होकर दूतसे कहा—'तुम समय बिताकर इन ब्राह्मण देवताको यहाँ लाये हो, अतः द्वितीय गोकर्णके साथ ही इन्हें भी जल्दी छोड़ दो।' तदनन्तर वे दोनों गोकर्ण ब्राह्मण उसी क्षण एक ही साथ छोड़ दिये गये। फिर दोनोंने सहसा अपने–अपने शरीरमें प्रवेश किया। स्वस्थ होनेपर दोनोंने हाटकेश्वरतीर्थमें यथावत् तपस्या करके भगवान् शंकरकी आराधना की और उसके प्रभावसे सशरीर स्वर्गलोकमें चले गये। जो मनुष्य निष्कामभावसे वहाँ भगवान् शिवकी आराधना करता है वह मोक्षको प्राप्त होता है।

विप्रवरो! इस प्रकार मैंने तुम्हें हाटकेश्वरक्षेत्रका प्रमाण और सीमा आदिका सम्पूर्ण वृत्तान्त कह सुनाया। यहाँ खेती करनेवाले किसान भी परमगतिको प्राप्त होते हैं। फिर जो अपने मनको वशमें रखनेवाले शान्त, दान्त और जितेन्द्रिय साधक हैं उनके लिये क्या कहना है। मनुष्योंकी तो बात ही क्या है, उस क्षेत्रमें मृत्युको प्राप्त हुए कीट, पतंग, पशु–पक्षी और मृग भी निःसन्देह स्वर्गलोकमें जाते हैं। जो भगवान् जनार्दनको अपने हृदयमें स्थापित करके श्रद्धापूर्वक वहाँ रहते हैं, उनकी सद्‌गतिमें सन्देह ही क्या हो सकता है; अतः पूरा प्रयत्न करके सबको उस क्षेत्रका सेवन करना चाहिये।

सिद्धेश्वर लिंगकी महिमा तथा वत्स मुनिके द्वारा षडक्षर–मन्त्रके माहात्म्य एवं मांसाहारकी निन्दा तथा अहिंसाकी महत्ताका वर्णन

सूतजी कहते हैं—विप्रवरो! हाटकेश्वरक्षेत्रमें सिद्धेश्वर नामक लिंग है। उस लिंगके रूपमें वहाँ साक्षात् भगवान् शंकर स्वयं ही प्रकट हैं। वे स्मरण और दर्शन करनेसे सदा सब प्रकारकी सिद्धि देनेवाले हैं। जो मनुष्य पवित्र भावसे भक्तिपूर्वक उन सिद्धेश्वरका दर्शन या स्पर्श करता है, वह दुर्लभ मनोरथको भी शीघ्र प्राप्त कर लेता है। उस क्षेत्रमें पहले स्पर्श और दर्शन करनेसे सैकड़ों पुरुष सिद्धिको प्राप्त हो चुके हैं और कितने ही मनुष्य केवल प्रणाम करनेसे

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

सिद्धिके भागी हुए हैं। पूर्वकालमें जब मैं पिताके घरमें रहता था, मेरे सामने ही एक दिन वहाँ महातेजस्वी वत्स मुनि पधारे। उस समय उनका दर्शन करके मेरे पिताजीने भक्तिभावसे उन्हें प्रणाम किया और अर्घ्य देकर विनयपूर्वक पूछा—'विप्रवर! आपका स्वागत है। आप कहाँसे आये हैं, मेरे लिये यथोचित सेवाके निमित्त आज्ञा कीजिये।'

वत्सजी बोले—सूत! मैं तुम्हारे आश्रमपर चातुर्मास्य व्रत करना चाहता हूँ। यदि तुम मेरी सेवा-शुश्रूषा करो तो यहीं चौमासा करूँ।

लोमहर्षणजीने कहा—ब्रह्मन्! मैं निःसन्देह आपकी आज्ञाका पालन करूँगा।

ऐसा कहकर मेरे पिताजी मुझसे बोले—वत्स! तुम्हें प्रतिदिन इन महर्षिकी सेवा-शुश्रूषा करनी चाहिये। तब मैं विनीतभावसे उनकी सेवा-टहलके सब कार्य करने लगा। वे रातमें मुझे विचित्र-विचित्र कथाएँ सुनाया करते थे। एक समय कथाके अन्तमें मैंने पूछा— भगवन्! समुद्रसहित सम्पूर्ण धरातलको आपने थोड़ी ही अवस्थामें कैसे देखा? जिन द्वीप, समुद्र तथा पर्वतोंकी चर्चा आपने की है, वहाँतक तो मनुष्य मनके द्वारा भी किसी प्रकार नहीं जा सकते। मुनीश्वर! यह किसी तपस्याका प्रभाव है अथवा मन्त्रका पराक्रम है, जिससे आपने सम्पूर्ण भूतलको देख लिया है?

वत्स मुनिने हँसकर कहा—यह तुमने ठीक समझा है। मेरे मन्त्रका ही ऐसा पराक्रम है। मैं प्रतिदिन भगवान् शिवके समीप षडक्षर मन्त्र (**ॐ नमः शिवाय**) का आठ हजार जप करता हूँ, इससे तीनों कालमें मेरी युवावस्था सदा स्थिर रहती है। मुझे भूत और भविष्यका ज्ञान है और मेरा जीवन सदा सुखमय बना रहता है। मेरी आयु लाखों वर्षोंकी हो गयी है, तथापि अभी प्रथम अवस्था (किशोरावस्था) ही दिखायी देती है।

एक समय मेरी स्त्रीकी मृत्यु हो जानेपर जब मैं उसके लिये शोक कर रहा था, तब मेरे सुहृदोंने मुझसे कहा—'अरे भैया! तुम शोक क्यों करते हो? एक दिन हम सभीकी मृत्यु होनेवाली है। इसके लिये रोना क्या है। तुमने अपनी प्रियाको पहलेसे नहीं देखा था, वह अदर्शनसे ही तुम्हें प्राप्त हुई थी और अब पुनः अदर्शनावस्थाको ही चली गयी है। न वह तुम्हारी थी, न तुम उसके। फिर व्यर्थ शोक क्यों करते हो? किसीका किसीके साथ सदा एक स्थानपर निवास नहीं होता। अपने शरीरके साथ भी मनुष्य सदा नहीं रह सकता। फिर इस शरीरसे भिन्न जो दूसरे लोग हैं, उनके साथ सदा संयोग कैसे रह सकता है। जो मरे हुए सम्बन्धी, खोयी हुई वस्तु और बीती हुई बातके लिये शोक करता है, वह दुःखसे दुःख उठाता है।' इस प्रकार वे सब सुहृद् मुझे समझा-बुझाकर घर ले आये। घर आनेपर मैंने यह प्रण किया कि 'जहाँ कहीं भी सर्पको देखूँगा, वहीं उसे डंडेसे मार डालूँगा; क्योंकि मेरी स्त्रीको सर्पने ही काट खाया है।' ऐसा निश्चय करके एक समय मैं घूमता हुआ चमत्कारपुरमें पहुँचा। वहाँ एक कुण्डसे निकलकर पड़े हुए विशाल जल-सर्पको देखा। देखते ही उसे मारनेके लिये मैंने डंडा उठाया, तब उस सर्पने कहा—'पहले मेरी बात सुन लो। फिर तुम्हें जो उचित प्रतीत हो, वह करना। ब्रह्मन्! वे सर्प दूसरे ही होते हैं, जो मनुष्योंको काटते हैं। हम तो पानीके साँप हैं, हमारा केवल रूप ही साँपका होता है, हममें विष नहीं होता।' उसके इस प्रकार कहनेपर भी मैंने डंडेका प्रहार कर ही दिया। उस डंडेका स्पर्श होते ही वह एक तेजस्वी महापुरुषके रूपमें परिणत हो गया। इस आश्चर्यको देखकर मैंने उन महापुरुषसे प्रणाम करके कहा—'प्रभो! मेरा अपराध क्षमा करें, आप कौन हैं?'

तब वे प्रसन्न होकर मुझसे बोले—मेरा वृत्तान्त सुनो। मैं पहले राजा चमत्कारके बनवाये हुए उत्तम नगरमें एक ब्राह्मण था। वहाँ भगवान् सिद्धेश्वरजीका एक उत्तम शिवालय है। किसी समय वहाँ यात्राका महोत्सव था। उस अवसरपर

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

बहुतसे ऋषि-मुनि आये और देवाधिदेव महेश्वरको प्रणाम करके उनके सम्मुख बैठ गये। फिर आपसमें कथा-वार्ता करने लगे। वे सभी दया और धर्मसे युक्त थे और उनमेंसे कितने ही महात्मा उस देवालयमें भक्तिपूर्वक नृत्य करते थे। इस प्रकार जब वहाँ महान् उत्सव हो रहा था, उस समय मैं बहुत-से समवयस्क युवकोंके साथ उस स्थानपर गया। मेरे दुष्ट साथियोंने उस उत्सवमें विघ्न डालनेके लिये मुझे बार-बार प्रेरित किया। तब मैं एक भयंकर आकारवाले विशाल जल सर्पको लेकर आगे बढ़ा और उस महान् जनसमुदायमें उसे फेंक दिया। सर्पको देखकर मृत्युके भयसे व्याकुल हो सब लोग भाग छूटे। वहीं सुमन नामवाले एक तपस्वी भी थे, जो अपने उत्तम शिष्योंके साथ वहाँ आकर समाधिमें स्थित थे। हृदयके भीतर कमलके आसनपर विराजमान उन्हीं वेदाधीश्वर महेश्वरका वे साक्षात्कार कर रहे थे, जो सर्वव्यापी, अविनाशी, सर्वज्ञ, अनिन्द्य, अभेद्य और जरा-मृत्युसे रहित बताये जाते हैं। तपस्वीके सब अंगोंमें रोमांच हो रहा था। उनके नेत्रोंसे आनन्दाश्रुओंकी अजस्र धारा प्रवाहित होकर उन्हें भिगो रही थी। इस प्रकार समाधिस्थ होकर अविचल भावसे बैठे हुए उन महात्माके शरीरको उस सर्पने अपने देहसे लपेट लिया। इसी समय उनका एक शिष्य वहाँ आ गया, जो बड़ा तपस्वी था। उसका नाम श्रीवर्धन था। उसने सर्पके शरीरसे लिपटे हुए गुरुको और पास ही खड़े हुए मुझको देखकर यह जान लिया कि 'इसीने यह दुष्टता की है।' तब उसने कुपित होकर कहा—'यदि मैंने निर्विकल्प चित्तसे महादेवजीका ध्यान किया है, तो उस सत्यसे यह दुष्टात्मा ब्राह्मण ऐसे ही सर्पकी आकृतिवाला हो जाय।' उसके इतना कहते ही मैं तत्क्षण भयंकर सर्पशरीरको प्राप्त हो गया। तदनन्तर समाधिसे विरत होनेपर मुनिने अपने शरीरपर भयंकर आकारवाले सर्पको देखा। फिर सर्पकी ही आकृतिमें स्थित मुझे महान् दुःख उठाते हुए देखा और समीप खड़ी हुई सब जनताको तटस्थ एवं भयसे संत्रस्त पाया, तब उन्होंने ज्ञानदृष्टिसे सब कुछ जान लिया और मेरे प्रति दयाभावसे युक्त हो अपने शिष्यसे कहा—'श्रीवर्धन! तुमने यह सब कर्म करके मेरा प्रिय नहीं किया है। इस दीन ब्राह्मणको शाप दिया। यह तपस्वियोंका धर्म नहीं है। जो मान और अपमानमें समान रहे, ढेला-पत्थर और सोनेको एक-सा समझे तथा शत्रु और मित्रके साथ एक-सा स्नेहपूर्ण बर्ताव करे, वही तपस्वी सिद्धिको प्राप्त होता है। तुमने अज्ञानवश इस ब्राह्मणको शाप दे दिया है, यह तुम्हारा बालचापल्य ही है। मेरी आज्ञासे इसके प्रति पुनः तुम्हें अपना प्रमाद प्रकट करना चाहिये।' यह सुनकर शिष्य श्रीवर्धनने हाथ जोड़ गुरुको प्रणाम करके कहा—'मैंने ज्ञान अथवा अज्ञानसे जो बात कह दी है, वह निःसन्देह वैसी ही होगी।' गुरु बोले—'वत्स! मैं जानता हूँ, तुम्हारी वाणी कभी झूठी नहीं हो सकती, तथापि मैं यह बार-बार कहता हूँ कि तपस्या और धर्मसे हीन पुरुषोंकी जो चाल होती है, वही तपस्वी मुनियोंकी नहीं होती। उन यतियोंके लिये तो एकमात्र क्षमा ही सिद्धि देनेवाली बतायी गयी है। अतः तपस्वीजनोंको सदा क्षमाका आदर्श सामने रखकर ही बर्ताव करना चाहिये। पापीके प्रति स्वयं भी पापी न बने, यही सनातन बुद्धि है। जो पापात्मा पाप करता है, वह स्वयं ही नष्ट हो जाता है। जो पापीके प्रति स्वयं भी पापपूर्ण बर्ताव करता है, वह उत्तम ज्ञानसे रहित है; क्योंकि वह जलेको ही जलाता है और मरे हुएको ही मारता है। जो अपना उपकार करनेवाले पुरुषोंके प्रति ही साधुतापूर्ण बर्ताव करता है, उसकी उस साधुतामें क्या विशेषता है। जो अपनी बुराई करनेवालोंके प्रति भी साधुभाव रखता है, वही जनताद्वारा साधु कहा जाता है*।' अपने

* उपकारिषु यः साधुः साधुत्वे तस्य को गुणः। अपकारिषु यः साधुः स साधुः कीर्त्यते जनैः॥
(स्क० पु०, ना० २९। १८२-१८३)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

शिष्यसे ऐसा कहकर गुरुजीने परम दयासे युक्त हो मुझसे कहा—'सर्प! मेरे शिष्यकी बात झूठी नहीं हो सकती; अतः अब तुम कुछ कालतक सर्पके शरीरमें ही स्थित रहकर अपने उद्धारकी प्रतीक्षा करो।' तब मैंने पूछा—'मुनिश्रेष्ठ! मेरा शाप कब निवृत्त होगा।' उन्होंने उत्तर दिया—'जो शिवालयमें एक क्षण भी संगीत आदिका आयोजन करता है, उसके धर्मकी संख्या नहीं बतायी जा सकती, इसी प्रकार जो उस महोत्सवमें विघ्न डालता है, उसके पापकी भी कोई गणना नहीं कर सकता। इसलिये तुम भी पापी ब्राह्मण हो, अतः तुम्हारी मुक्ति इस समय नहीं होगी; तथापि मेरी एक बात सुनो। जो श्रद्धापूर्वक भगवान् शिवके षडक्षर मन्त्रका जप करता है, उसका ब्रह्महत्याजनित पाप भी नष्ट हो जाता है। दस बार षडक्षर मन्त्रके जपसे एक दिनका और बीस बारके जपसे मनुष्य एक वर्षका पाप धो डालता है, इसलिये अब तुम जलमें रहकर आदरपूर्वक इस मन्त्रका जप करो, जिससे जन्मान्तरमें किया हुआ तुम्हारा पाप भी क्षीण हो जाय। जब वत्स नामवाले एक ब्राह्मण तुम्हें रोषपूर्वक डंडेसे मारेंगे, उस समय तुम्हारा उद्धार हो जायगा।' इतना कहकर वे मुनि चुप हो गये और मैं इस जलाशयमें रहकर षडक्षर मन्त्रका जप करता रहा। द्विजश्रेष्ठ! आज तुम्हारे प्रसादसे मैं सर्पयोनिसे मुक्त हो गया। अतः शीघ्र बताओ मैं तुम्हारा कौन-सा प्रिय कार्य करूँ?

तब मैंने उस दिव्यरूपधारी सर्पसे कहा—'भगवन्! मुझे कुछ कल्याणकारी उपदेश दीजिये, जिससे मुझे अपनी प्रिय पत्नीके विनाशका दुःख न हो तथा निर्धनता, रोग और शत्रुसे पराजयका कष्ट भी न हो।' यह प्रश्न सुनकर उस श्रेष्ठ पुरुषने कहा—द्विजवर! भगवान् शिवका षडक्षर मन्त्र मनुष्योंका सब पाप और अमंगल हर लेनेवाला है। ब्रह्मन्! तुम रात-दिन उस मन्त्रका यथाशक्ति जप करते रहो। उसके जपसे सब पापोंसे मुक्त होकर तुम निःसन्देह अभीष्ट वस्तु प्राप्त करोगे। मैंने भी सदैव बड़े-बड़े पाप किये हैं, तथापि उस मन्त्रके माहात्म्यसे मुझे परम ऐश्वर्ययुक्त लोक प्राप्त हुए हैं। विप्रवर! यह परम गोपनीय मन्त्र मैंने तुमको बताया है, किसी नास्तिकको इसका उपदेश नहीं करना चाहिये। सब वेदोंमें अहिंसाको परम धर्म बताया गया है। विशेषतः ब्राह्मणके लिये तो हिंसा सर्वथा त्याज्य है। इसलिये तुम सर्पका वध त्याग दो। जो समस्त चराचर प्राणियोंको अभय देता है, वह इहलोक और परलोकमें सदा सब प्रकारके सुखसे सम्पन्न होता है। भगवान् शंकरके समान कोई देवता नहीं है, गंगाके समान दूसरी नदी नहीं है, हिंसाके समान पाप नहीं है और दयासे बढ़कर कोई धर्म नहीं है*।

तदनन्तर वह अहिंसारूप धर्म सुनकर मैंने परलोकके भयसे दुःखित होकर उस ब्राह्मणसे पूछा—'भगवन्! मैंने बड़े-बूढ़ोंके मुखसे यह बात सुनी है कि राजा यदि वनमें मृगोंका वध करे, तो उसे दोष नहीं लगता है तथा चिकित्सा-शास्त्रके विद्वान् कहते हैं कि मांस खानेवाले लोग विशेष पुष्ट तथा दीर्घजीवी होते हैं। अतः इस विषयमें मुझे परम हितकारक बात बताइये। आपके मुँहसे जो कोई बात निकलेगी, उसका मैं सन्देह-रहित होकर पालन करूँगा।' मेरी बात सुनकर वे पुनः इस प्रकार बोले—'द्विजश्रेष्ठ! ऐसी बात न कहो। यह सब तो मांसलोभी दुष्ट पापात्माओंका मत है। अहो! संसारमें वे निर्दयी, पापात्मा एवं दुष्ट पुरुष अत्यन्त शोचनीय हैं, जो सब दोषोंकी खानरूप मांसका आस्वादन

* चराचराणां भूतानामभयं यः प्रयच्छति। सर्वदा सर्वसौख्याढ्यो जायते दिवि चेह च॥
नास्ति भर्गसमो देवो नास्ति गंगासमा नदी। नास्ति हिंसासमं पापं नास्ति धर्मो दयापरः॥
(स्क० पु०, ना० २९। २२०-२२१)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

करते हैं। मांस न तो आयु बढ़ानेका साधन है और न आरोग्य तथा बलका ही हेतु है। उसे जो गुणकारक बताया जाता है, वह सब झूठ है। इसका दृष्टान्त मुझसे सुनो—मांसभोजी मनुष्य भी रोगसे पीड़ित, दुर्बल और स्वल्पायु देखे जाते हैं तथा जो मांस नहीं खाते, वे भी पृथ्वीपर नीरोग, दीर्घायु और हृष्ट-पुष्ट अंगोंवाले देखे जाते हैं। इसलिये मांसको सर्वथा त्याग देना चाहिये। जो जीवनकी इच्छा रखनेवाले जीवोंके मांस खाता है, वह घोर नरकमें जाता है और वहाँ उन्हीं प्राणियोंद्वारा वह स्वयं भक्षण किया जाता है। मांसकी उत्पत्ति घास, काठ या पत्थरसे नहीं होती, किसी जीवकी हिंसा करनेपर ही मांस मिलता है, अतः उसे सर्वथा त्याग देना चाहिये *। विद्वान् पुरुषोंको उचित है कि वे सब जीवोंको अपने ही समान देखें और पूरी शक्ति लगाकर उनकी रक्षा करें। जो जीवोंको मारता है, जो मारनेकी अनुमति देता है, जो उसे काट-काटकर अलग करता है, जो खरीदता और बेचता है, जो उसे पकाकर तैयार करता है, जो उसे परोसता है तथा जो खानेवाला है—ये आठ प्रकारके व्यक्ति घातक (हिंसक) माने गये हैं। खरीदनेवाला धनसे मारता है, खानेवाला भक्षणके द्वारा हत्या करता है तथा घातक वध और बन्धनके द्वारा मारता है। इस प्रकार जीवोंका तीन तरहसे वध होता है। जो मन, वाणी और क्रियाद्वारा किसी भी जीवकी हिंसा नहीं करता, वह जरा-मृत्युसे रहित परम धामको प्राप्त होता है†। शाक, मूल और फलका भोजन करनेवाला ब्रह्मचर्यपरायण पुरुष भी यदि हिंसा-कर्ममें तत्पर है, तो उसे अपने नियम और व्रतका कोई फल नहीं मिलता। एक मनुष्य सौसे भी अधिक वर्षोंतक बड़ी भारी तपस्या करता है और दूसरा दयासे प्रेरित होकर केवल अहिंसा-व्रतका पालन करता है तो इन दोनोंमें जो दयालु पुरुष है, वही श्रेष्ठ है। जो मानव-दया-धर्मसे युक्त है, वह जिस-जिस वस्तुकी कामना करता है, दुर्लभ होनेपर भी उसे अवश्य प्राप्त कर लेता है।' ऐसा कहकर वे महात्मा पुरुष मेरे देखते-देखते उत्तम विमानपर आरूढ़ होकर स्वर्गलोकको चले गये। महामते! षडक्षर मन्त्रके माहात्म्यसे गन्धर्वलोग उनका यशोगान और किन्नर स्तुति करते थे।

उन महात्माके चले जानेपर मैंने भक्तिपूर्वक शिवमन्त्रकी दीक्षा ग्रहण की और तीनों सन्ध्याओंमें श्रद्धायुक्त हो भगवान् सिद्धेश्वरके समीप बैठकर मैं प्रतिदिन दस हजार मन्त्रका जप करने लगा। इसीसे मेरी युवावस्था स्थिर हो गयी है और मुझे लोकान्तरोंका ज्ञान एवं आकाशगमनकी शक्ति प्राप्त हो गयी है। द्वापरका अन्त होनेपर मैं सिद्धेश्वरजीका दर्शन करूँगा और सदा शिवलोकको प्राप्त होऊँगा। यह मैंने सत्य बात बतलायी है। सूतनन्दन! मैंने यह मोक्षदायक षडक्षरमन्त्रका माहात्म्य तुम्हें सुनाया है। जो मनुष्य उत्तम श्रद्धासे युक्त हो इसका सदा श्रवण करेगा, वह जन्मसे लेकर मृत्युतकके समस्त पापोंसे मुक्त हो जायगा। महाभाग! तुम भी इस मन्त्रका सदा जप किया करो।

सूतजी कहते हैं—महर्षियों! इस प्रकार पहले सद्गुरुके मुखसे सुना हुआ यह षडक्षर-माहात्म्य मैंने तुम्हारे समक्ष कहा है।

---

* न हि मांसं तृणात् काष्ठादुत्पलादपि जायते। हते जन्तौ भवेन्मांसं तस्मात्तत्परिवर्जयेत्॥

(स्क० पु०, ना० २९। २३२)

† हन्ता चैवानुमन्ता च विशस्ता क्रयविक्रयी। संस्कर्ता चोपहर्ता च खादकश्चाष्टघातकाः॥
धनेन क्रयकृद्धन्ति भक्षणेन च खादकः। घातको वधबन्धाभ्यामित्येवं त्रिविधो वधः॥
कर्मणा मनसा वाचा यो हिनस्ति न किञ्चन। स प्राप्नोति परं स्थानं जरामरणवर्जितम्॥

(स्क० पु०, ना० २९। २३५—२३७)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

सप्तर्षि-आश्रमकी महिमा, सप्तर्षियोंका हाटकेश्वरक्षेत्रमें आगमन

सूतजी कहते हैं—द्विजवरो! हाटकेश्वरक्षेत्रमें सप्तर्षियोंका आश्रम है, जो समस्त कामनाओंको देनेवाला है। जो मनुष्य श्रावणमासकी पूर्णिमाको वहाँ स्नान करता है, वह मनोवांछित फलको पाता है। जो कन्द, मूल, फल और शाकद्वारा वहाँ श्राद्ध करता है, वह राजसूय तथा अश्वमेध दोनों यज्ञोंका फल पाता है। भाद्रपदमासके शुक्ल पक्षकी पंचमी तिथिमें वहाँ स्नान करके पुष्प, धूप और चन्दन आदिके द्वारा ऋषियोंका भक्तिपूर्वक पूजन करना चाहिये। पूजनका मन्त्र इस प्रकार है—

ॐ अत्रये नमः, ॐ वसिष्ठाय नमः, ॐ कश्यपाय नमः, ॐ भरद्वाजाय नमः, ॐ गौतमाय नमः, ॐ कौशिकाय नमः, ॐ जमदग्नये नमः, ॐ अरुन्धत्यै नमः।

इस प्रकार उच्चारण करके पूजन करना चाहिये।

ब्रह्मर्षियो! पूर्वकालकी बात है। एक समय संसारमें बारह वर्षोंतक वर्षा नहीं हुई। जीविकाकी साधनभूत समस्त ओषधियों (अन्न और फल आदि)-का नाश हो गया। इससे सब लोग भूखकी पीड़ासे व्याकुल हो गये। इस प्रकार अन्नका विनाश हो जानेसे जब सारा भूमण्डल भूखसे पीड़ित हो गया, तब सप्तर्षि लोग भी क्षुधासे व्याकुल होकर इधर-उधर भ्रमण करने लगे। घूमते-घूमते वे सब लोग वर्षादर्भि नामक राजाके राज्यमें गये। उनका आगमन सुनकर राजा वहाँ आये और इस प्रकार बोले—'मैं आपलोगोंको अन्न, ग्राम और धान-जौ आदि दूँगा।'

ऋषि बोले—राजन्! राजाका प्रतिग्रह बड़ा भयंकर होता है। वह स्वादमें मधुके समान है, किंतु परिणाममें विषके तुल्य होता है। अतः पुण्यात्मा ब्राह्मणोंको उसे दूरसे ही त्याग देना चाहिये। इसलिये तुम्हारा कल्याण हो, तुम घर लौट जाओ, हम तुम्हारा धन कदापि नहीं लेंगे।

ऐसा कहकर ऋषिलोग चमत्कारपुरकी ओर चल दिये। तब राजाने गूलरके फलोंमें सोना भरकर उन फलोंको सप्तर्षियोंके मार्गमें बहुत आगे रखवा दिया। तब वे मुनि पृथ्वीपर गिरे हुए गूलरके फलोंको देखकर बड़े प्रसन्न हुए और भूखसे पीड़ित होनेके कारण उन सबको उठाने लगे। उन्हें भारी देख अत्रिने एक फल तोड़कर देखा और उसमें सुवर्ण देखकर कहा—'हमलोगोंकी ज्ञानशक्ति मन्द नहीं हुई है, हमारी बुद्धि मूढ़ नहीं है, जो कि इन फलोंको सुवर्णसे भरे हुए जानकर भी हम ग्रहण कर लें। अतः इन सुवर्णपूरित फलोंको दूरसे ही त्यागकर चल देंगे। एक मनुष्य सम्पूर्ण पृथ्वीका स्वामी है और दूसरा केवल निष्कामभावसे रहनेवाला अकिंचन है। इन दोनोंमें जो निष्काम पुरुष है, वही सौभाग्यशाली एवं श्रेष्ठ है।'

जमदग्नि बोले—जो अधम ब्राह्मण धन पाकर शोक करनेकी जगह प्रसन्न होता है, वह मन्दबुद्धि उससे होनेवाले नरकको नहीं देखता। दान लेनेमें समर्थ होकर भी जो उससे निवृत्त हैं, उन्हें वही लोक मिलता है, जो दाताओंको मिलता है।

कश्यपने कहा—मुने! यह जो धनका संग्रह प्राप्त हुआ है, सो महान् अनर्थरूप है; क्योंकि ऐश्वर्यसे मोहित चित्तवाला मानव आत्मकल्याणसे वंचित हो जाता है। अर्थसम्पत्ति मोहमें डालनेवाली है और मोह नरकमें गिरानेवाला है। अतः कल्याणकी इच्छा रखनेवाला पुरुष धनको प्रयत्नपूर्वक त्याग दे। धनके द्वारा जिस धर्मका साधन किया जाता है, वह नाशवान् बताया गया है और तपस्याद्वारा जिस धर्मका साधन किया जाता है, वह मोक्ष देनेवाला होता है, ऐसा मेरा विचार है।

भरद्वाजजी बोले—बुढ़ापेसे जीर्ण होनेवाले पुरुषके दाँत और केश जीर्ण हो जाते हैं, आँख और कान भी जीर्ण हो जाते हैं, परंतु उसकी

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

तृष्णा तरुण होती जाती है। जैसे पूरे शरीरके बढ़नेके साथ-साथ प्रत्येक अंग भी वृद्धिको प्राप्त होता है, उसी प्रकार तृष्णा भी धनके बढ़नेके साथ-साथ बढ़ती रहती है। तृष्णाका कहीं अन्त नहीं है। उसे पूर्ण करना भी बहुत कठिन है, वह अपने साथ सैकड़ों दुःख लिये चलती है और उसके द्वारा प्रायः अधर्म ही होता है। अतः तृष्णाको सर्वथा त्याग देना चाहिये।[१]

गौतमने कहा—जिसका मन सन्तुष्ट है, उसके लिये सर्वत्र सम्पत्तियाँ हैं। जिसने अपने पैरोंमें जूता पहन रखा है, उसके लिये सारी पृथ्वी ही चमड़ेसे आच्छादित है। सन्तोषरूपी अमृतसे तृप्त हुए शान्त चित्तवाले मनुष्योंको जो सुख प्राप्त होता है, वह धनके लोभमें पड़कर इधर-उधर दौड़ लगानेवाले लोगोंको कहाँसे मिल सकता है। असन्तोष सबसे महान् दुःख है और सन्तोष ही महान् सुख है। अतः सुखकी इच्छा रखनेवाले पुरुष सदैव सन्तुष्ट रहे।[२]

विश्वामित्र बोले—किसी वस्तुकी इच्छा रखनेवाले पुरुषकी जब एक कामना पूरी हो जाती है, तब दूसरी वस्तुकी तृष्णा उसे बाणके समान बींधने लगती है।

वसिष्ठजीने कहा—कामना रखनेवाला पुरुष सहस्रों कामनाएँ पाकर भी कभी सन्तुष्ट नहीं होता। जैसे घीकी आहुति देनेसे अग्नि प्रज्वलित होती है, उसी प्रकार उसकी इच्छा रखनेवाला पुरुष मोहग्रस्त होनेके कारण कभी सुख नहीं पाता।

अरुन्धती बोलीं—जैसे अनन्त मृणालतन्तुएँ कमलनालमें जाकर स्थित हैं, उसी प्रकार देहधारियोंकी देहमें विद्यमान तृष्णा अनेक अनर्थोंका आश्रय है, खोटी बुद्धिवालोंके लिये जिसका त्याग करना अत्यन्त कठिन है, जो वृद्ध होनेपर भी स्वयं बूढ़ी नहीं होती तथा जो प्राणान्तकारी रोगके समान है, उस तृष्णाका त्याग कर देनेवाले पुरुषको ही सुख मिलता है।[३]

चण्डा बोली—मेरे ये स्वामीलोग जब इस धनसे सर्पकी भाँति डरते हैं, तो मुझे भी उस धनसे क्यों नहीं भय होगा।

पशुमुखने कहा—सदा धर्मपरायण विद्वान् पुरुष जैसा आचरण करते हैं, अपने हितकी इच्छा रखनेवाले विज्ञपुरुषको भी वैसा ही आचरण करना चाहिये।

सूतजी कहते हैं—ऐसा कहकर वे सप्तर्षिगण उन सुवर्णगर्भित फलोंको वहीं छोड़कर अन्यत्र चले गये। तत्पश्चात् उन्होंने चमत्कारपुरके क्षेत्रमें प्रवेश किया। वहाँ पहुँचते ही उन्हें सहसा अपने सामने आया हुआ शुनोमुख नामक संन्यासी दिखायी दिया। तब उसीके साथ वे किसी वनके भीतर गये। वहाँ जानेपर उन सबने कमलोंसे सुशोभित एक सुन्दर सरोवर देखा। तब भूखसे पीड़ित होनेके कारण उन्होंने उस पोखरेसे बहुतेरे मृणाल निकाले और किनारेपर रखकर सन्ध्या-तर्पण आदि पुण्यकर्मोंमें लग गये। तदनन्तर वे सब लोग जलसे निकलकर एक-दूसरेसे मिले। तब वहाँ उन मृणालोंको देखकर इस प्रकार कहने लगे।

ऋषि बोले—अहो! हम भूखसे पीड़ित हैं। इस दशामें भी किस निर्दयीने हमारे समस्त मृणाल इस स्थानसे चुरा लिये हैं।

१- अनन्तपारा दुष्पूरा तृष्णा दुःखशतावहा। अधर्मबहुला चैव तस्मात्तां परिवर्जयेत्॥
(स्क० पु०, ना० ३२। ४५)

२- सर्वत्र सम्पदस्तस्य सन्तुष्टं यस्य मानसम्। उपानद्गूढपादस्य ननु चर्मावृतैव भूः॥
सन्तोषामृततृप्तानां यत्सुखं शान्तचेतसाम्। कुतस्तद्धनलुब्धानामितश्चेतश्च धावताम्॥
असन्तोषं परं दुःखं सन्तोषं परमं सुखम्। सुखार्थी पुरुषस्तस्मात् सन्तुष्टः सततं भवेत्॥
(स्क० पु०, ना० ३२। ४७—४९)

३- या दुस्त्यजा दुर्मतिभिर्या न जीर्यति जीर्यतः। याऽसौ प्राणान्तको रोगस्तां तृष्णां त्यजतः सुखम्॥
(स्क० पु०, ना० ३२। ५७)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

शुनोमुखने कहा—जिसने इन मृणालोंको चुराया है, वह साम आदि वेदोंको पढ़े, अतिथिप्रेमी गृहस्थ हो तथा निरन्तर सत्य बोले।

ऋषि बोले—वाह! आपने जो शपथ किये हैं, वे तो द्विजातियोंको अभीष्ट ही हैं। अतः यह निश्चय हो गया कि इन मृणालोंकी चोरी श्रीमान्ने ही की है।

शुनोमुखने कहा—निश्चय मैंने ही आपलोगोंके मृणाल चुराये हैं। आप मुझे इन्द्र जानें। द्विजवरो! आपमें लोभका अभाव देखकर मैं बहुत सन्तुष्ट हूँ। अतः आप मेरे साथ शीघ्र स्वर्गलोकमें पधारें।

ऋषि बोले—देवराज! हम तो मोक्षमार्गके पथिक हैं। हमारे मनमें स्वर्गकी लिप्सा नहीं है। अतः इस तीर्थमें मोक्षके लिये हम तपस्या करेंगे।

जमदग्निने कहा—सुरेश्वर! हमने मृणालोंसे ही जीवन निर्वाह करते हुए समुद्रपर्यन्त समूची पृथ्वीकी परिक्रमा की है। अब हमारे साथ आपका जो समागम हुआ है, इससे आपका ही कल्याण हो। आप यहाँसे स्वर्गलोकको पधारें।

इन्द्र बोले—उत्तम व्रतका पालन करनेवाले मुनीश्वरो! मेरा दर्शन कभी व्यर्थ नहीं जाता। इसलिये आपलोग अपनी कोई अभीष्ट वस्तु मुझसे ग्रहण करें।

ऋषियोंने कहा—इन्द्र! इस पृथ्वीपर हमारे नामसे यह आश्रम विख्यात हो और यहाँ आनेवाले मनुष्योंके सब पातकोंका नाश करनेवाला हो। हम सदा यहीं तपस्याके लिये तबतक निवास करेंगे, जबतक कि हमें सनातन-मोक्षकी प्राप्ति नहीं हो जाती।

इन्द्र बोले—सप्तर्षियो! आपलोगोंका यह आश्रम तीनों लोकोंमें विख्यात होगा। जो जिस कामनाको मनमें लेकर श्रावणकी पूर्णिमाको यहाँ श्राद्ध करेगा, वह उस मनोरथको अवश्य प्राप्त करेगा। जो मनुष्य निष्कामभावसे यहाँ श्राद्ध अथवा दान करेगा, वह निस्सन्देह मोक्ष प्राप्त कर लेगा। जो आपलोगोंके शुभ आश्रमपर देहत्याग करेंगे, वे पापी होनेपर भी परम गतिको प्राप्त होंगे। जो मनुष्य एकाग्रचित्त हो यहाँ इंगुदी, बेर अथवा बेल आदिसे भी पितरोंके लिये श्राद्ध करेगा, वह सब पापोंसे मुक्त हो किन्नरगणोंके मुखसे अपनी स्तुति सुनता हुआ देवदुर्लभ परम सिद्धिको प्राप्त करेगा।

ऐसा कहकर इन्द्रदेव सब ऋषियोंसे प्रशंसित हो वहाँसे अन्तर्धान हो गये तथा वे सप्तर्षि वहीं रहने लगे। तदनन्तर दीर्घकाल व्यतीत होनेपर उन्होंने भी भारी तपस्या करके जरा-मृत्युरहित परमपद प्राप्त कर लिया। सप्तर्षियोंने अपने आश्रमपर त्रिशूलधारी भगवान् शिवके लिंगमय स्वरूपकी जो स्थापना की है, उसके दर्शनमात्रसे मनुष्य पापमुक्त हो जाता है। जो भक्तिपूर्वक पुष्प, धूप और चन्दन आदिसे उसका पूजन करता है, वह अवश्य मोक्षको प्राप्त होता है।

~~~०~~~

अगस्त्य-आश्रममें शिव-पूजा आदिका माहात्म्य

सूतजी कहते हैं—ब्राह्मणो! हाटकेश्वरक्षेत्रमें एक दूसरा आश्रम महर्षि अगस्त्यका है। वहाँ साक्षात् विश्वात्मा भगवान् महेश्वर निवास करते हैं। वहाँ चैत्रमासके शुक्ल पक्षकी चतुर्दशी तिथिको स्वयं भगवान् सूर्य आकर देवताओंके स्वामी महादेवजीकी पूजा करते हैं। जो कोई भी मनुष्य वहाँ भक्तिपूर्वक भगवान् शिवकी पूजा करता है, वह उत्तम लोकोंमें जाता है और जो वहाँ श्रद्धापूर्वक श्राद्ध करता है, उसके पितर उसी प्रकार तृप्त होते हैं, जैसे पितृमेध यज्ञसे उन्हें तृप्ति होती है। जिस समय विन्ध्याचल पर्वतने बढ़कर सूर्यदेवका मार्ग रोक लिया, उस समय वे सूर्यदेव ब्राह्मणका रूप धारण करके चमत्कार नामक नगरके क्षेत्रमें महर्षि अगस्त्यके आश्रमपर गये और बोले—'मुनिश्रेष्ठ! आज मैं आपके यहाँ अतिथिके रूपमें आया हूँ।'

अगस्त्यजीने प्रसन्नतापूर्वक कहा—मुने! स्वागत

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth
~~~

है, स्वागत है। आपको जो अभीष्ट हो, वह वस्तु बतावें; मैं उसे दूँगा।

सूर्यदेव बोले—ब्रह्मन्! मैं सूर्य हूँ, ब्राह्मणके रूपसे आपके सामने आया हूँ। पर्वतोंमें श्रेष्ठ सुमेरुगिरिके प्रति ईर्ष्या होनेके कारण विन्ध्यपर्वत मेरा मार्ग रोककर खड़ा है; इसलिये आप साम आदि उपायोंसे उस पर्वतको रोकें। जिससे मेरी गति भंग होनेके कारण अतिकाल न होने पावे।

अगस्त्यजीने कहा—दिवाकर! मैं उस बढ़ते हुए कुल पर्वतको रोक दूँगा। आप अपने स्थानको पधारिये।

उनकी आज्ञा पाकर सूर्यदेव अपने लोकको चले गये। इधर अगस्त्य मुनि शीघ्र ही जाकर विन्ध्याचल पर्वतसे आदरपूर्वक बोले—'पर्वतश्रेष्ठ! तुम मेरी आज्ञासे शीघ्र ही लघु रूप धारण करो। इस समय मेरा विचार दक्षिणके तीर्थोंमें स्नान करनेको हुआ है। किंतु यह कार्य तुम्हारे ही अधीन है, इसलिये जैसा उचित जान पड़े वैसा करो।' महर्षि अगस्त्यका यह वचन सुनकर विन्ध्यपर्वत तत्काल विनीतभावसे नीचा हो गया। तब उस पर्वतको पार करके दक्षिण किनारे पहुँचकर अगस्त्यजीने कहा—'गिरिश्रेष्ठ! जबतक मैं पुनः लौट न आऊँ, तबतक तुम्हें सदा इसी स्थितिमें रहना चाहिये।' अगस्त्य मुनिके शापसे डरा हुआ वह श्रेष्ठ पर्वत पुनः लौट आनेकी प्रतीक्षामें बढ़ नहीं सका। विप्रवरो! अगस्त्य मुनि तभीके गये हुए आजतक उस मार्गसे नहीं लौटे। वे अब भी दक्षिण दिशामें ही स्थित हैं। उन्होंने लोपामुद्राको भी वहीं बुला लिया और सूर्यदेवका आवाहन करके आदरपूर्वक कहा—'उष्णरश्मे! आपके कहनेसे मैंने अपना आश्रम छोड़ दिया है परंतु वहाँ मैंने जो शिवलिंग स्थापित किया है, उसकी नित्यपूजा आपको करनी चाहिये।'

सूर्यदेव बोले—मुने! मुझे स्वीकार है, मैं तुम्हारे द्वारा स्थापित शिवलिंगका पूजन करूँगा और दूसरा कोई भी जो पुरुष उस दिन उस शिवलिंगकी पूजा करेगा, वह मेरे लोकमें आकर पुण्यका भागी होगा।

सूतजी कहते हैं—इसी कारण भगवान् सूर्य चैत्रमासके शुक्लपक्षकी चतुर्दशी तिथिको उस स्थानपर सदैव उपस्थित होते हैं।

दुर्वासा-लोमहर्षण-संवाद, मन्त्रसिद्धिकी विधि

ऋषियोंने पूछा—सूतनन्दन! मन्त्रका जप किस प्रकार सिद्ध होता है?

सूतजी बोले—महर्षियो! पूर्वकालमें दुर्वासा मुनिके सम्मुख इस विषयका वर्णन करते हुए पिताजीके मुखसे जो कुछ मैंने सुना है, वह बतलाता हूँ।

दुर्वासाजीने पूछा—सूतजी! मैं किसी अभीष्ट मन्त्रको सिद्ध करना चाहता हूँ, उसकी सिद्धिके लिये जो शास्त्रोक्त विधान हो, वह बताइये।

लोमहर्षण बोले—मुने! मन्त्रोंका साधन सबके लिये कष्टदायक, दोषयुक्त तथा अनेक प्रकारके विघ्नोंसे व्याप्त रहता है। अतः यदि आप मन्त्रके लिये सिद्धि चाहते हैं तो चमत्कारपुरके क्षेत्रमें चले जाइये। वहाँ महर्षि अगस्त्यजीके द्वारा निर्मित चित्रेश्वरी पीठ है। वह हृदयस्थित मन्त्रोंकी तत्काल सिद्धि करनेवाला पीठ बताया गया है। वहाँ न तो कोई विघ्न आता है और न किसी प्रकारका दोष ही प्राप्त होता है। देवताओंके वरदानसे वहाँ कोई भी मन्त्र सिद्ध हुए बिना नहीं रहता। वह सिद्धपीठ चारों युगोंके लिये हितकर है और जो वहाँ रहते हैं, उन्हें युगके अनुसार शीघ्र सिद्धिकी प्राप्ति कराता है। द्विजश्रेष्ठ! जो जिस मन्त्रकी सिद्धि करना चाहता है, वह उसको पहले ही एक लाख जप ले। ऐसा करनेसे वह मनुष्य पवित्र, सिद्ध एवं मन्त्रसाधनका अधिकारी बन जाता है। तत्पश्चात् पुनः उसका चार लाख जप करे और प्रज्वलित अग्निमें दशांश आहुति

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

दे। इससे अवश्य ही मन्त्रकी सिद्धि होती है। सौम्य कार्योंमें पीली सरसों और चमेलीके फूलोंसे हवन होता है। हवनके पश्चात् ब्राह्मणभोजन कराना चाहिये तथा रौद्र कार्योंमें लाल फूल एवं गुग्गुलसे होम कराना फलप्रद माना गया है। हवनके बाद कुमारी कन्याओंको भोजनादिसे तृप्त करना चाहिये। यह सत्ययुगके लिये उत्तम मन्त्रसाधन बताया गया है। त्रेतायुगमें एक चतुर्थांश कम किया जाता है, द्वापरमें आधा और कलियुगमें चतुर्थांश साधन आवश्यक है। इस प्रकार मन्त्र-सिद्धि प्राप्त करके उस पीठमें अपनी इच्छाके अनुसार सत्य साधन करे। ऐसा करनेसे मनुष्य शापानुग्रहमें समर्थ, तेजस्वी, सब प्राणियोंके लिये अजेय और साधुसम्मानित हो जाता है।

सूतजी कहते हैं—मेरे पिताजी वह सब बात सुनकर दुर्वासा मुनि चित्रेश्वर पीठमें चले गये और वहाँ उन्होंने सब मन्त्रोंका क्रमशः साधन किया।

धुन्धुमारेश्वरकी स्थापना और महिमा, जलशायी विष्णु तथा अशून्यशयन-व्रतका महत्त्व, वाष्कलि दैत्यका वध

सूतजी कहते हैं—वहीं राजा धुन्धुमारके द्वारा स्थापित किया हुआ शिवलिंग है, जिसे उन्होंने अति मनोहर सर्वरत्नमय मन्दिर बनवाकर प्रतिष्ठित किया है। उस तीर्थमें आश्रम बनाकर राजाने बड़ी भारी तपस्या की। जिसके प्रभावसे भगवान् शिव उनके द्वारा स्थापित शिवलिंगमें विराजमान हुए। उस मन्दिरके समीप उन महात्मा राजाने एक बावली बनवायी, जो अत्यन्त निर्मल जलसे परिपूर्ण, सब तीर्थोंके समान महत्त्व रखनेवाली और मंगलकारक थी। राजा धुन्धुमार सूर्यवंशमें उत्पन्न हुए थे। वे बृहदश्वके पुत्र थे। उन्होंने मरुप्रदेशके जंगलमें निवास करनेवाले धुन्धु नामक महादैत्यको मारा था। इसलिये वे तीनों लोकोंमें धुन्धुमारके नामसे विख्यात हुए। उनका दूसरा नाम कुवलयाश्व भी था। चमत्कारपुरका क्षेत्र परम पावन है, ऐसा जानकर उन्होंने उसी क्षेत्रमें भगवान् शंकरका चिन्तन करते हुए भारी तपस्या की। रत्ननिर्मित प्रासादमें उत्तम महालिंगकी स्थापना करके भेंट, पूजा और उपहार आदिके द्वारा तथा पुष्प, धूप और चन्दन आदि सामग्रियोंसे भगवान् शिवका पूजन किया। इससे प्रसन्न होकर महादेवजीने वृषभपर आरूढ़ होकर गौरीदेवी तथा गणोंके साथ राजाको प्रत्यक्ष दर्शन दिया और कहा—'तुम मनोवांछित वर माँगो।'

धुन्धमारने कहा—सम्पूर्ण देवताओंके स्वामी शिव! आप कृपापूर्वक अपने इस लिंगमय विग्रहमें सदैव निवास करें।

श्रीभगवान् बोले—नृपश्रेष्ठ! चैत्रमासके शुक्ल पक्षकी चतुर्दशी तिथिको मैं गौरीदेवीके साथ सदैव यहाँ निवास करूँगा। उस समय इस बावलीमें स्नान करके जो मेरा दर्शन करेगा, वह मेरे लोकमें जायगा।

सूतजी कहते हैं—ऐसा कहकर भगवान् शिव वहीं अन्तर्धान हो गये तथा राजा प्रसन्नचित्त हो वहीं निवास करने लगे। अन्तमें वे मुक्तिके भागी हुए।

वहीं चित्रशिला तीर्थके उत्तर भागमें जलशायी भगवान् विष्णुका सुविख्यात स्थान है, जो महापातकोंका नाश करनेवाला है। जो हरिशयनी तथा हरिबोधिनी एकादशीको उपवास करके उस तीर्थमें श्रीहरिकी पूजा करता है, वह वैकुण्ठधामको जाता है। भगवान् श्रीहरिके शयन करनेपर जो कृष्ण पक्षकी द्वितीया तिथि (श्रावण आदि मासोंकी कृष्णा द्वितीया) आती है, उसका नाम 'अशून्य-शयना' है। यह तिथि भगवान् विष्णुको बहुत प्रिय है। उस दिन जो वहाँ शास्त्रोक्त विधिसे भगवान् जलशायी (विष्णु)-का पूजन करता है, वह श्रीहरिके धामको जाता है।

ऋषियोंने पूछा—सूतनन्दन! भगवान् जलशायी

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

वहाँ कैसे प्राप्त हुए हैं और किस विधिसे उनकी पूजा की जाती है?

सूतजीने कहा—पूर्वकालमें वाष्कलि नामसे प्रसिद्ध दानवोंका राजा था। वह बड़ा बलवान् तथा सम्पूर्ण देवता, गन्धर्व, नाग एवं राक्षसोंके लिये भी अजेय था। उस महाबली दानवने सम्पूर्ण भूमण्डलको अपने वशमें करके दैत्योंकी सेना साथ ले देवलोकपर भी चढ़ाई की। वहाँ देवताओं और असुरोंमें एक-दूसरेका संहार करनेवाला बड़ा भयंकर युद्ध हुआ। अन्तमें दानवराज वाष्कलिने सेना तथा सामग्रीसहित देवराज इन्द्रपर विजय पायी। तब इन्द्रने देवताओंके साथ स्वर्गका सिंहासन छोड़कर श्वेतद्वीपनिवासी भगवान् विष्णुकी शरण ली, जहाँ शेषनागकी शय्यापर श्रीहरि योगनिद्राको स्वीकार करके शयन करते हैं और देवी लक्ष्मी उनके युगल चरणारविन्दोंकी सेवामें संलग्न रहती हैं। वहाँ पहुँचकर देवताओंने सब ओरसे वैदिक सूक्तोंद्वारा भगवान् विष्णुका भक्तिपूर्वक स्तवन किया। तदनन्तर जगदीश्वर भगवान् श्रीहरि शय्यासे उठकर इन्द्रसे बोले—'सहस्राक्ष! इस समय तीनों लोकोंमें कुशल तो है न? तुम सम्पूर्ण देवताओंको साथ लेकर यहाँ कैसे आये हो?'

इन्द्रने कहा—भगवन्! दैत्यराज वाष्कलि भगवान् शंकरसे वरदान पाकर बड़ा बलवान् हो गया है। वह देवताओंद्वारा युद्धमें अजेय है। उसने युद्धभूमिमें मुझे परास्त कर दिया है। मधुसूदन! इस समय वह स्वर्गलोकमें निवास करता है। इसी कष्टसे मैं सम्पूर्ण देवताओंके साथ आपकी शरणमें आया हूँ। प्रभो! पूर्वकालमें हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपुके भयसे तथा अन्यान्य दुरात्मा दैत्योंके आतंकसे भी आपने हम सब देवताओंकी रक्षा की है; अतः इस महाबली दानव वाष्कलिसे भी आज हमारी रक्षा कीजिये। देवेश! आपको छोड़कर हम देवताओंके लिये दूसरा कोई उत्तम आश्रय नहीं है।

श्रीभगवान् बोले—इन्द्र! समय आनेपर मैं स्वयं उस दानवको दण्ड दूँगा। अतः जबतक वह समय नहीं आता, तबतक तुम कहीं तीर्थभूमिमें रहकर बड़ी भारी तपस्या करो।

इन्द्रने कहा—जगदीश्वर! मैं उस दैत्यका नाश करनेके लिये किस क्षेत्रमें तपस्या करूँ, यह आप ही बतावें।

भगवान् विष्णु बोले—इन्द्र! चमत्कारपुरका क्षेत्र सिद्धिदायक है, अतः तुम वहीं जाकर उसके वधके लिये तपस्या करो।

इन्द्रने कहा—केशव! हम दानवराज वाष्कलिसे डरे हुए हैं, अतः आपके बिना वहाँ नहीं जायँगे। इसलिये आप स्वयं भी वहाँ चलिये। आपसे सुरक्षित होकर ही मैं वहाँ भारी तपस्या कर सकूँगा।

भगवान् विष्णुने 'एवमस्तु' कहकर देवताओं और लक्ष्मीजीके साथ चमत्कारपुरके क्षेत्रमें पदार्पण किया। उस समय सब देवताओंने अपने लिये पृथक्-पृथक् आश्रम बनाया। भगवान् विष्णुने वहाँके प्राचीन एवं सुविस्तृत कुण्डमें क्षीरसागरका आवाहन किया और श्वेतद्वीपकी भाँति वहाँ भी वे शयन करने लगे। उस समय सब देवता उनके चारों ओर विनीतभावसे खड़े हो उनकी स्तुति करते थे। तदनन्तर आषाढ़ कृष्णा द्वितीया (पूर्णिमान्त मासकी गणनाके अनुसार श्रावण कृष्णा द्वितीया)-का शुभ दिवस आनेपर बृहस्पतिजीने इन्द्रसे कहा—'पुरन्दर! आज अशून्यशयना नामवाली द्वितीया है। यह भगवान् विष्णुकी अत्यन्त प्रिय तिथि है।'

यह सुनकर देवराज इन्द्रने शास्त्रोक्त विधिसे व्रत करके उस दिन जलशायी विष्णुका पूजन किया और इसी प्रकार चार महीनोंतक प्रत्येक द्वितीयाके दिन वे श्रीहरिका पूजन करते रहे। इससे वे दिव्य तेजसे सम्पन्न हो गये। उन्हें तेजस्वरूपमें देखकर भगवान् विष्णु बड़े प्रसन्न हुए और बोले—'इन्द्र! अब तुम सम्पूर्ण देवताओंके साथ वाष्कलिका वध करनेके लिये जाओ, तुम्हारी विजय होगी। देवशत्रुओंको मारनेके लिये मेरा यह सुदर्शन चक्र भी तुम्हारे साथ

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

जायगा।' ऐसा कहकर श्रीहरिने दानवेन्द्रका वध करनेके लिये इन्द्रके साथ अपने सुदर्शन चक्रको भी भेजा। इन्द्रने उस चक्रके साथ जाकर युद्धमें सम्पूर्ण दानवोंका संहार कर डाला। दानवराज वाष्कलि भी चक्रसे मस्तक कट जानेके कारण वज्रके मारे हुए पर्वतकी भाँति पृथ्वीपर गिर पड़ा। और भी बहुत-से शूरवीर बलोन्मत्त दानव युद्धमें मारे गये। इस प्रकार दैत्यसेनाका संहार करके सुदर्शन चक्र पुनः भगवान् विष्णुके हाथमें आ गया। वे इन्द्र आदि देवता भी निर्भय होकर पुनः भगवान् विष्णुके समीप आये और उन्हें प्रणाम करके बोले—'देवेश! आपके प्रभावसे हमारे सब शत्रु मारे गये और त्रिलोकीका अकण्टक राज्य फिर हमें प्राप्त हो गया। अब हमारे लिये सदैव कल्याण करनेवाला तथा हमारे शत्रुओंको भय पहुँचानेवाला जो कर्तव्य हो, उसका उपदेश किजिये।'

श्रीभगवान्‌ने कहा—मुझे तो सम्पूर्ण लोकोंका हित करनेके लिये पवित्र जलसे भरे हुए इस कुण्डमें अब सदैव निवास करना है। अतः तुम्हें प्रतिवर्ष यहाँ आकर प्रयत्नपूर्वक चातुर्मास्यमें होनेवाले 'अशून्यशयन' व्रतका पालन करना चाहिये, जिससे तुम्हारे शत्रु होंगे ही नहीं। दूसरा भी जो मनुष्य भक्तिपूर्वक यहाँ आकर मेरी पूजा करेगा, वह साधुपुरुषोंके लोकको प्राप्त होगा। इन्द्र! अब तुम स्वर्गमें जाकर राज्य करो। जब फिर आवश्यकता हो, तब यहीं आकर मुझसे मिलना।

सूतजी कहते हैं—तदनन्तर इन्द्र भगवान् विष्णुको प्रणाम करके चले गये और भगवान् लोकहितके लिये वहीं रहने लगे। द्विजवरो! जो मनुष्य अत्यन्त श्रद्धापूर्वक भक्तिभावसे उन जलशायी विष्णुकी पूजा करता है, वह परम गतिको प्राप्त होता है। सब देवताओंने मिलकर वहाँ द्वारका निर्माण की है। वहाँ चौमासेमें भगवान् विष्णुका पूजन करके मनुष्य मनोवांछित कामनाओंको प्राप्त कर लेता है। अतः सर्वथा प्रयत्न करके सब मनुष्योंको उस द्वारकाकी पूजा करनी चाहिये।

विश्वामित्रका मेनकासे वार्तालाप, सती स्त्रियोंके पालन करनेयोग्य धर्मका वर्णन, विश्वामित्रका वैराग्य, दोनोंका परस्पर शाप और तीर्थजलमें स्नानसे उद्धार

सूतजी कहते हैं—विप्रवरो! उस क्षेत्रमें एक दूसरा कुण्ड भी है, जो विश्वामित्र ऋषिके द्वारा प्रकट किया गया है। वह समस्त कामनाओंको देनेवाला है।

ऋषियोंने पूछा—सूतनन्दन! विश्वामित्र मुनिका वह निर्मल तीर्थ किस समय वहाँ प्रतिष्ठित हुआ है?

सूतजी बोले—द्विजवरो! वहाँ पहलेसे ही एक साधारण झरना था, जो पृथ्वीपर माहात्म्यसे युक्त होकर बहता था। फिर उसीमें देवनदी गंगा वहाँ स्वयं आकर स्थित हुई, जिसमें स्नान करनेवाला पुरुष तत्काल सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। जो मनुष्य वहाँ पितरोंके उद्देश्यसे श्रद्धापूर्वक श्राद्ध करता है, उसका वह श्राद्ध पितरोंको अक्षय तृप्ति प्रदान करनेवाला होता है। उस उत्तम तीर्थमें जो कुछ दान, होम और जप आदि सत्कर्म किया जाता है, उसका अनन्त फल होता है।

एक समयकी बात है। व्याधके बाणसे घायल हुई एक मृगी उस देवनदीके जलमें घुसी और वहीं उसकी मृत्यु हो गयी। उस पुण्यजलके प्रभावसे वही मृगी स्वर्गलोकमें मेनका नामक अप्सरा हुई। वह अप्सरा उस तीर्थके प्रभावका स्मरण करती हुई चैत्र शुक्ला तृतीयाको रविवार और भरणी नक्षत्रका योग होनेपर सदा वहाँ

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

आकर स्नान किया करती थी। किसी समय वैसा ही योग आनेपर मुनीश्वर विश्वामित्र भी कहींसे घूमते हुए उस तीर्थमें आ गये। इधर मेनका भी देवदर्शनके लिये स्वर्गलोकसे आयी और भगवान्‌की पूजा करके स्वर्गमें जाने लगी। तबतक उसकी दृष्टि वहाँ इधर-उधर घूमते हुए मुनिवर विश्वामित्रपर पड़ी। उन्हें देखते ही मेनका कामके अधीन हो गयी और शीघ्रतापूर्वक उनके समीप गयी। उस अदृष्टपूर्व सुन्दरीको देखकर मुनिने पूछा—'कल्याणी! तुम्हारा शुभ हो। मन, वाणी और क्रियाद्वारा भगवान् विष्णुके चरणोंमें तुम्हारी अविचल भक्ति हो। बाले! क्या तुम सदाचार और विनयसे युक्त होकर सदा प्रिय वचन बोलती हुई अपने पतिके चरणारविन्दोंकी सेवामें संलग्न रहती हो? क्या तुम्हें सदा अपने पतिकी प्रियतमा होनेका सौभाग्य प्राप्त है? क्या पतिके सामने अथवा परोक्षमें भी तुम दान आदिसे अपने बन्धु-बान्धवों तथा सुहृदोंका सत्कार करती हो? क्या तुम पतिके सो जानेपर सोती और उनके जागनेसे पहले ही उठ जाती हो? क्या प्रातःकाल उठकर तुम प्रतिदिन अपने घरमें स्वयं ही झाड़ू लगाती हो? क्या देवताओंको नमस्कार करके घरके गुरुजनोंको प्रतिदिन प्रणाम करती हो और उन सबको अपनी शक्तिके अनुसार अन्न और जल देकर स्वयं सबसे पीछे भोजन करती हो? क्या जलजन्तुओंकी रक्षा करती हुई अपने सघन वस्त्रसे पानीको सात बार छानकर पीती हो? कभी सूर्यास्तके समय तो तुम भोजन नहीं करतीं? अपने सेवकों, कुटुम्बीजनों तथा विशेषतः साधु-संतोंको दिये बिना तो तुम भोजन नहीं करतीं? क्या तुम दयाभावसे युक्त होकर शरीरको क्लेश देनेवाले जूँ, खटमल और मच्छर आदिका भी पुत्रकी भाँति पालन करती हो? क्या साधु-पुरुषोंके मुखसे प्रतिदिन भक्तिपूर्वक कल्याणमय धर्मका उपदेश सुनती हो और सुनकर आदरके साथ उसका पालन भी करती हो? क्या पवित्र शास्त्र-कथा सुनकर तुम शास्त्रका, वाचकका तथा उसकी विशेष व्याख्या करनेवाले विद्वान्‌का भी पूजन करती हो? क्या तुम मुनीश्वरोंद्वारा प्रतिपादित पुराण और शास्त्र-ग्रन्थोंको अच्छे पत्रपर सुन्दर अक्षरोंमें लिखाकर उन्हें साधु-पुरुषोंको अर्पण करती हो? क्या प्रतिदिन शिवमन्दिरमें अपनी शक्तिके अनुसार तुम संगीत, वाद्य आदिकी व्यवस्था करती और भेंट-पूजा उपहार चढ़ाती हो? क्या तुम साधु-पुरुषोंको उनका पूरा शरीर ढँकनेके उपयुक्त वस्त्र अर्पण करती हो? तुम दूसरोंके घरमें विशेषतः रातके समय व्यर्थ घूमनेके लिये तो नहीं जातीं? कहीं पतिके भूखे होते हुए भी तुम स्वयं तो भोजन नहीं कर लेतीं? क्या तुम प्रयत्नपूर्वक पतिकी आज्ञाका उल्लंघन करनेके दोषसे अपनेको बचाती हो? कभी पतिके कुपित होनेपर तुम उनकी बातोंका उत्तर तो नहीं देती? उनके क्रोधरूपी पापका निवारण करनेके लिये उनसे मीठे और प्रिय वचन तो बोलती हो न? तुम पतिके परदेश जानेपर मैले वस्त्र धारण करती और दीन, दुर्बल तथा म्लानवदन रहती हो न? कभी मन्दिरके पृष्ठभागमें तुम जूठा और फूटा बर्तन तो नहीं रखतीं? रात्रिमें जागरणकालमें तुम कथाके स्थान, झरना, एकान्त प्रदेश, नदीतट और वनमें कभी अकेली तो नहीं जातीं? शुभे! तुम कुलटा स्त्रियोंसे तथा दाइयों, मालिनों और धोबिनोंसे तो कभी मैत्री नहीं रखतीं? अपने मुखमण्डलमें तुम कुंकुमकी बेंदी तो लगाती हो न?

मेनका बोली—मुने! आपने जिनके धर्मोंका वर्णन किया है, वे दूसरी स्त्रियाँ हैं। हम तो स्वेच्छाचार विहार करनेवाली देवलोककी अप्सराएँ हैं। महाभाग! आप किस देशसे आये हैं? आपके दर्शनसे मेरा मन विचलित हो रहा है, मुझ अनुरागिणीको आप स्वीकार करें। अन्यथा मेरे प्राण नहीं रहेंगे। यदि ऐसा हुआ तो आपको स्त्रीवधका पाप लगेगा।

विश्वामित्रने कहा—भद्रे! हम तो शिव-शास्त्रोंकी आज्ञाके अनुसार चलनेवाले ब्रह्मचारी

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

हैं। समस्त व्रतधारियों और विशेषतः शिवभक्तोंका मूलधर्म हैं—ब्रह्मचर्यव्रतका पालन। अतः हम-जैसे लोगोंसे तुम फिर कभी ऐसी बात न कहना। व्रतधारी और शिवभक्त पुरुष सौ वर्षोंसे अधिक कालतक जो तपस्या करता है, वह एक बारके स्त्रीप्रसंगसे नष्ट हो जाती है। जो पापात्मा स्त्रीको स्वीकार करता है, उसका शिवोपासना-सम्बन्धी व्रत व्यर्थ हो जाता है। भगवान् शिवके भक्तोंको स्त्रियोंके साथ बातचीत करनेसे भी पाप लगता है, इसलिये तुम शीघ्र ही इस स्थानसे चली जाओ। तुम जीवित रहो या मर जाओ, परंतु मैं तुम्हारी इस बातको नहीं मानूँगा। व्रती पुरुषोंको स्त्रीवधकी अपेक्षा स्त्री-संगमसे ही अधिक पाप लगता है। स्त्रीवध करनेपर तो व्रती पुरुषोंके लिये विद्वानोंने प्रायश्चित बतलाया है, परंतु उनके संगमसे जो दोष होता है, उसका कोई प्रायश्चित ही नहीं कहा है। इसलिये तुमको यहाँसे चले जाना चाहिये। केवल व्रती पुरुषोंको ही स्त्रीसंगमसे पाप लगता है—ऐसी बात नहीं है। जो व्रतसे बाह्य हैं, ऐसे मनुष्य भी स्त्रियोंमें आसक्त होनेपर नीचे गिर जाते हैं। अतः समागमकी बात तो दूर रहे, जो बुद्धिमान् अपना कल्याण चाहे, वह स्त्रियोंके साथ वार्तालाप भी न करे।

सूतजी कहते हैं—विश्वामित्रजीकी यह बात सुनकर क्रोधमें भरी हुई मेनकाने उन्हें शाप दिया—'ओ दुर्मते! मैं तुम्हारे प्रति अनुरक्त थी, फिर भी तुमने मेरा त्याग किया है; इसलिये आज ही तुम वृद्धावस्थासे जर्जर शरीरवाले हो जाओ। तुम्हारे बाल सफेद हो जायँ और शरीरमें झुर्रियाँ पड़ जायँ।' उसके ऐसा कहनेपर मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्र उसी क्षण वैसे ही हो गये। तब वे भी कमण्डलुसे जल लेकर उसे शाप देनेको उद्यत हुए और इस प्रकार बोले—'ओ नीच! तुमने निर्दोष होनेपर भी मुझे शाप दिया है, इसलिये तुम भी शीघ्र ही जरावस्थासे जर्जर अंगवाली हो जाओ।' ऋषिके वचनसे वह भी तत्काल वैसी ही हो गयी। उस वृद्ध शरीरसे मेनकाने पुनः जाकर वहाँके जलाशयमें स्नान किया। स्नान करते ही वह पुनः पूर्ववत् रूप-लावण्यसे सम्पन्न हो गयी। यह महान् आश्चर्यकी बात देखकर ऋषि विश्वामित्रने भी तुरंत जाकर वहाँ स्नान किया और वे भी पूर्ववत् हो गये। उस तीर्थके माहात्म्यसे मेनका और विश्वामित्र दोनों रूप तथा उदारता आदि गुणोंसे सम्पन्न हो गये और प्रसन्नतापूर्वक एक-दूसरेसे विदा लेकर अपने अभीष्ट स्थानको चले गये। उस तीर्थका ऐसा माहात्म्य जानकर महर्षि विश्वामित्रने वहाँ देवाधिदेव महादेवजीका लिंग स्थापित किया और उस उत्तम तीर्थमें बड़ी भारी तपस्या की। उन्होंने उस सरोवरको और विस्तृत किया। वहाँ स्नान करके जो पुरुष उस उत्तम विश्वामित्रेश्वर लिंगका पूजन करता है, वह भगवान् शिवके लोकमें जाता है। आज भी उस तीर्थमें गंगाजलके समान पवित्रजल दिखायी देता है, जो सब पापोंको हर लेनेवाला है। जो श्रद्धायुक्त पवित्र हृदयसे वहाँ स्नान करता है, वह सर्वदेवपूजित विष्णुलोकको जाता है।

सरस्वतीतीर्थकी महिमा, राजा अम्बुवीचिकी मूकताका निवारण तथा राजाके द्वारा सरस्वतीदेवीका स्तवन

सूतजी कहते हैं—महर्षियो! हाटकेश्वरक्षेत्रमें एक-दूसरा परम सुन्दर सारस्वततीर्थ है। वहाँ स्नान करनेवाला गूँगा मनुष्य भी बोलनेमें पटु हो जाता है तथा वह ब्रह्मलोकतकके सभी लोकोंमें अपनी रुचिके अनुसार जाता है। प्राचीनकालमें बलवर्द्धन नामसे विख्यात एक राजा थे, जो समुद्रपर्यन्त सम्पूर्ण पृथ्वीको अपनी भुजाओंके बलसे जीतकर उसका उपभोग करते थे। उनके एक सर्वलक्षणसम्पन्न पुत्र हुआ। पिताने बारहवें दिन श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको बुलाकर उसका नाम अम्बुवीचि

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

रखा। तदनन्तर राजाका लाड़-प्यार पाकर वह बालक प्रतिदिन बढ़ने लगा, परंतु जन्मसे ही मूक होनेके कारण वह कुछ बोल नहीं सकता था। तत्पश्चात् उस बालकका सातवाँ वर्ष आनेपर राजा बलवर्द्धन मृत्युको प्राप्त हो गये। तब मन्त्रियोंने राजाके उसी पुत्रको राज्यसिंहासनपर बिठाया, क्योंकि उनके दूसरा कोई पुत्र नहीं था। इस प्रकार राज्यसिंहासनपर बैठे हुए बाल्यावस्थासे युक्त उस गूँगे राजाके राज्यमें सब ओर विप्लव होने लगा। जल-जन्तुओंकी भाँति बलवान् लोग सर्वत्र दुर्बलोंको सताने लगे। तब मन्त्रियोंने अपने पुरोहित वसिष्ठजीसे कहा—'महामुने! इस राजाके बोलनेके लिये कोई उपाय कीजिये। इसकी जड़तासे ही सारी पृथ्वी उजड़ती जा रही। अतः कोई उचित उपाय कीजिये।' तब दीर्घकालतक विचार करके वसिष्ठजीने मन्त्रियोंसे कहा—'हाटकेश्वरक्षेत्रमें सब कामनाओंको देनेवाला सारस्वत नामक तीर्थ है, वहीं यह राजा स्नान करे।'

महर्षि वसिष्ठके कहनेसे राजा अम्बुवीचिने तत्काल जाकर उस तीर्थमें स्नान किया और उसी क्षण वे मधुर स्वरसे बोलनेवाले वक्ता हो गये। राजाने सरस्वतीदेवीका ऐसा प्रभाव जानकर बड़ी श्रद्धाके साथ उनका चिन्तन किया और नदीतटसे मिट्टी लेकर स्वयं ही सरस्वतीदेवीकी चतुर्भुजा मूर्तिका निर्माण किया। वे दाहिने हाथमें मनोहर कमल और नक्षत्रोंके तेजको तिरस्कृत करनेवाली अक्षमाला लिये हुए थीं तथा बायें हाथमें उन्होंने दिव्य जलसे भरा हुआ कमण्डलु और सब विद्याओंकी उत्पत्तिकी स्थानभूत पुस्तक ले रखी थी। ऐसी मूर्तिका निर्माण करके राजाने यत्नपूर्वक उसे शिलापृष्ठपर स्थापित किया और धूप, माला तथा चन्दनसे भक्तिपूर्वक उसकी पूजा की। तत्पश्चात् श्रद्धा-भावसे पवित्र हृदयके द्वारा उनके आगे शुद्ध एवं विनीत होकर नरेशने उच्च स्वरसे देवीकी स्तुति की—'देवि! सत्-असत् (कारण और कार्य) रूप तथा बन्ध-मोक्षस्वरूप जो कोई भी वस्तु है, वह सब गुप्तरूपसे स्थित रहनेवाली तुम्हारे द्वारा व्याप्त है, ठीक उसी तरह जैसे अग्निके द्वारा ईंधन व्याप्त होता है। तुम्हीं सिद्धिरूपमें सब लोगोंके हृदयमें निवास करती हो। देवेश्वरि! तुम्हीं जिह्वापर वाणीरूपसे और नेत्रमें ज्योतिःस्वरूपसे विराजमान हो। तीनों लोकोंमें एकमात्र तुम्हीं भक्तिभावसे ग्रहण करनेयोग्य हो। शरणमें आये हुए दीनों और पीड़ितोंकी रक्षामें तुम सदा तत्पर रहती हो। तुम्हीं कीर्ति, तुम्हीं धृति, तुम्हीं मेधा, तुम्हीं भक्ति और तुम्हीं प्रभा कही गयी हो। समस्त प्राणियोंमें निवास करनेवाली कान्ति, क्षुधा और निद्रा भी तुम्हीं हो। तुष्टि, पुष्टि, श्री, प्रीति, स्वधा, स्वाहा, रात्रि, रति, पृथ्वी, गंगा, सत्य, धर्म, मनस्विनी, लज्जा, शान्ति, स्मृति, दक्षा, क्षमा, गौरी, रोहिणी, सिनीवाली (जिसमें चन्द्रमाका दर्शन हो, ऐसी अमावास्या), कुहू (जिसमें चन्द्रमाका दर्शन न हो, ऐसी अमावास्या), राका, (पूर्णिमा), देवमाता अदिति, ब्रह्माणी, विनता, लक्ष्मी, कद्रू, दाक्षायणी, सती, शिवा, गायत्री, सावित्री, कृषि, वृष्टि, श्रुति, कला, वेला, नाडी, त्रुटि, काष्ठा (दिशा), रसना और सरस्वती सब कुछ तुम्हीं हो। इसके सिवा तीनों लोकोंमें और भी जो कुछ है, जो अधिक होनेके कारण मेरे द्वारा नहीं कहा गया हो, वह सब चेष्टायुक्त और चेष्टारहित वस्तुएँ तुम्हारा ही स्वरूप है। गन्धर्व, किन्नर, देवता, सिद्ध, विद्याधर, नाग, यक्ष, गुह्यक, भूत, दैत्य तथा विनायकगण आदि सब तुम्हारे ही प्रसादसे परम सिद्धिको प्राप्त हुए हैं। अन्य देवता कष्टपूर्वक आराधना और पूजा करनेपर ही मनुष्यके पाप हरते हैं परंतु तुम केवल नाम लेनेसे सबका उद्धार करती हो।'

राजा अम्बुवीचिके द्वारा इस प्रकार स्तुति की जानेपर देवेश्वरी सरस्वतीदेवीने अत्यन्त हर्षित होकर कहा—भूपाल! मैं तुम्हारी सुस्थिर भक्ति और इस स्तुतिसे बहुत सन्तुष्ट हूँ। अतः तुम शीघ्र ही मनोवांछित वर माँगो।

राजाने कहा—देवि! आजसे मेरी प्रार्थना स्वीकार करके आप सदा इस तीर्थमें निवास करें और

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

आपकी यह पूजनीय प्रतिमा त्रिभुवनविख्यात होकर इस तीर्थमें मेरी सुस्थिर कीर्तिके रूपमें विद्यमान रहे। जो यहाँ स्थित रहनेवाली आपकी आराधना जिस निमित्तसे भी करे, उसकी भक्तिके अनुसार उस कामनाको आप शीघ्र ही पूर्ण करती रहें।

सरस्वती बोलीं—राजन्! जो इस शुभ सलिलमें स्नान करके अष्टमी और चतुर्दशी तिथिको यहाँ मेरी पूजा करेगा, उसकी मनोवांछित कामनाओंको मैं पूर्ण करूँगी।

सूतजी कहते हैं—इस प्रकार परमेश्वरी सरस्वतीदेवी सब लोगोंके हितके लिये तभीसे वहाँ निवास करने लगीं। जो मनुष्य अष्टमी और चतुर्दशीको उपवास करके श्वेतपुष्प और चन्दन आदिके द्वारा वहाँ उनका पूजन करता है, वह जन्म-जन्ममें उत्तम वक्ता एवं मेधा (धारणाशक्ति)-से सम्पन्न होता है। सरस्वतीके प्रसादसे उसके वंशमें भी कोई मूर्ख नहीं पैदा होता। जो सरस्वतीदेवीके आगे धर्मकथा श्रवण करता है, वह उनके प्रभावसे तीन युगोंतक स्वर्गलोकमें निवास करता है। जो सरस्वतीदेवीके मन्दिरमें सदा श्रद्धापूर्वक विद्यादान करता है, वह अश्वमेधयज्ञका फल पाता है। जो वहाँ श्रेष्ठ ब्राह्मणको धर्मशास्त्रकी पुस्तक दान करता है, वह भी अश्वमेधयज्ञका फल पाता है। जो सरस्वतीदेवीके आगे खड़ा होकर वेदपाठ करता है, वह सम्पूर्ण अग्निष्टोम यज्ञका फल पाता है।

~~~○~~~

महाकालके समीप जागरणकी महिमा, राजा रुद्रसेनका पूर्ववृत्तान्त

सूतजी कहते हैं—पूर्वकालमें इक्ष्वाकु-कुलको आनन्दित करनेवाले रुद्रसेन नामसे प्रसिद्ध एक राजा थे। सब गुणोंसे सम्पन्न कान्तिपुरी उनकी राजधानी थी और उनकी परम प्रिय धर्मपत्नीका नाम पद्मावती था। राजा रुद्रसेन वैशाखमासकी पूर्णिमाको सदैव रानी पद्मावतीके साथ थोड़ी-सी सेना लेकर चमत्कारपुरके क्षेत्रमें भगवान् महाकालका दर्शन करनेके लिये जाते और भगवान् महादेवके आगे स्त्रीसहित श्रद्धापूर्वक बैठकर रात्रिमें जागरण करते थे। उपवास करके महादेवजीका चिन्तन करते हुए रात बिताते थे। फिर प्रातःकाल उठकर स्नान करके धुले हुए वस्त्र पहन पवित्र हो ब्राह्मणों एवं तपस्वी जनोंको दान देते थे। साथ ही अन्य सहस्रों दीनों, अन्धों और कंगालोंको अन्न-वस्त्र बाँटते थे। इस प्रकार प्रतिवर्ष वे वैशाख पूर्णिमाको वहाँकी यात्रा करते और महाकाल देवके सामने रातभर जागते थे। इससे उनका सदा अभ्युदय होने लगा और शत्रु अपने-आप नष्ट होने लगे। एक समय उसी अवसरपर जब राजा हाटकेश्वरक्षेत्रमें आये तब उन्होंने देखा, महाकाल देवके समक्ष अनेकानेक देशों और दिशाओंसे श्रेष्ठ ब्राह्मण वहाँ आये हुए हैं। वे सब वेदपाठमें तत्पर हैं और परस्पर देवों, ऋषि-मुनियों एवं प्राचीन राजर्षियोंकी कथा-वार्ता कर रहे हैं। राजाने क्रमशः उन सबको प्रणाम किया और स्वयं भी उनसे अभिनन्दित होकर एक ओर बैठ गये। कथा समाप्त होनेपर मुनीश्वरोंने पूछा—'राजन्! तुम प्रतिवर्ष वैशाखी पूर्णिमाको दूर देशसे यहाँ आकर केवल रातमें महादेवजीके सामने जागरण करते हो। तीर्थोंमे जो स्नान, दान आदि अन्य क्रियाएँ बतायी गयी हैं, उन सबको छोड़कर पहले तुम इस जागरण-कार्यकी ओर ही ध्यान देते हो, अतः इसका फल क्या है, सो हम-लोगोंसे बताओ।'

राजाने कहा—विप्रवरो! आपलोगोंने जो कुछ पूछा है, वह यद्यपि गोपनीय रहस्यकी बात है, तथापि मैं आपसे कहूँगा। प्राचीन कालकी बात है, मैं वैदिश नगरके वैश्यकुलमें उत्पन्न हुआ था। मेरे पास धनका सर्वथा अभाव था। मेरे भाई-बन्धु पग-पगपर मेरा निरादर करते थे और

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth
~~~

अन्तमें उन्होंने मुझे त्याग दिया। तब मैं अपनी पत्नीको साथ लेकर परदेशको चल दिया। स्वराष्ट्रदेशको धन-धान्यसे सम्पन्न सुनकर मनमें उसीका चिन्तन करते हुए चला और मार्गमें भिक्षाका अन्न भोजन करता हुआ मैं क्रमशः आगे बढ़ते-बढ़ते आनर्त देशमें चमत्कारपुरके समीप आ पहुँचा। वहाँ मैंने स्वच्छ जलसे भरा हुआ एक सरोवर देखा, जो कमलवनसे सुशोभित था। भूख-प्यास और थकावटसे बहुत कष्ट तो पा ही रहा था, वहाँ पहुँचकर मैंने उस सरोवरके शीतल जलसे स्नान किया। तत्पश्चात् मेरी स्त्रीने मुझसे कहा—'नाथ! इस जलाशयसे कुछ कमल संग्रह कर लीजिये, जिससे आजका भोजन चले। यह पास ही इन्द्रपुरीके समान मनोहर नगर दिखायी देता है, वहाँ चलकर इन कमलोंको बेच लेना चाहिये।' तब मैंने बेचनेके लिये बहुत-से कमल संग्रह कर लिये और चमत्कारपुरमें आकर सब ओर भ्रमण किया। किंतु कोई भी मनुष्य उन कमलोंको खरीदता न था। भूखके मारे मैं दुर्बल हो रहा था। मेरा गला सूख गया था। उस समय सूर्यास्त हो गया। तब मैं वैराग्यभावको प्राप्त होकर स्त्रीके साथ एक टूटे-फूटे मन्दिरमें गया और उन कमलोंको पृथ्वीपर रखकर लेट गया। तदनन्तर आधी रात बीतनेपर मैंने गानेकी ध्वनि सुनी। तब मेरे चित्तमें विचार हुआ कि निस्सन्देह आज यहाँ जागरणका पर्व है। अतः चलूँ, यदि कोई मेरे इन कमलोंको मूल्य देकर ले लेगा तो भोजनकी व्यवस्था हो जायगी। ऐसा निश्चय करके कमल लेकर मैं अपनी पत्नीके साथ जहाँसे गीतकी ध्वनि आ रही थी, उसी ओर चल दिया। वहाँ जानेपर मैंने देवताओंके स्वामी भगवान् महाकालको श्रेष्ठ द्विजोंद्वारा पूजित होते देखा। वे द्विज भगवान्के आगे बैठकर जप और गीतमें लगे थे। कोई नृत्य करते, कोई गीत गाते, कोई होम करते और कोई धार्मिक उपाख्यान करते थे। तब मैंने एक व्यक्तिसे पूछा—'यहाँ क्यों जागरण किया जाता है?' उसने बताया कि—'आज भगवान् महाकालकी प्रसन्नताके लिये उपवासपरायण ब्राह्मणोंद्वारा भक्तिभावसे जागरण किया जाता है। आज वैशाखमासकी पुण्यमयी तिथि पूर्णिमा है। इस समय जो मनुष्य भगवान् महाकालके आगे भक्तिपूर्वक जागरण करता है, वह निश्चय ही स्वर्गलोकको प्राप्त होता है।' तब मैंने कहा—'भद्र पुरुष! मेरे पास कमलके फूल हैं। इनको ले लीजिये और बदलेमें मूल्य दीजिये, जिससे मेरा भोजन चले। तब उसने तीन पल सुवर्ण देना चाहा। यह देखकर मैंने सोचा, स्वयं ही क्यों न इन कमलोंसे देवेश्वर महादेवजीकी पूजा करूँ। जान पड़ता है, पूर्वजन्ममें मेरे शरीरसे कोई भी पुण्य नहीं हुआ था, इसीलिये इस जन्ममें मुझे ऐसी दुर्गति भोगनी पड़ती है; किंतु क्या करूँ, मेरी प्रियवादिनी पत्नीका गला भूखके मारे सूखा जा रहा है। इसमें सन्देह नहीं कि यदि अन्न उपलब्ध नहीं हुआ, तो यह कल जीवित नहीं रह सकेगी। इस प्रकार चिन्तामें पड़े हुए मुझसे मेरी विनयशीला पत्नीने मधुर वाणीमें कहा—'नाथ! धनके लोभसे इन कमलोंका विक्रय न कीजिये। आज अपने पास अन्न न होनेसे स्वतः उपवासव्रतका योग लग गया है। भूखके कष्टसे हम अबतक तो जागते ही रहे हैं, शेष रात्रिमें और भी जागरण कर लेंगे। हमने सरोवरमें दिनके समय स्नान करके देवपूजन किया ही था। इस समय भी इन कमलोंसे हम भगवान् महाकालका पूजन करें।' इससे हम दोनोंका परम कल्याण होगा।'

पत्नीके ऐसा कहनेपर हम दोनोंने बड़ी प्रसन्नताके साथ कमलपुष्पोंसे महादेवजीका पूजन किया। भूखकी पीड़ासे नींद तो हमारे पास आयी नहीं। प्रातःकाल जब सूर्योदय हुआ, उस समय भूखसे पीड़ित होकर उसी स्थानपर मेरी मृत्यु हो गयी। तब मेरी पत्नीने मेरे शरीरको लेकर बड़े हर्षके साथ चिताकी अग्निमें प्रवेश किया। उसी पुण्यके प्रभावसे मैं कान्तिपुरका राजा हुआ और मेरी पत्नी दशार्ण देशके राजाकी

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

पुत्री हुई, जिसे अपने पूर्वजन्मकी बातोंका भी स्मरण था। दशार्णराजने इसका स्वयंवर रचाया और उसमें इसने मुझे पहचानकर मुझको ही वरण किया और मैंने भी इसे अपने पूर्वजन्मकी पत्नी समझकर अपनाया। इसी कारणसे मैं प्रति वर्ष वैशाख पूर्णिमाको यहाँ आकर अपनी धर्मपत्नीके साथ महाकालदेवके सामने जागरण और पुष्प, धूप तथा चन्दन आदिके द्वारा उनका पूजन करता हूँ। ब्राह्मणो! उस समय तो मैंने बिना श्रद्धाके ही जागरण किया था तथापि महादेवजीकी कृपासे मुझे ऐसा फल प्राप्त हुआ। अब मैं जो श्रद्धापूर्वक शास्त्रोक्त विधिसे जागरण कर रहा हूँ, इसका फल भगवान् मुझे कितना उत्तम देंगे, यह मैं नहीं जानता।

यह सुनकर वहाँ आये हुए श्रेष्ठ ब्राह्मणोंने राजाको अनेक बार साधुवाद दिया और इस प्रकार कहा—'भूपाल! आपने ठीक कहा है, भगवान् महाकालके प्रसादसे इस भूतलपर कोई भी वस्तु दुर्लभ नहीं है। इसीलिये हमलोग भी प्रतिवर्ष श्रद्धासे यहाँ रात्रिजागरण करेंगे।' तदनन्तर राजा और उन ब्राह्मणोंने बड़े हर्षके साथ गीत, वाद्य, नृत्य, धर्मकथा आदि कार्योंको करते हुए महाकालजीके समीप रातभर जागरण किया। प्रातःकाल उठकर राजाने महाकालका पूजन किया और उन सब ब्राह्मणोंसे आज्ञा लेकर सेनासहित अपनी पुरीको प्रस्थान किया। तत्पश्चात् समयानुसार शरीरका अन्त होनेपर उन्होंने जरा और मृत्युसे रहित परम पदको प्राप्त कर लिया।

सूतजी कहते हैं—महर्षियों! इस प्रकार मैंने आप लोगोंके समक्ष भगवान् महाकालके उत्तम माहात्म्यका वर्णन किया है, जो सब पापोंका नाश करनेवाला है।

कलशेश्वरका माहात्म्य, नन्दिनी धेनुके द्वारा व्याघ्रयोनिको प्राप्त हुए राजा कलशका शापसे उद्धार

सूतजी कहते हैं—महर्षियो! उसी क्षेत्रमें एक महापुण्यदायक कुण्ड है, जिसके तटपर कलशेश्वर-देवका निवास है। उनका दर्शन करनेसे मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। प्राचीन कालमें कलश नामसे प्रसिद्ध एक यदुवंशी राजा थे। वे विधिपूर्वक यज्ञ करनेवाले और सब लोगोंके हितमें तत्पर थे। एक समय महर्षि दुर्वासाके शापसे उन्हें व्याघ्र होना पड़ा था। व्याघ्ररूपमें वनमें रहते हुए वे बहुतसे ब्राह्मणोंको मारकर खा जाते थे। इस प्रकार उनका बहुत समय व्यतीत हो गया। कुछ कालके पश्चात् उस देशमें गौओंका एक मनोरम झुंड आ निकला, जिसके साथ बहुत-से गोप-गोपी थे। उस झुंडमें एक नन्दिनी नामक धेनु थी, जिसके थन बहुत मोटे थे और जो घड़ों दूध देती थी। वह धेनु घासके लोभसे आगे बढ़ती हुई एक कुंजके भीतर गयी तो वहाँ उसने भगवान् शंकरका लिंगमय स्वरूप देखा, जो बारह सूर्योंके समान तेजस्वी प्रतीत होता था। गौने बड़ी श्रद्धाके साथ वहाँ खड़ी होकर उस शिवलिंगको स्नान करानेके लिये उसपर बहुत दूधकी धारा बहायी। उसका यह नियम प्रतिदिन चालू रहा, किंतु इस बातको कोई नहीं जानता था। एक दिन उस स्थानपर तीखी दाढ़वाला वह व्याघ्र आया और दैवयोगसे नन्दिनी गायपर उसकी दृष्टि पड़ गयी। तब गौओंके समुदायमें बँधे हुए अपने छोटे बछड़ेकी याद करके वह गाय करुणस्वरमें विलाप करने लगी। फिर उसने मन-ही-मन कहा—'जिस सत्य एवं शिवभक्तिसे प्रेरित होकर मैं भगवान् शिवको स्नान करानेके लिये यहाँ आयी थी, उसीके प्रभावसे मुझे अपने बछड़ेसे मिलनेका अवसर प्राप्त हो।' इस प्रकार नन्दिनी जब करुण विलाप कर रही थी उस समय व्याघ्रने हँसकर कहा—'अरी! अब तो तू पूर्णतः मेरे वशमें है, क्यों व्यर्थ प्रलाप करती है?'

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

धेनु बोली—मैं अपने लिये विलाप नहीं करती, भगवान् शिवकी पूजाके लिये आनेपर यदि मेरी मृत्यु भी हो गयी तो यह मेरे लिये शुभदायक ही होगी। किंतु मेरा बछड़ा, जो गोकुल (गौओंके झुंड)-में बँधा हुआ है, मेरे लौटनेकी राह देखता होगा। वह अभी दूध पीकर ही जीता है। सोचती हूँ, वह मेरे बिना कैसे जीवित रहेगा। महाव्याघ्र! बेटेके लिये मेरे हृदयमें स्नेह उमड़ आया है, अतः आज तुम मुझे छोड़ दो। मैं उसे अपनी सखियोंको सौंपकर फिर तुम्हारे पास लौट आऊँगी।

व्याघ्र बोला—तुम मृत्युके मुखमें आ गयी हो, अब यदि किसी प्रकार निकल जाओगी तो फिर उसी मृत्युके समीप कैसे लौट आओगी?

नन्दिनीने कहा—व्याघ्र! मैं शपथ खाकर कहती हूँ कि तुम्हारे पास लौट आऊँगी। ब्राह्मणकी हत्या करने और माता-पिताको छलनेसे जो पाप होता है, उसी पापसे मैं लिप्त होऊँ यदि पुनः लौटकर न आऊँ। रजस्वला स्त्रीसे सम्पर्क करनेवाले तथा नंगे सोनेवाले पुरुषोंको जो पाप लगता है, मैं उसी पापसे लिप्त होऊँ यदि मैं लौटकर न आऊँ। गौ, कन्या और ब्राह्मणोंको कलंकित करनेवाले लोगोंको जो पाप लगता है, उस पापसे मैं भी लिप्त होऊँ यदि पुनः लौटकर न आऊँ।

इन शपथोंको सुनकर व्याघ्रने कहा—यदि ऐसी बात है तो घरको जाओ और अपने पुत्रको जी भरकर देख लो। फिर उसे सखियोंको सौंपकर लौट आना। तदनन्तर नन्दिनी जहाँ उसका बछड़ा था उस स्थानपर गयी।

माताको रँभाती हुई देखकर बछड़ा बोला—माँ! आज तुम्हारा मन उद्विग्न क्यों हो रहा है?

नन्दिनी बोली—बेटा! पहले दूध पी लो, जिससे तृप्त होनेपर मैं तुमसे सब बात बताऊँ। उसकी बात सुनकर बछड़ेने यथोचित दूध पी लिया।

तत्पश्चात् बछड़ेने इस प्रकार कहा—माँ! आज जंगलमें जो कुछ घटना हुई है वह सब बताओ, जिसे सुनकर मेरा चित्त शान्त हो।

नन्दिनी बोली—वत्स! आज मैं घोर वनमें अपनी इच्छाके अनुसार घूमती चली गयी थी। वहाँ एक व्याघ्रने मुझे घेर लिया। वह मुझे खा लेना चाहता था, किंतु मैंने शपथके द्वारा उसे यह विश्वास दिलाया कि मैं गौओंके झुंडमें अपने बच्चेको देखकर फिर लौट आऊँगी। अनेक शपथ करनेपर उसने मुझे छोड़ा है। अतः अब फिर मैं वहीं जाऊँगी।

बछड़ेने कहा—माँ! आज तुम जहाँ जाओगी, वहीं मैं भी चलूँगा। यदि तुम्हारे साथ व्याघ्र मुझे भी मार डालेगा तो मातृभक्त पुरुषोंकी जो गति होती है, वही निश्चयपूर्वक मुझे भी मिलेगी। बालकोंके लिये माताके समान दूसरा कोई बन्धु नहीं है, माताके समान कोई रक्षक नहीं है और माताके सदृश दूसरी कोई गति नहीं है। माताके समान कोई पूज्य गुरु नहीं, माताके समान स्नेही सखा नहीं और माताके समान इहलोक या परलोकमें कोई देवता नहीं है *। ऐसा मानकर श्रेष्ठ पुरुषोंको सदा अपनी माताके प्रति भक्ति रखनी चाहिये। जो पुत्र मातृभक्तिको ही प्रजापतिनिर्मित परम भक्ति मानकर सदा उसका आचरण करते हैं, वे परम गतिको प्राप्त होते हैं। अतः तुम इस गोकुलमें रहो, मैं ही व्याघ्रके समीप जाऊँगा और मैं अपने प्राण देकर तुम्हारे प्राणोंकी रक्षा करूँगा।

नन्दिनीने कहा—बेटा! आजके दिन मेरी ही मृत्यु नियत है, तुम्हारी नहीं; फिर तुम अपने प्राणोंसे मेरे प्राणोंकी रक्षा कैसे कर सकते हो? वत्स! तुम्हें तो अपनी माँके उपदेशका ही पालन करना चाहिये। वनमें भ्रमण करते समय कभी तुम प्रमाद न कर बैठना। अधिक लोभ होनेसे इहलोक और परलोकमें भी देहधारीका नाश हो जाता है। लोभसे मोहित पुरुष समुद्रमें, घोर

* नास्ति मातृसमः पूज्यो नास्ति मातृसमः सखा। नास्ति मातृसमो देव इहलोके परत्र च॥ (स्क० पु०, ना० ५१। १७)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

जंगलमें और भयानक रणभूमिमें भी प्रवेश कर जाता है। लोभ, प्रमाद और सबपर विश्वास— इन्हीं तीन दोषोंसे प्रत्येक प्राणी बँधता और मारा जाता है; इसलिये लोभ न करे, प्रमादमें न पड़े तथा हर एकपर विश्वास न करे[१]। पुत्र! तुम्हें सदा प्रयत्न करके गहन वनमें भ्रमण करते समय सम्पूर्ण हिंसक जीवोंसे अपने शरीरकी रक्षा करनी चाहिये। दुर्गम स्थानमें यदि तृण और घास आदि हो तो किसी प्रकार भी उसे चरना नहीं चाहिये। अपना यूथ छोड़कर कभी अकेले नहीं जाना चाहिये।

इस प्रकार अपने बछड़ेसे कहकर और उसे बार-बार चाटकर नन्दिनीने अपनी सखियोंके पास वनमें जाकर कहा—बहनो! मेरी बात सुनो। आज मैं अपने झुंडसे थोड़ी दूरपर घूमती हुई एक घने एवं निर्जन वनमें चली गयी, वहाँ मुझे एक व्याघ्रने पकड़ लिया; परंतु अनेक प्रकारकी शपथोंद्वारा उसे विश्वास दिलाकर मैं तुम लोगोंसे मिलने और बच्चेको देखनेके लिये यहाँ आयी हूँ। इस समय बच्चेको देखा, बातचीत की और इसे कर्तव्यका उपदेश भी दिया। अब इसे तुम्हारे अधीन सौंपती हूँ, इसको अपना ही बच्चा समझना। जानकर या अनजानमें मैंने तुम लोगोंका जो कुछ भी अपराध किया हो वह सब कृपापूर्वक क्षमा करना। मेरा यह दूधपीता बच्चा आजसे अनाथ हो रहा है। इस दीन, दुःखी, दुर्बल और मातृशोकसे सन्तप्त बालकका तुम सब लोग मिलकर पालन करना। यदि यह विषम स्थानमें घूमता हो, दूसरे किसी झुंडमें जाता हो या न करने योग्य कार्योंमें संलग्न होता हो तो तुम सदा इसे रोकती रहना। अब मैं, जहाँ वह व्याघ्र मेरी प्रतीक्षामें खड़ा है, वहाँ जाऊँगी।

दूसरी गौएँ बोलीं—नन्दिनी! तुम किसी प्रकार भी वहाँ न जाओ। हँसीमें या स्त्रियोंके बीचमें, विवाहकालमें, प्राणसंकटके समय तथा सर्वस्वका अपहरण होते समय—इन पाँच समयोंमें कही हुई असत्य बातें पाप नहीं मानी गयी हैं। इसलिये तुम्हें वहाँ नहीं जाना चाहिये।

नन्दिनीने कहा—सखियो! दूसरोंके प्राण बचानेके लिये वैसा असत्य ठीक हो सकता है, परंतु अपने प्राणोंकी रक्षाके लिये साधुपुरुष असत्यभाषणकी प्रशंसा नहीं करते। यह सम्पूर्ण लोक सत्यपर प्रतिष्ठित है, धर्म भी सत्यके ही आधारपर स्थित है, समुद्र सत्यवचनसे ही कभी अपनी सीमाका उल्लंघन नहीं करता[२]। दैत्यराज बलि भगवान् विष्णुको भूमिदान करके स्वयं पातालमें चले गये हैं। अपने उस सत्य वचनपर स्थित होनेके कारण ही वे पुनः वहाँसे बाहर नहीं निकलते। जो किसी बातकी प्रतिज्ञा करके उसका ठीक-ठीक पालन नहीं करता, उस चोर और अपवित्र बुद्धिवाले पुरुषने कौन-सा पाप नहीं किया है।

सखियोंने कहा—नन्दिनी! तुम समस्त देवताओं और दैत्योंके लिये भी वन्दनीय हो, जो कि सत्यकी रक्षाके लिये दुस्त्यज प्राणोंका त्याग कर रही हो। कल्याणी! तुम तो स्वयं ही धर्मार्थ वचन बोलनेवाली हो, समस्त सद्गुणोंसे सम्पन्न हो और सदा सत्यमें स्थित रहती हो। हमलोग तुम्हें क्या शिक्षा देंगी। महाभागे! जाओ, बच्चेके लिये शोक न करो। तुमने हमारे लिये जो आज्ञा दी है, उसका हम सब पालन करेंगी; परंतु हम इस बातको जानती हैं कि सदा सत्यमें स्थित रहनेवाले प्राणियोंका आरम्भ किया हुआ कोई भी कार्य निष्फल नहीं होता।

१- लोभात्प्रमादाद्विश्रम्भात् पुरुषो बध्यते त्रिभिः। तस्माल्लोभो न कर्तव्यो न प्रमादो न विश्वसेत्॥
(स्क० पु०, ना० ५१। २५)

२- परेषां प्राणयात्रार्थं तत्कर्तुर्युज्यते शुभाः। आत्मप्राणहितार्थाय न साधूनां प्रशस्यते॥
सत्ये प्रतिष्ठितो लोको धर्मः सत्ये प्रतिष्ठति। उदधिः सत्यवाक्येन मर्यादां न विलंघयेत्॥
(स्क० पु०, ना० ५१। ४४-४५)

279 Skandpuran_Section_37_1_Front In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

सूतजी कहते हैं—महर्षियो! नन्दिनी अपनी सखियोंसे इस प्रकार बातचीत करके उस व्याघ्रके पास चल दी और जहाँ वह व्याघ्र खड़ा था, वहाँ जा पहुँची।

वहाँ पहुँचकर नन्दिनी बोली—महाव्याघ्र! मैं अपने सत्य और शपथपर स्थित रहकर तुम्हारे पास आ गयी हूँ। अब तुम मेरे मांससे यथेष्ट तृप्तिलाभ करो। सत्यका आश्रय ले प्राणोंका भय छोड़कर पुनः अपने पास आयी हुई नन्दिनीको देखकर वह दुष्टात्मा व्याघ्र भी बड़े भारी वैराग्यको प्राप्त हो गया।

व्याघ्र बोला—सत्यवादिनि! तुम्हारा स्वागत है। सत्यपर स्थित रहनेवाले प्राणियोंका कभी अमंगल नहीं होता। भद्रे! तुमने शपथ खाकर कहा था, मैं आऊँगी, इससे मेरे मनमें यह कौतूहल हो रहा था कि क्या यह सचमुच ऐसा करेगी? परंतु तुमने अपने सत्यकी रक्षा की। महाभागे! मुझ दुरात्मा पापीको उपदेश देकर अनुगृहीत करो, जिससे इहलोक और परलोकमें मेरा कल्याण हो। मेरा ऐसा विश्वास है कि तुम्हें अपने सत्याचरणके प्रभावसे कुछ भी अज्ञात नहीं है। अतः संक्षेपसे धर्मका सारसर्वस्व मुझे बताओ, जिससे मुझे सत्संगका पूरा-पूरा फल प्राप्त हो।'

नन्दिनी बोली—सत्ययुगमें तपकी, त्रेतामें ध्यानकी, द्वापरमें यज्ञकी और दानकी तथा कलियुगमें एकमात्र दानकी प्रशंसा करते हैं। जो सम्पूर्ण चराचर प्राणियोंको अभय दान देते हैं, उनका वह दान सब दानोंमें श्रेष्ठ है। उससे बढ़कर दूसरा कोई दान नहीं है।*

व्याघ्र बोला—शुभे! यह अभय दान तो उन प्राणियोंके लिये उपयुक्त हो सकता है, जिनकी जीविका अहिंसासे—अन्न आदिका आहार करके चलती है। हम-जैसे जीवोंका जीवननिर्वाह तो हिंसाके बिना हो ही नहीं सकता। अतः जीवोंकी हिंसा करनेवाले मुझ अधमके लिये भी जो सुखदायक और उत्तम धर्माचरणमें सहायक हो, वैसा उपदेश दो।

नन्दिनीने कहा—यहाँ वनमें एक महान् शिवलिंग है, जिसे पूर्वकालमें बाणासुरने स्थापित किया था। उसीके प्रभावसे आज मैं तुम्हारे संकटसे मुक्त हुई हूँ। तुम प्रतिदिन प्रातःकाल उठकर उसीकी परिक्रमा और उसीको प्रणाम किया करो। इससे तुम्हें मनोवांछित सिद्धि प्राप्त होगी।

ऐसा कहकर नन्दिनीने व्याघ्रको वनके भीतर ले जाकर उस शिवलिंगका दर्शन कराया। वह उसका दर्शन करके तत्काल ही व्याघ्रकी योनिसे मुक्त हो पूर्ववत् राजा कलशके रूपमें परिणत हो गया। पूर्वकालमें दुर्वासाके दिये हुए शापका और अपने वैभवसम्पन्न राज्यका उन्हें स्मरण हो आया। तब उन श्रेष्ठ राजाने नन्दिनीसे कहा—'भद्रे! मैं हैहयवंशमें उत्पन्न कलश नामक राजा हूँ। पूर्वकालमें मुनिवर दुर्वासाने कुछ कारणवश मुझे शाप दे दिया। जब पुनः मैंने उन्हें प्रसन्न किया तब वे बोले—'नन्दिनी धेनु जब तुम्हें वनमें शिवलिंगका दर्शन करायेगी, तब तुम्हारी मुक्ति हो जायगी। निश्चय तुम नन्दिनी हो, यह बात मुझे अपने शापका अन्त देखकर ज्ञात हुई है। श्रेष्ठ धेनु! यह तो बताओ, यह कौन-सा देश है, जिससे मैं अपने घरका मार्ग ढूँढ़कर पुनः वहाँ जाऊँ।'

नन्दिनी बोली—राजन्! यह सब पापोंका नाश करनेवाला चमत्कारपुर नामक क्षेत्र है, जो सर्वतीर्थमय है और सम्पूर्ण कामनाओंको देनेवाला है।

राजाने कहा—नन्दिनि! तुम्हारा कल्याण हो, अब तुम जाओ और अपने बालकसे मिलो। गौओंके झुंडमें जाकर अपनी सखियों तथा सुहृदोंका दर्शन करो। मैंने पूर्वकालमें ब्राह्मणोंके मुखसे इस क्षेत्रकी महिमा सुनी थी और इसे सदा देखनेकी

---

* तपः कृते प्रशंसन्ति त्रेतायां ध्यानमेव च। द्वापरे यज्ञदाने च दानमेकं कलौ युगे॥
सर्वेषामेव दानानां नास्ति दानमतः परम्। चराचराणां भूतानामभयं यः प्रयच्छति॥
(स्क० पु०, ना० ५१। ६७-६८)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

अभिलाषा भी की; परंतु राजकाज तथा भोगमें आसक्त होनेके कारण मैं इसका दर्शन नहीं कर सका। आज जब यह तीर्थ स्वयं ही मुझे प्राप्त हो गया है तो अब मैं इसे छोड़कर नहीं जा सकता। सौभाग्यकी बात है, जो महात्मा दुर्वासाने मुझे वैसा शाप दिया। अन्यथा इस उत्तम क्षेत्रकी प्राप्ति मुझे कैसे होती?

ऐसा कहकर राजाने नन्दिनीको विदा कर दिया और स्वयं दिन-रात उस शिवलिंगका ध्यान करते हुए वे वहीं रहने लगे। उन्होंने भगवान् शिवके लिये कैलासशिखरके समान गगनचुम्बी मन्दिर बनवाया और उन्हींके आगे बैठकर बड़ी भारी तपस्या की। तदनन्तर शंकरजीके प्रभावसे थोड़े ही दिनोंमें परम दुर्लभ सिद्धि प्राप्त कर ली, जो याज्ञिकजनोंके लिये भी दुर्लभ है। जो मनुष्य मार्गशीर्ष मासमें वहाँ भक्तिपूर्वक गीत और नृत्य आदिका आयोजन करता है, वह परम गतिको प्राप्त होता है। द्विजवरो! इस प्रकार मैंने तुम्हें कलशेश्वरजीके माहात्म्यका वर्णन सुनाया, जो सब पातकोंका नाश करनेवाला है।

अगस्त्यकुण्ड, कपिलानदी, वैष्णवीशिला, सिद्धक्षेत्र आदिकी महिमा, नलद्वारा चर्ममुण्डाकी स्तुति तथा नलेश्वरकी महिमा

सूतजी बोले—महर्षियो! उसीके समीप पूर्वभागमें अगस्त्यकुण्ड है, जहाँ परम पुण्यदायिनी और सब पातकोंका नाश करनेवाली बावली है। जो मनुष्य वहाँ फाल्गुनमासके शुक्ल पक्षकी अष्टमी तिथिको उपवासपूर्वक स्नान करता है, उसे अपनी इच्छाके अनुकूल वस्तुकी प्राप्ति होती है। अगस्त्यवापीके दक्षिण भागमें कपिला नदी है, जहाँ कपिलमुनिने सांख्यशास्त्रकी सिद्धि प्राप्त की थी। कपिलाके पूर्व भागमें सिद्धक्षेत्र बताया गया है, जहाँ पूर्वकालमें लाखों मनुष्य सिद्धिको प्राप्त हुए हैं। जो मनुष्य जिस कामनाको लेकर वहाँ तपस्या करता है, वह छः महीनेके भीतर अवश्य ही उसे प्राप्त कर लेता है। ब्राह्मणो! सिद्धक्षेत्रके निम्नभागमें एक शुभकारक वैष्णवीशिला है, जो घूमती रहती है। उसकी आकृति चौकोर है और वह सब पातकोंका नाश करनेवाली है। वह महानदीके जलसे धुली हुई और मनुष्योंको मोक्ष देनेवाली है। उस शिलाके आगे गंगा-यमुना-सरस्वती-संगमरूपा त्रिवेणी बहती हैं, जो भोग और मोक्ष देनेवाली हैं। उसके उत्तरभागमें रुद्रकोटितीर्थ है, जो दाक्षिणात्य महात्माओंद्वारा पूजित है। उसे रुद्रावर्त भी कहते हैं। जो पुरुष रुद्रावर्त क्षेत्रमें श्राद्ध करता है, वह सौ यज्ञोंका फल पाता है। जो वहाँ उपवासपूर्वक रात्रिमें जागरण करता है, वह इच्छानुसार चलनेवाले विमानके द्वारा स्वर्गमें जाता है।

वहीं पूर्वकालमें महात्मा राजा नलने चर्ममुण्डा देवीकी स्थापना की थी। जो मनुष्य महानवमीके दिन भक्तिपूर्वक चर्ममुण्डा देवीका पूजन करता है, वह मनोवांछित पदार्थोंको प्राप्त करके सनातन पद पा लेता है। पहलेकी बात है। वीरसेनके पुत्र नल इस भूमण्डलके राजा थे, जो समस्त सद्‌गुणोंसे युक्त थे। विदर्भदेशकी राजकुमारी दमयन्ती उनकी पतिव्रता पत्नी थी। एक समय राजा नलने कलियुगसे आविष्ट होकर अपने भाई पुष्करके साथ जूआ खेला। उसमें वे अपना सारा राज्य हार गये। तदनन्तर नल अपनी स्त्रीको साथ लेकर गहन वनके भीतर चले गये। वहाँ उन्होंने यह सोचा 'यदि दमयन्ती राजा भीमके घर चली जाय तो वनवासके कष्टसे मुक्त हो सकती है। इसलिये रातमें इसको सोती छोड़कर मैं दूर चला जाऊँगा जिससे यह साध्वी दमयन्ती मुझसे विलग होकर कुण्डिनपुरको चली जायगी।'

279 Skandpuran_Section_37_2_Front In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

ऐसा निश्चय करके राजा नल सुखसे सोयी हुई दमयन्तीको छोड़कर घोर वनमें चले गये। प्रातःकाल उठकर दमयन्ती जब इधर-उधर देखने लगी तो उसने अपने पास नलको नहीं पाया। तब वह दुःखसे आतुर हो वनमें करुणस्वरसे विलाप करने लगी और धीरे-धीरे कुण्डिनपुरकी राह लेकर अपने पिताके राजमहलमें जा पहुँची। नल भी उस वनको छोड़कर दूसरे बड़े भारी वनमें चले गये और घूमते-घूमते हाटकेश्वरक्षेत्रमें जा पहुँचे। इसी बीचमें महानवमीका दिन आ गया। तदनन्तर नलने वहाँ चर्ममुण्डधारिणी दुर्गाकी मृन्मयी मूर्ति बनाकर उसका पूजन किया और फल-मूलोंका भोग लगाकर देवीको तृप्त किया। तत्पश्चात् वे देवीके आगे हाथ जोड़कर खड़े हो गये तथा बड़ी श्रद्धाके साथ स्तुति करने लगे—

नल बोले—चर्ममुण्ड धारण करनेवाली श्रेष्ठ देवि! तुम सर्वत्र व्यापक हो, तुम्हारी जय हो। सर्वेश्वर तथा सम्पूर्ण राजाओंके द्वारा वन्दित दक्षकुमारी! तुम प्रत्येक कार्यमें दक्ष हो, शुभे! तुम्हारी जय हो। कालरात्रि! अचिन्त्ये! नवमी और अष्टमीको प्रिय माननेवाली देवि! तुम्हारी जय हो। त्रिलोचने! त्रिलोचनप्रिये! देवपूजिते! देवि! तुम्हारी जय हो। भयंकर रूप धारण करनेवाली तथा सुन्दर रूपवाली महाविद्ये! महाबले! तुम्हारी जय हो। महोदये! महाकाये! महाव्रते! देवि! तुम्हारी जय हो। नित्यरूपे! जगद्धात्रि! तुम्हारी जय हो। विकराली महाकालिके! तुम्हारी जय हो। सुन्दरि! देवेश्वरि! पाशहस्ते! महाहस्ते! तुम्हें नमस्कार है। मनोहर देहलतासे युक्त तथा प्रिय गीतवाद्यसे प्रसन्न होनेवाली देवि! तुम्हारी जय हो। अनन्ता, चिन्तनीया तथा भगवान् शिवके आधे शरीरमें निवास करनेवाली देवि! तुम्हारी जय हो। तुम्हीं रति, तुम्हीं धृति, तुम्हीं तुष्टि, तुम्हीं गौरी तथा तुम्हीं देवताओंकी स्वामिनी शची हो। तुम्हीं लक्ष्मी, सावित्री और गायत्री हो। देवि! तीनों लोकोंमें स्त्रीरूपमें जो कुछ भी दिखायी देता है, वह सब तुम्हारे ही अंशसे प्रकट हुआ है। इस विषयमें मुझे कोई सन्देह नहीं है। इस सत्यके प्रभावसे तुम इस मूर्तिमें निवास करो। देव-दानववन्दिते! इस भक्तिसे सन्तुष्ट होकर तुम अपना सांनिध्य यहाँ स्थापित करो।

सूतजी कहते हैं—राजा नलके इस प्रकार स्तुति करनेपर भक्तवत्सला चतुर्भुजा देवीने प्रत्यक्ष दर्शन दिया और इस प्रकार कहा—'वत्स! मैं तुम्हारे इस स्तोत्रसे सन्तुष्ट हूँ। अतः तुम मुझसे मनोवांछित वर माँगो।'

राजा नल बोले—देवि! मैंने प्राणोंसे भी अधिक प्रिय अपनी पत्नी दमयन्तीको हिंसक जन्तुओंसे भरे निर्जन वनमें त्याग दिया था। वह आपकी कृपासे अखण्ड शीलसे युक्त और निर्दोष रूपमें मुझे फिर प्राप्त हो, ऐसा यत्न कीजिये। जो आपके आगे इस स्तोत्रद्वारा स्तुति करे, उसे उसी दिन आप मनोवांछित वस्तु प्रदान करें।

सूतजी कहते हैं—तब दुर्गादेवी 'तथास्तु' कहकर अन्तर्धान हो गयीं तथा राजाओंमें श्रेष्ठ नलने उन सभी कामनाओंको प्राप्त कर लिया। चर्ममुण्डाके समीप ही राजा नलके द्वारा स्थापित देवाधिदेव भगवान् महेश्वर विराजमान हैं, जिनका दर्शन करके मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। माघमासके शुक्लपक्षकी षष्ठीको जो मानव भक्तिपूर्वक नलेश्वरका दर्शन करता है, वह सब रोगोंसे मुक्त हो परम पदको प्राप्त होता है। उन्हीं भगवान् शिवके आगे एक निर्मल जलसे भरा हुआ कुण्ड है। जो रविवारके प्रातःकाल उस कुण्डमें स्नान करता है, वह कुष्ठरोगसे छूटकर पुनः नूतन शरीर प्राप्त कर लेता है।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth
279 Skandpuran_Section_37_2_Back

गालवको सूर्यदेवकी आराधनासे पुत्रकी प्राप्ति, अर्जुनके द्वारा विभिन्न देवोंकी स्थापना तथा विषकन्या शर्मिष्ठाद्वारा स्थापित शर्मिष्ठा-तीर्थका माहात्म्य

सूतजी कहते हैं—नलेश्वरसे थोड़ी ही दूरपर देवताओंके स्वामी सूर्य साम्बादित्यके नामसे प्रसिद्ध हैं, जिनका दर्शन करके मनुष्य सम्पूर्ण हृदयस्थित कामनाओंको प्राप्त कर लेता है। जो माघ शुक्ला सप्तमी तथा रविवारके योगमें भक्तिपूर्वक उनका दर्शन करता है वह नरकोंको नहीं देखता। प्राचीन कालमें गालव नामवाले एक ब्राह्मण हो गये हैं, जो सदा ही वेदोंके स्वाध्यायमें तत्पर तथा उत्तम स्वभाव और सदाचारसे युक्त थे। उनकी अवस्था ढल गयी तो भी उनके कोई पुत्र नहीं हुआ। इसका उनके मनमें बड़ा दुःख था। तब उन्होंने घरका सारा काम-काज छोड़कर इसी क्षेत्रमें एकाग्रतापूर्वक निवास करते हुए भक्तिभावके साथ सूर्यदेवकी आराधना की। जितेन्द्रिय होकर निराहार रहते हुए उन्होंने पंचरात्रोक्त विधिसे सूर्यदेवको अर्घ्य प्रदान किया और इसी नियमसे प्रतिदिन उनकी आराधना करते रहे। पंद्रहवाँ वर्ष आनेपर भगवान् सूर्य गालवको दर्शन देते हुए बोले—'विप्रवर! तुम्हारा कल्याण हो, तुम कोई वर माँगो।'

गालव बोले—सुरश्रेष्ठ! मेरे कोई पुत्र नहीं है। अतः मुझे मेरे वंशकी वृद्धि करनेवाला पुत्र दीजिये।

भगवान् सूर्यने कहा—विप्रवर! तुम्हें वंशकी वृद्धि करनेवाला पुत्र प्राप्त होगा और वह तेजस्वी, यशस्वी, शास्त्रज्ञ तथा वेदोंका पारंगत पण्डित होगा। तुमने साम्बादित्यके समीप जहाँ मुझे अर्घ्य देकर पूजन किया है, यहाँ दूसरा कोई भी जो पुरुष रविवार और सप्तमीके योगमें श्रद्धापूर्वक मेरे इस विग्रहकी पूजा करेगा, उसे वंशवर्द्धक पुत्रकी प्राप्ति होगी। ऐसा कहकर भगवान् सूर्य मौन एवं अन्तर्धान हो गये और गालवजी भी प्रसन्नचित्त हो अपने घरको चले गये। थोड़े ही दिनोंमें उनके यहाँ भगवान् सूर्यके कथनानुसार एक सर्वशुभलक्षणसम्पन्न पुत्र उत्पन्न हुआ। भगवान् सूर्यने वटवृक्षका आश्रय लेकर दर्शन एवं वरदान दिया था। इसलिये गालवने अपने पुत्रका नाम वटेश्वर रखा। वटेश्वरके पुत्रों तथा पौत्रोंको देख लेनेपर महर्षि गालव भारी तपस्या करके सूर्यदेवको प्राप्त हुए। वटेश्वरने भी अपने पिताके द्वारा स्थापित भगवान् सूर्यनारायणके लिये एक परम मनोहर मन्दिर बनवाया।

द्विजवरो! पूर्वकालमें महात्मा विदुरने भी उस क्षेत्रमें भगवान् श्रीसूर्यनारायण, सदाशिव तथा श्रीविष्णुका स्थापन किया है। जो मनुष्य भक्तिपूर्वक इन तीनों देवताओंका पूजन करेगा, वह उस परम धामको प्राप्त होगा, जो बड़े-बड़े यज्ञोंद्वारा भी अत्यन्त दुर्लभ है।

वहींपर अर्जुनके द्वारा स्थापित किये हुए सर्वमनोरथदायक भगवान् विनायक विराजमान हैं, जो समस्त विघ्नोंका नाश करते हैं। जो मनुष्य चतुर्थीको नक्तव्रत (केवल रातमें भोजन करनेका संकल्प) करके भक्तिभावसे गणेशजीकी पूजा करता है, वह समस्त विघ्नोंसे मुक्त हो मनोवांछित फलको पाता है। वहींपर उत्तम प्रभावसे युक्त भगवान् नर और नारायण भी हैं। जो उन दोनोंका भक्तिपूर्वक द्वादशी तिथिको दर्शन और पूजन करता है, वह जरा-मरणसे रहित परम पदको प्राप्त होता है।

एक समय कुन्तीनन्दन अर्जुन तीर्थयात्रा प्रारम्भ करके हाटकेश्वरक्षेत्रमें आये। वहाँ तीर्थसमुदायसे भरे हुए उस पावन क्षेत्रका दर्शन करके उन्होंने मनोहर मन्दिरमें भगवान् सूर्यको स्थापित किया और उन्हींके आगे नर और नारायणकी भी स्थापना की। फिर उत्तम श्रद्धासे युक्त हो वहाँ गोवर्द्धनको

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

स्थापित किया और वहीं देवाधिदेव नृसिंहदेवकी स्थापना की। इस प्रकार पाँच देवताओंकी स्थापना करके उन्होंने चमत्कारपुरके सब ब्राह्मणोंको बुलवाया और उन्हें बहुत धन दिया। फिर भक्तिपूर्वक प्रणाम करके कहा—'मैंने सब रोगोंका नाश करनेवाले भगवान् सूर्यको यहाँ स्थापित किया है और इनकी सेवा आपलोगोंको सौंपी है। अतः आपको सदैव इनका चिन्तन करना चाहिये।

ब्राह्मण बोले—पाण्डुनन्दन! आप यह सब छोड़कर अपने घरको पधारिये। हम सब लोग आपके श्रेयको बढ़ानेवाला पूजनकर्म करते रहेंगे।

तब अर्जुनने प्रसन्नचित्त हो उन्हें पुनः बहुत धन दिया और उनसे पूछकर विदा ले प्रणामपूर्वक अपने नगरको प्रस्थान किया।

सूतजी कहते हैं—ब्राह्मणो! इस प्रकार मैंने तुमसे नरादित्यके प्रादुर्भावकी कथा सुनायी। यह सुननेवालोंके पापोंका नाश करनेवाली है।

पूर्वकालमें 'वृक' नामसे प्रसिद्ध एक चन्द्रवंशी राजा हुए थे। वे बड़े ही ब्राह्मणभक्त, शरणागतवत्सल और सर्वलोकहितकारी थे। उनकी पत्नी भी बड़ी पतिव्रता और समस्त सद्गुणोंसे सुशोभित थीं। उन दोनोंको चौथेपनमें एक कन्या हुई। राजाने विद्वान ज्योतिषियोंको बुलाकर पूछा—'मेरी यह कन्या कैसी होगी?'

ज्योतिषी ब्राह्मण बोले—राजन्! सूर्यके चित्रा नक्षत्रपर रहते समय सोमवार और चतुर्दशीके योगमें जो जन्म ग्रहण करती है, वह विषकन्या होती है। ऐसी कन्याका जो पाणिग्रहण करता है, वह पुरुष छः महीनेके भीतर अवश्य मृत्युको प्राप्त होता है। वह जिस घरमें जन्म लेती है, वह कुबेरका ही महल क्यों न हो, उसे छः महीनेके भीतर धनसे रहित कर देती है। अतः आपकी यह पुत्री वास्तवमें विषकन्या है। यह पितृकुल और श्वशुरकुल दोनोंका नाश कर देगी। इस कारण आप इसे त्यागकर सुखी हो जाइये। यदि हमारे कहे हुए हितकर वचनपर आपको श्रद्धा हो तो आप ऐसा ही कीजिये।

राजाने कहा—ब्राह्मणो! मैं इस कन्याको त्याग दूँ या घरमें रखूँ, दोनों ही दशाओंमें मेरे पूर्वशरीरसे किया हुआ कर्म ही फलीभूत होगा। पहलेका शुभ कर्म हो या अशुभ कर्म उसे मिटाया नहीं जा सकता। अतः मैं अपने कर्मको ही आगे रखकर इस कन्याका त्याग नहीं करूँगा। जो जिस-जिस शरीरसे जैसा-जैसा कर्म करता है वह उसी-उसी शरीरसे पुनः सबके फलको भोगता है। अपनी इन्द्रियोंसे पूर्वजन्ममें जो कर्म किया गया है, वह मिट नहीं सकता। उसका फल भोगना ही पड़ेगा और बिना किये हुए किसी कर्मका फल अपने सामने आ नहीं सकता। अतः मेरे सामने जो भी परिणाम आवे, मुझे कोई भय नहीं है। देहधारी जीवके लिये गर्भमें ही आयु, कर्म, धन, विद्या और मृत्यु—इन पाँच वस्तुओंकी सृष्टि कर दी जाती है। जैसे वृक्षों और लताओंमें फल और फूल अपने समयपर आते ही हैं—समयका उल्लंघन नहीं करते, उसी प्रकार पूर्वजन्मका किया हुआ कर्म भी अपने समयका उल्लंघन नहीं करता। नियत समयपर उसका भोग करना ही पड़ता है। कोई भी पुरुष पूर्वशरीरद्वारा किये हुए कर्मको अपने बल और बुद्धिसे पलट देनेमें समर्थ नहीं है। जो शीघ्रतापूर्वक दौड़ता है, उसके पीछे उसका कर्म भी दौड़ता है। कर्म साथ ही सोता और खड़े होनेपर साथ ही खड़ा होता है। जिसको जहाँ भी सुख या दुःख भोगना है, वह रस्सीसे बँधा हुआ-सा बलपूर्वक वहाँ खिंचकर पहुँच जाता है। जैसे तेल समाप्त हो जानेपर दीपक बुझ जाता है, उसी प्रकार कर्मोंका नाश हो जानेपर जीव मोक्षको प्राप्त हो जाता है। ऋतुकालमें पुरुषके द्वारा गर्भमें स्थापित किये हुए अचेतन वीर्यके एक बिन्दुका आश्रय लेकर जीव अपने कर्मके साथ वृद्धिको प्राप्त होता है। जिस उदरमें कितने ही अन्न-पान डाले जायँ, नष्ट हो जाते हैं, भक्ष्य पदार्थ पच जाता है; वहीं पड़ा हुआ वह गर्भ क्यों नहीं नष्ट हो जाता। इसलिये लोकमें देहधारियोंका

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

किया हुआ शुभाशुभ कर्म ही सुख-दुःखके रूपमें प्राप्त होता है, ऐसा मेरा निश्चय है। अरक्षित वस्तु भी दैव (प्रारब्धकर्म)-से सुरक्षित होकर बच जाती है और सुरक्षित भी दैवसे हत होकर नष्ट हो जाती है। वनमें त्यागा हुआ अनाथ बालक भी जीवित रहता है और घरमें बड़े प्रयत्नसे पाला-पोसा जानेवाला शिशु भी मृत्युको प्राप्त हो जाता है।

ऐसा निश्चय करके राजाने ज्योतिषियोंके सलाह देनेपर भी उस विषकन्याका परित्याग नहीं किया। पिताने उसका नाम शर्मिष्ठा रख दिया। इसी समय क्रोधमें भरे हुए राजाके शत्रुओंने उनके राज्यको सब ओरसे सताना आरम्भ किया। तब राजा भी चतुरंगिणी सेनाके साथ बाहर निकले और उन्होंने शत्रुओंके साथ घोर युद्ध किया जो यमराजके लोककी जनसंख्या बढ़ानेवाला था। दसवें दिन राजा वृकको शत्रुओंने सब ओरसे घेरकर मार डाला। इनके मारे जानेपर शेष सैनिक भयसे पीड़ित हो अपने नगरको भाग गये।

इसी समय समस्त पुरवासियोंने शोकपरायण हो उस दुष्टा विषकन्याको लक्ष्य करके कठोर वचनोंमें कहा—इसी पापिनके दोषसे राजाकी मृत्यु हुई है। अतः इसे शीघ्र ही बाँध लिया जाय और जबतक इस नगरका क्षय न हो जाय तबतक ही इसे यहाँसे बाहर निकाल दिया जाय।

पुरवासियोंकी ये नाना प्रकारकी बातें सुनकर विषकन्याको बड़ा वैराग्य हुआ। उसने अपनी निन्दा की और भय तथा शोकमें डूबी हुई वह रातमें निकलकर वनमें चली गयी। वहाँ प्राणत्याग करनेका निश्चय करके वह आगे बढ़ती जा रही थी कि हाटकेश्वरक्षेत्रमें जा पहुँची। उस महान् क्षेत्रमें विषकन्याने देखा, वह बहुतेरे तपस्वीजनोंसे भरा हुआ है, चित्तमें अत्यन्त आह्लाद उत्पन्न करता है। इतनेमें ही उसे अपने पूर्वजन्मकी बातका स्मरण हो आया—'अहो! पूर्वकालमें जब मैं चाण्डाल-जातिकी स्त्री थी, यहीं मैंने एक गायकी प्यास बुझायी थी। उसीके प्रभावसे मैं राजाके पवित्र भवनमें उत्पन्न हुई। अतः अब मुझे यहीं रहना चाहिये। पूर्वजन्ममें गौके लिये किये हुए जलदानके माहात्म्यका विचार करके उसने निर्मल जलसे भरे हुए एक सरोवरका निर्माण किया, जो कि समुद्रके समान विस्तृत और मनोहर कमल-वनसे सुशोभित था। वहाँ बहुतसे हंस, वक और चक्रवाक आदि पक्षी सब ओर रहने लगे। तत्पश्चात् राजकन्याने उस सरोवरके समीप कैलासशिखरके समान ऊँचा एक सुन्दर मन्दिर बनवाया जो देखनेमें बड़ा ही मनोहर था। उसीमें भक्तिभावसे भगवती पार्वतीकी स्थापना करके शास्त्रोक्त व्रतका आश्रय ले राजकुमारी शर्मिष्ठाने देवीके आगे बड़ी भारी तपस्या की। केवल वायु पीकर पार्वतीके नामका जप करती हुई उसने अपने चित्तको निरन्तर उन्हींके चिन्तनमें लगा दिया था। इस प्रकार देवीकी आराधनामें उसका दीर्घकाल व्यतीत हो गया। किंतु उसे अभीष्ट फलकी प्राप्ति नहीं हुई। उसका सिर सफेद बालोंसे भर गया, मुखपर झुर्रियाँ पड़ गयीं, तो भी शिववल्लभा पार्वतीदेवी सन्तुष्ट नहीं हुईं। यह देखकर जब वह अत्यन्त व्याकुल हो गयी, तब एक ही क्षणमें दुग्ध, कुन्द और चन्द्रमाके समान उज्ज्वल एक वृषभ प्रकट हुआ। उसकी पीठपर भगवान् शंकरके साथ पार्वतीदेवी विराजमान थीं। उनकी चार भुजाएँ थीं, मुखपर प्रसन्नता छा रही थी और उनका दिव्य रूप अलौकिक था। उनके वस्त्र और आभूषण सभी श्वेतवर्णके थे, मस्तकपर अर्धचन्द्राकार मुकुट शोभा पा रहा था। इन चिह्नोंसे गिरिराजकुमारी पार्वतीदेवीको पहचानकर विषकन्याने बारंबार प्रणाम करके इस प्रकार उनकी स्तुति की।

विषकन्या बोली—देवदेवेश्वरि! आपको नमस्कार है। सबमें निवास करनेवाली देवि! आपको नमस्कार है। समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाली, जरा-मरणसे रहित तथा सत्यस्वरूपा पार्वती! आपको नमस्कार है। देवि! इन्द्र आदि देवता भी आपके स्वरूपका यथार्थतः वर्णन करना

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

नहीं जानते। फिर मुझ-जैसी मनुष्यकन्या आपके विषयमें क्या कह सकती है? पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाशस्वरूप सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड, देवता, असुर और मनुष्य आदि प्राणियोंसहित जिनके श्रीअंगोंसे प्रकट हुआ है, जिनका जन्म देनेमें ब्रह्मा, नाश करनेमें महेश्वर और पालन करनेमें विष्णु भी समर्थ नहीं हैं, उन सर्वेश्वरीदेवीकी मैं कैसे स्तुति कर सकूँगी। जिनमें अणिमा आदि आठ गुणोंवाला ऐश्वर्य स्वभावतः विद्यमान है तथा जिनका ऐश्वर्य लोकमें सबसे बढ़कर और सबके लिये अत्यन्त स्पृहणीय है। जिनके अनेक स्वरूपोंका ध्यानपरायण मुनिगण निरन्तर भक्तिपूर्वक ध्यान करते और उस ध्यानके प्रभावसे सम्पूर्ण मनोरथोंको प्राप्त होते हैं। मोक्षप्राप्तिके लिये दृढ़ निश्चय रखनेवाले योगी पुरुष अपने हृदयमें जिनके स्वरूपका चिन्तन करके भावरूप पुष्पोंके द्वारा उसकी अर्चना करते हैं, उन महामहेश्वरीदेवीका स्तवन मैं मानवी होकर कैसे कर सकती हूँ?

पार्वतीदेवीने कहा—पुत्रि! मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ, तुम मनोवांछित वर माँगो।

विषकन्या बोली—देवि! मैंने पतिकी प्राप्तिके लिये तपस्याका यह उद्योग किया था, किंतु अब तो मैं बूढ़ी हो गयी। अतः पति लेकर क्या करूँगी। अब तो इतनी ही प्रार्थना है कि आप संसारकी समस्त नारी-जातिके हितके लिये इस आश्रममें सदा निवास करें।

देवीने कहा—भद्रे! आजसे मैं तुम्हारे इस श्रेष्ठ एवं शुभ आश्रममें निवास करूँगी। इससे तुम्हारा मनोरथ पूर्ण होगा। माघशुक्ला तृतीयाको जो स्त्री अथवा पुरुष यहाँ स्नान करेंगे, उन्हें मेरे प्रसादसे मनोवांछित फलकी प्राप्ति होगी। स्त्री हो या पुरुष, इस सरोवरमें स्नान करके सब पापोंसे मुक्त हो जायँगे। भद्रे! जो कन्या यहाँ भक्तिपूर्वक स्नान करेगी, उसे निःसन्देह श्रेष्ठ पतिकी प्राप्ति होगी। जो मनुष्य यहाँपर फलोंका दान करेंगे, उनके सभी मनोरथ सफल होंगे।

ऐसा कहकर पार्वतीदेवीने उस विषकन्याका अपने हाथसे स्पर्श किया। उसी क्षण वह वृद्धावस्थासे मुक्त होकर दिव्यरूपसे सुशोभित हो गयी। तदनन्तर उस विषकन्याको अपनी सेविका बनाकर पार्वतीदेवी उसे कैलासपर्वतपर ले गयीं। तभीसे उस तीर्थको शर्मिष्ठातीर्थ कहते हैं, जो सब पातकोंका नाश करनेके लिये तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध है। माघमासके शुक्ल पक्षकी तृतीयाको सब उपाय करके मनुष्य उस तडागमें स्नान करे। यह परम पवित्र, आयुवर्द्धक, सर्वपापनाशक तथा मनुष्योंको मोक्ष देनेवाला स्त्रीतीर्थ है, जिसका वर्णन मैंने आपलोगोंसे किया है।

चमत्कारीदेवीकी महिमा, कार्तिकेयजीके द्वारा शक्तिस्थापना तथा भानुमती-दुर्योधनके विवाहमें सम्मिलित कौरव, पाण्डव एवं यादवोंद्वारा शिवलिंगस्थापन

सूतजी कहते हैं—द्विजवरो! पूर्वकालमें महाराज चमत्कारके द्वारा जिनकी श्रद्धापूर्वक स्थापना की गयी थी, वे चमत्कारीदेवी वहीं विद्यमान हैं। कौमारव्रत धारण करनेवाली उन्हीं देवीने लाखों मायामय रूप धारण करनेवाले महिषासुरका वध किया था। महात्मा राजा चमत्कारने जब चमत्कारपुरका निर्माण किया, उस समय नगरकी तथा उस नगरमें निवास करनेवाले समस्त ब्राह्मणोंकी रक्षाके लिये भक्तिभावित चित्तसे चमत्कारीदेवीको स्थापित किया था। जो महानवमीके दिन चमत्कारीदेवीका विधिपूर्वक पूजन करता है, उसे एक वर्षतक कहीं भूत, प्रेत, पिशाच, शत्रुगण, रोग, चोर तथा दुष्टोंसे भय नहीं होता। शुक्ल पक्षकी अष्टमीमें पवित्र होकर जो मनुष्य जिस-जिस

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

कामनाका चिन्तन करते हुए उनकी भक्तिपूर्वक पूजा करता है, वह उस कामनाको निःसन्देह प्राप्त कर लेता है और जो पुरुष निष्कामभावसे चमत्कारीदेवीका पूजन करता है, वह निश्चय ही देवीके प्रसादसे सुखस्वरूप मोक्ष प्राप्त कर लेता है। उन परमेश्वरीकी आराधना करके पूर्वकालमें बहुतसे राजा, ब्राह्मण तथा योगीजन सिद्धिको प्राप्त हो चुके हैं। जो एक वर्षतक प्रतिदिन श्रद्धापूर्वक चमत्कारीदेवीकी परिक्रमा करता है, वह पशु-पक्षियोंकी योनिमें नहीं जाता है।

स्वामिकार्तिकेयने तारकासुरका वध करके अपनी शक्तिको उसी चमत्कार नामक श्रेष्ठ नगरमें स्थापित किया, जिससे रक्तशृङ्ग पर्वत अत्यन्त दृढ़ हो जाय। उसके बाद उन्होंने प्रसन्न होकर अम्बावृद्धा, आम्रा, माहित्था और चमत्कारी—इन चार देवियोंसे कहा—'आप सब लोग मिलकर इस श्रेष्ठ पर्वतको सुस्थिर बनाये रखें जिससे यह प्रलयकालमें भी अपने स्थानसे विचलित न हो। यह उत्तम नगर सदा मेरे नामसे प्रसिद्ध हो और यहाँके सब ब्राह्मण सदा आप चारों देवियोंको पूजा देंगे।' स्वामिकार्तिकेयजीकी इस बातसे प्रसन्न होकर उन देवियोंने 'बहुत अच्छा' कहकर अपने त्रिशूलका अग्रभाग लगाकर उस पर्वतको सब ओरसे सुदृढ़ कर दिया। जो मनुष्य चैत्र मासके शुक्ल पक्षकी षष्ठी तिथिमें भक्तिभावसे स्वामिकार्तिकेयजीका पूजन करता है, उसे मयूरवाहन स्कन्दजी सन्तोष प्रदान करते हैं। इस प्रकार परम बुद्धिमान् स्कन्दने रक्तशृंग तथा चमत्कार नगरकी रक्षाके लिये वहाँ अपनी शक्ति स्थापित की है।

पूर्वकालमें बलभद्रजीके भानुमती नामसे प्रसिद्ध एक पुत्री थी, जो समस्त शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न तथा रूप और उदारता आदि गुणोंसे विभूषित थी। बलभद्रजीने श्रीकृष्णसे सलाह लेकर उस कन्याका विवाह परम बुद्धिमान् राजा दुर्योधनके साथ निश्चित किया। तदनन्तर हस्तिनापुरसे भीष्म, द्रोण आदि कौरवदलके लोग बारात लेकर शीघ्रतापूर्वक द्वारकापुरीकी ओर प्रस्थित हुए। पाँचों पाण्डव भी परिवारसहित दुर्योधनके साथ द्वारकापुरीको चले। क्रमशः यात्रा करते हुए वे समस्त कौरव तथा पाण्डव धन-धान्यसे सम्पन्न आनर्त देशमें आ पहुँचे, जहाँ सब पापोंका नाश करनेवाला त्रिभुवनविख्यात हाटकेश्वरक्षेत्र है। वहाँ कौरवोंके पितामह भीष्मजीने राजा धृतराष्ट्रसे कहा—'वत्स! यह भगवान् हाटकेश्वरका उत्तम क्षेत्र है जो सब पापोंका नाश करनेवाला है। बहुत दिन हुए मैंने इसका दर्शन किया था। अतः हमलोग आजसे पाँच दिनोंतक यहाँ निवास करें और शुद्ध चित्तवाले मुनियोंके जो-जो पुण्यदायक मन्दिर और तीर्थ यहाँ हैं, उन सबका दर्शन करें।'

भीष्मजीके ऐसा कहनेपर राजा धृतराष्ट्रने अपने सौ पुत्रोंके साथ शीघ्रतापूर्वक उस उत्तम क्षेत्रमें गये। वहाँ कोई उपद्रव न होने पाये, इस विचारसे राजाने अपनी सेनाको तो वहाँ जानेसे रोक दिया और स्वयं पाँचों पाण्डवों तथा सौ पुत्रोंसहित भीष्म, सोमदत्त, बाह्लीक, द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा, कृपाचार्य, शकुनि, कर्ण तथा अन्य राजाओंके साथ उस क्षेत्रमें भ्रमण किया। उन सभी क्षत्रियोंने वहाँ रहकर श्रद्धापूत हृदयसे सम्पूर्ण धर्मकार्योंका अनुष्ठान किया। तदनन्तर वे सब लोग वहाँके देवस्थानों, तीर्थों, ब्राह्मणों तथा उत्तम व्रतका पालन करनेवाले तपस्वी जनोंकी प्रशंसा करते हुए धृतराष्ट्रके साथ अपनी छावनीपर लौट आये। वहाँसे कौरव तथा पाण्डव द्वारकापुरीको गये। वहाँ पहुँचकर हर्षमें भरे हुए उन सब लोगोंने राजकुमारी भानुमतीके साथ महाराज दुर्योधनका विवाह कराया। उस समय नाना प्रकारके बाजे बजे, वेदमन्त्रोंका उच्चारण हुआ, मनोहर गीत गाये गये तथा सहस्रों वन्दीजनोंने स्तुतिपाठ किया। इस प्रकार आठ दिनोंतक यदुवंशियों और कौरवोंने मिलकर बड़ा भारी उत्सव मनाया। नवें दिन भीष्म आदि कौरवों तथा पाण्डवोंने स्नेहपूर्वक कमलनयन श्रीकृष्णसे कहा—'पुण्डरीकाक्ष! हमलोग आपके और बलरामजीके स्नेहपाशमें इतने बँधे हुए हैं

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

कि आपलोगोंका आश्रय किसी प्रकार छोड़ना नहीं चाहते तथापि अब हमें अपने नगरको जाना चाहिये। अतः आप और बलभद्रजी हमें विदा दें।'

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—आपलोगोंको यहाँ रहते हुए न तो वर्ष बीता है, न मास बीता है और न पक्ष ही व्यतीत हुआ है। फिर इतने ही दिनोंमें घर जानेकी उत्कण्ठा कैसे उदित हो गयी? हमारी तो यही इच्छा है कि कौरव, पाण्डव तथा हम सब लोग मिलकर विविध प्रकारसे मनोरंजन करते हुए सदा यहीं टिके रहें। यदि आपका हमलोगोंपर स्नेह हो, तो ऐसा ही करें।

भीष्मजी बोले—श्रीकृष्ण! आपने जो बात कही है वह सर्वथा योग्य है, परंतु आपके निकट आते हुए हमलोगोंने आनर्त देशमें अत्यन्त अद्भुत हाटकेश्वरक्षेत्रका दर्शन किया था। वहाँ सूर्यवंशी और चन्द्रवंशी महात्मा राजाओंके द्वारा स्थापित किये हुए अनेकानेक शिवलिंगोंको देखा था। अतः हमारे मनमें यह विचार उत्पन्न हुआ है कि हमलोग भी वहाँ जाकर अपने-अपने नामसे पृथक्-पृथक् शिवलिंगकी स्थापना करें। इसलिये प्रभो! आप अपने चित्तको दृढ़ करके आज्ञा दीजिये कि हमलोग जायँ। आपके दर्शनकी लालसासे हम फिर यहाँ आते-जाते रहेंगे।

श्रीभगवान्ने कहा—मैं उस परम पवित्र पापनाशक क्षेत्रको जानता हूँ। मेरे सामने अनेकों तापसों तथा दूसरे-दूसरे तीर्थयात्रियोंने भी उसके माहात्म्यकी सदा ही चर्चा की है। अतः आपके साथ हमलोग भी उस क्षेत्रको देखनेकी अभिलाषासे वहाँ शिवलिंगस्थापनाके लिये चलेंगे।

सूतजी बोले—इस बातको सुनकर कौरव और पाण्डव बड़े हर्षको प्राप्त हुए। फिर सब लोगोंने एक ही साथ हाटकेश्वरक्षेत्रको प्रस्थान किये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने क्षेत्रसे कुछ दूर ही सेनाका पड़ाव डाला और मुख्य-मुख्य कौरव, पाण्डव तथा यादव चमत्कारपुरमें गये। वहाँ जा उस क्षेत्रके समस्त ब्राह्मणोंको बुलाकर उन्हें भाँति-भाँतिके भूषण और वस्त्र देते हुए उन सबने कहा—'द्विजवरो! हम सब लोग यहाँ अपनी-अपनी शक्तिके अनुसार पृथक्-पृथक् शिवलिंगस्थापना और मन्दिरनिर्माणका कार्य करना चाहते हैं। इसलिये आप लोग शीघ्र आज्ञा दें, जिससे कार्य प्रारम्भ किया जाय। आप ही लोग सब कर्मोंमें होता होंगे। बाहरका दूसरा कोई ब्राह्मण नहीं रहेगा।'

उनका यह वचन सुनकर उन ब्राह्मणोंने आपसमें विचार करके यह निश्चय किया कि 'इनको हम अवश्य भूमि देंगे, जिससे हमें धनकी भी प्राप्ति होगी और इस स्थानकी भी शोभा बढ़ जायगी।' ऐसा विचार करके कौरवों, यादवों तथा पाण्डवोंसे वे इस प्रकार बोले—'यह क्षेत्र अत्यन्त छोटा है और अन्य राजाओंके मन्दिरोंसे भरा हुआ है; इसलिये हमें कुछ कहते नहीं बनता। आपलोगोंमें जो प्रधान-प्रधान व्यक्ति हों, वे ही यहाँ पृथक्-पृथक् अत्यन्त मनोहर मन्दिरोंका निर्माण करें।' उनका यह कथन सुनकर धृतराष्ट्र आदि प्रधान-प्रधान व्यक्तियोंने वहाँ सुन्दर मन्दिरोंका निर्माण किया।

राजा धृतराष्ट्रने अपने सौ पुत्रोंके साथ एक सौ एक शिवलिंग स्थापित किये। समस्त पाण्डवोंने अपने-अपने नामसे पाँच शिवलिंगोंकी स्थापना की। तत्पश्चात् गान्धारी, कुन्ती, द्रौपदी तथा भानुमतीने चार पार्वतीमूर्तियोंकी स्थापना की। तदनन्तर विदुर, शल्य, युयुत्सु, कलिंग, बाह्लीक, कर्ण, वृषसेन, शकुनि, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य तथा अश्वत्थामाने भी पृथक्-पृथक् सुन्दर मन्दिर बनवाकर बड़ी भक्तिसे एक-एक उत्तम शिवलिंगकी स्थापना की। सर्वशक्तिमान् भगवान् श्रीकृष्णने एक ऊँचे शिखरवाले मनोहर मन्दिरका निर्माण कराकर उसमें उत्तम शिवलिंगको स्थापित किया। तत्पश्चात् सात्वत, साम्ब, बलभद्र, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध आदि मुख्य-मुख्य यादवोंने भी शिवलिंग स्थापित किये। रुक्मिणीके दस पुत्र चारुदेष्ण आदिने भी श्रद्धापूर्वक दस शिवलिंगोंकी स्थापना की। इस प्रकार वे

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

सब कौरव, पाण्डव और यादव प्रसन्नतापूर्वक शिवलिंगोंकी स्थापना करके कृतकृत्य हो गये। उन्होंने चिरकालतक उस तीर्थमें रहकर चमत्कारपुरके ब्राह्मणोंको अनेक प्रकारके दान देकर धनाढ्य बना दिया। इसके बाद वे सब लोग अपने-अपने स्थानको चले गये। जो पुरुष भक्तिभावसे उन शिवलिंगोंकी पूजा करता है, वह सम्पूर्ण मनोवांछित कामनाओंको प्राप्त कर लेता है।

~~~०~~~

स्कन्दस्वामी और देवयजनकी महिमा तथा तीनों सूर्य-विग्रहोंके दर्शनका माहात्म्य

सूतजी कहते हैं—प्राचीन कल्पमें जब देवताओंने हाटकेश्वर नामक शिवलिंगकी स्थापना की, तब भगवान् शिवने ब्रह्माजीके लिये यह क्षेत्र प्रदान किया था। उस समय वहाँके ब्राह्मणोंकी कलिकाल आदि दोषोंसे रक्षा करनेके लिये महादेवजीने अपने पुत्र कार्तिकेयको ब्रह्माजीकी प्रार्थनासे वहाँ रहनेकी आज्ञा दी। पिताकी आज्ञासे कार्तिकेयजीने वहाँ निवास किया। जो कार्तिककी पूर्णिमाको कृत्तिका नक्षत्रके योगमें स्वामिकार्तिकेयजीका दर्शन करता है, वह सात जन्मोंतक धनाढ्य एवं वेदवेत्ता ब्राह्मण होता है। उस तीर्थमें कार्तिकेयजीका मन्दिर बहुत ही ऊँचा और मनोहर है; उस मन्दिरकी चर्चा सुनकर स्वर्गके देवता भी कौतूहलवश वहाँ उतर आये और उन्होंने बड़ी प्रसन्नताके साथ उस पवित्रतम नगर एवं मन्दिरका दर्शन किया तथा उस मन्दिरके उत्तर एवं पूर्व दिशामें विधिपूर्वक यज्ञकर्मका अनुष्ठान किया। यज्ञ-होम करके सब देवताओंने वहाँके ब्राह्मणोंको दक्षिणा दी और उस स्थानका उत्तम फल पाकर स्वर्गलोकको प्रस्थान किया। तबसे उस स्थानका नाम देवयजन हुआ। अन्य स्थानोंपर सौ यज्ञ करके मनुष्य जिस फलको पाता है, उसीको वहाँ दक्षिणासहित एक ही यज्ञ करके पा लेता है।

उस तीर्थमें तीन सूर्यविग्रह हैं—प्रथमका नाम मुण्डीर, दूसरेका कालप्रिय तथा तीसरेका मूलस्थान है, जो सब रोगोंका नाश करनेवाले हैं। भगवान् सूर्य प्रातःकाल मुण्डीरमें, मध्याह्नके समय कालप्रियमें तथा सन्ध्याके समय मूलस्थानमें जाते हैं। उस समय जो मनुष्य इन तीनों सूर्यविग्रहोंमेंसे एकका भी भक्तिपूर्वक दर्शन करता है, वह निःसन्देह मोक्षको प्राप्त होता है।

समुद्रके निकट विटंकपुर नामक एक उत्तम स्थान है, जो समुद्रकी उत्ताल तरंगोंसे आवृत होनेके कारण ऊँची चहारदीवारीसे सुशोभित प्रतीत होता है। उस नगरमें एक ब्राह्मण था, जो पूर्वकर्मके फलसे युवावस्थामें ही कोढ़ी हो गया था। उसकी पत्नी अच्छे कुलमें उत्पन्न, सती-साध्वी एवं सुशीला थी। वह अपने कोढ़ी पतिको ही कामदेवके समान सुन्दर देखती थी। पतिके अच्छे होनेके लिये ब्राह्मणी भाँति-भाँतिकी बहुमूल्य एवं हितकर ओषधियाँ ले आती और उसके घावोंपर लेप करती थी। एक समय उस श्रेष्ठ ब्राह्मणके घरमें कोई उत्तम अतिथि आया, जो कि बहुत थका-माँदा था। घरपर आये हुए उस ब्राह्मणको देखकर उसकी सती स्त्रीने भक्तिपूर्वक अनेक उपचारोंसे उसे सन्तुष्ट किया। जब वह स्नान, भोजन और आचमन करके शय्यापर विश्राम करने लगा, तब उससे गृहस्थ ब्राह्मणने पूछा—'विप्रवर! आप कहाँसे आये हैं और इस समय कहाँ जाते हैं?'

पथिक बोला—द्विजश्रेष्ठ! मैं कान्तिपुरका रहनेवाला हूँ, मुझे भी तुम्हारी ही भाँति कुष्ठरोगने दबा लिया था। तब मैंने सुना कि इस पृथ्वीपर समस्त रोगोंका नाश करनेवाले तीन सूर्यविग्रह हैं। सुनकर उन्हींका दर्शन करनेके लिये मैं हाटकेश्वरक्षेत्रमें गया और मुण्डीर स्वामीके पास पहुँचकर वहीं ठहर गया। उस स्थानपर सूर्यदेवका विधिपूर्वक पूजन करनेसे मेरा सब रोग जाता रहा और शरीर परम सुन्दर

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth
~~~

हो गया। इस समय मैं वहींसे लौटकर आ रहा हूँ। द्विजश्रेष्ठ! तुम भी उस तीर्थमें जाकर वहाँके तीनों सूर्यविग्रहोंके दर्शन करो, जिससे कुष्ठरोगका नाश हो जाय। आज मुझे तुम्हारे घरमें अपने ही घरका-सा आराम मिला है। अब मैं अपने नगरको जाऊँगा।

पथिककी यह बात सुनकर गृहस्थ ब्राह्मणने अपनी पत्नीके मुखकी ओर देखा। वह बोली— 'प्राणनाथ! इन्होंने बहुत अच्छी सलाह दी है, अतः जहाँ वे तीनों सूर्यविग्रह हैं, उस स्थानपर शीघ्र ही चलिये। प्रभो! मैं भी आपके साथ सेवामें संलग्न रहकर चलूँगी।' तदनन्तर उस ब्राह्मणने अपनी स्त्रीके साथ मुण्डीर स्वामीके निकट प्रस्थान किया और बड़े क्लेशसे किसी तरह वह हाटकेश्वरक्षेत्रमें पहुँचा तथा अपनी पत्नीसे बोला—'प्रिये! मैं रोग और भूखसे बहुत कष्ट पा रहा हूँ, अतः मुण्डीर स्वामीके समीपतक चलनेमें असमर्थ हूँ। इसलिये यहींपर अपना शरीर त्याग दूँगा। तुम कोई अच्छा साथ ढूँढ़कर घर लौट जाओ।'

स्त्री बोली—प्राणवल्लभ! आपके भोजन किये बिना मैंने कभी भोजन नहीं किया है। एकान्तमें भी जबतक आप जगे हैं, मैंने कभी नींद नहीं ली है। अतः आज इस महाक्षेत्रमें आकर जब आप परलोक जानेके लिये उद्यत हैं, तब आपको त्यागकर मैं घर कैसे लौट सकती हूँ? आपके बिना बन्धु-बान्धवों, गुरुजनों तथा अन्य सुहृदोंको कैसे मुँह दिखाऊँगी? इसलिये नाथ! मैं आपके साथ ही अग्निमें प्रवेश करूँगी। यह बात मैं शपथ खाकर कहती हूँ। महामते! जितने उपवास आपने किये हैं, उतने ही मुझे भी हुए हैं। इस दशामें आपको छोड़कर मैं घर कैसे जा सकती हूँ।

अपनी पत्नीका ऐसा निश्चय जानकर ब्राह्मणने चिता तैयार करवायी और अपनेको जला डालनेके लिये वह पत्नीके साथ ही चितापर बैठा। फिर मन-ही-मन भगवान् सूर्यका ध्यान करके उसने ज्यों ही आग अपने हाथमें ली, त्यों ही तीन महातेजस्वी पुरुष उसके सामने उपस्थित हो गये। वे ही भगवान् सूर्यके तीनों विग्रह थे। उनका दर्शन करके ब्राह्मण उसी क्षण कोढ़के रोगसे मुक्त तथा सुन्दर कान्तिसे सुशोभित तरुण हो गया। इस प्रकार उस क्षेत्रके तीनों सूर्य बहुत प्रसिद्ध हैं। उनके दर्शनसे भी सबको अभीष्ट फलकी प्राप्ति हो जाती है।

चन्द्रदेवके मन्दिरके निर्माणका महत्त्व, अम्बावृद्धाके दर्शनकी महत्ता, शन्तनुके राज्यमें अवर्षण, अग्नितीर्थका प्राकट्य और अग्निको ब्रह्माका वरदान

सूतजी कहते हैं—विप्रवरो! उस क्षेत्रमें परम शुभदायक चन्द्रमाका भी मन्दिर है, जिसके दर्शनसे ही मनुष्य पापमुक्त हो जाता है। चन्द्रग्रहणके समय अथवा सोमवारके दिन जो वहाँ चन्द्रदेवका दर्शन करता है, वह पापी हो तो भी नरकको नहीं देखता। यह समस्त संसार सोममय है, अतः सोमके प्रतिष्ठित होनेसे सम्पूर्ण त्रिलोकी ही प्रतिष्ठित हो जाती है। ये अन्न आदि सब ओषधियाँ, ये खेतोंमें लहरानेवाले सस्य, जिनके आश्रयसे समस्त जीव जीवन धारण करते हैं, सब सोममय ही हैं। ब्रह्मा आदि देवता क्रमशः सोमको पाकर परम तृप्तिको प्राप्त होते हैं, अतः सोम श्रेष्ठ माने गये हैं। अग्निष्टोम आदि यज्ञ भी सोममें ही प्रतिष्ठित हैं। इस कारण सोम सम्पूर्ण देवताओंमें श्रेष्ठ माने गये हैं। वे देवता और दैत्य दोनोंके पूज्य हैं। जिस प्रकार पृथ्वीपर अन्य देवेश्वरोंके मन्दिर बनाये जाते हैं, वैसे ही निशानाथ चन्द्रमाका भी मन्दिर बनवाना चाहिये। जिन मनुष्योंने भूतलपर निशानाथ चन्द्रदेवका मन्दिर बनाया है, वे पुण्यराशिका संचय करके मोक्षपदको प्राप्त हो चुके हैं।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

हाटकेश्वरक्षेत्रमें जो निशानाथ चन्द्रमाका मन्दिर है, उसे महाराज अम्बरीषने बनवाया था। उसीके उत्तर भागमें चन्द्रमाका एक दूसरा मन्दिर भी है, जो महाराज धुन्धुमारके द्वारा स्थापित किया गया है। उसके प्रभावसे वे दोनों राजा जन्म-मृत्युरहित परम सिद्धिको प्राप्त हुए। इसी प्रकार प्रभासक्षेत्रमें महाराज इक्ष्वाकुने श्रद्धापूर्वक चन्द्रमाके तीसरे मन्दिरकी प्रतिष्ठा की है। पृथ्वीपर इन तीन मन्दिरोंको छोड़कर दूसरा कोई चन्द्रमाका मन्दिर नहीं है। चन्द्रमाका यह उत्तम माहात्म्य बताया गया, जो पढ़ने और सुननेवालोंके समस्त पापोंका नाश करनेवाला है।

जिस समय महाराज चमत्कारने इस चमत्कारपुरका निर्माण किया था। उसी समय उस नगरकी रक्षाके लिये ब्राह्मणोंकी सम्मतिसे उन्होंने देवियोंकी भी स्थापना की थी। उन दिनों राजा चमत्कारके दो कन्याएँ थीं। जिनमें एकका नाम था—अम्बा और दूसरीका वृद्धा। उन दोनोंका पाणिग्रहण काशिराजने गृह्यसूत्रमें बतायी हुई विधिके अनुसार देवता, ब्राह्मण और अग्निके समीप किया। एक समय काशीनरेशका यवनोंके साथ घोर युद्ध हुआ। जिसमें भयानक यवनोंके द्वारा प्रतापी काशिराज भृत्य, सेना तथा वाहनोंसहित मारे गये। अम्बा और वृद्धा यह दुःखद वैधव्य पाकर मनोवांछित फल देनेवाले हाटकेश्वरक्षेत्रमें गयीं और देवीके आराधनमें संलग्न हो शुभदायक तप करने लगीं। इसी समय प्रतापी नरेश चमत्कारने उनके लिये कैलास-शिखरके समान ऊँचा मन्दिर बनवाया। तबसे लेकर उस महान् अभ्युदयशाली क्षेत्रमें वे दोनों अम्बा-वृद्धाके नामसे प्रसिद्ध हुईं। वे दोनों देवियाँ सदा नगररक्षाके कार्यमें तत्पर रहती हैं। जो मनुष्य प्रातःकाल उठकर उन दोनोंका मुख देखता है, उसको एक वर्षतक किसी प्रकारका दोष नहीं प्राप्त होता। जो वर्षके आदि अथवा अन्तमें उन दोनोंकी प्रसन्नताके लिये पूजा करता है, उसे भूतलपर किसी प्रकारका छिद्र नहीं प्राप्त होता। जो पुरुष यात्राके समय उन दोनोंके लिये पूजन करता है, वह मनोवांछित फल पाकर शीघ्र अपने घर लौटता है। जो महानवमीके दिन श्रद्धापूर्वक अम्बा-वृद्धाकी प्रसन्नताके लिये पूजा करता है, वह अकण्टक होकर रहता है।

पूर्वकालमें प्रतीप नामसे प्रसिद्ध एक राजा हो गये हैं। वे बड़े ही शूरवीर तथा ब्रह्मज्ञानी थे। उनका जन्म चन्द्रवंशमें हुआ था। राजा प्रतीपके दो पुत्र हुए, जो समस्त शुभलक्षणोंसे सुशोभित थे। उनमें पहलेका नाम देवापि और दूसरेका शन्तनु था। कुछ कालके बाद नृपश्रेष्ठ प्रतीप जब ब्रह्मलीन हो गये, तब देवापिने राज्यका त्याग करके तपस्याके लिये वनको प्रस्थान किया। तब उनके छोटे भाई शन्तनुको सब मन्त्रियोंने पिता-पितामहोंके राज्यपर बिठाया। राजा शन्तनुके राज्य करते समय इन्द्रने बारह वर्षोंतक वृष्टि रोक दी। इससे सब लोग बड़ी कठिनाईमें पड़ गये और भूखसे पीड़ित रहने लगे। यदि दैवयोगसे किसीके पास कहीं थोड़ा भी कच्चा या पका अन्न दिखायी देता तो उसे दूसरे बलवान् लोग बलपूर्वक छीन लेते थे। सारे वृक्ष और जलाशय सूख गये। गंगा आदि नदियोंमें भी बहुत थोड़ा जल रह गया। इस प्रकार वर्षा बंद होनेपर धर्मका मार्ग नष्ट हो गया। सम्पूर्ण जगत् हड्डियोंसे भर गया। कोई भी यज्ञ, स्वाध्याय तथा व्रतका पालन नहीं करता था। तब अग्निदेव इन्द्रपर क्रोध करके भूमण्डलवासियोंके लिये अदृश्य हो गये। इसी समय ब्रह्मा और विष्णुको आगे करके सब देवता अग्निकी खोज करनेके लिये पृथ्वीपर घूमने लगे। इधर अग्निदेव हाटकेश्वरक्षेत्रमें ब्रह्माजीके स्थानसे ईशानकोणमें स्थित गम्भीर जलाशयके भीतर प्रवेश कर गये। देवता उन्हें खोजते हुए वहाँ आ पहुँचे। देवताओंको आया देख अग्निदेव उस स्थानसे निकले। तब महात्मा ब्रह्माजीने पूछा—'अग्ने! तुम देवताओंको देखकर क्यों अन्यत्र चले जाते हो? तुम्हीं सबके आदि हो और तुम्हीं इन सबके मुखरूपसे जगत्में प्रतिष्ठित हो। तुममें विधिपूर्वक दी हुई आहुति सूर्यको प्राप्त होती है, सूर्यसे वृष्टि होती है और वृष्टिसे अन्न उत्पन्न होता

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

है। फिर अन्नसे प्रजाका जीवन चलता है, इसलिये तुम्हीं जगत्‌के धाता और विधाता हो। तुम्हारे सन्तुष्ट रहनेपर सम्पूर्ण जगत् सुरक्षित रहता है और तुम्हारे कुपित होनेपर इसका नाश हो जायगा। अग्निष्टोम आदि सम्पूर्ण यज्ञ तुममें ही प्रतिष्ठित हैं और सम्पूर्ण भूत-प्राणी तुम्हारे ही आश्रयसे जीवित रहते हैं। अग्निदेव! तुम समस्त भूतोंके भीतर सदा विचरते हो, क्योंकि उदरस्थित अन्न और जलका पाचन तुम्हीं करते हो। अतः सम्पूर्ण देवताओंपर कृपा करो और अपने क्रोधका कारण बताओ। तुम क्यों सबको त्यागकर चले गये थे?'

सूतजी कहते हैं—ब्रह्माजीका यह वचन सुनकर अग्निदेवने क्रोध त्याग दिया और प्रेमसे कहा—'कमलोद्भव! इन्द्रने वृष्टि रोक दी, जिससे अन्न आदि ओषधियोंका सर्वनाश हो गया। अतः उन्हींपर क्रोध करके मैं संसारको छोड़कर अदृश्य हो गया था।' यह सुनकर ब्रह्माजीने कहा—'इन्द्र! अग्निदेव ठीक ही कहते हैं, तुम संसारमें वर्षा क्यों नहीं करते?'

इन्द्रने कहा—पितामह! अपने बड़े भाईका उल्लंघन करके शन्तनु समूची पृथ्वीका राजा बन बैठा है। इसीलिये मैंने उसके राज्यमें वर्षा रोक दी है। अब आप ही प्रमाण हैं, कहिये मैं क्या करूँ?

ब्रह्माजी बोले—इस उल्लंघनका फल तो उस राजाने पा लिया। अब मेरे कहनेसे तुम शीघ्र ही वर्षा करो, जिससे यह सम्पूर्ण जगत् अकाल और क्षुधाद्वारा नष्ट होनेसे बच जाय।

तब इन्द्रने शीघ्रतापूर्वक पृथ्वीपर वर्षा करनेके लिये पुष्करावर्तक नामवाले मेघोंको आज्ञा दी। आज्ञा पाते ही उन्होंने बिजली चमकाते और गर्जते हुए क्षणभरमें पृथ्वीको जलसे परिपूर्ण कर दिया। तत्पश्चात् देवताओंसहित ब्रह्माजीने अग्निसे कहा—'पावक! तुम अग्निहोत्रमें ब्राह्मणोंके सामने प्रत्यक्ष प्रकट हो जाओ और मुझसे मनोवांछित वर माँगो।'

अग्नि बोले—यह पवित्र जलाशय भूतलपर अग्नितीर्थ कहलाये। जो प्रातःकाल उठकर श्रद्धापूर्वक इसमें स्नान करनेके पश्चात् अग्निसूक्तका जप करके आदरके साथ आपका दर्शन करे, उसको आप मेरे अनुरोधसे पूर्णतः सन्तुष्ट करें।

ब्रह्माजीने कहा—अग्ने! जो वेदवेत्ता द्विज प्रातःकाल उठकर यहाँ स्नान और अग्निसूक्तका जप करनेके पश्चात् मेरा दर्शन करेगा, उसे अग्निष्टोम यज्ञका सम्पूर्ण फल प्राप्त होगा।

अग्निदेव बोले—लोकेश्वर! बारह वर्षोंतक मुझे कभी तृप्ति नहीं प्राप्त हुई। मर्त्यलोक भूखसे पीड़ित था; अतः मुझे कहीं कुछ नहीं मिला। इसलिये पुनः यहाँ अन्नमय यज्ञ हो।

ब्रह्माजी बोले—हुताशन! यहाँ जो कोई ब्राह्मण निवास करते हैं, वे वसुधाराकी आहुतिसे तुम्हें रात-दिन भक्तिपूर्वक तृप्त करते रहेंगे। इससे तुम पूर्णतः पुष्ट हो जाओगे और उनके भी मनोवांछित मनोरथ पूर्ण होंगे। संक्रान्तिके समय जो वसुधारा प्रदान करनेवाले ब्राह्मण तुम्हारे मुखमें आहुति डालेंगे, उनके जीवभरके अज्ञानजनित पाप नष्ट हो जायँगे। तुम्हारे सन्तुष्ट होनेपर आगे चलकर उशीनर देशमें शिवि नामसे सुविख्यात राजा होंगे, जो श्रद्धापूर्वक द्वादशवार्षिक (बारह वर्षोंतक चालू रहनेवाला) यज्ञ करके वसुधारा देकर तुम्हें वर्षों तृप्त करते रहेंगे। इससे तुम्हें उत्तम पुष्टि प्राप्त होगी। भूतलपर वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ सब मनुष्य तुम्हारी पूजा करेंगे। आजसे लेकर शान्तिक या पौष्टिक जो भी कर्म होगा, वसुधारासे युक्त होगा और तुम्हें परम तृप्ति प्रदान करनेवाला होगा।

अग्निदेवसे ऐसा कहकर लोकपितामह ब्रह्माजी इन्द्र, विष्णु और शिव आदि देवताओंके साथ ब्रह्मलोकको गये। वहाँसे सब देवता अपने-अपने धामको चले गये। अग्निदेव ब्राह्मणोंके अग्निहोत्र गृहमें प्रकट हुए और विधिपूर्वक प्राप्त वसुधारा होम ग्रहण करने लगे। इस प्रकार हाटकेश्वरक्षेत्रमें परम उत्तम अग्नितीर्थ प्रसिद्ध हुआ, जहाँ प्रातः स्नान करके मनुष्य दिनभरके पापसे मुक्त हो जाता है।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

ब्रह्मकुण्ड तथा गोमुखतीर्थकी उत्पत्तिकथा एवं महिमा

सूतजी कहते हैं—महात्मा मार्कण्डेयजीने जिस समय ब्रह्माजीका स्थापन किया था, उसी समय वहाँ पवित्र जलसे युक्त एक कुण्डका भी निर्माण किया और उसके माहात्म्यके विषयमें इस प्रकार कहा—'कार्तिक मासमें चान्द्रनक्षत्र कृत्तिकाके योगमें जो यहाँ भलीभाँति भीष्मव्रतका पालन करेगा, वह उत्तम ब्रह्मलोकमें जायगा।' ऐसा कहते हुए मार्कण्डेयजीके उस वचनको किसी पशुपाल (चरवाहे)-ने सुना और श्रद्धासे प्रेरित होकर उसने कार्तिक मासमें भीष्मपंचक-व्रतका विधिपूर्वक पालन किया। जब कृत्तिका नक्षत्रसे युक्त पूर्णिमा आयी तब उसमें स्नान करके ब्रह्माजीकी पूजा की। उसके बाद पुरुषोत्तम भगवान् विष्णुका भी विधिपूर्वक पूजन किया। तदनन्तर काल आनेपर उसकी मृत्यु हो गयी और वह इसी नगरमें ब्राह्मणके घरमें उत्पन्न हुआ। उस समय उसे अपने पूर्वजन्मकी बातोंका स्मरण बना हुआ था। एक दिन उसने लोगोंके पूछनेपर बताया कि किसी समय महामुनि मार्कण्डेयके मुखसे मैंने ब्रह्मकुण्डका माहात्म्य सुना और कार्तिक मासमें उस शुभदायक कुण्डके जलमें विधिपूर्वक स्नान किया था। उसीके प्रभावसे इस जन्ममें मैं ब्रह्मर्षि चन्द्रात्रेयके वंशमें उत्पन्न हुआ हूँ और पूर्वजन्मकी सब बातोंको भी स्मरण करता हूँ। कार्तिक पूर्णिमाको कृत्तिकानक्षत्रका योग होनेपर यहाँका महत्त्व बढ़ जाता है, इस बातको मैं अनुभव कर चुका हूँ। इसीलिये सदा उत्तम भीष्मपंचक-व्रतका पालन करता हूँ।

इस प्रकार उसकी बात सुनकर अन्य सब श्रेष्ठ ब्राह्मण भी श्रद्धापूर्वक भीष्मपंचक-व्रतका पालन करने लगे। तभीसे उत्तर दिशामें वह कुण्ड इस पृथ्वीपर ब्रह्मकुण्डके नामसे विख्यात हुआ। जो ब्राह्मण सदा उसमें स्नान करता है, वह प्रत्येक जन्ममें श्रेष्ठ ब्राह्मण ही होता है।

वहीं एक गोमुख नामसे प्रसिद्ध अतिशय शोभायमान तीर्थ है, जो सब पातकोंका नाश करनेवाला है। पूर्वकालमें चमत्कारपुरके भीतर गौओंका पालन करनेवाला एक ब्राह्मण था, जो कुष्ठरोगसे पीड़ित हो अत्यन्त दुर्बल हो गया था। किसी समय उसी मार्गसे उसकी गौओंका झुंड आ निकला। वे सभी गौएँ प्याससे कष्ट पा रही थीं। उस दिन ज्येष्ठ मासकी एकादशी तिथिमें चित्रा नक्षत्रका योग था और मध्याह्नकाल हो गया था। यद्यपि वहाँ घास बहुत उगी थी, फिर भी गरमी और प्यासके कष्टसे किसी भी धेनुने उस घासकी ओर देखातक नहीं। उनमेंसे एक गौने दूरसे ही घासके उस पुंजको देखा और अत्यन्त हर्षमें भरकर तुरंत ही वहाँ जा दाँतोंसे उखाड़कर खींचा। इतनेमें ही उस घासके नीचेसे जलकी धारा निकल आयी। उस प्याससे कष्ट पाती हुई गायने घासको खा धीरे-धीरे दुग्धके समान स्वच्छ एवं मधुर प्रतीत होनेवाले उस जलको जी भरकर पीया। जब वह वेगपूर्वक जल पी रही थी, उसी समय पृथ्वीपर वहाँ जलसे भरे हुए अनेक लंबे-चौड़े गड्ढे प्रकट हो गये। तदनन्तर दूसरी सैकड़ों गौओंने भी उस अत्यन्त निर्मल अमृतरसके समान मधुर जलका पान किया। जैसे-जैसे गौएँ आकर जल पीती थीं, वैसे-ही-वैसे उनके मुखके स्पर्शसे वे गड्ढे बढ़ते जाते थे। इस प्रकार जब सभी गौओंने पानी पीकर प्यासको बुझा लिया, तब वह प्यासा गोपालक ब्राह्मण जलमें घुसा। अपने अंगोंको धोकर और जल पीकर ज्यों ही वह जलसे बाहर निकला त्यों ही अपने शरीरको उसने सूर्यके समान तेजस्वी देखा। इससे उसको बड़ा आश्चर्य हुआ और उसने घर जाकर सब लोगोंके सामने वहाँका सब वृत्तान्त कह सुनाया। तब वहाँके सब लोग, विशेषत: रोगी मनुष्य, उस दिव्य जलके पास गये और सबने एकाग्रचित्त होकर वहाँ स्नान किया। स्नान करते ही सब लोग तत्काल

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

रोगों और पापोंसे मुक्त हो गये। तबसे वह जल गोमुख तीर्थके नामसे विख्यात हुआ; क्योंकि वह गौओंके मुखसे प्रकट हुआ था।

ऋषि बोले—सूतनन्दन! उस स्थानसे जो वैसा माहात्म्यपूर्ण जल प्रकट हुआ, इसका क्या कारण है?

सूतजीने कहा—महर्षियो! यहाँ पूर्वकालमें महाराज अम्बरीषने तप किया था। तपस्याका कारण यह था कि राजाको वृद्धावस्थामें एक पुत्र हुआ। उसका नाम सुवर्चा था। पूर्वजन्मके कर्मके फलसे बाल्यावस्थामें ही राजकुमार सुवर्चा कोढ़ी हो गये। इससे राजाको बड़ा दुःख हुआ। तब वे सब मनोरथोंको पूर्ण करनेवाले हाटकेश्वरक्षेत्रमें गये और पुत्रके रोगका निवारण करनेके लिये उन्होंने बड़ी भारी तपस्या की। इससे सन्तुष्ट होकर भगवान् विष्णुने उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन दिया और आदरपूर्वक कहा—'वत्स! मैं तुमपर प्रसन्न हूँ, तुम्हारे मनमें जो इच्छा हो, उसे माँगो।'

राजाने कहा—केशव! मेरा पुत्र बाल्यावस्थामें ही कुष्ठरोगसे पीड़ित हो गया है। आप इसके रोगका निवारण करें।

उनके ऐसा कहनेपर भगवान् विष्णुने एकाग्रमनसे पातालगंगाका स्मरण किया। भगवान्के स्मरण करनेपर पातालगंगा एक छोटा-सा विवर बनाकर तत्काल ऊपर आ गयीं। तब श्रीहरिने राजासे कहा—'तुम्हारा पुत्र इस उत्तम गंगाजलमें स्नान करे।' यह आज्ञा पाकर अम्बरीषने अपने पुत्रको श्रीहरिके सामने ही पातालगंगाके जलमें नहलाया। वहाँ स्नान करनेमात्रसे ही वह बालक उसी क्षण कुष्ठरोगसे मुक्त हो बालसूर्यके समान तेजस्वी हो गया। तब उसने भगवान्को नमस्कार किया। इस बातको कोई जानता नहीं था, इसलिये वह सर्वपापहारी जल वहाँ गुप्त ही रहा। वही पुनः गोमुखद्वारा पृथ्वीपर प्रकट हुआ। आज भी उस जलके स्पर्शसे वहाँका धरातल अत्यन्त पवित्र है। जो पुरुष रविवारको सूर्योदयके समय वहाँ स्नान करता है, उसके गलगण्ड (घेघा) आदि सब रोग तत्काल नष्ट हो जाते हैं। पापजनित बड़ी भयंकर व्याधियाँ भी निवृत्त हो जाती हैं। फोड़े और चेचक आदिके उपद्रव भी शान्त हो जाते हैं। जो मनुष्य निष्कामभावसे भक्तिपूर्वक इस तीर्थमें स्नान करता है, वह देवदेव चक्रपाणि श्रीहरिके लोकमें जाता है। जिस दिन भगवान् विष्णुने वहाँ गंगाको प्रकट किया था, उस दिन सूर्य वृषराशिपर स्थित थे और चन्द्रमा चित्रानक्षत्रकी शोभा बढ़ा रहे थे तथा भगवान् विष्णुकी एकादशी तिथि भी विद्यमान थी। फिर गायके मुखसे जिस दिन घासोंका समूह उखाड़ा गया और गंगा भूतलपर प्रकट हुईं, उस दिन भी पूर्वोक्त योग ही था। अतः वही वहाँके लिये उत्तम पर्व है।

परशुरामद्वारा लोहयष्टिकी स्थापना और उसकी महिमा, देवीकुण्डका माहात्म्य, देवीकी कृपासे अजको दिव्यास्त्रोंकी प्राप्ति तथा पातालगमन

सूतजी कहते हैं—महर्षियो! जिस समय परशुरामजीने रामकुण्डमें जाकर अपने पितरोंका तर्पण किया और यज्ञमें सारी पृथ्वी श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको देकर वे क्रोधरहित हो गये, उस समय समुद्र-स्नानके लिये हर्षपूर्वक प्रस्थित हुए। उस यात्राके समय भी उन्होंने अपने हाथमें सूर्यके समान तेजस्वी कुठार ले रखा था। तब समस्त ऋषि-मुनियोंने परशुरामजीसे कहा—'महाभाग राम! आप पुण्यकार्य करनेके लिये जाते समय भी जो हाथमें शस्त्र धारण करते हैं, यह उचित नहीं जान पड़ता। जबतक आपके हाथमें कुठार रहेगा, तबतक आपका क्रोध शान्त नहीं होगा। इसलिये इसे त्याग दीजिये।'

मुनियोंकी यह बात सुनकर परशुरामजीने हाथ जोड़कर विनीतभावसे कहा—विप्रवरो!

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

यह कुठार अक्षय है और भगवान् शंकरके तेजसे प्रकट हुए लोहका बना हुआ है। साक्षात् विश्वकर्माने इसका निर्माण किया है। ऐसे दिव्य शस्त्रको त्यागकर मैं क्षात्रधर्ममें तत्पर होकर भी कैसे दिग्दिगन्तमें जा सकता हूँ? मेरे छोड़े हुए इस कुठारको यदि दूसरा कोई ग्रहण कर लेगा, तो वह मेरेद्वारा वध्य होगा। अतः यदि इसे छोड़ भी दूँ, तो मेरे मनमें शान्ति नहीं रहेगी। मैं इसे तभी छोड़ सकता हूँ, जब आपलोग इसकी प्रयत्नपूर्वक रक्षा करें।

ब्राह्मणोंने कहा—महाभाग! यदि तुम इस कुठारको हमें रक्षाके लिये सौंपते हो, तो इसका खण्ड-खण्ड करके दो। तभी हम यत्नपूर्वक इसकी रक्षा करेंगे। उस दशामें कोई इसे लेगा भी नहीं।

मुनियोंकी यह बात सुनकर शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ परशुरामजीने उस कुठारको तोड़कर लोहेकी छड़ी बनवा दी और उसे उन ब्राह्मणोंको आदरपूर्वक सौंप दिया।

ब्राह्मण बोले—राम! आपके कुठारकी बनी हुई इस लोहेकी छड़ीको हमलोग बड़े यत्नसे रखेंगे। जैसे कुमार कार्तिकेयकी शक्तिमयी कीर्ति यहाँ प्रतिष्ठित है, उसी प्रकार आपकी लोहयष्टिमयी कीर्ति भी यहाँ प्रतिष्ठित हो गयी। जो राज्यभ्रष्ट राजा इस लोहदण्डकी आराधना करेगा, वह शीघ्र ही अपने राज्यको पाकर प्रतापी होगा। जो द्विज सदा विद्याके लिये इस लोहयष्टिकी पूजा करेगा, वह उत्तम विद्या पाकर सवर्ज्ञताको प्राप्त होगा। जो पुत्रहीन पुरुष अथवा स्त्री आपके इस लोहदण्डकी पूजा करेंगे, वे पुत्रवान् होंगे। जो आश्विन मासके कृष्ण पक्षकी चतुर्दशी तिथिको उपवास करके इसकी पूजा करेगा, वह समस्त मनोवांछित कामनाओंको प्राप्त करेगा।

ऐसा सुनकर परशुरामजीने उन श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको प्रणाम करके तुरंत ही समुद्रकी ओर प्रस्थान किया और वे ब्राह्मण भी उस लोहयष्टिके लिये उत्तम मन्दिर बनवाकर उसमें उसकी स्थापना करके एकाग्रचित्त हो उसकी पूजा करने लगे। इससे उन्होंने अपने देवदुर्लभ मनोरथोंको भी प्राप्त कर लिया।

सूतजी कहते हैं—प्राचीनकालमें अज नामसे प्रसिद्ध एक राजा हो गये हैं। उनका सत्पुरुषोंमें भी बड़ा सम्मान था। वे माता-पिताकी भाँति सब लोगोंका हित करनेवाले थे। उन्होंने पिता-पितामहका राज्य पाकर मन-ही-मन यह विचार किया कि 'मुझे ऐसा कर्म करना चाहिये, जिसे संसारके दूसरे राजाओंने अबतक न किया हो और जो भविष्यमें होनेवाले हैं, वे भी जिसे न कर सकें। राजाओंके लिये सर्वोत्तम धर्म यही है कि प्रजाका भलीभाँति पालन करे, जिससे प्रजावर्गके लोग सुखपूर्वक रह सकें। राजालोग लोभमें आकर जैसे-जैसे प्रजासे अधिक कर लेने लगते हैं, वैसे-वैसे प्रजाके हृदयमें क्षोभ उत्पन्न हो जाता है। राजा कर लिये बिना हाथी, घोड़े और पैदल आदि सेनाकी रक्षा नहीं कर सकते और यदि सेना न रहे तो नीच-से-नीच भी मनुष्य उन्हें दबा लेंगे। इसीलिये सब राजा प्रजाजनोंसे कर लेते हैं। अतः मुझे हाथी, घोड़े और पैदल आदिके बिना ही केवल तपस्याकी शक्तिसे अपने राज्यको निष्कण्टक बनाये रखना चाहिये।'

ऐसा सोचकर वे कर न लेकर सदा प्रजाको प्रसन्न रखने लगे। दूसरे राजाओंसे भी कर लेना उन्होंने बंद कर दिया और अपने पुरोहित मुनिवर वसिष्ठको आदरपूर्वक बुलाकर पूछा—'ब्रह्मन्! इस भूतलपर सबसे उत्तम तीर्थ कौन है, जहाँ थोड़े ही समयमें भगवान् शिव, ब्रह्मा तथा विष्णु प्रसन्न हो जाते हैं। उसे शीघ्र बताइये। जिससे मैं वहाँ जाकर सम्पूर्ण लोकोंके हितके लिये तपस्या करूँ।'

वसिष्ठजी बोले—नृपश्रेष्ठ! हाटकेश्वरक्षेत्र मनीषियोंको शीघ्र ही उत्तम सिद्धि प्रदान करनेवाला तथा सब पातकोंका नाशक है। वही सब तीर्थोंमें श्रेष्ठ है। इसी प्रकार देवताओंमें भी भगवती चण्डिका ही ऐसी हैं, जो श्रद्धालु मनुष्योंद्वारा

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

आराधना करनेपर शीघ्र सन्तुष्ट होती हैं। इसलिये उसी क्षेत्रमें जाकर तुम श्रद्धापूर्वक देवीकी आराधना करो। ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए पवित्र व्रतमें तत्पर रहो। नियमपूर्वक रहते हुए नियमित भोजन एवं त्रिकाल स्नान करो।

वसिष्ठजीके बताये अनुसार राजा अजने हाटकेश्वरक्षेत्रमें देवीकी आराधना की। गन्ध, पुष्प और अनुलेपन आदि उपचारोंके द्वारा निरन्तर पूजामें तत्पर हुए राजापर देवी चण्डिका प्रसन्न हुईं और बोलीं—'वत्स! मैं तुम्हारे इस व्रत और पूजाविधानसे बहुत सन्तुष्ट हूँ। तुम्हारे मनमें जो इच्छा हो, उसे माँगो। मैं उसे शीघ्र पूर्ण करूँगी।'

राजाने कहा—देवि! मैंने सम्पूर्ण लोकोंके हितकी इच्छासे इस व्रत और तपस्याका आश्रय लिया है। जिससे सब लोगोंको सुख मिले, ऐसी कृपा कीजिये। मुझे बहुत-से ऐसे ज्ञानयुक्त विचित्र-विचित्र अस्त्र दीजिये, जो स्वेच्छानुसार सर्वत्र विचर सकें। जो इस भूतलपर स्थित और मेरे पासकी भी सब वस्तुओंको भी स्वतः जान लें। लोकमें परस्त्रीसंगम आदि जो अपराध हों, उन सबको स्वयं जानकर अपराधके अनुसार जो स्वतः दण्ड दे दें, जिससे लोकमें संकरता न फैलने पावे। इसके सिवा मुझे भाँति-भाँतिके मन्त्र दीजिये, जिनसे मैं सबकी रोग-व्याधियोंको शीघ्र निवारण कर सकूँ। जिससे मेरे राज्यमें रहनेवाले सब मनुष्य सुखी, नीरोग, पुष्ट, निर्भय तथा शोकरहित हो जायँ।

देवी बोलीं—राजन्! तुमने यह एक ऐसा बड़ा अद्भुत कर्म प्रारम्भ किया है, जिसे अबतक न तो किसीने किया है और न आगे कोई करेगा। तथापि मैं तुम्हारी इच्छा पूर्ण करूँगी। मैं तुम्हें समस्त ज्ञानयुक्त शस्त्र देती हूँ और वैसे ही प्रभावशाली मन्त्र देती हूँ। इन मन्त्रोंसे बड़े-बड़े भयंकर रोग भी तुम्हारे द्वारा रोक दिये जायँगे, परंतु मेरे मन्त्रोंसहित उन सब अस्त्र-शस्त्रोंको तुम सदा सुरक्षित रखना। यदि वे तुम्हारी दृष्टिसे कहीं दूर निकल जायँगे तो मनुष्योंको बहुत अधिक पीड़ा देंगे। राजन्! तुम जब स्वर्गलोकको जाओ तब इन समस्त मन्त्रों और अस्त्र-शस्त्रोंको यहाँ मेरे सम्मुख जलमें स्थापित कर देना, जिससे सब व्यवहार पूर्ववत् नीतिके अनुकूल चल सके।

'बहुत अच्छा' कहकर राजाने देवीकी आज्ञा शिरोधार्य की। फिर तो उनके सामने वे ज्ञान-वैभवसे युक्त नाना प्रकारके दिव्य अस्त्र प्रकट हुए, जिनके लिये उन्होंने देवीसे प्रार्थना की थी। साथ ही, व्याधिनाशक मन्त्र भी उनके ज्ञानमें आ गये, जिनके द्वारा सब रोग स्वेच्छानुसार ग्रहण किये और छोड़े जाते हैं तथा जिनके द्वारा दृष्टिमें आये हुए सब मनुष्योंका सुखपूर्वक पालन होता है।

तत्पश्चात् राजाने देवीके प्रसादको ग्रहण करके अपनी पत्नी इन्दुमति और पुत्र दशरथको छोड़कर शेष समस्त पदार्थों और हाथी-घोड़े आदि उपकरणोंको ब्राह्मणोंकी सेवामें दान कर दिया। रोग-व्याधियोंको मन्त्रोंके द्वारा दूर करके वे डंडा लेकर अजापालनकी तरह स्वयं प्रजापालन करने लगे। उनके राज्यमें कोई छिपकर भी अपराध नहीं कर पाता था। यदि कोई प्रमादवश पृथ्वीपर पाप करता तो उसे तत्काल ही तदनुकूल दण्ड मिल जाता था। राजाके वे दिव्यास्त्र किसीके दृष्टिमें न आकर भी वध अथवा बन्धन आदि दण्ड तत्काल देते थे। अन्य राजाओंके राज्यमें तो जो मनुष्य गुप्त पाप करते थे, उन्हींके पापोंका यमराज दण्ड देते थे; परंतु राजा अजके राज्यमें उन दिव्यास्त्रोंके भयसे डरा हुआ कोई भी मनुष्य पाप नहीं करता था। अतः वे सभी पापमुक्त एवं पवित्र शरीरवाले हो गये। रोगोंका नियन्त्रण हो जानेके कारण सब मनुष्योंको उत्तम सुख प्राप्त होता था। इस प्रकार संसारसे जब पापका भय निवृत्त हो गया, तब यमलोकके सभी नरक सूने हो गये। कोई भी पुरुष नरकमें नहीं

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

जाता था। सत्ययुगमें लोगोंका जैसा व्यवहार था, वैसा ही त्रेतामें भी हुआ।

एक समय भगवान् शंकर व्याघ्रका शरीर धारण करके बार-बार गर्जना करते हुए जहाँ राजा अज थे, वहीं उपस्थित हो गये। विकराल शरीर धारण करनेवाले उस व्याघ्रको देखकर राजाने भगवतीके दिये हुए सूर्यके समान तेजस्वी अस्त्रका प्रहार किया। क्रमशः देवीसे प्राप्त हुए अन्यान्य अस्त्रोंका भी प्रयोग किया, परंतु उन सभी अस्त्रोंको भगवान् शंकरने धीरे-धीरे अपने मुखमें ग्रहण कर लिया। तब अस्त्रोंके अभावसे राजाने व्याघ्ररूपधारी भगवान् शिवसे द्वन्द्वयुद्ध किया। उनके शरीरका स्पर्श होते ही भगवान् शिवने व्याघ्रशरीर त्याग दिया और भस्मांगराग-विभूषित, चन्द्रार्धमुकुटमण्डित दिव्यरूप धारण कर लिया। उनके गलेमें मुण्डमाला शोभा पा रही थी। उन्होंने खट्वांग तथा सर्पमय आभूषण धारण कर रखे थे। भगवान् शिवको इस रूपमें प्रत्यक्ष देखकर रानीसहित राजा अजने उनके चरणोंमें प्रणाम किया। तत्पश्चात् उनकी स्तुति करके वे विनीतभावसे हाथ जोड़कर खड़े हो गये और आनन्दाश्रु बहाते हुए हर्षगद्गद वाणीमें बोले—'प्रभो! मैंने अज्ञानवश जो आपका तिरस्कार किया और आपके ऊपर अस्त्र चलाया, वह सब अपराध कृपया क्षमा करें।'

भगवान् शिव बोले—बेटा! तुम्हारा अलौकिक कर्म देखकर मैं बहुत सन्तुष्ट हूँ, अतएव उस तिरस्कारको मैंने अपनी स्वाभाविक क्षमासे ही क्षमा कर दिया है। राजन्! तुमने जैसा राज्य किया, जिस प्रकार प्रजाकी रक्षा की, वैसी राज्यव्यवस्था अबतक न तो किसीने की थी और न कोई आगे करेगा ही। अतः तुम अभी अपनी इन रानीके साथ इसी शरीरसे पाताललोकमें चलो।

राजाने कहा—भगवन्! मैं अयोध्या नामक महापुरीमें अपने पुत्र दशरथको राजसिंहासनपर बिठाकर उसे मन्त्रियोंके अधीन सौंपकर आपकी आज्ञाका पालन करूँगा। जिन्होंने सन्तुष्ट होकर मुझे अस्त्र-शस्त्र तथा यन्त्रसमुदाय दिये थे, उन महादेवीने यह आज्ञा की थी कि 'जब तुम दुस्त्यज मर्त्यलोकका त्याग करने लगो, तब मेरे कुण्डमें इन सबको डाल देना।' अतः आप उन सब अस्त्र-शस्त्रोंको मुझे पुनः लौटा दें, जिससे मैं देवीके ऋणसे उऋण हो जाऊँ।

उनके ऐसा कहनेपर भगवान् त्रिपुरारिने राजाको वे दिव्य अस्त्र-शस्त्र लौटा दिये और आज्ञा देते हुए कहा—राजन्! तुम्हारा पुत्र स्वयं ही राजा हो जायगा। वह वीरता, उदारता और शम आदि गुणोंसे सम्पन्न हो तुम्हारे वंशको धारण करनेमें समर्थ होगा। तुम आज ही मेरे साथ इस देवीकुण्डके पवित्र जलमें प्रवेश करके मेरे धामको चलो। आज माघ शुक्ला चतुर्दशीका दिन है। दूसरा कोई भी जो पुरुष इस तिथिको देवीकी भक्तिपूर्वक पूजा करके इस जलमें गोता लगाकर प्राण त्याग करेगा, वह पाताललोकमें, जहाँ हाटकेश्वर नामसे प्रसिद्ध मेरा दिव्य विग्रह है, वहाँ पहुँच जायगा। नृपश्रेष्ठ! जो इस तीर्थमें केवल स्नानमात्र करेगा, उसके एक सौ आठ रोगोंमेंसे एक भी न होगा।

ऐसा कहकर भगवान् शिवने रानी तथा उन अस्त्र-शस्त्रोंके सहित राजाको साथ लेकर उस देवीकुण्डके जलमें प्रवेश किया और वहाँसे उन्हें अपने धाममें पहुँचा दिया। उसी मानवशरीरसे राजा अज अपनी रानीके साथ आज भी अजर-अमर होकर वहाँ पातालमें रहते हैं और हाटकेश्वर भगवान्की श्रद्धापूर्वक आराधना करते हैं।

इस प्रकार हाटकेश्वरक्षेत्रमें माहेश्वरी देवीका प्रादुर्भाव हुआ है, जिसे राजा अजने श्रद्धापूर्ण हृदयसे स्थापित किया था।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

राजवापीके प्रसंगमें राजा दशरथका प्रभाव, शनैश्चरग्रहकी पराजय, इन्द्रके साथ राजाकी मैत्री और उनके यहाँ श्रीराम आदिके प्राकट्यकी कथा

सूतजी कहते हैं—राजा अजके पाताललोकमें गमन करनेके पश्चात् उनके पुत्र दशरथ राजा हुए। मन्त्रियोंने उनको आगे रखा और सदा सम्मान दिया। ये वे ही राजा दशरथ थे, जो प्रतिदिन इन्द्रलोकमें जाते और इन्द्रके साथ क्रीडा करते थे। इन्होंने रोहिणीका भेदन करनेवाले शनैश्चरग्रहको परास्त किया था तथा इनके घरमें साक्षात् भगवान् विष्णुने प्रसन्न होकर रावणका विनाश करनेके लिये अवतार लिया था। राजा दशरथने भी हाटकेश्वरक्षेत्रमें जाकर आराधनाद्वारा भगवान् विष्णुको सन्तुष्ट किया और सुन्दर मन्दिर निर्माण करके वहीं उनको स्थापित किया। वहाँ राजा दशरथकी वापी प्रसिद्ध है, जिसे उन्होंने स्वयं तैयार कराया था। उसे लोकमें 'राजवापी' कहते हैं। जो लोग पंचमीको तथा विशेषतः पितृपक्षमें वहाँ श्राद्ध करते हैं वे सत्पुरुषोंके प्रिय होते हैं।

किसी समय ज्योतिषके विद्वानोंने राजासे यह कहा कि 'शनैश्चर ग्रह रोहिणीका भेदन करेगा और यदि ऐसा हुआ तो संसारमें बारह वर्षोंतक घोर अनावृष्टि होगी, सर्वत्र अकाल पड़ जायगा। उस समय सम्पूर्ण भूमण्डल मनुष्योंसे शून्य हो जायगा।' उनकी यह बात सुनकर राजा दशरथके मनमें शनैश्चरके प्रति बड़ा क्रोध हुआ। राजाको इन्द्रने एक कामग विमान दे रखा था। उसीपर बैठकर दशरथने शनैश्चरपर आक्रमण किया और अपने महान् धनुषको खींचकर उसपर तीखे बाणका सन्धान किया तथा नीचे मुख किये स्थित हुए शनैश्चरके सामने खड़े होकर कहा— 'शनैश्चर! मेरे कहनेसे तुम रोहिणीका मार्ग त्याग दो, अन्यथा इस मन्त्रप्रेरित दिव्यास्त्रसे मारकर मैं तुम्हें यमलोक पहुँचा दूँगा।'

उनकी यह भयङ्कर बात सुनकर शनैश्चर देवको बड़ा विस्मय हुआ और वे बोले— महाभाग! तुम कौन हो जो मेरा मार्ग रोकते हो? यह मार्ग तो किसीके द्वारा गम्य नहीं है, देवता और असुर भी यहाँ नहीं आ सकते, फिर तुम कैसे चले आये?

राजाने कहा—मैं सूर्यवंशमें उत्पन्न महाराज अजका पुत्र दशरथ नामक राजा हूँ और क्रोधपूर्वक तुम्हें रोहिणीके मार्गसे हटानेके लिये आया हूँ।

शनैश्चर बोले—राजन्! तुम्हारे साथ तो मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है, फिर क्यों तुम अतिशय क्रोधमें आकर मेरा मार्ग रोकना चाहते हो?

राजाने कहा—अभी-अभी ज्योतिषियोंने मुझे बताया है कि तुम (शनैश्चर) रोहिणीचक्रका भेदन करनेवाले हो और यदि तुमने उसका भेदन कर दिया तो इन्द्र वर्षा रोक देंगे। वृष्टि रुक जानेसे पृथ्वीपर अन्न नहीं पैदा होगा और अन्नके अभावसे भूतलके समस्त प्राणी नाशको प्राप्त हो जायँगे। जब सब प्राणियोंका नाश हो जायगा, तब यज्ञ कौन करेगा? फलतः अग्निष्टोम आदि सम्पूर्ण क्रियाएँ पृथ्वीसे उठ जायँगी और ऐसा होनेपर प्रलय मच जायगा। सूर्यनन्दन! इसीलिये मैंने तुम्हारी राह रोकी है।

शनिदेव बोले—बेटा! अपने घरको लौट जाओ। इच्छा हो तो मुझसे भी तुम कोई वर माँगो; मैं तुम्हारे पराक्रमसे सन्तुष्ट हूँ। मैं अपनी दृष्टिसे जिसे देख लूँ, वह भस्म हो जाता है। इसीलिये अपनी दृष्टि सदा नीची किये रहता हूँ। तुमने प्रजावर्गके हितके लिये मेरे भयको त्याग दिया है, अतः तुम्हारे लिये मैं रोहिणीका भेदन नहीं करूँगा।

राजाने कहा—शनिदेव! आपका दिन प्राप्त होनेपर जो मनुष्य अपनी शरीरमें तेल लगाता है, उसको अपना दूसरा दिन आनेतक आप कभी

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

पीड़ा न दें। जो आपके सन्तोषके लिये यथाशक्ति लोहा और तिल आदि दान करता है, उसकी एक वर्षतक आप प्रत्येक कष्ट और संकटसे रक्षा करें। सूर्यनन्दन! जब आप कुण्डलीमें पीडाकारक स्थानमें स्थित हों, उस समय जो भक्तिपूर्वक आपके दिवसमें तिल, लोह आदि दान करके विधिवत् शान्तिकर्म और पूजा करे, उसकी साढ़े सात वर्षोंतक आप सदा रक्षा करते रहें, यही मेरे लिये आप वरदान दें।

सूतजी कहते हैं—तब शनैश्चरदेवने 'तथास्तु' कहकर राजाकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और वे मौन हो गये। तभीसे राजा दशरथकी बात मानकर शनैश्चरदेव कभी रोहिणीमण्डलका भेदन नहीं करते हैं। इस समाचारको सुनकर इन्द्रदेव बहुत प्रसन्न हुए और राजा दशरथसे मिलकर आदरपूर्वक बोले—'राजन्! तुमने यह बड़ा अद्भुत पराक्रम किया है, दूसरा कोई तो इस बातकी कल्पना भी अपने मनमें नहीं ला सकता। अतः इस पुरुषार्थसे मैं तुमपर बहुत सन्तुष्ट हूँ। तुम्हारे मनमें जो कोई अभिलाषा हो उसके अनुसार मुझसे वर माँगो।'

राजा बोले—सुरश्रेष्ठ! आपके साथ सदा मेरी मैत्री बनी रहे। यही प्रार्थना करता हूँ।

इन्द्रने कहा—राजेन्द्र! ऐसा ही होगा। तुम्हारे साथ मेरी सदैव शाश्वत मैत्री बनी रहेगी। ठीक वैसी ही, जैसी वसु देवताकी मैत्री है। तुम सदैव सन्ध्याके समय मेरे पास आते रहना, जिससे सदैव आपसका मैत्रीभाव बढ़ता रहे।

ऐसा कहकर देवराज इन्द्र स्वर्गलोकमें चले गये। राजा दशरथ भी शनैश्चरके भयसे सम्पूर्ण जगत्की रक्षा करके हर्षपूर्वक अयोध्यापुरीके भीतर अपने भवनमें लौट आये। तबसे प्रायः नित्य ही सायंकालकी उपासना करके राजा दशरथ इन्द्रलोकको चले जाते थे। वहाँपर देवर्षियोंके मुखसे विचित्र अर्थवाली कथाएँ सुनकर और स्वयं भी कहकर अपने घर लौट आते थे। एक समय इन्द्रसे प्रेरित होकर महाराज दशरथने महर्षि वसिष्ठके द्वारा पुत्रके लिये पुत्रेष्टि नामक यज्ञ कराया। तदनन्तर बड़ी रानी कौशल्याने परम धर्मात्मा पुत्र श्रीरामचन्द्रजीको जन्म दिया। राजाकी सबसे छोटी रानी कैकेयीने भरत नामक पुत्र उत्पन्न किया और मझली रानी सुमित्राने दो महाबली पुत्रोंको जन्म दिया। जिनके नाम लक्ष्मण और शत्रुघ्न थे। इनके सिवा सुमित्रासे एक सुन्दरी कन्या भी उत्पन्न हुई, जिसे पुत्रहीन राजा लोमपादको दत्तक पुत्रीके रूपमें दे दिया गया। इस प्रकार पितरोंसे उऋण होकर कृतकृत्य हो राजा दशरथने स्वर्गलोककी यात्रा की। उनके बाद श्रीरामचन्द्रजी चक्रवर्ती राजा हुए, जिन्होंने देवताओंके लिये कण्टकरूप दुर्धर्ष रावणका वध किया और हाटकेश्वरक्षेत्रमें रामेश्वर एवं लक्ष्मणेश्वरकी स्थापना करके मूर्तिमती सीतादेवीको भी प्रतिष्ठित किया था।

श्रीरामके द्वारा लक्ष्मणका त्याग, लक्ष्मणका परमधाम-गमन, श्रीरामका किष्किन्धा, लंका एवं हाटकेश्वरतीर्थमें जाना और रामेश्वर, लक्ष्मणेश्वर एवं सीता आदिकी प्रतिमा स्थापित करना

सूतजी कहते हैं—महर्षियो! कमलनयन भगवान् श्रीरामचन्द्रजी लोकापवादके कारण सीताजीका परित्याग करके अयोध्याका राज्य करने लगे। उन्होंने दूसरी किसी स्त्रीको पत्नीरूपमें किसी तरह भी स्वीकार नहीं किया। यज्ञकार्यकी सिद्धिके लिये भी पत्नीके स्थानपर सीतादेवीकी स्वर्णमयी प्रतिमाको ही बिठाया। श्रीरामने ग्यारह हजार वर्षोंतक ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए निष्कण्टक राज्य किया। तदनन्तर श्रीरामचन्द्रजीके भवनमें एक देवदूत आया और बोला—'भगवन्!

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

मुझे इन्द्रने भेजा है, अतः आप मुझसे एकान्तमें मिलिये।' तब भगवान् श्रीरामने एकान्तमें जाकर लक्ष्मणजीसे कहा—'लक्ष्मण! मैं जबतक इस देवदूतके साथ बैठकर वार्तालाप करूँ, तबतक कोई यहाँ न आवे। यदि कोई आवेगा तो उसे मृत्यु-दण्ड दिया जायगा। अतः तुम राजद्वारपर उपस्थित रहकर इस बातकी ओर दृष्टि रखो कि कोई आ न जाय और किसीके लिये वधका प्रसंग न उपस्थित हो जाय।'

लक्ष्मणने 'बहुत अच्छा' कहकर आज्ञा स्वीकार की और वे स्वयं राजद्वारपर खड़े होकर पहरा देने लगे। उधर देवदूतने श्रीरामके साथ वार्तालाप प्रारम्भ किया। इन्द्र तथा अन्य स्वर्गवासियोंका सन्देश सुनाते हुए उसने इस प्रकार कहा—'महाभाग! आपने रावणका विनाश करनेके लिये ही भूतलपर अवतार धारण किया था। वह दुष्ट मारा गया, त्रिभुवनका कण्टक दूर हुआ। आपने इस समय देवताओंका सब कार्य पूर्ण कर दिया। अब यदि आपकी रुचि हो तो मर्त्यलोक त्यागकर दिव्यलोकमें पधारिये।'

इसी समय मुनिश्रेष्ठ दुर्वासा वहाँ आये और लक्ष्मणजीसे पूछने लगे—'श्रीरघुनाथजी कहाँ हैं?' लक्ष्मण बोले—'विप्रवर! मुझपर दया करके थोड़ी देर यहीं ठहर जाइये। महाराज किसी देवकार्यसे एकान्तमें बातचीतमें लगे हुए हैं।'

दुर्वासा बोले—यदि अभी मुझे राजा श्रीरामचन्द्रजी दर्शन नहीं देंगे तो मैं समस्त रघुकुलको शाप देकर भस्म कर डालूँगा।

यह सुनकर लक्ष्मणजीने मन-ही-मन दुःखी होकर कुछ विचार किया और स्वयं श्रीरामचन्द्रजीके समीप जाकर हाथ जोड़ साष्टांग प्रणाम करके कहा—'देव! मुनिश्रेष्ठ दुर्वासा दर्शनके लिये राजद्वारपर खड़े हैं। उनके लिये क्या आज्ञा है?' लक्ष्मणजीका वचन सुनकर श्रीरामचन्द्रजीने देवदूतसे कहा—'तुम देवराजके पास जाकर यह कह देना कि मैं एक वर्षके अंदर ही आपके समीप आ जाऊँगा।' दूतसे ऐसा कहकर भगवान्ने लक्ष्मणसे कहा—'वत्स! दुर्वासा मुनिको शीघ्र भीतर ले आओ।' तत्पश्चात् मुनिके आते ही श्रीरामने मुनिको अर्घ्य दे प्रणाम किया और हर्षयुक्त वाणीमें कहा—'मुनिश्रेष्ठ! आपका स्वागत है, मैं धन्य और अनुगृहीत हूँ, जो कि आप मेरे घर पधारे हैं।'

दुर्वासाने कहा—रघुनन्दन! मैं उपवास-पूर्वक चातुर्मास्य व्रत करके आज भोजन करनेके लिये आपके घर आया हूँ, अतः मुझे शीघ्र भोजन दीजिये।

तब श्रीरामचन्द्रजीने मिष्ठान्न आदिसे मुनिको यथेष्ट भोजन कराकर तृप्त किया। इस प्रकार भोजन करके आशीर्वाद दे दुर्वासा मुनि चले गये। तब लक्ष्मणने भगवान् श्रीरामसे कहा—'प्रभो! अब मुझे मृत्युदण्ड मिलना चाहिये।' यह सुनकर श्रीरामचन्द्रजी अपनी प्रतिज्ञाका स्मरण करके दुःखी हो गये। तब लक्ष्मणने कहा—'प्रभो! अपने वचनको बिना किसी हिचकके सत्य कर दिखाना, यही राजाओंका परम धर्म है।' लक्ष्मणकी बात सुनकर श्रीरामके नेत्रोंमें आँसू भर आये। उन्होंने धर्मशास्त्रके जाननेवाले मन्त्रियोंसे बहुत देरतक सलाह ली और अन्तमें लक्ष्मणजीसे कहा—'सुमित्रानन्दन! आज मैंने तुम्हें त्याग दिया। तुम शीघ्र दूसरे देशको चले जाओ। साधुपुरुषोंका त्याग अथवा वध दोनों बराबर है।'

तत्पश्चात् लक्ष्मणजी अपने घरमें माता, पत्नी, पुत्र या सुहृद् किसीके साथ सम्मति न करके सरयूके तटपर चले गये। वहाँ सरयूजलमें स्नान करके तटपर एकान्त स्थानमें बैठ गये और पद्मासन लगाकर उन्होंने अपने आत्माको परमात्मामें लीन करके ब्रह्मरन्ध्रसे अपने तेजोमय प्राणका परित्याग कर दिया। श्रीरामचन्द्रजीने जब यह समाचार सुना, तब वे अत्यन्त दुःखी होकर विलाप करने लगे। वे मन्त्रियों और सुहृज्जनोंको साथ लेकर स्वयं उस स्थानपर गये और करुणस्वरमें 'हा वत्स!' कहकर फूट-फूटकर रोने लगे।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

उस समय लक्ष्मणजीका कलेवर अदृश्य हो गया और फूलोंकी वर्षाके साथ आकाशवाणी हुई—'महाभाग राम! आप शोक न करें। ब्रह्मज्ञानसे संयुक्त लक्ष्मणजी सर्वसंन्यास करके परम धामको पधार गये हैं।'

आकाशवाणीकी यह बात सुनकर मन्त्रियोंने कहा—महाराज! ये लक्ष्मण परम सिद्धिको प्राप्त हुए हैं। अतः अब अपने घरको लौटिये। राजकार्यकी चिन्ता कीजिये और श्रेष्ठ ब्राह्मणोंसे पूछकर अपने स्नेहके अनुरूप उनका पारलौकिक कृत्य (श्राद्ध-पिण्डदान आदि) कीजिये।

श्रीरामचन्द्रजी बोले—मैं लक्ष्मणके बिना अब घरको नहीं लौटूँगा। यदि आपलोगोंकी रुचि हो तो मेरे प्रिय पुत्र कुशको राजसिंहासनपर बिठाइये।

ऐसा कहकर श्रीरघुनाथजीने परम धाम पधारनेका विचार किया। उस समय उन्हें अपने मित्र विभीषणका स्मरण हो आया। वे सोचने लगे—'मैंने विभीषणको, जबतक सूर्य और चन्द्रमाकी सत्ता रहेगी तबतकके लिये लंकाका अक्षय राज्य दिया है। परंतु इस पृथ्वीपर पुनः वरदानसे पुष्ट हुए अतिशय क्रूर राक्षसोंका संयोग हो सकता है। अतः मैं विभीषणके समीप जाकर उसे शिक्षा दूँगा, जिससे वे देवताओंसे द्वेष न करें। इसी प्रकार महाभाग सुग्रीव नामक वानर भी मेरे परम मित्र हैं। जाम्बवान्, बालिपुत्र अंगद, पवनसुत हनुमान्, कुमुद तथा तार आदि अन्य वानर भी मेरे परम सुहृद् हैं। इन सब लोगोंसे बातचीत करके विदा लेकर मैं परम धामको जाऊँगा।' ऐसा निश्चय करके भगवान् श्रीरामने पुष्पक विमानको बुलाया और उसपर चढ़कर किष्किन्धापुरीको प्रस्थान किया। किष्किन्धानिवासी वानर पुष्पक विमानका प्रकाश देखकर श्रीरामचन्द्रजीका आगमन जान शीघ्र उनके सामने गये और दूरसे ही धरतीपर घुटने टेककर प्रणाम करके इधर-उधर बार-बार जय-जयकार करने लगे। तदनन्तर श्रीरामचन्द्रजीको साथ लेकर सबने सुन्दर ध्वजा-पताकाओंसे सुशोभित महापुरी किष्किन्धामें प्रवेश किया। इसके बाद विमानसे उतरकर श्रीरामचन्द्रजी शीघ्र ही सुग्रीवके भवनमें गये। वहाँ वानरोंने अर्घ्य आदिसे श्रीरघुनाथजीका पूजन किया और उनसे पूछा—'रघुनन्दन! घरपर कुशल तो है न? सदा आपके साथ रहनेवाले छोटे भैया लक्ष्मणजी कहाँ हैं? प्राणोंके समान प्रिया सीतादेवीजी कहाँ हैं?'

वानरोंका यह वचन सुनकर श्रीरामचन्द्रजीने जिस प्रकार सीता और लक्ष्मणजीका परित्याग हुआ था, वह सब समाचार कह सुनाया। यह सुनकर सुग्रीव आदि सब वानर अत्यन्त दुःखसे आतुर होकर फूट-फूटकर रोने लगे और श्रीरामचन्द्रजीसे इस प्रकार बोले—'राजन्! हमलोगोंसे आपका जो कार्य यहाँ सिद्ध होनेवाला हो, उसके लिये आज्ञा दीजिये। इस भूतलपर हम सभी वानर धन्य हैं, जिनके प्रति ऐसा स्नेह रखकर आप स्वयं हमारे घर पधारे हैं।'

श्रीराम बोले—सुग्रीव! तुम्हारे यहाँ एक रात रहकर मैं जहाँ लंकामें विभीषण हैं, वहाँ जाऊँगा। अपने प्रधान मन्त्रीसहित तुम्हें भी मेरे साथ विभीषणके घरतक चलना चाहिये।

सूतजी कहते हैं—इस प्रकार समस्त श्रेष्ठ वानरोंसे भक्तिपूर्वक सेवित हो श्रीरघुनाथजीने किष्किन्धापुरीमें रातभर निवास किया। फिर प्रातःकाल सूर्योदय होनेपर आवश्यक कृत्योंसे निवृत्त हो रघुनाथजी पुष्पक विमानको बुलाकर दस वानरोंके साथ उसपर आरूढ़ हुए। उन दसों वानरोंके नाम इस प्रकार हैं—सुग्रीव, सुषेण, तार, कुमुद, अंगद, कुन्दु, हनुमान्, गवाक्ष, नल तथा जाम्बवान्। तदनन्तर उस उत्तम विमानके द्वारा वे लंकापुरीकी ओर प्रस्थित हुए और जहाँ पहले राक्षसोंसे युद्ध हुआ था, उन प्रदेशोंको दिखाते हुए तत्काल ही महापुरी लंकामें जा पहुँचे। पुष्पकका प्रकाश देखते ही विभीषणजीको यह ज्ञात हो गया कि श्रीरामचन्द्रजी पधारे हैं। अतः वे प्रसन्नतापूर्वक अपने समस्त मन्त्रियों, सेवकों

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

और पुत्रोंके साथ उनके सामने आये और दूरसे ही जय-जयकार करते हुए उन्होंने धरतीपर लेटकर साष्टांग प्रणाम किया। विमानसे उतरकर श्रीरघुनाथजीने विभीषणको आदरपूर्वक हृदयसे लगाया और उन्हींके साथ लंकापुरीमें प्रवेश किया। फिर विभीषणके महलमें पहुँचकर वानरों-द्वारा सब ओरसे घिरे हुए श्रीरामचन्द्रजी शुभ सिंहासनपर विराजमान हुए। तत्पश्चात् विभीषणने अपना राज्य, पुत्र, कलत्र आदि समस्त वैभव श्रीरघुनाथजीके चरणोंमें समर्पित कर दिया और सामने हाथ जोड़ खड़े हो इस प्रकार कहा—'प्रभो! आज्ञा दीजिये, मैं कौन-सी सेवा करूँ। भगवन्! आप अकस्मात् कैसे आ गये? आपके साथ लक्ष्मण और जानकीजी क्यों नहीं आयीं?'

तब श्रीरामचन्द्रजीने विभीषणसे सब समाचार बताया और उनके हितके लिये इस प्रकार कहा—राक्षसराज! इस समय मैं राज्य त्यागकर अपने परम धामको, जहाँ लक्ष्मणजी गये हैं, शीघ्र जाऊँगा। उनके बिना अब इस मर्त्यलोकमें दो घड़ी भी ठहरनेका मेरे मनमें उत्साह नहीं है। इस समय मैं तुम्हें शिक्षा देनेके लिये यहाँ उपस्थित हुआ हूँ। तुम शान्तचित्त होकर मेरी बात सुनो। यह राज्यलक्ष्मी स्वल्पबुद्धिवाले पुरुषोंके मनमें मदिराकी भाँति मद उत्पन्न कर देती है। अतः तुम्हें अपने हृदयमें इस मदको स्थान नहीं देना चाहिये। इन्द्र आदि सम्पूर्ण देवताओंका तुम्हें आदर और पूजन करना चाहिये, जिससे तुम्हारा राज्य सदा सुस्थिर रहे और मेरा वचन भी सत्य हो। इसीलिये मैं यहाँ आया हूँ। यदि कोई मनुष्य किसी प्रकार यहाँ आ जाय तो समस्त निशाचरोंको प्रसन्न होकर उसका सत्कार ही करना चाहिये। विभीषण! तुम्हें अपने समस्त निशाचरोंको मना कर देना चाहिये कि वे मेरे सेतुका उल्लंघन करके भारतवर्षकी भूमिमें न जायँ।

विभीषणने कहा—प्रभो! ऐसा ही करूँगा, निःसन्देह आपकी आज्ञाका पालन किया जायगा। परंतु जब आप मर्त्यलोकको छोड़कर पधार जाते हैं, तब मैं भी यहाँ जीवित न रहूँगा। अतः मुझे भी वहीं अपने साथ ले चलिये।

श्रीरामने कहा—राक्षसराज! मैंने तुम्हें अविनाशी राज्य दिया है। अतः किसी प्रकार मुझे मिथ्यावादी न करो। मैं यहाँ सेतुमें कीर्तिके लिये तीन शिवलिंगोंकी स्थापना करूँगा। उन तीनोंकी तुम्हें सदैव पूजा करनी चाहिये।

विभीषणसे इस प्रकार कहकर वानरोंसहित श्रीराम दस रात्रिपर्यन्त वहीं लंकामें टिके रहे। ग्यारहवें दिन विमानपर बैठकर उन्होंने अपनी पुरीको प्रस्थान किया और विभीषण एवं वानरोंके साथ मार्गमें उतरकर आपने सेतुके आदि, मध्य और अन्तमें श्रद्धापूर्वक तीन रामेश्वरोंकी स्थापना की। तत्पश्चात् जब वे अपने घरकी ओर चले, उस समय विभीषणने बार-बार प्रणाम करके कहा—'भगवन्! इस सेतुमार्गसे कौतुकवश तथा श्रद्धासे बहुतेरे मनुष्य रामेश्वरजीका दर्शन करनेके लिये आवेंगे, राक्षसोंकी जाति अत्यन्त क्रूर मानी गयी है, मनुष्यको आते देखकर उनके मनमें उसे खा जानेकी इच्छा पैदा हो जाती है। अतः यदि कोई राक्षस किसी मनुष्यको खा लेगा तो निश्चय ही मेरे द्वारा आपकी आज्ञाका उल्लंघन हो जायगा। इसलिये आप कोई ऐसा उपाय सोचें, जिससे मुझे आज्ञाभंगका दोष न लगे।'

विभीषणका यह वचन सुनकर भगवान् श्रीरामने कहा—'बहुत अच्छा।' तत्पश्चात् उन्होंने अपना धनुष चढ़ाया और अपने तीखे बाणोंसे सेतुके दस योजन विस्तृत मध्यभागको खण्डित कर दिया। इस प्रकार सेतुमार्गसे लंकामें जाना असम्भव करके उन्होंने वानरों और राक्षसोंके साथ अयोध्यापुरीको प्रस्थान किया।

इस प्रकार अपने नगरको प्रस्थान करते समय मार्गमें आकाशके पथसे जाता हुआ पुष्पक विमान सहसा अचल हो गया। यह देख श्रीरामचन्द्रजीने हनुमान्‌जीसे कहा—'वायुनन्दन! तुम भूमिपर जाकर पता लगाओ कि क्या कारण है, जिससे पुष्पक विमान आकाशमें रुक गया?' हनुमान्‌जी

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

'बहुत अच्छा' कहकर शीघ्र ही धरतीपर उतरे और पुनः लौटकर भगवान्‌को प्रणाम करके बोले—'भगवन्! यहाँ नीचे परम कल्याणमय हाटकेश्वरक्षेत्र है। वहाँ संसारकी सृष्टि करनेवाले साक्षात् ब्रह्माजी विराजमान हैं। यही कारण है कि पुष्पक विमान उन्हें लाँघकर आगे नहीं बढ़ता है।' हनुमान्‌जीकी यह बात सुनकर श्रीरघुनाथजीने विमानको उस क्षेत्रमें उतरनेकी आज्ञा दी। तदनन्तर वे स्वयं विमानसे उतरे और समस्त वानरों तथा राक्षसोंके साथ उस क्षेत्रमें सब ओर घूम-घूमकर तीर्थोंका दर्शन करने लगे। वहाँपर उन्होंने अपने पितामह राजा अजके द्वारा स्थापित की हुई चामुण्डादेवीके दर्शन किये और समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाले कुण्डमें स्नान करके अपने पिता राजा दशरथद्वारा स्थापित अपने स्वरूपभूत चार भुजाधारी श्रीविष्णु भगवान्‌का दर्शन किया। वहाँ राजवापीमें स्नान करके शुद्ध हो देवताओं और पितरोंका तर्पण कर उन्होंने मन-ही-मन यह विचार किया कि 'इस परम पुण्यदायक क्षेत्रमें मैं भी शिवलिंगकी स्थापना करूँ, जैसे कि पिताजीने श्रीविष्णु भगवान्‌की स्थापना की है। इसके सिवा मेरे प्रिय भाई लक्ष्मण दिव्य लोकमें चले गये हैं, अतः उनके नामसे भी एक शिवलिंगकी स्थापना करूँ। साथ ही अपनी सीतादेवीकी तथा लक्ष्मणकी भी प्रस्तरमयी प्रतिमा इस पवित्र क्षेत्रमें स्थापित करूँ।'

ऐसा विचार करके श्रीरामचन्द्रजीने पाँच मन्दिर बनवाये और उन सबमें पूर्वोक्त विग्रहोंको स्थापित किया। तत्पश्चात् सब वानरों तथा राक्षसोंने भी अपने-अपने नामसे पृथक्-पृथक् शिवलिंगोंको स्थापित किया। उसके बाद श्रेष्ठ पुष्पकविमानपर बैठकर सब-के-सब अयोध्यापुरीको गये।

सूतजी कहते हैं—महर्षियो! श्रीरामचन्द्रजीने जिस प्रकार उस कल्याणमय तीर्थमें रामेश्वर और लक्ष्मणेश्वर आदिकी स्थापना की, वह सब प्रसंग मैंने आपलोगोंसे कह सुनाया। जो प्रातःकाल उठकर रामेश्वर और लक्ष्मणेश्वरका दर्शन करता है, वह इस तीर्थमें सम्पूर्ण रामायणके श्रवणसे होनेवाले फलको पाता है। जो अष्टमी और चतुर्दशीको रामेश्वरजीके आगे रामचरितका पाठ करता है, वह अश्वमेध यज्ञका सम्पूर्ण फल प्राप्त करता है।

~~~o~~~

चित्रशर्मा तथा अन्यान्य ब्राह्मणोंके द्वारा भगवान् शंकरको सन्तुष्ट करके हाटकेश्वर आदि सभी क्षेत्रोंके देवताओंकी चमत्कारपुरमें स्थापना

सूतजी कहते हैं—महर्षियो! पूर्वकालमें चमत्कारपुरके भीतर एक श्रेष्ठ ब्राह्मण थे, जिनका जन्म वत्सकुलमें हुआ था। उनका नाम चित्रशर्मा था। चित्रशर्मा बड़े यशस्वी थे। एक दिन उनके मनमें यह बात पैदा हुई कि 'मैं पातालसे हाटकेश्वरजीको यहाँ लाकर भक्तिपूर्वक दिन-रात उनका पूजन करूँ।' ऐसा निश्चय करके वे नियमपूर्वक रहते और नियमित भोजन करते हुए बड़ी निष्ठाके साथ तपस्या करने लगे। दीर्घकालतक तपस्या करनेके पश्चात् भगवान् शंकर प्रसन्न हुए और आदरपूर्वक बोले—'विप्रवर! तुम्हारा जो मनोरथ हो, उसके अनुसार वर माँगो।'

चित्रशर्मा बोले—देव! आप पातालसे हाटकेश्वरलिंगके रूपमें यहाँ पधारें।

भगवान् शिव बोले—द्विजश्रेष्ठ! मेरा लिंगमय विग्रह सर्वत्र अचल होता है, तुम हाटक (सुवर्ण)-के द्वारा निर्मित दूसरे शिवलिंगकी स्थापना करो। वही संसारमें हाटकेश्वरके नामसे विख्यात होगा। जो शुक्ल पक्षकी चतुर्दशीको सोमवारके दिन श्रद्धापूर्वक भक्तियुक्त चित्तसे उस लिंगकी पूजा करेगा, उसे आदिहाटकेश्वरकी पूजासे होनेवाले कल्याणमय फलकी प्राप्ति होगी। ऐसा कहकर

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth
~~~

भगवान् शिव अन्तर्धान हो गये। चित्रशर्माने भी मनोहर मन्दिरका निर्माण करके भक्तिभावसे शास्त्रोक्त विधिके अनुसार उसमें स्वर्णमय लिंग स्थापित किया और उसीकी पूजा प्रारम्भ की। वहाँ उस लिंगकी तीनों लोकोंमें ख्याति फैल गयी। दूर-दूरसे लोग आकर उस उत्तम लिंगकी पूजा करने लगे। यह देखकर दूसरे ब्राह्मणोंने यह विचार किया कि 'हमलोग भी भगवान् सदाशिवको आराधनाद्वारा सन्तुष्ट करें। शूलपाणि शिवके अड़सठ क्षेत्र बताये गये हैं, जहाँ ये परमेश्वर तीनों कालमें निवास करते हैं। हम सब लोग प्रयत्न करें तो उन सभी क्षेत्रोंका समूह यहाँ आ जायगा।' तदनन्तर जितने श्रेष्ठ ब्राह्मण थे, उन सबने दुष्कर तपस्या प्रारम्भ की। सहस्त्रों वर्ष आराधना करनेपर भी जब उन्हें कोई फल नहीं प्राप्त हुआ तब वे सभी ब्राह्मण क्षुब्ध हो उठे और बोले—'हम बाल्यावस्थासे ही भगवान् शंकरजीकी आराधना करते हुए वृद्ध हो गये, परंतु हमें अबतक परमेश्वर शिवका दर्शन नहीं हुआ, इसलिये अब हम सब लोगोंको अग्निमें प्रवेश कर जाना चाहिये।' ऐसा निश्चय करके उन सबने अग्नि प्रज्वलित की और एकाग्रचित्त होकर वे पुत्रोंके साथ ज्यों ही उसमें प्रवेश करने लगे त्यों ही भगवान् शंकरने प्रसन्न होकर उन्हें दर्शन दिया और हँसकर कहा—'द्विजवरो! ऐसा दु:साहस न करो। तुम्हारे मनमें जो इच्छा हो उसे माँगो।'

ब्राह्मण बोले—सुरश्रेष्ठ! आपके जो अड़सठ क्षेत्र परम धन्य कहे जाते हैं और आदिशिवलिंगोंकी स्थितिके कारण जिन्हें परम पूजनीय माना जाता है, वे सभी क्षेत्र यहाँ प्रतिष्ठित हों।

यह सुनकर भगवान् शंकरने सोचा 'मेरे मनमें भी सदा यह कार्य करनेका विचार होता है कि मैं अपने सभी क्षेत्रोंको किसी एक स्थानपर एकत्र करूँ, क्योंकि कलिकाल बड़ा भयंकर होगा। उस समय पृथ्वीपर प्राय: जितने तीर्थ और क्षेत्र हैं, सब नष्ट हो जायँगे।' ऐसा विचारकर भगवान् शंकरने उन सभी ब्राह्मणोंसे कहा—'विप्रवरो! तुमलोग मन्दिर बनवाओ और उसमें अपने-अपने गोत्रको आगे रखकर उत्तम शिवलिंग स्थापित करो, जिससे उन शिवलिंगोंमें मैं संक्रमण कर सकूँ।' तब उन सभी ब्राह्मणोंने हर्षमें भरकर मनोहर भूमिभागोंको देखकर वहाँ कैलासशिखरके समान उच्च और दिव्य अड़सठ मन्दिर बनवाये तथा उन मन्दिरोंमें भाँति-भाँतिके उत्तम शिवलिंगोंकी स्थापना की और विभिन्न क्षेत्रोंमें जो-जो नाम प्रसिद्ध हैं उनके वही-वही नाम रखे।

इस प्रकार समस्त क्षेत्र और शिवमन्दिर वहाँ सदैव निवास करते हैं।

~~~०~~~

अड़सठ क्षेत्रों और उनमें भी प्रधान आठ क्षेत्रोंके नाम तथा उनके कीर्तनका महत्त्व

पार्वतीजीने भगवान् शंकरसे पूछा—प्रभो! आप किन-किन तीर्थोंमें किन-किन नामोंसे कीर्तन करनेयोग्य हैं? यह सब पूर्णरूपसे बतावें।

भगवान् शिवने कहा—देवि! १ काशीमें महादेव (विश्वनाथ), २ प्रयागमें महेश्वर, ३ नैमिषारण्यमें देवदेव, ४ गयामें प्रपितामह (ब्रह्मा), ५ कुरुक्षेत्रमें स्थाणु, ६ प्रभासमें शशिशेखर, ७ पुष्करमें अजागन्धि, ८ विश्वेश्वरमें विश्व, ९ अट्टहासमें महानाद, १० महेन्द्रमें महाव्रत, ११ उज्जयिनीमें महाकाल, १२ मरुकोटमें महोत्कट, १३ शंकुकर्णमें महातेज, १४ गोकर्णमें महाबल, १५ रुद्रकोटिमें महायोग, १६ स्थलेश्वरमें महालिंग, १७ हर्षितमें हर्ष, १८ वृषभध्वजमें वृषभ, १९ केदारमें ईशान, २० मध्यमकेश्वरमें शर्व, २१ सुपर्णमें सहस्त्रांशु, २२ कार्तिकेश्वरमें सुसूक्ष्म, २३ वस्त्रापथमें भव, २४ कनखलमें उग्र, २५ भद्रकर्णमें शिव, २६ दण्डकमें दण्डिन्, २७ त्रिदण्डामें ऊर्ध्वरैत, २८ कृमिजांगलमें चण्डीश,

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth
~~~

२९ एकाम्रमें कृत्तिवास, ३० छागलेयमें कपर्दी, ३१ कालिंजरमें नीलकण्ठ, ३२ मण्डलेश्वरमें श्रीकण्ठ, ३३ काश्मीरमें विजय, ३४ मरुकेश्वरमें जयन्त, ३५ हरिश्चन्द्रमें हर, ३६ पुरश्चन्द्रमें शंकर, ३७ वामेश्वरमें जटि, ३८ कुक्कुटेश्वरमें सौम्य, ३९ भस्मगात्रमें भूतेश्वर, ४० अमरकण्टकमें ॐकार, ४१ त्रिसन्ध्यामें त्र्यम्बक, ४२ विरजामें त्रिलोचन, ४३ अर्केश्वरमें दीप्त, ४४ नेपालमें पशुपति, ४५ दुष्कर्णमें यमलिंग, ४६ करवीरमें कपाली, ४७ जलेश्वरमें त्रिशूली, ४८ श्रीशैलमें त्रिपुरान्तक, ४९ अयोध्यामें नागेश्वर, ५० पातालमें हाटकेश्वर, ५१ कारोहणमें नकुलीश, ५२ देविकामें उमापति, ५३ भैरवमें भैरवाकार, ५४ पूर्वसागरमें अमर, ५५ सप्तगोदावरीतीर्थमें भीम, ५६ निर्मलेश्वरमें स्वयम्भू, ५७ कर्णिकारमें गणाध्यक्ष, ५८ कैलाशमें गणाधिप, ५९ गंगाद्वारमें हिमस्थान, ६० जललिंगमें जलप्रिय, ६१ वडवाग्निमें अनल, ६२ बदरिकाश्रममें भीम, ६३ श्रेष्ठस्थानमें कोटीश्वर, ६४ विन्ध्याचलमें वाराह, ६५ हेमकूटमें विरूपाक्ष, ६६ गन्धमादनमें भूर्भुव, ६७ लिंगेश्वरमें वरद तथा ६८ लंकामें नरान्तकका कीर्तन करना चाहिये।

देवि! इस प्रकार यहाँ अड़सठ क्षेत्रोंमें प्रसिद्ध नामोंका मैंने तुमसे वर्णन किया है। ये पढ़ने और सुननेवालोंके सब पातकोंका नाश करनेवाले हैं। अतः बुद्धिमान् पुरुषोंको विशेषतः शिवकी दीक्षा लेनेवाले पवित्रजनोंको तीनों कालोंमें इन सब नामोंका प्रयत्नपूर्वक कीर्तन करना चाहिये। जिस घरमें ये अड़सठ नाम लिखे हुए रखे रहते हैं, वहाँ भूत, प्रेत, रोग, व्याधि, सर्प, चोर तथा राजा आदिकी कभी कोई बाधा उपस्थित नहीं होती है।

देवि! इन सब तीर्थोंमें आठ बहुत उत्तम हैं। जिनमें स्नान करनेवाला मनुष्य सब तीर्थोंमें स्नानका फल प्राप्त करता है। नैमिषारण्य, केदार, पुष्कर, कुरुजांगल, काशी, कुरुक्षेत्र, प्रभास तथा हाटकेश्वर—इन आठ तीर्थोंमें जिसने श्रद्धापूर्वक स्नान किया है, उसने सब तीर्थोंमें स्नान कर लिया।

पार्वतीजीने पूछा—महादेव! कलिकालमें मनुष्य किसी प्रकार इन सब क्षेत्रोंमें स्नान करनेमें समर्थ न हो सकेंगे। अतः इन आठों तीर्थोंका भी जो सारभूत तीर्थ हो, उसका वर्णन कीजिये।

महादेवजी बोले—देवेश्वरि! इन आठोंमें भी सबसे उत्तम हाटकेश्वरक्षेत्र है, जहाँ मेरी आज्ञासे सब क्षेत्र निवास करते हैं। अन्य जितने तीर्थ हैं, वे भी कलिकाल आनेपर यहीं स्थित होते हैं। अतः मोक्षकी इच्छा रखनेवाले पुरुषोंको सब प्रकारसे यत्न करके इसी क्षेत्रका सेवन करना चाहिये।

सूतजी कहते हैं—द्विजवरो! इस प्रकार मैंने आप लोगोंसे अड़सठ क्षेत्रोंका उनके नाम और देवताओंसहित वर्णन किया है, जैसा कि महादेवजीने पार्वतीजीसे किया था। जो श्रद्धापूर्वक इन सबके नामोंका पठन और कीर्तन करता है, वह उनमें स्नान करनेका पुण्य प्राप्त कर लेता है।

~~~०~~~

भगवान् शिवके दिये हुए मन्त्रद्वारा नागरब्राह्मणोंपर आये हुए सर्पोंके उपद्रवका निवारण

सूतजी कहते हैं—कुछ कालके अनन्तर चमत्कारपुरमें मौद्गल्यवंशमें देवरात नामसे प्रसिद्ध एक ब्राह्मण हुए। उनके एक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसका नाम क्रथ रखा गया। क्रथ युवावस्थामें पहुँचनेपर बड़ा उद्दण्ड निकला, उसे अपने पुरुषार्थका सदैव बड़ा गर्व रहता था। एक समय वह वनमें घूमता हुआ श्रावण शुक्ला पंचमीको नागतीर्थमें गया। वहाँ उसने नागराजके अत्यन्त तेजस्वी पुत्र रुद्रमालको देखा, जो अपनी माताके साथ वहाँ आया था। क्रथने सर्पके उस छोटे-से

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth
~~~

बच्चेको साधारण जलसर्प समझा और उसे डंडेसे मार डाला। मारे जाते समय उस सर्पबालकने बड़ा आर्तनाद किया—'हा माता! हा तात! मैं निरपराध मारा गया।' साँपके मुखसे मनुष्योंका-सा यह शब्द सुनकर क्रथ भयसे थर्रा उठा और शीघ्र ही घर भाग गया। तदनन्तर नागमाता जब जलाशयसे बाहर निकली, तब उसने तीरपर अपने पुत्रको मरा हुआ देखा। लाठीके प्रहारसे उसके सारे अंग फटकर लहूलुहान हो रहे थे। पुत्रकी ऐसी दशा देखकर माता मूर्च्छित हो गयी। फिर सचेत होनेपर शोकके कारण उसने बहुत देरतक विलाप किया। तदनन्तर नागिन उस मरे हुए पुत्रको लेकर नागराजके समीप गयी। वे भी अपने पुत्रको मरा हुआ देखकर शोकसे व्याकुल हो गये। उस समय नागराजके दुःखसे दुःखी हो समस्त नाग वहाँ एकत्र हो गये। सबने प्राचीन कथाओं और दृष्टान्तोंद्वारा नागराजको समझा-बुझाकर शान्त किया। तत्पश्चात् उन्होंने पुत्रका दाह-संस्कार किया, किंतु जलदानके समय समस्त नागों और सर्पोंसे कहा—'जबतक मेरे पुत्रका विनाश करनेवाले उस दुष्ट पुरुषको स्त्री, पुत्र एवं भृत्योंसहित नष्ट नहीं कर दिया जायगा, तबतक मैं अपने पुत्रको जलांजलि नहीं दूँगा।'

ऐसा कहकर नागराजने उस पापात्मा द्विजकी खोज करायी, जिसने डंडेसे उनके पुत्रका वध किया था। उसके बाद उन्होंने पार्श्ववर्ती नागोंसे कहा—'मेरे हितैषियो! तुम हाटकेश्वरक्षेत्रमें जाओ और मेरे पुत्रका नाश करनेवाले क्रथको स्त्री-पुत्र और कुटुम्बसहित शीघ्र नष्ट करके समस्त चमत्कारपुरको खा जाओ।' नागराजकी यह आज्ञा पाकर सर्पोंने पहले तो सोते समय देवरातके पुत्रको डँसा। फिर उसके समस्त परिवारको काट खाया। तदनन्तर अन्यान्य बाल, वृद्ध और कुमारोंको भी उन्होंने डँस लिया। चमत्कारपुरमें साँपोंके काटनेसे ब्राह्मणोंके घर-घर दारुण हाहाकार मच गया था। कितने ही मनुष्य घर-द्वार छोड़कर दूरस्थ जंगलोंमें भाग गये। इस प्रकार चमत्कारपुरको सर्पोंने मनुष्योंसे सूना कर दिया। तब नागराज शेषने पुत्रके मारे जानेका दुःख छोड़कर अपने पुत्रको जलदान दिया!

सर्पोंका ऐसा उत्पात होनेपर उनसे डरे हुए बहुत-से ब्राह्मण जो सब दिशाओंमें भाग गये थे, परस्पर मिलकर उस वनमें गये, जहाँ त्रिजात नामक ब्राह्मण तपस्या करता था। वह भगवान् शंकरसे वर पाकर भी बड़ी भारी तपस्यामें संलग्न था। उसने अपनी जन्मभूमिके लोगोंको रोते देख स्वयं भी दुःखका अनुभव किया और उन्हें आश्वासन देते हुए कहा—'ब्राह्मणो! आज मैं भगवान् शिवसे ऐसी प्रार्थना करूँगा, जिससे उन दुष्टचित्तवाले नागोंका संहार हो जाय।' ऐसा कहकर त्रिजातने परमेश्वर शिवसे प्रार्थना की—'देव! इस समय मुझे वर दीजिये।' शिवजीने कहा—'शीघ्र माँगो।'

तब त्रिजातने कहा—भगवन्! नागोंने हमारे समस्त नगरको निर्जन कर दिया है। अतः उन सबका विनाश हो।

भगवान् शिव बोले—ब्रह्मन्! मैं तुम्हें एक सिद्ध मन्त्र बताऊँगा, जिसके उच्चारणमात्रसे सर्पोंका विष नष्ट हो जाता है। महाभाग! तुम इन सम्पूर्ण ब्राह्मणोंके साथ वहाँ जाकर उच्च स्वरसे सब ओर इस मन्त्रको सुनाओ। इस मन्त्रको सुनकर जो नीच नाग पाताललोकमें नहीं चले जायँगे, वे विषरहित हो जायँगे। विप्रवर! गर कहते हैं विषको, जहाँ गर नहीं है, वह नगर है। तुम मेरे प्रसादसे वहाँ 'नगर'-'नगर' का उच्चारण करो। इस शब्दको सुनकर भी जो अधम नाग वहाँ ठहरेंगे, वे सुखपूर्वक मारनेयोग्य हो जायँगे। आजसे वह स्थान इस पृथ्वीपर नगरके नामसे विख्यात होगा और तुम्हारी कीर्तिका विस्तार करेगा। दूसरा कोई भी शुद्ध वंशमें उत्पन्न हुआ जो नागर ब्राह्मण नगरनामक मन्त्रसे तीन बार जलको अभिमन्त्रित करके कालसर्पसे डसे हुए तथा मृत्युके वशमें पड़े हुए

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

मनुष्यके मुखमें स्वयं डाल देगा, वह उसे जीवित कर देगा। अन्यत्र रहनेवाला भी जो कोई मनुष्य सोते समय इस तीन अक्षरवाले मन्त्रका सदा स्मरण करेगा, वह सर्पके विषसे मुक्त होगा। अजीर्ण और ज्वरसम्बन्धी रोग भी इस मन्त्रके प्रभावसे तुरंत नष्ट हो जायँगे।

ऐसा कहकर भगवान् शिव अन्तर्धान हो गये। तत्पश्चात् त्रिजात भी मरनेसे बचे हुए ब्राह्मणोंके साथ चमत्कारपुरमें गया। वहाँ सबने 'नगरम्' 'नगरम्' का उच्चारण करते हुए उस क्षेत्रमें प्रवेश किया, जो घोर एवं क्रूर सर्पोंसे व्याप्त हो रहा था। भगवान् शिवसे प्राप्त हुए उस सिद्ध मन्त्रको सुनकर सब सर्प विष और तेजसे रहित होकर भाग चले। कुछ तो बिमौटमें छिप गये और कितने ही पाताललोकमें भाग गये। बचे-खुचे सर्पोंको वहाँके ब्राह्मणोंने डंडोंसे मार डाला। इस प्रकार सब सर्पोंको उजाड़कर पीडारहित हुए ब्राह्मणोंने त्रिजातको आगे रखकर स्थानीय सब आवश्यक कृत्योंको पूर्ण किया। ब्रह्मर्षियो! इस तरह देवाधिदेव भगवान् शिवकी दयासे कालान्तरमें वह नगर पुनः बसा और 'नगर' नामसे प्रसिद्ध हुआ।

चमत्कारपुरमें पुनर्वास करनेवाले ब्राह्मणोंकी संख्या

सूतजी कहते हैं—ब्रह्मर्षियो! इस प्रकार उस स्थानका उद्धार करके त्रिजातने वहाँ देवाधिदेव भगवान् शिवके लिये एक मन्दिर बनवाया और उसमें त्रिजातेश्वर नामसे उनकी प्रतिष्ठा की। तत्पश्चात् वह श्रद्धापूर्वक दिन-रात भगवान् शिवकी आराधनामें संलग्न रहकर कुछ कालके अनन्तर शरीरसहित शिवलोकको चला गया। उपमन्यु, क्रौंच, कैशोर्य तथा त्रैवण—इन चार गोत्रोंके ब्राह्मण उस नगरमें फिर लौटकर नहीं गये। उन्हींके साथ शुक आदि गोत्र भी सर्पभयसे भाग गया था। वह भी वहाँ नहीं आया। शेष गोत्रोंके ब्राह्मण जो वहाँ रह गये थे, उनका परिचय देता हूँ। कौशिक गोत्रके छब्बीस, कश्यप गोत्रके सत्तासी, लक्ष्मण गोत्रके इक्कीस, भरद्वाज गोत्रके तीन, कुण्डन गोत्रके चौदह, रैतिक गोत्रवाले बीस, पराशर गोत्रके आठ, गर्ग गोत्रके बाईस, हारीत गोत्रके तेईस, और्वभार्गव गोत्रके पच्चीस, गौतम गोत्रके छब्बीस, दाल्भ्य गोत्रके बीस, माण्डव्य गोत्रके तेईस, बहवृच गोत्रवाले भी तेईस, सांकत्य गोत्रके दस, आंगिरस गोत्रके पाँच, अत्रि तथा शुक्लात्रेय कुलके ब्राह्मण दस-दस, वत्स गोत्रके पाँच, कुत्सगोत्रके सोलह, शाण्डिल्यभार्गवके पाँच, मुद्गल गोत्रके बीस तथा बौधायन और कौशल गोत्रके तीस-तीस ब्राह्मण वहाँ आकर बसे थे। अथर्वकुलके पचपन, मौनसके सतहत्तर, यजुर्वेदी तीस, च्यवन गोत्रके सत्ताईस, अगस्त्य गोत्रके तैंतीस, जैमिनि कुलके दस, नैवृत पचपन, पाठीन सत्तर, गोभिल और काक्व पाँच-पाँच, औशनस और दाशार्ह तीन-तीन, लोकाख्य साठ, ऐणिश, बहत्तर, कापिष्ठल, शार्कर और दत्त—ये सतहत्तर, शार्कव सौ, दार्ज्य सतहत्तर, कात्यायन, अधिष्ठ और वैदिश—ये तीन-तीन, कृष्णात्रेय पाँच, दत्तात्रेय पाँच, नारायण, शौनकेय तथा जाबाल—ये सौ-सौ, गोपाल, जामदग्न्य, शालिहोत्र, कर्णिक, भागुरायण, मातृक तथा त्रैणव आदि—ये भी सौ-सौकी संख्यामें ही क्रमशः वहाँ लौट आये। इन्हीं ब्राह्मणोंके अड़तालीस[1] संस्कार होते हैं, जो पूर्वकालमें ब्रह्माजीके द्वारा बताये गये हैं।

१. अड़तालीस संस्कारोंके नाम इस प्रकार बताये जाते हैं—१ गर्भाधान, २ पुंसवन, ३ सीमन्तोन्नयन, ४ विष्णुबलि, ५ जातकर्म, ६ नामकरण, ७ उपनिष्क्रामण, ८ अन्नप्राशन, ९ कर्णवेध, १० चौल, ११ अक्षरारम्भ, १२ उपनयन, १३ व्रत,

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

इस प्रकार चौंसठ गोत्रोंके श्रेष्ठ ब्राह्मण महात्मा त्रिजातद्वारा वहाँ लाये गये। वे सब मिलकर लगभग पंद्रह सौ ब्राह्मण एकत्र हुए थे। सभी वहाँ समान भागके उपभोक्ता हुए। सबकी समान स्थिति मानी गयी। क्रमशः सबका वंश बढ़ने लगा और उनके सहस्रों पुत्र, पौत्र, नप्ता, दौहित्र तथा भागिनेयोंसे पुनः सारा नगर भर गया। जो मनुष्य सदा भक्तिभावसे इस चरित्रका पाठ करता है, इस पृथ्वीपर उसकी सन्तानका कभी नाश नहीं होता।

रैवत और क्षेमंकरीद्वारा रैवतेश्वर तथा कात्यायनीकी स्थापना

सूतजी कहते हैं—महर्षियो! पूर्वकालमें तक्षक नाग सौराष्ट्र देशके राजाके यहाँ पुत्ररूपमें उत्पन्न हुआ। वहाँ उसका नाम रैवत था। उन्हीं दिनों आनर्तदेशमें राजा प्रभंजन राज्य करते थे। उनका बहुत-से राजाओंके साथ वैर बँध गया था। इसलिये शत्रु उनका देश उजाड़ते और पशुओंको बलपूर्वक हर ले जाते थे। अतः उन शत्रुओंके साथ उनका सदैव युद्ध होता रहता था। उसी समय उनकी धर्मपत्नी प्रियंवदाने ऋतुस्नाता होकर गर्भधारण किया। समयानुसार कमलके समान नेत्रोंवाली एक सुन्दरी कन्या उत्पन्न हुई, जिसने रातके अन्धकारमें भी अपनी अंगकान्तिसे सूतिकागृहको प्रकाशित कर दिया था। राजा प्रभंजनने पुत्रकी ही भाँति उस कन्याके जन्मका उत्सव मनाया। सब ओर गीत और वाद्योंकी मधुर ध्वनि छा रही थी। तेरहवें दिन भूपालने ब्राह्मणोंके आगे कन्याका नामकरण-संस्कार किया। उसका नाम क्षेमंकरी हुआ। वह 'यथा नाम तथा गुण' थी। धीरे-धीरे जब कन्या बड़ी हुई, तब वैवाहिक शुभ लग्नमें राजाने सौराष्ट्रनाथ रैवतके साथ उसका विवाह कर दिया। उन दोनों नवदम्पतिसे रेवती नामवाली एक कन्या उत्पन्न हुई, जिसका विवाह बलरामरूपमें अवतीर्ण हुए नागराज शेषके साथ हुआ था। राजा रैवत और क्षेमंकरीसे प्रौढ़ा अवस्था आ जानेपर भी कोई वंशप्रवर्तक पुत्र नहीं हुआ। इसके कारण उन दोनोंके मनमें बड़ा दुःख था। वे अपना सारा राज्य मन्त्रियोंको सौंपकर पुत्रके लिये तप करनेके उद्देश्यसे तपोभूमिमें चले गये। वहाँ विन्ध्याचल पर्वतपर अपने लिये आश्रम बनाकर दोनों एकाग्रचित्तसे रहने लगे और कात्यायनी देवीकी स्थापना करके उनकी आराधनामें संलग्न हो गये। कात्यायनी देवी वही हैं, जिन्होंने कौमार-व्रत धारण करके महिषासुरका वध किया था। देवीने उन दोनोंकी आराधनासे सन्तुष्ट होकर उन्हें एक वंशवर्द्धक पुत्र प्रदान किया, जो क्षेमजितके नामसे प्रसिद्ध हुआ। पुत्र पाकर सौराष्ट्रराज रैवत अपनी राजधानीको लौट आये और उन्होंने बड़े हर्षके साथ उसका लालन-पालन किया। क्षेमजित जब युवावस्थाको प्राप्त हुआ, तब राजाने उसे अपने स्थानपर अभिषिक्त किया और स्वयं वे सब कुछ त्यागकर पत्नीके साथ हाटकेश्वरक्षेत्रमें चले आये। वहाँ उन्होंने भगवान् शंकरका मनोहर मन्दिर बनवाया और एकाग्रचित्त होकर रैवतेश्वर नामवाले शिवलिंगकी स्थापना की, जो दर्शनमात्रसे समस्त देहधारियोंके पापोंको नाश करनेवाला है। पूर्वकालमें राजा रैवतने जिन दुर्गादेवीका स्थापन किया था, उन्हींका

१४ समावर्तन, १५ विवाह, १६ उपाकर्म, १७ उत्सर्जन, १८ से २४ तक सात प्रकारके पाकयज्ञ—१ हुत, २ प्रहुत, ३ आहुत, ४ शूलगव, ५ बलिहरण, ६ प्रत्यवरोहण, ७ अष्टका होम, २५ से ३१ तक सात हविर्यज्ञसंस्था—१ अग्न्याधान, २ अग्निहोत्र, ३ दर्शपौर्णमास, ४ चातुर्मास्य, ५ आग्रयणेष्टि, ६ निरूढ पशुबन्ध, ७ सौत्रामणि, ३२ से ३८ तक सात सोमयज्ञसंस्था—१ अग्निष्टोम, २ अत्यग्निष्टोम, ३ उक्थ्य, ४ षोडशी, ५ वाजपेय, ६ अतिरात्र, ७ आप्तोर्याम, ३९ वानप्रस्थ, ४० संन्यास, ४१ दया, ४२ अनसूया, ४३ शौच, ४४ अनायास, ४५ मंगल्य, ४६ अकार्पण्य, ४७ अस्पृहा, ४८ अन्त्येष्टि।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

हाटकेश्वरक्षेत्रमें उनकी धर्मपत्नी क्षेमंकरीने श्रद्धापूर्वक मन्दिर बनवाया और उसमें कात्यायनी देवीकी प्रतिष्ठा की। तबसे महिषासुरमर्दिनी कात्यायनी वहाँ क्षेमंकरीके नामसे पुकारी जाती हैं। जो मनुष्य चैत्र शुक्ला अष्टमीको उनका दर्शन करता है, उसके सम्पूर्ण मनोरथोंकी सिद्धि होती है।

दुर्वासाके शापसे चित्रसम दैत्यका महिष होना, महिषकी तपस्या, वरदान-प्राप्ति तथा स्वर्ग-विजय, कात्यायनीके द्वारा महिषका वध

ऋषियोंने पूछा—सूतनन्दन! कात्यायनीदेवीने महिषासुरका अन्त किस प्रकार किया था, यह बताइये।

सूतजी बोले—पूर्वकालमें हिरण्याक्षका पुत्र महिष नामक दैत्य हुआ था, जिसने भैंसेका रूप धारण करके ही समस्त त्रिलोकीका शासन किया था। पहले वह बड़ा ही सुन्दर तथा तेज और वीर्यसे सम्पन्न था। उस समय लोग उसे चित्रसम कहते थे। चित्रसमको बाल्यावस्थासे ही भैंसेकी सवारीका शौक हो गया था। वह घोड़े आदि सवारियोंको छोड़कर भैंसेपर ही चढ़कर चलता था। एक दिनकी बात है दानव चित्रसम भैंसेपर आरूढ़ होकर चला और गंगाजीके तटपर जाकर जल-पक्षियोंका शिकार करने लगा। वहाँ मुनिश्रेष्ठ दुर्वासा उत्तम पद्मासन लगाकर गंगाके किनारे समाधि लगाये बैठे थे। दैत्यका चित्त जलपक्षियोंकी ओर लगा था। उसने मुनिको नहीं देखा और भैंसेको आगे बढ़ा दिया। मुनि उसके खुरोंके वेगसे कुचल गये, उनका सारा शरीर लहूलुहान हो गया। उन्होंने आँख खोलकर देखा, तो सामने एक दानव प्रणाम आदिसे रहित उद्दण्डभावसे खड़ा था। तब दुर्वासाने कुपित होकर कहा— 'पापी! तुमने भैंसेके खुरोंसे मेरे शरीरको कुचल डाला और मेरी समाधि भंग कर दी, इसलिये तुम भी भैंसा हो जाओ और जबतक जिओ, प्रधानतः भैंसा बने रहो।' मुनिके इतना कहते ही वह बड़ा भारी भैंसा हो गया। तब उसने विनीत भावसे मुनिको प्रसन्न करते हुए कहा— 'विप्रवर! मैं बालक हूँ, अनजानमें मुझसे आपका अपराध हो गया; उसे क्षमा करके मेरे शापका अन्त कर दीजिये।'

मुनिने कहा—मेरा वचन व्यर्थ नहीं हो सकता। दुर्मते! जबतक तुम्हारे प्राण रहेंगे, तबतक तो तुम इसी रूपमें रहोगे।

ऐसा कहकर दुर्वासा मुनि गंगाका किनारा छोड़कर अन्यत्र चल दिये। तब वह दैत्य भी शुक्राचार्यके पास जाकर बोला—'गुरुदेव! मुझे दुर्वासाने शाप देकर महिष बना दिया है। अब आप ही मुझे शरण दीजिये। मैं आपके प्रसादसे अपने पूर्वशरीरको पा जाऊँ और मेरी यह पशुयोनि नष्ट हो जाय। ऐसा उपाय कीजिये।'

शुक्राचार्यने कहा—एकमात्र भगवान् महेश्वरको छोड़कर दूसरा कोई भी ऐसा नहीं है, जो दुर्वासाके शापको पलट सके। इसलिये तुम शीघ्र ही हाटकेश्वरक्षेत्रमें जाकर वहाँके परम उत्तम शिवलिंगकी आराधना करो।

शुक्राचार्यके ऐसा कहनेपर वह दानव शीघ्र ही हाटकेश्वरक्षेत्रमें गया। वहाँ उसने भक्तिभावसे महान् शिवलिंगकी स्थापना करके कैलासशिखरके समान ऊँचा मन्दिर बनवाया और कठिन तपस्यामें तत्पर हो महादेवजीकी आराधना करने लगा। इस प्रकार उसका दीर्घकाल व्यतीत हुआ। तब महादेवजीने सन्तुष्ट होकर उसे प्रत्यक्ष दर्शन दिया और कहा—'दानव! मैं प्रसन्न हूँ, वर माँगो।'

महिष बोला—मुझे दुर्वासाजीने शाप देकर भैंसा बना दिया है, आपके प्रसादसे मेरी यह पशुयोनि निवृत्त हो जाय। यही प्रार्थना है।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

भगवान् शिव बोले—दुर्वासाके वचनको अन्यथा नहीं किया जा सकता, परंतु तुम्हारे सुखका एक उपाय मैं कर दूँगा, वह यह कि जितने भी दैव, मानव तथा आसुर भोग हैं, वे सब तुम्हें इस शरीरमें प्राप्त होंगे। भोगके लिये ही देवता और असुर मानव-शरीरकी इच्छा करते हैं। तुम्हारा यही शरीर उन सब भोगोंको प्राप्त करेगा।

महिष बोला—देवदेवेश्वर! यदि इस प्रकार सब भोगोंकी प्राप्ति मुझे हो सकती है, तब तो मेरा यही शरीर अवध्य हो जाय। एक स्त्रीके सिवा अन्य कोई भी प्राणी मुझे मार न सके। जो कोई भी मनुष्य मेरे इस तीर्थमें स्नान करे, उसे आपका दर्शन प्राप्त हो तथा उसके सम्पूर्ण मनोरथ सिद्ध हो जायँ।

भगवान् शिवने कहा—अगहनके शुक्ल पक्षकी चतुर्दशी तिथिको तुम्हारे इस तीर्थमें स्नान करके जो मेरे उत्तम अर्चा-विग्रहका दर्शन करेगा, उसके भूत, प्रेत और पिशाच आदिसे प्राप्त होनेवाले सब प्रकारके दोष नष्ट हो जायँगे और क्षय आदि रोगोंकी भी निवृत्ति हो जायगी।

इतना कहकर देवेश्वर भगवान् शिव अन्तर्धान हो गये। तब महिष भी अपने स्थानको लौट गया और सब दानवोंको बुलाकर उनकी सभामें अमर्षयुक्त होकर बोला—'दानवो! देवताओंने श्रीविष्णुको आगे रखकर मेरे पिता, पितृव्य तथा अन्य पूर्वजोंका वध किया है। अतः मैं महायुद्धमें उन देवताओंका नाश करूँगा और उनके हाथसे त्रिलोकीका राज्य छीन लूँगा।'

तब उन दानवोंने कहा—आपने ठीक कहा है, हम आज ही चलकर युद्धमें देवताओंको मार भगावेंगे और स्वर्गमें दिव्य भोगोंका उपभोग करते हुए सुखसे रहेंगे।

ऐसा निश्चय करके दैत्योंने सेवक, सेना और सवारियोंके साथ मेरुशिखरपर प्रस्थान किया। इन्द्र आदि देवताओंने देखा, दैत्योंकी सेना शस्त्रास्त्रोंसे सुसज्जित होकर सहसा युद्धके लिये आ पहुँची है। तब वे भी उसका सामना करनेके लिये नगरद्वारके बाहर निकल आये। दोनों दलोंमें गर्जन-तर्जनके साथ तीन वर्षोंतक घोर युद्ध हुआ। अन्तमें अपनी पराजय होती देख देवताओंने आपसमें यह विचार किया कि 'इस समय हम अमरावतीपुरी छोड़कर ब्रह्मलोकमें चले चलें, जहाँ दैत्योंका कोई भय नहीं है।' ऐसा निश्चय करके देवतालोग इन्द्रपुरी खाली करके रातमें ही अन्यत्र चले गये। प्रातःकाल उस पुरीको जनशून्य देखकर दैत्योंने हर्षपूर्वक उसके भीतर प्रवेश किया। तदनन्तर उन्होंने इन्द्रके स्थानपर महिषासुरको बिठाया और उसे प्रणाम करके अपनी विजयका बड़ा भारी उत्सव मनाया। महिषासुर तीनों लोकोंका राज्य करने लगा। वह त्रिलोकीमें जो कोई भी अति उत्तम सारभूत वस्तु—हाथी, घोड़े, रथ, अस्त्र-शस्त्र आदि देखता, सब स्वयं ले लेता था। इस प्रकार स्वेच्छाचारपूर्ण बर्ताव करनेवाले उस दैत्यका वध करनेके लिये सब देवता आपसमें मिलकर विचार करने लगे। इसी समय मुनिश्रेष्ठ नारदजी भी वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने महिषासुरके द्वारा जो त्रिलोकीका उत्पीडन हो रहा था, उसका तथा उस दैत्यके उग्र अनाचारपूर्ण कठोर बर्तावका देवताओंसे विस्तारपूर्वक वर्णन किया। यह सब सुनकर देवताओंका कोप बहुत बढ़ गया। उसी अवसरपर कार्तिकेयजी भी वहाँ आये और उन्होंने पूछा—'मुने! देवताओंके कोपका क्या कारण है?' इसके उत्तरमें नारदजीने महिषासुरके अत्याचारका भयंकर चित्र उपस्थित किया। इससे कार्तिकेयजीको बड़ा क्रोध हुआ। उस क्रोधकी अवस्थामें प्रत्येक देवताके मुखसे तेज प्रकट हुआ और सब मिलकर वह एक कुमारी कन्याके रूपमें परिणत हो गया। वह दिव्यतेजोमयी सर्वलक्षणसम्पन्ना कन्या देवताओंके क्रोधमें कार्तिकेयका कोप मिलनेसे प्रकट हुई थी, इसलिये उसका नाम 'कात्यायनी' हुआ। तत्पश्चात् देवराज इन्द्रने उस कन्याको वज्र प्रदान किया,

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

स्कन्दने अपनी तीखी एवं भयंकर शक्ति दी, भगवान् विष्णुने धनुष, महादेवजीने त्रिशूल, सूर्यने तीखे बाण, चन्द्रमाने उत्तम ढाल, निर्ऋतिने खड्ग, अग्निने उल्मुक, वायुने तीखी छुरी, कुबेरने परिघ तथा प्रेतराज यमने असुरोंके वधके लिये अपना भयंकर दण्ड प्रदान किया। इन सब अस्त्रोंको देखकर कात्यायनी देवीने अपने बारह हाथ बना लिये और उन हाथोंमें देवताओंके वे सभी उत्तम अस्त्र-शस्त्र ग्रहण कर लिये। तत्पश्चात् कात्यायनीने कहा—'देववरो! तुमने मेरी सृष्टि किसलिये की है, शीघ्र बताओ। मैं तुम्हारे सब कार्य सिद्ध करूँगी।

देवता बोले—इस संसारमें इस समय बड़ा भयंकर महिष नामक दानव उत्पन्न हुआ है, जो समस्त प्राणियों तथा विशेषतः मनुष्योंके लिये अवध्य है। एकमात्र स्त्रीको छोड़कर दूसरा कोई उसे मार नहीं सकता। इसीलिये हमने तुम्हें उत्पन्न किया है। अब तुम श्रेष्ठ पर्वत विन्ध्याचलपर जाओ और वहाँ उग्र तपस्या करो, जिससे तुम्हारे तेजकी वृद्धि हो। जब हम तुम्हें तेजसे सम्पन्न जान लेंगे, तब तुम्हींको आगे करके उस दुष्टात्माके साथ युद्ध करेंगे। तदनन्तर तुम्हारे बाणसे दग्ध होकर वह मृत्युको प्राप्त होगा।

देवताओंकी यह बात सुनकर परमेश्वरी कात्यायनीने कहा—देवताओ! आपलोग शीघ्र मुझे कोई वाहन प्रदान करें। तब भगवती पार्वतीने कात्यायनीकी सवारीके लिये सिंह दिया। देवी कात्यायनी उसी सिंहपर आरूढ़ हो विन्ध्याचल पर्वतकी ओर प्रस्थित हुईं और उसके मनोहर शिखरपर पहुँचकर व्रत-उपवासमें संलग्न हो महादेवजीका ध्यान करती हुई इन्द्रियसंयमपूर्वक तपस्यामें संलग्न हो गयीं। ज्यों-ज्यों उनके तपकी वृद्धि होती, त्यों-ही-त्यों शरीरमें रूप और कान्ति भी बढ़ती जाती थी। उस समय दैत्येश्वर महिषके सेवक वहाँ आये और अद्भुत रूप धारण करनेवाली उस व्रतपरायणा देवीको देखकर लौट गये। वहाँ उन्होंने दुष्टात्मा महिषासुरसे इस प्रकार कहा—'देव! हमने पृथ्वीपर भ्रमण करके एक अपूर्व कुमारी कन्या देखी है, जो विन्ध्याचल पर्वतपर तपस्या करती है। उसके बारह हाथ हैं और उन हाथोंमें नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्र शोभा पा रहे हैं, उसका सौन्दर्य अद्भुत है।'

सेवकोंका यह वचन सुनकर महिषासुर तत्काल कामदेवके वशमें हो गया और बड़ी भारी सेना साथ लेकर वह उस स्थानपर गया, जहाँ वह कन्या बैठी थी। उसे देखते ही वह दानव कामबाणसे आहत हो गया और अपनी सेनाको दूर रखकर अकेला ही देवीके सामने उपस्थित हुआ। निकट पहुँचकर वह इस प्रकार बोला—'सुन्दरी! यह व्रत और तपस्या तो तुम्हारी युवावस्थाके विपरीत है। अतः यह सब छोड़कर तुम त्रिलोकके राज्यकी महारानी बनो। तुमने मेरा नाम सुना होगा—मैं दानवराज महिष हूँ, जिसने द्वन्द्वयुद्धमें इन्द्रको परास्त किया है। इस समय त्रिभुवनका राज्य मेरे अधीन है। अतः तुम मेरी प्राणवल्लभा पत्नी हो जाओ। मेरी सहस्रों भार्याएँ हैं। वे सब तुम्हारी दासियाँ हो जायँगी!'

उसकी यह बात सुनकर परमेश्वरी कात्यायनीकी आँखें कोपसे लाल हो गयीं। उन्होंने उस दानवसे फटकारकर कहा—पापाचारी! तुझे धिक्कार है, धिक्कार है। तू मुझ कुमारव्रत धारण करनेवाली कन्यासे इस प्रकार काम-कलुषितचित्त होकर क्यों ऐसी बात कर रहा है? मैं तेरा नाश कर डालूँगी।

महिषासुर बोला—सुन्दरी! तुम गान्धर्वविवाहसे मुझे आत्मदान करो।

उसकी यह बात सुनकर देवीने उसके मुँहमें एक बाण मारा। वह बाण बाँबीमें घुसनेवाले सर्पकी भाँति उसके मुँहमें समा गया। महिषासुर चीख उठा, उसके मुँहसे खूनकी धारा बहने लगी। वह देवीके पाससे लौट गया और अपने सैनिकोंसे बोला—'इस दुष्टा स्त्रीको जीती-

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

जागती पकड़ लाओ, इसे मेरी पत्नी बनना ही होगा।' महिषासुरकी आज्ञा पाकर सब दानव बाणोंकी बौछार करते हुए देवीकी ओर दौड़े। उन्हें निकट आया देख देवीने खिलवाड़में ही महाबाणोंका प्रहार करके उन सबके मर्मस्थानोंको छेद डाला। कितने ही मृत्युको प्राप्त हो गये और बहुत-से दैत्य घायल होकर सब दिशाओंमें भाग गये। अपनी सेनाको तितर-बितर हुई देख महिषासुर क्रोधमें भरा हुआ स्वयं ही देवीकी ओर दौड़ा और उसने भयानक गर्जना की। उसे देखकर कात्यायनीने बड़े जोरसे अट्टहास किया। उस शब्दसे तीनों लोक गूँज उठे। देवीके अट्टहासयुक्त मुखसे सैकड़ों पुलिन्द, शबर, म्लेच्छ, शक और यवन आदि प्रकट हुए। तब देवीने उन्हें आज्ञा दी—'तुम सब लोग इस दुष्टात्मा महिषासुरकी सेनाके इन बलोन्मत्त दैत्योंका शीघ्र वध करो।' उनका यह आदेश सुनकर वे बलवान् और दुर्द्धर्ष वीर दैत्योंकी सेनाकी ओर दौड़े। फिर तो उनमें बड़ा भयंकर युद्ध प्रारम्भ हो गया। उस समय किसीको अपने-परायेका भान न रहा। देवीके उत्पन्न किये हुए योद्धाओंने सब दानवोंका उत्साह भंग कर दिया। कितने ही दैत्य उनके द्वारा मौतके घाट उतार दिये गये तथा कितने ही उनके भीषण प्रहारोंसे जर्जर हो गये। अपनी सेनाका पाँव उखड़ता देख महिषासुर क्रोधसे उन्मत्त हो उठा और देवीसे कठोर वाणीमें बोला—'ओ पापिनि! अबतक तुझे स्त्री समझकर मैंने युद्धमें नहीं मारा, अब तू मेरा प्रभाव देख।'

ऐसा कहकर महिषासुरने सींगोंके प्रहारसे देवीके ऊपर शिलाखण्ड फेंके और उन्हें बार-बार फटकारा। उस दैत्यको अपने पास आया देख देवी क्रोधपूर्वक आगे बढ़ीं और बड़े वेगसे उसकी पीठपर चढ़ गयीं। चढ़कर उन्होंने लातसे इतना मारा कि वह लहूलुहान हो गया और आकाशमें उछलकर जोर-जोरसे चीत्कार करने लगा। इसी बीचमें देवीकी ही ज्योतिसे प्रकट हुए सिंहने आकर तीखी दाढ़ोंके अग्रभागसे क्रोधपूर्वक उस दैत्यके पिछले अंगोंको पकड़ लिया। फिर तो देवीके पैरोंसे दबा हुआ वह दानव स्थिर हो गया, एक पग भी हिल-डुल नहीं सका। उस विवशताकी दशामें वह केवल भयंकर चीत्कार करता रहा।

इसी समय इन्द्र आदि सब देवता वहाँ आ पहुँचे और आकाशमें स्थित होकर बोले—'देवेश्वरि! इस तीखी तलवारसे शीघ्र ही इसका मस्तक काट डालो।' देवताओंका यह वचन सुनकर देवीने महिषासुरकी मोटी ग्रीवापर खड्गका प्रहार किया। उस खड्गके आघातसे दैत्यकी ग्रीवाके दो टूक हो गये। इससे देवताओंको बड़ी प्रसन्नता हुई। उस समय वह महिषरूप त्यागकर ढाल और तलवारको लिये एक तेजस्वी पुरुषके रूपमें प्रकट हो गया और देवीपर खड्गका प्रहार करना ही चाहता था कि देवीने उसकी चोटी पकड़ ली और उसके शरीरका नाश करनेके लिये तलवार उठायी। यह देख वह दुर्गादेवीकी स्तुति करने लगा।

दानव बोला—देवि! आपकी जय हो। अचिन्त्यशक्ते! आपकी जय हो। सब देवताओंकी स्वामिनी! आपकी जय हो। सर्वव्यापिनी देवि! आपकी जय हो। सर्वजनप्रिये! आपकी जय हो। सबका मनोरथ पूर्ण करनेवाली देवि! आपकी जय हो। त्रिभुवनसुन्दरि! आपकी जय हो। भक्तजनोंको आनन्द देनेवाली देवि! आपकी जय हो। दैत्योंका विनाश करनेवाली! आपकी जय हो। देवि! आपको कहींसे भी भय नहीं है। आप तीनों लोकोंकी रक्षाके लिये उद्यत हैं, अतः मुझपर कृपाप्रसाद कीजिये। प्राणोंकी रक्षा और दयाकी भिक्षा दीजिये। मैं आपके चरणोंकी शरणमें पड़ा हुआ अत्यन्त दीन और विनीत हूँ, मुझपर अनुग्रह कीजिये। देवि! मैं हिरण्याक्षका पुत्र चित्रसम हूँ। महर्षि दुर्वासाने शाप देकर मुझे महिष बना दिया था। आज आपने मेरा उद्धार कर दिया। साथ ही मेरा वीर्यदर्प भी गल गया। सुरेश्वरि! अब मैं आपके चरणोंका किंकर होकर

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

रहूँगा। सब दुष्टोंका विनाश करनेवाली सर्वव्यापिनी देवि! आपकी जय हो।

महिषासुरका यह दीन वचन सुनकर देवीको दया आ गयी। वे आकाशमें खड़े हुए देवताओंसे बोलीं—'देवगण! अब मैं क्या करूँ?' देवता बोले—'देवेश्वरि! यदि इस अधम दानवका वध नहीं करोगी, तब तो यह समस्त चराचर प्राणियोंसहित तीनों लोकोंका विनाश कर डालेगा; फिर तो तुम्हारे प्रादुर्भावके निमित्त किया हुआ हमारा सारा परिश्रम व्यर्थ होगा और तुमने भी जो यह युद्ध करनेका सारा कष्ट सहन किया है, इसका भी कोई अच्छा परिणाम नहीं निकलेगा।'

देवीने कहा—देवताओ! न तो मैं इसे मारूँगी और न छोड़ूँगी। सदा इसकी चोटी पकड़कर इसे अपने हाथमें ही रखूँगी।

देवता बोले—महाभागे! तुम्हारा कथन ठीक है, इस समय ऐसा ही करना उचित होगा। जो मनुष्य इस रूपमें स्थित हुई तुम्हारी पूजा करेगा, उसे तुम्हारा दुर्लभ दर्शन प्राप्त होगा। आजसे 'विन्ध्यवासिनीदेवी' के नामसे तुम्हारी ख्याति होगी। आश्विनमासके शुक्ल पक्षमें अष्टमी-नवमी तिथिको जो मनुष्य तुम्हारी भक्तिपूर्वक पूजा करेगा, उसे एक वर्षतक कोई रोग, भय और तिरस्कार आदिकी प्राप्ति नहीं होगी। उसके लिये अकालमृत्यु तथा चोर आदिका उपद्रव भी नहीं रहेगा।

सूतजी कहते हैं—देवतालोग ऐसा कहकर अपने-अपने स्थानको चले गये। इन्द्रने दीर्घकालके बाद त्रिलोकीका अकण्टक राज्य प्राप्त किया। तदनन्तर सब लोग सुखी हो गये। देवता पुनः तीनों लोकोंमें यज्ञभागके भोक्ता हुए। आनर्तदेशमें सुरथ नामसे प्रसिद्ध एक राजा हो गये हैं। उन्होंने उत्तम भक्तिपूर्वक हाटकेश्वरक्षेत्रमें देवीकी स्थापना की है। चैत्रमासके शुक्ल पक्षकी अष्टमी तिथिको जो पुरुष उत्तम भक्तिभावसे यहाँ देवीका दर्शन करता है, वह एक वर्षतक कृतार्थ (पूर्णमनोरथ) होता है।

केदारक्षेत्रका प्रादुर्भाव तथा वहाँ भगवान् शिवकी आराधनाका माहात्म्य

ऋषियोंने पूछा—सूतजी! हिमालय-प्रदेशवर्ती गंगाद्वारक्षेत्रमें 'केदार' भगवान्की स्थिति सुनी जाती है, सो वे वहाँ किस प्रकार प्राप्त हुए?

सूतजीने कहा—महर्षियो! जबतक गरमी और वर्षा रहती है, तबतक तो भगवान् शिव वहीं (हिमालय-प्रदेशके केदारक्षेत्रमें) रहते हैं; किंतु शीतकालमें हाटकेश्वरक्षेत्रमें चले आते हैं। प्राचीन कालमें स्वायम्भुव मन्वन्तरके प्रारम्भसमयकी बात है, हिरण्याक्ष नामसे प्रसिद्ध एक महातेजस्वी दैत्य था। महाबली होनेके साथ ही वह तप और पराक्रमसे भी सम्पन्न था। हिरण्याक्ष आदि दैत्योंने इन्द्रको स्वर्गसे निकाल दिया और स्वयं ही समस्त त्रिलोकीपर अधिकार जमा लिया। राज्यरहित इन्द्रने देवताओंसहित गंगाद्वारमें आकर तपस्या प्रारम्भ की। एक दिन भगवान् शिव महिषका रूप धारणकर तीव्र तपस्या करते हुए इन्द्रके सम्मुख पृथ्वीतलसे निकले और बोले—'सुरश्रेष्ठ! शीघ्र बोलो, मैं इस रूपमें सम्पूर्ण दैत्योंमेंसे किन-किनको जलमें विदीर्ण कर डालूँ (के दारयामि)?'

इन्द्र बोले—प्रभो! हिरण्याक्ष, सुबाहु, वक्त्र-कन्धर, त्रिशृंग तथा लोहिताक्ष—इन पाँचोंका वध कीजिये। इनके मरनेपर निश्चय ही सब दैत्य मरे हुएके ही तुल्य हो जायँगे; अतः अन्यान्य दीन-हीन दैत्योंका नाश करनेसे क्या लाभ है?

इन्द्रके ऐसा कहनेपर भगवान् शिव तुरंत उस स्थानपर गये, जहाँ दानव हिरण्याक्ष विद्यमान था। उस भयानक भैंसेको देखकर सब दानव सब ओरसे उसपर पत्थरों और डंडोंकी बौछार करने लगे। दैत्यों और उनके प्रहारोंकी तनिक भी

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

परवा न करके भगवान् शिवने चार मन्त्रियोंसहित हिरण्याक्षको खिलवाड़में ही एक गहरा धक्का दिया। तब दैत्य हथियार लेकर ज्यों ही उनके सामने दौड़ा, त्यों ही सींगसे उसको विदीर्ण करके महादेवजीने यमलोक भेज दिया। हिरण्याक्षको मारनेके बाद उन्होंने सुबाहु आदि सचिवोंको भी मृत्युके घाट उतार दिया। निशाना साधकर प्रहार करनेवाले उन दैत्योंद्वारा यत्नपूर्वक चलाया हुआ भी कोई अस्त्र-शस्त्र महादेवजीके शरीरपर नहीं लगता था। इस प्रकार उन पाँचों प्रधान दैत्योंका वध करके भगवान् शिव पुनः उसी स्थानपर लौट आये, जहाँ इन्द्र तपस्या करते थे। वहाँ आकर वे इन्द्रसे बोले—'देवराज! तुमने जिन पाँच दानवोंके वधके लिये कहा था, उन सबको मैंने मार डाला है; अब तुम पुनः त्रिलोकीका राज्य करो। देवेश! मुझसे दूसरा कोई भी मनोवांछित वर माँगना चाहो तो माँगो।'

इन्द्र बोले—भगवन्! आप त्रिलोकीकी रक्षा, धर्मस्थापना तथा कल्याणके लिये इसी रूपसे यहाँ निवास कीजिये।

भगवान् शिवने कहा—शक्र! यह रूप तो मैंने उस दैत्यका वध करनेके लिये ही धारण किया था। अब तुम्हारे अनुरोधपूर्ण वचनसे मैं त्रिभुवनकी रक्षा, धर्मकी स्थापना तथा लोक-कल्याणके लिये यहीं निवास करूँगा।

ऐसा कहकर भगवान् शिवने वहाँ एक सुन्दर कुण्ड प्रकट किया, जो शुद्ध स्फटिकमणिके समान स्वच्छ तथा दूधके सदृश सुस्वादु जलसे भरा हुआ था। तत्पश्चात् इन्द्रसे कहा—'जो कोई भी मेरा दर्शन करके पवित्र हो इस कुण्डका दर्शन करेगा तथा दायें-बायें दोनों हाथोंकी अंजलिसे तीन बार इस कुण्डका जल पीयेगा, वह तीन कुलके पितरोंको तार देगा। बायें हाथसे जल पीकर मातृपक्षका, दायें हाथसे जल ग्रहण करनेपर पिता-पितामह आदिका तथा दोनों हाथोंसे जल पीकर अपने-आपका उद्धार करेगा।'

इन्द्र बोले—वृषभवाहन! मैं प्रतिदिन स्वर्गसे आकर यहाँ आपकी पूजा करूँगा और इस कुण्डका जल भी पीऊँगा। आपने महिषरूपमें यहाँ आकर '**के दारयामि**—जलमें किनको विदीर्ण करूँ' ऐसा कहा था, इसलिये आप 'केदार' नामसे प्रसिद्ध होंगे।

भगवान् शिवने कहा—इन्द्र! यदि ऐसा करोगे तब तुम्हें दैत्योंसे भय नहीं प्राप्त होगा। तुम्हें अपने शरीरमें उत्कृष्ट तेज दिखायी देगा।

तदनन्तर इन्द्रने भगवान्‌के लिये सुन्दर मन्दिरका निर्माण किया, जो देखनेमें बड़ा ही सुन्दर और मनोरम था। तत्पश्चात् उन्हें प्रणाम करके उनकी अनुमति ले वे मेरुगिरिके शिखरपर विराजमान स्वर्गलोकमें चले गये। तबसे प्रतिदिन नियमपूर्वक आकर वे देवेश्वर शिवकी पूजा करते हैं और उस कुण्डका तीन बार जल पीकर स्वर्गलोकको लौट जाते हैं। एक दिनकी बात है। जब इन्द्र पूजाके लिये आये तब देखते हैं, सारा गिरिशिखर बर्फसे ढक गया है। साथ ही भगवान् केदारका अर्चा-विग्रह, उनका मन्दिर तथा वह कुण्ड—सभी हिमाच्छादित हो गये हैं। तब वे दुःखी हो भक्तिपूर्वक उस दिशाको प्रणाम करके इन्द्रलोक चले गये। इस प्रकार चार महीनेतक वे प्रतिदिन आते और शिवजीको न देखकर उस दिशाको प्रणाम करके लौट जाते रहे। फिर जब गरमीका समय आया, तब उन्हें भगवान् शिवके उस विग्रहका प्रत्यक्ष दर्शन हुआ। फिर तो उन्होंने बड़े समारोहसे चौमासेकी पूजा सम्पन्न की और उनके आगे गीत-वाद्य आदिका आयोजन किया। तब भगवान् शिवने इन्द्रको प्रत्यक्ष दर्शन देकर कहा—'देवेश! मैं तुम्हारी अनन्य भक्तिसे सन्तुष्ट हूँ, इसलिये तुम्हारे हृदयमें जो अभिलाषा हो, उसके अनुसार वर माँगो।'

इन्द्रने कहा—भगवन्! आपके प्रसादसे मुझे उत्तम ऐश्वर्य प्राप्त है, अतः अब वैसी कोई कामना नहीं है। सुरेश्वर! यह पर्वत मीनगत सूर्य

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

(चैत्रमास)-से लेकर आठ मासतक बड़ा मनोरम रहता है। फिर वृश्चिककी संक्रान्तिसे लेकर कुम्भकी संक्रान्तितक यह मेरे लिये भी अगम्य हो जाता है, तब मनुष्य आदि साधारण जीवोंकी तो बात ही क्या है। अतः इन चार महीनोंतक आप इसी रूपमें कहीं अन्यत्र मर्त्यलोक या पातालमें निवास करें, जिससे मेरे द्वारा नित्यपूजनकी प्रतिज्ञामें कोई बाधा न हो।

तब भगवान् शिव बोले—इन्द्र! आनर्तदेशमें हमारा हाटकेश्वरक्षेत्र विद्यमान है। वहाँ मैं वृश्चिककी संक्रान्तिसे लेकर कुम्भराशिमें सूर्यके रहते समयतक सदा निवास किया करूँगा। अतः वहाँ मेरा मन्दिर बनाकर उसमें मेरे स्वरूपकी प्रतिष्ठा करके मेरी यथोचित पूजा करते रहो। तुम्हारे लिये मैं अपना तेज उस शिवलिंगमें स्थापित कर दूँगा।

सूतजी कहते हैं—देवाधिदेव शिवका यह वचन सुनकर इन्द्रने हाटकेश्वरक्षेत्रमें मन्दिर बनाया और उसमें शिवजीके केदारस्वरूपको स्थापित करके निर्मल जलसे भरे हुए एक कुण्डका भी निर्माण किया। फिर उस कुण्डमें स्नान करके तीन बार जल पीया। इस प्रकार इन्द्रसे आराधित होकर भगवान् केदार इस क्षेत्रमें पधारे हैं। जो मनुष्य प्रतिदिन सर्दीके चार महीनोंमें उनकी वहाँ आराधना करता है, वह उनके कल्याणमय स्वरूपको प्राप्त होता है। अन्य समयोंमें भी जो भक्तिपूर्वक उनकी पूजा करता है, वह जन्मसे लेकर मृत्युतकके समस्त पापोंको धो डालता है। केदारक्षेत्रमें जल पीकर, गयातीर्थमें पितरोंको पिण्ड देकर तथा ब्रह्मज्ञान प्राप्त करके मनुष्यका फिर जन्म नहीं होता। ब्रह्मर्षियो! जो भगवान् केदारका यह माहात्म्य पढ़ता या सुनता है, उसके समस्त पापोंका नाश तथा पुत्र-पौत्रकी वृद्धि होती है।

शुक्लतीर्थकी महिमा

सूतजी कहते हैं—ब्रह्मर्षियो! प्राचीन कालकी बात है। चमत्कारपुरमें कोई शुद्धक नामवाला धोबी रहता था। वह कपड़े धोने तथा रँगनेकी कलामें विशेष निपुण था। नगरके प्रधान-प्रधान जो ब्राह्मण थे, उनके कपड़े वही धोता था। एक समय भूलसे शुद्धकने ब्राह्मणोंके कपड़ोंको नीलके रंगसे भरे हुए पात्रमें डाल दिया। बहुत देरके बाद जब उसे इस बातका पता लगा, तब उसने अपनी स्त्री और पुत्रोंको एकान्तमें बुलाकर कहा—'मैंने महात्मा ब्राह्मणोंके बहुत-से बहुमूल्य वस्त्र अज्ञानवश नीलके रंगमें डाल दिये हैं, इस कारण वे ब्राह्मणलोग मुझे भीषण दण्ड देंगे अथवा मुझे बन्धन (कैद)-में डाल देंगे। इसलिये हम सब लोग अन्यत्र भाग चलें।'

ऐसा निश्चय करके वह घरकी सारभूत वस्तुएँ लेकर पत्नीसहित किसी अज्ञात दिशामें जानेको उद्यत हुआ। इसी समय उसकी पुत्री अपनी एक सहेली दासकन्यासे मिलने गयी और वहाँ जाकर बोली—'भद्रे! मेरे द्वारा जाने-अनजाने जो तुम्हारा अपराध हुआ हो, तुम्हारे साथ खेलकूद करते समय प्रेमसे, बचपनसे, क्रोध अथवा ईर्ष्यासे मैंने जो कभी कुछ प्रतिकूल बर्ताव किया हो, वह सब क्षमा करना।'

यह सुनकर सहसा उसके नेत्र भर आये और वह आकुल होकर पूछने लगी—'सखी! आज तुम मुझसे ऐसी बात क्यों कर रही हो?' धोबीकी कन्याने कहा—'सुनयनी! मेरे पिताने ब्राह्मणोंके बहुमूल्य वस्त्र नीलकी नादमें डाल दिये हैं, प्रातःकाल इस बातका जब उन ब्राह्मणोंको पता लगेगा, तब वे उन्हें बड़ा कठोर दण्ड देंगे। मनमें यही भय लेकर पिताजी अब यहाँसे अन्यत्र जा रहे हैं, अतः मैं तुमसे अन्तिम बार मिलने चली आयी हूँ। तुमसे आज्ञा लेकर जाऊँगी।'

दास-कन्या बोली—सरोजाक्षी! यदि ऐसी बात है तो तुम कहीं न जाओ। यहाँसे शीघ्र जाकर अपने पिताको रोक दो। यहाँसे पूर्व-

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

उत्तरके कोनेमें एक जलाशय है, उसमें किसी समय मेरे पिताने जाल डाला था। वह जाल काले केशोंका बना हुआ था, जलाशयमें डालते ही सफेद हो गया। तब कौतूहलवश मेरे पिता भी जलमें खड़े हुए। उनका शरीर काले रंगका था, जो उसी समय सफेद हो गया। केवल शरीर ही नहीं, उनके काले बाल भी सफेद हो गये। तबसे वहाँ कोई नहीं जाता है, अतः उसीमें तुम अपने कपड़े धुलवाओ। इससे सब काले कपड़े सफेद हो जायँगे। उन वस्त्रोंकी अच्छी तरह शुद्धि हो जायगी।

तदनन्तर वह रजक-कन्या शीघ्र अपने पिताके समीप गयी और इस प्रकार बोली—'पिताजी! मेरी सखीने बताया है, इधर समीप ही कोई जलाशय है, उसमें डाली हुई प्रत्येक काली वस्तु सफेद हो जाती है। अतः प्रातःकाल जलाशयमें जाकर अपने कपड़े धोइये, वे सब निश्चय ही सफेद हो जायँगे।'

धोबीने कहा—बेटी! प्राचीन पुरुषोंने कहा है कि वज्रके लेप, मूर्ख, स्त्री, केंकड़ा, मछली, नीलके रंग तथा मदिरा पीनेवाले मनुष्यका एक ही ग्रह (पकड़ या आग्रह) होता है। अतः नीलका रंग मिट नहीं सकता।

कन्या बोली—एक बार सब वस्त्रोंको लेकर चलिये तो सही, जब ये शुद्ध होंगे—कालेसे सफेद हो जायँगे, तभी हम घरको लौटेंगे, अन्यथा दूसरी दिशाको चल देंगे।

कन्याका यह वचन सुनकर उसके भाई-बन्धुओं तथा सेवकोंने एक स्वरसे कहा—'ठीक है, ठीक है।' फिर सब लोग रातमें ही जलाशयके पास गये। दास-कन्या सबके आगे होकर राह दिखाती जा रही थी। वह जलाशय नाना प्रकारकी फैली हुई लताओंसे छिपा हुआ था। मल्लाहकी पुत्रीने उसे दिखाया। तब धोबीने जलमें घुसकर उन वस्त्रोंको धोया। धोते ही वे सभी काले वस्त्र तत्क्षण स्फटिकमणिके समान स्वच्छ एवं श्वेत हो गये। इससे प्रसन्न होकर धोबीने अपनी कन्या तथा मल्लाहकी पुत्रीको साधुवाद देते हुए आदरपूर्वक कहा—'अब हम ये सभी वस्त्र उन श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको समर्पित कर सकते हैं।' तदनन्तर घर जाकर धोबीने बड़े हर्षके साथ वे वस्त्र ब्राह्मणोंको दिये। ब्राह्मणोंने वस्त्रके साथ ही धोबीके शरीर और केशोंको भी श्वेत हुआ देखकर पूछा—'यह क्या अद्भुत बात दिखायी देती है?'

तब धोबीने सब हाल कह सुनाया। सुनकर ब्राह्मणलोग भी उत्सुकतापूर्वक वहाँ गये। उन्होंने परीक्षाके लिये बहुत-सी काली वस्तुएँ डालीं, पर वे सभी श्वेतरूपमें परिणत हो गयीं। तब तरुण धर्मात्मा पुरुषोंने भी उस जलाशयमें स्नान किया। स्नान करते ही वे सब श्वेतवर्णके तथा तेज और वीर्यसे सम्पन्न हो गये। हाँ, उनके केश भी सफेद हुए बिना न रह सके। वहाँ स्नान करनेके प्रभावसे सब लोग परम गतिको प्राप्त होने लगे। तब इन्द्रने उस मोक्षदायक शुक्लतीर्थको देखकर उसे धूलसे पटवा दिया। आज भी वहाँ जो तृण आदि उत्पन्न होते हैं, वे शुक्लतीर्थके प्रभावसे श्वेत होते हैं। जो मनुष्य वहाँ उत्पन्न हुए कुशोंसे श्राद्ध करता है, वह समस्त पितरोंको तार देता है। जो मानव शुक्लतीर्थकी मृत्तिकाको अपने शरीरमें लगाकर स्नान करता है, वह सब तीर्थोंका फल पाता है।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

कर्णोत्पलातीर्थकी उत्पत्ति, राजा सत्यसन्ध और कर्णोत्पलाकी अद्भुत कथा

सूतजी कहते हैं—प्राचीन कालमें इक्ष्वाकुकुलमें सत्यसन्ध नामसे प्रसिद्ध एक राजा हो गये हैं। उनके एक कन्या उत्पन्न हुई। बारहवें दिन राजाने मन्त्रियों और ब्राह्मणोंसे परामर्श करके उसका नामकरण किया—'मेरी इस कन्याके कान उत्पल (कमलदल)-के समान हैं, इसलिये इसका नाम 'कर्णोत्पला' रहे।' नामकरण हो जानेपर वह कन्या दिन-प्रतिदिन बढ़ने लगी। धीरे-धीरे वह तरुणावस्थाको प्राप्त हुई। उसे देखकर राजा यह विचार करने लगे कि 'मैं अपनी इस कन्याका विवाह किसके साथ करूँ? इसके योग्य वर तो इस पृथ्वीपर कोई है ही नहीं। इस समय मुझे क्या करना चाहिये?' इस प्रकार सोचते-विचारते हुए अन्तमें वे इस निश्चयपर पहुँचे कि 'चलकर ब्रह्माजीसे ही पूछ लेना चाहिये। वे जिसको कहेंगे, उसीके साथ कन्याका विवाह कर दूँगा।' ऐसा विचार करके कन्याको साथ ले राजा ब्रह्मलोकमें गये। जिस समय वे वहाँ पहुँचे, उस समय ब्रह्माजीके लिये सन्ध्याकाल आ पहुँचा था; अतः ब्रह्माजी सन्ध्योपासनाके लिये उत्सुक हो समाधि लगाकर बैठ गये और अपने अन्तःकरणमें अष्टदलकमलकी कर्णिकापर स्थित ज्योतिःस्वरूप ब्रह्मका साक्षात्कार करने लगे। उस समय उनके नयनोंसे अश्रु झर रहे थे और अंगोंमें रोमांच हो आया था।

सन्ध्योपासना पूर्ण करके ब्रह्माजीने आचमन किया और हाथ-पैर धोकर सब दिशाओंकी ओर दृष्टिपात किया। इसी समय राजा सत्यसन्धने पुत्रीके साथ चरणोंमें प्रणाम किया और कहा—'भगवन्! मैं मर्त्यलोकमें स्थित आनर्तदेशका राजा सत्यसन्ध हूँ और यह मेरी सुन्दरी कन्या कर्णोत्पला है। मुझे भूतलपर इसके योग्य पति कहीं नहीं मिला, अतः आपकी सेवामें आया हूँ। आप ही इसके योग्य पति बताइये, जिसके साथ मैं इसका ब्याह कर दूँ।'

राजाकी यह बात सुनकर ब्रह्माजी मुसकराये और इस प्रकार बोले—राजन्! तुम्हें यहाँ आये तीन युग बीत गये। तुमने पहले पृथ्वीपर जिन-जिन लोगोंको देखा था, वे सब कालके गालमें चले गये। अब पृथ्वीपर दूसरी ही सृष्टि है। अब तो तुम अपनी कन्याके साथ यहीं रहो। भूलोकमें तुम्हारे जो पुत्र, पौत्र, भाई, बन्धु, सेवक आदि थे, उन सबकी मृत्यु हो चुकी है।

'जो आज्ञा' कहकर राजा वहीं ठहर गये। यह देख उनकी पुत्रीने रोते हुए कहा—'पिताजी! मैं तो वहीं जाऊँगी, जहाँ मेरी माता हैं, सखियाँ हैं, अतः शीघ्र वहीं चलिये।' पुत्रीकी यह बात सुनकर नृपश्रेष्ठ सत्यसन्ध स्नेहार्द्रचित्त हो उसे साथ लेकर अपने देशको लौटे। वहाँ देखते हैं तो जहाँ पहले स्थल था, वहीं अब जलाशय लहराते हैं और जहाँ जल था, उस स्थानमें दुर्गम स्थल प्रदेश दिखायी देते हैं। उस देशमें और ही लोग थे तथा और ही प्रकारके धर्म प्रचलित हो गये थे। वे पूछनेपर भी किसीके साथ सम्बन्धका अनुभव नहीं कर पाते थे। मर्त्यलोककी वायुका स्पर्श होते ही वे दोनों वृद्धावस्थासे ग्रस्त हो गये। उस समय भूपालने पूछा—'यहाँका राजा कौन है, यह देश कौन है और यह नगर कौन-सा है?' तब वहाँके लोगोंने बताया—'इस देशका नाम तो 'आनर्त' है। धर्मज्ञ बृहद्बल इस देशके राजा हैं, यह प्राप्तिपुर नगर है तथा यह साभ्रमती (साबरमती) नदी बहती है। इसीका यह 'गर्ता' नामसे प्रसिद्ध तीर्थ है, जहाँ शान्त, दान्त (जितेन्द्रिय), श्रेष्ठ गुणोंमें तत्पर, तपस्यामें संलग्न, महान् सौभाग्यशाली तथा स्नान एवं जपमें लगे हुए ये मुनिलोग निवास करते हैं।'

यह सुनकर राजा सत्यसन्ध अपनी कन्याके साथ दुःख-शोकसे आतुर हो फूट-फूटकर रोने लगे। उन दोनों वृद्धोंको रोते देख दयावश वहाँ आसपासके सभी लोग एकत्र हो गये और पूछने

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

लगे—'बूढ़े बाबा! तुम इस वृद्धाके साथ क्यों दु:खसे पीड़ित होकर रोते हो? क्या तुम्हारी कोई प्रिय वस्तु नष्ट हो गयी है?'

सत्यसन्धने कहा—मैं ही पहले इस आनर्त देशका राजा था। मेरा नाम सत्यसन्ध है। यह मेरी पुत्री कर्णोत्पला है। मैं इसके विवाहके निमित्त वरका निश्चय करनेके लिये ब्रह्माजीसे पूछनेके उद्देश्यसे यहाँसे ब्रह्मलोकको गया था। वहाँ दो घड़ी मुझे ठहर जाना पड़ा था; उसके बाद लौटकर आया हूँ तो इस पृथ्वीपर सब कुछ बदला हुआ देखता हूँ।

यह सुनकर वहाँके लोगोंने राजा बृहद्बलके पास जाकर सब वृत्तान्त कहा। सुनकर राजा बृहद्बल वहाँ पैदल ही आये और उन्हें प्रणाम करके हाथ जोड़े हुए बोले—'महाराज! आपका स्वागत है। मुझ सेवकके साथ अपना यह राज्य पुन: सादर ग्रहण कीजिये।'

तब राजा सत्यसन्धने भूपाल बृहद्बलको हृदयसे लगाया और उनका मस्तक सूँघकर कहा—वत्स! मैंने बहुत समयतक राज्य किया, नाना प्रकारके दान दिये तथा पूर्ण दक्षिणावाले अश्वमेध आदि यज्ञोंसे यज्ञपुरुषकी आराधना भी की है। अब इस पुत्रीके साथ तपस्या करूँगा, जिससे इसको पुन: पूर्ववत् तरुणावस्था प्राप्त हो जाय।

बृहद्बल बोले—प्रभो! मैंने परम्परासे ये सारी बातें इस प्रकार सुनी हैं—राजा सत्यसन्ध अपनी कन्याको साथ लेकर कहीं चले गये और फिर लौटकर नहीं आये। उनके मन्त्रियोंने बहुत दिनोंतक उस राज्यका पालन किया, उसके बाद उन्हींके पुत्र सुहयका उन्होंने राज्याभिषेक कर दिया। उसी महाराज सुहयकी वंशपरम्परामें मेरा जन्म हुआ है। मैं उनसे सतहत्तरवीं पीढ़ीमें हूँ। आप इसी गर्ता तीर्थमें रहकर तपस्या करें, जिससे मैं तीनों समय आपकी चरण-वन्दना करके कल्याणका भागी हो सकूँ।

सत्यसन्धने कहा—वत्स! पहले हाटकेश्वर-क्षेत्रमें मैंने वृषभेश्वर भगवान् शिवकी प्रतिष्ठा की थी। वह स्थान आज भी है ही। वहीं चलकर दिन-रात भगवान् शंकरकी आराधना करूँगा। तुम इस कन्याके साथ मुझे वहीं भेज दो।

तदनन्तर पुत्रीके साथ हाटकेश्वरक्षेत्रमें जाकर राजा सत्यसन्ध बहुत प्रसन्न हुए और वहाँ अद्भुत तपस्यामें संलग्न हो गये। कर्णोत्पला भी किसी पवित्र जलाशयके तटपर श्रद्धापूर्वक पार्वतीजीकी स्थापना करके वहीं तपस्या करने लगी। उसकी तपस्यासे सन्तुष्ट हो पार्वतीदेवीने प्रत्यक्ष दर्शन दिया और कहा—'बेटी! मैं तुमपर प्रसन्न हूँ। मनोवांछित वर माँगो।'

कर्णोत्पला बोली—देवि! मेरे पिताजी मेरा विवाह करनेके लिये बहुत दु:खी हैं। वे इसीके लिये राज्य, सुख और कुटुम्ब सबसे वंचित हुए और अब वैराग्यको प्राप्त हो तप करते हैं। मैं कुमारीसे सहसा वृद्ध हो गयी। अत: अब यही प्रार्थना है कि मेरा वह तारुण्य और सौन्दर्य पुन: लौट आवे तथा मुझे कोई श्रेष्ठ पति प्राप्त हो।

देवीने कहा—शुभे! माघमासकी तृतीयाको जब शनैश्चर दिन और धनिष्ठा नक्षत्रका योग हो, तब तुम यौवन तथा रूपका चिन्तन करती हुई इस पुण्य जलाशयमें स्नान कर लेना। इससे तुम्हारा शरीर युवावस्थासे सम्पन्न और दिव्य रूपसे सुशोभित हो जायगा। दूसरी कोई स्त्री भी, जो उस दिन इसी उद्देश्यसे यहाँ स्नान करेगी, ऐसे ही दिव्य रूपसे सुशोभित होगी।

ऐसा कहकर पार्वती देवी अन्तर्धान हो गयीं। वह योग आनेपर कर्णोत्पलाने रूप, सौभाग्य, यौवन तथा अन्य मनोरथोंका चिन्तन करके आधी रातको जलमें प्रवेश किया। स्नान करके वह दिव्य रूप और यौवनसे सम्पन्न हो जलाशयसे बाहर निकली। इसी समय उसके समीप साक्षात् कामदेव आये और बोले—'महाभागे! मैं पार्वतीजीकी आज्ञासे तुम्हारे पास आया हुआ कामदेव हूँ। तुम मेरी पत्नी बनो।'

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

कर्णोत्पलाने कहा—यदि ऐसी बात है तो आप मेरे पिताजीके पास जाकर स्वयं मेरे लिये प्रार्थना कीजिये, क्योंकि कन्याको कभी स्वच्छन्द नहीं होना चाहिये।

कामदेवने 'तथास्तु' कहकर उसकी बात मान ली। तब वह अपने पिताके पास जा उन्हें प्रणाम करके बोली—'पिताजी! मैंने पार्वतीजीकी आराधना करके सुन्दर रूप और युवावस्था प्राप्त की है, अत: अब आप मेरा विवाह करके अन्त:सुख लाभ कीजिये। देवी पार्वतीने कामदेवको मेरा पति नियत करके भेजा है।' कन्याको पूर्ववत् युवावस्थासे युक्त देख राजाने कहा—'बेटी! आज मेरी तपस्या सफल हो गयी। मैंने जीवनका फल पा लिया।' इतनेमें ही कामदेवने आकर प्रार्थना की—'राजन्! आप अपनी कन्या मुझे प्रदान करें, इसके लिये पार्वतीदेवीने स्वयं मुझे भेजा है।'

तब राजाने ब्राह्मणोंके वचनसे अग्निको साक्षी बनाकर अपनी कन्याका विवाह कामदेवके साथ कर दिया। वह रतिके बाद कामदेवकी प्रीतिका पात्र हुई, इसलिये प्रीति नामसे विख्यात हुई। जिस जलाशयपर उसने तपस्या की, वह कर्णोत्पलातीर्थके रूपमें प्रसिद्ध हुआ। जो स्त्री और पुरुष माघभर उसमें स्नान करते हैं, उन्हें प्रयागस्नानका फल मिलता है और कभी बन्धुओंके वियोगका कष्ट नहीं भोगना पड़ता।

शाण्डिलीके उपदेशसे कात्यायनीके द्वारा पंचपिण्डा गौरीकी उपासना और पति-प्रेमकी प्राप्ति

सूतजी कहते हैं—याज्ञवल्क्यजीके दो स्त्रियाँ थीं, दोनों ही सब प्रकारके सद्‌गुणोंसे सम्पन्न थीं। उनमेंसे जो बड़ी स्त्री थी, उसका नाम मैत्रेयी था और छोटीका नाम कात्यायनी था। उन दोनोंके द्वारा निर्मित दो सुन्दर कुण्ड हाटकेश्वरक्षेत्रमें विद्यमान हैं। वहाँ स्नान करनेवाले मनुष्य महान् अभ्युदयकारी उत्तम लोकोंको जाते हैं। कात्यायनी और पतिव्रता शाण्डिलीके दो उत्तम तीर्थ और हैं, जहाँ परम वैराग्यको प्राप्त होकर आयी हुई कात्यायनीको शाण्डिली देवीने बोध कराया था। जो नारी मार्गशीर्ष शुक्ल पक्षकी तृतीयाको वहाँ एकाग्रचित्त हो स्नान करती है, वह अखण्ड सौभाग्यवती होती है। जो स्त्री दुर्भाग्ययुक्त कानी, बूढ़ी और नाटी है, वह भी उस तीर्थमें स्नान करनेके प्रभावसे अपना अभीष्ट मनोरथ प्राप्त कर लेती है।

एक दिन कात्यायनी फल लेनेके लिये अपने आश्रमसे बाहर निकली, उस समय उसने शाण्डिलीको देखा। वह पतिके पास हाथ जोड़कर विनीत भावसे झुकी हुई-सी खड़ी थी और उसके पति भी अनुरागयुक्त हृदय तथा प्रसन्नतापूर्ण दृष्टिसे उसीका मुँह निहारते हुए गुण-दोषका विवेचन कर रहे थे। उन दोनों पति-पत्नीको एक-दूसरेसे अत्यन्त प्रसन्न देखकर कात्यायनी अपने चित्तमें यह विचार करने लगी कि 'यह तपस्विनी धन्य है, जिसका पति इसके मुखकी ओर प्रेमसे देखते हुए गुण-दोषोंका विवेचन कर रहा है। पत्नीके प्रति इसके हृदयमें अत्यन्त अनुराग और स्नेह है।' यही सब सोचती हुई पतिव्रता कात्यायनी अपने आश्रममें चली गयी।

तदनन्तर एक समय जब शाण्डिलीके पति किसी कार्यसे बाहर चले गये, तब एकान्तमें बैठी हुई शाण्डिलीके पास कात्यायनी गयी और आदरपूर्वक बोली—'कल्याणी! मुझे कोई ऐसा उपदेश दो, जिससे पति स्त्रीके प्रति विशेष प्रेम रखनेवाला हो। कभी कटुवचनोंद्वारा पत्नीका अपमान न करे।'

शाण्डिली बोली—साध्वी! सुनो, मैं तुमसे एक रहस्यकी बात बताती हूँ। मेरे पिता मुनिवर शाण्डिल्य जब नयी अवस्थाके थे, तब कुरुक्षेत्रमें

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

आश्रम बनाकर रहते थे। वहीं मैं उनकी इकलौती कन्या उत्पन्न हुई। उस तपोवनमें ही मैं क्रमशः बड़ी हुई और होमके समय पिताजीकी यथायोग्य सेवा करती रही। प्रतिदिन उनके लिये नीवार आदि धान्य लाया करती थी। एक समय मेरे पिताके आश्रममें मुनिश्रेष्ठ नारदजी आये। मैंने पिताजीकी आज्ञासे उनके पैर धोकर स्नान आदि कराया और उनकी थकावट दूर की। भोजनके अन्तमें जब मुनि सुखसे विराजमान हुए, तब मेरी माताने उनसे विनयपूर्वक पूछा—'मुनिश्रेष्ठ! यह हमें एक कन्या पैदा हुई है, जो प्राणोंसे भी अधिक प्रिय है। अतः इसके लिये कोई सुखदायक पति प्राप्त हो, ऐसा उपाय बताइये। कोई व्रत, नियम, होम, मन्त्र आदि ऐसा बताइये, जिसके करनेसे इसको कोमल स्वभाववाला सद्गुणी पति प्राप्त हो, जो प्रिय बोलनेवाला तथा परस्त्रीसे विमुख रहनेवाला हो।'

मेरी माताका यह वचन सुनकर नारदजीने कहा—हाटकेश्वरक्षेत्रमें पंचपिण्डा गौरी हैं, जिनकी स्थापना स्वयं पार्वतीदेवीने की है। उन्हीं पंचपिण्डा गौरीकी यह एक वर्षतक प्रत्येक तृतीयाको अत्यन्त श्रद्धाके साथ पूजा-आराधना करे। इस प्रकार वर्ष समाप्त होनेपर यह यथायोग्य पति प्राप्त करेगी। ऐसा कहकर मातासे विदा ले मुनिश्रेष्ठ नारदजी प्रसन्नतापूर्वक तीर्थयात्राको चले गये। कात्यायनी! कुमारी होते हुए भी मैंने नारदजीकी आज्ञासे उत्तम पतिकी इच्छा रखकर मार्गशीर्षमाससे आरम्भ करके एक वर्षतक प्रत्येक तृतीयाको भक्तिपूर्वक पंचपिण्डा गौरीकी आराधना की और गन्ध, माल्य, अनुलेपन, भाँति-भाँतिके दान और नैवेद्य आदिके द्वारा उनका पूजन किया। उसीके प्रभावसे मुझे ये जैमिनि नामवाले श्रेष्ठ द्विज पतिरूपमें प्राप्त हुए हैं। अतः कल्याणी! तुम भी इन पंचपिण्डा गौरीकी पूजा करो। इससे तुम्हें उत्तम सौभाग्यकी प्राप्ति होगी।

शाण्डिलीका कथन सुनकर कात्यायनीने उसे प्रणाम किया और प्रसन्नतापूर्वक अपने घर लौट आयी। मार्गशीर्षमास आनेपर तृतीया तिथिको शुभ दिनमें कात्यायनीने गौरीदेवीका पूजन किया और एक वर्षतक वह इस नियमका पालन करती रही। उसने मिष्टान्न आदि सरस भोजनोंसे गौरी देवीको तृप्त किया। तदनन्तर वर्ष पूरा होनेपर उसके पति याज्ञवल्क्य स्वयं उसके पास आये और प्रेमपूर्वक बोले—'शुभे! चलो, चलो, अपने घर चलें।' ऐसा कहकर वे कात्यायनीका दाहिना हाथ पकड़कर उसे अपने घर लिवा ले गये और मैत्रेयीके साथ जैसा उनका बर्ताव था, वैसा ही बर्ताव वे कात्यायनीके साथ भी करने लगे। तत्पश्चात् कात्यायनीसे उन्होंने एक गुणवान् पुत्र उत्पन्न किया, जिसका नाम कात्यायन था। वह यज्ञविद्यामें परम निपुण था। उस कात्यायनके पुत्र वररुचि हुए, जो समस्त गुणोंके समुद्र, सर्वज्ञ एवं वेदोंके पारंगत विद्वान् हुए। उन्होंने हाटकेश्वरक्षेत्रमें विद्यार्थियोंके लाभके लिये गणेशजीकी स्थापना की है। चतुर्थी और शुक्रवारके योगमें उन गणेशजीकी विशेषरूपसे आराधना करके द्विज वेद-वेदांगोंका पारंगत विद्वान् होता है।

~~○~~

वास्तुपदतीर्थ तथा अजागृहा देवीकी महिमा और एक ब्राह्मणका रोगोंसे उद्धार

सूतजी कहते हैं—कात्यायनने हाटकेश्वरक्षेत्रमें वास्तुपद नामक उत्तम तीर्थका निर्माण किया, जो मनुष्योंकी समस्त कामनाओंको देनेवाला है। वहाँपर अड़तालीस देवताओंकी पूजा होती है, जो पूजित होनेपर तत्क्षण सिद्धि प्रदान करते हैं। याज्ञवल्क्यके पुत्र कात्यायन तथा विश्वकर्माने वहाँ संसारके हितके लिये शालाकर्म आदि करके वास्तुपूजा की थी; इसीलिये उस क्षेत्रमें

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

वास्तुपद नामक तीर्थ प्रसिद्ध हुआ। उसके दर्शन करनेपर मनुष्य पापसे तथा कर्मनाशके दोषसे छूट जाता है। घरमें जो शिला, कुत्सित पद और कुवास्तुजनित दोष होते हैं, वे उस तीर्थके दर्शनसे मिट जाते हैं। वैशाख शुक्ल तृतीयाको रोहिणी नक्षत्रमें महात्मा कात्यायनने उस वास्तुपदकी प्रतिष्ठा की थी; अतः वैसा समय आनेपर जो मनुष्य उसी विधिसे वास्तुपदकी पूजा करता है, वह राजा होता है। शिल्प आदिकी दृष्टिसे दोषयुक्त और उपद्रवपूर्ण घरको पाकर भी मनुष्य यदि उस तीर्थका संयोग प्राप्त कर ले, तो उसी दिनसे उसके घरमें अभ्युदय होने लगता है।

ब्रह्मर्षियो! जिस समय सर्वलोकहितकारी राजा अजापाल राज्य करते थे, उस समय सम्पूर्ण व्याधियाँ उनके यहाँ अजा (बकरी)-के रूपमें रहती थीं। उनको अपने अधीन सुरक्षित रखनेके कारण ही वे अजापाल कहलाते थे। वे उन सब बकरियोंको रातमें ले आकर एक स्थानपर रख देते थे। अतः उन अजाओंका आश्रयस्थान अजागृहके नामसे प्रसिद्ध हुआ। हाटकेश्वरक्षेत्रमें अजागृह नामक जो तीर्थ है, वह दर्शन करनेपर भूतलके समस्त मनुष्योंके पापोंका नाश करनेवाला है। विप्रवरो! उस क्षेत्रमें एक समय कोई तपस्वी-रूपधारी ब्राह्मण आया और तीर्थयात्राके प्रसंगसे रातमें वहाँ ठहरा। उसने उस अजावृन्दको निर्भय बैठा देख यह अनुमान किया 'यहाँ निश्चय ही कोई मनुष्य रहता होगा। अन्यथा रातको इस वनमें रक्षकसे रहित पशु कैसे टिक सकते हैं। वह रक्षक कहींसे आता ही होगा, अतः मैं निर्भय होकर यहीं रहूँगा।' इस प्रकार विचारते हुए तपस्वी ब्राह्मण वहीं सो गया। सोते हुए ही उसकी सारी रात बीत गयी। सोकर उठनेपर वह बहुत थका हुआ-सा हो गया। सबेरा होनेपर जब उसने अपने शरीरकी ओर दृष्टिपात किया तो अपनेको कोढ़ आदि रोगोंसे घिरा पाया। उस स्थानसे एक पग भी कहीं अन्यत्र जानेकी शक्ति उसमें नहीं रह गयी थी। उन भयंकर रोगोंसे युक्त होकर वह सोचने लगा—'क्या कारण है कि मेरा शरीर अकस्मात् ऐसा हो गया?' इतनेमें ही वहाँ एक तेजस्वी पुरुष आये, उन्होंने उस अजायूथको भिन्न-भिन्न नामोंसे पुकारा और बायें हाथमें डंडा लेकर सबको चरानेके लिये ले चला। इसी समय उनकी दृष्टि भय और रोगोंसे घिरे हुए उस ब्राह्मणपर पड़ी, जो कहीं भी जानेमें असमर्थ था। तब राजाने आदरपूर्वक पूछा—'द्विजश्रेष्ठ! तुम कौन हो, जो इस दशामें इस स्थानपर आये हो। मेरे राज्यमें तो कहीं किसीके भी कोई रोग नहीं है? तुमने भी मेरा नाम सुना होगा। मैं ही राजा अज हूँ। लोगोंके हितके लिये मैं समस्त रोगोंको अजाके रूपमें एकत्र करके उनकी रखवाली करता हूँ। तुम्हारे शरीरमें जो रोग है, उसे बताओ। जिससे मैं उस रोगको भी बाँध लूँ।

ब्राह्मणने कहा—राजन्! मैं तीर्थयात्रामें तत्पर होकर समस्त भूमण्डलका भ्रमण करता हूँ। क्रमशः घूमता हुआ इस हाटकेश्वरक्षेत्रमें आया हूँ। इन पशुओंको देखकर यहाँ किसी मनुष्यके भी स्थित होनेकी सम्भावना करके रातमें यहीं इनके समीप सो गया था। सबेरा होनेपर जब अपने शरीरकी ओर देखता हूँ, तब यह कोढ़ आदि रोगोंसे घिरा हुआ है। नृपश्रेष्ठ! ऐसा होनेका क्या कारण है? इसे मैं ठीक-ठीक नहीं समझ सका। अब जिस प्रकार मेरा शरीर नीरोग हो, वह उपाय करो।

तब राजा अजापालने उन रोगोंसे कहा—किसने मेरी आज्ञा भंग की है?

रोग बोले—राजन्! इस कार्यमें आप हमलोगोंपर कोप न करें। इस ब्राह्मणके शरीरमें राजयक्ष्मा, कोढ़ और खुजली—इन तीन रोगोंका आवेश हुआ है। ये तीनों ही संसर्गज रोग हैं, इनमेंसे प्रथम दो रोग तो अमिट हैं। इन दोनोंके लिये ब्रह्माजीका शाप है, जिससे इनकी निवृत्ति नहीं होती। अतः इस विषयमें जो आपको उचित प्रतीत हो सो करो। इस ब्राह्मणने स्वयं ही इन तीनों अजाओं (रोगों)-का स्पर्श कर लिया था। अतः जबतक इसका शरीर रहेगा, वे दो रोग तो अवश्य बने रहेंगे।

यह सुनकर राजा अजापाल भी वहीं ठहर

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

गये और उस ब्राह्मणसे बोले—विप्रवर! तुम्हें भय नहीं करना चाहिये। इस भयंकर रोगसे तुम्हारी रक्षा मैं करूँगा। ऐसा कहकर राजाने बड़ी भारी तपस्या की। वे भक्तिपूर्वक दिन-रात उस क्षेत्रकी देवीकी आराधना करने लगे। मुण्ड, अथर्वशीर्ष, क्षेत्रपाल-सूक्त तथा वास्तुसूक्तके मन्त्रोंद्वारा देवीकी स्तुति करते हुए सरसों, लाल फूल, गुग्गुल और धूपकी आहुति देते थे। तत्पश्चात् नीलरुद्रका विशेषरूपसे जप करते थे। एक समय जब रात्रि व्यतीत हो रही थी, उनके होमकुण्डसे मन्त्रोंद्वारा आकृष्ट हुई उस क्षेत्रकी देवी धरती फोड़कर प्रकट हुई और बोली—'राजन्! मैं इस क्षेत्रकी अधिष्ठात्री देवी हूँ। इस होमके प्रभावसे तुमपर प्रसन्न हो पृथ्वीसे निकली हूँ। महाभाग! तुम्हारा जो कार्य हो उसे बताओ, मैं पूर्ण करूँगी।'

राजाने कहा—देवि! तुम सदा इसी स्थानपर निवास करो, जिससे रोगोंके संसर्गजनित दोष इस भूमिसे विदा हो जायँ तथा ये ब्राह्मणदेवता जैसे भी रोगमुक्त हों, वैसा उपाय करो।

क्षेत्रदेवी बोली—राजन्! इस स्थानको मैंने सब व्याधियोंके दोषोंसे रहित कर दिया। आजसे मैं सदा यहीं निवास करूँगी। इस समयसे जो भी व्याधिग्रस्त पुरुष इस स्थानपर आवेगा और भक्तिपूर्वक मेरी पूजा करेगा, वह पूर्णतः नीरोग हो जायगा। अतः आज ये द्विजश्रेष्ठ आदर और भक्तिके साथ पवित्र एवं एकाग्रचित्त होकर मेरी पूजा करें। इस क्षेत्रमें एक दूसरा प्रसिद्ध तीर्थ है—चन्द्रकूपिका। उसमें ये ब्राह्मणदेवता प्रतिदिन स्नान करें। पूर्वकालमें दक्षके शापसे क्षयरोगसे ग्रस्त हुए महात्मा चन्द्रदेवने अपने स्नानके लिये उस कूपका निर्माण किया था। इसके सिवा यहाँ 'खण्डशिला' नामसे प्रसिद्ध एक देवी रहती हैं, वहीं सौभाग्यकूपिका नामक तीर्थ है। उस कूपमें स्नान करके ये खण्डशिला देवीका दर्शन करें। पूर्वकालमें कुष्ठरोगसे पीड़ित कामदेवने अपने स्नान तथा कुष्ठरोगके निवारणके लिये उस सौभाग्यकूपिकाका निर्माण किया था। इसी प्रकार यहाँ आप्सरसकुण्ड है, जिसमें रविवारके दिन स्नान करनेसे खुजली मिट जाती है।

तदनन्तर ब्राह्मणदेवताने परम पवित्र चन्द्रकूपिकामें स्नान करके भक्तिभावसे देवीका पूजन किया। एक मासतक पूजा करनेके बाद वे राजयक्ष्मासे मुक्त हो गये। तत्पश्चात् कामदेवनिर्मित सौभाग्य-कूपिकाका दर्शन और उसमें स्नान करके वे खण्डशिला देवीका दर्शन प्रतिदिन करने लगे। एक मासतक ऐसा करनेसे उन्हें कुष्ठरोगसे भी छुटकारा मिल गया। उसके बाद रविवारको अप्सराओंके कुण्डमें स्नान करनेसे उनकी खुजली भी जाती रही। रोगमुक्त होकर ब्राह्मण अत्यन्त तेजस्वी दिखायी देने लगे। उन्होंने अत्यन्त प्रसन्न होकर राजाको आशीर्वाद दिया और उनसे विदा लेकर वे अभीष्ट स्थानको चले गये। इसके बाद राजा अज पुनः अपनी स्त्रीके साथ पाताललोकमें हाटकेश्वरजीके समीप चले गये। अजागृहमें स्थित होनेके कारण उस क्षेत्रकी देवी सब ओर अजागृहाके नामसे विख्यात हुईं। आज भी राजयक्ष्मासे ग्रस्त हुआ जो मनुष्य उसी विधिसे देवीका पूजन करता है, वह शीघ्र ही नीरोग हो जाता है।

पतिव्रताकी शक्तिसे उसके मरे हुए पतिको पुनः नवजीवनकी प्राप्ति

सूतजी कहते हैं—पूर्वकालमें श्रेष्ठ नगर वर्धमानपुरमें वीरशान्त नामसे विख्यात एक ब्राह्मण रहते थे, वे वेद-विद्यामें प्रवीण थे। उनके एक कन्या उत्पन्न हुई, जो प्रमाणसे बहुत बड़ी थी। वह कुमारी धीरे-धीरे युवावस्थाको प्राप्त हुई; परंतु किसी भी पुरुषने उसका वरण नहीं किया, क्योंकि जो काममोहित पुरुष अत्यन्त थोड़े केशवाली, अत्यन्त बड़ी तथा अधिक नाटी कन्याओंसे विवाह करता है, वह छः महीनेके भीतर मृत्युको प्राप्त होता है। इसी कारण सब लोग उस कुमारीको बहुत बड़ी बताकर त्याग देते थे। इससे वैराग्यको प्राप्त होकर उस

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

कुमारीने घोर तपस्या की। इस प्रकार तपमें लगी हुई उस कन्याके समीप राजसम्पदा उपस्थित हुई। उस समय इन्द्रने उसे प्रत्यक्ष दर्शन देकर कहा—'शुभे! तुम कन्यावस्थामें ऋतुकालको प्राप्त हुई हो, इस कारण सदोष हो गयी हो। अतः किसी पतिका वरण करो, जिससे पवित्रताको प्राप्त होओगी।' यह सुनकर उस कन्याको बड़ी लज्जा हुई। उसने वर्धमानपुरमें जाकर हाथ उठाकर कहा—'यदि कोई कुलीन ब्राह्मण मेरा पाणिग्रहण करे, तो मेरी आधी तपस्या उसकी हो जायगी और मैं उसका कल्याण करूँगी।'

यह सुनकर किसी कोढ़ी ब्राह्मणने उसे बुलाकर कहा—यदि तू सदा मेरे कहे अनुसार चले, तो मैं तेरा पाणिग्रहण करके तेरे साथ विवाह करूँगा।

कुमारी बोली—द्विजश्रेष्ठ! तुम शास्त्रोक्त विधिसे मेरा पाणिग्रहण करो, मैं तुम्हारी प्रत्येक आज्ञाका पालन करूँगी। तदनन्तर ब्राह्मणने गृह्यसूत्रोक्त विधानसे देवता, अग्नि तथा गुरुके समीप उस कुमारीका पाणिग्रहण किया। विवाहके पश्चात् दीर्घिका ब्राह्मणी पतिसे बोली—'नाथ! आज्ञा दीजिये मैं इस समय आपकी क्या सेवा करूँ?'

पति बोले—सुन्दरि! मैं तुम्हारी सहायतासे अड़सठ तीर्थोंमें स्नान करना चाहता हूँ। यदि यह कार्य कर सको तो करो।

तब उस पतिव्रताने 'बहुत अच्छा' कहकर पतिकी आज्ञा शिरोधार्य की और पतिके बराबर बाँसकी एक मजबूत खाट बनाकर उसपर कोमल रूई भरा हुआ बिछावन डाल दिया और हाथ जोड़कर कहा—'प्राणनाथ! इसपर बैठिये; जिससे आपको मस्तकपर लेकर समस्त शुभ तीर्थोंकी यात्रा करा सकूँ।' तब कोढ़ी ब्राह्मण प्रसन्न हो पृथ्वीसे शनैः-शनैः उठकर बाँसके उस खटोलेपर बैठा और वह उसे माथेपर लेकर सब तीर्थोंमें घूम-घूमकर अपने पतिको तीर्थस्नान कराने लगी। क्रमशः समूची पृथ्वीपर घूमती हुई एक दिन सन्ध्या होते-होते वह हाटकेश्वरक्षेत्रमें पहुँची। उस समय वह थक गयी थी, पैर लड़खड़ा रहे थे। उसी प्रदेशमें उस दिन मुनिवर माण्डव्यको शूलीपर चढ़ाया गया था। वे अत्यन्त दुःख सहन करते हुए शूलीपर बैठे हुए थे। पतिव्रता दीर्घिका माथेपर भार लेकर उसी मार्गसे निकली। उसके धक्केसे वह शूल हिल गया और मुनिवर माण्डव्यका शरीर भी विचलित हो गया। इससे उन्हें बड़ी भारी पीड़ा हुई और वे दुःखी होकर बोले—'किस पापीने मेरे इस शूलको हिला दिया, जिससे मुझ दुःखीका दुःख और भी बढ़ गया।'

दीर्घिका बोली—महाभाग! मैंने आपको देखा नहीं, भूलसे आपका स्पर्श हो गया।

माण्डव्य बोले—निष्ठुरे! तुमने मुझे प्राणान्तकारिणी पीड़ा दी है, इसलिये तुम्हारा अभीष्ट पति सूर्यकी किरणोंका स्पर्श होते ही मेरे शापसे निश्चय ही अपने प्राणोंको त्याग देगा।

दीर्घिका बोली—यदि प्रातःकाल मेरे पतिकी मृत्यु होगी तो अब प्रातःकाल या सूर्योदय होगा ही नहीं।

ऐसा कहकर दीर्घिका धरतीपर बैठ गयी और बाँसके खटोलेमें बैठे पतिको उसने माथेपरसे उतार दिया। उस समय कोढ़ीने कहा—'प्रिये! मुझे प्यास लग रही है; अतः पीनेके योग्य शीतल जल ले आओ।' इतना सुनते ही वह पतिकी आज्ञाका पालन करनेके लिये उत्सुक हो पानी लानेके लिये इधर-उधर घूमने लगी, किंतु अन्धकारमें उसे कहीं भी जल नहीं दिखायी दिया। तब उसने पृथ्वीपर आघात किया और माण्डव्य मुनिके देखते-देखते निर्मल एवं स्वादिष्ट जल निकल आया। फिर परिश्रमसे कष्ट पाते हुए अपने पतिको उस जलसे स्नान कराया और उन्हें जल पिलाकर स्वयं भी पीया। उस समय पतिव्रताके भयसे सूर्यदेव उदित नहीं हुए। इससे प्रातःकाल आनेमें बहुत विलम्ब हुआ। रात्रिको बहुत बड़ी होती देख यज्ञकर्म करनेवाले शान्तचित्त ब्राह्मण बहुत दुःखी हो गये। देवता यज्ञभागसे वंचित होकर बड़े कष्टमें पड़ गये और सूर्यनारायणके

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

निकट जाकर बोले—'दिवाकर! आपका उदय क्यों नहीं होता? देखिये आपके बिना सम्पूर्ण जगत् व्याकुल हो रहा है।'

सूर्यदेवने कहा—देवताओ! मैंने पतिव्रताके आदेशसे अपना उदय रोक रखा है। अतः आप सब लोग उसके पास जाकर मेरे उदयके लिये अनुरोध करें। उसकी आज्ञा होनेपर मैं सुख-पूर्वक उदय हो जाऊँगा। एक लक्ष अश्वमेध यज्ञोंके अनुष्ठानसे जो फल प्राप्त होता है, उसीको स्त्री केवल पातिव्रत्यधर्मके पालनसे प्राप्त कर लेती है।

यह सुनकर सब देवता उस उत्तम क्षेत्रको गये और दीर्घिकाके सम्मुख खड़े हो कोमल वचनोंमें बोले—पतिव्रते! तुमने जो सूर्यका उदय रोक दिया, सो अच्छा नहीं किया। क्योंकि इससे पृथ्वीपर शुभ कर्मोंका अनुष्ठान रुक गया है। अतः शुभे! तुम आज्ञा दे दो, जिससे सूर्यदेव उदित हों।

दीर्घिका बोली—माण्डव्य मुनिने अकारण मेरे पतिको शाप दिया है। जब मेरे पति ही नहीं रहेंगे, तब मुझे सूर्योदयसे, यज्ञसे, श्राद्धसे और दान आदिसे क्या प्रयोजन है।

तब सब देवता एक-दूसरेकी ओर देखकर दीर्घिकासे बोले—'भद्रे! सूर्यका उदय होने दो, तुम्हारे प्रिय पतिकी भी मृत्यु हो जाय और ये मुनीश्वर माण्डव्य भी सत्यवादी हो जायँ। इसके बाद हम शीघ्र ही मृत्युके मार्गमें गये हुए तुम्हारे पतिको पुनः जीवित कर देंगे। उस समय तुम्हारे पतिकी अवस्था पच्चीस वर्षकी-सी हो जायगी और तुम बड़े सुन्दररूपमें अपने पतिका दर्शन करोगी तथा तुम भी पंद्रह वर्षकी-सी अवस्थासे युक्त एवं कमलके समान नेत्रोंवाली होकर स्वेच्छानुसार मर्त्यलोकमें सुखका उपभोग करोगी और ये पापरहित मुनिवर माण्डव्य भी शूलभेदकी पीड़ासे मुक्त होकर सुखके भागी होंगे।'

तब दीर्घिकाने 'बहुत अच्छा' कहकर देवताओंकी बात मान ली। उसके 'हाँ' कहते ही भगवान् सूर्य बड़े वेगसे उदित हुए। सूर्यकी किरणोंका स्पर्श होते ही कोढ़ी ब्राह्मणकी मृत्यु हो गयी; किंतु देवताओंके हाथोंका स्पर्श पाकर पुनः वह उठ खड़ा हुआ। उसकी अवस्था पच्चीस वर्षकी-सी दिखायी दे रही थी। जान पड़ता था, दूसरे कामदेव ही आ गये हैं। उसे अपने पूर्वजन्मकी सब बातोंका स्मरण था, अतः इस नूतन जन्मसे उसे बड़ा हर्ष हो रहा था। दीर्घिका भी भगवान् शंकरका स्पर्श पाकर दिव्य लक्षणोंसे लक्षित युवती हो गयी। उसके नेत्र कमलदलके समान शोभा पा रहे थे और मुख चन्द्रमाके समान मनोहर प्रतीत होता था। तदनन्तर देवताओंने माण्डव्य मुनिको शूलीसे उतारकर कहा—'मुने! आपने जो शाप दिया था, वह आपका वचन सत्य किया गया। सूर्यकी किरणोंके स्पर्शसे वह कोढ़ी ब्राह्मण मर गया। तत्पश्चात् पुनः हमने इस स्त्रीके साथ उसे तरुण जीवन प्रदान किया है; अतः अब आप अपने आश्रमको पधारें और हमसे वर माँगें।'

शूलीतीर्थ और दीर्घिकातीर्थका प्राकट्य, माण्डव्य मुनिका धर्मराजको शाप देना और उनके शूलीपर चढ़नेका कारण

माण्डव्यजीने कहा—सुरश्रेष्ठगण! मैं आपलोगोंसे वर ग्रहण करूँगा; परंतु ये धर्मराज मेरे एक प्रश्नका निर्णय करें। संसारमें समस्त प्राणियोंके लिये सुख और दुःखके रूपमें उनके पूर्वजन्मका शुभाशुभ कर्म ही उपस्थित होता है। यह सर्वथा सत्य सिद्धान्त है। मैंने इस लोक या परलोकमें कौन-सा पातक किया है, जिससे मुझे ऐसी वेदना प्राप्त हुई और किसी प्रकार भी मृत्यु नहीं हुई।

धर्मराजने कहा—विप्रवर! तुमने दूसरे शरीरमें

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

बचपनके समय तीखे शूलके अग्रभागसे पृथ्वीके एक जीवको बींधा था। यही एक पाप तुमसे हुआ है, इसके सिवा दूसरा कोई थोड़ा-सा भी पाप नहीं दिखायी देता। इसीलिये तुम्हें इस दशामें डाला गया है।

सूतजी कहते हैं—धर्मराजकी यह बात सुनकर माण्डव्य मुनिको बड़ा रोष हुआ। तब माण्डव्यने अपने सामने खड़े हुए धर्मराजसे कहा—'धर्म! तुमने मेरे थोड़ेसे अपराधके लिये महान् दण्ड दिया है। अतः मेरा शाप ग्रहण करो। तुम मानव-शरीर पाकर शूद्रयोनिमें स्थित हो जाति-संहारजनित महान् दुःखका उपभोग करोगे तथा आजसे मैंने समस्त देहधारियोंके लिये व्यवस्था कर दी कि आठ वर्षसे ऊपरका मनुष्य ही अपने निन्दित कर्मके कारण दण्डका भागी होगा।' ऐसा कहकर माण्डव्य मुनि शूलीकी पीड़ासे मुक्त हो अभीष्ट दिशाकी ओर चल दिये। उन्हें जाते देख सब देवताओंने कहा—'भगवन्! धर्मराज तो केवल न्याय करते हैं, अतः आप उन्हें शापके द्वारा शूद्र न बनावें। आप इनके ऊपर कृपा-प्रसाद करें।'

माण्डव्यने कहा—मैंने जो बात कह दी, वह मिथ्या नहीं हो सकती। निश्चय ही ये धर्मराज शूद्रयोनिमें पड़ेंगे तथापि शूद्रयोनिमें रहते हुए भी इन्हें उत्तम ज्ञानकी प्राप्ति होगी और ये पुनः परम उत्तम धर्मराज-पदको प्राप्त कर लेंगे। इन्हें इसी क्षेत्रमें रहकर शान्तभावसे भगवान् शंकरकी आराधना करनी चाहिये। महादेवजीके प्रसादसे इन्हें शीघ्र मोक्ष प्राप्त होगा और यदि आपलोग मुझे वर देना ही चाहते हैं, तो यह शूली आज मेरे स्पर्शसे धर्मदायक तीर्थ बन जाय।

देवता बोले—जो प्रातःकाल उठकर इस शूलीका स्पर्श करेगा, वह इस लोकमें पातकसे मुक्त हो जायगा।

माण्डव्य मुनिसे ऐसा कहकर इन्द्र आदि देवता पतिसहित उस पतिव्रतासे आदरपूर्वक बोले—पतिव्रते! तुम्हारे मनमें जो इच्छा हो, उसके अनुसार वर माँगो।

पतिव्रता बोली—देवेश्वरो! इस स्थानमें मेरे द्वारा जो गड्ढा बनाया गया है, वह तीनों लोकोंमें दीर्घिकातीर्थके नामसे विख्यात हो।

देवताओंने कहा—आजसे लेकर तुम्हारे कथनानुसार यह गड्ढा तीनों लोकोंमें दीर्घिकातीर्थके नामसे विख्यात होगा। जो मनुष्य इसमें श्रद्धापूर्वक स्नान करेंगे, वे यदि अपुत्र होंगे तो पुत्रवान् हो जायँगे और अपने वंशकी वृद्धि करेंगे।

पतिव्रतासे ऐसा कहकर सब देवता स्वर्गलोकको चले गये। सुन्दरी पतिव्रता भी अपने उसी प्रियतम पतिके साथ रहकर सुख भोगने लगी। अन्तिम अवस्था आनेपर उसने हाटकेश्वरक्षेत्रमें अपने दीर्घिकातीर्थका सेवन किया। तदनन्तर कालवश अपने पतिकी मृत्यु हुई देख उसने भी शरीर त्याग दिया और पतिके साथ वह भी ब्रह्मलोकको चली गयी। इस प्रकार मैंने यह दीर्घिकातीर्थका वर्णन किया है।

ऋषियोंने पूछा—सूतजी! परमतपस्वी मुनिश्रेष्ठ माण्डव्यको किसने और किस कारणसे शूलीपर चढ़ाया था?

सूतजीने कहा—महर्षियो! पूर्वकालमें माण्डव्य मुनि बड़ी श्रद्धाके साथ तीर्थयात्रा करते हुए इस क्षेत्रमें आये थे। यहाँ विश्वामित्रसम्बन्धी पावन तीर्थमें जाकर उन्होंने पितरोंका तर्पण किया और सूर्योपस्थान करते हुए विभ्राडित्यादि सूर्यदेवतासम्बन्धी सूक्तका पाठ करने लगे। इसी समय कोई चोर किसीका धन चुराकर भागा और उसी ओर आ निकला। उस चोरका पीछा करते हुए कोई दूसरा मनुष्य भी उसके पीछे ही लगा हुआ वहाँ आया। तब चोरने मुनीश्वरको मौन देखकर वह धन उनके आगे रख दिया और स्वयं किसी गुफाके भीतर जा छिपा। इतनेमें ही उस धनको वापस लेनेके लिये बहुत-से मनुष्य वहाँ एकत्र हो गये। उन्होंने मुनिके आगे धनका वह गट्ठर देखकर पूछा—'महाभाग! इस मार्गसे कोई चोर यह धन लेकर आया है, बताइये वह किस मार्गसे निकला है?' माण्डव्यजी यह जानते हुए भी कि चोर

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

गुफामें छिपा है, कुछ भी नहीं बोले। मौनव्रतमें ही तत्पर रहे। बार-बार पूछे जानेपर भी जब मुनि कुछ नहीं बोले, तब सबने आपसमें सलाह करके यह निश्चय किया कि अवश्य यही चोर है। हमलोगोंको अपने पीछे लगा देखकर अब साधु बनकर बैठ गया है। वे सब-के-सब दुरात्मा आभीर थे, उन्होंने पूर्वोक्त निश्चय करनेके बाद फिर कुछ विचार नहीं किया। मुनिको तत्काल ले जाकर वनके भीतर शूलीपर चढ़ा दिया। इस प्रकार माण्डव्य मुनिको निर्दोष होते हुए भी अपने पूर्वकर्मके परिणामसे शूली प्राप्त हुई।

अन्न और जलके दानकी महत्ता, अन्नदानके बिना वसुषेणको स्वर्गमें भी कष्ट होना तथा सत्यसेनद्वारा स्थापित मिष्टान्नद देवकी महिमा

सूतजी कहते हैं—महर्षियो! प्राचीन कालमें आनर्तदेशमें वसुषेण नामवाले एक राजा राज्य करते थे। वे दीर्घकालतक राज्य कर पुत्र-पौत्रका सुख देख करके समय आनेपर मृत्युको प्राप्त हुए। तदनन्तर मन्त्रियोंने उनके पुत्र सत्यसेनको राजपदपर अभिषिक्त किया। सत्यसेन शौर्य तथा उदारतासे सम्पन्न थे। राजा वसुषेणने जीवनकालमें बहुत-से दान किये थे। उस दानके ही प्रभावसे वे दिव्य वस्त्रधारी एवं दिव्यरत्नोंसे विभूषित हो श्रेष्ठ विमानपर बैठकर स्वर्गलोकमें गये। पर वहाँ जानेपर भी वे भूखकी पीड़ासे घिरे रहे। उनका चित्त प्यासके दुःखसे व्याकुल रहता था, मुँह सूखा जाता था। उन्होंने इन्द्रके निकट जाकर कहा—'सुरश्रेष्ठ! मुझे भूख-प्यास कष्ट दे रही है, इसका क्या कारण है? बताइये। शचीपते! भूखसे अत्यन्त पीड़ित रहनेवाले पुरुषको इन दिव्य आभूषणों, वस्त्रों और विमान आदिसे क्या सुख मिलता है।'

इन्द्र बोले—राजन्! तुमने असंख्य दान दिये हैं, परंतु कभी किसीको अन्न अथवा जल नहीं दिया है। इस कारण तुम स्वर्गमें भूखे-प्यासे रहते हो। जो इस लोक और परलोकमें सनातन तृप्तिकी इच्छा रखता हो, उसे सदा दक्षिणासहित अन्न और जलका दान करना चाहिये। अन्न और जलका दान न करनेके कारण ही तुम स्वर्गमें दिव्य आभूषणोंसे विभूषित और श्रेष्ठ विमानपर आरूढ़ होकर भी भूखसे पीड़ित हो।

राजाने कहा—देवराज! क्या ऐसा कोई उपाय है, जिससे ये मेरी तीव्रतम क्षुधा-पिपासा शान्त हो?

इन्द्र बोले—उपाय तो है, यदि तुम्हारा कोई पुत्र सदा ब्राह्मणोंके लिये अन्न और जल दे, तो तुम्हें तृप्ति प्राप्त हो सकती है; परंतु तुम्हारा पुत्र भी तुम्हारे लिये संकल्प करके ब्राह्मणोंको अन्न और जल नहीं देता है।

इन्द्र और वसुषेणमें यह बात हो ही रही थी कि वहाँ ब्रह्मलोकसे नारद मुनि आ पहुँचे। तब इन्द्रने नारदजीको विधिपूर्वक अर्घ्य प्रदान करके आदरके साथ पूछा—'विप्रवर! आप कहाँसे आये हैं और कहाँ जानेके लिये प्रस्थित हुए हैं।'

नारदजीने कहा—मैं ब्रह्मलोकसे आया हूँ और तीर्थयात्राके लिये भूतलपर जा रहा हूँ।

तब राजा बोले—मुनिश्रेष्ठ! मुझ दीनपर कृपा कीजिये। पृथ्वीपर मेरा पुत्र सत्यसेन आनर्त देशका स्वामी है। उससे कहियेगा, 'मैंने तुम्हारे पिताको इन्द्रके लोकमें देखा है, उनका शरीर भूख-प्याससे पीड़ित है और देवताओंमें रहकर भी उनका चित्त अत्यन्त दीन एवं दुःखी है। इसलिये यदि तुम मेरे पुत्र हो और सत्यकी रक्षा करते हो, तो प्रतिदिन ब्राह्मणोंको मिष्टान्न, धान और जलदान करते रहो।'

'तथास्तु' कहकर मुनिश्रेष्ठ नारदजीने राजाका सन्देश सुनानेकी प्रतिज्ञा की और इन्द्रसे विदा लेकर वे भूलोककी ओर चल पड़े। वहाँ क्रमशः अनेक तीर्थोंमें भ्रमण करते हुए आनर्तदेशमें गये

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

और सत्यसेनसे मिले। राजा सत्यसेनने नारदजीका पूजन किया। तत्पश्चात् मुनिने एकान्तमें आदरपूर्वक उनको पिताका सन्देश सुनाया। यह बात सुनकर सत्यसेनने विधिपूर्वक नारदजीकी पूजा करके उन्हें विदा किया और पिताके उद्देश्यसे प्रतिदिन सहस्रों ब्राह्मणोंको भक्तिपूर्वक मिष्टान्न भोजन कराया। धर्मसम्बन्धी अन्य समस्त कार्योंको छोड़कर ग्रीष्मकालमें विशेषरूपसे पौंसला (प्याऊ) चलानेकी व्यवस्था की। इस प्रकार अन्न और जलके दानमें लगे हुए राजा सत्यसेनके राज्यमें भयंकर अनावृष्टि हुई, जो समस्त अन्न एवं खेती आदिको नष्ट कर देनेवाली थी। इन्द्रने बारह वर्षोंतक पृथ्वीपर जल नहीं बरसाया। इससे सब लोग क्षुधाके कष्टसे व्याकुल हो गये। उस समय राजा सत्यसेन पहलेकी भाँति ब्राह्मणोंको अन्नदान न कर सके। तब उनके पिता स्वप्नमें दर्शन देकर बोले—'तुम पुत्रके रहते हुए मैं स्वर्गमें स्थित होकर भी भूख-प्याससे व्याकुल हूँ, अतः तुम अन्न दो, मिष्टान्न और जलका दान करो।'

यह स्वप्न देखनेसे राजाको बड़ा शोक हुआ। अन्नके अभावके सम्बन्धमें उन्होंने मन्त्रियोंके साथ बैठकर सलाह की और कहा—'मैं अनाजके लिये भगवान् शंकरकी आराधना करूँगा। आपलोग सदा राज्यकी रक्षा करते रहें।' तब उन्होंने हाटकेश्वरक्षेत्रमें आकर भगवान् शंकरकी स्थापना की और यम-नियमसे रहते हुए वे उनकी भलीभाँति आराधना करने लगे। एक वर्ष पूर्ण होनेपर भगवान् शिव सन्तुष्ट हुए और राजासे इस प्रकार बोले—'तुम इच्छानुसार वर माँगो।'

राजाने कहा—देवदेवेश्वर! मैंने अन्नकी प्राप्तिके लिये आपकी आराधना की है, अतः आप मुझे शीघ्र ही असंख्य अन्न प्रदान करें। पृथ्वीपर वर्षा हो, जिससे अनाज उत्पन्न हो और जल भी प्रचुर मात्रामें मिल सके। स्वर्गमें रहनेवाले मेरे महात्मा पिताको भी आपके प्रसादसे तृप्ति प्राप्त हो।

श्रीभगवान् बोले—राजेन्द्र! समस्त पृथ्वीपर शीघ्र ही वृष्टि होगी और पृथ्वीपर सब प्रकारके अन्न होंगे। इस समय तुम अपने घर जाओ। राजन्! तुमने यहाँ जो मेरे लिंगकी प्रतिष्ठा की है, इसका जो मनुष्य प्रातःकाल उठकर दर्शन करेगा, उसे मनोवांछित वस्तुकी प्राप्ति होगी।

ऐसा कहकर भगवान् शिव अन्तर्धान हो गये। तत्पश्चात् राजा सत्यसेन बड़े हर्षसे अपने निवासस्थानपर आये और पृथ्वीका अकण्टक राज्य करने लगे।

सूतजी कहते हैं—आज भी भयंकर कलिकाल प्राप्त होनेपर जो मनुष्य प्रातःकाल उठकर भक्तिपूर्वक मिष्टान्नद शिवका दर्शन करता है, वह यदि चाहे तो उसे मिष्टान्नकी प्राप्ति होती है और जो निष्कामभावसे उनका दर्शन करता है, वह देवाधिदेव शूलपाणि महादेवजीके लोकको प्राप्त होता है।

अदितिदेवीद्वारा आराधित अमरेश्वर लिंगकी महिमा

ऋषियोंने पूछा—सूतजी! अमरत्व प्रदान करनेवाले जो अमरेश्वर महादेव बताये गये हैं, उनकी स्थापना किसने की है और उनका प्रभाव क्या है?

सूतजी बोले—पूर्वकालमें प्रजापति दक्षकी दो कन्याएँ दिति और अदिति महात्मा कश्यपजीके साथ ब्याही गयी थीं। अदितिसे देवताओंकी उत्पत्ति हुई और दितिसे दैत्योंकी। उनमें बड़ा भारी वैर उपस्थित हुआ। दैत्योंने देवताओंको पदभ्रष्ट कर दिया और वे सब सम्पूर्ण दिशाओंमें इधर-उधर भाग गये। तब देवमाता अदिति भगवान् शंकरके ध्यानमें तत्पर हो दिन-रात तपस्या करने लगीं। इस प्रकार व्रतमें स्थित हुई अदिति देवीके आगे धरती फोड़कर एक शिवलिंग प्रकट हुआ। इससे उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई और अनेक प्रकारके स्तोत्रोंद्वारा उसकी स्तुति करके

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

उन्होंने साष्टांग प्रणाम किया। इसी समय आकाशवाणी हुई—'कल्याणी! तुम मनोवांछित वर माँगो।'

अदिति बोलीं—सुरश्रेष्ठ! मेरे पुत्र देवता युद्धमें दैत्योंद्वारा मारे जाते हैं। अतः आप उन्हें अमर बना दें। युद्धमें दानवोंके द्वारा उन्हें अवध्य कर दें।

श्रीभगवान् बोले—शुभे! जो मेरे इस लिंगमय विग्रहका स्पर्श करके युद्धमें जायँगे, वे एक वर्षतक शत्रुओंके द्वारा अवध्य रहेंगे। दूसरे भी जो मनुष्य माघकृष्णा चतुर्दशी (फाल्गुनकी शिवरात्रि)-को एकाग्रचित्त हो यहाँ जागरण करेंगे, वे भी एक वर्षतक नीरोग रहेंगे। जो इस शुभ देवस्थानमें आयगा, उसे मृत्यु दूरसे ही छोड़ देगी।

यह सुनकर अदितिने मरनेसे बचे हुए अपने पुत्रोंको लाकर इस शिवलिंगका दर्शन कराया और उसके माहात्म्यका भी वर्णन किया। तब देवता उस शिवलिंगको प्रणाम करके प्रसन्न हो अस्त्र-शस्त्र ले-लेकर दैत्योंपर चढ़ आये। देवताओंको सहसा युद्धके लिये आया देख दैत्य भी गर्जना करते हुए उनके सामने गये। उस समय देवताओंका दानवोंके साथ भयंकर युद्ध हुआ। उस संग्राममें अनेक प्रकारके तीक्ष्ण अस्त्र-शस्त्रोंद्वारा देवताओंने असंख्य दैत्योंको यमलोक पहुँचाया। जो मारनेसे बच गये, वे स्वर्ग छोड़कर समुद्रमें जा छिपे। तदनन्तर इन्द्रने अपना राज्य प्राप्त किया। शेष दानवोंने उस शिवलिंगकी महिमाका पता पाकर शुक्रजीसे पूछा। तब शुक्राचार्यने उन्हें सब माहात्म्य बताया—'फाल्गुनकी शिवरात्रिको पवित्र होकर जो पुरुष उस शिवलिंगकी पूजा करता है, वह काल आ जानेपर भी प्राण-त्याग नहीं करता। दानवो! तुमलोग उस दिन रातमें जाकर उस शिवलिंगकी पूजा करो, जिससे तुम एक वर्षतक मृत्युके भयसे रहित हो जाओगे।'

इन्द्रको नारदजीसे दैत्योंकी यह मन्त्रणा ज्ञात हो गयी। तब उन्होंने सब देवताओंके साथ विचार किया कि 'जैसे भी हो सके, हमें महादेवजीकी रक्षाके लिये उत्तम-से-उत्तम उद्योग करना चाहिये।' ऐसा निश्चय करके तैंतीस कोटि देवता अस्त्र-शस्त्रोंके साथ उस शिवलिंगकी रक्षाके लिये हाटकेश्वरक्षेत्रमें आकर स्थित हुए। उन्हें देखकर दानव भयभीत होकर सब दिशाओंमें भाग गये। शिवरात्रिके दूसरे दिन पुनः सब देवताओंने आपसमें विचार किया कि 'यदि हमलोग इस क्षेत्रको छोड़कर जायँगे, तो दैत्य यहाँ आकर इस शिवलिंगकी पूजा करेंगे और वे भी हमारी ही भाँति अवध्य हो जायँगे। इसलिये हम तैंतीस देवता इस शिवलिंगकी रक्षाके लिये यहीं टिके रहें और शेष देवता इन्द्रके साथ स्वर्गमें जायँ।' ऐसा निश्चय करके आठ वसु, बारह सूर्य, ग्यारह रुद्र तथा दो अश्विनीकुमार—ये तैंतीस देवता उस शिव-लिंगकी रक्षाके लिये हाटकेश्वरक्षेत्रमें निवास करने लगे। शेष सब लोग इन्द्रसहित स्वर्गमें चले गये।

सूतजी कहते हैं—इस प्रकार प्रभावशाली अमरेश्वरलिंग पूर्वकालमें अदितिदेवीके द्वारा स्थापित हुआ था। जिसके दर्शनमात्रसे देहधारियोंकी (एक वर्षतक) मृत्यु नहीं होती है। मृत्युका निवारण करनेके कारण ही वह अमरलिंगके नामसे तीनों लोकोंमें विख्यात है। उस शिवलिंगके आगे स्वच्छ जलसे भरा हुआ एक उत्तम कुण्ड है, जिसे अदितिदेवीने अपने स्नानके लिये निर्माण कराया था। जो मनुष्य उसमें स्नान करके उस शिवलिंगका दर्शन करता है तथा उसी दिन रातमें वहाँ जागरण करता है, वह एक वर्षतक अपमृत्युको नहीं प्राप्त होता।

~~~०~~~

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth
~~~

शुकदेवजीका जन्म, वैराग्य, व्यासजीके साथ उनका संवाद और वनगमन

सूतजी कहते हैं—वहींपर चटकेश्वर नामक महादेवजी हैं, जो मनुष्योंको पुत्र प्रदान करनेवाले हैं। पूर्वकालमें चेटिकाने वहाँ तप किया था, उसने व्याससे कपिंजल नामक पुत्र पाया था। एक समयकी बात है, शान्तचित्त महात्मा व्यासजीके मनमें पत्नीके लिये अभिलाषा हुई। तब उन्होंने जाबालि मुनिसे उनकी सुन्दरी कन्या माँगी। जाबालिने चेटिका नामकी कन्या व्यासजीके साथ ब्याह दी। तब व्यासजी उसके साथ वनमें रहते हुए मैथुनमें प्रवृत्त हुए। ऋतुकालमें सत्यवतीनन्दन व्याससे मैथुन प्राप्त करके चेटिका गर्भवती हुई। उसका दूसरा नाम पिंगला भी था। उसके उदरमें वह गर्भ दिन-दिन पुष्ट होने लगा। बारह वर्ष बीत गये, किंतु वह गर्भ उत्पन्न नहीं हुआ। वह भीतर ही रहकर जो कुछ सुनता उसे याद कर लेता था, उसकी बुद्धि बड़ी प्रखर थी। उसने गर्भमें रहते हुए ही अंगोंसहित सम्पूर्ण वेद पढ़ लिये। स्मृति, पुराण तथा मोक्षशास्त्रका वह दिन-रात पूर्णरूपेण पाठ करता था। वह गर्भमें ज्यों-ज्यों वृद्धिको प्राप्त होता त्यों-ही-त्यों उसकी माता अत्यन्त पीड़ाको प्राप्त होकर व्याकुल होती जाती थी। तब विस्मयमें पड़े हुए व्यासजीने उस गर्भस्थ बालकसे पूछा—'तुम कौन हो, गर्भका रूप धारण करके मेरी धर्मपत्नीकी कुक्षिमें आ बैठे हो? बाहर क्यों नहीं निकलते?'

गर्भ बोला—जो चौरासी लाख योनियाँ बतायी गयी हैं, उन सबमें मैंने भ्रमण किया है। अतः मैं क्या बताऊँ कि कौन हूँ। भयंकर संसारमें भ्रमण करते-करते मुझे बड़ा निर्वेद (वैराग्य) हुआ है। इस समय मनुष्य होकर इस उदरमें आया हूँ। अब मेरा विचार किसी प्रकार मनुष्यलोकमें निकलनेका नहीं है। यहीं रहकर योगाभ्यासमें तत्पर हो मोक्षमार्गको प्राप्त होऊँगा।

व्यासजीने कहा—वत्स! यदि तुम्हारी ऐसी अभिलाषा है, तो तुम्हें पाप नहीं लगेगा। इस गर्भवासरूपी घृणित एवं घोर नरकसे निकल आओ और योगका आश्रय लेकर कल्याणको प्राप्त होओ।

गर्भ बोला—विप्रवर! जबतक जीव गर्भमें रहता है, तभीतक उसे ज्ञान, वैराग्य तथा पूर्वजन्मका स्मरण बना रहता है। जब वह गर्भसे निकलता है और भगवान् विष्णुकी माया उसे स्पर्श करती है, तब सारा ज्ञान भूल जाता है। इसलिये मैं इस गर्भसे किसी तरह बाहर नहीं निकलूँगा।

व्यासजीने कहा—वैष्णवी माया तुमपर किसी प्रकार भी प्रभाव नहीं डालेगी। अतः तुम मुझे अपना मुख दिखाओ।

तदनन्तर बारह वर्षके कुमार शुक जो यौवनके समीप पहुँच चुके थे, गर्भसे बाहर निकले और व्यास तथा माताको प्रणाम करके उसी क्षण वनवासके लिये प्रस्थित हुए। तब मुनिवर व्यासने कहा—'बेटा! मेरे घरमें ठहरो; जिससे तुम्हारे जातकर्म आदि संस्कार तो कर दूँ।'

शुकदेव बोले—मेरे जन्म-जन्ममें सैकड़ों संस्कार हो चुके हैं। उन्हीं बन्धनात्मक संस्कारोंने मुझे भवसागरमें डाल रखा है।

व्यासजीने कहा—द्विजके बालकको पहले ब्रह्मचारी, फिर गृहस्थ, तत्पश्चात् वानप्रस्थी और अन्तमें संन्यासी होना चाहिये। इसके बाद वह मोक्षको प्राप्त होता है।

शुकदेवजी बोले—यदि ब्रह्मचर्यसे ही मोक्ष होता है, तब तो नपुंसकोंको वह सदा ही प्राप्त होना चाहिये। यदि गृहस्थाश्रमियोंकी मुक्ति होती है, तब तो सम्पूर्ण जगत्‌को ही मुक्त हो जाना चाहिये। यदि कहें, वनवासमें अनुरक्त रहनेवालोंकी मुक्ति होती है तब तो मृगोंकी मुक्ति अवश्य हो जानी चाहिये। यदि आपका यह विचार हो कि संन्यास-धर्मका पालन करनेवाले मनुष्योंका मोक्ष होता है तब तो जितने दरिद्र मनुष्य हैं, उन सबकी मुक्ति पहले हो जानी चाहिये।

व्यासजीने कहा—मनुजीका कथन है कि गृहस्थधर्ममें अनुरक्त हो सन्मार्गपर चलनेवाले

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

मानवोंके लिये यह लोक और परलोक दोनों सुखद होते हैं। गृहस्थाश्रमी पुरुषोंके द्वारा गृहस्थ-धर्मका पालन करनेके लिये जो संग्रह किया जाता है, वह इहलोक और परलोकमें भी सनातन सुख प्रदान करता है।

शुकदेवजी बोले—दैवयोगसे कभी अग्निसे भी शीतलता प्राप्त हो सकती है, चन्द्रमासे भी ताप हो सकता है; परंतु इस मर्त्यलोकमें परिग्रहसे भी सुखकी उत्पत्ति हो, ऐसा न तो कभी हुआ है, न होता है और न आगे कभी होगा ही।

व्यासजीने कहा—बहुत पुण्य होनेसे किसी प्रकार इस पृथ्वीपर अत्यन्त दुर्लभ मानवजन्मकी प्राप्ति होती है। उसे पाकर यदि मनुष्य गृहस्थधर्मका तत्त्व जाननेवाला हो तो उसे क्या नहीं मिल जाता?

शुकदेवजी बोले—यदि मनुष्य जन्मकालमें अपनी अवस्थाको देखकर ज्ञानयुक्त होता है तो जन्म लेनेके पश्चात् वह सारा ज्ञान भूल जाता है।

व्यासजीने कहा—मनुष्यका पुत्र हो अथवा गदहेका बच्चा, जब वह शरीरमें धूल लपेटे, चंचल गतिसे चलता और तोतली वाणी बोलता है, तब उसका वह शब्द भी लोगोंके लिये बड़ा आनन्ददायक होता है।

शुकदेवजी बोले—मुने! धूलमें रेंगते और लोटते हुए अपवित्र शिशुसे जो यहाँ सन्तुष्ट होते या सुखका अनुभव करते हैं, वे अज्ञानी हैं।

व्यासजीने कहा—यमलोकमें पुं नामक महाभयंकर नरक है, पुत्रहीन मनुष्य ही उसमें जाता है। इसलिये पुत्रकी प्रशंसा की जाती है।

शुकदेवजी बोले—महामुने! यदि पुत्रसे ही सब लोगोंको स्वर्गकी प्राप्ति होती, तब तो सूअरों, कुत्तों और टिड्डियोंको विशेषरूपसे उसकी प्राप्ति होनी चाहिये?

व्यासजीने कहा—पुत्रके दर्शनसे मनुष्य पितृ-ऋणसे मुक्त होता है, पौत्रके दर्शनसे वह देव-ऋणसे मुक्त होता है और प्रपौत्रको भी देख ले, तब तो वह स्वर्गका निवासी होता है।

शुकदेवजी बोले—गीध दीर्घजीवी होता है, वह सदा अपनी कई पीढ़ीकी सन्तानोंको क्रमशः देखता है; किंतु क्या वह मोक्षको प्राप्त हो जाता है?

सूतजी कहते हैं—इस प्रकार कहकर शुकदेवजी वनमें चले गये।

अपने पुत्र शुकको गृहस्थीकी ओरसे निःस्पृह देख चेटिकाने दुःखी होकर व्यासजीसे कहा—द्विजश्रेष्ठ! मुझे आज्ञा दीजिये, जिससे मैं पुत्रके लिये तपस्या करूँ और उसके द्वारा महादेवजीको सन्तुष्ट करूँ, जिससे मुझे वंशकी वृद्धि करनेवाला श्रेष्ठ पुत्र प्राप्त हो। ऐसा निश्चय करके व्यासजीकी आज्ञा पाकर पतिव्रता चेटिकाने हाटकेश्वरक्षेत्रमें जा तपस्या प्रारम्भ की। उसने भगवान् शंकरकी स्थापना करके उनके आगे निर्मल जलसे भरी हुई एक विशाल वापी निर्माण करायी, जो स्नान करनेमात्रसे समस्त पातकोंका नाश करनेवाली है। तदनन्तर उसकी तपस्यासे सन्तुष्ट होकर त्रिपुरारि महादेवजीने प्रत्यक्ष दर्शन दिया और कहा—'सुव्रते! वरदान माँगो।'

चेटिका बोली—सुरश्रेष्ठ! मुझे ऐसा पुत्र दीजिये, जो मेरे वंशकी वृद्धि करनेवाला, सदा ही मित्रोंको आनन्द देनेवाला, सुशील तथा विनयी हो।

श्रीमहादेवजीने कहा—शोभने! तुमने जैसे पुत्रके लिये प्रार्थना की है, वैसा ही पुत्र तुम्हें प्राप्त होगा, इसमें सन्देह नहीं है। दूसरी कोई भी जो स्त्री यहाँ वापीमें स्नान करके एकाग्रचित्त हो एक वर्षतक प्रत्येक शुक्ला पंचमीको तुम्हारे द्वारा स्थापित मेरे इस लिंगका पूजन करेगी, वह वर्षके अन्तमें सौभाग्यसे सम्पन्न होगी। इसी प्रकार जो पुरुष यहाँ स्नान करके सकाम भावसे मेरी पूजा करेगा, वह मनोवांछित कामना प्राप्त कर लेगा और जो निष्काम भावसे मेरा पूजन करेगा, वह मोक्षको प्राप्त होगा।

ऐसा कहकर महादेवजी अन्तर्धान हो गये और चेटिकाने व्यासजीसे कपिंजल नामक पुत्र प्राप्त किया। (चेटिकाद्वारा स्थापित होनेसे वह शिवलिंग 'चटकेश्वर' नामसे विख्यात हुआ।)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

राजा सुरथके द्वारा भैरवजीकी स्थापना और आराधना तथा शंखतीर्थ, शिव, गणेश, गौरी और चक्रपाणि वासुदेव आदि देवविग्रहोंके दर्शनका माहात्म्य

सूतजी कहते हैं—किसी समय सूर्यवंशमें उत्पन्न सुप्रसिद्ध राजा सुरथ अपने राज्यसे भ्रष्ट होकर पुरोहित वसिष्ठजीके आश्रमपर गये और प्रणाम करके बोले—'ब्रह्मन्! इस समय शत्रुओंने मुझ मन्दभागीके राज्यका बलपूर्वक अपहरण कर लिया है। अतः मुझपर कृपाप्रसाद कीजिये। मेरी दूसरी कोई गति नहीं है।'

वसिष्ठजीने कहा—महाराज! यदि ऐसी बात है, तो तुम शीघ्र ही समस्त सिद्धियोंको देनेवाले हाटकेश्वरक्षेत्रमें जाओ। वहाँ भैरवरूपसे महादेवजीकी स्थापना करो, जिनके हाथमें उठे हुए त्रिशूलके अग्रभागपर अन्धकासुरका शरीर गुँथा हुआ स्थित हो। इस प्रकार भैरवरूपी शिवकी स्थापना करके नारसिंहमन्त्रसे लाल फूल, लाल चन्दन तथा धूप आदिके द्वारा उनकी पूजा करो। इससे भैरवजीकी शक्ति प्राप्त करके तुम तेज और वीर्यसे सम्पन्न हो जाओगे और उन्हींकी कृपासे सम्पूर्ण शत्रुओंका संहार कर डालोगे; परंतु बड़ी पवित्रताके साथ तुम्हें भगवान् भैरवकी पूजा करनी चाहिये, अन्यथा विघ्नकी प्राप्ति होगी।

महर्षि वसिष्ठका यह वचन सुनकर राजा सुरथ तत्काल हाटकेश्वरक्षेत्रमें गये। वहाँ उन्होंने भैरवरूपधारी महादेवजीकी स्थापना की और भक्तिपूर्वक नारसिंह-मन्त्रद्वारा उनका पूजन किया। उपासनाके समय राजा बड़े ही पवित्र, संयमशील एवं ब्रह्मचर्यपरायण रहते थे। नारसिंह-मन्त्रका दस सहस्र जप करनेके पश्चात् राजाके ऊपर भगवान् भैरव सन्तुष्ट हुए और इस प्रकार बोले—'राजन्! इस मन्त्रसे पूजित होकर मैं तुम्हारे ऊपर बहुत प्रसन्न हूँ। इसलिये तुम मनोऽभिलषित वर माँगो।'

सुरथ बोले—सुरेश्वर! शत्रुओंने मेरा राज्य छीन लिया है, वह आपके प्रसादसे पुनः शत्रुरहित होकर मुझे प्राप्त हो। दूसरा कोई भी जो पुरुष यहाँ आकर इसी प्रकार पूजन करे, उसे भी सहस्र मन्त्रोंका जप पूरा होनेपर आप मेरी ही भाँति सिद्धि प्रदान करें।

'तथास्तु' कहकर भगवान् शंकर अन्तर्धान हो गये। राजा सुरथने भी संग्राममें शत्रुओंका वध करके अपना राज्य प्राप्त कर लिया।

सूतजी कहते हैं—महर्षियो! जो मनुष्य शंख-तीर्थमें विशेषतः एकादशी तिथिको स्नान करता है, वह सब तीर्थोंमें स्नान करनेका फल प्राप्त कर लेता है। जो वहाँ सिद्धेश्वरसहित ग्यारह रुद्रोंका भक्तिपूर्वक दर्शन करता है, उसके द्वारा माहेश्वरतीर्थोंके समस्त शिवविग्रहोंका दर्शन सम्पन्न हो जाता है। जो मनुष्य श्रद्धापूर्वक ग्रहोत्थादेवीका दर्शन करता है, उसके द्वारा सम्पूर्ण दुर्गा-मूर्तियोंका दर्शन हो जाता है। जो मनुष्योंको स्वर्गद्वार प्रदान करनेवाले गणेशजीको देखता है, उसके द्वारा सम्पूर्ण गणेश-विग्रहोंका दर्शनकार्य सम्पन्न हो जाता है। जो वहाँ बरगदके नीचे शर्मिष्ठाद्वारा स्थापित गौरीजीका दर्शन करता है, उसके द्वारा सम्पूर्ण गौरीविग्रहोंका दर्शन हो जाता है। जो मानव प्रातःकाल उठकर चक्रपाणि वासुदेवका दर्शन करता है, उसने समस्त वासुदेव-विग्रहोंका दर्शन कर लिया। जो मनुष्य सोते और जागते समय तथा प्रतिदिन प्रातःकाल उठकर स्नान करनेके पश्चात् भक्तिपूर्वक भगवान् चक्रपाणिका दर्शन करता है, उसके ब्रह्महत्या आदि पाप तत्काल नष्ट हो जाते हैं।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

गौरी, जया और विजयाकुण्डका माहात्म्य, सिद्धिके उपाय तथा नागर-खण्डके पूर्वार्ध भागके श्रवणका फल

सूतजी कहते हैं—ब्रह्मर्षियो! वहीं पार्वतीजीकी सेविका जया निवास करती है और उसने वहाँ गौरीकुण्डके समीप जयाकुण्डका निर्माण किया है। जो नारी तृतीयाके दिन जयाकुण्डमें स्नान करती है वह पुत्र और सौभाग्यसे सम्पन्न तथा पतिकी प्यारी होती है। जयाकुण्डके पास ही परम उत्तम विजयाकुण्ड है। वहाँ स्नान करके वन्ध्या स्त्री भी पुत्रवती हो जाती है। इतना ही नहीं, वह कभी स्वप्नमें भी पुत्रोंके नाश या वियोगका दुःख नहीं देखती। जो काक-वन्ध्या स्त्री भी वहाँ स्नान करती है वह अनेक पुत्र प्राप्त करके स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होती है।

हाटकेश्वरक्षेत्रमें जो सत्ताईस लिंग हैं, उनमें सत्त्वगुण और वीर्यसे युक्त एक शिवलिंगकी भी आश्विन कृष्ण चतुर्दशीको आधी रातके समय जो पूजा करता है तथा जो श्रेष्ठ साधक पूर्वोक्त रूपसे अंगन्यास करके यजन-पूजन एवं छुरिका सूक्तका पाठ करता है और उन शिवलिंगोंके सामने स्थित होकर समस्त चराचरकी मानसिक पूजा करके दिक्पालोंमेंसे प्रत्येककी भक्तिपूर्वक अर्चना करता है, वह उसी शरीरसे उस दिव्य धामको पहुँच जाता है, जहाँ कभी भी जरा-मृत्यु तथा रोग-शोक आदि नहीं होते। इसी प्रकार चित्रेश्वरी पीठमें भी एक सिद्धि बतायी गयी है। जो माघ कृष्णा चतुर्दशीको वहाँ श्रद्धापूर्वक आगमोक्त विधिसे पीठकी पूजा करता है तथा चित्रशर्माद्वारा स्थापित हाटकेश्वर लिंगका शिवरात्रिको निशीथ कालमें एक लाख फूलोंसे भक्तिपूर्वक पूजन करता है वह उसी शरीरसे तत्काल सिद्धि प्राप्त कर लेता है।

ऋषि बोले—महामते! शुद्ध चित्तवाले ब्राह्मणोंको जिस प्रकार मोक्ष प्राप्त होता है, ऐसे उपायोंको आप बतावें।

सूतजीने कहा—दस रुद्रोंके साथ जो आनन्देश्वर लिंग है, उसके अग्रभागमें स्थित जो कुण्ड है उसमें शास्त्रीय विधिसे स्नान करके मनुष्य देवदुर्लभ सिद्धि प्राप्त कर लेता है। जो मनुष्य माघमासमें प्रातःकाल विश्वामित्रकुण्डमें स्नान करता है और ब्राह्मणको तिलसे भरा हुआ पात्र देता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो ब्रह्मलोकमें प्रतिष्ठित होता है। द्विजोत्तमो! इस प्रकार ब्राह्मणोंके लिये हितकारक और देवताओंद्वारा प्रशंसित सिद्धिका उपाय बताया गया। उस तीर्थमें अन्य जो तीर्थ और मन्दिर हैं, उन्हें भी मुनियोंने स्वर्गदायक कहा है। हाटकेश्वर महादेवजीके क्षेत्रका यह उत्तम माहात्म्य मैंने आपलोगोंसे भलीभाँति कहा है, जो सब पातकोंका नाश करनेवाला है। जो मनुष्य यहाँके सब तीर्थोंमें स्नान करके भक्तिपूर्वक सब देवस्थानोंका दर्शन करता है, वह पापी भी हो तो मुक्त हो जाता है। यह स्वामिकार्तिकेयजीके द्वारा कहे हुए स्कन्दपुराणके प्रथम खण्डका वर्णन किया गया, जो सब पापोंका नाश करनेवाला है। जो मनुष्य भक्तिपूर्वक एकाग्रचित्तसे इसका पाठ या श्रवण करता है, वह इस लोकमें प्रचुर भोगोंका उपभोग करके स्वर्गलोकमें जाता है। सब तीर्थोंमें और सब प्रकारके दानोंसे जो पुण्यफल प्राप्त होता है, उसीको श्रद्धापूर्वक इस माहात्म्यका श्रवण करनेसे भी मनुष्य पा लेता है। ब्राह्मणो! पृथ्वीपर इस पुराणको सुनकर मनुष्य कोटि जन्मोंके पापसे मुक्त होता और अपने कुलका उद्धार कर देता है।

नागरखण्ड (पूर्वार्ध) सम्पूर्ण।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

नागरखण्ड (उत्तरार्ध)

सब पापोंकी शुद्धिके लिये पुरश्चरणसप्तमी व्रतकी विधि एवं महिमा

ऋषियोंने पूछा—सूतनन्दन! किस समय और किस विधिसे पुरश्चरण करना चाहिये?

सूतजीने कहा—पूर्वकालमें महामुनि मार्कण्डेयजीने हरिश्चन्द्र-पुत्र राजा रोहिताश्वके पूछनेपर जो कुछ कहा है, वही प्रसंग मैं सुनाता हूँ।

रोहिताश्व बोले—मुने! मनुष्य ज्ञानसे अथवा अज्ञानसे जो पाप करता है, उसके नाशका कोई उपाय मुझे बताइये।

मार्कण्डेयजी बोले—संसारमें मनुष्योंको मानसिक, वाचिक और शारीरिक तीन प्रकारका पाप लगता है। इनमेंसे मनुष्योंको जो मानस पाप लगता है, वह पश्चात्ताप करनेसे तत्क्षण नष्ट हो जाता है; परंतु जो वाचिक और कायिक पाप हैं, वे बिना भोगे नष्ट नहीं होते अथवा पुरश्चरणद्वारा उन्हें दूर किया जा सकता है। श्रेष्ठ ब्राह्मणोंसे अपना पाप निवेदन करके उनके बताये अनुसार शास्त्रोक्त प्रायश्चित्त करे। इससे मनुष्य शुद्ध होता है अथवा राजा जब उस पापको जानकर तदनुकूल दण्ड देता है, तब वह मनुष्य उस पापसे शुद्ध हो जाता है। जो लज्जावश श्रेष्ठ ब्राह्मणोंसे अपना पाप नहीं कहता तथा राजा भी जिसके पापको नहीं जान पाता, जो शरीरमें ही उस पापको लिये जाता है, उसको दण्ड देनेवाले साक्षात् वैवस्वत यम हैं। इसलिये विज्ञपुरुषको पूर्ण प्रयत्न करके ब्राह्मणोंके बताये अनुसार प्रायश्चित्त करना चाहिये।

रोहिताश्व बोले—मुनीश्वर! मनुष्य नित्य ही सब ओर सूक्ष्म पाप करता है, उन सबके लिये प्रायश्चित्त करनेकी शक्ति कैसे हो सकती है?

मार्कण्डेयजीने कहा—राजन्! एक पुरश्चरण-सप्तमी नामक पुण्यदायक व्रत है, जिसका अनुष्ठान करनेसे यमराजके पिता भगवान् सूर्य जन्मभरके संचित पापोंका नाश कर देते हैं। महाराज! तुम भी उसी व्रतको करो, जिससे समस्त शारीरिक पापोंसे मुक्त हो जाओगे।

रोहिताश्व बोले—मुनिश्रेष्ठ! पुरश्चरण-सप्तमी व्रतका अनुष्ठान किस समय किस विधिसे करना चाहिये?

मार्कण्डेयजी बोले—माघ मासके शुक्ल पक्षमें जब सूर्य मकर राशिपर स्थित हों, तब रविवार-युक्त सप्तमीको इस व्रतका आचरण करना चाहिये। उस दिन पाखण्डी और पतित मनुष्योंसे बात नहीं करनी चाहिये। प्रातःकाल दातुन करके निम्नांकित मन्त्रसे व्रतका नियम ग्रहण करना चाहिये—

पुरश्चरणकृत्यायां सप्तम्यां दिवसाधिप।
उपवासं करिष्यामि अद्य त्वं शरणं मम॥

'दिनेश! आज पुरश्चरणसप्तमीको मैं उपवास करूँगा, आप मुझे शरण दें, सहायक हों।'

तदनन्तर अपराह्णकालमें स्नान करके धुला हुआ वस्त्र पहनकर पवित्र हो भगवान् सूर्यकी प्रतिमाका लाल रंगके फूलोंसे भक्तिपूर्वक पूजन करे। उसके बाद पादार्घ्यपूजन करे, फिर **'पतङ्गाय नमः'** इस मन्त्रसे पैरोंकी, **'मार्तण्डाय नमः'** से दोनों घुटनोंकी, **'दिवसनाथाय नमः'** से गुह्यभागकी, **'द्वादशमूर्तये नमः'** से नाभिकी, **'पद्महस्ताय नमः'** से दोनों बाहुओंकी, **'तीक्ष्णदीधितये नमः'** से हृदयकी, **'पद्मदलाभाय नमः'** से कण्ठकी तथा **'तेजोमयाय नमः'** से मस्तककी विधिवत् पूजा सम्पन्न करके कपूरका धूप निवेदन करे। तत्पश्चात् गुड़-भातका नैवेद्य अर्पण करे। उस नैवेद्यको लाल वस्त्रसे ढका हुआ रखे। इसी प्रकार लालरंगके सूत्रसे आवेष्टित दीप और आरती निवेदन करे। तदनन्तर शंखमें रक्तचन्दन-मिश्रित जल और फल लेकर अर्घ्य दे—

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

यत्कृतं तु मया किञ्चिज्ज्ञानादज्ञानतोऽपि वा।
प्रायश्चित्तकृते देव ममार्घ्यश्च प्रगृह्यताम्॥

'देव! मैंने जानकर या अनजानमें जो कुछ भी पापकर्म किया है, उसके प्रायश्चित्तके लिये मेरा अर्घ्य ग्रहण करें।'

इसके बाद गन्ध, पुष्प और अनुलेपन आदिके द्वारा ब्राह्मणका भलीभाँति पूजन करे। उसे भोजन देकर शक्तिके अनुसार दक्षिणा दे। फिर शरीरशुद्धिके लिये पंचगव्य पान करे और हाथ जोड़कर सूर्यदेवका दर्शन करे। दर्शनके पश्चात् नमस्कार करके निम्नांकित मन्त्रका उच्चारण करे—

इदं व्रतं मया देव गृहीतं पुरतस्तव।
अविघ्नं सिद्धिमायातु प्रसादात्तव भास्कर॥

'देव! भास्कर! मैंने यह व्रत आपके सामने ग्रहण किया है, आपके प्रसादसे इसकी निर्विघ्नतापूर्वक सिद्धि प्राप्त हो।'

तत्पश्चात् फाल्गुन मास आनेपर उक्त विधिसे ही कुन्द पुष्पके द्वारा सूर्यदेवकी पूजा करे। गुग्गुलका धूप दे और भातका नैवेद्य निवेदन करे। उस दिन सब पापोंकी शुद्धिके लिये गोमयका भोजन बताया गया है। चैत्रमास आनेपर सुरभि (सुगन्धित पुष्प अथवा चम्पा, मौलसिरी या चमेली)-से सूर्यदेवकी पूजा करे। उस समय नैवेद्यके लिये गुड़ बताया गया है। सरजरस (राल)-का धूप निवेदन करे तथा कुशोदकका पान करे; इससे मनुष्य शारीरिक शुद्धिको प्राप्त होता है। वैशाखमासमें घृताहारी होकर पलाशके फूलोंसे सूर्यदेवकी पूजा करे और आमका नैवेद्य तथा जटामासीका धूप देवे। इस महीनेमें शरीरकी शुद्धिके लिये दहीका भोजन करना चाहिये। ज्येष्ठमें पाड़रके फूलसे सूर्यकी पूजा करनी चाहिये। नैवेद्यके लिये सत्तू बताया गया है और समस्त पापोंकी शुद्धिके लिये कपिला गायके घीका भोजन करना चाहिये। आषाढ़में अगस्तके फूलोंसे सूर्यकी पूजा करे। नैवेद्यके लिये खीरका विधान है और शरीरशुद्धिके लिये घीके साथ मधु पीना चाहिये। उस समय श्रद्धापूर्वक अगरुका धूप निवेदन करे। श्रावणमें कदम्बके फूलसे सूर्यदेवका पूजन करे, लड्डूका नैवेद्य भोग लगावे और तगरका धूप दे। तत्पश्चात् गोशृंगका जल ग्रहण करके मनुष्य सब पापोंसे तत्काल मुक्त हो जाता है। भाद्रपदमासमें जातिपुष्प (चमेली)-से भगवान् सूर्यकी पूजा करे, दूधका नैवेद्य भोग लगावे, रालका धूप दे और शरीरशुद्धिके लिये दूध पीये। आश्विनमासमें कमलके फूलोंसे पूजा करे, घीकी पूड़ीका नैवेद्य निवेदन करे, कुंकुमका धूप दे और शरीरशुद्धिके लिये कपूर खाय। कार्तिकमासमें तुलसीसे सूर्यदेवकी पूजा बतायी गयी है, खाँड़का नैवेद्य और कुसुमका धूप देना चाहिये। उस समय लवंगका भोजन सब पापोंका शोधक बताया गया है। अगहनमें भृंगराजपत्र (भँगरैया)-से पूजा करे, पूवाका नैवेद्य और गुड़का धूप निवेदन करे, उस समय सूर्यकी प्रसन्नताके लिये कंकोल (शीतलचीनी)-का भोजन करना चाहिये। पौषमें शतपत्री (गुलाब)-से सूर्यकी पूजा बतायी गयी है, नैवेद्यके लिये पूड़ी और धूपके लिये घीका विधान है। उस समय शरीर-शुद्धिके लिये पूर्वोक्त सभी वस्तुओंका भोजन करे। व्रतकी समाप्ति होनेपर सब पापोंकी शुद्धिके लिये घरकी वस्तुओंका छठा भाग ब्राह्मणको दान कर दे। तदनन्तर अपनी शक्तिके अनुसार प्रिय पदार्थोंका ब्राह्मणवर्गको भोजन करावे। इस प्रकार जो सूर्यसप्तमीका व्रत करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो निर्मल हो जाता है।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

चण्डशर्माके द्वारा सत्ताईस शिवलिंगोंका पूजन, शिवकृपाप्राप्ति, ऋचीक मुनिका गाधिपुत्रीके साथ विवाह और जमदग्निका जन्म

सूतजी कहते हैं—चण्डशर्मा नामक एक ब्राह्मण था, जिसे नागर ब्राह्मणोंने किसी कारणसे जातिच्युत घोषित करके चमत्कारपुरसे बाहर कर दिया था। चण्डशर्मा नगरसे बाहर सरस्वती नदीके तटपर कुटिया बनाकर रहने लगा। वह सरस्वतीमें स्नान करके पवित्र और एकाग्रचित्त हो षडक्षरमन्त्रका जप करता और सत्ताईस लिंगोंके पृथक्-पृथक् नामका नमस्कारान्त उच्चारण करके जपता था। पंककी मिट्टी लेकर पाँच अँगुलके सत्ताईस शिवलिंग बनाकर उनकी स्थापना करता और पुष्प-धूप एवं चन्दन आदिके द्वारा भक्तिपूर्वक उन सबकी पूजा करता था। फिर परम श्रद्धापूर्वक प्राणरुद्रसम्बन्धी मन्त्रोंको जपता था। 'शिवलिंग अच्छी स्थितिमें हो या बुरी स्थितिमें, किसी भी दशामें उसको अपने स्थानसे विचलित न करे।' ऐसा मानकर द्विजश्रेष्ठ चण्डशर्मा उन शिवलिंगोंका कभी विसर्जन नहीं करता था। उनके ऊपर-ऊपर वह प्रतिदिन पंकमय सत्ताईस शिवलिंगोंको स्थापित करता जाता था। इस प्रकार दीर्घकालमें वहाँ पंकका पर्वत-सा खड़ा हो गया। तब उसकी भक्तिकी अधिकता देखकर महादेवजी बहुत सन्तुष्ट हुए और धरतीको भेदकर उसे अपने दिव्यलिंगका दर्शन कराया। तत्पश्चात् इस प्रकार कहा—'चण्डशर्मन्! मैं तुमपर बहुत सन्तुष्ट हूँ। तुम्हारे सिवा और दूसरा भी जो कोई इन सत्ताईस लिंगोंका इस प्रकार पूजन करेगा, वह भी कल्याणका भागी होगा।'

ऐसा कहकर भगवान् शिव अन्तर्धान हो गये। चण्डशर्माने भी उनके प्रत्यक्ष प्रकट हुए दिव्य लिंगमय स्वरूपका यथावत् पूजन किया और उसके लिये उत्तम मन्दिरका निर्माण कराया। उसीसे वह शिवलिंग नगरेश्वरके नामसे विख्यात हुआ। इस प्रकार शिवलिंगकी स्थापना करके विप्रवर चण्डशर्माने पुष्प, धूप और चन्दन आदिके द्वारा भगवान् शिवकी पूजा की। तदनन्तर दीर्घकालके पश्चात् नगरेश्वरके प्रसादसे वह साक्षात् शिवधाममें चला गया। चण्डशर्माकी पत्नी शाकम्भरीने सरस्वती नदीके तटपर श्रीदुर्गादेवीको स्थापित किया तथा उत्तम भक्ति से दिन-रात उनकी आराधना की। तब उसपर प्रसन्न होकर दुर्गादेवीने कहा—'बेटी शाकम्भरी! मैं तुमपर बहुत सन्तुष्ट हूँ। तुम कोई मनोवांछित वर माँगो।'

शाकम्भरी बोली—देवि! चमत्कारपुरमें जो प्रसिद्ध चौंसठ मातृकागण हैं, वे सब सन्तुष्ट हों।

देवीने कहा—जो आश्विन शुक्ला महानवमीके दिन मेरे आगे आकर भक्तिपूर्वक मेरी पूजा करेगा, उसे पूर्ण फलकी प्राप्ति होगी। विशेषतः नागर ब्राह्मणकी की हुई पूजा अवश्य सफल होगी। यह सब मैंने सत्य कहा है।

ऐसा कहकर देवी दुर्गा अदृश्य हो गयीं। शाकम्भरीद्वारा स्थापित देवी दुर्गा उसीके नामसे प्रसिद्ध हुईं।

तबसे लेकर सरस्वतीके पुण्यतटपर बाह्य नागर ब्राह्मणोंका एक महान् स्थान बन गया। पुत्र-पौत्र तथा दौहित्र आदिसे युक्त होकर उन सबकी संख्या बहुत बढ़ गयी और विद्या तथा महान् वैभवकी दृष्टिसे वह स्थान चमत्कारपुरसे भी अधिक विख्यात हुआ। तदनन्तर किसी समय विश्वामित्रजीने क्रोध करके सरस्वतीको शाप दे रक्त बहानेवाली कर दिया। तब वे बाह्य नागर सरस्वती नदीको छोड़कर वहाँसे दूर चले गये और नर्मदाके पावन तटपर मार्कण्डेय मुनिके आश्रमके समीप निवास करने लगे।

ऋषियोंने पूछा—बुद्धिमान् विश्वामित्रजीने सरस्वतीको किस कारण शाप दिया?

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

सूतजीने कहा—महर्षियो! प्राचीन कालमें भृगुके पुत्र महामुनि ऋचीक प्रसिद्ध महात्मा थे। वे व्रत-स्वाध्यायमें तत्पर, तपस्वी और महायशस्वी थे। एक समय मुनीश्वर ऋचीकजी तीर्थयात्राके प्रसंगसे घूमते हुए भोजकट नामक स्थानमें गये। वहाँ राजा गाधि राज्य करते थे। त्रिभुवनविख्यात कौशिकी नदी वहीं बहती है। ऋचीकजी वहाँ कौशिकी नदीमें स्नान करके देवताओं और पितरोंका तर्पण कर तटपर बैठे तथा ध्यानस्थ होकर जप करने लगे। इतनेमें ही वहाँ सर्वगुणसम्पन्ना राजकन्या आयी। उसे देखकर मुनिने निकटवर्ती मनुष्योंसे पूछा—'यह साध्वी कन्या किसकी पुत्री है और किसलिये यहाँ आयी है?'

लोगोंने कहा—यह महाराज गाधिकी त्रिभुवनसुन्दरी कन्या है, जो सर्वगुणसम्पन्न उत्तम पतिकी इच्छा रखती हुई यहाँ गौरीजीकी पूजाके लिये अन्तःपुरसे आयी है। इस नदीके तटपर यह जो बहुत बड़ा मन्दिर सुशोभित है, इसमें सम्पूर्ण देवताओंसे पूजित उमादेवी निवास करती हैं। यह राजकन्या मन्त्रोच्चारणपूर्वक क्रमशः पूजन करके भाँति-भाँतिके नैवेद्य भोग लगावेगी और वीणा बजाकर कानोंको सुख देनेवाला मधुर संगीत सुनावेगी। तत्पश्चात् जब सूर्यका ताप कुछ कम होगा, तब यह अपने महलमें पधारेगी।

उन मनुष्योंका यह वचन सुनकर ऋचीक मुनि राजा गाधिके घर गये। उन्हें सहसा अपने घरपर आया देख नृपश्रेष्ठ गाधि शीघ्र उनके सम्मुख गये और शास्त्रोक्त विधिसे उनका पूजन करके बोले—'विप्रवर! यद्यपि आप स्वभावसे ही निःस्पृह हैं, तथापि अपने आगमनका कारण बताइये।'

ऋचीकजीने कहा—राजेन्द्र! आपके एक सुन्दरी कन्या है, जो अब वरके योग्य हो गयी है। आप ब्राह्म-विवाहकी विधिसे वह कन्या मुझे दीजिये। पार्वतीजीके पूजनके निमित्त गयी हुई उस कन्याको मैंने देखा है।

यह सुनकर नृपश्रेष्ठ गाधि भयभीत हो गये। 'एक तो मुनि अपने समान वर्णके नहीं थे, दूसरे दरिद्र और बूढ़े थे, फिर भी कन्या न देनेपर उनसे शाप मिलनेका डर था।' यह सब सोचकर राजाने कहा—'विप्रवर! हमने कन्यादानके लिये शुल्क नियत कर रखा है। यदि वह आप दे सकेंगे तब निश्चय ही आपको अपनी कन्या दूँगा।'

ऋचीकजीने पूछा—नृपश्रेष्ठ! कन्याका शुल्क क्या है, यह आप मुझे बताइये।

गाधि बोले—द्विजेन्द्र! वायुके समान वेगवाले श्वेत रंगके सात सौ घोड़े, जिनका एक-एक कान श्याम रंगका हो, मेरी कन्याके शुल्करूपमें प्राप्त होने चाहिये।

'बहुत अच्छा' कहकर मुनिश्रेष्ठ ऋचीक कान्यकुब्ज देशमें गये और गंगाके किनारे बैठकर राजा गाधिके बताये अनुसार श्यामकर्ण घोड़ोंकी प्राप्तिके लिये विनियोगपूर्वक ऋषि, छन्द और देवताका स्मरण करके '**अश्वो वोलहा**' इत्यादि चौंसठ ऋचाओंवाले सूक्तका जप करने लगे। तब वे अश्व गंगाजीके जलसे प्रकट हो गये। उन सबका रंग श्वेत और एक-एक कान श्याम था। वे सभी बड़े वेगशाली अश्व थे, उनके साथ उतने ही सवार भी थे। तबसे गंगाके शुभ पुण्यतटपर वह स्थान भूतलमें अश्वतीर्थके नामसे विख्यात हुआ।

उन विश्वासपात्र पुरुषोंके साथ सात सौ घोड़ोंको पाकर ऋचीक मुनि उस स्थानपर गये, जहाँ राजा गाधि रहते थे। वहाँ पहुँचकर मुनिने कन्याके लिये वे उत्तम अश्व राजाको समर्पित किये। तब राजा गाधिने उन घोड़ोंको ग्रहण करके गृह्यसूत्रोक्त विधिसे ब्राह्मण और अग्निकी साक्षितामें वह त्रिभुवनसुन्दरी कन्या ऋचीक मुनिको ब्याह दी। विवाह हो जानेपर ऋचीक मुनि अपनी स्त्रीकी ओरसे निष्काम हो गये और बोले—'सुन्दरी! मैं तपस्याके लिये वनमें जाऊँगा, तुम कोई वर माँगो!'

उनका वह वचन सुनकर राजकुमारी दुःखी होकर अपनी माताके पास गयी और मुनिने जो कुछ कहा था, वह सब कह सुनाया। उसे सुनकर माताने कहा—'बेटी! यदि तुम्हारे पति तुम्हें

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

मनोवांछित वर देते हैं तो उनसे अपने लिये ब्राह्मणोचित गुणोंसे सम्पन्न एक पुत्र माँगो और मेरे लिये क्षत्रियोचित गुणोंसे युक्त एक पुत्रके लिये प्रार्थना करो।' माताकी बात सुनकर उत्तम व्रतका पालन करनेवाली राजकुमारी ऋचीक मुनिके पास गयी और माताने जैसा कहा था, वह सब उनसे कहा। पत्नीका वह वचन सुनकर ऋचीक मुनिने विधिपूर्वक पुत्रेष्टि यज्ञ करके दो चरु तैयार किये। एकमें तो उन्होंने ब्राह्मणोचित तेज एवं सम्पूर्ण यशका आधान किया और दूसरेमें सम्पूर्ण क्षात्रतेज स्थापित कर दिया। तदनन्तर उन्होंने पहले अपनी पत्नीको उत्तम ब्राह्मतेजसे युक्त चरु प्रदान किया और कहा—'तुम इसे खा लो और खानेके बाद पीपलके वृक्षका आलिंगन करो। इससे तुम्हें ब्रह्मतेजसे सम्पन्न उत्तम पुत्र प्राप्त होगा तथा यह जो दूसरा चरु है, इसे अपनी माताको दे दो। साथ ही उन्हें समझा दो कि वे इस चरुको खाकर बरगदके वृक्षका आलिंगन करें। ऐसा करनेसे उन्हें क्षत्रियतेजसे युक्त श्रेष्ठ पुत्रकी प्राप्ति होगी।' घरमें जाकर दोनों माँ-बेटी प्रसन्नचित्त होकर आपसमें बात करने लगीं कि मुनिका वचन अवश्य सत्य होगा।

तदनन्तर माताने पुत्रीसे कहा—संसारमें सब लोग अपने लिये उत्तम वस्तु चाहते हैं, अतः तुम्हारे लिये जो चरु है, उसमें अवश्य कोई-न-कोई विशेषता होगी, अतः अपना चरु मुझे दे दो और मेरा तुम ले लो।' माताके ऐसा कहनेपर पुत्रीने चरु और वृक्षमें अदला-बदली कर ली। तत्पश्चात् ऋतुस्नाता होनेपर दोनों स्त्रियोंने गर्भ धारण किया। त्रिभुवनसुन्दरी राजकन्या उस गर्भको प्राप्त होकर क्षत्रियतेजसे युक्त हो गयी। वह मन-ही-मन हाथी, घोड़ेपर चढ़ने तथा राज्य करनेकी बात सोचने लगी। देवताओं और असुरोंकी युद्धकथा बड़े रुचिके साथ सुनने लगी।

उसके क्षत्रियोचित कर्म देखकर मुनिने कुपित होकर पूछा—पापिनि! तुमने यह क्या किया? अवश्य ही चरु और वृक्षमें तुमने परिवर्तन कर लिया है। अतः इसमें सन्देह नहीं कि तुम्हारा पुत्र क्षत्रिय होगा और भाई ब्राह्मण। गर्भके चिह्नोंसे ऐसा ही प्रतीत होता है। शास्त्रचिन्तकोंने यह बात कही है कि गर्भिणी स्त्रीके मनमें जैसी अभिलाषा उत्पन्न होती है, वैसे ही गुणोंसे युक्त पुत्र उसके गर्भसे उत्पन्न होता है।

तब राजकुमारीने हाथ जोड़कर कहा—प्रभो! आपने जो कहा है, वह सत्य है। हमारे द्वारा चरु-परिवर्तनका अपराध हो गया है तथापि मुझपर ऐसी कृपा कीजिये, जिससे मेरा पुत्र ब्राह्मणोचित गुणोंसे सम्पन्न हो।

ऋचीक बोले—जो कुछ भी ब्राह्मणोचित तेज और गुण है, वह सब मैंने तुम्हारे चरुमें स्थापित कर दिया था और तुम्हारी माताके चरुमें क्षत्रियोचित क्षत्रियतेजका आधान किया था। अतः मैं शास्त्रके विरुद्ध उसमें उलट-फेर कैसे कर सकता हूँ। तुम्हारी प्रार्थनासे इतना ही कर सकता हूँ कि तुम्हारा पुत्र क्षत्रियोचित गुणसे युक्त न होकर पौत्र वैसे गुणोंसे विभूषित होगा। वह अपने क्षात्र-तेजके कारण युद्धमें शत्रुओंके लिये दुर्धर्ष होगा।

तत्पश्चात् मुनिके इस सत्य वरदानको पाकर सती साध्वी राजकुमारीका मुख प्रसन्नतासे खिल उठा और उसने अपनी मातासे पतिकी कही हुई सब बातें बतायीं। इसके बाद दसवें महीनेमें पुष्य नक्षत्र आनेपर राजकुमारीने बालसूर्यके समान तेजस्वी ब्रह्मतेजसे सुशोभित तपस्याके निधान और परम पवित्र पुत्रको जन्म दिया, जो तीनों लोकोंमें जमदग्निके नामसे विख्यात हुए। जमदग्निके ही पुत्र महायशस्वी परशुराम हुए, जिन्होंने पितामह ऋचीक मुनिके दिये हुए क्षात्रतेजके प्रभावसे इक्कीस बार इस पृथ्वीको क्षत्रियोंसे शून्य किया था।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

विश्वामित्रकी उत्पत्ति, राज्य-प्राप्ति, वसिष्ठ मुनिके आश्रमपर नन्दिनीद्वारा सेनासहित विश्वामित्रका सत्कार, नन्दिनीके कोपसे उनका पराभव तथा राज्य त्यागकर तप करनेका निश्चय

सूतजी कहते हैं—गाधिकी महारानीने भी मन्त्रसे सिद्ध किये हुए चरुका भक्षण करके उसी वर्षमें गर्भ धारण किया। गर्भवती होनेपर साध्वी रानी तीर्थयात्रामें तत्पर हुई और अनेक प्रकारके व्रतोंका पालन करने लगी। जहाँ वेदमन्त्रोंकी ध्वनि हो, वहाँ वे बड़े हर्षसे जातीं और सुनतीं। दसवाँ मास पूर्ण होनेपर उन्होंने भी उत्तम कान्तिसे युक्त पुत्र उत्पन्न किया, जो चराचर जगत्में विश्वामित्रके नामसे प्रसिद्ध हुआ। जैसे शुक्ल पक्षका चन्द्रमा आकाशमें प्रतिदिन वृद्धिको प्राप्त होता है, उसी प्रकार महाभाग विश्वामित्र भी नित्यप्रति बढ़ने लगे। जब वे युवावस्थासे सम्पन्न एवं राज्य करनेमें समर्थ हुए, तब उनके पिता गाधिने उन्हें राज्यपर अभिषिक्त कर दिया। इसके बाद राजा गाधि अपनी पत्नीके साथ वनमें चले गये।

राज्य-संचालनमें नियुक्त होकर भी विश्वामित्रजी प्रायः ब्राह्मणोंके स्वागत-सत्कार एवं सत्संगमें ही संलग्न रहते थे। एक समय उन्होंने वनमें प्रवेश किया और बहुत-से हिंसक पशुओंको मारा। फिर जेठकी तपती हुई दोपहरीमें भूख-प्याससे पीड़ित हो वे महात्मा वसिष्ठके आश्रमपर गये। वसिष्ठजीने भी नृपश्रेष्ठ विश्वामित्रको आया देख प्रसन्नतापूर्वक उनकी अगवानी की तथा उनके लिये अर्घ्य और मधुपर्क निवेदन करके कहा—'महीपाल! आपका स्वागत है! कहिये, मेरे आश्रमपर पधारे हुए आपका मैं कौन-सा अभीष्ट कार्य पूर्ण करूँ?'

विश्वामित्रजी बोले—मुनीश्वर! मेरी इन्द्रियाँ प्याससे व्याकुल हो रही थीं। मैं जल पीनेके लिये आपके आश्रमपर आया था सो यहाँ शीतल जल पी लिया। मेरी प्यास बुझ गयी है। अब आज्ञा दीजिये, जिससे अपने घरको जाऊँ।

वसिष्ठजीने कहा—राजन्! मध्याह्नकालमें सूर्य अत्यन्त तापदायक है। अतः इस समय मेरे आश्रममें ही भोजन करके अपराह्णकालमें जाइयेगा।

विश्वामित्रजी बोले—मुने! मैं चतुरंगिणी सेनाके साथ यहाँ आया था। आपके आश्रमके द्वारपर मेरी सेना भी स्थित है। जो स्वामी अपने सेवकोंके भूखे रहनेपर भी भोजन कर लेता है, वह भयंकर नरकमें जाता है। इसलिये मुझे घर लौटनेकी आज्ञा दीजिये।

वसिष्ठजीने कहा—यदि आपके सेवक मेरे द्वारपर भूखे हैं, तो उन सबको बुलाइये; मैं सभीको भोजनसे तृप्त करूँगा।

यह सुनकर राजा विश्वामित्रने सम्पूर्ण सेनाको वहीं बुला लिया और स्नान, सन्ध्या, तर्पण तथा जप करके ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन कराकर वे सिंहासनपर विराजमान हुए। इसी समय वसिष्ठजीने नन्दिनी नामक धेनुका आवाहन किया और वह विश्वामित्रके आगे जाकर खड़ी हो गयी। तब वसिष्ठजीने कहा—'तुम अनेक प्रकारके भक्ष्य, भोज्य, लेह्य, चोष्य तथा पेय आदि विविध खाद्य पदार्थोंके द्वारा सेनासहित महाराज विश्वामित्रको तृप्त करो। साथ ही इनके घोड़े और हाथी आदिके लिये भी चारे-दाने आदिकी व्यवस्था करो।'

'बहुत अच्छा' कहकर नन्दिनीने क्षणभरमें दस हजार सेवकोंको उत्पन्न किया। उन सबने सब प्रकारके भोज्य पदार्थोंको लेकर विश्वामित्रकी सेनाके प्रत्येक व्यक्तिको पृथक्-पृथक् भोजन परोसा। सेना, परिवार, हाथी, ऊँट, घोड़े और बैल आदिसहित महाराज विश्वामित्र पूर्णतः तृप्त हो गये। यह कौतुक देखकर मन्त्रियोंसहित विश्वामित्रने विचार किया कि 'इस उत्तम धेनुको अपने घर ले चलना चाहिये। ये ब्राह्मणदेवता इसे

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

रखकर क्या करेंगे।' ऐसा विचार करके विश्वामित्रने कहा—'मुनिश्रेष्ठ! यह गौ मुझे दे दीजिये। इसके मूल्यके रूपमें मैं आपको उत्तम रथ, हाथी, घोड़े तथा अन्य मनोवांछित पदार्थ दूँगा।'

वसिष्ठजीने कहा—राजन्! यह समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाली हमारी होमधेनु है। ब्राह्मणोंके लिये साधारण गौका विक्रय भी अनुचित है, फिर समस्त कामनाओंको देनेवाली नन्दिनीकी तो बात ही क्या है। महाराज! जो श्रेष्ठ ब्राह्मण गाय बेचकर उसका धन लेता है, उसे माताको बेचनेवाला चाण्डाल समझना चाहिये। इसलिये महामते! यह नन्दिनी मैं आपको नहीं दूँगा।

विश्वामित्र बोले—मुने! इस पृथ्वीपर जो कुछ भी रत्नभूत पदार्थ है; वह सब राजाका धन है, ऐसा नीतिज्ञ विद्वान् कहते हैं। अतः यह रत्नभूता नन्दिनी गाय मेरे द्वारा बलपूर्वक ले ली जा सकती है।

इतना कहकर उन्होंने नन्दिनीको बलपूर्वक ले जानेकी आज्ञा अपने सेवकोंको दे दी। उनके अनुचर नन्दिनीको डंडोंसे पीटते हुए ले जाने लगे। तब नन्दिनीने वसिष्ठजीसे पूछा—'मुने! क्या आपने मुझे इनको दे दिया है, जो ये मालिककी भाँति मुझे बलपूर्वक ले जाते हैं?' वसिष्ठजीने उत्तर दिया—'नहीं, मैं अपने प्राणोंपर संकट आ जाय तो भी तुम्हें त्याग नहीं सकता। ये लोग अन्यायपूर्वक तुम्हें ले जाते हैं। तुम स्वयं ही इनसे आत्मरक्षा करो।' इतना सुनकर नन्दिनीने क्रोधपूर्वक हुंकार किया; हुंकार करते ही उसके शरीरसे असंख्य म्लेच्छ-सेना प्रकट हुई। इस सेनाने विश्वामित्रके समस्त सैनिकोंको यमलोक पहुँचा दिया। तब विश्वामित्रने स्वयं ही धनुष लेकर उस सेनाका सामना किया। नन्दिनीके इन सैनिकोंने विश्वामित्रके हाथी, घोड़े आदि सबका सफाया कर डाला और उन्हें भी मारनेके लिये सब ओरसे घेर लिया। उनके प्राणोंपर संकट देख वसिष्ठजीने कहा—नन्दिनी! राजा अवध्य होता है; इन्हें बचाओ। राजाके होनेसे ही सब लोक सुरक्षित रहकर सन्मार्गमें प्रवृत्त होते हैं और कुमार्गसे दूर रहते हैं।' यह सुनकर नन्दिनी ज्यों-ही अपने म्लेच्छ-सैनिकोंको मना करनेके लिये आयी त्यों-ही विश्वामित्रने तलवार उठाकर उसपर घातक प्रहार करनेका विचार किया। यह देख वसिष्ठजीने तलवारसहित उनकी बाँहको स्तम्भित कर दिया—उनकी वह बाँह हिल-डुल नहीं सकी।

राजा विश्वामित्र बड़ी बुरी दशामें पड़ गये। उन्होंने लज्जित होकर वसिष्ठजीसे कहा—'मुनिश्रेष्ठ! इन भयंकर म्लेच्छोंके हाथसे मारे जाते हुए मुझ असहायकी अब आप ही रक्षा करें तथा मेरी इस बाँहको स्तम्भरहित (हिलने-डुलने लायक) कर दें। अब मैं घरको लौट जाऊँगा। युद्धसे मेरा कोई प्रयोजन नहीं है। उद्दण्ड पुरुष विद्या, ऐश्वर्य तथा लक्ष्मीको पाकर मदोन्मत्त हो वैसे ही चिरकालतक उस स्थितिमें नहीं रह पाता, जैसे मैं राजमदसे उन्मत्त हो युद्धमें नहीं टिक सका।' उनके ऐसा कहनेपर वसिष्ठजीने उनकी उस भुजाको स्तम्भदोषसे मुक्त कर दिया और हँसते हुए कहा—"राजन्! जाओ, मैंने तुम्हारी बाँह ठीक कर दी। अब कभी ब्राह्मणोंके साथ वैर न करना।'

वसिष्ठजीकी यह आज्ञा पाकर विश्वामित्रजी पैदल ही अपने महलको गये। सन्ध्याके समय नगरद्वारपर पहुँचकर वे अपने-आप ही कहने लगे—'क्षत्रियोंके बल, पराक्रम और जीवनको धिक्कार है! केवल ब्राह्मण-बल और ब्राह्मण-तेज ही प्रशंसाके योग्य है। अब मुझे ऐसा कर्म करना चाहिये, जिससे ब्राह्मण-बल प्राप्त हो। आजसे मैं अपना राज्य त्यागकर बड़ी भारी तपस्या करूँगा।' ऐसा निश्चय करके उन्होंने अपने पुत्र विश्वसहको राजपदपर स्थापित कर दिया और स्वयं तपस्याके लिये तपोवनको प्रस्थान किया।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

विश्वामित्रकी तपस्या, ब्राह्मणपदकी प्राप्ति, विश्वामित्रकी भेजी हुई शक्तिका वसिष्ठजीके द्वारा स्तम्भन और सरस्वतीके जलकी शुद्धि

सूतजी कहते हैं—द्विजवरो! इस प्रकार अपना राज्य छोड़कर विश्वामित्रजीने हिमालयपर्वतपर जा अत्यन्त भयंकर तपस्या प्रारम्भ की। फल-मूलका भोजन करते हुए वे तीन सौ वर्षोंतक केवल परब्रह्म परमात्माके चिन्तनमें संलग्न रहे। फिर उतने ही समयतक केवल वृक्षके सूखे पत्ते चबाकर रहे। उसके बाद एक हजार वर्षोंतक पानीमात्र पीकर रह गये। फिर सौ वर्षोंतक केवल वायु पीकर सन्तोष किया। विश्वामित्रजीकी उस तपःशक्तिको देखकर देवर्षियोंसहित साक्षात् ब्रह्माजी वहाँ आये और इस प्रकार बोले—'विश्वामित्र! मैं तुम्हारी इस तपस्यासे सन्तुष्ट हूँ, वर माँगो!'

विश्वामित्रजीने कहा—देव! मुझे ब्राह्मणत्व प्रदान कीजिये।

ब्रह्माजी बोले—तुम तो क्षत्रियकी सन्तान हो, फिर तुममें ब्राह्मणत्व कैसे आ सकता है!

विश्वामित्रजीने कहा—देवदेवेश्वर! आप परम उत्तम ब्रह्मलोकमें पधारिये। मैं या तो शरीर त्याग दूँगा अथवा ब्राह्मणकी ब्राह्मणता प्राप्त करूँगा।

तदनन्तर देवर्षियोंके मध्यमें खड़े हुए ऋचीक मुनि बोले—देव! मैंने विश्वामित्रजीके जन्मके लिये जो चरु तैयार किया था, उसमें ब्राह्म-मन्त्रोंद्वारा अपरिमित ब्रह्मतेजकी स्थापना की थी। इस कारण ये क्षत्रिय-पुत्र होनेपर भी वास्तवमें ब्राह्मण हैं; इसलिये आप इन्हें 'ब्रह्मर्षि' कहिये, जिससे हमलोग भी इन्हें श्रेष्ठ द्विज कहें।

तब ब्रह्माजीने दीर्घकालतक विचार करके कहा—'विश्वामित्र! तुम निःसन्देह ब्रह्मर्षि हो।' तत्पश्चात् ऋचीक आदि सब देवर्षियोंने भी उन्हें 'ब्रह्मर्षि' स्वीकार किया। इसके बाद उन सबके मध्यमें खड़े हुए मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठजीने कहा—'पितामह! विश्वामित्र क्षत्रियसे उत्पन्न हुए हैं, यह जानते हुए भी मैं इन्हें कदापि ब्राह्मण नहीं कहूँगा।' ऐसा कहकर वसिष्ठजी हाटकेश्वरक्षेत्रमें शंखतीर्थके समीप चले आये, जहाँ श्वेतद्वीपयुक्त पुण्यमयी ब्रह्मशिला विराजमान है। वहींपर सब पापोंको हरनेवाली शुभ सरस्वती नदी स्थित हैं। उसी सरस्वतीके तटपर आश्रम बनाकर वसिष्ठजी बड़ी भारी तपस्यामें संलग्न हो गये। विश्वामित्र भी उनका वध करनेके लिये वहीं आ पहुँचे और उनके आश्रमसे दूर दक्षिण दिशामें आश्रम बनाकर रहने लगे। वे प्रतिदिन उनके छिद्र ढूँढ़ा करते थे। बहुत दिनोंतक टिके रहनेपर भी उन्हें उनका कोई दोष नहीं दिखायी दिया। तब उन्होंने वसिष्ठजीके ऊपर आभिचारिक प्रयोग (मारण आदि) प्रारम्भ किया। इससे एक भयंकर शक्ति प्रकट हुई और बोली—'विप्रवर! आज्ञा दीजिये, मैं आपका कौन-सा कार्य सिद्ध करूँ।'

विश्वामित्र बोले—मेरे महान् शत्रु वसिष्ठका वध करो।

विश्वामित्रजीके इस प्रकार आदेश देनेपर वह वसिष्ठजीके आश्रमपर जानेके लिये उत्तर दिशाकी ओर प्रस्थित हुई। इसी समय वहाँ होनेवाले बड़े भारी उत्पातोंको देख महर्षि वसिष्ठने दिव्य दृष्टिसे सब कुछ जान लिया और अथर्ववेदके मन्त्रोंद्वारा उस कृत्याकी गतिको रोक दिया। तब वह शक्ति वसिष्ठजीसे इस प्रकार बोली—'मुने! सामवेद सब वेदोंमें प्रधान है। विश्वामित्रने सामवेदके मन्त्रोंद्वारा मेरी सृष्टि की है; अतः इसे अप्रामाणिक न होने दीजिये; मेरे प्रहारको सह लीजिये।'

वसिष्ठजीने कहा—शोभने! यदि ऐसी बात है तो तुम केवल मेरा स्पर्शमात्र कर लो; परंतु मर्मस्थानको न छूना।

तब विश्वामित्रजीकी छोड़ी हुई वह भयंकर शक्ति वसिष्ठजीके अंगोंका स्पर्शमात्र करके गिर पड़ी। इससे सन्तुष्ट होकर वसिष्ठजीने कहा—'महाभागे! जो मनुष्य परम श्रद्धासे युक्त होकर

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

चैत्रमासके शुक्ल पक्षकी अष्टमी तिथिको तुम्हारा पूजन करेंगे, वे वर्षभर नीरोग रहेंगे। अतः तुम्हें मेरे वचनसे सदा यहीं निवास करना चाहिये।' उनके इस प्रकार आदेश देनेपर वह शक्ति देवीके रूपमें वहीं स्थित हो नागर ब्राह्मणोंद्वारा पूजित होने लगी। उसका नाम धारा है, वह भक्तजनोंको सुख देनेवाली है।

जिस समय वसिष्ठजीने विश्वामित्रकी भेजी हुई शक्तिको स्तम्भित कर दिया, उस समय उसके अंगोंसे पसीना छूटने लगा। वह पसीना उसके पैरोंके मार्गसे प्रवाहित होकर शीतल जलके रूपमें परिणत हो गया और वहाँ उस जलसे भरा हुआ एक कुण्ड बन गया। वह जल परम पावन, स्वच्छ और निर्मल था। उसमें सब तीर्थोंसे सम्पन्न गंगाजी प्रत्यक्ष प्रकट हुईं। उनके जलसे भरे हुए शीतल कुण्डमें विधिपूर्वक स्नान करके जो पुरुष धारादेवीका दर्शन करता है, उसे धन, धान्य, पुत्र तथा राज्यका समस्त सुख प्राप्त होता है। धारादेवी नागर ब्राह्मणोंके साढ़े साठ गोत्रोंकी कुलदेवी हैं। इसीलिये नागरोंको साथ रखनेसे ही वहाँकी यात्रा सफल होती है। नागरोंके बिना की हुई जो यात्रा है, उससे परमेश्वरी धारा सन्तुष्ट नहीं होतीं।

सरस्वती नदी वसिष्ठजीकी प्राण-रक्षामें सहायक हुई थी, इसलिये विश्वामित्रजीने कुपित होकर शाप दे दिया कि 'तुम्हारा जल रक्तमय हो जायगा।' तबसे उसका जल रक्तमय हो गया। चण्डशर्मा आदि जितने भी तपस्वी वहाँ ठहरे थे, वे सब-के-सब बहुत दूर चले गये। मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठ भी अर्बुदाचलपर चले गये। ब्रह्मर्षि विश्वामित्र चमत्कारपुरमें गये और हाटकेश्वरक्षेत्रमें आश्रम बनाकर उन्होंने भयंकर तपस्या की। उस तपस्यासे उनमें सृष्टिरचनाकी शक्ति आ गयी, जिससे वे ब्रह्माजीके साथ होड़ करने लगे।

तदनन्तर किसी समय सरस्वती नदी अर्बुदाचलपर जाकर अत्यन्त दीन-दुःखी हो मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठसे बोली—'मुने! आपके ही लिये विश्वामित्रने क्रोधपूर्वक मुझे शाप दिया है, जिसके कारण मैं रक्त बहानेवाली नदी हो गयी और तपस्वीजनोंने मेरे तटपर रहना छोड़ दिया। अब मुझपर ऐसी कृपा कीजिये, जिससे मेरे प्रवाहमें फिर जल हो और रक्तराशिका नाश हो जाय।'

वसिष्ठजी बोले—भद्रे! मैं ऐसा यत्न करूँगा, जिससे तुम्हारे प्रवाहमें पुनः जल हो जाय तथा रक्तका निवारण हो।

ऐसा कहकर वसिष्ठजी उस पाकरके वृक्षकी जड़के समीप गये, जहाँसे सरस्वती नदी निकली थीं। वहाँ समाधि लगाकर धरतीपर बैठ गये और ब्राह्ममन्त्रका उच्चारण करते हुए वहाँकी भूमिको देखने लगे। तब धरतीको छेदकर दो छिद्रोंसे जलकी धाराएँ बह निकलीं। जलका एक स्रोत तो वहींसे प्रकट हुआ, जहाँ सरस्वतीका उद्गम हुआ था। वृक्षकी जड़से निकले हुए उस जलप्रवाहने सम्पूर्ण रक्तको बहा दिया, जिससे महानदी सरस्वती परम निर्मल हो गयीं। दूसरा प्रवाह जो संभ्रमवश उत्पन्न हुआ था, उससे भ्रमती नामसे विख्यात नदी हुई। इस प्रकार सरस्वती नदी पुनः अपने पूर्वस्वरूपको प्राप्त हुई थी।

पंचपिण्डिका गौरी-पूजासे अमाकी सौभाग्यवृद्धि, अमाके पूर्वजन्मका चरित्र

सूतजी कहते हैं—पूर्वकालमें जयसेन नामसे विख्यात एक राजा हो गये हैं, जो काशी प्रदेशके शासक थे। उनके एक सहस्र स्त्रियाँ थीं। इनके अतिरिक्त उन्हें मद्रराज विष्वक्सेनकी सुन्दरी कन्या अमा भी पत्नीरूपमें प्राप्त हुई। अमा उन्हें बहुत प्रिय थी। वह प्रातःकाल उठकर गंगाजीके शुभ तटपर जाती और वहाँकी भीगी मिट्टी लेकर उसीकी पंचपिण्डात्मिका गौरी-मूर्ति बनाकर पाँच मन्त्रोंसे पूजा करती थी। प्रतिदिन इसी प्रकार विधिवत् पूजा सम्पन्न करके वह राजमहलमें लौट आती

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

थी। अमा जैसे-जैसे गौरीकी पूजा करती, वैसे-ही-वैसे उसके सौभाग्यकी वृद्धि होती जाती थी। प्रतिदिन उसीके सौभाग्यकी वृद्धि होती देख उसकी सौतोंको बड़ा दुःख होता था। वे कहती थीं—'इसने पूर्वजन्ममें पुण्य किये हैं। उन्हींका यह फल है।' इस प्रकार दुःखमें पड़ी हुई उसकी सौतोंका बहुत समय व्यतीत हो गया।

एक दिन सब सौतें आपसमें सलाह करके गंगातटपर उसके समीप गयीं, जहाँ वह पंचपिण्डिका गौरीकी पूजा करती थी। उन सबको वहाँ आयी देख अमा गौरीजीकी पूजा छोड़कर उनके सम्मुख गयी और हाथ जोड़कर बोली—'महाभाग्यवती देवियो! आपका बारंबार स्वागत है। आज्ञा दीजिये, मै आपलोगोंकी क्या सेवा करूँ?'

सौतें बोलीं—हम सब लोग तुम्हारे सौभाग्यकी आगसे जली हुई हैं, इसलिये कौतूहलवश यहाँ आयी हैं। महाभागे! तुम प्रतिदिन जो पाँच पिण्डोंकी पूजा करती हो, उसीसे तुम्हारे सौभाग्यकी वृद्धि हो रही है या इसका कोई दूसरा कारण है?

अमाने कहा—आप सब लोग मेरी बड़ी बहिनें हैं, आपके प्रति मेरे मनमें तनिक भी ईर्ष्या नहीं है। अतः गोपनीय बात भी आपके सामने प्रकट करती हूँ। पूर्वजन्ममें मैं कुसुमपुरके वैश्य-पुत्र वीरसेनकी पुत्री थी। उन्होंने विवाहके समय धर्मपूर्वक मेरा दान किया। साथ ही प्रेमपूर्वक कहा कि 'पुत्री! जबतक तुम गौरीजीकी पूजा न कर लेना तबतक जल भी न पीना। इससे तुम्हें अभीष्ट मनोरथकी प्राप्ति होगी।' तब मैंने बहुत अच्छा कहकर उनकी आज्ञा स्वीकार की। ससुराल आनेपर मैं गौरीजीकी पूजामें तत्पर हुई। प्रतिदिन पंचपिण्ड बनाकर उनकी पूजा करती और उन पिण्डोंका जलमें विसर्जन कर देती थी। कुछ कालके अनन्तर मेरे पति वाणिज्यके लिये देशान्तरमें जाने लगे। उस समय स्नेहवश उन्होंने मुझे भी साथ ले लिया। जेठके सूर्य तप रहे थे। भयंकर गरमी पड़ रही थी। ऐसे समयमें वैश्योंका वह समूह निर्जल मरुप्रदेशमें जा पहुँचा। वहाँ एक वृक्षके नीचे सबने विश्राम किया। मैंने देखा सब ओर जल लहरा रहा है। सोचा, पास ही इतना अधिक जल है, स्नान करके गौरीजीकी पूजा कर लूँ, फिर स्वादिष्ट जल पीऊँगी। यह विचार कर मैं क्रमशः एक-एक पग आगे बढ़ती गयी। वहाँ जल कहाँ, मृगतृष्णा थी। जितना ही दूर जाती, उतना ही दूर वह मृगतृष्णा दिखायी देती थी। अन्तमें प्याससे पीड़ित होकर मैं उस बालूमें गिर पड़ी और मेरे सब अंगोंमें फफोले पड़ गये। इसी समय महाभारतका एक प्रसंग मुझे याद आ गया। मुनिवर त्रितने जैसे पूजा की थी, उसी प्रकार मैं भी क्यों न गौरीकी पूजा कर लूँ। ऐसा सोचकर बालूकी पाँच मूठी लेकर मैंने पाँच मन्त्रोंसे देवीका पूजन किया; उसके बाद मेरी मृत्यु हो गयी। उसी पुण्यके प्रभावसे मैं दशार्ण देशके राजाके घर उत्पन्न हुई। इस जन्ममें भी मुझे पूर्वजन्मकी स्मृति बनी हुई है। गौरीदेवीके प्रसादसे ही मैं आपलोगोंसे छोटी होकर भी सौभाग्यमें बड़ी हूँ। इसीलिये पंककी पंचपिण्डा गौरी बनाकर प्रतिदिन पूजा करती हूँ। यह गुप्त रहस्य है, जो मैंने आपलोगोंपर प्रकट किया है। इस सत्यके प्रभावसे गौरीदेवी मेरा अभीष्ट सिद्ध करें।

यह सुनकर सब सौतोंने हाथ जोड़कर विनयपूर्वक प्रणाम करके कहा—बहिन! हमपर भी कृपा करो और उन पाँचों मन्त्रोंको हमें भी बताओ, जिससे परमेश्वरी गौरी प्रसन्न होती हैं।

अमा बोली—मैं सब बताती हूँ, सुनिये और सुनकर उसीके अनुसार आपलोग भी कीजिये।

उसके ऐसा कहनेपर सब सौतें मन, वाणी और क्रियाद्वारा उसकी शिष्या हो गयीं। तब उसने उन पाँच मन्त्रोंका उपदेश किया—

(१) नमः पृथिव्यै क्षान्तीशि। (२) नमः आपोमये शुभे। (३) तेजस्विनि नमस्तुभ्यम्। (४) नमस्ते वायुरूपिणि। (५) आकाशरूप-सम्पन्ने पञ्चरूपे नमो नमः।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

(१) क्षमाकी अधीश्वरी देवि! पृथिवीरूपमें आपको नमस्कार है। (२) शुभे! आप ही जलरूपा हैं, आपको नमस्कार है। (३) तेजस्-तत्त्वकी स्वामिनि! आपको नमस्कार है। (४) वायुस्वरूपा देवि! आपको नमस्कार है। (५) आकाशरूपसे सम्पन्न पंचरूपा देवि! आपको बार-बार नमस्कार है।

इस प्रकार इन मन्त्रोंका उपदेश देकर अमाने पूजा पूरी की। तत्पश्चात् उसने गौरीदेवीकी रत्नमयी प्रतिमा निर्माण की और उसे हाटकेश्वरक्षेत्रमें स्थापित किया। जो नारी उस गौरी-प्रतिमाका पूजन करती है, वह सब पापोंसे मुक्त हो शीघ्र ही अपने पतिकी प्रिया होती है—उसे पूर्णतः पतिप्रेम उपलब्ध होता है।

पूर्वजन्ममें अमारूपा लक्ष्मीदेवीके द्वारा पंचपिण्डिका गौरीकी उत्पत्ति एवं स्थापनाका वर्णन

लक्ष्मीजी (भगवान् विष्णुसे) कहती हैं—प्रभो! इस प्रकार पूर्वजन्ममें 'अमा' होकर मैंने गौरी-पूजाके प्रभावसे राज्य तथा उस परम सौभाग्यको प्राप्त किया, जो सम्पूर्ण युवतियोंके लिये दुर्लभ वस्तु है। तथापि मुझे कोई सन्तान नहीं प्राप्त हुई। एक समय मुनिवर दुर्वासाजी चातुर्मास्य व्रत करनेके लिये आनर्त-नरेशके भवनमें आये। राजाने उनका पूजन किया और कहा—'मुनिश्रेष्ठ! संसारमें मेरे समान धन्य दूसरा कोई नहीं है, क्योंकि आपके युगल चरणारविन्दोंको मस्तकद्वारा स्पर्श करनेका सौभाग्य आज मुझे प्राप्त हुआ है। बताइये, मैं आपकी क्या सेवा करूँ?

दुर्वासा बोले—राजन्! मैं तुम्हारे यहाँ रहकर विधिपूर्वक चातुर्मास्य व्रत सम्पन्न करूँगा। आप मेरी सेवा-शुश्रूषाकी व्यवस्था कर दें।

'बहुत अच्छा' कहकर महाराजने उनकी आज्ञा शिरोधार्य की। सेवाका सारा भार मुझपर ही था। जैसे पुत्री पिताकी सेवा करती है, उसी प्रकार मुनिकी सेवाके योग्य जो कार्य था, वह सब मैंने स्वयं ही किया। चौमासा बीतनेपर जब मुनि जाने लगे, तब उन्होंने सन्तुष्ट होकर कहा—'बेटी! बताओ, मैं तुम्हारा कौन-सा अभीष्ट कार्य सिद्ध करूँ?' तब मैंने उनके चरणोंमें बारम्बार प्रणाम करके कहा—'ब्रह्मन्! मुझे कोई सन्तान नहीं है, जिस व्रत-नियम, दान अथवा होमसे मुझे सन्तान प्राप्त हो, वह बतानेकी कृपा करें।' मेरी बात सुनकर मुनिने बहुत देरतक ध्यान किया, इसके बाद मुसकराते हुए कहा—बेटी! पूर्वजन्ममें तपी हुई बालूसे तुमने पार्वतीजीका पूजन किया है। अतः भक्ति-भावसे राज्य पाकर भी तुम्हारे मनमें कुछ सन्ताप रह गया है। देवता न तो काठमें रहते हैं, न पत्थरमें और न मिट्टीमें ही रहते हैं, भावमें ही देवताका वास है। भावयुक्त मन्त्रके संयोगसे सर्वत्र देवताका सान्निध्य हो जाता है।* तुमने भक्तिपूर्वक मन्त्र-प्रयोग किया इससे गौरीदेवी वहाँ आ गयीं। फिर तपी हुई बालूसे तुमने उनका पूजन किया, इससे वे तापयुक्त हुईं; यही कारण है कि तुम्हें सर्वदा सन्ताप रहता है। अतः अब हाटकेश्वरमें जाकर ब्रह्म-रुद्रमयी गौरीदेवीकी पंचपिण्डी मूर्ति स्थापित करो। तत्पश्चात् जब सूर्यदेव वृषराशिपर स्थित हों, उस समय ग्रीष्मकालमें गौरीजीके ऊपर दिन-रात जलधारा गिरनेकी व्यवस्था करो। इससे ज्यों-ज्यों गौरीजीको ठण्डक लगेगी और ताप कम होगा, त्यों-ही-त्यों तुम्हारा मानसिक सन्ताप भी कम होता जायगा। इसके बाद तुम्हें गर्भ रहेगा और तुम पुत्र प्राप्त करोगी। तुम्हारा वह पुत्र राज्यका भार वहन करनेमें समर्थ, शूरवीर तथा तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध होगा। दूसरी कोई भी जो स्त्री इस प्रकार ज्येष्ठमासमें

* न देवो विद्यते काष्ठे पाषाणे मृत्तिकासु च। भावेषु विद्यते देवो मन्त्रसंयोगसंयुतः॥ (स्क० पु०, ना० खं १६८। १६-१७)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

गौरीदेवीकी पूजा करेगी, वह भी तुम्हारी ही भाँति उत्तम फलकी भागिनी होगी।'

लक्ष्मीदेवी कहती हैं—तदनन्तर मैंने मुनीश्वर दुर्वासाजीसे पुनः कहा—'ब्रह्मन्! ऐसा कोई व्रत बताइये, जिसके सम्यक् पालनसे भविष्यमें मनुष्य-योनिमें जन्म न होकर देवभावकी प्राप्ति हो।' तब वे बहुत देरतक ध्यान करके बोले—'बेटी! गौरीजीको सन्तुष्ट करनेवाला एक उत्तम व्रत है, जिसका भलीभाँति अनुष्ठान करनेसे स्त्री देवीस्वरूपा हो जाती है। तुम उसी व्रतका अनुष्ठान करो, इससे देवभावको प्राप्त हो जाओगी।' मैंने पूछा—'मुने! किस-किस समय और किस-किस विधिसे उस व्रतका पालन करना चाहिये?'

दुर्वासा बोले—भाद्रपदमासके कृष्ण पक्षकी तृतीया तिथिको प्रातःकाल उठकर दाँतून करो। फिर स्नान आदिसे शुद्ध हो श्रद्धापूर्ण हृदयसे गौरीजीका नाम लेकर उन्हींकी प्रसन्नताके लिये उपवास व्रत करनेका नियम ग्रहण करे। तदनन्तर रात्रि प्रारम्भ होनेपर मिट्टीकी चार गौरीकी मूर्तियाँ बनावे और एक-एक पहरमें एक-एक मूर्तिकी पूजा करे। पहली गौरी पूर्वोक्त प्रकारसे पंचपिण्डीमयी ही बनानी चाहिये और प्रथम प्रहरमें उनकी इस प्रकार पूजा करनी चाहिये—

आवाहन और नमस्कार

हिमाचलगृहे जाता देवि त्वं शंकरप्रिये।
मेनागर्भसमुद्भूता पूजां गृह्ण नमोऽस्तु ते॥

'शिवप्रिया देवी गौरी! तुम गिरिराज हिमालयके घरमें मेनाके गर्भसे उत्पन्न हुई हो, यह पूजा स्वीकार करो, तुम्हें नमस्कार है।'

इस प्रकार प्रार्थना करके श्रद्धापूर्वक कर्पूरयुक्त धूप निवेदन करे। लाल सूतकी बत्ती बनाकर उसे घीमें डुबो दे और उसीका दीपक अर्पण करे। तत्पश्चात् चमेलीके फूलोंसे पूजा करके लड्डूका नैवेद्य निवेदन करे। नैवेद्यको लाल वस्त्रसे ढककर रखे। उसके बाद देवीको अर्घ्य दे। अर्घ्यमें उसी वृक्षका फूल डाले, जिसका दन्तधावन किया गया हो। फूल, जल, अक्षत और गन्ध आदिसे युक्त मातुलिंग (बिजौरा नीबू) लेकर निम्नांकित मन्त्रका उच्चारण करते हुए भक्तिपूर्वक अर्घ्य देना चाहिये—

शंकरस्य प्रिये देवि हिमाचलसुते शुभे।
अर्घ्यमेनं मया दत्तं प्रतिगृह्ण नमोऽस्तु ते॥

'भगवान् शंकरकी प्रियतमा तथा गिरिराज हिमवान्की पुत्री कल्याणमयी गौरीदेवी! मेरे द्वारा निवेदन किये हुए इस अर्घ्यको ग्रहण करो। तुम्हें सादर नमस्कार है।'

तदनन्तर शरीरशुद्धिके लिये मातुलिंग (बिजौरा नीबू)-का ही प्राशन (भोजन) करे। फिर दूसरे पहरके अन्तमें गौरीदेवीकी परम सुन्दर अर्धनारीश्वरकी मूर्तिकी निम्नांकित मन्त्रसे भक्तिपूर्वक पूजा करे—

वामाङ्गार्धे शरीरस्य या हरस्य व्यवस्थिता।
सा मे पूजां प्रगृह्णातु तस्यै देव्यै नमोऽस्तु ते॥

'जो भगवान् शंकरके श्रीअंगमें वामार्ध भागमें विराज रही हैं, वे गौरीदेवी मेरी पूजा ग्रहण करें, उनको नमस्कार है।'

इस प्रकार अभ्यर्थना करके अगुरुसहित धूप निवेदन करे। फिर भलीभाँति पूजा करके गुड़का नैवेद्य भोग लगावे। तत्पश्चात् नीचे लिखे मन्त्रको पढ़कर नारियलके फलसे अर्घ्य देना चाहिये तथा शरीरशुद्धिके लिये नारियल ही खाना चाहिये।

अर्घ्य-मन्त्र

अर्धनारीश्वरौ यौ च संस्थितौ परमेश्वरौ।
अर्घ्यो मे गृह्यतां देवौ स्यातां सर्वसुखप्रदौ॥

'अर्धनारीश्वररूपसे स्थित परमेश्वर शिव और पार्वती देवी! आप दोनों मेरे इस अर्घ्यको ग्रहण करें और सब प्रकारका सुख देनेवाले हों।'

तदनन्तर तीसरा पहर आनेपर शतपत्रीसे शिव-पार्वतीका पूजन करके प्रार्थना करे—

उमामहेश्वरौ देवौ यौ तौ सृष्टिलयान्वितौ।
तौ गृह्णीतामिमां पूजां मया दत्तां प्रभक्तितः॥

'सृष्टि और संहारकी शक्तिसे युक्त जो पार्वतीदेवी और महादेवजी हैं, वे भक्तिपूर्वक दी हुई मेरी इस पूजाको स्वीकार करें।'

इसके बाद गुग्गुलका धूप दे। नैवेद्य समर्पित

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

करे। चमेली और जलका अर्घ्य देकर उसीका प्राशन करे। अथवा नागरमोथाके चूर्णसे धूप और मैनफलसे अर्घ्य देना चाहिये और शरीर-शुद्धिके लिये उसीका आहार करना चाहिये।

अर्घ्य-मन्त्र

उमामहेश्वरौ देवौ सर्वकामसुखप्रदौ।
गृह्णीतामर्घ्यदानं मे दयां कृत्वा महत्तमाम्॥

'सम्पूर्ण कामनाओं और सुखोंको देनेवाले भगवान् शिव और पार्वतीदेवी मुझपर बड़ी भारी दया करके अर्घ्यदानको ग्रहण करें।'

चौथा पहर आनेपर निम्नांकित मन्त्रद्वारा भृंगराज-पुष्प (भँगरैयाके फूल)-से पंचपिण्डिका गौरीकी भक्तिपूर्वक पूजा करके इस प्रकार अभ्यर्थना करे—

पृथिव्यादीनि भूतानि यानि प्रोक्तानि पञ्च च।
यस्या रूपाणि देवेशि पूजां गृह्ण नमोऽस्तु ते॥

'देवेश्वरि! पृथ्वी आदि जो पाँच भूत बताये गये हैं, वे सब तुम्हारे स्वरूप हैं, तुम्हें नमस्कार है। इस पूजाको ग्रहण करो।'

इसके बाद निम्नांकित मन्त्रसे अर्घ्य दे—

पञ्चभूतमयी देवी पञ्चधा च व्यवस्थिता।
अर्घ्यमेनं मया दत्तं सा गृह्णातु सुरेश्वरी॥

'पंचभूतस्वरूपा गौरीदेवी पाँच मूर्तियोंमें स्थित हैं, वे देवेश्वरी मेरे दिये हुए इस अर्घ्यको ग्रहण करें।'

इस प्रकार अर्घ्य देकर गीत-वाद्य और कीर्तन आदिकी ध्वनिके साथ सम्पूर्ण रात्रि व्यतीत करे। नींद न ले। फिर निर्मल प्रभातकालमें सूर्योदय होनेपर स्नान करके ब्राह्मणदम्पतिका भक्तिपूर्वक पूजन करे। राजकुमारी! इसके बाद हथिनी या घोड़ी मँगाकर उसीपर चारों गौरी-विग्रहोंकी सवारी निकाले। साथ-साथ गीत, वाद्य, मंगल-ध्वनि तथा वेदमन्त्रोंका उच्चारण होता रहे। किसी नदी या तालाबके समीप ले जाकर उसीमें उन विग्रहोंका विसर्जन करे।

विसर्जन-मन्त्र

आहूतासि मया देवि पूजितासि मया शुभे।
मम सौभाग्यदानाय यथेष्टं गम्यतामिति॥

'कल्याणमयी देवि! मैंने आपका आवाहन और पूजन किया है, अब आप मुझे सौभाग्य प्रदान करनेके लिये इच्छानुसार पधारें।'

लक्ष्मीदेवी कहती हैं—प्रभो! इस प्रकार पूर्वजन्ममें मैंने भाद्रपद मासकी उस तृतीयको भक्तिपूर्वक गौरीदेवीका व्रत किया और द्वितीय तथा तृतीय प्रहरमें जब मैंने उनके श्रीविग्रहकी ओर देखा, तब वे रत्नमयी हो गयी थीं। उनका श्रीविग्रह सब ओरसे प्रकाशपुंजसे परिपूर्ण हो रहा था। जब विसर्जन करनेके उद्देश्यसे मैं नदी-तटपर गयी, तब मेरे मनमें संकल्प-विकल्प होने लगा, विसर्जन करूँ या न करूँ?' इतनेमें सुरेश्वरी गौरीने प्रकट होकर कहा—'बेटी! तुम इस जलमें मेरी भावनामात्र कर लो, फिर इस विग्रहको ले चलकर हाटकेश्वरक्षेत्रमें स्थापित करो। इस समय तुम्हारे मनमें जो-जो इच्छा हो, उसके अनुसार वर माँगो।' मैंने कहा—'देवि! मैं मनुष्ययोनिमें किसी प्रकार जन्म न लूँ, भगवान् विष्णु मेरे पति हों।' तब 'तथास्तु' कहकर पार्वती देवी अन्तर्धान हो गयीं। इसके बाद मैंने हाटकेश्वर क्षेत्रमें चारों गौरी-विग्रहोंका स्थापन किया। उसीके प्रभावसे मुझे आप साक्षात् भगवान् ही पतिरूपमें प्राप्त हुए हैं, जो कि सनातन, अविनाशी एवं सदा मेरे ऊपर स्नेहदृष्टि रखनेवाले हैं।

सूतजी कहते हैं—भगवती लक्ष्मीजीके मुखसे उनके पूर्वजन्मका यह वृत्तान्त सुनकर शंख, चक्र, गदा धारण करनेवाले भगवान् विष्णु बहुत प्रसन्न हुए। द्विजवरो! जो मनुष्य प्रातःकाल उठकर इस चरित्रको भक्ति-भावसे पढ़ता है, उसका कभी लक्ष्मीसे वियोग नहीं होता तथा कभी उसे दुर्भाग्यका दिन नहीं देखना पड़ता।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

हाटकेश्वरक्षेत्रमें तीनों पुष्करतीर्थोंके आगमनका वृत्तान्त

ऋषियोंने पूछा—सूतजी! सुना जाता है, त्रिभुवनविख्यात पुष्कर नामक तीर्थ साक्षात् ब्रह्माजीके द्वारा निर्मित हुआ है। उसका प्रमाण एक योजन है। हम जानना चाहते हैं, हाटकेश्वरक्षेत्रमें उस तीर्थका प्रादुर्भाव कैसे हुआ?

सूतजीने कहा—महर्षियो! स्वयम्भू ब्रह्माजीको नमस्कार करके मैं पुष्करके प्रादुर्भावका वृत्तान्त सुनाता हूँ। एक समयकी बात है, देवर्षि नारदजी तीनों लोकोंमें भ्रमण करके ब्रह्मलोकमें ब्रह्माजीके समीप गये और उन्हें प्रणाम करके उनके आगे विनीतभावसे बैठे।

तब ब्रह्माजीने पूछा—वत्स! इस समय तुम कहाँसे आये हो?

नारदजीने कहा—प्रभो! इस समय मर्त्यलोकसे आया हूँ।

ब्रह्माजीने पूछा—मर्त्यलोकका क्या समाचार है? वहाँके लोग क्या बातें करते हैं?

नारदजीने कहा—सुरश्रेष्ठ! इस समय मर्त्यलोकमें कलिका राज्य है। वहाँके राजा सन्मार्ग त्यागकर लोभके वशीभूत हो गये हैं और धनके लिये अत्यन्त निर्दयतापूर्वक प्रजाको पीड़ा देते हैं। उनमें शूरता-वीरताका तो नाम नहीं है। सब परायी स्त्रियोंका सतीत्व नष्ट करते हैं। वे ब्राह्मण, गुरु, देवता तथा पितरोंका भी पूजन नहीं करते। ब्राह्मण भी शौचाचारसे रहित हो वेद बेचते, दूसरोंसे दान लेनेमें आसक्त रहते, सन्ध्या नहीं करते, दयाहीन बर्ताव करते तथा वैश्योंकी भाँति सदा कृषिकर्म और पशुपालनमें संलग्न रहते हैं। भूतलपर सब वैश्योंका उच्छेद हो गया है। शूद्र सदा धर्मानुष्ठानकी कामना रखते और तपस्यामें तत्पर रहते हैं। जिसके घरमें धन है, युवती स्त्रियाँ हैं, उसीके साथ सब लोग मित्रता करते हैं। समस्त तीर्थ और आश्रम कलियुगके भयसे दसों दिशाओंमें भागते हैं। स्त्रियाँ अपने पतिके साथ विवाद करती हैं, पतिकी सेवा आदि छोड़कर मनमाने व्रत करती हैं। इस समय मर्त्यलोकमें मैंने सास-पतोहू, पिता-पुत्र, भाई-भाई, स्वामी-सेवक, चोर-राजा तथा पति-पत्नीमें कलह होते देखे हैं। मेघ थोड़ा जल बरसाते हैं। पृथ्वीपर खेतीकी उपज बहुत कम हो गयी है। गौएँ बहुत थोड़ा दूध देने लगी हैं और उनके दूधमें घीका सर्वथा अभाव हो गया है। इस प्रकार वहाँका कलह देखते-देखते मेरा चित्त उद्भ्रान्त-सा हो उठा था, इसलिये मैं यहाँ आया; अब फिर वहीं जानेका विचार हो रहा है।

नारदजीकी यह बात सुनकर ब्रह्माजी यह विचार करने लगे कि—'मर्त्यलोकमें मेरा पुष्कर नामक तीर्थ भी है, जो कलिकालसे व्याप्त होकर नष्ट हो जायगा, अतः मैं उसे किसी दूसरे तीर्थमें ले जाऊँगा, जहाँ कलियुगका प्रवेश नहीं होता।' ऐसा निश्चय करके पितामहने कमल हाथमें लेकर कहा—'हे पद्म! तुम पृथ्वीपर उस स्थानमें गिरो जहाँ कलियुग न हो।' ब्रह्माजीसे प्रेरित हुआ कमल समूची पृथ्वीपर घूमकर हाटकेश्वरक्षेत्रमें गिरा। जहाँ पहले गिरा, वहाँसे उछलकर वह दूसरे स्थानपर गिरा और फिर वहाँसे भी उछलकर तीसरे स्थानपर जा गिरा। अतः उन तीनों स्थानोंपर तीन कुण्ड हो गये। उन तीनों कुण्डोंमें स्फटिक-मणिके समान स्वच्छ जल भर गया। इसी समय साक्षात् पितामह ब्रह्माजी भी वहाँ आ पहुँचे। हाटकेश्वरक्षेत्रका दर्शन करके वे भूतलपर बैठे और बहुत समयतक ध्यान करके ज्येष्ठ, मध्य तथा कनिष्ठ तीनों पुष्करोंको वहाँ ले आये। तत्पश्चात् वे प्रसन्नचित्त होकर बोले—'मैं कलिकालके भयसे इन तीनों पुष्करोंको यहाँ लाया हूँ। जो मनुष्य परम श्रद्धापूर्वक यहाँ स्नान करेंगे, वे अविनाशिनी उत्तम सिद्धिको प्राप्त होंगे। जो लोग एकाग्रचित्त हो यहाँ कार्तिककी पूर्णिमाको स्नान और गयाशीर्षमें श्राद्ध करेंगे, उनको बड़ा भारी पुण्य प्राप्त होगा।'

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth
279 Skandpuran_Section_39_2_Back

अतिथि-सत्कारका माहात्म्य

ऋषि बोले—महाभाग सूतजी! आप हमें अतिथिसत्कारका उत्तम माहात्म्य विस्तारपूर्वक बताइये।

सूतजीने कहा—मुनीश्वरो! आप सब लोग इस उत्तम माहात्म्यको श्रवण करें। गृहस्थोंके लिये अतिथि-सत्कारसे बढ़कर दूसरा कोई महान् धर्म नहीं है। अतिथिसे महान् कोई देवता नहीं है; अतिथिके उल्लंघनसे बड़ा भारी पाप होता है। जिसके घरसे अतिथि निराश होकर लौट जाता है, उसे वह अपना पाप देकर और उसका पुण्य लेकर चल देता है। जो अतिथिका आदर नहीं करता, उसके सौ वर्षोंके सत्य, तप, स्वाध्याय, दान और यज्ञ आदि सभी सत्कर्म नष्ट हो जाते हैं। जिसके घरपर दूरसे प्रसन्नतापूर्वक अतिथि आते हैं, वही गृहस्थ कहा गया है; शेष सब लोग तो गृहके रक्षकमात्र हैं*। जिन्होंने पूर्वजन्ममें पुण्य किये हैं, उन्हीं मनुष्योंके यहाँ इस पृथ्वीपर श्राद्ध, दान और अतिथिके लिये मधुर वचन—ये तीन प्रकारके सत्कर्म होते हैं। अतिथिको सन्तुष्ट करनेसे गृहस्थके ऊपर सब देवता सन्तुष्ट रहते हैं और अतिथिके विमुख होनेपर सम्पूर्ण देवता भी विमुख हो जाते हैं, इसमें संशय नहीं है। इसलिये गृहस्थको चाहिये कि वह सदा अतिथिको सन्तुष्ट करे। यदि वह अपने लिये पुण्य चाहता है तो आत्मदान करके भी अतिथिको प्रसन्न रखे। द्विजवरो! गृहस्थके लिये तीन प्रकारके अतिथि बताये गये हैं—श्राद्धीय, वैश्वदेवीय तथा सूर्योद। पितरोंके लिये श्राद्ध और ब्राह्मण-भोजनका संकल्प हो जानेपर जो श्राद्धकालमें स्वतः आ जाता है, उसे श्राद्धीय अतिथि कहते हैं। जो दूरका रास्ता तै करके थका-माँदा बलिवैश्वदेवकर्मके समय (मध्याह्नकालमें) आता है, उस अभ्यागतको वैश्वदेवीय अतिथि जानना चाहिये। पहलेका आया हुआ 'वैश्वदेवीय' अतिथि नहीं कहलाता। प्रिय हो या द्वेषपात्र, मूर्ख हो या पण्डित, यदि वैश्वदेवकालमें आया है, तो वह स्वर्गकी प्राप्ति करानेवाला अतिथि है। उसके गोत्र, चरण (शाखा), स्थान और वेद आदिके विषयमें न पूछे। केवल यज्ञोपवीत देखकर भक्तिपूर्वक भोजन करावे। तीसरा अतिथि सूर्योद वह है, जो दिनमें या रातमें भोजनके बाद घरपर आता है। उसके लिये भी गृहस्थको यथाशक्ति अन्नदान करना चाहिये। जिसके घरपर आया हुआ सूर्योद अतिथि सत्कार प्राप्त किये बिना निराश लौट जाता है, वह उसे अपना पातक देकर चला जाता है। तृण, भूमि, जल और चौथा मीठा वचन—ये सब वस्तुएँ सत्पुरुषोंके घरमें कभी समाप्त नहीं होतीं। अतिथिका स्वागत करनेसे गृहस्थको सदा तृप्ति बनी रहती है। उसे आसन देनेसे स्वयम्भू ब्रह्माजी प्रसन्न होते हैं। अर्घ्य प्रदान करनेसे शिवजी सन्तुष्ट होते हैं। पाद्य देनेसे इन्द्र आदि देवता प्रसन्न रहते हैं तथा उसे भोजन देनेसे भगवान् विष्णु सन्तुष्ट होते हैं। अतिथि सम्पूर्ण देवताओंका स्वरूप होता है; अतः सदा उसका पूजन करना और विशेषतः उसे भोजन देना चाहिये। अतिथि न मिले तो अतिथिके नामसे किसी दूसरे ब्राह्मणको ही गृहस्थ पुरुष भोजन करावे।

~~o~~

* अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात्प्रतिनिवर्तते। स दत्त्वा दुष्कृतं तस्मै पुण्यमादाय गच्छति॥
सत्यं तथा तपोऽधीतं दत्तमिष्टं शतं समाः। तस्य सर्वमिदं नष्टमतिथिं यो न पूजयेत्॥
दूरादतिथयो यस्य गृहमायान्ति निर्वृताः। स गृहस्थ इति प्रोक्तः शेषाश्च गृहरक्षिणः॥
(स्क० पु०, ना० उ० १७६। ४—७)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

हाटकेश्वरक्षेत्रमें पुष्करके प्राकट्यका वार्षिक समय, उसकी महिमा तथा ब्रह्मज्ञानसाधक दो तीर्थोंका माहात्म्य

ब्रह्माजी बोले—ब्राह्मणो! पृथ्वीपर नैमिषारण्य, अन्तरिक्षमें पुष्कर और तीनों लोकोंमें कुरुक्षेत्रकी विशेष स्थिति मानी गयी है। मेरे आदेशसे पाँच रातके लिये पुष्कर क्षेत्र इस पृथ्वीपर अवश्य आवेगा। कार्तिक शुक्ल पक्षमें एकादशीसे लेकर पूर्णिमातक पाँच राततक यहाँ पुष्करतीर्थका वास होगा। इन पाँच रात्रियोंमें जो स्नान करेगा अथवा श्रद्धापूर्वक श्राद्धका अनुष्ठान करेगा, उसका वह पुण्यकर्म अक्षय होगा। मैं भी उस समय ब्रह्मलोकसे आकर पाँच राततक इस तीर्थमें निवास करूँगा।

ब्राह्मणोंने कहा—प्रपितामह! हम इस स्थानमें आपकी मूर्ति स्थापित करेंगे। अतः प्रभो! आपको सदा यहाँ शुभागमन करना चाहिये। साथ ही आपका पुष्करतीर्थ भी सदाके लिये यहाँ आकाशसे उतर आवे। समस्त लोकोंके पापोंका नाश करनेके लिये उस स्वयंनिर्मित तीर्थको आप अवश्य यहाँ ले आवें।

ब्रह्माजी बोले—मन्त्रोच्चारणपूर्वक आवाहन करनेपर वह श्रेष्ठ पुष्करतीर्थ आकाशमार्गसे हाटकेश्वरक्षेत्रमें उतर आवेगा। जो द्विज इस तीर्थमें आकर स्नानपूर्वक मेरी मूर्तिके आगे बैठकर पैल और मैत्रेयका स्मरण करके चारों समय अघमर्षण मन्त्रका जप करेगा, उसके उस जप और मन्त्र-पाठको मैं ब्रह्मलोकसे आकर सुनूँगा।

ऋषियोंने पूछा—सूतनन्दन! मरणधर्मा मनुष्योंको ब्रह्मज्ञानकी प्राप्ति कैसे होगी?'

सूतजीने कहा—ब्रह्मर्षियो! मुझमें ऐसी क्या शक्ति है, जो इस विषयका वर्णन कर सकूँ। परंतु हाटकेश्वरक्षेत्रमें दो शुभ तीर्थ हैं, जो मनुष्योंको ब्रह्मज्ञान प्रदान करनेवाले हैं। शूद्री और ब्राह्मणी दो कुमारियोंने उन दोनों तीर्थोंको प्रकट किया है। जो मनुष्य अष्टमी और चतुर्दशीको उन दोनों तीर्थोंमें स्नान करता है, फिर भक्तिपूर्वक कुमारीद्वारा पूजित और कुण्डके भीतर स्थित युगल पादुकाओंका पूजन करता है, उसे एक वर्ष बीतनेपर ब्रह्मज्ञान प्राप्त होता है। वे पादुकाएँ मोक्षकी इच्छा रखनेवाले लोगोंको ब्रह्मज्ञानका सुख देनेवाली हैं और आत्मज्ञानकी पुष्टिके लिये शक्तिसे स्थापित की गयी हैं। मेरे पिताजी उस तीर्थमें गये और ज्ञानवान् हो गये। उन्हींकी आज्ञासे मैंने भी वहाँ जाकर एक वर्षतक निवास और पादुकाओंका पूजन किया, इससे मुझे ज्ञानकी प्राप्ति हो गयी। लोकमें पुराणसम्बन्धी जितना भी साहित्य है, सबका मुझे ज्ञान है। यदि आपलोगोंको भी मोक्ष पानेकी इच्छा हो, तो वहीं जाइये। पुनरागमनके चक्रमें डालनेवाले इन स्वर्गसाधक यज्ञोंसे क्या लेना है? आपलोग वहीं जाकर मनुष्योंको सिद्धि प्रदान करनेवाली उन पादुकाओंकी आराधना करें, जिससे वर्षके अन्तमें ब्रह्मज्ञान प्राप्त हो जाय।

ऋषि बोले—महाभाग सूतजी! आपको धन्यवाद। आपने आज बहुत अच्छा उपदेश दिया; इसके द्वारा हमें संसार-सागरसे तार दिया। हमारा यह यज्ञ बारह वर्षोंतक चलनेवाला है, इसके समाप्त होते ही हम सब लोग वहाँ जायँगे, इस बातका हमने भलीभाँति निश्चय कर लिया है।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

ब्राह्मणकन्या और राजकन्याका अनुपम प्रेम, राजकुमारीका दशार्णराजके साथ विवाहका निश्चय

ऋषियोंने पूछा—सूतजी! आपने हाटकेश्वरक्षेत्रमें जिन दो शूद्रीतीर्थ और ब्राह्मणीतीर्थकी चर्चा की है, उनका निर्माण किसके द्वारा हुआ?

सूतजीने कहा—छान्दोग्य नामसे प्रसिद्ध एक श्रेष्ठ ब्राह्मण थे। जो सामवेदके ज्ञाता होनेके साथ ही गृहस्थाश्रम-धर्मके पालनमें तत्पर रहते थे। उनके बुढ़ापेमें एक कन्या उत्पन्न हुई, जो विशाल नेत्रोंवाली और मनुष्योंका मन मोहनेवाली थी। जिस दिन महात्मा छान्दोग्यके कन्या हुई, उसी दिन आनर्त देशके शूद्र जातीय नरेशके घरमें भी एक कन्याका जन्म हुआ। वह भी ब्राह्मण-कन्याकी ही भाँति परम सुन्दरी थी। यद्यपि उसका जन्म रातमें हुआ, तथापि उसने अपनी अंगकान्तिसे सम्पूर्ण सूतिकागृहको प्रकाशित कर दिया, मानो रत्नराशिकी प्रभासे सारा घर उद्भासित हो उठा हो। इसीलिये राजकुमारीके पिताने उसका नाम रत्नवती रखा। उस राजकन्या और ब्राह्मणकुमारीमें सखीका सम्बन्ध हुआ। वे निरन्तर साथ-साथ रहती थीं, कभी उनमें वियोग नहीं होता था। एक आसन, एक शय्या और एक-से अन्नका भोजन उन दोनोंको साथ-साथ प्राप्त होता था।

ब्राह्मण-कन्याकी आयु जब आठ वर्षकी हुई, तब उनके पिताने उसके विवाहके लिये वर ढूँढ़ना प्रारम्भ किया। पिताका यह प्रयत्न देखकर कन्याको दुःख हुआ। सखीसे वियोग न हो जाय, इस डरसे उसने सब बात रत्नवतीसे कही—'सखी! अब पिताजी मेरा विवाह करेंगे। विवाह हो जानेपर मेरा-तुम्हारा साथ कभी नहीं होगा।' राजकुमारी यह वज्रपातके समान दुःसह वचन सुनकर सखीके गलेसे लिपट गयी और स्नेहसे विकल होकर रोने लगी।

पुत्रीका रुदन सुनकर उसकी माता मृगावती सहसा वहाँ आयी और बोली—बेटी! क्यों रोती हो। किसने तुम्हारा दिल दुखाया है?

रत्नवती बोली—मा! यह ब्राह्मण-कन्या मुझे प्राणोंके समान अत्यन्त प्रिय है। अतः इसका विवाह होगा और यह कल्याणी अपने पतिके घर चली जायगी। इससे अलग होकर मैं किसी प्रकार जीवित नहीं रह सकती। देवि! इसी कारणसे मैं दुःखी होकर रोती हूँ।

मृगावतीने कहा—बेटी! यदि ऐसी बात है तो मैं तुम्हारी इस प्रिय सखीका विवाह वहीं करूँगी, जिससे इसके साथ तुम्हारा मिलना-जुलना हो सके।

ऐसा कहकर रानी मृगावतीने द्विजश्रेष्ठ छान्दोग्यको बुलवाकर विनयपूर्वक प्रणाम किया और इस प्रकार कहा—'ब्रह्मन्! आपकी पुत्री मेरी राजकुमारी रत्नवतीको अत्यन्त प्यारी है, इसलिये मेरी कन्या जब किसी राजाके साथ ब्याही जाय, उस समय उसके पुरोहितसे आप अपनी कन्याका विवाह कर दें, जिससे ये दोनों एक-दूसरीसे विलग न हों; एक स्थानपर प्रसन्नतापूर्वक रह सकें।'

छान्दोग्य बोले—देवि! नागर ब्राह्मणोंने यह मर्यादा बाँध रखी है कि जो नागर, नागर ब्राह्मणके सिवा दूसरे किसी ब्राह्मणको कन्या देता है अथवा नागरके अतिरिक्त अन्य किसी ब्राह्मणकी कन्या ग्रहण करता है, वह पंक्तिदूषक है। इस पापके कारण उसे यहाँ निवास करनेका अधिकार नहीं है। अतः मैं अपनी कन्या नागरको छोड़कर किसी दूसरे ब्राह्मणको नहीं दूँगा।

यह सुनकर ब्राह्मणकन्याने कहा—पिताजी! यदि ऐसी बात है तो मैं कुमारी एवं ब्रह्मचारिणी रहूँगी। विवाहके लिये घर नहीं चलूँगी। जहाँ मेरी प्यारी सखी ब्याही जायगी, वहीं इसके साथ जाऊँगी। यदि आप बलपूर्वक हठसे मेरा विवाह करेंगे तो विष खा लूँगी अथवा आगमें जल मरूँगी। मेरे इस निश्चयको जानकर आपको जो उचित प्रतीत हो, वह कीजिये।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

कन्याका यह निश्चय जानकर ब्राह्मण दुःखी हो उसे वहीं छोड़कर घर लौट गये। वह पिताका स्नेह त्यागकर राजकुमारीके साथ प्रसन्नतापूर्वक रहने और क्रीडा करने लगी। इधर आनर्तनरेशने भी अपनी पुत्रीको विवाहके योग्य हुई जानकर मन-ही-मन कहा—अब मैं अपनी पुत्रीका योग्य वरके साथ विवाह करूँगा। जो किसी कार्य-कारणसे या लोभवश अयोग्य वरके साथ अपनी कन्याका विवाह कर देता है, वह नरकमें जाता है*। इस प्रकार योग्य वरका अनुसन्धान करते हुए उनका बहुत समय व्यतीत हो गया, तथापि उन्हें अपनी कन्याके योग्य उत्तम वर नहीं दिखायी दिया। तब राजाने विश्वविख्यात चित्रकारोंको बुलवाया और उन्हें भेजते हुए कहा—'तुमलोग मेरे आदेशसे जाओ और भूतलके समस्त राजाओंका चित्रपट तैयार करके ले आओ। वे सब चित्र मेरी पुत्रीको दिखाओ, जिससे वह उन्हींमेंसे किसी अभीष्ट पतिका चुनाव स्वयं कर ले, इससे मुझे दोष नहीं लगेगा।'

राजाका यह वचन सुनकर सब चित्रकार पृथ्वीपर रहनेवाले सम्पूर्ण राजाओंके घर गये। जो राजा तरुण, रूप, उदारता आदि गुणोंसे युक्त एवं योग्य थे, उन सबका चित्र बनाकर ले आये। उन सब चित्रोंको क्रमशः उन्होंने रत्नवतीके आगे रखकर दिखाया। रत्नवतीने उन सब चित्रोंमेंसे राजा बृहद्बलको पसंद किया और कहा—'मैंने दशार्णराज बृहद्बलको पति बनानेके लिये वरण किया।' यह सुनकर आनर्तनरेश बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने दशार्णराजके यहाँ दूतोंको भेजा और उनसे कहा—तुम सब लोग राजा बृहद्बलसे विनयपूर्वक कहना—राजन्! आप विवाहके लिये आनर्तनरेशके यहाँ चलें, वे आपके साथ अपनी त्रिभुवनसुन्दरी कन्या रत्नवतीका विवाह करेंगे।'

राजाका यह आदेश पाकर दूत शीघ्र ही दशार्णराजके यहाँ गये और आनर्तनरेशका सन्देश कह सुनाया। सुनकर राजा बृहद्बलको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने अपनी विशाल सेना साथ ले आनर्त-राजधानीकी ओर प्रयाण किया।

परावसुके द्वारा मद्यपानका प्रायश्चित्त, राजकन्या रत्नवती और परावसुका सुदृढ़ आत्मसंयम

सूतजी कहते हैं—उन्हीं दिनों चमत्कारपुरमें विश्वावसु नामसे प्रसिद्ध एक नागर थे, जो वेद-वेदांगोंके पारंगत विद्वान् थे। उन्हें प्रौढ़ावस्थामें एक पुत्र उत्पन्न हुआ जो प्राणोंके समान प्रिय था। उसका नाम परावसु था। वह युवावस्था प्राप्त होनेपर इष्ट-मित्रोंके साथ वेदोंका स्वाध्याय करने लगा। किसी समय माघमास आनेपर परावसु अपने अध्यापकके घर अध्ययन करता था। वह रातको भी वहीं रहता था। एक दिन आधी रातको वह चुपकेसे उठा और अपने सहपाठियोंसे छिपकर वेश्याके घरमें जा उसीके साथ सो गया। जब थोड़ी-सी रात बाकी रही, तब उसे बड़े जोरकी प्यास लगी। नींदके आलस्यमें ही उठकर उसने चारपाईके नीचे रखे हुए वेश्याके मदिरापात्रको उठा लिया और पानीके भ्रमसे मदिराको ही पी लिया। मुँहमें पड़ते ही उसे मद्यका ज्ञान हो गया और उस पात्रको फेंककर वह बहुत दुःखी हुआ। उसके मनमें बड़ी घृणा उत्पन्न हुई और वह इस प्रकार पश्चात्ताप करने लगा—अहो! मैंने नींदके आलस्यमें यह कैसा अपकर्म कर डाला; जलके धोखेमें अत्यन्त निन्दित मद्यको ही मुँहमें डाल लिया। क्या करूँ? कहाँ जाऊँ? कैसे मेरी शुद्धि होगी? अब मैं इसके लिये अत्यन्त दुष्कर प्रायश्चित्त भी करूँगा।'

* अनर्हाय च यो दद्याद्वराय निजकन्यकाम्। कार्यकारणलोभेन नरकं स प्रगच्छति॥ (स्क० पु०, ना० उ० १८६। २-३)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

मन-ही-मन ऐसा निश्चय करके प्रातःकाल उसने शंखतीर्थमें जाकर शिखासहित मुण्डन कराया और स्नान किया। इसके बाद शीघ्र ही उस स्थानपर गया, जहाँ वेद-विद्यालयमें शिष्यों-सहित उपाध्याय वेदमन्त्रोंका पाठ कर रहे थे। वहाँ पहुँचकर परावसु दूर ही बैठा। उसके सहपाठियोंने जब उसे दाढ़ी-मूछसे रहित देखा, तब वे हँसी करते हुए हाथोंसे बार-बार उसके मस्तकपर ठोंकने लगे। उपाध्यायने उसे इस दशामें देखकर आदरपूर्वक पूछा—'वत्स! तुम ऐसे क्यों हो रहे हो? आओ मेरे निकट बैठो, बताओ, किसने तुम्हारा अपमान किया है।'

परावसु बोला—गुरुदेव! अब मैं आपकी सेवाके योग्य नहीं रहा। वेश्याके घरमें गया था। वहाँ अपना कमण्डलु समझकर उसके मदिरापात्रको मुँहमें लगा लिया। अतः मेरी शुद्धिके लिये मद्य-पानका प्रायश्चित्त बताइये।

तब गुरुके समीप बैठे हुए धृष्ट छात्रोंने उसकी हँसी उड़ाते हुए कहा—'राजकन्या रत्नवतीके स्तन पकड़कर जब उसके अधर पान करोगे, तब शुद्धि होगी, अन्यथा नहीं।'

परावसु बोला—मित्रो! मैं संकटमें पड़ा हूँ। यह मेरे साथ परिहासका समय नहीं है। यदि तुम्हारा मुझपर स्नेह हो तो अन्य ब्राह्मणोंको बुलाकर मेरे लिये कोई प्रायश्चित्त बताओ।

तब वे मित्र परिहास छोड़कर उसके दुःखसे दुःखी हुए और विश्वावसुके समीप जाकर उन्होंने सब बातें बतायीं। यह सुनकर विश्वावसु अपनी पत्नीके साथ वहाँ आये और शोकसे व्याकुल होकर बोले—'हाय! बेटा! तुमने यह क्या किया? परावसुने अपना सब वृत्तान्त कह सुनाया और अपना विचार प्रकट किया—'मैं अपनी शुद्धिके लिये प्रायश्चित्त करूँगा।' तब विश्वावसुने वेदों तथा धर्मशास्त्रोंके विद्वान् ब्राह्मणोंको बुलवाया। परावसुने हाथ जोड़कर खड़े हो आदिसे ही अपना सब वृत्तान्त उनको बताया—'मैंने रातमें अपना कमण्डलु समझकर वेश्याके मदिरापात्रको मुँहसे लगा लिया; अतः मुझे यथायोग्य प्रायश्चित्त दें, जिससे मेरी शुद्धि हो।' यह सुनकर स्मृतिके ज्ञाता विद्वानोंने धर्मशास्त्र देखकर कहा—जो ब्राह्मण जान-बूझकर मदिरापान करता है, वह उस मदिराके बराबर सुवर्णको आगमें तपाकर पी जाय, तब शुद्ध होता है और यदि अनजानमें वह मदिरा पी लेता है, तब उतना ही घी आगमें खूब तपाकर पी ले तभी उसकी शुद्धि होती है। यही प्रायश्चित्त है। यदि तुम कर सको तो करो।'

परावसु बोला—मैंने एक कुल्ला मदिरा पी लिया है, अतः उतना ही घृत आगमें अच्छी तरह तपाकर पी लूँगा।

यह सुनकर विश्वावसु अत्यन्त दुःखित हो ब्राह्मणोंसे बोले—ब्राह्मणो! मैं इस पुत्रकी शुद्धिके लिये सर्वस्व दे दूँगा, परंतु ऐसा प्रायश्चित्त किसी प्रकार भी करने न दूँगा।

पिताका यह वचन सुनकर पुत्रने कहा—पिताजी! स्नेह छोड़िये, मेरे प्रायश्चित्तमें विघ्न न डालिये। मैंने निश्चय कर लिया है कि प्रायश्चित्त करूँगा।

तब परावसुकी माता बोली—बेटा! यदि तुम्हें अपनी शुद्धिके लिये प्रायश्चित्त करना ही है तो मैं ही पहले पतिदेवके साथ तुम्हारे सामने अग्निमें प्रवेश करूँगी। तुम्हें अग्निके समान खौलते हुए घी पीकर मरते नहीं देख सकूँगी।

पिताने भी कहा—बेटा! तुम्हारी माताने जो कुछ कहा है, वही मैं भी चाहता हूँ।

सूतजी कहते हैं—यह सब वृत्तान्त सुनकर उनके हितैषी लोग आये और परावसुको प्रायश्चित्तसे निवृत्त होनेके लिये समझाने लगे। जब वे पिता-पुत्रोंमेंसे किसीको भी प्राण त्यागके निश्चयसे न डिगा सके तब वास्तुपदतीर्थमें सर्वज्ञ भर्तृयज्ञके समीप गये और परावसुका सारा हाल सुनाकर बोले—'महाभाग! यदि इस ब्राह्मणकी शुद्धिके लिये मद्यपानका कोई दूसरा प्रायश्चित्त हो तो वही बताइये; क्योंकि आपसे कुछ भी अज्ञात नहीं है।'

भर्तृयज्ञ बोले—ब्राह्मण और उनमें भी विशेषतः

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

नागर ब्राह्मण जो वचन कहते हैं, वह वैसा ही होता है; अन्यथा नहीं होता। वेद-विद्यालयमें बैठे हुए नागर ब्राह्मणोंने (परिहासमें) जो कुछ कहा है, वह किसी प्रकार अन्यथा नहीं किया जा सकता। परावसुके मित्रोंने हँसीमें उससे कहा था कि 'रत्नवतीके स्तनोंको हाथमें लेकर जब तुम उसके अधरका आस्वादन करोगे तभी मद्यपानसम्बन्धी अशुद्धि दूर होकर तुम्हें शुद्धि प्राप्त होगी।' वही उपाय इस ब्राह्मणके लिये सुखद होगा। महर्षि पराशरके मतसे ब्राह्मणवचनको आदर देकर यदि उक्त प्रायश्चित्त वह करेगा, तो उसकी शुद्धि हो जायगी।

ब्राह्मण बोले—यदि यह बात राजाके कानोंमें पड़ जाय तो वे क्रोधमें आकर समस्त ब्राह्मणोंका वध कर डालेंगे।

भर्तृयज्ञने कहा—आनर्तनरेश बड़े नीतिमान्, विज्ञ, धर्मात्मा, सर्वशास्त्रनिपुण तथा देव-ब्राह्मणोंके भक्त हैं। अतः सब नागर मेरे साथ उनके घर चलें। किसी मध्यवर्ती पुरुषको आगे रखकर उसीके मुखसे परावसुके मद्यपानका वृत्तान्त, उसके मित्रोंकी हास्यमिश्रित वार्ता तथा पराशर-स्मृतिका वचन आदि कहलावें। यह सब सुनकर यदि राजा ईर्ष्या और रोषके वशीभूत हो जायँगे, तब उनको मैं राहपर लाऊँगा।

भर्तृयज्ञकी यह बात सुनकर सब नागर बड़े सन्तुष्ट हुए और उनकी प्रशंसा करके परम सुहृद् हरिभद्र और भर्तृयज्ञको आगे रखकर माता-पितासहित परावसुको साथ ले राजद्वारके समीप आये। द्वारपालने जाकर राजाको उन सबके आगमनकी सूचना दी। राजद्वारपर ब्राह्मणोंका शुभागमन सुनकर आनर्तनरेशने पुरोहितके साथ आगे आ उनकी अगवानी की। तत्पश्चात् भर्तृयज्ञ, हरिभद्र तथा अन्य चार हजार ब्राह्मणोंके लिये क्रमशः अर्घ्य, पाद्य, मधुपर्क और विष्टर आदि निवेदन किये। फिर उन सबके शुभाशीर्वाद प्राप्तकर सभामण्डपमें आये तथा सबको क्रमशः सोनेके सिंहासनोंपर बिठाया। सबके बैठ जानेपर राजा स्वयं भूमिपर बैठे और हाथ जोड़कर बोले—'मैं धन्य हूँ, मुझपर आपलोगोंकी बड़ी कृपा है, जिससे आज मेरे घरपर समस्त नागर ब्राह्मणोंका समुदाय उपस्थित हुआ है। आपलोग इस सेवकको आज्ञा दें, मैं आपकी क्या सेवा करूँ?'

तब हरिभद्रने जिस प्रकार उसने मदिरापान किया, जैसा उसके मित्रोंने परिहासमें कहा, जिस प्रकार तपाये हुए घृत पीनेको प्रायश्चित्त बताया गया और जिस तरह सान्त्वना देकर भर्तृयज्ञ सबको राजाके पास ले आये, इत्यादि परावसुका सब वृत्तान्त राजासे आदरपूर्वक कह सुनाया। सब बातें सुनकर राजा बड़े प्रसन्न हुए और हाथ जोड़कर बोले—'मैं धन्य हूँ, कृतकृत्य हूँ, जिसके ऊपर तीन ब्राह्मणोंकी प्राणरक्षाका भार रखकर नागर ब्राह्मणोंने महान् अनुग्रह किया है। धन्य है मेरी पुत्री, जो मरणका निश्चय किये हुए तीन ब्राह्मणोंके प्राणोंकी रक्षा करेगी।'

यह कहकर राजाने उसी समय कन्याको बुलाया और कहा—'विप्रवरो! आपके आदेशसे मैंने अपनी इस कन्याको बुला दिया है, अब परावसु भर्तृयज्ञके बताये अनुसार कार्य करें।' तब भर्तृयज्ञने परावसुको बुलाकर उस कन्याके सामने कहा—'यदि तुम इस कन्याके अधरका स्पर्श करते हुए अपने मनमें इसे माता मानोगे तो अवश्य तुम्हारी शुद्धि हो जायगी। यदि आसक्त होकर अधरपान करोगे, तो तुम्हारे मुँहमें खून भर जायगा और यदि तुम्हारा भाव शुद्ध होगा तो मुँहमें दूध आ जायगा। इसमें सन्देह नहीं है। यदि तुम्हारे पीनेपर इसके स्तनोंमें दूध उतर आये तो तुम्हारी शुद्धि मानी जायगी। यदि रक्त निकला तो शुद्धि नहीं मानी जायगी।'

परावसुसे ऐसा कहकर भर्तृयज्ञने राजकुमारीसे कहा—बेटी! तुम इसे पुत्रकी भाँति देखो, जिससे तुम्हारे ओष्ठका स्पर्श करके यह शुद्ध हो जाय। तुम्हारे स्तनोंके स्पर्शसे इसके सखाओंने शुद्धि बतायी है। यदि ऐसा नहीं हुआ तो इसकी मृत्यु हो जायगी।

'बहुत अच्छा' कहकर राजकन्याने लजाते

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

हुए परावसुसे कहा—बेटा! आओ और मातृत्वका आश्रय लेकर आत्म-शुद्धिके लिये प्रायश्चित्त करो। मैंने तुम्हें अपना पुत्र मान लिया।

परावसुने भी रत्नवतीको अपनी माता मानकर उसके समीप आ सबके देखते-देखते उसके स्तनोंका स्पर्श किया। स्पर्श करते ही उन स्तनोंसे दूधकी दो धाराएँ बह निकलीं। फिर ज्यों ही उसके ओष्ठका स्पर्श किया त्यों ही वहाँसे भी दूध प्रकट हो गया। यह देख सब ब्राह्मण प्रसन्न होकर बोले—'अब यह ब्राह्मण शुद्ध हो गया।' परावसुने भी रत्नवतीकी परिक्रमा करके कहा—'मा! तुम पुत्रवत्सला माता हो।' यह महान् आश्चर्यकी बात देखकर आनर्तनरेशको बड़ा विस्मय हुआ। उन्होंने प्रायश्चित्त देनेवाले भर्तृयज्ञकी प्रशंसा करते हुए कहा—'अहो! मैं बड़ा सौभाग्यशाली हूँ, जिसके घरपर ऐसे महान् नागर ब्राह्मण पधारे हुए हैं तथा मेरी आज्ञाके अधीन रहनेवाली यह मेरी पुत्री भी महासती, परम सौभाग्यशालिनी एवं सत्य तथा सदाचारसे सम्पन्न है। ये परावसु भी साधारण ब्राह्मण नहीं हैं, जो ऐसी कन्याका स्पर्श करके भी विकारको नहीं प्राप्त हुए।'

ऐसा कहकर राजाने सब ब्राह्मणोंको विदा कर दिया और स्वयं अपनी पुत्रीके साथ राजमहलमें पदार्पण किया।

ब्राह्मणकन्या और शूद्रराजकन्याकी तपस्या, भगवान् शिवका वरदान तथा उनके नामसे दो प्रसिद्ध तीर्थोंका प्रादुर्भाव

सूतजी कहते हैं—इसी समय दशार्णराज बृहद्वल रत्नवतीसे विवाह करनेके लिये उस नगरमें आये। यहाँ आनेपर जब उन्होंने रत्नवती और परावसुका वृत्तान्त सुना तो उनके मनमें बड़ी विरक्ति हुई और वे अपनी राजधानीकी ओर लौट गये। यह सुनकर आनर्तनरेश उन्हें वापस लानेके लिये उनके पीछे-पीछे गये और निकट जाकर बोले—'राजन्! मेरी कन्याका पाणिग्रहण किये बिना ही तुम क्यों लौटे जाते हो?'

दशार्णनरेशने कहा—'महाराज! आपके जीते-जी ही आपकी कन्याके अधरों और स्तनोंका स्पर्श पराये पुरुषने कर लिया है, अतः यह पुनर्भू (द्वितीय पतिवाली) हो चुकी है। पुनर्भू स्त्री यदि किसी प्रकार किसी पुत्रको उत्पन्न करे तो वह पुत्र दस पीढ़ी पहलेतकके पूर्वजोंको, दस पीढ़ी बादतककी सन्तानपरम्पराको तथा इक्कीसवें अपने-आपको भी निस्सन्देह नरकमें डाल देता है। इस कारण मैं आपकी कन्याका पाणिग्रहण नहीं करूँगा।

ऐसा कहकर राजा बृहद्बल अपने नगरको चले गये। आनर्तनरेश भी दुःखसे व्याकुल हो घर आये और अपनी पत्नी मृगावती तथा पुत्री रत्नवतीसे सब हाल कह सुनाया। यह सब बात सुनकर मन्त्रियोंको भी बड़ा दुःख हुआ और वे राजाको आश्वासन देते हुए बोले—'महाराज! पृथ्वीपर असंख्य राजा हैं, उन्हींमेंसे किसीको अपनी कन्या ब्याह दीजिये।' तब आनर्तनरेशने वहाँ बैठी हुई अपनी कन्यासे कहा—'बेटी! तुमने चित्रपटमें सब राजाओंको देखा है, उन्हींमेंसे किसीका वरण करो!'

रत्नवती बोली—पिताजी! मैं दशार्णराजको छोड़कर दूसरे किसीको किसी तरह भी पति नहीं बनाऊँगी; क्योंकि राजा एक बार कोई बात कहते हैं, ब्राह्मण भी एक ही बार कहते हैं और कन्या भी एक ही बार किसीको दी जाती है। ये तीन बातें एक-एक बार ही होती हैं। इन्हें बदला नहीं जाता*। तात! ऐसा जानकर आप मुझे दूसरे किसी राजाको न दें; क्योंकि यह कार्य शास्त्रदृष्टिसे धर्म नहीं माना जा सकता।

---

* सकृज्जल्पन्ति राजानः सकृज्जल्पन्ति च द्विजाः। सकृत् कन्या प्रदीयेत त्रीण्येतानि सकृत् सकृत्॥

(स्क० पु०, ना० उ० १८८। १७-१८)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

आनर्तनरेशने कहा—बेटी! अभी तो वचनमात्रसे मैंने तुम्हें दशार्णराजको देनेकी प्रतिज्ञा की थी। परंतु उन्होंने ब्राह्मण, अग्नि तथा गुरुजनोंके समक्ष तुम्हारा पाणिग्रहण नहीं किया है। ऐसी दशामें वे तुम्हारे पति कैसे हो गये?

रत्नवती बोली—पिताजी! किसी भी कार्यका पहले मनमें निश्चय किया जाता है, फिर उसे वाणीद्वारा प्रकट किया जाता है, तत्पश्चात् कार्यरूपमें परिणत किया जाता है। प्रभो! मैंने अपने-आपको मनद्वारा दशार्णराजके चरणोंमें समर्पित कर दिया है, आपने भी मनसे निश्चय करके वाणीद्वारा मेरा दान किया है; फिर वे मेरे पति कैसे नहीं हुए? अतः अब मैं कौमारव्रत धारण करके तपस्या करूँगी, दूसरेको पति नहीं बनाऊँगी।

पुत्रीकी यह बात सुनकर माता मृगावतीने कहा—बेटी! तुम्हें तपस्याके लिये साहस नहीं करना चाहिये। तुम अभी बालिका हो, तुम्हारे अंग सुकुमार हैं तथा तुम सदैव सुखमें पली हो। भला कन्द, मूल, फल खाकर और चीर एवं वल्कल पहनकर तुम तपस्या कैसे कर सकोगी? मैं तुम्हें किसी श्रेष्ठ राजाके साथ ब्याह दूँगी।

रत्नवती बोली—माँ! यदि तुम मुझे जीवित रहने देना चाहती हो, तो फिर कभी ऐसी बात मुँहसे न निकालना। यदि हठ करके मेरी तपस्यामें विघ्न डालोगी तो मैं शरीर त्याग दूँगी।

मातासे ऐसा कहकर रत्नवती ब्राह्मण-कन्यासे बोली—कल्याणी! अब मेरे भेजनेसे तुम अपने पिताके घर जाओ, जिससे तुम्हारे पिता किसी महात्मा नागरके साथ तुम्हारा विवाह कर दें। मैंने तुम्हारे प्रति जो असत्य या अनुचित वचन कहा हो, उसे क्षमा करना। तुमने भी मुझसे जो कुछ कहा हो, वह सब मैंने क्षमा कर दिया।

ब्राह्मण-कन्याने कहा—शुभे! तुम्हारे सम्पर्कमें रहकर मैंने अपनी कौमारावस्था व्यतीत कर दी। अब मेरा सोलहवाँ वर्ष भी बीत गया। मैं अब रजस्वला होने लगी हूँ। अतः स्मृति-वाक्यका अर्थ जाननेवाला कोई भी नागर ब्राह्मण यहाँ मेरा पाणिग्रहण नहीं करेगा।

अतः शुभे! मैं भी तुम्हारे साथ तपस्या करूँगी, मुझे पिता-मातासे कोई प्रयोजन नहीं है।

ऐसा निश्चय करके वे दोनों कन्याएँ वहाँ गयीं, जहाँ महामुनि भर्तृयज्ञजी रहते थे। उनकी तपस्याके प्रभावसे वहाँ मनुष्य एवं पशु-पक्षीकी योनिमें पड़े हुए जीवोंके मनमें भी क्रोधका भाव नहीं देखा जाता था। नेवले सर्पोंके साथ और बिलाव चूहोंके साथ क्रीडा करते थे। मृग सिंहोंके साथ और कौए उल्लुओंके साथ खेलते थे। उस स्थानमें भर्तृयज्ञ मुनि एक आसनपर सुखपूर्वक बैठे थे। दोनों कन्याओंने उनके समीप जा हाथ जोड़ विनयपूर्वक प्रणाम किया। उसके बाद ब्राह्मण-कन्याने कहा—'भगवन्! अपनी सखी राजकन्याके साथ मैं तपस्याके लिये आयी हूँ, अतः आप कृपा करके तपस्याकी विधि बतावें।'

भर्तृयज्ञ बोले—मैं तपस्याकी विधि बताता हूँ, सुनो—उससे मोक्षतककी प्राप्ति होती है, फिर स्वर्गकी तो बात ही क्या है? राग-द्वेषरहित पुरुषोंद्वारा पालित कृच्छ्र, चान्द्रायण एवं त्रिरात्र आदि व्रत तपस्याके द्वार हैं; तपस्यासे ही सबके मनोवांछित पदार्थोंकी सिद्धि होती है। जब मनमें शत्रु-मित्र तथा पत्थर एवं रत्नके प्रति समान बुद्धि हो जाय, तब मोक्षकी प्राप्ति होती है। जो तपस्वीका वेष धारण करके भी क्रोध-परायण होता है, उसका सब कुछ राखमें दी हुई आहुतिके समान व्यर्थ है।

तब 'ऐसा ही होगा' यह प्रतिज्ञा करके ब्राह्मण-कन्या राजकुमारी रत्नवतीको साथ ले स्वच्छ जलसे भरे हुए, कमलवनसे सुशोभित किसी जलाशयके तटपर गयी। उसने तपस्याके पहले चान्द्रायण किया, फिर कृच्छ्र एवं सान्तपन व्रतका पालन किया। इसके बाद उसने तीन वर्षोंतक छः-छः दिनोंके बाद भोजन किया। उसी समय शूद्रराजकन्याने भी बड़ी प्रसन्नताके साथ दूसरे जलाशयके तटपर जाकर उसी प्रकार कठोर तपस्या की। उसने ज्यों-ज्यों तपस्या की,

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

त्यों-ही-त्यों उसके अति उत्तम तेजकी वृद्धि हुई। तदनन्तर भगवान् चन्द्रशेखरने गौरीदेवीके साथ प्रसन्न होकर ब्राह्मण-कन्याको प्रत्यक्ष दर्शन दिया और कहा—'वत्से! मेरी आज्ञासे अब तपस्या छोड़ो और अभीष्ट वर माँगो।'

ब्राह्मण-कन्या बोली—देवेश्वर! आपका दर्शन हुआ, इतनेसे ही मेरा सब अभीष्ट पूर्ण हो गया, क्योंकि मनुष्योंको स्वप्नमें भी आपका दर्शन दुर्लभ है।

भगवान् बोले—तपस्विनि! मेरा दर्शन व्यर्थ नहीं होता, अतः कोई वर अवश्य माँगो।

ब्राह्मण-कन्या बोली—मेरी यशस्विनी एवं साध्वी सखी रत्नवती मुझे प्राणोंसे भी बढ़कर प्रिय है। शूद्रयोनिमें स्थित होनेपर भी इसने मेरे समान ही तप किया है। जगन्नाथ! यदि यह तपस्यासे निवृत्त हो जाय तो मैं अनायास ही तपसे अलग हो जाऊँगी। इसके प्रति स्नेह होनेके कारण ही मैंने विवाह नहीं किया, अतः इसीके अभीष्ट मनोरथकी सिद्धि कीजिये।

ब्राह्मण-कन्याका यह वचन सुनकर भगवान् चन्द्रशेखरने राजकुमारीके पास जाकर कहा—सुन्दरी! अब तुम तपस्या छोड़ो और तुम्हारा जो मनोरथ हो, उसकी सिद्धिके लिये वर माँगो।

रत्नवतीने कहा—जहाँ परम साध्वी ब्राह्मण-कन्याने सदा तपस्या की है, वह तीर्थ उसके नामसे प्रसिद्ध हो और मेरी तपस्याका स्थूलभूत यह जलाशय मेरे नामसे प्रसिद्धि लाभ करे। देवदेव! जो यहाँ रहकर श्रद्धापूर्वक स्नान करे उसका सदा स्वर्गलोकमें निवास हो। हम दोनों सखियाँ कुमारी ही सदा महान् तपमें संलग्न रहें और मन, वाणी एवं क्रियाद्वारा सदैव आपकी आराधना करती रहें।

इसी समय धरती फोड़कर सूर्यके समान तेजस्वी शिवलिंग प्रकट हुआ। तब भक्तवत्सल भगवान् शिवने उन दोनों कन्याओंकी तपस्यासे सन्तुष्ट होकर कहा—'ये दोनों शूद्रीतीर्थ और ब्राह्मणीतीर्थ तीनों लोकोंमें विख्यात होंगे। जो चैत्र शुक्ला चतुर्दशी सोमवारके दिन श्रद्धापूर्वक इन दोनों तीर्थोंमें नहाकर कमल संग्रह करके इन तीर्थोंके जलसे मेरे इस लिंगमय विग्रहको नहलायेगा और कमलपुष्पोंसे पूजन करेगा, वह समस्त पापोंसे मुक्त होगा।'

ऐसा कहकर भगवान् शिव अन्तर्धान हो गये। वे दोनों सखियाँ वृद्धता और मृत्युसे रहित हो सौ कल्पोंकी आयु प्राप्त करके नित्य तपस्यामें संलग्न हुईं। तभीसे वे दोनों तीर्थ भूमण्डलमें प्रसिद्ध हुए। वहाँ स्नान और शिवपूजन करके उस तीर्थके प्रभावसे मनुष्य निःसन्देह स्वर्गलोकको प्राप्त होता है।

आगे चलकर इन्द्रने उन दोनों तीर्थोंको धूलसे भर दिया। आज भी उन दोनों तीर्थोंकी उत्तम मिट्टी लेकर स्नानके पश्चात् उससे तिलक करना चाहिये, इससे सब पापोंकी शुद्धि होती है। सोमवार और चतुर्दशीके योगमें जो पुरुष उन दोनों तीर्थोंके समीप श्राद्ध करता है, उसे गया-श्राद्धकी क्या आवश्यकता है।

~~~o~~~

त्रिविध क्षेत्र, अरण्य और पुरी आदिका वर्णन, हाटकेश्वरक्षेत्रके चार प्रसिद्ध तीर्थोंकी महिमा

ऋषियोंने पूछा—महाभाग! इस लोकमें तीन क्षेत्र, तीन अरण्य, तीन पुरियाँ, तीन वन, तीन ग्राम, तीन पर्वत और तीन नदियाँ कौन-कौन हैं?

सूतजीने कहा—प्रथम उत्तम क्षेत्र कुरुक्षेत्रके नामसे विख्यात है। दूसरा हाटकेश्वरक्षेत्र है और तीसरा प्राभासिकक्षेत्र। ये तीनों क्षेत्र सब पातकोंका नाश करनेवाले हैं। इन तीनों क्षेत्रोंका विधिवत् दर्शन करके मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। जो जिस कामनाका चिन्तन करके इन क्षेत्रोंमें भक्तिपूर्वक स्नान करता है, उसकी वह अभीष्ट

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth
~~~

कामना पूर्ण होती है। अब तीन अरण्य बताते हैं—पहला पुष्करारण्य, दूसरा नैमिषारण्य तथा तीसरा धर्मारण्य है। जो इन तीनों तीर्थोंमें स्नान करता है, वह चौबीस तीर्थोंमें स्नानके फलका भागी होता है। तीन पुरियोंके नाम ये हैं—प्रथम वाराणसीपुरी, दूसरी द्वारकापुरी और तीसरी अवन्तीपुरी। ये तीनों लोकोंमें विख्यात हैं। जो इन तीनोंमें स्नान करता है, वह चौबीस तीर्थोंमें स्नानके फलका भागी होता है। तीन वन ये हैं—पहला वृन्दावन, दूसरा खाण्डववन और तीसरा द्वैतवन। ये तीनों भूतलपर विख्यात हैं। इन तीनोंमें जो स्नान करता है, वह चौबीस तीर्थोंमें स्नानके फलका भागी होता है। तीन ग्रामोंके नाम इस प्रकार हैं—पहला कालग्राम, दूसरा शालग्राम और तीसरा नन्दिग्राम। जो इन तीनोंमें स्नान करता है, वह चौबीस तीर्थोंमें स्नानके फलका भागी होता है। तीन तीर्थ हैं—पहला अग्नितीर्थ, दूसरा शुक्लतीर्थ और तीसरा पितृतीर्थ—इन तीनोंमें जो स्नान करता है वह चौबीस तीर्थोंके सेवनका फल पाता है। तीन पर्वत ये हैं—श्रीपर्वत, अर्बुदपर्वत और तीसरा रैवतपर्वत। इन तीनोंमें जो स्नान करता है, वह चौबीस तीर्थोंके फलका भागी होता है। तीन नदियोंके नाम इस प्रकार हैं—प्रथम गंगा नदी, दूसरी नर्मदा नदी और तीसरी सरस्वती नदी है। जो इन सब तीर्थोंमें स्नान करता है वह चौबीस तीर्थोंमें स्नानका फल पाता है। जो इन सब तीर्थोंमें स्नान करता है वह यहाँके साढ़े तीन करोड़ तीर्थोंमें स्नानका फल पाता है।

ऋषियोंने पूछा—सूतनन्दन! हाटकेश्वरक्षेत्रमें जो तीर्थ हैं, उन सबमें स्नान करनेके लिये मनुष्य सौ वर्षोंमें भी समर्थ नहीं हो सकता, अतः निर्धन मनुष्य उन सब तीर्थोंमें स्नानका फल कैसे प्राप्त कर सकते हैं?

सूतजीने कहा—पूर्वकालमें आनर्तनरेशने विश्वामित्रजीसे प्रश्न किया—'भगवन्! इस क्षेत्रमें असंख्य तीर्थ हैं। उन सबमें पृथक्-पृथक् स्नानकी विधि बतायी गयी है। कोई भी मनुष्य सौ वर्षोंमें भी यहाँके सब तीर्थोंका फल नहीं पा सकता। अतः ऐसा कोई सुखद उपाय बताइये, जिससे एक ही तीर्थमें स्नान करके भी मनुष्य सब तीर्थोंमें स्नानका फल प्राप्त कर सके।'

विश्वामित्रजी बोले—राजेन्द्र! सुनो, इस क्षेत्रमें चार प्रमुख तीर्थ हैं, जिनमें स्नान और श्राद्ध करनेपर मनुष्य सब तीर्थोंमें स्नानका फल पा लेता है। यहीं सिद्धेश्वर आदि सत्ताईस लिंग हैं, जो सब पापोंका नाश करनेवाले हैं। श्रद्धापूर्ण हृदयसे उन सबका दर्शन कर लेनेपर मनुष्य सब देवताओंके दर्शनका फल पाता है। इनमेंसे एक लिंगका भी पूजन करनेपर सब लिंगोंकी पूजा हो जाती है।

राजाने पूछा—मुने! वहाँ चार प्रसिद्ध तीर्थ कौन हैं?

विश्वामित्रजी बोले—महाराज! यहाँ एक पुण्यमयी कूपिका है जहाँ कन्याराशिके सूर्यमें कृष्ण पक्षकी चतुर्दशी तथा अमावास्याके दिन गयातीर्थ आश्रय लेता है। जो मनुष्य उस दिन श्रद्धापूर्वक उस तीर्थमें श्राद्ध करता है वह सौ पीढ़ीके पितरोंको तार देता है। दूसरा शंखतीर्थ है जो मानव माघके प्रथम दिन वहाँ स्नान करके भगवान् शंखेश्वरका दर्शन करता है वह सब तीर्थोंका फल पाता है। तीसरा मेरे नामका (विश्वामित्र) तीर्थ है, जो प्रधान है, उसमें भाद्रपद कृष्णा अष्टमीको स्नान करके जो मेरे द्वारा स्थापित विश्वामित्रेश्वर शिवका दर्शन करता है; वह सब तीर्थोंका फल पाता है। चौथा बालमण्डनमें शक्रतीर्थ है। जो आश्विन शुक्ला अष्टमीको उस तीर्थमें स्नान और पूजन करके शक्रेश्वरका दर्शन करता है वह भी सब तीर्थोंका फल पाता है।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

अहल्याका शापोद्धार तथा हाटकेश्वरक्षेत्रमें अहल्या, शतानन्द और गौतमजीकी तपस्या एवं पातालवासी हाटकेश्वरका दर्शन

विश्वामित्रजी कहते हैं—पूर्वकालमें जब महर्षि गौतमके शापसे उनकी धर्मपत्नी अहल्या देवी शिलारूपा हो गयीं, तब उनके पुत्र शतानन्दजीने विनयपूर्वक प्रार्थना करते हुए कहा—'पिताजी! इतिहास, पुराण तथा समस्त उपनिषदोंका चिन्तन करके मेरी माताकी शुद्धिका कोई उपाय बताइये, मैं उसका अनुष्ठान करूँगा, अन्यथा अपने प्राणोंका त्याग कर दूँगा।' यह सुनकर गौतमजीने दीर्घकालतक ध्यान करनेके पश्चात् अपने पुत्रसे कहा—'वत्स! आत्मघात बहुत बड़ा पाप है, उसे करनेका दुःसाहस न करना। मैंने तुम्हारी माताकी शुद्धिका निमित्त जान लिया। जिस समय भगवान् विष्णु रावणका वध करनेके लिये सूर्यवंशमें मनुष्यरूपमें अवतार लेंगे, उस समय उन्हींके चरणोंका स्पर्श होनेसे तुम्हारी माताकी शुद्धि होगी। अतः बेटा! तुम उस शुभ समयकी प्रतीक्षा करो। यह सब मैंने दिव्य दृष्टिसे देखा है।'

यह सुनकर मातृवत्सल शतानन्द बड़े प्रसन्न हुए और 'बहुत अच्छा' कहकर उस शुभ अवसरकी प्रतीक्षा करने लगे। तदनन्तर दीर्घकालके बाद जब श्रीरामचन्द्रजीके रूपमें भगवान् विष्णुका दशरथजीके यहाँ अवतार हुआ, तब मैं अपने यज्ञकी रक्षाके लिये तथा यज्ञकर्मका विनाश करनेवाले राक्षसोंका संहार करानेके लिये उन भगवान् श्रीरामको अपने आश्रमपर ले आया। मेरे यज्ञमें वे सभी भयंकर राक्षस मारे गये। तत्पश्चात् सीताजीके स्वयंवर तथा उसमें राजाओंके शुभागमनका समाचार सुनकर मैं लक्ष्मणसहित श्रीरामको जनकपुर ले गया। मार्गमें गौतमजीका आश्रम मिला। वहाँ महती शिलारूपा अहल्याको देखकर मैंने श्रीरामसे कहा—'वत्स! इस शिलाका स्पर्श करो। ये महर्षि गौतमकी पत्नी अहल्या हैं, जो शापके कारण शिला हो गयी हैं, तुम्हारे स्पर्शसे शुद्ध होकर पुनः मानवस्वरूपको प्राप्त होंगी।' मेरे कहनेसे श्रीरामने कौतूहलवश उस शिलाका स्पर्श किया। उनके स्पर्श करते ही वह शिला दिव्य रूपधारिणी नारी हो गयी। तब उन्होंने अपने पूर्वकर्मको स्मरण करके लज्जित हो गौतमजीको प्रणाम किया और कहा—'प्राणनाथ! मुझे कोई प्रायश्चित्त बताइये, दुष्कर होनेपर भी मैं उसका अनुष्ठान करूँगी।' तब बहुत देरतक सोच-विचारकर गौतमजीने कहा—'सौ चान्द्रायण तथा एक हजार कृच्छ्रव्रत करो। फिर तीर्थयात्रामें तत्पर अड़सठ तीर्थोंमें भ्रमण करके वहाँके देवताओंका दर्शन करो। उन सबके दर्शनसे तुम पूर्णतः शुद्ध हो जाओगी।' 'बहुत अच्छा' कहकर अहल्याने मुनिकी आज्ञा शिरोधार्य की और काशी आदि अड़सठ तीर्थोंमें क्रमशः घूमती हुई वहाँके शिवलिंगोंका भक्तिपूर्वक पूजन किया। अन्तमें वह हाटकेश्वरतीर्थको गयी। वहाँ पातालवासी भगवान् हाटकेश्वरका दर्शन करनेके लिये दुष्कर तपस्या करने लगी। अपने नामसे शिवलिंगकी स्थापना करके चन्दन, फूल और अनुलेपनसे उसका त्रिकाल पूजन करती हुई अहल्याका बहुत समय व्यतीत हो गया। परंतु हाटकेश्वरका दर्शन नहीं हुआ। किसी समय अहल्यानन्दन शतानन्दजी अपनी माताको खोजते हुए हाटकेश्वरक्षेत्रमें आये। वहाँ उन्हें बड़ी भारी तपस्यामें संलग्न देख प्रणाम करके दुःखी होकर बोले—'माँ! कठोर तपस्यासे क्यों शरीरको कष्ट देती हो? अड़सठ तीर्थोंमें जो शिवलिंग हैं उनका दर्शन तो तुमने कर ही लिया है, यहाँ कोई भी मनुष्य पातालवासी हाटकेश्वरका दर्शन नहीं कर पाता। पिताजीने जो शुद्धि बतायी थी वह तो हो ही गयी। अतः अपने शुभ आश्रमको लौट चलो।'

अहल्या बोलीं—वत्स! जबतक हाटकेश्वर शिवका दर्शन नहीं कर लूँगी, तबतक घर नहीं चलूँगी, ऐसा निश्चय कर लिया है।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

यह सुनकर शतानन्दने कहा—यदि ऐसी बात है तो मुझे पिताके पास लौटकर नहीं जाना है। ऐसा कहकर उन्होंने भी शिवलिंगकी स्थापना की और छः-छः दिनोंपर भोजन करते हुए व्रतचर्यामें लग गये। उनका भी बहुत समय बीत गया। परंतु उन दोनोंपर भगवान् शिव सन्तुष्ट नहीं हुए। तदनन्तर दीर्घकालके बाद महामुनि गौतमजी भी पुत्रको देखनेकी इच्छासे वहाँ आ गये। पत्नी और पुत्रको तपस्या करते देख पहले तो वे बड़े प्रसन्न हुए। फिर दुःखी होकर बोले—'अहो! मेरा बेटा बहुत दुर्बल हो गया, अब इसे तपस्यासे निवृत्त करके ले चलूँ।' उनकी बात सुनकर शतानन्दजीने कहा—'तात! मैंने माताजीको तपस्या छोड़कर घर लौटनेके लिये कहा; परंतु ये हाटकेश्वरका दर्शन किये बिना घर लौटनेको राजी नहीं हुईं। अतः मैं भी माताके बिना नहीं लौटूँगा, यह मेरा निश्चय है।'

गौतमजीने कहा—बेटा! यदि तुम्हारा और तुम्हारी माताका यही निश्चय है तो मैं भी तपस्या करता हूँ। मैं अपने तपसे तुम्हारी माँको हाटकेश्वरका दर्शन कराऊँगा।

ऐसा कहकर वे भी तपस्यामें लग गये। सौ वर्षोंतक एक दिनका अन्तर देकर भोजन करते रहे, तदनन्तर छः-छः दिनपर भोजन करने लगे। फिर उतने-उतने ही समयतक क्रमशः फल और जलपर रहे। इसके बाद सौ वर्षोंतक वे केवल वायु पीकर रहे। तब पृथ्वी फोड़कर बारह सूर्योंके समान तेजस्वी शिवलिंग प्रकट हुआ। इसी समय भगवान् चन्द्रशेखरने मुनि गौतमको प्रत्यक्ष दर्शन देकर कहा—'सुव्रत! मैं तुम्हारी तपस्यासे सन्तुष्ट हूँ। महामुने! यही मेरा हाटकेश्वर लिंग है, जो तुम्हारी भक्ति देखकर पातालसे प्रकट हुआ है। इसीके दर्शनके लिये तुमने पुत्र और पत्नीसहित यहाँ तप किया है। तुम सब लोगोंका मनोरथ सफल हुआ। अब तुम्हारी देवरूपिणी पत्नी इस हाटकेश्वरलिंगका दर्शन करें; जिससे इन्हें अड़सठ क्षेत्रोंकी यात्राका फल प्राप्त हो। तुम भी कोई अभीष्ट वर माँगो।'

गौतमजीने कहा—पातालवासी हाटकेश्वर शिवका एक बार दर्शन करनेसे जो फल प्राप्त होता है, वही पुण्य इस शिवलिंगके दर्शनसे भी प्राप्त हो। जो मनुष्य भक्तिभावसे चैत्र शुक्ला चतुर्दशीमें इसका पूजन करें, वे सब स्वर्गलोकको जायँ। इस लिंगके प्रभाव तथा अहल्येश्वरजीके दर्शनसे सबके परस्त्रीसंसर्गजनित पाप दूर हो जायँ। शतानन्देश्वरके दर्शनसे भी सब मनुष्य शुद्ध हों।

शंखतीर्थकी महिमा, राजा दम्भका चरित्र तथा ताम्बूलके दोष, सुर्ती खानेका निषेध

आनर्तनरेश बोले—मुनिश्रेष्ठ! इस समय मुझे शंखतीर्थका माहात्म्य बताइये। उसे सुननेके लिये मेरे मनमें बड़ी श्रद्धा है।

विश्वामित्रजीने कहा—राजन्! जैसे आजकल तुम आनर्त देशके स्वामी हो, इसी प्रकार पूर्वकालमें 'दम्भ' नामसे प्रसिद्ध राजा इस देशके शासक थे। उनके कोई पुत्र नहीं था। एक दिन ऐसा आया, जब वे सहसा कुष्ठरोगसे ग्रस्त हो गये। इसी समय अनेक शत्रुओंने भी उनपर धावा कर दिया। उनका राज्य छिन गया और वे रैवतक पर्वतपर चले गये। वहाँ जानेपर भी चोर और बटमार उन्हें सदा सब ओरसे पीड़ा देने लगे। जब हाथी, घोड़े, रथ और खजाने सभी लुट गये, तब वे मन-ही-मन इस चिन्तामें पड़े कि 'अब मैं क्या करूँ?' यही सब सोचते-विचारते हुए वे देवर्षि नारदजीका दर्शन करनेके लिये गये। उस दिन एकादशी तिथि थी। नारदजी तीर्थयात्राके प्रसंगसे भगवान् दामोदरका दर्शन करनेके निमित्त वहाँ आये थे। राजा दम्भने उनके समीप जा चरणोंपर मस्तक रखकर प्रणाम किया

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

और हाथ जोड़ दीन भावसे उनके आगे बैठकर कहा—'मुनिश्रेष्ठ! मैं सब ओरसे शत्रुओंद्वारा सताया गया, अतः राज्य छोड़कर रैवतक पर्वतपर चला आया। वनमें आनेपर भी मुझे शान्ति नहीं मिली। पापी लुटेरोंने सब ओरसे मुझे पीड़ा दी और मेरे पास जो कुछ भी हाथी, घोड़े, रथ, खजाना आदि वस्तुएँ तथा स्त्रियाँ थीं, उन सबको लूट लिया। इन सब कष्टोंके कारण मेरे मनमें इस जीवनसे वैराग्य हो गया है। मुने! दूसरे जन्मोंमें मैंने कौन-सा ऐसा भयंकर पाप किया है, जिससे सहसा मुझे इस दुर्दशाकी प्राप्ति हुई है?'

उसका वह वचन सुनकर मुनिवर नारदजीने दिव्य दृष्टिसे सब वृत्तान्त जान लिया और इस प्रकार कहा—महाराज! पूर्व शरीरमें तुमने कोई कुकर्म नहीं किया है। मैंने दिव्य दृष्टिसे तुम्हारे पूर्व-जन्मका सब हाल जान लिया है।

दम्भ बोले—प्रभो! यदि पूर्वजन्ममें मैंने पाप नहीं किया है, तो इस जन्ममें कोई पाप किया हो, यह याद नहीं आता। फिर क्या कारण है कि सहसा मेरा राज्य छिन गया। इस समय मुझे इस बातका भलीभाँति अनुभव हो गया है कि संसारमें धन-वैभवसे रहित मनुष्यका जीवन व्यर्थ हो जाता है। जिसकी लक्ष्मी चली गयी, वह मनुष्य मानो मर गया। जहाँ कोई राजा नहीं है, वह राज्य भी मरे हुएके ही समान है। जो दान वेदके विद्वान्‌को नहीं दिया गया है, वह नष्टप्राय है तथा जिसमें दक्षिणा नहीं दी गयी हो, वह यज्ञ भी नष्ट ही है। जब मनुष्यका धन नष्ट हो जाता है, तब उसके भाई-बन्धु भी पराये हो जाते हैं। 'कहीं यह मुझसे द्रव्य न माँगने लगें' इस भयसे उसे देखकर दूसरी ओर मुड़ जाते हैं। जैसे इस समय लोग मुझे देखकर मुँह मोड़ लेते हैं। ब्रह्मन्! जिन्हें मैंने भलीभाँति धन देकर तृप्त किया है, वे भी मुझे देखकर बहुत दूर खिसक जाते हैं कि यह मुझसे कुछ माँग न बैठे। जैसे पक्षी सूखे वृक्षको छोड़कर चल देते हैं, उसी प्रकार निर्धन अवस्थामें उत्तम प्रकृतिके कुलीन एवं उत्तम मनुष्यको भी देखकर स्वजन भी दूसरी ओर चले जाते हैं। दरिद्र मनुष्य उस धनीका ही कार्य करनेके लिये उसके घर आता हो तो भी धनीलोग उसे फटकार देते हैं और उसके पास नहीं जाते। परंतु दूसरा धनाढ्य मनुष्य उसके समीप कुछ माँगनेके लिये आता हो, तो भी मनुष्यके चित्तमें यही भाव पैदा होता है कि 'यह मुझे कुछ देगा।' इस संसारमें धनियोंके आगे खड़े होकर लोग प्रायः यह कहते हैं कि 'हम और आप तो पहलेसे ही एक कुलके हैं, आपके पिताजी मेरे पितापर सदा ही बड़ा स्नेह रखते थे।' कुलीन मनुष्य भी धनके लोभसे पापियोंके यहाँ उपस्थित देखे जाते हैं। ये काम और क्रोध दो प्रकारके मनुष्योंके लिये अत्यन्त कड़वे और तीक्ष्ण दोष हैं, तथा शरीरके शत्रु हैं—एक तो उस मनुष्यके लिये जो निर्धन होकर भी कामना करता है और दूसरे उसके लिये जो असमर्थ होकर भी क्रोध करता है। धनके लोभी मनुष्य रातमें श्मशानका भी सेवन करते हैं और पिताको भी छोड़कर बहुत दूर चले जाते हैं। जिसके घरमें धन है, वह अत्यन्त मूर्ख हो तो भी विद्वान् माना जाता है, कुलीन न हो तो भी उत्तम कुलमें उत्पन्न कहा जाता है। इसके विपरीत धन न रहनेपर कुलीन भी अकुलीन और विद्वान् भी मूर्ख माना जाता है। इसलिये मुनिश्रेष्ठ! मुझे इस जीवनसे वैराग्य हो गया है। मैं दरिद्र हूँ, कोढ़ी हूँ और शत्रुओंसे अपमानित भी हो चुका हूँ, यदि कोई पूर्वपाप नहीं है, तो यह सब कष्ट मुझे किस कारणसे प्राप्त हुआ है? यह बताइये।

राजाका यह वचन सुनकर नारदजीने बहुत देरतक सोच-विचारकर कहा—राजन्! मैं तुम्हें पुनः राज्यकी प्राप्ति एवं आरोग्यका उपाय बताता हूँ। तुम्हारे राज्यमें अति सुन्दर हाटकेश्वर नामक पुण्यमय तीर्थ है, जहाँ सब पातकोंका नाशक शंखतीर्थ बहुत प्रसिद्ध है। जो मनुष्य श्रद्धापूर्वक वैशाखमासके शुक्ल पक्षकी अष्टमी तिथिको रविवारके दिन सूर्योदयके समय उसमें स्नान

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

करता है, वह सब प्रकारके कुष्ठरोगोंसे मुक्त हो सूर्यके समान तेजस्वी हो जाता है। जो जिस-जिस कामनाका चिन्तन करके उस तीर्थमें स्नान और शंखेश्वरका दर्शन करता है, वह अत्यन्त दुर्लभ मनोरथको भी प्राप्त कर लेता है। क्या स्वदेशमें निवास करते समय तुमने उस तीर्थका माहात्म्य नहीं सुना था, जो यहाँ आये हो? नृपश्रेष्ठ! वहीं जाकर विधिपूर्वक स्नान करके भगवान् सूर्यनारायणका पूजन करो।

विश्वामित्रजी कहते हैं—देवर्षि नारदजीकी बात सुनकर राजा सिद्धसेन (दम्भ) वैशाख शुक्ला अष्टमी एवं रविवारका उत्तम योग आनेपर शंखतीर्थमें गये और सूर्योदयके समय उसमें स्नान करके ज्यों ही सूर्यदेवका पूजन करने लगे, उसी समय कुष्ठरोगसे मुक्त हो गये। तब दिव्य शरीर पाकर उनके मनमें बड़ा सन्तोष हुआ। तदनन्तर उनसे पूर्वकालमें जो एक भूल हुई थी उसका प्रायश्चित्त किया। भूल यह हुई थी कि उन्होंने किसी समय चूर्णपत्र (सूर्ती)-के साथ ताम्बूल पान भक्षण कर लिया था, उसीका यह फल था कि उनपर कष्टपूर्ण दशा आयी थी। प्रायश्चित्त करनेपर वे उत्तम लक्ष्मीको प्राप्त हुए और पहलेकी ही भाँति पिता-पितामहोंके राज्यका शासन करने लगे।

यह सुनकर आनर्तनरेशको बड़ा आश्चर्य हुआ। तब विश्वामित्रजीने उनसे कहा—तुम्हारे मनमें यह जाननेकी उत्सुकता है कि चूर्णपत्र (सुर्ती) खानेसे दोष क्यों होता है, सो मैं तुम्हें बताता हूँ। प्राचीन कालकी बात है, देवताओंने समुद्रसे मन्थनद्वारा अमृत प्राप्त करके उसे नन्दनवनमें रखा। वहीं ऐरावत हाथीके बाँधनेका खम्भा भी था। नागराज ऐरावत रात-दिन उस अमृतकी दिव्य सुगन्ध लेता रहता था। एक समय उस अमृत-कलशसे एक लता प्रकट हुई और वह फैलती हुई नागराज ऐरावतके आलान (बाँधनेके खम्भे) पर चढ़ गयी। देवता लोग उस अपूर्व सुगन्धित लताके पत्र तोड़कर मुखशुद्धिके लिये खाते थे और खाकर बड़े प्रसन्न होते थे। तदनन्तर धन्वन्तरि वैद्यने उसे देखकर कहा—'यह नाग (हाथी)-के आलानपर फैली है, इसलिये नागवल्लीके नामसे प्रसिद्ध होगी और मेरे वचनसे यह सदा कामदेवका स्थान (उद्दीपन करनेवाली) होगी।' तत्पश्चात् उन्होंने उसके साथ सुपारी, चूना और कत्थेका संयोग करके उसके द्वारा इन्द्रदेवताको तृप्त किया।

तब इन्द्रने कहा—राजन्! वर माँगो।

धन्वन्तरिने कहा—यह नागवल्ली कृपा करके मुझे भी दीजिये, मर्त्यलोकमें इसका प्रचार हो।

'तथास्तु' कहकर इन्द्रने नागवल्ली (पानकी बेल) उन्हें दे दी। राजाने अपने नगरमें जाकर उसे उद्यानमें आरोपित किया। तदनन्तर शीघ्र ही उसका सब ओर प्रचार हो गया। उसे खा-खाकर मनुष्य काम-भोगमें आसक्त हो गये। कोई भी यज्ञ आदि सत्कर्म न तो करता था और न कराता ही था। समस्त धार्मिक क्रियाएँ लुप्त हो गयीं। देववृन्द यज्ञभागसे वंचित हो गये और क्षुधासे पीड़ित हो ब्रह्माजीके समीप जाकर बोले—'सुरश्रेष्ठ! मर्त्यलोकमें समस्त धर्मकार्य बंद हो गये। सारा जगत् ताम्बूल भक्षण करके कामासक्त होता जा रहा है। अतः हमलोगोंपर कृपा कीजिये, जिससे हमारा यज्ञकार्य नष्ट न होने पावे।'

इसी समय ब्रह्माजी यज्ञके लिये पुष्करतीर्थमें आये। उस समय दारिद्र्यने उनके पास जा प्रणाम करके विनयपूर्वक कहा—'देव! मैं तो ब्राह्मणोंके घरमें रहकर उपवास करते-करते ऊब गया हूँ, अब कोई धनवानोंका अच्छा-सा घर मेरे रहनेके लिये बताइये, जहाँ खूब पेट भरकर भोजन मिले और सदा तृप्ति बनी रहे।'

उसका वचन सुनकर ब्रह्माजीने देरतक सोच-विचारकर कहा—'दारिद्र्य! तुम्हें चूर्णपत्र (सुर्ती)-में सदा निवास करना चाहिये। ताम्बूलके पत्तेके अग्रभागमें पत्नीके साथ रहो तथा वृन्तमें पुत्रके साथ निवास करो। रात होनेपर तुम तीनों

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

कत्थेमें निवास करना।' इस प्रकार धनवानोंके यहाँ छिद्र उत्पन्न करनेके लिये दरिद्रताको ये चार स्थान दिये गये हैं *। राजन्! राजा दम्भने न जाननेके कारण उन सब दोषोंसे युक्त पान खा लिये थे, इसीलिये उन्हें सहसा ऐश्वर्यसे हाथ धोना पड़ा था।

विश्वामित्रतीर्थ एवं रत्नादित्यकी महिमा, धन्वन्तरि आदिकी कुष्ठरोगसे मुक्ति

ऋषि बोले—हाटकेश्वरक्षेत्रमें जो तीन पुण्य-दायक क्षेत्र हैं, उनका वर्णन हमने सुना, अब हम विश्वामित्रजीके तीर्थका माहात्म्य सुनना चाहते हैं।

सूतजीने कहा—विप्रवरो! विश्वामित्रजीके गुणोंका पार नहीं है। वे क्षत्रियकुलमें उत्पन्न होकर भी अपनी तपस्याके प्रभावसे ब्राह्मणत्वको प्राप्त हो गये। राजा त्रिशंकु अन्त्यजभावको प्राप्त थे, तो भी उनके यज्ञमें उन्होंने प्रत्यक्ष यज्ञभागभोगी देवताओंका निर्माण किया। पूर्वकालमें ब्रह्माजीके साथ स्पर्धा करके विश्वामित्रजीने नूतन सृष्टि रचना प्रारम्भ की थी। उस समय देवताओंने उनके चरणोंपर गिरकर उन्हें इस कार्यसे विरत किया था। श्रेष्ठ ब्राह्मणो! महात्मा विश्वामित्रने हाटकेश्वरक्षेत्रमें बिना किसी शस्त्रके केवल अपने हाथसे कुण्ड-निर्माण किया था, जो सब पातकोंका नाश करनेवाला है। उसके भीतर ध्यान करके उन्होंने पातालगंगाको बुलाया, उनका निर्मल जल पातालसे मर्त्यलोकमें प्रकट हुआ है, जो परम स्वादिष्ट तथा स्नान करनेसे सब पातकोंका नाश करनेवाला है। उन्होंने वहाँ भगवान् सूर्यदेवको भी स्थापित किया है। जो मनुष्य सप्तमी एवं रविवारके संयोगमें माघमासके शुक्ल पक्षमें सूर्योदयके समय उस शुभ कुण्डमें स्नान करता है, वह समस्त कुष्ठ रोगों और पापोंसे मुक्त होता है। उस कुण्डके पश्चिम और उत्तर कोणमें धन्वन्तरिद्वारा निर्मित एक वापी है, जो महान् जलराशिसे परिपूर्ण है। वह सब रोगोंका नाश करनेवाली है। पूर्वकालमें वहाँ उदारबुद्धि धन्वन्तरिजीने एकाग्रतापूर्वक सूर्यदेवका ध्यान करते हुए तपस्या की। दीर्घकालके पश्चात् भगवान् सूर्य उनपर सन्तुष्ट हुए और बोले—'वर माँगो।'

धन्वन्तरिने कहा—प्रभो! जो मनुष्य भक्तिपूर्वक इस कुण्डमें स्नान करे, उसके सब रोगोंका नाश हो जाय।

श्रीभगवान् बोले—आजके उत्तम दिन रविवार एवं सप्तमीके शुभ योगमें जो मनुष्य एकाग्रचित्त हो सूर्योदय कालमें स्नान करेगा, उसके सब रोग नष्ट हो जायँगे।

ऐसा कहकर सुरश्रेष्ठ सूर्यदेव अन्तर्धान हो गये। ब्राह्मणो! एक समय पूर्वकर्मोंके फलस्वरूप राजा धन्वन्तरिको कोढ़का रोग हुआ, जिसकी चिकित्सा तीनों लोकोंमें असम्भव हो गयी। संसारमें कोई ऐसी दवा नहीं थी, जो उन्होंने न की हो। कोई दान नहीं, जो उन्होंने न दिया हो। वे ज्यों-ज्यों दवा करते और दान देते थे, त्यों-त्यों रोग बढ़ता ही जाता था और उससे उनका शरीर अत्यन्त दुर्बल होता जाता था। तब उन्हें इस जीवनसे वैराग्य हो गया और उन्होंने पुत्रको राज्यपर बिठाकर अग्निमें प्रवेश कर जानेकी इच्छा की। ब्राह्मणोंको दान देकर देवताओंका पूजन किया, फिर मित्रों एवं हितैषियोंसे मिल-

* इस प्रसंगसे जान पड़ता है, पान न खाना सर्वोत्तम है। दोषसे बचकर खाना हो तो, पानमें सुर्ती तो कभी डाले ही नहीं, क्योंकि उसमें सदा दारिद्र्यका वास है। देखा भी जाता है गरीब लोग ही अधिक सुर्ती खानेवाले हैं। रातमें भी पान न खाये, क्योंकि कत्थेमें उस समय दरिद्राताका वास है। पानके पत्तेका अग्रभाग और डंठल तोड़कर केवल दिनमें बिना सुर्तीका पान देवताको अर्पण करके खानेमें दोष नहीं है। शायद इसीसे पानका डंठल और अगला भाग तोड़नेकी प्रथा है।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

जुलकर वार्तालाप करके पुत्रको कर्तव्यका उपदेश दिया। इसके बाद वे अग्निमें प्रवेश करनेको तैयार हुए। इतनेमें ही स्वेच्छानुसार घूमता हुआ कोई दिव्यरूपधारी तीर्थयात्री वहाँ आ पहुँचा। उसने राजाके सम्पूर्ण नगरको व्याकुल देखकर किसीसे पूछा—'यह समस्त नगर व्याकुल क्यों है?' उसने कहा—'यहाँके राजा कुष्ठरोगसे पीड़ित हैं, अतः स्त्रीसहित अग्निमें प्रवेश कर जायँगे। इसीसे सम्पूर्ण नगरमें व्याकुलता छा रही है।'

यह सुनकर वह तीर्थयात्री शीघ्र ही राजाके समीप गया और सबको जीवनदान देता हुआ बोला—राजन्! एक तीर्थ है, जहाँ सब रोगों और व्याधियोंका नाश हो जाता है। उसके रहते हुए आप अग्निमें प्रवेश न करें। भूपाल! जैसा आज आपका शरीर है, ऐसा ही पहले मेरा भी था। रविवार और सप्तमीका योग आनेपर जो रोगी मनुष्य सूर्योदयके समय उस तीर्थमें स्नान करता है, वह क्षणभरमें सब रोगों और पापोंसे मुक्त हो दिव्य शरीर पा लेता है—उसका काया-कल्प हो जाता है।

राजाने पूछा—ऐसा तीर्थ किस देशमें है? शीघ्र बतलाओ।

कार्पटिक (तीर्थयात्री) बोला—इस भूतलपर नगर नामसे प्रसिद्ध उत्तम क्षेत्र है। वहाँ भगवान् जलशायीके पश्चिम और उत्तर दिशामें विश्वामित्रजीका परम पुण्यमय तीर्थ है। वहाँ जाकर तुम भी रविवार और सप्तमीके योगमें स्नान करो, जिससे तुम्हारा रोग और पातक नष्ट हो जाय।

यह सुनकर राजा धन्वन्तरि उस तीर्थयात्रीके साथ शीघ्र उक्त तीर्थमें गये और वहाँ माघ मासकी सप्तमी एवं रविवारके योगमें स्नान किया। स्नान करते ही वे तत्काल कुष्ठरोगसे मुक्त हो गये और उनका शरीर दिव्य हो गया। तत्पश्चात् उन्होंने उस तीर्थयात्रीसे कहा—'भैया! तुम्हारे ही प्रसादसे मैं इस भयंकर रोगसे छुटकारा पा सका हूँ; अब तुम अपने घर जाओ, मैं यहीं झरनेके समीप स्त्रीसहित रहकर तपस्या करूँगा। राज्यसिंहासनपर अपने पुत्रको बिठा दिया है। वह राज्य शासन करनेमें पूर्णतः समर्थ है।' ऐसा कहकर राजाने उस तीर्थयात्रीको तथा अन्यान्य सेवकोंको अपने-अपने घर भेज दिया और स्वयं अपनी स्त्रियोंसहित सुन्दर आश्रम बनाकर रहने लगे। समयानुसार तपस्यासे उन्हें उत्तम सिद्धि प्राप्त हुई। तत्पश्चात् वह तीर्थ उन्हींके नामसे तीनों लोकोंमें विख्यात हुआ। वह सब रोगोंका नाश करनेवाला, सुन्दर तथा समस्त पापोंका नाशक है। महात्मा राजाने वहाँ देवाधिदेव भगवान् सूर्यकी भी स्थापना की थी, जो रत्नादित्यके नामसे विख्यात हुए। जो मनुष्य रविवार और सप्तमीके योगमें वहाँ स्नान करके रत्नादित्यका दर्शन करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो सूर्यलोकमें जाता है।

विप्रवरो! हाटकेश्वरक्षेत्रके समीप किसी गाँवमें कोई पुरुष रहता था, जो बूढ़ा और कोढ़ी था। फिर भी वह सदा दूसरोंके पशुओंको चराता और उनका पालन किया करता था। एक समयकी बात है, एक पशु घासके लोभसे रास्ता छोड़कर पर्वतके नीचे चला गया और उस तीर्थके जलमें गिर पड़ा। उस दिन रविवार और सप्तमी तिथिका योग था। उस बूढ़ेने जाते हुए पशुको नहीं देखा। जब वह भोजन करनेके लिये अपने घर गया, तब उस पशुका स्वामी उसे फटकारता हुआ आया और बोला—'आज मेरा वह पशु घर क्यों नहीं आया? शीघ्र जाकर उसे ले आ नहीं तो तेरे प्राण ले लूँगा।'

यह सुनकर वह कोढ़ी भयसे थर-थर काँपता हुआ शीघ्र उस स्थानपर गया। रातकी अँधेरी छायी हुई थी। उसने दूरसे महाकुण्डमें गिरे हुए पशुका आर्तनाद सुना। तब उस गर्तमें पहुँचकर उसने बड़े कष्टसे उस पशुको खींचकर कीचसे बाहर निकाला। फिर उसे साथ ले धीरे-धीरे घरको लौटा और उसके स्वामीको पशु सौंपकर

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

अपनी झोंपड़ीमें गया। रातको तो वह सो गया। सबेरे उठनेपर उस बड़भागी पुरुषने जब अपने शरीरपर दृष्टिपात किया, तब उसे कुष्ठरोगसे रहित तथा उत्तम शोभासे सम्पन्न देखा। फिर उसने आश्चर्यमें पड़कर सोचा, यह क्या है, रोगका नाश कैसे हो गया? निस्सन्देह, यह उसी तीर्थके जलका प्रभाव है, जिसमें मैंने पशुको निकालनेके लिये प्रवेश किया था। तब वह उस उत्तम तीर्थमें जाकर भगवान् सूर्यका ध्यान करता हुआ तपस्या करने लगा। अन्तमें उसने देवदुर्लभ सिद्धि प्राप्त कर ली। इसलिये पूर्णतः प्रयत्न करके वहाँ स्नान और भगवान् सूर्यदेवकी पूजा करे। आजके कलिकालमें भी जो मनुष्य रविवार और सप्तमीका योग आनेपर उस पुण्य जलाशयमें स्नान करता है और भक्तिपूर्वक भगवान् सूर्यको पूजता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। जो वहाँ सूर्यदेवके सम्मुख आठ हजार गायत्रीका जप करता है, वह समस्त रोगों और पापोंसे छूट जाता है। जो मनुष्य श्रद्धापूर्वक भगवान् सूर्यकी प्रसन्नताके लिये वहाँ गोदान करता है, उसकी तो बात ही क्या है। उसके वंशमें भी कोई रोग-व्याधिसे ग्रस्त नहीं होता।

श्राद्धकल्प

सूतजी कहते हैं—उस तीर्थमें विश्वामित्रजीके द्वारा स्थापित गणेशजी भी हैं, जो मनुष्योंको सब प्रकारकी सिद्धि देनेवाले हैं। जो माघमासके शुक्ल पक्षकी चतुर्थी तिथिको उनकी पूजा करता है, वह एक वर्षतक सब प्रकारके विघ्नोंसे छुटकारा पा जाता है।

एक समय महामुनि मार्कण्डेयजी राजा रोहिताश्वके यहाँ पधारे और यथायोग्य सत्कार ग्रहण करनेके बाद उन्हें कथा सुनाने लगे। कथाके अन्तमें राजा रोहिताश्वने कहा—'भगवन्! मैं श्राद्धकल्पका यथार्थरूपसे श्रवण करना चाहता हूँ।'

मार्कण्डेयजी बोले—राजन्! यही बात आनर्तनरेशने भर्तृयज्ञसे पूछी थी। वही प्रसंग सुनाता हूँ।

आनर्तने पूछा—ब्रह्मन्! श्राद्धके लिये कौन-सा समय विहित है? श्राद्धोपयोगी द्रव्य कौन हैं? श्राद्धके लिये कौन-कौन-सी वस्तुएँ पवित्र मानी गयी हैं? कैसे ब्राह्मण श्राद्धकर्ममें सम्मिलित करने योग्य हैं और कैसे ब्राह्मण त्याज्य माने गये हैं?

भर्तृयज्ञने कहा—राजन्! विद्वान् पुरुषको अमावास्याके दिन अवश्य श्राद्ध करना चाहिये। क्षुधासे क्षीण हुए पितर श्राद्धान्नकी आशासे अमावास्या तिथिके आनेकी प्रतीक्षा करते रहते हैं। जो अमावास्या तिथिको जल या शाकसे भी श्राद्ध करता है, उसके पितर तृप्त होते हैं और उसके समस्त पातकोंका नाश हो जाता है।

आनर्तने पूछा—ब्रह्मन्! विशेषतः अमावास्याको श्राद्ध करनेका विधान क्यों है? मरे हुए जीव तो अपने कर्मानुसार शुभाशुभ गतिको प्राप्त होते हैं; फिर श्राद्धकालमें वे अपने पुत्रके घर कैसे पहुँच पाते हैं?

भर्तृयज्ञने कहा—महाराज! जो लोग यहाँ मरते हैं, उनमेंसे कितने ही इस लोकमें जन्म ग्रहण करते हैं, कितने ही पुण्यात्मा स्वर्गलोकमें स्थित होते हैं और कितने ही पापात्मा जीव यमलोकके निवासी हो जाते हैं। कुछ जीव भोगानुकूल शरीर धारण करके अपने किये हुए शुभ या अशुभ कर्मका उपभोग करते हैं। राजन्! यमलोक या स्वर्गलोकमें रहनेवाले पितरोंको भी तबतक भूख-प्यास अधिक होती है, जबतक कि वे माता या पितासे तीन पीढ़ीके अन्तर्गत रहते हैं—जबतक वे श्राद्धकर्ता पुरुषके—मातामह, प्रमातामह या वृद्धप्रमातामह एवं पिता, पितामह या प्रपितामह पदपर रहते हैं, तबतक श्राद्धभाग ग्रहण करनेके लिये उनमें भूख-प्यासकी अधिकता

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

होती है। पितृलोक या देवलोकके पितर तो श्राद्धकालमें सूक्ष्म शरीरसे आकर श्राद्धीय ब्राह्मणोंके शरीरमें स्थित होकर श्राद्धभाग ग्रहण करते हैं; परंतु जो पितर कहीं शुभाशुभ भोगमें स्थित हैं या जन्म ले चुके हैं, उनका भाग दिव्य पितर आकर ग्रहण करते हैं और जीव जहाँ जिस शरीरमें होता है—वहाँ तदनुकूल भोगकी प्राप्ति कराकर उसे तृप्ति पहुँचाते हैं। ये दिव्य पितर नित्य एवं सर्वज्ञ होते हैं। पितरोंके उद्देश्यसे सदा ही अन्न और जलका दान करते रहना चाहिये। जो नीच मानव पितरोंके लिये अन्न और जल न देकर आप ही भोजन करता या जल पीता है, वह पितरोंका द्रोही है। उसके पितर स्वर्गमें अन्न और जल नहीं पाते हैं। इसलिये शक्तिके अनुसार अन्न और जल उनके लिये अवश्य देने चाहिये। श्राद्धद्वारा तृप्त किये हुए पितर मनुष्यको मनोवांछित भोग प्रदान करते हैं।

श्राद्धकी आवश्यकता तथा समय

आनर्तनरेशने पूछा—ब्रह्मन्! श्राद्धके लिये और भी तो नाना प्रकारके पवित्रतम काल हैं; फिर अमावास्याको ही विशेषरूपसे श्राद्ध करनेकी बात क्यों कही गयी है?

भर्तृयज्ञने कहा—महाराज! यह सत्य है कि श्राद्धके योग्य और भी बहुत-से समय हैं। मन्वादि तिथि, युगादि तिथि, संक्रान्तिकाल, व्यतीपात, गजच्छाया, चन्द्रग्रहण तथा सूर्यग्रहण—इन सभी समयोंमें पितरोंकी तृप्तिके लिये श्राद्ध करना चाहिये। पुण्यतीर्थ, पुण्यमन्दिर, श्राद्धयोग्य ब्राह्मण तथा श्राद्धके योग्य उत्तम पदार्थ प्राप्त होनेपर बुद्धिमान् पुरुषोंको बिना पर्वके भी श्राद्ध करना चाहिये। अमावास्याको जो विशेषरूपसे श्राद्ध करनेका आदेश दिया गया है, इसका कारण बताता हूँ, एकाग्रचित्त होकर सुनो। सूर्यकी सहस्रों किरणोंमें जो सबसे प्रमुख है, उसीका नाम 'अमा' है; उस 'अमा' नामक प्रधान किरणके ही तेजसे सूर्यदेव तीनों लोकोंको प्रकाशित करते हैं। उसी अमामें तिथिविशेषको चन्द्रदेव निवास करते हैं, इसलिये उसका नाम 'अमावास्या' है। यही कारण है कि अमावास्या प्रत्येक धर्मकार्यके लिये अक्षय फल देनेवाली बतायी गयी है। श्राद्धकर्ममें तो इसका विशेष महत्त्व है ही। अग्निष्वात्त, बर्हिषद्, आज्यप, सोमप, रश्मिप, उपहूत, आयन्तुन, श्राद्धभुक् तथा नान्दीमुख—ये नौ दिव्य पितर बताये गये हैं। आदित्य, वसु, रुद्र तथा दोनों अश्विनीकुमार भी केवल नान्दीमुख पितरोंको छोड़कर शेष सभीको तृप्त करते हैं। ये पितृगण ब्रह्माजीके समान बताये गये हैं; अतः पद्मयोनि ब्रह्माजी उन्हें तृप्त करनेके पश्चात् सृष्टिकार्य प्रारम्भ करते हैं।

इनके सिवा, दूसरे भी ऐसे मर्त्य-पितर होते हैं, जो स्वर्गलोकमें निवास करते हैं। वे दो प्रकारके देखे जाते हैं; एक तो सुखी हैं और दूसरे दुःखी। मर्त्यलोकमें रहनेवाले वंशज जिनके लिये श्राद्ध करते और दान देते हैं, वे सभी वहाँ हर्षमें भरकर देवताओंके समान प्रसन्न होते हैं। जिनके लिये उनके वंशज कुछ भी दान नहीं करते, वे भूख-प्याससे व्याकुल और दुःखी देखे जाते हैं। एक समयकी बात है, अग्निष्वात्त आदि सभी पितर देवराज इन्द्रके पास गये। महाराज! इन्द्रने उन्हें आया देख सम्पूर्ण देवताओंके साथ भक्तिपूर्वक उनका पूजन किया। इसके बाद जब वे देवदुर्लभ पितृलोकको जाने लगे, तब क्षुधा-पिपासासे पीड़ित रहनेवाले मर्त्य पितरोंने दिव्य स्तोत्रोंसे, पितृसूक्तके मन्त्रोंसे तथा पितरोंको सन्तुष्ट करनेवाले अन्यान्य वैदिक स्तोत्रोंसे उन सबकी स्तुति करके दीनतापूर्ण वचनोंद्वारा उन्हें प्रसन्न किया। तब वे दिव्य पितर प्रसन्न होकर उनसे बोले—'सुव्रतो! हम सब तुम लोगोंपर प्रसन्न हैं, बोलो तुम क्या चाहते हो?'

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

मर्त्य पितर बोले—दिव्य पितृगण! हम मनुष्योंके पितर हैं। अपने कर्मोंद्वारा मर्त्यलोकसे स्वर्गमें आकर देवताओंके साथ निवास करते हैं। परंतु यहाँ हमें अत्यन्त भयंकर भूख और प्यासका कष्ट होता है। जान पड़ता है, हम आगमें जल रहे हैं। यहाँके नन्दन आदि वनोंमें बड़े सुन्दर-सुन्दर वृक्ष हैं। सबमें फल लगे हुए हैं, परंतु उन फलोंको जब हम हाथमें लेते हैं और यत्नपूर्वक जोर-जोरसे खींचते हैं तो भी वे डालीसे टूटकर अलग नहीं होते। प्याससे पीड़ित होकर यदि हम देवनदी गंगाका जल हाथमें उठाते हैं और पीते हैं, तब हमारे हाथमें उस जलका स्पर्श ही नहीं होता। इस स्वर्गलोकमें कोई खाता-पीता नहीं दिखायी देता। अत: यहाँका निवास हमारे लिये अत्यन्त भयंकर हो गया है। यहाँ जो देवता और गुह्यक आदि हैं, वे सब विमानमें बैठे हुए प्रसन्नचित्त दिखायी देते हैं। इन्हें भूख-प्यासका कष्ट नहीं है। ये अनेक प्रकारके भोगोंसे सम्पन्न हैं। क्या हम सब लोग भी कभी ऐसे हो सकेंगे? भूख-प्यासके कष्टसे रहित हो परम सन्तोष पा सकेंगे?

दिव्य पितरोंने कहा—इन्द्र आदि केवल दूसरे-दूसरे कार्योंमें व्यग्र होकर जब हमारे लिये श्राद्ध नहीं करते, दान नहीं देते, तब हमलोगोंकी भी ऐसी ही कष्टपूर्ण दशा हो जाती है। उस समय हम वहाँसे आकर देवताओंसे कहते हैं, प्रार्थना करते हैं। उसके बाद जब ये लोग श्राद्ध-तर्पणद्वारा हमें तृप्त करते हैं, तब हमें तृप्ति प्राप्त होती है। इसी प्रकार तुम लोगोंके जो वंशज एकाग्रचित्त हो तुम्हारे लिये श्राद्धका दान देते हैं, उससे तुमलोग भी क्यों नहीं तृप्त होओगे? अब प्रमादी वंशज पितरोंका तर्पण नहीं करते, तब उनके पितर स्वर्गमें रहनेपर भी भूख-प्याससे व्याकुल हो जाते हैं; फिर जो यम लोकमें पड़े हैं, उनके कष्टका तो कहना ही क्या है?

इतना कहकर दिव्य पितरोंने मर्त्य पितरोंको साथ ले ब्रह्माजीके समीप गमन किया और उनकी तथा अपनी शाश्वत तृप्तिके लिये उपाय पूछा। तब ब्रह्माजीने कहा—'पितरो! यदि मनुष्य पिता, पितामह और प्रपितामहके उद्देश्यसे तथा मातामह, प्रमातामह और वृद्धप्रमातामहके उद्देश्यसे श्राद्ध-तर्पण करेंगे तो उतनेसे ही उनके पिता और मातामहसे लेकर मुझतक सभी पितर तृप्त हो जायँगे। जिस अन्नसे मनुष्य अपने पितरोंकी तुष्टिके लिये श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको तृप्त करेगा और उसीसे भक्तिपूर्वक पितरोंके निमित्त पिण्डदान भी देगा, उससे तुम्हें सनातन तृप्ति प्राप्त होगी। अमावस्याके दिन वंशजोंद्वारा श्राद्ध और पिण्ड पाकर पितरोंको एक मासतक तृप्ति बनी रहेगी। सूर्यदेवके कन्याराशिपर स्थित रहते समय आश्विन कृष्णपक्ष (पितृपक्ष या महालय)-में जो मनुष्य मृत्यु-तिथिपर पितरोंके लिये श्राद्ध करेंगे, उनके उस श्राद्धसे पितरोंको एक वर्षतक तृप्ति बनी रहेगी। उस समय शाकके द्वारा भी जो तुम्हारा श्राद्ध नहीं करेगा, वह धनहीन चाण्डाल होगा। जो मनुष्य उसके साथ बैठना, सोना, खाना, पीना, छूना-छुलाना अथवा वार्तालाप आदि व्यवहार करेंगे, वे भी महापापी माने जायँगे। उनके सन्तानकी वृद्धि नहीं होगी। किसी प्रकार भी उन्हें सुख और धन-धान्यकी प्राप्ति नहीं होगी। यदि मनुष्य गयाशीर्षमें जाकर एक बार भी श्राद्ध कर देंगे तो उसके प्रभावसे तुम सभी पितर सदाके लिये तृप्त हो जाओगे।'

भर्तृयज्ञ कहते हैं—राजन्! ऐसा जानकर विज्ञ पुरुषको चाहिये कि पितरोंको तृप्त करनेकी इच्छा रखकर वह उक्त समयोंमें श्राद्ध अवश्य करे। इहलोक और परलोकमें उसकी उन्नति चाहनेवाले पुरुषको विशेषत: गयाशीर्षमें जाकर श्राद्ध करना चाहिये। जो मनुष्य अमावस्याके दिन श्राद्ध नहीं करता, उसके पितर भूख-प्याससे पीड़ित हो बहुत दु:खी होते हैं। मन-ही-मन तृप्तिकी अभिलाषा रखकर वे प्रेतपक्षकी प्रतीक्षा करते

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

रहते हैं, ठीक उसी तरह जैसे किसानलोग रात-दिन वर्षाकी राह देखते हैं। पितृपक्ष बीत जानेपर भी जब उन्हें श्राद्धका अन्न नहीं मिलता, तब वे जबतक कन्या राशिपर सूर्य रहते हैं, तबतक अपनी सन्तानोंद्वारा किये हुए श्राद्धकी प्रतीक्षा करते हैं। उसके भी बीत जानेपर कुछ पितर तुलाराशिके सूर्यतक पूरे कार्तिकमासमें अपने वंशजोंद्वारा किये जानेवाले श्राद्धकी राह देखते हैं। जब सूर्यदेव वृश्चिक राशिपर चले जाते हैं, तब वे पितर दीन एवं निराश होकर अपने स्थानपर लौट जाते हैं। राजन्! इस प्रकार पूरे दो मासतक भूख-प्याससे व्याकुल पितर वायुरूपमें आकर घरके दरवाजोंपर खड़े रहते हैं। अतः जबतक कन्या और तुलापर सूर्य रहते हैं, तबतक तथा अमावस्याके दिन सदा पितरोंके लिये श्राद्ध करना चाहिये। विशेषतः तिल और जलकी अंजलि देनी चाहिये। कन्या और तुलामें श्राद्ध न हो तो अमावास्याको अवश्य करे। वह भी न हो तो एक बार गयाजीमें आकर श्राद्ध कर दे, जिससे नित्य श्राद्धका फल प्राप्त होता है।

श्राद्धकी विधि, विहित और निषिद्ध ब्राह्मण तथा मन्वादि एवं युगादि पुण्यतिथियोंका वर्णन

आनर्तने पूछा—मुनीश्वर! सब मनुष्योंको किस विधिसे श्राद्ध करना चाहिये?

भर्तृयज्ञने कहा—उत्तम कर्मोंद्वारा उपार्जित धनसे पितरोंका श्राद्ध करना उचित है। छल, कपट, चोरी और ठगीसे कमाये हुए धनसे कदापि श्राद्ध न करे। अपनी वर्णोचित वृत्तिके द्वारा उपार्जित धनसे श्राद्धके लिये सामग्री एकत्र करे। पहले सन्ध्याकाल आनेपर काम-क्रोधसे रहित एवं पवित्र हो श्राद्धकर्मके योग्य श्रेष्ठ ब्रह्मचर्यपरायण ब्राह्मणोंको निमन्त्रित करे। उनके अभावमें ब्रह्मज्ञानपरायण, अग्निहोत्री, वेदविद्यामें निपुण गृहस्थ ब्राह्मणोंको निमन्त्रण दे। जिनका कोई अंग विकल न हो, जो नीरोग, आहारपर संयम रखनेवाले तथा पवित्र हों, ऐसे ब्राह्मण श्राद्धके योग्य बताये गये हैं।

जो किसी अंगसे हीन हों या जिनका कोई अंग अधिक हो, जो सर्वभक्षी हों, निकाले गये हों, जिनके दाँत काले हों अथवा जिनके दाँत गिर गये हों, जो वेद बेचनेवाले और यज्ञवेदीको नष्ट करनेवाले हों, जिनमें वेद-शास्त्रोंका ज्ञान न हो, जिनके नख खराब हो गये हों, जो रोगी, निर्धन, दूसरोंकी हिंसा करनेवाले, दूसरे लोगोंपर लांछन लगानेवाले, नास्तिक, नाचनेवाले, सूदखोर, बुरे कर्मोंमें संलग्न, शौचाचारसे शून्य, अत्यन्त लंबे, अति दुर्बल, बहुत मोटे, अधिक रोमवाले तथा रोमरहित हों, ऐसे ब्राह्मणोंको श्राद्धमें त्याग दे। जो पितरोंका गौरव रखना चाहे, उसे ऐसा अवश्य करना चाहिये। जो परायी स्त्रीमें आसक्त, शूद्रजातीय स्त्रीसे सम्पर्क रखनेवाले, नपुंसक, मलिन, चोर, क्षत्रिय तथा वैश्यकी वृत्तिवाले, माता-पिताका त्याग करनेवाले, गुरुस्त्रीगामी, निर्दोष पत्नीको छोड़नेवाले, कृतघ्न, खेती करनेवाले, शिल्पसे जीविका चलानेवाले, भाला बेचकर या भाला चलाकर जीनेवाले, चमड़ेके व्यापारसे जीवन-निर्वाह करनेवाले तथा अज्ञात कुलवाले हों, ऐसे ब्राह्मणोंको भी श्राद्धमें त्याग देना चाहिये।

अब उन ब्राह्मणोंका परिचय देता हूँ, जो श्राद्धकार्यमें प्रशस्त माने गये हैं। त्रिणाचिकेत (नाचिकेत नामक विविध अग्निका सेवन करनेवाले), 'मधुवाता' आदि तीन ऋचाओंका जप करनेवाले, छहों अंगोंके ज्ञाता, त्रिसुपर्ण नामक ऋचाओंका पाठ करनेवाले, विद्या एवं व्रतको पूर्ण करके जो स्नातक हो चुके हों वे, धर्मद्रोण (धर्मशास्त्र)-के पाठक, पुराणवेत्ता, ज्ञानी, ज्येष्ठसामके ज्ञाता, अथर्वशीर्षके विद्वान्, ऋतुकालमें

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

अपनी पत्नीके साथ सहवास करनेवाले, उत्तम कर्मपरायण, सद्य:प्रक्षालक (तत्काल पात्र धो डालनेवाले अर्थात् एक ही समयके लिये अन्न संग्रह करनेवाले), शुक्ल (गौर वर्ण अथवा शुक्ल जातीय), पुत्रीके पुत्र, दामाद, भानजे, परोपकारी, मिष्टान्न खाने और पचानेमें समर्थ, मीठे वचन बोलनेवाले, एवं सदा जपमें तत्पर रहनेवाले—ये सभी ब्राह्मण पंक्तिपावन (पंगतको पवित्र करनेवाले) जानने चाहिये। ये पितरोंकी तृप्ति करते हैं। इसलिये थोड़ी विद्यावाले होनेपर भी कुल और आचारमें जो श्रेष्ठ हों, उन्हींको श्राद्धमें नियुक्त करना चाहिये।

इस प्रकार ब्राह्मणोंका ज्ञान करके सव्यभावसे उनके चरणोंका स्पर्श करते हुए प्रणाम करे और विश्वेदेव श्राद्धके लिये दो ब्राह्मणोंको निमन्त्रण दे। दाहिना घुटना पृथ्वीपर टेककर इस मन्त्रका उच्चारण करे—

आगच्छन्तु महाभागा विश्वेदेवा महाबला:।
भक्त्याहूता मया चैव त्वं चापि व्रतभाग्भव॥

'मेरे द्वारा भक्तिपूर्वक बुलाये हुए परम सौभाग्यशाली महाबली विश्वेदेवगण इस श्राद्धकर्ममें पधारें और हे ब्राह्मणदेव! आप भी व्रतके भागी, क्रोधरहित, शौचपरायण तथा ब्रह्मचर्यपालक हों।'

तत्पश्चात् अपसव्यभावसे पितरोंके लिये तथा मातामह आदिके लिये भी ब्राह्मणोंको निमन्त्रित करे। फिर पितृभक्त पुरुष श्रद्धासे ब्राह्मणका चरण-स्पर्श करके कहे—'विप्रवर! इस श्राद्धकर्ममें मेरे पिता, पितामह तथा प्रपितामह आपमें स्थित होकर पधारें और आप भी ब्रह्मचर्य आदि व्रतका पालन करें।'

इस प्रकार पितरों और मातामह आदिका भी आवाहन करके घर आवे। निमन्त्रित ब्राह्मणोंको उस दिन विशेष संयमसे रहना चाहिये। यजमान भी शान्तचित्त एवं ब्रह्मचर्यसे युक्त रहे। वह रात बीत जानेपर प्रात:काल शयनसे उठकर मनुष्य दिनभर किसीपर क्रोध न करे। उस दिन स्वाध्याय बंद रखे और कोई कुत्सित कर्म अपने द्वारा न होने दे। तेल लगाना, परिश्रम करना, सवारी या वाहन आदिको दूरसे ही त्याग दे।

तदनन्तर जब दोपहर बीतनेपर 'कुतप' संज्ञक मुहूर्त आवे, उस समय स्नान करके श्वेत वस्त्र धारणकर देवताओं और पितरोंका तर्पण करनेके पश्चात् निमन्त्रित ब्राह्मणोंको भी संतुष्ट करे। उसके बाद उन्हें बुलाकर श्राद्ध प्रारम्भ करे। पवित्र, सुन्दर, एकान्त गृहमें, जिसमें दक्षिण दिशाकी भूमि कुछ नीची हो, जहाँ पापी क्रूरकर्मी मनुष्योंकी दृष्टि न पड़े, श्राद्ध करना चाहिये। जिस श्राद्धको रजस्वला स्त्री देख लेती है अथवा जिसपर किसी पतित मनुष्य या सूअरकी दृष्टि पड़ जाती है, वह व्यर्थ हो जाता है। जिसमें बासी अन्न, तेलका बना हुआ पदार्थ अथवा केश आदिसे दूषित भोजन परोसा जाय, वह श्राद्ध भी व्यर्थ हो जाता है। जिस श्राद्धमें अन्नका बलिवैश्वदेवके अनुसार यथायोग्य विभाग न किया गया हो, मौनव्रतका पालन न हुआ हो अथवा दक्षिणा न दी गयी हो, वह श्राद्ध भी व्यर्थ हो जाता है। जहाँ घरघराहटकी ध्वनि, ओखलीके कूटनेका शब्द अथवा सूपके फटकनेकी आवाज होती हो, वह श्राद्ध भी व्यर्थ हो जाता है। जिस श्राद्धमें रसोई तैयार करते समय कलह होता है, विशेषत: पंक्तिभेद किया जाता है, जहाँ ब्राह्मण और यजमान ब्रह्मचर्यका पालन किये बिना ही भोजन करता तथा दान देता है, वह श्राद्ध भी सफल नहीं होता।

जिन तिथियोंमें श्रद्धापूर्ण हृदयसे स्नान करके पितरोंके लिये दिया हुआ तिलमिश्रित जल भी उनके लिये अक्षय तृप्तिका साधक होता है, उनका वर्णन करता हूँ—आश्विन शुक्ला नवमी, कार्तिककी द्वादशी, माघ तथा भादोंकी तृतीया, फाल्गुनकी अमावास्या, पौषकी एकादशी, आषाढ़की दशमी, माघकी सप्तमी, श्रावण कृष्णा अष्टमी, आषाढ़, कार्तिक, फाल्गुन, चैत्र और ज्येष्ठ मासकी पूर्णिमाएँ—ये मन्वादि तिथियाँ कही गयी हैं।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

इनमें स्नान करके जो मनुष्य पितरोंके उद्देश्यसे तिल और कुशमिश्रित जल भी देता है, वह परम गतिको प्राप्त होता है। कार्तिक शुक्ला नवमी तथा वैशाख शुक्ला तृतीया, माघकी अमावास्या और श्रावणकी तृतीया—ये क्रमशः सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुगकी आदि तिथियाँ हैं। ये स्नान, दान, जप, होम और पितृतर्पण आदि करनेपर अक्षय पुण्य उत्पन्न करनेवाली और महान् फल देनेवाली होती हैं। जब सूर्य मेषराशि अथवा तुलाराशिपर जाते हैं, उस समय अक्षय पुण्यदायक 'विषुव' नामक योग होता है *। जिस समय सूर्य मकर और कर्क राशिपर जाते हैं, उस समय 'अयन' नामक काल होता है। सूर्यका एक राशिसे दूसरीपर जाना 'संक्रान्ति' कहलाता है। ये सब स्नान, दान, जप और होम आदिका महान् फल देनेवाले हैं। इस प्रकार संक्रान्ति और युगादि तिथियोंका वर्णन किया गया। इनमें दी हुई वस्तुका पुण्य अक्षय होता है।

श्राद्धकर्ता और श्राद्धभोक्ताके लिये नियम, एकोद्दिष्ट और सपिण्डीकरणके विषयमें कुछ ज्ञातव्य बातोंका निर्देश

भर्तृयज्ञ कहते हैं—राजन्! ब्राह्मणके चरणका जल जो भूमिपर गिरता है, उससे उन सगोत्र पुरुषोंकी तृप्ति होती है, जो पुत्रहीन रहकर मृत्युको प्राप्त हुए हैं। जबतक घरकी भूमि ब्राह्मणके चरणोदकसे भीगी रहती है, तबतक पितृगण पुष्कर-पात्रोंमें जल पीते हैं। श्राद्ध करते समय पृथ्वीपर जो कुछ भी पुष्प, गन्ध, जल और अन्न गिरता है, उससे पशु, पक्षी, सर्प, कृमि और कीट-योनिमें पड़े हुए पूर्वज परम तृप्तिको प्राप्त होते हैं। अपने कुलमें उत्पन्न हुए जो पुरुष अपमृत्युसे मरे हैं अथवा जो प्रेतभावको प्राप्त हुए पूर्वज हैं, वे ब्राह्मणोंके उच्छिष्ट पात्र धोनेसे गिरी हुई जूठनसे तृप्त होते हैं। जो संस्कारहीन होकर मरे हैं अथवा जो कुलवती स्त्रियोंका त्याग करनेवाले हैं, उन उच्छिष्टभागी पुरुषोंके लिये वह अन्न है, जो कुशोंपर बिखेरा जाता है। उसे विकरान्न कहते हैं। विकरान्न देनेसे वे सब-के-सब तृप्त होते हैं। श्राद्धकर्ममें जो मन्त्र, काल और विधि आदिकी त्रुटि रह जाती है, उसकी पूर्ति पर्याप्त दक्षिणा देनेसे होती है। अतः विद्वान् पुरुषको दक्षिणारहित श्राद्ध कदापि नहीं करना चाहिये। श्राद्धसम्बन्धी दान देकर श्राद्धकर्ताको और श्राद्धान्न भोजन करके ब्राह्मणको न तो स्वाध्याय करना चाहिये और न दूसरे ग्राममें ही जाना चाहिये। जो श्राद्धान्न भोजन करनेवाला तथा श्राद्धकर्ता मनुष्य मैथुनका सेवन करता है, उसके पितर एक वर्षतक वीर्य भोजन करते हैं। इसमें संदेह नहीं है। जो अधम मनुष्य श्राद्ध करके अथवा श्राद्धान्न भोजन करके दूसरे ग्राममें जाता है, उसका वह श्राद्ध व्यर्थ हो जाता है। श्राद्धका निमन्त्रण आनेपर ब्राह्मणको अपने घर भोजन नहीं करना चाहिये। जो मोहवश भोजन कर लेता है, वह अधोगतिको प्राप्त होता है। यजमानको भी श्राद्ध करके दुबारा भोजन नहीं करना चाहिये। जो दुबारा भोजन कर लेते हैं, वे निश्चय ही नरकमें जाते हैं। जो श्राद्ध-भोजन अथवा श्राद्ध-दान करके युद्ध या कलह करता है, वह उस सम्पूर्ण श्राद्धको व्यर्थ कर देता है।

कमलयोनि ब्रह्माजीने श्राद्धके योग्य ब्राह्मणोंको निश्चय करते समय दौहित्रों (धेवतों)-को प्रथम स्थान दिया है। अतः दौहित्र यदि पवित्रतासे रहित, हीनांग अथवा अधिकांग भी हो तो पितरोंके संतोषके लिये उसे श्राद्धमें अवश्य सम्मिलित करे। ब्रह्माजीने पशुओंकी सृष्टि करते समय सबसे पहले गौओंको रचा है; अतः श्राद्धमें

* यदा स्यान्मेषगो भानुस्तुलां वाथ यदा व्रजेत्। तदा स्याद् विषुवाख्यस्तु कालः पुण्यप्रदायकः॥
(स्क० पु०, ना० उ० २०७)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

उन्हींका दूध और घी उत्तम माना गया है। विधाताने मानवप्रजाकी सृष्टि करते समय सबसे पहले श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको उत्पन्न किया था, इसलिये वे श्राद्धमें उत्तम एवं पितरोंकी तृप्ति करनेवाले माने गये हैं। देवताओंकी सृष्टि करते समय ब्रह्माजीने सबसे पहले विश्वेदेवोंको बनाया है। अतः श्राद्धकर्म आरम्भ होनेपर पहले उन्हींकी पूजा की जाती है। वे विधिपूर्वक तृप्त किये जाने और प्रथम पूजित होनेपर श्राद्धमें जो छिद्र (दोष) उत्पन्न होते हैं, उनका नाश कर देते हैं। जो मनुष्य इन सब वस्तुओंसे सांगोपांग श्राद्धका अनुष्ठान करता है, उसका वह श्राद्ध घरमें ही गयाश्राद्धके समान फल देता है। शास्त्रोक्त विधिसे श्राद्ध सम्पन्न हो जानेपर ब्राह्मणोंको भोजन कराकर श्राद्धकर्ता पुरुष स्वयं भी सबके अन्तमें मौन भावसे भोजन करे। श्राद्धान्नका भोजन दिनमें ही हो जाना चाहिये। जो श्राद्धकर्ता पुरुष सूर्यास्त होनेपर भोजन करता है, उसका वह श्राद्ध व्यर्थ हो जाता है। अतः रातमें भोजन नहीं करना चाहिये।

आनर्तने कहा—महामते! अब आप एकोद्दिष्ट श्राद्धकी विधि बताइये और पार्वणका भी जैसा विधान कहा गया है, उसका वर्णन कीजिये।

भर्तृयज्ञ बोले—अस्थिसंचयनके पहले तीन श्राद्ध बताये गये हैं। जिस स्थानपर मृत्यु हुई हो, वहाँ एक श्राद्ध करे। फिर मार्गमें जहाँ विश्राम कराया गया हो, वहाँ एक श्राद्ध करना चाहिये। तत्पश्चात् अस्थिसंचयनके स्थानपर तृतीय श्राद्ध करना उचित है। इसके सिवा, मृत्युके प्रथम, तृतीय, पंचम, सप्तम, नवम तथा ग्यारहवें दिन भी एक-एक श्राद्ध किया जाता है। इस प्रकार सब मिलकर नौ श्राद्ध होते हैं। वैतरणी-दानकी प्राप्ति होनेपर प्रेत तृप्त होता है। एकोद्दिष्ट श्राद्ध विश्वेदेवसे रहित होता है। उसमें अग्निकरणकी क्रिया भी नहीं की जाती। एकोद्दिष्ट बिना आवाहनके ही करना चाहिये। एक बार '**तृप्तोऽसि? स्वदितम्?**' 'क्या आप तृप्त हो गये? भोजन स्वादिष्ट लगा है न?' इत्यादि रूपसे तृप्तिविषयक प्रश्न करना चाहिये। फिर '**अभिरम्यताम्**' कहकर ब्राह्मणका विसर्जन करना चाहिये। जिसका अग्रभाग कटा या फटा न हो, ऐसे कुश-पत्रको बीचसे काटकर दो तृणके रूपमें कर ले और उसीको पवित्री बनावे। एकोद्दिष्टमें ऐसी ही पवित्री बनानेका विधान है। आसन आदिके अर्पण करते समय सर्वत्र '**पितः**' इस प्रकार संबोधनान्त उच्चारण करना चाहिये। तर्पणमें 'पिता' (**तृप्यताम्**)-का (पितृ शब्दके प्रथमान्तरूपका) प्रयोग करना चाहिये। संकल्प-वाक्यमें '**पित्रे**' (इस प्रकार चतुर्थ्यन्त रूप)-का उच्चारण करना चाहिये और अक्षय्योदक दिलाते समय '**पितुः**' इस षष्ठ्यन्त रूपका प्रयोग करना उचित है। इसी प्रकार जहाँ '**पितः**' का प्रयोग होता है, ऐसे स्थलोंमें सर्वत्र '**अमुक गोत्र**' इस प्रकार स्वरान्त (संबोधनान्त) उच्चारण करना चाहिये। तर्पणमें '**गोत्रः**' का, संकल्पवाक्यमें '**गोत्राय**' का और अक्षय्य-वाक्यमें '**गोत्रस्य**' का उच्चारण उचित है। ऐसे ही अर्घ्य आदि देते समय '**अमुक गोत्र**' के साथ '**अमुक शर्मन्**' का प्रयोग करना चाहिये। तर्पणमें शर्मा, संकल्पवाक्यमें '**शर्मणे**' और अक्षय्योदक त्यागके समय '**शर्मणः**' का प्रयोग उचित है। इसी प्रकार माताके लिये क्रमशः आसन, तर्पण, संकल्प एवं अक्षय्य वाक्यमें '**मातः**' '**माता**' '**मात्रे**' और '**मातुः**' का प्रयोग आवश्यक है। उसके साथ गोत्रका विशेषण लगानेपर '**अमुक गोत्रे**' '**....गोत्रा**' '**...गोत्रायै**' तथा '**...गोत्रायाः**' का प्रयोग करना चाहिये। माताओंके नामके साथ देवीका प्रयोग करना हो तो उक्त स्थलोंमें क्रमशः '**देवि**' '**देवी**' '**देव्यै**' और '**देव्याः**' का प्रयोग करना चाहिये। इस तरह यथास्थान प्रथमा आदि विभक्तियोंका प्रयोग होता है। प्रथमा, चतुर्थी और षष्ठी विभक्तिका यथावत् प्रयोग श्राद्धकी सिद्धिके लिये आवश्यक है। जो श्राद्ध विभक्तिका ठीक

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

प्रयोग किये बिना ही किया जाता है, वह नहीं किये हुएके समान है; पितरोंको उसकी प्राप्ति नहीं होती। अतः विज्ञ ब्राह्मणको प्रयत्नपूर्वक यथोक्त विभक्तियोंके प्रयोगके साथ श्राद्धविधिका अनुष्ठान करना चाहिये।

तदनन्तर वर्षके पश्चात् सपिण्डीकरण श्राद्धका अनुष्ठान होना चाहिये। यदि वर्षके भीतर कोई विवाह आदि आभ्युदयिक कार्य आनेवाला हो तो वर्ष पूर्ण होनेके पहले भी सपिण्डीकरण किया जा सकता है। सपिण्डीकरण श्राद्ध पार्वणोक्त विधिसे किया जाता है। किंतु इसमें विश्वेदेवोंका आवाहन आदि नहीं होता। प्रेतके पिता, पितामह और प्रपितामह—ये तीन उसके प्रधान देवता हैं। राजन्! उसमें प्रेतके उद्देश्यसे एकोद्दिष्ट करना चाहिये। प्रेतके लिये जो अर्घ्यपात्र निश्चित किया गया हो, उसे लेकर उसके पिता आदिके तीनों अर्घ्यपात्रोंमें विधिपूर्वक उसका जल आदि डाले। इसी प्रकार प्रेत-पिण्डके तीन भाग करके तीनों पितृ-पिण्डोंमें एक-एक भाग मिलावे। उस समय **'ये समानाः'** इत्यादि दो मन्त्रोंका उच्चारण करता रहे। तत्पश्चात् पितासे लेकर प्रपितामहपर्यन्त सबके लिये क्रमशः अवनेजन देकर पुनः गन्ध, पुष्प आदि सब कुछ निवेदन करे। चौथा अवनेजन पात्र न दे। कोई-कोई प्रेतको लक्ष्यमें रखकर चौथा अवनेजन भी देते हैं; परंतु यह मेरा मत नहीं है। सपिण्डीकरणके बाद क्षयाह तिथि और शस्त्राहतके लिये चतुर्दशी तिथिको छोड़ और कभी एकोद्दिष्ट श्राद्ध नहीं करना चाहिये। जो सपिण्डीकृत प्रेतके लिये पृथक् पिण्डदान करता है, उसका वह श्राद्ध नहीं किये हुएके तुल्य है। यह वैसा करके पितृहत्याके पापका भागी होता है। जिसके पिता मर गये हों और पितामह जीवित हों, वह पहले पिताका नाम लेकर फिर पितामहका उच्चारण करे। उस समय पितामह प्रत्यक्ष भोजन करके पिण्डग्रहण करें। पितामहकी क्षयाह तिथिपर पार्वण श्राद्ध करना चाहिये (एकोद्दिष्ट नहीं), अपने पिताको छोड़कर किसी प्रकार पितामहको पिण्ड देना उचित नहीं है। उस दशामें पितामहका एकोद्दिष्ट श्राद्ध न करनेसे पितरोंकी ओरसे तनिक भी भय नहीं मानना चाहिये। पिताकी मृत्यु हो गयी हो तो प्रत्येक अमावास्याको पार्वण श्राद्ध करना चाहिये। पिताकी मृत्यु हो जानेपर जबतक उसका सपिण्डन (वार्षिक श्राद्ध) न हो जाय, तबतक बीचमें पिता आदि पितरोंका पार्वण श्राद्ध नहीं करना चाहिये। इस बीचमें श्राद्धपक्ष (महालय) आवे तो उसमें पितामह आदिका ही श्राद्ध करना चाहिये (पिताको साथ रखकर नहीं)। क्योंकि पिताका सपिण्डीकरण न होनेसे पितरोंकी श्रेणीमें उनका प्रवेश नहीं हुआ है।

~~~०~~~

सपिण्डनकी आवश्यकता, तीन गति, भीष्मद्वारा मृत्युके बादकी स्थितिका निरूपण

भर्तृयज्ञ कहते हैं—पितृपिण्डोंके साथ प्रेतके पिण्डका मेलन करनेसे प्रेतको सपिण्ड (पितरोंके साथ बैठकर पिण्डग्रहणका अधिकारी) बनाया जाता है; इस कारण जबतक सपिण्डता नहीं होती, तबतक उसके प्रेतभावकी निवृत्ति भी नहीं होती। इसीलिये मुनियोंने सपिण्डीकरण श्राद्धको आवश्यक बताया है। जीव अन्यत्र जाकर जिस-जिस योनिमें जन्म लेता है, वहीं रहकर अपने पूर्व वंशजोंद्वारा दी हुई प्रत्येक वस्तुको अपने वर्तमान शरीरके अनुकूल पदार्थके रूपमें प्राप्त करता है।

आनर्तने पूछा—जिस मनुष्यका यहाँ कोई पुत्र नहीं है, उसका सपिण्डीकरण कैसे करना चाहिये?

भर्तृयज्ञने कहा—जिसका यहाँ कोई औरस पुत्र नहीं है, वह चारों पितरोंमेंसे चौथा कैसे हो सकता है? वह दूसरोंद्वारा खींच-तानमें पड़कर इधर-उधर ले जाया जाता है, इसलिये प्रेत

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth
~~~

कहलाता है। पुत्र, भाई अथवा उसकी पत्नीको ही उसका सपिण्डीकरण श्राद्ध करना चाहिये। अन्यथा वह किसी तरह पितरोंमें मिलकर चतुर्थ स्थान नहीं प्राप्त करता। मनीषी पुरुष कर्मलोपकी अपेक्षा क्षेत्रज आदि ग्यारह प्रकारके पुत्रोंको पुत्रका प्रतिनिधि बताते हैं। अतः उन्हींके द्वारा क्रिया करानी चाहिये। राजेन्द्र! यदि समयपर प्रेतकी उत्तरक्रिया सविधि न हो सके तो प्रेतत्वविनाशक नारायणबलिका अनुष्ठान करना चाहिये। जैसे अपमृत्युको प्राप्त हुए अथवा आत्मघात करनेवाले मनुष्योंके लिये ब्राह्मणद्वारा नारायणबलिका अनुष्ठान कराना आवश्यक होता है, उसी प्रकार उसका भी करना चाहिये।

आनर्तने पूछा—महामते! मनुष्य यहाँ कैसे मृत्युको प्राप्त होता है? किस कर्मसे वह स्वर्ग या नरकमें जाता है? अथवा महाभाग! कैसे उसकी मुक्ति होती है? यह सब मुझे विस्तारपूर्वक बताइये।

भर्तृयज्ञने कहा—राजन्! इस जगत्‌में तीन प्रकारके मनुष्य होते हैं—धर्मी, पापी तथा ज्ञानी। इन तीनोंकी पृथक्-पृथक् तीन गतियाँ मानी गयी हैं। धर्मसे स्वर्ग, पापसे नरक और ज्ञानसे मोक्षकी प्राप्ति होती है। श्रीकृष्णसहित धर्मपुत्र महाराज युधिष्ठिरने शान्तनुनन्दन पितामह भीष्मसे इसी विषयको इस प्रकार पूछा था।

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह! यमलोकमें कितने नरक बताये गये हैं। उन सबमें जीव किस पापसे जाते हैं?

भीष्मजी बोले—वत्स! यमलोकमें प्रधानतः इक्कीस नरक बताये गये हैं, जिनमें जीव अपने-अपने कर्मके अनुसार जाते हैं। वहाँ चित्र और विचित्र नामक दो लेखक हैं। चित्र सब प्राणियोंका धर्म लिखते हैं और विचित्र यत्नपूर्वक सब पातकोंका उल्लेख करते हैं। धर्मराजके आठ दूत हैं, जो सदा अपने वशमें आये हुए मनुष्योंको मर्त्यलोकसे यमलोकमें ले जाते हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं—कराल, विकराल, वक्रनास, महोदर, सौम्य, शान्त, नन्द और सुवाक्य। इनमें पहलेके चार दूत बड़े भयंकर बताये गये हैं। ये सब पापियोंको यमलोकमें ले जाते हैं। शेष चार सौम्य रूप और सौम्य शरीर धारण करनेवाले हैं। वे धर्मात्मा मनुष्यको विमानद्वारा धर्मराजके नगरमें ले जाते हैं। इन सबके असंख्य किंकर हैं। इनकी सहायताके लिये यमने ज्वरसे लेकर यक्ष्मातक एक सौ आठ रोग बनाये हैं। वे रोग ही पहले जाकर मनुष्यको अपने वशमें करते हैं। तत्पश्चात् यमदूत सब लोगोंसे अलक्षित रहकर वहाँ जाते हैं और नाभिके मूलभागमें स्थित हुए वायुरूपधारी सूक्ष्म शरीराभिमानी जीवको लेकर यमलोकके मार्गसे जाते हैं। वहाँ पापी जीवको वे भूमिपर खड़ा करके पैदल चलाते हैं। यमलोकमें जानेके छियासी हजार मार्ग हैं, उन सबमें पहले सब ओरसे बहती हुई वैतरणी नदी प्राप्त होती है। जिसके एक स्रोतमें रक्त और तीखे अस्त्र-शस्त्र बहते हैं। जो मनुष्य मृत्युकालमें ब्राह्मणको धेनु-दान करते हैं, वे उसीकी पूँछ पकड़कर उस नदीके पार हो जाते हैं। दूसरे लोगोंको वह सौ योजन विस्तृत नदी हाथोंसे ही तैरकर पार करनी पड़ती है। वैतरणीका दूसरा स्रोत जलमय है। उस मार्गसे धर्मात्मा पुरुष ही यात्रा करते हैं। जो लोग मृत्युकालमें गोदान करते हैं, वे उसकी पूँछ पकड़कर वैतरणीके पार होते हैं। दूसरे गोदानरहित पुरुष अपनी बाँहोंसे ही तैरकर उसके पार होते हैं।

वैतरणी पार होनेपर पापी और धर्मात्मा पुरुषोंके मार्ग अलग हो जाते हैं। पापी पाप-मार्गसे पैदल जाते हैं और धर्मात्मा धर्ममार्गसे श्रेष्ठ विमानपर बैठकर यात्रा करते हैं। वैतरणीके उस पार पाँच योजन विस्तृत असिपत्र नामक वन है, जो पापियोंको महान् दुःख देनेवाला है। वहाँ एक-एक वृक्षकी एक-एक टहनीमें लोहेके ही सौ-सौ पत्ते हैं, जो तलवारकी तरह सब ओरसे मनुष्योंके शरीरको छिन्न-भिन्न कर देते हैं। जिन

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

दुरात्माओंने दूसरोंका धन और परायी स्त्रियोंका अपहरण किया है, उनको असिपत्रवनकी यातना सहनी पड़ती है। नौ श्राद्धोंसे उससे छुटकारा मिलता है। उसके आगे बहुत ऊँचा सुविख्यात कूटशाल्मलि है, जो सब ओरसे काँटोंसे भरा हुआ है। सदा निर्दयतापूर्ण बर्ताव करनेवाले विश्वासघाती मनुष्य उस वृक्षकी डालमें नीचे मुँह करके लटका दिये जाते हैं और नीचे आग जलाकर उन्हें दिन-रात संताप दिया जाता है। एकादशाह श्राद्ध करनेपर उस कष्टसे छुटकारा मिलता है। वहाँसे आगे भयानक आकारवाला नरक है, जो तैलयन्त्रके समान है। उसमें ब्रह्महत्यारे तथा अन्यान्य पापकर्मी जीव पेरे जाते हैं। द्वादशाह श्राद्ध एवं दान करनेपर जीवको उस संकटसे छुटकारा मिलता है। उसके बाद बहुत-से लोहेके तपे-तपाये खम्भे खड़े किये गये हैं; परायी स्त्रियोंमें अनुरक्त होनेवाले मनुष्योंको उन खम्भोंका आलिंगन करना पड़ता है। मासिक श्राद्ध करनेसे जीव उस कष्टसे छुटकारा पाते हैं। उससे आगे लोहेके समान दाढ़ोंवाले भयंकर कुत्ते खड़े रहते हैं, जो मांसभक्षी मनुष्योंको खाते हैं। त्रैपाक्षिक श्राद्ध करनेपर उन्हें इस कष्टसे मुक्ति मिलती है। तदनन्तर लोहेकी-सी चोंचवाले कौवे उपस्थित रहते हैं, जो उन मनुष्योंकी आँखें नोंच लेते या फोड़ देते हैं, जिन्होंने आसक्तिपूर्वक परायी स्त्रियोंकी ओर दृष्टिपात किया है। द्वितीय मासिक श्राद्धके द्वारा उस कष्टसे रक्षा होती है। तदनन्तर शाल्मलिकूट और अन्य लोहकण्टक हैं; चुगली करनेवाले मनुष्य उनके बीचसे ले जाये जाते हैं। त्रैमासिक श्राद्धद्वारा उस यातनासे बचाव होता है। उसके बाद रौरव नामसे प्रसिद्ध महाभयंकर नरक है, उसमें बड़ी भारी पीड़ा होती है। ब्रह्महत्या करनेवाले पापियोंको उसी नरकमें डालनेका आदेश दिया जाता है। कृतघ्न पुरुष भी उसीमें ऊपर पैर और नीचे मुँह करके लटकाये जाते हैं। चातुर्मासिक श्राद्धके दानसे उस संकटसे छुटकारा मिलता है। तदनन्तर कुम्भीपाक नामक भयंकर आकारवाला नरक है; जो लोग यहाँ दम्भ और पाखण्डमें संलग्न एवं नरहत्या करते देखे जाते हैं, वे कुम्भीपाकके खौलते हुए तैलमें डाल दिये जाते हैं। ऊनषाण्मासिक श्राद्धके द्वारा उससे मुक्ति प्राप्त होती है। विश्वासघाती मानव रौद्र नरकमें गिरते हैं और षाण्मासिक श्राद्धके दानद्वारा उस संकटसे छुटकारा पाते हैं। दूसरा नरक साँपों और बिच्छुओंसे भरा हुआ है। जो इस संसारमें पाखण्ड फैलाते हैं, वे नीच मनुष्य उसीमें गिराये जाते हैं। सप्तम मासिक श्राद्धमें दिये हुए दानके द्वारा उस संकटसे मुक्ति मिलती है। उससे भिन्न संवर्तक नामक नरक बताया गया है। जो वेदोंको नष्ट करनेवाले, साधु पुरुषोंके निन्दक और दुरात्मा हैं, उनकी जीभको आगमें तपाये हुए सँड़सोंद्वारा उखाड़ लिया जाता है। जो लोग अपना काम बनानेके लिये और दूसरेके लिये भी झूठ बोलते हैं, उनके सब अंगोंको वहाँ कुत्ते नोंच-नोंचकर खाते हैं। अष्टम मासिक श्राद्धके दान द्वारा उनकी उस संकटसे मुक्ति होती है। इसके बाद महातप्त अग्निकूप नामक अत्यन्त भयंकर नरक है, जिसमें झूठी गवाही देनेवाले मूढ़ मानव गिराये जाते हैं। वे अत्यन्त दुःखी होकर वहाँकी भयंकर यातना सहन करते हैं। नवम मासिकश्राद्ध उनको परम आह्लाद प्रदान करनेवाला होता है। उस नरकके आगे दूसरा भयानक नरक है, जो सब ओर लोहेकी कीलोंसे भरा हुआ है। वहाँ आग लगाने और स्त्री-हत्या करनेवाले पापात्मा यमदूतोंकी मार खाते और दुःखसे आतुर होकर चारों ओर भागते हैं। दशम मासिक श्राद्धके द्वारा उन्हें उस संकटसे छुटकारा मिलता है। तत्पश्चात् अंगारराशिसे व्याप्त भयंकर नरक है; उसमें स्वामीसे द्रोह करनेवाले मनुष्य सब ओर घुमाये जाते हैं। एकादश मासिक श्राद्धका दान उन्हें उस संकटसे बचाता है। उसके बाद तपी हुई बालूसे भरा हुआ एक भयंकर नरक है। जो मनुष्य स्वामीको आया हुआ देख उनकी यथायोग्य सेवा न करके भाग

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

खड़े होते हैं, वे वहाँ दुःखी होकर यातना भोगते हैं। उनके पास द्वादश मासिक श्राद्ध पहुँचता और उन्हें संकटसे बचाता है। मरे हुए पुरुषके लिये उसके भाई-बन्धुओंद्वारा वर्षके भीतर जो कुछ भी अन्न और जल दिया जाता है, उसे वे यमलोकके मार्गमें भोगते हैं।

तत्पश्चात् वर्ष पूरा होनेपर वे धर्मराजके समीप पहुँचकर अपने शुभाशुभ कर्मका फल पाते हैं। इस प्रकार पंद्रह नरकोंका सेवन करके मनुष्य पुनः मर्त्यलोकमें जन्म ग्रहण करते हैं। जो लोग हेतुवादी (कोरे तर्कका सहारा लेनेवाले) हैं, उनका जन्म विदेशमें (भारतवर्षसे भिन्न देशमें) होता है। नित्य तर्पण करनेसे उनकी तृप्ति होती है। जो स्वामीसे द्रोह रखनेवाले हैं, वे कुराज्यमें जन्म पाते हैं। एकोद्दिष्ट श्राद्धसे उनकी तृप्ति होती है। जो मनुष्य देवता, पितर और ब्राह्मणोंको दिये बिना ही भोजन करते हैं, उन्हें उस पापके कारण ऐसे देशमें जन्म लेना पड़ता है जो दुर्भिक्षसे पीड़ित रहता हो। ऐसे लोगोंको उनकी क्षयाह तिथिमें श्राद्ध होनेपर तृप्ति प्राप्त होती है। जो लोग परस्पर अनुरागपूर्वक रहनेवाले पति-पत्नीमें एक-दूसरेसे झूठी बातें कहकर भेद (कलह एवं फूट) पैदा करते हैं, उनको दुष्टा स्त्री प्राप्त होती है, जो कि एक बात कहनेपर क्रोधपूर्वक दस बात सुनाती है। ऐसे लोगोंको कन्यादानके फलसे सुख प्राप्त होता है। जो मनुष्य कन्यादानमें विघ्न डालते हैं, अथवा कन्याका विक्रय करते हैं, वे केवल कन्याओंको जन्म देते हैं, पुत्रको नहीं। उनकी वे कन्याएँ पुंश्चली, विधवा और दुर्भाग्यवती होती हैं। उन्हें भी कन्यादानका फल प्राप्त होनेसे ही सुख मिलता है। जिन्होंने रत्नों और शास्त्रोंकी चोरी की है, वे निर्धन, गूँगे, लँगड़े और अन्धे होते हैं। शास्त्रदानके पुण्यसे उन्हें सुख प्राप्त होता है। इस प्रकार ये मर्त्यलोकमें स्पष्ट दिखायी देनेवाले नरक बताये गये हैं।

नरकों और पापोंसे मुक्त होनेका उपाय तथा भगवान् जलशायीकी महिमा

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह! नरकोंके स्वरूपका वर्णन तो मुझे बड़ा भयानक प्रतीत हुआ है। उन पापी जीवोंको भी कैसे नरक-यातनासे छुटकारा मिल सकता है? किन व्रतों, नियमों, हवनादि कर्मों तथा तीर्थोंके सेवनसे उनकी सद्गति हो सकती है?

भीष्मजीने कहा—वत्स! इस लोकमें जिनकी हड्डियाँ गंगाजीमें डाली जाती हैं, वे नरकमें हों तो भी वहाँकी आग उनपर कोई प्रभाव नहीं डालती। जिनके नामसे उनके पुत्र गंगातटपर श्राद्ध करते हैं, वे विमानपर चढ़कर नरकसे ऊपर चले जाते हैं। जो पापोंका शास्त्रोक्त प्रायश्चित्त करते हैं तथा जो स्वर्ण आदि दान देते हैं, उनको भी नरककी प्राप्ति नहीं होती। शेष मनुष्य अपने कर्मका यथोचित फल भोगते हैं। जो अपने स्वामीके आगे खड़े हो धारातीर्थ (रणभूमि)-में प्राणत्याग करते हैं, वे नरकोंसे बहुत दूर उत्तम स्थानको प्राप्त होते हैं। जो मनुष्य काशी, कुरुक्षेत्र, नैमिषारण्य, नागरपुर (हाटकेश्वरक्षेत्र या चमत्कारपुर), प्रयाग अथवा प्रभासक्षेत्रमें शरीर छोड़ते हैं, वे नरकको नहीं देखते। जिसके वंशज उसकी मृत्युतिथिको नील वृषका उत्सर्ग करते (साँड़ छोड़ते) हैं, वह नरकको नहीं देखता। जो मनुष्य भगवान् विष्णुका हृदयमें ध्यान करते हुए मनुष्योंको यथायोग्य भोजन देता है, वह भी नरकको नहीं देखता। जो सूर्यके वृषराशिपर रहते समय ज्येष्ठमासमें जलका और मकरसंक्रान्ति होनेपर माघमें तिलकी गायका दान करता है, उसे नरकका दर्शन नहीं होता। सोमवारके दिन या चन्द्रग्रहणके समय समुद्र और सरस्वती नदीके संगममें स्नान करके जो सोमनाथका दर्शन करता है, वह नरकमें नहीं जाता। रविवारको एवं सूर्यग्रहणके समय जो कुरुक्षेत्रमें स्नान करता

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

है वह नरकको नहीं देखता। जो कार्तिककी पूर्णिमाको कृत्तिका नक्षत्रके योगमें मौन भावसे तीनों पुष्कर तीर्थोंकी परिक्रमा करता है, वह नरक नहीं देखता। मकरसंक्रान्ति होनेपर रविवारको जो चण्डीश्वरका दर्शन करते हैं, वे मनुष्य नरकमें नहीं जाते हैं। जो गायको कीचड़से, ब्राह्मणको जीविका न होनेके कारण दासता करनेसे और द्विजको वध-स्थानसे छुड़ा देता है, वह जन्मसे लेकर मृत्युतकके सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। गौ तथा ब्राह्मणको वधसे और साधु ब्राह्मणको चोरोंके भयसे जो मुक्त करता है, वह जन्मसे लेकर मृत्युतकके सब पापोंसे छुटकारा पा जाता है।

जो विलद्वारपर शयनके लिये स्थित हुए जलशायी भगवान् विष्णुका दर्शन करता है, वह पापी हो तो भी पापसे मुक्त हो जाता है। सम्पूर्ण लोकोंके आश्रयभूत परम पवित्र विलद्वारमें स्नान करके जो शेषशय्यापर शयन करनेवाले श्रीहरिका भक्तिपूर्वक पूजन करता है, वह जीवनभरके पापोंसे मुक्त हो जाता है। जो मानव वर्षाके चार महीनेतक जलमें शयन करनेवाले देवेश्वर विष्णुका भक्तिपूर्वक पूजन करता है, वह इस लोकमें फिर जन्म नहीं लेता। वहाँ विलद्वारमें या जलमात्रमें पहलेके महाभाग मुनिने भगवान् शेषशायीकी आराधना की और उनके शुभ निवासस्थानसे मृत्तिका ग्रहण की। इससे वे भगवान् विष्णुके परम पदको प्राप्त हुए। सब तीर्थों और सम्पूर्ण यज्ञोंमें जो फल प्राप्त होता है, वही फल चौमासेमें भगवान् शेषशायीकी पूजासे भी प्राप्त होता है। गोशालामें मृत्युको प्राप्त हुए मनुष्य जिस फलको पाते हैं, वही चौमासेमें जलशायीकी पूजासे भी पा लेते हैं। उन देवाधिदेव, निर्गुण, गुणस्वरूप, अव्यक्त, अप्रमेय, सर्वदेवमय, सर्वेश्वर, सबके एकमात्र आवासस्थान तथा सम्पूर्ण भूतोंके आत्मा श्रीहरिको नमस्कार है। उन भगवान् विष्णुके शयन और बोधनके दिन एकादशी तिथिमें जो कुछ भी उत्तम कर्म किया जाता है, वह अविनाशी होता है। उस दिन जो अन्न खाता है, वह मनुष्य पापात्मा है। अतः विज्ञ पुरुषको अन्य एकादशी तिथियोंके आनेपर भी प्रयत्नपूर्वक अन्नसे बचना चाहिये।

चातुर्मास्य व्रतके पालनीय नियम और उनकी महिमा

ऋषि बोले—सूतजी! शंख, चक्र, गदा धारण करनेवाले देवदेवेश्वर भगवान् विष्णुके शयन करनेपर जो कोई भी पालन करने योग्य नियम, व्रत आदि हो, वह हमें बताइये।

सूतजीने कहा—ब्राह्मणो! भगवान् विष्णुके शयन करनेपर चातुर्मास्यमें जो कोई नियम पालित होता है, वह अनन्त फल देनेवाला होता है—ऐसा ब्रह्माजीका कथन है। अतः विज्ञ पुरुषको सर्वथा प्रयत्न करके कोई नियम ग्रहण करना चाहिये। विप्रवरो! भगवान् विष्णुके संतोषके लिये नियम, जप, होम, स्वाध्याय अथवा व्रतका अनुष्ठान अवश्य करना चाहिये। जो मानव भगवान् वासुदेवके उद्देश्यसे केवल शाकाहार करके वर्षाके चार महीने व्यतीत करता है, वह धनी होता है। जो भगवान् विष्णुके शयनकालमें प्रतिदिन नक्षत्रोंका दर्शन करके ही एक बार भोजन करता है, वह धनवान्, रूपवान् और माननीय होता है। द्विजवरो! जो एक दिनका अन्तर देकर भोजन करते हुए चौमासा व्यतीत करता है, वह सदा वैकुण्ठधाममें निवास करता है। जो जनार्दनके शयन करनेपर छठे दिन भोजन करता है, वह राजसूय तथा अश्वमेध यज्ञोंका सम्पूर्ण फल पाता है। जो सदा तीन रात उपवास करके चौथे दिन भोजन करते हुए चौमासा बिताता है, वह इस संसारमें फिर किसी प्रकार जन्म नहीं लेता। जो श्रीहरिके शयनकालमें

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

व्रतपरायण होकर चौमासा व्यतीत करता है, वह अग्निष्टोमयज्ञका फल पाता है। जो भगवान् मधुसूदनके शयन करनेपर अयाचित अन्नका भोजन करता है, उसको अपने भाई-बन्धुओंसे कभी वियोग नहीं होता। जो वर्षाके चार महीनेतक तैल और घी लगाना छोड़ देता है, वह स्वर्गीय भोगका भागी होता है। जो मानव ब्रह्मचर्यपालनपूर्वक चौमासा व्यतीत करता है, वह श्रेष्ठ विमानपर बैठकर स्वेच्छासे स्वर्गलोकमें जाता है। द्विजवरो! जो चौमासेभर नमकीन वस्तुओं एवं नमकको छोड़ देता है, उसके सभी पूर्तकर्म सफल होते हैं। जो चौमासेमें प्रतिदिन स्वाहान्त विष्णुसूक्तके मन्त्रोंद्वारा तिल और चावलकी आहुति देता है, वह कभी रोगी नहीं होता। जो चातुर्मास्यमें प्रतिदिन स्नान करके भगवान् विष्णुके आगे खड़ा हो पुरुषसूक्तका जप करता है, उसकी बुद्धि बढ़ती है। जो अपने हाथमें फल लेकर मौनभावसे भगवान् विष्णुकी एक सौ आठ परिक्रमा करता है, वह पापसे लिप्त नहीं होता। जो अपनी शक्तिके अनुसार चौमासेमें—विशेषतः कार्तिकमासमें श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको मिष्ठान्न भोजन कराता है, वह अग्निष्टोम यज्ञका फल पाता है। जो वर्षाके चार महीनोंतक नित्यप्रति वेदोंके स्वाध्यायसे भगवान् विष्णुकी आराधना करता है, वह सर्वदा विद्वान् होता है। जो चौमासेभर भगवान्‌के मन्दिरमें रात-दिन नृत्य-गीत आदिका आयोजन करता है, वह गन्धर्व भावको प्राप्त होता है। यदि चार महीनोंतक नियम पालन करना सम्भव न हो तो, एक कार्तिकमासमें ही सब नियमोंका पालन करना चाहिये। जो ब्राह्मण सम्पूर्ण कार्तिकमासमें कांस, मांस, क्षौरकर्म, मधु, दुबारा भोजन और मैथुन छोड़ देता है, वह पूर्वोक्त सभी नियमोंका फल पाता है *। जिसने कुछ उपयोगी वस्तुओंको चौमासेभर त्याग देनेका नियम लिया हो, उसे वे वस्तुएँ ब्राह्मणको दान करनी चाहिये। ऐसा करनेसे ही वह त्याग सफल होता है। जो मनुष्य नियम, व्रत अथवा जपके बिना ही चौमासा बिताता है, वह मूर्ख है।

श्रावणमें कृष्ण पक्षकी द्वितीयाको श्रवण नक्षत्रमें प्रातःकाल उठे। पापी, पतित और म्लेच्छ आदिसे वार्तालाप न करे। फिर दोपहरमें स्नान करके धुले वस्त्र पहनकर पवित्र हो जलशायी श्रीहरिके समीप जा इस मन्त्रसे पूजन करे—

श्रीवत्सधारिञ्छ्रीकान्त श्रीधाम श्रीपतेऽव्यय।
गार्हस्थ्यं मा प्रणाशं मे यातु धर्मार्थकामदम्॥
पितरौ मा प्रणश्येतां मा प्रणश्यन्तु चाग्नयः।
तथा कलत्रसम्बन्धो देव मा मे प्रणश्यतु॥
लक्ष्म्या त्वशून्यशयनं यथा ते देव सर्वदा।
शय्या ममाप्यशून्यास्तु तथा जन्मनि जन्मनि॥

'श्रीवत्सचिह्न धारण करनेवाले लक्ष्मीकान्त! श्रीधाम! श्रीपते! अविनाशी परमेश्वर! धर्म, अर्थ एवं काम देनेवाला मेरा गार्हस्थ्य आश्रम नष्ट न हो। मेरे माता-पिता नष्ट न हों, मेरे अग्निहोत्र गृहकी अग्नि कभी न बुझे। मेरी स्त्रीसे सम्बन्धविच्छेद न हो। देव! जैसे आपका शयनगृह लक्ष्मीजीसे कभी शून्य नहीं होता, उसी प्रकार प्रत्येक जन्ममें मेरी भी शय्या धर्मपत्नीसे शून्य न रहे।'

द्विजवरो! ऐसा कहकर अर्घ्य दे अपनी शक्तिके अनुसार ब्राह्मणकी पूजा करे। इसी प्रकार भाद्रपद, आश्विन और कार्तिकमासमें भी जलशायी जगदीश्वरका पूजन करे। खारी वस्तु और नमकसे रहित अन्न भोजन करे। व्रत समाप्त होनेपर श्रेष्ठ ब्राह्मणको भक्तिपूर्वक दान दे। जौ, धान्य, शय्या, वस्त्र तथा सुवर्ण दक्षिणामें दे। जो मनुष्य एकाग्रचित्त हो इस प्रकार भलीभाँति व्रतका पालन करता है, उसके ऊपर जलशायी जगद्गुरु भगवान् विष्णु बहुत सन्तुष्ट होते हैं। किसी भी जन्ममें उसकी शय्या धर्मपत्नीसे शून्य नहीं होती। जानकर या अनजानमें आठ मासतक किये हुए सब पापको वह व्रत तत्काल नष्ट

* कांसं मांसं क्षुरं क्षौद्रं पुनर्भोजनमैथुने। कार्तिके वर्जयेद् यस्तु सम्पूर्णे ब्राह्मणः सदा॥
पूर्वोक्तानां च सर्वेषां नियमानां फलं लभेत्॥ (स्क० पु०, ना० उ० २१९। ३०,३१)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

कर देता है। जो पुत्रहीना, काकवन्ध्या अथवा विधवा स्त्री भी एकाग्रचित्त हो इस व्रतका पालन करती है, उसके ऊपर प्रसन्न हो जगन्नाथ सदा शुद्धि प्रदान करते हैं। उसकी बुद्धि कभी पापमें नहीं लगती, कभी कामभावनासे कलंकित नहीं होती। कुमारी कन्या भी यदि इस व्रतका पालन करे तो उसे कुलीन एवं रूपवान् पतिकी प्राप्ति होती है। जो मनुष्य इस व्रतका निष्क्रय देता (मूल्य चुकाता) है, वह भी चातुर्मास्यके नियमोंका फल पाता है।

शिवरात्रिकी महिमा

ऋषि बोले—महाभाग! हाटकेश्वरक्षेत्रमें जो पुण्यमय लिंग हैं, जिनके दर्शनसे सब लिंगोंके दर्शनका कल्याणमय फल प्राप्त होता है, उनका विस्तारपूर्वक वर्णन करें।

सूतजीने कहा—वहाँ मंकणकेश्वर नामक शोभायमान शिवलिंग है। वहीं शुद्धेश्वर, गौतमेश्वर और चौथे कपालेश्वर भी हैं। इनमेंसे एक-एक शिवलिंग वहाँके सब शिवविग्रहोंके दर्शनका फल प्रदान करता है, इसमें सन्देह नहीं है। शिवरात्रि आनेपर जो मनुष्य मंकणकेश्वरके सामने उपवास एवं पवित्रतापूर्वक रातभर जागरण करता है, उसे सम्पूर्ण शिवलिंगोंके दर्शनका शुभ फल प्राप्त होता है।

ऋषियोंने पूछा—महाभाग! शिवरात्रि किस समय होती है, उसका विधान और माहात्म्य क्या है? यह हमें विस्तारपूर्वक बताइये।

सूतजीने कहा—माघमासके कृष्णपक्षमें जो चतुर्दशी तिथि आती है, उसकी रात्रि ही शिवरात्रि है।[१] उस समय सर्वव्यापी भगवान् शिव सम्पूर्ण शिवलिंगोंमें विशेषरूपसे संक्रमण करते हैं। पूर्वकालमें अश्वसेन नामसे विख्यात एक आनर्तदेशके राजा हो गये हैं जो सदा धर्ममें तत्पर रहते थे। उन्होंने वेद-वेदांगोंके पारंगत विद्वान् भर्तृयज्ञ मुनिसे इस प्रकार पूछा—'मुने! कलिकालमें पालन करने योग्य कोई ऐसा व्रत है, जो थोड़े ही परिश्रमसे साध्य होनेपर भी महान् पुण्यप्रद तथा सब पापोंका नाश करनेवाला हो? यदि हो तो उसे बताइये। मनुष्यको चाहिये कि वह कलका काम आज ही कर ले; जो कार्य अपराह्णमें किया जानेवाला हो, उसे पूर्वाह्णमें ही कर ले। क्योंकि मृत्यु इस बातकी प्रतीक्षा नहीं करती है कि इस मनुष्यका कार्य पूरा हो गया है या नहीं?'[२]

राजाका यह वचन सुनकर उदार बुद्धिवाले भर्तृयज्ञने चिरकालतक ध्यान करके दिव्य दृष्टिसे सब बात जानकर कहा—राजन्! शिवरात्रि नामसे विख्यात एक पुण्यदायक व्रत है। जो-जो कामना मनमें लेकर मनुष्य इस व्रतका अनुष्ठान करता है, उसे अवश्य प्राप्त कर लेता है और जो निष्कामभावसे इसका पालन करता है, वह मोक्षको प्राप्त होता है तथा वर्षभरके किये हुए पापोंसे छुटकारा पा जाता है। इस लोकमें जो-जो चल अथवा अचल शिवलिंग हैं, उन सबमें उस रात्रिको भगवान् शिवका संक्रमण होता है। इसीलिये उसे शिवरात्रि कहा गया है। वह भगवान् शंकरको बहुत प्रिय है। सम्पूर्ण देवताओंने एक समय सब लोकोंपर अनुग्रह करनेकी इच्छासे भगवान् शंकरसे प्रार्थना की—'भगवन्! समस्त

१- यहाँ अमावास्यान्त मासकी दृष्टिसे माघ कहा गया है। जहाँ कृष्ण पक्षमें मासका आरम्भ और पूर्णिमापर उसकी समाप्ति होती है, उसके अनुसार फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशीमें यह शिवरात्रिका व्रत होता है।

२- श्वः कार्यमद्य कुर्वीत पूर्वाह्णे चापराह्णिकम्। न हि प्रतीक्षते मृत्युः कृतं वास्य न वा कृतम्॥

(स्क० पु०, ना० उ० २२१। १८)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

पापोंसे भरे हुए इस कलिकालमें कोई एक दिन ऐसा बताइये, जो वर्षभरके पापोंकी शुद्धि कर सके। जिस दिन आपकी पूजा करके मनुष्य सब पापोंसे शुद्ध हो सकें। जिससे उनका किया हुआ होम, दान आदि हमलोगोंको प्राप्त हो सके; क्योंकि कलिकालमें अशुद्ध मनुष्योंके द्वारा दी हुई कोई भी वस्तु हमें नहीं मिल पाती है।'

भगवान् शिवने कहा—देवेश्वरो! माघमासके कृष्ण पक्षकी चतुर्दशीको रातके समय मनुष्योंके वर्षभरके पापको शुद्ध करनेके लिये भूतलके समस्त चल-अचल शिवलिंगोंमें संक्रमण करूँगा। जो मनुष्य उस रातमें निम्नांकित मन्त्रोंद्वारा मेरी पूजा करेगा, वह पापरहित हो जायगा। **ॐ सद्योजाताय नमः। ॐ वामदेवाय नमः। ॐ अघोराय नमः। ॐ ईशानाय नमः। ॐ तत्पुरुषाय नमः।** इस प्रकार गन्ध, पुष्प, चन्दन, धूप, दीप और नैवेद्यद्वारा इन पाँच मन्त्रोंसे मेरे पाँच मुखोंका पूजन करके निम्नलिखित मन्त्रको पढ़ते हुए मन-ही-मन मेरा ध्यान करे और अर्घ्य प्रदान करे—

अर्घ्य-मन्त्र

गौरीवल्लभ देवेश सर्पाढ्य शशिशेखर।
वर्षपापविशुद्ध्यर्थमर्घ्यो मे गृह्यतां ततः॥

'पार्वती देवीके प्रियतम, सम्पूर्ण देवताओंके स्वामी तथा सर्पोंकी मालासे विभूषित भगवान् चन्द्रशेखर! आप वर्षभरके पापोंकी शुद्धिके लिये मेरा अर्घ्य ग्रहण कीजिये।'

अर्घ्यदानके पश्चात् भोजन-वस्त्र आदिके द्वारा ब्राह्मणका पूजन करे। उसे दक्षिणा दे। मन्दिरमें बैठकर धार्मिक उपाख्यान, कथा और शिवमहिमा सुने। देवेश्वरो! जो इस प्रकार शिवरात्रिव्रत करेगा, उसके सब पापोंकी शुद्धिके लिये यह सर्वोत्तम प्रायश्चित्तका कार्य करेगा।

भर्तृयज्ञ कहते हैं—नरश्रेष्ठ! यह सुनकर सब देवता भगवान् चन्द्रशेखरको प्रणाम करके अपने-अपने उत्तम स्थानोंको चले गये। वहाँसे उन्होंने शिवरात्रिव्रतका पालन करनेके लिये लोगोंको समझाने और उपदेश देनेके निमित्त मुनिश्रेष्ठ देवर्षि नारदजीको भेजा। नारदजीने भूतलपर पधारकर सब ओर सब लोगोंको शिवरात्रिकी महिमा सुनायी। जो अपने लिये ऐश्वर्य एवं कल्याणकी इच्छा करे, उसे प्रयत्नपूर्वक शिवरात्रिव्रत करना चाहिये। शिवि, नल, नहुष, मान्धाता, धुन्धुमार, सगर, युयुत्सु तथा अन्य महापुरुषोंने भी श्रद्धापूर्वक शिवरात्रिव्रतका पालन किया है और अपने मनोवांछित पदार्थोंको पाया है। स्त्रियोंमें सावित्री, लक्ष्मीदेवी, सीता, अरुन्धती, सरस्वती, पार्वती, मेना, इन्द्राणी, दृषद्वती, स्वधा, स्वाहा, रति, प्रीति, गायत्री तथा अन्य देवियोंने भी शिवरात्रि-व्रत किया है और अत्यन्त सौभाग्यके साथ सम्पूर्ण अभीष्ट मनोरथोंको पाया है। जो भक्तिपूर्वक भगवान् शिवके समीप इस शिवरात्रिव्रतकी महिमाको सुनता है, वह दिनभरके समस्त पापसे मुक्त हो जाता है। गंगाजीके समान कोई तीर्थ नहीं है। महादेवजीके समान दूसरा देवता नहीं है तथा शिवरात्रिसे बढ़कर दूसरा कोई तप नहीं है। यह मैंने सत्य कहा है*। मेरु सब रत्नोंसे भरा है। आकाश सब आश्चर्योंसे परिपूर्ण है। इसी प्रकार शिवरात्रि सर्वधर्ममयी बतायी गयी है। जैसे पक्षियोंमें गरुड़ और जलाशयोंमें समुद्र श्रेष्ठ है, वैसे ही सब धर्मोंमें शिवरात्रि उत्तम है।

---

* नास्ति गंगासमं तीर्थं नास्ति देवो हरोपमः। शिवरात्रेः परं नास्ति तपः सत्यं मयोदितम्॥
(स्क० पु०, ना० उ० २२१। ८४, ८५)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

सिद्धेश्वरकी महिमा और तुलादानका महत्त्व

भर्तृयज्ञ कहते हैं—राजन्! सिद्धेश्वर नामसे विख्यात जो महादेवजी हैं, उनके प्रादुर्भावकी कथा तो तुम मुझसे पहले ही सुन चुके हो। राजन्! जो सम्पूर्ण भूतलका चक्रवर्ती राजा होना चाहे, उसके लिये तुलापुरुषका दान उत्तम बताया गया है। सिद्धेश्वरके दर्शनसे तुलापुरुषदानका फल चक्रवर्ती राज्य प्राप्त होता है।

आनर्तनरेशने पूछा—महामुने! तुलापुरुषदानकी विधि क्या है? यह बताइये।

भर्तृयज्ञने कहा—चन्द्रग्रहण, सूर्यग्रहण, अयन, विषुवयोग अथवा किसी तीर्थमें तुलापुरुषका दान उत्तम बताया गया है। सदा अनुष्ठानमें लगे हुए जितेन्द्रिय, सदाचारी, वेदाध्ययनशील तथा निर्दोष ब्राह्मणोंको बाँटकर ही वह दान देना चाहिये। किसी एक ब्राह्मणको ही किसी प्रकार भी नहीं देना चाहिये।

किसी पवित्र समतल स्थानमें, जो पूर्व-उत्तरकी ओर कुछ नीचा हो, एक सोलह हाथका मण्डप बनावे। उसके बीचमें यजमानके हाथसे चार हाथकी वेदीका निर्माण करे। उसकी ऊँचाई एक हाथकी हो। चारों दिशाओंमें भी चार-चार हाथके चार कुण्ड बनावे। इसके सिवा एक हाथ लंबी और एक ही हाथ ऊँची सुन्दर वेदी बनाकर उसीके ऊपर नवग्रहोंकी स्थापना करे। प्रत्येक दिशामें दो-दो ऋत्विजोंको वरण करके होमकार्यमें नियुक्त करे। वे ऋत्विज् क्रमशः बह्वृच (ऋग्वेदी), अध्वर्यु (यजुर्वेदी), छन्दोग (सामवेदी) और आथर्वण होने चाहिये। उन सबको चाहिये कि एकाग्रचित्त होकर देवताओंके लिये अग्निमें आहुति दें। साथ ही उन-उन देवताओंके नामोंसे अंकित मन्त्रोंका जप भी करें। एक हाथ मोटे, चार हाथ ऊँचे दो खंभे वेदीके उत्तर और दक्षिण भागमें खड़ा करे। उन खंभोंके ऊपर एक शुभ एवं सुदृढ़ काष्ठ स्थापित करे। खंभा बनानेके लिये चन्दन, खैर, बेल, पीपल, निम्ब, देवदारु, श्रीपर्णी अथवा वट—ये आठ प्रकारके वृक्ष शुभ बताये गये हैं। उन दोनों खंभोंके बीचमें दो छींकोंसे युक्त तराजू रखे। इसके बाद स्नान करके श्वेत वस्त्र, श्वेत माला और श्वेत चन्दन धारण करके सब ओर लोकपालोंकी क्रमशः पूजा करे। तत्पश्चात् गन्ध, माला और चन्दनके द्वारा खंभों तथा तराजूका पूजन करे। पुण्याहवाचन करे। तदनन्तर यजमान तुलाके पश्चिम जाकर पूर्वाभिमुख खड़ा हो और दोनों हाथ जोड़ श्रद्धापूर्वक इस मन्त्रका उच्चारण करे—

ब्रह्मणो दुहिता नित्यं सत्यं परममाश्रिता।
काश्यपी गोत्रतश्चैव नामतो विश्रुता तुला॥
त्वं तुले सत्यनामासि स्वभीष्टं चात्मनः शुभम्।
करिष्यामि प्रसादं मे सान्निध्यं कुरु साम्प्रतम्॥

'हे तुले! तू ब्रह्माजीकी पुत्री है, सदा उत्तम सत्यका आश्रय लेकर रहती है। तेरा गोत्र काश्यप है और नाम सर्वत्र विख्यात तुला है। तुले! तेरा एक नाम सत्य भी है; मैं अपने शुभ अभीष्टकी सिद्धि करूँगा। तू इस समय मेरे समीप आ और अपना कृपाप्रसाद मेरे ऊपर कर।'

इसके बाद उस तुलाके एक छींके (पलड़े)-पर आरूढ़ होकर अपनी शक्तिके अनुसार दानमें देनेके लिये जो वस्तु पहलेसे एकत्र करके रखी गयी हो, उसे दूसरे छींकेपर स्थापित करे। सोना, चाँदी, रत्न, वस्त्र आदि जो-जो अभीष्ट वस्तु हो, वह सब चढ़ावे। जबतक दोनों ओरका पलड़ा बराबर न हो जाय, तबतक चढ़ावे। अधिक या कम नहीं। तत्पश्चात् इष्टदेवकी शरण लेकर छींकेपरसे ही उस देवताके लिये जलमें जल, तिल, सुवर्ण और अक्षत छोड़े। इसके बाद उसपरसे उतरकर वह सब सामग्री ब्राह्मणोंको बाँट दे। इस दानके प्रभावसे मनुष्य जानकर या अनजानमें किये हुए समस्त पापोंका नाश कर

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

देता है। जो शारीरिक क्लेशसे डरनेवाले हैं, ऐसे धनियोंके लिये यह तुलादान पुरश्चरणके समान है। राजन्! राजा दिलीप, कार्तवीर्य अर्जुन, पृथु, पुरुकुत्स तथा अन्यान्य राजाओंने भी यह तुलादान किया है। तुलापुरुषका दान पुण्यजनक, परम उत्तम, मनुष्योंकी समस्त कामनाओंको देनेवाला तथा सम्पूर्ण उपद्रवोंका नाश करनेवाला है। जो भगवान् सिद्धेश्वरके आगे तुलापुरुषका दान देता है, उसे सहस्रगुने फलकी प्राप्ति होती है। अतः सब प्रकारसे प्रयत्न करके भगवान् सिद्धेश्वरके पास पहुँचकर विवेकी पुरुषको तुलापुरुषका दान करना चाहिये। भगवान् सिद्धेश्वरका दर्शन, स्पर्श और पूजन करनेपर मानव सब शिवलिंगोंके दर्शनका फल पा लेता है।

पृथ्वीदानकी महिमा

भर्तृयज्ञ कहते हैं—जो राजा श्रद्धापूर्वक भगवान् गौतमेश्वरके आगे सुवर्णमयी पृथ्वीका दान करता है, वह निश्चय ही चक्रवर्ती राजा होता है—ऐसा ब्रह्माजीका कथन है। मान्धाता, धुन्धुमार, हरिश्चन्द्र, पुरूरवा, भरत और कार्तवीर्य—ये छः चक्रवर्ती राजा हुए हैं। पूर्वकालमें भगवान् गौतमेश्वरके समीप स्वर्णमयी पृथ्वीका दान करनेसे ही इन्हें सार्वभौम राज्य प्राप्त हुआ था।

आनर्तने पूछा—भगवन्! किस विधिसे स्वर्णमयी भूमिका दान करना चाहिये? मैं उसका दान करूँगा। इसके लिये मेरी बड़ी श्रद्धा है।

भर्तृयज्ञने कहा—नृपश्रेष्ठ! सौ भर सोनेकी पृथ्वी बनानी चाहिये। अथवा शक्तिके अनुसार पचास भर या पचीस भर सोनेकी ही पृथ्वीका निर्माण करावे। अधिक न हो तो किसी प्रकार भी पाँच भरसे कमकी पृथ्वी तो देनी ही नहीं चाहिये। उसमें लवण, इक्षु, सुरा, घृत, दही, दूध तथा जलके सात समुद्र और जम्बू, प्लक्ष, कुश, क्रौंच, शाक, शाल्मलि एवं पुष्कर—ये सात द्वीप क्रमशः एकसे दूसरे दूने बड़े बनाने चाहिये। महेन्द्र, मलय, सह्य, हिमवान्, गन्धमादन, विन्ध्य तथा शृंगी—इन सातों कुलपर्वतोंको भी अंकित करे। मध्यभागमें मेरुको और उसके चारों ओर विष्कुम्भ पर्वतोंका भी उल्लेख करावे। जम्बू, न्यग्रोध (वट), नीप (कदम्ब) तथा प्लक्ष (पाकड़) आदि वृक्षों तथा गंगा आदि नदियोंका भी उस स्वर्णमयी भूमिमें मुख्यतः अंकन करे। इस प्रकार सुवर्णमयी पृथ्वीका पूर्णतः निर्माण कराकर फिर पहले बताये अनुसार मण्डप, कुण्ड और तोरण आदि बनावे। ब्राह्मणोंका पूजन करे। पूर्ववत् सब कुछ करके मध्यभागमें वेदीका निर्माण करे। उस वेदीपर हेममयी पृथ्वीको स्थापित करे और यथोक्त मन्त्रोंका उच्चारण करते हुए उसे पंचगव्यसे नहलावे। इसके बाद **'इमं मे गङ्गे यमुने०,' 'पञ्चनद्यः सरस्वती०' 'त्रिपुष्करम्०'** श्रीसूक्त, पावमानी ऋचा, स्वर्णघर्मानुवाक तथा स्नान-कर्मोपयोगी अन्यान्य मन्त्रोंके पाठपूर्वक उस स्वर्णप्रतिमाका अभिषेक करे। इस प्रकार विधिपूर्वक स्नान कराकर **'युवा सुवासा'** इत्यादि मन्त्रसे नाना प्रकारके सूक्ष्म वस्त्र पहनावे। **'ये भूतानामधी०'** इत्यादि मन्त्रोंका उच्च स्वरसे उच्चारण करके पूजन करे। फिर **'धूरसि'** इत्यादि मन्त्रसे धूप निवेदन करके **'अग्निर्ज्योतिः'** इत्यादि मन्त्रद्वारा आरती उतारे। **'अन्नमस्मि'** इस मन्त्रसे सप्तधान्य निवेदन करे। इस प्रकार उस हेममयी पृथ्वीका सब पूजन विधिपूर्वक सम्पन्न करके सामने खड़ा हो जाय और हाथ जोड़कर निम्नांकित मन्त्रोंका उच्चारण करे—

त्वया सन्धार्यते देवि जगदेतच्चराचरम्।
तव दानं करिष्यामि सान्निध्यं कुरु मेदिनि॥
शरीरेष्वपि भूतानां त्वं देवि प्रथमं स्थिता।
ततश्चान्यानि भूतानि जलादीनि वसुन्धरे॥

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

ये त्वां वाञ्छन्ति ते भूयस्त्वां लभन्ते न संशयः।
इह लोके परे चैव पार्थिवं रूपमाश्रिता॥

'पृथ्वी देवि! आप इस सम्पूर्ण चराचर जगत्को धारण करती हैं। मैं आपका दान करूँगा, आप मेरे समीप पधारें। देवि वसुन्धरे! समस्त प्राणियोंके शरीरोंमें भी प्रधानतया आपकी स्थिति है। उसके बाद जल आदि दूसरे भूत स्थित हैं। जो आपको चाहते हैं, वे पाते हैं, इसमें संशय नहीं है। इहलोक और परलोकमें सर्वत्र आप पार्थिव रूप धारण करके स्थित हैं।'

इस प्रकार सुवर्णमयी धरादेवीका स्तवन करके उसे जलसहित हाथमें ले और भगवान् वासुदेवका मन-ही-मन ध्यान करते हुए इस मन्त्रद्वारा संकल्प करे—

पातालादुद्धृता येन पृथ्वी सा लोककारिणा।
अस्या दानेन च सदा प्रीयतां मे जनार्दनः॥

'जिन लोकस्रष्टा भगवान्ने वाराहरूप धारणकर पातालसे इस पृथ्वीका उद्धार किया था, वे ही जनार्दन इस स्वर्णमयी भूमिके दानसे मुझपर सदा सन्तुष्ट रहें।'

ऐसा कहकर उस जलको जलमें ही गिरावे। न तो भूमिपर उसे गिराना चाहिये और न ब्राह्मणके हाथमें ही देना चाहिये। तदनन्तर पृथ्वीदेवीका इस प्रकार विसर्जन करे—

आगता च यथान्यायं पूजिता च यथाविधि।
अस्माकं त्वं हितार्थाय यत्रेष्टं तत्र गम्यताम्॥

'देवि! तुम हमारे हितके लिये यहाँ आयीं, न्यायोचित ढंगसे विधिपूर्वक तुम्हारी पूजा की गयी। अब हमारे हितके लिये ही तुम अभीष्ट स्थानको पधारो।'

'**उस्रा वेद**' इत्यादि मन्त्रका उच्चारण करके उस स्वर्णमयी भू-प्रतिमाको वेदीपरसे उतारे और ब्राह्मणको बाँट दे। जो राजा इस विधिसे भूमिदान करता है, उसके वंशमें भी कभी किसीका राज्य भ्रष्ट नहीं होता है। यह पृथ्वीदान सब दानोंसे उत्तम, पुण्यजनक एवं प्रशंसनीय है। जो इसकी महिमा सुनते हैं, उनकी भी समस्त जडताका यह विनाश करनेवाला है। इस प्रकार भूमिदान करनेवाले लोग अकण्टक राज्यका उपभोग करके प्रसन्नचित्त हो भगवान् विष्णुके अविनाशी सनातन पदको प्राप्त होते हैं। अन्यत्र किया हुआ भूमिदान भी एक जन्मतक अवश्य चक्रवर्ती बनाता है, परंतु जो भगवान् गौतमेश्वरके आगे भूमिदान किया जाता है, वह सात जन्मोंतक मनुष्यको चक्रवर्ती राजा बनाता है, इसमें संदेह नहीं है। अतः सब प्रकारसे प्रयत्नपूर्वक वहाँ भूमिदान करना चाहिये।

चार प्रकारके कालमानका वर्णन, दुःशील नामक ब्राह्मणका चरित्र तथा दुःशीलेश्वरकी महिमा

सूतजी कहते हैं—ब्राह्मणो! भूमण्डलमें सबका समय सौर, सावन, चान्द्र तथा नाक्षत्र—इन चार प्रकारके मानोंसे व्यतीत होता है। सौरमानसे तीन सौ पैंसठ दिनोंका एक वर्ष होता है। सावनमानसे तीन सौ साठ दिनोंका, चान्द्रमानसे तीन सौ चौवन दिनोंका और नाक्षत्रमानसे तीन सौ पैंतीस दिनोंका वर्ष होता है। सर्दी, गरमी और वर्षा सौरमानसे होती है। अग्निष्टोम आदि यज्ञ, उत्सव और विवाह—ये सावनमानसे किये जाते हैं। व्याज आदि व्यवहार मलमासयुक्त चान्द्रमानसे होता है। नाक्षत्रमानसे ग्रहोंकी चाल होती है। पृथ्वीपर इन चारोंके सिवा दूसरा कोई मान नहीं है। इसी मानसे देवता, दैत्य और मनुष्य सबका व्यवहार चलता है। जो मनुष्य हाटकेश्वरक्षेत्रके सप्त शिवलिंगोंके आगे इस प्रसंगका भक्तिपूर्वक पाठ करते हैं, उनकी किसी प्रकार भी अपमृत्यु नहीं होती है।

हाटकेश्वरक्षेत्रमें महर्षि दुर्वासाद्वारा स्थापित

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

देवाधिदेव भगवान् शंकरका एक लिंगमय विग्रह है। जो मनुष्य चैत्रमासमें तीनों समय अथवा एक क्षण भी नृत्य, गीत और वाद्यके द्वारा भगवान् शिवकी आराधना करता है, वह अवश्य ही उनकी कृपासे गन्धर्वोंका अधिपति होता है।

प्राचीन कालमें वैदिश नामक उत्तम नगरमें निम्बशुच नामवाले एक ब्राह्मण रहते थे। वे किसी मठके अध्यक्ष थे और प्रतिदिन शिवलिंगका पूजन किया करते थे। शिवभक्तोंसे उन्हें जो कुछ भी वस्त्र आदि वस्तुएँ प्राप्त होती थीं, उन सबको वे बेच डालते और उनके मूल्यसे सोना खरीद लेते थे। उसमेंसे थोड़ा भी खर्च नहीं करते थे। केवल संग्रह ही करते रहते थे। इससे दीर्घकालके पश्चात् उनकी छोटी-सी पेटी सुवर्णसे भर गयी। निम्बशुच बड़े कृपण थे। घड़ीभरके लिये भी उस सुवर्णकी पेटीको अलग नहीं रखते। सदा अपनी काँखमें ही दबाये रहते थे। देवताकी पूजा करते समय भी उसे नहीं छोड़ते; कभी किसीपर उन्हें विश्वास नहीं होता था।

एक समय दूसरोंका धन हड़प लेनेमें कुशल दुःशील नामक एक खोटी बुद्धिवाले ब्राह्मणने पुजारीजीकी गतिविधिको ताड़ लिया और मन-ही-मन सोचा—'इस दुरात्माको विश्वास दिलानेके लिये मैं इसका शिष्य बनूँगा। चिकनी-चुपड़ी बातें बनाकर दिन-रात इसकी सेवा-टहलमें लगा रहूँगा और कभी मौका पाकर निःसन्देह अपना काम बना लूँगा।' ऐसा निश्चय करके दूसरे दिन वह उनके समीप गया। वे बहुत लोगोंके बीचमें बैठे हुए थे। उसने विनयपूर्वक प्रणाम करके हाथ जोड़कर कहा—'भगवन्! मैंने आपकी तपस्याका अद्भुत प्रभाव सुना है। इस पृथ्वीपर आपके समान दूसरा कोई महात्मा नहीं है। इसीलिये मैं बहुत दूरसे आपके पास आया हूँ। संसारकी असारता जानकर मेरे मनमें बड़ा वैराग्य हुआ है। इस लोकमें मनुष्योंका यौवन बिजलीकी चमकके समान सहसा विलुप्त हो जानेवाला है। जैसे पर्वतसे निकली हुई नदी क्षणभंगुर होती है, उसी प्रकार स्त्री-पुत्र, बन्धु-बान्धव आदि सब अनित्य हैं। नदी प्रवाहरूपसे ही सत्य प्रतीत होती है, वास्तवमें उसका जल क्षण-क्षणमें परिवर्तित होता रहता है। उसी प्रकार समस्त संसार परिवर्तनशील है। भाई-बन्धु आदि सगे-सम्बन्धियोंका संयोग भी पाप-समागमके ही तुल्य जानने योग्य है। अतः सुव्रत! इस संसार-समुद्रसे पार होनेके लिये मुझे ऐसे किसी उपायका उपदेश दीजिये, जो मेरे लिये नौकाके समान पार लगानेवाला हो। जिसका आश्रय लेकर मैं आपकी कृपासे इस भवसागरसे पार हो जाऊँ।'

उसकी यह बात सुनकर पुजारीजीके शरीरमें हर्षके मारे रोमांच हो आया। सोचने लगे—'यह कौन शिवभक्त पुरुष परदेशसे यहाँ आया है?' फिर बोले—'तुम धन्य हो, जिसकी बुद्धि तरुणावस्थामें भी ऐसी वैराग्यपूर्ण है। जो पहली अवस्था (तरुणाई)-में शान्त है (मन और इन्द्रियोंको जीत चुका है), वही शान्त है—ऐसा मेरा विचार है। शरीरके सब धातुओंके क्षीण हो जानेपर कौन शान्त नहीं होता? यदि तुम्हारे मनमें संसारकी ओरसे इतनी विरक्ति है, तो देवताओंके स्वामी और परम कल्याणकारी भगवान् चन्द्रशेखरकी आराधना करो। अन्यथा घोर जपसे भी भवसागरको पार करना असम्भव है। यह बात मैंने शास्त्रोंका भलीभाँति मनन करके जानी है। शूद्र हो या ब्राह्मण, म्लेच्छ हो या और कोई पापात्मा; जो मनुष्य शिवकी दीक्षा लेकर षडक्षरमन्त्रसे भक्तिपूर्वक एक फूल भी शिवलिंगपर चढ़ा देता है, वह उसी गतिको प्राप्त होता है, जिसे बड़े-बड़े यज्ञकर्ता पाते हैं। जो शिवदीक्षा लिये हुए पुरुषोंको भक्तिभावसे वस्त्र, उपानह और जलपात्र आदि समर्पण करता है, उसे बहुतेरे यज्ञोंसे क्या काम है?'

यह सुनकर दुःशीलने निम्बशुचके चरण पकड़ लिये और उनपर अपना मस्तक रखकर

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

बड़े आदरसे कहा—'प्रभो! आप मुझे शिवदीक्षा देकर अनुगृहीत कीजिये, जिससे मैं एकाग्रचित्त होकर नित्य आपकी सेवा कर सकूँ।' तब उस तापस ब्राह्मणने मनमें विचार किया—'यह कोई चतुर मनुष्य दिखायी देता है, दूसरा कोई ऐसा शिष्य नहीं आवेगा। इसलिये मैं इसे शिष्य बनाये लेता हूँ।' ऐसा निश्चय करके निम्बशुचने उसका हाथ पकड़कर कहा—'वत्स! यदि ऐसी बात है तो मेरे साथ कुछ प्रतिज्ञा या शपथ करो, जिससे मैं तुम्हें आज ही दीक्षा दे दूँ। तुम्हें इस मठसे बहुत दूर अपनी कुटी बनानी होगी। सूर्यास्त हो जानेपर तुम्हें कदापि इस मठमें प्रवेश नहीं करना चाहिये।'

दुःशीलने कहा—गुरुदेव! मेरे लिये तो आपका आदेश ही प्रमाण है। जो शिष्य गुरुकी आज्ञाका पालन नहीं करता, उसका वह व्रत व्यर्थ हो जाता है और फिर उसे नरककी प्राप्ति होती है।

दुःशीलका यह वचन सुनकर निम्बशुचको सन्तोष हो गया। तब उन्होंने उसे शिवमन्त्रकी दीक्षा दी—पंचाक्षर मन्त्रका उपदेश किया। तबसे दुःशील उनकी सेवामें अत्यन्त तत्पर रहने लगा। अपनी सेवाओंसे उसने तापसके चित्तको प्रसन्न कर लिया था। वह प्रतिदिन मन-ही-मन सुवर्णकी वह पेटी हथिया लेनेकी बात सोचता था, किंतु किसी दिन मौका नहीं पाता था। तब उसने विचार किया—'क्या इसे विष दे दूँ, अथवा हथियारसे मार डालूँ या गला दबाकर इसके प्राण ले लूँ?' ऐसी ही बातें वह प्रतिदिन सोचता रहा। इतनेमें ही वर्षाका समय उपस्थित हुआ। श्रावणके कृष्णपक्षमें जब सूर्यदेव कर्कराशिपर स्थित थे, कोई धनी शिवभक्त वहाँ आया और उसने प्रणाम करके कहा—'स्वामिन्! आपकी आज्ञा हो तो मैं आगामी चतुर्दशीके दिन आपका सत्कार करना चाहता हूँ। यदि आप मेरे गाँवमें पधारनेका कष्ट करें, तो बड़ी कृपा हो।'

यह सुनकर निम्बशुच मुनि बहुत सन्तुष्ट हुए और बोले—'बहुत अच्छा, मैं नियत समयपर अपने शिष्यके साथ तुम्हारे यहाँ आऊँगा।' ऐसा कहकर उसे विदा कर दिया। जब वह समय आया, तब सबेरे ही निम्बशुच मुनि दुःशीलके साथ प्रस्थित हुए। मार्गमें मुरला नामवाली सागरगामिनी नदी मिली। उसे देखकर उन्होंने दुःशीलसे कहा—'वत्स! मैं मुरलामें तुम्हारे साथ देवपूजा करूँगा। थोड़ी देर यहीं ठहरो।' 'जो आज्ञा' कहकर दुःशील नदीके शुभ तटपर खड़ा रहा। निम्बशुच दुःशीलके गुणोंसे सर्वदा सन्तुष्ट रहते थे। उसे एक अच्छा शिष्य जानकर उनके मनमें उसके प्रति विश्वास हो गया था। उन्होंने छिपायी हुई सोनेकी पेटी और यागेश्वरकी मूर्तिके साथ अपनी गुदड़ी उतारकर धरतीपर रख दी और स्वयं थोड़ी दूरपर मलत्याग करनेके लिये चले गये। वे ज्यों ही बेतके वृक्षोंकी ओटमें पहुँचे, त्यों ही दुःशील उनकी सोनेकी पेटी लेकर प्रसन्नचित्त हो शीघ्रतापूर्वक उत्तर दिशाकी ओर चल दिया। निम्बशुच जब मैदान होकर लौटे, तब दुःशील नहीं दिखायी दिया। केवल यागेश्वरसहित गुदड़ी वहीं पड़ी हुई थी। ब्राह्मणका मन खिन्न हो गया। वे जल्दी-जल्दी हाथ-पैर धोकर कुल्ला किये बिना ही उस स्थानपर आये, जहाँ गुदड़ी रखी थी। देखा, तो वहाँ सोनेकी पेटी नहीं थी। फिर यह जानकर कि वही शिष्य उसे चुरा ले गया, वे मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़े। चेत होनेपर वहाँसे वे बड़े कष्टसे उठे और पत्थरपर अपना सिर पटकने लगे। फिर विलाप करते हुए बोले—'हाय! हाय! उस दुष्ट दुरात्माने मुझे मार डाला। मैं नष्ट हो गया। उसने मुझे लूट लिया। क्या करूँ, कहाँ जाऊँ? कैसे उसे देख पाऊँ?' तदनन्तर उसके पैरोंकी निशानी देखते हुए निम्बशुच मुनि उसका पीछा करने लगे। किंतु एक तो वे बूढ़े थे, दूसरे, रोगोंने भी उन्हें और थका दिया था; इसलिये निराश होकर अपने मठपर लौट गये।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

दुःशील भी सोनेकी पेटी लेकर दूसरे स्थानपर चला गया। उस सुवर्णसे वह व्यापार करने लगा। विवाह करके उसने गृहस्थी बसा ली। बुढ़ापा आ गया, परंतु उसे कोई सन्तान नहीं हुई। एक समय वह अपनी स्त्रीके साथ तीर्थयात्रा करता हुआ चमत्कारपुरमें गया। सब तीर्थोंमें स्नान और सम्पूर्ण मन्दिरोंमें घूम-घूमकर देवदर्शन करते हुए उसने एक स्थानपर दुर्वासा मुनिको देखा। वे अपने इष्टदेवके सामने भक्तिपूर्वक नृत्य और गान कर रहे थे। दुःशीलने उनको प्रणाम करके पूछा—'महर्षे! इस निर्मल शिवलिंगकी स्थापना किसने की है? आप क्यों इसके सम्मुख नृत्य और गान करते हैं? आपका यह व्यवहार मुनियोंको शोभा नहीं देता।'

दुर्वासा बोले—देवताओंके भी आराध्यदेव शूलपाणि भगवान् शंकरके इस लिंगमय विग्रहकी स्थापना मैंने ही की है। देवदेव महेश्वरको नृत्य और गान विशेष प्रिय है। अतः मैं यही करता हूँ।

दुर्वासाका वचन सुनकर दुःशीलके मनमें महादेवजीके प्रति भक्तिभावका उदय हुआ। उसने मुनिको पुनः प्रणाम करके कहा—'भगवन्! मैं केवल जातिसे ब्राह्मण हूँ, कर्मसे नहीं। मैंने आजतक किसीको भोजन नहीं दिया। केवल ठग-ठगकर देवताओं और ब्राह्मणोंके धनका अपहरण किया है। मैं सदा जुआ खेलने और वेश्यागमनके दुर्व्यसनमें ही फँसा रहा हूँ। जातिसे ब्राह्मण होकर भी मैंने एक शैवको गुरु बनाया। फिर अनेक प्रकारकी चिकनी-चुपड़ी बातें कहकर उन्हें धोखा दिया और उनका सारा धन चुरा लिया। मेरे वे गुरु परलोकवासी हो गये हैं। मैं पश्चात्तापकी आगमें रात-दिन जलता रहता हूँ। आप मुझे कोई प्रायश्चित्त बताकर मुझे अनुगृहीत कीजिये। मुनीश्वर! मेरे पास धन बहुत है, परंतु सन्तान एक भी नहीं है। अतः ऐसा कोई उपाय बताइये, जिससे उस धनका सदुपयोग हो, इहलोक और परलोकमें भी वह हितकारक हो सके। आप जो बतावेंगे, वह सब मैं करूँगा।'

दुर्वासाने कहा—जो पुरुष सहस्रों पाप करके पीछे धर्मपरायण होता है, वह बड़ी कठिनाईसे संसार-सागरके पार होता है। तूने कुमार्गपर चलकर महापाप किया है।

दुःशील बोला—महाभाग! मेरे पास धन बहुत है, यदि उससे कोई धर्मकार्य सिद्ध हो सके तो बताइये, मैं सब करूँगा।

दुर्वासाने कहा—तुम्हारे पापनाशका एक ही उपाय है। सत्ययुगमें तपकी, त्रेतामें ज्ञानकी, द्वापरमें तीर्थयात्राकी और कलियुगमें दानकी ही मुनिलोग प्रशंसा करते हैं*। इस समय भयंकर कलिकाल उपस्थित है। अतः समस्त पापोंकी शुद्धिके लिये दान करो। तुम्हारे मनमें गुरुके यहाँसे धनका अपहरण करनेके कारण उस धनकी ओरसे घृणा भी है ही, अतः तुम गुरुके ही नामसे भगवान् शंकरका एक मन्दिर बनवा दो। इससे गुरुके ऋणसे भी उऋण हो जाओगे। अन्यत्र भी यदि कहीं उनका धन प्राप्त हो तो प्रतिदिन एकाग्रचित्त हो श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको उस धनका दान किया करो। स्वयं अपने लिये भी तिलपात्र और सुवर्णका दान करो, जिससे तुम्हारे शरीरसे सब पाप दूर हो जायँ। दूसरी बात यह है कि मैं सुदूरवर्ती कल्पग्रामसे सदा चैत्रमासमें यहाँ अपने बनवाये हुए शिवमन्दिरके दर्शन-पूजनके लिये आया करता हूँ; फिर वहीं चला जाऊँगा। यह मेरा सदाका नियम है। अतः मेरे चले जानेपर तुम्हें मेरे बनवाये हुए इस मन्दिरमें भगवान् शिवके स्नान-पूजन आदिका ध्यान रखना चाहिये।

दुःशील बोला—मुनिश्रेष्ठ! मैं आपकी सब आज्ञाका पालन करूँगा, परंतु मुझे निर्वाण-दीक्षा दीजिये।

* तपः कृते प्रशंसन्ति त्रेतायां ज्ञानमेव च। द्वापरे तीर्थयात्रां च दानमेव कलौ युगे॥ (स्क० पु०, ना० उ० २२९। ९१)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

मुनि दुर्वासाके आज्ञानुसार तिलपात्रादिके दानसे जब उसके पाप दूर हो गये, तब दुर्वासाजीने उसे निर्वाणदीक्षा दी। दीक्षा देनेके बाद मधुर वाणीमें कहा—'अब मुझे गुरुदक्षिणा दो।'

दु:शील बोला—प्रभो! आप दक्षिणामें क्या लेना चाहते हैं? शीघ्र बताइये।

दुर्वासाने कहा—देखो, इस समय कलियुग आ गया है। अब मैं कल्पग्रामको चला जाऊँगा और चैत्रमासमें जो मेरी यात्रा यहाँ होती थी, वह अब नहीं होगी। जबतक सत्ययुग नहीं आ जायगा, तबतक मैं यहाँ नहीं आऊँगा। यह मन्दिर जो मैंने बनवाना प्रारम्भ किया था, अबतक आधा ही बन पाया है, अब तुम इसे पूरा कर देना, यही मेरी गुरुदक्षिणा है। अपनी शक्तिके अनुसार यहाँ नृत्य-गीत आदि करते रहना। फूल आदि भी चढ़ाना चाहिये।

ऐसा कहकर मुनीश्वर दुर्वासा कल्पग्रामको चले गये। दु:शीलने भी जैसा दुर्वासाजीने कहा था, सब कुछ उसी प्रकार किया। इसी प्रकार भक्तिभावसे पूजन आदि करते हुए दु:शीलके ही नामपर उस शिवलिंगकी प्रसिद्धि हुई; उसकी संज्ञा 'दु:शीलेश्वर' हो गयी। जो चैत्रमासमें प्रतिदिन दु:शीलेश्वर देवका दर्शन करता है, वह क्षणभरमें वर्षभरके पापोंसे मुक्त हो जाता है। जो उनको नहलाता है, उसके शरीरसे तीस वर्षका पाप नष्ट हो जाता है। जो उनके आगे नृत्य-गीत आदिका आयोजन करता है, उसके शरीरसे तीस वर्षका पाप नष्ट हो जाता है। जो उनके आगे नृत्य-गीत आदि करता है, वह जन्मसे लेकर मृत्युतकके सब पापोंसे मुक्त हो जाता है।

निम्बेश्वरकी स्थापना तथा ग्यारह रुद्रोंका प्राकट्य एवं उनके दर्शन-पूजनकी महिमा

सूतजी कहते हैं—दु:शीलने दक्षिण दिशामें अपने गुरुके नामसे भी शिवालय बनवाया, जो निम्बेश्वरके नामसे विख्यात हुआ। वह बड़े भक्तिभावसे उनके चरणारविन्दोंका चिन्तन करने लगा। उसकी स्त्रीका नाम शाकम्भरी था। उसने अपने नामवाली श्रीदुर्गादेवीकी वहाँ स्थापना की। उनके पास जो शेष धन था, उसे उन दोनों पति-पत्नीने देव-पूजनके लिये ब्राह्मणोंको अर्पित कर दिया और स्वयं भिक्षान्न भोजन करने लगे। कुछ कालके अनन्तर दु:शीलकी मृत्यु हो गयी। उस समय शाकम्भरीने दृढचित्त होकर पतिके साथ चिताकी आगमें प्रवेश किया। फिर वे दोनों पति-पत्नी विमानमें बैठकर स्वर्गको चले गये। जो दु:शीलका यह उत्तम उपाख्यान पढ़ेगा, वह अज्ञानजनित सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त हो जायगा।

पूर्वकालकी बात है, उत्तम व्रतका पालन करनेवाले काशीनिवासी मुनि हाटकेश्वरदेवके दर्शनके लिये उत्सुक होकर चले। उनमें परस्पर होड़ लग गयी थी कि 'पहले मैं, पहले मैं, भगवान् हाटकेश्वरका दर्शन करूँगा। जो सबके आगे वहाँ जाकर भी पहले हाटकेश्वर शिवका दर्शन नहीं कर लेगा, वह अकेला सबको कष्ट देनेके पापका भागी होगा।' ऐसा कहकर वे सब काशीपुरीसे अत्यन्त वेगपूर्वक दौड़ते हुए चले। इसी समय भगवान् हाटकेश्वर उन सब मुनियोंका स्पर्धाजनित अभिप्राय जानकर उन सबको दर्शन देनेके लिये पातालसे नागच्छिद्रके द्वारा निकले और ग्यारह स्वरूपोंमें स्थित हो गये। त्रिशूल, तीन नेत्र, जटाजूट, अर्धचन्द्र तथा मुण्डमालासे विभूषित हो, वे एक ही साथ सबकी दृष्टिमें आये। उन मुनियोंने अपने समक्ष खड़े हुए भगवान् वृषभध्वजका दर्शन करके धरतीपर घुटने टेक उन्हें प्रणाम किया और पृथक्-पृथक् उनकी स्तुति की। उनमेंसे एक जानता था,

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

भक्तवत्सल देवदेव महादेवजी पहले मेरी दृष्टिमें आये हैं। दूसरा समझता था, पहले मुझे ही भगवान्‌का दर्शन हुआ है। ऐसा जानते हुए उन श्रेष्ठ तापसोंने भगवान्‌का इस प्रकार स्तवन किया—

तापस बोले—जो देवताओंके भी अधिदेवता तथा सर्वदेवस्वरूप हैं, उन भगवान् शिवको नमस्कार है। शान्त, सूक्ष्म तथा अन्धकासुरका नाश करनेवाले शिवको नमस्कार है। जो सदा द्युलोकके आश्रित रहकर विभिन्न वायुओंके द्वारा सम्पूर्ण जगत्‌को जीवन प्रदान करते हैं, उन सम्पूर्ण रुद्रोंको नमस्कार है। जो पूर्व दिशामें रहकर सब लोकोंकी भूतोंके महान् भयसे रक्षा करते हैं, उन सम्पूर्ण रुद्रोंको नमस्कार है। जो पश्चिम दिशामें रहकर दुरात्मा पिशाचोंके भयसे समस्त जगत्‌की रक्षा करते हैं, उन सम्पूर्ण रुद्रोंको नमस्कार है। जो ऊपरके लोकोंमें रहकर जम्भके महान् भयसे सम्पूर्ण लोकोंकी रक्षा करते हैं, उन सब रुद्रोंको नमस्कार है। जो नीचे-ऊपर दोनों जगह रहकर सम्पूर्ण लोकोंकी कूष्माण्डोंके भयसे रक्षा करते हैं, उन सब रुद्रोंको नमस्कार है। जो सहस्रोंकी संख्यावाले अथवा असंख्य रुद्र, पृथ्वीपर रहकर रोगोंसे जगत्‌को बचाते हैं, उन सबको भी नमस्कार है।

इस प्रकार ग्यारह तपस्वियोंद्वारा स्तुति की जानेपर वे ग्यारहों रुद्र भक्तिसे नतमस्तक हुए उन तपस्वी मुनियोंसे बोले।

रुद्र बोले—श्रेष्ठ तापसो! मैं तुम्हारी बड़ी भारी भक्ति देखकर सन्तुष्ट हूँ और ग्यारह स्वरूपोंमें प्रकट हुआ हूँ, तुम सब लोग मनोवांछित वर माँगो।

तापसोंने कहा—देव! यदि आप हमपर सन्तुष्ट हैं, तो कृपा करके इन ग्यारह स्वरूपोंमें सदा यहीं रहें, जिससे हम आपकी आराधना करते हुए हाटकेश्वरक्षेत्रमें सदैव निवास करें।

भगवान् श्रीशिव बोले—मैंने इस क्षेत्रमें जिन ग्यारह मूर्तियोंको प्रकट किया है, इन सबके साथ यहाँ सदैव निवास करूँगा। मेरी जो आद्या मूर्ति है, वह तो कैलासपर रहती है। इस क्षेत्रमें भी जो उत्तम कैलासपर्वत है, वहाँ सदा उसकी स्थिति बनी हुई है। ये मेरी ग्यारह मूर्तियाँ सम्पूर्ण जगत्‌की रक्षाके लिये यहाँ सदा उपस्थित रहेंगी। तुम्हारे ही नामोंसे इन सबकी प्रसिद्धि होगी। जो मनुष्य विश्वामित्र-कुण्डमें स्नान करके मेरी इन मूर्तियोंकी पूजा करेंगे, वे परम गतिको प्राप्त होंगे। मेरे वचनसे उन्हें ग्यारहगुने पुण्यफलकी प्राप्ति होगी; इसमें संशय नहीं है।

ऐसा कहकर भगवान् त्रिलोचन वहीं अन्तर्धान हो गये। वे मुनि भी वहाँ आश्रम बनाकर बड़ी श्रद्धासे उन मूर्तियोंकी आराधना करते हुए परम पदको प्राप्त हो गये। दूसरा कोई मनुष्य भी यदि इन ग्यारह विग्रहोंका दर्शन और पूजन करेगा, वह उस परमधाममें जायगा, जहाँ साक्षात् भगवान् महेश्वर विराजमान हैं। जो मानव चैत्रमासके शुक्ल पक्षकी चतुर्दशीके दिन उन सबका भक्तिपूर्वक पूजन करेगा, वह परम गतिको प्राप्त होगा। षडक्षर मन्त्रके द्वारा भगवान् शिवको एक फूल चढ़ानेसे जो फल मिलता है, उससे सौ गुना फल उस मनुष्यको प्राप्त होता है, जिसने शिवकी दीक्षा ली है। उसकी अपेक्षा भी सौगुना फल उसे मिलता है, जिसने भगवान् शिवकी शरण ले रखी है। जो लोग भक्ति एवं विनयपूर्वक उन विग्रहोंका पूजन करते हैं, वे पूर्वोक्त सभी लोगोंसे सौगुना पुण्यफल प्राप्त करते हैं।

ऋषियोंने पूछा—सूतजी! काशीसे आये हुए उन मुनियोंके नाम क्या थे, जिनकी भक्तिके कारण भगवान् शिव ग्यारह स्वरूपोंमें अभिव्यक्त हुए?

सूतजीने कहा—उनमेंसे प्रथमका नाम त्रिभुवन-प्रसिद्ध मृगव्याध था, दूसरेका शर्व, तीसरेका निन्दित, चौथेका महायशा, पाँचवेंका अजैकपाद, छठेका अहिर्बुध्न्य, सातवेंका पिनाकी, आठवेंका परन्तप, नवेंका दहन, दसवेंका ईश्वर तथा

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

ग्यारहवेंका नाम कपाली था। ये ही नाम भगवान् शिवने उन ग्यारह रुद्र-मूर्तियोंके भी रखे।

मृगव्याधके लिये प्रत्यक्ष गौ तथा गुड़की बनी हुई गौ भी दान करनी चाहिये। कपालीके लिये मक्खनकी, अजैकपादके लिये घीकी, अहिर्बुध्न्यके लिये सुवर्णकी, पिनाकीके लिये नमककी, परन्तपके लिये रसकी, दहनके लिये अन्नकी, ईश्वरके लिये जलकी तथा अन्य मूर्तियोंके लिये प्रत्यक्ष गौ दान करनी चाहिये। जो इन रुद्रोंकी प्रीतिके लिये इन सब प्रकारकी गौओंका दान करता है, वह निश्चय ही चक्रवर्ती राजा होता है, ऐसा पितामह ब्रह्माजीका कथन है।

नागरखण्डका उपसंहार, श्रवण तथा व्यासपूजनका माहात्म्य

सूतजी कहते हैं—पूर्वकालमें स्कन्दजीने यह समस्त पुराण ब्रह्मपुत्र महर्षि भृगुको सुनाया था। उनसे अंगिराने प्राप्त किया। अंगिरासे च्यवनको और च्यवनसे ऋचीकको इसकी प्राप्ति हुई। इस परम्परासे यह स्कन्द-कथित पुराण सब लोकोंमें प्रचलित हुआ। जो मुनष्य सत्पुरुषोंके मध्यमें बैठकर इस पुराणको सुनता है, वह पापसे मुक्त हो जाता है। यह पुराण आयुकी वृद्धि करनेवाला और सब वर्णोंको सुख देनेवाला है। इसे महात्मा षडानन (स्कन्दजी)-ने प्रकट किया है। जो मनुष्य हाटकेश्वरक्षेत्रका माहात्म्य सुनता है, उसके पुण्यकी गणना कोई नहीं कर सकता। जो मानव भक्तिपूर्वक इस कथाको कुछ दिन सुनता और पढ़ता है, उसके समस्त मनोरथोंकी सिद्धि होती है। जो गुरु अपने शिष्यको एक अक्षर भी उपदेश करता है, उस गुरुको देनेके लिये पृथ्वीपर ऐसा कोई धन नहीं है, जिसे देकर मनुष्य उसके ऋणसे उऋण हो सके। अतः शास्त्र-पुराणका उपदेश करनेवाले व्यासको गौ, भूमि, सुवर्ण, अन्न और वस्त्र आदि देकर उसका पूर्णतः सत्कार करना चाहिये। जो मनुष्य भक्तियुक्त होकर इस परम उत्तम शास्त्रका पाठ एवं श्रवण करता है तथा उपदेश करनेवाले व्यासका पूजन करता है, वह भगवान् शिवके धामको प्राप्त होता है।

नागरखण्ड (उत्तरार्ध) सम्पूर्ण।

नागरखण्ड समाप्त।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

ॐ

श्रीपरमात्मने नमः

श्रीउमामहेश्वराभ्यां नमः

संक्षिप्त श्रीस्कन्दमहापुराण

प्रभासखण्ड

सूतजीके द्वारा प्रभास-खण्डका उपक्रम तथा पुराणों और उपपुराणोंका वर्णन

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्॥

भगवान् नारायण, नरश्रेष्ठ नर, सरस्वती देवी तथा व्यासजीको नमस्कार करके जय (इतिहास-पुराण)-का पाठ करे।

नैमिषारण्यके निवासी महर्षियोंने लोमहर्षण सूतजीसे पूछा—महाबुद्धिमान् सूतजी! प्रभासक्षेत्रका क्या माहात्म्य है? यह हमें बतानेकी कृपा करें।

मुनियोंका यह वचन सुनकर सूतजी अपने गुरुदेव सत्यवतीनन्दन व्यासको प्रणाम करके बोले।

लोमहर्षणजीने कहा—जिनका वक्षःस्थल श्रीवत्सचिह्नसे सुशोभित है, जो सम्पूर्ण जगत्के उत्पत्ति-स्थान,सबको मोहनेवाले, इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले, अप्रमेय, गुरु, देव, निर्भय, निर्भय-आश्रय, हंस (शुद्ध-स्वरूप), शुचिषद् (पवित्र अन्तःकरणमें निवास करनेवाले), आकाशकी भाँति सर्वव्यापी, सर्वगत, शिव (कल्याणमय), उदासीन (राग-द्वेषरहित), आयासशून्य, प्रपंचसे परे, निरंजन, विन्दुस्वरूप, ध्येय तथा ध्यानरहित हैं, ज्ञानीजन जिन्हें अस्ति-नास्ति (भावाभावस्वरूप) कहते हैं, जो दूरसे दूर और निकटसे निकट हैं, मनसे जिनका ग्रहण नहीं हो सकता, जो परम धाम, पुरुष नामसे प्रसिद्ध, जगन्मय, हृदय-कमलके आसनपर विराजमान, तेजोरूप तथा इन्द्रियरहित हैं, ऐसे परमात्माको नमस्कार करके मैं पापनाशिनी कथा आरम्भ करता हूँ। आपलोग सावधान होकर सुनें। यह कथा श्रद्धालु एवं शान्त द्विजको सुनाने योग्य है। जैसे सब देवताओंमें देवदेव महेश्वर श्रेष्ठ हैं, जिस प्रकार नदियोंमें गंगा, वर्णोंमें ब्राह्मण, अक्षरोंमें ॐकार, पूजनीयोंमें माता तथा गुरुजनोंमें पिता सबसे श्रेष्ठ हैं, उसी प्रकार सब शास्त्रोंमें स्कन्दपुराण उत्तम है। पूर्वकालमें कैलास पर्वतके शिखरपर ब्रह्मा आदि देवताओंके समीप पिनाकपाणि भगवान् शिवने पार्वतीजीके सम्मुख स्कन्दपुराण सुनाया था। फिर पार्वतीजीने अपने पुत्र स्कन्दको, स्कन्दने नन्दीगणको, नन्दीने कुमार (सनकादि)-को और कुमारने परम बुद्धिमान् व्यासको सुनाया था। व्यासजीके मुखसे कही हुई उसी कथाको मैं आपलोगोंके सामने कहता हूँ। आप सब महर्षि सद्भावसे युक्त हैं, अतः मुझे आपको स्कन्दपुराण-संहिता सुनानेके लिये उत्साह होता है।

प्राचीन कालमें ब्रह्माजीने उग्र तप किया, तब छहों अंग, पद और क्रमके सहित वेद प्रकट हुए। तदनन्तर सर्वशास्त्रमय सम्पूर्ण पुराणका प्रादुर्भाव हुआ। जो नित्य शब्दमय, पुण्यजनक तथा सौ करोड़ श्लोकोंसे विस्तारको प्राप्त हुआ है। ब्रह्माजीके मुखसे क्रमशः १ ब्रह्मपुराण, २ विष्णुपुराण, ३ शिवपुराण,

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

४ भागवतपुराण, ५ भविष्यपुराण, ६ नारदीयपुराण, ७ मार्कण्डेयपुराण, ८ आग्नेय पुराण, ९ ब्रह्मवैवर्तपुराण, १० लिंगपुराण, ११पद्मपुराण, १२ वाराहपुराण, १३ स्कन्दपुराण, १४ वामनपुराण, १५ कूर्मपुराण, १६ मत्स्यपुराण, १७ गरुड़पुराण तथा १८ वायुपुराणका प्राकट्य हुआ। इन अठारह पुराणोंका नामोच्चारण सब पातकोंका नाश करनेवाला है।

इसके सिवा मुनियोंने अठारह उपपुराण भी बताये हैं— १ सनत्कुमार, २ नरसिंह, ३ स्कन्द, ४ नन्दीश्वरकथित शिवधर्म, ५ दुर्वासा, ६ नारद, ७ कपिल, ८ मनु, ९ उशना, १० ब्रह्माण्ड, ११ वरुण, १२ कालिका, १३ माहेश्वर, १४ साम्ब, १५ सौर, १६ पाराशर, १७ मारीच तथा १८ भार्गव। विप्रवरो! ये उपपुराणोंके नाम बताये गये हैं।

ऋषि बोले—सूतजी! अब क्रमशः पुराणोंकी श्लोक संख्या बताइये।

सूतजीने कहा—पहले एक ही पुराण था, जो शतकोटि श्लोकोंद्वारा विस्तृत तथा धर्म, अर्थ और कामका साधन करनेवाला था। प्रलयकालमें जब संकर्षणरूपधारी परमात्मा श्रीहरिने सम्पूर्ण लोकोंको दग्ध कर दिया, तब अंगोंसहित चारों वेद, पुराण, न्याय, मीमांसा तथा धर्मशास्त्र सबको लेकर उन्होंने अपने अधीन कर लिया। तत्पश्चात् दूसरे कल्पके प्रारम्भमें एकार्णवके जलमें मत्स्यरूपसे विचरनेवाले भगवान्ने दिव्यदृष्टिसम्पन्न ब्रह्माजीको समस्त वेदादि शास्त्रोंका उपदेश किया। फिर ब्रह्माजीने त्रिकालदर्शी मुनियोंको उपदेश दिया। इस प्रकार सब शास्त्रों और पुराणोंकी प्रवृत्ति हुई। तदनन्तर कालक्रमसे व्यासरूपधारी श्रीहरि प्रत्येक द्वापरयुगमें अठारह पुराणोंको संक्षिप्त करते हैं। सौ कोटि श्लोकोंको संक्षिप्त करके चार लाख श्लोकोंके रूपमें स्थापित करते हैं। इन्हीं चार लाख श्लोकोंको अठारह भागोंमें विभक्त करके इस भूलोकमें अठारह पुराणोंका उपदेश करते हैं। अब भी देवलोकमें सौ कोटि श्लोकोंके विस्तारसे युक्त पुराणका संस्करण विद्यमान है। उसीका सारभूत अर्थ यहाँ चार लाख श्लोकोंमें नियोजित हुआ है। इस लोकमें अठारह पुराण हैं। अब उन पुराणोंके नामोल्लेखपूर्वक उनकी श्लोकसंख्या बतलाता हूँ। ब्रह्माजीने मरीचिसे जितने श्लोकोंका उपदेश किया है, उसका नाम 'ब्रह्मपुराण' है। उसकी श्लोकसंख्या दस हजार है। जो मनुष्य ब्रह्मपुराणको लिखकर वैशाखकी पूर्णिमाके दिन जलधेनुसहित उसका दान करता है, वह ब्रह्मलोकमें जाता है। जिस समय सुवर्णमय ब्रह्माण्ड भगवान्की नाभिसे कमलरूपमें प्रकट हुआ था, उस कथाका आश्रय लेकर जो पुराण प्रकाशमें आया है, उसे विद्वानोंने 'पद्मपुराण' नाम दिया है। उसकी श्लोकसंख्या यहाँ पचपन हजार बतायी जाती है। जो मनुष्य सुवर्णमय कमलयुक्त पद्मपुराण ज्येष्ठमासमें तिलसहित दान करता है, वह अश्वमेध यज्ञका फल पाता है। वाराहकल्पकी कथाको लेकर जो भगवान् विष्णुका चरित्र निर्मित हुआ है, उसे लोकमें 'विष्णुपुराण' कहते हैं। वह तेईस हजार श्लोकोंका बताया गया है। जो शुद्धचित्त मानव आषाढमासकी पूर्णिमाको घृत-धेनु के साथ विष्णुपुराणका दान करता है, वह भगवान् विष्णुके धाममें जाता है।

श्वेतकल्पके प्रसंगको लेकर जिसमें वायुदेवने धर्मका उपदेश किया है, वह 'वायुपुराण' कहलाता है। उसमें भगवान् शिवकी महिमाका भी वर्णन है। वायुपुराण चौबीस हजार श्लोकोंका बताया जाता है। श्रावणमासकी पूर्णिमाको गुड़मयी धेनुके साथ उक्त पुराणका जो कुटुम्बी ब्राह्मणके लिये दान करता है, वह शुद्धचित्त हो एक कल्पतक शिवलोकमें निवास करता है। जिसमें गायत्री-मन्त्रका आश्रय लेकर धर्मका विस्तृतरूपसे वर्णन किया गया है तथा जिसमें वृत्रासुरके वधका भी प्रसंग है,उसे 'भागवतपुराण' कहते हैं। जो उसे लिखकर भाद्रपदकी पूर्णिमाको स्वर्णमय सिंहासनके

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

साथ दान करता है, वह परमपदको प्राप्त होता है। भागवतपुराण अठारह हजार श्लोकोंका बताया गया है। जिसमें बृहत्कल्पकी कथाका आश्रय लेकर नारदजीने धर्मोंका वर्णन किया है, वह 'नारदीयपुराण' है। उसकी श्लोकसंख्या पचीस हजार है। जो आश्विनकी पूर्णिमाको धेनुसहित उस पुराणका दान करता है, वह पुनरावृत्तिरहित उत्तम सिद्धिको प्राप्त होता है। जिसमें पक्षियोंके प्रसंगको लेकर धर्माधर्मका विचार किया गया है, वह 'मार्कण्डेयपुराण' कहलाता है। उसकी श्लोकसंख्या नौ हजार है। जो उसे लिखकर सुवर्णमय हाथीके साथ कार्तिककी पूर्णिमाको दान देता है, वह पुण्डरीक यज्ञके फलका भागी होता है। जहाँ ईशानकल्पके वृत्तान्तका आश्रय लेकर अग्निदेवने वसिष्ठको उपदेश दिया है, उसे 'आग्नेयपुराण' कहते हैं। उसकी श्लोकसंख्या सोलह हजार है। जो उसे लिखकर मार्गशीर्षमासमें स्वर्णमय कमलके साथ तिलधेनुसहित दान करता है, उसे सब यज्ञोंका फल मिलता है। जिसमें लोकनाथ ब्रह्माजीने अघोरकल्पके वृत्तान्तके प्रसंगसे सूर्यकी महिमाका आश्रय ले मनुसे जीवसमुदायका लक्षण बताया है; प्रायः भविष्य चरित्रके वर्णनसे युक्त वह पुराण 'भविष्यपुराण' कहलाता है। उसकी श्लोकसंख्या साढ़े चौदह हजार है। जो पौषमासकी पूर्णिमाको द्वेषरहित हो गुड़ और घटसहित उक्त पुराणका दान करता है, उसे अग्निष्टोम यज्ञका फल मिलता है। जिसमें रथन्तरकल्पके वृत्तान्तको लेकर नारदजीसे श्रीकृष्ण-माहात्म्यसहित ब्रह्मवाराह-चरित्रका वर्णन किया जाता है, वह अठारह हजार श्लोकोंका पुराण 'ब्रह्मवैवर्त' कहा गया है। जो मनुष्य माघमासकी पूर्णिमाको परम पवित्र ब्रह्मवैवर्तका दान करता है, वह ब्रह्मलोकमें जाता है। जिसमें अग्निकल्पके वृत्तान्तको लेकर लिंगमें स्थित देवदेव महेश्वरने अग्निसे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—चारों पुरुषार्थोंका वर्णन किया है, वह 'लिंगपुराण' कहा गया है। उसकी श्लोकसंख्या ग्यारह हजार है। जो फाल्गुनकी पूर्णिमाको तिलधेनुके साथ ब्राह्मणको उस पुराणका दान करता है, वह भगवान् शिवके सारूप्यको प्राप्त होता है।

जिसमें महावाराहके माहात्म्यको लेकर भगवान् विष्णुने पृथ्वीसे कथा कही है, वह चौबीस हजार श्लोकोंका पुराण 'वाराहपुराण' कहलाता है। जो चैत्रकी पूर्णिमाको सोनेके गरुड और तिलकी धेनुसहित वह पुराण कुटुम्बी ब्राह्मणको देता है, वह भगवान् वाराहके प्रसादसे वैष्णवपदको प्राप्त होता है। जिसमें माहेश्वर धर्मोंका आश्रय लेकर तत्पुरुष कल्पके वृत्तान्त एवं चरित्रोंके साथ कथावस्तुका वर्णन स्कन्दजीके प्रति (अथवा स्कन्दजीके द्वारा) किया गया है, वह 'स्कन्दपुराण' कहा गया है। उसमें इक्यासी हजार एक सौ श्लोक हैं। जो उक्त पुराण लिखकर सूर्यके मकर राशिपर स्थित रहते समय उसे स्वर्णमय त्रिशूलके साथ दान करता है, वह भगवान् शिवके धाममें जाता है। जिसमें ब्रह्माजीने त्रिविक्रमकी महिमाको लेकर धर्म, अर्थ और कामका वर्णन किया है, वह 'वामनपुराण' कहा गया है। उसकी श्लोकसंख्या दस हजार है और उसमें कूर्मकल्पकी कथा है। जो शरत्कालीन विषुवयोगमें धेनु-सुवर्ण तथा रेशमीवस्त्रसहित उक्त पुराणका दान करता है, वह विष्णुधामको प्राप्त होता है। जिसमें कच्छपरूपधारी श्रीहरिने रसातलमें ऋषियों तथा इन्द्रके समीप इन्द्रद्युम्नके प्रसंगसे धर्म, अर्थ, काम और मोक्षका माहात्म्य कहा है, वह लक्ष्मीकल्पके वृत्तान्तसे युक्त सत्रह हजार श्लोकोंका पुराण 'कूर्मपुराण' कहलाता है। जो मनुष्य अयनारम्भके दिन स्वर्णमय कूर्मके साथ कूर्मपुराणका दान करता है, वह एक सहस्र गोदानका फल पाता है। जहाँ कल्पके आदिमें श्रुतियोंकी प्रवृत्तिके लिये मत्स्यरूपधारी भगवान्‌ने मनुसे नरसिंहकल्पसे लेकर सात कल्पतककी सब बातोंका वर्णन किया है, उसे चौदह हजार श्लोकोंका 'मत्स्यपुराण'

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

समझना चाहिये। जो विषुवयोगमें सुवर्णमय मत्स्य, धेनु तथा दो रेशमी पीताम्बरसे युक्त मत्स्यपुराण दान करता है, उसके द्वारा मानो सम्पूर्ण पृथ्वीका दान कर दिया गया। जब गारुडकल्प बीत रहा था,उस समयकी ब्रह्माण्डकी उत्पत्तिकथाका आश्रय लेकर भगवान् विष्णुने गरुडसे जो कुछ कहा है, वह 'गरुडपुराण' कहलाता है। उसकी श्लोक-संख्या भी अठारह हजार है। जो उत्तरायणमें स्वर्णमय हंससहित गरुडपुराण दान करता है, वह मुख्य सिद्धि तथा शिवलोकमें निवास पाता है। ब्रह्माण्डकी महिमाको लेकर ब्रह्माजीने जिस पुराणका वर्णन किया है, जिसमें भविष्य कल्पोंका भी विस्तृत वर्णन सुना जाता है, वह 'ब्रह्माण्डपुराण' है। उसकी श्लोक संख्या बारह हजार दो सौ है। जो मानव व्यतीपात योगमें उस पुराणका दान करता है, वह सहस्र राजसूय यज्ञोंका फल पाता है। ब्राह्मणो! अद्भुत कर्म करनेवाले व्यासजीने इहलोकमें सबका हित करनेके लिये द्वापरमें बृहत्पुराणका संक्षेप करके चार लाख श्लोकोंका पुराण प्रकट किया है।

पद्मपुराणमें जो भगवान् नरसिंहके अवतारका वर्णन हुआ है, उसी प्रसंगको लेकर जो उपपुराण कहा गया है, उसे 'नरसिंहपुराण' कहते हैं। मुनीश्वरो! जहाँ कार्तिकेयजी नन्दीके माहात्म्यका वर्णन करते हैं, वह उपपुराण लोकमें 'नन्दिपुराण' के नामसे विख्यात है। जिसमें साम्बके चरित्रको प्रधानता देकर कथा कही गयी है; वह लोकमें 'साम्बपुराण' कहलाता है। वही आदित्यपुराण भी कहा गया है। अठारह पुराणोंसे पृथक् जो पुराण देखा जाता है, वह उन महापुराणोंसे ही निकला है। मुनीश्वरोंने पुराणोंके पाँच अंग बताये हैं—सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर और वंशानुचरित। जहाँ ब्रह्मा, विष्णु, सूर्य तथा रुद्रका माहात्म्य और समस्त विश्वके सृष्टि-संहारका वर्णन देखा जाता है, वह इन पाँच लक्षणोंसे युक्त पुराण है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्षका भी वर्णन पुराणोंमें किया गया है।

पुराणोंके तीन विभाग हैं—सात्त्विक, राजस और तामस। सात्त्विक पुराणोंमें श्रीहरिके ही माहात्म्य और उनकी आराधनाके फलका अधिक वर्णन है। राजस पुराणोंमें ब्रह्माका ही अधिक माहात्म्य है। इसी प्रकार तामस पुराणोंमें अग्निदेव और रुद्रका विशेष माहात्म्य कहा गया है। जो सात्त्विक, राजस और तामस सभी भावोंसे संकीर्ण (व्याप्त) हैं, उन पुराणोंमें सरस्वती देवी एवं पितरोंकी महिमाका वर्णन है। पुराणोंमेंसे चारके द्वारा भगवान् विष्णुका, दो-दोके द्वारा ब्रह्मा और सूर्यदेवका तथा शेष सभी पुराणोंद्वारा विशेषतः भगवान् शिवका माहात्म्य कहा गया है। पुराणोंमें सब वेद प्रतिष्ठित हैं, इसमें सन्देह नहीं है। जो अंग और उपनिषदोंसहित चारों वेदोंको तो जानता है, किंतु पुराणको नहीं जानता, वह विशिष्ट विद्वान् नहीं है। सत्यवतीनन्दन व्यासने द्वापरके अन्तमें अठारह पुराणोंका निर्माण करके वेदार्थोंसे परिपूर्ण महाभारत उपाख्यानकी रचना की है। उसकी श्लोकसंख्या एक लाख है। वाल्मीकिने जो परम उत्तम श्रीरामोपाख्यानका वर्णन किया है, वह भी बहुत उत्तम है। ब्रह्माजीने जो शतकोटि श्लोकोंद्वारा विस्तृत रामचरितका वर्णन किया है, उसीका यह सार है। पहले ब्रह्माजीने नारदजीको बुलाकर वह चरित्र कहा था, फिर नारदजीने वाल्मीकिजीसे कहा। इस प्रकार चार लाख पुराणके, एक लाख महाभारतके और चौबीस हजार वाल्मीकीय रामायणके—ये सवा पाँच लाख श्लोक अतिशय पुण्यजनक कहे गये हैं।

परम बुद्धिमान् वेदव्यासजीने स्कन्दपुराणके सात खण्ड किये हैं और इक्यासी हजार उसके श्लोक हैं। स्कन्दपुराणका प्रथम खण्ड स्कन्दके माहात्म्यसे परिपूर्ण है। उसका नाम माहेश्वरखण्ड है। दूसरा वैष्णवखण्ड और तीसरा ब्राह्मखण्ड है। यह ब्रह्माजीके द्वारा कहा गया है और सृष्टिकथाको

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

संक्षेपसे सूचित करनेवाला है। चौथे खण्डका नाम काशीखण्ड है। पाँचवाँ खण्ड अवन्ती-माहात्म्यसहित रेवाखण्ड है। छठा खण्ड नागरखण्ड है, जो तीर्थोंकी महिमाको सूचित करनेवाला है। सातवाँ खण्ड यही है, जो प्राभासिक खण्ड माना गया है। स्कन्दपुराणके सभी खण्ड किंचित् न्यूनाधिकताके साथ बारह-बारह हजार हैं।

शिव-पार्वती-संवाद, तीर्थोंका संक्षिप्त वर्णन तथा प्रभासक्षेत्रकी विशेष महिमा

ऋषि बोले—सूतजी! अब हम तीर्थोंका विस्तृत वर्णन सुनना चाहते हैं।

सूतजीने कहा—प्राचीन कालमें पर्वतश्रेष्ठ कैलासपर देवी पार्वतीने यही बात पूछी थी, वह प्रसंग सुनाता हूँ। एक समयकी बात है, गिरिराजकुमारी उमाने अत्यन्त विस्मित होकर महादेवजीके मुखकी ओर देखा और हाथ जोड़कर मधुर वाणीमें कहा—'जगन्नाथ! महेश्वर! मैंने आपको प्रसन्न करनेकी इच्छासे अनेक जन्मोंतक आपके स्वरूपका अनुसन्धान किया; परंतु आपका कहीं अन्त नहीं मिला। देवदेव! आपका रूप अनन्त है, आपको नमस्कार है। आप वेदके रहस्य तथा वेदवाणीद्वारा प्रशंसित हैं, आपको नमस्कार है। आप सदा श्मशानभूमिमें रमते रहते हैं तथा आकाशमें भी विचरण करते हैं, आपको नमस्कार है।'

भगवान् शिव बोले—देवेश्वरि! मैं तुम्हारा स्रष्टा हूँ और तुम सम्पूर्ण जगत्की सृष्टि करती हो; तुम्हारे तथा मेरे द्वारा यह सम्पूर्ण जगत् ओतप्रोत है। मैं और तुम दोनों सम्पूर्ण ऐश्वर्यशक्तिसे युक्त होकर सब प्राणियोंके भीतर स्थित हैं। सब ओर प्रतिष्ठित हैं। मैं तुम्हारे साथ खेल करता हूँ। तुम्हीं धृति और धारणाशक्ति हो। तुम्हीं प्रकृति हो। सदा मेरे अंगोंमें निवास करनेवाली हो। अधिक क्या कहूँ, तुम मुझे प्राणोंसे भी बढ़कर प्रिय हो; तुम्हारे मनमें जो भी इच्छा हो, उसके अनुसार वर माँगो।

देवी बोलीं—जगन्नाथ! मैं धन्य हूँ, पुण्यात्मा हूँ और मैंने उत्तम तपका अनुष्ठान किया है, जिससे आपने मेरी ओर हर्षभरी दृष्टिसे देखा है। देव! इस समय मुझसे सब तीर्थोंका विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये।

भगवान् शिवने कहा—देवेश्वरि! तीर्थोंका दर्शन और उनमें स्नान परम कल्याणकारी है। श्रेष्ठ मुनिगण तीर्थोंके श्रवणकी भी प्रशंसा करते हैं। पृथ्वीपर नैमिष और आकाशमें पुष्करतीर्थ प्रसिद्ध हैं। इनके सिवा केदार, प्रयाग, विपाशा (व्यास), उर्मिला, कृष्णा, वेणा, महादेवी, चन्द्रभागा (चनाव), सरस्वती, गंगासागरसंगम, शुभदायिनी काशीपुरी, महाभागा शतभद्रा, महानदी सिन्धु, गोदावरी, कपिला, महानद शोण, पयोधि, कौशिकी, देवखात, गया, द्वारावती तथा महातीर्थ प्रभास—ये सब पातकोंका नाश करनेवाले हैं। ये सब तीर्थ जो इस पृथ्वीपर मौजूद हैं, उनका दर्शन करके मनुष्यका फिर इस संसारमें जन्म नहीं होता। वायुदेवने कहा है कि 'पृथ्वीपर साढ़े तीन करोड़ तीर्थ हैं, वे सभी महापापोंका नाश करनेवाले और परम पवित्र हैं।' महादेवि! स्वधर्मकी वृद्धिके लिये इन सभी तीर्थोंकी यात्रा करनी चाहिये। जहाँ शरीरसे जाना सम्भव न हो, वहाँ मनसे ही जाना चाहिये।

देवी बोलीं—भगवन्! सभी प्राणी सब प्रकारके उपद्रवोंसे ग्रस्त हैं। उनकी आयु थोड़ी है। वे अनेक प्रकारके व्यामोहसे बँधे हुए हैं। त्रेता और द्वापरमें भी ऐसी स्थिति रहती है, फिर भयंकर कलिकालकी

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

तो बात ही क्या है? अतः उन सबके हितके लिये आप ऐसे किसी तीर्थका वर्णन कीजिये, जिसके दर्शनसे सब तीर्थोंका फल प्राप्त हो।

भगवान् शिवने कहा—देवि! तुम मेरे बाहर विचरनेवाले प्राण हो, तुम्हीं सम्पूर्ण जगत्की उत्पत्तिस्थान हो। तुम्हारे प्रश्नके अनुसार मैं सब बातोंका यथावत् वर्णन करूँगा। यह रहस्यका भी रहस्य है। इसको प्रयत्नपूर्वक गुप्त रखना चाहिये। नास्तिकों तथा पापाचारियोंको इसका उपदेश नहीं देना चाहिये। जिसके भीतर भक्ति हो, ऐसे उत्तम शिष्य एवं श्रद्धालु पुत्रको ही इस रहस्यका उपदेश करना चाहिये। सुव्रते! चराचर प्राणियोंसहित सम्पूर्ण ब्रह्माण्डमें साढ़े तीन करोड़ तीर्थ हैं, यह बात पहले बतायी गयी है। उन सबमें छिपा हुआ श्रेष्ठ तीर्थ प्रभास है। इसे देखकर कलियुगके पापसे मोहित संस्काररहित मनुष्य बड़े उद्वेगको प्राप्त होते हैं। जहाँ-तहाँ कुपित हो उठते हैं। अपने-आपमें बड़प्पनका अभिमान रखनेवाले तथा मिथ्या ज्ञानसे मोहित जो अधम मानव भेद और कपट रखकर तीर्थयात्रा करते हैं, वे तीर्थमें मृत्युको प्राप्त होकर भी सिद्धि नहीं पाते हैं। इसलिये मैंने अनेक तीर्थों और शिवलिंगोंको गुप्त कर रखा है। वे कलियुगमें पापाचारियोंके लिये सिद्धिप्रद नहीं होते। जो क्रोध, लोभ और इन्द्रियोंको जीत चुके हैं, ऐसे दम्भ और मात्सर्यसे रहित, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र कोई भी क्यों न हों, यदि सद्भावसे भावित हो उत्तम व्रतका पालन करते हुए तीर्थका सेवन करते हैं, तो उनके हितके लिये मैं त्रिभुवनविख्यात सर्वोत्तम प्रभासक्षेत्रका ही नाम लेता हूँ। जो लोग यम-नियमसे युक्त और अहंकारसे रहित हैं, उनके लिये कहता हूँ—पृथ्वीपर सब तीर्थोंमें उत्तम एकमात्र प्रभासक्षेत्र मुझे विशेष प्रिय है। महादेवि! उस तीर्थमें मैं निरन्तर स्थित रहता हूँ। वहाँ मेरा दिव्य लिंग प्रकट हुआ है, जो दिव्य तेजसे युक्त और अग्निमण्डलसे मण्डित है। संसारकी सृष्टिमें हेतुभूता जो इच्छा, ज्ञान और क्रिया—ये तीन शक्तियाँ हैं, वे मेरे इसी दिव्य लिंगसे प्रकट हुई हैं। यह चराचर जगत् उसीमें लीन होता और उसीसे प्रकट होता है। उस उत्तम क्षेत्रको कोई नहीं जानता है। वरानने! प्रभास क्षेत्रमें जो मेरा स्वरूप है, यह क्षेत्रज्ञ कहा गया है। मैं वहाँ 'सोमनाथ' नामसे प्रसिद्ध हूँ। जो मनुष्य इस क्षेत्रमें मेरे अंशसे प्रकट हुए हैं, उन्हींको मेरे उस लिंगके तत्त्वका ज्ञान है। वह लिंग प्राचीन कालके भैरव-कल्पमें प्रकट हुआ था। दूसरे लोग देवता ही क्यों न हों, उनके लिये उस लिंगका रहस्य दुर्लभ है।

कलियुगमें जो मनुष्य केवल तर्कवादी, महापापी और पाखण्डी होंगे, वे कहेंगे—'यह सब मिथ्या है, मूर्खोंकी कल्पना है, कहाँ तीर्थ है? कहाँ प्रभास है और कहाँ देवता रहते हैं? सब झूठ है, मूर्खोंका मिथ्या प्रलाप है।' इस प्रकार वे नास्तिक, नरकगामी तथा पापदूषित चित्तवाले मूर्ख मानव बातें करेंगे और तीर्थ आदिकी हँसी उड़ायेंगे। अतः उन्हें कभी सिद्धि नहीं प्राप्त होगी। जो मनुष्य शिवजीकी निन्दामें तत्पर रहते हैं, वे तीर्थमें मरें तो भी वे पशु-पक्षियोंकी योनिमें जन्म लेते देखे जाते हैं। क्षेत्रोंको गुप्त रखनेका यही कारण है। देवेश्वरि! युग-युगमें जितने तीर्थ कहे गये हैं, उन सबमें प्रभासक्षेत्र ही मुझे विशेष प्रिय है।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

प्रभासतीर्थकी सीमा, क्षेत्रविभाग, महिमा तथा रक्षकगणोंका वर्णन

पार्वतीदेवी बोलीं—महेश्वर! यदि प्रभासक्षेत्र सब तीर्थोंमें श्रेष्ठ है तो अन्य बहुत तीर्थोंके विस्तारसे क्या लेना है। प्रभासक्षेत्रका ही माहात्म्य बताइये। प्रभासक्षेत्र कौन है? उसकी सीमा क्या है तथा उसका सारतत्त्व क्या है? यह सब आप बतानेकी कृपा करें।

भगवान् शिवने कहा—देवि! समस्त क्षेत्रोंमें प्रभास मुझे अधिक प्रिय है, प्रभासमें उत्तम सिद्धि और परम गति प्राप्त होती है। उसके पूर्वभागमें अन्धकारका नाश करनेवाले स्वामी सूर्यनारायणजी हैं। पश्चिममें माधवजीका स्थान है। दक्षिणमें समुद्र तथा उत्तरमें भवानी हैं। इस प्रकारकी सीमासे युक्त वह क्षेत्र बारह योजनका है। इसीका नाम प्रभासक्षेत्र है, जो सब पातकोंका नाश करनेवाला है। उसके मध्यमें पाँच योजन विस्तृत पीठिका है, जो न्यंकुमतीसे पश्चिम, वज्रिणीसे पूर्व, माहेश्वरीसे दक्षिण तथा समुद्रसे उत्तरमें स्थित है। उसकी लम्बाई और चौड़ाई मिलाकर पाँच योजनका विस्तार है। यह पीठ कहा गया है। अब इसके गर्भगृहका वर्णन सुनो—दक्षिणसे उत्तरकी ओर वह समुद्रसे कौरवेश्वरीदेवीतक फैला है और पूर्व-पश्चिममें गोमुखसे आश्वमेधिक तीर्थतक उसका विस्तार है। यह गर्भगृह मुझे कैलाससे भी अधिक प्रिय है। इस गर्भगृहकी सीमामें पृथ्वीपर जितने भी तीर्थ, बावलियाँ, कूप, तडाग, देवमन्दिर, सरोवर, सरिताएँ, गड्ढे और कुण्ड हैं, वे सभी परम पवित्र तथा सब पापोंका नाश करनेवाले हैं। इनमें जहाँ कहीं भी स्नान करके मनुष्य स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है।

इस क्षेत्रका प्रथम भाग माहेश्वर कहा गया है, जो परम पवित्र है। दूसरा वैष्णवभाग और तीसरा ब्रह्मभाग है, ब्रह्मभागमें एक करोड़ तीर्थ हैं। वैष्णवभागमें भी एक कोटि तीर्थ हैं। इन दोनोंके मध्यमें रुद्रभाग (या माहेश्वरभाग) है। इसमें डेढ़ करोड़ तीर्थ हैं। इस प्रकार यह क्षेत्र तीन देवताओंका बताया गया है। यह गोपनीयसे भी गोपनीय तथा मुझे विशेष प्रिय है। सब विभागोंको मिलाकर इस क्षेत्रमें साढ़े तीन करोड़ तीर्थ हैं। इसकी यात्रा भी तीन प्रकारकी है—पहली रौद्री यात्रा, दूसरी वैष्णवी यात्रा और तीसरी ब्राह्मी यात्रा कही गयी है, जो सब पातकोंका नाश करनेवाली है। ब्राह्म-विभागमें इच्छाशक्ति कही गयी, वैष्णवभागमें क्रियाशक्ति और तीसरे रुद्रभागमें ज्ञानशक्ति बतायी गयी है। पापी, शठ अथवा दूसरोंको हानि पहुँचानेवाला मनुष्य ही क्यों न हो, यदि वह प्रभासक्षेत्रके मध्यभागमें निवास करता है तो सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। हिमवान्, गन्धमादन, कैलास, निषध, परम प्रकाशमय मेरुगिरि, मनोहर त्रिकूट, महागिरि मानसोत्तर, रमणीय देवोद्यान, नन्दनवन तथा स्वर्गलोकके रमणीय तीर्थ और मन्दिर—इन सबको छोड़कर प्रभासमें मेरा मन लगता है। देवि! जो एकाग्रचित्त होकर प्रभासमें संयमपूर्वक निवास करता है, वह तीनों समय भोजन करके भी वायु पीकर रहनेवाले तपस्वीके समान पुण्यफलका भागी होता है। जो विघ्नोंसे आक्रान्त होकर भी प्रभासतीर्थका सेवन नहीं छोड़ता, वह जरा और मृत्युको त्याग देता तथा जन्मके अशाश्वत चक्रसे मुक्त हो जाता है। जो मनुष्य प्रभासक्षेत्रमें निश्चयपूर्वक निवास करते हैं, उनको एक ही जन्ममें मोक्ष प्राप्त हो जाता है। जो उत्तम व्रतका पालन करनेवाले ब्राह्मण प्रभासक्षेत्रमें स्थित हैं, जो मृत्युंजय-मन्त्रके साथ शतरुद्रियका जप करते हैं, उन्हें छः महीनेके भीतर ज्ञान प्राप्त हो जाता है। नामका पर्याय बतानेवाले विद्वान् पुरुष शिव कहते हैं वेदको। शतरुद्र मन्त्र शिवस्वरूप वेदका आत्मा है। जो प्रभासक्षेत्रमें आकर **'ईडग्रम्'** इत्यादि मन्त्रसे मेरा पूजन करते हैं, वे निःसन्देह मुक्त हो जाते हैं। जो मनुष्य वहाँ समन्त्र या अमन्त्रभावसे रहते हैं, अर्थात् मन्त्र जपें

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

या न जपें, केवल वहाँ सदा निवास करते हैं, वे भी जिस गतिको पाते हैं, वह बड़े-बड़े दानों और यज्ञोंसे भी नहीं मिलती। इस क्षेत्रमें स्वयम्भू लिंगके रूपमें साक्षात् हम महेश्वर ही निवास करते हैं। प्रभासमें भगवान् सोमनाथके दक्षिणमें करोड़ों रुद्र स्थित हैं। ब्रह्माण्डमें जितने तीर्थ हैं, वे सभी वैशाखकी चतुर्दशीको सोमनाथके समीप जाते हैं। प्रभासक्षेत्रमें निवास करनेवाले पुरुषोंके लिये जो सद्गति बतायी गयी है, वह न तो कुरुक्षेत्रमें है न हरिद्वारमें और न पुष्करमें ही है। देवदेव महादेवजीका वह गुप्त क्षेत्र सात योजन है। वहाँ ब्रह्मा और विष्णु आदि देवता तथा असंख्य योगी सनातन भगवान् मुझ सदाशिवकी उपासना करते हैं। वे सभी मेरे भक्त हैं और मेरी उपासनामें तत्पर रहते हैं। संयमशील संन्यासी आठ मासतक भ्रमण करते हैं और चार मासतक एक जगह प्रभासतीर्थमें नियम ग्रहण करके उन्हें निवास करना चाहिये। एक मनुष्य सोमेश्वर शिवका पूजन करता है और दूसरा तप करता है; उन दोनोंमें वही श्रेष्ठ है, जो सोमनाथकी पूजामें संलग्न है। जो योग, सांख्य, पांचरात्र तथा अन्य शास्त्रोंद्वारा जाननेयोग्य हैं, वे ही शिव प्रभासक्षेत्रमें स्थित हैं। सोमनाथ लिंगमें यह सम्पूर्ण चराचर जगत् स्थित है, इसलिये उस लिंगमें सदा महादेवका यत्नपूर्वक पूजन करना चाहिये। मनुष्य मानव-बुद्धिके अनुसार जो कुछ भी अशुभ कर्म कर बैठता है, वह श्रीसोमनाथके पूजनसे विलीन हो जाता है। वेदवादी पुरुष जिन्हें कालाग्निरुद्र कहते हैं, वे ही भैरव नामसे प्रभासतीर्थमें स्थित हैं। मैं ही भैरवरूप धारण करके सब पापोंका नाश करता हूँ। **'अग्निमीळे'** इस मन्त्रके द्वारा जिसके प्रभावका वर्णन हुआ है, वही मैं प्रभासक्षेत्रमें **'अग्निमीळ'** नाम धारण करता हूँ। इसके सिवा सब देवताओंने वहाँ मेरा नाम 'कालाग्निरुद्र' भी रखा है। मेरा एक नाम 'अग्नीशान' भी है। इस प्रकार तीन नाम बताये जाते हैं। प्रत्येक कल्पमें जो मेरे नाम होते हैं, उनकी गणना नहीं की जा सकती। क्योंकि कल्प और ब्रह्मा असंख्य हैं। इस प्रकार यह सोमेश्वर देवका रहस्य परम गोपनीय है। देवि! तुम्हारे प्रति स्नेह होनेसे और तुम्हारी भक्तिके कारण यह सब मैंने तुमसे कहा है।

पुरुष, स्त्री, बालक, वृद्ध, नपुंसक, चाण्डाल, पुक्कस, शूद्र, म्लेच्छ, मूर्ख तथा अन्य जो निन्दित मनुष्य इस पृथ्वीपर निवास करते हैं, वे सब यदि प्रभासतीर्थमें मृत्युको प्राप्त हों तो मुक्त हो जाते हैं। यहाँ मैंने दक्षिण भागमें विश्वनाथकी और उत्तरमें दण्डपाणिकी स्थापना की है। वे दोनों इस क्षेत्रकी रक्षा करते हैं। अन्यान्य गणाध्यक्ष भी मेरी आज्ञाके अधीन होकर इस क्षेत्रकी रक्षा करते रहते हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं—महारुद्र, चण्डीश, घण्टाकर्ण, गोमुख, विनायक, महानाद, काकवक्त्र, शुभेक्षण, एकाक्ष, दुन्दुभि, चण्ड, तालजंघ, भूमिदण्ड, दण्ड, शंकुकर्ण, वैधृति, तालदण्ड, महातेजा, चिपिटाक्ष, हयानन, हस्तिवक्त्र, श्ववक्त्र, विडालवदन, सिंहमुख, व्याघ्रमुख तथा वीरभद्र। ये सब गणेशजीको आगे रखकर देवदेव शिव तथा इस क्षेत्रकी रक्षा करते हैं। प्रभासक्षेत्रमें कुल एक अरब, ग्यारह करोड़, तेरह लाख गण निवास करते हैं। वे सभी प्रभासक्षेत्रकी रक्षामें तत्पर रहते हैं। अट्टहास नामक गणाध्यक्ष सौ करोड़ गणोंके साथ पूर्वद्वारमें रहकर इस क्षेत्रकी रक्षा करते हैं। घण्टाकर्ण नामक गण अन्य अठारह करोड़ गणोंके साथ दक्षिण द्वारपर रहते हैं। विस्वर नामक गण पश्चिम द्वारके रक्षक हैं तथा दण्डपाणि देवदेव सोमेश्वरके उत्तर द्वारपर रहते हैं। ईशानकोणमें भीषणस्य, अग्निकोणमें छागवक्त्र, नैर्ऋत्यकोणमें चण्ड तथा वायव्यकोणमें भैरवानन रक्षा करते हैं। नन्दी, महाकाल, दण्डपाणि और विनायक—ये मध्यभागमें सौ कोटि गणोंके साथ सोमनाथके अंगरक्षक हैं। इस प्रकार असंख्य गणाध्यक्ष उस क्षेत्रकी रक्षामें रहते हैं। कलियुगके पातकोंसे जिनका चित्त दूषित है, उनके लिये मेरा वह

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

स्थान अगम्य है। मेरे लोकमें जो पातालवासी सिद्ध हैं, वे कालभैरव सोमनाथकी प्रदक्षिणा करते हैं। पृथ्वीमें जो पुण्यतीर्थ, मन्दिर और देवता हैं, वे सभी सोमेश्वर देवकी परिक्रमा करते हैं।

शाकुनि, भारभूति, आषाढि, दण्ड, पुष्कर, नैमिष, अमरेश्वर, भैरव, मध्यम, काल, केदार, कणवीरक, अट्टहास, महेन्द्र, श्रीशैल तथा गया आदि सभी तीर्थ भगवान् सोमनाथकी प्रदक्षिणा तथा उनके लिंगकी स्तुति करते हैं। जहाँ प्राची सरस्वती है, वहाँ दस सहस्र अरब तथा तीन करोड़ ऋषि निवास करते हैं। जो मनुष्य यहाँ अपने पापनाशके लिये स्नान करेंगे, उन्हें दस गोदानका पुण्य प्राप्त होगा। वहाँपर शूलभेद आदि लिंग पूजन करने योग्य हैं। महापापाचारी मनुष्य भी प्राची सरस्वतीमें प्राणत्याग करके साक्षात् शिवको प्राप्त होता है। विप्रवरो! वहाँ दही और कम्बल दान करने चाहिये। यह दान सब पापोंका नाश करनेवाला तथा सारसे भी सार पुण्य है। ब्राह्मस्थानमें एक ब्राह्मणको भोजन करानेसे कोटिगुना फल मिलता है। यह जानकर मैं वहाँ प्रसन्नतापूर्वक स्थित रहता हूँ। कलियुगमें वहाँ सभी तीर्थ अदृश्य होकर रहते हैं। मनोहर प्रभासक्षेत्रमें जहाँ सोमनाथजी स्थित हैं, वहाँ मेरे दो गण उद्भ्रम और संभ्रम रहते हैं। वे वहाँ रहनेवाले दुष्ट लोगोंके मनमें भ्रम एवं विभ्रम उत्पन्न कर देते हैं। इस प्रकार वे दुष्ट चित्तवाले प्राणियोंसे उस क्षेत्रकी रक्षा करते हैं।

जो श्रेष्ठ मानव इस तीर्थमें भक्तिपूर्वक दण्डपाणिका दर्शन करते हैं, उन्हें किसी प्रकारका विघ्न नहीं प्राप्त होता। जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र अथवा वर्णसंकर इच्छा या अनिच्छासे उस शुभ क्षेत्रके भीतर मृत्युको प्राप्त होते हैं, वे सभी मेरा सारूप्य प्राप्त करके मेरे दिव्यधाममें चले जाते हैं। मेरु, सातों द्वीप तथा सातों समुद्रोंके गुणोंका वर्णन किया जा सकता है; परंतु आदिदेव सोमेश्वर शिवके गुणोंका वर्णन सौ कोटि वर्षोंमें भी नहीं किया जा सकता है।

सोमनाथके दिव्य स्वरूपका दिग्दर्शन

महादेवजी कहते हैं—देवि! जो निर्भय, निर्मल, नित्य, निरपेक्ष, निराश्रय, निरंजन, निष्प्रपंच, निःसंग तथा निरुपद्रव तत्त्व है, वही प्रभासतीर्थमें सोमेश्वर लिंगके रूपमें स्थित है—यह समझो। जो मोक्षदायक, अज्ञेय, अनुपम, अनामय, नित्य, कारणरूप, दिव्य, निर्लेप, विश्वतोमुख, शिव, सर्वात्मक, सूक्ष्म, अनादि, दैवतरूप, आत्मस्वरूपसे जाननेयोग्य, चित्तके चिन्तनसे परे, गमनागमनसे मुक्त, बाहर-भीतर व्याप्त, केवल (अद्वितीय), निष्कल, निर्मल एवं ज्ञानका प्रकाशक है, वही प्रभासतीर्थमें प्रणवमय सोमेश्वर लिंगके रूपमें स्थित है—यह जानो। स्पन्दरहित, महात्मा, भावातीत, लक्षणरहित, वाक्प्रपंच आदिसे शून्य, निष्प्रपंच, शिव, ज्ञान और ज्ञेयकी दृष्टिमें स्थित, हेत्वाभासशून्य, अनाहत, शब्दगत तथा शब्दादि गुणोंको प्रकट करनेवाले—ऐसे विशेषणोंसे युक्त मुझ शिवको ही प्रभासक्षेत्रमें सोमनाथ लिंगके रूपमें प्रकट मानो।

प्रभासक्षेत्रमें शिवलिंगरूपी सोमनाथको शब्द-ब्रह्ममय, शान्त, अशान्त, निरास्पद, सबसे दूर, सबके ध्यानमें स्थित, अनादि, अच्युत, दिव्य, प्रमाणातीत, प्रमाणगोचर, अधोगत, ऊर्ध्वगत, नित्य, देहस्थित जीवरूप, हृदय आदि बारह अंगोंमें स्थित, प्राण और अपानके उदय-अस्तमें व्याप्त, अग्राह्य, इन्द्रियरूप, निष्कलंक, सूक्ष्म, स्वरका आदि, व्यंजनसे अतीत, वर्ण आदिसे रहित, निःशब्द, निष्कल, सौम्य, देहातीत, परात्पर, समस्त भूतोंके लिये अगम्य, भावाभावसे रहित,

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

भावभक्तिसे जानने योग्य, परम सूक्ष्म, पचीस तत्त्वोंकी उत्पत्तिका कारण, अप्रमेय, अनन्त, अक्षय, इच्छानुसार रूपधारी, सब प्राणियोंकी उत्पत्तिका कारण, बीज और अंकुरको भी प्रकट करनेवाला, व्यापक, सर्वकाम, अक्षर (नाशरहित), परमपद, स्थूल और सूक्ष्म सभी विभागोंमें स्थित, व्यक्ताव्यक्तस्वरूप, सनातन, कल्प-कल्पान्तरहित, अनादि, अनन्त, महाभूत, महाकाम, शिव तथा निर्वाणभैरव समझो। इतना ही नहीं, उन्हें योगक्रियासे मुक्त, मृत्युंजय, अनादिमान्, समस्त उपसर्गोंसे रहित, सर्वव्यापी, शिव, परम अकल, द्वैतवर्जित, अन्य तेजसे रहित, प्रभासक्षेत्रनिवासी, सूर्यके समान अधिक कान्तिमान्, सम्पूर्ण तेजोंसे अधिक बढ़े हुए, शरणागतवत्सल, ईशान, देव, ॐकार, शिवरूपी, देवदेव, महादेव, पंचमुख, वृषध्वज, निर्मल, मनके अगोचर, भावग्राह्य, उपमारहित, सदा शान्त, विरूपाक्ष, शूलहस्त, जटाधर, हृदयकमलके मध्यकोषमें विराजमान, शून्यरूप तथा निरंजन जानो। जो परात्पर देव 'हंस' और 'नाद' कहे गये हैं, वे ही इस प्रभास-स्थानमें स्वयं विराजमान हैं।

देवि! अपने इस आदिस्वरूपको मैंने योगबलसे जाना है और स्वयं ही इसका निरूपण किया है। ये सोमनाथ पूर्वाह्णकालमें ऋग्वेदमें स्थित होते हैं, मध्याह्नमें यजुर्वेदके भीतर इनकी स्थिति होती है, अपराह्णकालमें सामवेदमें और सन्ध्याके समय अथर्ववेदमें ये विराजमान होते हैं। मैं अन्धकारसे परे, सूर्यके समान प्रकाशमान इस अन्तर्यामी महापुरुष सोमेश्वरको जानता हूँ। इनको ही जानकर मनुष्य कभी मृत्युको नहीं प्राप्त होता (मुक्त हो जाता है)। मनुष्योंकी मुक्तिके लिये दूसरा कोई मार्ग नहीं है। पार्वती! इस प्रकार महामहिमाशाली सोमनाथके माहात्म्यका दिग्दर्शन-मात्र कराया गया है।

सोमनाथके आठ नाम और पार्वतीके अठारह नामोंका वर्णन, सोमनाथ नामका हेतु तथा सोमेश्वरकी महिमा

सूतजी कहते हैं—महर्षियो! महादेवी पार्वतीने इस प्रकार प्रभासकी महिमा सुनकर पुनः भगवान् शंकरसे पूछा—'देवदेव! जगन्नाथ! भक्तोंपर अनुग्रह करनेवाले! सम्पूर्ण ज्ञानसे सम्पन्न! सुरेश्वर! आपको नमस्कार है। प्रभो! इस दिव्य लिंगका 'सोमेश्वर' नाम किस समय हुआ?'

महादेवजीने कहा—पूर्वकालमें मैं ही स्पर्शलिंग-स्वरूपसे विद्यमान था। उस समय कोई भी मनुष्य यहाँ मुझे नहीं जानता था। जब प्रलयके बाद महाकल्पका प्रारम्भ होता है और ब्रह्माका भी लय होकर नूतन ब्रह्माकी सृष्टि होती है। उस समय मेरे इस दिव्य लिंगका नाम भी बदलकर दूसरा हो जाता है। अबतक छः ब्रह्मा बदल गये हैं और अब ये सातवें ब्रह्मा चल रहे हैं। इस समय जो प्रजापति ब्रह्मा हैं, इनका नाम 'शतानन्द' है। देवेश्वरि! ये ब्रह्मा जब आठ वर्षके हुए, तबसे लेकर मेरे इस लिंगका नाम सोमनाथ प्रसिद्ध हुआ है। बीते हुए कल्पोंमें जो पहले ब्रह्मा थे, उनका नाम 'विरिंचि' था। उनके समयमें इन सोमनाथका नाम 'मृत्युंजय' था। तत्पश्चात् दूसरे कल्पमें जो दूसरे ब्रह्मा हुए, वे 'पद्मभू' नामसे विख्यात हुए। देवि! उनके समयमें मेरे इस लिंगका नाम 'कालाग्निरुद्र' हुआ। तीसरे ब्रह्माकी प्रसिद्धि 'स्वयम्भू' नामसे हुई है। उस समय सोमनाथका नाम 'अमृतेश' था। चौथे ब्रह्मा 'परमेष्ठी' नामसे विख्यात हुए; उस समय उनका नाम 'अनामय' था। पाँचवें ब्रह्मा 'सुरज्येष्ठ' नामसे विख्यात हुए। उस समय

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

सोमेश्वरदेवका नाम 'कृत्तिवास' था। छठे ब्रह्माका नाम 'हेमगर्भ' था। उनके समयमें सोमनाथका नाम 'भैरवनाथ' रखा गया था। ये जो सातवें ब्रह्मा हैं, 'शतानन्द' कहलाते हैं; इस समय मेरे इस लिंगका नाम 'सोमनाथ' प्रसिद्ध हुआ है। इसके बाद आगामी कल्पमें आठवें ब्रह्मा 'चतुर्मुख' नामसे विख्यात होंगे। उस समय सोमेश्वरदेवका नाम 'प्राणनाथ' होगा। इस तरह जो-जो ब्रह्मा बीत जाते हैं और प्रलयके पश्चात् पुनः जो नये ब्रह्मा उत्पन्न होते हैं, उनकी आठ वर्षकी आयु होनेतक 'सोमेश्वरदेवका' एक नाम रहता है। उसके बाद वह बदल जाता है। इस प्रकार संक्षेपमें मैंने तुम्हें 'सोमनाथ'के नाम बताये हैं।

पार्वतीदेवी बोलीं—देवदेवेश्वर! मनुष्योंके ऊपर दया करनेके लिये मैं भी आपके साथ बार-बार प्रकट हुई हूँ। उस समय मेरे कौन-कौन-से नाम हुए हैं, यह भी बताइये।

महादेवजीने कहा—आदिकल्पमें तुम्हारा नाम 'जगन्माता' था। दूसरेमें 'जगद्योनि', तीसरेमें 'शाम्भवी', चौथेमें 'विश्वरूपिणी', पाँचवेंमें 'नन्दिनी', छठेमें 'गणाम्बिका', तथा सातवेंमें तुम्हारा नाम 'विभूति' हुआ है। इसी प्रकार आठवेंमें 'सुभ्रू' नवेंमें 'आनन्दा', दसवेंमें 'वामलोचना', ग्यारहवेंमें 'वरारोहा', बारहवेंमें 'सुमंगला', तेरहवेंमें 'महामाया', चौदहवेंमें 'अनन्ता', पंद्रहवेंमें 'भूतमाता', सोलहवेंमें 'उत्तमा' तथा सत्रहवें कल्पमें तुम्हारा नाम 'पितृकल्पा' प्रसिद्ध हुआ है। तत्पश्चात् तुम दक्षकन्या सतीके नामसे प्रसिद्ध हुई। उस समय दक्षद्वारा अपमानित होनेसे तुमने अपना शरीर त्याग दिया। तदनन्तर वाराहकल्प आनेपर पुनः हिमवान्‌ने तुम्हारी आराधना करके तुम्हें पुत्रीरूपमें प्राप्त किया। उसके बाद अत्यन्त दुष्कर एवं अद्भुत तपस्या करके तुमने मुझे पतिरूपमें पाया और 'पार्वती' नामसे प्रसिद्ध हुईं। सुमुखि! जबतक इस कल्पका अन्त होगा, तबतक मैं तुम्हारे साथ कैलास पर्वतपर क्रीडा करूँगा। द्वापरमें महिषासुरका वध करनेके लिये तुम भगवान् विष्णुके साथ 'कृष्णपिंगला' नामसे प्रकट हुईं। तबसे 'कात्यायनी' और 'दुर्गा' आदि विविध नामोंसे तुम नवकोटि भेदके साथ वसुधातलपर प्रकट हुईं। सुन्दरि! पूर्वकालमें जो तुम्हारे कल्पानुसार नाम थे तथा जो भूत, भविष्य एवं वर्तमानमें तुम्हारे नाम थे, होंगे और हैं, वे सब नाम मैंने बता दिये। उन्हें इसी प्रकार जानना चाहिये।

शतानन्द नामसे विख्यात जो ये ब्रह्माजी हैं, उनके आठवें वर्षमें जो पहले मनु हुए थे और उस मन्वन्तरमें जो प्रथम चन्द्रमा थे, वे लक्ष्मी और कौस्तुभमणि आदिके साथ समुद्रसे प्रकट हुए। उन्होंने कालभैरव नामसे इस सोमेश्वर लिंगकी आराधना की और बड़ी भारी तपस्यामें संलग्न हो चौदह युग व्यतीत किये। सुन्दरि! उनकी वह अद्भुत तपस्या देखकर मैं बहुत प्रसन्न हुआ और बोला—'चन्द्रदेव! वर माँगो।' शुभे! तब उन्होंने अपने भक्तिभावसे मुझे संतुष्ट करके कहा—'प्रभो! ये ब्रह्माजी जबतक रहें, तबतक आपका नाम 'सोमनाथ' के रूपमें प्रसिद्ध हो।' मन्वन्तर समाप्त होनेपर जो कोई भी दूसरे-दूसरे चन्द्रमा हों, उन सबके ये सोमनाथजी कुलदेवता हों। तब मैं 'तथास्तु' कहकर पुनः उस शिवलिंगमें ही लीन हो गया। यह मैंने सोमनाथके गुणोंको संक्षेपसे सूचित किया है। समुद्रके रत्नोंकी भाँति सोमेश्वरके गुणोंका विस्तार अचिन्त्य है। उनकी महिमाका चिन्तन भक्तोंकी बुद्धिको बढ़ानेवाला है। मदमोहित मूढ़ मानव उनके स्वरूपको नहीं देख पाते।

पार्वतीदेवीने पूछा—भगवन्! जिस तेजोमय लिंगका ऐसा माहात्म्य है, उसकी इस प्रभास-क्षेत्रमें कहाँ स्थिति है?

महादेवजीने कहा—देवि! सुनो—वज्रिणी नदीके पूर्व न्यंकुमती नदीतक चार योजन चौड़ा और पाँच योजन लम्बा मेरा गर्भगृह है; इसको मैं कभी नहीं छोड़ता। पश्चिम दिशामें समुद्रके

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

समीप कृतस्मरके आगे सौ धनुषकी दूरीपर मेरा महाप्रभावशाली स्वयम्भू लिंग स्थित है; उसमें साक्षात् परमेश्वर भगवान् शंकररूप मैं निवास करता हूँ। इसीके बीचमें सोमेश्वरके समीप चारों ओर चौदह भागोंमें दो-दो सौ धनुषकी गोलाकार कर्णिका है, जो मुझे बहुत प्रिय है। उसमें जो प्राणी निवास करते हैं, वे सब पातकोंसे शुद्ध हो मेरे लोकमें जाते हैं। जो मनुष्य सैकड़ों विघ्नोंसे घिरकर या बँधकर भी प्रतिज्ञापूर्वक जीवनभर इस क्षेत्रमें निवास करता है, वह उस परमधाममें जाता है, जहाँ जाकर कोई भी शोक नहीं करता। जो प्रभासक्षेत्रमें मरता है, वह यमलोकमें नहीं जाता है। भयंकर कलिकालका आगमन जानकर मैंने यहाँ रक्षाके लिये विघ्नराज गणेशजीको स्थापित किया है। ब्रह्मघाती, पातकी, ब्राह्मणद्वेषी, शिवभक्तोंकी निन्दा करनेवाले, कृतघ्न, शठ, लोकशत्रु, गुरुद्रोही, तीर्थों और मन्दिरोंके लिये कण्टकरूप तथा पापपरायण निन्दित मनुष्य यदि इस क्षेत्रमें प्राणत्याग करते हैं, तो वे दस हजार दिव्य वर्षोंतक दासीपुत्र होते हैं। उसके बाद ब्रह्मराक्षस होते हैं। तदनन्तर हीन योनि (अथवा पक्षियोंकी योनि)-में जन्म लेते हैं। अतः पूर्ण प्रयत्न करके वहाँ कभी पाप न करे। अन्य-अन्य स्थानोंका पाप इस क्षेत्रमें नष्ट होता है, परंतु यहाँका किया हुआ पाप पिशाचयोनि एवं नरकमें डालनेवाला होता है। जो मनुष्य अपने चित्तको एकाग्र एवं संयत रखकर इन्द्रियोंको वशमें करके मेरा ध्यान करते हुए यहाँ शतरुद्रियका जप करते हैं, वे निःसन्देह सिद्ध होते हैं। यदि कोई मनुष्य उत्तम प्रभासक्षेत्रको जाय तो उसे ऐसा प्रयत्न करना चाहिये, जिससे वह फिर वहाँसे बाहर न जाय। भूलोकमें जो लिंग हैं, उन सबमें सोमनाथ मुझे विशेष प्रिय है। देवि! इस दिव्य लिंगमें जो गुण हैं, वे मुझे ही ज्ञात हैं; उन्हें मैं ही जानता हूँ। दूसरा कोई किसी प्रकार भी नहीं जानता।

जिस समय न ब्रह्मा थे न भूमि थी, न सूर्य थे और न यह सम्पूर्ण जगत् ही था, उस समय ब्रह्माजीके प्रलयकालमें यह दिव्य लिंग भाविनीवृत्तिका आश्रय ले (अर्थात् भविष्यमें मुझे यहाँ प्रकट होना है, ऐसी भावना रखकर) इस स्थानकी रक्षा करता रहा। प्रभासमें निवास करनेवाले वे मानव धन्य हैं, जो संसारका भय दूर करनेवाले भगवान् सोमनाथका दर्शन करते हैं। देवि! जो मनुष्य शुद्धचित्त होकर सोमनाथका स्मरण करेंगे, उनके सम्पूर्ण पापोंका नाश हो जायगा। यह पवित्र क्षेत्र मुझे सदैव अत्यन्त प्रिय है। पार्वती! देव, मनुष्य आदि सब लोग तभीतक संसारमें भ्रमण करते हैं जबतक कि मेरे स्वरूपभूत सोमनाथको नहीं प्राप्त होते। यह प्रभासक्षेत्र मोक्षधाम कहा गया है। इस प्रकार मैंने तुम्हारी जानकारीके लिये सोमनाथके महान् भावका वर्णन किया है। जो मनुष्य सदा इसका पाठ करेंगे, वे मुझ चन्द्रमौलि शिवके धाममें जायँगे। देवि! जो भक्त जन सोमेश्वरदेवकी शरणमें जाते हैं, वे इस भयंकर संसार-चक्रमें फिर नहीं भटकते।

सोमनाथकी महिमा

महादेवजी कहते हैं—देवि! जितने भी ग्रहदोष और भूतदोष हैं तथा जो भी डाकिनियाँ, प्रेत, वेताल, राक्षस, ग्रह, पूतनाएँ, पिशाच, यातुधान, मातृकाएँ, नवजात शिशुओंका अपहरण करनेवाली राक्षसियाँ, बालग्रह, वृद्धग्रह, ज्वररूपी ग्रह, अतिसार, भगन्दर, पथरी रोग, मूत्रकृच्छ्र, अन्य सहस्रों रोग, दुर्नामिका (बवासीर), कोढ़ तथा अन्यान्य रोग-व्याधियाँ हैं, वे सभी सोमनाथके समीप जाकर उनका दर्शन करनेसे उसी प्रकार नष्ट हो जाते हैं, जैसे जलती आगमें डाला हुआ ईंधन तत्काल जलकर भस्म हो जाता है। देवेश्वरि! सोमेश्वर नामसे प्रसिद्ध ये जो पश्चिम

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

भैरव हैं, 'कालाग्निरुद्रनाथ' जिनका नामान्तर सुना गया है, उनमें मैं स्वयं ही भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये निवास करता हूँ। उस सोमेश्वर लिंगमें स्थित हो मैं मनुष्योंके सब पापोंको भक्षण कर लेता हूँ। देहधारियोंके देहमें विचरण करनेवाला जो प्राण है, उसीके समान जो सबका प्राण है, यह ब्रह्माण्ड जिसके भीतर स्थित है तथा जो एक होकर भी अनेक रूपोंमें व्यक्त है, वही शिवस्वरूप मैं भक्तोंपर कृपा करनेके लिये सोमनाथ लिंगमें निवास करता हूँ। सम्पूर्ण वेद और महर्षिगण जिनकी प्रशंसा करते हैं तथा जिनके द्वारा परब्रह्मके स्वरूपकी प्राप्ति होती है, वे ही ये सोमनाथ महादेव प्रभासतीर्थमें विराजमान हैं। जैसे घरमें छिपे हुए रत्नको कोई नहीं पाता, उसी प्रकार मेरे प्रभासरूपी घरमें रत्नके समान स्थित इस सोमेश्वरलिंगके यथार्थ स्वरूपको कोई नहीं जानता। पूर्वकल्पमें यह शिवलिंग सप्त पातालका भेदन करनेवाला था, तथा कोटि-कोटि सूर्यों तथा प्रलयाग्निके समान तेजस्वी था। इसीलिये पूर्वकालमें सोमनाथको 'कालाग्निरुद्र' कहा जाता था। देवि! इस प्रकार संक्षेपसे मैंने तुम्हें सोमेश्वरदेवका माहात्म्य बताया है, जो सब पातकोंका नाश करनेवाला है।

प्रभासमें भगवान् शिवका स्वरूप, पार्वतीद्वारा उनकी स्तुति तथा प्रभासक्षेत्रमें भगवान् विष्णुकी स्थितिका कारण

महादेवजी कहते हैं—देवि! मैं प्रभासक्षेत्रमें रुद्राक्षकी माला धारण किये शान्त भावसे स्थित हूँ। मेरा आदि, मध्य और अन्त कहीं नहीं है। मैं कमलके आसनपर बैठा हुआ सबको वर देनेके लिये उद्यत हूँ। हिम, कुन्द और चन्द्रमाके सदृश मेरा गौर वर्ण है। मेरे वाम भागमें विष्णु तथा दक्षिण भागमें ब्रह्माजी विराज रहे हैं। मेरे उदरमें चारों वेद और हृदयमें सनातन ब्रह्म स्थित हैं। नेत्रोंमें अग्नि, चन्द्रमा और सूर्यका निवास है। महादेवि! ऐसे स्वरूपसे मैं प्रभासक्षेत्रमें रहता हूँ।

यह सुनकर पार्वती देवीने हर्षगद्गद वाणीमें देवदेवेश्वर शिवका भक्तिपूर्वक स्तवन किया—देव! महादेव! सर्वभावन! ईश्वर! आपको नमस्कार है। आप समस्त देवताओंके स्वामी हैं, आपको नमस्कार है। आप परमेश्वरको नमस्कार है। आप अनादि हैं, सम्पूर्ण सृष्टिके विधाता हैं; आपको नमस्कार है। आप सर्वत्र व्यापक ईश्वर हैं, आपको नमस्कार है। आप सबमें स्थित हैं, आपको नमस्कार है। आप धाम (तेज)-के भी धाम (प्रकाशक या आश्रय) हैं, आपको नमस्कार है। आप सृष्टिदाताको नमस्कार है। मोक्षदाता परमेश्वर! आपको नमस्कार है।

पार्वतीके इस प्रकार स्तवन करनेपर भगवान् शिवने सन्तुष्ट होकर कहा—महाप्राज्ञे! मैं तुमपर प्रसन्न हूँ, तुम अभीष्ट वरदान माँगो।

पार्वतीने कहा—देवेश्वर! प्रभासक्षेत्रका माहात्म्य फिरसे कहिये। भगवान् विष्णु द्वारकापुरी छोड़कर किस कारण प्रभासक्षेत्रमें निवास करते हैं? जिन्होंने पूर्वकालमें वाराहरूप धारण करके पर्वत, वन और काननोंसहित सम्पूर्ण पृथ्वीका उद्धार किया तथा नरसिंहरूप धारण करके हिरण्यकशिपुका संहार किया; वेद जिन्हें प्रत्येक युगमें सहस्रों चरण, सहस्रों नेत्र तथा सहस्रों मस्तकवाले कहकर उनकी स्तुति करते हैं; ब्रह्माजीका निवासभूत पद्म जिनकी नाभिसे प्रकट हुआ है, जो क्षीरसमुद्रके उत्तर भागमें शाश्वत योगका आश्रय लेकर शयन करते हैं, जो युगान्तका भी अन्त करनेवाले तथा लोकान्तकारी अन्तकके भी अन्तक हैं, लोक-मर्यादाओंकी रक्षा करनेवाले सेतु हैं, वेदवेत्ताओंके भी ज्ञाता हैं और उत्पन्न

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

होनेवाले सभी प्राणियोंके स्वामी हैं, जो मनुष्योंके आदिप्रवर्तक मनु तथा तपस्वीजनोंके तप हैं, तेजस्वी पुरुषोंके तेज और गतिमानोंकी गति हैं, वे श्रीहरि द्वारका छोड़कर प्रभासतीर्थमें कैसे चले आये?

महादेवजीने कहा—देवि! पृथ्वीपर अनेक क्षेत्र हैं, करोड़ों तीर्थ हैं और उन सबमें असंख्य प्रभाव हैं; परंतु प्रभासतीर्थका प्रभाव उन सबसे बढ़कर है। ब्रह्मतत्त्व, विष्णुतत्त्व तथा रुद्रतत्त्व— इन तीनोंकी प्रभासमें ही एकत्र उपलब्धि होती है। अन्यत्र ऐसा सुयोग दुर्लभ है। प्रभासमें लोकपितामह ब्रह्माजी चौबीस तत्त्वोंके साथ रहते हैं। दैत्योंके संहारक देवाग्रगण्य भगवान् विष्णु पचीस तत्त्वोंके अधिपति होकर इस तीर्थमें स्थित हैं और मैं छत्तीस तत्त्वोंसे संयुक्त होकर तुम्हारे साथ प्रभासमें निवास करता हूँ। शुभे! इस प्रकार तुम केवल प्रभासतीर्थको ही तत्त्वमय एवं सर्वतीर्थमय समझो। स्त्री, म्लेच्छ, शूद्र, पशु, पक्षी और मृग—जो भी प्रभासक्षेत्रमें मरते हैं, सभी शिवके लोकमें जाते हैं।

प्रभासके पार्थिवभागमें ब्रह्मा, जलभागमें विष्णु, तैजसभागमें रुद्र, वायुभागमें कुबेर तथा आकाशभागमें साक्षात् सदाशिवरूप हम स्थित हैं। अमरेश, प्रभास, नैमिष, पुष्कर, आषाढि, दण्ड, भारभूति और लांगलि—ये आठ आदिगुह्य हैं, जो जलके आवरणमें स्थित हैं। हरिश्चन्द्र, श्रीशैल, जालेश्वर, प्रीतिकेश्वर, महाकाल, मध्यम, केदार तथा भैरव— ये आठ अति गुह्य क्षेत्र हैं, जो तेजस्तत्त्वमें प्रतिष्ठित हैं। गया, काशी, कुरुक्षेत्र, कनखलतीर्थ, विमलतीर्थ, अट्टहास, महेन्द्र और भीम—ये आठ गुह्यगुह्यतर क्षेत्र हैं, जो वायु तत्त्वमें स्थित हैं। वस्त्रापथ, रुद्रकोटि, ज्येष्ठेश्वर, महालय, गोकर्ण, रुद्रकर्ण, कर्णाक्ष और स्थाप—ये आठ पवित्राष्टक कहलाते हैं; इनकी स्थिति आकाशतत्त्वमें है। छागल, वुडसुड, माकोट्ट, अचलेश्वर, कालंजरवन, शंकुकर्ण, स्थलेश्वर तथा शूलेश्वर—ये आठ पृथ्वीतत्त्वमें स्थित हैं। जो देवता जिस तत्त्वमें स्थित है, वह उसीके माहात्म्यको सूचित करता है। जलीय महातत्त्व भगवान् महाविष्णुको अत्यन्त प्रिय है। इसी कारण भगवान् नारायणको जलशायी कहते हैं। जलतत्त्वमें जितने तीर्थ मैंने बताये हैं, वे निश्चय ही भगवान् नारायणको प्रिय हैं। जलतत्त्वमें भी जो सारभूत तत्त्व है, उसमें ही प्रभासतीर्थकी स्थिति है; अतः श्रीहरि प्रत्येक अवतारके समय जलतत्त्वरूपी प्रभासमें ही लय (अन्तर्धान)-को प्राप्त होते हैं। वे भगवान् वासुदेव सूक्ष्म स्वरूप तथा परात्पर पदमें प्रतिष्ठित हैं। वे ही पर-व्योमस्वरूप, शिव आदि अन्तसे रहित एवं व्यापक हैं। सम्पूर्ण शास्त्रों, सिद्धान्तभूत आगमों तथा विशेषतः दर्शनोंमें भी उनसे भिन्न या बढ़कर कोई वस्तु नहीं बतायी गयी है। पार्वती! उन्हीं शास्त्रोंमें यह भी कहा गया है कि 'वे मुझसे भिन्न नहीं हैं।' प्रभासतीर्थमें चार शिवलिंगोंसे संयुक्त श्रीहरि प्रत्यक्ष रूपसे विराजमान हैं, किंतु यह बात किसीको ज्ञात नहीं है। प्रत्येक मासकी अष्टमी और चतुर्दशीको सूर्यग्रहण और चन्द्रग्रहणके समय तथा कार्तिककी पूर्णिमाको मैं स्वयं प्रभासतीर्थमें स्थित शिवलिंगोंका पूजन करता हूँ। प्रत्येक माघमासकी पूर्णिमाको सभी तीर्थ सरस्वती और समुद्रके संगममें स्नान करनेके लिये प्रभासतीर्थमें आते हैं। उस तीर्थके नामका स्मरण करने, कीर्तन करने अथवा मृत्युकालमें वहाँ उपस्थित होनेसे भी मनुष्य अपने पूर्वकृत सभी पापोंको त्याग देता है। आनर्तसार, सौम्य, भुवनभूषण, दिव्य, पांचनद, आदिगुह्य, महोदय, सिद्धरत्नाकर, समुद्रावरण धर्माधार, कलाधार, शिवगर्भगृह, सर्वदेवनिवास तथा सर्वपातकनाशन—ये इस क्षेत्रके नाम हैं। जो एक-एक कल्पमें पृथक्-पृथक् प्रसिद्ध हुए हैं। अब गर्भगृहके नाम सुनो। आदिकल्पमें उसका नाम प्रमोदन था, उसके बाद क्रमशः नन्दन, शिव, उग्र, भद्रक, समिन्धन, कामद, सिद्धिद, धर्मज्ञ, वैश्वरूप, मुक्तिद, पद्मनाभ, श्रीवत्स,

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

महाप्रभ, पापसंहार, सर्वकामदप्रद, मोक्षमार्ग, सुदर्शन, धर्मगर्भ तथा पापनाशन प्रभास। इसके बाद इसका नाम 'उत्पलावर्तिका' होगा। इस प्रकार ये क्षेत्रके मध्यवर्ती गर्भगृहके क्रमशः नाम बताये गये। इन सभी नामों तथा क्षेत्रकी महिमाको सुनकर मनुष्यको मनोवांछित सिद्धि प्राप्त होती है। जो तीनों समय इन नामोंका कीर्तन करता है, उसे महान् ऐश्वर्यकी प्राप्ति होती है तथा दिन, रात एवं सन्ध्याकालमें किये हुए पापोंका नाश हो जाता है। देवि! केदार क्षेत्रमें तथा महालयतीर्थमें जो लिंग है, वह और मध्यमेश्वर, पाशुपतेश्वर, शंकुकर्णेश्वर, भद्रेश्वर, सोमेश्वर, एकाम्रेश्वर, कालेश्वर, अजेश्वर, भैरवेश्वर, ईशानेश्वर, कायावरोहणेश्वर, चापटेश्वर, बदरिकाश्रम, रुद्रकोटि, महाकोटि, श्रीपर्वत, कपाली, देवदेवेश्वर, करवीरेश्वर, ॐकारेश्वर, वसिष्ठाश्रम तथा भूतलपर दूसरे-दूसरे जो मेरे पुण्यदायक स्थान हैं, वे सभी प्रयागतीर्थके साथ प्रभासक्षेत्रमें आकर निवास करते हैं। इस तीर्थके उत्तरमें सूर्यपुत्री और दक्षिणमें समुद्र है, यही इसके उत्तर-दक्षिणकी सीमाएँ हैं। इसी सीमाके भीतर पातालसे लेकर ब्रह्माण्डकटाहपर्यन्त जितने तीर्थ हैं, सभी निवास करते हैं।

प्रभासमें सूर्यदेव, सिद्धेश्वरलिंग तथा सिद्धलिंगकी महिमा

महादेवजी कहते हैं—देवि! दक्षिणमें समुद्रसे लेकर उत्तरमें (सूर्यपुत्री) कौरवेश्वरी नदीतकका जो क्षेत्र है, उसके भीतर मैं ही क्षेत्रज्ञरूपसे निवास करता हूँ। मेरा गृहरूप यह तीर्थ सूर्यनारायणकी किरणोंसे प्रभासित होता है, इसलिये इस कल्पमें प्रभास नामसे विख्यात हुआ है। जो श्रेष्ठ मनुष्य वहाँ अर्क (पूज्य)-रूप सूर्यका दर्शन करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो सूर्यलोकमें प्रतिष्ठित होता है। उसने मानो सब तीर्थोंमें स्नान कर लिया, समस्त बड़े-बड़े यज्ञोंद्वारा यजन किया, सभी दान दे दिये और सम्पूर्ण गुरुजनोंको सन्तुष्ट कर लिया। उसी सूर्यदेवके समीप अग्निकोणमें थोड़ी ही दूरीपर सिद्धेश्वर शिव विराजमान हैं। उनका त्रैलोक्यपूजित लिंग सब प्रकारकी सिद्धियोंका दाता है। प्राचीन सत्ययुगमें उसका नाम जैगीषव्येश्वर था। वही कलियुगमें सिद्धेश्वर नामसे प्रसिद्धिको प्राप्त हुआ। देवि! उसका दर्शन करके मनुष्य सब सिद्धियोंको प्राप्त कर लेता है। सूर्यके दक्षिण एवं नैर्ऋत्य कोणमें थोड़ी ही दूरपर एक पातालविवर है। वहींपर पूर्वकालमें मन्देह तथा शालकटंकट नामक राक्षस सूर्यनारायणके तेजसे दग्ध हो पातालमें भाग गये थे। वहाँपर योगिनियाँ तथा ब्राह्मी आदि मातृकाएँ रक्षा करती हैं।

पूर्वकल्पमें महोदय नामसे प्रसिद्ध एक शिवलिंग स्वतः प्रकट हुआ। महात्मा जैगीषव्य उसका पूजन करने लगे। वे अपने सब अंगोंमें भस्म लगाते और भस्मपर ही सोते थे। उन्होंने जप, तप, वृषके समान नाद तथा नृत्य और गीतोंके द्वारा महोदय शिवको सन्तुष्ट कर लिया। तब वे प्रसन्न होकर जैगीषव्यमुनिके समीप आये और बोले—'महामते! तुम दिव्य दृष्टिसे मेरी ओर देखो, तुम्हारे मनमें जो इच्छा हो, उसे कहो।' जैगीषव्यने त्रिनेत्रधारी शिवको अपने सामने उपस्थित देख उनके चरणोंमें मस्तक रखकर प्रणाम किया और इस प्रकार कहा—'देवदेवेश्वर! मुझे संसारबन्धनका नाश करनेवाला ज्ञान प्रदान कीजिये। आपमें, देवी पार्वतीमें, स्कन्दजीमें तथा गणेशजीमें सदा मेरी भक्ति बनी रहे तथा मुझमें निरहंकारता, क्षमा, शम और दम आदिकी वृद्धि हो।'

तब उन महादेवीजीने कहा—तुम अजर, अमर, सब शोकोंसे रहित, महान् योगी, अत्यन्त शक्तिशाली तथा योगके ऐश्वर्यसे युक्त होओगे।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

योगाचार्यके रूपमें तुम्हारी प्रसिद्धि होगी। जो तुम्हारे द्वारा पूजित इस शिवलिंगका पूजन करेगा, वह सब पापोंसे मुक्त हो दिव्य योगको प्राप्त होगा। जो द्विज योगके लिये जैगीषव्यगुहाका आश्रय लेगा, वह सात रातमें योगयुक्त हो संसारसे तर जायगा। एक मासके बाद उसे पूर्वजन्मका ज्ञान हो जायगा। एक रातमें उसे शुद्ध गति प्राप्त होगी। दूसरी रातमें वह पितरोंको तार देगा और तीन रातमें वह समस्त पितरोंको तारनेकी शक्ति प्राप्त कर लेगा।

इस प्रकार वरदान दे भगवान् शिव वहीं अन्तर्धान हो गये। देवि! इस युगमें द्वापर आनेपर जब कलियुगका प्रवेश हुआ, उस समय बालखिल्य नामवाले महर्षियोंने प्रभासक्षेत्रमें सूर्यस्थलके समीप आकर जैगीषव्यगुहामें निवास करनेवाले देवेश्वर शिवकी आराधना की। वे अठासी हजार ऊर्ध्वरेता ऋषि दस हजार वर्षोंतक तपस्या करके प्रमोदमयी सिद्धिको प्राप्त हुए। तबसे वह जैगीषव्येश्वर लिंग 'सिद्धेश्वर' नामसे विख्यात हुआ। जब सोमवारके साथ कृष्णपक्षकी शिवचतुर्दशी आती है, उस समय सिद्धेश्वरदेवका दर्शन अत्यन्त दुर्लभ है।

देवेश्वरि! सिद्धेश्वर लिंगके आगे तीन धनुषकी दूरीपर सूर्यसारथि अरुणके द्वारा स्थापित एक सिद्धलिंग है, जो कलियुगके समस्त पापोंका नाश करनेवाला है। चैत्रमासकी शुक्लपक्षीया त्रयोदशीको जो भक्तिभावसे विधिपूर्वक उस लिंगका पूजन करता है, उसे पुण्डरीक-यज्ञका फल प्राप्त होता है।

अर्कस्थलका माहात्म्य, आदित्यकी महिमा, दन्तधावनकी विधि तथा सूर्यदेवकी आराधनापूजाका विधान

महादेवजी कहते हैं—देवि! कृतस्मरसे लेकर अर्कस्थलतक दोनों देवताओंके मध्यभागमें सूर्यक्षेत्र कहा गया है, इसीमें आठ सिद्धियाँ निवास करती हैं। वह सूर्यदेवके तेजका मध्यभाग है, जो सब-का-सब सुवर्णमय है। यह क्षेत्र भगवान् सूर्यको सदैव प्रिय है। सूर्यग्रहणका पर्व आनेपर यह कुरुक्षेत्रसे भी अधिक पुण्यदायक होता है। ब्राह्मी (सरस्वती), हिरण्या तथा समुद्र—इन तीनोंका संगम कोटि तीर्थोंका फल देनेवाला है। वहीं देवमाता हैं, वहीं भंगीश्वर विराजमान हैं तथा नागस्थान भी वहीं हैं। इस प्रकार संक्षेपसे ही यहाँ अर्कस्थलका माहात्म्य बताया गया है। वहाँ एक विवर आज भी प्रत्यक्ष प्रकट देखा जाता है। उसका नाम श्रीमुखद्वार है। प्रिये! मातृकाएँ उस द्वारकी रक्षा करती हैं। जो एक वर्षतक नियमसे वहाँ मातृकागणों तथा सुनन्द आदि देवोंकी विधिपूर्वक पूजा करता है उसे सिद्धि प्राप्त होती है। इसलिये सर्वथा प्रयत्न करके वहाँ अर्कस्थलके समीप समस्त मातृकाओंका पूजन करे। ये मातृकाएँ प्रभास क्षेत्रमें सुनन्दागणके नामसे विख्यात हैं।

भगवान् आदित्य (सूर्य) सब देवताओंके आदि कहे गये हैं। वे आदिकर्ता हैं, इसलिये 'आदित्य' कहलाते हैं। सूर्यके बिना न तो दिन होता है, न रात्रि होती है, न तर्पण होता है, न धर्मानुष्ठान होता है और न सम्पूर्ण चराचर जगत्की सत्ता ही रह सकती है। आदित्य ही सदा सबकी सृष्टि, पालन और संहार करते हैं। इस कारण ये त्रयीमय हैं—तीनों लोक इनके स्वरूप हैं। अब मैं मन्त्रोंद्वारा महात्मा भास्करके पूजनका विधान बताता हूँ। पहले मुखकी शुद्धि करके विशेषरूपसे स्नान करे; फिर वस्त्रशुद्धिके पश्चात् सन्ध्योपासनाद्वारा मनकी शुद्धि करे। उसके बाद श्रीसूर्यदेवकी मूर्ति अथवा किरणका स्पर्श करे। मुखकी शुद्धि दातुनसे होती है; इसलिये पहले उसीकी विधि कहता हूँ। महुआकी

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

दातुनसे पुत्रलाभ होता है। मदारकी दातुनसे नेत्रोंको सुख मिलता है। बेरकी दातुनसे प्रवचनकी शक्ति प्राप्त होती है। बृहती (भटकटैया)-की दातुन करनेसे मनुष्य दुष्टोंपर विजय पाता है। बेल और खैरकी दातुनसे निश्चय ही ऐश्वर्यकी प्राप्ति होती है। कदम्बसे रोगोंका नाश होता है। अतिमुक्तक (कुन्दका एक भेद)-से धन लाभ होता है। आटरूषक (अड़ूसा)-की दातुनसे सर्वत्र गौरवकी प्राप्ति होती है। जाती (चमेली)-की दातुनसे जातिमें प्रधानता होती है। पीपल यश देता है। शिरीशकी दातुनका सेवन करनेसे सब प्रकारकी सम्पत्ति प्राप्त होती है। चीरी हुई दातुन नहीं करनी चाहिये। जिसमें कीड़े लगे हों, जो आधी सूखी या टेढ़ी हो तथा जिसमें छिलका न हो—ऐसी दातुन कभी न करे। एक बित्तेकी दातुन काममें लेनी चाहिये। इससे बड़ी या छोटी हो तो त्याग दे। पूर्व या उत्तरकी ओर मुँह करके मौनभावसे सुखपूर्वक बैठ जाय और मनोवांछित कामना मनमें रखकर निम्नांकित मन्त्रसे दातुनको अभिमन्त्रित करे—

वरदं त्वाभिजानामि कामं यच्छ वनस्पते।
सिद्धिं प्रयच्छ मे नित्यं दन्तकाष्ठ नमोऽस्तु ते॥

'वनस्पते! मैं तुम्हें जानता हूँ; तुम वर देनेवाले हो। मेरा मनोरथ पूर्ण करो। मुझे प्रतिदिन सिद्धि प्रदान करो। दन्तकाष्ठ! तुम्हें नमस्कार है।'

इस प्रकार तीन बार जप करके दातुन करे। इसके बाद उस दातुनको धोकर किसी पवित्र स्थानमें फेंक दे। पार्वती! बिना चीरी हुई दातुनसे जीभको न साफ करे। यदि उससे जीभ साफ करनी हो तो उसे चीरकर अलग-अलग कर लेना चाहिये। प्रतिदिन सबेरे बासी हो जानेके कारण मुख अशुद्ध रहता है। अतः उसकी शुद्धिके लिये सूखी या गीली दातुन अवश्य करे। जिस दिन दातुनका निषेध हो, उस दिन सोलह कुल्ला कर ले अथवा उन-उन वृक्षोंके पत्तों या सुगन्धित मंजन आदिके द्वारा मुखकी शुद्धि करनी चाहिये।

तदनन्तर शास्त्रोक्त विधिसे स्नान करके स्नानांगतर्पण एवं सन्ध्यावन्दन करे। उसके बाद विद्वान् पुरुष सूर्यदेवको जलकी अंजलि दे और पूर्वाभिमुख होकर त्र्यक्षर मन्त्रका जप करे। इस प्रकार पवित्र एवं एकाग्रचित्त होकर ताँबेके पात्रमें कनेरके फूल रखे, फिर उसमें तिल, चावल, कुशा, गन्धयुक्त जल, लाल चन्दन तथा धूप डाले। इस प्रकार अर्घ्य तैयार करके उस पात्रको अपने मस्तकपर रखे और धरतीपर दोनों घुटने टेककर मूलमन्त्रका उच्चारण करते हुए सूर्यदेवको अर्घ्य दे। जो इस प्रकार अर्घ्य निवेदन करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। दीक्षा और मन्त्रसे रहित पुरुष भी यदि भक्तिपूर्वक एक वर्षतक इस प्रकार अर्घ्य दे—तो उसके फलको अवश्य प्राप्त करता है। इस जन्ममें वह स्त्रीसहित सुखका भागी होता है और अन्तमें भगवान् सूर्यनारायणमें लीन हो जाता है।

'आप्यायस्व०' इस मन्त्रसे चन्द्रमाकी पूजा करे। **'अग्निर्मूर्धा०'** इस मन्त्रसे मंगलकी, **'उद्बुध्यस्व०'** इत्यादि मन्त्रसे बुधकी अर्चना करे। **'बृहस्पते०'** इस मन्त्रसे बृहस्पतिकी, **'शुक्रः०'** इत्यादि मन्त्रसे शुक्रकी, **'शन्नोदेवी०'** इस मन्त्रसे शनैश्चरकी, **'कयानश्चित्र०'** इत्यादि मन्त्रसे राहुकी तथा **'केतुं कृण्वन्नकेतवे०'** इत्यादि मन्त्रसे केतुकी पूजा करे। मण्डलसे बाहर पूर्व दिशामें इन्द्रका, दक्षिणमें यमका, पश्चिममें वरुणका, उत्तरमें कुबेरका, ईशान कोणमें शिवका, आग्नेय कोणमें अग्निका, नैर्ऋत्य कोणमें विरूपाक्षका तथा वायव्य कोणमें वायुदेवका पूजन करे। **'तमुष्टवाम०'** इत्यादि मन्त्रसे इन्द्रकी, **'उदीरतामवर०'** इत्यादि मन्त्रसे यमकी, **'तत्त्वायामि०'** इस मन्त्रसे वरुणकी, **'इन्द्रासोमावत०'** इत्यादि मन्त्रसे कुबेरकी, **'अग्निमीळे पुरोहितम्०'** इत्यादि मन्त्रसे अग्निकी, **'रक्षोहणं वाजिन०'** इत्यादि मन्त्रसे विरूपाक्षकी तथा **'वायवायाहि०'** इत्यादि मन्त्रसे वायुदेवकी पूजा करे। देवि! इन सब देवताओंका क्रमशः पूजन करना चाहिये।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

मण्डलके मध्यभागमें वेदीके ऊपर विराजमान सूर्यदेवका ध्यान करके नित्य उनकी पूजा करनी चाहिये। उनके शरीरका रंग लाल है। वे महातेजस्वी हैं। श्वेत कमलके ऊपर बैठे हैं। समस्त शुभ लक्षणोंसे सुशोभित तथा सब प्रकारके आभूषणोंसे विभूषित हैं। उनके दो भुजाएँ और एक मुख है। उन्होंने अपने हाथमें सुन्दर कमल धारण कर रखा है। उनका मण्डल गोल है। वे तेजके केन्द्र हैं तथा उन्होंने लाल रंगका वस्त्र धारण कर रखा है। यही भगवान् आदित्यका सर्वलोकपूजित रूप है।

भगवान् सूर्यकी प्रतिमाका इस प्रकार पूजन करे— **'ईशे त्वा०'** इत्यादि मन्त्रसे उनके मस्तककी पूजा करे। **'अग्निमीळे०'** इस मन्त्रके द्वारा उनके दाहिने हाथका पूजन करे। **'अग्न आयाहि०'** इस मन्त्रसे सूर्यदेवके दोनों चरणोंकी पूजा करे। **'आजिघ्र०'** इत्यादि मन्त्रसे पुष्पमाला पहनाये तथा **'योगे योग०'** इस मन्त्रसे पुष्पांजलि छोड़े। इस तरह सामान्य पूजा करके उनकी विशेष पूजा प्रारम्भ करे। **'समुद्रागच्छ०'** अथवा **'इमं मे गङ्गे'** इत्यादि मन्त्रसे भगवान् सूर्यको स्नान करावे। **'समुद्रज्या०'** इस मन्त्रसे विधिपूर्वक सूर्यदेवके अंगोंका प्रक्षालन करे। **'शिनीवाली०'** इस मन्त्रद्वारा शंखके जलसे स्नान करावे। **'यज्ञं यज्ञ०'** इस मन्त्रसे आँवला आदिके द्वारा उबटन लगावे। **'आप्यायस्व०'** इस मन्त्रको पढ़कर दूधसे स्नान करावे। **'दधिक्राव्णो०'** इस मन्त्रद्वारा दहीसे नहलावे। **'समुद्रज्या०'** अथवा **'इमं मे गङ्गे यमुने०'** इस मन्त्रसे ओषधियोंद्वारा स्नान करावे। फिर **'द्विपदाभिः०'** मन्त्रोंद्वारा सूर्यदेवका उद्वर्तन करके **'मानस्तोके०'** इत्यादि मन्त्रोंसे एक बार स्नान करावे। उसके बाद **'विष्णुरराटमसि०'** इस मन्त्रसे गन्धयुक्त जलद्वारा स्नान करावे। तत्पश्चात् सौवर्णमन्त्रसे पाद्य निवेदन करे। **'इदं विष्णुविचक्रमे०'** इस मन्त्रसे अर्घ्य दे। **'वेदोसि०'** इस मन्त्रसे यज्ञोपवीत पहनावे। **'बृहस्पते०'** इस मन्त्रसे वस्त्र दे। **'येन श्रियं प्रकुर्वाण०'** इस मन्त्रसे फूलकी माला धारण करावे। **'धूरसि०'** इस मन्त्रसे गुग्गुलसहित धूप दे। **'समिद्धोऽञ्जन०'** इत्यादि मन्त्रसे अंजन दे। **'युञ्जान०'** इत्यादि मन्त्रसे सूर्यदेवको गोरोचनका तिलक लगावे। तत्पश्चात् **'दीर्घायुत्वाय०'** इत्यादि मन्त्रसे आरती करे। **'सहस्रशीर्षा पुरुषः'** इत्यादि मन्त्रसे सूर्यदेवके मस्तकपर पूजा करे। **'नमः शम्भवाय०'** इत्यादि मन्त्रसे भगवान् सूर्यके नेत्रोंका स्पर्श करे। **'विश्वतश्चक्षुः'** इस मन्त्रको पढ़कर सूर्यदेवके समस्त विग्रहका स्पर्श करे। तदनन्तर **'श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च०'** इत्यादि मन्त्रसे सूर्य-प्रतिमाके सब अंगोंमें पूजन करे।

इस प्रकार तीनों समय आदरपूर्वक भगवान् सूर्यका पूजन करे। उनकी पूजा समस्त कामनाओं तथा फलोंको देनेवाली है। सूर्यकी पूजाके लिये सब प्रकारके विलेपनोंमें रोली और लाल चन्दन उत्तम है। फूलोंमें कनेरके फूल श्रेष्ठ माने गये हैं। कुंकुम, चमेली, कमल तथा अगुरुसे बढ़कर सूर्यदेवको तृप्त करनेवाली दूसरी कोई वस्तु नहीं है। जो इन सभी वस्तुओंसे भगवान् सूर्यकी पूजा करता है, उसका संसारमें कौन-सा मनोरथ सिद्ध नहीं होता? इस विधिसे सूर्यदेवका पूजन करके परिक्रमा करे और अर्कस्थलको मस्तकसे प्रणाम करके सूर्यके सम्मुख सुखपूर्वक स्थित होकर उनका दर्शन करे। ऐसा करनेवाला पुरुष कोटि यात्राका फल पाता है। ब्रह्मा, विष्णु, महादेव, अग्नि और कुबेर आदि सब देवता भगवान् सूर्यके आश्रित रहकर द्युलोकमें आनन्दित होते हैं। इसलिये मैं सूर्यके समान दूसरे किसी देवताको नहीं देखता। महादेवि! सूर्यकी स्तुति करके मन्त्रोच्चारणपूर्वक उनकी सात बार परिक्रमा करनी चाहिये। **'तमुष्टवाम'** यह ऋग्वेदीय मन्त्र पहली परिक्रमाके लिये बताया गया है। **'एतोन्विन्द्रस्तवाम'** इस मन्त्रसे दूसरी परिक्रमा कही गयी है। **'इन्द्र शुद्धो न आगहि'** इस मन्त्रसे तीसरी परिक्रमा करनी चाहिये। **'इन्द्रं शुद्धोमि नो रयिं।'** इत्यादि मन्त्रसे चौथी परिक्रमा बतायी गयी है। **'अस्य**

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

वामस्य०' इत्यादि मन्त्रसे पाँचवीं परिक्रमा करनी चाहिये। '**त्रिभिष्टवं देव०**' इस मन्त्रसे छठी परिक्रमाका विधान है। तथा सामगान करनेवाले मनीषी पुरुषोंने जो दस प्रकारके सामगान किये हैं, उनके द्वारा सातवीं परिक्रमा करनी चाहिये। हिंकार, प्रणव, उद्‌गीथ, प्रस्ताव, प्रहर, आरण्यक और निधन—ये सात प्रकारके साम कहे गये हैं। हिंकार और प्रणव न रहनेपर पाँच प्रकारका साम बताया गया है। पूर्वोक्त सात प्रकारके सामके अतिरिक्त साध्य नामक आठवाँ साम है। नवाँ वामदेव साम है और दसवाँ ज्येष्ठ साम कहा गया है, जो ब्रह्माजीको परम प्रिय एवं उत्तम प्रतीत होता है। इन सब सामोंका विधिपूर्वक जप करना चाहिये। जो निष्कामभावसे भगवान् सूर्यकी पूजा करता है, वह इस क्षेत्रके माहात्म्यसे तथा अर्क—सूर्यके प्रभावसे निश्चय ही मोक्षको प्राप्त होता है। दूसरे स्थानोंमें एक करोड़ ब्राह्मणोंको भोजन करानेसे जो फल होता है, वही अर्कस्थलमें एक ब्राह्मणको भोजन करानेसे प्राप्त होता है। सूर्यग्रहणमें जो स्नान, दान, जप और होम किया जाता है, वह सब यहाँ अर्कस्थलके प्रभावसे कोटिगुना हो जाता है। जो मनुष्य माघमासके कृष्ण पक्षमें रविवारयुक्त सप्तमीको अर्कस्थलके समीप जागरण करता है, वह परम गतिको प्राप्त होता है। उस क्षेत्रमें निवास करनेवाले सभी मनुष्योंके लिये अर्कस्थल पूजनीय हैं। कल्याणकामी पुरुषको चाहिये कि वह भगवान् सूर्यपर जलमें पैदा हुआ या मुरझाया हुआ अथवा किसी दोषसे दूषित या बासी फूल न चढ़ावे।

पार्वतीजीने पूछा—भगवन्! सूर्यदेवको राहु कैसे ग्रस लेता है?

महादेवजीने कहा—देवि! मैं ग्रहणका कारण बतलाता हूँ, सुनो। विशेष समय आनेपर सूर्यदेव अपनी किरणोंसे अमृतकी धारा बहाते हैं। उस समय अमृतकी इच्छा रखनेवाला राहु अपने विमानपर बैठकर सूर्यबिम्बके नीचे आ जाता है। उसके बिम्बसे सूर्यका बिम्ब छिप जाता है। इसीको सूर्यग्रहण कहते हैं। वास्तवमें कोई भी सूर्यदेवको ग्रस नहीं सकता। वे निश्चय ही ग्रसनेवालेको जलाकर भस्म कर देंगे।

पूर्वकालमें उस क्षेत्रके भीतर लोकपाल, महर्षि, सिद्ध, विद्याधर, यक्ष, गन्धर्व तथा मुनिलोग सिद्धिको प्राप्त हुए हैं। कुबेर, भीष्म, ययाति, गालव तथा साम्बने भी यहाँ उत्तम सिद्धि प्राप्त की है। यह माहात्म्यकथा नास्तिक, श्रद्धाहीन, क्रूर, दोषदर्शी एवं शठ मनुष्यसे न कहे। अपने पुत्र, शिष्य, धर्मिष्ठ, ज्ञानी तथा भगवान् सूर्यके भक्तको ही यह प्रसंग सुनाना चाहिये। जो तेजका सनातन आश्रय, जलकी गति, दिशाओंका अविनाशी दीपक, सिद्धिका खुला हुआ द्वार, जगत्का सामान्य नेत्र, आकाशरूपी सरोवरका सुवर्णमय कमल, दिगंगनाओंका देदीप्यमान कुण्डल तथा काल-गणनाका एकमात्र मापक यन्त्र है, वह भगवान् सूर्यका बिम्ब आप सब लोगोंकी रक्षा करे।

चन्द्रमाकी उत्पत्ति तथा उनके द्वारा ओषधि आदिका पोषण

सूतजी कहते हैं—विप्रवरो! भगवान् शिवके इस प्रकार कहनेपर यशस्विनी देवी पार्वतीने इस प्रकार पूछा—'देव! आपके मस्तकपर जो ये चन्द्रमा विराजमान हैं, किसके पुत्र हैं? कब और किस प्रकार इनकी उत्पत्ति हुई है?'

महादेवजीने कहा—देवि! देवताओं और दानवोंने मिलकर जब क्षीरसागरका मन्थन किया, तब उसमेंसे चौदह रत्न निकले। उन्हीं रत्नोंमें ये महातेजस्वी चन्द्रमा भी थे। इनकी उत्पत्ति अमृतसे हुई है। इसीलिये विषपान करनेके पश्चात् इन्हें मैं आजतक सिरपर धारण करता हूँ। पूर्वकालमें मैंने चन्द्रमाको अपना शिरोभूषण बनाया है, इसीलिये लोग मुझे चन्द्रभूषण कहते हैं।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

पार्वती! मैं ही सृष्टि, पालन और संहारका कर्ता हूँ। सृष्टिकालमें मैं रजोगुणसे संयुक्त होता हूँ। पालनके समय सत्त्वगुणमें स्थित रहता हूँ और संहारकालमें तमोगुणसे युक्त हो जाता हूँ। मैं ही तीन रूपोंमें स्थित हूँ। अतः ब्रह्मा भी मुझ महेश्वरके ही अंश हैं। ब्रह्माका स्वामी मैं ही हूँ। विष्णु और ब्रह्मा दोनों ही मुझ सदाशिवसे अभिन्न हैं; क्योंकि मैं सर्वात्मक हूँ। शिव ही सम्पूर्ण जगत्का पालन करनेवाले विष्णु हैं। मेरे द्वारा निर्मित ब्रह्माण्डमें ये लोक हैं। इसीके भीतर सम्पूर्ण चराचर जगत् है। इस ब्रह्माण्डमें अबतक कितने चन्द्रग्रहण और सूर्यग्रहण बीत गये और कितने अभी होंगे, इसकी गणना असम्भव है।

चन्द्रमाका जो तेज पृथ्वीपर प्राप्त हुआ, उससे सम्पूर्ण दिशाओंको प्रकाशित करनेवाली ओषधियाँ उत्पन्न हुईं। उन्हीं ओषधियोंके द्वारा सम्पूर्ण लोक तथा चार प्रकारके प्रजा वर्ग जीवन धारण करते हैं। फल लगनेपर जिनका अन्त हो जाता है, ऐसी ओषधियाँ शण कहलाती हैं। वे सोलह प्रकारकी हैं—धान, जौ, गेहूँ, अणु, तिल, मोठ, कँगनी, कोदो, चीना, उड़द, मूँग, मसूर, निष्पाव, कुलथी, अरहर और चना—ये सोलह प्रकारके शण हैं। ये ग्रामीण ओषधियोंकी जातियाँ बतायी गयी हैं। ग्राम और वनमें उत्पन्न होनेवाली चौदह प्रकारकी ओषधियाँ यज्ञके काममें आती हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं—धान, जौ, गेहूँ, अणु, तिल, कँगनी, कुलथी, साँवा, तिल्ली, बनतिल, गवेधु, उड़द, मकई और वेणुयव (बाँसधान)। तृण, गुल्म, लता, वीरुथ तथा गुच्छ आदि करोड़ों प्रकारके औषध और तृणोंके स्वामी चन्द्रमा हैं। वे ही सम्पूर्ण जगत्को धारण करते हैं। भगवान् सोम जगत्का हित करनेकी इच्छासे सबको धारण करते हैं, इसलिये ब्रह्माजीने उन्हें बीज, ओषधि, ब्राह्मण तथा मन्त्रोंका राज्य प्रदान किया है। राजाके पदपर अभिषिक्त हो महातेजस्वी सोमने अपने प्रकाशसे तीनों लोकोंको पुष्ट किया है।

सृष्टि-कथा—दक्षकन्याओं तथा धर्म एवं कश्यपजीकी सन्ततिका संक्षिप्त वर्णन

महादेवजी कहते हैं—देवि! प्राचीन कालमें ब्रह्माजीसे दक्ष नामक पुत्र हुआ। ब्रह्माजीने दक्षको सृष्टि करनेकी आज्ञा दी। तब दक्षने अपनी पत्नी वीरिणीके गर्भसे साठ कन्याएँ उत्पन्न कीं। उनमेंसे दसको तो उन्होंने धर्मके साथ ब्याह दिया। तेरह कश्यपजीको दीं। सत्ताईस कन्याओंका विवाह चन्द्रमाके साथ किया। चार कन्याएँ अरिष्टनेमिको, दो भृगुपुत्रको, दो बुद्धिमान् कृशाश्वको तथा दो अंगिरा मुनिको ब्याह दी। मरुत्वती, वसु, जामी, लंबा, भानु, अरुन्धती, संकल्पा, मुहूर्ता, साध्या, विश्वा—ये धर्मराजकी स्त्रियोंके नाम हैं। अदिति, दिति, दनु, अरिष्टा, सुरसा, सुरभि, विनता, ताम्रा, क्रोधवशा, इरा, कद्रू, त्विषा और वसु—ये कश्यपजीकी स्त्रियाँ हैं। अब इनके पुत्रोंके नाम सुनो—विश्वाके विश्वेदेव हुए। साध्याने साध्य देवताओंको जन्म दिया। भानुके भानु और मुहूर्ताके मुहूर्त नामक पुत्र हुए। लम्बाके पुत्रोंकी घोष नामसे प्रसिद्धि हुई। जामीसे नागवीथी नामकी कन्या हुई। संकल्पासे संकल्प नामक पुत्रका जन्म हुआ। मरुत्वतीसे मरुत्वान् नामवाले देवताओंकी उत्पत्ति हुई। अरुन्धतीके गर्भसे पृथ्वीपर होनेवाले समस्त प्राणी उत्पन्न हुए। वसुसे आठों वसुओंका जन्म हुआ। आप, ध्रुव, सोम, वर, अनल, अनिल, प्रत्यूष और प्रभास—ये आठ वसु कहे गये हैं। आपके पुत्र—देव, भ्रम, शान्त और ध्वनि हुए।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

लोकोंको अपना ग्रास बनानेवाले भगवान् काल ध्रुवके पुत्र हैं। सोमके पुत्रोंके नाम वर्चा और बुध हैं। घरके हुत, हव्यवह और द्रविण—ये तीन पुत्र हुए। अनलके कई पुत्र हुए, जो अग्निके समान गुणवाले ही हैं। अनिलके दो पुत्र हुए—मनोजव और अविज्ञातगति। प्रत्यूषके पुत्र योगी देवल हुए। बृहस्पतिजीकी बहिन ब्रह्मवादिनी आठवें वसु प्रभासकी पत्नी हुई। उसीके पुत्र शिल्पकर्म करनेवाले प्रजापति विश्वकर्मा हुए। मन, अनुमन्ता, प्राण, नर, पान, नेमि, यम, नृप, हंस, नारायण, विभु तथा प्रभु—ये बारह साध्य (या तुषित) देवता कहे गये हैं।

अब कश्यपकी सन्तानोंका वर्णन करता हूँ। अंश, धाता, भव, त्वष्टा, मित्र, वरुण, अर्यमा, विवस्वान्, सविता, पूषा, अंशुमान् तथा विष्णु—ये सहस्र किरणोंवाले बारह आदित्य (अदितिके पुत्र) हैं। अजैकपाद, अहिर्बुध्न्य, विरूपाक्ष, रेवत, हर, बहुरूप, त्र्यम्बक, सवित्र, जयन्त, पिनाकी तथा अपराजित—ये ग्यारह रुद्रगण हैं; जो असंख्य रुद्रगणोंके स्वामी हैं (इन्हें सुरभिकी सन्तान कहा जाता है)। बलपर गर्व रखनेवाली दितिने दो पुत्र प्राप्त किये—ज्येष्ठका नाम हिरण्यकशिपु और छोटेका नाम हिरण्याक्ष था। हिरण्यकशिपुके चार महाबली पुत्र हुए, जिनमें प्रह्लाद ज्येष्ठ थे, उनसे छोटेका नाम अनुह्लाद था। अनुह्लादसे छोटे क्रमशः ह्लाद और ह्लद थे। ह्लदके दो पुत्र हुए—सुन्द और उपसुन्द। ह्लादके एक ही पुत्र हुआ, जो मूक नामसे विख्यात था। सुन्दका पुत्र मारीच था, जो ताड़काके गर्भसे उत्पन्न हुआ था। उसे महाबली श्रीरामचन्द्रजीने दण्डकारण्यमें मार डाला। मूक भी सव्यसाची अर्जुनके द्वारा किरात प्रदेशमें मारा गया। संह्लादके कुलमें निवातकवच नामक दैत्य उत्पन्न हुए, जिनकी संख्या तीन करोड़ बतायी गयी है। वे सभी अर्जुनके द्वारा मारे गये। गवेष्ठी, कालनेमि, जम्भ, बल्वल, शम्भु तथा विरोचन—ये प्रह्लादके पुत्र माने गये हैं। शम्भुके दो पुत्र हुए—धेनुक और सोमलोमा। विरोचनके एक ही पुत्र प्रतापी बलि हुए। हिरण्याक्षके पाँच पुत्र हुए जो बड़े पराक्रमी और महाबली थे। उनके नाम इस प्रकार हैं—अन्धक, शकुनि, कालनाभ, महानाभ तथा भूतसन्तापन। इनकी लाखों सन्तानें हुईं। ये सभी तारकामय संग्राममें मारे गये। इस प्रकार संक्षेपसे कश्यपजीकी सन्तानोंका वर्णन किया गया, जिनके द्वारा देवता, असुर और मनुष्योंसहित सम्पूर्ण जगत् व्याप्त है।

~~०~~

चन्द्रमाके द्वारा प्रभासक्षेत्रमें शिवकी आराधना, वरदान-प्राप्ति, सोमनाथके मन्दिरका निर्माण तथा ब्राह्मणोंको उनकी आराधनामें लगाना

देवी पार्वतीने पूछा—जगदीश्वर! प्रभासक्षेत्रमें किस समय सोमनाथ लिंगकी स्थापना हुई है? रोहिणीवल्लभ चन्द्रमाने कृतार्थ होकर किस प्रकार उसकी आराधना की।

महादेवजीने कहा—प्रिये! वैवस्वत मन्वन्तरके दसवें त्रेतायुगमें दुर्वासासहित चन्द्रदेव उत्पन्न हुए। उस समय चन्द्रमाने सहस्रों वर्षोंतक तपस्या करके भगवान् शंकरका प्रत्यक्ष दर्शन किया और लोककर्ता ब्रह्माजीके द्वारा शिवलिंगकी स्थापना करायी। तत्पश्चात् पुनः सहस्र वर्षों-तक मुझ शंकरकी आराधना की। विधिपूर्वक मेरी पूजा करनेके अनन्तर अपने कार्यों और मनोरथोंकी सिद्धिके लिये निशानाथने मेरा स्तवन किया।

चन्द्रमा बोले—शिवके समान दूसरा कोई देवता नहीं है। रणभूमिमें शिवजीके समान कोई रक्षक नहीं है। संसारमें शिवके सदृश शरणागतवत्सल नहीं है तथा शिवके समान दूसरी कोई गति

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

नहीं है। सांख्यवादी जिन्हें प्रधान और पुरुष कहते हैं, योगी जिनका परम प्रधान एवं परम पुरुषरूपसे चिन्तन करते हैं, उन ज्ञेयस्वरूप सदाशिवको नमस्कार है। विद्वान् पुरुष जिन्हें देवता, असुर और मनुष्योंकी सृष्टि तथा संहारका कारण मानते हैं, उन सर्वात्माको नमस्कार है। जो अविनाशी, अनादि, अनन्त, नित्य, सनातन, ध्रुव, कलातीत एवं परम ब्रह्मस्वरूप हैं, उन योगात्मा शिवको नमस्कार है। जो आदिदेव महेश्वर पवित्र वस्तुओंमें सबसे अधिक पवित्र हैं तथा दर्शनमात्रसे ही पवित्र कर देते हैं, उन तीर्थात्मा शिवको नमस्कार है। जिनसे सबकी उत्पत्ति होती है, जिनमें सबका लय होता है तथा जो सम्पूर्ण जगत्का पालन करते हैं, उन सर्वात्माको नमस्कार है। ब्राह्मणलोग पूर्ण दक्षिणायुक्त अग्निष्टोम आदि यज्ञोंके द्वारा जिनका यजन करते हैं, उन यज्ञात्माको नमस्कार है।

पार्वती! इस प्रकार जब चन्द्रमाने दिन-रात मेरा स्तवन किया, तब मैंने प्रसन्न होकर कहा— 'वत्स! मैं तुम्हारे इस स्तोत्रसे पूर्णतः सन्तुष्ट हूँ। तुम अपनी इच्छाके अनुसार वर माँगो।'

चन्द्रमाने कहा—प्रभो आप इस शिवलिंगमें सदैव निवास कीजिये। जो लोग अत्यन्त भक्तिपूर्वक यहाँ आपका दर्शन करें, उन्हें आपके प्रसादसे उत्तम सिद्धि प्राप्त हो।

मैंने कहा—चन्द्रदेव! इस लिंगमें मेरा निवास तो पहलेसे ही है, अब तुम्हारी निरन्तर भक्तिके कारण मैं इसमें विशेष रूपसे उमासहित निवास करूँगा। इस क्षेत्रमें मेरे प्रसादसे तुमने अपनी प्रभा प्राप्त की है, इस कारण इसका नाम प्रभास होगा। सोम! तुमने मेरे इस शुभ लिंगकी प्रतिष्ठा की है, इसलिये यहाँ मेरा नाम 'सोमनाथ' प्रसिद्ध होगा। जो मनुष्य मेरी भक्तिमें तत्पर हो यहाँ मेरा दर्शन करेंगे, उन्हें मेरे प्रभावसे रोग, दरिद्रता, दुर्गति तथा इष्टजनोंका वियोग नहीं होगा। मेरे दर्शनकी इच्छा रखनेवाले जो लोग भक्तिभावसे यहाँकी यात्रा करेंगे, उन्हें पग-पगपर अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त होगा। निशाकर! एक पुरुष तो जीवनभर ब्रह्मचारी रहे और दूसरा एक बार यहाँ मेरा दर्शन करे, उन दोनोंके लिये समान फल बतलाया गया है। एक मनुष्य ब्राह्मणको सब प्रकारके दान देता है और एक यहाँ आकर मेरा दर्शन करता है, उन दोनोंके लिये समान फल बताया गया है। सोमवारको चन्द्रग्रहण प्राप्त होनेपर जो भक्तिपूर्वक मेरा दर्शन करता है, उसे पूर्वोक्त सभी पुण्यकर्मोंका फल प्राप्त होता है। सरस्वती, समुद्र, सोमवार, सोमग्रहण और सोमनाथजीका दर्शन—इन पाँच सकारोंका योग दुर्लभ है। चार मासतक विधिपूर्वक शिवकी पूजा करनेसे जो पुण्य प्राप्त होता है, वही कार्तिककी पूर्णिमामें पूजन करनेपर यहाँ एक ही दिनमें प्राप्त हो जाता है। वही पुण्य चैत्रकी पूर्णिमाको दूना बताया गया है। फाल्गुन और आषाढ़की पूर्णिमाके दिन दर्शन-पूजनका भी यही पुण्य है। जो मनुष्य जीवनपर्यन्त प्रति माघमासमें श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको भोजन कराता है और जो एक बार इस शिवलिंगका दर्शन करता है, उन दोनोंको समान फल प्राप्त होता है; इसमें संशय नहीं है। नागकेशर, चम्पा, श्वेतकमल और धतूरके फूल शिवकी पूजाके लिये उत्तम माने गये हैं। केतकी, अतिमुक्त (मरुआ), कुन्द, जूही, सिरस, शाल और जामुनके फूलोंको शिवकी पूजामें त्याग देना चाहिये। धतूर और कदम्बके फूल रातमें शिवके ऊपर चढ़ाने चाहिये। शेष जो फूल बताये गये हैं, उनका उपयोग दिनको करना चाहिये। मल्लिका अर्थात् बेलाका फूल दिन और रात दोनोंमें चढ़ाना चाहिये। जिसमें कीड़े और केश आदि पड़ गये हों, जो रातके तोड़े हुए होनेसे बासी हो गये हों, जो अपने-आप टूटकर गिरे हुए अथवा कुचल गये हों—ऐसे फूलोंको त्याग देना चाहिये। तुलसी, कमल, गान्धार और दवनासे सोमनाथकी सदा पूजा करे। ऐसा करनेवाला मनुष्य यहाँकी यात्राका पूरा फल पाता है और स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth
279 Skandpuran_Section_41_1_Back

ऐसा कहकर सोमेश्वर शिव वहीं अन्तर्धान हो गये। चन्द्रमाको यक्ष्मारोगसे छुटकारा मिला। उन्होंने विश्वकर्माको बुलाकर सोमनाथके लिये एक मन्दिर बनवाया, जो शुद्ध स्फटिक तथा गोदुग्धके समान उज्ज्वल था। उसके चारों ओर अन्य चौदह मन्दिर बनवाये गये। ब्रह्मा आदि समीपवर्ती देवताओंके लिये भी दस मन्दिर निर्माण किये गये। वैवस्वत मन्वन्तरके दसवें त्रेतामें मण्डप बनवाकर विधिपूर्वक सोमेश्वर शिवकी प्रतिष्ठा करके दीनों और अनाथोंके लिये सैकड़ों और हजारों वापी, कूप, तड़ाग और गृह आदि बनवाये। सब कुछ बनवाकर पृथक्-पृथक् ब्राह्मणोंको विधिपूर्वक दान दिया। सोमेश्वरके समीप नगर बसाकर चन्द्रमाने ब्राह्मणोंका पूजन किया और कहा—'ब्रह्माजीकी कृपासे मैं यद्यपि आपलोगोंका राजा हूँ, तथापि विनय और भक्तिसे ही कुछ निवेदन करता हूँ। धन, सुवर्ण, रत्न, धान, जौ आदि अन्न, गाय-भैंस आदि पशु, भाँति-भाँतिके वस्त्र, केला और नारियलके फल, पान और सुपारी तथा मनोहर उद्यान आपलोगोंके लिये सब ओर उपस्थित हैं। जम्बूद्वीपके सब मनुष्य आपके अधीन होकर आपकी आज्ञाका पालन करेंगे। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा वर्णसंकर लोग भी आपको गुरु मानकर तीर्थयात्रा करेंगे। विप्रवरो! आपलोग यहाँ रहकर पवित्र उपचारोंसे मेरे द्वारा स्थापित सोमनाथजीकी सब समय पूजा करें। आपलोग स्मृतियोंके सदाचारका पालन करनेमें कुशल हैं। यहाँ रहकर सबके व्यवहारोंको देखिये और स्वयं भी श्रुति-स्मृति एवं पुराणोंमें प्रतिपादित धर्मोंका आचरण कीजिये।'

यह सुनकर उन ब्राह्मणोंने कहा—चन्द्रदेव! आप हम ब्राह्मणोंके राजा हैं। आपने हमें सर्वथा उत्तम उपदेश दिया है। हम आपकी सब आज्ञाका पालन करेंगे। परन्तु जो लोग किसीके द्वारा नियुक्त होकर—वेतन लेकर पूजा करते हैं, अथवा शिवनिर्माल्यका सेवन करते हैं, वे पतित हो जाते हैं। अतः ऐसा करनेपर हम भी पतित हो सकते हैं। यह पातित्य श्रुतियों और स्मृतियोंद्वारा निन्दित है। श्रुति और स्मृति दोनों ही शिवजीकी आज्ञाएँ हैं, अतः कौन ऐसा मूढ़ होगा जो प्राणोंके कण्ठतक आ जानेपर भी शिवकी आज्ञाओंका उल्लंघन करेगा। अष्टमूर्ति शिवकी एक मूर्ति अग्निदेव हैं। वे ही देवताओंके मुख हैं। हम अग्निमें यज्ञ कराते हुए सत्स्वरूपसे सम्पूर्ण जगत्को तृप्त करते हैं। यह जगत् भगवान् शिवका रूप है। जगत्में परस्पर भेद होते हुए भी यह जगदीश्वर शिवसे अभिन्न है। अग्निमें विधिपूर्वक दी हुई आहुति सूर्यदेवको प्राप्त होती है। सूर्यसे वृष्टि होती है, वृष्टिसे अन्न होता है और अन्नसे प्रजा जीवन धारण करती है*। हम सदा श्रुति, स्मृति और पुराणोंके अभ्यासमें संलग्न रहनेवाले हैं। उसके अर्थका विचार करनेमें ही तत्पर रहते हैं और उनमें बताये हुए सभी सत्कर्मोंका अनुष्ठान किया करते हैं; अतः हमें शिवलिंग-पूजनके लिये बहुत कम अवसर मिल सकता है। तथापि हम रुद्रका जप और पंच महायज्ञोंका अनुष्ठान करते हुए ही यथासमय और यथावकाश सोमेश्वर लिंगका भी पूजन करते रहेंगे।

एक समय पार्वतीजीने शिवजीसे पूछा—देव! दैत्यलोग आपका प्रसाद पाकर तीनों लोकोंमें उत्पात करते और इन्द्र आदि देवताओंको भी अपने स्थानसे भगा देते हैं। ऐसे दुष्टात्माओंको आप वर क्यों देते हैं और भगवान् विष्णु उन्हें क्यों मारते हैं। उनके द्वारा मारे हुए दैत्योंकी क्या गति होती है?

महादेवजीने कहा—सात्त्विक, राजस और

* अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठति। आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः॥ (स्क० पु०, प्रभास० २२। ८८-८९)

279 Skandpuran_Section_4I_2_Front In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

तामस तीन प्रकारके प्राणी होते हैं। उनमेंसे ये दैत्यगण प्राय: तमोगुणी और दुर्धर्ष होते हैं। देवताओंके साथ ये सदा लाग-डाँट रखते हैं और संसारका संहार कर देनेके लिये उद्यत होकर तामसिक तपस्याओंके द्वारा मोहवश मेरा भजन करते हैं। मैं जो उन्हें वरदान देता हूँ, उसमें केवल उनकी भक्ति ही कारण है। मैं भक्तिसे भलीभाँति वशमें हो जानेवाला हूँ। तपस्याके अनुसार वर पाकर वे पापात्मा दैत्य जो विष्णुके द्वारा मारे जाते हैं, उसका रहस्य मुझसे सुनो। मैं और विष्णु जो भिन्न प्रतीत होते हैं, उसमें गुणभाग कारण है। वास्तवमें हम दोनों अभिन्न हैं। हममें आराध्य और आराधक आदिका भेद भी सामान्य ही है—हम उनके आराध्य हैं और वे हमारे। श्रीविष्णुके चरणोंके अग्रभागसे निकली हुई गंगाजीको मैं भक्तिपूर्वक मस्तकपर धारण करता हूँ। तीनों लोकोंकी रक्षाके लिये उद्यत हुए श्रीविष्णुने भी चिरकालतक मेरी उपासना करके दुष्ट दैत्योंका नाश करनेवाला चक्र प्राप्त किया। त्रिभुवनकी उत्पत्तिके कारणभूत श्रीहरिकी मैं भक्तिपूर्वक आराधना करता हूँ। इसी प्रकार श्रीहरि भी मेरी आज्ञा शिरोधार्य करके अजन्मा होते हुए भी जन्म लेकर सम्पूर्ण जगत्‌की रक्षा करते हैं। हिरण्यकशिपु दैत्यका वध करनेके लिये नृसिंह-शरीर धारण करनेवाले श्रीहरिको मैंने ही शान्त किया। इसी प्रकार बाणासुरकी रक्षाके लिये त्रिशूल उठानेवाले मुझ शंकरको मनुष्य-अवतारमें स्थित होते हुए भी श्रीहरिने लीलापूर्वक स्तब्ध कर दिया था। मेरी महिमा और प्रभावको बढ़ाते हुए मेरे प्रभु भगवान् विष्णु नित्य मेरी सेवा करते हैं तथा मैं भी अनादि, अनन्त परमात्मा श्रीहरिका ध्यानयोग और समाधिमें चिन्तन करता हूँ। इस प्रकार उनका और मेरा भेद वास्तविक नहीं है। मूढ़ मनुष्य ही हम दोनोंमें भेद और न्यूनता-अधिकताका आरोप करते हैं। मैं ही विष्णुरूप धारण करके दुष्टोंका संहार करता हूँ। वे दैत्य हम दोनोंके प्रभावसे निष्पाप होकर मुक्तिके लिये ब्रह्मर्षियोंके कुलमें जन्म लेते हैं। ब्रह्मचर्यके पश्चात् पाशुपत योगका आश्रय ले पूर्वजन्मके संस्कारसे वे फिर मेरी उपासना करते हैं। मेरे लिंगोंका पूजन करते हैं। सदा एकमात्र मुझमें ही चित्त लगाये हुए मेरे ध्यानमें दृढ़तापूर्वक स्थित रहते हैं। जो सम्पूर्ण जगत्‌की अधीश्वरी तुम पार्वतीकी भी वन्दना करते हैं, उन्हें देहत्यागके पश्चात् मैं सारूप्य तथा सालोक्य मुक्ति देता हूँ। धर्मशास्त्रके अनुकूल आचारके कारण वे साधुपुरुषों और मुनियोंद्वारा निन्दित नहीं होते। तीर्थयात्राके प्रसंगसे वे ब्राह्मण लोग जब यहाँ आते हैं, तब मैं उन्हें अपने स्थानपर ले आता हूँ और तुम उन भोजनार्थी तपस्वीजनोंको नाना प्रकारके उपहारोंसे तृप्त करती हो। फिर वे सब धर्मोंमें तत्पर होकर श्रीसोमेश्वरदेवकी पूजा करते हैं और शरीरका अन्त होनेपर परम दुर्लभ मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं।

ब्राह्मणलोग कहते हैं—चन्द्रदेव! पार्वतीजीके पूछनेपर भगवान् शिवने यही कहा था। वहीं देवर्षि नारदने दोनोंका वह सब संवाद सुना और कथा-गोष्ठीमें हमारे पूछनेपर वह सब वृत्तान्त बतलाया।

ब्राह्मणोंके यों कहनेपर सोमदेव प्रसन्न होकर अपने लोकको चले गये। और उनकी आज्ञासे वे ब्राह्मण भी सोमेश्वरदेवकी यथावत् पूजा करते हैं। जिस मनुष्यने सोमवारसे लेकर आठ दिनोंतक सोमेश्वरदेवका पूजन किया है, उसने सब प्रकारके दान और सम्पूर्ण महाव्रतोंका अनुष्ठान कर लिया।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

सोमवारव्रतकी विधि और महिमा, गन्धर्वसेनाकी रोगनिवृत्ति

महादेवजी कहते हैं—पार्वती! कैलासके उत्तर निषधपर्वतके शिखरपर स्वयम्प्रभा नामक एक विशाल पुरी है। उसमें धनवाहन नामके एक गन्धर्वराज रहते थे। उनकी स्त्री बड़ी मनोहर थी। उसके साथ रहकर वे वहाँ दिव्य भोगोंका उपभोग करते थे। समयानुसार उनके आठ पुत्र हुए। पुत्रोंके बाद एक कन्या उत्पन्न हुई, जिसका नाम गन्धर्वसेना था। वह पिताकी आज्ञासे बहुत-सी कन्याओंके साथ भाँति-भाँतिके वृक्षों, लताओं, फलों और फूलोंसे सुशोभित सुन्दर उद्यानमें खेला करती थी। एक दिन खेलती हुई उस कन्याको देखकर उसकी माताने पतिसे कहा—'स्वामिन्! बन्धु-बान्धवोंसहित आपका तथा मेरा भी जीवन व्यर्थ है, जिनके घरमें इतनी बड़ी कन्या अभीतक अविवाहिता है।' पत्नीके यों कहनेपर गन्धर्वराजने कहा—'देवि! मैं पुत्रीके लिये सुन्दर वरकी खोज करता हूँ।' यों कहकर धनवाहनने पुत्रीको पुकारा। माता-पिताके बुलानेपर गन्धर्वसेना तुरंत वहाँ आयी और उनके चरणोंमें प्रणाम करके बोली—'पिताजी! क्या आज्ञा है?' धनवाहनने प्रसन्न होकर कहा—'बेटी! तुम्हें जो कोई वर पसंद हो, उसे बताओ। मैं उसी गन्धर्वशिरोमणिके साथ तुम्हारा विवाह कर दूँगा।' पिताके यों कहनेपर कन्याने कहा—'क्या तीनों लोकोंमें मेरे रूपके करोड़वें अंशकी भी बराबरी करनेवाला कोई है?' उसकी यह अद्भुत बात सुनकर पिता-माता भौंचक्के-से रह गये और आपसमें बोले—'पुत्रीने यह अच्छी बात नहीं कही।' गन्धर्वसेना उस विशाल उद्यानमें पूर्ववत् सखियोंके साथ खेलने लगी। वसन्तका समय था, वह झूला झूल रही थी। उसी समय गणनायक शिखण्डी दिव्य विमानपर बैठा हुआ वहाँ आ निकला। उसने आकाशसे ही उस कन्याको देखा। मध्याह्न-संध्याका समय था। वह विमानसे उतरा और उसी उद्यानमें ठहर गया। उसी समय उसने गन्धर्वकन्याके मुखसे यह वचन सुना—'संसारमें कोई देवता अथवा दानव मेरे रूपके करोड़वें अंशके भी बराबर नहीं है।' तब गणनायकने अहंकारमें भरी हुई उस कन्याको शाप दे दिया—'तुम रूपके अभिमानमें गन्धर्वों और देवताओंका तिरस्कार करती हो, अतः तुम्हारे शरीरमें कोढ़ हो जायगी।' यह शाप सुनकर वह कन्या भयभीत हो गयी और साष्टांग प्रणाम करके दयाकी भीख माँगने लगी। उसकी विनयसे गणनायकको दया आ गयी और उसने कहा—'यह तुम्हारे गर्वका फल है, इसलिये गर्व कभी नहीं करना चाहिये। हिमालयके वनमें गोशृंग नामके एक श्रेष्ठ मुनि रहते हैं। वे तुम्हारा उपकार करेंगे।' यों कहकर गणनायक चला गया। गन्धर्वसेना उस सुन्दर वनको छोड़कर पिताके समीप आयी और कुष्ठ होनेका सब कारण कह सुनाया। सुनकर उसके माता-पिता शोकसे सन्तप्त हो उठे और पुत्रीको साथ ले तुरंत ही हिमालय पर्वतपर आये। वहाँ उन्होंने गोशृंग ऋषिके आश्रमको देखा। मुनिवर गोशृंग आश्रमके भीतर बैठे थे। उनका दर्शन करके स्तुति-प्रणाम करनेके अनन्तर वे दोनों गन्धर्व-दम्पति उनके आगे भूमिपर बैठे। मुनिके पूछनेपर गन्धर्वराजने कहा—'मेरी कन्याका शरीर कुष्ठरोगसे पीड़ित है। जिससे उसकी शान्ति हो, वह उपाय करें।'

गोशृंगजी बोले—भारतवर्षमें समुद्रके समीप सर्वदेववन्दित भगवान् सोमनाथ विराजमान हैं। वहाँ जाकर मनुष्योंको एक समय भोजन करते हुए सब रोगोंके नाशके लिये सोमनाथकी पूजा करनी चाहिये। तुम सोमवारव्रतके द्वारा भगवान् शंकरकी आराधना करो। यों करनेसे तुम्हारी पुत्रीका रोग नष्ट हो जायगा।

महर्षिका यह वचन सुनकर गन्धर्वराजने वहाँ

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

जानेका विचार किया और गोशृंग मुनिसे पूछा—'भगवन्! सोमवारव्रत कैसे करना चाहिये? किस समय उसका अनुष्ठान उचित है?'

गोशृंगजीने कहा—महाप्राज्ञ! पहले ब्रह्मवेलामें उठकर शौच आदिसे निवृत्त हो दन्तधावन करे, फिर स्नान करके स्वधर्मके अनुसार नित्यकर्म करे। उसके बाद सुन्दर समतल एवं शुद्ध स्थानमें उत्तम कलश स्थापित करे, जिसमें आमका पल्लव डाला गया हो और जिसपर चन्दनसे भाँति-भाँतिके चित्र बनाये गये हों। कलशके ऊपर पात्र रखे और उस पात्रमें जटा-मुकुटमण्डित सर्वाभूषण-भूषित श्वेतवस्त्रधारी अर्द्धनारीश्वर शिवकी प्रतिमा स्थापित करे। तत्पश्चात् उमासहित महेश्वरकी श्वेत वस्त्रों और भाँति-भाँतिके भक्ष्य-भोज्य पदार्थोंद्वारा पूजन करे। बिजौरा नीबू अर्पण करे। निम्नांकित मन्त्रसे सब पूजा करनी चाहिये—

ॐ नमः पञ्चवक्त्राय दशबाहुत्रिनेत्रिणे।
देव श्वेतवृषारूढ श्वेताभरणभूषित॥
उमादेहार्द्धसंयुक्त नमस्ते सर्वमूर्तये।

'महादेव! आप श्वेत वृषभपर आरूढ़, श्वेत आभूषणोंसे भूषित तथा आधे शरीरमें भगवती उमासे संयुक्त हैं। आपके पाँच मुख, दस भुजाएँ तथा प्रत्येक मुखके साथ तीन-तीन नेत्र हैं। आपको नमस्कार है। आप सर्वस्वरूप हैं, आपको नमस्कार है।'

इसी मन्त्रसे पूजन और स्तुति करके रात्रिमें भोजन करे। सोमनाथ महादेवजीका ध्यान करते हुए कुशकी चटाईपर सोये। यों करनेपर अठारह प्रकारके कुष्ठ रोगोंका नाश होता है। दूसरे सोमवारको करंजका दन्तधावन करे और ज्येष्ठा-शक्तिसे संयुक्त शिवका कमलके फूलोंसे पूजन करके विधिपूर्वक मधुर भोजन करे। भगवान्‌को नारंगी चढ़ाये। शेष सब विधि पूर्ववत् करे। दूसरे सोमवारको यों करनेसे लाख गोदानका फल प्राप्त होता है। तीसरे सोमवारको अपामार्गकी दातुन करके शिवजीका पूजन करे। अनारके फलका भोग लगाये तथा चमेलीके फूलोंसे पूजा करे। रातमें अगुरु भोजन करे। उस दिन सिद्धि नामक शक्तिके साथ शिवकी पूजा करनी चाहिये। चौथे सोमवारको गूलरकी दातुन करनेका विधान है। उस दिन सोमासहित गौरीपतिकी पूजा करे। नारियलका फल चढ़ाये और दवनेके पत्तेसे पूजा करे। रातमें चीनी खाय और जागरण करे। पाँचवें सोमवारको विभूतिसहित गणेश्वरकी कुन्दके फूलोंसे पूजा करे। पीपलकी दातुन करे और मुनक्काके साथ अर्घ्य दे। रातको मौक्तिक तंदुल (सफेद मक्का) भोजन करे। यों करनेसे अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त होता है। छठे सोमवारको भद्रासहित स्वरूपनामक शिवका पूजन करे। चमेलीकी दातुन करे और धतूरके फलसे अर्घ्य दे। उस दिन बेलाके फूलोंसे परम भक्तिपूर्वक पूजा करनी चाहिये। रातमें कपूर भोजन करे। सातवें सोमवारको बेलाकी दातुन करे और दीप्ताशक्तिके साथ सर्वज्ञ शिवकी पूजा करे। जँभीरी नीबूका फल अर्पण करे और चमेलीके फूलोंसे पूजा। रातको लौंग खाय। यों करनेसे अनन्त फलकी प्राप्ति होती है। आठवें सोमवारको केलेके फल और मरूआके फूलोंसे अमोघा शक्तिसहित जगदीश्वर शिवका पूजन करे। रातमें दूध पिये। इससे अग्निष्टोम यज्ञका फल प्राप्त होता है। करोड़ बार गंगास्नान करनेसे और सूर्यग्रहणके समय कुरुक्षेत्रमें वेदवेत्ता ब्राह्मणको दस हजार स्वर्णमुद्रा दान करनेसे जिस फलकी प्राप्ति होती है, वही सोमवारव्रत करनेपर कोटिगुना होकर मिलता है। नवाँ सोमवार प्राप्त होनेपर व्रतका उद्यापन करे। ध्वजा-पताकाओंसे सुशोभित गोल मण्डप और कुण्ड बनाये। चार दरवाजे बनाकर मण्डपके मध्यमें चौकोर वेदीका निर्माण करे। उसपर मण्डल बनाकर बीचमें कमल बनाये। आठों दिशाओंमें पृथक्-पृथक् सुवर्णसहित कलश स्थापित करके पूर्वसे लेकर वामादि शक्तियोंकी भी स्थापना करे। कर्णिकामें परम प्रकाशमय श्रीसोमनाथजीको विराजमान करे।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

सोमनाथजीकी सुवर्णमयी प्रतिमा मनोमती नामक शक्तिके सहित स्वर्ण-शय्यापर स्थापित करनी चाहिये। सुवर्ण अथवा रजत आदिके पात्रको शहदसे भरकर उसे स्वर्ण शय्यापर आच्छादित करके रख दे और उसीपर शिव-प्रतिमाका पूजन करे। फिर वस्त्र, आभूषण, ताम्बूल, छत्र, चवँर, दर्पण, दीप, घण्टा, चँदोवा, शय्या और गद्दा आदि वस्तुएँ सोमनाथकी प्रीतिके उद्देश्यसे पुराणवेत्ता आचार्यको दान करे। वहीं होम कराये। पूजन करके रातमें वहीं जागरण करे। अपने हृदयमें सोमनाथजीका ध्यान करते हुए पंचगव्य पीकर रहे। प्रातःकाल स्नान करके विधिपूर्वक सोमदेवका ध्यान करे। तत्पश्चात् दूध और खाँड़ आदिसे बने हुए अनेक प्रकारके भक्ष्य-भोज्य पदार्थोंद्वारा नौ ब्राह्मणोंको भक्तिपूर्वक भोजन कराये। दो वस्त्र और एक गोदान करके विसर्जन करे। इस प्रकार सोमवारव्रतका पालन करनेवाला पुरुष अक्षय पुण्यका भागी होता है। धन-धान्यसे सम्पन्न तथा स्त्री-पुत्र आदिसे सुशोभित होता है। उसके कुलमें कोई दरिद्र अथवा दुःखी नहीं होता। इस प्रकार विधिपूर्वक व्रत करनेपर मनुष्य देहत्यागके पश्चात् शिवलोकमें जाता है। महाभाग! जहाँ भगवान् सोमनाथ विराजमान हैं, वहाँ शीघ्र जाओ।

महादेवजी कहते हैं—गोशृंग मुनिके यों कहनेपर गन्धर्वराज धनवाहन अपनी पुत्रीके साथ सब उपहार लेकर प्रभासक्षेत्रमें आये। वे सोमनाथका दर्शन करके आनन्दमें मग्न हो गये। यात्राके क्रमसे सोमनाथजीका पूजन करके उन्होंने कन्यासहित सोमवारव्रत किया। इससे उनके ऊपर सोमनाथ प्रसन्न हुए और उन्होंने उनकी कन्याके रोगोंका नाश करके समस्त कामनाओंकी सिद्धि देनेवाला गन्धर्वदेशका राज्य तथा अपनी भक्ति दी।

महादेवजीसे वरदान पाकर धनवाहन गन्धर्व कृतार्थ हो गये। उन्होंने सोमनाथजीके उत्तर भागमें दण्डपाणिके समीप भक्तिपूर्वक गन्धर्वेश्वर शिवकी स्थापना की। ये वरदासे पश्चिम पाँच धनुषकी दूरीपर स्थित हैं। पंचमी तिथिमें उनकी पूजा करके मनुष्य कभी दुःखी नहीं होता। धनवाहनकी पुत्री गन्धर्वसेनाने भी वहीं गौरीजीके समीप पूर्वभागमें तीन धनुषकी दूरीपर विमलेश्वर नामक शिवलिंगकी प्रतिष्ठा की, जो सब रोगोंका नाश करनेवाला है। तृतीयाको विमलेश्वरकी पूजा करके प्रत्येक स्त्री दुर्भाग्य-दोषसे मुक्त हो जाती, घरमें सम्मानित होती तथा पुत्र एवं संपूर्ण मनोरथोंको प्राप्त कर लेती है।

~~o~~

सोमनाथकी यात्राविधि

पार्वती बोलीं—देव! अब आप सोमनाथजीकी महिमाका यथावत् वर्णन करें।

महादेवजीने कहा—भामिनि! हेमन्त, शिशिर एवं वसन्त-ऋतुओंमें सोमनाथकी यात्रा करनी चाहिये। अथवा जब कभी भी आपके पास धन हो, मनमें यात्राके लिये उत्साह हो एवं कोई पर्व आया हो, तभी वहाँ यात्रा की जा सकती है। श्रद्धा-भक्ति ही यात्राका मुख्य हेतु है। अपने घरमें कोई नियम लेकर मन-ही-मन भगवान् शिवको प्रणाम करे। फिर विधिपूर्वक श्राद्ध करके अपने ग्रामकी परिक्रमा करे। तत्पश्चात् मौन एवं एकाग्रचित्त हो मन और इन्द्रियोंको वशमें रखते हुए यात्राके लिये निकले। काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, मात्सर्य और चपलताका त्याग करके मनुष्योंको वहाँकी यात्रा करनी चाहिये। तीर्थयात्रामें यज्ञोंसे भी बढ़कर पुण्य होता है। महादेवि! सोमनाथजीकी यात्राके सिवा दूसरे किसी उपायद्वारा सुगमतासे स्वर्गलोककी प्राप्ति नहीं होती। जो मनुष्य पवित्र श्रद्धाभावसे युक्त हो सोमेश्वरकी यात्रा करते हैं, वे मनुष्य कलियुगमें धन्य हैं। जैसे

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

समुद्रके समान दूसरा कोई जलाशय नहीं है, उसी प्रकार प्रभासक्षेत्रके सदृश अन्य कोई तीर्थ नहीं है। जिसके हाथ, पैर और मन भलीभाँति वशमें हों, जो विद्या, तप और कीर्तिसे युक्त हो, वह तीर्थके फलका भागी होता है। जो नियमसे रहे, नियमित भोजन करे, स्नान और जपमें तत्पर रहे तथा व्रत एवं उपवास करे, वह तीर्थके फलका पूर्णतः भागी होता है। जो क्रोधरहित, सत्यवादी, दृढ़तापूर्वक व्रतका पालन करनेवाला तथा संपूर्ण प्राणियोंके प्रति आत्मभाव रखनेवाला है, वह तीर्थके फलका भागी होता है। जो दरिद्र एवं धनहीन मनुष्य तीर्थयात्रामें तत्पर होते हैं, उन्हें विशेष नियमोंके बिना ही यज्ञफलकी प्राप्ति होती है। सभी वर्णों और आश्रमोंके लोगोंको तीर्थयात्रा फल देनेवाली है। जो दूसरे किसी कार्यसे तीर्थमें जाता है और वहाँ स्नान करता है, उसके लिये मुनियोंने स्नानके आधे फलकी प्राप्ति बतायी है। इस लोकमें पैदल तीर्थयात्रा करनेको उत्तम तप बताया गया है। किसी सवारीसे यात्रा करनेपर तीर्थमें स्नान-मात्रका ही फल मिलता है, यात्राका नहीं। देवि! जो मनुष्य अपने ही धन और अपने ही पैरोंसे तीर्थयात्रा सम्पन्न करते हैं, उन्हें चौगुने पुण्यकी प्राप्ति होती है।[१] इन्द्रियोंको वशमें रखते हुए भिक्षान्न-भोजनपूर्वक जो तीर्थयात्रा करते हैं, वे दसगुना पुण्य-फल पाते हैं। छाता और जूता धारण न करके भिक्षान्न-भोजन एवं इन्द्रियसंयमपूर्वक तीर्थयात्रा करनेवाला ब्राह्मण भयंकर पापोंसे मुक्त हो जाता है। प्रतिग्रह (दान-ग्रहण) न करनेवाले मनुष्यकी यात्रा दसगुना पुण्य देनेवाली होती है। जो ब्राह्मण लोभवश क्षेत्रमें दानकी रुचि रखता है, उस दूषित हृदयवालेके लिये न तो यह लोक सुखद होता है न परलोक ही। यदि शूद्र ब्राह्मणका वेष धारण करके तीर्थमें दान ग्रहण करता है तो वह तत्काल तृण और काष्ठके समान भस्म हो जाता है और नरकमें गिरता है। अतः औरोंकी तो बात ही क्या है, ब्राह्मणोंको भी थोड़ा भी प्रतिग्रह नहीं स्वीकार करना चाहिये।

तीर्थ दो प्रकारके होते हैं—कृत और अकृत। जो स्वकीयभावसे युक्त है अर्थात् जो अपने ही धन एवं पैरोंसे यात्रा करता और अपने हृदयमें उत्तम भाव रखता है, वही इन दोनों प्रकारके तीर्थोंका संपूर्ण फल पाता है। जो मनुष्य दूसरेके अन्नसे जीविका चलाते हुए यात्रा करता है, वह उस तीर्थ-यात्राके संपूर्ण फलका सोलहवाँ भाग पाता है। असमर्थ, अन्ध, पंगु तथा यायावर,[२] जो दूसरोंसे अन्न लेनेके लिये विवश हैं, उनका प्रतिग्रह दोषरहित माना गया है। जो तीर्थसेवी मनुष्य ब्राह्मणोंको स्नानकी सुविधा (व्यय आदि) तथा खान-पान आदि देता है, वह तीर्थजनित संपूर्ण फलको पाता है। इष्ट देव, गुरु और माता-पिताको स्वेच्छानुसार पुण्य प्रदान करनेवाला पुरुष आठगुने फलका भागी होता है। स्नान, दान, तप, होम, स्वाध्याय, देवपूजा आदि पुण्य-कर्मका ही सर्वत्र दान होता है; पाप कर्मका नहीं। तीर्थमें जाकर पिता, माता, भाई, सुहृद् तथा गुरु—जिसके उद्देश्यसे भी मनुष्य गोता लगाता है, वह उस तीर्थ-स्नानके पुण्यका द्वादशांश प्राप्त कर लेता है। अतः वेदके बलका भरोसा करके प्रतिग्रह (दान लेने)-में रुचि न रखे। वेद बेचनेवाले पुरुषका स्पर्श कर लेनेपर स्नान करनेका ही विधान है। राजाके दरबारमें तथा विशेषतः तीर्थ और महातीर्थमें रहनेवाले विद्वान्को वेद-विक्रय कदापि नहीं करना चाहिये। जो तीर्थसेवी ब्राह्मण देनेपर भी दान न ले, वही वास्तवमें तीर्थ करता और अपने पूर्वजोंको भी पवित्र कर देता है। अन्यत्र किया हुआ पाप

१- तीर्थानुगमनं पद्भ्यां तपः परमिहोच्यते। तदेव कृत्वा यानेन स्नानमात्रं फलं लभेत्॥
ये चान्ये कुर्वते शक्त्या तीर्थयात्रां तथेश्वरि। स्वकीयद्रव्यपादाभ्यां तेषां पुण्यं चतुर्गुणम्॥
(स्क० पु०, प्र० ख० २६। २४-२५)

२- जो एक-एक गाँवमें एक रात डेरा डालते हुए सदा विचरता रहता है, उस साधु अथवा मुनिको 'यायावर' कहते हैं।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

तीर्थमें क्षीण हो जाता है, परन्तु तीर्थमें किया गया पाप अन्य स्थानोंमें कभी नष्ट नहीं होता है। तीर्थसेवन करनेवाला जो ब्राह्मण अत्यन्त क्लेशग्रस्त होनेपर भी किसीसे दान नहीं लेता, सत्य बोलता और चित्त-वृत्तियोंको रोककर ध्यानस्थ रहता है, उसीके लिये तीर्थ उपकारक होता है। सत्ययुगमें पुष्कर, त्रेतामें नैमिषारण्य, द्वापरमें कुरुक्षेत्र तथा कलियुगमें प्रभासक्षेत्र मुख्य माना गया है। एक मनुष्य सहस्र युगोंतक एक पैरसे खड़ा होकर तपस्या करता है और दूसरा केवल प्रभास-तीर्थकी यात्रा करता है; दोनोंका फल समान है। प्रभास-तीर्थमें पहुँचकर मनुष्य सवारी छोड़ दे और अपने ही चरणोंसे पैदल चले। नाचते, हँसते, गाते और कीर्तन करते हुए सोमेश्वरदेवके समीप जाय; वहाँ सबसे पहले जटाजूटधारी भगवान् शिवका दर्शन करे। सोमनाथके सम्मुख स्थित हुए उस पुरुषको देखकर पितर सदैव संतुष्ट होते हैं, पितामह हर्षध्वनि करते हैं और कहते हैं—'हमारे वंशका सुपुत्र हमें तारनेके लिये प्रस्थित हुआ है।' सोमनाथजीके समीप जाकर पहले क्षौर कराये, तीर्थमें उपवास करे। गंगाके समान कोई तीर्थ नहीं है, कृष्णके समान दूसरी गति नहीं है, गायत्रीके सदृश दूसरा जपनीय मन्त्र नहीं है, व्याहृति-होमके समान होम नहीं है, जलके भीतर अघमर्षण-जपके समान दूसरा कोई पापनाशक कर्म नहीं है; तथा तीर्थमें उपवास करनेसे बढ़कर और कोई ऐसा उपाय नहीं है, जो पापियोंके सब पापोंको शान्त करनेवाला तथा सत्पुरुषोंको उनके अभीष्ट मनोरथोंको देनेवाला हो। देवस्थानमें उपवास करनेका विशेष विधान है। उपवास ही ब्राह्मणका श्रेष्ठ तप कहा गया है। छठे समय भोजन करना शूद्रोंके लिये महान् तप है। वर्णसंकरोंके लिये एक दिनका उपवास ही श्रेष्ठ तप है। यदि शूद्र छठे कालसे अधिक उपवास करे अर्थात् वह तीन दिनसे अधिक समयतक बिना भोजन किये तप करता रहे तो राष्ट्रकी हानि होती है तथा राजाके लिये महान् उपद्रव प्राप्त होता है। शूद्रको चाहिये कि वह कुशा न उखाड़े, कपिला गौका दूध न पिये, पीपलके पत्तेपर भोजन न करे, ॐकारका उच्चारण न करे, यज्ञका पुरोडाश न खाय, यज्ञोपवीत न पहने और वेद न पढ़े। शूद्रके कर्म केवल देवता-आदिको नमस्कार करनेमात्रसे सिद्ध हो जाते हैं (मन्त्रयुक्त प्रार्थनाकी आवश्यकता नहीं रहती)। शूद्रके लिये जिन कर्मोंका निषेध किया गया है, उन्हें यदि वह करता है तो वह अपने पितरोंके साथ नरकमें डूबता है। जिसने अपनी ग्यारह इन्द्रियोंको वशमें कर लिया है, वही तीर्थका फल पाता है; दूसरे अजितेन्द्रिय मनुष्य केवल क्लेशके भागी होते हैं। जो मानव तीर्थमें पितरोंका श्राद्ध और स्नान करता है तथा सब प्राणियोंके हितमें संलग्न रहता है, वह तीर्थके पूर्ण फलको पाता है। जो पाखण्डी, लोभी और परस्त्रीपरायण होकर तीर्थयात्रा करता है, वह केवल पापका भागी होता है।

महादेवि! यों जानकर मनुष्य विधिपूर्वक तीर्थयात्रा करे। पहले तीर्थमें उपवास करके श्रद्धायुक्त हो दृढ़तापूर्वक उत्तम व्रतका पालन करे, उसके बाद वहाँ भोजन करे। ब्राह्मणको उस दिन कहीं भी पराया अन्न नहीं खाना चाहिये। भोजन देनेवालेको सौगुना पुण्य मिलता है; अतः व्रती, तीर्थयात्री एवं विशेषतः विधवाको चाहिये कि वह तीर्थमें उपवास करे और यथासंभव दूसरेको अन्न दे। पराया अन्न भोजन करनेपर जिसका अन्न खाया जाता है, उसीको पुण्य-फल प्राप्त होता है।

अब मैं विधवा स्त्रीके लिये तीर्थयात्राकी विधि बतलाता हूँ। विधवाको उचित है कि वह रोली, चन्दन, पान, पुष्पमाला, रंगीन वस्त्र, शय्या आदि बिछावन, अशिष्ट मनुष्योंसे वार्तालाप, दुबारा भोजन, पुरुषकी ओर देखना और हँसना छोड़ दे। जोर-जोरसे बोलना, जूते पहनना, नृत्य और गीतको त्याग दे। केश रखना, आँखोंमें काजल लगाना, उबटन लगवाना, कुलटा स्त्रियोंसे

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

बात करना और पण्डिताई दिखाना छोड़ दे।* यति, ब्रह्मचारी और विधवा—ये नित्य स्नान और श्वेत वस्त्र धारण करें।

सत्ययुगमें तप उत्तम है, त्रेतामें ध्यान, द्वापरमें यज्ञ और कलियुगमें केवल दान श्रेष्ठ धर्म है। मुनिलोग प्रभासमें पहुँचकर कृच्छ्र-चान्द्रायण आदि तप करते हैं और दूसरे लोग कलियुगमें प्रभासक्षेत्रमें जाकर ब्राह्मणोंको विधिपूर्वक दान देते हैं; किंतु वे उस दानसे ही तपस्याका फल पा लेते हैं। धान्य, रत्न, गुड, सुवर्ण, तिल, रुई, शक्कर, घी, नमक और चाँदी—ये दस पर्वत कहे गये हैं (अर्थात् धान्य-पर्वत, रत्नमय पर्वत आदि रूपसे इन वस्तुओंके पर्वत (ढेरी)-का दान करना चाहिये)। गुड़, घी, दही, मधु, जल, रुई, तिल, कम्बल, रत्न तथा नमक—ये दस प्रकारकी वस्तुएँ धेनु मानी गयी हैं (इनकी धेनुका दान किया जाता है) इन दानोंमेंसे कोई-न-कोई एक दान विभिन्न तीर्थोंमें अवश्य करना चाहिये। महादेवि! सरस्वती समुद्रसंगममें विद्वान् ब्राह्मणके लिये गृहस्थोपयोगी वस्तु एवं सर्वस्व दान करना चाहिये। बहुत हो या थोड़ा, ब्राह्मणोंको प्रिय वस्तुओंका ही दान करना चाहिये। जिस तीर्थमें शिवलिंग तथा निर्मल जलवाला जलाशय हो, वहाँ पहले अग्निहोत्र करके विशिष्ट दान देना चाहिये। प्रत्येक तीर्थमें देवताओं और पितरोंका तर्पण, श्राद्ध, दक्षिणासहित दान तथा गोदान करना चाहिये। यह आवश्यक विधि है। देवताओंको स्नान कराकर चन्दन लगाये और उनकी पूजा करे। पृथ्वीका भी भक्तिपूर्वक पूजन और लेपन करे। देवमन्दिरमें चूना लगाकर उसे सफेद करे। यदि मन्दिर पुराना हो गया हो तो उसका जीर्णोद्धार करे। देवसेवाके लिये फुलवाड़ी लगाये। निर्मल जलका कुआँ बनवाये तथा वन-उपवनका निर्माण कराये। ब्राह्मणोंको प्रचुर दान दे और देव-पूजन करे। सर्वत्र देवयात्राके लिये यह विधि नियत की गयी है। प्रसिद्ध तीर्थमें महादान और मध्यममें मध्यम श्रेणीका दान करे। गोदान तो सभी तीर्थोंमें करनेयोग्य है। इस प्रकार भक्तिपूर्वक दान करके मनुष्य अपने जन्मका फल पा लेता है।

पार्वतीजीने पूछा—प्रभो! जो मनुष्य प्रभासक्षेत्रमें आकर भी भक्ति, दान, स्नान और मन्त्रसे विहीन हैं, उन्हें क्या फल मिलता है? यह बतायें।

महादेवजीने कहा—देवि! धनी हों या निर्धन, मन्त्रज्ञ हों या मन्त्ररहित, जो प्रभासमें मृत्युको प्राप्त होते हैं, वे सभी शिवलोकको जाते हैं। प्रिये! जो मन्त्रहीन और निर्धन मनुष्य वहाँ देह-त्याग करते हैं, उन्हें मैं एक बड़ा भारी विमान देता हूँ। वे स्नान-दानके अनुरूप परम पदको प्राप्त होते हैं। कोई स्नानके प्रभावसे, कोई दानसे, कोई सोमेश्वरलिंगके प्रभावसे, कोई लिंगपूजासे, कोई ध्यानके प्रभावसे, कोई योगकी महिमासे, कोई मन्त्र-जपसे, कोई तपसे, कोई तीर्थसंन्याससे तथा कोई भक्तिभावके अनुसार वहाँ परमपदको प्राप्त होते हैं। ये तथा और भी बहुत-से उत्तम, मध्यम और अधम श्रेणीके लोग सूर्यसदृश तेजस्वी विमानोंद्वारा शिवलोकमें जाते हैं।

पहले प्रणवका उच्चारण करके तीर्थके पवित्र जलका स्पर्श करे। तदनन्तर भीतर प्रवेश करके मन्त्रपाठपूर्वक स्नान करे। मन्त्र इस प्रकार है—

ॐ नमो देवदेवाय शितिकण्ठाय दण्डिने।
रुद्राय वामहस्ताय चक्रिणे वेधसे नमः॥

* विधवा चैव या नारी तस्या यात्राविधिं ब्रुवे। कुंकुमं चन्दनं चैव ताम्बूलं च स्रजस्तथा॥
रक्तवस्त्राणि सर्वाणि शय्याद्यास्तरणानि च। अशिष्टैः सह संभाषां द्विवारं भोजनं तथा॥
पुंसां प्रदर्शनं चैव हासं चैव विवर्जयेत्। संशब्दोपानहौ चैव नृत्यगीतं च वर्जयेत्॥
धारणं चैव केशानामञ्जनं च विलेपनम्। असतीजनसंसर्गं पाण्डित्यं च परित्यजेत्॥
(स्क० पु०, प्रभा० ख० २६। ७८—८१)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

सरस्वती च सावित्री देवमाता विभावरी।
सन्निधाने भवत्वत्र तीर्थे पापप्रणाशने॥

जो सच्चिदानन्दस्वरूप, देवताओंके भी देवता, कण्ठमें नीला चिह्न धारण करनेवाले, दण्डधारी, सुन्दर हाथवाले, चक्रधारी तथा विश्वके उत्पादक हैं, उन भगवान् रुद्रको नमस्कार है, नमस्कार है। इस पापनाशक तीर्थमें आकर सरस्वती, सावित्री तथा देवमाता विभावरी निवास करें, हमें अपना सामीप्य दें।

सभी तीर्थोंके लिये यह मन्त्र बताया गया है। इसका उच्चारण करके विधिपूर्वक नमस्कार एवं स्नान करे। उस दिन उपवास भी करे। वर्षमें एक बार उस तिथिपर अवश्य उपवास करना चाहिये।

समुद्रमें स्नानकी विधि और महिमा

महादेवजी कहते हैं—सोमनाथके दक्षिणभागमें त्रिभुवनविख्यात पद्मक नामक तीर्थ है, जो सब पापोंका नाश करनेवाला है। पहले सोमेश्वरके समीप क्षौर कराकर मन-ही-मन मेरा चिन्तन करते हुए उस तीर्थमें अपने केश डाल दे। उसके बाद पुनः स्नान करे। मनुष्य जो कुछ भी पाप करता है, वह सब केशोंमें स्थित होता है; अतः केशोंको अवश्य ही तीर्थमें फेंक देना चाहिये। सौभाग्यवती स्त्रियोंको चाहिये कि वे सब केशोंको हाथसे पकड़कर अग्रभागकी ओरसे दो अंगुल कटवा दें (उनके लिये मुण्डनकी विधि नहीं है)। मुण्डन और स्नानके पश्चात् देवताओं और पितरोंका तर्पण करे। सभी तीर्थोंमें मुण्डन और उपवासकी विधि है। जो पर्वका दिन छोड़कर और किसी समय प्रभासक्षेत्रमें बिना मन्त्रके स्नान करता है, वह उसका पुण्य-फल नहीं पाता। बिना मन्त्रके, बिना पर्वके और बिना क्षौरकर्म किये समुद्र-जलका स्पर्श नहीं करना चाहिये। निम्नांकित मन्त्रका उच्चारण करके सागरके जलका स्पर्श करना उचित है—

ॐ नमो विष्णुगुप्ताय विष्णुरूपाय ते नमः।
सान्निध्ये भव देवेश सागरे लवणाम्भसि॥

'समुद्रदेव! तुम भगवान् विष्णुसे सुरक्षित हो, तुम्हें नमस्कार है। तुम साक्षात् विष्णुके स्वरूप हो, तुम्हें नमस्कार है। देवेश्वर! विष्णो! आप इस क्षीरसागरके जलमें मेरे समीप स्थित हों।'

यों कहकर तीर्थसेवी मानव नदीपति समुद्रके जलमें स्नान करे। फिर श्रद्धायुक्त होकर तिलमिश्रित जलसे देवता, मनुष्य और पितरोंका तर्पण करे। सहस्रों जन्मोंमें मनुष्य जो पाप करता है, उसे एक बार समुद्रके जलमें नहाकर नष्ट कर देता है। ब्रह्माजीने समुद्रसे कहा है—'सागर! जबतक लोकमें तुम्हारी स्थिति रहेगी, जबतक आकाशमें सूर्य, चन्द्रमा और नक्षत्र बने रहेंगे, तबतक पूर्वज तुम्हारे खारे जलके अमृतसे तृप्त होंगे। जो मनुष्य शुद्धचित्त होकर प्रतिमास तुम्हारे जलमें स्नान करेगा, उसे प्रतिदिन पुण्डरीक यज्ञका फल मिलेगा। श्रीसोमनाथ तथा समुद्रके बीचकी भूमिमें जिनकी मृत्यु होगी, वे पापी रहे हों तो भी निष्पाप होकर स्वर्गलोकमें जायँगे। महादेवि! समुद्रके भीतर पाँच करोड़ शिवलिंग हैं, जिन्हें समुद्रने इस मन्वन्तरमें अदृश्य कर दिया है। इसी प्रकार वहाँ अग्निकुण्ड तथा पद्म-सरोवर भी हैं, जो इस मन्वन्तरमें समुद्रजलसे आवृत हो गये हैं। दक्षिण ओर चक्र तथा मैनाकके मध्यभागमें सौ धनुष लंबा-चौड़ा सुवर्णमय कुण्ड है; सोमनाथसे दक्षिण सौ धनुषकी दूरीपर वह स्थान है। उत्तर मानससे पूर्व जहाँ कृतस्मरदेव हैं; वहाँतक उसकी सीमा है; यह गुप्त स्थान है।'

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

सोमनाथके दर्शन-पूजनकी महिमा और पंचस्त्रोता सरस्वतीका आविर्भाव तथा माहात्म्य; बडवानलका समुद्रमें वास

महादेवजी कहते हैं—देवि! इस प्रकार विधिपूर्वक स्नान करके समुद्रको अर्घ्य दे; गन्ध, पुष्प, वस्त्र और चन्दन आदिसे उनकी पूजा करे; तत्पश्चात् तर्पण करके भगवान् कपर्दीके समीप जाय। उनकी भी पुष्प, धूप, गन्ध तथा वस्त्रद्वारा भक्तिपूर्वक पूजा करे। **'गणानां त्वां'** इत्यादि मन्त्र पढ़कर उन्हें अर्घ्य निवेदन करे। शूद्रोंको अष्टाक्षर मन्त्र (**गं गणपतये नमः**)-का उच्चारण करके अर्घ्य देना चाहिये। तदनन्तर सोमनाथजीके समीप जाय। उन्हें विधिसे स्नान कराकर शतरुद्रियका जप (पाठ) करे। रुद्रपंचांगोंका तथा अन्यान्य रुद्रसंहिताओंका भी जप करना चाहिये। दूध, दही, घी, मधु तथा इक्षुरससे सोमेश्वरको नहलाकर उनके अंगोंमें कुंकुमका लेप करे। उसमें कपूर, खस और कस्तूरीको भी मिलाये रखना चाहिये। इसके बाद सुगन्धयुक्त चन्दन और फूलोंसे पूजा करे। नाना प्रकारके धूप निवेदन करके उन्हें वस्त्रसे आवेष्टित करे। तत्पश्चात् उत्तम नैवेद्य अर्पण करे और इच्छानुसार स्तुति करे। साष्टांग प्रणाम करके गीतवाद्य आदिका आयोजन करे। धर्म-कथा सुने और भगवान्‌की परिक्रमा करे। तदनन्तर ब्राह्मणों, तपस्वियों, दीनों, अन्धों, कंगालों तथा भिक्षुओंको अपनी शक्तिके अनुसार दान दे। उस दिन उपवास करना चाहिये। जिस दिन पहले-पहल मनुष्य सोमनाथका दर्शन करे; उस तिथिको एक वर्षतक भक्तिपूर्वक उपवास करे। यों करके मनुष्य अपने जन्मका फल पा लेता है। पिता और माताके कुलका उद्धार कर देता है। सोमनाथका दर्शन करनेसे सब पापोंका नाश हो जाता है; अतः सात जन्मोंतक कभी दुःख, दारिद्र्य और दुर्भाग्यकी प्राप्ति नहीं होती। सोमनाथके प्रति भक्ति बढ़ती है। पहले दूधसे स्नान कराकर फिर जलसे स्नान कराना चाहिये। जो मनुष्य मध्याह्नकालमें और सन्ध्याके समय सोमेश्वर शिवकी आरतीका दर्शन करते हैं, वे फिर इस संसारमें जन्म नहीं लेते।

पार्वतीजीने पूछा—भगवन्! प्रभासक्षेत्रमें सरस्वती नदी कहाँसे आयी है।

महादेवजीने कहा—देवि! सुनो। हरिणी, वज्रिणी, न्यंकु, कपिला तथा सरस्वती—इन पाँच स्रोतोंसे युक्त सरस्वती नदी इस क्षेत्रमें प्रवाहित होती है। एक समय देवाधिदेव भगवान् विष्णुने सरस्वतीसे कहा—'कल्याणि! तुम पश्चिम दिशामें क्षारसमुद्रके समीप जाओ और बडवानलको वहीं ले जाकर डाल दो। इससे सब देवता निर्भय हो जायँगे।' तब सरस्वती बोलीं—'मैं स्वतन्त्र नहीं हूँ। मेरे पिता विद्यमान हैं, मैं उनकी आज्ञाकारिणी पुत्री हूँ। ब्रह्मचर्य-व्रतका पालन करनेवाली कुमारी हूँ। पिताकी आज्ञाके बिना एक पग भी कहीं नहीं जाऊँगी।'

तब भगवान् विष्णुने ब्रह्माजीके समीप जाकर कहा—'देवेश्वर! आप देवताओंका यह कार्य सिद्ध कीजिये।' उनके यों कहनेपर ब्रह्माजी अपनी कुमारी कन्यासे बोले—'देवि! तुम भयसे व्याकुल हुए उन सब देवताओंकी रक्षा करो।'

सरस्वती बोलीं—पिताजी! आपकी आज्ञासे मैं निश्चय ही वहाँ जानेके लिये उद्यत हूँ। परंतु यह भयंकर बडवानल मेरे शरीरको जला देगा। इसके सिवा इस समय भूतलपर कलियुग आया है। अतः कलियुगके पापाचारी मनुष्य मेरा स्पर्श करेंगे।

ब्रह्माजीने कहा—बेटी! यदि तुम पापी जनोंसे भरी हुई इस पृथ्वीका स्पर्श करना नहीं चाहतीं, तो पातालमें स्थित होकर इस बडवानलको समुद्रमें ले जाओ। जब बडवानलका ताप अधिक हो जाय, तब पृथ्वी फोड़कर प्रत्यक्ष हो जाना

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

और पूर्ववाहिनी होकर प्राची सरस्वतीके नामसे विख्यात होना।

महादेवजी कहते हैं—ब्रह्माजीका यह आदेश पाकर सरस्वती अपने तेजसे सम्पूर्ण जगत्‌को प्रकाशित करती हुई चलीं। उस समय अपने पीछे-पीछे आती हुई गंगाजीसे सरस्वतीने कहा—'सखी! अब मैं पुनः कहाँ तुम्हारा दर्शन करूँगी?' गंगाजीने स्नेहभरी वाणीमें उत्तर दिया—'सुव्रते! पश्चिम जाती हुई तुम जब-जब पूर्वदिशाकी ओर मुँह करके देखोगी, तब-तब मुझे अपने समीप खड़ी हुई पाओगी। वहाँ मैं सब देवताओंके साथ तुम्हें दर्शन दूँगी।' तब उन्होंने गंगाजीसे विदा लेकर कहा—'भद्रे! अब तुम अपने स्थानको जाओ, मुझे पुनः तुम्हारा दर्शन प्राप्त हो।' इसी प्रकार सरस्वतीने यमुना, गायत्री और सावित्री आदि सखियोंको भी विदा किया। तदनन्तर हिमालय पर्वतपर आकर वे एक पाकड़के वृक्षसे नदीरूपमें प्रकट हुईं और पृथ्वीपर उतरीं। उस समय पुण्यसलिला सरस्वतीदेवीकी ब्रह्मर्षिगण स्तुति कर रहे थे। बडवानलको लेकर वह नदी बड़े वेगसे चली और पृथ्वी फोड़कर पातालमें प्रवेश कर गयी। कहीं-कहीं मर्त्यलोकमें भी प्रत्यक्ष हो जाती थी। इस प्रकार पातालमार्गसे समुद्रके निकट गयी। खदिरामोद नामक वनमें पहुँचकर सरस्वतीने समुद्रको देखा और बडवानलको लेकर उसके समीप जानेका विचार किया। जब वह दक्षिणकी ओर मुख करके प्रस्थित हुई, उसी समय वेदोंके पारंगत विद्वान् चार महर्षि प्रभासक्षेत्रमें आये। उनके नाम इस प्रकार हैं—हिरण्य, वज्र, न्यंकु और कपिल। वे चारों तपस्वी थे। उन्होंने अलग-अलग स्नान करनेके लिये सरस्वतीका आवाहन किया। इतनेमें ही समुद्र भी सहसा सरस्वतीके सम्मुख उपस्थित हुआ। तब सरस्वतीने पाँच धाराओंमें विभक्त होकर उन सबको सन्तुष्ट किया। इससे इस पृथ्वीपर उसके पाँच नाम विख्यात हुए—हरिणी, वज्रिणी, न्यंकु, कपिला और सरस्वती। यह पंचस्रोता सरस्वती अपने भीतर जलपान और स्नान करनेसे मनुष्योंके पाँच महापातकोंका नाश करती है। एक सप्ताहतक वहाँ उपवास, जप, होम, स्नान और जलपान करनेसे वह सब पापोंका नाश कर देती है। सरस्वती अपने भीतर आचमन और स्नान करनेपर मनुष्योंकी घोर ब्रह्महत्याका तथा कपिला मदिरापानरूप महापातकका नाश करती है। न्यंकु नदीमें स्नान करके पुरुष चोरीके महापातकसे मुक्त हो जाता है। वज्रिणी नदीका जल पीनेसे गुरुपत्नीगमनरूप महापातकका नाश होता है। हरिणी नदी सात दिनोंतक स्नान करनेसे संसर्गजनित महापातकका अपहरण करनेवाली है। इस तरह पाँच धाराओंमें विभक्त सरस्वती नदी सब पातकोंका निश्चय ही नाश कर देती है। तदनन्तर पुनः बडवानलको लेकर सरस्वती समुद्रके समीप स्थित हुईं। बडवानलने उठती हुई तरंगोंसे युक्त समुद्रको देखकर सरस्वतीसे पूछा—'भद्रे! यह क्या है? क्षारसमुद्र मुझसे डरता क्यों है?' सरस्वतीने हँसकर कहा—'अग्ने! तुमसे कौन भयभीत न होगा।' बडवानल बोला—'भद्रे! मैं तुम्हें वर दूँगा, इच्छानुसार वर माँगो।' तब सरस्वतीने भगवान् विष्णुका स्मरण किया। भगवान्‌ने हृदयमें प्रकट होकर उसे दर्शन दिया। सरस्वतीने पूछा—'भगवन्! बडवानल मुझे वरदान देता है; बताइये, मैं इससे क्या माँगूँ?' हृदयस्थित भगवान्‌ने कहा—'कल्याणी! तुम उससे कहो कि वह अपना मुँह सूईके समान बना ले।' तब सरस्वतीदेवीने उससे कहा—'बडवानल! तुम सुईके समान मुँह बनाकर समुद्रका जल पीते रहो।' उसके यों कहनेपर बडवानलने सूईके छिद्रके समान अपना मुँह कर लिया। जैसे घटीसूचक पात्रमें धीरे-धीरे जल प्रवेश करता है, उसी प्रकार वह भी जल पीने लगा।

महादेवजी कहते हैं—तदनन्तर सरस्वतीने समुद्रको बुलाकर कहा—'तुम सब देवताओंके आदि तथा प्राणियोंके प्राण हो, भगवान् विष्णुकी आज्ञासे यहाँ आकर इस बडवानलको ग्रहण

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

करो।' समुद्रने कहा—'देवि! लाओ, बडवानलको मुझे दे दो।' तब सरस्वतीने बडवानलसे कहा—'जैसे अग्निदेव घीकी आहुति ग्रहण करते हैं, उसी प्रकार तुम भी जल भक्षण करो।' यों कहकर उसने वह बडवानल समुद्रको समर्पित कर दिया। इसके बाद सरस्वती पुनः नदी होकर नारदेश्वरके मार्गसे समुद्रमें मिल गयी। वह स्वरूपसे ही परम पवित्र थी, फिर प्रभासक्षेत्र और समुद्रके सम्पर्कसे अत्यन्त पुण्यमयी हो गयी। महाबली बडवानल समुद्रमें रहकर अपने मुखसे उसका जल पीने लगा। उसके उच्छ्वासकी वायुसे उठा हुआ जल ज्वारके रूपमें समुद्रसे बाहरतक दौड़ जाता है। इस प्रकार समस्त पातकोंका नाश करनेवाली सरस्वती ब्रह्मलोकसे उत्तम प्रभासक्षेत्रमें आयी है। समुद्रके समीप सोमनाथके दक्षिण एवं आग्नेय दिशामें सरस्वतीकी स्थिति है। पहले अग्नितीर्थमें स्नान करके मनुष्य विधिपूर्वक सरस्वतीका पूजन करे। वहाँ ब्राह्मणदम्पतिको भोजन कराकर उन्हें पहननेके लिये वस्त्र दे। उसके बाद कपर्दीश्वरकी पूजा करे। पार्वती! इस प्रकार यह सरस्वती नदीके प्रकट होनेका वृत्तान्त तुमसे कहा गया है।

सरस्वती नदीकी महिमा तथा वहाँ स्नान, दान और श्राद्धका माहात्म्य

महादेवजी कहते हैं—प्रभासक्षेत्रमें सरस्वती नदी स्वर्गलोककी सीढ़ीके समान स्थित हैं। प्राची सरस्वती सर्वत्र दुर्लभ हैं; परंतु प्रभास, कुरुक्षेत्र और पुष्करमें उनका दर्शन विशेष दुर्लभ है। अग्नितीर्थके समीप सरस्वती बहती हैं। जो पहले उनका पूजन करता है, वह तीर्थके फलका भागी होता है। सागर तीर्थ भी पापोंका नाश और पुण्यकी वृद्धि करनेवाला है। उसके दर्शनसे ही महायज्ञका फल होता है। अग्नितीर्थमें स्नान करके क्रमशः सरस्वती-कपर्दीश्वर, केदारेश्वर, भीमेश्वर तथा सोमेश्वरदेवका विधिपूर्वक पूजन करके बालरूपधारी ब्रह्माजीकी पूजा करे। इस प्रकार शैवी यात्रा बतायी गयी है।

जो मनुष्य भोजन करके या बिना भोजन किये, दिनमें अथवा रातमें चन्द्रभागा, गंगा और सरस्वती—इन तीन नदियोंका जल पीते हैं, वे देवताके समान हैं। जहाँ प्राची सरस्वती बहती हैं, वहाँ काल, अग्नि और यमराजका भय नहीं है। जैसे कामदा गौएँ हर समय फल देनेवाली होती हैं, वैसे ही प्राची सरस्वती भी हैं। जहाँ चिन्तामणिके समान प्राची सरस्वती हैं, वहाँ स्वर्ग और मोक्ष दोनों सुलभ हैं। अठासी हजार ऊर्ध्वरेता मुनि जहाँ संन्यास आश्रममें स्थित हैं, उस सरस्वतीसे बढ़कर और कौन-सा तीर्थ है। पार्वती! प्रभास नामक महाक्षेत्रमें सरस्वतीके उत्तर तटपर जो अपने शरीरका त्याग करता है, वह फिर इस संसारमें जन्म नहीं लेता। जो मनुष्य इस तीर्थमें श्राद्ध करेंगे, वे अपनी इक्कीस पीढ़ियोंके साथ स्वर्गलोकमें चले जायँगे। यहाँ कृष्णपक्षकी चतुर्दशीको सदा ही स्नानकी विधि है। यहाँ श्राद्ध करनेसे पितरोंको अक्षय तृप्ति मिलती है। जो यहाँ अधिक अन्न दान करते हैं, वे मोक्ष मार्गको प्राप्त होते हैं। जो पुरुष ब्राह्मणको यहाँ सुन्दर दही देता है, वह गोलोकमें जाकर उत्तम भोग भोगता है। जो भक्तिपूर्वक श्रेष्ठ ब्राह्मणको ऊनी चद्दर दान करता है, उसे उत्तम सिद्धि प्राप्त होती है। जो भक्तिपूर्वक इस तीर्थमें स्नान करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो ब्रह्मलोकमें पूजित होता है।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

'कपर्दी' की अग्रपूजाका हेतु और महिमा

पार्वतीजीने पूछा—भगवन्! आपने जो यह कहा है कि पहले 'कपर्दी' का दर्शन करे, इसका क्या कारण है? क्योंकि वह तो आपका सेवक है। स्वामीके पश्चात् ही सेवकका पूजन हो, यह सनातन धर्म है।

महादेवजी कहते हैं—प्रभासक्षेत्रमें सोमेश्वर देवके रूपमें जो लिंगरूपधारी सदाशिव विराजमान हैं, वे इन्द्रियातीत पुरुषोंद्वारा चिन्तन करने योग्य हैं। उनके वामभागमें वाराहरूपधारी भगवान् विष्णु और दक्षिणभागमें प्रजापति ब्रह्माजी विराजमान हैं। द्वापरकी सन्धिमें कलियुग प्राप्त होनेपर स्त्री, म्लेच्छ, शूद्र तथा अन्य पापाचारी मनुष्य भी भगवान् सोमनाथका दर्शन करके शीघ्र ही स्वर्गलोकको चले जाते थे। बालक और वृद्ध सभी उत्तम गतिको प्राप्त होते थे। यह देख इन्द्र आदि देवता मेरी शरणमें आये और हाथ जोड़कर बोले—'भगवन्! आपके प्रसादसे यह सम्पूर्ण स्वर्ग मनुष्योंसे भर गया है, अतः अब हमारे रहनेके लिये कोई दूसरा स्थान दीजिये। जिनके लिये भयंकर कुम्भीपाक सजाया गया, रौरव तथा शाल्मलि आदि नरकोंका निर्माण किया गया, उन्हें स्वर्गमें स्थित देखकर यमराजने अपना व्यापार ही छोड़ दिया है।'

मैंने कहा—देवताओ! मैंने चन्द्रमाकी भक्तिसे संतुष्ट होकर उनसे यह प्रतिज्ञा की है कि प्रभासक्षेत्रमें सदा मेरा निवास होगा। मैं अपनी कही हुई बात किसी प्रकार पलट नहीं सकता। जो लोग वहाँ मेरा दर्शन करेंगे, वे निश्चय ही स्वर्गलोकमें जायँगे।

पार्वती! यह सुनकर देवता भयसे व्याकुल हो गये और तुम्हें वहाँ खड़ी देख हाथ जोड़कर बोले—'माता! तुम्हीं हमें आश्रय दो।' यों कहकर वे तुम्हारी स्तुति करने लगे।

देवता बोले—देवेश्वरी! तुम्हें नमस्कार है। जगदम्बा! तुम्हें नमस्कार है। कमलके समान नेत्रोंवाली देवी! तुम्हें नमस्कार है। सुवर्णके सदृश गौर आकृति धारण करनेवाली गौरी! तुम्हें नमस्कार है। जगत्की सृष्टि और संहार करनेवाली महेश्वरि! तुम्हें नमस्कार है। शंकर प्रिये! तुम्हें नमस्कार है। कालका भी नाश करनेवाली कालरात्रि! तुम्हें नमस्कार है। गिरिराजकुमारी! तुम्हें नमस्कार है। आर्ये! भद्रे! विशालाक्षि! त्रिलोकसुन्दरि! तुम्हें नमस्कार है। तुम्हीं रति, धृति, श्री, स्वाहा, स्वधा, सती, दुर्गा, मति, मेधा, पृथ्वी तथा सर्वस्वरूपा हो। तुमने इस सम्पूर्ण चराचर त्रिलोकीको व्याप्त कर रखा है। नदियों, पर्वत-शिखरों, समुद्रों, गुफाओं, वनों, मन्दिरों तथा मुनियोंके आश्रमोंमें भी तुम विराज रही हो। देवि! तीनों लोकोंमें ऐसा कोई स्थान मैं नहीं देखता, जहाँ तुम विद्यमान न हो। विशाल नेत्रोंवाली शिवे! हमारी यह प्रार्थना सुनकर महान् भयसे हमें बचाओ।

पार्वती! इन्द्र आदि देवताओंके इस प्रकार स्तवन करनेपर तुम करुणाके वशीभूत हो हाथ मलने लगीं। इससे गजराजके-से मुखवाला एक मनोहर कुमार प्रकट हुआ, जिसके चार भुजाएँ थीं। तब तुमने देवताओंसे कहा—'देवगण! मैंने तुम्हारे हितके लिये इस बालकको उत्पन्न किया है। यह मनुष्योंके समक्ष सब प्रकारके विघ्न उपस्थित करेगा, जिससे मोहग्रस्त होकर वे सोमनाथका दर्शन नहीं करेंगे और अपने पापोंके कारण नरकमें जायँगे।'

इसके बाद गजाननने तुमसे विनयपूर्वक पूछा—'माँ! मुझे आज्ञा दो, मैं तुम्हारी क्या सेवा करूँ?' तुमने कहा—'बेटा! तुम प्रभासक्षेत्रमें जाओ, जहाँ सोमेश्वरलिंगके रूपमें महादेवजी सदैव निवास करते हैं। वहाँ रहकर सोमनाथकी रक्षा करो, जिससे मनुष्योंको उनका दर्शन न होने

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

पाये।' तुम्हारे इस आदेशसे गजानन वहाँ गये और सदा वहीं स्थित रहकर मनुष्योंके सम्मुख विघ्न उपस्थित करते हैं। जब किसी मनुष्यको वे सोमनाथके प्रति आते देखते हैं, तब उसके मार्गमें स्त्री, पुत्र, गृह, क्षेत्र, धन, धान्य आदिका महान् मोह लाकर रखते हैं और इस प्रकार उसके सामने बड़ा भारी विघ्न डालते हैं, जिससे वे मानव सोमेश्वर शिवका दर्शन नहीं कर पाते। अथवा गलगण्ड आदि रोग पैदा कर देते हैं, जिससे पीड़ित होकर मनुष्य सोमेश्वरके दर्शनसे वंचित रह जाता है। वे गजानन ही लोकपूजित कपर्दी हैं। अतः सोमेश्वरकी प्राप्तिके लिये प्रतिदिन प्रयत्नपूर्वक कपर्दीकी पूजा करनी चाहिये। उन प्रभासक्षेत्रके रक्षक गणेशका निम्नांकित स्तोत्रद्वारा स्तवन करना चाहिये। महादेवि! मैं कपर्दीका वह विघ्ननाशक स्तोत्र कहता हूँ, सावधान होकर सुनो—

ॐ विघ्नराजको नमस्कार है, कपर्दीको नमस्कार है। अत्यन्त भयंकर दाढ़वाले प्रभासक्षेत्रनिवासी गणेशको नमस्कार है। सोमनाथकी यात्राके निर्विघ्नतापूर्वक पूर्ण होनेके लिये कपर्दीको नमस्कार करके मैं सिद्धि-बुद्धि-प्रियतम मंगलकारी विघ्नराजकी स्तुति करता हूँ। जो महागणपति शूरवीर, किसीसे भी पराजित न होनेवाले, जयकी वृद्धि करनेवाले, एक-दो तथा चार दाँतवाले, चार भुजावाले, त्रिनेत्रधारी, हाथमें त्रिशूल रखनेवाले, लाल नेत्रोंवाले, वरदायक, अजेय, शंकुकर्ण, प्रचण्ड, दण्डनायक, लोहदण्डधारी, मुखसे हविष्य ग्रहण करनेवाले तथा हविष्यके प्रेमी हैं एवं पूजित न होनेपर जो मनुष्योंके सब कार्योंमें विघ्न डालते हैं, उन महाभयंकर पार्वतीनन्दन गणेशको मैं नमस्कार करता हूँ। जिनके गण्डस्थलसे मदकी धारा बहती है, नेत्र भयंकर हैं और मुख हाथीके समान है, जिनकी कान्ति सदा एक-सी रहती है, जो ध्रुव, निश्चल और शान्त हैं, उन विनायकको मैं प्रणाम करता हूँ। भगवन्! आप सबसे पहले प्रकट हुए हैं, आपने प्राचीन देवताओंके कार्यकी सिद्धिके लिये हाथीका रूप धारण करके समस्त दानवोंको भयभीत किया और अपनेको ऋषियों तथा देवताओंका स्वामी सिद्ध कर दिखाया।

इस प्रकार पूर्वकालमें देवताओंने शिवपुत्र गणेशका स्तवन करके अपना कार्य सिद्ध करनेके लिये रक्तचन्दनमिश्रित जल और लाल फूलोंसे उनका पूजन किया। जो चतुर्थीको लाल वस्त्र धारण करके एक या दोनों समय पूर्वोक्तरूपसे गणेशजीकी पूजा करता है और नियमसे रहते हुए नियमित भोजन करता है, वह सबको अपने वशमें कर लेता है। सम्पूर्ण तीर्थों और समस्त यज्ञोंसे जो फल प्राप्त होता है, उसीको गणेशजीकी स्तुति करके मनुष्य पा लेता है। उसे कभी विघ्नका भय नहीं होता और वह अपने पूर्वजन्मकी बातोंका स्मरण करनेवाला होता है। जो प्रतिदिन इस स्तोत्रका पाठ करता है, वह छः महीनेमें ही इसका फल पाता है। वर्षभरमें उसे सिद्धि प्राप्ति होती है और भगवान् सोमनाथ कृपापूर्वक उसे दर्शन देते हैं।

केदारलिंगकी महिमा, राजा शशिविन्दुके पूर्वजन्मका वृत्तान्त

महादेवजी कहते हैं—महादेवि! कपर्दीका पूजन करनेके पश्चात् मनुष्य केदारलिंगके समीप जाय। कपर्दीसे अग्निकोणमें भीमेश्वरके समीप केदारेश्वरनामक स्वयम्भू-लिंग स्थित है। वह कल्पपर्यन्त स्थिर रहनेवाला लिंग मुझे बहुत ही प्रिय है। उस महाप्रकाशमय लिंगको वृद्धिलिंग भी कहते हैं। देवि! स्वयं मैंने भी उनकी पूजा की है। जो चतुर्दशी (शिवरात्रि)-को वहाँ निराहार रहकर जागरण करता है, उसे सनातन लोक प्राप्त होते हैं। प्राचीन युगमें केदारेश्वरका नाम रुद्रेश्वर था। इस कलियुगमें म्लेच्छोंके स्पर्शके भयसे केदारजी समुद्रके समीप इसी लिंगमें लीन

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

हो गये, इसीलिये इसका नाम 'केदार' हो गया। जो मनुष्य आहारको जीतकर माघमासमें रुद्रेशके दक्षिणभागमें दस धनुषकी दूरीपर समुद्रमें स्थित पद्मकेतुनामक महाकुण्डमें नहाकर विधिपूर्वक रुद्रेश्वरकी पूजा करेगा, उसे केदार-यात्राका पूर्ण फल प्राप्त होगा। उनके पूजनसे ब्रह्महत्या आदि महापापोंका नाश होता है।

प्राचीन कालमें शशिविन्दु नामसे विख्यात एक चक्रवर्ती राजा थे। उनकी पतिव्रता स्त्री उन्हें प्राणोंसे भी अधिक प्रिय थी। राजाके पास एक सुन्दर सुवर्णमय आकाशगामी विमान था, जिसके द्वारा वे अपनी इच्छाके अनुसार सम्पूर्ण लोकोंमें घूमते रहते थे। एक समय फाल्गुन कृष्णपक्षकी चतुर्दशीका पर्व आनेपर राजा शशिविन्दु उत्तम प्रभासक्षेत्रमें आये। वहाँ उन्होंने बहुतसे महर्षियोंको देखा, जो जपमें और होममें तत्पर हो रात्रिमें जागरण करनेके लिये श्रीसोमनाथजीके सम्मुख बैठे हुए थे। राजाने भी सोमनाथका दर्शन और प्रणाम करके विधिपूर्वक पूजन किया और क्रमशः भक्तिभावसे उन सभी ऋषि-मुनियोंका स्वागत-सत्कार करके वे केदारलिंगके पास चले आये। वहाँ विचित्र पुष्पमालाओं, नैवेद्यों तथा मनोहर वस्त्राभूषणोंसे केदारेश्वरकी पूजा की और वहीं एकाग्रचित्त हो जागरण किया। तब वे सब मुनि कौतूहलवश राजाके समीप गये और इस प्रकार बोले—'राजन्! तुम सोमेश्वर देवको छोड़कर केदारजीके आगे जो जागरण और पूजन करते हो, इसका क्या कारण है?'

राजाने कहा—विप्रवरो! आपलोग सुनें, यह मेरे पूर्वजन्मका वृत्तान्त है। पहले जन्ममें मैं ब्राह्मणोंकी पूजा करनेवाला शूद्र था। मेरी जन्मभूमि सौराष्ट्र देशमें थी। एक समय वहाँ भयंकर अनावृष्टि हुई। उस समय मैं भूखसे व्याकुल होकर प्रभासक्षेत्रमें चला आया। वहाँ आनेपर हरिणीके मूलभागमें स्थित एक सुन्दर सरोवरपर मेरी दृष्टि पड़ी जो रामसरोवरके नामसे प्रसिद्ध है। वह तड़ाग कमलसमूहसे सुशोभित था। मैं थका माँदा तो था ही। उस सरोवरको देखकर मैंने उसमें स्नान किया तथा देवताओं और पितरोंका तर्पण करके उसके स्वच्छ जलको पीया। तत्पश्चात् मेरी स्त्रीने कहा—'इन कमल-पुष्पोंको ले लीजिये। यहाँसे निकट ही एक सुन्दर स्थान दिखायी देता है। वहाँ चलकर इन फूलोंको बेचेंगे, जिससे कुछ भोजनकी व्यवस्था हो सकेगी।' पत्नीके यों कहनेपर मैं जलके भीतर उतरा और बहुत-से कमलके फूल लेकर नगरकी ओर चला। वहाँ पहुँचकर सड़कों, चौराहों और तिमुहानियोंपर घूमता रहा; परंतु किसीने भी मेरे फूल नहीं लिये। इतनेमें दिन डूब गया और मैं अपनी पत्नीके साथ एक मन्दिरमें आकर सो रहा। वहाँ स्त्रीसहित मुझे भूख अधिक पीड़ा देने लगी। इतनेमें ही मैंने देखा किसी देवालयमें होम और जागरण हो रहा है। तब मैं भी उठकर वहाँ गया और रुद्रेश्वरनामक वृद्धिलिंगका दर्शन किया। उस समय वहाँ अनंगवती नामक एक वेश्या शिवरात्रि-व्रतमें संलग्न हो नृत्य, गीत और उत्सव आदिके द्वारा भगवान्के सामने जागरण कर रही थी। मैंने एक मनुष्यसे पूछा—'भाई! यहाँ रात्रिमें जागरण किसलिये होता है? यह नाच, गान और उत्सवमें लगी हुई कौन स्त्री दिखायी दे रही है?' उसने बताया—'आज शिवधर्मोत्तरपुराणमें प्रतिपादित शिवरात्रि है। यह धर्मपरायणा स्त्री अनंगवती नामकी वेश्या है, जो कल्याणमय शिवरात्रि-व्रत करके जागरण कर रही है। जो कोई मनुष्य शिवरात्रि-व्रत करता है, उसे दुःख-दारिद्र्य और बन्धनकी प्राप्ति नहीं होती। दुष्ट ग्रह, अरिष्टयोग, रोग अथवा भय भी उसके पास नहीं आता। वह उत्तम कुलमें उत्पन्न हो सुख और सौभाग्यसे युक्त होता है। तेजस्वी यशस्वी तथा पूर्णतः कल्याणका भागी होता है।'

उस मनुष्यकी बात सुनकर मेरे मनमें वह

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

व्रत करनेका निश्चित विचार हुआ। मैंने सोचा 'अन्नका अभाव होनेके कारण उपवास तो मुझे विवश होकर करना ही है। अतः क्षार समुद्र पद्मकतीर्थमें स्नान करके इन कमलके फूलोंसे भगवान् महेश्वरकी पूजा करूँ।' तब मैंने स्त्रीसहित स्नान करके भक्तिभावसे कमलके फूलोंद्वारा भगवान् रुद्रेश्वरका पूजन किया। पत्नीके साथ रातभर वहाँ जागता रहा। सबेरा होनेपर वेश्याने मुझसे कहा—'अपने फूलोंका मूल्य तीन भर सोना ले लो।' परंतु मैंने सात्त्विकभावका आश्रय लेकर उसका दिया हुआ मूल्य स्वीकार नहीं किया। भिक्षा माँगकर जीवननिर्वाह करने लगा। दीर्घकालके पश्चात् मेरी मृत्यु हुई। उस समय यह मेरी प्राणप्यारी पत्नी मेरे शरीरको लेकर चिताकी आगमें प्रवेश कर गयी। उस पूजन और जागरणके प्रभावसे मैं पूर्वजन्मकी बातोंको स्मरण रखनेवाले चक्रवर्ती राजा हुआ। एक बार संयोगवश यह व्रत किया था, जिसका यह महान् फल प्राप्त हुआ। अब मैं भक्तिभावसे यथावत् सामग्रीके साथ जो इस व्रतका पालन करता हूँ, इसका भविष्यमें क्या फल होगा—यह मैं नहीं जानता।

यह सुनकर उन ब्राह्मणोंके नेत्र आश्चर्यसे खिल उठे। उन्होंने 'साधु-साधु' कहकर राजाकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। उन्होंने स्वयं भी उस स्वयम्भू-लिंगका पूजन किया। राजा शशिविन्दु उस केदारलिंगके प्रसादसे देवदुर्लभ उत्तम सिद्धिको प्राप्त हुए। अनंगवती वेश्या शिवरात्रि-व्रत तथा केदार लिंगके प्रभावसे रम्भा नामक अप्सरा हुई। इसलिये जो विद्वान् पुरुष धर्म, अर्थ, काम और मोक्षकी इच्छा रखता हो, उसे प्रयत्नपूर्वक उक्त शिवलिंगका पूजन करना चाहिये।

श्वेतकेत्वीश्वर आदि विभिन्न शिवलिंगोंका माहात्म्य

महादेवजी कहते हैं—महादेवि! पूर्वकालमें जब स्वायम्भुव मन्वन्तरका त्रेतायुग चल रहा था, उस समय श्वेतकेतु नामके एक राजर्षि थे। वे बड़े भारी तपस्वी थे। उन्होंने प्रभासक्षेत्रमें आकर समुद्रके तटपर शिवलिंगकी स्थापना करके महान् तप प्रारम्भ किया। तपस्या और नियमका पालन करते हुए उनके चौदह वर्ष बीत गये। तब मैंने उन्हें दर्शन देकर कहा—'सुव्रत! वर माँगो।' श्वेतकेतु बोले—'प्रभो! मुझे अपनी अविचल भक्ति दीजिये और इस स्थानपर सदा निवास कीजिये।' 'एवमस्तु' कहकर मैं वहाँसे अन्तर्धान हो गया। कुछ कालके पश्चात् राजा श्वेतकेतुने उस लिंगकी आराधना करके महान् अभ्युदययुक्त स्थान प्राप्त किया। इसलिये उस शिवलिंगका नाम श्वेतकेत्वीश्वर हो गया। तदनन्तर कलियुग आनेपर पवनपुत्र भीमसेन अपने भाइयोंके साथ तीर्थयात्राके प्रसंगसे प्रभास-क्षेत्रमें आये। उन्होंने रात्रिमें जागरण करके समुद्रके समीप श्वेतकेत्वीश्वर लिंगका पूजन किया। तबसे उसका नाम भीमेश्वरलिंग हुआ। श्वेतकेत्वीश्वरलिंगका एक बार दर्शनमात्र कर लेनेसे अन्य जन्मोंके किये हुए तथा इस जन्मके भी बहुत-से पाप तत्काल नष्ट हो जाते हैं। भीमेश्वरसे पूर्व और सोमनाथसे अग्निकोणमें सरस्वतीद्वारा स्थापित महाप्रभावशाली रवेश्वरलिंग है। मनुष्यको चाहिये कि वह सरस्वती देवी तथा भैरवेश्वरलिंगका विधिपूर्वक पूजन करे। जो महानवमीको विधिवत् स्नान करके सरस्वती देवीका पूजन करता वह वाणीजनित समस्त दोषोंसे मुक्त हो जाता है। जो अघोर-मन्त्रसे दूधके द्वारा उस लिंगको नहलाकर उसकी पूजा करता है, वह यात्राके उत्तम फलको पाता है।

वहाँसे चण्डीश्वरदेवके पास जाय, वह स्थान सोमनाथके दक्षिण सात धनुषकी दूरीपर स्थित है।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

पूर्वकालमें चण्डीदेवीने भगवान् दण्डपाणिकी स्थापना की थी। तत्पश्चात् मेरे गण चण्डने उस लिंगकी आराधना की और वहाँ बड़ी कठोर तपस्या की। इस कारण पृथ्वीपर वह चण्डेश्वर लिंगके नामसे विख्यात हुआ। चण्डेश्वरको दूध, दही, मधु, घृत तथा ईखके रससे स्नान कराये और उनके श्रीअंगमें कुंकुमका लेप करे। फिर कपूर, खस और कस्तूरी मिलाया हुआ सुगन्धित चन्दन लगाये। तदनन्तर फूलोंसे उनका पूजन करे। इसके बाद धूप तथा अगुरु निवेदन करके अपने वैभवके अनुसार वस्त्रोंसे पूजन करे। उत्तम नैवेद्य लगाके दीपमाला जलाकर रखे और ब्राह्मणोंको यथाशक्ति दक्षिणा दे। यों करनेसे पितर कल्पपर्यन्त तृप्त रहते हैं।

पार्वती! सोमनाथसे पश्चिम सात धनुषकी दूरीपर आदित्येश्वर नामक शिवलिंगके समीप जाय, जिसकी स्थापना साक्षात् भगवान् सूर्यने की है और जो समस्त पातकोंका नाश करनेवाला है। त्रेतायुगमें महात्मा समुद्रने दस हजार वर्षोंतक रत्नोंद्वारा आदित्येश्वरका पूजन किया था। इससे पृथ्वीपर इनका नाम रत्नेश्वर प्रसिद्ध हुआ। रत्नेश्वरको पंचामृतसे नहलाकर पंचरत्नोंद्वारा उनकी पूजा की जाती है। इसके बाद भाँति-भाँतिके उपचारोंसे विधिपूर्वक उनकी अर्चना करनी चाहिये। यों करनेपर मनुष्य मेरुपर्वतके दानका फल पाता है। उसे सब तीर्थोंके सेवनका फल मिल जाता है और वह अपने पितृकुल और मातृकुल दोनोंका उद्धार कर देता है। रत्नेश्वरका दर्शन करके मनुष्य अपने सब पाप धो डालता है। जो विधिपूर्वक रत्नेश्वर लिंगकी पूजा करके शतरुद्रियका जप करता है, वह फिर इस संसारमें जन्म नहीं लेता।

महादेवि! वहाँसे परम उत्तम अंगारेश्वरके समीप जाय, जिसकी स्थापना भूमिपुत्र मंगलने की है। वह स्थान सोमनाथसे ईशानकोणमें है। पूर्वकालमें मंगलने प्रभासक्षेत्रमें आकर बाल्यावस्थासे ही तपस्याद्वारा मेरी आराधना की। तब मैंने सन्तुष्ट होकर उन्हें वर माँगनेके लिये कहा। मंगल बोले— 'सर्वेश्वर! मुझे ग्रहका पद प्रदान कीजिये।' मैंने **'तथास्तु'** कहकर मंगलको यह बताया कि 'जो मनुष्य वहाँ आकर भक्तिपूर्वक तुम्हारी पूजा करेगा, उसे कभी तुम्हारे द्वारा दी हुई पीड़ा नहीं भोगनी पड़ेगी।' यों कहकर मैं वही अन्तर्हित हो गया। मंगलदेव ग्रहोंके मध्यमें विमानपर विराज रहे हैं।

अंगारेश्वरसे उत्तर दिशामें महाप्रभावशाली बुधेश्वर विद्यमान हैं। उनका स्थान वहाँसे अधिक दूर नहीं, दो ही धनुषके अन्तरपर है। वे दर्शनमात्रसे ही सब पाप हर लेते हैं। देवेश्वरि! बुधने पूर्वकालमें वहाँ बड़ी भारी तपस्या की और निर्मल शिवलिंग स्थापित किया। इससे सन्तुष्ट होकर मैंने बुधको ग्रहत्व प्रदान किया है। बुधवार और अष्टमीके योगमें बुधद्वारा स्थापित शिवलिंगकी विधिवत् पूजा करके मनुष्य राजसूय यज्ञका फल पाता है। बुधेश्वरके प्रसादसे उसके कुलमें दुःख और दुर्भाग्य प्रवेश नहीं करते।

उमा-मन्दिरके पूर्वभागमें सिद्धेश्वरसे आग्नेय कोणमें बृहस्पतिद्वारा स्थापित महालिंग है। बृहस्पतिजीने भक्तिभावसे उसकी आराधना करके मुझ देवेश्वर शिवको सन्तुष्ट किया। इससे उन्होंने सम्पूर्ण मनोवांछित फल प्राप्त कर लिये। मुझसे ज्ञान पाकर वे देवताओंके पूजनीय गुरु हो गये और ग्रहके पदपर प्रतिष्ठित हो इस समय स्वर्गलोकमें आनन्द भोगते हैं। बृहस्पतीश्वरका भक्तिभावसे दर्शन करके मनुष्य कभी दुर्गतिमें नहीं पड़ता। उसे बृहस्पतिकी ओरसे पीड़ा नहीं प्राप्त होती। शुक्लपक्षकी चतुर्दशी तथा गुरुवारके योगमें पंचोपचारसे विधिपूर्वक उक्त लिंगकी पूजा करके मानव परम पदको प्राप्त कर लेता है।

तदनन्तर विभूतिश्वरसे पश्चिम थोड़ी ही दूरपर शुक्राचार्यके द्वारा स्थापित शिवलिंग है; जहाँ शुक्रने शुक्रेश्वर शिवके प्रभावसे मृतसंजीवनी विद्या प्राप्त की थी। जो मनुष्य स्थिरचित्त होकर उस शिवलिंगकी आराधना करता है और एक लाख मृत्युंजय मन्त्रको जपता है, वह अपने

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

सभी मनोरथोंको प्राप्त कर लेता है। शुक्रेश्वरका दर्शन और स्पर्श करके मनुष्य जन्मसे लेकर मृत्युतकके सभी पातकोंसे मुक्त हो जाता है। सुगन्धित पुष्पोंद्वारा उनकी पूजा करनेसे शुक्रकी पीड़ा नहीं प्राप्त होती।

बुधेश्वरसे पश्चिम और अजादेवीसे अग्निकोणमें समीप ही पाँच धनुषकी दूरीपर शनैश्चरेश्वरका स्थान है। छायानन्दन शनैश्चरने अत्यन्त कठिन तपस्या करके उस लिंगमें मुझ अनादि, अनन्त शिवको उतारा है। उन्होंने भक्ति तथा मेरे प्रसादसे ग्रहका पद प्राप्त किया है। शनैश्चरके दिन शमीके पत्तोंसे शनैश्चरेश्वरका पूजन करके तिल, उड़द, गुड़ और भातसे ब्राह्मणको तृप्त करे। उसे काले रंगका बैल दान करे। तत्पश्चात् सब प्रकारकी पीड़ाओंका निवारण करनेके लिये अनेकानेक स्तोत्रोंद्वारा शनैश्चरेश्वर देवकी स्तुति करनी चाहिये। जो मनुष्य प्रतिदिन भक्तिभावसे शनैश्चरेश्वरका स्मरण करता है, उसके ऊपर सूर्यनन्दन शनैश्चर प्रसन्न होते हैं।

शनैश्चरेश्वरसे वायव्यकोणमें राहुद्वारा स्थापित शिवलिंग है, जहाँ विप्रचित्तिके पुत्र राहुने एक सहस्र वर्षतक तपस्या की है। जो उनके द्वारा स्थापित शिवका भक्तिपूर्वक पूजन और दर्शन करता है, उसका पाप नष्ट हो जाता है।

राह्वीश्वरसे उत्तर और अंगारेश्वरसे दक्षिण एक ही धनुषके अन्तरपर महाप्रकाशमय केतुलिंग है। वह सब पापोंका नाश करनेवाला है। केतुने मुझ शिवके प्रति भक्ति रखकर देवताओंके मानसे सौ वर्षोंतक वहाँ उग्र तपस्या की थी। इससे संतुष्ट होकर मैंने उन्हें ग्रहत्व प्रदान किया। भयंकर ग्रहपीड़ा होनेपर पुष्प, गन्ध, धूप तथा भाँति-भाँतिके शुभ नैवेद्योंद्वारा केत्वीश्वरकी पूजा करके उन्हें प्रसन्न करना चाहिये। इससे सब पीड़ा शान्त हो जाती है। जो पूर्वोक्त चौदह देवस्थानोंको भक्तिभावसे जानता है, वह क्षेत्रके फलका भागी होता है।

प्रभासक्षेत्रकी त्रिविध शक्तियों तथा दूतीशक्तियोंके दर्शन-पूजनका माहात्म्य

महादेवजी कहते हैं—सोमेश्वरसे ईशानकोणमें वरारोहा देवीसे पूर्वभागमें परम उत्तम सर्वेश्वर देव विराजमान हैं। उनके समीप भक्तिपूर्वक जाकर मनुष्य अणिमा आदि सिद्धियाँ प्राप्त करता है। सर्वेश्वरकी स्थापना सिद्धोंने की है। जो मानव भक्तिपूर्वक उनका दर्शन करता है, वह सब पातकोंसे मुक्त हो सिद्धलोकमें जाता है। काम, क्रोध, भय, लोभ, राग, मात्सर्य, ईर्ष्या, दम्भ, आलस्य, निद्रा, मोह, अहंकार—ये सिद्धिमें विघ्न डालनेवाले दोष हैं। सिद्धेश्वरके पूजनसे इन सब दोषोंका नाश हो जाता है। यों जानकर प्रयत्नपूर्वक वहाँकी यात्रा करे।

सिद्धेश्वरके पूर्वभागमें थोड़ी ही दूरपर कपिलेश्वर लिंग प्रतिष्ठित है, जिसके दर्शनमात्रसे सब पापोंका नाश हो जाता है। प्राचीन कालमें कपिल नामसे प्रसिद्ध एक राजर्षि हो गये हैं। उन्होंने वहाँ बड़ी भारी तपस्या करके उत्तम सिद्धि प्राप्त की और शिवलिंगकी स्थापना करके मेरी समीपता पायी है। उस लिंगमें मैं सब लोगोंके हितके लिये सदा निवास करता हूँ। जो शुक्लपक्षकी चतुर्दशी तिथिमें सात बार सोमेश-कपिलेश्वरका दर्शन करता है, वह गोदानका फल पाता है। जो वहाँ तिलमयी धेनु दान करता है, वह एक-एक तिलकी संख्याके बराबर युगोंतक स्वर्गलोकमें निवास करता है।

दण्डपाणीश्वरसे निकट ही गन्धर्वेश्वर नामसे प्रसिद्ध उत्तम शिवलिंग है। गन्धर्वराज धनवाहनने वहाँ कठोर तपस्या करके उस शिवलिंगको स्थापित किया है। उसकी पुत्री गन्धर्वसेनाने भी वहाँ शिवलिंगकी स्थापना की है। जो मनुष्य

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

पवित्र होकर यत्नपूर्वक गन्धर्वेश्वरका पूजन और दर्शन करता है, वह गन्धर्वलोकमें जाता है। जो उत्तरायण आनेपर अग्नितीर्थमें स्नान करके गन्धर्वपूजित उस शिवलिंगका पूजन करता है, वह मोक्षको प्राप्त होता है। इस माहात्म्यका श्रवण और अभिनन्दन करके भी मनुष्य महान् भयसे मुक्त हो जाता है।

गन्धर्वेश्वरके पूर्वभागमें गौरीजीके समीप विमलेश्वर नामक लिंग प्रतिष्ठित है। जिसका शरीर क्षयरोगसे आक्रान्त है, वह भक्तिपूर्वक विमलेश्वरका दर्शन करके सब दु:खोंका अन्त कर देता और निर्मल पदको प्राप्त होता है। वहीं रोगग्रस्त गन्धर्वसेना रोगसे मुक्त हो विमल स्वरूपको प्राप्त हुई थी, इसलिये पृथ्वीपर वह लिंग विमलेश्वर नामसे प्रसिद्ध हुआ।

ब्रह्माजीके स्थानसे नैर्ऋत्यकोणमें सोलह धनुषकी दूरीपर धनदेश्वर लिंग है। यह राहुलिंगसे वायव्यकोणमें स्थित है। कुबेरने वहाँ बड़ी भारी तपस्या करके धनदका पद प्राप्त किया है। वे विधिपूर्वक शिवलिंगकी स्थापना और पूजा करके अलकापुरीके स्वामी हुए हैं। जो मनुष्य भक्तिपूर्वक धनदेश्वरका दर्शन करके पंचोपचारसे उनकी पूजा करता है, उसके कुलमें दरिद्रताका कभी नाम भी नहीं सुना जाता।

मेरी तीन शक्तियाँ हैं—इच्छाशक्ति, क्रियाशक्ति और ज्ञानशक्ति। पहले जो चौदह और पाँच शिवलिंग बताये गये हैं, उनमेंसे यथाशक्ति चार, तीन या एककी पूजा करके फिर पूर्वोक्त तीन शक्तियोंका पूजन करना चाहिये। सोमेश्वरसे ईशानकोणमें जो वरारोहा देवी कही गयी हैं, वे चन्द्रमाकी अमा नामक कला हैं। वे ही भगवती उमाकी भी कला मानी गयी हैं। उन्हींको मेरी इच्छाशक्ति जानना चाहिये। वरारोहा देवी भूमण्डलके समस्त प्राणियोंका हित करनेके लिये प्रभासक्षेत्रमें विराजमान हैं।

सोमेश्वरसे वायव्यकोणमें साठ धनुषकी दूरीपर क्रियाशक्तिरूपा दूसरी महादेवी स्थित हैं। वहीं योगिनीवन्दित पीठ है। उसी स्थानपर पातालको जानेवाला एक बहुत बड़ा विवर है। पहले उन महादेवीका नाम भैरवी था। फिर इस वैवस्वत मन्वन्तरके अट्ठाईसवें चुतुर्युगमें राजा अजापालके द्वारा आराधित होनेके कारण वे अजापालेश्वरीक नामसे विख्यात हुई हैं। जो मनुष्य लौकिक सुखभोगकी इच्छा रखता है, उसे गन्ध, धूप, अलंकार, वस्त्र तथा अन्य उपचारोंद्वारा उन महादेवीका पूजन करना चाहिये।

प्रभासक्षेत्रके मध्यभागमें दरिद्रताका विनाश करनेवाली तीसरी अजादेवी हैं, जिन्हें ज्ञानसक्ति माना गया है। उनका स्थान राह्वीश्वरसे दक्षिणभागमें है। अघासुरके साथ जब मेरा भयंकर युद्ध चल रहा था, उस समय मेरे क्रोधसे अजा नामकी देवी प्रकट हुईं। उनके साथ करोड़ों देवियाँ और थीं। वे सिंहपर सवार थीं। उनका रूप बड़ा सुन्दर था। उन्होंने ढाल और तलवार लेकर बड़े-बड़े दैत्योंका संहार किया। उनके भयसे बहुत-से दैत्य समुद्रकी ओर भागे। देवी सिंहवाहिनी और उनके गणोंने उन सबका पीछा किया। वे दैत्य इधर-उधर भागते हुए महासागरके समीप प्रभासक्षेत्रमें आ पहुँचे। वहाँ कुछ तो मार डाले गये और कुछ पातालमें समा गये। सब दैत्योंको मारा गया देख तथा इस क्षेत्रको परम पवित्र जानकर सिंहवाहिनी देवी यहीं सोमेश्वरके ईशानकोणमें और गौरीश्वरसे उत्तर दिशामें स्थित हुईं। जो स्त्री या पुरुष वहाँ उनका दर्शन करते हैं, वे सात जन्मोंतक पूर्णत: सौभाग्यशाली होते हैं। जो मानव वहाँ गीत, वाद्य तथा नृत्य करता है, उसके वंशमें देवीके प्रसादसे कोई दुर्भाग्यवान् नहीं होता। जो स्त्री वहाँ लाल रंगकी बत्तीसे युक्त, दीपकको घीसे जलाकर देवीको अर्पण करती है, उस बत्तीमें जितने सूत होते हैं, उतने जन्मोंतक वह सौभाग्य प्राप्त करती है। जो तृतीयाको इस माहात्म्यका पाठ करता है अथवा जो भक्तिपूर्वक इसे सुनता है, वह सम्पूर्ण मनोरथोंको प्राप्त कर लेता है।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

प्रभासक्षेत्रमें तीन दूती शक्तियाँ हैं—पहलीका नाम मंगला देवी है, दूसरीको विशालाक्षी देवी कहते हैं और तीसरी चत्वर देवीके नामसे प्रसिद्ध हैं। प्रभासक्षेत्रकी यात्राका पूरा-पूरा फल चाहनेवाले मनुष्यको क्रमशः इन तीनों शक्तियोंका पूजन करना चाहिये। मंगलादेवी ब्रह्माजीकी शक्ति कही गयी हैं, विशालाक्षी विष्णुशक्ति मानी गयी हैं तथा चत्वरप्रिया देवी मेरी शक्ति हैं। पहले मंगला देवीकी पूजा करनी चाहिये। वे अजादेवीके उत्तरभागमें निवास करती हैं। राह्लीशके दक्षिणभागमें थोड़ी ही दूरपर उनका स्थान है। सोमनाथकी प्रतिष्ठाके लिये जब सोमने यज्ञ प्रारम्भ किया, उस समय उसे देखनेके लिये वहाँ आये हुए ब्रह्मादि देवताओंका उसी देवीने मंगल किया था। इसीलिये उसका नाम मंगला हुआ। जो नारी तृतीयाको मंगला देवीकी पूजा करेगी, उसके अमंगल और दुःख पूर्णतः नष्ट हो जायँगे। भगवान् दैत्यसूदनसे पूर्वभागमें वैष्णवी क्षेत्र दूती महादेवी विशालाक्षी हैं। योगेश्वरीसे ईशानकोणमें सौ धनुषकी दूरीपर उसका स्थान है। जो लोग महान् दुर्भाग्यकी आगमें जल रहे हैं, उनका दाह शान्त करनेके लिये विशालाक्षी देवी ओषधिके समान हैं। चाक्षुष मन्वन्तरमें जब सब दैत्य भगवान् विष्णुकी मार खाकर दक्षिण दिशामें भाग गये, उस समय उनको मारना दुष्कर जानकर भगवान् विष्णुने अत्यन्त प्रभावशालिनी भैरवी शक्ति महामायाका स्मरण किया। उनके स्मरण करते ही अत्यन्त प्रकाशमयी महामाया वहाँ आ गयी। भगवान् विष्णुके दर्शनसे उसके नेत्र आनन्दसे खिल उठे। उसने बड़ी-बड़ी आँखें करके भगवान्को देखा। इससे उसका नाम विशालाक्षी हुआ। इस कल्पमें उसे ललितोमा कहते हैं। जो माघमासमें तृतीया तिथिको विधिपूर्वक उसका पूजन करता है, उसके वंशमें कोई भी सन्तानहीन नहीं होता। जो मानव भक्तिभावसे उसका दर्शन करता है, वह दीर्घकालतक नीरोग, सुखी और सौभाग्यशाली होता है।

ललितासे उत्तर दिशामें दस धनुषकी दूरीपर तीसरी शक्ति चत्वरप्रियाका निवास है। मेरी प्रेरणासे वह इस क्षेत्रकी रक्षामें संलग्न रहती है। चबूतरों, चौराहों, पुराने घरों, बगीचों तथा महलोंकी अटारियोंपर एवं मार्गमें वह रातको घूमती रहती है। जो स्त्री अथवा पुरुष महानवमीके दिन नाना प्रकारके उपहारों और फूलोंसे उस कल्याणमयी देवीकी विधिपूर्वक पूजा करता है, उसके ऊपर प्रसन्न हो वह सम्पूर्ण लोक प्रदान करती है। यात्राके उत्तम फलकी इच्छा रखनेवाले पुरुषोंको वहाँ भोजन देना चाहिये।

भैरवेश्वर आदि विविध लिंगोंका माहात्म्य

महादेवजी कहते हैं—पार्वती! योगेश्वरीसे दक्षिण थोड़ी ही दूरपर उत्तम भैरवेश्वरका स्थान है। प्राचीन कालमें देवीने जब दैत्योंके विनाशके लिये उद्योग किया, तब मेरे स्वरूपभूत भैरवको बुलाकर दूतके कार्यपर नियुक्त किया। इसलिये उस समय उनका नाम 'शिवदूती' हुआ। उसके बाद वे ही योगेश्वरी नामसे विख्यात हुईं। उन्होंने भैरवको दूत बनाया था, इसलिये उनके द्वारा स्थापित शिवलिंगका भैरवेश्वर नाम हुआ। जो मनुष्य कार्तिककी पूर्णिमाको उस शिवलिंगकी पूजा करता है अथवा जो छः महीनेतक निरन्तर उसकी पूजामें संलग्न रहता है, वह मनोवांछित फलको प्राप्त कर लेता है।

भैरवेश्वरसे पूर्वदिशामें पाँच धनुषकी दूरीपर लक्ष्मीश्वर नामसे प्रसिद्ध शिवलिंग है, जो दरिद्रताका नाश करनेवाला है। जो श्रीपंचमीको विधिपूर्वक भक्तिभावसे लक्ष्मीश्वरका पूजन करता है, उसको लक्ष्मी कभी नहीं छोड़तीं। लक्ष्मीश्वरसे उत्तर

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

और विशालाक्षीसे दक्षिण वाडवद्वारा स्थापित अत्यन्त प्रभावशाली वाडवेश्वरलिंग विराजमान है। उसको दधिसे स्नान कराकर विधिपूर्वक पूजा करनी चाहिये। जो मानव वहाँ वेदज्ञ ब्राह्मणको दहीका दान करता है, वह तेजस्वी लोकोंमें जाता और यात्राका उत्तम फल पाता है। विशालाक्षीसे उत्तर थोड़ी ही दूरपर देवताओं और गन्धर्वोंसे पूजित अर्घ्येश्वरलिंग प्रतिष्ठित है। जो पंचामृतसे स्नान कराकर अर्घ्येश्वरका पूजन करता है, वह सात जन्मोंतक विद्वान्, शास्त्रवक्ता और सब संदेहोंका निवारण करनेवाला होता है।

महादेवि! दैत्यसूदनके पश्चिमभागमें सात धनुषकी दूरीपर कामेश्वर नामक महान् लिंग है, वह सब पापोंको हरनेवाला तथा संपूर्ण अभीष्ट फलोंको देनेवाला है। इस प्रकार पंचवक्त्रलिंग बताये गये। सोमेश्वरसे पूर्व साठ धनुषकी दूरीपर अर्थेश्वरलिंग है। जो मनुष्य उसे पंचामृतसे नहलाकर विधिपूर्वक पूजन करता है, वह सात जन्मोंतक पूर्ण विद्या पाता है और शास्त्रोंका उत्तम वक्ता होता है। जो पुत्रहीना स्त्री वहाँ नारियल चढ़ाती है, वह शीघ्र ही सबल एवं सुन्दर पुत्र पाती है। जो नारी वहाँ लाल बत्तीसे युक्त दीपकको घीसे जलाकर अर्पण करती है, उसके दीपककी बत्तीमें जितने तार होते हैं, उतने जन्मोंतक वह सदैव सौभाग्यवती होती है। जो पराभक्तिके साथ वहाँ नृत्य करती है, वह दीर्घकालतक आरोग्य, सुख और सौभाग्यसे युक्त होती है। वहाँ स्वच्छ जलसे भरा हुआ एक महान् कुण्ड है। जो मनुष्य उसमें स्नान करता है, वह सब पातकोंसे छूट जाता है। जो भक्तिपूर्वक पितरोंके उद्देश्यसे वहाँ श्राद्ध करता है, वह पुण्यात्मा अपने पितरोंके साथ परमपदको प्राप्त होता है। इसलिये सर्वथा प्रयत्न करके वहाँ श्राद्ध करना चाहिये। रात्रिमें गीत, वाद्य और नृत्य आदिके आयोजनद्वारा वहाँ जागरण करना उचित है। वहाँ ब्राह्मण-दम्पतिको पहननेके लिये वस्त्र और दक्षिणा देनी चाहिये।

देवि! प्रभासक्षेत्रमें जो यह तपोवन है, यह गौरी तपोवनके नामसे विख्यात है। यह सब ओर पचास-पचास धनुषतक फैला हुआ है। इसके मध्यभागमें सतीदेवी एक पैरसे खड़ी होकर तपस्यामें लगी थीं। उस स्थानसे चार धनुष दूर ईशानकोणमें गौरीश्वरलिंग है, जो पापभयको दूर करनेवाला है। जो मनुष्य सदा ही—विशेषतः कृष्णपक्षकी अष्टमीको श्रद्धापूर्वक गौरीश्वरका पूजन करता है, वह सब पातकोंसे मुक्त हो जाता है। यहाँ सब पापोंकी शान्तिके लिये गोदान और अन्नदान श्रेष्ठ कहा गया है। गौरीश्वरलिंगके दर्शनसे गोघाती, ब्रह्महत्यारे तथा अन्यान्य पापी भी सब पापोंसे छूट जाते हैं। गौरीतपोवनसे अग्निकोणमें बीस धनुष दूर वरुणजीके द्वारा स्थापित वरुणेश्वरलिंग है। उनका दर्शन करनेसे मनुष्य सब तीर्थोंका फल पा लेता है। अष्टमी और चतुर्दशीको यदि उन्हें दहीसे नहलाया जाय तो वह ब्राह्मण चारों वेदोंका ज्ञाता है। पार्वती! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, वर्णसंकर, गूँगे, बहरे, बालक, स्त्री और नपुंसक भी वरुणेश्वरका दर्शन करके धर्मपरायण हो स्वर्गलोकमें चले जाते हैं। जो उस स्थानमें स्नान, जप, होम और पूजन करता है, उसका वह सब शुभकर्म अक्षय हो जाता है।

वरुणेश्वरसे दक्षिण तीन धनुषके अन्तरपर ईषेश्वरलिंग है। पतिके दुःखसे घिरी हुई वरुणपत्नी ईषाने उस सिद्धिदायक महालिंगकी स्थापना की थी। जो मनुष्य पापनाशक ईषेश्वरका भक्तिपूर्वक पूजन करता है, वह परम गतिको प्राप्त होता है। ईषेश्वरलिंग स्त्रियोंके लिये सौभाग्यदाता एवं दुःख दुर्भाग्यका नाशक है।

वरुणेश्वरसे नैर्ऋत्यकोणमें तीस धनुष दूर पश्चिम मुखवाला कुमारेश्वरलिंग प्रतिष्ठित है। कुमार कार्तिकेयने बड़ी भारी तपस्या करके यहाँ उस महालिंगकी स्थापना की थी, इसीसे उसका नाम कुमारेश्वर हुआ। जो मनुष्य भक्तिपूर्वक कुमारेश्वरकी पूजा करता है, उसे एक ही दिनमें छः मासकी

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

आराधनाका फल मिल जाता है। काम, क्रोध, लोभ, राग और मात्सर्य छोड़कर ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए इन्द्रियसंयमपूर्वक एक बार अवश्य कुमारेश्वरका पूजन करना चाहिये।

दैत्यसूदनके स्थानसे वायव्यकोणमें तीस धनुषपर शाकल्यके द्वारा पूजित शाकल्येश्वर नामक लिंग है। राजर्षि शाकल्यने वहाँ बड़ी भारी तपस्या और आराधना करके मुझ महादेवका प्रत्यक्ष दर्शन पाया तथा प्रसन्न हुए मुझ महेश्वरको उस लिंगमें उतारा है। पार्वती! शाकल्येश्वरके दर्शनसे मानवोंके सात जन्मोंका पाप तत्काल नष्ट हो जाता है। अष्टमी और चतुर्दशी तिथियोंको वहाँ दूधसे शाकल्येश्वरको स्नान कराये और क्रमशः गन्ध-पुष्प आदिके द्वारा विधिपूर्वक उनकी पूजा करे। तीर्थयात्राका उत्तम फल चाहनेवाले पुरुषोंको वहाँ सुवर्ण दान करना चाहिये। सत्ययुगमें उनका नाम 'भैरवेश्वर' कहा गया है। फिर त्रेतामें 'सावर्णिकेश्वर' हुआ। द्वापर आनेपर उन्हें 'गालवेश्वर' नाम प्राप्त हुआ और अब कलियुगमें उनका चौथा नाम 'शाकल्येश्वर' हुआ है। इस प्रकार उस लिंगके चारों युगोंमें प्रसिद्ध नाम बताये गये। इनका कीर्तन करनेपर ये पापोंका नाश, पुण्यकी वृद्धि तथा संपूर्ण कामनाओंकी पूर्ति करते हैं। इनका मण्डल सब ओरसे अठारह धनुषका है। वह लिंग उस क्षेत्रमें निवास करनेवाले प्राणियोंके महान् पापोंको भी हर लेता है। वहाँ जो कृमि, कीट, पतंग और पशु-पक्षी हैं, उनको भी वह मोक्ष प्रदान करता है। उस स्थानपर जो कूप आदि हैं, उनमें सरस्वतीजीका जल है। उस लिंगके दर्शनसे मनुष्य सहस्र अश्वमेध और सौ वाजपेय यज्ञोंका फल पाता है। जो बुद्धिमान् पुरुष चन्द्रग्रहणके अवसरपर घृतकी आहुति देते हुए वहाँ लिंगके समीप अघोर-मन्त्रका जप करता है, उसे मोक्ष प्राप्त होता है। यहाँ रहनेवाले महापातकी और उपपातकी मनुष्य भी स्वर्गमें जाते और उत्तम सिद्धि पाते हैं। शाकल्येश्वर लिंग 'कामिक' कहा गया है। वह इच्छानुसार फल देनेवाला है।

कलकलेश्वर, उत्तंकेश्वर, वैश्वानरेश्वर तथा गौतमेश्वरकी महिमा

महादेवजी कहते हैं—पार्वती! शाकल्येश्वरसे नैर्ऋत्यकोणमें साठ धनुष दूर कलकलेश्वर लिंग है, जो सब पापोंका नाश करनेवाला है। भिन्न-भिन्न युगोंमें उसके भिन्न-भिन्न नाम माने गये हैं। पहले सत्ययुगमें उसका नाम कामेश्वर था, फिर त्रेतामें पुलहेश्वर, द्वापरमें सिद्धनाथ और कलियुगमें नारदेश्वर हुआ। उसीको कलकलेश्वर भी कहते हैं। जिस समय सरस्वती नदी समुद्रमें मिलनेके लिये आयी, उस समय उसके जलके शब्दसे, महासागरकी गर्जनासे तथा देवता, गन्धर्व, ऋषि, सिद्ध और चारणोंने जो हर्ष-ध्वनि की उसके शब्दसे महान् कलकल नाद हुआ। उस कलकल ध्वनिसे मेरा लिंगमय स्वरूप प्रकट हुआ। इसीलिये उसे कलकलेश्वर कहा गया। द्वापरकी सन्धिमें जब कलियुगका प्रवेश हुआ, उस समय देवर्षि नारदने उस लिंगके समीप उग्र तपस्या की और देवाधिदेव महादेवजीकी प्रसन्नताके लिये पौण्डरीक नामक महायज्ञका अनुष्ठान किया। उस यज्ञके पूर्ण होनेपर प्रभासक्षेत्रके निवासी सहस्रों ब्राह्मण दक्षिणाके लिये आये। नारदजीने वहाँ भूमिपर रत्नों और सुवर्णकी वर्षा कर दी। सब ब्राह्मण उसे लेनेके लिये महान् कोलाहल करने लगे। इस कारण भी उस शिवलिंगका नाम कलकलेश्वर हुआ। जो मनुष्य उस शिवलिंगको भक्तिपूर्वक स्नान कराकर उसकी तीन बार प्रदक्षिणा करता है, वह मेरे प्रसादसे निश्चय ही रुद्रलोकमें जाता है। जो मानव वहाँ ब्राह्मणोंको सुवर्णदान करके भक्तिपूर्वक गन्ध, पुष्प और चन्दन आदिसे कलकलेश्वरकी पूजा करता है, वह परमपदको प्राप्त होता है।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

कलकलेश्वरके समीप ही नकुलीश तथा दो परम पुण्यमय लिंग हैं। जो मनुष्य भादोंमासके शुक्लपक्षकी चतुर्दशीको उपवास करके उनके समीप जागरण करता है और नकुलीश तथा उन दोनों लिंगोंकी पृथक्-पृथक् पूजा करता है, वह मुझ महेश्वरके परम धामको जाता है।

महादेवि! वहाँसे दक्षिण थोड़ी ही दूरपर उत्तंकेश्वर लिंग है, जिसे महात्मा उत्तंकने स्वयं ही भक्तिपूर्वक स्थापित किया है। जो उसका दर्शन, स्पर्श और भक्तिभावसे विधिवत् पूजन करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। उस स्थानसे अग्निकोणमें पाँच धनुषकी दूरीपर वैश्वानरेश्वर देव विराजमान हैं। प्राचीन कालमें वहाँ किसी तोतेने मन्दिरके भीतर सुन्दर घोंसला बना रखा था। उसमें अपनी स्त्रीके साथ रहकर उसने दीर्घकालतक तपस्या की। घोंसलेमें आने जानेके कारण वे दोनों दम्पति प्रतिदिन वैश्वानरेश्वरकी परिक्रमा कर लेते थे। दीर्घकालके पश्चात् उन दोनोंकी मृत्यु हो गयी। उसीके प्रभावसे वे दोनों इस पृथ्वीपर अपने पूर्वजन्मकी बातोंका स्मरण रखनेवाले ब्राह्मण-दम्पति हुए। स्त्रीका नाम लोपामुद्रा और पुरुषका नाम अगस्त्य हुआ। उन दोनोंने परम सिद्धि प्राप्त की। अपने पूर्व शरीरके वृत्तान्तको याद करके महात्मा अगस्त्यने कहा है कि 'जो मनुष्य वह्नीश्वरकी परिक्रमा करके उनका दर्शन करता है, वह निश्चय ही सिद्धिको प्राप्त होता है। जो मानव श्रद्धापूर्वक अग्नीश्वरको घृतसे नहलाकर विधिपूर्वक उनकी पूजा करता है और श्रेष्ठ ब्राह्मणको सुवर्ण देता है, वह अग्निलोकमें जाकर अनन्त कालतक आनन्द भोगता है।'

वैश्वानरेश्वरसे पश्चिम सात धनुषकी दूरीपर लकुलीश्वर विराजमान हैं। जो मनुष्य सदा उनका पूजन करता है, विशेषतः कार्तिककी पूर्णिमाको और उत्तरायण आरम्भ होनेके दिन उनकी आराधना करता और बुद्धिमान् ब्राह्मणको विद्यादान देता है, वह सात जन्मोंतक धनाढ्य ब्राह्मणोंके उत्तम कुलमें जन्म ले बुद्धिमान् तथा लक्ष्मीवान् होता है।

उस स्थानसे पूर्व दिशामें दैत्यसूदनके पश्चिम पाँच धनुषके अन्तरपर गौतमेश्वर लिंग प्रतिष्ठित है, जो संपूर्ण इच्छित फलोंको देनेवाला है। मद्रदेशके राजा शल्यने उसकी आराधना की थी। जो मनुष्य चैत्र शुक्ला चतुर्दशीके दिन गौतमेश्वरको दूधसे स्नान कराता है और चन्दन, जल तथा फूलोंसे विधिपूर्वक उनकी पूजा करता है, वह अश्वमेध यज्ञका फल पाता है। गौतमेश्वरके दर्शनसे मन, वाणी और क्रिया द्वारा किये हुए सब पाप नष्ट हो जाते हैं।

~~०~~

वैष्णवक्षेत्रमें भगवान् दैत्यसूदनकी महिमा

महादेवजी कहते हैं—महादेवि! गौतमेश्वरके स्थानसे देवेश्वर भगवान् दैत्यसूदनके समीप जाना चाहिये, जो प्रभासक्षेत्रमें निवास करनेवाले सब प्राणियोंके पापोंका नाश करते हैं। भगवान् दैत्यसूदन सबके कार्योंकी सिद्धि करनेवाले हैं। भयंकर भवसागरमें पड़े हुए प्राणियोंको पार उतारनेके लिये वे सुदृढ़ जहाजकी भाँति स्थित हैं। पार्वती! वटवृक्ष, कल्पवृक्ष, वैदूर्यपर्वत, भगवान् दैत्यसूदन तथा महामुनि मार्कण्डेय—इनका सात कल्पोंतक क्षय अथवा विनाश नहीं होता। दैत्यसूदनसे बढ़कर दूसरा कोई देवता इस पृथ्वीपर नहीं है। उनका क्षेत्र यवाकार है, वह सब पातकोंका नाश करनेवाला, ऋषि-मुनियोंसे सेवित तथा यक्ष, विद्याधर और नागगणका आश्रय है। उस वैष्णवक्षेत्रकी सीमा इस प्रकार है—पूर्वमें यमेश्वरतक, पश्चिममें सोमेश्वरतक, उत्तरमें विशालाक्षीतक और दक्षिणमें समुद्रतक वह फैला हुआ है। जो मनुष्य इस क्षेत्रमें मृत्युको प्राप्त होते हैं, वे सब स्वर्गलोकमें जाते हैं। वहाँ जो कुछ दान, होम, जप और तप किया जाता

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

है, वह सात कल्पोंतक अक्षय बना रहता है। जो वहाँ भगवान् विष्णुकी प्रीतिके लिये विधिपूर्वक एक ब्राह्मणको भी भोजन करायेगा, उसे एक करोड़ ब्राह्मण-भोजन करानेका फल होगा। जो मनुष्य वहाँ भक्तिपूर्वक उपवास करता है, उसे एक ही उपवाससे दस हजार उपवासोंका फल मिलता है। जो मानव कार्तिकमासकी द्वादशीको चक्रतीर्थमें स्नान करके इन्द्रियसंयमपूर्वक उपवास एवं विधिवत् भगवान् विष्णुकी पूजा करता है, वह सब पातकोंसे मुक्त हो जाता है।

पार्वतीजीने पूछा—भगवन्! श्रीविष्णुका दैत्य-सूदन नाम किस समय और किस प्रकार हुआ?

महादेवजीने कहा—देवि! भगवान् दैत्यसूदन विष्णुके नाम अनादि और अनन्त हैं। प्रत्येक कल्पमें उनके नये-नये नाम प्रसिद्ध होते हैं। पूर्वकल्पमें उनका नाम श्रियावृत था, दूसरे कल्पमें वामन हुआ, तीसरेमें वे वज्रांग कहलाये, चौथेमें कमलाप्रिय नाम हुआ, पाँचवेंमें दुःखहर्ता, छठेमें पुरुषोत्तम और सातवें कल्पमें वे दैत्यसूदन नामसे प्रसिद्ध हुए।

पूर्वकालमें देवताओं और असुरोंमें बड़ा भारी युद्ध हुआ। उसमें देवकण्टक दानवोंसे पराजित होकर सब देवता क्षीरसागरमें निवास करनेवाले श्रीहरिकी शरणमें गये और प्रणाम करके उनकी स्तुति करने लगे।

देवता बोले—देव! जगन्नाथ! आपकी जय हो। आप दैत्यों और असुरोंका मान मर्दन करनेवाले हैं। आपने ही वाराहरूप धारण करके इस पृथ्वीका उद्धार किया था। मत्स्यरूपसे आपने ही समुद्रके जलसे वेदोंका उद्धार किया है। जब क्षीरसागरका मन्थन हो रहा था, उस समय कूर्मरूप धारण करके आपने अपनी पीठपर मन्दराचल उठाया और लक्ष्मीजीका उद्धार किया; आपको नमस्कार है। आप लक्ष्मीपति हैं; लक्ष्मीजीने आपका आश्रय लिया है। देव! आप पीड़ितोंकी पीड़ाका नाश करनेवाले हैं। आपने वामनरूप धारण करके बलिको बाँधा है और वाराहरूपसे महादैत्य हिरण्याक्षका वध किया है। आपने ही नृसिंहरूपसे हिरण्यकशिपुको आकाशमें धारण करके मारा है। आप ही सम्पूर्ण देवताओंके मूल हैं। प्रभो! महादेव! आपने ही समस्त संसारका उद्धार किया है।

पार्वती! यह स्तोत्र सुनकर कमलनयन भगवान् विष्णुने ब्रह्मा आदि देवताओंसे कहा—'देवगण! तुम दानवोंका भय छोड़ दो, मैं शीघ्र ही उनका संहार करूँगा?' यो कहकर श्रीविष्णु देवताओंके साथ वहाँ आये और चक्रद्वारा पृथक्-पृथक् सब दानवोंका संहार आरम्भ किया। यह देख सब दानव भयसे विकल हो भागने लगे। प्रभासक्षेत्रमें आकर उन्होंने समुद्रकी शरण ली। भगवान्ने अपने चक्रसे सब दैत्योंका सफाया कर डाला। उनके मारे जानेपर देवताओं, ब्राह्मणों तथा तपस्वी जनोंका कल्याण हुआ। संसारकी व्याकुलता दूर हुई और सबका चित्त स्वस्थ हुआ। तभीसे भगवान् विष्णुका नाम 'दैत्यसूदन' हुआ। उनका दर्शन करके मनुष्य सात जन्मोंतक जड, अन्ध, दरिद्र और दुःखी नहीं होता। श्रवण नक्षत्रमें द्वादशीका योग पुण्यदायक है तथा रोहिणी नक्षत्रमें अष्टमीका संयोग शुभ है। उस समय भगवान् दैत्यसूदनके शयन और उत्थापनका उत्सव होता है। उस अवसरपर दैत्यसूदनके समीप एक-एक उपवासका दस-दस उपवासके बराबर फल होता है। चाण्डाल, श्वपच और पशु-पक्षी भी वहाँ प्राण त्याग करनेपर वैकुण्ठधाममें जाते हैं। कार्तिक और वैशाखमासमें वहाँ श्रद्धापूर्वक एक मासतक उपवास करे। उस समय एक-एक उपवासका कोटि-कोटि उपवासके बराबर फल होता है। विष्णुक्षेत्रका ऐसा ही प्रभाव है। जो वहाँ एक मास या एक पक्षतक दीपदान करता है, उसे कोटिगुने फलकी प्राप्ति होती है। जो आषाढ़ शुक्ला एकादशीको निराहार रहकर भगवान् दैत्यसूदनको पंचामृतसे नहलाकर पूजा करे और नियमपूर्वक उनके समीप रहकर चातुर्मास्य व्यतीत करे, उसके ऊपर भगवान् विष्णु संतुष्ट होते हैं।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

जो मनुष्य एकादशी तिथिको वहाँ गीत, नृत्य, वाद्य तथा दृश्य—अभिनय आदिके द्वारा रातमें जागरण करता है, वह भगवान् विष्णुके उस परम धाममें जाता है, जहाँसे पुनः इस संसारमें आना नहीं होता। जिनकी निद्रा दैत्यसूदनके समीप जागरणमें बीत जाती है। वे स्वप्नमें भी यममार्ग, यमपुरी, यमदूत तथा असिपत्रवन आदि नरकोंका दर्शन नहीं करते। जो एकादशीको उपवास करके द्वादशीके दिन वहाँ नैवेद्य, तुलसीपत्र भक्षण करता है, उसकी कोटि-कोटि हत्याओंका नाश हो जाता है। पार्वती! सब पातकोंका नाश करनेवाले चक्रतीर्थमें स्नान करके भगवान् दैत्यसूदनकी सेवाके लिये पीले वस्त्र, गौ तथा सुवर्णका दान करना चाहिये।

योगेश्वरी देवीकी महिमा

महादेवजी कहते हैं—पार्वती! दैत्योंका संहार करनेके पश्चात् भगवान् विष्णुने जहाँ अपने चक्रको धोया, वहीं आठ करोड़ तीर्थोंको लाकर स्थापित किया। उसमें सुदर्शनको शुद्ध करके उन्होंने उस तीर्थका चक्रतीर्थ नाम रख दिया। चक्रतीर्थमें कुल आठ करोड़, असी हजार तीर्थ हैं। जो मानव एकाग्रचित्त होकर वहाँ स्नान करता है, वह सब तीर्थोंमें स्नान करनेका पूरा फल पा लेता है। एकादशीको या विशेषतः चन्द्रमा और सूर्यके ग्रहणके अवसरपर जो उसमें स्नान करता है, वह कोटि यज्ञोंका फल पाता है। पूर्व कल्पमें इसका नाम कोटितीर्थ था। दूसरे कल्पमें श्रीनिधान, तीसरेमें शतधार और चौथेमें चक्रतीर्थके नामसे इसकी प्रसिद्धि हुई। उस वैष्णव क्षेत्रका प्रमाण आधा कोस बताया गया है। उसमें ब्रह्महत्या नहीं प्रवेश कर पाती। उस क्षेत्रमें जाकर जो मासोपवासी, अग्निहोत्री, पतिव्रता स्त्री एवं स्वाध्यायपरायण तथा यज्ञशील मानव चान्द्रायण आदि तप, तिल-जलसे पितरोंका तर्पण, श्राद्ध, एकरात्रव्रत, द्विरात्रव्रत, त्रिरात्रव्रत, कृच्छ्र, सान्तपन, मासोपवास या अन्य कोई पुण्य-कर्म करते हैं, वह अन्य क्षेत्रोंकी अपेक्षा कोटिगुना पुण्यदायक होता है।

चक्रतीर्थसे पूर्व दिशामें महादेवी योगेश्वरीका स्थान है। पूर्वकालमें महिषासुर नामक एक बड़ा भयंकर दैत्य हो गया है। वह इच्छानुसार रूप धारण करनेवाला था और तीनों लोकोंको अपने वशमें करके सुखसे रहता था। एक समय ब्रह्माजीने एक मनोमयी कन्या उत्पन्न की। वह पृथ्वीपर अप्रतिम सुन्दरी थी। उस रूपवती कन्याने बड़ी घोर तपस्या की। एक दिन देवर्षि नारदजीने उस कन्याको देखा और महिषासुरके समीप गये। महिषासुरने मुनिका बड़ा स्वागत-सत्कार किया और कुशल-मंगल पूछते हुए कहा—'नारदजी! यहाँ पधारनेका क्या कारण है? बताइये।' मुनि बोले—'महादैत्य! जम्बूद्वीपमें एक अनुपम सुन्दरी कन्या उत्पन्न हुई है। उसके जैसा रूप मैंने स्वर्ग, मर्त्यलोक और पातालमें भी न तो देखा है और न सुना ही है।'

मुनिकी यह बात सुनकर महिषासुर बड़ी भारी सेनाके साथ प्रभासक्षेत्रमें गया, जहाँ वह कन्या तप करती थी। वहाँ उस असुरने उससे इस प्रकार प्रार्थना की—'भीरु! तुम मेरी स्त्री हो जाओ। यह तपस्या तुम्हारी जवानीके विरुद्ध है।' उसकी बात सुनकर वह तपस्विनी हँस पड़ी। हँसते समय उसके मुखसे सहस्रों भयंकर स्त्रियाँ हाथोंमें अस्त्र-शस्त्र लिये निकलीं। उन सबने महिषासुरकी सारी सेनाका संहार कर डाला। यह देख वह दैत्य कुपित हो अपने तीखे सींग हिलाता हुआ शीघ्र ही उस देवीके सम्मुख गया। उसके साथ बड़ा

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

भारी युद्ध करके अन्तमें वह महिष पकड़ा गया। देवी सींग पकड़कर उसके ऊपर चढ़ गयी और पैरोंसे दबाकर उसे त्रिशूलसे मार डाला। फिर तलवारसे उसका मस्तक काट लिया। महिषासुरको मारा गया देख इन्द्र आदि देवताओंने प्रसन्नचित्त होकर देवीका स्तवन किया।

देवता बोले—महान् सौभाग्यशालिनी देवि! तुम्हें नमस्कार है। तुम गम्भीर स्वभाववाली हो। तुम्हारी दृष्टि बड़ी भयंकर है। तुम सदा न्यायके पथपर स्थित रहती हो, उत्तम सिद्धोंकी अधीश्वरी हो; तुम्हारे तीन नेत्र हैं और सब ओर मुख हैं। विद्या और अविद्या तुम्हारे ही स्वरूप हैं। तुम्हीं जया (विजयशक्ति) और जपनीय मन्त्रस्वरूपा हो। महिषासुरका मर्दन करनेवाली देवि! तुम सर्वत्र व्यापक, समस्त विद्याओंकी स्वामिनी और विश्वरूपा हो। तुम्हें नमस्कार है। तुम शोकसे परे और ध्रुवस्वरूपा हो। पद्मपत्रके समान विशाल नेत्रोंवाली देवि! तुम शुद्ध सत्त्वगुणोंमें स्थित हो, व्रतपरायण हो; तुम्हीं प्रचण्ड रूप धारण करनेवाली विभावरी (रात्रि) हो, तुम्हें नमस्कार है। ऋद्धि-सिद्धि देनेवाली देवि! तुम कालमृत्यु (प्रलयताण्डव) करनेवाली हो। धृति (धैर्य) तुम्हें विशेष प्रिय है। तुम्हीं शांकरी, ब्राह्मणी और ब्राह्मी हो। सम्पूर्ण देवताओंसे वन्दित देवि! तुम्हें नमस्कार है। तुम्हारे हाथोंमें घण्टा और शूल शोभा पाते हैं। तुम महामहिष दानवका मर्दन करनेवाली हो, तुम्हारा रूप बड़ा भयंकर और नेत्र भयानक हैं। महामाये! तुम अमृतस्वरूपा और कल्याणमयी हो, तुम्हें नमस्कार है। सर्वत्र व्याप्त रहकर सब कुछ देनेवाली देवि! समस्त सात्त्विक वस्तुओंका उदय तुम्हींसे होता है। तुम्हीं विद्या, पुराण और शिल्पकलाकी जननी हो। सब भूतोंको धारण करनेवाली हो। सम्पूर्ण देव-रहस्योंका आश्रय तथा समस्त सत्त्वगुणी प्राणियोंको शरण देनेवाली हो। शुभे! तुम्हीं विद्या-अविद्या, प्रिया तथा अप्रिया हो।

देवताओंके इस प्रकार स्तवन करनेपर देवीने मुसकराते हुए कहा—'उत्तम वर माँगो।'

देवता बोले—देवि! जो श्रेष्ठ मानव यहाँ इस स्तोत्रके द्वारा तुम्हारा स्तवन करें, वे पूर्णकाम हों। इस क्षेत्रमें तुम सदा निवास करो।

'एवमस्तु' कहकर देवीने देवताओं और महर्षियोंको विदा किया और स्वयं वहीं रहने लगीं। जो मनुष्य आश्विन शुक्ला नवमीको उपवास करके भक्ति-भावसे योगेश्वरीदेवीका दर्शन करता है, उसका पाप नष्ट हो जाता है। जो मानव प्रातःकाल उठकर इस स्तोत्रको पढ़ता है, उसे जीवनभर भयका सामना नहीं करना पड़ता। आश्विन शुक्ला अष्टमी यदि मूल नक्षत्रसे युक्त हो तो महाष्टमी मानी गयी है। वह तीनों लोकोंमें अत्यन्त दुर्लभ है। उस दिन जगदम्बाका पूजन करके मनुष्य अपने शत्रुओंपर विजय पाता है।

आदिनारायणका माहात्म्य

महादेवजी कहते हैं—पार्वती! योगेश्वरीसे पूर्व दिशामें आदिनारायण भगवान् विष्णु विराजमान हैं। ये पादुकापर खड़े हैं तथा सब दैत्योंका विनाश करनेवाले हैं। पहले सत्ययुगमें मेघवाहन नामसे प्रसिद्ध एक दैत्य हो गया है; उसे ब्रह्माजीने वरदान दिया था कि 'जब भगवान् विष्णु युद्धभूमिमें तुम्हें पादुकासे मारेंगे, तभी तुम्हारी मृत्यु होगी, अन्यथा नहीं।' इस प्रकार वर पाकर वह दैत्य देवता, असुर और मनुष्योंसहित समस्त भूमण्डलको संताप देने लगा। कोटि युगोंतक सबको नाना प्रकारके कष्ट देकर वह दक्षिण समुद्रके तटपर आया और वहाँ ऋषियोंके आश्रमोंका विध्वंस करने लगा। तब ऋषियोंने उसे अजेय समझकर

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

भगवान् गरुडध्वजका स्तवन किया।

ऋषि बोले—परमकल्याण! आपको नमस्कार है। आप कल्याणस्वरूप आत्मयोगीको नमस्कार है। आप जनार्दन, श्रीधर और वेधा (सृष्टिकर्ता) हैं। देव! आपको नमस्कार है। कमल-केसरके समान सुवर्णमय मुकुट धारण करनेवाले केशवको नमस्कार है। आप अत्यन्त सूक्ष्म तथा अतिशय महान् शरीरवाले हैं, आपको बारंबार नमस्कार है। आपकी नाभिसे कमल प्रकट हुआ है, आपको नमस्कार है। आप ही श्रीहरि तथा हरिवेधा हैं, आपको नमस्कार है। आप ही सम्पूर्ण जगत्‌के कारणभूत हिरण्यगर्भ हैं, आपको नमस्कार है। आप अपनी महिमासे कभी च्युत न होनेवाले तथा उन्नत (सर्वोच्च पदमें स्थित) हैं, आपको बारंबार नमस्कार है। मायाके परदेसे ढके हुए आप जगदाधार परमात्माको नमस्कार है। संसारसागरसे पार उतारनेवाले प्रभो! आप ज्ञाननौका प्रदान करनेवाले हैं; आपको नमस्कार है। आपकी बुद्धि कभी कुण्ठित नहीं होती, आप धाता एवं संसारकी सृष्टि, पालन और संहार करनेवाले हैं। आपको नमस्कार है। आपका वासुदेव नाम सब पातकोंका नाश करनेवाला है, इस सत्यके प्रभावसे यह मेघवाहन दैत्य नष्ट हो जाय। भगवान् विष्णुके भक्तोंमें पाप नहीं ठहरता, भगवान् विष्णु स्मरण करते ही सब पापोंका नाश कर देते हैं—यह सत्य है तो यह पापात्मा मेघवाहन दैत्य नष्ट हो जाय। परमेश्वरके जगदाधार वासुदेव नामका भक्तिपूर्वक स्मरण करनेसे सबका कल्याण हो और समस्त संसारके सभी दोष नष्ट हो जायँ।

ऋषियोंके इस प्रकार स्तुति करनेपर आदिनारायण भगवान् श्रीहरिने पादुकापर आरूढ़ हो उन सबको दर्शन दिया और कहा—'आपलोगोंके मनमें कौन-सा कार्य उपस्थित हुआ है? बताइये, मैं उसे पूर्ण करूँगा। आपके द्वारा की हुई इस स्तुतिसे मैं बहुत सन्तुष्ट हूँ।'

ऋषि बोले—देव! आप सब कुछ जानते हैं, आपसे कुछ भी छिपा नहीं है। इस महाबली दैत्य मेघवाहनका संहार कीजिये, जिससे सारा विश्व निर्भय हो।

उनके यों कहनेपर भगवान् विष्णुने उस दैत्यको युद्धके लिये ललकारा और अपनी पादुकासे उसकी छातीमें प्रहार किया। उसकी चोट खाकर दैत्यके प्राण-पखेरू उड़ गये और वह समुद्रमें गिर पड़ा। उस श्रेष्ठ दैत्यका वध करके भगवान् विष्णु उसी स्थानपर स्थित हो गये। आज भी वे वहीं पादुकाके आसनपर खड़े हैं। जो श्रेष्ठ मनुष्य एकादशी तिथिको भक्तिपूर्वक उनकी पूजा करता है, वह अश्वमेध यज्ञका फल पाकर स्वर्गमें आनन्दित होता है। जिनके हृदयमें भगवान् आदिनारायण विराजमान हैं, उनके लिये कलियुगमें भी सत्ययुग है।

पाण्डवेश्वरलिंग तथा ग्यारह रुद्रोंका माहात्म्य

महादेवजी कहते हैं—आदिनारायणसे तीन धनुष पश्चिम महानदी सन्निहिता विराज रही है। जब जरासन्धके आक्रमणके भयसे बाल, वृद्ध, वणिग्जन तथा अपने परिजनोंसहित सब यादवोंको साथ ले भगवान् श्रीकृष्ण मथुराको सूनी करके चले, तब प्रभासक्षेत्रमें आये। वहाँ उन्होंने रहनेके लिये समुद्रसे स्थान माँगा। इसी समय सूर्यग्रहण लगा। तब भगवान् जनार्दनने यादवोंसे कहा—'मैं परम पवित्र सन्निहित नामक सरोवरको यहाँ लाऊँगा।' उनके इतना कहते ही धरती फोड़कर शुभ जलका प्रवाह प्रकट हुआ। यह देख बलरामजी तथा साम्ब आदि सभी यादवोंने उसमें ग्रहणस्नान किया। उसमें स्नान करनेसे अग्निष्टोम यज्ञका फल मिलता है। वहाँ एक-एक आहुति देनेसे कोटि होमका फल होता है। उस स्थानमें रहकर यदि

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

कोई मन्त्रजप करता है तो उसे एक-एक जपका कोटि-कोटिगुना फल मिलता है।

सन्निहिताके दक्षिण तटपर पाण्डवेश्वरलिंग है, जिसकी स्थापना पाँचों पाण्डवोंने की है। वनवासी पाण्डव जब अज्ञातवासमें थे, तब तीर्थयात्राके प्रसंगसे प्रभासक्षेत्रमें आये। उस समय चन्द्रग्रहणका पर्व था। उसी अवसरपर उन सबने सन्निहिताके किनारे पाण्डवेश्वरकी स्थापना की। मार्कण्डेय आदि मुनियों तथा श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको ऋत्विज् बनाकर उन्होंने वैदिक मन्त्रोंसे मुझ शिवका अभिषेक कराया। ऋषियोंने उस लिंगका माहात्म्य बताते हुए कहा—'जो लोग इस पाण्डव-पूजित लिंगकी अर्चना करेंगे, वे देवता, दानव तथा राक्षसोंके लिये भी पूजनीय होंगे। श्रद्धापूर्वक इसका पूजन करनेसे उन्हें अश्वमेध यज्ञका फल होगा। जो पूरे माघभर सन्निहिता कुण्डमें नहाकर पाण्डवेश्वरकी पूजा करता है, वह साक्षात् पुरुषोत्तम होता है। इस लिंगके दर्शनसे भी पापके सहस्रों टुकड़े हो जाते हैं।'

पार्वती! इस प्रकार श्रद्धापूर्वक यात्रा करके मनुष्य प्रभासक्षेत्रके ग्यारह रुद्रोंके समीप जाय। मनुष्योंसे जो ग्यारह इन्द्रियोंद्वारा ग्यारह प्रकारके पाप बन जाते हैं, उन सबका यहाँ ग्यारह रुद्रोंके पूजनसे नाश हो जाता है। संक्रान्ति, अयन, चन्द्रग्रहण, सूर्यग्रहण तथा अन्यान्य पुण्य तिथियोंमें भक्तिभावसे क्रमशः ग्यारह रुद्रोंका पूजन करना चाहिये। कलिमें इन ग्यारह रुद्रोंके नाम इस प्रकार हैं—भूतेश, नीलरुद्र, कपाली, वृषवाहन, त्र्यम्बक, घोरनामा, महाकाल, भैरव, मृत्युंजय, कामेश और योगेश। पार्वती! ये जो ग्यारह रुद्र बताये गये हैं, इनका रहस्य सुनो। इनमें दस तो दस प्राणवायु हैं और एक आत्मा है। प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त और धनंजय—ये ही दस प्राणवायु कहे गये हैं।

रुद्रोंमें आदिदेव सोमेश्वर भी हैं, उनकी भूतेश्वर नामसे विधिवत् पूजा करनी चाहिये। उन्हें पंचामृतसे स्नान कराकर '**सद्योजात**' मन्त्रसे मनोहर पुष्पोंद्वारा पूजन करना चाहिये। भक्तिपूर्वक सदाशिवका ध्यान करते हुए तीन बार प्रदक्षिणा और साष्टांग प्रणाम करे। महत्तत्त्वसे लेकर विशेषपर्यन्त जो पचीस भूतगण बताये गये हैं, उन सबके ईश्वर होनेसे इन शिवको 'भूतेश्वर' कहते हैं। भूतेश्वरका पूजन करके मनुष्य अविनाशी मोक्षको प्राप्त होता है।

भूतेश्वरसे उत्तरभागमें सोलह धनुषपर द्वितीय रुद्र नीलरुद्रके नामसे प्रसिद्ध हैं। उनको विधिपूर्वक स्नान कराकर ईश-मन्त्रद्वारा पूजा करे। कुमुद, उत्पल और कह्लार (लाल कमल) चढ़ाये। प्रदक्षिणा और नमस्कार करे। यों करनेसे मनुष्य राजसूय यज्ञका फल पाता है। पूर्वकालमें नीले अंजनके समान रंगवाला अन्धकासुर उनके द्वारा मारा गया था, इसलिये वे नीलरुद्र कहलाये।

नीलरुद्रसे पूर्व और बुधेश्वरसे पश्चिम सात धनुष दूर कपालेश्वर विराजमान हैं। '**तत्पुरुष**' मन्त्रद्वारा उनकी पूजा करे। उनके दर्शनसे जन्मभरका पाप नष्ट हो जाता है।

बालरूपधारी ब्रह्माजीसे उत्तर तीन धनुषपर वृषभेश्वर नामक चौथे रुद्र हैं। वे आदिलिंग हैं। पुण्यहीन मनुष्य उनको नहीं जानता। जो उन वृषभवाहन शिवका पूजन करता है, वह सात जन्मोंके पातकोंसे मुक्त हो जाता है। उनके चारों ओर तीस-तीस धनुषतक उन्हींका क्षेत्र है। जो उस तीर्थमें स्नान, जप, बलि, होम, पूजा, स्तोत्रपाठ आदि करता है, उसका वह सब कर्म अक्षय हो जाता है। जो एक रात उवास करके ब्रह्मचर्यपालनपूर्वक वृषभेश्वरदेवके समीप जागरण करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। जो वहाँ भाँति-भाँतिके भोज्य पदार्थोंसे ब्राह्मणोंको तृप्त करता है, उसे एक ब्राह्मणको भोजन करानेपर कोटि ब्राह्मणोंके भोजन करानेका फल होता है। भैरव, केदार, पुष्कर, कुरुजांगल, कुरुक्षेत्र, काशी, महाकाल और नैमिष—ये आठ तीर्थ वृषभेश्वरलिंगमें प्रतिष्ठित हैं। जो माघकृष्णा चतुर्दशीकी रात्रिमें वहाँ जागता है, वह विधिपूर्वक उस लिंगकी

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

पूजा करके उक्त आठों तीर्थोंके सेवनका फल पाता है। जो मनुष्य अमावास्याको वहाँ रुद्रके समीप पिण्डदान करता है, उसके पितर ब्रह्माजीके दिन (एक कल्प)-तक तृप्त रहते हैं। दही, दूध, घी, पंचगव्य, कुशोदक, कुंकुम, अगुरु तथा कपूर— इन सबको अघोरमन्त्रसे अभिमन्त्रित करके रातमें इनके द्वारा मेरा ध्यान करते हुए वृषभेश्वरका पूजन करे। यों करनेसे मनुष्य पाँच महापातकोंसे मुक्त हो जाता है। यदि उन्हें दूधसे नहलाये तो पूर्वजन्म और इस जन्मके पापका नाश हो जाता है। जो मनुष्य पंचगव्यसे वृषभेश्वरको स्नान कराता है, वह अपने सब पातकोंको जला देता है। उस लिंगकी पूजाके लिये उद्यत होते ही मनुष्य सब पापोंसे छूट जाता है। जो मानव पूरे कार्तिकभर ब्रह्मेश्वर महालिंगका पूजन करता है, उसे सब प्रकारके पातकोंसे छुटकारा मिल जाता है। इस प्रकार वृषभेश्वर शिवका देवपूजित माहात्म्य बताया गया।

वहाँसे अविनाशी त्र्यम्बकेश्वरलिंगके समीप जाय। त्र्यम्बकेश्वरजी पाँचवें रुद्र माने गये हैं। इनका स्थान कपिलेश्वर लिंगसे ईशानकोणमें सोलह धनुषकी दूरीपर है। ये सबके ऊपर दया करनेवाले तथा सब वांछित फलोंको देनेवाले हैं। इनके दर्शनसे भी पातकोंके सहस्रों टुकड़े हो जाते हैं। जो भक्तिभावसे कामदेव मन्त्रद्वारा इनका विधिवत् पूजन करता है, वह सब पातकोंसे मुक्त हो जाता है। जो चैत्र शुक्ला चतुर्दशीकी रातमें वहाँ जागरण करता है और पूजा, स्तुति एवं कथा-वार्तामें समय बिताता है, वह मनोवांछित फल पाता है।

इसके बाद छठे रुद्र अघोरेश्वरलिंगके समीप जाय। इनका स्थान त्र्यम्बकेश्वरसे वायव्यकोणमें पाँच धनुषके अन्तरपर है। ये सम्पूर्ण अभीष्टफलोंके दाता तथा कलियुगके पापोंका नाश करनेवाले हैं। जो मानव स्नान-पूजन आदिके क्रममें इनकी आराधना करता है, उसे सुवर्णमय मेरुगिरिके दानका फल प्राप्त होता है। अघोरेश्वरदेवके लिये जो कुछ दिया जाता है, वह सब अक्षय होता है। जो मनुष्य अघोरेश्वरके दक्षिण भागमें श्राद्ध करता है, उसके पितर कल्पपर्यन्त तृप्त रहते हैं।

अघोरेश्वरसे उत्तर कुछ-कुछ वायव्यकोणकी ओर तीस धनुषकी दूरीपर महाकालेश्वरका स्थान है। वह लिंग सब पापोंका नाश करनेवाला है। उसके भीतर मैं कालरूपसे प्रतिष्ठित हूँ। वह कल्पपर्यन्त स्थिर रहनेवाला और मेरा विशेष प्रिय है। जो षडक्षर मन्त्रद्वारा उसकी पूजा करता है, वह उसी क्षण मृत्युको जीत लेता है। जो कृष्णपक्षकी अष्टमीमें रातके समय विधिपूर्वक पूजा करके घृतमिश्रित गुग्गुलका धूप देता है, उसके सहस्रों अपराध भैरवजी क्षमा कर देते हैं। महर्षिलोग उस स्थानपर गोदानकी महिमा बतलाते हैं। वहाँ गोदान करनेवाले पुरुष अपने आगे-पीछेकी दस-दस पीढ़ियोंका उद्धार कर देते हैं। जो महाकालेश्वरके दक्षिणभागमें रुद्रियका जप करता है, वह मातृकुल और पितृकुल दोनोंको तारता है।

महाकालेश्वरसे अग्निकोणमें बीस धनुष दूर भैरवेश्वरका स्थान है। भैरवेश्वरलिंग सब वांछित फलोंका देनेवाला तथा दरिद्रताका नाश करनेवाला है। पूर्वकालमें चण्ड नामक मेरे पार्षदने एक सहस्र दिव्य वर्षोंतक उसकी आराधना की थी, इससे उसका नाम चण्डेश्वर हुआ। जो एकाग्रचित्त हो देवाधिदेव चण्डेश्वरका दर्शन और स्पर्श करता है, वह जन्मसे लेकर मृत्युतकके सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है। भाद्रपदमासके कृष्ण पक्षकी चतुर्दशी तिथिको उपवास करके जो भैरवेश्वरके समीप जागरण करता है, वह मेरे परम धामको जाता है। भैरवेश्वरके दर्शनसे मन, वाणी और क्रियाद्वारा किये हुए सभी पाप नष्ट हो जाते हैं। यात्राके उत्तम फलकी इच्छा रखनेवाले पुरुषको अपने सब पापोंका नाश करनेके लिये वहाँ तिल, सुवर्ण और वस्त्रका दान करना चाहिये। कल्पके अन्तमें वे रुद्रदेव भैरव (भयानक)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

आकार धारण करके सम्पूर्ण विश्वका संहार करते हैं, इसीलिये भैरव कहलाते हैं।

भैरवेश्वरसे अग्निकोणमें दस धनुषकी दूरीपर मृत्युंजयेश्वरलिंग स्थित है। सागरादित्यसे पश्चिम चार धनुषपर वह स्थान है। वह लिंग दर्शन और स्पर्श करनेपर सब प्राणियोंके पापोंका नाश करनेवाला है। मेरे पार्षद नन्दीने उस महालिंगकी स्थापना करके नित्य पूजनमें तत्पर हो लाख करोड़ महामृत्युंजयका जप किया है। इससे प्रसन्न होकर मैंने उसे अपने गणोंका आधिपत्य और सामीप्य मुक्ति प्रदान की है। मृत्युंजयमन्त्रसे प्रसन्न होकर वहाँ मेरे स्वरूपभूत रुद्र प्रकट हुए, इसलिये उनका नाम मृत्युंजयेश्वर हुआ। जो मनुष्य भक्तिभावसे मृत्युंजयेश्वरका पूजन अथवा दर्शन करता है, उसके सात जन्मोंका पाप वे नष्ट कर देते हैं।

मृत्युंजयेश्वरसे उत्तर दिशामें तीन धनुषपर कामेश्वरलिंग स्थित है, जिसके दर्शन और पूजनसे सात जन्मोंका पाप तत्काल नष्ट हो जाता है और सम्पूर्ण मनोरथोंकी सिद्धि होती है। जो मानव कामेश्वरलिंगका पूजन करेंगे, वे उत्तम गतिको प्राप्त होंगे। इस लिंगके प्रसादसे उनके सब मनोरथोंकी सिद्धि होगी। जो चैत्र शुक्ला त्रयोदशीको कामेश्वरजीका पूजन करता है, वह मनुष्योंमें पुत्र और सौभाग्यसे सम्पन्न एवं पूर्णकाम होता है।

कामेश्वरसे वायव्यकोणमें सात धनुष दूर योगेश्वरलिंग है। वहाँ मेरे असंख्य पार्षदोंने योगनिष्ठ होकर सहस्रों वर्षोंतक घोर तपस्या की थी। तब मैंने प्रसन्न होकर उन्हें सालोक्य मुक्ति प्रदान की थी। उनके षडंगयोगसे सन्तुष्ट होकर शिवलिंगका प्रादुर्भाव हुआ था। इसलिये उसका नाम योगेश्वर हुआ। जो मानव विधिपूर्वक भक्तिभावसे उसकी पूजा करता है, उसे योगसिद्धि प्राप्त होती है। जो प्रभासक्षेत्रमें स्थित इन ग्यारह रुद्रोंको नहीं जानता, वह उस क्षेत्रके बीचमें रहकर भी नहींके समान है। उसे पशु माना गया है। इन ग्यारह रुद्रोंमेंसे सबका अथवा एकमात्र सोमेश्वरका पूजन करके जो शतरुद्रियका जप करता है, उसे सब रुद्रोंके पूजनका फल प्राप्त हो जाता है। पार्वती! ग्यारह रुद्रोंका यह गुप्त माहात्म्य तुम्हें बताया गया।

चन्द्रेश्वर, चक्रपाणि, दण्डपाणि तथा साम्बादित्यकी महिमा

महादेवजी कहते हैं—सोमेश्वरसे वायव्यकोणमें साठ धनुषकी दूरीपर चन्द्रेश्वरलिंग है। वह दिव्य लिंग सब गतकोंका नाश करनेवाला है। चन्द्रेश्वरका दर्शन करके मनुष्य सात जन्मोंके समस्त पापोंसे मुक्त एवं कृतकृत्य हो जाता है। प्राचीन कालमें यह पृथ्वी दैत्योंके भारसे पीड़ित हो गौका रूप धारण करके प्रभासक्षेत्रमें आयी और उसने भक्तिभावसे उत्तम शिवलिंगकी स्थापना की। इससे मैं प्रसन्न हुआ और उससे बोला—'भूदेवी! भगवान् विष्णुके हाथसे मारे जाकर सब दैत्य नष्ट हो जायँगे और तुम्हारा भार उतर जायगा। तुमने जो यह परम सुन्दर शिवलिंग स्थापित किया है, यह संसारमें धरित्रीश्वरके नामसे विख्यात होगा। मैं इस लिंगमें सदैव निवास करूँगा। भादोंके कृष्णपक्षकी तृतीयाको जो मनुष्य इस शिवलिंगका पूजन करेगा, वह निश्चय ही अश्वमेध यज्ञका फल पायेगा। केवल इस लिंगके पूजनसे सब तीर्थोंमें स्नानका और सब प्रकारके दानोंका फल मिल जायगा। इसके चारों ओर सोलह धनुषतक इसीका क्षेत्र होगा और यह क्षेत्र समस्त प्राणियोंको मोक्ष प्रदान करेगा। इस क्षेत्रमें मरनेवाले प्राणी उत्तम गतिको प्राप्त होंगे।'

यों कहकर मैं वहाँसे अन्तर्धान हो गया। तदनन्तर वाराहकल्पमें किसी समय दक्षके शापसे चन्द्रमा राजयक्ष्मासे पीड़ित हो क्षीण होने लगे। तब वे समुद्रके निकट प्रभासक्षेत्रमें आये और इस पृथ्वीश्वरलिंगका दर्शन करके इसके प्रभावको

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

जानकर इसीकी आराधनामें तत्पर हो गये। इसके माहात्म्यसे चन्द्रमाका पापजनित रोग दूर हुआ। तबसे इसका नाम 'चन्द्रेश्वर' हो गया।

तदनन्तर जहाँ चक्रधर विष्णु तथा दण्डपाणि गणेश दोनों एक स्थानपर स्थित हैं, वहाँकी यात्रा करे। जो मानव भक्तिभावसे क्रमशः उन दोनोंका पूजन करता है, वह पापसे मुक्त हो मेरे लोकमें जाता है। जो माघमासकी चतुर्दशी और कृष्णपक्षकी अष्टमीको गन्ध, पुष्प, धूप आदि उपचारोंसे दण्डनायककी पूजा करता है, उसे कभी विघ्न नहीं प्राप्त होता। जो एकादशी तिथिको निराहार रहकर चक्रपाणिका पूजन करता है, वह सब पातकोंसे मुक्त हो भगवान् विष्णुके लोकमें जाता है।

इस प्रकार यहाँ संक्षेपसे चक्रपाणि और दण्डपाणिका माहात्म्य बताया गया।

इन दोनोंके उत्तर और बालरूपधारी ब्रह्मासे वायव्यकोणमें साम्बके द्वारा स्थापित देवश्रेष्ठ साम्बादित्यका स्थान है। प्रभासक्षेत्रमें जो साम्बनामक पुर है, वही सूर्यनारायणका द्वितीय स्थान है। वहाँ भगवान् सूर्य बारह स्वरूपोंमें विभक्त हो सदा सबके कल्याणके लिये निवास करते हैं और भक्तोंद्वारा दी हुई पूजाको ग्रहण करते हैं। जो मनुष्य वहाँ बारह नामोंवाले सूर्यदेवकी स्तुति करेगा, उसकी सात जन्मोंकी दरिद्रता नष्ट हो जायगी। आदित्य, सविता, सूर्य, मिहिर, अर्क, प्रतापन, मार्तण्ड, भास्कर, भानु, चित्रभानु, दिवाकर तथा रवि—ये सूर्यदेवके सामान्य नाम हैं। विष्णु, धाता, भग, पूषा, मैत्र, इन्द्र, वरुण, अर्यमा, विवस्वान्, अंशुमान्, त्वष्टा तथा पर्जन्य—ये बारह स्वरूपोंके विशेष नाम हैं। ये सभी क्रमशः बारह महीनोंमें सूर्यमण्डलमें तपते हैं। चैत्रमें विष्णु, वैशाखमें अर्यमा, ज्येष्ठमें विवस्वान्, आषाढ़में अंशुमान्, श्रावणमें पर्जन्य, भाद्रपदमें वरुण, आश्विनमें इन्द्र, कार्तिकमें धाता, अगहनमें मित्र, पौषमें पूषा, माघमें भग और फाल्गुनमें त्वष्टा तपते हैं। इस प्रकार प्रभासक्षेत्रमें द्वादश मूर्तिवाले सूर्यदेव विराजमान हैं। माघशुक्ला पंचमीको एकभक्तव्रत, षष्ठीको नक्तव्रत और सप्तमीको साम्बादित्यके समीप उपवास-व्रत करके व्रती मनुष्य लाल-चन्दन मिश्रित कनेरके फूलोंसे सूर्यनारायणके लिये अर्घ्य और धूप देकर पूजा करे। शक्तिके अनुसार ब्राह्मण-भोजन भी कराये। जो इस प्रकार साम्बादित्यका पूजन करता है, वह उस लोकमें समस्त मनोवांछित फलोंको पा लेता है।

~~~o~~~

बालरूपधारी ब्रह्माकी महिमा, ब्रह्माजीकी आयुका मान तथा त्रिदेवोंकी एकता

महादेवजी कहते हैं—पार्वती! साम्बादित्यसे उत्तर दिशामें कपालेश्वर विराजमान हैं। उनका दर्शन करनेसे मनुष्य अश्वमेध यज्ञका फल पाता है और पूर्वजन्मके पातकोंसे मुक्त हो जाता है।

उससे उत्तर कोटीश्वरलिंग है, जो सबके पापोंका नाश करनेवाला है। वहाँ कोटि ऋषियोंने सिद्धि प्राप्त की है, इसलिये उनका नाम कोटीश्वर है। जो मानव भक्तिभावसे कोटीश्वरका पूजन करता है, उसे एक करोड़ मन्त्र-जपका फल प्राप्त होता है। कोटीश्वरके निकट वेदवेत्ता ब्राह्मणको सुवर्ण देना चाहिये।

सोमेश्वर, दैत्यसूदन, बालरूपधारी ब्रह्मा, अर्कस्थल, सूर्य तथा शशिभूषण—ये छः प्रभास-क्षेत्रके श्रेष्ठ देवता हैं। इनके दर्शनमात्रसे मनुष्य कृतार्थ हो जाता है और जन्मसे लेकर मृत्युतकके भयंकर पापोंसे छूट जाता है।

पार्वतीजीने पूछा—भगवन्! अन्य सब स्थानोंमें तो वृद्धरूपी ब्रह्मा हैं, यहाँ वे बालरूपी कैसे हुए?

महादेवजीने कहा—देवि! मनुष्य इस संसारमें

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth
~~~

तभीतक दुःख, शोक और भयके समुद्रमें डूबे रहते हैं, जबतक कि ब्रह्माजीके प्रति उनकी भक्ति नहीं होती। जीवका चित्त जैसे विषयोंमें लगा है, यदि उसी प्रकार ब्रह्माजीमें भी लग जाय, तो कौन बन्धनसे मुक्त न होगा। सोमनाथसे ईशानकोणमें और साम्बादित्यसे अग्निकोणमें ब्रह्माजीका उत्तम स्थान है। वहाँ बालरूपधारी ब्रह्माजी विराजमान हैं। जो सम्पूर्ण जगत्के स्वामी, सब लोकोंके स्रष्टा और महान् तेजस्वी हैं, वे ही इस प्रभासक्षेत्रमें आठ वर्षकी आयुमें आये हैं। उन्होंने ही सोमनाथ-लिंगकी स्थापना करके ब्राह्मणोंको बहुत-सी दक्षिणा दी। प्रभासक्षेत्रमें रहते हुए बालरूपधारी ब्रह्माजीके बयालीस वर्ष बीत गये हैं। इस प्रकार उनकी आयुका एक परार्ध व्यतीत हो गया।

पार्वतीजीने कहा—प्रभो! ब्रह्माजीके दिन, मास और वर्षका परिमाण बताइये।

महादेवजीने कहा—देवि! ब्रह्माजीकी जो परम आयु है, उसका एक परार्ध बीत गया है। अब दूसरा परार्ध चल रहा है। आठ वर्षकी आयुमें यहाँ आये थे, इसीलिये उन्हें बालरूपी कहते हैं। प्रभासक्षेत्रको छोड़कर अन्य सब तीर्थोंमें वे वृद्धरूपी ही हैं। प्रथम कल्पमें इनका नाम स्वयम्भू था। दूसरेमें पद्मभू, तीसरेमें विश्वकर्ता और चौथेमें बालरूपी कहे गये हैं। जो मनुष्य प्रतिदिन इन नामोंको स्मरण करता है, वह दीर्घायु होता है। चन्द्र, सूर्य आदि सभी ग्रह, देवता, असुर, दानव तथा समस्त त्रिलोकी—ये सब ब्रह्माजीकी रात आनेपर नष्ट हो जाते हैं। फिर दिन आनेपर जब ब्रह्माजी जगते हैं, तब पूर्ववत् सृष्टि करने लगते हैं।

पलक गिरनेमें जितना समय लगता है, उसके एक चौथाई भागको त्रुटि कहते हैं। दो त्रुटिका एक निमेष होता है। पंद्रह निमेषोंकी एक काष्ठा होती है। तीस काष्ठाओंकी एक कला, तीस कलाओंका मुहूर्त और पंद्रह मुहूर्तोंका एक दिन होता है। दिनके बराबर ही रातका भी मान है। दिन तथा रात दोनोंको एक 'अहोरात्र' कहते हैं। पंद्रह दिन-रातोंका पक्ष और दो पक्षोंका मास होता है। छः मासोंका एक अयन और दो अयनोंका एक वर्ष होता है। तैंतालीस लाख बीस हजार सौर वर्षोंका एक चतुर्युग होता है। इकहत्तर चतुर्युगोंका मन्वन्तर कहा गया है। यही संक्षेपसे इन्द्र देवताकी आयु बतायी गयी है। ब्रह्माजीके एक दिनमें चौदह मनु और चौदह इन्द्र नष्ट होते हैं। विश्ववक्ता, विपश्चित्, स्वचिति, शिवि, विभु, मनोभुव, ओजस्वी, बलि, अद्भुत, शान्ति, वृषा, शतधामा, दिवस्पति, शुचि—ये चौदह इन्द्र हैं। ब्रह्माजीका दिन जितना बड़ा होता है, उनकी रात भी उतनी ही होती है। यह कल्पका मान बताया गया। पहला श्वेत कल्प है। दूसरे कल्पका नाम नीललोहित, तीसरेका वामदेव, चौथेका रथन्तर, पाँचवेंका रौरव, छठेका प्राण, सातवेंका बृहत्कल्प, आठवेंका कन्दर्प, नवेंका सद्यःकल्प, दसवेंका ईशान, ग्यारहवेंका ध्यान, बारहवेंका शाश्वत, तेरहवेंका उदान, चौदहवेंका गरुड, पंद्रहवेंका कूर्म, सोलहवेंका नारसिंह, सतरहवेंका समाधि, अठारहवेंका आत्रेय, उन्नीसवेंका सोम, बीसवेंका भावन, इक्कीसवेंका तत्पुरुष, बाइसवेंका वैकुण्ठ, तेइसवेंका अर्चित, चौबीसवेंका रुद्र, पचीसवेंका लक्ष्मी, छब्बीसवेंका सारस्वत, सत्ताईसवेंका वैराज, अट्ठाइसवेंका गौरी-कल्प, उन्तीसवेंका माहेश्वरकल्प और तीसवेंका नाम पितृकल्प है। यही ब्रह्माजीकी अमावास्या है। ब्रह्माजीके महीनेके ये तीस कल्प बताये गये। व्यतीत हुए सभी कल्पोंके नाम बताये जा चुके हैं। इस समय वाराहकल्प चल रहा है। यही ब्रह्माजीकी प्रतिप्रदा है, जिसमें भगवान् वाराहने रसातलसे पृथ्वीका उद्धार किया। तीस कल्पोंका ब्रह्माजीका एक मास माना गया है। ऐसे बारह मासोंका एक वर्ष होता है। ऐसे वर्षमानसे जब ब्रह्माजी आठ वर्षके थे, तब सोमदेव उन्हें प्रभासक्षेत्रमें ले आये और उन्हींके द्वारा सोमनाथकी प्रतिष्ठाका कार्य सम्पन्न हुआ। इस प्रकार प्रभासक्षेत्रमें

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth
279 Skandpuran_Section_42_1_Back

निवास करते हुए ब्रह्माजीका एक परार्ध व्यतीत हो गया और अब दूसरा चल रहा है। इस तरह बचपनसे ही उनका इस क्षेत्रमें निवास होता है। मनीषी पुरुषोंके द्वारा वे बारंबार वन्दनीय हैं। यात्राका उत्तम फल चाहनेवाले पुरुषोंको पहले उन्हींकी पूजा करनी चाहिये। जो भक्तिपूर्वक ब्रह्माजीकी पूजा करता है, वह निश्चय ही मेरा पूजन करता है। जो उनसे द्वेष करता है, वह मुझीसे द्वेष करता है और जो उनका पुजारी है, वह मेरा ही पूजक है। ब्रह्माजीकी पूजा करनेवाले पुरुषोंके द्वारा मैं और भगवान् विष्णु दोनों ही पूजित होते हैं। विष्णु सत्त्वगुणी हैं, ब्रह्माजी रजोगुणी हैं और मैं तमोगुणसे युक्त हूँ। ब्रह्माजी वायु, रुद्रदेव अग्नि तथा भगवान् विष्णु जलरूप हैं। मैं सामवेदका आश्रय हूँ। ब्रह्माजी ऋग्वेद धारण करते हैं तथा भगवान् विष्णु यजुर्वेदके स्वरूप एवं अथर्वकी कलाके आधार हैं। मुझे दक्षिणाग्नि, विष्णुको गार्हपत्याग्नि तथा ब्रह्माजीको आहवनीयाग्नि जानना चाहिये। ब्रह्माजी नाभिमें, विष्णु हृदयमें तथा सब भूतोंका आधारभूत मैं चक्र (मूलाधारसे लेकर ब्रह्मरन्ध्रतक)-में स्थित हूँ। हम लोगोंके रूपमें शक्तिविशेषसे साक्षात् परब्रह्म परमात्मा ही स्थित हैं। ॐकार परब्रह्म है और गायत्री उत्तम प्रकृति है। इन दोनोंको जानकर मनुष्य पुरुषयोनिसे वियुक्त नहीं होता। पार्वती! इस प्रकार जो द्वैतरहित परब्रह्मको जानता है, वह सब कुछ जानता है। जो भेददर्शी है, वह नहीं जानता। परब्रह्म तो वास्तवमें एकरूप ही है, तथापि कार्यरूपसे वह पृथक्-सा प्रतीत होता है। जो उससे द्वेष करता है, वह ब्रह्मद्वेषी कहलाता है। मेरे दाहिने अंगमें ब्रह्मा और बायें अंगमें विष्णु विराजमान हैं; जो इन दोनोंसे द्वेष करता है, वह मेरा ही द्वेषी है। सुन्दरि! ऐसा जानकर मनमें भेदभाव न रखते हुए ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्रकी एकरूपसे ही पूजा करनी चाहिये।

ब्राह्मणोंकी महिमा, क्षेत्रवासी ब्राह्मणोंके भेद

महादेवजी कहते हैं—देवि! पृथ्वीपर जो ब्राह्मण हैं, वे मेरे प्रत्यक्ष स्वरूप हैं। स्वर्गके देवता तो परोक्ष हैं, ब्राह्मण ही प्रत्यक्ष देवता हैं। ब्राह्मण मुझे प्रिय हैं। जो भक्तिभावसे उनकी पूजा करता है, वह सदा मेरी ही पूजा करता है। जो भक्तिद्वारा उन्हें संतुष्ट करता है, वह मुझे संतुष्ट कर लेता है। जो ब्राह्मण हैं, वह मैं हूँ। उनके साथ जिसका वैर है, वह मेरा भी वैरी है। प्रिये! पृथ्वीपर जितने भी ब्राह्मण हैं, उनमेंसे जिन्होंने वेदव्रतका पालन किया है, वे तो पूज्य हैं ही; जिन्होंने वेदोक्त व्रतोंका पालन नहीं किया है, वे भी पूजनीय हैं। ब्राह्मण जातिसे ही पवित्र हैं, वेदाभ्याससे उनकी पवित्रता और भी बढ़ जाती है। अतः हव्य और कव्य (यज्ञ और श्राद्ध)-में कहीं भी ब्राह्मण निन्दाके योग्य नहीं हैं। काने, कुबड़े, कोढ़ी, रोगी तथा दरिद्र ब्राह्मणोंका भी विद्वान् पुरुष अपमान न करे; क्योंकि वे मेरे स्वरूप कहे गये हैं। बहुत-से अज्ञानी मनुष्य इस बातको नहीं जानते। जो मेरे स्वरूपभूत ब्राह्मणोंको मारते हैं, उनसे शास्त्रविपरीत कर्म करवाते हैं, जहाँ नहीं भेजना चाहिये, वहाँ उन्हें भेजते हैं तथा उनसे दासता (सेवा-टहल) कराते हैं, वे जब मरते हैं, तब यमदूत उनके माथेपर आरा रखकर उससे उन्हें चीरते हैं—ठीक वैसे ही, जैसे बढ़ई लकड़ी चीरते हैं। जो ब्राह्मणको अंगभंग करता और उनके प्राण लेता है, उसे ब्रह्महत्यारा जानना चाहिये; उसके उद्धारके लिये कोई प्रायश्चित्त नहीं है। वह पचास करोड़ नरकोंमेंसे प्रत्येकमें क्रमशः सहस्रों वर्षोंतक बहुत पीड़ित किया जाता है। इसलिये मानवोंको चाहिये कि वे ब्राह्मणोंको

279 Skandpuran_Section_42_2_Front In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

सदा नमस्कार करें, अन्न-पान देकर सदैव उनकी पूजामें संलग्न रहें। सभी ब्राह्मण सब प्रकारके दान लेनेके अधिकारी हैं। दूसरा कोई दान लेनेमें समर्थ नहीं है। यदि लोभवश कोई दान ग्रहण करता है तो वह अधम गतिको प्राप्त होता है। तपस्यासे पवित्र हुआ ब्राह्मण पापरहित होता है। अतः प्रतिग्रह लेकर वह कष्टमें नहीं पड़ता और न उसे कोई पाप लगता है। जो हृदयमें सदा पवित्रभाव रखते हुए नित्य-निरन्तर ध्यानमें लगा रहता है, उस ब्राह्मणको दोषका सम्पर्क नहीं प्राप्त होता। ब्राह्मण जन्मसे ही महान् है। लोक और लोकेश्वर भी ब्राह्मणोंके पूजक हैं। ब्राह्मण यदि कुपित हों तो अपराधीको नष्ट कर सकते हैं, उसे अपने तेजसे जला सकते हैं। ये ही स्वर्गलोकमें पहुँचानेवाले सनातन देवदेव हैं। ब्राह्मण पूजनीय हैं, वन्दनीय हैं; उन्हींमें सब कुछ प्रतिष्ठित है। वे ही इन सब लोकोंका परस्पर पालन करते हैं। अपने स्वाध्याय और तपको प्रकट न करनेवाले ब्राह्मण उत्तम व्रतवाले हैं। जो विद्या और व्रतमें स्नात हैं, दूसरेके आश्रित न रहकर जीवन-निर्वाह करते हैं, वे ब्राह्मण कुपित होनेपर कालसर्प बन जाते हैं; अतः उनका पूजन करना चाहिये, उन्हें कुपित नहीं करना चाहिये। अध्यात्मस्वरूपका चिन्तन करनेवाले ब्राह्मण ही सब प्राणियोंकी गति हैं। ब्राह्मण यदि विपत्तिमें पड़ा हो तो उसकी सब उपायोंसे रक्षा करे। ये ब्राह्मण मनुष्योंद्वारा सर्वत्र पूजा पाने योग्य हैं। फिर जो अपने चित्तको संयममें रखनेवाले तथा विशेषतः पुण्यक्षेत्रके निवासी हैं, उनके विषयमें तो कहना ही क्या है। जो द्विज विधिपूर्वक क्षेत्र-संन्यास तथा वृत्तिभेदके क्रम जानते हैं, वे क्षेत्रके पूर्ण फलके भागी होते हैं। प्राजापत्य, महीपाल, कपोत, ग्रन्थिक, कुटिक, वेताल, पद्म, हंस, धृतराष्ट्र, वक, कंक, गोपाल, त्रुटिक, प्रवर, गुटिक तथा दण्डिक—ये क्षेत्रवासी ब्राह्मणोंके भेद हैं।

अहिंसा, गुरु-शुश्रूषा, स्वाध्याय, शौच, संयम, सत्य तथा अस्तेय (चोरीका अभाव)—यह प्राजापत्योंका व्रत कहा गया है। शान्ति-पुष्टि आदि कर्मोंद्वारा जो इस मही (पृथ्वी)-का पालन करते हैं, वे महीपाल हैं। जो धरतीपर गिरे हुए अन्नके दानोंको कपोतकी भाँति चुनते हैं और इस तरह उञ्छवृत्तिसे जीविका चलाते हैं, वे साधु पुरुष कपोत कहलाते हैं। जो घर बनाकर रहते हैं, वे सद्ग्रन्थ या ग्रन्थिक हैं। जो सहसा घर त्याग देते हैं, वे शिवाराधनमें तत्पर रहनेवाले साधक कुटिक कहे गये हैं। जिनका तीर्थसेवनमें अनुराग है तथा जो पत्नीके साथ रहते हुए जो कुछ मिल जाय उसीपर संतोष करते हैं, वे महान् साहस (धैर्य)-से युक्त साधक वेताल कहलाते हैं। जो इन्द्रियोंको संयममें रखते हैं, परंतु कामनाओंमें आसक्त हैं, राज्य और धनकी इच्छासे साधनरत हो रहे हैं, वे 'पद्म' कहलाते हैं और सदा भिक्षासे ही जीवन-निर्वाह करते हैं। जो ज्ञानयोगसे युक्त हैं, जिनके केवल व्यवहारमें ही द्वैत है, वे साधक 'हंस' कहे गये हैं। जिन्होंने ब्रह्मचर्य, सत्त्वगुण तथा निर्लोभता आदि गुणोंसे सम्पूर्ण जगत्को जीत लिया है और जो सबका धारण-पोषण करते हैं, वे 'धृतराष्ट्र' माने गये हैं। जो सदा एकमात्र स्वार्थमें ही स्थित होकर ज्ञान, व्रत अथवा धर्मका आचरण करते हैं, उन्हें 'वक' कहते हैं। जो उत्कृष्ट सिद्धि प्राप्त करनेके लिये जलाशयका आश्रय ले कमलकी नाल और सिंघाड़ा आदि खाकर रहते हैं, वे साधक 'कंक' माने गये हैं। जो गौओंके साथ चलते, गोशालामें निवास करते तथा पंचगव्य रसका सेवन करते हैं, वे साधक 'गोपाल' माने गये हैं। जो कृच्छ्र और चान्द्रायण आदि व्रतोंके द्वारा अपने शरीरको क्षीण करते हैं तथा त्रुटिकाल (आधे निमेष)-में ही भोजन कर लेते हैं, वे साधक त्रुटिक माने गये हैं। जो कुशकी पत्नी बनाकर मठमें स्थापित करते और गृहस्थ-धर्मका पालन करते हुए भिक्षावृत्तिसे जीवन-निर्वाह करते हैं, वे साधक 'प्रवर' या 'मठर' कहलाते हैं। जो

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

ब्राह्मण कन्द अथवा मूल-फलकी एक-एक ग्रासकी आठ गुटिकाएँ बनाकर उन्हींका आहार करते हैं, वे 'गुटिक' कहलाते हैं। जो रातमें वीरासनसे बैठकर अपने शरीरको ही दण्ड देनेमें संलग्न हैं, वे 'दण्डी' कहे गये हैं। प्रभासक्षेत्रमें रहनेवाले जो ब्राह्मण इस प्रकारकी वृत्तियोंसे जीविका चलाते हैं, उनके द्वारा बालरूपधारी भगवान् ब्रह्मा सदैव पूजनीय हैं। जो महापातकी हैं और जिन्हें ब्राह्मणोंने अपनी पंक्तिसे बाहर कर दिया है, वे बालरूपधारी ब्रह्माजीका स्पर्श न करें। जो दीर्घजीवी होना चाहता है, वह ब्रह्मचारी, शान्त और जितेन्द्रिय ब्राह्मणका कभी अपमान न करे।

ब्रह्माजीके प्रति भक्तिके भेद, रथयात्रा, ब्रह्माके एक सौ आठ नाम तथा कार्तिकपूर्णिमाको उनके दर्शनका माहात्म्य

महादेवजी कहते हैं—भक्तिके तीन भेद हैं—लौकिकी, वैदिकी और आध्यात्मिकी। गन्ध, माला, शीतल जल, घी, गुग्गुल, धूप, काला, अगुरु, सुगन्धित पदार्थ, सुवर्ण, रत्न आदि आभूषण, विचित्र हार, न्यास, स्तोत्र, ऊँची-ऊँची पताका, नृत्य-वाद्य, गान, सब प्रकारकी वस्तुओंके उपहार तथा भक्ष्य, भोज्य, अन्न, पान आदि सामग्रियोंसे मनुष्योंद्वारा जो ब्रह्माजीकी पूजा की जाती है, वह लौकिकी भक्ति मानी गयी है। वेदमन्त्र और हविष्यभागके द्वारा जो यज्ञक्रिया की जाती है, वह वैदिकी भक्ति है। अमावास्या और पूर्णिमाको किया जानेवाला अग्निहोत्र, संस्रवप्राशन, दक्षिणादान, पुरोडाश, इष्टि, धृति, सोमपान, सब प्रकारके यज्ञकर्म, ऋग्वेद, सामवेद और यजुर्वेदके मन्त्रोंका जप तथा संहिताभागका स्वाध्याय—ये सब कर्म जो ब्राह्मणोंद्वारा किये जाते हैं, वे वैदिकी भक्तिके अन्तर्गत हैं। जो प्रतिदिन इन्द्रियसंयमपूर्वक प्राणायाम एवं ध्यानमें संलग्न रहता है, भिक्षान्नसे जीवननिर्वाह करता है, व्रतके पालनमें स्थित रहता है, समस्त इन्द्रियोंको विषयोंकी ओरसे समेटकर उन्हें हृदयमें स्थापित करके प्रजापति ब्रह्माजीका ध्यान करता है, वह आध्यात्मिकी भक्तिसे युक्त 'ब्रह्मभक्त' कहलाता है। ब्रह्माजीका ध्यान इस प्रकार करे—हृदयकमलकी कर्णिकाके आसनपर ब्रह्माजी विराजमान हैं, उनके शरीरका वर्ण लाल है, नेत्र बड़े सुन्दर हैं, मुख दिव्य तेजसे प्रकाशित है, उनके चार भुजाएँ हैं और हाथोंमें वरद एवं अभयकी मुद्राएँ हैं।'

जो ममता और अहंकारसे रहित, अनासक्त, परिग्रहशून्य, चारों पुरुषार्थोंके प्रति भी स्नेह न रखनेवाले, ढेला, पत्थर और सुवर्णको समान दृष्टिसे देखनेवाले, समस्त प्राणियोंके हितके लिये धर्मानुष्ठानमें तत्पर, सांख्ययोगकी विधिके ज्ञाता, धर्मके विषयमें संशयरहित तथा प्रतिदिन ब्रह्माजीकी पूजामें संलग्न रहनेवाले हैं, वे ही ब्राह्मण प्रभासक्षेत्रके श्रेष्ठ निवासी हैं।

गायत्री उत्तम मन्त्र है। जो पूर्णिमामें उपवास करके गायत्रीके अक्षरतत्त्वोंद्वारा ब्रह्माजीकी पूजा करता है, वह परम पदको प्राप्त होता है। यदि ब्राह्मण भयंकर संसार-सागरके पार उतरना चाहे तो प्रभासमें पूरे कार्तिकमासभर ब्रह्माजीके पूजनमें तत्पर रहे। जिनके दर्शनमात्रसे अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त होता है, प्रभासक्षेत्रमें उन बालरूपधारी ब्रह्माजीकी कौन विद्वान् पूजा नहीं करेगा? जिनके एक दिनका अन्त होते ही देवता, असुर और मनुष्य आदि सब प्राणी विनाशको प्राप्त होते हैं, उनका पूजन कौन नहीं करेगा। रुद्र और विष्णुके रूपमें भी वे लोकनाथ ब्रह्माजी ही पूजित होते हैं। जो पूर्णिमाको उपवास करके जगत्पति ब्रह्माका विधिपूर्वक पूजन करता है, वह अश्वमेध यज्ञका फल पाता है। कार्तिककी पूर्णिमाको सावित्रीसहित चतुर्मुख ब्रह्माजीको गाजे-बाजेके साथ नगरमें घुमाये। तत्पश्चात् उन्हें विश्राम-स्थानपर स्थापित करे। फिर ब्राह्मणोंको

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

भोजन कराकर शाण्डिलेयकी पूजा करे। उसके बाद मंगलमय वाद्योंकी ध्वनिके साथ ब्रह्माजीको पुनः रथपर बिठाये। रथके आगे शाण्डिली-पुत्रकी विधिवत् पूजा करके ब्राह्मणोंसे पुण्याहवाचन कराये। रथपर चढ़ानेके बाद रातमें जागरण करे। ब्रह्माजीके दाहिने पार्श्वमें सावित्रीदेवीको स्थापित करे और भोजनको बायें पार्श्वमें। ब्रह्माजीके आगे एक कमल रख दे, फिर वाद्यों और शंखोंकी तुमुल ध्वनिके साथ समूचे नगरकी प्रदक्षिणा करते हुए रथको घुमाये और अपने स्थानपर आकर ब्रह्माजीकी आरती करके फिर उन्हें यथास्थान विराजमान करे। जो इस प्रकार यात्रा करता है, जो उस यात्राको देखता है अथवा ब्रह्माजीके रथको खींचता है, वह ब्रह्मधाममें जाता है। जो ब्रह्माजीके रथके पीछे दीप धारण करता है, वह पग-पगपर अश्वमेध यज्ञका महान् फल पाता है। राजाको चाहिये कि वह ब्रह्माजीकी रथयात्रा अवश्य कराये। प्रतिपदाको ब्राह्मणभोजन कराना चाहिये और उन ब्राह्मणोंका नवीन वस्त्र, गन्ध, माला और अनुलेपन आदिके द्वारा पूजन करना चाहिये। जो कार्तिककी अमावास्याको ब्रह्माजीके मन्दिरमें दीप जलाता है, वह परम पदको प्राप्त होता है। सभी उत्सवोंके अवसरपर इन जगत्पति ब्रह्माजीकी पूजा करनी चाहिये।

पार्वती! अब मैं ब्रह्माजीके एक सौ आठ नाम कहता हूँ; उनका अष्टोत्तरशतनामस्तोत्र परम दिव्य, गोपनीय तथा पापनाशक है। वेदोंके ज्ञाता महात्मा ब्राह्मणको इसका उपदेश देना चाहिये। पूर्वकालमें भगवान् विष्णुने पूछा—'देवदेव पितामह! आप किन-किन स्थानोंमें किस-किस नामसे निवास करते हैं? यह स्मरण करके बताइये।'

ब्रह्माजीने कहा—मैं पुष्करमें सुरश्रेष्ठ, गयामें प्रपितामह, कान्यकुब्जमें वेदगर्भ, भृगुकच्छमें चतुर्मुख, कौबेरीमें सृष्टिकर्ता, नन्दिपुरीमें बृहस्पति, प्रभासमें बालरूपी, वाराणसीमें सुरप्रिय, द्वारावतीमें चक्रदेव, वैदिशमें भुवनाधिप, पौण्ड्रकमें पुण्डरीकाक्ष, हस्तिनापुरमें पीताक्ष, जयन्तीमें विजय, पुरुषोत्तममें जयन्त, वाडमें पद्महस्त, तमोलिप्तमें तमोनुद, आहिच्छत्रीमें जनानन्द, कांचीपुरीमें जनप्रिय, कर्णाटकमें ब्रह्मा, ऋषिकुण्डमें मुनि, श्रीकण्ठमें श्रीनिवास, कामरूपमें शुभंकर, उड्डीयानमें देवकर्ता, जालन्धरमें स्रष्टा, मल्लिकामें विष्णु, महेन्द्रपर्वतपर भार्गव, गोमदमें स्थविराकार, उज्जयिनीमें पितामह, कौशाम्बीमें महादेव, अयोध्यामें राघव, चित्रकूटमें विरंचि, विन्ध्याचलमें वाराह, हरिद्वारमें सुरश्रेष्ठ, हिमवान् पर्वतपर शंकर, देहिकामें स्रुचाहस्त, अर्बुदमें पद्महस्त, वृन्दावनमें पद्मनेत्र, नैमिषारण्यमें कुशहस्त, गोपक्षेत्रमें गोविन्द, यमुनातटपर सुरेन्द्र, भागीरथीमें पद्मतनु, जनस्थलमें जनानन्द, कोंकणमें मध्वक्ष, काम्पिल्यमें कनकप्रभ, खेटकमें अन्नदाता, क्रतुस्थलमें शम्भु, लंकामें पौलस्त्य, काश्मीरमें हंसवाहन, अर्बुदमें वसिष्ठ, उत्पलावनमें नारद, मेधकमें श्रुतिदाता, प्रयागमें यजुष्पति, शिवलिंगमें सामवेद, मार्कण्डस्थानमें मधुप्रिय, गोमन्तमें नारायण, विदर्भामें द्विजप्रिय, अंकुलकमें ब्रह्मगर्भ, ब्रह्मवाहमें सुतप्रिय, इन्द्रप्रस्थमें दुराधर्ष, पम्पामें सुदर्शन, विरजामें महारूप, राष्ट्रवर्धनमें सुरूप, कदम्बकमें जनाध्यक्ष, समस्थलमें देवाध्यक्ष, रुद्रपीठमें गंगाधर, सुपीठमें जलद, त्र्यम्बकमें त्रिपुरारि, श्रीशैलमें त्रिलोचन, प्लक्षपुरमें महादेव, कपालमें वेधनाशन, शृंगवेरपुरमें शौरि, निमिषक्षेत्रमें चक्रधारक, नन्दिपुरीमें विरूपाक्ष, प्लक्षपादपमें गौतम, हस्तिनाथमें माल्यवान्, वाचिकमें द्विजेन्द्र, इन्द्रपुरीमें दिवानाथ, भूतिकामें पुरन्दर, चन्द्रामें हंसबाहु, चम्पामें गरुडप्रिय, महोदयमें महायक्ष, पूतक वनमें सुयज्ञ, सिद्धेश्वरमें शुक्लवर्ण, विभामें पद्मबोधक, देवदारुवनमें लिंगी, उदकमें उमापति, मातृस्थानमें विनायक, अलकामें धनाधिप, त्रिकूटमें गोविन्द, पातालमें वासुकि, कोविदारमें युगाध्यक्ष, स्त्रीराज्यमें सुरप्रिय, पूर्णगिरिमें सुभोग, शाल्मलिमें तक्षक, अमरमें पापहा, अम्बिकामें सुदर्शन, नरवापीमें महावीर, कान्तारमें दुर्गनाशन, पद्मावतीमें पद्मगृह तथा गगनमें मृगलाञ्छन नामसे

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

रहता हूँ। मधुसूदन! जो इन एक सौ आठमेंसे एकमात्र बालरूपी ब्रह्माका भी दर्शन कर लेता है, उसे पूर्वोक्त सभी ब्रह्मविग्रहोंके दर्शनका पुण्य-फल प्राप्त होता है। श्रीकृष्ण! जो प्रभासमें इन नामोंद्वारा मेरा स्तवन करता है, वह मेरे धामको पाकर आनन्द भोगता है। मेरे इस स्तोत्रके पाठसे या श्रवणसे मानसिक, वाचिक और शारीरिक सभी पाप छूट जाते हैं। कार्तिककी पूर्णिमाको जब कृत्तिका नक्षत्र हो, तब प्रभासक्षेत्रमें वह तिथि मुझे बहुत प्रिय है। और यदि उसी तिथिमें रोहिणी नक्षत्र आ जाय तो वह पुण्यमयी महा कार्तिकी कहलाती है, जो देवताओंके लिये भी दुर्लभ है। शनैश्चर, रविवार अथवा बृहस्पतिवार तथा कृत्तिका नक्षत्रके योगसे युक्त यदि कार्तिक-मासकी पूर्णिमा हो तो उसमें बालरूपी ब्रह्माजीका दर्शन करके मनुष्य अश्वमेध यज्ञका फल पाता है। विशाखा नक्षत्रके सूर्य और कृत्तिका नक्षत्रके चन्द्रमा हों तो वह पद्मकयोग प्रभासक्षेत्रमें दुर्लभ है। करोड़ों पापोंसे युक्त मनुष्य भी उक्त योगमें प्रभासक्षेत्रके भीतर यदि बालरूपधारी ब्रह्माजीका दर्शन कर ले तो उसे यमलोक नहीं देखना पड़ता।

प्रत्यूषेश्वर, अनिलेश्वर, प्रभासेश्वर, रामेश्वर, लक्ष्मणेश्वर, कुण्डेश्वरीदेवी तथा भूतेश्वरका माहात्म्य

महादेवजी कहते हैं—तदनन्तर सोमेश्वरसे ईशानकोणमें पचास धनुषके अन्तरपर प्रत्यूषेश्वर नामक लिंग है। उसके दर्शनसे सात जन्मोंका पाप नष्ट हो जाता है। धर्मराजसे उनकी पत्नी विश्वाने आठ पुत्रोंको जन्म दिया, जो आठ 'वसु' कहलाये। उनके नाम इस प्रकार हैं— आप, भव, सोम, धर, अनल, अनिल, प्रत्यूष और प्रभास। इनमें सातवें वसु प्रत्यूष पुत्रकी इच्छासे प्रभासक्षेत्रमें आये और शिवलिंगकी स्थापना करके मेरा ध्यान करते हुए उन्होंने शान्तचित्तसे दिव्य सौ वर्षोंतक बड़ी भारी तपस्या की। उनकी भक्तिसे मैं प्रसन्न हुआ और मैंने उन्हें पुत्र दिया। योगियोंमें श्रेष्ठ देवल ही उनके पुत्र हैं। प्रत्यूषके द्वारा स्थापित और पूजित होनेसे उस लिंगका नाम 'प्रत्यूषेश्वर' हुआ। जो सन्तानहीन पुरुष उनकी आराधना करता है, उसके कुलमें कभी सन्ततिका नाश नहीं होता। जो भक्तिभावसे इन्द्रियोंको वशमें रखते हुए सदा उनकी पूजा करता है, उसका महापाप भी नष्ट हो जाता है। माघ कृष्णा चतुर्दशीकी रात्रिमें वहाँ जागरण करना चाहिये। जागरण करनेसे मनुष्य सब दानों और यज्ञोंका फल पा लेता है।

वहाँसे उत्तर और ईशान दिशामें तीन धनुषकी दूरीपर अनिलेश्वरलिंग है, उनका बड़ा प्रभाव है। वह दर्शनमात्रसे सब पापोंका नाश करनेवाला है। पूर्वोक्त आठ वसुओंमेंसे अनिलने मेरी आराधना करके मेरा प्रत्यक्ष दर्शन प्राप्त किया और शिवलिंगकी स्थापना की। इससे उन्हें मनोजव नामक पुत्र प्राप्त हुआ। अनिलेश्वरका दर्शन करके मनुष्य कभी अन्धा, बहरा, गूँगा, रोगी और निर्धन नहीं होता। जो उस लिंगपर एक फूल भी चढ़ा देता है, वह सदा सुख-सौभाग्यसे सम्पन्न तथा रूपवान् होता है।

गौरी-तपोवनसे पश्चिम सात धनुषकी दूरीपर प्रभासेश्वर नामक महान् शिवलिंग है, जिसकी स्थापना शिवपूजनपरायण आठवें वसु प्रभासने की है। प्रभासने वहाँ सौ वर्षोंतक तपस्या की। इससे सन्तुष्ट होकर मैंने उन्हें मनोवांछित वर दिया। प्रभासके पुत्र विश्वकर्मा हुए। माघमासकी चतुर्दशीको समुद्रसंगममें स्नान करके मनुष्य भूमिशयन और उपवासका नियम ले शतरुद्रियका जप करे तथा पंचामृतसे प्रभासेश्वरको स्नान कराकर विधिपूर्वक

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

उनकी पूजा करे। यों करनेसे वह सब पापोंसे मुक्त और सम्पूर्ण भोगोंसे सम्पन्न होता है।

प्रभासेश्वरसे ईशानकोणमें साठ धनुषकी दूरीपर पुष्करारण्य है। वहीं ज्येष्ठपुष्कर नामक कुण्ड है। वह समस्त पापोंका नाश करनेवाला है। पुण्यहीन पुरुषोंके लिये वह दुर्लभ है। पूर्वकालमें परम बुद्धिमान् श्रीरामने वहाँ रामेश्वरलिंगकी स्थापना की थी। उसकी पूजा करनेसे मनुष्य ब्रह्महत्यासे मुक्त हो जाता है।

चौबीसवें त्रेतायुगकी बात है, पुरोहित वसिष्ठजीके द्वारा पुत्रेष्टि यज्ञ कराये जानेपर राजा दशरथके चार पुत्र हुए। उनमेंसे श्रीरामचन्द्रजी सीता और लक्ष्मणके साथ वनवासके लिये गये। उसी समय यात्रा-प्रसंगसे वे प्रभासक्षेत्रमें भी आये। ज्येष्ठपुष्करके समीप आकर वे विश्रामके लिये बैठे। सूर्यास्त हो जानेपर उन्होंने पृथ्वीपर पत्ते बिछाये और सो गये। कुछ रात बाकी रहनेपर स्वप्नमें उन्हें अपने पिता दशरथजीका दर्शन हुआ। प्रातःकाल उठकर उन्होंने ब्राह्मणोंसे यह सब बात कही।

तब ब्राह्मणोंने कहा—रघुनन्दन! पितर आपका अभ्युदय चाहते हैं; जब वे वर देनेको उद्यत होते हैं, तभी स्वप्नमें अपने वंशजोंको दर्शन देते हैं। यह परम पुण्यमय स्थान भगवान् विष्णुका गुप्त तीर्थ है। प्रभासक्षेत्रमें इसकी पुष्कर नामसे प्रसिद्धि है। अतः यहाँ पितरोंका श्राद्ध कीजिये। निश्चय ही राजा दशरथ इस तीर्थमें आपके द्वारा दिया हुआ शुभ पिण्ड प्राप्त करना चाहते हैं। इसीलिये उन्होंने दर्शन दिया है।

उनकी बात सुनकर कमलनयन श्रीरामने श्राद्धके लिये ब्राह्मणोंको निमन्त्रित किया और लक्ष्मणजीसे कहा—'सुमित्रानन्दन! तुम श्राद्धके लिये फल लेनेको जाओ।' 'बहुत अच्छा' कहकर लक्ष्मणजी गये और अनेक प्रकारके उत्तम फल ले आये। जानकीजीने उन फलोंको शीघ्र ही पकाकर तैयार किया। फिर कुतप काल (मध्याह्नके समय)-में नहा-धोकर पवित्र हो वल्कल धारण किये हुए श्रीरामचन्द्रजी श्राद्धके योग्य ब्राह्मणोंको बुला ले आये। गालव, देवल, रैभ्य, यवक्रीत, पर्वत, भारद्वाज, वसिष्ठ, जाबालि, गौतम, भृगु तथा अन्य बहुत-से वेदज्ञ ब्राह्मण श्रीरामचन्द्रजीके द्वारा किये जानेवाले श्राद्धको सम्पन्न करनेके लिये आये। इसी समय श्रीरामचन्द्रजीने सीतासे कहा—'विदेहनन्दिनी! आओ, ब्राह्मणोंके लिये पाद्य और अर्घ्य दो।' यह सुनकर सीताजी वृक्षोंके बीचमें चली गयीं और लताकुंजमें अपनेको छिपाकर श्रीरामचन्द्रजीकी दृष्टिसे ओझल हो गयीं। इधर श्रीरामचन्द्रजी 'सीते! सीते!' कहकर पुकारने लगे। तब लक्ष्मणजीने ही ब्राह्मणोंको अर्घ्य देनेका कार्य किया। जब ब्राह्मणलोग भोजन कर चुके और पिण्डदानका कार्य समाप्त हो गया, तब जनकनन्दिनी सीता श्रीरामचन्द्रजीके पास आयीं। उन्हें देखकर श्रीरामने पूछा—'श्राद्धकाल उपस्थित होनेपर तुम मुझे छोड़कर कहाँ चली गयी थीं?'

सीताजीने हाथ जोड़कर कहा—प्रभो! आज मैंने आपके पिता, पितामह, प्रपितामह तथा मातामह आदिको भी देखा है। वे पृथक्-पृथक् ब्राह्मणोंके अंगोंमें स्थित थे। अतः उनके सामने जानेमें मुझे लज्जा हुई। श्वशुरवर्गको उपस्थित देखकर मैं लज्जासे ही छिप गयी थी।

यह सुनकर श्रीरामचन्द्रजीको बड़ा विस्मय हुआ। उन्होंने पुष्करके समीप ही वहाँसे एक धनुष दक्षिण हटकर रामेश्वरलिंगकी स्थापना की। जो मनुष्य गन्ध, पुष्प आदिके द्वारा भक्तिपूर्वक रामेश्वरका पूजन करता है, वह भगवान् विष्णुके उत्तम धाममें जाता है। शुक्ल अथवा मंगलयुक्त चतुर्थी तथा आश्विनमासकी षष्ठीको वहाँ श्राद्ध करनेसे महान् फल होता है। वहाँ पुष्करमें अपने वंशजोंद्वारा तर्पण किये जानेपर पितर और पितामह बारह वर्षोंतक तृप्त रहते हैं और दूसरी किसी भी वस्तुकी इच्छा नहीं करते।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

रामेश्वरसे तीस धनुष पूर्व दिशामें लक्ष्मणेश्वर-लिंग है। यात्रामें गये हुए लक्ष्मणजीने उस देवपूजित लिंगको स्थापित किया था। जो स्त्री या पुरुष विधिपूर्वक स्नान कराकर भक्तिभावसे लक्ष्मणेश्वरका पूजन करता है, वह सब पातकोंसे मुक्त हो जाता है। रामेश्वरसे नैर्ऋत्यकोणमें जानकीश्वर-लिंग है। जो नारी माघमासकी तृतीयाको जानकीश्वरका पूजन करती है, उसके वंशमें दुर्भाग्य, दुःख और शोक नहीं होते।

तदनन्तर वामन स्वामीके नामसे प्रसिद्ध पापहारी विष्णुके समीप जाय। उनका स्थान पुष्करसे नैर्ऋत्यकोणमें बीस धनुषके अन्तरपर है। जिस समय उन्होंने दैत्यराज बलिको बाँधा था, उस समय पहला चरण वहीं (प्रभासक्षेत्रमें) रखा, दूसरा मेरु-शिखरपर रखा और तीसरा आकाशमें जब ऊपरकी ओर वे पैर बढ़ाने लगे तब उनके चरणोंके अग्रभागसे ब्रह्माण्ड फूट गया तथा वहाँसे जल निकल आया। वह जल उनके घुटनेके मार्गसे बहता हुआ इस पृथ्वीपर आया। वही इस पृथ्वीपर विष्णुपदी गंगाके नामसे प्रसिद्ध है। महानदी गंगा पहले प्रभासक्षेत्रके अन्तर्गत पुष्करमें ही आयी। जो मनुष्य विष्णुपदीमें स्नान करके भगवान्के चरणका दर्शन करता है, वह उनके परम धाममें जाता है। जो वहाँ ब्राह्मणको उपानह देता है वह श्रेष्ठ विमानपर चढ़कर विष्णुलोकमें प्रतिष्ठित होता है।

वहाँसे दक्षिण जानकीश्वरके समीप परम उत्तम पुष्करेश्वरलिंग है, जिसकी पूजा ब्रह्मपुत्र सनत्कुमार मुनिने सुवर्णमय कमलोंसे की है। वह सब पातकोंका नाश करनेवाला है। जो मनुष्य भक्तिसे गन्ध, पुष्प आदिके द्वारा उनकी पूजा करता है, उसको पुष्करयात्राका फल मिलता है।

पुष्करसे वायव्यकोणमें तीस धनुषपर और भूतेश्वरसे नैर्ऋत्यकोणमें कुण्डेश्वरी देवीका स्थान है। वे देवी दरिद्रता और पापका नाश करनेवाली हैं। उनसे नैर्ऋत्यकोणमें पंद्रह धनुषकी दूरीपर शंखोदक कुण्ड है, जो सब पातकोंका नाश करनेवाला है। जो पुरुष अथवा सदाचारिणी स्त्री शंखावर्ता नामसे विख्यात देवीकी पूजा करती है, उसके सब मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं। कलियुगमें शंखावर्ता देवी कुण्डेश्वरी नामसे प्रसिद्ध हैं। प्राचीन कालमें भगवान् विष्णुने जब शंख नामक दैत्यको मारा, उस समय उसके शंखाकार शरीरको इसी तीर्थके जलसे धोकर पवित्र किया और मेघके समान गम्भीर ध्वनिवाले उस शंखको वहीं बजाया। उसके गम्भीर नादसे देवी वहाँ आयीं और कुण्डके समीप स्थित होकर कारण पूछने लगीं। इसीसे उनका नाम 'कुण्डेश्वरी' हुआ। जो स्त्री या पुरुष माघमासकी तृतीयाको कुण्डेश्वरी देवीका पूजन करता है, उसे गौरी-पदकी प्राप्ति होती है। यात्राके फलकी इच्छा रखनेवाले मनुष्योंको वहाँ ब्राह्मण-दम्पतिको भोजन कराना चाहिये।

कुण्डेश्वरीसे ईशानकोणमें बीस धनुषके अन्तरपर भूतनाथेश्वर शिव हैं। वह आदि-अन्तरहित लिंग कल्पपर्यन्त रहनेवाला है। पहले त्रेतायुगमें उसका नाम वीरभद्रेश्वर था। फिर कलियुगमें भूतेश्वर हुआ। जब द्वापर और कलियुगकी सन्धिका समय चल रहा था, उस समय उस लिंगके प्रभावसे करोड़ों भूतप्राणी परमसिद्धि (मुक्ति)-को प्राप्त हुए थे। इसीसे भूतलपर वह 'भूतेश्वर' नामसे विख्यात हुआ। जो कृष्णपक्षकी चतुर्दशीको रात्रिमें भूतेश्वर शिवका पूजन करके दक्षिण दिशामें जा जितेन्द्रिय, निर्भय एवं ध्यानपरायण होकर अघोरमन्त्रका जप करता है, उसको पूर्ण सिद्धि प्राप्त होती है। वहाँपर पितरोंकी प्रेतयोनिसे मुक्तिके लिये तिल, सुवर्ण और पिण्डका दान करना चाहिये।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

गोप्यादित्यकी स्थापना और महिमा तथा नीलसे हानि

भूतेशसे वायव्यकोणमें तीस धनुषकी दूरीपर गोप्यादित्यका स्थान है। पूर्वकालमें महातेजस्वी श्रीकृष्ण जब छप्पन कोटि यादवोंके सात प्रभासक्षेत्रमें आये, उस समय सोलह हजार गोपियाँ भी वहाँ आ गयीं। उनमेंसे जो सर्वश्रेष्ठ सोलह गोपियाँ बतायी गयी हैं, उनके नाम बताता हूँ; सुनो—लम्बिनी, चन्द्रिका, कान्ता, अक्रूरा, शान्ता, महोदया, भीषणी, नन्दिनी, अशोका, सुपर्णा, विमला, अक्षया, शुभदा, शोभना और पुण्या—ये हंस (श्रीकृष्णचन्द्र)-की कलाएँ मानी गयी हैं। परमात्मा श्रीकृष्ण ही हंस हैं और उनकी ये शक्तियाँ हैं। श्रीकृष्ण चन्द्रस्वरूप हैं और ये गोपियाँ उनकी कलाएँ हैं। उपर्युक्त पंद्रह कलाओंके सिवा, मालिनी उनकी सोलहवीं कला है। जो पुरुष इस प्रकार जानता है, उसे वैष्णव जानना चाहिये।

उन सोलह हजार गोपियोंने भगवान् श्रीकृष्णकी आज्ञा ले उस क्षेत्रमें निवास करनेवाले नारद आदि मुनियोंके सहयोगसे विधिपूर्वक भगवान् सूर्यकी स्थापना की और नाना प्रकारके दान दिये। महर्षियोंने वहाँ भगवान् सूर्यका नाम गोप्यादित्य रखा। इस प्रकार सूर्यदेवकी प्रतिष्ठा हो जानेपर वे सब गोपियाँ कृतार्थ हुईं और महान् यश पाकर श्रीकृष्णके साथ द्वारकाको गयीं। प्रभासक्षेत्रमें गोपियोंद्वारा स्थापित जो गोप्यादित्य हैं, उनका दर्शनमात्र करके मनुष्य दुःखशोकसे मुक्त हो जाता है। जो मानव माघमासकी सप्तमीको उपवास करके गोप्यादित्यकी पूजा करता है, वह अपने पितरोंको सात बार तृप्त कर लेता है। वह अपने समस्त रोगोंका नाश करता है और दुश्चेष्टापरायण दुर्जय शत्रुओंको भी जीत लेता है। सप्तमीको तैलका स्पर्श न करे, नीले रंगका वस्त्र न पहने, आँवला लगाकर स्नान न करे और कहीं किसीके साथ विवाद भी न करे। नीलके रँगे हुए वस्त्र धारण करके द्विज जो भी स्नान, दान, जप, होम, स्वाध्याय तथा पितृतर्पण आदि कर्म करता है, वे तथा इसके पञ्च महायज्ञ भी उस नील सूत्रके कारण नष्ट हो जाते हैं। यदि ब्राह्मण नीलका रँगा वस्त्र अपने अंगोंमें धारण कर ले तो दिन-रात उपवास करके पंचगव्य पीनेसे शुद्ध होता है। यदि किसी ब्राह्मणके रोमकूपोंमें नीलके रसका (नीलमिश्रित जलका) प्रवेश हो जाय तो वह पतित हो जाता है और तीन कृच्छ्र-व्रत करनेपर उसकी शुद्धि होती है। यदि ब्राह्मण भूलसे भी नील-वृक्षोंके बीचसे निकल जाय तो वह दिन-रात उपवास करके पंचगव्य पीनेपर शुद्ध होता है। यदि ब्राह्मणके शरीरमें नीलकी लकड़ी गड़ जाय और रक्त दिखायी देने लगे तो उसे चान्द्रायण व्रत करना चाहिये। देवि! जो अनजानमें नीलका दाँतौन कर लेता है, वह दो बार कृच्छ्र-व्रत करनेपर उस पापसे शुद्ध होता है।*

पार्वती! कुरुजांगल (कुरुक्षेत्र)-में एक लाख गोदान करनेसे जो पुण्य होता है, वह सब गोप्यादित्यके दर्शनमात्रसे प्राप्त हो जाता है।

~~~o~~~

* नीलरक्तेन वस्त्रेण यत्कर्म कुरुते द्विजः। स्नानं दानं जपो होमः स्वाध्यायः पितृतर्पणम्॥
नश्यन्त्यस्य महायज्ञा नीलसूत्रस्य कारणात्। नीलरक्तं यदा वस्त्रं विप्रस्त्वङ्गेषु धारयेत्॥
अहोरात्रोषितो भूत्वा पञ्चगव्येन शुद्ध्यति। रोमकूपे यदा गच्छेद्रसं नीलस्य कस्यचित्॥
पतितस्तु भवेद् विप्रस्त्रिभिः कृच्छ्रैर्विशुद्ध्यति। नीलमध्ये यदा गच्छेत्प्रमादाद् ब्राह्मणः क्वचित्॥
अहोरात्रोषितो भूत्वा पञ्चगव्येन शुद्ध्यति। नीलदारु यदा भिद्येद् ब्राह्मणानां शरीरके॥
शोणितं दृश्यते चैव द्विजश्चान्द्रायणं चरेत्। कुर्यादज्ञानतो यस्तु नीलं वै दन्तधावनम्॥
कृत्वा कृच्छ्रद्वयं देवि तस्मात पापाद् विशुद्ध्यति। (स्क० पु०, प्र० खं० ११५। ३१—३७)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth
~~~

रामेश्वर, चित्रांगदेश्वर तथा रावणेश्वरकी महिमा

महादेवजी कहते हैं—तदनन्तर परशुरामजीके द्वारा स्थापित रामेश्वरलिंगका दर्शन करे। वह स्थान गोपीश्वरसे वायव्यकोणमें तीस धनुषकी दूरीपर है। जिस समय जमदग्निपुत्र परशुरामजीने पिताकी आज्ञासे अपनी माताका वध किया और पिताके अनुग्रहसे वह पुनः जीवित हो गयी, उस समय प्रभासक्षेत्रमें आकर उन्होंने अद्भुत तपस्या की। वे मेरे विग्रहकी स्थापना करके एक सौ पचास वर्षतक आराधनामें संलग्न रहे। इससे सन्तुष्ट होकर मैंने उन्हें मनोवांछित वर दिया और उनके द्वारा स्थापित शिवलिंगमें निवास किया। इससे महर्षि परशुराम कृतार्थ हुए। तदनन्तर भूमण्डलके सम्पूर्ण क्षत्रियोंका इक्कीस बार संहार करके वे माता-पिताके ऋणसे उऋण हुए। जो मनुष्य उनके द्वारा स्थापित शिवलिंगका भक्तिपूर्वक पूजन करता है, वह समस्त पापोंसे मुक्त हो मेरे धाममें जाता है।

रामेश्वरसे बीस धनुषके अन्तरपर नैर्ऋत्यकोणमें चित्रांगदेश्वरलिंग है। गन्धर्वोंके स्वामी चित्रांगदने उस क्षेत्रको परम पवित्र जानकर वहाँ शिवलिंग स्थापित किया और बड़ी भारी तपस्या करके मेरी आराधना की। जो पुरुष भाव-भक्तिसे युक्त हो उस लिंगकी पूजा करता है, वह गन्धर्वलोकमें जाता और गन्धर्वोंके साथ आनन्द भोगता है। शुक्लपक्षकी चतुर्दशीको जो विधिपूर्वक उस शिवलिंगको स्नान कराकर भाँति-भाँतिके पुष्प, चन्दन और धूप आदिके द्वारा उसकी पूजा करता है, वह सम्पूर्ण मनोवांछित फलको प्राप्त कर लेता है।

उस स्थानसे दक्षिण और नैर्ऋत्यमें सोलह धनुषके अन्तरपर रावणेश्वरलिंग है, जिसकी स्थापना रावणने की है। वहाँ उसने भक्तिपूर्वक उपवास करके मेरी आराधना की और गीत, वाद्य आदिका आयोजन करके जागरण किया। पंद्रह दिनोंतक इस प्रकार मेरी अर्चना करनेपर आकाशवाणी हुई—'महाबाहु दशग्रीव! मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ। मेरे प्रसादसे तीनों लोक तुम्हारे अधीन होंगे। मैं प्रतिदिन तुम्हारे द्वारा स्थापित शिवलिंगमें निवास करूँगा। राक्षसराज! जो मानव भक्तिपूर्वक रावणेश्वर लिंगकी पूजा करेंगे, वे शत्रुओंसे अजय होंगे। मेरी कृपासे उन्हें परमसिद्धि प्राप्त होगी।'

यों कहकर मेरी आकाशवाणी मौन हो गयी। रावणने भी सन्तुष्ट होकर बार-बार मेरा पूजन किया और तीनों लोकोंपर विजय पानेकी इच्छा रखकर वह पुष्पक विमानपर आरूढ़ हो अभीष्ट स्थानको चला गया।

रावणेश्वरसे पश्चिम पाँच धनुष दूर सौभाग्य-दायिनी गौरीका निवास है, जहाँपर सौभाग्यकी इच्छा रखनेवाली अरुन्धतीदेवीने गौरीजीकी आराधनामें तत्पर हो घोर तपस्या की थी। गौरीदेवीके प्रसादसे उन्हें उत्तम सिद्धि प्राप्त हुई। जो माघ शुक्ला तृतीयाको भक्तिपूर्वक गौरीजीका पूजन करता है, वह सात जन्मोंतक सौभाग्यशाली होता है।

~~~o~~~

पौलोमीश्वर, शाण्डिल्येश्वर, क्षेमेश्वर तथा सागरादित्यका माहात्म्य

महादेवजी कहते हैं—रावणेश्वरसे वायव्यकोणमें तीस धनुषकी दूरीपर पौलोमीश्वरलिंग है। उसकी स्थापना पुलोमपुत्री शचीने की थी। जिस समय तारकासुरने देवताओंका राज्य छीन लिया और स्वयं इन्द्रपदपर अधिकार जमा लिया तथा उसके भयसे व्याकुल इन्द्रदेव कहीं भाग गये, उस समय उनकी पत्नी शचीने शोकसे दुर्बल होकर मेरी आराधना की। इससे सन्तुष्ट होकर मैंने शचीसे कहा—'देवि! मेरा पुत्र तारकासुरका वध करेगा। तुम निश्चिन्त होकर जाओ। जो

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth
~~~

मानव इस पौलोमीश्वरलिंगका पूजन करेगा, वह मेरा पार्षद होकर मेरे समीप पहुँच जायगा।' यह सुनकर पतिव्रता इन्द्राणी देवराज इन्द्रके समीप चली गयीं।

ब्रह्माजीके स्थानसे पश्चिम सोलह धनुषके अन्तरपर शाण्डिल्येश्वरलिंग है। जिसके दर्शनमात्रसे सम्पूर्ण पापोंका नाश हो जाता है। ब्रह्मर्षि शाण्डिल्य ब्रह्माजीके सारथि माने गये हैं। वे तपस्वी महातेजस्वी, ज्ञाननिष्ठ और जितेन्द्रिय हैं। उन्होंने प्रभासक्षेत्रमें आकर बड़ी उग्र तपस्या की। सोमनाथके उत्तर एक महालिंग स्थापित करके उसकी सौ वर्षोंतक पूजा की। तत्पश्चात् मनोवांछित वस्तुको पाकर वे कृतकृत्य हो गये। मेरे प्रसादसे उन्हें अणिमा आदि सिद्धियाँ प्राप्त हुईं। शाण्डिल्येश्वर शिवका दर्शन करके मनुष्य तत्काल पापरहित हो जाता है।

शाण्डिल्येश्वरसे उत्तर और कपालेश्वरसे अग्निकोणमें पंद्रह धनुषपर सर्वपापनाशक क्षेमेश्वरलिंग है। राजा क्षेममूर्तिने भक्तिपूर्ण हृदयसे उसकी स्थापना की है। जो क्षेमेश्वरका दर्शन करता है, वह क्षेमको प्राप्त होता और उसका प्रत्येक कार्य क्षेमपूर्वक सिद्ध होता है।

पार्वती! वहाँसे परम उत्तम सागरादित्य दर्शन करनेके लिये जाना चाहिये। वह स्थान भैरवेश्वर तथा मृत्युंजय रुद्रसे पश्चिम और कामेश्वरलिंगसे दक्षिण एवं अग्निकोणमें थोड़ी ही दूरपर है। सूर्यवंशमें उत्पन्न महात्मा राजा सगरने प्रभासक्षेत्रको उत्तम तीर्थ जानकर वहीं भगवान् सूर्यकी स्थापना की और उसी स्थानपर तपस्या करके उन्होंने सूर्यदेवको प्रसन्न किया। दस हजार योजन विस्तृत और अठासी हजार योजन लम्बा समुद्र सगरके पुत्रोंकी ही कीर्ति है, इसीलिये उसका नाम सागर है। आज भी राजा सगरकी कीर्ति-कथा गायी जाती है और पुराणोंमें उनके सुयशकी गाथा प्रसिद्ध है। सागरादित्यका दर्शन करके मनुष्य जड, अन्ध, दरिद्र और दु:खी नहीं होता। उसे प्रियजनोंसे वियोग तथा रोग भी नहीं होते और वह कभी पापका आचरण नहीं करता। माघमासके शुक्लपक्षमें षष्ठी तिथिको उपवास करके जितेन्द्रिय मनुष्य रातमें उनके आगे शयन करे। फिर सप्तमीको सबेरे उठकर भक्तिभावसे सूर्यदेवकी पूजा करे और ब्राह्मणोंको भक्तिपूर्वक भोजन कराये। यों करनेवाले मानव सूर्यनारायणके भक्तोंको प्राप्त होनेवाली उत्तम गतिको प्राप्त होते हैं। जो पुरुष दूर्वाके अंकुरोंसे भी भक्तिपूर्वक सूर्यदेवकी पूजा करते हैं, उन्हें वे सब यज्ञोंसे भी दुर्लभ फल देते हैं; इसलिये सर्वथा प्रयत्न करके सूर्यनारायणकी आराधना करनी चाहिये। वे सबके आत्मा, समस्त लोकोंके स्वामी, देवताओंके भी देवता और प्रजाजनोंके पालक हैं। सूर्यदेव ही त्रिलोकीके मूल कारण तथा परम देवता हैं। जितेन्द्रिय मनुष्यको चाहिये कि वह विधिसे भगवान् सूर्यकी पूजा करके समस्त पातकोंका नाश करनेवाले इस स्तोत्रका पाठ करे। इस स्तोत्रमें सूर्यदेवके गुह्य, पवित्र एवं शुभ नाम हैं। विकर्तन, विवस्वान्, मार्तण्ड, भास्कर, रवि, लोकप्रकाशक, श्रीमान्, लोकचक्षु, ग्रहेश्वर, लोकसाक्षी, त्रिलोकेश्वर, कर्ता, हर्ता, तमिस्रहा, तपन, तापन, शुचि, सप्ताश्ववाहन, गभस्तिहस्त, ब्रह्मा तथा सर्वदेवनमस्कृत—इस प्रकार इक्कीस नामोंका जो स्तोत्र है, इससे सन्तुष्ट होकर भगवान् सूर्य शरीरको आरोग्य देते हैं, धन बढ़ाते हैं तथा यशकी प्राप्ति कराते हैं। जो सूर्योदय और सूर्यास्त दोनों सन्ध्याओंके समय पवित्र होकर इससे सूर्यदेवकी स्तुति करता है अथवा जो इसे सुनता तथा पढ़ता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है और अन्तमें सूर्यलोकको प्राप्त होता है।

~~~0~~~

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth
~~~

अक्षमालेश्वर, पाशुपतेश्वर, ध्रुवेश्वर तथा सिद्धि लक्ष्मीकी महिमा

महादेवजी कहते हैं—सागरादित्यसे ईशानकोणमें पचास धनुषके अन्तरपर अक्षमालेश्वरलिंग है, जो दर्शन और स्पर्श करनेसे सब प्राणियोंके पापका नाश करनेवाला है। भादोंमें ऋषिपंचमीको अक्षमालेश्वरके समीप जाकर मनुष्य नरकके भयसे मुक्त हो जाता है। वहाँ गोदान, अन्नदान और जलदानको श्रेष्ठ बताया गया है। उक्त दान करनेसे मनुष्योंके सब पापोंका नाश होता है तथा परलोकमें उन्हें अनन्त सुखकी प्राप्ति होती है।

उग्रसेनेश्वरसे पूर्वभागमें तथा गोप्यादित्यसे अग्निकोणमें कुछ दक्षिणकी ओर पाशुपतेश्वरलिंग विद्यमान है, जो दर्शनमात्रसे समस्त पापोंका नाशक और सम्पूर्ण अभीष्ट फलोंको देनेवाला है। इस युगमें उसका सन्तोषेश्वर नाम कहा गया है। वह सम्पूर्ण सिद्धियोंका स्थान, शिवभक्तोंका आश्रय तथा पाप-रोगोंका औषध है। पार्वती! पाशुपतेश्वरलिंगके समीप वामदेव, सावर्णि, अघोर तथा कपिल—ये चार महर्षि सिद्धिको प्राप्त हो चुके हैं। उस शिवलिंगके समीप श्रीमुख नामका एक वन है, जो लक्ष्मी देवीका स्थान है। वहाँ योगी और सिद्ध पुरुष निवास करते हैं। वहाँ उत्तम शिवभक्तोंका वास है। प्रभासक्षेत्रमें वह मन्दिर मुझे सदैव रुचिकर है। उसमें सदा ही मेरा निवास रहता है। वहाँ जो शिवभक्त मेरे ध्यानमें संलग्न रहते हैं, वे सब मेरे पुत्र हैं और पवित्र होकर उत्तम सिद्धिको प्राप्त होते हैं। यह पाशुपतेश्वरलिंग परब्रह्मस्वरूप है। इसका एक नाम अनादीश्वर भी है। यहाँ निवास करनेवाले ब्राह्मणोंको सिद्धि और मुक्ति भी प्राप्त होती है और इसी शरीरसे वे छः महीनेमें सिद्ध हो जाते हैं। इस लिंगका प्राकट्य संसार-बन्धनसे छुटकारा दिलानेके लिये हुआ है। यह सब लोगोंके लिये दुर्लभ मोक्ष एवं परमपद है। इस लिंगमें शिवतत्त्वका सम्पूर्ण ज्ञान प्रतिष्ठित है। जो माघमासमें निरन्तर भक्तिपूर्वक इनकी पूजा करता है, वह सब यज्ञों और दानोंका फल पाता है। '**अग्निः**' इत्यादि मन्त्रसे वहाँ भस्म लेकर अपने अंगोंमें लगानी चाहिये। यदि संचित अग्निमेंसे भस्म लेनी हो तो उस घरके निवासियोंसे लेनी चाहिये। पूरा मन्त्र इस प्रकार है—

अग्निरिति भस्म, वायुरिति भस्म, जलमिति भस्म, स्थलमिति भस्म, सर्वꣳह वा इदं भस्माभवत।

'अग्नि, वायु, जल और स्थल—सभी भस्म हैं। यह जो कुछ भी दिखायी देता है, सबको भस्म होना है।'

जिसने शिवकी दीक्षा नहीं ली है, वह इस शिवलिंगका स्पर्श न करे। ब्राह्मणोंसे भस्म लेनी चाहिये, शूद्रोंसे नहीं। शूद्रोंका पाशुपत-व्रतमें अधिकार नहीं है। मैं प्रत्येक युगमें ब्राह्मणोंका शरीर धारण करके प्रकट होता हूँ।

राजा उत्तानपादके ध्रुव नामका एक पुत्र था, जो महात्मा, ज्ञानी, सर्वज्ञ तथा प्रियदर्शन था। उसने एक समय प्रभासक्षेत्रमें आकर सहस्रों वर्षोंतक बड़ी कठोर तपस्या की। वह शिवलिंगकी स्थापना करके प्रतिदिन भक्तिपूर्वक उसकी पूजा तथा स्तुति करता था। वह स्तुति इस प्रकार है—

ध्रुव बोले—जो सच्चिदानन्दस्वरूप तथा समस्त कारणोंके भी कारण हैं, उन भगवान् महेश्वरको नमस्कार है। भयंकर संसार-सागरसे पार होनेके लिये सुदृढ़ सेतु हैं, केवल ध्यानके द्वारा जिनका कुछ चिन्तन किया जाता है तथा जो सम्पूर्ण योगशक्तियोंसे युक्त हैं, उन भगवान् शिवको नमस्कार है। सिद्ध और चारण जिसके स्वच्छ सलिलका सेवन करते हैं, जो बड़ी-बड़ी लहरोंके कारण अत्यन्त भयंकर जान पड़ती है, आकाशसे वेगपूर्वक गिरती हुई उस गंगाको जिन्होंने चंचल फूलोंकी मालाके समान अपने मस्तकपर धारण

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

कर लिया, उन शरणदाता भगवान् शंकरकी मैं शरण लेता हूँ। जिन्होंने दैत्य, दानव, विद्याधर तथा नागगणोंको भी, जो इस पृथ्वीपर फल-मूलका आहार करते हुए तपस्यामें संलग्न रहे हैं, अपने परमपदकी प्राप्ति करायी है, उन शरणदाता भगवान् शंकरकी मैं शरण लेता हूँ। यह सम्पूर्ण जगत् सदा जिनके अधीन रहता है, जो अपनी आठ मूर्तियोंद्वारा समस्त लोकोंका पालन करते हैं तथा जो परम कारण-तत्त्वोंके भी कारण हैं, उन शरणदाता भगवान् शंकरकी मैं शरण लेता हूँ। जिन वरदायक परमेश्वरके चरणोंमें भक्तिपूर्वक प्रणाम करके तथा अमृतमयी वाणीसे जिनकी स्तुति करके उत्तम हृदयवाले भगवान् सूर्य अपनी दिव्य दीप्ति तथा किरणोंके द्वारा जगत्का अन्धकार दूर करते हैं, उन शरणदाता भगवान् शंकरकी मैं शरण लेता हूँ।

जो मनुष्य अपने मनको वशमें रखकर साक्षात् ध्रुवजीके द्वारा रचित इस रुचिर अर्थवाले स्तोत्रका पाठ करता है, वह कभी मोहमें नहीं पड़ता। उसके कर्म सदैव शुद्ध और पवित्र होते हैं तथा वह अनादिसिद्ध शिवलोकमें जाता है। पार्वती! शुद्ध चित्तवाले महात्मा ध्रुवके इस प्रकार स्तुति करनेपर मैं बहुत प्रसन्न हुआ और इस प्रकार बोला—'वत्स ध्रुव! तुम्हारा कल्याण हो। मैं तुमसे बहुत सन्तुष्ट हूँ। अब तुम परम शुद्ध हो गये। मैं तुम्हें दिव्यदृष्टि देता हूँ। तुम मुझे प्रत्यक्ष देखो।'

ध्रुवजीने कहा—देव! यदि आप प्रसन्न हैं तो मुझे निर्मल भक्ति दीजिये और इस शिवलिंगमें सदा निवास कीजिये।

मैंने कहा—ध्रुव! तुमने जो माँगा है, वह सब मैंने तुम्हें दे दिया; साथ ही तुम्हें वह ध्रुव स्थान भी दिया, जिसे भगवान् विष्णुका परम पद कहते हैं। जो श्रावणकी अमावास्या तथा आश्विनकी पूर्णिमाको ध्रुवेश्वरकी पूजा करता है, वह अश्वमेध यज्ञका फल पाता है।

सोमेश्वरसे ईशानकोणमें थोड़ी ही दूरपर क्षेत्रपीठकी अधिष्ठात्री देवी वैष्णवी शक्ति है, जो सिद्धलक्ष्मीके नामसे विख्यात है। ब्रह्माण्डमें यह पहला पीठ है। इस पीठमें निवास करनेवाली भगवती महालक्ष्मी समस्त पापोंका नाश करनेवाली तथा सम्पूर्ण अभीष्ट फलों और शुभको देनेवाली हैं। जो मनुष्य श्रीपंचमीके दिन गन्ध, पुष्प आदिके द्वारा भक्तिपूर्वक इनकी पूजा करता है, उसे लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है। तृतीया, अष्टमी तथा चतुर्दशीको जो विधिपूर्वक लक्ष्मीदेवीकी पूजा करता है, उसके हाथमें सिद्धि आ जाती है।

महाकाली देवी, पुष्करावर्तका नदी, कंकालभैरव तथा चित्रादित्यकी महिमा

महादेवजी कहते हैं—वहीं पातालविवरसे युक्त एक महापीठ है, जहाँ महाकाली देवी निवास करती हैं। वे सब दुःखोंकी शान्ति तथा समस्त शत्रुओंका नाश करनेवाली हैं कृष्णपक्षकी अष्टमीको आधी रातमें गन्ध-पुष्प आदि उपचारोंसे विधिपूर्वक पूजा करनेपर वे समस्त दुःखोंका निवारण करती हैं। जो स्त्री शुद्धचित्त होकर एक वर्षतक प्रत्येक शुक्लपक्षकी तृतीयाको विधिपूर्वक देवीकी पूजा करती है, वह सात जन्मोंतक क्षुधा, दुर्भाग्य और दीनताका कष्ट नहीं भोगती।

ब्रह्मकुण्डसे उत्तरमें थोड़ी ही दूरपर पुष्करावर्तका नदी है। पूर्वकालमें जब महात्मा सोमका यज्ञ प्रारम्भ हुआ, उस समय उनका निमन्त्रण पाकर सोमनाथकी प्रतिष्ठा करानेके लिये सब देवताओंके साथ ब्रह्माजी भी प्रभासक्षेत्रमें आये और इस प्रकार बोले—'मैं जबतक यहाँ रहूँ तबतक त्रिपुष्कर तीर्थमें ही मुझे तीनों समयोंकी सन्ध्या करनी चाहिये।' इसी समय जब लग्नकाल

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

उपस्थित हुआ, तब वेदचिन्तक ब्राह्मणोंने बताया, यही प्रतिष्ठाके लिये सबसे उत्तम समय है। उस समय ब्रह्माजीको पुष्कर तीर्थकी ओर प्रस्थान करते देख निशानाथ चन्द्रमाने कहा—'भगवन्! ज्योतिषियोंने प्रतिष्ठाके लिये यही शुभ मुहूर्त बताया है। यह मुहूर्त बीतने न पाये, इसका ध्यान रखना चाहिये।' तब ब्रह्माजीने मन-ही-मन पुष्कर तीर्थोंका चिन्तन किया। उनके स्मरण करते ही वे तीनों नदीके तटपर प्रकट हुए। उस समय नदीमें ज्येष्ठ, मध्य और कनिष्ठ—तीन भँवरें उठीं। उन तीनों आवर्तोंको देखकर लोकपितामह ब्रह्माजीने कहा—'आजसे यह सुन्दर नदी पुष्करावर्तका नामसे प्रसिद्ध होगी। जो मनुष्य इसमें स्नान करके भक्तिपूर्वक पितरोंका तर्पण करेगा, उसे तीनों पुष्करमें स्नानके समान पुण्य प्राप्त होगा। जो मानव श्रावण शुक्ला तृतीयाको उसमें पितरोंका तर्पण करता है, उसके वे पितर दस हजार कल्पोंतक तृप्त रहते हैं।'

वहीं कंकालभैरव नामक क्षेत्रपाल हैं, जिन्हें उस क्षेत्रकी रक्षाके लिये भैरवजीने नियुक्त किया है। जो श्रावण शुक्ला पंचमी तथा आश्विन शुक्ला अष्टमीको कंकालभैरवका भक्तिपूर्वक पूजन करता है, उस महात्माके उस क्षेत्रमें निवासके लिये वे सब विघ्नोंका निवारण करते हैं और उसकी पुत्रकी भाँति रक्षा करते हैं। उस स्थानके दक्षिण भागमें ब्रह्मकुण्डके समीप दरिद्रताका नाश करनेवाले चित्रादित्य विराजमान हैं। प्राचीनकालमें इस पृथ्वीपर मित्र नामके एक धर्मात्मा कायस्थ निवास करते थे, जो सदा सब प्राणियोंके हितमें तत्पर रहते थे। उनके दो सन्तानें हुईं—एक पुत्र और एक कन्या। पुत्रका नाम चित्र और कन्याका नाम चित्रा हुआ। चित्रा बड़ी सुन्दरी और सुशीला थी। इन दोनोंके जन्म लेते ही उनके पिता मित्रकी मृत्यु हो गयी। मित्रकी पत्नीने पतिके साथ चितामें प्रवेश किया। तदनन्तर इन दोनों अनाथ बालकोंका ऋषियोंने पालन किया। वे महान् वनमें ही बड़े हुए और बचपनसे ही व्रतपरायण रहे। एक बार प्रभासक्षेत्रमें आकर उन दोनोंने महादेव सूर्यकी स्थापना की और वे बड़ी भारी तपस्यामें संलग्न हो गये। धर्मात्मा चित्रने धूप, माला, चन्दन आदि उपचारोंसे सूर्यदेवका पूजन किया और वसिष्ठजीके द्वारा बताये हुए अड़सठ नामोंद्वारा उनका स्तवन किया।

चित्र बोले—जो आदिदेव जगन्नाथ पापनाशक तथा रोग-निवारण करनेवाले हैं, उन आकाशके स्वामी भगवान् भास्करको मैं सिरसे प्रणाम करके उनकी स्तुति करता हूँ। उनके सहस्रों नेत्र, सहस्रों रश्मियाँ तथा सहस्रों किरणमय आयुध हैं। अनेक गुह्य नामोंद्वारा उनका स्तवन किया जाता है। उन प्रातःकाल गंगासागर-संगमपर निवास करनेवाले मुण्डीर स्वामीको मैं नमस्कार करता हूँ। मध्याह्नकालमें यमुनातटवर्ती भगवान् कालप्रियको और सूर्यास्तके समय चन्द्रभागा नदीके तटपर विराजमान श्रीमूलस्थानको मैं प्रणाम करता हूँ, जहाँ उपवास करके श्रीसाम्बजीको स्वतः सिद्धि प्राप्त हुई है। काशीमें लोहिताक्ष, गोभिलाक्षमें बृहन्मुख, प्रयागमें प्रतिष्ठान, महाद्युतिमें वृद्धादित्य, कोट्यक्षमें द्वादशादित्य, चतुर्घटमें गंगादित्य, नैमिषारण्यमें गोलस्थ, भद्रपुटमें भद्र, जयामें विजयादित्य, प्रभासमें स्वर्णवेतस, कुरुक्षेत्रमें सामन्त, इलावृतमें त्रिमन्त्र, महेन्द्रमें क्रमणादित्य, हिरण्यमें सिद्धेश्वर, कौशाम्बीमें पद्मबोध, ब्रह्मबाहुमें दिवाकर, केदारमें चण्डकान्ति, नित्यमें तिमिरापह, गंगामार्गमें हरद्वार, भूप्रदीपनमें आदित्य, सरस्वती-तटपर हंस, पृथूदकमें विश्वामित्र, उज्जयिनीमें नरद्वीप, सिद्धापुरीमें अमितद्युति, कुन्तीकुमारमें सूर्य, पंचनदीमें विभावसु, मथुरामें विमलादित्य, संज्ञिकमें संज्ञादित्य, श्रीकण्ठमें मार्तण्ड, दशार्णमें दण्डक, गोधनमें गोपति, मरुस्थलमें कर्णदेव, देवपुरमें पुष्प, लोहितमें केशवादित्य, वैदिशमें शार्दूल, शोणमें अरुणवासी, वर्द्धमानमें साम्बादित्य, कामरूपमें शुभंकर, कान्यकुब्जमें मिहिर, पुण्यवर्द्धनमें मन्दार, गान्धारमें क्षोभणादित्य, लंकामें अमरद्युति, चम्पामें कर्णादित्य, प्रबोधमें शुभदर्शी, द्वारावतीमें

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

पार्वत्य, हिमवन्तमें हिमापह, लौहित्यमें महातेज, अमलांगमें धूर्जटि, रोहिकमें कुमार, पद्ममें पद्मसम्भव, लाटामें धर्मादित्य, अर्बुदमें स्थविर, कौवेरीमें सुखप्रद, कोसलमें गोपति, कोंकणमें पद्मदेव, विन्ध्यपर्वतपर तापन, काश्मीरमें त्वष्टा, चरित्रमें रत्नसम्भव, पुष्करमें हेमगर्भ, गभस्तिकमें सूर्य, प्रकाशामें मुज्जाल, तीर्थग्राममें प्रभाकर, काम्पिल्यमें इल्लकादित्य, धन्यकमें धन्यवासी, नर्मदा-तटपर अनल तथा सर्वत्र गगनाधिप नामसे प्रसिद्ध सूर्यदेवको मैं नमस्कार करता हूँ। ये भगवान् भास्करके अड़सठ नाम हैं। जो मनुष्य प्रतिदिन प्रातःकाल उठकर पवित्र हो भक्तिभावसे इन नामोंको पढ़ता अथवा सुनता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है।

महादेवजी कहते हैं—शुद्धचित्तवाले चित्रके इस प्रकार स्तुति करनेपर भगवान् सूर्यने प्रसन्न होकर कहा—'वत्स! तुम्हारा भला हो। तुम कोई वर माँगो।'

चित्रने कहा—उष्णरश्मे! सब कार्योंमें मेरी रुचि हो और मुझे कुशलता प्राप्त हो।

'एवमस्तु' कहकर भगवान् सूर्यने उनकी इच्छाका अनुमोदन किया। तबसे चित्र सर्वार्थ-कुशल हुए। धर्मराजको जब यह बात मालूम हुई, तब उन्होंने सोचा, यदि यह मेरा लेखक हो जाता तो बड़ा अच्छा होता। एक दिन चित्र क्षारसमुद्रके भीतर अग्नितीर्थमें स्नान करनेके लिये गये। उसमें प्रवेश करते ही यमदूत उन्हें शरीरसहित यमपुरी उठा ले गये। वहाँ वे चित्रगुप्त नामसे प्रसिद्ध हुए। चित्रगुप्तजी सम्पूर्ण विश्वके शुभाशुभ चरित्रोंको लिखते रहते हैं। इसीलिये उनके द्वारा स्थापित सूर्यदेवका नाम चित्रादित्य हुआ। जो मनुष्य सप्तमीको उपवास करके उनकी पूजा करता है, उसे सात जन्मोंतक दरिद्रता और दुःखोंकी प्राप्ति नहीं होती।

लोमशेश्वर, चित्रपथा नदी, रूपकुण्ड, रत्नेश्वर तथा वैनतेयेश्वरका माहात्म्य

महादेवजी कहते हैं—वहाँसे लोमशेश्वरका दर्शन करनेके लिये जाय। वह स्थान दुःखान्धकारिणीसे पूर्व भागमें सात धनुषकी दूरीपर है। महर्षि लोमशने उस लिंगकी स्थापना की है। लोमशेश्वरके प्रसादसे ही लोमशजी दीर्घायु हुए। जो भक्तिभावसे लोमशेश्वरकी पूजा करता है, वह दीर्घायु और सुखी होता है। उसके शरीरमें रोग और घाव नहीं होते। लोमशेश्वरके पश्चिमभागमें पाँच धनुषके अन्तरपर तृणविन्द्वीश्वर लिंग प्रतिष्ठित है। मुनीश्वर तृणविन्दु एक-एक मासपर कुशके अग्रभागसे एक विन्दुजल लेकर पीते और तपस्या करते थे। इस प्रकार अनेक वर्षोंतक प्रभासक्षेत्रमें मेरी आराधना करके वे परम सिद्धिको प्राप्त हो गये।

वहाँसे परम उत्तम चित्रपथा नदीके समीप जाय। वह ब्रह्मकुण्ड और चित्रादित्यके बीचमें होकर बहती है। जिस समय यमदूत चित्रको शरीरसहित उठा ले गये, उस समय यह समाचार पाकर उनकी बहिन चित्राको बड़ा दुःख हुआ। तब वह चित्रा नदीके रूपमें परिणत हो अपने भाईकी खोज करनेके लिये समुद्रमें समा गयी। ब्राह्मणोंने उसका नाम चित्रपथा रख दिया। जो मनुष्य चित्रपथामें स्नान करके चित्रादित्यका दर्शन करता है, वह सूर्यदेवके परमधाममें जाता है। कलियुगमें चित्रपथा नदी अन्तर्धान हो गयी है। केवल वर्षाकालमें उसका दर्शन होता है। भोजन करके या बिना भोजन किये, रातमें या दिनमें, पर्वके समय अथवा विना पर्वके, मनुष्य पवित्र हो या अपवित्र—जब, जहाँ, जिस अवस्थामें चित्रपथा नदीका दर्शन करे, वही उसका पुण्यकाल है। उसका दर्शन ही पुण्यपर्व है। कोई समयविशेष उसकी महत्ताका कारण नहीं होता। स्वर्गवासी पितर उस नदीका दर्शन करके हर्षसे गाने और हँसने लगते हैं कि 'हमारे वंशका कोई यहाँ

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

आकर श्राद्ध करेगा और हमें एक कल्पतकके लिये तृप्त कर देगा।' यों जानकर सब पापोंके नाश और पितरोंकी तृप्तिके लिये वहाँ स्नान और श्राद्ध करना चाहिये।

महादेवी! ब्रह्मकुण्डके उत्तरभागमें रूपकुण्ड है। वहाँ स्नान करके मनुष्य चोरीके पापसे छूट जाता है। उसमें स्नान करनेके प्रभावसे उसके वंशमें सात जन्मोंतक कोई चोर और क्रूर नहीं होता। जो शस्त्रसे मारे गये हों अथवा पापी रहे हों, ऐसे पूर्वजोंकी मुक्तिके लिये वहाँ शिवरात्रिको विशेषरूपसे पिण्डदान आदि कार्य करने चाहिये।

वहीं उत्तम रत्नेश्वरलिंग है, जिसकी स्थापना साक्षात् भगवान् विष्णुने की है। जो रत्नकुण्डमें स्नान करके रत्नेश्वरकी पूजा करता है, वह सात जन्मोंतक लक्ष्मीवान्, बुद्धिमान् तथा गाय, बैल आदि पशुओंसे सम्पन्न होता है। जो श्रवण नक्षत्र और द्वादशीके योगमें विधिवत् उपवास करके भक्तिपूर्वक उनकी पूजा करता है, वह मनोवांछित फलको पाता है। पार्वती! वह स्थान मुझे विशेष प्रिय है। मैं वहाँ सदा निवास करता हूँ और प्रलयकालमें भी उसका त्याग नहीं करता। वह सुदर्शन नामक वैष्णव क्षेत्र कहा गया है। उसका विस्तार सब ओर छत्तीस-छत्तीस धनुषतक है। इस सीमाके भीतर जो कोई अधम प्राणी भी कालवश मृत्युको प्राप्त होते हैं, उन्हें परमपदकी प्राप्ति होती है। जो लोग वहाँ भगवान् विष्णुकी प्रीतिके लिये सोनेका गरुड़ और पीताम्बर दान करते हैं, उन्हें यात्राका उत्तम फल प्राप्त होता है।

रत्नेश्वरसे उत्तरमें तीन धनुष दूर विनतानन्दन गरुड़के द्वारा स्थापित वैनतेयेश्वर लिंग है। जो मनुष्य पंचमीके दिन भक्तिपूर्वक गरुड़ेश्वरकी पूजा करता है, उसे सात जन्मोंतक सर्पजनित विषका भय नहीं प्राप्त होता। जो वैनतेयेश्वरको पंचामृतसे स्नान कराकर विधिवत् उनका पूजन करता है, वह स्वर्गलोकमें आनन्द भोगता है।

रैवन्त और अनन्तेश्वरकी महिमा, सावित्रीकी कथा, सावित्री-व्रतकी महिमा तथा ब्रह्मा-सावित्रीके पूजनका महत्त्व

महादेवजी कहते हैं—महादेवि! तदनन्तर सावित्रीसे नैर्ऋत्यकोणमें स्थित अश्वारूढ़ राजभट्टारक रैवन्तकका दर्शन करनेके लिये जाय। उनके दर्शनसे मनुष्य सब आपत्तियोंसे छूट जाता है। जो रविवारयुक्त सप्तमी तिथिमें उनकी पूजा करता है, उसके वंशमें कोई भी मनुष्य दरिद्र नहीं होता; इसलिये यत्नपूर्वक उन्हींकी पूजा करे।

उससे दक्षिण अनन्तद्वारा स्थापित अनन्तेश्वर लिंग है। वह स्थान लक्ष्मणेश्वरसे पूर्व दिशामें है। वह सब पापोंका नाशक और बड़े भारी विषका विनाशक है। सिद्ध और गन्धर्व ही उसकी पूजा करते हैं। वह उपासकको मनोवांछित फल देनेवाला है। विशेषतः कृष्णपक्षकी अष्टमीमें जो अनन्तेश्वरकी पूजा करता है, वह घोर पातकोंसे मुक्त होकर नागलोकमें प्रतिष्ठित होता है।

पार्वती! मद्रदेशमें अश्वपति नामसे प्रसिद्ध एक धर्मात्मा राजा थे, जो सब प्राणियोंके हितमें तत्पर, क्षमावान्, सत्यवादी तथा जितेन्द्रिय थे। परंतु उनके कोई सन्तान नहीं थी। एक समय राजा अश्वपतिने प्रभासक्षेत्रकी यात्रा की। यहाँके तीर्थोंमें भ्रमण करते हुए वे सावित्रीस्थलपर आये। वहाँ उन्होंने सावित्री-व्रतका अनुष्ठान किया। इससे उनके ऊपर ब्रह्माजीकी प्रिय पत्नी भूर्भुवःस्वःस्वरूपा सावित्री देवी प्रसन्न हुईं और मूर्तिमती होकर उनके नेत्रोंके समक्ष प्रकट हुईं। उनके हाथमें कमण्डलु शोभा पा रहा था और मुख एवं नेत्र प्रसन्नतासे खिले हुए थे।

सावित्री बोलीं—राजन्! वर माँगो।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

राजाने कहा—देवि! मुझे संतान दो।

सावित्री बोलीं—राजन्! तुम्हें एक पुत्री प्राप्त होगी।

इतना कहकर सावित्रीदेवी अन्तर्धान हो गयीं। तदनन्तर कुछ कालके बाद राजा अश्वपतिके यहाँ एक दिव्यरूपधारिणी कन्या उत्पन्न हुई। सावित्रीकी पूजासे सावित्रीने ही प्रसन्न होकर वह कन्या दी थी, इसलिये ब्राह्मणोंने उसका नाम सावित्री रख दिया। वह राजकन्या मूर्तिमती लक्ष्मीकी भाँति बढ़ने लगी। उसे देखकर लोग यही कहते थे कि यह कोई देवकन्या ही पृथ्वीपर उतर आयी है। एक दिन उस देवरूपिणी कन्याको देखकर मन्त्रियोंसे परामर्श करके राजाने कहा—'बेटी! तुम्हारे विवाहका समय आ पहुँचा है, परंतु अबतक तुम्हारा किसीने वरण नहीं किया। मैं जब विचार करके देखता हूँ, तब यहाँ तुम्हारे योग्य कोई वर नहीं दिखायी देता। अतः देवता आदिके द्वारा मैं निन्दनीय न होऊँ, ऐसा कोई प्रयत्न करना आवश्यक है। मैंने धर्मशास्त्रोंमें यह बात सुनी है कि जो कन्या पिताके घरमें विवाह संस्कारके पहले ही अपनेको रजस्वला देखती है, उसके पिताको ब्रह्महत्याका पाप लगता है। अतः मैं तुम्हें बूढ़े मन्त्रियोंके साथ तीर्थयात्राके लिये भेजता हूँ, तुम स्वयं पतिका वरण करो।'

'जो आज्ञा' कहकर सावित्रीने पिताकी बात मान ली और यात्राके लिये निकली। वह राजर्षियोंके सुन्दर तपोवनोंमें गयी। वृद्ध महर्षियोंके चरणोंमें मस्तक झुकाया और समस्त आश्रमों एवं तीर्थोंमें घूम-फिरकर पुनः घरपर लौट आयी। वहाँ उसने अपने सामने आसनपर विराजमान देवर्षि नारदको देखा और प्रणाम करके पितासे कहा—'शाल्वदेशमें एक धर्मात्मा क्षत्रिय राज्य करते थे। उनका नाम द्युमत्सेन है। वे दैववश अन्धे हो गये। उनका सामन्त रुक्मी पहलेसे ही उनसे वैर रखता था। उसने यह अवसर देखकर राजाका राज्य छीन लिया। राजा द्युमत्सेन अपनी पत्नीके साथ वनमें चले गये। उनकी पत्नीकी गोदमें एक छोटा-सा बालक भी था। राजाका वह पुत्र वनमें ही बड़ा हुआ है। वह परम धर्मात्मा है। उसका नाम सत्यवान् है। सत्यवान् ही मेरे मनके अनुरूप पति है। मैं उन्हींको प्राप्त करना चाहती हूँ।'

नारदजीने कहा—राजन्! सावित्री अभी बच्ची है, तभी इसने गुणवान् सत्यवान्का वरण किया है। उसके पिता सत्य बोलते हैं। उसकी माता सत्य भाषण करती है और वह स्वयं भी सत्य बोलता है। इसीलिये मुनियोंने उस राजकुमारका नाम सत्यवान् रखा है। सत्यवान्को अश्व बड़े प्रिय हैं। वह मिट्टीके अश्व बनाया करता है और अश्वके ही चित्र भी बनाता है, अतः उसका दूसरा नाम चित्राश्व है; किंतु उसे स्वीकार करके सावित्रीने बहुत बड़ा कष्ट मोल ले लिया है। द्युमत्सेनका वह पुत्र शिक्षा, दान और गुणोंमें देवताओंके समान है। उशीनरराज शिबिके समान सत्यवादी और ब्राह्मणभक्त है। ययातिके समान उदार, चन्द्रमाके समान सुन्दर, अश्विनीकुमारोंके समान रूपवान् तथा अतिशय बलवान् है। परंतु उसमें एक दोष है। आजसे एक वर्ष पूर्ण होनेपर उसकी आयु समाप्त हो जायगी और वह अपना शरीर त्याग देगा।

नारदजीकी यह बात सुनकर राजाने कन्यासे कहा—बेटी सावित्री! जाओ, किसी दूसरे श्रेष्ठ पतिका वरण करो। यह सत्यवान् तो एक ही वर्षमें शरीर त्याग देगा।

सावित्री बोली—पिताजी! राजालोग एक बार ही कोई बात कहते हैं। विद्वान् पुरुष भी एक ही बोली बोलते हैं और कन्याओंका दान भी एक ही बार किया जाता है। ये तीनों बातें एक-एक बार ही होती हैं। सत्यवान् दीर्घायु हों या अल्पायु, गुणवान् हों या गुणहीन—उन्हें एक बार मैंने वरण कर लिया, अब वे मेरे पति हो गये; अतः दूसरे किसीका वरण नहीं करूँगी। पहले मनसे निश्चय करके ही वाणीद्वारा किसी बातको

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

कहा जाता है और फिर उसे कार्यरूपमें परिणत किया जाता है। मैंने भी यही किया है। इस विषयमें मेरा मन ही प्रमाण है।

नारदजीने कहा—राजन्! यदि सावित्रीकी यही इच्छा है तो आप भी इस सम्बन्धको स्वीकार करें और शीघ्र ही इसे कर डालें। आपकी पुत्रीके विवाहमें कोई विघ्न नहीं पड़ना चाहिये।

यों कहकर नारदजी स्वर्गको चले गये। राजाने उत्तम मुहूर्तमें वेदोंके पारगामी ब्राह्मणोंके द्वारा कन्याका सब वैवाहिक कार्य सम्पन्न कराया। सावित्री भी मनोवांछित पतिको पाकर बहुत प्रसन्न हुई। इस प्रकार उस आश्रममें निवास करते हुए उन तीनोंका कुछ समय व्यतीत हुआ। सावित्री दिन-रात चिन्तित रहती थी। नारदजीने जो बात कही थी, वह सावित्रीको भूलती नहीं थी। उसने मन-ही-मन हिसाब लगाकर यह जान लिया कि आजसे चौथे दिन मेरे पतिकी मृत्यु होनेवाली है। तत्पश्चात् उसने त्रिरात्रि-व्रत प्रारम्भ किया। उसे पूर्ण करके सावित्रीने स्नान किया और देवता-पितरोंका तर्पण करके उसने सास-ससुरके चरणोंमें प्रणाम किया। तदनन्तर सत्यवान् हाथमें फरसा लेकर वनको चले। सावित्री भी उनके पीछे-पीछे गयी। सत्यवान्ने शीघ्रतापूर्वक फल, फूल, समिधा और कुशा एकत्र करके सूखे काष्ठका एक बोझ बाँधा। तत्पश्चात् वे बरगदकी शाखाका सहारा लेकर बोले—'प्रिये! मेरे सिरमें बड़ी पीड़ा हो रही है। मैं क्षणभर तुम्हारी गोदमें मस्तक रखकर सोना चाहता हूँ।'

सावित्री बोली—महाबाहो! आइये, विश्राम कीजिये। थोड़ी देर बाद हमलोग आश्रमपर चलेंगे।

तदनन्तर सावित्रीकी गोदमें मस्तक रखकर सत्यवान् ज्यों-ही पृथ्वीपर सोये त्यों-ही सावित्रीने एक पुरुषको देखा, जो काले और पीले रंगके दिखायी पड़ते थे। मस्तकपर किरीट और अंगोंमें पीताम्बर धारण किये वे साक्षात् सूर्यकी भाँति शोभा पा रहे थे। सावित्रीने उन्हें प्रणाम करके मधुर वाणीमें पूछा—'तुम कौन हो? दूर ही रहो; पति-भक्तिके प्रभावसे मुझे कोई धर्मसे गिरा नहीं सकता। प्रज्वलित अग्निशिखाकी भाँति मेरा कोई स्पर्श भी नहीं कर सकता।'

यमने कहा—पतिव्रते! मैं सबका संयमन करनेवाला यम हूँ। तुम्हारे पतिकी आयु क्षीण हो गयी है। मेरे दूत तुम्हारे समीप आकर इन्हें ले जानेमें असमर्थ हैं, इसलिये मैं स्वयं आया हूँ।

उनके यों कहनेपर सत्यवान्के शरीरसे अँगूठेके बराबर एक पुरुष निकला जो पाशमें बँधा हुआ था। सावित्रीने उसे देखा और स्वयं भी यमराजके पीछे-पीछे चलना प्रारम्भ किया। पातिव्रत्यके प्रभावसे उसे वहाँ जानेमें कोई श्रम नहीं होता था। उस समय यमराजने उससे कहा—'सावित्री! तू बहुत दूर चली आयी, अब लौट जा। इस मार्गपर कोई जीवित पुरुष नहीं चलता।'

सावित्री बोली—भगवन्! मुझे चलनेमें न तो परिश्रम होता है और न ग्लानि ही। एकमात्र पतिको छोड़कर स्त्रीके लिये दूसरा कोई अवलम्ब नहीं है।

इस प्रकार और भी बहुत-सी धर्मयुक्त मधुर बातें सुनकर सूर्यनन्दन यम सावित्रीपर बहुत प्रसन्न हुए और बोले—'देवि! तुम्हारा कल्याण हो, तुम कोई वर माँगो।' तब सावित्रीने विनीत होकर पाँच वरदान माँगे—'मेरे महात्मा श्वशुरको नेत्र प्राप्त हों, उनका खोया हुआ राज्य भी मिल जाय, मेरे पति जीवित हों, निरन्तर उनके धर्मकी वृद्धि हो तथा मेरे पुत्रहीन पिताको पुत्रकी प्राप्ति हो।' धर्मराजने वरदान देकर उसे भेजा। पतिको पाकर सावित्रीका मन प्रसन्न हो गया। अब वह स्वस्थचित्त होकर पतिके साथ आश्रमपर गयी। ज्येष्ठकी पूर्णिमाको उसने यह व्रत किया था, जिससे उसके सौभाग्यकी रक्षा हुई।

पार्वतीने पूछा—महेश्वर! सावित्रीने जिस व्रतका पालन किया, वह कैसा है? बतानेकी कृपा करें।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

महादेवजी बोले—देवेश्वरी! पतिव्रता सावित्रीने जिस व्रतका पालन किया है, उसका वर्णन करता हूँ; सुनो। ज्येष्ठ शुक्ला त्रयोदशीको दन्तधावनपूर्वक स्नान करके त्रिरात्र उपवासका नियम ग्रहण करे। जो स्त्री त्रिरात्र करनेमें असमर्थ हो, वह जितेन्द्रिय होकर त्रयोदशीको नक्तव्रत, चतुर्दशीको अयाचित्त व्रत और पूर्णिमाको उपवास करे। प्रतिदिन तड़ाग, किसी बड़ी नदी अथवा झरनेमें स्नान करे। यदि पाण्डुकूपमें स्नान कर ले तो सबमें स्नान करनेका फल प्राप्त हो जाता है। विशेषतः पूर्णिमाको सरसों, मिट्टी और जलसे स्नान करना चाहिये। एक पात्रमें बालू भरकर अथवा जौ,चावल या तिल आदि धान्य भरकर उसपर दो वस्त्रोंमें लपेटा हुआ बाँसका पात्र रखे और उसमें सोने-चाँदी अथवा मिट्टीकी बनी हुई सावित्रीदेवी और ब्रह्माजीकी सर्वांगशोभित प्रतिमा स्थापित करे। फिर उन प्रतिमाओंपर दो लाल वस्त्र चढ़ाये और अपनी शक्तिके अनुसार उन दोनों विग्रहोंकी पूजा करे। चन्दन, सुगन्धित पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, तरोई या लटजीराके फूलोंसे, कुम्हड़ा और ककड़ीके फलोंसे, नारियल, छुहारा, कैथ, अनार, जामुन, नीबू, नारंगी, कंकोल, कटहल, जीरक, खाँड़, गुड़, लवण, चरभट तथा सप्तधान्य आदि वस्तुएँ बाँसके पात्रोंमें रखकर निवेदन करे। कण्ठसूत्रको सुन्दर केसर और कुंकुमसे रँगे। तत्पश्चात् मन्त्रोच्चारणपूर्वक पूजन करे। मन्त्र इस प्रकार है—

ओङ्कारपूर्विके देवि वीणापुस्तकधारिणि।
देव्यम्बिके नमस्तुभ्यमवैधव्यं प्रयच्छ मे॥

वीणा और पुस्तक धारण करनेवाली सच्चिदानन्दमयी माता सावित्री देवी! तुम्हें नमस्कार है। तुम मुझे सौभाग्य प्रदान करो।

इस प्रकार पूजा-प्रार्थना करके बहुत-से स्त्री-पुरुषोंके साथ गाना-बजाना करते हुए वहाँ जागरण करे। श्रेष्ठ ब्राह्मणोंसे सावित्रीकी कथा कहलाये। ब्रह्मा-सावित्रीका विवाह करे। सारी सामग्री वेदज्ञ ब्राह्मणको दान करे। जिसकी जीविका कठिनाईसे चलती हो, ऐसे निर्धन अग्निहोत्री ब्राह्मणको सावित्रीकी प्रतिमा दान करे। उस रात्रिमें ब्राह्मण-दम्पतियोंको निमन्त्रित करके प्रातःकाल वटवृक्षके नीचे सावित्रीके सम्मुख भोजन कराये। वहाँ एक-एक ब्राह्मणको भोजन कराना कोटि-कोटि ब्राह्मणोंको भोजन करानेके समान पुण्यदायक कहा गया है। ब्राह्मणोंको भोजन कराते समय कड़वे तेलका बना हुआ सामान न परोसे। स्त्रीको खट्टा और खारा भोजन कभी नहीं देना चाहिये। पाँच प्रकारके मधुर भोजन कराये—१. दूध और घीमें बने हुए पूवे, २. अशोकवर्तिका (एक प्रकारका पकवान), ३. छुहारेके साथ बनी हुई पूपिका, ४. घी और गुड़से बना हुआ हलवा, ५. और मोदक। जो स्त्री ऐसा करती है, वह धन-धान्य और मनुष्योंसे पूर्ण होती है। उसका वंश भरा-पूरा रहता है, उसके कुलमें कभी कोई स्त्री विधवा नहीं होती। अथवा यदि तीर्थमें भोजनकी सुविधा न हो तो घर लौटनेपर भोजन कराये, जिससे सावित्री देवी प्रसन्न हों। इसी प्रकार अपने घरपर आकर पितरोंके लिये पिण्डदानपूर्वक श्राद्ध भी करे। इससे पितर सन्तुष्ट होते हैं। ऐसा ब्रह्माजीका कथन है। अपने घरमें श्राद्ध-दान करनेसे तीर्थकी अपेक्षा भी आठगुना पुण्य होता है। क्योंकि वहाँ नीच पुरुषोंकी दृष्टि नहीं पड़ती। पितरोंका श्राद्ध एकान्त एवं गुप्त होना चाहिये। नीच पुरुषोंकी दृष्टिसे दूषित होनेपर वह पितरोंको नहीं प्राप्त होता, अतः प्रयत्नपूर्वक श्राद्धको गुप्त रखकर ही करे। वही पितरोंके लिये तृप्तिदायक होता है।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

शालकटङ्कटा देवी, दशरथेश्वर, भरतेश्वर, लिंगचतुष्टय, कुन्तीश्वर, अर्कस्थल तथा त्रिसंगमतीर्थ आदिका महत्त्व

महादेवजी कहते हैं—पार्वती! तदनन्तर शालकटंकटा देवीके समीप जाय। उनका स्थान सावित्रीसे दक्षिण तथा रैवन्तसे पूर्व दिशामें है। वे महान् पापपुंज तथा सम्पूर्ण दुःखोंका विनाश करनेवाली हैं। सिद्ध और गन्धर्व भी उनकी उपासना करते हैं। वे महाप्रचण्ड दैत्योंका नाश करनेवाली तथा महिषासुरमर्दिनी हैं। पुलस्त्य-पुत्र विश्रवाने उनकी स्थापना की है। माघ मासकी चतुर्दशीको जो उनकी पूजा करता है, वह पशु-धनसे सम्पन्न, बुद्धिमान्, विद्वान्, लक्ष्मीवान् और पुत्रवान् होता है।

तदनन्तर दशरथेश्वरका दर्शन करे। पूर्वकालमें सूर्यवंशके भूषण महाराज दशरथने प्रभासक्षेत्रमें आकर अत्यन्त दुष्कर तपस्या की। वहाँपर एक शिवलिंगकी स्थापना करके मुझे सन्तुष्ट किया और अत्यन्त तेजस्वी पुत्र प्राप्त होनेके लिये प्रार्थना की। तब मैंने उन्हें त्रैलोक्यपूजित पुत्र प्रदान किया, जिनका नाम श्रीराम था और जिनका यश तीनों लोकोंमें फैला हुआ है और आज भी त्रिभुवनके निवासी देवता, दैत्य, असुर तथा वाल्मीकि आदि महर्षि जिनकी कीर्ति-कथाका गान करते हैं। उस शिवलिंगके प्रभावसे राजा दशरथको महान् यश प्राप्त हुआ। जो कार्तिकमासमें कार्तिककी पूर्णिमाको विधिपूर्वक धूप, दीप और पूजा आदिके उपहारोंसे दशरथेश्वरकी पूजा करता है, वह यशस्वी होता है।

उससे उत्तर कोणमें थोड़ी ही दूरपर भरतेश्वरलिंग है। भूतलमें भरत नामसे प्रसिद्ध एक राजा हो गये हैं, जिनके नामसे लोकमें इस देशको भारतवर्ष कहते हैं। उन्होंने मेरे विग्रहकी स्थापना करके सहस्रों वर्षोंतक यहाँ दुष्कर तपस्या की, जिससे सन्तुष्ट होकर मैंने उन्हें आठ पुत्र और एक यशस्विनी कन्या प्रदान की। इस प्रकार अभीष्ट मनोरथ पाकर राजा भरत कृतकृत्य हुए और भारतवर्षके नौ विभाग करके उन्होंने अपने पुत्रों और पुत्रीको एक-एक भाग बाँट दिया। वे द्वीप उन पुत्रोंके नामसे ही प्रसिद्ध हुए। इन्द्रद्वीप, कुशेरु, ताम्रपर्ण, गभस्तिमान्, नागद्वीप, सौम्य, गन्धर्व तथा वारुणि—ये आठ द्वीप हैं और यह कुमारी नामसे प्रसिद्ध नवाँ द्वीप है। इनमेंसे आठ द्वीप जो उत्तरमें स्थित थे, समुद्रमें डूब गये। ग्राम और देश आदिके सहित सागरमें विलीन हो गये। उनमेंसे यह कुमारी नामक द्वीप ही अवशेष है। यह विन्दुसरसे लेकर समुद्रतक दक्षिणसे उत्तरतक फैला हुआ है, जिसकी लम्बाई नौ हजार योजन और चौड़ाई एक हजार योजन है। जो भरतेश्वर लिंगका पूजन करता है, वह सब यज्ञों और दानोंका फल पाता है। जो कार्तिकमासकी पूर्णिमाको कृत्तिका नक्षत्रके योगमें भरतेश्वरका दर्शन करता है, वह स्वप्नमें भी भयंकर नरकको नहीं देखता।

सावित्रीके स्थानसे पश्चिम दिशामें एक ही स्थानपर चार शिवलिंग हैं, उनमें दो शिवलिंग तो पूर्वमें हैं और दो पश्चिममें। उन चारोंके नाम इस प्रकार हैं—कुशकेश्वर, गर्गेश्वर, पौरुषेश्वर तथा मैत्रेयेश्वर। जो जितेन्द्रिय मनुष्य भक्तिपूर्वक इन चारों लिंगोंका दर्शन करता है, वह सब पातकोंसे मुक्त हो मेरे परम धामको जाता है। वैशाख शुक्ला चतुर्दशीको वहाँ स्नान करके ब्राह्मणोंकी पूजा करे और उन्हें यथाशक्ति वस्त्र दे।

सावित्रीके पूर्वभागमें गड्ढेके भीतर कुन्तीश्वर नामसे प्रसिद्ध एक शिवलिंग है। पूर्वकालमें जब पाण्डवलोग तीर्थयात्राके प्रसंगसे कुन्तीके साथ प्रभासक्षेत्रमें आये थे, उस समय कुन्तीदेवीने वहाँ एक शिवलिंग स्थापित किया, जो समस्त पापभयको दूर करनेवाला है। जो मनुष्य कार्तिककी पूर्णिमाको

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

विशेषरूपसे कुन्तीश्वरका पूजन करता है, वह समस्त कामनाओंसे सम्पन्न हो शिवलोकमें सम्मानित होता है। कुन्तीश्वर लिंगके दर्शनसे मन, वाणी और क्रियाद्वारा किये हुए समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं।

पार्वती! वहाँसे अग्निकोणमें समस्त पातकोंका नाश करनेवाला पुण्यतीर्थ अर्कस्थल है। उसका दर्शन करके मनुष्य सात जन्मोंतक दरिद्र नहीं होता तथा उसके अठारहों प्रकारके कुष्ठ नष्ट हो जाते हैं। इसलिये सप्तमी तिथिको त्रिसंगमतीर्थमें स्नान करके पुण्यवान् मनुष्य उनका पूजन अवश्य करे। सिद्धेश्वरसे दक्षिणभागमें तीन धनुषके अन्तरपर माण्डव्येश्वर लिंग है। जो माघमासकी चतुर्दशीको जितेन्द्रिय होकर उसकी पूजा करके रातमें वहाँ जागरण करता है, वह यमलोकमें नहीं जाता।

वहींपर पुष्पदन्तने कठोर तपस्या करके एक शिवलिंग स्थापित किया, जिसका दर्शन करके प्राणी जन्म-मृत्युमय संसार-बन्धनसे मुक्त हो जाता है और इहलोक तथा परलोकमें मनोवांछित फल प्राप्त करता है।

सिद्धेश्वरके पास ही थोड़ी दूर पूर्वकी ओर क्षेत्रपेश्वर नामका उत्तम लिंग है। शुक्लपक्षकी पंचमीको उनका दर्शन करनेसे मनुष्यको कभी सर्प नहीं काटता।

सरस्वती, हिरण्या और समुद्रका संगम देवताओंके लिये भी दुर्लभ है। उसका नाम मिश्रतीर्थ है। वहाँका जल सब जलोंमें प्रधान है; इसलिये वह उत्तम तीर्थ है। सूर्यग्रहण आनेपर उसकी महत्ता कुरुक्षेत्रसे भी बढ़ जाती है। उस स्थानपर किया हुआ जप और दान कोटिगुना फल देनेवाला होता है। मंकीशसे पश्चिम भागमें कृतस्मर तीर्थतक दस करोड़ तीर्थोंका निवास है। उसके भीतर रहनेवाले कृमि, कीट, पतंग और श्वपच आदि भी स्वर्गलोकमें चले जाते हैं; फिर शुद्ध चित्तवाले पुरुषके लिये तो कहना ही क्या है? कृष्णपक्षकी चतुर्दशी तिथिको वहाँ स्नान करके जो पितरोंका तर्पण करता है, उसके पितर तबतक तृप्त रहते हैं, जबतक आकाशमें सूर्य, चन्द्रमा और नक्षत्र प्रकाशित रहते हैं। देवि! यह त्रिसंगम तीर्थ बड़े-बड़े पातकोंका नाश करनेवाला है।

त्रिसंगमके पास ही मंकीश्वर लिंग है। प्राचीन कालमें तपस्वियोंमें श्रेष्ठ मंकि नामके एक महर्षि हो गये हैं। उन्होंने मेरे विग्रहकी स्थापना करके दस हजारसे कुछ अधिक वर्षोंतक यहाँ घोर तपस्या की थी। इससे सन्तुष्ट होकर मैंने उन्हें वरदान दिया। तभीसे उस शिवलिंगका मंकीश्वर नाम प्रसिद्ध हुआ। जो माघमासकी त्रयोदशी और चतुर्दशी तिथियोंको पंचोपचारसे मंकीश्वरका पूजन करता है, वह मनोवांछित फल पाता है।

देवमाता, शेषस्थान, प्रभासपंचक, रुद्रेश्वर, महाश्मशान तथा सरस्वती नदी और संगममें स्नानका महत्त्व

महादेवजी कहते हैं—पार्वती! मंकीश्वरसे नैर्ऋत्य कोणमें देवमाताका स्थान है। वे गौरीरूप धारण करके वहाँ रहती हैं। सरस्वती देवीका ही नाम वहाँ देवमाता है। उन्होंने बड़वानलसे देवताओंकी माताके समान रक्षा की, इसीलिये उन्हें देवमाता कहते हैं। जो पतिव्रता स्त्री अथवा पुरुष माघमासकी तृतीयाको उनकी पूजा करते हैं, वे सब अभीष्ट फलोंको प्राप्त कर लेते हैं। जो वहाँ शर्करायुक्त खीर आदिसे ब्राह्मण-दम्पतिको भोजन कराते हैं, वे एक सहस्र गौरी कन्याओंको भोजन देनेका फल पाते हैं।

नगरादित्यसे पूर्व दिशामें मित्रवनके भीतर जहाँ बलभद्रजीने शरीर छोड़ा है, वह स्थान शेषस्थान कहलाता है। उसीको नागस्थान भी कहते हैं। जो पुरुष त्रिसंगम तीर्थमें स्नान करके पंचमीको निराहार रहकर नागस्थानकी पूजा

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

करता है तथा श्राद्ध करके ब्राह्मणको यथाशक्ति दक्षिणा देता है, वह सब पापोंसे मुक्त होकर मेरे लोकमें जाता है।

नागस्थानसे पश्चिम दिशामें प्रभासपंचक नामक स्थान है जो परम पुण्यमय आदितीर्थ है। उसके पश्चिम भागमें प्रभासक्षेत्र है, उससे दक्षिण भागमें वृद्धप्रभास है। उससे दक्षिण जलप्रभास है। उससे दक्षिण महाप्रभास है। तदनन्तर कृतस्मर प्रभास है, जहाँ श्मशानभैरव हैं। जो मनुष्य भक्तिपूर्वक इन पाँच प्रभासोंका दर्शन करता है, वह जरा-मृत्युसे रहित परम पदको प्राप्त होता है। प्रभास तीनों लोकोंमें विख्यात आदितीर्थ है। वह देवताओंके लिये भी दुर्लभ तथा महापातकोंका नाशक है। प्रभासमें अमावास्याको एक रात व्रत रखनेवाला पुरुष सब पातकोंसे मुक्त हो शिवलोकमें जाता है। पुष्करमें स्नान करनेसे सात जन्मोंका पाप नष्ट हो जाता है।

आदिप्रभासके आगे तीन धनुषकी दूरीपर रुद्रेश्वर लिंग स्थित है, जहाँ मुझ रुद्रने ध्यान लगाकर अपने तेजको स्थापित किया है। उसका दर्शन और पूजन करके मनुष्य सब वांछित फलोंको प्राप्त कर लेता है।

कृतस्मरसे लगाकर मंकीश्वरतक महाश्मशान है, जो पुनर्जन्मका निवारण करनेवाला है। उस स्थानपर मरे हुए जीवके शरीरका दाह करना चाहिये। वह कर्मबीजके लिये ऊसर क्षेत्र कहा गया है। वह मुझे सदा अत्यन्त प्रिय है। मैं कल्पान्तमें भी उसका त्याग नहीं करता। मेरे लिये वह अविमुक्त क्षेत्रसे भी अधिक प्रिय है।

सरस्वतीका जल स्वतः पवित्र है। उसमें जहाँ-कहीं भी स्नान किया जा सकता है, किन्तु सरस्वती और समुद्रका संगम तो देवताओंके लिये भी दुर्लभ है। सब नदियोंमें सरस्वती नदी ही पुण्यदायिनी तथा समस्त लोकोंको सुख देनेवाली है। सरस्वतीको पाकर स्वर्गलोकमें पहुँचे हुए मनुष्य सदाके लिये शोकमुक्त हो जाते हैं। सरस्वतीका पावन जल पुण्यात्मा पुरुषोंको ही प्राप्त होता है। वैशाखकी पूर्णिमा तथा चन्द्रग्रहणके अवसरपर तो वह तीनों लोकोंके लिये भी दुर्लभ है। यदि सोमवती अमावास्याको वहाँ स्नानका सुयोग मिल जाय तो सौ कोटि पर्वोंसे क्या प्रयोजन है। मनुष्यकी हड्डी जबतक सरस्वतीके जलमें रहती है, उतने ही सहस्र वर्षोंतक वह मेरे लोकमें सम्मानित होता है। जो समर्थ होकर भी प्रभास तीर्थमें सरस्वतीका दर्शन नहीं करते, उन्हें जन्मके अन्धों और पंगुओंके समान जानना चाहिये। वे देश, वे तीर्थ, वे आश्रम तथा वे पर्वत धन्य हैं, जिनके बीचसे होकर सरिताओंमें श्रेष्ठ सरस्वती नदी निकलती हैं। जो त्रिभुवनको पवित्र करनेवाली पुण्यदायिनी सरस्वतीकी शरण ले चुके हैं, वे संसाररूपी कीचड़की दुर्गन्ध फिर नहीं सूँघते। प्रभास तीर्थमें सरस्वती नदी स्वर्गकी सीढ़ी है। सरस्वतीके दर्शनसे मनुष्य राजसूय यज्ञका फल पाता है। सरस्वतीसे बढ़कर दूसरा कोई तीर्थ न हुआ है न होगा। जहाँ सरस्वतीका जल समुद्रकी लहरोंसे व्याप्त रहता है, उस संगममें जो मनुष्य स्नान करेंगे, वे प्रत्येक युगमें ऐश्वर्यवान् होंगे। जिन मनुष्योंका शरीर सरस्वतीके जलसे अभिषिक्त होता है, वे धन्य हैं, वे मुनि हैं और उन्हींका निर्मल यश सर्वत्र फैला हुआ है।

~~०~~

श्राद्धके विषयमें कुछ ज्ञातव्य बातें

महादेवजी कहते हैं—पार्वती! सबेरे तीन मुहूर्ततक प्रातःकाल, फिर तीन मुहूर्त संगव-काल, फिर तीन मुहूर्त मध्याह्नकाल और उसके बाद तीन मुहूर्त अपराह्णकाल होता है। तदनन्तर तीन मुहूर्ततक सायाह्नकाल होता है। उसमें श्राद्ध नहीं करना चाहिये। कुशके अग्रभागको दैव और

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

मूलसहित अग्रभाग (द्विभुग्न कुश)-को पैतृक कहा गया है। उसमें अवलम्बित कुशोंको कुतुक माना गया है। श्राद्धकालमें शरीर, द्रव्य, स्त्री, भूमि, मन, मन्त्र तथा ब्राह्मण—इन सात वस्तुओंकी शुद्धिपर विशेष ध्यान देना चाहिये। श्राद्धमें तीन वस्तुएँ पवित्र मानी गयी हैं—दौहित्र, कुतपकाल तथा तिल। तीन बातें प्रशंसाके योग्य कही गयी हैं—शुद्धि, अक्रोध तथा अत्वरा (उतावलेपनका अभाव)। सात प्रकारका धन शुद्ध माना गया है—श्रुत, शौर्य, तप, कन्या, शिष्य आदि, कुल-परम्परा तथा न्यायवृत्तिसे जो प्राप्त हुआ हो। इनकी प्राप्तिके उपाय भी सात प्रकारके हैं—१. कृषि और २. वाणिज्यसे प्राप्त धन कुत्सित है। ३. शिल्पानुवृत्तिसे मिले हुए धनको शुक्ल (उत्तम) कहा गया है। ४. किये हुए उपकारके बदलेमें प्राप्त किया हुआ धन शबल (मध्यम श्रेणीका) बताया गया है। ५. सूद, ६. साहस और ७. छल-कपटसे कमाये हुए धनको कृष्ण (अधम) कहते हैं। अन्यायोपार्जित धनसे जो श्राद्ध किया जाता है, उससे चाण्डाल आदि योनियोंमें पड़े हुए लोगोंकी ही तृप्ति होती है। मनुष्य धरतीपर जो अन्न बिखेरते हैं, उससे पिशाचयोनिमें पड़े हुए पितरोंकी तृप्ति होती है। स्नानके वस्त्रसे धरतीपर जो जल गिरता है, उससे नीच योनियोंमें पड़े हुए पूर्वजोंकी तृप्ति होती है। धरतीपर जो सुगन्धित जलकी बूँदें पड़ती हैं, उससे देवयोनिमें आये हुए पितरोंकी तृप्ति होती है। पिण्ड उठानेपर जो अन्नके दाने पृथ्वीपर गिरते हैं, उनसे सम्मार्जनका जल पीनेवाले विकिर नामके पितर तृप्तिलाभ करते हैं। श्राद्ध-भोजन करके ब्राह्मणलोग जो आचमन और कुल्ला करते हैं, उससे पशुयोनिके पितर तृप्त होते हैं।

श्राद्धमें जो उत्तम माने गये हैं, ऐसे ब्राह्मणोंका वर्णन करता हूँ; सुनो। विशिष्ट, श्रोत्रिय, योगी, वेदवेत्ता, नाचिकेतसंज्ञक त्रिविध अग्नियोंका सेवन करनेवाला, अथवा '**अयं वाव यः पवते**' इत्यादि तीन अनुवाकोंका अध्ययन और अनुष्ठान करनेवाला, '**मधुवाता ऋतायते**' इत्यादि तीन ऋचाओंका जप करनेवाला, '**ब्रह्ममेतु माम्**' इत्यादि तीन अनुवाकोंका अध्ययन और तत्सम्बन्धी व्रत करनेवाला पुत्रीका पुत्र, जामाता और भानजा, पंचाग्निकर्ममें तत्पर, तपोनिष्ठ, मामा, पिता-माताका भक्त, शिष्य, सम्बन्धी, बन्धु-बान्धव, वेदार्थका ज्ञाता और वक्ता, ब्रह्मचारी, सहस्रोंका दान करनेवाला तथा सौ वर्षकी आयुवाला पुरुष—ऐसे ब्राह्मण पंक्तिपावन जानने चाहिये। अपना भानजा तथा भाई-बन्धु मूर्ख भी हों तो भी श्राद्धमें उनका त्याग न करे। देवकर्ममें ब्राह्मणकी परीक्षा न करे, किंतु श्राद्धकर्ममें यत्नपूर्वक ब्राह्मणकी परीक्षा करे। जो चोर, पतित, नपुंसक और नास्तिक-वृत्तिके ब्राह्मण हैं, उन्हें मनुजीने यज्ञ और श्राद्धमें सम्मिलित करनेका निषेध किया है। जो जटाधारी, वेदाध्ययनरहित, दुर्बल, धूर्त तथा शूद्रोंके पुरोहित हों, उनका श्राद्धकर्ममें पूजन न करे। वैद्य, वेतन लेकर देव-पूजा करनेवाले, मांसविक्रेता तथा वाणिज्यसे जीविका चलानेवाले ब्राह्मण भी यज्ञ और श्राद्धमें त्याज्य हैं। जो गँवार, राजसेवक, बुरे नखोंवाला, काले दाँतोंवाला, गुरुके प्रतिकूल आचरण करनेवाला, अग्निहोत्रका त्यागी, सूदखोर, राजयक्ष्माका रोगी, पशु-पालनकी वृत्तिसे जीनेवाला, परिवेत्ता (बड़े भाईसे पहले ही विवाह करनेवाला), निराकृति (किसी अंगसे हीन), ब्राह्मणद्वेषी, परिवित्ति (परिवेत्ताका बड़ा भाई), कुशीलव (नाचने-गानेवाला), अपकीर्णी (धर्मभ्रष्ट), दुःशील, काना, शूद्रजातीय स्त्रीसे सम्बन्ध रखनेवाला, उढ़रीका बेटा, जुआरी, शराबी, कोढ़ी, कलंकित, पाखण्डी, रस बेचनेवाला, धनुष-बाण बनानेवाला, बड़ी बहिनके अविवाहित रहते उसकी छोटी बहिनसे विवाह करनेवाला, मित्रद्रोही, पुत्रसे शिक्षा लेनेवाला, मिरगीका रोगी, घेघेवाला, श्वेतकुष्ठी, चुगलखोर, उन्मादी, अन्धा तथा

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

वेदकी निन्दा करनेवाला—ये सभी ब्राह्मण श्राद्धमें त्याग देनेयोग्य हैं। जलके प्रवाहको छिन्न-भिन्न करनेवाला अथवा उसे रोकनेवाला, दूतकर्म करनेवाला, वृक्षारोपणकी वृत्तिसे जीनेवाला, कुत्तेसे शिकार खेलनेवाला, बाज पक्षीसे जीविका चलानेवाला, कुमारी कन्याको कलंकित करनेवाला, हिंसक, शूद्रवृत्तिसे जीनेवाला, आचारहीन, बहुत बड़े जनसमुदायकी पुरोहिती करनेवाला, प्रतिदिन भीख माँगनेवाला तथा मुर्दे ढोनेवाला—ऐसे ब्राह्मण यत्नपूर्वक त्याज्य हैं। जिनका आचरण निन्दित हो, वे अधम द्विज श्रेष्ठ ब्राह्मणोंकी पंक्तिमें बैठनेके अधिकारी नहीं हैं; अतः विद्वान् ब्राह्मण देवकार्य और पितृकार्य दोनोंमें पूर्वोक्त ब्राह्मणोंको सम्मिलित न करे।

प्रत्येक मासमें अमावास्या आनेपर श्राद्ध करना चाहिये। अष्टका तिथि, सूर्यग्रहण, चन्द्रग्रहण, विषुवयोग, अयनारम्भके दिन तथा सामान्यतः सूर्यकी प्रत्येक संक्रान्तिके दिन श्राद्ध करना चाहिये। कृष्णपक्षमें आर्द्रा, मघा, रोहिणी आदि नक्षत्रोंमें श्राद्धके योग्य द्रव्य और ब्राह्मणका संयोग प्राप्त होनेपर तथा गजच्छाया, व्यतीपात, भद्रा और वैधृतियोगमें भी श्राद्ध करना चाहिये। वैशाखकी तृतीया, कार्तिक शुक्ला नवमी, माघकी पूर्णिमा और भाद्रपद कृष्णा त्रयोदशी—ये युगादि तिथियाँ मानी गयी हैं। माघमासकी सप्तमीको भगवान् सूर्य पहले-पहल रथपर आरूढ़ हुए, इसलिये उसे 'रथ-सप्तमी' कहते हैं। आश्विन शुक्ला नवमी, कार्तिककी द्वादशी, चैत्र और भादोंकी तृतीया, फाल्गुनकी अमावास्या, पौषकी एकादशी, आषाढ़की दशमी, माघकी सप्तमी, श्रावणकी कृष्णाष्टमी, आषाढ़, कार्तिक, फाल्गुन, चैत्र और ज्येष्ठकी पूर्णिमाएँ—ये मन्वन्तरकी आदि तिथियाँ हैं जो दानके पुण्यको अक्षय करनेवाली हैं। मन्वन्तरादि तिथिमें बारह प्रकारके श्राद्ध करने चाहिये—नित्य, नैमित्तिक, काम्य, वृद्धिश्राद्ध, सपिण्डन-श्राद्ध, पार्वण-श्राद्ध, गोष्ठ-श्राद्ध, शुद्धि-श्राद्ध, कर्मांग-श्राद्ध, दैविकश्राद्ध, क्षयाह-श्राद्ध और तुष्टि-श्राद्ध। इन सबमें सांवत्सरिक (क्षयाह) श्राद्ध श्रेष्ठ माना गया है। प्रतिदिन किये जानेवाले श्राद्धको 'नित्य-श्राद्ध' कहते हैं। उसमें विश्वेदेवकी पूजा नहीं की जाती। यदि अन्नसे श्राद्ध करनेकी शक्ति न हो तो केवल जलसे भी नित्यश्राद्ध किया जाता है। एकोद्दिष्ट श्राद्धका नाम नैमित्तिक श्राद्ध है। अभीष्ट वस्तुकी सिद्धिके लिये कामना रखकर जो श्राद्ध किया जाता है, उसे काम्य-श्राद्ध कहते हैं। विवाह आदि उत्सवोंके अवसरपर जो श्राद्ध किया जाता है, वह वृद्धि-श्राद्ध कहलाता है। '**ये समाना०**'—इत्यादि दो मन्त्रोंके द्वारा किये जानेवाले श्राद्धको 'सपिण्डन' कहते हैं। अमावास्या आदि पर्वोंपर किये जानेवाले श्राद्धको 'पार्वण' कहते हैं। गोशालामें जो श्राद्ध किया जाता है, वह गोष्ठश्राद्ध है। पापशुद्धिके लिये जो श्राद्ध किया जाता है, उसे 'शुद्धि' श्राद्ध कहते हैं। गर्भाधान, सोमयाग, सीमन्तोन्नयन तथा पुंसवन आदिमें जो श्राद्ध किया जाता है, वह कर्मांग-श्राद्ध है। देवताके उद्देश्यसे किये जानेवाले श्राद्धको 'दैविक श्राद्ध' कहते हैं। जो देशान्तरमें चला जाय, उसकी तुष्टिके लिये घीसे श्राद्ध करना चाहिये। इसे तुष्टि-श्राद्ध कहते हैं। बारह महीनेपर जो श्राद्ध किया जाता है, उसे क्षयाह अथवा सांवत्सरिक श्राद्ध कहते हैं। जो वर्षके अन्तमें क्षयाहके दिन पिता और माताका आदरपूर्वक श्राद्ध नहीं करते, उनकी की हुई पूजाको मैं नहीं ग्रहण करता। जो मनुष्य पिताकी क्षयाह-तिथिको ठीक-ठीक नहीं जानता हो, उसे माघ अथवा मार्गशीर्षकी अमावास्याको सांवत्सरिक श्राद्ध करना चाहिये।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

श्राद्धविधि, सप्तशुद्धिका विचार, श्राद्धमें ग्राह्य एवं त्याज्यका निर्णय और सप्तार्चिषस्तोत्र

महादेवजी कहते हैं—अब मैं श्राद्धकी विधि बतलाता हूँ। श्राद्धके एक दिन पहले अपसव्य होकर पितरोंके प्रतिनिधिभूत ब्राह्मणोंको निमन्त्रित करे—'आपलोग पितृकार्य सम्पन्न करें और मुझपर प्रसन्न हों।' ब्राह्मणोंको निमन्त्रित करनेके लिये अपनी जातिके विश्वस्त पुरुषोंको भेजना चाहिये। बिना फटा हुआ वस्त्र पवित्र माना गया है। यदि मूर्ख ब्राह्मण अपने सामने ही रहता हो और गुणवान् अपनेसे बहुत दूर बसता हो तो गुणवान्‌को भी श्राद्धका निमन्त्रण देना चाहिये, परंतु मूर्खको त्यागना नहीं चाहिये। जो अपने निकटवर्ती ब्राह्मणको पतित न होनेपर भी त्यागकर दूर रहनेवाले गुणवान्‌की पूजा करता है, वह नरकमें जाता है। वेद, विद्या और व्रतमें निष्णात श्रोत्रिय ब्राह्मण यदि घरपर आ जाय तो विधिपूर्वक उसका पूजन करके मनुष्य परम गतिको प्राप्त होता है। दोनों सन्ध्या, जप, भोजन, दन्तधावन, पितृकार्य, देवकार्य, मूत्रोत्सर्ग, मलोत्सर्ग, गुरुके समीप तथा यज्ञ—इन अवसरोंपर जो मौन रहता है, वह स्वर्गमें जाता है। यदि जप आदिमें किसी तरह मौन भंग हो जाय तो वैष्णव मन्त्रका उच्चारण और भगवान् विष्णुका स्मरण करना चाहिये। दान, स्नान, होम, भोजन और देवपूजनमें देवताओंके लिये सीधे कुश उपयोगमें लाये जाते हैं और पितरोंके लिये द्विगुणभुग्न कुश। उत्तरमुख होकर देवताओंका और दक्षिणमुख होकर पितरोंका कार्य करना चाहिये। अग्नि, भस्म, जौ और जलसे चिह्न बना देनेपर तथा चौखट बीचमें होनेपर भी पंक्तिदोष नहीं होता। इष्टश्राद्धमें क्रतु और दक्ष, वृद्धिश्राद्धमें सत्य और वसु, नैमित्तिक श्राद्धमें काल और काम, काम्य श्राद्धमें अध्व और विरोचन तथा पार्वण श्राद्धमें पुरूरवा एवं आर्द्रव नामके विश्वेदेवोंका आवाहन-पूजन बताया गया है। पलाशके पत्तेमें श्राद्ध करनेसे ब्रह्मतेजकी वृद्धि होती है। पीपलके पत्तेमें श्राद्धभोजन करनेवाला राजाओंका मान्य होता है। पाकड़के पत्तलमें श्राद्धभोजन करनेसे सब भूतोंपर प्रभुत्व प्राप्त होता है। वटके पत्तेमें भोजन करनेसे पुष्टि, प्रजा, वृद्धि, प्रज्ञा, धृति और स्मृतिकी प्राप्ति होती है। गम्भारीका पत्ता राक्षसोंका नाश करनेवाला और यशोदायक होता है। महुवेके पत्तेमें भोजन करनेसे उत्तम सौभाग्य प्राप्त होता है। अर्जुन वृक्षके पत्तेमें श्राद्ध करनेवाला सब अभीष्ट फलोंको प्राप्त कर लेता है। मदारके पत्तेमें श्राद्ध करनेसे उत्तम कान्ति और प्रकाशकी प्राप्ति होती है। बाँसके पात्रमें श्राद्ध करनेवाले पुरुषके खेत, बगीचे और पोखरेमें सदैव मेघ पानी बरसाते हैं। सोने-चाँदीके पात्रोंमें श्राद्ध करनेसे पूर्वोक्त सभी पत्रोंके फलकी प्राप्ति होती है। पलाश, अर्जुन, वट, पाकर, पीपल, विकंकत (कटाय), गूलर, बिल्व और चन्दन—ये यज्ञ-सम्बन्धी वृक्ष हैं। सरल, देवदार, साखू, खैर—ये वृक्ष समिधाके लिये प्रशस्त हैं। श्लेष्मातक, नक्तमाल्य, कैथ, सेमल, नीबू और बहेड़ा—ये वृक्ष श्राद्धकर्ममें निन्दित हैं।

जहाँ अनिष्ट शब्द सुनायी पड़ते हों जो बहुत रूखी और जीव-जन्तुओंसे भरी हो तथा जहाँ दुर्गन्ध फैल रही हो, ऐसी भूमिको श्राद्धकर्ममें त्याग दे। अंग, बंग, कलिंग, सिन्धुका उत्तर तट तथा जहाँ आश्रम-धर्म और वर्ण-धर्म नष्ट हो गये हों, ऐसे देश यत्नपूर्वक श्राद्धकर्ममें त्याग देने योग्य हैं। ब्राह्मण सत्ययुग, क्षत्रिय त्रेता, वैश्य द्वापर और शूद्र कलियुग माना गया है। विद्वान् पुरुष शुक्लपक्षके पूर्वाह्न और कृष्णपक्षके अपराह्णमें श्राद्ध करे। पितृकार्यमें रत्नि* बराबर कुश श्रेष्ठ माने गये हैं। मूलके पाससे कटे हुए कुश वेदीपर

* कोहनसे कनिष्ठिका अंगुलितकके मापको रत्नि या अरत्नि कहते हैं।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

आस्तरण करनेके लिये उत्तम होते हैं। इसी प्रकार साँवाँ, तिन्नी और दूर्वा भी श्रेष्ठ माने गये हैं। कुश सदैव पवित्र तथा श्राद्धकर्ममें आदरणीय हैं। ऐश्वर्यकी इच्छा करनेवाले पुरुषको उन कुशोंपर ही पिण्डदान करना चाहिये।

ब्राह्मणोंको श्रद्धापूर्वक गर्म-गर्म अन्न भोजन कराना चाहिये। फल, फूल और पेय पदार्थोंको ठंडा ही दे। जो स्नेहवश ब्राह्मणोंके हाथमें नमक या व्यंजन परोसता है, अथवा लोहेके पात्रसे परोसता है उस भोजनको राक्षस खाते हैं, पितर उसे नहीं ग्रहण करते। ब्राह्मणोंके पात्रोंमें चुपचाप अन्न परोसकर संकल्प करना चाहिये। करछुल आदिमें जो अन्न हो, उससे उनका सम्बन्ध नहीं रहना चाहिये। जो ब्राह्मण सूअरकी भाँति पात्रमें मुँह लगाकर चप-चप करते हुए खाता है, अथवा जो हाथमें ही भोजन रखकर उसीमें मुँह लगाता है तथा जो भोजनके समय बातचीत करता है, उसके खाये हुए अन्नको पितर नहीं ग्रहण करते। दो वर्षके बछड़ेके मुखमें जो सुखपूर्वक समा सकें, उतने ही बड़े पिण्ड बनाने चाहिये—यह व्यासका कथन है। स्त्री श्राद्धके पात्रको न हटाये। ज्ञानहीन तथा व्रतरहित पुरुष भी भोजनपात्रको न हटाये। स्वयं पुत्र ही आकर पिताके श्राद्धमें उच्छिष्ट पात्रोंको उठाये। तीन पिण्डोंमेंसे एकको तो जलमें डुबो दे, दूसरा पत्नीको दे दे और तीसरेको अग्निमें होम दे—इस प्रकार पिण्डोंकी यह त्रिविध गति है।१

पितृश्राद्धमें छन्दोग (सामवेदी) ब्राह्मणको, वैश्वदेवश्राद्धमें वैष्णवको, पुष्टिकर्ममें अध्वर्यु (यजुर्वेदी)-को तथा शान्तिकर्ममें अथर्ववेदी ब्राह्मणको भोजन कराना चाहिये। दैवश्राद्धमें दो अथर्ववेदी ब्राह्मणोंको पूर्वाभिमुख बिठाना चाहिये और पितृश्राद्धमें ऋग्वेदी, यजुर्वेदी तथा सामवेदी—इन तीन ब्राह्मणोंको उत्तराभिमुख बिठाना चाहिये। चमेली, बेला और श्वेतजूही आदि फूलोंका श्राद्धमें सदा ही उपयोग करे। जलसे पैदा होनेवाले सभी तरहके फूल और चम्पाका भी श्राद्धमें उपयोग करना उचित है। महुआ, हींग, कपूर, मिर्च, गुड़, सेंधा नमक और चाँदी—ये श्राद्धमें उत्तम हैं। ब्राह्मण, कम्बल, गौ, सूर्य, अग्नि, अतिथि, तिल, दर्भ और विहित काल—ये नौ कुतप माने गये हैं।

रजस्वला स्त्री चौथे दिन स्नान करके शुद्ध होती है। परंतु दैवकार्य और पितृकार्यके लिये वह पाँचवें दिन शुद्ध होती है।२ धन और ब्राह्मणके अभावमें, परदेशमें तथा पुत्रजन्मके समय अथवा जिसकी स्त्री रजस्वला हो, वह आमश्राद्ध करे—ब्राह्मणको कच्चा अन्न दे दे। साँपके काटे हुए, ब्राह्मणके मारे हुए, दाढ़वाले, सींगवाले तथा बिच्छू आदिके द्वारा मारे हुए और आत्मघात करनेवाले प्राणियोंका श्राद्ध न कराये। सब भाइयोंसे सलाह करके बिना बँटे हुए धनके द्वारा ज्येष्ठ भाईने जो श्राद्ध और दान किया हो, वह सबके द्वारा किया हुआ माना जाता है। प्रतिवर्ष माता-पिताकी क्षयाह तिथिको जो श्राद्ध किया जाता है, उसे मलमासमें नहीं करना चाहिये—ऐसा व्यासजीका वचन है। गर्भमें, ऋण लेने-देनेके व्यवहारमें, प्रेतकर्ममें, मृत्युमें, मासिक श्राद्धमें तथा वार्षिक श्राद्धमें मलमासकी गणना नहीं की जाती है। विवाह आदिके अवसरोंपर सौरमास, यज्ञ आदिमें सावनमास तथा वार्षिक श्राद्ध और पितृकार्यमें चान्द्रमास उत्तम माना गया है। जिस राशिपर सूर्यके स्थित रहते समय ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यकी मृत्यु हो जाती है, उसी राशिमें मृत्युतिथिको पितृकर्म करना चाहिये। वषट्कार (इन्द्रयाग), होम (देवयाग),

---

१- अप्स्वेकं प्लावयेत् पिण्डमेकं पत्न्यै निवेदयेत्। एकं वै जुहुयादग्नावेषा तु त्रिविधा गतिः॥ (स्क० पु०, प्र० ख० २००। ४४)

२- संशुद्धा स्याच्चतुर्थेऽह्नि स्नाता नारी रजस्वला। दैवे कर्मणि पित्र्ये च पञ्चमेऽहनि शुद्ध्यति॥ (स्क० पु०, प्र० ख० २००। ५१)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

पर्व (दर्श–पौर्णमास) तथा आग्रायण आदि कार्य मलमासमें भी करने योग्य हैं। अग्न्याधान, प्रतिष्ठा, यज्ञ, दान, व्रत, वेद–व्रत, वृषोत्सर्ग, चूडाकर्म तथा मांगलिक अभिषेक भी मलमासमें न करे। नित्य–नैमित्तिक कर्मोंको मलमासमें यत्नपूर्वक करना चाहिये। इसी प्रकार तीर्थस्नान, गजच्छाया–स्नान और प्रेतश्राद्ध भी मलमासमें अवश्य करने योग्य है। जहाँ भोजन करनेवाले भाई–बन्धु और सगोत्र पुरुष नहीं उपलब्ध होते और अन्त्यज आदिसे श्राद्धभूमि घिर जाती है, वहाँ यह सब राक्षसी श्राद्धका लक्षण है। जो स्वयं श्राद्ध करके दूसरेके श्राद्धमें विह्वल होकर भोजन करता है, उसके पितर पिण्ड और तर्पणके लुप्त हो जानेसे नरकमें गिरते हैं।१

यज्ञ और श्राद्धके लिये न्यायपूर्वक ब्राह्मणको निमन्त्रण देकर जो किसी प्रकार उसे छोड़ देता है, वह पापात्मा शूकर–योनिको प्राप्त होता है। दैवश्राद्ध अथवा पितृश्राद्धमें जब अशौच हो जाय, तब उसकी निवृत्ति होनेपर ब्राह्मणोंको श्राद्धका दान देना चाहिये। श्राद्धकी समाप्ति होनेपर ब्राह्मणोंसे आशीर्वाद लेना चाहिये, इससे दीर्घायुकी प्राप्ति होती है। पहले ब्राह्मणके हाथमें जल देकर इस प्रकार प्रार्थना करे—

अपां मध्ये स्थिता देवाः सर्वमप्सु प्रतिष्ठितम्।
ब्राह्मणस्य करे न्यस्ताः शिवा आपो भवन्तु नः॥

'देवता जलके भीतर निवास करते हैं। सब कुछ जलमें ही प्रतिष्ठित है। ब्राह्मणके हाथमें रखा हुआ जल हमारे लिये कल्याणकारी हो।'

तत्पश्चात् ब्राह्मणके हाथमें फूल देकर इस प्रकार प्रार्थना करे—

लक्ष्मीर्वसति पुष्पेषु लक्ष्मीर्वसति पुष्करे।
लक्ष्मीर्वसति वै सोमे सौमनस्यं सदास्तु मे॥

'लक्ष्मी फूलोंमें निवास करती हैं। लक्ष्मी कमलमें निवास करती हैं और लक्ष्मी चन्द्रमामें वास करती हैं। मेरा मन सदा प्रसन्न रहे।'

तदनन्तर ब्राह्मणके हाथमें अक्षत देकर प्रार्थना करे—

अक्षतं चास्तु मे पुण्यं शान्तिः पुष्टिर्धृतिश्च मे।
यद्यच्छ्रेयस्करं लोके तत्तदस्तु सदा मम॥

'मेरा पुण्य अक्षय हो; मुझे शान्ति, पुष्टि और धृति प्राप्त हो। लोकमें जो कल्याणकारी वस्तुएँ हैं, वे सदा मुझे मिलती रहें।'

इसके बाद ब्राह्मणको दक्षिणा देकर प्रार्थना करे—

दक्षिणाः पान्तु सर्वत्र बहुदेयं तथास्तु नः।

'दक्षिणा सर्वत्र रक्षा करे और हमारे पास दान करनेके लिये बहुत सामग्री हो।'

सभी प्रार्थनाओंके उत्तरमें ब्राह्मण **'एवमस्तु'** कहकर उनका अनुमोदन करे और यजमान मस्तक झुकाकर ब्राह्मणके आशीर्वादको शिरोधार्य करे। भोगकी इच्छा रखनेवाला पुरुष पिण्डको सदा अग्निमें डाले। सन्तानकी प्राप्तिके लिये मध्यम पिण्ड मन्त्रोच्चारणपूर्वक पत्नीको दे दे। उत्तम कान्ति चाहे तो सदा गौओंको ही पिण्ड खिला दे। यदि प्रज्ञा, यश और कीर्तिकी अभिलाषा हो तो सदा पिण्डको जलमें ही डाल दे। दीर्घ आयुकी चाह हो तो सब पिण्ड कौओंको खिला दे। कार्तिकेयजीके लोकमें जानेकी अभिलाषा हो तो मुर्गेको खिलाये अथवा दक्षिण दिशाकी ओर मुख करके सब पिण्ड आकाशमें ही फेंक दे। क्योंकि आकाश और दक्षिण दिशा पितरोंके स्थान हैं।२

चन्द्रग्रहणके सिवा और कभी रात्रिमें श्राद्ध न करे। चन्द्रग्रहणका दर्शन होनेपर शीघ्र सर्वस्व

१– श्राद्धं कृत्वा परश्राद्धे यस्तु भुङ्क्ते स विह्वलः। पतन्ति पितरस्तस्य लुप्तपिण्डोदकक्रियाः॥
(स्क० पु०, प्र० ख० २००। ६३–६४)

२– पिण्डमग्नौ सदा दद्याद्भोगार्थी सततं नरः। प्रजार्थं पत्न्यै वै दद्यान्मध्यमं मन्त्रपूर्वकम्॥
उत्तमां द्युतिमन्विच्छेद्गोषु नित्यं प्रदापयेत्। प्रज्ञामिच्छेद्यशः कीर्तिमप्सु नित्यञ्च प्रक्षिपेत्॥

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

लगाकर भी रात्रिमें श्राद्ध करे। ग्रहणके समय श्राद्ध न करनेवाला कष्ट पाता है और जो श्राद्ध करता है, वह अपने पापसे उसी प्रकार तर जाता है, जैसे जहाज समुद्रके पार होता है। काला उड़द, तिल, जौ, अगहनीका चावल, महायव, व्रीहियव तथा काले और सफेद तिल श्राद्धकर्ममें सदा ग्राह्य हैं। बेल, आँवला, मुनक्का, कटहल, आमड़ा, अनार, केला, सामयिक साग और मूँग आदि वस्तुएँ श्राद्ध-कर्ममें उत्तम मानी गयी हैं। मसूर, सौंफ और कुसुम्भके फूल श्राद्धमें सदैव वर्जित हैं। लहसुन, गाजर, प्याज, पिण्डमूल, मोरट और बड़ी मूली—ये सब श्राद्धमें वर्जित हैं। इनके सम्पर्कसे श्राद्ध व्यर्थ हो जाता है और दाता नरकमें पड़ता है। प्रातःकालसे लेकर सन्ध्यातक पंद्रह मुहूर्त होते हैं। उनमें तीन मुहूर्तका प्रातःकाल, फिर तीन मुहूर्तका संगवकाल, उसके बाद तीन मुहूर्तका मध्याह्नकाल, फिर उतनेका ही अपराह्नकाल तथा शेष तीन मुहूर्तका सायाह्नकाल कहा गया है। यही पाँचवाँ दिनांश है। प्रातःकालसे लेकर रोहिणतक मनुष्य श्राद्ध करे। रोहिण मुहूर्तका उल्लंघन न करे। दिनके आठवें मुहूर्तको कुतप और नवेंको रोहिण कहते हैं। एकोद्दिष्ट श्राद्ध मध्याह्नमें करना चाहिये। केवल जातकर्म-संस्कारके समय उसे प्रातःकाल किया जा सकता है। पितरोंके लिये पृथक् और विश्वेदेवोंके लिये पृथक् श्राद्ध करे। श्राद्ध करके ब्राह्मणोंको विदा करे। उसके बाद बलिवैश्वदेव कर्म करे। यदि आग प्रज्वलित न हो और उसमें धूआँ उठता हो तो उसमें हवन करनेवाला यजमान अपने पुत्रके साथ अन्धा हो जाता है। जहाँ दुर्गन्धयुक्त, काले और नीले रंगकी अग्नि पृथ्वीपर प्राप्त हो, वहाँ पराजय होती है—यों जानना चाहिये। जिसमें लपटें उठती हों, जिसकी ज्वालामें कुछ पीला रंग दिखायी देता हो, जो घृत और सुवर्णके समान देदीप्यमान हो तथा जिसकी लपट प्रदक्षिण भावसे उठ रही हो, वह अग्नि सम्पूर्ण कर्मोंको सिद्ध करनेवाली होती है। चन्दन, अगुरु, तमाल, खस, पद्मक, धूप, गुग्गुल तथा लोहबानकी धूप श्रेष्ठ मानी गयी है। कमल, उत्पल, सुगन्धित फूल तथा श्वेत रंगके पुष्प श्राद्धमें श्रेष्ठ माने गये हैं। जौ, सुमना, झिंटी, रक्तक और कुरण्टक—ये सभी फूल श्राद्धकर्ममें सदैव वर्जित हैं। सोने, चाँदी और ताँबेके पात्र पितरोंके पात्र कहे जाते हैं। श्राद्धमें चाँदीकी चर्चा और दर्शन भी पुण्यदायक है। चाँदीका समीप होना, दर्शन अथवा दान राक्षसोंका विनाश करनेवाला, यशोदायक तथा पितरोंको तारनेवाला होता है।

अब मैं अमृत-मन्त्रका उपदेश करता हूँ—

देवताभ्यः पितृभ्यश्च महायोगिभ्य एव च।
नमः स्वधायै स्वाहायै नित्यमेव नमो नमः॥

'देवता, पितर, महायोगी, स्वधा और स्वाहा—इन सबको नित्य बारंबार नमस्कार है।'

श्राद्धके आदि और अन्तमें इस मन्त्रका तीन-तीन बार जप करना चाहिये। ब्राह्मणोंद्वारा सदैव पूजित होनेपर यह मन्त्र अश्वमेध यज्ञका फल देता है। पिण्डदानके समय भी एकाग्रचित्त होकर इस मन्त्रको जपे। इससे पितर प्रसन्न होते हैं तथा राक्षस भाग जाते हैं।

अब मैं सप्तार्चिष स्तोत्र कहता हूँ। जो मूर्तिरहित और मूर्तिमान् हैं, जिनका तेज सब ओर उदीप्त है, जो सर्वत्र व्यापक और दिव्य दृष्टिवाले हैं, उन पितरोंको मैं सदा नमस्कार करता हूँ। जो इन्द्र आदि देवताओं तथा दक्ष और कश्यपके भी नेता हैं एवं सप्तर्षियों और पितरोंके भी नायक हैं, सबकी अभिलाषा पूर्ण

प्रार्थयन्दीर्घमायुश्च वायसेभ्यः प्रदापयेत्। कुमारलोकमन्विच्छन् कुक्कुटेभ्यः प्रदापयेत्॥
आकाशे गमयेद्वापि स्थितो वा दक्षिणामुखः। पितॄणां स्थानमाकाशं दक्षिणा चैव दिक् तथा॥
(स्क० पु०, प्र० ख० २००। ७३—७६)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

करनेवाले उन पितरोंको मैं नमस्कार करता हूँ। जो मनु आदि सब मनुष्यों तथा सूर्य और चन्द्रमाके भी माननीय पितर हैं, उन सबको मैं हाथ जोड़कर प्रणाम करता हूँ। जो नक्षत्रों, ग्रहों, वायु, अग्नि, आकाश और पृथ्वीके भी पिता हैं, उन सबको मैं हाथ जोड़कर नमस्कार करता हूँ। सातों लोकोंमें रहनेवाले सातों पितरोंको नमस्कार है, नमस्कार है। योगदृष्टिवाले स्वयम्भू ब्रह्माको नमस्कार करते हैं। यह सप्तार्चिष स्तोत्र ब्रह्मर्षिगणोंसे पूजित, परम पवित्र तथा समस्त राक्षसोंका विनाशक है। इस प्रकार इस स्तोत्रका तीन बार जप करे। जो श्रद्धालु, जितेन्द्रिय तथा एकाग्रचित्त होकर बड़ी श्रद्धाके साथ प्रतिदिन इस सप्तार्चिष स्तोत्रका जप करता है, वह सात समुद्रोंवाली पृथ्वीका एकमात्र राजा होता है। जो इस श्राद्धकल्पका नित्य पाठ करता है, वह पंक्तिपावन है, वही अठारह विद्याओंका पारंगत विद्वान् माना गया है। पितर लोग प्रसन्न होकर मनुष्योंको प्रज्ञा, पुष्टि, स्मृति, मेधा, राज्य तथा आरोग्य प्रदान करते हैं। पार्वती! इस प्रकार सरस्वती और समुद्रके संगमपर मनुष्यको विधिपूर्वक श्राद्ध करना चाहिये।

परायी वस्तुके अपहरण और प्रतिग्रहके दोष

महादेवजी कहते हैं—जो मनुष्य अमावास्याको दूसरेका अन्न खाता है, उसका महीनेभरका किया हुआ पुण्य अन्नदाताको मिल जाता है। अयनारम्भके दिन पराया अन्न भोजन करे तो छः महीनोंका और विषुवकालमें परान्न भोजन करनेपर तीन मासका पुण्य चला जाता है। यदि चन्द्रग्रहण और सूर्यग्रहणके अवसरपर मनुष्य भोजन करे तो बारह वर्षोंसे एकत्र किया हुआ सब पुण्य नष्ट हो जाता है।* संक्रान्तिके दिन दूसरेका अन्न ग्रहण करनेपर महीनेभरसे अधिक समयका पुण्य चला जाता है। आद्य श्राद्ध (एकादशाह-श्राद्ध)-में परान्न भोजन करनेपर तीन वर्षका पुण्य चला जाता है। मासिक श्राद्धमें भोजन करनेपर आठ वर्षका और छमाही श्राद्धमें भोजन करनेसे आधे वर्षका पुण्य नष्ट होता है। जो अस्थि-संचयन-श्राद्धमें दूसरेका अन्न खाता है, उसका जन्मभरका पुण्य चला जाता है। जो मरे हुए मनुष्यकी शय्याका दान लेता है, जो वेदाध्ययनको बेचता है तथा जो ब्राह्मणका धन हड़प लेता है, ऐसे लोगोंकी शुद्धि कभी नहीं होती। एक माशा सुवर्ण, एक गाय अथवा आधी अंगुल भूमि भी जो चुराता है, वह प्रलयकालतक नरकमें रहता है। ब्रह्महत्या, मदिरापान, दरिद्रके धनका अपहरण, गुरुपत्नीगमन तथा सुवर्णकी चोरी—ये पाप स्वर्गमें बैठे हुए पुरुषको भी नीचे गिरा देते हैं। चिताके काष्ठसमूहका और वेद बेचनेवाले ब्राह्मणका स्पर्श करके स्नान करना चाहिये। वेद बेचनेवाला पुरुष द्रव्यके लिये जितने वेदाक्षरोंका उपयोग करता है, उतनी बाल-हत्याओंको प्राप्त होता है। जो वेदकी शिक्षा लेकर उसके बदलेमें ब्राह्मणको दान देता है, वह पहले नरकमें जाता है। उसके बाद वह ब्राह्मण भी नरकमें गिरता है। वेदज्ञ ब्राह्मण भी यदि बलिवैश्वदेव नहीं करते तथा अग्निहोत्र आदि गृह्यकर्मसे अलग रहते हैं, उन्हें शूद्र ही जानना चाहिये। जिन ब्राह्मणोंने अध्ययन नहीं किया है, जो अग्निहोत्रसे रहित तथा अपने आचारसे हीन हैं, वे सभी

* अमावास्यां नरा ये तु परान्नमुपभुञ्जते। तेषां मासकृतं पुण्यमन्नदातुः प्रदाप्यते॥
षण्मासमयने भुङ्क्ते त्रीन्मासान् विषुवे स्मृतम्। वर्षैर्द्वादशभिश्चैव यत्पुण्यं समुपार्जितम्॥
तत सर्वं विलयं याति भुक्त्वा सूर्येन्दुसम्प्लवे।

(स्क० पु०, प्र० ख० २००। ११—१३)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

शूद्रजातिके हैं। जो क्षयाहके दिन श्रद्धापूर्वक पिताका श्राद्ध नहीं करता, वह मनुष्य द्विज होनेपर भी शूद्रके ही समान है। जो ब्राह्मण मृतक-श्राद्ध, सूर्यग्रहण, चन्द्रग्रहण, गजच्छाया* और सूतकमें भोजन करता है, उसके साथ शूद्रोचित बर्ताव करे। ब्रह्मचारी, संन्यासी, शिल्पी तथा यज्ञदीक्षित पुरुषको एवं यज्ञ, विवाह तथा सत्रमें कभी सूतक नहीं लगता। शिल्पी, नट, दूत और सूदखोर ब्राह्मणोंके साथ शूद्रोचित बर्ताव करना चाहिये। जो निषिद्ध कर्मोंमें संलग्न, पाखण्डी, दुष्कर्मी और पापाचारी हो, वह ब्राह्मण शूद्रके समान माना गया है। बिना स्नान किये भोजन करनेवाला विष्ठा भोजन करता है। बिना जप किये खानेवाला पीब और रक्त खाता है। बिना हवन किये आहार करनेवाला कीड़े खाता है और देवता, अतिथि आदिको दिये बिना भोजन करनेवाला पुरुष मानो मदिरा पीता है। राजाका अन्न तेज हर लेता है। शूद्रका अन्न ब्रह्मतेजको नष्ट कर देता है। सुनारका अन्न आयु और चमारका अन्न यश ले लेता है। कारीगरका अन्न सन्तानका नाश करता है। धोबीका अन्न बलको क्षीण करता है। किसी समूह या संस्थाका अन्न तथा वेश्याका अन्न स्वर्ग आदि पुण्यलोकोंसे भ्रष्ट कर देता है। वैद्यका अन्न पीब, व्यभिचारिणी स्त्रीका अन्न वीर्य, अधिक व्याज लेनेवालेका विष्ठा और हथियार बेचनेवालेका अन्न मलके समान त्याज्य है। ब्राह्मण मांस, लाख और नमक बेचनेसे तत्काल पतित हो जाता है और दूध बेचनेसे तीन दिनमें शूद्रके समान हो जाता है। रसको रससे बदलना चाहिये, किंतु रस देकर नमक नहीं लेना चाहिये। पके अन्नको कच्चे अन्नसे बदला जा सकता है। तिलको उसीके बराबर धान्यसे बदलना चाहिये। जो ब्राह्मण तिलोंसे भोजन, उबटन और दानसे भिन्न कोई दूसरा व्यापार आदि कर्म करता है, वह कीड़ा होकर अपने पितरोंके साथ कुत्तेकी विष्ठामें डूबता है। पूआ, सुवर्ण, गौ, घोड़ा, पृथ्वी और तिलका दान लेनेवाला ब्राह्मण यदि विद्वान् न हो तो वह उसे ग्रहण करके काष्ठकी भाँति जल जाता है। दानमें लिया हुआ सुवर्ण आयुका तथा रत्न अपने शरीर, पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र, दौहित्र तथा कुलमें होनेवाले अन्य पुरुषोंका नाश कर देता है। पाँच योजनके भीतर भी यदि अपने गुरुका आगमन सुनायी पड़े तो उनकी उपेक्षा न करे। मनुष्य सदा सत्पात्रको ही दान दे। जो कहीं दान दिया जाता हुआ देखकर लोभवश उसे माँगने लगे तो विद्वान् पुरुष उसे दान न दे; क्योंकि लोलुपता या चपलता अच्छी नहीं होती। यदि ब्राह्मण रसका विक्रय त्याग दे तो उसे सौभाग्यकी प्राप्ति होती है। मांसका त्याग करनेसे सन्तानकी आयु बढ़ती है। चीर और वल्कल धारण करनेसे वस्त्र और आभूषण प्राप्त होते हैं, सच बोलनेसे मनुष्य स्वर्गमें क्रीड़ा करता है। अहिंसाधर्मके पालनसे आरोग्य और दान देनेसे यशकी प्राप्ति होती है। ब्राह्मणकी सेवा करनेसे राज्य तथा द्विजत्व प्राप्त होते हैं। देवताओंकी सेवासे मनुष्य दिव्य रूप पाता है। अन्नदानसे सम्पूर्ण अभीष्ट भोगोंकी प्राप्ति होती है।

~~~0~~~

* ज्योतिषका एक योग जो उस समय होता है, जब कृष्ण त्रयोदशीके दिन चन्द्रमा मघा नक्षत्रमें और सूर्य हस्त नक्षत्रमें हो—यह योग श्राद्धके लिये अच्छा माना जाता है।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth
~~~

उत्तम-अधम जन्म, व्यर्थ और सफल दान, सुपात्रके लक्षण, विद्धा एकादशीके दोष तथा द्रव्याभावमें श्राद्धकी विधि

महादेवजी कहते हैं—पार्वती! चार प्रकारके जन्म और सोलह प्रकारके दान व्यर्थ हैं तथा चार प्रकारके जन्म उत्तम और सोलह प्रकारके दान महादान हैं। अब इनका विवरण सुनो। (१) कुपुत्रोंका जन्म व्यर्थ है। (२) जो धर्मसे बहिष्कृत हैं, (३) जो परदेशमें जाते हैं तथा (४) जो सदा परस्त्रियोंमें आसक्त रहते हैं, उनका जन्म भी व्यर्थ है। १. जो दूसरेके यहाँ भोजन करते हैं और (२) परस्त्री-लम्पट हैं, उनको दिया हुआ दान व्यर्थ है। (३) एक बार देनेसे इन्कार करके फिर जो दान दिया जाता है, वह भी व्यर्थ है। (४) आरूढ़-पतित (संन्यासी होकर फिर गृहस्थ होनेवाले)-को दिया हुआ दान तथा (५) अन्यायोपार्जित धनका दान भी व्यर्थ है। (६) ब्रह्महत्यारे, (७) पतित, (८) चोर, (९) गुरुको प्रसन्न न रखनेवाले (१०) कृतघ्न, (११) ग्राम-पुरोहित, (१२) अधम ब्राह्मण, (१३) शूद्रा स्त्रीसे सम्बन्ध रखनेवाले ब्राह्मण, (१४) वेदविक्रेता, (१५) जिसकी स्त्रीका किसी जार पुरुषसे सम्बन्ध हो तथा (१६) जो स्त्रीके अधीन रहता हो, ऐसे ब्राह्मणोंको दिये हुए दान असफल होते हैं। इस तरह ये सोलह प्रकारके दान व्यर्थ हैं।

अब जिनका जन्म उत्तम है, उनका परिचय सुनो। (१) जो अपने माता-पिताके उत्तम पुत्र हैं, (२) सदा धर्ममें तत्पर रहते हैं, (३) परदेशमें नहीं जाते और (४) परायी स्त्रियोंसे विमुख हैं—इन चार प्रकारके मानवोंका जन्म श्रेष्ठ है। (१) गौ, (२) सुवर्ण, (३) चाँदी, (४) रत्न, (५) विद्या, (६) तिल, (७) कन्या, (८) हाथी, (९) घोड़ा, (१०) शय्या, (११) वस्त्र, (१२) भूमि, (१३) अन्न, (१४) दूध, (१५) छत्र तथा (१६) आवश्यक सामग्रियों-सहित गृह—इन सोलह प्रकारकी वस्तुओंके दानको महादान कहते हैं।

इसलिये शठता छोड़कर श्रद्धा और विधिके साथ उत्तम देशमें, उत्तम कालमें और उत्तम पात्रको न्यायोपार्जित धनका दान देना चाहिये। जो वेदाध्ययनसे सम्पन्न, योगनिष्ठ, शान्त, पुराणका ज्ञाता, पापसे डरनेवाला, स्त्रियोंके प्रति क्षमाभाव रखनेवाला, धर्मात्मा, गौओंको आश्रय देनेवाला तथा सदाचारसे युक्त हो, उसीको दानका उत्तम पात्र कहते हैं। सत्य, इन्द्रियसंयम, तप, शौच, सन्तोष, ईर्ष्याका न होना, सरलता, ज्ञान, मनःसंयम, दया और दान—ये सद्‌गुण ही सुपात्रके लक्षण हैं।* जो ऐसे श्रेष्ठ पात्रको समान बछड़ेवाली, चाँदीके खुर और सोनेके सींगवाली, सर्वगुणसम्पन्न एक गाय भी दान करता है, वह मेरे लोकमें प्रतिष्ठित होता है। जो मानव ऐसी गायको दानमें देता है, वह उत्तम गतिको प्राप्त होता है। उसके ऊपर मैं सदा प्रसन्न रहता हूँ। जो गाय क्रोध करनेवाली, दुष्ट, दुर्बल, रोगिणी तथा मूल्य न देकर लायी गयी हो, उसका दान नहीं करना चाहिये। जो अतिथियोंका प्रेमी, मनको वशमें रखनेवाला, अग्निहोत्री तथा धनके अभावसे कष्ट पानेवाला श्रोत्रिय ब्राह्मण हो, उसे दी हुई एक गाय भी अधिक गुणवाली होती है। जो ज्ञान-दुर्बल ब्राह्मण गायको बेचता है, वह गोदान लेनेका अधिकारी नहीं है, उसे ब्राह्मण नहीं मानना चाहिये। गाय, घर, शरण तथा कन्या—ये वस्तुएँ अनेक पुरुषोंको नहीं देनी चाहिये—इनमेंसे एक वस्तु एक ही व्यक्तिको देनी चाहिये।

---

* सत्यं दमस्तपः शौचं सन्तोषोऽनैर्ष्यमार्जवम्। ज्ञानं शमो दया दानमेतत्पात्रस्य लक्षणम्॥
(स्क० पु०, प्र० ख० २०२। १८। १९)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

यदि एकादशी दशमीसे विद्ध हो और द्वादशीका क्षय हो गया हो, तो उस दिन नक्त-व्रत करे। उस दिन उपवासका विधान नहीं है। जो एकादशीमें उपवास करके त्रयोदशीको पारण करता है, उसकी बारह द्वादशियोंका फल नष्ट हो जाता है। उपवास और श्राद्धके दिन काष्ठसे दन्तधावन न करे। दर्श, पौर्णमास तथा पिताका वार्षिक श्राद्ध पूर्वविद्धा तिथिमें ही करना चाहिये; जो ऐसा नहीं करता, वह नरकमें पड़ता है। उसकी सन्तानकी हानि बतायी गयी है और वह दुर्भाग्यको प्राप्त होता है।*

द्रव्यके अभावमें एक ही ब्राह्मणके द्वारा छः पिण्डवाला श्राद्ध करे। उसमें पिता आदिके लिये छः अर्घ्य स्थापित करके उन्हें विधिपूर्वक निवेदन करे। ब्राह्मणके हाथमें जो अन्न जाता है, उसे पिता भोजन करते हैं, मुखमें पितामह खाते हैं, तालुभागमें स्थित होकर प्रपितामह उस अन्नको ग्रहण करते हैं। ब्राह्मणके कण्ठमें मातामह, हृदयमें प्रमातामह और नाभिमें वृद्ध प्रमातामह स्थित होकर अन्न ग्रहण करते हैं। ब्राह्मण न मिले तो कुशका ब्राह्मण बनाकर रखे (और उसके सन्निधानमें श्राद्ध-कार्य पूर्ण करे) यह सभी पुराणोंसे उनका सार निकालकर कहा गया है। जो नास्तिक चुगलखोर और वेदोंका निन्दक हो, उसे इसका उपदेश नहीं देना चाहिये।

~~~o~~~

मार्कण्डेयेश्वर आदि विविध लिंगोंकी महिमा

महादेवजी कहते हैं—पार्वती! तदनन्तर महर्षि मार्कण्डेयजीके द्वारा स्थापित परम उत्तम मार्कण्डेयेश्वरके समीप जाय। उनका स्थान सावित्रीसे पूर्व दिशामें थोड़ी ही दूरपर है। पूर्वकालमें महर्षि मार्कण्डेय एक विख्यात महात्मा हुए हैं। पद्मयोनि ब्रह्माजीके प्रसादसे उन्हें अजरता और अमरता प्राप्त हो चुकी है। वे प्रभासक्षेत्रमें गये और वहाँ शिवजीकी स्थापना तथा पूजा करके दक्षिण ओर स्थित हो पद्मासन लगाकर ध्यानमग्न हो गये। ध्यानमें ही उनके दस हजार अरब युग बीत गये; परंतु मुनीश्वर मार्कण्डेय नहीं जगे। इस दीर्घकालमें हवासे उड़ी हुई धूलके द्वारा धीरे-धीरे वहाँके मन्दिर, शिवलिंग और स्थान आदिका लोप हो गया। तत्पश्चात् किसी समय मुनि जब समाधिसे जगे, तब उन्होंने सारा शिवमन्दिर धूलसे आच्छादित देखा। फिर वे मिट्टी खोदकर वहाँसे बाहर निकले और वहाँ शिवकी पूजाके लिये एक बहुत बड़ा द्वार बनवाया। जो मनुष्य उसमें प्रवेश करके वहाँ भगवान् शिवका पूजन करता है, वह मेरे परम धामको प्राप्त होता है।

मार्कण्डेयेश्वरसे उत्तर दिशामें पाँच धनुषकी दूरीपर पुलस्त्येश्वरका स्थान है। उनका दर्शन और पूजन करके मनुष्य अपने सात जन्मोंका पाप नष्ट कर डालता है।

वहाँसे नैर्ऋत्यकोणमें आठ धनुषके अन्तरपर क्रत्वीश्वर शिव हैं, उनका भक्तिभावसे पूजन करना चाहिये। वे बड़े-बड़े यज्ञोंके फल देनेवाले हैं। उनका दर्शन करके मानव पुण्डरीक-यज्ञका फल पाता है। उसे सात जन्मोंतक दरिद्रता और दुःखकी प्राप्ति नहीं होती।

क्रत्वीश्वरसे पूर्व दिशामें सोलह धनुष दूर कश्यपेश्वर लिंग है, जो महापातकोंका नाश

* दर्शञ्च पौर्णमासञ्च पितुः सांवत्सरं दिनम्। पूर्वविद्धमकुर्वाणो नरकं प्रतिपद्यते॥
हानिश्च संततेः प्रोक्ता दौर्भाग्यं हि समाप्नुयात्॥
(स्क० पु०, प्र० ख० २०३। ४२-४३)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth
~~~

करनेवाला है। कश्यपेश्वरका दर्शन करके मनुष्य धनवान् और पुत्रवान् होता है तथा सब पातकोंसे मुक्त हो जाता है।

कश्यपेश्वरसे ईशानकोणमें आठ धनुष दूर कौशिकेश्वर शिव हैं, जो बड़े-बड़े पातकोंका नाश करनेवाले हैं। उनका दर्शन-पूजन करके मानव मनोवांछित फल पाता है।

मार्कण्डेयेश्वरसे बीस धनुष दक्षिण ओर कुमार कार्तिकेयद्वारा स्थापित लिंग है। उसके आगे एक कूप है। उसमें स्नान करके जो कुमारेश्वर शिवका पूजन करता है, वह सब पातकोंसे मुक्त होकर स्वामी कार्तिकेयजीके लोकमें जाता है।

मार्कण्डेयेश्वरसे उत्तर दिशामें पंद्रह धनुष दूर गौतमेश्वर नामक उत्तम लिंग है। उस लिंगकी विधिपूर्वक पूजा करके मनुष्य पाँच पातकोंसे छूट जाता है।

वहाँसे पश्चिम भागमें सोलह धनुषपर देवराजेश्वर लिंग है, जिसकी स्थापना देवराज इन्द्रने की है। जो मनुष्य उनकी पूजा करता है, वह सब पातकोंसे मुक्त हो जाता है। वहींपर मनुजीके द्वारा स्थापित मानवेश्वर लिंग है। जो उसकी पूजा करता है, वह पातकोंसे मुक्त होता है। सब लोक शिवमय हैं और सब कुछ शिवमें ही प्रतिष्ठित है। इसलिये जो अपना कल्याण चाहे वह भगवान् शिवके ही नामोंका जप करे। ब्रह्मा आदि सब देवता, राजा, महर्षि, मनुष्य और मुनि—ये सभी लोग शिवलिंगका पूजन करते हैं। शिवलिंगकी स्थापना करनेवाला मानव ब्रह्महत्या, बालहत्या तथा अन्य पातकोंका शिवजीके तेजसे नाश करता है।

वहाँसे दक्षिण दिशामें वृषध्वजेश्वर नामक शिव हैं। वे ही अव्यक्त अविनाशी अक्षर ब्रह्म हैं, जिससे परे कुछ भी नहीं है। उनका न आदि है, न अन्त है। वे योगिगम्य हैं। सर्वाश्चर्यमय हैं। बुद्धिसे ग्रहण करनेयोग्य तथा निरामय हैं। उनके सब ओर हाथ, पैर, नेत्र, सिर और मुख हैं। उन्हींको मृड और स्थाणु आदि नामोंसे पुकारते हैं। राजा मरुत्त, पृथु, भरत, शशविन्दु, गय, शिबि, राम, अम्बरीष, मान्धाता, दिलीप, भगीरथ, सुहोत्र, रन्तिदेव, ययाति और सगर—ये भाग्यशाली राजा प्रभासक्षेत्रमें आये और वृषध्वजेश्वरकी यज्ञोंद्वारा आराधना करके स्वर्गलोकमें चले गये। देवि! मैं सच कहता हूँ, हितकी बात कहता हूँ और बार-बार इसको दुहराता हूँ—इस विनाशशील असार संसारमें केवल शिवकी आराधना ही सार है। जिसने भगवान् शिवका दर्शन किया है, वह धन्य है।

गौतम और प्रेतका संवाद, प्रेतोंका उद्धार तथा प्रेततीर्थकी उत्पत्ति

महादेवजी कहते हैं—पूर्वकालकी बात है, उत्तम व्रतका पालन करनेवाले महर्षि गौतम भृगुकच्छसे प्रभासक्षेत्रमें आये। वे परम पवित्र उत्तरायणमें श्रीसोमनाथजीका दर्शन करनेकी इच्छासे वहाँ पधारे थे। सोमेश्वरका दर्शन तथा सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नान करके गौतमजी प्रभासमें ही तीर्थभ्रमण करने लगे। घूमते-घूमते गात्रच्छेद तीर्थमें गये। उसकी सीमापर पहुँचते ही उन्हें वैष्णव वन दिखायी दिया, जो भगवान् विष्णुको बहुत ही प्रिय है। उस वनमें सौ धनुषतक फैला हुआ पुरुषोत्तम क्षेत्र है। वहाँ सीमापर पहुँचकर उन्होंने महाभयंकर विशालकाय पाँच प्रेतोंको देखा, जो बड़े-बड़े वृक्षोंपर बैठे हुए थे। उनके केश ऊपरकी ओर उठे हुए थे। उन प्रेतोंको देखकर वे भयसे थर्रा उठे। फिर भी धैर्य धारण करके देरतक कुछ सोच-विचारकर उन्होंने पूछा—'अहो! यह विकराल देह धारण करनेवाले तुमलोग कौन हो?'

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

प्रेतोंने कहा—महामना! हमलोग प्रेत हैं और इस तीर्थको श्रेष्ठ एवं पुण्यमय सुनकर बहुत दूरसे यहाँ आये हैं; परंतु हमें इसके भीतर प्रवेशकी आज्ञा नहीं मिलती। कुछ अदृश्य दूतोंने हमें मार-मारकर जर्जर कर दिया है। हममेंसे एक यह लेखक है, दूसरा रोहक है, तीसरा शीघ्रग है, चौथा सूचक है और पाँचवाँ मैं सबसे बड़ा पापी हूँ। मेरा नाम पर्युषित है।

गौतमने पूछा—तुमलोग तो प्रेतयोनिमें पड़े हुए हो? फिर तुम्हारे ये लेखक आदि नाम कैसे हुए?

प्रेत बोले—इसके पास जब कोई ब्राह्मण याचना करने आता, तब यह पृथ्वीपर कुछ लिखने लगता था। उसे 'हाँ' या 'ना' कुछ भी उत्तर नहीं देता था। इसीलिये यह लेखक नामसे सूचित हुआ है। हमारा यह दूसरा साथी किसी याचक ब्राह्मणको देखते ही भयसे महलकी छतपर चढ़ जाता था, इसीलिये इसका नाम 'रोहक' (चढ़नेवाला) हुआ। इस तीसरे पापीने राजासे बहुतेरे ब्राह्मणोंके विषयमें यह सूचना दी (चुगली खायी) कि ये तो बड़े धनाढ्य हैं। अतः इसकी सूचक नामसे ही प्रसिद्धि हुई। ये चौथे महाशय ब्राह्मणोंद्वारा याचना करनेपर प्रतिदिन भागकर शीघ्रतापूर्वक आगे बढ़ जाते थे, किसीको कुछ भी नहीं देते थे। अतः इन्हें 'शीघ्रग' कहा गया है। मैं ब्राह्मणोंको सदा पर्युषित (बासी) कदन्न देता था और स्वयं मिष्ठान्नोंसे ही पेट भरता था, इसलिये मैं 'पर्युषित' नामसे भूतलपर प्रसिद्ध हुआ।

गौतमने पूछा—संसारमें कोई भी प्राणी बिना भोजनके नहीं रहते; अतः बताओ, तुमलोग क्या आहार करते हो?

प्रेतोंने कहा—द्विजश्रेष्ठ! जहाँ भोजनके समय आपसमें कलह होने लगता है, वहाँ उस अन्नके रसको हम ही खाते हैं। जहाँ मनुष्य बिना लिपी-पुती धरतीपर खाते हैं, जहाँ ब्राह्मण शौचाचारसे भ्रष्ट होते हैं, वहाँ हमको भोजन मिलता है। जो पैर धोये बिना खाता है, जो दक्षिणकी ओर मुँह करके भोजन करता है अथवा जो सिरमें वस्त्र लपेटकर भोजन करता है, उसके उस अन्नको सदा प्रेत ही खाते हैं।* जहाँ रजस्वला स्त्री, चाण्डाल और सूअर श्राद्धके अन्नपर दृष्टि डाल देते हैं, वह अन्न हम प्रेतोंका ही भोजन होता है। जिस घरमें सदा जूठन पड़ा रहे, निरन्तर कलह होता रहे और बलिवैश्वदेव न किया जाता हो, वहाँ हम प्रेतलोग भोजन करते हैं।

ब्राह्मणने पूछा—कैसे घरोंमें तुम्हारा प्रवेश नहीं होता? यह बात मुझे सत्य-सत्य बताओ।

प्रेत बोले—ब्रह्मन्! जिस घरमें बलिवैश्वदेव होनेसे धुएँकी बत्ती उठती दिखायी देती है, उसमें हमारा प्रवेश नहीं होता। जिस घरमें सबेरे चौका लग जाता है तथा वेदमन्त्रोंकी ध्वनि होती रहती है, वहाँकी किसी वस्तुपर हमारा अधिकार नहीं होता।

गौतमने पूछा—किस कर्मके परिणामसे मनुष्य प्रेत भावको प्राप्त होता है?

प्रेत बोले—जो धरोहर हड़प लेते हैं, जूठे मुँह यात्रा करते हैं तथा गौओं और ब्राह्मणोंकी हत्या करनेवाले हैं, वे प्रेतयोनिको प्राप्त होते हैं। जो दूसरोंकी चुगली खानेमें लगे रहते हैं, झूठी गवाही देते और न्यायके पक्षमें नहीं रहते, वे मरनेपर प्रेत होते हैं। जो सूर्यकी ओर मुँह करके थूक, खँखार और मल-मूत्र त्याग करते हैं, वे प्रेतशरीर प्राप्त करके दीर्घकालतक उसीमें स्थित रहते हैं। गौओं, ब्राह्मणों तथा रोगियोंको जब कुछ दिया जाता हो, उस समय जो न देनेकी सलाह देते हैं, वे भी प्रेत ही होते हैं। यदि शूद्रका अन्न पेटमें रहते हुए ब्राह्मणकी मृत्यु हो जाय तो वह अत्यन्त भयंकर प्रेत होता है। विप्रवर! जो अमावास्या तिथिमें मदोन्मत्त होकर हलमें तीन बैलोंको जोतता है, वह मनुष्य प्रेत होता है। जो

* अप्रक्षालितपादस्तु यो भुङ्क्ते दक्षिणामुखः। यो वेष्टितशिरा भुङ्क्ते प्रेता भुञ्जन्ति नित्यशः॥ (स्क० पु०, प्र० ख० २१६। ४१)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

विश्वासघाती, ब्रह्महत्यारा, स्त्री-वध करनेवाला, गोघाती, गुरुघाती और पितृहत्या करनेवाला है, वह मनुष्य भी प्रेत होता है। मरनेपर जिसके लिये सोलह एकोद्दिष्ट नहीं किये गये हैं, उसको भी प्रेतयोनिकी प्राप्ति होती है।

गौतमने पूछा—किस कर्मके परिणामसे मनुष्य प्रेतयोनिमें नहीं पड़ता, वह सब मुझसे कहो।

प्रेतोंने कहा—जो तीर्थयात्रामें तत्पर, देवपूजा-परायण तथा सदा ब्राह्मण-भक्त रहता है, वह प्रेत नहीं होता। जो प्रतिदिन शास्त्र सुनता, नित्य पण्डितोंकी सेवा करता और वृद्ध पुरुषोंसे अपना सन्देह पूछता है, वह प्रेत नहीं होता। जो पवित्र गयातीर्थमें जाकर श्राद्ध करता है, उसके वंशमें कोई प्रेत नहीं होता। इसीलिये हम बड़ी दूरसे यहाँ शीघ्रतापूर्वक आये हैं, परंतु इस पुण्यक्षेत्रमें प्रवेश नहीं कर पाते। इस प्रेतशरीरसे हमारा मन खिन्न हो गया है। अतः महाभाग! आप ही प्रयत्नपूर्वक हमलोगोंके आश्रय होइये।

गौतमने पूछा—तुम्हारा उद्धार किस प्रकार होगा?

प्रेत बोले—प्रभो! आप वैष्णव-क्षेत्रमें जाकर हमारे नाम और गोत्रका उच्चारण करके श्राद्ध कीजिये। इससे हमारी मुक्ति हो जायगी।

यह सुनकर दयार्द्र गौतमने वैष्णव-क्षेत्रमें जाकर उन सबोंके लिये पृथक्-पृथक् श्राद्ध किया। वे जिस-जिसका श्राद्ध करते थे, वह-वह रात्रिको स्वप्नमें आकर दर्शन देता और कहता—'विप्रवर! आपके प्रसादसे मैं प्रेतयोनिसे मुक्त हो गया। आपका कल्याण हो, अब मैं जाता हूँ। मेरे लिये विमान उपस्थित हुआ है।' यों कहकर प्रत्येक प्रेत चल देता था। इस प्रकार उन्होंने चार प्रेतोंका तो उद्धार कर दिया। पाँचवें दिन उन्होंने पर्युषितके लिये विधिपूर्वक श्राद्ध किया। तदनन्तर रातको स्वप्नमें उन्हें पर्युषित दिखायी दिया, जो लंबी-लंबी साँसें खींचता हुआ दीनतापूर्ण वाणीमें बोल रहा था—'विप्रवर! मुझ भाग्यहीन पापीका उद्धार नहीं हुआ। मेरे द्वारा यही सबसे बड़ा पाप हुआ कि मैंने धन बढ़ाया।'

गौतमने पूछा—प्रेत! तुम्हारा उद्धार अब किस प्रकार होगा? अब शीघ्र बताओ।

पर्युषित बोला—ब्रह्मन्! आप मेरा पुनः श्राद्ध कीजिये।

उसके यों कहनेपर गौतमने उसके लिये उत्तरायणमें पुनः श्राद्ध किया। तदनन्तर रातको स्वप्नमें उसने आकर दर्शन दिया और कहा—'विप्रवर! मैं आपके प्रसादसे प्रेत-योनिसे छूट गया। आपका कल्याण हो, मैं जाता हूँ। मुझे देवत्व प्राप्त हुआ है, अतः मुझमें वर देनेकी शक्ति आ गयी है; इसलिये मुझसे कोई शुभ वर ग्रहण कीजिये। क्योंकि ब्रह्महत्यारे, शराबी, चोर तथा व्रतभंग करनेवाले पुरुषोंके लिये साधु पुरुषोंने प्रायश्चित्त बताया है; किंतु कृतघ्नके लिये कोई भी प्रायश्चित्त नहीं बतलाया गया है।'

गौतमने कहा—यदि तुम मुझे वर देनेमें समर्थ हो तो जिस स्थानमें मैंने तुम सब प्रेतोंको देखा है, वहाँ मैं आश्रम बनाकर तपस्या करूँगा। वहाँ जो मनुष्य भक्तिपूर्वक स्नान और देवताओंका तर्पण करके पितरोंके उद्देश्यसे विधिवत् श्राद्ध करे, वह आपके प्रसादसे कभी प्रेत-योनिमें न आये। उसके वंशमें भी कभी कोई प्रेत न हो।

पर्युषित बोला—विप्रवर! तुम वहाँ जाकर आश्रम बनाओ। इससे तुम्हें उत्तम सिद्धि प्राप्त होगी। जो मानव श्रद्धा-भक्तिसे यहाँ श्राद्ध करेंगे, वे पितरोंसहित विमानमें बैठकर स्वर्गको जायँगे। उनमेंसे कोई प्रेत नहीं होगा। स्थिरबुद्धिवाले विद्वानोंने मैत्रीको सात पदवाली बताया है। तुम्हारा यह पवित्र आश्रम सब पापोंका नाशक और समस्त दुःखोंका निवारक होगा। यह स्थान मेरे नामपर प्रेततीर्थ कहलाये।

'एवमस्तु' कहकर गौतमजी चले गये। तदनन्तर वेदोक्त मार्गसे उन्होंने सब कार्य सम्पन्न किया।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth 279 Skandpuran_Section_43_2_Back

नरकेश्वरका माहात्म्य

महादेवजी कहते हैं—पार्वती! इन्द्रेश्वरसे उत्तर दिशामें समस्त पापोंका नाश करनेवाले नरकेश्वरदेव विराजमान हैं। प्राचीन कालकी बात है, भूतलमें विख्यात मथुरा नामकी नगरीमें देवशर्मा नामक एक विद्वान् ब्राह्मण रहता था, जो अगस्त्यगोत्रमें उत्पन्न तथा दरिद्रतासे पीड़ित था। उस नगरमें उसी रूप और अवस्थासे युक्त एक दूसरा भी वेदज्ञ ब्राह्मण था, जो उसी गोत्रमें उत्पन्न हुआ था। नाम भी उसका वही था। किसी समय यमराजने अपने दूतसे कहा—'तुम मथुरापुरीको जाओ और देवशर्माको ले आओ।' दूत गया और नामकी समानतासे उस दारिद्र्य-पीड़ित देवशर्माको ले आया। उसे देखकर यमराजने कहा—'विप्रवर! आप शीघ्र लौट जाइये। दूत नामकी समानतासे तुम्हें ले आया है।' ब्राह्मण बोले—'भगवन्! मैं घर नहीं लौटूँगा। जीवनभरकी दरिद्रतासे वहाँ भी मैं तंग आ गया था। अब जो शेष आयु है, उसे यहाँ आपके समीप ही बिता दूँगा।'

यमराज बोले—ब्रह्मन्! यहाँ कोई असमयमें नहीं आता और समय पूरा होनेपर कोई पृथ्वीपर क्षणभर भी जीवित नहीं रहता। पृथ्वीपर न कोई मेरा मित्र है न शत्रु। यदि उसका समय पूरा नहीं हुआ है तो सैकड़ों बाणोंसे घायल होनेपर भी मनुष्यकी मृत्यु नहीं होती और आयु पूर्ण हो जानेपर कुशाग्रसे बिंधनेपर भी वह जीवित नहीं रहता। अतः द्विजश्रेष्ठ! जबतक तुम्हारा शरीर जला न दिया जाय, तबतक लौट जाओ।

ब्राह्मणने कहा—देव! साधु पुरुषोंका, विशेषतः आपका दर्शन कभी व्यर्थ नहीं जाता। अतः मैं पूछता हूँ कि ये जो अत्यन्त भयंकर नरक दिखायी देते हैं, इनमें किस कर्मसे मनुष्यको जाना पड़ता है? इन नरकोंकी कितनी संख्याएँ हैं?

यमराजने कहा—विप्रवर! मेरे लोकमें बहुत-से नरक हैं। इनमेंसे कुछ प्रधान हैं और कुछ उन्हींकी शाखाएँ हैं। जिनको तुम मेरे सेवकोंद्वारा यन्त्रमें पीड़ित देख रहे हो, ये पापी और कृतघ्न हैं। इन्होंने आसक्त होकर परायी स्त्रियोंपर कुदृष्टि डाली है और जिन्हें तुम कुम्भीपाकमें डाला हुआ देखते हो, ये सब झूठी गवाही देनेवाले और घूसखोर हैं। ये जो लोहेके तपाये हुए खम्भोंका आलिंगन कर रहे हैं, इन दुरात्माओंने परायी स्त्रियोंके साथ रमण किया है। जो दुष्ट गोघाती तथा देवताओं और ब्राह्मणोंके निन्दक रहे हैं, वे ही ये कुठारसे काटे जाते हैं। जिन्हें सियार, भेड़िये और लोहमुख जन्तु खा रहे हैं तथा ये जो भूखसे पीड़ित होकर अपना ही मांस खाते हैं, इन्होंने कभी अन्न-दान नहीं किया है। जो लोग सदा गौओं और ब्राह्मणोंके विनाशके लिये यत्नशील रहे हैं, वे ही ये रक्त, पीब और चर्बी भक्षण कर रहे हैं। इसी प्रकार विविध पापोंका फल भोग करानेके लिये भिन्न-भिन्न नरक हैं। जो प्रभासक्षेत्रमें जाकर नरकेश्वर शिवका दर्शन करता है, उसे कभी नरक नहीं देखना पड़ता। नरकेश्वरकी स्थापना स्वयं मैंने ही की है।

यह सुनकर वह ब्राह्मण अपने घरको लौट गया और धर्मराजके वचनका स्मरण करके प्रभासक्षेत्रमें जा जीवनभर नरकेश्वरकी आराधनामें संलग्न हो उत्तम सिद्धिको प्राप्त हुआ। इसलिये सर्वथा प्रयत्न करके भक्तिपूर्वक नरकेश्वरका दर्शन करना चाहिये। अतिपातकोंसे युक्त मनुष्य भी उनके दर्शनसे नरकमें नहीं पड़ता। आश्विनकृष्णा चतुर्दशीको जो वहाँ विधिपूर्वक श्राद्ध करता है, वह अश्वमेध यज्ञका फल पाता है।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

संवर्तेश्वर, बलभद्रेश्वर, दशाश्वमेधिक तीर्थ, शतमेधादि लिंग तथा दुर्वासादित्यका माहात्म्य

महादेवजी कहते हैं—पार्वती! इन्द्रेश्वरसे पश्चिम और अर्कस्थलसे पूर्व संवर्तेश्वर लिंग है। पुष्करिणीके जलमें स्नान करके उनका दर्शन करनेसे मनुष्य दस अश्वमेध यज्ञोंका फल पाता है। उसके पूर्वभागमें और पापमोचन तीर्थसे नैर्ऋत्यकोणमें मेघेश्वर नामसे विख्यात शिवलिंग है, जो सब पातकोंका नाश करनेवाला है। अनावृष्टिका भय होनेपर वहीं वारुणी शान्ति करानी चाहिये तथा वहाँकी पृथ्वीको जलमें डुबाये। जहाँ प्रतिदिन मेघोंद्वारा स्थापित मेघेश्वर लिंगका पूजन होता है, वहाँ अनावृष्टिका भय नहीं होता।

गात्रोत्सर्ग तीर्थसे उत्तर बलभद्रजीके द्वारा स्थापित महापापहारी शिवलिंग है। जो मानव तृतीया और रेवती नक्षत्रके योगमें भक्तिभावसे चन्दन, पुष्प आदि उपचारोंद्वारा बलभद्रेश्वर लिंगका पूजन करता है, वह योगीश्वरका पद पाता है।

प्राचीन कालमें राजा भरतने पुण्यमय प्रभासक्षेत्रमें आकर परम उत्तम दस अश्वमेध-यज्ञोंका अनुष्ठान किया था। उसमें सोमपान करके सहस्र नेत्रोंवाले इन्द्र पूर्ण तृप्त हुए थे। अन्न और पानसे दीनजन तथा दक्षिणासे ब्राह्मणलोग तृप्त हुए थे। तदनन्तर सब देवता प्रसन्न होकर राजा भरतसे बोले—'महाबाहो! तुम कोई मनोवांछित वर माँगो।'

राजा बोले—जो मनुष्य यहाँ आकर भक्तिपूर्वक स्नान करे, उसे दस अश्वमेध यज्ञोंका फल प्राप्त हो।

देवताओंने कहा—राजन्! भूतलपर यह स्थान दशाश्वमेधिक नामसे विख्यात होगा।

महादेवजी कहते हैं—पार्वती! तबसे सब पापोंका नाश करनेवाला वह तीर्थ पृथ्वीपर दशाश्वमेधिक नामसे विख्यात हुआ। ऐन्द्रवारुण स्थानसे लेकर गोमुखतक और गोमुखसे आश्वमेधिक तीर्थतक विद्वानोंने शिवक्षेत्र बताया है। वहाँ मृत्युको प्राप्त होनेपर मनुष्य शिवलोकमें आनन्दित होता है।

वहीं शतमेध, सहस्रमेध और कोटिमेध नामके क्रमशः तीन लिंग हैं। दक्षिण दिशामें शतमेध लिंग है, जो सौ यज्ञोंका फल देनेवाला है। प्राचीन कालमें कार्तवीर्यने वहीं शिवलिंगकी स्थापना करके सौ यज्ञोंका अनुष्ठान किया था। मध्यमें जो कोटिमेध लिंग है, वहाँ साक्षात् ब्रह्माजीने ही महालिंगकी स्थापना करके एक करोड़ यज्ञ किये थे। उसके उत्तर भागमें सहस्रमेध लिंग है, जिसकी स्थापना करके देवराज इन्द्रने सहस्र यज्ञोंका अनुष्ठान किया था। जो पंचामृत रस, जल, गन्ध और पुष्प आदिद्वारा विधिसे उस लिंगत्रयकी पूजा करता है, वह उन तीनों शिवलिंगोंके नामवाले यज्ञोंका फल पाता है।

वहीं दुर्वासादित्यका स्थान है, जहाँ मुनिवर दुर्वासाने हजार वर्षोंतक तप किया और निराहार रहकर सूर्यनारायणकी आराधना की थी। तब भगवान् सूर्यने उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन देकर कहा—'सुव्रत! वर माँगो।' दुर्वासाजी बोले—'भगवन्! यहाँ मेरे द्वारा आपकी जो सुन्दर प्रतिमा स्थापित की गयी है, उसमें आप तबतक निवास करें, जबतक यह पृथ्वी स्थिर है। आपकी पुत्री यमुनाजी भी यहाँ रहें और आपके महाबली पुत्र धर्मराजजी भी यहाँ निवास करें।'

सूर्यदेवने कहा—महामुने! तुमने जो कुछ माँगा है, वह तो होगा ही; उसके सिवा गंगा आदि कोटि तीर्थोंका और भी यहाँ निवास होगा। देवताओंसहित मैं सदा यहाँ स्थित रहूँगा। दुर्वासादित्यका दर्शन करनेसे यहाँ सब प्राणी कोटि यज्ञोंका फल पायेंगे।

यों कहकर भगवान् सूर्यने अपनी कन्या और पुत्रका स्मरण किया। यमुनाजी पाताल फोड़कर

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

वहाँ प्रकट हुईं तथा कालदण्डधारी यमराज भी भगवान् सूर्यके निकट उपस्थित हुए।

सूर्यदेव बोले—धर्म! तुम और यमुना कोटि तीर्थोंके साथ यहाँ निवास करो। तुम्हें यहाँ रहकर पापी प्राणियोंकी भी यत्नपूर्वक रक्षा करनी चाहिये।

यों कहकर श्रीसूर्यदेव अन्तर्धान हो गये। दुर्वासाजीने अपने आश्रमकी ओर दृष्टिपात किया तो देखा, वहाँ पातालसे यमुना प्रकट हो गयीं और उस क्षेत्रमें साक्षात् यमराज भी स्वरूप धारण करके दृष्टिगोचर हुए। आदित्यसे दक्षिण और दुन्दुभिसे पूर्वभागमें यमुनाकुण्ड है। दुन्दुभि वहाँके क्षेत्रपाल हैं, जिनका शब्द दुन्दुभि-ध्वनिके समान होता है। वैशाखमासमें उस कुण्डमें स्नान करके मनुष्य भक्तिभावसे दुर्वासादित्यकी पूजा करे। जो उस महाकुण्डमें स्नान करके पितरोंका तर्पण करता है, उसके पितर दस वर्षतक तृप्त रहते हैं। वहाँ पिण्ड देनेसे पितरोंकी एक सौ आठ पीढ़ियाँ पुष्ट होती हैं, साथ ही नरकमें गिरे हुए पितरोंका तत्काल उद्धार हो जाता है। माघमासके शुक्लपक्षमें सप्तमी तिथिको जो मानव अपने मनको संयममें रखते हुए दुर्वासादित्यकी पूजा करता है, वह ब्रह्महत्यासे छूट जाता है। जो वहाँ दुर्वासादित्यके समीप सहस्र नामोंका पाठ करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। दुर्वासादित्यका दर्शन सब बालकोंपर लगे हुए ग्रहों और राक्षसोंका निवारण तथा महान् पापपुंजोंका शमन करनेवाला है। जो वहाँ क्षेत्रपाल दुन्दुभिका पूजन करता है, वह पशु-सम्पत्ति, पुत्र, बुद्धि तथा लक्ष्मीसे सम्पन्न होता है। सूर्यदेवका वह क्षेत्र एक कोसतक फैला हुआ है। जो सूर्यदेवके प्रति भक्तिभावसे रहित है, उसे उस क्षेत्रमें नहीं प्रवेश करना चाहिये।

नागरादित्य, पिंगा नदी, संगमेश्वर तथा गंगेश्वरकी महिमा

महादेवजी कहते हैं—समस्त यादवोंका संहार हो जानेपर केवल वज्र शेष रह गये थे। वे अपनी आयुके शेष भागमें अपने पुत्र महद्बलक यादवोंके राज्यपर अभिषिक्त करके प्रभासक्षेत्रमें आये। यहाँ उन्होंने एक शिवलिंग स्थापित किया, जो व्रजेश्वर नामसे प्रसिद्ध हुआ। राजा वज्रने नारदजीके उपदेशसे दीर्घकालतक पापनाशक प्रभासक्षेत्रमें तपस्या की और परम सिद्धिको प्राप्त किया। जो मनुष्य जाम्बवतीके जलमें स्नान करके व्रजेश्वरकी पूजा करता और वहाँ यादवस्थलके समीप ब्राह्मणोंको भोजन कराता है, वह सहस्र गोदानोंका फल पाता है।

हिरण्याके समीप नागरादित्यका स्थान है। नागरादित्य सब पापोंका नाश करनेवाले हैं। द्वारकामें निघ्नके पुत्र सत्राजित् हो गये हैं। उन्होंने यहाँ भगवान् सूर्यकी आराधना की और भगवान्ने संतुष्ट होकर उन्हें स्यमन्तकमणि प्रदान की, जो प्रतिदिन आठ भार सोना देती थी। उसे देकर भगवान् भानुने पुनः सत्राजित्को वर माँगनेके लिये प्रेरित किया। तब सत्राजित्ने कहा—'प्रभो! आप इस पुण्य आश्रममें सदा निवास करें।' 'एवमस्तु' कहकर सूर्यदेव अन्तर्धान हो गये। सत्राजित्ने वहाँ सूर्यदेवकी दिव्य प्रतिमा स्थापित की और प्रभास नगरके ब्राह्मणोंको वृत्ति देकर उन्हें सेवा-पूजाका भार समर्पित किया। अतः नागर ब्राह्मणोंके नामपर ही उसका नाम नागरादित्य हुआ। जो हिरण्या नदीके जलमें स्नान करके नागरादित्यका पूजन करता है, वह सूर्यलोकमें पूजित होता है। जब शुक्लपक्षकी सप्तमीको सूर्यकी संक्रान्ति हो, तब उसे महाजया सप्तमी कहते हैं। उसमें किये हुए स्नान, दान, जप, होम तथा देवताओं और पितरोंका पूजन—ये सभी कोटिगुना फल देनेवाले होते हैं। जो उस समय नागरादित्यके समीप एक ब्राह्मणको भोजन

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

कराता है, उसे एक करोड़ ब्राह्मण-भोजन करानेका फल होता है। विकर्तन, विवस्वान्, मार्तण्ड, भास्कर, रवि, लोकप्रकाशक, श्रीमान्, लोकचक्षु, ग्रहेश्वर, लोकसाक्षी, त्रिलोकेश, कर्ता, हर्ता, तमिस्रहा (अन्धकार-नाशक), तपन, तापन, शुचि, सप्ताश्ववाहन, गभस्तिहस्त (किरणरूप हाथवाले), ब्रह्मा तथा सर्वदेवनमस्कृत—यह इक्कीस नामोंवाला नागरादित्यका स्तोत्र है। इसे स्तवराज कहते हैं। यह शरीरको आरोग्य तथा पुष्टि प्रदान करनेवाला है। महादेवि! जो दोनों सन्ध्याओंके समय इस स्तोत्रसे नागरादित्यकी स्तुति करता है, वह मनोवांछित फल पाता है।

ऋषितीर्थसे पश्चिम पातकोंका नाश करनेवाली पिंगा नदी है, जो समुद्रमें मिली है। उसके जलका स्पर्श करनेसे मनुष्य रूपवान् होता है। एक समय दक्षिण भारतके रहनेवाले कुछ महर्षि सोमनाथजीका दर्शन करनेकी इच्छासे प्रभासक्षेत्रमें आये और एक नदीके किनारे ठहर गये। वे काले रंगके और कुरूप थे, किंतु वहाँ स्नान आदि करनेसे कामदेवके समान रूपवान् हो गये। तब उन सबने आश्चर्यचकित होकर कहा—'इसमें स्नान करके हम सब लोग पिंगल (गौरवर्ण) को प्राप्त हुए हैं, इसलिये आजसे इसका नाम पिंगा होगा। जो लोग भक्तिपूर्वक इसमें स्नान करेंगे, उनके वंशमें कोई कुरूप न होगा। पिंगाके दर्शनसे मनुष्यको पितृमेध यज्ञका फल प्राप्त होगा। यहाँ स्नान करनेसे दूना और तर्पणसे चौगुना पुण्य होगा। जो यहाँ श्राद्ध करेगा, उसे असंख्य फलकी प्राप्ति होगी।'

पूर्वकालमें उद्दालक नामके एक महातपस्वी महर्षि प्रभासक्षेत्रमें रहते थे। उन्होंने सरस्वती-पिंगा-संगमके समीपकी भूमिपर बड़ी भारी तपस्या की। उनकी भक्तिके प्रभावसे उनके आगे ही एक शिवलिंग प्रकट हुआ और आकाशवाणी हुई—'महाबाहु उद्दालक! मेरी बात सुनो, आजसे इस शिवलिंगमें मेरा नित्य निवास होगा। यह संगमपर प्रकट हुआ है, इसलिये इसका नाम संगमेश्वर होगा। इस लोकप्रसिद्ध संगममें स्नान करके जो मनुष्य संगमेश्वरका दर्शन करेगा, वह उत्तम गतिको प्राप्त होगा।'

इस आकाशवाणीको सुनकर महर्षि उद्दालक दिन-रात आलस्य छोड़कर संगमेश्वरकी आराधना करने लगे। तदनन्तर देहत्यागके पश्चात् वे मेरे महेश्वरधामको चले गये।

संगमेश्वरसे पश्चिम त्रिभुवनविख्यात गंगेश्वर लिंग है। भगवान् श्रीकृष्णने परम धाम पधारते समय स्नान करनेके लिये वहाँ गंगाजीका आवाहन किया। गंगाने शिवभक्तिपरायण होकर वहाँ शिवलिंग स्थापित किया। गंगेश्वरका दर्शन करनेसे गंगास्नानका फल होता है।

नन्दादित्य, पर्णादित्य, गंगेश्वर, सूर्यप्राची, त्रिलोचनलिंग, देविका, उमापतीश्वर, भूधरवराह तथा मूलस्थानगत सूर्यकी महिमा, वाल्मीकिजीकी पूर्वकथा

महादेवजी कहते हैं—तदनन्तर एकाग्रचित्त होकर नन्दादित्यका दर्शन करनेके लिये जाय। पूर्वकालमें नन्द नामसे प्रसिद्ध एक राजा हो चुके हैं, जो सब लोगोंको सुख देनेवाले थे। उन धर्मज्ञ नरेशके शासनकालमें दुर्भिक्ष, रोग, व्याधि, अकालमृत्यु तथा अनावृष्टिका भय किसीको नहीं था। कुछ कालके अनन्तर पूर्वकर्मोंके फलसे राजाका शरीर बड़े भारी कुष्ठरोगसे व्याप्त हो गया। इससे उन्हें बड़ा वैराग्य हुआ और उन्होंने प्रभासमें नदीके तटपर देवाधिदेव भगवान् सूर्यकी स्थापना की। इससे वे रोगसे मुक्त हो गये। वहाँ स्नान और श्राद्ध-तर्पण करके नन्दादित्यका दर्शन

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

करनेवाला मनुष्य फिर मर्त्यलोकमें जन्म नहीं लेता—मुक्त हो जाता है।

पार्वती! प्राची सरस्वतीके तटपर भगवान् पर्णादित्यका स्थान है। प्राचीन कालके त्रेतायुगकी बात है, पर्णाद नामके एक ब्राह्मणने प्रभासक्षेत्रमें आकर बड़ी कठोर तपस्या की। उन्होंने अत्यन्त भक्तिभावसे भगवान् सूर्यका आराधन तथा वेदोक्त स्तुतियोंद्वारा स्तवन किया। तदनन्तर दीर्घकालके पश्चात् प्रसन्न होकर भगवान् सूर्यने कहा—'सुव्रत! मैं इस तपस्यासे बहुत प्रसन्न हूँ। तुम कोई मनोवांछित वर माँगो।'

ब्राह्मणने कहा—भगवन्! आप प्रसन्न हो गये, यही मेरे लिये सबसे बड़ा वर और अभीष्ट मनोरथ है। देवेश्वर! आपका दर्शन तो स्वप्नमें भी दुर्लभ है; तथापि यदि मुझे वर देना ही है तो मैं प्रार्थना करता हूँ कि आप सदा इस स्थानपर निवास करें।

'एवमस्तु' कहकर भगवान् सूर्य अन्तर्धान हो गये। पर्णादके द्वारा स्थापित होनेके कारण वे पर्णादित्य कहलाये। पर्णाद जीवनभर उनकी आराधनामें लगे रहे। अन्तमें उन्हें सूर्यलोककी प्राप्ति हुई। जो भाद्रपदमासकी षष्ठीको वहाँ स्नान और पर्णादित्यका दर्शन करता है, वह कभी कोई कष्ट नहीं पाता।

गंगापथ नामक स्थानमें महान् स्रोतवाली गंगाजी और गंगेश्वर शिव हैं। जो वहाँ स्नान करके गंगेश्वरकी पूजा करता है, वह भयंकर पातकोंसे मुक्त हो जाता है। जो मनुष्य वैशाखकी पूर्णिमाको सरस्वती नदीमें स्नान करके वहीं चमसोद्भेद तीर्थमें पिण्डदान देता है, उसे गयासे कोटिगुना पुण्य प्राप्त होता है।

तदनन्तर सब पापोंका नाश करनेवाली तथा सम्पूर्ण कामनाओंको देनेवाली सूर्यप्राचीकी यात्रा करे। वहाँ स्नान करके मनुष्य पाँच महापातकोंसे मुक्त हो जाता है।

ऋषितीर्थके समीप न्यंकुमती नदीके उत्तर तटपर ऋषियोंद्वारा पूजित त्रिलोचन लिंग है, जो सब पापोंका नाश करनेवाला है। जो भाद्रपद कृष्ण चतुर्दशीको वहाँ उपवास, रातमें जागरण तथा प्रातःकाल श्राद्ध एवं विधिवत् शिवकी पूजा करता है, वह शिवलोकमें निवास करता है।

ऋषितीर्थके समीप देविका नामक उत्तम क्षेत्र है, जो इच्छानुसार फल देनेवाला है। वहीं ऋषियों और सिद्धोंसे घिरा हुआ महासिद्ध वन है, जो भाँति-भाँतिके वृक्षों और लताओंसे व्याप्त तथा पर्वतोंसे सुशोभित है।

देविकाके उत्तर तटपर मैं उमापतीश्वर नामसे निवास करता हूँ। वह क्षेत्र मुझे बहुत प्रिय है। पार्वती! वहाँ मेरा विग्रह उमा नामके तुम्हारे विग्रहसे संयुक्त है; इसलिये उमापति नामसे मेरी प्रसिद्धि हुई है। जो पौषमासकी अमावास्याको वहाँ श्राद्ध करता है, उसका वह श्राद्ध अक्षय होता है। बुद्धिमान् मनुष्य वहाँ गौ, भूमि, सुवर्ण तथा वस्त्रका दान करे। सब देवताओंने उस श्रेष्ठ नदीका आवाहन किया है, इस कारण वह पापनाशिनी देविका कही गयी है।

वहीं भगवान् भूधर (वाराह)-का दर्शन करना चाहिये। चारों वेद ही उनके चारों पैर हैं। यूप उनकी दाढ़ हैं। क्रतु उनके दाँत हैं। स्रुवा मुख है। अग्नि जिह्वा है। कुश रोम हैं। ब्रह्म मस्तक हैं। दिन और रात उनके नेत्र हैं। वेदांग कानोंके आभूषण हैं। इस प्रकार यज्ञमय वाराह भगवान् उस स्थानपर स्थित हैं। आश्विनमासकी अमावास्या तथा एकादशीको जब सूर्य कन्याराशिपर स्थित हों, गुड़युक्त पायस एवं गुड़युक्त हविष्य लेकर **'नमो वः पितरो रसाय'** इत्यादि मन्त्रसे उसको तथा अन्य भोजन-सामग्रीको अभिमन्त्रित करे। **'तेजोऽसि शुक्रम्'** इत्यादि मन्त्रसे घी और **'दधिक्राव्णो'** इत्यादि मन्त्रसे दही अभिमन्त्रित करे। **'आप्यायस्व'** इत्यादि मन्त्रके द्वारा दूध अभिमन्त्रित करके जितने व्यंजन और भक्ष्य-भोज्य पदार्थ हैं, उन सबको **'महान् इन्द्रेण'** इत्यादि मन्त्रके द्वारा अर्पण करे। **'संवत्सर'** इत्यादि मन्त्रके द्वारा जल अर्पण करे। इस प्रकार ब्राह्मण-भोजन कराकर वहाँ पिण्डदान देना चाहिये।

प्राचीन कालमें शमीमुख नामक एक ब्राह्मण

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

था। उसके विशाख नामका एक पुत्र हुआ, जो बड़े भयंकर कर्म करनेवाला था। उसने एकमात्र माता-पिताकी सेवाको छोड़कर और कोई सत्कर्म कभी नहीं किया था। तदनन्तर दीर्घकालके पश्चात् उसके माता-पिता बहुत वृद्ध हो गये और मृत्युके निकट पहुँचे। वे रोग आदिसे अत्यन्त व्याकुल थे। विशाख प्रतिदिन जंगलमें जाता और अपनी शक्तिका प्रयोग करके दूसरोंका धन लूट लाता। उसी धनसे वह अपने माता-पिता और पत्नीका पोषण करता था। एक समय उसी मार्गसे तीर्थयात्रापरायण सप्तर्षि जा रहे थे। उन्हें देखकर विशाखने डंडा उठाया और कठोर वचनोंद्वारा उन्हें घुड़कते हुए कहा—'ठहरो, ठहरो।' वे मुनि परम शान्त थे। ढेला, पत्थर और स्वर्णको समान समझते थे। शत्रु तथा मित्रके प्रति भी उनके मनमें समान भाव था और राग-द्वेषसे वे सर्वथा शून्य थे। उन्होंने आपसमें कहा—'हमलोगोंके साथ जो इसका दर्शन और सम्भाषण हुआ है, वह व्यर्थ न जाय—इसलिये इससे वार्तालाप करना चाहिये।'

ऐसा निश्चय करके अंगिराने कहा—तस्कर! थोड़ी देरतक सावधान होकर मेरी बात सुनो। मैं तुम्हारे हितके लिये ही सच्ची बात कह रहा हूँ। पहले यह बताओ कि तुम्हारे घरमें किस गोत्रके कौन-कौन लोग रहते हैं?

तस्कर बोला—मुने! मेरे घरमें बूढ़े माता-पिता और मेरी सन्तानहीन पत्नी है और एक मैं हूँ। पाँचवाँ कोई नहीं है।

अंगिराने कहा—तुम पापसे जो धन कमाते हो, उससे उन सबकी पुष्टि हो रही है। अतः घर जाकर उन सबसे पूछो कि 'मैं पाप करता हूँ और सब लोग उस पापकी कमाई खाते हैं; अतः वह पाप किसको लगेगा? और मेरा पाप कैसे शीघ्र छूटेगा?'

मुनिके यों कहनेपर विशाख तुरंत अपने घर चला गया और मुनिकी कही हुई बातें अपने माता-पितासे उसने पूछीं। उसकी बात सुनकर माता-पिता बोले—'बेटा! एक मनुष्य पाप करता है और उस पापकी कमाईको बहुत-से लोग भोगते हैं। भोगनेवाले तो छूट जाते हैं और कर्ता उस पापदोषसे लिप्त होता है। जो मन्दबुद्धि मानव कुटुम्बके लिये अशुभ कर्म करता है, उस पापीको निश्चय ही अपना आत्मा प्रिय नहीं है।'

माता-पिताकी बात सुनकर उसे मन-ही-मन कुछ भय हुआ और उसने निकट जाकर पिता-मातासे कहा—'मैं आपलोगोंके लिये ही पाप करता हूँ, अतः आप उसके किसी अंशका भोग करेंगे या नहीं?'

पिता-माता बोले—बेटा! जब हम पहली अवस्थामें थे, तब तुम हमारे द्वारा पालन करने योग्य थे और अब इस वृद्धावस्थामें तुमको ही हमारा पालन करना चाहिये। ब्रह्माजीने यही पिता-पुत्रका पारस्परिक धर्म बतलाया है। हमने तुम्हारे लिये जो शुभाशुभ कर्म किया है, उसको हम भोगेंगे और अब तुम जो शुभ या अशुभ कर्म करते हो, उसका भोग तुम्हींको करना पड़ेगा। अतः विद्वान् पुरुषको सदा शुभ कर्म ही करने चाहिये। चोरी, खेती, व्याज, व्यापार अथवा नौकरी—कुछ भी करके तुम हमें प्रतिदिन भोजन देते हो। उसका दोष हमको नहीं लगता।

माता-पिताकी बात सुनकर विशाखने पत्नीसे भी वही बात पूछी। उसने भी वही उत्तर दिया, जो माता-पिताने दिया था। इससे विशाखको बड़ा वैराग्य प्राप्त हुआ। वह बार-बार अपनी निन्दा करता हुआ बहुत दुःखी हुआ और बोला—'मुझ पापकर्मपरायण दुष्कर्मीको धिक्कार है। जो विवेकसे शून्य और सत्संगसे रहित है, जो विद्वान् पुरुषोंकी सेवा नहीं करता, वही पाप करता है। उस पापीको अपना आत्मा प्रिय नहीं है।'

इस प्रकार सोच-विचार करता हुआ वह ऋषिके समीप आया और मधुर वाणीमें आदरपूर्वक कहा—'मुने! अब आप पधारिये। यह अपना कुशासन और कमण्डलु लीजिये। ये हैं आपके वल्कल, चीर और मृगचर्म। ये सब लेकर मेरा अपराध क्षमा कीजिये। मैं दीन हूँ, कृपण हूँ तथा सत्संगसे वंचित एवं मूर्ख हूँ। मुझे क्षमा कीजिये।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

आजसे मैं इस साधुनिन्दित, क्रूर एवं भयंकर कर्मसे निवृत्त हो गया। अब मुझे इस पापकर्मका कोई प्रायश्चित्त बताइये, जिससे आपकी कृपासे मैं पापसे मुक्त होऊँ।'

ऋषियोंने कहा—वत्स! तुमने बहुत अच्छी बात पूछी है। एकाग्रचित्त होकर सुनो। मैं तुम्हें गोपनीय बात बतलाऊँगा, उसे किसीके सामने कहना नहीं चाहिये। उसके जपसे तुम अवश्य पापमुक्त हो जाओगे। यह चार अक्षरवाला मन्त्र तुम उच्च स्वरसे जपते रहो, यह मनुष्योंके सब पापोंको हरनेवाला तथा स्वर्ग और मोक्ष देनेवाला है।

उनके यों कहनेपर विशाख प्रतिदिन उस मन्त्रका जप करने लगा और वे मुनि वहाँसे चले गये। विशाख गुरुभक्त था। देविकाके उत्तम तटपर उस मन्त्रका जप करते हुए उसे समाधि लग गयी। उसकी भूख-प्यास नष्ट हो गयी और शरीर शुद्ध हो गया। मन्त्र, तीर्थ, द्विज, देवता, दैवज्ञ, दवा और गुरु—इनमें जैसी जिसकी भावना होती है, उसको वैसी सिद्धि प्राप्त होती है। यह जीवात्मा स्वभावसे ही निर्मल परमात्माका स्वरूप है, उपाधिके संगसे विकारको प्राप्त होता है—जैसे स्फटिकमणि स्वरूपतः स्वच्छ है किंतु उपाधिवश उसमें भी भिन्न रंगोंकी प्रतीति होती है—जिस प्रकार भ्रमरी स्वयं तो वन्ध्या होती है, परंतु कहींसे छोटा-सा जीव-जन्तु पाकर उसे अपने स्थानपर ले आती है और ध्यानमग्न होकर अपने शिशुरूपसे उसका चिन्तन करती है, जिसके कारण उसीका ध्यान करके बढ़नेवाला वह जीव भी वैसा ही हो जाता है। यद्यपि वह जीव दूसरी योनिमें उत्पन्न हुआ रहता है, तथापि भ्रमरीके चिन्तनसे भ्रमररूप हो जाता है। यही सत्पुरुषोंके लिये दृष्टान्त है। जो गुरुसे उपदेश पाकर उसमें संदेह करता है, वह सिद्धिको नहीं पाता, जैसे भाग्यहीन पुरुषको निधि नहीं मिलती।

इस प्रकार मन्त्रजपमें संलग्न हो अमरत्वको प्राप्त हुए विशाख मुनिके सहस्रों वर्ष बीत गये। कुछ कालके पश्चात् वे बाँबीकी मिट्टीसे घिर गये। उन्हें इस बातका कुछ भी पता नहीं था। तदनन्तर दीर्घकालके पश्चात् वे सप्तर्षि फिरसे उधर आ निकले और उस स्थानको देखकर एक-दूसरेसे कहने लगे—'यहीं वह भयानक आकारवाला तस्कर विशाख हमें मिला था, जिसने यहाँ आते ही हमारा सब कुछ लूट लिया था।' इस प्रकार वार्तालाप करते हुए महर्षियोंने बाँबीके भीतरसे आती हुई मन्त्रोच्चारणकी उत्तम ध्वनि सुनी। तब कौतूहलवश उन्होंने खनतीसे उस पर्वताकार वल्मीकको खोदा। उसके भीतर उसी चतुरक्षर मन्त्रका जप करता हुआ विशाख उन्हें दिखायी दिया। उसे समाधिमें स्थित जान योगसम्मत ओषधियोंको लेकर उन्होंने उसके सुप्त शरीरमें मर्दन किया। तब वह सजग होकर बोला—'महर्षियो! अपना-अपना धन ले लीजिये, मुझ पापीने अज्ञानवश इसे छीन लिया था। अब आप यह सब लेकर तीर्थयात्राको जाइये, मैंने आपको मुक्त कर दिया। मेरे माता-पिता और पत्नीसे जाकर कह दीजिये कि विशाख सब प्रकारकी आसक्तियोंसे रहित हो गया। अब वह पहलेकी तरह आपलोगोंसे मिलना नहीं चाहता।'

सप्तर्षि बोले—मुने! तुम्हें यहाँ रहते हुए बहुत वर्ष बीत गये। तुम्हारे माता-पिता, पत्नी तथा अन्य जो कुटुम्बी लोग थे, उन सबकी मृत्यु हो चुकी है। हमलोग दीर्घकालके पश्चात् इस स्थानपर आये हैं। अब तुम इस मन्त्र-जपके प्रभावसे सिद्ध हो गये हो। तुम एकाग्रतापूर्वक मन्त्रका चिन्तन करते हुए वल्मीकमें स्थित रहे हो। अतः इस भूतलपर 'वाल्मीकि' नामसे प्रसिद्ध होओगे। तुम्हारी जिह्वाके अग्रभागपर सरस्वती देवी स्वच्छन्द निवास करेंगी और तुम रामायण काव्यका निर्माण करके मोक्ष प्राप्त करोगे।

विशाख बोला—विप्रवरो! आप प्रसन्न होकर गुरु दक्षिणा स्वीकार करें, जिससे मैं उऋण होकर महान् तपमें संलग्न होऊँ।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

ऋषि बोले—ब्रह्मन्! तुम सिद्ध हो गये। यही हमारे लिये गुरुदक्षिणा है। तुम पुनः कोई मनोवांछित वर माँग लो।

वाल्मीकिजी बोले—यदि आपलोग मेरे ऊपर प्रसन्न हैं और मुझे वर देना चाहते हैं तो बताइये, यहाँ देविका नदीके सुरम्य तटपर कौन-से देवता स्थित हैं, जो समस्त कामनाओं और फलोंके देनेवाले हैं?

ऋषि बोले—ब्रह्मन्! यह सामने जो अनेक शाखाओंके साथ फैला हुआ वृक्ष है, इसकी ओर देखो। इसके मूलस्थानमें ब्रह्माजीके अंशसे उत्पन्न भगवान् सूर्य स्थित हैं। कल्पके प्रारम्भकालसे ही उनकी यहाँ स्थिति है। वे ही इस क्षेत्रके देवता हैं, उनकी आराधना करो। यहाँ दो कोसतकका स्थान सूर्यक्षेत्र कहा गया है। यहाँ रहनेवालोंको निश्चय ही स्वर्गलोककी प्राप्ति होती है।

उनकी बात सुनकर वाल्मीकिने भगवान् सूर्यकी आराधना की। इससे सन्तुष्ट होकर भगवान् सूर्यने कहा—'वर माँगो।'

वाल्मीकि बोले—देवेश्वर! आजसे आप यहाँ सदैव निवास करें।

सूर्यने कहा—विप्रवर! मूलस्थानमें निवास करनेवाला मैं आज तुमपर सन्तुष्ट हुआ हूँ, अतः यह क्षेत्र अब मूलस्थानके नामसे ही विख्यात होगा। जो लोग उत्तरायणमें यहाँ भक्तिपूर्वक स्नान करेंगे, वे स्वर्गलोकमें जायँगे। विप्रवर! तिलमिश्रित जलसे यहाँ तर्पण करनेपर पितरोंको गयाश्राद्धके समान सन्तोष प्राप्त होगा। जो मानव भक्तिपूर्वक साग, मूल, फल, खली अथवा गुड़से यहाँ श्राद्ध करेंगे, वे परम मोक्षको प्राप्त होवेंगे। कीट, पतंग, पशु, पक्षी तथा मृग भी प्याससे पीड़ित हो यहाँके जलका स्पर्श करने मात्रसे परम गतिको प्राप्त होंगे। श्रावणमासकी पूर्णिमाको तुम्हारे स्नेहवश मैं यहाँ विशेषरूपसे निवास करूँगा। उस दिन जो यहाँके जलसे पितरोंका तर्पण करेगा, उसकी अठारह प्रकारकी कोढ़ तत्काल नष्ट हो जायगी। कपाल, औदुम्बर, मण्डल, विचर्चिका, ऋक्षजिह्व, कच्छु, किटिभ, सिध्म, अलस, विपादिका, दद्रु, शतारु, विस्फोटक, पुण्डरीक, काकण, पामा, चर्मदल और चर्म—ये अठारह प्रकारके कुष्ठ अवश्य दूर हो जायँगे, इसमें सन्देह नहीं है।

यों कहकर सूर्यदेव अन्तर्धान हो गये। वाल्मीकि मुनिने सूर्यदेवकी आराधना तथा रामायणकाव्यका निर्माण किया। अतः उस तीर्थमें सब यज्ञोंका फल देनेवाले सूर्यदेवका अवश्य दर्शन तथा इस सर्वपातकनाशिनी कथाका श्रवण करना चाहिये।

भगवान् सूर्यके अष्टोत्तरशतनामोंकी महिमा

महादेवजी कहते हैं—पार्वती! हिरण्याके पूर्वभागमें महर्षि च्यवनके द्वारा स्थापित परम उत्तम च्यवनादित्यका उत्तम स्थान है। मनुष्योंद्वारा विधिपूर्वक पूजित होनेपर वे समस्त अभीष्ट फलोंको देनेवाले हैं। जो मानव सप्तमी तिथिके दिन एक सौ आठ नामोंद्वारा श्रद्धापूर्वक उनकी स्तुति करता है, वह मनोवांछित फलको पाता है।

पूर्वकालमें महर्षि धौम्यने महात्मा युधिष्ठिरसे सूर्यदेवके जिन एक सौ आठ नामोंका वर्णन किया, उन्हें सुनो—सूर्य, अर्यमा, भग, त्वष्टा, पूषा, अर्क, सविता, रवि, गभस्तिमान्, अज, काल, मृत्यु, धाता, प्रभाकर, पृथ्वी, बल-तेज-आकाश-वायु-परायण, सोम, बृहस्पति, शुक्र, बुध, अंगारक, मंगल, इन्द्र, विवस्वान्, दीप्तांशु, शुचि, सौर्य, शनैश्वर, ब्रह्मा, रुद्र, विष्णु, स्कन्द, वैश्रवण, यम, वैद्युत, जाठराग्नि, ऐन्धन, तेजःपति, धर्मध्वज, वेदकर्ता, वेदांग, वेदवाहन, कृत

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

(सत्ययुग), त्रेता, द्वापर, कलि, सर्वामराश्रय (अथवा संवत्सरात्मक), कला-काष्ठा-मुहूर्त-पक्ष-मास-अहः-निशा-संवत्सरकर, स्वच्छ, कालचक्र, विभावसु, पुरुष, शाश्वत, योगी, व्यक्त, अव्यक्त, सनातन, लोकाध्यक्ष, प्रजाध्यक्ष, विश्वकर्मा, तमोनुद, वरुण, सागर, अंशु, जीमूत, जीवन, अरिहा (शत्रुनाशक), भूताश्रय, भूतपति, सर्वभूतनिषेवित, स्त्रष्टा, संवर्तक, वह्नि, सर्वादिकर, अमल, अनन्त, कपिल, भानु, कामद, सर्वतोमुख, जय, विषाद, वरद, सर्वधातुनिषेवित, सम, सुवर्ण, भूतादि, शीघ्रग, प्राणधारक, धन्वन्तरि, धूमकेतु, आदिदेव, अदितिसुत, द्वादशात्मा, अरविन्दाक्ष, पिता, माता, पितामह, स्वर्गद्वार, प्रजाद्वार, मोक्षद्वार, त्रिविष्टप, देहकर्ता, प्रशान्तात्मा, विश्वात्मा, विश्वतोमुख, चराचरात्मा, सूक्ष्मात्मा तथा मैत्रशरीरान्वित।

ये कीर्तन करनेयोग्य अमित तेजस्वी भगवान् सूर्यके एक सौ आठ नाम महात्मा इन्द्रके द्वारा प्रकाशित हुए हैं। इन्द्रसे नारदको, नारदसे धौम्यको और धौम्यसे राजा युधिष्ठिरको इनका उपदेश प्राप्त हुआ है। राजा युधिष्ठिरने इन्हें पाकर सम्पूर्ण मनोरथोंको प्राप्त कर लिया। जो एकाग्रचित्त होकर सूर्योदय कालमें इस स्तोत्रका पाठ करता है, वह पुत्र, धन, रत्नराशि, पूर्व-जन्मकी स्मृति, स्मरण-शक्ति तथा मेधा (बुद्धि) प्राप्त कर लेता है। जो देवताओंमें श्रेष्ठ भगवान् सूर्यके इस स्तोत्रका एकाग्रचित्त होकर पाठ करता है, वह शोकरूपी दावानलसे मुक्त हो मनोवांछित फलोंको प्राप्त कर लेता हैं।

~~~०~~~

महर्षि च्यवनकी कथा और च्यवनेश्वरकी महिमा

महादेवजी कहते हैं—पार्वती! महर्षि भृगुके पुत्र च्यवन मुनिने प्रभासक्षेत्रमें जाकर बड़ी भारी तपस्या की। वे आसन लगाकर ठूँठकी भाँति अविचल भावसे बहुत समयतक एक ही स्थानपर बैठे रहे। वहाँ उनके शरीरपर सब ओरसे बाँबीकी मिट्टी जम गयी और उसके ऊपर लताएँ फैल गयीं। उस बाँबीमें सब ओर चींटियाँ फैल गयी थीं। इस प्रकार बाँबीसे घिरे हुए च्यवन मुनि मिट्टीकी मूर्तिकी भाँति वहाँ स्थिर होकर घोर तपस्यामें स्थित हो गये। तदनन्तर किसी समय राजा शर्याति तीर्थयात्राके प्रसंगसे श्रीसोमनाथजीका दर्शन करनेके लिये पापनाशक प्रभासक्षेत्रमें आये। राजाके सुकन्या नामकी एक कन्या थी, जो सखियोंसे घिरी हुई वहाँ वनमें घूमने लगी। घूमते-घूमते वह च्यवन मुनिकी बाँबीके समीप जा पहुँची। वहाँ उनके चमकते हुए नेत्रोंको देखकर उसने कौतूहलवश सोचा, यह क्या है? फिर उसने काँटेसे उन दोनों नेत्रोंको छेद दिया। नेत्रोंके बिंध जानेपर मुनिके कोपसे राजा शर्यातिके सैनिकोंका मल-मूत्र रुक गया। इससे सारी सेना बहुत दुःखी हुई। यह देख राजाको भी बड़ा दुःख हुआ। वे बोले—'आज किसने यहाँ महात्मा भार्गवका अपकार किया है, उसे तुमलोग शीघ्र बताओ?' सैनिकोंने उत्तर दिया, 'हमें किसी अपकार करनेवालेका पता नहीं है।' तब राजाने अपने सुहृदोंसे पूछा।

सैनिकोंको दुःखसे व्याकुल तथा पिताको चिन्तित देखकर सुकन्याने कहा—'पिताजी! मैं इस वनमें घूम रही थी। इतनेमें एक बाँबीके भीतरसे मुझे जुगनूकी भाँति चमकते हुए दो प्रकाश दिखायी पड़े। मैंने अज्ञानवश उन्हें बींध डाला।' यह सुनकर राजा शर्याति शीघ्र ही बाँबीके पास आये और उन्होंने तपोवृद्ध एवं वयोवृद्ध च्यवन मुनिका दर्शन किया। तदनन्तर वे हाथ जोड़कर सैनिकोंके कष्ट-निवारणके लिये प्रार्थना करते हुए बोले—'भगवन्! मेरी बालिकाने अज्ञानवश जो आपका अपराध किया है, उसके लिये क्षमा करें।'

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth
~~~

इसके बाद महर्षिकी आज्ञासे शर्यातिने उन्हें अपनी कन्या व्याह दी और स्वयं सेनाके साथ नगरको प्रस्थान किया। सुकन्या परम उत्तम तपस्वी पतिको पाकर प्रेमपूर्वक तपस्या और नियमसे रहती हुई उनकी सेवा करने लगी। मुनिके यहाँ जो अतिथि आते, उनका यथोचित सत्कार करके वह शीघ्र ही महर्षि च्यवनकी सेवामें संलग्न हो जाती थी।

कुछ कालके पश्चात् अश्विनीकुमार नामक देवता उस वनमें आये। उन्होंने सुन्दर दाँतोंवाली सुकन्याको स्नान करके जाते हुए देखा और उसके समीप जाकर कहा—'वामोरु! तुम किसकी स्त्री हो और इस वनमें किस लिये घूम रही हो?'

सुकन्याने प्रसन्न होकर कहा—आपलोग मुझे राजा शर्यातिकी पुत्री तथा महर्षि च्यवनकी पत्नी जानें।

अश्विनीकुमार बोले—तुम्हारे पिताने जान-बूझकर इन गतायु महर्षिके साथ तुम्हारा विवाह कैसे किया? च्यवनजी तुम्हारे पालन-पोषण और रक्षणमें तो सर्वथा असमर्थ हैं। अतः उन्हें छोड़कर तुम हम दोनोंमेंसे किसी एकको अपना पति बना लो।

उनके यों कहनेपर सुकन्या बोली—देवताओ! मैं अपने पतिदेव च्यवनमें पूर्णतः अनुरक्त हूँ। मेरे विषयमें आपलोग कोई ऐसी आशंका न करें।

तब अश्विनीकुमारोंने कहा—देवि! हम दोनों वैद्य हैं। तुम्हारे पतिको रूप और यौवनसे सम्पन्न कर देंगे। उसके बाद हम तीनोंमेंसे किसी एकको तुम अपना पति चुन लेना।

उन दोनोंकी यह बात सुनकर सुकन्या च्यवन मुनिके पास गयी और अश्विनीकुमारोंने जो कुछ कहा था, वह सब उसने कह सुनाया। उसकी बात सुनकर मुनिवर च्यवनने कहा—'अश्विनीकुमारोंकी बातोंका आदर करो।' मुनिकी यह आज्ञा पाकर सुकन्या उन दिव्य रूपधारी देववैद्योंसे बोली—'आप दोनोंने मेरे पतिको तरुण बनानेके विषयमें जो कुछ कहा है, उसे शीघ्र पूरा करें।' वे बोले—'तुम्हारे पति इस तालाबमें प्रवेश करें।' तब मुनिवर च्यवनने दिव्य रूपकी अभिलाषासे शीघ्र ही उस तालाबमें प्रवेश किया, तत्पश्चात् अश्विनीकुमार भी उस जलके भीतर प्रविष्ट हुए। दो ही घड़ीमें वे तीनों उस सरोवरसे बाहर निकले। उनके रूप और वेष दिव्य थे। तीनों ही तरुण एवं दिव्य कुण्डलोंसे विभूषित थे। वे सब एकत्र होकर बोले—'शुभे! हममेंसे एकको वरण करो। सुकन्याने सबको एक समान रूपवाले देखकर अपने मन और बुद्धिसे निश्चय करके अपने पति च्यवन मुनिको पहचान लिया और एकमात्र उन्हींका वरण किया। अपनी पत्नीको पाकर तेजस्वी महर्षि च्यवन अश्विनीकुमारोंसे बोले—'आप दोनोंने कृपा करके मुझे दिव्य रूप तथा तरुण अवस्थासे संयुक्त किया और मुझे अपनी पत्नीकी प्राप्ति हुई, इसलिये मैं आप दोनोंको यज्ञभागका अधिकारी बनाऊँगा।' मुनिकी यह बात सुनकर अश्विनीकुमार प्रसन्नतापूर्वक चले गये।

तदनन्तर राजा शर्यातिने जब सुना कि महर्षि च्यवनको नयी अवस्था प्राप्त हुई है, तब वे बहुत प्रसन्न हुए और सेनाके साथ उनके आश्रमपर गये। पुत्री और जामाताको देवकुमारोंकी भाँति देखकर राजा शर्यातिके हर्षकी सीमा न रही। महर्षि च्यवनने रानीसहित महाराज शर्यातिका पूर्ण सत्कार किया और समीप बैठकर वार्तालाप किया। बात-चीतमें ही उन्होंने राजासे कहा—'राजन्! मैं आपसे यज्ञ कराऊँगा। आप सब सामग्री एकत्र करें।' राजा शर्याति इस प्रस्तावसे बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने शुभ मुहूर्तमें यज्ञमण्डप निर्माण कराया। उस मण्डपमें महर्षि च्यवनने राजासे यज्ञ प्रारम्भ कराया और उसमें अश्विनीकुमारोंके लिये सोमरसका भाग ग्रहण किया। इन्द्रने उन्हें ऐसा करनेसे रोका और कहा—'अश्विनीकुमार सोमरसके अधिकारी नहीं हैं, ऐसा मेरा निश्चित मत है। वे दोनों देवताओंके वैद्य हैं, अतः निन्दित माने गये हैं।'

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

च्यवनने कहा—देवराज! आप अश्विनी-कुमारोंको भी देवताओंकी ही कोटिमें समझें। ये दोनों महात्मा रूपसम्पदासे सम्पन्न और तेजस्वी हैं। इन्होंने इस समय मुझे अजर बनाया है।

इन्द्र बोले—ये दोनों वैद्य हैं और इच्छानुसार रूप धारण करके मर्त्यलोकमें विचरते रहते हैं; अतः देवताओंकी श्रेणीमें बैठकर सोमके अधिकारी कैसे हो सकते हैं?

इन्द्रके यों कहनेपर भी उनका अनादर करके च्यवन मुनिने अश्विनीकुमारोंके लिये भाग ग्रहण किया। यह देख इन्द्रने कहा—'यदि तुम मेरी अवहेलना करके इन वैद्योंके लिये सोमरसका भाग ग्रहण करोगे तो मैं तुम्हारे ऊपर भयंकर वज्रका प्रहार करूँगा।'

इन्द्रकी यह बात सुनकर च्यवनने एक बार उनकी ओर दृष्टिपात किया और अश्विनीकुमारोंके लिये सोमरसका भाग विधिपूर्वक निकाला। इसी समय इन्द्रने उनपर तुरंत वज्रका प्रहार किया, परंतु भृगुनन्दन च्यवनने वज्रसहित उनकी बाँह स्तम्भित कर दी। तदनन्तर मन्त्र पढ़कर अग्निमें आहुति डाली। मुनिके तपोबलसे उस समय महापराक्रमी महाकाय मद नामक महादैत्य उत्पन्न हुआ और क्रोधमें भरकर भयंकर सिंहनादसे सम्पूर्ण लोकोंको गुँजाता हुआ इन्द्रकी ओर दौड़ा। मुँह बाये हुए कालकी भाँति उस दैत्यको आते देख इन्द्र भयसे पीड़ित हो गये और मुनिवर च्यवनको प्रणाम करके बोले—'भृगुनन्दन! आजसे ये दोनों अश्विनीकुमार सोमरसके अधिकारी होंगे। तपोधन! मुझपर आपका अकारण क्रोध न हो; जिस प्रकार आपने इन अश्विनीकुमारोंको सोमरसका अधिकारी बनाया है, उसी प्रकार मेरी रक्षाके लिये भी अपने बल-वीर्यको प्रकाशित करें। आजकी इस घटनासे सुकन्याके पिता राजा शर्यातिकी कीर्ति संसारमें अमर होगी। आप मुझपर कृपा करें।'

इन्द्रके इस प्रकार प्रार्थना करनेपर मुनिवर च्यवनका क्रोध शान्त हो गया। इन्द्र उनकी आज्ञा ले शीघ्र वहाँसे चले गये। च्यवनने इन्द्रकी पूजा करके अश्विनीकुमारोंसहित सब देवताओंका पूजन किया तथा राजा शर्यातिका यज्ञ पूर्ण कराकर वे सुकन्यासहित इस वनमें विहार करने लगे। उनके द्वारा स्थापित च्यवनेश्वर लिंग महापातकोंका नाश करनेवाला है। जो विधिपूर्वक च्यवनेश्वरकी पूजा करता है, वह अश्वमेध यज्ञका फल पाता है। यहाँ आश्विनमासकी पूर्णिमाको विधिपूर्वक श्राद्ध करे और ब्राह्मणोंको भोजन कराये। यों करनेसे कोटि तीर्थोंके सेवनका फल प्राप्त होता है।

सुकन्यासरोवर, गोष्पदतीर्थ, गंगेश्वर, बालादित्य, पातालगंगा तथा कुबेरेश्वरकी महिमा; कुबेरके द्वारा शिवकी स्तुति

महादेवजी कहते हैं—पार्वती! जहाँ च्यवन मुनिके साथ अश्विनीकुमारोंने स्नान किया था, वह जलाशय सुकन्या सरोवरके नामसे विख्यात है। जो नारी तृतीयाको उस सरोवरमें स्नान करती है, उसकी गृहस्थी सात हजार जन्मोंतक नष्ट नहीं होती और उसका पुत्र दरिद्र, अंगहीन, दीन तथा अंधा नहीं होता।

तदनन्तर न्यंकुमती नदीके तटपर जाकर परम उत्तम गोष्पदतीर्थमें गया-श्राद्ध करे। उसके बाद भगवान् वराहका दर्शन करके नारिगृहकी यात्रा करे। फिर मातृसुतकी पूजा करके सागरसंगममें स्नान करे, फिर न्यंकुमतीके तटपर जाकर मुनिवर अगस्त्यजीके क्षुधाहर नामक दिव्य आश्रमपर जाय। वह समस्त पातकोंका नाश करनेवाला है।

उसके पश्चिम भागमें उससे थोड़ी ही दूरपर गंगाजीके द्वारा स्थापित गंगेश्वर लिंग है। अगस्त्यजीके

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

आश्रममें गंगेश्वरका दर्शन करके स्नान, दान और जप आदि करनेसे मनुष्य सब पातकोंसे मुक्त हो जाता है।

उस आश्रमसे थोड़ी दूर उत्तर दिशामें सूर्यदेवने बाल्यावस्थामें तपस्या की है। इससे उनका नाम बालादित्य हुआ। रविवारको उनका दर्शन करनेसे मनुष्य कोढ़ी नहीं होता और बालकोंको रोग-व्याधि नहीं सताते।

वहाँसे दक्षिणमें दो कोसकी दूरीपर सब पातकोंका नाश करनेवाली पातालगामिनी गंगा हैं, जिन्हें विश्वामित्रजीने स्नान करनेके लिये बुलाया था। उसमें स्नान करके मनुष्य सब पातकोंसे मुक्त हो जाता है। वहाँ गंगेश्वर, विश्वामित्रेश्वर तथा बालेश्वरका दर्शन करनेसे मनुष्यको सम्पूर्ण अभीष्ट फलोंकी प्राप्ति होती है।

शास्त्रज्ञान और शीलसे सम्पन्न धर्मात्मा कुबेरने न्यंकुमतीके पूर्व-तटपर एक शिवलिंग स्थापित किया, जो कुबेरेश्वरके नामसे विख्यात है। वहाँसे पश्चिम न्यंकुमतीके तटपर जो सोमनाथ महादेव हैं, उनकी पूजा करके कुबेरजीने इस प्रकार मेरा स्तवन किया—'जो यज्ञका मूल, तुम्बीके ऊँचे फलके समान आकृतिवाली तथा सौ कोटि ब्रह्माण्डोंमें स्थित है, ब्रह्माण्डवर्ती देवसमूह भी जिसका परिमाण नहीं जानते, महेश्वरकी वह कोई महामहिम लिंगमूर्ति सदा हमारी रक्षा करे। जो अजन्मा, पुराण, उपेन्द्र (विष्णु) के भी वन्दनीय तथा बड़े-बड़े राजाओंसे सेवित हैं, चन्द्रमा, सूर्य और अग्निके समान जिनके नेत्र हैं, जो अपनी ध्वजामें वृषभेन्द्र नन्दीका चिह्न धारण करनेवाले तथा प्रलय आदिके हेतु हैं, उन महादेवजीको मैं प्रणाम करता हूँ। जो सबके एकमात्र ईश्वर, देवताओंके एक ही बन्धु, योगसे प्राप्त होनेवाले, सम्पूर्ण विश्वके निवासस्थान, विस्मयके आधार, अनन्त शक्तिसम्पन्न, ज्ञानजनक तथा धैर्य आदि गुणोंके कारण सर्वोत्कृष्ट हैं अथवा जिनमें धैर्य आदि गुणोंकी अधिकता है, उन भगवान् शिवको मैं नमस्कार करता हूँ। जिनके हाथोंमें पिनाक, पाश, अंकुश और त्रिशूल शोभा पाते हैं, जो मस्तकपर जटाजूट धारण करते हैं, जिनके शब्दोच्चारणकी ध्वनि मेघके समान गम्भीर है, जिनके सम्पूर्ण अंगोंकी कान्ति स्फटिक मणिके समान उज्ज्वल तथा कण्ठमें नीला चिह्न है, जो सहस्रों मूर्ति धारण करनेवाले विशिष्ट पुरुष हैं, उन भगवान् शिवको मैं प्रणाम करता हूँ। जिन्हें संत पुरुष अक्षर, निर्गुण, अप्रमेय, ज्योतिर्मय, एक, दूरंगम (दूर गमन करनेवाले), जानने योग्य, अनिन्द्य, सबके हृदयमें अन्तर्यामीरूपसे विराजमान तथा परम पवित्र बतलाते हैं, उन भगवान् शंकरको मैं नमस्कार करता हूँ। जिनका स्वरूप तेज-पुंजके समान है, जिनके मस्तकपर बालचन्द्रमा शोभा पाते हैं, जिनका भयानक मुख स्फुरित होता रहता है, जो कालके भी काल, मनोवांछित फलोंके दाता, आसक्तिरहित, धर्मासनपर स्थित तथा परा और अपरा दोनों प्रकृतियोंमें विराजमान हैं, उन भगवान् रुद्रदेवको मैं प्रणाम करता हूँ। जो इन्द्रियातीत, विश्वपालक, शत्रुविजयी, तीनों गुणोंसे परे, अजन्मा, निरीह, तपोमय, वेदमय, प्रजापालक तथा अनेक नामोंवाले इन्द्ररूप हैं, उन्हीं आप महेश्वरको मैं नमस्कार करता हूँ। जो भूत और भविष्यके ज्ञाता महेश्वर हैं, योगवेत्ता मुनीश्वर सदा जिनका ध्यान करते रहते हैं, जो संसारबन्धनके काटनेवाले तथा नित्य मुक्तस्वरूप हैं, उन महादेवजीको मैं बारम्बार नमस्कार करता हूँ। जिन परम पुरुष परमात्माके अनुपम मुख, बल, प्रभाव और स्वभाव आदिका ज्ञान देवताओंको भी नहीं होता, उन अचिन्तनीय महिमावाले भगवान् वामदेवको मैं प्रणाम करता हूँ। जिन उग्रमूर्ति भगवान् शिवकी आराधना करके अगस्त्यजीने समुद्रको पी लिया तथा राजा दिलीपने सम्पूर्ण मनोरथ प्राप्त कर लिये, उन विश्वयोनि भगवान् शंकरकी मैं शरण लेता हूँ। देवेन्द्रवन्द्य शम्भो! मुझ अनाथका उद्धार कीजिये। आप कृपालु एवं करुणामय हैं। उमेश! दुःखसागरमें डूबे हुए मुझ

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

दीनका उद्धार कीजिये। भव! आप सबका कल्याण करनेवाले हैं। मेरा भी कल्याण कीजिये। जिनकी पूजा करके ब्रह्मा और इन्द्र आदि देवता स्वर्गमें इच्छानुसार विहार करते हैं, उन वन्दनीय शिवकी शरणमें आकर मैं उन्हींकी स्तुति, उन्हींका गुणगान, उन्हींके नामका जप और उन्हींकी वन्दना करता हूँ।'

इस प्रकार स्तुति करके जब कुबेरजी चुप हुए, तब भगवान् शिवने उन्हें अपने मित्रका पद, दिक्पालका पद और देवताओंके धनाध्यक्षका पद—ये तीन वर प्रदान किये और कहा—'यह स्थान तुम्हारे ही नामपर कुबेरनगर कहलायेगा। तुमने इस स्थानसे पश्चिममें जो शिवलिंग स्थापित किया है, उसका जो पुरुष श्रीपंचमीके दिन विधिपूर्वक पूजन करेगा, उसके यहाँ सात पीढ़ियोंतक लक्ष्मी बराबर बनी रहेगी।'

भद्रकाली, कुबेर, ऋषितोया नदी, शृगालेश्वर तथा गुप्त प्रयागका माहात्म्य

महादेवजी कहते हैं—पार्वती! कुबेरस्थानसे उत्तर भागमें मनोवांछित वस्तुओंको देनेवाली महादेवी भद्रकालीका स्थान है। जो चैत्रमासकी तृतीयाको उनकी पूजा करता है, उसे सौभाग्य, विजय और लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है।

कुबेरस्थानसे नैर्ऋत्य भागमें साक्षात् कुबेरजी विराजमान हैं। जो पंचमी तिथिको भक्तिभावसे गन्ध, पुष्प तथा चन्दन आदिके द्वारा उनकी पूजा करता है, उसे विघ्नरहित अनुपम निधिकी प्राप्ति होती है। वहाँ कुण्डमें स्नान करनेसे ब्रह्महत्या-जैसे पापोंका नाश हो जाता है। उसके पूर्वभागमें बालार्केश्वर लिंग तथा उत्तर भागमें गयाक्षेत्रसहित अम्बिका स्थान है। उन दोनोंके दर्शनसे मनुष्य वाजपेय यज्ञका फल पाता और समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है। कुबेरस्थानसे दस कोसकी दूरीपर पुष्कर नामका तीर्थ है। उससे अग्निकोणमें चौदह कोस दूर देवकुल नामक स्थान है, जहाँ देवताओंका समागम हुआ है, उसके पश्चिम भागमें ऋषितोया नदी है, जो समस्त पातकोंका नाश करनेवाली तथा ऋषियोंको प्रिय है। जो मनुष्य उसमें विधिवत् स्नान करके पितरोंका तर्पण करता है, वह सत्तर हजार वर्षोंतकके लिये पितरोंको तृप्त कर देता है; इतना ही नहीं, उसे सात जन्मोंके पापोंसे छुटकारा मिल जाता है।

परमपवित्र देवदारु-वनमें सहस्रों ऋषि निवास करते थे। वे सभी प्रतिदिन बावली, कुआँ और तड़ाग आदिमें स्नान करते थे। वहाँ रहते उन्हें बहुत वर्ष व्यतीत हो गये। उनके पुत्र-पौत्रोंकी संख्या बढ़ गयी और वे दारुकवनमें सब ओर फैलकर रहने लगे। एक दिन उन सबने एकत्र होकर परस्पर विचार किया कि 'हमलोग ब्रह्मलोकमें चलकर ब्रह्माजीकी प्रार्थना करें, जिससे यहाँ कोई नदी प्रकट हो।' ऐसा निश्चय करके वे तपोधन मुनि ब्रह्मलोकमें गये और वहाँ ब्रह्माजीकी अनेक प्रकारसे स्तुति करने लगे।

ऋषि बोले—ॐकारस्वरूप आपको नमस्कार है। सम्पूर्ण विश्वकी सृष्टि करनेवाले आपको बार-बार नमस्कार है। समस्त संसारकी रक्षा करनेवाले आप परमात्माको नमस्कार है और जगत्का संहार करनेवाले तथा ब्रह्मरूपधारी आपको नमस्कार है। पितामह! आपको नमस्कार है। सुरज्येष्ठ! आपको नमस्कार है।

उन ऋषियोंके इस प्रकार स्तवन करनेपर लोकपितामह ब्रह्माजी बहुत प्रसन्न हुए और बोले—'विप्रवरो! तुम्हारा स्वागत है। मैं इस दिव्य स्तोत्रसे बहुत संतुष्ट हूँ। तुम कोई उत्तम वर माँगो।'

ऋषियोंने कहा—सुरश्रेष्ठ! आप हमें स्नान

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

करनेके लिये कोई पापनाशिनी नदी प्रदान कीजिये।

उनके यों कहनेपर ब्रह्माजीने वहाँ मूर्तिमती नदियोंकी ओर दृष्टिपात किया। उन्हें देखकर फिर कमण्डलुकी ओर दृष्टि डाली। तब वे सभी नदियाँ उनके कमण्डलुमें प्रवेश कर गयीं।

ब्रह्माजी बोले—महर्षियो! ये सब महापुण्यमयी नदियाँ कृपापूर्वक भूलोकमें जानेके लिये इस कमण्डलुमें प्रविष्ट हुई हैं। यदि इनमेंसे किसी एकको भेजूँ तो औरोंके मनमें क्रोध होगा; अतः इस कमण्डलुमें स्थित सभी नदियोंको मैं देवदारु-वनमें जानेके लिये छोड़ता हूँ।

यों कहकर ब्रह्माजीने उन सबको छोड़ दिया और कहा—'मैंने ऋषियोंकी प्रार्थनासे तोयरूपा इन नदियोंको स्नानके लिये दिया है, इसलिये इनसे प्रकट होनेवाली नदी ऋषितोया नामसे प्रसिद्ध होगी। इस प्रकार देवदारु-वनमें ऋषितोया नदीका आगमन हुआ है। पूर्ववाहिनी ऋषितोया नदी जहाँ समुद्रमें मिली हैं, वहाँ जो मनुष्य स्नान और जलपान करते हैं, वे धन्य हैं। वहाँ प्रातःकाल गंगा, पूर्वाह्ण कालमें यमुना, मध्याह्नकालमें सहस्रों नदियोंके साथ सरस्वती, अपराह्णकालमें नर्मदा तथा सायाह्नकालमें सूर्यपुत्री तपती नदी बहती है। यों जानकर जो विद्वान् उसमें स्नान और विधिवत् श्राद्ध करता है, वह उसके फलका भागी होता है।

ऋषितोयाके पश्चिम दो कोस दूर शृगालेश्वर लिंग है, जो सब पातकोंका नाश करनेवाला है। वहाँ गुप्त प्रयाग, माधवदेव तथा गंगा, यमुना और सरस्वती हैं। वहाँ स्नान, जलस्पर्श तथा पूजन करके मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। वहाँ ब्रह्मकुण्ड, विष्णुकुण्ड तथा रुद्रकुण्ड हैं। इनके अतिरिक्त चौथा त्रिसंगम तीर्थ भी है, जहाँ गंगा, यमुना और सरस्वती तीनोंका संगम हुआ है। ब्रह्मकुण्डमें एक करोड़, वैष्णवकुण्डमें भी एक करोड़ और रुद्रकुण्डमें डेढ़ करोड़ तीर्थ हैं। पश्चिममें ब्रह्मकुण्ड, पूर्वमें वैष्णवकुण्ड और मध्यभागमें रुद्रकुण्ड है। जहाँ कुण्डके मध्यभागसे गंगाजी निकलकर सूर्यपुत्री यमुनासे मिली हैं, वहाँ संगम कहलाता है। इन दोनोंके सूक्ष्म अन्तरमें गुप्त सरस्वतीकी स्थिति मानी गयी है। इनके पास ही तीर्थराज प्रयाग है। जो मनुष्य माघमासमें सूर्यके मकरराशिपर स्थित रहते समय प्रातःकाल सूर्योदयकालमें यहाँ आकर स्नान करता है, वह एक स्नानसे मानसिक, द्वितीय स्नानसे वाचिक और तृतीय स्नानसे शारीरिक पापको नष्ट कर देता है। चौथे स्नानसे सांसर्गिक पाप, पाँचवें स्नानसे गुप्त पाप और छठे स्नानसे उपपातकोंका नाश करता है। इन कुण्डोंमें सात बारके स्नानसे मनुष्य अपने महापातकोंका भी नाश कर देता है। जो पूरे एक मासतक गुप्त प्रयागमें स्नान करता है, उसके फलको ब्रह्मा आदि देवता कोटि कल्पोंमें भी नहीं बता सकते। प्रभासमें जो कोई भी तीर्थ हैं, उन सबकी अपेक्षा अत्यन्त प्रिय तथा सब पातकोंका नाश करनेवाला यही तीर्थ है। मैंने इस तीर्थकी रक्षाके लिये मातृकाओंको नियुक्त किया है। भाँति-भाँतिके नैवेद्योंसे यत्नपूर्वक उनकी पूजा करनी चाहिये। जो कृष्णपक्षकी चतुर्दशीको श्रद्धा-भक्तिके साथ वहाँ पितरोंका श्राद्ध करता है, वह पितृवर्ग और मातृवर्ग दोनोंका उद्धार कर देता है।

~~~०~~~

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth
~~~

माधव, शृगालेश्वर, त्रिपथगा, गोपालस्वामी, उत्तरार्क, मरुद्देवी आदि विविध तीर्थ और देवविग्रहोंके सेवनकी महिमा

महादेवजी कहते हैं—पार्वती! उसके दक्षिण भागमें थोड़ी ही दूरपर शंख, चक्र और गदा धारण करनेवाले भगवान् माधव विराजमान हैं। जो शुक्लपक्षकी एकादशीको स्नान करके शुद्ध वस्त्र पहनकर गन्ध, पुष्प और अनुलेपनके द्वारा भक्तिपूर्वक उनकी पूजा करता है, वह परमपदको प्राप्त होता है। जो विष्णुकुण्डमें स्नान करके माधवकी पूजा करता है, वह श्रीहरिके परमधाममें जाता है।

वहाँसे उत्तर दिशामें कुछ वायव्यकोणकी ओर शृगालेश्वर लिंग है। महातेजस्वी इन्द्र, वरुण, कुबेर, यमराज, अग्नि, आदित्य, वसु तथा समस्त लोकपालोंने उस महालिंगकी आराधना की है। जो शृगालेश्वरका पूजन करेंगे, उनके कुलमें कोई निर्धन नहीं होगा। जो मनुष्य अमावास्या तिथिको यहाँ आकर स्नान करके क्रोधरहित हो विधिपूर्वक पितरोंका श्राद्ध करता है, उसके पितर प्रलयकालतक तृप्त रहते हैं। इस क्षेत्रका विस्तार एक मीलतक है। उसमें जो मृत्युको प्राप्त होते हैं, उन्हें उत्तम गतिकी प्राप्ति होती है। जो अनशन-व्रत ग्रहण करके इस तीर्थमें प्राणोंका त्याग करते हैं, वे परमेश्वरमें लीन हो जाते हैं।

शृगालेश्वरसे ईशानकोणमें सात धनुषकी दूरीपर त्रिपथगा गंगा हैं। उसके जलमें उत्पन्न होनेवाली मछलियाँ इस कलियुगमें भी तीन नेत्रोंवाली देखी जाती हैं। वहाँ स्नान करके मनुष्य पाँच महापातकोंसे मुक्त हो जाता है।

चण्डीशसे पूर्व भागमें बीस धनुषपर गोपाल-स्वामीका स्थान है; जो माघमासमें गोपालस्वामी श्रीहरिका दर्शन, पूजन तथा वहाँ रात्रिमें जागरण करता है, वह परमपदको प्राप्त होता है। वहाँसे उत्तर दिशामें आठ धनुषपर वकुलस्वामी सूर्यदेवका स्थान है। जो मनुष्य रविवारयुक्त सप्तमीमें वहाँ जागरण करता है, वह सभी अभीष्ट वस्तुओंको पाता और स्वर्गलोकमें पूजित होता है।

वहाँसे वायव्यकोणमें सोलह धनुषपर उत्तरार्क नामसे प्रसिद्ध भगवान् सूर्य विराजमान हैं। वहाँ रथसप्तमीको उपवास करके मनुष्य सब रोगोंसे मुक्त हो जाता है। वहीं देवकुलसे आग्नेयकोणमें दो कोस दूर समुद्रके सुरम्य तटपर परम उत्तम ऋषितीर्थ है। वहाँ पत्थरकी आकृतिवाले ऋषिलोग आज भी देखे जाते हैं, जो सब पातकोंका नाश करनेवाले हैं।

वहाँसे पश्चिम दिशामें आधे कोसपर मरुद्देवी हैं, जो मरुद्गणोंके द्वारा पूजित तथा समस्त अभीष्ट वस्तुओंको देनेवाली हैं। मनुष्यको चाहिये कि समस्त कामनाओंकी सिद्धिके लिये महानवमी और सप्तमी तिथिको गन्ध, पुष्प आदि उपचारोंद्वारा यत्नपूर्वक उनकी पूजा करे।

देवकुलसे पूर्वमें दस कोसपर शबरस्थानमें क्षेमादित्य नामसे प्रसिद्ध सूर्यदेवका स्थान है। उनका दर्शन करके मनुष्य क्षेम तथा अर्थसिद्धिका भागी होता है। रविवारयुक्त सप्तमीको पूजित होनेपर वे समस्त अभीष्ट वस्तुओंको देते हैं।

देवकुण्डसे उत्तर और भास्करसे दक्षिण कण्टकशोधिनी देवीका स्थान है। जो मनुष्य अष्टमी तथा नवमीके दिन उनकी पूजा करता है, उसको राक्षसों और पिशाचोंसे भय नहीं होता और वह उत्तम सिद्धिको पाता है।

उससे पूर्वदिशामें थोड़ी ही दूरपर ब्राह्मणोंद्वारा स्थापित ब्रह्मेश्वर लिंग है। जो ऋषितोयाके जलमें स्नान करके उसका पूजन करता है, वह ब्राह्मण जडतासे रहित एवं वेदज्ञ होता है। भगवती चण्डीके गणोंद्वारा वह स्थान सुरक्षित है। मैंने सीमासहित वह स्थान ब्राह्मणोंको दे दिया है।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

स्थलकेश्वरसे पूर्व दिशामें कुछ आग्नेयकोणकी ओर विश्वकर्माद्वारा स्थापित दो महापुण्यमय लिंग हैं। विश्वकर्मा जब नगरका निर्माण करनेके लिये वहाँ आये, उस समय उन्होंने पहले शिवलिंगकी स्थापना की। तत्पश्चात् पुनः नगर-निर्माणका कार्य प्रारम्भ किया। विवाह और गृहप्रतिष्ठा आदि प्रत्येक कार्यके आदि और अन्तमें उन दोनों लिंगोंकी पूजा करके मनुष्य तत्काल सिद्धिको पाता है।

वहाँसे दक्षिण भागमें समस्त पातकोंका नाश करनेवाले दुर्गादित्य नामक सूर्यदेवके समीप जाय। जो रविवारयुक्त सप्तमीमें उनका पूजन करता है, उसके सब दुःख और अनेक प्रकारके कुष्ठ नष्ट हो जाते हैं।

वहाँसे दक्षिण भागमें ऋषितोयाके तटपर सोमेश्वरलिंग है, जिसका नाम पहले भूतेश्वर था। सोमेश्वरका दर्शन-पूजन करके मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। वहाँसे उत्तर भागमें कुछ वायव्यकोणकी ओर सिद्धिदायक विनायक विराजमान हैं। जिन कुबेरको मैंने अपना सखा बताया है, वे ही गणनाथरूपसे इस स्थानमें लोगोंको सिद्धि प्रदान करनेके लिये स्थित हैं। जो मंगलवारयुक्त चतुर्थीको लड्डूसहित नाना प्रकारके भक्ष्य-भोज्य पदार्थोंद्वारा उनकी विधिपूर्वक पूजा करता है, उसे निश्चय ही सिद्धि प्राप्त होती है।

तदनन्तर ऋषितोयाके तटपर स्थित सर्वविघ्न-नाशक विनायकका दर्शन करनेके लिये जाय। वे साक्षात् त्रिपुरान्तक शिव हैं और गजरूप धारण करके महाक्षेत्र प्रभासमें ऊँचे स्थानपर अपने कोटिगणोंके साथ स्थित हैं। अतः निर्विघ्नतापूर्वक यात्राकी सिद्धिके लिये गन्ध, पुष्प आदि उपचारोंद्वारा उनका पूजन करना चाहिये। योगक्षेमकी सिद्धिके लिये उनकी यात्राका महोत्सव भी करना चाहिये। वहाँसे उत्तर महाकालेश्वरदेव हैं, जो उस पुरके अधिष्ठाता रौद्ररूपधारी भैरव हैं। पूर्णमासी और अमावास्याको इनकी महापूजा करनी चाहिये। जो महोदय तीर्थमें स्नान करके महाकालका दर्शन करता है, वह सात हजार जन्मोंतक संसारमें धनाढ्य होता है।

वहाँसे ईशानकोणमें महोदय तीर्थ है। उसमें विधिपूर्वक स्नान करके जो देवताओं और पितरोंका तर्पण करता है, उसे प्रतिग्रहजनित दोषसे भय नहीं होता। उस तीर्थकी रक्षाके लिये महाकालके उत्तर भागमें मेरी प्रेरणासे मातृकाएँ रहती हैं। वहाँ स्नान करके मनुष्य पहले उन मातृकाओंकी ही पूजा करे। वहाँसे वायव्यकोणमें संगमेश्वर लिंग है और उससे भी पूर्वदिशामें पापनाशिनी कुण्डिका है, जहाँ बडवानलसहित सरस्वतीजी आयी हैं। जो कुण्डिकामें स्नान करके संगमेश्वरका पूजन करता है, उसका सहस्र जन्मोंतक लक्ष्मी, पुत्र तथा प्रियजनोंसे कभी वियोग नहीं होता। वह जन्मसे लेकर मृत्युतकके समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है।

उस स्थानसे तीन योजन उत्तर तप्तोदकस्वामी हैं, जहाँ भगवान् विष्णुने युद्ध करके दैत्यराज तलका वध किया था। जो मानव तप्तकुण्डमें स्नान करके तलस्वामीकी पूजा तथा स्नान करता है, वह करोड़ों यात्राओंका फल पाता है। उससे पूर्वदिशामें कालमेधलिंगरूपी क्षेत्रपाल हैं। अष्टमी और चतुर्दशीको विस्तारपूर्वक उनकी पूजा करनी चाहिये। वे कलियुगमें कल्पवृक्षके समान मनोवांछित फल देनेवाले हैं।

वहाँसे दक्षिण भागमें पचीस धनुषके अन्तरपर सब पापोंका नाश करनेवाली रुक्मिणीदेवी स्थित हैं। तप्तोदक कुण्डमें स्नान करके रुक्मिणीजीकी पूजा करे। इससे सात जन्मोंतक स्त्रियोंकी गृहस्थी भंग नहीं होती। बलभद्रसे पूर्वदिशामें एक श्रेष्ठ नदी है, जहाँ दुर्वासेश्वरलिंग प्रतिष्ठित है। जो अमावास्याको उस नदीमें स्नान करके पिण्ड देता है, वह सौ कोटि कल्पोंसे अधिक कालतकके लिये पितरोंको तृप्त कर देता है। वहाँ दुर्वासेश्वर शिवका विधिपूर्वक पूजन करके

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

मनुष्य कोटि यज्ञोंका फल तथा समस्त अभीष्ट वस्तुएँ प्राप्त कर लेता है। वहाँ ऋषियोंद्वारा स्थापित किये हुए बहुतसे शिवलिंग हैं। उनका दर्शन, स्पर्श और पूजन करके मनुष्य सब पापोंसे छूट जाता है। जहाँ क्षेत्रकी परिधिरूप मधुमती नामक स्थान है, वहाँ समुद्र-तटपर लिंगेश्वरदेव तथा सप्तकूप हैं। वहाँ श्राद्ध करके मनुष्य गयासे कोटिगुना फल पाता है।

तलस्वामी, शंखावर्त तीर्थ और गोष्पद तीर्थकी महिमा, वहाँ श्राद्धकी विधि तथा राजा पृथुके द्वारा पृथ्वीका दोहन

महादेवजी कहते हैं—मनुष्यको चाहिये कि वह तलस्वामी विष्णुका स्मरण करे, फिर **'सहस्रशीर्षा'** मन्त्रसे तर्पण आदि करे। विधिवत् स्नान करके श्रीविष्णुको अर्घ्य दे। गन्ध, पुष्प, वस्त्र, अनुलेपन, मधु, इक्षुरस, कुंकुम, कपूर, खस तथा कस्तूरी आदि उपचारोंसे उनकी पूजा करे; फिर वस्त्रोंसे वेष्टित करके उत्तम नैवेद्य भोग लगाये। धर्मकथा-श्रवणपूर्वक रात्रिमें जागरण करे। वेदज्ञ श्रोत्रिय ब्राह्मणको सुवर्ण और दो वस्त्र दान करे। उस दिन उपवासपूर्वक श्रीविष्णुको नमस्कार करके रुक्मिणीजीका दर्शन करे। भक्तिभावसे यों करके मनुष्य अपने जन्मका फल पाता है। समस्त यज्ञों, दानों, तीर्थों और व्रतोंका भी फल पा लेता है। पितृवर्ग और मातृवर्गका भी उद्धार करता है तथा जन्मभरके किये हुए पापोंका नाश कर देता है।

वहाँसे पश्चिम न्यंकुमती नदीके उत्तम तटपर दक्षिण दिशाकी ओर शंखावर्त नामक तीर्थ है, जहाँ स्वयं प्रकट हुई अति उत्तम रक्तगर्भा 'चक्रांकित' शिला स्थित है। पूर्वकालमें सर्वशक्तिमान् भगवान् विष्णुने वेदोंका अपहरण करनेवाले शंखासुरको जहाँ मारा है, वह विष्णुक्षेत्र कहा गया है। उसीको शंखोदक तीर्थ भी कहते हैं। वह शंखाकार दिखायी देता है। उसमें स्नान करके मनुष्य ब्रह्महत्यासे मुक्त हो जाता है तथा शूद्रको भी लगातार सात जन्मोंतक ब्राह्मणयोनि प्राप्त होती है।

तत्पश्चात् गोष्पद तीर्थको जाय, जहाँ श्राद्ध करके मनुष्य गयासे सातगुना अधिक फल पाता है। वहीं श्राद्ध करके वेननन्दन पृथुने अपने पिताको पाप-योनिसे मुक्त किया था।

न्यंकुमती नदी परम पवित्र और महासिद्ध है। वह इस क्षेत्रकी सीमाके लिये लायी गयी है। सब पापोंका नाश करनेवाली वह नदी पर्णादित्यसे दक्षिण भागमें स्थित है। नारायणगृहसे उत्तर दिशामें थोड़ी ही दूरपर उसकी स्थिति है। उसीके भीतर विख्यात गोष्पद नामक तीर्थ है। गोष्पदके समीप थोड़ी ही दूरपर नागराज अनन्त स्वतः प्रकट हुए हैं, जो पृथ्वीपर उस तीर्थकी रक्षाके लिये नियुक्त किये गये हैं। नरकसे अत्यन्त भयभीत होनेवाले पितर पुत्रप्राप्तिकी इच्छा रखते हैं और कहते हैं—'हमारे वंशजोंमेंसे जो गोष्पदतीर्थकी यात्रा करेगा, वही हमारा उद्धार करनेवाला होगा।' गोष्पदतीर्थमें पुत्रको देखकर पितरोंके यहाँ उत्सव मनाया जाता है। खीर, मधु, सत्तू, आटा, तिल और अक्षत आदिसे वहाँ श्राद्ध करके मनुष्य अपने पितरोंको स्वर्गलोकमें भेज देता है। उस तीर्थमें श्रेष्ठ पुरुष नास्तिकका संग न करे। सब सामग्रियोंके सहित श्रद्धालु पुरुष आस्तिक मनुष्यके साथ उस तीर्थमें जाय और वहाँ पहुँचकर मन-ही-मन यह भावना करे कि मैं गया तीर्थमें आया हूँ। इस प्रकार जो ब्राह्मण प्रतिग्रहरहित होकर वहाँकी यात्रा करता है, उसे पग-पगपर अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त होता है। वहाँ न्यंकुमती नदीमें स्नान करके पितरोंकी मुक्तिके लिये विधिपूर्वक श्राद्ध-तर्पण करे। तर्पणके समय इस प्रकार कहे—

ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तं देवर्षिपितृमानवाः।
तृप्यन्तु पितरः सर्वे मातृमातामहादयः॥

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

'ब्रह्माजीसे लेकर तृणपर्यन्त समस्त देवता, ऋषि, पितर, मनुष्य तथा माता और मातामह आदि समस्त पितर मेरे दिये हुए जलमें तृप्त हों।'

इस प्रकार विधिपूर्वक तर्पण करके मनुष्य शास्त्रोक्त विधिसे पिण्डयुक्त श्राद्ध करे। पहले शास्त्रके ज्ञाता निर्दोष ब्राह्मणोंको आमन्त्रित करके उन्हें अर्घ्य देकर इस प्रकार कहे—

कव्यवाडनलः सोमो यमश्चैवार्यमा तथा।
अग्निष्वात्ता बर्हिषदः सोमपाः पितृदेवताः॥
आगच्छन्तु महाभागाः युष्माभी रक्षितास्त्विह।
मदीयाः पितरो ये च कुले जाताः सनाभयः॥
तेषां पिण्डप्रदाताहमागतोऽस्मि पितामह॥

'कव्यवाट् अनल, सोम, यम, अर्यमा, अग्निष्वात्त, बर्हिषद् और सोमप नामके पितृदेवताओ! आप सभी महाभाग यहाँ पधारें और आपके द्वारा सुरक्षित जो मेरे पितर, वंशज एवं सहोदर हों, वे भी यहाँ पदार्पण करें। पितामह! उन सबको पिण्डदान देनेके लिये मैं यहाँ आया हूँ।'

यों कहकर फिर निम्नांकित मन्त्रका उच्चारण करे—

पिता पितामहश्चैव प्रपितामह एव तु।
माता पितामही चैव तथैव प्रपितामही॥
मातामहस्तत्पिता च प्रमातामहकादयः।
तेषां पिण्डो मया दत्तो ह्यक्षय्यमुपतिष्ठतु॥
ॐ नमो भगवते भर्त्रे सोमभौमेज्यरूपिणे।

'पिता, पितामह, प्रपितामह, माता, पितामही, प्रपितामही, मातामह, प्रमातामह तथा वृद्धप्रमातामह आदि जो पितर हैं, उनके लिये मेरे द्वारा दिया हुआ यह पिण्ड अक्षयरूपसे उपस्थित हो। सोम, मंगल और बृहस्पतिरूप भगवान् विश्वम्भरको नमस्कार है।'

इस प्रकार नमस्कार एवं पूजन करके गोष्पदके समीप अनाथ पितरोंके लिये पिण्डदान करे। उस समय निम्नांकित स्तुतिका पाठ करना चाहिये—

अस्मत्कुले मृता ये च गतिर्येषां न विद्यते।
रौरवे चान्धतामिस्रे कालसूत्रे च ये गताः॥
तेषामुद्धरणार्थाय इदं पिण्डं ददाम्यहम्।
अनन्तयातनासंस्थाः प्रेतलोकेषु ये गताः॥
पशुयोनिं गता ये च पक्षिकीटसरीसृपाः।
अथवा वृक्षयोनिस्थास्तेभ्यः पिण्डं ददाम्यहम्॥
येऽबान्धवा बान्धवा वा येऽन्यजन्मनि बान्धवाः।
ते सर्वे तृप्तिमायान्तु पिण्डदानेन सर्वदा॥
ये केचित् प्रेतरूपेण वर्तन्ते पितरो मम।
ते सर्वे तृप्तिमायान्तु पिण्डदानेन सर्वदा॥
दिव्यन्तरिक्षभूमिस्थाः पितरो बान्धवादयः।
मृता असंस्कृता ये च तेषां पिण्डस्तु मुक्तये॥
पितृवंशे मृता ये च मातृवंशे तथैव च।
गुरुश्वशुरबन्धूनां ये चान्ये बान्धवाः स्मृताः॥
ये मे कुले लुप्तपिण्डाः पुत्रदारविवर्जिताः।
क्रियालोपगता ये च जात्यन्धाः पङ्गवस्तथा॥
विरूपा आमगर्भाश्च ज्ञाताज्ञाताः कुले मम।
तेषां पिण्डो मया दत्तो ह्यक्षय्यमुपतिष्ठतु॥
प्रेतत्वात् पितरो मुक्ता भवन्तु मम शाश्वतम्।
यत् किञ्चिन्मधुसंमिश्रं गोक्षीरं घृतपायसम्॥
अक्षय्यमुपतिष्ठेत् तत् त्वस्मिंस्तीर्थे तु गोष्पदे।

'हमारे कुलमें जो लोग मरे हैं किंतु जिनकी सद्गति नहीं हुई है, जो रौरव, अन्धतामिस्र और कालसूत्र आदि नरकोंमें पड़े हैं, उनके उद्धारके लिये मैं यह पिण्ड देता हूँ। जो अनन्त यातनाओंमें पड़े हैं, प्रेतलोकोंमें गये हुए हैं, पशु, पक्षी, कीट, सर्प अथवा वृक्षयोनिमें स्थित हैं, उन सबके लिये मैं यह पिण्ड देता हूँ। जो हमारे बान्धव नही हैं, जो हमारे बान्धव हैं अथवा जो अन्य जन्मोंमें बान्धव रहे हैं, वे सब इस पिण्डदानसे सदा तृप्त रहें। मेरे जो पितर प्रेतरूपमें विद्यमान हैं, वे सब इस पिण्डदानसे सदा तृप्त रहें। जो पितर तथा बान्धव आदि स्वर्ग, अन्तरिक्ष एवं भूलोकमें स्थित हैं, जिनका मरनेके बाद संस्कार नहीं हुआ है, यह पिण्ड उन सबको मुक्ति देनेवाला हो। जो मेरे पितृकुलमें, मातृकुलमें, गुरुकुल, श्वशुरकुल तथा बन्धुकुलमें रहे हैं तथा इनके अतिरिक्त भी जो बान्धव कहे

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

गये हैं, मेरे कुलमें जिनके लिये पिण्डदान आदि क्रियाएँ नहीं हुई हैं, जो स्त्री और पुत्रसे रहित हैं, जिनके श्राद्ध आदि कर्मोंका लोप हो गया है, जो जन्मसे अन्धे, पंगु तथा विकृत रूपवाले रहे हैं, जो कच्चे गर्भकी अवस्थामें ही मर गये हैं— इस प्रकार मेरे कुलमें जो ज्ञात अथवा अज्ञात पूर्वज मृत्युको प्राप्त हुए हैं, उन सबके लिये मैंने यह पिण्ड दिया है। यह अक्षय होकर उन सबको प्राप्त हो। मेरे सभी पितर सदाके लिये प्रेतभावसे मुक्त हो जायँ। इस गोष्पद तीर्थमें जो कुछ भी मधुमिश्रित गोदुग्ध, घृत और खीर आदि दिया गया है, वह सब पूर्वोक्त सभी पितरोंको अक्षय होकर प्राप्त हो।'

तदनन्तर श्राद्धकर्ता वहाँ वेदमन्त्रोंका स्वाध्याय करे। सब पुराण सुनाये। ब्रह्मा, विष्णु, सूर्य तथा रुद्र-सम्बन्धी नाना प्रकारके स्तोत्रोंका पाठ करे। ऐन्द्रसूक्त, सोमसूक्त, पवमानसूक्त, बृहत्साम, रथन्तरसाम, ज्येष्ठसाम, शान्तिकाध्याय, मधुब्राह्मण तथा मण्डल-ब्राह्मणका भी यथासम्भव पाठ करे। ये सब स्तोत्र पितरोंको प्रसन्न करनेवाले हैं। इस प्रकार न्यंकुमती नदीमें स्नान करके उत्तम गोष्पद तीर्थमें विधिवत् पिण्डदान करनेके पश्चात् पुनः निम्नांकित मन्त्रका पाठ करे—

साक्षिणः सन्तु मे देवा ब्रह्माद्या ऋषिपुङ्गवाः।
मयेदं तीर्थमासाद्य पितॄणां निष्कृतिः कृता॥
आगतोऽस्मि इदं तीर्थं पितृकार्ये सुरोत्तमाः।
भवन्तु साक्षिणः सर्वे मुक्तश्चाहमृणत्रयात्॥

'ब्रह्मा आदि देवता और श्रेष्ठ मुनिवर साक्षी रहें। मैंने इस तीर्थमें आकर पितरोंका ऋण चुकाया है। श्रेष्ठ देवताओ! मैं पितृकार्यके लिये इस तीर्थमें आया हूँ। आज मैं तीनों ऋणोंसे मुक्त हो गया, इस बातके आप सभी लोग साक्षी रहें।'

इस प्रकार उत्तम गोष्पद तीर्थकी परिक्रमा करके ब्राह्मणोंको दक्षिणा दे और पिण्डोंका नदीमें विसर्जन कर दे। वृद्धि-श्राद्धमें मातासे आरम्भ करके और गयामें पितासे प्रारम्भ करके श्राद्ध करना चाहिये। इस तीर्थमें श्राद्ध और पिण्डदान करनेवाला पुरुष अपने पितरोंको विष्णुलोकमें पहुँचा देता हैं। गोष्पद तीर्थमें जो एक ब्राह्मणको भोजन कराता है, उसे कोटि ब्राह्मणोंको भोजन देनेका पुण्य मिलता है।

पूर्वकालमें वेन नामक राजा हो गया है। वह मृत्युकी कन्याका पुत्र था। अतः मातामहके दोषसे उसमें भी क्रूरतापूर्ण विचार आ गया। उसने अपने धर्मको पीछे छोड़कर पापमें मन लगाया। वेद-शास्त्रोंका उल्लंघन करके वह अधर्ममें तत्पर हो गया। उसका विनाशकाल उपस्थित था; इसलिये उसकी ऐसी बुद्धि हुई कि 'मैं ही सब यज्ञों और श्रेष्ठ ब्राह्मणोंके द्वारा स्तवन और पूजन करने योग्य हूँ।' इस निश्चयके द्वारा धर्मका उल्लंघन करके वह प्रजाजनोंको पीड़ा देने लगा। उसका यह बर्ताव देख मरीचि आदि महर्षि कुपित होकर बोले—'वेन! तुम अधर्म न करो। तुम जो कुछ करते हो, वह सनातन धर्म नहीं है। तुमने राजसिंहासनपर बैठते समय पहले यह प्रतिज्ञा की है कि 'मैं प्रजाजनोंका पालन करूँगा।' परंतु अब इसके विपरीत आचरण करते हो।'

महर्षियोंके यों कहनेपर दुर्बुद्धि वेन हँसकर बोला—'मेरे सिवा कौन धर्मकी सृष्टि करनेवाला है। पराक्रम, शास्त्रज्ञान, तपस्या और सत्यके द्वारा मेरी समानता करनेवाला इस भूतलपर कौन है। तुमलोग मुझे धर्मकी उत्पत्तिका स्थान समझो। मैं चाहूँ तो इस पृथ्वीको जला सकता हूँ, संसारकी सृष्टि कर सकता हूँ और सबका संहार भी कर सकता हूँ।'

गर्व और उद्दण्डतासे मोहित हुए वेनको जब वे किसी प्रकार समझानेमें सफल न हुए, तब सभी महर्षियोंने कुपित हो अथर्ववेदीय आभिचारिक मन्त्रके प्रयोगसे महाबली वेनको मारकर उसकी बायीं भुजाका मन्थन किया। उससे एक छोटा-सा काले रंगका पुरुष पैदा हुआ। वह भयभीत हो हाथ जोड़कर सामने खड़ा हो गया। उसकी

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

ओर देखकर मुनियोंने कहा—'निषीद (बैठ जाओ)।' इससे वह निषाद कहलाया और निषादवंशका प्रवर्तक हुआ। उससे तुम्बर और खस आदि अन्य जो धीवर जातियाँ उत्पन्न हुईं, उन्होंने विन्ध्यगिरिको अपना निवास स्थान बनाया; फिर उन महर्षियोंने वेनके दाहिने हाथको अरणीकी भाँति मथा। इससे सूर्य और अग्निकी भाँति पृथु पैदा हुए। उनका शरीर बड़ा तेजस्वी था। उन्होंने लोकरक्षाके लिये आजगव नामक धनुष, सर्पोंके समान बाण, खड्ग तथा कवच धारण किया। उनके प्रकट होनेपर सब प्राणी हर्षमें भर गये। वेन स्वर्गलोकको चला गया। तदनन्तर नदियाँ और समुद्र भाँति-भाँतिके रत्न लेकर राजा पृथुका अभिषेक करनेके लिये उपस्थित हुए। ऋषियों और देवताओंके साथ भगवान् ब्रह्माजी भी आये। आंगिरस देवताओंने प्रतापी राजा पृथुको राजपदपर अभिषिक्त किया। उनके राज्यमें पृथ्वी बिना जोते-बोये ही अन्न पैदा करती थी। चिन्तन करनेमात्रसे ही मन्त्र सिद्ध हो जाते थे। सभी गौएँ कामधेनु थीं और वृक्षोंके एक-एक पत्तेसे मधुकी प्राप्ति होती थी। राजा पृथुको देखकर प्रसन्न हुए महर्षियोंने प्रजाजनोंसे कहा—'ये वेननन्दन राजा पृथु तुम सब लोगोंको जीविका प्रदान करेंगे।' यह सुनकर प्रजाओंने महाभाग पृथुका स्तवन किया और कहा—'आप महर्षियोंके कथनानुसार हमारे लिये आजीविकाकी व्यवस्था करें।' तब बलवान् राजा पृथुने प्रजाकी रक्षाकी इच्छासे धनुष-बाण लेकर पृथ्वीपर आक्रमण किया। पृथ्वी उनके भयसे थर्रा उठी और गायका रूप धारण करके भागी। पृथुने भी उसका पीछा किया। अन्तमें वह उन्हींकी शरणमें आयी और हाथ जोड़कर बोली—'राजन्! मेरे बिना तुम प्रजाको कैसे धारण करोगे? मेरे ऊपर ही सम्पूर्ण लोक स्थित हैं। मैं ही इस जगत्को धारण करती हूँ। मेरे बिना सारी प्रजा नष्ट हो जायगी। अतः तुम्हें मेरा वध नहीं करना चाहिये। महीपते! क्रोध छोड़ो। मैं तुम्हारी आज्ञाके अनुकूल चलूँगी। तुम्हें धर्मका त्याग नहीं करना चाहिये।'

पृथ्वीकी यह बात सुनकर धर्मात्मा एवं उदार राजा पृथुने अपने क्रोधको रोका और इस प्रकार कहा—'जो अपने या पराये एकके हितके लिये स्वार्थवश बहुत-से प्राणियोंका वध करता है, उसे पाप लगता है। यदि किसी एकको मार देनेसे बहुत लोग सुखी हो जाते हों तो उसके मारनेपर पातक नहीं लगता। अतः वसुन्धरे! यदि तू मेरी आज्ञासे संसारका हित नहीं करेगी तो मैं प्रजाके लिये तेरा वध कर डालूँगा। मेरी आज्ञाके विपरीत चलनेवाली तुझ वसुधाको बाणोंसे मारकर मैं स्वयं अपने शरीरको विशाल बनाकर समस्त प्रजाको धारण करूँगा; अतः तू मेरी आज्ञासे समस्त प्रजाको जीविका प्रदान कर; क्योंकि ऐसा करनेमें तू समर्थ है।'

राजा पृथुके इस प्रकार कहनेपर पृथ्वीने उत्तर दिया—'राजन्! मैं यह सब करूँगी। तुम मेरे लिये बछड़ेकी कल्पना करो। जिसके प्रति वत्सल होकर मैं दूधके रूपमें अन्न प्रदान करूँ। इसके सिवा मुझे समतल बनाओ, जिससे मैं अपने दूधको सर्वत्र फैला सकूँ।'

तब राजा पृथुने धनुषकी कोटिसे पर्वतों और शिलाखण्डोंको उखाड़कर एक जगह किया और चाक्षुष मनुको बछड़ा बनाकर उन्होंने अपने हाथमें अन्नोंको दुहा। तदनन्तर चन्द्रमा बछड़ा हुए, बृहस्पति दुहनेवाले बने, गायत्री आदि छन्द दुग्धपात्र हुए और तपस्या एवं सनातन ब्रह्म उन्हें दुग्धरूपमें प्राप्त हुआ। फिर इन्द्र आदि देवताओंने सुवर्णमय पात्र लेकर इस पृथ्वीको दुहा। उस समय इन्द्र बछड़ा और सूर्य दुहनेवाले हुए। उनका दूध अमृतमय था। इसी प्रकार पितरोंने भी चाँदीके पात्रमें अपनी तृप्तिके लिये सुधारूप दुग्धका दोहन किया। उनके लिये वैवस्वत मनु बछड़ा और अन्तक दुहनेवाले थे। असुरोंने लोहेके पात्रमें मायाशक्तिका दोहन किया। उस समय दूध

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

दुहनेवाला द्विमूर्धा और बछड़ा विरोचन था। उस मायारूप दूधसे ही दैत्य आज भी मायावी हैं। नागोंने तक्षकको बछड़ा बनाकर तूँबेके पात्रमें विषरूपी दूध दुहा। उस समय वासुकि दोग्धा थे। इसीलिये सर्प बड़े विषैले होते हैं। यक्षों और पुण्यजनोंने कुबेरको बछड़ा बनाकर कच्चे पात्रमें अन्तर्धान-शक्तिका दोहन किया। उनके दोग्धा थे रजतनाग। राक्षसों और पिशाचोंने भी पृथ्वीसे कपालरूपी पात्रमें रक्तमय दूधका दोहन किया। उनकी ओरसे सुमाली बछड़ा था और ब्रह्मोपेत कुबेर दोग्धा। गन्धर्वों और अप्सराओंने चित्ररथको बछड़ा बनाकर कमलके पात्रमें उत्तम गन्धका दोहन किया। मुनिपुत्र रुचि उनकी ओरसे दोग्धा हुए थे। पर्वतोंने पृथ्वीसे मूर्तिमयी ओषधियों तथा भाँति-भाँतिके रत्नोंको दुहा। उनका बछड़ा हिमालय, दुहनेवाला मेरुगिरि तथा पात्र हिमालय था। वृक्ष और लता आदि वनस्पतियोंने पलाशका पात्र लेकर पृथ्वीको दुहा। कटनेपर पुनः अंकुरित हो जाना, यही उनका दूध था। खिला हुआ शालवृक्ष उनका दोग्धा और पाकड़का वृक्ष उनका बछड़ा था।

इस प्रकार समस्त लोकोंके हितके लिये राजा पृथुने सबका धारण-पोषण करनेवाली इस पृथ्वीका दोहन किया। उन्होंने धर्मसे भूतलवासियोंका रंजन किया, इसलिये उन्हें 'राजा' कहा गया। तभीसे इस पृथ्वीपर राजा शब्दकी प्रसिद्धि हुई।

पृथुके गोष्पद तीर्थमें श्राद्ध-यज्ञ करनेसे वेनको स्वर्गप्राप्ति

महादेवजी कहते हैं—पार्वती! राज्य पाकर राजा पृथुने सोचा, 'मेरे पिता बड़े अधर्मी थे, उन्होंने यज्ञ आदिका उच्छेद कर डाला था; अतः उन्हें किस लोककी प्राप्ति हुई है, इसका ज्ञान मुझे कैसे हो? वे ब्राह्मणोंके द्वारा मारे गये हैं। उनकी क्रिया किस प्रकार करनी चाहिये?' इस प्रकार सोच-विचारमें पड़े हुए राजा पृथुके समीप देवर्षि नारद आये। राजाने उन्हें आसन देकर प्रणाम किया और पूछा—'भगवन्! आप सब संसारके शुभ-अशुभको जानते हैं, मेरे पिता बड़े दुराचारी और देवताओं तथा ब्राह्मणोंके निन्दक थे। उन्हें शुभ या अशुभ—किस स्थानकी प्राप्ति हुई है?'

उन्हें शुभ या अशुभ किस स्थानकी प्राप्ति हुई है, नारदजीने दिव्य दृष्टिसे यह जानकर कहा—'राजन्! जहाँ जल और वृक्षोंसे रहित मरुप्रदेश है, वहाँ म्लेच्छोंके बीचमें उत्पन्न होकर तुम्हारे पिता यक्ष्मा और कुष्ठ रोगसे पीड़ित हैं।'

नारदजीकी यह बात सुनकर राजा पृथुने विचार किया कि 'संसारमें पुत्र वही कहलाता है, जो पिताका उद्धार करे। मेरे द्वारा किस प्रकार पिताजी पापमुक्त हो सकेंगे?' यह सोचकर उन्होंने पुनः नारदजीसे पूछा—'भगवन्! किस कर्मसे मेरे पिताकी मुक्ति होगी?'

नारदजीने कहा—राजन्! प्रधान-प्रधान तीर्थोंकी यात्रा करो। इससे तुम्हारे पिताका मोक्ष होगा।

नारदजीका यह वचन सुनकर राजा पृथुने राज्यका सारा भार मन्त्रीके ऊपर रख दिया और स्वयं तीर्थसेवनके लिये निकले। अनेक तीर्थोंकी यात्रा करके वे प्रभासक्षेत्रमें आये। उस तीर्थका माहात्म्य जाननेवाले ब्राह्मणोंको आगे करके महाराज पृथु न्यंकुमती नदीके समीप गये। वहाँ ब्राह्मणोंने उन्हें प्रेतशिलामें स्थित पदरूप तीर्थका दर्शन कराया। उस विमल तीर्थका दर्शन करके राजाके नेत्र आश्चर्यसे खिल उठे। उन्होंने यज्ञोंकी सिद्धिके लिये कुण्डों, वेदियों तथा मण्डपोंका निर्माण किया। तदनन्तर पर्याप्त दक्षिणावाला यज्ञ विधिपूर्वक प्रारम्भ हुआ। राजा पृथुको तेजस्वी पितरोंने प्रत्यक्ष दर्शन दिया और श्राद्ध ग्रहण करके सन्तुष्ट होकर कहा—'राजन्! तुम धन्य हो, पुण्यस्वरूप हो और हम तीनों—तुम्हारे

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

पिता, पितामह और प्रपितामह भी परम धन्य हैं, जिन्हें इस गोष्पद तीर्थमें श्राद्ध करके तुमने तार दिया।' यों कहकर वेनसहित सब पितर विमानपर बैठे और स्वर्गलोकको चले। जाते समय वेनने कहा—'राजन्! इधर मैं चार जन्म ले चुका। पहले जन्ममें कोढ़ी था, दूसरेमें पापी हुआ, तीसरेमें भी दुराचारी ही था और चौथेमें उच्छिष्ट-भोजी चाण्डाल हुआ। आज मैं सब पापोंसे मुक्त होकर स्वर्गलोकको जाता हूँ। महाभाग! अब तुम जाओ और चिरकालतक राज्य भोगो। पुत्रके द्वारा पितरोंके लिये जो कुछ किया जाता है, वह सब तुमने सफल कर दिया।'

पिताकी यह बात सुनकर राजा पृथु कुटुम्बियोंसहित बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने भूमि और सुवर्ण आदि दान देकर ब्राह्मणोंको सन्तुष्ट किया। संसारमें कोई ऐसी देने योग्य वस्तु नहीं, जिसका उन्होंने वहाँ दान न किया हो। इस प्रकार पितरोंका प्रत्यक्ष दर्शन करानेवाला उस तीर्थका प्रभाव देखकर राजा अपनी राजधानीको चले गये। सारी पृथ्वीका राज्य भोगकर देहत्यागके पश्चात् उन्होंने दिव्य लोक प्राप्त किया।

गोष्पद तीर्थमें स्नान करके यत्नपूर्वक वेदज्ञ ब्राह्मणोंको निमन्त्रित करे और विधिपूर्वक श्राद्धमें उन्हें भोजन कराये। पितरोंकी तृप्ति चाहनेवाले पुरुषको वहाँ पिताका श्राद्ध अवश्य करना चाहिये। इसके लिये वहाँ किसी तिथि, नक्षत्र, पर्व और मास आदिका नियम नहीं है। वहाँ सदा श्रद्धायुक्त चित्तसे यात्रा करनी चाहिये। किसी विशेष कालका वहाँके लिये नियम नहीं है।

नारायणगृह तथा जालेश्वरलिंगकी महिमा, आपस्तम्ब और नाभागकी कथा, गौओं और संतोंका माहात्म्य

महादेवजी कहते हैं—पार्वती! गोष्पदके दक्षिण समुद्रतटपर नारायणगृह है, जिसमें साक्षात् विष्णु निवास करते हैं। वे सत्ययुगमें सुवर्णमय, त्रेतामें रत्नमय, द्वापरमें रजतमय और कलियुगमें प्रस्तरमय विग्रहमें रहते हैं। सरस्वतीके पश्चिम तटपर स्वयं श्रीहरिके द्वारा निर्मित चक्रतीर्थ है। उसमें स्नान करके मनुष्य ब्रह्महत्याका नाश कर देता है। भगवान् विष्णु जब दैत्योंका विनाश करते हैं, तब विश्रामके लिये उस घरमें स्थित होते हैं। इसलिये इस भूतलपर वह नारायणगृहके नामसे प्रसिद्ध है। वहाँ सत्ययुगमें भगवान् जनार्दनके नामसे प्रसिद्ध होते हैं, त्रेतामें उनका नाम मधुसूदन होता है, द्वापरमें उन्हें पुण्डरीकाक्ष कहते हैं और कलियुगमें वे नारायण कहलाते हैं। इस प्रकार चारों युगोंमें श्रीविष्णु धर्मकी स्थापना करके उस स्थानपर आते हैं। जो एकादशीको निराहार रहकर उन नारायणदेवका दर्शन करता है, वह मृत्युके पश्चात् उनके आनन्दमय अविनाशी धामको प्राप्त होता है।

न्यंकुमतीके किनारे उत्तम कुबेरनगर है। उससे अग्निकोणमें कोटीश्वरलिंग है। कुबेरसे पूर्व दिशामें बालार्केश्वर हैं और उत्तर दिशामें अम्बिकास्थान है। वहाँ कुण्डमें स्नान करनेसे ब्रह्महत्याका नाश होता है। बालार्केश्वर और अम्बिकाके दर्शनसे वाजपेय यज्ञका फल मिलता है। कुबेरनगरमें सैकड़ों तीर्थ और शिवलिंग हैं। उनका दर्शन करके मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है।

देविका नदीके तटपर जालेश्वरलिंग है, जिसके दर्शनसे ब्रह्महत्या नष्ट हो जाती है। पूर्वकालमें आपस्तम्ब नामके एक श्रेष्ठ महर्षि हो गये हैं। वे प्रभासक्षेत्रमें जाकर देविका नदीके जलके भीतर रहने लगे और वहाँ भगवान् शिवका ध्यान करते हुए काष्ठकी भाँति स्थित हो गये।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

तदनन्तर एक समय मछलियोंसे जीविका चलानेवाले धीवर वहाँ आये। उन्होंने वहाँ एक महाजाल बिछाकर उसे बलपूर्वक बाहरकी ओर खींचा। जालके साथ आपस्तम्बजी भी खिंच आये। तपस्यासे उद्दीप्त उन महर्षिको देखकर सब केवट भयसे व्याकुल हो उठे और चरणोंमें मस्तक रखकर उन्हें प्रणाम करके बोले—'मुने! हमने अनजानमें यह पाप कर डाला है; आप कृपा करके हमें क्षमा कर दें और इस समय आपका जो प्रिय कार्य हो, उसे करनेके लिये आज्ञा दीजिये।' मुनिने देखा अज्ञानवश यहाँ बहुत बड़ा संहार किया गया है; तथापि वे बड़े भारी क्षमाशील थे। उन्होंने दुखी होकर कहा—'यदि ज्ञानियोंका भी चित्त केवल अपने ही लाभमें रत है, ज्ञानी भी यदि स्वार्थका आश्रय लेकर ही ध्यान करते हैं, तब इस संसारके दुःखातुर प्राणी कहाँ सुख पायँगे। जो मनुष्य एकान्ततः दुःख भोगना चाहता है, उसे मुमुक्षु पुरुष पापीसे भी पापी कहते हैं। मैं कौन-सा ऐसा उपाय करूँ, जिससे समस्त दुःखी प्राणियोंके अन्तःकरणमें प्रविष्ट होकर उनके सब दुःखोंको अकेला ही भोगूँ? यदि मेरा कोई शुभकर्म है तो वह दीन-दुःखी प्राणियोंको प्राप्त हो और उन सबने जो दुष्कर्म किया हो, वह सब-का-सब मुझे मिल जाय। संसारके अंधे, दीन-दुखी, अंगहीन, अनाथ तथा रोगी मनुष्योंको देखकर जिसके हृदयमें दया नहीं आती, वह मेरे विचारसे राक्षस है। जो समर्थ होकर भी प्राण-संकटमें पड़े हुए भयविह्वल प्राणियोंकी रक्षा नहीं करता, वह पाप भोगता है। अतः मैं इन दीन-दुःखी भयभीत जन्तुओंको छोड़कर एक पग भी कहीं नहीं जाऊँगा। फिर स्वर्गलोककी तो बात ही क्या है।'

महर्षिकी यह बात सुनकर वे मल्लाह बहुत घबराये। उन्होंने वहाँका सब वृत्तान्त राजा नाभागसे जाकर कहा। नाभाग भी यह समाचार सुनकर ब्रह्मनन्दन आपस्तम्बजीको देखनेके लिये तुरंत वहाँ आये। उनके साथ मन्त्री और पुरोहित भी थे। उन देवकल्प मुनिका भलीभाँति पूजन करके राजाने कहा—'भगवन्! बताइये, मैं आपकी क्या सेवा करूँ?'

आपस्तम्बजीने कहा—ये दुःखसे जीविका चलानेवाले केवट मुझको और इन जलजन्तुओंको जलसे निकालनेके कारण बड़े भारी परिश्रमसे थक गये हैं। इनके परिश्रमका जो उचित मूल्य समझो, वह दे दो।

नाभाग बोले—भगवन्! मैं निषादोंको इनके परिश्रमका मूल्य एक लाख स्वर्णमुद्रा दूँगा।

आपस्तम्बने कहा—राजन्! तुम्हें मुझे एक लाखके मूल्यसे नहीं बाँधना चाहिये। मेरे योग्य जो मूल्य हो, वह दो। अपने मन्त्रियोंके साथ सलाह कर लो।

नाभाग बोले—द्विजश्रेष्ठ! इन निषादोंको एक करोड़ मूल्य दे दिया जाय। यदि यह भी उचित मूल्य न हो तो और भी दिया जा सकता है।

आपस्तम्बने कहा—राजन्! मैं एक करोड़ या इससे अधिक मूल्यमें बेचनेयोग्य नहीं हूँ। मेरे योग्य मूल्य दो। जाओ, ब्राह्मणोंके साथ सलाह कर लो।

नाभाग बोले—मेरा आधा या समूचा राज्य निषादोंको दे दिया जाय। मैं इसे ठीक मूल्य समझता हूँ। आपकी क्या राय है?

आपस्तम्बने कहा—भूपाल! तुम्हारा आधा या समूचा राज्य भी मेरे योग्य नहीं है। मेरे योग्य मूल्य दो। समझमें न आये तो ऋषियोंके साथ विचार करो।

आपस्तम्बजीका यह वचन सुनकर राजा नाभाग अपने मन्त्री और पुरोहितोंके साथ दुःखसे आतुर एवं चिन्तित हो गये। इसी समय महातपस्वी महर्षि लोमश वहाँ आ गये और राजा नाभागसे बोले—'तुम डरो मत, मैं मुनिको सन्तुष्ट कर लूँगा।'

नाभाग बोले—महाभाग! इन महात्मा मुनिका मूल्य बताइये और कुल, कुटुम्ब एवं बन्धु-

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

बान्धवोंसहित मुझ सेवककी इनके कोपसे रक्षा कीजिये। ये साक्षात् भगवान् रुद्र हैं। चराचर प्राणियोंसहित तीनों लोकोंको भस्म कर सकते हैं। फिर मुझ विषयासक्त मानवकी तो बिसात ही क्या है।

लोमशजीने कहा—महाराज! तुम तो स्तुत्य हो, ये द्विजश्रेष्ठ भी सम्पूर्ण जगत्के लिये पूजनीय हैं और गौएँ दिव्य होती हैं; अतः इनके मूल्यमें एक गौ दे दो।

यह सुनकर राजा नाभाग मन्त्री और पुरोहितोंसहित बहुत प्रसन्न हुए और आपस्तम्ब मुनिसे बोले—'भगवन्! उठिये, उठिये। अब मैंने निस्सन्देह आपको खरीद लिया। मुनिश्रेष्ठ! यह गौ ही आपका योग्यतम मूल्य है।'

आपस्तम्बने कहा—राजन्! लो, अब मैं अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक उठता हूँ। अबकी बार तुमने ठीक मूल्यपर मुझे खरीदा है। मैं गौओंसे बढ़कर परम पवित्र मूल्य दूसरा कुछ नहीं देखता। गौओंकी परिक्रमा तथा निरन्तर पूजा करनी चाहिये। वे मंगल-निकेतन हैं, स्वयम्भू ब्रह्माजीने इन गौओंकी दिव्य सृष्टि की है। ब्राह्मणोंके स्थान, गृह तथा देवताओंके मन्दिर भी जिनके गोबरसे शुद्ध होते हैं, उन गौओंसे बढ़कर दूसरा कौन प्राणी है। गौओंका मूत्र, गोबर, दूध, दही और घी—ये पाँचों पवित्र हैं और सम्पूर्ण जगत्को पवित्र करते हैं। निम्नांकित मन्त्रका सदा जप करना चाहिये—

गावो ममाग्रतो नित्यं गावः पृष्ठत एव च।
गावो मे हृदये चैव गवां मध्ये वसाम्यहम्॥

'गौएँ मेरे आगे रहें। गौएँ सदा मेरे पीछे भी रहें। गौएँ मेरे हृदयमें रहें। मैं सदा गौओंके बीचमें निवास करूँ।'

जो मनुष्य पवित्र एवं जितेन्द्रिय होकर इस विशुद्ध मन्त्रका जप करता है, वह सब पापोंसे मुक्त होता और स्वर्गलोकमें जाता है। प्रतिदिन गौओंको भक्तिपूर्वक ग्रास समर्पित करना चाहिये। जो उन्हें गोग्रास दिये बिना स्वयं भोजन करता है, वह दुर्गतिको प्राप्त होता है। जो प्रतिदिन गोग्रास देता है, वह उतनेसे ही अग्निहोत्र, पितृतर्पण और देवपूजन—सब कुछ कर लेता है। गोग्रास देनेका मन्त्र इस प्रकार है—

सौरभेयी जगत्पूज्या देवी विष्णुपदे स्थिता।
सर्वमेतन्मया दत्तं मया दत्तं प्रतीच्छतु॥

'सम्पूर्ण जगत्के लिये पूजनीय सौरभेयी देवी भगवान् विष्णुके गोलोकधाममें स्थित हैं। मैंने यह सब अन्न उनकी सेवामें समर्पित किया है। मेरे दिये हुए इस आहारको वे ग्रहण करें।'

गोपुत्रों (बैलों)-की रक्षा करनेसे, गौओंको सहलाने और खुजलानेसे तथा दुर्बल एवं पीड़ितोंकी रक्षा करनेसे मनुष्य स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है। आदि, मध्य और अन्त—तीनों कालोंमें गौओंकी स्थिति बतायी गयी है। वे देवताओंके दूध, घी एवं अमृतकी सदा रक्षा करती हैं; इसलिये उनका दान करना चाहिये। उनकी नित्य पूजा करनी चाहिये। वे स्वर्गमें पहुँचानेके लिये सीढ़ीके तुल्य बतायी गयी हैं।

इस प्रकार गौओंका उत्तम माहात्म्य सुनकर वे निषाद महात्मा आपस्तम्बके चरणोंमें प्रणाम करके बोले—'संतोंका वार्तालाप, दर्शन, स्पर्श, कीर्तन तथा स्मरण—ये सभी निश्चय ही पवित्र करनेवाले हैं—ऐसी बात सुनी गयी है। मुने! हमारे साथ आपने सम्भाषण किया और हमें आपका दर्शन प्राप्त हुआ। अब हमपर अनुग्रह कीजिये और हमारी दी हुई यह गौ ग्रहण कीजिये।'

आपस्तम्ब बोले—निषादो! यह मैं तुमसे गोदान लेता हूँ। तुम पापरहित होकर जलसे निकाले हुए इन मत्स्योंके साथ ही स्वर्गलोकको जाओ। प्रतिग्रहरूप निन्दित कर्मसे भी दूसरे प्राणियोंकी प्रसन्नताका कार्य करके यदि मैं नरकमें पड़ूँगा तो उसे भी स्वर्ग ही समझूँगा। मैंने मन, वाणी, शरीर और क्रियाद्वारा जो कुछ भी पुण्यकर्म किया हो, उससे समस्त दुःखातुर प्राणी शुभ गतिको प्राप्त हों।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

तदनन्तर उन विशुद्ध चित्तवाले महर्षिके प्रसादसे वे निषाद उनकी बात पूरी होते ही मत्स्योंसहित स्वर्गलोकमें चले गये। मछलियों और मछलीमारोंको इस प्रकार स्वर्गलोकमें जाते देख मन्त्रियों और सेवकोंसहित राजा नाभाग विस्मित होकर बोले—'कल्याणकी इच्छा रखनेवाले पुरुषोंको सदैव संतोकी सेवा करनी चाहिये। साधु पुरुष पुण्यतीर्थोंके जलके समान होते हैं। इस लोकमें यदि क्षणभर भी उनकी उपासना की जाय तो वह निष्फल नहीं होती। संतोंके साथ बैठना चाहिये। संतोंके साथ उत्तम कथा-वार्ता करनी चाहिये। जिस सभामें संत बैठे हों, वहाँ बैठना चाहिये। दुष्ट पुरुषोंके साथ कुछ भी नहीं करना चाहिये। संत समागमसे ही ये मत्स्य और मल्लाह पुण्यात्मा मनुष्योंकी भाँति स्वर्गलोकमें चले गये।'

तदनन्तर मुनिवर आपस्तम्ब और महामुनि लोमश राजा नाभागको नाना प्रकारके अभीष्ट वर माँगनेके लिये प्रेरित करने लगे। तब राजाने अत्यन्त दुर्लभ धर्मबुद्धिको वरण किया, अर्थात् यह वर माँगा कि मेरी बुद्धि सदा धर्ममें ही लगी रहे। वे दोनों मुनि 'तथास्तु' कहकर प्रसन्नतापूर्वक राजाकी प्रशंसा करते हुए बोले—'राजेन्द्र! तुम धन्य हो, जो तुम्हारी बुद्धि धर्ममें लगी है। मनुष्यमात्रके लिये धर्म अत्यन्त दुर्लभ है। विशेषतः राजाओंके लिये तो वह परम दुर्लभ है। यदि राजा मदोन्मत्त होकर स्वधर्मका परित्याग न करे तो संसारमें उससे श्रेष्ठ कौन पुरुष होगा। राजाओंको सदा जन्म लेना पड़ता है—यह ध्रुव है। उन्हें सदा मोह होता—यह भी ध्रुव है और मोहसे नरककी प्राप्ति भी ध्रुव है। अतएव बुद्धिमान् पुरुष राज्यकी निन्दा करते हैं। विषय-लोलुप मनुष्य राज्यको अधिक महत्त्व देते हैं; किंतु मनीषी मानव उसीको नरकके समान देखते हैं, अतः महाराज! यदि तुम अपने लिये सनातन गति चाहते हो तो कभी मद न करना; क्योंकि वह लोक-परलोक दोनोंका नाश करनेवाला है।'

यों कहकर वें दोनों महात्मा अपने-अपने आश्रमको चले गये। नाभागने भी वर पाकर प्रसन्नतापूर्वक नगरमें प्रवेश किया। पार्वती! इस प्रकार देविका नदीका प्रभाव बताया गया। मुनीश्वर आपस्तम्बने वहाँ शिवलिंगकी स्थापना की। वे निषादोंके जालमें पड़े थे, इसलिये उनके द्वारा स्थापित शिवलिंगका नाम जालेश्वर हुआ। चैत्र शुक्ला त्रयोदशीको जो वहाँ पितरोंके लिये पिण्डदान करता है, उसके उस श्राद्धका कभी अन्त नहीं होता।

~~~०~~~

चन्द्रेश्वर, कपिलेश्वर तथा नलेश्वरकी महिमा

महादेवजी कहते हैं—पार्वती! आशापुर विघ्नराजके स्थानसे दक्षिण एवं नैर्ऋत्यकोणमें थोड़ी ही दूरपर एक पापहारक चन्द्रेशलिंग है। वहीं अमृतकुण्ड और कुलकुण्ड भी हैं। जो उन कुण्डोंमें स्नान करके चन्द्रेश्वरकी पूजा करेगा, वह सहस्र वर्षोंतक तपस्या करनेका फल पायेगा। वहीं चन्द्रतड़ाग है, जिसका विस्तार सोलह धनुषका है।

वहाँसे परम उत्तम कपिलेश्वरलिंगका दर्शन करनेके लिये जाय। वह स्थान शशिभूषणसे पूर्व, कोटितीर्थसे पश्चिम, जरद्गवसे दक्षिण तथा समुद्रसे उत्तर है। यह कपिलक्षेत्र पुण्यहीन पुरुषोंके लिये दुर्लभ है। पूर्वकालमें महर्षि कपिलने वहाँ महेश्वरकी स्थापना करके दस हजार वर्षोंसे अधिक कालतक बड़ी भारी तपस्या की थी। उनके द्वारा वहाँ कपिलधारा नामकी दिव्य महानदी लायी गयी है। समुद्रमें आज भी उसका दर्शन होता है। जो कपिला नदीमें नहाकर कपिला गायका दान करता है, वह कोटि गोदानके फलका भागी होता है। यह सभी पापोंका एकमात्र प्रायश्चित्त बताया

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth
~~~

गया है। भादोंमासके कृष्णपक्षमें षष्ठी तिथिको यदि मंगलवार, रोहिणी नक्षत्र तथा व्यतीपात योग हो तो वह कपिला-षष्ठी कही जाती है। उस दिन कपिलक्षेत्रमें, अर्कस्थलमें तथा शुभ कपिलासंगममें मिट्टी और तिलोंके द्वारा स्नान करके सन्ध्या-वन्दन एवं जपके पश्चात् मनुष्य रक्तचन्दनमिश्रित जल एवं कनेरके फूलसे भगवान् सूर्यको अर्घ्य दे। अर्घ्यका मन्त्र इस प्रकार है—

नमस्त्रैलोक्यनाथाय उद्भासितजगत्त्रय।
तेजोरश्मे नमस्तुभ्यं गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते॥

'त्रिलोकीनाथ भगवान् सूर्यको नमस्कार है। तीनों लोकोंको प्रकाशित करनेवाले तेजोरश्मे! आपको नमस्कार है। बार-बार नमस्कार है। यह अर्घ्य ग्रहण कीजिये।'

तत्पश्चात् सूर्यदेवकी परिक्रमा करके कपिलेश्वरजीकी पूजा करे।

कपिलेश्वरसे ईशान तथा उत्तर दिशामें जरद्गवके द्वारा स्थापित जरद्गवेश्वरलिंग है। वहीं देवनदी अंशुमती बहती है। उसमें विधिपूर्वक स्नान करके जो पिण्डदान देता है, वह सौ कोटिसे भी अधिक वर्षोंतक पितरोंको तृप्त रखता है। चन्दन, पुष्प, पंचामृत तथा गुग्गुलकी धूपसे जरद्गवेश्वरकी पूजा करनी चाहिये। उन्हें दण्डवत्-प्रणाम तथा उनकी स्तुति भी करनी चाहिये। उनके समीप नाना प्रकारके भक्ष्य-भोज्य पदार्थोंद्वारा ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये। वहाँ एक ब्राह्मणको भोजन करानेसे कोटि ब्राह्मण-भोजन करानेका पुण्य होता है।

जरद्गवसे पूर्वदिशामें एक सौ अस्सी धनुषकी दूरीपर हाटकेश्वरलिंग है। वहीं दमयन्तीके पति राजा नलने नलेश्वर शिवकी स्थापना की है। उसका दर्शन और विधिपूर्वक पूजन करके मनुष्य कलिदोषसे छुटकारा पाता और युद्धमें विजयी होता है।

राजा गज और भद्रमुनिका संवाद, विभिन्न तीर्थोंकी महिमा और दामोदर-माहात्म्य

महादेवजी कहते हैं—पार्वती! स्वर्गकी इच्छा रखनेवाले ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र जिनके देवदुर्लभ दिव्य जलका सेवन करते हैं, उन गंगाजीके मुनिजनसेवित परममनोहर पवित्र तटपर गज नामके एक बलवान् राजा राज-काज छोड़कर स्नानके लिये आये। उनकी सती-साध्वी पतिव्रता पत्नी भी उनके साथ वहाँ आयी। दोनों दम्पति गंगाजीके किनारे रहने लगे। इस प्रकार वहाँ रहते हुए उनके दस हजार वर्ष बीत गये। तदनन्तर महायशस्वी भद्रमुनि जप-होमपरायण अनेक ब्राह्मणोंके साथ वहाँ आये। उन्होंने गंगाजीमें स्नान करके अपने शरीरका मल नष्ट किया, फिर समस्त भूत-प्राणियोंकी तृप्तिके लिये जल देकर भगवान् जनार्दनकी पूजा की। फिर ज्यों ही वे नदीके तटपर डेरा डालने लगे, त्यों ही उनकी दृष्टि राजा गजपर पड़ी। राजाने भी उन सबको देखा और आगे जाकर कहा—'पूजनीय महर्षियो! आपलोग मेरे घर पधारें। मेरी यशस्विनी पत्नी संगताके हाथसे पूजा ग्रहण करके जहाँ आपकी इच्छा हो, उस पुण्य पथपर जाइयेगा।'

राजाके इस प्रकार अनुरोध करनेपर वे महर्षि उनके भवनमें पधारे। उनको विचित्र आसन देकर राजाने उनके आगे हाथ जोड़े और भद्र मुनिसे कहा—'मुने! यह पृथ्वी धन-धान्यसे परिपूर्ण है, नगरी, पुरी, पर्वत, समुद्र, सरिता, सरोवर, ग्राम, गोकुल, श्रेष्ठ मनुष्य, रत्न तथा आकर आदिसे सुशोभित है। भोगमें आसक्त होकर परम ज्ञानसे विमुख रहनेवाले पुरुषोंके लिये इसका त्याग कठिन है। भोग-सम्पन्न पृथ्वी ही महाभयानक संसारमें पुनरावृत्ति करानेवाली

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

है। यहीं बार-बार पुरुष गिरते हैं। अतः जिस दान और तपस्याके अनुष्ठानसे मनुष्य निर्मल स्वर्गलोकको पाता है, उसका उपदेश कीजिये।'

भद्र बोले—राजेन्द्र! जो अपने भीतर विराजमान सच्चिदानन्दघन परमात्माको नहीं देखते, उनके लिये वाह्य तीर्थ जलसे भरे हुए जलाशयमात्र हैं और देवता पत्थर एवं मिट्टीकी मूर्तिमात्र हैं। यदि परमात्मतत्त्वका ज्ञान है, तभी तीर्थों और देवताओंके चिन्मय स्वरूपका दर्शन होता है। इस भूतलपर अनेक तीर्थ हैं, बहुत-से पुण्यमय देवमन्दिर हैं, बहुतेरी पुण्यसलिला पवित्र नदियाँ तथा पावन जलवाले समुद्र हैं। यह पृथ्वी स्थान-स्थानमें पग-पगपर बहुत पुण्य देनेवाली है। कृष्ण, विष्णु, हृषीकेश, शंखी, गदी, चतुर्भुज, महाबाहु, प्रभासवासी, दैत्यसूदन, वाराह, वामन, नरसिंह, बल, अर्जुन, श्रीराम, परशुराम, बलराम, पुरुषोत्तम, पुण्डरीकाक्ष, गदापाणि, राघव, शत्रुदमन, गोविन्द, जय, भूधर, जनार्दन, सुरेश, श्रीधर, हरि, योगीश्वर, कपिलेश्वरनाथ, श्वेतद्वीपपति, बदरिकाश्रमवासी नर-नारायण, पद्मनाभ, सुनाभ, हयग्रीव, द्विजनाथ, धरानाथ, शार्ङ्गपाणि, दामोदर, जगन्नाथ तथा सर्वपापहारी हरि—ये ही देवाधिदेव श्रीविष्णुके स्थान हैं। इनमेंसे जहाँ भी मनुष्य जाते हैं, वहीं सब पातकोंसे मुक्त हो जाते हैं। गंगा, यमुना, गोदावरी, शतद्रु, विन्ध्या, पयोधा, वरदा, चर्मण्वती, सरयू, गण्डकी, चन्द्रभागा, विपाशा, तथा शोणा—ये और दूसरी भी बहुत-सी सरिताएँ पुण्यमयी हैं। हिमवान् पर्वत भी पुण्य तीर्थ है। इन सबके नामोंका उच्चारण करनेमात्रसे समस्त पाप रसातलको चले जाते हैं। अगहनमें कान्यकुब्ज तीर्थमें निवास करके स्त्री और पुरुष शोकमुक्त होते हैं तथा स्वर्गलोकमें जाते हैं। यदि पौषमासकी पूर्णमासीको अर्बुदाचल (आबू)-में निवास करे तो मनुष्य पितरोंके साथ अरबों वर्षोंतक स्वर्गलोकमें आनन्द भोगता है। यदि गयामें माघमासकी पूर्णिमाको मनुष्य पितरोंका श्राद्ध करे तो वह भगवान् विष्णुके परमधाममें जाता है। जो फाल्गुनकी पूर्णिमाको एक रात हिमालयपर निवास करता है, वह श्रीहरिके उत्तम लोकमें जाता है। जो मनीषी पुरुष चैत्रकी पूर्णिमाको प्रभासक्षेत्रमें श्राद्ध करते हैं, वे अपने कुलमें उत्पन्न हुए पुरुषोंके साथ इस मर्त्यलोकमें जन्म नहीं लेते—मुक्त हो जाते हैं। जो वैशाखकी पूर्णिमाको अवन्तीपुरीके जलप्रिय तीर्थमें जल पीते हैं, वे परम गतिको प्राप्त होते हैं। जो ज्येष्ठकी पूर्णिमाको त्रिकूपमें श्राद्ध करते हैं, वे वैकुण्ठमें जाते हैं। श्रावणकी अमावास्या तथा पूर्णिमाको पूर्वसागरमें स्नान, दान, तप और श्राद्ध करनेवाला पुरुष शोकमुक्त हो जाता है। जो भाद्रपदमासमें प्रभासमें शशिभूषणका पूजन करता है, वह देवस्वरूप हो जाता है। जो आश्विनमासमें चन्द्रभागाके तटपर श्राद्ध और स्नान करता है, वह स्वर्गलोकमें निवास पाता है। जो अष्टाक्षर मन्त्र (**ॐ नमो नारायणाय**)-का जप करते हुए चार भुजाधारी नारायणका ध्यान करता है, वह वैकुण्ठधाममें जाता है। सब महीनोंमें कार्तिक श्रेष्ठ है, कार्तिकमें भी भीष्मपंचक श्रेष्ठ है, उसमें भी दामोदर-तीर्थके जलमें द्वादशी तिथिका स्नान और भी श्रेष्ठ है। दामोदरमें स्नान करके मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। दामोदर-तीर्थमें जिनकी जहाँ कहीं भी मृत्यु हो गयी है, वे श्रीहरिके श्रीविग्रहमें निवास करते हैं, संसारमें कभी जन्म नहीं लेते। सोमनाथके समीप उदयान्त नामक महान् पर्वत है; उसके पश्चिम भागमें रैवत पर्वत है, जहाँ कांचनशेखरा नदी बहती है। उस पर्वतमें लाल, सफेद, नील और कृष्ण धातुएँ हैं। उसमें कुछ पत्थर हाथीके समान आकारवाले हैं और दूसरे सुवर्णके सदृश हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा शूद्रोंके सेवक उस पर्वतका सदा सेवन करते हैं। बहुत-से पक्षी वहाँ चहकते रहते हैं। पशु-पक्षी, सर्प तथा कीट, पतंग आदि जो भी जीव वहाँ कालवश मृत्युको प्राप्त होते हैं, वे उत्तम विमानपर आरूढ़ हो

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

भगवान् विष्णुके धामको जाते हैं। उपर्युक्त नदी धरती फोड़कर पातालसे आयी है। इन्द्रने भी स्वर्गसे यहाँ आकर उत्तम यज्ञ किया और अतिशय उत्तम पद पाकर व्याधिहीन स्वर्गलोककी उपलब्धि की। कार्तिकमें राजा बलिने भी वहाँ आकर बहुत-से दान दिये हैं। हरिश्चन्द्र, शिबि, नल, नहुष, नाभाग तथा अम्बरीष आदिने भी वहाँ दुष्कर कर्म किये हैं। श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको नाना प्रकारके वस्त्र, छत्र तथा रसमिश्रित अन्न दान करके वे विष्णुलोकमें गये, जहाँसे फिर इस मर्त्यलोकमें पुनरावृत्ति नहीं होती। जो उस तीर्थमें ब्राह्मणोंको भक्तिपूर्वक पत्र, पुष्प, फल और जल दान करता है, वह जलशायी भगवान् श्रीहरिको प्राप्त होता है। जो भूखसे पीड़ित मनुष्यके लिये वहाँ एक पसर या मुट्ठीभर भी अन्न देता है, वह श्रेष्ठ विमानपर चढ़कर चन्द्रलोकसे भी ऊपर जाता है। दामोदरके आगे एक मासतक उपवास करनेपर मनुष्य दामोदरनगर (वैकुण्ठधाम)-को जाता है, जहाँसे फिर नहीं लौटता। जो दामोदरके आगे पाँच पत्थरका मन्दिर बनवाता है, वह भगवान् श्रीहरिके धाममें जाता है। जो स्त्री भगवान्का सुन्दर मन्दिर बनवाती है, वह विष्णुधामको जाती है। जो एक हजार पत्थरोंका बहुत सुन्दर मन्दिर बनवाता है, वह परब्रह्मको प्राप्त होता है। जो दामोदर-मन्दिरपर पचरंगी ध्वजा फहराता है, वह उसके तन्तुओंके बराबर दिव्य वर्षोंतक स्वर्गलोकमें निवास करता है। वहाँसे दो कोसपर वस्त्रपथ नामक उत्तम क्षेत्र है, जिसका दर्शन करनेसे सब पाप नष्ट हो जाते हैं और पुनरावृत्तिरहित परम धामकी प्राप्ति होती है। स्त्री या पुरुष, जो भी संसारबन्धनका नाश करनेवाले शिवका पूजन करते हैं, वे शिवलोकमें पूजित होते हैं।

भद्रकी यह बात सुनकर राजा गज कार्तिकी पूर्णिमाका तीर्थकृत्य करनेके लिये ऋग्, यजु और सामवेदके ज्ञाता ब्रह्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठ ब्राह्मणों, क्षात्रधर्मपरायण क्षत्रियों, दानपरायण वैश्यों तथा सेवाकुशल शूद्रोंको साथ लेकर उस तीर्थमें आये और अनेक प्रकारके दान दे अग्निमें होम करके अग्निष्टोम तथा अश्वमेध आदि यज्ञोंका अनुष्ठान किया। उस तीर्थमें कितने ही पुरुष गायत्री-मन्त्रका जप करते और कुछ लोग मन-ही-मन सावित्री एवं सरस्वतीका ध्यान करते थे। कितने ही ब्राह्मण ब्रह्माजीके द्वारा संकलित पवित्र वैदिक सूक्तोंका पाठ करते और दूसरे लोग द्वादशाक्षर (**ॐ नमो भगवते वासुदेवाय**) मन्त्रका जप करते थे। सब शास्त्रोंको देखकर और बार-बार उनपर विचार करके एकमात्र यही सिद्धान्त स्थिर किया गया है कि सदा भगवान् नारायणका ध्यान करना चाहिये।[१] महादेवजीके सिवा दूसरा कोई ऐसा नहीं है, जो गिरते हुएकी रक्षा करे। चन्द्रमा और सूर्य आदि ग्रह बार-बार जाकर लौट आते हैं, परंतु द्वादशाक्षर मन्त्रका चिन्तन करनेवाले भक्तजन आज भी नहीं लौटते।[२] जिसने 'हरि' इन दो अक्षरोंका एक बार भी उच्चारण कर लिया, उसने मोक्षधामतक पहुँचनेके लिये मानो कमर कस ली है।[३] एकभक्त व्रत, नक्तव्रत, अयाचितव्रत और उपवासव्रत—ये तथा और भी जो व्रत हैं, उनका भगवान् दामोदरके आगे अनुष्ठान करके मनुष्य कृतकृत्य हो जाते हैं। राजा गज ऋषियोंके साथ वहाँ बैठे हुए वार्तालाप कर ही रहे थे कि इतनेमें वहाँ सहस्रों विमान आ गये। वे पत्नी तथा देशवासियोंसहित विमानपर आरूढ़ हो अनामय पदको प्राप्त हुए। जो मानव सदा इस प्रसंगको पढ़ता अथवा सुनता है, वह सब पापोंसे मुक्त होकर विष्णुधामको जाता है।

~~o~~

१- आलोक्य सर्वशास्त्राणि विचार्य च पुनः पुनः। इदमेकं सुनिष्पन्नं ध्येयो नारायणः सदा॥ (स्क० पु०, प्र० ख० ३१७। १४)
२- गत्वा गत्वा निवर्तन्ते चन्द्रसूर्यादयो ग्रहाः। अद्यापि न निवर्तन्ते द्वादशाक्षरचिन्तकाः॥ (स्क० पु०, प्र० ख० ३१७। १६)
३- सकृदुच्चरितं येन हरिरित्यक्षरद्वयम्। बद्धः परिकरस्तेन मोक्षाय गमनं प्रति॥ (स्क० पु०, प्र० ख० ३१७। १८)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

तीर्थमें पूजन, श्राद्ध और दानकी महिमा; गृहस्थके लिये आचरणीय शिष्टाचार, दान एवं श्राद्धका उपदेश

सारस्वत मुनि कहते हैं—जो गंगाजल, मधु, घृत, कुंकुम, अगर, चन्दन, गुग्गल, बिल्वपत्र, गूमका फूल आदि आवश्यक वस्तुओंका भार कंधेपर रखकर पैदल तीर्थयात्रा करता है और तीर्थमें स्नान करके शिव, विष्णु तथा ब्रह्माजीका दर्शन करता एवं उन्हें पूजा चढ़ाता है, वह सब बन्धनोंसे मुक्त हो प्रलयकालपर्यन्त भगवान् शिवका पार्षद बना रहता है। जो स्त्री, पुत्र, मित्र, भाई तथा सज्जन पुरुषोंके साथ तीर्थयात्रा करता है तथा तीर्थमें वहाँके प्रधान देवताका चिन्तन करता है, वह उत्तम गतिको पाता है। सुन्दर देवमूर्तिका निर्माण करके उसे रथपर स्थापित करे। फिर चन्दन, अगर, कपूर, कुंकुम, भाँति-भाँतिके पुष्प, धूप, दीप, गीत, नृत्य और वाद्य आदिके द्वारा उसकी पूजा करे। जो यों करता है, वह जन्मभरके पापोंको भस्म करके तेजोमय, सर्वव्यापी तथा विश्वकी उत्पत्ति करनेवाले भगवान् पुराणपुरुषका दर्शन करता और मुक्त हो जाता है। तीर्थमें स्नान करके सन्ध्यावन्दन, श्राद्ध-तर्पण आदि करनेके विषयमें ब्राह्मणकी आज्ञा लेनी चाहिये और उसकी बात माननी चाहिये। तदनन्तर दर्भ, तिल और हविष्यान्नका श्रद्धापूर्वक प्रयोग करना चाहिये। तीर्थमें अगस्त्य, भृंगराज एवं कमलके पुष्प, कपूर, अगर, चन्दन, कुंकुम और तुलसीदल आदिको संकल्पपूर्वक चढ़ानेपर अनन्त पुण्यकी प्राप्ति होती है। तीर्थभूमिमें ताम्बूल, फल, नैवेद्य, तिल, कुशा और जलके साथ बिल्वके बराबर पिण्ड देना चाहिये। अमावास्या, पूर्णिमा, माता-पिताकी निधन-तिथि, गजच्छाया और त्रयोदशी तिथिको एवं श्राद्धयोग्य द्रव्य और श्रेष्ठ ब्राह्मण प्राप्त होनेपर पितरोंके ऋणसे मुक्त होनेके लिये घरपर श्राद्ध करना चाहिये। सागरगामिनी नदीके तटपर श्राद्ध किया जाय तो घरसे सौगुना अधिक फल होता है। मनुष्य यदि प्रभास, पुष्कर, गया, पिण्डतारक प्रयाग, गोमती, भव तथा दामोदरके सम्मुख एवं नर्मदा आदि तीर्थोंमें श्राद्ध करे तो उसके पितर सब पापोंसे मुक्त हो उत्तम गतिको प्राप्त होते हैं और श्राद्धकर्ता भी उत्तम सन्तान पाकर तथा उत्तम भोग भोगकर अन्तमें दिव्य विमानपर आरूढ़ हो स्वर्गलोकको जाता है।

काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद आदि, माया, मात्सर्य, चुगली, अविवेक, अविचार, अहंकार, स्वच्छन्दता, चपलता, लोलुपता, अन्यायसाधन, आयास, प्रमाद, द्रोह, दुस्साहस, आलस्य, दीर्घसूत्रता, परस्त्रीगमन, अत्यधिक आहार, सर्वथा आहारका त्याग, शोक तथा चोरी इत्यादि दोषोंको त्यागकर तो घरमें सदाचारपूर्वक रहता है, वह मनुष्य इस भूमिका, देशका तथा नगरका भूषण है। वह श्रीमान्, विद्वान् तथा कुलीन है और वही सब पुरुषोंसे श्रेष्ठ है। काम आदिके कारण कोई भी घरमें दोषोंका त्याग नहीं कर पाता। जिसने दोषोंका परित्याग कर दिया है, उसीके द्वारा स्नान, सन्ध्या, जप, होम, श्राद्ध-तर्पण तथा देवपूजा आदि सत्कर्म सम्पन्न होते हैं। प्रयाग, कुरुक्षेत्र, सरस्वती नदी, समुद्र, गया, रुद्रपद, नर-नारायणका आश्रम, प्रभास, पुष्कर, कृष्ण-गोमती, पिण्डतारक, वस्त्रापथ, पुण्यगिरि, दामोदर, भीमेश्वरी, नर्मदा, स्कन्दतीर्थ, रामेश्वर आदि, उज्जयिनी, महाकाल, काशी, कलिंग और मथुरा—इन तीर्थोंकी मनुष्य यदि एक बार भी यात्रा कर लेता है तो वह ब्रह्महत्या आदि समस्त दोषोंसे मुक्त हो जाता है। गंगा आदि नदियाँ जो समुद्रमें मिली हैं, उनमें पग-पगपर पुण्यकी निधिरूप अनेक तीर्थ हैं, जिनके स्मरणमात्रसे ही सब पापोंका नाश हो जाता है। कामभोगमें आसक्त चित्तवाले जो मूढ़ मानव स्त्रियोंमें रमते रहते हैं,

279 Skandpuran_Section_44_In_Front Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

उनकी यह विपरीत धारणा है कि सुन्दरी स्त्रियोंका शरीर अपने अपवित्र शरीरसे कोई भिन्न वस्तु है। वे मुक्ति-मार्गसे भ्रष्ट होकर पशुयोनिमें जन्म लेते हैं। जो मानव पुष्ट शरीर और नीरोग युवावस्था पाकर गंगा आदि तीर्थोंमें नहीं जाते, वे ज्ञानशून्य खल जीते-जी भी मरे हुएके समान हैं। पहले शुभ और अशुभ कर्मोंका बन्धन काटकर फिर कल्याणमय मोक्ष पानेकी इच्छा करे। यदि ऐसा न हो सके तो मनुष्योंको सदा शुभ कर्म ही करना चाहिये। प्रतिदिन उठकर स्नान करे। उसके बाद भगवान् विष्णु और शिवकी पूजामें संलग्न हो। सदा सच बोले। सबका हित करे। अपनी शक्तिके अनुसार दान दे। परनिन्दासे डरे। परायी स्त्रियोंसे दूर रहे। सुवर्णकी चोरी, पृथ्वीका अपहरण और ब्राह्मणके धनका त्याग करे। ब्राह्मण, स्त्री, राजा, बालक, वृद्ध, तपस्वी, पिता-माता तथा गुरुजन—इनका मनसे भी कभी अप्रिय न करे। देश-कालका ज्ञान तथा पात्र और अपात्रका विवेक रखना चाहिये। गृहस्थ पुरुष याचकोंको छाया, तृण, अन्न, वस्त्र, मट्ठा, अग्नि, ईंधन, काँजी, औषध और शाक दे। एकादशी, पूर्णिमा, चतुर्दशी, अष्टमी, अमावास्या, व्यतीपात, संक्रान्ति, ग्रहण, वैधृति, पिता-माताकी निधन-तिथि, युगादि-तिथि और मन्वादि तिथिको अपने घरमें श्राद्ध, दान एवं कीर्तन आदिका उत्सव मनाना चाहिये। अथवा उक्त तिथियोंको तीर्थमें जाना चाहिये; क्योंकि वहाँ घरसे सौ गुना फल होता है। गृहस्थ पुरुष इन्द्रियोंको वशमें करे। मदिरा पीना और जूआ खेलना छोड़ दे। विवादमें जाना और युद्ध करना यत्नपूर्वक त्याग दे। स्नान, दान, जप, होम, देवपूजन और ब्राह्मणभोजन आदि पुण्यकर्म यदि उक्त तिथियोंमें विधिपूर्वक किये जायँ तो वे सब अक्षय होते हैं। किसी श्रेष्ठ ब्राह्मणको एक भी गौ अवश्य दान करे, जो वस्त्र और आभूषणोंसे विभूषित, दूध देनेवाली, बछड़ेवाली और तरुणी (नयी) हो। जो एक भी गाय ब्राह्मणको दान करता है, वह सब पातकोंसे मुक्त हो जाता है। जब यमदूत किसी पुरुषको बाँधकर उसे यमलोकके मार्गसे ले जाते हैं, उस समय दानमें दी हुई नन्दा गौ वहाँ आकर उसे अपने पुत्रकी भाँति देखती है और यमदूतोंको अपने हुंकारसे जीतकर दाताको साथ ले शिवलोकमें पहुँचा देती है। यदि अपने आहारमेंसे चौथाई भाग सिद्धान्न निकालकर दान किया जाता है तो दाता पुरुष निश्चय ही ध्रुवलोकमें जाता है। यदि प्रतिदिन अपने आहारके बराबर अन्न गौओंको गोग्रासके रूपमें दिया जाता है, उसे देनेवाला पुरुष शिवलोकमें जाता है। ओखली, चक्की, चूल्हा और झाड़ू आदिके द्वारा जो पाप बन जाता है, उस पापको गृहस्थ पुरुष प्रतिदिन भिक्षा देकर धोता है। एक ग्रास अन्नकी भिक्षा होती है। जहाँ उतनी भिक्षा प्रतिदिन दी जाती है, उसी घरको घर समझना चाहिये। दूसरा घर श्मशान-सा दिखायी देता है। घर, अन्न, जल सिद्धान्न, छाता, जूता, कमण्डलु, अँगूठी और वस्त्र दान करके मनुष्य स्वर्गमें जाता है। जो थके हुएको सवारी देता, प्यासेको पानी पिलाता और भूखसे पीड़ित मनुष्यको अन्न देता है, वह विमानद्वारा स्वर्गलोकमें जाता है। अपनी शक्तिके अनुसार सदा घृतयुक्त भोजन देना चाहिये; क्योंकि प्राण अन्नमय है, अत: उसे पाकर प्राणी सन्तुष्ट होते हैं। संसारमें भूखकी पीड़ा ही सबसे बड़ी पीड़ा है। उसकी दवा है अन्न। अन्नसे ही वह पीड़ा शान्त होती है। इसलिये अन्नदान उत्तम है। अन्न, वस्त्र, फल, जल, मट्ठा, शाक, घृत, मधु, पत्र, पुष्प, जूता, गुदड़ी, छड़ी, कमण्डलु, छाता, पात्र, विद्या, पुस्तक, देवपूजा, कन्या, कुश, यज्ञोपवीत, बीज, ओषधि, गृह, रत्न, क्षेत्र, यज्ञपात्र, योगपट्ट, पादुका, काला मृगचर्म, बुद्धिदान, धर्मोपदेश तथा धर्मकथा—इन सबके द्वारा सदैव दान करते रहना चाहिये। उससे महान् कल्याण होता है और दाता सब पापोंका नाश करके शिवलोकमें जाता है। श्राद्धमें

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

कुलीन, वेदज्ञ, क्रोधरहित, स्नानशील तथा अपने देशके अनुकूल सदाचारमें तत्पर गृहस्थ ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये। श्राद्धके एक दिन पहले निष्काम, लोभरहित एवं नीरोग ब्राह्मणोंको निमन्त्रण देना चाहिये; किंतु गाँवभरकी पुरोहिती करते हों, उनको नहीं। उन निमन्त्रित ब्राह्मणोंके आगे विधिपूर्वक पिण्डदान करना चाहिये। बिना श्रद्धाके किया हुआ श्राद्ध दूसरेके किये हुएके समान निष्फल होता है। अतः क्रोध त्यागकर श्रद्धापूर्वक श्राद्धका अनुष्ठान करना चाहिये। श्राद्धकर्ममें बलिवैश्वदेवके अन्तमें वानप्रस्थ, ब्रह्मचारी, पथिक एवं तीर्थसेवी अतिथिका सत्कार करना चाहिये। गृहस्थोंको चाहिये कि वे अपनी शक्तिके अनुसार संन्यासियोंका सदा ही पूजन करें।

राजा बलिके राज्यकी प्रशंसा, नारदजीका बलिको राजाके कर्तव्यका उपदेश, उत्पात-शान्तिके लिये बलिके द्वारा यज्ञका प्रारम्भ

महाबलवान् भगवान् नृसिंहने हिरण्यकशिपुको मारकर त्रिलोकीका राज्य इन्द्रको दे दिया। हिरण्यकशिपुके कुलमें बलि पैदा हुए। वे बड़े बलवान् थे। उन्होंने इस पृथ्वीका एकछत्र शासन किया। उनके राज्यमें सारी पृथ्वी बिना जोते-बोये ही अन्न पैदा करती और हरी-भरी खेतीसे सुशोभित होती थी। वृक्षोंमें सुगन्धित पुष्प और रसीले फल लगते थे। वृक्षोंमें तनेके ऊपरतककी डालियोंमें फल लगते थे। उनके पत्ते-पत्तेमें मधु भरा रहता था। सभी ब्राह्मण चारों वेदोंके ज्ञाता होते थे। क्षत्रिय युद्धकलामें कुशल, वैश्य गोसेवापरायण तथा शूद्र द्विजमात्रकी सेवामें तत्पर होते थे। सब लोग दरिद्रता, दुःख और अकालमृत्युके भयसे मुक्त हो दीर्घजीवी होते थे। रातमें प्रत्येक भूभागमें दीपकोंका इतना प्रकाश होता कि रात्रि भी दिनके समान जान पड़ती थी। जैसे देवता देवलोकमें सुखपूर्वक विहार करते हैं, उसी प्रकार मनुष्य भूलोकमें सानन्द विचरण करते थे। पृथ्वी स्वर्गरूप हो गयी थी और वहीं राजा बलि राज्य करते थे। देवताओं और दानवोंमें परस्पर युद्ध नहीं होता था।

एक समयकी बात है नारदजी राजा बलिके भवनमें पधारे। बलिने उन्हें आसन, पाद्य और अर्घ्य देकर उनका पूजन किया, फिर सब दैत्य और दानव बैठे। उस समय शुक्राचार्यसहित बलिने नारदजीसे कहा—'देवर्षे! यह राज्य, यह पत्नी, ये मेरे पुत्र और मैं बलि सब आपकी सेवामें प्रस्तुत हैं। इनमें जिससे आपका जो कार्य हो, उसे कहिये।'

नारदजीने कहा—राजन्! जो ब्राह्मण यजमानकी भक्तिसे ही सन्तुष्ट हो जाते हैं, वे 'भूमिदेव' कहे गये हैं। तुमने मेरा भलीभाँति पूजन किया, इससे मैं बहुत प्रसन्न हूँ। मुझे धनसे कोई प्रयोजन नहीं है। मैं तुम्हारे राज्यसे, तुम्हारे, यज्ञ, दान और व्रतोंसे परम सन्तुष्ट हूँ। बले! मैं देखता हूँ, देवताओंद्वारा तुम्हारा कुछ अप्रिय कार्य किया गया है। तुमसे भलीभाँति पूजित होनेपर भी देवराज इन्द्र सन्तुष्ट नहीं हो रहे हैं। मैंने सुना है, देवताओंके प्रयत्नसे भूतलपर तुम्हारे राज्यका उच्छेद होगा। यह सुनकर तुम्हें जो उचित प्रतीत हो, वह शीघ्र करो।

राजा बलिने पूछा—प्रभो! राजा किन गुणोंसे राज्य करता है, यह बताइये। दान सत्पात्रको देना चाहिये या अपात्रको?

नारदजीने कहा—जो राजा छत्तीस गुणोंसे सम्पन्न होकर राज्य करता है, वही राज्यका फल पाता है। राजा पापरहित हो सब धर्मोंका प्रेमपूर्वक अनुष्ठान करते हुए आस्तिक बना रहे। गुप्तरूपसे अर्थका साधन करे, कामनाओंको त्याग दे और उद्दण्डतासे दूर रहे। प्रिय वचन बोले, किंतु कभी दीन न हो। शूरवीर होकर रहे, परंतु डींग न

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

मारे। दाता हो, परंतु कुपात्रके यहाँ धनकी वर्षा न करे। धृष्ट होकर रहे, किंतु निष्ठुर न हो। दुष्टोंसे सन्धि और भाई-बन्धुओंसे विरोध न करे। दुष्ट पुरुषसे गुप्तचरका काम न ले। किसीको सताकर अपना स्वार्थ सिद्ध न करे। अर्थको समझे। जहाँ आपत्तिमें पड़ा हो, वहाँ अपने गुणोंका बखान न करे। साधु पुरुषोंसे विरोध न करे। असाधु पुरुषोंका आश्रय न ले। अच्छी तरह जाँच-पड़ताल किये बिना किसीको दण्ड न दे। गुप्त मन्त्रणाको प्रकाशित न करे। लोभी पुरुषोंको दान न दे। अपकारियोंपर विश्वास न करे। स्त्रीको अत्यन्त गुप्त रखे। बलवान् राजा दूसरोंके अपराध क्षमा करे। स्त्रीका अत्यन्त सेवन न करे। प्रिय तथा हितकर भोजन करे, अहितकर नहीं। जो चोर न हो, ऐसे मनुष्यका सत्कार करे। निष्कपट भावसे गुरुकी सेवा करे। देवताकी पूजा दिखावेके लिये न करे। अनिन्दित लक्ष्मीकी इच्छा करे। स्वार्थ त्यागकर सेवा करे। कार्यदक्ष तथा समयका ज्ञाता हो। बातचीत करते हुए भोजन न करे। किसीपर अनुग्रह करते हुए उसपर आक्षेप न करे। समझ-बूझकर प्रहार करे, शत्रुओंको मारकर शेष न रहने दे। अकस्मात् क्रोध न करे। अपराधियोंके प्रति भी मृदु व्यवहार करे। इस प्रकार आचरण करनेसे राज्य सुस्थिर होता है। यदि कल्याण चाहते हो तो योगके द्वारा आत्मज्ञान प्राप्त करो। तपस्या, स्वाध्याय, दान, तीर्थयात्रा तथा आश्रमवास—ये सब आत्मज्ञानकी सोलहवीं कलाके बराबर भी नहीं हैं। तुम्हें संसारकी ओरसे वैराग्य रखना और ब्राह्मणोंका पूजन करना चाहिये। नाना प्रकारके यज्ञोंका अनुष्ठान तथा भगवान् नारायणका चिन्तन करना चाहिये। राजन्! मैं प्रसंगवश यहाँ आ गया था, अब जाता हूँ।

यों कहकर नारदजी चले गये। तत्पश्चात् दैत्योंको अपशकुन दिखायी देने लगे। रातको सियारिनें उनके नगरमें प्रवेश करके विकृत स्वरमें रोती थीं। दूषित शब्द करनेवाले कौए दिन-रात नगरमें आते-जाते थे। भयंकर विषवाले काले साँप घरोंमें घूमते थे। कौए, गीध, और बगले पागल-से होकर नगरके ऊपर मँडराते थे। स्त्रियों, गौओं और हिरनियोंके गर्भ उलटे पैदा होते थे। गौओंके दूधमें घी नहीं निकलता था। तिलमें तेल नहीं होता था। देशवासी मनुष्य प्रतिदिन आपसमें लड़ते थे। मेघ कुपित होकर असमयमें अधिक जलकी वर्षा करते थे। बादल बहुत गरजते और ओलोंकी वर्षा करते थे। भूकम्प होता और दिशाओंमें आग लगती थी। गाँवोंमें उल्लुओंके शब्द गूँजते रहते थे और झुंड-के-झुंड कुत्ते एकत्र होकर मुँह ऊँचे करके रातभर रोया करते थे। राजा बलिके राज्यका विनाश आ पहुँचा था। दिनमें पुच्छलतारेका उदय होता। सूर्यमण्डल कीलोंसे घिरा हुआ दिखायी देता। आकाश घड़ोंसे व्याप्त होनेके कारण उसमें चन्द्रमाका प्रकाश नहीं प्रतीत होता था। रोहिणी नक्षत्रका वेध हुआ, जो प्रलयकालमें हुआ करता था। दिनमें तारे गिने जाते थे। भूमि, स्त्री, गाय और मृगियोंमें बीजोंका उलट-फेर होने लगा। मन्त्रीलोग गुप्त मन्त्रणामें सम्मिलित होकर फिर फूट जाते थे। उस समय घीकी आहुति देनेपर भी आग प्रज्वलित नहीं होती थी। प्रचण्ड आँधी चलती थी। बवंडरसे वृक्ष जोर-जोरसे झूमते थे। सेनाओंमें ध्वजाएँ जलती थीं। आकाश धूलसे धूसरित हो जाता था। ये तथा और भी बहुत-से उत्पात राजा बलिके यहाँ होने लगे। वामनजीका अवतार हो जानेपर दैत्योंके घरमें भयंकर विवाद और स्वप्नदर्शन होता था। जब दैत्यराज बलि कवच धारण करके यात्रा करते, तब सेनासहित उनके सामने ऐसे-ऐसे अपशकुन उपस्थित होते थे, जिनके होनेपर यात्रा करनेवाला पुरुष अपने घरको कुशलपूर्वक नहीं लौटता। जब वे घरपर रहते तथा राज्य करते, तब उनके शरीरको सुख नहीं मिलता। सब अंग टूटता और सिरमें दर्द होने लगता। वे ज्वरग्रस्त होनेके कारण न सुखसे सोते, न खाते और न पीते ही थे। लोग रातको भोजन नहीं करते। क्योंकि सब प्रकारकी

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

व्याधियोंसे व्याकुल थे।

जगत्की यह विपरीत दशा देख बलिका चित्त व्याकुल हो उठा। वे अत्यन्त दुःखी हो ब्राह्मणोंके साथ बैठकर विचार करने लगे कि यह क्या है। बलिने पराभक्तिसे युक्त हो अपने गुरुको बुलाकर सभामें बैठाया और कुशल-समाचार पूछा और कहा—'गुरुदेव! यह सम्पूर्ण जगत् विपरीत दशाको प्राप्त हुआ है। इसका कारण बताइये।'

शुक्राचार्य बोले—राजन्! उत्पात-शान्तिके लिये ब्राह्मणों और क्षत्रियोंके साथ एक द्वादशवार्षिक यज्ञ करो, जिसमें सर्वस्वकी दक्षिणा दी जाती हो। ऋषि, ब्राह्मण, मुनि और ब्रह्मचारी जो दूर-दूर रहनेवाले हैं, वे सब इस महायज्ञमें पधारें। नगरसे पूर्व दिशामें यज्ञमण्डप बनाना चाहिये। जिसकी जैसी रुचि हो, वैसी वस्तु उसे दानमें देनी चाहिये।

'यही करूँगा' यह कहकर राजा बलि शीघ्र ही यज्ञ प्रारम्भ करनेको उद्यत हुए और यज्ञकर्ममें कुशल समस्त ब्राह्मणोंको बुलाकर बोले—'मुझे यज्ञकी दीक्षा लेकर सर्वस्वकी दक्षिणा देनी है। इसमें ब्राह्मणोंके याचना करनेपर उन्हें सदा सब कुछ देनेपर तत्पर रहना चाहिये। मैं किसीके याचना करनेपर अपने पुत्र, मित्र तथा इस शरीरको भी दे डालूँगा। इस यज्ञमें मुझे ब्राह्मणोंके लिये सदा दान करना चाहिये। किसीके मना करनेपर भी मुझे रुकना नहीं है। दान देनेका निश्चय मैंने पूर्णरूपसे कर लिया है। अनेक योजन विस्तृत दिव्य मण्डप बनवाकर उसमें सबको दान, भोजन और वस्त्र दिये जायँ।'

सप्तर्षिगण आकाशसे भूतलपर आये। सब देवता भी उपस्थित हुए। पृथ्वीपर जो श्रेष्ठ ब्राह्मण थे, वे भी पधारे। क्षत्रिय, नट, नर्तक और याचक भी आये। वेदमन्त्रोंकी ध्वनिके साथ गीत और वाद्यका भी शब्द होने लगा। 'दीजिये, दीजिये' की याचनाका शब्द तीनों लोकोंको बधिर किये देता था। 'न दो या थोड़ा दो' की बात किसीके मुँहसे नहीं निकलती थी। जो जिस वस्तुको माँगता, उसे वही दी जाती थी। कोई ऐसा ब्राह्मण नहीं था, जो वहाँ बहुत याचना करे। स्वतः दिये जानेपर भी ब्राह्मणलोग भोजन और वस्त्रतक नहीं लेते थे। क्योंकि वे सब लोग राजा बलिके राज्यसे ही बहुत सन्तुष्ट थे। धन लेकर क्या करते।

इस प्रकार सर्वस्वकी दक्षिणासे युक्त वह महान् यज्ञ प्रारम्भ हुआ। वहाँ कोई नाचते, कोई गाते, कोई पाठ और स्तुति करते थे। ब्रह्मा, इन्द्र, रुद्र, सूर्य, चन्द्र आदि देवता आहुतियों और मन्त्रोंसे अत्यन्त प्रसन्न किये गये। कुछ लोग यजमान राजा बलिकी प्रशंसा करते और कुछ लोक आचार्यकी। कोई होताके गुण गाता और कोई परिचारकके। दैत्य सब कुछ सुनते और राजा बलिके आगे जाकर कहते थे। बलि प्रसन्न होकर सबको मुँहमाँगी वस्तुएँ देते थे।

देवर्षि नारदका वामनजीको मत्स्य आदि अवतारोंका वृत्तान्त सुनाना, नृसिंहावतार एवं प्रह्लादकी कथा

महादेवजी कहते हैं—एक समय देवर्षि नारद वामनजीके समीप गये और उनके वृत्तान्त पूछनेपर इस प्रकार बोले—'प्रभो! मैं स्वर्गलोकसे यहाँ आया हूँ। प्रतिदिन सूर्यके गमनागमन ब्रह्माका दिन पूरा होता है। दिनके अन्तमें रात होती है और ब्रह्माजीकी रात्रिमें सब देवताओंका नाश हो जाता है। फिर मर्त्यलोककी तो बात ही क्या कहूँ, जहाँ प्रतिदिन लोगोंकी मृत्यु होती है। आकाश धुएँसे आच्छादित हो गया है। सब देवता राजा बलिके घर गये हैं। सप्तर्षिगण तथा ब्राह्मण और ब्रह्मचारी भी वहीं पहुँचे हैं। हाहा, हूहू, तुम्बुरु, पर्वत, अप्सराएँ तथा गन्धर्वगण—

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

ये सब लोग राजा बलिके भवनमें गये हैं। बलि उत्पातकी शान्तिके लिये यज्ञ करते हैं। मैं भी उन्हींके यहाँ यज्ञ देखनेके लिये जाना चाहता हूँ। सुना है, राजा बलि एक कम एक सहस्र यज्ञ कर चुके हैं। उस एकके भी पूरा हो जानेपर सम्पूर्ण लोकोंपर दैत्योंका अधिकार हो जायगा। वहाँ यह प्रतिज्ञा करके यज्ञ आरम्भ किया गया है कि ब्राह्मणोंको जिसकी जो इच्छा होगी, वही वस्तु दी जायगी। बलिका कहना है कि 'किसीके मना करनेपर भी ब्राह्मणको मुँहमाँगी वस्तु अवश्य दी जायगी। मेरी बात सत्य होगी। मैं अपने सेवकों, प्यारे पुत्रों, सम्पूर्ण राज्य तथा अपने-आपको भी माँगनेपर दे दूँगा। मेरा यज्ञ व्यर्थ न होने पाये। उनकी इस अहंकारपूर्ण बातसे मेरे सिरमें दर्द होने लगा है। भला, इस प्रकार प्रतिज्ञा करके कैसे यह यज्ञ पूर्ण होगा? आप ही उस यज्ञके विध्वंसमें कारण होंगे, यह जानकर मैं आपके पास आया हूँ। आप इस समय ऐसी चेष्टा करें, जिससे वह यज्ञ पूरा न हो।'

वामनजीने कहा—महर्षे! मुझे यह बताओ कि मैं कौन हूँ? मेरी क्या शक्ति है? मैं किस कारणसे यज्ञकी पूर्तिमें विघ्न उपस्थित करूँगा? जब इस यज्ञमें सब देवता पधारे हैं, सभी ऋषि और ब्राह्मणलोक भी सम्मिलित हुए हैं, तब यह व्यर्थ कैसे होगा?

नारदजी बोले—प्रभो! एक समय ब्रह्माजीने भगवान् विष्णुसे कहा—'हरे! वेदोंके बिना मैं सृष्टि कैसे करूँगा? वेद नष्ट हो गये हैं, उनको मैं नहीं जानता। क्या वे किसी स्थानपर स्थित हैं या नीचे चले गये हैं? मुझमें जलके भीतर जानेकी शक्ति नहीं है। आपको दस अवतार धारण करके सृष्टिकी रक्षा करनी चाहिये। अतः आप जलचर मत्स्य हों और शीघ्र ही वेदोंको ढूँढ़ लाकर मुझे देनेकी कृपा करें।' उनके यों कहनेपर श्रीहरिने जलमें मत्स्यरूप धारण किया और वेदोंको लाकर ब्रह्माजीको लौटा दिया। तत्पश्चात् किसी समय ब्रह्माजीने पुनः प्रार्थना की—'प्रभो! आप कच्छपरूप ग्रहण करके मन्दराचलको पीठपर धारण करें। समुद्र-मन्थनसे प्रकट होकर लक्ष्मीजी आपका वरण करेंगी।' ब्रह्माजीके यों कहनेपर आप श्रीहरिने कच्छपरूप धारण किया। समुद्र-मन्थनके समय आपका वह अद्भुत चरित्र मैंने अपनी आँखों देखा। तदनन्तर एकार्णवके जलमें डूबकर जब पृथ्वी रसातलको चली गयी और कहीं दिखायी न दी, तब ब्रह्माजीसे प्रेरित होकर आपने महावराहका रूप धारण किया और नीचे जाकर अपनी दाढ़ोंके अग्रभागपर पृथ्वीको उठाया; फिर जलके ऊपर ले आकर पृथ्वीको यथास्थान रख दिया। वह आपका परम मनोहर तृतीय अवतार था, जिसके द्वारा आपने पर्वतोंसहित पृथ्वीको स्थापित किया। अब आपके अत्यन्त भयंकर नृसिंह-अवतारकी, जो चौथा है, कथा कहता हूँ। अदितिके पुत्र आदित्य (देवता) कहलाते हैं और दितिके पुत्र दैत्य। पूर्वकालमें दितिके दो महाबली पुत्र हुए थे। एकका नाम हिरण्यकशिपु था और दूसरेका हिरण्याक्ष। स्वर्गलोकमें देवता रहते थे और पातालमें दैत्यों तथा दानवोंका राज्य था। हिरण्यकशिपु रसातलमें राज्य करता था। देवताओं और दानवोंने मिलकर मनुके पुत्रोंको पृथ्वीके राज्यपर स्थापित किया था। हिरण्यकशिपुने यह व्यवस्था तोड़ दी और उसने युद्धमें इन्द्रको परास्त करके सात द्वीपोंवाली पृथ्वी तथा अमरावतीपुरीको भी अपने अधिकारमें कर लिया। सब भोगोंपर अधिकार करके वह असुर अपने पुत्र और पौत्रोंके साथ राज्य भोगने लगा। उसने तपस्याके द्वारा ब्रह्माजीको संतुष्ट किया और ब्रह्माजीने उसे मुँहमाँगा वर देनेको स्वीकार किया। उस दैत्यने इस प्रकार वर माँगा—'सुरश्रेष्ठ! मुझे अमरत्व प्रदान कीजिये। देवताओं और मनुष्योंसे किसी प्रकार भी मेरी मृत्यु न हो। यदि मृत्यु हो ही तो ऐसे पुरुषसे हो, जिसका स्वरूप कुछ सिंहका और कुछ मनुष्यका हो, जो समूची पृथ्वीको धारण

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

करनेवाला हो। उसके थपेड़ोंसे विदीर्ण होकर मैं पृथ्वीपर मृत्युको प्राप्त होऊँ।'

'एवमस्तु' कहकर ब्रह्माजी चले गये। दैत्यराज हिरण्यकशिपु भी अपने स्थानको गया। कुछ काल व्यतीत हो जानेपर उसके मनमें देवताओंके प्रति बड़ा भारी वैर हुआ। वह सोचने लगा—'देवता मेरा क्या कर लेंगे। विष्णुसे मेरा क्या प्रयोजन है तथा रूद्र भी मेरा क्या बिगाड़ लेंगे। समस्त यज्ञोंद्वारा सदा मेरी ही आराधना होनी चाहिये।' उस दैत्यका बर्ताव तो ऐसा था, परंतु उसके पुत्र प्रह्लाद श्रीहरिकी स्तुति करते थे। जिनसे उसकी मृत्यु होनेवाली थी, उन्हीं भगवान् विष्णुका वे चिन्तन करने लगे। जब उन्हें दूसरी बातें पढ़ायी जाती थीं, तब भी वे 'हरि हरि'का ही कीर्तन करते थे। 'जो चार भुजाओंसे सुशोभित, शंख, चक्र, गदा और खड्ग धारण करनेवाले, पीताम्बरधारी, कौस्तुभमणिसे उद्भासित तथा सम्पूर्ण जगत्के एकमात्र स्वामी हैं, जो स्मरण करनेमात्रसे ही मोक्ष देते हैं, उन भगवान् विष्णुका मैं सदा स्मरण करता हूँ'—उनकी इस बातसे दैत्य कुपित हो उठा और दूसरे दैत्योंसे बोला—'मेरे इस दुष्ट पुत्रको तुमलोग हाथी, सर्प, जल और अग्निद्वारा मार डालो।'

प्रह्लाद बोले—दैत्यराज! हाथीमें भी विष्णु हैं, सर्पमें भी विष्णु हैं, जलमें भी विष्णु हैं और स्थलमें भी विष्णु हैं। तुममें और मुझमें भी वे ही विराजमान हैं। विष्णुके बिना यह दैत्योंका समुदाय भी नहीं है।

सदा प्रह्लादको मारनेकी चेष्टा की जाती थी, तो भी उनकी मृत्यु नहीं होती थी। यह देख हिरण्यकशिपुकी छाती क्रोधाग्निसे जलती रहती थी। तब उसने पुत्रको स्वयं ही दण्ड देनेके लिये उसके मुँहपर तलवार तान दी और कठोर वचनोंसे डाँटते हुए उसे मार डालनेका उद्योग किया। वह बोला—'अरे बालक! तुझे धिक्कार है। तू नारायणकी स्तुति करता है, बार-बार मेरे शत्रुके गुण गाता है; अतः इस श्रेष्ठ तलवारसे मैं अभी तेरा सिर उड़ाये देता हूँ। मैं ही विष्णु, मैं ही ब्रह्मा, मैं ही रुद्र, इन्द्र और वरदाता प्रभु हूँ। तू अपने पिताको छोड़कर दूसरेकी स्तुति क्यों करता है।'

बालक प्रह्लाद जब पिताकी इच्छाके अनुसार नहीं पढ़ सके और अपने पिताकी स्तुति भी नहीं कर सके, तब गुरुजीने छड़ीसे मारकर प्रह्लादको पुनः पढ़ाना प्रारम्भ किया।

प्रह्लाद बोले—जिन सर्वव्यापी श्रीहरिने चराचर प्राणियोंसहित तीनों लोकोंको उत्पन्न किया, बढ़ाया और फिर सबका शमन किया है, उन्हींकी मैं स्तुति करता हूँ। वे ही श्रीविष्णु मुझपर प्रसन्न हों। ब्रह्माजी भी विष्णु हैं। शिव भी विष्णु ही हैं। इन्द्र, वायु, यम और अग्नि भी विष्णु हैं। प्रकृति आदि चौबीस तत्त्व और उनके साक्षी पचीसवें पुरुष भी विष्णु ही हैं। वे ही पिताजीके, गुरुजीके तथा मेरे शरीरमें भी स्थित हैं। यह जाननेपर भी कोई मरणधर्मा प्राणी श्रीहरिके सिवा दूसरे नीच मनुष्योंकी स्तुति कैसे कर सकता है।

गुरुजीने कहा—शिष्य! यह तो बता, मनुष्योंमें नीच कौन है?

प्रह्लादजीने कहा—पुत्र-जन्म आदिके समय, मृत्युके समय तथा शुभ अवसरोंमें जिसके मुखसे 'हरि' इन दो अक्षरोंका उच्चारण नहीं होता, वही मनुष्योंमें अधम है। भय, राजकुलसे समागम, युद्ध, व्याधि, स्त्रीसंग, विपत्ति, यात्रा तथा मृत्युके समय जो इस पृथ्वीपर रहते हुए श्रीहरिको भूलकर माता-पिताका स्मरण करते हैं, वे मूर्ख मानव मनुष्योंमें अधम हैं। मेरे तो न माता है, न पिता है, न स्वजन है, न सेवक है; श्रीहरिके बिना मेरा कोई नहीं है। आपको जो उचित जान पड़े, वह बर्ताव कीजिये।

इस तरहकी बातोंसे दैत्यको बड़ा क्रोध हुआ और वह मारनेके लिये समीप आया। इतनेमें ही प्रह्लादकी माताने आकर पुत्रको आँचलसे ढक लिया और उसके भाई, स्वजन तथा बहिन—ये सभी आकर कहने लगे—'भैया! तू 'हरि, हरि' मत बोल। मैं तेरी माता हूँ। यह बहिन है, ये भाई

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

हैं तथा ये स्वजन लोग हैं। हम सब तुम्हारे पिताका सम्मान करते हैं; इसीलिये हम बहुत दिनोंतक यहाँ जीवित रह सकते हैं। (अतः तुम्हें भी इनका आदर करना चाहिये)।'

प्रह्लाद बोले—प्रकृति मेरी माता है। बुद्धि मेरी बहिन है। जिसको मैं कहा जाता है, वह अहंकार है। पंचतन्मात्राओंके समुदाय मेरे सहोदर भाई हैं, जो मेरे साथ ही जाते हैं। इनको उत्पन्न करनेवाला जो पचीसवाँ पुरुष है, वही मेरा पिता है। परमात्मा श्रीहरि ही अन्तर्यामी इस शरीरमें स्थित हैं। यदि उनका सम्मान किया जाय तो वे हृदयमें दर्शन देते हैं। उनका चरण ही अणिमा आदि आठों सिद्धियोंका स्थान है। आपलोगोंके लिये राज्य ही अभीष्ट वस्तु है; परंतु जहाँ भगवान् विष्णुका पूजन (आदर) नहीं होता, वह राज्य मुझे तिनकेके समान प्रतीत होता है। ब्रह्मा, रुद्र, अनल आदिके रूपमें जिनका प्रत्यक्ष दर्शन होता है, जो बिना किसी आधारके ही सर्वत्र विचरते हैं, वे ही भगवान् विष्णु हैं। ये जो आकाशमें स्थित और ध्रुवसे बँधे हुए सम्पूर्ण ग्रह दृष्टिगोचर होते हैं, वे सब भगवान् विष्णुके ही वचनसे पृथ्वीपर नहीं गिरते। फिर प्रलयकालमें वे ही सबका विनाश करते हैं। ऐसा विचार करके मुझे आप लोगोंसे मृत्युका भय नहीं है।

प्रह्लादकी यह बात पूरी होते ही उनके पिताने उन्हें लात मारकर कहा—'कहाँ है तेरा हरि? पहले मैं उसीको मारता हूँ। उसके बाद 'हरि, हरि'की रट लगानेवाले तुझ दुष्टका भी वध कर डालूँगा।'

प्रह्लादने कहा—पृथ्वी आदि पाँचों भूत भगवान् विष्णुके ही स्वरूप हैं। वे ही स्थल और जलमें हैं। अधिक कहनेसे क्या लाभ, यह सम्पूर्ण जगत् विष्णुमय ही है। तृण, काष्ठ, गृह, क्षेत्र, द्रव्य और देह—सबमें श्रीहरि स्थित हैं। वे ज्ञानयोगसे जाने जाते हैं, इस चर्मचक्षुसे नहीं देखे जाते। भगवान् विष्णु सब सुनते हैं, सब जानते हैं और सब कुछ करते हैं।

प्रह्लादके यों कहनेपर हिरण्यकशिपु सहसा सिंहासन छोड़कर खड़ा हो गया। उसने दृढ़तापूर्वक कमर कस ली और म्यानसे चमचमाती हुई तलवार खींचकर प्रह्लादको थप्पड़ मारकर कहा—'अब तू अपने विष्णुका स्मरण कर ले। मैं अभी उज्ज्वल कुण्डलोंसे सुशोभित तेरा मस्तक पृथ्वीपर गिरा दूँगा, जैसे वृक्षसे पका फल गिराया जाता है। यदि जीवित रहना चाहता है तो इस खम्भेसे अपने विष्णुको निकालकर दिखा।'

प्रह्लादजी भय छोड़कर पद्मासन लगा धरतीपर बैठ गये और कंधा नीचे करके श्वासको ऊपर रोककर हृदयमें भगवान् श्रीहरिका ध्यान करते हुए मरनेके लिये तैयार हो गये। प्रभो! उस समय मैंने एक आश्चर्यकी बात देखी—आकाशसे फूलोंकी एक माला नीचे आयी और स्वयं ही प्रह्लादजीके गलेमें पड़ गयी। इतनेमें ही खम्भेसे एक भयंकर आवाज हुई, जिसे सुनकर सब लोग क्षुब्ध हो गये और मन-ही-मन सोचने लगे, 'क्या यह पृथ्वी पातालमें धँस जायगी अथवा क्या स्वर्गलोक टूटकर पृथ्वीपर गिर पड़ेगा अथवा प्रह्लादका सिर इस दैत्यके खड्गसे कटकर पृथ्वीपर तो नहीं गिर जायगा?' इसी समय खम्भेसे बड़ा भयानक सिंहनाद हुआ। उस शब्दसे मूर्च्छित होकर सब दैत्य पृथ्वीपर गिर पड़े। हिरण्यकशिपुके हाथसे ढाल और तलवार भी गिर गयी। वह सोचने लगा, 'यह क्या है?' जब सिर ऊँचा करके वह देखने लगा, तब भगवान् विष्णुपर उसकी दृष्टि पड़ी। नीचेसे मनुष्यकी आकृति और ऊपरसे भयंकर सिंहका स्वरूप! दाढ़ोंके कारण विकराल मुख, मानो वे आकाशको चाट लेंगे। शरीर तेजसे प्रज्वलित हो रहा था। मुखसे भयानक कटकटकी ध्वनि हो रही थी, मानो गरजता हुआ बादल मूर्तिमान् हो गया हो। गर्दनके बाल ऊपरकी ओर उठे हुए थे। देवता और दैत्य सबके लिये उनकी ओर देखना कठिन था। उन्हें देखकर वह दैत्य पुनः पृथ्वीपर गिर पड़ा। नृसिंहजीने उसके बाल पकड़कर आकाशमें सौ बार उसे घुमाया और पृथ्वीपर पटक दिया, परंतु ब्रह्माजीके वरके प्रभावसे उस दैत्यकी मृत्यु

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

नहीं हुई। तब भगवान्‌ने हिरण्यकशिपुको घुटनोंपर सुलाकर उसकी छाती चीर डाली। देवता जय-जयकार करने लगे। चराचर प्राणियोंसहित तीनों लोकोंमें शान्ति छा गयी।

हिरण्यकशिपुकी मृत्युके पश्चात् विष्णुभक्त प्रह्लादजी दैत्योंके राजा बनाये गये। उन्होंने बहुत वर्षोंतक भूमण्डलका राज्य किया। उनके अनेक पुत्र हुए, जिनमें विरोचन ज्येष्ठ थे। विरोचनसे बलिका जन्म हुआ। बलिके उत्पन्न होनेके पश्चात् विरोचनने एकान्तमें योग-साधन करके श्रीहरिके तत्त्वका ज्ञान प्राप्त किया और राज्य त्यागकर वे पर्वतशिखरपर चले गये। श्रीहरिने उनके शरीरको कल्पान्तस्थायी कर दिया। तदनन्तर 'हममेंसे कौन राजा होगा?' इस प्रश्नको लेकर दैत्यों और दानवोंमें बड़ा विवाद हुआ। तब प्रह्लादजीने आकर एक व्यवस्था की। उन्होंने कहा—'जो समस्त शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न, दीर्घायु, अतिशय बलवान्, यज्ञशील, सदा आनन्दयुक्त, अधिक पुत्रोंवाला तथा अत्यन्त दुर्जय हो, जो देवताओंके साथ अकारण युद्ध न करे और भगवान् विष्णुको सर्वोपरि, अजेय शक्तिके रुपमें जाने, जिसकी संग्राममें मृत्यु न हो, जो सर्वस्व दक्षिणामें दे देनेवाला हो, अपनी बात कभी व्यर्थ न होने देता हो तथा सब पुत्रोंमें जो अपनी स्वाभाविक श्रीके द्वारा अधिक शोभा पाता हो, उस व्यक्तिको जब गुरुदेव शुक्राचार्य राज्यपदपर अभिषिक्त कर दें, तब वही सब दैत्योंका राजा हो। राजा होने योग्य कौन है—इसके निर्णयमें गुरुदेव ही प्रमाण हैं।' यों कहकर प्रह्लादजी चले गये। तदनन्तर दैत्य दानव एकमत होकर उस व्यवस्थाका पालन करने लगे। शुक्राचार्यजीने राजा बलिको ही गुणोंमें अधिक देखकर तथा प्रह्लादके सभी गुण बलिमें विद्यमान हैं—यों समझकर उन्हींको दैत्योंका राजा बनाया।

वामनजी! मुझे युद्ध देखनेके लिये बड़ी उत्कण्ठा रहती है। ब्राह्मणको युद्ध करते देख मुझे बड़ा हर्ष होता है। आप भी ब्राह्मणके रूपमें प्रकट हुए हैं; अतः बताइये, कब युद्ध करेंगे?

~~~o~~~

वामनजीका बलिसे तीन पग भूमि ग्रहण करना तथा गंगा और वामनस्थलीकी महिमा, प्रभासखण्डका उपसंहार

वामनजीने हँसकर कहा—ठीक है, ठीक है। तुम्हारी इच्छा पूरी होगी। फिर मैं जमदग्निनन्दन परशुरामके रूपमें प्रकट होकर भगवान् शिवको गुरु बनाऊँगा और बहुत-से क्षत्रियोंके साथ कार्तवीर्य अर्जुनका वध करूँगा। आगे चलकर महाबली रावण लंकाका राजा होगा। वह अपने अत्याचारोंके कारण जब तीनों लोकोंके लिये कण्टकरूप कहा जाने लगेगा, तब मैं दशरथ और कौसल्याका पुत्र 'राम' होकर भाइयोंके साथ अवतार लूँगा। विश्वामित्रजीके यज्ञमण्डपमें जाऊँगा। ताड़काको मारकर सुबाहुको यमलोक पठाऊँगा। इस प्रकार यज्ञ पूर्ण करके सीताके स्वयंवरमें जाऊँगा और शंकरजीका धनुष भंग करके सीताके साथ विवाह करूँगा। तत्पश्चात् अयोध्याका राज्य छोड़कर चौदह वर्षोंके लिये वनमें चला जाऊँगा। वहाँ पहले मुझे सीता-हरणका दुःख प्राप्त होगा। इससे भी पहले मैं लक्ष्मणद्वारा राक्षसी शूर्पणखाकी नाक और कान कटवा दूँगा। फिर चौदह हजार राक्षसोंसहित खर, दूषण तथा त्रिशिराका वध करूँगा। मृगरूपधारी मारीच राक्षसको मौतके घाट उतारूँगा। तदनन्तर रावणद्वारा मेरी पत्नी सीताका अपहरण होगा। सीताकी रक्षाके लिये प्राण दे देनेवाले जटायुका दाह-संस्कार करके सुग्रीवसे मित्रता जोड़ूँगा। बालिको मारकर नल आदि वानरोंके सहयोगसे समुद्रपर पुल बाँधूँगा। लंकापर घेरा डाल दूँगा और सब राक्षसोंका संहार करूँगा। विभीषणको लंकाका राज्य दूँगा, फिर अयोध्या आकर वहाँका अकण्टक राज्य

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth
~~~

भोगकर काल और दुर्वासाके अद्भुत चरित्रद्वारा प्रेरित हो पुत्रको राज्य दे भाइयोंके साथ सशरीर परमधामको जाऊँगा। द्वापर आनेपर जब बहुत-से असुर-भावापन्न क्षत्रियोंके भारसे आक्रान्त हो यह पृथ्वी रसातल जानेको उद्यत हो जायगी, तब मैं उसकी दुर्दशा नहीं देख सकूँगा। मथुराके राजा कंसको मारकर शिशुपालको भी परास्त करूँगा और समस्त असुरोंका संहार करके पृथ्वीका भार उतारूँगा। कलियुग आनेपर थोड़े जलवाले बादल होंगे, गौएँ बहुत कम दूध देंगी, दूधमें घी और मनुष्योंमें सत्यका अभाव होगा, लोकमें चोरोंका उपद्रव बढ़ जायगा, सब लोग रोगसे पीड़ित होंगे और किसीको अपना रक्षक नहीं पायँगे। उस समय मैं बुद्धरूपमें अवतार लूँगा। उसके बाद जब नदियाँ क्षीण हो छोटी हो जायँगी, उनकी धारा पीछेकी ओर बहने लगेगी तथा कार्तिकमें ही वे सूख जायँगी, एकादशी और शिवरात्रिका व्रत बंद हो जायगा, उस समय कलियुगमें ऐसे-ऐसे बर्ताव होंगे, जो पहलेके तीन युगोमें कभी नहीं हुए थे। बेटा माता-पिताको त्यागकर पत्नीकी सेवामें लग जायगा; न कोई गुरु होगा; न सेवक, कोई किसीकी सेवा नहीं करेगा। कलियुग इस पृथ्वीपर ज्यों-ज्यों अपने रोगका विस्तार करता जायगा; त्यों-त्यों सब लोग एकाकार होते जायँगे। सब कुछ म्लेच्छोंद्वारा दूषित होगा। लोग स्नान और सन्ध्या छोड़ देंगे। उस समय मैं कल्कि नाम विख्यात ब्राह्मण होऊँगा और म्लेच्छोंका संहार करके याज्ञवल्क्यजीको पुरोहित बनाकर म्लेच्छवधका प्रायश्चित्त करनेके लिये यज्ञ करूँगा। नारदजी! इस प्रकार जो मेरे अवतार होंगे, उनमें युद्धका अवसर आयेगा। इस समय देवतालोग राजा बलिके साथ युद्ध नहीं करेंगे। दैत्यराज बलि मेरा यजन करते हैं; वे महात्मा पुरुष हैं, अतः मेरे द्वारा मारनेयोग्य नहीं हैं। उन्होंने महान् यज्ञका प्रारम्भ करके सर्वस्व-दानका नियम ग्रहण किया है।

यों कहकर वामनजी नगरमें गये और एक घरसे दूसरे घरको देखते हुए प्रतिदिन ब्राह्मणोंके घरोंपर भिक्षा माँगने लगे। वे प्रतिदिन स्नान और वेदाध्ययन करते और द्विजोंके घरोंमें भिक्षा एवं भोजन पाते थे। चौराहोंपर तथा सुन्दर मन्दिरोंमें ठहरते थे। वहाँ बहुत लोग उन्हें घेरे रहते थे। उनके कंधे मोटे और ठोढ़ी बड़ी थी। वे सिर हिला-हिलाकर ताल दे-दे नाचते और अत्यन्त मनोहर स्वरमें गाते थे। ब्राह्मणोंकी सभामें वे चारों वेदोंका उच्चारण करते थे। वामनजीका स्वरूप बड़ा सुन्दर था। दैत्यों तथा ब्राह्मणोंके बालक उन्हें दिन-रात घेरे रहते थे। वे सब ब्रह्मचारी वामनको यज्ञमण्डपमें ले गये और बोले—'तुम अपनी कुटी बनानेके लिये कोई स्थान राजा बलिसे माँग लो। विद्वान् ब्राह्मणका इस नगरमें सदा आदर किया जाता है।' सब मनुष्य उनसे अनुरोध करने लगे—'वामनजी! आप सदा दैत्यराज बलिके नगरमें निवास करें।' 'बहुत अच्छा' कहकर वामनजीने यज्ञमण्डपमें प्रवेश किया। उस समय मण्डपके द्वारपर बड़ा कोलाहल हुआ। वामनजी अनेक ब्राह्मणोंके साथ वहाँ खड़े होकर वेदमन्त्रोंका उच्चारण करने लगे। वेदमन्त्रोंका वह महान् घोष समूचे मण्डपमें छा गया। पहलेसे भीतर गये हुए दैत्योंने दैत्यराज बलिको सूचित किया—'देव! एक वामन ब्रह्मचारी यज्ञमें आपका दर्शन करनेके लिये आये हैं। आप उन्हें भीतर ले आनेके लिये द्वारपालको आज्ञा दें।'

एक मुखसे चारों वेदोंके उच्चारणकी ध्वनि सुनकर राजा बलिको बड़ी प्रसन्नता हुई। वे द्वारपालसे बोले—"इन्हें आदरपूर्वक भीतर ले आओ, मैं इनकी पूजा करूँगा और इन्हें जिस वस्तुकी इच्छा होगी, वही दूँगा। मुझे वे बातें याद हैं, जो गुरुजीने सिखायी थीं—'कोई वेदमय पात्र होता है, कोई तपोमय। जो भी पात्र तुम्हारे पास आवेगा, वही तुम्हें तार देगा।' यज्ञ आरम्भ होनेपर मुझे सत्पात्रके लिये अवश्य दक्षिणा देनी चाहिये।"

बलिकी यह बात सुनकर गुरु शुक्राचार्यने उन्हें रोका और कहा—'राजन्! वामनको भीतर

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

न बुलाओ, सब ब्राह्मणोंका पूजन यज्ञमण्डपके द्वारपर ही करना चाहिये। दीन, अन्ध, कृपण, बधिर, वामन, कुब्ज तथा रोगी—ये सब द्वारपर ही पूजनेयोग्य हैं। आप द्वारपर ही जाकर सोने, चाँदी और वस्त्रोंसे वामनका सत्कार करें। चार पुरुषोंका जन्म व्यर्थ है और सोलह प्रकारके दान भी व्यर्थ हैं—जिनके पुत्र नहीं है, जो धर्मसे बहिष्कृत हैं, जो दूसरेके घर भोजन करते हैं तथा जो परायी स्त्रियोंमें आसक्त हैं। इन चार प्रकारके मनुष्योंका जन्म व्यर्थ माना गया है। अपना कल्याण चाहनेवाले पुरुषको अन्यायोपार्जित धनका दान नहीं करना चाहिये। जो ब्राह्मण नहीं हैं, जिनका विवाह नहीं हुआ है, जो पतित हैं, सन्ध्याहीन हैं, चोर हैं, जो गुरुको प्रसन्न नहीं रख सकते, पिता-माताकी सेवासे विमुख हैं, ब्राह्मणोंमें अधम हैं, शूद्र स्त्रीसे संपर्क रखते हैं, वेद-विक्रेता, कृतघ्न, ग्रामपुरोहित (अथवा गाँव-गाँव भीख माँगनेवाले) हैं, जिन्हें स्त्रीने वशीभूत कर रखा है, जो साँप पकड़नेवाले हैं तथा दूसरोंकी निन्दामें रत रहते हैं, उन सबको दिया हुआ दान व्यर्थ होता है।'

राजा बलिने कहा—गुरुदेव! आपको ऐसी बात नहीं कहनी चाहिये। जो कोई भी वेदोंका स्वाध्याय करता है, वह ब्राह्मण मेरे लिये विष्णुके समान आदरणीय है। घरपर श्रोत्रिय ब्राह्मणके आनेपर उसके सत्कारमें विलम्ब नहीं करना चाहिये। उठकर उसका स्वागत करे, मीठे वचन बोले और चरण धोकर यथाशक्ति उसे भोजन दे। यही गृहस्थका धर्म है। यदि वामनजी मेरे यज्ञमण्डपसे बिना पूजा प्राप्त किये ही लौट जायँगे तो सर्वस्व दक्षिणाके संकल्पसे किया जानेवाला यह सम्पूर्ण यज्ञ व्यर्थ हो जायगा।

यह बातचीत हो ही रही थी कि वामनजी दैत्यराज बलिके समीप बुलाकर लाये गये। उनका पिंगल शरीर तेजसे सूर्यकी भाँति प्रज्वलित हो रहा था। विष्णुस्वरूप वामनजीको आते देख राजा बलि उठकर उनके सम्मुख गये और प्रणाम करके आगे खड़े हो इस प्रकार बोले—'मैं धन्य हूँ, जिसके यज्ञमें विष्णुके समान ब्राह्मणका शुभागमन हुआ है।' यों कहकर बलि उन्हें मध्यवेदीके समीप ले गये। उन्हें बैठनेको आसन दिया। पाद्य, आचमनीय और अर्घ्य अर्पण किया। चन्दन, धूप और गन्ध आदिके द्वारा उनकी पूजा करके सामने खड़े हो उन्हें मधुपर्क और गौ निवेदन की। वामनजीने मधुपर्कको सूँघकर गायको प्रणाम किया। बलिने कहा—'विप्रवर! आपका स्वागत है।' वामनजी बोले—'राजन्! तुम्हारा कल्याण हो; मैं याचक होकर आया हूँ, मुझे दान दो।' बलिने कहा—'प्रभो! बताइये, आपको क्या दिया जाय?' वामन बोले—'दैत्यराज! भूमि दो।' बलिने कहा—'प्रभो! कितनी भूमि दूँ?' वामन बोले—'राजन्! मुझे कुटी बनानेके लिये तीन पग भूमि दीजिये।' बलिने कहा—'मैंने आपको तीन पग भूमि दी।' वामन बोले—'मैंने तुम्हारा यह दान ग्रहण किया।'

इसी बीचमें शुक्राचार्य बोल उठे—'इन्हें दान न दो। ये सनातन विष्णु हैं।' तब बलिने कहा—'गुरुदेव! यदि ऐसी बात है तो इनसे बढ़कर दानका उत्तम पात्र और कौन हो सकता है।' यों कहकर बलिने सव्यभावसे दाहिने हाथमें कुश और अक्षत लिये; परंतु गुरुजीने न तो संकल्प पढ़ा और न वामनके हाथमें जल ही गिरवाया। यह देख सारे ऋषि, होता, सभासद, बहुत-से ब्राह्मण, दैत्य तथा राजाके स्त्री-पुत्र और बन्धु-बान्धव आश्चर्यचकित हो उठे और कहने लगे—'**दत्तम्**' (दिया) तथा '**गृहीतम्**' (लिया) यह वाणीद्वारा दोनों ओरसे कह दिये जानेपर भी गुरुजी संकल्पके लिये जल क्यों नहीं छोड़ते हैं। वामनजीके हाथमें कल्याणके निमित्त ही जल दिया जाना चाहिये। वाणीद्वारा जो दान दे दिया गया, उसे क्रियाद्वारा निष्पन्न क्यों नहीं किया जाता? गुरुजी यजमानको नरकमें घसीट रहे हैं।

यह सब सुनकर शुक्राचार्यने कहा—'राजन्! ये वामन साक्षात् विष्णु हैं। दैवयोगसे तुम्हें देखनेके लिये आये हैं। पता नहीं दान लेकर

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

ये तुम्हारा प्रिय करेंगे या अप्रिय।' तब बलिने कहा—'गुरुदेव! मेरी बात सुनिये। मैं इन्द्र हूँ, साक्षात् भगवान् विष्णु ही ब्राह्मण हैं और देनेयोग्य द्रव्य सूर्यदेवताका स्वरूप है। जब साक्षात् विष्णु ही यहाँ उपस्थित हैं, तब उनकी प्रीतिके लिये मुझे यह दान क्यों नहीं देना चाहिये?' यों कहकर बलिने वामनके हाथमें संकल्पका जल दे दिया। तब वामनजी चतुर्भुज रूप धारण करके बढ़ने लगे। उनके बढ़ते हुए स्वरूपको देखकर ब्राह्मण, ऋषि और देवता उनकी स्तुति करने लगे—'देव! आपकी जय हो; अनन्त! आपकी जय हो; सर्वव्यापी विष्णुदेव! आपकी जय हो; अपनी महिमासे कभी च्युत न होनेवाले परमेश्वर! आपकी जय हो; मत्स्यरूपधारी हरे! आपकी जय हो; कूर्मावतार! आपकी जय हो। पृथ्वीको उठानेवाले वाराह! आपको नमस्कार है। नरसिंह! आपको नमस्कार है, नमस्कार है। जमदग्निनन्दन परशुराम! आपको नमस्कार है। लक्ष्मणसहित श्रीराम! आपकी जय हो। कृष्ण! जगन्नाथ! देवकीनन्दन! आपकी जय हो। बुद्ध और कल्किको मैं प्रणाम करता हूँ।'

इस प्रकार सब नर-नारी भगवान्‌की स्तुति करते थे। देवर्षि नारद और सनकादि योगी भी उनके गुण गाते थे। भगवान् विष्णुने दो ही पगोंमें समस्त ब्रह्माण्डको माप लिया, तीसरेके लिये स्थान न रहा। उस समय देवता, दानव, मनुष्य, गन्धर्व, नाग तथा राक्षसोंने भी भगवान् विष्णुके चरणोंका पूजन और उनका स्तवन किया। गन्धर्वोंने उनके गुण गाये। भगवान् जब अपने चरणको समेटने लगे, उस समय उसके आघातसे ब्रह्माण्ड फूट गया और उससे बाहरका जल वहाँ प्रकट हो गया। वही जल भगवान् विष्णुके चरणोंसे प्रकट हुई गंगा है। जो ब्रह्माण्डके शिरोभागसे निकली है। गंगा देवी त्रिभुवनको पवित्र करनेवाली हैं। साक्षात् भगवान् शंकरने अपने मस्तकपर उन्हें धारण किया है। वे स्वर्गलोकमें स्वर्धुनीके नामसे पूजित होती हैं और भूलोकमें आनेपर 'गां (भूमिं) गता' इस व्युत्पत्तिके अनुसार 'गंगा' कहलाती हैं तथा जब वे पातालमें आयीं तब त्रिपथगाके नामसे प्रसिद्ध हुईं। गंगाजीके स्मरणमात्रसे सब पापोंका नाश हो जाता है। उनके दर्शनसे सम्पूर्ण अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है। उनके जलमें स्नान करनेमात्रसे सात जन्मोंके पाप नष्ट हो जाते हैं। जो गंगाजीमें स्नान करके देवी, विष्णु तथा शिवकी पूजा करता है, वह इन्द्रलोकको लाँघकर श्रीविष्णुके लोकमें प्रतिष्ठित होता है। श्रीविष्णुके चरणोदकरूप गंगाका जल पीकर, उसमें स्नान करके तथा उसे प्रणाम करके मन और इन्द्रियोंका पूर्ण संयम रखनेवाला पुरुष मोक्षको प्राप्त होता है। एकादशीको उपवास करके मनुष्य मुक्ति पाते हैं। जो शुद्ध भावसे युक्त हो परमात्मचिन्तनमें स्थित होते हैं, जनसमुदायके स्थानोंसे विरक्त रहते हैं, वे संसार-बन्धनका उच्छेद करके परम गतिको प्राप्त होते हैं।

महादेवजी कहते हैं—देवि! प्रतिज्ञाकी पूर्ति न कर सकनेके कारण वामनजीने जो बलिका निग्रह किया, उससे देवताओंको बड़ी प्रसन्नता हुई। तत्पश्चात् भगवान्‌ने राजा बलिपर अनुग्रह किया और उन्हें पाताललोकमें भेजकर स्वयं वामनस्थलीमें निवास करनेका विचार किया। वहाँ उन्होंने पंचाग्नि-साधन किया और 'वामनपुरी' बसायी। विश्वकर्माद्वारा बनायी हुई वह पुरी श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको दी गयी। वह पुरी भद्रा नदीके किनारे स्थित है। मधुमतीमें साढ़े तीन करोड़ तीर्थ हैं। वृद्ध प्रभासमें उन सबका विस्तार बताया गया है। भगवान् विष्णु वामनस्थलीमें स्थित हुए। राजा बलि पाताललोकमें रहने लगे, मधुमतीमें सब कामनाओं और फलोंके दाता भगवान् माधव विराजमान हैं। पार्वती! इस प्रकार मैंने तुमसे बारह योजन विस्तृत प्रभासक्षेत्रका वर्णन किया, जो स्मरण करनेमात्रसे सब सिद्धियोंको देनेवाला है।

प्रभासखण्ड सम्पूर्ण

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

श्रीद्वारका-माहात्म्य

भगवान्‌के परमधाम पधारनेपर महर्षियोंका ब्रह्माजीकी आज्ञासे प्रह्लादजीके समीप जाना और प्रश्न करना

श्रीशौनकजीने पूछा—सूतजी! अनेक प्रकारके पाखण्डोंसे भरे हुए इस भयंकर कलिकालमें हम भगवान् मधुसूदनको किस प्रकार प्राप्त कर सकेंगे?

सूतजीने कहा—महर्षियो! दशरथनन्दन श्रीरामचन्द्रजी महाराज जब परमधामको चले गये, उसके दीर्घकालके पश्चात् द्वापरमें जब दुष्ट राजाओंके भारसे यह पृथ्वी पीड़ित होने लगी, उस समय साक्षात् भगवान् विष्णु देवताओंका कार्य सिद्ध करने एवं पृथ्वीका भार उतारनेके लिये वसुदेवजीके कुलमें अवतीर्ण हुए। फिर वे नन्दके व्रजमें गये। वहाँ उनके द्वारा पूतनाका नाश हुआ। तृणावर्त मारा गया। दहीसे भरा हुआ छकड़ा उलट दिया गया। कालियनागका दमन और प्रलम्बासुरका संहार हुआ। तत्पश्चात् श्रीकृष्णने अपने हाथसे गोवर्धन पर्वतको उठाकर इन्द्रके कोपसे गोकुलकी रक्षा की। उनका गौओंके इन्द्रपदपर अभिषेक हुआ और इन्द्रका अहंकार दूर किया गया। फिर भगवान्‌ने रासक्रीड़ा की। उसके बाद केशी दानव मारा गया। फिर वे अक्रूरके कहनेसे मथुरापुरीमें गये। वहाँ भी श्रीकृष्णने कुबलयापीड हाथी और मल्लराज चाणूरको मौतके घाट उतारा। दैत्योंके स्वामी भोजराज कंसको भी मार गिराया। उग्रसेनको मथुराका राजा बनाया। जरासन्धकी असंख्य भयंकर सेनाका संहार किया। युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञमें शिशुपालका भी वध किया। उसके बाद महाभारत-युद्ध आरम्भ होकर समाप्त हो गया। इस प्रकार पृथ्वीका बहुत बड़ा भार उतर गया। तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्ण समस्त यदुवंशियोंको तीर्थयात्राके लिये प्रभासक्षेत्रमें ले आये। वहाँ उनमें परस्पर कलह आरम्भ हो गया और उस महाभयंकर कलहाग्निमें समस्त यादववंश जलकर भस्म हो गया। तब भगवान् विष्णु वहीं अस्त्र-शस्त्रोंका त्याग करके अश्वत्थ वृक्षकी जड़का सहारा लेकर भूमिपर जा बैठे। इतनेहीमें एक बहेलियेने बाण मारा और उनके चरणमें घाव हो गया। इसे ही निमित्त बनाकर भगवान् श्रीकृष्ण परमधामको चले गये। इसके बाद अर्जुन द्वारकामें आये और यदुकुलकी स्त्रियों तथा बालकोंको लेकर जब बाहर निकले, तब समुद्रने सब ओरसे यदुपुरीको डुबो दिया। श्रीहरिके मन्दिरका निर्माण कराकर वज्र इन्द्रप्रस्थ चले गये। इस प्रकार द्वापर बीत गया और महाभयानक कलिकाल आ पहुँचा। सद्धर्म क्षीण होने लगा। अधर्म प्रबल हो गया। वेदवादका बहिष्कार होने लगा। वर्ण और आश्रमधर्मका ह्रास हुआ तथा धर्मका एक ही चरण शेष रह गया। जब ऐसी अवस्था प्राप्त हुई, तब समस्त वनवासी महर्षि परस्पर मिलकर मन्त्रणा करने लगे। उस मन्त्रणामें गर्ग, च्यवन, गालव, असित, देवल, धौम्य तथा उद्दालक आदि अनेक महर्षि सम्मिलित थे। वे आपसमें इस प्रकार बोले—'अहो! देखो तो सही, पृथ्वीपर प्रत्येक दिशामें कलियुगका साम्राज्य हो गया है। सब ओर लुटेरों और डाकुओंसे प्रजाको बड़ा कष्ट हो रहा है। सत्य और सरलता आदि सद्‌गुणोंका त्याग करके प्रायः लोग पापमें प्रवृत्त हो रहे हैं। ऐसी दशामें हमें भगवान् विष्णुकी प्राप्ति कैसे होगी? भवसागरमें पड़े हुए हमलोगोंका

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

कौन उद्धार करेगा? भगवान् पुण्डरीकाक्षके बिना इस कलियुगमें हम कैसे रहेंगे?'

इस प्रकार जब वे तपस्वी महर्षि दुखी एवं चिन्तित हो रहे थे, उस समय महर्षि उद्दालकने उन सबसे कहा—'मुनिवरो! हमलोग शीघ्र ही ब्रह्मलोकमें चलें और ब्रह्माजीसे पूछें, कलियुगमें भगवान् विष्णुकी स्थिति कहाँ है? क्योंकि कलिकालमें भगवान्के बिना संसारमें कौन रहेगा।'

उनकी बात सुनकर सब महर्षियोंने एक स्वरसे 'बहुत अच्छा, बहुत अच्छा' कहकर ब्रह्माजीके निकट प्रस्थान किया। वहाँ ब्रह्माजीका दर्शन करके उनके चरणोंमें प्रणाम किया और इस प्रकार स्तुति की—'कमलोद्भव! आपको नमस्कार है। अक्षय! अविनाशी! चतुरानन! आपको नमस्कार है। संसारकी सृष्टि करनेवाले! आपको नमस्कार है। पितामह! आपको नमस्कार है।'

मुनियोंके इस प्रकार स्तवन करनेपर ब्रह्माजी बहुत प्रसन्न हुए। फिर पाद्य और अर्घ्यसे उन मुनिवरोंका सत्कार करके उन्होंने पूछा—'पुत्रो! तुम्हारे आगमनका क्या प्रयोजन है? तुम लोगोंके पुत्र, शिष्य, अग्नि और भाई-बन्धु तो कुशलसे हैं न?'

ऋषियोंने पूछा—भगवन्! आपके प्रसादसे सर्वत्र कुशल है। आप सम्पूर्ण देवताओंके गुरु हैं। आपका दर्शन पाकर हमें तपस्याका सम्पूर्ण फल मिल गया। अब हम अपने आनेका कारण बतलाते हैं। सत्ययुग आदि तीन युग व्यतीत हो गये। अब भयंकर कलियुग प्राप्त हुआ है। इस समय पृथ्वीपर भगवान् विष्णु कहाँ हैं? जिनका दर्शन करके हम बन्धनरहित हो परम मुक्ति प्राप्त कर सकें।

ब्रह्माजीने कहा—तुमलोग पातालमें जाओ और वहाँ दैत्योंमें श्रेष्ठ प्रह्लादजीसे पूछो। उन्हें कलियुगमें भगवान्के रहनेके स्थानका पता होगा। वे तुमसे सब कुछ बता देंगे।

ब्रह्माजीकी बात सुनकर उन तपस्वी महात्माओंने उन्हें प्रणाम किया और प्रह्लादजीकी प्रशंसा करते हुए वे दैत्यराजके नगरमें गये। उन्हें दूरसे ही आते देख राजा बलि और प्रह्लादजीने उठकर उनकी अगवानी की और पाद्य, अर्घ्य, मधुपर्क एवं गौ देकर उनका यथावत् पूजन किया। तत्पश्चात् प्रसन्न चित्तसे हाथ जोड़कर कहा—'महाभाग महात्माओ! आपका स्वागत है। आजका प्रभात हमारे लिये बड़ा उत्तम था, जो कि आपका दर्शन प्राप्त हुआ। कहिये, मैं आपलोगोंकी क्या सेवा करूँ?'

इस प्रकार दैत्यराज प्रह्लादके द्वारा सत्कार किये जानेपर वे महर्षि बोले—'भगवान्के प्रिय भक्त प्रह्लादजी! आप इस भवसागरसे हमारे रक्षक होइये। इस भयंकर कलिकालमें भगवान् विष्णुके बिना हमलोग कैसे रह सकेंगे। इस युगमें अधर्मने सनातन धर्मपर विजय पायी है। झूठने सत्यको तथा शूद्रोंने ब्राह्मणोंको परास्त किया है। राजाका रूप धारण करके आये हुए म्लेच्छ ब्राह्मणोंको सता रहे हैं। वर्णाश्रम-धर्मका ह्रास हो गया है। वेदोक्त मार्ग लुप्त होता जा रहा है। ऐसे समयमें भगवान् विष्णु कहाँ हैं? जहाँ ज्ञान, ध्यान और इन्द्रियनिग्रहके बिना भी भगवान्की प्राप्ति हो, उस गूढ़ स्थानका पता हमें बताइये। दैत्यराज! आप हमारे सुहृद् हैं, मार्गदर्शक हैं, अतः कृपा करके बताइये, भगवान् विष्णु कहाँ विराज रहे हैं?'

इस प्रकार उन श्रेष्ठ ब्राह्मणोंके पूछनेपर दैत्यराज प्रह्लादने उन्हें मस्तक झुकाया और देवताओंसहित ब्रह्माजी एवं परमात्माको नमस्कार करके उत्तर देना आरम्भ किया।

~~०~~

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

द्वारकाकी महिमा, वहाँकी यात्रा और उसमें योग देनेका माहात्म्य, गोमती और चक्रतीर्थकी उत्पत्ति एवं महिमा, सनकादिकोंपर भगवान्‌की कृपा

श्रीप्रह्लादजी बोले—महर्षियो! आप सम्पूर्ण देवताओं, दैत्यों, दानवों तथा राक्षसोंके भी पूजनीय हैं। आप पूजनीय महापुरुषोंकी आज्ञा तथा भगवान् विष्णुके प्रसादसे मैं भगवान्‌के स्थानका परिचय देता हूँ—पश्चिम समुद्रके तटपर जो कुशस्थलीपुरी है, जिसका निर्माण पहले राजा कुशके द्वारा हुआ है, जहाँ गोमती नदी बहती है और समुद्रमें मिली है, वही द्वारावतीपुरी कहलाती है। उसे आनर्ता भी कहते हैं। उसीमें सोलह कलाओं तथा बारह मूर्तियोंसे युक्त विश्वात्मा भगवान् विष्णु निवास करते हैं। जो भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले हैं। वही परम धाम है, वही परमपद है। वह द्वारकापुरी धन्य है, जहाँ शंख, चक्र और गदा धारण करनेवाले चतुर्भुज श्रीकृष्ण विद्यमान हैं। वहाँ जानेसे कलिकालके मनुष्य मुक्ति प्राप्त कर लेंगे। जहाँ गोमती नदी बहती हैं, जहाँ भगवान् विष्णुकी त्रिविक्रम मूर्ति है, उस द्वारकापुरीमें जाकर चक्रतीर्थमें स्नान करनेवाले मनुष्य मोक्ष प्राप्त करेंगे। जब भगवान् श्रीकृष्ण प्रभासक्षेत्रमें परमधामको पधारे, तब कलासहित वे उस त्रिविक्रम मूर्तिमें स्थित हुए, अतः ब्राह्मणो! इस कलिकालमें भगवान् श्रीकृष्ण द्वारकाके सिवा अन्यत्र नहीं मिल सकते। यदि आपको श्रीकृष्णसे मिलनेकी इच्छा हो तो शीघ्र वहीं जाइये।

ऋषि बोले—भगवद्भक्तोंमें श्रेष्ठ तथा उत्तम मार्ग दिखानेवाले प्रह्लादजी! आपको धन्यवाद है। आज हमने आपके द्वारा उस रहस्यको जान लिया, जिसे आपके सिवा दूसरा कोई नहीं जानता है। अब यह बताइये कि द्वारकापुरीमें जानेसे क्या फल होता है? वहाँ श्रीकृष्ण-दर्शनसे किस फलकी प्राप्ति होती है? द्वारकामें कौन-कौनसे तीर्थ और देवता हैं।

प्रह्लादजीने कहा—ब्राह्मणो! जब मनुष्य द्वारका जानेका विचार मनमें लाता है, उसी समय उसके पितर नरकसे मुक्त हो हर्षके गीत गाने लगते हैं। मनुष्य भगवान् श्रीकृष्णके मार्गमें जितने पग आगे चलता है, उसे पग-पगपर अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है। जो मानव श्रीकृष्णपुरीकी यात्राके लिये दूसरोंको प्रेरणा देता है, वह निःसन्देह विष्णुधाममें जाता है। जो द्वारका अथवा मथुरा जानेवाले मनुष्यको धन देता है, वह भगवद्धाममें आनन्दक्रीड़ा करता है। उस मार्गमें थके हुए शरीरवाले मनुष्यको जो सवारी देता है, वह मनुष्य हंसयुक्त विमानसे स्वर्गमें जाता है। जो यात्रामें जाते हुए भूखे पुरुषको मध्याह्नकालमें अन्न देता है, वह गयाश्राद्धसे होनेवाले पुण्यको पाता है। वहाँ पितरोंकी अक्षय तृप्ति होती है। जो द्वारका जानेवाले यात्रीको पहननेके लिये जूते देता है, वह मानव भगवान् श्रीकृष्णके प्रसादसे हाथीपर बैठकर चलता है। जो द्वारका जानेवालेके मार्गमें विघ्न खड़ा करता है, वह मूढ एक कल्पतक रौरव नरकमें डूबा रहता है। जो द्वारकाके मार्गमें टिके हुए पुरुषको कमण्डलु देता है, उसे एक हजार पौंसला चलानेका फल होता है। जो उस तीर्थके मार्गमें जाते हुए पुरुषसे भगवान् विष्णुकी कथा-वार्ता एवं संगीत सुनता है अथवा उसे दान देता है, उससे बढ़कर धन्य मनुष्य कोई नहीं है। द्वारकामें देवाधिदेव भगवान् श्रीकृष्णका मन्दिर कैलास-शिखरके समान ऊँचा और श्वेत बादलोंकी भाँति उज्ज्वल है। जो उसका दर्शन करता है, वह मनुष्योंमें श्रेष्ठ है। दूरसे ही फहराती हुई ध्वजा-पताकाके साथ भगवन्मन्दिरका सुवर्णमय कलश देखकर जो सवारीको त्याग देता और धरतीपर लोटकर उसे प्रणाम करता है, उसके पंचसूनाजनित पाप,

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

अन्यान्य, भयंकर पाप, मार्गमें पैरोंसे दबकर मरे हुए कृमि-कीट और पतंग आदिके वधसे होनेवाले, परान्न-भोजन, परकीय जलपान तथा स्पर्शसे होनेवाले पाप—ये सभी उस भगवत्क्षेत्रके दर्शनसे नष्ट हो जाते हैं। द्वारकाके यात्रीको चाहिये कि वह मार्गमें विष्णुसहस्रनाम, भीष्मस्तवराज अथवा गजेन्द्रमोक्षका पाठ करते हुए धीरे-धीरे चले। भगवान्‌के अनेक अवतारोंकी लीला-कथाका गान करते हुए सदा हर्षमें भरा रहे और पवित्रभावसे यात्रा करे। पहले बिना पैर धोये ही भगवान् गणेशको नमस्कार करे। इससे सब विघ्नोंका नाश होता है। जो पहले बड़े भैया बलरामजीको प्रणाम करके नीलकमलदलके समान श्याम वर्णवाले देवकीनन्दन श्रीकृष्णको प्रणाम करता है, वह उनके दर्शनमात्रसे बाल, कुमार तथा युवावस्थामें किये हुए समस्त पापोंका नाश कर देता है। इतना ही नहीं, सहस्रों जन्मोंके मन, वाणी और क्रियाद्वारा किये हुए उसके जितने भी पाप हैं, सब नष्ट हो जाते हैं। एक हजार भार सुवर्णदान करनेसे जो फल मिलता है, उससे कोटि गुना फल द्वारकामें श्रीकृष्णके मुखका दर्शन करनेसे मिल जाता है। कमलके समान नेत्रोंवाले देवेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण तथा द्वारकाकी रक्षा करनेवाले महर्षि दुर्वासाजीको गरुड़सहित प्रणाम करके द्वारकापुरीके उत्तम द्वारपर आवे।

तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्ण ही जिसके आश्रय हैं, उस गोमती नदीके समीप जाय। उसका दर्शनमात्र करके मनुष्य सब पातकोंसे मुक्त हो जाता है। गोमतीका जल पापराशि और अमंगलका विनाश करनेवाला तथा मनुष्योंकी सम्पूर्ण कामनाओंको देनेवाला है। उसे प्रणाम करना चाहिये। वह महापापोंका क्षय करनेवाला, जिनकी कहीं भी गति नहीं है, उन्हें सद्गति देनेवाला तथा परम शीतल है। मनुष्यके सब पुण्य जब सहायक होते हैं, तभी उसे गोमतीका जल प्राप्त होता है।

ऋषियोंने पूछा—दैत्यराज! यह गोमती कौन है और इसे कौन लाया है?

प्रह्लादजीने कहा—प्राचीनकालमें जब एकार्णवके जलमें समस्त स्थावर-जंगम जगत्‌का नाश हो गया था, उस समय भगवान् विष्णुके नाभिकमलसे ब्रह्माजी उत्पन्न हुए। भगवान्‌ने आज्ञा दी—'ब्रह्मन्! नाना प्रकारकी प्रजाकी सृष्टि कीजिये।' 'बहुत अच्छा' कहकर ब्रह्माजीने सृष्टिमें मन लगाया। उन्होंने अपने मनसे सनक, सनन्दन आदि कुमारोंको जन्म दिया और कहा—'पुत्रो! प्रजा उत्पन्न करो।' ब्रह्माजीका यह वचन सुनकर सनक आदि महात्मा हाथ जोड़कर बोले—'भगवन्! प्रजापते! हम भगवत्स्वरूपका दर्शन करना चाहते हैं, अतः हम बन्धनमें नहीं पड़ेंगे। इस दुर्गम सृष्टिके चक्रमें नहीं फँसेंगे।' ऐसा कहकर सनकादि कुमार वहाँसे चल दिये। पश्चिम दिशामें समुद्रके तटपर आकर वे भगवान्‌के तेजोमय स्वरूपका दर्शन पानेकी इच्छासे उन्हींमें मन लगाकर उत्तम तपस्यामें संलग्न हो गये। बहुत वर्षोंके पश्चात् धरणीधर भगवान् विष्णु प्रसन्न हो समुद्रके जलका भेदन करके उनके सामने प्रकट हुए। उनका वह तेजोमय स्वरूप सूर्यके समान दुर्दर्श था। करोड़ों सूर्योंके समान तेजस्वी तथा सहस्रों धारवाले सुदर्शन चक्रमय स्वरूपका दर्शन करके ब्रह्माजीके पुत्र सनकादि बड़े विस्मित हुए। वे भगवान्‌के उस उत्तम आयुधकी ओर देखते रह गये। उन्हें आश्चर्यमें पड़ा हुआ देख आकाशवाणी हुई—'ब्रह्मपुत्रो! भगवान् विष्णु शीघ्र ही प्रकट होंगे। भगवान्‌की पूजाके लिये शीघ्र अर्घ्य प्रदान करो। यह उन्हीं भगवान् जगन्नाथका आयुध है। इसके लिये भी शीघ्र अर्घ्य दो।'

आकाशवाणीका यह कथन सुनकर उन सब महर्षियोंने सुदर्शनकी स्तुति की। वे बोले—'ज्योतिर्मय सुदर्शन! तुम्हें नमस्कार है। हरिवल्लभ! तुम्हें नमस्कार है। सहस्र अरोंवाले सुदर्शनचक्र! तुम अविनाशी हो, तुम्हें नमस्कार है। सूर्यस्वरूप! तुम्हें नमस्कार है। ब्रह्मरूप! तुम्हें नमस्कार है। तुम्हारा प्रहार कभी व्यर्थ नहीं होता।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

तुम्हें नमस्कार है। चक्ररूप! तुम्हें बार-बार नमस्कार है।'

इस प्रकार स्तुति करके उन्होंने फूल और अक्षत आदिसे भगवान्‌के प्रिय आयुध सुदर्शनका पूजन और प्रणाम किया। तत्पश्चात् भगवान्‌के दर्शनके लिये उत्सुक होकर सनकादिकोंने मन-ही-मन अपने पिता ब्रह्माजीका स्मरण किया। उनका अभिप्राय जानकर ब्रह्माजीने गंगाजीसे कहा—'सरिताओंमें श्रेष्ठ गंगे! तुम भगवान्‌की सेवाके लिये भूतलपर जाओ। 'गो' अर्थात् इस दिव्य लोकमें तुम मुझे विशेष अभिमत हो, इसलिये पृथ्वीपर तुम्हारा नाम गोमती होगा। जैसे पिताके साथ पुत्री जाती है, उसी प्रकार तुम वसिष्ठजीके पीछे-पीछे पृथ्वीपर जाओ और वसिष्ठजीकी पुत्री होकर रहो।' 'बहुत अच्छा' कहकर गंगादेवी पश्चिम समुद्रकी ओर चलीं। आगे-आगे वसिष्ठजी और पीछे-पीछे गंगा। वसिष्ठजीके साथ गंगाजीको पश्चिम समुद्रकी ओर जाती देख सब लोगोंने नमस्कार किया। जहाँ सनकादि मुनि थे, वहीं गंगाजी प्रकट हुईं। उन महाभाग मुनियोंने दिव्य सुगन्धित माला, चन्दन, धूप आदिसे उनकी पूजा करके उनके ऊपर अक्षत और फूल बिखेरे। भगवान्‌के लक्ष्मीसेवित चतुर्भुजरूपका दर्शन करनेकी इच्छावाली सर्वलोकपावनी महाभागा गंगाजीकी उन सबने बड़ी प्रशंसा की और साधुवाद दिया। वसिष्ठजीको देखकर सब ब्राह्मण उठकर खड़े हो गये और बोले—'महर्षे! आप इस श्रेष्ठ नदीको यहाँ ले आये हैं, इसलिये यह लोकमें आपकी पुत्रीरूपसे विख्यात होगी। 'गो' अर्थात् स्वर्गसे इस स्थानपर आकर यह मतिस्वरूपा मानी गयी है, इसलिये लोकमें गोमती नामसे उसकी प्रसिद्धि हुई है। इसके दर्शनमात्रसे मनुष्य मोक्षको प्राप्त होंगे। फिर यहाँ स्नान-दान आदि करके वे श्रीहरिके धाममें जायँगे, इसके विषयमें कहना ही क्या।' सनकादि योगीश्वरोंने गोमतीको अर्घ्य देकर पुरुषसूक्तके मन्त्रोंसे शेषशायी भगवान् श्रीहरिका स्तवन किया। इस प्रकार स्तुति करते हुए उनके समक्ष साक्षात् भगवान् विष्णु प्रकट हुए। उन्होंने पीले रंगका रेशमी वस्त्र पहन रखा था। गलेमें वनमाला शोभा दे रही थी। दिव्य माला तथा दिव्य अनुलेपनसे उनके श्रीअंगोंकी बड़ी शोभा हो रही थी। वे दिव्य आभूषणोंसे विभूषित थे। शेषनागकी शय्यापर पौढ़े हुए थे। उन्होंने हाथोंमें अनेकों दिव्य आयुध धारण कर रखे थे। उनके मस्तकपर कीरीट-मुकुट जगमगा रहा था और कानोंमें मकराकृत कुण्डल चमचम कर रहे थे। भक्तोंको अभय देनेवाले कमनीय विग्रह महाबाहु श्रीहरिका वक्षःस्थल श्रीवत्सचिह्नसे सुशोभित था। उनके मुखपर शाश्वत प्रसन्नता छायी हुई थी। श्रीविग्रहकी कान्ति श्याम थी। चार भुजाओंसे शोभायमान वे भगवान् विष्णु लक्ष्मीजीके द्वारा चरणसंवाहनजनित आनन्दमें मग्न होकर अतिशय मनोहर प्रतीत होते थे। उन्हें देखकर सनकादि मुनि बड़े प्रसन्न हुए और वैदिक विष्णुसूक्तके मन्त्रोंसे आनन्दस्वरूप श्रीविष्णुकी स्तुति करने लगे। उनके इस प्रकार स्तवन करनेपर दीनोंपर दया करनेवाले श्रीहरि प्रसन्नचित्त होकर इस प्रकार बोले—'ब्रह्मकुमारो! मैं तुमसे बहुत संतुष्ट हूँ; अतः तुम्हें मनोवांछित वर दूँगा। तुम मेरी मायासे निर्लिप्त रहकर नित्य ज्ञानसम्पन्न होओगे। ब्राह्मणो! तुमने मोक्षकी अभिलाषा लेकर मुझ जलशायी विष्णुको प्रसन्न किया है; इसलिये यह मेरा श्रेष्ठ तीर्थ सदा मोक्षदायक होगा। तुमपर अनुग्रह करनेके लिये यहाँ पहले सुदर्शन चक्र प्रकट हुआ है; अतः उस चक्रके नामपर यह तीर्थ चक्रतीर्थ कहलायगा। यहाँ महासागरमें मेरा भी नियमित रूपसे निवास होगा। जो मानव किसी अन्य प्रसंगसे भी यहाँ चक्रतीर्थमें स्नान करते हैं, उन्हें मुक्ति हाथ लग जाती है। विप्रवरो! आपलोग भी सदा यहाँ निवास करें।'

भगवान्‌का यह वचन सुनकर सनकादि

279 Skandpuran_Section_45_1_Front Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

महात्माओंके मनमें बड़ा हर्ष हुआ। उन्होंने भगवान्‌को अर्घ्य दे गोमतीके जलसे उनके चरण पखारे और उन चरणोंको मस्तकपर धारण किया। इस प्रकार श्रीहरिके चरणोंका प्रक्षालन करके महाभयहारिणी गोमती महासागरमें मिल गयीं। तदनन्तर सनकादि महात्माओंको अभीष्ट वरदान दे श्रीहरि वहीं अन्तर्धान हो गये और ब्रह्मपुत्र सनकादि एकाग्रचित्त हो उसी तीर्थमें रहने लगे। इस प्रकार वहाँ गोमतीका प्रादुर्भाव हुआ और वह समुद्रमें जा मिली। पहले जिनका नाम गंगा सुना गया था, वे ही द्वारकामें सागरगामिनी गोमती कहलायीं।

गोमतीमें स्नान और भगवत्पूजनकी महिमा

ऋषि बोले—दैत्यप्रवर महाभाग प्रह्लादजी! आपको अनेकशः धन्यवाद है; क्योंकि आपने इस कलियुगमें हमें भगवान् श्रीहरिका दर्शन कराया है। जहाँ गोमती नदी बहती है, उस स्थानपर हमें अवश्य जाना चाहिये; क्योंकि वहाँ भगवान् श्रीहरि चक्रतीर्थका निरीक्षण करते हुए सदा निवास करते हैं। महामते! अब गोमतीमें स्नान तथा भगवान् श्रीकृष्णके पूजनकी विधिका वर्णन कीजिये।

प्रह्लादजीने कहा—गोमतीके तटपर जाकर पहले उसे साष्टांग प्रणाम करे; फिर हाथ-पैर धोकर दोनों हाथोंमें कुशा ले तथा अक्षत और फल आदि संग्रह करके संयमपूर्वक पूर्वाभिमुख होकर बैठे और विधिवत् अर्घ्य दे। अर्घ्यका मन्त्र इस प्रकार है—

ब्रह्मलोकात्समायाते वशिष्ठतनये शुभे।
सर्वपापविशुद्ध्यर्थं ददाम्यर्घ्यं च गोमति॥
वशिष्ठदुहितर्देवि शक्तिज्येष्ठे यशस्विनि।
त्रैलोक्यवन्दिते देवि पापं मे हर गोमति॥

'ब्रह्मलोकसे आयी हुई वसिष्ठकी पुत्री गोमती! मैं तुम्हें सब पापोंसे शुद्ध होनेके लिये अर्घ्य देता हूँ। वसिष्ठतनये! तुम्हारी शक्ति बहुत बड़ी है। सुयशसे सुशोभित होनेवाली त्रिभुवनवन्दिता गोमती देवी! मेरे पाप हर लो।'

इस मन्त्रका उच्चारण करके हाथमें मिट्टी लेकर मन-ही-मन भगवान् विष्णुका स्मरण करते हुए निम्नांकित मन्त्रका उच्चारण करे—

अश्वक्रान्ते रथक्रान्ते विष्णुक्रान्ते वसुन्धरे।
उद्धृतासि वराहेण कृष्णेन शतबाहुना॥
मृत्तिके हर मे पापं यन्मया पूर्वसञ्चितम्।
त्वया हतेन पापेन सर्वपापैः प्रमुच्यते॥

'अश्व, रथ तथा भगवान् विष्णुके द्वारा आक्रान्त होनेवाली वसुन्धरे! तुम्हें सैकड़ों भुजाओंवाले वराहरूपधारी भगवान् विष्णुने जलके ऊपर उठाया है। मृत्तिके! मेरे पूर्वसंचित पाप हर लो। तुम्हारे द्वारा पापके नष्ट कर दिये जानेपर मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है।'

ऐसा कहकर उस मृत्तिकाको सब अंगोंमें लगावे और विधिपूर्वक स्नान करे। स्नानके समय **'आपो अस्मान्०'** इत्यादि वैदिक मन्त्रका भी उच्चारण करना चाहिये। सूर्यग्रहणके समय कुरुक्षेत्रमें स्नान करनेसे जो पुण्य होता है, वही श्रीकृष्णके समीप गोमतीमें स्नान करनेमात्रसे प्राप्त हो जाता है। अतः उत्तम भक्तिभावसे गोमतीमें स्नान करके यथोचित कर्म करे। देवताओं, पितरों और मनुष्योंका तर्पण करे। जो रौरव नरकमें स्थित हैं अथवा कीटयोनिमें पड़े हैं, वे सब पितर गोमतीका जल देनेसे निस्सन्देह मुक्त हो जाते हैं। अक्षत और कुशके बिना ही बिना भावनाके भी गोमतीका जलमात्र अर्पण करनेसे गया-श्राद्धका फल होता है।

इस प्रकार तर्पण करनेके पश्चात् तीर्थवासी वेदज्ञ ब्राह्मणोंको निमन्त्रित करे और विश्वेदेव आदिके पूजनपूर्वक पितरोंका श्राद्ध करे। सुवर्ण

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

और रजतकी दक्षिणा दे। सोनेके सींग और चाँदीके खुरोंसे विभूषित रत्नमय पुच्छ और ताम्रमय पृष्ठभागवाली दुग्धयुक्त सवत्सा गौकी वस्त्र और आभूषणोंद्वारा पूजा करके भगवान् विष्णुकी प्रसन्नताके उद्देश्यसे सप्तधान्यसहित उस गौका दान करे। तदनन्तर ब्राह्मणोंको सीमाके बाहरतक पहुँचाकर जितेन्द्रिय एवं पवित्र पुरुषों, दीनों, अन्धों और कृपणोंको अपनी शक्तिके अनुसार दान दे। गोमती नदी, गोमयस्नान, गोदान, गोपीचन्दन तथा गोपीनाथका दर्शन—ये पाँच गकार दुर्लभ हैं।* इसलिये मनुष्यको गोमतीके तटपर गोदान अवश्य करना चाहिये। ऐसा करनेसे मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है। जो पूर्वकर्मोंके फलसे स्थावर (वृक्ष आदि)-की योनिमें चले गये हैं, ऐसे पितर, पितृकुलके हों या मातृकुलके, वे सभी कलियुगमें गोमतीके दर्शनसे मोक्षको प्राप्त होते हैं। गोमतीके तटपर श्राद्ध करनेसे निश्चय ही अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त होता है। प्रयागमें गंगा-स्नान करनेसे जो पुण्य होता है, उसे गोमतीके तटपर श्राद्ध करनेवाला पुरुष प्राप्त कर लेता है। उसके तीनों कुलोंके पितर विष्णुलोकमें जाते हैं तथा सहस्रों जन्मोंका किया हुआ पाप नष्ट हो जाता है। गोमतीके दर्शनसे मन, वाणी और क्रियाद्वारा किये हुए सभी पाप विलीन हो जाते हैं। भयभीत प्राणीको अभयदान देनेसे मनुष्य जिस पुण्यको पाता है, उसीको गोमतीके जलमें स्नान करके मनुष्य पा लेता है; इतना ही नहीं, वह पैतृक ऋणसे मुक्त एवं कृतकृत्य हो जाता है। मन, वाणी और क्रियाद्वारा किये हुए समस्त पाप गोमतीके जलका सम्पर्क होते ही नष्ट हो जाते हैं। गोमतीमें स्नान करनेवाला पुरुष सुन्दर वनमाला, चार भुजा तथा दिव्य गन्ध और अनुलेपनसे युक्त होकर उस विष्णुधाममें जाता है, जहाँसे पुनः लौटकर इस संसारमें नहीं आना पड़ता।

चक्रतीर्थ तथा रुक्मिणीह्रदका माहात्म्य

प्रह्लादजी कहते हैं—विप्रवरो! यहाँसे चक्रतीर्थयुक्त समुद्रके समीप जाय, जहाँ मोक्ष देनेवाली चक्रांकित शिलाएँ देखी जाती हैं। जो प्रतिदिन भाव-भक्तिके साथ भगवान् जगन्नाथ श्रीकृष्णका पूजन करते हैं और सदा अपलक नेत्रोंसे उनका दर्शन करते रहते हैं, वे धन्य हैं। साक्षात् भगवान् श्रीकृष्णने जिसे निरन्तर अपनी दृष्टिसे देखकर पालन किया है, वह श्रीहरिका सर्वपापनाशक चक्रतीर्थ सबसे श्रेष्ठ है। किसी दूसरे प्रसंगसे भी जिसका दर्शन कर लेनेपर मनुष्य पापमुक्त हो जाता है, वह चक्रतीर्थ सब तीर्थोंमें श्रेष्ठ और पावन है। वहाँ जाकर प्रसन्नतापूर्वक हाथ-पैर धोकर आचमन करनेके पश्चात् साष्टांग प्रणाम करे। फिर पंचरत्नयुक्त अर्घ्यपात्र लेकर उसमें फूल, अक्षत, गन्ध, फल और चन्दन आदि मिलाकर अर्घ्य तैयार करे और फिर उसे हाथमें लेकर पश्चिम या समुद्रकी ओर मुँह करके निम्नांकित मन्त्र पढ़े—

ॐ नमो विष्णुरूपाय विष्णुचक्राय ते नमः।
गृहाणार्घ्यं मया दत्तं सर्वकामप्रदो भव॥

'ॐविष्णुस्वरूप तुम विष्णुचक्रको बार-बार नमस्कार है। मेरा दिया हुआ अर्घ्य स्वीकार करो और मेरे सम्पूर्ण मनोरथोंके दाता बनो।'

इस प्रकार अर्घ्य देकर समुद्रमें स्नान करे। फिर तीर्थकी भीगी हुई मिट्टी हाथमें ले उसे मस्तकपर धारण करके प्रणवका उच्चारण करते हुए पुनः स्नान करे। तदनन्तर क्रमशः देवता, ऋषि, मनुष्य तथा पितरोंका तर्पण करके भक्तिभावसे श्रीविष्णु और शिवका पूजन करे। भलीभाँति विधिपूर्वक किये हुए सहस्रों अश्वमेध यज्ञोंसे

* गोमती गोमयस्नानं गोदानं गोपिचन्दनम्। दर्शनं गोपिनाथस्य गकाराः पञ्च दुर्लभाः॥ (स्क० पु०, द्वा० मा० ६। २३-२४)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

जो फल प्राप्त होता है, वही चक्रतीर्थमें स्नान करनेमात्रसे मिल जाता है। चक्रतीर्थसे निकली हुई चक्रांकित शिला मनुष्योंद्वारा सदा पूजनेयोग्य है। उसके पूजनसे भगवान् विष्णुका सामीप्य प्राप्त होता है। मन, वाणी और क्रियाद्वारा किये हुए समस्त पाप वहाँ स्नानमात्रसे नष्ट हो जाते हैं।

वहाँसे सुप्रसिद्ध सात कुण्डोंके समीप जाय, जो सब पापोंका नाश करनेवाले तथा ऋद्धि और बुद्धिको बढ़ानेवाले हैं। कलियुगमें उनकी रुक्मिणीह्रदके नामसे प्रसिद्धि होगी। भृगुजीसे सेवित होनेके कारण उसे भृगुतीर्थ भी कहते हैं। वहाँ जाकर प्रसन्नतापूर्वक हाथ-पैर धोये और आचमन करके इन्द्रियसंयमपूर्वक पूर्वाभिमुख हो कुश, फल, फूल, अक्षत और रजत आदिसे युक्त भरा हुआ अर्घ्यपात्र लेकर मस्तकसे लगाकर इस प्रकार कहे—'मैं सब पापोंके नाश तथा रुक्मिणीजीकी प्रसन्नताके लिये रुक्मिणीह्रदनामक इस तीर्थको भक्तिपूर्वक अर्घ्य देता हूँ।' ऐसा कहकर अर्घ्य दे और सिरपर मार्जन करके स्नान करे। फिर देवता, ऋषि, मनुष्य और पितरोंका तर्पण करके ब्राह्मणोंको बुलाकर भक्तिभावसे श्राद्ध करे। फिर सुवर्ण और रजतकी दक्षिणा दे। विशेषतः रसीले फल अर्पण करने चाहिये। ब्राह्मणदम्पतिको मिष्टान्न भोजन करावे। पितृपंक्ति तथा अन्यान्य स्त्रियोंका यथाशक्ति कंचुकि और लाल वस्त्रोंके द्वारा पूजन करे। '**रुक्मिणी प्रीयताम्**—रुक्मिणीदेवी प्रसन्न हों' ऐसा कहकर वह पूजन आदि कर्म रुक्मिणीदेवीको समर्पित करना चाहिये। ऐसा करनेपर मनुष्य कृतकृत्य होता, सम्पूर्ण कामनाओंको प्राप्त करता और विष्णुलोकमें जाता है। जो रुक्मिणीकुण्डमें स्नान करता है, वह शक्तिहीन तथा याचक नहीं होता। उसे संसारचक्रमें भटकना नहीं पड़ता। वह दुःख, शोक,पाप तथा महान् भयसे मुक्त हो भगवान् विष्णुके धाममें जाता है।

विष्णुपदोद्भवतीर्थकी महिमा, उद्धवजीका व्रजमें आगमन, उनके साथ गोपियोंकी बातचीत, गोपियोंका द्वारकागमन तथा मयसरोवरकी महिमा

प्रह्लादजी कहते हैं—विप्रवरो! वहाँसे विष्णुपदोद्भव तीर्थमें जाय, जिसके दर्शनमात्रसे गंगास्नानका फल मिलता है तथा जिसके स्मरण और कीर्तनसे सब पापोंका नाश हो जाता है। भगवान् श्रीकृष्णने रुक्मिणीजीके लिये जिस गंगाजीको प्रकट किया था, वही विष्णुपदा कहलाती हैं। उसमें आचमन करनेमात्रसे अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त होता है। श्रीविष्णुके चरणसे प्रकट हुई है, इसलिये वह वैष्णवी नामसे भी प्रसिद्ध है। वहाँ जाकर विधिपूर्वक अर्घ्य हाथमें लेकर निम्नांकित मन्त्रका उच्चारण करे—

नमस्ये त्वां भगवति विष्णुपादतलोद्भवे।
गृहाणार्घ्यमिदं देवि गङ्गे त्वं हरिणा सह॥

'भगवान् विष्णुके चरणतलसे प्रकट हुई भगवती गंगे! मैं तुम्हें नमस्कार करता हूँ। देवि! तुम श्रीहरिके साथ मेरा यह अर्घ्य स्वीकार करो।'

ऐसा कहकर अर्घ्य दे। फिर हाथसे तीर्थकी मृत्तिका लेकर मस्तकमें लगाये और इन्द्रियोंको अपने वशमें रखते हुए पूर्वाभिमुख हो स्नान करे। स्नानके बाद देवताओं और पितरोंका तर्पण करे। फिर ब्राह्मणोंको निमन्त्रित करके श्रद्धापूर्वक श्राद्ध करे। सोना-चाँदी दक्षिणामें दे। अपनी शक्तिके अनुसार दीनों, अन्धों और कृपणोंको भी दान दे।

तत्पश्चात् गोप्रचार या गोपीसरोवर तीर्थमें जाय, जहाँ भक्तिपूर्वक स्नान करके मनुष्य गोदानका फल पाता है। जहाँ जगदीश्वर श्रीकृष्ण श्रावण मासमें देवताओंसहित स्नान करते हैं, वहाँ द्वादशीको चटाई देनेका विधान है।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth 279 Skandpuran_Section_45_2_Back

ऋषियोंने पूछा—दैत्यराज! वहाँ गोप्रचार तीर्थ कैसे हुआ? जिसमें साक्षात् भगवान् जनार्दन स्नान करते हैं?

प्रह्लादजीने कहा—अमित तेजस्वी भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा भोजराज कंसके मारे जानेपर जब उग्रसेन मथुरापुरीके राजा हुए, उस समय गोकुलप्रिय श्रीकृष्णने अपने सुहृद् गोपों तथा गोपीजनोंका प्रिय करनेके लिये उद्धवजीको गोकुलमें भेजा। उद्धवजी गोविन्दको नमस्कार करके उन्हींके समान वेष-भूषा तथा वस्त्रालंकार धारण करके नन्दगाँवकी ओर चले। सन्ध्याकालमें श्रीकृष्णके प्रिय सखा उद्धवजीको अपने घर आया देख पुत्रवत्सला माता यशोदाने अच्छे-अच्छे वस्त्र और आभूषण देकर उनका सत्कार किया। जब उद्धवजी भोजन करके विश्राम कर चुके, तब पुत्रस्नेहमयी यशोदा तथा नन्दबाबाने अपने नेत्रोंमें आँसू भरकर श्रीकृष्णका कुशल-समाचार पूछा—'उद्धवजी! बताओ तो सही, हमारे दोनों पुत्र श्रीकृष्ण-बलराम कुशलसे तो हैं न? क्या श्रीकृष्ण अपने साथी ग्वाल-बालोंको कभी याद करते हैं? क्या मथुरानाथ गोविन्द कभी गोकुलमें भी पधारेंगे? क्या हमारा लाला कन्हैया इस गोकुलका शोकसमुद्रसे उद्धार करेगा?' ऐसा कहकर पुत्रस्नेहके वशीभूत यशोदा मैया और नन्दबाबा—दोनों दीनभावसे फूट-फूटकर रोने लगे। उनके नेत्रोंसे अश्रुधारा बह रही थी। उद्धवने देखा, ये दोनों विरहकी अन्तिम सीमातक पहुँच गये हैं। अब इनके प्राण रहेंगे या नहीं, यह संशय उपस्थित हो गया है। तब उन्होंने श्रीकृष्णके स्नेहयुक्त मधुर सन्देश सुनाकर उन दोनोंको जीवनदान दिया। उद्धवजी बोले—'श्यामसुन्दर श्रीकृष्णने अपने बड़े भैया बलरामजीके साथ आप दोनोंको नमस्कार कहलाया है। कुशल-मंगल पूछा है और वे दोनों भाई भी कुशलसे हैं। जगदीश्वर श्रीकृष्ण बलरामजीके साथ शीघ्र ही यहाँ आवेंगे और आपलोगोंका हित-साधन करेंगे।'

इस प्रकार श्रीकृष्णके सन्देश-वाक्योंसे नन्द और यशोदाको सान्त्वना देकर उनके द्वारा सम्मानित हो उद्धवजी शय्यापर सुखपूर्वक सोये। प्रातःकाल गोपियाँ नन्दबाबाके द्वारपर रथ खड़ा देख अत्यन्त विस्मित हुईं। उनके मनमें सन्देह हुआ, श्रीकृष्ण तो नहीं आ गये? अतः वे परस्पर पूछने लगीं, 'नन्दरायजीके घरमें सूर्यके समान तेजस्वी रथसे ये श्रीकृष्णकी-सी वेष-भूषा धारण किये कौन आये हैं?' इस प्रकार जिज्ञासा करती हुई समस्त व्रजसुन्दरियाँ परस्पर मिलकर एकान्त स्थानमें गयीं और शोकसे दुर्बल हो उद्धवजीको वहीं बुलाकर श्रीकृष्णका सन्देश पूछने लगीं—'तुम कहाँसे आये हो? और किसलिये यहाँ पधारे हो?' इतना कहते-कहते वे शोकसे विह्वल एवं मूर्च्छित हो गयीं और उद्धवजीकी ओर देखती हुई पृथ्वीपर गिर पड़ीं।

श्रीकृष्ण-प्रेम-परवश गोपीजनोंकी यह अवस्था देखकर उद्धवजीने उन्हें श्रवण-सुखद वचनोंद्वारा आश्वासन देते हुए कहा—'गोपियो! भगवान् श्रीकृष्णकी भी यही दशा है। वे दिन-रात तुम्हारी ही याद करके निरन्तर दुःखी रहते हैं।' उद्धवजीकी यह बात सुनकर ललिता प्रणयकोपसे मूर्च्छित-सी होकर आँखें लाल किये रोती हुई बोलीं—'श्यामसुन्दर झूठे हैं। मर्यादा भंग करनेवाले और क्रूर हैं। क्रूर मनुष्य ही उन्हें प्रिय हैं। कृतज्ञता तो उनमें छू भी नहीं गयी है। उद्धवजी! आप उनकी कोई चर्चा हमारे आगे न कीजिये।'

श्यामला बोली—सखियो! तुमलोग उनकी बात चलाती ही क्यों हो? छोड़ो श्रीकृष्णकी चर्चा, कोई दूसरी बातें करो।

धन्याने कहा—पुरुषार्थहीन लक्ष्मीपतिके इन दूत महोदयको कौन यहाँ बुला लाया है? श्रीकृष्णका साथ करनेसे कोई लाभ नहीं है।

विशाखा बोली—जिनके कुल और शीलका कोई पता नहीं है, उन्हें पापका भय क्या होगा? उनके जन्म-कर्मकी ख्याति तो स्त्रीवधसे ही प्रारम्भ हुई है।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

श्रीराधाजीने कहा—सखियो! जिन्हें प्राणियोंका वध करनेमें पापका कोई भय नहीं होता, उन्हें स्त्री-वध करनेमें क्या शंका हो सकती है?

शैव्या बोली—महाभाग उद्धवजी! सच बताइये, नागरी स्त्रियोंसे घिरे हुए यदुवंशशिरोमणि श्रीकृष्ण क्या कभी हमलोगोंका भी स्मरण करते हैं?

पद्माने कहा—उद्धवजी! नागरीजनोंके प्रियतम तथा कमल-दलके सदृश विशाल नेत्रोंवाले श्रीकृष्ण यहाँ कब पधारेंगे?

भद्रा बोली—हा कृष्ण! हा गोपप्रवर! हा गोपीजनवल्लभ! महाबाहो! हम गोपियोंका संसार-सागरसे उद्धार करो।

इस प्रकार नाना प्रकारकी बातें कह-कहकर व्रजयुवतियाँ विलाप करने लगीं! वे श्रीकृष्णकी एक-एक लीला याद करके फूट-फूटकर रोने लगीं। उनका वह रोना सुनकर भक्ति और स्नेहमें डूबे हुए उद्धवजीको बड़ा विस्मय हुआ और वे उन गोपियोंकी सराहना करने लगे—'अहो! ब्रह्मा, महादेवजी, देवता तथा महर्षि भी जिस भावतक नहीं पहुँच सकते, वहाँ इन गोपियोंकी पहुँच हो चुकी है। व्रजकी ये समस्त सुन्दरियाँ धन्य हैं। इन सबका जन्म, जीवन तथा यौवन-धन सफल हो गया, क्योंकि भगवान् श्यामसुन्दरमें इनकी भक्ति अविचल है।'

गोपियाँ बोलीं—उद्धवजी! आप हमें गोविन्दका दर्शन करा दें। प्यारे श्यामसुन्दरसे मिला दें। जहाँ श्रीकृष्ण रहते हैं, वहीं हमको भी ले चलें।

गोपांगनाओंकी यह बात और विलाप सुनकर उद्धवजी स्नेहसे विह्वल हो गये और 'बहुत अच्छा' कहकर उनका अनुरोध स्वीकार कर लिया। तदनन्तर श्रीकृष्णदर्शनके लिये लालायित रहनेवाली समस्त व्रजांगनाएँ बड़ी प्रसन्नताके साथ उद्धवजीके पीछे-पीछे चलीं। वे मार्गमें उनकी बाललीलाके प्रिय गीत गाती जा रही थीं। यदुपुरीके समीप पहुँचकर उन्होंने वहाँके उद्यानों और वन-श्रेणियोंको देखा। तब वे परस्पर कहने लगीं—'यहाँ हमें अपने प्यारे कमलनयन नन्दनन्दनका दर्शन होगा।' द्वारकामें जाने और लक्ष्मीपतिका चिन्तन करनेसे गोपियाँ समस्त पापोंसे मुक्त हो गयीं, उनके सारे बन्धन टूट गये। धीरे-धीरे वे मयसरोवरके तटपर आयीं। वहाँ उद्धवजीने उनके चरणोंमें प्रणाम करके कहा—'देवियो! तुमलोग यहीं ठहरो। महाबाहु श्रीकृष्ण यहीं आवेंगे और तुम सब लोगोंका हित करेंगे।'

गोपियोंने पूछा—उद्धवजी! खिले हुए कमलों, कह्लारों, कुमुदों और उत्पलोंसे जिसकी विचित्र शोभा हो रही है और जहाँ सारस किलोल करते हैं, ऐसा यह सरोवर किसका है?

उद्धवजीने कहा—माया जाननेवाला महादैत्य मय तीनों लोकोंमें विख्यात है। उसीने यह सुन्दर सरोवर बनाया है; अतः उसीके नामसे यह मयसरोवर कहलाता है।

गोपियाँ बोलीं—अच्छा, उद्धवजी! आप शीघ्र जाइये और प्यारे श्यामसुन्दरको बुला लाइये। वे ही हमारे नयनोंमें आनन्दकी सृष्टि करते हैं। उन्हींसे हमारे तीनों तापोंका नाश होता है; अतः शीघ्र उनका दर्शन कराइये।

यह सुनकर उद्धवजी गये और भगवान् श्रीकृष्णको शीघ्र बुला लाये। गोपियोंने देखा, देवकीनन्दन आ रहे हैं। उनका श्रीअंग वनमालासे विभूषित है। मस्तकपर किरीटमुकुट जगमगा रहा है। कानोंमें मकराकार कुण्डल चमचम कर रहे हैं। वक्षःस्थलमें श्रीवत्सका चिह्न शोभा पा रहा है। उनकी बड़ी-बड़ी भुजाएँ हैं। उन्होंने रेशमी पीताम्बर पहन रखा है। तीनों लोकोंमें सबसे अधिक सुन्दर और सबका मन मोह लेनेवाले अपने प्रियतम श्यामसुन्दरको दीर्घकालके बाद देखकर श्रीकृष्णप्रिया गोपियाँ प्रेमावेशसे मूर्च्छित हो गयीं। कुछ देरके बाद जब वे सचेत हुईं, तब इस प्रकार विलाप करने लगीं—'हा नाथ! हा प्राणवल्लभ! हा स्वामिन्! हा व्रजेश्वर! हा मनमोहन! बचपनमें जिन्होंने तुम्हारा लालन-

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

पालन किया, जिनके साथ तुमने क्रीडाएँ कीं, उनको भी तुमने त्याग दिया। निर्दयी! बताओ तो सही, हमपर इतने रुष्ट कैसे हो गये? हम जानती हैं, तुममें न धर्म है न सौहार्द, न मैत्री है और न सत्यवादिता, तुम तो पिता-माताका भी परित्याग करनेवाले हो। तुम्हें कैसे सद्गति प्राप्त होगी? प्राणवल्लभ! भक्तजनोंका परित्याग सब शास्त्रोंमें निन्दित बताया गया है। वीर! हमें वनमें छोड़ते समय तुमने उन शास्त्र-वचनोंपर भी दृष्टिपात नहीं किया?'

गोपियोंका यह विलाप सुनकर सबके आन्तरिक भावोंको जाननेवाले भगवान् श्रीकृष्णने यह जान लिया कि सब गोपियाँ अनन्यभावसे मेरी शरणमें आयी हैं; अतः व्रजेश्वरने उन सबको सान्त्वना देते हुए कहा—'देवियो! तुमसे मेरा कभी वियोग नहीं है। मैं समस्त प्राणियोंके हृदयमें सदा सामान्यरूपसे निवास करता हूँ। मैं ही सबकी उत्पत्तिका कारण हूँ। मुझसे ही इन्द्र आदि देवता प्रकट हुए हैं। आदित्य, वसु, रुद्र, विश्वेदेव, मरुद्गण, ब्रह्मा, विष्णु, शिव, आद्याशक्ति, महर्षि, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, सत्त्व, रज, तम, काम, क्रोध, लोभ, मद और अहंकार—इन सबकी प्रवृत्ति मुझसे ही होती है। ऐसा जानकर तुम मनमें शोक न करो। सब प्राणियोंके भीतर मुझे सदा ही स्थित जानकर अन्तर्यामीरूपसे मेरा चिन्तन करो। इससे सब प्रकारके पाप-तापसे मुक्त हो जाओगी।'

श्रीकृष्णका यह वचन सुनकर गोपियोंके सब बन्धन कट गये। उनके संशय और क्लेश नष्ट हो गये। वे भगवद्दर्शनजनित आनन्दमें डूब गयीं। श्रीकृष्णके दर्शनसे उनका अन्तःकरण अत्यन्त निर्मल हो गया। वे इस प्रकार बोलीं—'गोविन्द! आज हमारा जन्म सफल हो गया। आज हमारे नेत्र सार्थक हो गये। क्योंकि आज दीर्घकालके बाद हमारी आँखें नागरीजनवल्लभ गोविन्दका दर्शन कर रही हैं। पुण्यहीन स्त्रियोंको पुरुषोत्तम श्रीकृष्णका दर्शन नहीं होता। मधुसूदन! यद्यपि आपने युक्ति तथा अर्थयुक्त वचनोंसे हमें ज्ञानका उपदेश दिया है तथापि हमारे हृदयसे माया नहीं निकलती।'

श्रीकृष्णने कहा—इस सरोवरके दर्शन और स्पर्शसे तुम सम्पूर्ण बन्धनोंसे मुक्त हो गयी हो। अब इसमें स्नान कर लेनेसे तुम्हारी सम्पूर्ण कामनाएँ पूरी हो जायँगी।

गोपियाँ बोलीं—जगन्नाथ! आपने इस सरोवरका अद्भुत प्रभाव बतलाया है। अब इसमें स्नान करनेकी क्या विधि है, वह विस्तारपूर्वक कहिये।

श्रीकृष्णने कहा—गोपियो! इस सरोवरपर मेरे साथ तुम्हारा मिलन हुआ है, अतः यहाँ मेरे ही साथ तुम्हें नियमपूर्वक स्नान करना चाहिये। जो श्रावण शुक्ला द्वादशीको संयम, नियम एवं पवित्रतासे रहकर भक्तिपूर्वक इस सरोवरमें स्नान करके पितरोंका तर्पण करेगा और मेरे तथा पितरोंके उद्देश्यसे यथाशक्ति दान देगा, वह पितरोंसहित विष्णुधामको प्राप्त होगा। मयतीर्थके पास जाकर दोनों हाथोंमें कुश और फल ले निम्नांकित मन्त्रसे अर्घ्य दे—

गृहान्धकूपे पतितं मायापाशशतैर्वृतम्।
मामुद्धर महीनाथ गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते॥

'महीनाथ! मैं घरके अन्धकूपमें पड़ा हूँ। मायाके सैकड़ों बन्धनोंमें बँधा हूँ। मेरा उद्धार करो। यह अर्घ्य लो। तुम्हें नमस्कार है।'

इस प्रकार अर्घ्य दे भक्तिपूर्वक स्नान करे। भक्तिभावसे पितरोंका तर्पण और श्राद्ध करे। सोने और चाँदीकी दक्षिणा दे। शक्कर मिलाया हुआ खीर, मधु आदि अर्पण करे। मुझे तुमलोगोंका यहाँ दर्शन हुआ है; अतः मुझे सदा इस जलाशयमें आना और रहना चाहिये। प्यारी गोपियो! जो इस मयसरोवरमें स्नान करता है, उसे गंगास्नानका फल और अक्षय वैकुण्ठधाम प्राप्त होते हैं। उसके तीनों कुलोंके पितर मुक्त हो जाते हैं। वह स्वयं भी पुत्र-पौत्रसे युक्त तथा धन-धान्यसे सम्पन्न होता है। जीवनभर सुख भोगकर अन्तमें श्रीहरिके धामको जाता है।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

गोपी-सरोवरका निर्माण और उसकी महिमाका वर्णन

प्रह्लादजी कहते हैं—श्रीकृष्णका यह वचन सुनकर गोपियोंके मनमें बड़ी प्रसन्नता हुई। उस मयसरोवरमें स्नान करके वे समस्त बन्धनोंसे मुक्त हो गयीं। श्यामसुन्दर श्रीकृष्णके दर्शनसे उनके हृदयमें असीम आनन्द हुआ था। उन्होंने माधवसे मधुर वाणीमें कहा—'भगवन्! दैत्योंमें श्रेष्ठ मय धन्य है, जिसके बनाये हुए सरोवरमें सम्पूर्ण देवताओंके साथ जगदीश्वर निवास करें। प्रभो! यदि आप हम पर प्रसन्न हैं और हम आपके कृपापात्र हैं तो हमारे लिये भी एक तीर्थका निर्माण कराइये। जहाँ रहकर आपके नामोंका कीर्तन, आपका दर्शन तथा निरन्तर आपके स्वरूपका ध्यान करनेसे हम परम गतिको प्राप्त हों।'

श्रीकृष्णने कहा—साध्वी गोपियो! तुम मेरी आत्मीयजन हो; अतः तुम्हारा प्रिय कार्य अवश्य करूँगा। तुम सदैव मेरे अनुग्रहकी पात्र हो; क्योंकि मैं सदा भक्तिके वशीभूत रहता हूँ।

ऐसा कहकर भगवान् श्रीकृष्णने गोपियोंके हितके लिये मयसरोवरके समीप एक-दूसरे सरोवरका निर्माण कराया। उसमें अगाध जल था। कमलके पत्ते उसकी शोभा बढ़ा रहे थे। उस सरोवरका जल बड़ा ही स्वच्छ था। हंस, सारस और चक्रवाक आदि पक्षी उसे सुशोभित करते थे। कुमुद, उत्पल, कह्लार और पद्मखण्ड उस सरोवरके शृंगार थे। उसके तटपर मुख्य-मुख्य ब्राह्मण, सिद्ध और विद्याधर आकर रहने लगे। यदुकुलकी स्त्रियाँ, बालक और उस जनपदके लोग दिन-रात वहाँ भरे रहते थे। उस सरोवरको देखकर श्रीकृष्णने कहा—'गोपियो! मयसरोवरके समीप सज्जनोंके मनकी भाँति स्वच्छ जलसे भरे हुए इस सरोवरको देखो। यह तुम्हारे ही लिये तैयार कराया गया है। तुम्हारे नामसे ही इसकी ख्याति होगी। तुम्हें और मुझे गोवाचक शब्द अभीष्ट है; अतः गौके नामपर लोकमें यह तीर्थ गोप्रचार नामसे प्रसिद्ध होगा। मैंने तुम सब गोपियोंका प्रिय करनेकी इच्छासे इस सरोवरका निर्माण किया है; इसलिये यह गोपीसरोवरके नामसे भी विख्यात होगा। तुमलोग मेरे प्रति विशेष भक्तिके कारण यहाँ आयी हो, अतः तुम्हें जो अभीष्ट हो या तुम्हारे मनमें जो कुछ भी हो, वह माँगो।'

गोपियाँ बोलीं—माधव! आप प्रसन्नतापूर्वक इस सरोवरमें निवास करें। जहाँ आप हैं वहीं दान, व्रत, नियम, ॐकार, वषट्कार, स्वाहाकार, स्वधाकार, भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्गलोक, महर्लोक, जन, तप और सत्यलोक सबकी स्थिति है। देवता, असुर और मनुष्योंसहित यह सम्पूर्ण जगत् श्रीकृष्णमय ही है। तीनों लोकोंको पवित्र करनेवाली गंगा आपका चरणोदक ही तो हैं। आपके वक्षःस्थलमें लक्ष्मी और मुखमें सरस्वती देवीका वास है। जगदीश्वर! आप यहाँ अपने सर्वभूतमय स्वरूपसे स्नान करें। महाबाहो! यहाँकी यात्रा करनेसे जो फल होता हो, उसका वर्णन कीजिये।

श्रीकृष्णने कहा—गोपियो! सुनो—सदाचारी, शुद्ध, निर्धन, परोपकारी एवं कुटुम्बी ब्राह्मणको आवश्यक सामग्री, बछड़ा, वस्त्र, आभूषण तथा शास्त्रोक्त दक्षिणासे युक्त गाय दान करनेसे जो फल प्राप्त होता है, वह सब इस गोपी-तीर्थमें स्नान करनेमात्रसे मिल जाता है। जो मनुष्य अनेक प्रकारके स्तोत्रोंसे स्तुति करते हुए मेरे विग्रहके साथ गाते-बजाते गोपी-सरोवरकी यात्रा करते हैं, उन्हें कभी माताके गर्भकी यातना नहीं भोगनी पड़ती। वे समस्त मनोरथोंको पाते और विष्णुलोकको जाते हैं। गोपीसरोवरमें निम्नांकित मन्त्रसे श्रद्धापूर्वक अर्घ्य देकर स्नान करना चाहिये—

अर्घ्य-मन्त्र

नमस्ते गोपरूपाय विष्णवे परमात्मने।
गोप्रचार जगन्नाथ गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते॥

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

'गोपरूपधारी परमात्मा विष्णुको नमस्कार है। गोप्रचार! जगन्नाथ! यह अर्घ्य ग्रहण करो। तुम्हें नमस्कार है।'

इस प्रकार विधिपूर्वक अर्घ्य दे हाथसे तीर्थकी मिट्टी लेकर मस्तकमें लगावे और श्रद्धापूर्वक स्नान करके देवताओं तथा पितरोंका तर्पण करे। फिर एकाग्रचित्त हो भक्तिभावसे श्राद्ध करे और शास्त्रमें बताये अनुसार सुवर्ण तथा रजतकी दक्षिणा दे। ऐसा करनेसे मनुष्य उत्तम गतिको पाता है। उसके तीनों कुलोंके पितर उत्तम लोकमें जाते हैं। श्राद्धकर्ता पुरुष यदि पुत्रकी इच्छा रखनेवाला हो तो वह मनके अनुकूल पुत्र पाता है। जो गोपीसरोवरमें स्नान करता है, वह स्वर्ग और मोक्ष आदि जिस-जिस वस्तुको चाहता है, सब कुछ पा लेता है। जबतक जगत् रहेगा, तबतक यह सरोवर भी रहेगा और जबतक सरोवर रहेगा, तबतक तुम्हारी कीर्ति भी स्थिर रहेगी। मनुष्यलोकमें जबतक कीर्ति बनी रहती है, तबतक उसका स्वर्गलोकमें रहना निश्चित है। इसमें स्नान करके निष्पाप हुए समस्त प्राणी परम गतिको प्राप्त होंगे। भाद्रपदमास आनेपर जलसे भरे हुए पवित्र गोपीसरोवरमें नियमपूर्वक स्नान करना होगा। तुमलोग कान्तभावसे अथवा ब्रह्मभावसे मुझ परमेश्वरका चिन्तन करते हुए परम उत्तम गतिको प्राप्त होओगी।

इस प्रकार भगवान्‌की आज्ञा पाकर उन गोपकन्याओंने उन्हें नमस्कार किया और वे जैसे आयी थीं, वैसे ही चली गयीं। इस प्रकार गोपियोंको विदा करके उद्धवसहित श्रीकृष्ण अपने घरको गये।

ब्रह्मकुण्ड, चन्द्रसरोवर, इन्द्रसरोवर, महादेवसरोवर, गौरीसरोवर, वरुणसरोवर तथा पंचनदतीर्थका माहात्म्य

प्रह्लादजी कहते हैं—द्वारकामें बहुत-से आश्चर्यजनक तीर्थ हैं, जो घोर कलियुग प्राप्त होनेपर समुद्रमें विलीन हो जाते हैं। भगवान् श्रीकृष्ण पृथ्वीका भार उतारकर और साधु पुरुषोंको सन्मार्गमें स्थापित करके जब बड़े-बूढ़े वृष्णिवंशियोंके साथ द्वारका चले आये, तब उनके दर्शनके लिये सम्पूर्ण देवताओंके साथ इन्द्र, वरुण, यम, कुबेर, सूर्य तथा चन्द्रमा वहाँ आये और श्रीकृष्णसे मिलकर अपना कार्य सिद्ध कर लेनेके पश्चात् ब्रह्माजीने अपने नामसे वहाँ एक तीर्थ निर्माण किया, जो ब्रह्मकुण्ड कहलाया। वह सब पापोंका नाश करनेवाला तीर्थ है। ब्रह्मकुण्डके तटपर उन्होंने सूर्यनारायणकी स्थापना की। लोकपितामह ब्रह्माजी सम्पूर्ण देवताओंके मूल हैं, अतः उनके द्वारा स्थापित उस तीर्थको मूल स्थान कहते हैं। उस ब्रह्मतीर्थको देखकर चन्द्रमाने भी अपने नामसे एक तड़ाग बनाया, जो सब पापोंका नाश करनेवाला है। उस तेजस्वी तीर्थको देखकर सब देवता बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने लोकस्रष्टा ब्रह्माजीसे कहा—'जो यहाँ स्नान करके पितरोंका तर्पण करेगा तथा जो माघशुक्ला सप्तमीको देवेश्वर मूलस्थानका पूजन करेगा, वह सब पापोंसे मुक्त हो धन-धान्यसे सम्पन्न होगा।'

ब्रह्माजीने उस सरोवरके तटपर एक शिवलिंगको भी स्थापित किया; फिर महाभाग इन्द्रने भी परम सुन्दर सरोवर बनाकर वहाँ इन्द्रेश्वर लिंगकी स्थापना की। वहाँ स्नान करके मनुष्य इन्द्रपद पाता है; अतः वह भूतलपर इन्द्रपदके नामसे प्रसिद्ध है। उसका दर्शन करके मनुष्य सब पातकोंसे मुक्त हो जाता है। अष्टमी और चतुर्दशीको इन्द्रपद तीर्थमें स्नान करके जो इन्द्रेश्वरकी पूजा करता है, वह मोक्ष पाता है। जब सूर्य मकर राशिपर स्थित हों, उस समय उत्तरायणकी संक्रान्तिके अवसरपर तथा विशेषतः शिवरात्रिको पार्वतीसहित इन्द्रेश्वरकी पूजा करके

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

जो मनुष्य रात्रिमें जागरण करता है, वह उत्तम लोकको पाता है।

ब्रह्मतीर्थ और इन्द्रसरोवरका दर्शन करके भगवान् विष्णुके साथ अपनी एकता दिखाते हुए महादेवजीने भी वहाँ एक तड़ाग बनवाया। अथाह जलवाले उस सरोवरको देखकर पिनाकपाणि शिवजीने ब्रह्मा और विष्णुके सहित उसमें स्नान किया। यह देखकर देवताओंने कहा—'इस महासरोवरका निर्माण महादेवजीने किया है, इसलिये यह महादेवसरोवरके नामसे प्रसिद्ध होगा। जो इसमें भक्तिभावसे स्नान, तर्पण और श्राद्ध करेगा, वह उत्तम गतिको प्राप्त होगा। महादेवसरोवरके दर्शनसे मनुष्य पापमुक्त हो जाता है और भक्तिपूर्वक उसमें स्नान करनेसे उसकी कभी दुर्गति नहीं होती। स्त्री स्नान करे तो वह कभी सौभाग्य और सन्तानसे वंचित नहीं होती। वहीं गौरीसरोवर भी है। उसमें स्नान करके मनुष्य सब कामनाएँ प्राप्त कर लेता है।

वरुणजीने भी भगवान्के प्रति भक्तिभाव रखकर दिव्य सरोवरका निर्माण किया, जो वरुणसरोवरके नामसे विख्यात है। जो उसका दर्शन करता है, उसके सब पापोंका नाश हो जाता। भादोंकी पूर्णिमाको वहाँ तर्पण और श्राद्ध करनेसे मनुष्य उस उत्तम लोकमें जाता है, जहाँ जाकर फिर कभी शोकका अवसर नहीं आता।

भगवान् विष्णुको द्वारकामें पधारे हुए सुनकर ब्रह्मपुत्र मरीचि आदि ऋषि श्रीकृष्णपालित द्वारकापुरीमें आये। उन्होंने द्वारकापुरी और समुद्रमें मिली हुई गोमतीका दर्शन करके वहाँ पंचनदतीर्थको स्थापित किया। उनके आवाहन करनेपर वहाँ पाँच नदियाँ वेगपूर्वक आयीं। मरीचिके लिये गोमती नदी, अत्रिके लिये लक्ष्मणा नदी, अंगिराके लिये चन्द्रभागा, पुलहके लिये कुशावती तथा क्रतुको पवित्र करनेके लिये जाम्बवती नदी आयी। उन यशस्वी ब्रह्मपुत्रोंने उन सबमें स्नान करके उस स्थानका नाम पंचनदतीर्थ रखा, जो सब पापोंका नाश करनेवाला है। स्वर्ग और मोक्षकी अभिलाषा रखनेवाले पुरुषोंको वहाँ सदा स्नान करना चाहिये। इन्द्रियसंयमपूर्वक फलसहित अर्घ्यपात्र ले निम्नांकित मन्त्रसे पाँचों नदियोंको अर्घ्य देना चाहिये—

ब्रह्मपुत्रैः समानीताः पञ्चैताः सरितां वराः।
गृह्णं त्वर्घ्यमिमं देव्यः सर्वपापप्रशान्तये॥

'ब्रह्माजीके पुत्रोंद्वारा लायी हुई ये देवीस्वरूपा पाँचों श्रेष्ठ सरिताएँ सब पापोंकी शान्तिके लिये मेरे दिये हुए इस अर्घ्यको ग्रहण करें।'

इस प्रकार अर्घ्य देकर स्नान करनेके पश्चात् देवताओं और पितरोंका तर्पण तथा श्रद्धापूर्वक विधिवत् श्राद्ध करे। ब्राह्मणोंको पंचरत्न और सप्तधान्य दान करे। तदनन्तर दीनों, अन्धों और कृपणोंको अपनी शक्तिके अनुसार दान दे। ऐसा करनेवाला पुरुष सब कामनाओंको पाता और विष्णुलोकमें जाता है*। लोकमें पुत्र और पौत्रोंसे संयुक्त रहकर वह उत्तम सुख पाता है।

~~~०~~~

सिद्धेश्वरलिंग, ऋषितीर्थ, गदातीर्थ आदि विविध तीर्थों और देवी-देवताओंके सेवनकी महिमा तथा श्रीकृष्ण-दर्शनका माहात्म्य

प्रह्लादजी कहते हैं—अपने पिता ब्रह्माजीको द्वारकामें आया हुआ सुनकर सनकादि मुनि उन्हें प्रणाम करनेके लिये गये। उनका दर्शन करके सबने उन्हें साष्टांग प्रणाम किया। ब्रह्माजीने उनसे कुशल-समाचार पूछा और प्रसन्न होकर कहा—'पुत्रो! जिसने महादेवजीका पूजन किया है, उसपर भगवान् विष्णु प्रसन्न होते हैं। यदि भगवान् शिवकी पूजा नहीं की जाय तो श्रीहरि अपनी पूजाको ग्रहण नहीं करते। अतः सब प्रकारसे यत्न करके भगवान् शंकरका पूजन

* दीनान्धकृपणानां च दानं दद्यात्स्वशक्तितः। सर्वान् कामानवाप्नोति विष्णुलोकं स गच्छति॥ (स्क० पु०, द्वा० मा० १४। ५५)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth
~~~

करना चाहिये; जिससे सदा भगवान् विष्णुके लिये की हुई पूजा पूर्णताको प्राप्त हो।'*

ब्रह्माजीका यह वचन सुनकर योगसिद्ध सनकादि महर्षियोंने शिवलिंग स्थापित किया। उसके पास ही ऋषियोंने एक कूपका निर्माण किया। यह देखकर ब्रह्माजीने कहा—'पुत्रो! तुम योगसिद्ध हो। तुम्हारे द्वारा यह शिवलिंग स्थापित हुआ है, इसलिये इसका नाम सिद्धेश्वर होगा। इसके समीप ही ऋषियोंने जो यह कूप निर्माण किया है, इसकी लोकमें ऋषितीर्थके नामसे प्रसिद्धि होगी। यहाँ श्राद्ध और तर्पण किये बिना ही केवल भक्तिपूर्वक स्नान करनेमात्रसे ब्रह्मलोककी प्राप्ति होती है। असत्यवादी तथा परनिन्दापरायण मनुष्य भी ऋषितीर्थमें स्नानमात्र करके शुद्ध हो जाते हैं। ऋषितीर्थमें स्नान करनेवाले पुरुषके मन, वाणी और क्रियाद्वारा किये हुए समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं। जो ऋषितीर्थमें स्नान करके सिद्धेश्वरजीका दर्शन करता है, वह यदि पुत्रहीन हो तो उसे पुत्र-पौत्र प्राप्त होते हैं। सिद्धेश्वरके दर्शनसे पापका नाश और पुण्यकी वृद्धि होती है। उन्हें प्रणाम करनेवाले मनुष्योंको अभीष्ट मनोरथोंकी प्राप्ति होती है और उनके पितर सन्तुष्ट होते हैं।'

तदनन्तर अति उत्तम गदातीर्थमें जाय, जिसमें विधिपूर्वक स्नान करनेसे अग्निष्टोम यज्ञका फल मिलता है। जो वाराहरूपधारी देवेश्वर श्रीविष्णुकी भक्तिपूर्वक पूजा और वन्दना करता है, वह विष्णुलोकमें पूजित होता है।

वहाँसे नागतीर्थमें जाय, जिसमें स्नान करके मनुष्य दिव्य लोकको पाता है। जिस समय समुद्रने द्वारकापुरीको डुबा दिया था, उस समय बहुत-से तीर्थ जल और बालूसे आच्छादित हो गये। उनमेंसे कुछ तो देखे जाते हैं और कुछ अदृश्य हैं। मैं उन सबका संक्षेपसे वर्णन करता हूँ। पापनाशिनी चन्द्रभागामें स्नान करके मनुष्य वाजपेय यज्ञका फल पाता है। वहीं यशोदा और नन्दकी पुत्री देवी चन्द्रार्चिताका स्थान है, जो कुमारी अवस्थामें हैं। उनके हाथोंमें शक्ति, ढाल और तलवार आदि शस्त्र शोभा पाते हैं। वे ही कंस आदि दैत्योंका दलन करनेवाली तथा बलराम और श्रीकृष्णकी बहिन हैं। उनके दर्शनमात्रसे मनुष्य सब कामनाओंको पा लेता है। कलिकालमें पापनाशक मुक्तिद्वार तीर्थमें स्नान करके मनुष्य गंगास्नानका फल पाता है। जहाँसे गोमती निकलकर समुद्रमें मिली हैं, वहाँ स्नान करके मानव अश्वमेध यज्ञका फल पाता है। वहीं भृगुजीने तपस्या की और अम्बिकाजीको स्थापित किया। वे देवी भृगु-अर्चिताके नामसे प्रसिद्ध हैं। उनके चिन्तनसे मनुष्य उत्तम सिद्धिको पाते हैं।

जालेश्वरजीका दर्शन करके मनुष्य गहरे पापसे छूट जाता है और भक्तिपूर्वक उनकी पूजा करके वह शिवलोकको पाता है।

तत्पश्चात् चक्रस्वामीके उत्तम तीर्थमें जाय, जहाँ त्रिभुवनविख्यात जरत्कारुतीर्थ है। उसमें स्नान करनेसे मनुष्य कभी दुर्गतिमें नहीं पड़ता।

इन सब तीर्थोंमें स्नान करके मनुष्य यथायोग्य दक्षिणा देनेके पश्चात् परम पुरुष श्रीकृष्णका पूजन करे। पहले जयन्तका और उसके बाद पुलोमपुत्रका पूजन करना चाहिये। इन दोनोंको देवराज इन्द्रने श्रीहरिकी सेवाके लिये नियुक्त कर रखा है। तदनन्तर देवकीनन्दन श्रीकृष्णके समीप जाय। एक मनुष्य निरन्तर प्राणायाम आदिपूर्वक ज्ञान और ध्यानमें तत्पर है और दूसरा केवल देवेश्वर श्रीकृष्णका दर्शन करता है। उन दोनोंका समान फल है। एक मानव गंगा आदि तीर्थोंमें स्नान करता है और दूसरा देवेश्वर श्रीकृष्णका दर्शन; उन दोनोंको समान फलकी प्राप्ति होती है।

~~~०~~~

* येनार्चितो महादेवस्तस्य तुष्यति केशवः। अनर्चिते नीलकण्ठे न गृह्णात्यर्चनं हरिः॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन पूज्यतां नीललोहितः। येन सम्पूर्णतां याति कृष्णपूजा कृता सदा॥
(स्क० पु०, द्वा० मा० १५। ४-५)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth
~~~

श्रीकृष्ण तथा रुक्मिणीदेवीके दर्शन और पूजनकी महिमा

प्रह्लादजी कहते हैं—द्वारकापुरीमें जाकर मधुसूदन श्रीविष्णुकी अवश्य पूजा करनी चाहिये। तत्पश्चात् सुगन्ध लेप, चन्दन, वस्त्र, पुष्प, नैवेद्य, आभूषण, ताम्बूल, फल तथा आरती आदि उपचारोंसे भगवान् श्रीकृष्णकी पूजा करके उन्हें साष्टांग प्रणाम करे। घीका दीपक जलाकर अर्पण करे। रात्रिमें जागरण, गाने, बजाने तथा पुस्तक-पाठ करे। भादोंकी अष्टमी और द्वादशीको भी श्रीहरिका पूजन करना चाहिये। कलियुगमें गोमती और समुद्रके संगममें स्नान और श्रीकृष्णपूजन करके मनुष्य निर्मल लोकमें जाता है, जहाँ पहुँचकर फिर कभी शोकका सामना नहीं करना पड़ता।

विधिपूर्वक श्रीकृष्णकी पूजा करनेके अनन्तर मनुष्य रुक्मिणीजीके समीप जाय और दही, दूध, मधु, घी तथा शक्करसे उन्हें स्नान करावे। फिर गन्ध और फूलोंसे पूजा करे। जो तीर्थके जलसे स्नान कराता है, वह सम्पूर्ण कामनाओंको प्राप्त कर लेता है। जो इस प्रकार श्रीकृष्णप्रिया रुक्मिणीदेवीको नहलाता है, उसके लिये इहलोक और परलोकमें कुछ भी दुर्लभ नहीं है। जो चन्दन, रोली तथा कस्तूरीका लेप लगाता है, वह कभी पुत्रहीनता और निर्धनताका कष्ट नहीं देखता। वह सदा भोग-सामग्रियोंसे सम्पन्न, रूपवान् तथा जनसम्मानित होता है। जो चमेली, सुगन्धित कमल, कनेर, बेला, तुलसी, राजचम्पा, जलमें होनेवाले फूल, केतकी तथा पाटल (गुलाब) आदि फूलोंसे, धूप, अगरु तथा गुग्गुलसे, सुन्दर एवं कोमल वस्त्रोंसे भक्तिपूर्वक कृष्णप्रिया रुक्मिणीकी पूजा करता है और मणि एवं रत्नोंके आभूषणोंसे उनका श्रृंगार करता है, उसके कुलमें कोई दुःखी, अधर्मी, निर्धन, पुत्रहीन, पापकर्मी, धूर्त तथा नीचसेवी नहीं होता। कलियुगमें मनुष्योंको जगन्माता रुक्मिणीदेवीका भक्ष्य-भोज्य आदि नैवेद्योंके द्वारा पूजन करना चाहिये। '**देवी मे प्रीयताम्**—रुक्मिणीदेवी मुझपर प्रसन्न हों' यही पूजनका उद्देश्य होना चाहिये। भक्तिभावसे रुक्मिणीजीको कर्पूरयुक्त ताम्बूल निवेदन करे। अक्षतोंके साथ दिव्य फल लेकर निम्नांकित मन्त्रसे विधिपूर्वक अर्घ्य दे—

कृष्णप्रिये नमस्तुभ्यं विदर्भाधिपनन्दिनि।
सर्वकामप्रदे देवि गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते॥

'विदर्भराजकुमारी! कृष्णप्रिया रुक्मिणीदेवी! तुम्हें नमस्कार है। तुम सब कामनाओंको पूर्ण करनेवाली हो। मेरा यह अर्घ्य स्वीकार करो। तुम्हें नमस्कार है।'

इस प्रकार अर्घ्य देकर प्रज्वलित दीपकसहित आरती करे। विशेषतः कर्पूर जलाकर देवीकी नीराजना करे। शंखमें जल लेकर भावपूर्वक देवीके ऊपर घुमावे और फिर आत्मशुद्धिके लिये सिरपर धारण करे। तत्पश्चात् '**नमः कृष्णप्रिये**'—ऐसा कहते हुए पृथ्वीपर लोटकर साष्टांग प्रणाम करे। जो कलियुगमें श्रीकृष्णपुरी द्वारकामें जाकर उनकी प्रिया रुक्मिणीदेवीका दर्शन करता है, वह इस लोक और परलोकमें सब कामनाओंको पाता है। माघ शुक्ला अष्टमीको जो चन्दन, पुष्प तथा अनेक प्रकारके उपहारोंसे कामदेवकी जननी रुक्मिणीदेवीका पूजन करते हैं, उनका जीवन सफल है, उनके सभी मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं। जो चैत्र और वैशाखमें द्वादशी तिथिको कृष्णसहित रुक्मिणीदेवीका दर्शन करते हैं, वे मानव धन्य हैं। उन्हें श्रीकृष्णके साथ उनके धाममें रहनेका सौभाग्य प्राप्त होता है। जिन मानवोंने भाद्रपदमासमें सदा ही श्रीकृष्ण और रुक्मिणीका पूजन किया है, वे सब पापोंसे मुक्त हो वैकुण्ठ-धाममें जाते हैं। जो कार्तिक शुक्ला द्वादशीको श्रीकृष्णसहित रुक्मिणीका दर्शन करता है, उसका जीवन सफल हो जाता है और सन्तान-परम्पराका कभी नाश नहीं होता।

सूतजी कहते हैं—बलिको बाँधनेवाले भगवान्

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

विष्णुने इस पुराणसंहिताका संकलन किया है। उन्होंने कृपापूर्वक महात्मा प्रह्लादको इसका उपदेश किया। दैत्यराज प्रह्लादने ऋषियोंके पूछनेपर उनसे इसका वर्णन किया। जो मानव भक्तिपूर्वक इसको सुनता अथवा पढ़ता है, वह सम्पूर्ण मनोरथोंको पाता और विष्णुलोकमें जाता है। इस विषयमें महात्मा मार्कण्डेय तथा राजा इन्द्रद्युम्नका संवाद भी हुआ है, जिसे बताया जाता है।

द्वारकापुरी तथा वहाँ श्रीकृष्णके दर्शन-पूजनका माहात्म्य तथा तुलसीकी महिमा

मार्कण्डेयजी बोले—इन्द्रद्युम्न! कलियुगमें जो मानव श्रीकृष्णका माहात्म्य सुनते और पढ़ते हैं, उनका यमलोकमें निवास नहीं होता। जिन्हें सदा श्रीकृष्णकी कथा प्राणोंसे भी प्रिय है, उसके लिये इस लोक और परलोकमें कुछ भी दुर्लभ नहीं है। कलियुगमें यदि चाण्डाल भी द्वारकापुरीमें निवास करता है, तो वह यतियोंकी गति पाता है। जो द्वारकापुरीकी यात्रा करता है, उसे मार्गमें प्रतिदिन कुरुक्षेत्र-सेवनका फल प्राप्त होता है। कलियुगमें जिनकी बुद्धि द्वारकाकी यात्रा और श्रीकृष्णका दर्शन करनेमें संलग्न होती है, वे मानव धन्य हैं और उनका वह मनोरथ भी धन्य है। जिन्होंने कोटि अयुत पापोंका नाश करनेवाले श्रीकृष्ण-मुखारविन्दका दर्शन किया है, वे धन्य हैं, कृतकृत्य हैं, वन्दनीय हैं और सम्पूर्ण लोकोंको पवित्र करनेवाले हैं। जो मानव श्रीकृष्णके मस्तकपर दूधसे स्नान कराते हैं, उन्हें सौ अश्वमेध यज्ञोंका पुण्य प्राप्त होता है। जो मनुष्य निष्कामभावसे श्रीकृष्णको स्नान कराता है, वह मोक्ष पाता है। जो स्नानसे भीगे हुए श्रीकृष्णविग्रहको वस्त्रसे पोंछता है, उसका जन्मभरका पाप नष्ट हो जाता है। जो जगदीश्वर श्रीकृष्णको स्नान कराकर उन्हें फूलोंकी माला पहनाता है, जो उनके स्नानकालमें शंख बजाता है, अथवा सहस्रनामोंका पाठ करता है, उसे एक-एक अक्षरपर कपिला गौके दानका फल प्राप्त होता है। गीता, गजेन्द्रमोक्ष, भीष्मस्तवराज तथा महर्षियोंद्वारा रचित अन्यान्य स्तोत्रोंके पाठका भी यही फल है। भगवान् उनके समीप आते और उनकी सम्पूर्ण कामनाएँ पूर्ण करते हैं। जो श्रीकृष्णके स्नानकालमें नृत्य और गान करता है, ताली बजाता और जय-जयकार करता है, वह योनि-यन्त्रसे निकलनेकी (जन्म लेनेकी) पीड़ासे छुटकारा पा जाता है। जो मानव कलियुगमें श्रीकृष्णके गुणोंका वर्णन करता है, वह पितरोंसहित वैकुण्ठधाममें निवास करता है। जो भाँति-भाँतिके कोमल वस्त्रोंसे पूजा करके माधवको धूप निवेदन करता है, वह विष्णुधाममें निवास करता है। जो भक्तिपूर्वक सुवर्ण, रत्न एवं मणियोंके आभूषणोंसे श्रीकृष्णका शृंगार करते हैं, उन्हें वह उत्तम फल प्राप्त होता है, जो इन्द्र, शिव, ब्रह्मा तथा मुनियोंको भी ज्ञात नहीं। जो मानव कोमल तुलसीदलोंसे और शुद्ध वस्त्रोंसे देवकीनन्दन श्रीकृष्णकी पूजा करता है, उसे यज्ञकर्ताओं, दानवीरों, तीर्थसेवियों, मातृभक्तों तथा वेधरहित द्वादशी तिथिको भगवान् विष्णुके आगे जागरण, नृत्य, गान और वैष्णवशास्त्रका पाठ करनेवाले भक्तोंको प्राप्त होनेवाला फल मिलता है। तुलसीमालासे पूजित होकर रुक्मिणीवल्लभ श्रीकृष्ण पूर्वोक्त सभी फल प्रदान करते हैं। जैसे लक्ष्मी भगवान् विष्णुको प्रिय हैं, उसी प्रकार उनसे भी अधिक तुलसी उन्हें प्रिय हैं। कलियुगमें जहाँ-कहीं भी तुलसीकी मालासे भगवान् विष्णुका पूजन होता है, वहाँ द्वारकाका समग्र पुण्य प्राप्त होता है **'श्रीकृष्ण शरणं मम'** (श्रीकृष्ण मेरे आश्रय हैं) यह आठ अक्षरोंवाला मन्त्र श्रीकृष्णकी कृपा प्राप्त करानेवाला है। जो कलियुगमें कपूरसहित

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

काले अगुरुसे श्रीकृष्णको धूप देते हैं, वे श्रीकृष्णका सारूप्य प्राप्त करते हैं। घी, गुग्गुल तथा सुगन्धित पदार्थके द्वारा भगवान् श्रीकृष्णको धूप देकर मनुष्य सदा कल्याणमय पदको प्राप्त होता है। जो श्रीकृष्णको अगुरु धूप देता है, वह सब पातकोंका त्याग करके अत्यन्त सुन्दर रूप पाता है। जो श्रीकृष्णमन्दिरके द्वारपर प्रतिदिन दीपमाला जगाता है, वह सातों द्वीपोंसे युक्त पृथ्वीका सम्राट् होता है। जो श्रीकृष्णके आगे सुगन्धित नैवेद्य निवेदन करता है, उसके पितर कल्पपर्यन्त नित्य तृप्त रहते हैं। जो कपूर और सुपारीके साथ ताम्बूल निवेदन करता है, उसे देवपदकी प्राप्ति होती है। जो भगवान् श्रीकृष्णके आगे जलसे भरा हुआ कलश और कमण्डलु निवेदन करता है, उसके पितर एक कल्पतक जल पीनेकी इच्छा नहीं रखते। जो भगवान् श्रीकृष्णको मनोहर फल भेंट करता है, उसके उत्तम मनोरथ कल्पपर्यन्त सफल होते रहते हैं। जो देवदेव श्रीकृष्णकी परिक्रमा करता है, उसके कुलमें किसीको यमलोकका दण्ड नहीं भोगना पड़ता। जो श्रीकृष्णके मन्दिरमें सुन्दर पुष्प-मण्डप बनाता है, वह कोटि-कोटि पुष्पक विमानोंद्वारा दिव्यलोकमें क्रीड़ा करता है। जो श्वेत चँवरकी हवा देकर श्रीकृष्णको प्रसन्न करता है, देवेश्वर श्रीकृष्ण उसके मस्तकको अपने मुँहसे चूमते हैं। जो श्रीकृष्णके मन्दिरको केलेके खंभोंसे सुशोभित करता है, उसका स्वागत देवराज स्वयं करते हैं। जो मनुष्य श्रीकृष्ण-मन्दिरको ध्वजा-पताकाओंसे सजाता है, वह सदा सूर्यलोकमें निवास करता है। जो श्रीकृष्ण-मन्दिरके ऊपर ध्वजारोपण करता है, उसका ब्रह्मलोकमें निवास होता है। जो देवदेव श्रीकृष्णके आँगनको स्वस्तिकोंसे विभूषित करता है, वह तीनों लोकोंमें क्रीड़ा करता है। जो मानव शंखमें जल लेकर भगवान् श्रीकृष्णके ऊपर घुमाता है, वह पूरे कल्पभर क्षीरसागरमें भगवान् विष्णुके समीप निवास करता है। जो विष्णुसहस्रनाम अथवा अन्य स्तोत्रोंका पाठ करते हुए भगवान् श्रीकृष्णकी परिक्रमा करता है, उसे पग-पगपर सातों द्वीपोंवाली पृथ्वीकी परिक्रमाका पुण्य प्राप्त होता है। जो उन्हें साष्टांग प्रणाम करता है, उसे दस हजार अश्वमेध यज्ञोंका फल प्राप्त होता है। जो मीठे स्वरवाले उत्तम गीतोंसे भगवान् श्रीकृष्णको सन्तुष्ट करता है, उसे सामवेदके पाठका फल प्राप्त होता है। जो प्रसन्नचित्त होकर भक्तिभावसे श्रीकृष्णके सम्मुख नृत्य करता है, वह अपने समस्त पापोंको भस्म कर देता है। जो श्रीकृष्णके समीप आकर भक्तिभावसे स्वस्तिवाचन करता है, उसे एक-एक अक्षरमें सौ कपिला-दानका पुण्य मिलता है। जो ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेदकी वाणीसे श्रीकृष्णको सन्तुष्ट करते हैं, उन्हें ब्रह्मलोकका निवास प्राप्त होता है। जो योगी पुरुष श्रीकृष्णके समीप योग-शास्त्र और वेदान्तका पाठ करते हैं, वे सूर्यमण्डलको भेदकर भगवान् विष्णुके धाममें जाते हैं। श्रीमद्भगवद्गीता, विष्णुसहस्रनाम, भीष्मस्तवराज, अनुस्मृति और गजेन्द्रमोक्ष—ये पाँचों स्तोत्र श्रीकृष्णको अत्यन्त दुर्लभ प्रतीत होते हैं—बहुत प्रिय लगते हैं*। श्रीकृष्णके समीप जो श्रीमद्भागवतका पाठ करता है, वह योगियोंके साथ क्रीड़ा करता है। जो वहाँ रामायण, महाभारत और पुराणोंका पाठ करता है, उसे मोक्ष प्राप्त होता है। जो गोमतीके जलमें स्नान करके पवित्र हो श्रीकृष्णके मुखारविन्दका दर्शन करते हैं, उनके दर्शनसे सौ वर्षोंका पातक नष्ट हो जाता है। संसारमें वे मनुष्य धन्य हैं, जो कलियुगमें द्वारकापुरी जाकर गोमती और समुद्रके संगममें देवताओं और पितरोंका तर्पण करते हैं;

* योगशास्त्राणि वेदान्तान् योगिनः कृष्णसन्निधौ। पठन्ति रविबिम्बं तु भित्त्वा यान्ति लयं हरेः॥
गीता नामसहस्रं तु स्तवराजस्त्वनुस्मृतिः। गजेन्द्रमोक्षणं चापि कृष्णस्यातीव दुर्लभम्॥
(स्क० पु०, द्वा० मा० २३। ७९-८०)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

वे हरिद्वार, प्रयाग, गया, कुरुक्षेत्र, पुष्कर, प्रभास, श्रीस्थल और शुक्लतीर्थके सेवनका तथा सहस्रों चान्द्रायणव्रतका फल पाते हैं। द्वारकापुरी धन्य है, जहाँ गोमती नदी बहती है और जहाँ रुक्मिणीवल्लभ श्रीकृष्ण निवास करते हैं। जो कलिकालमें पापसे मोहित होकर गोमतीके जलमें स्नान नहीं करते, उनके पापबन्धनका नाश कैसे होगा। श्रीकृष्णने कलिकालके लिये गोमती नदीको स्वर्गलोककी सीढ़ी बनाया है। वह मनुष्योंके मनको आनन्द देनेवाली तथा स्नानमात्रसे मोक्ष प्रदान करनेवाली है। राजन्! जहाँ गोमतीके जलसे मिला हुआ समुद्र जाग रहा है, जहाँ भगवान् श्रीकृष्ण विराजमान हैं और जहाँ पूजन करनेपर मोक्ष देनेवाली चक्रांकित शिलाएँ उपलब्ध होती हैं, वहाँ चलो। जहाँकी मिट्टी भी चक्रसे चिह्नित होकर कलियुगमें पापका नाश करनेके लिये स्थित है, जो पुरी दैत्य, दानव, राक्षस तथा देवताओंको भी शरण देनेवाली है, जिसे देवकीनन्दन श्रीकृष्ण कलिकालमें कभी नहीं छोड़ते हैं, उस द्वारकापुरीका कौन सेवन नहीं करेगा? जो मनुष्य द्वारकामें श्रीकृष्णचन्द्रजीके मुखारविन्दका तीनों समय दर्शन करते हैं, उनकी करोड़ों कल्पोंमें भी पुनरावृत्ति नहीं होती। जो विधवा स्त्री द्वारकामें निवास करती है, वह परम पदको प्राप्त होती है। जो द्वारकापुरीको नहीं गया, वह इस संसारमें पुत्र लेकर भी क्या करेगा?

श्रीकृष्णकी द्वारकापुरीमें जाकर जो तुलसीदलोंसे उनकी पूजा करता है, उसने जन्मका फल पा लिया और पितरोंको तार दिया। जो श्रीकृष्णके श्रीविग्रहसे उतारी हुई प्रसाद-स्वरूपा तुलसीमाला धारण करता है, वह एक-एक पत्तेमें दस अश्वमेध यज्ञोंका फल पाता है। जिसके मस्तकपर तुलसीके काष्ठकी माला शोभा देती है, उस मानवके शरीरमें साक्षात् श्रीहरि विराजमान होते हैं। जो कलियुगमें तुलसीकाष्ठमालासे विभूषित होकर पुण्यकर्म करता है तथा देवताओं और पितरोंका पूजन करता है उसका वह सत्कर्म कोटिगुना हो जाता है। तुलसीकाष्ठकी माला देखकर यमराजके दूत दूर भागते हैं, जैसे आँधीसे उड़ाये हुए पत्ते दूर हो जाते हैं। जिसके घरमें तुलसीका काष्ठ तथा उसकी सूखी या हरी पत्ती रहती है, उसके घरमें कहींसे पापका संक्रमण नहीं होता। जो तुलसीमालासे भूषित होता है, उसके हृदयमें भगवान् श्रीकृष्णके प्रति अविचल भक्ति होती है तथा उसे इहलोक और परलोकमें भय नहीं प्राप्त होते। उसके दुःस्वप्न, अपशकुन और शत्रुभयका निवारण हो जाता है। बोधिनी, शयनी, त्रिस्पृशा तथा पक्षवर्द्धिनी एकादशी अवश्य करनी चाहिये। अष्टमीके भी जयन्ती, विजया और जया आदि कई भेद हैं। वह सब पापोंका नाश करनेवाली तथा श्रीकृष्णको अत्यन्त प्रिय है।

शंखोद्धारतीर्थकी महिमा

मार्कण्डेयजी कहते हैं—महाभारतमें कौरवसेनाके मारे जाने और समस्त योद्धाओंके नष्ट हो जानेपर अर्जुन भक्तिभावसे श्रीकृष्णके समीप गये और उनकी परिक्रमा तथा प्रणाम करके हाथ जोड़कर बोले—'भगवन्! शंखोद्धारतीर्थका फल बताइये।'

श्रीभगवान् बोले—महाबाहो! जो मनुष्य घरमें रहकर भी शंखोद्धारतीर्थका स्मरण करते हैं, उनकी पुनरावृत्ति नहीं होती। जो शंखोद्धारतीर्थमें जाकर मन-ही-मन भगवान् शंखधरका स्मरण करते हैं, वे विष्णुलोकमें निवास पाते हैं। जो शंखोद्धारतीर्थका दर्शन करता है, वह स्वर्गलोकको जाता है। अर्जुन! यदि शंखोद्धारकी यात्रा करनेवाला मनुष्य मार्गमें ही मर जाय और शंखोद्धारका दर्शन न कर सके तो वह भी मुझे वैसा ही प्रिय

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

है, जैसी कि लक्ष्मी हैं। मनुष्यको अपने घरमें रहते हुए भी शंखोद्धारतीर्थ और शंखधारी भगवान् विष्णुका स्मरण करना चाहिये। करोड़ों सूर्यग्रहणोंके समय सरस्वतीतीर्थमें जो फल होता है, वही आधे पलमें शंखोद्धारतीर्थके दर्शनसे हो जाता है। जो मनुष्य शंखोद्धारतीर्थमें स्नान करके शंखधारी श्रीहरिका दर्शन करता है, उसके पुण्यकी कोई संख्या नहीं है। मनुष्य तभीतक संसारमें तथा पापपूर्ण नरकमें भटकते हैं जबतक कलिमलनाशक शंखोद्धार-तीर्थका दर्शन नहीं करते। शंखोधारतीर्थमें स्नान करके मनुष्य फिर जन्म नहीं लेता। शंखोद्धारतीर्थके समान मोक्षदायक तीर्थ प्रायः नहीं देखा जाता। साढ़े तीन करोड़ तीर्थ कहे गये हैं। शंखोद्धारमें उन सभी तीर्थोंका फल प्राप्त होता है। जिसका मन श्रीकृष्णमें नहीं लगता है और जो शंखोद्धारतीर्थका दर्शन नहीं करता है, उसके स्वर्गवासी पितर भी उसे भयंकर शाप देते हैं। जो शंखोद्धारतीर्थमें रहकर अन्नदान करता है, उसने रुक्मिणीपतिकी प्रसन्नतासे स्वयं ही मुक्ति प्राप्त कर ली। अन्नदानके समान दूसरा कोई दान न हुआ है न होगा। इसलिये प्रयत्नपूर्वक अन्नदान करना चाहिये।

कुन्तीनन्दन! जो तुलसीदलसे मेरी पूजा करता है, उससे इन्द्रदेव भी भयभीत होते हैं। जो किसी भी कारणसे श्रीकृष्णका एकादशी व्रत कर लेते हैं, वे धन्य हैं। मृत्युके पश्चात् उन्हें चतुर्भुज भगवान् विष्णु प्राप्त होते हैं। द्वारका समुद्रके जलमें सब ओरसे दुर्जय है और उसके मध्यभागमें पापनाशक शंखदेव निवास करते हैं। जो मनुष्य शंखोद्धारमें स्नान करके विधिपूर्वक श्राद्ध करते हैं, वे अपने पितरोंका उद्धार करके उत्तम लोकको जाते हैं। भगवान् शंखधारीको नमस्कार और उनका पूजन करके मानव उस निर्मल लोकमें जाता है, जहाँ शोकका अत्यन्त अभाव है। भगवान् शंखधरका दर्शन करके मरणधर्मा मनुष्य अनेक जन्मोंके घोर पापोंसे मुक्त तथा कृतकृत्य हो जाता है। भगवान् शंख उसे मनोवांछित फल देते हैं।

द्वारकापुरी, गोपीचन्दन तथा गोमतीका माहात्म्य

मार्कण्डेयजी कहते हैं—राजन्! कलिकालमें मथुरा, द्वारका और अयोध्या—ये तीन पुरियाँ भगवान्‌को अत्यन्त प्रिय तथा धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष देनेवाली हैं। मथुरामें यमुना, द्वारकामें गोमती तथा अयोध्यामें सरयू नदी है, जो सेवन करनेपर मोक्षदायिनी होती है। अयोध्यामें श्रीहरिका, द्वारकामें श्रीकृष्णका और मथुरामें केशवका स्मरण करनेसे मुक्ति प्राप्त होती है। संसारमें मथुरापुरी धन्य है, जहाँ साक्षात् भगवान् विष्णु प्रकट हुए हैं। द्वारकापुरी सफल है, जहाँ रहकर श्रीहरिने अनेक प्रकारकी लीलाएँ की हैं और सब कामनाओंको देनेवाली अयोध्यापुरी धन्यातिधन्य है, जिसका स्वयं धर्मज्ञ भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने पालन किया है। अयोध्याके स्वामी भगवान् श्रीरामका, मथुरावासी केशवका तथा द्वारकानिवासी परम सुन्दर श्रीकृष्णका प्रेमसे कीर्तन करे। कीर्तन करनेसे मथुरा, स्मरण करनेसे द्वारकापुरी और यात्रा करनेसे अयोध्यापुरी पुण्यदायिनी होती है। इन तीनोंके द्वारा विशुद्ध पदकी प्राप्ति होती है। श्रीकृष्ण, ब्रह्माजी, श्रीविष्णु तथा द्वारकापुरीका श्रवण अथवा दर्शन करके मनुष्य जन्मके बन्धनसे मुक्त हो जाता है। अयोध्या, मथुरा और द्वारकापुरी श्रवण अथवा दर्शनकी अभिलाषा करनेपर कल्पभरके पापका नाश कर देती है। कलियुगमें जो श्रीकृष्ण, विष्णु और हरिका स्मरण करता तथा द्वादशीको रातमें भगवान्‌के समीप जागता है, उसे दस हजार अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है। कलिकालमें वे मनुष्य धन्य हैं, जो सरयू, गोमती

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

और यमुनाके जलमें स्नान करते हैं। जो पश्चिम दिशाकी ओर मुँह करके स्नान करते और दोनों हाथ जोड़कर द्वारकापुरीका स्मरण करते हैं, उन्हें कोटिगुना फल होता है। कलियुगमें जो मानव द्वारकापुरीका चिन्तन करते हैं वे दस हजार कपिला गौओंके दानका पुण्य पाते हैं। राजन्! मैं मार्कण्डेय सात कल्पकी बातोंका स्मरण करनेवाला हूँ। कलियुगमें द्वारकापुरीके समान अथवा इससे बढ़कर दूसरी कोई पुरी नहीं है। कलियुगमें जो मनुष्य द्वारकापुरीको जाता है, वह पग-पगपर एक हजार अश्वमेध और सौ राजसूय यज्ञोंका फल पाता है। नृपश्रेष्ठ! कलियुगमें द्वारकाकी यात्रा करते हुए जिन मनुष्योंका चित्त विचलित नहीं होता, उनका जीवन सफल है। जिसने गोमतीके तटपर भगवान् श्रीकृष्णके समीप पिण्डान किया है, उसी पुत्रसे माता पुत्रवती है और पितर पुत्रवान् है। गोपीचन्दनका तिलक करके मनुष्य यदि इस पृथ्वीपर भ्रमण करता है, तो उससे वह समूचा देश पवित्र हो जाता है। फिर जहाँ वह स्वयं स्थित है, उसके लिये तो कहना ही क्या है। जो द्वारकामें उत्पन्न हुई श्रीकृष्णसेवित तुलसीको अपने मस्तकपर धारण करता है, वह स्वर्गलोकका स्वामी होता है। भगवान् विष्णुको विजया एकादशी तिथि, गंगाजल, काशीपुरी, तुलसी, आँवलेका फल, भागवत शास्त्र, रामायण, द्वारकापुरी, चमेलीका फूल, एकादशीकी रातमें जागरण तथा कीर्तन और गायन—ये अधिक प्रिय हैं।* कलिकालमें जिसके घरमें सदा गोपीचन्दनकी मृत्तिका विद्यमान है वहाँ श्रीकृष्णसहित द्वारकापुरी स्थित है। कृतघ्न, गोघाती तथा समस्त पापोंका आचरण करनेवाला मनुष्य भी गोपीचन्दनके सम्पर्कसे तत्काल पवित्र हो जाता है। जो किसी वैष्णवको गोपीचन्दनका एक टुकड़ा देता है, वह अपने कुलका उद्धार करता है। जिसके मन्दिरमें द्वारकाकी तुलसी है, उससे यमराज भी डरते हैं। द्वारकाकी मृत्तिका, तुलसी तथा श्रीकृष्णका कीर्तन सौ करोड़ यज्ञोंसे भी अधिक पुण्यदायक बताया गया है। मैंने सब शास्त्रों और पुराणोंका बार-बार अवलोकन करके देख लिया, मुझे द्वारकाके समान दूसरी कोई पुरी नहीं दिखायी दी। जिसने द्वारकाकी यात्रा और श्रीकृष्णका कीर्तन किया है, उसने हजारों तीर्थोंमें स्नान और करोड़ों यज्ञोंका यजन कर लिया है। जिन मनुष्योंने द्वारकापुरीमें जाकर श्रीकृष्णके मुखारविन्दका दर्शन नहीं किया, वे मानव पंगु हैं, जन्मके ही अन्धे हैं। जिन्होंने द्वारकापुरीमें जाकर एकादशीकी रात्रिमें भक्तिपूर्वक जागरण और नृत्य किया है, वे कृतार्थ और धन्य हैं। जो श्रीकृष्णपुरी द्वारकामें जाकर गोमतीके तटपर पिण्डदान और यथाशक्ति दान करता है, उसके पितर तृप्त हो जाते हैं। जो द्वारकापुरीमें गया है, उस मनुष्यको सौ जन्मोंतक प्रेत और पिशाचकी योनि नहीं मिलती। जो मनुष्य वैशाखमासमें हिंडोलेपर बैठे हुए श्रीकृष्णका दर्शन करते हैं, उनके पुत्र, पौत्र, प्रपितामह, श्वशुर, दास, भृत्य और पशु भी भगवान् विष्णुके साथ क्रीड़ा करते हैं। जो मानव कलिकालमें श्रीकृष्णके समीप द्वादशीको उपवास करते हैं, उनमें तथा श्रीकृष्णमें मैं कोई अन्तर नहीं देखता। श्रीकृष्णके समीप द्वादशी तिथिके समान कोई दिन नहीं है। श्रीकृष्णके निकट सभी तिथियाँ युगादि तिथियोंके समान पुण्यदायिनी होती हैं। कलियुगमें अधिक पुण्यात्मा पुरुषोंको द्वारकापुरीका सेवन करना चाहिये। कलिमें श्रीकृष्णकी कृपाके बिना कोई द्वारकापुरीमें नहीं जा सकता। श्रीकृष्णका दर्शन करनेके लिये शिव आदि देवता सदा द्वारकापुरी जाते हैं। जो 'कृष्ण-कृष्ण' का कीर्तन करता है,

* दैत्यारेर्भगवत्तिथिश्च विजया नीरं च गङ्गोद्भवं नित्यं काशिपुरी तथैव तुलसी धात्रीफलं वल्लभम्।
शास्त्रं भागवतं तथा च दयितं रामायणं द्वारका पुष्पं मालतिसम्भवं सुदयितं गीतं कृतं जागरम्॥
(स्क० पु०, द्वा० मा० २७। २८)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

उसका जीवन सफल है, उसकी चेष्टा सफल है और उसीकी वाणी सफल है। द्वारकापुरीमें अपने पुत्रको देखकर नरकसे छूटे हुए पितर स्वर्गमें स्थित होकर हँसते, गाते और उछलते हैं। मनुष्योंका जो गुप्त पातक है, उसे गोमती अपना स्मरण और कीर्तन करनेसे भी नष्ट कर देती है, फिर उसकी स्तुति की जाय, तब तो कहना ही क्या है? जो कलिकालमें वर्द्धिनी एकादशीको उपवास करते हैं, वे दुर्लभ हैं। द्वारका, गया और वर्द्धिनी एकादशी—इन तीनोंका पुण्यफल एक-सा बताया गया है। वर्द्धिनी एकादशी सबसे बढ़कर है। क्योंकि उस दिन उपवास करके द्वादशीको पारण करनेपर भगवान् विष्णुका परम पद अनायास ही प्राप्त हो जाता है। वर्द्धिनी एकादशीको उपवास करनेसे घरमें ही तीर्थसेवन, तपस्याका अनुष्ठान और मोक्ष प्राप्त हो जाते हैं। वर्द्धिनी एकादशी, द्वारकापुरी, गंगा, गया, गोविन्दजीका दर्शन, गोमती, गोकुल, गीता और गोपीचन्दन—ये दुर्लभ हैं।१

जो मनुष्य भगवान् श्रीकृष्णमें मन लगाकर इस प्रसंगको सुनता है, वह एक हजार अश्वमेध-यज्ञका फल पाता है। जो एकादशीकी रातमें जागरण करते समय भगवान् केशवके इस माहात्म्यको सुनेंगे, वे सब पापोंसे मुक्त हो वैकुण्ठधामको जायँगे। जो मानव इसे प्रतिदिन भक्तिपूर्वक पढ़ेंगे अथवा सुनेंगे, वे तुलादानका फल पावेंगे, एकादशीको जो थोड़ा भी दान किया जाता है, वह कोटिगुना होता है, ऐसा जानना चाहिये।

एकादशीकी रात्रिमें श्रीहरिके समीप जागरणका माहात्म्य

मार्कण्डेयजी कहते हैं—जिन्होंने पिताकी आज्ञासे समस्त राज्यको वस्त्रमें लगे हुए तिनकेके समान त्याग दिया और अनुपम धर्मका ही संबल लेकर भयंकर वनको प्रस्थान किया, 'मुझे वनवास दे दिया गया' यह समाचार सुनकर बलवान् होते हुए भी जिनके मनमें क्रोध आदि विकार नहीं उत्पन्न हुए, वे विभीषणकी पीड़ा दूर करनेवाले श्रीराम-नामसे प्रसिद्ध भगवान् विष्णु आपलोगोंकी रक्षा करें।२

एक समयकी बात है, सब धर्मोंके ज्ञाता, वेद और शास्त्रोंके अर्थज्ञानमें पारंगत, सबके हृदयमें रमण करनेवाले श्रीविष्णुके तत्त्वको जाननेवाले तथा भगवत्परायण प्रह्लादजी जब सुखपूर्वक बैठे हुए थे, उस समय उनके समीप स्वधर्मका पालन करनेवाले महर्षि कुछ पूछनेके लिये आये। वे बोले—'प्रह्लादजी! आप कोई ऐसा साधन बताइये, जिससे ज्ञान, ध्यान और इन्द्रियनिग्रहके बिना ही अनायास भगवान् विष्णुका परम पद प्राप्त हो जाता है।'

उनके ऐसा कहनेपर सम्पूर्ण लोकोंके हितके लिये उद्यत रहनेवाले विष्णुभक्त महाभाग प्रह्लादजीने संक्षेपसे इस प्रकार कहा—'महर्षियो! जो अठारह पुराणोंका सारसे भी सारतर तत्त्व है, जिसे कार्तिकेयजीके पूछनेपर भगवान् शंकरने उन्हें बताया था, उसका वर्णन करता हूँ, सुनिये।

महादेवजी कार्तिकेयसे बोले—जो कलिमें एकादशीकी रातमें जागरण करते समय वैष्णवशास्त्रका पाठ करता है, उसके कोटि जन्मोंके किये हुए

१- वर्द्धिनी द्वारका गङ्गा गया गोविन्ददर्शनम्। गोमती गोकुलं गीता दुर्लभं गोपिचन्दनम्॥

(स्क० पु०, द्वा० मा० २७।६३)

२- राज्यं येन पटान्तलग्नतृणवत् त्यक्तं गुरोराज्ञया पाथेयं परिगृह्य धर्ममतुलं घोरं वनं प्रस्थितः।
श्रुत्वाप्याऽऽत्मविवासनं च बलवान् यो नागतो विक्रियां पायाद्वः स विभीषणार्तिहरणो रामाभिधानो हरिः॥

(स्क० पु०, द्वा० मा० २८।१)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

चार प्रकारके पाप नष्ट हो जाते हैं। जो एकादशीके दिन वैष्णव-शास्त्रका उपदेश करता है, उसे मेरा भक्त जानना चाहिये। जिसे एकादशीके जागरणमें निद्रा नहीं आती और जो उत्साहपूर्वक नाचता एवं गाता है, वह मेरा विशेष भक्त है। मैं उसे उत्तम ज्ञान देता हूँ और भगवान् विष्णु मोक्ष प्रदान करते हैं। अतः मेरे भक्तको विशेषरूपसे जागरण करना चाहिये। जो भगवान् विष्णुसे वैर करते हैं, उन्हें पाखण्डी जानना चाहिये। जो एकादशीको जागरण करते और गाते हैं, उन्हें आधे निमेषमें अग्निष्टोम तथा अतिरात्र-यज्ञके समान फल प्राप्त होता है। जो रात्रि-जागरणमें बारंबार भगवान् विष्णुके मुखारविन्दका दर्शन करते हैं, उनको भी वही फल प्राप्त होता है। जो मानव द्वादशी तिथिको भगवान् विष्णुके आगे जागरण करते हैं, वे यमराजके पाशसे मुक्त हो जाते हैं। जो द्वादशीको जागरण करते समय गीता-शास्त्रसे मनोविनोद करते हैं, वे भी यमराजके बन्धनसे मुक्त हो जाते हैं। जो प्राणत्याग हो जानेपर भी द्वादशीका जागरण नहीं छोड़ते, वे धन्य और पुण्यात्मा हैं। जिनके वंशके लोग एकादशीकी रातमें जागरण करते हैं, वे ही धन्य हैं। जिन्होंने एकादशीको जागरण किया है, उन्होंने यज्ञ, दान, गयाश्राद्ध और नित्य प्रयागस्नान कर लिया। उन्हें संन्यासियोंका पुण्य भी मिल गया और उनके द्वारा इष्टापूर्त कर्मका भी भलीभाँति पालन हो गया। षडानन! भगवान् विष्णुके भक्त जागरणसहित एकादशीव्रत करते हैं, इसलिये वे मुझे सदा ही विशेष प्रिय हैं। जिसने वर्द्धिनी एकादशीकी रातमें जागरण किया है, उसने पुनः प्राप्त होनेवाले शरीरको स्वयं ही भस्म कर दिया। जिसने त्रिस्पृशा एकादशीको रातमें जागरण किया है, वह भगवान् विष्णुके स्वरूपमें लीन हो जाता है। जिसने हरिबोधिनी एकादशीकी रातमें जागरण किया है, उसके स्थूल-सूक्ष्म सभी पाप नष्ट हो जाते हैं। जो द्वादशीकी रातमें जागरण तथा ताल-स्वरके साथ संगीतका आयोजन करता है, उसे महान् पुण्यकी प्राप्ति होती है। जो एकादशीके दिन ऋषियोंद्वारा बनाये हुए दिव्य स्तोत्रोंसे ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेदके वैष्णव मन्त्रोंसे, संस्कृत और प्राकृतके अन्य स्तोत्रोंसे तथा गीत, वाद्य आदिके द्वारा भगवान् विष्णुको सन्तुष्ट करता है, उसे भगवान् विष्णु भी परमानन्द प्रदान करते हैं। जो एकादशीकी रातमें भगवान् विष्णुके आगे वैष्णवभक्तोंके समीप गीता और विष्णुसहस्रनामका पाठ करता है, वह उस परमधाममें जाता है, जहाँ साक्षात् भगवान् नारायण विराजमान हैं।* पुण्यमय भागवत तथा स्कन्दपुराण भगवान् विष्णुको प्रिय है। मथुरा और व्रजमें भगवान् विष्णुके बालचरित्रका जो वर्णन किया गया है, उसे जो एकादशीकी रातमें भगवान् केशवका पूजन करके पढ़ता है, उसका पुण्य कितना है, यह मैं भी नहीं जानता। कदाचित् भगवान् विष्णु जानते हों। बेटा! भगवान्‌के समीप गीत, नृत्य तथा स्तोत्रपाठ आदिसे जो फल होता है, वही कलिमें श्रीहरिके समीप जागरण करते समय विष्णुसहस्रनाम, गीता तथा श्रीमद्भागवतका पाठ करनेसे सहस्र गुना होकर मिलता है। जो श्रीहरिके समीप जागरण करते समय रातमें दीपक जलाता है, उसका पुण्य सौ कल्पोंमें भी नष्ट नहीं होता। जो जागरणकालमें मंजरीसहित तुलसीदलसे भक्तिपूर्वक श्रीहरिका पूजन करता है, उसका पुनः इस संसारमें जन्म नहीं होता। स्नान, चन्दन, लेप, धूप, दीप, नैवेद्य और ताम्बूल यह सब जागरणकालमें भगवान्‌को समर्पित किया जाय तो उससे अक्षय पुण्य होता है। कार्तिकेय! जो भक्त मेरा ध्यान

* यः पुनः पठते रात्रौ गीतां नामसहस्रकम्। द्वादश्यां पुरतो विष्णोर्वैष्णवानां समीपतः।
स गच्छेत्परमं स्थानं यत्र नारायणः स्वयम्॥

(स्क० पु०, द्वा० मा० २८। ४३-४४)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

करना चाहता है, वह एकादशीकी रात्रिमें श्रीहरिके समीप भक्तिपूर्वक जागरण करे। एकादशीके दिन जो लोग जागरण करते हैं उनके शरीरमें इन्द्र आदि देवता आकर स्थित होते हैं। जो जागरणकालमें महाभारतका पाठ करते हैं, वे उस परमधाममें जाते हैं जहाँ संन्यासी-महात्मा जाया करते हैं। जो उस समय श्रीरामचन्द्रजीका चरित्र, दशकण्ठ-वध पढ़ते हैं, वे योगवेत्ताओंकी गतिको प्राप्त होते हैं। जिन्होंने श्रीहरिके समीप जागरण किया है, उन्होंने चारों वेदोंका स्वाध्याय, देवताओंका पूजन, यज्ञोंका अनुष्ठान तथा सब तीर्थोंमें स्नान कर लिया। श्रीकृष्णसे बढ़कर कोई देवता नहीं है। उनके दिनसे बढ़कर दूसरा कोई दिन नहीं है और एकादशी व्रतके समान दूसरा कोई व्रत नहीं है। जहाँ भागवत शास्त्र है, भगवान् विष्णुके लिये जहाँ जागरण किया जाता है और जहाँ शालग्रामशिला स्थित होती है, वहाँ साक्षात् भगवान् विष्णु उपस्थित होते हैं।

द्वारका-यात्राकी विधि एवं महिमा

प्रह्लादजी कहते हैं—एक समय देवर्षि नारदजीने महर्षियोंसे इस प्रकार कहा—'द्वारकाकी यात्रा करनेवाले श्रद्धालु मनुष्यको चाहिये कि पहले दिन तेल, उबटन लगाकर स्नान करके वैष्णवोंका पूजन करे और अपनी शक्तिके अनुसार उन्हें भोजन कराये। तदनन्तर भावनाद्वारा भगवान् महाविष्णुसे आज्ञा लेकर पक्वान्न भोजन करे और प्रसन्नतापूर्वक द्वारका तथा श्रीकृष्णका चिन्तन करते हुए रातमें पृथ्वीपर शयन करे। प्रातःकाल पवित्र हो स्नान करके जगदीश्वरकी पूजा, परिक्रमा और नमस्कार करे। तत्पश्चात् महाविष्णुकी आज्ञा लेकर कुलके बड़े-बूढ़े पुरुषों, ब्राह्मणों तथा वैष्णवजनोंसे मिले। गन्ध और ताम्बूलसे उनका अर्चन करे और उनके आगे महान् उत्सव मनावे। तदनन्तर गाने-बजाने और स्तुति-पाठके द्वारा द्वारकापुरीके लिये प्रसन्नतापूर्वक यात्रा प्रारम्भ करे। द्वारका जानेवाले पुरुषको शान्त, जितेन्द्रिय, पवित्र, ब्रह्मचारी तथा भूमिशायी होना चाहिये। मार्गमें एकाग्रचित्त होकर विष्णुसहस्रनाम आदि स्तोत्र, पुराण-पाठ और वैदिक सूक्तोंका पठन करना चाहिये। स्वयं प्रसन्न रहकर दूसरोंसे सदा प्रिय वचन बोले। सबको सम्मान दे। दूसरोंकी थकावट दूर करनेका प्रयत्न करे। द्वारका जानेवाले वृद्ध और असमर्थ पुरुषोंको जल दे। उन्हें सुखपूर्वक ठहरनेकी व्यवस्था करे और उन्हें सवारी भी दिलानेकी चेष्टा करे। मनमें दयाभाव रखते हुए उन सबकी सेवा करे। अपने पास धन हो तो मनुष्य उन यात्रियोंको अन्न और वस्त्र आदि भी दे। भगवान् श्रीकृष्णकी प्रसन्नताके लिये यह सब कुछ करे। इससे महान् पुण्यकी प्राप्ति होती है। उस समय अपनी शक्तिके अनुसार थोड़ा-सा भी दिया जाय तो वह कोटिगुना होकर फलता है। जो भक्तिभावसे मार्गमें श्रीकृष्णकी प्रीतिके लिये यात्रीको एक ग्रास अन्न भी देता है, उसके द्वारा मानो सात द्वीपोंवाली पृथ्वी दे दी गयी। उसके पुण्यका कभी अन्त नहीं होता। द्वारकाके क्षेत्रमें श्रीकृष्णके समीप एक ब्राह्मणको भोजन करानेपर दस राजसूय-यज्ञका फल मिलता है, जिन्होंने द्वारका जानेवाले यात्रियोंको अन्नदान किया है, उन्होंने लाखों बार गया-श्राद्ध कर लिया। अपने पास विभव हो तो जूता, खड़ाऊँ, छाता, कम्बल, अन्न, जल, वस्त्र तथा पात्र दान करे। महाविष्णुकी प्रसन्नताके लिये जो कुछ भी दान किया जाता है, वह सब मनोरथोंकी सिद्धि करनेवाला होता है। मनस्वी पुरुषोंको आदरपूर्वक भगवान् विष्णुकी आराधना करनी चाहिये। तीर्थयात्रीको परायी निन्दा कदापि नहीं करनी चाहिये। जिसके हाथ,

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

पैर और मन भलीभाँति वशमें होते हैं, उसीको उत्तम यशकी प्राप्ति होती है और उसे ही तीर्थका निश्चित फल प्राप्त होता है। यात्रीके पास धन हो तो वह दूसरेका अन्न और दूसरेकी रसोई अवश्य त्याग दे। धन न होनेपर भोजनमात्र दूसरोंसे ले लिया जाय तो उसमें कोई दोष नहीं है। द्वारकाके मार्गपर चलनेवाले मनुष्योंको परस्पर भक्तिभाव बढ़ानेवाली भगवान् विष्णुकी कथा सुननी चाहिये और प्रसन्नतापूर्वक श्रीहरिके नामोंका कीर्तन करना चाहिये। वैदिक मन्त्रोंका जप करना भी उचित है। आगमोक्त और पुराणोक्त स्तोत्र भगवान्की अत्यन्त प्रसन्नता बढ़ानेवाले होते हैं; अतः उनका भी पाठ करना चाहिये*।'

नारदजीके इस प्रकार कहनेपर सब महर्षि बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने भगवान् श्रीकृष्णके मार्गपर जाते समय सब कुछ उसी प्रकार किया। कोई भगवान् विष्णुकी लोकविख्यात कथाएँ सुनते थे, जिनके श्रवण करनेमात्रसे भगवान् हृदयमें आकर बस जाते हैं। कुछ महर्षि महान् पुण्यदायक तथा कलिमें सबको पवित्र करनेवाले भगवन्नामोंका कीर्तन करते थे। कुछ मुनियोंने दिव्य पुराणसंहिताका पाठ किया, जो भगवान् विष्णुकी मंगलमयी महिमाको प्रकाशित करती है। भगवान्के जो सद्‌गुण हैं, उन्होंने पूर्वकालमें लीलावतार धारण करके जो पराक्रमपूर्ण लीलाएँ की हैं, उन्हींको कुछ लोग प्रसन्नतापूर्वक सुनते थे। कुछ मंगलमय महात्मा पुरुष आनन्दमें मग्न हो नेत्रोंसे प्रेमाश्रु बहाते हुए बड़ी भक्तिसे भगवान् वासुदेवकी लीला-कथा सुनाया करते थे। कुछ लोग प्राचीन मुनियोंद्वारा वर्णित भगवच्चरित्रोंका गान करते थे। दूसरे महात्मा आदि-अन्तरहित देवेश्वर भगवान् विष्णुका भक्तिभावसे चिन्तन ही करते रहते थे। कुछ मुनि मन और इन्द्रियोंको संयममें रखकर बड़ी प्रसन्नताके साथ भगवान्के वैदिक, पौराणिक तथा वैष्णवशास्त्रोक्त स्तोत्रोंका पाठ करते थे। दूसरे महर्षि भगवान्के पापहारी नामोंका कीर्तन करते थे। कोई शतनाम, कोई सहस्रनाम और कोई लक्षनाम जपते थे। कुछ मुनि प्रसन्न होकर लौकिक भाषामें गाये हुए हरिनामोंका गान करते थे। कुछ लोग अपने शरीरकी सुधि भूलकर सब ओर भगवान्के सुन्दर रूपोंका साक्षात्कार करते थे। वे जो कुछ देखते और जो कुछ सुनते थे, वह सब उन्हें चतुर्भुज विष्णुरूप प्रतीत होता था। कोई गाने-बजाने और करतालकी ध्वनिके साथ उत्सव करते चलते थे। कोई गाते, कोई नाचते और कोई नृत्य एवं तालके अनुसार बाजे बजाते थे। सब लोग एक साथ मिलकर एक स्वरसे हरिनामकी गर्जना करते थे। परमानन्दमें निमग्न होकर वे परस्पर हँसते थे। गीत और नृत्यके साथ श्रीहरिका उत्सव मनाते थे और भगवान् विष्णुमें मन लगाकर वैष्णवमन्त्रोंका जप करते थे। ऐसे महात्माओंको देखकर पापी भी शुद्ध हो जाता है। जिसे ऐसे वैष्णव महात्माओंका दर्शन होता है, उससे बढ़कर धन्य पुरुष तीनों लोकोंमें कोई नहीं है। द्वारकाके मार्गमें नृत्य और कीर्तन करके प्रसन्न होनेवाले सभी पुरुषोंको उनके चरणोंमें लगे हुए धूलि-कणकी संख्याके बराबर अश्वमेध यज्ञोंका फल प्राप्त होता है। द्वारकाके यात्रीको पग-पगपर उसकी पग-धूलिकी संख्याके अनुसार सहस्रों यज्ञोंका पुण्य प्राप्त होता है।

* यस्य हस्तौ च पादौ च मनो यस्य सुसंयतम्। तस्य चैव पराकीर्तिर्भवेत्तीर्थफलं ध्रुवम्॥
परान्नं परपाकं च सति वित्ते त्यजेद् ध्रुवम्। न दोषोऽसति वित्तेऽस्य तावन्मात्र प्रतिग्रहे॥
श्रोतव्या सत्कथा विष्णोर्नामसङ्कीर्तनं मुदा। द्वारकापथि गच्छद्भिरन्योन्यं भक्तिवर्द्धनम्॥
जप्तव्यं वैदिकं जाप्यं स्तोत्रमागमिकं तथा। पौराणिकं च यत्स्तोत्रं विष्णोः सुप्रीतिहेतवे॥
(स्क० पु०, द्वा० मा० ३२। ३१—३४)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

ऋषियों और देवताओंकी द्वारका-यात्रा तथा भगवद्दर्शन एवं पूजन

प्रह्लादजी कहते हैं—द्वारकापुरी अपनी प्रभासे बाहरके गाढ़ अन्धकारका नाश कर देती है और भक्तोंको भयनाशक परमानन्दमय पद प्रदान करती है। पुण्यको बढ़ानेवाली द्वारकापुरी अपनी गगनचुम्बी ध्वजा-पताकाओं तथा दिव्य पुण्य प्रकाशसे गिरिराजके समान शोभा पाती है। पूर्वोक्त तीर्थयात्री महर्षियोंने द्वारकापुरीमें दूरसे ही चक्रविभूषित श्रीकृष्णमन्दिरका दर्शन करके छाता और खड़ाऊँ त्यागकर साष्टांग प्रणाम किया। वे दण्डकी भाँति पृथ्वीपर लोट गये। उनकी भक्ति बहुत बढ़ गयी और वे बार-बार धरतीपर लोटने लगे। कोई जय-जयकार और नमस्कारके साथ हरिनामकी गर्जना करने लगे। दूसरे लोग परमानन्दमें निमग्न हो स्तुति सुनाने लगे। सभी महर्षि तथा वहाँ प्रकट हुए सभी तीर्थ आनन्दके आँसू बहाते हुए प्रेमगद्गद वाणीमें भगवान्‌की स्तुति करने लगे।* उन सबको देखकर नारदजीने कहा—'तुमने सहस्रों जन्मोंमें सहस्रों पुण्यपुंजोंकी राशि संचित कर रखी थी, जिससे आज तुम्हें भगवान् श्रीकृष्णके मन्दिरका दर्शन हुआ है। भगवान् श्रीकृष्णका दर्शन, द्वारका जानेकी बुद्धि और महादेवजीमें दृढ़ भक्ति—ये सब थोड़ी तपस्याके फल नहीं हैं। वे पूर्वज धन्य हैं, जिनके वंशज श्रीकृष्ण-दर्शनके लिये, उत्सवपूर्वक द्वारकाकी यात्रा करते हैं और वहाँ पहुँचकर अपने इष्टदेव श्रीहरिका दर्शन पाते हैं। सब मुनिलोग देखें, यह द्वारकापुरी तीनों लोकोंमें सुशोभित होती है। श्रीकृष्णप्रिया द्वारका इस पृथ्वीकी कीर्ति है, जहाँ गोमती, रुक्मिणीदेवी तथा स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण विराज रहे हैं। जिसके सम्बन्धसे यह पृथ्वी स्वर्गसे भी अधिक शोभा पाती है, वह पवित्र द्वारकापुरी अपने दिव्य तेजसे सुशोभित है।'

नारदजीका यह वचन सुनकर और द्वारकाके माहात्म्यको अपनी आँखों देखकर ऋषि और देवता आगे चले। वे सब ओर गीत, वाद्य, नृत्य और पताका आदिके द्वारा उत्सव मनाते हुए नाना प्रकारके स्तोत्र पढ़कर द्वारकाप्रिय श्रीकृष्णकी स्तुति कर रहे थे। हरिनामके उच्च घोषके साथ उनकी गर्जना सुनकर प्रसन्न हुए नारदजीने उन सबका एक व्यूह बनाया। इस प्रकार आगे बढ़ते हुए वे सब लोग गोमतीके तटपर आये। सबने गोमतीको प्रणाम किया और गोमतीकी महिमा देखकर नारदजीने कहा—'ये ही वे गोमतीदेवी हैं, जिनकी तीनों लोकोंमें ख्याति है। इनके जलमें किया हुआ एक बारका स्नान ब्रह्मविद्यासे स्पर्धा रखता है। गोमती ब्रह्मज्ञानके समान है। यह सब तीर्थोंमें उत्तम है। मनुष्य ब्रह्मज्ञानसे मुक्त होते हैं और वह ब्रह्मज्ञान गोमतीमें स्नान करनेसे सुलभ होता है। अथवा श्रीकृष्णके समीप गोमतीमें स्नान करनेमात्रसे सबकी मुक्ति हो जाती है।'

ऐसा कहकर नारदजीने हरिप्रिया द्वारकाको प्रणाम किया और इस प्रकार कहा—'द्वारके! ये सब ऋषि और महर्षि तुम्हें बार-बार प्रणाम करते हैं। इन सबको देखो। ये सब गान, वाद्य और नृत्यके द्वारा प्रसन्न होकर श्रीहरिनामका कीर्तन कर रहे हैं। देवि! तुम सबसे श्रेष्ठ हो; क्योंकि साक्षात् भगवान् विष्णु तुम्हारा कभी त्याग नहीं करते हैं। हमें देवेश्वर श्रीकृष्णका दर्शन कराओ।'

उनके ऐसा कहनेपर द्वारकादेवी प्रत्यक्ष प्रकट हुई और हर्षसे विह्वल होकर बोली—'देवताओ! देखो, देखो; ये भगवान् द्वारकानाथ विराज रहे हैं।' उस समय देवताओंने पश्चिमाभिमुख श्रीकृष्णका

---

* जयशब्दैर्नमःशब्दैर्गर्जन्तो हरिनामभिः। ततोऽन्ये च स्तुवन्ति स्म परमानन्दसम्लुताः॥
आनन्दाश्रु प्रमुञ्चन्तः प्रेम्णा गद्गदया गिरा। स्तुवन्ति ऋषयः सर्वे तीर्थादीनि च सर्वशः॥
(स्क० पु०, द्वा० मा० ३३। ११-१२)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

दर्शन करके उन्हें प्रणाम किया और प्रसन्न होकर गीत, वाद्य तथा नृत्य किया। जय-जयकार और नमस्कार शब्दके साथ हरिनामकी गर्जना की। बारंबार श्रीकृष्णका दर्शन करके सबने भक्तिभावसे अनेक बार उठ-उठकर साष्टांग प्रणाम किया और—'हे कृष्ण! हे कृष्ण! जय कृष्ण!' ऐसा कहा। श्रीकृष्णके दर्शनसे उन सब सिद्धोंको उत्तम सिद्धि प्राप्त हुई। गोमतीके जलमें और समुद्रके अन्तर्गत चक्रतीर्थके जलमें उन सबने स्नान करके श्रीकृष्णके दर्शनकी लालसा प्रकट की थी। तदनन्तर श्रीकृष्णके मुखारविन्दका दर्शन पाकर वे सभी परमानन्दमें डूब गये। नेत्रोंसे प्रेमके आँसू बहाने लगे। उन्हें अपने-आपकी भी सुधि नहीं रही। तत्पश्चात् कमलके आसनपर बैठे हुए बलराम और श्रीकृष्णका दर्शन करके उन सबने उन्हें पंचामृतसे तथा त्रिलोकीके सभी तीर्थोंके जलसे स्नान कराया। सनकादि योगियोंने भी उनका पूजन किया। नारदादि महर्षियोंने परम श्रद्धा-भक्तिसे पृथक्-पृथक् दिव्य वस्त्र, दिव्य गन्ध और दिव्य अनुलेपनोंसे पूजन किया। तुलसीदलसे श्रीकृष्णकी पूजा की। पृथक्-पृथक् दिव्य धूप देकर कपूरकी आरती उतारी। भाँति-भाँतिके कर्पूरवासित पवित्र पदार्थोंद्वारा नैवेद्य लगाया। कर्पूरमिश्रित ताम्बूल निवेदन किया। प्रिय वस्तुएँ भेंट कीं। मंगलमय स्तोत्रोंद्वारा स्तुति की तथा चवँर और व्यजन आदि डुलाकर महाविष्णुकी आराधना पूरी की। तत्पश्चात् ब्रह्मपुत्रोंने भगवान् श्रीकृष्णके आगे गीत गाये, बाजे बजाये और नृत्य किया। इतनेमें ही वहाँ भगवान् विष्णुके पार्षद प्रकट हो गये। देवताओं तथा ऋषियोंने उन पार्षदोंको प्रणाम किया। इसके बाद बड़े भैया बलरामसहित श्रीकृष्णको मस्तक झुकाया। तदनन्तर पुष्पांजलि देते हुए कहा—'देवि द्वारके! तुम सब तीर्थोंकी महारानी और अधीश्वरी हो।' ऐसा कहकर उन सबने द्वारकापुरीको प्रणाम किया।

दिलीप-वसिष्ठ-संवाद, द्वारकासे लौटे हुए यात्रीके दर्शनसे राक्षसके वज्रलेप पापका नाश

प्रह्लादजी कहते हैं—मुनीश्वरो! द्वारकापुरीका ऐसा ही अद्भुत माहात्म्य है। वह बड़े-बड़े पापोंको जलानेवाला है और महान् पुण्यकी वृद्धि करनेवाला है। द्वारकाकी यात्रा अत्यन्त भयंकर पापराशिके दाहका स्थान है। जब बृहस्पति सिंह राशिपर स्थित हों, उस समय जो द्वारकाकी यात्रा करते हैं, उनके चरणोंकी धूलिका स्पर्श करके पापी मनुष्य भी स्वर्गलोकमें चले जाते हैं। गोमतीके जलसे पवित्र होकर श्रीकृष्णके मुखारविन्दका दर्शन करनेवाले उन पुण्यात्माओंके दर्शनसे सौ जन्मोंका पाप नष्ट हो जाता है—इस विषयमें राजा दिलीप और महर्षि वसिष्ठका संवाद बड़ा ही आश्चर्यजनक है।

दिलीपने पूछा—विप्रवर! काशीमें किया हुआ पाप वज्रलेप होता है। वह भयंकर वज्रलेप जहाँ नष्ट हो जाय, और सब प्रकारके महापुण्य जहाँ प्राप्त हों, वह ऐसा कौन-सा क्षेत्र है। यह बतानेकी कृपा करें। जहाँ जानेपर पापरूपी बीज अंकुरित नहीं होते, उस पुण्यक्षेत्रका वर्णन कीजिये।

वसिष्ठजीने कहा—काशीमें मोक्षधर्मको जाननेवाला कोई त्रिदण्डी संन्यासी रहता था। वह एक दिन एकाग्रचित्त हो दशाश्वमेध घाटपर गायत्रीका जप कर रहा था। उसी समय वहाँ कोई गजगामिनी युवती आयी और गंगाके तटपर अपने वस्त्र रखकर जलमें क्रीड़ा करने लगी। संन्यासी उस तरुणीको देखकर कामदेवके वशीभूत हो गया। उस कुलटाने भी मन-ही-मन उस तरुण संन्यासीसे मिलनेका संकल्प किया। वे

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

दोनों पापाचारके द्वारा एक दूसरेसे मिले। तरुणीने संन्यासीका मन मोह लिया था; अतः वह उसीके पीछे-पीछे लगा रहा। उसकी प्रसन्नताके लिये वह न्याय अथवा अन्यायसे भी धनकी याचना करने लगा। काशीमें रहकर वह चाण्डालसे भी दान लेता था। उसने स्नान छोड़ दिया। अपवित्र रहने लगा और पापमें प्रवृत्त होकर रातमें चोरी भी करने लगा। एक दिन वह दुराचारी यति मांस लानेकी इच्छासे वनमें गया। वहाँ उसकी दृष्टि एक चाण्डाल-कन्यापर पड़ी, जिसके नेत्र उस युवकको उन्मत्त बना देनेवाले थे। वह बड़ी ही सुन्दरी थी। उसका अतिशय सौन्दर्य देखकर उसने निर्जन वनमें उस चाण्डालीके साथ समागम किया। उसके साथ भोजन भी किया और उसीके घरमें उसकी मृत्यु हुई। पापात्मा और सर्वभक्षी होकर भी वह काशीके प्रभावसे नरकमें नहीं पड़ा; परन्तु उसके द्वारा अत्यन्त भयानक वज्रलेप पाप हुआ था, इसलिये क्रूर योनियोंमें उसका जन्म हुआ। पहले भेड़िया, फिर क्रमशः व्याघ्र, सिंह, कुत्ता, सियार और सूअर हुआ। इस प्रकार दस हजार युगोंमें भी उसका वह पाप नष्ट नहीं हुआ। तदनन्तर वह राक्षस हुआ और अनेक प्रकारके प्राणियोंका भक्षण करते हुए विन्ध्यपर्वतपर आकर रहने लगा। इसी समय एक अद्भुत घटना घटी। एक मनुष्य द्वारका और श्रीकृष्णचन्द्रके सुन्दर मुखारविन्दका दर्शन करके लौट रहा था। वह गोमतीके जलमें स्नान करके पवित्र हो चुका था। धीरे-धीरे जब वह विन्ध्याचलपर आया तो वह क्रूरकर्मी राक्षस उसे खानेके लिये उसके पास गया; परन्तु वह तीर्थयात्री तनिक भी भयभीत न हुआ। उसके दर्शनमात्रसे राक्षसका भयंकर वज्रलेप पाप क्षणभरमें जलकर भस्म हो गया और वह पुण्यके प्रकाशसे शोभा पाने लगा। तदनन्तर उसने उस पथिकके चरणोंमें श्रद्धापूर्वक प्रणाम किया और विस्मित होकर कहा—'अहो! आपके दर्शनमात्रसे मेरा यह भयंकर राक्षसभाव नष्ट हो गया और मुझे उत्तम सिद्धि प्राप्त हुई। भद्रपुरुष! आप कहाँसे आये हैं और आपका ऐसा प्रभाव क्यों है?'

राक्षसकी यह बात सुनकर यात्रीने प्रसन्नचित्त होकर कहा—'राक्षस! मैं द्वारकापुरीका दर्शन करके आया हूँ। मुझमें वज्रलेप-जैसे पापको हर लेनेवाला प्रभाव भगवान् श्रीकृष्णके दर्शनसे प्रकट हुआ है।' उसके ऐसा कहनेपर राक्षसने भक्तिभावसे उसे प्रणाम किया और उसकी परिक्रमा करके वह द्वारकापुरीको चला गया। वहाँ गोमतीके जलमें अपना शरीर त्यागकर उसने वैकुण्ठधाम प्राप्त किया। उस समय देवेश्वर तथा गन्धर्वगण फूलोंकी वर्षा करते हुए उसकी स्तुति कर रहे थे।

वसिष्ठजीके मुखसे यह कथा सुनकर राजा दिलीपका चित्त प्रसन्न हो गया। वे देवाधिदेव भगवान् श्रीकृष्णकी द्वारकापुरीका दर्शन करनेके लिये गये और आदरपूर्वक देवमन्दिरमें श्रीकृष्णका दर्शन करके परम सिद्धिको प्राप्त हुए।

द्वारकापुरी तथा श्रीकृष्ण-दर्शनका माहात्म्य

प्रह्लादजी कहते हैं—ब्रह्मा और शिव आदि भी जिनके चरणारविन्दोंकी वन्दना करते हैं, वे भगवान् श्रीकृष्ण जहाँ निवास करते हैं, वह द्वारकापुरी सब कुछ देनेवाली तथा सर्वज्ञ है। द्वारकाके प्रभावसे कीट, पतंग, पशु, पक्षी तथा सर्प आदि योनियोंमें पड़े हुए समस्त पापी भी मुक्त हो जाते हैं*। फिर जो प्रतिदिन द्वारकामें रहते और जितेन्द्रिय होकर भगवान् श्रीकृष्णकी सेवामें उत्साहपूर्वक लगे होते हैं, उन मनुष्योंकी मुक्तिके विषयमें क्या कहना है। द्वारकामें रहनेवाले

* अपि कीटपतङ्गाद्याः पशवोऽथ सरीसृपाः। विमुक्ताः पापिनः सर्वे द्वारकायाः प्रभावतः॥ (स्क० पु०, द्वा० मा० ३७।७)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

समस्त प्राणियोंको जो गति प्राप्त होती है, वह ऊर्ध्वरेता मुनियोंको भी दुर्लभ है। द्वारका सब क्षेत्रों और तीर्थोंसे उत्तम कही गयी है। द्वारकामें जो होम, जप, दान और तप किये जाते हैं, वे सब भगवान् श्रीकृष्णके समीप कोटिगुने एवं अक्षय होते हैं। जो द्वारकावासी श्रेष्ठ पुरुषोंकी निन्दा करते हैं, वे श्रीकृष्णकी कृपासे वंचित हो दुःखके घोर समुद्रमें गिरते हैं। अतः द्वारकावासी मनुष्य सदा सबके लिये पूजनीय हैं। द्वारकामें दी हुई अणुमात्र वस्तु भी अक्षय फल देनेवाली होती है। जो मनुष्य द्वारकामें अन्नदान करता है, उसके दानजनित उत्तम फलका वर्णन करनेमें ब्रह्मा, विष्णु और शिव भी समर्थ नहीं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, अन्त्यज तथा स्त्री जो भी द्वारकामें भक्तिपूर्वक निवास करते हैं, वे विष्णुलोकमें प्रतिष्ठित होते हैं। द्वारकावासीका दर्शन और स्पर्श करके भी मनुष्य बड़े-बड़े पापोंसे मुक्त हो स्वर्गलोकमें निवास करते हैं। द्वारकाका माहात्म्य सबसे श्रेष्ठ है। वहाँकी पवित्र धूलि भी पापियोंको मोक्ष देनेवाली है।

विप्रवरो! जिस दिन बृहस्पति सिंह राशिपर आते हैं, उस तिथिको द्वारकामें कुशावर्तसे लेकर गोमती-समुद्र संगमतक कहीं भी गोमतीमें किया हुआ स्नान बारह गोदावरी स्नानके समान फल देनेवाला है। जो दूसरेको भी द्वारका भेजता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। 'द्वारका जाओ, द्वारका जाओ' ऐसा कहकर जो वहाँ जानेके लिये प्रेरणा करता है, उसके दर्शनसे ही मनुष्य पापमुक्त हो जाते हैं। जो मनुष्य द्वारकाकी ओर मुँह करके 'द्वारका, द्वारका' का कीर्तन करता है, वह भगवान् कृष्णकी कृपासे निश्चय ही मोक्षका भागी होता है। द्वारका, पुण्यमयी गोमती, रुक्मिणीदेवी तथा भगवान् श्रीकृष्णका जो लोग प्रतिदिन स्मरण करते हैं, वे द्वारकाके पुण्य-फलके भागी होते हैं। जो सहस्रों योजन दूर रहकर भी अपनी बुद्धिमें ऐसे विचार लाता है कि 'मैं द्वारका जाऊँगा और द्वारकानाथजीका दर्शन करूँगा' उसका मुँह देखनेसे महापातकी मनुष्य भी मुक्त हो जाते हैं। समस्त लोकोंको पवित्र करनेवाले श्रीकृष्णभक्त धन्य हैं, समस्त लोकोंके लिये वन्दनीय हैं। भगवान् श्रीकृष्णके दर्शनसे जो पुण्य होता है, उसका वर्णन सर्वज्ञ विद्वान् तथा शेषनाग भी नहीं कर सकते। श्रीकृष्ण-दर्शनके पुण्यफलका कभी अन्त नहीं होता। इस लोकमें जो बड़े-बड़े पापी हैं, वे भी द्वारकामें भगवान् श्रीकृष्णका दर्शन करके सब पापोंसे मुक्त हो जाते हैं। जिन भगवान् श्रीकृष्णके सामीप्यसे गोमतीका जड जल भी ब्रह्मविद्यासे स्पर्धा रखता है, स्नानमात्रसे ही बड़े-बड़े पापोंको भस्म कर डालता है, जिनके क्षेत्रकी चक्रचिह्नित शिलाएँ भी सबको मोक्ष देनेवाली हैं, मगध आदि देशोंमें भी पूजित होनेपर जहाँकी चक्रचिह्नित शिलाएँ मुक्ति देती हैं, जिनके क्षेत्रकी पवित्र धूलि सब पापियोंको मोक्ष देनेमें समर्थ है तथा जिनके क्षेत्रमें जानेके लिये विचार करना भी पातकोंका नाश कर देता है; उन्हीं भगवान् श्रीकृष्ण और उनकी पुरी द्वारकाके दर्शनसे पाप नष्ट होता है; ऐसा कहनेसे उनकी क्या स्तुति होती है। द्वारका जाते हुए जो मनुष्य श्रीकृष्ण-दर्शनकी महिमाका वर्णन करता है, उसके पुण्यकी संख्या बताना शेषनाग-जैसे विद्वानोंके लिये भी असम्भव है। जहाँ श्रीकृष्ण-दर्शनकी महिमा बतानेसे भी पाप नष्ट हो जाता है, वहाँ साक्षात् श्रीकृष्णके दर्शनसे कितना पुण्य होता है—इसकी गणना कौन करेगा। संसारमें वे मनुष्य धन्य हैं, जो हर्षोल्लासमें भरकर भगवान् श्रीकृष्णका दर्शन करते हैं। जब दर्शनकी ऐसी महिमा है, तब उनके स्पर्शसे तथा दुग्ध आदिके द्वारा उनके स्नान-पूजन आदि करनेसे जो पुण्य होता है, उसे कौन बता सकता है। रातके चौथे पहरमें दुग्धका स्नान उत्तम है। पूजा, आरती, नैवेद्य, ताम्बूल, नमस्कार, गीत, वाद्य और नृत्य—ये श्रीकृष्णको प्रिय हैं। जो एकादशीको भगवान् श्रीकृष्णकी प्रीतिके लिये गीत और नृत्य करते हैं, वे भगवान् श्रीकृष्णके प्रिय भक्त हैं। जो

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

भलीभाँति पूजित होनेपर श्रीकृष्णकी झाँकी करते हैं, वे महान् पुण्यको प्राप्त होते हैं। श्रीकृष्णकी महापूजा करनेवालेको अनन्त पुण्य होता है। संसारमें वे मनुष्य धन्य हैं, जो सदा श्रीकृष्णदेवका दर्शन, स्पर्श, पूजन, स्तुति और नमस्कार करते हैं। जो मनुष्य द्वारकामें काष्ट या प्रस्तरकी प्रतिमा स्थापित करता है, उसने मानो तीनों लोकोंकी स्थापना कर ली। वह भगवान् विष्णुके समान होता है और तीनों लोकोंका साम्राज्य प्राप्त करता है।

द्वारकामें श्रीकृष्णदर्शनकी महिमा, एकादशीव्रतके भेद, चक्रचिह्नित शिलाओंकी विशेष संज्ञा तथा भयनिवारणके उपाय

प्रह्लादजी कहते हैं—जो मन-ही-मन द्वारका जानेकी भावना करते हैं, उनके दस हजार जन्मोंके संचित पूर्वपाप नष्ट हो जाते हैं। जिस देहधारीके मनमें श्रीकृष्णके दर्शनका विचार उत्पन्न होता है, उसका मुख देखकर पापके सैकड़ों टुकड़े हो जाते हैं। जो परम सुन्दर श्रीकृष्णपुरीकी यात्रा करके गोमती-समुद्र-संगमपर पिण्डदान करते हैं, वे अपने पितरोंका उद्धार कर देते हैं। वैशाख शुक्ला द्वादशीको जो भगवान् श्रीकृष्णके समीप जागरण करता है, वह उनके मुखारविन्दका दर्शन करके पितरोंसहित मुक्त हो जाता है। जो श्रीकृष्णकी लीलाभूमिमें जानेकी मनसे इच्छा करते हैं, उनके अस्थिगत पापको भी प्रेतराज यम धो डालते हैं। जीव जबतक कलियुगमें द्वारकापुरीका दर्शन नहीं करता, तभीतक उसके शरीरमें अत्यन्त भयंकर पाप डेरा डाले रहते हैं। जो श्रवण और द्वादशीके योगमें गोमती-समुद्र-संगममें स्नान करके श्रीकृष्णके मुखचन्द्रका दर्शन करता है, वह मानव मोक्षको प्राप्त होता है। जिस किसी भी मासकी द्वादशी तिथिको श्रीकृष्णकी लीला-नगरी द्वारकाका दर्शन करके मनुष्य संसारबन्धनसे मुक्त हो जाता है। कलियुगमें बिना पिण्डदान किये भी गोमतीके जलमात्रसे पितरोंकी तृप्ति हो जाती है। चक्रतीर्थका ऐसा ही प्रभाव है। जिसने द्वारकामें जाकर श्रीकृष्णके मुखारविन्दका दर्शन कर लिया है, वह न तो प्रेत होता है और न उसे नरकका कष्ट भोगना पड़ता है। जो घरमें रहकर भी प्रतिदिन कलिकालमें श्रीकृष्णपुरीका स्मरण करते हैं, उनके पाप नष्ट हो जाते हैं। महाभाग! कलिकालके समान दूसरा कोई युग नहीं है; क्योंकि उसमें भगवान् विष्णुके स्मरण और कीर्तनसे मनुष्य परमपद प्राप्त कर लेता है। जो कलियुगमें नित्यप्रति 'कृष्ण, कृष्ण, कृष्ण' का उच्चारण करेगा, उसे प्रतिदिन दस हजार यज्ञों और करोड़ों तीर्थोंका पुण्य प्राप्त होगा। जो मनुष्य नित्य 'कृष्ण, कृष्ण, कृष्ण' का जप करता है, कलियुगमें श्रीकृष्णके ऊपर उसका प्रेम निरन्तर बढ़ता है।*

रुक्मिणी, सत्यभामा, जाम्बवती, मित्रविन्दा, कालिन्दी, भद्रा, नाग्नजिती तथा लक्ष्मणा—श्रीकृष्णकी इन आठों प्रियतमा पत्नियोंका भी वहाँ भलीभाँति पूजन करना चाहिये। जो नियम और व्रतोंसे तथा गीत, वाद्य, दीपदान तथा जागरण आदिके द्वारा उन सबकी विधिपूर्वक पूजा करता है, वह सम्पूर्ण कामनाओंको पाता है और उसके ऊपर भगवान् विष्णु प्रसन्न होते

* नास्ति नास्ति महाभाग कलिकालसमं युगम्। स्मरणात् कीर्तनाद् विष्णोः प्राप्यते परमं पदम्॥
कृष्ण कृष्णेति कृष्णेति कलौ वक्ष्यति प्रत्यहम्। नित्यं यज्ञायुतं पुण्यं तीर्थकोटिसमुद्भवम्॥
कृष्ण कृष्णेति कृष्णेति नित्यं जपति यो जनः। तस्य प्रीतिः कलौ नित्यं कृष्णस्योपरि वर्द्धते॥
(स्क० पु०, द्वा० मा० ३८। ४४—४६)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

हैं। जो कलिमें प्रतिदिन जागते और सोते समय 'कृष्ण, कृष्ण, कृष्ण' का कीर्तन करता है, वह श्रीकृष्णस्वरूप हो जाता है।* चन्द्रमामें उष्णता नहीं होती, अग्निमें शीतलता नहीं होती तथा एकादशीको उपवास करनेवाले वैष्णव भक्तोंमें पाप नहीं होता है। जब पूरे दिन-रात एकादशी हो और दूसरे दिन द्वादशीमें भी एकादशी पड़ गयी हो तो उसको उन्मीलिनी कहते हैं। वह तिथियोंमें उत्तम तिथि मानी गयी है। जो बंजुलीके दिन-रात्रिमें जागरण करते हैं, उन्हें आधे मुहूर्तमें दस हजार यज्ञोंका पुण्य होता है। यदि सम्पूर्ण दिन-रात द्वादशी होकर दूसरे दिन त्रयोदशीमें भी द्वादशी बढ़ गयी हो तो उसे बंजुली कहते हैं। वह कलियुगमें अत्यन्त दुर्लभ है। जो उन्मीलिनीमें जागरण करते हैं, उन्हें आधे पलमें कोटि गोदानका पुण्य प्राप्त होता है। पूरे दिन-रात एकादशी होकर यदि प्रतिदिन अमावस्या या पूर्णिमातक तिथि बढ़ती रहे तो उसे पक्षवर्द्धिनी एकादशी कहते हैं। उस एकादशीको जो जागरण करते हैं, उन्हें चौथाई पलमें ही कोटि गोदानका फल मिलता है। घरमें भी एकादशी करनेवालोंके लिये यह फल बतलाया गया है; फिर जो भगवान् विष्णुके समीप व्रत और जागरण करते हैं, उनके लिये तो कहना ही क्या है? कलियुग आनेपर द्वारकामें जो इस व्रतका अनुष्ठान करते हैं, उन्हें कोटिगुना फल होता है, द्वारकामें एक चक्रसे चिह्नित शिलाकी सुदर्शन संज्ञा है। सुदर्शनशिलाका पूजन करनेपर वह मोक्षरूप फल देनेवाली होती है। जिस शिलापर दो चक्रके चिह्न हों, वह लक्ष्मीनारायणका स्वरूप है। वे लक्ष्मीनारायण भोग और मोक्ष दोनों फलोंको देनेवाले हैं। तीन चक्रसे चिह्नित शिलाका नाम अच्युत है। अच्युतजी इन्द्रपद देनेवाले हैं। चार चक्रोंसे चिह्नित शिलाको जनार्दन कहते हैं, जनार्दनजी शत्रुनाशक तथा लक्ष्मीप्रद हैं। पाँच चिह्नोंसे चिह्नित शिलाकी वासुदेव संज्ञा है। वासुदेवजी जन्म-मृत्यु और जराका नाश करनेवाले हैं। छः चिह्नोंसे युक्त शिलाखण्डको प्रद्युम्न कहते हैं। वे उपासकको धन और कान्ति देते हैं। सात चिह्नोंसे युक्त होनेपर उसकी बलदेव संज्ञा होती है। बलदेवजी गोत्र और कीर्ति बढ़ानेवाले हैं। आठ चिह्नोंसे युक्त शिलाखण्ड पुरुषोत्तम है। भगवान् पुरुषोत्तम भक्तिभावसे पूजित होनेपर मनोवांछित फल देते हैं। नौ चिह्नसे युक्त होनेपर उसे नवव्यूह कहते हैं। यह देवताओंके लिये भी दुर्लभ है। नवव्यूह भी सब कुछ दे सकते हैं। दस चिह्नोंसे युक्त शिलाखण्डोंको दशावतार संज्ञा है। उससे राज्यकी प्राप्ति होती है। एकादश चिह्नोंसे युक्त शिलाखण्ड अनिरुद्ध है, जो ऐश्वर्य प्रदान करता है। बारह चक्रोंसे युक्त शिलाको द्वादशात्मा कहते हैं। वह निर्वाण प्रदान करती है। इससे अधिक चिह्न होनेपर अनन्त संज्ञा होती है। भगवान् अनन्त भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले हैं। श्रीकृष्णके चक्रसे चिह्नित जो कोई भी प्रस्तर वहाँ उपलब्ध होते हैं, उनके स्पर्शमात्रसे मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। मन, वाणी और क्रियाद्वारा किये हुए जितने भी ब्रह्महत्या आदि पाप हैं, वे सब चक्रचिह्नित शिलाके पूजनसे नष्ट हो जाते हैं। जो एक वर्षतक चक्रांकित शिलाकी पूजा, दर्शन और स्पर्श करते हैं, वे पापी रहे हों तो भी अविनाशी विष्णुमें प्रवेश करते हैं। मृत्युकाल प्राप्त होनेपर जो अपने वक्षपर चक्रचिह्नित शिला धारण करता है, वह परम गतिको प्राप्त होता है। गोमतीचक्रसे चिह्नित शिला यदि छातीपर रखी हुई हो तो यमराजके दूत भयके मारे समीप नहीं आते और वह मनुष्य वैकुण्ठलोकमें जाता है। भगवान् श्रीकृष्णकी बाललीलाओं,

* कृष्ण कृष्णेति कृष्णेति नित्यं जाग्रत् स्वपंश्च यः। कीर्तयेत्तु कलौ चैव कृष्णरूपी भवेद्धि सः॥ (स्क० पु०, द्वा० मा० ३९। १)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

गोकुलमें की हुई क्रीडाओं, गोपीजनोंके साथ की हुई क्रीडाओं तथा श्रीकृष्णावतारकी अन्य लीलाओंको भी बार-बार सुनना चाहिये। उत्कण्ठित होकर नृत्य और गान करना चाहिये तथा कमलनयन श्रीकृष्णके मुखारविन्दका बार-बार दर्शन करना चाहिये। बहुत-से यज्ञोंका अनुष्ठान करनेसे जो फल मिलता है, उसको मनुष्य श्रीकृष्णके समीप आधे दिनमें प्राप्त कर लेता है। भगवान् श्रीकृष्णमें मन लगाकर मनुष्य जिस फलको पाता है, उसका हजारवाँ अंश भी दूसरे किसी कर्मसे नहीं पा सकता है। जो राग-द्वेषकी आगमें जल रहे हैं और अज्ञानमय विषयोंमें आसक्त हैं, ऐसे मनुष्योंको स्वस्थ करनेके लिये वैष्णवधर्म चिकित्सारूप है। कोरे तर्क और युक्तिपर टिके हुए मतवादोंकी कुदृष्टिसे अज्ञानान्धकारमें पड़कर जो लोग अन्धे हो रहे हैं, उनके लिये यह वैष्णव-शास्त्र दीपकका काम देता है। विद्वानोंको इसका सदैव मनन करना चाहिये। जहाँ श्रीहरिके समक्ष रात्रिमें जागरण किया जाता है, उसे ब्रह्मावर्तके समान ऋषिदेश और मध्यदेश जानना चाहिये। जो मानव कलियुगमें द्वारकाका माहात्म्य सुनता है या दूसरोंमें सुननेका भाव उत्पन्न करता है, उसे सौ यज्ञोंका फल मिलता है। जिसके घरमें द्वारकाकी मृत्तिका मौजूद है तथा जिसके ललाटमें गोपीचन्दनका तिलक लगा है; उसके घरको लक्ष्मीदेवी कभी नहीं छोड़ती हैं। वहाँ ग्रहों, रोगों तथा राक्षसोंकी बाधा भी नहीं होती है। पिशाच, कूष्माण्ड और प्रेत भी वहाँ उपद्रव नहीं करते हैं। उस घरमें अग्नि, चोर, शत्रु तथा सींगवाले पशुओंसे भी भय नहीं प्राप्त होता है। दैव, भूत, रोग, व्याधि तथा दरिद्रताका कष्ट भी वहाँ नहीं आता है। बिजली और उल्कापातका भी भय वहाँ नहीं रहता है।

जहाँ बंजुली द्वादशीके दिन रात्रिमें जागरण, भागवतके एक या चौथाई श्लोकका पाठ, वैष्णवशास्त्रका पठन, भगवद्भक्तका दर्शन, विष्णुकी रथयात्राका उत्सव, अश्वत्थवृक्षका दर्शन, विष्णु-भक्तका सत्कार और शालग्रामशिलाका पूजन किया जाता है, जहाँ भगवान्के चरणोदकका पान, नैवेद्यका भक्षण, तुलसी-पूजन, एकादशी-व्रतका अनुष्ठान, हेमन्त-ऋतुमें जलवास, ग्रीष्म-ऋतुमें त्रिस्पृशाको उपवास, धातृव्रत और अश्वत्थव्रतका पालन किया जाता है; जहाँ उन्मीलिनी, पक्षवर्द्धिनी, श्रावण (भाद्रपद)-मासकी रोहिणीयुक्त जयन्तीसंज्ञक अष्टमी, द्वादशी तथा प्रबोधिनी आदि एकादशियोंके व्रतका अनुष्ठान और रम्भाव्रत आदिका आचरण—ये सब पुण्यकर्म किये जाते हैं, वहाँ भी पूर्वोक्त भय नहीं आते हैं। जो प्रतिदिन श्रद्धापूर्वक श्रीहरिके समीप भागवतशास्त्रका श्रवण या पाठ करता है, दशमीको केवल रातमें ही भोजन करता है, द्वादशीको शक्ति रहते पराये अन्नका भोजन नहीं करता, रातमें जागता है, शक्तिके अनुसार दान देता है तथा यथाशक्ति भगवान्की विशेष पूजा करता-कराता है तथा जो द्वादशीको गंगाकी मिट्टी या गोपीचन्दनका तिलक लगाता है, वह भी पूर्वोक्त सभी भयोंसे छुटकारा पा जाता है। भगवान् विष्णुका कथन है कि 'जो मेरा तथा रुद्र, आदित्य और यमका भक्त है, उसे मैं श्रेष्ठ भागवत मानता हूँ। जिन्हें मेरे भक्त प्रिय हैं, उनपर मैं सदैव संतुष्ट रहता हूँ। कलियुग आनेपर मैं सदा द्वारकापुरीमें वास करता हूँ। जो मुझे प्रसन्न करना चाहता है, वह कलिकालमें परम सुन्दर द्वारकापुरीमें जाकर मेरा दर्शन करे।'

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

द्वारका-माहात्म्यके पाठकी महिमा, वैष्णव-सेवाका महत्त्व, नीलका निषेध, वृक्ष काटनेसे हानि, उसे लगानेका फल, आक, बिल्वपत्र, आँवला एवं तुलसी-रोपणका महत्त्व तथा द्वारका-माहात्म्यका उपसंहार

प्रह्लादजी कहते हैं—मनुष्य जब द्वारका जानेमें समर्थ न हो तब घरपर ही द्वारका-माहात्म्यका पाठ करे। वैष्णवभक्तोंको इस माहात्म्यको सुनावे और भक्त पुरुष इसे भक्तिभावसे सुने। विशेषत: द्वादशी तिथिको इस माहात्म्यका पाठ अवश्य करना चाहिये। ऐसा करनेसे वह घरमें रहकर भी द्वारका-सेवनका पुण्य पा लेता है। इहलोक और परलोकमें उसे मनोवांछित फलकी प्राप्ति होती है। भगवान् जनार्दन सदैव उसके योगक्षेमका निर्वाह करते हैं। वह पापरहित होता है। उसके कुलमें कोई भी नरकगामी अथवा प्रेत नहीं होता। जो भगवान् श्रीकृष्णके समीप द्वारका-माहात्म्यका पाठ करता है, श्रीकृष्ण-जन्माष्टमी तथा द्वादशीका व्रत करता तथा रातमें जागता है, उसके दर्शन, कीर्तन, स्मरण तथा स्पर्शसे करोड़ों तीर्थोंका फल प्राप्त होता है। उसके स्मरणसे दस हजार जन्मोंका पाप नष्ट हो जाता है। जिसके घरमें यह भागवतशास्त्र सदा विद्यमान रहता है, उसकी इस संसारमें पुनरावृत्ति नहीं होती है। वैष्णवके प्रसन्न होनेपर भगवान् विष्णु प्रसन्न होते हैं; अत: विष्णुकी प्रसन्नताके लिये वैष्णवको अवश्य प्रसन्न करे। जो पुण्यक्षेत्रमें नील बोता और मूली खाता है, नीली कर्म करता तथा रस बेंचता है, उसे पुण्यकी प्राप्ति नहीं होती है। वह पापका भागी होता है। सैकड़ों यज्ञोंका अनुष्ठान करके भी वह पुण्यका भागी नहीं होता है। जो मनुष्य किसी वैदिक कर्मके प्राप्त हुए बिना ही पीपलकी लकड़ी काटता है, उसे ब्रह्महत्याका पाप लगता है। मदारके वृक्षमें एक बार कुल्हाड़ी मारनेपर मनुष्य कई मन्वन्तरोंतक रौरव नरककी पीड़ा भोगता है। जो नीमका वृक्ष काटता है, वह कोढ़ी होता है। उसके किये हुए पूजन, व्रत एवं दानको भगवान् सूर्य नहीं ग्रहण करते हैं। जो अमावास्याको वनस्पतियोंका छेदन करता है, उसे द्वादशीका पुण्य नहीं मिलता और एक-एक पत्र, पुष्प तथा फलके बदलेमें ब्रह्महत्याका पाप लगता है। वह मनुष्य सात कल्पोंतक यमलोकमें निवास करता है। उसके किसी भी कार्यमें उन्नति नहीं होती है। जो मनुष्य आकका पेड़ लगाता और उसकी रक्षा करता है, वह सात कल्पोंतक भगवान् सूर्यनारायणके समीप वास करता है। एक लाख देववृक्ष लगानेसे जो फल होता है, वही एक पीपलका पेड़ लगानेसे प्राप्त हो जाता है। आँवला और तुलसी लगानेका भी ऐसा ही फल मिलता है। जो देवताओं, पितरों, मनुष्यों (सनकादिकों) तथा अतिथियोंका तर्पण एवं पूजन करते हुए वर्द्धिनी द्वादशीका व्रत करता है, वह परम पदको प्राप्त होता है। कलिकालमें प्रात:काल उठकर द्वारकाका कीर्तन करनेसे मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो निश्चय ही स्वर्गलोकमें जाता है।

जो भगवान्‌के भक्तोंसे वैर रखते और एकादशी व्रत नहीं करते हैं, उन्हें यमदूत ले जाते हैं। जो वैष्णवोंको गोपीचन्दनकी मृत्तिका देते हैं, उन्हें त्रिपुण्ड्रधारी महात्मा पुरुषोंके समान पुण्यफलकी प्राप्ति होती है। जो प्रात:काल उठकर 'द्वारके! द्वारके!' ऐसा पुकारता है, वह द्वारकानामका नित्य कीर्तन करनेसे द्वारका-वासका फल पाता है। जो श्रीनामसे अंकित

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

बिल्वपत्रोंद्वारा श्रीपति भगवान् विष्णुकी पूजा करता है, वह सातों द्वीपोंका स्वामी होता है। जो सदा कलिमें बिल्वपत्रोंसे देवताओंकी पूजा करते हैं, वे दस हजार अश्वमेध यज्ञोंका फल पाते हैं। पीपलके दलसे गिरे हुए जलसे देवता तथा ऋषि-मुनि पवित्र होते हैं। जो बिल्वपत्रसे ब्रह्मा, शिव तथा सूर्य आदिका पूजन करते हैं, वे अक्षय लोकोंमें जाते हैं। बिल्व-पत्रोंसे लक्ष्मी, सरस्वती, सावित्री तथा दुर्गाजीका पूजन करके मनुष्य स्वर्गलोकमें जाते हैं। बिल्वपत्रका महत्त्व तुलसीदलसे भी अधिक है, अतः सदा यत्नपूर्वक उससे श्रीहरिका पूजन करना चाहिये। जो द्वादशी तथा रविवारको बिल्ववृक्षकी पूजा करते हैं, वे सैकड़ों ब्रह्महत्याओंके पापसे भी लिप्त नहीं होते हैं। कलियुगमें श्रीकृष्णका कीर्तन करनेसे मानव बीती हुई सात पीढ़ियों और आनेवाली चौदह पीढ़ियोंके सब मनुष्योंका उद्धार कर देता है।[१]

श्रीमद्भागवतपुराणका एक-एक उत्तम श्लोक भी भगवान् श्रीकृष्णके लिये प्रीतिजनक है तथा पाठ करनेवालेको वह कोटि यज्ञोंका फल देनेवाला है। जो द्विज पूरे कार्तिकमासमें भगवान् श्रीकृष्णके सम्मुख बैठकर गीता-पाठ करते हैं, उनके सौ कोटि कल्पोंके पाप भी नष्ट हो जाते हैं।[२] कलियुगमें जो मनुष्य भक्तिभावसे गोमती-समुद्र-संगम तथा रुक्मिणीसहित श्रीकृष्णका दर्शन करते हैं, वे धन्य हैं। द्वारका जाते हुए मनुष्यकी यदि मार्गमें ही मृत्यु हो जाय तो पितरोंसहित उसकी परम धामसे पुनरावृत्ति नहीं होती है।[३] जो मनुष्य प्रतिदिन उत्तम भक्तिसे कृष्ण-कृष्णका कीर्तन करता है, वह अनायास ही सौ अश्वमेध यज्ञोंका फल पा लेता है।[४]

द्वारका-माहात्म्य-खण्ड सम्पूर्ण

सं० स्कन्दपुराण सम्पूर्ण

१- अतीतान्सप्त पुरुषान् भविष्यांश्च चतुर्दश। नरस्तारयते सर्वान् कलौ कृष्णेति कीर्तनात्॥
(स्क० पु०, द्वा० मा० ४२। ११)

२- तथा भागवतस्योक्तं पुराणं श्लोकमुत्तमम् । कृष्णस्य प्रीतिजननं यज्ञकोटिफलप्रदम्॥
तेषां विलीयते पापं कल्पकोटिशतैः कृतम् । गीतां पठन्ति कृष्णाग्रे कार्तिकं सकलं द्विजाः॥
(स्क० पु०, द्वा० मा० ४२। ३६-३७)

३- द्वारकां गच्छमानस्य विपत्तिर्भवते यदि । न तस्य पुनरावृत्तिः पितृभिः सह तत्पदात्॥
(स्क० पु०, द्वा० मा० ४५। २५)

४- कृष्ण कृष्णेति यो ब्रूयात् सद्भक्त्या प्रत्यहं नरः। हेलया सोऽश्वमेधानां शतानां लभते फलम्॥
(स्क० पु०, द्वा० मा० ४६। २७)

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

गीताप्रेस, गोरखपुरसे प्रकाशित पुराण-साहित्य

श्रीमद्भागवतमहापुराण, व्याख्यासहित (कोड 26, 27) ग्रन्थाकार—श्रीमद्भागवत भारतीय वाङ्मयका मुकुटमणि है। भगवान् शुकदेवद्वारा महाराज परीक्षित्‌को सुनाया गया भक्तिमार्गका तो मानो सोपान ही है। इसके प्रत्येक श्लोकमें श्रीकृष्ण-प्रेमकी सुगन्धि है। यह सम्पूर्ण ग्रन्थरत्न मूलके साथ हिन्दी-अनुवाद, पूजन-विधि, भागवत-माहात्म्य, आरती, पाठके विभिन्न प्रयोगोंके साथ दो खण्डोंमें उपलब्ध है। पत्राकारकी तरह बेड़िया **(कोड 1951, 1552)** सचित्र, सजिल्द, **(कोड 1552, 1553)** गुजराती, **(कोड 1678, 1735)** सानुवाद, मराठी, **(कोड 1739, 1740)**, कन्नड़, **(कोड 1577, 1744)** बँगला, **(कोड 1966, 1967, 1968)** तमिल, **(कोड 1831, 1832)** ओड़िआ, **(कोड 1975, 1976)** तेलुगु, **(कोड 564, 565)** अंग्रेजी-अनुवाद, **(कोड 25)** केवल हिन्दी बृहदाकार, बड़े टाइपमें, **(कोड 1945)** (वि० सं०) केवल हिन्दी **(कोड 1930)** केवल हिन्दी, **(कोड 1608)** केवल गुजराती, **(कोड 29)** मूल, मोटा टाइप, संस्कृत, ग्रन्थाकार **(कोड 1573)** मूल, मोटा टाइप, तेलुगु, ग्रन्थाकार **(कोड 124)** मूल मझला आकार, **(कोड 1855)** विशिष्ट सं० मूल, मझला संस्कृतमें भी।

संक्षिप्त शिवपुराण, मोटा टाइप (कोड 789) ग्रन्थाकार—इस पुराणमें परात्पर ब्रह्म शिवके कल्याणकारी स्वरूपका तात्त्विक विवेचन, रहस्य, महिमा और उपासनाका विस्तृत वर्णन है। सचित्र, सजिल्द, विशिष्ट संस्करण **(कोड 1468)** हिन्दी एवं **(कोड 1286)** गुजरातीमें भी उपलब्ध।

संक्षिप्त पद्मपुराण (कोड 44) ग्रन्थाकार—इस पुराणमें भगवान् विष्णुकी विस्तृत महिमाके साथ, भगवान् श्रीराम तथा श्रीकृष्णके चरित्र, विभिन्न तीर्थोंका माहात्म्य, शालग्रामका स्वरूप, तुलसी-महिमा, गीता माहात्म्य, विष्णुसहस्रनाम, उपासना-विधि तथा विभिन्न व्रतोंका सुन्दर वर्णन है। सचित्र, सजिल्द।

संक्षिप्त मार्कण्डेयपुराण (कोड 539) ग्रन्थाकार—भगवतीकी विस्तृत महिमाका परिचय देनेवाले इस पुराणमें दुर्गासप्तशतीकी कथा एवं माहात्म्य, हरिश्चन्द्रकी कथा, मदालसा-चरित्र, अत्रि-अनसूयाकी कथा, दत्तात्रेय-चरित्र आदि अनेक सुन्दर कथाओंका विस्तृत वर्णन है। सचित्र, सजिल्द।

श्रीविष्णुपुराण, अनुवादसहित (कोड 48) ग्रन्थाकार—इसके प्रतिपाद्य भगवान् विष्णु हैं, जो सृष्टिके आदिकारण, नित्य, अक्षय, अव्यय तथा एकरस हैं। इसमें आकाश आदि भूतोंका परिमाण, समुद्र, सूर्य आदिका परिमाण, पर्वत, देवतादिकी उत्पत्ति, मन्वन्तर, कल्प-विभाग, सम्पूर्ण धर्म एवं देवर्षि तथा राजर्षियोंके चरित्रका विशद वर्णन है। सचित्र, सजिल्द **(कोड 1364)** केवल हिन्दी अनुवादमें भी उपलब्ध।

संक्षिप्त नारदपुराण (कोड 1183) ग्रन्थाकार—इसमें सदाचार-महिमा, वर्णाश्रम धर्म, भक्ति तथा भक्तके लक्षण, देवपूजन, तीर्थ-माहात्म्य, दान-धर्मके माहात्म्य और भगवान् विष्णुकी महिमाके साथ अनेक भक्तिपरक उपाख्यानोंका विस्तृत वर्णन किया गया है। सचित्र, सजिल्द।

संक्षिप्त स्कन्दपुराण (कोड 279) ग्रन्थाकार—यह पुराण कलेवरकी दृष्टिसे सबसे बड़ा है तथा इसमें लौकिक और पारलौकिक ज्ञानके अनन्त उपदेश भरे हैं। इसमें भगवान् शिवकी महिमा, सती-चरित्र, शिव-पार्वती-विवाह, कार्तिकेय-जन्म, तारकासुर-वध एवं धर्म, सदाचार, योग, ज्ञान तथा भक्तिके सुन्दर विवेचनके साथ-साथ अनेक साधु-महात्माओंके सुन्दर चरित्र पिरोये गये हैं। सचित्र, सजिल्द।

संक्षिप्त ब्रह्मपुराण (कोड 1111) ग्रन्थाकार—इस पुराणमें सृष्टिकी उत्पत्ति, पृथुका पावन चरित्र, सूर्य एवं चन्द्रवंशका वर्णन, श्रीकृष्णचरित्र, कल्पान्तजीवी मार्कण्डेय मुनिका चरित्र, तीर्थोंका माहात्म्य एवं अनेक भक्तिपरक आख्यानोंकी सुन्दर चर्चा की गयी है। सचित्र, सजिल्द।

संक्षिप्त गरुडपुराण—(कोड 1189) ग्रन्थाकार—इस पुराणके अधिष्ठातृ देव भगवान् विष्णु हैं। इसमें ज्ञान, भक्ति, वैराग्य, सदाचार, निष्काम कर्मकी महिमाके साथ यज्ञ, दान, तप, तीर्थ आदि शुभ कर्मोंमें सर्व-साधारणको प्रवृत्त करनेके लिये अनेक लौकिक एवं पारलौकिक फलोंका वर्णन किया गया है। सचित्र, सजिल्द।

संक्षिप्त भविष्यपुराण—(कोड 584) ग्रन्थाकार—यह पुराण विषय-वस्तु एवं वर्णन-शैलीकी दृष्टिसे अत्यन्त उच्च कोटिका है। इसमें धर्म, सदाचार, नीति, उपदेश, अनेक आख्यान, व्रत, तीर्थ, दान, ज्योतिष एवं आयुर्वेदशास्त्रके विषयोंका अद्भुत संग्रह है। वेताल-विक्रम-संवादके रूपमें कथा-प्रबन्ध इसमें अत्यन्त रमणीय है। इसके अतिरिक्त इसमें नित्यकर्म, सामुद्रिक शास्त्र, शान्ति तथा पौष्टिक कर्मका भी वर्णन है। सचित्र, सजिल्द।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

संक्षिप्त श्रीवराहपुराण (कोड 1361) ग्रन्थाकार—इस पुराणमें भगवान् श्रीहरिके वराह-अवतारकी मुख्य कथाके साथ-साथ अनेक तीर्थ, व्रत, यज्ञ, दान आदिका विस्तृत वर्णन किया गया है। सचित्र, सजिल्द।

संक्षिप्त ब्रह्मवैवर्तपुराण (कोड 631) ग्रन्थाकार—इस पुराणमें चार खण्ड हैं—ब्रह्मखण्ड, प्रकृतिखण्ड, श्रीकृष्णजन्मखण्ड और गणेशखण्ड। इसमें भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाओंका विस्तृत वर्णन, अनेक रोचक एवं रहस्यमयी कथाएँ, श्रीराधाकी गोलोक-लीला तथा अवतार-लीलाका सुन्दर विवेचन किया गया है। सचित्र, सजिल्द।

वामनपुराण, अनुवादसहित (कोड 1432) ग्रन्थाकार—यह पुराण मुख्यरूपसे त्रिविक्रम भगवान् विष्णुके दिव्य माहात्म्यका व्याख्याता है। इसमें भगवान् वामन, नर-नारायण, भगवती दुर्गाके उत्तम चरित्रके साथ-साथ भक्त प्रह्लाद तथा श्रीदामा आदि भक्तोंके बड़े रम्य आख्यान हैं। सचित्र, सजिल्द।

अग्निपुराण, केवल हिन्दी-अनुवाद (कोड 1362) ग्रन्थाकार—इसमें परा-अपरा विद्याओंका वर्णन, महाभारतके सभी पर्वोंकी संक्षिप्त कथा, रामायणकी संक्षिप्त कथा, मत्स्य, कूर्म आदि अवतारोंकी कथाएँ, वास्तु-पूजा, विभिन्न देवताओंके मन्त्र आदि अनेक उपयोगी विषयोंका अत्यन्त सुन्दर प्रतिपादन किया गया है। सचित्र, सजिल्द।

मत्स्यमहापुराण, अनुवादसहित (कोड 557)—यह पुराण मत्स्यावतारके रूपमें भगवान् विष्णुकी लीलाओंका सुन्दर परिचायक है। इसमें मत्स्यावतारकी कथा, सृष्टि-वर्णन, मन्वन्तर तथा पितृवंश-वर्णन, ययाति-चरित्र, राजनीति, यात्राकाल, स्वप्नशास्त्र, शकुन-शास्त्र आदि अनेक विषयोंका सरल वर्णन किया गया है। सचित्र, सजिल्द।

कूर्मपुराण, अनुवादसहित (कोड 1131)—इस पुराणमें भगवान्के कूर्मावतारकी कथाके साथ-साथ सृष्टि वर्णन, वर्ण, आश्रम और उनके कर्तव्यका वर्णन, युगधर्म, मोक्षके साधन, तीर्थ-माहात्म्य, २८ व्यासोंकी कथाएँ, ईश्वर-गीता, व्यास-गीता आदि विविध विषयोंका अत्यन्त सुन्दर प्रतिपादन किया गया है। विभिन्न दृष्टियोंसे इस पुराणका पठन-पाठन सबके लिये कल्याणकारी है। सचित्र, सजिल्द।

संक्षिप्त श्रीमद्देवीभागवत-मोटा टाइप (कोड 1133) ग्रन्थाकार—यह पुराण परम पवित्र वेदकी प्रसिद्ध श्रुतियोंके अर्थसे अनुमोदित, अखिल शास्त्रोंके रहस्यका स्रोत तथा आगमोंमें अपना प्रसिद्ध स्थान रखता है। यह सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, वंशानुकीर्ति, मन्वन्तर आदि पाँचों लक्षणोंसे पूर्ण है। पराम्बा भगवतीके पवित्र आख्यानोंसे युक्त इस पुराणका पठन-पाठन तथा अनुष्ठान भक्तोंके त्रितापोंका शमन करनेवाला तथा सिद्धियोंका प्रदाता है। सचित्र, सजिल्द **(कोड 1897, 1898)** अनुवादसहित **(कोड 1326)** गुजराती।

नरसिंहपुराण, अनुवादसहित (कोड 1113) ग्रन्थाकार—इस पुराणमें दशावतारकी कथाएँ एवं सात काण्डोंमें भगवान् श्रीरामके पावन चरित्रके साथ-साथ सदाचार, राजनीति, वर्णधर्म, आश्रम-धर्म, योग-साधना आदिका सुन्दर विवेचन किया गया है। इसके अतिरिक्त इसमें भगवान् नरसिंहकी विस्तृत महिमा, अनेक कल्याणप्रद उपाख्यानोंका वर्णन, भौगोलिक वर्णन, सूर्य-चन्द्रादिसे उत्पन्न राजवंशोंका वर्णन तथा अनेक स्तुतियोंका उल्लेख है। सचित्र, सजिल्द।

महाभारत-खिलभाग हरिवंशपुराण, अनुवादसहित (कोड 38) ग्रन्थाकार— हरिवंशपुराण वेदार्थ-प्रकाशक महाभारत ग्रन्थका अन्तिम पर्व है। पुत्र-प्राप्तिकी कामनासे हरिवंशपुराणके श्रवणकी परम्परा भारतवर्षमें चिरकालसे प्रचलित है। भगवान् श्रीकृष्णसे सम्बन्धित अगणित कथाएँ इसमें ऐसी हैं, जो अन्यत्र दुर्लभ हैं। धार्मिक जन-सामान्यके कल्याणार्थ इसके अन्तमें सन्तानगोपाल-मन्त्र, अनुष्ठान-विधि, सन्तान-गोपाल-यन्त्र तथा संतान-गोपालस्तोत्र भी संगृहीत हैं। सचित्र, सजिल्द। **(कोड 1589)** केवल हिन्दीमें भी।

महाभागवत [देवीपुराण], अनुवादसहित (कोड 1610) ग्रन्थाकार—इस पुराणमें मुख्य रूपसे भगवती महाशक्तिके माहात्म्य एवं उनके विभिन्न चरित्रोंका विस्तृत वर्णन है। इसमें मूल प्रकृति भगवतीके गङ्गा, पार्वती, लक्ष्मी, सरस्वती, तुलसी आदि रूपोंमें विवर्तित होनेके मनोरम आख्यान हैं। सचित्र, सजिल्द।

लिङ्गमहापुराण, अनुवादसहित (कोड 1985) संस्कृत श्लोक एवं हिन्दी टीका—यह पुराण भगवान् शिवकी उपासना एवं महिमाका विस्तृत परिचायक है। इसमें शैवदर्शन, पाशुपतयोग, लिङ्ग-स्वरूप, लिङ्ग-माहात्म्य, लिङ्गार्चन एवं योगाचार्यों तथा शिव भक्तोंकी कथाओंका सरस वर्णन है। सचित्र, सजिल्द।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth

रजि० सं० ए० १७५

गीताप्रेस गोरखपुर

पो० गीताप्रेस—२७३००५

गोरखपुर, फोन (०५५१) २३३४७२१

In Public Domain. Digitized by Sarvagya Sharda Peeth

गीताप्रेस गोरखपुर

GITA PRESS, GORAKHPUR [SINCE 1923]

गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५

फोन : (०५५१) २३३४७२१, २३३१२५०, २३३१२५१

e-mail : **booksales@gitapress.org**—थोक पुस्तकोंसे सम्बन्धित सन्देश भेजें।
Gita Press website : **www.gitapress.org/gitapressbookshop.in**—सूची-पत्र तथा पुस्तकोंका विवरण पढ़ें एवं गीताप्रेसकी खुदरा पुस्तकें Online डाकसे/कूरियरसे मँगवायें।

In Public Domain. Digitzed by Sarvagya Sharda Peeth